॥ओ३म्॥

यजुर्वेदभाष्यम्

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितं संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां समलङ्कृतम्

सम्पादनम्

श्रद्धानन्द वैदिक शोधसंस्थान
गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

प्रथमो भाग:

प्रकाशक:
श्रद्धानन्द अनुसन्धान प्रकाशन केन्द्र
गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार.
वर्ष २००८

॥ओ३म्॥

यजुर्वेदभाष्यम्

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितं संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां समलङ्कृतम्

सम्पादक:

प्रो. ज्ञान प्रकाश शास्त्री

अध्यक्ष

श्रद्धानन्द वैदिक शोधसंस्थान

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

प्रथमो भाग:

प्रकाशक:

श्रद्धानन्द अनुसन्धान प्रकाशन केन्द्र

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार.

वर्ष २००८

प्रकाशकः–

श्रद्धानन्द अनुसन्धान प्रकाशन केन्द्र

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय

हरिद्वार.

सन् २००८

मूल्य

मुद्रकः–

भारत प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स

दिल्ली.

दूरभाष-09212390469

॥ओ३म्॥

अथ यजुर्वेदभाष्यारम्भः क्रियते॥

यो जीवेषु दधाति सर्वसुकृतज्ज्ञानं गुणैरीश्वरः

तं नत्वा क्रियते परोपकृतये सद्यः सुबोधाय च॥

ऋग्वेदस्य विधाय वै गुणगुणिज्ञानप्रदातुर्वरम्

भाष्यं काम्यमथो क्रियामययजुर्वेदस्य भाष्यं मया॥ १॥

चतुस्त्र्यङ्कैरङ्कैरवनिसहितैर्विक्रमसरे

शुभे पौषे मासे सितदलभविश्वोन्मिततिथौ।

गुरोर्वारे प्रातः प्रतिपदमतीष्टं सुविदुषां

प्रमाणैर्निर्बद्धं शतपथनिरुक्तादिभिरपि॥ २॥

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव। यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व॥ यजु० ३०.३॥

ईश्वरेण जीवानां गुणगुणिविज्ञानोपदेशाय ह्यृग्वेदे सर्वान् पदार्थान् व्याख्यायेदानीं मनुष्यैस्तेभ्यो यथायथोपकारग्रहणाय क्रियाः कथं कर्त्तव्या इत्युपदिश्यते। तत्र यद्यदङ्गं यद्यत्साधनं चापेक्षितं तत्तदत्र यजुर्वेदे प्रकाश्यते। कुतः? यावत् क्रियानिष्ठं ज्ञानं न भवति नैव तावच्छ्रेष्ठं सुखं कदाचिज्जायते। विज्ञानस्य क्रियाहेतुत्वप्रकाशकारकत्वाविद्यानिवर्त्तकत्वाधर्माप्रवर्त्तकत्वैर्धर्मपुरुषार्थयोः संयोजकत्वात्। यद्यत्कर्म विज्ञाननिमित्तं भवति तत्तत्सुखजनकं संपद्यते। तस्मान्मनुष्यैर्विज्ञानपुरःसरमेव कर्मानुष्ठानं नित्यं कर्त्तव्यम्। कुतः? जीवस्य चेतनत्वादकर्मतया स्थातुमशक्यत्वात्। नैव कश्चिदात्ममनःप्राणेन्द्रियचालनेन विना क्षणमपि स्थातुमर्हति। यजुर्भिर्यजन्तीत्युक्तप्रामाण्यात्। येन मनुष्या ईश्वरं धार्मिकान् विदुषश्च पूजयन्ति सर्वचेष्टासाङ्गत्यं शिल्पविद्यासङ्गतिकरणं शुभविद्यागुणदानं यथायोग्यतया सर्वोपकारे शुभे व्यवहारे विद्वत्सु च द्रव्यादिव्ययं कुर्वन्ति तद्यजुः; अन्यत्सर्वं भूमिकायां प्रकाशितं तत्र द्रष्टव्यम्। सा भूमिका चतुर्णां वेदानामेकैव वर्त्तते॥

अस्मिन् यजुर्वेदे चत्वारिंशदध्यायाः सन्ति तत्रैकैकस्मिन्नध्याये मन्त्राः संख्यायन्ते॥

अध्यायः	मन्त्रः	अध्या०	मं०	अध्या०	मं०	अध्या०	मं०
१	३१	११	८३	२१	६१	३१	२२
२	३४	१२	११७	२२	३४	३२	१६
३	६३	१३	५८	२३	६५	३३	९७
४	३७	१४	३१	२४	४०	३४	५८

५	४३	१५	६५	२५	४७	३५	२२
६	३७	१६	६६	२६	२६	३६	२४
७	४८	१७	९९	२७	४५	३७	२१
८	६३	१८	७७	२८	४६	३८	२८
९	४०	१९	९५	२९	६०	३९	१३
१०	३४	२०	९०	३०	२२	४०	१७

चत्वारिंशदध्यायस्था: सर्वे मन्त्रा एतावन्त: १९७५ एकोनविंशति: शतानि पञ्चसप्ततिश्च सन्ति॥

भाषार्थ:-अब यजुर्वेद के भाष्य का आरम्भ किया जाता है॥

जो निर्गुण गुणपुञ्ज से देत सुकृत विज्ञान।
प्रणतपाल जगदीश्वरहि करि प्रणाम तिहि ध्यान॥ १॥
ज्ञानदायि ऋग्वेद का भाष्याभीष्ट विधाय।
पर-उपकार विचारि करि शीघ्र सुबोध निधाय॥ २॥
शतपथ ब्राह्मण आदि पुनि निघण्टु निरुक्त निहारि।
यजुर्वेद जो क्रियापर वर्नौ ताहि विचारि॥ ३॥
एक सहस्त्र नवशत अधिक विक्रमसर चौंतीस।
पौष शुक्ल तेरसि तिथि दिन अधीश वागीश॥ ४॥

विक्रम के संवत् १९३४ पौष सुदि १३ गुरुवार के दिन यजुर्वेद के भाष्य बनाने का आरम्भ किया जाता है। (विश्वानि०) इस मन्त्र का अर्थ भूमिका में कर दिया है।

ईश्वर ने ऋग्वेद में गुण और गुणी के विज्ञान के प्रकाश के द्वारा सब पदार्थ प्रसिद्ध किये हैं, उन मनुष्यों को पदार्थों से जिस-जिस प्रकार यथायोग्य उपकार लेने के लिये क्रिया करनी चाहिये तथा उस क्रिया के जो-जो अङ्ग वा साधन हैं, सो-सो यजुर्वेद में प्रकाशित किये हैं, क्योंकि जब-तक क्रिया करने का दृढ़ ज्ञान न हो, तब तक उस ज्ञान से श्रेष्ठ सुख कभी नहीं हो सकता और विज्ञान होने के ये हेतु हैं कि जो क्रिया [और] प्रकाश, अविद्या की निवृत्ति, अधर्म में अप्रवृत्ति तथा धर्म और पुरुषार्थ का संयोग करना है। जो कर्मकांड है, सो विज्ञान का निमित्त और जो विज्ञानकांड है, सो क्रिया से फल देने वाला होता है। कोई जीव ऐसा नहीं है कि जो मन, प्राण, वायु, इन्द्रिय और शरीर के चलाये बिना एक क्षण भर भी रह सके, क्योंकि जीव अल्पज्ञ एकदेशवर्त्ती चेतन है। इसलिये जो ईश्वर ने ऋग्वेद के मन्त्रों से सब पदार्थों के गुणगुणी का ज्ञान और यजुर्वेद के मन्त्रों से सब क्रिया करनी प्रसिद्ध की है, क्योंकि (ऋक्) और (यजु:) इन शब्दों का अर्थ भी यही है कि **जिससे मनुष्य लोग ईश्वर से लेके पृथिवीपर्यन्त पदार्थों के ज्ञान से धार्मिक विद्वानों का संग, सब शिल्पक्रिया सहित विद्याओं की सिद्धि, श्रेष्ठ विद्या, श्रेष्ठ गुण वा विद्या का दान, यथायोग्य उक्त विद्या के व्यवहार से सर्वोपकार के अनुकूल द्रव्यादि**

पदार्थों का खर्च करें, इसलिये इसका नाम यजुर्वेद है। और भी इन शब्दों का अभिप्राय भूमिका में प्रकट कर दिया है, वहां देख लेना चाहिये, क्योंकि उक्त भूमिका चारों वेद की एक ही है॥

इस यजुर्वेद में सब चालीस अध्याय हैं, उन एक-एक अध्याय में कितने-कितने मन्त्र हैं, सो पूर्व संस्कृत में कोष्ठ बनाके सब लिख दिया है और चालीसों अध्याय के सब मिलके १९७५ (उन्नीस्सौ पचहत्तर) मन्त्र हैं॥

इषे त्वेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः। सविता देवता। इषे त्वेत्यारभ्य भागपर्य्यन्तस्य स्वराड्बृहतीछन्दः। मध्यमः स्वरः। अग्रे सर्वस्य ब्राह्म्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

अथोत्तमकर्मसिध्यर्थमीश्वरः प्रार्थनीय इत्युपदिश्यते॥

ऋग्वेद के भाष्य करने के पश्चात् यजुर्वेद के मन्त्रभाष्य का आरम्भ किया जाता है। इसके प्रथम अध्याय के प्रथम मन्त्र में उत्तम-उत्तम कामों की सिद्धि के लिये मनुष्यों को ईश्वर की प्रार्थना करनी अवश्य चाहिये, इस बात का प्रकाश किया है॥

ओ३म् इषे त्वोर्जे त्वा वायव स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणऽआप्यायध्वमघ्न्याऽइन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवाऽअयक्ष्मा मा व स्तेनऽईशत माघशंसो ध्रुवाऽअस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि॥ १॥

इषे। त्वा। ऊर्ज्जे। त्वा। वायवः। स्थ। देवः। वः। सविता। प्र। अर्पयतु। श्रेष्ठतमायेति श्रेष्ठऽतमाय। कर्म्मणे। आ। प्यायध्वम्। अघ्न्याः। इन्द्राय। भागं। प्रजावतीरिति प्रजाऽवतीः। अनमीवाः। अयक्ष्माः। मा। वः। स्तेनः। ईशत। मा अघशंसः इत्यघऽशंसः। ध्रुवाः। अस्मिन्। गोपताविति गोऽपतौ। स्यात। बह्वीः। यजमानस्य। पशून्। पाहि॥ १॥

पदार्थः-(इषे) अन्नविज्ञानयोः प्राप्तये। **इषमित्यन्ननामसु पठितम्** (निघं०२.७) **इषतीति गतिकर्मसु पठितम्** (निघं०२.१४) अस्माद्धातोः क्विपि कृते पदं सिध्यति **(त्वा)** विज्ञानस्वरूपं परमेश्वरम् **(ऊर्ज्जे)** पराक्रमोत्तमरसलाभाय। **'ऊर्ग्रसः'** (शत०५.१.२.८) **(त्वा)** अनन्तपराक्रमानन्दरसघनम् **(वायवः)** सर्वक्रियाप्राप्तिहेतवः स्पर्शगुणा भौतिकाः प्राणादयः। **वायुरिति पदनामसु पठितम्** (निघं०५.४) अनेन प्राप्तिसाधका वायवो गृह्यन्ते। वा गतिगन्धनयोरित्यस्मात् (कृवापा० उणा०१।१) अनेनाप्युक्तार्थो गृह्यते **(स्थ)** सन्ति। अत्र पुरुषव्यत्ययेन प्रथमपुरुषस्य स्थाने मध्यमपुरुषः **(देवः)** सर्वेषां सुखनां दाता सर्वविद्याद्योतकः। **देवो दानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा द्युस्थानो भवतीति वा यो देवः सा देवता** (निरु०७.१५) **(वः)** युष्माकं **(सविता)** सर्वजगदुत्पादकः सकलैश्वर्य्यवान् जगदीश्वरः **(प्रार्पयतु)** प्रकृष्टतया संयोजयतु **(श्रेष्ठतमाय)** अतिशयेन प्रशस्तः सोऽतिशयितस्तस्मै यज्ञाय **(कर्म्मणे)** कर्तुं योग्यत्वेन सर्वोपकारार्थाय **(आप्यायध्वम्)** आप्यायामहे वा। अत्र पक्षे व्यत्ययः **(अघ्न्याः)** वर्धयितुमर्हा हन्तुमनर्हा गाव इन्द्रियाणि पृथिव्यादयः पशवश्च। **'अघ्न्या इति गोनामसु पठितम्'** (निघं०२।११) **(इन्द्राय)** परमैश्वर्य्ययोगाय **(भागम्)** सेवनीयं भागानां धनानां ज्ञानानां वा भाजनम् **(प्रजावतीः)** भूयस्यः प्रजा वर्त्तन्ते यासु ताः। अत्र भूम्न्यर्थे मतुप् **(अनमीवाः)** अमीवो व्याधिर्न विद्यते यासु ताः। **'अम रोगे'** इत्यस्माद् बाहुलकादौणादिक **'ईवन्'** प्रत्ययः **(अयक्ष्माः)** न विद्यते यक्ष्मा रोगराजो यासु ताः। यक्ष इत्यस्मात्। **अर्त्तिस्तु०** (उणा०१।१३८) अनेन 'मन्' प्रत्ययः **(मा)** निषेधार्थे **(वः)** ताः। अत्र पुरुषव्यत्ययः **(स्तेनः)** चोरः

(ईशत) ईष्टां समर्थो भवतु। अत्र लोडर्थे लङ्। **बहुलं छन्दसि** [अष्टा०२.४.७३] इति शपो लुगभाव: **(मा)** निषेधार्थे **(अघशꣳस:)** योऽघं पापं शंसति स: **(ध्रुवा:)** निश्चलसुखहेतव: **(अस्मिन्)** वर्त्तमाने प्रत्यक्षे **(गोपतौ)** यो गवां पति: स्वामी तस्मिन् **(स्यात)** भवेयु: **(बह्वी:)** बह्वय: अत्र। **वा छन्दसि** (अष्टा०६।१।१०६) अनेन पूर्वसवर्णदीर्घादेश: **(यजमानस्य)** य: परमेश्वरं सर्वोपकारं धर्मं च यजति तस्य विदुष: **(पशून्)** गोऽश्वहस्त्यादीन् श्रिय: प्रजा वा। **श्रीर्हि पशव:** (शत०१.८.३.३६) **प्रजा वै पशव:** (शत०१.४.६.१७) **(पाहि)** रक्ष॥ अयं मन्त्र: (शत०(१.५.४.१-८) व्याख्यात:॥१॥

अन्वय:-हे मनुष्या अयं सविता देवो भगवान् वायवस्थ यान्यस्माकं वो युष्माकं च प्राणान्त:करणेन्द्रियाणि सन्ति तानि श्रेष्ठतमाय कर्मणे प्रार्पयतु। वयमिषेऽन्नायोत्तमेच्छायै सवितारं देवं त्वा त्वां तथोर्ज्जे पराक्रमोत्तमरसप्राप्तये भागं भजनीयं त्वा त्वां सततमाश्रयाम:; एवं भूत्वा यूयमाप्यायध्वं वयं चाप्यायामहे। हे परमेश्वर! भवान् कृपयाऽस्माकमिन्द्राय परमैश्वर्य्यप्राप्तये श्रेष्ठतमाय कर्मणे चेमा: प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा गा: सदैव प्रापर्यतु। हे परमात्मन्! भवत्कृपयास्माकं मध्ये कश्चिदघशंस: पापी स्तेनश्चोरश्च मेशत कदाचिन्मोत्पद्यताम्। तथा त्वमस्य यजमानस्य जीवस्य पशून् पाहि सततं रक्ष। यतो व: ता गा इमान् पशूंश्चाघशंस: स्तेनो मेशत। हर्तुं समर्थो न भवेद् यतोऽस्मिन् गोपतौ पृथिव्यादिरक्षणमिच्छुकस्य धार्मिकमनुष्यस्य समीपे बह्वीर्बह्व्यो गावो ध्रुवा: स्यात भवेयु:॥१॥

भावार्थ:-मनुष्यै: सदैव धर्म्यं पुरुषार्थमाश्रित्यर्ग्वेदाध्ययनेन गुणगुणिनौ ज्ञात्वा सर्वपदार्थानां संप्रयोगेण पुरुषार्थसिद्धये श्रेष्ठतमाभि: क्रियाभि: संयुक्तैर्भवितव्यम्। यत ईश्वरानुग्रहेण सर्वेषां सुखैश्वर्य्यस्य वृद्धि: स्यात्। तथा सम्यक् क्रियया प्रजाया रक्षणशिक्षणे सदैव कर्त्तव्ये। यतो नैव कश्चिद् रोगाख्यो विघ्नश्चोरश्च प्रबल: कदाचिद् भवेत् प्रजाश्च सर्वाणि सुखानि प्राप्नुयु:। येनेयं विचित्रा सृष्टी रचिता तस्मै जगदीश्वराय सदैव धन्यवादा वाच्या:। एवं कुर्वतो भवत: परमदयालुरीश्वर: कृपया सदैव रक्षयिष्यतीति मन्तव्यम्॥१॥

पदार्थान्वयभाषा:-हे मनुष्य लोगो! जो **(सविता)** सब जगत् की उत्पत्ति करने वाला सम्पूर्ण ऐश्वर्ययुक्त **(देव:)** सब सुखों के देने और सब विद्या के प्रसिद्ध करने वाला परमात्मा है, सो **(व:)** तुम हम और अपने मित्रों के जो **(वायव:)** सब क्रियाओं के सिद्ध करानेहारे स्पर्श गुणवाले प्राण अन्त:करण और इन्द्रियां **(स्थ)** हैं, उनको **(श्रेष्ठतमाय)** अत्युत्तम **(कर्मणे)** करने योग्य सर्वोपकारक यज्ञादि कर्मों के लिये **(प्रार्पयतु)** अच्छी प्रकार संयुक्त करे। हम लोग **(इषे)** अन्न आदि उत्तम-उत्तम पदार्थों और विज्ञान की इच्छा और **(ऊर्जे)** पराक्रम अर्थात् उत्तम रस की प्राप्ति के लिये **(भागम्)** सेवा करने योग्य धन और ज्ञान के भरे हुए **(त्वा)** उक्त गुणवाले और **(त्वा)** श्रेष्ठ पराक्रमादि गुणों के देने हारे आपका सब प्रकार से आश्रय करते हैं। हे मित्र लोगो! तुम भी ऐसे होकर **(आप्यायध्वम्)** उन्नति को प्राप्त हो तथा हम भी हों। हे भगवन् जगदीश्वर! हम लोगों के **(इन्द्राय)** परम ऐश्वर्य्य की प्राप्ति के लिये **(प्रजावती:)** जिनके बहुत सन्तान हैं तथा जो **(अनमीवा:)** व्याधि और **(अयक्ष्मा:)** जिनमें राजयक्ष्मा आदि रोग नहीं हैं, वे **(अघ्न्या:)** जो-जो गौ आदि पशु वा उन्नति करने योग्य हैं, जो कभी हिंसा करने योग्य नहीं, जो इन्द्रियां वा पृथिवी आदि लोक हैं, उन को सदैव **(प्रार्पयतु)** नियत कीजिये। हे जगदीश्वर! आपकी कृपा से हम लोगों में से दु:ख देने के लिये कोई **(अघशंस:)** पापी वा **(स्तेन:)** चोर डाकू **(मा ईशत)** मत उत्पन्न हो तथा आप इस **(यजमानस्य)** परमेश्वर और सर्वोपकार धर्म के सेवन करने वाले मनुष्य के **(पशून्)** गौ, घोड़े और हाथी आदि तथा लक्ष्मी और प्रजा की **(पाहि)** निरन्तर रक्षा कीजिये, जिससे इन पदार्थों के हरने को पूर्वोक्त कोई दुष्ट मनुष्य

समर्थ **(मा)** न हो, **(अस्मिन्)** इस धार्मिक **(गोपतौ)** पृथिवी आदि पदार्थों की रक्षा चाहने वाले सज्जन मनुष्य के समीप **(बह्वीः)** बहुत से उक्त पदार्थ **(ध्रुवाः)** निश्चल सुख के हेतु **(स्यात)** हों। इस मन्त्र की व्याख्या शतपथ-ब्राह्मण में की है, उसका ठिकाना पूर्व संस्कृत-भाष्य में लिख दिया और आगे भी ऐसा ही ठिकाना लिखा जायगा, जिसको देखना हो वह उस ठिकाने से देख लेवे॥१॥

भावार्थभाषाः-विद्वान् मनुष्यों को सदैव परमेश्वर और धर्मयुक्त पुरुषार्थ के आश्रय से ऋग्वेद को पढ़ के गुण और गुणी को ठीक-ठीक जानकर सब पदार्थों के सम्प्रयोग से पुरुषार्थ की सिद्धि के लिये अत्युत्तम क्रियाओं से युक्त होना चाहिये कि जिससे परमेश्वर की कृपापूर्वक सब मनुष्यों को सुख और ऐश्वर्य की वृद्धि हो। सब लोगों को चाहिये कि अच्छे-अच्छे कामों से प्रजा की रक्षा तथा उत्तम-उत्तम गुणों से पुत्रादि की शिक्षा सदैव करें कि जिससे प्रबल रोग, विघ्न और चोरों का अभाव होकर प्रजा और पुत्रादि सब सुखों को प्राप्त हों, यही श्रेष्ठ काम सब सुखों की खान है। हे मनुष्य लोगो! आओ अपने मिलके जिसने इस संसार में आश्चर्यरूप पदार्थ रचे हैं, उस जगदीश्वर के लिये सदैव धन्यवाद देवें। वही परम दयालु ईश्वर अपनी कृपा से उक्त कामों को करते हुए मनुष्यों की सदैव रक्षा करता है॥१॥

वसोः पवित्रमित्यस्य ऋषिः स एव। यज्ञो देवता। स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

स यज्ञः कीदृशो भवतीत्युपदिश्यते॥

वह यज्ञ किस प्रकार का होता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

वसोः पवित्रमसि द्यौरसि पृथिव्यसि मातरिश्वनो घर्मोऽसि विश्वधाऽअसि।

परमेण धाम्ना दृꣳहस्व मा ह्वार्मा ते यज्ञपतिर्ह्वार्षीत्॥ २॥

वसोः। पवित्रं। असि। द्यौः। असि। पृथिवी। असि। मातरिश्वनः। घर्मः। असि। विश्वधा इति विश्वधाः। असि। परमेण। धाम्ना। दृꣳहस्व। मा। ह्वाः। मा। ते। यज्ञपतिरिति यज्ञऽपतिः। ह्वार्षीत्॥ २॥

पदार्थः-(वसोः) वसुः। अत्रार्थाद्विभक्तेर्विपरिणाम इति प्रथमा विभक्तिर्विपरिणाम्यते। **यज्ञो वै वसुः** (शत०१.५.४.९) **(पवित्रं)** पुनाति येन कर्मणा तत् **(असि)** भवति अत्र सर्वत्र पुरुषव्यत्ययः **(द्यौः)** विज्ञानप्रकाशहेतुः **(असि)** भवति **(पृथिवी)** विस्तृतः **(असि)** भवति **(मातरिश्वनः)** मातरि अन्तरिक्षे श्वसिति आश्वनिति वा तस्य वायोः। **श्वन्नुक्षन्०** (उण०१.१५७) अनेनायं शब्दो निपातितः। **मातरिश्वा वायुर्मातर्य्यन्तरिक्षे श्वसिति मातर्य्याश्वनितीति वा** (निरु०७.२६) **(घर्मः)** अग्नितापयुक्तः शोधकः। **घर्म इति यज्ञनामसु पठितम्** (निघं०३.१७) **(असि)** भवति **(विश्वधाः)** विश्वं दधातीति **(असि)** भवति **(परमेण)** प्रकृष्टसुखयुक्तेन **(धाम्ना)** सुखानि यत्र दधति तेन। बाहुलकाड्डुधाञ्धातोर्मनिन् प्रत्ययः **(दृꣳहस्व)** वर्धते। अत्र पुरुषव्यत्ययो लडर्थे लोट् च **(मा)** निषेधार्थे **(ह्वाः)** ह्वरतु। अत्र लोडर्थे लुङ् **(मा)** निषेधार्थे **(ते)** तव **(यज्ञपतिः)** यज्ञस्य स्वामी यज्ञकर्त्ता यजमानः। धात्वर्थाद् यज्ञार्थस्त्रिधा भवति। विद्याज्ञानधर्मानुष्ठानवृद्धानां देवानां विदुषामैहिकपारमार्थिकसुखसंपादनाय सत्करणं सम्यक् पदार्थगुणसंमेलविरोधज्ञानसङ्गत्या शिल्पविद्याप्रत्यक्षीकरणं नित्यं विद्वत्समागमानुष्ठानं शुभविद्यासुखधर्मादिगुणानां नित्यं दानकरणमिति **(ह्वार्षीत्)** ह्वरतु ह्वर वा। अत्रापि लोडर्थे लुङ्॥ अयं मन्त्रः (शत०(१.५.४.९-११) व्याख्यातः॥२॥

अन्वयः-हे विद्वन्मनुष्य! त्वं यो वसोर्वसुरयं यज्ञः पवित्रमसि पवित्रकारकोऽस्ति। द्यौरसि सूर्य्यरश्मिस्थो भवति। पृथिव्यसि वायुना सह विस्तृतो भवति। तथा मातरिश्वनो घर्मोऽसि वायोः शोधको भवति। विश्वधा असि संसारस्य सुखधारको भवति। परमेण धाम्ना सह दृंहस्व दृंहते वर्धते। तमिमं यज्ञं मा ह्वार्मा त्यज। तथा ते तव यज्ञपतिस्तं मा ह्वार्षीत् मा त्यजतु॥२॥

भावार्थः-मनुष्याणां विद्याक्रियाभ्यां सम्यगनुष्ठितेन यज्ञेन पवित्रता प्रकाशः पृथिवी राज्यं वायुप्राणवद् राज्यनीतिः प्रतापः सर्वरक्षा अस्मिंल्लोके परलोके च परमसुखवृद्धिः परस्परमार्जवेन वर्त्तमानं कुटिलतात्यागश्च जायते। अत एव सर्वैर्मनुष्यैः परोपकाराय विद्यापुरुषार्थाभ्यां प्रीत्या नित्यमनुष्ठातव्य इति॥२॥

पदार्थः-हे विद्यायुक्त मनुष्य! तू जो **(वसोः)** यज्ञ **(पवित्रम्)** शुद्धि का हेतु **(असि)** है। **(द्यौः)** जो विज्ञान के प्रकाश का हेतु और सूर्य की किरणों में स्थिर होने वाला **(असि)** है। जो **(पृथिवी)** वायु के साथ देशदेशान्तरों में फैलनेवाला **(असि)** है। जो **(मातरिश्वनः)** वायु को **(घर्मः)** शुद्ध करनेवाला **(असि)** है। जो **(विश्वधाः)** संसार का धारण करनेवाला **(असि)** है तथा जो **(परमेण)** उत्तम **(धाम्ना)** स्थान से **(दृꣳहस्व)** सुख का बढ़ानेवाला है। इस यज्ञ का **(मा)** मत **(ह्वाः)** त्याग कर तथा **(ते)** तेरा **(यज्ञपतिः)** यज्ञ की रक्षा करने वाला यजमान भी उसको **(मा)** न **(ह्वार्षीत्)** त्यागे। धात्वर्थ के अभिप्राय से यज्ञ शब्द का अर्थ तीन प्रकार का होता है अर्थात् एक जो इस लोक और परलोक के सुख के लिये विद्या, ज्ञान और धर्म के सेवन से वृद्ध अर्थात् बड़े-बड़े विद्वान् हैं, उनका सत्कार करना। दूसरा अच्छी प्रकार पदार्थों के गुणों के मेल और विरोध के ज्ञान से शिल्पविद्या का प्रत्यक्ष करना और तीसरा नित्य विद्वानों का समागम अथवा शुभगुण विद्या सुख धर्म और सत्य का नित्य दान करना है॥२॥

भावार्थः-मनुष्य लोग अपनी विद्या और उत्तम क्रिया से जिस यज्ञ का सेवन करते हैं, उससे पवित्रता का प्रकाश, पृथिवी का राज्य, वायुरूपी प्राण के तुल्य राजनीति, प्रताप, सब की रक्षा, इस लोक और परलोक में सुख की वृद्धि, परस्पर कोमलता से वर्त्तना और कुटिलता का त्याग इत्यादि श्रेष्ठ गुण उत्पन्न होते हैं। इसलिये सब मनुष्यों को परोपकार तथा अपने सुख के लिये विद्या और पुरुषार्थ के साथ प्रीतिपूर्वक यज्ञ का अनुष्ठान नित्य करना चाहिये॥२॥

वसोः पवित्रमित्यस्य ऋषिः स एव। सविता देवता। भुरिग्जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर उक्त यज्ञ कैसा सुख करता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

वसो॑: प॒वित्र॑मसि श॒तधा॑रं॒ वसो॑: प॒वित्र॑मसि स॒हस्र॑धारम्।
दे॒वस्त्वा॑ सवि॒ता पु॑नातु॒ वसो॑: प॒वित्रे॑ण श॒तधा॑रेण सु॒प्वा॒ काम॑धुक्षः॥३॥

वसो॑रिति॑। प॒वित्र॑म्। अ॒सि॒। श॒तधा॑र॒मिति॑ श॒तऽधा॑रम्। वसो॑:। प॒वित्र॑म्। अ॒सि॒। स॒हस्र॑धार॒मिति॑ स॒हस्र॑ऽधारम्। दे॒वः। त्वा॒। स॒वि॒ता। पु॒ना॒तु॒। वसो॑:। प॒वित्रे॑ण। श॒तधा॑रे॒णेति॑ श॒तऽधा॑रेण। सु॒प्वेति॑ सु॒ऽप्वा॒। काम॑म्। अ॒धु॒क्षः॒॥३॥

पदार्थः-**(वसोः)** वसुर्यज्ञः **(पवित्रम्)** शुद्धिकारकं कर्म **(असि)** अस्ति। अत्र सर्वत्र पुरुषव्यत्ययः **(शतधारम्)** शतं बहुविधमसंख्यातं विश्वं धरतीति तम्। **शतमिति बहुनामसु पठितम्** (निघं०३.१) **(वसोः)**

वसुर्यज्ञः **(पवित्रम्)** वृद्धिनिमित्तम् **(असि)** अस्ति **(सहस्रधारम्)** बहुविधं ब्रह्माण्डं धरतीति तं यज्ञम्। **सहस्रमिति बहुनामसु पठितम्** (निघं०३.१) **(देवः)** स्वयंप्रकाशस्वरूपः परमेश्वरः **(त्वा)** तं यज्ञम् **(सविता)** सर्वेषां वसूनामग्निपृथिव्यादीनां त्रयस्त्रिंशतो देवानां सविता। **सविता वै देवानां प्रसविता** (शत०१.१.२.१७) **(पुनातु)** पवित्रीकरोतु **(वसोः)** पूर्वोक्तो यज्ञः **(पवित्रेण)** पवित्रनिमित्तेन वेदविज्ञानकर्मणा **(शतधारेण)** बहुविद्याधारकेण परमेश्वरेण वेदेन वा **(सुप्वा)** सुष्ठुतया पुनाति पवित्रहेतुर्वा तेन **(काम्)** कां कां वाचं **(अधुक्षः)** दोग्धुमिच्छसीति प्रश्नः। अत्र लडर्थे लुङ्। अयं मन्त्रः (शत०(१.५.४.१२-१६) व्याख्यातः॥३॥

अन्वयः-यो वसोर्वसुर्यज्ञः शतधारं पवित्रमसि शतधा शुद्धिकारकोऽस्ति सहस्रधारं पवित्रमसि सुखदोऽस्ति त्वा तं सविता देवः पुनातु। हे जगदीश्वर! भवान् वसोः वसुर्यज्ञः तेनास्माभिरनुष्ठितेन पवित्रेण शतधारेण सुप्वा यज्ञेनास्मान् पुनातु। हे विद्वन्! जिज्ञासो वा त्वं कां वाचमधुक्षः प्रपूरयितुमिच्छसि॥३॥

भावार्थः-ये मनुष्याः पूर्वोक्तं यज्ञमनुष्ठाय पवित्रा भवन्ति, तान् जगदीश्वरो बहुविधेन विज्ञानेन सह वर्त्तमानान् कृत्वैतेभ्यो बहुविधं सुखं ददाति, परन्तु ये क्रियावन्तः परोपकारिणः सन्ति, ते सुखमाप्नुवन्ति नेतरेऽलसाः। अत्र कामधुक्ष इति प्रश्नोऽस्ति॥३॥

पदार्थः-जो **(वसोः)** यज्ञ **(शतधारम्)** असंख्यात संसार का धारण करने और **(पवित्रम्)** शुद्धि करनेवाला कर्म **(असि)** है तथा जो **(वसोः)** यज्ञ **(सहस्रधारम्)** अनेक प्रकार के ब्रह्माण्ड को धारण करने और **(पवित्रम्)** शुद्धि का निमित्त सुख देनेवाला **(असि)** है, **(त्वा)** उस यज्ञ को **(देवः)** स्वयं प्रकाशस्वरूप **(सविता)** वसु आदि तेंतीस देवों का उत्पत्ति करनेवाला परमेश्वर **(पुनातु)** पवित्र करे। हे जगदीश्वर! आप हम लोगों से सेवित जो **(वसोः)** यज्ञ है, उस **(पवित्रेण)** शुद्धि के निमित्त वेद के विज्ञान **(शतधारेण)** बहुत विद्याओं का धारण करने वाले वेद और **(सुप्वा)** अच्छी प्रकार पवित्र करने वाले यज्ञ से हम लोगों को पवित्र कीजिये। हे विद्वान् पुरुष वा जानने की इच्छा करने वाले मनुष्य! तू **(काम्)** वेद की श्रेष्ठ वाणियों में से कौन-कौन वाणी के अभिप्राय को **(अधुक्षः)** अपने मन में पूर्ण करना अर्थात् जानना चाहता है॥३॥

भावार्थः-जो मनुष्य पूर्वोक्त यज्ञ का सेवन करके पवित्र होते हैं, उन्हीं को जगदीश्वर बहुत-सा ज्ञान देकर अनेक प्रकार के सुख देता है, परन्तु जो लोग ऐसी क्रियाओं के करने वाले वा परोपकारी होते हैं, वे ही सुख को प्राप्त होते हैं, आलस्य करने वाले कभी नहीं। इस मन्त्र में **(कामधुक्षः)** इन पदों से वाणी के विषय में प्रश्न है॥३॥

सा विश्वायुरित्यस्य ऋषिः स एव। विष्णुर्देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अत्र त्रिविधस्य प्रश्नस्य त्रीण्युत्तराण्युपदिश्यन्ते॥

जो पूर्वोक्त मन्त्र में तीन प्रश्न कहे हैं, उनके उत्तर अगले मन्त्र में क्रम से प्रकाशित किये हैं॥

सा वि॒श्वायुः॒ सा वि॒श्वक॑र्मा॒ सा वि॒श्वधा॑याः।

इन्द्र॑स्य त्वा भा॒गꣳ सोमे॒नात॑नच्मि॒ विष्णो॑ ह॒व्यꣳर॑क्ष॥४॥

सा। वि॒श्वायु॒रिति॑ वि॒श्वऽआ॑युः। सा। वि॒श्वक॒र्मेति॑ वि॒श्वऽक॑र्मा। सा। विश्वधा॑या॒ इति॑ वि॒श्वऽधा॑याः। इन्द्र॑स्य। त्वा॒। भा॒गं। सोमे॑न। आ। त॒न॒च्मि॒। विष्णो॒ इति॒ वि॒ष्णो॑। ह॒व्यं। र॒क्ष॥४॥

पदार्थः-**(सा)** वाक्। **वागु वै यज्ञः** (शत०१.१.४.११) **(विश्वायुः)** पूर्णमायुर्यस्यां सा ग्रहीतव्या **(सा)**

शिल्पविद्यासंपादिका **(विश्वकर्मा)** विश्वं संपूर्णं क्रियाकाण्डं सिध्यति यया सा **(सा)** संपूर्णविद्याप्रकाशिका **(विश्वधायाः)** या विश्वं सर्व जगद्विद्यागुणैः सह दधाति सा। विश्वोपपदे 'डुधाञ्' धातोः 'असुन्' प्रत्ययः, बाहुलकाण्णिच्च। **(इन्द्रस्य)** परमेश्वरस्य यज्ञस्य वा। **(त्वा)** तम्। अत्र पुरुषव्यत्ययः। **(भागम्)** भजनीयं शुभगुणभाजनं यज्ञम् **(सोमेन)** शिल्पविद्यया संपादितेन रसेनानन्देन वा **(आ)** समन्तात् **(तनच्मि)** संकोचयामि दृढीकरोमि **(विष्णो)** वेवेष्टि व्याप्नोति चराचरं विश्वं तत्संबुद्धौ परमेश्वर **(हव्यम्)** पूर्वोक्तयज्ञसम्बन्धि दातुं ग्रहीतुं योग्यं द्रव्यं विज्ञानं वा **(रक्ष)** पालय॥ अयं मन्त्रः (शत०(१.५.४.१७-२१) व्याख्यातः ॥४॥

अन्वयः-हे विष्णो व्यापकेश्वर! भवता या वाग्धार्य्यते सा विश्वायुः सा विश्वकर्मा सा विश्वधाया अस्ति। तया त्रिविधया गृहीतयैवाहं यमिन्द्रस्य **[त्वा तं]** भागं यज्ञं सोमेनातनच्मि तं हव्यं यज्ञं त्वं सततं रक्ष॥४॥

भावार्थः-त्रिविधा वाग्भवति। या ब्रह्मचर्य्याश्रमे पूर्णविद्यापठनाय पूर्णायुः करणाय च सेव्यते सा प्रथमा। या गृहाश्रमेऽनेकक्रियायोद्योगसुखप्रापकफला विस्तीर्य्यते सा द्वितीया या च सर्वमनुष्यैः सर्वमनुष्येभ्यः शरीरात्मसुखवर्धनायेश्वरादिपदार्थविज्ञानप्रकाशिका वानप्रस्थसंन्यासाश्रमे खलूपदिश्यते सा तृतीया। न चैनया विना कस्यापि सर्वं सुखं भवितुमर्हति। अनयैव मनुष्यैः पूर्वोक्तो यज्ञोऽनुष्ठातव्यः। व्यापकेश्वरः स्तोतव्यः प्रार्थनीय उपासनीयश्च भवति। अनुष्ठितोऽयं यज्ञो जगति रक्षाहेतुः प्रेम्णा सत्यभावेन प्रार्थितश्चेश्वरस्तान् सर्वदा रक्षति। परन्तु ये क्रियाकुशला धार्मिकाः परोपकारिणा जनाः सन्ति त ईश्वरं धर्मं च विज्ञाय सम्यक् क्रियया साधनेनैहिकं पारत्रिकं च सुखं प्राप्नुवन्ति नेतरे॥४॥

पदार्थः-हे **(विष्णो)** व्यापक ईश्वर! आप जिस वाणी का धारण करते हैं, **(सा)** वह **(विश्वायुः)** पूर्ण आयु की देने वाली **(सा)** वह **(विश्वकर्मा)** जिससे कि सम्पूर्ण क्रियाकाण्ड सिद्ध होता है और **(सा)** वह **(विश्वधायाः)** सब जगत् को विद्या और गुणों से धारण करने वाली है। पूर्व मन्त्र में जो प्रश्न है, उसके उत्तर में यही तीन प्रकार की वाणी ग्रहण करने योग्य है, इसी से मैं **(इन्द्रस्य)** परमेश्वर के **(भागम्)** सेवन करने योग्य यज्ञ को **(सोमेन)** विद्या से सिद्ध किये रस अथवा आनन्द से **(आ तनच्मि)** अपने हृदय में दृढ़ करता हूं तथा हे परमेश्वर! **(हव्यम्)** पूर्वोक्त यज्ञ सम्बन्धी देने-लेने योग्य द्रव्य वा विज्ञान की **(रक्ष)** निरन्तर रक्षा कीजिये॥४॥

भावार्थः-तीन प्रकार की वाणी होती है अर्थात् प्रथम वह जो कि ब्रह्मचर्य में पूर्ण विद्या पढ़ने वा पूर्ण आयु होने के लिये सेवन की जाती है। दूसरी वह जो गृहाश्रम में अनेक क्रिया वा उद्योगों से सुखों की देने वाली विस्तार से प्रकट की जाती और तीसरी वह जो इस संसार में सब मनुष्यों के शरीर और आत्मा के सुख की वृद्धि वा ईश्वर आदि पदार्थों के विज्ञान को देने वाली वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम में विद्वानों से उपदेश की जाती है। इस तीन प्रकार की वाणी के विना किसी को सब सुख नहीं हो सकते, क्योंकि इसी से पूर्वोक्त यज्ञ तथा व्यापक ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करना योग्य है। ईश्वर की यह आज्ञा है कि जो नियम से किया हुआ यज्ञ संसार में रक्षा का हेतु और प्रेम सत्यभाव से प्रार्थित ईश्वर विद्वानों की सर्वदा रक्षा करता है, वही सब का अध्यक्ष है, परन्तु जो क्रिया में कुशल धार्मिक परोपकारी मनुष्य हैं, वे ही ईश्वर और धर्म को जानकर मोक्ष और सम्यक् क्रियासाधनों से इस लोक और परलोक के सुख को प्राप्त होते हैं॥४॥

अग्ने व्रतपत इत्यस्य ऋषिः स एव। अग्निर्देवता। आर्चीत्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

किंच तद्वाचो व्रतमित्युपदिश्यते॥

उक्त वाणी का व्रत क्या है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्।

इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि॥५॥

अग्ने। व्रतपत इति व्रतऽपते। व्रतं। चरिष्यामि। तत्। शकेयं। तत्। मे। राध्यताम्। इदं। अहं। अनृतात्। सत्यं। उप। एमि॥५॥

पदार्थः-(**अग्ने**) हे सत्योपदेशकेश्वर! (**व्रतपते**) व्रतानां सत्यभाषणादीनां पतिः पालकस्तत्संबुद्धौ (**व्रतम्**) सत्यभाषणं सत्यकरणं सत्यमानं च (**चरिष्यामि**) अनुष्ठास्यामि (**तत्**) व्रतमनुष्ठातुम् (**शकेयम्**) यथा समर्थो भवेयम् (**तत्**) तस्यानुष्ठानं पूर्त्तिश्च (**मे**) मम (**राध्यताम्**) संसेध्यताम् (**इदम्**) प्रत्यक्षमाचरितुं सत्यं व्रतम् (**अहम्**) धर्मादिपदार्थचतुष्टयं चिकीर्षुर्मनुष्यः (**अनृतात्**) न विद्यते ऋतं यथार्थमाचरणं यस्मिन् तस्मान्मिथ्याभाषणान्मिथ्याकरणान्मिथ्यामानात् पृथग्भूत्वा (**सत्यम्**) यद्वेदविद्यया प्रत्यक्षादिभिः प्रमाणैः सृष्टिक्रमेण विदुषां सङ्गेन सुविचारेणात्मशुद्ध्या वा निर्भ्रमं सर्वहितं तत्त्वनिष्ठं सत्प्रभवं सम्यक् परीक्ष्य निश्चीयते तत्। **सत्यं कस्मात् सत्सु तायते सत्प्रभवं भवतीति वा** (निरु०३.१३) (**उप**) क्रियार्थे (**एमि**) ज्ञातुं प्राप्तुमनुष्ठातुं प्राप्नोमि॥ अयं मन्त्रः (शत०(१.१.१.१-६) व्याख्यातः ॥५॥

अन्वयः-हे व्रतपते अग्ने सत्यधर्मोपदेशकेश्वर! अहं यदिदमनृतात् पृथग्वर्त्तमानं सत्यं व्रतमाचरिष्यामि तन्मे मम भवता स्वकृपया राध्यतां संसेध्यतां यदुपैमि प्राप्नोमि यच्चानुष्ठातुं शकेयं तदपि सर्वं राध्यतां संसेध्यताम्॥५॥

भावार्थः-ईश्वरेण सर्वमनुष्यैरनुष्ठेयोऽयं धर्म उपदिश्यते। यो न्यायः पक्षपातरहितः सुपरीक्षितः सत्यलक्षणान्वितः सर्वहिताय वर्त्तमान ऐहिकपारमार्थिकसुखहेतुरस्ति स एव सर्वमनुष्यैः सदाचरणीयः। यच्चैतस्माद्विरुद्धो ह्यधर्मः स नैव केनापि कदाचिदनुष्ठेयः। एवं हि सर्वैः प्रतिज्ञा कार्य्या। हे परमेश्वर! वयं वेदेषु भवदुपदिष्टमिमं सत्यधर्ममाचरितुमिच्छामः। येयमस्माकमिच्छा सा भवत्कृपया सम्यक् सिध्येत्। यतो वयमर्थकाममोक्षफलानि प्राप्तुं शक्नुयाम। यथा चाधर्मं सर्वथा त्यक्त्वाऽनर्थकुकामबन्धदुःखफलानि पापानि त्यक्तुं त्याजयितुं च समर्था भवेम। यथा भवान् सत्यव्रतपालकत्वाद् व्रतपतिर्वर्त्तते तथैव वयमपि भवत्कृपया स्वपुरुषार्थेन यथाशक्ति सत्यव्रतपालका भवेम। एवं सदैव धर्मं चिकीर्षवः सत्क्रियावन्तो भूत्वा सर्वसुखोपगताः सर्वप्राणिनां सुखकारकाश्च भवेमेति सर्वैः सदैवेषितव्यम्॥ शतपथब्राह्मणेऽस्य मन्त्रस्य व्याख्यायामुक्तं मनुष्याणां द्विविधमेवाचरणं सत्यमनृतं च तत्र ये वाङ्मनःशरीरैः सत्यमेवाचरन्ति ते देवाः। ये चैवानृतमाचरन्ति ते मनुष्या अर्थादसुरराक्षसाः सन्तीति वेद्यम्॥५॥

पदार्थः-हे (**व्रतपते**) सत्यभाषण आदि धर्मों के पालन करने और (**अग्ने**) सत्य उपदेश करने वाले परमेश्वर! मैं (**अनृतात्**) जो झूंठ से अलग (**सत्यम्**) वेदविद्या, प्रत्यक्ष आदि प्रमाण, सृष्टिक्रम, विद्वानों का संग, श्रेष्ठ विचार तथा आत्मा की शुद्धि आदि प्रकारों से जो निर्भ्रम, सर्वहित, तत्त्व अर्थात् सिद्धान्त के प्रकाश करनेहारों से सिद्ध हुआ, अच्छी प्रकार परीक्षा किया गया (**व्रतम्**) सत्य बोलना, सत्य मानना और सत्य करना है, उसका (**उपैमि**) अनुष्ठान अर्थात् नियम से ग्रहण करने वा जानने और उसकी प्राप्ति की इच्छा करता हूं। (**मे**) मेरे (**तत्**) उस सत्यव्रत को आप (**राध्यताम्**) अच्छी प्रकार सिद्ध कीजिये जिससे कि (**अहम्**) मैं उक्त सत्यव्रत के नियम

करने को **(शकेयम्)** समर्थ होऊं और मैं **(इदम्)** इसी प्रत्यक्ष सत्यव्रत के आचरण का नियम **(चरिष्यामि)** करूंगा॥५॥

भावार्थः-परमेश्वर ने सब मनुष्यों को नियम से सेवन करने योग्य धर्म का उपदेश किया है, जो कि न्याययुक्त, परीक्षा किया हुआ, सत्य लक्षणों से प्रसिद्ध और सब का हितकारी तथा इस लोक अर्थात् संसारी और परलोक अर्थात् मोक्ष सुख का हेतु है, यही सब को आचरण करने योग्य है और उससे विरुद्ध जो कि अधर्म कहाता है, वह किसी को ग्रहण करने योग्य कभी नहीं हो सकता, क्योंकि सर्वत्र उसी का त्याग करना है। इसी प्रकार हमको भी प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि हे परमेश्वर! हम लोग वेदों में आप के प्रकाशित किये सत्यधर्म का ही ग्रहण करें तथा हे परमात्मन्! आप हम पर ऐसी कृपा कीजिये कि जिससे हम लोग उक्त सत्यधर्म का पालन कर के अर्थ, काम और मोक्षरूप फलों को सुगमता से प्राप्त हो सकें। जैसे सत्यव्रत के पालने से आप व्रतपति हैं, वैसे ही हम लोग भी आप की कृपा और अपने पुरुषार्थ से यथाशक्ति सत्यव्रत के पालनेवाले हों तथा धर्म करने की इच्छा से अपने सत्कर्म के द्वारा सब सुखों को प्राप्त होकर सब प्राणियों को सुख पहुंचाने वाले हों, ऐसी इच्छा सब मनुष्यों को करनी चाहिये॥५॥

शतपथ-ब्राह्मण के बीच इस मन्त्र की व्याख्या में कहा है कि मनुष्यों का आचरण दो प्रकार का होता है, एक सत्य और दूसरा झूठ का अर्थात् जो पुरुष वाणी मन और शरीर से सत्य का आचरण करते हैं, वे देव कहाते और जो झूठ का आचरण करने वाले हैं, वे असुर, राक्षस आदि नामों के अधिकारी होते हैं।

कस्त्वेत्यस्य ऋषिः स एव। प्रजापतिर्देवता। आर्चीपङ्क्तिछन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

केन सत्यमाचरितुमसत्यं त्यक्तुमाज्ञा दत्तेत्युपदिश्यते॥

किसने सत्य करने और असत्य छोड़ने की आज्ञा दी है, सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है॥

कस्त्वा॑ युनक्ति॒ स त्वा॑ युनक्ति॒ कस्मै॑ त्वा युनक्ति॒ तस्मै॑ त्वा युनक्ति।
कर्म॑णे वां॒ वेषा॑य वाम्॥६॥

कः। त्वा॒। यु॒नक्ति॒। सः। त्वा॒। यु॒नक्ति॒। कस्मै॑। त्वा॒। यु॒नक्ति॒। तस्मै॑। त्वा॒। यु॒नक्ति॒। कर्म्म॑णे। वा॒म्। वेषा॑य। वा॒म्॥६॥

पदार्थः-**(कः)** को हि सुखस्वरूपः **(त्वा)** क्रियानुष्ठातारं मनुष्यं पुरुषार्थे **(युनक्ति)** नियुक्तं करोति **(सः)** परमेश्वरः **(त्वा)** विद्यादिशुभगुणानां ग्रहणे विद्यार्थिनं विद्वांसं वा **(युनक्ति)** योजयति। अत्र सर्वत्रान्तर्गतो ण्यर्थः **(कस्मै)** प्रयोजनाय **(त्वा)** त्वां सुखमिच्छुकम् **(युनक्ति)** योजयति **(तस्मै)** सत्यव्रताचरणाय यज्ञाय **(त्वा)** धर्मं प्रचारयितुमुद्योगिनम् **(युनक्ति)** योजयति **(कर्मणे)** पूर्वोक्ताय यज्ञाय **(वाम्)** कर्त्तृकारयितारौ **(वेषाय)** सर्वशुभगुणविद्याव्याप्तये **(वाम्)** अध्येत्र्यध्यापकौ॥ अयं मन्त्रः (शत०(१।१।१३-२२; १.१.२.१) व्याख्यातः॥६॥

अन्वयः-हे मनुष्य! कस्त्वां युनक्ति स त्वां युनक्ति कस्मै त्वां युनक्ति तस्मै त्वां युनक्ति स एव वां कर्मणे नियोजयति। एवं च वां वेषायाज्ञापयति॥६॥

भावार्थः-अत्र प्रश्नोत्तराभ्यामीश्वरो जीवेभ्य उपदिशति। कश्चित् कंचित्प्रति ब्रूते। को मां सत्यक्रियायां प्रवर्त्तयतीति सोऽस्योत्तरं ब्रूयात्। ईश्वरः पुरुषार्थक्रियाकरणाय त्वामादिशतीति। एवं कश्चिद्विद्यार्थी विद्वांसं प्रति पृच्छेत्

को मदात्मन्यन्तर्यामिरूपतया सत्यं प्रकाशयतीति। स उत्तरं दद्यात् सर्वव्यापको जगदीश्वर इति। कस्मै प्रयोजनायेति केनचित् पृच्छ्यते। सुखप्राप्तये परमेश्वरप्राप्तये चेत्युत्तरं ब्रूयात्। पुनः कस्मै प्रयोजनायेति मां नियोजयतीति पृच्छ्यते। सत्यविद्याधर्मप्रचारायेत्युत्तरं ब्रूयात्। आवां किं करणायेश्वर उपदिशति। यज्ञानुष्ठानायेति परस्परमुत्तरं ब्रूयाताम्। पुनः स किमाप्तय आज्ञापयतीति। सर्वविद्यासुखेषु व्याप्तये तत्प्रचारायेत्युत्तरं ब्रूयात्। मनुष्यैर्द्वाभ्यां प्रयोजनाभ्यां प्रवर्त्तितव्यम्। एकमत्यन्तपुरुषार्थशरीरारोग्याभ्यां चक्रवर्त्तिराज्यश्रीप्राप्तिकरणम्। द्वितीयं सर्वा विद्याः सम्यक् पठित्वा तासां सर्वत्र प्रचारीकरणं चेति। नैव केनचिदपि कदाचित्पुरुषार्थं त्यक्त्वाऽलस्ये स्थातव्यमिति॥६॥

पदार्थः-**(कः)** कौन सुख स्वरूप **(त्वा)** तुझको अच्छी-अच्छी क्रियाओं के सेवन करने के लिये **(युनक्ति)** आज्ञा देता है। **(सः)** सो जगदीश्वर **(त्वा)** तुम को विद्या आदिक शुभ गुणों के प्रकट करने के लिये विद्वान् वा विद्यार्थी होने को **(युनक्ति)** आज्ञा देता है। **(कस्मै)** वह किस-किस प्रयोजन के लिये **(त्वा)** मुझ और तुझ को **(युनक्ति)** युक्त करता है, **(तस्मै)** पूर्वोक्त सत्यव्रत के आचरण रूप यज्ञ के लिये **(त्वा)** धर्म के प्रचार करने में उद्योगी को **(युनक्ति)** आज्ञा देता है, **(सः)** वही ईश्वर **(कर्मणे)** उक्त श्रेष्ठ कर्म करने के लिये **(वाम्)** कर्म करने और कराने वालों को नियुक्त करता है, **(वेषाय)** शुभ गुण और विद्याओं में व्याप्ति के लिये **(वाम्)** विद्या पढ़ने और पढ़ाने वाले तुम लोगों को उपदेश करता है॥६॥

भावार्थः-इस मन्त्र में प्रश्न और उत्तर से ईश्वर जीवों के लिये उपदेश करता है। जब कोई किसी से पूछे कि मुझे सत्य कर्मों में कौन प्रवृत्त करता है? इसका उत्तर ऐसा दे कि प्रजापति अर्थात् परमेश्वर ही पुरुषार्थ और अच्छी-अच्छी क्रियाओं के करने की तुम्हारे लिये वेद के द्वारा उपदेश की प्रेरणा करता है। इसी प्रकार कोई विद्यार्थी किसी विद्वान् से पूछे कि मेरे आत्मा में अन्तर्यामिरूप से सत्य का प्रकाश कौन करता है? तो वह उत्तर देवे कि सर्वव्यापक जगदीश्वर। फिर वह पूछे कि वह हमको किस-किस प्रयोजन के लिये उपदेश करता और आज्ञा देता है? उसका उत्तर देवे कि सुख और सुखस्वरूप परमेश्वर की प्राप्ति तथा सत्य विद्या और धर्म के प्रचार के लिये। मैं और आप दोनों को कौन-कौन काम करने के लिये वह ईश्वर उपदेश करता है? इसका परस्पर उत्तर देवें कि यज्ञ करने के लिये। फिर वह कौन-कौन पदार्थ की प्राप्ति के लिये आज्ञा देता है? इसका उत्तर देवें कि सब विद्याओं की प्राप्ति और उनके प्रचार के लिये। मनुष्यों को दो प्रयोजनों में प्रवृत्त होना चाहिये अर्थात् एक तो अत्यन्त पुरुषार्थ और शरीर की आरोग्यता से चक्रवर्त्ती राज्यलक्ष्मी की प्राप्ति करना और दूसरे सब विद्याओं को अच्छी प्रकार पढ़ के उनका प्रचार करना चाहिये। किसी मनुष्य को पुरुषार्थ को छोड़ के आलस्य में कभी नहीं रहना चाहिये॥६॥

प्रत्युष्टमित्यस्य ऋषिः स एव। यज्ञो देवता। प्राजापत्या जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

सर्वैर्दुष्टगुणानां दुष्टमनुष्याणां च निषेधः कर्त्तव्य इत्युपदिश्यते॥

सब मनुष्यों को उचित है कि दुष्ट गुण और दुष्ट स्वभाव वाले मनुष्यों का निषेध करें, इस बात का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

प्रत्युष्टꣳ रक्षः प्रत्युष्टाऽअरातयो निष्टप्तꣳ रक्षो निष्टप्ताऽअरातयः।
उर्वन्तरिक्षमन्वेमि॥७॥

प्रत्युष्टमिति प्रतिऽउष्टम्। रक्षः। प्रत्युष्टा इति प्रतिऽउष्टाः। अरातयः। निष्टप्तम्। निस्तप्तमिति। निःऽतप्तम्। रक्षः। निष्टप्ताः। निस्तप्ता इति निःऽतप्ताः। अरातयः। उरु। अन्तरिक्षम्। अनुऽएमि॥७॥

पदार्थः-(प्रत्युष्टम्) यत्प्रतीतं च तदुष्टं दग्धं च तत् **(रक्षः)** रक्षःस्वभावो दुष्टो मनुष्यः **(प्रत्युष्टाः)** प्रत्यक्षतया उष्टा दग्धव्यास्ते **(अरातयः)** अविद्यमाना रातिर्दानं येषु ते शत्रवः **(निष्टप्तम्)** नितरां तप्तं संतापयुक्तं च कार्य्यम् **(रक्षः)** स्वार्थी मनुष्यः **(निष्टप्ताः)** पूर्ववत् **(अरातयः)** कपटेन विद्यादानग्रहणरहिताः **(उरु)** बहुविधं सुखं प्राप्तुं प्रापयितुं वा। **उर्विति बहुनामसु पठितम्** (निघं०३।१) **(अन्तरिक्षम्)** सुखसाधनार्थमवकाशम् **(अन्वेमि)** अनुगतं प्राप्नोमि॥ अयं मन्त्रः (शत०(१।१।२।२-४) व्याख्यातः॥७॥

अन्वयः-मया रक्षः प्रत्युष्टमरातयः प्रत्युष्टा रक्षो निष्टप्तमरातयो निष्टप्ताः पुरुषार्थेन सदैव कार्य्याः। एवं कृत्वान्तरिक्षमुरु बहुसुखं चान्वेमि॥७॥

भावार्थः-इदमीश्वर आज्ञापयति सर्वैर्मनुष्यैः स्वकीयं दुष्टस्वभावं त्यक्त्वाऽन्येषामपि विद्याधर्मोपदेशेन त्याजयित्वा दुष्टस्वभावान् मनुष्यांश्च निवार्य्य बहुविधं ज्ञानं सुखं च संपाद्य विद्याधर्मपुरुषार्थान्विताः सुखिनः सर्वे प्राणिनः सदा संपादनीयाः॥७॥

पदार्थः-मुझ को चाहिये कि पुरुषार्थ के साथ **(रक्षः)** दुष्ट गुण और दुष्ट स्वभाव वाले मनुष्य को **(प्रत्युष्टम्)** निश्चय करके निर्मूल करूं तथा **(अरातयः)** जो राति अर्थात् दान आदि धर्म से रहित दयाहीन दुष्ट शत्रु हैं, उनको **(प्रत्युष्टाः)** प्रत्यक्ष निर्मूल **(रक्षः)** वा दुष्ट स्वभाव, दुष्टगुण, विद्याविरोधी, स्वार्थी मनुष्य और **(निष्टप्तम्)** **(अरातयः)** छलयुक्त होके विद्या के ग्रहण वा दान से रहित दुष्ट प्राणियों को **(निष्टप्ताः)** निरन्तर सन्तापयुक्त करूं। इस प्रकार करके **(अन्तरिक्षम्)** सुख के सिद्ध करने वाले उत्तम स्थान और **(उरु)** अपार सुख को **(अन्वेमि)** प्राप्त होऊं॥७॥

भावार्थः-ईश्वर आज्ञा देता है कि सब मनुष्यों को अपना दुष्ट स्वभाव छोड़कर विद्या और धर्म के उपदेश से औरों को भी दुष्टता आदि अधर्म के व्यवहारों से अलग करना चाहिये तथा उन को बहु प्रकार का ज्ञान और सुख देकर सब मनुष्य आदि प्राणियों को विद्या, धर्म, पुरुषार्थ और नाना प्रकार के सुखों से युक्त करना चाहिये॥७॥

धूरसीत्यस्य ऋषिः स एव। अग्निर्देवता। [निचृद्] अतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

अथ सर्वविद्याधारकेश्वरो विद्यासाधनीभूतो भौतिकोऽग्निश्चोपदिश्यते॥

सब क्रियाओं के धारण करनेवाले ईश्वर और पदार्थविद्या की सिद्धि के हेतु भौतिक अग्नि का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

धूरसि धूर्व धूर्वन्तं धूर्व तं योऽस्मान् धूर्वति तं धूर्व यं वयं धूर्वामः।
देवानामसि वह्नितमꣳ सस्नितमं पप्रितमं जुष्टतमं देवहूतमम्॥८॥

धूः। असि। धूर्व। धूर्वन्तं। धूर्व। तं। यः। अस्मान्। धूर्वति। तं। धूर्व। यं। वयं। धूर्वामः। देवानाम्। असि। वह्नितमिति वह्निऽतमम्। सस्नितममिति सस्निऽतमम्। पप्रितममिति पप्रिऽतमम्। जुष्टतममिति जुष्टऽतमम्। देवहूतममिति देवहूऽतमम्॥८॥

पदार्थः-(**धूः**) सर्वदोषनाशकोऽन्धकारनाशको वा (**असि**) अस्ति वा। अत्र सर्वत्र भौतिकपक्षे व्यत्ययेन प्रथमपुरुषो गृह्यते (**धूर्व**) हिंसय धूर्वति हिनस्ति वा (**धूर्वन्तम्**) हिंसाशीलं प्राणिनम् (**धूर्व**) हिंसय हिनस्ति वा (**तम्**) सर्वभूताभिद्रोग्धारम् (**यः**) अस्मद्द्वेष्टा (**अस्मान्**) धार्मिकान् सर्वेभ्यः सुखोपकर्तॄन् (**धूर्वति**) हिनस्ति (**तम्**) दुष्टं दस्युं चोरं वा (**धूर्व**) हिंसय हिनस्ति वा (**यम्**) पापिनम् (**वयम्**) विद्वांसः सर्वमित्राः (**धूर्वामः**) हिंसामः (**देवानाम्**) विदुषां पृथिव्यादीनां वा (**असि**) उत्पादको वर्त्तसे प्रकाशको वर्त्तते वा (**वह्नितमम्**) वहति प्रापयति यथायोग्यं सुखानि स वह्निः सोऽतिशयितस्तम् (**सस्नितमम्**) अतिशयेन शुद्धं शुद्धिकारकं च। तथा शुद्धिहेतुं भौतिकं वा। अथवा स्वव्याप्त्या सर्वजगद्द्वेष्टयितारमीश्वरं शिल्पविद्याहेतुं व्यापनशीलं भौतिकं वा। स्ना शौचे। अथवा ष्णो वेष्टने। इत्यस्य रूपम् (**पप्रितमम्**) प्राति प्रपूरयति सर्वाभिर्विद्याभिरानन्दैश्च जनान् स्वव्याप्त्या जगद्वा मूर्त्तं वस्तु शिल्पविद्यासाध्याङ्गानि च यः सोऽतिशयितस्तम् (**जुष्टतमम्**) धार्मिकैर्भक्तजनैः शिल्पभिश्च यो जुष्यते स जुष्टः। अतिशयेन जुष्टस्तम् (**देवहूतमम्**) देवैर्विद्वद्भिः स्तूयते शब्द्यते सोऽतिशयितस्तम्। '**ह्वेञ् स्पर्धायां शब्दे च**' इत्यस्य रूपम्॥ अयं मन्त्रः (शत०(१।१।२।१०-१२) व्याख्यातः॥८॥

अन्वयः-हे परमेश्वर! यतस्त्वं धूरसि सर्वाभिरक्षकश्चासि तस्माद्वयमिष्टबुद्ध्या देवानां वह्नितमं सस्नितमं पप्रितमं जुष्टतमं देवहूतमं त्वां नित्यमुपास्महे। योऽस्मान् धूर्वति यं च वयं धूर्वामस्तं त्वं धूर्व। यश्च सर्वद्रोही तमपि धूर्वन्तं सर्वहिंसकं सदैव धूर्व। इत्येकः। हे शिल्पविद्यां चिकीर्षो! त्वं यो भौतिकोग्निधूः सर्वपदार्थच्छेदकत्वाद्धिंसको (**असि**) अस्ति तं कलाकौशलेन यानेषु सम्प्रयोजनीयं देवानां वह्नितमं सस्नितमं पप्रितमं जुष्टतमं देवहूतममग्निं **[यं च]** वयं धूर्वामस्ताडयामः। योऽयुक्त्या सेवितोऽस्मान् धूर्वति तं धूर्वन्तमग्निं धूर्व। हे वीर! त्वं यो दुष्टशत्रुरस्मान् धूर्वति तमप्याग्नेयास्त्रेण धूर्व यश्च दस्युरस्ति तमपि धूर्व॥८॥

भावार्थः-यो धातेश्वरः सर्वं जगद्दधाति पापिनो दुष्टान् जीवान् तत्कृतपापफलदानेन ताडयति धार्मिकांश्च रक्षति। सर्वसुखप्रापक आत्मशुद्धिकारकः पूर्णविद्याप्रदाता विद्वद्भिः स्तोतव्यः प्रीत्येष्टबुद्ध्या च सेवनीयोऽस्ति। स एव सर्वैर्मनुष्यैर्भजनीयः। तथैव योऽग्निः सकलशिल्पविद्याक्रियासाधकतमः पृथिव्यादिपदार्थानां मध्ये प्रकाशकप्रापकतमतया श्रेष्ठोऽस्ति। यस्य प्रयोगेणाग्नेयास्त्रादिविद्यया शत्रूणां पराजयो भवति स एव शिल्पिभिर्विद्यायुक्त्या होमयानक्रियासिध्यर्थं सेवनीयः॥८॥

पदार्थः-हे परमेश्वर! आप (**धूः**) सब दोषों के नाश और जगत् की रक्षा करने वाले (**असि**) हैं, इस कारण हम लोग इस बुद्धि से (**देवानाम्**) विद्वानों को विद्या मोक्ष और सुख में (**वह्नितमम्**) यथायोग्य पहुंचाने (**सस्नितमम्**) अतिशय कर के शुद्ध करने (**पप्रितमम्**) सब विद्या और आनन्द से संसार को पूर्ण करने (**जुष्टतमम्**) धार्मिक भक्तजनों के सेवा करने योग्य और (**देवहूतमम्**) विद्वानों की स्तुति करने योग्य आप की नित्य उपासना करते हैं। (**यः**) जो कोई द्वेषी, छली, कपटी, पापी, कामक्रोधादियुक्त मनुष्य (**अस्मान्**) धर्मात्मा और सब को सुख से युक्त करने वाले हम लोगों को (**धूर्वति**) दुःख देता है और (**यम्**) जिस पापीजन को (**वयम्**) हम लोग

(धूर्वामः) दुःख देते हैं, **(तम्)** उसको आप **(धूर्व)** शिक्षा कीजिये तथा जो सबसे द्रोह करने वा सबको दुःख देता है, उसको भी आप सदैव **(धूर्व)** ताड़ना कीजिये॥१॥

हे शिल्पविद्या को जानने की इच्छा करने वाले मनुष्य! तू जो भौतिक अग्नि **(धूः)** सब पदार्थों का छेदन और अन्धकार का नाश करने वाला **(असि)** है तथा जो कला चलाने की चतुराई से यानों में विद्वानों को **(वह्नितमम्)** सुख पहुंचाने **(सस्नितमम्)** शुद्धि होने का हेतु **(पप्रितमम्)** शिल्पविद्या का मुख्य साधन **(जुष्टतमम्)** कारीगर लोग जिस का सेवन करते हैं तथा जो **(देवहूतमम्)** विद्वानों को स्तुति करने योग्य अग्नि है, उस को **(वयम्)** हम लोग **(धूर्वामः)** ताड़ते हैं और जिसका सेवन युक्ति से न किया जाय तो **(अस्मान्)** हम लोगों को **(धूर्वति)** पीड़ा करता है, **(तम्)** उस **(धूर्वन्तम्)** पीड़ा करने वाले अग्नि को **(धूर्व)** यानादिकों में युक्त कर तथा हे वीर पुरुष! तुम **(यः)** जो दुष्ट शत्रु **(अस्मान्)** हम लोगों को **(धूर्वति)** दुःख देता है **(तम्)** उस को **(धूर्व)** नष्ट कर तथा जो कोई चोर आदि है, उसका भी **(धूर्व)** नाश कीजिये॥२॥८॥

भावार्थः-जो ईश्वर सब जगत् को धारण कर रहा है, वह पापी दुष्ट जीवों को उन के किये हुए पापों के अनुकूल दण्ड देकर दुःखयुक्त और धर्मात्मा पुरुषों को उत्तम कर्मों के अनुसार फल देके उन की रक्षा करता है, वही सब सुखों की प्राप्ति, आत्मा की शुद्धि कराने और पूर्ण विद्या का देने वाला, विद्वानों के स्तुति करने योग्य तथा प्रीति और इष्ट बुद्धि से सेवा करने योग्य है, दूसरा कोई नहीं। तथा यह प्रत्यक्ष भौतिक अग्नि भी सम्पूर्ण शिल्पविद्याओं की क्रियाओं को सिद्ध करने तथा उनका मुख्य साधन और पृथिवी आदि पदार्थों में अपने प्रकाश अथवा उनकी प्राप्ति से श्रेष्ठ है, क्योंकि जिस से सिद्ध की हुई आग्नेय आदि उत्तम शस्त्रास्त्रविद्या से शत्रुओं का पराजय होता है, इस से यह भी विद्या की युक्तियों से होम और विमान आदि के सिद्ध करने के लिये सेवा करने के योग्य है॥८॥

अह्रुतमसीत्यस्य ऋषिः स एव। विष्णुर्देवता। निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः।

अथ यजमानभौतिकाग्निकृत्यमुपदिश्यते॥

अब यजमान और भौतिक अग्नि के कर्म का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अह्रुतमसि हविर्धानं दृꣳहस्व मा ह्वार्मा ते यज्ञपतिर्ह्वार्षीत्।

विष्णुस्त्वा क्रमतामुरु वातायापहतꣳरक्षो यच्छन्तां पञ्च॥९॥

अह्रुतम्। असि। हविर्धानमिति हविःऽधानम्। दृꣳहस्व। मा। ह्वाः। मा। ते। यज्ञपतिरिति यज्ञऽपतिः। ह्वार्षीत्। विष्णुः। त्वा। क्रमताम्। उरु। वाताय। अपहतमित्यपऽहतम्। रक्षः। यच्छन्ताम्। पञ्च॥९॥

पदार्थः-**(अह्रुतम्)** कुटिलतारहितम् **(असि)** अस्ति। अत्र व्यत्ययः **(हविर्धानम्)** हविषां धानं स्थित्यधिकरणम् **(दृंहस्व)** वर्धयस्व वर्धयति वा। अत्र पक्षे व्यत्ययः **(मा ह्वाः)** मा त्यजेः। अत्र लिङर्थे लुङ् **(मा)** क्रियार्थे निषेधवाची **(ते)** तव **(यज्ञपतिः)** पूर्वोक्तस्य यज्ञस्य पतिः पालकः **(ह्वार्षीत्)** त्यजतु। अत्र लोडर्थे लुङ् **(विष्णुः)** व्यापनशीलः सूर्य्यः **(त्वा)** तद्धोतव्यं द्रव्यम् **(क्रमताम्)** चालयति। अत्र लडर्थे लोट् **(उरु)** बहु। **उर्विति बहुनामसु पठितम्** (निघं०३।१) **(वाताय)** वायोः शुद्धये सुखवृद्धये वा **(अपहतम्)** विनाशितम् **(रक्षः)** दुर्गन्धादिदुःखजालम् **(यच्छन्ताम्)** निगृह्णन्तु **(पञ्च)** पञ्चभिरुत्क्षेपणादिभिः कर्मभिः। **उत्क्षेपणमवक्षेपणमाकुञ्चनं**

प्रसारणं गमनमिति कर्माणि (वैशे० १।७) अत्र **'सुपां सुलुग्'** [अष्टा०७.१.३९] इति' भिसो लुक्॥ अयं मन्त्रः (शत०(१।१।२।१२-१६) व्याख्यातः॥९॥

अन्वयः-हे ऋत्विक्! त्वं यदग्निना दृंहितमह्रुतं हविर्धानमस्यास्ति तद् दृंहस्व, किन्तु तत्कदाचिन्मा ह्वार्मा त्यजेरिदं ते तव यज्ञपतिर्दृंहतां मा ह्वार्षीन्मा त्यजतु। एवं भवन्तः सर्वे मनुष्याः पञ्चभिरुत्क्षेपणादिभिः कर्मभिर्यदग्नौ हूयते तन्नियच्छन्तां निगृह्णन्तु। यद्द्रव्यं विष्णुर्व्यापनशीलः सूर्य्योऽपहतं रक्षो यथा स्यात्तथोरु वाताय **[क्रमताम्]** क्रमयति चालयति त्वा तत्सर्वं मनुष्या अग्नौ होमद्वारा यच्छन्तां निगृह्णन्तु॥९॥

भावार्थः-यदा मनुष्याः परस्परं प्रीत्या कुटिलतां विहाय शिक्षकशिष्या भूत्वेमामग्निविद्यां विज्ञानक्रियाभ्यां ज्ञात्वाऽनुतिष्ठन्ति तदा महतीं शिल्पविद्यां संपाद्य शत्रुदारिद्र्यनिवारणपुरःसरं सर्वाणि सुखानि प्राप्नुवन्तीति॥९॥

पदार्थः-हे ऋत्विग् मनुष्य! तुम जो अग्नि से बढ़ा हुआ **(अह्रुतम्)** कुटिलतारहित **(हविर्धानम्)** होम के योग्य पदार्थों का धारण करना है, उस को **(दृंहस्व)** बढ़ाओ, किन्तु किसी समय में **(मा ह्वाः)** उस का त्याग मत करो तथा यह **(ते)** तुम्हारा **(यज्ञपतिः)** यजमान भी उस यज्ञ के अनुष्ठान को **(मा ह्वार्षीत्)** न छोड़े। इस प्रकार तुम लोग **(पञ्च)** एक तो ऊपर की चेष्टा होना, दूसरा नीचे को, तीसरा चेष्टा से अपने अङ्गों को संकोचना, चौथा उनका फैलाना, पांचवां चलना-फिरना आदि इन पांच प्रकार के कर्मों से हवन के योग्य जो द्रव्य हो उसको अग्नि में **(यच्छन्ताम्)** हवन करो। **(त्वा)** वह जो हवन किया हुआ द्रव्य है, उस को **(विष्णुः)** जो व्यापनशील सूर्य्य है, वह **(अपहतम्) (रक्षः)** दुर्गन्धादि दोषों का नाश करता हुआ **(उरु वाताय)** अत्यन्त वायु की शुद्धि वा सुख की वृद्धि के लिये **(क्रमताम्)** चढ़ा देता है॥९॥

भावार्थः-जब मनुष्य परस्पर प्रीति के साथ कुटिलता को छोड़कर शिक्षा देने वाले के शिष्य होके विशेष ज्ञान और क्रिया से भौतिक अग्नि की विद्या को जानकर उस का अनुष्ठान करते हैं, तभी शिल्पविद्या की सिद्धि के द्वारा सब शत्रु दारिद्र्य और दुःखों से छूटकर सब सुखों को प्राप्त होते हैं। इस प्रकार विष्णु अर्थात् व्यापक परमेश्वर ने सब मनुष्यों के लिये आज्ञा दी है, जिसका पालन करना सबको उचित है॥९॥

देवस्य त्वेत्यस्य ऋषिः स एव। सविता देवता। भुरिग्बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

तस्य यज्ञफलस्य ग्रहणं केन कुर्वन्तीत्युपदिश्यते॥

उस यज्ञ के फल का ग्रहण किस करके होता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्।

अग्नये जुष्टं गृह्णाम्यग्नीषोमाभ्यां जुष्टं गृह्णामि॥१०॥

देवस्य। त्वा। सवितुः। प्रसव इति प्रऽसवे। अश्विनोः। बाहुभ्यामिति बाहुऽभ्याम्। पूष्णः। हस्ताभ्याम्। अग्नये। जुष्टम्। गृह्णामि। अग्नीषोमाभ्याम्। जुष्टम्। गृह्णामि॥१०॥

पदार्थः-**(देवस्य)** सर्वजगत्प्रकाशकस्य सर्वसुखदातुरीश्वरस्य **(त्वा)** तत्। **(सवितुः) सविता वै देवानां प्रसविता।** (शत०१।१।२।१७॥) तस्य सर्वजगदुत्पादकस्य सकलैश्वर्य्यप्रदातुः **(प्रसवे)** सवितृप्रसूतेऽस्मिन् जगति **(अश्विनोः)** सूर्य्याचन्द्रमसोरध्वर्य्वोर्वा **सूर्य्याचन्द्रमसावित्येके।** (निरु०१२।१) **(बाहुभ्याम्)** बलवीर्य्याभ्याम्। **वीर्यं वा एतद्राजन्यस्य यद्बाहू।** (शत०५।३।३।१७) **(पूष्णः)** पुष्टिकर्तुः प्राणस्य **(हस्ताभ्याम्)** ग्रहणविसर्जनाभ्याम्

(अग्नये) अग्निविद्यासंपादनाय **(जुष्टम्)** विद्यां चिकीर्षुभिः सेवितं कर्म **(गृह्णामि)** स्वीकरोमि। **(अग्नीषोमाभ्याम्)** अग्निश्च सोमश्च ताभ्यामग्निजलविद्याभ्याम् **(जुष्टम्)** विद्वद्भिः प्रीतं फलम् **(गृह्णामि)** पूर्ववत्॥ अयं मन्त्रः (शत०(१।१।२।१७-१९) व्याख्यातः॥१०॥

अन्वयः-यत्सवितुर्देवस्य प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामग्नये जुष्टमस्ति त्वा तत् कर्माहं गृह्णामि। एवं च यद्विद्वद्भिरग्नीषोमाभ्यां जुष्टं प्रीतं चारु फलमस्ति तदहं गृह्णामि॥१०॥

भावार्थः-विद्वद्भिर्मनुष्यैर्विद्वत्सङ्गत्या सम्यक् पुरुषार्थेनेश्वरेणोत्पादितायामस्यां सृष्टौ सकलविद्यासिद्धये सूर्य्याचन्द्राग्निजलादिपदार्थानां सकाशात् सर्वेषां बलवीर्य्यवृद्धये च सर्वा विद्याः संसेव्यप्रचारणीयाः। यथा जगदीश्वरेण सकलपदार्थानामुत्पादनधारणाभ्यां सर्वोपकारः कृतोऽस्ति तथैवास्माभिरपि नित्यं प्रयतितव्यम्॥१०॥

पदार्थः-मैं **(सवितुः)** सब जगत् के उत्पन्नकर्त्ता सकल ऐश्वर्य के दाता तथा **(देवस्य)** संसार का प्रकाश करनेहारे और सब सुखदायक परमेश्वर के **(प्रसवे)** उत्पन्न किये हुए इस संसार में **(अश्विनोः)** सूर्य्य और चन्द्रमा के **(बाहुभ्याम्)** बल और वीर्य्य से तथा **(पूष्णः)** पुष्टि करने वाले प्राण के **(हस्ताभ्याम्)** ग्रहण और त्याग से **(अग्नये)** अग्निविद्या के सिद्ध करने के लिये **(जुष्टम्)** विद्या पढ़ने वाले जिस कर्म की सेवा करते हैं, **(त्वा)** उसे **(गृह्णामि)** स्वीकार करता हूं। इसी प्रकार **(अग्नीषोमाभ्याम्)** अग्नि और जल की विद्या से **(जुष्टम्)** विद्वानों ने जिस कर्म को चाहा है, उस के फल को **(गृह्णामि)** स्वीकार करता हूं॥१०॥

भावार्थः-विद्वान् मनुष्यों को उचित है कि विद्वानों का समागम वा अच्छे प्रकार अपने पुरुषार्थ से परमेश्वर की उत्पन्न की हुई प्रत्यक्ष सृष्टि अर्थात् संसार में सकल विद्या की सिद्धि के लिये सूर्य्य, चन्द्र, अग्नि और जल आदि पदार्थों के प्रकाश से सब के बल वीर्य्य की वृद्धि के अर्थ अनेक विद्याओं को पढ़ के उन का प्रचार करना चाहिये अर्थात् जैसे जगदीश्वर ने सब पदार्थों की उत्पत्ति और उन की धारणा से सब का उपकार किया है, वैसे ही हम लोगों को भी नित्य प्रयत्न करना चाहिये॥१०॥

भूताय त्वेति ऋषिः स एव। अग्निर्देवता। स्वराड् जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

यज्ञशालादिगृहाणि कीदृशानि रचनीयानीत्युपदिश्यते॥

उन यज्ञशाला आदिक घर कैसे बनाने चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

भूताय त्वा नारातये स्वरभिविख्येषं दृꣳहन्तां दुर्याः पृथिव्यामुर्वन्तरिक्षमन्वेमि।
पृथिव्यास्त्वा नाभौ सादयाम्यदित्याऽउपस्थेऽग्ने हव्यꣳ रक्ष॥११॥

भूताय। त्वा। न। अरातये। स्वः। अभिविख्येषमित्यभिऽविख्येषम्। दृꣳहन्ताम्। दुर्य्याः। पृथिव्याम्। उरु। अन्तरिक्षम्। अनु। एमि। पृथिव्याः। त्वा। नाभौ। सादयामि। अदित्याः। उपस्थ इत्युपऽस्थे। अग्ने। हव्यम् रक्ष॥११॥

पदार्थः-**(भूताय)** उत्पन्नानां प्राणिनां सुखाय **(त्वा)** तं कृषिशिल्पादिसाधिनम् **(न)** निषेधार्थे **(अरातये)** रातिर्दानं न विद्यते यस्मिन् तस्मै शत्रवे बहुदानकरणार्थं दारिद्र्यविनाशाय वा **(स्वः)** सुखमुदकं वा। **स्वरिति सुखनामसु पठितम्** (निघं०३।६॥ उदकनामसु च ॥१।१२) **(अभिविख्येषम्)** अभितः सर्वतो विविधं पश्येयम्। अत्राभिव्योरुपपदे **'चक्षिङ्'** इत्यस्याशीर्लिङ्यार्धधातुकसंज्ञामाश्रित्य **'ख्याञ्'** आदेशः। **'लिङ्याशिष्यङ्'** [अष्टा०३.१.८६] इत्यङ् सार्वधातुकसंज्ञामाश्रित्य च या इत्यस्य इय् आदेशः। सकारलोपाभाव इति **(दृꣳहन्ताम्)**

दृंहन्तां वर्धयन्ताम्। अत्रान्तर्गतो ण्यर्थः **(दुर्य्याः)** गृहाणि। **दुर्य्या इति गृहनामसु पठितम्**। (निघं०३।४) **(पृथिव्याम्)** विस्तृतायां भूमौ **(उरु)** बहु **(अन्तरिक्षम्)** अवकाशं सुखेन निवासार्थम् **(अनु)** क्रियार्थे **(एमि)** प्राप्नोमि **(पृथिव्याः)** शुद्धाया विस्तृताया भूमेः **(त्वा)** तं पूर्वोक्तं यज्ञम् **(नाभौ)** मध्ये **(सादयामि)** स्थापयामि **(अदित्याः)** विज्ञानदीप्तेर्वेदवाचः सकाशादन्तरिक्षे मेघमण्डलस्य मध्ये **अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमिति** मन्त्रप्रामाण्यात्। (ऋ०१।८९।१०) **अदितिरिति वाङ्नामसु पठितम्** (निघं०१।११) पदनामसु च। (निघं०४।१) **(उपस्थे)** समीपे **(अग्ने)** परमेश्वर! **(हव्यम्)** दातुं ग्रहीतुं योग्यं क्रियाकौशलं सुखं वा **(रक्ष)** पालय॥ अयं मन्त्रः (शत०(१।१।२।२०-२३) व्याख्यातः॥११॥

अन्वयः-अहं यं भूतायारातयेऽदानायादित्या उपस्थे यज्ञं सादयामि **[त्वा]** तं कदाचिन्न त्यजामि। हे विद्वांसो! भवन्तः पृथिव्यां दुर्य्या दृंहन्तां वर्धयन्ताम्। अहं पृथिव्या नाभौ मध्ये येषु गृहेषु स्वरभिविख्येषं यस्यां पृथिव्यामुर्वन्तरिक्षं चान्वेमि। हे अग्ने जगदीश्वर! त्वमस्माकं हव्यं सर्वदा रक्षेत्येकोऽन्वयः॥११॥

हे अग्ने परमेश्वर! अहं भूतायारातये पृथिव्या नाभौ ईश्वरत्वोपास्यत्वाभ्यां स्वः सुखरूपं त्वामभिविख्येषम्। प्रकाशयामि भवत्कृपयेमेऽस्माकं दुर्य्या गृहादयः पदार्थास्तत्रस्था मनुष्यादयः प्राणिनो दृंहन्तां नित्यं वर्धन्ताम्। अहं पृथिव्यामुर्वन्तरिक्षं व्यापकमदित्या उपस्थे व्यापकं त्वा त्वामन्वेमि नित्यं प्राप्नोमि [न सादयामि] न कदाचित् त्वा त्वां त्यजामि त्वमिममस्माकं हव्यं सर्वदा रक्ष॥ इति द्वितीयः॥११॥

अहं शिल्पविद्यजमानो भूतायारातये पृथिव्या नाभौ त्वा **[अग्ने]** तमग्निं होमार्थं शिल्पविद्यार्थं च सादयामि। यतोऽयमग्निरदित्या अन्तरिक्षस्योपस्थे हुतं हव्यं द्रव्यं **[रक्ष]** रक्षति, तस्मात्तं पृथिव्यां स्थापयित्वोर्वन्तरिक्षमन्वेमि। अत एव त्वा तं पृथिव्यां सादयामि। एवं कुर्वन्नहं स्वरभिविख्येषम्। तथैवेमे दुर्य्याः प्रासादास्तत्स्था मनुष्याश्च दृंहन्तां शुभगुणैवर्धन्तामिति मत्वा तमिममग्निं कदाचिन्नाहं त्यजामि॥ इति तृतीयोऽन्वयः॥११॥

भावार्थः-अत्र श्लेषालङ्कारः। ईश्वरेण मनुष्य आज्ञाप्यते। हे मनुष्य! अहं त्वां सर्वेषां भूतानां सुखदानाय पृथिव्यां रक्षयामि त्वया वेदविद्याधर्मानुष्ठानयुक्तेन पुरुषार्थेन सुन्दराणि सर्वर्तुसुखयुक्तानि सर्वतो विशालावकाशसहितानि गृहाणि रचयित्वा सुखं प्रापणीयम्। तथा मत्सृष्टौ यावन्तः पदार्थाः सन्ति तेषां सम्यग्गुणान्वेषणं कृत्वाऽनेकविद्याः प्रत्यक्षीकृत्य तासां रक्षणं प्रचारश्च सदैव संभावनीयः। मनुष्येणात्रैवं मन्तव्यं सर्वत्राभिव्यापकं सर्वसाक्षिणं सर्वमित्रं सर्वसुखवर्धकमुपासितुमर्हं सर्वशक्तिमन्तं परमेश्वरं ज्ञात्वा सर्वोपकारो विविधविद्यावृद्धिधर्मोपस्थानमधर्माद् दूरे स्थितिः क्रियाकौशलसंपादनं यज्ञक्रियानुष्ठानं च कर्त्तव्यमिति॥ अत्र महीधरेण भ्रान्त्या अभिविख्येषमिति पदं 'ख्या प्रकथने' इत्यस्य दर्शनार्थे गृहीतं तत् धात्वर्थादेव विरुद्धम्॥११॥

पदार्थः-मैं जिस यज्ञ को **(भूताय)** प्राणियों के सुख तथा **(अरातये)** दारिद्रय आदि दोषों के नाश के लिये **(अदित्या)** वेदवाणी वा विज्ञानप्रकाश के **(उपस्थे)** गुणों में **(सादयामि)** स्थापना करता हूं और **(त्वा)** उसको कभी **(न)** नहीं छोड़ता हूं। हे विद्वान् लोगो! तुम को उचित है कि **(पृथिव्याम्)** विस्तृत भूमि में **(दुर्य्याः)** अपने घर **(दृंहन्ताम्)** बढ़ाने चाहिये। मैं **(पृथिव्याः)** **(नाभौ)** पृथिवी के बीच में जिन गृहों में **(स्वः)** जल आदि सुख के पदार्थों को **(अभिविख्येषम्)** सब प्रकार से देखूं और **(उर्वन्तरिक्षम्)** उक्त पृथिवी में बहुत-सा अवकाश देकर सुख से निवास करने योग्य स्थान रचकर **(त्वा)** आपको **(अन्वेमि)** प्राप्त होता हूं। हे **(अग्ने)** जगदीश्वर! आप **(हव्यम्)** हमारे देने-लेने योग्य पदार्थों की **(रक्ष)** सर्वदा रक्षा कीजिये॥यह प्रथम पक्ष हुआ॥११॥

अब दूसरा पक्ष-हे **(अग्ने)** परमेश्वर! मैं **(भूताय)** संसारी जीवों के सुख तथा **(अरातये)** दरिद्रता का विनाश और दान आदि धर्म करने के लिये **(पृथिव्याः)** पृथिवी के **(नाभौ)** बीच में (सबके स्वामी तथा उपासनीय जानकर) **(स्वः)** सुखस्वरूप **(त्वा)** आपको **(अभिविख्येषम्)** प्रकाश करता हूं तथा आपकी कृपा से मेरे घर आदि पदार्थ और उनमें रहने वाले मनुष्य आदि प्राणी **(दृंहन्ताम्)** वृद्धि को प्राप्त हों और मैं **(पृथिव्याम्)** विस्तृत भूमि में **(उरु)** बहुत से **(अन्तरिक्षम्)** अवकाशयुक्त स्थान को निवास के लिये **(अदित्या उपस्थे)** सर्वत्र व्यापक आपके समीप सदा **(अन्वेमि)** प्राप्त होता हूं। कदाचित् **(त्वा)** आपका **(न सादयामि)** त्याग नहीं करता हूं। हे जगदीश्वर! आप मेरे **(हव्यम्)** अर्थात् उत्तम पदार्थों की सर्वदा **(रक्ष)** रक्षा कीजिये॥ यह दूसरा पक्ष हुआ॥११॥

तथा तीसरा और भी कहते हैं- मैं शिल्पविद्या का जानने वाला यज्ञ को करता हुआ **(भूताय)** सांसारिक प्राणियों के सुख और **(अरातये)** दरिद्रता आदि दोषों के विनाश वा सुख से दान आदि धर्म करने की इच्छा से **(पृथिव्याः) (नाभौ)** इस पृथिवी पर शिल्पविद्या की सिद्धि करने वाला जो **(अग्ने)** अग्नि है, उसको हवन करने वा शिल्पविद्या की सिद्धि के लिये **(सादयामि)** स्थापन करता हूं, क्योंकि उक्त शिल्पविद्या इसी से सिद्ध होती है, **(अदित्याः) (उपस्थे)** तथा जो अन्तरिक्ष में स्थित मेघमण्डल में **(हव्यम्)** होम द्वारा पहुंचे हुए उत्तम-उत्तम पदार्थों की **(रक्ष)** रक्षा करने वाला है, इसीलिये इस अग्नि को **(पृथिव्याम्)** पृथिवी में स्थापन करके **(उर्वन्तरिक्षम्)** बड़े अवकाशयुक्त स्थान और विविध प्रकार के सुखों को (अन्वेमि) प्राप्त होता हूं अथवा इसी प्रयोजन के लिये **(त्वा)** इस अग्नि को पृथिवी में स्थापन करता हूं। इस प्रकार श्रेष्ठ कर्मों को करता हुआ **(स्वः)** अनेक सुखों को **(अभिविख्येषम्)** देखूं तथा मेरे **(दुर्य्याः)** घर और उनमें रहने वाले मनुष्य **(दृꣳहन्ताम्)** शुभ गुण और सुख से वृद्धि को प्राप्त हों, इसलिये इस भौतिक अग्नि का भी त्याग मैं कभी **(न)** नहीं करता हूं॥ यह तीसरा अर्थ हुआ॥११॥

भावार्थः-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है और ईश्वर ने आज्ञा दी है कि हे मनुष्य लोगो! मैं तुम्हारी रक्षा इसलिये करता हूं कि तुम लोग पृथिवी पर सब प्राणियों को सुख पहुंचाओ तथा तुम को योग्य है कि वेदविद्या, धर्म के अनुष्ठान और अपने पुरुषार्थ द्वारा विविध प्रकार के सुख सदा बढ़ाने चाहिये। तुम सब ऋतुओं में सुख देने के योग्य, बहुत अवकाशयुक्त, सुन्दर घर बनाकर, सर्वदा सुख सेवन करो और मेरी सृष्टि में जितने पदार्थ हैं, उनसे अच्छे-अच्छे गुणों को खोजकर अथवा अनेक विद्याओं को प्रकट करते हुए फिर उक्त गुणों का संसार में अच्छे प्रकार प्रचार करते रहो कि जिससे सब प्राणियों को उत्तम सुख बढ़ता रहे तथा तुम को चाहिये कि मुझको सब जगह व्याप्त, सब का साक्षी, सब का मित्र, सब सुखों का बढ़ानेहारा, उपासना के योग्य और सर्वशक्तिमान् जानकर सब का उपकार, विविध विद्या की वृद्धि, धर्म में प्रवृत्ति, अधर्म से निवृत्ति, क्रियाकुशलता की सिद्धि और यज्ञक्रिया के अनुष्ठान आदि करने में सदा प्रवृत्त रहो॥११॥

इस मन्त्र में महीधर ने भ्रांति से **(अभिविख्येषम्)** यह पद **(ख्या प्रकथने)** इस धातु का दर्शन अर्थ में माना है। यह धातु के अर्थ से ही विरुद्ध होने करके अशुद्ध है॥११॥

पवित्रे स्थ इत्यस्य ऋषिः स एव। अप्सवितारौ देवते। भुरिगत्यष्टिः छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अग्नौ हुतं द्रव्यं मेघमण्डलं प्राप्य कीदृशं भवतीत्युपदिश्यते॥

अग्नि में जिस द्रव्य का होम किया जाता है, वह मेघमण्डल को प्राप्त होके किस प्रकार का होकर क्या गुण करता है, इस बात का उपदेश ईश्वर ने अगले मन्त्र में किया है॥

पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्य्यस्य रश्मिभिः। देवीरापोऽअग्रेगुवोऽअग्रेपुवोऽग्रऽइममद्य यज्ञं नयताग्रे यज्ञपतिꣳ सुधातुं यज्ञपतिं देवयुवम्॥ १२॥

पवित्रेऽइति पवित्रे। स्थः। वैष्णव्यौ। सवितुः। वः। प्रसव इति प्रऽसवे। उत्। पुनामि। अच्छिद्रेण। पवित्रेण। सूर्य्यस्य। रश्मिभिरिति रश्मिऽभिः। देवीः। आपः। अग्रेगुव इत्यग्रेऽगुवः। अग्रेपुव इत्यग्रेऽपुवः। अग्रे। इमम्। अद्य। यज्ञम्। नयत। अग्रे। यज्ञपतिमिति यज्ञऽपतिम्। सुधातुमिति सुधाऽतुम्। यज्ञपतिमिति यज्ञऽपतिम्। देवयुवमिति देवऽयुवम्॥ १२॥

पदार्थः-(**पवित्रे**) पवित्रकरणहेतू प्राणापानगती (**स्थः**) भवतः। अत्र व्यत्ययः (**वैष्णव्यौ**) यज्ञस्येमौ व्याप्तिकर्त्तारौ पवनपावकौ तौ (**सवितुः**) जगदुत्पादकस्येश्वरस्य (**वः**) ताः। अत्र पुरुषव्यत्ययः (**प्रसवे**) उत्पन्नेऽस्मिन् जगति (**उत्**) धात्वर्थे। **उदित्येतयोः प्रातिलोम्यं प्राह** (निरु०१।३) (**पुनामि**) पवित्रीकरोमि (**अच्छिद्रेण**) छिद्ररहितैः (**पवित्रेण**) शुद्धिकरणहेतुभिः (**सूर्य्यस्य**) प्रत्यक्षलोकस्य (**रश्मिभिः**) किरणैः (**देवीः**) दिव्यगुणयुक्ताः। अत्र **सुपां सुलुग्** [अष्टा०७.१.३९] इति पूर्वसवर्णादेशः (**आपः**) जलानि (**अग्रेगुवः**) अग्रे समुद्रेऽन्तरिक्षे गच्छन्तीति ताः (**अग्रेपुवः**) प्रथमां पृथिवीस्थसोमौषधिं सेविकाः (**अग्रे**) पुरःसरत्वे क्रियासम्बन्धे (**इमम्**) प्रत्यक्षम् (**अद्य**) अस्मिन्नहनि (**यज्ञम्**) पूर्वोक्तम् (**नयत**) प्रापयत (**अग्रे**) (**यज्ञपतिम्**) यज्ञस्यानुष्ठातारं स्वामिनम् (**सुधातुम्**) शोभना धातवः शरीरस्था मन-आदयः सुवर्णादयो वा यस्य तम् (**यज्ञपतिम्**) यज्ञस्य कामयितारम् (**देवयुवम्**) देवान् विदुषो दिव्यगुणान् वा यौति प्राप्नोति प्रापयतीति वा तम्॥ अयं मन्त्रः (शत०(१।१।३।१-७) व्याख्यातः॥१२॥

अन्वयः-हे विद्वांसो! यथा सवितुः परमेश्वरस्य प्रसवेऽस्मिन् संसारेऽच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्य्यस्य रश्मिभिः पवित्रे शुद्धौ वैष्णव्यौ पवनपावकौ स्थो भवतः। यथा चैतैरग्रेगुवोऽग्रेपुवो **[वः]** देवीरापः पवित्रा भवेयुस्तथा शुद्धानि द्रव्याण्यग्नौ नयत प्रापयत तथैवाहमद्येमं यज्ञमग्रे नीत्वाऽग्रे सुधातुं यज्ञपतिं देवयुवं यज्ञपतिं चोत्पुनामि॥१२॥

भावार्थः-अत्र लुप्तोपमालङ्कारः। ये पदार्थाः संयोगेन विकारं प्राप्नुवन्ति। अग्निना छिन्नाः पृथक् पृथक् परमाणवो भूत्वा वायौ विहरन्ति ते शुद्धा भवन्ति यथा यज्ञानुष्ठानेन वायुजलानामुत्तमे शुद्धिपुष्टी जायेते। न तथाऽन्येन भवितुमर्हतः तस्माद् होमक्रियाशुद्धैर्वाय्वग्निजलादिभिः शिल्पविद्यया यानानि साधयित्वा कामनासिद्धिं कुर्य्युः कारयेयुश्च या आपोऽस्मात् स्थानादुत्थाय समुद्रमन्तरिक्षं गच्छन्ति ततः पुनः पृथिव्यादिपदार्थानागच्छन्ति। ताः प्रथमाः संख्यायन्ते या मेघस्थास्ता द्वितीया इति॥ शतपथब्राह्मणे मेघस्य वृत्रस्य सूर्य्यलोकस्य च युद्धाख्यायिकयाऽस्य मन्त्रस्य व्याख्याने मेघविद्योक्ता॥१२॥

पदार्थः-हे विद्वान् लोगो! तुम जैसे (**सवितुः**) परमेश्वर के (**प्रसवे**) उत्पन्न किये हुस इस संसार में (**अच्छिद्रेण**) निर्दोष और (**पवित्रेण**) पवित्र करने का हेतु जो (**सूर्य्यस्य**) सूर्य्य की (**रश्मिभिः**) किरण हैं, उन से (**वैष्णव्यौ**) यज्ञसम्बन्धी प्राण और अपान की गति तथा (**पवित्रे**) पदार्थों के भी पवित्र करने में हेतु (**स्थः**) हों और जैसे उक्त सूर्य्य की किरणों से (**अग्रेगुवः**) आगे समुद्र वा अन्तरिक्ष में चलनेवाले (**अग्रेपुवः**) प्रथम पृथिवी में

रहने वाली सोम ओषधि के सेवन तथा **(देवीः)** दिव्यगुणयुक्त **(वः)** वह **(आपः)** जल पवित्र हों, वैसे **(नयत)** पवित्र पदार्थों का होम अग्नि में करो, वैसे ही मैं भी **(अद्य)** आज के दिन **(इमम्)** इस **(यज्ञम्)** पूर्वोक्त क्रियासम्बन्धी यज्ञ को प्राप्त करके **(अग्रे)** जो प्रथम **(सुधातुम्)** श्रेष्ठ मन आदि इन्द्रिय और सुवर्ण आदि धन वाला **(यज्ञपतिम्)** यज्ञ का नियम से पालक तथा **(देवयुवम्)** विद्वान् और श्रेष्ठ गुणों को प्राप्त होने वा उनका प्राप्त कराने **(यज्ञपतिम्)** यज्ञ की इच्छा करने वाला मनुष्य है, उसको **(उत्पुनामि)** पवित्र करता हूं॥१२॥

भावार्थः-इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। जो पदार्थ संयोग से विकार को प्राप्त होते हैं, वे अग्नि के निमित्त से अतिसूक्ष्म परमाणुरूप होकर वायु के बीच रहा करते हैं और कुछ शुद्ध भी हो जाते हैं, परन्तु जैसी यज्ञ के अनुष्ठान से वायु और वृष्टि, जल की उत्तम शुद्धि और पुष्टि होती है, वैसी दूसरे उपाय से कभी नहीं हो सकती इससे विद्वानों को चाहिये कि होमक्रिया से शुद्ध किये वायु, अग्नि, जल आदि पदार्थ वा शिल्पविद्या से अच्छी-अच्छी सवारी बना के अनेक प्रकार के लाभ उठावें अर्थात् अपनी मनोकामना सिद्ध करके औरों की भी कामनासिद्धि करें। जो जल इस पृथिवी से अन्तरिक्ष को चढ़कर, वहां से लौटकर, फिर पृथिवी आदि पदार्थों को प्राप्त होते हैं, वे प्रथम और जो मेघ में रहने वाले हैं, वे दूसरे कहाते हैं। ऐसी शतपथ-ब्राह्मण में मेघ का वृत्र तथा सूर्य्य का इन्द्र नाम से वर्णन करके युद्धरूप कथा के प्रकाश से मेघविद्या दिखलाई है॥१२॥

युष्मा इन्द्रोऽवृणीतेत्यस्य ऋषिः पूर्वोक्तः। इन्द्रो देवता। निचृदुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥ अग्नये त्वेत्यस्य ऋषिः स एव। अग्निर्देवता। विराड्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः। दैव्याय कर्म्मण इत्यस्य ऋषिः स एव। यज्ञो देवता। भुरिगुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

पुनस्ताः कथंभूता आप इन्द्रवृत्रयुद्धं चेत्युपदिश्यते॥

उक्त जल किस प्रकार के हैं वा इन्द्र और वृत्र का युद्ध कैसे होता है सो अगले मन्त्र में कहा गया है॥

युष्माऽइन्द्रोऽवृणीत वृत्रतूर्य्ये यूयमिन्द्रमवृणीध्वं वृत्रतूर्य्ये प्रोक्षिता स्थ।
अग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षाम्यग्नीषोमाभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि।
दैव्याय कर्मणे शुन्धध्वं देवयज्यायै यद्वोऽशुद्धाः पराजघ्नुरिदं वस्तच्छुन्धामि॥१३॥

युष्माः। इन्द्रः। अवृणीत। वृत्रतूर्य्य इति वृत्रऽतूर्य्ये। यूयम्। इन्द्रम्। अवृणीध्वम्। वृत्रतूर्य्य इति वृत्रऽतूर्य्ये। प्रोक्षिता इति प्रऽउक्षिताः। स्थ। अग्नये। त्वा। जुष्टम्। प्र। उक्षामि। अग्नीषोमाभ्याम्। त्वा। जुष्टम्। प्रऽउक्षामि॥ दैव्याय। कर्मणे। शुन्धध्वम्। देवयज्याया इति देवऽयज्यायै। यत्। वः। अशुद्धाः। पराजघ्नुरिति पराऽजघ्नुः। इदम्। वः। तत्। शुन्धामि॥१३॥

पदार्थः-**(युष्माः)** ताः पूर्वोक्ता आपः। अत्र व्यत्ययः। **वा छन्दसि सर्वे विधयो भवन्ति** [अष्टा०१.४.९ भा०] इति शसः सकारस्य नत्वाभावश्च **(इन्द्रः)** सूर्य्यलोकः **(अवृणीत)** वृणीते। अत्र लडर्थे लङ् **(वृत्रतूर्य्ये)** वृत्रस्य मेघस्य तूर्य्यो वधस्तस्मिन्। **वृत्र इति मेघनामसु पठितम्** (निघं०१।१०) **'तूरी गतित्वरणहिंसनयोः'** इत्यस्मात् कर्मणि ण्यत्। **वृत्रतूर्य्य इति संग्रामनामसु पठितम्** (निघं०२।१७) **(यूयम्)** विद्वांसो मनुष्याः **(इन्द्रम्)** वायुम्।

इन्द्रेण वायुना (ऋ० १।१४।१०) इतीन्द्रशब्देन वायोर्ग्रहणम् **(अवृणीध्वम्)** वृणते स्वीकुरुध्वम्। अत्र प्रथमपक्षे लडर्थे लङ् **(वृत्रतूर्य्ये)** वृत्रस्य तूर्य्ये शीघ्रवेगे। **(प्रोक्षिता:)** प्रकृष्टतया सिक्ता: सेचिता वा **(स्थ)** भवन्ति। अत्रापि व्यत्यय: **(अग्नये)** भौतिकाय परमेश्वराय वा **(त्वा)** तं यज्ञम् **(जुष्टम्)** विद्याप्रीतिक्रियाभि: सेवितम् **(प्रोक्षामि)** सेचयामि **(अग्नीषोमाभ्याम्)** अग्निश्च सोमश्च ताभ्याम् **(त्वा)** तं वृष्ट्यर्थम् **(जुष्टम्)** प्रीतं प्रीत्या सेवनीयम् **(प्रोक्षामि)** प्रेरयामि **(दैव्याय)** दिवि भवं दिव्यं तस्य भावस्तस्मै **(कर्मणे)** पञ्चविधलक्षणचेष्टामात्राय। **उत्क्षेपणमवक्षेपणमाकुञ्चनं प्रसारणं गमनमिति कर्माणि** (वैशे०१।७) इत्यत्र पञ्चविधं कर्म गृह्यते **(शुन्धध्वम्)** शुन्धन्ति शोधयत वा। अत्रापि व्यत्यय:, आत्मनेपदं च **(देवयज्यायै)** देवानां विदुषां दिव्यगुणानां वा यज्या सत्क्रिया तस्यै। **छन्दसि निष्टर्क्य०** (अष्टा०३।१।१२३) इति देवयज्याशब्दो निपातित: **(यत्)** यस्माद्यज्ञेन शोधितत्वात् **(व:)** तासां युष्माकं वा **(अशुद्धा:)** न शुद्धा अशुद्धा गुणा: **(पराजघ्नु:)** पराहता विनष्टा भवेयु:। अत्र लिडर्थे लिट् **(इदम्)** शोधनम् **(व:)** तासां युष्माकं वा **(तत्)** तस्मादशुद्धिनाशेन सुखार्थत्वात् **(शुन्धामि)** पवित्री करोमि॥ अयं मन्त्र: (शत०(१।१।३।८-१२) व्याख्यात:॥१३॥

अन्वय:-यथाऽयमिन्द्रो वृत्रतूर्य्ये युष्मास्ता: पूर्वोक्ता अप अवृणीत वृणीते। यथा ता इन्द्रं वायुमवृणीध्वं वृणते तथैव ता अपो यूयं वृत्रतूर्य्ये प्रोक्षिताऽवृणीध्वम्। यथा ता आप: शुद्धा स्थ भवेयुरेतदर्थमहं यज्ञानुष्ठाता दैव्याय कर्मणे देवयज्याया अग्नये जुष्टं त्वा तं यज्ञं प्रोक्षामि। एवमग्नीषोमाभ्यां जुष्टं त्वा तं यज्ञं प्रोक्षामि। एवं यज्ञशोधितास्ता आप: शुन्धध्वं शुन्धन्ति यद्वस्तासामशुद्धा गुणास्ते पराजघ्नुस्तत् तस्मात् वस्तासामिदं शोधनं शुन्धामि॥ इत्येकोऽन्वय:॥१३॥

हे यज्ञानुष्ठातारो मनुष्या! यद्यदिन्द्रो वृत्रतूर्य्ये युष्मा इन्द्रमवृणीत यद्यस्माश्चेन्द्रेण वृत्रतूर्य्ये ता: प्रोक्षिता: स्थ भवन्ति। तस्माद्यूयं त्वा तं यज्ञं सदाऽवृणीध्वम्। एवं च सर्वे जना: दैव्याय कर्मणे देवयज्याया अग्नये त्वा तं जुष्टं यज्ञं प्रोक्षामि तथा चाग्नीषोमाभ्यां जुष्टं तं यज्ञं प्रोक्षामि एवं कुर्वन्तो यूयं सर्वान् पदार्थान् जनांश्च शुन्धध्वं शोधयत। यद्वोऽशुद्धा दोषास्ते सदैव पराजघ्नुर्निवृत्ता भवेयुस्तत् तस्मात् कारणादहं वो युष्माकमिदं शोधनं शुन्धामि॥ इति द्वितीयोऽन्वय:॥१३॥

भावार्थ:-अत्र लुप्तोपमालङ्कार:। ईश्वरेणाग्निसूर्य्यावेतदर्थौ रचितौ यदिमौ सर्वेषां पदार्थानां मध्ये प्रविष्टौ जलौषधिरसान् छित्त्वा, वायुं प्राप्य मेघमण्डलं गत्वाऽऽगत्य च शुद्धिसुखकारका भवेयुस्तस्मान्मनुष्यैरुत्तमसुखलाभायाग्नौ सुगन्ध्यादिपदार्थानां होमेन वायुवृष्टिजलशुद्धिद्वारा दिव्यसुखानामुत्पादनाय संप्रीत्या नित्यं यज्ञ: करणीय:। यत: सर्वे दोषा नष्टा भूत्वाऽस्मिन् विश्वे सततं शुद्धा गुणा: प्रकाशिता भवेयु:। एतदर्थमहमीश्वर इदं शोधनमादिशामि यूयं परोपकारार्थानि शुद्धानि कर्माणि नित्यं कुरुतेति। एवं रीत्यैव वाय्वग्निजलगुणग्रहणप्रयोजनाभ्यां शिल्पविद्ययाऽनेकानि यानानि यन्त्रकलाश्च रचयित्वा पुरुषार्थेन सदैव सुखिनो भवतेति॥१३॥

पदार्थ:-यह जैसे **(इन्द्र:)** सूर्य्यलोक **(वृत्रतूर्य्ये)** मेघ के वध के लिये **(युष्मा:)** पूर्वोक्त जलों को **(अवृणीत)** स्वीकार करता है, जैसे जल **(इन्द्रम्)** वायु को **(अवृणीध्वम्)** स्वीकार करते हैं, वैसे ही **(यूयम्)** हे मनुष्यो! तुम लोग उन जल, औषधि, रसों को शुद्ध करने के लिये **(वृत्रतूर्य्ये)** मेघ के शीघ्रवेग में **(प्रोक्षिता:)** संसारी पदार्थों के सींचने वाले जलों को **(अवृणीध्वम्)** स्वीकार करो और जैसे वे जल शुद्ध **(स्थ)** होते हैं, वैसे

तुम भी शुद्ध हो। इसलिये मैं यज्ञ का अनुष्ठान करने वाला **(दैव्याय)** सब को शुद्ध करने वाले **(कर्मणे)** उत्क्षेपण=उछालना, अवक्षेपण=नीचे फेंकना, आकुञ्चन=सिमेटना, प्रसारण=फैलाना, गमन=चलना आदि पाँच प्रकार के कर्म हैं, उन के और **(देवयज्यायै)** विद्वान् वा श्रेष्ठ गुणों की दिव्य क्रिया के लिये तथा **(अग्नये)** भौतिक अग्नि से सुख के लिये **(जुष्टम्)** अच्छी क्रियाओं से सेवन करने योग्य **(त्वा)** उस यज्ञ को **(प्रोक्षामि)** करता हूं तथा **(अग्नीषोमाभ्याम्)** अग्नि और सोम से वर्षा के निमित्त **(जुष्टम्)** प्रीति देनेवाला और प्रीति से सेवने योग्य **(त्वा)** उक्त यज्ञ को **(प्रोक्षामि)** मेघमण्डल में पहुंचाता हूं। इस प्रकार यज्ञ से शुद्ध किये हुए जल **(शुन्धध्वम्)** अच्छे प्रकार शुद्ध होते हैं। **(यत्)** जिस कारण यज्ञ की शुद्धि से **(वः)** पूर्वोक्त जलों के अशुद्धि आदि दोष **(पराजघ्नुः)** निवृत्त हों, **(तत्)** उन जलों की शुद्धि को मैं **(शुन्धामि)** अच्छे प्रकार शुद्ध करता हूं॥ यह इस मन्त्र का प्रथम अर्थ है॥१॥१३॥

हे यज्ञ करने वाले मनुष्यो! **(यत्)** जिस कारण **(इन्द्रः)** सूर्य्यलोक **(वृत्रतूर्य्ये)** मेघ के वध के निमित्त **(युष्माः)** पूर्वोक्त जल और **(इन्द्रम्)** पवन को **(अवृणीत)** स्वीकार करता है तथा जिस कारण सूर्य्य ने **(वृत्रतूर्य्ये)** मेघ की शीघ्रता के निमित्त **(युष्माः)** पूर्वोक्त जलों को **(प्रोक्षिताः)** पदार्थ सींचने वाले **(स्थ)** किये हैं, इससे **(यूयम्)** तुम **(त्वा)** उक्त यज्ञ को सदा स्वीकार करके **(नयत)** सिद्धि को प्राप्त करो। इस प्रकार हम सब लोग **(दैव्याय)** श्रेष्ठ कर्म वा **(देवयज्यायै)** विद्वान् और दिव्य गुणों की श्रेष्ठ क्रियाओं के तथा **(अग्नये)** परमेश्वर की प्राप्ति के लिये **(जुष्टम्)** प्रीति कराने वाले यज्ञ को **(प्रोक्षामि)** सेवन करें तथा **(अग्नीषोमाभ्याम्)** अग्नि और सोम से प्रकाशित होने वाले **(त्वा)** उक्त यज्ञ को **(प्रोक्षामि)** मेघमण्डल में पहुंचावें। हे मनुष्यो! इस प्रकार करते हुए तुम सब पदार्थों वा सब मनुष्यों को **(शुन्धध्वम्)** शुद्ध करो और **(यत्)** जिससे **(वः)** तुम लोगों के अशुद्धि आदि दोष हैं, वे सदा **(पराजघ्नुः)** निवृत्त होते रहें। वैसे ही मैं वेद का प्रकाश करने वाला तुम लोगों के शोधन अर्थात् शुद्धिप्रकार को **(शुन्धामि)** अच्छे प्रकार बढ़ाता हूं॥२॥१३॥

भावार्थः-(इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है) परमेश्वर ने अग्नि और सूर्य्य को इसलिये रचा है कि वे सब पदार्थों में प्रवेश कर के उनके रस और जल को छिन्न-भिन्न कर दें, जिस से वे वायुमण्डल में जाकर फिर वहां से पृथिवी पर आके सब को सुख और शुद्धि करने वाले हों। इस से मनुष्यों को उत्तम सुख प्राप्त होने के लिये अग्नि में सुगन्धित पदार्थों के होम से वायु और वृष्टि जल की शुद्धि द्वारा श्रेष्ठ सुख बढ़ाने के लिये प्रीतिपूर्वक नित्य यज्ञ करना चाहिये। जिस से इस संसार के सब रोग आदि दोष नष्ट होकर उस में शुद्ध गुण प्रकाशित होते रहें। इसी प्रयोजन के लिये मैं ईश्वर तुम सबों को उक्त यज्ञ के निमित्त शुद्धि करने का उपदेश करता हूं कि हे मनुष्यो! तुम लोग परोपकार करने के लिये शुद्ध कर्मों को नित्य किया करो तथा उक्त रीति से वायु, अग्नि और जल के गुणों को शिल्पक्रिया में युक्त करके अनेक यान आदि यन्त्रकला बना कर अपने पुरुषार्थ से सदैव सुखयुक्त होओ॥१३॥

शर्मासीत्यस्य पूर्वोक्त ऋषिः। यज्ञो देवता। स्वराड् जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनः स यज्ञः कीदृशोऽस्ति कथं कर्तव्यश्चेत्युपदिश्यते॥

उक्त यज्ञ किस प्रकार का है, और किस प्रकार से करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

शर्मा॒स्यव॑धूत॒ꣳ रक्षोऽव॑धूता॒ऽअरा॑त॒योऽदि॑त्या॒स्त्वग॑सि॒ प्रति॒ त्वादि॑तिर्वेत्तु।
अद्रि॑रसि वानस्प॒त्यो ग्रावा॑सि पृ॒थुबु॑ध्नः॒ प्रति॒ त्वादि॑त्या॒स्त्वग्वे॑त्तु॥ १४॥

शर्म॑। अ॒सि॒। अव॑धूत॒मित्यव॑ऽधूतम्। रक्षः॑। अव॑धूता॒ इत्यव॑धूताः। अरा॑तयः। अदि॑त्याः। त्वक्। अ॒सि॒। प्रति॑। त्वा॒। अदि॑तिः। वे॒त्तु॒। अद्रिः॑। अ॒सि॒। वा॒न॒स्प॒त्यः। ग्रावा॑। अ॒सि॒। पृ॒थुबु॑ध्न॒ इति॑ पृ॒थुबु॑ध्नः। प्रति॑। त्वा॒। अदि॑त्याः। त्वक्। वे॒त्तु॒॥ १४॥

पदार्थः-(शर्म) सुखकारकं गृहम्। **शर्म इति गृहनामसु पठितम्** (निघं०३।४) **(असि)** भवति। अत्र सर्वत्र व्यत्ययः **(अवधूतम्)** दूरीकृतं विचालितम् **(रक्षः)** दुष्टस्वभावो जन्तुः **(अवधूताः)** दूरीभूताः **(अरातयः)** दानशीलतारहिताः शत्रवः **(अदित्याः)** पृथिव्याः। **अदितिरिति पृथिवीनामसु पठितम्** (निघं०१।१) **(त्वक्)** त्वग्वत् **(असि)** भवति **(प्रति)** क्रियार्थे पश्चादर्थे। **प्रतीत्येतस्य प्रातिलोम्यं प्राह** (निरु०१।३) **(त्वा)** तत् तं वा **(अदितिः)** नाशरहितो जगदीश्वरः। **अदितिरिति पदनामसु पठितम्** (निघं०५।५) अनेन ज्ञानस्वरूपोऽर्थो गृह्यते। अन्तरिक्षं वा **(वेत्तु)** जानातु ज्ञापयतु वा **(अद्रिः)** मेघः। **अद्रिरिति मेघनामसु पठितम्** (निघं०१।१०) **(असि)** अस्ति **(वानस्पत्यः)** वनस्पतेर्विकारो रसमयः **(ग्रावा)** जलगृहीतो मेघः। **ग्रावेति मेघनामसु पठितम्** (निघं०१।१०) **(असि)** अस्ति **(पृथुबुध्नः)** पृथु विस्तीर्णं बुध्नमन्तरिक्षं निवासार्थं यस्य स पृथुबुध्नो मेघः। **बुध्नमन्तरिक्षं बद्धा अस्मिन् धृता आप इति** (निरु०१०।४४) **(प्रति)** उक्तार्थे **(त्वा)** तम् **(अदित्याः)** अन्तरिक्षस्य **(त्वक्)** त्वग्वत् सेविनम् **(वेत्तु)** जानातु ज्ञापयतु वा॥ अयं मन्त्रः (शत०(१।१।४।४-७) व्याख्यातः॥ १४॥

अन्वयः-हे मनुष्या! युष्मद्गृहं शर्मासि भवतु तस्माद् गृहाद् रक्षोऽवधूतमरातयोऽवधूता भवन्तु। तच्च गृहमदित्याग्त्वगसि पृथिव्यास्त्वग्वदस्त्विति सर्वो जनः प्रतिवेत्तु। यो वानस्पत्योऽद्रिः **[असि]** पृथुबुध्नो ग्रावा मेघोऽसि वर्त्तते, एतद्विद्यामदितिर्जगदीश्वरस्तुभ्यं वेत्तु कृपया वेदयतु। विद्वानप्यदित्यास्त्वग्वत् त्वा तं व्यवहारं प्रतिवेत्तु॥ १४॥

भावार्थः-ईश्वरेणाज्ञाप्यते मनुष्यैः शुद्धायाः सर्वतोऽवकाशयुक्तायाः पृथिव्या मध्ये सर्वेष्वृतुषु सुखदायकं गृहं रचयित्वा तत्र सुखेन स्थातव्यम्। तस्मात् सर्वे दुष्टा मनुष्या दोषाश्च निवारणीयास्तत्र सर्वाणि साधनान्यपि स्थापनीयानि। तत्रैव वृष्टिहेतुर्यज्ञोऽनुष्ठाय सुखानि संपादनीयानि। एवं कृते वायुवृष्टिजलशुद्धिद्वारा जगति महत्सुखं सिध्यतीति॥ १४॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम्हारा घर **(शर्म)** सुख देनेवाला **(असि)** हो। उस घर से **(रक्षः)** दुष्टस्वभाव वाले प्राणी **(अवधूतम्)** अलग करो और **(अरातयः)** दान आदि धर्मरहित शत्रु **(अवधूताः)** दूर हों। उक्त गृह **(अदित्याः)** पृथिवी की **(त्वक्)** त्वचा के तुल्य **(असि)** हों, **(अदितिः)** ज्ञानस्वरूप ईश्वर ही से उस घर को **(प्रतिवेत्तु)** सब मनुष्य जानें और प्राप्त हों तथा जो **(वानस्पत्यः)** वनस्पति के निमित्त से उत्पन्न होने **(पृथुबुध्नः)** अतिविस्तारयुक्त अन्तरिक्ष में रहने तथा **(ग्रावा)** जल का ग्रहण करनेवाला **(अद्रिः)** मेघ **(असि)** है, उस और इस विद्या को **(अदितिः)** जगदीश्वर तुम्हारे लिये **(वेत्तु)** कृपा करके जनावे। विद्वान् पुरुष भी **(अदित्याः)** पृथिवी की **(त्वक्)** त्वचा के समान **(त्वा)** उक्त घर की रचना को **(प्रतिवेत्तु)** जानें॥ १४॥

भावार्थः-ईश्वर मनुष्यों को आज्ञा देता है कि तुम लोग शुद्ध और विस्तारयुक्त भूमि के बीच में अर्थात्

बहुत से अवकाश में सब ऋतुओं में सुख देने योग्य घर को बना के उस में सुखपूर्वक वास करो तथा उसमें रहने वाले दुष्ट स्वभावयुक्त मनुष्यादि प्राणी और दोषों को निवृत्त करो, फिर उसमें सब पदार्थ स्थापन और वर्षा का हेतु जो यज्ञ है, उस का अनुष्ठान कर के नाना प्रकार के सुख उत्पन्न करना चाहिये, क्योंकि यज्ञ के करने से वायु और वृष्टिजल की शुद्धि द्वारा संसार में अत्यन्त सुख सिद्ध होता है॥१४॥

अग्नेस्तनूरित्यस्य ऋषिः स एव। यज्ञो देवता। निचृज्जगती छन्दः। निषादः स्वरः। हविष्कृदिति याजुषी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनः स यज्ञः कीदृशो भवतीत्युपदिश्यते॥

उक्त यज्ञ किस प्रकार का होता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अग्नेस्तनूरसि वाचो विसर्जनं देववीतये त्वा गृह्णामि बृहद् ग्रावासि वानस्पत्यः सऽइदं देवेभ्यो हविः शमीष्व सुशमि शमीष्व। हविष्कृदेहि हविष्कृदेहि॥ १५॥

अग्नेः। तनूः। असि। वाचः। विसर्जनमिति विऽसर्जनम्। देववीतय इति देवऽवीतये। त्वा। गृह्णामि। बृहद्ग्रावेति बृहत्ऽग्रावा। असि। वानस्पत्यः। सः। इदम्। देवेभ्यः। हविः। शमीष्व। शमिष्वेति शमिष्व। सुशमीति सुऽशमि। शमीष्व। शमिष्वेति शमिष्व। हविष्कृत्। हविःकृदिति हविःकृत्। आ। इहि। हविष्कृत्। हविःकृदिति हविःऽकृत्। आ। इहि॥ १५॥

पदार्थः-(अग्नेः) भौतिकस्य **(तनूः)** शरीरवत्तस्य संयोगेन। विस्तृतो यज्ञः **(असि)** भवति। अत्र सर्वत्र पुरुषव्यत्ययः **(वाचः)** वेदवाण्याः **(विसर्जनम्)** यजमानेन होतृभिश्च हविषस्त्यागो मौनं वा **(देववीतये)** देवानां विदुषां दिव्यगुणानां वा वीतिर्ज्ञानं प्रापणं प्रजनं व्याप्तिः प्रकाशः। अन्येभ्य उपदेशनं विविधभोगो वा यस्यां तस्यै। **वी गतिव्याप्तिप्रजनकान्त्यसनखादनेषु (त्वा)** तमिमं सम्यक् शोधितं हविःसमूहम् **(गृह्णामि)** स्वीकरोमि **(बृहद्ग्रावा)** बृहच्चासौ ग्रावा च सः **(असि)** अस्ति **(वानस्पत्यः)** यो वनस्पतेर्विकारस्तं हविःसंस्कारार्थम् **(सः)** त्वं यजमानः **(इदम्)** यत् प्रत्यक्षं हुतं तत् **(देवेभ्यः)** विद्वद्भ्यो दिव्यगुणेभ्यो वा **(हविः)** संस्कृतं सुगन्ध्यादियुक्तं द्रव्यम् **(शमीष्व)** दुःखनिवृत्तये सुखसम्पादनार्थं कुरुष्व। **शमु उपशमे** इत्यस्माद् **बहुलं छन्दसि [अष्टा०२.४.७३]** इति श्यनो लुक्। **तुरुस्तु शम्यम०**(अष्टा०७।३।९५) इतीडागमः। महीधरेणात्र शपो लुगित्यशुद्धं व्याख्यातम्। **(सुशमि)** सुष्ठु दुःखं शमितुं शीलं धर्मः पदार्थानां साधुकरणं वा यस्य तत्। **शमित्यष्टा०** (अष्टा० ३।२।१४१) अनेन शमेर्घिनुण्। इदमपि पदमुवटमहीधराभ्यामन्यथैव व्याख्यातम् **(शमीष्व)** पुनरुच्चारणं हविषोऽत्यन्तसंस्कारद्योतनार्थम् **(हविष्कृत्)** हविः करोति। अनया वेदवाण्या सा हविष्कृद् वाक् **(एहि)** अध्ययनेनैवैति प्राप्नोति **(हविष्कृत्)** अत्र यज्ञसम्पादनाय ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राणां चतुर्विधा वेदाध्ययनसंस्कृता सुशिक्षिता वाग् गृह्यते॥ अयं मन्त्रः (शत०(१।१।४।८-१०) व्याख्यातः॥१५॥

अन्वयः-अहं सर्वो जनो यस्य हविषः संस्काराय। बृहद्ग्रावाऽस्यस्ति वानस्पत्यश्च यदिदं देवेभ्यो भवति तं देववीतये गृह्णामि। हे विद्वन्! स त्वं देवेभ्यो विद्वद्भ्यः सुशमि तद्धविः शमीष्व शमीष्व। ते मनुष्या वेदादीनि शास्त्राणि पठन्ति पाठयन्ति च तानेवेयं वाग् हविष्कृदेहि हविष्कृदेहीत्याह॥१५॥

भावार्थः-यदा मनुष्या वेदादिशास्त्रद्वारा यज्ञक्रियां फलं च विदित्वा सुसंस्कृतेन हविषा यज्ञं कुर्वन्ति तदा स

सुगन्ध्यादिद्रव्यहोमद्वारा परमाणुमयो भूत्वा वायौ वृष्टिजले च विस्तृतः सन् सर्वान् पदार्थानुत्तमान् कुर्वन् दिव्यानि सुखानि सम्पादयति। यश्चैवं सर्वेषां प्राणिनां सुखाय पूर्वोक्तं त्रिविध यज्ञं नित्यं करोति तं सर्वे मनुष्या हविष्कृदेहि हविष्कृदेहीति सत्कुर्य्युः॥१५॥

पदार्थः-मैं सब जनों के सहित जिस हवि अर्थात् पदार्थ के संस्कार के लिये **(बृहद्ग्रावा)** बड़े-बड़े पत्थर **(असि)** हैं और **(वानस्पत्यः)** काष्ठ के मूसल आदि पदार्थ **(देवेभ्यः)** विद्वान् वा दिव्यगुणों के लिये उस यज्ञ को **(देववीतये)** श्रेष्ठ गुणों के प्रकाश और श्रेष्ठ विद्वान् वा विविध भोगों की प्राप्ति के लिये **(प्रतिगृह्णामि)** ग्रहण करता हूं। हे विद्वान् मनुष्य! तुम **(देवेभ्यः)** विद्वानों के सुख के लिये **(सु, एमि)** अच्छे प्रकार दुःख शान्त करने वाले **(हविः)** यज्ञ करने योग्य पदार्थ को **(शमीष्व)** अत्यन्त शुद्ध करो। जो मनुष्य वेद आदि शास्त्रों को प्रीतिपूर्वक पढ़ते वा पढ़ाते हैं, उन्हीं को यह **(हविष्कृत्)** हविः अर्थात् होम में चढ़ाने योग्य पदार्थों का विधान करने वाली जो कि यज्ञ को विस्तार करने के लिये वेद के पढ़ने से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों की शुद्ध सुशिक्षित और प्रसिद्ध वाणी है, सो प्राप्त होती है॥१५॥

भावार्थः-जब मनुष्य वेद आदि शास्त्रों के द्वारा यज्ञक्रिया और उसका फल जान के शुद्धि और उत्तमता के साथ यज्ञ को करते हैं, तब वह सुगन्धि आदि पदार्थों के होम द्वारा परमाणु अर्थात् अति सूक्ष्म होकर वायु और वृष्टि जल में विस्तृत हुआ सब पदार्थों को उत्तम कर के दिव्य सुखों को उत्पन्न करता है। जो मनुष्य सब प्राणियों के सुख के अर्थ पूर्वोक्त तीन प्रकार के यज्ञ को नित्य करता है, उस को सब मनुष्य हविष्कृत् अर्थात् यह यज्ञ का विस्तार करने वाला, यज्ञ का विस्तार करने वाला उत्तम मनुष्य है, ऐसा वारम्वार कहकर सत्कार करें॥१५॥

कुक्कुटोऽसीत्यस्य ऋषिः स एव। वायुर्देवता। [स्वराड्] ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥देवो वः सवितेत्यस्य ऋषिः स एव। सविता देवता। विराड् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनः स यज्ञः कीदृशोऽस्तीत्युपदिश्यते॥

फिर भी यह यज्ञ कैसा है, सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है॥

कुक्कुटोऽसि मधुजिह्वऽइषमूर्जमावद त्वया वयꣳ सङ्घातꣳ सङ्घातं जेष्म वर्षवृद्धमसि प्रति त्वा वर्षवृद्धं वेत्तु परापूतꣳ रक्षः परापूता अरातयोऽपहतꣳ रक्षो वायुर्वो विविनक्तु देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना॥ १६॥

कुक्कुटः। असि। मधुजिह्व इति मधुऽजिह्वः। इषम्। ऊर्ज्जम्। आ। वद। त्वया। वयं। संघातम् संघातमिति संघातꣳसंघातम्। जेष्म। वर्षवृद्धमिति वर्षऽवृद्धम्। असि। प्रति। त्वा। वर्षवृद्धमिति वर्षऽवृद्धम्। वेत्तु। परापूतमिति। पराऽपूतम्। रक्षः। परापूता इति पराऽपूताः। अरातयः। अपहतमित्यपऽहतम्। रक्षः। वायुः। वः। वि। विनक्तु देवः। वः। सविता। हिरण्यपाणिरिति हिरण्यऽपाणिः। प्रति। गृभ्णातु। अच्छिद्रेण। पाणिना॥ १६॥

पदार्थः-**(कुक्कुटः)** कुकं परद्रव्यादातारं चोरं शत्रुं वा कुटति येन स यज्ञः **(असि)** अस्ति। अत्र सर्वत्र व्यत्ययः **(मधुजिह्वः)** मधुरगुणयुक्ता जिह्वा ज्वाला प्रयुज्यते यस्मिन् सः **(इषम्)** अन्नादिपदार्थसमूहम् **इषमित्यन्ननामसु पठितम्** (निघं०१।७) **(ऊर्ज्जम्)** विद्यादिपराक्रममनुत्तमरसं वा **(आ)** क्रियायोगे **(वद)** उपदिश

(त्वया) परमेश्वरेण विदुषा वीरेण वा सह सङ्गत्य **(संघातं संघातम्)** सम्यग्घन्यन्ते जना यस्मिन् तं संग्रामम्। **संघात इति संग्रामनामसु पठितम्** (निघं०२।१७) अत्र वीप्सायां द्विरुक्तिः **(जेष्म)** जयेम। अत्र लिङर्थे लुङ्। अड्वृद्ध्यभावश्च **(वर्षवृद्धम्)** शस्त्रास्त्राणां वर्धयितारम् **(असि)** भवति **(प्रति)** क्रियायोगे **(त्वा)** त्वां तं यज्ञं वा **(वर्षवृद्धम्)** वृष्टेर्वर्धकं यज्ञम् **(वेत्तु)** जानातु **(परापूतम्)** परागतं पूतं पवित्रत्वं यस्मात् तत् **(रक्षः)** दुष्टस्वभावो मूर्खः **(परापूताः)** परागतः पूतः पवित्रस्वभावो येभ्यस्ते **(अरातयः)** परपदार्थगृहीतारः शत्रवः **(अपहतम्)** अपहन्यते यत् तत् **(रक्षः)** दस्युस्वभावः **(वायुः)** योऽयं भौतिको वाति **(वः)** तान् हुतान् परमाणुजलादिपदार्थान् **(वि)** विशेषार्थे **(विनक्तु)** वेचयति वेचयतु वा। अत्राद्ये पक्षे लडर्थे लोडन्तर्गतो ण्यर्थश्च **(देवः)** प्रकाशस्वरूपः **(सविता)** वृष्टिप्रकाशद्वारा दिव्यगुणानां प्रसवहेतुः **(हिरण्यपाणिः)** हिरण्यं ज्योतिः पाणिर्हस्तः किरणव्यवहारो वा यस्य सः। **ज्योतिर्हि हिरण्यम्** (शत०४।३।१।२१) **(प्रतिगृभ्णातु)** प्रतिगृह्णाति। अत्र **हृग्रहोर्भश्छन्दसि हस्य भत्वं वक्तव्यम्** (अष्टा०८।२।३२) इति हकारस्य स्थाने भकारः लडर्थे लोट् च **(अच्छिद्रेण)** छिद्ररहितेनैकरसेन **(पाणिना)** किरणसमूहेन व्यवहारेण॥ अयं मन्त्रः (शत०(१।१।४।१८-२४) व्याख्यातः॥१६॥

अन्वयः-यतोऽयं यज्ञो मधुजिह्वः कुक्कुटोऽस्यस्तीषमूर्ज्जं च प्रापयति तस्मात् स सदैवानुष्ठेयः। हे विद्वन्! त्वमस्य त्रिविधस्य यज्ञस्यानुष्ठानस्य गुणानां च वेत्तासि तस्माद् आवद प्रत्यक्षमुपदिश। यतो वयं त्वया सह संघातं संघातमाजेष्म सर्वान् संग्रामान् विजयेमहि। सर्वो मनुष्यो वर्षवृद्धं त्वा त्वां तं वर्षवृद्धं यज्ञं वा प्रतिवेत्तु। एवं कृत्वा सर्वैर्जनैः परापूतं रक्षः परापूता अरातयोऽपहतं रक्षः सदैव कार्य्यम्। यथाऽयं हिरण्यपाणिर्वायुरच्छिद्रेण पाणिना यज्ञे संसारेऽग्निना सूर्य्येण विच्छिन्नान् पदार्थकणान् प्रतिगृभ्णाति। यथा च हिरण्यपाणिः सविता देवः **[वः]** तान् विविनक्ति पृथक्करोति तथैव परमेश्वरो विद्वान् मनुष्यश्चाच्छिद्रेण पाणिना सर्वा विद्या विविनक्तु। प्रतिगृभ्णातु तथैव कृपया संप्रीत्या चैतौ वो युष्मानानन्दकरणाय प्रतिगृह्णीतः॥१६॥

भावार्थः-अत्र श्लेषालङ्कारः। ईश्वरः सर्वान् मनुष्यानाज्ञापयति मनुष्यैर्यज्ञानुष्ठानं संग्रामे दुष्टशत्रूणां विजयो गुणज्ञानं विद्यावृद्धसेवनं दुष्टानां मनुष्याणां दोषाणां वा निराकरणं सर्वपदार्थच्छेदकोऽग्निः सूर्य्यो वा तथा सर्वपदार्थधारको वायुश्चास्तीति विज्ञानं परमेश्वरोपासनां विद्वत्समागमं च कृत्वा सर्वा विद्याः प्राप्य सदैव सर्वार्था सुखोन्नतिः कार्येति॥१६॥

पदार्थः-जिस कारण यह यज्ञ **(मधुजिह्वः)** जिस में मधुर गुणयुक्त वाणी हो तथा **(कुक्कुटः)** चोर वा शत्रुओं का विनाश करने वाला **(असि)** है और **(इषम्)** अन्न आदि पदार्थ वा **(ऊर्जम्)** विद्या आदि बल और उत्तम से उत्तम रस को देता है, इसी से उसका अनुष्ठान सदा करना चाहिये। हे विद्वान् लोगो! तुम उक्त गुणों को देने वाला जो तीन प्रकार का यज्ञ है, उसके अनुष्ठान और गुण के ज्ञाता **(असि)** हो, अतः हम लोगों को भी उसके गुणों का **(आवद)** उपदेश करो, जिससे **(वयम्)** हम लोग **(त्वया)** तुम्हारे साथ **(संघातं संघातम्)** जिनमें उत्तम रीति से शत्रुओं का पराजय होता है अर्थात् अति भारी संग्रामों को वारम्वार **(आ जेष्म)** सब प्रकार से जीतें, क्योंकि आप युद्धविद्या के जानने वाले **(असि)** हैं, इसी से सब मनुष्य **(वर्षवृद्धम्)** शस्त्र और अस्त्रविद्या की वर्षा को बढ़ाने वाले **(त्वा)** आप तथा **(वर्षवृद्धम्)** वृष्टि के बढ़ाने वाले उक्त यज्ञ को **(प्रतिवेत्तु)** जानें। इस प्रकार संग्राम करके सब मनुष्यों को **(परापूतम्)** पवित्रता आदि गुणों को छोड़ने वाले **(रक्षः)** दुष्ट मनुष्य तथा **(परापूताः)** शुद्धि को छोड़ने वाले और **(अरातयः)** दान आदि धर्म से रहित शत्रुजन तथा **(रक्षः)** डाकुओं का जैसे **(अपहतम्)** नाश

हो सके, वैसा प्रयत्न सदा करना चाहिये। जैसे यह **(हिरण्यपाणिः)** जिसका ज्योति हाथ है, ऐसा जो **(वायुः)** पवन है, वह **(अच्छिद्रेण)** एकरस **(पाणिना)** अपने गमनागमन व्यवहार से यज्ञ और संसार में अग्नि और सूर्य्य से अति सूक्ष्म हुए पदार्थों को **(प्रतिगृभ्णातु)** ग्रहण करता है। वा **(हिरण्यपाणिः)** जैसे किरण हैं हाथ जिस के वह **(हिरण्यपाणिः)** किरण व्यवहार से **(सविता)** वृष्टि वा प्रकाश के द्वारा दिव्य गुणों के उत्पन्न करने में हेतु **(देवः)** प्रकाशमय सूर्य्यलोक **(वः)** उन पदार्थों को **(विविनक्तु)** अलग-अलग अर्थात् परमाणुरूप करता है, वैसे ही परमेश्वर वा विद्वान् पुरुष **(अच्छिद्रेण)** निरन्तर **(पाणिना)** अपने उपदेशरूप व्यवहार से सब विद्याओं को **(विविनक्तु)** प्रकाश करें, वैसे ही कृपा करके प्रीति के साथ **(वः)** तुमको अत्यन्त आनन्द करने के लिये **(प्रतिगृभ्णातु)** ग्रहण करते हैं॥१६॥

भावार्थः-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है- परमेश्वर सब मनुष्यों को आज्ञा देता है कि यज्ञ का अनुष्ठान, संग्राम में शत्रुओं का पराजय, अच्छे-अच्छे गुणों का ज्ञान, विद्वानों की सेवा, दुष्ट मनुष्य वा दुष्ट दोषों का त्याग तथा सब पदार्थों को अपने ताप से छिन्न-भिन्न करने वाला अग्नि वा सूर्य्य और उनका धारण करने वाला वायु है, ऐसा ज्ञान और ईश्वर की उपासना तथा विद्वानों का समागम करके और सब विद्याओं को प्राप्त होके सब के लिये सब सुखों की उत्पन्न करने वाली उन्नति सदा करनी चाहिये॥१६॥

धृष्टिरसीत्यस्य ऋषिः स एव। अग्निर्देवता। ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अथाग्निशब्देन किं किं गृह्यते तेन किं किं च भवतीत्युपदिश्यते॥

अब अग्निशब्द से किस-किस का ग्रहण किया जाता और इससे क्या क्या कार्य्य होता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

धृष्टिरस्यपाऽग्नेऽअग्निमामादं जहि निष्क्रव्यादꣳ सेधा देवयजं वह।
ध्रुवमसि पृथिवीं दृꣳह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय॥ १७॥

धृष्टिः। असि। अप। अग्ने। अग्निम्। आमादमित्यामऽअदम्। जहि। निष्क्रव्यादमिति निष्क्रव्यऽअदम्। सेध। आ। देवयजमिति। देवऽयजम्। वह। ध्रुवम्। असि। पृथिवीम्। दृꣳह। ब्रह्मवनीति ब्रह्मऽवनि। त्वा। क्षत्रवनीति क्षत्रऽवनि। सजातवनीति सजातऽवनि। उपऽदधामि। भ्रातृव्यस्य वधाय॥ १७॥

पदार्थः-**(धृष्टिः)** प्रगल्भ इव यजमानः **(असि)** भवसि भवति वा। अत्र पक्षे व्यत्ययः **(अप)** क्रियायोगे **(अग्ने)** परमेश्वर धनुर्वेदविद्वन् वा **(अग्निम्)** विद्युदाख्यम् **(आमादम्)** आमानपक्वानत्ति तम् **(जहि)** हिंसय **(निष्क्रव्यादम्)** क्रव्यं पक्वमांसमत्ति तस्मान्निर्गतस्तम् **(सेध)** शास्त्राणि शिक्षय **(आ)** क्रियायोगे **(देवयजम्)** देवान् विदुषो दिव्यगुणान् जयति सङ्गतान् करोति येन यज्ञेन स देवयट् तम्। अत्र **अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते** [अष्टा०३.२.७५] इति सूत्रेण **कृतो बहुलम्** [अष्टा०भा०वा०३.२.११३] **इति** वार्त्तिकेन च करणे **विच्** प्रत्ययः **(वह)** प्रापय प्रापयति वा। अत्र सर्वत्र पक्षे व्यत्ययः **(ध्रुवम्)** निश्चलं सुखम् **(असि)** भवति **(पृथिवीम्)** विस्तृतां भूमिं तत्स्थान् प्राणिनश्च **(दृंह)** उत्तमगुणैर्वर्धय वर्धयति वा **(ब्रह्मवनि)** ब्राह्मणं विद्वांसं वनति तम्। **छन्दसि वनसनरक्षिमथाम्** (अष्टा० ३।२।२७) अनेन ब्रह्मोपपदे वनधातोरिन् प्रत्ययः। **सुपां सुलुग्०** [अष्टा०७.१.३९] इत्यमो लुक् च **(त्वा)** त्वां तं वा **(क्षत्रवनि)** क्षत्रं संभाजिनं वनति तम्। अत्राप्यमो लुक् **(सजातवनि)** जातं जातं वनति स जातवनिः समानश्चासौ

जातवनिस्तम्। **समानस्य छन्दस्यमूर्द्धप्रभृत्युदर्केषु** (अष्टा०६।३।८४) अनेन समानस्य सकारादेश: **(उपदधामि)** हृदये वेद्यां विमानादियानेषु वा धारयामि **(भ्रातृव्यस्य)** द्विषत: शत्रो: **(वधाय)** नाशाय हननाय॥ अयं मन्त्र: (शत०(१।१।५।३-८) व्याख्यात:॥१७॥

अन्वय:-हे अग्ने परमेश्वर! त्वं धृष्टिरसि। अतो निष्क्रव्यादमामादं देवयजमग्निं सेध। एवं मङ्गलाय शास्त्राणि शिक्षित्वा दु:खमपजहि सुखं चावद। तथा हे परमेश्वर! त्वं ध्रुवमसि। अत: पृथिवीं दृंह। हे जगदीश्वराग्ने! यत ईदृशो भवान् तस्मादहं भ्रातृव्यस्य वधाय ब्रह्मवनि क्षत्रवनि सजातवनि त्वा त्वामुपदधामीत्येकोऽन्वय:॥

हे यजमान विद्वन्! यतोऽयमग्निर्धृष्टिरस्यस्ति तथा चामान्निष्क्रव्याद् देवयजं यज्ञमावहति तस्मात् त्वमिममामादं देवयजमग्निमावह। सेध। अन्येभ्यस्तमेवं शिक्षय तदनुष्ठानेन दोषानपजहि। यतोऽयमग्नि: सूर्य्यरूपेण ध्रुवोऽस्यस्ति तस्मादयमाकर्षणेन पृथिवीं दृंह दृंहति धरति तस्मात् **[त्वा]** तमहं **[ब्रह्मवनि]** ब्रह्मवनिं **[क्षत्रवनि]** क्षत्रवनिं **[सजातवनि]** सजातवनिं भ्रातृव्यस्य वधायोपदधामीति द्वितीय:॥१७॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषालङ्कार:। सर्वशक्तिमतेश्वरेण यतोऽयमामाद्दाहकस्वभावोऽग्नी रचितस्ततो नायं भस्मादिकं दग्धुं समर्थो भवति। येनेमान् पदार्थान् पक्त्वाऽदन्ति **[स आमात्]** येनोदरस्थमन्नं पच्यते **[स जाठर:]** येन च मनुष्या मृतं देहं दहन्ति स क्रव्यात् संज्ञोऽग्निर्येनायं दिव्यगुणप्रापको विद्युदाख्यश्च रचितस्तथा येन पृथिवीधारणाकर्षणप्रकाशक: सूर्य्यो रचित:। यश्च ब्रह्मभिर्वेदविद्भिर्ब्राह्मणै: क्षत्रियै: समानजन्मभिर्मनुष्यैश्च वन्यते संसेव्यते। तथा य: सर्वेषु जातेषु पदार्थेषु वर्त्तमान: परमेश्वरो भौतिकोऽग्निर्वा। स एव सर्वैरुपास्यो भौतिकश्च क्रियासिध्यर्थं सेवनीय इति॥१७॥

पदार्थ:-हे **(अग्ने)** परमेश्वर! आप **(धृष्टि:)** प्रगल्भ अर्थात् अत्यन्त निर्भय **(असि)** हैं, इस कारण **(निष्क्रव्यादम्)** पके हुए भस्म आदि पदार्थों को छोड़ के **(आमादम्)** कच्चे पदार्थ जलाने और **(देवयजम्)** विद्वान् वा श्रेष्ठ गुणों से मिलाप कराने वाले **(अग्निम्)** भौतिक वा विद्युत् अर्थात् बिजुलीरूप अग्नि को आप **(सेध)** सिद्ध कीजिये। इस प्रकार हम लोगों के मङ्गल अर्थात् उत्तम-उत्तम सुख होने के लिये शास्त्रों की शिक्षा कर के दु:खों को **(अपजहि)** दूर कीजिये और आनन्द को **(आवह)** प्राप्त कीजिये तथा हे परमेश्वर! आप **(ध्रुवम्)** निश्चल सुख देने वाले **(असि)** हैं, इस से **(पृथिवीम्)** विस्तृतभूमि वा उसमें रहने वाले मनुष्यों को **(दृंह)** उत्तम गुणों से वृद्धियुक्त कीजिये। हे अग्ने जगदीश्वर! जिस कारण आप अत्यन्त प्रशंसनीय हैं, इससे मैं **(भ्रातृव्यस्य)** दुष्ट वा शत्रुओं के **(वधाय)** विनाश के लिये **(ब्रह्मवनि)** **(क्षत्रवनि)** **(सजातवनि)** ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा प्राणिमात्र के सुख वा दु:ख व्यवहार के देने वाले **(त्वा)** आप को **(उपदधामि)** हृदय में स्थापन करता हूं॥ यह इस मन्त्र का प्रथम अर्थ हुआ॥

तथा हे विद्वान् यजमान! जिस कारण यह **(अग्ने)** भौतिक अग्नि **(धृष्टि:)** अतितीक्ष्ण **(असि)** है तथा निकृष्ट पदार्थों को छोड़ कर उत्तम पदार्थो से **(देवयजम्)** विद्वान् वा दिव्य गुणों को प्राप्त कराने वाले यज्ञ को **(आवह)** प्राप्त कराता है, इससे तुम **(निष्क्रव्यादम्)** पके हुए भस्म आदि पदार्थों को छोड़ के **(आमादम्)** कच्चे पदार्थ जलाने और **(देवयजम्)** विद्वान् वा दिव्य गुणों के प्राप्त कराने वाले **(अग्निम्)** प्रत्यक्ष वा बिजुलीरूप अग्नि को **(आवह)** प्राप्त करो तथा उसके जानने की इच्छा करने वाले लोगों को शास्त्रों की उत्तम-उत्तम शिक्षाओं के साथ उसका उपदेश **(सेध)** करो तथा उसके अनुष्ठान में जो दोष हों, उनको **(अपजहि)** विनाश करो। जिस कारण

यह अग्नि सूर्य्यरूप से **(ध्रुवम्)** निश्चल **(असि)** है, इसी कारण यह आकर्षणशक्ति से **(पृथिवीम्)** विस्तृत भूमि वा उसमें रहने वाले प्राणियों को **(दृंह)** दृढ़ करता है, इसी से मैं **(त्वा)** उस **(ब्रह्मवनि)** **(क्षत्रवनि)** **(सजातवनि)** ब्राह्मण, क्षत्रिय वा जीवमात्र के सुख दुःख को अलग-अलग कराने वाले भौतिक अग्नि को **(भ्रातृव्यस्य)** दुष्ट वा शत्रुओं के **(वधाय)** विनाश के लिये हवन करने की वेदी वा विमान आदि यानों में **(उपदधामि)** स्थापन करता हूं॥ यह दूसरा अर्थ हुआ॥१७॥

भावार्थः-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। सर्वशक्तिमान् ईश्वर ने यह भौतिक अग्नि आम अर्थात् कच्चे पदार्थ जलाने वाला बनाया है, इस कारण भस्मरूप पदार्थों के जलाने को समर्थ नहीं है। जिससे कि मनुष्य कच्चे-कच्चे पदार्थों को पका कर खाते हैं [वह आमात्] तथा जिस करके सब प्राणियों का खाया हुआ अन्न आदि द्रव्य पकता है [वह जाठर] और जिस करके मनुष्य लोग मरे हुए शरीर को जलाते हैं, वह क्रव्यात् अग्नि कहाता है और जिससे दिव्य गुणों को प्राप्त कराने वाली विद्युत् बनी है तथा जिससे पृथिवी का धारण और आकर्षण करने वाला सूर्य्य बना है और जिसे वेदविद्या के जानने वाले ब्राह्मण वा धनुर्वेद के जानने वाले क्षत्रिय वा सब प्राणिमात्र सेवन करते हैं तथा जो सब संसारी पदार्थों में वर्त्तमान परमेश्वर है, वही सब मनुष्यों का उपास्य देव है तथा जो क्रियाओं की सिद्धि के लिये भौतिक अग्नि है, यह भी यथायोग्य कार्य्य द्वारा सेवा करने के योग्य है॥१७॥

अग्ने ब्रह्मेत्यस्य ऋषिः स एव। अग्निर्देवता सर्वस्य। पूर्वस्य ब्राह्मी उष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः। धर्त्रमसीति मध्यस्यार्ची त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। विश्वाभ्य इत्युत्तरस्यार्ची पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनरग्निशब्देनोक्तावर्थावुपदिश्येते॥

फिर भी अग्नि शब्द से अगले मन्त्र में फिर दोनों अर्थों का प्रकाश किया है॥

अग्ने ब्रह्म गृभ्णीष्व धुरुणमस्यन्तरिक्षं दृꣳह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय। धर्त्रमसि दिवं दृꣳह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय। विश्वाभ्यस्त्वाशाभ्यऽउपदधामि चित स्थोर्ध्वचितो भृगूणामङ्गिरसां तपसा तप्यध्वम्॥१८॥

अग्ने। ब्रह्म। गृभ्णीष्व। धरुणम्। असि। अन्तरिक्षम्। दृꣳह। ब्रह्मवनीति ब्रह्मऽवनि। त्वा। क्षत्रवनीति क्षत्रऽवनि। सजातवनीति सजातऽवनि। उप। दधामि। भ्रातृव्यस्य। वधाय। धर्त्रम्। असि। दिवम्। दृꣳह। ब्रह्मवनीति ब्रह्मऽवनि। त्वा। क्षत्रवनीति क्षत्रऽवनि। सजातवनीति सजातऽवनि। उप। दधामि। भ्रातृव्यस्य। वधाय। विश्वाभ्यः। त्वा। आशाभ्यः। उप। दधामि। चितः। स्थ। ऊर्ध्वचित इत्यूर्ध्वऽचितः। भृगूणाम्। अङ्गिरसाम्। तपसा। तप्यध्वम्॥१८॥

पदार्थः-**(अग्ने)** परमेश्वर भौतिको वा **(ब्रह्म)** वेदम् **(गृभ्णीष्व)** ग्राहय गृह्णाति वा। अत्र सर्वत्र पक्षे व्यत्ययः। **हृग्रहोर्भश्छन्दसि** (अष्टा०५।२।३२) इति हकारस्य भकारः **(धरुणम्)** धरति सर्वलोकान् यत्तत् तेजश्च **(असि)** अस्ति। अत्र पक्षे प्रथमार्थे मध्यमः **(अन्तरिक्षम्)** आकाशस्थान् पदार्थान्। अन्तरात्मस्थमक्षयं ज्ञानं वा। **अन्तरिक्षं कस्मादन्तरा क्षान्तं भवत्यन्तरेमे इति वा शरीरेष्वन्तरक्षयमिति वा** (निरु०२।१०) **(दृंह)** दृढीकुरु करोति वा **(ब्रह्मवनि)** वेदं वनयति तम् **(त्वा)** त्वाम् **(क्षत्रवनि)** राज्यं वनयति तम् **(सजातवनि)** समाना जाता विद्याः

समानं जातं राज्यं वा वनयति तम् **(उपदधामि)** धारयामि [**(भ्रातृव्यस्य)** द्विषत: शत्रो: **(वधाय)** नाशाय हननाय] **(धर्त्रम्)** धरति यत् येन वा। **वायुर्वाव धर्त्रं चतुष्टोम:। स आभिश्चतसृभिर्दिग्भि: स्तुते तद्यत्तमाह धर्त्रमिति प्रतिष्ठा वै धर्त्रम्। वायुरु सर्वेषां भूतानां प्रतिष्ठा तदेव तद्रूपमुपदधाति स वै वायुमेव प्रथममुपदधाति वायुमुत्तमं वायुनैव तदेतानि सर्वाणि भूतान्युभयत: परिगृह्णाति** (शत०८।२।१।१६) अनेन प्रमाणेन धर्त्रशब्देन वायुरीश्वरश्च गृह्येते **(असि)** अस्ति वा **(दिवम्)** ज्ञानप्रकाशं सूर्य्यलोकं वा **(दृंह)** सम्यग्वर्धय, वर्धयति वा **(ब्रह्मवनि)** सर्वमनुष्यार्थं ब्रह्मणो वेदस्य विभाजितारम्। ब्रह्माण्डस्य मूर्त्तद्रव्यस्य प्रकाशकं वा **(त्वा)** त्वां तं वा **(क्षत्रवनि)** राजधर्मप्रकाशस्य विभाजितारं राजगुणानां दृष्टान्तेन प्रकाशयितारं वा **(सजातवनि)** समानान् जातान् वेदान् क्षत्रधर्मान् मूर्त्तान् जगत्स्थान् पदार्थान् वा वनयति प्रकाशयति तम् [**(उपदधामि)** धारयामि **(भ्रातृव्यस्य)** द्विषत: शत्रो: **(वधाय)** नाशाय हननाय वा] **(विश्वाभ्य:)** सर्वाभ्य: **(त्वा)** त्वां तं वा **(आशाभ्य:)** दिग्भ्य:। **आशा इति दिङ्नामसु पठितम्** (निघं०१।६) **(उपदधामि)** उपदधाति वा सामीप्ये धारयामि तेन पुष्णामि वा **(चित:)** चेतयन्ति संजानन्ति ये ते चित:। अत्र वा **शर्प्रकरणे खर्परे लोपो वक्तव्य:** (अष्टा०वा०८.३.३६) इति वार्त्तिकेन विसर्जनीयलोप: **(स्थ)** भवथ भवन्ति वा **(ऊर्ध्वचित:)** ऊर्ध्वानुत्कृष्टगुणान् चेतयन्ति ते मनुष्याश्रितानि कपालानि वा **(भृगूणाम्)** भृज्जन्ति यैस्तेषाम् **(अङ्गिरसाम्)** प्राणानामङ्गाराणां वा। **प्राणो वा अङ्गिरा:** (शत०६।५।२।३) **अङ्गारेष्वङ्गिरा अङ्गारा अङ्कना अञ्चना:** (निरु०३।१७) **(तपसा)** धर्मविद्यानुऽष्ठानेन तापेन तेजसा वा **(तप्यध्वम्)** तपन्तु तापयत वा॥ अयं मन्त्र: (शत०(१।२।१।९-१३) व्याख्यात:॥१८॥

अन्वय:-हे अग्ने परमेश्वर! त्वं धरुणमसि कृपयाऽस्मत्प्रयुक्तं ब्रह्म गृभ्णीष्व तथाऽस्मास्वन्तरिक्षमक्षयं विज्ञानं दृंह वर्धय। अहं भ्रातृव्यस्य वधाय ब्रह्मवनि क्षत्रवनि सजातवनि त्वोपदधामि। हे सर्वधातर्जगदीश्वर! त्वं सर्वेषां लोकानां धर्त्रमसि कृपयाऽस्मासु दिवं ज्ञानप्रकाशं दृंह। अहं भ्रातृव्यस्य वधाय ब्रह्मवनि क्षत्रवनि सजातवनि त्वा त्वामुपदधामि। **[त्वा]** त्वां सर्वव्यापकं ज्ञात्वा विश्वाभ्य आशाभ्य उपदधामि। हे मनुष्या! यूयमप्येवं विदित्वा चित **[स्थ]** ऊर्ध्वचित: कपालानि कृत्वा भृगूणामङ्गिरसां तपसा तप्यध्वं यथा तपन्तु तथा तापयतेत्येक:॥

हे विद्वन् **[अग्ने]** येनाग्निना धरुणं ब्रह्मान्तरिक्षं गृह्यते दृह्यते च **[त्वा]** तं त्वं होमार्थं शिल्पविद्यासिध्यर्थं च गृभ्णीष्व दृंह च। तथैवाहमपि भ्रातृव्यस्य वधाय तं ब्रह्मवनि क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि। एवं सोऽग्निर्धृत: **(हित:)** सन् सुखमुपदधाति। एवं यो वायुर्धर्त्रं सर्वलोकधारकोस्यस्ति दिवं च दृंह दृंहति तमहं यथा भ्रातृव्यस्य वधाय ब्रह्मवनि क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि। तथैव त्वमप्येतं तस्मै प्रयोजनायोपदृंह। हे शिल्पविद्यां चिकीर्षो विद्वन्! येन वायुना पृथिवी द्यौ: सूर्य्यलोकश्च धार्य्यते दृह्यते च तं त्वं जीवनार्थं शिल्पविद्यायै च धारय दृंह च ब्रह्मवनि इत्यादि पूर्ववत्। हे मनुष्या! यथाऽहं वायुविद्यावित् त्वा तमग्निं वायुं च विश्वाभ्य आशाभ्य उपदधामि तथैव यूयमप्युपधत्त। यज्ञार्थं शिल्पविद्यार्थंमुपरिरचित ऊर्ध्वचित: कपालानि कला धारितवन्त: सन्तो भृगूणामङ्गिरसां तपसा तप्यध्वम् तापयत च॥१८॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषालङ्कार:। ईश्वरेणेदमादिश्यते भवन्तो विद्वदुन्नतये मूर्खत्वविनाशाय सर्वशत्रूणां निवारणेन राज्यवर्धनाय च वेदविद्यां गृह्णीयु:। योऽग्नेर्वृद्धिहेतु: सर्वाधारको वायुरग्निमय: सूर्य्य ईश्वरश्च स्थ सन्ति, तान् सर्वासु दिक्षु विस्तृतान् व्यापकान् विदित्वा यज्ञसिद्धिं विमानादियानरचनं तानि चालयित्वा दु:खानि निवार्य्य शत्रून् विजयन्ताम्॥१८॥

पदार्थः- हे **(अग्ने)** परमेश्वर! आप **(धरुणम्)** सब के धारण करने वाले **(असि)** हैं, इससे मेरी **(ब्रह्म)** वेद मन्त्रों से की हुई स्तुति को **(गृभ्णीष्व)** ग्रहण कीजिये तथा **(अन्तरिक्षम्)** आत्मा में स्थित जो अक्षय ज्ञान है, उसको **(दृंह)** बढ़ाइये। मैं **(भ्रातृव्यस्य)** शत्रुओं के **(वधाय)** विनाश के लिये **(ब्रह्मवनि)** सब मनुष्यों के सुख के निमित्त वेद के शाखा-शाखान्तर द्वारा विभाग करने वाले ब्राह्मण तथा **(क्षत्रवनि)** राजधर्म के प्रकाश करनेहारे **(सजातवनि)** जो परस्पर समान क्षत्रियों के धर्म और संसारी मूर्तिमान् पदार्थ हैं, इनका प्राणियों के लिये अलग-अलग प्रकाश करने वाले **(त्वा)** आपको **(उपदधामि)** हृदय के बीच में धारण करता हूं। हे सब के धारण करने वाले परमेश्वर! जो आप **(धर्त्रम्)** लोकों के धारण करने वाले **[असि]** हैं, इससे कृपा करके हम लोगों में **(दिवम्)** अत्युत्तम ज्ञान को **(दृंह)** बढ़ाइये और मैं **(भ्रातृव्यस्य)** शत्रुओं के **(वधाय)** विनाश के लिये **(ब्रह्मवनि)** **(क्षत्रवनि)** **(सजातवनि)** उक्त वेद राज्य वा परस्पर समान विद्या वा राज्यादि व्यवहारों को यथायोग्य विभाग करने वाले **(त्वा)** आपको **(उपदधामि)** वारंवार अपने हृदय में धारण करता हूं। तथा मैं **(त्वा)** आपको सर्वव्यापक जानकर **(विश्वाभ्यः)** सब **(आशाभ्यः)** दिशाओं से सुख होने के निमित्त वारंवार **(उपदधामि)** अपने मन में धारण करता हूं। हे मनुष्यो! तुम लोग उक्त व्यवहार को अच्छी प्रकार जानकर **(चितः)** विज्ञानी **(ऊर्ध्वचितः)** उत्तम ज्ञान वाले पुरुषों की प्रेरणा से कपालों को अग्नि पर धरके तथा **(भृगूणाम्)** जिनसे विद्या आदि गुणों को प्राप्त होते हैं, ऐसे **(अङ्गिरसाम्)** प्राणों के **(तपसा)** प्रभाव से **(तप्यध्वम्)** तपो और तपाओ॥ यह इस मन्त्र का प्रथम अर्थ हुआ॥

अब दूसरा भी कहते हैं॥ हे विद्वान् धर्मात्मा पुरुष! जिस **(अग्ने)** भौतिक अग्नि से **(धरुणम्)** सब का धारण करने वाला तेज **(ब्रह्म)** वेद और **(अन्तरिक्षम्)** आकाश में रहने वाले पदार्थ ग्रहण वा वृद्धियुक्त किये जाते हैं, **(त्वा)** उसको तुम होम वा शिल्पविद्या की सिद्धि के लिये **(गृभ्णीष्व)** ग्रहण करो **(दृंह)** वा विद्यायुक्त क्रियाओं से बढ़ाओ और मैं भी **(भ्रातृव्यस्य)** शत्रुओं के **(वधाय)** विनाश के लिये **(त्वा)** उस **(ब्रह्मवनि)** **(क्षत्रवनि)** **(सजातवनि)** संसारी मूर्तिमान् पदार्थों के प्रकाश करने वा राजगुणों के दृष्टान्तरूप से प्रकाश कराने वाले भौतिक अग्नि को शिल्पविद्या आदि व्यवहारों में **(उपदधामि)** स्थापन करता हूं। ऐसे स्थापन किया हुआ अग्नि हमारे अनेक सुखों को धारण करता है। इसी प्रकार सब लोगों का **(धर्त्रम्)** धारण करने वाला वायु **(असि)** है तथा **(दिवम्)** प्रकाशमय सूर्य्यलोक को **(दृंह)** दृढ़ करता है। हे मनुष्यो! जैसे उसको मैं **(भ्रातृव्यस्य)** अपने शत्रुओं के **(वधाय)** विनाश के लिये **(ब्रह्मवनि)** **(क्षत्रवनि)** **(सजातवनि)** वेद राज्य वा परस्पर समान उत्तम-उत्तम शिल्पविद्याओं को यथायोग्य कार्य्यों में युक्त करने वाले उस भौतिक अग्नि को **(उपदधामि)** स्थापन करता हूं, वैसे तुम भी उत्तम-उत्तम क्रियाओं में युक्त करके विद्या के बल से **(दृंह)** उसको बढ़ाओ। हे विद्या चाहने वाले पुरुष! जो पवन, पृथिवी और सूर्य्य आदि लोकों को धारण कर रहा है उसे तुम अपने जीवन आदि सुख वा शिल्पविद्या की सिद्धि के लिये यथायोग्य कार्यों में लगाकर उसकी विद्या से **(दृंह)** वृद्धि करो तथा जैसे हम अपने शत्रुओं के विनाश के लिये **(ब्रह्मवनि)** **(क्षत्रवनि)** **(सजातवनि)** अग्नि के उक्त गुणों के समान वायु को शिल्पविद्या आदि व्यवहारों में **(उपदधामि)** संयुक्त करते हैं, वैसे ही तुम भी अपने अनेक दुःखों के विनाश के लिये उसको यथायोग्य कार्य्यों में संयुक्त करो। हे मनुष्यो! जैसे मैं वायुविद्या का जानने वाला **(त्वा)** उस अग्नि वा वायु को **(विश्वाभ्यः)** सब **(आशाभ्यः)** दिशाओं से सुख होने के लिये यथायोग्य शिल्पव्यवहारों में **(उपदधामि)** धारण करता हूं, वैसे तुम भी धारण करो तथा शिल्पविद्या वा होम करने के लिये **(चितः)** **(ऊर्ध्वचितः)** **[स्थ]** पदार्थों के भरे हुए पात्र वा

सवारियों में स्थापन किये हुए कलायन्त्रों को **(भृगूणाम्)** जिनसे पदार्थों को पकाते हैं, उन **[अङ्गिरसाम्]** अङ्गारों के **(तपसा)** ताप से **(तप्यध्वम्)** उक्त पदार्थों को तपाओ ॥१८॥

भावार्थः- इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। ईश्वर का यह उपदेश है कि हे मनुष्यो! तुम विद्वानों की उन्नति तथा मूर्खपन का नाश वा सब शत्रुओं की निवृत्ति से राज्य बढ़ने के लिये वेदविद्या को ग्रहण करो तथा वृद्धि का हेतु अग्नि वा सब का धारण करने वाला वायु, अग्निमय सूर्य्य और ईश्वर इन्हें सब दिशाओं में व्याप्त जानकर यज्ञसिद्धि वा विमान आदि यानों की रचना धर्म के साथ करो तथा इन से इन को सिद्ध कर के दुःखों को दूर कर के शत्रुओं को जीतो॥१८॥

शर्मासीत्यस्य ऋषिः स एव। अग्निर्देवता। निचृद् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ यज्ञस्य स्वरूपमङ्गानि चोपदिश्यन्ते॥

इस के अनन्तर ईश्वर ने यज्ञ का स्वरूप और इसके अङ्ग अगले मन्त्र में उपदेश किये हैं॥

शर्मास्यवधूतꣳ रक्षोऽवधूताऽअरातयोऽदित्यास्त्वगसि प्रति त्वादितिर्वेत्तु। धिषणासि पर्वती प्रति त्वादित्यास्त्वग्वेत्तु दिवः स्कम्भनीरसि धिषणासि पार्वतेयी प्रति त्वा पर्वती वेत्तु ॥१९॥

शर्म। असि। अवधूतमित्यवऽधूतम्। रक्षः। अवधूता इत्यवऽधूताः। अरातयः। अदित्याः। त्वक्। असि। प्रति। त्वा। अदितिः। वेत्तु। धिषणा। असि। पर्वती। प्रति। त्वा। अदित्याः। त्वक्। वेत्तु। दिवः। स्कम्भनीः। असि। धिषणा। असि। पार्वतेयी। प्रति। त्वा। पर्वती वेत्तु॥ १९॥

पदार्थः-**(शर्म)** सुखहेतुः **(असि)** भवति। अत्र सर्वत्र व्यत्ययः **(अवधूतम्)** विनाशितम् **(रक्षः)** दुःखं निवारणीयम् **(अवधूताः)** निवारणीया विचालिता हताः। **अवेति विनिग्रहार्थीयः।** (निरु०१।३) **(अरातयः)** अदानस्वभावाः कृपणाः **(अदित्याः)** अन्तरिक्षस्य **(त्वक्)** त्वग्वत् **(असि)** भवति **(प्रति)** क्रियार्थे **(त्वा)** तं यज्ञम् **(अदितिः)** यज्ञस्यानुष्ठाता यजमानः। **अदितिरिति पदनामसु पठितम्।** (निघं०५।५) इति यज्ञस्य ज्ञाता पालकार्थो गृह्यते **(वेत्तु)** जानातु **(धिषणा)** वाक् वेदवाणी ग्राह्या। **धिषणेति वाङ्नामसु पठितम्।** (निघं०१।११) धृष्णोति सर्वा विद्या यया सा। **धृषेर्धिष च संज्ञायाम्।** (उणा०२।८२) अनेनायं शब्दः सिद्धः। महीधरेण धिषणेदं पदं धियं बुद्धिं कर्म वा सनोति व्याप्नोतीति भ्रान्त्या व्याख्यातम्। **(असि)** भवति **(पर्वती)** पर्वणं पर्बहुज्ञानं विद्यतेऽस्यां क्रियायां सा पर्वती। अत्र **संपदादित्वात्** [अष्टा०भा०वा०३.३.१०८] क्विप्। भूम्नि मतुप्। **उगितश्च** [अष्टा०४.१.६] इति ङीप् **(प्रति)** वीप्सार्थे **(त्वा)** तां ताम् **(अदित्याः)** प्रकाशस्य **(त्वक्)** त्वचति संवृणोत्यनया सा **(वेत्तु)** जानातु **(दिवः)** प्रकाशवतः सूर्य्यादिलोकस्य **(स्कम्भनीः)** स्कम्भं प्रतिबद्धं नयतीति सा **(असि)** भवति **(धिषणा)** धारणावती द्यौः। **धिषणेति द्यावापृथिव्योर्नामसु पठितम्।** (निघं०३।३०) **(असि)** अस्ति **(पार्वतेयी)** पर्वतस्य मेघस्य दुहितेव या सा पार्वतेयी वृष्टिः। **पर्वत इति मेघनामसु पठितम्।** (निघं०१।१०) पर्वतस्येयं घनपङ्क्तिः पार्वती तस्यापत्यं दुहितेव पार्वतेयी वृष्टिः। **स्त्रीभ्यो ढक् (अष्टा०४.१.१२०)** अनेन ढक्। **(प्रति)** इत्थंभूताख्याने **(त्वा)** तामीदृशीम्। **(पर्वती)** पः प्रशस्तं प्रापणं यस्यां सा। अत्र प्रशंसार्थे मतुप् **(वेत्तु)** जानातु॥ अयं मन्त्रः (१।२।१।१४-१७) व्याख्यातः॥१९॥

अन्वयः-हे मनुष्या ! भवन्तो यो यं यज्ञः शर्मासि सुखदोऽदितिनाशरहितोस्ति येन रक्षोऽवधूतं

दु:खमरातयोऽवधूता विनष्टाश्च भवन्ति योऽदित्या अन्तरिक्षस्य पृथिव्याश्च त्वग्वदस्यस्ति, त्वा तं वेत्तु विदन्तु येन विद्याख्येन यज्ञेन पर्वती दिवः स्कम्भनीः **[असि]** पार्वतेयी धिषणाऽ**[असि]** अदित्यास्त्वग्वद्विस्तार्य्यते त्वा तं प्रतिवेत्तु यथावज्जानन्तु, येन सत्सङ्गत्याख्येन पर्वती ब्रह्मज्ञानवती धिषणा **[असि]** प्राप्यते **[त्वा]** तमपि प्रतिवेत्तु जानन्तु॥१९॥

भावार्थः-मनुष्यैर्यो विज्ञानेन सम्यक् सामग्रीं संपाद्य यज्ञोऽनुष्ठीयते, यश्च वृष्टिबुद्धिवर्धकोऽस्ति, सोऽग्निना मनसा च संसाधितः सूर्य्यप्रकाशं त्वग्वत्सेवते॥१९॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! तुम लोग जो यज्ञ **(शर्म)** सुख का देने वाला **(असि)** है और **(अदितिः)** नाशरहित है तथा जिससे **(रक्षः)** दु:ख और दुष्टस्वभावयुक्त मनुष्य **(अवधूतम्)** विनाश को प्राप्त तथा **(अरातयः)** दान आदि धर्मों से रहित पुरुष **(अवधूताः)** नष्ट **(असि)** होते हैं और जो **(अदित्याः)** अन्तरिक्ष वा पृथिवी के **(त्वक्)** त्वचा के समान **(असि)** है, **(त्वा)** उसे **(प्रति वेत्तु)** जानो और जिस विद्यारूप उक्त यज्ञ से **(पर्वती)** बहुत ज्ञान वाली **(दिवः)** प्रकाशमान सूर्यादि लोकों की **(स्कम्भनीः)** रोकने वाली **[असि]** है तथा **(पार्वतेयी)** मेघ की कन्या अर्थात् पृथिवी के तुल्य **(धिषणा)** वेदवाणी **[(असि)]** है, **(अदित्याः)** पृथिवी के **(त्वक्)** शरीर के तुल्य विस्तार को प्राप्त होती है, **(त्वा)** उसे **(प्रतिवेत्तु)** यथावत् जानो और जिस सत्सङ्गतिरूप यज्ञ से **(पर्वती)** उत्तम-उत्तम ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने वाली **(धिषणा)** द्यौः अर्थात् प्रकाशरूपी बुद्धि **(असि)** प्राप्त होती है, **(त्वा)** उसे भी **(प्रतिवेत्तु)** जानो॥ १९॥

भावार्थ:-मनुष्यों को अपने विज्ञान से अच्छी प्रकार पदार्थों को इकट्ठा करके उन से यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिये जो कि वृष्टि वा बुद्धि का बढ़ाने वाला है, वह अग्नि और मन से सिद्ध किया हुआ सूर्य्य के प्रकाश को त्वचा के समान सेवन करता है॥ १९॥

धान्यमसीत्यस्य ऋषिः स एव। सविता देवता। विराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

कस्मै प्रयोजनाय स यज्ञः कर्त्तव्य इत्युपदिश्यते॥

किस प्रयोजन के लिये उक्त यज्ञ करना चाहिये, सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है॥

धान्यमसि धिनुहि देवान् प्राणाय त्वोदानाय त्वा व्यानाय त्वा। दीर्घामनु प्रसितिमायुषे धां देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना चक्षुषे त्वा महीनां पयोऽसि॥ २०॥

धान्यम्। असि। धिनुहि। देवान्। प्राणाय। त्वा। उदानायेत्युत्ऽआनाय। त्वा। व्यानायेति विऽआनाय। त्वा। दीर्घाम्। अनु। प्रसितिमिति प्रऽसितिम्। आयुषे। धाम्। देवः। वः। सविता। हिरण्यपाणिरिति हिरण्यऽपाणिः। प्रति। गृभ्णातु। अच्छिद्रेण। पाणिना। चक्षुषे। त्वा। महीनाम्। पयः। असि॥२०॥

पदार्थ:-(धान्यम्) धातुमर्हं यत् यज्ञात् शुद्धम्। रोगनाशकेन स्वादिष्ठतमेन सुखकारकमन्नं तत्। अत्र **दधातेर्यत् नुट च।** (उणा०५।४८) अनेन यत्प्रत्ययो नुडागमश्च **(असि)** भवति। अत्र सर्वत्र व्यत्ययः **(धिनुहि)** धिनोति प्रीणाति। अत्र लडर्थे लोट् **(देवान्)** विदुषो जीवानिन्द्रियाणि च **(प्राणाय)** प्रकृष्टमन्यते जीव्यते येन तस्मै जीवनधारणहेतवे बलाय **(त्वा)** तत् **(उदानाय)** स्फूर्त्तिहेतव ऊर्ध्वमन्यते चेष्ट्यते येन तस्मै उत्क्रमणपराक्रमहेतवे **(त्वा)** तत् **(व्यानाय)** विविधमन्यते व्याप्यते येन तस्मै सर्वेषां शुभगुणानां कर्मविद्याङ्गानां च व्याप्तिहेतवे **(त्वा)** तत्। अत्र त्रिषु प्रथमार्थे मध्यमः **(दीर्घाम्)** विस्तृताम् **(अनु)** पश्चादर्थे **(प्रसितिम्)** प्रकृष्टं सिनोति बध्नात्यनया ताम्

(आयुषे) पूर्णायुर्वर्धनेन सुखभोगाय **(धाम्)** दधामि। अत्र **छन्दसि लुङ्लङ्लिटः** [अष्टा०३.४.६] इति वर्त्तमाने लुङ्ङडभावश्च **(देवः)** प्रकाशमानः प्रकाशहेतुर्वा **(वः)** अस्मानेतान् जगत्स्थान् स्थूलान् पदार्थांश्च **(सविता)** सर्वजगदुत्पादकः सकलैश्वर्य्यादातेश्वरः सूर्य्यलोको वा **(हिरण्यपाणिः)** हिरण्यस्यामृतस्य मोक्षस्य दानाय पाणिर्व्यवहारो यस्य सः। **अमृतं हिरण्यम्।** (शत०७।४।१।१५) यद्वा हिरण्यं प्रकाशार्थं ज्योतिः पाणिर्व्यवहारो यस्य सः **(प्रतिगृभ्णातु)** प्रतिगृह्णातु प्रतिगृह्णाति वा। अत्र **हृग्रहो०** [अष्टा०भा०वा०८.२.३२] इति हस्य भः। पक्षे लडर्थे लोट् च **(अच्छिद्रेण)** निरन्तरेण व्यापनेन प्रकाशेन वा **(पाणिना)** स्तुतिसमूहेन व्यवहारेण तेजसा **(चक्षुषे)** प्रत्यक्षज्ञानाय, नेत्रव्यवहाराय च। **(त्वा)** तं च। **(महीनाम्)** महतीनां वाचां पृथिवानां वा। **महीति वाङ्नामसु पठितम्।** (निघं०१।११) **पृथिवीनामसु च।** (निघं०१।१) **(पयः)** अन्नं जलं च येन शुद्धम्। **पय इत्युदकनामसु पठितम्।** (निघं०१।१२) अयं मन्त्रः (शत०(१।१।५।१८-२२) व्याख्यातः॥२०॥

अन्वयः-यदिदं यज्ञशोधितं धान्यम**(स्य)**स्ति यज्ञ यज्ञशोधितं पयोऽ**(स्य)**स्ति तत् देवान् धिनुहि धिनाति तस्माद्यथाऽहं **(त्वा)** तत्प्राणाय **(त्वा)** तदुदानाय **(त्वा)** तद्व्यानाय दीर्घां प्रसितिमायुषे **(धाम्)** दधामि, तथैव यूयं सर्वे मनुष्यास्तस्मै प्रयोजनायैतन्नित्यं धत्त **(त्वा)** यथा वः योऽस्मान् हिरण्यपाणिर्देवः सविता जगदीश्वरोऽच्छिद्रेण पाणिना महीनां चक्षुषे **(त्वा)** प्रत्यनुगृभ्णातु प्रकृष्टतयानुगतं गृह्णाति तथैव वयं तं प्रतिगृभ्णीमः। यथा च हिरण्यपाणिर्देवः सविता सूर्य्यलोको महीनां चक्षुषेऽच्छिद्रेण पाणिना पयो गृहीत्वा धान्यं पोषयति, तथैव तं वयमपि अच्छिद्रेण पाणिना महीनां चक्षुषि प्रतिगृह्णीमः॥२०॥

भावार्थः-अत्र लुप्तोपमालङ्कारः। ये यज्ञेन शोधिता अन्नजलवाय्वादयः पदार्था भवन्ति, ते सर्वेषां शुद्धये बलपराक्रमाय दृढाय दीर्घायुषे च समर्था भवन्ति, तस्मात् सर्वैर्मनुष्यैरेतद्यज्ञकर्म नित्यमनुष्ठेयम्। तथा च परमेश्वरेण या महती पूज्या वाक् प्रकाशितास्त्यस्याः प्रत्यक्षकरणायेश्वरानुग्रहापेक्षा स्वपुरुषार्थता च कार्य्या। यथेश्वरः परोपकारिणां नृणामुपर्य्यनुग्रहं करोति, तथैवाऽस्माभिरपि सर्वेषां प्राणिनामुपरि नित्यमनुग्रहः कार्य्यः। यथाऽयमन्तर्यामीश्वरः सूर्य्यलोकश्च संसारे अध्यात्मनि वेदेषु च सत्यं ज्ञानं मूर्त्तद्रव्याणि नैरन्तर्य्येण प्रकाशयति, तथैव सर्वैरस्माभिर्मनुष्यैः सर्वेषां सुखायाऽखिला विद्याः प्रत्यक्षीकृत्य नित्यं प्रकाशनीयाः। ताभिः पृथिवीराज्यसुखं नित्यं कार्य्यमिति॥२०॥

पदार्थः-जो **(धान्यम्)** यज्ञ से शुद्ध उत्तम स्वभाववाला सुख का हेतु रोग का नाश करने वाला तथा चावल आदि अन्न वा **(पयः)** जल **(असि)** है, वह **(देवान्)** विद्वान् वा जीव तथा इन्द्रियों को **(धिनुहि)** तृप्त करता है, इस कारण हे मनुष्यो! मैं जिस प्रकार **(त्वा)** उसे **(प्राणाय)** अपने जीवन के लिये वा **(त्वा)** उसे **(उदानाय)** स्फूर्ति बल और पराक्रम के लिये वा **(त्वा)** उसे **(व्यानाय)** सब शुभ गुण, शुभ कर्म वा विद्या के अङ्गों के फैलाने के लिये तथा **(दीर्घाम्)** बहुत दिनों तक **(प्रसितिम्)** अत्युत्तम सुखबन्धनयुक्त **(आयुषे)** पूर्ण आयु के भोगने के लिये **(धाम्)** धारण करता हूं, वैसे तुम भी उक्त प्रयोजन के लिये उस को नित्य धारण करो। जैसे **(वः)** हम लोगों को **(हिरण्यपाणिः)** जिस का मोक्ष देना ही व्यवहार है, ऐसा सब जगत् का उत्पन्न करनेहारा **(देवः)** **(सविता)** सब ऐश्वर्य का दाता ईश्वर **(अच्छिद्रेण)** अपनी व्याप्ति वा **[पाणिना]** उत्तम व्यवहार से **(महीनाम्)** वाणियों के **[चक्षुषे]** प्रत्यक्ष ज्ञान के लिये **(प्रत्यनुगृभ्णातु)** अपने अनुग्रह से ग्रहण करता है, वैसे ही हम भी उस ईश्वर को **(अच्छिद्रेण)** निरन्तर **(पाणिना)** स्तुतियों से ग्रहण करें और जैसे **(हिरण्यपाणिः)** पदार्थों का प्रकाश करने वाला

(देव:) **(सविता)** सूर्य्यलोक **(महीनाम्)** लोक-लोकान्तरों की पृथिवियों में नेत्र सम्बन्धी व्यवहार के लिये **(अच्छिद्रेण)** निरन्तर तीव्र प्रकाश से **(पय:)** जल को **(प्रतिगृभ्णातु)** ग्रहण कर के अन्न आदि पदार्थों को पुष्ट करता है, वैसे ही हम लोग भी उसे **(अच्छिद्रेण)** निरन्तर **(पाणिना)** व्यवहार से **(महीनाम्)** पृथिवी के **(चक्षुषे)** पदार्थों की दृष्टिगोचरता के लिये स्वीकार करते हैं॥ २०॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। जो यज्ञ से शुद्ध किये हुए अन्न, जल और पवन आदि पदार्थ हैं, वे सब की शुद्धि, बल, पराक्रम और दृढ़ दीर्घ आयु के लिये समर्थ होते हैं। इससे सब मनुष्यों को यज्ञकर्म का अनुष्ठान नित्य करना चाहिये तथा परमेश्वर की प्रकाशित की हुई जो वेदचतुष्टयी अर्थात् चारों वेदों की वाणी है, उस के प्रत्यक्ष करने के लिये ईश्वर से अनुग्रह की इच्छा तथा अपना पुरुषार्थ करना चाहिये और जिस प्रकार परोपकारी मनुष्यों पर ईश्वर कृपा करता है, वैसे ही हम लोगों को भी सब प्राणियों पर नित्य कृपा करनी चाहिये अथवा जैसे अन्तर्यामी ईश्वर आत्मा और वेदों में सत्य ज्ञान तथा सूर्यलोक संसार में मूर्तिमान् पदार्थों का निरन्तर प्रकाश करता है, वैसे ही हम सब लोगों को परस्पर सब के सुख के लिये सम्पूर्ण विद्या मनुष्यों को दृष्टिगोचर करा के नित्य प्रकाशित करनी चाहिये और उनसे हमको पृथिवी का चक्रवर्ती राज्य आदि अनेक उत्तम उत्तम सुखों को उत्पन्न निरन्तर उत्पन्न करना चाहिये॥ २०॥

देवस्य त्वेत्यस्यर्षि: स एव। यज्ञो देवता सर्वस्य। आदौ सं वपामीत्यस्य गायत्री छन्द:। षड्ज: स्वर:। अन्त्यस्य विराट्निचृत् पङ्क्तिश्छन्द:। पञ्चम: स्वर:॥

ईश्वरेण याभ्य ओषधिभ्योऽन्नादिकं जायते, ता: कथं शुद्धा जायन्त इत्युपदिश्यते॥

जिन औषधियों से अन्न बनता है, वे यज्ञादि करने से कैसे शुद्ध होती हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

दे॒वस्य॑ त्वा सवि॒तु: प्र॑स॒वे᳕ऽश्विनो॑र्बा॒हुभ्या॒ं पू॒ष्णो हस्ता॑भ्याम्।

सं व॑पामि॒ समाप॒ऽओष॑धीभि॒: समोष॑धयो॒ रसे॑न।

स॒ꣳ रे॒वती॒र्जग॑तीभि: पृच्यन्ता॒ꣳ सं मधु॑मती॒र्मधु॑मतीभि: पृच्यन्ताम्॥ २१॥

दे॒वस्य॑। त्वा॒। स॒वि॒तु:। प्र॒स॒व इति॑ प्रऽस॒वे। अ॒श्विनो॑:। बा॒हुभ्या॒मिति॑ बा॒हुभ्या॑म्। पू॒ष्ण:। हस्ता॑भ्याम्। सम्। व॒पा॒मि॒। सम्। आप॑:। ओष॑धीभि:। सम्। ओष॑धय:। रसे॑न। सम्। रे॒वती॑:। जग॑तीभि:। पृ॒च्य॒न्ता॒म्। सम्। मधु॑मती॒रिति॒ मधु॑ऽमती:। मधु॑मतीभि॒रिति॒ मधु॑ऽमतीभि:। पृ॒च्य॒न्ता॒म्॥ २१॥

पदार्थ:-(देवस्य) विधातुरीश्वरस्य द्योतकस्य सूर्य्यस्य वा **(त्वा)** तं त्रिविधं यज्ञम् **(सवितु:)** सवति सकलैश्वर्य्यं जनयति तस्य **(प्रसवे)** उत्पादितेऽस्मिन् संसारे **(अश्विनो:)** प्रकाशभूम्यो:। **द्यावापृथिव्यावित्येके।** (निरु०१२।१) **(बाहुभ्याम्)** तेजोदृढत्वाभ्याम् **(पूष्ण:)** पुष्टिकर्त्तुर्वायो:। **पूषेति पदनामसु पठितम्।** (निघं०५।६) अनेन पुष्टिहेतुर्गृह्यते **(हस्ताभ्याम्)** प्राणापानाभ्याम् **(सम्)** सम्यगर्थे **(वपामि)** विस्तारयामि **(सम्)** संमेलने। **समित्येकीभावं प्राह।** (निरु०१।३) **(आप:)** जलानि। **आप इत्युदकनामसु पठितम्।** (निघं०१।१२) **(ओषधीभि:)** यवादिभि:। **ओषधय: ओषद् धयन्तीति वौषत्येना धयन्तीति वा दोषं धयन्तीति वा॥** निरु०९।२७। **(सम्)** सम्यगर्थे

(ओषधयः) यवादयः। **ओषध्यः फलपाकान्ता बहुपुष्पफलोपगाः।** (मनुस्मृतौ अ्ष्टा० १।श्लो० ४६) **(रसेन)** सारेणार्द्रेणानन्दकारकेण **(सम्)** प्रशंसार्थे **(रेवतीः)** रेवत्य आपः। अत्र **सुपां सुलुग्०** [अष्टा०७.१.३९] इति पूर्वसवर्णादेशः **(जगतीभिः)** उत्तमाभिरोषधीभिः **(पृच्यन्ताम्)** मेल्यन्ताम्। पृच्यन्ते वा **(सम्)** श्रैष्ठ्ये **(मधुमतीः)** मधुः प्रशस्तो रसो विद्यते यासु ता मधुमत्य आपः। अत्र प्रशंसार्थे मतुप्। **सुपां सुलुग्** [अष्टा०७.१.३९] इति पूर्वसवर्णादेशश्च **(मधुमतीभिः)** मधुर्बहुविधो रसो वर्त्तते यासु ताभिरोषधीभिः। अत्र भूमार्थे मतुप् **(पृच्यन्ताम्)** युक्त्या वैद्यकशिल्पशास्त्ररीत्या मेल्यन्ताम्॥ अयं मन्त्रः (शत०(१।१।६।१-२) व्याख्यातः॥२१॥

अन्वयः-हे मनुष्या! यथाऽहं सवितुर्देवस्य परमात्मनः प्रसवे सवितृमण्डलस्य प्रकाशे चाश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां यमिमं यज्ञं संवपामि। तथैव त्वा तं यूयमपि संवपत। यथैतस्मिन् प्रसवे प्रकाशे चौषधीभिराप ओषधयो रसेन। जगतीभी **[रेवती]** रेवत्यश्च संपृच्यन्ते। यथा च मधुमतीभिः **[मधुमतीः]** मधुमत्यः संपृच्यन्ते। तथैवौषधीभिरोषधय ओषधयो रसेन जगतीभिः सह रेवत्यश्चास्माभिः संपृच्यन्ताम्। एवं मधुमतीभिः सह मधुमत्यो नित्यं संपृच्यन्ताम्॥२१॥

भावार्थः-अत्र लुप्तोपमालङ्कारः। विद्वद्भिर्मनुष्यैरीश्वरोत्पादिते सूर्य्यप्रकाशितेऽस्मिन् जगति बहुविधानां संप्रयोक्तव्यानां द्रव्याणां संप्रयोक्तुमर्हैर्बहुविधैर्द्रव्यैः सह संमेलनेन त्रिविधो यज्ञो नित्यमनुष्ठेयः। यथा जलं स्वरसेनौषधीर्वर्धयति, ता उत्तमरसयोगाद् रोगनाशकत्वेन सुखदायिन्यो भवन्ति, यथेश्वरः कारणात् कार्य्यं यथावद् रचयति, सूर्य्यः सर्वं जगत् प्रकाश्य सततं रसं भित्त्वा पृथिव्याद्याकर्षति, वायुश्च धारयित्वा पुष्णाति तथैवाऽस्माभिरपि यथावत् संस्कृतैः संप्रयोजितैर्द्रव्यैर्विद्वत्सङ्गविद्योन्नितिर्होमशिल्पाख्यैर्यज्ञैर्वायुवृष्टिजलशुद्धयश्च सदैव कार्य्या इति॥२१॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे मैं **(सवितुः)** सकल ऐश्वर्य्य के देने वाले **(देवस्य)** परमेश्वर के **(प्रसवे)** उत्पन्न किये हुए प्रत्यक्ष संसार में, सूर्य्यलोक के प्रकाश में **(अश्विनोः)** सूर्य्य और भूमि के तेज की **(बाहुभ्याम्)** दृढ़ता से **(पूष्णः)** पुष्टि करने वाले वायु के **(हस्ताभ्याम्)** प्राण और अपान से **(त्वा)** पूर्वोक्त तीन प्रकार के यज्ञ का **(संवपामि)** विस्तार करता हूं, वैसे ही तुम भी उसको विस्तार से सिद्ध करो। जैसे इस उत्पन्न किये हुए संसार में **(ओषधीभिः)** यवादि ओषधियों से **(आपः)** जल और **(ओषधयः)** ओषधी **(रसेन)** आनन्दकारक रस से तथा **(जगतीभिः)** उत्तम ओषधियों से **(रेवतीः)** उत्तम जल और जैसे **(मधुमतीभिः)** अत्यन्त मधुर रसयुक्त ओषधियों से **(मधुमतीः)** अत्यन्त उत्तम रसरूप जल ये सब मिल कर वृद्धियुक्त होते हैं, वैसे हम सब लोगों को भी ओषधियों से जल और ओषधि, उत्तम जल से तथा सब उत्तम ओषधियों से उत्तम रसयुक्त जल तथा अत्युत्तम मधुर रसयुक्त ओषधियों से प्रशंसनीय रसरूप जल इन सबों को यथायोग्य परस्पर **(संपृच्यन्ताम्)** युक्ति से वैद्यक वा शिल्पशास्त्र की रीति से मेल करना चाहिये॥२१॥

भावार्थः-इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। विद्वान् मनुष्यों को ईश्वर के उत्पन्न किये हुए सूर्य्य से प्रकाश को प्राप्त हुए इस संसार में अनेक प्रकार से संप्रयुक्त करने योग्य पदार्थों को मिलाने के योग्य पदार्थों से मेल कर के उक्त तीन प्रकार के यज्ञ का अनुष्ठान नित्य करना चाहिये। जैसे जल अपने रस से ओषधियों को बढ़ाता है और वे उत्तम रसयुक्त जल के संयोग से रोगनाश करने से सुखदायक होती हैं और जैसे ईश्वर कारण से कार्य्य को यथावत् रचता है तथा सूर्य्य सब जगत् को प्रकाशित करके और निरन्तर रस को भेदन करके पृथिवी आदि पदार्थों का आकर्षण करता है तथा वायु रस को धारण करके पृथिवी आदि पदार्थों को पुष्ट करता है, वैसे हम लोगों को भी

यथावत् संस्कारयुक्त संयुक्त किये हुए पदार्थों से विद्वानों का सङ्ग तथा विद्या की उन्नति से वा होम शिल्प कार्य्यरूपी यज्ञों से वायु और वर्षा जल की शुद्धि सदा करनी चाहिये॥ २१॥

जनयत्यै त्वेत्यस्यर्षिः पूर्वोक्तः। प्रथतामितिपर्य्यन्तस्य यज्ञो देवता। स्वराट्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। अन्त्यस्याग्निसवितारौ देवते। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

स यज्ञः कस्मै प्रयोजनाय संपादनीय इत्युपदिश्यते॥

उक्त यज्ञ किस प्रयोजन के लिये करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है॥

जनयत्यै त्वा संयौमीदमग्नेरिदमग्नीषोमयोरिषे त्वा घर्मोऽसि विश्वायुरुरुप्रथाऽउरु प्रथस्वोरु ते यज्ञपतिः प्रथतामग्निष्टे त्वचं मा हिꣳसीद् देवस्त्वा सविता श्रपयतु वर्षिष्ठेऽधि नाके॥ २२॥

जनयत्यै। त्वा। सम्। यौमि। इदम्। अग्नेः। इदम्। अग्नीषोमयोः। इषे। त्वा। घर्मः। असि। विश्वायुरिति विश्वऽआयुः। उरुप्रथा इत्युरुऽप्रथाः। उरु। प्रथस्व। उरु। ते। यज्ञपतिरिति यज्ञऽपतिः। प्रथताम्। अग्निः। ते। त्वचम्। मा। हिꣳसीत्। देवः। त्वा। सविता। श्रपयतु। वर्षिष्ठे। अधि। नाके॥ २२॥

पदार्थः-(जनयत्यै) सर्वसुखोत्पादिकायै राज्यलक्ष्म्यै **(त्वा)** तं त्रिविधं यज्ञम् **(सम्)** सम्यक् **(यौमि)** मिश्रयामि। अग्नौ प्रक्षिप्य वियोजयामि वा **(इदम्)** संस्कृतं हविः **(अग्नेः)** अग्नेर्मध्ये **(इदम्)** यद्धुतं तत् **(अग्नीषोमयोः)** अग्निश्च सोमश्च तयोर्मध्ये **(इषे)** अन्नाद्याय **(त्वा)** तं वृष्टिशुद्धिहेतुम् **(घर्मः)** यज्ञः। **घर्म इति यज्ञनामसु पठितम्।** (निघं०३।१७) **(असि)** भवति। अत्र व्यत्ययः **(विश्वायुः)** विश्वं पूर्णमायुर्यस्मात् सः **(उरुप्रथाः)** बहु प्रथः सुखस्य विस्तारो यस्मात् सः। **उर्विति बहुनामसु पठितम्।** (निघं०३।१) **(उरु प्रथस्व)** बहु विस्तारय **(उरु)** बहु **(ते)** तुभ्यम् **(यज्ञपतिः)** यज्ञस्य स्वामी पालकः **(प्रथताम्)** विस्तारयतु **(अग्निः)** भौतिको यज्ञसम्बन्धी शरीरस्थो वा **(ते)** तव तस्य वा। **युष्मत्ततक्षुष्वन्तः पादम्।** (अष्टा०८।३।१०३) अनेन मूर्द्धन्यादेशः **(त्वचम्)** कञ्चिदपि शरीरायवं सुखहेतुम् **(मा)** निषेधार्थे **(हिंसीत्)** हिनस्तु। अत्र लोडर्थे लुङ् **(देवः)** सर्वप्रकाशकः परमेश्वरः सूर्य्यलोको वा **(त्वा)** त्वां तं वा **(सविता)** अन्तःप्रेरको वृष्टिहेतुर्वा **(श्रपयतु)** श्रपयति पाचयति। अत्र लडर्थे लोट् **(वर्षिष्ठे)** अतिशयेन वृद्धो वर्षिष्ठस्तस्मिन् विशाले सुखस्वरूपे **(अधि) अधीत्युपरिभावमैश्वर्य्यं वा प्राह।** (निरु०१।३) **(नाके)** अकं दुःखं न विद्यते यस्मिन्नसौ नाकस्तस्मिन्॥ अयं मन्त्रः (शत०(१।१।२।३-१४) व्याख्यातः॥ २२॥

अन्वयः-हे मनुष्या! यथाऽहं जनयत्यै यं यज्ञं संयौमि तथैव स भवद्भिरपि संयूयताम्। अस्माभिर्यदिदं संस्कृतं हविरग्नेर्मध्ये प्रक्षिप्यते, तदिदं विस्तीर्णं भूत्वाऽग्नीषोमयोर्मध्ये स्थित्वेषे भवति। यो विश्वायुरुरुप्रथा घर्मो यज्ञोऽ**(स्य)** स्ति यथाऽयं मया उरु प्रथ्यते तथैव प्रतिजनं त्वं **[त्वा]** तमेतमुरु प्रथस्व। एवं कृतवते ते तुभ्यमयं यज्ञपतिरग्निः सविता देवो जगदीश्वरश्चोरु सुखं प्रथताम्। ते तव त्वचं मा हिंसीत् नैव हिनस्ति। स खलु त्वां वर्षिष्ठेऽधिनाके **[त्वां तं श्रपयतु]** सुखयुक्तं करोतु॥ इत्येकः॥

हे मनुष्य! यथाऽहं मनुष्यो यो विश्वायुरुरुप्रथा घर्मो यज्ञोस्यस्ति, त्वा तं जनयत्या इषे संयौमि तत्सिध्यर्थमिदमग्नेर्मध्ये इदमग्नीषोमयोर्मध्ये संस्कृतं हविः संवपामि प्रक्षिपामि तथा त्वमप्येतमुरुप्रथस्व बहु विस्तारय यतोऽयमग्निस्ते तव त्वचं मा हिंसीत् न हिंस्यात्। यथा च देवः सविता वर्षिष्ठेऽधिनाके यं यज्ञं श्रपयेत्।

तथा भवानपि त्वा तं संयौतु श्रपयतु। ते तव यज्ञपतिश्च तमुरु प्रथतामिति द्वितीयः॥२२॥

भावार्थः-अत्र लुप्तोपमालङ्कारो वेद्यः। मनुष्यैरेवंभूतो यज्ञः सदैव कार्य्यः, यः पूर्णां श्रियं सकलमायुरन्नादिपदार्थान् रोगनाशं सर्वाणि सुखानि च प्रथयति। स केनापि कदाचिन्नैव त्याज्यः। कुतः? नैवैतेन वायुवृष्टिजलौषधिशुद्धिकारकेण विना कस्यापि प्राणिनः सम्यक् सुखानि सिध्यन्तीत्यतः। एवं स जगदीश्वरः सर्वान् प्रत्याज्ञापयति॥२२॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे मैं **(जनयत्यै)** सर्व सुख उत्पन्न करने वाली राज्यलक्ष्मी के लिये **(त्वा)** उस यज्ञ को **(संयौमि)** अग्नि के बीच में पदार्थों को छोड़कर युक्त करता हूं, वैसे ही तुम लोगों को भी अग्नि के संयोग से सिद्ध करना चाहिये। जो हम लोगों का **(इदम्)** यह संस्कार किया हुआ हवि **(अग्नेः)** अग्नि के बीच में छोड़ा जाता है, **(इदम्)** वह विस्तार को प्राप्त होकर **(अग्नीषोमयोः)** अग्नि और सोम के बीच पहुंच कर **(इषे)** अन्न आदि पदार्थों के उत्पन्न करने के लिये होता है और जो **(विश्वायुः)** पूर्ण आयु और **(उरुप्रथाः)** बहुत सुख का देने वाला **(घर्मः)** यज्ञ **(असि)** है, उसका जैसे मैं अनेक प्रकार विस्तार करता हूं, वैसे **(त्वा)** उसको हे पुरुषो! तुम भी **(उरु प्रथस्व)** विस्तृत करो। इस प्रकार विस्तार करने वाले **(ते)** तुम्हारे लिये **(यज्ञपतिः)** यज्ञ का स्वामी **(अग्निः)** यज्ञ सम्बन्धी अग्नि **(सविता)** अन्तर्यामी **(देवः)** जगदीश्वर **(उरु प्रथताम्)** अनेक प्रकार सुख को बढ़ावे **[(ते त्वचं)** तुम्हारे शरीर को**]** **(मा हिंसीत्)** कभी नष्ट न करे तथा वह परमेश्वर **(वर्षिष्ठे)** अतिशय करके वृद्धि को प्राप्त हुआ **(अधिनाके)** जो अत्युत्तम सुख है, उसमें **(त्वा)** तुम को **(श्रपयतु)** सुख से युक्त करे॥ यह इस मन्त्र का प्रथम अर्थ हुआ॥

अब दूसरा कहते हैं॥ हे मनुष्यो! जैसे मैं जो **(विश्वायुः)** पूर्ण आयु तथा **(उरुप्रथाः)** बहुत सुख का देने वाला **(घर्मः)** यज्ञ **(असि)** है, **(त्वा)** उस यज्ञ को **(जनयत्यै)** राज्यलक्ष्मी तथा **(इषे)** अन्न आदि पदार्थों के उत्पन्न करने के लिये **(संयौमि)** संयुक्त करता हूं तथा उसकी सिद्धि के लिये **(इदम्)** यह **(अग्नेः)** अग्नि के बीच में और **(इदम्)** यह **(अग्नीषोमयोः)** अग्नि और सोम के बीच में संस्कार किया हुआ हवि **[संवपामि]** छोड़ता हूं, वैसे तुम भी उस यज्ञ को **(उरु प्रथस्व)** विस्तार को प्राप्त करो, जिस कारण यह **(अग्निः)** भौतिक अग्नि **(ते)** तुम्हारे **(त्वचम्)** शरीर को **(मा हिंसीत्)** रोगों से नष्ट न करे और जैसे **(देवः)** जगदीश्वर **(सविता)** अन्तर्यामी **(वर्षिष्ठे)** अतिशय करके वृद्धि को प्राप्त हुआ, जो **(अधिनाके)** अत्युत्तम सुख है, उस में **(त्वा)** उस यज्ञ को अग्नि के बीच में परिपक्व करता है, वैसे तुम भी उस यज्ञ को **(श्रपयतु)** परिपक्व करो और **(ते)** तुम्हारे **(यज्ञपतिः)** यज्ञ का स्वामी भी उस यज्ञ को **(उरु प्रथताम्)** विस्तारयुक्त करे॥ २२॥

भावार्थः-इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार जानना चाहिये। मनुष्यों को इस प्रकार का यज्ञ करना चाहिये कि जिससे पूर्ण लक्ष्मी, सकल आयु, अन्न आदि पदार्थ, रोगनाश और सब सुखों का विस्तार हो, उसको कभी नहीं छोड़ना चाहिए, क्योंकि उसके बिना वायु और वृष्टि जल तथा ओषधियों की शुद्धि नहीं हो सकती और शुद्धि के बिना किसी प्राणी को अच्छी प्रकार सुख नहीं हो सकता, इसलिए ईश्वर ने उक्त यज्ञ करने की आज्ञा सब मनुष्यों को दी है॥२२॥

मा भेर्मेत्यस्यर्षिः स एव। अग्निर्देवता। बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

निःशङ्कतया सर्वैः स यज्ञोऽनुष्ठातव्य इत्युपदिश्यते॥

निःशंक होकर उक्त यज्ञ सब को करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

मा भेर्मा संविक्थाऽअतमेरुर्यज्ञोऽतमेरुर्यजमानस्य प्रजा भूयात् त्रिताय त्वा द्विताय त्वैकताय त्वा॥२३॥

मा। भेः। मा। सम्। विक्थाः। अतमेरुः। यज्ञः। अतमेरुः। यजमानस्य। प्रजेति प्रऽजा। भूयात्। त्रिताय। त्वा। द्विताय। त्वा। एकताय। त्वा॥२३॥

पदार्थः-(**मा**) निषेधार्थे (**भेः**) बिभीहि। अत्र लोडर्थे लङ्। **बहुलं छन्दसि** [अष्टा०२.४.७३] इति शपो लुक् (**मा**) निषेधार्थे (**सम्**) एकीभावे (**विक्थाः**) चल। ओविजी भयचलनयोरित्यस्माल्लोडर्थे लङ्। लङि मध्यमैकवचने **बहुलं छन्दसि** [अष्टा०२.४.७३] इति विकरणाभावश्च (**अतमेरुः**) न ताम्यति येन यज्ञेन सः। तमुधातोर्बाहुलकादेरुः प्रत्ययः (**यज्ञः**) इज्यते यस्मिन् सः (**अतमेरुः**) न ताम्यति यः स यज्ञकर्त्ता मनुष्यः (**यजमानस्य**) यज्ञस्यानुष्ठातुः (**प्रजा**) सुसंताना यज्ञसंपादिका (**भूयात्**) भवेत् (**त्रिताय**) त्रयाणामग्निकर्महविषां भावाय (**त्वा**) तम् (**द्विताय**) द्वयोर्वायुवृष्टिजलशुद्धयोर्भावाय (**त्वा**) तम् (**एकताय**) एकस्य सुखस्य भावाय (**त्वा**) त्वाम्॥ अयं मन्त्रः (शत०(१।१।२।१५-१८) तथा (१।२।३।१-९) व्याख्यातः॥२३॥

अन्वयः-हे विद्वन्! त्वमतमेरुः सन् यजमानस्य यज्ञस्यानुष्ठानान्मा भेर्भयं मा कुरु। एतस्मान्मा संविक्था मा विचल। एवं यज्ञं कृतवतस्तेऽतमेरुः प्रजा भूयात्। अहं त्वा तमग्निं यज्ञाय त्रिताय **[त्वा]** द्विताय **[त्वा]** एकताय च सुखाय संयौमि॥२३॥

भावार्थः-ईश्वरः प्रतिमनुष्यमाज्ञापयत्याशीश्च ददाति, नैव केनापि मनुष्येण यज्ञसत्याचारविद्याग्रहणस्य सकाशाद् भेतव्यम्, विचलितव्यं वा। कस्माद् युष्माभिरेतैरेव सुप्रजाः शारीरिकवाचिकमानसानि निश्चलानि (**च**) सुखानि प्राप्तुं शक्यानि भवन्त्यस्मादिति॥२३॥

पदार्थः-हे विद्वान् पुरुषो! तुम (**अतमेरुः**) श्रद्धालु होकर (**यजमानस्य**) यजमान के यज्ञ के अनुष्ठान से (**मा भेः**) भय मत करो और उससे (**मा संविक्थाः**) मत चलायमान हो। इस प्रकार (**यज्ञः**) यज्ञ करते हुए तुम को उत्तम से उत्तम (**अतमेरुः**) ग्लानिरहित श्रद्धावान् (**प्रजा**) सन्तान (**भूयात्**) प्राप्त हो और मैं (**त्वा**) भौतिक अग्नि को उक्त गुणयुक्त तथा (**एकताय**) सत्य सुख के लिये (**द्विताय**) वायु तथा वृष्टि जल की शुद्धि तथा (**त्रिताय**) अग्नि, कर्म और हवि के होने के लिये (**संयौमि**) निश्चल करता हूं॥२३॥

भावार्थः-ईश्वर सब मनुष्यों को आज्ञा और आशीर्वाद देता है कि किसी मनुष्य को यज्ञ, सत्याचार और विद्या के ग्रहण से डरना वा चलायमान कभी न होना चाहिये, क्योंकि मनुष्यों को उक्त यज्ञ आदि अच्छे-अच्छे कार्यों से ही उत्तम-उत्तम सन्तान शारीरिक, वाचिक और मानस विविध प्रकार के निश्चल सुख प्राप्त हो सकते हैं॥२३॥

देवस्य त्वेत्यस्यर्षिः स एव। द्योविद्युतौ देवते। स्वराड्ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनः स यज्ञः कीदृशोऽस्ति किमर्थश्चानुष्ठेय इत्युपदिश्यते॥

फिर भी उक्त यज्ञ कैसा और क्यों उसका अनुष्ठान करना चाहिये, सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है॥

दे॒वस्य॑ त्वा सवि॒तुः प्र॑स॒वे᳕ऽश्विनो॑र्बा॒हुभ्यां॑ पू॒ष्णो हस्ता॑भ्याम्। आद॑देऽध्वर॒कृतं॑ दे॒वेभ्य॒ऽइन्द्र॑स्य बा॒हुर॑सि॒ दक्षि॑णः स॒हस्र॑भृष्टिः श॒तते॑जा वा॒युर॑सि ति॒ग्मते॑जा द्वि॒ष॒तो व॒धः॥२४॥

दे॒वस्य॑। त्वा॒। स॒वि॒तुः। प्र॒स॒व इति॑ प्रऽस॒वे। अ॒श्विनोः॑। बा॒हुभ्या॒मिति॑ बा॒हुऽभ्या॑म्। पू॒ष्णः। हस्ता॑भ्याम्। आ। द॒दे। अ॒ध्व॒र॒कृ॒तमित्य॑ध्वर॒ऽकृत॑म्। दे॒वेभ्यः॑। इन्द्र॑स्य। बा॒हुः। अ॒सि॒। दक्षि॑णः। स॒हस्र॑भृष्टि॒रिति॑ स॒हस्र॑ऽभृष्टिः। श॒तते॑जा॒ इति॑ श॒तऽते॑जाः। वा॒युः। अ॒सि॒। ति॒ग्मते॑जा॒ इति॑ ति॒ग्मऽते॑जाः। द्वि॒ष॒तः। व॒धः॥२४॥

पदार्थः-(देवस्य) सर्वानन्दप्रदस्य **(त्वा)** तम् **(सवितुः)** प्रेरकस्येश्वरस्य सूर्य्यस्य वा **(प्रसवे)** प्रेरणे ऐश्वर्य्यहेतौ वा **(अश्विनोः)** सूर्य्याचन्द्रमसोरध्वर्य्वोर्वा। **अश्विनावध्वर्य्यू।** (शत०१।२।४।४) **(बाहुभ्याम्)** बलवीर्य्याभ्याम् **(पूष्णः)** पुष्टिहेतोर्वायोः। **वृषा पूषा।** (शत०२।५।१।११) **(हस्ताभ्याम्)** ग्रहणत्यागहेतुभ्यामुदाना-पानाभ्याम् **(आददे)** आसमन्तात् स्वीकरोमि **(अध्वरकृतम्)** अध्वरं करोति येन सामग्रीसमूहेन तम्। अत्र **कृतो बहुलम्** [अष्टा०भा०वा०३.३.११३] इति वार्त्तिकेन करणे क्विप्। **अध्वरो वै यज्ञो यज्ञकृतम्।** (शत०१।२।४।५) **(देवेभ्यः)** विद्वद्भ्यो दिव्यसुखेभ्यो वा **(इन्द्रस्य)** सूर्य्यस्य **(बाहुः)** वीर्य्यवत्तमकिरणसमूहस्थो यज्ञः **(असि)** भवति **(दक्षिणः)** प्राप्तः। दक्ष गतिहिंसनयोरित्यस्मात्। **द्रुदक्षिभ्यामिनन्।** (उणा०२।५०) इतीनन् प्रत्ययः। अनेन गतेरन्तर्गतः प्राप्त्यर्थो गृह्यते **(सहस्रभृष्टिः)** सहस्राणि बहूनि भृष्टयः पाका यस्मात् सः सूर्य्यस्य प्रकाशः। **सहस्रमिति बहुनामसु पठितम्।** (निघं०३।१) **(शततेजाः)** शतानि बहूनि तेजांसि यस्मिन् स सूर्य्यः। **शतमिति बहुनामसु पठितम्।** (निघं०३।१) **(वायुः)** गमनागमनशीलः पवनः **(असि)** अस्ति। तत्र सर्वत्र व्यत्ययः **(तिग्मतेजाः)** तिग्मानि तीक्ष्णानि तेजांसि भवन्ति यस्मात् सः। **युजिरुचितिजां कुश्च।** (उणा०१।१४६) अनेन **तिज निशाने** इत्यस्मान्मक् प्रत्ययः कुत्वादेशश्च। तथैव **सर्वधातुभ्योऽसुन्।** (उणा०४।१८९) अनेन **तिज** इत्यस्मादसुन् प्रत्ययः **(द्विषतः)** शत्रोः **(वधः)** नाशः॥ अयं मन्त्रः (शत०(१।२।४।३-७) व्याख्यातः॥२४॥

अन्वयः-अहं सवितुर्देवस्य प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां देवेभ्योऽध्वरकृतं **[त्वा त]** माददे यो मयाऽनुष्ठितो यज्ञ इन्द्रस्य सहस्रभृष्टिः शततेजा दक्षिणो बाहुरसि भवति। यस्येन्द्रस्य सूर्य्यलोकस्य मेघस्य वा तिग्मतेजा वायुर्हेतुरस्ति तेन सुखानि द्विषतो वधश्च कार्य्यः॥२४॥

भावार्थः-ईश्वर आज्ञापयति मनुष्यैः सम्यक् संपादितोऽयं यज्ञोऽग्निनोर्ध्वं प्रक्षिप्तद्रव्यः सूर्य्यकिरणस्थो वायुना धृतः सर्वोपकारी भूत्वा सहस्राणि सुखानि प्रापयित्वा दुःखानां नाशकारी भवतीति॥२४॥

पदार्थः-मैं **(सवितुः)** अन्तर्यामी प्रेरणा करने **(देवस्य)** सब आनन्द के देने वाले परमेश्वर की **(प्रसवे)** प्रेरणा में **(अश्विनोः)** सूर्य्य, चन्द्र और अध्वर्य्युओं के **[बाहुभ्याम्]** बल और वीर्य्य से तथा **(पूष्णः)** पुष्टिकारक वायु के **(हस्ताभ्याम्)** जो कि ग्रहण और त्याग के हेतु उदान और अपान हैं, उन से **(देवेभ्यः)** विद्वान् वा दिव्य सुखों की प्राप्ति के लिये **(अध्वरकृतम्)** यज्ञ से सुखकारक [**(त्वा)** उस] कर्म को **(आददे)** अच्छे प्रकार ग्रहण करता हूं और मेरा किया हुआ जो यज्ञ है सो **(इन्द्रस्य)** सूर्य्य का **(सहस्रभृष्टिः)** जिसमें अनेक प्रकार के पदार्थों के पचाने का सामर्थ्य वा **(शततेजाः)** अनेक प्रकार का तेज तथा **(दक्षिणः)** प्राप्त करने वाला **(बाहुः)** किरणसमूह **(असि)** है और जिस **(इन्द्रस्य)** सूर्य्य वा मेघमण्डल का **(तिग्मतेजाः)** तीक्ष्ण तेज वाला **(वायुः)** वायु हेतु **(असि)** है, उस से हम को अनेक प्रकार के सुख तथा **(द्विषतः)** शत्रुओं का **(वधः)** नाश करना चाहिये॥२४॥

भावार्थः-ईश्वर आज्ञा करता है कि मनुष्यों को अच्छी प्रकार सिद्ध किया हुआ यज्ञ जिस में भौतिक अग्नि के संयोग से ऊपर को अच्छे-अच्छे पदार्थ छोड़े जाते हैं, वह सूर्य्य की किरणों में स्थिर होता है तथा पवन उस को धारण करता है और वह सब के उपकार के लिये हजारों सुखों को प्राप्त कराके दुःखों का विनाश करने वाला होता है॥२४॥

पृथिवीत्यस्य ऋषिः स एव। सविता देवता। विराड्ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनः स यज्ञः क्व गत्वा किंकारी भवतीत्युपदिश्यते॥

फिर उक्त यज्ञ कहाँ जाके क्या करने वाला होता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

पृथिवि देवयजन्योषध्यास्ते मूलं मा हिꣳसिषं व्रजं गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्याꣳ शतेन पाशैर्योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक्॥२५॥

पृथिवि। देवयजनीति देवऽयजनि। ओषध्याः। ते। मूलम्। मा। हिꣳसिषम्। व्रजम्। गच्छ। गोष्ठानम्। गोस्थानमिति गोऽस्थानम्। वर्षतु। ते। द्यौः। बधान। देव। सवितरिति सवितः। परम्। अस्याम्। पृथिव्याम्। शतेन। पाशैः। यः। अस्मान्। द्वेष्टि। यम्। च। वयम्। द्विष्मः। तम्। अतः। मा। मौक्॥२५॥

पदार्थः-(**पृथिवि**) विस्तृताया भूमेः (**देवयजनि**) देवा यजन्ति यस्यां तस्याः (**ओषध्याः**) यवादेः (**ते**) अस्याः। अत्र सर्वत्र विभक्तेर्विपरिणामः क्रियते (**मूलम्**) वृद्धिहेतुकम् (**मा**) निषेधार्थे (**हिंसिषम्**) उच्छिंद्याम्। अत्र लिडर्थे लुङ् (**व्रजं**) व्रजन्ति गच्छन्ति प्राप्नुवन्त्यापो यस्मात् यस्मिन् वा तं व्रजं मेघम्। **व्रज इति मेघनामसु पठितम्।** (निघं०१।१०) (**गच्छ**) गच्छतु। अत्र व्यत्ययः (**गोष्ठानम्**) गवां सूर्य्यरश्मीनां पशूनां वा स्थानम्। **गाव इति रश्मिनामसु पठितम्।** (निघं०१।५) (**वर्षतु**) स्पष्टार्थः (**ते**) तस्य। अत्र संबन्धार्थे षष्ठी। (**द्यौः**) सूर्य्यप्रकाशः (**बधान**) बन्धय (**देव**) सूर्य्यादिप्रकाशकेश्वर (**सवितः**) राज्यैश्वर्य्यप्रद (**परम्**) शत्रुम् (**अस्याम्**) प्रत्यक्षायाम् (**पृथिव्याम्**) बहुसुखप्रदायाम् (**शतेन**) बहुभिः (**पाशैः**) बन्धनसाधनैः। **पश बन्धन** इत्यस्य रूपम् (**यः**) अधर्मात्मा दस्युः शत्रुश्च (**अस्मान्**) सर्वोपकारकान् धार्मिकान् (**द्वेष्टि**) विरुध्यति (**यम्**) दुष्टं शत्रुम् (**च**) समुच्चये (**वयम्**) धार्मिकाः शूराः (**द्विष्मः**) विरुध्यामः (**तम्**) पूर्वोक्तम् (**अतः**) बन्धात् कदाचित् (**मा**) निषेधार्थे (**मौक्**) मोचय। **मुच्लृ मोक्षणे** इत्यस्माल्लोडर्थे लुङ्यडभावे **च्लेः सिच्** [अष्टा०३.१.४४] सिजादेशे, **बहुलं छन्दसि** [अष्टा०७.३.९७] इतीडभावः। **वदव्रज०** [अष्टा०७.२.३] इति वृद्धिः। **संयोगान्तस्य लोपः** [अष्टा०८.२.२३] इति सिज्लुक्॥ अयं मन्त्रः (शत०(१।२।४।१६) व्याख्यातः॥२५॥

अन्वयः-हे देव सवितः परमात्मन्! ते तव कृपयाऽहं देवयजानि देवयज्ञाधिकरणायास्तेऽस्याः पृथिवि भूमेर्मूलं वृद्धिहेतुं मा हिंसिषं मया पृथिव्यां योऽयं यज्ञोऽनुष्ठीयते स व्रजं मेघं गच्छ गच्छतु गत्वा गोष्ठानं वर्षतु द्यौर्वर्षतु। हे वीर! त्वमस्यां योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तं परं शत्रुं शतेन पाशैर्बधान बन्धय। तमसो बन्धनात् कदाचिन्मा मौक् मा मोचय॥२५॥

भावार्थः-ईश्वर आज्ञापयति विद्वद्भिर्मनुष्यैः पृथिव्यां राज्यस्य त्रिविधस्य यज्ञस्यौषधीनां च हिंसनं कदाचिन्नैव कार्य्यम्। योऽग्नौ हुतद्रव्यस्य सुगन्ध्यादिगुणविशिष्टो धूमो मेघमण्डलं गत्वा सूर्य्यवायुभ्यां छिन्नस्याकर्षितस्य

धारितस्य जलसमूहस्य शुद्धिकरो भूत्वाऽस्यां पृथिव्यां वायुजलौषधिशुद्धिद्वारा महत्सुखं संपादयति। तस्मात् स यज्ञः केनापि कदाचिन्नैव त्याज्यः। ये दुष्टा मनुष्यास्तानस्यां पृथिव्यामनेकैः पाशैर्बध्वा दुष्टकर्मभ्यो निवर्त्य कदाचित्ते न मोचनीयाः। अन्यच्च परस्परं द्वेषं विहायान्योऽन्यस्य सुखोन्नतये सदैव प्रयतितव्यमिति॥२५॥

पदार्थः-हे (**देव**) सूर्य्यादि जगत् के प्रकाश करने तथा (**सवितः**) राज्य और ऐश्वर्य्य के देने वाले परमेश्वर! (**ते**) आपकी कृपा से मैं (**देवयजनि**) विद्वानों के यज्ञ करने की जगह (**ते**) यह जो (**पृथिवि**) भूमि है, उसके [और (**ओषध्याः**) जो यवादि ओषधि हैं] उनके (**मूलम्**) वृद्धि करने वाले मूल को (**मा हिꣳसिषम्**) नाश न करूँ और मैं (**पृथिव्याम्**) अनेक प्रकार सुखदायक भूमि में (**यः**) जिस यज्ञ का अनुष्ठान करता हूं, वह (**व्रजम्**) जलवृष्टिकारक मेघ को (**गच्छ**) प्राप्त हो, वहां जाकर (**गोष्ठानम्**) सूर्य्य की किरणों के गुणों से (**वर्षतु**) वर्षाता है और (**द्यौः**) सूर्य्य के प्रकाश को (**वर्षतु**) वर्षाता है। हे वीर पुरुषो! आप (**अस्याम्**) इस उत्कृष्ट पृथिवी में (**यः**) जो कोई अधर्मात्मा डाकू (**अस्मान्**) सब के उपकार करने वाले धर्मात्मा सज्जन हम लोगों से (**द्वेष्टि**) विरोध करता है (**च**) और (**यम्**) जिस दुष्ट शत्रु से (**वयम्**) धार्मिक शूर हम लोग (**द्विष्मः**) विरोध करें, (**तम्**) उस दुष्ट (**परम्**) शत्रु को (**शतेन**) अनेक (**पाशैः**) बन्धनों से (**बधान**) बाँधो और उसको (**अतः**) इस बन्धन से कभी (**मा मौक्**) मत छोड़ो॥२५॥

भावार्थः-ईश्वर आज्ञा देता है कि विद्वान् मनुष्यों को पृथिवी का राज्य तथा उसी पृथिवी में तीन प्रकार के यज्ञ और ओषधियाँ इनका नाश कभी न करना चाहिये। जो यज्ञ अग्नि में हवन किये हुए पदार्थों का धूम मेघमण्डल को जाकर शुद्धि के द्वारा अत्यन्त सुख उत्पन्न करने वाला होता है, इससे यह यज्ञ किसी पुरुष को कभी छोड़ने योग्य नहीं है तथा जो दुष्ट मनुष्य हैं, उनको इस पृथिवी पर अनेक बन्धनों से बांधे और उनको कभी न छोड़ें, जिससे कि वे दुष्ट कर्मों से निवृत्त हों और सब मनुष्यों को चाहिये कि परस्पर ईर्ष्या-द्वेष से अलग होकर एक-दूसरे की सब प्रकार सुख की उन्नति के लिये सदा यत्न करें॥२५॥

अपाररुमित्यस्य सर्वस्य ऋषिः स एव। सविता देवता। पूर्वार्द्धे स्वराड्ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः। उत्तरार्धे भुरिग्ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनरेतेन यज्ञेन किं किं सिध्यतीत्युपदिश्यते॥

फिर इस यज्ञ से क्या क्या कार्य सिद्ध होता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अपाररुं पृथिव्यै देवयजनाद्वध्यासं व्रजं गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्याꣳ शतेन पाशैर्योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक्। अररो दिवं मा पप्तो द्रप्सस्ते द्यां मा स्कन् व्रजं गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्याꣳ शतेन पाशैर्योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक्॥२६॥

अप। अररुम्। पृथिव्यै। देवयजनादिति देवऽयजनात्। वध्यासम्। व्रजम्। गच्छ। गोष्ठानम्। गोस्थानमिति गोऽस्थानम्। वर्षतु। ते। द्यौः। बधान। देव। सवितरिति सवितः। परम्। अस्याम्। पृथिव्याम्। शतेन। पाशैः। यः। अस्मान्। द्वेष्टि। यम्। च। वयम्। द्विष्मः। तम्। अतः। मा। मौक्। अररोऽइत्यररो। दिवम्। मा। पप्तः। द्रप्सः। ते। द्याम्।

मा। स्कन्। व्रजम्। गच्छ। गोष्ठानम्। गोस्थानमिति गोऽस्थानम्। वर्षतु। ते। द्यौः। बधान। देव। सवितरिति सवितः। परमस्याम्। पृथिव्याम्। शतेन। पाशैः। यः। अस्मान्। द्वेष्टि। यम्। च। वयम्। द्विष्मः। तम्। अतः। मा। मौक्॥ २६॥

पदार्थः-(अप) धात्वर्थे **(अररुम्)** असुरराक्षसस्वभावशत्रुम्। **अर्त्तेररुः।** (उणा०४।७९) अनेन ऋधातोररुः प्रत्ययः **(पृथिव्यै)** पृथिव्याम्। अत्र **सुपां सुलुग्** [अष्टा०७.१.३९] इति सप्तमीस्थाने चतुर्थी **(देवयजनात्)** देवा यजन्ति यस्मिन् तस्मात् **(वध्यासम्)** हन्याम् **(व्रजम्)** व्रजन्ति जानन्ति जना येन तं सत्सङ्गम् **(गच्छ)** प्राप्नुहि गच्छतु वा **(गोष्ठानम्)** गौर्वाणी तिष्ठति यस्मिन्नध्ययनाध्यापने तं व्यवहारम्। **गौरिति वाङ्नामसु पठितम्।** (निघं०१।११) **(वर्षतु)** शब्दविद्याया वृष्टिं करोतु **(ते)** तव **(द्यौः)** विद्याप्रकाशः। **दिवो द्योतनकर्मणामादित्यरश्मीनाम्।** (निरु०१३।२५) **(बधान)** बन्धय **(देव)** सर्वानन्दप्रदेश्वरव्यवहारहेतुर्वा **(सवितः)** सर्वेषु जीवेष्वन्तर्यामितया सत्यप्रेरकव्यवहारप्रेरणाहेतुर्वा **(परम्)** शत्रुभूतम् **(अस्याम्)** आधारभूतायाम् **(पृथिव्याम्)** बहुपदार्थप्रदायाम् **(शतेन)** बहुभिः **(पाशैः)** बन्धनैः **(यः)** मूर्खः **(अस्मान्)** विद्यारतप्रचारकान् **(द्वेष्टि)** अपप्रीणाति **(यम्)** विद्याविरोधिनम् **(च)** पुनरर्थे **(वयम्)** विद्वांसः **(द्विष्मः)** अपप्रीणीमः **(तम्)** पूर्वोक्तं विद्याशत्रुम् **(अतः)** अस्माद् बन्धनादुपदेशाद्वा **(मा)** निषेधार्थे **(मौक्)** त्यज **(अररो)** दुष्टमनुष्य **(दिवम्)** प्रकाशम् **(मा)** निषेधार्थे **(पप्तः)** पततु। अत्र लोडर्थे लुङ् **(द्रप्सः)** हर्षकारी रसः। **'दृप हर्षणमोहनयोः'** इत्यस्मादौणादिकः **'सः'** प्रत्ययः। **अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्याम्।** (अष्टा०६।१।५९) अनेनामागमः **(ते)** तव तस्याः पृथिव्या वा **(द्याम्)** आनन्दम्। **दिवु** धातोर्बाहुलकाड्डोप्रत्ययष्टिलोपे प्राप्ते वकारलोपश्च **(मा)** निषेधार्थे **(स्कन्)** निस्सारयतु। अत्र लोडर्थे लङ्। **बहुलं छन्दसि** [अष्टा०२.४.७३] इति शपो लुक् **(व्रजम्)** व्रजन्ति विद्वांसो यस्मिन् सन्मार्गे तम् **(गच्छ)** गच्छतु गमय वा **(गोष्ठानम्)** गौः पृथिवी तिष्ठति यस्मिन् तदन्तरिक्षम् **(वर्षतु)** सिञ्चतु **(ते)** तव **(द्यौः)** कान्तिः। **द्यौर्वै सर्वेषां देवानामायतनम्।** (शत०१४।३।२।८) **(बधान)** बध्नाति वा पक्षे व्यत्ययः **(देव)** विजयप्रदविजयहेतुर्वा **(सवितः)** सर्वोत्पादकव्यवहारोत्पत्तिहेतुर्वा **(परम्)** शत्रुम् **(अस्याम्)** सर्वबीजारोपणार्थायाम् **(पृथिव्याम्)** बहुप्रजायुक्तायाम् **(शतेन)** बहुभिः **(पाशैः)** सामदामदण्डभेदादिकर्मभिः **(यः)** न्यायविरोधी **(अस्मान्)** न्यायाधीशान् **(द्वेष्टि)** कोपयति **(यम्)** अन्यायकारिणम् **(च)** पुनरर्थे **(वयम्)** सर्वहितसंपादिनः **(द्विष्मः)** कोपयामः **(तम्)** अधर्मप्रियम् **(अतः)** शिक्षणात् **(मा)** निषेधे **(मौक्)** त्यजतु॥ अयं मन्त्रः (शत०(१।२।४।१७-२१) व्याख्यातः॥२६॥

अन्वयः-हे देव सवितर्भवत्कृपया वयं परस्परं विद्यामेवेपदिशाम। यथायं सविता देवः सूर्य्यलोकोऽस्यां पृथिव्यां शतेन पाशैर्बन्धनहेतुभिः किरणैराकर्षणेन पृथिव्यादीन् सर्वान् पदार्थान् बध्नाति। तथैव त्वमपि दुष्टान् बद्ध्वा शुभगुणान् प्रकाशय। हे विद्वांसो यथाहं **[पृथिव्यै]** पृथिव्यां देवयजनादररुमपवध्यासं तथैव तं यूयमप्यपाघ्नत। यथाऽहं व्रजं गच्छामि तथैव त्वमप्येतं गच्छ। यथाहं गोष्ठानं वर्षामि तथैव भवानपि वर्षतु। यथा मम द्यौर्विद्याप्रकाशः सर्वान् प्राप्नोति तथैव ते तवापि प्राप्नोतु। यथाऽहं योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तं परमस्यां पृथिव्यां शतेन पाशैर्नित्यं बध्नामि कदाचित्तं न त्यजामि तथैव हे वीर! तं त्वमिमं बधान तं चातः कदाचिन्मा मौक्। योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो बंधनात् कोऽपि मा मुञ्चतु॥ एवं च तं प्रति सर्व उपदिशन्तु। हे अररो! त्वं दिवं मा पप्तस्तथा ते तव द्रप्सो द्यां माऽस्कन्। हे सन्मार्गजिज्ञासो! यथाऽहं व्रजं सन्मार्गं गच्छामि तथैव त्वमप्येतं गच्छ। यथेयं द्यौर्गोष्ठानं वर्षति तथैवेश्वरो विद्वान् वा ते तव कामान् वर्षतु। यथायं सविता देवः सूर्य्यलोकोऽस्यां पृथिव्यां शतेन पाशैर्बन्धनहेतुभिः किरणैराकर्षणेन पृथिव्यादीन् सर्वान् पदार्थान् बध्नाति तथैव त्वमपि च

पुनर्योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तं परं शत्रुमस्यां पृथिव्यां शतेन पाशैर्बधान। यथाऽहं तं द्वेष्टारं शत्रुं शतेन पाशैर्बद्ध्वा न कदाचिन्मुञ्चामि तथैव त्वमप्येनं सदा बधान कदाचिन्मा मौक्॥२६॥

भावार्थः-अत्र लुप्तोपमालङ्कारः। ईश्वर आज्ञापयति हे मनुष्या! युष्माभिर्विद्वत्कार्य्यानुष्ठाने विघ्नकारिणो दुष्टाः प्राणिनः सदाऽपहन्तव्याः। सत्समागमेन विद्यावृद्धिर्नित्यं कार्य्या। यथाऽनेकोपायैः श्रेष्ठानां हानिर्दुष्टानां च वृद्धिर्न स्यात् तथैवानुष्ठेयम्। सदा श्रेष्ठाः सत्कार्य्या दुष्टास्ताडनीया बन्धनीयाश्च। परस्परं प्रीत्या विद्याशरीरबलं संपाद्य क्रियया कलायन्त्रैरनेकानि यानानि रचयित्वा सर्वेभ्यः सुखं देयं निरन्तरमीश्वरस्याज्ञापालनं (कर्तव्यम्) स एवोपासनीयश्चेति॥२६॥

पदार्थः-हे **(देव)** सर्वानन्द के देने वाले जगदीश्वर! **(सवितः)** सब प्राणियों में अन्तर्यामी, सत्य प्रकाश करनेहारे आप की कृपा से हम लोग परस्पर उपदेश करें कि जैसे यह सब का प्रकाश करने वाला सूर्य्यलोक इस पृथिवी में अनेक बन्धन के हेतु किरणों से खींचकर पृथिवी आदि सब पदार्थों को बांधता है, वैसे तुम भी दुष्टों को बांधकर अच्छे-अच्छे गुणों का प्रकाश करो और जैसे मैं **(पृथिव्यै)** पृथिवी में **(देवयजनात्)** विद्वान् लोग जिस संग्राम से अच्छे-अच्छे पदार्थ वा उत्तम-उत्तम विद्वानों की सङ्गति को प्राप्त होते हैं, उस से **(अररुम्)** दुष्ट स्वभाव वाले शत्रुजन को **(अपवध्यासम्)** मारता हूं, वैसे ही तुम लोग भी उसको मारो तथा जैसे मैं **(व्रजम्)** उत्तम-उत्तम गुण जताने वाले सज्जनों के संग को प्राप्त होता हूं, वैसे तुम भी उसको **(गच्छ)** प्राप्त हो। जैसे मैं **(गोष्ठानम्)** पठन-पाठन व्यवहार को बताने वाली मेघ की गर्जना के समतुल्य वेदवाणी को अच्छे-अच्छे शब्दरूपी बूंदों से हर्षाता हूं, वैसे तुम भी **(वर्षतु)** वर्षाओ। जैसे मेरी विद्या की **(द्यौः)** शोभा सब को दृष्टिगोचर है, वैसे **(ते)** तुम्हारी भी विद्या सुशोभित हो। जैसे मैं **(यः)** जो मूर्ख **(अस्मान्)** विद्या का प्रचार करने वाले हम लोगों से **(द्वेष्टि)** विरोध करता है **(च)** और **(यम्)** जिस विद्याविरोधीजन को **(वयम्)** हम विद्वान् लोग **(द्विष्मः)** दुष्ट समझते हैं, **(तम्)** उस **(परम्)** विद्या के शत्रु को **(अस्याम्)** इस सब पदार्थों की धारण करने और विविध सुख देने वाली **(पृथिव्याम्)** पृथिवी में **(शतेन)** बहुत से **(पाशैः)** बन्धनों से नित्य बांधता हूं, कभी उससे उसको नहीं त्यागता, वैसे हे वीर लोगो! तुम भी उसको **(बधान)** बांधो, कभी उसको **(अतः)** उस बन्धन से **(मा मौक्)** मत छोड़ो और जो दुष्ट जन हम लोगों से विरोध करें तथा जिस दुष्ट से हम लोग विरोध करें, उसको उस बन्धन से कोई मनुष्य न छोड़े। इस प्रकार सब लोग उसको उपदेश करते रहें कि हे **(अररो)** दुष्टपुरुष! तू **(दिवम्)** प्रकाश उन्नति को **(मा पप्तः)** मत प्राप्त हो तथा **(ते)** तेरा **(द्रप्सः)** आनन्द देने वाला विद्यारूपी रस **(द्याम्)** आनन्द को **(मा स्कन्)** मत प्राप्त करे। हे श्रेष्ठों के मार्ग चाहने वाले मनुष्यो! जैसे मैं **(व्रजम्)** विद्वानों के प्राप्त होने योग्य श्रेष्ठ मार्ग को प्राप्त होता हूं, वैसे तुम भी **(गच्छ)** उसको प्राप्त हो। जैसे यह **(द्यौः)** सूर्य का प्रकाश **(गोष्ठानम्)** पृथिवी का स्थान अन्तरिक्ष को सींचता है, वैसे ही ईश्वर वा विद्वान् पुरुष **(ते)** तुम्हारी कामनाओं को **(वर्षतु)** वर्षावें अर्थात् क्रम से पूरी करें। जैसे यह **(देव)** व्यवहार का हेतु **(सवितः)** सूर्य्यलोक **(अस्याम्)** इस बीज बोने योग्य **(पृथिव्याम्)** बहुत प्रजायुक्त पृथिवी में **(शतेन)** अनेक **(पाशैः)** बन्धन के हेतु किरणों से आकर्षण के साथ पृथिवी आदि सब पदार्थों को बांधता है, वैसे तुम भी दुष्टों को बाँधो और **(यः)** जो न्यायविरोधी **(अस्मान्)** न्यायाधीश हम लोगों से **(द्वेष्टि)** कोप करता है **(च)** और **(यम्)** अन्यायकारी जन पर **(वयम्)** सम्पूर्ण हितसम्पादन करने वाले हम लोग **(द्विष्मः)** कोप करते हैं, **(तम्)** उस **(परम्)** शत्रु को **(अस्याम्)** इस **(पृथिव्याम्)** उक्त गुण वाली पृथिवी में **(शतेन)** अनेक

(पाशै:) साम, दाम, दण्ड और भेद आदि उद्योगों से बाँधता हूं और जैसे मैं उसको उस दण्ड से बाँधकर कभी नहीं छोड़ता, वैसे ही तुम भी **(बधान)** बाँधो अर्थात् बन्धनरूप दण्ड सदा दो। **(अत:)** उसको कभी **(मा मौक्)** मत छोड़ो॥ २६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। ईश्वर आज्ञा देता है कि हे मनुष्यो! तुम लोगों को विद्या के सिद्ध करने वाले कार्य्यों के नियमों में विघ्नकारी दुष्ट जीवों को सदा मारना चाहिये और सज्जनों के समागम से विद्या की वृद्धि नित्य करनी चाहिये। जिस प्रकार अनेक उद्योगों से श्रेष्ठों की हानि दुष्टों की वृद्धि न हो सो नियम करना चाहिये और सदा श्रेष्ठ सज्जनों का सत्कार तथा दुष्टों को दण्ड देने के लिये उनका बन्धन करना चाहिये। परस्पर प्रीति के साथ विद्या और शरीर का बल सम्पादन करके क्रिया तथा कलायन्त्रों से अनेक यान बनाकर सब को सुख देना ईश्वर की आज्ञा का पालन तथा ईश्वर की उपासना करनी चाहिये॥ २६॥

गायत्रेणेत्यस्य ऋषि: स एव। यज्ञो देवता। ब्राह्मीत्रिष्टुप् छन्द:। धैवत: स्वर:॥

केन स यज्ञो ग्राह्योऽनुष्ठातव्यश्चेत्युपदिश्यते॥

उक्त यज्ञ का ग्रहण वा अनुष्ठान किससे करना चाहिये, सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है॥

गायत्रेण त्वा छन्दसा परिगृह्णामि त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा परिगृह्णामि जागतेन त्वा छन्दसा परिगृह्णामि। सुक्ष्मा चासि शिवा चासि स्योना चासि सुषदा चास्यूर्जस्वती चासि पयस्वती च॥ २७॥

गायत्रेण। त्वा। छन्दसा। परि। गृह्णामि। त्रैष्टुभेन। त्रैस्तुभेनेति त्रैस्तुभेन। त्वा। छन्दसा। परि। गृह्णामि। जागतेन। त्वा। छन्दसा। परि। गृह्णामि। सुक्ष्मा। च। असि। शिवा। च। असि। स्योना। च। असि। सुषदा। सुसदेति सुऽसदा। च। असि। ऊर्जस्वती। च। असि। पयस्वती। च॥ २७॥

पदार्थ:-**(गायत्रेण)** गायत्र्येव गायत्रं तेन। **छन्दस: प्रत्ययविधाने नपुंसकात् स्वार्थ उपसंख्यानम्।** (अष्टा०भा०वा०४।२।५५) अनेन गायत्रशब्दे अण् त्रैष्टुभादिषु अञ् च **(त्वा)** परमात्मानं तमिमं यज्ञं वा **(छन्दसा)** आह्लादकारिणा। **चन्देरादेश्च छ:।** (उणा०४।२२६) अनेनासुन् प्रत्यय:। **(परि)** सर्वतो भावे। **परीति सर्वतो भावं प्राह।** (निरु०१।३) **(गृह्णामि)** संपादयामि **(त्रैष्टुभेन)** त्रिष्टुबेव त्रैष्टुभं तेन **(त्वा)** त्वां सर्वानन्दमयम्, तं पदार्थसमूहं वा **(छन्दसा)** स्वातन्त्र्यानन्दप्रदेन **(परि)** अभित: **(गृह्णामि)** संपादयामि। **(जागतेन)** जगत्येव जागतं तेन **(त्वा)** त्वां सुखस्वरूपं तमग्निं वा **(छन्दसा)** अत्यानन्दप्रकाशेन **(परि)** समन्तात् **(गृह्णामि)** स्वीकरोमि। **(सुक्ष्मा)** शोभना चासौ क्ष्मेयं पृथिवी च सा। **क्ष्मेति पृथिवीनामसु पठितम्।** (निघं०१।१) **(च)** समुच्चयार्थे **(असि)** भवति। अत्र सर्वत्र पुरुषव्यत्यय: **(शिवा)** मङ्गलप्रदा **(च)** समुच्चये **(असि)** भवति **(स्योना)** सुखप्रदा। **स्योनमिति सुखनामसु पठितम्।** (निघं०३।६) **(च)** समुच्चये **(असि)** भवति **(सुषदा)** सुष्ठु सीदन्ति यस्यां सा **(च)** समुच्चये **(असि)** भवति **(ऊर्जस्वती)** अन्नवती। **ऊर्गित्यन्ननामसु पठितम्।** (निघं०२।७) ऊर्ग्बहुविधमन्नं यस्यां सेति भूम्नि मतुप्। **ज्योत्स्नातमिस्रा०।** (अष्टा०५।२।११४) इति निपातित: **(च)** समुच्चये **(असि)** भवति **(पयस्वती)** पय: प्रशस्तो रसो विद्यतेऽस्यां सा। अत्र प्रशंसार्थे मतुप्। **पयस्वती रसवती।** (शत०१।२।५।११) **(च)** समुच्चये॥ अयं मन्त्र: (शत०(१।२।५।१-११) व्याख्यात:॥ २७॥

अन्वयः-येन यज्ञेन चोत्तमैः पदार्थैः सह सुक्ष्मासि भवति। येन च कल्याणकारिभिर्गुणैर्मनुष्यैश्चेयं शिवासि भवति। येन चानुत्तमैः सुखैः सहेयं स्योनासि भवति। येन चोत्तमाभिः सुखकारिकाभिः स्थितिगतिभिः सहेयं सुषदासि भवति। येन चौत्तमैर्यवादिभिरन्नैः सहेयमूर्जस्वत्यसि भवति। येन चौत्तमैर्मधुरादिरसवद्भिः फलैर्युक्तेयं पृथिवी पयस्वती च जायते। अहं यज्ञविद्याविन्मनुष्यो गायत्रेण छन्दसा त्वा तं यज्ञं परिगृह्णामि। अहं त्रैष्टुभेन छन्दसा त्वा तमिमं पदार्थसमूहं परिगृह्णामि। अहं जागतेन छन्दसा त्वा तमिमममग्निं परिगृह्णामि॥ २७॥

भावार्थः-वेदप्रकाशकेश्वरोऽस्मान् प्रत्यभिवदति युष्माभिर्न चान्तरेण वेदमन्त्राणां पठनं तदर्थज्ञान **[मन्तरेण च]** यज्ञानुष्ठानं सुखफलं प्राप्तुं सर्वशुभगुणाढ्याः सुखकारिणोऽन्नजलवाय्वादयः पदार्थाः शुद्धाश्च कर्तुं शक्यन्ते। तस्मादेतस्य त्रिविधस्य यज्ञस्य सिद्धिं प्रयत्नेन निष्पाद्य सुखे स्थातव्यम्। ये चाऽस्यां वायुजलौषधिदूषका दुर्गन्धादयो दोषा दुष्टाश्च मनुष्याः सन्ति ते सर्वदा निवारणीयाः॥ २७॥

पदार्थः-जिस यज्ञ से उत्तम पदार्थों के साथ **(सुक्ष्मा)** यह पृथिवी शोभायमान **(असि)** होती है **(च)** तथा जिससे सुखकारक गुण **(च)** अथवा मनुष्यों के साथ यह **(शिवा)** मङ्गल की देने वाली **(असि)** होती है **(च)** तथा जिस कर के उत्तम से उत्तम सुखों के साथ यह पृथिवी **(स्योना)** सुख उत्पन्न करने वाली **(असि)** होती है **(च)** और जिससे उत्तम-उत्तम सुख करने वाले और चलने के साथ यह **(सुषदा)** सुख से स्थिति करने योग्य **(असि)** होती है **[च]** तथा जिन उत्तम यव आदि अन्नों के साथ यह **(ऊर्जस्वती)** अन्नवाली **(असि)** होती है। **(च)** और जिन उत्तम मधुर आदि रस वाले फलों करके यह पृथिवी **(पयस्वती)** प्रशंसा करने योग्य रस वाली **(असि)** होती है, **(त्वा)** उस यज्ञ को मैं यज्ञविद्या का जानने वाला मनुष्य **(गायत्रेण)** गायत्री **(छन्दसा)** जो कि चित्त को प्रफुल्लित करने वाला है, उससे **(परिगृह्णामि)** सब प्रकार से सिद्ध करता हूं और मैं **(त्रैष्टुभेन)** त्रिष्टुभ् **(छन्दसा)** जो कि स्वतन्त्रतारूप से आनन्द का देने वाला है, उससे **(त्वा)** पदार्थसमूह को **(परिगृह्णामि)** सब प्रकार से इकट्ठा करता हूं तथा मैं **(जागतेन)** जगती जो कि **(छन्दसा)** अत्यन्त आनन्द का प्रकाश करने वाला है, उससे **(त्वा)** उस भौतिक अग्नि को **(परिगृह्णामि)** अच्छी प्रकार स्वीकार करता हूं॥ २७॥

भावार्थः-वेद का प्रकाश करने वाला ईश्वर हम लोगों के प्रति कहता है कि हे मनुष्यो! तुम लोग वेदमन्त्रों के विना पढ़े, उन के अर्थों के विना जाने और यज्ञ का अनुष्ठान विना किये सुखरूप फल को प्राप्त नहीं हो सकते और जो सब शुभ गुणयुक्त सुखकारी अन्न, जल और वायु आदि पदार्थ हैं, उनको शुद्ध नहीं कर सकते। इससे यह तीन प्रकार के यज्ञ की सिद्धि यत्नपूर्वक सम्पादन कर के सदा सुख ही में रहना चाहिये और जो इस पृथिवी में वायु, जल तथा ओषधियों को दूषित करने वाले दुर्गन्ध, अपगुण तथा दुष्ट मनुष्य हैं, वे सर्वदा निवारण करने चाहियें॥ २७॥

पुरा क्रूरस्येत्यस्य ऋषिः स एव। यज्ञो देवता। विराड् ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

ते दोषाः कथं निवारणीयास्तत्र मनुष्यैः पुनः किं करणीयमित्युपदिश्यते॥

वे दोष कैसे निवारण करने और वहां मनुष्यों को फिर क्या करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

पुरा क्रूरस्य विसृपो विरप्शिन्नुदादाय पृथिवीं जीवदानुम्।

यामैरयँश्चन्द्रमसि स्वधाभिस्तामु धीरासोऽअनुदिश्य यजन्ते।
प्रोक्षणीरासादय द्विषतो वधोऽसि॥ २८॥

पुरा। क्रूरस्य। विसृप इति विऽसृपः। विरप्शिन्निति विऽरप्शिन्। उदादायेत्युत्ऽआदाय। पृथिवीम्। जीवदानुमिति जीवऽदानुम्। याम्। ऐरयन्। चन्द्रमसि। स्वधाभिः। ताम्। ऊँ इत्यूँ। धीरासः। अनुदिश्येत्यनुऽदिश्य। यजन्ते। प्रोक्षणीरिति प्रऽउक्षणीः। आ। सादय। द्विषतः। वधः असि॥ २८॥

पदार्थः-(पुरा) पुरस्तात् **(क्रूरस्य)** कृन्तन्त्यङ्गानि यस्मिन् तस्य युद्धस्य। **कृतेश्छः क्रू च।** (उणा०२।११) अनेन कृन्ततेरक् प्रत्ययः। क्रू इत्यादेशश्च **(विसृपः)** योद्धृभिर्विविधं यत्सृप्यते तस्य। **सृपितृदोः कसुन्।** (अष्टा०३।४।१७) अनेन भावलक्षणे सृपिधातोः कसुन् **(विरप्शिन्)** महागुणविशिष्टेश्वर वा महैश्वर्य्यमिच्छुक मनुष्य! **विरप्शीति महन्नामसु पठितम्।** (निघं०३।३) **(उदादाय)** ऊर्ध्वं समन्ताद् गृहीत्वा **(पृथिवीम्)** विस्तृतप्रजायुक्ताम् **(जीवदानुम्)** या जीवेभ्यो जीवनार्थं वस्तु ददाति ताम् **(याम्)** पृथिवीम् **(ऐरयन्)** राज्याय प्राप्नुवन्ति। अत्र लडर्थे लङ् **(चन्द्रमसि)** चन्द्रलोकसमीप आह्लादे वा। **(स्वधाभिः)** अन्नैः सह वर्त्तमानाम्। **स्वधेत्यन्ननामसु पठितम्।** (निघं०२।७) **(ताम्)** एतल्लक्षणाम् **(उ)** वितर्के **(धीरासः)** मेधाविनः। **धीर इति मेधाविनामसु पठितम्।** (निघं०३।१५) **(अनुदिश्य)** प्राप्तुं शोधयितुमनुलक्ष्य **(यजन्ते)** पूजयन्ति सङ्गतिं कुर्वते **(प्रोक्षणीः)** प्रकृष्टतया सिञ्चन्ति याभिः क्रियाभिः पात्रैर्वा ताः **(आ)** समन्तात् **(सादय)** स्थापय **(द्विषतः)** शत्रोः **(वधः)** हननम् **(असि)** भवेत्। अत्रापि पुरुषव्यत्ययो लिङर्थे लट् च॥ अयं मन्त्रः (शत०(१।२।५।१९-२६) व्याख्यातः॥ २८॥

अन्वयः-हे विरप्शिन् जगदीश्वर! भवानेव यां स्वधाभिर्युक्तां जीवदानुं पृथिवीमुदादाय चन्द्रमसि स्थापितवानस्ति तस्माद् धीरासस्तामिमां पृथिवीं प्राप्य भवन्तमनुदिश्य नित्यं यजन्ते, यथा चन्द्रमस्यानन्देन वर्त्तमाना धीरासः यां जीवदानुं पृथिवीमनुदिश्य सेनां शस्त्राण्युदादाय विसृपः क्रूरस्य मध्ये शत्रून् जित्वा राज्यमैरयन् प्राप्नुवन्ति। यथा चैवं कृत्वा धीरासः पुरा प्रोक्षणीश्चासादितवन्तस्तथैव। हे विरप्शिन्! त्वमपि उ इति वितर्के तां प्राप्येश्वरं यज प्रोक्षणीश्चासादाय यथा च द्विषतो वधोऽसि भवेत्। तथा कृत्वाऽऽनन्दे नित्यं प्रवर्त्तस्व॥ २८॥

भावार्थः-येनेश्वरेणान्तरिक्षे पृथिव्यस्तत्समीपे चन्द्रास्तत्समीपे पृथिव्योऽन्योन्यं समीपस्थानि नक्षत्राणि सर्वेषां मध्ये सूर्य्यलोका एतेषु विविधाः प्रजाश्च रचयित्वा स्थापिताः सर्वैस्तत्रस्थैर्मनुष्यैः स एवोपासितुं योग्योऽस्ति। न यावन्मनुष्या बलक्रियाभ्यां युक्ता भूत्वा शत्रून् विजयन्ते, नैव तावत्स्थिरं राज्यसुखं प्राप्नुवन्ति। नैव युद्धबलाभ्यां विना शत्रवो बिभ्यति। नैव च विद्यान्यायविनयैर्विना यथावत् प्रजाः पालयितुं शक्नुवन्ति तस्मात् सर्वैर्जितेन्द्रियैर्भूत्वैतत् समासाद्य सर्वेषां सुखं कर्तुमनुलक्ष्य नित्यं प्रयतितव्यम्॥ २८॥

पदार्थः-हे **(विरप्शिन्)** महाशय महागुणवान् जगदीश्वर! आपने **(याम्)** जिस **(स्वधाभिः)** अन्न आदि पदार्थों से युक्त और **(जीवदानुम्)** प्राणियों को जीवन देने वाले पदार्थ तथा **(पृथिवीम्)** बहुत सी प्रजायुक्त पृथिवी को **(उदादाय)** ऊपर उठाकर **(चन्द्रमसि)** चन्द्रलोक के समीप स्थापन की है, इस कारण **[ताम्]** उस पृथिवी को **(धीरासः)** धीर बुद्धि वाले पुरुष प्राप्त होकर आपके **(अनुदिश्य)** अनुकूल चलकर **[(यजन्ते)]** यज्ञ का अनुष्ठान नित्य करते हैं। जैसे **(चन्द्रमसि)** आनन्द में वर्त्तमान होकर **(धीरासः)** बुद्धिमान् पुरुष **(याम्)** जिस **(जीवदानुम्)** जीवों की हितकारक **(पृथिवीम्)** पृथिवी के **[(अनुदिश्य)]** आश्रित होकर सेना और शस्त्रों को **(उदादाय)** क्रम से

लेकर **(विसृपः)** जो कि युद्ध करने वाले पुरुषों के प्रभाव दिखाने योग्य और **(क्रूरस्य)** शत्रुओं के अङ्ग विदीर्ण करने वाले संग्राम के बीच में शत्रुओं को जीत कर राज्य को **[ऐरयन्]** प्राप्त होते हैं तथा जैसे इस उक्त प्रकार से धीर पुरुष **(पुरा)** पहिले समय में प्राप्त हुए जिन क्रियाओं से **(प्रोक्षणीः, उ)** अच्छी प्रकार पदार्थों को सींच के उनको **[आसादय]** सम्पादन करते हैं, वैसे ही **(विरप्शिन्)** महान् ऐश्वर्य्य की इच्छा करने वाले पुरुष! तू भी उसको प्राप्त होके ईश्वर का पूजन तथा पदार्थ सिद्धि करने वाली उत्तम-उत्तम क्रियाओं का सम्पादन कर। जैसे **(द्विषतः)** शत्रुओं का **(वधः)** नाश **(असि)** हो, वैसे कामों को करके नित्य आनन्द में वर्तमान रह॥२८॥

भावार्थः-जिस ईश्वर ने क्रम से अन्तरिक्ष में पृथिवी, पृथिवियों के समीप चन्द्रलोक, चन्द्रलोकों के समीप पृथिवियाँ, एक-दूसरे के समीप तारालोक और सब के बीच में अनेक सूर्य्यलोक तथा इन सब में नाना प्रकार की प्रजा रचकर स्थापन की है, वही परमेश्वर सब मनुष्यों को उपासना करने योग्य है। जब तक मनुष्य बल और क्रियाओं से युक्त होकर शत्रुओं को नहीं जीतते, तब तक राज्यसुख को नहीं प्राप्त हो सकते, क्योंकि बिना युद्ध और बल के शत्रु जन कभी नहीं डरते तथा विद्वान् लोग विद्या, न्याय और विनय के बिना यथावत् प्रजा के पालन करने को समर्थ नहीं हो सकते, इस कारण सब को जितेन्द्रिय होकर उक्त पदार्थों का सम्पादन करके सब के सुख के लिये उत्तम-उत्तम प्रयत्न करना चाहिये॥२८॥

प्रत्युष्टमित्यस्य ऋषिः स एव। यज्ञो देवता सर्वस्य। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनः स संग्रामः किं कृत्वा जेतव्यो यज्ञश्चानुष्ठातव्य इत्युपदिश्यते॥

फिर उक्त संग्राम कैसे जीतना और यज्ञ का अनुष्ठान कैसे करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

प्रत्युष्टꣳ रक्षः प्रत्युष्टाऽअरातयो निष्टप्तꣳ रक्षो निष्टप्ताऽअरातयः।
अनिशितोऽसि सपत्नक्षिद्वाजिनं त्वा वाजेध्यायै सम्मार्ज्मि।
प्रत्युष्टꣳ रक्षः प्रत्युष्टाऽअरातयो निष्टप्तꣳ रक्षो निष्टप्ताऽअरातयः।
अनिशितासि सपत्नक्षिद्वाजिनीं त्वा वाजेध्यायै सम्मार्ज्मि॥२९॥

प्रत्युष्टमिति प्रतिऽउष्टम्। रक्षः। प्रत्युष्टा इति प्रतिऽउष्टाः। अरातयः। निष्टप्तम्। निस्तप्तमिति निःऽतप्तम्। रक्षः। निष्टप्ताः। निस्तप्ता इति निःऽतप्ताः। अरातयः। अनिशित इत्यनिऽशितः। असि। सपत्नक्षिदिति सपत्नऽक्षित्। वाजिनम्। त्वा। वाजेध्याया इति वाजऽइध्यायै। सम्। मार्ज्मि। प्रत्युष्टमिति प्रतिऽउष्टम्। रक्षः। प्रत्युष्टा इति प्रतिऽउष्टाः। अरातयः। निष्टप्तम्। निस्तप्तमिति निःतप्तम्। रक्षः। निष्टप्ताः। निस्तप्ता इति निःतप्ताः। अरातयः। अनिशितेत्यनिऽशिता। असि। सपत्नक्षिदिति सपत्नऽक्षित्। वाजिनीम्। त्वा। वाजेध्याया इति वाजऽइध्यायै। सम्। मार्ज्मि॥२९॥

पदार्थः-**(प्रत्युष्टम्)** प्रतिदग्धव्यम् **(रक्षः)** विघ्नकारी प्राणी **(प्रत्युष्टाः)** प्रतिदग्धव्याः **(अरातयः)** सत्यविरोधिनोऽरयः **(निष्टप्तम्)** यन्नितरां तप्यते तत् **(रक्षः)** बन्धनेन रक्षयितव्यम् **(निष्टप्ताः)** नितरां तप्यन्ते ये ते **(अरातयः)** विद्याविघ्नकारिणः **(अनिशितः)** न विद्यते नितरां शिता तीव्रा क्रिया यस्मिन् स संग्रामो यज्ञपात्रं वा **(असि)** भवति। अत्र पुरुषव्यत्ययः **(सपत्नक्षित्)** सपत्नान् शत्रून् क्षयति येन सः। अत्र **कृतो बहुलम्**

[अष्टा०भा०वा०३.३.११३] इति वार्त्तिकेन करणकारके क्विप्। **क्षि क्षये** इत्यस्य रूपम्। एतदुवटमहीधराभ्यां **क्षिणु हिंसायामि**त्यस्य भ्रान्त्या व्याख्यातम्। **(वाजिनम्)** अन्नवन्तं वेगवन्तं वा। **वाज इत्यन्ननामसु पठितम्।** (निघं०२।७) **(त्वा)** तम् **(वाजेध्यायै)** वाजेनान्नेन युद्धेन वा इध्या दीपनीया सेना यज्ञपात्रं वा यया क्रियया तस्यै **(संमार्ज्मि)** सम्यक् शोधयामि **(प्रत्युष्टम्)** नित्यं प्रजापालनाय तापनीयः **(रक्षः)** परसुखासहो मनुष्यः। **(प्रत्युष्टाः)** प्रत्यक्षं ज्वालनीयाः। **(अरातयः)** परसुखासोढारः **(निष्टप्तम्)** निःसारणीयः **(रक्षः)** द्यूतजारकर्मशीलः **(निष्टप्ताः)** निस्सारणीयाः **(अरातयः)** अन्येभ्यो दुःखप्रदाः **(अनिशिता)** अतिविस्तीर्णा सेना कार्य्या वेदिर्वा **(असि)** अस्ति। अत्रापि व्यत्ययः **(सपत्नक्षित्)** सपत्नान् क्षयति यया सा **(वाजिनीम्)** बलवेगवतीम् **(त्वा)** त्वाम् **(वाजेध्यायै)** वाजेन बहुसाधनसमूहेन संग्रामेण सेनया यज्ञेन वा प्रकाशनीयायै सत्यनीत्यै **(संमार्ज्मि)** सम्यक् शिक्षया शोधयामि॥ अयं मन्त्रः (शत० (१।३।१।४-११) व्याख्यातः॥२९॥

अन्वयः-अहं येन **[अनिशितः]** अनिशितेन **[सपत्नक्षित्]** सपत्नक्षिता संग्रामेण प्रत्युष्टं रक्षः **[असि]** प्रत्युष्टा अरातयो निष्टप्तं रक्षो निष्टप्ता अरातयो भवन्ति **[त्वा]** तं वाजिनं युद्धाङ्गानि वाजेध्यायै संमार्ज्मि। अहं यया **[सपत्नक्षित्]** सपत्नक्षिता **[अनिशिता]** ऽनिशितया सेनया प्रत्युष्टं रक्षः **[असि]** प्रत्युष्टा अरातयो निष्टप्तं रक्षो निष्टप्ता अरातयो भवन्ति **[त्वा]** तां वाजिनीं सेनां शिक्षया वाजेध्यायै संमार्ज्मि॥ [इत्येकोऽर्थः]॥

अहं येन **[अनिशितः]** अनिशितेन **[सपत्नक्षित्]** सपत्नक्षिता यज्ञेन प्रत्युष्टं रक्षः प्रत्युष्टा अरातयो निष्टप्तं रक्षो निष्टप्ता अरातयो **[असि]** भवन्ति **[त्वा]** तं वाजिनं यज्ञं वाजेध्यायै संमार्ज्मि [एवं यया **[सपत्नक्षित्]** सपत्नक्षिता **[अनिशिता]** अनिशितया क्रियया प्रत्युष्टं रक्षः प्रत्युष्टा अरातयो निष्टप्तं रक्षो निष्टप्ता अरातयो **[ऽसि]** भवन्ति **[त्वा]** तां वाजिनीं वाजेध्यायै सम्मार्ज्मि तथैव भवन्तोऽप्येतं, एतां सम्मार्जन्तु॥ इति द्वितीयोऽर्थः॥२९॥

भावार्थः-ईश्वर आज्ञापयति सर्वैर्मनुष्यैर्विद्याशुभगुणदीप्त्या दुष्टशत्रुनिवारणाय नित्यं पुरुषार्थः कर्त्तव्यः। सुशिक्षया शस्त्रास्त्रसत्पुरुषाढ्यसेनया श्रेष्ठानां रक्षणं दुष्टानां ताडनं च नित्यं कर्त्तव्यम्। यतोऽशुद्धिक्षयात् सर्वत्र पवित्रता प्रवर्त्तेत॥२९॥

पदार्थः-मैं जिस **[अनिशितः]** अतिविस्तृत **[सपत्नक्षित्]** शत्रुओं के नाश करने वाले संग्राम से **(प्रत्युष्टं रक्षः)** विघ्नकारी प्राणी और जिससे **(प्रत्युष्टा अरातयः)** सत्यविरोधी अच्छी प्रकार दाहरूप दण्ड को प्राप्त **(असि)** होते हैं, वा जिस बन्धन से **(निष्टप्तं रक्षः)** बांधने योग्य **(निष्टप्ता अरातयः)** विद्या के विघ्न करने वाले निरन्तर संताप को प्राप्त होते हैं, **(त्वा)** उस **(वाजिनम्)** वेग आदि गुण वाले संग्राम को **(वाजेध्यायै)** जो कि अन्न आदि पदार्थों से बलवान् करने के योग्य सेना है, उसके लिये युद्ध के साधनों को **(संमार्ज्मि)** अच्छी प्रकार शुद्ध करता हूं, अर्थात् उनके दोषों का विनाश करता हूं और मैं जिस **(सपत्नक्षित्)** शत्रु का नाश करने वाले और **(अनिशिता)** अति विस्तारयुक्त सेना से **(प्रत्युष्टं रक्षः)** परसुख का न सहने वाला मनुष्य वा **(प्रत्युष्टा अरातयः)** उक्त अवगुणवाले अनेक मनुष्य **(निष्टप्तं रक्षः)** जुआ खेलने और परस्त्रीगमन करने तथा **(निष्टप्ता अरातयः)** औरों को सब प्रकार से दुःख देने वाले मनुष्य अच्छी प्रकार निकाले जाते हैं, **(त्वा)** उस **(वाजिनीम्)** बल और वेग आदि गुणवाली सेना को **(वाजेध्यायै)** बहुत साधनों से प्रकाशित करने के लिये **(संमार्ज्मि)** अच्छी प्रकार उत्तम-उत्तम शिक्षाओं से शुद्ध करता हूं। [यह प्रथम अर्थ हुआ]॥

और जो कि **(अनिशितः)** बड़ी क्रियाओं से सिद्ध होने योग्य वा **(सपत्नक्षित्)** दोषों वा शत्रुओं के विनाश

करनेहारे **(प्रत्युष्टं रक्षः)** विघ्नकारी प्राणी और **(प्रत्युष्टा अरातयः)** जिसमें सत्यविरोधी अच्छी प्रकार दाहरूप दण्ड को प्राप्त **(असि)** होते हैं, वा **(निष्टप्तं रक्षः)** जिस बन्धन से बांधने योग्य **(निष्टप्ता अरातयः)** विद्या के विघ्न करने वाले निरन्तर सन्ताप को प्राप्त होते हैं **(त्वा)** उस **(वाजिनम्)** यज्ञ को **(वाजेध्यायै)** अन्न आदि पदार्थों के प्रकाशित होने के लिये **(संमार्ज्मि)** शुद्धता से सिद्ध करता हूं [इस प्रकार जिस **(सपत्नक्षित्)** शत्रुओं का नाश करने वाली **(अनिशिता)** अतिविस्तारयुक्त क्रिया से **(प्रत्युष्टं रक्षः)** विघ्नकारी प्राणी और **(प्रत्युष्टा अरातयः)** दुर्गुण तथा नीच मनुष्य नष्ट होते हैं, **(निष्टप्तं रक्षः)** काम, क्रोध आदि राक्षसी भाव दूर होते हैं, **(निष्टप्ता अरातयः)** जिसमें दुःख तथा दुर्गन्ध आदि दोष नष्ट [**(असि)**] होते हैं, **(त्वा)** उस **(वाजिनीम्)** सत्क्रिया को **(वाजेध्यायै)** अन्न आदि पदार्थों के प्रकाशित होने के लिये **(सम्मार्ज्मि)** भली प्रकार सिद्ध करता हूं। इसी प्रकार आप भी इस यज्ञ तथा सत्क्रिया को पवित्रतापूर्वक सिद्ध करो] यह दूसरा अर्थ हुआ॥२९॥

भावार्थः-ईश्वर आज्ञा देता है कि मनुष्यों को विद्या और शुभ गुणों के प्रकाश और दुष्ट शत्रुओं की निवृत्ति के लिये नित्य पुरुषार्थ करना चाहिये तथा सदैव श्रेष्ठ शिक्षा शस्त्र-अस्त्र और सत्पुरुषयुक्त उत्तम सेना से श्रेष्ठों की रक्षा तथा दुष्टों का विनाश करना चाहिये, जिसे करके अशुद्धि आदि दोषों के विनाश होने से सर्वत्र पवित्रता फैले॥२९॥

अदित्या इत्यस्य ऋषिः स एव। यज्ञो देवता। निचृज्जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनः स यज्ञः कीदृशः किं फलो भवतीत्युपदिश्यते॥

फिर उक्त यज्ञ किस प्रकार का और कौन फल का देनेवाला होता है सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है॥

अदि॑त्यै रास्ना॑सि विष्णो॑र्वे॒ष्पो॒स्यू॒र्ज्जे त्वाऽद॑ब्धेन त्वा॒ चक्षु॒षाव॑पश्यामि।
अ॒ग्नेर्जि॒ह्वासि॑ सुहू॒र्दे॒वेभ्यो॒ धाम्ने॑ धाम्ने मे भव॒ यजु॑षे यजुषे॥३०॥

अदि॑त्यै। रास्ना॑। अ॒सि॒। विष्णो॑ः। वे॒ष्पः। अ॒सि॒। ऊ॒र्ज्जे। त्वा॒। अद॑ब्धेन। त्वा॒। चक्षु॑षा। अव॑। प॒श्या॒मि॒। अ॒ग्नेः। जि॒ह्वा। अ॒सि॒। सु॒हूरिति॑ सु॒ऽहूः। दे॒वेभ्य॑ः। धाम्ने॑। धाम्न॒ऽइति॒ धाम्ने॑ धाम्ने। मे॒। भ॒व॒। यजु॑षे यजु॒ष॒ऽइति॒ यजु॑षे यजुषे॥३०॥

पदार्थः-(अदित्यै) पृथिव्या अन्तरिक्षस्य वा। अत्र षष्ठ्यर्थे चतुर्थी। **अदितिरिति पृथिवीनामसु पठितम्** (निघं०१।१) **पदनामसु च** (निघं०४।१) अनेन गमनागमनव्यवहारप्राप्तिहेतुरवकाशोऽन्तरिक्षं गृह्यते **(रास्ना)** रसहेतुभूता क्रिया। **रास्ना सास्ना स्थूणा वीणाः** (उणा०३।१५) अनेन रसधातोर्निपातनान्नः प्रत्ययः **(असि)** अस्ति वा। अत्र सर्वत्र पक्षे व्यत्ययः **(विष्णोः)** व्यापकेश्वरस्य यज्ञस्य वा। **यज्ञो वै विष्णुः** (शत०१।१।२।१३) **(वेष्पः)** वेवेष्टि व्याप्नोति पृथिवीमन्तरिक्षं वा स यज्ञोऽथो वाष्पो ज्ञानसमूहो वा। **पानीविषिभ्यः पः** (उणा०३।२३) अनेन विषेः पः प्रत्ययः **(असि)** अस्ति वा **(उर्ज्जे)** अन्नाय रसाय पराक्रमाय च **(त्वा)** त्वां तं वा **(अदब्धेन)** सुखयुक्तेन **(त्वा)** त्वां तं वा **(चक्षुषा)** विज्ञानेन प्रत्यक्षप्रमाणेन नेत्रेण **(अव)** क्रियार्थे। **अवेति विनिग्रहार्थीयः** (निरु०१।३) **(पश्यामि)** संप्रेक्षे **(अग्नेः)** भौतिकस्य **(जिह्वा)** जिहीते विजानाति रसमनया सा। **शेवायह्वाजिह्वा०** (उणा०१।१५४) अनेनायं निपातितः। **(असि)** अस्ति वा **(सुहूः)** सुष्ठु हूयते यो या वा सा **कृतो बहुलम्**

[अष्टा०भा०वा०३.३.११३] इति कर्मणि **ह्वेञ्** इत्यस्य क्विबन्तः प्रयोगः (**देवेभ्यः**) विद्वद्भ्यो दिव्यगुणेभ्यो वा (**धाम्ने धाम्ने**) दधति वस्तूनि सुखानि च यस्मिन् तस्मै प्रत्यधिकरणप्राप्तये। **धामानि त्रयाणि भवन्ति स्थानानि नामानि जन्मानीति** (निरु०९।२८) अत्र वीप्सायां द्वित्वम् (**मे**) मह्यम् (**भव**) भवति वा (**यजुषे यजुषे**) यजन्ति येन तस्मै प्रति यजुर्वेदमन्त्रम्। अयं मन्त्रः (शत०(१।३।१।१२-१९) व्याख्यातः॥३०॥

अन्वयः-हे जगदीश्वर! यस्त्वम [**दित्यै अ**] अदित्या रास्नासि विष्णुरसि सर्वस्य वेष्पोऽस्यग्नेर्जिह्वासि देवेभ्यो धाम्ने धाम्ने [**मे भवं**] यजुषे यजुषे सुहूरसि। एवंभूतं [**त्वा**] त्वाहमदब्धेन चक्षुषा ऊर्ज्जे [**त्वा**] ऽदित्यै देवेभ्यो धाम्ने धाम्ने यजुषे यजुषे चावपश्यामि। स च त्वमस्माभिः सर्वत्र कृपया विदितः पूजितश्च भवेत्येकः॥

यतोऽयं यज्ञोऽ[**दित्यै**] अदित्या रास्ना [**स्य**] स्ति विष्णोर्वेष्पोऽ[**स्य**] स्त्यग्नेर्जिह्वा [**स्य**] स्ति देवेभ्यो धाम्ने धाम्ने [**मे भव**] यजुषे यजुषे सुहूर्भवति तस्मात् तमहमदब्धेन [**त्वा**] चक्षुषोर्ज्जे [**त्वा**] ऽवपश्यामि तथाऽदित्यै देवेभ्यो धाम्ने धाम्ने यजुषे यजुषे हितायावपश्यामि॥३०॥

भावार्थः-अत्र श्लेषालङ्कारः। सर्वैर्मनुष्यैरयं जगदीश्वरः प्रतिवस्तु स्थितः प्रतिमन्त्रं प्रतिपादितः पूज्यश्च भवतीति मन्तव्यम्। तथा चायं यज्ञः प्रतिमन्त्रेण सम्यगनुष्ठितः सर्वप्राणिभ्यः प्रतिवस्तुषु पराक्रमबलप्राप्तये भवतीति॥३०॥

पदार्थः-हे जगदीश्वर! जो आप (**अदित्यै**) पृथिवी के (**रास्ना**) रस आदि पदार्थों के उत्पन्न करने वाले (**असि**) हैं, (**विष्णोः**) व्यापक (**वेष्पः**) पृथिवी आदि सब पदार्थों में प्रवर्त्तमान भी (**असि**) हैं तथा (**अग्नेः**) भौतिक अग्नि के (**जिह्वा**) जीभरूप (**असि**) हैं वा (**देवेभ्यः**) विद्वानों के लिये (**धाम्ने धाम्ने**) जिनमें कि वे विद्वान् सुखरूप पदार्थों को प्राप्त होते हैं, जो तीनों धाम अर्थात् स्थान, नाम और जन्म हैं, उन धामों की प्राप्ति के तथा (**यजुषे यजुषे**) यजुर्वेद के मन्त्र-मन्त्र का आशय प्रकाशित होने के लिये (**सूहूः**) जो श्रेष्ठता से स्तुति करने के योग्य है, इस प्रकार के (**त्वा**) आप को मैं (**अदब्धेन**) प्रेमसुखयुक्त (**चक्षुषा**) विज्ञान से (**ऊर्ज्जे**) पराक्रम (**अदित्यै**) पृथिवी तथा (**देवेभ्यः**) श्रेष्ठ गुणों वा (**धाम्ने धाम्ने**) स्थान, नाम और जन्म आदि पदार्थों की प्राप्ति तथा (**यजुषे यजुषे**) यजुर्वेद के मन्त्र-मन्त्र के आशय जानने के लिये [(**त्वा**) आपको] (**अवपश्यामि**) ज्ञानरूपी नेत्रों से देखता हूं, आप भी कृपा करके [**मे**] मुझको विदित और मेरे पूजन को प्राप्त (**भव**) हूजिये॥ यह इस मन्त्र का प्रथम अर्थ हुआ॥

अब दूसरा कहते हैं॥ जिस कारण यह यज्ञ (**अदित्यै**) अन्तरिक्ष के सम्बन्धी (**रास्ना**) रसादि पदार्थों की क्रिया का कारण (**असि**) है, (**विष्णोः**) यज्ञसम्बन्धी कार्य्यों का (**वेष्पः**) व्यापक (**असि**) है, (**अग्नेः**) भौतिक अग्नि का (**जिह्वा**) जिह्वारूप (**असि**) है, (**देवेभ्यः**) तथा दिव्य गुण (**धाम्ने धाम्ने**) कीर्ति, स्थान और जन्म इनकी प्राप्ति वा [**मे**] मेरे लिये (**यजुषे यजुषे**) यजुर्वेद के मन्त्र-मन्त्र का आशय जानने के लिये (**सुहूः**) अच्छी प्रकार प्रशंसा करने योग्य (**भव**) होता है, इस कारण (**त्वा**) उस यज्ञ को मैं (**अदब्धेन**) सुखपूर्वक (**चक्षुषा**) प्रत्यक्ष प्रमाण के साथ नेत्रों से (**अवपश्यामि**) देखता हूं तथा (**त्वा**) उसे (**अदित्यै**) पृथिवी आदि पदार्थ (**देवेभ्यः**) उत्तम-उत्तम गुण [(**ऊर्जे**) पराक्रम] (**धाम्ने धाम्ने**) स्थान-स्थान तथा (**यजुषे यजुषे**) यजुर्वेद के मन्त्र-मन्त्र से हित होने के लिये (**अवपश्यामि**) क्रिया की कुशलता से देखता हूं॥३०॥

भावार्थः-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। सब मनुष्यों को जैसे यह जगदीश्वर वस्तु-वस्तु में स्थित तथा वेद

के मन्त्र-मन्त्र में प्रतिपादित और सेवा करने योग्य है, वैसे ही यह यज्ञ वेद के प्रति मन्त्र से अच्छी प्रकार सिद्ध प्रतिपादित विद्वानों ने सेवित किया हुआ, सब प्राणियों के लिये पदार्थ-पदार्थ में पराक्रम और बल के पहुंचाने के योग्य होता है॥३०॥

सवितुस्त्वेत्यस्य ऋषिः स एव। यज्ञो देवता सर्वस्य। पूर्वार्द्धे जगती छन्दः। निषादः स्वरः।
तेजोऽसीत्यस्याऽनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

सः यज्ञः कथं पवित्रीकरोतीत्युपदिश्यते॥

उक्त यज्ञ कैसे पवित्र होता है, सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है॥

स॒वि॒तुस्त्वा॑ प्रस॒वऽउत्पु॑ना॒म्यच्छि॑द्रेण प॒वित्रे॑ण॒ सूर्य्य॑स्य र॒श्मिभि॑ः।
स॒वि॒तुर्व॑ः प्रस॒वऽउत्पु॑ना॒म्यच्छि॑द्रेण प॒वित्रे॑ण॒ सूर्य्य॑स्य र॒श्मिभि॑ः।
तेजो॑ऽसि शु॒क्रम॑स्य॒मृत॑मसि॒ धाम॒ नामा॑सि प्रि॒यं दे॒वाना॒मना॑धृष्टं देव॒यज॑नमसि॥३१॥

स॒वि॒तुः। त्वा॒। प्र॒स॒व इति॑ प्रऽस॒वे। उत्। पु॒ना॒मि॒। अच्छि॑द्रेण। प॒वित्रे॑ण। सूर्य्य॑स्य। र॒श्मिभि॒रिति॑ र॒श्मिऽभि॑ः। स॒वि॒तुः। व॒ः। प्र॒स॒व इति॑ प्रऽस॒वे। उत्। पु॒ना॒मि॒। अच्छि॑द्रेण। प॒वित्रे॑ण। सूर्य्य॑स्य। र॒श्मिभि॒रिति॑ र॒श्मिभि॑ः। ते॑जः। अ॒सि॒। शु॒क्रम्। अ॒सि॒। अ॒मृत॑म्। अ॒सि॒। धाम॑। नाम॑। अ॒सि॒। प्रि॒यम्। दे॒वाना॑म्। अना॑धृष्टम्। दे॒व॒यज॑न॒मिति॑ दे॒व॒ऽयज॑नम्। अ॒सि॒॥३१॥

पदार्थः-(सवितुः) परमेश्वरस्य सूर्य्यलोकस्य वा **(त्वा)** त्वां जगदीश्वरं तं यज्ञं वा **(प्रसवे)** प्रकृष्टतयोत्पद्यन्ते सर्वे पदार्था यस्मिँस्तस्मिन् संसारे **(उत्)** उत्कृष्टार्थे। **उदित्येतयोः प्रातिलोम्यं प्राह** (निरु०१।३) **(पुनामि)** पवित्रीकरोमि **(अच्छिद्रेण)** न विद्यते छिद्रं छेदनं यस्मिन् तेन **(पवित्रेण)** शुद्धेन **(सूर्य्यस्य)** चराचरात्मनः परमेश्वरस्य प्रकाशमयस्य सूर्य्यलोकस्य वा। सरति जानाति प्रकाशयति चराचरं जगदिति। **राजसूयसूर्य्य०** (अष्टा०३।१।११४) अनेन निपातितः **(रश्मिभिः)** प्रकाशकैर्गुणैः किरणैर्वा **(सवितुः)** उक्तार्थस्य **(वः)** युष्मानेताँश्च **(प्रसवे)** उक्तार्थे **(अच्छिद्रेण)** निरन्तरेण **(पवित्रेण)** शुद्धिकारकेण **(सूर्य्यस्य)** यः सुवत्यैश्वर्य्यं ददाति, ऐश्वर्य्यहेतून् प्रेरयति सः परमेश्वरः प्राणो वा तस्य **(रश्मिभिः)** अन्तःप्रकाशकैर्गुणैः **(तेजः)** स्वप्रकाशः प्रकाशहेतुर्वा **(असि)** अस्ति वा। अत्र सर्वत्र पक्षे व्यत्ययः **(शुक्रम्)** शुद्धं शुद्धिहेतुर्वा **(असि)** अस्ति वा **(अमृतम्)** अमृतात्मकं मोक्षसुखं प्रकाशनं वा **(असि)** अस्ति वा **(धाम)** धीयन्ते सर्वे पदार्था यस्मिन् तत् **(नाम)** नमस्करणीयो जलहेतुर्वा। **नाम इत्युदकनामसु पठितम्** (निघं०१।१२) **(असि)** अस्ति वा **(प्रियम्)** प्रीतिकारकम् **(देवानाम्)** विदुषां दिव्यगुणानां वा **(अनाधृष्टम्)** यत्र समन्ताद् धृष्यते इत्यनाधृष्टम् **(देवयजनम्)** देवैर्यदिज्यते येन वा देवानां यजनं देवयजनं तत् **(असि)** अस्ति वा। अयं मन्त्रः (शत०(१।३।१।२२-२८॥ १।३।२।१-१८) व्याख्यातः॥३१॥

अन्वयः-यो यज्ञः **[सवितुः प्रसवे]** अच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्य्यस्य रश्मिभिः सह सर्वान् पदार्थान् पुनाति **[त्वा]** त्वां **[तं यज्ञं]** यजमानं वाहमुत्पुनामि। त्वां यजमानं वा। एवं च सवितुः प्रसवेऽच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्य्यस्य रश्मिभिर्वो युष्मानेताँश्च पदार्थान् यज्ञेनोत्पुनामि। हे ब्रह्मन्! यतस्त्वं तेजोसि शुक्रमस्यमृतमसि धामासि नामासि देवानां प्रियमस्यनाधृष्टमसि देवयजनमसि तस्मात् त्वामेवाहमाश्रयामीत्येकः॥

यतोऽयं यज्ञस्तेजोऽ**[स्य]** स्ति शुक्रम**[स्य]स्त्यमृतम[स्य]**स्ति धामास्ति नामा**[स्य]**स्ति देवानां प्रियमनाधृष्टं देवयजनम् **[स्य]** स्ति तेनानेन यज्ञेनाहं सवितुर्जगदीश्वरस्य प्रसवेऽच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्य्यस्य रश्मिभिर्वो युष्मानेतान् सर्वान् पदार्थांश्चोत्पुनामि॥ इति द्वितीयः॥३१॥

भावार्थः-अत्र श्लेषालङ्कारः। ईश्वरो यज्ञविद्याफलं ज्ञापयति युष्माभिर्यथावदनुष्ठितो यज्ञः सूर्य्यस्य रश्मिभिर्विहरति स स्वकीयेन पवित्रेणाच्छिद्रेण गुणेन सर्वान् पदार्थान् पवित्रयति। स च तद्द्वारा सूर्य्यस्य रश्मिभिस्तेजस्विनः शुद्धानमृतरसान् सुखहेतुकान् प्रसन्नताजनकान् दृढान् यज्ञहेतून् पदार्थान् करोति यतस्तद्भोजनाच्छादनद्वारा वयं शरीरपुष्टिबुद्धिबलादीन् शुद्धगुणाँश्च संपाद्य नित्यं सुखयाम इति॥३१॥

ईश्वरेणास्मिन्नध्याये मनुष्यान् प्रति शुद्धकर्मानुष्ठातुं दोषान् शत्रूंश्च निवारयितुं यज्ञक्रियाफलं ज्ञातुं सम्यक् पुरुषार्थं कर्त्तुं विद्या विस्तारयितुं धर्मेण प्रजाः पालयितुं धर्मानुष्ठाते निर्भयतया स्थातुं सर्वैः सह मित्रतामाचरितुं वेदाध्ययनाध्यापनाभ्यां सर्वाविद्या ग्रहीतुं ग्राहयितुं शुद्धये परोपकाराय च प्रयतितुमाज्ञा दत्तास्ति सेयं सर्वैर्मनुष्यैर्यथावदनुष्ठातव्येति॥

इति श्रीमत्परिव्राजकाचार्य्य श्रीयुतदयानन्दसरस्वतीस्वामिना सुविरचिते संस्कृतार्य्यभाषाविभूषिते यजुर्वेदभाष्ये प्रथमोऽध्यायः संपूर्णः॥ १॥

पदार्थः-जो यज्ञ **(सवितुः)** परमेश्वर के **(प्रसवे)** उत्पन्न किये संसार में **(अच्छिद्रेण)** निरन्तर **(पवित्रेण)** पवित्र तथा **(सूर्य्यस्य)** प्रकाशमय सूर्य्य की **(रश्मिभिः)** किरणों के साथ मिल के सब पदार्थों को शुद्ध करता है **(त्वा)** उस यज्ञ वा यज्ञकर्त्ता को मैं **(उत्पुनामि)** उत्कृष्टता के साथ पवित्र करता हूं। इसी प्रकार **(सवितुः)** परमेश्वर के **(प्रसवे)** उत्पन्न किये हुए संसार में **(अच्छिद्रेण)** निरन्तर **(पवित्रेण)** शुद्धिकारक **(सूर्य्यस्य)** जो कि ऐश्वर्य हेतुओं के प्रेरक प्राण के **(रश्मिभिः)** अन्तराशय के प्रकाश करने वाले गुण हैं, उनसे **(वः)** तुम लोगों को तथा प्रत्यक्ष पदार्थों को यज्ञ करके **(उत्पुनामि)** पवित्र करता हूं। हे ब्रह्मन्! जिस कारण आप **(तेजोऽसि)** स्वयंप्रकाशवान् **(शुक्रमसि)** शुक्र **(अमृतमसि)** नाशरहित **(धामासि)** सब पदार्थों का आधार **(नामासि)** वन्दना करने योग्य **(देवानाम्)** विद्वानों के **(प्रियम्)** प्रीतिकारक **(अनाधृष्टम्)** तथा किसी की भयता में न आने योग्य वा **(देवयजनमसि)** विद्वानों के पूजा करने योग्य हैं, इससे मैं **(त्वा)** आपका ही आश्रय करता हूं॥ यह इस मन्त्र का प्रथम अर्थ हुआ॥

जिस कारण यह यज्ञ **(तेजोऽसि)** प्रकाश और **(शुक्रमसि)** शुद्धि का हेतु **(अमृतमसि)** मोक्ष सुख का देने तथा **(धामासि)** सब अन्न आदि पदार्थों की पुष्टि करने वा **(नामासि)** जल का हेतु **(देवानाम्)** श्रेष्ठ गुणों की **(प्रियम्)** प्रीति कराने तथा **(अनाधृष्टम्)** किसी को खण्डन करने के योग्य नहीं अर्थात् अत्यन्त उत्कृष्ट और **(देवयजनम्)** विद्वान् जनों को परमेश्वर का पूजन कराने वाला **(असि)** है, इस कारण इस यज्ञ से मैं **(सवितुः)** जगदीश्वर के **(प्रसवे)** उत्पन्न किये हुए संसार में **(अच्छिद्रेण)** निरन्तर **(पवित्रेण)** अति शुद्ध यज्ञ वा **(सूर्य्यस्य)** ऐश्वर्य्य उत्पन्न करने वाले परमेश्वर के गुण अथवा ऐश्वर्य्य के उत्पन्न कराने वाले सूर्य्य की **(रश्मिभिः)** विज्ञानादि प्रकाश वा किरणों से **(वः)** तुम लोग वा प्रत्यक्ष पदार्थों को **(उत्पुनामि)** पवित्र करता हूं॥ यह दूसरा अर्थ हुआ॥३१॥

भावार्थः-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। परमेश्वर यज्ञ विद्या के फल को जनाता है कि जो तुम लोगों से अनुष्ठान किया हुआ यज्ञ है, वह सूर्य्य की किरणों के साथ रहकर अपने निरन्तर शुद्ध गुण से सब पदार्थों को पवित्र करता है तथा वह उसके द्वारा सब पदार्थों को सूर्य्य की किरणों से तेजवान् शुद्ध उत्तम रस वाले सुखकारक प्रसन्नता का हेतु दृढ़ और यज्ञ कराने वाले पदार्थों को उत्पन्न कर के उनके भोजन, वस्त्र से शरीर की पुष्टि, बुद्धि और बल आदि शुद्ध गुणों को सम्पादन करके सब जीवों को सुख देता है॥३१॥

ईश्वर ने इस अध्याय में मनुष्यों को शुद्ध कर्म के अनुष्ठान दोष और शत्रुओं की निवृत्ति, यज्ञक्रिया के फल को जानने, अच्छी प्रकार पुरुषार्थ करने, विद्या के विस्तार करने, धर्म के अनुकूल प्रजा पालने, धर्म के अनुष्ठान में निर्भयता से स्थिर होने, सब के साथ मित्रता से वर्त्तने, वेदों से सब विद्याओं का ग्रहण करने और कराने को शुद्धि तथा परोपकार के लिये प्रयत्न करने को आज्ञा दी है, सो यह सब मनुष्यों को अनुष्ठान करने के योग्य है॥३१॥

॥इति प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

॥ओ३म्॥

अथ द्वितीयाध्यायारम्भः

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव। यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व॥ यजु० ३०.३॥

ईश्वरेणैतत् सर्वमाद्येऽध्याये विधायेदानीं द्वितीयेऽध्याये प्राणिनां सुखायोक्तार्थस्य सिद्धिं कर्त्तुं विशिष्टा विद्याः प्रकाश्यन्ते॥

कृष्णोऽसीत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः। यज्ञो देवता। निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

तत्रादौ वेद्यादिरचनमुपदिश्यते॥

अब दूसरे अध्याय में परमेश्वर ने उन विद्याओं की सिद्धि करने के लिये विशेष विद्याओं का प्रकाश किया है कि जो-जो प्रथम अध्याय में प्राणियों के सुख के लिये प्रकाशित की हैं। उन में से वेद आदि पदार्थों के बनाने को हस्तक्रियाओं के सहित विद्याओं के प्रकार प्रकाशित किये हैं, उन में से प्रथम मन्त्र में यज्ञ सिद्ध करने के लिये साधन अर्थात् उनकी सिद्धि के निमित्त कहे हैं।

कृ॒ष्णो॑ऽस्याखरे॒ष्ठो॒ऽग्नये॑ त्वा॒ जुष्टं॒ प्रोक्षा॑मि॒ वेदि॑रसि ब॒र्हिषे॑ त्वा॒ जुष्टां॒ प्रोक्षा॑मि ब॒र्हिर॑सि स्रु॒ग्भ्यस्त्वा॒ जुष्टं॒ प्रोक्षा॒मि॥ १॥

कृ॒ष्णः॑। अ॒सि॒। आ॒ख॒रे॒ष्ठः। आ॒ख॒रे॒स्थ इत्या॑खरे॒ऽस्थः। अ॒ग्नये॑। त्वा॒। जुष्ट॑म्। प्र। उ॒क्षा॒मि॒। वेदिः॑। अ॒सि॒। ब॒र्हिषे॑। त्वा॒। जुष्टा॑म्। प्र। उ॒क्षा॒मि॒। ब॒र्हिः। अ॒सि॒। स्रु॒ग्भ्य इति स्रु॒क्ऽभ्यः। त्वा॒। जुष्ट॑म्। प्र। उ॒क्षा॒मि॒॥ १॥

पदार्थः-(**कृष्णः**) अग्निना छिन्नो वायुनाऽकर्षितो यज्ञः (**असि**) भवति। अत्र सर्वत्र व्यत्ययः (**आखरेष्ठः**) समन्तात् खनति यं तस्मिन् तिष्ठतीति सः। **खनोडडरेकेकवकाः** (अष्टा०३.३.१२५) अनेन वार्तिकेनाऽऽखरः सिध्यति (**अग्नये**) हवनार्थाय (**त्वा**) तद्धविः (**जुष्टम्**) प्रीत्या संशोधितम् (**प्रोक्षामि**) शोधितेन घृतादिनाऽऽर्द्रीकरोमि (**वेदिः**) विन्दति सुखान्यनया सा (**असि**) भवति (**बर्हिषे**) अन्तरिक्षगमनाय। **बर्हिरित्यन्तरिक्षनामसु पठितम्** (निघं०१.३) (**त्वा**) तां वेदिम् (**जुष्टाम्**) प्रीत्या संपादिताम् (**प्रोक्षामि**) प्रकृष्टतया घृतादिना सिञ्चामि (**बर्हिः**) शुद्धमुदकम्। **बर्हिरित्युदकनामसु पठितम्** (निघं०१.१२) (**असि**) भवति (**स्रुग्भ्यः**) स्रावयन्ति गमयन्ति हविर्यैर्भ्यस्तेभ्यः। अत्र स्रु गतावित्यस्मात्। **चिक् च** (उणा०२.६१) अनेन चिक् प्रत्ययः (**त्वा**) तत् (**जुष्टम्**) पुष्ट्यादिगुणयुक्तं जलं पवनं वा (**प्रोक्षामि**) शोधयामि॥ अयं मन्त्रः (शत०(१.३.३.१-३) व्याख्यातः॥१॥

अन्वयः-यतोऽयं यज्ञ आखरेष्ठः कृष्णो [ऽसि] भवति तस्मात् त्वा तमहमग्नये जुष्टं प्रोक्षामि। यत इयं वेदिरन्तरिक्षस्थासि भवति, तस्मादहं त्वा तामिमां बर्हिषे जुष्टां प्रोक्षामि। यत इदं बर्हिरुदकमन्तरिक्षस्थं सच्छुद्धिकारि **[असि]** भवति, तस्मात् त्वा तच्छोधितं जुष्टं हविः स्रुग्भ्योऽहं प्रोक्षामि॥१॥

भावार्थः-ईश्वर उपदिशति सर्वैर्मनुष्यैर्वेदिं रचयित्वा पात्रादिसामग्रीं गृहीत्वा सम्यक् शोधयित्वा तद्धविरग्नौ हुत्वा कृतो यज्ञः शुद्धेन वृष्टिजलेन सर्वा ओषधीः पोषयति। तेन सर्वे प्राणिनो नित्यं सुखयितव्या इति॥१॥

पदार्थ:-जिस कारण यह यज्ञ **(आखरेष्ठ:)** वेदी की रचना से खुदे हुए स्थान में स्थिर होकर **(कृष्ण:)** भौतिक अग्नि से छिन्न अर्थात् सूक्ष्मरूप और पवन के गुणों से आकर्षण को प्राप्त **(असि)** होता है, इससे मैं **(अग्नये)** भौतिक अग्नि के बीच में हवन करने के लिये **(जुष्टम्)** प्रीति के साथ शुद्ध किये हुए **(त्वा)** उस यज्ञ अर्थात् होम की सामग्री को **(प्रोक्षामि)** घी आदि पदार्थों से सींचकर शुद्ध करता हूं और जिस कारण यह **(वेदि:)** वेदी अन्तरिक्ष में स्थित **(असि)** होती है, इससे मैं **(बर्हिषे)** होम किये हुए पदार्थों को अन्तरिक्ष में पहुंचाने के लिये **(जुष्टाम्)** प्रीति से सम्पादन की हुई **(त्वा)** उस वेदि को **(प्रोक्षामि)** अच्छे प्रकार घी आदि पदार्थों से सींचता हूं तथा जिस कारण यह **(बर्हि:)** जल अन्तरिक्ष में स्थिर होकर पदार्थों की शुद्धि कराने वाला **(असि)** होता है, इससे **(त्वा)** उसकी शुद्धि के लिये जो कि शुद्ध किया हुआ **(जुष्टम्)** पुष्टि आदि गुणों को उत्पन्न करनेहारा हवि है, उसको मैं **(स्रुग्भ्य:)** स्रुवा आदि साधनों से अग्नि में डालने के लिये **(प्रोक्षामि)** शुद्ध करता हूं॥१॥

भावार्थ:-ईश्वर उपदेश करता है कि सब मनुष्यों को वेदी बनाकर और पात्र आदि होम की सामग्री ले के उस हवि को अच्छी प्रकार शुद्ध कर तथा अग्नि में होम कर के किया हुआ यज्ञ वर्षा के शुद्ध जल से सब ओषधियों को पुष्ट करता है, उस यज्ञ के अनुष्ठान से सब प्राणियों को नित्य सुख देना मनुष्यों का परम धर्म है॥१॥

अदित्या इत्यस्य ऋषि: स एव। यज्ञो देवता। स्वराड्जगती छन्द:। निषाद: स्वर:॥

एवं कृतो यज्ञ: किंहेतुको भवतीत्युपदिश्यते॥

इस प्रकार किया हुआ यज्ञ क्या सिद्ध करने वाला होता है, सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है॥

अदि॑त्यै व्युन्द॑नमसि॒ विष्णो॑ स्तु॒पो॒ऽस्यूर्ण॑म्रदसं त्वा स्तृणामि स्वासस्थां॑ दे॒वेभ्यो॒ भुव॑पतये॒ स्वाहा॒ भुव॑नपतये॒ स्वाहा॑ भू॒तानां॒ पत॑ये॒ स्वाहा॑॥ २॥

अदि॑त्यै। व्युन्द॑न॒मिति॑। वि॒ऽउन्द॑नम्। अ॒सि॒। विष्णो॑:। स्तु॒प:। अ॒सि॒। ऊर्ण॑म्रदस॒मित्यूर्ण॑ऽम्रदसम्। त्वा॒। स्तृ॒णा॒मि॒। स्वा॒स॒स्थामिति॑ सु॒ऽआ॒स॒स्थाम्। दे॒वेभ्य॑:। भुव॑पतय॒ इति॒ भुव॑ऽपतये। स्वाहा॑। भुव॑नपतय॒ इति॒ भुव॑नऽपतये। स्वाहा॑। भू॒ताना॑म्। पत॑ये स्वाहा॑॥ २॥

पदार्थ:-**(अदित्यै)** पृथिव्या:। अत्र **'चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि'** (अष्टा०२.३.६२) इति षष्ठ्यर्थे चतुर्थी **(व्युन्दनम्)** विविधानामोषध्यादीनामुन्दनं क्लेदनं येन तत् **(असि)** भवति। अत्र सर्वत्र व्यत्यय: **(विष्णो:)** यज्ञस्य **(स्तुप:)** शिखा। **यज्ञो वै विष्णुस्तस्येयमेव शिखा स्तुप:** (शत०१.३.३.५) **(असि)** अस्ति **(ऊर्णम्रदसम्)** ऊर्णानि धान्याच्छादनानि तुषाणि म्रदयति येन तं पाषाणमयम् **(त्वा)** तम् **(स्तृणामि)** आच्छादयामि **(स्वासस्थाम्)** सुष्ठु आसा: प्रक्षिप्तास्तिष्ठन्ति यस्यां सा वेदिस्ताम्। अत्र **घञर्थे कविधानम्** (अष्टा०३.३.५८) इति वार्त्तिकेन क: प्रत्यय: **(देवेभ्य:)** विद्वद्भ्यो दिव्यसुखेभ्यो वा **(भुवपतये)** भवन्त्युत्पद्यन्ते भूतानि यस्मिन् संसारे तस्य पतिस्तस्मै जगदीश्वराय। आहवनीयाख्याग्नये वा। अत्र बाहुलकाद् भूधातोरौणादिक: क: प्रत्यय: **(स्वाहा)** सत्यभाषणयुक्ता वाक्। **स्वाहेति वाङ्नामसु पठितम्** (निघं०१.११) स्वाहाशब्दस्यार्थं निरुक्तकार एवं समाचष्टे। **स्वाहाकृतय: स्वाहेत्येतत् सु आहेति वा, स्वा वागाहेति, वा स्वं प्राहेति वा, स्वाहुतं हविर्जुहोतीति वा** (निरु०८.२०) यत् शोभनं वचनं सत्यकथनं स्वपदार्थान् प्रति ममत्ववचो मन्त्रोच्चारणेन हवनं चेति स्वाहाशब्दार्था विज्ञेया: **(भुवनपतये)**

भुवनानां सर्वेषां लोकानां पतिः। पालक ईश्वरः। पालनहेतुर्भौतिको वा तस्मै **(स्वाहा)** उक्तार्थः **(भूतानां पतये)** भूतान्युत्पन्नानि यावन्ति वस्तूनि सन्ति तेषां यः पतिः स्वामीश्वर ऐश्वर्य्यहेतुर्भौतिको वा तस्मै **(स्वाहा)** उक्तार्थः। अयं मन्त्रः (शत०(१.३.३.४-२०) व्याख्यातः॥२॥

अन्वयः-यतोऽयं विष्णुर्यज्ञोऽदित्या व्युन्दनकार्य्यसि भवति, तस्मात् तमहमनुतिष्ठामि। अस्य विष्णोर्यज्ञस्य स्तुपः प्रस्तर उलूखलाख्यः साधकोऽस्यस्ति, तस्मात् तमहमूर्णम्रदसं स्तृणामि। वेदिर्देवेभ्यो हितासि भवति, तस्मात् तामहं स्वासस्थां रचयामि। कस्मै प्रयोजनायेत्यत्राह। यतोऽयं भुवपतिर्भुवनपतिर्भूतानां पतिरीश्वरः प्रसन्नो भवति, भौतिको वा। सुखसाधको भवति, तस्मै भुवपतये स्वाहा विधेया, भुवनपतये स्वाहा वाच्या, भूतानां च पतये स्वाहा प्रयोज्या भवतीत्यस्मै प्रयोजनाय॥२॥

भावार्थः-ईश्वरः सर्वमनुष्येभ्य इदमुपदिशति युष्माभिर्वेद्यादीनि यज्ञसाधनानि सम्पाद्य सर्वप्राणिनां सुखाय परमेश्वरप्रीतये च सम्यक् क्रियायज्ञः कार्य्यः। सदैव सत्यमेव वाच्यम्। यथाऽहं न्यायेन सर्वं विश्वं पालयामि, तथैव युष्माभिरपि पक्षपातं विहाय सर्वेषां पालनेन सुखं सम्पादनीयमिति॥२॥

पदार्थः-जिस कारण यह यज्ञ **(अदित्यै)** पृथिवी के **(व्युन्दनम्)** विविध प्रकार के ओषधि आदि पदार्थों का सींचने वाला **(असि)** होता है, इससे मैं उसका अनुष्ठान करता हूं और **(विष्णोः)** इस यज्ञ की सिद्धि कराने हारा **(स्तुपः)** शिखारूप **(ऊर्णम्रदसम्)** उलूखल **(असि)** है, इससे मैं **(त्वा)** उस अन्न के छिलके दूर करने वाले पत्थर और उलूखल को **(स्तृणामि)** पदार्थों से ढाँपता हूं तथा वेदी **(देवेभ्यः)** विद्वान् और दिव्य सुखों के हित कराने के लिये **(असि)** होती है, इससे उसको मैं **(स्वासस्थाम्)** ऐसी बनाता हूं कि जिसमें होम किये हुए पदार्थ अच्छी प्रकार स्थिर हों और जिससे संसार का पति, भुवन अर्थात् लोकलोकान्तरों का पति, संसारी पदार्थों का स्वामी और परमेश्वर प्रसन्न होता है तथा भौतिक अग्नि सुखों का सिद्ध कराने वाला होता है, इस कारण **(भुवपतये स्वाहा)**, **(भुवनपतये स्वाहा)**, **(भूतानां पतये स्वाहा)** उक्त परमेश्वर की प्रसन्नता और आज्ञापालन के लिये उस वेदी के गुणों से जो कि सत्यभाषण अर्थात् अपने पदार्थों को मेरे हैं, यह कहना वा श्रेष्ठवाक्य आदि उत्तम वाणीयुक्त वेद हैं, उसके मन्त्रों के साथ स्वाहा शब्द का अनेक प्रकार उच्चारण करके यज्ञ आदि श्रेष्ठ कर्मों का विधान किया जाता है, इस प्रयोजन के लिये भी वेदी को रचता हूं॥२॥

भावार्थः-परमेश्वर सब मनुष्यों के लिये उपदेश करता है कि हे मनुष्यो! तुमको वेदी आदि यज्ञ के साधनों का सम्पादन करके सब प्राणियों के सुख तथा परमेश्वर की प्रसन्नता के लिये अच्छी प्रकार क्रियायुक्त यज्ञ करना और सदा सत्य ही बोलना चाहिये और जैसे मैं न्याय से सब विश्व का पालन करता हूं, वैसे ही तुम लोगों को भी पक्षपात छोड़कर सब प्राणियों के पालन से सुख सम्पादन करना चाहिये॥२॥

गन्धर्वस्त्वेत्यस्य ऋषिः स एव। अग्निर्देवता सर्वस्य। आद्यस्य भुरिगार्ची त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। मध्यभागस्य[भुरिग्]आर्चीपङ्क्तिश्छन्दः। अन्त्यस्य पङ्क्तिश्छन्दः। उभयत्र पञ्चमः स्वरः॥

स यज्ञोऽग्न्यादिभिर्धार्य्यत इत्युपदिश्यते॥

उक्त यज्ञ अग्नि आदि पदार्थों से धारण किया जाता है सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है॥

गन्धर्वस्त्वा विश्वावसुः परिदधातु विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिडऽईडितः। इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणो विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिडऽईडितः। मित्रावरुणौ त्वोत्तरतः परिधत्तां ध्रुवेण धर्मणा विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिडऽईडितः॥ ३॥

गन्धर्वः। त्वा। विश्वावसुः। विश्ववसुरिति विश्वऽवसुः। परि। दधातु। विश्वस्य। अरिष्ट्यै। यजमानस्य। परिधिरिति परिऽधिः। असि। अग्निः। इडः। ईडितः। इन्द्रस्य। बाहुः। असि। दक्षिणः। विश्वस्य। अरिष्ट्यै। यजमानस्य। परिधिरिति परिऽधिः। असि। अग्निः। इडः। ईडितः। मित्रावरुणौ। त्वा। उत्तरतः। परि। धत्ताम्। ध्रुवेण। धर्मणा। विश्वस्य। अरिष्ट्यै। यजमानस्य। परिधिरिति परिऽधिः। असि। अग्निः। इडः। ईडितः॥ ३॥

पदार्थः-(गन्धर्वः) यो गां पृथिवीं वाणीं वा धरति धारयति वा स गन्धर्वः सूर्य्यलोकः **(त्वा)** तम् **(विश्वावसुः)** विश्वं वासयति यः सः **(परि)** सर्वतोभावे **(दधातु)** दधाति वा। अत्र लडर्थे लोट् **(विश्वस्य)** सर्वस्य जगतः **(अरिष्ट्यै)** दुःखनिवारणेन सुखाय **(यजमानस्य)** यज्ञानुष्ठातुः **(परिधिः)** परितः सर्वतः सर्वाणि वस्तूनि धीयन्ते येन सः **(असि)** भवति। अत्र चतुर्षु प्रयोगेषु पुरुषव्यत्ययः **(अग्निः) (इडः)** स्तोतुमर्हः। अत्र वर्णव्यत्ययेन ह्रस्वादेशः **(ईडितः)** स्तुतः **(इन्द्रस्य)** सूर्य्यस्य **(बाहुः)** बलं बलकारी वा **(असि)** अस्ति **(दक्षिणः)** वृष्टेः प्रापकः। दक्षधातोर्गत्यर्थत्वादत्र प्राप्त्यर्थो गृह्यते **(विश्वस्य)** सर्वप्राणिसमूहस्य। **(अरिष्ट्यै)** सुखाय **(यजमानस्य)** शिल्पविद्यां चिकीर्षोः **(परिधिः)** विद्यापरिधानम् **(असि)** भवति **(अग्निः)** विद्युत् **(इडः)** दाहप्रकाशादिगुणाधिक्येन स्तोतुमर्हः **(ईडितः)** अध्येषितः। **(मित्रावरुणौ)** विश्वस्य प्राणापानौ। **प्राणो वै मित्रोऽपानो वरुणः।** (शत०८.२.४.६) **(त्वा)** तम् **(उत्तरतः)** उत्तरकाले **(परिधत्ताम्)** सर्वतो धारयतो वा। अत्र लडर्थे लोट् **(ध्रुवेण)** निश्चलेन **(धर्मणा)** स्वाभाविकधारणशक्त्या **(विश्वस्य)** चराचरस्य **(अरिष्ट्यै)** सुखहेतवे **(यजमानस्य)** सर्वमित्रस्य **(परिधिः)** सर्वविद्यावधिः **(अग्निः)** प्रत्यक्षो भौतिकः **(इडः)** विद्याप्राप्तये स्तोतुमर्हः **(ईडितः)** विद्यामीप्सुभिः सम्यगध्येषितव्यः। अयं मन्त्रः (शत०(१.३.४.१-५) व्याख्यातः॥ ३॥

अन्वयः-विद्वद्भिर्योऽयं गन्धर्वो विश्वावसुरिडोऽग्निरीडितोऽस्यस्ति, स विश्वस्य यजमानस्य चारिष्ट्यै यज्ञं परिदधाति, तस्मात् [त्वा] विद्यासिद्ध्यर्थं मनुष्यो यथावत् परिदधातु। विदुषा यो वायुरिन्द्रस्य बाहुर्दक्षिणः परिधिरिड ईडितोऽग्निश्चास्यस्ति, स सम्यक् प्रयोजितो यजमानस्य विश्वस्यारिष्ट्यै [असि] भवति। यौ ब्रह्माण्डस्थौ गमनागमनशीलौ मित्रावरुणौ प्राणापानौ स्तस्तौ ध्रुवेण धर्मणोत्तरतो विश्वस्य यजमानस्यारिष्ट्यै तं यज्ञं परिधत्तां सर्वतो धारयतः। यो विद्वद्भिरिडः परिधिरीडितोऽग्निर्विद्युदस्ति, सोऽपीमं यज्ञं सर्वतः परिदधात्येतान् मनुष्यो यथागुणं सम्यग् दधातु॥ ३॥

भावार्थः-ईश्वरेण यः सूर्य्यविद्युत्प्रत्यक्षरूपेण त्रिविधोऽग्निर्निर्मितः, स मनुष्यैर्विद्यया सम्यग्योजितः सन् बहूनि कार्य्याणि साधयतीति॥ ३॥

पदार्थः-विद्वान् लोगों ने जिस **(गन्धर्वः)** पृथिवी वा वाणी के धारण करने वाले **(विश्वावसुः)** विश्व को बसाने वाले [**(परिधिः)** सब ओर से सब वस्तुओं को धारण करने वाले] **(इडः)** स्तुति करने योग्य **(अग्निः)** सूर्य्यरूप अग्नि की **(ईडितः)** स्तुति **(असि)** की है, जो **(विश्वस्य)** संसार के वा विशेष करके **(यजमानस्य)** यज्ञ करने वाले विद्वान् के **(अरिष्ट्यै)** दुःखनिवारण से सुख के लिये इस यज्ञ को **(परिदधातु)** धारण करता है, इससे

विद्वान् **[त्वा]** उसको विद्या की सिद्धि के लिये **(परिदधातु)** धारण करे और विद्वानों से जो वायु **(इन्द्रस्य)** सूर्य्य का **(बाहुः)** बल और **(दक्षिणः)** वर्षा की प्राप्ति कराने अथवा **(परिधिः)** शिल्पविद्या का धारण कराने वाला तथा **(इडः)** दाह प्रकाश आदि गुणवाला होने से स्तुति के योग्य **(ईडितः)** खोजा हुआ और **(अग्निः)** प्रत्यक्ष अग्नि **(असि)** है। वे वायु वा अग्नि अच्छी प्रकार शिल्पविद्या में युक्त किये हुए **(यजमानस्य)** शिल्पविद्या के चाहने वाले वा **(विश्वस्य)** सब प्राणियों के **(अरिष्ट्यै)** सुख के लिये **(असि)** होते हैं और जो ब्रह्माण्ड में रहने और गमन वा आगमन स्वभाव वाले **(मित्रावरुणौ)** प्राण और अपान वायु हैं, वे **(ध्रुवेण)** निश्चल **(धर्मणा)** अपनी धारण शक्ति से **(उत्तरतः)** पूर्वोक्त वायु और अग्नि से उत्तर अर्थात् उपरान्त समय में **(विश्वस्य)** चराचर जगत् वा **(यजमानस्य)** सब से मित्रभाव में वर्त्तने वाले सज्जन पुरुष के **(अरिष्ट्यै)** सुख के हेतु **(त्वा)** उस पूर्वोक्त यज्ञ को **(परिधत्ताम्)** सब प्रकार से धारण करते हैं तथा जो विद्वानों से **(इडः)** विद्या की प्राप्ति के लिये प्रशंसा करने के योग्य और **(परिधिः)** सब शिल्पविद्या की सिद्धि की अवधि तथा **(ईडितः)** विद्या की इच्छा करने वालों से प्रशंसा को प्राप्त **(अग्निः)** बिजुलीरूप अग्नि **(असि)** है, वह भी इस यज्ञ को सब प्रकार से धारण करता है। इन के गुणों को मनुष्य यथावत् जान के उपयोग करे॥३॥

भावार्थः-ईश्वर ने जो सूर्य्य, विद्युत् और प्रत्यक्ष रूप से तीन प्रकार का अग्नि रचा है, वह विद्वानों से शिल्पविद्या के द्वारा यन्त्रादिकों में अच्छी प्रकार युक्त किया हुआ अनेक कार्य्यों को सिद्ध करने वाला होता है॥३॥

वीतिहोत्रमित्यस्य ऋषिः स एव। अग्निर्देवता। निचृद् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अथाग्निशब्देनोभावार्थावुपदिश्येते॥

अब अग्नि शब्द से अगले मन्त्र में उक्त दो अर्थों का प्रकाश किया है॥४॥

वी॒तिहो॑त्रं त्वा कवे द्यु॒मन्त॒ꣳ समि॑धीमहि। अग्ने॑ बृ॒हन्त॑मध्व॒रे॥४॥

वी॒तिहो॑त्र॒मिति॑ वी॒तिऽहो॑त्रम्। त्वा॒। क॒वे॒। द्यु॒मन्त॒मिति॑ द्यु॒ऽमन्त॒म्। सम्। इ॒धी॒म॒हि॒। अग्ने॑। बृ॒हन्त॑म्। अ॒ध्व॒रे॥४॥

पदार्थः-**(वीतिहोत्रम्)** वीतयो विज्ञापिता होत्राख्या यज्ञा येनेश्वरेण। यद्वा वीतयः प्राप्तिहेतवो होत्राख्या यज्ञक्रिया भवन्ति यस्मात्, तं परमेश्वरं भौतिकं वा। **'वी गतिव्याप्तिप्रजनकान्त्यसनखादनेषु'** इत्यस्य रूपम् **(त्वा)** त्वां तं वा। अत्र पक्षे व्यत्ययः **(कवे)** सर्वज्ञ क्रान्तप्रज्ञ, कविं क्रान्तदर्शनं भौतिकं वा **(द्युमन्तम्)** द्यौर्बहुप्रकाशो विद्यते यस्मिँस्तम्। अत्र भूम्न्यर्थे मतुप् **(सम्)** सम्यगर्थे **(इधीमहि)** प्रकाशयेमहि। अत्र बहुलं छन्दसि [अष्टा०२.४.७३] इति श्नमो लुक् **(अग्ने)** ज्ञानस्वरूपेश्वर, प्राप्तिहेतुं भौतिकं वा **(बृहन्तम्)** सर्वेभ्यो महान्तं सुखवर्धकमीश्वरं बृहतां कार्य्याणां साधकं भौतिकं वा **(अध्वरे)** मित्रभावेऽहिंसनीये यज्ञे वा। अयं मन्त्रः (शत०(१.३.४.६.) व्याख्यातः॥४॥

अन्वयः-हे कवे अग्ने जगदीश्वर! वयमध्वरे बृहन्तं द्युमन्तं वीतिहोत्रं त्वां समिधीमहि॥ इत्येकः॥ वयमध्वरे वीतिहोत्रं द्युमन्तं बृहन्तं कवे कविं त्वा तमग्ने भौतिकमग्निं समिधीमहि॥ इति द्वितीयः॥४॥

भावार्थः-अत्र श्लेषालङ्कारः। यावन्ति क्रियासाधनानि क्रियया साध्यानि च वस्तूनि सन्ति, तानि सर्वाणीश्वरेणैव रचयित्वा ध्रियन्ते मनुष्यैस्तेषां सकाशात् गुणज्ञानक्रियाभ्यां बहव उपकाराः संग्राह्याः॥४॥

पदार्थः-हे **(कवे)** सर्वज्ञ तथा हर एक पदार्थ में अनुक्रम से विज्ञान वाले **(अग्ने)** ज्ञानस्वरूप परमेश्वर!

हम लोग **(अध्वरे)** मित्रभाव के रहने में **(बृहन्तम्)** सब के लिये बड़े से बड़े अपार सुख के बढ़ाने और **(द्युमन्तम्)** अत्यन्त प्रकाश वाले वा **(वीतिहोत्रम्)** अग्निहोत्र आदि यज्ञों को विदित कराने वाले **(त्वा)** आप को **(समिधीमहि)** अच्छी प्रकार प्रकाशित करें॥ यह इस मन्त्र का प्रथम अर्थ हुआ॥

हम लोग **(अध्वरे)** अहिंसनीय अर्थात् जो कभी परित्याग करने योग्य नहीं, उस उत्तम यज्ञ में जिसमें कि **(वीतिहोत्रम्)** पदार्थों की प्राप्ति कराने के हेतु अग्निहोत्र आदि क्रिया सिद्ध होती है और **(द्युमन्तम्)** अत्यन्त प्रचण्ड ज्वालायुक्त **(बृहन्तम्)** बड़े-बड़े कार्य्यों को सिद्ध कराने तथा **(कवे)** पदार्थों में अनुक्रम से दृष्टिगोचर होने वाले **(त्वा)** उस **(अग्ने)** भौतिक अग्नि को **(समिधीमहि)** अच्छी प्रकार प्रज्वलित करें॥ यह दूसरा अर्थ हुआ॥४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है-संसार में जितने क्रियाओं के साधन वा क्रियाओं से सिद्ध होने वाले पदार्थ हैं, उन सबों को ईश्वर ही ने रचकर अच्छी प्रकार धारण किया है। मनुष्यों को उचित है कि उनकी सहायता से, गुण, ज्ञान और उत्तम-उत्तम क्रियाओं की अनुकूलता से अनेक प्रकार के उपकार लेने चाहियें॥४॥

समिदसीत्यस्य ऋषिः स एव। यज्ञो देवता॥ निचृद्ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनस्तस्य यज्ञस्य साधकान्युपदिश्यन्ते॥

फिर उक्त यज्ञ के साधनों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

स॒मिद॑सि॒ सूर्य्य॑स्त्वा पु॒रस्ता॑त् पातु॒ कस्या॑श्चिद॒भिश॑स्त्यै। स॒वि॒तुर्बा॒हू स्थ॒ऽऊर्ण॑म्रदसं त्वा स्तृणामि स्वास॒स्थं दे॒वेभ्य॒ऽआ त्वा॒ वस॑वो रु॒द्राऽआ॑दि॒त्याः स॑दन्तु॥५॥

स॒मिदिति॑ स॒म्ऽइत्। अ॒सि॒। सूर्य्यः॑। त्वा॒। पु॒रस्ता॑त्। पा॒तु॒। कस्याः॑। चि॒त्। अ॒भिश॑स्त्या॒ इत्य॒भिऽश॑स्त्यै। स॒वि॒तुः। बा॒हूऽइति॑ बा॒हू। स्थ॒ः। उर्ण॑म्रदस॒मित्यूर्ण॑ऽम्रदसम्। त्वा॒। स्तृ॒णा॒मि॒। स्वा॒स॒स्थमिति॑ सुऽआ॒स॒स्थम्। दे॒वेभ्यः॑। आ। त्वा॒। वस॑वः। रु॒द्राः। आ॒दि॒त्याः स॒द॒न्तु॒॥५॥

पदार्थः-**(समित्)** सम्यगिध्यतेऽनयाऽनेन वा सा समिदग्निप्रदीपकं काष्ठादिकं, वसन्त ऋतुर्वा **(असि)** भवति। अत्र व्यत्ययः **(सूर्य्यः)** सुवत्यैश्वर्य्यहेतुर्भवति सोऽयं सूर्य्यलोकः **(त्वा)** तम् **(पुरस्तात्)** पूर्वस्मादिति पुरस्तात् **(पातु)** रक्षति। अत्र लडर्थे लोट् **(कस्याः)** कस्यै सर्वस्यै। अत्र **चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि** (अष्टा०२.३.६२) इति चतुर्थ्यर्थे षष्ठी **(चित्)** **चिदित्युपमार्थे** (निरु०१.४) **(अभिशस्त्यै)** आभिमुख्यायै स्तुतये। **'शंसु स्तुतौ'** इत्यस्य क्तिन् प्रत्ययान्तः प्रयोगः **(सवितुः)** सूर्य्यलोकस्य **(बाहू)** बलवीर्य्याख्यौ **(स्थः)** स्तः। अत्र व्यत्ययः **(ऊर्णम्रदसम्)** ऊर्णानि सुखाच्छादनानि म्रदयति येन तं यज्ञम् **(त्वा)** तम् **(स्तृणामि)** सामग्र्याऽऽच्छादयामि **(स्वासस्थम्)** शोभने आसे उपवेशने तिष्ठतीति तम् **(देवेभ्यः)** दिव्यगुणेभ्यः **(आ)** समन्तात् क्रियायोगे **(त्वा)** तम् **(वसवः)** अग्न्यादयोऽष्टौ **(रुद्राः)** प्राणापानव्यानोदानसमाननागकूर्मकृकलदेवदत्तधनञ्जयाख्या दश प्राणा एकादशो जीवश्चेत्येकादश रुद्राः **(आदित्याः)** द्वादशाः मासाः। कतमे वसव इति। **अग्निश्च पृथिवी च वायुश्चान्तरिक्षं चादित्यश्च द्यौश्च चन्द्रमाश्च नक्षत्राणि चैते वसव एतेषु हीदꣳ सर्वं वसु हितमेते हीदꣳ सर्वं वासयन्ते तद्यदिदꣳ सर्वं वासयन्ते तस्माद्वसव इति॥ कतमे रुद्रा इति॥ दशेमे पुरुषे प्राणा आत्मैकादशस्ते यदास्मान्मर्त्याच्छरीरादुत्क्रामन्त्यथ रोदयन्ति। तद्यद्रोदयन्ति तस्माद्रुद्रा इति। कतम आदित्या इति। द्वादश मासाः संवत्सरस्यैत आदित्या एते हीदꣳसर्वमाददाना यन्ति यद्यदिꣳसर्वमाददाना यन्ति तस्मादादित्या इति** (शत०१४.६.९.४-६) **(सदन्तु)**

अवस्थापयन्ति। **षद्लृ** इत्यस्य स्थाने **वा च्छन्दसि सर्वे विधयो भवन्ति** [अष्टा०१.४.९ भा०] इति सीदादेशाभावो लडर्थे लोट् च॥ अयं मन्त्र (शत०१.४.१.७-१२) व्याख्यात:॥५॥

अन्वय:-चित् यथा कश्चिन्मर्त्य: सुखार्थं क्रियासिद्धानि द्रव्याणि रक्षित्वाऽऽनन्दयते, तथैव योऽयं यज्ञ: समिदसि भवति [त्वा] तं सूर्य्य: कस्या अभिशस्त्यै पुरस्तात् पातु पाति, यौ सवितुर्बाहू स्थ: स्तो यो याभ्यां नित्यं विस्तार्य्यते [त्वा] तमूर्णम्रदसं स्वासस्थं यज्ञं वसवो रुद्रा आदित्या: सदन्त्ववस्थापयन्ति प्रापयन्ति [त्वा] तं यज्ञमहमपि सुखाय देवेभ्य आस्तृणामि॥५॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। ईश्वर सर्वेभ्य इदमुपदिशति-मनुष्यैर्वसुरुद्रादित्याख्येभ्यो यद्यदुपकर्तुं शक्यं तत्तत्सर्वस्याभिरक्षणाय नित्यमनुष्ठेयम्। योऽग्नौ द्रव्याणां प्रक्षेप: क्रियते, स सूर्य्यं वायुं वा प्राप्नोति तावेव तत्पृथग्भूतं द्रव्यं रक्षित्वा पुन: पृथिवीं प्रति विमुञ्चत:। येन पृथिव्यां दिव्या ओषध्यादय: पदार्था जायन्ते, येन च प्राणिनां नित्यं सुखं भवति तस्मादेतत् सदैवानुष्ठेयमिति॥५॥

पदार्थ:-**(चित्)** जैसे कोई मनुष्य सुख के लिये क्रिया से सिद्ध किये पदार्थों की रक्षा करके आनन्द को प्राप्त होता है, वैसे ही यह यज्ञ **(समित्)** वसन्त ऋतु के समय के समान अच्छी प्रकार प्रकाशित **(असि)** होता है **(त्वा)** उसको **(सूर्य्य:)** ऐश्वर्य का हेतु सूर्य्यलोक **(कस्या:)** सब पदार्थों की **(अभिशस्त्यै)** प्रकटता करने के लिये **(पुरस्तात्)** पहिले ही से उनकी **(पातु)** रक्षा करने वाला होता है तथा जो कि **(सवितु:)** सूर्य्यलोक के **(बाहू)** बल और वीर्य्य **(स्थ:)** हैं, जिन से यह यज्ञ विस्तार को प्राप्त होता है **(त्वा)** उस **(ऊर्णम्रदसम्)** सुख के विघ्नों के नाश करने **(स्वासस्थम्)** और श्रेष्ठ अन्तरिक्षरूपी आसन में स्थित होने वाले यज्ञ को **(वसव:)** अग्नि आदि आठ वसु अर्थात् अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, सूर्य्य, प्रकाश, चन्द्रमा और तारागण ये वसु **(रुद्रा:)** प्राण, अपान, व्यान, उदान, नाग, कूर्म्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय और जीवात्मा, ये रुद्र **(आदित्या:)** बारह महीने **(सदन्तु)** प्राप्त करते हैं। **(त्वा)** उसी **(ऊर्णम्रदसम्)** अत्यन्त सुख बढ़ाने **(स्वासस्थम्)** और अन्तरिक्ष में स्थिर होने वाले यज्ञ को मैं भी सुख की प्राप्ति वा **(देवेभ्य:)** दिव्य गुणों को सिद्ध करने के लिये **(आस्तृणामि)** अच्छी प्रकार सामग्री से आच्छादित करके सिद्ध करता हूं॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है-ईश्वर सब मनुष्यों के लिये उपदेश करता है कि मनुष्यों को वसु, रुद्र और आदित्यसंज्ञक पदार्थों से जो-जो काम सिद्ध हो सकते हैं, सो-सो सब प्राणियों के पालन के निमित्त नित्य सेवन करने योग्य हैं। तथा अग्नि के बीच जिन-जिन पदार्थों का प्रक्षेप अर्थात् हवन किया जाता है, सो-सो सूर्य्य और वायु को प्राप्त होता है। वे ही उन अलग हुए पदार्थों की रक्षा करके फिर उन्हें पृथिवी में छोड़ देते हैं, जिससे कि पृथिवी में दिव्य ओषधि आदि पदार्थ उत्पन्न होते हैं। उनसे जीवों को नित्य सुख होता है, इस कारण सब मनुष्यों को इस यज्ञ का अनुष्ठान सदैव करना चाहिये॥५॥

घृताच्यसीत्यस्य ऋषि: स एव। विष्णुर्देवता सर्वस्य। षट्षष्टितमाक्षरपर्य्यतं ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्द:। अग्रे निचृत् त्रिष्टुप् छन्द:। सर्वस्य धैवत: स्वर:॥

स किं किं प्रियं सुखं साधयतीत्युपदिश्यते॥

फिर उक्त यज्ञ से क्या-क्या प्रिय सुख सिद्ध होता है, सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है॥

घृताच्य॑सि जु॒हूर्नाम्ना॒ सेदं प्रि॒येण॒ धाम्ना॑ प्रि॒यꣳ सद॒ऽआसी॑द घृताच्य॑स्युप॒भृन्नाम्ना॒ सेदं प्रि॒येण॒ धाम्ना॑ प्रि॒यꣳ सद॒ऽआसी॑द घृताच्य॑सि ध्रु॒वा नाम्ना॒ सेदं प्रि॒येण॒ धाम्ना॑ प्रि॒यꣳ सद॒ऽआसी॑द प्रि॒येण॒ धाम्ना॑ प्रि॒यꣳ सद॒ऽआसी॑द। ध्रु॒वाऽअ॑सदन्नृ॒तस्य॒ योनौ॒ ता वि॑ष्णो पाहि पा॒हि य॒ज्ञं पा॒हि य॒ज्ञप॑तिं पा॒हि मां य॑ज्ञ॒न्य॒म्॥६॥

घृ॒ताची॑। अ॒सि॒। जु॒हूः। नाम्ना॑। सा। इ॒दम्। प्रि॒येण॑। धाम्ना॑। प्रि॒यम्। सद॑ः। आ। सी॒द॒। घृ॒ताची॑। अ॒सि॒। उ॒प॒भृदित्यु॑प॒ऽभृत्। नाम्ना॑। सा। इ॒दम्। प्रि॒येण॑। धाम्ना॑। प्रि॒यम्। सद॑ः। आ। सी॒द॒। घृ॒ताची॑। अ॒सि॒। ध्रु॒वा। नाम्ना॑। सा। इ॒दम्। प्रि॒येण॑। धाम्ना॑। प्रि॒यम्। सद॑ः। आ। सी॒द॒। प्रि॒येण॑। धाम्ना॑। प्रि॒यम्। सद॑ः। आ। सी॒द॒। ध्रु॒वा। अ॒स॒द॒न्। ऋ॒तस्य॑। योनौ॑। ता। वि॒ष्णो॒ऽइति॑ विष्णो। पा॒हि। पा॒हि। य॒ज्ञम्। पा॒हि। य॒ज्ञप॑ति॒मिति॑ य॒ज्ञऽप॑तिम्। पा॒हि। माम्। य॒ज्ञ॒न्य॒मिति॑ यज्ञ॒ऽन्य॒म्॥६॥

पदार्थः-(**घृताची**) घृतमाज्यमञ्चति प्राप्नोत्यनयाऽऽदानक्रियया सा (**असि**) भवति। अत्र सर्वत्र व्यत्ययः (**जुहूः**) जुहोति ददाति हविरादत्ते सुखं चानया सा। '**हु दानादनयोः**' इत्यस्मात् '**हुवः श्लुवच्च**' (उणा०२.५९) अनेन क्विप् प्रत्ययो दीर्घादेशश्च (**नाम्ना**) प्रसिद्धेन (**सा**) पूर्वोक्ता (**इदम्**) प्रत्यक्षम् (**प्रियेण**) सुखैस्तर्पकेण कमनीयेन (**धाम्ना**) स्थानेन (**प्रियम्**) प्रीणाति सुखयति यत्तत् (**सदः**) सीदन्ति प्राप्नुवन्ति सुखानि यस्मिन् तद्गृहम् (**आ**) समन्तात् (**सीद**) सादयति। अत्रोभयत्र लडर्थे लोडन्तर्गतो ण्यर्थो व्यत्ययश्च (**घृताची**) या होमक्रिया घृतमुदकमञ्चति प्रापयति सा। **घृतमित्युदकनामसु पठितम्** (निघं०१.१२) (**असि**) अस्ति (**उपभृत्**) योपगतं बिभर्त्यनया हस्तक्रियया सा (**नाम्ना**) प्रख्यातेन (**सा**) पूर्वोक्ता (**इदम्**) ओषध्यादिकम् (**प्रियेण**) प्रीतिहेतुना (**धाम्ना**) स्थलेन (**प्रियम्**) प्रीतये सुखयत्यारोग्येन यत्तत् (**सदः**) सीदन्ति घ्नन्ति दुःखानि येन तदौषधसेवनं पथ्याचरणं च। अत्र सदिर्विशरणार्थः (**आ**) समन्तात् (**सीद**) प्रापयति (**घृताची**) घृतमायुर्निमित्तमञ्चति प्राप्नोत्यनया सुनियमाचरणक्रियया सा (**असि**) भवति (**ध्रुवा**) ध्रुवन्ति प्राप्नुवन्ति स्थिराणि सुखान्यनया विद्यया सा। '**ध्रु गतिस्थैर्य्ययोः**' इत्यस्य कप्रत्ययान्तः प्रयोगः। **कृतो बहुलम्** [अष्टा०३.३.११३] इति करणकारके (**नाम्ना**) प्रसिद्धेन (**सा**) उक्तार्था (**इदम्**) जीवनम् (**प्रियेण**) प्रीतिकरेण (**धाम्ना**) स्थित्यर्थेन (**प्रियम्**) आनन्दकरम् (**सदः**) वस्तु (**आ**) अभितः (**सीद**) सीदति गमयति। अत्रोभयत्र लडर्थे लोड् व्यत्ययश्च (**प्रियेण**) प्रीतिसाधकेन (**धाम्ना**) हृदयेन (**प्रियम्**) प्रीतिकरम् (**सदः**) सीदति जानाति येन तत् ज्ञानम् (**आ**) सर्वतः (**सीद**) सीदति प्राप्नोति (**ध्रुवा**) ध्रुवाणि निश्चलानि वस्तूनि। अत्र **शेश्छन्दसि बहुलम्** [अष्टा०६.१.७०] इति लोपः (**असदन्**) भवेयुः। अत्र लिङर्थे लङ्। '**वा छन्दसि सर्वे विधयो भवन्ति**' इति सीदादेशो न। (**ऋतस्य**) शुद्धस्य सत्यस्य (**योनौ**) यज्ञे। **यज्ञो वा ऋतस्य योनिः** (शत०१.३.४.१६) (**ता**) तानि। अत्रापि शेर्लोपः (**विष्णो**) व्यापकेश्वर (**पाहि**) रक्ष (**पाहि**) पालय (**यज्ञम्**) पूर्वोक्तं त्रिविधम् (**पाहि**) पालय (**यज्ञपतिम्**) यज्ञस्य पालकं यजमानम् (**पाहि**) रक्ष (**माम्**) होतारमध्वर्य्युमुद्गातारं ब्राह्मणं वा (**यज्ञन्यम्**) यज्ञं नयति प्रापयतीति यज्ञनीस्तम्। अत्र '**अमिपूर्वः**' (अष्टा०६.१.१०६) इत्यत्र '**वा छन्दसि**' इत्यनुवर्तनात् पूर्वरूपादेशो न भवति। अयं मन्त्रः (शत० (१.३.१.१३-१६) व्याख्यातः॥६॥

अन्वयः-या जुहूर्नाम्ना घृताच्यसि भवति सा यज्ञे प्रयुक्ता सती प्रियेण धाम्ना सह वर्त्तमानमिदं प्रियं सद

आसीद आसादयति। योपभृन्नाम्ना घृताच्यस्यस्ति, साऽथ यत्ते प्रयुक्ता सती प्रियेण धाम्नेदं प्रियं सद आसीद समन्तात् प्रापयति। या ध्रुवा नाम्ना घृताच्यसि भवति, सा सम्यक् स्थापिता सती प्रियेण धाम्नेदं प्रियं सद आसीद आगमयति। यथा क्रियया प्रियेण धाम्ना प्रियं सद आसीद समन्तात् प्राप्नोति। सा सर्वैर्नित्यं साध्या। हे विष्णो! यथेमानि ऋतस्य योनौ ध्रुवा ध्रुवाणि वस्तून्यसदन् भवेयुस्तथैवैतानि निरन्तरं पाहि, तथा कृपया यज्ञं पाहि। यज्ञन्यं यज्ञपतिं पाहि यज्ञन्यं मां च पाहि॥६॥

भावार्थः-यो यज्ञः पूर्वोक्ते मन्त्रे वसुरुद्रादित्यैः सिध्यति, स वायुजलशुद्धिद्वारा सर्वाणि स्थानानि सर्वाणि वस्तूनि च प्रियाणि निश्चलसुखसाधकानि ज्ञानवर्धकानि च करोति, तेषां वृद्धये रक्षणाय च सर्वैर्मनुष्यैर्व्यापकेश्वरस्य प्रार्थना सम्यक् पुरुषार्थश्च कर्त्तव्य इति॥६॥

पदार्थः-जो **[(नाम्ना)]** **(जुहूः)** हवि अग्नि में डालने के लिये सुख की उत्पन्न करने वाली **(घृताची)** घृत को प्राप्त कराने वाली आदान क्रिया **(असि)** है **(सा)** वह यज्ञ में युक्त की हुई सार ग्रहण की क्रिया है सो **(प्रियेण)** सुखों से तृप्त करने वाला शोभायमान **(धाम्ना)** स्थान के साथ वर्त्तमान होके **(इदम्)** यह **(प्रियम्)** जिस में तृप्त करने वाले **(सदः)** उत्तम-उत्तम सुखों को प्राप्त होते हैं, उन को **(आसीद)** सिद्ध करती है। जो **(नाम्ना)** प्रसिद्धि से **(उपभृत)** समीप प्राप्त हुए पदार्थों को धारण करने तथा **(घृताची)** जल को प्राप्त कराने वाली हस्तक्रिया **(असि)** है **(सा)** वह यज्ञ में युक्त की हुई **(प्रियेण)** प्रीति के हेतु **(धाम्ना)** स्थल से **(इदम्)** यह ओषधि आदि पदार्थों का समूह **(प्रियम्)** जो कि आरोग्यपूर्वक सुखदायक और **(सदः)** दुःखों का नाश करने वाला है, उस को **(आसीद)** अच्छी प्रकार प्राप्त कराती है तथा जो **[(नाम्ना)]** **(ध्रुवा)** स्थिर सुखों वा **(घृताची)** आयु के निमित्त की देने वाली विद्या **(असि)** होती है **(सा)** वह अच्छी प्रकार उत्तम कार्यों में युक्त की हुई **(प्रियेण)** प्रीति उत्पन्न करने वाले **[धाम्ना]** स्थिरता के निमित्त से **(इदम्)** इस **(प्रियम्)** आनन्द कराने वाले जीवन वा **(सदः)** वस्तुओं को **(आसीद)** प्राप्त करती है। जिस क्रिया करके **(प्रियेण)** प्रसन्नता के करने हारे **(धाम्ना)** हृदय से **(प्रियम्)** प्रसन्नता करने वाला **(सदः)** ज्ञान **(आसीद)** अच्छी प्रकार प्राप्त होता है, **(सा)** वह विज्ञानरीति सब को नित्य सिद्ध करनी चाहिये। हे **(विष्णो)** व्यापकेश्वर! जैसे जो-जो **(ऋतस्य योनौ)** शुद्ध यज्ञ में **(ध्रुवा)** स्थिर वस्तु **(असदन्)** हो सके, वैसे ही **[ता]** उनकी निरन्तर **(पाहि)** रक्षा कीजिये तथा कृपा कर के **[(यज्ञम्)]** यज्ञ की **(पाहि)** रक्षा कीजिये **(यज्ञन्यम्)** यज्ञ प्राप्त करने **(यज्ञपतिम्)** यज्ञ को पालन करने हारे यजमान की **(पाहि)** रक्षा करो और यज्ञ को प्रकाशित करने वाले **(माम्)** मुझे **(च)** भी **(पाहि)** पालिये॥६॥

भावार्थः-जो यज्ञ पूर्वोक्त मन्त्र में वसु, रुद्र और आदित्य से सिद्ध होने के लिये कहा है, वह वायु और जल की शुद्धि के द्वारा सब स्थान और सब वस्तुओं को प्रीति कराने हारे उत्तम सुख को बढ़ाने वाले कर देता है, सब मनुष्यों को उनकी वृद्धि वा रक्षा के लिये व्यापक ईश्वर की प्रार्थना और सदा अच्छी प्रकार पुरुषार्थ करना चाहिये॥६॥

अग्ने वाजजिदित्यस्य ऋषिः स एव। अग्निर्देवता। बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनः स यज्ञः कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह यज्ञ कैसा है, सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है॥

अग्ने वाजजिद् वाजं त्वा सरिष्यन्तं वाजजितꣳ सम्मार्ज्मि।
नमो देवेभ्यः स्वधा पितृभ्यः सुयमे मे भूयास्तम्॥७॥

अग्ने। वाजजिदिति वाजऽजित्। वाजम्। त्वा। सरिष्यन्तम्। वाजजितमिति वाजऽजितम्। सम्। मार्ज्मि। नमः। देवेभ्यः। स्वधा। पितृभ्य इति पितृऽभ्यः। सुयमेऽइति सुऽयमे। मे। भूयास्तम्॥७॥

पदार्थः-(**अग्ने**) अग्निर्भौतिकः (**वाजजित्**) वाजमन्नं जयति येन सः। **वाज इत्यन्ननामसु पठितम्** (निघं०२.७) अत्रोभयत्र **कृतो बहुलम्** [अष्टा०३.३.११३ भा०वा०] इति करणे क्विप् (**वाजम्**) वेगवन्तम् (**त्वा**) तम् (**सरिष्यन्तम्**) सर्वान् पदार्थानन्तरिक्षं गमयिष्यन्तम् (**वाजजितम्**) वाजं युद्धं जयति येन तम् (**सम्**) सम्यगर्थे (**मार्ज्मि**) मार्ष्टि वा, अत्र पक्षे पुरुषव्यत्ययः (**नमः**) अमृतात्मकं जलम्। **नम इत्युदकनामसु पठितम्** (निघं०१.१२) (**देवेभ्यः**) दिव्यसुखकारकेभ्यः पूर्वोक्तेभ्यो वस्वादिभ्यः (**स्वधा**) अमृतात्मकमन्नम्। **स्वधेत्यन्ननामसु पठितम्** (निघं०२.७) स्वं स्वकीयं सुखं दधात्यनया सा (**पितृभ्यः**) पालनहेतुभ्य ऋतुभ्यः। **ऋतवो वै पितरः** (शत०२.५.२.३२) (**सु**) शोभनेऽर्थे (**यमे**) यच्छन्ति बलपराक्रमौ याभ्यां ते (**मे**) मम (**भूयास्तम्**) भूयास्ताम्। अत्र व्यत्ययः॥ अयं मन्त्रः (शत०(१.३.६.१४.१५) व्याख्यातः॥७॥

अन्वयः-यतोऽयम् [ग्नेऽ] ग्निर्वाजजिद् भूत्वा सर्वान् पदार्थान् संमार्ष्टि, तस्मात् [त्वा] तमहं वाजं सरिष्यन्तं वाजजितं संमार्ज्मि, येन यज्ञेन प्रयुक्तेनाग्निना देवेभ्यो नमः पितृभ्यः स्वधा सुयमे भवतस्तेनैते मे मम सुयमे भूयास्तं भूयास्ताम्॥७॥

भावार्थः-ईश्वर उपदिशति-मनुष्यैर्यः पूर्वमन्त्रोक्तोऽग्निः [सः] यज्ञस्य मुख्यसाधनः कर्त्तव्यः। कुतः? अग्नेरूर्ध्वगमनशीलेन सर्वपदार्थछेदकत्वाच्च। यानास्त्रेषु सम्यक् प्रयुक्तः शीघ्रगमनविजयहेतुः सन्नृतुभिर्दिव्यान् पदार्थान् सम्पाद्य शुद्धे सुखप्रापके अन्नजले करोतीति विज्ञातव्यम्॥७॥

पदार्थः-जिससे यह (**अग्ने**) अग्नि (**वाजजित्**) अर्थात् जो उत्कृष्ट अन्न को प्राप्त कराने वाला होके सब पदार्थों को शुद्ध करता है, इससे मैं (**त्वा**) उस (**वाजम्**) वेग वाले (**सरिष्यन्तम्**) सब पदार्थों को अन्तरिक्ष में पहुँचाने और (**वाजजितम्**) [वाज] अर्थात् युद्ध को जीताने वाले भौतिक अग्नि को (**सम्मार्ज्मि**) अच्छी प्रकार शुद्ध करता हूं, यज्ञ में युक्त किये हुए जिस अग्नि से (**देवेभ्यः**) सुखकारक पूर्वोक्त वसु आदि से सुख के लिये (**नमः**) अत्यन्त मधुर श्रेष्ठ जल तथा (**पितृभ्यः**) पालन के हेतु जो वसन्त आदि ऋतु हैं, उनसे जो आरोग्य के लिये (**स्वधा**) अमृतात्मक अन्न किये जाते हैं, वे (**सुयमे**) बल वा पराक्रम के देने वाले उस यज्ञ से (**मे**) मेरे लिये (**भूयास्तम्**) होवें॥७॥

भावार्थः-ईश्वर उपदेश करता है कि प्रथम मन्त्र में कहे हुए यज्ञ का मुख्य साधन अग्नि होता है, क्योंकि जैसे प्रत्यक्ष में भी उसकी लपट देखने में आती है, वैसे अग्नि का ऊपर ही को चलने जलने का स्वभाव है तथा सब पदार्थों के छिन्न-भिन्न करने का भी उसका स्वभाव है और यान वा अस्त्र-शस्त्रों में अच्छी प्रकार युक्त किया हुआ शीघ्र गमन वा विजय का हेतु होकर वसन्त आदि ऋतुओं से उत्तम-उत्तम पदार्थों का सम्पादन करके अन्न और जल को शुद्ध वा सुख देने वाले कर देता है, ऐसा जानना चाहिये॥७॥

अस्कन्नमद्येत्यस्य ऋषिः स एव। विष्णुर्देवता। विराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनः स कीदृशो भूत्वा किं करोतीत्युपदिश्यते॥

फिर भी उक्त यज्ञ कैसा होकर क्या करता है सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है॥

अस्कन्नमद्य देवेभ्यऽआज्यꣳ संभ्रियासमङ्घ्रिणा विष्णो मा त्वावक्रमिषं वसुमतीमग्ने ते छायामुपस्थेषं विष्णो स्थानमसीतऽइन्द्रो वीर्य्यमकृणोदूर्ध्वोऽध्वरऽआस्थात्॥८॥

अस्कन्नम्। अद्य। देवेभ्यः। आज्यम्। सम्। भ्रियासम्। अङ्घ्रिणा। विष्णोऽइति विष्णो। मा। त्वा। अव। क्रमिषम्। वसुमतीमिति वसुऽमतीम्। अग्ने। ते। छायाम्। उप। स्थेषम्। विष्णोः। स्थानम्। असि। इतः। इन्द्रः। वीर्य्यम्। अकृणोत्। ऊर्ध्वः। अध्वरः। आ। अस्थात्॥८॥

पदार्थः-(अस्कन्नम्) अविक्षुब्धम् **(अद्य)** अस्मिन्नहनि **(देवेभ्यः)** दिव्यसुखानां प्राप्तये **(आज्यम्)** घृतादिकम् **(सम्)** क्रियायोगे **(भ्रियासम्)** धारयेयम् **(सम्)** क्रियायोगे **(अङ्घ्रिणा)** गमनसाधनेनाग्निना **(विष्णो)** व्यापकेश्वर **(मा)** निषेधार्थे **(त्वा)** तं वा **(अव)** अवेति विनिग्रहार्थीयः (निरु०१.३) **(क्रमिषम्)** उल्लंघयेयम्। अत्र लिङर्थे लुङ् **(वसुमतीम्)** वसूनि बहूनि वस्तूनि भवन्ति यस्यां ताम्। अत्र भूम्न्यर्थे मतुप्। **(अग्ने)** परमेश्वर भौतिको वा **(ते)** तव तस्य वा **(छायाम्)** आश्रयम् **(उप)** क्रियार्थे **(स्थेषम्)** उपपत्सीय। अत्र **लिङ्याशिष्यङ्** [अष्टा०३.१.८६] इत्यङि कृते **छन्दस्युभयथा** [अष्टा०३.४.११७] इति सार्वधातुकत्वादियादेश आर्द्धधातुकत्वात् सकारलोपो न भवति **(विष्णोः)** यज्ञस्य **(स्थानम्)** स्थित्यर्थम् **(असि)** भवति। अत्र व्यत्ययः **(इतः)** स्थानात् **(इन्द्रः)** सूर्य्यो वायुर्वा **(वीर्य्यम्)** वीरस्य कर्म पराक्रमं वा **(अकृणोत्)** करोति। अत्र लडर्थे लङ् **(ऊर्ध्वः)** आकाशस्थः सन् **(अध्वरः)** यज्ञः **(आ)** समन्तात् **(अस्थात्)** तिष्ठति। अत्र लडर्थे लुङ्॥ अयं मन्त्रः (शत०(१.४.१.१-३) व्याख्यातः॥८॥

अन्वयः-अहं देवेभ्यो यदस्कन्नमविक्षुब्धमाज्यमङ्घ्रिणा संभ्रियासं **[विष्णो]** अद्य त्वा तदहं मावक्रमिषं मोल्लङ्घयेयम्। हे अग्ने जगदीश्वर! ते तव वसुमतीं छायामहमुपस्थेषमुपपत्सीय। योऽयमग्निर्विष्णोर्यज्ञस्य स्थानमस्यस्ति तस्यापि वसुमतीं छायामुपस्थाय यज्ञं साधयामि। य ऊर्ध्वोऽध्वरोऽग्नौ हुतः समन्तात् तिष्ठति तमित इन्द्रो धृत्वा वीर्य्यमकृणोत् करोति॥८॥

भावार्थः-ईश्वर उपदिशति येन पूर्वोक्तेन यज्ञेनान्नजले शुद्धे पुष्कले भवतस्तदेतस्य सिध्यर्थं मनुष्यैः पुष्कलाः संभाराः सदा चेतव्याः। नैव मम व्यापकस्याज्ञामुल्लङ्घ्य वर्तितव्यम्। किन्तु बहुसुखप्रापकं मदाश्रयं गृहीत्वाऽग्नौ यो यज्ञः क्रियते, यमिन्द्रः स्वकीयैः किरणैश्छित्त्वा वायुना सहोर्ध्वमाकृष्योर्ध्वं मेघमण्डले स्थापयति, पुनस्तस्माद् भूमिं प्रति निपातयति, येन भूमौ महद्वीर्य्यं जायते, स सदाऽनुष्ठातव्य इति॥८॥

पदार्थः-मैं **(देवेभ्यः)** उत्तम सुखों की प्राप्ति के लिये जो **(अस्कन्नम्)** निश्चल सुखदायक **(आज्यम्)** घृत आदि उत्तम-उत्तम पदार्थ हैं, उसको **(अङ्घ्रिणा)** पदार्थ पहुँचाने वाले अग्नि से **(अद्य)** आज **(संभ्रियासम्)** धारण करूँ और **(त्वा)** उसका मैं **(मावक्रमिषम्)** कभी उल्लङ्घन न करूँ। तथा हे अग्ने जगदीश्वर! **(ते)** आपके **(वसुमतीम्)** पदार्थ देने वाले **(छायाम्)** आश्रय को **(उपस्थेषम्)** प्राप्त होऊँ। जो यह **(अग्ने)** अग्नि **(विष्णोः)** यज्ञ के **(स्थानम्)** ठहरने का स्थान **(असि)** है, उसके भी **(वसुमतीम्)** उत्तम पदार्थ देने वाले **(छायाम्)** आश्रय को मैं **(उपस्थेषम्)** प्राप्त होकर यज्ञ को सिद्ध करता हूं तथा जो **(ऊर्ध्वः)** आकाश और जो **(अध्वरः)** यज्ञ अग्नि में ठहरने

वाला **(आ)** सब प्रकार से **(अस्थात्)** ठहरता है, उसको **(इन्द्रः)** सूर्य्य और वायु धारण करके **(वीर्य्यम्)** कर्म अथवा पराक्रम को **(अकृणोत्)** करते हैं॥८॥

भावार्थः-ईश्वर उपदेश करता है कि जिस पूर्वोक्त यज्ञ से जल और वायु शुद्ध होकर बहुत-सा अन्न उत्पन्न करने वाले होते हैं, उसको सिद्ध करने के लिये मनुष्यों को बहुत सी सामग्री जोड़नी चाहिये। जैसे मैं सर्वत्र व्यापक हूं, मेरी आज्ञा कभी उल्लङ्घन नहीं करनी चाहिये, किन्तु जो असंख्यात सुखों का देने वाला मेरा आश्रय है, उसको सदा ग्रहण करके अग्नि में जो हवन किया जाता है तथा जिस को सूर्य्य अपनी किरणों से खेंच कर वायु के योग से ऊपर मेघमण्डल में स्थापन करता है और फिर वह उस को वहाँ से मेघ द्वारा गिरा देता है और जिससे पृथिवी पर बड़ा सुख उत्पन्न होता है, उस यज्ञ का अनुष्ठान सब मनुष्यों को सदा करना योग्य है॥८॥

अग्ने वेरित्यस्य ऋषिः स एव। अग्निर्देवता। जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तेन किं भवतीत्युपदिश्यते॥

फिर उस यज्ञ से क्या लाभ होता है, सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है॥

अग्ने वेर्होत्रं वेर्दूत्युमवतां त्वां द्यावापृथिवीऽअव त्वं द्यावापृथिवी स्विष्टकृद्देवेभ्यऽइन्द्रऽआज्येन हविषा भूत्स्वाहा सं ज्योतिषा ज्योतिः॥ ९॥

अग्ने। वेः। होत्रम्। वेः। दूत्यम्। अवताम्। त्वाम्। द्यावापृथिवीऽइति द्यावाऽपृथिवी। अव। त्वम्। द्यावापृथिवीऽइति द्यावाऽपृथिवी। स्विष्टकृदिति स्विष्टऽकृत्। देवेभ्यः। इन्द्रः। आज्येन। हविषा। भूत्। स्वाहा। सम्। ज्योतिषा। ज्योतिः॥ ९॥

पदार्थः-**(अग्ने)** परमेश्वर भौतिको वा **(वेः)** विद्धि, वेदयति प्रापयति वा। अत्रोभयत्र लडर्थे लङ्। वी गति० इत्यस्य प्रयोगोऽडभावश्च **(होत्रम्)** जुह्वति यस्मिन् तद्यज्ञकर्म **(वेः)** विद्धि वेदयति प्रापयति वा। **(दूत्यम्)** दूतस्य कर्म तत्। **दूतस्य भागकर्मणी** (अष्टा०४.४.१२१) अनेन यत्प्रत्ययः **(अवताम्)** रक्षतः **(त्वाम्)** तत् **(द्यावापृथिवी)** द्यौश्च पृथिवी च ते, **दिवो द्यावा** [अष्टा०६.३.२९] अनेन द्वन्द्वे समासे दिवः स्थाने द्यावादेशः। **(अव)** रक्ष रक्षति वा, अत्र पक्षे व्यत्ययः। **(त्वम्)** स वा। **(द्यावापृथिवी)** अस्मत्प्राप्ते न्यायप्रकाशपृथिवीराज्ये। **द्यावापृथिवी इति पदनामसु पठितम्** (निघं०५.३) इत्यत्र प्राप्त्यर्थो गृह्यते **(स्विष्टकृत्)** यः शोभनमिष्टं करोति सः **(देवेभ्यः)** विद्वद्भ्यो दिव्यसुखेभ्यो वा **(इन्द्रः)** भौतिकः सूर्य्यो वायुर्वा। **इन्द्रेण वायुना** (ऋ०१.१४.१०) अनेनेन्द्रशब्देन वायुरपि गृह्यते। **(आज्येन)** यज्ञेऽग्नौ च प्रक्षेपितुं योग्येन घृतादिना **(हविषा)** हविषा संस्कृतेन होतव्येन पदार्थेन **(भूत्)** भवति। अत्र लडर्थे लुङ्। अडभावश्च **(स्वाहा)** वेदवाणीदं कर्माह **(सम्)** सम्यगर्थे। **(ज्योतिषा)** तेजस्विना लोकसमूहेन सह **(ज्योतिः)** प्रकाशवान् **द्युतेरिसन्नादेश्च जः** (उणा०२.१०५) इति द्युत् धातोरिसन् प्रत्यय आदेर्जकारादेशश्च॥ अयं मन्त्रः (शत०(१.४.१.४-३) व्याख्यातः॥ ९॥

अन्वयः-हे परमेश्वर! ये द्यावापृथिवी यज्ञमवतां रक्षतस्ते त्वं वेः रक्ष। यथायमग्निर्होत्रं दूत्यं च कर्म प्राप्तो द्यावापृथिवी रक्षति, तथा हे भगवन्! देवेभ्यः स्विष्टकृत् त्वमस्मान् वेः सदा पालय। यथायमाज्येन हविषा ज्योतिषा सह ज्योतिः स्विष्टकृदिन्द्रो द्यावापृथिव्यो रक्षको भूद्भवति, तथा त्वं विज्ञानज्योतिःप्रदानेनास्मान् समवेति स्वाहा॥ ९॥

भावार्थः-ईश्वरो मनुष्येभ्यो वेदेषूपदिष्टवानस्ति। मनुष्यैर्यद्यदग्निपृथिवीसूर्य्यवाय्वादिभ्यः पदार्थेभ्यः होत्रं

दूत्यं च कर्मनिमित्तं विदित्वाऽनुष्ठीयते तत्तदिष्टकारि भवति। अष्टममन्त्रेण यज्ञसाधनं यदुक्तं तत्फलं नवमेन प्रकाशितमिति॥९॥

पदार्थः-हे **(अग्ने)** परमेश्वर! जो **(द्यावापृथिवी)** प्रकाशमय सूर्यलोक और पृथिवी यज्ञ की **(अवताम्)** रक्षा करते हैं, उनकी **(त्वम्)** आप **(वेः)** रक्षा करो तथा जैसे यह भौतिक अग्नि **(होत्रम्)** यज्ञ और **(दूत्यम्)** दूत कर्म को प्राप्त होकर **(द्यावापृथिवी)** प्रकाशमय सूर्य्यलोक और पृथिवी की रक्षा करता है, वैसे हे भगवान्! **(देवेभ्यः)** विद्वानों के लिये **(स्विष्टकृत्)** उनकी इच्छानुकूल अच्छे-अच्छे कार्य्यों के करने वाले आप हम लोगों की **(अव)** रक्षा कीजिये। जो यह **(आज्येन)** यज्ञ के निमित्त अग्नि में छोड़ने योग्य घृत आदि उत्तम-उत्तम पदार्थ **(हविषा)** संस्कृत अर्थात् अच्छी प्रकार शुद्ध किये हुए होम के योग्य कस्तूरी केसर आदि पदार्थ वा **(ज्योतिषा)** प्रकाशयुक्त लोकों के साथ **(ज्योतिः)** प्रकाशमय किरणों से **(स्विष्टकृत्)** अच्छे-अच्छे वांछित कार्य्य सिद्ध कराने वाला **(इन्द्रः)** सूर्य्यलोक भी **(द्यावापृथिवी)** हमारे न्याय वा पृथिवी के राज्य की रक्षा करने वाला **(अभूत्)** होता है, वैसे आप **(ज्योतिः)** विज्ञानरूप ज्योति के दान से हम लोगों की **(अव)** रक्षा कीजिये, इस कर्म को **(स्वाहा)** वेदवाणी कहती है॥९॥

भावार्थः-ईश्वर ने मनुष्यों के लिये वेदों में उपदेश किया है कि जो-जो अग्नि, पृथिवी, सूर्य्य और वायु आदि पदार्थों के निमित्तों को जान के होम और दूतसम्बन्धी कर्म का अनुष्ठान करना योग्य है, सो-सो उनके लिये वांछित सुख के देने वाले होते हैं। अष्टम मन्त्र से कहे हुए यह साधन का फल नवमें मन्त्र से प्रकाशित किया है॥९॥

मयीदमित्यस्य ऋषिः स एव। इन्द्रो देवता। भुरिग्ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अथ तज्जन्यं फलमुपदिश्यते॥

अब अगले मन्त्र में उक्त यज्ञ से उत्पन्न होने वाले फल का उपदेश किया है॥

मयीदमिन्द्रऽइन्द्रियं दधात्वस्मान् रायो मघवानः सचन्ताम्। अस्माकꣳ सन्त्वाशिषः सत्या नः सन्त्वाशिषऽउपहूता पृथिवी मातोप मां पृथिवी माता ह्वयतामग्निराग्नीध्रात् स्वाहा॥१०॥

मयि। इदम्। इन्द्रः। इन्द्रियम्। दधातु। अस्मान्। रायः। मघवान इति मघऽवानः। सचन्ताम्। अस्माकम्। सन्तु। आशिष इत्याऽशिषः। सत्याः। नः। सन्तु। आशिष इत्याऽशिषः। उपहूतेत्युपऽहूता। पृथिवी। माता। उप। माम्। पृथिवी। माता। ह्वयताम्। अग्निः। आग्नीध्रात्। स्वाहा॥१०॥

पदार्थः-**(मयि)** आत्मनि **(इदम्)** यच्छुद्धं ज्ञानयुक्तं साधुकारि प्रत्यक्षं तत् **(इन्द्रः)** परमेश्वरः **(इन्द्रियम्)** इन्द्रस्यैश्वर्य्यप्राप्तेर्लिङ्गं चिह्नमिन्द्रेण परमेश्वरेण दृष्टमिन्द्रेण परमेश्वरेण सृष्टं प्रकाशितमिन्द्रेण विद्यावता जीवेन जुष्टं संप्रीत्या सेवितमिन्द्रेण परमेश्वरेण यद्दत्तं सर्वसुखज्ञानसाधकम्। **इन्द्रियमिन्द्रलिङ्गमिन्द्रदृष्टमिन्द्रसृष्टमिन्द्रजुष्टमिन्द्रदत्तमिति वा** (अष्टा०५.२.९३) अनेनोक्तेष्वर्थेष्विन्द्रियशब्दो निपातितः **(दधातु)** नित्यं धारयतु **(अस्मान्)** मनुष्यान् **(रायः)** विद्यासुवर्णचक्रवर्त्तिराज्यादिधनानि। **राय इति धननामसु पठितम्** (निघं०२.१०) **(मघवानः)** मघानि बहूनि धनानि विद्यन्ते येष्वैश्वर्य्ययोगेषु ते। अत्र भूम्यर्थे मतुप्। **मघमिति धननामधेयं मंहतेर्दानकर्मणः** (निरु०१.७) **(सचन्ताम्)** समवेताः प्राप्ता भवन्तु **(अस्माकम्)** परोपकारिणां धार्मिकाणां मानवानाम् **(सन्तु)** भवन्तु **(आशिषः)** कामनाः

(सत्याः) सिद्धाः **(नः)** अस्माकं विद्यावतां राज्यसेविनाम् **(सन्तु)** भवन्तु **(आशिषः)** न्यायेच्छाविशिष्टाः क्रियाः। **शास इत्त्वे आशासः क्वावुपसंख्यानम्** (अष्टा०६.४.४.३४) अनेन वार्त्तिकेनाशीरिति सिद्धः **(उपहूता)** उपहूयते जनै राज्यसुखार्थं या **(पृथिवी)** पृथुसुखनिमित्ता **(माता)** मान्यकरणहेतुः **(उप)** गतार्थे **(माम्)** सुखार्थिनं धार्मिकम् **(पृथिवी)** पृथुसुखदात्री विद्या **(माता)** धर्मार्थकाममोक्षसिद्ध्या मान्यदात्री **(ह्वयताम्)** स्पर्धतामुपदिशताम् **(अग्निः)** ईश्वरः **(आग्नीध्रात्)** अग्निरिध्यते प्रदीप्यते यस्मिन् तस्येदं शरणमाश्रयणं तस्मात्। अग्नीधः शरणे रञ् भं च (अष्टा०४.३.१२०) अनेन वार्त्तिकेनाधिकरणवाचिनः क्विन्ताद् 'अग्नीध्' प्रातिपदिकादञ् प्रत्ययः **(स्वाहा)** सुहुतमाह यया सा॥ अयं मन्त्रः (शत०(१.६.३.३९-४४) व्याख्यातः॥१०॥

अन्वयः-इन्द्रो मयीदमिन्द्रियं रायश्च दधातु तत्कृपया स्वपुरुषार्थेन च यथा वयं मघवानो भवेम, तथाऽस्मान् रायः सचन्ताम्, एवं चास्माकमाशिषः सत्याः सन्त्वेवं मातेयं पृथिवी विद्योपहूता च सती मामुपाह्वयतामुपदिशताम्। तथा मयाऽनुष्ठितोऽयमग्निराग्नीध्रादिष्टकृत्सन् नोऽस्माकं सुखान्युपह्वयति एवं सम्यग्घुतमिष्टकारि भवतीति स्वाहा वेदवाण्याह॥१०॥

भावार्थः-ये पुरुषार्थिन ईश्वरोपासकास्त एव शोभनं मनः, श्रेष्ठान्युत्तमानि धनानि, सत्या इच्छाश्च प्राप्नुवन्ति, नेतरे। सर्वस्य मान्यप्राप्तिहेतुत्वात् भूमिविद्ये पृथिवीशब्देनात्र प्रकाशिते स्तः। सर्वैरेते सदोपकर्त्तव्ये भवत इतीश्वरोऽनेन वेदमन्त्रेणाह। नवममन्त्रेणाग्न्यादिभ्यः साधितेभ्य इष्टसुखप्राप्तिरुदिता, सैवानेन दशमेन मन्त्रेण प्रकाशितेति॥१०॥

पदार्थः-**(इन्द्रः)** परमेश्वर **(मयि)** मुझ में **(इदम्)** प्रत्यक्ष **(इन्द्रियम्)** ऐश्वर्य की प्राप्ति के चिह्न तथा परमेश्वर ने जो अपने ज्ञान से देखा वा प्रकाशित किया है और जो सब सुखों को सिद्ध कराने वाले जो विद्वानों को दिया है, जिस को वे इन्द्र अर्थात् विद्वान् लोग प्रीतिपूर्वक सेवन करते हैं, उन्हें तथा **(रायः)** विद्या सुवर्ण वा चक्रवर्त्ति राज्य आदि धनों को **(दधातु)** नित्य स्थापन करें और उसकी कृपा से तथा हमारे पुरुषार्थ से **(मघवानः)** जिनमें कि बहुत धन, राज्य आदि पदार्थ विद्यमान हैं, जिन करके हम लोग पूर्ण ऐश्वर्य्ययुक्त हों, वैसे धन **(नः)** हम विद्वान् धर्मात्मा लोगों को **(सचन्ताम्)** प्राप्त हों तथा इसी प्रकार **(अस्माकम्)** हम परोपकार करने वाले धर्मात्माओं की **(आशिषः)** कामना **(सत्याः)** सिद्ध **(सन्तु)** हों और ऐसे ही **(नः)** हमारी **(आशिषः)** न्यायपूर्वक इच्छायुक्त जो क्रिया हैं, वे भी **(सत्याः)** सिद्ध **(सन्तु)** हों तथा इसी प्रकार **(माता)** धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि से मान्य करनेहारी विद्या और **(पृथिवी)** बहुत सुख देने वाली भूमि है, **(उपहूता)** जिसको राज्य आदि सुख के लिये मनुष्य क्रम से प्राप्त होते हैं, वह **(माम्)** सुख की इच्छा करने वाले मुझको **(उपह्वयताम्)** अच्छी प्रकार उपदेश करती है तथा मेरा अनुष्ठान किया हुआ यह **(अग्निः)** जिस भौतिक अग्नि को कि **(आग्नीध्रात्)** इन्धनादि से प्रज्वलित करते हैं, वह वांछित सुखों का करने वाला होकर **(नः)** हमारे सुखों का आगमन करावे, क्योंकि ऐसे ही अच्छी प्रकार होम को प्राप्त होके चाहे हुए कार्यों को सिद्ध करनेहारा होता है **(स्वाहा)** सब मनुष्यों के करने के लिये वेदवाणी इस कर्म को कहती है॥१०॥

भावार्थः-जो मनुष्य पुरुषार्थी, परोपकारी, ईश्वर के उपासक हैं, वे ही श्रेष्ठ ज्ञान, उत्तम धन और सत्य कामनाओं को प्राप्त होते हैं, और नहीं। जो सब को मान्य देने के कारण इस मन्त्र में पृथिवी शब्द से भूमि और विद्या का प्रकाश किया है, सो ये सब मनुष्यों को उपकार में लाने के योग्य हैं। ईश्वर ने इस वेदमन्त्र से यही प्रकाशित किया है तथा जो नवम मन्त्र से अग्नि आदि पदार्थों से इच्छित सुख की प्राप्ति कही है, वही बात दशम

मन्त्र से प्रकाशित की है॥१०॥

उपहूतेत्यस्य ऋषि स एव। द्यावापृथिवी देवते। ब्राह्मी बृहती छन्द:। मध्यम: स्वर:॥

पुनस्तमेवार्थं द्रढयति॥

फिर भी अगले मन्त्र में उक्त अर्थ को दृढ़ किया है॥

उप॑हूतो॒ द्यौष्पि॒तोप॒ मां द्यौष्पि॒ता ह्व॑यताम॒ग्निराग्नी॑ध्रा॒त् स्वाहा॑।

दे॒वस्य॑ त्वा सवि॒तुः प्र॑स॒वे᳖ऽश्विनो॑र्बा॒हुभ्यां॑ पू॒ष्णो हस्ता॑भ्याम्।

प्रति॑ गृह्णाम्य॒ग्नेष्ट्वा॒स्ये॒न॒ प्राश्ना॑मि॥ ११॥

उप॑हूत॒ इत्युप॑ऽहूतः। द्यौः। पि॒ता। उप॑। माम्। द्यौः। पि॒ता। ह्व॒य॒ता॒म्। अ॒ग्निः। आग्नी॑ध्रा॒त्। स्वाहा॑। दे॒वस्य॑। त्वा॒। स॒वि॒तुः। प्र॒स॒व इति॑ प्र॒ऽस॒वे। अ॒श्विनोः॑। बा॒हुभ्या॒मिति॑ बा॒हुऽभ्या॑म्। पू॒ष्णः। हस्ता॑भ्याम्। प्रति॑। गृ॒ह्णा॒मि॒। अ॒ग्नेः। त्वा॒। आ॒स्ये॑न। प्र। अ॒श्ना॒मि॒॥ ११॥

पदार्थ:-**(उपहूत:)** कृतोपह्वान: **(द्यौ:)** प्रकाशरूप: **(पिता)** सर्वपालक ईश्वर: **(उप)** क्रियार्थे **(माम्)** सुखभोक्तारम् **(द्यौ:)** प्रकाशमय: **(पिता)** पालनहेतु: सूर्य्यलोक: **(ह्वयताम्)** ह्वयति। अत्र व्यत्ययेन लडर्थे लोट् **(अग्नि:)** जाठरस्थ: **(आग्नीध्रात्)** अन्नाशयात्। साधुत्वमस्य पूर्ववज्ज्ञेयम् **(स्वाहा)** सुहुतं सुखकार्याहेश्वर: **(देवस्य)** हर्षकरस्य **(त्वा)** त्वां तं वा **(सवितु:)** सर्वस्य जगत: प्रसवितुरीश्वरस्य **(प्रसवे)** उत्पन्नेऽस्मिन् जगति **(अश्विनो:)** प्राणापानयो: **(बाहुभ्याम्)** आकर्षणधारणाभ्याम् **(पूष्ण:)** पुष्टिहेतो: समानस्य वायो: **(हस्ताभ्याम्)** शोधनसर्वाङ्गप्रापणाभ्याम् **(प्रतिगृह्णामि)** नित्यं स्वीकरोमि **(अग्ने:)** भौतिकस्य पाचकस्य **(त्वा)** तं भक्ष्यं पदार्थम् **(आस्येन)** मुखेन **ओष्ठात् प्रभृति प्राक् काकलकादास्यम्** (अष्टा०१.१.९) इति महाभाष्ये। अस्यन्ति प्रक्षिपन्ति उदरेऽन्नादिकं येन, तदास्यं मुखम् **(प्र)** गुणैर्यत्प्रकृष्टं तदर्थे। क्रियायोगे। **प्रपरेत्येतस्य प्रातिलोम्यं प्राह** (निरु०१.३) **(अश्नामि)** भुञ्जे। अयं मन्त्र: (शत०(१.६.३.३९-४४) व्याख्यात:॥११॥

अन्वय:-मया द्यौ: पितेश्वर उपहूतो मामुपह्वयतां स्वीकरोत्वेवं मया द्यौ: पिता पालनहेतु: सूर्य्यलोक उपहूत: स्पर्द्धित: सन् मां विद्यायै उपह्वयति। योऽग्नि: स्वाहा सुहुतं भुक्तमन्नमाग्नीध्रात् पचति, यो देवस्य सवितु: प्रसवे वर्त्तमानोऽस्ति, तमहं भोगमश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रतिगृह्णामि। गृहीत्वा च प्रदीप्तस्याग्नेर्मध्ये पाचयित्वाऽऽस्येन प्राश्नामि॥११॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषालङ्कार:। मनुष्यैरात्मशुद्ध्यर्थमनन्तविद्याप्रकाशकस्य परमेश्वरस्याह्वानं नित्यं कार्य्यम्। तथा च विद्यासिद्धये चक्षुषां संशोध्य जाठराग्निं प्रदीप्य, संस्कृतं मितमन्नं नित्यं भोक्तव्यम्। ईश्वरेण जगत्युत्पादितै: पदार्थैर्य: सर्वो भोग: सिध्यति, स च विद्याधर्मयुक्तेन व्यवहारेण भोक्तव्यो भोजयितव्यश्च।

ये पूर्वमन्त्रेण पृथिव्यां विद्यया प्राप्तव्या मान्यकारिण: पदार्था उक्तास्तेषां भोगो धर्मेण युक्त्या च सर्वै: कार्य्य इत्यनेन प्रतिपादित:॥११॥

पदार्थ:-मुझसे जो **(द्यौ:)** प्रकाशमय **(पिता)** सर्वपालक ईश्वर **(उपहूत:)** प्रार्थना किया हुआ **(माम्)** सुख भोगने वाले मुझ को **(उपह्वयताम्)** अच्छी प्रकार स्वीकार करे, इसी प्रकार जो **(द्यौ:)** प्रकाशवान् **(पिता)** सब

उत्तम क्रियाओं के पालने का हेतु सूर्य्यलोक मुझसे **(उपहूत:)** क्रियाओं में प्रयुक्त किया हुआ **(माम्)** सब सुख भोगने वाले मुझको विद्या के लिये **(उपह्वयताम्)** युक्त करता है, तथा जो **(अग्नि:)** जाठराग्नि **(स्वाहा)** अच्छे भोजन किये हुए अन्न को **(आग्नीध्रात्)** उदर में अन्न के कोठे में पचा देता है, उससे मैं **(देवस्य)** हर्ष देने **(सवितु:)** और सब के उत्पन्न करने वाले परमेश्वर के उत्पन्न किये हुए **(प्रसवे)** संसार में विद्यमान और **(त्वा)** उस उक्त भोग को **(अश्विनो:)** प्राण और अपान के **(बाहुभ्याम्)** आकर्षण और धारण गुणों से तथा **(पूष्ण:)** पुष्टि के हेतु समान वायु के **(हस्ताभ्याम्)** शोधन वा शरीर के अङ्ग-अङ्ग में पहुँचाने के गुण से **(प्रतिगृह्णामि)** अच्छी प्रकार ग्रहण करता हूं, ग्रहण करके **(अग्ने:)** प्रज्वलित अग्नि के बीच में पकाकर **(त्वा)** उस भोजन करने योग्य अन्न को **(आस्येन)** अपने मुख से **(प्राश्नामि)** भोजन करता हूं॥११॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को अपने आत्मा की शुद्धि के लिये अनन्त विद्या के प्रकाश करने वाले परमेश्वर पिता का आह्वान अर्थात् अच्छी प्रकार नित्य सेवन करना चाहिये तथा विद्या की सिद्धि के लिये उदर की अग्नि को दीप्त कर और नेत्रों से अच्छी प्रकार देख के संस्कार किये हुए प्रमाणयुक्त अन्न का नित्य भोजन करना चाहिये। सब भोग इस संसार में जो कि ईश्वर के उत्पन्न किये पदार्थ हैं, उन से सिद्ध होते हैं। वह भोग विद्या और धर्मयुक्त व्यवहार से भोगना चाहिये और वैसे ही औरों को वर्ताना चाहिये।

जो पूर्वमन्त्र से पृथिवी में विद्या से प्राप्त होने वा मान्य के कराने वाले पदार्थ कहे हैं, उनका भोग धर्म वा युक्ति के साथ सब मनुष्यों को करना चाहिये। ऐसा इस मन्त्र से प्रतिपादन किया है॥११॥

एतन्त इत्यस्य ऋषि: स एव। सविता देवता। भुरिग्बृहती छन्द:। मध्यम: स्वर:॥

कस्मै प्रयोजनाय केनायं विद्याप्रबन्ध: प्रकाशित इत्युपदिश्यते॥

किस प्रयोजन के लिये और किस ने यह विद्या का प्रबन्ध प्रकाशित किया है, सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है॥

एतं ते देव सवितर्यज्ञं प्राहुर्बृहस्पतये ब्रह्मणे।

तेन यज्ञमव तेन यज्ञपतिं तेन मामव॥१२॥

एतम्। ते। देव। सवित:। यज्ञम्। प्र। आहु:। बृहस्पतये। ब्रह्मणे। तेन। यज्ञम्। अव। तेन। यज्ञपतिमिति यज्ञऽपतिम्। तेन। माम्। अव॥१२॥

पदार्थ:-**(एतम्)** पूर्वोक्तम् **(ते)** तव **(देव)** दिव्यसुखगुणानां दात: **(सवित:)** सकलैश्वर्य्यविधातर्जगदीश्वर **(यज्ञम्)** यं सुखाय यष्टुमर्हम् **(प्राहु:)** प्रकृष्टं ब्रुवन्ति **(बृहस्पतये)** बृहत्या वेदवाण्या: पालकाय **(ब्रह्मणे)** चतुर्वेदाध्ययनेन ब्रह्मत्वाधिकारं प्राप्ताय **(तेन)** बृहद्विज्ञानदानेन **(यज्ञम्)** पूर्वोक्तं त्रिविधम् **(अव)** नित्यं रक्ष **(तेन)** धर्मानुष्ठानेन **(यज्ञपतिम्)** यज्ञस्यानुष्ठानेन पालकम् **(तेन)** विद्याधर्मप्रकाशेन **(माम्)** **(अव)** रक्ष॥ अयं मन्त्र: (शत०(१.७.४.१४-२१) व्याख्यात:॥१२॥

अन्वय:-हे देव सवितर्जगदीश्वर! वेदा विद्वांसश्च यमेतं यज्ञं भवत्प्रकाशितं प्राहुर्येन बृहस्पतये ब्रह्मणे सुखाधिकारा: प्राप्नुवन्ति, तेनेमं यज्ञं यज्ञपतिं मां चाव सततं रक्ष॥१२॥

भावार्थ:-ईश्वरेण सृष्ट्यादौ गुणवद्भ्योऽग्निवायुरव्यङ्गिरोभ्यश्चतुर्वेदोपदेशेन सर्वेषां मनुष्याणां विद्याप्राप्त्या

सुखाय यज्ञानुष्ठानविधिरुपदिष्टोऽनेनैव रक्षणविधानं च। नैव विद्याशुद्धिक्रियाभ्यां विना कस्यचित् सुखरक्षणे भवितुमर्हतस्तस्मात् सर्वैः परस्परं प्रीत्यै तयोर्वृद्धिरक्षणे प्रयत्नतः सदैव कार्य्ये।

यश्चैकादशेन मन्त्रेण यज्ञफलभोग उक्तस्तत्प्रकाश ईश्वरेणैव कृत इति गम्यते॥१२॥

पदार्थः-हे **(देव)** दिव्य सुख वा उत्तम गुण देने तथा **(सवितः)** सब ऐश्वर्य का विधान करने वाले जगदीश्वर! वेद और विद्वान् आप के प्रकाशित किये हुए **(एतम्)** इस पूर्वोक्त यज्ञ को **(प्राहुः)** अच्छी प्रकार कहते हैं कि जिससे **(बृहस्पतये)** बड़ों में बड़ी जो वेदवाणी है, उसके पालन करने वाले **(ब्रह्मणे)** चारों वेदों के पढ़ने से ब्रह्मा की पदवी को प्राप्त हुए विद्वान् के लिये सुख और श्रेष्ठ अधिकार प्राप्त होते हैं। इस **(यज्ञम्)** यज्ञ सम्बन्धी धर्म से **(यज्ञपतिम्)** यज्ञ को करने वा सब प्राणियों को सुख देने वाले विद्वान् और उस विद्या वा धर्म के प्रकाश से **(माम्)** मेरी भी **(अव)** रक्षा कीजिये॥१२॥

भावार्थः-ईश्वर ने सृष्टि के आदि में दिव्यगुण वाले अग्नि, वायु, रवि और अङ्गिरा ऋषियों के द्वारा चारों वेद के उपदेश से सब मनुष्यों के लिये विद्याप्राप्ति के साथ यज्ञ के अनुष्ठान की विधि का उपदेश किया है, जिससे सब की रक्षा होती है, क्योंकि विद्या और शुद्धि क्रिया के बिना किसी को सुख वा सुख की रक्षा प्राप्त नहीं हो सकती। इसलिये हम सब को उचित है कि परस्पर प्रीति के साथ अपनी वृद्धि और रक्षा यत्न से करनी चाहिये।

जो ग्यारहवें मन्त्र से यज्ञ का फल कहा है, उसका प्रकाश परमेश्वर ही ने किया है, ऐसा इस मन्त्र से विधान है॥१२॥

मनोजूतिरित्यस्य ऋषिः स एव। बृहस्पतिर्देवता। विराड् जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

येन यज्ञः कर्तुं शक्यस्तदुपदिश्यते॥

जिससे यज्ञ किया जा सकता है, सो विषय अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है॥

मनो॑ जू॒तिर्जु॑षता॒माज्य॑स्य॒ बृह॒स्पति॑र्य॒ज्ञमि॒मं त॑नो॒त्वरि॑ष्टं य॒ज्ञꣳ समि॒मं द॑धातु।

विश्वे॑ दे॒वास॑ऽइ॒ह मा॑दयन्ता॒मो३म्प्रति॑ष्ठ॥ १३॥

मनः॑। जू॒तिः। जु॒ष॒ता॒म्। आज्य॑स्य। बृह॒स्पति॑ः। य॒ज्ञम्। इ॒मम्। त॒नो॒तु॒। अरि॑ष्टम्। य॒ज्ञम्। सम्। इ॒मम्। द॒धा॒तु॒। विश्वे॑। दे॒वास॑ः। इ॒ह। मा॒द॒य॒न्ता॒म्। ओ३म्। प्र। ति॒ष्ठ॥ १३॥

पदार्थः-**(मनः)** मननशीलं ज्ञानसाधनम् **(जूतिः)** वेगेन व्याप्तिकर्म। **ऊतियूतिजूति०** (अष्टा०३.३.९७) अनेन निपातितः **(जुषताम्)** प्रीत्या सेवताम् **(आज्यस्य)** यज्ञसामग्रीम्। **सुपां सुलुक्०** [अष्टा०९.१.३९] इति द्वितीयास्थाने षष्ठी **(बृहस्पतिः)** बृहतां प्रकृत्याकाशादीनां पतिः पालको जगदीश्वरः। **तद्बृहतोः करपत्योश्चोरदेवतयोः सुट् तलोपश्च** (अष्टा०६.१.१५७) अनेन वार्त्तिकेन बृहस्पतिशब्दो निपातितः **(यज्ञम्)** संसाराख्यम् **(इमम्)** प्रत्यक्षाप्रत्यक्षं सुखभोगहेतुम् **(तनोतु)** विस्तारयतु **(अरिष्टम्)** रिष्यते हिंस्यते यः स रिष्टो न रिष्टोऽरिष्टस्तम् **(यज्ञम्)** अस्माभिरनुष्ठातुमर्हम् **(सम्)** एकीभावे क्रियायोगे **(इमम्)** समक्षं विज्ञानयज्ञम् **(दधातु)** धारयतु **(विश्वे देवासः)** सर्वे विद्वांसः। अत्र जसेरसुगागमः **(इह)** अस्मिन् संसारे हृदये वा **(मादयन्ताम्)** हृषन्तु **(ओ३म्)** ईश्वरवाचको यज्ञो वेदविद्या वा॥ **ओ३म् खं ब्रह्म** (यजु०४०.१७) अत्र। **अवतेष्टिलोपश्च** (उणा०१.१४२) अनेनाऽवधातोर्मन् प्रत्ययोऽस्य टिलोपश्च **(प्रतिष्ठ)** प्रतिष्ठति वा अत्रान्त्यपक्षे व्यत्ययो लडर्थे लोट् च॥ अयं मन्त्रः (शत०(१.७.४.२२)

व्याख्यात:॥१३॥

अन्वय:-मम जूतिर्मन आज्यस्य जुषतां बृहस्पतिर्यमिमं यज्ञमरिष्टं तनोतु संदधातु। हे विश्वे देवास! एतमरिष्टं यज्ञद्वयं संतन्य संधाय चेह मादयन्ताम्। हे ओंकारवाच्य बृहस्पते! त्वमिह प्रतिष्ठ कृपयेमं यज्ञं विद्यां च प्रतिष्ठापय॥१३॥

भावार्थ:-ईश्वर आज्ञापयति हे मनुष्या! युष्मन्मन: सत्कर्माण्येव प्राप्नोतु, मया योऽयं संसारे यज्ञ: कर्त्तुमाज्ञाप्यते तमेवानुष्ठाय सुखिनो भवन्तु भावयन्तु वा। ओमिति परमेश्वरस्यैव नाम, यथा पितापुत्रयो: प्रिय: सम्बन्धस्तथैवेश्वरेण सहोंकारस्य सम्बन्धोऽस्ति। नैव कस्यचित् सत्क्रियया विना प्रतिष्ठा भवितुमर्हति। तस्मात् सर्वैर्मनुष्यै: सर्वधाऽधर्मं विहाय धर्मकार्य्याण्येव सेवनीयानि। यत: खल्वविद्यान्धकारनिवृत्तये विद्यार्क: प्रकाशेत।

द्वादशमन्त्रेण यो यज्ञ: प्रकाशितस्तस्यानुष्ठानेन सर्वेषां प्रतिष्ठासुखे भवत इत्यनेन प्रकाशितम्॥१३॥

पदार्थ:-**(जूति:)** अपने वेग से सब जगह जाने वाला **(मन:)** विचारवान् ज्ञान का साधन मेरा मन **(आज्यस्य)** यज्ञ की सामग्री का **(जुषताम्)** सेवन करे **(बृहस्पति:)** बड़े-बड़े जो प्रकृति और आकाश आदि पदार्थ हैं, उनका जो पति अर्थात् पालन करने हारा ईश्वर है, वह **(इमम्)** इस प्रकट और अप्रकट **(अरिष्टम्)** अहिंसनीय **(यज्ञम्)** सुखों के भोगरूपी यज्ञ को **(तनोतु)** विस्तार करे तथा **(इमम्)** इस **(अरिष्टम्)** जो छोड़ने योग्य नहीं **(यज्ञम्)** जो हमारे अनुष्ठान करने योग्य विज्ञान की प्राप्तिरूप यज्ञ है, इस को **(संदधातु)** अच्छी प्रकार धारण करावे। हे **(विश्वे देवास:)** सकल विद्वान् लोगो! तुम इन पालन करने योग्य दो यज्ञों का धारण वा विस्तार करके **(इह)** इस संसार वा अपने मन में **(मादयन्ताम्)** आनन्दित होओ। हे **(ओ३म्)** ओंकार के अर्थ जगदीश्वर! आप **(बृहस्पति:)** प्रकृत्यादि के पालन करने हारे **(इह)** इस संसार वा विद्वानों के हृदय में **(प्रतिष्ठ)** कृपा करके इस यज्ञ वा वेदविद्यादि को स्थापन कीजिये॥१३॥

भावार्थ:-ईश्वर आज्ञा देता है कि हे मनुष्यो! तुम्हारा मन अच्छे ही कामों में प्रवृत्त हो तथा मैंने जो संसार में यज्ञ करने की आज्ञा दी है, उसका उक्त प्रकार से यथावत् अनुष्ठान् करके सुखी हो तथा औरों को भी सुखी करो। **(ओम्)** यह परमेश्वर का नाम है, जैसे पिता और पुत्र का प्रिय सम्बन्ध है, वैसे ही परमेश्वर के साथ **(ओम्)** ओंकार का सम्बन्ध है, तथा अच्छे कामों के बिना किसी की प्रतिष्ठा नहीं हो सकती, इसलिये सब मनुष्यों को सर्वथा अधर्म छोड़कर धर्म कामों का ही सेवन करना योग्य है, जिससे संसार में निश्चय करके अविद्यारूपी अन्धकार निवृत्त होकर विद्यारूपी सूर्य्य प्रकाशित हो।

बारहवें मन्त्र से जिस यज्ञ का प्रकाश किया था, उसके अनुष्ठान से सब मनुष्यों की प्रतिष्ठा वा सुख होते हैं, यह इस में प्रकाशित किया है॥१३॥

एषा ते इत्यस्य ऋषि: स एव। अग्निर्देवता सर्वस्य। पूर्वोऽनुष्टुप् छन्द:। गान्धार: स्वर:। अग्ने वाजजिदित्यत्र निचृद्गायत्री छन्द:। षड्ज: स्वर:॥

अग्निना यज्ञे कथमुपकारो ग्राह्य इत्युपदिश्यते॥

यज्ञ में अग्नि से कैसे उपकार लेना चाहिये, सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है॥

एषा तेऽअग्ने समित्तया वर्धस्व चा च प्यायस्व।

व॒र्धि॒षी॒महि॑ च व॒यमा च॑ प्यासिषीमहि।

अग्ने॑ वाजजि॒द् वाजं॑ त्वा संसृ॒वाꣳसं॑ वाजजि॒तꣳ॒ सम्मा॑र्ज्मि॥ १४॥

ए॒षा। ते॒। अ॒ग्ने॒। स॒मिदिति॑ स॒म्ऽइत्। तया॑। वर्ध॑स्व। च॒। आ॒। च॒। प्या॒य॒स्व॒। व॒र्धि॒षी॒महि॑। च॒। व॒यम्। आ। च॒। प्या॒सि॒षी॒म॒हि॒। अग्ने॑। वा॒ज॒जि॒दिति॑ वाजऽजित्। वाज॑म्। त्वा॒। स॒सृ॒वाꣳस॒मिति॑ स॒सृ॒वाꣳस॑म्। वा॒ज॒जि॒त॒मिति॑ वा॒ज॒ऽजित॑म्। सम्। मा॒र्ज्मि॒॥ १४॥

पदार्थः-(**एषा**) प्रदीप्तिहेतुः (**ते**) तव तस्य वा (**अग्ने**) परमेश्वर! भौतिको वा (**समित्**) सम्यगिध्यते दीप्यतेऽनया सा विद्या काष्ठादिर्वा (**तया**) विद्यया समिधा वा (**वर्धस्व**) वर्धते वा। सर्वत्रान्त्यपक्षे व्यत्ययो लडर्थे लोट् च। (**च**) समुच्चये (**आ**) क्रियायोगे (**च**) पुनरर्थे (**प्यायस्व**) प्यायते वा (**वर्धिषीमहि**) स्पष्टार्थम् (**च**) समुच्चये (**वयम्**) विद्यावन्तो धार्म्मिकाः (**आ**) समन्तात् क्रियायोगे (**च**) अन्वाचये (**प्यासिषीमहि**) अत्र प्यैङ्धातोः **सिबुत्सर्गश्छन्दसि** (अष्टा०३.१.३४) अनेन वार्त्तिकेन सिप् प्रत्ययः (**अग्ने**) ज्ञानस्वरूपविजयप्रदेश्वर! भौतिको वा। (**वाजजित्**) वाजं सर्वस्य वेगं जयति स ईश्वरः। वाजं जयति येन वा स भौतिकः। (**वाजम्**) ज्ञानवन्तं वेगवन्तं वा (**त्वा**) त्वां तं वा (**ससृवांसम्**) सर्वं ज्ञानवन्तं शिल्पविद्यागुणप्राप्तिमन्तं वा। (**वाजजितम्**) यो येन वा वाजं संग्रामं जयति तम (**सम्**) सम्यगर्थे (**मार्ज्मि**) शुद्धो भवामि शोधयामि वा॥ अयं मन्त्रः (शत०(१.८.२.३-७) व्याख्यातः॥ १४॥

अन्वयः-हे अग्ने जगदीश्वर! ते तव यैषा समित् वेदविद्यास्ति तयास्माभिः स्तुतः सँस्त्वं वर्धस्व चास्मान् नित्यं वर्धय। हे भगवन्नेवं भवद्विदितगुणैरस्माभिः प्रकाशितः संस्त्वं प्यायस्व चास्मान् नित्यं प्यायय। हे भगवन्नग्ने वाजजिद्वाजं ससृवांसं त्वां वयं वर्धिषीमहि। कृपया भवान् चास्मानपि वाजजितः सस्रुषो वाजान् करोतु, यथा वयं भवन्तमाप्यासिषीमहि, तथैव भवांश्चास्मान् सर्वैः शुभगुणैराप्यायताम्। अहं भवन्तमाश्रित्य संमार्ज्मि भवदाज्ञानुष्ठानेन शुद्धो भवामीत्येकः॥

यैषा तेऽस्याग्नेर्वर्धिका समिदस्ति तया चायं वर्धते आप्यायते च वयं तं वाजं ससृवांसं वाजजितमग्निं विद्यावृद्धये वर्धिषीमहि, आप्यासिषीमहि च। यतोऽयं शिल्पविद्यासिद्धैर्विमानादिभिर्यानैर्वाजान् सस्रुषो वाजजितोऽस्मान् विजयेन वर्धयति, तमहं संमार्ज्मीति द्वितीयः॥ १४॥

भावार्थः-अत्र श्लेषालङ्कारः। क्रियाद्वयं चादरार्थं विज्ञेयम्। ये मनुष्याः परमेश्वराज्ञापालने क्रियाकौशले च वर्धन्ते, ते विद्यायां सर्वानानन्दयित्वा दुष्टान् शत्रून् जित्वा शुद्धा भूत्वा सुखयन्ति, नेतरेऽलसाः। चकारचतुष्टयेनेश्वराज्ञा धर्म्या सूक्ष्मस्थूलतयाऽनेकविधास्ति तथा क्रियाकाण्डे कर्त्तव्यानि कर्माण्यनेकानि सन्तीति विज्ञेयम्।

त्रयोदशमन्त्रेण या वेदविद्या प्रतिपादितास्ति, तया सुखार्थं यज्ञसंधानमुक्तमनेनैतयैवं पुरुषार्थः कार्य्य इति प्रकाशितम्॥ १४॥

पदार्थः-हे (**अग्ने**) परमेश्वर! (**ते**) आपकी जो (**एषा**) यह (**समित्**) अच्छी प्रकार पदार्थों के गुणों की प्रकाश करने वाली वेदविद्या है, (**तया**) उससे हम लोगों की की हुई स्तुति को प्राप्त होकर आप नित्य (**वर्धस्व**) हमारे ज्ञान में वृद्धि को प्राप्त हूजिये, (**च**) और उस वेदविद्या से हम लोगों की भी नित्य वृद्धि कीजिये। इसी प्रकार हे भगवन्! आप के गुणों को जाननेहारे हम लोगों से (**च**) भी प्रकाशित होकर आप (**प्यायस्व**) हमारे आत्माओं में

वृद्धि को प्राप्त हूजिये। इसी प्रकार हम को भी बढ़ाइये। हे भगवन्! **(अग्ने)** विज्ञानस्वरूप विजय देने और **(वाजजित्)** सब के वेग को जीतने वाले परमेश्वर हम लोग **(वाजम्)** जो कि ज्ञानस्वरूप **(ससृवांसम्)** अर्थात् सबको जानने वाले **(त्वा)** आपकी **(वर्धिषीमहि)** स्तुतियों से वृद्धि तथा प्राप्ति करें **(च)** और आप कृपा करके हम को भी सब के वेग के जीतने तथा ज्ञानवान् अर्थात् सब के मन के व्यवहारों को जानने वाले कीजिये और जैसे हम लोग आपकी **(आप्यासिषीमहि)** अधिक-अधिक स्तुति करें, वैसे ही आप भी हम लोगों को सब उत्तम-उत्तम गुण और सुखों से **(आप्यायस्व)** वृद्धियुक्त कीजिये। हम आपके आश्रय को प्राप्त होकर तथा आपकी आज्ञा के पालने से **(संमार्ज्मि)** अच्छी प्रकार शुद्ध होते हैं॥१॥

जो **(एषा)** यह **(अग्ने)** भौतिक अग्नि है **(ते)** उसकी **(समित्)** बढ़ाने अर्थात् अच्छी प्रकार प्रदीप्त करने वाली लकड़ियों का समूह है **(तया)** उससे यह अग्नि **(वर्धस्व)** बढ़ता और **(आप्यायस्व)** परिपूर्ण भी होता है। हम लोग **(त्वा)** उस **(वाजम्)** वेग और **(ससृवांसम्)** शिल्पविद्या के गुणों को देने तथा **(वाजजितम्)** संग्राम के जिताने के साधन अग्नि को विद्या की वृद्धि के लिये **(वर्धिषीमहि)** बढ़ाते हैं। **(च)** और **(आप्यासिषीमहि)** कलाओं में परिपूर्ण भी करते हैं, जिससे यह शिल्पविद्या से सिद्ध किये हुए विमान आदि यानों तथा वेग वाले शिल्पविद्या के गुणों की प्राप्ति से संग्राम को जिताने वाले हमको विजय के साथ बढ़ाता है, इससे **(त्वा)** उस अग्नि को हम **(संमार्ज्मि)** अच्छी प्रकार प्रयोग करते हैं॥२॥१४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है और एक-एक अर्थ के दो-दो क्रियापद आदर के लिये जानने चाहिये। जो मनुष्य परमेश्वर की आज्ञा के पालने और क्रिया की कुशलता में उन्नति को प्राप्त होते हैं, वे विद्या और सुख में सब को आनन्दित कर और दुष्ट शत्रुओं को जीतकर शुद्ध होके सुखी होते हैं। जो आलस्य करने वाले हैं, वे ऐसे कभी नहीं हो सकते और चार चकारों से ईश्वर की धर्मयुक्त आज्ञा सूक्ष्म वा स्थूलता से अनेक प्रकार की और क्रियाकाण्ड में करने योग्य कार्य्य भी अनेक प्रकार के हैं, ऐसा समझना चाहिये।

जो तेरहवें मन्त्र में वेदविद्या कही है उस से सुख के लिये यज्ञ का सन्धान तथा पुरुषार्थ करना चाहिये ऐसा इस मन्त्र में प्रतिपादन किया है॥१४॥

अग्नीषोमयोरिति सर्वस्य ऋषिः स एव। अग्नीषोमौ देवते। पूर्वार्द्धे ब्राह्मी बृहतीछन्दः। मध्यमः स्वरः। उत्तरार्द्धे इन्द्राग्नी देवते। अतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

अथ तेन किं किं दूरीकर्त्तव्यमित्युपदिश्यते॥

अब उस यज्ञ से क्या क्या दूर करना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है॥

अ॒ग्नीषोम॑यो॒रुज्जि॑ति॒मनू॒ज्जे॑षं॒ वाज॑स्य मा प्रस॒वेन॒ प्रोहा॑मि। अ॒ग्नीषोमौ॑ तमप॑नुदतां॒ यो॒ऽस्मान् द्वेष्टि॒ यं च॑ व॒यं द्वि॒ष्मो वाज॑स्यैनं प्रस॒वेनापो॑हामि। इ॒न्द्रा॒ग्न्योरुज्जि॑ति॒मनू॒ज्जे॑षं॒ वाज॑स्य मा प्रस॒वेन॒ प्रोहा॑मि। इ॒न्द्रा॒ग्नी तमप॑नुदतां॒ यो॒ऽस्मान् द्वेष्टि॒ यं च॑ व॒यं द्वि॒ष्मो वाज॑स्यैनं प्रस॒वेनापो॑हामि॥१५॥

अ॒ग्नीषोम॑योः। उज्जि॑ति॒मित्यु॒त्ऽजि॑तिम्। अनु॑। उत्। जे॒ष॒म्। वाज॑स्य। मा॒ प्र॒स॒वेनेति॑ प्र॒ऽस॒वेन॑। प्र। ऊ॒हा॒मि॒। अ॒ग्नीषोमौ॑। तम्। अप॑। नु॒द॒ता॒म्। यः। अ॒स्मान्। द्वेष्टि॑। यम्। च॒। व॒यम्। द्वि॒ष्मः। वाज॑स्य। ए॒न॒म्। प्र॒स॒वेनेति॑ प्र॒ऽस॒वेन॑।

अप॑। ऊ॒हा॒मि। इ॒न्द्रा॒ग्न्योः। उ॒ज्जि॑ति॒मित्यु॒त्ऽजि॑तिम्। अनु॑। उत्। जे॒ष॒म्। वाज॑स्य। मा। प्र॒स॒वेनेति॑ प्र॒ऽस॒वेन॑। प्र। ऊ॒हा॒मि॒। इ॒न्द्रा॒ग्नी॒ऽइती॑न्द्रा॒ग्नी। तम्। अप॑। नु॒द॒ता॒म्। यः। अ॒स्मान्। द्वेष्टि॑। यम्। च॒। व॒यम्। द्वि॒ष्मः। वाज॑स्य। ए॒न॒म्। प्र॒स॒वेनेति॑ प्र॒ऽस॒वेन॑। अप॑। ऊ॒हा॒मि॒॥ १५॥

पदार्थः-**(अग्नीषोमयोः)** अग्निश्च सोमश्च तयोः प्रसिद्धाग्निचन्द्रलोकयोः। अत्र **ईदग्नेः सोमवरुणयोः** (अष्टा०६.३.२७) अनेन देवताद्वन्द्वसमासेऽग्नेरीकारादेशः **(उज्जितिम्)** जयत्यनया सा जितिरुत्कृष्टा चासौ जितिश्च तामुत्कृष्टं विजयम् **(अनु)** पश्चाद्भावे **(उत्)** उत्कृष्टार्थे **(जेषम्)** जयं कुर्य्याम्। अत्र लिङर्थे लुङडभावो वृद्ध्यभावश्च **(वाजस्य)** युद्धस्य **(मा)** मां विजेतारम् **(प्रसवेन)** उत्पादनेन प्रकृष्टैश्वर्य्येण सह वा **(प्रोहामि)** प्रकृष्टया विविधशुद्धतर्केण योजयामि **(अग्नीषोमौ)** विद्यया सम्यक् प्रयोजितौ **(तम्)** शत्रुं रोगं वा **(अप)** दूरीकरणे **(नुदताम्)** प्रेरयतः। अत्र लडर्थे लोट् **(यः)** अन्यायकारी **(अस्मान्)** न्यायकारिणः **(द्वेष्टि)** शत्रूयति **(यम्)** अन्यायकारिणम् **(च)** समुच्चये **(वयम्)** न्यायाधीशाः **(द्विष्मः)** विरुध्यामः **(वाजस्य)** यानवेगादियुक्तस्य सैन्यस्य **(एनम्)** पूर्वोक्तं दुष्टम् **(प्रसवेन)** प्रकृष्टतया युद्धविद्याप्रेरणेन **(अप)** दूरीकरणे **(ऊहामि)** विविधतर्केण क्षिपामि **(इन्द्राग्न्योः)** इन्द्रो वायुरग्निर्विद्युत्तयोः **(उज्जितिम्)** विद्यया सम्यगुत्कर्षम् **(अनूज्जेषम्)** अनुगतमुत्कर्षं प्राप्नुयाम्। अस्य सिद्धिः पूर्ववत् **(वाजस्य)** प्रेरणाप्रेरणवेगप्राप्तेः **(मा)** मां वायुविद्युद्विद्याप्राप्तम् **(प्रसवेन)** ऐश्वर्यार्थमुत्पादितेन **(प्रोहामि)** प्रकृष्टैर्विविधैस्तर्कैः सुखानि प्राप्नोमि **(इन्द्राग्नी)** पूर्वोक्तौ सम्यक् साधितौ **(तम्)** द्वेषस्वभावम् **(अप)** निषेधार्थे **(नुदताम्)** प्रेरयतः। अत्र लडर्थे लोट् **(यः)** अविद्वान् **(अस्मान्)** विदुषः **(द्वेष्टि)** अप्रीतयति **(यम्)** दुष्टस्वभावम् **(च)** समुच्चयार्थे **(वयम्)** विद्वांसः **(द्विष्मः)** अप्रीतयामः **(वाजस्य)** विज्ञानस्य **(एनम्)** मूर्खम् **(प्रसवेन)** उत्पादनेन **(अप)** वर्जने **(ऊहामि)** विविधां शिक्षां करोमि॥ अयं मन्त्रः (शत०(१.८.३.१-६) व्याख्यातः॥१५॥

अन्वयः-अहमग्नीषोमयोरुज्जितिमनूज्जेषमहं वाजस्य प्रसवेन मा मां प्रोहामि, मया सम्यक् साधितावग्नीषोमौ योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमपनुदतः। अहमेनं वाजस्य प्रसवेनापोहामि। अहमिन्द्राग्न्योरुज्जितिमनूज्जेषमहं वाजस्य प्रसवेन मा मां नित्यं प्रोहामि। अस्माभिः सम्यक् साधिताविन्द्राग्नी योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमपनुदतः। अहं वाजस्य प्रसवेनैनमपोहामि॥१५॥

भावार्थः-ईश्वर उपदिशति सर्वैर्मनुष्यैरिह विद्यायुक्तिभ्यामग्निजलयोर्मेलनेन कलाकौशलाद् वेगादिगुणानां प्रकाशेन तथा वायुविद्युतोर्विद्ययातो सर्वदारिद्र्यनाशेन शत्रूणां विजयेन सुशिक्षया मनुष्याणां मूढत्वं दूरीकृत्य विद्वत्त्वं प्रापय्य च विविधानि सुखानि प्राप्तव्यानि प्रापयितव्यानि चैवं सम्यक् सर्वाः पदार्थविद्या जगति प्रकाशनीयाः।

पूर्वेण मन्त्रेण यत्कार्य्यं प्रकाशितं तदनेन पोषितम्॥१५॥

पदार्थः-मैं **(अग्नीषोमयोः)** प्रसिद्ध भौतिक अग्नि और चन्द्रलोक के **(उज्जितिम्)** दुःख के सहने योग्य शत्रुओं को **(अनूज्जेषम्)** यथाक्रम से जीतूँ और **(वाजस्य)** युद्ध के **(प्रसवेन)** उत्पादन से विजय करने वाले **(मा)** अपने आप को **(प्रोहामि)** अच्छी प्रकार शुद्ध तर्कों से युक्त करूँ। जो मुझ से अच्छी प्रकार विद्या से क्रियाकुशलता में युक्त किये हुए **(अग्नीषोमौ)** उक्त अग्नि और चन्द्रलोक हैं, वे **(यः)** जो कि अन्याय में वर्त्तने वाला दुष्ट मनुष्य **(अस्मान्)** न्याय करने वाले हम लोगों को **(द्वेष्टि)** शत्रुभाव से वर्त्तता है **(यं च)** और जिस अन्याय करने वाले से **(वयम्)** न्यायाधीश हम लोग **(द्विष्मः)** विरोध करते हैं, **(तम्)** उस शत्रु वा रोग को **(अपनुदताम्)** दूर करते हैं

और मैं भी **(एनम्)** इस दुष्ट शत्रु को **(वाजस्य)** यान वेगादि गुणों से युक्त सेना वाले संग्राम की **(प्रसवेन)** अच्छी प्रकार प्रेरणा से **(अपोहामि)** दूर करता हूं। मैं **(इन्द्राग्न्योः)** वायु और विद्युत् रूप अग्नि की **(उज्जितिम्)** विद्या से अच्छी प्रकार उत्कर्ष को **(अनूज्जेषम्)** अनुक्रम से प्राप्त होऊँ और मैं **(वाजस्य)** ज्ञान की प्रेरणा के द्वारा वेग की प्राप्ति के **(प्रसवेन)** ऐश्वर्य्य के अर्थ उत्पादन से वायु और बिजुली की विद्या के जानने वाले **(माम्)** अपने आप को नित्य **(प्रोहामि)** अच्छी प्रकार तर्कों से सुखों को प्राप्त होता हूं और मुझ से जो अच्छे प्रकार सिद्ध किये हुए **(इन्द्राग्नी)** वायु और विद्युत् अग्नि हैं-वह **(यः)** जो मूर्ख मनुष्य **(अस्मान्)** हम विद्वान् लोगों से **(द्वेष्टि)** अप्रीति से वर्त्तता है **(च)** और **(यम्)** जिस मूर्ख से **(वयम्)** हम विद्वान् लोग **(द्विष्मः)** अप्रीति से वर्तते हैं **(तम्)** उस वैर करने वाले मूढ़ को **(अपनुदताम्)** दूर करते हैं तथा मैं भी **(एनम्)** इसे **(वाजस्य)** विज्ञान के **(प्रसवेन)** प्रकाश से **(अपोहामि)** अच्छी-अच्छी शिक्षा दे कर शुद्ध करता हूं॥१५॥

भावार्थः-ईश्वर उपदेश करता है कि सब मनुष्यों को विद्या और युक्तियों से अग्नि और जल के मेल से कलाओं की कुशलता करके वेगादि गुणों के प्रकाश से तथा वायु और विद्युत् अग्नि की विद्या से सब दरिद्रता के विनाश और शत्रुओं के पराजय से श्रेष्ठ शिक्षा देकर अज्ञान को दूर कर और उन मूढ़ मनुष्यों को विद्वान् करके अनेक प्रकार के सुख इस संसार में सिद्ध करने योग्य और औरों को सिद्ध कराने के योग्य हैं। इस प्रकार अच्छे प्रयत्न से सब पदार्थविद्या संसार में प्रकाशित करनी योग्य है। पूर्व मन्त्र में जो कार्य प्रकाश किया उसकी पुष्टि इस मन्त्र से की है॥१५॥

वसुभ्यस्त्वेति सर्वस्य ऋषिः स एव। पूर्वार्द्धे द्यावापृथिवी मित्रावरुणौ च देवताः। निचृदार्ची पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। व्यन्तुवय इत्यारभ्यान्तपर्य्यन्तस्याग्निर्देवता। भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

तस्मात् किं भवतीत्युपदिश्यते॥

उक्त यज्ञ से क्या होता है, सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है॥

वसुभ्यस्त्वा रुद्रेभ्यस्त्वादित्येभ्यस्त्वा संजानाथां द्यावापृथिवी मित्रावरुणौ त्वा वृष्ट्यावताम्। व्यन्तु वयोक्तꣳ रिहाणा मरुतां पृषतीर्गच्छ वशा पृश्निर्भूत्वा दिवं गच्छ ततो नो वृष्टिमावह। चक्षुष्पाऽअग्नेऽसि चक्षुर्मे पाहि॥ १६॥

वसुभ्य इति वसुऽभ्यः। त्वा। रुद्रेभ्यः। त्वा। आदित्येभ्यः। त्वा। सम्। जानाथाम्। द्यावापृथिवीऽ इति द्यावाऽपृथिवी। मित्रावरुणौ। त्वा। वृष्ट्या। अवताम्। व्यन्तु। वयः। अक्तम्। रिहाणाः। मरुताम्। पृषतीः। गच्छ। वशा। पृश्निः। भूत्वा। दिवम्। गच्छ। ततः। नः। वृष्टिम्। आ। वह। चक्षुष्पाः। अग्ने। असि। चक्षुः। मे। पाहि॥ १६॥

पदार्थः-**(वसुभ्यः)** अग्न्यादिभ्योऽष्टभ्यः **(त्वा)** तं पूर्वोक्तं यज्ञम् **(रुद्रेभ्यः)** पूर्वोक्तेभ्य एकादशभ्यः **(त्वा)** तम् **(आदित्येभ्यः)** द्वादशभ्यो मासेभ्यः **(त्वा)** तं क्रियासमूहम् **(सम्)** सम्यगर्थे **(जानाथाम्)** जानीतः, प्रादुर्भूतविद्यासाधिके भवतः। अत्र व्यत्ययो लडर्थे लोट् च **(द्यावापृथिवी)** सूर्य्यप्रकाशो भूमिश्च। अत्र **दिवो द्यावा** [अष्टा०६.३.२९] इति द्यावादेशः **(मित्रावरुणौ)** यः सर्वप्राणो बहिःस्थो वायुर्वरुणोऽन्तस्थ उदानो वायुश्च तौ **(त्वा)**

तमिमं संसारम् **(वृष्ट्या)** शुद्धजलवर्षणेन **(अवताम्)** रक्षतः **(व्यन्तु)** व्यन्ति प्राप्नुवन्ति। अत्र सर्वत्र लडर्थे लोट्। **(वयः)** पक्षिण इव गायत्र्यादीनि छन्दांसि **(अक्तम्)** प्रकटं वस्तु सुखं वा **(रिहाणाः)** अर्चकाः। **रिहतीत्यर्चतिकर्मसु पठितम्** (निघं०३.१४) **(मरुताम्)** वायूनाम् **(पृषतीः)** पृषन्ति सिञ्चन्ति याभिर्नाडीभिर्नदीभिर्यास्ताः **(गच्छ)** गच्छति **(वशा)** कामिताहुतिः **(पृश्निः)** अन्तरिक्षस्थाः। **पृश्निरिति साधारण नामसु पठितम्** (निघं०१.४) **(भूत्वा)** भावयित्वा। अत्रान्तर्गतो ण्यर्थः **(दिवम्)** सूर्य्यप्रकाशम् **(गच्छ)** गच्छति **(ततः)** तस्मात् **(नः)** अस्माकम् **(वृष्टिम्)** जलसमूहम् **(आ)** समन्तात् क्रियायोगे **(वह)** वहति प्रापयति **(चक्षुष्पाः)** चक्षुर्दर्शनं रक्षतीति सः **(अग्ने)** अग्निर्भौतिकः **(असि)** भवति। अत्र सर्वत्र पुरुषव्यत्ययः **(चक्षुः)** बाह्यमाभ्यन्तरं विज्ञानं, तत्साधनं वा **(मे)** मम **(पाहि)** पाति रक्षति॥ अयं मन्त्रः (शत०(१.८.३.७-१९) व्याख्यातः॥१६॥

अन्वयः-वयं वसुभ्यस्त्वा तं रुद्रेभ्यस्त्वा तमादित्येभ्यस्त्वा तं नित्यं प्रोहामः। यज्ञेनेमे द्यावापृथिवी संजानाथाम्। मित्रावरुणौ वृष्ट्या त्वा तमिमं संसारं द्यावापृथिवीस्थमवतामवतः। यथा वयः पक्षिणोऽक्तं व्यक्तं स्थानं व्यन्तु व्यन्ति गच्छन्ति, तथा रिहाणा वयं छन्दोभिस्तं यज्ञं नित्यमनुतिष्ठामः। यज्ञे कृताहुतिर्वशा पृश्निरन्तरिक्षे भूत्वा मरुतां संगेन दिवं गच्छ गच्छति सा ततो नोऽस्माकं वृष्टिमावह समन्ताद्वर्षयति, तज्जलं पृषतीर्नाडीर्नदीर्वा गच्छति यतोऽयमग्निश्चक्षुष्पा अस्यस्त्यतो मे मम चक्षुः पाहि पाति॥१६॥

भावार्थः-अत्र लुप्तोपमालङ्कारः प्रोहामि। अपोहामीति पदद्वयानुवृत्तिश्च। मनुष्यैरग्नौ याऽहुतिः क्रियते सा वायोः संगेन मेघमण्डलं गत्वा सूर्य्याकर्षितजलं शुद्धं भावयित्वा, पुनस्तस्मात् पृथिवीमागत्यौषधीः पुष्णाति। सा वेदमन्त्रैरेव कर्त्तव्या, यतस्तस्याः फलज्ञाने नित्यं श्रद्धोत्पद्येत। अयमग्निः सूर्यरूपो भूत्वा सर्वं प्रकाशयत्यतो दृष्टिव्यवहारस्य पालनं जायते। एतेभ्यो वस्वादिभ्यो विद्योपकारेण दुष्टानां गुणानां प्राणिनां चापोहनं निवारणं नित्यं कर्त्तव्यम्। इदमेव सर्वेषां पूजनं सत्करणं चेति।

यत्पूर्वेण मन्त्रेणोक्तं तदनेन विशिष्टतया प्रकाशितमिति॥१६॥

पदार्थः-हम लोग **(वसुभ्यः)** अग्नि आदि आठ वसुओं से **(त्वा)** उस यज्ञ को तथा **(रुद्रेभ्यः)** पूर्वोक्त एकादश रुद्रों से **(त्वा)** पूर्वोक्त यज्ञ को और **(आदित्येभ्यः)** बारह महीनों से **(त्वा)** उस क्रियासमूह को नित्य उत्तम तर्कों से जानें और यज्ञ से ये **(द्यावापृथिवी)** सूर्य्य का प्रकाश और भूमि **(संजानाथाम्)** जो उन से शिल्पविद्या उत्पन्न हो सके, उनके सिद्ध करने वाले हों और **(मित्रावरुणौ)** जो सब जीवों का बाहिर का प्राण और जीवों के शरीर में रहने वाला उदानवायु है, वे **(वृष्ट्या)** शुद्ध जल की वर्षा से **(त्वा)** जो संसार सूर्य्य के प्रकाश और भूमि में स्थित है, उसकी **(अवताम्)** रक्षा करते हैं। जैसे **(वयः)** पक्षी अपने-अपने ठिकानों को रचते और **(व्यन्तु)** प्राप्त होते हैं, वैसे उन छन्दों से **(रिहाणाः)** पूजन करने वाले हम लोग **(त्वा)** उस यज्ञ का अनुष्ठान करते हैं और जो यज्ञ में हवन की आहुति **(पृश्निः)** अन्तरिक्ष में स्थिर और **(वशा)** शोभित **(भूत्वा)** होकर **(मरुताम्)** पवनों के संग से **(दिवम्)** सूर्य्य के प्रकाश को **(गच्छ)** प्राप्त होती है, वह **(ततः)** वहाँ से **(नः)** हम लोगों के सुख के लिये **(वृष्टिम्)** वर्षा को **(आवह)** अच्छे प्रकार वर्षाती है, उस वर्षा का जल **(पृषतीः)** नाड़ी और नदियों को प्राप्त होता है। जिस कारण यह अग्नि **(चक्षुष्पाः)** नेत्रों की रक्षा करने वाला **(असि)** है, इससे **(मे)** हमारे **(चक्षुः)** नेत्रों के बाहिरले भीतरले विज्ञान की **(पाहि)** रक्षा करता है॥१६॥

भावार्थः-इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्य लोग यज्ञ में जो आहुति देते हैं, वह वायु के साथ

मेघमण्डल में जाकर सूर्य्य से खिंचे हुए जल को शुद्ध करती है, फिर वहाँ से वह जल पृथिवी में आकर ओषधियों को पुष्ट करता है। वह उक्त आहुति वेदमन्त्रों से ही करनी चाहिये, क्योंकि उसके फल को जानने में नित्य श्रद्धा उत्पन्न होवे। जो यह अग्नि सूर्य्यरूप होकर सब को प्रकाशित करता है, इसी से सब दृष्टिव्यवहार की पालना होती है। ये जो वसु आदि देव कहाते हैं, इनसे विद्या के उपकारपूर्वक दुष्ट गुण और दुष्ट प्राणियों को नित्य निवारण करना चाहिये, यही सब का पूजन अर्थात् सत्कार है।

जो पूर्व मन्त्र में कहा था, उसका इससे विशेषता करके प्रकाश किया है॥१६॥

यं परिधिमित्यस्य ऋषिर्देवलः। अग्निर्देवता। जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

सोऽग्निः कीदृश इत्युपदिश्यते॥

उक्त अग्नि कैसा है, जो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है॥

य परि॒धिं प॒र्य्यध॑त्था॒ऽअग्ने॑ देवप॒णिभि॒र्गु॒ह्यमा॑नः।

तं त॑ऽए॒तमनु॒ जोषं॑ भराम्ये॒ष मेत्त्वद॑पचे॒तया॑ताऽअ॒ग्नेः प्रि॒यं पाथो॒ऽपी॑तम्॥ १७॥

यम्। परि॒धिम्। परि॒। अध॑त्थाः। अग्ने॑। दे॒व॒। प॒णिभि॒रिति॑ प॒णिऽभिः॑। गु॒ह्यमा॑नः। तम्। ते॒। ए॒तम्। अनु॑। जोष॑म्। भ॒रा॒मि॒। ए॒षः। मा। इत्। त्वत्। अ॒प॒। चे॒तया॑तै। अ॒ग्नेः। प्रि॒यम्। पाथ॑ः। अपी॑तम्॥ १७॥

पदार्थः-(यम्) एतद्गुणविशिष्टम् **(परिधिम्)** परितः सर्वतो धीयते यस्मिँस्तम् **(पर्य्यधत्थाः)** सर्वतो दधामि दधाति वा। अत्र लडर्थे लङ्, पक्षे व्यत्ययश्च **(अग्ने)** सर्वत्र व्यापकेश्वर! भौतिको वा **(देवपणिभिः)** देवानां दिव्यगुणवतामग्निपृथिव्यादीनां विदुषां वा पणयो व्यवहाराः स्तुतयश्च ताभिः **(गुह्यमानः)** सम्यक् व्रियमाणः **(तम्)** परिधिम् **(ते)** तव **(एतम्)** यथोक्तम् **(अनु)** पश्चादर्थे। **अन्विति सादृश्यापरभावं प्राह** (निरु०१.३) **(जोषम्)** जुष्यते प्रीत्या सेव्यते तम् **(भरामि)** धारयामि **(एषः)** परिधिरहं वा **(मा)** प्रतिषेधे **(इत्)** एव **(त्वत्)** अन्तर्यामिनो जगदीश्वरात् तस्मादग्नेर्वा **(अप)** दूरार्थे **(चेतयातै)** चेतयेत्। चिती संज्ञाने इति ण्यन्तस्य लेटः प्रथमपुरुषस्यैकवचने प्रयोगोऽयम् **(अग्नेः)** जगदीश्वरस्य भौतिकस्य वा **(प्रियम्)** प्रीतिजनकम् **(पाथः)** पाति शरीरमात्मानं च येन तत्तदन्नम्। **अन्ने च** (उणा०४.२०४) अनेन पातेरन्नेऽसुन् प्रत्ययः, थुडागमश्च **(अपीतम्)** अपि संयोगे। **अपीति संसर्गं प्राह** (निरु०१.३) इतं प्राप्तम्॥ अयं मन्त्रः (शत०(१.८.३.२२) व्याख्यातः॥१७॥

अन्वयः-हे अग्ने जगदीश्वर! एष देवपणिभिर्गुह्यमानस्त्वं यमेतं जोषं परिधिं पर्य्यधत्थाः सर्वतो दधासि तमित् त्वामहमनुभरामि। अहं त्वा मापचेतयातै कदाचिद्विरुद्धो मा भवेयम्। मया तवाग्नेः सृष्टौ यत् प्रियं पाथोऽपीतं तस्मादहं मा कदाचितपचेतयातै। इत्येकः॥

हे जगदीश्वर! ते तव सृष्टौ योऽयं देवपणिभिर्गुह्यमान एषोऽग्निर्यं परिधिं जोषं पर्य्यधत्थाः सर्वतो दधाति, तमित्तमहमनुभरामि, तस्मात् कदाचिन्माऽपचेतयातै मया यदस्याग्नेः प्रियं पाथोऽपीतं तदहं जोषं नित्यमनुभरामीति द्वितीयः॥१७॥

भावार्थः-अत्र श्लेषालङ्कारः। सर्वैर्मनुष्यैर्यः प्रतिवस्तुषु व्यापकत्वेन धारको विद्वद्भिः स्तोतव्यः संप्रीत्या नित्यमनुसेवनीयः। यतस्तदाज्ञापालनेन प्रियं सुखं प्राप्नुयुः। सोऽयमीश्वरेण प्रकाशदाहवेगगुणादिसहितो मूर्त्तद्रव्यानुगतोऽग्नी रचितस्तस्मान्मनुष्यैः कलाकौशलादिषु प्रयोजितादग्नेर्व्यवहाराः संसाधनीयाः, यतः सुखानि

सिध्येयुः। यत्पूर्वेण मन्त्रेण वृष्ट्यादिसाधकत्वमुक्तं तस्यानेन व्यापकत्वं प्रकाशितमिति संगतिः॥१७॥

पदार्थः-हे **(अग्ने)** सर्वत्र व्यापक ईश्वर! आप **(देवपणिभिः)** दिव्य गुण वाले विद्वानों की स्तुतियों से **(गुह्यमानः)** अच्छी प्रकार अपने गुणों के वर्णन को प्राप्त होते हुए **(यम्)** उन गुणों के अनुकूल **(जोषम्)** प्रीति से सेवन के योग्य **(परिधिम्)** प्रभुता को **(पर्य्यधत्थाः)** निरन्तर धारण करते हैं, **(तम्)** उस आपको **(इत्)** ही **(एषः)** मैं **(अनुभरामि)** अपने हृदय में धारण करता हूं तथा मैं **(त्वत्)** आप से **(मा)** **(अपचेतयातै)** कभी प्रतिकूल न होऊँ और **(अग्नेः)** हे जगदीश्वर! आप की सृष्टि में जो मैंने **(प्रियम्)** प्रीति बढ़ाने और **(पाथः)** शरीर की रक्षा करने वाला अन्न **(अपीतम्)** पाया है, उससे भी कभी **(मा)** **(अपचेतयातै)** प्रतिकूल न होऊँ॥१॥

हे जगदीश्वर! **(ते)** आपकी सृष्टि में **(एषः)** यह **(अग्ने)** भौतिक अग्नि **(देवपणिभिः)** दिव्य गुण वाले पृथिव्यादि पदार्थों के व्यवहारों से **(गुह्यमानः)** अच्छी प्रकार स्वीकार किया हुआ **(यम्)** जिस **(परिधिम्)** विद्यादि गुणों से धारण **(जोषम्)** और प्रीति करने योग्य कर्म को **(पर्य्यधत्थाः)** सब प्रकार से धारण करता है **(तमित्)** उसी को मैं **(अनुभरामि)** उसके पीछे स्वीकार करता हूं और उस से कभी **(मा)** **(अपचेतयातै)** प्रतिकूल नहीं होता हूं तथा मैंने जो **(अग्नेः)** इस अग्नि के सम्बन्ध से **(प्रियम्)** प्रीति देने और **(पाथः)** शरीर की रक्षा करने वाला अन्न **(अपीतम्)** ग्रहण किया है, उसको मैं **(जोषम्)** अत्यन्त प्रीति के साथ नित्य **(अनुभरामि)** क्रम से पाता हूं॥२॥१७॥

भावार्थः-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। पहिले अन्वय में अग्नि शब्द से जगदीश्वर का ग्रहण और दूसरे में भौतिक अग्नि का है। जो प्रति वस्तु में व्यापक होने से सब पदार्थों का धारण करने वाला और विद्वानों के स्तुति करने योग्य ईश्वर है, उसकी सब मनुष्यों को प्रीति के साथ नित्य सेवा करनी चाहिये। जो मनुष्य उसकी आज्ञा नित्य पालते हैं, वे प्रिय सुख को प्राप्त होते हैं तथा जो यह ईश्वर ने प्रकाश, दाह और वेग आदि गुण वाला मूर्तिमान् पदार्थों को प्राप्त होने वाला अग्नि रचा है, उस से भी मनुष्यों को क्रिया की कुशलता के द्वारा उत्तम-उत्तम व्यवहार सिद्ध करने चाहियें, जिससे कि उत्तम-उत्तम सुख सिद्ध होवें। जो पूर्व मन्त्र से वृष्टि आदि पदार्थों का साधक कहा है, उसका इस मन्त्र से व्यापकत्व प्रकाश किया है॥१७॥

संस्रवेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

स यज्ञः कथं किमर्थश्च कर्त्तव्य इत्युपदिश्यते॥

वह यज्ञ कैसे और किस प्रयोजन के लिये करना चाहिये, सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है॥

सꣳस्रवभागा स्थेषा बृहन्तः प्रस्तरेष्ठाः परिधेयाश्च देवाः।

इमां वाचमभि विश्वे गृणन्तऽआसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वꣳ स्वाहा वाट्॥१८॥

सꣳस्रवभागाः। स्थ। इषा। बृहन्तः। प्रस्तरेष्ठाः। परिधेयाः। च। देवाः। इमाम्। वाचम्। अभि। विश्वे। गृणन्तः। आसद्य। अस्मिन्। बर्हिषि। मादयध्वम्। स्वाहा। वाट्॥१८॥

पदार्थः-**(संस्रवभागाः)** सम्यक् स्रूयन्ते ये ते संस्रवाः। भज्यन्ते ये ते भागाः। संस्रवा भागा येषां ते **(स्थ)** भवत **(इषा)** इष्यते ज्ञायते येन तदिट् ज्ञानम्। इष गतावित्यस्य क्विबन्तस्य रूपम्। **कृतो बहुलम्** [अष्टा०३.३.११३ भा०वा०] इति करणे क्विप् **(बृहन्तः)** वर्धमाना वर्धयन्तश्च **(प्रस्तरेष्ठाः)** शुभे न्यायविद्यासने तिष्ठन्ति ते। **तत्पुरुषे**

कृति बहुलम् (अष्टा०६.३.१४) इति सप्तम्या अलुक् **(परिधेयाः)** परितः सर्वतो धातुं धापयितुमर्हाः **(च)** समुच्चयार्थे **(देवाः)** विद्वांसो दिव्याः पदार्था वा **(इमाम्)** प्रत्यक्षाम् **(वाचम्)** वचन्ति वाचयन्ति सर्वा विद्या यया ताम्। सत्यलक्षणां वेदचतुष्टयीम्। **वागिति पदनामसु पठितम्** (निघं०५.५) **(अभि) अभीत्याभिमुख्यं प्राह** (निरु०१.३) **(विश्वे)** सर्वे **(गृणन्तः)** स्तुवन्त उपदिशन्तो वा **(आसद्य)** समन्ताद् विज्ञाय स्थित्वा वा। **(अस्मिन्)** प्रत्यक्षप्राप्ते **(बर्हिषि)** बृंहन्ते वर्धयन्ते येन तद्बर्हिर्ज्ञानं प्राप्तं कर्मकाण्डं वा तस्मिन् **(मादयध्वम्)** हर्षयध्वम् **(स्वाहा)** सु आहेत्यस्मिन्नर्थे **(वाट्)** वहन्ति सुखानि यया क्रियया सा वाट् निपातोऽयम्। अयं मन्त्रः (शत०(१.८.३.२३-२६) व्याख्यातः॥१८॥

अन्वयः-हे बृहन्तः प्रस्तरेष्ठाः परिधेयाः देवा विद्वांसो यूयमिमां वाचमभिगृणन्त इषा संस्रवभागा स्थ भवत स्वाहावाडासाद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वमन्यानेतल्लक्षणान् मनुष्यान् कृत्वा हर्षयत चैवमस्मिन् बर्हिषि इमां वाचमभिगृणद्भिर्युष्माभिरिषा स्वाहा वाडासाद्य प्रस्तरेष्ठा विश्वेदेवाः सर्वे विद्वांसः सदा परिधेयाः। तान् प्राप्य चास्मिन् बर्हिषि मादयध्वम्॥१८॥

भावार्थः-ईश्वर आज्ञापयति ये मनुष्या धार्मिकाः पुरुषार्थिनो वेदविद्याप्रचारे उत्तमे व्यवहारे च नित्यं वर्त्तन्ते तेषामेव बृहन्ति सुखानि भवन्ति। यौ पूर्वस्मिन् मन्त्रेऽग्निशब्देनेश्वरभौतिकार्थावुक्तावनेन तयोः सकाशादीदृशा उपकारा ग्राह्या इत्युच्यते॥१८॥

पदार्थः-हे **(बृहन्तः)** वृद्धि को प्राप्त होने **(प्रस्तरेष्ठाः)** उत्तम न्याय विद्यारूपी आसन में स्थित होने वाले **(परिधेयाः)** सब प्रकार से धारणावती बुद्धियुक्त **(च)** और **(इमाम्)** इस प्रत्यक्ष **(वाचम्)** चार वेदों की वाणी का उपदेश करने वाले **(देवाः)** विद्वानो! तुम **(इषा)** अपने ज्ञान से **(संस्रवभागाः)** घृतादि पदार्थों के होम में छोड़ने वाले **(स्थ)** होओ तथा **(स्वाहा)** अच्छे-अच्छे वचनों से **(वाट्)** प्राप्त होने और सुख बढ़ाने वाली क्रिया को प्राप्त होकर **(अस्मिन्)** प्रत्यक्ष **(बर्हिषि)** ज्ञान और कर्मकाण्ड में **(मादयध्वम्)** आनन्दित होओ, वैसे ही औरों को भी आनन्दित करो। इस प्रकार उक्त ज्ञान को कर्मकाण्ड में उक्त वेदवाणी की प्रशंसा करते हुए तुम लोग अपने विचार से उत्तम ज्ञान को प्राप्त होने वाली क्रिया को प्राप्त होकर **(बृहन्तः)** बढ़ने और **(प्रस्तरेष्ठाः)** उत्तम कामों में स्थित होने वाले **(विश्वे)** सब **(देवाः)** उत्तम-उत्तम पदार्थ **(परिधेयाः)** धारण करो वा औरों को धारण कराओ और उनकी सहायता से उक्त ज्ञान वा कर्मकाण्ड में सदा **(मादयध्वम्)** हर्षित होओ॥१८॥

भावार्थः-ईश्वर आज्ञा देता है कि जो धार्मिक पुरुषार्थी वेदविद्या के प्रचार वा उत्तम व्यवहार में वर्त्तमान हैं, उन्हीं को बड़े-बड़े सुख होते हैं। जो पूर्व मन्त्र में ईश्वर और भौतिक अर्थ कहे हैं, उनसे ऐसे-ऐसे उपकार लेना चाहिए सो इस मन्त्र में कहा है॥१८॥

घृताची स्थ इत्यस्य ऋषिः स एव। अग्निवायू देवते। भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अथोक्तेन यज्ञेन किं भवतीत्युपदिश्यते॥

अब उक्त यज्ञ से क्या होता है, सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है॥

घृताची स्थो धुर्यौ पातꣳ सुम्ने स्थः सुम्ने मा धत्तम्।
यज्ञ नमश्च तऽउप च यज्ञस्य शिवे सन्तिष्ठस्व स्विष्टे मे संतिष्ठस्व॥१९॥

घृताची॑। स्थः॒। धुर्य्यौ॑। पा॒तम्। सु॒म्ने। स्थः॒। सु॒म्ने। मा॒। ध॒त्तम्। य॒ज्ञ। नम॑ः। च॒। ते॒। उप॑। च॒। य॒ज्ञस्य॑। शिवे॑। सम्। ति॒ष्ठ॒स्व॒। स्वि॒ष्टे इति॑ सु॒ऽइ॒ष्टे। मे॒। सम्। ति॒ष्ठ॒स्व॒॥ १९॥

पदार्थः-(घृताची) घृतमुदकमञ्चत इति घृताची अग्निवाय्वोर्धारणाकर्षणक्रिये। अत्र पूर्वसवर्णादेशः **घृतमित्युदकनामसु पठितम्** (निघं०१.१२) **(स्थः)** स्तः। अत्र सर्वत्र पुरुषव्यत्ययः **(धुर्य्यौ)** धुरं यज्ञस्याग्रं मुख्याङ्गं वहतस्तौ। अत्र **धुरो यड्ढकौ** (अष्टा०४.४.७७) इति यत् प्रत्ययः **(पातम्)** रक्षतः **(सुम्ने)** सुखकारिके उक्ते क्रिये। **सुम्नमिति सुखनामसु पठितम्** (निघं०३.६) **(स्थः)** भवतः **(सुम्ने)** अत्युत्कृष्टे सुखे **(मा)** मां यज्ञानुष्ठातारम् **(धत्तम्)** धारयतः। **(यज्ञ)** इज्यते सर्वैर्जनैः स यज्ञ ईश्वरस्तत्सम्बुद्धौ, क्रियासाध्यो वा, अत्रान्त्ये पक्षे **सुपां सुलुक्** [अष्टा०७.१.३९] इति सोर्लुक् **(नमः)** नम्रीभावार्थे **(च)** समुच्चये **(ते)** तुभ्यं तस्य वा **(उप)** सामीप्ये क्रियायोगे। **उपेत्युपजनं प्राह** (निरु०१.३) **(च)** पश्चादर्थे **(यज्ञस्य)** ज्ञानक्रियाभ्यामनुष्ठेयस्य **(शिवे)** कल्याणसाधिके॥ सर्वनिघृष्व० (उणा०१.१५३) इत्ययं सिद्धः **(संतिष्ठस्व)** संतिष्ठते। अत्र लडर्थे लोट् **(स्विष्टे)** शोभनमिष्टं याभ्यां ते **(मे)** मम **(संतिष्ठस्व)** सुष्ठुसाधने स्थिरो भव, संतिष्ठो वा॥ अयं मन्त्रः (शत०(१.८.३.२७) व्याख्यातः॥ १९॥

अन्वयः-यावग्निवायू यज्ञस्य धुर्य्ये सुम्ने स्थो घृताची स्थः सर्वं जगत् पातं रक्षतस्तौ मया सम्यक् प्रयोजितौ सुम्ने सुखे मा मां धत्तं धारयतः। यज्ञो नमश्च ये यथा ते तव शिवे उपसंतिष्ठेते मे ममाप्येते तथैव संतिष्ठेताम्। तस्माद् यथाहं तस्य यज्ञस्यानुष्ठाने संतिष्ठे तथा त्वमप्यत्र संतिष्ठस्व। यथाऽहं यज्ञमनुष्ठाय सुखे संतिष्ठे तथा त्वमपि तत्र संतिष्ठस्व॥ १९॥

भावार्थः-अत्र लुप्तोपमालङ्कारः। ईश्वरोऽभिवदति हे मनुष्या! यूयमेतयोरसच्छेदकधारकयोर्जगत्पालनहेत्वोः सुखकारिणोः क्रियाकाण्डस्य निमित्तयोरूर्ध्वतिर्य्यग्गमनशीलयोरग्निवाय्वोः सकाशात् कार्य्याणि साधित्वा सुखेषु संस्थितिं कुरुत, मदाज्ञापालनं मां च सततं नमस्कुरुत। पूर्वमन्त्रोक्तैरुपकारैः परमं सुखं भवतीत्यनेनोक्तमिति॥ १९॥

पदार्थः-जो अग्नि और वायु **(धुर्य्यो)** यज्ञ के मुख्य अङ्ग को प्राप्त कराने वाले **(च)** और **(सुम्ने)** सुखरूप **(स्थ)** हैं तथा **(घृताची)** जल को प्राप्त कराने वाली क्रियाओं को कराने हारे **(स्थः)** हैं और सब जगत् को **(पातम्)** पालते हैं, वे मुझ से अच्छी प्रकार उत्तम-उत्तम क्रिया-कुशलता में युक्त हुए **(मा)** मुझे, यज्ञ कराने वाले को **(सुम्ने)** सुख में **(धत्तम्)** स्थापन करते हैं। जैसे यह **(यज्ञ)** जगदीश्वर **(च)** और **(नमः)** नम्र होना **(ते)** तेरे लिये **(शिवे)** कल्याण में **(उपसंतिष्ठस्व)** समीप स्थित होते हैं, वे वैसे ही **(मे)** मेरे लिये भी स्थित होते हैं, इस कारण जैसे मैं **(यज्ञस्य)** यज्ञ का अनुष्ठान करके **(सुम्ने)** सुख में स्थित होता हूं, वैसे तुम भी उस में **(संतिष्ठस्व)** स्थित होओ॥ १९॥

भावार्थः-इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। ईश्वर कहता है कि हे मनुष्यो! रस के परमाणु करने, जगत् के पालन के निमित्त सुख करने, क्रियाकाण्ड के हेतु और ऊपर को तथा टेढ़े वा सूधे जाने वाले अग्नि और वायु के गुणों से कार्य्यों को सिद्ध करो। इस से तुम लोग सुखों में अच्छी प्रकार स्थिर हो तथा मेरी आज्ञा पालो और मुझ को ही बार-बार नमस्कार करो॥ १९॥

अग्नेऽदब्धायो इत्यस्य ऋषिः स एव। अग्निसरस्वत्यौ देवते। भुरिग्ब्राह्मीत्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ सोऽग्निः कीदृशः किमर्थः प्रार्थनीयश्चेत्युपदिश्यते॥

उक्त अग्नि कैसा और क्यों प्रार्थना करने योग्य है, सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है॥

अग्नेऽदब्धायोऽशीतम पाहि मा दिद्योः पाहि प्रसित्यै पाहि दुरिष्ट्यै पाहि दुरद्मन्याऽअविषं नः पितुं कृणु। सुषदा योनौ स्वाहा वाडग्नये संवेशपतये स्वाहा सरस्वत्यै यशोभगिन्यै स्वाहा॥ २०॥

अग्ने। अदब्धायोऽ इत्यदब्धऽआयो। अशीतम। अशितमेत्यशिऽतम। पाहि। मा। दिद्योः। पाहि। प्रसित्या इति प्रऽसित्यै। पाहि। दुरिष्ट्या इति दुःऽइष्ट्यै। पाहि। दुरद्मन्या इति दुःऽअद्मन्यै। अविषम्। नः। पितुम्। कृणु। सुषदा। सुसदेति सुऽसदा। योनौ। स्वाहा। वाट्। अग्नये। संवेशपतय इति संवेशऽपतये। स्वाहा। सरस्वत्यै। यशोभगिन्या इति यशःऽभगिन्यै। स्वाहा॥ २०॥

पदार्थः-(**अग्ने**) जगदीश्वर! भौतिको वा (**अदब्धायो**) अदब्धमहिंसितमायुर्यस्मात् तत्संबुद्धौ, अदब्धायुर्वा। (**अशीतम**) अश्नुते व्याप्नोति चराचरं यज्ञं सोऽतिशयितस्तत्संबुद्धौ। स वा। **अन्येषामपि दृश्यते** [अष्टा०६.३.१३७] इति दीर्घः (**पाहि**) रक्ष पाति वा (**मा**) माम् (**दिद्योः**) अतिदुःखात्। दिवु धातोः **कुर्भ्रश्च** (उणा०१.२२) इति चकारेण कुप्रत्ययो बाहुलकाद् वकारलोपश्च (**पाहि**) रक्ष रक्षति वा (**प्रसित्यै**) प्रकृष्टा चासौ सितिर्बन्धनं यस्या तस्याः। अत्र पञ्चम्यर्थे चतुर्थी (**पाहि**) पाति वा (**दुरिष्ट्यै**) दुष्टा इष्टिर्यजनं यस्यां तस्याः। अत्र पञ्चम्यर्थे चतुर्थी। (**पाहि**) पाति वा। (**दुरद्मन्यै**) दुष्टा अद्मनी अदनक्रिया यस्यां तस्याः। अत्रापि पञ्चम्यर्थे चतुर्थी (**अविषम्**) विषादिदोषरहितम् (**नः**) अस्माकम् (**पितुम्**) अन्नम्। **पितुरित्यन्ननामसु पठितम्** (निघं०२.७) (**कृणु**) कुरु करोति वा। अत्र सर्वत्र पक्षे लडर्थे लोट् (**सुषदा**) सुखेन सीदन्ति यस्यां तस्याम्। अत्र **सुपां सुलुक्** [अष्टा०७.१.३९] इति ङेः स्थान आकारादेशः (**योनौ**) युवन्ति यस्यां सा योनिर्गृहं जन्मान्तरं वा तस्याम्। **योनिरिति गृहनामसु पठितम्** (निघं०३.४) (**स्वाहा**) सु आहानया सा (**वाट्**) क्रियार्थे। (**अग्नये**) परमेश्वराय भौतिकाय वा (**संवेशपतये**) सम्यक् विशन्ति ये ते पृथिव्यादयः पदार्थास्तेषां पतिः पालकस्तस्मै (**स्वाहा**) सुष्ठु आहुतं करोति यस्यां सा (**सरस्वत्यै**) सरन्ति जानन्ति येन तत् सरो ज्ञानं तत्प्रशस्तं विद्यते यस्यां वाचि तस्यै। **सरस्वतीति वाङ्नामसु पठितम्** (निघं०१.११) (**यशोभगिन्यै**) यशांसि सत्यवचनादीनि कर्माणि भजितुं शीलं यस्यास्तस्यै (**स्वाहा**) स्वकीयं पदार्थं प्रत्याह यस्यां क्रियायां सा॥ अयं मन्त्रः (शत०(१.७.३.१९-२०) व्याख्यातः॥२०॥

अन्वयः-हे अदब्धायोऽशीतमाग्ने जगदीश्वर! त्वं यज्ञं दुरिष्ट्यै पाहि। मां दिद्योः प्रमादाद् दुःखात् पाहि, प्रसित्यै पाहि, दुरद्मन्यै पाहि, नोऽस्माकमविषं पितुं कृणु नोऽस्मान् सुषदायां योनौ स्वाहा वाट् सत्क्रियायां च कृणु, वयं यशोभगिन्यै स्वाहा सरस्वत्यै संवेशपतयेऽग्नये तुभ्यं स्वाहा नमश्च नित्यं कुर्म इत्येकः॥

हे जगदीश्वर! योऽयं भवताऽदब्धायुरशीतमोग्निर्निर्मितः स यज्ञं दुरिष्ट्याः पाति। मां दिद्योः पाति। प्रसित्याः पाति। दुरद्मन्याः पाति। नोऽस्माकमविषं पितुं करोति, सुषदायां योनौ स्वाहा वाट् सत्क्रियायां च हेतुरस्ति वयं तस्मै संवेशपतयेऽग्नये स्वाहा, यशोभगिन्यै सरस्वत्यै स्वाहा कुर्म इति द्वितीयः॥२०॥

भावार्थः-अत्र श्लेषालङ्कारः। मनुष्यैः सर्वथा सर्वस्माद् दुःखाद् रक्षक उत्तमजन्मनिमित्तकर्माज्ञापक

उत्तमभोगप्रदाता जगदीश्वरोऽस्ति, स एव सदा सेवनीयः। तेन स्वसृष्टौ सूर्य्यविद्युत्प्रत्यक्षरूपेण योऽयमग्निः प्रकाशितः, सोऽपि सम्यक् विद्योपकारे संयोजितः सन् सर्वथा रक्षणोत्तमभोगहेतुर्भवति। यया कीर्तिहेतुभूतया सत्यलक्षणया वेदरूपया वाचोत्तमानि जन्मानि सर्वपदार्थेभ्य उत्कृष्टा विविधा विद्या च प्रकाशिता भवति, सा सदैव स्वीकर्त्तव्या स्वीकारयितव्या वेति। अत्र नमो यज्ञ इति च पदद्वयं पूर्वस्मान्मन्त्रादाकर्षितम्। पूर्वमन्त्रोक्तानां मनुष्यैरनुष्ठितानां कर्मणां फलमनेनोक्तमिति वेद्यम्॥२०॥

पदार्थः-हे **(अदब्धायो)** निर्विघ्न आयु देने वाले **(अग्ने)** जगदीश्वर! आप **(अशीतम)** चराचर संसार में व्यापक यज्ञ को **(दुरिष्ट्यै)** दुष्ट अर्थात् वेदविरुद्ध यज्ञ से **(पाहि)** रक्षा कीजिये **(मा)** मुझे **(दिद्योः)** अति दुःख से **(पाहि)** बचाइये तथा **(प्रसित्यै)** भारी-भारी बन्धनों से **(पाहि)** अलग रखिये **(दुरद्मन्यै)** जो दुष्ट भोजन करना है, उस विपत्ति से **(पाहि)** बचाइये और **(नः)** हमारे लिये **(अविषम्)** विष आदि दोषरहित **(पितुम्)** अन्नादि पदार्थ **(कृणु)** उत्पन्न कीजिये तथा **(नः)** हम लोगों को **(सुषदा)** सुख से स्थिरता को देने वाले **(योनौ)** घर में **(स्वाहा)** **(वाट्)** वेदोक्त वाक्यों से सिद्ध होने वाली उत्तम क्रियाओं में स्थिर **(कृणु)** कीजिये, जिससे हम लोग **(यशोभगिन्यै)** सत्यवचन आदि उत्तम कर्मों का सेवन करने वाली **(सरस्वत्यै)** पदार्थों के प्रकाशित कराने में उत्तम ज्ञानयुक्त वेदवाणी के लिये **(स्वाहा)** धन्यवाद वा **(संवेशपतये)** अच्छी प्रकार जिन पृथिव्यादि लोकों में प्रवेश करते हैं, उनके पति अर्थात् पालन करनेहारे जो **(अग्नये)** आप हैं, उनके लिये **(स्वाहा)** धन्यवाद और **(नमः)** नमस्कार करते हैं॥१॥

हे भगवन् जगदीश्वर! आपने जो यह **(अदब्धायो)** निर्विघ्न आयु का निमित्त **(अग्ने)** भौतिक अग्नि बनाया है, वह भी **(अशीतम)** सर्वत्र व्यापक यज्ञ को **(दुरिष्ट्यै)** दुष्ट यज्ञ से **(पाहि)** रक्षा करता है तथा **(मा)** मुझे **(दिद्योः)** अति दुःखों से **(पाहि)** बचाता है **(प्रसित्यै)** बड़े-बड़े दारिद्र्य के बन्धनों से **(पाहि)** बचाता है तथा **(दुरद्मन्यै)** दुष्ट भोजन कराने वाली क्रियाओं से **(पाहि)** बचाता है और **(नः)** हमारे **(पितुम्)** अन्न आदि पदार्थ **(अविषम्)** विष आदि दोषरहित **(कृणु)** कर देता है वह **(सुषदा)** सुख से स्थिति देने वाले **(योनौ)** घर अथवा दूसरे जन्मों में **(स्वाहा)** **(वाट्)** वेदोक्त वाक्यों से सिद्ध होने वाली क्रियाओं का हेतु है, हम लोग उस **(संवेशपतये)** पृथिव्यादि लोकों के पालने वाले **(अग्नये)** भौतिक अग्नि को ग्रहण करके **(स्वाहा)** होम तथा उसके साथ **(यशोभगिन्यै)** **(सरस्वत्यै)** उक्त गुण वाली वेदवाणी की प्राप्ति के लिये **(स्वाहा)** परमात्मा का धन्यवाद करते हैं॥२०॥

भावार्थः-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को जो सर्वव्यापक सब प्रकार से रक्षा करने, उत्तम जन्म देने, उत्तम कर्म कराने और उत्तम विद्या वा उत्तम भोग देने वाला जगदीश्वर है, उसी का सेवन सदा करना योग्य है तथा जो यह अपनी सृष्टि में परमेश्वर ने भौतिक अग्नि, प्रत्यक्ष सूर्य्यलोक और बिजुली रूप से प्रकाशित किया है वह भी अच्छी प्रकार विद्या से उपकार लेने में संयुक्त किया हुआ सब प्रकार से रक्षा और उत्तम भोग का हेतु होता है। जिसकी कीर्ति के निमित्त सत्यलक्षणयुक्त वेदवाणी से उत्तम जन्म अथवा सब पदार्थों से अच्छी-अच्छी विद्या प्रकाशित होती हैं। वे सब विद्वानों के स्वीकार करने योग्य हैं। इस मन्त्र में **(नमः)** और **(यज्ञ)** ये दोनों पद पूर्व मन्त्र से लिये हैं॥२०॥

वेदोऽसीत्यस्य वामदेव ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। भुरिग्ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

स जगदीश्वरः कीदृशोऽस्तीत्युपदिश्यते॥

सो जगदीश्वर कैसा है। सो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

वेदोऽसि येन त्वं देव वेद देवेभ्यो वेदोऽभवस्तेन मह्यं वेदो भूयाः।

देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित। मनसस्पतऽइमं देव यज्ञꣳ स्वाहा वाते धाः॥२१॥

वेदः। असि। येन। त्वम्। देव। वेद। देवेभ्यः। वेदः। अभवः। तेन। मह्यम्। वेदः। भूयाः। देवाः। गातुविद इति गातुऽविदः। गातुम्। वित्त्वा। गातुम्। इत। मनसः। पते। इमम्। देव। यज्ञम्। स्वाहा। वाते। धाः॥२१॥

पदार्थः-(वेदः) वेत्ति चराचरं जगत् स जगदीश्वरः। विदन्ति येन स ऋग्वेदादिर्वा **(असि)** भवसि वा **(येन)** विज्ञानेन वेदेन वा **(त्वम्)** **(देव)** शुभगुणदातः **(वेदः)** जानासि वेत्ति वा **(देवेभ्यः)** विद्वद्भ्यः **(वेदः)** वेदयिता **(अभवः)** भवसि **(तेन)** विज्ञानप्रकाशनेन **(मह्यम्)** विज्ञानं जिज्ञासवे **(वेदः)** ज्ञापकः **(भूयाः)** **(देवाः)** विद्वांसः **(गातुविदः)** गीयते स्तूयतेऽनया सा गातुः स्तुतिस्तस्या विदो वक्तारः। **कमिमनिजनि०** (उणा०१.७३) अनेन गास्तुताविस्यस्मात् तुः प्रत्ययः **(गातुम्)** गीयते ज्ञायते येन स गातुर्वेदस्तम्। **गातुरिति पदनामसु पठितम्** (निघं०४.१) अनेन ज्ञानार्थो गृह्यते **(वित्त्वा)** लब्ध्वा **(गातुम्)** गीयते शब्द्यते यस्तं यज्ञम् **(इत)** प्राप्नुत **(मनसः)** विज्ञानस्य **(पते)** पालक **(इमम्)** प्रत्यक्षमनुष्ठितमनुष्ठातव्यं वा **(देव)** सर्वजगत्प्रकाशक **(यज्ञम्)** क्रियाकाण्डजन्यं संसारम् **(स्वाहा)** सुष्ठु आहुतं हविः करोत्यनया सा **(वाते)** वायौ **(धाः)** धापय धापयति वा। अत्र सर्वत्र पक्षान्तरे व्यत्ययेन प्रथमः। **बहुलं छन्दस्यामाङ्योगेऽपि** [अष्टा०६.४.७५] इत्यडभावः॥ अयं मन्त्रः (शत०(१.९.२.२१-२८) व्याख्यातः॥२१॥

अन्वयः-हे देव जगदीश्वर! येन त्वं वेदोऽसि सर्वं च वेद, येन च त्वं देवेभ्यो वेदोऽभवस्तेन त्वं मह्यमपि वेदो भूयाः। हे गातुविदो देवा भवन्तो येन वेदेन सर्वा विद्या विदन्ति, येन यूयं गातुं वित्त्वा गातुमित। हे मनसस्पते देव! त्वमिमं यज्ञं वाते धाः स्वाहा हे देवास्तमिमं मनसस्पतिं परमेश्वरमेव देवं नित्यमुपासीध्वम्॥२१॥

भावार्थः-हे विद्वांसो मनुष्या! यूयं येन सर्ववेत्रा वेदविद्या प्रकाशिता तमेवोपास्यं विदित्वा क्रियाकाण्डमनुष्ठाय सर्वहितं सम्पादयत। नैव वेदविज्ञानेन तत्रोक्तविधानानुकूलस्यानुष्ठानेन च विना मनुष्याणां कदाचित् सुखं सम्भवति, वेदविद्यया सर्वसाक्षिणमीश्वरं देवं सर्वतो व्यापकं मत्वैव नित्यं धर्मस्यानुष्ठातारो भवतेति॥२१॥

पदार्थः-हे **(देव)** शुभ गुणों के देनेहारे जगदीश्वर! **(त्वम्)** आप **(वेदः)** चराचर जगत् के जानने वाले **(असि)** हैं, सब जगत् को **(वेद)** जानते हैं तथा **(येन)** जिस विज्ञान वा वेद से **(देवेभ्यः)** विद्वानों के लिये **(वेदः)** पदार्थों के जानने वाले **(अभवः)** होते हैं, **(तेन)** उस विज्ञान के प्रकाश से आप **(मह्यम्)** मेरे लिये, जो कि मैं विशेष ज्ञान की इच्छा कर रहा हूं, **(वेदः)** विज्ञान देने वाले **(भूयाः)** हूजिये। हे **(गातुविदः)** स्तुति के जानने वाले **(देवाः)** विद्वानो! जिस वेद से मनुष्य सब विद्याओं को जानते हैं, उससे तुम लोग **(गातुम्)** विशेष ज्ञान को **(वित्त्वा)** प्राप्त होकर **(गातुम्)** प्रशंसा करने योग्य वेद को **(इत)** प्राप्त हो। हे **(मनसस्पते)** विज्ञान से पालन करने हारे **(देव)** सर्वजगत् प्रकाशक परमेश्वर आप **(इमम्)** प्रत्यक्ष अनुष्ठान करने योग्य **(यज्ञम्)** क्रियाकाण्ड से सिद्ध होने वाले यज्ञरूप संसार को **(स्वाहा)** क्रिया के अनुकूल **(वाते)** पवन के बीच **(धाः)** स्थित कीजिये। हे विद्वानो!

उस विज्ञान से विशेष ज्ञान देने वाले परमेश्वर ही की नित्य उपासना करो॥२१॥

भावार्थः-हे विद्वान् मनुष्यो! तुम लोगों को जिस वेद जानने वाले परमेश्वर ने वेदविद्या प्रकाशित की है, उसकी उपासना करके उसी वेदविद्या को जान कर और क्रियाकाण्ड का अनुष्ठान करके सब का हित सम्पादन करना चाहिये, क्योंकि वेदों के विज्ञान के विना तथा उसमें जो-जो कहे हुए काम हैं, उनके किये विना मनुष्यों को कभी सुख नहीं हो सकता। तुम लोग वेदविद्या से जो सब का साक्षी ईश्वर देव है, उस को सब जगह व्यापक मानके नित्य धर्म में रहो॥२१॥

सं बर्हिरित्यस्य वामदेव ऋषिः। इन्द्रो देवता। विराट्त्रिष्टुप छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अग्नौ हुतं द्रव्यमन्तरिक्षस्थं भूत्वा केन चरतीत्युपदिश्यते॥

यज्ञ में चढ़ा हुआ पदार्थ अन्तरिक्ष में ठहर कर किसके साथ रहता है, सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है॥

सं बुर्हिर॑ङ्क्ताᳬ हुविषा॑ घृतेन॒ समा॑दि॒त्यैर्वसु॑भिः॒ सम्म॒रुद्भिः॑।

समिन्द्रो॑ वि॒श्वदे॑वेभिरङ्क्तां दि॒व्यं नभो॑ गच्छतु॒ यत् स्वाहा॑॥२२॥

सम्। बु॒र्हिः। अ॒ङ्क्ता॒म्। हु॒विषा॑। घृ॒तेन॑। सम्। आ॒दि॒त्यैः। वसु॑भि॒रिति॒ वसु॑ऽभिः। सम्। म॒रुद्भि॒रिति॑ म॒रुत्ऽभि॑ः। सम्। इन्द्रः॑। वि॒श्वदे॑वेभि॒रिति॑ वि॒श्वऽदे॑वेभिः। अ॒ङ्क्ता॒म्। दि॒व्यम्। नभ॑ः। ग॒च्छ॒तु॒। यत्। स्वाहा॑॥२२॥

पदार्थः-**(सम्)** एकीभावे क्रियायोगे **(बर्हिः)** बृहन्ते सर्वे पदार्था यस्मिन् तदन्तरिक्षम्। **बर्हिरित्यन्तरिक्षनामसु पठितम्** (निघं०१.३) **(अडक्ताम्)** संयोजयतु **(हविषा)** होतुमर्हं शुद्धं संस्कृतं हविस्तेन **(घृतेन)** सुगन्ध्यादिगुणयुक्तेनाज्येन सह **(सम्)** संयोगार्थे **(आदित्यैः)** द्वादशभिर्मासैः **(वसुभिः)** अग्न्यादिभिरष्टभिः **(सम्)** मिश्रीभावे **(मरुद्भिः)** वायुविशेषैः सह **(सम्)** मेलने **(इन्द्रः)** सूर्य्यलोकः **(विश्वदेवेभिः)** स्वकीयै रश्मिभिः। **रश्मयो ह्यस्य विश्वेदेवाः** (शत०३.९.२.६) **(अङ्क्ताम्)** प्रकटं संयोजयति **(दिव्यम्)** दिवि प्रकाशे भवम्। **द्युप्रागपागुदक्प्रतीचो यत्** (अष्टा०४.२.१०९) इति शैषिको यत्। **(नभः)** जलम्। **नभ इत्युदकनामसु पठितम्** (निघं०१.१२) **(गच्छतु)** गच्छति **(यत्)** यदा **(स्वाहा)** शोभनं हविर्जुहोति यया क्रियया सा॥ अयं मन्त्रः (शत०(१.७.३.२९-३१) व्याख्यातः॥२२॥

अन्वयः-हे मनुष्य! भवानिदं यद्यदा होतव्यं द्रव्यं हविषा घृतेन सह संयुक्तं कृत्वाऽऽदित्यैर्वसुभिर्मरुद्भिः सह सुखं समङ्क्ताम्। अयमिन्द्रो यज्ञे स्वाहा यत्सुगन्ध्यादि द्रव्ययुक्तं हविः समङ्क्ताम्, यत्संमिश्रितैर्विश्वदेवेभिर्दिव्यं नभः संगच्छतु सम्यक् प्रकटयति॥२२॥

भावार्थः-यज्ञे संशोधितं यद्धविरग्नौ प्रक्षिप्यते तदन्तरिक्षे वायुजलसूर्य्यकिरणैः सह वर्त्तमानमितस्ततो गत्वाऽऽकाशस्थान् सर्वान् पदार्थान् दिव्यान् कृत्वा सततं प्रजाः सुखयति तस्मात् सर्वैर्मनुष्यैरुत्तमसामग्र्या श्रेष्ठैः साधनैस्त्रिविधो यज्ञो नित्यमनुष्ठेय इति॥२२॥

पदार्थः-हे मनुष्य! तुम **(यत्)** जब हवन करने योग्य द्रव्य को **(हविषा)** होम करने योग्य **(घृतेन)** घी आदि सुगन्धियुक्त पदार्थ से संयुक्त करके हवन करोगे, तब वह **(आदित्यैः)** बारह महीनों **(वसुभिः)** अग्नि आदि आठों निवास के स्थान और **(मरुद्भिः)** प्रजा के जनों के साथ मिल के सुख को **(समङ्क्ताम्)** अच्छी प्रकार प्रकाश

करेगा। **(इन्द्रः)** सूर्य्यलोक जो यज्ञ में छोड़ा हुआ **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया से सुगन्ध्यादि पदार्थयुक्त हवि **(संगच्छतु)** पहुँचाता है, उससे **(सम्)** अच्छी प्रकार मिश्रित हुए **(विश्वदेवेभिः)** अपनी किरणों से **(दिव्यम्)** जो उस के प्रकाश में इकट्ठा होने वाला **(नभः)** जल को **(समङ्क्ताम्)** अच्छी प्रकार प्रकट करता है॥२२॥

भावार्थः-जो हवि अच्छी प्रकार शुद्ध किया हुआ यज्ञ के निमित्त अग्नि में छोड़ा जाता है, वह अन्तरिक्ष में वायु जल और सूर्य्य की किरणों के साथ मिल कर इधर-उधर फैल कर आकाश में ठहरने वाले सब पदार्थों को दिव्य करके अच्छी प्रकार प्रजा को सुखी करता है। इससे मनुष्यों को उत्तम सामग्री और उत्तम-उत्तम साधनों से उक्त तीन प्रकार के यज्ञ का नित्य अनुष्ठान करना चाहिये॥२२॥

कस्त्वेत्यस्य ऋषिः स एव। प्रजापतिर्देवता। निचृद्बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

अग्नौ द्रव्यं किमर्थं प्रक्षिप्यत इत्युपदिश्यते॥

अग्नि में किसलिये पदार्थ छोड़ा जाता है, सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है॥

कस्त्वा विमुञ्चति स त्वा विमुञ्चति कस्मै त्वा विमुञ्चति तस्मै त्वा विमुञ्चति। पोषाय रक्षसां भागोऽसि॥२३॥

कः। त्वा। वि। मुञ्चति। सः। त्वा। वि। मुञ्चति। कस्मै। त्वा। वि। मुञ्चति। तस्मै। त्वा। वि। मुञ्चति। पोषाय। रक्षसाम्। भागः। असि॥२३॥

पदार्थः-(कः) सुखकारी यजमानः **(त्वा)** तम् **(वि)** विविधार्थे क्रियायोगे। **व्यपेत्येतस्य प्रातिलोम्यं प्राह** (निरु०१.३) **(मुञ्चति)** त्यजति **(सः)** यज्ञः **(त्वा)** त्वाम् **(वि)** विशेषार्थे **(मुञ्चति)** त्यजति **(कस्मै)** प्रयोजनाय **(त्वा)** त्वां **(वि)** विवक्तार्थे **(मुञ्चति)** प्रक्षिपति **(तस्मै)** यतः सर्वसुखप्राप्तिर्भवेत् तस्मै **(त्वा)** पदार्थसमूहम् **(वि)** विशिष्टार्थे **(मुञ्चति)** त्यजति **(पोषाय)** पुष्यन्ति प्राणिनो यस्मिन् व्यवहारे तस्मै **(रक्षसाम्)** दुष्टानाम् **(भागः)** भजनीयः **(असि)** भवन्ति॥ अयं मन्त्रः (शत०(१.९.२.३३-३५) व्याख्यातः॥२३॥

अन्वयः-को मनुष्यस्त्वा तं यज्ञं विमुञ्चति कोऽपि नेत्यर्थः। यश्च यज्ञं विमुञ्चति तं स यज्ञः परमेश्वरो विमुञ्चति। यज्ञकर्त्ता कस्मै प्रयोजनाय तं पदार्थसमूहमग्नौ विमुञ्चति, यतः सर्वसुखप्राप्तिर्भवेत् तस्मै। पोषाय त्वा तं विमुञ्चति, किन्तु यः पदार्थः सर्वोपकारे यज्ञे न प्रयुज्यते स रक्षसां भागोऽसि भवति॥२३॥

भावार्थः-यो मनुष्य ईश्वरेण वेदद्वाराऽऽज्ञापितं व्यवहारं त्यजति स सर्वैः सुखैर्हीनो भूत्वा दुष्टैः पीडितः सन् सर्वदा दुःखी भवति। केनचित् कंचित् प्रति पृष्टं यो यज्ञं त्यजति तस्मै किं भवतीति। स आह, ईश्वरोऽपि तं त्यजतीति। स पुनराह ईश्वरः कस्मै प्रयोजनाय तं त्यजतीति। स ब्रूते तस्मै दुःखमेव स्यादित्यस्मै। यश्चेश्वराज्ञां पालयति, स सुखैः पोषितुमर्हति, यश्च त्यजति स एव राक्षसो भवतीति॥२३॥

पदार्थः-(कः) कौन सुख चाहने वाला यज्ञ का अनुष्ठाता पुरुष **(त्वा)** उस यज्ञ को **(विमुञ्चति)** छोड़ता है अर्थात् कोई नहीं। और जो कोई यज्ञ को छोड़ता है **(त्वा)** उस को **(सः)** यज्ञ का पालन करने हारा परमेश्वर भी **(विमुञ्चति)** छोड़ देता है। जो यज्ञ का करने वाला मनुष्य पदार्थ समूह को यज्ञ में छोड़ता है, **(त्वा)** उस को **(कस्मै)** किस प्रयोजन के लिये अग्नि के बीच में **(विमुञ्चति)** छोड़ता है, **(तस्मै)** जिससे सब सुख प्राप्त हो तथा **(पोषाय)** पुष्टि आदि गुण के लिये **(त्वा)** उस पदार्थ समूह को **(विमुञ्चति)** छोड़ता है। जो पदार्थ सब के उपकार

के लिये यज्ञ के बीच में नहीं युक्त किया जाता, वह **(रक्षसाम्)** दुष्ट प्राणियों का **(भागः)** अंश **(असि)** होता है॥२३॥

भावार्थः-जो मनुष्य ईश्वर के करने-कराने वा आज्ञा देने के योग्य व्यवहार को छोड़ता है, वह सब सुखों से हीन होकर और दुष्ट मनुष्यों से पीड़ा पाता हुआ सब प्रकार दुःखी रहता है। किसी ने किसी से पूछा कि जो यज्ञ को छोड़ता है, उसके लिये क्या होता है? वह उत्तर देता है कि ईश्वर भी उसको छोड़ देता है। फिर वह पूछता है कि ईश्वर उसको किसलिये छोड़ देता है? वह उत्तर देने वाला कहता है कि दुःख भोगने के लिये। जो ईश्वर की आज्ञा को पालता है, वह सुखों से युक्त होने योग्य है और जो कि छोड़ता है, वह राक्षस हो जाता है॥२३॥

सं वर्चसेत्यस्य ऋषिः स एव। त्वष्टा देवता। विराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

तेन यज्ञेन वयं किं किं प्राप्नुम इत्युपदिश्यते॥

उक्त यज्ञ से हम लोग किस-किस पदार्थ को प्राप्त होते हैं, सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है॥

सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सꣳ शिवेन।

त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायोऽनुमार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम्॥२४॥

सम्। वर्चसा। पयसा। सम्। तनूभिः। अगन्महि। मनसा। सम्। शिवेन। त्वष्टा। सुदत्र इति सुऽदत्रः। वि। दधातु। रायः। अनु। मार्ष्टु। तन्वः। यत्। विलिष्टमिति विऽलिष्टम्॥२४॥

पदार्थः-**(सम्)** सम्यगर्थे **(वर्चसा)** वर्चन्ते दीप्यन्ते सर्वे पदार्था यस्मिन् वेदाध्ययने तेन **(पयसा)** पयन्ते विजानन्ति सर्वान् पदार्थान् येन ज्ञानेन तेन **(सम्)** सन्धानार्थे **(तनूभिः)** तन्वते सुखानि कर्माणि च यासु ताभिः **(अगन्महि)** प्राप्नुमः। गमधातोर्लुङि उत्तमबहुवचने। **मन्त्रे घसह्वरणश०** (अष्टा०२.४.८०) अनेन च्लेर्लुक्। **म्वोश्च** (अष्टा०८.२.६५) अनेन मकारस्य नकारादेशः। अत्र लडर्थे लुङ् **(मनसा)** मन्यन्ते ज्ञायन्ते सर्वे व्यवहारा येनान्तःकरणेन तेन **(सम्)** मिश्रीभावे **(शिवेन)** सर्वसुखनिमित्तेन **(त्वष्टा)** त्वक्षति तनूकरोति दुःखानि प्रलये सर्वान् पदार्थान् छिनत्ति वा स जगदीश्वरः **(सुदत्रः)** सुष्ठु सुखं ददातीति सः **(विदधातु)** विधानं करोतु **(रायः)** विद्याचक्रवर्त्तिराज्यश्रियादीनि धनानि **(अनु)** पश्चादर्थे **(मार्ष्टु)** शोधयतु **(तन्वः)** शरीरस्य **(यत्)** यावत् **(विलिष्टम्)** परिपूर्णम्। अत्र विरुद्धार्थे विशब्दः॥ अयं मन्त्रः (शत०(१.९.३.६) व्याख्यातः॥२४॥

अन्वयः-वयं यस्य कृपया वर्चसा पयसा मनसा शिवेन तनूभिश्च सह रायः समगन्महि। सुदत्रस्त्वष्टेश्वरः कृपयाऽस्मभ्यं रायः संविदधातु यदस्माकं तन्वो विलिष्टं तत्समनुमार्ष्टु॥२४॥

भावार्थः-मनुष्यैः सर्वकामप्रदस्येश्वरस्याज्ञापालनसम्यक्पुरुषार्थाभ्यां विद्याध्ययनं, विज्ञानं, शरीरबलं, मनःशुद्धिः, कल्याणसिद्धिः, सर्वोत्तमश्रीप्राप्तिश्च सदैव कार्य्या। तथा सर्वे व्यवहाराः पदार्थाश्च नित्यं शुद्धा भावनीयाः॥२४॥

पदार्थः-हम लोग पुरुषार्थी होकर **(वर्चसा)** जिस में सब पदार्थ प्रकाशित होते हैं, उस वेद का पढ़ना वा **(पयसा)** जिससे पदार्थों को जानते हैं, उस ज्ञान **(मनसा)** जिससे सब व्यवहार विचारे जाते हैं, उस अन्तःकरण **(शिवेन)** सब सुख और **(तनूभिः)** जिन में विपुल सुख प्राप्त होते हैं, उन शरीरों के साथ **(रायः)** श्रेष्ठ विद्या और चक्रवर्त्तिराज्य आदि धनों को **(समगन्महि)** अच्छी प्रकार प्राप्त हों सो **(सुदत्रः)** अच्छी प्रकार सुख देने और **(त्वष्टा)**

दु:खों तथा प्रलय के समय सब पदार्थों को सूक्ष्म करने वाला ईश्वर कृपा करके हमारे लिये **(राय:)** उक्त विद्या आदि पदार्थों को **(संविदधातु)** अच्छी प्रकार विधान करे और हमारे **(तन्व:)** शरीर को **(यत्)** जितनी **(विलिष्टम्)** व्यवहारों की सिद्धि करने की परिपूर्णता है, उसे **(समनुमार्ष्टु)** अच्छी प्रकार निरन्तर शुद्ध करे॥२४॥

भावार्थ:-मनुष्यों को सब कामना परिपूर्ण करने वाले परमेश्वर की आज्ञा पालन करके और अच्छी प्रकार पुरुषार्थ से विद्या का अध्ययन, विज्ञान, शरीर का बल, मन की शुद्धि, कल्याण की सिद्धि तथा उत्तम से उत्तम लक्ष्मी की प्राप्ति सदैव करनी चाहिये। इस सम्पूर्ण यज्ञ की धारणा वा उन्नति से सब सुखों को प्राप्त होके औरों को सुख प्राप्त कराना चाहिये तथा सब व्यवहार और पदार्थों को नित्य शुद्ध करना चाहिये॥२४॥

दिवीत्यस्य ऋषि: स एव। सत्रस्य विष्णुर्देवता। दिवीत्यारभ्य द्विष्म इत्यन्तस्य निचृदार्ची।
तथाऽन्तरिक्षमित्यारभ्य द्विष्म: पर्य्यन्तस्यार्ची पङ्क्तिश्छन्द:। पञ्चम: स्वर:।
पृथिव्यामित्यारभ्यान्तपर्य्यन्तस्य जगती छन्दो निषाद: स्वरश्च॥

स यज्ञस्त्रिषु लोकेषु विस्तृत: सन् किं किं सुखं साधयतीत्युपदिश्यते॥

वह यज्ञ तीनों लोक में विस्तृत होकर कौन-कौन सुख का साधन होता है, सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है॥

दिवि विष्णुर्व्यक्रꣳस्त जागतेन च्छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मोऽन्तरिक्षे विष्णुर्व्यक्रꣳस्त त्रैष्टुभेन च्छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्म:। पृथिव्यां विष्णुर्व्यक्रꣳस्त गायत्रेण च्छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मोऽस्मादन्नादस्यै प्रतिष्ठाया ऽअगन्म स्व: सं ज्योतिषाभूम॥२५॥

दिवि। विष्णु:। वि। अक्रꣳस्त। जागतेन। छन्दसा। तत:। निर्भक्त इति नि:ऽभक्त:। य:। अस्मान्। द्वेष्टि। यम्। च। वयम्। द्विष्म:। अन्तरिक्षे। विष्णु:। वि। अक्रꣳस्त। त्रैष्टुभेन। त्रैस्तुभेनेति त्रैस्तुभेन। छन्दसा। तत:। निर्भक्त इति नि:ऽभक्त:। य:। अस्मान्। द्वेष्टि। यम्। च। वयम्। द्विष्म:। पृथिव्याम्। विष्णु:। वि। अक्रꣳस्त। गायत्रेण। छन्दसा। तत:। निर्भक्त इति नि:ऽभक्त:। य:। अस्मान्। द्वेष्टि। यम्। च। वयम्। द्विष्म:। अस्मात्। अन्नात्। अस्यै। प्रतिष्ठायै। प्रतिस्थाया इति प्रतिऽस्थायै। अगन्म। स्वरिति स्व:। सम्। ज्योतिषा। अभूम॥२५॥

पदार्थ:-(दिवि) सूर्य्यप्रकाशे **(विष्णु:)** यो वेवेष्टि व्याप्नोत्यन्तरिक्षस्थलवाय्वादिपदार्थान् स यज्ञ:। **यज्ञो वै विष्णु:** (शत०१.१.२.१३) **(वि)** विविधार्थे क्रियायोगे **(अक्रꣳस्त)** क्रमते। अत्र सर्वत्र लडर्थे लङ् **(जागतेन)** जगत्येव जागतं सर्वलोकसुखकारकं तेन **(छन्दसा)** आह्लादकारकेण **(तत:)** तस्मात् द्युलोकात् **(निर्भक्त:)** विभागं प्राप्त: **(य:)** विरोधी **(अस्मान्)** यज्ञानुष्ठातॄन् **(द्वेष्टि)** विरुणद्धि **(यम्)** शासितुं योग्यं दुष्टं प्राणिनम् **(च)** पुनरर्थे **(वयम्)** यज्ञक्रियानुष्ठातार: **(द्विष्म:)** विरुन्ध्म: **(अन्तरिक्षे)** अवकाशे **(विष्णु:)** यज्ञ: **(वि)** विविधगमने क्रियार्थे **(अक्रꣳस्त)** गच्छति **(त्रैष्टुभेन)** त्रिष्टुबेव त्रैष्टुभं त्रिविधसुखहेतुस्तेन **(छन्दसा)** स्वच्छन्दताप्रदेन **(तत:)** तस्मादन्तरिक्षात् **(निर्भक्त:)** पृथग्भूत: **(य:)** दु:खप्रद: प्राणी **(अस्मान्)** सर्वोपकारकान् **(द्वेष्टि)** दु:खयति **(यम्)** सर्वाहितकरम् **(च)** समुच्चये **(वयम्)** सर्वहितकारिण: **(द्विष्म:)** पीडयाम: **(पृथिव्याम्)** विस्तृतायां भूमौ **(विष्णु:)**

यज्ञः **(वि)** विविधसुखसाधने **(अक्रꣳस्त)** विविधसुखप्राप्तिहेतुना क्रमते **(गायत्रेण)** गायत्र्यमेव गायत्रं तेन रक्षणसाधनेन **(छन्दसा)** आनन्दप्रदेन **(ततः)** तस्मात् पृथिवीस्थानात् **(निर्भक्तः)** पृथग्भूत्वाऽन्तरिक्षं गतः **(यः)** अस्मद्राज्यविरोधी **(अस्मान्)** न्यायाधीशान् **(द्वेष्टि)** वैरायते **(यम्)** शत्रुम् **(च)** समुच्चये **(वयम्)** राज्याधीशाः **(द्विष्मः)** वैरायामहे **(अस्मात्)** प्रत्यक्षाद् यज्ञशोभितात् **(अन्नात्)** अत्तुं योग्यात् **(अस्यै)** प्रत्यक्षं प्राप्तायै **(प्रतिष्ठायै)** प्रतितिष्ठन्ति सत्कारं प्राप्नुवन्ति यस्यां तस्यै **(अगन्म)** प्राप्नुयाम **(स्वः)** सुखम्। **स्वरिति साधारणनामसु पठितम्** (निघं०१.४) **(सम्)** सम्यगर्थे **(ज्योतिषा)** विद्याधर्मप्रकाशकारकेण संयुक्ताः **(अभूम)** संगता भवेम॥ अयं मन्त्रः (शत०(१.९.३.८-१४) व्याख्यातः॥२५॥

अन्वयः-अस्माभिर्जागतेन छन्दसाऽनुष्ठितोऽयं विष्णुर्यज्ञो दिवि व्यक्रंस्त स पुनस्ततो निर्भक्तः सन् छन्दसा सर्वं जगत् प्रीणाति, योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमनेन निराकुर्मः। अस्माभिर्योऽयं यज्ञस्त्रैष्टुभेन छन्दसाऽग्नौ प्रयोजितेऽन्तरिक्षे व्यक्रꣳस्त स पुनस्ततः स्थानान्निर्भक्तः सन् वायुवृष्टिजलशुद्धिद्वारा सर्वं जगत् सुखयति, योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमनेन निवारयामः। अस्माभिर्योऽयं विष्णुर्यज्ञो गायत्रेण छन्दसा पृथिव्यामनुष्ठीयते, स पृथिव्यां व्यक्रंस्त स ततो निर्भक्तः सन् पृथिवीस्थान् पदार्थान् पोषयति। योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमनेन निषिध्यामः। वयमस्मादन्नात् स्वरगन्म। वयमनेन यज्ञेनास्यै प्रतिष्ठायै ज्योतिषा संयुक्ताः समभूम भवेम॥२५॥

भावार्थः-मनुष्यैर्यावन्ति सुगन्ध्यादिगुणयुक्तानि द्रव्याण्यग्नौ प्रक्षिप्यन्ते, तानि पृथक्-पृथक् भूत्वा सूर्य्यप्रकाशे आकाशे भूमौ च विहृत्य सर्वाणि सुखानि साधयन्ति। तथा च वाय्वग्निजलपृथिव्यादीनि शिल्पविद्यासिद्धैः कलायन्त्रैर्विमानादियानेषु प्रयोज्यन्ते, तानि सूर्य्यप्रकाशेऽन्तरिक्षे च सर्वान् प्राणिनः सुखेन विहारयन्ति। यद् द्रव्यं सूर्य्यकिरणाग्निद्वारा विच्छिद्यान्तरिक्षं [गच्छति] पुनस्तदेव भुवमागत्य पुनर्भूमेः सकाशादुपरि गत्वा, पुनस्तत आगच्छत्येवमेव पुनः पुनर्मनुष्यैरित्थं पुरुषार्थेन दोषदुःखशत्रून् सम्यक् निवार्य्य सुखं भोक्तव्यं भोजयितव्यं च। यज्ञशोधितैर्वायुजलौषध्यन्नैरारोग्यबुद्धिशरीरबलवर्धनान्महत्सुखं प्राप्य विद्याप्रकाशेन नित्यं प्रतिष्ठीयताम्॥२५॥

पदार्थः-**(जागतेन)** सब लोकों के लिये सुख देने वाले **(छन्दसा)** आह्लादकारक जगती छन्द से हमारा अनुष्ठान किया हुआ यह **(विष्णुः)** अन्तरिक्ष में ठहरने वाले पदार्थों में व्यापक यज्ञ **(दिवि)** सूर्य्य के प्रकाश में **(व्यक्रंस्त)** जाता है, वह फिर **(ततः)** वहाँ से **(निर्भक्तः)** विभाग अर्थात् परमाणुरूप होके सब जगत् को तृप्त करता है। **(यः)** जो विरोधी शत्रु **(अस्मान्)** यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले हम लोगों से **(द्वेष्टि)** विरोध करता है **(च)** तथा **(यम्)** दण्ड देकर शिक्षा करने योग्य जिस दुष्ट प्राणी से **(वयम्)** हम लोग यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले **(द्विष्मः)** अप्रीति करते हैं, उसको उसी यज्ञ से दूर करते हैं। हम लोगों ने जो यह **(विष्णुः)** यज्ञ **(त्रैष्टुभेन)** तीन प्रकार के सुख करने और **(छन्दसा)** स्वतन्त्रता देने वाले त्रिष्टुप् छन्द से अग्नि में अच्छी प्रकार संयुक्त किया है, वह **(अन्तरिक्षे)** आकाश में **(व्यक्रंस्त)** पहुँचता है, वह फिर **(ततः)** उस अन्तरिक्ष से **(निर्भक्तः)** अलग हो के वायु और वर्षा जल की शुद्धि से सब संसार को सुख पहुँचाता है **(यः)** जो दुःख देने वाला प्राणी **(अस्मान्)** सब के उपकार करने वाले हम लोगों को **(द्वेष्टि)** दुःख देता है **(च)** तथा **(यम्)** सब के अहित करने वाले दुष्ट को **(वयम्)** हम लोग सब के हित करने वाले **(द्विष्मः)** पीड़ा देते हैं, उसे उक्त यज्ञ से निवारण करते हैं। हम लोगों से जो **(विष्णुः)** यज्ञ **(गायत्रेण)** संसार की रक्षा सिद्ध करने और **(छन्दसा)** अति आनन्द करने वाले गायत्री छन्द

से निरन्तर किया जाता है, वह **(पृथिव्याम्)** विस्तारयुक्त इस पृथिवी में **(व्यक्रंस्त)** विविध सुखों की प्राप्ति के हेतु से विस्तृत होता है, **(ततः)** उस पृथिवी से **(निर्भक्तः)** अलग होकर अन्तरिक्ष में जाकर पृथिवी के पदार्थों की पुष्टि करता है। **(यः)** जो पुरुष हमारे राज्य का विरोधी **(अस्मान्)** हम लोग जो कि न्याय करने वाले हैं, उन से **(द्वेष्टि)** वैर करता है **(च)** तथा **(यम्)** जिस शत्रु जन से **(वयम्)** हम लोग न्यायाधीश **(द्विष्मः)** वैर करते हैं, उसका इस उक्त यज्ञ से नित्य निषेध करते हैं। हम लोग **(अस्मात्)** यज्ञ से शोधा हुआ प्रत्यक्ष **(अन्नात्)** जो भोजन करने योग्य अन्न है, उस से **(स्वः)** सुखरूपी स्वर्ग को **(अगन्म)** प्राप्त हों तथा **(अस्यै)** इस प्रत्यक्ष प्राप्त होने वाली **(प्रतिष्ठायै)** प्रतिष्ठा अर्थात् जिसमें सत्कार को प्राप्त होते हैं, उसके लिये **(ज्योतिषा)** विद्या और धर्म के प्रकाश से संयुक्त **(समभूम)** अच्छी प्रकार हों॥२५॥

भावार्थः-जो-जो मनुष्य लोग सुगन्धि आदि पदार्थ अग्नि में छोड़ते हैं, वे अलग-अलग होकर सूर्य्य के प्रकाश तथा भूमि में फैलकर सब सुखों को सिद्ध करते हैं तथा जो वायु, अग्नि, जल और पृथिवी आदि पदार्थ शिल्पविद्यासिद्ध कलायन्त्रों से विमान आदि यानों में युक्त किये जाते हैं, वे सब सूर्य्यप्रकाश वा अन्तरिक्ष में सुख से विहार करते हैं। जो पदार्थ सूर्य्य की किरण वा अग्नि के द्वारा परमाणुरूप होके अन्तरिक्ष में जाकर फिर पृथिवी पर आते हैं, फिर भूमि से अन्तरिक्ष वा वहाँ से भूमि को आते-जाते हैं, वे भी संसार को सुख देते हैं। मनुष्यों को उचित है कि इसी प्रकार बार-बार पुरुषार्थ से दोष, दुःख और शत्रुओं को अच्छी प्रकार निवारण करके सुख भोगना भुगवाना चाहिये तथा यज्ञ से शुद्ध वायु, जल, ओषधि और अन्न की शुद्धि के द्वारा आरोग्य, बुद्धि और शरीर के बल की वृद्धि से अत्यन्त सुख को प्राप्त होके विद्या के प्रकाश से नित्य प्रतिष्ठा को प्राप्त होना चाहिये॥२५॥

स्वयंभूरित्यस्य ऋषिः स एव। ईश्वरो देवता। उष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

अथ सूर्य्यशब्देनेश्वरविद्वदर्थावुपदिश्येते॥

अब अगले मन्त्र में सूर्य्य शब्द से ईश्वर और विद्वान् मनुष्य का उपदेश किया है॥

स्वयंभूरसि श्रेष्ठो रश्मिर्वर्चोदाऽअसि वर्चो मे देहि। सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते॥२६॥

स्वयंभूरिति स्वयम्ऽभूः। असि। श्रेष्ठः। रश्मिः। वर्चोदा इति वर्चःऽदाः। असि। वर्चः। मे। देहि। सूर्य्यस्य। आवृतमित्याऽवृतम्। अनु। आ। वर्त्ते॥२६॥

पदार्थः-**(स्वयंभूः)** स्वयं भवत्यनादिस्वरूपः **(असि)** अस्ति वा **(श्रेष्ठः)** अतिशयेन प्रशस्तः **(रश्मिः)** प्रकाशकः प्रकाशमयो वा **(वर्चोदाः)** वर्चो विद्यां दीप्तिं वा ददातीति **(असि)** भवसि **(वर्चः)** विज्ञानं प्रकाशनं वा **(मे)** मह्यम् **(देहि)** ददाति वा। **(सूर्य्यस्य)** चराचरस्यात्मनो जगदीश्वरस्य विदुषो जीवस्य वा '**सूर्य्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च** (यजु०७.४२) अनेनेश्वरस्य ग्रहणम्। **सूर्य इति पदनामसु पठितम्** (निघं०५.६) इति गत्यर्थेन ज्ञानरूपत्वादीश्वरो व्यवहारप्रापकत्वाद् विद्वानेवाऽत्र गृह्यते **(आवृतम्)** समन्ताद् वर्त्तन्ते यस्मिन् तमीश्वराज्ञापालनमुपदेशप्रकाशनं वा **(अनु)** पश्चादर्थे **(आ)** अभ्यर्थे **(वर्त्ते)** स्पष्टार्थः॥ अयं मन्त्रः (शत०(१.९.३.१५-१७) व्याख्यातः॥२६॥

अन्वयः-हे जगदीश्वर! विद्वन्वा त्वं श्रेष्ठो रश्मिः स्वयंभूरसि, वर्चोदा असि, त्वं मे वर्चो देहि। अहं सूर्य्यस्य

तवावृतमाज्ञापालनमन्वावर्त्ते॥ २६॥

भावार्थः-नैव परमेश्वरस्य विदुषो जीवस्य वा कौचिन्मातापितरौ कदाचित् स्तः किंत्वयमेव सर्वस्य माता पिता चास्ति। तथा नैतस्मात् कश्चिदुत्तमः प्रकाशहेतुर्विद्याप्रदो वा पदार्थोऽस्ति। अतः सर्वैर्मनुष्यैरस्यैवाज्ञायामनुवर्त्तनीयम्॥ २६॥

पदार्थः-हे जगदीश्वर! आप विद्वन् वा **(श्रेष्ठः)** अत्यन्त प्रशंसनीय और **(रश्मिः)** प्रकाशमान वा **(स्वयंभूः)** अपने आप होने वाले **(असि)** हैं तथा **(वर्चोदाः)** विद्या देने वाले **(असि)** हैं, इसी से आप **(मे)** मुझे **(वर्चः)** विज्ञान और प्रकाश **(देहि)** दीजिये, मैं **(सूर्य्यस्य)** जो आप चराचर जगत् के आत्मा हैं, उनके **(आवृतम्)** निरन्तर सज्जन जन जिसमें वर्त्तमान होते हैं, उस उपदेश को **(अन्वावर्ते)** स्वीकार करके वर्त्तता हूं॥ २६॥

भावार्थः-परमेश्वर और [विद्वान्] जीव का कोई माता वा पिता नहीं है, किन्तु यही सब का माता पिता है तथा जिससे बढ़ कर कोई विज्ञानप्रकाशक विद्या देने वाला नहीं है। जैसे सब मनुष्यों को इस परमेश्वर ही की आज्ञा में वर्त्तमान होना चाहिये, वैसे ही जो विद्वान् भी प्रकाश वाले पदार्थों में अवधिरूप और व्यवहारविद्या का हेतु है, जिस के उपदेशरूप प्रकाश को प्राप्त होकर प्रकाशित होते हैं, वह क्यों न सेवना चाहिये॥ २६॥

अग्ने गृहपत इत्यस्य ऋषिः स एव। सर्वस्याग्निर्देवता। पूर्वार्द्धे निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः।
उत्तरार्द्धे गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अथ गृहाश्रमिभिरस्यानुष्ठानेन किं किं साधनीयमित्युपदिश्यते॥

गृहस्थ लोगों को इसके अनुष्ठान से क्या-क्या सिद्ध करना चाहिये, सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है॥

अग्ने॑ गृहपते सुगृहप॒तिस्त्वया॑ऽग्ने॒ऽहं गृ॒हप॑तिना भूयासꣳ सुगृहप॒तिस्त्वं मया॑ऽग्ने गृ॒हप॑तिना भूयाः। अ॒स्थू॒रि णौ॒ गार्ह॑पत्यानि सन्तु श॒तꣳ हिमा॒ः सूर्य्य॑स्या॒वृत॒मन्वाव॑र्ते॥ २७॥

अग्ने॑। गृ॒ह॒प॒त॒ इति॑ गृहऽपते। सु॒गृ॒ह॒प॒तिरिति॑ सुऽगृहप॒तिः। त्वया॑। अ॒ग्ने॒। अ॒हम्। गृ॒हप॑ति॒नेति॑ गृ॒हऽप॑तिना। भू॒या॒स॒म्। सु॒गृ॒ह॒प॒तिरिति॑ सुऽगृहप॒तिः। त्वम्। मया॑। अ॒ग्ने॒। गृ॒हप॑ति॒नेति॑ गृ॒हऽप॑तिना। भू॒या॒ः। अ॒स्थू॒रि। नौ॒। गार्ह॑पत्या॒नीति॒ गार्ह॑ऽपत्यानि। स॒न्तु॒। श॒तम्। हिमा॑ः। सूर्य्य॑स्य। आ॒वृ॒त॒मित्या॒ऽवृत॑म्। अनु॑। आ। व॒र्त्ते॒॥ २७॥

पदार्थः-**(अग्ने)** परमेश्वर भौतिको वा **(गृहपते)** गृह्णन्ति स्थापयन्ति पदार्थान् यस्मिन् ब्रह्माण्डे शरीरे निवासार्थे वा गृहे तस्य यः पतिः पालयिता तत्संबुद्धौ **(सुगृहपतिः)** शोभनानां गृहाणां पतिः पालयिता **(त्वया)** जगदीश्वरेणानेन विज्ञानसुगृहस्थेन वा **(अग्ने)** सर्वस्वामिन् विद्याप्राप्तिसाधको वा **(अहम्)** गृहस्वामी मनुष्यो यज्ञानुष्ठाता वा **(गृहपतिना)** सर्वस्वामिना गृहपालकेन वा **(भूयासम्)** स्पष्टार्थः। **(सुगृहपतिः)** शोभनश्चासौ गृहस्य पालकश्च सः **(त्वम्)** जगदीश्वरोऽयं धार्मिको वा **(मया)** सत्कर्मानुष्ठात्रा सह **(अग्ने)** जगदीश्वर! प्रशस्तविद्य वा **(गृहपतिना)** धार्मिकेण पुरुषार्थिना गृहपालकेन वा **(भूयाः)** भवेः **(अस्थूरि)** तिष्ठन्ति यस्मिन्नालस्ये तत्स्थूरं तन्निन्दितं विद्यते यस्मिन् तत्स्थूरि न स्थूरि यथा स्यात्तथा। अत्र निन्दार्थ इनिः **(नौ)** आवयोर्गृहसम्बन्धिनोः स्त्रीपुरुषयोः **(गार्हपत्यानि)** गृहपतिना संयुक्तानि कर्माणि। **गृहपतिना संयुक्ते ञ्यः** (अष्टा०४.४.९०) **(सन्तु)** भवन्तु **(शतम्)** शतादधिकानि वा **(हिमाः)** हेमन्तर्तवः। **भूयाꣳसि शताद्वर्षेभ्यः पुरुषो जीवति** (शत०१.९.३.१९)

(सूर्य्यस्य) स्वप्रकाशस्येश्वरस्य विद्यान्यायप्रकाशकस्य विदुषो वा **(आवृतम्)** समन्ताद् वर्त्तन्तेऽहोरात्राणि यस्मिन् तं समयम् **(अनु)** अनुगतार्थे **(आ)** समन्तात् **(वर्त्ते)** वर्त्तमानो भवेयम्॥ अयं मन्त्रः (शत०(१.९.३.१८-२१) व्याख्यातः॥ २७॥

अन्वयः-हे गृहपतेऽग्ने जगदीश्वर! विद्वन्वा त्वं सुगृहपतिरसि त्वया गृहपतिना सहाहं सुगृहपतिर्भूयासम्। मया गृहपतिनोपासितस्त्वं मम गृहपतिर्भूयाः। एवं नौ स्त्रीपुरुषयोर्गार्हपत्यान्यस्थूरि सन्त्वेवं वर्त्तमानोऽहं वर्त्तमाना च सूर्य्यस्यावृतं शतं हिमा अन्वावर्त्ते॥ २७॥

भावार्थः-अत्र श्लेषालङ्कारः। आवां स्त्रीपुरुषौ सुपुरुषार्थिनौ भूत्वा योऽस्य सर्वेषां स्थित्यर्थस्य जगतो गृहस्य सततं रक्षको जगदीश्वरो विद्वान् वाऽस्ति, तमाश्रित्य भौतिकाग्न्यादिभ्यः पदार्थेभ्यः स्थिरसुखसाधकानि सर्वाणि कर्माणि संसाध्य शतं वर्षाणि जीवेव, तथा जितेन्द्रियत्वभावेन शतादधिकमपि सुखेन जीवनं **भुञ्ज्वहे** इति॥ २७॥

पदार्थः-हे **(गृहपते)** घर के पालन करने हारे **(अग्ने)** परमेश्वर और विद्वान् **(त्वम्)** आप **(सुगृहपतिः)** ब्रह्माण्ड, शरीर और निवासार्थ घरों के उत्तमता से पालन करने वाले हैं, उस **(गृहपतिना)** उक्त गुण वाले **(त्वया)** आप के साथ **(अहम्)** मैं **(सुगृहपतिः)** अपने घर का उत्तमता से पालन करने हारा **(भूयासम्)** होऊँ। हे परमेश्वर! विद्वान् वा **(मया)** जो मैं श्रेष्ठ कर्म का अनुष्ठान करने वाला **(गृहपतिना)** धर्मात्मा और पुरुषार्थी मनुष्य हूं, उस मुझ से आप उपासना को प्राप्त हुए मेरे घर के पालन करने हारे **(भूयाः)** हूजिये। इसी प्रकार **(नौ)** जो हम स्त्री-पुरुष घर के पति हैं, सो हमारे **(गार्हपत्यानि)** अर्थात् जो गृहपति के संयोग से घर के काम सिद्ध होते हैं, वे **(अस्थूरि)** जैसे निरालस्यता हो, वैसे सिद्ध **(सन्तु)** हों। इस प्रकार अपने वर्त्तमान में वर्त्तते हुए हम स्त्री वा पुरुष **(सूर्य्यस्य)** आप और विद्वान् के **(आवृतम्)** वर्त्तमान अर्थात् जिस में अच्छी प्रकार रात्रि वा दिन होते हैं, उस में **(शतं हिमाः)** सौ वर्ष वा सौ से अधिक भी वर्त्ते॥ २७॥

भावार्थः-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। हम दोनों स्त्रीपुरुष पुरुषार्थी होकर जो इन सब पदार्थों की स्थिति के योग्य संसाररूपी घर का निरन्तर रक्षा करने वाला जगदीश्वर और विद्वान् है, उसका आश्रय करके भौतिक अग्नि आदि पदार्थों से स्थिर सुख करने वाले सब काम सिद्ध करते हुए सौ वर्ष जीवें तथा जितेन्द्रियता से सौ वर्ष से अधिक भी सुखपूर्वक जीवन भोगें॥ २७॥

अग्ने व्रतपत इत्यस्य ऋषिः स एव। अग्निर्देवता। भुरिगुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

अथ यत्सत्याचरणेन सुखं भवेत् तदुपदिश्यते॥

अब जो सत्याचरण से सुख होता है, सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है॥

अग्ने॑ व्रतपते व्रतम॑चारिषं॒ तद॑शकं॒ तन्मे॑ऽराधी॒दम॒हं य॒ऽए॒वाऽस्मि॒ सो॒ऽस्मि॥ २८॥

अग्ने॑। व्र॒त॒प॒त॒ऽइति॑ व्रतऽपते। व्र॒तम्। अ॒चा॒रि॒ष॒म्। तत्। अ॒श॒क॒म्। तत्। मे॒। अ॒रा॒धि॒। इ॒दम्। अ॒हम्। यः। ए॒व। अस्मि॑। सः। अ॒स्मि॒॥ २८॥

पदार्थः-**(अग्ने)** सत्यस्वरूपेश्वर! **(व्रतपते)** व्रतं नियतं यन्न्याय्यं कर्म तत्पतिस्संबुद्धौ **(व्रतम्)** सत्यलक्षणम् **(अचारिषम्)** चरितवान् **(तत्)** पूर्वोक्तम् **(अशकम्)** शक्तवान् **(तत्)** मया चरितुं योग्यम् **(मे)** मम **(अराधि)**

संसाधितम् **(इदम्)** प्रत्यक्षमाचरितुमहं मनुष्यः **(यः)** यादृशकर्मकारी **(एव)** निश्चयार्थे **(अस्मि)** वर्त्ते **(सः)** तादृशकर्मभोजी **(अस्मि)** भवामि॥ अयं मन्त्रः (शत०(१.९.३.२२-२३) व्याख्यातः॥२८॥

अन्वयः-हे व्रतपतेऽग्ने! भवता कृपया मदर्थं यद् व्रतमराधि, तदहमशकमचारिषम्। यन्मयाऽराधि तदेवाहं भुञ्जे, योऽहं यादृशकर्मकार्य्यस्मि सोऽहं तादृशफलभोग्यस्मि भवामि॥२८॥

भावार्थः-मनुष्येणेदं निश्चेतव्यं मयेदानीं यादृशं कर्म क्रियते तादृशमेवैश्वरव्यवस्थया फलं भुज्यते भोक्ष्यते च। नहि कश्चिदपि जीवः स्वकर्मविरुद्धं फलमधिकं न्यूनं वा प्राप्तुं शक्नोति। तस्मात् सुखभोगाय धर्म्याण्येव कर्माणि कार्य्याणि, यतो नैव कदाचिद् दुःखानि स्युरिति॥२८॥

पदार्थः-हे **(व्रतपते)** न्याययुक्त नियत कर्म के पालन करने हारे **(अग्ने)** सत्यस्वरूप परमेश्वर! आपने जो कृपा करके **(मे)** मेरे लिये **(व्रतम्)** सत्यलक्षण आदि प्रसिद्ध नियमों से युक्त सत्याचरण व्रत को **(अराधि)** अच्छी प्रकार सिद्ध किया है, **(तत्)** उस अपने आचरण करने योग्य सत्य नियम को **(अशकम्)** जिस प्रकार मैं करने को समर्थ होऊँ **(अचारिषम्)** अर्थात् उसका आचरण अच्छी प्रकार कर सकूँ, वैसा मुझ को कीजिये **(यः)** जो मैंने उत्तम वा अधम कर्म किया है, **(तदेवाहम्)** उसी को भोगता हूं, अब भी जो मैं जैसा करने वाला **(अस्मि)** हूं, वैसे कर्म के फल भोगने वाला **(अस्मि)** होता हूं॥२८॥

भावार्थः-मनुष्य को यही निश्चय करना चाहिये कि मैं अब जैसा कर्म करता हूं, वैसा ही परमेश्वर की व्यवस्था से फल भोगता हूं और भोगूँगा। सब प्राणी अपने कर्म से विरुद्ध फल को कभी नहीं प्राप्त होते, इससे सुख भोगने के लिये धर्मयुक्त कर्म ही करना चाहिये कि जिससे कभी दुःख नहीं हो॥२८॥

अग्नय इत्यस्य ऋषिः स एव। अग्निर्देवता। स्वराडार्षी अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथ भौतिकावग्नीषोमौ कीदृशगुणौ वर्त्तेते इत्युपदिश्यते॥

अब संसारी अग्नि और चन्द्रमा कैसे गुण वाले हैं, सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है॥

अ॒ग्नये॑ कव्य॒वाह॑नाय॒ स्वाहा॒ सोमा॑य पितृ॒मते॒ स्वाहा॑।

अप॑हता॒ऽअसु॑रा॒ रक्षा॑ᳪंसि वेदि॒षद॑ः॥२९॥

अ॒ग्नये॑। क॒व्य॒वाह॑ना॒येति॑ कव्य॒ऽवाह॑नाय। स्वाहा॑। सोमा॑य। पि॒तृ॒मत॒ इति॑ पि॒तृ॒ऽमते॑। स्वाहा॑। अप॑हता॒ इत्यप॑ऽहताः। असु॑राः। रक्षा॑ᳪंसि। वे॒दि॒षद॑ः। वे॒दि॒सद॒ इति॑ वेदि॒ऽसद॑ः॥२९॥

पदार्थः-**(अग्नये)** अङ्गति सर्वान् पदार्थान् दग्ध्वा देशान्तरे प्रापयति तस्मै **(कव्यवाहनाय)** कुवन्ति शब्दयन्ति सर्वा विद्या ये ते कवयः क्रान्तदर्शनाः क्रान्तप्रज्ञाश्च तेभ्यो हितानि कर्माणि कव्यानि, तानि यो वहति प्रापयति तस्मै **(स्वाहा)** सुष्ठु आह यस्यां सा **(सोमाय)** सुवन्त्यैश्वर्य्याणि प्राप्नुवन्ति यस्मिन् संसारे तस्मै **(पितृमते)** पितर ऋतवो नित्ययुक्ता विद्यन्ते यस्मिन् तस्मै। अत्र नित्ययोगे मतुप्। **ऋतवः पितरः** (शत०२.४.२.२४) **(स्वाहा)** स्वं दधात्यनया सा स्वाहा क्रिया **(अपहताः)** अपहिंसिताः। **(असुराः)** अविद्वांसो दुष्टस्वभावाः प्राणिनः **(रक्षांसि)** परपीडकाः, स्वार्थिनः **(वेदिषदः)** ये वेद्यां पृथिव्यां सीदन्ति ते। **यावती वेदिस्तावती पृथिवी** (शत०१.२.५.७) अयं मन्त्रः (शत०(२.४.२.१२-१३) व्याख्यातः॥२९॥

अन्वयः-मनुष्यैः कव्यवाहनायाग्नये स्वाहा पितृमहे सोमाय स्वाहा विधाय ये वेदिषदो रक्षांस्यसुराश्च ते

नित्यमपहता: कार्य्या:॥२९॥

भावार्थ:-विद्वद्भिर्युक्त्या संयोजितोऽयमग्नि: शिल्पिनां कार्य्याणि वहति, येन संसारस्योपकारेण सामयिकं सुखं पृथिवीस्थानां दुष्टानां दोषाणां च निवृत्ति: स्यादयं प्रयत्नो नित्यं विधेय इति॥२९॥

पदार्थ:-मनुष्यों को उचित है कि **(कव्यवाहनाय)** विद्वानों को हित देने, कर्मों की प्राप्ति कराने तथा **(अग्नये)** सब पदार्थों को अपने आप एक स्थान से दूसरे स्थान को पहुँचाने वाले भौतिक अग्नि का ग्रहण करके सुख के लिये **(स्वाहा)** वेदवाणी से **(पितृमते)** जिस में वसन्त आदि ऋतु पालने के हेतु होने से पितर संयुक्त होते हैं, **(सोमाय)** जिससे ऐश्वर्यों को प्राप्त होते हैं, उस सोमलता को लेके **(स्वाहा)** अपने पदार्थों को धारण करने वाले धर्म से युक्त विधान करके जो **(वेदिषद:)** इस पृथिवी में रमण करने वाले **(रक्षांसि)** औरों को दु:खदायी स्वार्थीजन तथा **(असुरा:)** दुष्ट स्वभाव वाले मूर्ख हैं, उनको **(अपहता:)** विनष्ट कर देना चाहिये॥२९॥

भावार्थ:-विद्वानों से युक्ति के साथ शिल्पविद्या में संयुक्त किया हुआ यह अग्नि उनके लिये उत्तम-उत्तम कार्यों की प्राप्ति करने वाला होता है। मनुष्यों को यह यत्न नित्य करना चाहिये कि जिससे संसार के उपकार से सब सुख और पृथिवी के दुष्टजन वा दोषों की निवृत्ति हो जाये॥२९॥

ये रूपाणीत्यस्य ऋषि: स एव। अग्निर्देवता। भुरिक् पङ्क्तिश्छन्द:। पञ्चम: स्वर:॥

कीदृग्लक्षणास्तेऽसुरा भवन्तीत्युपदिश्यते॥

उक्त असुर कैसे लक्षणों वाले होते हैं सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है॥

ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमानाऽअसुरा: सन्त: स्वधया चरन्ति।

परापुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्टाँल्लोकात् प्रणुदात्यस्मात्॥३०॥

ये। रूपाणि। प्रतिमुञ्चमाना इति प्रतिऽमुञ्चमाना:। असुरा:। सन्त:। स्वधया। चरन्ति। परापुर इति पराऽपुर:। निऽपुर इति निपुर:। ये। भरन्ति। अग्नि:। तान्। लोकात्। प्र। नुदाति। अस्मात्॥३०॥

पदार्थ:-**(ये)** मनुष्या: **(रूपाणि)** अन्त:स्थानि ज्ञानमध्ये यादृशानि ज्ञानानि सन्ति तानि **(प्रतिमुञ्चमाना:)** आभिमुख्यं ये प्रतीतं मुञ्चन्ते त्यजन्ति ते **(असुरा:)** धर्म्माच्छादका: **(सन्त:)** वर्त्तमाना: **(स्वधया)** पृथिव्या सह। **स्वधे इति द्यावापृथिव्योर्नामसु पठितम्** (निघं०३.३०) **(चरन्ति)** वर्त्तन्ते **(परापुर:)** परागतानि स्वसुखार्थान्यधर्मकार्य्याणि पिपुरति ते **(निपुर:)** निकृष्टान् दुष्टस्वभावान् पिपुरति पूरयन्ति ते। अत्रोभयत्र क्विप् **(ये)** स्वार्थसाधनतत्परा: **(भरन्ति)** अन्यायेन परपदार्थान् धरन्ति **(अग्नि:)** जगदीश्वर:। **युष्मत्ततक्षुष्वन्त: पादम्** (अष्टा०८.३.१०३) अनेन मूर्द्धन्यादेश: **(तान्)** दुष्टान् **(लोकात्)** स्थानादस्मद्दर्शनाद्वा **(प्रणुदाति)** दूरीकरोतु **(अस्मात्)** प्रत्यक्षात्॥ अयं मन्त्र: (शत०(२.४.२.१४-१८)॥३०॥

अन्वय:-अग्निरीश्वरो ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमाना असुरा: सन्त: स्वधया चरन्ति, ये च पुरापुरो निपुर: सन्तोऽन्यायेन परपदार्थान् भरन्ति धरन्ति, तानस्माल्लोकात् प्रणुदाति दूरीकरोतु॥३०॥

भावार्थ:-ये दुष्टा मनुष्या मनोदेहवाग्भिर्मिथ्या चरित्वा पृथिव्यामन्यायेनान्यान् प्राणिन: पीडयित्वा स्वसुखाय परपदार्थान् सञ्चिन्वन्ति। ईश्वरस्तान् दु:खयुक्तान् मनुष्येतरनीचशरीरधारिण: कृत्वा, तेषु पापफलानि भुक्त्वा पुनर्मनुष्यदेहधारणे योग्यान् करोति। अतो मनुष्यैरीदृशेभ्यो मनुष्येभ्य: पापकर्मभ्यो वा पृथक् स्थित्वा सदैव धर्म एव

सेवनीय इति॥३०॥

पदार्थः-(ये) जो दुष्ट मनुष्य **(रूपाणि)** ज्ञान के अनुकूल अपने अन्तःकरणों में विचारे हुए भावों को **(प्रतिमुञ्चमानाः)** दूसरे के सामने छिपा कर विपरीत भावों के प्रकाश करने हारे **(असुराः)** धर्म को ढाँपते **(सन्तः)** हैं। **(स्वधया)** पृथिवी में जहाँ-तहाँ **(चरन्ति)** जाते-आते हैं तथा जो **(परापुरः)** संसार से उलटे अपने सुखकारी कामों को नित्य सिद्ध करने के लिये यत्न करने **(निपुरः)** और दुष्ट स्वभावों को परिपूर्ण करने वाले **(सन्तः)** हैं अर्थात् जो अन्याय से औरों के पदार्थों को धारण करते हैं, **(तान्)** उन दुष्टों को **(अग्निः)** जगदीश्वर **(अस्मात्)** इस प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष लोक से **(प्रणुदाति)** दूर करे॥३०॥

भावार्थः-जो दुष्ट मनुष्य अपने मन, वचन और शरीर से झूठे आचरण करते हुए अन्याय से अन्य प्राणियों को पीड़ा देकर अपने सुख के लिये औरों के पदार्थों को ग्रहण कर लेते हैं, ईश्वर उन को दुःखयुक्त करता है और नीच योनियों में जन्म देता है कि वे अपने पापों के फलों को भोग के फिर भी मनुष्य देह के योग्य होते हैं। इस से सब मनुष्यों को योग्य है कि ऐसे दुष्ट मनुष्य वा पापों से बचकर सदैव धर्म का ही सेवन किया करें॥३०॥

अत्र पितर इत्यस्यर्षिः स एव। पितरो देवताः। बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

मनुष्यैर्धार्मिकाः ज्ञानिनो विद्वांसः कथं सत्कर्तव्या इत्युपदिश्यते॥

मनुष्य लोगों को धर्मात्मा, ज्ञानी, विद्वान् पुरुषों का कैसा सत्कार करना योग्य है, सो अगले मन्त्र में कहा है॥

अत्र॑ पितरो मादयध्वं यथाभा॒गमावृ॑षायध्वम्।

अमी॑मदन्त पि॒तरो॑ यथाभा॒गमावृ॑षायिषत॥३१॥

अत्र॑। पि॒त॒रः॒। मा॒द॒य॒ध्व॒म्। य॒था॒भा॒गमिति॑ यथाऽभा॒गम्। आ। वृ॒षा॒य॒ध्व॒म्। वृ॒षा॒य॒ध्व॒मिति॑ वृषऽयध्वम्। अमी॑मदन्त। पि॒तर॑ः। य॒था॒भा॒गमिति॑ यथाऽभा॒गम्। आ। अ॒वृ॒षा॒यि॒ष॒त॥३१॥

पदार्थः-(अत्र) अस्माकं सत्कारसंयुक्ते व्यवहारे स्थाने वा **(पितरः)** पान्ति पालयन्ति सद्विद्याशिक्षाभ्यां ये ते तत्संबुद्धौ **(मादयध्वम्)** हर्षयध्वम् **(यथाभागम्)** भागमनतिक्रम्य कुर्वन्तीति यथाभागम् **(आ)** समन्तात् **(वृषायध्वम्)** आनन्दसेक्तारो वृषा इवाचरत। **कर्त्तुः क्यङ् सलोपश्च** (अष्टा०३.१.११) अनेन क्यङ् प्रत्ययः। **(अमीमदन्त)** आनन्दयतास्मान् मोदयत, विद्यां ज्ञापयत वा **(पितरः)** विद्वांसो विद्यादानेन रक्षकाः **(यथाभागम्)** भागं भागं प्रतीति यथाभागम्। अत्र वीप्सार्थे प्रतिः। **(आ)** आभिमुख्यतया **(अवृषायिषत)** विद्याधर्मशिक्षया हर्षकारका भवत। लोडर्थे लुङ्॥ अयं मन्त्रः (शत०(२.४.२.१९-२३) व्याख्यातः॥३१॥

अन्वयः-हे पितरो! यूयमत्र यथाभागमावृषायध्वम्। मादयध्वमस्मान् यथाभागमावृषायिषतामीमदन्तास्मान् हर्षयत॥३१॥

भावार्थः-ईश्वर आज्ञापयति-मातापित्रादीन् विदुषोऽध्यापकान् धार्मिकान् पितॄन् समीपस्थानागच्छतश्च दृष्ट्वैवं वाच्यं सेवनं च कार्य्यम्-हे अस्मत्पितरो! यूयं स्वागतमागच्छतास्मद्विषये यथायोग्यान् भोगानासनादींश्चेमानस्मद्दत्तान् स्वीकृत्य सुखयत यद्यदाऽऽवश्यकं युष्माकमिष्टं वस्त्वस्माभिरानेतुं योग्यं तदाज्ञापयत। एवमत्राऽस्माभिः सत्कृताः सन्तो भवन्तः प्रश्नोत्तरविधानेनाऽस्मान् स्थूलसूक्ष्मविद्याधर्मोपदेशेन यथावद् वर्द्धयन्तु।

युष्मद्वर्द्धिता वयं नित्यं सत्क्रियाः कृत्वाऽन्यैः कारयित्वा च सर्वेषां प्राणिनां सुखविद्योन्नतीः नित्यं कुर्य्यामेति॥३१॥

पदार्थः-हे **(पितरः)** उत्तम विद्या वा उत्तम शिक्षाओं और विद्यादान से पालन करने वाले विद्वान् लोगो! **(अत्र)** हमारे सत्कारयुक्त व्यवहार अथवा स्थान में **(यथाभागम्)** यथायोग्य पदार्थों के विभाग को **(आवृषायध्वम्)** अच्छी प्रकार जैसे कि आनन्द देने वाले बैल अपनी घास को चरते हैं, वैसे पाओ और **(मादयध्वम्)** आनन्दित भी हो, तथा आप हम लोगों के जिस प्रकार **(यथाभागम्)** यथायोग्य अपनी-अपनी बुद्धि के अनुकूल गुण विभाग को प्राप्त हों, वैसे **(आवृषायिषत)** विद्या और धर्म की शिक्षा करने वाले हो और **(अमीमदन्त)** सब को आनन्द दो॥३१॥

भावार्थः-ईश्वर आज्ञा देता है कि मनुष्य लोग माता और पिता आदि धार्मिक सज्जन विद्वानों को समीप आये हुए देखकर उनकी सेवा करें। प्रार्थनापूर्वक वाक्य कहें कि हे पितरो! आप लोगों का आना हमारे उत्तम भाग्य से होता है, सो आओ और जो अपने व्यवहार में यथायोग्य और भोग आसन आदि पदार्थों को हम देते हैं, उनको स्वीकार करके सुख को प्राप्त हो तथा जो-जो आप के प्रिय पदार्थ हमारे लाने योग्य हों, उस-उस की आज्ञा दीजिये, क्योंकि सत्कार को प्राप्त होकर आप प्रश्नोत्तर विधान से हम लोगों को स्थूल और सूक्ष्म विद्या वा धर्म के उपदेश से यथावत् वृद्धियुक्त कीजिये। आप से वृद्धि को प्राप्त हुए हम लोग अच्छे-अच्छे कामों को करके तथा औरों से अच्छे काम कराके सब प्राणियों का सुख और विद्या की उन्नति नित्य करें॥३१॥

नमो व इत्यस्यर्षिः स एव। पितरो देवताः। मन्यवे पर्यन्तस्य ब्राह्मी बृहती छन्दः। अग्रे निचृद् बृहती च छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

अथ कथं किमर्थोऽयं पितृयज्ञः क्रियत इत्युपदिश्यते॥

अब पितृयज्ञ किस प्रकार से और किस प्रयोजन के लिये किया जाता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

नमो॑ वः पितरो॒ रसा॑य॒ नमो॑ वः पितरः॒ शोषा॑य॒ नमो॑ वः पितरो जी॒वाय॒ नमो॑ वः पितरः स्व॒धायै॒ नमो॑ वः पितरो घो॒राय॒ नमो॑ वः पितरो म॒न्यवे॒ नमो॑ वः पितरः॒ पित॑रो॒ नमो॑ वो गृ॒हान्नः॑ पितरो दत्त स॒तो वः॑ पितरो देष्मै॒तद्वः॑ पितरो॒ वासः॑॥३२॥

नमः॑। व॒ः। पि॒त॒रः॒। रसा॑य। नमः॑। व॒ः। पि॒त॒रः॒। शोषा॑य। नमः॑। व॒ः। पि॒त॒रः॒। जी॒वाय॑। नमः॑। व॒ः। पि॒त॒रः॒। स्व॒धायै॑। नमः॑। व॒ः। पि॒त॒रः॒। घो॒राय॑। नमः॑। व॒ः। पि॒त॒रः॒। म॒न्यवे॑। नमः॑। व॒ः। पि॒त॒रः॒। पि॒त॒रः॑। नमः॑। व॒ः। गृ॒हान्। न॒ः। पि॒त॒रः॒। द॒त्त। स॒तः। व॒ः। पि॒त॒रः॒। दे॒ष्म॒। ए॒तत्। व॒ः। पि॒त॒रः॒। वासः॑॥३२॥

पदार्थः-**(नमः)** नम्रीभावे। **यज्ञो नमो यज्ञियानेवैनानेतत्करोति** (शत०२.४.२.२४) **(वः)** युष्मभ्यम् **(पितरः)** विद्यानन्ददायकास्तत्संबुद्धौ **(रसाय)** रसभूताय विज्ञानानन्दप्रापणाय **(नमः)** आर्द्रीभावे **(वः)** युष्मभ्यम् **(पितरः)** दुःखनाशकत्वेन रक्षकास्तत्संबुद्धौ **(शोषाय)** दुःखानां शत्रूणां वा निवारणाय **(नमः)** निरभिमानार्थे **(वः)** युष्मभ्यम् **(पितरः)** धर्म्यजीविकाज्ञापकास्तत्सम्बुद्धौ **(जीवाय)** जीवति प्राणं धारयति प्राणधारणेन समर्थो भवति यस्मिन्नायुषि तस्मै **(नमः)** शीलधारणार्थे **(वः)** युष्मभ्यम् **(पितरः)** अन्नभोगादिविद्याशिक्षकास्तत्सम्बुद्धौ **(स्वधायै)**

अन्नाय पृथिवीराज्याय न्यायप्रकाशाय वा। **स्वधेत्यन्ननामसु पठितम्** (निघं०२.७) **स्वधे इति द्यावापृथिव्योर्नामसु पठितम्** (निघं०३.३०) **(नमः)** नम्रत्वधारणे **(वः)** युष्मभ्यम् **(पितरः)** पापापत्कालनिवारकास्तत्संबुद्धौ **(घोराय)** हन्यन्ते सुखानि यस्मिन् तद् घोरं तन्निवारणाय। **हन्तेरच् घुर् च** (उणा०५.६४) अनेन घोर इति सिद्ध्यति **(नमः)** क्रोधत्यागे **(वः)** युष्मभ्यम् **(पितरः)** श्रेष्ठानां पालका दुष्टेषु क्रोधकारिणस्तत्संबुद्धौ **(मन्यवे)** मन्यन्तेऽभिमानं कुर्वन्ति यस्मिन् स मन्युः क्रोधो दुष्टाचरणेषु दुष्टेषु तद्भावनाय। **यजिमनि०** (उणा०३.२०) अनेन मन्यतेर्युच् प्रत्ययः **(नमः)** सत्कारं **(वः)** युष्मभ्यम् **(पितरः)** प्रीत्यापालकास्तत्संबुद्धौ **(नमः)** ज्ञानग्रहणार्थे **(वः)** युष्मभ्यम् **(गृहान्)** गृह्णन्ति विद्यादिपदार्थान् येषु तान् **(नः)** अस्मभ्यमस्माकं वा **(पितरः)** विद्यादातारस्तत्संबुद्धौ **(दत्त)** तत्तद्दानं कुरुत **(सतः)** विद्यमानानुत्तमान् पदार्थान् **(वः)** युष्मभ्यम् **(पितरः)** जनकादयस्तत्संबुद्धौ **(देष्म)** देयास्म। डुदाञ् इत्यस्मादाशार्लिङ्युत्तमबहुवचने। **लिङ्याशिष्यङ्** [अष्टा०३.१.८६] इत्यङ्। **छन्दस्युभयथा** [अष्टा०३.४.११७] इति मस आर्द्धधातुकसंज्ञामाश्रित्य सकारलोपाभावः। सार्वधातुकसंज्ञामाश्रित्य '**अतो येय** [अष्टा०७.२.८०] इतीयादेशश्च **(एतत्)** अस्मद्दत्तम् **(वः)** युष्मभ्यम् **(पितरः)** सेवितुं योग्यस्तत्संबुद्धौ वसते आच्छादयन्ते शरीरं येन तद्वस्त्रादिकम्॥ अयं मन्त्रः (शत०(२.४.२.२४) व्याख्यातः॥३२॥

अन्वयः-हे पितरो रसाय वो युष्मभ्यं नमोस्तु। हे पितरः शोषाय वो नमोस्तु। हे पितरो जीवाय वो नमोस्तु। हे पितरः स्वधायै वो नमोस्तु। हे पितरो घोराय वो नमोस्तु। हे पितरो मन्यवे वो नमोस्तु। हे पितरो विद्यायै वो नमोस्तु। हे पितरः सत्काराय वो नमस्तु। यूयमस्माकं गृहाणि नित्यमागच्छत। आगत्य च शिक्षाविद्ये नित्यं दत्त। हे पितरो वयं वो युष्मभ्यं सतः पदार्थान् नित्यं देष्म। पितरो यूयमस्माभिरेतद्दत्तं वासो वस्त्रादिकं स्वीकुरुत॥३२॥

भावार्थः-अत्रानेके नमः शब्दा अनेकशुभगुणसत्कारद्योतनार्थाः। यथा वसन्तग्रीष्मवर्षाशरद्धेमन्तशिशिराः षड्तवो रसशोषजीवान्नघनत्वमन्यूत्पादका भवन्ति, तथैव ये पितरोऽनेकविद्योपदेशैर्मनुष्यान् सततं प्रीणयन्ति तानुत्तमैः पदार्थैः सत्कृत्य तेभ्यः सततं विद्योपदेशा ग्राह्याः॥३२॥

पदार्थः-हे **(पितरः)** विद्या के आनन्द को देने वाले विद्वान् लोगो! **(रसाय)** विज्ञानरूपी आनन्द की प्राप्ति के लिये **(वः)** तुम को हमारा **(नमः)** नमस्कार हो। हे **(पितरः)** दुःख का विनाश और रक्षा करने वाले विद्वानो! **(शोषाय)** दुःख और शत्रुओं की निवृत्ति के लिये **(वः)** तुम को हमारा **(नमः)** नमस्कार हो। हे **(पितरः)** धर्मयुक्त जीविका के विज्ञान कराने वाले विद्वानो! **(जीवाय)** जिससे प्राण का स्थिर धारण होता है, उस जीविका के लिये **(वः)** तुम को हमारा **(नमः)** शील-धारण विदित हो। हे **(पितरः)** विद्या, अन्न आदि भोगों की शिक्षा करने हारे विद्वानो! **(स्वधायै)** अन्न, पृथिवी, राज्य और न्याय के प्रकाश के लिये **(वः)** तुम को हमारा **(नमः)** नम्रीभाव विदित हो। हे **(पितरः)** पाप और आपत्काल के निवारक विद्वान् लोगो! **(घोराय)** दुःखसमूह की निवृत्ति के लिये **(वः)** तुम को हमारा **(नमः)** क्रोध का छोड़ना विदित हो। हे **(पितरः)** श्रेष्ठों के पालन करने हारे विद्वानो! **(मन्यवे)** दुष्टाचरण करने वाले दुष्ट जीवों में क्रोध करने के लिये **(वः)** तुम को हमारा **(नमः)** सत्कार विदित हो। हे **(पितरः)** ज्ञानी विद्वानो! **(वः)** तुम को विद्या के लिये **(नमः)** हमारी विज्ञान ग्रहण करने की इच्छा विदित हो। हे **(पितरः)** प्रीति के साथ रक्षा करने वाले विद्वानो! **(वः)** तुम्हारे सत्कार होने के लिये हमारा **(नमः)** सत्कार करना तुम को विदित हो। आप लोग हमारे **(गृहान्)** घरों में नित्य आओ और आके रहो। हे **(पितरः)** विद्या देने वाले विद्वानो! **(नः)** हमारे लिये शिक्षा और विद्या नित्य **(दत्त)** देते रहो। हे पिता-माता आदि विद्वान् पुरुषो! हम

लोग **(वः)** तुम्हारे लिये जो-जो **(सतः)** विद्यमान पदार्थ हैं, वे नित्य **(देष्म)** देवें। हे **(पितरः)** सेवा करने योग्य पितृ लोगो! हमारे दिये इन **(वासः)** वस्त्रादि को ग्रहण कीजिये॥३२॥

भावार्थः-इस मन्त्र में अनेक बार **(नमः)** यह पद अनेक शुभगुण और सत्कार प्रकाश करने के लिये धरा है। जैसे वसन्त, ग्रीष्म, शरद्, हेमन्त और शिशिर ये छः ऋतु रस, शोष जीव, अन्न, कठिनता और क्रोध के उत्पन्न करने वाले होते हैं, वैसे ही पितर भी अनेक विद्याओं के उपदेश से मनुष्यों को निरन्तर सुख देते हैं। इस से मनुष्यों को चाहिये कि उक्त पितरों को उत्तम-उत्तम पदार्थों से सन्तुष्ट करके उनसे विद्या के उपदेश का निरन्तर ग्रहण करें॥३२॥

आधत्त इत्यस्य ऋषिः स एव। पितरो देवताः। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

तैः किं किं कर्तव्यमित्युपदिश्यते॥

उक्त पितरों को क्या क्या करना चाहिये, सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है॥

आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्करस्रजम्। यथेह पुरुषोऽसत्॥३३॥

आ। धत्त। पितरः। गर्भम्। कुमारम्। पुष्करस्रजमिति पुष्करऽस्रजम्। यथा। इह। पुरुषः। असत्॥३३॥

पदार्थः-**(आ)** समन्तात् **(धत्त)** धारयत **(पितरः)** ये पान्ति विद्यान्नादिदानेन तत्संबुद्धौ **(गर्भम्)** गर्भमिव **(कुमारम्)** ब्रह्मचारिणम् **(पुष्करस्रजम्)** विद्याग्रहणार्था स्रग् धारिता येन तम् **(यथा)** येन प्रकारेण **(इह)** अस्मिन् संसारेऽस्मत्कुले वा **(पुरुषः)** विद्यापुरुषार्थयुक्तोऽयं मनुष्यः **(असत्)** भवेत्। लेटः प्रयोगोऽयम्॥३३॥

अन्वयः-हे पितरो! यूयं यथायं ब्रह्मचारीह शरीरात्मबलं प्राप्य पुरुषवद्भवति, तथैव गर्भमिव पुष्करस्रजं कुमारं विद्यार्थिनमाधत्त धारयत॥३३॥

भावार्थः-अत्र लुप्तोपमालङ्कारः। ईश्वर आज्ञापयति। विद्वद्भिर्विदुषीभिश्च विद्यार्थिनः कुमारा विद्यार्थिन्यः कुमार्य्यश्च विद्यादानाय गर्भवद्धार्य्याः। यथा गर्भे देहः क्रमेण वर्धते तथैव सुशिक्षयैव एताश्च सद्विद्यायां वर्धयितव्याः पालनीयाश्च। यतो विद्यायोगेन धार्मिकाः पुरुषार्थयुक्ता भूत्वा सदैव सुखयुक्ता भवेयुरित्येतत् सदैवानुष्ठेयमिति॥३३॥

पदार्थः-हे **(पितरः)** विद्यादान से रक्षा करने वाले विद्वान् पुरुषो! आप **(यथा)** जैसे यह ब्रह्मचारी **(इह)** इस संसार वा हमारे कुल में अपने शरीर और आत्मा के बल को प्राप्त होके विद्या और पुरुषार्थयुक्त मनुष्य **(असत्)** हो वैसे **(गर्भम्)** गर्भ के समान **(पुष्करस्रजम्)** विद्या ग्रहण के लिये फूलों की माला धारण किये हुए **(कुमारम्)** ब्रह्मचारी को **(आधत्त)** अच्छी प्रकार स्वीकार कीजिये॥३३॥

भावार्थः-इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। ईश्वर आज्ञा देता है कि विद्वान् पुरुष और स्त्रियों को चाहिये कि विद्यार्थी, कुमार वा कुमारी को विद्या देने के लिये गर्भ के समान धारण करें। जैसे क्रम-क्रम से गर्भ के बीच देह बीच बढ़ता है, वैसे अध्यापक लोगों को चाहिये कि अच्छी-अच्छी शिक्षा से ब्रह्मचारी, कुमार वा कुमारी को श्रेष्ठ विद्या में वृद्धियुक्त करें तथा (उनका) पालन करें। वे विद्या के योग से धर्मात्मा और पुरुषार्थयुक्त होकर सदा सुखी हों, यह अनुष्ठान सदैव करना चाहिये॥३३॥

ऊर्जमित्यस्यर्षिः स एव। आपो देवता। भुरिगुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

एते पितरः केन केन पदार्थेन सत्कर्त्तव्या इत्युपदिश्यते॥

उक्त पितर कौन-कौन पदार्थों से सत्कार करने योग्य हैं, सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है॥

ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम्। स्वधा स्थ तर्पयत मे पितॄन्॥ ३४॥

ऊर्जम्। वहन्तीः। अमृतम्। घृतम्। पयः। कीलालम्। परिस्रुतमिति परिऽस्रुतम्। स्वधाः। स्थ। तर्पयत। मे। पितॄन्॥ ३४॥

पदार्थः-(ऊर्जम्) इष्टं विविधं रसम्। **ऊर्ग्रसः** (शत०१.५.४.२) **(वहन्तीः)** प्रापयन्तीः स्वादिष्ठा आपः **(अमृतम्)** सर्वरोगहरं सुरसं मिष्टादिकम् **(घृतम्)** आज्यम् **(पयः)** दुग्धम् **(कीलालम्)** सुसंस्कृतमन्नम्। **कीलालं इत्यन्ननामसु पठितम्** (निघं०२.७) **(परिस्रुतम्)** परितः सर्वतः स्रुतं सुरसयोगेन परिपक्वं फलादिकम् **(स्वधाः)** ये स्वमेव दधते ते **(स्थ)** सर्वे पितृसेविनो भवत **(तर्पयत)** सुखयत **(मे)** मम **(पितॄन्)** पूर्वोक्तान्॥३४॥

अन्वयः-हे पुत्रादयो! यूयं मे मम पितॄनूर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतं दत्त्वा तर्पयतैवं तत्सेवनेन विद्याः प्राप्य स्वधाः स्थ परस्वत्यागेन सदा स्वसेविनो भवत॥३४॥

भावार्थः-ईश्वर आज्ञापयति। मनुष्याः सर्वान् पुत्रप्रभृतीन् प्रत्येवमादिशन्तु युष्माभिर्मम पितरो जनका विद्याप्रदाश्च प्रीत्या नित्यं सेवनीयाः। यथा तैर्बाल्यावस्थायां विद्याप्रदानसमये च वयं यूयं च पालितास्तथैवास्माभिरपि ते सर्वदा सर्वथा सत्कर्त्तव्याः। यतो नैवाऽस्माकं मध्ये कदाचिद्विद्यानाशकृतघ्नतादोषौ भवेतामिति॥३४॥

ईश्वरेण यद्यदस्मिन्नध्याये वेद्यादिरचनं, यज्ञस्य फलगमनसाधकानि सामग्रीधारणम्, अग्नेर्दूतत्वप्रकाशनम्, आत्मेन्द्रियादिशोधनं, सुखभोगो, वेदप्रकाशनं, पुरुषार्थसाधनं, युद्धे विजयकरणं, शत्रुनिवारणं, द्वेषत्यागोऽग्न्यादीनां यानेषु योजनं, पृथिव्यादिभ्य उपकारग्रहणम्, ईश्वरे प्रीतिर्दिव्यगुणविस्तरणं, सर्वरक्षणं, वेदशब्दार्थवर्णनं, वाय्वग्न्यादीनां परस्परमेलनं, पुरुषार्थग्रहणम्, उत्तमानां पदार्थानां स्वीकरणं, त्रिषु लोकेषु यज्ञाहुतद्रव्यस्य गमनं, पुनस्तस्मादागमनं, स्वयंभूशब्दार्थवर्णनं, गृहस्थकृत्यं, सत्याचरणम्, अग्नौ होमो, दुष्टानां निवारणं, पितॄणां सेवनं चोक्तं तत्तन्मनुष्यैः संप्रीत्या सेवनीयमिति प्रथमाध्यायार्थेन सहास्य द्वितीयाध्यायार्थस्य संगतिरस्तीति वेद्यम्॥३४॥

पदार्थः-हे पुत्रादिको! तुम **(मे)** मेरे **(पितॄन्)** पूर्वोक्त गुण वाले पितरों को **(ऊर्जम्)** अनेक प्रकार के उत्तम-उत्तम रस **(वहन्तीः)** सुख प्राप्त करने वाले स्वादिष्ट जल **(अमृतम्)** सब रोगों को दूर करने वाले ओषधि मिष्टादि पदार्थ **(पयः)** दूध **(घृतम्)** घी **(कीलालम्)** उत्तम-उत्तम रीति से पकाया हुआ अन्न तथा **(परिस्रुतम्)** रस से चूते हुए पके फलों को देके **(तर्पयत)** तृप्त करो। इस प्रकार तुम उनके सेवन से विद्या को प्राप्त होकर **(स्वधाः)** परधन का त्याग करके अपने धन के सेवन करने वाले **(स्थ)** होओ॥३४॥

भावार्थः-ईश्वर आज्ञा देता है कि सब मनुष्यों को पुत्र और नौकर आदि को आज्ञा देके कहना चाहिये कि तुम को हमारे पितर अर्थात् पिता-माता आदि वा विद्या के देने वाले प्रीति से सेवा करने योग्य हैं। जैसे कि उन्होंने बाल्यावस्था वा विद्यादान के समय हम और तुम पाले हैं, वैसे हम लोगों को भी वे सब काल में सत्कार करने योग्य हैं, जिससे हम लोगों के बीच में विद्या का नाश और कृतघ्नता आदि दोष कभी न प्राप्त हों॥३४॥

ईश्वर ने इस दूसरे अध्याय में जो-जो वेदि आदि यज्ञ के साधनों का बनाना, यज्ञ का फल गमन वा साधन, सामग्री का धारण, अग्नि के दूतपन का प्रकाश, आत्मा और इन्द्रियादि पदार्थों की शुद्धि, सुखों का भोग,

वेद का प्रकाश, पुरुषार्थ का सन्धान, युद्ध में शत्रुओं का जीतना, शत्रुओं का निवारण, द्वेष का त्याग, अग्नि आदि पदार्थों को सवारियों में युक्त करना, पृथिवी आदि पदार्थों से उपकार लेना, ईश्वर में प्रीति, अच्छे-अच्छे गुणों का विस्तार और सब की उन्नति करना, वेद शब्द के अर्थ का वर्णन, वायु और अग्नि आदि का परस्पर मिलाना, पुरुषार्थ का ग्रहण, उत्तम-उत्तम पदार्थों का स्वीकार करना, यज्ञ में होम किये हुए पदार्थों का तीनों लोक में जाना आना, स्वयंभू शब्द का वर्णन, गृहस्थों का कर्म, सत्य का आचरण, अग्नि में होम, दुष्टों का निवारण और जिन-जिन का सेवन करना कहा है, उन-उन का सेवन मनुष्यों को प्रीति के साथ करना अवश्य है। इस प्रकार से प्रथमाध्याय के अर्थ के साथ द्वितीयाध्याय के अर्थ की संगति जाननी चाहिए॥३४॥

इति श्रीमत्परिव्राजकाचार्य्य श्रीयुतदयानन्दसरस्वतीस्वामिना सुविरचिते संस्कृतार्य्यभाषाविभूषिते यजुर्वेदभाष्ये द्वितीयोऽध्यायः सम्पूर्णः॥२॥

॥ओ३म्॥

अथ तृतीयोऽध्यायारम्भः

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव। यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व॥ यजु० ३०.३॥

अस्मिन्नध्याये त्रिषष्टिर्मन्त्राः सन्तीति वेदितव्यम्॥

तत्र समिधेत्यस्य प्रथममन्त्रस्याङ्गिरस ऋषिः। अग्निर्देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अथ भौतिकोऽग्निः क्व क्वोपयोक्तव्य इत्युपदिश्यते॥

अब तीसरे अध्याय के पहिले मन्त्र में भौतिक अग्नि का किस-किस काम में उपयोग करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

स॒मिधा॒ग्निं दु॑वस्यत घृ॒तैर्बो॑धय॒ताति॑थिम्। आस्मि॑न् ह॒व्या जु॑होतन॥ १॥

स॒मिधेति॑ स॒म्ऽइधा॑। अ॒ग्निम्। दु॒व॒स्य॒त॒। घृ॒तैः। बो॒ध॒य॒त॒। अति॑थिम्। आ। अ॒स्मि॒न्। ह॒व्या। जु॒हो॒त॒न॥ १॥

पदार्थः-(समिधा) सम्यगिध्यते प्रदीप्यते यया तया। अत्र सम्पूर्वादिन्धेः **कृतो बहुलम्** [अष्टा०वा०३.३.११३] इति करणे क्विप्। **(अग्निम्)** भौतिकम् **(दुवस्यत)** सेवध्वम् **(घृतैः)** शोधितैः सुगन्ध्यादियुक्तैर्घृतादिभिर्यानेषु जलवाष्पादिभिर्वा। **घृतमित्युदकनामसु पठितम्।** (निघं०१.१२) अत्र बहुवचनमनेकसाधनद्योतनार्थम्। **(बोधयत)** उद्दीपयत **(अतिथिम्)** अविद्यमाना तिथिर्यस्य तम् **(आ)** समन्तात् **(अस्मिन्)** अग्नौ **(हव्या)** दातुमत्तुमादातुमर्हाणि वस्तूनि। अत्र **शेश्छन्दसि बहुलम्** [अष्टा०६.१.६८] इति लोपः। **(जुहोतन)** प्रक्षिपत। अत्र हुधातोर्लोटि मध्यमबहुवचने। तप्तनप् इति तनबादेशः। अयं मन्त्रः (शत०६.८.१.६) व्याख्यातः॥ १॥

अन्वयः-हे विद्वांसो यूयं समिधा घृतैरग्निं बोधयत, तमतिथिमिव दुवस्यत। अस्मिन् हव्या होतव्यानि द्रव्याण्याजुहोतन प्रक्षिपत॥ १॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा गृहस्था मनुष्या आसनान्नजलवस्त्रप्रियवचनादिभिरुत्तम-गुणमतिथिं सेवन्ते, तथैव विद्वद्भिर्यज्ञवेदीकलायन्त्रयानेष्वग्निं स्थापयित्वा यथायोग्यैरिन्धनाज्यजलादिभिः प्रदीप्य वायुवृष्टिजलशुद्धियानोपकाराश्च नित्यं कार्या इति॥ १॥

पदार्थः-हे विद्वान् लोगो! तुम **(समिधा)** जिन इन्धनों से अच्छे प्रकार प्रकाश हो सकता है, उन लकड़ी घी आदिकों से **(अग्निम्)** भौतिक अग्नि को **(बोधयत)** उद्दीपन अर्थात् प्रकाशित करो तथा जैसे **(अतिथिम्)** अतिथि को अर्थात् जिसके आने-जाने वा निवास का कोई दिन नियत नहीं है, उस संन्यासी का सेवन करते हैं, वैसे अग्नि का **(दुवस्यत)** सेवन करो और **(अस्मिन्)** इस अग्नि में **(हव्या)** सुगन्ध कस्तूरी, केसर आदि, मिष्ट, गुड़, शक्कर आदि पुष्ट घी, दूध आदि, रोग को नाश करने वाले सोमलता अर्थात् गुडूची आदि ओषधी, इन चार-प्रकार के साकल्य को **(आजुहोतन)** अच्छे प्रकार हवन करो॥ १॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे गृहस्थ मनुष्य आसन, अन्न, जल, वस्त्र और

प्रियवचन आदि से उत्तम गुण वाले संन्यासी आदि का सेवन करते हैं, वैसे ही विद्वान् लोगों को यज्ञ, वेदी, कलायन्त्र और यानों में स्थापन कर यथायोग्य इन्धन, घी, जलादि से अग्नि को प्रज्वलित करके वायु, वर्षाजल की शुद्धि वा यानों की रचना नित्य करनी चाहिए॥१॥

सुसमिद्धायेत्यस्य सुश्रुत ऋषिः। अग्निर्देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनः स कीदृशः कथमुपयोजनीयश्चेत्युपदिश्यते॥

फिर वह भौतिक अग्नि कैसा है, किस प्रकार उपयोग करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन। अग्नये जातवेदसे॥२॥

सुसमिद्धायेति सुऽसमिद्धाय। शोचिषे। घृतम्। तीव्रम्। जुहोतन। अग्नये। जातवेदस इति जातऽवेदसे॥२॥

पदार्थः-(**सुसमिद्धाय**) सुष्ठु सम्यगिद्धो दीप्तस्तस्मिन्। अत्र सर्वत्र **सुपां सुलुग्** [अष्टा०७.१.३९] इति सप्तमीस्थाने चतुर्थी। (**शोचिषे**) शोधिते दोषनिवारके (**घृतम्**) आज्यादिकम् (**तीव्रम्**) सर्वदोषाणां निवारणे तीक्ष्णस्वभावम् (**जुहोतन**) प्रक्षिपत, सिद्धिरस्य पूर्ववत्। (**अग्नये**) रूपदाहप्रकाशच्छेदनादिगुणस्वभावे (**जातवेदसे**) जाते जाते उत्पन्ने उत्पन्ने पदार्थे विद्यमानस्तस्मिन्। **जाते जाते विद्यत इति वा। जातवित्तो वा जातधनो जातविद्यो वा जातप्रज्ञानो यत्तज्जातः पशूनविन्दतेति तज्जातवेदसो जातवेदस्त्वमिति।** निरु०७.१९.२॥

अन्वयः-हे मनुष्या! यूयं सुसमिद्धाय सुसमिद्धे शोचिषे शोचिषि जातवेदसे जातवेदसि अग्नये अग्नौ तीव्रं घृतञ्जुहोतन॥२॥

भावार्थः-मनुष्यैरस्मिन् प्रदीप्तेऽग्नौ शीघ्रं दोषनिवारकाणि शोधितानि द्रव्याणि प्रक्षिप्य सुखानि साधनीयानीति॥२॥

पदार्थः-हे मनुष्य लोगो! तुम (**सुसमिद्धाय**) अच्छे प्रकार प्रकाशरूप (**शोचिषे**) शुद्ध किये हुए दोषों का निवारण करने वा (**जातवेदसे**) सब पदार्थों में विद्यमान (**अग्नये**) रूप, दाह, प्रकाश, छेदन आदि गुण स्वभाव वाले अग्नि में (**तीव्रम्**) सब दोषों के निवारण करने में तीक्ष्ण स्वभाव वाले (**घृतम्**) घी मिष्ट आदि पदार्थों को (**जुहोतन**) अच्छे प्रकार गेरो॥२॥

भावार्थः-मनुष्यों को इस प्रज्वलित अग्नि में जल्दी दोषों को दूर करने वाले या शुद्ध किये हुए पदार्थों को गेर कर इष्ट सुखों को सिद्ध करना चाहिये॥२॥

तं त्वेत्यस्य भारद्वाज ऋषिः। अग्निर्देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

मनुष्यैः स नित्यं वर्द्धनीय इत्युपदिश्यते॥

मनुष्यों को उक्त अग्नि की नित्य वृद्धि करनी चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि। बृहच्छोचा यविष्ठ्य॥३॥

तम्। त्वा। समिद्भिरिति समित्ऽभिः। अङ्गिरः। घृतेन। वर्द्धयामसि। बृहत्। शोच। यविष्ठ्य॥३॥

पदार्थः-(तम्) भौतिकमग्निम् **(त्वा)** यः। अत्र व्यत्ययः **(समिद्भिः)** काष्ठादिभिः **(अङ्गिरः)** अङ्गति प्रापयति यः सोऽङ्गिरः। **अङ्गाराऽअङ्क्नाऽअञ्चनाः** (निरु०३.१७) **(घृतेन)** पूर्वोक्तेन **(वर्द्धयामसि)** वर्द्धयामः। अत्र **इदन्तो मसि** [अष्टा०७.१.४६] इतीकारादेशः। **(बृहत्)** महत् यथा स्यात् तथा **(शोच)** शोचति प्रकाशते। अत्र व्यत्ययेन लडर्थे लोट्। **द्व्यचोऽतस्तिङः** [अष्टा०६.३.१३५] इति दीर्घश्च। **(यविष्ठ्य)** योऽतिशयेन युवा पदार्थानाममिश्रीकरणे बलवान् सः। यविष्ठ एव यविष्ठ्यः। अत्र युवन् शब्दादिष्ठन् प्रत्ययस्ततो **नवसूरमर्तयविष्ठेभ्यो यत्** (अष्टा०वा०५.४.३६) इति वार्तिकेन स्वार्थे यत्प्रत्ययः। अयं मन्त्रः (शत०१.३.३.२५-२६) व्याख्यातः॥३॥

अन्वयः-वयं योऽङ्गिरोऽङ्गिरा यविष्ठ्य यविष्ठ्योग्निर्बृहच्छोचमहद् यथा स्यात्, तथा शोचति प्रकाशते त्वा तं समिद्भिर्घृतेन वर्द्धयामसि वर्द्धयामः प्रदीपयामः॥३॥

भावार्थः-मनुष्यैर्यो गुणैर्महान् पूर्वोक्तोऽग्निर्वर्त्तते, स होमशिल्पविद्यासिद्धये साधनैरिन्धनादिभिः सेवित्वा नित्यं वर्द्धनीय इति॥३॥

पदार्थः-हम लोग जो **(अङ्गिरः)** पदार्थों को प्राप्त कराने वा **(यविष्ठ्य)** पदार्थों के भेद करने में अति बलवान् **(बृहत्)** बड़े तेज से युक्त अग्नि **(शोच)** प्रकाश करता है **(तम्)** उसको **(समिद्भिः)** काष्ठादि वा **(घृतेन)** घी आदि से **(वर्द्धयामसि)** बढ़ाते हैं॥३॥

भावार्थः-मनुष्यों को जो सब गुणों से बलवान् पूर्व कहा हुआ अग्नि है, वह होम और शिल्पविद्या की सिद्धि के लिये लकड़ी, घी आदि साधनों से सेवन करके निरन्तर वृद्धियुक्त करना चाहिये॥३॥

उप त्वेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। अग्निर्देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह अग्नि कैसा है, सो अगले मन्त्र में कहा है॥

उप॑ त्वाग्ने ह॒विष्म॑तीर्घृ॒ताचीर्य॑न्तु हर्यत। जु॒षस्व॑ स॒मिधो॒ मम॑॥४॥

उप॑। त्वा॒। अ॒ग्ने॒। ह॒विष्म॑तीः। घृ॒ताचीः॑। य॒न्तु॒। ह॒र्य्य॒त॒। जु॒षस्व॑। स॒मिध॒ऽइति॑ स॒म्ऽइधः॑। मम॑॥४॥

पदार्थः-(उप) सामीप्ये **(त्वा)** तम् **(अग्ने)** अग्निम् **(हविष्मतीः)** प्रशस्तानि हवींषि विद्यन्ते यासु ताः, अत्र प्रशंसार्थे मतुप्। **(घृताचीः)** या घृतमाज्यादिकं जलं वाऽञ्चन्ति प्रापयन्ति ताः **(यन्तु)** प्राप्नुवन्तु **(हर्यत)** प्रापकः कमनीयो वा **(जुषस्व)** जुषते। अत्र व्यत्ययो लडर्थे लोट् च **(समिधः)** काष्ठादिसामग्रीः **(मम)** कर्मानुष्ठातुः॥४॥

अन्वयः-हे मनुष्या! यो हर्यताग्ने प्रापकः कमनीयोऽग्निर्मम समिधो जुषस्व जुषते सेवते। यथा तमेताः समिधो यन्तु, प्राप्नुवन्तु तथाऽस्मिन् यूयं हविष्मतीर्घृताचीः समिधः प्रतिदिनं सञ्चिनुत॥४॥

भावार्थः-मनुष्यैर्यदाऽस्मिन्नग्नौ समिधः आहुतयश्च प्रक्षिप्यन्ते, स एताः परमसूक्ष्माः कृत्वा वायुना सह देशान्तरं प्रापयित्वा दुर्गन्धादिदोषाणां निवारणेन सर्वान् सुखयतीति वेदितव्यम्॥४॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो **(हर्य्यत)** प्राप्ति का हेतु वा कामना के योग्य **(अग्ने)** प्रसिद्ध अग्नि **(मम)** यज्ञ करने वाले मेरे **(समिधः)** लकड़ी घी आदि पदार्थों को **(जुषस्व)** सेवन करता है, जिस प्रकार **(त्वा)** उस अग्नि को घी आदि पदार्थ **(यन्तु)** प्राप्त हों, वैसे तुम **(हविष्मतीः)** श्रेष्ठ हवियुक्त **(घृताचीः)** घृत आदि पदार्थों से संयुक्त आहुति वा काष्ठ आदि सामग्री प्रतिदिन सञ्चित करो॥४॥

भावार्थः-मनुष्य लोग जब इस अग्नि में काष्ठ, घी आदि पदार्थों की आहुति छोड़ते हैं, तब वह उनको अति सूक्ष्म कर के वायु के साथ देशान्तर को प्राप्त कराके दुर्गन्धादि दोषों के निवारण से सब प्राणियों को सुख देता है, ऐसा सब मनुष्यों को जानना चाहिये॥४॥

भूर्भुवः स्वरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। अग्निवायुसूर्य्या देवताः। दैवी बृहती छन्दः। द्यौरिवेत्यस्य निचृद् बृहती छन्दः। उभयत्र मध्यमः स्वरः॥

पुनः स किमर्थ उपयोजनीय इत्युपदिश्यते॥

फिर उस अग्नि का किसलिये उपयोग करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा।
तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे॥५॥

भूः। भुवः। स्वः। द्यौरिवेति द्यौःऽइव। भूम्ना। पृथिवीवेति पृथिवीऽइव। वरिम्णा। तस्याः। ते। पृथिवि। देवयजनीति देवऽयजनि। पृष्ठे। अग्निम्। अन्नादमित्यन्नऽअदम्। अन्नाद्यायेत्यन्नऽअद्याय। आ। दधे॥५॥

पदार्थः-(**भूः**) भूमिः। भूरिति वै प्रजापतिरिमामजनयत। (**भुवः**) भुवरित्यन्तरिक्षम् (**स्वः**) स्वरिति दिवमेतावद्वा। **इदꣳसर्वं यावदिमे लोकाः। सर्वेणैवाधीयते।** शत०२.१.४.११। (**द्यौरिव**) यथा सूर्यप्रकाशयुक्त आकाशे (**भूम्ना**) विभुना (**पृथिवीव**) यथा विस्तृता भूमिः (**वरिम्णा**) श्रेष्ठगुणसमूहेन (**तस्याः**) वक्ष्यमाणायाः (**ते**) अस्याः प्रत्यक्षायाः। अत्र व्यत्ययः। (**पृथिवि**) पृथिव्याः (**देवयजनि**) देवा यजन्ति यस्यां तस्याः। अत्रोभयत्र प्रातिपदिकनिर्देशानामर्थतन्त्रत्वात् षष्ठ्यर्थे प्रथमा विपरिणम्यते। (**पृष्ठे**) उपरि (**अग्निम्**) भौतिकम् (**अन्नादम्**) योऽन्नं यवादिकं सर्वमत्ति तम् (**अन्नाद्याय**) अत्तुं योग्यमद्यमन्नं च तदद्यं चान्नाद्यं च तस्मै (**आ**) समन्तात् (**दधे**) स्थापयामि। अयं मन्त्रः (शत०२.१.४.११-२८) व्याख्यातः॥५॥

अन्वयः-अहमन्नाद्याय भूम्ना द्यौरिव वरिम्णा पृथिवीव तेऽस्याः प्रत्यक्षायास्तस्या अप्रत्यक्षाया अन्तरिक्षलोकस्थाया देवयजनि देवयजन्याः पृथिवि, पृथिव्याः पृष्ठे, पृष्ठोपरि भूर्भुवः स्वर्लोकान्तर्गतमन्नादमग्निमादधे, स्थापयामि॥५॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारौ। हे मनुष्या! यूयमीश्वरेण रचितं त्रैलोक्योपकारकं स्वव्याप्त्या सूर्यप्रकाशसदृशं श्रेष्ठैर्गुणैः पृथिवीसमानं स्वस्वलोके सन्निहितमिमम्ग्निं कार्यसिद्ध्यर्थं प्रयत्नेनोपयोजयत॥५॥

पदार्थः-मैं (**अन्नाद्याय**) भक्षण योग्य अन्न के लिये (**भूम्ना**) विभु अर्थात् ऐश्वर्य्य से (**द्यौरिव**) आकाश में सूर्य के समान (**वरिम्णा**) अच्छे-अच्छे गुणों से (**पृथिवीव**) विस्तृत भूमि के तुल्य (**ते**) प्रत्यक्ष वा (**तस्याः**) अप्रत्यक्ष अर्थात् आकाशयुक्त लोक में रहने वाली (**देवयजनि**) देव अर्थात् विद्वान् लोग जहाँ यज्ञ करते हैं वा (**पृथिवी**) भूमि के (**पृष्ठे**) पृष्ठ के ऊपर (**भूः**) भूमि (**भुवः**) अन्तरिक्ष (**स्वः**) दिव अर्थात् प्रकाशस्वरूप सूर्यलोक इनके अन्तर्गत रहने तथा (**अन्नादम्**) यव आदि सब अन्नों को भक्षण करने वाले (**अग्निम्**) प्रसिद्ध अग्नि को (**आदधे**) स्थापन करता हूँ॥५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं। हे मनुष्य लोगो! तुम ईश्वर से तीन लोकों के उपकार करने वा

अपनी व्याप्ति से सूर्य प्रकाश के समान तथा उत्तम-उत्तम गुणों से पृथिवी के समान अपने-अपने लोकों में निकट रहने वाले रचे हुए अग्नि को कार्य की सिद्धि के लिये यत्न के साथ उपयोग करो॥५॥

आयमित्यस्य सर्प्पराज्ञी कद्रूर्ऋषिः। अग्निर्देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वर॥

अथाग्निनिमित्तेन पृथिवीभ्रमणविषय उपदिश्यते॥

अब अग्नि के निमित्त से पृथिवी का भ्रमण होता है, इस विषय को अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है॥

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन् मातरं पुरः। पितरं च प्रयन्त्स्वः॥६॥

आ। अयम्। गौः। पृश्निः। अक्रमीत्। असदत्। मातरम्। पुरः। पितरम्। च। प्रयन्निति प्रऽयन्। स्वरिति स्वः॥६॥

पदार्थः-(**आ**) अभ्यर्थे (**अयम्**) प्रत्यक्षः (**गौः**) यो गच्छति स भूगोलः। **गौरिति पृथिवीनामसु पठितम्।** (निघं०१.१) **गौरिति पृथिव्या नामधेयम्। यद् दूरं गता भवति। यच्चास्यां भूतानि गच्छन्ति** (निरु०२.५) (**पृश्निः**) अन्तरिक्षे। अत्र **सुपां सुलुग्०** [अष्टा०७.१.३९] इति सप्तम्येकवचने प्रथमैकवचनम्। **पृश्निरिति साधारणनामसु पठितम्।** (निघं०१.४) (**अक्रमीत्**) क्राम्यति, अत्र लडर्थे लुङ्। (**असदत्**) स्वकक्ष्यायां भ्रमति। अत्रापि लडर्थे लुङ् (**मातरम्**) स्वयोनिमपः। जलनिमित्तेन पृथिव्युत्पत्तेः (**पुरः**) पूर्वं पूर्वम् (**पितरम्**) पालकम् (**प्रयन्**) प्रकृष्टतया गच्छन् (**स्वः**) आदित्यम्। **स्वरादित्यो भवति।** (निरु०२.१४)। अयं मन्त्रः (शत०२.१.४.२९ निगदव्याख्यातः॥६॥

अन्वयः-अयं गौः पृथिवीगोलः स्वः पितरं पुरः प्रयन्मातरमपश्च प्रयन् पृश्निरन्तरिक्षे आक्रमीदाक्राम्यति समन्ताद् भ्रमति॥६॥

भावार्थः-मनुष्यैर्यस्माज्जलाग्निनिमित्तोत्पन्नोऽयं भूगोलोऽन्तरिक्षे स्वकक्ष्यायामाकर्षणेन रक्षकस्य सूर्यस्याभितः प्रतिक्षणं भ्रमति, तस्मादहोरात्रशुक्लकृष्णपक्षर्त्वयनादीनि कालविभागाः क्रमशः सम्भवन्तीति वेद्यम्॥६॥

पदार्थः-(**अयम्**) यह प्रत्यक्ष (**गौः**) गोलरूपी पृथिवी (**पितरम्**) पालने करने वाले (**स्वः**) सूर्यलोक के (**पुरः**) आगे-आगे वा (**मातरम्**) अपनी योनिरूप जलों के साथ वर्त्तमान (**प्रयन्**) अच्छी प्रकार चलती हुई (**पृश्निः**) अन्तरिक्ष अर्थात् आकाश में (**आक्रमीत्**) चारों तरफ घूमती है॥६॥

भावार्थः-मनुष्यों को जानना चाहिये कि जिससे यह भूगोल पृथिवी जल और अग्नि के निमित्त से उत्पन्न हुई अन्तरिक्ष वा अपनी कक्षा अर्थात् योनिरूप जल के सहित आकर्षणरूपी गुणों से सब की रक्षा करने वाले सूर्य के चारों तरफ क्षण-क्षण घूमती है, इसी से दिन रात्रि, शुक्ल वा कृष्ण पक्ष, ऋतु और अयन आदि काल-विभाग क्रम से सम्भव होते हैं॥६॥

अन्तरित्यस्य सर्पराज्ञी कद्रूर्ऋषिः। अग्निर्देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

सोऽग्निः कथंभूत इत्युपदिश्यते॥

वह अग्नि कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अ॒न्तश्च॑रति रोच॒नास्य प्रा॒णाद॑पान॒ती। व्य॑ख्यन् महि॒षो दिव॑म्॥७॥

अ॒न्तरित्य॒न्तः। च॒र॒ति॒। रो॒च॒ना। अ॒स्य॒। प्रा॒णात्। अ॒पा॒न॒तीत्य॑पऽअ॒न॒ती। वि। अ॒ख्य॒न्। म॒हि॒षः। दिव॑म्॥७॥

पदार्थः-(अन्तः) ब्रह्माण्डशरीरयोर्मध्ये **(चरति)** गच्छति **(रोचना)** दीप्तिः **(अस्य)** अग्नेः **(प्राणात्)** ब्रह्माण्डशरीरयोर्मध्य ऊर्ध्वगमनशीलात् **(अपानती)** अपानमधोगमनशीलं निष्पादयन्ती विद्युत् **(वि)** विविधार्थे **(अख्यत्)** ख्यापयति, अत्र लडर्थे लुङन्तर्गतो ण्यर्थश्च। **(महिषः)** स्वगुणैर्महान् **(दिवम्)** सूर्यलोकम्॥७॥

अन्वयः-याऽस्याग्नेः प्राणादपानती सती रोचना दीप्तिर्विद्युच्छरीरब्रह्माण्डयोरन्तश्चरति, स महिषोऽग्निर्दिवं व्यख्यत् विख्यापयति॥७॥

भावार्थः-मानवैर्योऽग्निविद्युदाख्या सर्वान्तःस्था कान्तिर्वर्तते, सा प्राणापानाभ्यां सह संयुज्य सर्वान् प्राणापानाग्निप्रकाशगत्यादीन् चेष्टाव्यवहारान् प्रसिद्धीकरोतीति बोध्यम्॥७॥

पदार्थः-जो **(अस्य)** इस अग्नि की **(प्राणात्)** ब्रह्माण्ड और शरीर के बीच में ऊपर जाने वाले वायु से **(अपानती)** नीचे को जाने वाले वायु को उत्पन्न करती हुई **(रोचना)** दीप्ति अर्थात् प्रकाशरूपी बिजुली **(अन्तः)** ब्रह्माण्ड और शरीर के मध्य में **(चरति)** चलती है, वह **(महिषः)** अपने गुणों से बड़ा अग्नि **(दिवम्)** सूर्यलोक को **(व्यख्यत्)** प्रकट करता है॥७॥

भावार्थः-मनुष्यों को जानना चाहिये कि जो विद्युत् नाम से प्रसिद्ध सब मनुष्यों के अन्तःकरण में रहने वाली जो अग्नि की कान्ति है, वह प्राण और अपान वायु के साथ युक्त होकर प्राण, अपान, अग्नि और प्रकाश आदि चेष्टाओं के व्यवहारों को प्रसिद्ध करती है॥७॥

त्रिꣳशद्धामेत्यस्य सर्पराज्ञी कद्रूर्ऋषिः। अग्निर्देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह अग्नि कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

त्रि॒ꣳश॒द्धाम॒ विरा॑जति॒ वाक् प॑त॒ङ्गाय॑ धीयते। प्रति॒ वस्तो॒रह॒ द्युभि॑ः॥८॥

त्रि॒ꣳश॒त्। धाम॑। वि। रा॒ज॒ति॒। वाक्। प॒त॒ङ्गाय॑। धी॒य॒ते॒। प्रति॑। वस्तोः॑। अह॑। द्यु॒भि॒रिति॒ द्युऽभिः॑॥८॥

पदार्थः-(त्रिंशत्) पृथिव्यादीनि त्रयस्त्रिंशतो वस्वादीनां देवानां मध्ये पठितानि। अन्तरिक्षमादित्यमग्निं च विहाय त्रिंशत्संख्याकानि **(धाम)** दधति येषु तानि धामानि। अत्र **सुपां सुलुग्०** [अष्टा०७.१.३९] इति शसो लुक्। **(वि)** विशेषार्थे **(राजति)** प्रकाशयति, अत्रान्तर्गतो ण्यर्थः। **(वाक्)** उच्यते यया सा। **वागिति वाङ्नामसु पठितम्।** (निघं०१.११) **(पतङ्गाय)** पतति गच्छतीति पतङ्गस्तस्मा अग्नये **(धीयते)** धार्यताम् **(प्रति)** वीप्सायाम् **(वस्तोः)** दिनं दिनम्। **वस्तोरित्यहर्नामसु पठितम्।** (निघं०१.९) **(अह)** विनिग्रहार्थे। **अह इति विनिग्रहार्थीयः।** (निरु०१.५) **(द्युभिः)** प्रकाशादिगुणविशेषैः। **दिवो द्योतनकर्मणामादित्यरश्मीनाम्।** (निरु०१३.२५)॥८॥

अन्वयः-मनुष्यैर्योऽग्निर्द्युभिः प्रतिवस्तोस्त्रिंशद्धाम धामानि विराजति प्रकाशयति, तस्मै पतङ्गाय पतनपातनादिगुणप्रकाशिताय प्रतिवस्तोः प्रतिदिनं विद्वद्भिरह वाग्धीयताम्॥८॥

भावार्थः-या वाणी प्राणयुक्तेन शरीरस्थेन विद्युदाख्येनाग्निना नित्यं प्रकाश्यते, सा तद् गुणप्रकाशाय

विद्वद्भिर्नित्यमुपदेष्टव्या श्रोतव्या चेति॥८॥

पदार्थः-मनुष्यों को जो अग्नि **(द्युभिः)** प्रकाश आदि गुणों से **(प्रतिवस्तोः)** प्रतिदिन **(त्रिंशत्)** अन्तरिक्ष, आदित्य और अग्नि को छोड़ के पृथिवी आदि को जो तीस **(धाम)** स्थान हैं, उनको **(विराजति)** प्रकाशित करता है, उस **(पतङ्गाय)** चलने-चलाने आदि गुणों से प्रकाशयुक्त अग्नि के लिये **(प्रतिवस्तोः)** प्रतिदिन विद्वानों को **(अह)** अच्छे प्रकार **(वाक्)** वाणी **(धीयते)** अवश्य धारण करनी चाहिये॥८॥

भावार्थः-जो वाणी प्राणयुक्त शरीर में रहने वाले बिजुलीरूप अग्नि से प्रकाशित होती है, उसके गुणों के प्रकाश के लिये विद्वानों को उपदेश वा श्रवण नित्य करना चाहिये॥८॥

अग्निरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। अग्निसूर्यौ देवते। पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। ज्योतिरित्यस्य याजुषी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

अथाग्निसूर्यौ कीदृशावित्युपदिश्यते॥

अग्नि और सूर्य्य कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अ॒ग्निर्ज्योति॒र्ज्योति॑र॒ग्निः स्वाहा॒ सूर्यो॒ ज्योति॒र्ज्योतिः॒ सूर्य॒ः स्वाहा॑।
अ॒ग्निर्वर्चो॒ ज्योति॒र्वर्च॒ः स्वाहा॒ सूर्यो॒ वर्चो॒ ज्योति॒र्वर्च॒ः स्वाहा॑।
ज्योति॒ः सूर्य॒ः सूर्यो॒ ज्योति॒ः स्वाहा॑॥९॥

अ॒ग्निः। ज्योति॑ः। ज्योति॑ः। अ॒ग्निः। स्वाहा॑। सूर्य्य॑ः। ज्योति॑ः। ज्योति॑ः। सूर्य्य॑ः। स्वाहा॑। अ॒ग्निः। वर्च्च॑ः। ज्योति॑ः। वर्च्च॑ः। स्वाहा॑। सूर्य्य॑ः। वर्च्च॑ः। ज्योति॑ः। वर्च्च॑ः। स्वाहा॑। ज्योति॑ः। सूर्य्य॑ः। सूर्य्य॑ः। ज्योति॑ः। स्वाहा॑॥९॥

पदार्थः-**(अग्निः)** परमेश्वरः **(ज्योतिः)** सर्वप्रकाशकः **(ज्योतिः)** प्रकाशमयः। शिल्पविद्यासाधनप्रकाशकः **(अग्निः)** भौतिकः। **अग्निरिति पदनामसु पठितम्।** (निघं०५.४) अनेनाग्नेर्गत्यर्थत्वेन ज्ञानस्वरूपत्वादीश्वरः प्राप्तिहेतुत्वाद् भौतिकोऽर्थो वा गृह्यते। **(स्वाहा)** सुष्ठु सत्यमाह यस्यां वाचि सा। **स्वाहेति वाङ्नामसु पठितम्।** (निघं०१.११) **(सूर्यः)** चराचरात्मा। यः सरति जानाति चराचरं जगत् स जगदीश्वरः। **सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।** (यजु० ७.४२) अनेन सर्वस्यान्तर्यामी परमेश्वरोऽर्थो गृह्यते **(ज्योतिः)** सर्वात्मप्रकाशको वेदद्वारा सकलविद्योपदेशकः **(ज्योतिः)** पृथिव्यादिमूर्तद्रव्यप्रकाशकः **(सूर्यः)** यः सुवति स्वप्रकाशेन प्रेरणाहेतुर्भवति स सूर्यलोकः। **सूर्य इति पदनामसु पठितम्।** (निघं०५.६) अनेन ज्ञापकेनेश्वरो व्यवहारसिद्धेः प्राप्तिहेतुत्वात् सूर्यलोको वा गृह्यते **(स्वाहा)** स्वा स्वकीया हृदयस्था वाग् यदाह तदेव सत्यं वाच्यं नानृतमित्यस्मिन्नर्थे **(अग्निः)** सर्वविद्योपदेष्टा **(वर्च्चः)** वर्चन्ते दीप्यन्तेऽनेन तद् वर्च्चो विद्याप्रापणम् **(ज्योतिः)** सकलपदार्थप्रकाशनम् **(वर्च्चः)** विद्याव्यवहारप्रापकम् **(स्वाहा)** मनुष्यैः स्वकीयान् पदार्थान् प्रति ममेति वाच्यं नान्यपदार्थान् प्रतीत्यस्मिन्नर्थे **(सूर्यः)** सकलविद्यादिव्यवहारप्रापकत्वेन वर्तमानः प्राणादिसमूहो वायुगुणः **(वर्च्चः)** प्रकाशकं विद्युत्सूर्यप्रसिद्धाग्न्याख्यं तेजः **(ज्योतिः)** सर्वव्यवहारप्रकाशकम् **(ज्योतिः)** सत्यप्रकाशकः **(सूर्यः)** सर्वव्यापक ईश्वरः। **(स्वाहा)** वेदवाणी यज्ञक्रियामाहेत्यस्मिन्नर्थे। स्वाहाशब्दार्थं निरुक्तकार एवं समाचष्टे। **स्वाहाकृतयः स्वाहेत्येतत् सु आहेति वा, स्वा वागाहेति वा, स्वं प्राहेति वा, स्वाहुतं हविर्जुहोतीति वा।** (निरु०८.२०)। अयं मन्त्रः (शत०२.३.१.१-३६)

व्याख्यात:॥९॥

अन्वय:-अग्निर्जगदीश्वर: स्वाहा ज्योति: सर्वस्मै ददाति। एवं भौतिकोऽग्नि: सर्वप्रकाशकं ज्योतिर्ददाति। सूर्यश्चराचरात्मा स्वाहा ज्योति: सर्वात्मसु ज्ञानं ददाति। अयं सूर्यलोको ज्योतिर्दानं मूर्तद्रव्यप्रकाशनं च करोति। सर्वविद्याप्रकाशकोऽग्निर्जगदीश्वरो मनुष्यार्थं सर्वविद्याधिकरणं वर्च्चो वेदचतुष्टयं प्रादुर्भावयति। एवं ज्योतिर्विद्युदाख्योऽयमग्नि: शरीरब्रह्माण्डस्थो वर्च्चो विद्यावृष्टिहेतुर्भवति। सूर्य: सकलविद्याप्रकाशको जगदीश्वर: सर्वमनुष्यार्थं स्वाहा ज्योतिर्वर्च्च: प्रकाशकं विद्युत्सूर्यप्रसिद्धाग्न्याख्यं तेज: करोति। एवं ज्योति: सूर्यलोकोऽपि वर्च्च: शरीरात्मबलं प्रकाशयति। सूर्य: प्राणो ज्योति: सकलविद्याप्रकाशकं ज्ञानं कारयति। तथाऽयं ज्योतिर्मय: सूर्यो जगदीश्वर: स्वाहा। ज्योति: स्वाहुतं हवि: स्वसृष्टपदार्थेषु स्वशक्त्या सर्वत्र प्रसारयति॥९॥

भावार्थ:-स्वाहाशब्दार्थो निरुक्तकाररीत्यात्र गृहीत:। ईश्वरेणाऽग्निना कारणेनाग्न्यादिकं जगत् प्रकाश्यते। तत्राग्नि: स्वप्रकाशेन स्वं स्वेतरं विश्वं च प्रकाशयति। परमेश्वरो वेदद्वारा सर्वा विद्या: प्रकाशयत्येवमग्निसूर्यावपि शिल्पादिविद्या: प्रकाशयत इति॥९॥

पदार्थ:-**(अग्नि:)** परमेश्वर **(स्वाहा)** सत्य कथन करने वाली वाणी को **(ज्योति:)** जो विज्ञान प्रकाश से युक्त करके सब मनुष्यों के लिये विद्या को देता है, इसी प्रकार **(अग्नि:)** जो प्रसिद्ध अग्नि **(ज्योति:)** शिल्पविद्या साधनों के प्रकाश को देता है **(सूर्य:)** जो चराचर सब जगत् का आत्मा परमेश्वर **(ज्योति:)** सब के आत्माओं में प्रकाश वा ज्ञान तथा सब विद्याओं का उपदेश करता है कि **(स्वाहा)** मनुष्य जैसा अपने हृदय से जानता हो, वैसे ही बोले तथा जो **(सूर्य:)** अपने प्रकाश से प्रेरणा का हेतु सूर्यलोक **(ज्योति:)** मूर्तिमान् द्रव्यों का प्रकाश करता है **(अग्नि:)** जो सब विद्याओं का प्रकाश करने वाला परमेश्वर मनुष्यों के लिये **(वर्च्च:)** सब विद्याओं के अधिकरण चारों वेदों को प्रकट करता है। तथा जो **(ज्योति:)** बिजुलीरूप से शरीर वा ब्रह्माण्ड में रहने वाला अग्नि **(वर्च्च:)** विद्या और वृष्टि का हेतु है **(सूर्य:)** जो सब विद्याओं का प्रकाश करने वाला जगदीश्वर सब मनुष्यों के लिये **(स्वाहा)** वेदवाणी से **(वर्च्च:)** सकल विद्याओं का प्रकाश और **(ज्योति:)** बिजुली, सूर्य प्रसिद्ध और अग्नि नाम के तेज का प्रकाश करता है तथा जो **(सूर्य:)** सूर्यलोक भी **(वर्च्च:)** शरीर और आत्माओं के बल का प्रकाश करता है तथा जो **(सूर्य:)** प्राणवायु **(वर्च्च:)** सकल विद्या के प्रकाश करने वाले ज्ञान को बढ़ाता है और **(ज्योति:)** प्रकाशस्वरूप जगदीश्वर अच्छे प्रकार से हवन किये हुए पदार्थों को अपने रचे हुए पदार्थों में अपनी शक्ति से सर्वत्र फैलाता है, वही परमात्मा सब मनुष्यों का उपास्य देव और भौतिक अग्नि कार्य्यसिद्धि का साधन है॥९॥

भावार्थ:-स्वाहा शब्द का अर्थ निरुक्तकार की रीति से इस मन्त्र में ग्रहण किया है। अग्नि अर्थात् ईश्वर ने सामर्थ्य करके कारण से अग्नि आदि सब जगत् को उत्पन्न करके प्रकाशित किया है, उनमें से अग्नि अपने प्रकाश से आप वा और सब पदार्थों का प्रकाश करता है तथा परमेश्वर वेद के द्वारा सब विद्याओं का प्रकाश करता है। इसी प्रकार अग्नि और सूर्य भी शिल्पविद्या का प्रकाश करते हैं॥९॥

सजूरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषि:। पूर्वार्द्धस्याग्निरुत्तरार्द्धस्य सूर्यश्च देवते। पूर्वार्द्धस्य गायत्र्युत्तरार्द्धस्य भुरिग्गायत्री च छन्द:। षड्ज: स्वर:॥

भौतिकावग्निसूर्यौ कस्य सत्तया वर्तेत इत्युपदिश्यते॥

भौतिक अग्नि और सूर्य ये दोनों किस की सत्ता से वर्त्तमान हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

सजूर्देवेन सवित्रा सजू रात्र्येन्द्रवत्या। जुषाणोऽअग्निर्वेतु स्वाहा।
सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या। जुषाणः सूर्यो वेतु स्वाहा॥ १०॥

सजूरिति सऽजूः। देवेन। सवित्रा। सजूरिति सऽजूः। रात्र्या। इन्द्रवत्येतीन्द्रऽवत्या। जुषाणः। अग्निः। वेतु। स्वाहा। सजूरिति सऽजूः। देवेन। सवित्रा। सजूरिति सऽजूः। उषसा। इन्द्रवत्येतीन्द्रऽवत्या। जुषाणः। सूर्यः। वेतु। स्वाहा॥ १०॥

पदार्थः-(**सजूः**) यः समानं जुषते सेवते सः (**देवेन**) सर्वजगद्द्योतकेन (**सवित्रा**) सर्वस्य जगत उत्पादकेनेश्वरेणोत्पादितया (**सजूः**) यः समानं जुषते प्रीणाति सः (**रात्र्या**) तमोरूपया (**इन्द्रवत्या**) इन्द्रो बह्वी विद्युद् विद्यते यस्यां तया। अत्र भूम्न्यर्थे मतुप्। **स्तनयित्नुरेवेन्द्रः।** (शत०१४.६.९.७) (**जुषाणः**) यो जुषते सेवते सः (**अग्निः**) भौतिकः (**वेतु**) व्याप्नोति। अत्र लडर्थे लोट् (**स्वाहा**) ईश्वरस्य स्वा वागाहेत्यस्मिन्नर्थे (**सजूः**) उक्तार्थः (**देवेन**) सूर्यादिप्रकाशकेन (**सवित्रा**) सर्वान्तर्यामिना जगदीश्वरेणोत्पादितया (**सजूः**) उक्तार्थः (**उषसा**) रात्र्यवसानोत्पन्नया दिवसहेतुना (**इन्द्रवत्या**) सूर्यप्रकाशसहितयोषसा (**जुषाणः**) सेवमानः सूर्यलोकः (**वेतु**) प्राप्नोति। अत्रापि लडर्थे लोट्। (**स्वाहा**) हुतामाहुतिम्। अयं मन्त्रः (शत०२.३.१.३७-३९) व्याख्यातः॥१०॥

अन्वयः-अयमग्निर्देवेन सवित्रा जगदीश्वरेणोत्पादितया सृष्ट्या सह सजूर्जुषाण इन्द्रवत्या रात्र्या सह स्वाहा जुषाणः सन् वेतु सर्वान् पदार्थान् व्याप्नोति। एवं सूर्य्यो देवेन सवित्रा सकलजगदुत्पादकेन धारितया सृष्ट्या सह सजूर्जुषाण इन्द्रवत्योषसा सह स्वाहा जुषाणः सन् हुतं द्रव्यं वेतु व्याप्नोति॥१०॥

भावार्थः-हे मनुष्या! यूयं योऽयमग्निरीश्वरेण निर्मितः स तत्सत्तया स्वस्वरूपं धारयन् सन् रात्रिस्थान् व्यवहारान् प्रकाशयति। एवं च सूर्य उषःकालमेत्य सर्वाणि मूर्त्तद्रव्याणि प्रकाशयितुं शक्नोतीति विजानीत॥१०॥

पदार्थः-(**अग्निः**) जो भौतिक अग्नि (**देवेन**) सब जगत् को ज्ञान देने वा (**सवित्रा**) सब जगत् को उत्पन्न करने वाले ईश्वर के उत्पन्न किये हुए जगत् के साथ (**सजूः**) तुल्य वर्तमान (**जुषाणः**) सेवन करता हुआ (**इन्द्रवत्या**) बहुत बिजुली से युक्त (**रात्र्या**) अन्धकार रूप रात्रि के साथ (**स्वाहा**) वाणी को सेवन करता हुआ (**वेतु**) सब पदार्थों में व्याप्त होता है, इसी प्रकार (**सूर्यः**) जो सूर्यलोक (**देवेन**) सब को प्रकाश करने वाले वा (**सवित्रा**) सब के अन्तर्यामी परमेश्वर के उत्पन्न वा धारण किये हुए जगत् के साथ (**सजूः**) तुल्य वर्तमान (**जुषाणः**) सेवन करता वा (**इन्द्रवत्या**) सूर्यप्रकाश से युक्त (**उषसा**) दिन के प्रकाश के हेतु प्रातःकाल के साथ (**स्वाहा**) अग्नि में होम की हुई आहुतियों को (**जुषाणः**) सेवन करता हुआ व्याप्त होकर हवन किये हुए पदार्थों को (**वेतु**) देशान्तरों में पहुँचाता है, उसी से सब व्यवहार सिद्ध करें॥१०॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! तुम लोग जो भौतिक अग्नि ईश्वर ने रचा है, वह इसी की सत्ता से अपने रूप को धारण करता हुआ दीपक आदि रूप से रात्रि के व्यवहारों को सिद्ध करता है। इसी प्रकार जो (सूर्य) प्रातःकाल को प्राप्त होकर सब मूर्तिमान् द्रव्यों के प्रकाश करने को समर्थ है, वही काम सिद्धि करने हारा है, इसको जानो॥१०॥

उपेत्यस्य गोतम ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अथेश्वरेण स्वस्वरूपमुपदिश्यते॥

अब अगले मन्त्र में ईश्वर ने अपने स्वरूप का प्रकाश किया है॥

उ॒प॒प्र॒यन्तो॑ऽअध्व॒रं मन्त्रं॑ वोचेमा॒ग्नये॑। आ॒रेऽअ॒स्मे च॑ शृण्व॒ते॥ ११॥

उ॒प॒प्र॒यन्त॒ इत्यु॑पऽप्र॒यन्तः॑। अ॒ध्व॒रम्। मन्त्र॑म्। वो॒चे॒म॒। अ॒ग्नये॑। आ॒रे। अ॒स्मेऽइत्य॒स्मे। च॒ शृ॒ण्व॒ते॥ ११॥

पदार्थः-(उपप्रयन्तः) उत्कृष्टं निष्पादयन्तो जानन्तः **(अध्वरम्)** क्रियामयं यज्ञम् **(मन्त्रम्)** वेदस्थं विज्ञानहेतुम् **(वोचेम)** उच्याम। अयमाशिषि लिङ्युत्तमबहुवचने प्रयोगः। **लिङ्याशिष्यङ्** [अष्टा०३.१.८६] इत्यङि कृते **छन्दस्युभयथा** [अष्टा०३.४.११७] इति सार्वधातुकमाश्रित्येय्सकारलोपौ। **वच उम्** [अष्टा०७.४.२०] इत्यङि पर उमागमश्च। **(अग्नये)** विज्ञानस्वरूपायान्तर्यामिने जगदीश्वराय **(आरे)** दूरे। **आर इति दूरनामसु पठितम्।** (निघं०३.२६) **(अस्मे)** अस्माकम्। अत्र **सुपां सुलुग्** [अष्टा०७.१.३९] इत्यामः स्थाने शे आदेशः। **(च)** समुच्चये **(शृण्वते)** यो यथार्थतया शृणोति तस्मै। अयं मन्त्रः (शत०२.३.४.९-१०) व्याख्यातः॥ ११॥

अन्वयः-अध्वरमुपप्रयन्तो वयमस्मे अस्माकमारे दूरे चात् समीपे शृण्वतेऽग्नये जगदीश्वराय मन्त्रं वोचेमोच्याम॥ ११॥

भावार्थः-मनुष्यैर्वेदमन्त्रैरीश्वरस्य स्तुतियज्ञानुष्ठाने कृत्वा य ईश्वरोऽन्तर्बहिश्चाभिव्याप्य सर्वं शृण्वन् वर्तते, तस्माद् भीत्वा न कदाचिदधर्मं कर्त्तुमिच्छापि कार्या। यदा मनुष्य एतं जानाति तदा समीपस्थो यदैनं न जानाति, तदा दूरस्थ इति वेद्यम्॥ ११॥

पदार्थः-(अध्वरम्) क्रियामय यज्ञ को **(उपप्रयन्तः)** अच्छे प्रकार जानते हुए हम लोग **(अस्मे)** जो हम लोगों के **(आरे)** दूर वा **(च)** निकट में **(शृण्वते)** यथार्थ सत्यासत्य को सुनने वाले **(अग्नये)** विज्ञानस्वरूप अन्तर्यामी जगदीश्वर है, इसी के लिये **(मन्त्रम्)** ज्ञान को प्राप्त कराने वाले मन्त्रों को **(वोचेम)** नित्य उच्चारण वा विचार करें॥ ११॥

भावार्थः-मनुष्यों को वेदमन्त्रों के साथ ईश्वर की स्तुति वा यज्ञ के अनुष्ठान को करके जो ईश्वर भीतर-बाहर सब जगह व्याप्त होकर सब व्यवहारों को सुनता वा जानता हुआ वर्त्तमान है, इस कारण उससे भय मानकर अधर्म करने की इच्छा भी न करनी चाहिये। जब मनुष्य परमात्मा को जानता है, तब समीपस्थ और जब नहीं जानता तब दूरस्थ है, ऐसा निश्चय जानना चाहिये॥ ११॥

अग्निर्मूर्द्धेत्यस्य विरूप ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अथाग्निशब्देनेश्वरभौतिकावुपदिश्येते॥

अब अगले मन्त्र में अग्नि शब्द से ईश्वर और भौतिक अग्नि का प्रकाश किया है॥

अ॒ग्निर्मू॒र्द्धा दि॒वः क॒कुत्पतिः॑ पृथि॒व्याऽअ॒यम्। अ॒पाᳬं रेता॑ᳬंसि जिन्वति॥ १२॥

अ॒ग्निः। मू॒र्द्धा। दि॒वः। क॒कुत्। पतिः॑। पृ॒थि॒व्याः। अ॒यम्। अ॒पाम्। रेता॑ᳬंसि। जि॒न्व॒ति॒॥ १२॥

पदार्थः-(अग्निः) सर्वस्वामीश्वरः। प्रकाशादिगुणवान् भौतिको वा **(मूर्द्धा)** सर्वोपरि विराजमानः **(दिवः)**

प्रकाशवतः सूर्यादेर्जगतः **(ककुत्)** महान्। **ककुह इति महन्नामसु पठितम्।** (निघं०३.३) ककुहशब्दस्य स्थाने ककुत्। पृषोदराद्याकृतिगणान्तर्गतत्वात् सिद्धः **(पतिः)** पालयिता, पालनहेतुर्वा **(पृथिव्याः)** प्रकाशरहितस्य पृथिव्यादेर्जगतः **(अयम्)** निरूपितपूर्वः **(अपाम्)** प्राणानां जलानां वा। **आप इति पदनामसु पठितम्।** (निघं०५.३) अनेन चेष्टादिव्यवहारप्रापकाः प्राणा गृह्यन्ते। **आप इत्युदकनामसु पठितम्।** (निघं०१.१२) **(रेतांसि)** वीर्याणि **(जिन्वति)** रचयितुं जानाति, प्रापयति वा। **जिन्वतीति गतिकर्मसु पठितम्।** (निरु०२.१४)। अयं मन्त्रः (शत०२.३.४.११) व्याख्यातः॥१२॥

अन्वयः-हे मनुष्या! यूयं योऽयं ककुन्मूर्द्धाग्निर्जगदीश्वरो दिवः पृथिव्याश्च पतिः पालकः सन्नपां रेतांसि जिन्वति स्त्रष्टुं जानाति, तमेव पूज्यं मन्यध्वमित्येकः॥ योऽयमग्निः ककुद्दिवो मूर्द्धा पृथिव्याश्च पतिः पालनहेतुः सन्नपां रेतांसि जिन्वति, स सुखं प्रापयतीति द्वितीयः॥१२॥

भावार्थः-अत्र श्लेषालङ्कारः। यो जगदीश्वरः प्रकाशाप्रकाशवद्द्विविधं जगदर्थात् प्रकाशवत् सूर्यादिकम-प्रकाशवत् पृथिव्यादिकं च रचयित्वा पालयित्वा प्राणेषु बलं च दधाति, तथा योऽयमग्निः पृथिव्यादिजगतः पालनहेतुर्भूत्वा विद्युज्जाठरादिरूपः प्राणानां जलानां वीर्याणि जनयति, स एव सुखसाधको भवतीति॥१२॥

पदार्थः-**(अयम्)** जो यह कार्य कारण से प्रत्यक्ष **(ककुत्)** सब से बड़ा **(मूर्द्धा)** सब के ऊपर विराजमान **(अग्निः)** जगदीश्वर **(दिवः)** प्रकाशमान सूर्य आदि लोक और **(पृथिव्याः)** प्रकाशरहित पृथिवी आदि लोकों का **(पतिः)** पालन करता हुआ **(अपाम्)** प्राणों के **(रेतांसि)** वीर्यों की **(जिन्वति)** रचना को जानता है, उसी को पूज्य मानो॥१॥१२॥

(अयम्) यह अग्नि **(ककुत्)** सब पदार्थों से बड़ा **(दिवः)** प्रकाशमान पदार्थों के **(मूर्द्धा)** ऊपर विराजमान **(पृथिव्याः)** प्रकाश रहित पृथिवी आदि लोकों के **(पतिः)** पालन का हेतु होकर **(अपाम्)** जलों के **(रेतांसि)** वीर्यों को **(जिन्वति)** प्राप्त करता है॥२॥१२॥

भावार्थः-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जो जगदीश्वर प्रकाश वा अप्रकाशरूप दो प्रकार का जगत् अर्थात् प्रकाशवान् सूर्य आदि और प्रकाशरहित पृथिवी आदि लोकों को रच कर पालन करके प्राणों में बल को धारण करता है तथा जो भौतिक अग्नि पृथिवी आदि जगत् के पालन का हेतु होकर बिजुली जाठर आदि रूप से प्राण वा जलों के वीर्यों को उत्पन्न करता है॥१२॥

उभा वामिन्द्राग्नी इत्यस्य भरद्वाज ऋषिः। इन्द्राग्नी देवते। स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथेश्वरभौतिकावग्निवायू उपदिश्येते॥

अगले मन्त्र में भौतिक अग्नि और वायु का उपदेश किया है॥

उ॒भा वा॑मिन्द्राग्नीऽआहु॒वध्या॑ऽउ॒भा राध॑सः स॒ह मा॑द॒यध्यै॑।

उ॒भा दा॒तारा॑वि॒षाᳬं र॑यी॒णामु॒भा वाज॑स्य सा॒तये॑ हुवे वाम्॥ १३॥

उ॒भा। वा॒म्। इ॒न्द्रा॒ग्नी॒ऽइतीन्द्रा॑ग्नी। आ॒हु॒वध्या॒ऽइत्या॑हु॒वध्यै॑। उ॒भा। राध॑सः। स॒ह। मा॒द॒यध्यै॑। उ॒भा। दा॒तारौ॑। इ॒षाम्। र॒यी॒णाम्। उ॒भा। वाज॑स्य। सा॒तये॑। हु॒वे। वा॒म्॥ १३॥

पदार्थः-**(उभा)** द्वौ। अत्र सर्वत्र **सुपां सुलुग्** [अष्टा०७.१.३९] इत्याकारादेशः। **(वाम्)** तौ। अत्र व्यत्ययः

(इन्द्राग्नी) इन्द्रो वायुर्विद्युदादिरूपोऽग्निश्च तौ **(आहुवध्यै)** शब्दयितुमुपदेष्टुं श्रोतुं वा। अत्र ह्वेञित्यस्मात् **तुमर्थे सेसे०** [अष्टा०३.४.९] इति कध्यै प्रत्ययः। **(उभा)** उभौ **(राधसः)** राध्नुवन्ति सम्यङ् निर्वर्तयन्ति सुखानि येभ्यः साधनेभ्यस्तानि धनानि। **राध इति धननामसु पठितम्।** (निघं०२.१०) **(सह)** परस्परम् **(मादयध्यै)** मोदयितुम्। अत्र मदी हर्षग्लेपनयोरिति णिजन्ताच्छध्यै प्रत्ययः। **(उभा)** उभौ **(दातारौ)** सुखदानहेतू **(इषाम्)** सर्वैर्जनैर्यानीष्यन्ते तेषाम् **(रयीणाम्)** परमोत्तमानां चक्रवर्तिराज्यादिधनानाम् **(उभा)** द्वौ **(वाजस्य)** अत्युत्तमस्यान्नस्य। **वाज इत्यन्ननामसु पठितम्।** (निघं०२.७) **(सातये)** संभोगाय **(हुवे)** गृह्णामि। अत्र हु दानादनयोरित्यस्माद् **बहुलं छन्दसि** [अष्टा०२.४.७५] इति शपो लुक्, व्यत्ययेनात्मनेपदं च। **(वाम्)** तौ। अत्रापि पूर्ववद् व्यत्ययः। अयं मन्त्रः (शत०२.३.४.१२) व्याख्यातः॥१३॥

अन्वयः-अहं यावुभौ दातारौ सुखदानहेतू वर्तेते, ताविन्द्राग्नी आहुवध्यै शब्दयितुं हुवे गृह्णामि राधसो भोगेन सह मादयध्यै मोदयितुमुभौ वां तौ हुव इषां रयीणां वाजस्य च सातय उभौ वां तौ हुवे गृह्णामि॥१३॥

भावार्थः-अत्र श्लेषालङ्कारः। ये मनुष्या ईश्वरसृष्टौ सुष्ठु किलाग्निवायुगुणान् विदित्वैतौ संप्रयुज्य कार्याणि साधयन्ति, ते सर्वाणि सार्वभौमराज्यादिधनानि प्राप्य नित्यं मोदन्ते नेतर इति॥१३॥

पदार्थः-मैं जो **(उभा)** दो **(दातारौ)** सुख देने के हेतु **(इन्द्राग्नी)** वायु और अग्नि हैं **(वाम्)** उनको **(आहुवध्यै)** गुण जानने के लिये **(हुवे)** ग्रहण करता हूँ **(राधसः)** उत्तम सुखयुक्त राज्यादि धनों के भोग के **(सह)** साथ **(मादयध्यै)** आनन्द के लिये **(वाम्)** उन **(उभा)** दोनों को **(हुवे)** ग्रहण करता हूँ तथा **(इषाम्)** सब को इष्ट **(रयीणाम्)** अत्यन्त उत्तम चक्रवर्ति राज्य आदि धन वा **(वाजस्य)** अत्यन्त उत्तम अन्न के **(सातये)** अच्छे प्रकार भोग करने के लिये **(उभा)** उन दोनों को **(हुवे)** ग्रहण करता हूँ॥१३॥

भावार्थः-(इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है।) जो मनुष्य ईश्वर की सृष्टि में अग्नि और वायु के गुणों को जान कर कार्यों में संप्रयुक्त करके अपने-अपने कार्यों को सिद्ध करते हैं, वे सब भूगोल के राज्य आदि धनों को प्राप्त होकर आनन्द करते हैं, इन से भिन्न मनुष्य नहीं॥१३॥

अयं त इत्यस्य देववातभरतावृषी। अग्निर्देवता। स्वराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनरीश्वरभौतिकावुपदिश्येते॥

फिर भी अगले मन्त्र में ईश्वर और भौतिक अग्नि का उपदेश किया है॥

अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातोऽअरोचथाः।

तं जानन्नग्नऽआरोहाथा नो वर्द्धया रयिम्॥१४॥

अयम्। ते। योनिः। ऋत्वियः। यतः। जातः। अरोचथाः। तम्। जानन्। अग्ने। आ। रोह। अथ। नः। वर्द्धय। रयिम्॥१४॥

पदार्थः-(अयम्) वायुः **(ते)** तवेश्वरस्य **(योनिः)** निमित्तकारणम् **(ऋत्वियः)** ऋतुः प्राप्तोऽस्य सः, अत्र **छन्दसि घस्।** (अष्टा०५.१.१०६) अनेन ऋतुशब्दाद् घस् प्रत्ययः। **(यतः)** यस्मात् **(जातः)** प्रादुर्भूतः **(अरोचथाः)** दीपयति। अत्र व्यत्ययो लडर्थे लुङ् **(तम्)** अग्निम् **(जानन्)** **(अग्ने)** जगदीश्वरो विद्युद्वा **(आ)** समन्तात् क्रियायोगे **(रोह)** उन्नतिं गमय गमयति वा **(अथ)** आनन्तर्ये। अत्र **निपातस्य च** [अष्टा०६.३.१३६] इति दीर्घः। **(नः)**

अस्माकम् **(वर्द्धय)** सर्वोत्कृष्टतां संपादय संपादयति वा। अत्र **अन्येषामपि दृश्यते** [अष्टा०६.३.१३७] इति दीर्घः। **(रयिम्)** पूर्वोक्तं धनम्। अयं मन्त्रः (शत०२.३.४.१३) व्याख्यातः॥१४॥

अन्वयः-हे अग्ने जगदीश्वर! ते तव सृष्टौ य ऋत्वियोग्निर्वायोः सकाशाज्जातः सन्नरोचथाः समन्तात् प्रदीपयति। यः सूर्यादिरूपेण दिवमारोह समन्ताद् रोहति, यो नोस्माकं रयिं वर्द्धयति, यस्याग्नेरयं वायुर्योनिरस्ति, तं जानंस्त्वं तेन नोऽस्माकं रयिं सार्वभौमराज्यादिसिद्धिं धनं वर्द्धय॥१४॥

भावार्थः-मनुष्यैर्यः सर्वेषु कालेषु यथावद् योजनीयोऽस्ति, यो वायुनिमित्तेनोत्पद्यते, यो वानेककार्यसिद्धिकरत्वेन सर्वान् सुखयति, तं यथावद् विदित्वा संप्रयुज्य कार्याणि साधनीयानीति॥१४॥

पदार्थः-हे **(अग्ने)** जगदीश्वर! **(ते)** आपकी सृष्टि में जो **(ऋत्वियः)** ऋतु-ऋतु में प्राप्ति कराने योग्य अग्नि और जो वायु से **(जातः)** प्रसिद्ध हुआ **(अरोचथाः)** सब प्रकार प्रकाश करता है वा जो सूर्य आदि रूप से प्रकाश वाले लोकों की **(आरोह)** उन्नति को सब ओर से बढ़ाता है और जो **(नः)** हमारे **(रयिम्)** राज्य आदि धन को बढ़ाता है **(तम्)** उस अग्नि को **(जानन्)** जानते हुए आप उससे **(नः)** हमारे **(रयिम्)** सब भूगोल के राज्य आदि से सिद्ध हुए धन को **(वर्द्धय)** वृद्धियुक्त कीजिये॥१४॥

भावार्थः-मनुष्यों को जो सब काल में यथावत् उपयोग करने योग्य वा जो वायु के निमित्त से उत्पन्न हुआ तथा जो अनेक कार्य्यों की सिद्धिरूप कारण से सब को सुख देता है, उस अग्नि को यथावत् जानकर उसका उपयोग करके सब कार्य्यों की सिद्धि करनी चाहिये॥१४॥

अयमिहेत्यस्य वामदेव ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनः सोऽग्निः कीदृशः इत्युपदिश्यते॥

फिर वह अग्नि कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अ॒यमि॒ह प्र॑थ॒मो धा॑यि धा॒तृभि॒र्होता॒ यजि॑ष्ठोऽअध्व॒रेष्वीड्य॑ः।

यमप्न॑वानो॒ भृग॑वो विरुरु॒चुर्वने॑षु चि॒त्रं वि॒भ्वं॒ वि॒शेवि॑शे॥ १५॥

अ॒यम्। इ॒ह। प्र॒थ॒मः। धा॒यि॒। धा॒तृभि॒रिति॑ धा॒तृऽभि॑ः। होता॑। यजि॑ष्ठः। अ॒ध्व॒रेषु॑। ईड्य॑ः। यम्। अप्न॑वानः। भृग॑वः। वि॒रु॒रु॒चुरिति॑ विऽरु॒रु॒चुः। वने॑षु। चि॒त्रम्। विभ्वमिति॑ वि॒ऽभ्वम्। वि॒शेवि॑श॒ इति॑ वि॒शेऽवि॑शे॥ १५॥

पदार्थः-**(अयम्)** ईश्वरो भौतिको वा **(इह)** अस्यां सृष्टौ **(प्रथमः)** यज्ञक्रियायामुपास्य आदिमं साधनं वा **(धायि)** ध्रियते। अत्र वर्त्तमाने लुङ्। **बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेऽपि** [अष्टा०६.४.७५] इत्यडभावः। **(धातृभिः)** यज्ञक्रियाधारकैर्विद्वद्भिः **(होता)** ग्राहकः **(यजिष्ठः)** अतिशयेनानन्दशिल्पविद्ययोः सङ्गतिहेतुः **(अध्वरेषु)** उपासनाग्निहोत्राद्यश्वमेधान्तेषु शिल्पविद्यान्तर्गतेषु वा यज्ञेषु **(ईड्यः)** उपासितुमध्येषितुं वार्हः **(यम्)** उक्तार्थम् **(अप्नवानः)** येऽप्नान् विद्यासन्तानान् कुर्वन्ति ते, अप्न इत्यस्मात् **तत्करोति तदाचष्टे** [अष्टा०वा०३.१.२६] अनेन करोत्यर्थे णिच्। ततो**ऽन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते** [अष्टा०३.२.७५] इति वनिप्। **अप्न इत्यपत्यनामसु पठितम्।** (निघं०२.२) **(भृगवः)** यज्ञविद्यावेत्तारः। **भृगव इति पदनामसु पठितम्।** (निघं०५.५) अनेन ज्ञानवत्त्वं गृह्यते **(विरुरुचुः)** विदीपयन्ति, अत्र लडर्थे लिट्। **(वनेषु)** संभजनीयेषु **(चित्रम्)** अद्भुतगुणम् **(विभ्वम्)** व्यापनशीलम्। अत्र **वा छन्दसि** [अष्टा०६.१.१०६] इत्यनेन पूर्वरूपादेशो न। **(विशेविशे)** प्रतिप्रजाम्। अयं मन्त्रः (शत०२.३.४.१४)

व्याख्यात:॥१५॥

अन्वय:-अप्नवानो भृगवो विद्वांस इह वनेष्वध्वरेषु विशे विशे विभ्वं चित्रं यमग्निं विरुरुचुर्विदीपयन्ति, सोऽयं धातृभि: प्रथम ईड्यो होता यजिष्ठोऽग्निरिह धायि ध्रियते॥१५॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषालङ्कार:। विद्वांसो यज्ञक्रियासिद्ध्यर्थमुपास्यसाधनत्वाभ्यामेतमग्निं स्तुत्वा गृहीत्वा वाऽस्यां सृष्टौ प्रजासुखानि निर्वर्तयेयुरिति॥१५॥

पदार्थ:-**(अप्नवान:)** विद्या सन्तान अर्थात विद्या पढ़ाकर विद्वान् कर देने वाले **(भृगव:)** यज्ञविद्या के जानने वाले विद्वान् लोग **(इह)** इस संसार में **(वनेषु)** अच्छे प्रकार सेवन करने योग्य **(अध्वरेषु)** उपासना अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेधपर्यन्त और शिल्पविद्यामय यज्ञों में **(विशेविशे)** प्रजा-प्रजा के प्रति **(विभ्वम्)** व्याप्त स्वभाव वा **(चित्रम्)** आश्चर्यगुणवाले **(यम्)** जिस ईश्वर और अग्नि को **(विरुरुचु:)** विशेष कर के प्रकाशित करते हैं **(अयम्)** वही **(धातृभि:)** यज्ञक्रिया के धारण करने वाले विद्वान् लोगों को **(ईड्य:)** खोज करने योग्य **(प्रथम:)** यज्ञक्रिया का आदि साधन **(होता)** यज्ञ का ग्रहण करने वाला **(यजिष्ठ:)** उपासना और शिल्पविद्या का हेतु है, उसका **(इह)** इस संसार में **(धायि)** धारण करते हैं॥१५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। विद्वान् लोग यज्ञ की सिद्धि के लिये मुख्य करके उपास्यदेव और साधन भौतिक अग्नि को ग्रहण करके इस संसार में प्रजा के सुखों को नित्य सिद्ध करें॥१५॥

अस्य प्रत्नामित्यस्याऽवत्सार ऋषि:। अग्निर्देवता। गायत्री छन्द:। षड्ज: स्वर:॥

पुन: स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अ॒स्य प्र॒त्नामनु॒ द्युत॑ꣳ शु॒क्रं दु॑दुह्रे॒ऽअह्र॑य:। पय॑: सहस्र॒सामृषि॑म्॥१६॥

अ॒स्य। प्र॒त्नाम्। अनु॑। द्युत॑म्। शु॒क्रम्। दु॒दु॒ह्रे॒। अह्र॑य:। पय॑:। स॒ह॒स्र॒सामिति॑ सहस्र॒ऽसाम्। ऋषि॑म्॥१६॥

पदार्थ:-**(अस्य)** अग्ने: **(प्रत्नाम्)** अनादिवर्त्तमानां पुराणीमनादिस्वरूपेण नित्याम्। **प्रत्नमिति पुराणनामसु पठितम्।** (निघं०३.२७) **(अनु)** पश्चादर्थे **(द्युतम्)** कारणस्थां दीप्तिम्। अत्र द्युत दीप्तावित्यस्मात् क्विप् प्रत्यय:। **(शुक्रम्)** शुद्धं कार्यकरं साधनम् **(दुदुह्रे)** प्रपूरयन्ति। अत्र वर्तमाने लिट्। **इरयो रे** [अष्टा०६.४.७६] अनेनेरेजित्यस्य स्थाने रे आदेश:। **(अह्रय:)** अह्नुवन्ति व्याप्नुवन्ति सर्वा विद्या ये ते विद्वांस:। अत्राऽह व्याप्तावित्यस्माद् बाहुलकेनौणादिक: कि: प्रत्यय:। महीधरेणायं ह्री लज्जायामित्यस्य प्रयोगोऽशुद्ध एव व्याख्यात इति। **(पय:)** जलम्। **पय इत्युदकनामसु पठितम्।** (निघं०१.१२) **(सहस्रसाम्)** या सहस्राण्यसंख्यातानि कार्याणि सनोति ताम् **(ऋषिम्)** कार्यसिद्धिप्राप्तिहेतुम्। अत्र **इगुपधात् कित्** [उणा०४.१२०] अनेन ऋषी गतावित्यस्माद्धातोरिन् प्रत्यय:। अयं मन्त्र: (शत०२.३.४.१५) व्याख्यात:॥१६॥

अन्वय:-अह्रयो विद्वांसोऽस्याग्ने: सहस्रसामृषिं प्रत्नां द्युतं ज्ञात्वा शुक्रं पयश्चानुदुदुह्रे प्रपूरयन्ति॥१६॥

भावार्थ:-मनुष्यैर्यथाग्नेस्स्वगुणसहितस्य कारणरूपेणानादित्वेन नित्यत्वं विज्ञेयमस्ति, तथैवान्येषामपि जगत्स्थानां कार्यद्रव्याणां कारणरूपेणानादित्वं वेदितव्यमम्, एतद्विदित्वैतानग्न्यादीन् पदार्थान् कार्येषूपकृत्य सर्वे व्यवहारा: संसाधनीया इति॥१६॥

पदार्थः-(**अह्नयः**) सब विद्याओं को व्याप्त कराने वाले विद्वान् लोग (**अस्य**) इस भौतिक अग्नि की (**सहस्रसाम्**) असंख्यात कार्यों को देने वा (**ऋषिम्**) कार्यसिद्धि के प्राप्ति का हेतु (**प्रत्नाम्**) प्राचीन अनादिस्वरूप से नित्य वर्त्तमान (**द्युतम्**) कारण में रहने वाली दीप्ति को जानकर (**शुक्रम्**) शुद्ध कार्यों को सिद्ध करने वाले (**पयः**) जल को (**अनु दुदुह्रे**) अच्छे प्रकार पूरण करते हैं अर्थात् अग्नि में हवनादि करके वृष्टि से संसार को पूरण करते हैं॥१६॥

भावार्थः-मनुष्यों को जैसे गुणसहित अग्नि का कारणरूप वा अनादिपन से नित्यपन जानना योग्य है, वैसे ही जगत् के अन्य पदार्थों का भी कारणरूप से अनादिपन जानना चाहिये। इनको जानकर कार्यों में उपयुक्त करके सब व्यवहारों की सिद्धि करनी चाहिये॥१६॥

तनूपा इत्यस्याऽवत्सार ऋषि। अग्निर्देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथैश्वरभौतिकौ किं कुरुत इत्युपदिश्यते॥

अब ईश्वर और भौतिक अग्नि क्या करते हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

तनूपाऽअग्नेऽसि तन्वं मे पाह्यायुर्दाऽअग्नेऽस्यायुर्मे देहि वर्चोदाऽअग्नेऽसि वर्चो मे देहि। अग्ने यन्मे तन्वाऽऊनं तन्मऽआपृण॥ १७॥

तनूपा इति तनूऽपाः। अग्ने। असि। तन्वम्। मे। पाहि। आयुर्दा इत्यायुःदाः। अग्ने। असि। आयुः। मे। देहि। वर्च्चोदा इति वर्च्चःऽदाः। अग्ने। असि। वर्च्चः। मे। देहि। अग्ने। यत्। मे। तन्वाः ऊनम्। तत्। मे। आ। पृण॥ १७॥

पदार्थः-(**तनूपाः**) यस्तनूः सर्वपदार्थदेहान् पाति रक्षति स जगदीश्वरः, पालनहेतुर्भौतिको वा। (**अग्ने**) सर्वाभिरक्षकेश्वर, रक्षाहेतुर्भौतिको वा। (**असि**) अस्ति वा। अत्र सर्वत्र पक्षे व्यत्ययः। (**तन्वम्**) शरीरम्। अत्र **वाच्छन्दसि** [अष्टा०६.१.१०६] इत्यमिपूर्व इत्यत्रानुवर्तनात् पूर्वरूपादेशो न भवति। (**मे**) मम (**पाहि**) पाति वा (**आयुर्दाः**) आयुःप्रदः (**असि**) भवति वा (**आयुः**) जीवनम् (**मे**) मह्यम् (**देहि**) ददाति वा (**वर्च्चोदाः**) यो वर्च्चो विज्ञानं ददातीति तत्प्राप्तिहेतुर्वा (**अग्ने**) सर्वविद्यामयेश्वर विद्याहेतुर्वा (**असि**) भवति वा (**वर्च्चः**) विद्याप्राप्तिं दीप्तिं वा (**मे**) मह्यम् (**देहि**) ददाति वा (**अग्ने**) कामानां प्रपूरकेश्वर, कामपूर्तिहेतुर्वा (**यत्**) यावद्यस्माद्वा (**मे**) मम (**तन्वाः**) अन्तःकरणाख्यस्य बाह्यस्य शरीरस्य वा (**ऊनम्**) अपर्याप्तम् (**तत्**) तावत् तस्माद्वा (**मे**) मम (**आ**) समन्तात् (**पृण**) पूरयति वा। अयं मन्त्रः (शत०२.३.४.१९-२०) व्याख्यातः॥१७॥

अन्वयः-हे अग्ने जगदीश्वर! यद्यस्मात् त्वं तनूपा असि, तत् तस्मान्मे मम तन्वं पाहि। हे अग्ने! यद्यस्मात् त्वमायुर्दा असि, तत् तस्मान्मे मह्यं पूर्णमायुर्देहि। हे अग्ने! यद्यस्मात् त्वं वर्च्चोदा असि, तत् तस्मान्मे मह्यं वर्चः पूर्णविद्यां देहि। हे अग्ने! मे मम तन्वा यद्यावदूनं बुद्धिबलशौर्यादिकमपर्याप्तमस्ति तत् तावदापृण समन्तात् प्रपूरयेत्येकः॥१७॥

अयमग्निर्यद्यस्मात् तनूपा अस्ति, तत् तस्मान्मे मम जाठररूपेण तन्वं पाति। यद्यस्मादयमग्निरायुर्दा आयुर्निमित्तमस्ति, तत् तस्मान्मे मह्यमायुर्ददाति। यद्यस्मादयमग्निर्वर्च्चोदा अस्ति, तत् तस्माद् वर्च्चो दीप्तिं ददाति। अयमग्निर्यद्यावन्मे मम तन्वा ऊनमपर्याप्तं तत् तावत् समन्तात् प्रपूरयतीति द्वितीयः॥१७॥

भावार्थः-अत्र श्लेषालङ्कारः। परमेश्वरेणास्मिञ्जगति यतः सर्वेभ्यः प्राणिभ्यः शरीरायुर्निमित्तविद्याप्रकाश-

सर्वाङ्गपूर्तिर्निर्मिता, तस्मात् सर्वे पदार्थाः स्वस्वरूपं धारयन्ति। तथैवास्य सृष्टौ प्रकाशादिगुणवत्त्वादयमग्निरेतेषां मुख्यः साधकोऽस्तीति सर्वैर्वेदितव्यम्॥१७॥

पदार्थः- हे **(अग्ने)** जगदीश्वर! **(यत्)** जिस कारण आप **(तनूपाः)** सब मूर्तिमान् पदार्थों के शरीरों की रक्षा करने वाले **(असि)** हैं इससे आप **(मे)** मेरे **(तन्वम्)** शरीर की **(पाहि)** रक्षा कीजिये। हे **(अग्ने)** परमेश्वर! आप **(आयुर्दाः)** सब को आयु के देने वाले **(असि)** हैं, वैसे **(मे)** मेरे लिये **(आयुः)** पूर्ण आयु अर्थात् सौ वर्ष तक जीवन **(देहि)** दीजिये। हे **(अग्ने)** सर्वविद्यामय ईश्वर! जैसे आप **(वर्च्चोदाः)** सब मनुष्यों को विज्ञान देने वाले **(असि)** हैं, वैसे **(मे)** मेरे लिये भी ठीक-ठीक गुण ज्ञानपूर्वक **(वर्च्चः)** पूर्ण विद्या को **(देहि)** दीजिये। हे **(अग्ने)** सब कामों को पूरण करने वाले परमेश्वर! **(मे)** मेरे **(तन्वाः)** शरीर में **(यत्)** जितना **(ऊनम्)** बुद्धि बल और शौर्य आदि गुण कर्म हैं **(तत्)** उतना अङ्ग **(मे)** मेरा **(आपृण)** अच्छे प्रकार पूरण कीजिये॥१॥१७॥

(अग्ने) यह भौतिक अग्नि **(यत्)** जैसे **(तनूपाः)** पदार्थों की रक्षा का हेतु **(असि)** है, वैसे जाठराग्नि रूप से **(मे)** मेरे **(तन्वम्)** शरीर की **(पाहि)** रक्षा करता है **(अग्ने)** जैसे ज्ञान का निमित्त यह अग्नि **(आयुर्दाः)** सब के जीवन का हेतु **(असि)** है वैसे **(मे)** मेरे लिये भी **(आयुः)** जीवन के हेतु क्षुधा आदि गुणों को **(देहि)** देता है। **(अग्ने)** यह अग्नि जैसे **(वर्च्चोदाः)** विज्ञानप्राप्ति का हेतु **(असि)** है, वैसे **(मे)** मेरे लिये भी **(वर्च्चः)** विद्याप्राप्ति के निमित्त बुद्धिबलादि को **(देहि)** देता है तथा **(अग्ने)** जो कामना के पूरण करने में हेतु भौतिक अग्नि है, वह **(यत्)** जितना **(मे)** मेरे **(तन्वाः)** शरीर में बुद्धि आदि सामर्थ्य **(ऊनम्)** कम है **(तत्)** उतना गुण **(आपृण)** पूरण करता है॥२॥१७॥

भावार्थः-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जिस कारण परमेश्वर ने इस संसार में सब प्राणियों के लिये शरीर के आयुनिमित्त विद्या का प्रकाश और सब अङ्गों की पूर्णता रची है, इसी से सब पदार्थ अपने-अपने स्वरूप को धारण करते हैं। इसी प्रकार परमेश्वर की सृष्टि में प्रकाश आदि गुणवान् होने से यह अग्नि भी सब पदार्थों के पालन का मुख्य साधन है॥१७॥

इन्धानास्त्वेत्यस्याऽवत्सार ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद्ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तावेवोपदिश्येते॥

फिर भी अगले मन्त्र में परमेश्वर और भौतिक अग्नि का प्रकाश किया है॥

इन्धानास्त्वा शतꣳ हिमा द्युमन्तꣳ समिधीमहि। वयस्वन्तो वयस्कृतꣳ सहस्वन्तः सहस्कृतम्। अग्ने सपत्नदम्भनमदब्धासोऽअदाभ्यम्। चित्रावसो स्वस्ति ते पारमशीय॥१८॥

इन्धानाः। त्वा। शतम्। हिमाः। द्युमन्तमिति द्युऽमन्तम्। सम्। इधीमहि। वयस्वन्तः। वयस्कृतम्। वयस्कृतमिति वयःऽकृतम्। सहस्वन्तः। सहस्कृतम्। सहस्कृतमिति सहःऽकृतम्। अग्ने। सपत्नदम्भनमिति सपत्नऽदम्भनम्। अदब्धासः। अदाभ्यम्। चित्रावसो। चित्रवसोऽइति चित्रऽवसो। स्वस्ति। ते। पारम्। अशीय॥१८॥

पदार्थः-**(इन्धानाः)** प्रकाशयन्तः **(त्वा)** त्वामनन्तगुणं जगदीश्वरं प्रकाशादिगुणवन्तं भौतिकं वा **(शतम्)** शतसंख्याकान् संवत्सरानधिकं वा **(हिमाः)** हेमन्तर्तुयुक्तानि वर्षाणि। **शतं हिमाः शतं वर्षाणि जीव्यास्म** शत०२.३.४.२१। **(द्युमन्तम्)** द्यौरनन्तः प्रकाशो विद्यते यस्मिन् परमेश्वरे वा प्रशस्तः प्रकाशो विद्यते यस्मिन् भौतिके

तम्, अत्र भूम्न्यर्थे प्रशंसार्थे च मतुप्। **(सम्)** सम्यगर्थे **(इधीमहि)** जीवेम वा **(वयस्वन्तः)** प्रशस्तं पूर्णमायुर्विद्यते येषां ते, अत्र प्रशंसार्थे मतुप्। **(वयस्कृतम्)** यो वयः करोति तम् **(सहस्वन्तः)** सहनं सहो विद्यते येषां ते, अत्र भूम्न्यर्थे मतुप्। **(सहस्कृतम्)** यः सहः सहनं करोति कारयति वा तम् **(अग्ने)** विज्ञात ईश्वर, कार्यप्रापकोऽग्निर्वा। **(सपत्नदम्भनम्)** यः सपत्नान् दम्भयतीति तम् **(अदब्धासः)** दम्भाहंकाररहिताः, अनुपहिंसिताः। **हिनस्ति दभ्नोतीति वधकर्मसु पठितम्।** (निघं०२.१९) अत्र **आज्जसेरसुग्** [अष्टा०७.१.५०] इत्यसुगागमः। **(अदाभ्यम्)** अहिंसनीयम् **(चित्रावसो)** चित्रमद्भुतं वसु धनं विद्यते यस्मिंस्तत्संबुद्धावीश्वर, चित्राणि वसूनि धनानि यस्माद्वा स भौतिकः, अत्र **अन्येषामपि०** [अष्टा०६.३.१३७] इति दीर्घः। **(स्वस्ति)** प्राप्तव्यं सुखम्। **स्वस्तीति पदनामसु पठितम्।** (निघं०५.५) अनेन प्राप्तव्यं सुखं गृह्यते **(ते)** तव तस्य वा **(पारम्)** सर्वदुःखेभ्यः पृथग्भूतम् **(अशीय)** प्राप्नुयाम्॥१८॥

अन्वयः-हे चित्रावसो अग्ने जगदीश्वरादब्धासो वयस्वन्तः सहस्वन्तोऽदाभ्यं सपत्नदम्भनं वयस्कृतं सहस्कृतं द्युमन्तं त्वामिन्धानाः सन्तो वयं शतं हिमाः समिधीमहि प्रकाशयेम जीवेमैवं कुर्वन्नहमपि यत्ते तव कृपया सर्वदुःखेभ्यः पारं गत्वा स्वस्ति सुखमशीय प्राप्नुयामित्येकः॥१८॥

अदब्धासो वयस्वन्तः सहस्वन्तस्त्वा तमदाभ्यं सपत्नदम्भनं वयस्कृतं सहस्कृतमग्ने अग्निं नित्यमिन्धानाः प्रदीपयन्तो वयं शतं हिमाः शतं वर्षाणि जीवेमैवं कुर्वन्नहमपि योयं चित्रावसो चित्रावसुरग्निस्ते तस्य सकाशाद् दारिद्र्यादिदुःखेभ्यः पारं गत्वा स्वस्ति सुखमशीय प्राप्नुयामिति द्वितीयः॥१८॥

भावार्थः-अत्र श्लेषालङ्कारः। मनुष्यैः पुरुषार्थेनेश्वरोपासनयाऽग्न्यादिपदार्थेभ्य उपकारकरणेन च सर्वदुःखान्तं गत्वा परं सुखं प्राप्य शतवर्षपर्यन्तं जीवितव्यम्, न च केनाप्येकक्षणमप्यालस्ये स्थातव्यम्। किंतु यथा पुरुषार्थो वर्द्धेत तथैवानुष्ठातव्यमिति॥१८॥

पदार्थः-हे **(चित्रावसो)** आश्चर्यरूप धन वाले **(अग्ने)** परमेश्वर! **(अदब्धासः)** दम्भ, अहङ्कार और हिंसादि दोषरहित **(वयस्वन्तः)** प्रशंसनीय पूर्ण अवस्थायुक्त **(सहस्वन्तः)** अत्यन्त सहन स्वभावसहित **(अदाभ्यम्)** मानने योग्य **(सपत्नदम्भनम्)** शत्रुओं के नाश करने **(वयस्कृतम्)** अवस्था की पूर्ति करने **(सहस्कृतम्)** सहन करने-कराने तथा **(द्युमन्तम्)** अनन्त प्रकाश वाले **(त्वा)** आपका **(इन्धानाः)** उपदेश और श्रवण करते हुए हम लोग **(शतम्)** सौ वर्ष तक वा सौ से अधिक **(हिमाः)** हेमन्त ऋतुयुक्त **(समिधीमहि)** अच्छे प्रकार प्रकाश करें वा जीवें। इस प्रकार करता हुआ मैं भी जो **(ते)** आपकी कृपा से सब दुःखों से **(पारम्)** पार होकर **(स्वस्ति)** सुख को **(अशीय)** प्राप्त होऊँ॥१॥१८॥

(अदब्धासः) दम्भ, अहङ्कार, हिंसादि दोषरहित **(वयस्वन्तः)** पूर्ण अवस्थायुक्त **(सहस्वन्तः)** अत्यन्त सहन करने वाले **(त्वा)** उस **(अदाभ्यम्)** उपयोग करने योग्य **(सपत्नदम्भनम्)** आग्नेयादि शस्त्र-अस्त्रविद्या में हेतु होने से शत्रुओं को जिताने **(वयस्कृतम्)** अवस्था को बढ़ाने **(सहस्कृतम्)** सहन का हेतु **(द्युमन्तम्)** अच्छे प्रकार प्रकाशयुक्त **(अग्ने)** कार्यों को प्राप्त कराने वाले भौतिक अग्नि को **(इन्धानाः)** प्रज्वलित करते हुए हम लोग **(शतम्)** सौ वर्ष पर्यन्त **(हिमाः)** हेमन्त ऋतुयुक्त **(समिधीमहि)** जीवें। इस प्रकार करता हुआ मैं भी जो यह **(चित्रावसो)** आश्चर्यरूप धन के प्राप्ति का हेतु अग्नि है **(ते)** उसके प्रकाश से दारिद्र्य आदि दुःखों से **(पारम्)** पार होकर **(स्वस्ति)** अत्यन्त सुख को **(अशीय)** प्राप्त होऊँ॥२॥१८॥

भावार्थः-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को अपने पुरुषार्थ, ईश्वर की उपासना तथा अग्नि आदि

पदार्थों से उपकार लेके दु:खों से पृथक् होकर उत्तम-उत्तम सुखों को प्राप्त होकर सौ वर्ष जीना चाहिये अर्थात् क्षण भर भी आलस्य में नहीं रहना, किन्तु जैसे पुरुषार्थ की वृद्धि हो वैसा अनुष्ठान निरन्तर करना चाहिये॥१८॥

सं त्वमित्यस्यावत्सार ऋषि:। अग्निर्देवता। जगती छन्द:। निषाद: स्वर:॥

पुनस्तौ कीदृशावित्युपदिश्यते॥

फिर भी परमेश्वर और अग्नि कैसे हैं, सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है॥

सं त्वम॑ग्ने॒ सूर्य॑स्य॒ वर्च्च॑साग॒था॒: समृषी॑णाᳬं स्तु॒तेन॑।

सं प्रि॒येण॒ धाम्ना॒ सम॒हमायु॑षा॒ सं वर्च॑सा॒ सं प्र॒जया॒ सᳬं रा॒यस्पोषे॑ण ग्मिषीय॥ १९॥

सम्। त्वम्। अ॒ग्ने॒। सूर्य्य॑स्य। वर्च॑सा। अ॒ग॒था॒:। सम्। ऋषी॑णाम्। स्तु॒तेन॑। सम्। प्रि॒येण॑। धाम्ना॑। सम्। अ॒हम्। आयु॑षा। सम्। वर्च॑सा। सम्। प्र॒जयेति॑ प्र॒ऽजया॑। सम्। रा॒य:। पोषे॑ण। ग्मि॒षी॒य॒॥ १९॥

पदार्थ:-(**सम्**) समागमे (**त्वम्**) परमेश्वरोऽयं भौतिको वा (**अग्ने**) विज्ञानस्वरूपव्यवहारप्राप्तिहेतुर्वा (**सूर्य्यस्य**) सर्वान्तर्गतस्य प्राणस्य सूर्यलोकस्य वा (**वर्चसा**) दीप्त्या (**अगथा:**) गच्छसि प्राप्नोति वा। अत्र सर्वत्र पक्षे व्यत्यय:। वर्तमाने लुङ् **मन्त्रे घसह्वरणश०** [अष्टा०२.४.८०] इति च्लेर्लुक् च। (**सम्**) सङ्गतार्थे (**ऋषीणाम्**) वेदविदां मन्त्रद्रष्टॄणां विदुषाम् (**स्तुतेन**) प्रशंसितेन (**सम्**) एकीभावे (**प्रियेण**) प्रसन्नताकारकेण (**धाम्ना**) स्थानेन (**सम्**) समीचीनार्थे (**अहम्**) जीव: (**आयुषा**) जीवनेन (**सम्**) सङ्गत्यर्थे (**वर्चसा**) विद्याध्ययनप्रकाशनेन (**सम्**) श्रैष्ठ्यार्थे (**प्रजया**) सन्तानेन राज्येन वा (**सम्**) प्रशस्तार्थे (**रायस्पोषेण**) रायो धनानां भोगपुष्ट्या (**ग्मिषीय**) प्राप्नुयाम्। अत्र **आशिषि लिङि वा छन्दसि सर्वे विधयो भवन्ति** [अष्टा०भा०वा०१.४.९] इतीडागम:। **गमहनजन०** [अष्टा०६.४.९८] इत्युपधालोपश्च। अयं मन्त्र: (शत०२.३.४.२४) व्याख्यात:॥१९॥

अन्वय:-हे अग्ने जगदीश्वर! यस्त्वं सूर्यस्य प्राणस्यर्षीणां येन संस्तुतेन संप्रियेण संवर्चसा धाम्ना समायुषा संप्रजया संरायस्पोषेण सह समगथास्तेनैवाहमपि सर्वाणि सुखानि संग्मिषीय सम्यक् प्राप्नुयामित्येक:॥१९॥

योऽग्नि: सूर्यस्य प्रत्यक्षस्य सवितृमण्डलस्यर्षीणां संस्तुतेन संप्रियेण संवर्चसा धाम्ना समायुषा संप्रजया संरायस्पोषेण समगथा: सङ्गतो भूत्वा राजते, तेन संसाधितेनाहं सर्वाणि व्यवहारसुखानि संग्मिषीय सम्यक् प्राप्नुयामिति द्वितीय:॥१९॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषालङ्कार:। मनुष्या: ईश्वरस्याज्ञापालनेन सम्यक् पुरुषार्थेनाग्न्यादिपदार्थानां संप्रयोगेणैतत् सर्वं सुखं प्राप्नुवन्तीति॥१९॥

पदार्थ:-हे (**अग्ने**) जगदीश्वर! जो आप (**सूर्यस्य**) सब के अन्तर्गत प्राण वा (**ऋषीणाम्**) वेदमन्त्रों के अर्थों को देखने वाले विद्वानों की जिस (**संस्तुतेन**) स्तुति करने (**संप्रियेण**) प्रसन्नता से मानने (**संवर्चसा**) विद्याध्ययन और प्रकाश करने (**धाम्ना**) स्थान (**समायुषा**) उत्तम जीवन (**संप्रजया**) सन्तान वा राज्य और (**रायस्पोषेण**) उत्तम धनों के भोग पुष्टि के साथ (**समगथा:**) प्राप्त होते हैं। उसी के साथ (**अहम्**) मैं भी सब सुखों को (**संग्मिषीय**) प्राप्त होऊँ॥१॥१९॥

जो (**अग्ने**) भौतिक अग्नि पूर्व कहे हुए सबों के (**समगथा:**) सङ्गत होकर प्रकाश को प्राप्त होता है, उस सिद्ध किये हुए अग्नि के साथ (**अहम्**) मैं व्यवहार के सब सुखों को (**संग्मिषीय**) प्राप्त होऊँ॥२॥१९॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्य लोग ईश्वर की आज्ञा का पालन, अपना पुरुषार्थ और अग्नि आदि पदार्थों के संप्रयोग से इन सब सुखों को प्राप्त होते हैं॥१९॥

अन्धस्थेत्यस्य याज्ञवल्क्य ऋषि:। आपो देवता। भुरिग्बृहती छन्द:। मध्यम: स्वर:॥

अथ यज्ञेन कृतशुद्धय ओषध्यादय: पदार्था उपदिश्यन्ते॥

अब अगले मन्त्र में यज्ञ से शुद्ध किये ओषधी आदि पदार्थों का उपदेश किया है॥

अन्ध स्थान्धो वो भक्षीय मह स्थ महो वो भक्षीयोर्ज स्थोर्जं वो भक्षीय रायस्पोष स्थ रायस्पोषं वो भक्षीय॥२०॥

अन्ध:। स्थ। अन्ध:। व:। भक्षीय। मह:। स्थ। मह:। व:। भक्षीय। ऊर्ज:। स्थ। ऊर्ज्जम्। व:। भक्षीय। राय:। पोष:। स्थ। राय:। पोषम्। व:। भक्षीय॥२०॥

पदार्थ:-**(अन्ध:)** अन्नम्। **अन्ध इत्यन्ननामसु पठितम्।** (निघं०२.७) **अदेर्नुम् धौ च** उणा०४.२०६। अनेनाऽदेरसुन् प्रत्ययो नुमागमो धकारादेशश्च। **वा शर्प्रकरणे खर्परे लोपो वक्तव्य:** [अष्टा०भा०वा०८.३.३६] इति विसर्जनीयलोप:। **(स्थ)** सन्ति। अत्र सर्वत्र व्यत्यय:। **(अन्ध:)** प्राप्तुं योग्यो रस:। **अन्ध इति पदनामसु पठितम्।** (निघं०४.२) अनेन प्राप्तव्यो रसो गृह्यते। **(व:)** सर्वेषामोषध्यादिपदार्थानाम् **(भक्षीय)** सेवेय **(मह:)** महांसि **(स्थ)** सन्ति **(मह:)** महागुणसमूहम् **(व:)** महतां पदार्थानाम् **(भक्षीय)** स्वीकुर्याम् **(ऊर्ज:)** पराक्रम: **(स्थ)** सन्ति **(ऊर्जम्)** पराक्रमम् **(व:)** बलवतां पदार्थानाम् **(भक्षीय)** सेवेय **(रायस्पोष:)** या बहुगुणभोगेन पुष्टय:। **भूमा वै रायस्पोष:** शत०३.१.१.१२। **(स्थ)** सन्ति **(रायस्पोषम्)** उत्तमानां धनानां भोगम् **(व:)** चक्रवर्त्तिराज्यश्रियादिपदार्थानाम् **(भक्षीय)** अद्याम्। अयं मन्त्र: (शत०२.३.४.२५) व्याख्यात:॥२०॥

अन्वय:-येऽन्ध: स्थान्धो वीर्यवन्तो वृक्षौषध्यादय: पदार्था: सन्ति, वस्तेषां सकाशादहमन्धोवीर्यकराण्यन्नानि भक्षीय स्वीकुर्य्याम्। ये मह: स्थ महो महान्तो वाय्वग्न्यादयो विद्यादयो वा सन्ति, वस्तेषां सकाशान्महांसि क्रियासिद्धिकराण्यहं भक्षीय। य ऊर्ज्ज: स्थोर्ज्जो: रसवन्तो जलदुग्धघृतमधुफलादय: सन्ति, वस्तेषां सकाशादूर्जं रसमहं भक्षीय भुञ्जीय। ये रायस्पोष: स्थ रायस्पोषो बहुगुणसमूहयुक्ता: पदार्था: सन्ति, वस्तेषां सकाशादहं रायस्पोषं बहुशुभगुणै: पोषं भक्षीय सेवेय॥२०॥

भावार्थ:-मनुष्यैर्जगत्स्थानां पदार्थानां गुणज्ञानपुर:सरं क्रियाकौशलेनोपकारं सङ्गृह्य सर्वं सुखं भोक्तव्यमिति॥२०॥

पदार्थ:-जो **(अन्ध:)** बलवान् वृक्ष वा ओषधि आदि पदार्थ **(स्थ)** हैं **(व:)** उनके प्रकाश से मैं **(अन्ध:)** वीर्य को पुष्ट करने वाले अन्नों को **(भक्षीय)** ग्रहण करूँ। जो **(मह:)** बड़े-बड़े वायु अग्नि आदि वा विद्या आदि पदार्थ **(स्थ)** हैं **(व:)** उनसे मैं **(मह:)** बड़ी-बड़ी क्रियाओं को सिद्धि करने वाले कर्मों का **(भक्षीय)** सेवन करूँ। जो **(ऊर्ज:)** जल, दूध, घी, मिष्ट वा फल आदि रसवाले पदार्थ **(स्थ)** हैं **(व:)** उनसे मैं **(ऊर्जम्)** पराक्रमयुक्त रस का **(भक्षीय)** भोग करूँ और जो **(रायस्पोष:)** अनेक गुणयुक्त पदार्थ **(स्थ)** हैं **(व:)** उन चक्रवर्तिराज्य और श्री आदि पदार्थों के मैं **(रायस्पोषम्)** उत्तम-उत्तम धनों के भोग का **(भक्षीय)** सेवन करूँ॥२०॥

भावार्थ:-मनुष्यों को जगत् के पदार्थों के गुणज्ञानपूर्वक क्रिया की कुशलता से उपकार को ग्रहण करके

सब सुखों का भोग करना चाहिये॥२०॥

रेवतीरित्यस्य याज्ञवल्क्य ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। उष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

अथ विदुषां सत्कारायोपदिश्यते॥

अब विद्वानों के सत्कार के लिये उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

रेवती रमध्वमस्मिन् योनावस्मिन् गोष्ठेऽस्मिँल्लोकेऽस्मिन् क्षये।

इहैव स्त मापगात॥२१॥

रेवतीः। रमध्वम्। अस्मिन्। योनौ। अस्मिन्। गोष्ठे। गोस्थ इति गोऽस्थे। अस्मिन्। लोके। अस्मिन्। क्षये। इह। एव। स्त। मा। अप। गात॥२१॥

पदार्थः-(**रेवतीः**) विद्याधनसहिताः प्रशस्ता नीतयो गाव इन्द्रियाणि पशवः पृथिवीराज्यादियुक्ता यासु ताः। अत्र **सुपां सुलुग्०** [अष्टा०७.१.३९] इति पूर्वसवर्णादेशः, प्रशंसार्थे मतुप् च। (**रमध्वम्**) रमणं कुर्वन्तु। अत्र व्यत्ययः। (**अस्मिन्**) प्रत्यक्षे (**योनौ**) जन्मनि स्थले वा (**अस्मिन्**) समक्षे (**गोष्ठे**) गावः पशव इन्द्रियाणि यस्मिंस्तिष्ठन्ति तस्मिन् (**अस्मिन्**) सेव्यमाने (**लोके**) संसारे (**अस्मिन्**) अस्माभिः संपादिते (**क्षये**) निवसनीये गृहे (**इह**) एतेषु (**एव**) अवधारणार्थे (**स्त**) सन्ति। अत्र व्यत्ययो लडर्थे लोट् च। (**मा**) निषेधे (**अप**) दूरार्थे (**गात**) गच्छन्तु। अत्र लोडर्थे लङ् पुरुषव्यत्ययश्च। अयं मन्त्रः (शत०२.३.४.२६) व्याख्यातः॥२१॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! प्रशस्ता नीत्यादयो रेवती रेवत्यस्ता अस्मिन् योनावस्मिन् गोष्ठेऽस्मिन् लोकेऽस्मिन् क्षये रमध्वं रमन्तामितीच्छन्तो भवन्त इहैतेष्वेव नित्यं प्रवर्तन्ताम्, किन्त्वेतेभ्यो मापगात कदाचित् दूरं मा गच्छन्तु॥२१॥

भावार्थः-यत्र विद्वांसो निवसन्ति तत्र विद्यादीनां गुणानां निवासात् प्रजा विद्यासुशिक्षाधनवत्यो भूत्वा नित्यं सुखेन सह युञ्जते। तस्मात् सर्वैरेवमिच्छा कार्याऽस्माकं सङ्गसमीपाद् विद्वांसो विदुषां समीपाच्च वयं कदाचिद् दूरे मा भवेमेति॥२१॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो (**रेवतीः**) विद्या, धन, इन्द्रिय, पशु और पृथिवी के राज्य आदि से युक्त श्रेष्ठ नीति (**स्त**) हैं वे (**अस्मिन्**) इस (**योनौ**) जन्मस्थल (**अस्मिन् गोष्ठे**) इन्द्रिय वा पशु आदि के रहने के स्थान (**अस्मिँल्लोके**) संसार वा (**अस्मिन् क्षये**) अपने रचे हुए घरों में (**रमध्वम्**) रमण करें, ऐसी इच्छा करते हुए तुम लोग (**इहैव**) इन्हीं में प्रवृत्त होओ अर्थात् (**मापगात**) इनसे दूर कभी मत जाओ॥२१॥

भावार्थः-जहाँ विद्वान् लोग निवास करते हैं, वहाँ प्रजा विद्या, उत्तम शिक्षा और धनवाली होकर निरन्तर सुखों से युक्त होती है। इससे मनुष्यों को ऐसी इच्छा करनी चाहिये कि हमारा और विद्वानों का नित्य समागम बना रहे अर्थात् कभी हम लोग विरोध से पृथक् न होवें॥२१॥

संꣳहितेत्यस्य वैश्वामित्रो मधुच्छन्दा ऋषिः। अग्निर्देवता। पूर्वार्द्धस्य भुरिगासुरी गायत्री। उपत्वेत्यन्तस्य गायत्री च छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अथाग्निशब्देन विद्युत्कर्माण्युपदिश्यन्ते॥

अब अगले मन्त्र में अग्निशब्द से बिजुली के कर्मों का उपदेश किया है॥

सꣳहितासि विश्वरूप्यूर्जा माविश गौपत्येन।

उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम्।

नमो भरन्तऽएमसि॥२२॥

सꣳहितेति सम्ऽहिता। असि। विश्वरूपीति विश्वऽरूपी। ऊर्जा। मा। आ। विश। गौपत्येन। उप। त्वा। अग्ने। दिवेदिव इति दिवेदिवे। दोषावस्तरिति दोषाऽवस्तः। धिया। वयम्। नमः। भरन्तः। आ। इमसि॥२२॥

पदार्थः-(संहिता) सर्वपदार्थैः सह वर्त्तमाना विद्युत्, सर्वव्यापक ईश्वरो वा **(असि)** अस्ति वा। अत्र सर्वत्र पक्षे व्यत्ययः। **(विश्वरूपी)** विश्वं सर्वं रूपं यस्याः सा। अत्र **जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्** [अष्टा०४.१.६३] इति ङीष् प्रत्ययः। **(ऊर्जा)** वेगपराक्रमादिगुणयुक्ता **(मा)** माम् **(आ)** समन्तात् **(विश)** विशति **(गौपत्येन)** गवामिन्द्रियाणां पशूनां वा पतिः पालकस्तस्य भावः कर्म वा तेन। अत्र **पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक्** [अष्टा०५.१.१२८] इति यक् प्रत्ययः। **(उप)** उपगमेऽर्थे **(त्वा)** त्वाम् **(अग्ने)** अग्निः **(दिवेदिवे)** ज्ञानस्य प्रकाशाय प्रकाशाय। **दिवेदिव इत्यहर्नामसु पठितम्।** (निघं०१.९)। **(दोषावस्तः)** दोषां रात्रिं वस्ते स्वतेजसाऽऽच्छाद्य निवारयति सोऽग्निः। **दोषेति रात्रिनामसु पठितम्।** (निघं०१.७)। **(धिया)** कर्मणा प्रज्ञया वा। **धीरिति कर्मनामसु पठितम्।** (निघं०२.१)। **प्रज्ञानामसु वा।** (निघं०३.९.)। **(वयम्)** क्रियाकाण्डानुष्ठातारः **(नमः)** अन्नम्। **नम इत्यन्ननामसु पठितम्।** (निघं०२.७)। **(भरन्तः)** धारयन्तः **(आ)** समन्तात् **(इमसि)** प्राप्नुमः। अत्र **इदन्तो मसि** [अष्टा०७.१.४६] इतीकारादेशः। अयं मन्त्रः (शत०२.३.४.२७-२८) व्याख्यातः॥२२॥

अन्वयः-नमोऽन्नं भरन्त सन्तो वयं धिया योऽग्निर्विद्युद्रूपेण सर्वेषु पदार्थेषु संहितोर्जा विश्वरूपी गौपत्येन मा मां विश प्रविशति त्वाग्ने तं दोषावस्तारमग्निं दिवे दिवे प्रतिदिनमुपैमसि॥२२॥

भावार्थः-मनुष्यैरित्थं वेदितव्यं येनेश्वरेण सर्वत्र मूर्त्तद्रव्येषु विद्युद्रूपो व्याप्तः सर्वरूपप्रकाशश्चेष्टादिव्यवहार-हेतुविचित्रगुणोऽग्निर्निर्मितस्तस्यैवोपासनं नित्यं कार्यमिति॥२२॥

पदार्थः-(नमः) अन्न को **(भरन्तः)** धारण करते हुए हम लोग **(धिया)** अपनी बुद्धि वा कर्म से जो **(अग्ने)** अग्नि बिजुली रूप से सब पदार्थों के **(संहिता)** साथ **(ऊर्जा)** वेग वा पराक्रम आदि गुणयुक्त **(विश्वरूपी)** सब पदार्थों में रूपगुणयुक्त **(गौपत्येन)** इन्द्रिय वा पशुओं के पालन करने वाले जीव के साथ वर्त्तमान से **(मा)** मुझ में **(आविश)** प्रवेश करता है **(त्वा)** उस **(दोषावस्तः)** रात्रि को अपने तेज से दूर करने वाले **(अग्ने)** विद्युद्रूप अग्नि को **(दिवेदिवे)** ज्ञान के प्रकाश होने के लिये प्रतिदिन **(उपैमसि)** समीप प्राप्त करते हैं॥२२॥

भावार्थः-मनुष्यों को ऐसा जानना चाहिये कि जिस ईश्वर ने सब जगह मूर्त्तिमान् द्रव्यों में बिजुलीरूप से परिपूर्ण सब रूपों का प्रकाश करने, चेष्टा आदि व्यवहारों का हेतु विचित्र गुण वाला अग्नि रचा है, उसी की उपासना नित्य करनी चाहिये॥२२॥

राजन्तमित्यस्य वैश्वामित्रो मधुच्छन्दा ऋषिः। अग्निर्देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनरीश्वराग्निगुणा उपदिश्यन्ते॥

फिर ईश्वर और अग्नि के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम्। वर्द्धमानꣳ स्वे दमे॥२३॥

राजन्तम्। अध्वराणाम्। गोपाम्। ऋतस्य। दीदिविम्। वर्धमानम्। स्वे। दमे॥२३॥

पदार्थः-(**राजन्तम्**) प्रकाशमानम् (**अध्वराणाम्**) अग्निहोत्राद्यश्वमेधान्तानां शिल्पविद्यासाध्यानां वा सर्वथा रक्ष्याणां यज्ञानाम् (**गोपाम्**) इन्द्रियपश्वादीनां रक्षकम् (**ऋतस्य**) अनादिस्वरूपस्य सत्यस्य कारणस्य जलस्य वा। **ऋतमिति सत्यनामसु पठितम्।** (निघं०३.१०) **उदकनामसु च।** (निघं०१.१२) (**दीदिविम्**) व्यवहारयन्तम्। अत्र **दिवो द्वे दीर्घश्चाभ्यासस्य** [अष्टा०४.५५] इति दिवः क्विन् प्रत्ययो द्वित्वाभ्यासदीर्घौ च। (**वर्धमानम्**) हानिरहितम् (**स्वे**) स्वकीये (**दमे**) दाम्यन्त्युपशाम्यन्ति यस्मिंस्तस्मिन् स्वस्थाने परमोत्कृष्टे प्राप्तुमर्हे पदे। अयं मन्त्रः (शत०२.३.४.२९) व्याख्यातः॥२३॥

अन्वयः-नमो भरन्तो वयं धियाऽध्वराणां गोपां राजन्तमृतस्य दीदिविं स्वे दमे वर्धमानं जगदीश्वरमुपैमसि नित्यमुपाप्नुम इत्येकः॥२३॥

येन परमात्मनाऽध्वराणां गोपा राजन्नृतस्य दीदिविः स्वे दमे वर्धमानोऽग्निः प्रकाशितोऽस्ति, तं नमो भरन्तो वयं धियोपैमसि नित्यमुपाप्नुम इति द्वितीयः॥२३॥

भावार्थः-अत्र श्लेषालङ्कारः। नमः, भरन्तः, धिया, उप, आ, इमानि, इत्येतेषां षण्णां पदानां पूर्वस्मान्मन्त्रादनुवृत्तिर्विज्ञेया। परमेश्वरोऽनादिस्वरूपस्य कारणस्य सकाशात् सर्वाणि कार्याणि रचयति भौतिकोऽग्निश्च जलस्य प्रापणेन सर्वान् व्यवहारान् साधयतीति वेद्यम्॥२३॥

पदार्थः-(**नमः**) अन्न से सत्कारपूर्वक (**भरन्तः**) धारण करते हुए हम लोग (**धिया**) बुद्धि वा कर्म से (**अध्वराणाम्**) अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेधपर्यन्त यज्ञ वा (**गोपाम्**) इन्द्रिय पृथिव्यादि की रक्षा करने (**राजन्तम्**) प्रकाशमान (**ऋतस्य**) अनादि सत्यस्वरूप कारण के (**दीदिविम्**) व्यवहार को करने वा (**स्वे**) अपने (**दमे**) मोक्षरूप स्थान में (**वर्धमानम्**) वृद्धि को प्राप्त होने वाले परमात्मा को (**उपैमसि**) नित्य प्राप्त होते हैं॥१॥२३॥

जिस परमात्मा ने (**अध्वराणाम्**) शिल्पविद्यासाध्य यज्ञ वा (**गोपाम्**) पश्वादि की रक्षा करने [वाला, (**राजन्तम्**) प्रकाशमान] (**ऋतस्य**) जल के (**दीदिविम्**) व्यवहार को प्रकाश करने वाला (**स्वे**) अपने (**दमे**) शान्तस्वरूप में (**वर्धमानम्**) वृद्धि को प्राप्त होता हुआ अग्नि प्रकाशित किया है, उसको (**नमः**) सत्क्रिया से (**भरन्तः**) धारण करते हुए हम लोग (**धिया**) बुद्धि और कर्म से (**उपैमसि**) नित्य प्राप्त होते हैं॥२॥२३॥

भावार्थः-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है और नमः, भरन्तः, धिया, उप, आ, इमसि, इन छः पदों की अनुवृत्ति पूर्वमन्त्र से जाननी चाहिये। परमेश्वर आदि रहित सत्यकारणरूप से सम्पूर्ण कार्यों को रचता और भौतिक अग्नि जल की प्राप्ति के द्वारा सब व्यवहारों को सिद्ध करता है, ऐसा मनुष्यों को जानना चाहिये॥२३॥

स न इत्यस्य वैश्वामित्रो मधुच्छन्दा ऋषिः। अग्निर्देवता। विराड् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अथाग्रिमेण मन्त्रेणेश्वर एवोपदिश्यते॥

अब अगले मन्त्र में ईश्वर ही का उपदेश किया है॥

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव। सचस्वा नः स्वस्तये॥२४॥

सः। नः। पितेवेति पिताऽइव। सूनवे। अग्ने। सूपायन इति सुऽउपायनः। भव। सचस्व। नः। स्वस्तये॥२४॥

पदार्थः-(सः) जगदीश्वरः **(नः)** अस्मभ्यम् **(पितेव)** जनक इव **(सूनवे)** औरसाय सन्तानाय। **सूनुरित्यपत्यनामसु पठितम्।** (निघं०२.२) **(अग्ने)** करुणामय विज्ञानस्वरूप सर्वपितः। **(सूपायनः)** सुष्ठूपगतमयनं ज्ञानं प्रापणं यस्मात् सः **(भव)** भवसि। अत्र लडर्थे लोट् **(सचस्व)** संयोजय। **अन्येषामपि दृश्यते** [अष्टा०६.३.१३७] इति दीर्घः। **(नः)** अस्मान् **(स्वस्तये)** सुखाय। अयं मन्त्रः (शत०२.३.४.३०) व्याख्यातः॥२४॥

अन्वयः-हे अग्ने जगदीश्वर! यस्त्वं कृपया सूनवे पितेव नोऽस्मभ्यं सूपायनो भवसि, स त्वं नोऽस्मान् स्वस्तये सततं सचस्व संयोजय॥२४॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। हे सर्वपितरीश्वर! यथा कृपायमाणो विद्वान् पिता स्वसन्तानान् संरक्ष्य सुशिक्ष्य च विद्याधर्मसुशीलतादिषु संयोजयति, तथैव भवानस्मान् निरन्तरं रक्षित्वा श्रेष्ठेषु व्यवहारेषु संयोजयत्विति॥२४॥

पदार्थः-हे **(अग्ने)** जगदीश्वर! जो आप कृपा करके जैसे **(सूनवे)** अपने पुत्र के लिये **(पितेव)** पिता अच्छे-अच्छे गुणों को सिखलाता है, वैसे **(नः)** हमारे लिये **(सूपायनः)** श्रेष्ठ ज्ञान के देने वाले **(भव)** हैं, वैसे **(सः)** सो आप **(नः)** हम लोगों को **(स्वस्तये)** सुख के लिये निरन्तर **(सचस्व)** संयुक्त कीजिये॥२४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे सब के पालन करने वाले परमेश्वर! जैसे कृपा करने वाला कोई विद्वान् मनुष्य अपने पुत्रों की रक्षा कर श्रेष्ठ-श्रेष्ठ शिक्षा देकर विद्या, धर्म अच्छे-अच्छे स्वभाव और सत्य विद्या आदि गुणों में संयुक्त करता है, वैसे ही आप हम लोगों की निरन्तर रक्षा करके श्रेष्ठ-श्रेष्ठ व्यवहारों में संयुक्त कीजिये॥२४॥

अग्ने त्वमित्यस्य सुबन्धुर्ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिग्बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अग्ने त्वं नोऽअन्तमऽउत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः।
वसुरग्निर्वसुश्रवाऽअच्छा नक्षि द्युमत्तमꣳ रयिं दाः॥२५॥

अग्ने। त्वम्। नः। अन्तमः। उत। त्राता। शिवः। भव। वरूथ्यः। वसुः। अग्निः। वसुश्रवा इति वसुऽश्रवाः। अच्छ। नक्षि। द्युमत्तममिति द्युमत्ऽतमम्। रयिम्। दाः॥२५॥

पदार्थः-(अग्ने) सर्वाभिरक्षकेश्वर **(त्वम्)** करुणामयः **(नः)** अस्माकमस्मभ्यं वा **(अन्तमः)** य आत्मान्तःस्थोऽनिति जीवयति सोऽतिशयितः। **स उ प्राणस्य प्राणः॥** केनोपनिषत्॥ खं०१।मं०२॥ अनेनात्मान्तःस्थोऽन्तर्यामी गृह्यते **(उत)** अपि **(त्राता)** रक्षकः **(शिवः)** मङ्गलमयो मङ्गलकारी **(भव)** अत्र **द्व्यचोऽतस्तिङः** [अष्टा०६.३.१३५] इति दीर्घः। **(वरूथ्यः)** यो वरूथेषु श्रेष्ठेषु गुणकर्म्मस्वभावेषु भवः **(वसुः)** वसन्ति सर्वाणि भूतानि यस्मिन् यो वा सर्वेषु भूतेषु वसति सः **(अग्निः)** विज्ञानप्रकाशमयः **(वसुश्रवाः)** वसूनि सर्वाणि श्रवांसि श्रवणानि यस्य सः **(अच्छ)** श्रेष्ठार्थे **निपातस्य च** [अष्टा०६.३.१३६] इति दीर्घः। **(नक्षि)** सर्वत्र व्याप्तोऽसि। अत्र णक्ष गतावित्यस्माल्लटि मध्यमैकवचने **बहुलं छन्दसि** [अष्टा०२.४.७३] इति शपो लुक्।

(द्युमत्तमम्) द्यौः प्रशस्तः प्रकाशो विद्यते यस्मिंस्तदतिशयितस्तम् **(रयिम्)** विद्याचक्रवर्त्यादिधनसमूहम् **(दाः)** देहि। अत्र लोडर्थे लुङ् **बहुलं छन्दस्यामाङ्०** [अष्टा०६.४.७५] अनेनाडभावश्च। अयं मन्त्रः (शत०२.३.४.३१) व्याख्यातः॥२५॥

अन्वयः-हे अग्ने! यस्त्वं वसुश्रवा वसुरग्निर्नक्षि सर्वत्र व्याप्तोऽसि, स त्वं नोऽस्माकमन्तमस्त्राता वरूथ्यः शिवो भव उतापि नोऽस्मभ्यं द्युमत्तमं रयिमच्छ दाः सम्यग्देहि॥२५॥

भावार्थः-मनुष्यैरित्थं वेदितव्यं परमेश्वरं विहाय नोऽस्माकं कश्चिदन्यो रक्षको नास्तीति, कुतस्तस्य सर्वशक्तिमत्त्वेन सर्वत्राभिव्यापकत्वादिति॥२५॥

पदार्थः-हे **(अग्ने)** सब की रक्षा करने वाले जगदीश्वर! जो **(त्वम्)** आप **(वसुश्रवाः)** सब को सुनने के लिये श्रेष्ठ कानों को देने **(वसुः)** सब प्राणी जिसमें वास करते हैं वा सब प्राणियों के बीच में बसने हारे और **(अग्निः)** विज्ञानप्रकाशयुक्त **(नक्षि)** सब जगह व्याप्त अर्थात् रहने वाले हैं, सो आप **(नः)** हम लोगों के **(अन्तमः)** अन्तर्यामी वा जीवन के हेतु **(त्राता)** रक्षा करने वाले **(वरूथ्यः)** श्रेष्ठ गुण, कर्म और स्वभाव में होने **(शिवः)** तथा मङ्गलमय मङ्गल करने वाले **(भव)** हूजिये और **(उत)** भी **(नः)** हम लोगों के लिये **(द्युमत्तमम्)** उत्तम प्रकाशों से युक्त **(रयिम्)** विद्याचक्रवर्ति आदि धनों को **(अच्छ दाः)** अच्छे प्रकार दीजिये॥२५॥

भावार्थः-मनुष्यों को ऐसा जानना चाहिये कि परमेश्वर को छोड़कर और हमारी रक्षा करने वा सब सुखों के साधनों का देने वाला कोई नहीं है, क्योंकि वही अपने सामर्थ्य से सब जगह परिपूर्ण हो रहा है॥२५॥

तन्त्वेत्यस्य सुबन्धुर्ऋषिः। अग्निर्देवता। स्वराड्बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

तं त्वा॑ शोचिष्ठ दीदिवः सु॒म्नाय॑ नू॒नमी॑महे सखि॑भ्यः।

स नो॑ बोधि श्रु॒धी हव॑मुरु॒ष्या णो॑ऽअघाय॒तः स॑मस्मात्॥२६॥

तम्। त्वा॒। शो॒चि॒ष्ठ॒। दी॒दि॒व॒ इति॑ दीदिऽवः। सु॒म्नाय॑। नू॒नम्। ई॒म॒हे॒। सखि॑भ्य॒ इति॒ सखि॑ऽभ्यः। सः। न॒ः। बो॒धि॒। श्रु॒धि। हव॑म्। उ॒रु॒ष्य। न॒ः। अ॒घा॒य॒त इत्य॑घऽयतः। स॒म॒स्मा॒त्॥२६॥

पदार्थः-**(तम्)** जगदीश्वरम् **(त्वा)** त्वाम् **(शोचिष्ठ)** पवित्रतम **(दीदिवः)** प्रकाशमयानन्दप्रद। अत्र दिवुधातोश्**छन्दसि लिट्** [अष्टा०३.२.१०५] इति लिट्। **क्वसुश्च** [अष्टा०३.२.१०७] इति लिटः स्थाने क्वसुः। **छन्दस्युभयथा** [अष्टा०३.४.११७] इति लिडादेशस्य क्वसोः सार्वधातुकत्वादिडभावः। **तुजादीनां दीर्घोऽभ्यासस्य** [अष्टा०६.१.७] इत्यभ्यासदीर्घः। **मतुवसो रुः सम्बुद्धौ छन्दसि** [अष्टा०८.३.१] इति रुरादेशश्च। **(सुम्नाय)** सुखाय। **सुम्नमिति सुखनामसु पठितम्।** (निघं०३.९) **(नूनम्)** निश्चयार्थे **(ईमहे)** याचामहे। **ईमह इति याच्ञाकर्मसु।** (निघं०३.१९) **(सखिभ्यः)** मित्रेभ्यः **(सः)** जगदीश्वरः **(नः)** अस्मानस्माकं वा **(बोधि)** बोधयति। अत्र लडर्थे लुङ् **बहुलं छन्दसि** [अष्टा०६.४.७३] इत्यडभावोऽन्तर्गतो ण्यर्थश्च। **(श्रुधि)** शृणु। अत्र **द्व्यचोऽतस्तिङः** [अष्टा०६.३.१३५] इति दीर्घः। **बहुलं छन्दसि** [अष्टा०२.४.७३] इति श्नोर्लुक्। **श्रुशृणु०** [अष्टा०६.४.१०२] इति हेर्ध्यादेशश्च। **(हवम्)** श्रोतुं श्रावयितुमर्हं स्तुतिसमूहं यज्ञम् **(उरुष्य)** रक्ष। अत्र **कण्ड्वादि** [अष्टा०३.१.२७] आकृतिगणत्वादुरुषशब्दाद्

यक्, ततो**ऽन्येषामपि०** [अष्टा०६.३.१३७] इति दीर्घः। **(नः)** अस्मान्। अत्र। **नश्च धातुस्थोरुषुभ्यः।** (अष्टा०८.४.२६) इति णकारादेशः। **(अघायतः)** यः परस्याघमिच्छत्यघायति ततः। **आचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञापयति भवत्यघशब्दाच्छन्दसि परेच्छायां क्यजिति, यदयमश्वाघस्यादिति क्यचि प्रकृत ईत्वबाधनार्थमाकारं शास्ति** (अष्टा०३.१.८) अस्मिन् सूत्रे भाष्यकारस्य व्याख्यानाशयेनेदं सिद्ध्यतीति बोध्यम्। **(समस्मात्)** सर्वस्मात्। समशब्दोऽत्र सर्वपर्यायः। अयं मन्त्रः (शत०२.३.४.३१-३३) व्याख्यातः॥२६॥

अन्वयः-हे शोचिष्ठ दीदिवो जगदीश्वर! वयं नोऽस्माकं सखिभ्यश्च नूनं सुम्नाय तं त्वामीमहे, यो भवान् नोऽस्मान् बोधि सम्यग्विज्ञानं बोधयति, सः त्वं नोऽस्माकं हवं श्रुधि कृपया शृणु, नोऽस्मान् समस्मात् सर्वस्मादघायतः परपीडाकरणरूपात् पापादुरुष्य सततं पृथक् रक्ष॥२६॥

भावार्थः-सर्वैर्मनुष्यैः स्वार्थं स्वमित्रार्थं सर्वप्राण्यर्थं च सुखप्राप्तये परमेश्वरः प्रार्थनीयस्तथैवाचरणं च कार्यम्। प्रार्थितः सन् जगदीश्वरोऽधर्मान्निवृत्तिमिच्छुकान् मनुष्यान् स्वसत्तया सर्वेभ्यः पापेभ्यो निवर्त्तयति, तथैव स्वविचारपरमपुरुषार्थाभ्यां सर्वेभ्यः पापेभ्यो निवर्त्य धर्माचरणे सर्वैर्मनुष्यैर्नित्यं प्रवर्तितव्यमिति बोध्यम्॥२६॥

पदार्थः-हे **(शोचिष्ठ)** अत्यन्त शुद्धस्वरूप **(दीदिवः)** स्वयं प्रकाशमान आनन्द के देने वाले जगदीश्वर! हम लोग वा **(नः)** अपने **(सखिभ्यः)** मित्रों के **(सुम्नाय)** सुख के लिये **(तं त्वा)** आप से **(ईमहे)** याचना करते हैं तथा जो आप **(नः)** हम को **(बोधि)** अच्छे प्रकार विज्ञान को देते हैं **(सः)** सो आप **(नः)** हमारे **(हवम्)** सुनने-सुनाने योग्य स्तुतिसमूह यज्ञ को **(श्रुधि)** कृपा करके श्रवण कीजिये और **(नः)** हम को **(समस्मात्)** सब प्रकार **(अघायतः)** पापाचरणों से अर्थात् दूसरे को पीड़ा करने रूप पापों से **(उरुष्य)** अलग रखिये॥२६॥

भावार्थः-सब मनुष्यों को अपने मित्र और सब प्राणियों के सुख के लिये परमेश्वर की प्रार्थना करना और वैसा ही आचरण भी करना कि जिससे प्रार्थित किया हुआ परमेश्वर अधर्म से अलग होने की इच्छा करने वाले मनुष्यों को अपनी सत्ता से पापों से पृथक् कर देता है, वैसे ही उन मनुष्यों को भी पापों से बचकर धर्म के करने में निरन्तर प्रवृत्त होना चाहिये॥२६॥

इड एह्यदित इत्यस्य श्रुतबन्धुर्ऋषिः। अग्निर्देवता। विराड्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनः स किमर्थः प्रार्थनीय इत्युपदिश्यते॥

फिर उस की प्रार्थना किसलिये करनी चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

इडऽएह्यदितऽएहि काम्याऽएत। मयि वः कामधरणं भूयात्॥२७॥

इडे। आ। इहि। अदिते। आ। इहि। काम्याः। आ। इत। मयि वः। कामधरणमिति कामऽधरणम्। भूयात्॥२७॥

पदार्थः-**(इडे)** इडा पृथिवी। **इडेति पृथिवीनामसु पठितम्।** (निघं०१.१) **(आ)** समन्तात् **(इहि)** प्राप्नुयात्। अत्र सर्वत्र व्यत्ययः **(अदिते)** नाशरहिता राजनीतिः। **अदितिरिति पदनामसु पठितम्।** (निघं०४.१) अनेनात्र प्राप्त्यर्थो गृह्यते। **(आ)** समन्तात् **(इहि)** प्राप्नुयात् **(काम्याः)** काम्यन्त इष्यन्ते ये पदार्थास्ते **(आ)** समन्तात् **(इत)** यन्तु प्राप्नुवन्तु **(मयि)** मनुष्ये **(वः)** तेषां काम्यानां पदार्थानाम् **(कामधरणम्)** कामानां धरणं स्थानम् **(भूयात्)**। अयं मन्त्रः (शत०२.३.४.३४) व्याख्यातः॥२७॥

अन्वयः-हे जगदीश्वर! भवत्कृपयेडेयं पृथिवी मह्यं राज्यकरणायेहि समन्तात् प्राप्नुयात्। एवमदितिः सर्वसुखप्रापिका नाशरहिता राज्यनीतिरेहि प्राप्नुयात्। एवं हे भगवन्! पृथिवीराज्यनीतिभ्यां मह्यं काम्याः पदार्था एत समन्तात् प्राप्नुवन्तु तथा मयि वस्तेषां काम्यानां पदार्थानां कामधरणं भूयात्॥२७॥

भावार्थः-मनुष्यैः काम्यानां पदार्थानां कामना सततं कार्या, तत्प्राप्तये जगदीश्वरस्य प्रार्थना पुरुषार्थश्च। नहि कश्चिदप्येकक्षणमपि कामान् विहाय स्थातुमर्हति, तस्मादधर्म्यव्यवहारात् कामनां निवर्त्य धर्म्ये व्यवहारे यावती वर्धयितुं शक्या तावती नित्यं वर्द्धनीयेति॥२७॥

पदार्थः-हे परमेश्वर! आपकी कृपा से **(इडे)** यह पृथिवी मुझ को राज्य करने के लिये **(एहि)** अवश्य प्राप्त हो तथा **(अदिते)** सब सुखों को प्राप्त करने वाली नाशरहित राजनीति **(एहि)** प्राप्त हो। इसी प्रकार हे मघवन्! अपनी पृथिवी और राजनीति के द्वारा **(काम्याः)** इष्ट-इष्ट पदार्थ **(एत)** प्राप्त हों तथा **(मयि)** मेरे बीच में **(वः)** उन पदार्थों की **(कामधरणम्)** स्थिरता **(भूयात्)** यथावत् हो॥२७॥

भावार्थः-मनुष्यों को उत्तम-उत्तम पदार्थों की कामना निरन्तर करनी तथा उनकी प्राप्ति के लिये परमेश्वर की प्रार्थना और सदा पुरुषार्थ करना चाहिये। कोई मनुष्य अच्छी वा बुरी कामना के विना क्षणभर भी स्थित होने को समर्थ नहीं हो सकता, इससे सब मनुष्यों को अधर्मयुक्त व्यवहारों की कामना को छोड़कर धर्मयुक्त व्यवहारों की जितनी इच्छा बढ़ सके उतनी बढ़ानी चाहिये॥२७॥

सोमानमित्यस्य प्रबन्धुर्ऋषिः। बृहस्पतिर्देवता। विराड् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनः स जगदीश्वरः किमर्थः प्रार्थनीय इत्युपदिश्यते॥

फिर उस जगदीश्वर की किसलिये प्रार्थना करनी चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

सोमानꣳ स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते। कक्षीवन्तं यऽऔशिजः॥२८॥

सोमानम्। स्वरणम्। कृणुहि। ब्रह्मणः। पते। कक्षीवन्तम्। यः। औशिजः॥२८॥

पदार्थः-**(सोमानम्)** सुनोति निष्पादयत्योषधिसारान् विद्यासिद्धीश्च येन तम् **(स्वरणम्)** सर्वविद्याप्रवक्तारम् **(कृणुहि)** सम्पादय **(ब्रह्मणस्पते)** सनातनस्य वेदशास्त्रस्य पालकेश्वर! **(कक्षीवन्तम्)** कक्षेषु विद्याध्ययनकर्मसु साध्वी नीतिः कक्षा सा बह्वी विद्यते यस्य विद्यां जिघृक्षोस्तम्। अत्र भूम्न्यर्थे मतुप्! **कक्ष्यायाः संज्ञायां मतौ सम्प्रसारणं कर्तव्यम्** (अष्टा०वा०६.१.३७) इति वार्तिकेन सम्प्रसारणादेशः। **आसंदीवदष्ठीवच्च०** (अष्टा०८.२.१२) इति निपातनान्मकारस्थाने वकारादेशश्च। **(यः)** विद्वान् **(औशिजः)** यः सर्वा विद्या वष्टि स उशिक् तस्य विद्यापुत्र इव। यास्कमुनिरिमं मन्त्रमेवं समाचष्टे-'**सोमानं सोतारं प्रकाशनवन्तं कुरु ब्रह्मणस्पते कक्षीवन्तमिव य औशिजः कक्षीवान् कक्ष्यावानौशिज उशिजः पुत्रं उशिग्वष्टेः कान्तिकर्मणोऽपि त्वयं मनुष्यकक्ष एवाभिप्रेतः स्यात्, तं सोमानं सोतारं मा प्रकाशनवन्तं कुरु ब्रह्मणस्पते।**' (निरु०६.१०) अयं मन्त्रः (शत०२.३.४.३५) व्याख्यातः॥२८॥

अन्वयः-हे ब्रह्मणस्पते! त्वं योऽहमौशिजोऽस्मि तं कक्षीवन्तं स्वरणं सोमानं मां कृणुहि सम्पादय॥२८॥

भावार्थः-अत्र लुप्तोपमालङ्कारः। पुत्रो द्विविध एक औरसो द्वितीयो विद्याजः। सर्वैर्मनुष्यैरीश्वर एतदर्थं

प्रार्थनीयः यस्माद् वयं विद्याप्रकाशितैः सर्वक्रियाकुशलैः प्रीत्या विद्याध्यापकैः पुत्रैर्युक्ता भवेमेति॥२८॥

पदार्थः-हे **(ब्रह्मणस्पते)** सनातन वेदशास्त्र के पालन करने वाले जगदीश्वर! आप **(यः)** जो मैं **(औशिजः)** सब विद्याओं के प्रकाश करने वाले विद्वान् के पुत्र के तुल्य हूँ, उस मुझ को **(कक्षीवन्तम्)** विद्या पढ़ने में उत्तम नीतियों से युक्त **(स्वरणम्)** सब विद्याओं का कहने और **(सोमानम्)** औषधियों के रसों का निकालने तथा विद्या की सिद्धि करने वाला **(कृणुहि)** कीजिये। ऐसा ही व्याख्यान इस मन्त्र का निरुक्तकार यास्कमुनि जी ने भी किया है, सो पूर्व लिखे हुए संस्कृत में देख लेना॥२८॥

भावार्थः-इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। पुत्र दो प्रकार के होते हैं, एक तो औरस अर्थात् जो अपने वीर्य से उत्पन्न होता और दूसरा जो विद्या पढ़ाने के लिये विद्वान् किया जाता है। हम सब मनुष्यों को इसलिये ईश्वर की प्रार्थना करनी चाहिये कि जिससे हम लोग विद्या से प्रकाशित सब क्रियाओं में कुशल और प्रीति से विद्या के पढ़ाने वाले पुत्रों से युक्त हों॥२८॥

यो रेवानित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। बृहस्पतिर्देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह ईश्वर कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

यो रे॒वान् योऽअ॑मीव॒हा व॑सु॒वित् पु॑ष्टि॒वर्द्ध॑नः। स नः॑ सिषक्तु॒ यस्तु॒रः॥२९॥

यः। रे॒वान्। यः। अ॒मी॒व॒हेत्य॑मीऽव॒हा। व॒सु॒विदिति॑ वसु॒ऽवित्। पु॒ष्टि॒वर्द्ध॒न इति॑ पुष्टि॒ऽवर्द्ध॑नः। सः। नः॒। सि॒ष॒क्त्विति सिषक्तुः। यः। तु॒रः॥२९॥

पदार्थः-**(यः)** ब्रह्मणस्पतिर्जगदीश्वरः **(रेवान्)** विद्याधनवान्। अत्र रयिशब्दान्मतुप्। **छन्दसीरः** (अष्टा०८.२.१५) इति मकारस्थाने वकारादेशः। **रयेर्मतौ सम्प्रसारणं बहुलं वक्तव्यम्** (अष्टा०६.१.३७) इति वार्तिकेन यकारस्थाने सम्प्रसारणादेशश्च। **(यः)** महान् **(अमीवहा)** योऽमावानविद्यादिरोगान् हन्ति सः **(वसुवित्)** यो वसूनि सर्वाणि वस्तूनि यथावद् वेत्ति वेदयति वा सः **(पुष्टिवर्द्धनः)** पुष्टिं शरीरात्मबलं धातुसाम्यं च वर्द्धयतीति **(सः)** परमात्मा **(नः)** अस्मान् **(सिषक्तु)** संयोजयतु। षच समवय इत्यस्माच्छपः स्थाने **बहुलं छन्दसि** [अष्टा०२.४.७६] इति श्लु**र्बहुलं छन्दसि** [अष्टा०७.४.७८] इत्यभ्यासस्येकारादेशश्च। **(यः)** उक्तो वक्ष्यमाणश्च **(तुरः)** शीघ्रकारी। अयं मन्त्रः (शत०२.३.४.३५) व्याख्यातः॥२९॥

अन्वयः-यो रेवानमीवहा वसुवित् पुष्टिवर्द्धनस्तुरो ब्रह्मणस्पतिर्जगदीश्वरोऽस्ति, स नोऽस्मान् शुभैर्गुणैः कर्मभिश्च सह सिषक्तु संयोजयतु॥२९॥

भावार्थः-यदिदं विश्वस्मिन् धनमस्ति तदिदं सर्वं जगदीश्वरस्यैव वर्तते। मनुष्यैर्यादृशी प्रार्थनेश्वरस्य क्रियते, स्वैरपि तादृश एव पुरुषार्थः कर्तव्यः। यथा नैव रेवानितीश्वरस्य विशेषणमुक्त्वा श्रुत्वा च कश्चित्कृतकृत्यो भवति, किं तर्हि स्वेनापि परमपुरुषार्थेन धनवृद्धिरक्षणे सततं कार्ये। यथा सोऽमीवहास्ति, तथैव मनुष्यैरपि रोगा नित्यं हन्तव्याः। यथा स वसुविदस्ति, तथैव यथाशक्ति पदार्थविद्या कार्या। यथा स सर्वेषां पुष्टिवर्द्धनस्तथैव सर्वेषां नित्यं पुष्टिर्वर्द्धनीया। यथा स शीघ्रकारी तथैवेष्टानि कार्याणि शीघ्रं कर्तव्यानि। यथा तस्य शुभगुणकर्मप्राप्त्यर्था प्रार्थना क्रियते, तथैव सर्वान् मनुष्यान् परमप्रयत्नेन शुभगुणकर्माचरणेन सह वर्त्तमानान् नित्यं संयोजयत्विति॥२९॥

पदार्थः-(**यः**) जो वेदशास्त्र का पालन करने (**रेवान्**) विद्या आदि अनन्त धनवान् (**अमीवहा**) अविद्या आदि रोगों को दूर करने वा कराने (**वसुवित्**) सब वस्तुओं को यथावत् जानने (**पुष्टिवर्द्धनः**) पुष्टि अर्थात् शरीर वा आत्मा के बल को बढ़ाने और (**तुरः**) अच्छे कामों में जल्दी प्रवेश करने वा कराने वाला जगदीश्वर है (**सः**) वह (**नः**) हम लोगों को उत्तम-उत्तम कर्म वा गुणों के साथ (**सिषक्तु**) संयुक्त करे॥२९॥

भावार्थः-जो इस संसार में धन है सो सब जगदीश्वर का ही है। मनुष्य लोग जैसी परमेश्वर की प्रार्थना करें, वैसा ही उनको पुरुषार्थ भी करना चाहिये। जैसे विद्या आदि धन वाला परमेश्वर है, ऐसा विशेषण ईश्वर का कह वा सुन कर कोई मनुष्य कृतकृत्य अर्थात् विद्या आदि धन वाला नहीं हो सकता, किन्तु अपने पुरुषार्थ से विद्या आदि धन की वृद्धि वा रक्षा निरन्तर करनी चाहिये। जैसे परमेश्वर अविद्या आदि रोगों को दूर करने वाला है, वैसे मनुष्यों को भी उचित है कि आप भी अविद्या आदि रोगों को निरन्तर दूर करें। जैसे वह वस्तुओं को यथावत् जानता है, वैसे मनुष्यों को भी उचित है कि अपने सामर्थ्य के अनुसार सब पदार्थविद्याओं को यथावत् जानें। जैसे वह सब की पुष्टि को बढ़ाता है, वैसे मनुष्य भी सब के पुष्टि आदि गुणों को निरन्तर बढ़ावें। जैसे वह अच्छे-अच्छे कार्यों को बनाने में शीघ्रता करता है, वैसे मनुष्य भी उत्तम-उत्तम कार्यों को त्वरा से करें और जैसे हम लोग उस परमेश्वर की उत्तम कर्मों के लिये प्रार्थना निरन्तर करते हैं, वैसे परमेश्वर भी हम सब मनुष्यों को उत्तम पुरुषार्थ से उत्तम-उत्तम गुण वा कर्मों के आचरण के साथ निरन्तर संयुक्त करे॥२९॥

मा न इत्यस्य सप्तधृतिर्वारुणिर्ऋषिः। ब्रह्मणस्पतिर्देवता। निचृद् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनः स किमर्थः प्रार्थनीय इत्युपदिश्यते॥

फिर भी उस परमेश्वर की प्रार्थना किसलिये करनी चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

मा नः शꣳसोऽअररुषो धूर्तिः प्रणङ् मर्त्यस्य। रक्षा णो ब्रह्मणस्पते॥३०॥

मा। नः। शꣳसः। अररुषः। धूर्तिः। प्रणक्। मर्त्यस्य। रक्ष। नः। ब्रह्मणः। पते॥३०॥

पदार्थः-(**मा**) निषेधार्थे (**नः**) अस्माकम् (**शंसः**) शंसन्ति स्तुवन्ति यस्मिन् सः (**अररुषः**) राति ददाति स ररिवान्, न ररिवानररिवान् तस्य (**धूर्तिः**) हिंसा (**प्रणक्**) प्रणश्यतु। अत्र लोडर्थे लुङ्। **मन्त्रे घसह्वरण०** [अष्टा०२.४.८०] इति च्लेर्लुक् च। (**मर्त्यस्य**) मनुष्यस्य। **मर्त्य इति मनुष्यनामसु पठितम्।** (निघं०२.३)। (**रक्ष**) पालय। अत्र **द्व्यचोऽतस्तिङः** [अष्टा०६.३.१३५] इति दीर्घः। (**नः**) अस्मान् (**ब्रह्मणस्पते**) जगदीश्वर। **षष्ठयाः पति पुत्र०** (अष्टा०८.३.५३) इति विसर्जनीयस्य सकारादेशः। अयं मन्त्रः (शत०२.३.४.३५) व्याख्यातः॥३०॥

अन्वयः-हे ब्रह्मणस्पते! भवत्कृपया नोऽस्माकं शंसो मा प्रणक् कदाचिन्मा प्रणश्यतु। याऽररुषः परस्वादायिनो मर्त्यस्य धूर्तिर्हिंसास्ति तस्याः सकाशान्नोऽस्मान् सततं रक्ष॥३०॥

भावार्थः-मनुष्यैः सदा प्रशंसनीयानि कर्माणि कर्तव्यानि नेतराणि, कस्यचिद् द्रोहो दुष्टानां सङ्गश्च नैव कर्तव्यः, धर्मस्य रक्षेश्वरोपासनं च सदैव कर्तव्यमिति॥३०॥

पदार्थः-हे (**ब्रह्मणस्पते**) जगदीश्वर! आपकी कृपा से (**नः**) हमारी वेदविद्या (**मा, प्रणक्**) कभी नष्ट मत हो और जो (**अररुषः**) दान आदि धर्मरहित परधन ग्रहण करने वाले (**मर्त्यस्य**) मनुष्य की (**धूर्तिः**) हिंसा अर्थात्

द्रोह है, उस से **(नः)** हम लोगों की निरन्तर **(रक्ष)** रक्षा कीजिये॥३०॥

भावार्थः-मनुष्यों को सदा उत्तम-उत्तम काम करना और बुरे-बुरे काम छोड़ना तथा किसी के साथ द्रोह वा दुष्टों का सङ्ग भी न करना और धर्म की रक्षा वा परमेश्वर की उपासना स्तुति और प्रार्थना निरन्तर करनी चाहिये॥३०॥

महि त्रीणामित्यस्य सप्तधृतिर्वारुणिर्ऋषिः। आदित्यो देवता। विराड् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनः स किमर्थः प्रार्थनीय इत्युपदिश्यते॥

फिर भी उसकी प्रार्थना किसलिये करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

महि॑ त्री॒णामवो॑ऽस्तु द्यु॒क्षं मि॒त्रस्या॑र्य॒म्णः। दु॒रा॒धर्षं॒ वरु॑णस्य॥३१॥

महि॑। त्री॒णाम्। अवः॑। अ॒स्तु॒। द्यु॒क्षम्। मि॒त्रस्य॑। अ॒र्य॒म्णः। दु॒रा॒धर्ष॒मिति॑ दुः॒ऽआ॒धर्ष॑म्। वरु॑णस्य॥३१॥

पदार्थः-**(महि)** महत् **(त्रीणाम्)** त्रयाणां सकाशात्। अत्र **वा छन्दसि सर्वे विधयो भवन्तीति** [अष्टा०भा०वा०१.४.९] **त्रेस्त्रय** [अष्टा०६.३.४६] इति त्रयादेशो न। **(अवः)** रक्षणादिकम् **(अस्तु)** भवतु **(द्युक्षम्)** द्यौर्नीतिः प्रकाशः क्षियति निवसति यस्मिंस्तत् **(मित्रस्य)** बाह्याभ्यन्तरस्थस्य प्राणस्य **(अर्यम्णः)** य ऋच्छति नियच्छत्याकर्षणेन पृथिव्यादीन् स सूर्यलोकस्तस्य। **श्वन्नुक्षन्पूषन्०** (उणा०१.१५९) अनेनायं निपातितः। **(दुराधर्षम्)** दुःखेनाधर्षितुं योग्यं दृढम् **(वरुणस्य)** वायोर्जलस्य वा। **वरुण इति पदनामसु पठितम्।** (निघं०५.४) अनेन प्राप्तिसाधनो गृह्यते। अयं मन्त्रः (शत०२.३.४.३७) व्याख्यातः॥३१॥

अन्वयः-हे ब्रह्मणस्पते! तव कृपया मित्रस्यार्यम्णो वरुणस्य च त्रीणां सकाशान्नोऽस्माकं द्युक्षं दुराधर्षं महदवोऽस्तु॥३१॥

भावार्थः-अत्र पूर्वस्मान्मन्त्राद् 'ब्रह्मणस्पते नः' इति पदद्वयानुवृत्तिर्विज्ञेया। मनुष्यैस्सर्वेभ्यः पदार्थेभ्यः स्वस्यान्येषां च न्यायेन रक्षणं कृत्वा राज्यपालनं कार्यमिति॥३१॥

पदार्थः-हे **(ब्रह्मणस्पते)** जगदीश्वर! आपकी कृपा से **(मित्रस्य)** बाहर वा भीतर रहने वाला जो प्राणवायु तथा **(अर्यम्णः)** जो आकर्षण से पृथिवी आदि पदार्थों को धारण करने वाला सूर्य्यलोक और **(वरुणस्य)** जल **(त्रीणाम्)** इन तीनों के प्रकाश से **(नः)** हम लोगों के **(द्युक्षम्)** जिस में नीति का प्रकाश निवास करता है वा **(दुराधर्षम्)** अतिकष्ट से ग्रहण करने योग्य दृढ़ **(महि)** बड़े वेदविद्या की **(अवः)** रक्षा **(अस्तु)** हो॥३१॥

भावार्थः-इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र से **(ब्रह्मणस्पते, नः)** इन दो पदों की अनुवृत्ति जाननी चाहिये। मनुष्यों को सब पदार्थों से अपनी वा औरों की न्यायपूर्वक् रक्षा करके यथावत् राज्य का पालन करना चाहिये॥३१॥

नहि तेषामित्यस्य सप्तधृतिर्वारुणिर्ऋषिः। आदित्यो देवता। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

न॒हि तेषा॑म॒मा च॒न नाध्व॑सु वार॒णेषु॑। ईशे॑ रि॒पुर॒घशं॑ऽसः॥३२॥

न॒हि। तेषा॑म्। अ॒मा। च॒न। न। अध्व॒स्वित्यध्व॑ऽसु। वा॒र॒णेषु॑। ईशे॑। रि॒पुः। अ॒घशं॑ऽस॒ इत्य॒घऽशं॑ऽसः॥३२॥

पदार्थः-(**नहि**) निषेधार्थे (**तेषाम्**) परमेश्वरोपासकानां सूर्यप्रकाशस्थितानां वा (**अमा**) गृहेषु। **अमेति गृहनामसु पठितम्।** (निघं०३.४) (**चन**) अपि (**न**) निषेधार्थे (**अध्वसु**) मार्गेषु (**वारणेषु**) वारयन्ति यैर्युद्धैस्तेषु वा वारयन्ति ये चौरदस्युव्याघ्रादयो येषु तेषु (**ईशे**) समर्थो भवामि (**रिपुः**) शत्रुः (**अघशंसः**) योऽघानि पापानि कर्माणि शंसति सः। अयं मन्त्रः (शत०२.३.४.३७) व्याख्यातः॥३२॥

अन्वयः-य ईश्वरोपासकास्तेषाममा गृहेष्वध्वसु वारणेषु च नाप्यघशंसो रिपुर्नह्युत्तिष्ठते, न खलु तान् क्लेशयितुं शक्नोति तं तांश्चाहमीशे॥३२॥

भावार्थः-ये धर्मात्मानः सर्वोपकारकाः सन्ति, नैव क्वापि तेषां भयं भवति, येऽजातशत्रवो नैव तेषां कश्चिदपि शत्रुर्जायते॥३२॥

पदार्थः-जो ईश्वर की उपासना करने वाले मनुष्य हैं (**तेषाम्**) उनके (**अमा**) गृह (**अध्वसु**) मार्ग और (**वारणेषु**) चोर, शत्रु, डाकू, व्याघ्र आदि के निवारण करने वाले संग्रामों में (**चन**) भी (**अघशंसः**) पापरूप कर्मों का कथन करने वाला (**रिपुः**) शत्रु (**नहि**) नहीं स्थित होता और (**न**) न उनको क्लेश देने को समर्थ हो सकता, उस ईश्वर और उन धार्मिक विद्वानों के प्राप्त होने को मैं (**ईशे**) समर्थ होता हूँ॥३२॥

भावार्थः-जो धर्मात्मा वा सब के उपकार करने वाले मनुष्य हैं, उनको भय कहीं नहीं होता और शत्रुओं से रहित मनुष्य का कोई शत्रु भी नहीं होता॥३२॥

ते हीत्यस्य वारुणिः सप्तधृतिर्ऋषिः। आदित्यो देवता। विराड् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

आदित्यानां किं कर्मास्तीत्युपदिश्यते॥

आदित्यों के क्या-क्या कर्म हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

ते हि पुत्रासोऽअदितेः प्र जीवसे मर्त्याय। ज्योतिर्यच्छन्त्यजस्रम्॥३३॥

ते। हि। पुत्रासः। अदितेः। प्र। जीवसे। मर्त्याय। ज्योतिः। यच्छन्ति। अजस्रम्॥३३॥

पदार्थः-(**ते**) पूर्वोक्ताः (**हि**) निश्चये (**पुत्रासः**) मित्रार्यमवरुणाः (**अदितेः**) अखण्डितायाः कारणशक्तेः (**प्र**) प्रकृष्टार्थे (**जीवसे**) जीवितुम् (**मर्त्याय**) मनुष्याय (**ज्योतिः**) तेजः (**यच्छन्ति**) ददति (**अजस्रम्**) निरन्तरम्। अयं मन्त्रः (शत०२.३.४.३७) व्याख्यातः॥३३॥

अन्वयः-येऽदितेः पुत्रासः पुत्रास्ते हि मर्त्याय जीवसेऽजस्रं ज्योतिः प्रयच्छन्ति॥३३॥

भावार्थः-एते कारणादुत्पन्नाः प्राणवाय्वादयो नित्यं ज्योतिः प्रयच्छन्तः सर्वेषां जीवनाय मरणाय वा निमित्तानि भवन्तीति॥३३॥

पदार्थः-जो (**अदितेः**) नाशरहित कारणरूपी शक्ति के (**पुत्रासः**) बाहिर भीतर रहने वाले प्राण, सूर्यलोक, पवन और जल आदि पुत्र हैं (**ते**) वे (**हि**) ही (**मर्त्याय**) मनुष्यों के मरने वा (**जीवसे**) जीने के लिये (**अजस्रम्**) निरन्तर (**ज्योतिः**) तेज या प्रकाश को (**यच्छन्ति**) देते हैं॥३३॥

भावार्थः-जो ये कारणरूपी समर्थ पदार्थों के उत्पन्न हुए प्राण, सूर्यलोक, वायु वा जल आदि पदार्थ हैं, वे ज्योति अर्थात् तेज को देते हुए सब प्राणियों के जीवन वा मरने के लिये निमित्त होते हैं॥३३॥

कदा चनेत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। इन्द्रो देवता। पथ्या बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

स इन्द्रः कीदृश इत्युपदिश्यते॥

वह इन्द्र कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे।

उपोपेन्नु मघवन् भूयऽइन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते॥३४॥

कदा। चन। स्तरीः। असि। न। इन्द्र। सश्चसि। दाशुषे। उपोपेत्युपऽउप। इत्। नु। मघवन्निति मघऽवन्। भूयः। इत्। नु। ते। दानम्। देवस्य। पृच्यते॥३४॥

पदार्थः-**(कदा)** कस्मिन् काले **(चन)** आकांक्षायाम् **(स्तरीः)** यः सुखैः स्तृणात्याच्छादयति सः। अत्र **अवितॄ०** (उणा०३.१५८) इति ईः प्रत्ययः। **(असि)** भवसि **(न)** निषेधार्थे **(इन्द्र)** सुखप्रदेश्वर **(सश्चसि)** जानासि प्रापयसि वा। **सश्चतीति गतिकर्मसु पठितम्।** (निघं०२.१४) **(दाशुषे)** विद्यादिदानकर्त्रे **(उपोप)** सामीप्ये **(इत्)** एति जानात्यनेन तद्विज्ञानम् **(नु)** क्षिप्रम्। **न्विति क्षिप्रनामसु पठितम्।** (निघं०२.१५) **(मघवन्)** परमधनवन् **(भूयः)** पुनः **(इत्)** एव **(नु)** क्षिप्रे **(ते)** तव **(दानम्)** दीयमानम् **(देवस्य)** कर्मफलप्रदातुः **(पृच्यते)** संबध्यते। अयं मन्त्रः (शत०२.३.४.३८) व्याख्यातः॥३४॥

अन्वयः-हे इन्द्र! यदा त्वं स्तरीरसि तदा दाशुषे कदाचनेन्नु न सश्चसि तदा हे मघवन्! देवस्य ते तव दानं तस्मै दाशुषे भूयः कदा चनेन्नु नोपोपपृच्यते॥३४॥

भावार्थः-यदीश्वरः कर्मफलप्रदाता न स्यात्, तर्हि न कश्चिदपि जीवो व्यवस्थया कर्मफलं प्राप्नुयादिति॥३४॥

पदार्थः-हे **(इन्द्र)** सुख देने वाले ईश्वर! जो आप **(स्तरीः)** सुखों से आच्छादन करने वाले **(असि)** हैं और **(दाशुषे)** विद्या आदि दान करने वाले मनुष्य के लिये **(कदाचन)** कभी **(इत्)** ज्ञान को **(नु)** शीघ्र **(सश्चसि)** प्राप्त **(न)** नहीं करते तो उस काल में हे **(मघवन्)** विद्यादि धन वाले जगदीश्वर! **(देवस्य)** कर्म फल के देने वाले **(ते)** आपके **(दानम्)** दिये हुए **(इत्)** ही ज्ञान को **(दाशुषे)** विद्यादि देने वाले के लिये **(भूयः)** फिर **(नु)** शीघ्र **(उपोपपृच्यते)** प्राप्त **(कदाचन)** कभी **(न)** नहीं होता॥३४॥

भावार्थः-जो जगदीश्वर कर्म के फल को देने वाला नहीं होता तो कोई भी प्राणी व्यवस्था के साथ किसी कर्म के फल को प्राप्त नहीं हो सकता॥३४॥

तत्सवितुरित्यस्य विश्वामित्र ऋषिः। सविता देवता। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

तस्य जगदीश्वरस्य कीदृश्यः स्तुतिप्रार्थनोपासनाः कार्या इत्युपदिश्यते॥

उस जगदीश्वर की कैसी स्तुति, प्रार्थना और उपासना करनी चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥३५॥

तत्। सवितुः। वरेण्यम्। भर्गः। देवस्य। धीमहि। धियः। यः। नः। प्र। चोदयात्॥३५॥

पदार्थः-**(तत्)** वक्ष्यमाणम् **(सवितुः)** सर्वस्य जगतः प्रसवितुः। **सविता वै देवानां प्रसविता तथो हास्माऽ**

एते सवितृप्रसूता एव सर्वे कामाः समृध्यन्ते (शत०२.३.४.३९) **(वरेण्यम्)** अतिश्रेष्ठम्। अत्र **वृञ एण्यः** (उणा०३.९८) अनेन वृञ्धातोरेण्यप्रत्ययः। **(भर्गः)** भृज्जन्ति पापानि दुःखमूलानि येन तत्। **अञ्च्यञ्जियुजि०** (उणा०४.२१६) इति भ्रस्जधातोरसुन् प्रत्ययः कवर्गादेशश्च। **(देवस्य)** प्रकाशमयस्य शुद्धस्य सर्वसुखप्रदातुः परमेश्वरस्य **(धीमहि)** दधीमहि। अत्र डुधाञ् धातोः प्रार्थनायां लिङ् **छन्दस्युभयथा** [अष्टा०३.४.११७] इत्यार्धधातुकत्वाच्छब् न, **आतो लोप इटि च** [अष्टा०६.४.६४] इत्याकारलोपश्च। **(धियः)** प्रज्ञा बुद्धीः। **धीरिति प्रज्ञानामसु पठितम्।** (निघं०३.९) **(यः)** सविता देवः परमेश्वरः **(नः)** अस्माकम् **(प्र)** प्रकृष्टार्थे **(चोदयात्)** प्रेरयेत्। अयं मन्त्रः (शत०२.३.४.३९) व्याख्यातः॥३५॥

अन्वयः-वयं सवितुर्देवस्य परमेश्वरस्य यद्वरेण्यं भर्गः स्वरूपमस्ति तद्धीमहि। यः सविता देवोऽन्तर्यामी परमेश्वरः स नोऽस्माकं धियः प्रचोदयात् प्रेरयेत्॥३५॥

भावार्थः-मनुष्यैः सकलजगदुत्पादकस्य सर्वोत्कृष्टस्य सकलदोषनाशकस्य शुद्धस्य परमेश्वरस्यैवोपासना नित्यं कार्या। कस्मै प्रयोजनायेत्यत्राह स स्तुतो धारितः प्रार्थित उपासितः सन्नस्मान् सर्वेभ्यो दुष्टगुणकर्मस्वभावेभ्यः पृथक्कृत्य सर्वेषु गुणकर्मस्वभावेषु नित्यं प्रवर्तयेदित्यस्मै। अयमेव प्रार्थनाया मुख्यः सिद्धान्तः। यादृशीं प्रार्थनां कुर्यात् तादृशमेव कर्माचरेदिति॥३५॥

पदार्थः-हम लोग **(सवितुः)** सब जगत् के उत्पन्न करने वा **(देवस्य)** प्रकाशमय शुद्ध वा सुख देने वाले परमेश्वर का जो **(वरेण्यम्)** अति श्रेष्ठ **(भर्गः)** पापरूप दुःखों के मूल को नष्ट करने वाला तेजःस्वरूप है **(तत्)** उसको **(धीमहि)** धारण करें और **(यः)** जो अन्तर्यामी सब सुखों का देने वाला है, वह अपनी करुणा करके **(नः)** हम लोगों की **(धियः)** बुद्धियों को उत्तम-उत्तम गुण, कर्म, स्वभावों में **(प्रचोदयात्)** प्रेरणा करे॥३५॥

भावार्थः-मनुष्यों को अत्यन्त उचित है कि इस सब जगत् के उत्पन्न करने वा सब से उत्तम सब दोषों के नाश करने तथा अत्यन्त शुद्ध परमेश्वर ही की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करें। किस प्रयोजन के लिये, जिससे वह धारण वा प्रार्थना किया हुआ हम लोगों को खोटे-खोटे गुण और कर्मों से अलग करके अच्छे-अच्छे गुण, कर्म और स्वभावों में प्रवृत्त करे, इसलिये। और प्रार्थना का मुख्य सिद्धान्त यही है कि जैसी प्रार्थना करनी, वैसा ही पुरुषार्थ से कर्म का आचरण करना चाहिये॥३५॥

परि त इत्यस्य वामदेव ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

स जगदीश्वरः कीदृश इत्युपदिश्यते॥

वह परमेश्वर कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

परि॑ ते दू॒डभो॒ रथो॒ऽस्माँ२ऽअ॑श्नोतु वि॒श्वत॑ः। येन॒ रक्ष॑सि दा॒शुष॑ः॥३६॥

परि॑। ते॒। दू॒डभ॑ः। दु॒र्द॒भ॒ऽइति॑ दुः॒ऽदभ॑ः। रथ॑ः। अ॒स्मान्। अ॒श्नो॒तु। वि॒श्वत॑ः। येन॑। रक्ष॑सि। दा॒शुष॑ः॥३६॥

पदार्थः-**(परि)** सर्वतः **(ते)** तव व्यापकेश्वरस्य **(दूडभः)** दुःखेन दम्भितुं हिंसितुं योग्यः। अत्र दम्भुधातोः खल् प्रत्ययः। दुरोदाशनाशदभध्येषु ऊत्वं वक्तव्यमुत्तरपदादेश्च ष्टुत्वम् (अष्टा०६.३.१०९) एतत्सूत्रभाष्योक्तवार्तिकेन नकारलोपेन चास्य सिद्धिः। **(रथः)** रयते जानाति येन स रथः। **रथो रंहतेर्गतिकर्मणः स्थिरतेर्वा स्याद्विपरीतस्य, रममाणोऽस्मिंस्तिष्ठतीति, वा रपतेर्वा रसतेर्वा।** (निरु०९.११) **(अस्मान्)**

भवदाज्ञासेवकान् **(अश्नोतु)** अश्नुताम् व्याप्नोतु। अत्र व्यत्ययेन परस्मैपदम्। **(विश्वतः)** सर्वतः **(येन)** ज्ञानेन **(रक्षसि)** पालयसि **(दाशुषः)** विद्यादिदानकर्तॄन्। अयं मन्त्रः (शत०२.३.४.४०-४१) व्याख्यातः॥३६॥

अन्वयः-हे जगदीश्वर! त्वं येन रथेन दाशुषो विश्वतो रक्षसि, स ते तव दूडभो रथो विज्ञानं विश्वतो रक्षितुमस्मान् पर्यश्नोतु सर्वतः प्राप्नोतु॥३६॥

भावार्थः-मनुष्यैः सर्वाभिरक्षकस्य परमेश्वरस्य विज्ञानस्य च प्राप्तये प्रार्थनापुरुषार्थौ नित्यं कर्तव्यौ। यतो रक्षिताः सन्तो वयमसद्विद्याऽधर्मादिदोषांस्त्यक्त्वा सद्विद्याधर्मादिशुभगुणान् प्राप्य सदा सुखिनः स्यामेति॥३६॥

पदार्थः-हे जगदीश्वर! आप **(येन)** जिस ज्ञान से **(दाशुषः)** विद्यादि दान करने वाले विद्वानों को **(विश्वतः)** सब ओर से **(रक्षसि)** रक्षा करते और जो **(ते)** आपका **(दूडभः)** दुःख से भी नहीं नष्ट होने योग्य **(रथः)** सब को जानने योग्य विज्ञान सब ओर से रक्षा करने के लिये है, वह **(अस्मान्)** आपकी आज्ञा के सेवन करने वाले हम लोगों को **(परि)** सब प्रकार **(अश्नोतु)** प्राप्त हो॥३६॥

भावार्थः-मनुष्यों को सब की रक्षा करने वाले परमेश्वर वा विज्ञानों की प्राप्ति के लिये प्रार्थना और अपना पुरुषार्थ नित्य करना चाहिये, जिससे हम लोग अविद्या, अधर्म आदि दोषों को त्याग करके उत्तम-उत्तम विद्या, धर्म आदि शुभगुणों को प्राप्त होके सदा सुखी होवें॥३६॥

भूर्भुवरित्यस्य वामदेव ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। ब्राह्म्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

पुनः स जगदीश्वरः किमर्थः प्रार्थनीय इत्युपदिश्यते॥

फिर उस जगदीश्वर की प्रार्थना किसलिये करनी चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याꣳ सुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः।
नर्य प्रजां मे पाहि शꣳस्य पशून् मे पाह्यथर्य पितुं मे पाहि॥३७॥

भूः। भुवः। स्वरिति स्वः। सुप्रजा इति सुऽप्रजाः। प्रजाभिरिति प्रऽजाभिः। स्याम्। सुवीर इति सुऽवीरः। वीरैः। सुपोष इति सुपोषः। पोषैः। नर्य। प्रजामिति प्रऽजाम्। मे। पाहि। शꣳस्य। पशून्। मे। पाहि। अथर्य। पितुम्। मे पाहि॥३७॥

पदार्थः-**(भूः)** प्रियस्वरूपः प्राणः **(भुवः)** बलनिमित्त उदानः **(स्वः)** सर्वचेष्टानिमित्तो व्यानश्च, तैः सह **(सुप्रजाः)** शोभना सुशिक्षासद्विद्यासहिता प्रजा यस्य सः **(प्रजाभिः)** अनुकूलाभिः स्त्र्यौरसविद्यासन्तानमित्रभृत्य-राज्यपश्वादिभिः **(स्याम्)** भवेयम् **(सुवीरः)** शोभना वीराः शरीरात्मबलसहिता यस्य सः **(वीरैः)** शौर्यधैर्यविद्याशत्रु-निवारणप्रजापालनकुशलैः **(सुपोषः)** श्रेष्ठाः पोषाः पुष्टयो यस्य स **(पौषैः)** पुष्टिकारकैराप्तविद्याजनितैर्बोधयुक्तै-र्व्यवहारैः **(नर्य)** नीतियुक्तेषु नृषु साधुस्तत्संबुद्धौ परमेश्वर! **(प्रजाम्)** सन्तानादिकाम् **(मे)** मम **(पाहि)** सततं रक्ष **(शंस्य)** शंसितुं सर्वथा स्तोतुमर्ह **(पशून्)** गोऽश्वहस्त्यादीन् **(मे)** मम **(पाहि)** रक्षय **(अथर्य)** संशयरहित। **थर्वतिश्चरतिकर्म्मा**। (निरु०११.१८) थर्वति संशेते यः सः थर्य्यो न थर्य्योऽथर्यस्तत्संबुद्धौ, अत्र वर्णव्यत्ययेन वकारस्थाने यकारः। **(पितुम्)** अन्नम्। **पितुरित्यन्ननामसु पठितम्।** (निघं०२.७) **(मे)** मम **(पाहि)** रक्ष। अत्रोभयत्रान्तर्गतो ण्यर्थः। अयं मन्त्रः (शत०२.४.१.१-६) व्याख्यातः॥३७॥

अन्वयः-हे नर्य्य! त्वं कृपया मे मम प्रजां पाहि मे मम पशून् पाहि। हे अथर्य्य! मे मम पितुं पाहि। हे शंस्य! जगदीश्वर! भवत्कृपयाऽहं भूर्भुवः स्वः प्राणापानव्यानैर्युक्तः सन् प्रजाभिः सुप्रजा वीरैः सुवीरः पोषैः सह च सुपोषः स्यां नित्यं भवेयम्॥३७॥

भावार्थः-मनुष्यैरीश्वरोपासनाज्ञापालनमाश्रित्य सुनियमैः पुरुषार्थेन श्रेष्ठप्रजावीरपुष्ट्यादिकारणैः प्रजापालनं कृत्वा नित्यं सुखं सम्पादनीयम्॥३७॥

पदार्थः-हे **(नर्य)** नीतियुक्त मनुष्यों पर कृपा करने वाले परमेश्वर! आप कृपा करके **(मे)** मेरी **(प्रजाम्)** पुत्र आदि प्रजा की **(पाहि)** रक्षा कीजिये वा **(मे)** मेरे **(पशून्)** गौ, घोड़े, हाथी आदि पशुओं की **(पाहि)** रक्षा कीजिये। हे **(अथर्य)** सन्देह रहित जगदीश्वर! आप **(मे)** मेरे **(पितुम्)** अन्न की **(पाहि)** रक्षा कीजिये। हे **(शंस्य)** स्तुति करने योग्य ईश्वर! आपकी कृपा से मैं **(भूर्भुवः स्वः)** जो प्रियस्वरूप प्राण, बल का हेतु उदान तथा सब चेष्टा आदि व्यवहारों का हेतु व्यान वायु है, उनके साथ युक्त होके **(प्रजाभिः)** अपने अनुकूल स्त्री, पुत्र, विद्या, धर्म, मित्र, भृत्य, पशु आदि पदार्थों के साथ **(सुप्रजाः)** उत्तम विद्या, धर्मयुक्त, प्रजासहित वा **(वीरैः)** शौर्य, धैर्य, विद्या, शत्रुओं के निवारण, प्रजा के पालन में कुशलों के साथ **(सुवीरः)** उत्तम शूरवीरयुक्त और **(पोषैः)** पुष्टिकारक पूर्ण विद्या से उत्पन्न हुए व्यवहारों के साथ **(सुपोषः)** उत्तम पुष्टि उत्पादन करने वाला **(स्याम्)** नित्य होऊँ॥३७॥

भावार्थः-मनुष्यों को ईश्वर की उपासना वा उस की आज्ञा के पालन का आश्रय लेकर उत्तम-उत्तम नियमों से वा उत्तम प्रजा, शूरता, पुष्टि आदि कारणों से प्रजा का पालन करके निरन्तर सुखों को सिद्ध करना चाहिये॥३७॥

आगन्मेत्यस्यासुरिर्ऋषिः। अग्निर्देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथाग्निशब्देनेश्वरभौतिकावर्थावुपदिश्येते॥

अब अग्नि शब्द से ईश्वर और भौतिक अग्नि का उपदेश किया है॥

आगन्म विश्ववेदसमस्मभ्यं वसुवित्तमम्।

अग्ने सम्राडभि द्युम्नमभि सहऽआयच्छस्व॥३८॥

आ। अगन्म। विश्ववेदसमिति विश्वऽवेदसम्। अस्मभ्यम्। वसुवित्तममिति वसुवित्ऽतमम्। अग्ने। सम्राडिति सम्ऽराट्। अभि। द्युम्नम्। अभि। सहः। आ। यच्छस्व॥३८॥

पदार्थः-**(आ)** समन्तात् **(आगन्म)** प्राप्नुयाम। अत्र लिङर्थे लुङ् **मन्त्रे घसह्वर०** [अष्टा०२.४.८०] इति च्लेर्लुक्। **म्वोश्च** (अष्टा०८.२.६५) इति मकारस्य नकारः। **(विश्ववेदसम्)** यो विश्वं वेत्ति स विश्ववेदाः परमेश्वरः। विश्वं सर्वं सुखं वेदयति प्रापयति स भौतिकोऽग्निर्वा। अत्र **विदिभुजिभ्यां विश्वे।** (उणा०४.२३८) अनेनासिः प्रत्ययः। **(अस्मभ्यम्)** उपासकेभ्यो यज्ञानुष्ठातृभ्यो वा **(वसुवित्तमम्)** वसून् पृथिव्यादिलोकान् वेत्ति सोऽतिशयितस्तम्। पृथिव्यादिलोकान् वेदयति सूर्यरूपेणाग्निरेतान् प्रकाश्य प्रापयति स वसुवित्। अतिशयेन वसुविदिति वसुवित्तमो वा तम् **(अग्ने)** विज्ञानस्वरूपेश्वर, विज्ञापको भौतिको वा **(सम्राट्)** यः सम्यग्राजते प्रकाशते सः **(अभि)** आभिमुख्ये **(द्युम्नम्)** प्रकाशकारकमुत्तमं यशः। **द्युम्नं द्योततेर्यशो वान्नं वा।** (निरु०५.५) **(अभि)**

आभिमुख्ये **(सहः)** उत्तमं बलम्। **सह इति बलनामसु पठितम्।** (निघं०२.९) **(आ)** समन्तात् **(यच्छस्व)** विस्तारय विस्तारयति वा। अत्र पक्षे लडर्थे लोट्। **आङो यमहनः** (अष्टा०१.३.२८) अनेनात्मनेपदम्। आङ्पूर्वको 'यम' धातुर्विस्तारार्थे। अयं मन्त्रः (शत०२.४.१.७-८) व्याख्यातः॥३८॥

अन्वयः-हे सम्राडग्ने जगदीश्वर! त्वं अस्मभ्यं द्युम्नं सहश्चाभ्यायच्छस्व विस्तारय। एतदर्थं वयं वसुवित्तमं विश्ववेदसं त्वामभ्यागन्म प्राप्नुयामेत्येकः॥१॥३८॥

यः सम्राडग्नेऽयमग्निरस्मभ्यं सहश्चाभ्यायच्छति सर्वतो विस्तारयति, तं वसुवित्तमं विश्ववेदसमग्निं वयमभ्यागन्म प्राप्नुयामेति द्वितीयः॥२॥३८॥

भावार्थः-अत्र श्लेषालङ्कारः। मनुष्यैः परमेश्वरभौतिकाग्न्योर्गुणविज्ञानेन तदनुसारानुष्ठानेन सर्वतः कीर्तिबले नित्यं विस्तारणीय इति॥३८॥

पदार्थः-हे **(सम्राट्)** प्रकाशस्वरूप **(अग्ने)** जगदीश्वर! आप **(अस्मभ्यम्)** उपासना करने वाले हम लोगों के लिये **(द्युम्नम्)** प्रकाशस्वरूप उत्तम यश वा **(सहः)** उत्तम बल को **(अभ्यायच्छस्व)** सब ओर से विस्तारयुक्त करते हो, इसलिये हम लोग **(वसुवित्तमम्)** पृथिवी आदि लोकों के जानने वा **(विश्ववेदसम्)** सब सुखों के जानने वाले आपको **(अभ्यागन्म)** सब प्रकार प्राप्त होवें॥१॥३८॥

जो यह **(सम्राट्)** प्रकाश होने वाला **(अग्ने)** भौतिक अग्नि **(अस्मभ्यम्)** यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले हम लोगों के लिये **(द्युम्नम्)** उत्तम-उत्तम यश वा **(सहः)** उत्तम-उत्तम बल को **(अभ्यायच्छस्व)** सब प्रकार विस्तारयुक्त करता है, उस **(वसुवित्तमम्)** पृथिवी आदि लोकों को सूर्यरूप से प्रकाश करके प्राप्त कराने वा **(विश्ववेदसम्)** सब सुखों को जानने वाले अग्नि को हम लोग **(अभ्यागन्म)** सब प्रकार प्राप्त होवें॥३८॥

भावार्थः-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को परमेश्वर वा भौतिक अग्नि के गुणों को जानने वा उसके अनुसार अनुष्ठान करने से कीर्ति, यश और बल का विस्तार करना चाहिये॥२॥३८॥

अयमग्निरित्यस्यासुरिर्ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिग्बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

अथेश्वरभौतिकावग्नी उपदिश्येते॥

अब अगले मन्त्र में ईश्वर और भौतिक अग्नि का उपदेश किया है॥

अ॒यम॒ग्निर्गृ॒हप॑ति॒र्गार्ह॑पत्यः प्र॒जाया॑ वसु॒वित्त॑मः।

अग्ने॑ गृहपते॒ऽभि द्यु॒म्नम॒भि सह॒ऽआय॑च्छस्व॥३९॥

अ॒यम्। अ॒ग्निः। गृ॒हप॑ति॒रिति॑ गृ॒हऽप॑तिः। गार्ह॑पत्य॒ इति॑ गार्ह॑ऽपत्यः॑। प्र॒जाया॒ इति॑ प्र॒जायाः॑। व॒सु॒वित्त॑म॒ इति॑ वसु॒वित्॒ऽत॑मः। अग्ने॑। गृ॒हप॒त॒ इति॑ गृह॒ऽपते। अ॒भि। द्यु॒म्नम्। अ॒भि। सहः॑। आ। य॒च्छ॒स्व॒॥३९॥

पदार्थः-**(अयम्)** प्रत्यक्षो वक्ष्यमाणः **(अग्निः)** ईश्वरो विद्युत्सूर्यो ज्वालामयो भौतिको वा **(गृहपतिः)** गृहाणां स्थानविशेषाणां पतिः पालनहेतुः **(गार्हपत्यः)** गृहपतिना संयुक्तः। अत्र **गृहपतिना संयुक्ते ञ्यः** (अष्टा०४.४.९०) अनेन ञ्यः प्रत्ययः। इदं पदं महीधरादिभिर्व्याकरणज्ञानविरहत्वात्, गृहस्य पतिः पालक इत्यशुद्धं व्याख्यातम्। **(प्रजायाः)** विद्यमानायाः **(वसुवित्तमः)** यो वसूनि द्रव्याणि वेदयति प्रापयति सोऽतिशयितः **(अग्ने)** अयमग्निः **(गृहपते)** गृहाभिरक्षकेश्वर! गृहाणां पालयिता वा **(अभि)** अभितः **(द्युम्नम्)** सुखप्रकाशयुक्तं धनम्।

द्युम्नमिति धननामसु पठितम्। (निघं०२.१०) **(अभि)** आभिमुख्ये **(सहः)** उदकं बलं वा। **सह इत्युदकनामसु पठितम्।** (निघं०१.१२) **बलनामसु च।** (निघं०२.९) **(आ)** समन्तात् क्रियायोगे **(यच्छस्व)** सर्वतो देहि आयच्छति विस्तारयति वा। अत्र पक्षे व्यत्ययः सिद्धिश्च पूर्ववत्। अयं मन्त्रः (शत०२.४.१.९-११) व्याख्यातः॥३९॥

अन्वयः-हे गृहपतेऽग्ने परमात्मन्! योऽयं भवान् गृहपतिर्गार्हपत्यः प्रजाया वसुवित्तमोऽग्निरस्ति, तस्मात् त्वमस्मदर्थं द्युम्नमभ्यायच्छस्व सहश्चाभ्यायच्छस्वेत्येकः॥

यस्माद् गृहपतिः प्रजाया वसुवित्तमो गार्हपत्योऽयमग्निरस्ति तस्मात् सोऽभिद्युम्नं सहश्चाभ्यायच्छति आभिमुख्येन समन्तात् विस्तारयतीति द्वितीयः॥३९॥

भावार्थः-अत्र श्लेषालङ्कारः। गृहस्थैर्यदेश्वरमुपास्यैतस्याज्ञायां वर्त्तित्वायमग्निः कार्यसिद्धये संयोज्यते, तदानेकविधे धनबले अत्यन्तं विस्तारयति। कुतः ? प्रजाया मध्येऽस्याग्नेः पदार्थप्राप्तये साधकतमत्वादिति॥३९॥

पदार्थः-हे **(गृहपते)** घर के पालन करने वाले **(अग्ने)** परमेश्वर! जो **(अयम्)** यह **(गृहपतिः)** स्थान विशेषों के पालन हेतु **(गार्हपत्यः)** घर के पालन करने वालों के साथ संयुक्त **(प्रजाया वसुवित्तमः)** प्रजा के लिये सब प्रकार धन प्राप्त कराने वाले हैं, सो आप जिस कारण **(द्युम्नम्)** सुख और प्रकाश से युक्त धन को **(अभ्यायच्छस्व)** अच्छी प्रकार दीजिये तथा **(सहः)** उत्तम बल, पराक्रम **(अभ्यायच्छस्व)** अच्छी प्रकार दीजिये॥१॥३९॥

जिस कारण जो **(गृहपतिः)** उत्तम स्थानों के पालन का हेतु **(प्रजायाः)** पुत्र, मित्र, स्त्री और भृत्य आदि प्रजा को **(वसुवित्तमः)** द्रव्यादि को प्राप्त कराने वा **(गार्हपत्यः)** गृहों के पालन करने वालों के साथ संयुक्त **(अयम्)** यह **(अग्ने)** बिजुली सूर्य वा प्रत्यक्षरूप से अग्नि है, इससे वह **(गृहपते)** घरों का पालन करने वाला **(अग्ने)** अग्नि हम लोगों के लिये **(अभिद्युम्नम्)** सब ओर से उत्तम उत्तम धन वा **(सहः)** उत्तम-उत्तम बलों को **(अभ्यायच्छस्व)** सब प्रकार से विस्तारयुक्त करता है॥२॥॥३९॥

भावार्थः-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। गृहस्थ लोग जब ईश्वर की उपासना और उसकी आज्ञा में प्रवृत्त होके कार्य्य की सिद्धि के लिये इस अग्नि को संयुक्त करते हैं, तब वह अग्नि अनेक प्रकार के धन और बलों को विस्तारयुक्त करता है, क्योंकि यह प्रजा में पदार्थों की प्राप्ति के लिये अत्यन्त सिद्धि करने हारा है॥३९॥

अयमग्निः पुरीष्य इत्यस्यासुरिर्ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनर्भौतिकोऽग्निः कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर भौतिक अग्नि कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अयमग्निः पुरीष्यो रयिमान् पुष्टिवर्धनः।

अग्ने पुरीष्याभि द्युम्नमभि सहऽआयच्छस्व॥४०॥

अयम्। अग्निः। पुरीष्यः। रयिमानिति रयिऽमान्। पुष्टिवर्धन इति पुष्टिऽवर्धनः। अग्ने। पुरीष्य। अभि। द्युम्नम्। अभि। सहः। आ। यच्छस्व॥४०॥

पदार्थः-**(अयम्)** वक्ष्यमाणलक्षणः **(अग्निः)** पूर्वोक्तो भौतिकः **(पुरीष्यः)** ये पृणन्ति यानि कर्माणि तानि पुरीषाणि तेषु साधुः **(रयिमान्)** प्रशस्ता रययो धनानि विद्यन्ते यस्मिन् सः। अत्र प्रशंसार्थे मतुप्। **रयिरिति धननामसु**

पठितम्। (निघं०२.१०) **(पुष्टिवर्द्धनः)** वर्द्धयतीति वर्द्धनः पुष्टेर्वर्द्धनः पुष्टिवर्द्धनः **(अग्ने)** सर्वोत्तमपदार्थप्रापकेश्वर! **(पुरीष्य)** पृणन्ति पूरयन्ति सुखानि यैर्गुणैस्ते पुरीषास्तेषु साधुस्तत्संबुद्धौ। **(अभि)** अभितः **(द्युम्नम्)** विज्ञानसाधकं धनम्। **(अभि)** आभिमुख्ये **(सहः)** शरीरात्मबलम् **(आ)** समन्तात् क्रियायोगे **(यच्छस्व)** विस्तारय। अस्य सिद्धिः पूर्ववत्॥४०॥

अन्वयः-हे पुरीष्याग्ने विद्वंस्त्वं योऽयं पुरीष्यो रयिमान् पुष्टिवर्द्धनोऽग्निरस्ति, तस्मादभिद्युम्नमभिसहो वा यच्छस्व विस्तारय॥४०॥

भावार्थः-मनुष्यैः परमेश्वरानुग्रहस्वपुरुषार्थाभ्यामग्निविद्यां प्राप्यानेकविधं धनं बलं च सर्वतो विस्तारणीयमिति॥४०॥

पदार्थः-हे **(पुरीष्य)** कर्मों के पूरण करने में अतिकुशल **(अग्ने)** उत्तम से उत्तम पदार्थों के प्राप्त कराने वाले विद्वन्! आप जो **(अयम्)** यह **(पुरीष्यः)** सब सुखों के पूर्ण करने में अत्युत्तम **(रयिमान्)** उत्तम-उत्तम धनयुक्त **(पुष्टिवर्द्धनः)** पुष्टि को बढ़ाने वाला **(अग्निः)** भौतिक अग्नि है, उस से हम लोगों के लिये **(अभिद्युम्नम्)** उत्तम-उत्तम ज्ञान को सिद्ध करने वाले धन वा **(अभिसहः)** उत्तम-उत्तम शरीर और आत्मा के बलों को **(आयच्छस्व)** सब प्रकार से विस्तारयुक्त कीजिये॥४०॥

भावार्थः-मनुष्यों को परमेश्वर की कृपा वा अपने पुरुषार्थ से अग्निविद्या को सम्पादन करके अनेक प्रकार के धन और बलों को विस्तारयुक्त करना चाहिये॥४०॥

गृहा मेत्यस्यासुरिर्ऋषिः। वास्तुरग्निर्देवता। आर्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अथ गृहाश्रमानुष्ठानमुपदिश्यते॥

अब अगले मन्त्र में गृहस्थाश्रम के अनुष्ठान का उपदेश किया है॥

गृहा मा बिभीत मा वेपध्वमूर्जं बिभ्रतऽएमसि।

ऊर्जं बिभ्रद्वः सुमनाः सुमेधा गृहानैमि मनसा मोदमानः॥४१॥

गृहाः। मा। बिभीत। मा। वेपध्वम्। ऊर्जम्। बिभ्रतः। आ। इमसि। ऊर्जम्। बिभ्रत्। वः। सुमना इति सुऽमनाः। सुमेधा इति सुऽमेधाः। गृहान्। एमि। मनसा। मोदमानाः॥४१॥

पदार्थः-**(गृहाः)** गृह्णन्ति ब्रह्मचर्याश्रमानन्तरं गृहाश्रमं ये मनुष्यास्तत्संबुद्धौ **(मा)** निषेधार्थे **(बिभीत)** भयं कुरुत **(मा)** प्रतिषेधे **(वेपध्वम्)** कम्पध्वम् **(ऊर्जम्)** पराक्रमम् **(बिभ्रतः)** धारयन्तः **(आ)** समन्तात् **(इमसि)** प्राप्नुमः। अत्र **इदन्तो मसि** [अष्टा०७.१.४६] इतीदादेशः। **(ऊर्जम्)** अनेकविधं बलम् **(बिभ्रत्)** धारयन् **(वः)** युष्मान् **(सुमनाः)** शोभनं मनो विज्ञानं यस्य सः **(सुमेधाः)** सुष्ठु मेधा धारणावती सङ्गमिका धीर्यस्य सः **(गृहान्)** गृहाश्रमस्थान् विदुषः **(आ)** समन्तात् **(एमि)** प्राप्नुयाम्। अत्र लिङर्थे लट्। **(मनसा)** विज्ञानेन **(मोदमानः)** हर्षोत्साहयुक्तः॥ एतदादिमन्त्रत्रयम् शत०२.४.१.१४ व्याख्यातम्॥४१॥

अन्वयः-हे ब्रह्मचर्येण कृतविद्या गृहाश्रमिणो मनुष्या ऊर्जं बिभ्रतो गृहा यूयं गृहाश्रमं प्राप्नुत, तदनुष्ठानान्मा बिभीत मा वेपध्वं च। ऊर्जं बिभ्रतो वयं युष्मान् गृहानेमसि समन्तात् प्राप्नुमः। वो युष्माकं मध्ये स्थित्वैवं गृहाश्रमे वर्त्तमानः सुमनाः सुमेधा मनसा मोदमान ऊर्जं बिभ्रत् सन्नहं सुखान्येमि नित्यं प्राप्नुयाम्॥४१॥

भावार्थः-मनुष्यैः पूर्णब्रह्मचर्याश्रमं संसेव्य युवावस्थायां स्वयंवरविधानेन स्वतुल्यस्वभावविद्यारूपबलवतीं सुपरीक्षितां स्त्रीमुद्वाह्य शरीरात्मबलं संपाद्य सन्तानोत्पत्तिं विधाय सर्वैः साधनैः सद्व्यवहारेषु स्थातव्यम्। नैव केनापि गृहाश्रमानुष्ठानात् कदाचित् भेतव्यं कम्पनीयं च। कुतः? सर्वेषां सद्व्यवहाराणामाश्रमाणां च गृहाश्रमो मूलमस्त्यत एष सम्यगनुष्ठातव्यः, नैतेन विना मनुष्यवृद्धी राज्यसिद्धिश्च जायते॥४१॥

पदार्थः-हे ब्रह्मचर्याश्रम से सब विद्याओं को ग्रहण किये गृहाश्रमी तथा **(ऊर्जम्)** शौर्यादिपराक्रमों को **(बिभ्रतः)** धारण किये और **(गृहाः)** ब्रह्मचर्याश्रम के अनन्तर अर्थात् गृहस्थाश्रम को प्राप्त होने की इच्छा करते हुए मनुष्यो! तुम गृहस्थाश्रम को यथावत् प्राप्त होओ उस गृहस्थाश्रम के अनुष्ठान से **(मा बिभीत)** मत डरो तथा **(मा वेपध्वम्)** मत कम्पो तथा पराक्रमों को धारण किये हुए हम लोग **(गृहान्)** गृहस्थाश्रम को प्राप्त हुए तुम लोगों को **(एमसि)** नित्य प्राप्त होते रहें और **(वः)** तुम लोगों में स्थित होकर इस प्रकार गृहस्थाश्रम में वर्त्तमान **(सुमनाः)** उत्तम ज्ञान **(सुमेधाः)** उत्तम बुद्धि युक्त **(मनसा)** विज्ञान से **(मोदमानः)** हर्ष, उत्साह युक्त **(ऊर्जम्)** अनेक प्रकार के बलों को **(बिभ्रत्)** धारण करता हुआ मैं अत्यन्त सुखों को **(एमि)** निरन्तर प्राप्त होऊँ॥४१॥

भावार्थः-मनुष्यों को पूर्ण ब्रह्मचर्याश्रम को सेवन करके युवावस्था में स्वयंवर के विधान की रीति से दोनों के तुल्य स्वभाव, विद्या, रूप, बुद्धि और बल आदि गुणों को देखकर विवाह कर तथा शरीर-आत्मा के बल को सिद्ध कर और पुत्रों को उत्पन्न करके सब साधनों से अच्छे-अच्छे व्यवहारों में स्थित रहना चाहिये तथा किसी मनुष्य को गृहास्थाश्रम के अनुष्ठान से भय नहीं करना चाहिये, क्योंकि सब अच्छे व्यवहार वा सब आश्रमों का यह गृहस्थाश्रम मूल है। इस गृहस्थाश्रम का अनुष्ठान अच्छे प्रकार से करना चाहिये और इस गृहस्थाश्रम के विना मनुष्यों की वा राज्यादि व्यवहारों की सिद्धि कभी नहीं होती॥४१॥

येषामित्यस्य शंयुर्ऋषिः। वास्तुपतिरग्निर्देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्ते गृहाश्रमिणः कीदृशाः सन्तीत्युपदिश्यते॥

फिर वह गृहस्थाश्रम कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है॥

येषा॑म॒द्ध्येति॑ प्र॒वस॑न् येषु॑ सौमन॒सो ब॒हुः।

गृ॒हानुप॑ह्वयामहे॒ ते नो॑ जानन्तु जान॒तः॥४२॥

येषा॑म्। अ॒ध्येतीत्य॑धि॒ऽएति॑। प्र॒वस॒न्निति॑ प्र॒ऽवस॑न्। येषु॑। सौ॒म॒न॒सः। ब॒हुः। गृ॒हान्। उप॑। ह्व॒या॒म॒हे॒। ते। न॒ः। जा॒न॒न्तु॒। जा॒न॒तः॥४२॥

पदार्थः-**(येषाम्)** गृहस्थानाम्। अत्र **अधीगर्थदयेशां कर्मणि** (अष्टा०२.३.५२) इति कर्मणि षष्ठी। **(अध्येति)** स्मरति **(प्रवसन्)** प्रवासं कुर्वन् **(येषु)** गृहस्थेषु **(सौमनसः)** शोभनं मनः सुमनस्तस्यायमानन्दः सुहृद्भावः, अत्र **तस्येदम्** [अष्टा०४.३.१२०] इत्यण्। **(बहुः)** अधिकः **(गृहान्)** गृहस्थान् **(उप)** सामीप्ये **(ह्वयामहे)** शब्दयामहे **(ते)** गृहस्थाः **(नः)** अस्मान् प्रवसतोऽतिथीन् **(जानन्तु)** विदन्तु **(जानतः)** धार्मिकान् विदुषः॥४२॥

अन्वयः-प्रवसन्नतिथिर्येषामध्येति येषु बहुः सौमनसोऽस्ति। तान् गृहस्थान् वयमतिथय उपह्वयामहे। ये सुहृदो गृहस्थास्ते जानतो नोऽस्मानतिथीन् जानन्तु॥४२॥

भावार्थः-गृहस्थैः सर्वैर्धार्मिकैर्विद्वद्भिरतिथिभिः सह गृहस्थैः सहातिथिभिश्चात्यन्तः सुहृद्भावो रक्षणीयो नैव

दुष्टैः सह, तेषां सङ्गे परस्परं संलापं कृत्वा विद्योन्नतिः कार्या। ये परोपकारिणो विद्वांसोऽतिथयः सन्ति, तेषां गृहस्थैर्नित्यं सेवा कार्या नेतरेषामिति॥४२॥

पदार्थः-(प्रवसन्) प्रवास करता हुआ अतिथि **(येषाम्)** जिन गृहस्थों का **(अध्येति)** स्मरण करता वा **(येषु)** जिन गृहस्थों में **(बहुः)** अधिक **(सौमनसः)** प्रीतिभाव है, उन **(गृहान्)** गृहस्थों का हम अतिथि लोग **(उपह्वयामहे)** नित्यप्रति प्रशंसा करते हैं, जो प्रीति रखने वाले गृहस्थ लोग हैं **(ते)** वे **(जानतः)** जानते हुए **(नः)** हम धार्मिक अतिथि लोगों को **(जानन्तु)** यथावत् जानें॥४२॥

भावार्थः-गृहस्थों को सब धार्मिक अतिथि लोगों के वा अतिथि लोगों को गृहस्थों के साथ अत्यन्त प्रीति रखनी चाहिये और दुष्टों के साथ नहीं। तथा उन विद्वानों के सङ्ग से परस्पर वार्त्तालाप कर विद्या की उन्नति करनी चाहिये और जो परोपकार करने वाले विद्वान् अतिथि लोग हैं, उनकी सेवा गृहस्थों को निरन्तर करनी चाहिये औरों की नहीं॥४२॥

उपहूता इत्यस्य शंयुर्बार्हस्पत्य ऋषिः। वास्तुपतिर्देवता। भुरिग्जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनः स कीदृशः संपादनीय इत्युपदिश्यते॥

फिर उस गृहस्थाश्रम को कैसे सिद्ध करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

उपहूताऽइह गावऽउपहूताऽअजावयः। अथोऽअन्नस्य कीलालऽउपहूतो गृहेषु नः।
क्षेमाय वः शान्त्यै प्रपद्ये शिवꣳ शग्मꣳ शंयोः शंयोः॥४३॥

उपहूता इत्युपऽहूताः। इह। गावः। उपहूता इत्युपऽहूताः। अजावयः। अथोऽइत्यथो। अन्नस्य। कीलालः। उपहूत इत्युपऽहूतः। गृहेषु। नः। क्षेमाय। वः। शान्त्यै। प्र। पद्ये। शिवम्। शग्मम्। शंयोरिति शम्ऽयोः। शंयोरिति शम्ऽयोः॥४३॥

पदार्थः-(उपहूताः) सामीप्यं प्रापिताः **(इह)** अस्मिन् गृहाश्रमे संसारे वा **(गावः)** दुग्धप्रदा धेनवः **(उपहूताः)** सामीप्यं प्रापिताः **(अजावयः)** अजाश्चावयश्च ते **(अथो)** आनन्तर्ये **(अन्नस्य)** प्राणधारणस्य निरन्तरसुखस्य च हेतुः। **कृवृ॰** (उणा॰३.१०) इत्यनधातोर्नः प्रत्ययः। **धापॄवस्यज्य॰** (उणा॰३.६) इत्यतधातोर्नः प्रत्ययः। **(कीलालः)** उत्तमान्नादिपदार्थसमूहः। **कीलालं इत्यन्ननामसु पठितम्।** (निघं॰२.७) **(उपहूतः)** सम्यक् प्रापितः **(गृहेषु)** निवसनीयेषु प्रासादेषु **(नः)** अस्माकम् **(क्षेमाय)** रक्षणाय **(वः)** युष्माकम् **(शान्त्यै)** सुखाय **(प्रपद्ये)** प्राप्नोमि **(शिवम्)** कल्याणम् **(शग्मम्)** सुखम् **(शंयोः)** कल्याणवतः साधनात् कर्मणः सुखवतो वा **(शंयोः)** सुखात्। अत्रोभयत्र **कंशंभ्यां बभयुस्तितुतयसः** (अष्टा॰५.२.१३८) इति शमो युस् प्रत्ययः। **शिवं शग्मं चेति सुखनामसु पठितम्।** (निघं॰३.६.)॥४३॥

अन्वयः-इहास्मिन् संसारे वो युष्माकं शान्त्यै नोऽस्माकं क्षेमाय गृहेषु गाव उपहूता अजावय उपहूता अथोऽन्नस्य कीलाल उपहूतोस्त्वेवं कुर्वन्नहं गृहस्थः शंयोः शिवं शग्मं च प्रपद्ये॥४३॥

भावार्थः-गृहस्थैरीश्वरोपासनाज्ञापालनाभ्यां गोहस्त्यश्वादीन् पशून् भक्ष्यभोज्यलेह्यचूष्यान् पदार्थांश्चोपसञ्चित्य स्वेषामन्येषां च रक्षणं कृत्वा विज्ञानधर्मपुरुषार्थैरैहिकपारमार्थिके सुखे संसेधनीये, नैव केनचिदालस्ये स्थातव्यम्। किन्तु ये मनुष्याः पुरुषार्थवन्तो भूत्वा धर्मेण चक्रवर्त्तिराज्यादीनुपार्ज्य संरक्ष्योन्नीय सुखानि प्राप्नुवन्ति, ते श्रेष्ठा

गण्यन्ते नेतरे॥४३॥

पदार्थः-(इह) इस गृहस्थाश्रम वा संसार में **(वः)** तुम लोगों के **(शान्त्यै)** सुख **(नः)** हम लोगों की **(क्षेमाय)** रक्षा के **(गृहेषु)** निवास करने योग्य स्थानों में जो **(गावः)** दूध देने वाली गौ आदि पशु **(उपहूताः)** समीप प्राप्त किये वा **(अजावयः)** भेड़-बकरी आदि पशु **(उपहूताः)** समीप प्राप्त हुए **(अथो)** इसके अनन्तर **(अन्नस्य)** प्राण धारण करने वाले **(कीलालः)** अन्न आदि पदार्थों का समूह **(उपहूताः)** अच्छे प्रकार प्राप्त हुआ हो, इन सब की रक्षा करता हुआ जो मैं गृहस्थ हूँ सो **(शंयोः)** सब सुखों के साधनों से **(शिवम्)** कल्याण वा **(शग्मम्)** उत्तम सुखों को **(प्रपद्ये)** प्राप्त होऊँ॥४३॥

भावार्थः-गृहस्थों को योग्य है कि ईश्वर की उपासना वा उसकी आज्ञा के पालन से गौ, हाथी, घोड़े आदि पशु तथा खाने-पीने योग्य स्वादु भक्ष्य पदार्थों का संग्रह कर अपनी वा औरों की रक्षा करके विज्ञान, धर्म, विद्या और पुरुषार्थ से इस लोक वा परलोक के सुखों को सिद्ध करें, किसी भी पुरुष को आलस्य में नहीं रहना चाहिये, किन्तु सब मनुष्य पुरुषार्थ वाले होकर धर्म से चक्रवर्ती राज्य आदि धनों को संग्रह कर उनकी अच्छे प्रकार रक्षा करके उत्तम उत्तम सुखों को प्राप्त हों, इससे अन्यथा मनुष्यों को न वर्तना चाहिये, क्योंकि अन्यथा वर्तने वालों को सुख कभी नहीं होता॥४३॥

प्रघासिन इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। मरुतो देवताः। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनर्गृहस्थैः किं कर्तव्यमित्युपदिश्यते॥

गृहस्थ मनुष्यों को क्या-क्या करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

प्रघासिनो हवामहे मरुतश्च रिशादसः। करम्भेण सजोषसः॥४४॥

प्रघासिन इति प्रऽघासिनः। हवामहे। मरुतः। च। रिशादसः। करम्भेण। सजोषस इति सऽजोषसः॥४४॥

पदार्थः-(प्रघासिनः) प्रघस्तुमत्तुं शीलमेषां तान् **(हवामहे)** आह्वयामहे **(मरुतः)** विदुषोऽतिथीन् **(च)** समुच्चये **(रिशादसः)** रिशान् दोषान् शत्रूंश्चादन्ति हिंसन्ति तान् **(करम्भेण)** अविद्याहिंसनेन। अत्र 'कृ हिंसायाम्' इत्यस्माद् धातोर्बाहुलकादौणादिकोऽभच् प्रत्ययः। **(सजोषसः)** समानप्रीतिसेविनः। अयं मन्त्रः (शत०२.५.२.२१) व्याख्यातः॥४४॥

अन्वयः-वयं करम्भेण सजोषसो रिशादसः प्रघासिनोऽतिथीन् मरुत ऋत्विजश्च हवामहे॥४४॥

भावार्थः-मनुष्यैर्वैद्यान् शूरवीरान् यज्ञसंपादकान् मनुष्यानाहूय सेवित्वा तेभ्यो विद्याशिक्षा नित्यं संग्राह्या:॥४४॥

पदार्थः-हम लोग **(करम्भेण)** अविद्यारूपी दुःख से अलग होके **(सजोषसः)** बराबर प्रीति के सेवन करने **(रिशादसः)** दोष वा शत्रुओं को नष्ट करने **(प्रघासिनः)** पके हुए पदार्थों के भोजन करने वाले अतिथि लोग और **(मरुतः)** अतिथि **(च)** और यज्ञ करने वाले विद्वान् लोगों को **(हवामहे)** सत्कार पूर्वक नित्यप्रति बुलाते रहें॥४४॥

भावार्थः-गृहस्थों को उचित है कि वैद्य, शूरवीर और यज्ञ को सिद्ध करने वाले मनुष्यों को बुलाकर उनकी यथावत् सत्कारपूर्वक सेवा करके उनसे उत्तम-उत्तम विद्या वा शिक्षाओं को निरन्तर ग्रहण करें॥४४॥

यद् ग्राम इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। मरुतो देवताः। स्वराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनर्गृहस्थकृत्यमुपदिश्यते॥

फिर अगले मन्त्र में गृहस्थों के कर्मों का उपदेश किया है॥

यद् ग्रामे यदरण्ये यत् सभायां यदिन्द्रिये।

यदेनश्चकृमा वयमिदं तदवयजामहे स्वाहा॥४५॥

यत्। ग्रामे। यत्। अरण्ये। यत्। सभायाम्। यत्। इन्द्रिये। यत्। एनः। चकृम। वयम्। इदम्। तत्। अव। यजामहे। स्वाहा॥४५॥

पदार्थः-**(यत्)** यस्मिन् वक्ष्यमाणे **(ग्रामे)** शालासमुदाये, गृहस्थैः सेविते। ग्राम इत्युपलक्षणं नगरादीनाम् **(यत्)** यस्मिन् वक्ष्यमाणे **(अरण्ये)** वानप्रस्थैः सेवित एकान्तदेशे वने **(यत्)** यस्यां वक्ष्यमाणायाम् **(सभायाम्)** विद्वत्समूहशोभितायाम् **(यत्)** यस्मिँश्छ्रेष्ठे **(इन्द्रिये)** मनसि श्रोत्रादौ वा **(यत्)** वक्ष्यमाणम् **(एनः)** पापम् **(चकृम)** कुर्महे करिष्यामो वा। अत्र लड्लृटोरर्थे लिट्। **अन्येषामपि०** [अष्टा०६.३.१३७] इति दीर्घश्च। **(वयम्)** कर्मानुष्ठातारो गृहस्थाः **(इदम्)** प्रत्यक्षमनुष्ठीयमानं करिष्यमाणं वा **(तत्)** कर्म **(अव)** दूरीकरणे **(यजामहे)** सङ्गच्छामहे **(स्वाहा)** सत्यवाचा। **स्वाहेति वाङ्नामसु पठितम्।** (निघं०१.११)। अयं मन्त्रः (शत०२.५.२.२५) व्याख्यातः॥४५॥

अन्वयः-वयं यद् ग्रामे यदरण्ये सत्सभायां यदिन्द्रिये यद्यत्रैनश्चकृमस्तदव यजामहे दूरीकुर्मः। यद्यत्र तत्र स्वाहा सत्यवाचा पुण्यकर्म चकृम तत्तत्सर्वं सङ्गच्छामहे॥४५॥

भावार्थः-चतुराश्रमस्थैर्मनुष्यैर्मनसा वाचा कर्मणा सदा सत्यं कर्माचर्यं पापं च त्यक्त्वा सभाविद्याशिक्षाप्रचारेण प्रजायाः सुखोन्नतिः कार्येति॥४५॥

पदार्थः-**(वयम्)** कर्म के अनुष्ठान करने वाले हम लोग **(यत्) (ग्रामे)** जो गृहस्थों से सेवित ग्राम **(यत्) (अरण्ये)** वानप्रस्थों ने जिस वन की सेवा की हो **(यत्सभायाम्)** विद्वान् लोग जिस सभा की सेवा करते हों और **(यत्) (इन्द्रिये)** योगी लोग जिस मन वा श्रोत्रादिकों की सेवा करते हों, उसमें स्थिर हो के जो **(एनः)** पाप वा अधर्म **(चकृम)** करा वा करेंगे सब **(अवयजामहे)** दूर करते रहें तथा जो-जो उन-उन उक्त स्थानों में **(स्वाहा)** सत्यवाणी से पुण्य वा धर्माचरण **(चकृम)** करना योग्य है **(तत्)** उस-उस को **(यजामहे)** प्राप्त होते रहें॥४५॥

भावार्थः-चारों आश्रमों में रहने वाले मनुष्यों को मन, वाणी और कर्मों से सत्य कर्मों का आचरण कर पाप वा अधर्मों का त्याग करके विद्वानों की सभा, विद्या तथा उत्तम-उत्तम शिक्षा का प्रचार करके प्रजा के सुखों की उन्नति करनी चाहिये॥४५॥

मो षू ण इत्यस्यागस्त्य ऋषिः। इन्द्रमारुतौ देवते। भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

ईश्वरशूरवीरसहायेन युद्धे विजयो भवतीत्युपदिश्यते॥

ईश्वर और शूरवीर के सहाय से युद्ध में विजय होता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

मो षू णऽइन्द्रात्र पृत्सु देवैरस्ति हि ष्मा ते शुष्मिन्नवयाः।

महश्चिद्यस्य मीढुषो यव्या हविष्मतो मरुतो वन्दते गीः॥४६॥

मोऽइति मो। सु। नः। इन्द्र। अत्र। पृत्स्विति पृत्ऽसु। देवैः। अस्ति। हि। स्म। ते। शुष्मिन्। अवया इत्यवऽयाः। महः। चित्। यस्य। मीढुषः। यव्या। हविष्मतः। मरुतः। वन्दते। गीः॥४६॥

पदार्थः-(मो) निषेधार्थे **(सु)** शोभनार्थे **निपातस्य च** [अष्टा०६.३.१३६] इति दीर्घः। **(नः)** अस्मान् **(इन्द्र)** जगदीश्वर सुवीर वा **(अत्र)** अस्मिन् संसारे **(पृत्सु)** संग्रामेषु। **पृत्स्विति संग्रामनामसु पठितम्।** (निघं०२.१७) **(देवैः)** विद्वद्भिः शूरैः **(अस्ति) (हि)** खलु **(स्म)** वर्तमाने। **निपातस्य च** [अष्टा०६.३.१३६] इति दीर्घः। **(ते)** तव **(शुष्मिन्)** अनन्तबलवन् पूर्णबलवन् वा। **शुष्ममिति बलनामसु पठितम्।** (निघं०२.९) **(अवयाः)** अवयजते विनिगृह्णाति **(महः)** महत्तरम् **(चित्)** उपमार्थे **(यस्य)** वक्ष्यमाणस्य **(मीढुषः)** विद्यादिसद्गुणसेचकान् **(यव्या)** यवेषु साधूनि हवींषि यव्यानि। अत्र **शेश्छन्दसि** [अष्टा०६.१.७०] इति शेर्लोपः। **(हविष्मतः)** प्रशस्तानि हवींषि विद्यन्ते येषु तान् **(मरुतः)** ऋत्विजः **(वन्दते)** स्तौति तद्गुणान् प्रकाशयति **(गीः)** वाणी। **गीरिति वाङ्नामसु पठितम्।** (निघं०१.११)। अयं मन्त्रः (शत०२.५.२.२६-२८) व्याख्यातः॥४६॥

अन्वयः-हे इन्द्र शूरवीरेश्वर! कृपया त्वमत्र पृत्सु देवैर्विद्वद्भिः सहितान् नोऽस्मान् सु रक्ष मो हिन्धि। हे शुष्मिन्! स्म ते तव महो गीर्ह्येतान् मीढुषो हविष्मतो मरुतो वन्दते चिदेते त्वां सततं वन्दन्तेऽभिवाद्यानदयन्तीव, योऽवया यजमानोऽस्ति, स त्वदाज्ञया यानि यव्या यव्यानि हवींष्यग्नौ जुहोति तानि सर्वान् प्राणिनः सुखयन्तीति॥४६॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। यदा मनुष्याः परमेश्वरमाराध्य सम्यक् सामग्रीः कृत्वा युद्धेषु शत्रून् विजित्य चक्रवर्तिराज्यं प्राप्य सम्पाल्य महान्तमानन्दं सेवन्ते तदा सुराज्यं जायत इति॥४६॥

पदार्थः-हे **(इन्द्र)** शूरवीर! आप **(अत्र)** इस लोक में **(पृत्सु)** युद्धों में **(देवैः)** विद्वानों के साथ **(नः)** हम लोगों की **(सु)** अच्छे प्रकार रक्षा कीजिये तथा **(मो)** मत हनन कीजिये। हे **(शुष्मिन्)** पूर्ण बलयुक्त शूरवीर! **(हि)** निश्चय करके **(चित्)** जैसे **(ते)** आपकी **(महः)** बड़ी **(गीः)** वेदप्रमाणयुक्त वाणी **(मीढुषः)** विद्या आदि उत्तम गुणों के सींचने वा **(हविष्मतः)** उत्तम-उत्तम हवि अर्थात् पदार्थयुक्त **(मरुतः)** ऋतु-ऋतु में यज्ञ करने वाले विद्वानों के **(वन्दते)** गुणों का प्रकाश करती है, जैसै विद्वान् लोग आप के गुणों का हम लोगों के अर्थ निरन्तर प्रकाश करके आनन्दित होते हैं, वैसे जो **(अवयाः)** यज्ञ करने वाला यजमान है, वह आपकी आज्ञा से जिन **(यव्या)** उत्तम-उत्तम यव आदि अन्नों को अग्नि में होम करता है, वे पदार्थ सब प्राणियों को सुख देने वाले होते हैं॥४६॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जब मनुष्य लोग परमेश्वर की आराधना कर अच्छे प्रकार सब सामग्री को संग्रह करके युद्ध में शत्रुओं को जीतकर चक्रवर्त्ति राज्य को प्राप्त कर प्रजा का अच्छे प्रकार पालन करके बड़े आनन्द को सेवन करते हैं, तब उत्तम राज्य होता है॥४६॥

अक्रन्नित्यस्यागस्त्य ऋषिः। अग्निर्देवता। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

के यज्ञयुद्धादिकर्माणि कर्तुं योग्या भवन्तीत्युपदिश्यते॥

कौन-कौन मनुष्य यज्ञ युद्ध आदि कर्मों के करने को योग्य होते हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अक्रन् कर्म कर्मकृतः सह वाचा मयोभुवा। देवेभ्यः कर्म कृत्वास्तं प्रेत सचाभुवः॥४७॥

अक्रन्। कर्म। कर्मकृत इति कर्मऽकृतः। सह। वाचा। मयोभुवेति मयःऽभुवा। देवभ्यः। कर्म। कृत्वा। अस्तम्। प्र। इत। सचाभुव इति सचाऽभुवः॥४७॥

पदार्थः-(अक्रन्) कुर्वन्ति **(अत्र)** लिङर्थे लुङ्। **मन्त्रे घसह्वर०** [अष्टा०२.४.८०] इति च्लेर्लुक्। **(कर्म) कर्तुरीप्सिततमं कर्म** (अष्टा०१.४.४९) कर्तुर्यदीप्सितमभीष्टयोग्यं चेष्टामयमुत्क्षेपणादिकमस्ति तत्कर्म्म **(कर्मकृतः)** ये कर्माणि कुर्वन्ति ते **(सह)** सङ्गे **(वाचा)** वेदवाण्या, स्वकीयया वा **(मयोभुवा)** या मयः सुखं भावयति तया सत्यप्रियमङ्गलकारिण्या। **मय इति सुखनामसु पठितम्।** (निघं०३.६) अत्रान्तर्गतो ण्यर्थः। **क्विप् च** [अष्टा०३.२.७५] इति क्विप्। **(देवेभ्यः)** विद्वद्भ्यो दिव्यगुणसुखेभ्यो वा **(कर्म)** क्रियमाणम् **(कृत्वा)** अनुष्ठाय **(अस्तम्)** सुखमयं गृहम्। **अस्तमिति गृहनामसु पठितम्।** (निघं०३.४) **(प्र)** प्रकृष्टार्थे **(इत)** प्राप्नुवन्ति। अत्र व्यत्ययो लडर्थे लोट् च। **(सचाभुवः)** ये सचा परस्परं संग्यनुषङ्गिणो भवन्ति ते। अयं मन्त्रः (शत०२.५.२.२९) व्याख्यातः॥४७॥

अन्वयः-ये मयोभुवा वाचा सह सचाभुवः कर्मकृतः कर्माक्रँस्त कर्माक्रँस्त एतत्कृत्वा देवेभ्यस्तं सुखमयं गृहं प्रेत प्राप्नुवन्ति॥४७॥

भावार्थः-मनुष्यैर्नित्यं पुरुषार्थे वर्तितव्यम्। न कदाचिदालस्ये स्थातव्यम् तथा वेदविद्यासंस्कृतया वाण्या सह भवितव्यम्, न च मूर्खत्वेन। सदा परस्परं प्रीत्या सहायः कर्तव्यः, ये चैवंभूतास्ते दिव्यसुखयुक्तं मोक्षाख्यं व्यावहारिकं चानन्दं प्राप्य मोदन्ते न चैवमलसा इति॥४७॥

पदार्थः-जो मनुष्य लोग **(मयोभुवा)** सत्यप्रिय मङ्गल के कराने वाली **(वाचा)** वेदवाणी वा अपनी वाणी के **(सह)** साथ **(सचाभुवः)** परस्पर संगी होकर **(कर्मकृतः)** कर्मों को करते हुए **(कर्म)** अपने अभीष्ट कर्म को **(अक्रन्)** करते हैं, वे **(देवेभ्यः)** विद्वान् वा उत्तम-उत्तम गुण वा सुखों के लिये **(कर्म)** करने योग्य कर्म वा **(कृत्वा)** अनुष्ठान करके **(अस्तम्)** पूर्णसुखयुक्त घर को **(प्रेत)** प्राप्त होते हैं॥४७॥

भावार्थः-मनुष्यों को योग्य है कि सर्वथा आलस्य को छोड़कर पुरुषार्थ ही में निरन्तर रह के मूर्खपन को छोड़ कर वेदविद्या से शुद्ध की हुई वाणी के साथ सदा वर्तें और परस्पर प्रीति करके एक-दूसरे का सहाय करें। जो इस प्रकार के मनुष्य हैं, वे ही अच्छे-अच्छे सुखयुक्त मोक्ष वा इस लोक के सुखों को प्राप्त होकर आनन्दित होते हैं, अन्य अर्थात् आलसी पुरुष आनन्द को कभी नहीं प्राप्त होते॥४७॥

अवभृथेत्यस्यौर्णवाभ ऋषिः। यज्ञो देवता। ब्राह्म्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथ यज्ञानुष्ठातृकृत्यमुपदिश्यते॥

अब अगले मन्त्र में यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले यजमान के कर्मों का उपदेश किया है॥

अवभृथ निचुम्पुण निचेरुरसि निचुम्पुणः।
अव देवैर्देवकृतमेनोऽयासिषमव मर्त्यैर्मर्त्यकृतं पुरुराव्णो देव रिषस्पाहि॥४८॥

अवभृथेत्यवऽभृथ। निचुम्पुणेति निऽचुम्पुण। निचेरुरिति निचेरुः। असि। निचुम्पुण इति निऽचुम्पुणः। अव। देवैः। देवकृतमिति देवऽकृतम्। एनः। अयासिषम्। अव। मर्त्यैः। मर्त्यकृतमिति मर्त्यऽकृतम्। पुरुऽराव्ण इति

पुरुऽराव्णः। देव। रिषः। पाहि॥४८॥

पदार्थः-(अवभृथ) विद्याधर्मानुष्ठानेन शुद्ध। अत्र **अवे भृञः** (उणा०२.३) इति क्थन् प्रत्ययः। **(निचुम्पुण)** धैर्येण शब्दविद्याध्यापक। नितरां चोपति मन्दं मन्दं चलति तत्सम्बुद्धौ। अत्र चुप्धातोर्बाहुलकादुणः प्रत्ययो मुमागमश्च। **नीचैरस्मिन् क्वणन्ति नीचैर्दधतीति वा। अवभृथ निचुम्पुणेत्यपि निगमो भवति। निचुम्पुण निचुङ्कुणेति च।** (निरु०५.१८)। **निचुम्पुण इति पदनामसु पठितम्।** (निघं०४.२) अनेन प्राप्तज्ञानो मनुष्यो गृह्यते। **(निचेरुः)** यो नितरां चिनोति सः। अत्र निपूर्वकाच्चिञ् धातोर्बाहुलकादौणादिको रुः प्रत्ययः। **(असि)** भव, अत्र लोडर्थे लट्। **(निचुम्पुणः)** उक्तार्थः **(अव)** विनिग्रहार्थे **(देवैः)** द्योतनात्मकैर्मनआदीन्द्रियैः **(देवकृतम्)** यद्देवैरिन्द्रियैः कृतं तत् **(एनः)** पापम् **(अयासिषम्)** करोमि, अत्र लडर्थे लुङ्। **(अव)** नीचगत्यर्थे **(मर्त्यैः)** मरणधर्मैः शरीरैः **(मर्त्यकृतम्)** अनित्यदेहेन निष्पादितम् **(पुरुराव्णः)** यः पुरूणि बहूनि दुःखानि राति ददाति स पुरुरावा तस्मात्। अत्र **आतो मनिन्क्वनिब्वनिपश्च** [अष्टा०३.२.७४] इति वनिप् प्रत्ययः। **(देव)** जगदीश्वर! **(रिषः)** हिंसकाच्छत्रोः पापाच्च **(पाहि)** रक्ष॥४८॥

अन्वयः-हे अवभृथ निचुम्पुण यथाहं निचुम्पुणो निचेरुः सन्देवैरिन्द्रियैर्देवकृतं मर्त्यैर्मर्त्यकृतमेनोऽवायासिषं दूरतस्त्यजामि तथा त्वमप्यसि भवावयाहि दूरतस्त्यज। हे देव! जगदीश्वरास्मान् पुरुराव्णो रिषो हिंसालक्षणात् पापात् पाहि दूरे रक्ष॥४८॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैः पापनिवृत्तये धर्मप्रवृत्तये परमेश्वरो नित्यं प्रार्थ्य यानि मनोवचःकर्मभिः पापानि सन्ति तेभ्यो दूरे स्थातव्यम्। यत्किंचिदज्ञानात् पापमनुष्ठितं तद् दुःखफलं विज्ञाय द्वितीयवारं न समाचरणीयम्, किन्तु सर्वदा पवित्रकर्मानुष्ठानमेव वर्धनीयम्॥४८॥

पदार्थः-हे **(अवभृथ)** विद्या धर्म के अनुष्ठान से शुद्ध **(निचुम्पुण)** धैर्य से शब्दविद्या को पढ़ाने वाले विद्वान् मनुष्य! जैसे मैं **(निचुम्पुणः)** ज्ञान को प्राप्त कराने वा **(निचेरुः)** निरन्तर विद्या का संग्रह करने वाला **(देवैः)** प्रकाशस्वरूप मन आदि इन्द्रियों से **(देवकृतम्)** किया वा **(मर्त्यैः)** मरणधर्मवाले **(मर्त्यकृतम्)** शरीरों से किये हुये **(एनः)** पापों को **(अव अयासिषम्)** दूर कर शुद्ध होता हूँ, वैसे तू भी **(असि)** हो। हे **(देव)** जगदीश्वर! आप हम लोगों की **(पुरुराव्णः)** बहुत दुःख देने वा **(रिषः)** मारने योग्य शत्रु वा पाप से **(पाहि)** रक्षा कीजिये अर्थात् दूर कीजिये॥४८॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को उचित है कि पाप की निवृत्ति, धर्म की वृद्धि के लिये परमेश्वर की प्रार्थना निरन्तर करके जो मन, वाणी वा शरीर से पाप होते हैं, उनसे दूर रह के जो कुछ अज्ञान से पाप हुआ हो, उसके दुःखरूप फल को जानकर, फिर दूसरी वार उसको कभी न करें, किन्तु सब काल में शुद्ध कर्मों के अनुष्ठान ही की वृद्धि करें॥४८॥

पूर्णादर्वीत्यस्यौर्णवाभ ऋषिः। यज्ञो देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

यज्ञे हुतं द्रव्यं कीदृशं भवतीत्युपदिश्यते॥

यज्ञ में हवन किया हुआ पदार्थ कैसा होता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

पूर्णा दर्वि परा पत सुपूर्णा पुनरापत। वस्नेव विक्रीणावहाऽइषमूर्जꣳ शतक्रतो॥४९॥

पूर्णा। दर्वि। परा। पत। सुपूर्णेति सुऽपूर्णा। पुनः। आ। पत। वस्नेवेति वस्नाऽईव। वि। क्रीणावहै। इषम्। ऊर्जम्। शतक्रतोऽइति शतऽक्रतो॥ ४९॥

पदार्थः-(पूर्णा) होतव्यद्रव्येण परिपूर्णा **(दर्वि)** पाकसाधिका होतव्यद्रव्यग्रहणार्था। अत्र **सुपां सुलुग्०** [अष्टा०७.१.३९] इति सुलोपः। **(परा)** ऊर्ध्वार्थे। **परेत्येतस्य प्रातिलोम्यं प्राह।** (निरु०१.३) **(पत)** पतति गच्छति। अत्रोभयत्र व्यत्ययो लडर्थे लोट् च। **(सुपूर्णा)** या सुष्ठु पूर्यते सा **(पुनः)** पश्चादर्थे **(आ)** समन्तात् **(पत)** पतति गच्छति **(वस्नेव)** पण्यक्रियेव **(वि)** विशेषार्थे क्रियायोगे **(क्रीणावहै)** व्यवहारयोग्यानि वस्तूनि दद्याव गृह्णीयाव वा **(इषम्)** अभीष्टमन्नम् **(ऊर्जम्)** पराक्रमम् **(शतक्रतो)** शतमसंख्याताः क्रतवः कर्माणि प्रज्ञा यस्येश्वरस्य तत्सम्बुद्धौ। अयं मन्त्रः (शत०२.५.३.१५-१७) व्याख्यातः॥४९॥

अन्वयः-या दर्वि होतव्यद्रव्येण पूर्णा होमसाधिका भूत्वा परापत पतत्यूर्ध्वं द्रव्यं गमयति, याऽऽहुतिराकाशं गत्वा वृष्ट्या पूर्णा भूत्वा पुनरापतति समन्तात् पृथिवीं शोभनं जलरसं गमयति, तया हे शतक्रतो तव कृपया आवामृत्विग्यज्ञपती वस्नेवेषमूर्जं च विक्रीणावहै॥४९॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। यन्मनुष्यैः सुगन्ध्यादिद्रव्यमग्नौ हूयते तदूर्ध्वं गत्वा वायुवृष्टिजलादिकं शोधयत् पुनः पृथिवीमागच्छति, येन यवादय ओषध्यः शुद्धाः सुखपराक्रमप्रदा जायन्ते। यथा वणिग्जनो रूप्यादिकं दत्त्वा गृहीत्वा द्रव्यान्तराणि क्रीणीते विक्रीणीते च, तथैवाग्नौ द्रव्याणि दत्त्वा प्रक्षिप्य वृष्टिसुखादिकं क्रीणीते वृष्ट्योषध्यादिकं गृहीत्वा पुनर्वृष्टये विक्रीणीतेऽग्नौ होमः क्रियत इति॥४९॥

पदार्थः-जो **(दर्वि)** पके हुए होम करने योग्य पदार्थों को ग्रहण करने वाली **(पूर्णा)** द्रव्यों से पूर्ण हुई आहुति **(परापत)** होम हुए पदार्थों के अंशों को ऊपर प्राप्त करती वा जो आहुति आकाश में जाकर वृष्टि से **(सुपूर्णा)** पूर्ण हुई **(पुनरापत)** फिर अच्छे प्रकार पृथिवी में उत्तम जलरस को प्राप्त करती है, उससे हे **(शतक्रतो)** असंख्यात कर्म वा प्रज्ञा वाले जगदीश्वर! आप की कृपा से हम यज्ञ कराने और करने वाले विद्वान् होता और यजमान दोनों **(इषम्)** उत्तम-उत्तम अन्नादि पदार्थ **(ऊर्जम्)** पराक्रमयुक्त वस्तुओं को **(वस्नेव)** वैश्यों के समान **(विक्रीणावहै)** दें वा ग्रहण करें॥४९॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जब मनुष्य लोग सुगन्ध्यादि पदार्थ अग्नि में हवन करते हैं, तब वे ऊपर जाकर वायु वृष्टि-जल को शुद्ध करते हुए पृथिवी को आते हैं, जिससे यव आदि ओषधि शुद्ध होकर सुख और पराक्रम के देने वाली होती हैं। जैसे कोई वैश्य लोग रुपया आदि को दे-ले कर अनेक प्रकार के अन्नादि पदार्थों को खरीदते वा बेचते हैं, वैसे हम सब लोग भी अग्नि में शुद्ध द्रव्यों को छोड़कर वर्षा वा अनेक सुखों को खरीदते हैं, खरीदकर फिर वृष्टि और सुखों के लिये अग्नि में हवन करते हैं॥४९॥

देहि म इत्यस्यौर्णवाभ ऋषिः। इन्द्रो देवता। भुरिगनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथ सर्वाश्रमव्यवहार उपदिश्यते॥

अब अगले मन्त्र में सब आश्रमों में रहने वाले मनुष्यों के व्यवहारों का उपदेश किया है॥

देहि मे ददामि ते नि मे धेहि नि ते दधे।

निहारं च हरासि मे निहारं निहराणि ते स्वाहा॥५०॥

दे॒हि। मे॒। ददा॑मि। ते॒। नि। मे॒। धे॒हि॒। नि। ते॒। द॒धे॒। नि॒हा॒र॒मिति॑ नि॒ऽहार॑म्। च॒। हरा॑सि। मे॒। नि॒हा॒र॒मिति॑ नि॒ऽहार॑म्। नि। ह॒रा॒णि॒। ते॒। स्वाहा॑॥५०॥

पदार्थः-(**देहि**) (**मे**) मह्यम् (**ददामि**) (**ते**) तुभ्यम् (**नि**) नितराम् (**मे**) मम (**धेहि**) धारय (**नि**) नितराम् (**ते**) तव (**दधे**) धारये (**निहारम्**) मूल्येन क्रेतव्यं वस्तु नितरां ह्रियते तत् (**च**) समुच्चये (**हरासि**) हर प्रयच्छ, अयं लेट् प्रयोगः। (**मे**) मह्यम् (**निहारम्**) पदार्थमूल्यम् (**नि**) नितराम् (**हराणि**) प्रयच्छानि (**ते**) तुभ्यम् (**स्वाहा**) सत्यावागाह। अयं मन्त्रः (शत०२.५.३.१९-२०) व्याख्यातः॥५०॥

अन्वयः-हे मित्र! त्वं यथा स्वाहासत्यावागाहेत्येवं मे मह्यमिदं देह्यहं च ते तुभ्यमिदं ददामि, त्वं मे ममेदं वस्तु निधेह्यहं ते तवेदं निदधे, त्वं मे मह्यं निहारं हरास्यहं ते तुभ्यं निहारं निहराणि नितरां ददानि॥५०॥

भावार्थः-सर्वैर्मनुष्यैर्दानग्रहणनिःक्षेपोपनिध्यादिव्यवहाराः सत्यत्वेनैव कार्याः। तद्यथा केनचिदुक्तमिदं वस्तु त्वया देयं न वा। यदि वदेद् ददामि दास्यामि वेति तर्हि तत्तथैव कर्तव्यम्। केनचिदुक्तं ममेदं वस्तु त्वं स्वसमीपे रक्ष, यदाहमिच्छेयम्, तदा देयम्। एवमहं तवेदं वस्तु रक्षयामि, यदा त्वमेष्यसि तदा दास्यामि। तस्मिन् समये दास्यामि, त्वत्समीपमागमिष्यामि वा, त्वया ग्राह्यम्, मम समीपमागन्तव्यमित्यादयो व्यवहाराः सत्यवाचा कार्याः। नैतैर्विना कस्यचित् प्रतिष्ठाकार्यसिद्धी स्यातां नैताभ्यां विना कश्चित् सततं सुखं प्राप्तुं शक्नोतीति॥५०॥

पदार्थः-हे मित्र! तुम (**स्वाहा**) जैसे सत्यवाणी हृदय में कहे वैसे (**मे**) मुझ को यह वस्तु (**देहि**) दे वा मैं (**ते**) तुझ को यह वस्तु (**ददामि**) देऊँ वा देऊँगा तथा तू (**मे**) मेरी यह वस्तु (**निधेहि**) धारण कर मैं (**ते**) तुम्हारी यह वस्तु (**निदधे**) धारण करता हूँ और तू (**मे**) मुझको (**निहारम्**) मोल से खरीदने योग्य वस्तु को (**हरासि**) ले। मैं (**ते**) तुझको (**निहारम्**) पदार्थों का मोल (**निहराणि**) निश्चय करके देऊँ (**स्वाहा**) ये सब व्यवहार सत्यवाणी से करें, अन्यथा से व्यवहार सिद्ध नहीं होते हैं॥५०॥

भावार्थः-सब मनुष्यों को देना-लेना, पदार्थों को रखना-रखवाना वा धारण करना आदि व्यवहार सत्यप्रतिज्ञा से ही करने चाहिये। जैसे किसी मनुष्य ने कहा कि यह वस्तु तुम हमको देना, मैं यह देता तथा देऊँगा, ऐसा कहे तो वैसा ही करना। तथा किसी ने कहा कि मेरी यह वस्तु तुम अपने पास रख लेओ, जब इच्छा करूँ तब तुम दे देना। इसी प्रकार मैं तुम्हारी यह वस्तु रख लेता हूँ, जब तुम इच्छा करोगे तब देऊँगा वा उसी समय मैं तुम्हारे पास आऊँगा वा तुम आकर ले लेना इत्यादि ये सब व्यवहार सत्यवाणी ही से करने चाहियें और ऐसे व्यवहारों के विना किसी मनुष्य की प्रतिष्ठा वा कार्यों की सिद्धि नहीं होती और इन दोनों के विना कोई मनुष्य सुखों को प्राप्त होने को समर्थ नहीं हो सकता॥५०॥

अक्षन्नित्यस्य गोतम ऋषिः। इन्द्रो देवता। विराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

तेन यज्ञादिव्यवहारेण किं भवतीत्युपदिश्यते॥

उस यज्ञादि व्यवहार से क्या-क्या होता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अक्ष॒न्नमी॑मदन्त॒ ह्यव॑ प्रि॒याऽअ॑धूषत।

अस्तो॑षत॒ स्वभा॑नवो॒ विप्रा॒ नवि॑ष्ठया म॒ती योजा॒ न्विन्द्र ते॒ हरी॑॥५१॥

अक्ष॑न्। अमी॑मदन्त। हि। अव॑। प्रि॒याः। अ॒धू॒ष॒त॒। अस्तो॑षत। स्वभा॑नव॒ इति॑ स्वऽभा॑नवः। विप्राः॑। नवि॑ष्ठया।

मती। योज। नु। इन्द्र। ते। हरीऽइति हरी॥५१॥

पदार्थः-(अक्षन्) अदन्ति। अत्र लडर्थे लुङ्। **मन्त्रे घसह्व०** [अष्टा०२.४.८०] इति च्लेर्लुक्। **गमहनजन०** [अष्टा०६.४.९८] इत्युपधालोपः। **शासिवसिघ०** [अष्टा०८.३.६०] इति षत्वम्। **खरि च** [अष्टा०८.४.५५] इति चर्त्वम्। **(अमीमदन्त)** आनन्दयन्ति, अत्र लडर्थे लुङ्। **(हि)** खलु **(अव)** विरुद्धार्थे **(प्रियाः)** प्रसन्नताकारकाः **(अधूषत)** दुष्टान् दोषाँश्च कम्पयन्ति। अत्र लडर्थे लुङ्। **(अस्तोषत)** स्तुवन्ति। अत्र लडर्थे लुङ्। **(स्वभानवः)** स्वकीया भानुर्दीप्तिः प्रकाशो येषां ते **(विप्राः)** मेधाविनः **(नविष्ठया)** अतिशयेन नवा नविष्ठा तया **(मती)** मत्या। अत्र **सुपां सुलुग्०** [अष्टा०७.१.३९] इति पूर्वसवर्णादेशः। **(योज)** योजयति। अत्र विकरणव्यत्ययेन शप्। लडर्थे लोडन्तर्गतो ण्यर्थो **द्व्यचोऽतस्तिङः** [अष्टा०६.३.१३५] इति दीर्घश्च। **(नु)** क्षिप्रार्थे **(इन्द्र)** सभापते! **(ते)** अस्य **(हरी)** बलपराक्रमौ। अयं मन्त्रः (शत०२.६.१.३८) व्याख्यातः॥५१॥

अन्वयः-हे इन्द्र! ते तव ये स्वभानवोऽवप्रिया विप्रा नविष्ठया मती मत्या हि खलु परमेश्वरमस्तोषत स्तुवन्त्यक्षन् श्रेष्ठान्नादिकमदन्त्यमीमदन्तानन्दयन्ति तस्मात् तं शत्रून् दुःखानि च न्वधूषत क्षिप्रं धुन्वन्ति, त्वमप्येतेषु स्वकीयौ हरी बलपराक्रमौ योज संयोजय॥५१॥

भावार्थः-(अत्रोपमालङ्कारः।) मनुष्यैः प्रतिदिनं नवीनविज्ञानक्रियावर्द्धनेन भवितव्यम्। यथा विद्वत्सङ्गशास्त्राध्ययनेन नवीनान्नवीनां मतिं क्रियां च जनयन्ति, तथैव सर्वैर्मनुष्यैरनुष्ठेयमिति॥५१॥

पदार्थः-हे **(इन्द्र)** सभा के स्वामी! जो **(ते)** आपके सम्बन्धी मनुष्य **(स्वभानवः)** अपनी ही दीप्ति से प्रकाश होने वा **(अव प्रियाः)** औरों को प्रसन्न कराने वाले **(विप्राः)** विद्वान् लोग **(नविष्ठया)** अत्यन्त नवीन **(मती)** बुद्धि से **(हि)** निश्चय करके परमात्मा की **(अस्तोषत)** स्तुति और **(अक्षन्)** उत्तम-उत्तम अन्नादि पदार्थों को भक्षण करते हुए **(अमीमदन्त)** आनन्द को प्राप्त होते और उसी से वे शत्रु वा दुःखों को **(न्वधूषत)** शीघ्र कम्पित करते हैं, वैसे ही यज्ञ में **(इन्द्र)** हे सभापते! **(ते)** आपके सहाय से इस यज्ञ में निपुण हों और तू **(हरी)** अपने बल और पराक्रम को हम लोगों के साथ **(योज)** संयुक्त कर॥५१॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को उचित है कि प्रतिदिन नवीन-नवीन ज्ञान वा क्रिया की वृद्धि करते रहें। जैसे मनुष्य विद्वानों के सत्सङ्ग वा शास्त्रों के पढ़ने से नवीन-नवीन बुद्धि, नवीन-नवीन क्रिया को उत्पन्न करते हैं, वैसे ही सब मनुष्यों को अनुष्ठान करना चाहिये॥५१॥

सुसंदृशमित्यस्य गोतम ऋषिः। इन्द्रो देवता। विराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

स इन्द्रः कीदृश इत्युपदिश्यते॥

वह इन्द्र कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

सुसन्दृशं त्वा वयं मघवन् वन्दिषीमहि।

प्र नूनं पूर्णबन्धुर स्तुतो यासि वशाँ२ऽअनु योजा न्विन्द्र ते हरी॥५२॥

सुसंदृशमिति सुऽसंदृशम्। त्वा। वयम्। मघवन्निति मघऽवन्। वन्दिषीमहि। प्र। नूनम्। पूर्णबन्धुर इति पूर्णऽबन्धुरः। स्तुतः। यासि। वशान्। अनु। योज। नु। इन्द्र। ते। हरीऽइति हरी॥५२॥

पदार्थः-(**सुसंदृशम्**) यः सुष्ठु पश्यति दर्शयति वा तम् (**त्वा**) त्वां तं वा (**वयम्**) मनुष्याः (**मघवन्**) परमोत्कृष्टधनयुक्तेश्वर! धनप्राप्तिहेतुर्वा (**वन्दिषीमहि**) नमेम स्तुवीमहि (**प्र**) प्रकृष्टार्थे (**नूनम्**) निश्चयार्थे (**पूर्णबन्धुरः**) यः पूर्णश्चासौ बन्धुरश्च सः। पूर्णस्य जगतो बन्धुरो बन्धनहेतुर्वा (**स्तुतः**) स्तुत्या लक्षितः (**यासि**) प्राप्नोषि प्रापयति वा। अत्र पक्षे व्यत्ययः (**वशान्**) कामयमानान् पदार्थान् (**अनु**) पश्चात् (**योज**) योजय युङ्क्ते वा। अत्रापि पूर्ववद् व्यत्ययदीर्घत्वे। (**नु**) उपमार्थे (**इन्द्र**) जगदीश्वर सूर्यस्य वा (**ते**) तवास्य वा (**हरी**) बलपराक्रमौ धारणाकर्षणे वा। अयं मन्त्रः (शत०२.६.१.३८) व्याख्यातः॥५२॥

अन्वयः-हे मघवन्निन्द्र! वयं सुसंदृशं त्वा त्वां वन्दिषीमहि अस्माभिः स्तुतः पूर्णबन्धुरः संस्त्वं वशान् कामान् यासि प्रापयसि ते तव हरी त्वमनु प्रयोजेत्येकः॥१॥५२॥

वयं सुसंदृशं मघवन् मघवन्तं पूर्णबन्धुरं त्वा तमिमं सूर्यलोकं नूनं वन्दिषीमहि। स्तुतः प्रकाशितगुणः सन्नयं वशानुत्कृष्टव्यवहारसाधकान् कामान् यासि प्रापयति। हे विद्वंस्त्वं यथा तेऽस्येन्द्रस्य हरी अस्मिन् जगति युङ्क्तः, तथैव विद्यासिद्धिकराण्यनुप्रयोजेति द्वितीयः॥२॥५२॥

भावार्थः-अत्र श्लेषोपमालङ्कारौ। मनुष्यैः सर्वजगद्धितकारी जगदीश्वरो वन्दितव्यो नैवेतरः। यथा सूर्यो मूर्तद्रव्याणि प्रकाशयति तथोपासितः सोऽपि भक्तजनात्मसु विज्ञानोत्पादनेन सर्वान् सत्यव्यवहारान् प्रकाशयति तस्मान्नैवेश्वरं विहाय कस्यचिदन्यस्योपासनं कर्तव्यमिति॥५२॥

पदार्थः-हे (**मघवन्**) उत्तम-उत्तम विद्यादि धनयुक्त (**इन्द्र**) परमात्मन्! (**वयम्**) हम लोग (**सुसंदृशम्**) अच्छे प्रकार व्यवहारों के देखने वाले (**त्वा**) आपकी (**नूनम्**) निश्चय करके (**वन्दिषीमहि**) स्तुति करें तथा हम लोगों से (**स्तुतः**) स्तुति किये हुए आप (**वशान्**) इच्छा किये हुए पदार्थों को (**यासि**) प्राप्त कराते हो और (**ते**) अपने (**हरी**) बल पराक्रमों को आप (**अनुप्रयोज**) हम लोगों के सहाय के अर्थ युक्त कीजिये॥१॥५२॥

(**वयम्**) हम लोग (**सुसंदृशम्**) अच्छे प्रकार पदार्थों को दिखाने वा (**मघवन्**) धन को प्राप्त कराने तथा (**पूर्णबन्धुरः**) सब जगत् के बन्धन के हेतु (**त्वा**) उस सूर्यलोक की (**नूनम्**) निश्चय करके (**वन्दिषीमहि**) स्तुति अर्थात् इसके गुण प्रकाश करते हैं। (**स्तुतः**) स्तुति किया हुआ यह हम लोगों को (**वशान्**) उत्तम-उत्तम व्यवहारों को सिद्धि कराने वाली कामनाओं को (**यासि**) प्राप्त कराता है (**नु**) जैसे (**ते**) इस सूर्य के (**हरी**) धारण-आकर्षण गुण जगत् में युक्त होते हैं, वैसे आप हम लोगों को विद्या की सिद्धि करने वाले गुणों को (**अनुप्रयोज**) अच्छे प्रकार प्राप्त कीजिये॥२॥५२॥

भावार्थः-इस मन्त्र में श्लेष और उपमालङ्कार हैं। मनुष्यों को सब जगत् के हित करने वाले जगदीश्वर ही की स्तुति करनी और किसी की न करनी चाहिये, क्योंकि जैसे सूर्यलोक सब मूर्तिमान् द्रव्यों का प्रकाश करता है, वैसे उपासना किया हुआ ईश्वर भी भक्तजनों के आत्माओं में विज्ञान को उत्पन्न करने से सब सत्यव्यवहारों को प्रकाशित करता है। इससे ईश्वर को छोड़कर और किसी की उपासना कभी न करनी चाहिये॥५२॥

मनो न्वित्यस्य बन्धुर्ऋषिः। मनो देवता। अतिपादनिचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अथ मनसो लक्षणमुपदिश्यते॥

इसके आगे मन के लक्षण का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

मनो न्वाह्वामहे नाराशꣳसेन स्तोमेन। पितृणां च मन्मभिः॥५३॥

मनः। नु। आ। ह्वामहे। नाराशꣳसेन। स्तोमेन। पितृणाम्। च। मन्मभिरिति मन्मऽभिः॥५३॥

पदार्थः-(**मनः**) मननशीलं संकल्पविकल्पात्मकम् (**नु**) क्षिप्रार्थे (**आ**) समन्तात् क्रियायोगे (**ह्वामहे**) स्पर्धामहे (**नाराशंसेन**) नराणां समन्ताच्छंसः प्रशंसनं नराशंसः, नराशंसेन निर्वृत्तस्तेन (**स्तोमेन**) स्तुतियुक्तेन व्यवहारेण (**पितृणाम्**) पालकानामृतूनां ज्ञानवतां मनुष्याणां वा (**च**) समुच्चये (**मन्मभिः**) मन्यन्ते जानन्ति यैस्तैः। अत्र **सर्वधातुभ्यो मनिन्** (उणा०४.१४५) इति मनिन् प्रत्ययः। अयं मन्त्रः (शत०२.६.१.३९) व्याख्यातः॥५३॥

अन्वयः-वयं नाराशंसेन स्तोमेन पितृणां च मन्मभिर्मनो न्वाह्वामहे॥५३॥

भावार्थः-मनुष्यैर्मनुष्यजन्मसाफल्यार्थं विद्यादिगुणयुक्तं मनः कर्तव्यम्। यथर्तवः स्वान् स्वान् गुणान् क्रमेण प्रकाशयन्ति, यथा च विद्वांसः क्रमशोऽन्यामन्यां च विद्यां साक्षात् कुर्वन्ति, तथैव सततमनुष्ठाय विद्याप्रकाशौ प्राप्तव्यौ॥५३॥

पदार्थः-हम लोग (**नाराशंसेन**) पुरुषों के अत्यन्त प्रशंसनीय (**स्तोमेन**) स्तुतियुक्त व्यवहार और (**पितृणाम्**) पालना करने वाले ऋतु वा ज्ञानवान् मनुष्यों के (**मन्मभिः**) जिनसे सब गुण जाने जाते हैं, उन गुणों के साथ (**मनः**) संकल्पविकल्पात्मक चित्त को (**न्वाह्वामहे**) सब ओर से हटाके दृढ़ करते हैं॥५३॥

भावार्थः-मनुष्यों को मनुष्यजन्म की सफलता के लिय विद्या आदि गुणों से युक्त मन को करना चाहिये। जैसे ऋतु अपने-अपने गुणों को क्रम-क्रम से प्रकाशित करते हैं, तथा जैसे विद्वान् लोग क्रम-क्रम से अनेक प्रकार की अन्य-अन्य विद्याओं को साक्षात्कार करते हैं, वैसा ही पुरुषार्थ करके सब मनुष्यों को निरन्तर विद्या और प्रकाश की प्राप्ति करनी चाहिये॥५३॥

आ न एत्वित्यस्य बन्धुर्ऋषिः। मनो देवता। विराड् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तन्मनः कीदृशमित्युपदिश्यते॥

फिर वह मन कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

आ नऽएतु मनः पुनः क्रत्वे दक्षाय जीवसे। ज्योक् च सूर्यं दृशे॥५४॥

आ। नः। एतु। मनः। पुनरिति पुनः। क्रत्वे। दक्षाय। जीवसे। ज्योक्। च। सूर्यम्। दृशे॥५४॥

पदार्थः-(**आ**) समन्तात् (**नः**) अस्मान् (**एतु**) प्राप्नोतु (**मनः**) स्मरणात्मकं चित्तम् (**पुनः**) वारं वारं जन्मनि जन्मनि वा (**क्रत्वे**) सद्विद्याशुभकर्मानुभूतसंस्कारस्मृतये। **क्रतुरिति कर्मनामसु पठितम्।** (निघं०२.१) (**दक्षाय**) बलप्राप्तये। **दक्ष इति बलनामसु पठितम्।** (निघं०२.९) (**जीवसे**) जीवितुम्। अत्र **तुमर्थे से०** [अष्टा०३.४.९]। इत्यसे प्रत्ययः (**ज्योक्**) निरन्तरम् (**च**) समुच्चये (**सूर्यम्**) परमेश्वरं सवितृमण्डलं प्राणं वा (**दृशे**) द्रष्टुम्। अत्र **दृशे विख्ये च** (अष्टा०३.४.११) इत्ययं निपातितः। अयं मन्त्रः (शत०२.६.१.३९) व्याख्यातः॥५४॥

अन्वयः-यन्मनश्चित्तं ज्योक् निरन्तरं सूर्यं दृशे क्रत्वे दक्षाय जीवसे चान्येषां शुभकर्मणामनुष्ठानायास्ति तन्नोऽस्मान् पुनः पुनरासमन्तादेतु प्राप्नोतु॥५४॥

भावार्थः-मनुष्यैः श्रेष्ठकर्मानुष्ठानेन चित्तशुद्धिं कृत्वा पुनः पुनर्जन्मनि चित्तप्राप्तिरेवापेक्ष्या येन मनुष्यजन्म

प्राप्येश्वरोपासनं संराध्य निरन्तरं सद्धर्मोनुसेव्य इति॥५४॥

पदार्थः-(**मनः**) जो स्मरण करने वाला चित्त (**ज्योक्**) निरन्तर (**सूर्यम्**) परमेश्वर, सूर्यलोक वा प्राण को (**दृशे**) देखने वा (**क्रत्वे**) उत्तम विद्या वा उत्तम कर्मों की स्मृति वा (**जीवसे**) सौ वर्ष से अधिक जीने (**च**) और अन्य शुभ कर्मों के अनुष्ठान के लिये है, वह (**नः**) हम लोगों को (**पुनः**) वार-वार जन्म-जन्म में (**आ**) सब प्रकार से (**एतु**) प्राप्त हो॥५४॥

भावार्थः-मनुष्यों को [चाहिये कि] उत्तम कर्मों के अनुष्ठान के लिये चित्त की शुद्धि वा जन्म-जन्म में उत्तम चित्त की प्राप्ति ही की इच्छा करें, जिससे मनुष्य जन्म को प्राप्त होकर ईश्वर की उपासना का साधन करके उत्तम-उत्तम धर्मों का सेवन कर सकें॥५४॥

पुनर्न इत्यस्य बन्धुर्ऋषिः। मनो देवता। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनर्मनः शब्देन बुद्धिरुपदिश्यते॥

फिर मन शब्द से बुद्धि का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

पुनर्नः पितरो मनो ददातु दैव्यो जनः। जीवं व्रातꣳ सचेमहि॥५५॥

पुनः। नः। पितरः। मनः। ददातु। दैव्यः। जनः। जीवम्। व्रातम्। सचेमहि॥५५॥

पदार्थः-(**पुनः**) अस्मिन् जन्मनि पुनर्जन्मनि वा (**नः**) अस्मभ्यम् (**पितरः**) पान्त्यन्नसुशिक्षाविद्यादानेन तत्सम्बुद्धौ (**मनः**) धारणावतीं बुद्धिम् (**ददातु**) प्रयच्छतु (**दैव्यः**) यो देवेषु विद्वत्सु जातो विद्वान्। अत्र **देवाद्यञञौ** (अष्टा०४.१.८५) इति वार्तिकेन प्राग्दीव्यतीयान्तर्गते जातेऽर्थे यञ् प्रत्ययः। (**जनः**) यो विद्याधर्माभ्यां परोपकारान् जनयति प्रकटयति (**जीवम्**) ज्ञानसाधनयुक्तम् (**व्रातम्**) व्रतानां सत्यभाषणादीनां समूहस्तत् (**सचेमहि**) समवेयाम। अयं मन्त्रः (शत०२.६.१.३९) व्याख्यातः॥५५॥

अन्वयः-हे पितरो जनका विद्याप्रदाश्च भवच्छिक्षया दैव्यो जनो विद्वान् नोऽस्मभ्यं पुनः पुनर्मनोधारणावतीं बुद्धिं ददातु, येन वयं जीवं व्रातं सचेमहि समवेयाम॥५५॥

भावार्थः-नहि मनुष्याणां विदुषां मातापित्राचार्याणां च सुशिक्षया विना मनुष्यजन्मसाफल्यं सम्भवति, न च मनुष्यास्तया विना पूर्णं जीवनं कर्म च समवैतुं शक्नुवन्ति, तस्मात् सर्वदा मातापित्राचार्यैः स्वसन्तानानि सम्यगुपदेशेन शरीरात्मबलवन्ति कर्त्तव्यानीति॥५५॥

पदार्थः-हे (**पितरः**) उत्पादक वा अन्न, शिक्षा वा विद्या को देकर रक्षा करने वाले पिता आदि लोग आपकी शिक्षा से यह (**दैव्यः**) विद्वानों के बीच में उत्पन्न हुआ (**जनः**) विद्या वा धर्म से दूसरे के लिये उपकारों को प्रकट करने वाला विद्वान् पुरुष (**नः**) हम लोगों के लिये (**पुनः**) इस जन्म वा दूसरे जन्म में (**मनः**) धारणा करने वाली बुद्धि को (**ददातु**) देवे, जिससे (**जीवम्**) ज्ञानसाधनयुक्त जीवन वा (**व्रातम्**) सत्य बोलने आदि गुण समुदाय को (**सचेमहि**) अच्छे प्रकार प्राप्त करें॥५५॥

भावार्थः-विद्वान् माता-पिता आचार्यों की शिक्षा के विना मनुष्यों का जन्म सफल नहीं होता और मनुष्य भी उस शिक्षा के विना पूर्ण जीवन वा कर्म के संयुक्त करने को समर्थ नहीं हो सकते। इस से सब काल में विद्वान् माता-पिता और आचार्यों को उचित है कि अपने पुत्र आदि को अच्छे प्रकार उपदेश से शरीर और आत्मा के बल

वाले करें॥५५॥

वयमित्यस्य बन्धुर्ऋषिः। सोमो देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अथ सोमशब्देनेश्वरौषधिरसा उपदिश्यन्ते॥

अब सोमशब्द से ईश्वर और ओषधियों के रसों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

व॒यꣳ सोम व्र॒ते तव॒ मन॑स्त॒नूषु॒ बिभ्र॑तः। प्र॒जाव॑न्तः सचेमहि॥५६॥

व॒यम्। सो॒म॒। व्र॒ते। तव॑। मनः॑। त॒नूषु॑। बिभ्र॑तः। प्र॒जाव॑न्त॒ इति॑ प्र॒जाऽव॑न्तः। स॒चे॒म॒हि॒॥५६॥

पदार्थः-(**वयम्**) मनुष्याः (**सोम**) सुवति चराचरं जगत् तत्सम्बुद्धौ जगदीश्वर! अथवा सूयन्ते रसा यस्मात् स सोम ओषधिराजः (**व्रते**) सत्यभाषणादिधर्मानुष्ठाने (**तव**) अस्य वा (**मनः**) अन्तःकरणस्याहङ्कारादिवृत्तिम् (**तनूषु**) विस्तृतसुखशरीरेषु (**बिभ्रतः**) धारयन्तः पोषयन्तश्च (**प्रजावन्तः**) बह्व्यः सुसन्तानराष्ट्राख्याः प्रजा विद्यन्ते येषान्ते। अत्र भूम्न्यर्थे मतुप्। (**सचेमहि**) समवेयाम॥५६॥

अन्वयः-हे सोम जगदीश्वर! तव सत्याचरणरूपे व्रते वर्तमानास्तनूषु मनो बिभ्रतः प्रजावन्तः सन्तो वयं सर्वैः सुखैः सचेमहि समवेयामेत्येकः॥१॥५६॥

तवास्य सोमस्य व्रते सत्याचरणनिमित्ते तनूषु मनो बिभ्रतः सन्तः प्रजावन्तो भूत्वा वयं सर्वैः सुखैः सचेमहि नित्यं समवेयामेति द्वितीयः॥२॥॥५६॥

भावार्थः-अत्र श्लेषालङ्कारः। ईश्वरस्याज्ञायां वर्तमाना मनुष्याः शरीरात्मसुखं नित्यं प्राप्नुवन्ति। एवं सोमाद्योषधिसेविनोऽपि तत्सुखं समवयन्ति नेतर इति॥५६॥

पदार्थः-हे (**सोम**) सब जगत् को उत्पन्न करने वाले जगदीश्वर! (**तव**) आपको (**व्रते**) सत्यभाषण आदि धर्मों के अनुष्ठान में वर्त्तमान होके (**तनूषु**) बड़े-बड़े सुखयुक्त शरीरों में (**मनः**) अन्तःकरण की अहङ्कारादि वृत्ति को (**बिभ्रतः**) धारण करते हुए और (**प्रजावन्तः**) बहुत पुत्र आदि राष्ट्र आदि धन वाले होके हम लोग (**सचेमहि**) सब सुखों को प्राप्त होवें॥१॥५६॥

(**तव**) इस (**सोम**) सोमलता आदि ओषधियों के (**व्रते**) सत्य-सत्य गुण ज्ञान के सेवन में (**तनूषु**) सुखयुक्त शरीरों में (**मनः**) चित्त की वृत्ति को (**बिभ्रतः**) धारण करते हुए (**प्रजावन्तः**) पुत्र, राज्य आदि धनवाले होकर (**वयम्**) हम लोग (**सचेमहि**) सब सुखों को प्राप्त होवें॥२॥५६॥

भावार्थः-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। ईश्वर की आज्ञा में वर्तमान हुए मनुष्य लोग शरीर आत्मा के सुखों को निरन्तर प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार युक्ति से सोम आदि ओषधियों के सेवन से उन सुखों को प्राप्त होते हैं, परन्तु आलसी मनुष्य नहीं॥५६॥

एष त इत्यस्य बन्धुर्ऋषिः। रुद्रो देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथ मनलक्षणकथनानन्तरं प्राणलक्षणमुपदिश्यते॥

मन के लक्षण कहने के अनन्तर प्राण के लक्षण का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

एष ते रुद्र भागः सह स्वस्राम्बिकया तं जुषस्व स्वाहैष ते रुद्र भागऽआखुस्ते पशुः॥५७॥

एषः। ते। रुद्र। भागः। सह। स्वस्रा। अम्बिकया। तम्। जुषस्व। स्वाहा। एषः। ते। रुद्र। भागः। आखुः। ते। पशुः॥५७॥

पदार्थः-(**एषः**) प्रत्यक्षः (**ते**) तवास्य वा (**रुद्र**) रोदयत्यन्यायकारिणो जनान् स रुद्रः स्तोता तत्सम्बुद्धौ। **रुद्र इति स्तोतृनामसु पठितम्।** (निघं०३.१६)। रुद्र इत्येतस्य त्रयस्त्रिंशद्देवव्याख्याने प्राणसंज्ञेत्युक्तम्। **रुद्र रौतीति सतो रोरूयमाणो द्रवतीति वा, रोदयतेर्वा, यदरुदत्तद्रुद्रस्य रुद्रत्वमिति काठकम्, यदरोदीत् तद्रुद्रस्य रुद्रत्वमिति हारिद्रविकम्** (निरु०१०.५)। **रोदेर्णिलुक् च** (उणा०२.२२) अनेन रुद्रशब्दः सिद्धः। (**भागः**) सेवनीयः (**सह**) सङ्गे (**स्वस्रा**) सुष्ठ्वस्यति प्रक्षिपति यया विद्यया क्रियया वा तया। **सावसेर्ऋन्** (उणा०२.९६) अनेन स्वसृशब्दः सिध्यति। (**अम्बिकया**) अम्बते शब्दयति यया तया (**तम्**) भागम् (**जुषस्व**) सेवस्व सेवते वा। अत्र पक्षे व्यत्ययो लडर्थे लोट् च। (**स्वाहा**) शोभनं देयमादेयमाह यया सा (**एषः**) वक्ष्यमाणः (**ते**) तवास्य वा (**रुद्र**) उक्तार्थः (**भागः**) भजनीयः (**आखुः**) समन्तात् खनत्यवदृणाति येन भोजनसाधनेन सः। अत्र **आङ्परयोः खनिशृभ्यां डिच्च** (उणा०१.३३) इति कुप्रत्ययो डित्संज्ञा च। (**पशुः**) यो दृश्यते भोग्यपदार्थसमूहः समक्षे स्थापितः सः। अत्र **अजिदृशिकमिः** (उणा०१.२७) इत्यौणादिकसूत्रेणास्य सिद्धिः। अयं मन्त्रः (शत०२.६.२.९-१०) व्याख्यातः॥५७॥

अन्वयः-हे रुद्र स्तोतस्ते तवैषो भागोऽस्ति, तं त्वमम्बिकया स्वस्रा सह जुषस्व। हे रुद्र! ते तवैषोऽयं भागः स्वाहास्ति, तं सेवस्व। हे रुद्र! ते तवैष आखुः पशुश्चास्ति, तं जुषस्व सेवस्वेत्येकः॥१॥५७॥

योऽयं रुद्रः प्राणस्तेऽस्य रुद्रस्य योऽयं भागोऽयमम्बिकया स्वस्रा सह जुषस्व सेवते, तेऽस्य रुद्रस्यैषोऽयं स्वाहाभागस्तथा यस्तेऽस्याखुः पशुश्चास्ति, यमयं सततं सेवते तं सर्वे मनुष्याः सेवन्ताम्॥२॥५७॥

भावार्थः-अत्र श्लेषालङ्कारः। यथा भ्राता प्रियया विदुष्या भगिन्या सह वेदादिशब्दविद्यां पठित्वाऽऽनन्दं भुङ्क्ते, यथा चाऽयं प्राणः श्रेष्ठया शब्दविद्यया प्रियो जायते, तथैव विद्वान् शब्दविद्यां प्राप्य सुखी जायते। नैताभ्यां विना कश्चिदपि सत्यं ज्ञानं सुखभोगं च प्राप्तुं शक्नोतीति॥५७॥

पदार्थः-हे (**रुद्र**) अन्यायकारी मनुष्यों को रुलाने वाले विद्वन्! जो (**ते**) तेरा (**एषः**) यह (**भागः**) सेवन करने योग्य पदार्थ समूह है, उस को तू (**अम्बिकया**) वेदवाणी वा (**स्वस्रा**) उत्तम विद्या वा क्रिया के (**सह**) साथ (**जुषस्व**) सेवन कर तथा हे (**रुद्र**) विद्वन्! जो (**ते**) तेरा (**एषः**) यह (**भागः**) धर्म से सिद्ध अंश वा (**स्वाहा**) वेदवाणी है, उस का सेवन कर और हे (**रुद्र**) विद्वन्! जो (**ते**) तेरा (**एषः**) यह (**आखुः**) खोदने योग्य शस्त्र वा (**पशुः**) भोग्य पदार्थ है (**तम्**) उसको (**जुषस्व**) सेवन कर॥१॥५७॥

जो (**एषः**) यह (**रुद्र**) प्राण है (**ते**) जिसका (**एषः**) यह (**भागः**) भाग है, जिसको (**अम्बिकया**) वाणी वा (**स्वस्रा**) विद्याक्रिया के (**सह**) साथ (**जुषस्व**) सेवन करता वा जो (**ते**) जिसका (**स्वाहा**) सत्यवाणी रूप (**भागः**) भाग है और जो इसके (**आखुः**) खोदने वाले पदार्थ वा (**पशुः**) दर्शनीय भोग्य पदार्थ हैं, जिसका यह (**जुषस्व**) सेवन करता है, उसका सेवन सब मनुष्य सदा करें॥२॥५७॥

भावार्थः-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जैसे भाई पूर्ण विद्यायुक्त अपनी बहिन के साथ वेदादि शब्दविद्या को पढ़कर आनन्द को भोगता है, वैसे विद्वान् भी विद्या को प्राप्त होकर सुखी होता है। जैसे यह प्राण श्रेष्ठ शब्दविद्या से प्रिय आनन्ददायक होता है, वैसे सुशिक्षित विद्वान् भी सब को सुख करने वाला होता है। इन दोनों के विना कोई भी मनुष्य सत्यज्ञान वा सुख भोगों को प्राप्त होने को समर्थ नहीं हो सकता॥५७॥

अव रुद्रमित्यस्य बन्धुर्ऋषिः। रुद्रो देवता। विराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अथ रुद्रशब्देनेश्वर उपदिश्यते॥

अब अगले मन्त्र में रुद्र शब्द से ईश्वर का उपदेश किया है॥

अव॑ रु॒द्रम॑दीम॒ह्यव॑ दे॒वं त्र्य॑म्बकम्।

यथा॑ नो॒ वस्य॑स॒स्कर॒द् यथा॑ न॒ः श्रेय॑स॒स्कर॒द् यथा॑ नो व्यवसा॒यया॑त्॥५८॥

अव॑। रु॒द्रम्। अ॒दी॒म॒हि॒। अव॑। दे॒वम्। त्र्य॑म्बक॒मिति॒ त्रिऽअ॑म्बकम्। यथा॑। न॒ः। वस्य॑सः। कर॑त्। यथा॑। न॒ः। श्रेय॑सः। कर॑त्। यथा॑। न॒ः। व्य॒व॒सा॒यया॒दिति॑ विऽअवसा॒यया॑त्॥५८॥

पदार्थः-(**अव**) विनिग्रहार्थे (**रुद्रम्**) दुष्टानां रोदयितारं परमेश्वरम् (**अदीमहि**) सर्वाणि दुःखानि क्षाययेम नाशयेम। अत्र दीङ् क्षय इत्यस्माल्लिङर्थे लङ्। **बहुलं छन्दसि** [अष्टा०२.४.७३] इति श्यनो लुक्। (**अव**) अवगमार्थे (**देवम्**) दातारम् (**त्र्यम्बकम्**) अमति येन ज्ञानेन तदम्बं त्रिषु कालेष्वेकरसं ज्ञानं यस्य तम्। अत्र अमगत्यादिष्वस्माद् बाहुलकेन करणकारके वः प्रत्ययस्ततः **शेषाद्विभाषा** (अष्टा०५.४.१५४) इति समासान्तः कप् प्रत्ययः। (**यथा**) येन प्रकारेण (**नः**) अस्मान् (**वस्यसः**) येऽतिशयेन वसन्ति ते वसीयांसस्तान्। अत्र **छान्दसो वर्णलोपो वा** [अष्टा०भा०वा०८.२.२५] इतीकारलोपः। (**करत्**) कुर्य्यात्, अयं लेट् प्रयोगः। डुकृञ् करण इत्यस्य भ्वादिगणान्तर्गतपठितत्वाच्छब्विकरणोऽत्र गृह्यते। तनादिभिः सह पाठादुविकरणोऽपि। **कःकरत्करतिकृधिकृतेष्वनदितेः** (अष्टा०८.३.५०) **नित्यं करोतेः** (अष्टा०६.४.१०८) एताभ्यां द्वाभ्यां ज्ञापकाभ्यामप्युभयगणप्रयोगः कृञ् गृह्यते। (**यथा**) (**नः**) अस्मान् (**श्रेयसः**) अतिशयेन प्रशस्तान् (**करत्**) कुर्य्यात् अत्रापि लेट् (**यथा**) (**नः**) अस्मान् (**व्यवसाययात्**) निश्चयवतः कुर्य्यात्। अयं व्यवपूर्वात् षोऽन्तकर्मणीति एजन्ताद्धातोः प्रथमपुरुषैकवचने तिपि लेट् प्रयोगः। अयं मन्त्रः (शत०२.६.२.११) व्याख्यातः॥५८॥

अन्वयः-वयं त्र्यम्बकं देवं रुद्रं जगदीश्वरमुपास्य दुःखान्यवादीमह्यवक्षाययेम। स यथा नोऽस्मान् वस्यसोऽव करद्, यथा नोऽस्मान् श्रेयसोऽव करद्, यथा नोऽस्मान् व्यवसाययात्, तथा तं वसीयांसं व्यवसायप्रदं परमेश्वरमेव प्रार्थयामः॥५८॥

भावार्थः-नहीश्वरस्योपासनेन विना कश्चिन्मनुष्यः सर्वदुःखान्तं गच्छति, यः सर्वान् सुखनिवासान् प्रशस्तान् सत्यनिश्चयान् करोति, तस्यैवाज्ञा सर्वैः पालनीयेति॥५८॥

पदार्थः-हम लोग (**त्र्यम्बकम्**) तीनों काल में एकरस ज्ञानयुक्त (**देवम्**) देने वा (**रुद्रम्**) दुष्टों को रुलाने वाले जगदीश्वर की उपासना करके सब दुःखों को (**अवादीमहि**) अच्छे प्रकार नष्ट करें (**यथा**) जैसे परमेश्वर (**नः**) हम लोगों को (**वस्यसः**) उत्तम-उत्तम वास करने वाले (**अवाकरत्**) अच्छे प्रकार करे (**यथा**) जैसे (**नः**) हम लोगों को (**श्रेयसः**) अत्यन्त श्रेष्ठ (**करत्**) करे (**यथा**) जैसे (**नः**) हम लोगों को (**व्यवसाययात्**) निवास कराने वा उत्तम

गुणयुक्त तथा सत्यपन से निश्चय देने वाले परमेश्वर ही की प्रार्थना करें॥५८॥

भावार्थः-कोई भी मनुष्य ईश्वर की उपासना वा प्रार्थना के विना सब दुःखों के अन्त को नहीं प्राप्त हो सकता, क्योंकि वही परमेश्वर सब सुखपूर्वक निवास वा उत्तम-उत्तम सत्य निश्चयों को कराता है। इससे जैसी उसकी आज्ञा है, उसका पालन वैसा ही सब मनुष्यों को करना योग्य है॥५८॥

भेषजमसीत्यस्य बन्धुर्ऋषिः। रुद्रो देवता। स्वराड् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह परमेश्वर कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है॥

भेषजमसि भेषजं गवेऽश्वाय पुरुषाय भेषजम्। सुखं मेषाय मेष्यै॥५९॥

भेषजम्। असि। भेषजम्। गवे। अश्वाय। पुरुषाय। भेषजम्। सुखमिति सुऽखम्। मेषाय। मेष्यै॥५९॥

पदार्थः-(**भेषजम्**) शरीरान्तःकरणेन्द्रियात्मनां सर्वरोगाऽपहारकमौषधम् (**असि**) (**भेषजम्**) अविद्यादिक्लेशनिवारकम् (**गवे**) इन्द्रियधेनुसमूहाय (**अश्वाय**) तुरङ्गाद्याय (**पुरुषाय**) पुरुषप्रभृतये (**भेषजम्**) रोगनिवारकम् (**सुखम्**) **सुखं कस्मात्? सुहितं खेभ्यः खं पुनः खनतेः** (निरु०३.१३) (**मेषाय**) अवये (**मेष्यै**) तत्स्त्रियै। अयं मन्त्रः (शत०२.६.२.११) व्याख्यातः॥५९॥

अन्वयः-हे रुद्र जगदीश्वर! यः शरीररोगनाशकत्वाद् भेषजमस्यात्मरोगदूरीकरणाद् भेषजमस्येवं सर्वेषां दुःखनिवारकत्वाद् भेषजमसि स त्वं नोऽस्मभ्यमस्माकं वा गवेऽश्वाय पुरुषाय मेषाय मेष्यै सुखं देहि॥५९॥

भावार्थः-नहि परमेश्वरोपासनेन विना शरीरात्मप्रजानां दुःखापनयो भूत्वा सुखं जायते। तस्मात् सर्वैर्मनुष्यैरीश्वरौषधसेवनेन शरीरात्मप्रजापशूनां प्रयत्नेन दुःखानि निवार्य्य सुखं जननीयमिति॥५९॥

पदार्थः-हे जगदीश्वर! जो आप (**भेषजम्**) शरीर, अन्तःकरण, इन्द्रिय और गाय आदि पशुओं के रोगनाश करने वाले (**असि**) हैं (**भेषजम्**) अविद्यादि क्लेशों को दूर करने वाले (**असि**) हैं सो आप (**नः**) हम लोगों के (**गवे**) गौ आदि (**अश्वाय**) घोड़ा आदि (**पुरुषाय**) सब मनुष्य (**मेषाय**) मेढ़ा और (**मेष्यै**) भेड़ आदि के लिये (**सुखम्**) उत्तम-उत्तम सुखों को अच्छी प्रकार दीजिये॥५९॥

भावार्थः-परमेश्वर की उपासना के विना किसी मनुष्य का शरीर, आत्मा और प्रजा का दुःख दूर होकर सुख नहीं हो सकता, इससे उसकी स्तुति, प्रार्थना और उपासना आदि के करने और औषधियों के सेवन से शरीर, आत्मा, पुत्र, मित्र और पशु आदि के दुःखों को यत्न से निवृत्त करके सुखों को सिद्ध करना उचित है॥५९॥

त्र्यम्बकमित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। रुद्रो देवता। विराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्।
त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनम्। उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुतः॥६०॥

त्र्यम्बकमिति त्रिऽअम्बकम्। यजामहे। सुगन्धिमिति सुऽगन्धिम्। पुष्टिवर्धनमिति पुष्टिऽवर्धनम्।

उर्वारुकमिवेत्युर्वारुकम्ऽइव। बन्धनात्। मृत्योः। मुक्षीय। मा। अमृतात्। त्र्यम्बकमिति त्रिऽअम्बकम्। यजामहे। सुगन्धिमिति सुऽगन्धिम्। पतिवेदनमिति पतिऽवेदनम्। उर्वारुकमिवेत्युर्वारुकम्ऽइव। बन्धनात्। इतः। मुक्षीय। मा। अमुतः॥६०॥

पदार्थः-(त्र्यम्बकम्) उक्तार्थं रुद्रं जगदीश्वरम् **(यजामहे)** नित्यं पूजयेमहि **(सुगन्धिम्)** शोभनः शुद्धो गन्धो यस्मात् तम्। अत्र **गन्धस्येदुत्पूतिसुसुरभिभ्यः** (अष्टा०५.४.१३५) इति सूत्रेण समासान्त इकारादेशः। **(पुष्टिवर्धनम्)** पुष्टेः शरीरात्मबलस्य वर्धनस्तम्। अत्र नन्द्यादित्वाल्ल्युः प्रत्ययः। **(उर्वारुकमिव)** यथोर्वारुकफलं पक्वं भूत्वाऽमृतात्मकं भवति **(बन्धनात्)** लतासम्बन्धात् **(मृत्योः)** प्राणशरारात्मवियोगात् **(मुक्षीय)** मुक्तो भूयासम् **(मा)** निषेधे **(अमृतात्)** मोक्षसुखात् **(त्र्यम्बकम्)** सर्वाध्यक्षम् **(यजामहे)** सत्कुर्वीमहि **(सुगन्धिम्)** सुष्ठु गन्धो यस्मिँस्तम् **(पतिवेदनम्)** पाति रक्षति स पतिः पतेर्वेदनं प्रापणं ज्ञानं वा यस्मात् तम् **(उर्वारुकमिव)** उक्तोऽर्थः **(बन्धनात्)** उक्तोऽर्थः **(इतः)** अस्माच्छरीरान्मर्त्यलोकाद् वा **(मुक्षीय)** पृथग्भूयासम् **(मा)** निषेधार्थे **(अमुतः)** मोक्षाख्यात् परलोकात् परजन्मसुखफलाद् धर्माद्वा॥ अत्राह यास्को निरुक्ते-**त्र्यम्बको रुद्रस्तं अम्बकं यजामहे सुगन्धिं सुष्ठुगन्धिं पुष्टिवर्धनं पुष्टिकारकमिवोर्वारुकमिव फलं बन्धनादारोधनान्मृत्योः सकाशात् मुञ्चस्व माम्** (निरु०१३.४८) । अयं मन्त्रः (शत०२.६.२.१२-१४) व्याख्यातः॥६०॥

अन्वयः-वयं सुगन्धिं पुष्टिवर्धनं त्र्यम्बकं देवं यजामहे नित्यं पूजयेमहि। एतस्य कृपयाऽहं बन्धनादुर्वारुकमिव मृत्योर्मुक्षीय मुक्तो भूयासम्। अमृतान्मा मुक्षीमहि मा श्रद्धारहिता भूयासम्। वयं सुगन्धिं पतिवेदनं त्र्यम्बकं सर्वस्वामिनं जगदीश्वरं यजामहे सततं सत्कुर्वीमहि। एतदनुग्रहेणाहं बन्धनादुर्वारुकमिवेतो मुक्षीय पृथग्भूयासम्। वयममुतो मोक्षसुखात् सत्यसुखफलाद् धर्माद् विरक्ता मा भूयास्म॥६०॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। नैव मनुष्या ईश्वरं विहाय कस्याप्यन्यस्य पूजनं कुर्य्युः, तस्य वेदाविहितत्वेन दुःखफलत्वात्। यथोर्वारुकफलं यदा लतायां लग्नं सत् स्वयं पक्वं भूत्वा समयं प्राप्य लताबन्धनान्मुक्त्वा सुस्वादु भवति, तथैव पूर्णमायुर्भुक्त्वा शरीरं त्यक्त्वा मुक्तिं प्राप्नुयाम। मा कदाचिन्मोक्षप्राप्त्यनुष्ठानात् परलोकात् परजन्मनो वा विरक्ता भवेम। नैव नास्तिकत्वमाश्रित्य कदाचिदीश्वरस्यानादरं कुर्य्याम। यथा व्यवहारिकसुखायान्नजलादिकमीप्सन्ति, तथैवेश्वरे वेदेषु तदुक्तधर्मे मुक्तौ च नित्यं श्रद्दधीमहि॥६०॥

पदार्थः-हम लोग जो **(सुगन्धिम्)** शुद्ध गन्धयुक्त **(पुष्टिवर्धनम्)** शरीर, आत्मा और समाज के बल को बढ़ाने वाला **(त्र्यम्बकम्)** रुद्ररूप जगदीश्वर है, उसकी **(यजामहे)** निरन्तर स्तुति करें। इनकी कृपा से **(उर्वारुकमिव)** जैसे खर्बूजा फल पक कर **(बन्धनात्)** लता के सम्बन्ध से छूट कर अमृत के तुल्य होता है, वैसे हम लोग भी **(मृत्योः)** प्राण वा शरीर के वियोग से **(मुक्षीय)** छूट जावें **(अमृतात्)** और मोक्षरूप सुख से **(मा)** श्रद्धारहित कभी न होवें तथा हम लोग **(सुगन्धिम्)** उत्तम गन्धयुक्त **(पतिवेदनम्)** रक्षा करने हारे स्वामी को देने वाले **(त्र्यम्बकम्)** सब के अध्यक्ष जगदीश्वर का **(यजामहे)** निरन्तर सत्कारपूर्वक ध्यान करें और इसके अनुग्रह से **(उर्वारुकमिव)** जैसे खरबूजा पक कर **(बन्धनात्)** लता के सम्बन्ध से छूट कर अमृत के समान मिष्ट होता है, वैसे हम लोग भी **(इतः)** इस शरीर से **(मुक्षीय)** छूट जावें **(अमुतः)** मोक्ष और अन्य जन्म के सुख और सत्यधर्म के फल से **(मा)** पृथक् न होवें॥६०॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्य लोग ईश्वर को छोड़कर किसी का पूजन न करें, क्योंकि वेद से अविहित और दु:खरूप फल होने से परमात्मा से भिन्न दूसरे किसी की उपासना न करनी चाहिये। जैसे खर्बूजा फल लता में लगा हुआ अपने आप पक कर समय के अनुसार लता से छूट कर सुन्दर स्वादिष्ट हो जाता है, वैसे ही हम लोग पूर्ण आयु को भोग कर शरीर को छोड़ के मुक्ति को प्राप्त होवें। कभी मोक्ष की प्राप्ति के लिये अनुष्ठान वा परलोक की इच्छा से अलग न होवें और न कभी नास्तिक पक्ष को लेकर ईश्वर का अनादर भी करें। जैसे व्यवहार के सुखों के लिये अन्न, जल आदि की इच्छा करते हैं, वैसे ही हम लोग ईश्वर, वेद, वेदोक्तधर्म और मुक्ति होने के लिये निरन्तर श्रद्धा करें॥६०॥

एतत्त इत्यस्य वसिष्ठ ऋषि:। रुद्रो देवता। भुरिगास्तारपङ्क्तिश्छन्द:। पञ्चम: स्वर:॥

अथ रुद्रशब्देन शूरवीरकृत्यमुपदिश्यते॥

अब अगले मन्त्र में रुद्र शब्द से शूरवीर के कर्मों का उपदेश किया है॥

एतत्ते रुद्रावसं तेन परो मूजवतोऽतीहि।

अवततधन्वा पिनाकावस: कृत्तिवासाऽअहिंसन्न: शिवोऽतीहि॥६१॥

एतत्। ते। रुद्र। अवसम्। तेन। पर:। मूजवत इति मूजऽवत:। अति। इहि। अवततधन्वेत्यवततऽधन्वा। पिनाकावस इति पिनाकऽअवस:। कृत्तिवासा इति कृत्तिऽवासा:। अहिंसन्। न:। शिव:। अति। इहि॥६१॥

पदार्थ:-**(एतत्)** उक्तं वक्ष्यमाणं च **(ते)** तव **(रुद्र)** रोदयति शत्रूँस्तत्सम्बुद्धौ शूरवीर! **(अवसम्)** रक्षणं स्वाम्यर्थं वा **(तेन)** रक्षणादिना **(पर:)** प्रकृष्ट: समर्थ: **(मूजवत:)** बहवो मूजा घासादयो विद्यन्ते यस्मिन् तस्मात् पर्वतात्। **मूजवान् पर्वत:** (निरु०९.८)। **(अति)** अतिक्रमणे **(इहि)** उलङ्घय। अत्रान्तर्गतो ण्यर्थ: **(अवततधन्वा)** अवेति निगृहीतं ततं विस्तृतं धनुर्येन स: **(पिनाकावस:)** पिनष्टि शत्रून् येन तत् पिनाकम्। तेनावसो पिनाकस्यावसो रक्षणं वा यस्मात् स:। **पिनाकं प्रतिपिनष्ट्यनेन** (निरु०३.२१) **(कृत्तिवासा:)** कृत्तिश्चर्म तद्वद् दृढानि वासांसि धृतानि येन स: **(अहिंसन्)** अनाशयन् रक्षन् सन् **(न:)** अस्मान् **(शिव:)** सुखप्रद: **(अति)** **अभिपूजितार्थे** (निरु०१.३) **(इहि)** प्राप्नुहि। अयं मन्त्र: (शत०२.६.२.१६-१७) व्याख्यात:॥६१॥

अन्वय:-हे रुद्र शूरवीर विद्वन् युद्धविद्याविचक्षण सेनाध्यक्ष! अवततधन्वा पिनाकावस: कृत्तिवासा: शिव: पर: प्रकृष्टसामर्थ्य: संस्त्वं मूजवत: पर्वतात् परं शत्रूनतीह्युल्लङ्घ्य तस्मात् पारङ्गमय। यदेतत्ते तवावसं पालनमस्ति तेनास्मानहिंसन्नतीहि॥६१॥

भावार्थ:-हे मनुष्या! अजातशत्रुभिर्युष्माभिर्भूत्वा निश्शत्रुकं राज्यं कृत्वा सर्वाण्यस्त्रशस्त्राणि सम्पाद्य दुष्टानां दण्डहिंसाभ्यां श्रेष्ठानां पालनेन भवितव्यम्, यतो न कदाचिद् दुष्टा सुखिन: श्रेष्ठा दु:खिताश्च भवेयुरिति॥६१॥

पदार्थ:-हे **(रुद्र)** शत्रुओं को रुलाने वाले युद्धविद्या में कुशल सेनाध्यक्ष विद्वन्! **(अवततधन्वा)** युद्ध के लिये विस्तारपूर्वक धनु को धारण करने **(पिनाकावस:)** पिनाक अर्थात् जिस शस्त्र से शत्रुओं के बल को पीस के अपनी रक्षा करने **(कृत्तिवास:)** चमड़े और कवचों के समान दृढ़ वस्त्रों के धारण करने **(शिव:)** सब सुखों के देने और **(पर:)** उत्तम सामर्थ्य वाले शूरवीर पुरुष! आप **(मूजवत:)** मूँज, घास आदि युक्त पर्वत से परे दूसरे देश में शत्रुओं को **(अतीहि)** प्राप्त कीजिये **(एतत्)** जो यह **(ते)** आपका **(अवसम्)** रक्षण करना है **(तेन)** उससे **(न:)** हम

लोगों की **(अहिंसन्)** हिंसा को छोड़कर रक्षा करते हुए आप **(अतीहि)** सब प्रकार से हम लोगों का सत्कार कीजिये॥६१॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! तुम शत्रुओं से रहित होकर राज्य को निष्कंटक करके सब अस्त्र-शस्त्रों का सम्पादन करके दुष्टों का नाश और श्रेष्ठों की रक्षा करो कि जिससे दुष्ट शत्रु सुखी और सज्जन लोग दुःखी कदापि न होवें॥६१॥

त्र्यायुषमित्यस्य नारायण ऋषिः। रुद्रो देवता। उष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

मनुष्येण कीदृशमायुर्भोक्तुमीश्वरः प्रार्थनीय इत्युपदिश्यते॥

मनुष्य को कैसी आयु भोगने के लिये ईश्वर की प्रार्थना करनी चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्।
यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नोऽअस्तु त्र्यायुषम्॥६२॥

त्र्यायुषमिति त्रिऽआयुषम्। जमदग्नेरिति जमत्ऽअग्नेः। कश्यपस्य। त्र्यायुषमिति त्रिऽआयुषम्। यत्। देवेषु। त्र्यायुषमिति त्रिऽआयुषम्। तत्। नः। अस्तु। त्र्यायुषमिति त्रिऽआयुषम्॥६२॥

पदार्थः-**(त्र्यायुषम्)** त्रीणि च तान्यायूंषि च त्र्यायुषम्। बाल्ययौवनवृद्धावस्थासुखकरम्। इदं पदम् **अचतुरविचतुर०** (अष्टा०५.४.७७) इति सूत्रे समासान्तत्वेन निपातितम्। **(जमदग्नेः)** चक्षुषः। **चक्षुर्वै जमदग्निर्ऋषिर्यदनेन जगत्पश्यत्यथो मनुते तस्माच्चक्षुर्जमदग्निर्ऋषिः** (शत०८.१.२.३) **जमदग्नयः प्रजमिताग्नयो वा प्रज्वलिताग्नयो वा तैरभिहुतो भवति** (निरु०७.२४)। अनेनापि प्रमाणेन रूपगुणग्राहकं चक्षुर्गृह्यते। **(कश्यपस्य)** आदित्यस्येश्वरस्य। **प्रजापतिः प्रजा असृजत यदसृजताकरोत् तद्यदकरोत् तस्मात् कूर्म्मः। कश्यपो वै कूर्मस्तस्मादाहुः सर्वाः प्रजाः काश्यप्य इति** (शत०७.४.१.५) अनेन प्रमाणेनेश्वरस्य कश्यपसंज्ञा। एतन्निर्मितं त्रिगुणमायुर्लभेमहीत्यभिप्रायः। **(त्र्यायुषम्)** ब्रह्मचर्य्यगृहस्थवानप्रस्थाश्रमसुखसंपादकं त्रिगुणमायुः **(यत्)** यादृशम् यावत् **(देवेषु)** विद्वत्सु। **विद्वांसो हि देवाः** (शत०३.७.३.१०) **(त्र्यायुषम्)** विद्याशिक्षापरोपकारसहितं त्रिगुणमायुः। **(तत्)** तादृशं तावत् **(नः)** अस्माकम्। **(अस्तु)** भवतु **(त्र्यायुषम्)** **पूर्वोक्तं त्रिगुणमायुः।** अत्र **एतेर्णिच्च** (उणा०२.११८) अनेनेण् धातोरुसिः प्रत्ययो णिद्वत्त्वाद् वृद्धिः। ईयते प्राप्यते यत्तदायुः। अयं मन्त्रः (शत०२.५.४.१-७) व्याख्यातः॥६२॥

अन्वयः-हे रुद्र जगदीश्वर! तव कृपया यद्देवेषु त्र्यायुषं यज्जमदग्नेस्त्र्यायुषं कश्यपस्य तव व्यवस्थासिद्धं त्र्यायुषमस्ति तन्नोऽस्माकमस्तु॥६२॥

भावार्थः-अत्र चक्षुरिन्द्रियाणां कश्यपः ईश्वरः स्रष्टॄणामुत्तमोऽस्तीति विज्ञेयम्। त्र्यायुषमित्यस्य चतुरावृत्त्या त्रिगुणादधिकं चतुर्गुणमप्यायुः सङ्गृह्यैतत्प्राप्त्यर्थं जगदीश्वरं प्रार्थ्य स्वेन पुरुषार्थश्च कर्त्तव्यः। तद्यथा-हे जगदीश्वर! भवत्कृपया यथा विद्वांसो विद्यापरोपकारधर्मानुष्ठानेनानन्दतया त्रीणि शतानि वर्षाणि यावत्तावदायुर्भुञ्जते, तथैव यत्त्रिविधतापव्यतिरिक्तं शरीरेन्द्रियान्तःकरणप्राणसुखाढ्यं विद्याविज्ञानसहितमायुरस्ति तद्वयं प्राप्य त्रिशतवर्षं चतुःशतवर्षं वाऽऽयुः सुखेन भुञ्जीमहीति॥६२॥

पदार्थ:-हे जगदीश्वर! आप **(यत्)** जो **(देवेषु)** विद्वानों के वर्त्तमान में **(त्र्यायुषम्)** ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रमों का परोपकार से युक्त आयु वर्त्तता जो **(जमदग्नेः)** चक्षु आदि इन्द्रियों का **(त्र्यायुषम्)** शुद्धि बल और पराक्रमयुक्त तीन गुणा आयु और जो **(कश्यपस्य)** ईश्वरप्रेरित **(त्र्यायुषम्)** तिगुणी अर्थात् तीन सौ वर्ष से अधिक भी आयु विद्यमान है **(तत्)** उस शरीर, आत्मा और समाज को आनन्द देने वाले **(त्र्यायुषम्)** तीन सौ वर्ष से अधिक आयु को **(नः)** हम लोगों को प्राप्त कीजिये॥६२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में चक्षुः सब इन्द्रियों में और परमेश्वर सब रचना करने हारों में उत्तम है, ऐसा सब मनुष्यों को समझना चाहिये। और **(त्र्यायुषम्)** इस पदवी की चार बार आवृत्ति होने से तीन सौ वर्ष से अधिक चार सौ वर्ष पर्यन्त भी आयु का ग्रहण किया है। इसकी प्राप्ति के लिये परमेश्वर की प्रार्थना करके और अपना पुरुषार्थ करना उचित है, सो प्रार्थना इस प्रकार करनी चाहिए-हे जगदीश्वर! आपकी कृपा से जैसे विद्वान् लोग विद्या, धर्म, और परोपकार के अनुष्ठान से आनन्दपूर्वक तीन सौ वर्ष पर्यन्त आयु को भोगते हैं, वैसे ही तीन प्रकार के ताप से रहित शरीर, मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्काररूप अन्तःकरण, इन्द्रिय और प्राण आदि को सुख करने वाले विद्या-विज्ञान सहित आयु को हम लोग प्राप्त होकर तीन सौ वा चार सौ वर्ष पर्यन्त सुखपूर्वक भोगें॥६२॥

शिवो नामासीत्यस्य नारायण ऋषिः। रुद्रो देवता। भुरिग्जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

अथ रुद्रशब्देनोपदेशकगुणा उपदिश्यन्ते॥

अब अगले मन्त्र में रुद्र शब्द से उपदेश करने हारे गुणों का उपदेश किया है॥

शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्तेऽअस्तु मा मा हिꣳसीः।

निर्वर्त्तयाम्यायुषेऽन्नाद्याय प्रजननाय रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय॥६३॥

शिवः। नाम। असि। स्वधितिरिति स्वऽधितिः। ते। पिता। नमः। ते। अस्तु। मा। मा। हिꣳसीः। नि। वर्त्तयामि। आयुषे। अन्नाद्यायेत्यन्नऽअद्याय। प्रजननायेति प्रऽजननाय। रायः। पोषाय। सुप्रजास्त्वायेति सुप्रजाःऽत्वाय। सुवीर्य्यायेति सुऽवीर्य्याय॥६३॥

पदार्थ:-**(शिवः)** मङ्गलस्वरूपो ज्ञानमयो विज्ञानप्रदः **(नाम)** आख्या **(असि)** भवसि **(स्वधितिः)** अविनाशित्वाद् वज्रमयः। **स्वधितिरिति वज्रनामसु पठितम्।** (निघं०२.२०) **(ते)** तव **(पिता)** पालकः **(नमः)** सत्कारार्थे **(ते)** तुभ्यम् **(अस्तु)** भवतु **(मा)** निषेधार्थे **(मा)** माम् **(हिꣳसीः)** हिन्धि। अत्र लोडर्थे लुङ्। **(नि)** निश्चयार्थे निवारणार्थे वा। **(वर्त्तयामि)** **(आयुषे)** आयुर्भोगाय **(अन्नाद्याय)** अत्तुं योग्यमाद्यमन्नं च तस्मै। यद्वाऽन्नमोदनादिकं भोज्यं तस्मिंस्तस्मै **(प्रजननाय)** सन्तानोत्पादनाय **(रायस्पोषाय)** रायो विद्यासुवर्णादिधनस्य पोषाय, पुष्यन्ति यस्मिँस्तस्मै **(सुप्रजास्त्वाय)** शोभनाः सन्तानादयश्चक्रवर्त्तिराज्यं च प्रजा यस्मात् तस्य भावस्तस्मै **(सुवीर्य्याय)** शोभनं वीर्य्यं शरीरात्मनो बलं पराक्रमो यस्मात् तस्मै। अयं मन्त्रः (शत०२.५.४.८-११) व्याख्यातः॥६३॥

अन्वय:-हे रुद्र! यस्त्वं स्वधितिरसि यस्य ते तव शिवो नामास्ति। स त्वं मम पितासि ते तुभ्यं नमोऽस्तु। त्वं मां मा मा हिंसीर्माहिन्ध्यहं त्वामायुषेऽन्नाद्याय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्य्याय रायस्पोषाय वर्त्तयामि, त्वदाश्रयेण सर्वाणि दुःखानि निवर्त्तयामि॥६३॥

भावार्थः-नहि कश्चिन्मनुष्यो मङ्गलमयस्य सर्वपितुः परमेश्वरस्याज्ञापालनेनोपदेशकसङ्गेन विनैहिकपारमार्थिकसुखे प्राप्तुं शक्नोति। नैव केनापि नास्तिकत्वेन खल्वीश्वरस्य विदुषां चानादरः कर्त्तव्यः। यो नास्तिको भूत्वैतस्यैतेषां चानादरं करोति, न तस्य सर्वत्रादरो जायते। तस्मान्मनुष्यैरास्तिकैः सदा भवितव्यमिति॥६३॥

अत्र तृतीयाध्यायेऽग्निहोत्रादियज्ञवर्णनमग्निस्वभावार्थप्रतिपादनं पृथिवीभ्रमणलक्षणं अग्निशब्देनेश्वरभौतिकार्थप्रतिपादनं अग्निहोत्रमन्त्रप्रकाशनमीश्वरोपस्थानमग्निस्वरूपमीश्वरप्रार्थनं तदुपासनं तत्फलवर्णनमीश्वरस्वभावप्रतिपादनं सूर्य्यकिरणकृत्यवर्णनं नित्योपासनं सावित्रीमन्त्रप्रतिपादनमीश्वरोपासनं यज्ञफलप्रकाशनं भौतिकाग्न्यर्थवर्णनं गृहाश्रमकरणावश्यकानुष्ठानलक्षणे इन्द्रमरुत्कृत्यं पुरुषार्थकरणावश्यकं पापान्निवर्त्तनं यज्ञपूर्त्यावश्यकं सत्यत्वेन ग्रहणदानव्यवहारकरणं विद्वत्पुरुषर्त्तुस्वभाववर्णनं चतुष्टयमन्तःकरणस्य लक्षणं रुद्रशब्दार्थप्रतिपादनं त्रिगुणायुष्करणावश्यकं धर्मेणायुरादिपदार्थसंग्रहणं च वर्णितमेतेनास्य तृतीयाध्यायार्थस्य द्वितायाध्यायार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति बोद्धव्यम्॥६३॥

इति श्रीमत्परिव्राजकाचार्य्येण श्रीयुतदयानन्दसरस्वतीस्वामिना सुविरचिते संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां विभूषिते सुप्रमाणयुक्ते यजुर्वेदभाष्ये तृतीयोऽध्यायः सम्पूर्णः॥३॥

पदार्थः-हे जगदीश्वर और उपदेश करनेहारे विद्वन्! जो आप **(स्वधितिः)** अविनाशी होने से वज्रमय **(असि)** हैं, जिस **(ते)** आपका **(शिवः)** सुखस्वरूप विज्ञान का देने वाला **(नाम)** नाम **(असि)** है सो आप मेरे **(पिता)** पालने करने वाले **(असि)** हैं **(ते)** आप के लिये मेरा **(नमः)** सत्कारपूर्वक नमस्कार **(अस्तु)** विदित हो तथा आप **(मा)** मुझे **(मा)** मत **(हिꣳसीः)** अल्पमृत्यु से युक्त कीजिये और मैं आप को **(आयुषे)** आयु के भोगने **(अन्नाद्याय)** अन्न आदि के भोगने **(सुप्रजास्त्वाय)** उत्तम-उत्तम पुत्र आदि वा चक्रवर्ति राज्य आदि की प्राप्ति होने **(सुवीर्य्याय)** उत्तम शरीर, आत्मा का बल, पराक्रम होने और **(रायस्पोषाय)** विद्या वा सुवर्ण आदि धन की पुष्टि के लिये **(वर्त्तयामि)** वर्त्तता और वर्त्ताता हूँ। इस प्रकार वर्त्तने से सब दुखों को छुड़ा के अपने आत्मा में उपास्यरूप से निश्चय करके अन्तर्यामिरूप आप का आश्रय करके सभों में वर्त्तता हूँ॥६३॥

भावार्थः-कोई भी मनुष्य मङ्गलमय सब की पालना करने वाले परमेश्वर की आज्ञा पालन के विना संसार वा परलोक के सुखों को प्राप्त होने को समर्थ नहीं होता। न कदापि किसी मनुष्य को नास्तिक पक्ष को लेकर ईश्वर का अनादर करना चाहिये। जो नास्तिक होकर ईश्वर का अनादर करता है, उसका सर्वत्र अनादर होता है। इस से सब मनुष्यों को आस्तिक बुद्धि से ईश्वर की उपासना करनी योग्य है॥६३॥

इस तीसरे अध्याय में अग्निहोत्र आदि यज्ञों का वर्णन, अग्नि के स्वभाव वा अर्थ का प्रतिपादन, पृथिवी के भ्रमण का लक्षण, अग्नि शब्द से ईश्वर वा भौतिक अर्थ का प्रतिपादन, अग्निहोत्र के मन्त्रों का प्रकाश, ईश्वर का उपस्थान, अग्नि का स्वरूपकथन, ईश्वर की प्रार्थना, उपासना वा इन दोनों का फल, ईश्वर के स्वभाव का प्रतिपादन, सूर्य की किरणों के कार्य का वर्णन, निरन्तर उपासना, गायत्री मन्त्र का प्रतिपादन, यज्ञ के फल का प्रकाश, भौतिक अग्नि के अर्थ का प्रतिपादन, गृहस्थाश्रम के आवश्यक कार्यों के अनुष्ठान और लक्षण, इन्द्र और पवनों के कार्य का वर्णन, पुरुषार्थ का आवश्यक करना, पापों से निवृत्त होना, यज्ञ की समाप्ति अवश्य करनी, सत्य से लेने-देने आदि व्यवहार करना, विद्वान् वा ऋतुओं के स्वभाव का वर्णन, चार प्रकार के अन्तःकरण का

लक्षण, रुद्र शब्द के अर्थ का प्रतिपादन, तीन सौ वर्ष आयु का सपादन करना और धर्म से आयु आदि पदार्थों के ग्रहण का वर्णन किया है। इससे दूसरे अध्याय के अर्थ के साथ इस तीसरे अध्याय के अर्थ की सङ्गति जाननी चाहिये॥६३॥

॥इति तृतीयोऽध्यायः॥३॥

॥ओ३म्॥

अथ चतुर्थोऽध्यायारम्भः

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव। यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व॥ यजु० ३०.३॥

अस्मिन्नध्याये सप्तत्रिंशन्मन्त्राः सन्तीति वेदितव्यम्॥

तत्रैदमगन्मेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। अबोषध्यौ देवते। विराड् ब्राह्मी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

अथ जलगुणस्वभावकृत्यमुपदिश्यते॥

अब चौथे अध्याय का प्रारम्भ किया जाता है, इसके प्रथम मन्त्र में जल के गुण, स्वभाव और कृत्य का उपदेश किया है॥

एदम॑गन्म देव॒यज॑नं पृथि॒व्या यत्र॑ दे॒वासो॒ऽअजु॑षन्त॒ विश्वे॑।

ऋ॒क्सा॒माभ्या॑ᳬ स॒न्तर॑न्तो॒ यजु॑र्भी रा॒यस्पोषे॑ण॒ समि॒षा म॑देम।

इ॒माऽआप॒ः शमु॑ मे सन्तु दे॒वीरोष॑धे॒ त्राय॑स्व॒ स्वधि॑ते॒ मैनं॑ᳫहिᳫसीः॥ १॥

आ। इ॒दम्। अ॒ग॒न्म॒। दे॒व॒यज॑न॒मिति॑ दे॒व॒यज॑नम्। पृ॒थि॒व्याः। यत्र॑। दे॒वास॑ः। अजु॑षन्त। विश्वे॑। ऋ॒क्सा॒माभ्या॒मित्यृ॑क्ऽसा॒माभ्या॑म्। स॒न्तर॑न्त॒ इति॑ स॒म्ऽतर॑न्तः। यजु॑र्भि॒रिति॒ यजु॑ःऽभिः। रा॒यः। पोषे॑ण। सम्। इ॒षा। म॒दे॒म॒। इ॒माः। आप॑ः। शम्। ऊँ॒ऽइ॒त्यूँ॑। मे॒। स॒न्तु॒। दे॒वीः। ओष॑धे। त्राय॑स्व। स्वधि॑त॒ इति॒ स्वऽधि॑ते। मा। ए॒न॒म्। हि॒ᳫसीः॥ १॥

पदार्थः-(**आ**) समन्तात् (**इदम्**) वक्ष्यमाणम् (**अगन्म**) प्राप्नुयाम, अत्र लिङर्थे लुङ् (**देवयजनम्**) देवानां विदुषां यजनं पूजनं तेभ्यो दानं च (**पृथिव्याः**) भूमेर्मध्ये (**यत्र**) देशे (**देवासः**) विद्वांसः (**अजुषन्त**) प्रीतवन्तः सेवितवन्तः (**विश्वे**) सर्वे (**ऋक्सामाभ्याम्**) ऋचन्ति स्तुवन्ति पदार्थान् येन स ऋग्वेदः। सामयन्ति सान्त्वयन्ति कर्मान्तं फलं प्राप्नुवन्ति येन स सामवेदः, ऋक् च साम च ताभ्याम्। अत्र **अचतुरविचतुरसुचतुरस्त्रीपुंसधेन्वनडुहर्क्साम०।** (अष्टा०५.४.७७) इति सूत्रेणायं समासान्तोऽच् प्रत्ययेन निपातितः (**सन्तरन्तः**) दुःखस्यान्तं प्राप्नुवन्तः (**यजुर्भिः**) यजुर्वेदस्थमन्त्रोक्तैः कर्मभिः (**रायः**) धनस्य (**पोषेण**) पुष्ट्या (**सम्**) सम्यगर्थे (**इषा**) इष्टविद्ययाऽन्नादिना वा (**मदेम**) सुखयेम, अत्र विकरणव्यत्ययः (**इमाः**) प्रत्यक्षाः (**आपः**) जलानि (**शम्**) सुखकारिकाः (उ) वितर्के (**मे**) मम (**सन्तु**) भवन्तु (**देवीः**) शुद्धा रोगनाशिकाः, अत्र **वा च्छन्दसि।** [अष्टा०६.१.१०६] इति जसः पूर्वसवर्णत्वम् (**ओषधे**) सोमाद्योषधिगणः (**त्रायस्व**) त्रायतात् (**स्वधिते**) रोगनाशने स्वधितिर्वज्रवत् प्रवर्त्तमानः। **स्वधितिरिति वज्रनामसु पठितम्।** (निघं०२.२०) (**मा**) निषेधार्थे (**एनम्**) यजमानं प्राणिसमूहं वा (**हिᳫसीः**) हिंस्यात्, अत्र लिङर्थे लुङ्। अयं मन्त्रः (शत० (३.१.१.११-१२; ३.१.२.१-१०) व्याख्यातः॥ १॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यथा पृथिव्या मध्ये मनुष्यजन्म देवयजनं प्राप्य यत्र ऋक्सामाभ्यां यजुर्भी रायस्पोषेण

दु:खानि सन्तरन्तो विश्वे देवासो वयं सुखान्यगन्माजुषन्त मदेम सुखयेम। उ इति वितर्के मे मम विद्यासुशिक्षाभ्यां सेविता इमा देव्य आप: सुखकारिका: सन्ति, तथैव तत्र त्वं ता जुषस्व, तवैता: शं सन्तु सुखकारिका भवन्तु। यथौषधे सोमलताद्यौषधिगणो रोगेभ्यस्त्रायते, तथा त्वं नस्त्रायस्व, स्वधितिर्वज्रस्त्वमेनं जीवं मा हिंसीर्हननं मा कुर्य्या:॥१॥

भावार्थ:-अत्र लुप्तोपमालङ्कार:। यथा मनुष्या: साङ्गान् सरहस्याँश्चतुरो वेदानधीत्यान्यानध्याप्य विद्यां प्रदीप्य, विद्वांसो भूत्वा सुकर्मानुष्ठानेन सर्वान् प्राणिन: सुखयेयुस्तथैवैतान् सत्कृत्यैतेभ्यो वैदिकविद्यां प्राप्य, श्रेष्ठाचारौषधिसेवनाभ्यां दु:खान्तं गत्वा, शरीरात्मपुष्ट्या धनं समुपचित्य सर्वैर्मनुष्यैरानन्दितव्यम्॥१॥

पदार्थ:-हे विद्वन्! जैसे **(पृथिव्या)** भूमि पर मनुष्यजन्म को प्राप्त होके जो **(इदम्)** यह **(देवयजनम्)** विद्वानों का यजन पूजन वा उन के लिये दान है, उस को प्राप्त होके **(यत्र)** जिस देश में **(ऋक्सामाभ्याम्)** ऋग्वेद, सामवेद तथा **(यजुर्भि:)** यजुर्वेद के मन्त्रों में कहे कर्म **(रायस्पोषेण)** धन की पुष्टि **(समिषा)** उत्तम-उत्तम विद्या आदि की इच्छा वा अन्न आदि से दु:खों के **(सन्तरन्त:)** अन्त को प्राप्त होते हुये **(विश्वे)** सब **(देवास:)** विद्वान् हम लोग सुखों को **(अगन्म)** प्राप्त हों, **(अजुषन्त)** सब प्रकार से सेवन करें, **(मदेम)** सुखी रहें, **(उ)** और भी **(मे)** मेरे सुनियम, विद्या, उत्तम शिक्षा से सेवन किये हुए **(इमा:)** ये **(देवी:)** शुद्ध **(आप:)** जल सुख देने वाले होते हैं, वैसे वहाँ तू भी उन को प्राप्त हो **(जुषस्व)** सेवन और आनन्द कर। वे जल आदि पदार्थ भी तुझ को **(शम्)** सुख कराने वाले **(सन्तु)** होवें, जैसे **(ओषधे)** सोमलता आदि ओषधिगण सब रोगों से रक्षा करता है, वैसे तू भी हम लोगों की **(त्रायस्व)** रक्षा कर। **(स्वधिते)** रोगनाश करने में वज्र के समान होकर **(एनम्)** इस यजमान वा प्राणीमात्र को **(मा हिꣳसी:)** कभी मत मार॥१॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। जैसे मनुष्य लोग ब्रह्मचर्यपूर्वक अङ्ग और उपनिषद् सहित चारों वेदों को पढ़ कर, औरों को पढ़ा कर, विद्या को प्रकाशित कर और विद्वान् होके उत्तम कर्मों के अनुष्ठान से सब प्राणियों को सुखी करें, वैसे ही इन विद्वानों का सत्कार कर, इनसे वैदिक विद्या को प्राप्त होकर, श्रेष्ठ आचार तथा उत्तम औषधियों के सेवन से कष्टों का निवारण करके शरीर वा आत्मा की पुष्टि से धन का अत्यन्त सञ्चय करके सब मनुष्यों को आनन्दित होना चाहिये॥१॥

आपो अस्मानित्यस्य प्रजापतिर्ऋषि:। आपो देवता। स्वराड्ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्द:। धैवत: स्वर:॥

पुनस्ताभिरद्भि: किं कर्तव्यमित्युपदिश्यते॥

फिर उन जलों से क्या-क्या करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

आपो॑ऽअ॒स्मान् मा॒तर॑: शुन्धयन्तु घृ॒तेन॑ नो घृत॒प्व॑: पुनन्तु।
विश्व॒ꣳ हि रि॒प्रं प्र॒वह॑न्ति दे॒वीरुदिदा॑भ्य॒: शुचि॒रा पू॒तऽए॑मि।
दी॒क्षा॒त॒पसो॑स्त॒नूर॑सि॒ तां त्वा॑ शि॒वाꣳ श॒ग्मां परि॑दधे भ॒द्रं वर्णं॑ पुष्य॑न्॥२॥

आपः। अस्मान्। मातरः। शुन्धयन्तु। घृतेन। नः। घृतप्व इति घृतऽप्वः। पुनन्तु। विश्वम्। हि। रिप्रम्। प्रवहन्तीति प्रऽवहन्ति। देवीः। उत्। इत्। आभ्यः। शुचिः। आ। पूतः। एमि। दीक्षातपसोः। तनूः। असि। ताम्। त्वा। शिवाम्। शग्माम्। परि। दधे। भद्रम्। वर्णम्। पुष्यन्॥ २॥

पदार्थः-(आपः) जलानि **(अस्मान्)** मनुष्यादीन् प्राणिनः **(मातरः)** मातृवत् पालिकाः **(शुन्धयन्तु)** बाह्यदेशं पवित्रं कुर्वन्तु **(घृतेन)** आज्येन **(नः)** अस्मान् **(घृतप्वः)** घृतं पुनन्ति यास्ताः **(पुनन्तु)** पवित्रयन्तु **(विश्वम्)** सर्वं जगत् **(हि)** खलु **(रिप्रम्)** व्यक्तवाणीप्राप्तव्यं वेदितव्यम्। अत्र **लीरीङो ह्रस्वः।** (उणा०५.५५) अनेनायं सिद्धः **(प्रवहन्ति)** प्रकर्षेण प्राप्नुवन्ति **(देवीः)** देव्यः **(उत्)** उत्कृष्टे **(इत्)** अपि **(आभ्यः)** अद्भ्यः **(शुचिः)** पवित्रः **(आ)** समन्तात् **(पूतः)** शुद्धः **(एमि)** प्राप्नोमि **(दीक्षातपसोः)** दीक्षा ब्रह्मचर्य्यादिनियमसेवनं च तपोधर्मानुष्ठानं च तयोः **(तनूः)** सुखविस्तारनिमित्तं शरीरम् **(असि)** अस्ति। अत्र व्यत्ययः **(ताम्) (त्वा)** एताम् **(शिवाम्)** कल्याणकारिकाम् **(शग्माम्)** सुखस्वरूपाम् **(परि)** सर्वतः **(दधे)** धरामि **(भद्रम्)** भजनीयम् **(वर्णम्)** स्वीकर्त्तुमर्हमतिसुन्दरम् **(पुष्यन्)** पुष्टं कुर्वन्। अयं मन्त्रः (शत० (३.१.२.१-११) व्याख्यातः॥ २॥

अन्वयः-हे मनुष्या! यथा भद्रं वर्णं पुष्यन्नहं या घृतप्वो देव्य आपो विश्वं रिप्रं प्रवहन्ति, विद्वांसो या मातारो या घृतप्वो घृतेन सन्ति, याभिर्नोऽस्मान् सुखयन्ति, ताभिर्नोऽस्मान् भवन्तः शुन्धयन्तु पुनन्तु च। यथाहमुदिदाभ्यः शुचिः पवित्रो भूत्वा या दीक्षातपसोस्तनूरस्यस्ति तां त्वामेतां शिवां शग्मां परिदधे सर्वतो धरामि, तथा तास्तां च यूयमपि धरत॥ २॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। याः सर्वसुखप्रापिकाः प्राणधारिका मातृवत् पालनहेतव आपः सन्ति, ताभ्यः सर्वतः पवित्रतां सम्पाद्यैताः शोधयित्वा मनुष्यैर्नित्यं संसेव्या, यतः सुन्दरं वर्णं रोगरहितं शरीरं च सम्पाद्य नित्यं प्रयत्नेन धर्ममनुष्ठाय पुरुषार्थेनानन्दः कर्तव्य इति॥ २॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे **(भद्रम्)** अति सुन्दर **(वर्णम्)** प्राप्त होने योग्य रूप को **(पुष्यन्)** पुष्ट करता हुआ मैं जो **(घृतप्वः)** घृत को पवित्र करने **(देवीः)** दिव्यगुणयुक्त **(मातरः)** माता के समान पालन करने वाले **(आपः)** जल **(रिप्रम्)** व्यक्त वाणी को प्राप्त करने वा जानने योग्य **(विश्वम्)** सब को **(प्रवहन्ति)** प्राप्त करते हैं, जिनसे विद्वान् लोग **(अस्मान्)** हम मनुष्य लोगों को **(शुन्धयन्तु)** बाह्य देश को पवित्र करें और जो **(घृतेन)** घृतवत् पुष्ट करने योग्य जल हैं, जिनसे **(नः)** हम लोगों को सुखी कर सकें, उनसे **(पुनन्तु)** पवित्र करें। जैसे मैं **(इत्)** भी **(उत्)** अच्छे प्रकार **(आभ्यः)** इन जलों से **(शुचिः)** पवित्र तथा **(आपूतः)** शुद्ध होकर **(दीक्षातपसोः)** ब्रह्मचर्य्य आदि उत्तम-उत्तम नियम सेवन से जो धर्मानुष्ठान के लिये **(तनूः)** शरीर **(असि)** है, जिस **(शिवाम्)** कल्याणकारी **(शग्माम्)** सुखस्वरूप शरीर को **(एमि)** प्राप्त होता और **(परिदधे)** सब प्रकार धारण करता हूं, वैसे तुम लोग भी उन जल और **(ताम्)** उस **(त्वा)** अत्युत्तम शरीर को धारण करो॥ २॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को उचित है कि जो सब सुखों को प्राप्त करने, प्राणों को धारण कराने तथा माता के समान पालन के हेतु जल हैं, उनसे सब प्रकार पवित्र होके, इनको शोध कर मनुष्यों को नित्य सेवन करने चाहियें, जिससे सुन्दर वर्ण, रोगरहित शरीर को सम्पादन कर निरन्तर प्रयत्न के साथ धर्म का अनुष्ठान कर पुरुषार्थ से आनन्द भोगना चाहिये॥ २॥

महीनामित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। मेघो देवता। भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनरस्य जलसमूहजन्यस्य मेघस्य किं निमित्तमस्तीत्युपदिश्यते॥

फिर इस जलसमूह से उत्पन्न हुए मेघ का क्या निमित्त है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

म॒हीना॒ं पयो॑ऽसि वर्चो॒दाऽअ॑सि॒ वर्चो॑ मे देहि।
वृ॒त्रस्या॑सि क॒नीन॑कश्चक्षु॒र्दाऽअ॑सि॒ चक्षु॑र्मे देहि॥ ३॥

म॒हीना॑म्। पय॑ः। अ॒सि॒। व॒र्चो॒दा इति॑ वर्चः॒ऽदाः। अ॒सि॒। वर्च॑ः। मे॒। दे॒हि॒। वृ॒त्रस्य॑। अ॒सि॒। क॒नीन॑कः। च॒क्षु॒र्दा इति॑ चक्षुः॒ऽदाः। अ॒सि॒। चक्षु॑ः। मे॒। दे॒हि॒॥ ३॥

पदार्थः-(**महीनाम्**) पृथिवीनाम्, **महीति पृथिवीनामसु पठितम्।** (निघं०१.१) (**पयः**) रसनिमित्तम् (**असि**) अस्ति, अत्र सर्वत्र व्यत्ययः (**वर्चोदाः**) दीप्तिं ददातीति (**असि**) अस्ति (**वर्चः**) प्रकाशम् (**मे**) मह्यम् (**देहि**) ददाति (**वृत्रस्य**) मेघस्य (**असि**) अस्ति (**कनीनकः**) यः कनति दीपयतीति स एव कनीनकः, अत्र कनीधातोर्बाहुलकादौणादिक ईनप्रत्ययस्ततः स्वार्थे कन् (**चक्षुर्दाः**) चष्टेऽनेन तद्ददातीति (**असि**) अस्ति (**चक्षुः**) नेत्रव्यवहारम् (**मे**) मह्यम् (**देहि**) ददाति। अयं मन्त्रः (शत० (३.१.३.९-१५) व्याख्यातः॥३॥

अन्वयः-यो महीनां पयोऽस्यस्ति, वर्चोदा अस्यस्ति, यो मे मह्यं वर्चोदा ददाति, वृत्रस्य कनीनकोऽस्ति, चक्षुर्दा अस्ति, स सूर्य्यो मे मह्यं चक्षुर्ददाति॥३॥

भावार्थः-मनुष्यैर्नहि सूर्य्यस्य प्रकाशेन विना वृष्ट्युत्पत्तिश्चक्षुर्व्यवहारश्च सिध्यति। येनायं सूर्य्यो निर्मितस्तस्मा ईश्वराय कोटिशो धन्यवादा देया इति वेद्यम्॥३॥

पदार्थः-जो यह (**महीनाम्**) पृथिवी आदि के (**पयः**) जल रस का निमित्त (**असि**) है, (**वर्चोदाः**) दीप्ति का देने वाला (**असि**) है, जो (**मे**) मेरे लिये (**वर्चः**) प्रकाश को (**देहि**) देता है, जो (**वृत्रस्य**) मेघ का (**कनीनकः**) प्रकाश करने वाला (**असि**) है, वा (**चक्षुर्दाः**) नेत्र के व्यवहार को सिद्ध करने वाला (**असि**) है, वह सूर्य्य (**मे**) मेरे लिये (**चक्षुः**) नेत्रों के व्यवहार को (**देहि**) देता है॥३॥

भावार्थः-मनुष्यों को जानना उचित है कि जिस सूर्य्य के प्रकाश के विना वर्षा की उत्पत्ति वा नेत्रों का व्यवहार सिद्ध कभी नहीं होता, जिसने इस सूर्य्यलोक को रचा है, उस परमेश्वर को कोटि असंख्यात धन्यवाद देते रहें॥३॥

चित्पतिर्मेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। परमात्मा देवता। निचृद्ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

येन सूर्य्यादिकं जगद्रचितं सोऽस्मदर्थं किं किं कुर्य्यादित्युपदिश्यते॥

जिसने सूर्य्य आदि सब जगत् को बनाया है, वह परमात्मा हमारे लिये क्या-क्या करे, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

चि॒त्पति॑र्मा पुनातु वा॒क्पति॑र्मा पुनातु दे॒वो मा॑ सवि॒ता पु॑ना॒त्वच्छि॑द्रेण प॒वित्रे॑ण॒ सूर्य॑स्य र॒श्मिभि॑ः। तस्य॑ ते पवित्रपते प॒वित्र॑पूतस्य॒ यत्का॑मः पु॒ने तच्छ॑केयम्॥ ४॥

चि॒त्पति॒रिति॑ चि॒त्ऽपति॑:। मा॒। पु॒ना॒तु॒। वा॒क्पति॒रिति॑ वाक्ऽपति॑:। मा॒। पु॒ना॒तु॒। दे॒व:। मा॒। स॒वि॒ता। पु॒ना॒तु॒। अच्छि॑द्रेण। प॒वित्रे॑ण। सूर्य्य॑स्य। र॒श्मिभि॒रिति॑ र॒श्मिऽभि॒:। तस्य॑। ते॒। प॒वि॒त्र॒प॒त॒ इति॑ प॒वित्र॑ऽपते। प॒वित्र॑पूत॒स्येति॑ प॒वित्र॑ऽपूतस्य। यत्का॑म॒ इति॒ यत्ऽका॑म:। पु॒ने। तत्। श॒के॒य॒म्॥४॥

पदार्थ:-(चित्पति:) चेतयति येन विज्ञानेन तस्य पति: पालयिताऽधिष्ठातेश्वरो भवान् **(मा)** माम् **(पुनातु)** पवित्रं करोतु **(वाक्पति:)** यो वायो वेदविद्याया: पति: स्वामी पालयिता **(मा)** माम् **(पुनातु)** विद्वांसं कृत्वा पवित्रयतु **(देव:)** य: स्वप्रकाशेन सर्वस्य प्रकाशक: **(मा)** माम् **(सविता)** सर्वस्य जगतो दिव्यस्य प्रसवितोत्पादक: **(पुनातु)** शोधयतु शुद्धं करोतु **(अच्छिद्रेण)** अविनाशिना विज्ञानेन **(पवित्रेण)** शुद्धिकारकेण **(सूर्य्यस्य)** सवितृमण्डलस्य प्राणस्य वा **(रश्मिभि:)** प्रकाशैर्गमनागमनै: **(तस्य)** जगदीश्वरस्य **(ते)** तव **(पवित्रपते)** पवित्रस्य पालयित: पवित्रपूतस्य य: पवित्रै: शुद्धै: स्वाभाविकैर्विज्ञानादिभिर्गुणै: पूत: पवित्रस्तस्य **(यत्काम:)** य: कामो यस्य स: **(पुने)** पवित्रो भवामि **(तत्)** पवित्रं कर्म **(शकेयम्)** शक्नुयाम्। अयं मन्त्र: (शत०(३.१.३.२२-२३) व्याख्यात:॥४॥

अन्वय:-हे पवित्रपते परमात्मन् चित्पतिर्वाक्पति: सविता देवो भवान् पवित्रेणाच्छिद्रेण विज्ञानेन सूर्यस्य रश्मिभिश्च मा मां मम चित्तं च पुनातु। मा मां मम वाचं च पुनातु। मा मां मम चक्षुश्च पुनातु। यस्य पवित्रपूतस्य कृपया यत्कामोऽहं पुने पवित्रो भवामि। यस्य ते तवोपासनया पवित्रं कर्म कर्तुं शक्नुयाम्, तस्य सेवा कर्तुं योग्या मे कथं न भवेत्॥४॥

भावार्थ:-मनुष्यैर्येन वेदविज्ञात्रा पत्या परमेश्वरेण विद्याभूजलवायुसूर्य्यादय: शुद्धिकारका: पदार्था: प्रकाशितास्तस्योपासना पवित्रकर्मानुष्ठानाभ्यां मनुष्यै: पूर्णकाम: पवित्रता च कार्य्या॥४॥

पदार्थ:-हे **(पवित्रपते)** पवित्रता के पालन करनेहारे परमेश्वर! **(चित्पति:)** विज्ञान के स्वामी **(वाक्पति:)** वाणी को निर्मल और **(सविता)** सब जगत् को उत्पन्न करने वाले **(देव:)** दिव्य स्वरूप आप **(पवित्रेण)** शुद्ध करने वाले **(अच्छिद्रेण)** अविनाशी विज्ञान वा **(सूर्यस्य)** सूर्य और प्राण के **(रश्मिभि:)** प्रकाश और गमनागमनों से **(मा)** मुझ और मेरे चित्त को **(पुनातु)** पवित्र कीजिये, **(मा)** मुझ और मेरी वाणी को **(पुनातु)** पवित्र कीजिये, **(मा)** मुझ तथा मेरे चक्षु को **(पुनातु)** पवित्र कीजिये, जिस **(पवित्रपूतस्य)** शुद्ध स्वाभाविक विज्ञान आदि गुणों से पवित्र **(ते)** आप की कृपा से **(यत्काम:)** जिस उत्तम कामनायुक्त मैं **(पुने)** पवित्र होता हूं, जिस **(ते)** आपकी उपासना से **(तत्)** उस अत्युत्तम कर्म के करने को **(शकेयम्)** समर्थ होऊँ, उस आपकी सेवा मुझ को क्यों न करनी चाहिये॥४॥

भावार्थ:-मनुष्यों को उचित है कि जिस वेद के जानने वा पालन करने वाले परमेश्वर ने वेदविद्या, पृथिवी, जल, वायु और सूर्य्य आदि शुद्धि करने वाले पदार्थ प्रकाशित किये हैं, उसकी उपासना तथा पवित्र कर्मों के अनुष्ठान से मनुष्यों को पूर्ण कामना और पवित्रता का सम्पादन अवश्य करना चाहिये॥४॥

आ वो देवास इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि:। यज्ञो देवता। निचृतार्ष्यनुष्टुप् छन्द:। गान्धार: स्वर:॥

मनुष्यै: कथं पुरुषार्थ: कर्त्तव्य इत्युपदिश्यते॥

मनुष्यों को किस प्रकार का पुरुषार्थ करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

आ वो॑ देवासऽईमहे वा॒मं प्र॑य॒त्य॒ध्व॒रे। आ वो॑ देवासऽआ॒शिषो॑ य॒ज्ञिया॑सो हवामहे॥५॥

आ। व॒ः। दे॒वा॒स॒ः। ई॒म॒हे॒। वा॒मम्। प्र॒य॒तीति॑ प्रऽय॒ति। अ॒ध्व॒रे। आ। व॒ः। दे॒वा॒स॒ः। आ॒शिष॒ इत्या॒ऽशिष॑ः। य॒ज्ञिया॑सः। ह॒वा॒म॒हे॒॥५॥

पदार्थः-(**आ**) समन्तात् (**वः**) युष्मान् (**देवासः**) ये दीव्यन्ति विद्यादिगुणैः प्रकाशन्ते तत्सम्बुद्धौ (**ईमहे**) याचामहे, **ईमह इति याच्ञाकर्मसु पठितम्।** (निघं०३.१९) (**वामम्**) प्रशस्तं गुणकर्मसमूहम्, **वाममिति प्रशस्यनामसु पठितम्।** (निघं०३.८) (**प्रयति**) प्रकृष्टं सुखमेति येन तस्मिन्। अत्र **कृतो बहुलम्।** [अष्टा०भा०वा० ३.३.११३] इति करणकारके कृत् (**अध्वरे**) अहिंसनीये यज्ञे (**आ**) अभितः (**वः**) युष्माकं सकाशात् (**देवासः**) विद्वांसः (**आशिषः**) इच्छाः (**यज्ञियासः**) या यज्ञमर्हन्ति ताः (**हवामहे**) स्वीकुर्वीमहि, लेट् प्रयोगोऽयम्। अयं मन्त्रः (शत०(३.१.३.२४) व्याख्यातः॥५॥

अन्वयः-हे देवासो! यथा वयं वो युष्मान् प्रत्यध्वरे वो युष्माकं वाममेमहे समन्ताद् याचामहे, हे यज्ञियासो देवासो! यथाऽस्मिन् संसारे वो युष्माकं सकाशात् यज्ञिया आशिष आहवामहेऽभितः स्वीकुर्वीमहि, तथैवास्मदर्थं भवद्भिः सततमनुष्ठेयम्॥५॥

भावार्थः-मनुष्यैः परमविद्वद्भ्यः प्रशस्ता विद्याः सम्पाद्य स्वेच्छाः पूर्णाः कृत्वैतेषां सङ्गसेवे सदैव कर्त्तव्ये॥५॥

पदार्थः-हे (**देवासः**) विद्यादि गुणों से प्रकाशित होने वाले विद्वान् लोगो! जैसे हम लोग (**वः**) तुम को (**प्रयति**) सुखयुक्त (**अध्वरे**) हिंसा करने अयोग्य यज्ञ के अनुष्ठान में (**वः**) तुम्हारे (**वामम्**) प्रशंसनीय गुणसमूह की (**आ ईमहे**) अच्छे प्रकार याचना करते हैं। हे (**देवासः**) विद्वान् लोगो! जैसे हम लोग इस संसार में आप लोगों से (**यज्ञियासः**) यज्ञ को सिद्ध करने योग्य (**आशिषः**) इच्छाओं को (**आ हवामहे**) अच्छे प्रकार स्वीकार कर सकें, वैसे ही हम लोगों के लिये आप लोग सदा प्रयत्न किया कीजिये॥५॥

भावार्थः-मनुष्यों को योग्य है कि उत्तम विद्वानों के प्रसङ्ग से उत्तम-उत्तम विद्याओं का सम्पादन कर, अपनी इच्छाओं को पूर्ण करके इन विद्वानों का सङ्ग और सेवा सदा करना चाहिये॥५॥

स्वाहा यज्ञमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। यज्ञो देवता। निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

किं किमर्थः स यज्ञोऽनुष्ठातव्य इत्युपदिश्यते॥

किस-किस प्रयोजन के लिये इस यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

स्वाहा॑ य॒ज्ञं मन॑स॒ः स्वाहो॑रोर॒न्तरि॑क्षा॒त् स्वाहा॒ द्यावा॑पृथि॒वीभ्या॒ᳬ स्वाहा॒ वाता॒दार॑भे॒ स्वाहा॑॥६॥

स्वाहा॑। य॒ज्ञम्। मन॑सः। स्वाहा॑ः। उ॒रोः। अ॒न्तरि॑क्षात्। स्वाहा॑। द्यावा॑पृथि॒वीभ्या॑म्। स्वाहा॑। वाता॑त्। आ। र॒भे॒ स्वाहा॑॥६॥

पदार्थः-(**स्वाहा**) प्रत्यक्षलक्षणया वेदस्थया वाचा (**यज्ञम्**) क्रियाजन्यम् (**मनसः**) विज्ञानात् (**स्वाहा**)

सुशिक्षितया वाचा **(उरोः)** बहुनः, अत्र लिङ्गव्यत्ययेन पुँस्त्वम् **(अन्तरिक्षात्)** सूर्यपृथिव्योर्मध्ये वर्त्तमानादाकाशात् **(स्वाहा)** विद्याप्रकाशिकया वाण्या **(द्यावापृथिवीभ्याम्)** प्रकाशभूम्योः शुद्धये **(स्वाहा)** सत्यप्रियत्वादिगुणविशिष्टया वाचा **(वातात्)** वायोः **(आ)** समन्तात् **(रभे)** कुर्वे **(स्वाहा)** सुष्ठु जुहोति गृह्णाति ददाति यया क्रियया तया। अयं मन्त्रः (शत०(३.१.३.२५-२८) व्याख्यातः॥६॥

अन्वयः-हे मनुष्या! यथाहं स्वाहा वेदोक्तया स्वाहा सुशिक्षितया स्वाहा विद्याप्रकाशिकया स्वाहा सत्यप्रियत्वादिगुणयुक्तया वाचा स्वाहा सुष्ठु क्रियया चोरोर्मनसोऽन्तरिक्षाद् वाताद् द्यावापृथिवीभ्यां यज्ञमारभे नित्यं कुर्वे तथा भवन्तोऽप्यारभन्ताम्॥६॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैर्वेदरीत्या यो मनोवचनकर्मभिरनुष्ठितो यज्ञो भवति, सोऽन्तरिक्षादिभ्यो वायुशुद्धिद्वारा प्रकाशपृथिव्योः पवित्रतां सम्पाद्य सर्वान् सुखयतीति॥६॥

पदार्थः-हे मनुष्य लोगो! जैसे मैं **(स्वाहा)** वेदोक्त **(स्वाहा)** उत्तम शिक्षा सहित **(स्वाहा)** विद्याओं का प्रकाश **(स्वाहा)** सत्य और सब जीवों के कल्याण करनेहारी वाणी और **(स्वाहा)** अच्छे प्रकार प्रयोग की हुई उत्तम क्रिया से **(उरोः)** बहुत **(अन्तरिक्षात्)** आकाश और **(वातात्)** वायु की शुद्धि करके **(द्यावापृथिवीभ्याम्)** शुद्ध प्रकाश और भूमिस्थ पदार्थ **(मनसः)** विज्ञान और ठीक-ठीक क्रिया से **(यज्ञम्)** यज्ञ को पूर्ण करने के लिये पुरुषार्थ का **(आरभे)** नित्य आरम्भ करता हूं, वैसे तुम लोग भी करो॥६॥

भावार्थः-मनुष्यों के द्वारा जो वेद की रीति और मन, वचन, कर्म से अनुष्ठान किया हुआ यज्ञ है, वह आकाश में रहने वाले वायु आदि पदार्थों को शुद्ध करके सब को सुख करता है॥६॥

आकूत्यै प्रभुज इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। अग्न्यब्बृहस्पतयो देवताः। पूर्वार्धस्य पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। आपो देवीरित्युत्तरस्यार्षी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

किमर्थः स यज्ञोऽनुष्ठातव्य इत्युपदिश्यते॥

किसलिये उस यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

आकू॑त्यै प्रयुजे॒ऽग्नये॒ स्वाहा॑ मे॒धायै॒ मन॑से॒ऽग्नये॒ स्वाहा॑ दी॒क्षायै॒ तप॑से॒ऽग्नये॒ स्वाहा॒ सर॑स्वत्यै पू॒ष्णे॒ऽग्नये॒ स्वाहा॑। आपो॑ देवीर्बृहतीर्विश्वशम्भुवो॒ द्यावा॑पृथिवी॒ऽउरो॑ऽन्तरिक्ष। बृहस्पत॑ये ह॒विषा॑ विधेम॒ स्वाहा॑॥७॥

आकू॑त्या॒ इत्या॒ऽकू॑त्यै। प्र॒युज॒ इति॑ प्र॒ऽयुजे॑। अ॒ग्नये॑। स्वाहा॑। मे॒धायै॑। मन॑से। अ॒ग्नये॑। स्वाहा॑। दी॒क्षायै॑। तप॑से। अ॒ग्नये॑। स्वाहा॑। सर॑स्वत्यै। पू॒ष्णे। अ॒ग्नये॑। स्वाहा॑। आप॑ः। दे॒वी॒ः। बृ॒ह॒ती॒ः। वि॒श्व॒शं॑भुव॒ इति॑ विश्व॒ऽशंभुवः। द्यावा॑पृथिवी॒ऽइति॑ द्यावा॑पृथिवी। उ॒रो॒ऽइत्युरो॑। अ॒न्त॒रि॒क्ष॒। बृ॒ह॒स्पत॑ये। ह॒विषा॑। वि॒धे॒म॒। स्वाहा॑॥७॥

पदार्थः-**(आकूत्यै)** उत्साहाय **(प्रयुजे)** या धर्मक्रिया प्रकृष्टैर्गुणैर्युनक्ति योजयति वा तस्यै **(अग्नये)** अग्निप्रदीपनाय **(स्वाहा)** वेदवाणीप्रचाराय **(मेधायै)** प्रज्ञोन्नतये **(मनसे)** विज्ञानवृद्धये **(अग्नये)** विद्युद्विद्याग्रहणाय **(स्वाहा)** परोपकारकारिकायै **(दीक्षायै)** धर्मनियमाचरणरीतये **(तपसे)** प्रतापाय **(अग्नये)** कारणरूपाय **(स्वाहा)** अध्ययनाध्यापनविद्यायै **(सरस्वत्यै)** विद्यासुशिक्षासहितायै वाचे **(पूष्णे)** पुष्टिकरणाय **(अग्नये)** जाठराग्निशोधनाय

(स्वाहा) सत्यवाक् प्रवृत्तये **(आपः)** प्राणा जलानि वा **(देवीः)** दिव्यगुणसम्पन्नाः। अत्र **वा छन्दसि।** [अष्टा०६.१.१०६] इति जसः पूर्वसवर्णत्वम् **(बृहतीः)** महागुणविशिष्टाः **(विश्वशम्भुवः)** या विश्वस्मै शं सुखं भावयन्ति ताः **(द्यावापृथिवी)** भूमिप्रकाशौ **(उरो)** बहुसुखप्रतिपादकः **(अन्तरिक्ष)** अन्तरिक्षस्थो यज्ञः **(बृहस्पतये)** बृहत्या वाचो बृहतामाकाशादीनां च पतिः स्वामी तस्मै जगदीश्वराय **(हविषा)** सामग्र्या सत्यप्रेमभावेन वा **(विधेम)** विधानं कुर्य्याम **(स्वाहा)** सङ्गतां प्रियां शोभनां स्तुतिप्रयुक्तां वाचम्। अयं मन्त्रः (शत०(३.१.४.६-१५) व्याख्यातः॥७॥

अन्वयः-हे मनुष्या! यथा वयमाकूत्यै प्रयुजेऽग्नये स्वाहा, सरस्वत्यै पूष्णे बृहस्पतयेऽग्नये स्वाहा, मेधायै मनसेऽग्नये स्वाहा, दीक्षायै तपसेऽग्नये स्वाहा, या बृहत्यो विश्वशम्भुवो देव्य आपः स्वाहा, वाक् द्यावापृथिवी उरोऽन्तरिक्षस्थे च स्तस्ता अपि स्वाहा, क्रियया हविषा च शुद्धा विधेम, तथा यूयमपि विदधत॥७॥

भावार्थः-नहि यज्ञानुष्ठानेन विनोत्साहो मेधा सत्यवाक् दीक्षा तपो धर्मानुष्ठानं विद्या पुष्टिश्च संभवति। न किलैतैर्विना कश्चिदपि परमेश्वरमाराद्धुं शक्नोतीति, तस्मात् सर्वैर्मनुष्यैरेतत् सर्वमनुष्ठाय सर्वानन्दः प्राप्तव्यः॥७॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे हम लोग **(आकूत्यै)** उत्साह **(प्रयुजे)** उत्तम-उत्तम धर्मयुक्त क्रियाओं **(अग्नये)** अग्नि के प्रदीपन **(स्वाहा)** वेदवाणी के प्रचार **(सरस्वत्यै)** विज्ञानयुक्त वाणी **(पूष्णे)** पुष्टि करने **(बृहस्पतये)** बड़े-बड़े अधिपतियों के होने **(अग्नये)** बिजुली की विद्या के ग्रहण **(स्वाहा)** पढ़ने-पढ़ाने से विद्या **(मेधायै)** बुद्धि की उन्नति **(मनसे)** विज्ञान की वृद्धि **(अग्नये)** कारणरूप **(स्वाहा)** सत्यवाणी की प्रवृत्ति **(दीक्षायै)** धर्मनियम और आचरण की रीति **(तपसे)** प्रताप **(अग्नये)** जाठराग्नि के शोधन **(स्वाहा)** उत्तम स्तुतियुक्त वाणी से **(बृहतीः)** महागुण-सहित **(विश्वशम्भुवः)** सब के लिये सुख उत्पन्न कराने वाले **(देवीः)** दिव्यगुणसम्पन्न **(आपः)** प्राण वा जल से **(स्वाहा)** सत्य भाषण **(द्यावापृथिवी)** भूमि और प्रकाश की शुद्धि के अर्थ **(उरो)** बहुत सुख सम्पादक **(अन्तरिक्ष)** अन्तरिक्ष में रहने वाले पदार्थों को शुद्ध और जिस **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया वा वेदवाणी से यज्ञ सिद्ध होता है, उन सबों को **(हविषा)** सत्य और प्रेमभाव से **(विधेम)** सिद्ध करें, वैसे तुम भी किया करो॥७॥

भावार्थः-यज्ञ के अनुष्ठान के विना उत्साह, बुद्धि, सत्यवाणी, धर्माचरण की रीति, तप, धर्म का अनुष्ठान और विद्या की पुष्टि का सम्भव नहीं होता और इनके विना कोई भी मनुष्य परमेश्वर की आराधना करने को समर्थ नहीं हो सकता। इससे सब मनुष्यों को इस यज्ञ का अनुष्ठान करके सब के लिये सब प्रकार आनन्द प्राप्त करना चाहिये॥७॥

विश्वो देवस्येत्यस्यात्रेय ऋषिः। ईश्वरो देवता। आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

मनुष्यैः परमेश्वराश्रयेण किं किं कर्त्तव्यमित्युपदिश्यते॥

मनुष्यों को परमेश्वर के आश्रय से क्या-क्या करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

विश्वो॑ दे॒वस्य॑ ने॒तुर्मर्त्तो॑ वुरीत स॒ख्यम्।

विश्वो॑ रा॒यऽइ॑षुध्यति द्यु॒म्नं वृ॑णीत पु॒ष्यसे॒ स्वाहा॑॥८॥

विश्वः॑। दे॒वस्य॑। ने॒तुः। मर्त्तः॑। वु॒री॒त। स॒ख्यम्। विश्वः॑। रा॒ये। इ॒षु॒ध्य॒ति॒। द्यु॒म्नम्। वृ॒णी॒त॒। पु॒ष्यसे॑। स्वाहा॑॥८॥

पदार्थः-(**विश्वः**) सर्वो जनः (**देवस्य**) सर्वप्रकाशकस्य (**नेतुः**) सर्वनयनकर्त्तुः परमेश्वरस्य (**मर्त्तः**) मनुष्यः, **मर्त्ता इति मनुष्यनामसु पठितम्।** (निघं०२.३) (**वुरीत**) वृणीयात्, अत्र **बहुलं छन्दसि।** [अष्टा०२.४.७३] इति विकरणस्य लुक् (**सख्यम्**) सख्युर्भावः कर्म वा (**विश्वः**) अखिलः (**राये**) धनप्राप्तये (**इषुध्यति**) शरान् धारयेत्, लेट् प्रयोगोऽयम् (**द्युम्नम्**) धनम् (**वृणीत**) स्वीकुर्य्यात् (**पुष्यसे**) पुष्टो भवेः, अत्र व्यत्ययेनात्मनेपदम्, लेट् प्रयोगोऽयम् (**स्वाहा**) सत्क्रियया। अयं मन्त्रः (शत०(३.१.४.१७-२८) व्याख्यातः॥८॥

अन्वयः-यथा विश्वो मर्त्तो नेतुर्देवस्य जगदीश्वरस्य सख्यं वुरीत विश्वो राय इषुध्यति। स द्युम्नं वृणीत, तथा हे मनुष्य! एतत्सर्वमनुष्ठाय स्वाहा सत्क्रियया त्वमपि पुष्यसे पुष्टो भवेः॥८॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। सर्वैर्मनुष्यैः परमेश्वरमुपास्य परस्परं मित्रतां कृत्वा युद्धे दुष्टान् विजित्य राजश्रियं प्राप्य सुखयितव्यम्॥८॥

पदार्थः-जैसे (**विश्वः**) सब (**मर्तः**) मनुष्य (**नेतुः**) सब को प्राप्त वा (**देवस्य**) सब का प्रकाश करने वाले परमेश्वर के साथ (**सख्यम्**) मित्रता और गुणकर्मसमूह को (**वुरीत**) स्वीकार और (**विश्वः**) सब (**राये**) धन की प्राप्ति के लिये (**इषुध्यति**) बाणों को धारण करे, वह (**द्युम्नम्**) धन को (**वृणीत**) स्वीकार करे, वैसे हे मनुष्य! इस सब का अनुष्ठान करके (**स्वाहा**) सत्क्रिया से तू भी (**पुष्यसे**) पुष्ट हो॥८॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। सब मनुष्यों को परमेश्वर की उपासना करके परस्पर मित्रपन का सम्पादन कर, युद्ध में दुष्टों को जीत के, राज्यलक्ष्मी को प्राप्त होकर सुखी रहना चाहिये॥८॥

ऋक्सामयोरित्यस्याङ्गिरस ऋषयः। विद्वान् देवता। आर्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

मनुष्यैः कथं शिल्पसिद्धिः कर्त्तव्येत्युपदिश्यते॥

मनुष्यों को शिल्पविद्या की सिद्धि कैसे करनी चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

ऋक्सामयोः शिल्पे स्थस्ते वामारभे ते मा पातमास्य यज्ञस्योदृचः।
शर्मासि शर्म मे यच्छ नमस्तेऽअस्तु मा मा हिꣳसीः॥९॥

ऋक्सामयोरित्यृक्ऽसामयोः। शिल्पेऽइति शिल्पे। स्थः। तेऽइति ते। वाम्। आ। रभे। तेऽइति ते। मा। पातम्। आ। अस्य। यज्ञस्य। उदृचः इत्युत्ऽऋचः। शर्म्म। असि। शर्म्म। मे। यच्छ। नमः। ते। अस्तु। मा। मा। हिꣳसीः॥९॥

पदार्थः-(**ऋक्सामयोः**) ऋक् च साम च तयोर्वेदयोः, अध्ययनानन्तरम् (**शिल्पे**) मानसप्रसिद्धक्रियया सिद्धे (**स्थः**) भवतः (**ते**) द्वे (**वाम्**) ये (**आ**) समन्तात् (**रभे**) आरम्भं कुर्वे (**ते**) द्वे (**मा**) माम् (**पातम्**) रक्षतः, अत्र व्यत्ययः (**आ**) अभितः (**अस्य**) वक्ष्यमाणस्य (**यज्ञस्य**) शिल्पविद्यासिद्धस्य यज्ञस्य (**उदृचः**) उत्कृष्टा अधीताः प्रत्यक्षीकृता ऋचो यस्मिंस्तस्य (**शर्म्म**) सुखम् (**असि**) अस्ति (**शर्म्म**) सुखम् (**मे**) मह्यम् (**यच्छ**) ददाति। अत्र व्यत्ययो लडर्थे लोट् च (**नमः**) अन्नम्। **नम इत्यन्ननामसु पठितम्।** (निघं०२.७) (**ते**) तुभ्यम् (**अस्तु**) भवतु (**मा**) निषेधार्थे (**मा**) माम् (**हिꣳसीः**) हिन्धि, अत्र लोडर्थे लुङ्। अयं मन्त्रः (शत०(३.२.१.५-८) व्याख्यातः॥९॥

अन्वयः-हे विद्वन्नहमृक्सामयोरध्ययनानन्तरमुदृचोऽस्य यज्ञस्य सम्बन्धिनी वां ये शिल्पे आरभे। ये मा मां पात रक्षतो ये यस्य तव सकाशान्मया गृह्येते ते तुभ्यं मम नमोऽस्तु, त्वं मा मां शिल्पविद्यां शिक्षस्व मा

हिंसीर्विचालनं वा कुर्य्याः। यच्छर्म सुखमस्ति, तच्छर्म मे मह्यं यच्छ देहि॥९॥

भावार्थः-मनुष्यैर्विदुषां सकाशाद् वेदानधीत्य शिल्पविद्यां प्राप्य हस्तक्रिया साक्षात्कृत्य विमानयानादीनि कार्य्याणि निष्पाद्य सुखोन्नतिः कार्य्या॥९॥

पदार्थः-हे विद्वन्! आप जो मैं **(ऋक्सामयोः)** ऋग्वेद और सामवेद के पढ़ने के पीछे **(उदृचः)** जिसमें अच्छे प्रकार ऋचा प्रत्यक्ष की जाती है, **(अस्य)** इस **(यज्ञस्य)** शिल्पविद्या से सिद्ध हुए यज्ञ के सम्बन्धी **(वाम्)** ये **(शिल्पे)** मन वा प्रसिद्ध किया से सिद्ध की हुई कारीगरी की जो विद्यायें **(स्थः)** हैं, **(ते)** उन दोनों को **(आरभे)** आरम्भ करता हूं तथा जो **(मा)** मेरी **(आ)** सब ओर से **(पातम्)** रक्षा करते हैं, **(ते)** वे **(स्थः)** हैं, उनको विद्वानों के सकाश से ग्रहण करता हूं। हे विद्वन् मनुष्य! **(ते)** उस तेरे लिये **(मे)** मेरा **(नमः)** अन्नादि-सत्कार-पूर्वक नमस्कार **(अस्तु)** विदित हो तथा तुम **(मा)** मुझ को चलायमान मत करो और **(यत्)** जो **(शर्म)** सुख **(असि)** है, उस **(शर्म)** सुख को **(मे)** मेरे लिये **(यच्छ)** देओ॥९॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों के सकाश से वेदों को पढ़कर शिल्पविद्या वा हस्तक्रिया को साक्षात्कार कर विमान आदि यानों की सिद्धिरूप कार्य्यों को सिद्ध करके सुखों की उन्नति करें॥९॥

ऊर्गसीत्यस्याङ्गिरस ऋषयः। यज्ञो देवता। कृधीत्यन्तस्य निचृदार्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः।
उच्छ्रयस्वेत्यस्य साम्नी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

स शिल्पविद्यो यज्ञः कीदृशोऽस्तीत्युपदिश्यते॥

वह शिल्पविद्या यज्ञ कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

ऊर्ग॑स्याङ्गिर॒स्यूर्ण॑म्रदा॒ऽऊर्ज॒ं मयि॑ धेहि। सोम॑स्य नी॒विर॑सि॒ विष्णो॒ः शर्मा॑सि॒ शर्म॑ यज॑मान॒स्येन्द्र॑स्य॒ योनि॑रसि सु॒ऽस॒स्याः कृ॒षीस्कृ॑धि। उच्छ्र॑यस्व वनस्पत॒ऽऊ॒र्ध्वो मा॑ पा॒ह्यꣳह॑स॒ऽआस्य य॒ज्ञस्यो॒दृच॑ः॥ १०॥

ऊर्क्। अ॒सि॒। आ॒ङ्गि॒र॒सि॒। ऊर्ण॑म्रदा॒ इत्यूर्ण॑ऽम्रदाः। ऊर्ज॑म्। मयि॑। धे॒हि॒। सोम॑स्य। नी॒विः। अ॒सि॒। विष्णो॑ः। शर्म॑। अ॒सि॒। शर्म॑। यज॑मानस्य। इन्द्र॑स्य। योनि॑ः। अ॒सि॒। सु॒स॒स्या इति॑ सु॒ऽस॒स्याः। कृ॒षीः। कृ॒धि॒। उत्। श्र॒य॒स्व॒। व॒न॒स्प॒ते॒। ऊ॒र्ध्वः। मा॒। पा॒हि॒। अꣳह॑सः। आ। अ॒स्य। य॒ज्ञस्य॑। उ॒दृच॒ इत्यु॒त्ऽऋच॒ः॥ १०॥

पदार्थः-**(ऊर्क्)** पराक्रमान्नादिप्रदा शिल्पविद्या **(असि)** अस्ति। अत्र सर्वत्र व्यत्ययः **(आङ्गिरसि)** याङ्गिरीभिरग्न्यादिभिर्निर्वृत्ता सिद्धा सा [शिल्पविद्या]। ऊवटमहीधराभ्यामिदं निघातत्वात् सम्बोधनान्तं पदमबुद्ध्वा व्याख्यातमत एतयोः स्वरज्ञानमपि नास्त्यर्थज्ञानस्य तु का कथा? **(ऊर्णम्रदाः)** ऊर्णमाच्छादनं मृद्नन्ति संत्वेषन्ति यया सा **(ऊर्जम्)** पराक्रममन्नादिकं वा **(मयि)** शिल्पिनि **(धेहि)** दधाति **(सोमस्य)** उत्पन्नस्य पदार्थसमूहस्य **(नीविः)** या नितरां व्ययति संवृणोति। **नौ व्यो यलोपः [पूर्वस्य च दीर्घः]। (उणा०४.१३७)** इत्यौणादिकसूत्रेण व्येञ् संवरण इत्यस्मादिण् प्रत्ययः, स च डित्, डित्त्वादाकारलोपः। यलोपस्तु सूत्रेणैव पूर्वपदस्य च दीर्घत्वम् **(असि)** अस्ति **(विष्णोः)** शिल्पविद्याव्यापकस्य विदुषः सकाशात् प्राप्यम् **(शर्म)** सुखम् **(असि)** अस्ति **(शर्म)** सुखम् **(यजमानस्य)** शिल्पक्रियाविदः **(इन्द्रस्य)** परमैश्वर्य्येण युक्तस्य योजकस्य वा **(योनिः)** निमित्तम् **(असि)**

भवति (**सुसस्याः**) शोभनानि सस्यानि धान्यादीनि याभ्यस्ताः (**कृषीः**) कर्षन्ति विलिखन्ति याभिः क्रियाभिस्ताः। अत्र **कःकरत्करति०। (अष्टा०**८.३.५०) इति विसर्जनीयस्य सत्वम् (**कृधि**) कुरु, कारय वा (**उत्**) उत्कृष्टार्थे (**श्रयस्व**) सेवस्व, सेवते वा (**वनस्पते**) वनानां विद्याप्रकाशकानां पतिः पालयिता तत्सम्बुद्धौ, वृक्षावयवो वा (**ऊर्ध्वः**) ऊर्ध्वं स्थित ऊर्ध्वं स्थापितो वा (**मा**) माम् (**पाहि**) रक्ष, रक्षति वा (**अंहसः**) पापात् तत्फलाद् दुःखाद्वा (**आ**) समन्तात् (**अस्य**) प्रत्यक्षमनुष्ठीयमानस्य (**यज्ञस्य**) शिल्पविद्यासाध्यस्य (**उदृचः**) उक्तार्थस्य। अयं मन्त्रः (शत०(३.२.१.१४-३५) व्याख्यातः॥१०॥

अन्वयः-हे वनस्पते विद्वंस्त्वं याङ्गिरस्यूर्णम्रदा ऊर्क् शिल्पविद्यास्ति, योर्जं दधाति, या सोमस्य नीविरस्ति, या विष्णोर्यजमानस्येन्द्रस्य योनिरस्ति। याऽस्योदृचो विष्णोर्यज्ञस्य शर्म सुखकारिकास्ति, तामाधेहि। सुसस्याः कृषीस्कृधि कुरु कारय वोर्ध्वं मामुच्छ्रयस्व सुसस्याः कृषीश्चांहसो मां पाहि, विमानादिषु यानेषु या वनस्पतिरूर्ध्वं स्थाप्यते तमप्युच्छ्रयस्व॥१०॥

भावार्थः-मनुष्यैर्विद्वद्भ्यः शिल्पविद्यां साक्षात्कृत्यैतां प्रचार्य्य सर्वे मनुष्याः समृद्धाः कार्य्याः॥१०॥

पदार्थः-हे (**वनस्पते**) प्रकाशनीय विद्याओं का प्रचार करने वाले विद्वान् मनुष्य! तू जो (**आङ्गिरसि**) अग्नि आदि पदार्थों से सिद्ध की हुई (**ऊर्णम्रदाः**) आच्छादन का प्रकाश वा (**ऊर्क्**) पराक्रम तथा अन्नादि को करने वाली शिल्पविद्या (**असि**) है अथवा जो (**ऊर्जम्**) पराक्रम वा अन्न आदि को धारण करती (**असि**) है, जो (**सोमस्य**) उत्पन्न पदार्थ समूह का (**नीविः**) संवरण करने वाली (**असि**) है, जो (**विष्णोः**) शिल्पविद्या में व्यापक बुद्धि (**यजमानस्य**) शिल्पक्रिया को जानने वाले (**इन्द्रस्य**) परमैश्वर्य्ययुक्त मनुष्य के (**शर्म**) सुख का (**योनिः**) निमित्त (**असि**) है, जो (**अस्य**) इस (**उदृचः**) ऋचाओं के प्रत्यक्ष करने वाले (**यज्ञस्य**) शिल्पक्रिया-साध्य यज्ञ की (**शर्म**) सुख कराने वाली (**असि**) है, उसको (**मयि**) शिल्पविद्या को जानने की इच्छा करने वाले मुझ में (**आ धेहि**) अच्छे प्रकार धारण कर (**सुसस्याः**) उत्तम-उत्तम धान्य उत्पन्न करने वा (**कृषीः**) खेती वा खेंचने वाली क्रियाओं को (**कृधि**) सिद्ध कर, (**ऊर्ध्वः**) ऊपर स्थित होने वाले (**मा**) मुझ को (**उच्छ्रयस्व**) उत्तम धान्यवाली खेती का सेवन कराओ और (**अंहसः**) पाप वा दुःखों से (**पाहि**) रक्षा कर, जो विमान आदि यानों और यज्ञ में (**वनस्पते**) वृक्ष की शाखा ऊँची स्थापन की जाती है, उस को भी (**उच्छ्रयस्व**) उपयोग में लाओ॥१०॥

भावार्थः-मनुष्यों को विद्वानों के सकाश से शिल्पविद्या का साक्षात्कार और प्रचार करके सब मनुष्यों को समृद्धियुक्त करना चाहिये॥१०॥

व्रतं कृणुतेत्यस्याङ्गिरस ऋषयः। अग्निर्देवता। पूर्वस्य स्वराड् ब्राह्म्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः।
ये देवा इत्युत्तरस्यार्ष्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

अथानेकार्थमग्निं विज्ञाय कः क उपकारो ग्राह्य इत्युपदिश्यते॥

अब अनेक अर्थ वाले अग्नि को जानकर उससे क्या-क्या उपकार लेना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

व्रतं कृणुताग्निर्ब्रह्माग्निर्यज्ञो वनस्पतिर्यज्ञियः। दैवीं धियं मनामहे सुमृडीकामभिष्टये वर्चोधां यज्ञवाहसꣳ सुतीर्था नोऽअसद्वशे। ये देवा मनोजाता मनोयुजो दक्षक्रतवस्ते नोऽवन्तु ते नः पान्तु तेभ्यः स्वाहा॥ ११॥

व्रतम्। कृणुत। अग्निः। ब्रह्म। अग्निः। यज्ञः। वनस्पतिः। यज्ञियः। दैवीम्। धियम्। मनामहे। सुमृडीकामिति सुऽमृडीकाम्। अभिष्टये। वर्चोधामिति वर्चःऽधाम्। यज्ञवाहसमिति यज्ञऽवाहसम्। सुतीर्थेति सुऽतीर्था। नः। असत्। वशे। ये। देवाः। मनोजाता इति मनःऽजाताः। मनोयुज इति मनःऽयुजः। दक्षऽक्रतव इति दक्षऽक्रतवः। ते। नः। अवन्तु। ते। नः। पान्तु। तेभ्यः। स्वाहा॥ ११॥

पदार्थः-(**व्रतम्**) नियमपूर्वकं धर्म्यानुचरणम् (**कृणुत**) स्वीकुरुत (**अग्निः**) वाचकः (**ब्रह्म**) सच्चिदानन्दलक्षणं चेतनं वाच्यम् (**अग्निः**) अभिधायकः (**यज्ञः**) अभिधेयः (**वनस्पतिः**) वनानां पालयिताग्निसंज्ञकः (**यज्ञियः**) यो यज्ञमर्हति (**दैवीम्**) दिव्यगुणसम्पन्नाम् (**धियम्**) प्रज्ञां, क्रियां वा (**मनामहे**) विजानीयाम, याचेमहि। **मनामह इति याञ्चाकर्मसु पठितम्।** (निघं०३.१९) (**सुमृडीकाम्**) सुष्ठु मृडन्ति सुखयन्ति यया ताम्। **मृडः कीकच्कङ्कणौ। (उणा०**४.२४) अनेन मृडीकेति सिद्धम् (**अभिष्टये**) इष्टसिद्धये। अत्र **एमन्नादिषु छन्दसि पररूपं वाच्यम्। (अष्टा०**वा०६.१.९४) अनेन वार्त्तिकेन पररूपादस्य सिद्धिः (**वर्चोधाम्**) या वर्चो विद्या दीप्तिं दधाति ताम् (**यज्ञवाहसम्**) या यज्ञं परमेश्वरोपासनं शिल्पविद्यासिद्धं वा वहति प्रापयति ताम् (**सुतीर्था**) शोभनानि तीर्थानि वेदाध्ययनधर्माचरणदीन्याचरितानि यया सा (**नः**) अस्मदर्थम् (**असत्**) भवेत्, लेट् प्रयोगोऽयम् (**वशे**) प्रकाशन्ते यस्मिंस्तस्मिन्। अत्र बाहुलकादौणादिकोऽन् प्रत्ययः (**ये**) वक्ष्यमाणाः (**देवाः**) विद्वांसः (**मनोजाताः**) ये मनसा विज्ञानेन जायन्ते ते (**मनोयुजः**) ये मनसा सदसद्विज्ञानेन युञ्जन्ति योजयन्ति वा ते (**दक्षक्रतवः**) दक्षाः शरीरात्मबलानि क्रतवः प्रज्ञाः कर्माणि वा येषां ते। **दक्ष इति बलनामसु पठितम्।** (निघं०२.९) (**ते**) उक्ताः (**नः**) अस्मान् (**अवन्तु**) विद्यासत्क्रियासुशिक्षादिषु प्रवेशयन्तु (**ते**) आप्ताः (**नः**) अस्मान् (**पान्तु**) सततं रक्षन्तु (**तेभ्यः**) पूर्वोक्तेभ्यः (**स्वाहा**) येभ्यो विद्यावाक् प्राप्ता भवति। अयं मन्त्रः (शत०(३.२.२.७-१८) व्याख्यातः॥११॥

अन्वयः-वयं यद्ब्रह्माग्निरग्निनामा सद्यो यज्ञोऽग्निसंज्ञोऽसद्, यो वनस्पतिर्यश्च यज्ञोऽग्निर्नामकस्तमु-पास्योपकृत्याभिष्टये या सुतीर्थास्ति तां सुमृडीकां वर्चोधां दैवीं धियं मनामहे विजानीयाम। ये दक्षक्रतवो मनोजाता मनोयुजो देवा विद्वांसो वशे वर्त्तमानाः सन्ति, तेभ्यः स्वाहा प्राप्ता भवति। ये नोऽस्मदर्थं धियं प्रकाशयन्ति, तेभ्यः पूर्वोक्तामेतां धियं मनामहे याचामहे, ते नोऽस्मानवन्तु, ते नोऽस्मान् सततं पान्तु॥ ११॥

भावार्थः-मनुष्यैर्यस्याग्निसंज्ञा तद्ब्रह्म विज्ञायोपास्य सुप्रज्ञा प्राप्तव्या, विद्वांसः तया शिल्पयज्ञान् संसाध्नुवन्ति, तेषां सङ्गमेन विद्यां प्राप्य स्वतन्त्रे व्यवहारे सदा स्थातव्यम्। नहि प्रज्ञया विना कश्चित् सुखमेधते, तस्मात् सर्वैर्विद्वद्भिः सर्वेभ्यो मनुष्येभ्यो ब्रह्मविद्यां पदार्थविद्यां बुद्धिं च दत्त्वैते सततं रक्ष्याः, रक्षिताश्चैते परमेश्वरस्य धार्मिकाणां विदुषां च प्रियाणि कर्माणि नित्यमाचरेयुः॥ ११॥

पदार्थः-हम लोग जो (**ब्रह्म**) ब्रह्मपदावाच्य (**अग्निः**) अग्नि नाम से प्रसिद्ध (**असत्**) है, जो (**यज्ञः**) अग्निसंज्ञक और जो (**वनस्पतिः**) वनों का पालन करने वाला यज्ञ (**अग्निः**) अग्नि नामक है, उसकी उपासना कर वा उससे उपकार लेकर (**अभिष्टये**) इष्टसिद्धि के लिये जो (**सुतीर्था**) जिससे अत्युत्तम दुःखों से तारने वाले

वेदाध्ययनादि तीर्थ प्राप्त होते हैं, उस **(सुमृडीकाम्)** उत्तम सुखयुक्त **(वर्चोधाम्)** विद्या वा दीप्ति को धारण करने तथा **(दैवीम्)** दिव्यगुणसम्पन्न **(धियम्)** बुद्धि वा क्रिया को **(मनामहे)** जानें, **(ये)** जो **(दक्षक्रतवः)** शरीर, आत्मा के बल, प्रज्ञा वा कर्म से युक्त **(मनोजाताः)** विज्ञान से उत्पन्न हुए **(मनोयुजः)** सत्-असत् के ज्ञान से युक्त **(देवाः)** विद्वान् लोग **(वशे)** प्रकाशयुक्त कर्म में वर्त्तमान हैं, वा जिनसे **(स्वाहा)** विद्यायुक्त वाणी प्राप्त होती है, **(तेभ्यः)** उनसे पूर्वोक्त प्रज्ञा की **(मनामहे)** याचना करते हैं, **(ते)** वे **(नः)** हम लोगों को **(अवन्तु)** विद्या, उत्तम क्रिया, तथा शिक्षा आदिकों में प्रवेश [करायें] और **(नः)** हम लोगों की निरन्तर **(पान्तु)** रक्षा करें॥११॥

भावार्थः-मनुष्यों को जिसकी अग्नि संज्ञा है, उस ब्रह्म को जान और उसकी उपासना करके उत्तम बुद्धि को प्राप्त करना चाहिये। विद्वान् लोग जिस बुद्धि से यज्ञ को सिद्ध करते हैं, उससे शिल्पविद्याकारक यज्ञों को सिद्ध करके विद्वानों के सङ्ग से विद्या को प्राप्त होके स्वतन्त्र व्यवहार में सदा रहना चाहिये, क्योंकि बुद्धि के विना कोई भी मनुष्य सुख को नहीं बढ़ा सकता। इससे विद्वान् मनुष्यों को उचित है कि सब मनुष्यों के लिये ब्रह्मविद्या और पदार्थविद्या और बुद्धि की शिक्षा करके निरन्तर रक्षा करें और वे रक्षा को प्राप्त हुए मनुष्य परमेश्वर वा विद्वानों के उत्तम-उत्तम प्रिय कर्मों का आचरण किया करें॥११॥

श्वात्रा इत्यस्याङ्गिरस ऋषयः। आपो देवताः। ब्राह्म्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

एतदनुष्ठायाग्रे मनुष्यैः किं किं कर्त्तव्यमित्युपदिश्यते॥

इसका अनुष्ठान करके आगे मनुष्यों को क्या-क्या करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

श्वात्राः पीता भवत यूयमापोऽअस्माकमन्तरुदरे सुशेवाः।

ताऽअस्मभ्यमयक्ष्माऽअनमीवाऽअनागसः स्वदन्तु देवीरमृताऽऋतावृधः॥१२॥

श्वात्राः। पीताः। भवत। यूयम्। आपः। अस्माकम्। अन्तः। उदरे। सुशेवा इति सुऽशेवाः। ताः। अस्मभ्यम्। अयक्ष्माः। अनमीवाः। अनागसः। स्वदन्तु। देवीः। अमृताः। ऋतावृधः। ऋतवृध इत्यृतऽवृधः॥१२॥

पदार्थः-**(श्वात्राः)** श्वात्रं प्रशस्तं विज्ञानं धनं वा विद्यते यासां ताः। अत्र **अर्श आदिभ्योऽच्।** **(अष्टा०**५.२.१२७) इति प्रशंसार्थेऽच्। **श्वात्रमिति पदनामसु पठितम्।** (निघं०४.२) **धननामसु च।** (निघं०२.१०) **(पीताः)** कृतपानाः **(भवत)** नित्यं सम्पद्येरन् **(यूयम्)** एताः **(आपः)** प्राणा जलादयो वा **(अस्माकम्)** मनुष्याणाम् **(अन्तः)** मध्ये **(उदरे)** शरीराभ्यन्तरे **(सुशेवाः)** सुष्ठु शेवं सुख याभ्यस्ताः। **शेवमिति सुखनामसु पठितम्।** (निघं०३.६) **(अस्मभ्यम्)** मनुष्यादिभ्यः **(अयक्ष्माः)** अविद्यमानो यक्ष्मा क्षयरोगे याभ्यस्ताः **(अनमीवाः)** अविद्यमानोऽमीवा ज्वरादिरोगसमूहो याभ्यस्ताः **(अनागसः)** न विद्यतेऽगः पापं दोषो यासु ता निर्दोषाः **(स्वदन्तु)** सुष्ठु सेवन्ताम् **(देवीः)** दिव्यगुणसम्पन्नाः। अत्र **वा छन्दसि।** [अष्टा०६.१.१०६] इति जसः पूर्वसवर्णत्वम् **(अमृताः)** नाशरहिता अमृतरसाः **(ऋतावृधः)** या ऋतं सत्यं वर्धयन्ति ताः। अयं मन्त्रः (शत०(३.२.२.१९) व्याख्यातः॥१२॥

अन्वयः-हे मनुष्या! या अस्माभिः पीताः अस्माकमन्तरुदरे स्थिता अस्मभ्यं श्वात्राः सुशेवा अयक्ष्मा अनमीवा अनागस ऋतावृधोऽमृता देवीर्देव्य आपो भवन्ति, ता भवन्तः स्वदन्तु सुसेवन्ताम्। तदेतदनुष्ठाय यूयं

सुखिनो भवत॥१२॥

भावार्थः-मनुष्यैर्विद्वत्सङ्गेन सुशिक्षया विद्यां प्राप्य सर्वथा सुपरीक्षिताः शोधिताः संस्कृताः शरीरात्मबलवर्धका रोगविच्छेदका जलादयः पदार्थाः सेवनीयाः। नहि विद्याऽऽरोग्याभ्यां विना कश्चिदपि निरन्तरं कर्म कर्तुं शक्नोति, तस्मादेतत् सर्वदाऽनुष्ठेयम्॥१२॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो हम ने **(पीताः)** पिये **(अस्माकम्)** मनुष्यों के **(अन्तः)** मध्य वा **(उदरे)** शरीर के भीतर स्थित हुए **(अस्मभ्यम्)** मनुष्यादिकों के लिये **(सुशेवाः)** उत्तम सुखयुक्त **(अनमीवाः)** ज्वरादि रोग-समूह से रहित **(अयक्ष्माः)** क्षय आदि रोगकारक दोषों से रहित **(अनागसः)** पाप दोष निमित्तों से पृथक् **(ऋतावृधः)** सत्य को बढ़ाने वा **(अमृताः)** नाशरहित अमृतरसयुक्त **(देवीः)** दिव्यगुणसम्पन्न **(आपः)** प्राण वा जल हैं, **(ताः)** उनको आप लोग **(स्वदन्तु)** अच्छे प्रकार सेवन किया करो। इसका अनुष्ठान करके **(यूयम्)** तुम सब मनुष्य सुखों को भोगने वाले **(भवत)** नित्य होओ॥१२॥

भावार्थः-मनुष्यों को विद्वानों के सङ्ग वा उत्तम शिक्षा से विद्या को प्राप्त होकर अच्छे प्रकार परीक्षित शुद्ध किये हुए, शरीर और आत्मा के बल को बढ़ाने और रोगों को दूर करने वाले जल आदि पदार्थों का सेवन करना चाहिये, क्योंकि विद्या वा आरोग्यता के विना कोई भी मनुष्य निरन्तर कर्म करने को समर्थ नहीं हो सकता। इससे इस कार्य्य का सर्वदा अनुष्ठान करना चाहिये॥१२॥

इयन्त इत्यस्याङ्गिरस ऋषयः। आपो देवता। भुरिगार्षी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनस्ता आपः कीदृशः सन्तीत्युपदिश्यते॥

फिर वे जल कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

इयं ते यज्ञिया तनूरपो मुञ्चामि न प्रजाम्।

अंहोमुचः स्वाहाकृताः पृथिवीमाविशत पृथिव्या सम्भव॥१३॥

इयम्। ते। यज्ञिया। तनूः। अपः। मुञ्चामि। न। प्रजामिति प्रऽजाम्। अंहोमुच इत्यंहःऽमुचः। स्वाहाकृता इति स्वाहाऽकृताः। पृथिवीम्। आ। विशत। पृथिव्या। सम्। भव॥१३॥

पदार्थः-**(इयम्)** वक्ष्यमाणा **(ते)** तव **(यज्ञिया)** या यज्ञमर्हति सा **(तनूः)** शरीरम् **(अपः)** सुसंस्कृतानि जलानि **(मुञ्चामि)** प्रक्षिपामि **(न)** निषेधार्थे **(प्रजाम्)** या प्रजायते ताम् **(अंहोमुचः)** दुःखमोचयित्र्यः **(स्वाहाकृताः)** याः क्रियया सुसंस्कृताः क्रियन्ते ताः **(पृथिवीम्)** भूमिम् **(आ)** समन्तात् **(विशत)** प्रवेशं कुरुत **(पृथिव्या)** भूम्या सह **(सम्)** सम्यगर्थे **(भव)** सम्पद्यस्व। अयं मन्त्रः (शत०(३.२.२.२०-२१) व्याख्यातः॥१३॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यथा ते तव येयं यज्ञिया तनूरपः प्राणान् प्रजां पालनीयां न त्यजति, यं त्वं न मुञ्चसि यथैवाहमेता ईदृशं स्वशरीरं च न मुञ्चामि न परित्यजामि, हे मनुष्याः! यथा यूयं पृथिव्या सह संभवतांहोमुचः स्वाहाकृताः अपः पृथिवीं चाविशत, विज्ञानेन समन्तात् प्रवेशं कुरुताहं च सम्भवाम्याविशामि, तथा त्वमपि सम्भव चाविश॥१३॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। सर्वैर्मनुष्यैर्विद्यया परस्परं पदार्थान् मेलयित्वा सेवित्वा रोगरहितं शरीरमात्मानं च पालयित्वा सुखयितव्यम्॥१३॥

पदार्थ:-हे विद्वन् मनुष्य! जैसे **(ते)** तेरा जो **(इयम्)** यह **(यज्ञिया)** यज्ञ के योग्य **(तनू:)** शरीर **(अप:)** जल, प्राण वा **(प्रजाम्)** प्रजा की रक्षा करता है, जिसको तू नहीं छोड़ता, मैं भी अपने उस शरीर को विना पूर्ण आयु भोगे प्रमाद से बीच में **(न मुञ्चामि)** नहीं छोड़ता हूँ। हे मनुष्यो! जैसे तुम **(पृथिव्या)** भूमि के साथ वैभवयुक्त होते **(अंहोमुच:)** दु:खों को छुड़ाने वा **(स्वाहाकृता:)** वाणी से सिद्ध किये हुए **(अप:)** जल और **(पृथिवीम्)** भूमि को **(आविशत)** अच्छे प्रकार विज्ञान से प्रवेश करते हो, मैं इनसे ऐश्वर्य्यसहित और इनमें प्रविष्ट होता हूं, वैसे तू भी **(सम्भव)** हो और प्रवेश कर॥१३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि विद्या से परस्पर पदार्थों का मेल और सेवन कर रोगरहित शरीर तथा आत्मा की रक्षा करके सुखी रहना चाहिये॥१३॥

अग्ने त्वमित्यस्याङ्गिरस ऋषय:। अग्निर्देवता। स्वराडार्ष्युष्णिक् छन्द:। ऋषभ: स्वर:॥

पुनरग्निगुणा उपदिश्यन्ते॥

फिर अग्नि के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अग्ने त्वꣳ सु जागृहि वयꣳ सु मन्दिषीमहि।

रक्षा णोऽअप्रयुच्छन् प्रबुधे न: पुनस्कृधि॥१४॥

अग्ने। त्वम्। सु। जागृहि। वयम्। सु। मन्दिषीमहि। रक्ष। न:। अप्रयुच्छन्नित्यप्रऽयुच्छन्। प्रबुध इति प्रऽबुधे। न। पुनरिति पुन:। कृधि॥१४॥

पदार्थ:-**(अग्ने)** अयमग्नि: **(त्वम्)** य: **(सु)** श्रैष्ठ्ये **(जागृहि)** जागर्त्ति। अत्र व्यत्ययो लडर्थे लोट् च **(वयम्)** कर्मानुष्ठातारो नित्यं जागरिता: **(सु)** शोभने **(मन्दिषीमहि)** शयीमहि **(रक्ष)** रक्षति। अत्र **द्व्यचोऽतस्तिङ:।** [अष्टा०६.३.१३५] इति दीर्घ: **(न:)** अस्मान् **(अप्रयुच्छन्)** प्रमादमकुर्वन् **(प्रबुधे)** जागरिते **(न:)** अस्मान् **(पुन:)** **(कृधि)** करोति। अत्र व्यत्ययो लडर्थे लोट् च। अयं मन्त्र: (शत०(३.२.२.२२) व्याख्यात:॥१४॥

अन्वय:-अग्ने त्वं योऽग्नि: प्रबुधे नोऽस्मान् सुजागृहि सुष्ठु जागरयति, येन वयं सुमन्दिषीमहि, योऽप्रयुच्छन्नोस्मान् रक्ष रक्षति, प्रयुच्छतश्च हिनस्ति, यो नोऽस्मान् पुन: पुनरेवं कृधि करोति, सोऽस्माभिर्युक्त्या सम्यक् सेवनीय:॥१४॥

भावार्थ:-मनुष्यैर्योऽग्नि: शयनजागरणजीवनमरणहेतुरस्ति स युक्त्या संप्रयोक्तव्य:॥१४॥

पदार्थ:-**(अग्ने)** जो अग्नि **(प्रबुधे)** जगने के समय **(सुजागृहि)** अच्छे प्रकार जगाता वा जिससे **(वयम्)** जगत् के कर्मानुष्ठान करने वाले हम लोग **(सुमन्दिषीमहि)** आनन्दपूर्वक सोते हैं, जो **(अप्रयुच्छन्)** प्रमादरहित होके **(न:)** प्रमादरहित हम लोगों की **(रक्ष)** रक्षा तथा प्रमादसहितों को नष्ट करता और जो **(न:)** हम लोगों के साथ **(पुन:)** बार-बार इसी प्रकार **(कृधि)** व्यवहार करता है, उसको युक्ति के साथ सब मनुष्यों को सेवन करना चाहिये॥१४॥

भावार्थ:-मनुष्यों को जो अग्नि सोने, जागने, जीने तथा मरने का हेतु है, उसका युक्ति से सेवन करना चाहिये॥१४॥

पुनर्मन इत्यस्याङ्गिरस ऋषयः। अग्निर्देवता। ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

जीवा अग्निवाय्वादिनिमित्तेन जागरणे पुनर्जन्मनि वा प्रसिद्धानि मनआदीनीन्द्रियाणि प्राप्नुवन्तीत्युपदिश्यते॥

जीव अग्नि, वायु आदि पदार्थों के निमित्त से जगने के समय वा दूसरे जन्म में प्रसिद्ध मन आदि इन्द्रियों को प्राप्त होते हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

पुनर्मनः पुनरायुर्मऽआगन् पुनः प्राणः पुनरात्मा मऽआगन् पुनश्चक्षुः पुनः श्रोत्रं मऽआगन्। वैश्वानरोऽदब्धस्तनूपाऽअग्निर्नः पातु दुरितादवद्यात्॥ १५॥

पुनः। मनः। पुनः। आयुः। मे। आ। अगन्। पुनरिति पुनः। प्राणः। पुनः। आत्मा। मे। आ। अगन्। पुनरिति पुनः। चक्षुः। पुनरिति पुनः। श्रोत्रम्। मे। आ। अगन्। वैश्वानरः। अदब्धः। तनूपा इति तनूऽपाः। अग्निः। नः पातु। दुरितादिति दुःऽइतात्। अवद्यात्॥ १५॥

पदार्थः-(**पुनः**) शयनानन्तरं जागरणे, द्वितीये जन्मनि वा (**मनः**) विज्ञानसाधकम् (**पुनः**) पश्चाज्जन्मानन्तरम् (**आयुः**) येन जीवनम् (**मे**) मह्यम् (**आ**) समन्तात् (**अगन्**) प्राप्नोति। अत्र सर्वत्र लडर्थे लुङ्। **मन्त्रे घस०।** [अष्टा०२.४.८०] इति च्लेर्लुक्। **मो नो धातोः।** [अष्टा०८.२.६४] इति मकारस्य नकारः (**पुनः**) वारंवारम् (**प्राणः**) शरीराधारकः (**पुनः**) पश्चात् मनुष्यदेहधारणानन्तरम् (**आत्मा**) अतति सर्वत्र व्याप्नोतीति सर्वान्तर्य्यामी परमात्मा, स्वस्वभावो वा (**मे**) मह्यम् (**आ**) अभितः (**अगन्**) प्राप्नोति (**पुनः**) पश्चात् (**चक्षुः**) चष्टे येन तद्रूपग्राहकमिन्द्रियम् (**पुनः**) अग्रे (**श्रोत्रम्**) शृणोति शब्दान् येन तच्छब्दग्राहकमिन्द्रियम् (**मे**) मह्यम् (**आ**) आभिमुख्ये (**अगन्**) प्राप्नोति (**वैश्वानरः**) शरीरनेता जाठराग्निः, सर्वस्य नेता परमेश्वरो वा (**अदब्धः**) हिंसितुमनर्हः (**तनूपाः**) यः शरीरमात्मानं च रक्षति (**अग्निः**) अन्तःस्थो विज्ञानस्वरूपो वा (**नः**) अस्मान् (**पातु**) पालयति पालयतु वा (**दुरितात्**) पापजन्यात् प्राप्तव्याद् दुःखाद् दुष्टकर्मणो वा (**अवद्यात्**) पापाचरणात्। अयं मन्त्रः (शत०(३.२.२.२३) व्याख्यातः॥१५॥

अन्वयः-यस्य सम्बन्धेन कृपया वा मे मह्यं जागरणे पुनर्जन्मनि वा मन आयुः पुनरागन्, मे मम प्राणः पुनरागन्, आत्मा पुनरागन्, मे मह्यं चक्षुः पुनरागन्, श्रोत्रं पुनरागन्। सोऽदब्धस्तनूपा वैश्वानरोऽग्निर्नोऽस्मानवद्याद् दुरितात् पातु पालयति पालयतु वा॥१५॥

भावार्थः-अत्र श्लेषालङ्कारः। यदा जीवाः शयनं मरणं च प्राप्नुवन्ति, तदा यानि कार्य्यसिद्धिसाधनानि मन आदीनीन्द्रियाणि प्रलीनानीव भूत्वा पुनः पुनर्जागरणे जन्मान्तरे वा प्राप्नुवन्ति, तानि यस्य विद्युदग्न्यादेः सम्बन्धेन परमेश्वरस्य सत्ता व्यवस्थाभ्यां वा सगोलकानि भूत्वा कार्य्यकरणसमर्थानि भवन्ति, स सम्यक् सेवितो जाठराग्निः सर्वं रक्षत्युपासितो जगदीश्वरः पापकर्मणः सकाशान्निवर्त्त्य धर्मे प्रवर्त्य पुनः पुनर्मनुष्यजन्मानि प्रापय्य दुष्टाचाराद् दुःखेभ्यश्च पृथक्कृत्वाऽऽभ्युदयिकं नैःश्रेयसिकं च सुखं प्रापयति॥१५॥

पदार्थः-जिसके सम्बन्ध वा कृपा से (**मे**) मुझ को जो (**मनः**) विज्ञानसाधक मन (**आयुः**) उमर (**पुनः**) फिर-फिर (**आगन्**) प्राप्त होता (**मे**) मुझ को (**प्राणः**) शरीर का आधार प्राण (**पुनः**) फिर (**आगन्**) प्राप्त होता (**आत्मा**) सब में व्यापक सब के भीतर की सब बातों को जानने वाले परमात्मा का विज्ञान (**आगन्**) प्राप्त होता

(मे) मुझको **(चक्षुः)** देखने के लिये नेत्र **(पुनः)** फिर **(आगन्)** प्राप्त होते और **(श्रोत्रम्)** शब्द को ग्रहण करने वाले कान **(आगन्)** प्राप्त होते हैं, वह **(अदब्धः)** हिंसा करने अयोग्य **(तनूपाः)** शरीर वा आत्मा की रक्षा करने और **(वैश्वानरः)** शरीर को प्राप्त होने वाला **(अग्निः)** अग्नि वा विश्व को प्राप्त होने वाला परमेश्वर **(नः)** हम लोगों को **(अवद्यात्)** निन्दित **(दुरितात्)** पाप से उत्पन्न हुए दुःख वा दुष्ट कर्मों से **(पातु)** पालन करता है॥१५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जब जीव सोने वा मरण आदि व्यवहार को प्राप्त होते हैं, तब जो-जो मन आदि इन्द्रिय नाश हुए के समान होकर फिर जगने वा जन्मान्तर में जिन कार्य्य करने के साधनों को प्राप्त होते हैं, वे इन्द्रिय जिस विद्युत् अग्नि आदि के सम्बन्ध परमेश्वर की सत्ता वा व्यवस्था से शरीर वाले होकर कार्य्य करने को समर्थ होते हैं, मनुष्यों को योग्य है कि (जो) वह अच्छे प्रकार सेवन किया हुआ जाठराग्नि सब की रक्षा करता और जो उपासना किया हुआ जगदीश्वर पापरूप कर्मों से अलग कर धर्म में प्रवृत्त कर बार-बार मनुष्यजन्म को प्राप्त कराकर दुष्टाचार वा दुःखों से पृथक् करके इस लोक वा परलोक के सुखों को प्राप्त कराता है॥१५॥

त्वमग्ने व्रतपा इत्यस्य वत्स ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तौ कीदृशावित्युपदिश्यते॥

फिर वे कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

त्वम॑ग्ने व्र॒त॒पाऽअ॑सि दे॒वऽआ मर्त्ये॒ष्वा। त्वं य॒ज्ञेष्वीड्य॑ः।

रास्वेय॑त्सो॒मा भूयो॑ भर दे॒वो न॑ः सवि॒ता वसो॑र्दा॒ता वस्व॑दात्॥ १६॥

त्वम्। अ॒ग्ने॒। व्र॒त॒पा इति॑ व्र॒त॒ऽपाः। अ॒सि॒। दे॒वः। आ। मर्त्ये॑षु। आ। त्वम्। य॒ज्ञेषु॑। ईड्य॑ः। रास्व॑। इय॑त्। सो॒म। आ। भूय॑ः। भ॒र॒। दे॒वः। न॒ः। स॒वि॒ता। वसो॑ः। दा॒ता। वसु॑। अ॒दा॒त्॥ १६॥

पदार्थः-**(त्वम्)** स वा **(अग्ने)** जगदीश्वर! अग्निर्वा **(व्रतपाः)** यो व्रतं सत्यं धर्माचरणनियमं पाति रक्षतीति **(असि)** अस्ति वा। अत्र पक्षे व्यत्ययः **(देवः)** दाता प्रकाशको वा **(आ)** समन्तात् **(मर्त्त्येषु)** मरणधर्मेषु मनुष्येषु कार्य्येषु वा **(आ)** अभितः **(त्वम्)** स वा **(यज्ञेषु)** सत्कारेषूपासनादिष्वग्निहोत्रादिषु शिल्पेषु वा **(ईड्यः)** स्तोतुमध्येषितुं वाऽर्हः **(रास्व)** देहि, ददाति वा **(इयत्)** प्राप्नुवन् **(सोम)** ऐश्वर्य्यप्रदैश्वर्य्यहेतुर्वा **(आ)** अभितः **(भूयः)** अतिशयेन बहुः **(भर)** भरति वा **(देवः)** द्योतकः **(नः)** अस्मभ्यम् **(सविता)** सर्वस्य जगत उत्पादकः प्रेरको वा **(वसोः)** धनस्य **(दाता)** प्रापकः **(वसु)** धनम् **(अदात्)** ददाति। अयं मन्त्रः (शत०(३.२.२.२४-२५) व्याख्यातः॥१६॥

अन्वयः-हे सोमग्ने! यस्त्वं मर्त्त्येषु व्रतपा सविता यज्ञेष्वीड्यो देवोऽसि, स भवान्नोऽस्मभ्यं वसोर्दाता सन् वस्वदाद् विज्ञानधनं ददाति, स भूयो वस्वारास्वेयत् सँस्त्वमेतान्यस्मदर्थमाभरेत्येकः॥१॥१६॥

योऽग्नेऽयमग्निर्मर्त्त्येषु व्रतपाः सविता यज्ञेष्वीड्योऽध्येषितव्यः सोमो देवोऽस्ति, स नोऽस्मभ्यं वसोर्दातियत् सन् भूयः सर्वकार्य्येष्वारास्वारासते, आभराभितः सुखैर्भरति पुष्णातीति द्वितीयः॥२॥१६॥

भावार्थः-अत्र श्लेषालङ्कारः। सर्वैर्मनुष्यैः सत्यस्वरूपस्य पूजार्हस्य सर्वजगदुत्पादकस्य सकलसुखप्रदातुः परमेश्वरस्यैवोपासनां कृत्वा सुखयितव्यम्, एवं च कार्य्यसिद्धये भौतिकमग्निं संप्रयोज्य सर्वाणि सुखानि प्राप्तव्यानीति॥१६॥

पदार्थ:-हे **(सोम)** ऐश्वर्य्य के देने वाले **(अग्ने)** जगदीश्वर! जो **(त्वम्)** आप **(मर्त्त्येषु)** मनुष्यों में **(व्रतपाः)** सत्य धर्माचरण की रक्षा **(सविता)** सब जगत् को उत्पन्न करने **(यज्ञेषु)** सत्कार वा उपासना आदि में **(ईड्यः)** स्तुति के योग्य **(नः)** हम लोगों के लिये **(वसोः)** धन के **(दाता)** दान करने वाले **(वसु)** धन को **(अदात्)** देते हैं, सो **(इयत्)** प्राप्त करते हुए आप **(भूयः)** बारंबार अत्यन्त धन **(आरास्व)** दीजिये **(आभर)** सब सुखों से पोषण कीजिये॥१॥१६॥

(त्वम्) जो **(अग्ने)** अग्नि **(मर्त्त्येषु)** मरण धर्म वाले मनुष्यों के कार्यों में **(व्रतपाः)** नियमाचरण का पालन **(देवः)** प्रकाश करने **(यज्ञेषु)** अग्निहोत्रादि यज्ञों में **(ईड्यः)** खोजने योग्य **(सोमः)** ऐश्वर्य को देने **(सविता)** जगत् को प्रेरणा करने **(देवः)** प्रकाशमान अग्नि है, वह **(नः)** हम लोगों के लिये **(वसोः)** धन को **(दाता)** प्राप्त **(इयत्)** कराता हुआ **(भूयः)** अत्यन्त **(वसु)** धन को **(अदात्)** देता और **(आरास्व)** धन को देने का निमित्त होके **(आभर)** सब प्रकार के सुखों को धारण करता है॥२॥१६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। सब मनुष्यों को उचित है कि जैसे सत्यस्वरूप सब जगत् को उत्पन्न करने और सकल सुखों के देने वाले जगदीश्वर ही की उपासना को करके सुखी रहें। इसी प्रकार कार्यसिद्धि के लिये अग्नि को संप्रयुक्त करके सब सुखों को प्राप्त करें॥१६॥

एषा त इत्यस्य वत्स ऋषिः। अग्निर्देवता। आर्ची त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतःस्वरः॥

एतान् सेवित्वा मनुष्येण कथं भवितव्यमित्युपदिश्यते॥

इनको सेवन करके मनुष्यों को कैसे वर्त्तना चाहिये, इस विषय को उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

एषा ते शुक्र तनूरेतद्वर्चस्तया सम्भव भ्राजङ्गच्छ। जूरसि धृता मनसा जुष्टा विष्णवे॥१७॥

एषा। ते। शुक्र। तनूः। एतत्। वर्चः। तया। सम्। भव। भ्राजम्। गच्छ। जूः। असि। धृता। मनसा। जुष्टा। विष्णवे॥१७॥

पदार्थ:-**(एषा)** वक्ष्यमाणा **(ते)** तव **(शुक्र)** वीर्य्यवन् विद्वन्! **(तनूः)** शरीरम् **(एतत्)** प्रत्यक्षम् **(वर्चः)** विज्ञानं तेजो वा **(तया)** तन्वा **(सम्)** सम्यगर्थे **(भव)** निष्पद्यस्व **(भ्राजम्)** प्रकाशम् **(गच्छ)** प्राप्नुहि **(जूः)** ज्ञानी वेगवान् वा **(असि)** भवसि **(धृता)** ध्रियते यया तया। अत्र **कृतो बहुलम्।** [अष्टा०वा०३.३.११३] इति क्विप् **(मनसा)** विज्ञानेन **(जुष्टा)** प्रीता सेविता वा **(विष्णवे)** परमेश्वराय यज्ञाय वा। अयं मन्त्रः (शत०(३.२.४.९-११) व्याख्यातः॥१७॥

अन्वय:-हे शुक्र विद्वंस्ते तव या विष्णवे तनूरस्ति, या त्वया धृता जुष्टा च तया जूः संस्त्वमेतद्वर्चः संभव सम्यग्भावय, भ्राजं गच्छ, मनसैतेन पुरुषार्थं गच्छ प्राप्नुहि॥१७॥

भावार्थ:-मनुष्यैः परमेश्वराज्ञापालनेन विज्ञानयुक्तेन मनसा शरीरात्मारोग्यं वर्धित्वा यज्ञमनुष्ठाय विज्ञानयुक्तेन मनसा सुखयितव्यम्॥१७॥

पदार्थ:-हे **(शुक्र)** वीर्य्य पराक्रम वाले विद्वन् मनुष्य! **(ते)** तेरा जो **(विष्णवे)** परमेश्वर वा यज्ञ के लिये **(तनूः)** शरीर **(असि)** है, तैने जिसको **(धृता)** धारण किया और है **(तया)** उससे तू **(जूः)** ज्ञानी वा वेग वाला होके **(एतत्)** इस **(वर्चः)** विज्ञान और तेज को **(सम्भव)** अच्छे प्रकार सम्पन्न कर और उससे तू **(भ्राजम्)** प्रकाश को

(गच्छ) प्राप्त हो और **(मनसा)** विज्ञान से पुरुषार्थ को प्राप्त हो॥१७॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि परमेश्वर की आज्ञा का पालन करके विज्ञानयुक्त मन से शरीर वा आत्मा के आरोग्यपन को बढ़ा कर यज्ञ का अनुष्ठान करके सुखी रहें॥१७॥

तस्यास्त इत्यस्य वत्स ऋषिः। वाग्विद्युतौ देवते। स्वराडार्षी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

ते वाग्विद्युतौ कीदृशावित्युपदिश्यते॥

वह वाणी और बिजुली कैसी है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

तस्यास्ते सत्यसवसः प्रसवे तन्वो यन्त्रमशीय स्वाहा।

शुक्रमसि चन्द्रमस्यमृतमसि वैश्वदेवमसि॥१८॥

तस्याः। ते। सत्यसवस इति सत्यऽसवसः। प्रसव इति प्रऽसवे। तन्वः। यन्त्रम्। अशीय। स्वाहा। शुक्रम्। असि। चन्द्रम्। असि। अमृतम्। असि। वैश्वदेवमिति वैश्वऽदेवम्। असि॥१८॥

पदार्थः-**(तस्याः)** वाचो विद्युतो वा **(ते)** तव **(सत्यसवसः)** सत्यं सवं ऐश्वर्य्यं जगत्कारणं वा यस्य तस्य परमात्मनः **(प्रसवे)** उत्पादिते संसारे **(तन्वः)** शरीरस्य। अत्र **जसादिषु छन्दसि वा वचनम्।** [अष्टा०भा०वा० ७.३.१०९] इति वार्तिकेनाडभावः **(यन्त्रम्)** यन्त्रयति संकुचति चालयति निबध्नाति वा येन तत् **(अशीय)** प्राप्नुयाम् **(स्वाहा)** वाचं विद्युतं वा **(शुक्रम्)** शुद्धम् **(असि)** अस्ति। अत्र सर्वत्र व्यत्ययः **(चन्द्रम्)** आह्लादकारकम् **(असि)** अस्ति **(अमृतम्)** अमृतात्मकव्यवहारपरमार्थसुखसाधकम् **(असि)** अस्ति **(वैश्वदेवम्)** यद्विश्वेषां देवानां विदुषामिदं तत् **(असि)** अस्ति। अयं मन्त्रः (शत०(३.२.४.१२-१५) व्याख्यातः॥१८॥

अन्वयः-हे जगदीश्वर! सत्यसवसस्ते तव प्रसवे या स्वाहा वाग् विद्युच्च वर्त्तते, तस्या विद्यां प्राप्य यच्छुक्रमस्ति चन्द्रमस्त्यमृतमस्ति वैश्वदेवमस्ति तद्यन्त्रमहमशीय प्राप्नुयाम्॥१८॥

भावार्थः-अत्र श्लेषालङ्कारः। मनुष्यैरीश्वरोत्पादितायामस्यां सृष्टौ विद्यया कलायन्त्रसिद्धेरग्न्यादिभ्यः पदार्थेभ्यः सम्यगुपकारान् गृहीत्वा सर्वाणि सुखानि सम्पादनीयानि॥१८॥

पदार्थः-हे जगदीश्वर! **(सत्यसवसः)** सत्य ऐश्वर्य्ययुक्त वा जगत् के निमित्त कारणरूप **(ते)** आपके **(प्रसवे)** उत्पन्न किये हुए संसार में आपकी कृपा से जो **(स्वाहा)** वाणी वा बिजुली है, **(तस्याः)** उन दोनों के सकाश से विद्या करके मैं जो **(शुक्रम्)** शुद्ध **(असि)** है, **(चन्द्रम्)** आह्लादकारक **(असि)** है, **(अमृतम्)** अमृतात्मक व्यवहार वा परमार्थ से सुख को सिद्ध करने वाला **(असि)** है और **(वैश्ववेदम्)** सब देव अर्थात् विद्वानों को सुख देने वाला **(असि)** है, **(तत्)** उस **(यन्त्रम्)** सङ्कोचन, विकाशन, चालन, बन्धन करने वाले यन्त्र को **(अशीय)** प्राप्त होऊं॥१८॥

भावार्थः-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यो को चाहिये कि ईश्वर की उत्पन्न की हुई इस सृष्टि में विद्या से कलायन्त्रों को सिद्ध करके अग्नि आदि पदार्थों से अच्छे प्रकार पदार्थों का ग्रहण कर सब सुखों को प्राप्त करें॥१८॥

चिदसीत्यस्य वत्स ऋषिः। वाग्विद्युतौ देवते। निचृद ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्ते कीदृश्यावित्युपदिश्यते॥

फिर वे वाणी और बिजुली किस प्रकार की हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

चिदसि मनासि धीरसि दक्षिणासि क्षत्रियासि यज्ञियास्यदितिरस्युभयतःशीर्ष्णी।
सा नः सुप्राची सुप्रतीच्येधि मित्रस्त्वा पदि बध्नीतां पूषाऽध्वनस्पात्विन्द्रायाध्यक्षाय॥ १९॥

चित्। असि। मना। असि। धीः। असि। दक्षिणा। असि। क्षत्रिया। असि। यज्ञिया। असि। अदितिः। असि। उभयतःशीर्ष्णीत्युभयतःऽशीर्ष्णी। सा। नः सुप्राचीति सुऽप्राची। सुप्रतीचीति सुऽप्रतीची। एधि। मित्रः। त्वा। पदि। बध्नीताम्। पूषा। अध्वनः। पातु। इन्द्राय। अध्यक्षायेत्यधिऽअक्षाय॥ १९॥

पदार्थः-(**चित्**) या विद्याव्यवहारस्य चेतयमाना वाग्विद्युद् वा (**असि**) अस्ति। अत्र सर्वत्र व्यत्ययः (**मना**) ज्ञानसाधिका (**असि**) अस्ति (**धीः**) प्रज्ञाकर्मविद्याधारिका (**असि**) अस्ति (**दक्षिणा**) दक्षन्ते प्राप्नुवन्ति विज्ञानं विजयं च यया सा (**असि**) अस्ति (**क्षत्रिया**) या क्षत्रस्यापत्यवद् वर्त्तते (**असि**) अस्ति (**यज्ञिया**) या यज्ञमर्हति सा (**असि**) अस्ति (**अदितिः**) अविनाशिनी (**असि**) अस्ति (**उभयतःशीर्ष्णी**) उभयतः शिरोवदुत्तमा गुणा यस्यां सा। अत्र पञ्चम्या अलुक् (**सा**) (**नः**) अस्मभ्यम् (**सुप्राची**) शोभनः प्राक् पूर्वः कालो यस्यां सा (**सुप्रतीची**) सुष्ठु प्रत्यक् पश्चिमः कालो यस्यां सा (**एधि**) भवतु (**मित्रः**) सखा (**त्वा**) ताम् (**पदि**) पद्यते जानाति प्राप्नोति येन व्यवहारेण तस्मिन्। अत्र **कृतो बहुलम्।** [अष्टा०भा०वा०३.३.११३] इति करणे क्विप् (**बध्नीताम्**) बद्धां कुरुताम् (**पूषा**) पुष्टिकर्त्ता (**अध्वनः**) मार्गस्य मध्ये (**पातु**) रक्षतु (**इन्द्राय**) परमैश्वर्य्यवते परमेश्वराय स्वामिने व्यवहाराय वा (**अध्यक्षाय**) अधिरुपरिभावेऽन्वेक्षणेऽक्षाण्यक्षिणी वा यस्य यस्माद् वा तस्मै। अयं मन्त्रः (शत०(३.२.४.१६-२०) व्याख्यातः॥ १९॥

अन्वयः-हे जगदीश्वर! सत्यसवस्ते तव प्रसवे या वाग् विद्युद्वा चिदस्ति मना अस्ति धीरस्ति दक्षिणास्ति क्षत्रियास्ति यज्ञियास्त्युभयतः शीर्ष्ण्यदितिरस्ति सा नोऽस्मभ्यं सुप्राची सुप्रतीच्येधि भवतु। यः पूषा मित्रः सर्वसखा भूत्वा मनुष्यत्वाय त्वां पद्यध्यक्षायेन्द्राय बध्नीताम्। स भवानध्वनो व्यवहारपरमार्थसिद्धिकरस्य मार्गस्य मध्ये नोऽस्मान् सततं पातु रक्षतु॥ १९॥

भावार्थः-अत्र श्लेषालङ्कारः। **ते, सत्यसवसः, प्रसवे-** इति पदत्रयमत्रानुवर्त्तते। या बाह्याभ्यन्तररक्षणाभ्यां सर्वोत्तमा वाग् विद्युच्च वर्त्तते, सैषा भूतभविष्यद्वर्त्तमानकालेषु सुखकारिण्यस्तीति वेद्यम्। यः कश्चित् परमेश्वरसभा-ध्यक्षोत्तमव्यवहारसिद्धिप्रीत्याज्ञापालनाय सत्यां वाचं विद्युद्विद्यां च दृढां निबध्नाति, स एव मनुष्यः सर्वरक्षको भवतीति॥ १९॥

पदार्थः- हे जगदीश्वर! (**सत्यसवसः**) सत्य ऐश्वर्य्ययुक्त (**ते**) आपके (**प्रसवे**) उत्पन्न किये संसार में जो (**चित्**) विद्या व्यवहार को चिताने वाली (**असि**) है, जो (**मना**) ज्ञान साधन करानेहारी (**असि**) है, जो (**धीः**) प्रज्ञा और कर्म को प्राप्त करने वाली (**असि**) है, जो (**दक्षिणा**) विज्ञान विजय को प्राप्त करने (**क्षत्रिया**) राजा के पुत्र के समान वर्तानेहारी (**असि**) है, जो (**यज्ञिया**) यज्ञ को कराने योग्य (**असि**) है, जो (**उभयतःशीर्ष्णी**) दोनों प्रकार से शिर के समान उत्तम गुणयुक्त और (**अदितिः**) नाशरहित वाणी वा बिजुली (**असि**) है, (**सा**) वह (**नः**) हम लोगों के लिये (**सुप्राची**) पूर्वकाल और (**सुप्रतीची**) पश्चिम काल में सुख देने हारी (**एधि**) हो, जो (**पूषा**) पुष्टि करने हारा

(मित्रः) सब का मित्र होकर मनुष्यपन के लिये **(त्वा)** उस वाणी और बिजुली को **(पदि)** प्राप्ति योग्य उत्तम व्यवहार में **(अध्यक्षाय)** अच्छे प्रकार व्यवहार को देखने **(इन्द्राय)** परमैश्वर्य्य वाले परमात्मा, अध्यक्ष और श्रेष्ठ व्यवहार के लिये **(बध्नीताम्)** बन्धनयुक्त करे, सो आप **(अध्वनः)** व्यवहार और परमार्थ की सिद्धि करने वाले मार्ग के मध्य में **(नः)** हम लोगों की निरन्तर **(पातु)** रक्षा कीजिये॥१९॥

भावार्थः-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है और पूर्व मन्त्र से (**ते, सत्यसवसः, प्रसवे**) इन तीन पदों की अनुवृत्ति भी आती है। मनुष्यों को जो बाह्य, आभ्यन्तर की रक्षा करके सब से उत्तम वाणी वा बिजुली वर्त्तती है, वही भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान काल में सुख की कराने वाली है, ऐसा जानना चाहिये। जो कोई मनुष्य प्रीति से परमेश्वर, सभाध्यक्ष और उत्तम कामों में आज्ञा के पालन के लिये सत्य वाणी और उत्तम विद्या को ग्रहण करता है, वही सब की रक्षा कर सकता है॥१९॥

अनु त्वेत्यस्य वत्स ऋषिः। वाग्विद्युतौ देवते। पूर्वार्द्धस्य साम्नी जगती छन्दः। निषादः स्वरः।
उत्तरार्द्धस्य भुरिगार्ष्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

पुनस्ते कीदृश्यावित्युपदिश्यते॥

फिर वह वाणी और बिजुली कैसी हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अनु॑ त्वा मा॒ता म॑न्यता॒मनु॑ पि॒ताऽनु॒ भ्राता॒ सग॒भ्र्योऽनु॒ सखा॒ सयू॑थ्यः।
सा दे॑वि दे॒वमच्छे॒हीन्द्रा॑य॒ सोम॑ꣳ रु॒द्रस्त्वाव॑र्त्तयत् स्व॒स्ति सोम॑सखा॒ पुन॒रेहि॑॥२०॥

अनु॑। त्वा॒। मा॒ता। म॒न्य॒ता॒म्। अनु॑। पि॒ता। अनु॑। भ्राता॑। सग॑र्भ्य॒ इति॒ सऽग॑र्भ्यः। अनु॑। सखा॑। सयू॑थ्य॒ इति॒ सऽयू॑थ्यः। सा। दे॒वि॒। दे॒वम्। अच्छ॑। इ॒हि॒। इन्द्रा॑य। सोम॑म्। रु॒द्रः। त्वा॒। आ। व॒र्त्त॒य॒तु॒। स्व॒स्ति॑। सोम॑स॒खेति॒ सोम॑ऽसखा। पुन॑रिति॑। आ। इ॒हि॒॥२०॥

पदार्थः-**(अनु)** अन्यभावे **(त्वा)** त्वाम् **(माता)** जननी **(मन्यताम्)** विज्ञापयतु स्वीकुरुताम् **(अनु)** पुनरर्थे **(पिता)** जनकः **(अनु)** पश्चादर्थे। **अन्विति सादृश्यापरभावम्** (निरु०१.३) **(भ्राता)** बन्धुः **(सगर्भ्यः)** समानश्चासौ गर्भः सगर्भस्तस्मिन् भवः। अत्र **सगर्भसयूथसनुताद्यन्।** **(अष्टा०४.४.११४)** इति सूत्रेण भवार्थे यन् प्रत्ययः **(अनु)** आनुकूल्ये **(सखा)** मित्रः **(सयूथ्यः)** समानश्चासौ यूथः समूहस्तस्मिन् भवः। पूर्वसूत्रेणास्य सिद्धिः **(सा)** पूर्वोक्ता **(देवि)** देदीप्यमाना **(देवम्)** परमेश्वरं विद्यायुक्तं शुद्धव्यवहारं वा **(अच्छ)** सम्यग्रीत्या **(इहि)** जानीहि प्राप्नुहि वा **(इन्द्राय)** परमैश्वर्य्यप्राप्तये **(सोमम्)** उत्तमपदार्थसमूहम् **(रुद्रः)** परमेश्वरः। चतुश्चत्वारिंशद्वर्षकृतब्रह्मचर्यो विद्वान् वा **(त्वा)** ताम् **(आ)** समन्तात् **(वर्त्तयतु)** प्रवृत्तं कारयतु **(स्वस्ति)** शोभनमस्ति यस्मिन् प्राप्तव्ये तत्सुखम्। **स्वस्तीति पदनामसु पठितम्।** (निघं०५.५) **(सोमसखा)** सोमः परमेश्वरः सोमविद्याविन्मनुष्यो वा सखा सुहृद्यस्य सः **(पुनः)** पश्चात् **(आ)** समन्तात् **(इहि)** प्राप्नुहि प्राप्नोति वा। अयं मन्त्रः (शत०(३.२.४.२०-२१) व्याख्यातः॥२०॥

अन्वयः-हे मनुष्य! यथा रुद्रः परमेश्वरो विद्वान् वा वर्त्तयतु, यां वाणीं विद्युतं सोमं देवं स्वस्ति सुखं यस्मा इन्द्राय आ वर्त्तयतु, सा सोमसखा देवि वाग्विद्युद्वा देवं विद्वांसमेति, तथैव त्वं तस्मै पुनरच्छेहि, पुनः पुनः समन्तात् सम्यग्रीत्या प्राप्नुहि। एतद्विद्यां ग्रहीतुं त्वा त्वां मातानुमन्यतां पितानुमन्यतां सगर्भ्यो भ्राताऽनुमन्यतां सयूथ्यः सखाऽनुमन्यतां त्वं च त्वा तां पुनः पुनः पुरुषार्थेनैहि प्राप्नुहि॥२०॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैः परस्परमेवं वर्त्तितव्यं यथा धर्म्मात्मा विदुषी माता धर्म्मात्मा विद्वान् पिता भ्राता मित्रादयश्च सत्ये व्यवहारे प्रवर्तेरँस्तथैव पुत्रादिभिरप्यनुवर्तितव्यम्। यथा च विद्वांसो धार्मिका पुत्रादयो धर्मे व्यवहारे प्रवर्तेरँस्तथैव मात्रादिभिरप्यनुष्ठातव्यमित्येवं सर्वैः परस्परं वर्त्तित्वाऽऽनन्दितव्यम्॥२०॥

पदार्थः-हे मनुष्य! जैसे **(रुद्रः)** परमेश्वर वा ४४ चवालीस वर्ष पर्यन्त अखण्ड ब्रह्मचर्य्याश्रम सेवन से पूर्ण विद्यायुक्त विद्वान् **(त्वा)** तुझको जिस वाणी वा बिजुली तथा **(सोमम्)** उत्तम पदार्थसमूह और **(स्वस्ति)** सुख को **(इन्द्राय)** परमैश्वर्य्य की प्राप्ति के लिये **(आवर्त्तयतु)** प्रवृत्त करे और जो **(सा)** वह **(सोमसखा)** विद्याप्रकाशयुक्त वाणी और **(देवि)** दिव्यगुणयुक्त बिजुली **(देवम्)** उत्तम धर्मात्मा विद्वान् को प्राप्त होती है, वैसे उसको तू **(पुनः)** बार-बार **(अच्छ)** अच्छे प्रकार **(इहि)** प्राप्त हो और इसको ग्रहण करने के लिये **(त्वा)** तुझ को **(माता)** उत्पन्न करने वाली जननी **(अनुमन्यताम्)** अनुमति अर्थात् आज्ञा देवे, इसी प्रकार **(पिता)** उत्पन्न करने वाला जनक **(सगर्भ्यः)** तुल्य गर्भ में होने वाला **(भ्राता)** भाई और **(सयूथ्यः)** समूह में रहने वाला **(सखा)** मित्र ये सब प्रसन्नता पूर्वक आज्ञा देवें, उसको तू **(पुनरेहि)** अत्यन्त पुरुषार्थ करके बारं-बार प्राप्त हो॥२०॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। **प्रश्नः**-मनुष्यों को परस्पर किस प्रकार वर्त्तना चाहिये? **उत्तरः**-जैसे धर्मात्मा, विद्वान्, माता, पिता, भाई, मित्र आदि सत्यव्यवहार में प्रवृत्त हों, वैसे पुत्रादि और जैसे विद्वान् धार्मिक पुत्रादि धर्मयुक्त व्यवहार में वर्त्तें, वैसे माता पिता आदि को भी वर्त्तना चाहिये॥२०॥

वस्वीत्यस्य वत्स ऋषिः। वाग्विद्युतौ देवते। विराडार्षी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनस्ते कीदृश्यावित्युपदिश्यते॥

फिर वह वाणी वा बिजुली किस प्रकार की है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

वस्व्यस्यदितिरस्यादित्यासि रुद्रासि चन्द्रासि।

बृहस्पतिष्ट्वा सुम्ने रम्णातु रुद्रो वसुभिराचके॥२१॥

वस्वी। असि। अदितिः। असि। आदित्या। असि। रुद्रा। असि। चन्द्रा। असि। बृहस्पतिः। त्वा। सुम्ने। रम्णातु। रुद्रः। वसुभिरिति वसुऽभिः। आ। चके॥२१॥

पदार्थः-**(वस्वी)** याऽग्न्यादिपदार्थाख्यवसुविद्यासम्बन्धिनी वसुभिश्चतुर्विंशतिवर्षकृतब्रह्मचर्य्यैः प्राप्ता सा **(असि)** अस्ति। अत्र सर्वत्र व्यत्ययः **(अदितिः)** प्रकाशवन्नित्या। अदितिर्द्यौरिति प्रकाशकारकोऽर्थो गृह्यते **(असि)** अस्ति **(आदित्या)** याऽऽदित्यवदर्थविद्याप्रकाशिकाऽष्टचत्वारिंशत् संवत्सरपर्यन्तानुष्ठितब्रह्मचर्य्यैः स्वीकृता सा **(असि)** अस्ति **(रुद्रा)** सा प्राणवायुसम्बन्धिनी चतुश्चत्वारिंशद्वायनावधिसेवितब्रह्मचर्यैः स्वीकृता सा **(असि)** अस्ति **(चन्द्रा)** आह्लादयित्री **(असि)** **(बृहस्पतिः)** परमेश्वरो विद्वान् वा **(त्वा)** ताम् **(सुम्ने)** सुखे **(रम्णातु)** रमयतु। अत्रान्तर्गतो ण्यर्थो: विकरणव्यत्ययश्च **(रुद्रः)** दुष्टानां रोदयिता विद्वान् **(वसुभिः)** उषितसर्वविद्यैर्विद्वद्भिः सह **(आ)** समन्तात् **(चके)** कामितवान् कामयतां वा, अत्र पक्षे लोडर्थे लिट्। **आचक इति कान्तिकर्मसु पठितम्।** (निघं०२.६)। अयं मन्त्रः (शत०(३.२.१.१-२) व्याख्यातः॥२१॥

अन्वयः-हे विद्वन् मनुष्य! यथा या वस्व्यस्त्यदितिरस्यस्ति रुद्रास्यस्त्यादित्यास्यस्ति चन्द्रास्यस्ति, यां

बृहस्पतिः सुम्ने रमयति प्रेरयति, यां रुद्रो वसुभिः सह वर्त्तमानामाचके, यामहं कामये, तथा त्वा तां भवान् रम्णातु रमयतु॥२१॥

भावार्थः-अत्र श्लेषवाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। यथा ये वाग्विद्युतौ प्राणपृथिव्यादिभिः सह वर्त्तमाने अनेकव्यवहारहेतू स्तो ये जितेन्द्रियादिधर्मपुरस्सरं यथायोग्यं कृतब्रह्मचर्यैर्मनुष्यैर्विज्ञानेन क्रियासु संप्रयोजिते सत्यौ वाग्विद्युतौ बहुसुखकारिके जायेते, एतां त्वमपि नित्यं सेवस्व॥२१॥

पदार्थः-हे विद्वन् मनुष्य! जैसे जो **(वस्वी)** अग्नि आदि विद्या सम्बन्धी, जिसकी सेवा २४ चौबीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य करने वालों ने की हुई **(असि)** है, जो **(अदितिः)** प्रकाशकारक **(असि)** है, जो **(रुद्रा)** प्राणवायु सम्बन्ध वाली और जिसको ४४ चवालीस वर्ष ब्रह्मचर्य करनेहारे प्राप्त हुए हों, वैसी **(असि)** है, जो **(आदित्या)** सूर्य्यवत् सब विद्याओं का प्रकाश करने वाली, जिसका ग्रहण ४८ अड़तालीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्यसेवी मनुष्यों ने किया हो, वैसी **(असि)** है, जो **(चन्द्रा)** आह्लाद करने वाली **(असि)** है, जिसको **(बृहस्पतिः)** सर्वोत्तम **(रुद्रः)** दुष्टों को रुलाने वाला परमेश्वर वा विद्वान् **(सुम्ने)** सुख में **(रम्णातु)** रमणयुक्त करता और जिस **(वसुभिः)** पूर्णविद्यायुक्त मनुष्यों के साथ वर्त्तमान हुई वाणी वा बिजुली की **(आचके)** निर्माण वा इच्छा करता अथवा जिसकी मैं इच्छा करता हूं, वैसे तू भी **(त्वा)** उसको **(रम्णातु)** रमणयुक्त वा इसको सिद्ध करने की इच्छा कर॥२१॥

भावार्थः-इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे वाणी, बिजुली और प्राण पृथिवी आदि और विद्वानों के साथ वर्त्तमान हुए अनेक व्यवहार की सिद्धि के हेतु हैं और जिनकी सेवा जितेन्द्रियादि धर्मसेवनपूर्वक होके विद्वानों ने की हो, वैसी वाणी और बिजुली मनुष्यों को विज्ञान पूर्वक क्रियाओं से संप्रयोग की हुई बहुत सुखों के करने वाली होती है॥२१॥

अदित्यास्त्वेत्यस्य वत्स ऋषिः। वाग्विद्युतौ देवते। ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्ते कीदृश्यावित्युपदिश्यते॥

फिर वे वाणी और बिजुली कैसी हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अदित्यास्त्वा मूर्द्धन्नाजिघर्मि देवयजने पृथिव्याऽइडायास्पदमसि घृतवत् स्वाहा। अस्मे रमस्वास्मे ते बन्धुस्त्वे रायो मे रायो मा वयꣳ रायस्पोषेण वियौष्म तोतो रायः॥२२॥

अदित्याः। त्वा। मूर्द्धन्। आ। जिघर्मि। देवयजन इति देवऽयजने। पृथिव्याः। इडायाः। पदम्। असि। घृतवदिति घृतऽवत्। स्वाहा। अस्मेऽइत्यस्मे। रमस्व। अस्मेऽइत्यस्मे। ते। बन्धुः। त्वेऽइति त्वे। रायः। मेऽइति मे। रायः। मा। वयम्। रायः। पोषेण। वि। यौष्म। तोतः। रायः॥२२॥

पदार्थः-**(अदित्याः)** अन्तरिक्षस्य। अदितिरन्तरिक्षमित्यस्मादयमर्थो गृह्यते **(त्वा)** ताम् **(मूर्द्धन्)** मूर्द्धनि वर्त्तमानाम् **(आ)** समन्तात् **(जिघर्मि)** प्रदीप्ये संचालयामि वा **(देवयजने)** देवानां विदुषां सङ्गतिकरण एतेभ्यो दाने वा **(पृथिव्याः)** भूमेर्मध्ये **(इडायाः)** स्तोतुमन्वेष्टुमर्हाया वेदवाण्याः। **इडेति वाङ्नामसु पठितम्।** (निघं०१.११) **(पदम्)** वेदितव्यं प्राप्तव्यं वा **(असि)** अस्ति **(घृतवत्)** घृतेन पुष्टिदीप्तिकारकेन तुल्या **(स्वाहा)** यया क्रियया सुहुतं यजति तस्याः **(अस्मे)** अस्मासु **(रमस्व)** रमतां रमतु वा **(अस्मे)** अस्माकम्। अत्र सर्वत्र **सुपां सुलुग्०।**

[अष्टा०७.१.३९] इति शे आदेशः **(ते)** तव **(बन्धुः)** भ्राता **(त्वे)** त्वयि **(रायः)** विद्यादिसुवर्णधनम् **(मे)** मयि **(रायः)** धनम् **(मा)** निषेधार्थे **(वयम्)** मनुष्याः **(रायः)** उक्तधनस्य **(पोषेण)** पुष्यन्ति येन तेन **(वि)** विगतार्थे **(यौष्म)** युक्ता भवेम **(तोतः)** तुवन्ति जानन्ति प्राप्नुवन्ति हिंसन्ति वा येन सः। अत्र **'तु गतिवृद्धिहिंसासु'** इति धातोर्बाहुलकादौणादिकस्तन् प्रत्ययः **(रायः)** विद्याराज्यसमृद्धयः। अयं मन्त्रः (शत०(३.३.१.४-११) व्याख्यातः॥२२॥

अन्वयः-हे विद्वन् मनुष्य! त्वं यथा या देवयजनेऽदित्याः पृथिव्या इडायाः स्वाहा घृतवत्पदमस्यस्ति, यामहं आ जिघर्मि, त्वा तां त्वमपि जिघृहि, याऽस्मे अस्मासु रमते सा युष्मास्वपि रमस्व रमताम्, यामहं रमयामि तां भवानपि स्वस्मिन् रमयतु। योऽस्मे अस्माकं बन्धुरस्ति, स ते तवाप्यस्तु, यो रायो धनसमूहस्त्वय्यस्ति, स मे मय्यप्यस्तु। तोतो भवान् या रायो विद्याधनसमृद्धीः प्राप्नोति, ता मे मय्यपि सन्तु, या मयि वर्त्तन्ते, तास्त्वे त्वय्यपि सन्त्वेता रायः समृद्धयः सन्ति ताः सर्वेषा सुखायापि संप्रयुक्ताः सन्तु, यथैवं जानन्तो निश्चिन्वन्तोऽनुतिष्ठन्तो यूयं वयं च रायस्पोषेण कदाचिन्मा वियौष्म कदाचिद् वियुक्ता मा भवेम, तथैव सर्वे भवन्तु॥२२॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैर्या सत्यविद्याधर्मसंस्कृता वाग् विद्याक्रियाभ्यां संप्रयुक्ता विद्युदादिविद्यास्ति सा सर्वेभ्य उपदिश्य संग्राह्या, सुखदुःखव्यवस्थां समानां विदित्वा सर्वमैश्वर्य्यं परोपकारे संयोज्य सदा सुखयितव्यम्। नैवं कदाचिद् व्यवहारः कर्त्तव्यो येन स्वस्यान्यस्यवैश्वर्य्यह्रासः कदाचिद् भवेदिति॥२२॥

पदार्थः-हे विद्वन् मनुष्य! तू जैसे **(देवयजने)** विद्वानों के यजन वा दान में इस **(अदित्याः)** अन्तरिक्ष **(पृथिव्याः)** भूमि और **(इडायाः)** वाणी को **(स्वाहा)** अच्छे प्रकार यज्ञ करने वाली क्रिया के मध्य जो **(मूर्द्धन्)** सब के ऊपर वर्त्तमान **(घृतवत्)** पुष्टि करने वाले घृत के तुल्य **(पदम्)** जानने वा प्राप्त होने योग्य पदवी **(असि)** है वा जिसको मैं **(आ जिघर्मि)** प्रदीप्त करता हूं, वैसे **(त्वा)** उसको प्रदीप्त कर और जो **(अस्मे)** हम लोगों में विभूति रमण करती है, वह तुम लोगों में भी **(रमस्व)** रमण करे, जिसको मैं रमण कराता हूं, उस को तू भी **(रमस्व)** रमण करा, जो **(अस्मे)** हम लोगों का **(बन्धुः)** भाई है, वह **(ते)** तेरा भी हो, जो **(रायः)** विद्यादि धनसमूह **(त्वे)** तुझ में है, वह **(मे)** मुझ में भी हो, जो **(तोतः)** जानने प्राप्त करने योग्य **(रायः)** विद्याधन मुझ में है, सो तुझ में भी हो, **(रायः)** तुम्हारी और हमारी समृद्धि है, वे सब के सुख के लिये हों। इस प्रकार जानते निश्चय करते वा अनुष्ठान करते हुए तुम **(वयम्)** हम और सब लोग **(रायस्पोषेण)** धन की पुष्टि से कभी **(मा वियौष्म)** अलग न होवें॥२२॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को सत्यविद्या, धर्म से संस्कार की हुई वाणी वा शिल्पविद्या से संप्रयोग की हुई बिजुली आदि विद्या को सब मनुष्यों के लिये उपदेश वा ग्रहण और सुख-दुःख की व्यवस्था को भी तुल्य ही जानके सब ऐश्वर्य्य को परोपकार में संयुक्त करना चाहिये और किसी मनुष्य को इस प्रकार का व्यवहार कभी न करना चाहिये कि जिससे किसी की विद्या, धन आदि ऐश्वर्य्य की हानि होवे॥२२॥

समख्य इत्यस्य वत्स ऋषिः। वाग्विद्युतौ देवते। आस्तारपङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

एतयोः कथमुपयोगः कार्य्य इत्युपदिश्यते॥

इन दोनों का किस प्रकार उपयोग करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

समख्ये देव्या धिया सं दक्षिणयोरुचक्षसा।

मा मऽआयुः प्रमोषीर्मोऽअहं तव वीरं विदेय तव देवि सन्दृशि॥२३॥

सम्। अख्ये। देव्या। धिया। सम्। दक्षिणया। उरुचक्षसेत्युरुऽचक्षसा। मा। मे। आयुः। प्र। मोषीः। मोऽइति मो। अहम्। तव। वीरम्। विदेय। तव। देवि। संदृशीति सम्ऽदृशि॥२३॥

पदार्थः-(**सम्**) सम्यगर्थे (**अख्ये**) प्रकथयामि। अत्र व्यत्ययेनात्मनेपदं लडर्थे लुङ् च (**देव्या**) देदीप्यमानया (**धिया**) प्रज्ञया कर्मणा वा (**सम्**) एकीभावे (**दक्षिणया**) ज्ञानसाधिकयाऽज्ञाननाशिकया च (**उरुचक्षसा**) उरु बहु चक्षो व्यक्तं वचनं दर्शनं वा यस्यास्तया (**मा**) निषेधे (**मे**) मम (**आयुः**) जीवनम् (**प्र**) क्रियायोगे (**मोषीः**) मुष्णीयात् खण्डयेत्। अत्र लिङर्थे लुङ् (**मो**) निवारणे (**अहम्**) सर्वप्रियं प्रेप्सुः (**तव**) सर्वसुहृदः (**वीरम्**) विक्रान्तं जनम् (**विदेय**) अन्यायेन विन्देय। अत्र **वा छन्दासि सर्वे विधयो भवन्ति।** [अष्टा०भा०वा०१.४.९] इति नुमभावः। अत्रावैयाकरणेन महीधरेण भ्रान्त्या विद्लृलाभ इत्यस्य व्यत्ययेन तुदादिभ्यः शप्रत्ययेन लिङि रूपमित्यशुद्धं व्याख्यातम्। कुतः ? विद्लृ धातोः स्वत एव तुदादित्वं वर्त्तते (**तव**) तस्याः (**देवि**) दिव्यगुणैर्विराजमानायाः। अत्र **अर्थाद्विभक्तेर्विपरिणामः।** [अष्टा०भा०वा०१.३.९] इति विभक्तेर्विपरिणामः (**संदृशः**) समीचीनं दृग्दर्शनं यस्मिन् व्यवहारे तस्मिन्। अयं मन्त्रःशत०(३.३.१.१२) व्याख्यातः॥२३॥

अन्वयः-हे विद्वन्मनुष्य! यथाहं दक्षिणयोरुचक्षसा देव्या धिया तव देवि तस्या दिव्यगुणैर्विराजमानाया वाचो विद्युतो वा संदृशि जीवनं समख्ये, सा मे ममायुर्मा प्रमोषीः खण्डनं न कुर्य्यादहमेतां समख्ये प्रख्यातां कुर्य्यामन्यायेन तव वीरं मो मा संविदेय, तथैव त्वमेतत् सर्वमाचर्य्यान्यायेनापि मम वीरं च मा संविन्दस्व॥२३॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैः शुद्धाभ्यां कर्मप्रज्ञाभ्यां वाग्विद्युद्भ्यां संगृह्य जीवनं वर्धयित्वा विद्यादिसद्गुणेषु वीरान् सम्पाद्य सदा सुखयितव्यम्॥२३॥

पदार्थः-हे विद्वन् मनुष्य! जैसे (**अहम्**) मैं (**दक्षिणया**) ज्ञानसाधक अज्ञाननाशक (**उरुचक्षसा**) बहुत प्रकट वचन वा दर्शनयुक्त (**देव्या**) देदीप्यमान (**धिया**) प्रज्ञा वा कर्म से (**तव**) उस (**देवि**) सर्वोत्कृष्ट गुणों से युक्त वाणी वा बिजुली के (**संदृशि**) अच्छे प्रकार देखने योग्य व्यवहार में जीवन को (**समख्ये**) कथन से प्रकट करता हूं वह (**मे**) मेरे (**आयुः**) जीवन को (**मा प्रमोषीः**) नाश न करे, उसको मैं अविद्या से नष्ट न करूं (**तव**) हे सब के मित्र! अन्याय से आपके (**वीरम्**) शूरवीर को (**मो संविदेय**) प्राप्त न होऊं, वैसे ही तू भी पूर्वोक्त सब करके अन्याय से मेरे शूरवीरों को प्राप्त मत हो॥२३॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि शुद्ध कर्म वा प्रज्ञा से वाणी वा बिजुली की विद्या को ग्रहण कर उमर को बढ़ा और विद्यादि उत्तम-उत्तम गुणों में अपने सन्तान और वीरों को सम्पादन करके सदा सुखी रहें॥२३॥

एष त इत्यस्य वत्स ऋषिः। यज्ञो देवता। पूर्वस्य ब्राह्मी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥ अन्त्यस्य दशाक्षरस्य याजुषी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

किं प्रतिपादनाय जिज्ञासुर्विदुषः पृच्छेदित्युपदिश्यते॥

किसके प्रतिपादन के लिये ज्ञान की इच्छा करनेहारा विद्वानों को पूछे, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

एष ते गायत्रो भागऽइति मे सोमाय ब्रूतादेष ते त्रैष्टुभो भागऽइति मे सोमाय ब्रूतादेष ते जागतो भागऽइति मे सोमाय ब्रूताच्छन्दोनामानाᳬं साम्राज्यङ्गच्छेति मे सोमाय ब्रूतादास्माकोऽसि शुक्रस्ते ग्रह्यो विचितस्त्वा विचिन्वन्तु॥ २४॥

एषः। ते। गायत्रः। भागः। इति। मे। सोमाय। ब्रूतात्। एषः। ते। त्रैष्टुभः। त्रैस्तुभ इति त्रैऽस्तुभः। भागः। इति। मे। सोमाय। ब्रूतात। एषः। ते। जागतः। भागः। इति। मे। सोमाय। ब्रूतात्। छन्दोनामानामिति छन्दःऽनामानाम्। साम्राज्यमिति साम्ऽराज्यम्। गच्छ। इति। मे। सोमाय। ब्रूतात्। आस्माकः। असि। शुक्रः। ते। ग्रह्यः। विचित इति विऽचितः। त्वा। वि। चिन्वन्तु॥ २४॥

पदार्थः-(**एषः**) प्रत्यक्षः (**ते**) तव (**गायत्रः**) गायत्रीप्रगाथोऽस्य सः। **सोऽस्यादिरितिच्छन्दसः प्रगाथेषु।** (अष्टा०४.२.५५) अनेन प्रगाथविषये प्रत्ययः (**भागः**) सेवनीयः (**इति**) प्रकारार्थे (**मे**) मह्यम् (**सोमाय**) पदार्थविद्यासम्पादकाय (**ब्रूतात्**) ब्रवीतु (**एषः**) यो विज्ञातुं योग्यः सः (**ते**) तव (**त्रैष्टुभः**) त्रिष्टुप् प्रगाथोऽस्य सः (**भागः**) अंशः (**इति**) प्रकारे (**मे**) मह्यम् (**सोमाय**) उत्तमरससम्पादकाय (**ब्रूतात्**) ब्रवीतु (**एषः**) योक्तुमर्हः (**ते**) तव (**जागतः**) जगती प्रगाथोऽस्य सः (**भागः**) स्वीकर्त्तुमर्हः (**इति**) प्रकारार्थे (**मे**) मह्यम् (**सोमाय**) पदार्थविद्यास्वीकारकाय (**ब्रूतात्**) उपदिशतु (**छन्दोनामानाम्**) यानि छन्दसामुष्णिगादीनां नामानि तेषाम्। अत्र **अनसन्तान्न०।** (अष्टा०५.४.१०३) इति सूत्रेण सामासान्तष्टच् प्रत्ययः (**साम्राज्यम्**) सम्यग्राजन्ते प्रकाशन्ते ते सम्राजो राजानस्तेषां भावः कर्म वा तत् (**गच्छ**) प्राप्नुहि प्रापय वा (**इति**) प्रकारे (**मे**) मह्यम् (**सोमाय**) ऐश्वर्य्ययुक्ताय राज्याय (**ब्रूतात्**) ब्रवीतु (**आस्माकः**) योऽस्माकमयमुपदेष्टाऽधिपतिः सः (**असि**) वर्त्तसे (**शुक्रः**) पवित्रः पवित्रकारको वा (**ते**) तव (**ग्रह्यः**) ग्रहीतुं योग्यः (**विचितः**) विविधविद्याशुभगुणधनादिभिश्चितः संयुक्तः (**त्वा**) त्वां तं वा (**वि**) विविधार्थे (**चिन्वन्तु**) वर्धयन्तु। अत्रान्तर्गतो ण्यर्थः। अयं मन्त्रः (शत०(३.३.२.४-८) व्याख्यातः॥ २४॥

अन्वयः-हे विद्वंस्त्वं विद्वांसं प्रति कोऽस्य यज्ञस्य गायत्रो भागोऽस्तीति पृच्छ, स विद्वान् ते तवैषोऽयमस्तीति मे मह्यं सोमायैतं ब्रूताद् ब्रवीतूपदिशतु। कोऽस्य यज्ञस्य त्रैष्टुभो भागोऽस्तीति त्वं पृच्छ, स ते तवैषोऽयमस्तीति समक्षे खल्वेतं मे मह्यं सोमाय ब्रूतात्। कोऽस्य यज्ञस्य जागतो भागोऽस्तीति त्वं पृच्छ, स ते तवैषोऽयमस्तीति प्रसिद्धयैतं सोमाय मे मह्यं ब्रूतात्। यथा भवांश्छन्दोनामानामुष्णिगादीनां छन्दसां मध्ये प्रतिपादितस्य यज्ञस्योपदेशे साम्राज्यं गच्छतु, तथैवैतेषामेनं सोमाय मे मह्यं ब्रूतात्। यस्त्वमास्माकः शुक्रोऽसि तस्मात् ते तवाहं विचितो ग्रह्योऽस्मि, त्वं मां सर्वैरेतैर्विचिनुहि, अहं त्वां विचिनोम्येव, सोऽपि सर्वे त्वामेतं यज्ञं मां च विचिन्वन्तु वर्धयन्तु॥ २४॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्या विद्वद्भ्यः पृष्ट्वा सर्वा विद्याः संगृह्णीरन्। विद्वांसः खल्वेताः संग्राहयन्तु, परस्परमनुग्राह्यानुग्राहकभावेन वर्त्तित्वा सर्वे वृद्धिं प्राप्य चक्रवर्त्तिराज्यं सेवेरन्निति॥ २४॥

पदार्थः-हे विद्वन्! तू कौन इस यज्ञ का **(गायत्रः)** वेदस्थ गायत्री छन्दयुक्त मन्त्रों के समूहों से प्रतिपादित **(भागः)** सेवने योग्य भाग है, **(इति)** इस प्रकार विद्वान् से पूछ। जैसे वह विद्वान् **(ते)** तुझ को उस यज्ञ का यह प्रत्यक्ष भाग है, **(इति)** इसी प्रकार से **(सोमाय)** पदार्थविद्या सम्पादन करने वाले **(मे)** मेरे लिये **(ब्रूतात)** कहे। तू कौन इस यज्ञ का **(त्रैष्टुभः)** त्रिष्टुप् छन्द से प्रतिपादित **(भागः)** भाग है, **(इति)** इसी प्रकार विद्वान् से पूछ। जैसे वह **(ते)** तुझको उस यज्ञ का **(एषः)** यह भाग है, **(इति)** इसी प्रकार प्रत्यक्षता से समाधान **(सोमाय)** उत्तम रस के सम्पादन करने वाले **(मे)** मेरे लिये **(ब्रूतात्)** कहे। तू कौन इस यज्ञ का **(जागतः)** जगती छन्द से कथित **(भागः)** अशं है, **(इति)** इस प्रकार आप्त से पूछ। जैसे वह **(ते)** तुझ को उस यज्ञ का **(एषः)** यह प्रसिद्ध भाग है, **(इति)** इसी प्रकार **(सोमाय)** पदार्थविद्या को सम्पादन करने वाले **(मे)** मेरे लिये उत्तर **(ब्रूतात्)** कहे। जैसे आप **(छन्दोनामानाम्)** उष्णिक् आदि छन्दों के मध्य में कहे हुए यज्ञ के उपदेश में **(साम्राज्यम्)** भले प्रकार राज्य को **(गच्छ)** प्राप्त हो **(इति)** इसी प्रकार **(सोमाय)** ऐश्वर्य्ययुक्त **(मे)** मेरे लिये सार्वभौम राज्य की प्राप्ति होने का उपाय **(ब्रूतात्)** कहिये और जिस कारण आप **(आस्माकाः)** हम लोगों को **(शुक्रः)** पवित्र करने वाले उपदेशक **(असि)** हैं, वैसे मैं **(ते)** आपके **(ग्रह्यः)** ग्रहण करने योग्य **(विचितः)** उत्तम-उत्तम धनादि द्रव्य और गुणों से संयुक्त शिष्य हूं। आप मुझको सब गुणों से बढ़ाइये, इस कारण मैं **(त्वा)** आपको वृद्धियुक्त करता हूं और सब मनुष्य **(त्वा)** आप वा इस यज्ञ तथा मुझको **(विचिन्वन्तु)** वृद्धियुक्त करें॥ २४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्य लोग विद्वानों से पूछकर सब विद्याओं का ग्रहण करें तथा विद्वान् लोग इन विद्याओं का यथावत् ग्रहण करावें। परस्पर अनुग्रह करने वा कराने से सब वृद्धियों को प्राप्त होकर विद्या और चक्रवर्त्ति आदि राज्य को सेवन करें॥ २४॥

अभि त्यमित्यस्य वत्स ऋषिः। सविता देवता। पूर्वस्य विराट् ब्राह्मी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

सुक्रतुरित्युत्तरस्य निचृदार्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनरीश्वरराजसभाप्रजागुणा उपदिश्यन्ते॥

फिर अगले मन्त्र में ईश्वर, राजसभा और प्रजा के गुणों का उपदेश किया है॥

अ॒भि त्यं दे॒वꣳ स॑वि॒तार॑मो॒ण्योः᳕ क॒विक्र॑तु॒मर्चा॑मि स॒त्यस॑वꣳ रत्न॒धाम॒भि प्रि॒यं म॒तिं क॒विम्। ऊ॒र्ध्वा यस्या॒मति॒र्भाऽअदि॑द्यु॒त॒त् सवी॑मनि॒ हिर॑ण्यपाणिरमिमीत सु॒क्रतुः॑ कृ॒पा स्वः॑। प्र॒जाभ्य॑स्त्वा प्र॒जास्त्वा॑ऽनु॒प्राण॑न्तु प्र॒जास्त्वम॑नु॒प्राणि॑हि॥ २५॥

अ॒भि। त्यम्। दे॒वम्। स॒वि॒तार॑म्। ओ॒ण्योः᳕। क॒विक्र॑तु॒मिति॑ क॒विऽक्र॑तुम्। अर्चा॑मि। स॒त्यस॑व॒मिति॑ स॒त्यऽस॑वम्। र॒त्न॒ऽधामिति॑ रत्न॒धाम्। अ॒भि। प्रि॒यम्। म॒तिम्। क॒विम्। ऊ॒र्ध्वा। यस्य॑। अ॒मतिः॑। भाः। अदि॑द्युतत्। सवी॑मनि। हिर॑ण्यपाणि॒रिति॒ हिर॑ण्यऽपाणिः। अ॒मि॒मी॒त॒। सु॒क्रतु॒रिति॑ सु॒ऽक्रतुः॑। कृ॒पा। स्व॒रिति॒ स्वः॑। प्र॒जाभ्य॒ इति॑ प्र॒ऽजाभ्यः॑। त्वा॒। प्र॒जा इति॑ प्र॒ऽजाः। त्वा॒। अ॒नु॒प्राण॒न्त्वित्य॑नु॒ऽप्राण॑न्तु। प्र॒जा इति॑ प्र॒ऽजाः। त्वम्। अ॒नु॒ऽप्रा॒णि॒हीत्य॑नु॒ऽप्राणि॑हि॥ २५॥

पदार्थः-**(अभि)** आभिमुख्ये **(त्यम्)** जगदीश्वरं राजसभास्थजनसमूहं वा **(देवम्)** सुखदातारम् **(सवितारम्)** देवानामग्न्यादीनां रसानां वा प्रसवितारम् **(ओण्योः)** द्यावापृथिव्योः। **ओण्योरिति द्यावापृथिवीनामसु**

पठितम्। (निघं०३.३०) **(कविक्रतुम्)** कविः सर्वज्ञा सकलविद्यायुक्ता क्रतुः प्रज्ञा कर्म क्रमदर्शनं वा यस्य तम्। **कविः क्रान्तदर्शनो भवति कवतेर्वा।** (निरु०१२.१३) **(अर्चामि)** पूजयामि **(सत्यसवम्)** सत्यं सव ऐश्वर्य्यं जगद्वा यस्मिन् यस्य वा तम् **(रत्नधाम्)** यो रत्नानि रमणीयानि विज्ञानानि हीरकादीनि भुवनानि वा दधातीति तम् **(अभि)** आभिमुख्ये **(प्रियम्)** यः प्रीणाति तम् **(मतिम्)** यो वेदादिशास्त्रैर्विद्वद्भिश्च मन्यते तम् **(कविम्)** वेदविद्याया उपदेष्टारं निमित्तं वा **(ऊर्ध्वा)** उत्कृष्टा **(यस्य)** सच्चिदानन्दस्वरूपस्य शुभगुणयुक्तस्य वा **(अमतिः)** रूपम्। **अमतिरिति रूपनामसु पठितम्।** (निघं०३.७) **(भा)** यो भाति प्रकाशते सः **(अदिद्युतत्)** प्रकाशितवान्, प्रकाशयति वा **(सवीमनि)** यः सूयते संसारस्तस्मिन् **(हिरण्यपाणिः)** हिरण्यानि ज्योतींषि सूर्य्यादीनि सुवर्णादीनि वा पाणौ व्यवहारे यस्य सः। **ज्योतिर्हि हिरण्यम्।** (शत०४.३.४.२१) इति प्रमाणेन हिरण्यशब्देन ज्योतिषो ग्रहणम् **(अमिमीत)** निर्मितवान् निर्मिमीते वा **(सुक्रतुः)** शोभनः क्रतुः प्रज्ञा कर्म वा यस्य स **(कृपा)** करुणा **(स्वः)** सुखमादित्यं वा। **स्वरादित्यो भवति स एनानि सारयति।** (निरु०५.४) **(प्रजाभ्यः)** उत्पन्नाभ्यः सृष्टिभ्यः **(त्वा)** त्वाम् **(प्रजाः)** मनुष्यादिसृष्टयः **(त्वा)** त्वाम् **(अनुप्राणन्तु)** आयुर्भुञ्जताम् **(प्रजाः)** जगत्स्थाः **(त्वम्)** अयं वा **(अनुप्राणिहि)** जीवतोऽनुजीवनं धर धरति वा। अयं मन्त्रः (शत०(३.३.२.१२-१९) व्याख्यातः॥२५॥

अन्वयः-हे परमात्मन् सभाध्यक्ष प्रजापुरुष! वाऽहं यस्य सवीमन्यूर्ध्वामतिर्भा अदिद्युतत् कृपा स्वः सुखं करोति। यो हिरण्यपाणिः सुक्रतुः स्वरमिमीतादित्यं वा निर्मितवान्। त्यमोण्योः सवितारं कविक्रतुं रत्नधां प्रियं मतिं कविं देवं त्वा त्वां प्रजाभ्योऽभ्यर्चामि तं त्वां प्रजा अनुप्राणन्तु, कृपया त्वं प्रजा अनुप्राणिहि॥२५॥

भावार्थः-अत्र श्लेषालङ्कारः। मनुष्यैः सर्वजगत्स्रष्टुर्निराकारस्य व्यापिनः सर्वशक्तिमतः सच्चिदानन्दादिलक्षणस्य परमेश्वरस्य प्रजापालनतत्परस्य सभापतेर्धार्मिकस्य वैवार्चा नित्यं कर्त्तव्या, नातो भिन्नस्य कस्यचित्। विद्वद्भिः प्रजास्थानां सुखायैतेषां स्तुतिप्रार्थनोपदेशा नित्यं कार्य्याः। यतः सर्वा प्रजास्तदाज्ञानुकूलाः सदा वर्त्तेरन्। यथा प्राणे सर्वेषां जीवानां प्रीतिरस्ति, तथा परमात्मादिष्वपि कार्य्येति॥२५॥

पदार्थः-मैं **(यस्य)** जिस सच्चिदानन्दादिलक्षणयुक्त परमेश्वर, धार्मिक सभापति और प्रजाजन के **(सवीमनि)** उत्पन्न हुए संसार में **(ऊर्ध्वा)** उत्तम **(अमतिः)** स्वरूप **(भाः)** प्रकाशमान **(अदिद्युतत्)** प्रकाशित हुआ है। जिसकी **(कृपा)** करुणा **(स्वः)** सुख को करती है, **(हिरण्यपाणिः)** जिसने सूर्य्यादि ज्योति व्यवहार में उत्तम गुण कर्मों को युक्त किया हो, **(सुक्रतुः)** जिस उत्तम प्रज्ञा वा कर्मयुक्त ईश्वर, सभा-स्वामी और प्रजाजन ने **(स्वः)** सूर्य्य और सुख को **(अमिमीत)** स्थापित किया हो **(त्यम्)** उस **(ओण्योः)** द्यावापृथिवी वा **(सवितारम्)** अग्नि आदि को उत्पन्न और संप्रयोग करने तथा **(कविक्रतुम्)** सर्वज्ञ वा क्रान्तदर्शन **(रत्नधाम्)** रमणीय रत्नों को धारण करने **(सत्यसवम्)** सत्य ऐश्वर्य्ययुक्त **(प्रियम्)** प्रीतिकारक **(मतिम्)** वेदादि शास्त्र वा विद्वानों के मानने योग्य **(कविम्)** वेदविद्या का उपदेश करने तथा **(देवम्)** सुख देने वाले परमेश्वर, सभाध्यक्ष और प्रजाजन का **(अर्चामि)** पूजन करता हूं वा जिस **(त्वा)** आपको **(प्रजाभ्यः)** उत्पन्न हुई सृष्टि से पूजित करता हूं। उस आप की सृष्टि में **(प्रजाः)** मनुष्य आदि **(अनुप्राणन्तु)** आयु का भोग करें **(त्वम्)** और आप कृपा करके **(प्रजाः)** प्रजा के ऊपर जीवों के अनुकूल **(अनुप्राणिहि)** अनुग्रह कीजिये॥२५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को सब जगत् के उत्पन्न करने वाले निराकर, सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान्, सच्चिदानन्दादि लक्षणयुक्त परमेश्वर, धार्मिक सभापति और प्रजाजन समूह ही का सत्कार करना

चाहिये, उनसे भिन्न और किसी का नहीं। विद्वान् मनुष्यों को योग्य है कि प्रजा-पुरुषों के सुख के लिये इस परमेश्वर की स्तुति प्रार्थनोपासना और श्रेष्ठ सभापति तथा धार्मिक प्रजाजन के सत्कार का उपदेश नित्य करें, जिससे सब मनुष्य उनकी आज्ञा के अनुकूल सदा वर्त्तते रहें और जैसे प्राण में सब जीवों की प्रीति होती है, वैसे पूर्वोक्त परमेश्वर आदि में भी अत्यन्त प्रेम करें॥२५॥

शुक्र त्वेत्यस्य वत्स ऋषिः। यज्ञो देवता। भुरग्ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

मनुष्यैः किं कृत्वा यज्ञः साधनीय इत्युपदिश्यते॥

मनुष्यों को क्या-क्या साधन करके यज्ञ को सिद्ध करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

शुक्रं त्वा शुक्रेण क्रीणामि चन्द्रं चन्द्रेणामृतममृतेन। सग्मे ते गोरस्मे ते चन्द्राणि तपसस्तनूरसि प्रजापतेर्वर्णः परमेण पशुना क्रीयसे सहस्रपोषं पुषेयम्॥२६॥

शुक्रम्। त्वा। शुक्रेण। क्रीणामि। चन्द्रम्। चन्द्रेण। अमृतम्। अमृतेन। सग्मे। ते। गोः। अस्मे इत्यस्मे। ते। चन्द्राणि। तपसः। तनूः। असि। प्रजापतेरिति प्रजाऽपतेः। वर्णः। परमेण। पशुना। क्रीयसे। सहस्रपोषमिति सहस्रऽपोषम्। पुषेयम्॥२६॥

पदार्थः-(**शुक्रम्**) शुद्धिकारकम् (**त्वा**) तं क्रियामयं यज्ञम् (**शुक्रेण**) शुद्धभावेन (**क्रीणामि**) गृह्णामि (**चन्द्रम्**) सुवर्णम्। **चन्द्रमिति हिरण्यनामसु पठितम्।** (निघं०१.२) (**चन्द्रेण**) सुवर्णेन (**अमृतम्**) मोक्षसुखम् (**अमृतेन**) नाशरहितेन विज्ञानेन (**सग्मे**) गच्छतीति ग्मा पृथिवी तया सह वर्त्तते तस्मिन् यज्ञे। **ग्मेति पृथिवीनामसु पठितम्।** (निघं०१.१) (**ते**) तव (**गोः**) पृथिव्याः सकाशात् (**अस्मे**) अस्मभ्यम् (**ते**) तव सकाशात् (**चन्द्राणि**) काञ्चनादीन् धातून् (**तपसः**) धर्मानुष्ठानस्याग्नेस्तापसस्य वा (**तनूः**) शरीरम् (**असि**) अस्ति। अत्र सर्वत्र व्यत्ययः (**प्रजापतेः**) प्रजानां पतिः पालनहेतुः सूर्य्यस्तस्य (**वर्णः**) वरीतुं योग्यः (**परमेण**) प्रकृष्टेन (**पशुना**) व्यवहृतेन विक्रीतेन गवादिना (**क्रीयसे**) क्रीयते (**सहस्रपोषम्**) असंख्यातपुष्टिम् (**पुषेयम्**) पुष्टो भवेयम्। अयं मन्त्रः (शत०(३.३.३.६-९) व्याख्यातः॥२६॥

अन्वयः-अहं सग्मे या तपसस्तनूरस्यस्ति, यः पशुना प्रजापतेर्वर्णः क्रीयसे क्रीयते, तं सहस्रपोषं पुषेयम्। हे विद्वन्! यानि ते तव यस्याः गोः सकाशाच्चन्द्राण्युत्पन्नानि सन्ति, तान्यस्मे अस्मभ्यमपि सन्तु। अहं परमेण शुक्रेण यं शुक्रं यज्ञं चन्द्रेण चन्द्रममृतेनामृतं च क्रीणामि, त्वा तं त्वमपि क्रीणीहि॥२६॥

भावार्थः-मनुष्यैः शरीरमनोवाग्धनेन परमेश्वरोपासनादिलक्षणं यज्ञं सततमनुष्ठायासंख्याताऽतुला पुष्टिः प्राप्तव्याः॥२६॥

पदार्थः-जैसे (**सग्मे**) पृथिवी के साथ वर्त्तमान यज्ञ में (**तपसः**) प्रतापयुक्त अग्नि वा तपस्वी अर्थात् धर्मात्मा विद्वान् का (**तनूः**) शरीर (**असि**) है, उसको शिल्पविद्या वा सत्योपदेश की सिद्धि के अर्थ (**पशुना**) विक्रय किये हुए गौ आदि पशुओं करके धन आदि सामग्री से ग्रहण करके (**प्रजापतेः**) प्रजा के पालनहेतु सूर्य्य का (**वर्णः**) स्वीकार करने योग्य तेज (**क्रीयसे**) क्रय होता है, उस (**सहस्रपोषम्**) असंख्यात पुष्टि को प्राप्त होके मैं (**पुषेयम्**) पुष्ट होऊं। हे विद्वन् मनुष्य! जो (**ते**) आपको (**गोः**) पृथिवी के राज्य के सकाश से (**चन्द्राणि**) सुवर्ण

आदि धातु प्राप्त हैं, वे **(अस्मे)** हम लोगों के लिये भी हों, जैसे मैं **(परमेण)** उत्तम **(शुक्रेण)** शुद्ध भाव से **(शुक्रम्)** शुद्धिकारक यज्ञ **(चन्द्रेण)** सुवर्ण से **(चन्द्रम्)** सुवर्ण और **(अमृतेन)** नाशरहित विज्ञान से **(अमृतम्)** मोक्षसुख को **(क्रीणामि)** ग्रहण करता हूँ, वैसे तू भी **(त्वा)** उसको ग्रहण कर॥२६॥

भावार्थः-मनुष्यों को योग्य है कि शरीर, मन, वाणी और धन से परमेश्वर की उपासना आदि लक्षणयुक्त यज्ञ का निरन्तर अनुष्ठान करके असंख्यात अतुल पुष्टि को प्राप्त करें॥२६॥

मित्रो न इत्यस्य वत्स ऋषिः। विद्वान् देवता। भुरिग्ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

मनुष्यैर्विदुषा सह विदुषैतैश्च कथं वर्त्तितव्यमित्युपदिश्यते॥

मनुष्यों को विद्वान् मनुष्य के साथ और विद्वान् को सब मनुष्यों के संग कैसे वर्त्तना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

मित्रो नऽएहि सुमित्रधऽइन्द्रस्योरुमाविश दक्षिणमुशन्नुशन्तꣳ स्योनः स्योनम्। स्वान भ्राजाङ्घारे बम्भारे हस्त सुहस्त कृशानवेते वः सोमक्रयणास्तान् रक्षध्वं मा वो दभन्॥२७॥

मित्रः। नः। आ। इहि। सुमित्रधेति सुऽमित्रधः। इन्द्रस्य। उरुम्। आ। विश। दक्षिणम्। उशन्। उशन्तम्। स्योनः। स्योनम्। स्वान। भ्राज। अङ्घारे। बम्भारे। हस्त। सुहस्तेति सुऽहस्त। कृशानोऽइति कृशानो। एते। वः। सोमक्रयणा इति सोमऽक्रयणाः। तान्। रक्षध्वम्। मा। वः। दभन्॥२७॥

पदार्थः-**(मित्रः)** सुहृत् सन् **(नः)** अस्मान् **(आ)** आगमने **(इहि)** प्राप्नुहि **(सुमित्रधः)** यः शोभनानि मित्राणि दधाति सः **(इन्द्रस्य)** सभाद्यध्यक्षस्य विदुषः **(उरुम्)** बह्वाच्छादनं स्वीकरणं वा **(आ)** समन्तात् **(विश)** **(दक्षिणम्)** उत्तमाङ्गं दक्षिणभागम् **(उशन्)** कामयन् **(उशन्तम्)** कामयन्तम् **(स्योनः)** सुखकारकः **(स्योनम्)** सुखम्। **स्योनमिति सुखनामसु पठितम्।** (निघं०३.६) **(स्वान)** स्वनत्युपदिशति यस्तत्सम्बुद्धौ **(भ्राज)** यो भ्राजते प्रकाशते तत्सम्बुद्धौ **(अङ्घारे)** अङ्घस्य छलस्यारिः शत्रुस्तत्सम्बुद्धौ **(बम्भारे)** बन्धानां सुविचारनिरोधकानां शत्रुस्तत्सम्बुद्धौ। अत्र वर्णव्यत्ययेन धस्य भः **(हस्त)** हसन्ति प्रसन्ना भवन्ति यस्मात् तत्सम्बुद्धौ **(सुहस्त)** शोभना हस्तक्रिया यस्य तत्सम्बुद्धौ **(कृशानो)** दुष्टान् कृशति तत्सम्बुद्धौ **(एते)** सर्वे धार्मिकाः प्रजास्था भृत्या वा **(वः)** युष्मान् **(सोमक्रयणाः)** ये सोमानुत्तमान् पदार्थान् क्रीणन्ति ते **(तान्)** सर्वान् **(रक्षध्वम्)** सततं पालयत। अत्र व्यत्येनात्मनेपदम् **(मा)** निषेधे **(वः)** युष्मान् **(दभन्)** हिंसेयुः। अत्र व्यत्ययो लिङर्थे लङ् च। अयं मन्त्रः (शत०(३.३.३.१०-१२) व्याख्यातः॥२७॥

अन्वयः-हे स्वान भ्राजाङ्घारे बम्भारे हस्त सुहस्त कृशानो सभाद्यध्यक्ष सुमित्रधो मित्रः स्योन उशँस्त्वं नोऽस्मानेहि, दक्षिणमुरुमुशन्तं स्योनमाविश। हे मनुष्या! एत इन्द्रस्य विदुषः सोमक्रयणा मनुष्या वो युष्मान् रक्षन्तु, यूयमेतान् रक्षध्वम्। यथा तान् सर्वान् वो युष्मान् शत्रवो मा दभन् हिंसितारो न भवेयुस्तथैव परस्परं संप्रीत्या मिलित्वाऽनुष्ठेयम्॥२७॥

भावार्थः-राजप्रजापुरुषैः परस्परं प्रीत्योपकारे धर्म्ये व्यवहारे च वर्त्तित्वा शत्रून् निवार्य्याविद्यान्धकारं विनाश्य चक्रवर्त्तिराज्यं प्रशास्यानन्दे सदा स्थातव्यम्॥२७॥

पदार्थः- हे **(स्वान)** उपदेश करने **(भ्राज)** प्रकाश को प्राप्त होने **(अङ्घारे)** छल के शत्रु **(बम्भारे)**

विचार-विरोधियों के शत्रु **(हस्त)** प्रसन्न **(सुहस्त)** अच्छे प्रकार हस्तक्रिया को जानने और **(कृशानो)** दुष्टों को कृश करने **(सुमित्रधः)** उत्तम मित्रों को धारण करने **(मित्रः)** सब के मित्र **(स्योनः)** सुख की **(उशन्)** कामना करने हारे सभाध्यक्ष! आप **(नः)** हम लोगों को **(आ इहि)** अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये तथा **(दक्षिणम्)** उत्तम अङ्गयुक्त **(उरुम्)** बहुत उत्तम पदार्थों से युक्त वा स्वीकार करने योग्य **(उशन्तम्)** कामना करने योग्य **(स्योनम्)** सुख को **(आविश)** प्रवेश कीजिये। हे सभाध्यक्षो! **(एते)** जो **(इन्द्रस्य)** परमैश्वर्य्ययुक्त सभाध्यक्ष विद्वान् के **(सोमक्रयणाः)** सोम अर्थात् उत्तम पदार्थों का क्रय करने हारे प्रजा और भृत्य आदि मनुष्य **(वः)** तुम लोगों की रक्षा करें और आप लोग भी उनकी **(रक्षध्वम्)** रक्षा सदा किया करो। जैसे वे शत्रु लोग **(तान्)** उन **(वः)** तुम लोगों की हिंसा करने में समर्थ **(मा दभन्)** न हों, वैसे ही सम्यक् प्रीति से परस्पर मिल के वर्त्तो॥२७॥

भावार्थः-राज्य और प्रजापुरुषों को उचित है कि परस्पर प्रीति, उपकार और धर्मयुक्त व्यवहार में यथावत् वर्त्त, शत्रुओं का निवारण, अविद्या वा अन्यायरूप अन्धकार का नाश और चक्रवर्त्ति राज्य आदि का पालन करके सदा आनन्द में रहें॥२७॥

परि माग्न इत्यस्य वत्स ऋषिः। अग्निर्देवता। पूर्वार्द्धस्य साम्नी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः।
उत्तरार्द्धस्य साम्न्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

सर्वैर्मनुष्यैः सर्वेषु कर्त्तव्येषु शुभकर्मानुष्ठानेषु परमेश्वरः सदा प्रार्थनीय इत्युपदिश्यते॥

सब मनुष्यों को उचित है कि सब करने योग्य उत्तम कर्मों के आरम्भ, मध्य और सिद्ध होने पर
परमेश्वर की प्रार्थना सदा किया करें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

परि॑ माग्ने दुश्च॑रिताद् बाधस्वा मा सुच॑रिते भज।
उदायु॑षा स्वायुषोद॑स्थाममृताँ२ऽअनु॑॥२८॥

परि॑। मा। अग्ने। दुश्च॑रि॒ता॒दिति॒ दुःऽच॑रितात्। बा॒ध॒स्व॒। आ। मा। सुच॑रित॒ इति॒ सुऽच॑रिते। भ॒ज॒। उत्। आयु॑षा। स्वा॒यु॒षेति॑ सुऽआ॒यु॒षा॑। उत्। अ॒स्था॒म्। अ॒मृता॑न्। अनु॑॥२८॥

पदार्थः-**(परि)** सर्वतः **(मा)** माम् **(अग्ने)** विज्ञानस्वरूप दयालो जगदीश्वर! **(दुश्चरितात्)** दुष्टाचरणात् **(बाधस्व)** निवर्त्तय **(आ)** समन्तात् **(मा)** माम् **(सुचरिते)** यस्मिन् शोभनानि चरितानि, धर्म्ये व्यवहारे, तस्मिन् **(भज)** स्थापय **(उत्)** अपि **(आयुषा)** जीवनेन **(स्वायुषा)** शोभनमायुर्जीवनं प्राणधारणं यस्मिँस्तेन सह **(उत्)** उत्कृष्टे **(अस्थाम्)** तिष्ठेयम् **(अमृतान्)** प्राप्तमोक्षान् सदेहान् विगतदेहान् वा विदुषो मुक्त्यानन्दानुत्तमान् भोगान् वा **(अनु)** आनुकूल्ये। अयं मन्त्रः (शत०(३.३.१३-१४) व्याख्यातः॥२८॥

अन्वयः-हे अग्ने जगदीश्वर! त्वं कृपया येन कर्मणाहं स्वायुषायुषाऽमृतान् प्राप्तमोक्षान् सदेहान् विगतदेहान् वा विदुषोऽमृतात्मभोगान् वोदस्थामुत्कृष्टतया प्राप्युनाम, तेन मा मां संयोज्य दुश्चरिताद् उद्बाधस्व पृथक् कुरु, पृथक् कृत्वा मा मां सुचरितेऽन्वाभज॥२८॥

भावार्थः-मनुष्यैरधर्मत्यागाय धर्मग्रहणाय सत्यभावेन प्रार्थितोऽयं परमात्मा यथैतानधर्माद् वियोज्य धर्मे सद्यः प्रवर्त्तयति, तथैव स्वैरपि यावज्जीवनं तावत्सर्वं धर्माचरणे नीत्वा संसारमुक्तिसुखानि सेवनीयानि॥२८॥

पदार्थः-हे **(अग्ने)** जगदीश्वर! आप कृपा करके जिस कर्म से मैं **(स्वायुषा)** उत्तमतापूर्वक प्राण धारण

करने वाले **(आयुषा)** जीवन से **(अमृतान्)** जीवनमुक्त और मोक्ष को प्राप्त हुए विद्वान् वा मोक्षरूपी आनन्दों को **(उदस्थाम्)** अच्छे प्रकार प्राप्त होऊँ, उससे **(मा)** मुझको संयुक्त करके **(दुश्चरितात्)** दुष्टाचरण से **(उद्बाधस्व)** पृथक् करके **(मा)** मुझको **(सुचरिते)** उत्तम-उत्तम धर्माचरणयुक्त व्यवहार में **(अन्वाभज)** अच्छे प्रकार स्थापन कीजिये॥२८॥

भावार्थः-मनुष्यों को योग्य है कि अधर्म के छोड़ने और धर्म के ग्रहण करने के लिये सत्य प्रेम से प्रार्थना करें, क्योंकि प्रार्थना किया हुआ परमात्मा शीघ्र अधर्मों से छुड़ा कर धर्म में प्रवृत्त कर देता है, परन्तु सब मनुष्यों को यह करना अवश्य है कि जब तक जीवन है, तब तक धर्माचरण ही में रहकर संसार वा मोक्षरूपी सुखों को सब प्रकार से सेवन करें॥२८॥

प्रति पन्थामित्यस्य वत्स ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनः स किमर्थं प्रार्थनीय इत्युपदिश्यते॥

फिर उस परमेश्वर की प्रार्थना किसलिये करनी चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

प्रति पन्थामपद्महि स्वस्तिगामनेहसम्। येन विश्वाः परि द्विषो वृणक्ति विन्दते वसु॥२९॥

प्रति। पन्थाम्। अपद्महि। स्वस्तिगामिति स्वस्तिऽगाम्। अनेहसम्। येन। विश्वाः। परि। द्विषः। वृणक्ति। विन्दते। वसु॥२९॥

पदार्थः-**(प्रति)** प्रत्यक्षे वीप्सायां च **(पन्थाम्)** मार्गं मार्गम् **(अपद्महि)** प्राप्नुयाम **(स्वतिगाम्)** स्वस्ति सुखं गच्छति येन तम्। अत्र **जनसनखन०।** (अष्टा०३.२.६७) अनेन विट् प्रत्ययः **(अनेहसम्)** अविद्यमाननि एहांसि हननानि यस्मिंस्तम्। अत्र **नञि हन एह च**। (उणा०४.२२४) अनेनायं सिद्धः **(येन)** मार्गेण **(विश्वाः)** सर्वाः **(परि)** सर्वतः **(द्विषः)** द्विषन्ति अप्रीणयन्ति याभ्यः शत्रुसेनाभ्यो दुःखक्रियाभ्यो वा ताः। अत्र **कृतो बहुलम्।** [अष्टा०३.३.११३] इति हेतौ क्विप् **(वृणक्ति)** वर्जयति, अत्रान्तर्गतो ण्यर्थः **(विन्दते)** लभते **(वसु)** सुखकारकं धनम्। अयं मन्त्रः (शत०(३.३.३.१५-१६) व्याख्यातः॥२९॥

अन्वयः-हे जगदीश्वराग्ने! त्वदनुगृहीता पुरुषार्थिनो भूत्वा वयं येन विद्वान् विश्वा द्विषः परिवृणक्ति वसु विदन्ते, तमनेहसं स्वस्तिगां पन्थां मार्गं प्रत्यपद्महि प्रत्यक्षतया व्याप्त्या प्राप्नुयाम॥२९॥

भावार्थः-मनुष्यैर्द्वेषादित्यागाय विद्याधनप्राप्तये धर्ममार्गप्रकाशायेश्वरप्रार्थना धर्मविद्वत्सेवा च नित्यं कार्य्या॥२९॥

पदार्थः-हे जगदीश्वर! आप के अनुग्रह से युक्त पुरुषार्थी होकर हम लोग **(येन)** जिस मार्ग से विद्वान् मनुष्य **(विश्वाः)** सब **(द्विषः)** शत्रु सेना वा दुःख देने वाली भोगक्रियाओं को **(परिवृणक्ति)** सब प्रकार से दूर करता और **(वसु)** सुख करने वाले धन को **(विन्दते)** प्राप्त होता है, उस **(अनेहसम्)** हिंसारहित **(स्वस्तिगाम्)** सुख पूर्वक जाने योग्य **(पन्थाम्)** मार्ग को **(प्रत्यपद्महि)** प्रत्यक्ष प्राप्त होवें॥२९॥

भावार्थः-मनुष्यों को उचित है कि द्वेषादि त्याग, विद्यादि धन की प्राप्ति और धर्ममार्ग के प्रकाश के लिये ईश्वर की प्रार्थना, धर्म और धार्मिक विद्वानों की सेवा निरन्तर करें॥२९॥

अदित्यास्त्वगसीत्यस्य वत्स ऋषिः। वरुणो देवता। पूर्वस्य स्वराड् याजुषी त्रिष्टुप् छन्दः। अस्तभ्नादित्यन्तस्यार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथेश्वरसूर्य्यवायुगुणा उपदिश्यन्ते॥

अगले मन्त्र में ईश्वर, सूर्य्य और वायु के गुणों का उपदेश किया है॥

अदित्यास्त्वगस्यदित्यै सदऽआसीद।
अस्तभ्नाद् द्यां वृषभोऽअन्तरिक्षममिमीत वरिमाणम्पृथिव्याः।
आसीदद्विश्वा भुवनानि सम्राड् विश्वेत्तानि वरुणस्य व्रतानि॥ ३०॥

अदित्याः। त्वक्। असि। अदित्यै। सदः। आ। सीद। अस्तभ्नात्। द्याम्। वृषभः। अन्तरिक्षम्। अमिमीत। वरिमाणम्। पृथिव्याः। आ। असीदत्। विश्वा। भुवनानि। सम्राडिति सम्ऽराट्। विश्वा। इत्। तानि। वरुणस्य। व्रतानि॥ ३०॥

पदार्थः-(**अदित्याः**) पृथिव्यादेः (**त्वक्**) यस्त्वचति संवृणोति सः (**असि**) अस्ति वा, अत्र पक्षे सर्वत्र व्यत्ययः (**अदित्यै**) पृथिव्यादिसृष्टये (**सदः**) स्थापनम् (**आ**) समन्तात् (**सीद**) सादयति वा, अत्र व्यत्ययोऽन्तर्गतो ण्यर्थश्च (**अस्तभ्नात्**) स्तभ्नासि, स्तभ्नाति धरति वा। अत्र लडर्थे लङ् (**द्याम्**) सूर्य्यादिकं प्रकाशं वा (**वृषभः**) श्रेष्ठः (**अन्तरिक्षम्**) अवकाशम् (**अमिमीत**) निर्मिमीते, अत्रापि लडर्थे लङ् (**वरिमाणम्**) वरस्य भावम् (**पृथिव्याः**) अन्तरिक्षस्यावकाशस्य मध्ये। **पृथिवीत्यन्तरिक्षनामसु पठितम्।** (निघं०१.३) (**आ**) सर्वतः (**असीदत्**) सादयसि, सादयत्यवस्थापयति वा (**विश्वा**) सर्वाणि (**भुवनानि**) लोकान् (**सम्राट्**) यः सम्यग्राजते सः (**विश्वा**) अखिलानि (**इत्**) एव (**तानि**) एतानि (**वरुणस्य**) परमेश्वरस्य, सूर्य्यस्य, वायोर्वा (**व्रतानि**) शीलानि। अयं मन्त्रः (शत०(३.३.४.१-५) व्याख्यातः॥३०॥

अन्वयः-हे जगदीश्वर! यतो वृषभस्त्वमदित्यास्त्वगस्यदित्यै सद आसीदासादयसि, द्यामस्तभ्नात् स्तभ्नासि वरिमाणमन्तरिक्षममिमीत निर्मिमीषे, सम्राट् सन् पृथिव्या अन्तरिक्षस्य मध्ये विश्वा भुवनान्यासीददासादयसि, अस्मात् तान्येतानि विश्वा सर्वाणि वरुणस्य ते तवेदेव व्रतानि सन्तीति वयमपद्महि विजानीयामेत्येकः॥

यो वृषभः सम्राट् सूर्य्यो वायुश्चादित्यास्त्वगस्यस्ति संवृणोत्यदित्यै सद् आसीदासादयति, द्यामस्तभ्नात् स्तभ्नाति, वरिमाणमन्तरिक्षमवकाशममिमीत निर्मिमीते, पृथिव्या अन्तरिक्षस्य मध्ये विश्वा भुवनान्यासीददासादयति, तस्य तान्येतानि विश्वा सर्वाणि वरुणस्य सूर्य्यस्य वायोश्चेदेव व्रतानि शीलानि वयमपद्महीति द्वितीयः॥३०॥

भावार्थः-अत्र श्लेषालङ्कारः। पूर्वस्मान्मन्त्राद् 'अपद्महि' इति पदमनुवर्त्तते। परमेश्वरस्यैवैष स्वभावो यदिदं सर्वमभिव्याप्य रचयित्वा धरत्येवं सूर्य्यवाय्वोरपि प्रकाशधारणस्वभावोऽस्ति॥३०॥

पदार्थः-हे जगदीश्वर! जिससे (**वृषभः**) श्रेष्ठ गुणयुक्त (**अदित्याः**) पृथिवी के (**त्वक्**) आच्छादन करने वाले (**असि**) हैं, (**अदित्यै**) पृथिवी आदि सृष्टि के लिये (**सदः**) स्थापन करने योग्य (**आसीद**) व्यवस्था को स्थापन करते वा (**द्याम्**) सूर्य्य आदि को (**अस्तस्नात्**) धारण करते (**वरिमाणम्**) अत्यन्त उत्तम (**अन्तरिक्षम्**) अन्तरिक्ष को (**अमिमीत**) रचते और (**सम्राट्**) अच्छे प्रकार प्रकाश को प्राप्त हुए सब के अधिपति आप (**पृथिव्याः**)

अन्तरिक्ष के बीच में **(विश्वा)** सब **(भुवनानि)** लोकों को **(आसीदत्)** स्थापन करते हो, इससे **(तानि)** ये **(विश्वा)** सब **(वरुणस्य)** श्रेष्ठरूप **(ते)** आपके **(इत्)** ही **(व्रतानि)** सत्य स्वभाव और कर्म हैं, ऐसा हम लोग **(अपद्महि)** जानते हैं॥१॥३०॥

जो **(वृषभः)** अत्युत्तम **(सम्राट्)** अपने आप प्रकाशमान सूर्य्य और वायु **(अदित्याः)** पृथिवी आदि के **(त्वक्)** आच्छादन करने वाले **(असि)** हैं, वा **(अदित्यै)** पृथिवी आदि सृष्टि के लिये **(सदः)** लोकों को **(आसीद)** स्थापन **(द्याम्)** प्रकाश को **(अस्तभ्नात्)** धारण **(वरिमाणम्)** श्रेष्ठ **(अन्तरिक्षम्)** आकाश को **(अमिमीत)** रचना और **(पृथिव्याः)** आकाश के मध्य में **(विश्वा)** सब **(भुवनानि)** लोकों को **(आसीदत्)** स्थापन करते हैं, **(तानि)** वे **(विश्वा)** सब **(ते)** उस **(वरुणस्य)** सूर्य्य और वायु के **(इत्)** ही **(व्रतानि)** स्वभाव और कर्म हैं, ऐसा हम लोग **(अपद्महि)** जानते हैं॥२॥३०॥

भावार्थः-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार और पूर्व मन्त्र से **'अपद्महि'** इस पद की अनुवृत्ति जाननी चाहिये। जैसा परमेश्वर का स्वभाव है कि सूर्य्य और वायु आदि को सब प्रकार व्याप्त होकर रच कर धारण करता है, इसी प्रकार सूर्य्य और वायु का भी प्रकाश और स्थूल लोकों के धारण का स्वभाव है॥३०॥

वनेष्वित्यस्य वत्स ऋषिः। वरुणो देवता। विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्ते कीदृशा इत्युपदिश्यते॥

फिर वे कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

वने॑षु॒ व्य॒न्तरि॑क्षं ततान॒ वाज॒मर्व॑त्सु॒ पय॑ऽउ॒स्रिया॑सु।

हृ॒त्सु क्रतुं॒ वरु॑णो वि॒क्ष्व॒ग्निं दि॒वि सूर्य॑मदधा॒त् सोम॒मद्रौ॑॥३१॥

वने॑षु। वि। अ॒न्तरि॑क्षम्। त॒ता॒न॒। वाज॑म्। अर्व॒त्स्वित्यर्व॑त्ऽसु। पय॑ः। उ॒स्रिया॑सु। हृ॒त्स्विति॑ हृ॒त्ऽसु। क्रतु॑म्। वरु॑णः। वि॒क्षु। अ॒ग्निम्। दि॒वि। सूर्य॑म्। अ॒द॒धा॒त्। सोम॑म्। अद्रौ॑॥३१॥

पदार्थः-**(वनेषु)** रश्मिषु वृक्षसमूहेषु वा। **वनमिति रश्मिनामसु पठितम्।** (निघं०१.५) **(वि)** विशेषार्थे **(अन्तरिक्षम्)** आकाशम् **(ततान)** विस्तारितवान् विस्तारयत वा **(वाजम्)** वेगम् **(अर्वत्सु)** अश्वेषु आप्तवेगगुणेषु विद्युदादिषु वा। **अर्वेत्यश्वनामसु पठितम्।** (निघं०१.१४) **(पयः)** दुग्धम् **(उस्रियासु)** गोषु। **उस्रियेति गोनामसु पठितम्।** (निघं०२.११) **(हृत्सु)** हृदयेषु **(क्रतुम्)** प्रज्ञां कर्म वा **(वरुणः)** परमेश्वरः सूर्य्यो वायुर्वा **(विक्षु)** प्रजासु **(अग्निम्)** विद्युतं प्रसिद्धमग्निं वा **(दिवि)** प्रकाशे **(सूर्य्यम्)** सवितारम् **(अदधात्)** धत्तवान् दधाति वा **(सोमम्)** अमृतात्मकं रसं सोमवल्याद्योषधीगणं वा **(अद्रौ)** मेघे शैले वा। **अद्रिरिति मेघनामसु पठितम्।** (निघं०१.१०) अयं मन्त्रः (शत०(३.३.४.७) व्याख्यातः॥३१॥

अन्वयः-यो वरुणः परमेश्वरः सूर्य्यो वायुर्वा वनेषु किरणेष्वरण्येषु वान्तरिक्षं विततानार्वत्सु वाजमुस्रियासु पयो हृत्सु क्रतुं विक्ष्वग्निं दिवि सूर्य्यमद्रौ सोमं चादधात्, स एव सर्वैरुपास्यः सम्यगुपयोजनीयो वास्ति॥३१॥

भावार्थः-अत्र श्लेषालङ्कारः। यथा परमेश्वरः स्वविद्याप्रकाशजगद्रचनाभ्यां सर्वेषु पदार्थेषु तत्तत्स्वभावयुक्तान् गुणान् संस्थाप्य विज्ञानादिकं वायुसूर्य्यादिकं च विस्तृणोति, तथैव वायुसूर्य्यावपि सर्वेभ्यः सुखं विस्तारयतः॥३१॥

पदार्थः-जो **(वरुणः)** अत्युत्तम, परमेश्वर सूर्य्य वा प्राणवायु हैं, वे **(वनेषु)** किरण वा वनों के **(अन्तरिक्षम्)** आकाश को **(विततान)** विस्तारयुक्त किया वा करता **(अर्वत्सु)** अत्युत्तम वेगादि गुणयुक्त विद्युत् आदि पदार्थ और घोड़े आदि पशुओं में **(वाजम्)** वेग **(उस्रियासु)** गौओं में **(पयः)** दूध **(हृत्सु)** हृदयों में **(क्रतुम्)** प्रज्ञा वा कर्म **(विक्षु)** प्रजा में **(अग्निम्)** अग्नि **(दिवि)** प्रकाश में **(सूर्य्यम्)** आदित्य **(अद्रौ)** पर्वत वा मेघ में **(सोमम्)** सोमवल्ली आदि ओषधी और श्रेष्ठ रस को **(अदधात्)** धारण किया करते हैं, उसी ईश्वर की उपासना और उन्हीं दोनों का उपयोग करें॥३१॥

भावार्थः-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जैसे परमेश्वर अपनी विद्या का प्रकाश और जगत् की रचना से सब पदार्थों में उनके स्वभावयुक्त गुणों को स्थापन और विज्ञान आदि गुणों को नियत करके पवन, सूर्य आदि को विस्तारयुक्त करता है, वैसे सूर्य्य और वायु भी सब के लिये सुखों का विस्तार करते हैं॥३१॥

सूर्य्यस्य चक्षुरित्यस्य वत्स ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्ते कीदृशा इत्युपदिश्यते॥

फिर वे कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

सूर्य॑स्य॒ चक्षु॒रारो॑हा॒ग्नेर॒क्ष्णः क॒नीन॑कम्। यत्रै॒त॑शेभि॒रीय॑से॒ भ्राज॑मानो विप॒श्चिता॑॥३२॥

सूर्य्य॑स्य। चक्षुः॑। आ। रो॒ह॒। अ॒ग्नेः। अ॒क्ष्णः। क॒नीन॑कम्। यत्र॑। एत॑शेभिः। ईय॑से। भ्राज॑मानः। वि॒प॒श्चितेति॑ वि॒पः॒ऽचिता॑॥३२॥

पदार्थः-**(सूर्य्यस्य)** सवितृमण्डलस्य विद्युतो वा **(चक्षुः)** दर्शकम् **(आ)** समन्तात् **(रोह)** दर्शयसि दर्शयति वा **(अग्नेः)** भौतिकस्य **(अक्ष्णः)** दर्शनसाधकस्य **(कनीनकम्)** कनति प्रकाशते येन तत्। अत्र कनीधातोर्बाहुलकादौणादिक ईनकप्रत्ययः **(यत्र)** यस्मिन् **(एतशेभिः)** विज्ञानवेदादिभिरागमकैर्गुणैरश्वैः। **एतश इत्यश्वनामसु पठितम्।** (निघं०१.१४) **(ईयसे)** विज्ञायसे विज्ञायते वा **(भ्राजमानः)** प्रकाशमानः **(विपश्चिता)** मेधाविना विदुषा। **विपश्चिदिति मेधाविनामसु पठितम्।** (निघं०३.१५) अयं मन्त्रः (शत०(३.३.४.८) व्याख्यातः॥३२॥

अन्वयः-हे परमेश्वर! यत्र त्वमेतशेभिर्भ्राजमानो विपश्चितेयसे, यत्र प्राणो विद्युद्वैतशेभिर्विपश्चिता भ्राजमानो विज्ञायते। यत्र त्वं स सा च सूर्य्यस्याग्नेरक्ष्णः कनीनकं चक्षुरारोह समन्ताद् दर्शयति वा, तत्र वयं त्वां तं तां चोपासीमहि युञ्ज्याम वा॥३२॥

भावार्थः-अत्र श्लेषालङ्कारः। मनुष्यैर्यथा विद्वद्भिरीश्वरः प्राणो विद्युच्च विज्ञायोपास्यते संप्रयुज्यते च, तथैव विज्ञायोपास्य उपयोक्तव्यः संप्रयोजितव्या च॥३२॥

पदार्थः-हे परमेश्वर! **(यत्र)** जहां आप **(एतशेभिः)** विज्ञान आदि गुणों से **(भ्राजमानः)** प्रकाशमान **(विपश्चिता)** मेधावी विद्वान् से **(ईयसे)** विज्ञात होते हो वा जहां प्राणवायु वा बिजुली **(एतशेभिः)** वेगादि गुण वा **(विपश्चिता)** विद्वान् से **(भ्राजमानः)** प्रकाशित होकर **(ईयसे)** विज्ञात होते हैं और जहां आप प्राण तथा बिजुली **(सूर्य्यस्य)** सूर्य्य वा बिजुली और **(अग्नेः)** भौतिक अग्नि के **(अक्ष्णः)** देखने के साधन **(कनीनकम्)** प्रकाश करने वाले **(चक्षुः)** नेत्रों को **(आरोह)** देखने के लिये कराते वा कराती हैं, वहीं हम लोग आप की उपासना और उन

दोनों का उपयोग करें॥३२॥

भावार्थः-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को उचित है कि जैसे विद्वान् लोग ईश्वर, प्राण और बिजुली के गुणों को जान, उपासना वा कार्य्यसिद्धि करते हैं, वैसे ही उनको जानकर उपासना और अपने प्रयोजनों को सदा सिद्ध करते रहें॥३२॥

उस्रावेतमित्यस्य वत्स ऋषिः। सूर्य्यविद्वांसौ देवते। पूर्वस्य निचृदार्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः। स्वस्तीत्यन्तस्य याजुषी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

अथ सूर्य्यविद्वांसौ कथंभूतावेताभ्यां शिल्पविदौ किं कुर्य्यातामित्युपदिश्यते॥

अब सूर्य्य और विद्वान् कैसे हैं, और उनसे शिल्पविद्या के जानने वाले क्या करें, सो अगले मन्त्र में कहा है॥

उस्रावेतं धूर्षाहौ युज्येथामनश्रूऽअवीरहणौ ब्रह्मचोदनौ।
स्वस्ति यजमानस्य गृहान् गच्छतम्॥३३॥

उस्रौ। आ। इतम्। धूर्षाहौ। धूःसहाविति धूःऽसहौ। युज्येथाम्। अनश्रूऽइत्यनश्रू। अवीरहणौ। अवीरहनावित्यवीरऽहनौ। ब्रह्मचोदनाविति ब्रह्मऽचोदनौ। स्वस्ति। यजमानस्य। गृहान्। गच्छतम्॥३३॥

पदार्थः-**(उस्रौ)** रश्मिमन्तौ निवासहेतू सूर्य्यवायू। **उस्रा इति रश्मिनामसु पठितम्।** (निघं०१.५) **गोनामसु च।** (निघं०२.११) **(आ)** समन्तात् **(इतम्)** प्राप्नुतः **(धूर्षाहौ)** यौ धुरं पृथिव्याः शरीरस्य ज्ञानानां वा धारणं सहेते तौ **(युज्येथाम्)** युज्येते युक्तौ कुरुतः **(अनश्रू)** अव्यापिनौ **(अवीरहणौ)** वीरहननरहितौ **(ब्रह्मचोदनौ)** आत्मान्नप्राप्तिप्रेरकौ **(स्वस्ति)** सुखं सुखेन वा **(यजमानस्य)** धार्मिकस्य जीवस्य **(गृहान्)** गृहाणि **(गच्छतम्)** गमयतः। अयं मन्त्रः (शत०(३.३.४.१२) व्याख्यातः॥३३॥

अन्वयः-हे मनुष्या! यथा विद्याशिल्पे चिकीर्षू यौ ब्रह्मचोदनावनश्रू अवीरहणावुस्रौ धूर्षाहौ सूर्य्यविद्वांसौ गावौ वृषवद् यानचालनायैतं प्राप्नुतो युज्येथां युक्तौ कुरुतो यजमानस्य गृहान् स्वस्ति गच्छतं सुखेन गमयतस्तौ यूयं युक्त्या सेवयत॥३३॥

भावार्थः-अत्र श्लेषवाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। यथा सूर्य्यविपश्चितौ क्रमेण सर्वं प्रकाश्य धृत्वा सहित्वा युक्त्वा प्राप्य सुखं प्रापयतस्तथैव येन शिल्पविद्यासम्पादकेन यानेषु युक्त्या सेविते अग्निजले सुखेन सर्वत्राभिगमनं कारयतः॥३३॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे विद्या और शिल्पक्रिया को प्राप्त होने की इच्छा करने वाले **(ब्रह्मचोदनौ)** अन्न और विज्ञान प्राप्ति के हेतु **(अनश्रू)** अव्यापी **(अवीरहणौ)** वीरों का रक्षण करने **(उस्रौ)** ज्योतियुक्त और निवास के हेतु **(धूर्षाहौ)** पृथिवी और धर्म के भार को धारण करने वाले विद्वान् **(आ इतम्)** सूर्य्य और वायु को प्राप्त होते वा **(युज्येथाम्)** युक्त करते और **(यजमानस्य)** धार्मिक यजमान के **(गृहान्)** घरों को **(स्वस्ति)** सुख से **(गच्छतम्)** गमन करते हैं, वैसे तुम भी उनको युक्ति से संयुक्त कर के कार्यों को सिद्ध किया करो॥३३॥

भावार्थः-इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे सूर्य्य और विद्वान् सब पदार्थों को धारण

करनेहारे, सहनयुक्त और प्राप्त होकर सुखों को प्राप्त कराते हैं, वैसे ही शिल्पविद्या के जानने वाले विद्वान् से यानों में युक्ति से सेवन किये हुए अग्नि और जल सवारियों को चला के सर्वत्र सुखपूर्वक गमन कराते हैं॥३३॥

भद्रो मेऽसीत्यस्य वत्स ऋषिः। यजमानो देवता। पूर्वस्य भुरिगार्ची गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः। मा त्वेत्यस्य भुरिगार्ची बृहती छन्दः। मध्यमः स्वर। श्येनो भूत्वेत्यस्य विराडार्च्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

तेन यानेन विदुषा किं किं कर्त्तव्यमित्युपदिश्यते॥

उस यान से विद्वान् को क्या-क्या करना चाहिये है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

भद्रो मेऽसि प्रच्यवस्व भुवस्पते विश्वान्यभि धामानि। मा त्वा परिपरिणो विदन् मा त्वा परिपन्थिनो विदन् मा त्वा वृकाऽअघायवो विदन्। श्येनो भूत्वा परापत यजमानस्य गृहान् गच्छ तन्नौ सँस्कृतम्॥३४॥

भद्रः। मे। असि। प्र। च्यवस्व। भुवः। पते। विश्वानि। अभि। धामानि। मा। त्वा। परिपरिण इति परिऽपरिणः। विदन्। मा। त्वा। परिपन्थिन इति परिऽपन्थिनः। विदन्। मा। त्वा। वृकाः। अघायवः। अघयव इत्यघऽयवः। विदन्। श्येनः। भूत्वा। परा। पत। यजमानस्य। गृहान्। गच्छ। तत्। नौ। सँस्कृतम्॥३४॥

पदार्थः-(**भद्रः**) सुखकारी (**मे**) मम (**असि**) भवसि (**प्र**) प्रकर्षे (**च्यवस्व**) गच्छ (**भुवः**) पृथिव्याः (**पते**) स्वामिन्! (**विश्वानि**) सर्वाणि (**अभि**) आभिमुख्ये (**धामानि**) स्थानानि (**मा**) निषेधे (**त्वा**) त्वां गृहादिषूपस्थितम् (**परिपरिणः**) परितः सर्वतश्छलेन रात्रौ वा परस्वादायिनश्चोराः। **छन्दसि परिपन्थिपरिपरिणौ पर्य्यवस्थातरि।** (**अष्टा०**५.२.८९) अनेनैतौ शब्दौ स्तेनविषये निपात्येते (**विदन्**) विन्दन्तु प्राप्नुवन्तु। अत्र सर्वत्र **वा छन्दसि सर्वे विधयो भवन्ति।** [अष्टा०भा०वा०१.४.९] इति नुमटोरभावो लोडर्थे लुङ् च (**मा**) निषेधार्थे (**त्वा**) प्रवाससेविनं त्वाम् (**परिपन्थिनः**) उत्कोचका दस्यवः (**विदन्**) लभन्ताम् (**मा**) निषेधार्थे (**त्वा**) त्वामैश्वर्य्यवन्तम् (**वृकाः**) स्तेनाः। **वृक इति स्तेननामसु पठितम।** (निघं०३.२४) (**अघायवः**) आत्मनोऽघं पापमिच्छवः (**विदन्**) लभन्ताम् (**श्येनः**) श्येन इव (**भूत्वा**) (**परा**) दूरार्थे (**पत**) गच्छ (**यजमानस्य**) सङ्गमं कर्तुं योगस्य पूज्यस्य मनुष्यस्य (**गृहान्**) द्वीपखण्डदेशान्तरस्थानानि (**गच्छ**) गमनं कुरु (**तत्**) (**नौ**) आवयोः (**संस्कृतम्**) शिल्पविद्यासंस्कारयुक्तं सर्वर्त्तुकम्। अयं मन्त्रः (शत०(३.३.४.१४-१६) व्याख्यातः॥३४॥

अन्वयः-हे भुवस्पते विद्वन्! त्वं मे मम भद्रोऽसि। यन्नौ तव मम च संस्कृतं यानमस्ति तेन विश्वानि धामान्यभिप्रच्यवस्वाभितः प्रकृष्टतया गच्छ, यथा सर्वत्राभिगच्छन्तं त्वां परिपरिणो वृका मा विदन् मा लभन्ताम्, तथा प्रयतस्व। परदेशसेविनं त्वां तथा परिपन्थिनो वृका मा विदन्, तथाऽनुतिष्ठ। यथा परदेशसेविनं त्वामघायवः पापिनो मनुष्या मा विदन्, तथाऽनुजानीहि। त्वं श्येनो भूत्वा तेभ्यः परापत गच्छैतान् वा परापत दूरे गमयैवं कृत्वा यजमानस्य गृहान् गच्छ, यतो मार्गे किञ्चिदपि दुःखं न स्यात्॥३४॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैरुत्तमानि विमानादीनि यानानि रचयित्वा तत्र स्थित्वा तानि यथायोग्यं प्रचाल्य श्येन इव द्वीपाद्यन्तरं देशं गत्वा धनं प्राप्य तस्मादागत्य दुष्टेभ्यः प्राणिभ्यो दूरे स्थित्वा सर्वदा सुखं

भोक्तव्यम्॥३४॥

पदार्थः-हे **(भुवः)** पृथिवी के **(पते)** पालन करने वाले विद्वन् मनुष्य! तू **(मे)** मेरा **(भद्रः)** कल्याण करने वाला बन्धु **(असि)** है, सो तू **(नौ)** मेरा और तेरा **(संस्कृतम्)** संस्कार किया हुआ यान है **(तत्)** उससे **(विश्वानि)** सब **(धामानि)** स्थानों को **(अभि प्रच्यवस्व)** अच्छे प्रकार जा, जिससे सब जगह जाते हुए **(त्वा)** तुझ को जैसे **(परिपरिणः)** छल से रात्रि में दूसरे के पदार्थों को ग्रहण करने वाले **(वृकाः)** चोर **(मा विदन्)** प्राप्त न हों और परदेश को जाने वाले **(त्वा)** तुझ को जैसे **(परिपन्थिनः)** मार्ग में लूटने वाले डाकू **(मा विदन्)** प्राप्त न होवें, जैसे परमैश्वर्य्ययुक्त **(त्वा)** तुझ को **(अघायवः)** पाप की इच्छा करने वाले दुष्ट मनुष्य **(मा विदन्)** प्राप्त न हों, वैसा कर्म सदा किया कर। **(श्येनः)** श्येन पक्षी के समान वेगबलयुक्त **(भूत्वा)** होकर उन दुष्टों से **(परापत)** दूर रह और इन दुष्टों को भी दूरकर, ऐसी क्रिया कर के **(यजमानस्य)** धार्मिक यजमान के **(गृहान्)** घर वा देश-देशान्तरों को **(गच्छ)** जा कि जिससे मार्ग में कुछ भी दुःख न हो॥३४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्य को योग्य है कि उत्तम-उत्तम विमान आदि यानों को रच, उन में बैठ, उनको यथायोग्य चला, श्येन पक्षी के समान द्वीप वा देश-देशान्तर को जा, धनों को प्राप्त करके वहाँ, से आ और दुष्ट प्राणियों से अलग रह कर सब काल में स्वयं सुखों का भोग करें और दूसरों को करावें॥३४॥

नमो मित्रस्येत्यस्य वत्स ऋषिः। सूर्य्यो देवता। निचृदार्षी गायत्री छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनरीश्वरसवितारौ कीदृशावित्युपदिश्यते॥

फिर ईश्वर और सूर्य्य कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

नमो॑ मि॒त्रस्य॒ वरु॑णस्य॒ चक्ष॑से म॒हो दे॒वाय॒ तदृ॒तꣳ स॑पर्यत।

दू॒रे॒दृशे॑ दे॒वजा॑ताय के॒तवे॑ दि॒वस्पु॒त्राय॒ सूर्या॑य शꣳसत॥३५॥

नम॑ः। मि॒त्रस्य॑। वरु॑णस्य। चक्ष॑से। म॒हः। दे॒वाय॑। तत्। ऋ॒तम्। स॒प॒र्य्य॒त॒। दू॒रे॒दृ॒श इति॑ दू॒रेऽदृशे॑। दे॒वजा॑ता॒येति॑ दे॒वऽजा॑ताय। के॒तवे॑। दि॒वः। पु॒त्राय॑। सूर्य्या॑य। श॒ꣳस॒त॒॥३५॥

पदार्थः-**(नमः)** सत्करणमन्नं वा। **नम इत्यन्ननामसु पठितम्।** (निघं०२.७) **(मित्रस्य)** सर्वजगत्सुहृदः प्रकाशस्य वा **(वरुणस्य)** श्रेष्ठस्य **(चक्षसे)** सर्वद्रष्टुर्दर्शयितुर्वा। अत्र **षष्ठ्यर्थे चतुर्थी०**। [अष्टा०भा०वा०२.३.६२] इति वार्त्तिकेन चतुर्थी। **चष्ट इति पश्यति कर्मसु पठितम्।** (निघं०३.११) **(महः)** महसे, अत्र **सुपां सुलुग्०।** [अष्टा०७.१.३९] इति ङेर्लुक् **(देवाय)** दिव्यगुणाय **(तत्)** चेतनस्वरूपं प्रकाशस्वरूपं वा **(ऋतम्)** सत्यम् **(सपर्य्यत)** परिचरत। **सपर्य्यतीति परिचरणकर्मसु पठितम्।** (निघं०३.५) **(दूरेदृशे)** यो दूरे स्थितान् दर्शयति तस्मै **(देवजाताय)** देवैर्दिव्यैर्गुणैः प्रसिद्धाय **(केतवे)** विज्ञानस्वरूपाय ज्ञापकाय वा **(दिवः)** प्रकाशस्वरूपस्य **(पुत्राय)** पवित्रकारकायाग्निपुत्राय वा **(सूर्य्याय)** चराचरात्मने परमैश्वर्य्यहेतवे वा **(शꣳसत)** प्रशंसत। अयं मन्त्रः (शत०(३.३.४.२४) व्याख्यातः॥३५॥

अन्वयः-हे मनुष्या! यथा वयं यन्मित्रस्य वरुणस्य दिव ऋतं सत्यं स्वरूपमस्ति, तद्यूयमपि सपर्य्यत। यस्य महो महसे दूरेदृशे चक्षसे देवजाताय केतवे देवाय पुत्राय पवित्रकर्त्रे सूर्य्याय परमात्मने वयं नमस्कुर्म्मस्तस्मै

यूयमपि कुरुतेत्येकः॥१॥३५॥

हे मनुष्या यथा वयं यन्मित्रस्य वरुणस्य दिवः प्रकाशस्वरूपस्य सूर्य्यलोकस्यर्तं यथार्थं स्वरूपं सेवेमहि, तद्यूयमपि विद्यया सपर्य्यत। यथा वयं यस्मै चक्षसे देवजाताय केतवे दिवोऽग्नेः पुत्राय दूरेदृशे महोदेवाय सूर्य्याय लोकाय प्राप्त्यर्थं प्रवर्त्तेमहि, तथा यूयमपि प्रवर्त्तध्वम्॥२॥३५॥

भावार्थः-अत्र श्लेषवाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। यस्य कृपया प्रकाशेन वा चोरदस्य्वादयो निवर्त्तन्ते, यतः परमेश्वरेण समः समर्थः सूर्य्येण समो लोकश्च न विद्यते, तस्मात् सर्वैर्मनुष्यैः स एव प्रशंसनीय इति वेद्यम्॥३५॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे हम लोग जो **(मित्रस्य)** सब के सुहृत् **(वरुणस्य)** श्रेष्ठ **(दिवः)** प्रकाशस्वरूप परमेश्वर का **(ऋतम्)** सत्य स्वरूप है, **(तत्)** उस चेतन की सेवा करते हैं, वैसे तुम भी उस का सेवन सदा **(सपर्य्यत)** किया करो और जैसे उस **(महः)** बड़े **(दूरेदृशे)** दूरस्थित पदार्थों को दिखाने **(चक्षसे)** सब को देखने **(देवजाताय)** दिव्य गुणों से प्रसिद्ध **(केतवे)** विज्ञानस्वरूप **(देवाय)** दिव्यगुणयुक्त **(पुत्राय)** पवित्र करने वाले **(सूर्य्याय)** चराचरात्मा परमेश्वर को **(नमः)** नमस्कार करते हैं, वैसे तुम भी **(प्रशंसत)** उसकी स्तुति किया करो॥१॥३५॥

हे मनुष्यो! जो **(मित्रस्य)** प्रकाश **(वरुणस्य)** श्रेष्ठ **(दिवः)** प्रकाशस्वरूप सूर्य्यलोक का **(ऋतम्)** यथार्थ स्वरूप है, **(तत्)** उस प्रकाशस्वरूप को तुम भी विद्या से **(सपर्य्यत)** सेवन किया करो, जैसे हम लोग जिस **(चक्षसे)** सब के दिखाने **(देवजाताय)** दिव्य गुणों से प्रसिद्ध **(केतवे)** ज्ञान कराने, अग्नि के **(पुत्राय)** पुत्र **(दूरेदृशे)** दूर स्थित हुए पदार्थों को दिखाने **(महः)** बड़े **(देवाय)** दिव्यगुण वाले **(सूर्य्याय)** सूर्य्य के लिये प्रवृत्त होओ॥२॥३५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। सब मनुष्यों को जिसकी कृपा वा प्रकाश से चोर डाकू आदि अपने कार्य्यों से निवृत्त हो जाते हैं, उसी की प्रशंसा और गुणों की प्रसिद्धि करनी और परमेश्वर के समान समर्थ वा सूर्य्य के समान कोई लोक नहीं है, ऐसा जानना चाहिये॥३५॥

वरुणस्येत्यस्य वत्स ऋषिः। सूर्य्यो देवता। विराड्ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनस्तौ कीदृशावित्युपदिश्यते॥

फिर वे कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

वरुणस्योत्तम्भनमसि वरुणस्य स्कम्भसर्जनी स्थो वरुणस्यऽऋतसदन्यसि वरुणस्यऽऋतसदनमसि वरुणस्यऽऋतसदनमासीद॥३६॥

वरुणस्य। उत्तम्भनम्। असि। वरुणस्य। स्कम्भसर्जनीऽइति स्कम्भऽसर्जनी। स्थः। वरुणस्य। ऋतसदनीत्यृतऽसदनी। असि। वरुणस्य। ऋतसदनमित्यृतऽसदनम्। असि। वरुणस्य। ऋतसदनमित्यृतऽसदनम्। आ। सीद॥३६॥

पदार्थः-**(वरुणस्य)** वरितुं प्राप्तुं योग्यस्य श्रेष्ठस्य जगतः। **वरुण इति पदनामसु पठितम्।** (निघं०५.४) **(उत्तम्भनम्)** उत्कृष्टं प्रतिबन्धनम्। अत्र **उदःस्थास्तम्भोः पूर्वस्य। (अष्टा०८.४.६१)** अनेन सस्य पूर्वसवर्णादेशः

(असि) अस्ति वा **(वरुणस्य)** वायोः। अनेन ज्ञानप्राप्तिगमधातोरर्थस्य ग्रहणम् **(स्कम्भसर्जनी)** या क्रिया स्कम्भानामाधारकाणां सर्जन्युत्पादिका सा **(स्थः)** स्तः **(वरुणस्य)** सूर्य्यस्य **(ऋतसदनी)** या क्रिया ऋतानां जलानां सदनी गमनागमनकारिणी **(असि)** अस्ति वा **(वरुणस्य)** वरपदार्थसमूहस्य **(ऋतसदनम्)** ऋतानां यथार्थानां पदार्थानां सदनं स्थानम् **(असि)** अस्ति वा **(वरुणस्य)** उत्कृष्टगुणसमूहस्य **(ऋतसदनम्)** यदृतानां सत्यानां बोधानां स्थानं तत् **(आ)** समन्तात् **(सीद)** प्रापयसि प्रापयति वा। अयं मन्त्रः (शत०(३.३.४.२५-२९) व्याख्यातः॥३६॥

अन्वयः-हे जगदीश्वर! यतस्त्वं वरुणस्योत्तम्भनमसि या वरुणस्य स्कम्भसर्जनी या च वरुणस्यर्त्तसदनी क्रिये स्थः स्तस्ते धारितवानसि। यद्वरुणस्यर्त्तसदनमस्ति तत्कृपया वरुणस्यर्त्तसदनमासीद समन्तात् प्रापयत्यतस्त्वां वयमाश्रयाम इत्येकः॥१॥३६॥

यो वरुणस्योत्तम्भनं धरति, या वरुणस्य स्कम्भसर्जनी, या च वरुणस्यर्त्तसदनी क्रिये स्थः स्तो यस्तयोर्धारकोऽस्ति यद्वरुणस्यर्त्तसदनमस्ति, तद्यो वरुणस्यर्त्तसदनमासीद समन्तात् प्रापयति स कुतो नोपयोक्तव्यः॥२॥३६॥

भावार्थः-अत्र श्लेषालङ्कारः। नहि कश्चित् परमेश्वरेण विना सर्वं जगद्रचितुं धर्त्तुं पालयितुं विज्ञातुं वा शक्नोति। न किल कश्चित् सूर्य्येण विना सर्वं भूम्यादि जगत् प्रकाशितुं धर्त्तुं वा शक्नोति, तस्मात् सर्वैर्मनुष्यैरीश्वरस्योपासनं सूर्य्यस्योपयोगो यथावत् कार्य्य इति॥३६॥

पदार्थः-हे जगदीश्वर! जिससे आप **(वरुणस्य)** उत्तम जगत् के **(उत्तम्भनम्)** अच्छे प्रकार प्रतिबन्ध करने वाले **(असि)** हैं। जो **(वरुणस्य)** वायु के **(स्कम्भसर्जनी)** आधाररूपी पदार्थों के उत्पन्न करने **(वरुणस्य)** सूर्य्य के **(ऋतसदनी)** जलों का गननागमन करने वाली क्रिया **(स्थः)** हैं, उनको धारण किये हुए हैं। **(वरुणस्य)** उत्तम **(ऋतसदनम्)** पदार्थों का स्थान **(असि)** हैं। **(वरुणस्य)** उत्तम **(ऋतसदनम्)** सत्यरूपी बोधों के स्थान को **(आसीद)** अच्छे प्रकार प्राप्त कराते हैं। इससे आपका आश्रय हम लोग करते हैं॥१॥३६॥

जो **(वरुणस्य)** जगत् का **(उत्तम्भनम्)** धारण करने वाला **(असि)** है। जो **(वरुणस्य)** वायु के **(स्कम्भसर्जनी)** आधारों को उत्पन्न करने वा जो **(वरुणस्य)** सूर्य्य के **(ऋतसदनी)** जलों का गमनागमन कराने वाली क्रिया **(स्थः)** हैं, उनका धारण करने तथा जो **(वरुणस्य)** उत्तम **(ऋतसदनम्)** सत्य पदार्थों का स्थानरूप **(असि)** है, वह **(वरुणस्य)** उत्तम **(ऋतसदनम्)** पदार्थों के स्थान को **(आसीद)** अच्छे प्रकार प्राप्त और धारण करता है, उसका उपयोग क्यों न करना चाहिये॥२॥३६॥

भावार्थः-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। कोई परमेश्वर के विना सब जगत् के रचने वा धारण, पालन और जानने को समर्थ नहीं हो सकता और कोई सूर्य्य के विना भूमि आदि जगत् के प्रकाश और धारण करने को भी समर्थ नहीं हो सकता। इससे सब मनुष्यों को ईश्वर की उपासना और सूर्य्य का उपयोग करना चाहिये॥३६॥

या ते धामानीत्यस्य गोतम ऋषिः। यज्ञो देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनरेतौ कीदृशावित्युपदिश्यते॥

फिर ये कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

या ते धामानि हविषा यजन्ति ता ते विश्वा परिभूरस्तु यज्ञम्।

गयस्फानः प्रतरणः सुवीरोऽवीरहा प्रचरा सोम दुर्यान्॥३७॥

या। ते। धामानि। हविषा। यजन्ति। ता। ते। विश्वा। परिभूरिति परिऽभूः। अस्तु। यज्ञम्। गयस्फान इति गयऽस्फानः। प्रतरण इति प्रऽतरणः। सुवीर इति सुऽवीरः। अवीरहेत्यवीरऽहा। प्र। चर। सोम। दुर्य्यान्॥३७॥

पदार्थः-(**या**) यानि। अत्र सर्वत्र **शेश्छन्दसि०।** [अष्टा०६.१.७०] इति शेर्लोपः (**ते**) तव तस्य वा (**धामानि**) अधिकरणानि द्रव्याणि (**हविषा**) ग्राह्येण दातव्येन पदार्थेन साधकेन वा (**यजन्ति**) पूजयन्ति सङ्गमयन्ति वा (**ता**) तानि (**ते**) तव तस्य वा (**विश्वा**) सर्वाणि (**परिभूः**) परितः सर्वतो भवतीति (**अस्तु**) भवतु (**यज्ञम्**) यष्टुमर्हम् (**गयस्फानः**) गयानामपत्यधनगृहाणां स्फानो वर्धयिता। **गय इत्यपत्यनामसु पठितम्।** (निघं०२.२) **धननामसु।** (निघं०२.१०) **गृहनामसु च।** (निघं०३.४) (**प्रतरणः**) प्रतरति दुःखानि येन सः (**सुवीरः**) शोभना वीरा यस्मिन् सः (**अवीरहा**) अवीरान् कातरान् मनुष्यान् हन्ति येन सः। अत्र **कृतो बहुलम्।** [अष्टा०भा०वा० ३.३.११३] इति करणे क्विप् (**प्रचर**) विजानीह्यनुतिष्ठ (**सोम**) सोमविद्यासम्पादक विद्वन् (**दुर्य्यान्**) गृहाणि। **दुर्य्या इति गृहनामसु पठितम्।** (निघं०२.४)। अयं मन्त्रः (शत०(३.३.४.३०) व्याख्यातः॥३७॥

अन्वयः-हे जगदीश्वर! यथा विद्वांसो यानि ते तव धामानि हविषा यजन्ति, तथा ता तानि विश्वा सर्वाणि वयमपि यजेमैतेषां यथा यस्ते तव गयस्फानः प्रतरणः सुवीरोऽवीरहा परिभूर्यज्ञःप्रदोऽस्ति, तथा स भवत्कृपयाऽस्मभ्यमपि सुखकार्य्यस्तु। हे सोम विद्वन्! यथा वयमेतं यज्ञमनुष्ठाय गृहेषु प्रचरेम विजानीयामानुतिष्ठेम तथा त्वमप्येतं दुर्य्यान् गृहाणि प्रचर, विजानीह्यनुतिष्ठ॥३७॥

भावार्थः-अत्र श्लेषवाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। यथा विद्वांस ईश्वरे प्रीतिं संसारे यज्ञानुष्ठानं कुर्वन्ति, तथैव सर्वैर्मनुष्यैरनुष्ठेयम्॥३७॥

अस्मिन्नध्याये शिल्पविद्या, वृष्टिपवित्रतासम्पादनम्, विदुषां सङ्गः, यज्ञानुष्ठानम्, उत्साहादिप्रापणम्, युद्धकरणम्, शिल्पविद्यास्तुतिः, यज्ञगुणवर्णनम्, सत्यव्रतधारणम्, जलाग्न्योर्गुणवर्णनम्, पुनर्जन्मकथनम्, ईश्वरप्रार्थनम्, यज्ञानुष्ठानम्, मातापित्रादेः पुत्रादिनाऽनुकरणम्, यज्ञव्याख्या, दिव्यधीप्रापणम्, परमेश्वरार्चनम्, सूर्य्यगुणवर्णनम्, पदार्थक्रयविक्रयोपदेशः, मित्रत्वसम्पादनम्, धर्ममार्गे प्रचारकरणम्, परमेश्वरसूर्य्यगुणप्रकाशनम्, चोरादिनिवारणम्, ईश्वरसूर्य्यादिगुणवर्णनम्, यज्ञफलं चेत्युक्तमत एतदुक्तार्थानां तृतीयाध्यायार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेद्यम्। अयमप्यध्याय ऊवटमहीधरादिभिरन्यथैव) व्याख्यातः॥

पदार्थः-हे जगदीश्वर जैसे विद्वान् लोग (**या**) जिन (**ते**) आप के (**धामानि**) स्थानों को (**हविषा**) देने-लेने योग्य द्रव्यों से (**यजन्ति**) सत्कारपूर्वक ग्रहण करते हैं, वैसे हम लोग भी (**ता**) उन (**विश्वा**) सभों को ग्रहण करें, जैसे (**ते**) आप का वह यज्ञ विद्वानों को (**गयस्फानः**) अपत्य, धन और घरों के बढ़ाने (**प्रतरणः**) दुःखों से पार करने (**सुवीरः**) उत्तम वीरों का योग कराने (**अवीरहा**) कायर दरिद्रतायुक्त अवीर अर्थात् पुरुषार्थरहित मनुष्य और शत्रुओं को मारने तथा (**परिभूः**) सब प्रकार से सुख कराने वाला है, वैसे वह आप की कृपा से हम लोगों के लिये (**अस्तु**) हो वा जिसको विद्वान् लोग (**यजन्ति**) यजन करते हैं, उस (**यज्ञम्**) यज्ञ को हम लोग भी करें। हे (**सोम**) सोमविद्या को सम्पादन करने वाले विद्वन्! जैसे हम लोग इस यज्ञ को करके घरों में आनन्द करें, जानें, इसमें कर्म करें, वैसे तू भी इस को करके (**दुर्य्यान्**) घरों में (**प्रचर**) सुख का प्रचार कर, जान और अनुष्ठान कर॥३७॥

भावार्थ:-इन मन्त्र मे श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विद्वान् लोग ईश्वर से प्रीति, संसार में यज्ञ के अनुष्ठान को करते हैं, वैसे ही सब मनुष्यों को करना उचित है॥३७॥

इस अध्याय में शिल्पविद्या, वृष्टि की पवित्रता का सम्पादन, विद्वानों का सङ्ग, यज्ञ का अनुष्ठान, उत्साह आदि की प्राप्ति, युद्ध का करना, शिल्पविद्या की स्तुति, यज्ञ के गुणों का वर्णन, सत्यव्रत का धारण, अग्नि-जल के गुणों का वर्णन, पुनर्जन्म का कथन, ईश्वर की प्रार्थना, यज्ञानुष्ठान, पुत्रादिकों द्वारा माता-पिता का अनुकरण, यज्ञ की व्याख्या, दिव्य बुद्धि की प्राप्ति, परमेश्वर का अर्चन, सूर्य्यगुण वर्णन, पदार्थों के क्रय-विक्रय का उपदेश, मित्रता करना, धर्ममार्ग में प्रचार करना, परमेश्वर वा सूर्य्य के गुणों का प्रकाश, चोर आदि का निवारण, ईश्वर-सूर्य्यादि गुणवर्णन और यज्ञ का फल कहा है। इससे इस अध्यायार्थ की तीसरे अध्याय के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये। ऊवट और महीधर आदि ने इस अध्याय का भी शब्दार्थ विरुद्ध ही वर्णन किया है॥

इति श्रीमत्परिव्राजकाचार्य्येण श्रीयुत्महाविदुषां विरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचिते संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां विभूषिते सुप्रमाणयुक्ते यजुर्वेदभाष्ये चतुर्थोऽध्याय: पूर्त्तिमगात्॥४॥

॥ओ३म्॥

अथ पञ्चमाध्यायारम्भः

अब चौथे अध्याय की पूर्ति के पश्चात् पांचवें अध्याय के भाष्य का आरंभ किया जाता है॥

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव। यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व॥ यजु०३०.३॥

अग्नेस्तनूरित्यस्य गोतम ऋषिः। विष्णुर्देवता। स्वराड् ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

अथ किमर्थो यज्ञोऽनुष्ठातव्य इत्युपदिश्यते॥

किस-किस प्रयोजन के लिये यज्ञ का अनुष्ठान करना योग्य है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अ॒ग्नेस्त॒नूर॑सि॒ विष्ण॑वे त्वा॒ सोम॑स्य त॒नूर॑सि॒ विष्ण॑वे॒ त्वा॒ऽति॑थेराति॒थ्यम॑सि॒ विष्ण॑वे त्वा श्ये॒नाय॑ त्वा सोम॒भृ॒ते॒ विष्ण॑वे त्वा॒ऽग्नये॑ त्वा रायस्पोष॒दे विष्ण॑वे त्वा॥१॥

अ॒ग्नेः। त॒नूः। अ॒सि॒। विष्ण॑वे॥ त्वा॒ सोम॑स्य। त॒नूः अ॒सि॒। विष्ण॑वे। त्वा॒। अति॑थेः। आ॒ति॒थ्यम्। अ॒सि॒। विष्ण॑वे। त्वा॒। श्ये॒नाय॑। त्वा॒। सो॒म॒भृ॒त॒ इति॑ सोम॒ऽभृते॑। विष्ण॑वे। त्वा॒। अ॒ग्नये॑। त्वा॒। रा॒य॒स्पो॒ष॒द इति॑ रायस्पोष॒ऽदे। विष्ण॑वे। त्वा॒॥१॥

पदार्थः-**(अग्नेः)** विद्युत्प्रसिद्धरूपस्य **(तनूः)** शरीरवत् **(असि)** भवति। अत्र सर्वत्र व्यत्ययः। **(विष्णवे)** यज्ञानुष्ठानाय **(त्वा)** तद्धविः। **(सोमस्य)** जगत्युत्पन्नस्य पदार्थसमूहस्य रसस्य वा **(तनूः)** विस्तारकम् **(असि)** भवति **(विष्णवे)** व्यापनशीलस्य वायोश्च शुद्धये **(त्वा)** तां सामग्रीम् **(अतिथेः)** अविद्यामानतिथेर्विदुषः **(आतिथ्यम्)** यदतिथेर्भावः सत्काराख्यं कर्म वा **(असि)** वर्त्तते तत् **(विष्णवे)** व्याप्तिशीलाय विज्ञानप्राप्तिलक्षणाय वा यज्ञाय **(त्वा)** तद्यज्ञसाधनम् **(श्येनाय)** श्येनवदितस्ततः सद्यो गमनाय **(त्वा)** तद्भवनं कर्म **(सोमभृते)** यः सोमान् बिभर्त्ति तस्मै यजमानाय **(विष्णवे)** सर्वविद्याकर्मव्यापनस्वभावाय **(त्वा)** तदुत्तमं सुखम् **(अग्नये)** पावकवर्द्धनाय **(त्वा)** तदिन्धनादिकं वस्तु **(रायस्पोषदे)** यो रायो विद्या धनसमूहस्य पोषं पुष्टिं ददाति तस्मै **(विष्णवे)** सर्वसद्गुणविद्याकर्मव्याप्तये **(त्वा)** तामेतां क्रियाम्। अयं मन्त्रः (शत०(३।४।१।९-१४) व्याख्यातः॥१॥

अन्वयः-हे मनुष्या! यथाऽहं यद्धविरग्नेस्तनूरसि भवति त्वा तद्विष्णवे स्वीकरोमि। या सोमस्य सामग्र्यसि भवति, त्वा तां विष्णव उपयुञ्जामि। यदतिथेरातिथ्यमसि वर्त्तते त्वा तद्विष्णवे परिगृह्णामि, यच्छ्येनवच्छीघ्रगमनाय प्रवर्त्तते त्वा तदग्न्यादिषु प्रक्षिपामि। यत्कर्म विष्णवे सोमभृते वर्त्तते त्वा तदाददे, यदग्नये वरीवृत्यते त्वा तत्स्वीकरोमि। यद् रायस्पोषदे विष्णवे समर्थकमस्ति त्वा तत् संगृह्णामि, तथैवैतत् सर्वं यूयमपि सेवध्वम्॥१॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैरेतत्फलप्राप्तये त्रिविधो यज्ञो नित्यमनुष्ठेय इति॥१॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम लोग जैसे मैं जो हवि **(अग्नेः)** बिजुली प्रसिद्ध रूप अग्नि के **(तनूः)** शरीर के समान **(असि)** है **(त्वा)** उसको **(विष्णवे)** यज्ञ की सिद्धि के लिये स्वीकार करता हूं जो **(सोमस्य)** जगत् में उत्पन्न

हुए पदार्थ-समूह की **(तनूः)** विस्तारपूर्वक सामग्री **(असि)** है **(त्वा)** उसको **(विष्णवे)** वायु की शुद्धि के लिये उपयोग करता हूं जो **(अतिथेः)** संन्यासी आदि का **(आतिथ्यम्)** अतिथिपन वा उनकी सेवारूप कर्म **(असि)** है **(त्वा)** उसको **(विष्णवे)** विज्ञान यज्ञ की प्राप्ति के लिये ग्रहण करता हूं, जो **(श्येनाय)** श्येनपक्षी के समान शीघ्र जाने के लिये **(असि)** है **(त्वा)** उस द्रव्य को अग्नि आदि में छोड़ता हूं, जो **(विष्णवे)** सब विद्या कर्मयुक्त **(सोमभृते)** सोमों को धारण करने वाले यजमान के लिय सुख **(असि)** है **(त्वा)** उसको ग्रहण करता हूं। जो **(अग्नये)** अग्नि बढ़ाने के लिये काष्ठ आदि हैं **(त्वा)** उसको स्वीकार करता हूं। जो **(रायस्पोषदे)** धन की पुष्टि देने वा **(विष्णवे)** उत्तम गुण, कर्म, विद्या की व्याप्ति के लिये समर्थ पदार्थ है **(त्वा)** उसको ग्रहण करता हूं, वैसे इन सब का सेवन तुम भी किया करो॥१॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को उचित है कि पूर्वोक्त फल की प्राप्ति के लिये तीन प्रकार के यज्ञ का अनुष्ठान नित्य करें॥१॥

अग्नेर्जनित्रमित्यस्य गोतम ऋषिः। विष्णुर्यज्ञो देवता। पूर्वस्यार्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः। गामत्रेत्युत्तरस्यार्ची त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनः स यज्ञः कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह यज्ञ कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अ॒ग्नेर्ज॒नित्र॑मसि॒ वृष॑णौ स्थऽउ॒र्वश्य॑स्या॒युर॑सि पुरू॒रवा॑ऽअसि। गा॒य॒त्रेण॑ त्वा॒ छन्द॑सा मन्थामि॒ त्रैष्टु॑भेन त्वा॒ छन्द॑सा मन्थामि॒ जाग॑तेन त्वा॒ छन्द॑सा मन्थामि॥२॥

अ॒ग्नेः। ज॒नित्र॑म्। अ॒सि॒। वृष॑णौ। स्थ॒ः। उ॒र्वशी॑। अ॒सि॒। आ॒युः। अ॒सि॒। पु॒रू॒रवा॑ः। अ॒सि॒। गा॒य॒त्रेण॑। त्वा॒। छन्द॑सा। म॒न्था॒मि॒। त्रैष्टु॑भेन। त्वा॒। छन्द॑सा। म॒न्था॒मि॒। जाग॑तेन। त्वा॒। छन्द॑सा। म॒न्था॒मि॒॥२॥

पदार्थः-**(अग्नेः)** आग्नेयास्त्रादेः सिद्धिकरस्य पावकस्य **(जनित्रम्)** जनकं हविः **(असि)** भवति। अत्र सर्वत्र व्यत्ययः। **(वृषणौ)** वर्षयितारौ **(स्थः)** भवतः **(उर्वशी)** ययोरूणि बहूनि सुखान्यश्नुवते सा यज्ञक्रिया। **उर्वशीति पदनामसु पठितम्।** (निघं०५।५) **उर्विति बहुनामसु पठितम्।** (निघं०३।१) तस्मिन्नुपपदे अशूङ् धातोः **सम्पदादिभ्यः क्विप्।** [अष्टा०वा०३.३.९४] ततः शार्ङ्रवाद्यन्तर्गन्तत्वान्ङीन्। **(असि)** भवति **(आयुः)** एति जीवनं येन तत् **(असि)** वर्त्तते **(पुरूरवाः)** पुरूणि बहूनि शास्त्राण्युपदिशति येनाध्ययनाध्यापनेन यज्ञेन सः। **पुरूरवा इति पदनामसु पठितम्।** (निघं०५।४) **पुरूरवाः।** (उणा०४।२३२) अयमनेन पुरूपपदाद् रुधातोरसिप्रत्ययान्तेन निपातितः। **(असि)** भवति **(गायत्रेण)** गायत्री प्रगाथोऽस्य तेन **(त्वा)** तमग्निम् **(छन्दसा)** चन्दन्त्यानन्दन्ति येन तेन **(मन्थामि)** विलोडनादिक्रियया निष्पादयामि **(त्रैष्टुभेन)** त्रिष्टुप् प्रगाथोऽस्य तेन **(त्वा)** तं सोमाद्योषधीसमूहम् **(छन्दसा)** सुखकारकेण **(मन्थामि)** **(जागतेन)** जगती प्रगाथोऽस्य तेन **(त्वा)** तं सामग्रीसमूहं शत्रुदुःखसमूहं वा **(छन्दसा)** सुखसम्पादकेन **(मन्थामि)** विलोड्य निवारयामि। अयं मन्त्रः (शत०(३।४।२०-२३) व्याख्यातः॥२॥

अन्वयः-हे मनुष्या! यथाऽहं यदग्नेर्जनित्रमसि भवति, यौ वृषणौ स्थो भवतो या उर्वश्यसि भवति, यः पुरूरवाः असि भवति, त्वा तं गायत्रेण छन्दसा मन्थामि, त्वा तं त्रैष्टुभेन छन्दसा मन्थामि, त्वा तं जागतेन छन्दसा मन्थामि तथैव यूयमप्येतत्सर्वमनुष्ठायैतानि निष्पादयत॥२॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। सर्वैर्मनुष्यैरेवं रीत्योक्तेन यज्ञेन परोपकारकरणं सम्पादनीयम्॥२॥

पदार्थः-हे मनुष्य लोगो! जैसे मैं जो **(अग्नेः)** आग्नेय अस्त्रादि की सिद्धि करने हारे अग्नि के **(जनित्रम्)** उत्पन्न करने वाला हवि **(असि)** है, **(वृषणौ)** जो वर्षा कराने वाले सूर्य्य और वायु **(स्थः)** हैं, जो **(उर्वशी)** बहुत सुखों के प्राप्त कराने वाली क्रिया **(असि)** है, जो **(आयुः)** जीवन **(असि)** है, जो **(पुरूरवाः)** बहुत शास्त्रों के उपदेश करने का निमित्त **(असि)** है, **(त्वा)** उस अग्नि **(गायत्रेण)** गायत्री **(छन्दसा)** आनन्दकारक स्वच्छन्द क्रिया से **(मन्थामि)** विलोडन करता हूं **(त्वा)** उस सोम आदि ओषधीसमूह **(त्रैष्टुभेन)** त्रिष्टुप् **(छन्दसा)** छन्द से **(मन्थामि)** विलोडन करता हूँ **(त्वा)** और उस शत्रु दुःखसमूह को **(जागतेन)** जगती **(छन्दसा)** छन्द से **(मन्थामि)** ताड़न करके निवारण करता हूं, वैसे ही तुम भी किया करो॥२॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। सब मनुष्यों को योग्य है कि इस प्रकार की रीति से प्रतिपादन वा सेवन किये हुए यज्ञ से दूसरे मनुष्यों के लिये परोपकार करें॥२॥

भवतं न इत्यस्य गोतम ऋषिः। यज्ञो देवता। आर्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

यजमानयज्ञसम्पादकौ कीदृशौ भवेतामित्युपदिश्यते॥

यजमान और यज्ञ की सिद्धि करने वाले विद्वान् कैसे होने चाहियें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

भवतं नः समनसौ सचेतसावरेपसौ।

मा यज्ञꣳ हिꣳसिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः॥३॥

भवतम्। नः। समनसाविति सऽमनसौ। सचेतसाविति सऽचेतसौ। अरेपसौ। मा। यज्ञम्। हिꣳसिष्टम्। मा। यज्ञपतिमिति यज्ञऽपतिम्। जातवेदसाविति जातऽवेदसौ। शिवौ। भवतम्। अद्य। नः॥३॥

पदार्थः-**(भवतम्)** स्यातम् **(नः)** अस्मभ्यम् **(समनसौ)** समानं मनो विज्ञानं ययोस्तौ **(सचेतसौ)** समानं चेतसं ज्ञानं संज्ञापनं विज्ञापनं ययोस्तौ **(अरेपसौ)** अविद्यमानं रेपो व्यक्तं प्राकृतं वचनं ययोरध्येत्रध्यापकयोस्तौ **(मा)** निषेधार्थे **(यज्ञम्)** अध्ययनाध्यापनाख्यं कर्म **(हिंसिष्टम्)** हिंस्याताम् **(मा)** निषेधार्थे **(यज्ञपतिम्)** एतद्यज्ञपालयितारम् **(जातवेदसौ)** जातं वेदो विद्या ययोस्तौ **(शिवौ)** मङ्गलकारिणौ **(भवतम्)** भवेतम् **(अद्य)** अस्मिन् दिने **(नः)** अस्मभ्यम्। अयं मन्त्रः (शत०(३।४।१।२४) व्याख्यातः॥३॥

अन्वयः-यावरेपसौ समनसौ सचेतसौ जातवेदसावध्येत्रध्यापकौ नोऽस्मभ्यमुपदेष्टारौ भवतं स्याताम्, तौ यज्ञं यज्ञपतिं च मा हिंसिष्टं मा हिंस्याताम्। एतावद्य नोऽस्मभ्यं शिवौ मङ्गलकारिणौ भवतं स्याताम्॥३॥

भावार्थः-मनुष्यैर्नैव कदाचित् विद्याप्रचारायाध्ययनमध्यापनं च त्यक्तव्यं मङ्गलाचरणं च, अस्य सर्वोत्कृष्टवात्॥३॥

पदार्थः-जो **(अरेपसौ)** प्राकृत मनुष्यों के भाषारूपी वचन से रहित **(समनसौ)** तुल्य विस्तारयुक्त **(सचेतसौ)** तुल्य ज्ञान-ज्ञापनयुक्त **(जातवेदसौ)** वेद और उपविद्याओं को सिद्ध किये हुए पढ़ने-पढ़ाने वाले विद्वान् **(नः)** हम लोगों के लिये उपदेश करने वाले **(भवतम्)** होवें। जो **(यज्ञम्)** पढ़ने-पढ़ाने रूप यज्ञ वा **(यज्ञपतिम्)** विद्याप्रद यज्ञ के पालन करने वाले यज्ञमान को **(मा मा हिंसिष्टम्)** न पीड़ित करें। वे **(अद्य)** आज **(नः)** हम लोगों

के लिये (**शिवौ**) मङ्गल करने वाले (**भवतम्**) होवें॥३॥

भावार्थः-मनुष्यों को उचित है कि विद्याप्रचार के लिये पढ़ना पढ़ाना वा मङ्गलाचरण को न छोड़ें, क्योंकि यही सर्वोत्तम कर्म है॥३॥

अग्नावग्निरित्यस्य गोतम ऋषिः। अग्निर्देवता। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अत्र महीधरेण विराडित्यशुद्धं व्याख्यातम्॥

विद्युद्विद्वदग्नी कीदृशावित्युपदिश्यते॥

विद्युत् और विद्वान् अग्नि कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अ॒ग्नाव॒ग्निश्च॑रति॒ प्रवि॑ष्ट॒ऽऋषी॑णां पु॒त्रोऽअ॑भिशस्ति॒पावा॑।

स न॑ः स्यो॒नः सु॒यजा॑ यजे॒ह दे॒वेभ्यो॑ ह॒व्यꣳ सद॒मप्र॑युच्छ॒न्त्स्वाहा॑॥४॥

अ॒ग्नौ। अ॒ग्निः। च॒र॒ति॒। प्रवि॑ष्ट॒ इति॒ प्र॒ऽवि॒ष्टः। ऋषी॑णाम्। पु॒त्रः। अ॒भि॒श॒स्ति॒पावेत्य॑भिशस्ति॒ऽपावा॑। सः। न॒ः। स्यो॒नः। सु॒यजेति॑ सु॒ऽयजा॑। य॒ज॒। इ॒ह। दे॒वेभ्य॑ः। ह॒व्यम्। सद॑म्। अप्र॑युच्छ॒न्नित्यप्र॑ऽयुच्छन्। स्वाहा॑॥४॥

पदार्थः-(**अग्नौ**) विद्युति (**अग्निः**) विद्वान् मनुष्यः (**चरति**) गच्छति (**प्रविष्टः**) प्रवेशं कुर्वाणः सन् (**ऋषीणाम्**) वेदार्थविदाम् (**पुत्रः**) सुशिक्षितोऽध्यापितः (**अभिशस्तिपावा**) योऽभिशस्तेराभिमुख्याद्धिंसनात् पाति रक्षति (**सः**) विद्वान् (**नः**) अस्मभ्यम् (**स्योनः**) सुखकारी (**सुयजा**) सुष्ठु यजन्ति यस्मिन् यज्ञे तेन (**यज**) सङ्गमयतु (**इह**) जगति (**देवेभ्यः**) विद्वद्भ्यो दिव्यगुणेभ्यो वा (**हव्यम्**) दातुं ग्रहीतुं योग्यं पदार्थम् (**सदम्**) सद्यते विज्ञायते प्राप्यते यस्तम् (**अप्रयुच्छम्**) अप्रविवासयन् (**स्वाहा**) सुहुतं हविरन्नम्। अयं मन्त्रः (शत०(३। ४। १। २५) व्याख्यातः॥४॥

अन्वयः-योऽभिशस्तपावाऽग्नौ प्रविष्टं ऋषीणां पुत्रः स्योनः सुयजा अग्निर्विद्वानप्रयुच्छंश्चरति योऽस्मभ्यमिह देवेभ्यो हव्यं सदं स्वाहा सुहुतं हविरन्नादिकं प्रयच्छति प्रापयति तं वयं सङ्गच्छेमहि॥४॥

भावार्थः-मनुष्यैरिह योऽग्निः किल कार्य्यकारणभेदेन द्विधास्ति, तत्र कार्य्यरूपेण सूर्य्यादावग्नौ कारणरूपा विद्युत् सर्वभूतद्रव्येषु प्रविष्टा सती वर्त्तते, तस्यां च विज्ञानेन प्रविश्यैते सम्यक् संप्रयोज्य कार्य्योपयोगः कर्त्तव्यः॥४॥

पदार्थः-जो (**अभिशस्तिपावा**) सब प्रकार हिंसा करने वालों से रहित (**अग्नौ**) विद्युत् अग्नि की विद्या में (**प्रविष्टः**) प्रवेश करने-कराने (**ऋषीणाम्**) वेदादि शास्त्रों के शब्द अर्थ और सम्बन्धों को यथावत् जनाने वालों का (**पुत्रः**) पढ़ा हुआ (**स्योनः**) सर्वथा सुखकारी (**सुयजा**) विद्याओं को अच्छी प्रकार प्रत्यक्ष संग कराने हारा (**अग्निः**) प्रकाशात्मा (**अप्रयुच्छन्**) प्रमाद रहित अध्यापक विद्वान् (**चरति**) जो (**नः**) हम लोगों के लिये (**इह**) इस संसार में (**देवेभ्यः**) विद्वान् वा दिव्य गुणों से (**हव्यम्**) लेने-देने योग्य पदार्थ वा (**सदम्**) ज्ञान और (**स्वाहा**) हवन करने योग्य उत्तम अन्नादि को प्राप्त करता है (**सः**) सो आप (**यज**) सब विद्याओं को प्राप्त कराइये॥४॥

भावार्थः-मनुष्यों को योग्य है कि जो अग्नि कार्य्य-कारण के भेद से दो प्रकार का निश्चित अर्थात् जो कार्य्यरूप से सूर्यादि और कारण रूप से अग्नि सब मूर्त्तिमान् द्रव्यों में प्रवेश कर रहा है, उसका इस संसार में विद्या से संप्रयोग कर कार्यों में उपयोग करना चाहिये॥४॥

आपतये त्वेत्यस्य गोतम ऋषि:। विद्युद्देवता। पूर्वस्यार्ष्युष्णिक् छन्द:। ऋषभ: स्वर:।
अनाधृष्टमित्यग्रस्य भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्द:। पञ्चम: स्वर:॥

मनुष्यै: किमर्थ: परमात्मा प्रार्थनीय: सा विद्युच्च स्वीकार्येत्युपदिश्यते॥

मनुष्यों को किस-किस प्रयोजन के लिये परमात्मा की प्रार्थना, बिजुली का स्वीकार करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

आप॑तये त्वा॒ परि॑पतये गृह्णामि॒ तनू॒नप्त्रे॑ शाक्व॒राय॒ शक्व॑न॒ऽओजि॑ष्ठाय। अना॑धृष्टमस्य-नाधृ॒ष्यं दे॒वाना॒मोजोऽन॑भिशस्त्यभिशस्ति॒पाऽअ॑नभिशस्ते॒न्यमञ्ज॑सा स॒त्यमु॑पगेषꣳ स्वि॒ते मा॑ धा:॥५॥

आप॑तय॒ इत्याऽप॑तये। त्वा॒। परि॑पतय॒ इति॒ परि॑ऽपतये। गृ॒ह्णा॒मि॒। त॒नू॒नप्त्र॒ इति॒ त॒नू॒ऽनप्त्रे॑। शा॒क्व॒राय॑। शक्व॑ने। ओजि॑ष्ठाय। अना॑धृष्टम्। अ॒सि॒। अ॒ना॒धृ॒ष्यम्। दे॒वाना॑म्। ओज॑:। अन॑भिश॒स्तीत्यन॑भिऽशस्ति। अ॒भि॒श॒स्ति॒पा इत्य॑भिशस्ति॒ऽपा:। अ॒न॒भि॒श॒स्ते॒न्यमित्य॑नभिऽशस्ते॒न्यम्। अञ्ज॑सा। स॒त्यम्। उप॑। गे॒ष॒म्। स्वि॒त इति॑ सुऽइते। मा॒। धा॒:॥५॥

पदार्थ:-(**आपतये**) समन्तात् पति: पालको यस्मिंतस्मै (**त्वा**) परमेश्वरं विद्युतं वा (**परिपतये**) परित: सर्वत: पतयो यस्मिंस्तस्मै (**गृह्णामि**) स्वीकरोमि (**तनूनप्त्रे**) तनू देहान् नयन्ति प्राप्नुवन्ति येन तस्मै (**शाक्वराय**) शक्तिजननाय (**शक्वने**) शक्तिमद्वीरसैन्यप्राप्तये (**ओजिष्ठाय**) अतिशयेनौजो विद्यते यस्मिन् विद्याव्यवहारे तस्मै (**अनाधृष्टम्**) यन्न धृष्यते तेजस्तम् (**असि**) अस्ति (**अनाधृष्यम्**) न केनाऽपि धर्षितुं योग्यम् (**देवानाम्**) विदुषां पृथिव्यादीनां मध्ये वा (**ओज:**) पराक्रमकारि (**अनभिशस्ति**) यन्नाभिशस्यतेऽभिहिंस्यते तत् (**अभिशस्तिपा:**) योऽभिशस्तेर्हिंसनात् पाति रक्षति (**अनभिशस्तेन्यम्**) यदनभिशस्तेऽविद्यमानहिंसने नयति तत् (**अञ्जसा**) व्यक्तेन शत्रूणां म्लेच्छनेन कान्त्या ज्ञापनेन वा (**सत्यम्**) यथार्थम् (**उप**) सामीप्ये (**गेषम्**) प्राप्नुयाम् (**स्विते**) सुष्ठु ईयते प्राप्यते येन व्यवहारेण तस्मिन्। इदं पदमवैयाकरणेन महीधरेण लेट् लकारस्य रूपमित्यशुद्धं व्याख्यातम्। (**मा**) माम् (**धा:**) धेहि दधाति वा। अत्र लडर्थे लुङ्डभावश्च। अयं मन्त्र: (शत०(३।४।२।१०-१४) व्याख्यात:॥५॥

अन्वय:-अहं हे जगदीश्वर! यस्तत्वमभिशस्तिपा असि तस्मात् त्वा त्वामापतये परिपतये शाक्वराय शक्वन ओजिष्ठाय तनुनप्त्रे गृह्णामि, त्वं कृपया मा मां यद् देवानां विदुषां वाऽनाधृष्टमनाधृष्यमनभिशस्त्यनभिशस्तेन्यमोज: सत्यमस्ति तत् परिग्राहय स्विते धा यतोऽञ्जसां सत्यमुपगेषं प्राप्नुयामित्येक:॥५॥

अहं यदनाधृष्टमनाधृष्यमनभिशस्त्यनभिशस्तेन्यं देवानां सत्यमोजो वैद्युतं तेजोरूपाऽभिशस्तिपा विद्युद् या मा मां स्विते धा दधाति, त्वा यामोजिष्ठायापतये परिपतये तनूनप्त्रे शाक्वराय शक्वने गृह्णामि यतस्तत्सत्यरूपं कारणमुपगेषं विजानीयामिति द्वितीय:॥५॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषालङ्कार:। न हि मनुष्याणां परमात्मविज्ञानेन विना सत्यं सुखं न विद्युदादिविद्याक्रियाकौशलैर्विना सर्वं सांसारिक सुखं च भवितुमर्हति, तस्मादेतत् सर्वं प्रयत्नेन कर्त्तव्यमिति॥५॥

पदार्थ:-मैं हे परमात्मन्! जिस से आप (**अभिशस्तिपा:**) हिंसारूप कर्मों से अलग रहने और रखने वाले हैं, इससे (**त्वा**) आपको (**आपतये**) सब प्रकार से स्वामी होने (**परिपतये**) सब ओर से रक्षा (**शाक्वराय**) सब

सामर्थ्य की प्राप्ति **(शक्वने)** शूरवीर-युक्त सेना **(ओजिष्ठाय)** जिसमें सर्वोत्कृष्ट पराक्रम होता है, उस विद्या के होने और **(तनूनप्त्रे)** जिस से उत्तम शरीर होता है, उसके लिये **(गृह्णामि)** ग्रहण करता हूं। आप अपनी कृपा से उस **(देवानाम्)** विद्वानों का **(अनाधृष्टम्)** जिस का आपमान कोई नहीं कर सकता **(अनाधृष्यम्)** किसी के अपमान करने योग्य नहीं है, **(अनभिशस्ति)** किसी के हिंसा करने योग्य नहीं है **(अनभिशस्तेन्यम्)** अहिंसारूप धर्म की प्राप्ति कराने हारा **(सत्यम्)** अविनाशी **(ओजः)** तेज है, उसका ग्रहण कराके **(स्विते)** अच्छे प्रकार जिस व्यवहार में सब सुख प्राप्त होते हैं, उस में **(मा)** मुझको **(धाः)** धारण करें कि जिस से **(सत्यम्)** सत्य व्यवहार को **(उपगेषम्)** जानकर करूं॥५॥

मैं जो **(अनाधृष्टम्)** न हटाने **(अनाधृष्यम्)** न किसी से नष्ट करने **(अनभिशस्ति)** न हिंसा करने **(अनभिशस्तेन्यम्)** और हिंसारहित धर्म प्राप्त कराने योग्य **(देवानाम्)** विद्वान् वा पृथिवी आदिकों के मध्य में **(सत्यम्)** कारणरूप नित्य **(ओजः)** पराक्रम स्वरूप वाली **(अभिशस्तिपाः)** हिंसा से रक्षा का निमित्त रूप बिजुली **(असि)** है, जो **(मा)** मुझे **(स्विते)** उत्तम प्राप्त होने योग्य व्यवहार में **(धाः)** धारण करती है **(अञ्जसा)** सहजता से **(ओजिष्ठाय)** अत्यन्त तेजस्वी **(आपतये)** अच्छे प्रकार पालन करने योग्य व्यवहार **(परिपतये)** जिस में सब प्रकार पालन करने वाले होते हैं **(तनूनप्त्रे)** जिस से उत्तम शरीरों को प्राप्त होते हैं **(शाक्वराय)** शक्ति उत्पन्न करने और **(शक्वने)** शक्ति वाली वीरसेना की प्राप्ति के लिये है **(त्वा)** उसको **(गृह्णामि)** ग्रहण करता हूं कि जिससे उन सत्य कारणरूप पदार्थों को **(उपगेषम्)** जान सकूं॥५॥

भावार्थः-मनुष्यों को परमेश्वर के विज्ञान के विना सत्य सुख और बिजुली आदि विद्या और क्रियाकुशलता के विना संसार के सब सुख नहीं हो सकते, इसलिये यह कार्य्य पुरुषार्थ से सिद्ध करना चाहिये॥५॥

अग्ने व्रतपा इत्यस्य गोतम ऋषिः। अग्निर्देवता। विराड् ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्ते कीदृशावित्युपदिश्यते॥

फिर वह परमात्मा और बिजुली कैसी है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अग्ने॑ व्रतपा॒स्त्वे व्र॑तपा॒ या तव॑ त॒नूरि॒यꣳ सा मयि॒ यो मम॑ त॒नूरे॒षा सा त्वयि॑।
स॒ह नौ॑ व्रतपते व्र॒तान्यनु॑ मे दी॒क्षां दी॒क्षाप॑ति॒र्मन्य॑ता॒मनु॒ तप॒स्तप॑स्पतिः॥६॥

अग्ने॑। व्र॒त॒पा॒ इति॑ व्रत॒ऽपाः। त्वेऽइति॑ त्वे। व्र॒त॒पा॒ इति॑ व्रत॒ऽपाः। या। तव॑। त॒नूः। इ॒यम्। सा। मयि॑। योऽइति॒ यो। मम॑। त॒नूः। ए॒षा। त्वयि॑। स॒ह। नौ॒। व्र॒त॒प॒त॒ इति॑ व्रत॒ऽपते। व्र॒तानि॑। अनु॑। मे॒। दी॒क्षाम्। दी॒क्षाप॑ति॒रिति॒ दी॒क्षा॒ऽप॑ति॒ः। मन्य॑ताम्। अनु॑। तप॑ः। तप॑स्पति॒रिति॒ तप॑ःऽपतिः॥६॥

पदार्थः-**(अग्ने)** विज्ञानस्वरूप परब्रह्मन्! विद्युद्वा **(व्रतपाः)** व्रतानि सत्यभाषणादीनि पाति यस्माद् यया वा **(त्वे)** त्वयि, तस्यां वा **(व्रतपाः)** व्रतानि सुशीलादीनि पाति येन यया वा **(या)** वक्ष्यमाणा **(तव)** भवतस्तस्या वा **(तनूः)** विस्तृता व्याप्तिः **(इयम्)** प्रत्यक्षा **(सा)** प्रतिपादितपूर्वा **(मयि)** मम मध्ये **(यो)** या। अत्र महीधरेण या इत्यशुद्धं व्याख्यातम्। **(मम)** **(तनूः)** विस्तृतं शरीरम् **(एषा)** प्रत्यक्षा **(सा)** उक्तपूर्वा **(त्वयि)** जगदीश्वरे तस्यां वा **(सह)** परस्परम् **(नौ)** आवामावयोर्वा **(व्रतपते)** व्रतानां वेदादिविद्यानां पालयितः पालननिमित्ता वा **(व्रतानि)** ब्रह्मचर्य्यादीनि **(अनु)** पश्चादर्थे **(मे)** मम **(दीक्षाम्)** व्रतादेशम् **(दीक्षापतिः)** व्रतादेशानामुपदेशपालकः, रक्षणनिमित्ता

वा **(मन्यताम्)** स्वीकरोतु, स्वीकारयति वा **(अनु)** आनुकूल्ये **(तपः)** जितेन्द्रियत्वादिपुरःसरं धर्मानुष्ठानम् **(तपस्पतिः)** तपसः पालयिता। अयं मन्त्रः (शत०(३।४।३।६) व्याख्यातः॥६॥

अन्वयः-हे **(अग्ने)** परमात्मन्! **(व्रतपते)** सत्यधर्माचरणादिनियमपालनकारयितर्या विद्युन्निमित्तिं वा यो भवान् सा वाऽस्ति, त्वे त्वयि तस्यां वाऽहं व्रतपा अस्मि। येयं तव तस्या वा तनूरस्ति सा मयि वर्त्तते, यो यैषा मम तनूरस्ति सा त्वयि तस्यां वा वर्त्तते, यानि तवास्या वा व्रतानि तानि मयि सन्तु, यानि च ममोत्तमानि व्रतानि सन्ति तानि त्वयि तस्यां वा वर्त्तन्ताम्। यो भवानियं वा तपस्पतिरस्ति स सा वा मे मह्यं तपोऽनुमन्यतामनु ज्ञापयतु ज्ञापयति वा, यो भवानियं वा दीक्षापतिः स सा मे मह्यं दीक्षामनुमन्यतामनुज्ञापयत्वनुज्ञापयति, वैवं हे अध्यापक! त्वमहं चैतौ विदित्वा परस्परं धार्मिकौ विद्वांसौ भवेव यतो नावावयोर्विद्यावृद्धिः सततं भवेत्॥६॥

भावार्थः-अत्र श्लेषालङ्कारः। मनुष्यैः परस्परं प्रेम्णोपकारबुद्ध्या परमेश्वरे विद्युति वा स्वस्यान्येषां च पुरुषार्थेन, व्याप्यव्यापकसम्बन्धविद्यां ज्ञात्वा, धर्मानुष्ठाने सततं प्रवर्त्तितव्यम्॥६॥

पदार्थः-जिसलिये हे **(अग्ने)** **(व्रतपते)** जगदीश्वर! आप वा बिजुली सत्यधर्मादि नियमों के **(व्रतपाः)** पालन करने वाले हैं, इसलिये **(त्वे)** उस आप वा बिजुली में मैं **(व्रतपाः)** पूर्वोक्त व्रतों के पालन करने वाली क्रिया वाला होता हूं **(या)** जो **(इयम्)** यह **(तव)** आप और उसकी **(तनूः)** विस्तृत व्याप्ति है **(सा)** वह **(मयि)** मुझमें **(यो)** जो **(एषा)** यह **(मम)** मेरा **(तनूः)** शरीर है **(सा)** सो **(त्वयि)** आप वा उसमें है **(व्रतानि)** जो ब्रह्मचर्य्यादि व्रत हैं, वे मुझ में हों और जो **(मे)** मुझ में हैं, वे **(त्वयि)** तुम्हारे में हैं, जो आप वा वह **(तपस्पतिः)** जितेन्द्रियत्वादिपूर्वक धर्मानुष्ठान के पालन निमित्त हैं, सो **(मे)** मेरे लिये **(तपः)** पूर्वोक्त तप को **(अनुमन्यताम्)** विज्ञापित कीजिये वा करती है और जो आप वा वह **(दीक्षापतिः)** व्रतोपदेशों के रक्षा करने वाले हैं, सो **(मे)** मेरे लिये **(दीक्षाम्)** व्रतोपदेश को **(अनुमन्यताम्)** आज्ञा कीजिये वा करती हैं, इसलिये भी **(नौ)** मैं और आप पढ़ने-पढ़ाने हारे दोनों प्रीति के साथ वर्त्त कर विद्वान् धार्मिक हों कि जिससे दोनों की विद्यावृद्धि सदा होवे॥६॥

भावार्थः-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को परस्पर प्रेम वा उपकार बुद्धि से परमात्मा वा बिजुली आदि का विज्ञान कर वा कराके धर्मानुष्ठान से पुरुषार्थ में निरन्तर प्रवृत्त होना चाहिये॥६॥

अꣳशुरित्यस्य गोतम ऋषिः। सोमो देवता। आद्यस्यार्षी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः।
आप्यायेत्यन्तस्यार्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्ते कीदृशौ विद्वांश्चेत्युपदिश्यते॥

फिर वह ईश्वर, बिजुली और विद्वान् कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अꣳशुरꣳशुष्टे देव सोमाप्यायतामिन्द्रायैकधनविदे।
आ तुभ्यमिन्द्रः प्यायतामा त्वमिन्द्राय प्यायस्व।
आप्याययास्मान्त्सखीन्त्सन्न्या मेधया स्वस्ति ते देव सोम सुत्यामशीय।
एष्टा रायः प्रेषे भगायऽऋतमृतवादिभ्यो नमो द्यावापृथिवीभ्याम्॥७॥

अꣳशुरꣳशुरित्यꣳशुःऽअꣳशुः। ते। देव। सोम। आ। प्यायताम्। इन्द्राय। एकधनविदऽइत्येकधनऽविदे। आ। तुभ्यम्। इन्द्रः। प्यायताम्। आ। त्वम्। इन्द्राय। प्यायस्व। आ। प्यायय। अस्मान्। सखीन्। सन्न्या। मेधया। स्वस्ति। ते। देव। सोम। सुत्याम्। अशीय। एष्टा इत्याऽइष्टाः। रायः। प्र। इषे। भगाय। ऋतम्। ऋतवादिभ्य इत्यृतवादिऽभ्यः। नमः। द्यावापृथिवीभ्याम्॥७॥

पदार्थः-(**अंशुरंशुः**) अवयवोऽवयवः। अत्राशूङ्व्याप्तौ संघाते भोजने चेत्यस्माद् बाहुलकादौणादिक उप्रत्ययो नुमागमश्च। (**ते**) तव तस्या वा (**देव**) दिव्यगुणैः सम्पन्नेश्वर, विद्युद् विद्वन् वा (**सोम**) सकलपदार्थानां जनक! प्रकाशिके! वा (**आ**) समन्तात् (**प्यायताम्**) वर्धयताम्। अत्रान्तर्गतो ण्यर्थः। (**इन्द्राय**) परमैश्वर्ययुक्ताय (**एकधनविदे**) य एकेन धर्मेण विज्ञानेन वा धनं विन्दति तस्मै (**आ**) अभितः (**तुभ्यम्**) अध्यापकाय मह्यमध्येत्रे वा (**इन्द्रः**) परमात्मा, विद्युद्वा (**प्यायताम्**) (**आ**) सर्वतः (**इन्द्राय**) दुःखविदारणाय (**प्यायस्व**) वर्धस्व, वर्धयेद्वा (**आ**) अभितः (**प्यायय**) वर्धय, वर्धयति वा (**अस्मान्**) (**सखीन्**) सुहृदः (**सन्न्या**) समानान् पदार्थान्नयति यया तया (**मेधया**) प्रज्ञया (**स्वस्ति**) सुखम् (**ते**) तव, तस्याः सकाशाद्वा (**देव**) दिव्यगुणप्रद, प्रदानहेतुर्वा (**सोम**) प्रेरक, प्रेरिका वा (**सुत्याम्**) सुन्वन्ति यया क्रियया तस्याम् (**अशीय**) व्याप्नुयां प्राप्नुयाम् (**एष्टाः**) सर्वत इष्टकारिणः (**रायः**) धनसमूहाः (**प्र**) प्रकृष्टार्थे (**इषे**) अन्नायेच्छायै वा (**भगाय**) ऐश्वर्याय (**ऋतम्**) यथार्थम् (**ऋतवादिभ्यः**) ऋतं वदितुं शीलं येषां तेभ्यः सत्यवादिभ्यो विद्वद्भ्यः (**नमः**) सत्कारमन्नम् (**द्यावापृथिवीभ्याम्**) प्रकाशभूमिभ्याम्। अयं मन्त्रः (शत०(३।४।३।१८-२१) व्याख्यातः॥७॥

अन्वयः-हे सोम देवेश्वर विद्वन्! विद्युद्वा यतस्ते तव तस्या वा सामर्थ्यमंशुरंशुरङ्गमङ्गं सोमेनाप्यायतामाप्यायति वेन्द्रः सोमो भवानियं वैकधनविद इन्द्राय तुभ्यं मह्यं वा प्यायतामाप्यायति वा त्वमिन्द्राय प्यायस्व वर्धयस्व वर्धयेद् वाऽतः सखीनस्मान् सन्न्याः मेधया प्यायस्वाप्याययाप्याययेद् वा यतोऽहं सुत्यां दिव्यगुणसम्पन्नो भूत्वेष्टा रायोऽशीय यैरिषे भगायर्तवादिभ्यो विद्वद्भ्य एतद्धनं दत्त्वा सत्यां विद्यां द्यावापृथिवीभ्यामन्नं च प्राप्य सर्वाणि सुखानि प्राप्नुयाम्॥७॥

भावार्थः-अत्र श्लेषालङ्कारः। मनुष्यैः परमेश्वरमुपास्य विद्वांसमुपाचर्य्य विद्युद्विद्यां प्रचार्य्य शरीरात्मपुष्टिकरानोषधिसमूहान् धनसमुदायांश्च संगृह्य वैद्यकविद्यानुसारेण सर्वानन्दा भोक्तव्याः॥७॥

पदार्थः-हे (**सोम**) पदार्थविद्या को जानने वा (**देव**) दिव्यगुणसम्पन्न जगदीश्वर। विद्वन्! विद्युत् वा जिससे (**ते**) आप वा इस विद्युत् का सामर्थ्य (**अंशुरंशुः**) अवयव-अवयव, अङ्ग-अङ्ग को (**आप्यायताम्**) रक्षा से बढ़ा अथवा बढ़ाती है (**इन्द्रः**) जो आप वा बिजुली (**एकधनविदे**) अर्थात् धर्मविज्ञान से धन को प्राप्त होने वाले (**इन्द्राय**) परमैश्वर्य्ययुक्त मेरे लिये (**आप्यायताम्**) बढ़ावे वा बढ़ाती है (**आप्यायस्व**) वृद्धियुक्त कीजिये वा करती है। वह आप बिजुली आदि पदार्थ के ठीक-ठीक अर्थों की प्राप्ति को (**सन्न्या**) प्राप्ति कराने वाली (**मेधया**) प्रज्ञा से (**अस्मान्**) हम (**सखीन्**) सब के मित्रों को (**आप्यायस्व**) बढ़ाइये वा बढ़ावे, जिससे (**स्वस्ति**) सुख सदा बढ़ता रहे। (**सोम**) हे पदार्थविद्या को जानने वाले ईश्वर वा विद्वन्! आप की शिक्षा वा बिजुली की विद्या से युक्त होकर मैं (**सुत्याम्**) उत्तम-उत्तम उत्पन्न करने वाली क्रिया में कुशल होके (**इषे**) सिद्धि की इच्छा वा अन्न आदि (**भगाय**) ऐश्वर्य्य के लिये (**एष्टाः**) अभीष्ट सुखों को प्राप्त कराने वाले (**रायः**) धनसमूहों को (**अशीय**) प्राप्त होऊं और

(ऋतवादिभ्यः) सत्यवादी विद्वानों को यह धन देके सत्य विद्या और **(द्यावापृथिवीभ्याम्)** प्रकाश वा भूमि से **(नमः)** अन्न को प्राप्त होऊं॥७॥

भावार्थः-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि परमेश्वर की उपासना, विद्वान् की सेवा और विद्युत् विद्या का प्रचार करके शरीर और आत्मा को पुष्ट करने वाली ओषधियों और अनेक प्रकार के धनों का ग्रहण करके चिकित्सा शास्त्र के अनुसार सब आनन्दों को भोगें॥७॥

या त इत्यस्य गोतम ऋषिः। अग्निर्देवता। पूर्वस्य विराडार्षी बृहती छन्दः। या त इति द्वितीयस्य निचृदार्षी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनः सा विद्युत् कीदृशीत्युपदिश्यते॥

फिर वह बिजुली कैसी है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

या तेऽअग्नेऽयःशया तनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा। उग्रं वचोऽअपावधीत्त्वेषं वचोऽअपावधीत् स्वाहा। या तेऽअग्ने रजःशया तनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा। उग्रं वचोऽअपावधीत्त्वेषं वचोऽअपावधीत् स्वाहा। या तेऽअग्ने हरिशया तनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा। उग्रं वचोऽअपावधीत्त्वेषं वचोऽअपावधीत् स्वाहा॥८॥

या। ते। अग्ने। अयःशयेत्ययःऽशया। तनूः। वर्षिष्ठा। गह्वरेष्ठा। गह्वरेस्थेति गह्वरेऽस्था। उग्रम्। वचः। अप। अवधीत्। त्वेषम्। वचः। अप। अवऽधीत्। स्वाहा। या। ते। अग्ने। रजःशयेति रजःशया। तनूः। वर्षिष्ठा। गह्वरेष्ठा। गह्वरेस्थेति गह्वरेऽस्था। उग्रम्। वचः। अप। अवधीत्। त्वेषम्। वचः। अप। अवधीत्। स्वाहा॥८॥

पदार्थः-**(या)** वक्ष्यमाणा **(ते)** अस्याः **(अग्ने)** विद्युतः **(अयःशया)** याऽयस्सु सुवर्णादिषु शेते सा। **अय इति हिरण्यनामसु पठितम्।** (निघं०१। २) **(तनूः)** व्याप्तं विस्तृतं शरीरम् **(वर्षिष्ठा)** अतिशयेन वृद्धा **(गह्वरेष्ठा)** गह्वरे गहने गभीर आभ्यन्तरे तिष्ठतीति **(उग्रम्)** क्रूरं भयङ्करम् **(वचः)** वचनम् **(अप) व्यपेत्येतस्य प्रातिलोम्यम्।** (निरु०१। ३) **(अवधीत्)** हन्ति। अत्र सर्वत्र लडर्थे लुङ्। **(त्वेषम्)** प्रदीप्तम् **(वचः)** परिभाषणम् **(अप)** पृथक्करणे **(अवधीत्)** हन्ति **(स्वाहा)** सुहुतं हविरन्नम् **(या) (ते) (अग्ने) (रजःशया)** या रजःसु सूर्य्यादिलोकेषु शेते सा **(तनूः)** व्याप्तिः **(वर्षिष्ठा) (गह्वरेष्ठा) (उग्रम्)** दुःसहम् **(वचः)** परिभाषणम् **(अप)** पृथक्करणे **(अवधीत्) (त्वेषम्)** प्रकाशितम् **(वचः)** वचनम् **(अप)** पृथक्करणे **(अवधीत्)** हन्ति **(स्वाहा)** सुहुतां वाचम्। अयं मन्त्रः (शत०(३। ४। २३-२५) व्याख्यातः॥८॥

अन्वयः-हे मनुष्या! यूयं या तेऽग्नेऽस्या विद्युतो वर्षिठा गह्वरेष्ठा तनूरुग्रं वचोऽपावधीदपहन्ति त्वेषं वचः स्वाहा सुहुतं हविरन्नं चापावधीत्। या तेऽग्नेऽस्या विद्युतो वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा रजःशया तनूरुग्रं वचोऽपावधीत् त्वेषं वचः स्वाहा सुहुतां वाचं चापावधीद्धन्ति तां सम्यक् विदित्वोपकुरुत॥८॥

भावार्थः-मनुष्यैर्विद्युतो या व्याप्तिर्मूर्त्तामूर्त्तद्रव्यस्था वर्त्तते तां युक्त्या सम्यक् विदित्वोपसंप्रयोज्य सर्वाणि दुःखान्यपहन्तव्यानि॥८॥

पदार्थः-हे मनुष्य लोगो! तुम को **(या)** जो **(ते)** इस **(अग्ने)** बिजुलीरूप अग्नि का **(अयःशया)** सुवर्णादि में सोने **(वर्षिष्ठा)** अत्यन्त बड़ा **(गह्वरेष्ठा)** आभ्यन्तर में रहने वाला **(तनूः)** शरीर **(उग्रम्)** क्रूर भयङ्कर **(वचः)**

वचन को **(अपावधीत्)** नष्ट करता और **(त्वेषम्)** प्रदीप्त **(वचः)** शब्द वा **(स्वाहा)** उत्तमता से हवन किये हुए अन्न को **(अपावधीत्)** दूर करता और जो **(ते)** इस **(अग्ने)** बिजुलीरूप अग्नि का **(वर्षिष्ठा)** अत्यन्त विस्तीर्ण **(गह्वरेष्ठा)** आभ्यन्तर में स्थित होने **(रजःशया)** लोकों में सोने वाला **(तनूः)** शरीर **(उग्रम्)** क्रूर **(वचः)** कथन को **(अपावधीत्)** नष्ट करता है **(त्वेषम्)** प्रदीप्त **(वचः)** कथन वा **(स्वाहा)** उत्तम वाणी को **(अपावधीत्)** नष्ट करता है, उसको जान के उससे कार्य्य लेना चाहिये॥८॥

भावार्थः-मनुष्यों को योग्य है कि सब स्थूल और सूक्ष्म पदार्थों में रहने वाली जो बिजुली की व्याप्ति है, उस को अच्छे प्रकार जानकर उपयुक्त करके सब दुःखों का नाश करें॥८॥

तप्तायनीत्यस्य गोतम ऋषिः। अग्निर्देवता। प्रथमस्य भुरिगार्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥ नाम्नेहीत्यस्य निचृद्ब्राह्मी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥ अनुत्वेत्यस्य याजुष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथ किमर्थोऽग्न्यादिना यज्ञोऽनुष्ठातव्य इत्युपदिश्यते॥

और किसलिये अग्नि आदि से यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

तप्तायनी मेऽसि वित्तायनी मेऽस्यवतान्मा नाथितादवतान्मा व्यथितात्। विदेदग्निर्नभो नामाग्नेऽअङ्गिरआयुना नाम्नेहि योऽस्यां पृथिव्यामसि यत्तेऽनाधृष्टं नाम यज्ञियं तेन त्वा दधे विदेदग्निर्नभो नामाग्नेऽअङ्गिरऽआयुना नाम्नेहि यो द्वितीयस्यां पृथिव्यामसि यत्तेऽनाधृष्टं नाम यज्ञियं तेन त्वा दधे विदेदग्निर्नभो नामाग्नेऽअङ्गिरऽआयुना नाम्नेहि यस्तृतीयस्यां पृथिव्यामसि यत्तेऽनाधृष्टं नाम यज्ञियं तेन त्वा दधे। अनु त्वा देववीतये॥९॥

तप्तायनीति तप्तऽअयनी। मे। असि। वित्तायनीति वित्तऽअयनी। मे। असि। अवतात्। मा। नाथितात्। अवतात्। मा। व्यथितात्। विदेत्। अग्निः। नभः। नाम। अग्ने। अङ्गिरः। आयुना। नाम्ना। आ। इहि। यः। अस्याम्। पृथिव्याम्। असि। यत्। ते। अनाधृष्टम्। नाम। यज्ञियम्। तेन। त्वा। आ। दधे। विदेत्। अग्निः। नभः। नाम। अग्ने। अङ्गिरः। आयुना। नाम्ना। आ। इहि। यः। द्वितीयस्याम्। पृथिव्याम्। असि। यत्। ते। अनाधृष्टम्। नाम। यज्ञियम्। तेन। त्वा। आ। दधे। विदेत्। अग्निः। नभः। नाम। अग्ने। अङ्गिरः। आयुना। नाम्ना। आ। इहि। यः। तृतीयस्याम्। पृथिव्याम्। असि। यत्। ते। अनाधृष्टम्। नाम। यज्ञियम्। तेन। त्वा। आ। दधे। अनु। त्वा। देववीतय इति देवऽवीतये॥९॥

पदार्थः-**(तप्तायनी)** तप्तानि स्थापनीयानि वस्तून्ययनं यस्या विद्युतः सा **(मे)** मम **(असि)** भवति। अत्र सर्वत्र व्यत्ययः। **(वित्तायनी)** या वित्तानां भोगानां प्रतीतानां पदार्थानामयनी प्रापिका सा। **वित्तो भोगप्रत्यययोः।** (अष्टा०८।२।५८) अनेन वित्तशब्दः प्रतीतार्थे भोगार्थे च निपातितः। **(मे)** मम **(असि)** अस्ति **(अवतात्)** रक्षति। अत्र सर्वत्र लडर्थे लोट्। **(मा)** माम् **(नाथितात्)** ऐश्वर्यात् **(अवतात्)** रक्षति **(मा)** माम् **(व्यथितात्)** भयात् सञ्चलनात् **(विदेत्)** विजानीयात् **(अग्निः)** प्रसिद्धः **(नभः)** जलं प्रकाशं वा। **नभ इति जलनामसु पठितम्।** (निघं०१।१२) **साधारणनामसु च।** (निघं०१।४) **(नाम)** प्रसिद्धम् **(अग्ने)** जाठरस्थः **(अङ्गिरः)** अङ्गानां रसः

(आयुना) जीवनेन प्रापकत्वेन वा **(नाम्ना)** प्रसिद्ध्या **(आ)** समन्तात् **(इहि)** एति **(यः)** अग्निः **(अस्याम्)** प्रत्यक्षायाम् **(पृथिव्याम्)** भूमौ **(असि)** वर्त्तते **(यत्)** यादृशम् **(ते)** अस्य **(अनाधृष्टम्)** यत्समन्तान्न धृष्यते तत्तेजः **(नाम)** प्रसिद्धम् **(यज्ञियम्)** यज्ञाङ्गसमूहनिष्पादकम् **(तेन)** पूर्वोक्तेन **(त्वा)** तम् **(आ)** अभितः **(दधे)** धरामि **(विदेत्)** प्राप्नुयात् **(अग्निः)** भौतिकः **(नभः)** अन्तरिक्षस्थं जलम् **(नाम)** प्रसिद्धम् **(अग्ने)** प्रसिद्धोऽग्निः **(अङ्गिरः)** अङ्गारस्थः **(आयुना)** प्रापकत्वेन **(नाम्ना)** प्रसिद्ध्या **(आ)** अभितः **(इहि)** प्राप्नुहि **(यः)** **(द्वितीयस्याम्)** अस्यां भिन्नायाम् **(पृथिव्याम्)** विस्तृतायां भूमौ **(असि)** अस्ति **(यत्)** येन **(ते)** **(अनाधृष्टम्)** प्रगल्भगुणसहितम् **(नाम)** प्रसिद्धम् **(यज्ञियम्)** यज्ञसम्बन्धी **(तेन)** **(त्वा)** तम् **(आ)** अभितः **(दधे)** धरामि **(विदेत्)** प्राप्नुयात् **(अग्निः)** सूर्यस्थः **(नभः)** अवकाशम् **(नाम)** प्रसिद्धम् **(अग्ने)** सूर्य्यरूपः **(अङ्गिरः)** अञ्चिता **(आयुना)** **(नाम्ना)** **(आ)** **(इहि)** उक्तार्थेषु **(यः)** अग्निः **(तृतीयस्याम्)** तृतीयकक्षायां वर्त्तमानायाम् **(पृथिव्याम्)** भूमौ **(असि)** वर्त्तते **(यत्)** येन **(ते)** **(अनाधृष्टम्)** प्रौढम् **(नाम)** प्रसिद्धम् **(यज्ञियम्)** शिल्पविद्यायज्ञसम्बन्धी **(तेन)** **(त्वा)** तम् **(आ)** अभितः **(दधे)** स्वीकरोमि **(अनु)** आनुकूल्ये **(त्वा)** तम् **(देववीतये)** देवानां दिव्यानां गुणानां वा प्राप्तये। अयं मन्त्रः (शत०(३।५।१।२७-३२) व्याख्यातः॥९॥

अन्वयः-हे विद्यां जिघृक्षो! यथाऽहं तेन यद्यातप्तायन्यस्यस्ति, वित्तायनी विद्युदस्यस्ति, त्वा तां वेद्मि तथा त्वमेतेनैतद्विद्यां मे मम सकाशादेहि प्राप्नुहि, यथाऽहं सुसेवितः अग्निः सविता नभो जलं प्रकाशं वा प्रयच्छन् मा मां व्यथितादवतान्नाथिताद्यावतात् तथा त्वया सेविनः संस्त्वामपि रक्षेत्। यथाऽहं तेन योऽग्नेऽङ्गिरोऽग्निरायुना नाम्नाऽस्यां पृथिव्यां नाम प्रसिद्धोऽस्ति त्वा तं देववीतये विजानामि, तथैतेनैनं त्वमपि मे मम सकाशादेहि संजानीहि, यथाऽहं तेन नाम्ना यदनाधृष्टं यज्ञियं नाम तेज आदधे तथा तेन त्वा तं त्वमेतेनैनमस्मानन्वेहि, सर्वो जनश्चानुविदेत्। यथाऽहं तेन योऽग्निर्द्वितीयस्यां पृथिव्यामग्नेऽङ्गिर आयुना नाम्ना नामासि वर्त्तते, योऽग्निः नभः सुखं प्रयच्छति तेन त्वा तं सम्प्रयोजयामि, तथैतेन त्वैनं त्वमेहि सर्वो जनश्चानुविदेत्। यथाऽहं तेन यद्येनाधृष्टं यज्ञियं नाम तेजोऽस्मै त्वाऽदधे तथा त्वमेतेन नाम्ना त्वामेहि सर्वो जनश्चानुविदेत्। यथाऽहं तेन योऽग्निरायुना नाम्ना तृतीयस्यां पृथिव्यामग्नेऽङ्गिरः नामासि वर्त्तते. यो नभोऽवकाशं द्योतयति त्वा तं जानामि तथैनमेतस्मै त्वमेहि सर्वो जनोऽपि विदेत्॥९॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यः प्रसिद्धसूर्य्यविद्युद्रूपेण त्रिविधोऽग्निः सर्वेषु लोकेषु बाह्याभ्यन्तरतो वर्त्तते, तं विदित्वा विज्ञाप्य च सर्वैर्मनुष्यैः सर्वकार्य्यसिद्धिः सम्पादनीया॥९॥

पदार्थः-हे विद्या के ग्रहण करने वाले विद्वन्! जैसे मैं **(यत्)** जो **(तप्तायनी)** स्थापनीय वस्तुओं के स्थान वाली विद्युत् ज्वाला **(असि)** है वा जो **(वित्तायनी)** भोग्य वा प्रतीत पदार्थों को प्राप्त कराने वाली बिजुली **(असि)** है **(त्वा)** उसकी विद्या को जानता हूं, वैसे तू भी इस को **(मे)** मुझ से **(एहि)** प्राप्त हो, जैसे यह **(यत्)** जो **(अग्निः)** प्रसिद्ध अग्नि **(नभः)** जल वा प्रकाश को प्राप्त कराता हुआ **(मा)** मुझ को **(व्यथितात्)** भय से **(अवतात्)** रक्षा करता वा **(नाथितात्)** ऐश्वर्य से **(अवतात्)** रक्षा करता है, वैसे तुझ से सेवन किया हुआ यह तेरी भी रक्षा करेगा। जैसे मैं **(तेन)** उस साधन से जो **(अग्ने)** जाठर रूप **(अङ्गिरः)** अङ्गों में रहने वाला अग्नि **(आयुना)** जीवन वा **(नाम्ना)** प्रसिद्धि से **(अस्याम्)** इस **(पृथिव्याम्)** पृथिवी में **(नाम)** प्रसिद्ध है **(त्वा)** उसको जानता हूं, वैसे तू भी इसको **(मे)** मुझ से **(एहि)** अच्छे प्रकार जान। जैसे में **(तेन)** उस ज्ञान से **(यत्)** जो

(अनाधृष्टम्) नहीं नष्ट होने योग्य **(यज्ञियम्)** यज्ञाङ्गसमूह **(नाम)** प्रसिद्ध तेज है **(त्वा)** उसको **(देववीतये)** दिव्यगुणों की प्राप्ति के लिये **(त्वा)** उस यज्ञ को **(आदधे)** धारण करता हूं, वैसे तू उस से इस को उत्तम गुणों की प्राप्ति के लिये धारण कर और वैसे सब मनुष्य भी उस से इस को **(विदेत)** प्राप्त होवें। जैसे मैं **(तेन)** जो **(द्वितीयस्याम्)** दूसरी **(पृथिव्याम्)** भूमि में **(अग्ने)** **(अङ्गिरः)** अङ्गारों में रहने वाला अग्नि **(आयुना)** जीवन वा **(नाम्ना)** प्रसिद्धि से **(नाम)** प्रसिद्धि है वा **(यः)** जो **(नभः)** सुख को देता है **(तेन)** **(त्वा)** उससे उसको प्राप्त हुआ हूं, वैसे तू उससे इसको **(एहि)** जान और सब मनुष्य भी उससे इसको **(विदेत्)** प्राप्त हों। जैसे मैं **(तेन)** पुरुषार्थ से जो **(अनाधृष्टम्)** प्रगल्भगुणसहित **(यज्ञियम्)** यज्ञसम्बन्धी **(नाम)** प्रसिद्ध तेज है **(त्वा)** उसे भोगों की प्राप्ति के लिये **(आदधे)** धारण करता हूं तथा तू उसके लिये धारण कर और सब मनुष्य भी **(विदेत्)** धारण करें। जैसे मैं **(तेन)** उस क्रिया कौशल से जो **(अग्निः)** अग्नि **(आयुना)** जीवन वा प्रसिद्धि से **(अङ्गिरः)** अङ्गों का सूर्यरूप से पोषण करता हुआ **(नाम)** प्रसिद्ध है वा जो **(नभः)** आकाश को प्रकाशित करता है **(त्वा)** उसको धारण करता हूं, वैसे तू उसको धारण कर वा सब लोग भी **(अनुविदेत्)** उस को ठीक-ठीक जान के कार्य सिद्ध करें। जैसे मैं **(तेन)** इन्धनादि सामग्री से जो **(अनाधृष्टम्)** प्रगल्भसहित **(यज्ञियम्)** शिल्पविद्यासम्बन्धी **(नाम)** प्रसिद्ध तेज है **(त्वा)** उसको विद्वानों की प्राप्ति के लिये **(आदधे)** धारण करता हूं, वैसे तू उससे उसकी प्राप्ति के लिये **(अन्वेहि)** खोज कर और सब मनुष्य भी विद्या से सम्प्रयोग करें॥९॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचलुप्तोपमालङ्कार है। जो प्रसिद्ध सूर्य बिजुली रूप से तीन प्रकार का अग्नि सब लोगों में बाहिर-भीतर रहने वाला है, उसको जान और जनाकर सब मनुष्यों को कार्यसिद्धि का सम्पादन करना कराना चाहिये॥९॥

सिꣳह्यसीत्यस्य गोतम ऋषिः। वाग्देवता। ब्राह्म्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

अथ सर्वासां विद्यानां मुख्यसाधिकाया वाचो गुणा उपदिश्यन्ते॥

अब अगले मन्त्र में सब विद्याओं की मुख्य सिद्धि करने वाली वाणी के गुणों का उपदेश किया है॥

सिꣳह्यसि सपत्नसाही देवेभ्यः कल्पस्व सिꣳह्यसि सपत्नसाही देवेभ्यः शुन्धस्व सिꣳह्यसि सपत्नसाही देवेभ्यः शुम्भस्व॥ १०॥

सिꣳही। असि। सपत्नसाही। सपत्नसहीति सपत्नऽसही। देवेभ्यः। कल्पस्व। सिꣳही। असि। सपत्नसाही। सपत्नसहीति सपत्नऽसही। देवेभ्यः। शुन्धस्व। सिꣳही। असि। सपत्नसाही। सपत्नसहीति सपत्नऽसही। देवेभ्यः। शुम्भस्व॥ १०॥

पदार्थः-**(सिंही)** हिनस्ति दोषान् यया यद्वा सिञ्चत्युच्चारयति यया वाचा सा। हिंसेः सिंह इति हयवरडिति व्याख्याने महाभाष्यकारोक्तिः। **सिचेः संज्ञायां हनुमौ कश्च।** (उणा०५।६२) अनेन कप्रत्ययो हकारादेशो नुमागमश्च। अत्र सर्वत्र गौराद्याकृतिगणन्तर्गतत्वान्ङीष्। **(असि)** अस्ति। अत्र सर्वत्र व्यत्ययः। **(सपत्नसाही)** यया सपत्नान् शत्रून् सहन्ते सा **(देवेभ्यः)** दिव्यगुणेभ्यो विद्यां चिकीर्षुभ्यः शूरवीरेभ्यः **(कल्पस्व)** अध्यापनोपदेशाभ्यां समर्थय **(सिंही)** अविद्याविनाशिका **(असि)** अस्ति **(सपत्नसाही)** यया सपत्नान् दोषान् सहन्ते मृष्यन्ति दूरीकुर्वन्ति सा **(देवेभ्यः)** धार्म्मिकेभ्यः **(शुन्धस्व)** शोधय **(सिंही)** दुष्टशीलविनाशिनी **(असि)** अस्ति। **(सपत्नसाही)** यया सपत्नान् दुष्टानि

शीलानि सहन्ते सा **(देवेभ्यः)** सुशीलेभ्यो विद्वद्भ्यः **(शुम्भस्व)** शोभायुक्तान् कुरु। अयं मन्त्रः (शत०(३।५।१।३३) व्याख्यातः॥१०॥

अन्वयः-हे विद्वंस्त्वं या सपत्नसाही सिंही वागस्ति तां देवेभ्यः कल्पस्व। या सपत्नसाही सिंही वागस्ति तां देवेभ्यः शुन्धस्व। या सपत्नसाही सिंही वागस्ति तां देवेभ्यः शुम्भस्व॥१०॥

भावार्थः-त्रिविधा खलु वाग् भवति। शिक्षाविद्यासंस्कृता सत्यभाषणा मधुरा च, एषा मनुष्यैः सर्वदा स्वीकार्य्या॥१०॥

पदार्थः-हे विद्वान् मनुष्य! तू जो **(सपत्नसाही)** जिस से शत्रुओं को सहन करते हैं, वह **(देवेभ्यः)** उत्तम गुण शूरवीरों के लिये **(कल्पस्व)** पढ़ा और उपदेश करके प्राप्त कर **(सिंही)** जो दोषों को नष्ट करने वा शब्दों का उच्चारण करने वाली वाणी **(असि)** है, उसको **(देवेभ्यः)** विद्वान् दिव्यगुण वा विद्या की इच्छा वाले मनुष्यों के लिये **(शुन्धस्व)** शुद्धता से प्रकाशित कर। जो **(सपत्नसाही)** दोषों को हनन वा **(सिंही)** अविद्या के नाश करने वाली वाणी **(असि)** है, उसको **(देवेभ्यः)** धार्मिकों के लिये **(शुन्धस्व)** शुद्ध कर और जो **(सपत्नसाही)** दुष्ट स्वभाव और **(सिंही)** दुष्ट दोषों को नाश करने वाली वाणी **(असि)** है, उसको **(देवेभ्यः)** सुशील विद्वानों के लिये **(शुम्भस्व)** शोभायुक्त कर॥१०॥

भावार्थः-मनुष्यों को अति उचित है कि जो इस संसार में तीन प्रकार की वाणी होती है अर्थात् एक शिक्षा विद्या से संस्कार की हुई, दूसरी सत्यभाषणयुक्त और तीसरी मधुरगुणसहित- उनको स्वीकार करें॥१०॥

इन्द्रघोषस्त्वेत्यस्य गोतम ऋषिः। वाग्देवता। निचृद्ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनः स सा कीदृशीत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा और कैसी है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

इ॒न्द्र॒घो॒षस्त्वा॒ वसु॑भिः पु॒रस्ता॑त् पातु॒ प्रचे॑तास्त्वा रु॒द्रैः प॒श्चात् पा॑तु॒ मनो॑जवास्त्वा पि॒तृभि॑र्दक्षिण॒तः पातु॒ वि॒श्वक॑र्मा त्वादि॒त्यैरु॑त्तर॒तः पा॑त्वि॒दम॒हं त॒प्तं वार्ब॑हि॒र्धा य॒ज्ञान्निः सृ॑जामि॥ ११॥

इ॒न्द्र॒घो॒ष इती॑न्द्रऽघो॒षः। त्वा॒ वसु॑भि॒रिति॒ वसु॑ऽभिः। पु॒रस्ता॑त्। पा॒तु॒। प्रचे॑ता॒ इति॒ प्रऽचे॑ताः। त्वा॒। रु॒द्रैः। प॒श्चात्। पा॒तु॒। मनो॑जवा॒ इति॒ मनः॑ऽजवाः। त्वा॒। पि॒तृभि॒रिति॑ पि॒तृऽभिः॑। द॒क्षि॒ण॒तः। पा॒तु॒। वि॒श्वक॒र्मेति॑ वि॒श्वऽक॑र्मा। त्वा॒। आ॒दि॒त्यैः। उ॒त्त॒र॒तः। पा॒तु॒। इ॒दम्। अ॒हम्। त॒प्तम्। वाः। ब॒हि॒र्धेति॑ ब॒हिः॒ऽधा। य॒ज्ञात्। निः। सृ॒जा॒मि॒॥ ११॥

पदार्थः-**(इन्द्रघोषः)** इन्द्रस्य परमेश्वरस्य वेदाख्याया विद्युतो वा घोषो विविधशब्दार्थसम्बन्धो यस्य यस्या वा स सा वा वाक्। **घोष इति वाङ्नामसु पठितम्।** (निघं०१।११) **(त्वा)** त्वाम् तां वाचं वा **(वसुभिः)** अग्न्यादिभिः कृतचतुर्विंशतिवर्षब्रह्मचर्य्यैर्वा सह वर्त्तमाना **(पुरस्तात्)** पूर्वस्मात् **(पातु)** रक्षतु **(प्रचेताः)** या प्रकृष्टविज्ञाना, यया प्रकृष्टतया चेतन्ति संजानन्ति सा **(त्वा)** त्वाम् तां वा **(रुद्रैः)** या प्राणैः कृतचतुश्चत्वारिंशद् वर्षब्रह्मचर्यैः सह वा वर्त्तते स सा वा **(पश्चात्)** पश्चिमदेशात् **(पातु)** पालयतु **(मनोजवाः)** मनोवज्जवो वेगो यस्य यस्याः स सा वा **(त्वा)** त्वां तां वा **(पितृभिः)** ज्ञानिभिर्ऋतुभिर्वा। **ते वा एत ऋतवः।** (शत०२।१।३।२) अनेन पितृशब्दादृतवोऽपि गृह्यन्ते। **पितर इति पदनामसु पठितम्।** (निघं०५।५) अनेन ज्ञानवन्तो मनुष्या गृह्यन्ते **(दक्षिणतः)** दक्षिणदेशात् **(पातु)** रक्षतु **(विश्वकर्मा)** विश्वानि सर्वाणि कर्माणि यस्या यस्य वा सा वाक्, स विद्वान्

वा **(त्वा)** त्वां तां वा **(आदित्यैः)** संवत्सरस्य मासैः कृताष्टाचत्वारिंशद्वर्षब्रह्मचर्य्यैः सह वा वर्त्तमाना **(उत्तरतः)** उत्तरस्याद्देशात् **(पातु)** **(इदम्)** अन्तःस्थमुदकम्॥ **इदमित्युदकनामसु पठितम्।** (निघं०१।१२) **(अहम्)** **(तप्तम्)** धर्मेणाध्यनाध्यापनश्रमेण वा संतप्तम् **(वाः)** बाह्यमुदकम्। **वा इत्युदकनामसु पठितम्।** (निघं०१।१२) **(बहिर्धा)** वा बहिर्बाह्ये देशे धरति शब्दान् सा **(यज्ञात्)** अध्ययनाध्यापनाद्धोमलक्षणाद्वा **(निः)** नितराम् **(सृजामि)** सम्पद्ये प्रक्षिपामि वा। अयं मन्त्रः (शत०(३।५।२।४-८) व्याख्यातः॥११॥

अन्वयः-हे मनुष्या! यथा प्रचेता इन्द्रघोषो विश्वकर्माहं यज्ञादिदमन्तस्थमुदकं तप्तं बहिर्धा वर्त्तमानं शीतलं उदकं च निःसृजामि, तथा या वसुभिः सह वर्त्तमानेन्द्रघोषो वागस्ति तां पुरस्ताद् रक्षामि तथा भवानपि पातु। या रुद्रैः सह वर्त्तमाना प्रचेता वागस्ति तां पश्चात् पालयामि तथा भवानपि पातु। या पितृभिः सह वर्त्तमाना मनोजवा वागस्ति तां दक्षिणतोऽवामि तथा भवानपि पातु। या आदित्यैः सह वर्त्तमानाः वागस्ति तामुत्तरतो रक्षामि तथा भवानपि पातु॥११॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैर्वसुरुद्रादित्यपितृभिः सेवितां यज्ञाधिकृतां वाचमुदकं च विद्यया सत्क्रियया सह सेवित्वा शुद्धं निर्मलं च सततं भावनीयम्॥११॥

पदार्थः-हे विद्वान् मनुष्यो! जैसे **(प्रचेताः)** उत्तम ज्ञानयुक्त **(इन्द्रघोषः)** परमात्मा, वेदविद्या और बिजुली का घोष अर्थात् शब्द, अर्थ और सम्बन्धों के बोधवाला **(विश्वकर्मा)** सब कर्मवाला मैं **(यज्ञात्)** पढ़ना-पढ़ाना वा होमरूप यज्ञ से **(इदम्)** आभ्यन्तर में रहने वाले **(तप्तम्)** तप्त जल **(बहिर्धा)** बाहर धारण होने वाले शीतल **(वाः)** जल को **(निःसृजामि)** सम्पादन करता वा निःक्षेप करता हूं, वैसे आप भी कीजिये। जो **(वसुभिः)** अग्नि आदि पदार्थ वा चौबीस वर्ष ब्रह्मचर्य्य किये हुए मनुष्यों के साथ वर्त्तमान **(इन्द्रघोषः)** परमेश्वर, जीव और बिजुली के अनेक शब्द सम्बन्धी वाणी है, उसको **(पुरस्तात्)** पूर्वदेश से जैसे मैं रक्षा करता हूं, वैसे आप भी **(पातु)** रक्षा करो जो **(रुद्रैः)** प्राण वा चवालीस वर्ष ब्रह्मचर्य्य किये हुये विद्वानों के साथ वर्त्तमान **(प्रचेताः)** उत्तम ज्ञान करने वाली वाणी है, उसको **(पश्चात्)** पश्चिम देश से रक्षा करता हूं, वैसे आप भी **(पातु)** रक्षा करें। जो **(पितृभिः)** ज्ञानी वा ऋतुओं के साथ वर्त्तमान **(मनोजवाः)** मन के समान वेगवाली वाणी है, उसका **(दक्षिणतः)** दक्षिण देश से पालन करता हूं, वैसे आप भी **(पातु)** रक्षा करें। जो **(आदित्यैः)** बारह महीनों वा अड़तालीस वर्ष ब्रह्मचर्य्य किये हुए विद्वानों के साथ वर्त्तमान **(विश्वकर्मा)** सब कर्मयुक्त वाणी है, उसकी **(उत्तरतः)** उत्तर देश से पालन करता हूं, वैसे आप भी **(पातु)** रक्षा करें॥११॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि जो वसु, रुद्र, आदित्य और पितरों से सेवन की हुई वा यज्ञ को सिद्ध करने वाली वाणी वा जल को विद्या वा उत्तम क्रिया से सेवन करके निरन्तर शुद्ध तथा निर्मल करें॥११॥

सिꣳह्यसीत्यस्य गोतम ऋषिः। वाग्देवता। भुरिग्ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनः सा कीदृशीत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसी है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

सि॒ꣳह्य॑सि॒ स्वाहा॑ सि॒ꣳह्य॑स्यादित्य॒वनि॒: स्वाहा॑ सि॒ꣳह्य॑सि ब्रह्म॒वनि॑: क्षत्र॒वनि॒: स्वाहा॑ सि॒ꣳह्य॑सि सुप्रजा॒वनी॑ रायस्पोष॒वनि॒: स्वाहा॑ सि॒ꣳह्य॑स्याव॑ह देवान् यज॑मानाय॒ स्वाहा॑ भू॒तेभ्य॑स्त्वा॥ १२॥

सि॒ꣳही। अ॒सि॒। स्वाहा॑। सि॒ꣳही। अ॒सि॒। आ॒दि॒त्य॒वनि॒रित्या॑दित्य॒ऽवनि॑:। स्वाहा॑। सि॒ꣳही। अ॒सि॒। ब्र॒ह्म॒वनि॒रिति॑ ब्रह्म॒ऽवनि॑:। क्ष॒त्र॒वनि॒रिति॑ क्षत्र॒ऽवनि॑:। स्वाहा॑। सि॒ꣳही। अ॒सि॒। सु॒प्र॒जा॒वनि॒रिति॑ सुप्रजा॒ऽवनि॑:। रा॒य॒स्पो॒ष॒वनि॒रिति॑ रायस्पोष॒ऽवनि॑:। स्वाहा॑। सि॒ꣳही। अ॒सि॒। आ। व॒ह॒। दे॒वान्। यज॑मानाय। स्वाहा॑। भू॒तेभ्य॑: त्वा॒॥ १२॥

पदार्थः-(**सिंही**) अविद्याहन्त्री (**असि**) अस्ति। अत्र सर्वत्र व्यत्ययः (**स्वाहा**) वाक् (**सिंही**) क्रूरत्वादिदोषनाशिका (**असि**) अस्ति (**आदित्यवनिः**) या आदित्यान् मासान् वनति संभजति सा (**स्वाहा**) ज्योतिःशास्त्रसंस्कारयुक्ता वाणी (**सिंही**) बलेन जाड्यत्वविनाशिनी (**असि**) अस्ति (**ब्रह्मवनिः**) यया ब्रह्मविदो मनुष्या ब्रह्म परमात्मानं वेदं वा वनन्ति संभजन्ति सा (**क्षत्रवनिः**) यया क्षत्रं राज्यं धनुर्विद्या शूरवीरान् पुरुषान् वा वनन्ति संभजन्ति सा (**स्वाहा**) अध्ययनाध्यापनराजव्यवहारकुशला वाक् (**सिंही**) चोरदस्य्वन्यायप्रलयकारिणी (**असि**) अस्ति (**सुप्रजावनिः**) यया शोभनाः प्रजा वनति संभजति सा (**रायस्पोषवनिः**) यया रायो विद्याधनसमूहस्य पोषं पुष्टिं वनति संभजति सा (**स्वाहा**) व्यवहारेण धनप्रापिका (**सिंही**) सर्वदुःखप्रणाशिका (**असि**) अस्ति (**आ**) समन्तात् (**वह**) वहति प्रापयति (**देवान्**) विदुषो दिव्यगुणानृतून् भोगान् वा (**यजमानाय**) यजति विदुषः पूजयति सद्गुणान् संगच्छते ददाति वा तस्मै (**स्वाहा**) दिव्यविद्यासम्पन्ना (**भूतेभ्यः**) मनुष्यादिप्राणिभ्यः। अयं मन्त्रः (शत०(३।५।२।११-१३) व्याख्यातः॥१२॥

अन्वयः-अहं याऽऽदित्यवनिः सिंही स्वाहास्यस्ति, या ब्रह्मवनिः सिंही स्वाहाऽस्यस्ति, या क्षत्रवनिः सिंही स्वाहास्यस्ति, या रायस्पोषवनिः सिंही स्वाहास्यस्ति, या सुप्रजावनिः सिंही स्वाहा, या यजमानाय देवानां वह प्रापयति, तां भूतेभ्यो यज्ञान्निःसृजामि॥१२॥

भावार्थः-अत्र पूर्वस्मान्मन्त्रात् (**यज्ञात्**) (**निः**) (**सृजामि**) इति पदत्रयमनुवर्त्तते। मनुष्यैरध्ययनादिनेदृग्-लक्षणां वेदादिवाणीं प्राप्यैतां सर्वेभ्यो मनुष्येभ्योऽध्याप्यानन्दयितव्याः॥१२॥

पदार्थः-मैं जो (**आदित्यवनिः**) मासों का सेवन और (**सिंही**) क्रूरत्व आदि दोषों को नाश करने वाली (**स्वाहा**) ज्योतिःशास्त्र से संस्कारयुक्त वाणी (**असि**) है, जो (**ब्रह्मवनिः**) परमात्मा, वेद और वेद के जानने वाले मनुष्यों के सेवन और (**सिंही**) बल के जाड्यपन को दूर करने वाली (**स्वाहा**) पढ़ने-पढ़ाने व्यवहारयुक्त वाणी (**असि**) है, जो (**क्षत्रवनिः**) राज्य, धनुर्विद्या और शूरवीरों का सेवन और (**सिंही**) चोर, डाकू अन्याय को नाश करने वाली (**स्वाहा**) राज्य-व्यवहार में कुशल वाणी (**असि**) है, जो (**रायस्पोषवनिः**) विद्या धन की पुष्टि का सेवन और (**सिंही**) अविद्या को दूर करने वाली (**स्वाहा**) वाणी (**असि**) है, जो (**सुप्रजावनिः**) उत्तम प्रजा का सेवन और (**सिंही**) सब दुःखों का नाश और (**स्वाहा**) व्यवहार से धन को प्राप्त कराने वाली वाणी (**असि**) है और जो (**यजमानाय**) विद्वानों के पूजन करने वाले यजमान के लिये (**स्वाहा**) दिव्य विद्या सम्पन्न वाणी (**देवान्**) विद्वान् दिव्यगुण वा भोगों को (**आवह**) प्राप्त करती है (**त्वा**) उसको (**भूतेभ्यः**) सब प्राणियों के लिये (**यज्ञात्**) यज्ञ से (**निःसृजामि**) सम्पादन करता हूं॥१२॥

भावार्थः-इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र से **(यज्ञात्) (निः) (सृजामि)** इन तीनों पदों की अनुवृत्ति है। मनुष्यों को उचित है कि पढ़ना-पढ़ाना आदि से इस प्रकार लक्षणयुक्त वाणी प्राप्त कर, इसे सब मनुष्यों को पढ़ा कर सदा आनन्द में रहें॥१२॥

ध्रुवोऽसीत्यस्य गोतम ऋषिः। यज्ञो देवता। भुरिगार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनरयं यज्ञः कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर यह यज्ञ कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

ध्रुवोऽसि पृथिवीं दृꣳह ध्रुवक्षिदस्यन्तरिक्षं दृꣳहाच्युतक्षिदसि दिवं दृꣳहाग्नेः पुरीषमसि॥ १३॥

ध्रुवः। असि। पृथिवीम्। दृꣳह। ध्रुवक्षिदिति ध्रुवऽक्षित्। असि। अन्तरिक्षम्। दृꣳह। अच्युतक्षिदित्यच्युतऽक्षित्। असि। दिवम्। दृꣳह। अग्नेः। पुरीषम्। असि॥ १३॥

पदार्थः-**(ध्रुवः)** निश्चलः **(असि)** अस्ति। अत्र सर्वत्र व्यत्ययः **(पृथिवीम्)** भूमिं तत्स्थं पदार्थसमूहं वा **(दृꣳह)** वर्धय **(ध्रुवक्षित्)** यो ध्रुवाणि सुखानि शास्त्राणि वा क्षियति निवासयति सः **(असि)** अस्ति **(अन्तरिक्षम्)** आकाशस्थं पदार्थसमूहम् **(दृꣳह)** वर्षय **(अच्युतक्षित्)** योऽच्युतान्नाशरहितान् पदार्थान् क्षियति निवासयति सः **(असि)** अस्ति **(दिवम्)** विद्यादिप्रकाशम् **(दृꣳह)** वर्धय **(अग्नेः)** विद्युदादेः **(पुरीषम्)** पशूनां प्रपूर्तिकरं साधनम्। **पुरीष्योऽसि पशव्योऽसि।** (शत०६।४।२।१) **(असि)** अस्ति। अयं मन्त्रः (शत०(३। ५। २। १४) व्याख्यातः॥१३॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यो यज्ञो ध्रुवोऽस्यस्ति पृथिवीं वर्धयति, तं त्वं दृंह। यो ध्रुवक्षिदस्यस्त्यन्तरिक्ष-माकाशस्थान् पदार्थान् पोषयति, तं त्वं दृंह योऽच्युतक्षिदस्यस्ति दिवं प्रकाशयति, तं त्वं दृंह योऽग्नेः पुरीषमस्यस्ति तं त्वमनुतिष्ठ॥१३॥

भावार्थः-मनुष्यैर्विद्याक्रियासिद्धं त्रैलोक्यस्थपदार्थपोषकं विद्याक्रियामयं यज्ञमनुष्ठाय सुखयितव्यम्॥१३॥

पदार्थः-हे विद्वान् मनुष्यो! जो यज्ञ **(ध्रुवः)** निश्चल **(पृथिवीम्)** भूमि को बढ़ाता **(असि)** है, उसको तुम **(दृहं)** बढ़ाओ जो **(ध्रुवक्षित्)** निश्चल सुख और शास्त्रों का निवास कराने वाला **(असि)** है वा **(अन्तरिक्षम्)** आकाश में रहने वाले पदार्थों को पुष्ट करता है, उसको तुम **(दृंह)** बढ़ाओ। जो **(अच्युतक्षित्)** नाशरहित पदार्थों को निवास कराने वाला **(असि)** है वा **(दिवम्)** विद्यादि प्रकाश को प्रकाशित करता है, उसको तुम **(दृंह)** बढ़ाओ जो **(अग्नेः)** बिजुली आदि अग्नि वा **(पुरीषम्)** पशुओं की पूर्ति करने वाला यज्ञ **(असि)** है, उसका अनुष्ठान तुम किया करो॥१३॥

भावार्थः-मनुष्यों को योग्य है कि विद्या क्रिया से सिद्ध वा त्रिलोकी के पदार्थों को पुष्ट करने वाले, विद्याक्रियामय यज्ञ का अनुष्ठान करके सुखी रहें और सब को रक्खें॥१३॥

युञ्जते मन इत्यस्य गोतम ऋषिः। सविता देवता। स्वराडार्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

अथ योगीश्वरगुणा उपदिश्यन्ते।

अब अगले मन्त्र में योगी और ईश्वर के गुणों का उपदेश किया है॥

युञ्जते मनऽउत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः।
वि होत्रा दधे वयुनाविदेकऽइन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः स्वाहा॥ १४॥

युञ्जते। मनः। उत। युञ्जते। धियः। विप्राः। विप्रस्य। बृहतः। विपश्चित इति विपःऽचितः। वि। होत्राः। दधे। वयुनावित्। वयुनविदिति वयुनऽवित्। एकः। इत्। मही। देवस्य। सवितुः। परिष्टुतिः। परिस्तुतिरिति। स्वाहा॥ १४॥

पदार्थः-(**युञ्जते**) समादधते (**मनः**) चित्तम् (**उत**) अपि (**युञ्जते**) स्थिराः कुर्वते (**धियः**) बुद्धीः कर्माणि वा (**विप्राः**) मेधाविनः। **विप्र इति मेधाविनामसु पठितम्।** (निघं०३।१५) (**विप्रस्य**) अनन्तप्रज्ञाकर्मणो जगदीश्वरस्य। (**बृहतः**) व्यापकस्य वा (**विपश्चितः**) अनन्तविद्यस्य परमविद्यस्य परमविदुषो वा (**वि**) विविधार्थे (**होत्राः**) ये जुह्वत्याददति वा ते (**दधे**) धरे वृणोमि कथयामि वा (**वयुनावित्**) यो वयुनानि प्रशस्तानि कर्माणि वेत्ति सः। **वयुनमिति प्रशस्यनामसु पठितम्।** (निघं०३। ८) अत्र **अन्येषामपि दृश्यते** [अष्टा०६.३.१३७] इति दीर्घः। (**एकः**) असहायः (**इत्**) एव (**मही**) महती (**देवस्य**) सर्वप्रकाशकस्य (**सवितुः**) सकलोत्पादकस्य (**परिष्टुतिः**) परितः सर्वतः स्तूयते यया सा (**स्वाहा**) सत्यां वाचम्। अयं मन्त्रः (शत०(३।५।३।११-१२) व्याख्यातः॥१४॥

अन्वयः-यथा विहोत्रा विप्राः सन्ति ते या बृहतो विप्रस्य विपश्चितः सवितुर्देवस्य यस्य महेश्वरस्य मही परिष्टुतिस्वरूपा स्वाहास्ति, तां विज्ञायैतस्मिन्निदेव मनो युञ्जत उतापि धियो युञ्जते, तथैवैतां विदित्वास्मिन् वयुनाविदेकोऽहं मनो युञ्जे धियं च॥१४॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। परमेश्वर एव मनो धियश्च समाधाय विदुषां सङ्गेन विद्यां प्राप्यान्येभ्य एवमेवोपदेष्टव्म्॥१४॥

पदार्थः-जैसे जो (**विहोत्राः**) देने-लेने वाले (**विप्राः**) बुद्धिमान् मनुष्य हैं, वे जिस (**बृहतः**) सब से बड़े (**विप्रस्य**) अनन्त ज्ञानकर्मयुक्त (**विपश्चितः**) सब विद्या सहित (**सवितुः**) सकल जगत् के उत्पादक (**देवस्य**) सब के प्रकाश करने वाले महेश्वर की (**मही**) बड़ी (**परिष्टुतिः**) सब प्रकार की स्तुतिरूप (**स्वाहा**) सत्यवाणी को जान उस में (**मनः**) मन को (**युञ्जते**) युक्त करते हैं (**उत**) और (**धियः**) बुद्धियों को भी (**युञ्जते**) स्थिर करते हैं, वैसे (**वयुनावित्**) उत्तम कर्मों को जानने वाला (**एकः**) सहाय रहित मैं उस को जान उसमें अपना मन और बुद्धि को (**विदधे**) सदा निश्चल विधान कर रखता हूं॥१४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को उचित है कि परमेश्वर में ही मन, बुद्धि को युक्त कर विद्वानों के सङ्ग से विद्या को पा सुखी हो, अन्य मनुष्यों को भी इसी प्रकार आनन्दित करें॥१४॥

इदं विष्णुरित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। विष्णुर्देवता। भुरिगार्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनः स जगदीश्वरः कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह जगदीश्वर कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्। समूढमस्य पांसुरे स्वाहा॥ १५॥

इदम्। विष्णुः। वि। चक्रमे। त्रेधा। नि। दधे। पदम्॥ समूढमिति सम्ऽऊढम्। अस्य। पांसुरे। स्वाहा॥ १५॥

पदार्थः-(**इदम्**) प्रत्यक्षाप्रत्यक्षं जगत् (**विष्णुः**) यो वेवेष्टि व्याप्नोति चराचरं जगत् स जगदीश्वरः (**वि**) विविधार्थे (**चक्रमे**) क्रान्तवान् निक्षिप्तवान् क्राम्यति क्रमिष्यति वा। अत्र सामान्येऽर्थे लिट्। (**त्रेधा**) त्रिप्रकारम् (**नि**) नितराम् (**दधे**) हितवान् दधाति धास्यति वा (**पदम्**) पद्यते गम्यते यत्तत्। अत्र **घञर्थे कविधानम्** [अष्टा०भा०वा०३.३.५८] इति कः प्रत्ययः। (**समूढम्**) सम्यगुह्यतेऽनुमीयते शब्द्यते यत्तत् (**अस्य**) त्रिविधस्य जगतः (**पांसुरे**) पांसवो रेणवो रजांसि रमन्ते यस्मिन्नन्तरिक्षे तस्मिन् (**स्वाहा**) सुहुतं जुहोतीत्यर्थे। इमं मन्त्रं यास्कमुनिरेवं व्याख्यातवान्-**यदिदं किं च तद्विक्रमते विष्णुस्त्रिधा निधत्ते पदं त्रेधाभावाय पृथिव्यामन्तरिक्षे दिवीति शाकपूणिः। समारोहणे विष्णुपदे गयशिरसीत्यौर्णवाभः। समूढमस्य पांसुरे प्यायनेऽन्तरिक्षे पदं न दृश्यतेऽपि वोपमार्थे स्यात्, समूढमस्य पांसुर इव पदं न दृश्यते इति पांसवः। पादैः सूयत इति वा, पन्नाः शेरत इति पांसवः, पादैः सूयन्त इति वा पन्नाः शेरत इति वा पंसनीया भवन्तीति वा।** (निरु०१२। १९) अयं मन्त्रः (शत०(३। ५। १३) व्याख्यातः॥१५॥

अन्वयः-यो विष्णुर्जगदीश्वरो यत्किञ्चिदिदं प्रत्यक्षाप्रत्यक्षं जगद् वर्त्तते तत् सर्वं विचक्रमे रचितवान्। त्रेधा निदधे निदधात्यस्य त्रिविधस्य जगतः परमाण्वादिरूपं स्वाहा सुहुतं समूढमदृश्यं पदं पांसुरेऽन्तरिक्षे निहितवानस्ति, स सर्वैः सुसेवनीयः॥१५॥

भावार्थः-परमेश्वरेण यत् प्रथमं प्रकाशवत् सूर्यादि, द्वितीयमप्रकावत् पृथिव्यादि प्रसिद्धं जगद्रचितमस्ति, यच्च तृतीयं परमाण्वाद्यदृश्यं सर्वमेतत्कारणावयवै रचयित्वाऽन्तरिक्षे स्थापितम्, तत्रौषध्यादि पृथिव्याम्, अग्न्यादिकं सूर्य्ये, परमाण्वादिकमाकाशे निहितम्, सर्वमेतत् प्राणानां शिरसि स्थापितवानस्ति। **सा हैषा गयांस्तत्रे। प्राणा वै गयास्तत्प्राणांस्तत्रे तद्यद् गयांस्तत्रे तद् गायत्री नाम।** (शत०१४। ८। १५। ६-७) अनेन गयशब्देन प्राणानां ग्रहणम्॥ अत्र महीधरः प्रबुक्कति त्रिविक्रमावतारं कृत्वेत्यादि तदशुद्धं सज्जनैर्बोध्यम्॥१५॥

पदार्थः-(**विष्णुः**) जो सब जगत् में व्यापक जगदीश्वर जो कुछ यह जगत् है, उसको (**विचक्रमे**) रचता हुआ (**इदम्**) इस प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष जगत् को (**त्रेधा**) तीन प्रकार का धारण करता है (**अस्य**) इस प्रकाशवान्, प्रकाशरहित और अदृश्य तीन प्रकार के परमाणु आदि रूप (**स्वाहा**) अच्छे प्रकार देखने और दिखलाने योग्य जगत् का ग्रहण करता हुआ (**इदम्**) इस (**समूढम्**) अच्छे प्रकार विचार करके कथन करने योग्य अदृश्य जगत् को (**पांसुरे**) अन्तरिक्ष में स्थापित करता है, वही सब मनुष्यों को उत्तम रीति से सेवने योग्य है॥१५॥

भावार्थः-परमेश्वर ने जिस प्रथम प्रकाश वाले सूर्यादि, दूसरा प्रकाशरहित पृथिवी आदि और जो तीसरा परमाणु आदि अदृश्य जगत् है, उस सब को कारण से रचकर अन्तरिक्ष में स्थापन किया है, उनमें से ओषधी आदि पृथिवी में, प्रकाश आदि सूर्यलोक में और परमाणु आदि आकाश और इस सब जगत् को प्राणों के शिर में स्थापित किया है। इस लिखे हुए शतपथ के प्रमाण से '**गय**' शब्द से प्राणों का ग्रहण किया है, इसमें महीधर जो कहता है कि त्रिविक्रम अर्थात् वामनावतार को धारण करके जगत् को रचा है, यह उसका कहना सर्वथा मिथ्या है॥१५॥

इरावतीत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। विष्णुर्देवता। स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनरीश्वरसूर्यगुणा उपदिश्यन्ते॥

अगले मन्त्र में ईश्वर और सूर्य के गुणों का उपदेश किया है॥

इरा॑वती धेनु॒मती॒ हि भू॒तꣳ सू॑यव॒सिनी॒ मन॑वे दश॒स्या।
व्य॑स्कभ्ना॒ रोद॑सी विष्णवे॒ते दा॒धर्थ॑ पृथि॒वीम॒भितो॑ म॒यूखैः॒ स्वाहा॑॥ १६॥

इरा॑वती॒ इतीरा॑ऽवती। धे॒नु॒मती॒ इति॑ धे॒नु॒ऽमती॑। हि। भू॒तम्। सू॒य॒व॒सिनी॑। सु॒य॒व॒सिनी॒ इति॑ सु॒ऽय॒व॒सिनी॑। मन॑वे। द॒श॒स्या। वि। अ॒स्क॒भ्ना॒ः। रोद॑सी॒ इति॒ रोद॑सी। वि॒ष्णो॒ऽइति॑ विष्णो। ए॒तेऽइत्ये॒ते। दा॒धर्थ॑। पृ॒थि॒वीम्। अ॒भित॑ः। म॒यूखै॑ः। स्वाहा॑॥ १६॥

पदार्थः-(**इरावती**) इराः प्रशस्तान्यन्नानि विद्यन्ते यस्यां सा। अत्र प्रशंसार्थे मतुप्। **इरेत्यन्ननामसु पठितम्।** (निघं०२।७) (**धेनुमती**) प्रशस्ता बहवो धेनवो वाचः पशवो वा सन्त्यस्यां सा। अत्र प्रशंसार्थे भूम्यर्थे च मतुप्। (**हि**) किल (**भूतम्**) उत्पन्नं सर्व जगत् (**सूयवसिनी**) बहूनि शोभनानि मिश्रितान्यमिश्रितानि वस्तूनि विद्यन्ते यस्यां सा (**मनवे**) मन्यते येन ज्ञानेन तस्मै बोधाय (**दशस्या**) दशा इवाचरति तस्मै। अत्र बाहुलकादसुन्, स च कित्, तत आचारे क्यच्च। (**वि**) विशेषार्थे। (**अस्कभ्नाः**) प्रतिबध्नासि प्रतिबध्नाति वा। (**रोदसी**) प्रकाशपृथिवीलोकसमूहौ। (**विष्णो**) सर्वव्यापिन् जगदीश्वर! व्यापनशीलः प्राणो वा। (**एते**) विद्वांसः। (**दाधर्थ**) धरसि धरति वा। **दाधर्ति०।** (अष्टा०७।४।६५) अनेनायं यङ्लुगन्तो निपातितः। (**पृथिवीम्**) भूमिमन्तरिक्षं वा। **पृथिवीत्यन्तरिक्षनामसु पठितम्।** (निघं०१।३) (**अभितः**) सर्वतः (**मयूखैः**) ज्ञानप्रकाशादिगुणैः रश्मिभिर्वा। **मयूखा इति रश्मिनामसु पठितम्।** (निघं०१।५) (**स्वाहा**) वेदवाणी चक्षुरिन्द्रियं वा। अयं मन्त्रः (शत०(३।५।३।१४) व्याख्यातः॥१६॥

अन्वयः-हे विष्णो जगदीश्वर! यस्त्वं येरावती धेनुमती सूयवसिनी भूमिं स्वाहा हि किल वाणीं भूतमुत्पन्नं सकलं जगच्च मयूरखैरभितो दाधर्थ धरसि रोदसी व्यस्कभ्नाः प्रतिबध्नासि तस्मै दशस्याय मनवे वयमेते च सर्वं जगन्निवेदयामो निवेदयन्तीत्येकः॥

यो विष्णुः प्राणो येरावती धेनुमती सूयवसिनी भूमिर्वाग्वास्ति तां पृथिवीं स्वाहा वागिन्द्रियं च मयूखैरभितो दाधर्थ धरति, रोदसी व्यस्कभ्नाः प्रतिबध्नाति, तस्मै दशस्याय मनवे प्राणाय भूतं हि किलोत्पन्नं सर्वं कार्यं जगत्प्रकाशितुं समर्थं प्राणं सर्वे विजानीतेति द्वितीयः॥१६॥

भावार्थः-अत्र श्लेषालङ्कारः। यथा सूर्यः स्वकिरणैः स्वकान्तिभिः सर्वं भूम्यादिकं जगत्संस्तभ्याकृष्य धरति, तथैव परमेश्वरः प्राणो वा स्वसामर्थ्येन सर्वं प्राणादिकं जगद्रचित्वा संधार्य व्यवस्थापयति॥१६॥

पदार्थः-हे (**विष्णो**) सर्वव्यापी जगदीश्वर! जो आप जिस (**इरावती**) उत्तम अन्नयुक्त (**धेनुमती**) प्रशंसनीय बहुत वाणीयुक्त प्रजा वा पशुयुक्त (**सूयवसिनी**) बहुत मिश्रित, अमिश्रित वस्तुओं से सहित भूमि वा वाणी (**पृथिवीम्**) भूमि (**हि**) निश्चय करके (**स्वाहा**) वेदवाणी वा (**भूतम्**) उत्पन्न हुए सब जगत् को (**मयूखैः**) ज्ञानप्रकाशकादि गुणों से (**अभितः**) सब ओर से (**दाधर्थ**) धारण और (**रोदसी**) प्रकाश वा पृथिवीलोक का (**व्यस्कभ्नाः**) सम्यक् स्तम्भन करते हो उन (**मनवे**) विज्ञानयुक्त (**दशस्या**) दंशन अर्थात् दांतों के बीच में स्थित जिह्वा के समान आचरण करने वाले आपके लिये (**एते**) ये हम लोग सब जगत् को निवेदन करते हैं॥१॥१६॥

जो (**विष्णो**) व्यापनशील प्राण जो (**इरावती**) उत्तम अन्नयुक्त (**धेनुमती**) पशुसहित (**सूयवसिनी**) बहुत मिश्रित, अमिश्रित पदार्थ वाली भूमि वा वाणी है, उस (**पृथिवीम्**) भूमि (**स्वाहा**) वा इन्द्रिय को (**मयूखैः**) किरणों, अपने बल आदि (**अभितः**) सब प्रकार (**दाधर्थ**) धारण करता वा (**रोदसी**) प्रकाश-भूमि को (**व्यस्कभ्नाः**) स्तम्भन

करता है, उस **(दशस्या)** दशन और दांत के समान आचरण करने वा **(मनवे)** विज्ञापनयुक्त सूर्य के लिये **(हि)** निश्चय करके **(भूतम्)** सब जगत् को करने के लिये ईश्वर ने दिया है, ऐसा **(एते)** ये सब हम लोग जानते हैं॥२॥१६॥

भावार्थः-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जैसे सूर्य अपनी किरणों से सब भूमि आदि जगत् को प्रकाश आकर्षण और विभाग करके धारण करता है, वैसे ही परमेश्वर और प्राण ने अपने सामर्थ्य से सब सूर्य आदि जगत् को धारण करके अच्छे प्रकार स्थापन किया है॥१६॥

देवश्रुतावित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। विष्णुर्देवता। स्वराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तौ कीदृशावित्युपदिश्यते॥

फिर वे प्राण और अपान कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

देवश्रुतौ देवेष्वाघोषतं प्राची प्रेतमध्वरं कल्पयन्तीऽऊर्ध्वं यज्ञं नयतं मा जिह्वरतम्। स्वं गोष्ठमावदतं देवी दुर्येऽआयुर्मा निर्वादिष्टं प्रजां मा निर्वादिष्टमत्र रमेथां वर्ष्मन् पृथिव्याः॥ १७॥

देवश्रुताविति देवऽश्रुतौ। देवेषु। आ। घोषतम्। प्राचीऽइति प्राची। प्र। इतम्। अध्वरम्। कल्पयन्तीऽइति कल्पयन्ती। ऊर्ध्वम्। यज्ञम्। नयतम्। मा। जिह्वरतम्। स्वम्। गोष्ठम्। गोस्थमिति गोऽस्थम्। आ। वदतम्। देवीऽइति देवी। दुर्येऽइति दुर्ये। आयुः। मा। निः। वादिष्टम्। प्रजामिति प्रऽजाम्। मा। निः। वादिष्टम्। अत्र। रमेथाम्। वर्ष्मन्। पृथिव्याः॥ १७॥

पदार्थः-**(देवश्रुतौ)** यथा दिव्यविद्याश्रुतौ विद्वांसौ **(देवेषु)** विद्वत्सु दिव्यगुणेषु वा प्रसिद्धौ **(आ)** समन्तात् **(घोषतम्)** घोषं कुर्वन्तौ स्तः **(प्राची)** प्रकृष्टमञ्चति याभ्यां ते रोदसी। अत्र सर्वत्र **सुपां सुलुग्०।** [अष्टा०७.१.३९] इति प्रथमाद्विवचनस्य लुक्। **(प्र)** प्रकृष्टार्थे **(इतम्)** प्राप्तौ भवतः **(अध्वरम्)** अहिंसनीयम् **(कल्पयन्ती)** समर्थयन्त्यौ **(ऊर्ध्वम्)** उत्कृष्टगुणम् **(यज्ञम्)** विज्ञानशिल्पसङ्गमनीयम् **(नयतम्)** सम्प्राप्नुतम् **(मा)** निषेधे **(जिह्वरतम्)** कुटिलौ भवतम् **(स्वम्)** स्वकीयम् **(गोष्ठम्)** गवां स्थानम्। अत्र **घञर्थे कविधानम्।** [अष्टा०वा०३.२.५८] इति कः। **(आ)** समन्तात् **(वदतम्)** उपदिशतः **(देवी)** दिव्यगुणसम्पन्ने **(दुर्ये)** गृहरूपे **(आयुः)** जीवनं तन्निमित्तं वा **(मा)** निषेधे **(निः)** नितराम् **(वादिष्टम्)** वदतम् **(प्रजाम्)** उत्पन्नां सृष्टिम् **(मा)** निषेधे **(निः)** नितराम् **(वादिष्टम्)** वदतम् **(अत्र)** अस्मिन् जगति **(रमेथाम्)** **(वर्ष्मन्)** सुखवृष्टियुक्ते **(पृथिव्याः)** अन्तरिक्षस्य मध्ये। अयं मन्त्रः (शत०(३।५।३।१३-२०) व्याख्यातः॥१७॥

अन्वयः-हे मनुष्या! यथा यौ देवेषु देवश्रुतौ घोषतं व्यक्तं शब्दं कुरुतो ये प्राची कल्पयन्त्यूर्ध्वं यज्ञमेतो नयतस्ते च रोदसी यथा मा जिह्वरतं कुटिले न भवेतां तथा कुरुतम्। ये देवी दुर्ये स्वं गोष्ठं समन्तात् प्राप्नुतस्ताभ्यां कस्याप्यायुर्मा निर्वादिष्टं प्रजां मा निर्वादिष्टं विनष्टाम्मा कुरुतं पृथिव्यामन्तरिक्षस्य च मध्ये वर्ष्मणि जगति रमेथां तथानुतिष्ठत॥१७॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैर्यावज्जगदन्तरिक्षस्य मध्ये वर्त्तते, तावता सर्वेण बहूनि सुखानि सम्पादनीयानि॥१७॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम जैसे जो (**देवेषु**) विद्वान् वा दिव्यगुणों में (**देवश्रुतौ**) विद्वानों से श्रवण किये हुए प्राण, अपान वायु (**घोषतम्**) व्यक्त शब्द करें और जो (**प्राची**) प्राप्त करने वा (**कल्पयन्ती**) सामर्थ्य वाली प्रकाश भूमि (**ऊर्ध्वम्**) उत्तम गुणयुक्त (**यज्ञम्**) विज्ञान वा शिल्पमय यज्ञ को (**प्रेतम्**) जनाते रहें (**नयतम्**) प्राप्त करें (**मा जिह्वरतम्**) कुटिल गति वाले न हों, जो (**देवी**) दिव्यगुण सम्पन्न (**दुर्ये**) गृहरूप (**स्वम्**) अपने (**गोष्ठम्**) किरण और अवयवों के स्थान के (**आवदतम्**) उपदेश निमित्तक हों (**आयुः**) आयु को (**मा निर्वादिष्टम्**) नष्ट न करें (**प्रजाम्**) उत्पन्न हुई सृष्टि को (**मा निर्वादिष्टम्**) न नष्ट करें और वे (**पृथिव्याः**) आकाश के मध्य (**अत्र**) इस (**वर्ष्मन्**) सुख से सेवनयुक्त जगत् में (**रमेथाम्**) रमण करें तथा किया करो॥१७॥

भावार्थः-मनुष्यों को जितना जगत् अन्तरिक्ष में वर्त्तता है, उतने से बहुत-बहुत उत्तम सुखों का सम्पादन करना चाहिये॥१७॥

विष्णोर्नु कमित्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः। विष्णुर्देवता। स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ व्यापकेश्वरगुणा उपदिश्यन्ते॥

अब अगले मन्त्र में व्यापक ईश्वर के गुणों का उपदेश किया है॥

विष्णो॒र्नु कं॑ वी॒र्या॒णि॒ प्र वो॑चं॒ यः पार्थि॑वानि वि॒म॒मे रजा॑ᳬसि।

योऽअस्क॑भाय॒दुत्त॑रꣳ स॒धस्थं॑ विचक्रमा॒णस्त्रे॒धोरु॑गा॒यो विष्ण॑वे त्वा॥१८॥

विष्णोः॑। नु। कम्। वी॒र्या॒णि॑। प्र। वो॒च॒म्। यः। पार्थि॑वानि। वि॒म॒मऽइति॑ विऽम॒मे। रजा॑ᳬसि। यः। अस्क॑भायत्। उत्त॑रमित्युत्ऽत॑रम्। स॒धस्थ॒मिति॑ स॒धऽस्थ॑म्। वि॒च॒क्र॒मा॒ण इति॑ विऽचक्र॒मा॒णः। त्रे॒धा। उ॒रु॒गा॒यऽइत्यु॑रुऽगा॒यः। विष्ण॑वे। त्वा॥१८॥

पदार्थः-(**विष्णोः**) व्यापकस्य परमेश्वरस्य (**नु**) शीघ्रम् (**कम्**) सुखस्वरूपम् (**वीर्याणि**) पराक्रमयुक्तानि कर्माणि (**प्र**) प्रकृष्टार्थे (**वोचम्**) कथयेयम् (**यः**) अनन्तपराक्रमः (**पार्थिवानि**) पृथिव्या विकारा अन्तरिक्षे विदितानि वा। अत्र **तत्र विदित इति च।** (अष्टा०५।१।४३) अनेनाञ् प्रत्ययः। (**विममे**) विविधतया मिमीते (**रजांसि**) लोकान्, **लोका रजांस्युच्यन्ते।** (निरु०४।१९) (**यः**) सर्वाधारः (**अस्कभायत्**) प्रतिबध्नाति (**उत्तरम्**) अन्तावयवम् (**सधस्थम्**) यत्सह तिष्ठति तत्कारणं सत्सङ्गृह्य (**विचक्रमाणः**) यथायोग्यं जगद्रचनाय कारणपादान् प्रक्षिपन् नियोजयन् (**त्रेधा**) त्रिःप्रकाराणि (**उरुगायः**) यो बहूनर्थान् वेदद्वारा गायत्युपदिशति सः (**विष्णवे**) व्यापनशीलाय यज्ञाय (**त्वा**) त्वाम्। अयं मन्त्रः (शत०(३।५।३।२१) व्याख्यातः॥१८॥

अन्वयः-हे मनुष्या! यूयं यो विचक्रमाण उरुगायो विष्णुर्जगदीश्वरः पार्थिवानि रजांसि त्रेधा विममे, यः उत्तरसधस्थमस्कभायत् प्रतिबध्नाति, यो विष्णवे उपासनादियज्ञायाश्रीयते यस्य विष्णोर्वीर्याणि विद्वांसो वदन्ति, यं सर्वे संश्रयन्ते, कं सुखरूपं देवमहं प्रवोचं नु शीघ्रमाश्रये॥१८॥

भावार्थः-सर्वैर्मनुष्यैर्येन परमेश्वरेण पृथिवीसूर्यत्रसरेणुभेदेन त्रिविधं जगद्रचित्वा ध्रियते स एवोपासनीयः॥१८॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम (**यः**) जो (**विचक्रमाणः**) जगत् रचने के लिये कारण के अंशों को युक्त करता हुआ (**उरुगायः**) बहुत अर्थों को वेद द्वारा उपदेश करने वाला जगदीश्वर (**पार्थिवानि**) पृथिवी के विकार अर्थात्

पृथिवी के गुणों से उत्पन्न होने वाले या अन्तरिक्ष में विदित **(त्रेधा)** तीन प्रकार के **(रजांसि)** लोकों को **(विममे)** अनेक प्रकार से रचता है, जो **(उत्तरम्)** पिछले अवयवों के **(सधस्थम्)** साथ रहने वाले कारण को **(अस्कभायत्)** रोक रखता है **(यः)** जो **(विष्णवे)** उपासनादि यज्ञ के लिये आश्रय किया जाता है, उस **(विष्णोः)** व्यापक परमेश्वर के **(वीर्याणि)** पराक्रमयुक्त कर्मों का **(प्रवोचम्)** कथन करूं और हे परमेश्वर! **(नु)** शीघ्र ही **(कम्)** सुखस्वरूप **(त्वा)** आपका आश्रय करता हूं॥१८॥

भावार्थः-सब मनुष्यों को जिस परमेश्वर ने पृथिवी, सूर्य और त्रसरेणु आदि भेद से तीन प्रकार के जगत् को रचकर धारण किया है, उसी की उपासना करनी चाहिये॥१८॥

दिवो वेत्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः। विष्णुर्देवता। निचृदार्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह जगदीश्वर कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

दिवो वा विष्णऽउत वा पृथिव्या महो वा विष्णऽउरोरन्तरिक्षात्।
उभा हि हस्ता वसुना पृणस्वा प्रयच्छ दक्षिणादोत सव्याद्विष्णवे त्वा॥१९॥

दिवः। वा। विष्णोऽइति विष्णो। उत। वा। पृथिव्याः। महः। वा। विष्णोऽइति विष्णो। उरोः। अन्तरिक्षात्। उभा। हि। हस्ता। वसुना। पृणस्व। आ। प्र। यच्छ। दक्षिणात्। आ। उत। सव्यात्। विष्णवे। त्वा॥१९॥

पदार्थः-**(दिवः)** प्रसिद्धात् विद्युतो वा **(वा)** पक्षान्तरे **(विष्णो)** वेवेष्टि व्याप्नोति चराचरं जगत् तत्सम्बुद्धौ **(उत)** अपि **(वा)** पक्षान्तरे **(पृथिव्याः)** भूमेः सकाशात् **(महः)** महत्तत्त्वात् **(वा)** पक्षान्तरे **(विष्णो)** सर्वान्तःप्रविष्ट! **(उरोः)** बहोरनन्तान् **(अन्तरिक्षात्)** आकाशात् **(उभा)** द्वौ **(हि)** खलु **(हस्ता)** बलवीर्य्यौ बाहू वा। अत्रोभयत्र **सुपाम्०।** [अष्टा०७.१.३९] इत्याकारादेशः। **(वसुना)** द्रव्येण सह **(पृणस्व)** प्रीणीहि प्रीणय वा **(आ)** समन्तात् **(प्र)** प्रकृष्टार्थे **(यच्छ)** देहि **(दक्षिणात्)** दक्षिणपार्श्वात् **(आ)** अभितः **(उत)** च **(सव्यात्)** वामपार्श्वात् **(विष्णवे)** यज्ञाय **(त्वा)** त्वाम्। अयं मन्त्रः (शत०(३।५।३।२२) व्याख्यातः॥१९॥

अन्वयः-हे विष्णो! त्वं कृपयाऽस्मान् दिवः प्रसिद्धाग्नेर्विद्युतो वा वसुनाऽऽपृणस्व सुखानि प्रयच्छ, उतापि पृथिव्याः सकाशादुत्पन्नेभ्यः पदार्थेभ्यो महत्तत्त्वाच्चाव्यक्तादुतोरोरन्तरिक्षाद्वा वसुना द्यां पृणस्व। हे विष्णो! त्वं दक्षिणादुत च सव्यात् सुखानि प्रयच्छ, तं त्वा त्वां विष्णवे यज्ञाय वयमर्चयेम॥१९॥

भावार्थः-येन व्यापकेनेश्वरेण महत्तत्त्वसूर्य्यभूम्यन्तरिक्षवाय्वग्निजलादीन् पदार्थान् तत्रस्थानन्यांश्चौषध्यादीन् मनुष्यादींश्च रचित्वा धृत्वा सर्वेभ्यः प्राणिभ्यः सुखानि धीयन्ते तस्यैवोपासना सर्वैः कार्येति॥१९॥

पदार्थः-हे **(विष्णो)** सर्वव्यापी परमेश्वर! आप कृपा करके हम लोगों को **(दिवः)** प्रसिद्ध वा बिजुली अग्नि से **(वसुना)** द्रव्य के साथ **(आपृणस्व)** सुखों से पूर्ण कीजिये और **(पृथिव्याः)** भूमि से उत्पन्न हुए पदार्थ **(उत)** भी **(वा)** अथवा **(महः)** महत्तत्त्व अव्यक्त और **(उत)** भी **(उरोः)** बहुत **(अन्तरिक्षात्)** अन्तरिक्ष से द्रव्य के साथ सुखों को **(हि)** निश्चय करके पूर्ण कीजिये **(विष्णो)** सब में प्रविष्ट ईश्वर! आप **(दक्षिणात्)** दक्षिण **(उत)** और **(सव्यात्)** वाम पार्श्व से सुखों को दीजिये **(त्वा)** उस आप को **(विष्णवे)** योग विज्ञान यज्ञ के लिये पूजन करते हैं॥१९॥

भावार्थः-सब मनुष्यों को योग्य है कि जिस व्यापक परमेश्वर ने महत्तत्त्व, सूर्य, भूमि, अन्तरिक्ष, वायु, जल आदि पदार्थ वा उन में रहने वाले ओषधी आदि वा मनुष्यादिकों को रच धारण कर सब प्राणियों के लिये सुखों को धारण करता है, उसी की उपासना करें॥१९॥

प्र तद्विष्णुरित्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः। विष्णुर्देवता। विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

प्र तद्विष्णु स्तवते वीर्य्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः।

यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा॥२०॥

प्र। तत्। विष्णुः। स्तवते। वीर्येण। मृगः। न। भीमः। कुचरः। गिरिष्ठाः। गिरिस्था इति गिरिऽस्थाः। यस्य। उरुषु। त्रिषु। विक्रमणेष्विति विऽक्रमणेषु। अधिक्षियन्तीत्यधिऽक्षियन्ति। भुवनानि। विश्वा॥२०॥

पदार्थः-(**प्र**) प्रकृष्टार्थे (**तत्**) तस्मात् (**विष्णुः**) व्यापकेश्वरः (**स्तवते**) स्तौत्युपदिशति। अत्र **बहुलं छन्दसि।** [अष्टा०२.४.७३] इति शपो ह्यलुक्। (**वीर्येण**) पराक्रमेण (**मृगः**) यो मार्ष्टयन्विच्छति वधाय जीवानिति ईश्वरपक्षे तु मार्ष्टि व्यवस्थापनाय जीवानिति (**न**) इव (**भीमः**) बिभ्यति जीवा अस्मादिति व्याघ्रः। **भीमादायोऽपादाने।** [अष्टा०३.४.७५] इति निपातनात्। (**कुचरः**) यः कुत्सितं प्राणिवधं चरति। (**गिरिष्ठाः**) गिरौ तिष्ठतीति। क्विबन्तोऽयं प्रयोगः। (**यस्य**) (**उरुषु**) बहुषु (**त्रिषु**) त्रिविधेषु जगत्सु (**विक्रमणेषु**) विविधक्रमेषु (**अधिक्षियन्ति**) निवसन्ति (**भुवनानि**) लोकजातानि (**विश्वा**) सर्वाणि। अयं मन्त्रः (शत०(३।५।३।२३) व्याख्यातः॥२०॥

अन्वयः-यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेषु विश्वानि भुवनान्यधिक्षियन्ति, यश्चासौ विष्णुर्वीर्येण भीमः कुचरो गिरिष्ठा मृगो न सिंह इव विचरन्नुपदिशति, तत् तस्मात् स नैव कदापि विस्मरणीयः॥२०॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। यथा सिंहः स्वपराक्रमेण यथेष्टं विक्रमते, तथैव जगदीश्वरः खलु पराक्रमेण सर्वान् लोकान् नियच्छति॥२०॥

पदार्थः-(**यस्य**) जिसके (**उरुषु**) अत्यन्त (**त्रिषु**) (**विक्रमणेषु**) विविध प्रकार के क्रमों में (**विश्वा**) सब (**भुवनानि**) लोक (**अधिक्षियन्ति**) निवास करते हैं. और वह (**विष्णुः**) व्यापक ईश्वर (**वीर्येण**) अपने पराक्रम से (**भीमः**) भय करने वाले (**कुचरः**) निन्दित प्राणिवध को करने और (**गिरिष्ठाः**) पर्वत में रहने वाले (**मृगः**) सिंह के (**न**) समान पापियों को घोर दुःख देता हुआ (**प्रस्तवते**) उपदेश करता है, (**तत्**) इससे उसको कभी न भूलना चाहिये॥२०॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे सिंह अपने पराक्रम से अपनी इच्छा के समान अन्य पशुओं का नियम करता फिरता है वैसे जगदीश्वर अपने पराक्रम से सब लोकों का नियम करता है॥२०॥

विष्णो रराटमित्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः। विष्णुर्देवता। भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनः स कथंभूत इत्युपदिश्यते॥

फिर वह जगदीश्वर कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

विष्णो॑ र॒रार॑मसि॒ विष्णो॒: श्नप्त्रे॑ स्थो॒ विष्णो॒: स्यूर॑सि॒ विष्णो॑र्ध्रु॒वो॒ऽसि॒।
वै॒ष्ण॒वम॑सि॒ विष्ण॑वे त्वा॥ २१॥

विष्णो॑:। र॒राट॑म्। अ॒सि॒। विष्णो॑:। श्नप्त्रे॒ऽइति॒ श्नप्त्रे॑। स्थ॒:। विष्णो॑:। स्यू॒:। अ॒सि॒। विष्णो॑:। ध्रु॒व:। अ॒सि॒। वै॒ष्ण॒वम्। अ॒सि॒। विष्ण॑वे। त्वा॒॥ २१॥

पदार्थः-(**विष्णोः**) व्यापकस्य सकाशात् (**रराटम्**) परिभाषितं जगत् (**असि**) अस्ति। अत्र सर्वत्र व्यत्ययः। (**विष्णोः**) सर्वत्राभिप्रविष्टस्य (**श्नप्त्रे**) शुद्धे इव। अत्र ष्णा शौच इत्यस्य वर्णव्यत्ययेन सस्य शः। (**स्थः**) तिष्ठतः (**विष्णोः**) सर्वसुखाभिव्याप्तात् (**स्यूः**) यः सीव्यति सः (**असि**) अस्ति (**विष्णोः**) सर्वजगत्पालकात् (**ध्रुवः**) निश्चलः (**असि**) अस्ति (**वैष्णवम्**) यद् विष्णोर्यज्ञस्येदं साधनं साधकं वा तत् (**असि**) अस्ति (**विष्णवे**) यज्ञाय (**त्वा**) त्वाम्। अयं मन्त्रः (शत०(३।५।३।२४-२५) व्याख्यातः॥२१॥

अन्वयः-यदिदं विविधं जगदस्यस्ति तद्विष्णो रराटमस्यस्ति विष्णोः सकाशादुत्पद्य वर्त्तत इति यावत्। विष्णोः स्यूरस्यस्ति सर्वं जगद्वैष्णवमस्यस्ति यस्य विष्णोर्जगति द्वे श्नप्त्रे इव जडचेतनसमूहौ स्थः वर्त्तेते, तं सर्वजगदुत्पादकं जगदीश्वरं त्वां विष्णवे यज्ञानुष्ठानाय वयमाश्रयामः॥२१॥

भावार्थः-मनुष्यैः सर्वस्यास्य जगतः परमेश्वर एव रचको धारको व्यापक इष्टदेवोऽस्तीति विज्ञाय सर्वकामसिद्धिः सम्पादनीया॥२१॥

पदार्थः-जो यह अनेक प्रकार का जगत् है, वह (**विष्णोः**) व्यापक परमेश्वर के सकाश से (**रराटम्**) उत्पन्न होकर प्रकाशित है, (**विष्णोः**) सर्व सुख प्राप्त करने वाले ईश्वर से (**स्यूः**) विस्तृत (**असि**) है। [(**विष्णोः**) सब जगत् के पालक ईश्वर से उत्पन्न होने के कारण अपनी-अपनी सत्ता में (**ध्रुवः**) निश्चल है,] सब जगत् (**वैष्णवम्**) यज्ञ का साधन (**असि**) है और (**विष्णोः**) सब में प्रवेश करने वाले जिस ईश्वर के (**श्नप्त्रे**) जड़-चेतन के समान दो प्रकार का शुद्ध जगत् है, उस सब जगत् के उत्पन्न करने वाले जगदीश्वर! हम लोग (**त्वा**) आप को (**विष्णवे**) यज्ञ का अनुष्ठान करने के लिये आश्रय करते हैं॥२१॥

भावार्थः-मनुष्यों की उचित है कि इस सब जगत् का परमेश्वर ही रचने और धारण करने वाला व्यापक इष्टदेव है, ऐसा जानकर सब कामनाओं की सिद्धि करें॥२१॥

देवस्य त्वेत्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः। यज्ञो देवता। पूर्वार्द्धस्य साम्नी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। आदद इत्युत्तरस्य भुरिगार्षी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनरयं यज्ञः किमर्थः कर्त्तव्य इत्युपदिश्यते॥

फिर यह यज्ञ किसलिये करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

दे॒वस्य॑ त्वा सवि॒तुः प्र॑स॒वे॒ऽश्विनो॑र्बा॒हुभ्यां॑ पू॒ष्णो हस्ता॑भ्याम्।
आद॑दे॒ नार्य॑सी॒दम॒हꣳ रक्ष॑सां ग्री॒वाऽअपि॑ कृन्तामि।
बृ॒हन्न॑सि बृ॒हद्र॑वा बृ॒ह॒तीमिन्द्रा॑य॒ वाचं॑ वद॥ २२॥

देवस्य॑। त्वा॒। स॒वि॒तुः। प्र॒स॒व इति॑ प्रऽस॒वे। अ॒श्विनोः॑। बा॒हुभ्या॒मिति॑ बा॒हुऽभ्या॑म्। पू॒ष्णः। हस्ता॑भ्या॒मिति॒ हस्ता॑ऽभ्याम्। आद॑दे। नारी॑। अ॒सि॒। इ॒दम्। अ॒हम्। रक्ष॑साम्। ग्री॒वाः। अपि॑। कृ॒न्ता॒मि॒। बृ॒हन्। अ॒सि॒। बृ॒हद्र॑वा॒ इति॑ बृ॒हत्ऽर॑वाः। बृ॒ह॒तीम्। इन्द्रा॑य। वाच॑म्। व॒द॥ २२॥

पदार्थः-(**देवस्य**) सर्वप्रकाशकस्यानन्दप्रदेश्वरस्य (**त्वा**) तम् (**सवितुः**) सकलस्य जगत उत्पादकस्य (**प्रसवे**) यथा सृष्टौ (**अश्विनोः**) प्राणापानयोरध्वर्य्योर्वा (**बाहुभ्याम्**) यथा बलवीर्याभ्याम् (**पूष्णः**) पुष्टिकारिकायाः पृथिव्याः। **पूषोति पृथिवीनामसु पठितम्।** (निघं०१।१) (**हस्ताभ्याम्**) यथाऽऽनन्दप्रदाभ्यां धारणाकर्षणाभ्याम् (**आ**) समन्तात् (**ददे**) स्वीकरोमि (**नारी**) नराणामियं क्रिया (**असि**) अस्ति वा, अत्र सर्वत्र व्यत्ययः। (**इदम्**) प्रत्यक्षं पालकं कर्म (**अहम्**) (**रक्षसाम्**) दुष्टस्वभावानाम् (**ग्रीवाः**) कण्ठात् (**अपि**) निश्चये (**कृन्तामि**) छिन्नद्मि (**बृहत्**) वर्धमानो वर्धयन् (**असि**) अस्ति वा (**बृहद्रवाः**) यथा बृहच्छब्दवान् (**बृहतीम्**) महतीम् (**इन्द्राय**) परमैश्वर्यप्रापकाय (**वाचम्**) वाणीम् (**वद**) उपदिश। अयं मन्त्रः (शत०(३।५।४।४-८) व्याख्यातः॥२२॥

अन्वयः-हे मनुष्य! यथाऽहं देवस्य सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्यथा बाहुभ्यां पूष्णो यथा हस्ताभ्यां यं यज्ञमाददे त्वा तं त्वमपि तथादत्स्व। यथाऽहं नारिं यज्ञक्रियामिदं यज्ञानुष्ठानं कर्म चाददे तथा त्वमप्यादत्स्व। यथाऽहं रक्षसां ग्रीवाः कृन्तामि तथा त्वमपि कृन्त। यथा चाहमेतदनुष्ठानेन बृहद्रवा बृहन्भवामि तथा त्वमपि भव। यथा चाहमिन्द्राय बृहतीं वाचं वदामि तथा चैतां त्वमपि वद॥२२॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा विद्वद्भिरीश्वरसृष्टौ विद्यया पदार्थान् सुपरीक्ष्य कार्येषूपयुज्य सुखानि प्राप्यन्ते, तथैव मनुष्यैरिदमनुष्ठाय सर्वाणि सुखानि प्रापणीयानि॥२२॥

पदार्थः-हे विद्वान् मनुष्य! जैसे मैं (**देवस्य**) सब को प्रकाश करने आनन्द देने वा (**सवितुः**) सकल जगत् को उत्पन्न करने वाले ईश्वर के (**प्रसवे**) उत्पन्न किये हुए संसार में जिस यज्ञ को (**आददे**) ग्रहण करता हूं, वैसे तू भी (**त्वा**) उसको ग्रहण कर। जैसे मैं (**नारी**) यज्ञक्रिया वा (**इदम्**) यज्ञ के अनुष्ठान का ग्रहण करता हूं, वैसे तू भी ग्रहण कर। जैसे (**अहम्**) मैं (**रक्षसाम्**) दुष्ट स्वभाव वाले शुत्रओं के (**ग्रीवाः**) शिरों को भी (**अपिकृन्तामि**) छेदन करता हूं, वैसे तुम भी छेदन करो। जैसे मैं इस अनुष्ठान से (**बृहद्रवाः**) बड़ाई पाया बड़ा होता हूं, वैसे तू भी हो और जैसे मैं (**इन्द्राय**) परमैश्वर्य की प्राप्ति के लिये (**बृहतीम्**) बड़ी (**वाचम्**) वाणी का उपदेश करता हूं, वैसे तू भी (**वद**) कर॥२२॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विद्वान् लोग ईश्वर की सृष्टि में विद्या से पदार्थों की परीक्षा करके कार्य्यों में उपयोग कर सुखों को प्राप्त करते हैं, वैसे ही सब मनुष्यों को इस यज्ञ का अनुष्ठान कर सब सुखों को पहुंचना चाहिये॥२२॥

रक्षोहणमित्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः। यज्ञो देवता। आद्यस्य याजुषी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥ मध्यमस्य स्वराड्ब्राह्म्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः। यं मे सबन्धुरित्युत्तरस्य स्वराड्ब्राह्म्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

सृष्टेर्मनुष्यैः कीदृश उपकारो ग्राह्य इत्युपदिश्यते॥

सृष्टि से मनुष्यों को किस प्रकार का उपकार ग्रहण करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया हैं॥

रक्षोहणं बलगहनं वैष्णवीमिदमहं तं बलगमुत्किरामि यं मे निष्ट्यो यममात्यो निचखानेदमहं तं बलगमुत्किरामि यं मे समानो यमसमानो निचखानेदमहं तं बलगमुत्किरामि यं मे सबन्धुर्यमसबन्धुर्निचखानेदमहं तं बलगमुत्किरामि यं मे सजातो यमसजातो निचखानोत्कृत्यङ्किरामि॥ २३॥

रक्षोहणम्। रक्षोहनमिति रक्षःऽहनम्। बलगहनमिति बलऽगहनम्। वैष्णवीम्। इदम्। अहम्। तम्। बलगम्। उत्। किरामि। यम्। मे। निष्ट्यः। यम्। अमात्यः। निचखानेति निऽचखान। इदम्। अहम्। तम्। बलगम्। उत्। किरामि। यम्। मे। समानः। यम्। असमानः। निचखानेति निऽचखान। इदम्। अहम्। तम्। बलगम्। उत्। किरामि। यम्। मे। सबन्धुरिति सऽबन्धुः। यम्। असबन्धुरित्यसऽबन्धुः। निचखानेति निऽचखान। इदम्। अहम्। तम्। बलगम्। उत्। किरामि। यम्। मे। सजात इति सऽजातः। यम्। असजातः। निचखानेति निऽचखान। उत्। कृत्याम्। किरामि॥ २३॥

पदार्थः-(**रक्षोहणम्**) यथा येन धार्मिकेण पुरुषेण रक्षांसि हन्यन्ते तथा (**बलगहनम्**) यथा यो बलानि गाहते तम्। अत्र गाहूधातोर्बाहुलकादौणादिकः क्युः प्रत्ययो ह्रस्वत्वं च (**वैष्णवीम्**) विष्णोर्व्यापकस्येमां वाचम् (**इदम्**) कर्म (**अहम्**) कर्मानुष्ठाता (**तम्**) यज्ञम् (**बलगम्**) बलं गच्छन्तम् (**उत्**) उत्कृष्टम् (**किरामि**) विक्षिपामि (**यम्**) यज्ञम् (**मे**) मम (**निष्ट्यः**) नेशन्ति समादधते येन यज्ञेन तत्सहितः साधुर्विद्वान्। अत्र निशधातोर्बाहुलकादौणादिकस्तः प्रत्ययस्ततो यत्। (**यम्**) यज्ञम् (**अमात्यः**) मेधावी खानकः प्रधानभृत्यः (**निचखान**) यथा नितरां खातवान् (**इदम्**) भूगर्भविद्यापरीक्षार्थं स्थानम् (**अहम्**) भूगर्भविद्यावेत्ता (**तम्**) कृष्याद्याख्यं यज्ञम् (**बलगम्**) बलप्रापकम् (**उत्**) उत्कृष्टे (**किरामि**) (**यम्**) अध्ययनाध्यापनाख्यम् (**मे**) मम (**समानः**) सदृशः (**यम्**) पूर्वोक्तम् (**असमानः**) असदृशः (**निचखान**) यथा नितरां खनति (**इदम्**) कर्म (**अहम्**) अध्यापकोऽध्येता वा (**तम्**) (**बलगम्**) आत्मबलप्रापकम् (**उत्**) उत्कृष्टे (**किरामि**) विक्षपामि (**यम्**) परस्परं पालनहेतुं यज्ञम् (**मे**) मम (**सबन्धुः**) यथा समाना बन्धवो यस्य मित्रस्य सः (**यम्**) पूर्वोक्तम् (**असबन्धुः**) यथा असमाना बन्धवो यस्य सः (**निचखान**) यथा नितरां खातवान् खनति वा (**इदम्**) कर्म (**अहम्**) सर्वसुहृत् (**तम्**) (**बलगम्**) राज्यबलप्रापकम् (**उत्**) उत्कृष्टे (**किरामि**) प्रक्षिपामि (**यम्**) उत्कर्षप्रापकम् (**मे**) मम (**सजातः**) यथा सहैव जातः (**यम्**) उक्तम् (**असजातः**) यथा यः सह न जातः (**निचखान**) यथा नित्यं खातवान् वा (**उत्**) उत्कृष्टे (**कृत्याम्**) करोति यया ताम् (**किरामि**) प्रक्षिपामि। अयं मन्त्रः (शत०(३।५।४।८-१२) व्याख्यातः॥२३॥

अन्वयः-हे विद्वन्मनुष्य! यथा कश्चिद् बलगहनं यथा रक्षोहणं वैष्णवीं वाचमनुष्ठाय यं बलगं यज्ञं यथाहमुत्किरामि तथा त्वमप्येतमुत्किर। यथा कस्यचिन्मे मम निष्ट्योऽमात्यो यं यज्ञमिदं स्थानादि च निचखान, तथा तव भृत्यो निखनतु। यथाऽहं यं बलगं यज्ञमुत्किरामि तथा तं त्वमप्युत्किर। यथा मे मम वा समानोऽसमानश्च यं यज्ञमिदं कर्म च निचखान तथा तवापि निखनतु। यथाहं यं बलगं यज्ञमुत्किरामि तथा त्वमप्येतमुत्किर। यथा मे मम सबन्धुरसबन्धुश्च यं यज्ञमिदं कर्म च निचखान, तथा तवापि चैतं निखनतु। यथाऽहं यं बलगं यज्ञमुत्किरामि तथा

त्वमप्येतमुत्किर। यथा मे मम सजातोऽसजातश्च यं यज्ञं कृत्यां निचखान तथा तवाप्येतमेतां च निखनतु। यथाहमेतत् सर्वमुत्किरामि तथा त्वमप्येनमुत्किर॥२३॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैरस्यामीश्वरसृष्टौ धार्मिकविद्वदनुकरणं कार्यं नेतरेषामिति॥२३॥

पदार्थः-हे विद्वन् मनुष्य! जैसे **(अहम्)** मैं **(बलगहनम्)** बलों को बिडोलने और **(रक्षोहणम्)** राक्षसों के हनन करने वाले कर्म और **(वैष्णवीम्)** व्यापक ईश्वर की वेदवाणी का अनुष्ठान करके **(यम्)** जिस **(बलगम्)** बल प्राप्त कराने वाले यज्ञ को **(उत्किरामि)** उत्कृष्टपन से प्रेरित अर्थात् इस संसार में प्रकाशित करता हूं **(तम्)** उस यज्ञ को वैसे ही तू भी **(इदम्)** इसको प्रकाशित कर और जैसे **(मे)** मेरा **(निष्ट्यः)** यज्ञ में कुशल **(अमात्यः)** मेधावी विद्वान् मनुष्य **(यम्)** जिस यज्ञ वा **(इदम्)** भूगर्भ विद्या की परीक्षा के लिये स्थान को **(निचखान)** निःसन्देह करता है, वैसे **(तम्)** उसको तेरा भी भृत्य खोदे। जैसे **(अहम्)** भूगर्भविद्या का जानने वाला मैं **(यम्)** जिस **(बलगम्)** बल प्राप्त करने वाले खेती आदि यज्ञ वा **(इदम्)** खननरूपी कर्म को **(उत्किरामि)** अच्छे प्रकार सम्पादन करता हूं, वैसे **(तम्)** उस को तू भी कर। जैसे **(मे)** मेरा **(समानः)** सदृश वा असदृश मनुष्य **(यम्)** जिस कर्म को **(निचखान)** खनन करता है, वैसे तेरा भी खोदे। जैसे **(अहम्)** पढ़ने-पढ़ाने वाला मैं **(यम्)** जिस **(बलगम्)** आत्मबल प्राप्त करने वाले यज्ञ वा **(इदम्)** इस पढ़ने-पढ़ाने रूपी कार्य को **(उत्किरामि)** सम्पन्न करता हूं, वैसे **(तम्)** उसको तू भी कर। जैसा **(मे)** मेरा **(सबन्धुः)** तुल्य बन्धु मित्र वा **(असबन्धुः)** तुल्य बन्धु रहित अमित्र **(यम्)** जिस पालनरूपी यज्ञ वा इस कर्म को **(निचखान)** निःसन्देह करता है, वैसे उसको तेरा भी करे। जैसे **(अहम्)** सब का मित्र मैं **(यम्)** जिस **(बलगम्)** राज्यबल प्राप्त करने वाले यज्ञ वा **(इदम्)** इस कार्य को **(उत्किरामि)** सम्पन्न करता हूं, वैसे **(तम्)** उसको तू भी कर। जैसे **(सजातः)** साथ उत्पन्न हुआ **(असजातः)** साथ से अलग उत्पन्न हुआ मनुष्य **(यम्)** जिस यज्ञ वा **(कृत्याम्)** उत्तम क्रिया को **(निचखान)** निःसन्देह करता है, वैसा तेरा भी इस यज्ञ वा इस क्रिया को निःसन्देह करे। जैसे मैं इस सब कर्म को **(उत्किरामि)** सम्पादन करता हूं, वैसे तुम भी करो॥२३॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को ईश्वर की इस सृष्टि में विद्वानों का अनुकरण सदा करना और मूर्खों का अनुकरण कभी न करना चाहिये॥२३॥

स्वराडसीत्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः। सूर्यविद्वांसौ देवते। भुरिगार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथ सूर्यसभाद्यध्यक्षगुणा उपदिश्यन्ते॥

अब अगले मन्त्र में सूर्य और सभाध्यक्ष के गुणों का उपदेश किया है॥

स्वराडसि सपत्नहा सत्रराडस्यभिमातिहा जनराडसि रक्षोहा सर्वराडस्यमित्रहा॥२४॥

स्वराडिति स्वऽराट्। असि। सपत्नहेति सपत्नऽहा। सत्रराडिति सत्रऽराट्। असि। अभिमातिहेत्यभिमातिऽहा। जनराडिति जनऽराट्। असि। रक्षोहेति रक्षःऽहा। सर्वराडिति सर्वऽराट्। असि। अमित्रहेत्यमित्रऽहा॥२४॥

पदार्थः-**(स्वराट्)** यः स्वयं राजते सः **(असि)** अस्ति वा, अत्र सर्वत्र पक्षे व्यत्ययः। **(सपत्नहा)** यः सपत्नान् शत्रून् मेघावयवान् वा हन्ति सः **(सत्रराट्)** यः सत्रेषु यज्ञेषु राजते सः **(असि)** अस्ति वा **(अभिमातिहा)**

येऽभिमिमत इत्यभिमातयस्तान् हन्ति सः, अत्रौणादिकः क्तिच्। **(जनराट्)** यो जनेषु धार्मिकेषु विद्वत्सु राजते सः **(असि)** अस्ति वा **(रक्षोहा)** यो रक्षांसि दुष्टान् हन्ति सः **(सर्वराट्)** यः सर्वस्मिन् राजते सः **(असि)** अस्ति वा **(अमित्रहा)** यो येन वाऽमित्रान् शत्रून् हन्ति सः। अयं मन्त्रः (शत०(३।५।४।१४।) व्याख्यातः॥२४॥

अन्वयः-हे विद्वन् मनुष्य! यतस्त्वं स्वराडसि तस्मात् सपत्नहाऽसि भवसि। यतस्त्वं सत्रराडसि तस्माभिमातिहा वर्त्तसे, यतस्त्वं जनराडसि तस्माद्रक्षोहाऽसि भवसि। यतस्त्वं सर्वराडसि तस्मादमित्रहाऽसि भवसि। यतस्त्वं सर्वराडसि तस्मादमित्रहाऽसि भवसीत्येकः॥१॥२४॥

यतोऽयं सूर्यलोकः स्वराडस्ति तस्मात् सपत्नहा भवति, यतोऽयं सत्रराडस्ति तस्मादभिमातिहा वर्त्तते। यतोऽयं जनराडस्ति तस्माद्रक्षोहा जायते। यतोऽयं सर्वराडस्ति तस्मादमित्रहा वर्त्तत इति द्वितीयः॥२४॥

भावार्थः-अत्र श्लेषालङ्कारः। हे विद्वन्! यथा सूर्यः स्वप्रकाशेन चोरव्याघ्रादीन् भीषयित्वा सर्वान् सुखयति तथैव त्वं शत्रून्निवार्य्य प्रजाः सुखय॥२४॥

पदार्थः-हे विद्वान् मनुष्य! जिस कारण आप **(स्वराट्)** अपने आप प्रकाशमान **(असि)** हैं, इससे **(सपत्नहा)** शत्रुओं के मारनेवाले होते हो। जिस कारण तुम **(सत्रराट्)** यज्ञों में प्रकाशमान हो, इससे **(अभिमातिहा)** अभिमानयुक्त मनुष्यों को मारने वाले होते हो, जिस से **(जनराट्)** धार्मिक विद्वानों में प्रकाशित हैं, इससे **(रक्षोहा)** राक्षस दुष्टों को मारने वाले होते हैं, जिससे आप **(सर्वराट्)** सब मे प्रकाशित हैं, इस से **(अमित्रहा)** अमित्र अर्थात् शत्रुओं के मारने वाले होते हैं॥१॥२४॥

जिस कारण यह सूर्यलोक **(स्वराट्)** अपने आप **(असि)** प्रकाशित है, इससे **(सपत्नहा)** मेघ के अवयवों को काटने वाला होता है। जिस कारण यह **(सत्रराट्)** यज्ञों में प्रकाशित **(असि)** है, इससे **(अभिमातिहा)** अभिमानकारक चोर आदि का हनन करने वाला होता है। जिस कारण यह **(जनराट्)** धार्मिक विद्वानों के मन में प्रकाशित **(असि)** है, इससे **(रक्षोहा)** राक्षस वा दुष्टों का हनन करने वाला होता है। जिस से यह **(सर्वराट्)** सब में प्रकाशमान **(असि)** है, इससे **(अमित्रहा)** दुष्टों को दण्ड देने का निमित्त होता है॥२॥२४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। विद्वान् मनुष्य! जैसे सूर्य अपने प्रकाश से चोर, व्याघ्र आदि प्राणियों को भय दिखा कर अन्य प्राणियों को सुखी करता है, वैसे ही तू भी सब शत्रुओं को निवारण कर प्रजा को सुखी कर॥२४॥

रक्षोहण इत्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः। यज्ञो देवता। आद्यस्य ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः। बलगहना उपेत्युत्तरस्यार्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

यजमानः सभाद्यध्यक्षादयो यज्ञानुष्ठातॄन् मनुष्यान् यज्ञसामग्रीं ग्राहयेयुरित्युपदिश्यते॥

यजमान सभा आदि के अध्यक्ष यज्ञानुष्ठान करने वाले मनुष्यों को यज्ञ सामग्री का ग्रहण करावें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

र॒क्षो॒हणो॑ वो बलग॒हनः॒ प्रोक्षा॑मि वैष्ण॒वान् र॑क्षो॒हणो॑ वो बलग॒हनोऽव॑नयामि वैष्ण॒वान् र॑क्षो॒हणो॑ वो बलग॒हनोऽव॑स्तृणामि वैष्ण॒वान् र॑क्षो॒हणौ॑ वां बलग॒हना॒ऽउप॑दधामि वैष्ण॒वी र॑क्षो॒हणौ॑ वां बलग॒हनौ॒ पर्यू॑हामि वैष्ण॒वी वैष्ण॒वम॑सि वैष्ण॒वा स्थ॑॥ २५॥

र॒क्षो॒हण॑ः। र॒क्षो॒हन॒ इति॑ रक्षः॒ऽहन॑ः। व॒ः। ब॒ल॒ग॒हन॒ इति॑ बलग॒ऽहन॑ः। प्र। उ॒क्षा॒मि॒। वै॒ष्ण॒वान्। र॒क्षो॒हण॑ः। र॒क्षो॒हन॒ इति॑ रक्षः॒ऽहन॑ः। व॒ः। ब॒ल॒ग॒हन॒ इति॑ बलग॒ऽहन॑ः। अव॑। न॒या॒मि॒। वै॒ष्ण॒वान्। र॒क्षो॒हण॑ः। र॒क्षो॒हन॒ इति॑ रक्षः॒ऽहन॑ः। व॒ः। ब॒ल॒ग॒हन॒ इति॑ बलग॒ऽहन॑ः। अव॑। स्तृ॒णा॒मि॒। वै॒ष्ण॒वान्। र॒क्षो॒हणौ॑। र॒क्षो॒हना॒विति॑ रक्षः॒ऽहनौ॑। वा॒म्। ब॒ल॒ग॒हना॒विति॑ बलग॒ऽहनौ॑। उप॑। द॒धा॒मि॒। वै॒ष्ण॒वीऽइति॑ वैष्ण॒वी। र॒क्षो॒हणौ॑। र॒क्षो॒हना॒विति॑ रक्षः॒ऽहनौ॑। वा॒म्। ब॒ल॒ग॒हना॒विति॑ बलग॒ऽहनौ॑। परि॑। ऊ॒हा॒मि॒। वैष्ण॒वीऽइति॑ वैष्ण॒वी। वै॒ष्ण॒वम्। अ॒सि॒। वै॒ष्ण॒वाः। स्थ॒ः॥ २५॥

पदार्थः-(**रक्षोहणः**) यथा यूयं ये रक्षांसि दुःखानि हथ तथा (**वः**) युष्मानेतांश्च (**बलगहनः**) यथा यो बलानि गाहते तथा भूतोऽहम् (**प्र**) प्रकृष्टार्थे (**उक्षामि**) सिञ्चामि (**वैष्णवान्**) विष्णुर्यज्ञो देवता येषां तान् (**रक्षोहणः**) यथा यूयं रक्षांसि दुष्टान् दस्य्वादीन् हथ तथा तान् (**वः**) युष्मानेतान् वा (**बलगहनः**) यथा यो बलानि शत्रुसैन्यानि गाहते तथाऽहम् (**अव**) विनिग्रहार्थे (**नयामि**) प्राप्नोमि प्रापयामि वा (**वैष्णवान्**) विष्णोर्यज्ञस्येमान् (**रक्षोहणः**) यथा यूयं रक्षांसि शत्रून् हथ तथाऽहं तान् (**वः**) युष्मानेतान् वीरान् वा (**बलगहनः**) यथाऽहं बलानि स्वसैन्यानि गाहे तथा व्यूहशिक्षया विलोडयत (**अव**) विनिग्रहे (**स्तृणामि**) आच्छादयामि (**वैष्णवान्**) यज्ञानुष्ठातॄन् (**रक्षोहणौ**) यथा रक्षसां हन्तारौ प्रजासभाद्यध्यक्षौ तथाऽहम् (**वाम्**) उभौ (**बलगहनौ**) यथा युवां बलानि गाहेथे तथाऽहम् (**उप**) सामीप्ये (**दधामि**) धरामि (**वैष्णवी**) विष्णोरियं क्रिया (**रक्षोहणौ**) यथा रक्षसां शत्रूणां हन्तारौ भवथस्तथाऽहम् (**वाम्**) उभौ (**बलगहनौ**) यथा युवां बलानि गाहेथे तथाऽहम् (**परि**) सर्वतः (**ऊहामि**) तर्केण निश्चिनोमि (**वैष्णवी**) विष्णोः समग्रविद्याव्यापकस्येयं रीतिस्ताम् (**वैष्णवम्**) विष्णोरिदं विज्ञानम् (**असि**) अस्ति (**वैष्णवाः**) विष्णोर्व्यापकस्येम उपासकाः (**स्थ**) भवत। अयं मन्त्रः (शत०(३।५।४।१८-२४) व्याख्यातः॥२५॥

अन्वयः-हे सभाध्यक्षादयो मनुष्या! यूयं यथा रक्षोहणः स्थ तथा बलगहनोऽहं वो युष्मान् सत्कृत्यैतान् दुष्टान् युद्धे शस्त्रैः प्रोक्षामि। यथा रक्षोहणो यूयं नो दुःखानि हथ, तथा बलगहनोऽहं वो युष्मान् सुखैः संमान्यैतानवनयामि। यथा रक्षोहणो वैष्णवान् वो युष्मानेतांश्चावस्तृणीथ, तथा बलगहनोऽहमेवैतानवस्तृणामि। यथा रक्षोहणौ बलगहनौ यज्ञस्वामिसम्पादकौ वामुपधत्तस्तथैवाहमेतानुपदधामि। यथा रक्षौहणौ बलगहनौ वां या वैष्णवी क्रियास्ति तया पर्यूहतस्तथैवाहमेतां पर्यूहामि यद्वैष्णवं ज्ञानं यूयं सर्वत ऊहथ, तदहमपि पर्यूहामि, यूयं वैष्णवा स्थ तथा वयमपि भवेम॥२५॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। मनुष्यैः परमेश्वरोपासनायुक्तव्यवहाराभ्यां पूर्णं शरीरात्मबलं सम्पाद्य यज्ञेन प्रजापालनं शत्रून् विजित्य सार्वभौमराज्यं च प्रशासनीयम्॥२५॥

पदार्थः-हे सभाध्यक्ष आदि मनुष्यो! जैसे तुम (**रक्षोहणः**) दुःखों का नाश करने वाले हो, वैसे शत्रुओं के बल को अस्तव्यस्त करने हारा मैं (**वैष्णवान्**) यज्ञ देवता वाले (**वः**) आप लोगों का सत्कार कर युद्ध में शस्त्रों से (**प्रोक्षामि**) इन घमण्डी मनुष्यों को शुद्ध करूं। जैसे आप (**रक्षोहणः**) अधर्मात्मा दुष्ट दस्युओं को मारने वाले हैं,

वैसे (**बलगहनः**) शत्रुसेना की थाह लेने वाला मैं (**वैष्णवान्**) यज्ञसम्बन्धी (**वः**) तुम को सुखों से मान्य कर दुष्टों को (**अवनयामि**) दूर करता हूं। जैसे (**बलगहनः**) अपनी सेना को व्यूहों की शिक्षा से विलोडन करने वाला मैं (**रक्षोहणः**) शत्रुओं को मारने वा (**वैष्णवान्**) यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले (**वः**) तुम को (**अवस्तृणामि**) सुख से आच्छादित करता हूं, वैसे तुम भी किया करो। जैसे (**रक्षोहणौ**) राक्षसों के मारने वा (**बलगहनौ**) बलों को विलोडन करने वाले (**वाम्**) यज्ञपति वा यज्ञ कराने वाले विद्वान् का धारण करते हो, वैसे मैं भी (**उपदधामि**) धारण करता हूं। जैसे (**रक्षोहणौ**) राक्षसों के मारने (**बलगहनौ**) बलों को विलोडने वाले (**वाम्**) प्रजा सभाध्यक्ष आप (**वैष्णवी**) सब विद्याओं में व्यापक विद्वानों की क्रिया वा (**वैष्णवम्**) जो विष्णुसम्बन्धी ज्ञान है, इन सब को तर्क से जानते हैं, वैसे मैं भी (**पर्यूहामि**) तर्क से अच्छे प्रकार जानूं और जैसे आप सब लोग (**वैष्णवाः**) व्यापक परमेश्वर की उपासना करने वाले (**स्थ**) हैं, वैसा मैं भी होऊं॥२५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा और उपमालङ्कार हैं। मनुष्यों को परमेश्वर की उपासनायुक्त व्यवहार से शरीर और आत्मा के बल को पूर्ण कर के यज्ञ से प्रजा की पालना और शत्रुओं को जीतकर सब भूमि के राज्य की पालना करनी चाहिये॥२५॥

देवस्य त्वेत्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः। यज्ञो देवता। आद्यस्य निचृदार्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। यवोऽसीत्युत्तरस्य निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

किमर्थोऽयं यज्ञोऽनुष्ठातव्य इत्युपदिश्यते॥

किसलिये इस यज्ञ को करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया हैं॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। आददे नार्यसीदमहꣳ रक्षसां ग्रीवाऽअपिकृन्तामि। यवोऽसि यवयास्मद् द्वेषो यवयारातीर्दिवे त्वाऽन्तरिक्षाय त्वा पृथिव्यै त्वा शुन्धन्ताँल्लोकाः पितृषदनाः पितृषदनमसि॥२६॥

देवस्य। त्वा। सवितुः। प्रसव इति प्रऽसवे। अश्विनोः। बाहुभ्यामिति बाहुऽभ्याम्। पूष्णः। हस्ताभ्यामिति हस्ताऽभ्याम्। आ। ददे। नारि। असि। इदम्। अहम्। रक्षसाम्। ग्रीवाः। अपि। कृन्तामि। यवः। असि। यवय। अस्मत्। द्वेषः। यवय। अरातीः। दिवे। त्वा। अन्तरिक्षाय। त्वा। पृथिव्यै। त्वा। शुन्धन्ताम्। लोकाः। पितृषदनाः। पितृसदना इति पितृऽसदनाः। पितृषदनम्। पितृसदनमिति पितृऽसदनम्। असि॥२६॥

पदार्थः-(**देवस्य**) सर्वानन्दप्रदस्य (**त्वा**) त्वां होमशिल्पाख्ययज्ञकर्त्तारम् (**सवितुः**) सकलोत्पादकस्येश्वरस्य (**प्रसवे**) यथा सृष्टौ तथा (**अश्विनोः**) प्राणापानयोः (**बाहुभ्याम्**) यथा बलवीर्याभ्यां तथा (**पूष्णः**) पुष्टिमतो वीरस्य (**हस्ताभ्याम्**) यथा प्रबलभुजदण्डाभ्यां तथा (**आ**) समन्तात् (**ददे**) गृह्णामि (**नारि**) नराणमियं शक्तिमती स्त्री तत्सम्बुद्धौ (**असि**) भवति (**इदम्**) विश्वम् (**अहम्**) सभाध्यक्षः (**रक्षसाम्**) दुष्टकर्मकारिणां प्राणिनाम् (**ग्रीवाः**) शिरांसि (**अपि**) निश्चये (**कृन्तामि**) छिनद्मि (**यवः**) मिश्रणामिश्रणकर्ता (**असि**) वर्त्तसे (**यवय**) श्रेष्ठैर्गुणैः सह मिश्रय, दोषेभ्यश्च दूरीकारय। अत्र **वा छन्दसि।** [अष्टा०भा०वा०१.४.९] इति वृद्ध्यभावः। (**अस्मत्**) स्वेभ्यः (**द्वेषः**) ईर्ष्यादिदोषान् (**यवय**) दूरीकारय (**अरातीः**) शत्रून् (**दिवे**) सत्यधर्मप्रकाशाय (**त्वा**) त्वाम् (**अन्तरिक्षाय**) आकाशे

गमनाय **(त्वा)** त्वाम् **(पृथिव्यै)** पृथिवीस्थपदार्थपुष्टये **(त्वा)** त्वाम् **(शुन्धन्ताम्)** पवित्रीकुर्वताम् **(लोकाः)** सर्वे **(पितृषदनाः)** यथा पितृषु ज्ञानिषु सीदन्ति तथा **(पितृषदनम्)** यथा विद्यावन्तो ज्ञानिनस्सीदन्ति यस्मिंस्तत्तथा **(असि)** अस्ति। अयं मन्त्रः (शत०(३।६।१।४-१४) व्याख्यातः॥२६॥

अन्वयः-हे मनुष्या! यथा अहं सवितुर्देवस्य प्रसवे यथाऽश्विनोर्बाहुभ्यां यथा पूष्णो हस्ताभ्यामनेकानुपकारानाददे। इदं विश्वं संरक्ष्य रक्षसां ग्रीवा अपिकृन्तामि। यथा पदार्थान् यावयामि तथा त्वमप्यादत्स्व यवय च। यथाऽहं द्वेषोऽरातीः शत्रूनस्मद् दूरीकारयामि तथा त्वमपि यवय। हे विद्वन्! यथाऽहं दिवे त्वा त्वां तमन्तरिक्षाय त्वा त्वां पृथिव्यै त्वा त्वामाश्रयामि, तथा सर्वे जना आश्रयन्ताम्। यथा पितृषदनमस्ति येन पितृषदना लोकाः शुन्धन्ति, यदहं शुन्धे तथेदं सर्वे शुन्धन्ताम्। हे नारि! त्वमप्येतत्सर्वमेवमेव समाचर॥२६॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। मनुष्यैर्यथाक्रियं यथानुक्रमं विद्वदाश्रयं कृत्वा यज्ञमनुष्ठाय सर्वेषां शुद्धिः सम्पादनीया॥२६॥

पदार्थः-हे विद्वान् मनुष्य! जैसे मैं **(सवितुः)** सब जगत् के उत्पन्न करने और **(देवस्य)** सब आनन्द के देने वाले परमेश्वर के **(प्रसवे)** उत्पन्न किये हुए संसार में **(अश्विनोः)** प्राण और अपान के **(बाहुभ्याम्)** बल और वीर्य तथा **(पूष्णः)** अतिपुष्ट वीर के **(हस्ताभ्याम्)** प्रबल प्रतापयुक्त भुज और दण्ड से अनेक उपकारों को **(आददे)** लेता वा **(इदम्)** इस जगत् की रक्षा कर **(रक्षसाम्)** दुष्टकर्म करने वाले प्राणियों के **(ग्रीवाः)** शिरों का **(अपि)** **(कृन्तामि)** छेदन ही करता हूं, तथा जैसे पदार्थों का उत्तम गुणों से मेल करता हूं, वैसे तू भी उपकार ले और **(यवय)** उत्तम गुणों से पदार्थों का मेल कर। जैसे मैं **(द्वेषः)** ईर्ष्या आदि दोष वा **(अरातीः)** शत्रुओं को **(अस्मत्)** अपने से दूर कराता हूं, वैसे तू भी **(यवय)** दूर करा। हे विद्वन्! जैसे हम लोग **(दिवे)** ऐश्वर्य्यादि गुण के प्रकाश होने के लिये **(त्वा)** तुझ को **(अन्तरिक्षाय)** आकाश में रहने वाले पदार्थ को शोधने के लिये **(त्वा)** तुझ को **(पृथिव्यै)** पृथिवी के पदार्थों की पुष्टि होने के लिये **(त्वा)** तुझ को सेवन करते हैं, वैसे तुम लोग भी करो। जैसे **(पितृषदनम्)** विद्या पढ़े हुए ज्ञानी लोगों का यह स्थान **(असि)** है और जिस से **(पितृषदनाः)** जैसे ज्ञानियों में ठहर पवित्र होते हैं, वैसे मैं शुद्ध होऊं तथा सब मनुष्य **(शुन्धन्ताम्)** अपनी शुद्धि करें और हे स्त्री! तू भी यह सब इसी प्रकार कर॥२६॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि ठीक-ठीक क्रियाक्रमपूर्वक विद्वानों का आश्रय और यज्ञ का अनुष्ठान करके सब प्रकार से अपनी शुद्धि करें॥२६॥

उद्दिवमित्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः। यज्ञो देवता। ब्राह्मी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

सेवितः सभाध्यक्षोऽनुष्ठितो यज्ञश्च किं करोतीत्युपदिश्यते॥

अच्छे प्रकार सेवन किया हुआ सभापति और अनुष्ठान किया हुआ यज्ञ क्या करता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

उद्दिवꣳ स्तभानान्तरिक्षं पृण दृꣳहस्व पृथिव्यां द्युतानस्त्वा मारुतो मिनोतु मित्रावरुणौ ध्रुवेण धर्मणा। ब्रह्मवनि क्षत्रवनि रायस्पोषवनि पर्यूहामि। ब्रह्म दृꣳह क्षत्रं दृꣳहायुर्दृꣳह प्रजां दृꣳह॥२७॥

उत्। दिव॑म्। स्तभान। आ। अन्तरि॑क्षम्। पृण। दृꣳह॑स्व। पृथिव्याम्। द्युतानः। त्वा। मारुतः। मिनोतु। मित्रावरुणौ। ध्रुवेण॑। धर्म॑णा। ब्रह्मवनीति॑ ब्रह्मऽवनि॑। त्वा। क्षत्रवनीति॑ क्षत्रऽवनि॑। रायस्पोषवनीति॑ रायस्पोषऽवनि॑। परि॑। ऊहामि। ब्रह्म॑। दृꣳह। क्षत्रम्। दृꣳह। आयु॑ः। दृꣳह। प्रजामिति॑ प्रऽजाम्। दृꣳह॥२७॥

पदार्थः-(**उत्**) उत्कृष्टे (**दिवम्**) प्रकाशम् (**स्तभान**) (**अन्तरिक्षम्**) आकाशं तत्रस्थप्राणिवर्गं च। अत्र तात्स्थ्योपाधिना प्राणिनामपि ग्रहणम्। (**पृण**) अत्रान्तर्भाविणिजर्थः (**दृंहस्व**) वर्धय (**पृथिव्याम्**) भूमौ (**द्युतानः**) यथा दिवं सद्विद्यागुणं विस्तारयति तथा (**त्वा**) त्वाम् (**मारुतः**) वायुः (**मिनोतु**) प्रक्षिपति (**मित्रावरुणौ**) यथा प्राणापानौ तथा। (**ध्रुवेण**) निश्चलेन (**धर्मणा**) धर्मेण (**ब्रह्मवनि**) यथा ब्रह्मविद्यासम्भाजितारं तथा। अत्र सर्वत्र **सुपां सुलुग्०** [अष्टा०७.१.३९] इति विभक्तेर्लुक्। (**त्वा**) त्वाम् (**क्षत्रवनि**) क्षत्रस्य राज्यस्य संसेवयितारं तथा (**रायस्पोषवनि**) यथा रायो धनसमूहस्य पोषं पुष्टिं वनन्ति सेवन्ते यस्मात् तथा (**परि**) सर्वतः (**ऊहामि**) वितर्कयामि (**ब्रह्म**) विद्या विद्वांसं वा (**दृंह**) वर्धय वर्धयति वा (**क्षत्रम्**) राज्यं क्षण्यते हिंस्यते नश्यते पदार्थो येन सः क्षत् घातादिस्ततस्त्रायते रक्षतीति क्षत्रः क्षत्रियादिवीरस्तम् (**दृंह**) वर्धय (**आयुः**) जीवनम् (**दृंह**) वर्धय (**प्रजाम्**) उत्पादनीयाम् (**दृंह**) वर्धय। अयं मन्त्रः (शत०(३।६।१।१५-१८) व्याख्यातः॥२७॥

अन्वयः-हे परमविद्वन्! यथा त्वा त्वां मारुतो ध्रुवेण धर्मणा मिनोति मित्रावरुणौ मिनुतस्तथा त्वं कृपयाऽस्मदर्थं दिवमुत्तभानान्तरिक्षं पृण, पृथिव्यां द्युतानः सन् सुखानि दृंह, ब्रह्म दृंह, क्षत्रं दृंहायुर्दृंह, प्रजां दृंह, ब्रह्मवनिं क्षत्रवनिं रायस्पोषवनिं त्वामहं पर्यूहामि, तथा त्वां सर्वे मनुष्याः पर्यूहन्तु॥२७॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे मनुष्या! यूयं यथा जगदीश्वरः सत्यभावेन प्रार्थितः सद्विद्वाँश्च सेवितः सर्वान् सुखयति, तथैवायं यज्ञो विद्यादीन् संवृध्य सर्वान् मनुष्यादीन् प्राणिनः सुखयतीति विजानीत॥२७॥

पदार्थः-हे परम विद्वन्! जैसे (**त्वा**) आपको (**मारुतः**) वायु (**ध्रुवेण**) निश्चल (**धर्मणा**) धर्म से (**मिनोतु**) प्रयुक्त करे (**मित्रावरुणौ**) प्राण और अपान भी धर्म से प्रयुक्त करते हैं, वैसे आप कृपा करके हम लोगों के लिये (**दिवम्**) विद्या गुणों के प्रकाश को (**उत्तभान**) अज्ञान से उधाड़ देओ तथा (**अन्तरिक्षम्**) सब पदार्थों के अवकाश को (**पृण**) परिपूर्ण कीजिये (**पृथिव्याम्**) भूमि पर (**द्युतानः**) सद्विद्या के गुणों का विस्तार करते हुए आप सुखों को (**दृंहस्व**) बढ़ाइये (**ब्रह्म**) वेदविद्या को (**दृंह**) बढ़ाइये (**क्षत्रम्**) राज्य को बढ़ाइये (**आयुः**) अवस्था को (**दृंह**) बढ़ाइये और (**प्रजाम्**) उत्पन्न हुई प्रजा को (**दृंह**) वृद्धियुक्त कीजिये। इसलिये मैं (**ब्रह्मवनि**) ब्रह्मविद्या को सेवन करने वा कराने (**क्षत्रवनि**) राज्य को सेवन करने-कराने (**रायस्पोषवनि**) और धनसमूह की पुष्टि को सेवने वा सेवन कराने वाले आप को (**पर्यूहामि**) सब प्रकार के तर्कों से निश्चय करता हूं, वैसे आप मुझ को सर्वथा सुखदायक हूजिये और आप को सब मनुष्य तर्कों से जानें॥२७॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! आप लोग जैसे जगदीश्वर सत्य भाव से प्रार्थित और सेवन किया हुआ अत्युत्तम विद्वान् सब को सुख देता है, वैसे यह यज्ञ भी विद्या गुण को बढ़ाकर सब जीवों को सुख देता है, यह जानो॥२७॥

ध्रुवासीत्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः। यज्ञो देवता। आर्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तेन किं भविष्यतीत्युपदिश्यते॥

फिर उस यज्ञ से क्या होता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

ध्रुवासि ध्रुवोऽयं यजमानोऽस्मिन्नायतने प्रजया पशुभिर्भूयात्।
घृतेन द्यावापृथिवी पूर्येथामिन्द्रस्य छदिरसि विश्वजनस्य छाया॥ २८॥

ध्रुवा। असि। ध्रुवः। अयम्। यजमानः। अस्मिन्। आयतन इत्याऽयतने। प्रजयेति प्रऽजया। पशुभिरिति पशुऽभिः। भूयात्। घृतेन। द्यावापृथिवीऽइति द्यावापृथिवी। पूर्येथाम्। इन्द्रस्य। छदिः। असि। विश्वजनस्येति विश्वऽजनस्य। छाया॥ २८॥

पदार्थः-(**ध्रुवा**) निश्चला (**असि**) भवसि (**ध्रुवः**) निश्चलः (**अयम्**) वक्ष्यमाणः (**यजमानः**) यज्ञकर्त्ता (**अस्मिन्**) वर्त्तमाने यज्ञे (**आयतने**) आयन्ति आगच्छन्ति प्राणिनो यस्मिंस्तज्जगत् तस्मिन् जगति स्थाने यज्ञे वा (**प्रजया**) राज्येन सन्तानसमूहेन वा (**पशुभिः**) हस्त्यश्वगवादिभिः (**भूयात्**) (**घृतेन**) आज्यादिना (**द्यावापृथिवी**) आकाशभूमी (**पूर्येथाम्**) (**इन्द्रस्य**) परमैश्वर्यस्य (**छदिः**) दुःखापवारकत्वेन प्रापकः प्रापिका वा (**असि**) भवसि (**विश्वजनस्य**) विश्वस्मिन् जगति सर्वस्य जनसमूहस्य (**छाया**) दुःखछेदकाश्रयो वा। अयं मन्त्रः (शत०(३।६।१। १९-२२) व्याख्यातः॥२८॥

अन्वयः-हे यज्ञानुष्ठात्रि यजमानपत्नि! यथा त्वमस्मिन्नायतने जगति स्वस्थाने यज्ञे वा प्रजया पशुभिः सह ध्रुवासि ,तथाऽयं यजमानोऽपि ध्रुवोऽस्ति। युवां घृतेन द्यावापृथिवी पूर्येथां पूरणे कुर्यातमिन्द्रस्य छदिरसि विश्वजनस्य छायाऽसि यत्संगेन प्राणिसमूहः सुखीभूयादस्मात् तां तं त्वां वयं प्रशंसामः॥२८॥

भावार्थः-मनुष्यैर्याभ्यां यज्ञानुष्ठातृभ्यां यजमानतत्पत्नीभ्यां येन यज्ञेन च निश्चला विद्या सुखानि च प्राप्य दुःखानि नश्येयुस्तौ सदा सत्कर्तव्यौ यज्ञश्च सदाऽनुष्ठेयः॥२८॥

पदार्थः-हे यज्ञ करने वाले यजमान की स्त्री! जैसे तू (**प्रजया**) राज्य वा अपने संतानों और (**पशुभिः**) हाथी, घोड़े, गाय आदि पशुओं के सहित (**अस्मिन्**) इस (**आयतने**) जगत् वा अपने स्थान वा सब के सत्कार कराने के योग्य यज्ञ में (**ध्रुवा**) दृढ़ संकल्प (**असि**) है, वैसे (**अयम्**) यह (**यजमानः**) यज्ञ करने वाला तेरा पति यजमान भी (**ध्रुवः**) दृढ़ संकल्प है। तुम दोनों (**घृतेन**) घृत आदि सुगन्धित पदार्थों से (**द्यावापृथिवी**) आकाश और भूमि को (**पूर्येथाम्**) परिपूर्ण करो। हे यज्ञ करने वाली स्त्री! तू (**इन्द्रस्य**) अत्यन्त ऐश्वर्य को भी अपने यज्ञ से (**छदिः**) प्राप्त करनेवाली (**असि**) है। अब तू और तेरा पति यह यजमान (**विश्वजनस्य**) संसार का (**छाया**) सुख करने वाला (**भूयात्**) हो॥२८॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि जिन यज्ञ करने वाले यजमान की पत्नी और यजमान से तथा जिस यज्ञ से दृढ़ विद्या और सुखों को पाकर दुःखों को छोड़ें उनका सत्कार तथा उस यज्ञ का अनुष्ठान सदा ही करते रहें॥२८॥

परि त्वेत्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः। ईश्वरसभाध्यक्षौ देवते। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

ईश्वरसभाध्यक्षाभ्यां किं किं भवितुं योग्यमित्युपदिश्यते॥

ईश्वर और सभाध्यक्ष से क्या-क्या होने को योग्य है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

परि त्वा गिर्वणो गिरऽइमा भवन्तु विश्वतः।

वृद्धायुमनु वृद्धयो जुष्टा भवन्तु जुष्टयः॥२९॥

परि। त्वा। गिर्वणः। गिरः। इमाः। भवन्तु। विश्वतः। वृद्धायुमिति वृद्धऽआयुम्। अनु। वृद्धयः। जुष्टाः। भवन्तु। जुष्टयः॥२९॥

पदार्थः-(**परि**) सर्वतः (**त्वा**) त्वाम् (**गिर्वणः**) गीर्भिः स्तोतुमर्हः (**गिरः**) स्तुतिवाचः (**इमाः**) मत्कृताः (**भवन्तु**) (**विश्वतः**) सर्वाः, अत्र प्रथमान्तात् तसिः। (**वृद्धायुम्**) वृद्ध इव आचरन्तम्, **क्याच्छन्दसि।** [अष्टा०३.२.१७०] इत्युः। (**अनु**) पश्चाद्भावे (**वृद्धयः**) वृध्यन्ते यास्ताः। (**जुष्टाः**) प्रीताः सेविता वा। (**भवन्तु**) (**जुष्टयः**) जुष्यन्ते प्रीयन्ते यास्ताः। अयं मन्त्रः (शत०(३।६।१।२४) व्याख्यातः॥२९॥

अन्वयः-हे गिर्वण ईश्वर सभाध्यक्ष! इमा मत्कृता विश्वतो गिरस्त्वां परि परितो भवन्तु। न तत्क्षण एव, किन्तु वृद्धायुं त्वामनु वृद्धयो जुष्टयो जुष्टाश्च भवन्तु॥२९॥

भावार्थः-अत्र श्लेषालङ्कारः। हे मनुष्या! यथाऽखिलैः शुभगुणकर्म्मभिः सह वर्त्तमानो जगदीश्वरः सभापतिर्वा स्तोतुमर्होऽस्ति, तथैव युष्माभिरपि भवितव्यम्॥२९॥

पदार्थः-हे (**गिर्वणः**) स्तुतियों से स्तुति करने योग्य ईश्वर वा सभाध्यक्ष! (**इमाः**) ये मेरी की हुई (**विश्वतः**) समस्त (**गिरः**) स्तुतियाँ (**परि**) सब प्रकार से (**भवन्तु**) हों और उसी समय की ही न हों, किन्तु (**वृद्धायुम्**) वृद्धों के समान आचरण करने वाले आपके (**अनु**) पश्चात् (**वृद्धयः**) अत्यन्त बढ़ती हुई और (**जुष्टयः**) प्रीति करने योग्य (**जुष्टाः**) प्यारी हों॥२९॥

भावार्थः-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जैसे सम्पूर्ण उत्तम गुण, कर्म्मों के साथ वर्त्तमान जगदीश्वर और सभापति स्तुति करने योग्य हैं, वैसे ही तुम लोगों को भी होना चाहिये॥२९॥

इन्द्रस्येत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। ईश्वरसभाध्यक्षौ देवते। आर्च्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

पुनस्तौ कथंभूतावित्युपदिश्यते॥

फिर वे कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

इन्द्रस्य स्यूरसीन्द्रस्य ध्रुवोऽसि ऐन्द्रमसि वैश्वदेवमसि॥३०॥

इन्द्रस्य। स्यूः। असि। इन्द्रस्य। ध्रुवः। असि। ऐन्द्रम्। असि। वैश्वदेवमिति वैश्वऽदेवम्। असि॥३०॥

पदार्थः-(**इन्द्रस्य**) परमैश्वर्यस्य (**स्यूः**) यः सीव्यति सह योजयति सः (**असि**) भवसि। (**इन्द्रस्य**) सूर्य्यादि राज्यस्य वा (**ध्रुवः**) निश्चलो निश्चलकर्त्ता। (**असि**) (**ऐन्द्रम्**) इन्द्रस्य परमैश्वर्यस्येदमधिकरणम्। (**असि**) (**वैश्वदेवम्**) यथा विश्वेषां देवानामिदमन्तरिक्षमधिकरणं तथा (**असि**)। अयं मन्त्रः (शत०(३। ६। १। २५-२६) व्याख्यातः॥३०॥

अन्वयः-हे जगदीश्वर वा सभाध्यक्ष! यथा वैश्वदेवमन्तरिक्षमस्ति, तथा त्वमैन्द्रं परमैश्वर्य्यस्याधिकरणमसि।

अत एव सर्वेषामस्मदादीनामिन्द्रस्य परमैश्वर्य्यस्य स्यूरसि, इन्द्रस्य सूर्यादिलोकस्य राज्यस्य वा ध्रुवोऽसि॥३०॥

भावार्थः-अत्र श्लेषोपमालङ्कारौ। यथा सकलैश्वर्याधिष्ठानमीश्वरोऽस्ति, तथा सभाध्यक्षादिभिरपि भवितव्यम्॥३०॥

पदार्थः-हे जगदीश्वर वा सभाध्यक्ष! जैसे **(वैश्वदेवम्)** समस्त पदार्थों का निवास स्थान अन्तरिक्ष है, वैसे आप **(ऐन्द्रम)** सब के आधार हैं, इसी से हम लोगों को **(इन्द्रस्य)** परमैश्वर्य का **(स्यूः)** संयोग करने वाले **(असि)** हैं और **(इन्द्रस्य)** सूर्य आदि लोक वा राज्य को **(ध्रुवः)** निश्चल करने वाले **(असि)** हैं॥३०॥

भावार्थः-इस मन्त्र में श्लेष और उपमालङ्कार हैं। सकल ऐश्वर्य्य का देने वाला जगदीश्वर है, वैसे सभाध्यक्षादि मनुष्यों को होना चाहिये॥३०॥

विभूरसीत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। अग्निर्देवता। विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तौ कथंभूतावित्युपदिश्यते॥

फिर वे कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

विभूरसि प्रवाहणो वह्निरसि हव्यवाहनः।

श्वात्रोऽसि प्रचेतास्तुथोऽसि विश्ववेदाः॥३१॥

विभूरिति विऽभूः। असि। प्रवाहणः। प्रवाहन इति प्रऽवाहनः। वह्निः। असि। हव्यवाहन इति हव्यऽवाहनः। श्वात्रः। असि। प्रचेता इति प्रऽचेताः। तुथः। असि। विश्ववेदा इति विश्वऽवेदाः॥३१॥

पदार्थः-**(विभूः)** यथा व्यापक आकाशो वैभवयुक्तो राजा वा **(असि)** **(प्रवाहणः)** यथा वायुर्महानदो वा तथा **(वह्निः)** वोढा **(असि)** **(हव्यवाहनः)** यथाऽग्निर्हव्यानि वहति तथा **(श्वात्रः)** ज्ञानवान्। **श्वात्रतीति गतिकर्मसु पठितम्।** (निघं०२।२४) **(असि)** **(प्रचेताः)** यथा प्राणः प्रचेतयति तथा **(तुथः)** ज्ञानवर्धकः **(असि)** **(विश्ववेदाः)** यथा सूत्रात्मा पवनस्तथा। अयं मन्त्रः (शत०(३।६।१।२५-२६) व्याख्यातः॥३१॥

अन्वयः-हे जगदीश्वर वा विद्वन्! यस्मात् त्वं यथाऽऽकाशो वैभवयुक्तो राजा वा तथा विभूरसि, यथा वायुर्महानदो वा तथा प्रवाहणोऽसि, यथा वह्निस्तथा हव्यवाहनोऽसि, यथा प्राणस्तथा प्रचेता श्वात्रोऽसि, यथा सूत्रात्मा पवनस्तथा विश्ववेदास्तुथश्चासि, तस्मात् सत्कर्त्तव्योऽसीति वयं विजानीमः॥३१॥

भावार्थः-अत्र श्लेषोपमालङ्कारौ। न सर्वैर्मनुष्यैरीश्वरविदुषोः सत्कारः कदापि त्यक्तव्यो नैतयोः प्राप्त्या विना कस्यचिद् विद्यासुखलाभो भवितुमर्हति, तस्मात् तौ सर्वथा वेद्यौ स्तः॥३१॥

पदार्थः-हे जगदीश्वर वा विद्वन्! जिससे आप जैसे व्यापक आकाश और ऐश्वर्य्ययुक्त राजा होता है, वैसे **(विभूः)** व्यापक और ऐश्वर्य्ययुक्त **(असि)** हैं। **(वह्निः)** जैसे होम किये पदार्थों को योग्य स्थान में पहुंचाने वाला अग्नि है, वैसे **(हव्यवाहनः)** हवन करने के योग्य पदार्थों को सम्पादन करने वाले **(असि)** हैं, जैसे जीवों में प्राण हैं, वैसे **(प्रचेताः)** चेत करने वाले **(श्वात्रः)** विद्वान् **(असि)** हैं, जैसे सूत्रात्मा पवन सब में व्याप्त है, वैसे **(विश्ववेदाः)** विश्व को जानने **(तुथः)** ज्ञान को बढ़ाने वाले **(असि)** हैं। इस से आप सत्कार करने योग्य हैं, ऐसा हम लोग जानते हैं॥३१॥

भावार्थः-इस मन्त्र में श्लेष और उपमालङ्कार हैं। सब मनुष्यों को उचित है कि ईश्वर और विद्वान् का सत्कार करना कभी न छोड़ें, क्योंकि अन्य किसी से विद्या और सुख का लाभ नहीं हो सकता है। इसलिये इन को जानें॥३१॥

उशिगसीत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। अग्निर्देवता। स्वराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तौ कीदृशावित्युपदिश्यते॥

फिर वे कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

उशिगसि कविरङ्घारिरसि बम्भारिरवस्यूरसि दुवस्वाञ्छुन्ध्यूरसि मार्जालीयः। सम्राडसि कृशानुः परिषद्योऽसि पवमानो नभोऽसि प्रतक्वा मृष्टोऽसि हव्यसूदनऽऋतधामासि स्वर्ज्योतिः॥३२॥

उशिक्। असि। कविः। अङ्घारिः। असि। बम्भारिः। अवस्यूः। असि। दुवस्वान्। शुन्ध्यूः। असि। मार्जालीयः। सम्राडिति सम्ऽराट्। असि। कृशानुः। परिषद्यः। परिषद्य इति परिऽसद्यः। असि। पवमानः। नभः। असि। प्रतक्वेति प्रऽतक्वा। मृष्टः। असि। हव्यसूदन इति हव्यऽसूदनः। ऋतधामेत्यृतऽधामा। असि। स्वर्ज्योतिरिति स्वःऽज्योतिः॥३२॥

पदार्थः-(**उशिक्**) कान्तिमान् (**असि**) (**कविः**) क्रान्तप्रज्ञः क्रान्तदर्शनो वा (**अङ्घारिः**) अङ्घस्य कुटिलगामिनो जीवस्यारिः शत्रुः (**असि**) (**बम्भारिः**) बन्धस्यारिः, अत्र वर्णव्यत्येन धस्य भः। (**अवस्यूः**) योऽवसीव्यति तारादितन्तून् सन्तानयति येन वा सः (**असि**) (**दुवस्वान्**) दुवः प्रशस्तं परिचरणं विद्यते यस्य सः (**शुन्ध्यूः**) शुद्धः (**असि**) (**मार्जालीयः**) शोधकः। **स्थाचतिमृजेरालज्वालञालीयचः।** (उणा०१।११६) अनेन सूत्रेणात्र मृजूष् शुद्धौ इत्यस्मादालीयच् प्रत्ययः। (**सम्राट्**) यथा सम्यग्राजते तथा (**असि**) (**कृशानुः**) तनूकर्त्ता (**परिषद्यः**) परिषदि भवः (**असि**) (**पवमानः**) पवित्रकारकः (**नभः**) यो नभते हन्ति परपदार्थहर्त्तॄन् सः। **नभत इति वधकर्मसु पठितम्।** (निघं०२।१९)। (**असि**) (**प्रतक्वा**) यथा प्रतकति प्रकर्षेण हर्षतीति। अत्र **अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते।** [अष्टा०३.२.७५] इति वनिप्, तथा (**मृष्टः**) यो मर्षति मार्षयति वा (**असि**) (**हव्यसूदनः**) यथा हव्यानि सूदते तथा (**ऋतधामा**) यथा सत्यं जलं वा दधाति तथा (**असि**) (**स्वर्ज्योतिः**) यथा स्वरन्तरिक्षलोकसमूहं द्योतते तथा॥३२॥

अन्वयः-हे भगवन्! यतस्त्वमुशिगस्यङ्घारिः कविरसि, बम्भारिरवस्यूरसि, दुवस्वान् शुन्ध्यूर्मार्जालीयोऽसि, पवमानः परिषद्योऽसि, यथा प्रतक्वा तथान्तरिक्षप्रकाशका नभोऽसि, यथा हव्यसूदनस्तथा मृष्टोऽसि, यथा स्वर्ज्योतिर्ऋतधामाऽसि तथा सत्यस्थायी वर्त्तसे, तथैव तत्तद्गुणेन प्रसिद्धो भवान् सर्वैरुपासनीयोऽस्तीति विजानीमः॥३२॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। येन जगदीश्वरेण यादृग्गुणं जगन्निर्मितं तादृग्गुणेन प्रसिद्धः स सर्वैर्मनुष्यैरुपासनीयः॥३२॥

पदार्थः-हे जगदीश्वर! जिस कारण आप (**उशिक्**) कान्तिमान् (**असि**) हैं, (**अङ्घारिः**) खोटे चलन वाले जीवों के शत्रु वा (**कविः**) क्रान्तप्रज्ञ (**असि**) हैं, (**बम्भारिः**) बन्धन के शत्रु वा (**अवस्यूः**) तारादि तन्तुओं के

विस्तार करने वाले **(असि)** हैं, **(दुवस्वान्)** प्रशंसनीय सेवायुक्त स्वयं **(शुन्ध्यूः)** शुद्ध **(असि)** हैं, **(मार्जालीयः)** सब को शोधने वाले **(सम्राट्)** और अच्छे प्रकार प्रकाशमान **(असि)** हैं, **(कृशानुः)** पदार्थों को अति सूक्ष्म **(पवमानः)** पवित्र और **(परिषद्यः)** सभा में कल्याण करने वाले **(असि)** हैं, जैसे **(प्रतक्वा)** हर्षित और **(नभः)** दूसरे के पदार्थ हर लेने वालों को मारने वाले **(असि)** हैं, **(हव्यसूदनः)** जैसे होम के द्रव्य को यथायोग्य व्यवहार में लाने वाले और **(मृष्टः)** सुख-दुःख को सहन करने और कराने वाले **(असि)** हैं, जैसे **(स्वर्ज्योतिः)** अन्तरिक्ष को प्रकाश करने वाले और **(ऋतधामा)** सत्यधाम युक्त **(असि)** हैं, वैसे ही उक्त गुणों से प्रसिद्ध आप सब मनुष्यों को उपासना करने योग्य हैं, ऐसा हम लोग जानते हैं॥३२॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जिस परमेश्वर ने समस्त गुण वाले जगत् को रचा है, उन्हीं गुणों से प्रसिद्ध उसकी उपासना सब मनुष्यों को करनी चाहिये॥३२॥

समुद्रोऽसीत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। अग्निर्देवता। ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनर्यथेश्वरो वर्त्तते तथा विद्वद्भिरपि भवितव्यमित्युपदिश्यते॥

फिर जैसा ईश्वर है वैसा विद्वानों को भी होना अवश्य है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

समुद्रोऽसि विश्वव्यचाऽअजोऽस्येकपादहिरसि बुध्न्यो वागस्यैन्द्रमसि सदोऽस्यृतस्य द्वारौ मा मा सन्ताप्तमध्वनामध्वपते प्र मा तिर स्वस्ति मेऽस्मिन् पथि देवयाने भूयात्॥३३॥

समुद्रः। असि। विश्वव्यचा इति विश्वऽव्यचाः। अजः। असि। एकपादित्येकऽपात्। अहिः। असि। बुध्न्यः। वाक्। असि। ऐन्द्रम्। असि। सदः। असि। ऋतस्य। द्वारौ। मा। मा। सम्। ताप्तम्। अध्वनाम्। अध्वपत इत्यध्वऽपते। प्र। मा। तिर। स्वस्ति। मे। अस्मिन्। पथि। देवयान इति देवऽयाने। भूयात्॥३३॥

पदार्थः-**(समुद्रः)** समुद्द्रवन्ति भूतानि यस्मात् सः **(असि)** **(विश्वव्यचाः)** यथा विश्वस्मिन् व्यचो व्याप्तिर्यस्यास्ति तथा **(अजः)** यः कदाचिन्न जायते **(असि)** **(एकपात्)** एकस्मिन् पादे विश्वं यस्यास्ति **(अहिः)** समस्तविद्यासु व्यापनशीलः **(असि)** **(बुध्न्यः)** बुध्नेऽन्तरिक्षे भवः। **बुध्नमन्तरिक्षं भवति।** (निरु०१०।४४) **(वाक्)** यथा वक्ति सा **(असि)** **(ऐन्द्रम्)** परमैश्वर्य्यस्येदम् **(असि)** **(सदः)** सीदन्ति यस्मिंस्तत् **(असि)** **(ऋतस्य)** सत्यस्य कारणस्य व्यवहारस्य वा **(द्वारौ)** बाह्याभ्यन्तरस्थे मुखे **(मा)** माम् **(मा)** निषेधे **(सम्)** सम्यगर्थे **(ताप्तम्)** तपेः, अत्र लिङर्थे लुङ्। **(अध्वनाम्)** यथा विद्याधर्मशिल्पमार्गाणाम् **(अध्वपते)** धर्मव्यवहारमार्गपालयितः **(प्र)** प्रकृष्टार्थे **(मा)** माम् **(तिर)** तारय **(स्वस्ति)** सुखम् **(मे)** मम **(अस्मिन्)** प्रत्यक्षे **(पथि)** मार्गे **(देवयाने)** यथा विदुषां गमनागमनाधिकरणे तथा **(भूयात्)** भवतु॥३३॥

अन्वयः-यथेश्वरः समुद्रो विश्वव्यचा अस्ति, स एकपादजोऽस्ति, अहिर्बुध्न्योऽसि। हे अध्वपदे! यथैन्द्रसदोऽस्ति यथा स ऋतस्य द्वारौ संतापयति, तथा मा संतापयेः। यथा चास्मिन् देवयाने पथि स्वस्ति भूयात् तथा त्वं सततं प्रयतस्व॥३३॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। यथा कृपायमाण ईश्वरोऽस्मिन् संसारे सर्वेषां जीवानां शिक्षादिकर्मसु प्रवर्त्तते तथा विद्वद्भिरपि वर्त्तितव्यम्। यथेश्वरस्य जगत्कारणस्य जीवानां वाऽनादित्वाज्जन्मराहित्येनाविनाशित्वं वर्त्तते, तथा

स्वस्य बोध्यं यथा परमेश्वरस्य कृपोपासनासृष्टिविद्यापुरुषार्थैः सहैव वर्त्तमानानां मनुष्याणां विद्वन्मार्गप्राप्तिस्तत्र सुखं च जायते तथा नेतरेषामिति॥३३॥

पदार्थः-जैसे परमेश्वर **(समुद्रः)** सब प्राणियों का गमनागमन कराने हारे **(विश्वव्यचाः)** जगत् में व्यापक और **(अजः)** अजन्मा **(असि)** है, **(एकपात्)** जिसके एक पाद में विश्व है **(अहिः)** वा व्यापनशील **(बुध्न्यः)** तथा अन्तरिक्ष में होनेवाला **(असि)** है और **(वाक्)** वाणीरूप **(असि)** है, **(ऐन्द्रम्)** परमैश्वर्य्य का **(सदः)** स्थान रूप है और **(ऋतस्य)** सत्य के **(द्वारौ)** मुखों को **(मा संताप्तम्)** संताप कराने वाला नहीं है **(अध्वपते)** हे धर्म-व्यवहार के मार्गों को पालन करने हारे विद्वानो! वैसे तुम भी संताप न करो। हे ईश्वर! **(मा)** मुझ को **(अध्वनाम्)** धर्मशिल्प के मार्ग से **(प्रतिर)** पार कीजिये और **(मे)** मेरे **(अस्मिन्)** इस **(देवयाने)** विद्वानों के जाने-आने योग्य **(पथि)** मार्ग में जैसे **(स्वस्ति)** सुख **(भूयात्)** हो, वैसा अनुग्रह कीजिये॥३३॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। ईश्वर, जगत् का कारण तथा जीव इनका अनादि होने के कारण जन्म न होने से अविनाशीपन है। परमेश्वर की कृपा, उपासना, सृष्टि की विद्या वा अपने पुरुषार्थ के साथ वर्त्तमान हुए मनुष्यों को विद्वानों के मार्ग की प्राप्ति और उस में सुख होता है और आलसी मनुष्यों को नहीं होता॥३३॥

मित्रस्येत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। अग्निर्देवता स्वराड्ब्राह्मी छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनर्विद्वांसः कीदृशाः सन्तीत्युपदिश्यते॥

फिर विद्वान् कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

मित्रस्य मा चक्षुषेक्षध्वमग्नयः। सगराः सगरा स्थ सगरेण नाम्ना रौद्रेणानीकेन पात माग्नयः पिपृत माग्नयो गोपायत मा नमो वोऽस्तु मा मा हिꣳसिष्ट॥३४॥

मित्रस्य। मा। चक्षुषा। ईक्षध्वम्। अग्नयः। सगराः। स्थ। सगरेण। नाम्ना। रौद्रेण। अनीकेन। पात। मा। अग्नयः। पिपृत। मा। अग्नयः। गोपायत मा। नमः। वः। अस्तु। मा। मा। हिंꣳसिष्ट॥३४॥

पदार्थः-**(मित्रस्य)** सुहृदः **(मा)** माम् **(चक्षुषा)** दृष्ट्या **(ईक्षध्वम्)** संप्रेक्षध्वम् **(अग्नयः)** नेतारो नयन्ति श्रेष्ठान् पदार्थान् **(सगराः)** सगरोऽन्तरिक्षमवकाशो येषान्ते। अर्शआदित्वादच्। **(सगराः)** सगरोऽन्तरिक्षं विद्योपदेशावकाशो येषां ते **(स्थ)** भवत **(सगरेण)** अन्तरिक्षेण सह **(नाम्ना)** प्रसिद्ध्या **(रौद्रेण)** शत्रुरोदयितॄणामिदं तेन **(अनीकेन)** सैन्येन **(पात)** रक्षत **(मा)** माम् **(अग्नयः)** ज्ञानवन्तः **(पिपृत)** विद्यागुणैः पूर्णान् कुरुत **(मा)** माम् **(अग्नयः)** सभाध्यक्षादयः **(गोपायत)** पालयत **(मा)** माम् **(नमः)** नमस्कारः **(वः)** युष्मभ्यम् **(अस्तु)** भवतु **(मा)** निषेधे **(मा)** माम् **(हिंसिष्ट)**॥३४॥

अन्वयः-हे विद्वांस! सगरा अग्नयो यूयं मां मित्रस्य चक्षुषेक्षध्वम्, यूयं सगराः स्थ। हे अग्नयः! सगरेण रौद्रेण नाम्नानीकेन मां पात मां गोपायत मां मा हिंसिष्टैतदर्थं वो युष्मभ्यं नमोऽस्तु॥३४॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा विद्यादानेन विद्वांसः सर्वान् मनुष्यान् सुखयन्ति, तथैतान् कार्य्येषु विद्ययोपयुक्ताः सन्तोऽध्येतारोऽपि सुखयन्तु॥३४॥

पदार्थः-हे **(सगराः)** अन्तरिक्ष अवकाश युक्त **(अग्नयः)** अच्छे-अच्छे पदार्थों को प्राप्त करने वाले विद्वान् लोगो! तुम **(मा)** मुझ को **(मित्रस्य)** मित्र की **(चक्षुषा)** दृष्टि से **(ईक्षध्वम्)** देखिये। आप **(सगराः)**

विद्योपदेश अवकाशयुक्त **(स्थ)** हूजिये और जैसे आप **(अग्नयः)** संसाधित विद्युत् आदि अग्नियों की रक्षा करते हैं, वैसे **(सगरेण)** अन्तरिक्ष के साथ वर्त्तमान **(रौद्रेण)** शुत्रओं को रोदन करने वाली **(नाम्ना)** प्रसिद्ध **(अनीकेन)** सेना से **(मा)** मुझे **(पात)** पालिये **(अग्नयः)** जैसे ज्ञानी लोग सब को सुख देते हैं, वैसे **(पिपृत)** सुखों से पूरण कीजिये **(गोपायत)** और सब ओर से पालन कीजिये और कभी **(मा)** मुझ को **(मा हिंसिष्ट)** नष्ट मत कीजिये **(वः)** इस से आप के लिये **(मा)** मेरा **(नमः)** नमस्कार **(अस्तु)** हो॥३४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विद्या देने से विद्वान् लोग सब मनुष्यों को सुखी करते हैं, वैसे इन विद्वानों को कार्यों के करने में चतुर और विद्यायुक्त होकर विद्यार्थी लोग सेवा से सुखी करें॥३४॥

ज्योतिरसीत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद् ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

ईश्वरः कीदृश इत्युपदिश्यते॥

ईश्वर कैसा है, यह अगले मन्त्र में कहा है॥

ज्योतिरसि विश्वरूपं विश्वेषां देवानाᳬं समित्।

त्वᳬं सोम तनूकृद्भ्यो द्वेषोभ्योऽन्यकृतेभ्यऽउरु यन्तासि वरूथᳬं स्वाहा।

जुषाणोऽ अप्तुराज्यस्य वेतु स्वाहा॥ ३५॥

ज्योतिः। असि। विश्वरूपमिति विश्वऽरूपम्। विश्वेषाम्। देवानाम्। समिदिति सम्ऽइत्। त्वम्। सोम। तनूकृद्भ्य इति तनूकृत्ऽभ्यः। द्वेषोभ्य इति द्वेषःऽभ्यः। अन्यकृतेभ्य इत्यन्यऽकृतेभ्यः। उरु। यन्ता। असि। वरूथम्। स्वाहा। जुषाणः। अप्तुः। आज्यस्य। वेतु। स्वाहा॥ ३५॥

पदार्थः-**(ज्योतिः)** सर्वप्रकाशकः **(असि)** **(विश्वरूपम्)** यथा सर्वं रूपं यस्मिंस्तथा **(विश्वेषाम्)** अखिलानाम् **(देवानाम्)** विदुषाम् **(समित्)** यथा सम्यगिध्यते तथा **(त्वम्)** **(सोम)** ऐश्वर्य्यप्रद **(तनूकृद्भ्यः)** यथा विस्तारकारिभ्यस्तथा **(द्वेषोभ्यः)** यथा द्विषन्ति तेभ्यस्तथा **(अन्यकृतेभ्यः)** यथाऽन्यैर्यानि क्रियन्ते तेभ्यः **(उरु)** बहु **(यन्ता)** नियमकर्त्ता **(असि)** **(वरूथम्)** वर्त्तुमर्हं गृहम्। **वरूथमिति गृहनामसु पठितम्।** (निघं०३।४) **(स्वाहा)** वाचम् **(जुषाणः)** प्रीतः **(अप्तुः)** व्यापकः **(आज्यस्य)** विज्ञानस्य **(वेतु)** जानातु **(स्वाहा)** वाचा। अयं मन्त्रः (शत०(३।६।३।६-८) व्याख्यातः॥३५॥

अन्वयः-हे सोम! यथा त्वं विश्वेषां देवानां विश्वरूपं ज्योतिः समिदसि तनूकृद्भ्यो द्वेषोभ्योऽन्यकृतेभ्यश्च यन्तासि, तथोरु वरूथं स्वाहासुराज्यस्य जुषाणः सन् मनुष्यः स्वाहा वेतु॥३५॥

भावार्थः-यस्मात् परमेश्वरः सर्वेषां लोकानां नियन्तास्ति, तस्मादेते नियमेषु चलन्ति॥३५॥

पदार्थः-हे **(सोम)** ऐश्वर्य देने वाले जगदीश्वर! आप **(विश्वेषाम्)** सब **(देवानाम्)** विद्वानों के **(विश्वरूपम्)** सब रूपयुक्त **(ज्योतिः)** सब के प्रकाश करने वाले **(समित्)** अच्छे प्रकाशित **(असि)** हैं **(तनूकृद्भ्यः)** शरीरों को सम्पादन करने **(द्वेषोभ्यः)** और द्वेष करने वाले जीवों तथा **(अन्यकृतेभ्यः)** अन्य मनुष्यों के किये हुए दुष्ट कर्म्मों से **(यन्ता)** नियम कराने वाले **(असि)** हैं, उनसे **(उरु)** बहुत **(वरूथम्)** उत्तम गृह **(स्वाहा)** वाणी **(अप्तुः)** व्यापक

(आज्यस्य) विज्ञान को **(जुषाण:)** सेवन करता हुआ मनुष्य **(स्वाहा)** वेदवाणी को **(वेतु)** जाने॥३५॥

भावार्थ:-जिससे परमेश्वर सब लोकों का नियम करने वाला है, इससे ये नियम में चलते हैं॥३५॥

अग्ने नयेत्यस्यागस्त्य ऋषि:। अग्निर्देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्द:। धैवत: स्वर:॥

पुनरीश्वर: किमर्थ: प्रार्थनीय इत्युपदिश्यते॥

फिर ईश्वरप्रार्थना किसलिये करनी चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र किया है॥

अग्ने॒ नय॑ सु॒पथा॑ रा॒येऽअ॒स्मान् विश्वा॑नि देव व॒युना॑नि वि॒द्वान्।

यु॒यो॒ध्य॒स्मज्जु॑हुरा॒णमेनो॒ भूयि॑ष्ठां ते॒ नम॑ऽउक्तिं विधेम॥३६॥

अग्ने॑। नय॑। सु॒पथेति॑ सु॒ऽपथा॑। रा॒ये। अ॒स्मान्। विश्वा॑नि। दे॒व॒। व॒युना॑नि। वि॒द्वान्। यु॒यो॒धि। अ॒स्मत्। जु॒हु॒रा॒णम्। एन॑:। भूयि॑ष्ठाम्। ते॒। नम॑उक्ति॒मिति॒ नम॑:ऽउक्तिम्। वि॒धे॒म॒॥३६॥

पदार्थ:-**(अग्ने)** सर्वानित: परमात्मन्! **(नय)** प्रापय **(सुपथा)** यथा सुकृत: शोभनेन धर्म्यमार्गेण गच्छन्ति तथा **(राये)** परमश्रीमोक्षसुखप्राप्तये **(अस्मान्)** अभ्युदयनि:श्रेयससुखस्पृहावत: **(विश्वानि)** सर्वाणि **(देव)** सर्वानन्दप्रापक सर्वजगत्प्रकाशक! **(वयुनानि)** प्रशस्तानि कर्माणि प्रज्ञाश्च। **वयुनमिति प्रशस्यनामसु पठितम्।** (निघं०३।९) **वयुनं वेतेः कान्तिर्वा प्रज्ञा वा।** (निरु०५।१४) **वयुनानि विद्वान् प्रज्ञानानि प्रजानन्।** (निरु०८.२०) **(विद्वान्)** य: सर्वं वेत्ति स: **(युयोधि)** दूरीकुरु। अत्र **बहुलं छन्दसि। [**अष्टा०२.४.७३**]** इति शप: श्लु:। **(अस्मत्)** अस्माकं सकाशात् **(जुहुराणम्)** कुटिलम् **(एन:)** दु:खफलं पापम् **(भूयिष्ठाम्)** बहुतमाम् **(ते)** तव **(नम उक्तिम्)** यथा नमोभिरुक्तिं विदधति तथा **(विधेम)** वदेम। अयं मन्त्र: (शत०(३।६।३।११) व्याख्यात:॥३६॥

अन्वय:-हे अग्ने देव जगदीश्वर! विद्वांस्त्वं यथा सुकृतो राये सुपथा विश्वानि वयुनानि प्राप्नुवन्ति, तथास्मान्नय, जुहुराणमेनोस्मद्युयोधि वयं ते तव भूयिष्ठां नम उक्तिं विधेम॥३६॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यथा प्रेम्णोपासित: सन् जगदीश्वरो जीवान् दुष्टमार्गाद् वियोज्य धर्ममार्गे स्थापयित्वैहिकपारमार्थिकसुखानि तत्तत्कर्मानुसारेण ददाति, तथा न्यायाधीशैरपि विधेयम्॥३६॥

पदार्थ:-हे **(अग्ने)** सब को अच्छे मार्ग में पहुंचाने **(देव)** और सब आनन्दों को देने वाले **(विद्वान्)** समस्त विद्यान्वित जगदीश्वर! आप कृपा से **(राये)** मोक्षरूप उत्तम धन के लिये **(सुपथा)** जैसे धार्मिक जन उत्तम मार्ग से **(विश्वानि)** समस्त **(वयुनानि)** उत्तम कर्म, विज्ञान वा प्रजा को प्राप्त होते हैं, वैसे **(अस्मान्)** हम लोगों को **(नय)** प्राप्त कीजिये और **(जुहुराणम्)** कुटिल **(एन:)** दु:खफलरूपी पाप को **(अस्मत्)** हम लोगों से **(युयोधि)** दूर कीजिये। हम लोग **(ते)** आप की **(भूयिष्ठाम्)** अत्यन्त **(नम उक्तिम्)** नमस्काररूप वाणी को **(विधेम)** कहते हैं॥३६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे सत्य प्रेम से उपासना किया हुआ परमेश्वर जीवों को दुष्ट मार्गों से अलग और धर्म मार्ग में स्थापन करके इस लोक के सुखों को उन के कर्मानुसार देता है, वैसे ही न्याय करने हारे भी किया करें॥३६॥

अयं न इत्यस्यागस्त्य ऋषि:। अग्निर्देवता। आर्षी त्रिष्टुप् छन्द:। धैवत: स्वर:॥

पुनः शूरगुणा उपदिश्यन्ते॥

फिर ईश्वर की उपासना करने हारे शूरवीर के गुणों का उपदेश किया है॥

अयं नोऽअग्निर्वरिवस्कृणोत्वयं मृधः पुरऽएतु प्रभिन्दन्।

अयं वाजाञ्जयतु वाजसातावयꣳ शत्रूञ्जयतु जर्हृषाणः स्वाहा॥ ३७॥

अयम्। नः। अग्निः। वरिवः। कृणोतु। अयम्। मृधः। पुरः। एतु। प्रभिन्दन्निति प्रऽभिन्दन्। अयम्। वाजान्। जयतु। वाजसाताविति वाजऽसातौ। अयम्। शत्रून्। जयतु। जर्हृषाणः। स्वाहा॥ ३७॥

पदार्थः-(**अयम्**) परमेश्वरोपासको जनः (**नः**) अस्माकं प्रजास्थानां जीवानाम् (**अग्निः**) स्वयं प्रकाशमानोऽग्निरिव पापिनां दग्धा (**वरिवः**) भृशं रक्षणम् (**कृणोतु**) करोतु (**अयम्**) युद्धकुशलः (**मृधः**) कुत्सितान् (**पुरः**) पुरस्तात् (**एतु**) गच्छतु (**प्रभिन्दन्**) यथा शत्रुदलं विदारयंस्तथा (**अयम्**) वीराणां प्रहर्षकः (**वाजान्**) संग्रामान् (**वाजसातौ**) यथा संग्रामे तथा (**अयम्**) विजयप्रापयकः (**शत्रून्**) अरीन् (**जयतु**) (**जर्हृषाणः**) अतिशयेन हृष्टः (**स्वाहा**) शोभनां वाचं वदन सन्। अयं मन्त्रः (शत०(३।६।३।१२) व्याख्यातः॥३७॥

अन्वयः-अयमग्निः परमेश्वरोपासको जनो नो वरिवः कृणोतु, यथा कश्चिद्वीरः वाजसातौ मृधः शत्रून् पुर एति, तथायम्। यथा च कश्चिद्वीरो मृधः शत्रून् प्रभिन्दन् वाजान् जयति पुर एतु तथाऽयं जर्हृषाणः स्वाहा शोभनां वाचं वदन् जयतु॥३७॥

भावार्थः-ये परेशोपासनां न विदधते नैव तेषां सर्वत्र विजयो जायते। ये सुशिक्षितान् वीरान् सत्कृत्य सेनां न रक्षन्ति, तेषां सर्वत्र पराजयो भवति, तस्मादेतद्वयं मनुष्यैः सदानुष्ठेयमिति॥३७॥

पदार्थः-(**अयम्**) यह परमेश्वर का उपासक जन (**नः**) हम प्रजास्थ जीवों की (**वरिवः**) निरन्तर रक्षा (**कृणोतु**) करे। जैसे कोई वीर पुरुष अपनी सेना को लेकर संग्राम में (**मृधः**) निन्दित दुष्ट वैरियों को पहिले ही जा घेरता है, वैसे (**अयम्**) यह युद्ध करने में कुशल सेनापति (**वाजसातौ**) संग्राम में दुष्ट शत्रुओं को (**पुरः**) पहिले ही (**एतु**) जा घेरे और जैसे (**अयम्**) यह वीरों को हर्ष देनेवाला सेनापति दुष्ट शत्रुओं को (**प्रभिन्दन्**) छिन्न-भिन्न करता हुआ (**वाजान्**) संग्रामों को (**जयतु**) जीते (**अयम्**) यह विजय कराने वाला सेनापति (**जर्हृषाणः**) निरन्तर प्रसन्न होकर (**स्वाहा**) युद्ध के प्रबन्ध की श्रेष्ठ बोलियों को बोलता हुआ (**जयतु**) अच्छी तरह जीते॥३७॥

भावार्थः-जो लोग परमेश्वर की उपासना नहीं करते हैं, उनका विजय सर्वत्र नहीं होता। जो अच्छी शिक्षा देकर शूरवीर पुरुषों का सत्कार करके सेना नहीं रखते हैं, उनका सब जगह सहज में पराजय हो जाता है। इससे मनुष्यों को चाहिये कि दो प्रबन्ध अर्थात् एक तो परमेश्वर की उपासना और दूसरा वीरों की रक्षा सदा करते रहें॥३७॥

उरु विष्णवित्यस्यागस्त्य ऋषिः। विष्णुर्देवता। भुरिगार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तौ कीदृशावित्युपदिश्यते॥

फिर वे कैसे हैं, यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

उरु विष्णो विक्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि।

घृतं घृतयोने पिब प्रप्र यज्ञपतिं तिर स्वाहा॥३८॥

उरु। विष्णोऽइति विष्णो। वि। क्रमस्व। उरु। क्षयाय। नः। कृधि। घृतम्। घृतयोन इति घृतऽयोने। पिब। प्रप्रेति प्रऽप्र। यज्ञपतिमिति यज्ञऽपतिम्। तिर। स्वाहा॥३८॥

पदार्थः-(**उरु**) बहु (**विष्णो**) यथा सर्वव्यापकेश्वरः सर्वं जगन्निर्मातुं तथा (**विक्रमस्व**) गच्छ (**उरु**) बहु (**क्षयाय**) निवासार्थाय गृहाय विज्ञानादिप्राप्तये वा (**नः**) अस्मान् (**कृधि**) कुरु (**घृतम्**) आज्यम् (**घृतयोने**) यथा घृतयोनिरग्निस्तथा तत्सम्बुद्धौ (**पिब**) (**प्रप्र**) प्रकृष्टार्थे (**यज्ञपतिम्**) यथा होत्रादयो यज्ञपतिं रक्षन्तो यतन्ते तथा (**तिर**) प्लवस्व (**स्वाहा**) यज्ञक्रियायाः। अयं मन्त्रः (शत०(३।६।३।१५) व्याख्यातः॥३८॥

अन्वयः-यथा विष्णुर्विक्रमते तथोरु विक्रमस्व नः क्षयाय उरु कृधि, हे घृतयोने! यथाग्निराज्यं पिबति तथा त्वं प्रप्रपिब, यथा च ऋत्विगादयो यज्ञपतिं संरक्ष्य दुःखं तरन्ति, तथा त्वं स्वाहा वाचं वदन् सन् विजयेन यज्ञेन यज्ञं प्रप्रतिर॥३८॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। यथा परमेश्वरो व्यापकत्वात्सर्वं जगद्रचितुं रक्षितुं समर्थः सर्वान् सुखयति, तथानन्दयितव्यम्। यथा चाग्निरिन्धनानि प्रदहति तथा शत्रव प्रदग्धव्या। यथा होत्रादयो धार्मिकं यज्ञपतिं प्राप्य स्वकार्य्याणि साध्नुवन्ति, तथा प्रजास्थाः पुरुषा धर्मात्मानं सभापतिं प्राप्य सुखानि साध्नुवन्तु॥३८॥

पदार्थः-जैसे सर्वव्यापक परमेश्वर सब जगत् की रचना करता हुआ जगत् के कारण को प्राप्त हो सब को रचता है, वैसे हे विद्यादि गुणों में व्याप्त होने वाले वीर पुरुष! अपने विद्या के फल को (**उरु**) बहुत (**वि**) अच्छी तरह (**क्रमस्व**) पहुंच (**क्षयाय**) निवास करने योग्य गृह और विज्ञान की प्राप्ति के योग्य (**नः**) हम लोगों को (**कृधि**) कीजिये। हे (**घृतयोने**) विद्यादि सुशिक्षायुक्त पुरुष! जैसे अग्नि घृत पी के प्रदीप्त होता है, वैसे तू भी अपने गुणों में (**घृतम्**) घृत को (**प्रप्र पिब**) वारंवार पी के शरीर बलादि से प्रकाशित हो और ऋत्विज आदि विद्वान् लोग (**यज्ञपतिम्**) यजमान की रक्षा करते हुए उसे यज्ञ से पार करते हैं, वैसे तू भी (**स्वाहा**) यज्ञ की क्रिया से यज्ञ के (**तिर**) पार हो॥३८॥

भावार्थः-जैसे परमेश्वर अपनी व्यापकता से कारण को प्राप्त हो सब जगत् के रचने और पालने से सब जीवों को सुख देता है, वैसे आनन्द में हम सभों को रहना उचित है। जैसे अग्नि काष्ठ आदि इन्धन वा घृत आदि पदार्थों को प्राप्त हो प्रकाशमान होता है, वैसे हम लोगों को भी शत्रुओं को जीत प्रकाशित होना चाहिये, और जैसे होता आदि विद्वान् लोग धार्मिक यज्ञ करने वाले यजमान को पाकर अपने कामों को सिद्ध करते हैं, वैसे प्रजास्थ लोग धर्मात्मा सभापति को पाकर अपने-अपने सुखों को सिद्ध किया करें॥३८॥

देव सवितरित्यस्यागस्त्य ऋषिः। सोमसवितारौ देवते। आद्यस्य साम्नी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः। एतत्त्वमित्युत्तरस्यार्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तौ कीदृशावित्युपदिश्यते॥

फिर वे कैसे हैं, यह अगले मन्त्र में कहा है॥

देव सवितरेष ते सोमस्तꣳ रक्षस्व मा त्वा दभन्। एतत्त्वं देव सोम देवो देवाँ२ऽउपागाऽइदमहं मनुष्यान्त्सह रायस्पोषेण स्वाहा निर्वरुणस्य पाशान्मुच्ये॥३९॥

देव। सवितः। एषः। ते। सोमः। तम्। रक्षस्व। मा। त्वा। दभन्। एतत्। त्वम्। देव। सोम। देवः। देवान्। उप। अगाः। इदम्। अहम्। मनुष्यान्। सह। रायः। पोषेण। स्वाहा। निः। वरुणस्य। पाशात्। मुच्ये॥३९॥

पदार्थः-(**देव**) सकलविद्याद्योतक (**सवितः**) ऐश्वर्यवन् (**एषः**) प्रत्यक्षः (**ते**) तव (**सोमः**) ऐश्वर्यसमूहः (**तम्**) (**रक्षस्व**) अत्र व्यत्ययेनात्मनेपदम्। (**मा**) निषेधे (**त्वा**) त्वाम् (**दभन्**) हिंस्युः, अत्र लिङर्थे लङडभावश्च। (**एतत्**) एतस्मात् (**त्वम्**) सभाध्यक्षो राजा (**देव**) सुखप्रद (**सोम**) सन्मार्गे प्रेरक (**देवः**) विद्याप्रकाशस्थः (**देवान्**) दिव्यान् विदुषः (**उप**) सामीप्ये (**अगाः**) गच्छ (**इदम्**) त्वदनुष्ठितं अहम् (**मनुष्यान्**) मननशीलान् (**सह**) (**रायः**) धनसमुदायस्य (**पोषेण**) पुष्ट्या (**स्वाहा**) सत्यां वाचं वदन् सन् (**निः**) नितराम् (**वरुणस्य**) दुःखेनाच्छादकस्य तिरस्कर्त्तुः (**पाशात्**) बन्धनात् (**मुच्ये**) मुक्तो भवामि। अयं मन्त्रः (शत०(३।६।३।१८-२०) व्याख्यातः॥३९॥

अन्वयः-हे देव सवितः सभाध्यक्ष! यथाऽहं भवत्सहायेन स्वकीयमैश्वर्यं रक्षामि तथा त्वं य एष ते सोमोऽस्ति तं रक्षस्व। यथा मां शत्रवो न हिंसन्ति, तथा त्वा त्वामस्मत्सहाये मा दभन्। हे देव सोम! देवस्त्वं यथैतदेतस्माद् देवानुपागास्तथाऽहमप्युपागाम्। यथाऽहमिदमनुष्ठाय रायस्पोषेण सह वर्त्तमानो मनुष्यान् देवांश्चेत्य वरुणस्य पाशान्निर्मुच्ये तथा त्वमपि निर्मुच्यस्व॥३९॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। सर्वेषां मनुष्याणामियं योग्यतास्ति यदप्राप्तस्यैश्वर्यस्य पुरुषार्थेन प्राप्तिस्तद्रक्षोन्नती कृत्वा धार्म्मिकान् मनुष्यान् संगत्यैतेन सत्कृत्य च धर्ममनुष्ठाय विज्ञानमुन्नीय दुःखबन्धनान्मुक्ता भवन्तु॥३९॥

पदार्थः-हे (**देव**) सब विद्याओं के प्रकाश करने वाले ऐश्वर्य्यवान् विद्वान् सभाध्यक्ष! जैसे मैं आप के सहाय से अपने ऐश्वर्य्य को रखता हूं, वैसे तू जो (**एषः**) यह (**ते**) तेरा (**सोमः**) ऐश्वर्य्यसमूह है (**तम्**) उसको (**रक्षस्व**) रख। जैसे मुझ को शत्रुजन दुःख नहीं दे सकते हैं, वैसे (**त्वाम्**) तुझे भी (**मा दभन्**) न दे सकें। हे (**देव**) सुख के देने और (**सोम**) सज्जनों के मार्ग में चलाने हारे राजा! (**त्वम्**) तू (**एतत्**) इस कारण सभाध्यक्ष और (**देवः**) परिपूर्ण विद्या प्रकाश में स्थित हुआ (**देवान्**) श्रेष्ठ विद्वानों के (**उप**) समीप (**अगाः**) जा और मैं भी जाऊं। जैसे मैं (**इदम्**) इस आचरण को करके (**रायः**) अत्यन्त धन की (**पोषेण**) पुष्टताई के साथ (**मनुष्यान्**) विचारवान् पुरुष और (**देवान्**) विद्वानों को प्राप्त होकर (**वरुणस्य**) दुःख से तिरस्कार करने वाले दुष्टजन की (**पाशात्**) बन्धन से (**मुच्ये**) छूटूं, वैसे तू भी (**निः**) निरन्तर छूट॥३९॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। सब मनुष्यों को योग्य है कि जिस अप्राप्त ऐश्वर्य्य की पुरुषार्थ से प्राप्ति हो, उस की रक्षा और उन्नति, धार्मिक मनुष्यों का सङ्ग और इससे सज्जनों का सत्कार तथा धर्म का अनुष्ठान कर, विज्ञान को बढ़ा के दुःखबन्धन से छूटें॥३९॥

अग्ने व्रतपा इत्यस्यागस्त्य ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तौ कथं वर्त्तेयातामित्युपदिश्यते॥

फिर वे कैसे वर्त्तें, यह अगले मन्त्र में कहा है॥

अग्ने॑ व्रतपा॒स्त्वे व्र॑तपा॒ या तव॑ त॒नूर्मय्य॑भू॒दे॒षा सा त्वयि॒ यो मम॑ त॒नूस्त्वय्य॑भू॒दि॒यꣳ सा मयि॑। य॒था॒य॒थं नौ॑ व्रतपते व्र॒तान्यनु॑ मे दी॒क्षां दी॒क्षाप॑ति॒रम॒ꣳस्तानु॒ तप॒स्तप॑स्पतिः॥४०॥

अग्ने॑। व्र॒त॒पा॒ इति॑ व्रत॒ऽपाः। ते॒। व्र॒त॒पा॒ इति॑ व्रत॒ऽपाः। या। तव॑। त॒नूः। मयि॑। अ॒भू॒त्। ए॒षा। सा। त्वयि॑। योऽइति॒ यो। मम॑। त॒नूः। त्वयि॑। अ॒भू॒त्। इ॒यम्। सा। मयि॑। य॒था॒य॒थमिति॑ य॒था॒ऽय॒थम्। नौ। व्र॒त॒प॒त॒ इति॑ व्रत॒ऽपते। व्र॒तानि॑। अनु॑। मे॒। दी॒क्षाम्। दी॒क्षाप॑ति॒रिति॑ दी॒क्षाऽप॑तिः। अम॑स्त। अनु॑। तपः॑। तप॑स्पति॒रिति॒ तपः॑ऽपतिः॥४०॥

पदार्थः-(**अग्ने**) विज्ञानोन्नत (**व्रतपाः**) यथा सत्यपालको विद्वांस्तथा तत्सम्बुद्धौ (**ते**) तव (**व्रतपाः**) पूर्ववत् (**या**) (**तव**) (**तनूः**) व्याप्तिनिमित्तं शरीरम् (**मयि**) त्वत्सखे (**अभूत्**) भवतु (**एषा**) समक्षे वर्त्तमाना (**सा**) (**त्वयि**) मन्मित्रे (**यो**) या (**मम**) (**तनूः**) विद्याविस्तृतिः (**त्वयि**) मदध्यापके (**अभूत्**) भवति (**इयम्**) गोचरा (**सा**) (**मयि**) त्वच्छिष्ये (**यथायथम्**) यथार्थम् (**नौ**) आवाम् (**व्रतपते**) यथा सत्यानां रक्षकस्तथा तत्सम्बुद्धौ (**व्रतानि**) नियतानि सत्याचरणानि (**अनु**) पश्चादर्थे (**मे**) मम (**दीक्षाम्**) व्रतोपदेशम् (**दीक्षापतिः**) यथाव्रतादेशपालकः (**अमंस्त**) मन्यते तथा पश्चाद्योगे (**तपः**) प्राक्क्लेशमुत्तरानन्दं ब्रह्मचर्य्यम् (**तपस्पतिः**) यथा ब्रह्मचर्य्यादिपालकः। अयं मन्त्रः (शत०(३।६।३।२१) व्याख्यातः॥४०॥

अन्वयः-व्रतपा अग्ने विद्वांस्त्वं यथा मे व्रतपा अभूत्, यथा तेऽहं व्रतपा भवेयम्। या तव तनूः सा मयि भवतु, यैषा त्वयि मतिरस्ति सा मयि स्यात्। यो या मम तनूः सा त्वयि भवतु। हे व्रतपते! यथाऽयं जनो व्रतपतिर्भवति तथा त्वं चाहं च नौ सखायौ भूत्वा यथायथं व्रतानि सत्याचरणान्यनुचरेव। हे मित्र! यथा तव दीक्षापतिस्तुभ्यं दीक्षाममंस्त तथा मे मम दीक्षामन्वमंस्त। यथा ते तव तपस्पतिस्त्वदर्थं तपोऽन्वमंस्त तथा मे ममापि तपस्पतिर्मदर्थं तपोऽमंस्त॥४०॥

भावार्थः-यथा पूर्वं विद्वत्कारिणोऽध्यापका अभूवन् तथाऽस्मदादिभिरपि भवितव्यम्। यावन्मनुष्याः सुखदुःखहानिलाभव्यवस्थायां परस्परं स्वात्मवन्न वर्त्तन्ते, न तावत्पूर्णं सुखं लभन्ते तस्मादेतत्सर्वं मनुष्यैः कुतो नानुष्ठेयमिति॥४०॥

पदार्थः-(**व्रतपाः**) जैसे सत्य का पालने हारा विद्वान् हो वैसे (**अग्ने**) हे विशेष ज्ञानवान् पुरुष! जो मेरा (**व्रतपाः**) सत्यविद्या गुणों का पालने हारा आचार्य्य (**अभूत्**) हुआ था, वैसे मैं (**ते**) तेरा होऊं (**या**) जो (**तव**) तेरी (**तनूः**) विद्या आदि गुणों में व्याप्त होने वाला देह है (**सा**) वह (**मयि**) तेरे मित्र मुझ में भी हो (**एषा**) यह (**त्वयि**) मेरे मित्र मुझ में भी हो (**यो**) जो (**मम**) मेरी (**तनूः**) विद्या की फैलावट है (**सा**) वह (**त्वयि**) मेरे पढ़ाने वाले तुझ में हो (**इयम्**) यह (**मयि**) तेरे शिष्य मुझ में बुद्धि हो। (**व्रतपते**) हे सत्य आचरणों के पालने हारे! जैसे सत्य गुण, सत्य उपदेश का रक्षक विद्वान् होता है, वैसे मैं और तू (**यथायथम्**) यथायुक्त मित्र होकर (**व्रतानि**) सत्य आचरणों का वर्त्ताव वर्त्तें। हे मित्र! जैसे (**तव**) तेरा (**दीक्षापतिः**) यथोक्त उपदेश का पालने हारा तेरे लिये (**दीक्षाम्**) सत्य का उपदेश (**अमंस्त**) करना जान रहा है, वैसे मेरा मेरे लिये (**अनु**) जाने। जैसे तेरा (**तपस्पतिः**) अखण्ड ब्रह्मचर्य्य को पालनेहारा आचार्य तेरे लिये (**तपः**) पहिले क्लेश और पीछे सुख देने हारे ब्रह्मचर्य्य को करना जान रहा है, वैसे मेरा अखण्ड ब्रह्मचर्य्य का पालने हारा मेरे लिये जाने॥४०॥

भावार्थः-जैसे पहिले विद्या पढ़ाने वाले अध्यापक लोग हुए वैसे हम लोगों को भी होना चाहिये। जब

तक मनुष्य सुख-दुःख, हानि और लाभ की व्यवस्था में परस्पर अपने आत्मा के तुल्य दूसरे को नहीं जानते, तब तक पूर्ण सुख को प्राप्त नहीं होते, इस से मनुष्य लोग श्रेष्ठ व्यवहार ही किया करें॥४०॥

उरु विष्णावित्यस्यागस्त्य ऋषिः। विष्णुर्देवता। भुरिगार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तौ कथं वर्त्तेयातामित्युपदिश्यते॥

फिर वे कैसे वर्त्तें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

उरु विष्णो विक्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि।

घृतं घृतयोने पिब प्रप्र यज्ञपतिं तिर स्वाहा॥४१॥

उरु। विष्णोऽइति विष्णो। वि। क्रमस्व। उरु। क्षयाय। नः। कृधि। घृतम्। घृतयोन इति घृतऽयोने। पिब। प्रप्रेति प्रऽप्र। यज्ञपतिमिति यज्ञऽपतिम्। तिर। स्वाहा॥४१॥

पदार्थः-(**उरु**) बहु (**विष्णो**) यथा व्यापनशीलो वायुर्विक्रमते तथा तत्संबुद्धौ (**विक्रमस्व**) पादैः विद्याङ्गैः सम्पद्यस्व (**उरु**) विस्तीर्णे (**क्षयाय**) विज्ञानोन्नतये (**नः**) अस्मान् (**कृधि**) कुर्य्याः (**घृतम्**) उदकम् (**घृतयोने**) यथा जलनिमित्ता विद्युद्वर्त्तते तथा तत्सम्बुद्धौ (**पिब**) (**प्रप्र**) प्रकृष्टमिव (**यज्ञपतिम्**) यथाऽहं यज्ञपतिं तथा त्वम् (**तिर**) दुःखं प्लवस्व (**स्वाहा**) सुहुतं हविः। अयं मन्त्रः (शत०(३।६।४।२-३) व्याख्यातः॥४१॥

अन्वयः-हे विष्णो! त्वं उरु क्षयाय विक्रमस्व नोऽस्मान् सुखिनः कृधि। हे घृतयोने! यथा विद्युत् तथा घृतं पिब, यथाऽहं यज्ञपतिं संतरामि तथा स्वाहानुतिष्ठन् प्रप्रतिर॥४१॥

भावार्थः-अत्र वाचलुप्तोपमालङ्कारः। यथा पवनः सर्वान् सुखयन् सर्वाधिष्ठानोऽस्ति, तथैव विदुषा सम्पत्तव्यम्॥४१॥

पदार्थः-जैसे सब पदार्थों में व्याप्त होने वाला पवन चलता है, वैसे हे विद्या गुणों में व्याप्त होने वाले विद्वन्! (**उरु**) अत्यन्त विस्तारयुक्त (**क्षयाय**) विद्योन्नति के लिये (**विक्रमस्व**) अपनी विद्या के अङ्गों से परिपूर्ण हो और (**नः**) हम लोगों को सुखी (**कृधि**) कर। जैसे जल का निमित्त बिजुली है, वैसे हे पदार्थ ग्रहण करने वाले विद्वन्! बिजुली के समान (**घृतम्**) जल (**पिब**) पी और जैसे मैं यज्ञपति को दुःख से पार करता हूं, वैसे तू भी (**स्वाहा**) अच्छे प्रकार हवन आदि कर्म्मों को सेवन करके (**प्रप्रतिर**) दुःखों से अच्छे प्रकार पार हो॥४१॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे पवन सब को सुख देता हुआ सब के रहने का स्थान हो रहा है, वैसे ही विद्वान् को होना चाहिये॥४१॥

अत्यन्यानित्यस्यागस्त्य ऋषिः। अग्निर्देवता। स्वराड्ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

मनुष्यैः पूर्वोक्तेभ्यो विरुद्धा मनुष्या न सेवनीया इत्युपदिश्यते॥

मनुष्यों को उक्त व्यवहारों से विरुद्ध मनुष्य न सेवने चाहिये, यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अत्यन्याँ२ऽअगां नान्याँ२ऽउपागामर्वाक् त्वा परेभ्योऽविदं परोऽवरेभ्यः।

तं त्वा जुषामहे देव वनस्पते देवयज्यायै देवास्त्वा देवयज्यायै जुषन्तां विष्णवे त्वा।

ओषधे त्रायस्व स्वधिते मैनꣳ हिꣳसीः॥४२॥

अति। अन्यान्। अगाम्। उप। अगाम्। अर्वाक्। त्वा। परेभ्यः। अविदम्। परः। अवरेभ्यः। तम्। त्वा। जुषामहे। देव। वनस्पते। देवयज्याया इति देवऽयज्यायै। देवाः। त्वा। देवयज्याया इति देवऽयज्यायै। जुषन्ताम्। विष्णवे। त्वा। ओषधे। त्रायस्व। स्वधिते। मा। एनम्। हिꣳसीः॥४२॥

पदार्थः-(**अति**) अत्यन्ते (**अन्यान्**) पूर्वोक्तभिन्नानविदुषः (**अगाम्**) प्राप्नुयाम् (**न**) निषेधे (**अन्यान्**) अविदुषो विरुद्धान् विदुषः (**उप**) सामीप्ये (**अगाम्**) प्राप्नुयाम् (**अर्वाक्**) अवरः (**त्वा**) त्वम् (**परेभ्यः**) उत्तमेभ्यः (**अविदम्**) लभेय (**परः**) उत्कृष्टः (**अवरेभ्यः**) अनुत्कृष्टेभ्यः (**तम्**) अनु (**त्वा**) त्वाम् (**जुषामहे**) प्रीणीयाम (**देव**) कमनीय (**वनस्पते**) वनानां रक्षक (**देवयज्यायै**) यथा दिव्यानां संगतये तथा (**देवाः**) विद्वांसः (**त्वा**) त्वाम् (**देवयज्यायै**) यथोत्तमगुणदानाय तथा (**जुषन्ताम्**) सेवन्ताम् (**विष्णवे**) यज्ञाय (**त्वा**) त्वाम् (**औषधे**) यथा सोमाद्योषधिगणस्त्रायते तथा (**त्रायस्व**) रक्ष (**स्वधिते**) दुःखविच्छेदक (**मा**) निषेधे (**एनम्**) ओषधिगणं परं पुरुषं वा (**हिंसीः**) विनाशयेः। अयं मन्त्रः (शत०(३।६।४।५-१०) व्याख्यातः॥४२॥

अन्वयः-हे वनस्पते देव विद्वन्! यथा त्वमन्यानतीत्यान्यानुपागच्छसि, तथाहमन्यान् नागामन्यानुपागाम्। यस्त्वं परेभ्यः परोऽस्यवरेभ्योऽर्वाक् च, तं त्वामविदम्, यथा देवा देवयज्यायै त्वा त्वां जुषन्ते, तथा त्वा त्वां वयं जुषामहे। यथा वयं देवयज्यायै त्वां जुषामहे, तथैते सर्वे तं त्वां जुषन्ताम्। यथौषधिगणो विष्णवे संभूय सर्वान् त्रायते, तथा हे ओषधे! सर्वरोगनिवारक स्वधिते दुःखविच्छेदक विद्वन्! त्वा त्वां विष्णवे यज्ञाय वयं जुषामहे। हे देव विद्वन्! यथाऽहमिमं यज्ञं न हिंसामि तथैनं त्वामपि मा हिंसीः॥४२॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैर्नीचव्यवहारन् नीचपुरुषांश्च त्यक्त्वोत्तमा व्यवहारा उत्तमाः पुरुषाश्च प्रतिदिनमेषितव्याः। उत्तमेभ्य उत्तमशिक्षाऽवरेभ्योऽवरा च ग्राह्या यज्ञो यज्ञसामग्री च कदाचिन्न हिंसनीया, सर्वैः परस्परं सुखेन भवितव्यम्॥४२॥

पदार्थः-हे (**वनस्पते**) सब बूटियों के रखने वाले (**देव**) विद्वान् जन! जैसे तू (**अन्यान्**) विद्वानों के विरोधी मूर्ख जनों को छोड़ के (**अन्यान्**) मूर्खों के विरोधी विद्वानों के समीप जाता है, वैसे मैं भी विद्वानों के विरोधियों को छोड़ (**उप**) समीप (**अगाम्**) जाऊं। जो तू (**परेभ्यः**) उत्तमों से (**परः**) उत्तम और (**अवरेभ्यः**) छोटों से (**अर्वाक्**) छोटे हों (**तम्**) उन्हें मैं (**अविदम्**) पाऊं। जैसे (**देवाः**) विद्वान् लोग (**देवयज्यायै**) उत्तम गुण देने के लिये (**त्वा**) तुझ को चाहते हैं, वैसे हम लोग भी (**त्वा**) तुझे (**जुषामहे**) चाहें और हम लोग (**देवयज्यायै**) अच्छे-अच्छे गुणों का संग होने के लिये (**त्वा**) तुझे चाहते हैं, वैसे और भी ये लोग चाहें। जैसे ओषधियों का समूह (**विष्णवे**) यज्ञ के लिये सिद्ध होकर सब की रक्षा करता है, वैसे हे रोगों को दूर करने और (**स्वधिते**) दुःखों का विनाश करने वाले विद्वान् जन! हम लोग (**त्वा**) तुझे यज्ञ के लिये चाहते हैं। श्रेष्ठ विद्वान् जन! जैसे मैं इस यज्ञ का विनाश करना नहीं चाहता, वैसे तू भी (**एनम्**) इस यज्ञ को (**मा**) मत (**हिंसीः**) बिगाड़॥४२॥

भावार्थः-यहां वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि नीच व्यवहार और नीच पुरुषों को छोड़ के अच्छे-अच्छे व्यवहार तथा उत्तम विद्वानों को नित्य चाहें और उत्तमों से उत्तम तथा न्यूनों से न्यून शिक्षा का ग्रहण करें। यज्ञ और यज्ञ के पदार्थों का तिरस्कार कभी न करें तथा सब को चाहिये कि एक-दूसरे के मेल से सुखी हों॥४२॥

द्यां मा लेखीरित्यस्यागस्त्य ऋषि:। यज्ञो देवता। ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्द:। धैवत: स्वर:॥

मनुष्यैर्यज्ञार्था विद्या सर्वदा संसेवनीयेत्युपदिश्यते॥

मनुष्यों को योग्य है कि यज्ञ को सिद्ध कराने वाली जो विद्या है, उस का नित्य सेवन करें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

द्यां मा लेखीरन्तरिक्षं मा हिꣳसी: पृथिव्या सम्भव।

अयꣳहि त्वा स्वधितिस्तेतिजान: प्रणिनाय महते सौभगाय।

अतस्त्वं देव वनस्पते शतवल्शो विरोह सहस्रवल्शा वि वयꣳ रुहेम॥४३॥

द्याम्। मा। लेखी:। अन्तरिक्षम्। मा। हिꣳसी:। पृथिव्या। सम्। भव। अयम्। हि। त्वा। स्वधितिरिति स्वऽधिति:। तेतिजान:। प्रणिनाय प्रतिनायेति प्रऽनिनाय। महते। सौभगाय। अत:। त्वम्। देव। वनस्पते। शतवल्श इति शतऽवल्श:। वि। रोह। सहस्रवल्शा इति सहस्रऽवल्शा:। वि। वयम्। रुहेम॥४३॥

पदार्थ:-(**द्याम्**) सूर्य्यप्रकाशम् (**मा**) निषेधे (**लेखी:**) लिखे: (**अन्तरिक्षम्**) अवकाशम् (**मा**) निषेधे (**हिंसी:**) हन्या: (**पृथिव्या**) पृथिव्या सह (**सम्**) क्रियायोगे (**भव**) (**अयम्**) वक्ष्यमाण: (**हि**) यत: (**त्वा**) त्वाम् (**स्वधिति:**) यथा वज्रस्तथा (**तेतिजान:**) भृशं तीक्ष्ण: (**प्रणिनाय**) यथा त्वं प्रणयेस्तथा (**महते**) विशिष्टाय पूज्यतमाय (**सौभगाय**) सुष्ठु भगानामैश्वर्याणां भवाय (**अत:**) कारणात् (**त्वम्**) (**देव**) आनन्दित (**वनस्पते**) वनानां रक्षक (**शतवल्श:**) यथा बह्वङ्कुरो वृक्षस्तथा (**विरोह**) विविधतया प्रादुर्भव (**सहस्रवल्शा:**) यथा बहुमूला वृक्षा रोहन्ति तथा (**वि**) विविधतया (**रुहेम**) वर्द्धेमहि। अयं मन्त्र: (शत०(३।६।४।१३-१६) व्याख्यात:॥४३॥

अन्वय:-हे विद्वन्! यथाहं द्यां न लिखामि तथा त्वमेनां मा लेखी:। यथाऽहमन्तरिक्षं न हिंसामि तथा त्वमेतन्मा हिंसी:। यथाऽहं पृथिव्या सह संभवामि तथैतया सह त्वमपि संभव। हि यत: कारणात् यथा तेतिजान: स्वधिति: शत्रून् विच्छिद्यैश्वर्य्यं प्रापयति तथा त्वमपि प्रापये:। अतो वयं त्वा महते सौभगाय सम्भावयेम यथा कश्चिदैश्वर्य्यं प्रणिनाय प्रापयति तथा वयं त्वां प्रापयेम। हे देव वनस्पते! पूर्वोक्तेन महता सौभगेन यथा शतवल्शो वृक्षो विरोहति तथा विरोह यथा सहस्रवल्शा वनस्पतयो विरोहन्ति, तथा वयमपि विरोहेम॥४३॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। इह संसारे केनचिन्मनुष्येण विद्याप्रकाशाभ्यास: कदाचिन्नैव त्याज्य:, स्वातन्त्र्यावकाशश्चैश्वर्य्यसंभावनायोगेनासंख्यातोन्नतिकरणं चेति॥४३॥

पदार्थ:-हे विद्वन्! जैसे मैं सूर्य्य के सामने होकर (**द्याम्**) उस के प्रकाश को दृष्टिगोचर नहीं करता हूं, वैसे तू भी उसको (**मा**) (**लेखी:**) दृष्टिगोचर मत कर। जैसे मैं (**अन्तरिक्षम्**) यथार्थ पदार्थों के अवकाश को नहीं बिगाड़ता हूं, वैसे तू भी उसको (**मा**) (**हिंसी**) मत बिगाड़। जैसे मैं (**पृथिव्या**) पृथिवी के साथ होता हूं, वैसे तू भी उसके साथ (**सम्**) (**भव**) हो (**हि**) जिस कारण जैसे (**तेतिजान:**) अत्यन्त पैना (**स्वधिति:**) वज्र शत्रुओं का विनाश कर के ऐश्वर्य्य को देता है (**अत:**) इस कारण (**अयम्**) यह (**त्वा**) तुझे (**महते**) अत्यन्त श्रेष्ठ (**सौभगाय**) सौभाग्यपन के लिये सम्पन्न करे और भी पदार्थ जैसे ऐश्वर्य्य को (**प्रणिनाय**) प्राप्त करते हैं, वैसे तुझे ऐश्वर्य्य पहुंचावे। हे (**देव**) आनन्दयुक्त (**वनस्पते**) वनों की रक्षा करने वाले विद्वन्! जैसे (**शतवल्श:**) सैकड़ों अंकुरों वाला

पेड़ फलता है, वैसे तू भी इस उक्त प्रशंसनीय सौभाग्यपन से **(वि) (रोह)** अच्छी तरह फल और जैसे **(सहस्रवल्शाः)** हजारों अंकुरों वाला पेड़ फले, वैसे हम लोग भी उक्त सौभाग्यपन से फलें-फूलें॥४३॥

भावार्थः-यहां वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। इस संसार में किसी मनुष्य को विद्या के प्रकाश का अभ्यास, अपनी स्वतन्त्रता और सब प्रकार से अपने कामों की उन्नति को न छोड़ना चाहिये॥४३॥

अत्र यज्ञानुष्ठानस्वरूपसम्पादकविद्वत्परमात्मप्रार्थना विद्याप्राप्तिविद्वद्व्याप्तिनिरूपणमग्न्यादिना यज्ञसाधनं सर्वविद्यानिमित्तवाचोव्याख्याध्ययनाध्यापनयज्ञविवृतियोगाभ्यासलक्षणं सृष्ट्युत्पत्तिरीश्वरसूर्य्यकर्माभिधानं प्राणापान-क्रियानिरूपणं विभोरीश्वरस्य व्याप्त्युक्तिर्यज्ञानुष्ठानं सृष्टेरुपकारग्रहणं सूर्य्यसभाध्यक्षगुणाभिलाषो यज्ञानुष्ठान-शिक्षादानं सवितृसभाध्यक्षकृत्योपदेशो यज्ञात् सिद्धिरीश्वरसभाध्यक्षाभ्यां कार्य्यनिष्पत्तिरेतयोः स्वरूपकृत्यवर्णन-मीश्वरवद्विदुषां वर्त्तमानं लक्षणं चेश्वरोपासनं शूरवीरगुणकथनमीश्वरविद्युद्गुणवर्णनं परमैश्वर्य्यप्राप्तिराकाशादि-दृष्टान्तेन विद्युद्गुणवर्णनमीश्वरोपासकगुणप्रकाशनं सर्वबन्धनाद् विमुक्तिः परस्परवर्णनप्रकारो दुष्टत्यागेन विदुषां संगकरणावश्यकता मनुष्यैर्यज्ञसिद्धये विद्यासंग्रहणं चोक्तमतः पञ्चमाध्यायोक्तार्थानां चतुर्थाध्यायोक्तार्थैः साकं संगतिरस्तीति वेदितव्यमिति॥

इस अध्याय में यज्ञ का अनुष्ठान, यज्ञ के स्वरूप का सम्पादन, विद्वान् और परमात्मा की प्रार्थना, विद्या और विद्वान् की व्याप्ति का निरूपण, अग्नि आदि पदार्थों से यज्ञ की सिद्धि, सब विद्या निमित्त वाणी का व्याख्यान, पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ का विवरण, योगाभ्यास का लक्षण, सृष्टि की उत्पत्ति, ईश्वर और सूर्य के कर्म्म का कहना, प्राण और अपान की क्रिया का निरूपण, सब के नियम करने वाले परमेश्वर की व्याप्ति का कहना, यज्ञ का अनुष्ठान, सृष्टि से उपकार लेना, सूर्य और सभाध्यक्ष के गुणों का कहना, यज्ञ के अनुष्ठान की शिक्षा का देना, सविता और सभाध्यक्ष के कर्म का उपदेश, यज्ञ से सिद्धि, ईश्वर और सभाध्यक्ष से कार्य्यों की सिद्धि तथा उनके स्वरूप और कर्मों का वर्णन, ईश्वर और विद्वानों का वर्त्ताव और उनके लक्षण, शूरवीरों के गुणों का कहना, ईश्वर और विद्वान् के गुणों का वर्णन, ईश्वर की उपासना करने वाले के गुणों का प्रकाश, सब बन्धन से छूटना, परस्पर की चर्चा, दुष्टों से छूटने का प्रकार, इन अर्थों के कहने से पञ्चमाध्याय में कहे हुए अर्थों की संगति चतुर्थाध्याय के अर्थों से जाननी चाहिये॥

इति श्रीमत्परिव्राजकाचार्य्येण श्रीयुतमहाविदुषां विरजान्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण
दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचिते संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां विभूषिते सुप्रमाणयुक्ते यजुर्वेदभाष्ये
पञ्चमोऽध्यायः पूर्तिमगात्॥५॥

॥ओ३म्॥

अथ षष्ठाध्यायस्यारम्भः

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव। यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व॥ यजु० ३०.३॥

अथ देवस्य त्वेत्यस्यागस्त्य ऋषिः। सविता देवता। पङ्क्तिश्छन्दः। धैवतः स्वरः।
यवोऽसीत्यस्यासुरी दिवेत्यस्य च भुरिगार्ध्युष्णिक् छन्दसी। ऋषभः स्वरः॥

अथ राज्याभिषेकाय सुशिक्षितं सभाध्यक्षं विद्वांसं प्रत्याचार्य्यादयः किं किमुपदिशेयुरित्युपदिश्यते॥

अब पांचवें अध्याय के पश्चात् षष्ठाऽध्याय (६) का आरम्भ है, इस के प्रथम मन्त्र में राज्याभिषेक के लिये अच्छी शिक्षायुक्त सभाध्यक्ष विद्वान् को आचार्य्यादि विद्वान् लोग क्या-क्या उपदेश करें, यह उपदेश किया है॥

दे॒वस्य॑ त्वा सवि॒तुः प्र॑स॒वे॒ऽश्विनो॑र्बा॒हुभ्यां॑ पू॒ष्णो हस्ता॑भ्याम्। आद॑दे॒ नार्य॑सी॒दम॒हꣳ रक्ष॑सां ग्रीवाऽअपि॑कृन्तामि। यवो॑ऽसि य॒वया॒स्मद् द्वेषो॑ य॒वयारा॑तीर्दि॒वे त्वा॒ऽन्तरि॑क्षाय त्वा पृथि॒व्यै त्वा॒ शुन्ध॑न्ताँल्लो॒काः पि॑तृषद॑नाः पितृ॒षद॑नमसि॥ १॥

दे॒वस्य॑। त्वा॒। स॒वि॒तुः। प्र॒स॒व इति॑ प्र॒ऽस॒वे। अ॒श्विनोः॑। बा॒हुभ्या॒मिति॑ बा॒हुऽभ्याम्। पू॒ष्णः। हस्ता॑भ्याम्। आ। द॒दे॒। नारि॑। अ॒सि॒। इदम्। अ॒हम्। रक्ष॑साम्। ग्री॒वाः। अपि॑। कृ॒न्ता॒मि॒। यवः॑। अ॒सि॒। य॒वय॑। अ॒स्मत्। द्वेषः॑। य॒वय॑। अरा॑तीः। दि॒वे। त्वा॒। अ॒न्तरि॑क्षाय। त्वा॒। पृ॒थि॒व्यै। त्वा॒। शुन्ध॑न्ताम्। लो॒काः। पि॒तृ॒षद॑नाः। पि॒तृ॒सद॑ना॒ इति॑ पि॒तृ॒ऽसद॑नाः। पि॒तृ॒षद॑नम्। पि॒तृ॒ष॑द॒न॒मिति॑ पि॒तृ॒ऽसद॑नम्। अ॒सि॒॥ १॥

पदार्थः-(**देवस्य**) द्योतमानस्य (**त्वा**) त्वां सभाध्यक्षम् (**सवितुः**) सर्वविश्वोत्पादकस्य (**प्रसवे**) यथेश्वरसृष्टौ (**अश्विनोः**) प्राणोदानयोः (**बाहुभ्याम्**) यथा बलवीर्याभ्याम् (**पूष्णः**) पुष्टिनिमित्तस्य प्राणस्य (**हस्ताभ्याम्**) धारणाकर्षणाभ्याम् (**आददे**) गृह्णामि (**नारि**) यज्ञसहकारिणि (**असि**) (**इदम्**) युद्धाख्यं कृत्वा (**अहम्**) (**रक्षसाम्**) दुष्टकर्मकारिणाम् (**ग्रीवाः**) कण्ठान् (**अपि**) (**कृन्तामि**) छिनद्मि (**यवः**) संयोगविभागकर्त्ता (**असि**) (**यवय**) **वा छन्दसि।** (अष्टा०भा०वा०१। ४। ९) इति वृद्ध्यभावः। (**अस्मत्**) अस्माकं सकाशात् (**द्वेषः**) द्वेषकान् (**यवय**) वियुहि (**अरातीः**) शत्रून् (**दिवे**) विद्यादिप्रकाशाय (**त्वा**) त्वां न्यायप्रकाशम् (**अन्तरिक्षाय**) अन्तरक्षयमिति। (निरु०२।१०) **अन्तरिक्षमित्यन्तरिक्षनामसु पठितम्।** (निघं०१।३) (**त्वा**) सत्यानुष्ठानावकाशदम् (**पृथिव्यै**) भूमिराज्याय (**त्वा**) राज्यविस्तारकम् (**शुन्धन्ताम्**) (**लोकाः**) न्यायदृष्ट्या समीक्षणीयाः (**पितृषदनाः**) यथा पितृषु सीदन्ति ते। **पितर इति पदनामसु पठितम्।** (निघं०५।५) (**पितृषदनम्**) यथा विद्वत्स्थानम् (**असि**)॥ अयं मन्त्रः (शत०(३।७।१।१-२) व्याख्यातः॥१॥

अन्वयः-हे सभाध्यक्ष! यथा पितृषदना देवस्य सवितुः प्रसवे अश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां त्वामाददाति, तथाहमाददे। यथाऽहं रक्षसां ग्रीवाः कृन्तामि तथा त्वमपि कृन्त। हे सभाध्यक्ष! त्वं यवोऽस्यस्मद् द्वेषो

यवयारातीर्यवय तथाऽहं दिवे त्वाऽन्तरिक्षाय त्वा पृथिव्यै त्वा त्वां शुन्धामि तथेमे पितृषदना लोकास्त्वां शुन्धन्ताम्। यतस्त्वं पितृषदनमिवासि तस्मात् पितृपालको भव। हे सभापतेर्नारि! भवत्याऽप्येवमेव कार्य्यम्॥१॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये विद्यानिष्णाता ईश्वरसृष्टौ स्वस्य परेषां च दुष्टतां विधूय राज्यं सेवन्ते ते सुखिनो भवन्ति॥१॥

पदार्थः-हे सभाध्यक्ष! जैसे (**पितृषदनाः**) पितरों में रहने वाले विद्वान् लोग (**देवस्य**) प्रकाशमय और (**सवितुः**) सब विश्व के उत्पन्न करने वाले जगदीश्वर के (**प्रसवे**) उत्पन्न किये हुए संसार में (**अश्विनोः**) प्राण और अपान के (**बाहुभ्याम्**) बल और उत्तम वीर्य्य से तथा (**पूष्णः**) पुष्टि का निमित्त जो प्राण है, उस के (**हस्ताभ्याम्**) धारण और आकर्षण से (**त्वा**) तुझे ग्रहण करते हैं, वैसे ही मैं (**आददे**) ग्रहण करता हूं। जैसे मैं (**रक्षसाम्**) दुष्ट काम करने वाले जीवों के (**ग्रीवाः**) गले (**कृन्तामि**) काटता हूं, वैसे तू (**अपि**) भी काट। हे सभाध्यक्ष! जिस कारण तू (**यवः**) संयोग-विभाग करने वाला (**असि**) है, इस कारण (**अस्मत्**) मुझ से (**द्वेषः**) द्वेष अर्थात् अप्रीति करने वाले वैरियों को (**यवय**) अलग कर और (**अरातीः**) जो मेरे निरन्तर शत्रु हैं, उन को (**यवय**) पृथक् कर। जैसे मैं न्याय व्यवहार से रक्षा करने योग्य जन (**दिवे**) विद्या आदि गुणों के प्रकाश करने के लिये (**त्वा**) न्याय प्रकाश करने वाले तुझको (**अन्तरिक्षाय**) आभ्यन्तर व्यवहार में रक्षा करने के लिये (**त्वा**) तुझ सत्य अनुष्ठान करने का अवकाश देने वाले को तथा (**पृथिव्यै**) भूमि के राज्य के लिये (**त्वा**) तुझ राज्य विस्तार करने वाले को पवित्र करता हूं, वैसे ये लोग भी (**त्वा**) आप को (**शुन्धन्ताम्**) पवित्र करें, जैसे तू (**पितृषदनम्**) विद्वानों के घर के समान (**असि**) है, पिता के सदृश सब प्रजा को पाला कर। हे सभापति की नारि स्त्री! तू भी ऐसा ही किया कर॥१॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो विद्या में अतिविचक्षण पुरुष ईश्वर की सृष्टि में अपनी और औरों की दुष्टता को छुड़ाकर राज्य सेवन करते हैं, वे सुखयुक्त होते हैं॥१॥

अग्रेणीरित्यस्य शाकल्य ऋषिः। सविता देवता। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः। देवस्त्वेत्यस्य स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनः सोऽभिषिक्तः सभाध्यक्षः कथं प्रवर्त्तेतेत्युपदिश्यते॥

फिर वह तिलक किया हुआ सभाध्यक्ष कैसे वर्त्ते, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अ॒ग्रे॒णीर॑सि स्वावे॒शऽउ॑न्नेतॄ॒णामे॒तस्य॑ वित्ता॒दधि॑ त्वा स्थास्यति दे॒वस्त्वा॑ सवि॒ता मध्वा॑नक्तु सुपिप्प॒लाभ्य॒स्त्वौष॑धीभ्यः। द्यामग्रे॑णास्पृक्ष॒ऽआन्तरि॑क्षं॒ मध्ये॑नाप्राः पृथि॒वीमुप॑रेणादृꣳहीः॥२॥

अ॒ग्रे॒णीः। अ॒ग्रे॒नीरित्य॑ग्रेऽनीः। अ॒सि॒। स्वा॒वे॒श इति॑ सुऽआवे॒शः। उ॒न्ने॒तॄ॒णामित्यु॑त्ऽनेतॄ॒णाम्। ए॒तस्य॑। वि॒त्ता॒त्। अधि॑। त्वा॒। स्था॒स्य॒ति॒। दे॒वः। त्वा॒। स॒वि॒ता। मध्वा॑। अ॒न॒क्तु॒। सु॒पि॒प्प॒लाभ्य॒ इति॑ सुऽपिप्प॒लाभ्यः॑। त्वा॒। ओष॑धीभ्यः। द्याम्। अग्रे॑ण। अ॒स्पृ॒क्षः॒। आ। अ॒न्तरि॑क्षम्। मध्ये॑न। अ॒प्राः॒। पृ॒थि॒वीम्। उप॑रेण। अ॒दृ॒ꣳहीः॒॥२॥

पदार्थः-(**अग्रेणीः**) यथाध्यापकाः शिष्यान् पिता स्वसन्तानान् वा पुरस्तादेव सुशिक्षया विद्यां प्रापयति, तथा (**असि**) (**स्वावेशः**) यथाप्तः शोभनं धर्ममाविशाति तथा नेता (**उन्नेतॄणाम्**) यथोन्नेतॄणां उत्कर्षप्रापयितॄणां राज्यं तथा (**एतस्य**) प्रकृतं राज्यं पालयितुम् (**वित्तात्**) विजानीहि (**अधि**) उपरिभावे (**त्वा**) त्वाम् (**स्थास्यति**) (**देवः**) अखिलराज्येश्वरः (**त्वा**) त्वाम् (**सविता**) सर्वस्य विश्वस्य जनिता (**मध्वा**) मधुरगुणेन (**अनक्तु**) सिञ्चतु

(सुपिप्लाभ्यः) यथा सुष्ठु फलाभ्यः **(त्वा)** त्वाम् **(ओषधीभ्यः)** प्रसिद्धाभ्यः **(द्याम्)** विद्यान्यायप्रकाशम् **(अग्रेण)** पुरस्तात् **(अस्पृक्षः)** स्पृश। अत्र सर्वत्र लडर्थे लुङ्। **(आ)** समन्तात् **(अन्तरिक्षम्)** धर्मप्रचारस्यावकाशम् **(मध्येन)** मध्यमावस्थाविशेषेण **(अप्राः)** पिपृहि **(पृथिवीम्)** भूमिराज्यम् **(उपरेण)** उत्कृष्टनियमेन **(अदृꣳहीः)** प्राप्य वर्द्धस्व॥ अयं मन्त्रः (शत०(३।७।१।९) व्याख्यातः॥२॥

अन्वयः-हे सभाध्यक्ष! यथाग्रेणीरस्ति तथा त्वमसि उन्नेतॄणां स्वावेशः सन्नेतस्यैतं राज्यं वित्तात्। हे राजन्! यथा ते त्वां राजपुरुषसमूहः सुपिप्पलाभ्य ओषधीभ्यो मध्वाऽनक्तु, एवं प्रजापुरुषसमूहोऽपि त्वां चानक्तु, त्वमग्रेण यशसा द्यामस्पृक्षो मध्यमेन नान्तरिक्षमाप्राः, उपरेण पृथिवीं प्राप्यैवाꣳदृहीः। देवः सविता सर्वप्रेरको जगदीश्वरस्त्वाऽधि स्थास्यति॥२॥

भावार्थः-नहि कश्चिज्जनो राजप्रजापुरुषैरस्वीकृतो राज्यमर्हति, न चापि राज्ञानादृतः साम्राज्यं कीर्त्यनुक्रमेण विना सैनापत्यं दण्डनेतृत्वं सर्वलोकाधिपतित्वं च॥२॥

पदार्थः-हे सभाध्यक्ष! जैसे **(अग्रेणीः)** पढ़ाने वाला अपने शिष्यों को वा पिता अपने पुत्रों को उन के पठनारम्भ से पहिले ही अच्छी शिक्षा से उन्हें सुशील जितेन्द्रिय धार्मिकतायुक्त करता है, वैसे हम सभी के लिये तू **(असि)** है, **(उन्नेतॄणाम्)** जैसे उत्कर्षता पहुंचाने वालों का राज्य हो, वैसे **(स्वावेशः)** अच्छे गुणों में प्रवेश करने वाले के समान होकर तू **(एतस्य)** इस राज्य के पालने को **(वित्तात्)** जान। हे राजन्! जैसे **(त्वा)** तुझे सभासद् जन **(सुपिप्पलाभ्यः)** अच्छे-अच्छे फलों वाली **(ओषधीभ्यः)** औषधियों से **(मध्वा)** निष्पन्न किये हुए मधुर गुणों से युक्त रसों से **(अनक्तु)** सीचें, वैसे प्रजाजन भी तुझे सीचें। तू इस राज्य में अपने **(अग्रेण)** प्रथम यश से **(द्याम्)** विद्या और राजनीति के प्रकाश को **(अस्पृक्षः)** स्पर्श कर **(मध्येन)** मध्य अर्थात् तदनन्तर बढ़ाए हुए यश से **(अन्तरिक्षम्)** धर्म के विचार करने के मार्ग को **(आप्राः)** पूरा कर और **(उपरेण)** अपने राज्य के नियम से **(पृथिवीम्)** इस भूमि के राज्य को प्राप्त होकर **(अदृꣳहीः)** दृढ़ कर बढ़ता जा और **(देवः)** समस्त राजाओं का राजा **(सविता)** सब जगत् को अन्तर्यामीपन से प्रेरणा देने वाला जगदीश्वर **(त्वा)** तुझ को राजा करके तेरे पर **(स्थास्यति)** अधिष्ठाता होकर रहेगा॥२॥

भावार्थः-प्रजा पुरुषों के स्वीकार किये विना राजा राज्य करने को योग्य नहीं होता, तथा राजा आदि सभा जिस को आदर से न चाहे, वह मन्त्री होने को वा कोई पुरुष अपनी कीर्ति की उत्तरोत्तर दृढ़ता के विना सेना का ईश्वर, यथायोग्य न्याय से दण्ड करने अर्थात् न्यायाधीश होने और राज्य के मण्डल की ईश्वरता के योग्य नहीं हो सकता॥२॥

या ते धामानीत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। विष्णुर्देवता। आर्च्युष्णिक् छन्दः। अत्राहेत्यस्य साम्न्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः। ब्रह्मवनित्वेत्यस्य निचृत् प्राजापत्या बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनस्तं कीदृशं विदित्वा वाणिज्यकर्म्म कुर्वाणाः जना आश्रयन्तीदमुपदिश्यते॥

फिर वह वाणिज्य कर्म करने वाले मनुष्य उसको कैसा जानकर आश्रय करते हैं, यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

या ते धामान्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गाऽअयासः। अत्राह तदुरुगायस्य विष्णोः परमं पदमवभारि भूरि। ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि रायस्पोषवनि पर्यूहामि। ब्रह्म दृꣳह क्षत्रं दृꣳहायुर्दृꣳह प्रजां दृꣳह॥ ३॥

या। ते। धामानि। उश्मसि। गमध्यै। यत्र। गावः। भूरिशृङ्गा इति भूरिशृङ्गाः। अयासः। अत्र। अह। तत्। उरुगायस्येत्युरुऽगायस्य। विष्णोः। परमम्। पदम्। अव। भारि। भूरि। ब्रह्मवनीति ब्रह्मऽवनि। त्वा। क्षत्रवनीति क्षत्रऽवनि। रायस्पोषवनीति रायस्पोषऽवनि। परि। ऊहामि। ब्रह्म। दृꣳह। क्षत्रम्। दृꣳह। आयुः। दृꣳह। प्रजामिति प्रजाम्। दृꣳह॥ ३॥

पदार्थः-(**या**) यानि (**ते**) तव सभाध्यक्षस्य (**धामानि**) दधति सुखानि येषु तानि राज्यप्रबन्धस्थानानि देशदेशान्तरवाणिज्यार्हाणि (**उश्मसि**) उश्मः कामयामहे (**गमध्यै**) गन्तुं प्राप्तुम् (**यत्र**) येषु (**गावः**) रश्मयः। **गाव इति रश्मिनामसु पठितम्।** (निघं०१।५) (**भूरिशृङ्गाः**) भूरीणि शृङ्गाणि प्रकाशा यासु ताः। **शृङ्गाणीति ज्वलतो नामसु पठितम्।** (निघं०१।१७) (**अयासः**) अत्यन्त इत्ययासः। महीधरेणात्रायगतावित्यस्य यदयन्तीति परस्मैपदमुक्तं तदसदात्मनेपदोपयोग्यत्वात् (**अत्र**) येषु (**अह**) निश्चये (**तत्**) तस्य (**उरुगायस्य**) उरुर्बहुर्गायः स्तुतिर्यस्य तस्य। अत्र गै शब्द इत्यस्माद् **घञर्थे कविधानम्।** [अष्टा०भा०वा०३.३.५८] इति कर्म्मणि कः। (**विष्णोः**) व्यापकस्य परमेश्वरस्य (**परमम्**) सर्वथोत्कृष्टम् (**पदम्**) पत्तुं योग्यम् (**अव**) क्रियायोगे (**भारि**) भ्रियते। अत्र लडर्थे लुङ् भृञ् धातोश्चिणि परेऽडभावः। अत्र **बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेऽपि।** (**अष्टा** (अष्टा०६।४।५७) इति सूत्रेणाडभावः (**भूरि**) बहु (**ब्रह्मवनि**) ब्रह्मणो वेतॄणां संविभक्तारं तत्तथा (**त्वा**) त्वाम् (**क्षत्रवनि**) क्षत्रस्य राज्यस्य क्षत्रियाणां वा संविभाजकम् (**रायस्पोषवनि**) राती धनस्य पोषो दृढता तस्याः संविभाजिनम् (**परि**) परितः (**ऊहामि**) विविधतया तर्कयामि (**ब्रह्म**) परमात्मानं वेदं वा (**दृंह**) स्थिरीकुरु (**क्षत्रम्**) राज्यं धनुर्वेदविदं क्षत्रियं वा (**दृंह**) उन्नय (**आयुः**) जीवनम् (**दृंह**) (**प्रजाम्**) स्वसन्तानान् संरक्षणीयान् जनान् (**दृंह**) ब्रह्मचर्य्यराज्यधर्माभ्यां परिपालय॥ ३॥

अत्राह यास्कमुनिः-ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः। अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परमं पदमवमाति भूरि। (ऋ०१।१५४।६) तानि वां वास्तूनि कामयामहे गमनाय यत्र गावो भूरिशृङ्गाः बहुशृङ्गाः। भूरीति बहुनामधेयं प्रभवतीति सतः। शृङ्गं श्रयतेर्वा शृणोतेर्वा शम्नातेर्वा शरणायोद्गतमिति वा शिरसो निर्गतमिति वाऽयासोऽयनास्तत्र तदुरुगायस्य विष्णोर्महागतेः परमं पदं परार्ध्यस्थमवभाति भूरि, पादः पद्यते। (निरु०२।७) अयं मन्त्रः श० ३।७।१५) व्याख्यातः॥ ३॥

अन्वयः-हे सभाध्यक्ष! या यानि ते धामानि गमध्यै गन्तुं वयमुश्मसि तानि किं भूतानि सन्ति, यत्र येषूरुगायस्य विष्णोर्भूरिशृङ्गा गावो अयासो भवन्ति, तदुक्तन्यायमार्गाः प्रकाशन्त एवेति यावत्। अत्राह-एषु हि तत्तस्य विष्णोः परमं पदं विद्वद्भिर्भूर्य्यवभारि, अतस्त्वां यथा ब्रह्मवनि यथा क्षत्रवनि यथा रायस्पोषवनि तथा पर्य्यूहामि, त्वं ब्रह्म दृंह, क्षत्रं दृंहायुर्दृंह प्रजां चापि दृंह॥ ३॥

भावार्थः-नहि सभाध्यक्षरक्षितस्थानकामनया विना कश्चिदपि सुखं प्राप्तुं शक्नोति, नहि कोऽपि जनः परमेश्वरमनादृत्य धर्मराज्यं भोक्तुमर्हति, नैव कोऽपि विज्ञानं सेनां जीवनं प्रजां चारक्षित्वा समेधत इति॥ ३॥

पदार्थः-हे सभाध्यक्ष! **(या)** जिन में **(ते)** तेरे **(धामानि)** धाम अर्थात् जिनमें प्राणी सुख पाते हों, उन स्थानों को हम **(गमध्यै)** प्राप्त होने की **(उश्मसि)** इच्छा करते हैं, वे स्थान कैसे हैं कि जैसे सूर्य्य का प्रकाश है, वैसे **(यत्र)** जिन में **(उरुगायस्य)** स्तुति करने के योग्य **(विष्णोः)** सर्वव्यापक परमेश्वर की **(भूरिशृङ्गाः)** अत्यन्त प्रकाशित **(गावः)** किरणें चैतन्यकला **(अयासः)** फैली हैं **(अत्र)** **(अह)** इन्हीं में **(तत्)** उस परमेश्वर का **(परमम्)** सब प्रकार उत्तम **(पदम्)** और प्राप्त होने योग्य परमपद विद्वानों ने **(भूरि)** **(अव)** **(भारि)** बहुधा अवधारण किया है, इस कारण **(त्वा)** तुझे **(ब्रह्मवनि)** परमेश्वर वा वेद का विज्ञान **(क्षत्रवनि)** राज्य और वीरों की चाहना **(रायस्पोषवनि)** धन की पुष्टि के विभाग करने वाले आप को मैं **(पर्य्यूहामि)** विविध तर्कों से समझता हूं कि तू **(ब्रह्म)** परमात्मा और वेद को **(दृंह)** दृढ़ कर अर्थात् अपने चित्त में स्थिर कर बढ़ **(क्षत्रम्)** राज्य और धनुर्वेदवेत्ता क्षत्रियों को **(दृंह)** उन्नति दे **(आयुः)** अपनी अवस्था को **(दृंह)** बढ़ा अर्थात् ब्रह्मचर्य्य और राजधर्म से दृढ़ कर तथा **(प्रजाम्)** अपने सन्तान वा रक्षा करने योग्य प्रजाजनों को **(दृंह)** उन्नति दे॥३॥

भावार्थः-सभाध्यक्ष के रक्षा किये हुए स्थानों की कामना के विना कोई भी पुरुष सुख नहीं पा सकता, न कोई जन परमेश्वर का अनादर करके चक्रवर्ती राज्य भोगने के योग्य होता है, न ही कोई भी जन विज्ञान सेना और जीवन अर्थात् अवस्था सन्तान और प्रजा की रक्षा के विना अच्छी उन्नति कर सकता है॥३॥

विष्णोः कर्म्माणीत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। विष्णुर्देवता। निचृदार्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अथ सभाध्यक्षः सभ्यादीन् मनुष्यान् प्रति किं किमुपदिशेदित्याह॥

अब सभापति अपने सभासद् आदि को क्या-क्या उपदेश करे, यह अगले मन्त्र में कहा है॥

विष्णोः कर्म्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे। इन्द्रस्य युज्यः सखा॥४॥

विष्णोः। कर्म्माणि। पश्यत। यतः। व्रतानि। पस्पशे। इन्द्रस्य। युज्यः। सखा॥४॥

पदार्थः-**(विष्णोः)** व्यापकस्य **(कर्माणि)** जगत उत्पत्तिस्थितिसंहत्यादीनि **(पश्यत)** संप्रेक्षध्वम् **(यतः)** येन विज्ञानेन **(व्रतानि)** नियतसत्यभाषणादीनि **(पस्पशे)** बध्नाति, अत्र लडर्थे लिट्। **(इन्द्रस्य)** परमेश्वरस्य **(युज्यः)** युनक्ति सदाचारणेति युज्यः, अत्रौणादिकः क्यप्। **(सखा)** मित्रम्॥ अयं मन्त्रः (शत०(३।७।१।१७) व्याख्यातः॥४॥

अन्वयः-हे सभ्यजना! यूयं यथेन्द्रस्य युज्यः सखा विष्णोः कर्म्माणि पश्यन्नहं यतो विज्ञानेन मनसि व्रतानि सत्यभाषणादिनियमान् पस्पशे बध्नामि, तथा तेनैव विज्ञानेन तानि यूयं पश्यत, यतो राज्यकर्म्माणि सत्यानुष्ठातारो भवत॥४॥

भावार्थः-नहि परमेश्वराविरोधसत्याचरणाभ्यां विना कश्चिदीश्वरगुणकर्मस्वभावान् द्रष्टुमर्हति, न तथाभूतेन विना राज्यकर्मणि यथार्थतया सेवितुं शक्नोति, नो खलु सत्याचरणमन्तरा राज्यं वर्धयितुं प्रभुर्भवति॥४॥

पदार्थः-हे सभासदो! जैसे **(इन्द्रस्य)** परमेश्वर का **(युज्यः)** सदाचारयुक्त **(सखा)** मित्र **(विष्णोः)** उस व्यापक ईश्वर के **(कर्माणि)** जो संसार का बनाना पालन और संहार करना सत्यगुण हैं, उनको देखता हुआ मैं **(यतः)** जिस ज्ञान से **(व्रतानि)** अपने मन में सत्यभाषणादि नियमों को **(पस्पशे)** बांध रहा अर्थात् नियम कर रहा हूं, वैसे उसी ज्ञान से तुम भी परमेश्वर के उत्तम गुणों को **(पश्यत)** दृढ़ता से देखो कि जिस से राज्यादि कामों में

सत्य व्यवहार के करने वाले होओ॥४॥

भावार्थः-परमेश्वर से प्रीति और सत्याचरण के विना कोई भी मनुष्य ईश्वर के गुण, कर्म और स्वभाव को देखने के योग्य नहीं हो सकता, न वैसे हुए विना राज्यकर्मों को यथार्थ न्याय से सेवन कर सकता है, न सत्य धर्माचार से रहित जन राज्य बढ़ाने को कभी समर्थ हो सकता है॥४॥

तद्विष्णोरित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। विष्णुर्देवता। निचृदार्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

तदनुष्ठानेन किं फलमित्याह

उक्त मन्त्र के विषय में जो अनुष्ठान कहा है, उससे क्या सिद्ध होता है, यह अगले मन्त्र में कहा है॥

तद्विष्णोः॑ पर॒मं प॒दꣳ सदा॑ पश्यन्ति सू॒रयः॑। दि॒वी᳖व॒ चक्षु॒रात॑तम्॥५॥

तत्। विष्णोः॑। प॒र॒मम्। प॒दम्। सदा॑। प॒श्य॒न्ति॒। सू॒रयः॑। दि॒वी᳖वेति॑ दि॒विऽइ॑व। चक्षुः॑। आत॑त॒मित्यात॑तम्॥५॥

पदार्थः-**(तत्)** **(विष्णोः)** पूर्वमन्त्रप्रतिपादितस्य जगदुत्पत्तिस्थितिसंहतिविधातुः परमेश्वरस्य **(परमम्)** सर्वोत्कृष्टम् **(पदम्)** प्राप्तुमर्हम् **(सदा)** सर्वस्मिन् काले **(पश्यन्ति)** अवलोकन्ते **(सूरयः)** वेदविदः स्तोतारः। **सूरिरिति स्तोतृनामसु पठितम्।** (निघं०३।१६) **(दिवीव)** आदित्यप्रकाश इव **(चक्षुः)** चष्टेऽनेन तत् **(आततम्)** व्याप्तिमत्॥ अयं मन्त्रः (शत०(३।७।१।८) व्याख्यातः॥५॥

अन्वयः-भो सभ्यजना! येन पूर्वोक्तेन कर्मणा सूरयः स्तोतारः विष्णोर्यत् परमं पदं दिवि आततं चक्षुरिव सदा पश्यन्ति, तेनैव तद् यूयमपि सततं पश्यत॥५॥

भावार्थः-अत्र मन्त्रे पूर्वमन्त्रान् **(पश्यत)** इत्यस्य पदस्यानुवृत्तिः क्रियते। पूर्णोपमालङ्कारश्चास्ति। निर्धूतमला विद्वांसः स्वविद्याप्रकाशेन यथेश्वरगुणान् दृष्ट्वा विशुद्धचरणशीला जायन्ते, तथाऽस्माभिरपि भवितव्यम्॥५॥

पदार्थः-हे सभ्यजनो! जिस पूर्वोक्त कर्म से **(सूरयः)** स्तुति करने वाले वेदवेत्ता जन **(विष्णोः)** संसार की उत्पत्ति पालन और संहार करने वाले परमेश्वर के जिस **(परमम्)** अत्यन्त उत्तम **(पदम्)** प्राप्त होने योग्य पद को **(दिवि)** सूर्य के प्रकाश में **(आततम्)** व्याप्त **(चक्षुः)** नेत्र के **(इव)** समान **(सदा)** सब समय में **(पश्यन्ति)** देखते हैं **(तत्)** उस को तुम लोग भी निरन्तर देखो॥५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र में **(पश्यत)** इस पद का अनुवर्त्तन किया जाता है और पूर्णोपमालङ्कार है। निर्धूत अर्थात् छूट गये हैं पाप जिन के वे विद्वान् लोग अपनी विद्या के प्रकाश से जैसे ईश्वर के गुणों को देख के सत्य धर्माचरयुक्त होते हैं, वैसे हम लोगों को भी होना चाहिये॥५॥

परिवीरित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। विद्वांसो देवताः। आर्ष्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः। दिवः सूनुरसीत्यस्य भुरिक्साम्नी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनरेतदुपासकः सभाध्यक्षः कीदृगित्युपदिश्यते॥

फिर यह उपासना करने वाला सभाध्यक्ष किस प्रकार का होता है, यह अगले मन्त्र में उपदेश किया है॥

प॒रि॒वीर॑सि॒ परि॑ त्वा॒ दैवी॒र्विशो॑ व्ययन्तां॒ परी॒मं यज॑मान॒ꣳ रायो॑ मनु॒ष्या॒णाम्।
दि॒वः सू॒नुर॑स्ये॒ष ते॑ पृथि॒व्याँल्लो॒कऽआ॑र॒ण्यस्ते॑ प॒शुः॥६॥

प॒रि॒वीरिति॑ परि॒ऽवीः। अ॒सि॒। परि॑। त्वा॒। दैवीः॑। विशः॑। व्य॒य॒न्ता॒म्। परि॑। इ॒मम्। यज॑मानम्। रायः॑। म॒नु॒ष्या॒णाम्। दि॒वः। सू॒नुः। अ॒सि॒। ए॒षः। ते। पृ॒थि॒व्याम्। लो॒कः। आ॒र॒ण्यः। ते॒। प॒शुः॥६॥

पदार्थः-(**परिवीः**) यथा परितः सर्वतः सर्वा विद्याव्येति व्याप्नोति तथा (**असि**) (**परि**) सर्वतः (**त्वा**) त्वां सभाध्यक्षम् (**दैवीः**) देवानां विदुषामिमाः (**विशः**) प्रजाः (**व्ययन्ताम्**) विशिष्टतया प्राप्नुवन्तु जानन्तु वा (**परि**) सर्वतः (**इमम्**) प्रत्यक्षम् (**यजमानम्**) यज्ञानुष्ठातारम् (**रायः**) धनानि (**मनुष्याणाम्**) (**दिवः**) प्रकाशमयात् सूर्यात् सूयत उत्पद्यते किरणसमूह इव (**असि**) (**एषः**) (**ते**) तव (**पृथिव्याम्**) (**लोकाः**) राष्ट्रं राज्यस्थानम् (**आरण्यः**) अरण्ये भवः (**ते**) तव (**पशुः**) पश्यकश्चतुष्पात् सिंहादिः॥ अयं मन्त्रः (शत०(३।७।१-२१) व्याख्यातः॥६॥

अन्वयः-हे सभाध्यक्ष राजन्! त्वं परिवीः सर्वाविद्याव्यापकवदसि त्वा त्वां दैवीर्विशः परिव्ययन्ताम्। त्वं दिवः सूनुरिवासि, पृथिव्यामेष ते तव लोकोऽस्तु, आरण्यः पशुः सिंहादिरप्यधीनोऽस्तु॥६॥

भावार्थः-राज्यमाचरन्तं राजानं प्रजाजना अभ्याश्रित्य करं विनयन्तु, स राजा प्रजापालनाय सिंहादिपशून् दस्युप्रभृतींश्च निहत्य स्वप्रजा यथायोग्यं धर्मे संस्थापयेत्॥६॥

पदार्थः-हे सभाध्यक्ष राजन्! तू (**परिवीः**) सब विद्याओं में अच्छे आप्त होने वाले के समान (**असि**) है, (**त्वाम्**) तुझे (**दैवीः**) विद्वानों के (**विशः**) सन्तान के समान प्रजा (**परि**) (**व्ययन्ताम्**) सर्वव्याप्त अर्थात् सब ठिकाने व्याप्त हुए तेरे कार्यकारी हों (**दिवः**) प्रकाश के पुञ्ज सूर्य से (**सूनुः**) उत्पन्न हुए किरण समुदाय के तुल्य तू (**असि**) है, (**ते**) तेरा (**पृथिव्याम्**) पृथिवी में (**लोकः**) राजधानी का देश हो और (**आरण्यः**) बनैले सिंहादि दुष्ट पशु तेरे वश्य भी हों॥६॥

भावार्थः-राज्य का आचरण करते हुए राजा को प्रजा लोग प्राप्त होकर अपने पदार्थों का कर चुकावें और वह राजा उन प्रजाओं की रक्षा करने के लिये सिंह और शूकर वा अन्य और दुष्ट जीव तथा डाकू, चोर उठाईगीरे और गांठ कटे आदि दुष्ट जनों को दण्ड से वश में कर अपनी प्रजा को यथायोग्य धर्म में प्रवृत्त करे॥६॥

उपावीरित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। त्वष्टा देवता। आर्षी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनः स तान् प्रति किं कुर्यात् ते च तं प्रति किं कुर्य्युरित्युपदिश्यते॥

फिर वह प्रजाजनों के प्रति क्या करे और वे प्रजाजन उस राजा के प्रति क्या करें, यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

उ॒पा॒वीर॒स्युप॑ दे॒वान् दैवी॒र्विशः॒ प्रागु॑रु॒शिजो॒ वह्नि॑तमान्।
देव॑ त्वष्ट॒र्वसु॑ रम ह॒व्या ते॑ स्वदन्ताम्॥७॥

उ॒पा॒वीरित्यु॑प॒ऽअ॒वीः। अ॒सि॒। उप॑। दे॒वान्। दैवीः॑। विशः॑। प्र। अ॒गुः॒। उ॒शिजः॑। वह्नि॑तमा॒निति॒ वह्नि॑ऽतमान्। देव॑। त्व॒ष्टः॒। वसु॑। र॒म॒। ह॒व्या। ते॒। स्व॒द॒न्ता॒म॥७॥

पदार्थः-(**उपावीः**) उपागतपालक इव (**असि**) (**देवान्**) विदुषः (**दैवीः**) देवसम्बन्धिनीर्दिव्याः (**विशः**)

प्रजाः **(प्र)** प्रकृष्टार्थे **(अगुः)** अगमन् **(उशिजः)** कमनीयान् **(वह्नितमान्)** अतिशयिता वह्नयो वोढारस्तान् **(देव)** दिव्यगुणसम्पन्न! **(त्वष्टः)** सर्वदुःखच्छित् **(वसु)** वसूनि धनानि। अत्र **सुपां सुलुक्। (अष्टा (अष्टा०७।१।३९)** इति शसो लुक्। **(रम)** रमस्व, अत्रात्मनेपदे व्यत्ययेन परस्मैपदम्। **(हव्या)** होतुमत्तुमर्हाणि **(ते)** तव **(स्वदन्ताम्)** भुञ्जताम्॥ अयं मन्त्र॥ शत० ३।७।३।९-१२) व्याख्यातः॥७॥

अन्वयः-हे देव त्वष्टः सभापते! यतस्त्वमुपावीरिवासि तस्माद् दैवीर्विशो यथा उशिजो वह्नितमान् देवान् उपप्रागुस्तथा त्वां प्राप्नुवन्ति, यथैतास्त्वदाश्रयेणाढ्या भूत्वा रमन्ते, तथा त्वमपि तासु रम रमस्व, भवानेतेषां पदार्थान् भुङ्क्ते तथैते ते हव्या होतुमर्हाणि हव्यानि वसु वसूनि स्वदन्ताम्॥७॥

भावार्थः-यथा गुणग्राहिण उत्तमगुणं सेवन्ते, न्यायविचक्षणं राजानं प्रजाश्च सेवन्ते, येन मिथः प्रीत्या परस्परस्योन्नतिर्भवतीति॥७॥

पदार्थः-हे **(देव)** दिव्यगुणसम्पन्न! **(त्वष्टः)** सब दुःख के छेदन करने वाले सभाध्यक्ष! जिससे तू **(उपावीः)** शरणागत पालक सदृश **(असि)** है, इसी से **(दैवीः)** विद्वानों से सम्बन्ध रखने वाली दिव्यगुण सम्पन्न **(विशः)** प्रजा जैसे **(उशिजः)** श्रेष्ठ गुण शोभित कामना के योग्य **(वह्नितमान्)** अतिशय धर्म मार्ग में चलने और चलाने वाले **(देवान्)** विद्वानों को **(उपप्रागुः)** प्राप्त हुए वैसे तुझे भी प्राप्त होते हैं, जैसे तेरे आश्रय से प्रजा धनाढ्य होके सुखी हो, वैसे तू भी प्राप्त हुए प्रजाजनों से सत्कृत होकर **(रम)** हर्षित हो, जैसे तू प्रजा के पदार्थों को भोगता है, वैसे प्रजा भी तेरे **(हव्या)** भोगने योग्य अमूल्य **(वसु)** धनादि पदार्थों को **(स्वदन्ताम्)** भोगें॥७॥

भावार्थः-जैसे गुण के ग्रहण करने वाले उत्तम गुणवान् विद्वान् का सेवन करते हैं, वैसे न्याय करने में चतुर राजा का सेवन प्रजाजन करते हैं, इसी से परस्पर की प्रीति से सब की उन्नति होती है॥७॥

रेवती रमध्वमित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। बृहस्पतिर्देवता। प्राजापत्यानुष्टुप् छन्दः। ऋषभः स्वरः।
ऋतस्य त्वेत्यस्य निचृत् प्राजापत्या बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

अथ पित्रादयः स्वसन्तानान् कथमध्यापकाय प्रदद्युः, स च तान् कथं गृह्णीयादित्युपदिश्यते॥

अब पिता आदि रक्षकजन अपने सन्तानों को पढ़ाने वालों को कैसे दें? और वह उन को कैसे स्वीकार करें? यह अगले मन्त्र में उपदेश किया है॥

रेवती रमध्वं बृहस्पते धारया वसूनि।
ऋतस्य त्वा देवहविः पाशेन प्रतिमुञ्चामि धर्षा मानुषः॥८॥

रेवतीः। रमध्वम्। बृहस्पते। धारय। वसूनि। ऋतस्य। त्वा। देवहविरिति देवऽहविः। पाशेन। प्रति। मुञ्चामि। धर्ष। मानुषः॥८॥

पदार्थः-**(रेवतीः)** रायः प्रशस्तानि धनानि विद्यन्ते यासु ताः प्रजाः **(रमध्वम्)** क्रीडध्वम् **(बृहस्पते)** बृहत्या वेदवाचः पते पातः परमविद्वन्! **(धारय)** अत्र **अन्येषामपि दृश्यते**। (अष्टा०६।३।१३७) इति दीर्घः। **(वसूनि)** **(ऋतस्य)** सत्यन्यायाख्ययज्ञस्य **(देवहविः)** यथा देवानां हविरादातुमर्हं चरित्रमस्ति तथा **(पाशेन)** बन्धनेन **(प्रति)** **(मुञ्चामि)** **(धर्ष)** धृष्णुहि। **द्व्यचोऽतस्तिङः**। (अष्टा०६।३।१३५) इति दीर्घः। विकरणव्यत्ययेन शप् च **(मानुषः)** सर्वशास्त्रमननशीलः॥ अयं मन्त्रः (शत०(३।७।३।१३) व्याख्यातः॥८॥

अन्वयः-हे रेवतीः रेवत्यः प्रजा! यूयं विद्यासु शिक्षासु रमध्वम्। हे बृहस्पतये! त्वमृतस्य वसूनि धारय। अथ शिष्यायोपदिशति गुरुः। हे राजन्! प्रजाजन वा! मानुषोऽहं पाशेनाविद्याबन्धनेन देवहविर्यथा तथा त्वां प्रतिमुञ्चामि त्वं विद्यासुशिक्षासु धर्ष धृष्टो भव॥८॥

भावार्थः-विद्वद्भिः सुशिक्षया कुमाराणां कुमारीणां च जगदीश्वरात् पृथिवीपर्यन्तं पदार्थानां बोधः सम्पादनीयो यतस्ते मूर्खत्वबन्धनं परित्यज्य सदा सुखिनः स्युरिति॥८॥

पदार्थः-हे **(रेवतीः)** अच्छे धन वाले सन्तानो! तुम विद्या और अच्छी शिक्षा में **(रमध्वम्)** रमो। हे **(बृहस्पते)** वेदवाणी पालने वाले विद्वन्! आप **(ऋतस्य)** सत्य न्याय व्यवहार से प्राप्त **(वसूनि)** धन अर्थात् हम लोगों के दिये द्रव्य आदि पदार्थों को **(धारय)** स्वीकार कीजिये। (अब अध्यापक का उपदेश शिष्य के लिये है) हे राजन् प्रजापुरुष वा! **(मानुषः)** सर्वशास्त्र का विचार करने वाला मैं **(पाशेन)** अविद्या बन्धन से तुझे **(प्रति मुञ्चामि)** छुटाता हूं, तू विद्या और अच्छी शिक्षाओं में धृष्ट हो॥८॥

भावार्थः-विद्वानों को अपनी शिक्षा से कुमार ब्रह्मचारी और कुमारी ब्रह्मचारिणियों को परमेश्वर से ले के पृथिवी पर्य्यन्त पदार्थों का बोध कराना चाहिये कि जिससे वे मूर्खपनरूपी बन्धन को छोड़ के सदा सुखी हों॥८॥

देवस्य त्वेत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। सविता आश्विनौ पूषा च देवताः। प्राजापत्या बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः। अग्नीषोमाभ्यामित्यस्य पङ्क्तिश्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनः स शिष्यं किमुपदिशेदित्याह॥

फिर वह गुरु शिष्य को क्या उपदेश करे, यह अगले मन्त्र में कहा है॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। अग्नीषोमाभ्यां जुष्टं नियुनज्मि। अद्भ्यस्त्वौषधीभ्योऽनु त्वा माता मन्यतामनु पितानु भ्राता सगर्भ्योऽनु सखा सयूथ्यः। अग्नीषोमाभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि॥९॥

देवस्य त्वा। सवितुः। प्रसव इति प्रऽसवे। अश्विनोः। बाहुभ्यामिति बाहुऽभ्याम्। पूष्णः। हस्ताभ्याम्। अग्नीषोमाभ्याम्। जुष्टम्। नि। युनज्मि। अद्भ्य इत्यद्ऽभ्यः। त्वा। ओषधीभ्यः। अनु। त्वा। माता। मन्यताम्। अनु। पिता। अनु। भ्राता। सगर्भ्य इति सऽगर्भ्यः। अनु। सखा। सयूथ्य इति सऽयूथ्यः। अग्नीषोमाभ्याम्। त्वा। जुष्टम्। प्र। उक्षामि॥९॥

पदार्थः-**(देवस्य)** वेदविद्याप्रकाशकस्य **(त्वा)** त्वां विद्यार्थिनम् **(सवितुः)** सकलैश्वर्यवतः **(प्रसवे)** प्रसूयते विश्वस्मिन् यस्तस्मिन् **(अश्विनोः)** सूर्य्याचन्द्रमसोः **(बाहुभ्याम्)** तत्तद्गुणाभ्याम् **(पूष्णः)** पृथिव्याः। **पूषेति पृथिवीनामसु पठितम्।** (निघं०१।१) **(हस्ताभ्याम्)** हस्त इव वर्त्तमानाभ्यां धारणाकर्षणाभ्याम् **(अग्नीषोमाभ्याम्)** एतयोस्तेजःशान्तिगुणाभ्याम् **(जुष्टम्)** प्रीतम् **(नि)** **(युनज्मि)** **(अद्भ्यः)** यथा जलेभ्यः **(ओषधीभ्यः)** रोगनिवारिकाभ्यः **(अनु)** **(त्वा)** त्वाम् **(माता)** जननी **(मन्यताम्)** **(अनु)** **(पिता)** जनकः **(अनु)** **(भ्राता)** बन्धुः **(सगर्भ्यः)** सोदरः **(अनु)** **(सखा)** सुहृत् **(सयूथ्यः)** ससैन्यः **(अग्नीषोमाभ्याम्)** पूर्वोक्ताभ्याम् **(त्वा)** **(जुष्टम्)** प्रीतम् **(प्र उक्षामि)** सिञ्चामि॥ अयं मन्त्रः (शत०(३।७।४।३-५) व्याख्यातः॥९॥

अन्वयः-हे शिष्य! अहं सवितुर्देवस्य प्रसवे अश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां त्वा त्वामाददे। अग्नीषोमाभ्यां जुष्टं त्वा त्वां ये ब्रह्मचर्य्यधर्मानुकूला आप ओषधयश्च सन्ति, ताभ्योऽद्भ्य ओषधीभ्यो नियुनज्मि। त्वां मत्सीपे स्थातुं माता जननी अनुमन्यताम्, पितानुमन्यताम्, सगर्भ्यो भ्रातानुमन्यताम्, सखानुमन्यताम्, सयूथ्योनुमन्यताम्, अग्नीषोमाभ्यां जुष्टं प्रीतियुक्तं त्वामहं प्रोक्षामि तद्गुणैरभिषिञ्चामि॥९॥

भावार्थः-अस्मिन् संसारे मात्रादिभिः पित्रादिभिर्बन्धुवर्गैर्मित्रवर्गैश्च स्वापत्यादीनि सुशिक्ष्य तैर्ब्रह्मचर्य्यं कारयितव्यम्, यतस्ते सद्गुणिनः स्युरिति॥९॥

पदार्थः-हे शिष्य! मैं **(सवितुः)** समस्त ऐश्वर्य्ययुक्त **(देवस्य)** वेदविद्या प्रकाश करने वाले परमेश्वर के **(प्रसवे)** उत्पन्न किये हुए इस जगत् में **(अश्विनोः)** सूर्य्य और चन्द्रमा के **(बाहुभ्याम्)** गुणों से वा **(पूष्णः)** पृथिवी के **(हस्ताभ्याम्)** हाथों के समान धारण और आकर्षण गुणों से **(त्वा)** तुझे **(आददे)** स्वीकार करता हूं तथा **(अग्नीषोमाभ्याम्)** अग्नि और सोम के तेज और शान्ति गुणों से **(जुष्टम्)** प्रीति करते हुए **(त्वा)** तुझ को जो ब्रह्मचर्य्य धर्म के अनुकूल जल और ओषधि हैं, उन **(अद्भ्यः)** जल और **(ओषधीभ्यः)** गोधूम आदि अन्नादि पदार्थों से **(नियुनज्मि)** नियुक्त करता हूं, तुझे मेरे समीप रहने के लिये तेरी **(माता)** जननी **(अनु) (मन्यताम्)** अनुमोदित करे **(पिता)** पिता **(अनु)** अनुमोदित करे **(सगर्भ्यः)** सहोदर **(भ्राता)** भाई **(अनु)** अनुमोदित करे **(सखा)** मित्र **(अनु)** अनुमोदित करे और **(सयूथ्यः)** तेरे सहवासी **(अनु)** अनुमोदित करें **(अग्नीषोमाभ्याम्)** अग्नि और सोम के तेज और शान्ति गुणों में **(जुष्टम्)** प्रीति करते हुए **(त्वा)** तुझ को **(प्र उक्षामि)** उन्हीं गुणों से ब्रह्मचर्य्य के नियम पालने के लिये अभिषिक्त करता हूं॥९॥

भावार्थः-इस संसार में माता-पिता, बन्धुवर्ग और मित्रवर्गों को चाहिये कि अपने सन्तान आदि को अच्छी शिक्षा देकर ब्रह्मचर्य करावें, जिससे वे गुणवान् हों॥९॥

अपां पेरुरित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। आपो देवता। प्राजापत्या बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः। सन्त इत्यस्य निचृदार्षी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

अथोपनीतेन शिष्येण विद्यासुशिक्षाग्रहणाग्निहोत्रादियज्ञोऽवश्यमनुष्ठातव्य इति गुरुरुपदिशेत्॥

अब यज्ञोपवीत होने के पश्चात् शिष्य को अत्यावश्यक है कि विद्या, उत्तम शिक्षा का ग्रहण और अग्निहोत्रादिक का अनुष्ठान करे ऐसा उपदेश गुरु किया करे, यह अगले मन्त्र में कहा है॥

अ॒पां पे॒रुर॒स्यापो॑ दे॒वीः स्व॑दन्तु स्वा॒त्तं चि॒त्सद्दे॑वह॒विः।
सं ते॑ प्रा॒णो वाते॑न गच्छता॒ꣳ समङ्गा॑नि॒ यज॑त्रैः सं य॒ज्ञप॑तिरा॒शिषा॑॥१०॥

अ॒पाम्। पे॒रुः। अ॒सि॒। आपः॑। दे॒वीः। स्व॒द॒न्तु॒। स्वा॒त्तम्। चि॒त्। सत्। दे॒व॒ह॒विरिति॑ देवऽह॒विः। सम्। ते॒। प्रा॒णः। वाते॑न। ग॒च्छ॒ता॒म्। अङ्गा॑नि। यज॑त्रैः। य॒ज्ञप॑तिरिति॑ य॒ज्ञऽपतिः। आ॒शिषेत्या॒ऽशिषा॑॥१०॥

पदार्थः-**(अपाम्)** जलानाम् **(पेरुः)** रक्षकः **(असि) (आपः) (देवीः)** शुद्धा दिव्यसुखप्रदाः **(स्वदन्तु) (स्वात्तम्)** स्वेन समन्तात् गृहीतम् **(चित्)** अपि **(सत्) (देवहविः)** देवेभ्यो हविरिव **(सम्) (ते)** तव **(प्राणः) (वातेन)** पवनेन सह **(गच्छताम्) (अङ्गानि)** शिर आदीनि **(यजत्रैः)** यज्ञसाधकैर्विद्वद्भिः सह **(यज्ञपतिः)** यज्ञस्य पालकः **(आशिषा)** अयं मन्त्रः (शत०(३।७।४।६-९) व्याख्यातः॥१०॥

अन्वयः-हे शिष्य त्वमपां पेरुरसि संसारस्थाः प्राणिनस्त्वद्यज्ञशोधिता देवीरापश्चित् स्वात्तं धर्मानुष्ठानस्वीकृतं देवहविरिव संस्वदन्तु मदाशिषा तवाङ्गानि यजत्रैः सह गच्छन्ताम्, प्राणो वातेन संगच्छताम्, त्वं यज्ञपतिर्भव॥१०॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। या यज्ञे प्रास्ताहुतयस्ता आदित्यमुपतिष्ठन्ते, आदित्याकर्षणशक्त्या पृथिवीजलाकर्षणेन वृष्टिर्भवति, ततोऽन्नमन्नाद् भूतानीति परम्परासम्बन्धेन यज्ञशोधिता अपो हुतद्रव्यं च सर्वे जीवा भुञ्जते॥१०॥

पदार्थः-हे शिष्य! तू **(अपाम्)** जल आदि पदार्थों का **(पेरुः)** रक्षा करने वाला **(असि)** है, संसारस्थ जीव तेरे यज्ञ से शुद्ध हुए **(देवीः)** दिव्य सुख देने वाले **(आपः)** जलों को **(चित्)** और **(स्वात्तम्)** धर्मयुक्त व्यवहार से प्राप्त हुए पदार्थों को **(देवहविः)** विद्वानों के भोगने के समान **(संस्वदन्तु)** अच्छी तरह से भोगें, **(आशिषा)** मेरे आशीर्वाद से **(ते)** तेरे **(अङ्गानि)** शिर आदि अवयव **(यजत्रैः)** यज्ञ कराने वालों के साथ **(सम्)** सम्यक् नियुक्त हों और **(प्राणः)** प्राण **(वातेन)** पवित्र वायु के संग **(सङ्गच्छताम्)** उत्तमता से रमण करे और तू **(यज्ञपतिः)** विद्याप्रचाररूपी यज्ञ का पालन करने हारा हो॥१०॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो यज्ञ में दी हुई आहुति हैं, वे सूर्य के उपस्थित रहती हैं अर्थात् सूर्य की आकर्षण शक्ति से परमाणुरूप होकर सब पदार्थ पृथिवी के ऊपर आकाश में हैं, उसी पृथिवी का जल ऊपर खिंचकर वर्षा होती है, उस वर्षा से अन्न और अन्न से सब जीवों को सुख होता है, इस परम्परा सम्बन्ध से यज्ञशोधित जल और होम किये द्रव्य को सब जीव भोगते हैं॥१०॥

घृतेनाक्तावित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। वातो देवता। भुरिगार्च्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

अथ यज्ञकर्तृकारयित्रोः कर्त्तव्यमुपदिश्यते॥

अब यज्ञ करने और कराने वालों के कर्त्तव्य काम का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

घृतेनाक्तौ पशूँस्त्रायेथाꣳ रेवति यजमाने प्रियं धाऽआविश। उरोरन्तरिक्षात् सजूर्देवेन वातेनास्य हविषस्त्मना यज समस्य तन्वा भव। वर्षो वर्षीयसि यज्ञे यज्ञपतिं धाः स्वाहा देवेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा॥११॥

घृतेन। अक्तौ। पशून्। त्रायेथाम्। रेवति। यजमाने। प्रियम्। धाः। आ। विश। उरोः। अन्तरिक्षात्। सजूरिति सऽजूः। देवेन। वातेन। अस्य। हविषः। त्मना। यज। सम्। अस्य। तन्वा। भव। वर्षोऽइति वर्षो। वर्षीयसि। यज्ञे। यज्ञपतिमिति यज्ञऽपतिम्। धाः। स्वाहा। देवेभ्यः। देवेभ्यः। स्वाहा॥११॥

पदार्थः-**(घृतेन) (अक्तौ)** घृतेनासक्तचित्तौ यज्ञकर्त्ता यज्ञकारयिता च **(पशून्)** गवादीन् **(त्रायेथाम्)** रक्षेताम् **(रेवति)** प्रशस्तैश्वर्य्ययुक्ते **(यजमाने)** यज्ञानुष्ठातरि **(प्रियम्)** प्रसन्नतासम्पादि सुखम् **(धाः)** धेहि, अत्र लोडर्थे लुङ् अडभावश्च। **(आ)** समन्तात् **(विश) (उरोः)** बहोः **(अन्तरिक्षात्) (सजूः)** मित्रमिव **(देवेन)** सर्वगतेन **(वातेन)** वायुना सह **(अस्य) (हविषः)** होतव्यस्य, कर्मणि षष्ठी। **(त्मना)** आत्मना **(यज)** संगच्छस्व एकीभव **(सम्) (अस्य) (तन्वा) (भव) (वर्षो)** यज्ञकर्म्मणा सर्वसुखसेचक! **(वर्षीयसि)** सर्वसुखमभिवर्षति **(यज्ञपतिम्)** यज्ञपालकम् **(धाः)** धेहि **(स्वाहा)** सत्कृत्यनुकूलाम् **(देवेभ्यः)** दीव्यन्ति प्रकाशन्ते सत्कर्म्मानुष्ठानेन ये तेभ्यो

धर्म्मिष्ठेभ्यो विद्वद्भ्यः **(देवेभ्यः)** शुभेभ्यो गुणेभ्यः **(स्वाहा)** सत्कृत्यनुरूपाम्॥ अयं मन्त्रः (शत०(३।८।१।५-१६) व्याख्यातः॥११॥

अन्वयः-हे यज्ञकर्तृकारयितारौ घृतनेनाक्तौ घृतमनस्कौ युवां पशून् त्रायेथाम्, त्वमेकैकौ देवेन वातेन सजूरुरोन्तरिक्षात् प्रियं प्रेमोत्पादकं सुखं रेवति यजमाने धा आविश तत्स्वान्तवृत्तिमाप्नुहि, अस्य हविषस्त्मना आत्मना यज, अस्य तन्वा सम्भवैकीभव न द्वैधमाचर। हे वर्षो! यज्ञकर्मणा सुखसेचकं त्वं देवेभ्यः स्वाहा देवेभ्यः स्वाहा तद्यज्ञं दिदृक्षुभ्यः पुनः पुनरागतेभ्यो विद्वद्भ्योऽसकृत् सत्कृत्यनुरूपां वाचमुदीरयन् वर्षीयसि यज्ञे यज्ञपतिं धाः॥११॥

भावार्थः-यज्ञार्थं घृतादिमभीप्सुभिर्मनुष्यैः पशवो रक्षणीया घृतादिसद्द्रव्येणाग्निहोत्रादियज्ञान् सम्पाद्य तैर्जलवायू संशोध्य सर्वेषां प्राणिनामभीष्टं संसाध्यम्॥११॥

पदार्थः-हे **(घृतेन, अक्तौ)** घृतप्रसक्त अर्थात् घृत चाहने और यज्ञ के कराने हारो! तुम **(पशून्)** गौ आदि पशुओं को **(त्रायेथाम्)** पालो, तुम एक एक जन **(देवेन)** सर्वगत **(वातेन)** पवन से **(सजूः)** समान प्रीति करते हुए **(उरोः)** विस्तृत **(अन्तरिक्षात्)** अन्तरिक्ष से उत्पन्न हुए **(प्रियम्)** प्रिय सुख को **(रेवति)** अच्छे ऐश्वर्ययुक्त **(यजमाने)** यज्ञ करने वाले धनी पुरुष में **(धाः)** स्थापन करो तथा **(आविश)** उस के अभिप्राय को प्राप्त होओ और **(अस्य)** इस के **(हविषः)** होम के योग्य पदार्थ को **(त्मना)** आप ही निष्पादन किये हुए के समान **(यज)** अग्नि में होमो अर्थात् यज्ञ की किसी क्रिया का विपरीत भाव न करो और **(अस्य)** इसके **(तन्वा)** शरीर के साथ **(सम्)** **(भव)** एकीभाव रक्खो, किन्तु विरोध से द्विधा आचरण मत करो। हे **(वर्षो)** यज्ञकर्म से सर्वसुख के पहुंचाने वालो! **(देवेभ्यः)** **(स्वाहा)** **(देवेभ्यः)** **(स्वाहा)** सत्कर्म के अनुष्ठान से प्रकाशित धर्मिष्ठ ज्ञानी पुरुष जो कि यज्ञ देखने की इच्छा करते हुए बार-बार यज्ञ में आते हैं, उन विद्वानों के लिये अच्छे सत्कार कराने वाली वाणियों को उच्चारण करते हुए यज्ञपति को **(वर्षीयसि)** सर्व सुख वर्षाने वाले यज्ञ में **(धाः)** अभियुक्त करो॥११॥

भावार्थः-यज्ञ के लिये घृत आदि पदार्थ चाहने वाले मनुष्य को गाय आदि पशु रखने चाहियें और घृतादि अच्छे-अच्छे पदार्थों से अग्निहोत्र से लेकर उत्तम यज्ञों से जल और पवन की शुद्धि कर सब प्राणियों को सुख उत्पन्न करना चाहिये॥११॥

माहिर्भूरित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। विद्वांसो देवताः। भुरिक् प्राजापत्यानुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

स विद्वान् कीदृग्भवेदित्युपदिश्यते॥

वह विद्वान् कैसा हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

माहिर्भूर्मा पृदाकुर्नमस्तऽआतानानर्वा प्रेहि।

घृतस्य कुल्याऽउपऽऋतस्य पथ्याऽअनु॥१२॥

मा। अहिः। भूः। मा। पृदाकुः। नमः। ते। आतानेतेत्याऽतान। अनर्वा। प्र। इहि। घृतस्य। कुल्याः। उप। ऋतस्य। पथ्याः। अनु॥१२॥

पदार्थः-**(मा)** निषेधे **(अहिः)** सर्पवत् **(भूः)** भवेः, अत्र लिङर्थे लुङ्। **(पृदाकुः)** मूढवदभिमानी व्याधवद्वा हिंसकः **(नमः)** अन्नम्। **नम इत्यन्ननामसु पठितम्।** (निघं०२।७) **(ते)** तुभ्यम् **(आतान)** समन्तात् सुखं तनितः

(अनर्वा) अश्वहीनः। **अर्वेत्यश्वनामसु पठितम्।** (निघं०१।१४) **(प्र)** प्रकृष्टार्थे **(इहि)** गच्छ **(घृतस्य)** उदकस्य **(कुल्याः)** घृतधाराः **(उप) (ऋतस्य)** सत्यस्य **(पथ्याः)** वीथीः **(अनु)**॥ अयं मन्त्रः (शत०(३।८।२।१-३) व्याख्यातः॥१२॥

अन्वयः-हे आतान! त्वं अहिर्माभूः पृदाकुर्माभूस्ते तुभ्यं नमोऽस्तु, सर्वत्र त्वत्सुखायान्नादिपदार्थः पुरत एव प्रवर्त्तत इति भावः। अनर्वा घृतस्य कुल्या इवर्तस्य पथ्या प्रोपैहि॥१२॥

भावार्थः-केनापि मनुष्येण धर्ममार्गे कुटिलमार्गगामिसर्पादिवत्कुटिलाचरणेन न भवितव्यम्, किन्तु सर्वदा सरलभावेनैव भवितव्यम्॥१२॥

पदार्थः-हे **(आतान)** अच्छे प्रकार सुख से विस्तार करने वाले विद्वान्! तू **(मा)** मत **(अहिः)** सर्प के समान कुटिलमार्गगामी और **(मा)** मत **(पृदाकुः)** मूर्खजन के समान अभिमानी वा व्याघ्र के समान हिंसा करने वाला **(भूः)** हो **(ते)** सब जगह तेरे सुख के लिये **(नमः)** अन्न आदि पदार्थ पहले ही प्रवृत्त हो रहे हैं और **(अनर्वा)** अश्व आदि सवारी के विना निराश्रय पुरुष जैसे **(घृतस्य)** जल की **(कुल्याः)** बड़ी धारओं को प्राप्त हो, वैसे **(ऋतस्य)** सत्य के **(पथ्याः)** मार्गों को प्राप्त हो॥१२॥

भावार्थः-किसी मनुष्य को कुटिलगामी सर्प आदि दुष्ट जीवों के समान धर्ममार्ग में कुटिल न होना चाहिये, किन्तु सर्वदा सरल भाव से ही रहना चाहिये॥१२॥

देवीराप इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। आपो देवताः। निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथ वटुभिर्ब्रह्मचारिणीभिश्च गुरुपत्न्यः कथं सम्माननीया इत्युपदिश्यते॥

अब ब्रह्मचारी बालक और ब्रह्मचारिणी कन्याओं को गुरुपत्नियों का कैसे मान करना चाहिये, यह अगले मन्त्र में कहा है॥

देवी॑रापः शु॒द्धा वो॑ढ्व॒ꣳ सुप॑रिविष्टा दे॒वेषु॒ सुप॑रिविष्टा व॒यं प॑रि॒वे॒ष्टारो॑ भूयास्म॥१३॥

देवीः॑। आपः॒। शु॒द्धाः। वो॒ढ्व॒म्। सुप॑रिविष्टा॒ इति॑ सुऽप॑रिविष्टाः। दे॒वेषु॑। सुप॑रिविष्टा॒ इति॒ सुऽप॑रिविष्टाः। व॒यम्। प॒रि॒वे॒ष्टार॒ इति॑ परि॒ऽवे॒ष्टारः॑। भू॒या॒स्म॒॥१३॥

पदार्थः-**(देवीः)** सद्विद्याप्रकाशवत्यः **(आपः)** आप्नुवन्ति सद्गुणान् यास्ताः **(शुद्धाः)** सत्कर्म्मानुष्ठानपूताः **(वोढ्वम्)** स्वयंवरविवाहविधिं प्राप्नुत। अत्र वह प्रापण इत्यस्माल्लोटि मध्यमबहुवचने **बहुलं छन्दसि** [अष्टा०२.४.७३] इति शपो लुकि कृते **सहिवहोरोदवर्णस्य।** (अष्टा०६।३।११२) इत्यनेनौकारः **(सुपरिविष्टाः)** तत्तत्सेवासम्मुख्यां एव। **(देवेषु)** सद्विद्यादिदिव्यगुणेषु विद्वत्सु **(सुपरिविष्टाः)** तथाभूता एव **(वयम्) (परिवेष्टारः)** परितो व्याप्ताः **(भूयास्म)**॥ अयं मन्त्रः (शत०(३।८।२।३) व्याख्यातः॥१३॥

अन्वयः-हे कुमार्यः! यथापः सद्गुणेषु व्याप्ता शुद्धाः देवीः विदुष्यः सत्स्त्रियो देवेषु सद्विद्यादिदिव्यगुणेषु विद्वत्सु स्वपतिषु सुपरिविष्टाः कृतब्रह्मचर्याः स्वसमान् वरान् स्वीकृतवत्यः, यथा च ते विद्वांसस्ता विदुषीः प्राप्तास्तथा यूयं स्त्रीभावेनास्मान् प्राप्नुतैवं वयमपि परिवेष्टारो भूयास्म॥१३॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा विदुष्यो विदुषां स्त्रियः पातिव्रत्यधर्म्मतत्परा भवन्ति, तथा ब्रह्मचारिण्यः कन्यास्तद्गुणस्वभावा भवेयुर्ब्रह्मचारिण्यो गुरुजनस्वभावाः स्युः, यतः सुशिक्षया स्त्रीपुत्रादिरक्षणशीला

भवेयुरिति॥१३॥

पदार्थः-हे कुमारियो! तुम जैसे **(आपः)** श्रेष्ठगुणों में रमण करने वाली **(शुद्धाः)** सत्कर्माऽनुष्ठान से पवित्र **(देवीः)** विद्या प्रकाशवती विदुषी स्त्रीजन **(देवेषु)** श्रेष्ठ विद्वान् पतियों के निमित्त **(सुपरिविष्टाः)** और उन की सेवा करने को सम्मुख प्रवृत्त होकर अपने समान पतियों को **(वोढ्वम्)** प्राप्त होती हैं और वे विद्वान् पतिजन उन स्त्रियों को प्राप्त होते हैं, वैसे तुम हो और हम भी **(परिवेष्टारः)** उस कर्म की योग्यता को **(भूयास्म)** पहुँचें॥१३॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विदुषी अर्थात् विद्वानों की स्त्री पातिव्रत धर्म में तत्पर रहती हैं, वैसे ब्रह्मचारिणी कन्या भी उनके गुण और स्वभाव वाली हों और ब्रह्मचारी भी गुरुजनों की शिक्षा से स्त्री और पुरुष आदि की रक्षा करने में तत्पर हों॥१३॥

वाचं त इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। विद्वांसो देवताः। भुरिगार्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

अथ कथं ता गुरुपत्न्यो गुरवश्च यथायोग्यशिक्षया स्वस्वान्तेवासिनः सद्गुणेषु प्रकाशयन्तीत्युपदिश्यते॥

अब वे गुरुपत्नी और गुरुजन यथायोग्य शिक्षा से अपने-अपने विद्यार्थियों को अच्छे-अच्छे गुणों में कैसे प्रकाशित करते हैं, यह अगले मन्त्र में कहा है॥

वाचं॑ ते शुन्धामि प्रा॒णं ते॑ शुन्धामि॒ चक्षु॑स्ते शुन्धामि॒ श्रोत्रं॑ ते शुन्धामि॒ नाभिं॑ ते शुन्धामि॒ मेढ्रं॑ ते शुन्धामि पा॒युं ते॑ शुन्धामि च॒रित्राँ॑स्ते शुन्धामि॥ १४॥

वाच॑म्। ते॒। शु॒न्धा॒मि॒। प्रा॒णम्। ते॒। शु॒न्धा॒मि॒। चक्षुः॑। ते॒। शु॒न्धा॒मि॒। श्रोत्र॑म्। ते॒। शु॒न्धा॒मि॒। नाभि॑म्। ते॒। शु॒न्धा॒मि॒। मेढ्र॑म्। ते॒। शु॒न्धा॒मि॒। पा॒युम्। ते॒। शु॒न्धा॒मि॒। च॒रित्रा॑न्। ते॒। शु॒न्धा॒मि॒॥ १४॥

पदार्थः-**(वाचम्)** वक्त्यनया तां वाणीम् **(ते)** तव **(शुन्धामि)** निर्मलीकरोमि **(प्राणम्)** प्राणिति येन तं जीवनहेतुम् **(ते)** **(शुन्धामि)** **(चक्षुः)** चष्टेऽनेन तन्नेत्रम् **(ते)** **(शुन्धामि)** **(श्रोत्रम्)** शृणोति येन तत् **(ते)** **(शुन्धामि)** **(नाभिम्)** नह्यते बध्यते यथा ताम् **(ते)** **(शुन्धामि)** **(मेढ्रम्)** मेहत्यनेन तदुपस्थेन्द्रियम् **(ते)** **(शुन्धामि)** **(पायुम्)** पात्यनेन तं गुह्येन्द्रियम् **(ते)** **(शुन्धामि)** **(चरित्रान्)** व्यवहारान् **(ते)** **(शुन्धामि)**॥ अयं मन्त्रः (शत०(३। ८। २। ६) व्याख्यातः॥१४॥

अन्वयः-हे शिष्य! विविधशिक्षाभिस्तेऽहं वाचं शुन्धामि, ते प्राणं शुन्धामि, ते चक्षुः शुन्धामि, ते श्रोत्रं शुन्धामि, ते नाभिं शुन्धामि, ते मेढ्रं शुन्धामि, ते पायुं शुन्धामि, ते चरित्रान् शुन्धामि॥१४॥

भावार्थः-गुरुभिर्गुरुपत्नीभिश्च वेदोपवेदवेदाङ्गोपाङ्गशिक्षया देहेन्द्रियान्तःकरणात्ममनःशुद्धिशरीरपुष्टिप्राण-सन्तुष्टीः प्रदाय सर्वे कुमाराः सर्वाः कन्याश्च सद्गुणेषु प्रवर्त्तयितव्या इति॥१४॥

पदार्थः-हे शिष्य! मैं विविध शिक्षाओं से **(ते)** तेरी **(वाचम्)** जिस से बोलता है, उस वाणी को **(शुन्धामि)** शुद्ध अर्थात् सद्धर्मानुकूल करता हूं। **(ते)** तेरे **(चक्षुः)** जिस से देखता है, उस नेत्र को **(शुन्धामि)** शुद्ध करता हूं। **(ते)** तेरी **(नाभिम्)** जिस से नाड़ी आदि बांधे जाते हैं, उस नाभि को **(शुन्धामि)** पवित्र करता हूं। **(ते)** तेरे **(मेढ्रम्)** जिससे मूत्रोत्सर्गादि किये जाते हैं, उस लिङ्ग को **(शुन्धामि)** पवित्र करता हूं। **(ते)** तेरे **(पायुम्)** जिस

से रक्षा की जाती है, उस गुदेन्द्रिय को **(शुन्धामि)** पवित्र करता हूं। **(चरित्रान्)** समस्त व्यवहारों को **(शुन्धामि)** पवित्र शुद्ध अर्थात् धर्म के अनुकूल करता हूं, तथा गुरुपत्नी पक्ष में सर्वत्र 'करती हूं' यह योजना करनी चाहिये॥१४॥

भावार्थः-गुरु और गुरुपत्नियों को चाहिये कि वेद और तथा वेद के अङ्ग और उपाङ्गों की शिक्षा से देह, इन्द्रिय, अन्तःकरण और मन की शुद्धि, शरीर की पुष्टि तथा प्राण की सन्तुष्टि देकर समस्त कुमार और कुमारियों को अच्छे-अच्छे गुणों में प्रवृत्त करावें॥१४॥

मनस्त इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। विद्वांसो देवताः। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनरुक्तोऽर्थः प्रकारान्तरेण प्रकाश्यते॥

फिर भी प्रकारान्तर से अगले मन्त्र में उक्त अर्थ का प्रकाश किया है॥

मन॑स्तऽआप्या॑यतां वाक् तऽआप्या॑यतां प्रा॒णस्तऽआप्या॑यतां चक्षु॒स्तऽआप्या॑यता॒ꣳ श्रोत्रं॑ तऽआप्या॑यताम्। यत्ते॑ क्रू॒रं यदास्थि॑तं तत्तऽआप्या॑यतां निष्ट्या॑यतां तत्ते॑ शुध्यतु शमहो॑भ्यः। ओष॑धे त्राय॑स्व स्वधि॑ते मैनं॑ हिꣳसीः॥१५॥

मनः॑। ते॒। आ। प्या॒य॒ता॒म्। वाक्। ते॒। आ। प्या॒य॒ता॒म्। प्रा॒णः। ते॒। आ। प्या॒य॒ता॒म्। चक्षुः॑। ते॒। आ। प्या॒य॒ता॒म्। श्रोत्र॑म्। ते॒। आ। प्या॒य॒ता॒म्। यत्। ते॒। क्रू॒रम्। यत्। आस्थि॑त॒मित्याऽस्थि॑तम्। तत्। ते॒। आ। प्या॒य॒ता॒म्। निः। स्त्या॒य॒ता॒म्। तत्। ते॒। शु॒ध्य॒तु॒। शम्। अहो॑भ्य॒ इत्यहः॑ऽभ्यः। ओष॑धे। त्राय॑स्व। स्वधि॑त॒ इति॒ स्वऽधि॑ते। मा। ए॒न॒म्। हि॒ꣳसीः॥१५॥

पदार्थः-**(मनः)** संकल्पविकल्पात्मकम् **(ते)** तव **(आ)** **(प्यायताम्)** सत्कर्म्मानुष्ठानेन वर्द्धताम् **(वाक्)** **(ते)** **(आ)** **(प्यायताम्)** **(प्राणः)** **(ते)** **(आ)** **(प्यायताम्)** **(चक्षुः)** **(ते)** **(आ)** **(प्यायताम्)** **(श्रोत्रम्)** **(ते)** **(आ)** **(प्यायताम्)** **(यत्)** **(ते)** तव **(क्रूरम्)** दुश्चरित्रम् **(यत्)** **(आस्थितम्)** निश्चितम् **(तत्)** **(ते)** **(आ)** **(प्यायताम्)** **(निः)** पृथगर्थे **(स्त्यायताम्)** संहन्यताम् **(तत्)** **(ते)** **(शुध्यतु)** **(शम्)** सुखम् **(अहोभ्यः)** कालविशेषेभ्यः **(ओषधे)** ओषो विज्ञानं धीयते यस्मिंस्तत्संबुद्धौ। अत्र ओष गतावित्यस्माद् गतिरत्र विज्ञानं गृह्यते। **(त्रायस्व)** **(स्वधिते)** स्वेष्वात्मीयेषु धितिः पोषणं यस्यास्तत्संबुद्धौ **(मा)** निषेधे **(एनम्)** पूर्वोक्तम् **(हिंसीः)** कुशिक्षया लालनेन वा मा विनाशयेः॥१५॥

अन्वयः-हे शिष्य! मदीयशिक्षणेन ते तव मन आप्यायताम्, ते वागाप्यायताम्, ते प्राण आप्यायताम्, ते चक्षुराप्यायताम्, ते श्रोत्रमाप्यायताम्, ते यत्क्रूरं दुश्चरित्रं तत् निष्ट्यायताम् दूरीगच्छतु, यत् ते तवास्थितं निश्चितं तदाप्यायताम्, इत्थं ते सर्वं शुध्यतु, अहोभ्यो दिनेभ्यस्तुभ्यं शमस्तु। अथ स्वस्वामिनि शिष्यलालनापरं गुरुपत्नी वाक्यम्। हे ओषधे! विज्ञानवराध्यापक! त्वमेनं शिष्यं त्रायस्व, मा हिंसीः। स च स्वपत्नी प्रत्याह- हे स्वधितेऽध्यापिके स्त्रि! त्वमेनां त्रायस्व, मा हिंसीश्च॥१५॥

भावार्थः-सत्कर्म्मानुष्ठानेन सर्वस्योन्नतिर्भवत्यतः सर्वैर्मनुष्यैर्गुरुशिक्षया समस्तसत्कर्म्मानुष्ठेयम्। गुरवो गुणग्रहणायैव शिष्याणां ताडनं विदधति, ततस्तेषामिदमभ्युदयनिःश्रेयसकारि जायत एवेति बोध्यम्। दम्पती परस्परमेवमुपदिशेताम्। हे पते! भवानयं शिष्यो यथा सद्यो विद्वान् स्यात् तथा प्रयतताम्। हे धर्मपत्नि! भवति यथेयं

कन्या तूर्णं विदुषी भवेत् तथा विदधातु॥१५॥

पदार्थः-हे शिष्य! मेरी शिक्षा से **(ते)** तेरा **(मनः)** मन **(आप्यायताम्)** पर्य्याप्त गुणयुक्त हो, **(ते)** तेरा **(प्राणः)** प्राण **(आप्यायताम्)** बलादि गुणयुक्त हो, **(ते)** तेरी **(चक्षुः)** दृष्टि **(आप्यायताम्)** निर्मल हो, **(ते)** तेरे **(श्रोत्रम्)** कर्ण **(आप्यायताम्)** सद्‌गुण व्याप्त हों, **(ते)** तेरा **(यत्)** जो **(क्रूरम्)** दुष्ट व्यवहार है, वह **(निः)** **(स्त्यायताम्)** दूर हो और **(यत्)** जो **(ते)** तेरा **(आस्थितम्)** निश्चय है, वह **(आप्यायताम्)** पूरा हो। इस प्रकार से **(ते)** तेरा समस्त व्यवहार **(शुध्यतु)** शुद्ध हो और **(अहोभ्यः)** प्रतिदिन तेरे लिये **(शम्)** सुख हो। हे **(ओषधे)** प्रवर अध्यापक! आप **(एनम्)** इस शिष्य की **(त्रायस्व)** रक्षा कीजिये और **(मा हिंसीः)** व्यर्थ ताड़ना मत कीजिये। हे **(स्वधिते)** प्रशस्ताध्यापिके! तू इस कुमारिका शिष्या की **(त्रायस्व)** रक्षा कर और इस को अयोग्य ताड़ना मत दे॥१५॥

भावार्थः-सत्कर्म करने से सब की उन्नति होती है, इस से सब मनुष्यों को चाहिये कि सुशिक्षा पाकर समस्त सत्कर्मों का अनुष्ठान करें। इसी से अध्यापक जन गुणग्रहण कराने ही के लिये शिष्यों को ताड़ना देते हैं, वह उनकी ताड़ना अत्यन्त सुख की करने वाली होती है। स्त्री और पुरुष इस प्रकार उपदेश करें कि हे सर्वोत्तम अध्यापक! यह आपका विद्यार्थी जैसे शीघ्र विद्वान् हो जाय, वैसा प्रयत्न कीजिये। हे प्रिये! यह कन्या जिस प्रकार अतिशीघ्र विद्यायुक्त हो, वैसा काम कर॥१५॥

रक्षसां भाग इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। द्यावापृथिव्यौ देवते। ब्राह्म्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

अथ शिष्यवर्गेषु यथायोग्योपदेशकरणमाह॥

अब शिष्यवर्गों में से प्रति शिष्य को यथायोग्य उपदेश करना अगले मन्त्र में कहा है॥

र॒क्ष॑सां भा॒गो॑ऽसि॒ निर॑स्त॒ꣳ रक्ष॑ऽइ॒दम॒हꣳ रक्षो॒ऽभिति॑ष्ठामी॒दम॒हꣳ रक्षो॒ऽव॑बाधऽइ॒दम॒हꣳ रक्षो॑ऽध॒मं तमो॑ नयामि। घृ॒तेन॑ द्यावापृथिवी॒ प्रोर्णु॑वाथां॒ वायो॒ वे स्तो॒काना॑म॒ग्निराज्य॑स्य वेतु॒ स्वाहा॒ स्वाहा॑कृतेऽऊ॒र्ध्वन॑भसं मारु॒तं ग॑च्छतम्॥ १६॥

रक्षसा॒म्। भा॑गः॒। अ॒सि॒। निर॑स्त॒मिति॒ निःऽअ॑स्तम्। रक्षः॑। इ॒दम्। अ॒हम्। रक्षः॑। अ॒भि। ति॒ष्ठा॒मि॒। इ॒दम्। अ॒हम्। रक्षः॑। अव॑बा॒धे॒। इ॒दम्। अ॒हम्। रक्षः॑। अ॒ध॒मम्। तमः॑। न॒या॒मि॒। घृ॒तेन॑। द्या॒वा॒पृ॒थि॒वी॒ इति॑ द्यावापृथिवी। प्र। ऊ॒र्णु॒वा॒था॒म्। वायो॒ऽइति॒ वायो॑। वेः। स्तो॒काना॑म्। अ॒ग्निः। आज्य॑स्य। वे॒तु॒। स्वाहा॑। स्वाहा॑कृत॒ऽइति॒ स्वाहा॑ऽकृते। ऊ॒र्ध्वन॑भस॒मित्यू॒र्ध्वन॑भसम्। मा॒रु॒तम्। ग॒च्छ॒त॒म्॥ १६॥

पदार्थः-**(रक्षसाम्)** रक्षन्ति परार्थहननेन स्वार्थमिति रक्षांसि तेषाम् **(भागः)** सेवनीयः **(असि)** **(निरस्तम्)** निःसृतम् **(रक्षः)** सर्वतः स्वार्थरक्षकः परार्थहन्ता **(इदम्)** **(अहम्)** **(रक्षः)** **(अभि)** सम्मुखे **(तिष्ठामि)** **(इदम्)** **(अहम्)** **(रक्षः)** रक्षति सर्वतः स्वार्थनिमित्तीभूतं कर्म **(अव)** अर्वागर्थे **(बाधे)** नाशयामि **(इदम्)** **(अहम्)** **(रक्षः)** **(अधमम्)** नीचं **(तमः)** अन्धकारम् **(नयामि)** प्रापयामि **(घृतेन)** जलेन **(द्यावापृथिवी)** भूमिप्रकाशौ **(प्र)** प्रकृष्टार्थे **(ऊर्णुवाथाम्)** आच्छादयताम् **(वायो)** वाति जानाति सूचयति सदसत् पदार्थानिति वा वायुस्तत्संबुद्धौ **(वेः)** विद्धि, अत्र लोडर्थे लङ्। **(स्तोकानाम्)** स्वल्पानाम्, शेषविवक्षातः कर्मणि षष्ठी। **(अग्निः)** सर्वविद्याप्राप्तो विद्वान्

(आज्यस्य) स्नेहद्रव्यस्य **(स्वाहाकृते)** सत्यवाचामुपगते व्यवहारे **(ऊर्ध्वनभसम्)** ऊद्ध्वं नभो जलं यस्मात् तम् **(मारुतम्) (गच्छतम्)**॥१६॥

अन्वयः-हे दुष्टकर्मकारिन्! त्वं रक्षसां भागोस्यतो रक्षो निरस्तं भव, अहं इदं रक्षोऽभितिष्ठामि तिरस्करणाय तत्सम्मुखमुपविशामि, न केवलमभितिष्ठामि, किन्तु अहमिदं रक्षोदुष्टस्वभाविनमवबाधेऽर्वाचीनो यथा स्यात् तथा हन्मि, यतो न पुनः सम्मुखो भूयादिति भावः। अहमिदं रक्षोऽधमं तमो नयामि, दुःसहदुःखं प्रापयामि च। हे वायो! गुणग्राहकसदसद्विवेचनशील शिष्य! त्वं स्तोकानां स्तोकान् सूक्ष्मव्यवहारान् वेः विद्धि, त्वद्यज्ञशोधितेन घृतेन द्यावापृथिवी प्रोर्णुवाथाम् आच्छादयेताम्। अग्निः समस्तविद्यापन्नो विद्वाँस्तवाज्यस्य स्नेहद्रव्यं स्वाहा वेत्तु जानातु तथा स्वाहाकृते पूर्वोक्ते द्यावापृथिव्यौ ऊर्ध्वनभसं त्वद्यज्ञशोधितजलमूर्ध्वप्रापकं मारुतं गच्छतम् प्राप्नुतम्॥१६॥

भावार्थः-बुद्धिमन्तः सदसद्विवेचका विद्वांस शिष्येषु यथायोग्यशिक्षणमनुविदधति, यज्ञकर्मणा जलवायुशुद्ध्या वृष्टिर्भवति, वृष्ट्यैव सर्वप्राणिभ्य सुखं संपद्यते॥१६॥

पदार्थः-हे दुष्टकर्म करने वाले जन! तू **(रक्षसाम्)** दुष्टों अर्थात् परार्थ नाश कर अपना अभीष्ट करने वालों का **(भागः)** भाग **(असि)** है, इस कारण **(रक्षः)** राक्षस स्वभावी तू **(निरस्तम्)** निकल जा **(अहम्)** मैं **(इदम्)** ऐसे **(रक्षः)** स्वार्थसाधक को **(अभितिष्ठामि)** तिरस्कार करने के लिये सम्मुख होता हूं और केवल सम्मुख ही नहीं, किन्तु **(अहम्)** मैं **(इदम्)** ऐसे **(रक्षः)** दुष्ट जन को **(अवबाधे)** अत्यन्त तिरस्कार के साथ पीटता हूं, जिससे वह फिर सामने न हो और **(अहम्)** मैं **(इदम्)** ऐसे **(रक्षः)** दुष्ट जन को **(अधमम्)** दुःसह दुःख को **(नयामि)** पहुंचाता हूं। अब श्रेष्ठ गुणग्राही शिष्य के लिये उपदेश है। हे **(वायो)** गुणग्राहक! सत्-असत् व्यवहार की विवेचना करने वाला तू **(स्तोकानाम्)** सूक्ष्म से सूक्ष्म व्यवहारों को **(वेः)** जान और तेरे यज्ञशोधित जल से **(द्यावापृथिवी)** सूर्य और भूमि **(प्रोर्णुवाथाम्)** अच्छे प्रकार आच्छादित हों **(अग्निः)** समस्त विद्यायुक्त विद्वान तेरे घृत आदि पदार्थ के **(स्वाहा)** अच्छे होम किये हुए को **(वेतु)** जाने तथा **(स्वाहाकृते)** हवन किये हुए स्नेहद्रव्य को प्राप्त पूर्वोक्त जो सूर्य और भूमि हैं, वे **(ऊर्ध्वनभसम्)** तेरे यज्ञ से शुद्ध हुए जल को ऊपर पहुंचाने वाले **(मारुतम्)** पवन को **(गच्छतम्)** प्राप्त हों॥१६॥

भावार्थः-बुद्धिमान् श्रेष्ठ और अनिष्ट के विवेक करने वाले विद्वान् लोग अपने शिष्यों में यथायोग्य शिक्षा विधान करते हैं। यज्ञकर्म से जल और पवन की शुद्धि, उसकी शुद्धि से वर्षा और उससे सब प्राणियों को सुख उत्पन्न होता है॥१६॥

इदमाप इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। आपो देवताः। निचृद्ब्राह्म्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

शुद्धेन जलेन किं भावनीयमित्युपदिश्यते॥

अब निर्दोष जल से क्या संभावना करनी चाहिये, यह अगले मन्त्र में उपदेश किया है॥

इ॒दमा॑पः॒ प्रव॑हतावद्यं च॒ मलं॑ च॒ यत्। यच्चा॑भिदु॒द्रोहानृ॑तं॒ यच्च॑ शे॒पेऽअ॑भी॒रुण॑म्। आपो॑ मा॒ तस्मा॒देन॑सः॒ पव॑मानश्च मुञ्चतु॥ १७॥

इ॒दम्। आ॒पः॒। प्र। व॒ह॒त। अ॒व॒द्यम्। च॒। मल॑म्। च॒। यत्। यत्। च॒। अ॒भि॒दु॒द्रोहेत्य॑भिऽदु॒द्रोह॑। अनृ॑तम्। यत्। च॒। शे॒पे। अ॒भी॒रुण॑म्। आप॑ः। मा॒। तस्मा॑त्। एन॑सः। पव॑मानः। च॒। मु॒ञ्च॒तु॒॥ १७॥

पदार्थः-(**इदम्**) वक्ष्यमाणम् (**आपः**) आप्नुवन्तीत्यापः (**प्र**) (**वहत**) अत्र लडर्थे लोट् (**अवद्यम्**) निंद्यम् (**च**) विकारिसमुच्चये (**मलम्**) अशुद्धिकरम् (**यत्**) (**च**) प्रकृतिविरुद्धग्रहणे (**यत्**) (**च**) लोकविप्रुष्टसमुच्चये (**अभिदुद्रोह**) यथाभिदुह्यति तथा (**अनृतम्**) असत्यम् (**यत्**) (**च**) परुषवचः समुच्चये (**शेपे**) आक्रुश्यामि (**अभीरुणम्**) निर्भयम् (**आपः**) (**मा**) माम् (**तस्मात्**) (**एनसः**) धर्मविरुद्धाचरणात् (**पवमानः**) पवित्रीकरो व्यवहारः (**च**) शुद्धोपदेशसमुच्चये (**मुञ्चतु**) पृथक् करोतु॥१७॥

अन्वयः-आपः सर्वविद्याव्यापिनो विपश्चितो यूयं यथापः शुद्धिकरास्तथा मम यदवद्यं निन्द्यं कर्म यच्च मलं अविद्यारूपं तदिदं प्रवहत अपनयत च। पुनः यदहमनृतं कं च दुद्रोह च यत् अभीरुणं निरपराधिनं पुरुषं शेपे तस्मात् पूर्वोक्तादेनसः मा मां पृथक् रक्षतु, यथा पवमानो मालिन्यान्मां सद्यो दूरीकरोति, तथान्यानपि मुञ्चतु पृथक् करोतु॥१७॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार उपमालङ्कारश्च। विद्वान् जलमिव सांसारिकपदार्थानां शोधको भूत्वा धर्म्यं कर्माचरेत्। मनुष्यैरीश्वरप्रार्थनया दुष्टाचारात् पृथक् भूत्वा निर्मलेषु विद्यादिग्रहणकर्मसु सदा प्रवर्तितव्यमिति॥१७॥

पदार्थः-भो (**आपः**) सर्वविद्याव्यापक विद्वान् लोगो! आप जैसे (**आपः**) जल शुद्धि करते हैं, वैसे मेरा (**यत्**) जो (**अवद्यम्**) अकथनीय निन्द्यकर्म (**च**) और विकार तथा (**यत्**) जो (**मलम्**) अविद्यारूपी मल है, (**इदम्**) इस को (**प्रवहत**) बहाइये अर्थात् दूर कीजिये। (**च**) और (**यत्**) जो मैं (**अनृतम्**) झूंठ-मूंठ किसी से (**दुद्रोह**) द्रोह करता होऊं (**च**) और (**यत्**) जो (**अभीरुणम्**) निर्भय निरपराधी पुरुष को (**शेपे**) उलाहने देता हूं (**तस्मात्**) उस उक्त (**एनसः**) पाप से (**मा**) मुझे अलग रक्खो (**च**) और जैसे (**पवमानः**) पवित्र व्यवहार (**मा**) मुझसे पाप से अलग रखता है, वैसे (**च**) अन्य मनुष्यों को भी रक्खे॥१७॥

भावार्थः-जैसे जल सांसारिक पदार्थों का शुद्धि का निदान है, वैसे विद्वान् लोग सुधार का निदान हैं, इस से वे अच्छे कामों को करें। मनुष्यों को चाहिये कि ईश्वर की उपासना और विद्वानों के संग से दुष्टाचरणों को छोड़ सदा धर्म में प्रवृत्त रहें॥१७॥

सं त इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। अग्निर्देवता। प्राजापत्यानुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः। रेडसीत्यस्य दैवीपङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अथ रणे योद्धा कीदृग्भवेदित्युपदिश्यते॥

अब रण में युद्ध करने वाला शिष्य कैसा हो, यह अगले मन्त्र में कहा है॥

सं ते मनो मनसा सं प्राणः प्राणेन गच्छताम्। रेडस्यग्निष्ट्वा श्रीणात्वापस्त्वा समरिणन् वातस्य त्वा ध्राज्यै पूष्णो रꣳह्याऽऊष्मणो व्यथिषत् प्रयुतं द्वेषः॥१८॥

सम्। ते। मनः। मनसा। सम्। प्राणः। प्राणेन। गच्छताम्। रेट्। असि। अग्निः। त्वा। श्रीणातु। आपः। त्वा। सम्। अरिणन्। वातस्य। त्वा। ध्राज्यै। पूष्णः। रꣳह्यै। ऊष्मणः। व्यथिषत्। प्रयुतमिति प्रऽयुतम्। द्वेषः॥१८॥

पदार्थः-(**सम्**) (**ते**) तव (**मनः**) अन्तःकरणम् (**मनसा**) विज्ञानेन (**सम्**) (**प्राणः**) (**प्राणेन**) बलेन (**गच्छताम्**) (**रेट्**) शत्रुहिंसकः, अत्र रिषतेर्हिंसार्थात् कर्त्तरि विच्। (**अग्निः**) युद्धजन्यक्रोधाग्निः (**त्वा**) त्वाम्

(श्रीणातु) परिपचतु **(त्वा)** त्वाम् **(आपः)** जलानि **(सम्) (अरिणन्)** प्राप्नुवन्तु। **रिणातीति गतिकर्म्मसु पठितम्।** (निघं०२।१४) **(वातस्य)** वायोः **(ध्राज्यै)** गत्यै। अत्र गत्यर्थाद् ध्रज धातोः॥ **इञ् वपादिभ्यः।** (अष्टा०३।३।१०८ भा०वा०) इतीञ् प्रत्ययः। **(पूष्णः)** पोषकरस्यादित्यस्य **(रंह्यै)** गत्यै **(ऊष्मणः)** आतपात् **(व्यथिषत्)** व्यथते **(प्रयुतम्)** एतत्संख्याकम् **(द्वेषः)** द्वेष्टि येन सः॥ अयं मन्त्रः (शत०(३।८।३।९-३१) व्याख्यातः॥१८॥

अन्वयः-हे योद्धः संग्रामे ते मनो मनसा प्राणः प्राणेन च संगच्छताम्। हे वीर! त्वं रेडसि त्वा त्वामग्निर्युद्धजन्यक्रोधाग्निः श्रीणातु, त्वं प्रयुतं शत्रुसैन्यं प्राप्य तज्जन्यादूष्मणो द्वेषो मा व्यथिषत्, त्वां वातस्य ध्राज्यै वातस्य गतिभिर्युद्धकर्मणि गत्यै यद्वा पूष्णो रंह्यै सूर्यस्य गतिरिव युद्धभूमिषु गत्यै यथार्थतया युद्धकर्म्मणि प्रवृत्यै आपः समरिणन्॥१८॥

भावार्थः-मनुष्यैः संग्रामे मनः समाधाय स्वबलवर्द्धकान्नपानशस्त्रादिपदार्थान् संपाद्य शत्रून् निहत्य संग्रामो विजेतव्य इति॥१८॥

पदार्थः-हे युद्धशील शूरवीर! संग्राम में **(ते)** तेरा **(मनः)** मन **(मनसा)** विद्याबल और **(प्राणः)** प्राण **(प्राणेन)** प्राण के साथ **(सम्) (गच्छताम्)** संगत हो। हे वीर! तू **(रेट्)** शत्रुओं को मारने वाला **(असि)** है, **(त्वा)** तुझे **(अग्निः)** युद्ध से उत्पन्न हुए क्रोध का अग्नि **(श्रीणातु)** अच्छे पचावे तू **(प्रयुतम्)** करोड़ों प्रकार के शत्रुओं की सेना को प्राप्त होता है, तुझ को तज्जन्य **(ऊष्मणः)** गरमी का **(द्वेषः)** द्वेष मत **(व्यथिषत्)** अत्यन्त पीड़ायुक्त करे, जिससे **(वातस्य)** पवन की **(ध्राज्यै)** गति के तुल्य गति के लिये वा **(पूष्णः)** पुष्टिकारक सूर्य के **(रंह्यै)** वेग के तुल्य वेग के लिये अर्थात् यथार्थता से युद्ध करने में प्रवृत्ति होने के लिये **(आपः)** अच्छे-अच्छे जल **(सम्) (अरिणन्)** अच्छे प्रकार प्राप्त हों॥१८॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि अपने बल के बढ़ाने वाले अन्न, जल और शस्त्र-अस्त्र आदि पदार्थों को इकट्ठा करके शत्रुओं को मार कर संग्राम जीतें॥१८॥

घृतं घृतपावान इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। ब्राह्म्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तत्र किं भवितुमर्हतीत्युपदिश्यते॥

फिर युद्धकर्म में क्या होना चाहिये, यह अगले मन्त्र में कहा है॥

घृतं घृतपावानः पिबत वसां वसापावानः पिबतान्तरिक्षस्य हविरसि स्वाहा। दिशः प्रदिशऽआदिशो विदिशऽउद्दिशो दिग्भ्यः स्वाहा॥१९॥

घृतम्। घृतपावान इति घृतऽपावानः। पिबत। वसाम्। वसापावान इति वसाऽपावानः। पिबत। अन्तरिक्षस्य। हविः। असि। स्वाहा। दिशः। प्रदिश इति प्रऽदिशः। आदिश इत्याऽदिशः। विदिश इति विऽदिशः। उद्दिशइत्युत्ऽदिशः। दिग्भ्य इति दिक्ऽभ्यः। स्वाहा॥१९॥

पदार्थः-**(घृतम्)** उदकम्॥ **घृतमित्युदकनामसु पठितम्।** (निघं०१।१२) **(घृतपावानः)** उदकपा वीराः **(पिबत) (वसाम्)** वीररसनीतिम् **(वसापावानः)** वसां निवासं पान्ति ते **(पिबत) (अन्तरिक्षस्य)** आकाशस्य **(हविः)** आदीयत इति **(असि) (स्वाहा)** युद्धानुकूलां शोभनां वाचम् **(दिशः)** पूर्वाद्याः **(प्रदिशः)** अभ्यन्तरदिशः **(आदिशः)** आभिमुख्यदिशः **(विदिशः)** विरुद्धदिशः **(उद्दिशः)** या उद्दिश्यन्ते ताः **(दिग्भ्यः)** पूर्वप्रतिपादिताभ्यः सर्वाभ्यः

(स्वाहा) तत्तस्थानानुकूलां शोभनां वाचम्॥ अयं मन्त्रः (शत०(३।८।३।३२-३६) व्याख्यातः॥१९॥

अन्वयः-हे घृतपावानो वीरा! यूयं घृतं पिबत। हे वसापावानो! यूयं वसां पिबत। हे सेनाध्यक्ष! चक्रव्यूहादिसेनारचक! त्वं प्रतिवीरमन्तरिक्षस्य हविरसीति स्वाहा शोभनया वाचा सर्वान् वीरान् या दिशः, प्रदिश, आदिशो, विदिश, उद्दिशश्च सन्ति ताभ्यः सर्वाभ्यो दिग्भ्योः सर्वाः सेना विभज्य शत्रून् विजयध्वम्॥१९॥

भावार्थः-सेनाध्यक्षाणामुचितमस्ति स्वसेनास्थान् वीरान् शरीरबलयुक्तान् युद्धविद्यासुशिक्षितान् संपाद्य युद्धे सर्वासु दिक्षु यथायोग्यान् स्वसेनाभागान् संस्थाप्य सर्वतः शत्रूनावृत्य विजित्य च न्यायेन प्रजां पालयेयुरिति॥१९॥

पदार्थः-हे **(घृतपावानः)** जल के पीने वाले वीरपुरुषो! तुम **(घृतम्)** अमृतात्मक जल को **(पिबत)** पिओ। हे **(वसापावानः)** नीति के पालने वाले वीरो! तुम **(वसाम्)** जो वीर रस की वाणी अर्थात् शत्रुओं को स्तम्भन करने वाली है, उसको **(पिबत)** पिओ। हे सेनाध्यक्ष चक्रव्यूहादि सेनारचक! प्रत्येक वीर को तू जिससे **(अन्तरिक्षस्य)** आकाश की **(हविः)** रुकावट अर्थात् युद्ध में बहुतों के बीच शत्रुओं को घेरना **(असि)** है, उस **(स्वाहा)** शोभन वाणी से जो **(दिशः)** पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण **(प्रदिशः)** आग्नेयी, नैर्ऋति, वायवी और ऐशानी उपदिशा **(आदिशः)** आमने, सामने, मुहाने की दिशा **(विदिशः)** पीछे की दिशा और **(उद्दिशः)** जिस ओर शत्रु लक्षित हो वे दिशा हैं, उन सब **(दिग्भ्यः)** दिशाओं से यथायोग्य वीरों को बांट के शत्रुओं को जीतो॥१९॥

भावार्थः-सेनाध्यक्षों को उचित है कि अपनी-अपनी सेना के वीरों को अत्यन्त पुष्ट कर युद्ध के समय चक्रव्यूह, श्येनव्यूह तथा शकटव्यूह आदि रचनादि युद्ध कर्मों से सब दिशाओं में अपनी सेनाओं के भागों को स्थापन कर, सब प्रकार से शत्रुओं को घेर-घार जीतकर न्याय से प्रजापालन करें॥१९॥

ऐन्द्रः प्राण इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। त्वष्टा देवता। ब्राह्म्यनुष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तत्रान्योन्यं कथं वर्त्तेरन्नित्युपदिश्यते॥

फिर संग्राम में वीर पुरुष आपस में कैसे वर्तें, यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

ऐन्द्रः प्राणोऽअङ्गेऽअङ्गे निदीध्यदैन्द्रऽउदानोऽअङ्गेऽअङ्गे निधीतः।
देव त्वष्टर्भूरि ते सꣳसमेतु सलक्ष्मा यद्विषुरूपं भवाति।
देवत्रा यन्तमवसे सखायोऽनु त्वा माता पितरो मदन्तु॥२०॥

ऐन्द्रः। प्राणः। अङ्गेऽअङ्ग इत्यङ्गेऽअङ्गे। नि। दीध्यत्। ऐन्द्रः। उदान इत्युत्ऽआनः। अङ्गेऽअङ्ग इत्यङ्गेऽअङ्गे। निधीत इति निऽधीतः। देव। त्वष्टः। भूरि। ते। सꣳसमिति सम्ऽसम्। एतु। सलक्ष्मेति सऽलक्ष्म। यत्। विषुरूपमिति विषुऽरूपम्। भवाति। देवत्रेति देवऽत्रा। यन्तम्। अवसे। सखायः। अनु। त्वा। माता। पितरः। मदन्तु॥२०॥

पदार्थः-**(ऐन्द्रः)** इन्द्रो जीवो देवताऽस्य स ऐन्द्रः **(प्राणः)** शरीरस्थो वायुविशेषः **(अङ्गे अङ्गे)** यथा प्रत्यङ्गं प्रकाशते **(नि)** नितराम् **(दीध्यत्)** युद्धे शत्रून् वञ्चित्वा स्वयं प्रकाशेत **(ऐन्द्रः)** विद्युद्देवताकः **(उदानः)** य ऊर्ध्वमनिति **(अङ्गे अङ्गे)** यथा प्रत्यङ्गम् **(निधीतः)** निहित इव **(देव)** दिव्यविद्यासम्पन्न सेनाध्यक्ष! **(त्वष्टः)** शत्रुबलच्छेत्तः! **(भूरि)** बहु **(ते)** तव **(सम् सम्)** एकीभावे। अत्र **प्रसमुपोदः पादपूरणे।** (अष्टा०८।१।६) इति समित्यस्य द्वित्वम्। **(एतु)** प्राप्नोतु **(सलक्ष्म)** समानं लक्ष्म यस्य तत्। अत्र **अन्येषामपि दृश्यते।** (अष्टा०६।३।१३७) इति दीर्घः।

(विषुरूपम्) व्यापकं विविधरूपं वा **(भवाति)** भवतु। **(देवत्रा)** देवं देवमिति देवत्रा **(यन्तम्)** गच्छन्तम् **(अवसे)** रक्षणाय **(सखायः)** सुहृदः सन्तः **(अनु)** **(त्वा)** त्वाम् **(माता)** जननी **(पितरः)** रक्षका जनकाः **(मदन्तु)** हर्षन्तु॥ अयं मन्त्रः (शत०(३।८।३।३७) व्याख्यातः॥२०॥

अन्वयः-हे त्वष्टर्देव सेनापते! भगवन् अङ्गे अङ्गे ऐन्द्रः प्राण इवावसे संग्रामे निदीध्यत् यद्वा अङ्गे अङ्गे उदान इव संग्रामे निधीतो भवति। यत् ते तव विषुरूपं सलक्ष्म भवाति तत्संग्रामे भूरि यथा स्यात् तथा संसमेतु। सखायो माता पितरश्च देवत्रा धर्म्यं युद्धं व्यवहारं वा यन्तं त्वा त्वामनुमदन्तु॥२०॥

भावार्थः-सेनापतिः सर्वमित्रोऽङ्गेऽङ्गे प्राण उदान इव संग्रामे विचरन् सेनास्थवीरान् प्रजास्थपुरुषांश्च हर्षयित्वा शत्रून् विजयीत॥२०॥

पदार्थः-हे **(त्वष्टः)** शत्रुबलविदारक **(देव)** दिव्यविद्यासम्पन्न सेनापति! आप **(अवसे)** रक्षा आदि के लिये **(अङ्गे अङ्गे)** जैसे अङ्ग-अङ्ग में **(ऐन्द्रः)** इन्द्र अर्थात् जीव जिस का देवता है, वह सब शरीर में ठहरने वाला प्राणवायु सब वायुओं को तिरस्कार करता हुआ आप ही प्रकाशित होता है, वैसे आप संग्राम में सब शत्रुओं का तिरस्कार करते हुए **(निदीध्यत्)** प्रकाशित हूजिये अथवा **(अङ्गे अङ्गे)** जैसे अङ्ग-अङ्ग में **(उदानः)** अन्न आदि पदार्थों को ऊर्ध्व पहुंचाने वाला उदानवायु प्रवृत्त है, वैसे अपने विभव से सब वीरों को उन्नति देते हुए संग्राम में **(निधीतः)** निरन्तर स्थापित किये हुए के समान प्रकाशित हूजिये **(यत्)** जो **(ते)** आप का **(विषुरूपम्)** विविध रूप **(सलक्ष्म)** परस्पर युद्ध का लक्षण **(भवाति)** हो, वह **(संग्रामे)** संग्राम में **(भूरि)** विस्तार से **(संसम्)** **(एतु)** प्रवृत्त हो। हे सेनाध्यक्ष! तेरी रक्षा के लिये सब शूरवीर पुरुष **(सखायः)** मित्र हो के वर्त्तें, **(माता)** माता **(पितरः)** पिता, चाचा, ताऊ, भृत्य और शुभचिन्तक **(देवत्रा)** देवों अर्थात् विद्वानों, धर्मयुक्त युद्ध और व्यवहार को **(यन्तम्)** प्राप्त होते हुए **(त्वा)** तेरा **(अनुमदन्तु)** अनुमोदन करें॥२०॥

भावार्थः-सब प्राणियों का मित्रभाव वर्त्तने वाला सेनापति जैसे प्रत्येक अङ्ग में प्राण और उदान प्रवर्त्तमान हैं, वैसे संग्राम में विचरता हुआ सेना और राजपुरुषों को हर्षित करके शत्रुओं को जीते॥२०॥

समुद्रं गच्छेत्यादेर्दीर्घतमा ऋषिः। सेनापतिर्देवता। याजुष्य उष्णिजश्छन्दांसि। ऋषभः स्वरः॥

अथ राष्ट्रकर्मानुष्ठातुमर्हाय शिष्याय गुरुः किं किमुपदिशेदित्याह॥

अब राज्यकर्म करने योग्य शिष्य को गुरु क्या-क्या उपदेश करे, यह अगले मन्त्र में कहा है॥

स॒मु॒द्रं ग॑च्छ॒ स्वाहा॒न्तरि॑क्षं गच्छ॒ स्वाहा॑ दे॒वꣳ स॑वि॒तार॑ं गच्छ॒ स्वाहा॑ मि॒त्रावरु॑णौ गच्छ॒ स्वाहा॑होरा॒त्रे ग॑च्छ॒ स्वाहा॒ छन्दा॑ꣳसि गच्छ॒ स्वाहा॒ द्यावा॑पृथि॒वी ग॑च्छ॒ स्वाहा॒ य॒ज्ञं ग॑च्छ॒ स्वाहा॒ सोम॑ं गच्छ॒ स्वाहा॑ दि॒व्यं नभो॑ गच्छ॒ स्वाहा॒ग्निं वै॑श्वान॒रं ग॑च्छ॒ स्वाहा॒ मनो॑ मे॒ हार्दि॑ यच्छ॒ दिवं॑ ते धू॒मो ग॑च्छतु॒ स्व॒र्ज्योतिः॑ पृथि॒वीं भस्म॒नापृ॑ण॒ स्वाहा॑॥२१॥

स॒मु॒द्रम्। ग॒च्छ॒। स्वाहा॑। अ॒न्तरि॑क्षम्। ग॒च्छ॒। स्वाहा॑। दे॒वम्। स॒वि॒तार॑म्। ग॒च्छ॒। स्वाहा॑। मि॒त्रावरु॑णौ। ग॒च्छ॒। स्वाहा॑। अ॒हो॒रा॒त्रेऽइत्य॑होरा॒त्रे। ग॒च्छ॒। स्वाहा॑। छन्दा॑ꣳसि। ग॒च्छ॒। स्वाहा॑। द्यावा॑पृथि॒वीऽइति॒ द्यावा॑पृथि॒वी। ग॒च्छ॒। स्वाहा॑।

य॒ज्ञम्। ग॒च्छ॒। स्वाहा॑। सोम॑म्। ग॒च्छ॒। स्वाहा॑। दि॒व्यम्। नभ॑ः। ग॒च्छ॒। स्वाहा॑। अ॒ग्निम्। वै॒श्वा॒न॒रम्। ग॒च्छ॒। स्वाहा॑। मन॑ः। मे॒। हार्दि॑। य॒च्छ॒। दिव॑म्। ते॒। धू॒मः। ग॒च्छ॒तु॒। स्व॑ः। ज्योति॑ः। पृ॒थि॒वीम्। भस्म॑ना। आ। पृ॒ण॒। स्वाहा॑॥ २१॥

पदार्थः-(**समुद्रम्**) समुद्द्रवन्ति जलानि यस्मिन् तमुदधिम् (**गच्छ**) (**स्वाहा**) बृहन्नौकारचनादिविद्यासिद्धेन यानेन (**अन्तरिक्षम्**) आकाशम् (**गच्छ**) (**स्वाहा**) खगोलप्रकाशिकया विद्यया सम्पादितेन विमानेन (**देवम्**) द्योतमानं (**सवितारम्**) सर्वस्य प्रसवितारं परमेश्वरम् (**गच्छ**) जानीहि (**स्वाहा**) वेदवाचा सत्सङ्गसंस्कृतया वा (**मित्रावरुणौ**) प्राणोदानौ (**गच्छ**) प्राणायामाभ्यासेन विद्धि (**स्वाहा**) योगयुक्त्या वाचा (**अहोरात्रे**) अहश्च रात्रिश्चाहोरात्रे। **हेमन्तशिशिरावहोरात्रे च छन्दासि।** (अष्टा०२।४।२८) अनेन नपुंसकत्वम्। (**गच्छ**) कालविद्यया जानीहि याहि वा (**स्वाहा**) ज्योतिर्बोधयुक्त्या वाचा (**छन्दांसि**) ऋग्यजुःसामाथर्वणश्चतुरो वेदान् (**गच्छ**) पठनपाठनपुरस्सरेण श्रवणमनननिदिध्यासनसाक्षात्कारेण विजानीहि (**स्वाहा**) वेदाङ्गादिविज्ञानसहितया वाचा (**द्यावापृथिवी**) द्यौश्च पृथिवी च तौ भूमिसूर्यौ तद्गतावभीष्टदेशदेशान्तराविति यावत् (**गच्छ**) जानीहि (**स्वाहा**) भूमियानाकाशयानरचनभूगोलभूगर्भ-खगोलविद्यया (**यज्ञम्**) अग्निहोत्रशिल्पराजव्यवहारादिकम् (**गच्छ**) (**सोमम्**) ओषधिसमूहम् (**गच्छ**) जानीहि (**स्वाहा**) वैद्यकशास्त्रबोधार्हया वाचा (**दिव्यम्**) व्यवहर्त्तव्यं शुद्धम् (**नभः**) जलम् (**गच्छ**) प्राप्नुहि (**स्वाहा**) तद्गुणविज्ञापयित्र्या वाचा (**अग्निम्**) विद्युतम् (**वैश्वानरम्**) सर्वत्र प्रकाशमानम् (**गच्छ**) जानीहि (**स्वाहा**) तद्बोधयुक्त्या वाण्या (**मनः**) चित्तम् (**मे**) मम (**हार्दि**) हृदयस्यातिशयेन प्रियम् (**यच्छ**) निधेहि (**दिवम्**) सूर्यम् (**ते**) तव (**धूमः**) यन्त्रज्वलनवाष्पः (**स्वः**) सुखम्, अन्तरिक्षम्, अवकाशम् (**ज्योतिः**) ज्वालाम् (**पृथिवीम्**) भस्मना (**आ**) समन्तात् (**पृण**) योजय (**स्वाहा**) यज्ञानुष्ठानयन्त्ररचनविद्यया॥ अयं मन्त्रः (शत०(३।८।४।११-१८ तथा ८।५।१-५) व्याख्यातः॥२१॥

अन्वयः-हे राजकर्मानुष्ठानार्ह विद्वंस्त्वं स्वाहा समुद्रं गच्छ। स्वाहान्तरिक्षं गच्छ। स्वाहा देवं सवितारं गच्छ। स्वाहा मित्रावरुणौ गच्छ। स्वाहाहोरात्रे गच्छ। स्वाहा यज्ञं गच्छ। स्वाहा सोमं गच्छ। स्वाहा दिव्यं नभो गच्छ। स्वाहाग्निं वैश्वानरं च गच्छ। मे मम मनोहार्दि यच्छ। ते तव धूमो दिव्यं ज्योतिः स्वर्गच्छतु। त्वं स्वाहा भस्मना पृथिवीमापृण॥२१॥

भावार्थः-धर्मादिराज्यव्यापारकरणवृत्तिमभीप्सुभिर्जनैर्भूमियानान्तरिक्षयानाकाशयानैर्विविधयन्त्रकालरचनैश्च सर्वाः सामग्रीः संपाद्य द्रव्यसंचयः कार्यः॥२१॥

पदार्थः-हे धर्मादि राज्यकर्म करने योग्य शिष्य! तू (**स्वाहा**) बड़े-बड़े अश्वतरी नाव अर्थात् धूआँकष आदि बनाने की विद्या से नौकादि यान पर बैठ (**समुद्रम्**) समुद्र को (**गच्छ**) जा। (**स्वाहा**) खगोलप्रकाश करने वाली विद्या से सिद्ध किये हुए विमानादि यानों से (**अन्तरिक्षम्**) आकाश को (**गच्छ**) जा। (**स्वाहा**) वेदवाणी से (**देवम्**) प्रकाशमान (**सवितारम्**) सब को उत्पन्न करने वाले परमेश्वर को (**गच्छ**) जान। (**स्वाहा**) वेद और सज्जनों के सङ्ग से शुद्ध संस्कार को प्राप्त हुई वाणी से (**मित्रावरुणौ**) प्राण और उदान को (**गच्छ**) जान। (**स्वाहा**) ज्योतिषविद्या से (**अहोरात्रे**) दिन और रात्रि वा उन के गुणों को (**गच्छ**) जान। (**स्वाहा**) वेदाङ्ग विज्ञानसहित वाणी से (**छन्दांसि**) ऋग्यजुः साम और अथर्व इन चारों वेदो को (**गच्छ**) अच्छे प्रकार से जान। (**स्वाहा**) भूमियान, आकाश मार्ग विमान और भूगोल वा भूगर्भ आदि यान बनाने की विद्या से (**द्यावापृथिवी**) भूमि और सूर्यप्रकाशस्थ अभीष्ट देश-देशान्तरों को (**गच्छ**) जान और प्राप्त हो। (**स्वाहा**) संस्कृत वाणी से (**यज्ञम्**) अग्निहोत्र, कारीगरी और

राजनीति आदि यज्ञ को **(गच्छ)** प्राप्त हो। **(स्वाहा)** वैद्यक विद्या से **(सोमम्)** ओषधिसमूह अर्थात् सोमलतादि को **(गच्छ)** जान। **(स्वाहा)** जल के गुण और अवगुणों को बोध कराने वाली विद्या से **(दिव्यम्)** व्यवहार में लाने योग्य पवित्र **(नभः)** जल को **(गच्छ)** जान और **(स्वाहा)** बिजुली आग्नेयास्त्रादि तारबरकी तथा प्रसिद्ध सब कलायन्त्रों को प्रकाशित करने वाली विद्या से **(अग्निम्)** विद्युत् रूप अग्नि को **(गच्छ)** अच्छी प्रकार जान और **(मे)** मेरे **(मनः)** मन को **(हार्दि)** प्रीतियुक्त **(यच्छ)** सत्यधर्म में स्थित कर अर्थात् मेरे उपदेश के अनुकूल वर्ताव वर्त्त और **(ते)** तेरे **(धूमः)** कलाओं और यज्ञ के अग्नि का धूंआं **(दिवम्)** सूर्य्यप्रकाश को तथा **(ज्योतिः)** उस की लपट **(स्वः)** अन्तरिक्ष को **(गच्छतु)** प्राप्त हो और तू यन्त्रकला अग्नि में **(स्वाहा)** काष्ठ आदि पदार्थों को भस्म कर उस **(भस्मना)** भस्म से **(पृथिवीम्)** पृथिवी को **(आपृण)** ढांप दे॥२१॥

भावार्थः-धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, राज्य और व्यापार चाहने वाले पुरुष भूमियान, अन्तरिक्षयान और आकाशमार्ग में जाने-आने के विमान आदि रथ वा नाना प्रकार के कलायन्त्रों को बनाकर तथा सब सामग्री को जोड़ कर धन और राज्य का उपार्जन करें॥२१॥

माप इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। वरुणो देवता। ब्राह्मी स्वराडुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः। सुमित्रिया न इत्यस्य विराड् गायत्री छन्दः। षड्ज स्वरः॥

अथ वाणिज्यार्थं राजप्रबन्धमाह॥

अब व्यापार करने के लिये राज्यप्रबन्ध अगले मन्त्र में कहा है॥

मापो मौषधीर्हिꣳसीर्धाम्नोधाम्नो राजँस्ततो वरुण नो मुञ्च। यदाहुरघ्न्याऽइति वरुणेति शपामहे ततो वरुण नो मुञ्च। सुमित्रिया नऽआपऽओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः॥२२॥

मा। अपः। मा। ओषधीः। हिꣳसीः। धाम्नोधाम्न इति धाम्नःऽधाम्नः। राजन्। ततः। वरुण। नः। मुञ्च। यत्। आहुः। अघ्न्याः। इति। वरुण। इति। शपामहे। ततः। वरुण। नः। मुञ्च। सुमित्रिया इति सुऽमित्रियाः। नः। आपः। ओषधयः। सन्तु। दुर्मित्रिया इति दुःऽमित्रियाः। तस्मै। सन्तु। यः। अस्मान्। द्वेष्टि। यम्। च। वयम्। द्विष्मः॥२२॥

पदार्थः-**(मा)** निषेधे **(अपः)** जलानि **(मा)** निषेधे **(ओषधीः)** यवादीन् **(हिंसीः)** **(धाम्नो धाम्नः)** स्थानात् स्थानात् **(राजन्)** सभापते! **(ततः)** तस्मात् **(वरुण)** प्रशस्त **(नः)** अस्मान् **(मुञ्च)** **(यत्)** **(आहुः)** **(अघ्न्याः)** हन्तुमयोग्या गावस्ताः। **अघ्न्या इति गोनामसु पठितम्।** (निघं०२।११) **(इति)** अनेन प्रकारेण **(वरुण)** न्यायकारिन्! **(इति)** प्रकारान्तरे **(शपामहे)** **(सुमित्रियाः)** सुमित्राणीव **(नः)** अस्मभ्यम् **(आपः)** **(ओषधयः)** **(सन्तु)** **(दुर्मित्रियाः)** दुर्मित्राणीव **(तस्मै)** द्विषते **(सन्तु)** **(यः)** अमित्रः **(अस्मान्)** **(द्वेष्टि)** **(यम्)** **(च)** **(वयम्)** **(द्विष्मः)**॥ अयं मन्त्रः (शत०(३।८।५।९-११) व्याख्यातः॥२२॥

अन्वयः-हे राजन्! ओषधीश्च मा हिंसीः। न केवलमिदमेव कुर्याः, किन्तु ततो धाम्नो धाम्नोऽस्मान् मा मुञ्च। हे वरुण! अघ्न्या इति यद्भवन्त आहुः वयं चेत्थं शपामहे ततस्त्वं मा मुञ्च वयमपि न मुञ्चामः। हे वरुण! नः अस्मभ्यमाप ओषध्यश्च सुमित्रियास्सुमित्रवत् सन्तु, योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तस्मै दुर्मित्रियाः शत्रुवत्

सन्तु॥२२॥

भावार्थः-राजपुरुषाः प्रजाभ्योऽनीत्या धनं न गृह्णीयुः। राजरक्षणाय प्रतिज्ञां कुर्युरन्यायं वयं न करिष्याम इति दुष्टान् सततं दण्डयेयुरिति॥२२॥

पदार्थः-हे **(राजन्)** सभापति! आप प्रत्येक स्थानों में **(अपः)** जल और **(ओषधीः)** अन्न-पान पदार्थ तथा किराने आदि वणिज पदार्थों को **(मा)** मत **(हिंसीः)** नष्ट करो अर्थात् प्रत्येक जगह हम लोगों को सब इष्ट पदार्थ मिलते रहें, न केवल यही करो, किन्तु **(ततः)** उस **(धाम्नः धाम्नः)** स्थान-स्थान से **(नः)** हम लोगों को **(मा)** मत **(मुञ्च)** त्यागो। हे **(वरुण)** न्याय करने वाले सभापति! किये हुए न्याय में **(अघ्न्याः)** न मारने योग्य गौ आदि पशुओं की शपथ है **(इति)** इस प्रकार जो आप कहते हैं और हम लोग भी **(शपामहे)** शपथ करते हैं और आप भी उस प्रतिज्ञा को मत छोड़िये और हम लोग भी न छोड़ेंगे। हे वरुण! आपके राज्य में **(नः)** हम लोगों को **(आपः)** जल और ओषधियां **(सुमित्रियाः)** श्रेष्ठमित्र के तुल्य **(सन्तु)** हों तथा **(यः)** जो **(अस्मान्)** हम लोगों से **(द्वेष्टि)** वैर रखता है **(च)** और **(वयम्)** हम लोग **(यम्)** जिससे **(द्विष्मः)** वैर करते हैं, **(तस्मै)** उस के लिये वे ओषधियां **(दुर्मित्रियाः)** दुःख देने देने वाले शत्रु के तुल्य **(सन्तु)** हों॥२२॥

भावार्थः-राजा और राजाओं के कामदार लोग अनीति से प्रजाजनों का धन न लेवें, किन्तु राज्य-पालन के लिये राजपुरुष प्रतिज्ञा करें कि हम लोग अन्याय न करेंगे अर्थात् हम सर्वदा तुम्हारी रक्षा और डाकू, चोर, लम्पट-लवाड़, कपटी, कुमार्गी, अन्यायी और कुकर्मियों को निरन्तर दण्ड देवेंगे॥२२॥

हविष्मतीरित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। अब्यज्ञसूर्या देवताः। निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनरन्योन्यं मिलित्वा राजप्रजे केन किं किं कुर्यातामित्याह॥

फिर परस्पर मिल कर राजा और प्रजा किससे क्या-क्या करें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

हविष्मतीरिमाऽआपो हविष्माँ२ऽआविवासति।

हविष्मान् देवोऽअध्वरो हविष्माँ२ऽअस्तु सूर्यः॥२३॥

हविष्मतीः। इमाः। आपः। हविष्मान्। आ। विवासति। हविष्मान्। देवः। अध्वरः। हविष्मान्। अस्तु। सूर्यः॥२३॥

पदार्थः-**(हविष्मतीः)** प्रशस्तानि हवींषि विद्यन्ते यासु ताः **(इमाः)** प्रत्यक्षाः **(आपः)** जलानि **(हविष्मान्)** प्रशस्तानि हवींषि विद्यन्ते यस्य वायोः सः, **दीर्घादटि समानपादे।** (अष्टा०८।३।९) इति रुः। **आतोऽटि नित्यम्।** **(अष्टा०८।३।३)** इति सानुनासिकत्वम्। **(आ)** समन्तात् **(विवासति)** सेवते। **विवासतीति परिचरणकर्मसु पठितम्।** (निघं०३।५) **(हविष्मान्)** **(देवः)** सुखयिता। **(अध्वरः)** यज्ञः **(हविष्मान्)** **(अस्तु)** **(सूर्यः)**॥ अयं मन्त्रः (शत०(३।९।२।१०) व्याख्यातः॥२३॥

अन्वयः-हे विद्वांसः! यथेमा आपो हविष्मतीर्हविष्मत्यः स्युरयं वायुर्हविष्मानेवाविवासति सर्वान् परिचरति, देवोऽध्वरो हविष्मान् स्यात्, सूर्यो हविष्मान् अस्तु भवेत्, तथा भवन्तो यज्ञेनैतान् शुद्धान् कुर्वन्तु॥२३॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। येन वायुजलसंयोगेनानेकानि सुखानि साध्यन्ते, यैर्विविधदेश-

देशान्तरगमनेन वस्तुप्रापणं भवति। तैरेतत् कर्म क्रियाविचक्षण एव कर्त्तुं शक्नोति, यो विविधक्रियाप्रकाशकोऽस्ति, स यज्ञो वृष्ट्यादिसुखकरो भवति॥२३॥

पदार्थ:-हे विद्वान् लोगो! तुम उन कामों को किया करो कि जिनसे **(इमा:)** ये **(आप:)** जल **(हविष्मती:)** अच्छे-अच्छे दान और आदान क्रिया शुद्धि और सुख देने वाले हों अर्थात् जिन से नाना प्रकार का उपकार दिया लिया जाय **(हविष्मान्)** पवन उपकार अनुपकार को **(आ)** अच्छे प्रकार **(विवासति)** प्राप्त होता है **(देव:)** सुख का देने वाला **(अध्वर:)** यज्ञ भी **(हविष्मान्)** परमानन्दप्रद **(सूर्य्य:)** तथा सूर्यलोक भी **(हविष्मान्)** सुगन्धादियुक्त होके **(अस्तु)** हो॥२३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जिस वायु जल के संयोग से अनेक सुख सिद्धि किये जाते हैं, जिनसे देश-देशान्तरों में जाने से उत्तम वस्तुओं का पहुंचाना होता है, उन अग्नि जल आदि पदार्थों से उक्त काम को क्रियाओं में चतुर पुरुष ही कर सकता है और जो नाना प्रकार की कारीगरी आदि अनेक क्रियाओं का प्रकाश करने वाला है, वही यज्ञ वर्षा आदि उत्तम-उत्तम सुख का करने वाला होता है॥२३॥

अग्नेर्व इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषि:। आर्ची त्रिष्टुप् छन्द:। धैवत: स्वर:। अमूर्य्येत्यस्य त्रिपाद् गायत्री छन्द:। षड्ज: स्वर:॥

अथ गुरुपत्न्यो ब्रह्मचर्यमनुवर्तिनी: कन्या: किं किमुपदिशेयुरित्याह॥

अब गुरुपत्नी ब्रह्मचर्य्य के अनुकूल जो कन्याजन हैं, उन को क्या-क्या उपदेश करें, यह अगले मन्त्र में कहा है॥

अग्नेर्वोऽपन्नगृहस्य सदसि सादयामीन्द्राग्न्योर्भागधेयी स्थ मित्रावरुणयोर्भागधेयी स्थ विश्वेषां देवानां भागधेयी स्थ। अमूर्याऽउप सूर्ये याभिर्वा सूर्य: सह। ता नो हिन्वन्त्वध्वरम्॥२४॥

अग्ने:। व:। अपन्नगृहस्येत्यपन्नऽगृहस्य। सदसि। सादयामि। इन्द्राग्न्यो:। भागधेयीरिति भागऽधेयी:। स्थ। मित्रावरुणयो:। भागधेयीरिति भागऽधेयी:। विश्वेषाम्। देवानाम्। भागधेयीरिति भागऽधेयी:। स्थ। अमू:। या:। उप। सूर्य्ये। याभि:। वा। सूर्य्य:। सह। ता:। न:। हिन्वन्तु। अध्वरम्॥२४॥

पदार्थ:-**(अग्ने:)** विद्यादिगुणप्रकाशितस्य सभ्यजनस्य **(व:)** युष्मान् युष्माकं वा **(अपन्नगृहस्य)** अप्राप्तगृहस्य कुमारब्रह्मचारिण: **(सदसि)** सीदन्ति बुद्धिविषया यस्मिन्निति सद: अध्ययनाध्यापननिमित्ता सभा। तत्र **(सादयामि)** स्थापयामि **(इन्द्राग्न्यो:)** सूर्यविद्युतोर्गुणानाम् **(भागधेयी:)** विभागविज्ञानयुक्ता:। **नामरूपभागेभ्य: स्वार्थे धेय: प्रत्यय:। (अष्टा** (अष्टा०५।४।३६ भा० वा०)॥ **केवलमामक०।** (अष्टा०४।१।३०) इत्यादिना ङीप्। **(स्थ)** भवथ **(मित्रावरुणयो:)** प्राणोदानयो: **(विश्वेषाम्)** सर्वेषाम् **(देवानाम्)** विदुषां पृथिव्यादीनां वा **(भागधेयी:)** **(स्थ)** **(अमू:)** प्रत्यक्षा: **(या:)** **(उप)** **(सूर्ये)** सवितृलोके **(याभि:)** **(वा)** पक्षान्तरे **(सूर्य:)** सूर्यलोक: **(सह)** **(ता:)** **(न:)** अस्माकम् **(हिन्वन्तु)** प्रीणन्तु **(अध्वरम्)** गृहाश्रमक्रियासिद्धिकरं यज्ञम्॥२४॥

अन्वय:-हे ब्रह्मचारिण्य:! यूयं या अमू: स्वयंवरविवाहं कृतवत्य: सन्ति, यूयं इन्द्राग्न्योर्भागधेयी: स्थ, मित्रावरुणयोर्भागधेयी: स्थ, विश्वेषां देवानां भागधेयी: स्थ, ता वो युष्मान् अपन्नगृहस्याग्ने: सदस्यहं सादयामि, या उपसूर्ये सूर्य्यगुणेषु तिष्ठन्ति वा याभि: सह सूर्यो वर्त्तते, ता नोऽस्माकमध्वरं विवाहं कृत्वा हिन्वन्तु॥२४॥

भावार्थः-ब्रह्मचर्यधर्ममनुवर्त्तिनीनां कन्यानामविवाहितैः स्वतुल्यगुणकर्मस्वभावैः पुरुषैः सहैव विवाहकरणयोग्यतास्तीति हेतोर्गुरुपत्न्यो ब्रह्मचारिण्यः कन्यास्तादृशमेवोपदिशन्तु खल्वापत्काले कृतविवाहयोर्नियोगो भवितुमर्हति नान्यथेति॥२४॥

पदार्थः-हे ब्रह्मचारिणी कन्याओ! **(अमूः)** वे **(याः)** जो स्वयंवर विवाह से पतियों को स्वीकार किये हुए हैं, उन के समान जो **(इन्द्राग्न्योः)** सूर्य और बिजुली के गुणों को **(भागधेयीः)** अलग-अलग जानने वाली **(स्थ)** हैं, **(मित्रावरुणयोः)** प्राण और उदान के गुणों को **(भागधेयीः)** अलग-अलग जानने वाली **(स्थ)** हैं, **(विश्वेषाम्)** विद्वान् और पृथिवी आदि पदार्थों के **(भागधेयीः)** सेवने वाली **(स्थ)** हैं, उन **(वः)** तुम सभों को **(अपन्नगृहस्य)** जिसको गृहकृत्य नहीं प्राप्त हुआ है, उस ब्रह्मचर्य धर्मानुष्ठान करने वाले और **(अग्नेः)** सब विद्यादि गुणों से प्रकाशित उत्तम ब्रह्मचारी की **(सदसि)** सभा में मैं **(सादयामि)** स्थापित करती हूं और जो **(याः)** **(उप)** **(सूर्ये)** सूर्यलोक गुणों में **(उप)** उपस्थित होती हैं **(वा)** अथवा **(याभिः)** जिनके **(सह)** साथ **(सूर्यः)** सूर्यलोक वर्त्तमान अर्थात् जो सूर्य के गुणों में अति चतुर हैं **(ताः)** वे सब **(नः)** हमारे **(अध्वरम्)** घर के काम-काज को विवाह करके **(हिन्वन्तु)** बढावें॥२४॥

भावार्थः-ब्रह्मचर्य धर्म को पालन करने वाली कन्याओं को अविवाहित ब्रह्मचारी और अपने तुल्य गुण, कर्म, स्वभावयुक्त पुरुषों के साथ विवाह करने की योग्यता है, इस हेतु से गुरुजनों की स्त्रियां ब्रह्मचारिणी कन्याओं को वैसा ही उपदेश करें कि जिससे वे अपने प्रसन्नता के तुल्य पुरुषों के साथ विवाह करके सदा सुखी रहें और जिसका पति वा जिसकी स्त्री मर जाय और सन्तान की इच्छा हो, वे दोनों नियोग करें, अन्य व्यभिचारदि कर्म कभी न करें॥२४॥

हृदे त्वेत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। सोमो देवता। आर्षी विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्ताः किं किमुपदिशेयुरित्याह॥

फिर से क्या-क्या उपदेश करें, यह अगले मन्त्र में कहा है॥

हृदे त्वा मनसे त्वा दिवे त्वा सूर्याय त्वा।
ऊर्ध्वमिममध्वरं दिवि देवेषु होत्रा यच्छ॥२५॥

हृदे। त्वा। मनसे। त्वा। दिवे। त्वा। सूर्य्याय। त्वा। ऊर्ध्वम्। इमम्। अध्वरम्। दिवि। देवेषु। होत्राः। यच्छ॥२५॥

पदार्थः-**(हृदे)** हृत्सुखाय **(त्वा)** त्वाम् **(मनसे)** सदसन्मननाय **(त्वा)** त्वाम् **(दिवे)** सर्वसुखद्योतनात् **(त्वा)** त्वाम् **(सूर्य्याय)** सूर्यगुणाय **(त्वा)** त्वाम् **(ऊर्ध्वम्)** उत्कृष्टम् **(इमम्)** प्रत्यक्षम् **(अध्वरम्)** अविनश्वरं यज्ञम् **(दिवि)** शुभगुणप्रकाशे **(देवेषु)** विद्वत्सु **(होत्राः)** हवनकर्मानुष्ठात्र्यः **(यच्छ)** उपगृह्णीहि॥ अयं मन्त्रः (शत०(३.९.३.४-५) व्याख्यातः॥२५॥

अन्वयः-हे ब्रह्मचारिणि कन्ये! त्वं यथा वयं सर्वा देवेषु स्वपतिषु समीपवर्त्तिन्यो होत्रा हवनकर्मानुष्ठात्र्यः स्मस्तथा भव, यथा वयं हृदे त्वा मनसे त्वा दिवे त्वा सूर्य्याय त्वानुशास्मस्तथा दिवीममध्वरमूर्ध्वं यच्छ॥२५॥

भावार्थः-यथा पतिव्रताः स्वपतिषु तत्प्रियमाचरन्त्यैऽग्निहोत्रादिकर्मसु निरताः स्युस्तथा विवाहानन्तरं

ब्रह्मचारिणीभिर्ब्रह्मचारिभिरपि परस्परमनुवर्त्तितव्यमिति॥ २५॥

पदार्थ:-हे ब्रह्मचारिणी कन्या! तू जैसे हम सब **(देवेषु)** अपने सुख देने वाले पतियों के निकट रहने और **(होत्रा:)** अग्निहोत्र आदि कर्म का अनुष्ठान करने वाली हैं, वैसी हो और जैसे हम **(हृदे)** सौहार्द सुख के लिये **(त्वा)** तुझे वा **(मनसे)** भला-बुरा विचारने के लिये **(त्वा)** तुझे वा **(दिवे)** सब सुखों के प्रकाश करने के लिये **(त्वा)** तुझे वा **(सूर्य्याय)** सूर्य्य के सदृश गुणों के लिये **(त्वा)** तुझे शिक्षा करती हैं, वैसे तू भी **(दिवि)** समस्त सुखों के प्रकाश करने के निमित्त **(इमम्)** इस **(अध्वरम्)** निरन्तर सुख देने वाले गृहाश्रमरूपी यज्ञ को **(ऊर्ध्वम्)** उन्नति **(यच्छ)** दिया कर॥ २५॥

भावार्थ:-जैसे अपने पतियों की सेवा करती हुई उनके समीप रहने वाली पतिव्रता गुरुपत्नियां अग्निहोत्रादि कर्मों में स्थिर बुद्धि रखती हैं, वैसे विवाह के अनन्तर ब्रह्मचारिणी कन्याओं और ब्रह्मचारियों को परस्पर वर्तना चाहिये॥ २५॥

सोम राजन्नित्यस्य मेधातिथिर्ऋषि:। गायत्री छन्द:। षड्ज: स्वर:। शृणोत्विस्यार्षी त्रिष्टुप् छन्द:। धैवत: स्वर:॥

अथ गुरुजन: क्षत्रियं शिष्यं प्रजाजनांश्च प्रत्युपदिशति॥

अब गुरुजन क्षत्रिय, शिष्य और प्रजाजन को उपदेश करता है, यह अगले मन्त्र में कहा है॥

सोम॑ राज॒न् विश्वा॒स्त्वं प्र॒जाऽउ॒पाव॑रोह॒ विश्वा॒स्त्वां प्र॒जाऽउ॒पाव॑रोहन्तु।

शृ॒णोत्व॒ग्नि: स॒मिधा॒ हवं॑ मे शृ॒ण्वन्त्वापो॑ धि॒षणा॑श्च दे॒वी:।

श्रोता॑ ग्रावाणो वि॒दुषो॒ न य॒ज्ञꣳ शृ॒णोतु॑ दे॒व: स॑वि॒ता हवं॑ मे॒ स्वाहा॑॥ २६॥

सोम॑। रा॒ज॒न्। विश्वा॑:। त्वम्। प्र॒जा इति॑ प्र॒ऽजा:। उ॒पाव॑रो॒हेत्यु॑प॒ऽअव॑रोह। विश्वा॑:। त्वाम्। प्र॒जा इति॑ प्र॒ऽजा:। उपाव॑रोह॒न्त्वित्यु॑प॒ऽअव॑रोहन्तु। शृ॒णोतु॑। अ॒ग्नि:। स॒मिधेति॑ सम्ऽइधा॑। हव॑म्। मे॒। शृ॒ण्वन्तु॑। आप॑:। धि॒षणा॑:। च॒। दे॒वी:। श्रोत॑। ग्रा॒वा॒ण॒:। वि॒दुष॑:। न। य॒ज्ञम्। शृ॒णोतु॑। दे॒व:। स॒वि॒ता। हव॑म्। मे॒। स्वाहा॑॥ २६॥

पदार्थ:-**(सोम)** प्रशस्तैश्वर्य्ययुक्त **(राजन्)** सर्वोत्कृष्टगुणै: प्रकाशमान! **(विश्वा:)** सर्वा: **(त्वम्)** **(प्रजा:)** पालनीया: **(उपावरोह)** उपवर्तस्व **(विश्वा:)** सर्वा: **(त्वाम्)** पितरमपत्यानीव सुखाय **(प्रजा:)** प्रजननीया: **(उपावरोहन्तु)** समुपाश्रयन्तु **(शृणोतु)** **(अग्नि:)** पावक: **(समिधा)** समिधेव **(हवम्)** अर्चनम् **(मे)** मम **(शृण्वन्तु)** **(आप:)** शुभगुणकर्मव्याप्ता: **(धिषणा:)** धृष्टा वाचो यासां ता:। **धिषणोति वाङ्नामसु पठितम्।** (निघं०१।११) **(च)** पक्षान्तरे **(देवी:)** विदुष्य: **(श्रोत)** शृणुत। अत्र तस्य स्थाने **तप्तनप्तनथनाश्च।** (अष्टा०७।१।४५) अनेन तबादेश:। **द्व्यचोऽतस्तिङ:।** (अष्टा०६।३।१३५) इति दीर्घ:। **बहुलं छन्दसि।** (अष्टा०२।४।७३) इति श्नुलोपश्च। **(ग्रावाण:)** सदसद्विवेचका विद्वांस:। **ग्रावाण इति पदनामसु पठितम्।** (निघं०५।३) **(विदुष:)** **(न)** इव **(यज्ञम्)** **(शृणोतु)** **(देव:)** विद्याप्रकाशित: **(सविता)** ऐश्वर्य्यवान् **(हवम्)** **(मे)** मम **(स्वाहा)** स्तुतियुक्ता वाग्यथा तथा॥ अयं मन्त्र: (शत०(३।९।३।६-२४) व्याख्यात:॥ २६॥

अन्वय:-हे सोमराजन्! त्वं पितेव विश्वा: प्रजा उपाववरोह, त्वां विश्वा: प्रजा अपत्यानीवोपावरोहन्तु।

भवान् समिधाग्निरिव मे मम प्रजाजनस्य हवं शृणोतु, या आपो धिषणा देवी: देव्य: पत्न्यश्च मातरमिव स्त्रीन्यायं शृण्वन्तु। हे ग्रावाण: स्तावका विद्वांस: सभासद: ! यूयं मम हवं श्रोत देव: सविता भवान् विदुषो यज्ञं न इव मे मम हवं स्वाहा शृणोतु॥ २६॥

भावार्थ:-राजा प्रजाश्च परस्परानुमत्या सर्वान् राजव्यवहारन् पालयेयुरिति॥ २६॥

पदार्थ:-हे **(सोम)** श्रेष्ठ ऐश्वर्ययुक्त **(राजन्)** समस्त उत्कृष्ट गुणों से प्रकाशमान सभाध्यक्ष! **(त्वम्)** तू पिता के तुल्य **(विश्वा:)** समस्त **(प्रजा:)** प्रजाजनों का **(उपावरोह)** समीपवर्ती होकर रक्षा कर और **(त्वाम्)** तुझे **(विश्वा:)** समस्त **(प्रजा:)** प्रजाजन पुत्र के समान **(उपावरोहन्तु)** आश्रित हों। हे सभाध्यक्ष! आप जैसे **(समिधा)** प्रदीप्त करने वाले पदार्थ से **(अग्नि:)** सर्व गुण वाला अग्नि प्रकाशित होता है, वैसे **(मे)** मेरी **(हवम्)** प्रगल्भवाणी को **(शृणोतु)** सुन के न्याय से प्रकाशित हूजिये **(च)** और **(आप:)** सब गुणों में व्याप्त **(धिषणा:)** विद्या बुद्धियुक्त **(देवी:)** उत्तमोत्तम गुणों से प्रकाशमान तेरी पत्नी भी माताओं के समान स्त्रीजनों के न्याय को **(शृण्वन्तु)** सुनें। हे **(ग्रावाण:)** सत्-असत् के करने वाले विद्वान् सभासदो! तुम हम लोगों के अभिप्राय को हमारे कहने से **(श्रोत)** सुनो तथा **(देव:)** विद्या से प्रकाशित **(सविता)** ऐश्वर्य्यवान् सभापति **(विदुष:)** विद्वानों के **(यज्ञम्)** यज्ञ के **(न)** समान **(मे)** हमारे प्रजा लोगों के **(हवम्)** निवेदन को **(स्वाहा)** स्तुतिरूप वाणी जैसे हो वैसे **(शृणोतु)** सुने॥ २६॥

भावार्थ:-राजा और प्रजाजन परस्पर सम्मति से समस्त राज्यव्यवहारों की पालना करें॥ २६॥

देवीराप इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषि:। आपो देवता:। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्द:। धैवत: स्वर:॥

पुनरेते कथं वर्त्तेरन्नित्युपदिश्यते॥

फिर राजा और प्रजा कैसे वर्त्ताव को वर्तें, यह अगले मन्त्र में कहा है॥

देवीरापोऽअपां नपाद्यो वऽऊर्मिर्हविष्यऽइन्द्रियावान् मदिन्तमः।
तं देवेभ्यो देवत्रा दत्त शुक्रपेभ्यो येषां भाग स्थ स्वाहा॥ २७॥

देवीः। आपः। अपाम्। नपात्। यः। वः। ऊर्म्मिः। हविष्यः। इन्द्रियावान्। इन्द्रियवानितीन्द्रियऽवान्। मदिन्तम इति मदिन्ऽतमः। तम्। देवेभ्यः। देवत्रेति देवऽत्रा। दत्त। शुक्रपेभ्य इति शुक्रऽपेभ्यः। येषाम्। भागः। स्थ। स्वाहा॥ २७॥

पदार्थ:-**(देवी:)** दिव्या: **(आप:)** आप्ता: प्रजा: **(अपां नपात्)** अविनश्वर: **(य:)** **(व:)** युष्माकम् **(ऊर्मि:)** जलतरङ्ग इव **(हविष्य:)** हविर्भ्यो हित: **(इन्द्रियावान्)** प्रशस्तानीन्द्रियाणि यस्मिन् स: **(मदिन्तम:)** मदयतीति मदी सोऽतिशयित:। **नाद् घस्य। (अष्टा०८।२।१७)** इति 'मदिन्' शब्दान्नुडागम:। **(तम्)** **(देवेभ्य:)** विद्वद्भ्य: **(देवत्रा)** दिव्यान् गुणान् **(दत्त)** **(शुक्रपेभ्य:)** शुक्रं वीर्यं रक्षन्ति तेभ्य: **(येषाम्)** **(भाग:)** **(स्थ)** **(स्वाहा)**॥ अयं मन्त्र: (शत०(३।९।३।२५) व्याख्यात:॥ २७॥

अन्वय:-हे आपो देवीर्देव्य: प्रजा! यूयं राजभक्ता स्थ भवत, शुक्रपेभ्यो देवेभ्यो येषां वो युष्माकमपां नपादूर्मिरिवेन्द्रियावान् मदिन्तमो हविष्यो भोगोऽस्ति, तं स्वाहा सद्वाचा गृह्णीत। तथा राजादय: सभ्या जना देवत्रा दिव्यान् भोगान् युष्मभ्यं प्रददति तथैतेभ्यो यूयमपि दत्त॥ २७॥

भावार्थः-प्रजाजनानामिदमुचितमुत्कृष्टगुणं सभापतिं मत्वा राज्यपालनाय करं दत्त्वा न्यायं प्राप्नुयुरिति॥ २७॥

पदार्थः-हे **(आपः)** श्रेष्ठ गुणों में व्याप्त **(देवीः)** शुभकर्मों से प्रकाशमान प्रजालोगो! तुम राजसेवी **(स्थ)** हो, **(शुक्रपेभ्यः)** शरीर और आत्मा के पराक्रम के रक्षक **(देवेभ्यः)** दिव्यगुणयुक्त विद्वानों के लिये **(येषाम्)** जिन **(वः)** तुम्हारा बली रूप विद्वानों का **(यः)** जो **(अपां नपात्)** जलों के नाशरहित स्वाभाविक **(ऊर्मिः)** जलतरंग के सदृश प्रजारक्षक **(इन्द्रियावान्)** जिस में प्रशंसनीय इन्द्रियां होती हैं और **(मदिन्तमः)** आनन्द देने वाला **(हविष्यः)** भोग के योग्य पदार्थों से निष्पन्न **(भागः)** भाग हैं, वे तुम सब **(तम्)** उसको **(स्वाहा)** आदर के साथ ग्रहण करो, जैसे राजादि सभ्यजन **(देवत्रा)** दिव्य भोग देते हैं, वैसे तुम भी इसको आनन्द **(दत्त)** देओ॥ २७॥

भावार्थः-प्रजाजनों को यह उचित है कि आपस में सम्मति कर किसी उत्कृष्ट गुणयुक्त सभापति को राजा मान कर राज्य-पालन के लिये कर देकर न्याय को प्राप्त हों॥ २७॥

कार्षिरसीत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। प्रजा देवता। निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथाध्यापको जनः प्रतिजनं किं किमुपदिशेदित्युच्यते॥

अब अध्यापक जन प्रत्येक जन को क्या-क्या उपदेश करे, यह अगले मन्त्र में कहा है॥

कार्षिरसि समुद्रस्य त्वा क्षित्याऽउन्नयामि। समापोऽअद्भिरग्मत समोषधीभिरोषधीः॥ २८॥

कार्षिः। असि। समुद्रस्य। त्वा। अक्षित्यै। उत्। नयामि। सम्। आपः। अद्भिरित्यत्ऽभिः। अग्मत। सम्। ओषधीभिः। ओषधीः॥ २८॥

पदार्थः-**(कार्षिः)** कर्षति हलेन भूमिमिति, **इञ् वपादिभ्यः।** (अष्टा०भा०वा०३।३।१०८) इतीञ्। **(असि)** **(समुद्रस्य)** अन्तरिक्षस्य। **समुद्र इत्यन्तरिक्षनामसु पठितम्।** (निघं०१। ३) **(त्वा)** त्वाम् **(अक्षित्यै)** **(उत्)** उत्कृष्टे **(नयामि)** **(सम्)** **(आपः)** जलानि **(अद्भिः)** जलैरेव **(अग्मत)** प्राप्नुत, लोडर्थे लुङ्। **(सम्)** **(ओषधीभिः)** सोमादिभिः **(ओषधीः)**॥ अयं मन्त्रः (शत०(३। ९। ३। २६-३१) व्याख्यातः॥ २८॥

अन्वयः-हे वैश्यजन! त्वं कार्षिरसि त्वां समुद्रस्याक्षित्यै समुन्नयामि, सर्वे यूयं यज्ञशोधिताभिरद्भिरेवाप ओषधीभिरोषधीः समग्मत॥ २८॥

भावार्थः-क्षेत्रादिभूमिषु नानौषधयो जायन्त, ओषधीभिरग्निहोत्रादयो यज्ञा, यज्ञैरन्तरिक्षं जलपरमाणुभिः पूर्णं भवतीति हेतोर्विद्वांसो निर्बुद्धिजनान् क्षेत्रादिषु नयन्ति, कुतस्ते विद्यामभ्यसितुं समर्था एव न भवन्तीति॥ २८॥

पदार्थः-हे वैश्यजन! तू **(कार्षिः)** हल जोतने योग्य **(असि)** है **(त्वा)** तुझे **(समुद्रस्य)** अन्तरिक्ष के **(अक्षित्यै)** परिपूर्ण होने के लिये **(सम् उत् नयामि)** अच्छे प्रकार उत्कर्ष देता हूं, तुम सब लोग **(अद्भिः)** यज्ञशोधित जलों से **(आपः)** जल और **(ओषधीभिः)** ओषधियों से **(ओषधीः)** ओषधियों को **(सम् अग्मत)** प्राप्त होओ॥ २८॥

भावार्थः-क्षेत्र आदि स्थानों में अनेक ओषधियां उत्पन्न होती हैं, ओषधियों से अग्निहोत्र आदि यज्ञ, यज्ञों से शुद्ध हुए जो जल के परमाणु ऊंचे होते हैं, उन से आकाश भरा रहता है। इस कारण विद्वान् लोग निर्बुद्धि जनों को खेती बारी ही के कामों में रखते हैं, क्योकि वे विद्या का अभ्यास करने को समर्थ ही नहीं होते हैं॥ २७॥

यमग्न इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगार्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अथ स विद्वांसं किमाहेत्युपदिश्यते॥

अब वह अध्यापक को क्या कहता है, यह अगले मन्त्र में उपदेश किया है॥

यमग्ने पृत्सु मर्त्यमवा वाजेषु यं जुनाः। स यन्ता शश्वतीरिषः स्वाहा॥२९॥

यम्। अग्ने। पृत्स्विति पृत्ऽसु। मर्त्यम्। अवाः। वाजेषु। यम्। जुनाः। सः। यन्ता। शश्वतीः। इषः। स्वाहा॥२९॥

पदार्थः-(**यम्**) (**अग्ने**) सर्वगुणवर! (**पृत्सु**) संग्रामेषु। **पृत्स्विति संग्रामनामसु पठितम्।** (निघं०२।१७) (**मर्त्यम्**) मनुष्यम् (**अवाः**) रक्षेः (**वाजेषु**) अन्ननिमित्तक्षेत्रादिषु (**यम्**) (**जुनाः**) गमयेः (**सः**) (**यन्ता**) (**शश्वतीः**) अविनश्वराः (**इषः**) इष्यन्ते यास्ताः प्रजाः (**स्वाहा**) उत्साहिकया वाचा॥ अयं मन्त्रः (शत०(३।९।३।३१-३२) व्याख्यातः॥२९॥

अन्वयः-हे अग्ने त्वं! पृत्सु यं मर्त्यमवा यं च वाजेषु जुनाः स शश्वतीरिषो यन्ता स्यात्॥२९॥

भावार्थः-गुरुशिक्षया सर्वस्य सुखं वर्द्धत एव॥२९॥

पदार्थः-हे (**अग्ने**) सब कभी विवेक के करने वाले आप! (**पृत्सु**) संग्रामों में (**यम्**) जिस मनुष्य की (**अवाः**) रक्षा करते और (**वाजेषु**) अन्न आदि पदार्थों की सिद्धि करने के निमित्त (**यम्**) जिसको (**जुनाः**) नियुक्त करते हो (**सः**) वह (**शश्वतीः**) निरन्तर अनादिरूप (**इषः**) अपनी प्रजाओं का (**यन्ता**) निर्वाह करने हारा होता है अर्थात् उन के नियमों को पहुंचाता है॥२९॥

भावार्थः-गुरुजनों की शिक्षा से सब का सुख बढ़ता ही है॥२९॥

देवस्य त्वेत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। सविता देवता। स्वराडार्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अथ सभापतिः करधनप्रदं प्रजापुरुषं कथं स्वीकुर्य्यादित्युपदिश्यते॥

अब सभापति कर-धन देने वाले प्रजाजनों को कैसे स्वीकार करे, यह अगले मन्त्र में कहा है॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्।
आददे रावासि गभीरमिममध्वरं कृधीन्द्राय सुषूतमम्।
उत्तमेन पविनोर्जस्वन्तं मधुमन्तं पयस्वन्तं निग्राभ्या स्थ देवश्रुतस्तर्पयत मा॥३०॥

देवस्य। त्वा। सवितुः। प्रसव इति प्रऽसवे। अश्विनोः। बाहुभ्यामिति बाहुऽभ्याम्। पूष्णः। हस्ताभ्याम्। आ। ददे। रावा। असि। गभीरम्। इमम्। अध्वरम्। कृधि। इन्द्राय। सुषूतमम्। सुसूतमामिति सुऽसूतमम्। उत्तमेनेत्युत्ऽतमेन। पविना। ऊर्ज्जस्वन्तम्। मधुमन्तमिति मधुऽमन्तम्। पयस्वन्तम्। निग्राभ्या इति निऽग्राभ्याः स्थ। देवऽश्रुत इति देवश्रुतः। तर्पयत। मा॥३०॥

पदार्थः-(**देवस्य**) सर्वसुखप्रदातुः (**त्वा**) त्वां करधनदातारम् (**सवितुः**) सकलैश्वर्य्यस्य प्रसवितुर्जगदीश्वरस्य (**प्रसवे**) प्रसूते जगति (**अश्विनोः**) सूर्य्याचन्द्रमसोः (**बाहुभ्याम्**) बलवीर्य्याभ्याम् (**पूष्णः**) सोमाद्योषधिगणस्य

(हस्ताभ्याम्) रोगनाशकधातुसाम्यकारकाभ्यां गुणाभ्याम् **(आददे)** गृह्णामि **(रावा)** दाता **(असि)** **(गभीरम्)** अगाधगुणम् **(इमम्)** प्रत्यक्षम् **(अध्वरम्)** निष्कौटिल्यम् **(कृधि)** कुरु **(इन्द्राय)** परमैश्वर्यवते मह्यम् **(सुषूतमम्)** सुष्ठु सूते तम् **(उत्तमेन)** प्रशस्तेनेव **(पविना)** वाचा। **पविरिति वाङ्नामसु पठितम्।** (निघं०१।११) **(ऊर्जस्वन्तम्)** उत्तमपराक्रमसम्बधिनम् **(मधुमन्तम्)** प्रशस्तमध्वादिपदार्थयुक्तम् **(पयस्वन्तम्)** बहुदुग्धादिमन्तम् **(निग्राभ्याः)** नितरां ग्रहीतुं योग्याः **(स्थ)** भवथ **(देवश्रुतः)** या देवान् शृण्वन्ति ताः **(तर्पयत)** प्रीणीत **(मा)** माम्॥ अयं मन्त्रः शतः ३। ९।४।३-६) व्याख्यातः॥३०॥

अन्वयः-हे प्रजाजन! अहं देवस्य सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां त्वामाददे, त्वमिन्द्राय मह्यमुत्तमेन पविना वचसेमं गभीरं सुषूतममूर्जस्वन्तं कारदायमध्वरं कृधि। हे देवश्रुतः प्रजा यूयं निग्राभ्या मया नितरां ग्रहीतुं योग्याः स्थ, मा मामनेन तर्प्पयत॥३०॥

भावार्थः-प्रजाजनां योग्यतास्ति राजानमागत्य तस्मै सर्वेषां स्वकीयपदार्थानां यथायोग्यमंशभागी भवतीति॥३०॥

पदार्थः-सब सुख देने **(सवितुः)** और समस्त ऐश्वर्य्य के उत्पन्न करने वाले जगदीश्वर के **(प्रसवे)** उत्पन्न किये हुए संसार में **(अश्विनोः)** सूर्य और चन्द्रमा के **(बाहुभ्याम्)** बल और पराक्रम गुणों से **(पूष्णः)** पुष्टि करने वाले सोम आदि ओषधिगण के **(हस्ताभ्याम्)** रोगनाश करने और धातुओं की समता रखने वाले गुणों से **(त्वा)** तुझ कर-धन देने वाले को **(आददे)** स्वीकार करता हूं। तू **(इन्द्राय)** परमैश्वर्य्य वाले मेरे लिये **(उत्तमेन)** उत्तम अर्थात् सभ्यता की **(पविना)** वाणी से **(इमम्)** इस **(गभीरम्)** अत्यन्त समझने योग्य **(सुषूतमम्)** सब पदार्थों से उत्पन्न हुए **(ऊर्जस्वन्तम्)** राज्य को बलिष्ठ करने वाले **(मधुमन्तम्)** समस्त मधु आदि श्रेष्ठ पदार्थयुक्त **(पयस्वन्तम्)** दुग्ध आदि सहित कर-धन को **(अध्वरम्)** निष्कपट **(कृधि)** कर दे, **(देवश्रुतः)** श्रेष्ठ राज्य-गुणों को सुनने वाले तुम मेरे **(निग्राभ्यः)** निरन्तर स्वीकार करने के योग्य **(स्थ)** हो **(मा)** मुझे इस कर के देने से **(तर्प्पयत)** तृप्त करो॥३०॥

भावार्थः-प्रजाजनों की योग्यता है कि सभाध्यक्ष को प्राप्त होकर उस के लिये अपने समस्त पदार्थों से यथायोग्य भाग दें, जिस कारण राजा, प्रजापालन के लिये संसार में उत्पन्न हुआ है, इसी से राज्य करने वाला यह राजा संसार के पदार्थों का अंश लेने वाला होता है॥३०॥

मनो म इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। प्रजासभ्यराजानो देवताः। उष्णिजश्छन्दांसि। ऋषभः स्वरः॥

अथ राजा सभ्यजनान् सभा राजानञ्च किमुपदिशेदित्याह॥

अब राजा अपने सभासदों और सभा राजा को क्या उपदेश करे, यह अगले मन्त्र में उपदेश किया है॥

मनो॑ मे तर्पयत॒ वाचं॑ मे तर्पयत प्रा॒णं मे॑ तर्पयत॒ चक्षु॑र्मे तर्पयत॒ श्रोत्रं॑ मे तर्पयता॒त्मानं॑ मे तर्पयत प्र॒जां मे॑ तर्पयत प॒शून् मे॑ तर्पयत ग॒णान्मे॑ तर्पयत ग॒णा मे॒ मा वितृ॑षन्॥३१॥

मनः। मे। तर्पयत। वाचम्। मे। तर्पयत। प्राणम्। मे। तर्पयत। चक्षुः। मे। तर्पयत। श्रोत्रम्। मे। तर्पयत। आत्मानम्। मे। तर्पयत। प्रजामिति प्रऽजाम्। मे। तर्पयत। पशून्। मे। तर्पयत। गणान्। मे। तर्पयत। गणाः। मे। मा। वि। तृषन्॥३१॥

पदार्थः-(मनः) अन्तःकरणम् **(मे) (तर्प्पयत) (वाचम्) (मे) (तर्प्पयत) (प्राणम्) (मे) (तर्प्पयत) (चक्षुः) (मे) (तर्प्पयत) (श्रोत्रम्) (मे) (तर्प्पयत) (आत्मानम्) (मे) (तर्प्पयत) (प्रजाम्)** सन्तानादिकाम् **(मे) (तर्प्पयत) (पशून्)** गोहस्त्यश्वादीन् **(मे) (तर्प्पयत) (गणान्)** परिचारकादीन् **(मे) (तर्प्पयत) (गणाः) (मे)** मम **(मा)** निषेधार्थे **(वि)** विरुद्धार्थे **(तृषन्)** तृषिता भवन्तु। अत्र लोडर्थे लुङ्। अयं मन्त्रः (शत०(३।९।४।७-८) व्याख्यातः॥३१॥

अन्वयः-हे सभाजनाः प्रजाजना वा! यूयं स्वगुणैर्मे मम मनस्तर्प्पयत, मे वाचं तर्प्पयत, मे प्राणं तर्प्पयत, मे चक्षुस्तर्प्पयत, मे श्रोत्रं तर्प्पयत, मे ममात्मानं तर्प्पयत, मे प्रजां तर्प्पयत, मे पशूंस्तर्प्पयत, मे गणांस्तर्प्तयत, यतो मे गणा मा वितृषन् तृषिता मा भवन्तु॥३१॥

भावार्थः-सभाधीनमेव राज्यप्रबन्धो भवितुमर्हति, यतः सर्वे प्रजाजना राजसेवका राजजनाः प्रजासेविनो भूत्वा स्वेषु कर्म्मसु प्रवृत्त्यान्योऽन्यमभिमोदयेयुरिति॥३१॥

पदार्थः-हे सभ्यजनो और प्रजाजनो! तुम अपने गुणों से **(मे)** मेरे **(मनः)** मन को **(तर्प्पयत)** तृप्त करो, **(मे)** मेरी **(वाचम्)** वाणी की **(तर्प्पयत)** तृप्त करो, **(मे)** मेरे **(प्राणम्)** प्राण को **(तर्प्पयत)** तृप्त करो, **(मे)** मेरे **(चक्षुः)** नेत्रों को **(तर्प्पयत)** तृप्त करो, **(मे)** मेरे **(श्रोत्रम्)** कानों को **(तर्प्पयत)** तृप्त करो, **(मे)** मेरे **(आत्मानम्)** आत्मा को **(तर्प्पयत)** तृप्त करो, **(मे)** मेरी **(प्रजाम्)** सन्तानादि प्रजा को **(तर्प्पयत)** तृप्त करो, **(मे)** मेरे **(पशून्)** गौ, हाथी, घोड़े आदि पशुओं को **(तर्प्पयत)** तृप्त करो, **(मे)** मेरे **(गणान्)** सेवकों को **(तर्प्पयत)** तृप्त करो, जिससे **(मे)** मेरे **(गणाः)** राज्य वा प्रजा कर्माधिकारी वा सेवकजन कामों में **(मा)** मत **(वितृषन्)** उदास हों॥३१॥

भावार्थः-राज्य का प्रबन्ध सभाधीन ही होने के योग्य है, जिससे प्रजाजन राजसेवक और राजपुरुष प्रजा की सेवा करने हारे अपने-अपने कामों में प्रवृत्त होके सब प्रकार एक-दूसरे को आनन्दित करते रहें॥३१॥

इन्द्राय त्वेत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। सभापती राजा देवता। पङ्क्तिपाज्ज्योतिष्मती जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

राज्यव्यवहारः सभाधीन एव तर्हि कस्मै प्रयोजनाय प्रजापुरुषैः सभापतिस्स्वीकार्य्य इत्युपदिश्यते॥

जो राज्य व्यवहार सभा के ही आधीन हो तो किसलिये प्रजाजनों को सभापति का स्वीकार करना चाहिये, यह अगले मन्त्र में उपदेश किया है॥

इन्द्राय त्वा वसुमते रुद्रवतऽइन्द्राय त्वादित्यवतऽइन्द्राय त्वाभिमातिघ्ने।
श्येनाय त्वा सोमभृतेऽग्नये त्वा रायस्पोषदे॥३२॥

इन्द्राय। त्वा। वसुमत इति वसुऽमते। रुद्रवत इति रुद्रऽवते। इन्द्राय। त्वा। आदित्यवत इत्यादित्यऽवते। इन्द्राय। त्वा। अभिमातिघ्न इत्यभिमातिऽघ्ने। श्येनाय। त्वा। सोमभृत इति सोमऽभृते। अग्नये। त्वा। रायस्पोषद इति रायस्पोषदे॥३२॥

पदार्थः-(**इन्द्राय**) परमैश्वर्य्याय (**त्वा**) त्वाम् (**वसुमते**) बहवो वसवश्चतुर्विंशतिवर्षब्रह्मचर्यसम्पन्ना विद्वांसो विद्यन्ते यत्र तस्मै कर्म्मणे (**रुद्रवते**) प्रशस्ताः कृतचतुश्चत्वारिंशद्वर्षब्रह्मचर्या विद्वांसो वीराः शत्रुरोदयितारो रुद्रा भवन्ति यत्र तस्मै (**इन्द्राय**) परमविद्याप्रकाशेनविद्याविदारकाय (**त्वा**) त्वाम् (**अभिमातिघ्ने**) येनाभिमानयुक्ताः शत्रवो हन्यन्ते तस्मै (**श्येनाय**) श्येनवत् प्रवर्त्तमानाय (**त्वा**) त्वाम् (**सोमभृते**) यः सोममैश्वर्य्यसमूहं बिभर्त्तीति तस्मै (**अग्नये**) विद्युदाद्याय (**त्वा**) त्वाम् (**रायः**) धनस्य (**पोषदे**) पुष्टिप्रदाय। **सुपां सुलुग्** [अष्टा०७.१.३९] ङेः स्थाने शे इत्यादेशः॥ अयं मन्त्रः (शत०(३।९।४।९-१०) व्याख्यातः॥३२॥

अन्वयः-हे सभापते! वसुमते वयं रुद्रवत इन्द्राय त्वा आदित्यवत इन्द्राय त्वा अभिमातिघ्न इन्द्राय त्वा सोमभृते श्येनाय त्वा रायस्पोषदेऽग्नये त्वा त्वां वृणुमः॥३२॥

भावार्थः-य इन्द्रानिलयमार्काग्निवरुणचन्द्रवित्तेशानां गुणैर्युक्तो विद्वत्प्रियो विद्याप्रचारी सर्वेभ्यः सुखं दद्यात्, स एव सर्वै राजा मन्तव्य इति॥३२॥

पदार्थः-हे सभापते! (**वसुमते**) जिस कर्म में चौबीस वर्ष ब्रह्मचर्य्य सेवन कर अच्छे-अच्छे विद्वान् होते हैं, (**रुद्रवते**) जिस में चवालीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य्य सेवन करते हैं, उस (**इन्द्राय**) परमैश्वर्य्ययुक्त पुरुष के लिये (**त्वा**) आप को ग्रहण करते हैं। (**आदित्यवते**) जिसमें अड़तालीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य्य सेवन कर सूर्य्यसदृश परम विद्वान् होते हैं, उस (**इन्द्राय**) उत्तम गुण पाने के लिये (**त्वा**) आप के (**अभिमातिघ्ने**) जिस कर्म में बड़े-बड़े अभिमानी शत्रुजन मारे जायें, उस (**इन्द्राय**) परमोत्कृष्ट शत्रुविदारक काम के लिये (**त्वा**) आप (**सोमभृते**) उत्तम ऐश्वर्य धारण करने हारे (**श्येनाय**) युद्धादि कामों में श्येनपक्षी के तुल्य लपट-भपट मारने वाले (**त्वा**) आप (**रायस्पोषदे**) धन की दृढ़ता देने के लिये और (**अग्नये**) विद्युत् आदि पदार्थों के गुण प्रकाश कराने के लिये (**त्वा**) आपको हम स्वीकार करते हैं॥३२॥

भावार्थः-जो इन्द्र, अग्नि, यम, सूर्य, वरुण और धनाढ्य के गुणों से युक्त, विद्वानों का प्रिय, विद्या का प्रचार करने वाला सबको सुख देवे, उसी को राजा मानना चाहिये॥३२॥

यत्त इत्यस्य मधुच्छन्दाः ऋषिः। सोमो देवता। भुरगार्षी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

ईदृशः सभापतिः प्रजायै किं प्रापयितुं शक्नोतीत्युपदिश्यते॥

ऐसा सभापति प्रजा को क्या लाभ पहुंचा सकता है, यह अगले मन्त्र में कहा है॥

यत्ते सोम दिवि ज्योतिर्यत्पृथिव्यां यदुरावन्तरिक्षे।
तेनास्मै यजमानायोरु राये कृध्यधि दात्रे वोचः॥३३॥

यत्। ते। सोम। दिवि। ज्योतिः। यत्। पृथिव्याम्। यत्। उरौ। अन्तरिक्षे। तेन। अस्मै। यजमानाय। उरु। राये। कृधि। अधि। दात्रे। वोचः॥३३॥

पदार्थः-(**यत्**) (**ते**) तव (**सोम**) सकलैश्वर्यप्रेरक! (**दिवि**) सूर्य्ये (**ज्योतिः**) ज्योतिरिव (**यत्**) (**पृथिव्याम्**) (**यत्**) (**उरौ**) विस्तृते (**अन्तरिक्षे**) अन्तराल आकाशे (**तेन**) (**अस्मै**) (**यजमानाय**) परोपकारार्थयज्ञानुष्ठात्रे (**उरु**) बहु (**राये**) धनाय (**कृधि**) कुरु (**अधि**) अधिकार्थे (**दात्रे**) (**वोचः**) उच्याः, अत्र लिडर्थे लुङ्। **छन्दस्य माङ्योगेऽपि। (अष्टा०६।४।७५)** इत्यडभावः॥ अयं मन्त्रः (शत०(३।९।४।१२-१५ व्याख्यात॥३३॥

अन्वयः-हे सोम सभापते! ते तव यत् दिवि यत् पृथिव्यां यदुरावन्तरिक्षे ज्योतिरिव राज्यकर्मास्ति, तेन त्वं दात्रेऽस्मै यजमानायोरुकृधि रायेऽधिवोचश्च॥३३॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। सभापतिस्स्वराज्योत्कर्षेण विद्यादिशुभगुणकर्मसु सर्वाञ्जनान् सुशिक्ष्य निरालस्यान् संपादयेत्, यतस्ते पुरुषार्थमनुवर्तिनो भूत्वा धनादिपदार्थान् सततं वर्द्धयेयुरिति॥३३॥

पदार्थः-हे (**सोम**) समस्त ऐश्वर्य के निमित्त प्रेरणा करने हारे सभापति! (**ते**) तेरा (**यत्**) जो (**दिवि**) सूर्यलोक में (**पृथिव्याम्**) पृथिवी में और (**यत्**) जो (**उरौ**) विस्तृत (**अन्तरिक्षे**) आकाश में (**ज्योतिः**) जैसे ज्योति हो, वैसा राजकर्म है (**तेन**) उससे तू (**अस्मै**) इस परोपकार के अर्थ (**यजमानाय**) यज्ञ करते हुए यजमान के लिये (**उरु**) (**कृधि**) अत्यन्त उपकार कर तथा (**राये**) धन बढ़ने के लिये (**अधि, वोचः**) अधिक-अधिक राज्य-प्रबन्ध कर॥३३॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। सभापति राजा अपने राज्य के उत्कर्ष से सब जनों को निरालस्य करता रहे, जिससे वे पुरुषार्थी होकर धनादि पदार्थों को निरन्तर बढ़ावें॥३३॥

श्वात्रा स्थ इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। यज्ञो देवता। स्वराडार्षी पथ्या बृहतीच्छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

अथोक्तानां सभापत्यादिविदुषां पत्न्यः कीदृशकर्मानुष्ठात्र्यो भवन्त्वित्युपदिश्यते॥

अब उक्त सभाध्यक्षादिकों की स्त्री कैसे कर्म्म करने वाली हों, यह अगले मन्त्र में कहा है॥

श्वा॒त्रा स्थ॑ वृत्र॒तुरो॒ राधो॑गूर्त्ताऽअ॒मृत॑स्य॒ पत्नीः॑।

ता दे॑वीर्देव॒त्रेमं य॒ज्ञं न॑य॒तोप॑हूताः॒ सोम॑स्य पिबत॥३४॥

श्वा॒त्राः। स्थ॒। वृ॒त्र॒तुर॒ इति॑ वृ॒त्र॒ऽतुरः॑। राधो॑गूर्त्ता॒ इति॒ राध॑ःऽगूर्त्ताः। अ॒मृत॑स्य। पत्नीः॑। ताः। दे॒वीः॒। दे॒व॒त्रेति॑ देव॒ऽत्रा। इ॒मम्। य॒ज्ञम्। न॒य॒त। उप॑हूता॒ इत्युप॑ऽहूताः। सोम॑स्य। पि॒ब॒त॥३४॥

पदार्थः-(**श्वात्राः**) श्वात्रं शीघ्रं कर्मविज्ञानं वर्त्तते यासां ताः। अर्शादित्वादच्। **श्वात्रमिति क्षिप्रनामसु पठितम्।** (निघं०५।३) (**स्थ**) (**वृत्रतुरः**) वृत्रं मेघं तूर्वति यास्ता विद्युत इव (**राधोगूर्त्ताः**) धनवर्द्धिन्य एव (**अमृतस्य**) अतिस्वादिष्टस्य (**पत्नीः**) पत्न्यः (**ताः**) (**देवीः**) देदीप्यमानाः (**देवत्रा**) देवेषु पतिषु (**इमम्**) गृहसम्बन्धिनम् (**यज्ञम्**) संगन्तव्यम् (**नयत**) (**उपहूताः**) सामीप्यमाहूताः (**सोमस्य**) सोमाद्योषधिनिष्पादितस्य सारम्। अत्र कर्मणि षष्ठी॥ अयं मन्त्रः (शत०(३।९।४।१६-१७) व्याख्यातः॥३४॥

अन्वयः-हे देवीर्देव्यः पत्न्यः स्त्रियो यूयं वृत्रतुर इव राधोगूर्त्ता एव सत्यो यज्ञसहकारिण्यः श्वात्राः स्थ ता देवत्रेमं यज्ञं नयत, उपहूता इवामृतस्य सोमस्यातिस्वादिष्टं सोमाद्योषधिरसं पिबत॥३४॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा विदुष्यो विद्वत्स्त्रियः स्वधर्मव्यवहारेण स्वपतीन् प्रसादयन्ति, तथैव पुरुषाः स्वाः स्त्रीस्सततं प्रसादयेयुरित्थं परस्परानुमोदेन गृहाश्रमधर्ममलंकुर्वन्तु॥३४॥

पदार्थः-हे (**देवीः**) विद्यायुक्त स्त्रियो! तुम (**वृत्रतुरः**) बिजुली के सदृश, मेघ की वर्षा के तुल्य, सुखदायक की गति तुल्य चलने (**राधोगूर्त्ताः**) धन का उद्योग करने (**पत्न्यः**) और यज्ञ में सहाय देने वाली (**स्थ**) हो (**देवत्रा**) तथा अच्छे-अच्छे गुणों से प्रकाशित विद्वान् पतियो में प्रीति से स्थित हो, (**इमम्**) इस यज्ञ को (**नयत**) सिद्धि को प्राप्त किया कीजिये और (**उपहूताः**) बुलाई हुई पतियों के साथ (**अमृतस्य**) अति स्वाद-युक्त सोम आदि ओषधियों के रस को (**पिबत**) पीओ॥३४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विद्वानों की पत्नी स्त्रीजन स्वधर्म व्यवहार से अपने पतियों को प्रसन्न करती हैं, उसी प्रकार पुरुष उन अपनी स्त्रियों को निरन्तर प्रसन्न करें, ऐसे परस्पर अनुमोद से गृहाश्रमधर्म को पूर्ण करें॥३४॥

मा भेर्मेत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। द्यावापृथिव्यौ देवते। भुरिगार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनः स्त्रीपुरुषौ परस्परं कथं वर्त्तेयातामित्युपदिश्यते॥

फिर स्त्री पुरुष परस्पर कैसा वर्त्ताव वर्त्तें, यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है

मा भेर्मा संविक्थाऽऊर्जं धत्स्व धिषणे वीड्वी सती वीडयेथामूर्जं दधाथाम्।

पाप्मा हतो न सोमः॥३५॥

मा। भेः। मा। सम्। विक्थाः। ऊर्जम्। धत्स्व। धिषणेऽइति धिषणे। वीड्वीऽइति वीड्वी। सतीऽइति सती। वीडयेथाम्। ऊर्जम्। दधाथाम्। पाप्मा। हतः। न। सोमः॥३५॥

पदार्थः-(**मा**) (**भेः**) मा बिभीयाः, लिडर्थे लुङ्। (**मा**) (**सम्**) (**विक्थाः**) भयं कम्पनं च कुर्य्याः (**ऊर्ज्जम्**) स्वशरीरात्मबलं पराक्रमं वा (**धत्स्व**) (**धिषणे**) द्यावापृथिव्याविव (**वीड्वी**) बलवती। **वीड्वीति बलनामसु पठितम्।** (निघं०२।९) (**सती**) सद्गुणयुक्त (**वीडयेथाम्**) दृढबलौ भवेताम् (**ऊर्ज्जम्**) सन्तानादिभ्योऽपि बलं पराक्रमं च (**दधाथाम्**) (**पाप्मा**) अपराधः (**हतः**) नष्ट (**न**) इव (**सोमः**)॥ अयं मन्त्रः (शत०(२।९।४।१८) व्याख्यातः॥३५॥

अन्वयः-हे स्त्रि! त्वं वीड्वी सती पत्युः सकाशान्मा भेर्मा संविक्था ऊर्ज्जं धत्स्व। हे पुरुष! त्वमप्येवं भवेः, युवां धिषणे इवोर्ज्जं दधाथां वीडयेथाम्। एवमनुवर्तिनोर्युवयोः पाप्मा हतो भवतु, सोमो न चन्द्र इवाह्लाद-शान्त्यादिगुणवृन्दः प्रकाशितो भवतु॥३५॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। इत्थं स्त्रीपुरुषौ व्यवहारमनुवर्त्तेयाताम्, यतः परस्परं भयोद्वेगौ नश्येतामात्मनो दृढोत्साहः प्रीतिर्गृहाश्रमव्यवहारसिद्धिरैश्वर्य्यं च वर्द्धेत, दोषदुःखानि निवर्त्त्य चन्द्र इव परस्परमाह्लादकारिणौ भवेताम्॥३५॥

पदार्थः-हे स्त्री! तू (**विड्वी**) शरीरात्मबलयुक्त होती हुई पति से (**मा, भेः**) मत डर (**मा संविक्थाः**) मत कंप और (**ऊर्ज्जम्**) देह और आत्मा के बल और पराक्रम को (**धत्स्व**) धारण कर। हे पुरुष! तू भी वैसे ही अपनी स्त्री से वर्त। तुम दोनों स्त्री-पुरुष (**धिषणे**) सूर्य्य और भूमि के समान परोपकार और पराक्रम को धारण करो, जिससे (**वीडयेथाम्**) दृढ़ बल वाले हो, ऐसा वर्ताव वर्त्तते हुए तुम दोनों का (**पाप्मा**) अपराध (**हतः**) नष्ट हो और (**सोमः**) चन्द्र के तुल्य आनन्द शान्त्यादि गुण बढ़ा कर एक-दूसरे का आनन्द बढ़ाते रहो॥३५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। स्त्री-पुरुष ऐसे व्यवहार में वर्त्ते कि जिससे उनका परस्पर भय, उद्वेग नष्ट होकर आत्मा की दृढ़ता, उत्साह और गृहाश्रम व्यवहार की सिद्धि से ऐश्वर्य्य बढ़े और दोष तथा दु:ख को छोड़ चन्द्रमा के तुल्य आह्लादित हों॥३५॥

प्रागपागित्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। सोमो देवता। उष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

अथैतयोरपत्यानि किं किं कुर्युस्तौ कथं पालयेयुरित्याह॥

अब उनके पुत्र क्या-क्या करें और वे पुत्रों को कैसे पालें, यह अगले मन्त्र में कहा है॥

प्रागपागुदगधराक्सर्वतस्त्वा दिशऽआधावन्तु। अम्ब निष्पर समरीर्विदाम्॥३६॥

प्राक्। अपाक्। उदक्। अधराक्। सर्वतः। त्वा। दिशः। आ। धावन्तु। अम्ब। निः। पर। सम्। अरीः। विदाम्॥३६॥

पदार्थः-(**प्राक्**) पूर्वस्याः (**अपाक्**) पश्चिमायाः (**उदक्**) उत्तरस्याः (**अधराक्**) दक्षिणस्याः (**सर्वतः**) अन्याभ्यः (**त्वा**) त्वाम् (**दिशः**) (**आ**) समन्तात् (**धावन्तु**) (**अम्ब**) अमति प्रेमभावेन प्राप्नोति तत्संबुद्धौ, अत्रोणादिर्बन् प्रत्ययः। (**निः**) नितराम् (**पर**) पालय (**सम्**) (**अरीः**) सुखप्रापिकाः प्रजाः (**विदाम्**) विदताम्, विद ज्ञान इत्यस्माल्लोटि प्रथमबहुवचने **लोपस्त आत्मनेपदेषु।** (अष्टा०७।१।४१) अनेन तकारलोपे सवर्णदीर्घे विदामिति रूपम्॥ अयं मन्त्रः अयं मन्त्रः (शत०(२३।९।४।२०-२३) व्याख्यातः॥३६॥

अन्वयः-हे अम्ब! त्वं या अरीः सुखप्रापिका प्रजास्ते प्रागपागुदगधराक् सर्वतो दिशस्त्वामाधावन्तु, तास्त्वं निष्पर नितरां रक्ष, ता अपि त्वा त्वां संविदां जानन्तु॥३६॥

भावार्थः-मातापित्रोर्योग्यतास्ति स्वापत्यानि विद्यादिसद्गुणेषु नियोज्य निरन्तरं रक्षणीयानि, अपत्यानां योग्यतास्ति सर्वतः पित्रोः सेवनं कुर्य्युरिति॥३६॥

पदार्थः-हे (**अम्ब**) प्रेम से प्राप्त होने वाली माता! जो तेरी (**अरीः**) सन्तानादि प्रजा (**प्राक्**) पूर्व (**अपाक्**) पश्चिम (**उदक्**) उत्तर (**अधराक्**) दक्षिण और भी (**सर्वतः**) सब (**दिशः**) दिशाओं से (**त्वा**) तुझे (**आ**) (**धावन्तु**) धाय-धाय प्राप्त हों, उन्हें (**निः**) निरन्तर (**पर**) प्यार कर और वे भी तुझे (**सम्**) अच्छे भाव से जानें॥३६॥

भावार्थः-माता और पिता को योग्य है कि अपने सन्तानों को विद्यादि अच्छे-अच्छे गुणों मे प्रवृत्त कराकर अच्छे प्रकार उन के शरीर की रक्षा करें अर्थात् जिससे वे नीरोग शरीर और उत्साह के साथ गुण सीखें और उन पुत्रों को योग्य है कि माता-पिता की सब प्रकार से सेवा करें॥३६॥

त्वमङ्ग इत्यस्य गोतम ऋषिः। इन्द्रो देवता। भुरिगार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथ प्रजाजनाः कृतं सभापतिं कथं प्रशंसेयुरित्युपदिश्यते॥

अब प्रजाजन किये हुए सभापति की प्रशंसा कैसे करें, यह अगले मन्त्र में उपदेश किया है॥

त्वमङ्ग प्रशꣳसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम्।
न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः॥३७॥

त्वम्। अङ्ग। प्र। शंसिषः। देवः। शविष्ठ। मर्त्यम्। न। त्वत्। अन्यः। मघवन्निति मघऽवन्। अस्ति। मर्डिता। इन्द्र। ब्रवीमि। ते। वचः॥३७॥

पदार्थः-(**त्वम्**) (**अङ्ग**) सम्बोधने (**प्र**) (**शंसिषः**) प्रशंस, लेड्मध्यमैकवचनप्रयोगः। (**देवः**) शत्रून् विजिगीषुः (**शविष्ठ**) बहु शवो बलं विद्यते यस्य स शवस्वान् सोऽतिशयितस्तत्सम्बुद्धौ, अत्र शवः शब्दाद् भूम्न्यर्थे मतुप् तत इष्ठन्। **विन्मतोर्लुक्।** (अष्टा०५।३।६५) इति मतुपो लुक्। **टेः।** (अष्टा०६।४।१५५) अनेन टिलोपः। (**मर्त्यम्**) प्रजास्थं मनुष्यम् (**न**) निषेधे (**त्वम्**) (**अन्यः**) (**मघवन्**) ईश्वर इव समृद्धः (**अस्ति**) (**मर्डिता**) सुखयिता (**इन्द्र**) परमैश्वर्य्यान्वित (**ब्रवीमि**) (**ते**) तुभ्यम् (**वचः**) प्राक्प्रतिपादितराजधर्मानुरूपं वचः॥ अयं मन्त्रः (शत०(३। ९।४।२४) व्याख्यातः॥३७॥

अन्वयः-हे अङ्ग शविष्ठ मघवन्निन्द्र सभापते! त्वं मर्त्यं प्रशंसिषो न त्वदन्यो मर्डिता देवोस्त्यतोऽहं ते तुभ्यं वचो ब्रवीमि॥३७॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। यथा पक्षपातविरहः सर्वसुहृदीश्वरस्तदनुकूलः सभापती राज्यधर्म्मानुवर्त्ती राजा प्रशंसनीयं प्रशंसयन्, निन्द्यं निदन्, दण्डार्हं दण्डयन्, रक्षितव्यं रक्षन् सर्वेषामभीष्टं सम्पादयेत्॥३७॥

अत्राध्याये राज्याभिषेकपुरःसरं शिक्षा, राज्यकृत्यम्, प्रजाया राजाश्रयः, सभाध्यक्षादिकृत्यम्, विष्णोः परमपदादिवर्णनम्, सभाध्यक्षेण तदुपासनम्, परस्परं राजसभाकृत्यम्, गुरुणा शिष्यस्वीकारस्तच्छिक्षाकरणम्, यज्ञानुष्ठानम्, हुतद्रव्यफलम्, विद्वल्लक्षणम्, मनुष्यकृत्यम्, मनुष्याणां परस्परं वर्तनम्, दुष्टदोषनिवृत्तिफलम्, ईश्वरात् किं किं प्रार्थनीयम्, रणे योद्धृवर्णनम्, युद्धकृत्यम्, युद्धेऽन्योन्यवर्त्तमानप्रकारो योद्धृणामनुमोदनम्, राज्यप्रबन्धकरणम्, तत्र साध्यसाधनम्, राज्यकर्मकरणम्, प्रतीश्वरोपदेशो राज्यकर्मानुष्ठानम्, राजप्रजाकृत्यम्, प्रजाराजसभयोः परस्परानुवर्तनम्, प्रजया सभापत्युत्कर्षकरणम्, प्रजाजनं प्रति सभापतिप्रेरणम्, प्रजया स्वीकर्तव्यम्, सभापतेर्लक्षणम्, प्रजाराजसभयोः परस्परं प्रतिज्ञाकरणम्, सभापतिस्वीकरणप्रयोजनम्, प्रजासुखाय सभापतेः कर्तव्यकर्मानुष्ठानम्, सभापत्यादीनां पत्नीभिः किं किं कर्म कर्तव्यम्, स्त्रीपुंसयोः परस्परमनुवर्त्तमानम्, पितरौ प्रति सन्तानकृत्यम्, सभापतिं प्रति प्रजाजनोपदेशवर्णनं चास्तीत्यतः पञ्चमाध्यायोक्तार्थैः सहास्य षष्ठाध्यायस्यार्थानां संगतिरस्तीति वेद्यम्॥

पदार्थः-हे (**अङ्ग**) (**शविष्ठ**) अत्यन्त बलयुक्त (**मघवन्**) महाराज के समान (**इन्द्र**) ऋद्धि-सिद्धि देनेहारे सभापते! (**त्वम्**) आप (**मर्त्यम्**) प्रजास्थ मनुष्य को (**प्रशंसिषः**) प्रशंसायुक्त कीजिये। आप (**देवः**) देव अर्थात् शत्रुओं को अच्छे प्रकार जीतने वाले हैं (**न**) नहीं (**त्वदन्यः**) तुमसे अन्य (**मर्डिता**) सुख देने वाला है, ऐसा मैं (**ते**) आप को (**वचः**) पूर्वोक्त राज्यप्रबन्ध के अनुकूल वचन (**ब्रवीमि**) कहता हूं॥३७॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे ईश्वर सर्वसुहृत्, पक्षपातरहित है, वैसे सभापति राज्यधर्म्मानुवर्त्ती राजा होकर प्रशंसनीय की प्रशंसा, निन्दनीय की निन्दा, दुष्ट को दण्ड, श्रेष्ठ की रक्षा करके सब का अभीष्ट सिद्ध करे॥३७॥

इस अध्याय में राज्य के अभिषेकपूर्वक शिक्षा, राज्य का कृत्य, प्रजा को राजा का आश्रय, सभाध्यक्षादिकों का काम, विष्णु का परमपद वर्णन, सभाध्यक्ष को ईश्वरोपासना करनी, राजा-प्रजा का आपस में

कृत्य, गुरु को शिष्य का स्वीकार और उस शिष्य को शिक्षा करना, यज्ञ का अनुष्ठान, होम किये द्रव्य के फल का वर्णन, विद्वानों के लक्षण, मनुष्यकृत्य, मनुष्यों का परस्पर वर्त्तमान, दुष्ट दोष निवृत्ति फल, ईश्वर से क्या-क्या प्रार्थना करनी चाहिये, रण में योद्धा का वर्णन, युद्धकृत्य निरूपण, युद्ध में परस्पर वर्त्ताव का प्रकार, वीरों को उत्साह देना, राज्यप्रबन्ध का कारण और साध्य-साधन, राजा के प्रति ईश्वरोपदेश, राज्यकर्म का अनुष्ठान, राजा और प्रजा का कृत्य, राजा और प्रजा की सभाओं का परस्पर वर्ताव, प्रजा से सभापति का उत्कर्ष करना, प्रजाजन के प्रति सभापति की प्रेरणा, प्रजा को स्वीकार करने के योग्य सभापति का लक्षण, प्रजा और राजसभा की परस्पर प्रतिज्ञा करनी, सभापति के स्वीकार करने का प्रयोजन, प्रजा सुख के लिये सभापति के कर्त्तव्य कामों का अनुष्ठान, सभापत्यादिकों की पत्नियों को क्या करना चाहिये, स्त्री-पुरुषों का परस्पर वर्त्ताव, माता-पिता के प्रति सन्तानों का काम और सभापति के प्रति प्रजाजनों का उपदेश वर्णन है, इससे पञ्चम अध्याय में कहे हुए अर्थों के साथ इस छठे अध्याय के अर्थों की संगति है, ऐसा जानना चाहिये।

इति श्रीमत्परिव्राजकाचार्य्येण श्रीयुतमहाविदुषां विरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचिते संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां विभूषिते सुप्रमाणयुक्ते यजुर्वेदभाष्ये षष्ठोऽध्यायः पूर्तिमगात्॥ ६॥

॥ओ३म्॥

अथ सप्तमाध्यायस्यारम्भः॥

अब सप्तम अध्याय का प्रारम्भ किया जाता है॥

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव। यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व॥ यजु॰ ३०.३॥

वाचस्पतय इत्यस्य गोतम ऋषिः। प्राणो देवता। भुरिगार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

तस्य प्रथममन्त्रे सृष्टिनिमित्तो बाह्याभ्यन्तरव्यवहार उपदिश्यते॥

इस सप्तम अध्याय के प्रथम मन्त्र में सृष्टि के निमित्त बाहर और भीतर के व्यवहार का उपदेश है॥

वा॒चस्पत॑ये पवस्व॒ वृष्णो॑ऽअ॒ꣳशुभ्यां॒ गभ॑स्तिपूतः।

दे॒वो दे॒वेभ्यः॑ पवस्व॒ येषां॑ भा॒गोऽसि॑॥ १॥

वा॒चः। पत॑ये। प॒व॒स्व॒। वृष्णः॑। अ॒ꣳशुभ्या॒मित्य॒ꣳशुऽभ्या॑म्। गभ॑स्तिपू॒त इति॒ गभ॑स्तिऽपू॒तः। दे॒वः। दे॒वेभ्यः॑। प॒व॒स्व॒। येषा॑म्। भा॒गः। असि॑॥ १॥

पदार्थः-(**वाचः**) वाण्याः (**पतये**) पालकेश्वराय (**पवस्व**) पवित्रो भव (**वृष्णः**) वीर्य्यवतः (**अंशुभ्याम्**) बाहुभ्यामिव (**गभस्तिपूतः**) गभस्तिभिः किरणैः पूत इव। **गभस्तय इति रश्मिनामसु पठितम्।** (निघं॰१।५) (**देवः**) विद्वान् (**देवेभ्यः**) विद्वद्भ्यः (**पवस्व**) शुद्धो भव (**येषाम्**) विदुषाम् (**भागः**) भजनीयः (**असि**)॥ अयं मन्त्रः (शत॰(४।१।१।८-११) व्याख्यातः॥१॥

अन्वयः-हे मनुष्य! त्वं वाचस्पतये पवस्व, वृष्णोंशुभ्यामिव बाह्यभ्यन्तरव्यवहाराय गभस्तिपूत इव देवो भूत्वा येषां विदुषां भागोऽसि, तेभ्यो देवेभ्यः पवस्व॥१॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। सर्वेषां जीवानां योग्यतास्ति वेदपतिं सततं पूतं परमेश्वरं विज्ञाय विदुषां सङ्गमेन विद्यादिगुणेषु सुस्नाताः सत्यवागनुष्ठातारः स्युरिति॥१॥

पदार्थः-हे मनुष्य तू (**वाचः**) वाणी के (**पतये**) पालन हारे ईश्वर के लिये (**पवस्व**) पवित्र हो, (**वृष्णः**) बलवान् पुरुष के (**अंशुभ्याम्**) भुजाओं के समान बाहर-भीतर वा व्यवहार होने के लिये जैसे (**गभस्तिपूतः**) सूर्य्य की किरणों से पदार्थ पवित्र जैसे होते हैं, वैसे शास्त्रों से (**देवः**) दिव्य-गुण युक्त विद्वान् होकर (**येषाम्**) जिन विद्वानों की (**भागः**) सेवन करने के योग्य है, उन (**देवेभ्यः**) देवों के लिये (**पवस्व**) पवित्र हो॥१॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। सब जीवों को योग्य है कि वेदों की रक्षा करने वाले नित्य पवित्र परमात्मा को जान और विद्वानों के संग से विद्यादि उत्तम गुणों में निष्णात होकर सत्यवाणी को बोलने वाले हों॥१॥

मधुमतीरित्यस्य गोतम ऋषिः। सोमो देवता। निचृदार्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

मनुष्याः परस्परं कथं व्यवहरेयुरित्याह॥

मनुष्य लोग परस्पर व्यवहार में कैसे वर्त्तें, यह अगले मन्त्र में कहा है॥

मधु॑मतीर्न॒ऽइष॑स्कृधि॒ यत्ते॑ सो॒मादा॑भ्यं॒ नाम॒ जागृ॑वि॒ तस्मै॑ ते सोम॒ सोमा॑य॒ स्वाहा॒ स्वाहो॒र्व॒न्तरि॑क्ष॒मन्वे॑मि॥ २॥

मधु॑मती॒रिति॒ मधु॑ऽमतीः। न॒ः। इष॑ः। कृ॒धि॒। यत्। ते॒। सो॒म॒। अदा॑भ्यम्। नाम॑। जागृ॑वि। तस्मै॑। ते॒। सो॒म॒। सोमा॑य। स्वाहा॑। स्वाहा॑। उ॒रु। अ॒न्तरि॑क्षम्। अनु॑। ए॒मि॒॥ २॥

पदार्थः-(**मधुमतीः**) मधुरगुणवतीः (**नः**) अस्मभ्यम् (**इषः**) अन्नानि (**कृधि**) कुरु (**यत्**) यस्मात् (**ते**) तव (**सोम**) ऐश्वर्य्युक्त विद्वन्! (**अदाभ्यम्**) अहिंसनीयम् (**नाम**) संज्ञा (**जागृवि**) जागरूकं प्रसिद्धम् (**तस्मै**) (**ते**) तुभ्यम् (**सोम**) शुभकर्मसु प्रेरक! (**सोमाय**) ऐश्वर्य्यस्य प्राप्तये (**स्वाहा**) सत्यां क्रियाम् (**स्वाहा**) सत्यां वाचम् (**उरु**) विस्तीर्णम् (**अन्तरिक्षम्**) अवकाशम् (**अनु**) (**एमि**) अनुगच्छामि॥ अयं मन्त्रः (शत०(४। १। १। १२-२१) व्याख्यातः॥ २॥

अन्वयः- हे सोम ऐश्वर्य्ययुक्त विद्वंस्त्वं नोऽस्मभ्यं मधुमतीरिषस्कृधि, तथा हे सोम! अहं यद्यस्मात् ते तवादाभ्यं जागृवि नामास्ति, तस्मै सोमाय ते तुभ्यं च स्वाहा, सत्यां क्रियां स्वाहा, सत्यां वाणीमुर्वन्तरिक्षं चान्वेमि॥ २॥

भावार्थः-मनुष्या यथा स्वसुखायान्नजलादिपदार्थान् सम्पादयेयुस्तथान्येभ्योऽपि देयाः, यथा कश्चित् स्वस्य प्रशंसां कुर्य्यात् तथान्यस्य स्वयमपि कुर्य्यात्, यथा विद्वांस सद्गुणवन्तः सन्ति, तथा तेऽपि भवेयुरिति॥ २॥

पदार्थः-हे (**सोम**) ऐश्वर्य्ययुक्त विद्वन्! आप (**नः**) हम लोगों के लिये (**मधुमतीः**) मधुरादिगुणसहित (**इषः**) अन्न आदि पदार्थों को (**कृधि**) कीजिये तथा हे (**सोम**) शुभकर्मों में प्रेरणा करने वाले विद्वन्! मैं (**यत्**) जिससे (**ते**) आपका (**अदाभ्यम्**) अहिंसनीय अर्थात् रक्षा करने के योग्य (**जागृवि**) प्रसिद्ध (**नाम**) नाम है, (**तस्मै**) उस (**सोमाय**) ऐश्वर्य्य की प्राप्ति और (**ते**) आपके लिये अर्थात् आपकी आज्ञा वर्त्तने के लिये (**स्वाहा**) सत्यधर्म्म-युक्त क्रिया (**स्वाहा**) सत्य वाणी और (**उरु**) (**अन्तरिक्षम्**) अवकाश को (**अनु, एमि**) प्राप्त होता हूं॥ २॥

भावार्थः-मनुष्य जैसे अपने सुख के लिये अन्न जलादि पदार्थों को सम्पादन करें, वैसे ही औरों के लिये भी दिया करें। जैसे कोई मनुष्य अपनी प्रशंसा करे, वैसे ही औरों की आप भी किया करें। जैसे विद्वान् लोग अच्छे गुण वाले होते हैं, वैसे आप भी हों॥ २॥

स्वाङ्कृत इत्यस्य गोतम ऋषिः। विद्वांसो देवताः। विराट् ब्राह्मी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनरात्मकृत्यमाह॥

फिर अगले मन्त्र में आत्मक्रिया का निरूपण किया है॥

स्वाङ्कृ॑तोऽसि॒ विश्वे॑भ्यऽइन्द्रि॒येभ्यो॑ दि॒व्येभ्य॑ः पार्थि॑वेभ्यो॒ मन॑स्त्वाष्टु॒ स्वाहा॑ त्वा सुभव॒ सूर्या॑य दे॒वेभ्य॑स्त्वा मरीचि॒पेभ्यो॒ देवा॑ᳫंशो॒ यस्मै॒ त्वेडे॒ तत्स॒त्यमु॑परि॒प्रुता॑ भ॒ङ्गेन॑ ह॒तो॒ऽसौ फट् प्रा॒णाय॑ त्वा व्या॒नाय॑ त्वा॥ ३॥

स्वाङ्कृत इति स्वाम्ऽकृतः। असि। विश्वेभ्यः। इन्द्रियेभ्यः। दिव्येभ्यः। पार्थिवेभ्यः। मनः। त्वा। अष्टु। स्वाहा। त्वा। सुभवेति सुऽभव। सूर्य्याय। देवेभ्यः। त्वा। मरीचिपेभ्य इति मरीचिऽपेभ्यः। देव। अꣳशो इत्यꣳऽशो। यस्मै। त्वा। ईडे। तत्। सत्यम्। उपरिप्रुतेत्युपरिऽप्रुता। भङ्गेन। हतः। असौ। फट्। प्राणाय। त्वा। व्यानायेति विऽआनाय। त्वा॥ ३॥

पदार्थः-(**स्वाङ्कृतः**) स्वयंकृत इव (**असि**) (**विश्वेभ्यः**) समस्तेभ्यः (**इन्द्रियेभ्यः**) श्रोत्रादिभ्यः (**दिव्येभ्यः**) दिवि भवेभ्यः (**पार्थिवेभ्यः**) पृथिव्यां विदितेभ्यः (**मनः**) शुद्धं विज्ञानम् (**त्वा**) त्वाम् (**अष्टु**) व्याप्नोतु (**स्वाहा**) वेदोक्ता वाक् (**त्वा**) त्वाम् (**सुभव**) भवतीति भवः, शोभनश्चासौ भवश्च सुभवस्तत्संबुद्धौ (**सूर्य्याय**) सवित्रे (**देवेभ्यः**) शोधकेभ्यो वाय्वादिभ्यः (**त्वा**) त्वाम् (**मरीचिपेभ्यः**) किरणरक्षितृभ्य इव (**देव**) दिव्यात्मन् (**अंशो**) सूर्य्यवत् प्रकाशमान (**यस्मै**) (**त्वा**) त्वाम् (**ईडे**) स्तौमि (**तत्**) (**सत्यम्**) (**उपरिप्रुता**) उपरि प्रवते यस्तेन (**भङ्गेन**) मर्दनेन (**हतः**) नष्टः (**असौ**) शत्रुः (**फट्**) विशीर्णः (**प्राणाय**) जीवनहेतवे (**त्वा**) (**व्यानाय**) विविधमानयति यस्मा इव (**त्वा**) त्वाम्॥ अयं मन्त्रः (शत०(४।१।१।२२-२८) व्याख्यातः॥ ३॥

अन्वयः-हे अंशो देव दिव्यात्मन्! यस्त्वं दिव्येभ्यो विश्वेभ्य इन्द्रियेभ्यः पार्थिवेभ्यो मरीचिपेभ्यो देवेभ्यस्स्वाङ्कृतोसि, तं त्वां मनः स्वाहा चाष्टु। हे सुभव! यस्मै सूर्य्याय चराचरात्मने परमेश्वराय त्वामहमीडे, तत्सत्यं परेशं गृहाणोपरिप्रुतेव येन त्वया भङ्गेनासौ शत्रुः फड्ढतस्तं त्वा त्वां प्राणायेडे व्यानाय त्वा त्वामीडे॥ ३॥

भावार्थः-स्वयंभूभिर्जीवैर्देहप्राणेन्द्रियान्तःकरणानि निर्मलीकृत्य धर्म्यव्यापारेषु प्रवर्त्त्य परमेश्वरोपासने च संस्थाय, पुरुषार्थेन दुष्टान् हत्वा श्रेष्ठान् रक्षित्वानन्दितव्यमिति॥ ३॥

पदार्थः-हे (**अंशो**) सूर्य्य के तुल्य प्रकाशमान! जो तू (**दिव्येभ्यः**) दिव्य (**विश्वेभ्यः**) समस्त (**पार्थिवः**) पृथिवी पर प्रसिद्ध (**इन्द्रियेभ्यः**) इन्द्रियों और (**मरीचिपेभ्यः**) किरणों के समान पवित्र करने वाले (**देवेभ्यः**) विद्वानों और वायु आदि पदार्थों के लिये (**स्वाङ्कृत**) स्वयंसिद्ध (**असि**) है, उस (**त्वा**) तुझ को (**मनः**) विज्ञान और (**स्वाहा**) वेद वाणी (**अष्टु**) प्राप्त हों। हे (**सुभव**) श्रेष्ठ गुणवान्! (**यस्मै**) जिस (**सूर्य्याय**) सर्वप्रेरक चराचरात्मा परमेश्वर के लिये (**त्वा**) तेरी (**ईडे**) प्रशंसा करता हूं, तू भी (**तत्**) उस प्रशंसा के योग्य (**सत्यम्**) सत्य परमात्मा को प्रीति से ग्रहण कर (**उपरिप्रुता**) सबसे उत्तम उत्कर्ष पाने हारे तूने (**भङ्गेन**) मर्दन से (**असौ**) यह अज्ञानरूप शत्रु (**फट्**) झट (**हतः**) मारा उस (**त्वा**) तुझे (**प्राणाय**) जीवन के लिये प्रशंसित करता और (**व्यानाय**) विविध प्रकार के सुख प्राप्त करने के लिये (**त्वा**) तुझे प्रशंसा देता हूं॥ ३॥

भावार्थः-जीव आप ही स्वयंसिद्ध अनादिरूप है, इनसे इनको चाहिये कि देह, प्राण, इन्द्रियों और अन्तःकरण को निर्मल धर्म्मयुक्त व्यवहारों में प्रवृत्त होकर, परमेश्वर की उपासना में स्थिर हों तथा पुरुषार्थ से दुष्टों को झट-पट मार और भलों की रक्षा करके आनन्दित रहें॥ ३॥

उपयामगृहीत इत्यस्य गोतम ऋषिः। मघवा देवता। आर्ष्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

पुनरात्मनाभ्यन्तरे कथं प्रयतितव्यमित्याह॥

फिर मन से आत्मा के बीच में कैसे प्रयत्न करे, यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

उपयामगृहीतोऽस्यन्तर्यच्छ मघवन् पाहि सोमम्। उरुष्य रायऽएषो यजस्व॥ ४॥

उपयामगृहीत इत्युपयामऽगृहीतः। असि। अन्तः। यच्छ। मघवन्निति मघऽवन्। पाहि। सोमम्। उरुष्य। रायः। आ। इषः। यजस्व॥४॥

पदार्थः-(**उपयामगृहीतः**) उपात्तैर्यमैर्गृहीत इव (**असि**) (**अन्तः**) आभ्यन्तरस्थान् प्राणादीन् (**यच्छ**) निगृहाण (**मघवन्**) परमपूजित धनिसदृश! (**पाहि**) रक्ष (**सोमम्**) योगसिद्धमैश्वर्य्यम् (**उरुष्य**) बहुना योगाभ्यासेनाविद्यादिक्लेशानन्तं नय। अत्रोरुपपदात् षोऽन्तकर्म्मणीत्यस्मात् क्विप्, ततो नामधातुत्वात् क्विप्, मध्यमैकवचनप्रयोगः। (**रायः**) ऋद्धिसिद्धिधनानि (**आ**) समन्तात् (**इषः**) इच्छासिद्धीः (**यजस्व**)॥ अयं मन्त्रः (शत०(४।१।१।१५) व्याख्यातः॥४॥

अन्वयः-हे योगजिज्ञासो! यस्त्वमुपयामगृहीत इवासि तस्मादन्तर्य्यच्छ। हे मघवन्! सोमं पाहि क्लेशानुरुष्य यतो राय इष आयजस्व॥४॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। योगार्थिना यमादिभिर्योगाङ्गैश्चित्तादीन्निरुध्याविद्यादिदोषान् निवार्य्य संयमेनर्द्धिसिद्धयो निष्पाद्यन्ताम्॥४॥

पदार्थः-हे योग चाहनेवाले! जिससे तू (**उपयामगृहीतः**) योग में प्रवेश करने वाले नियमों से ग्रहण किये हुए के समान (**असि**) है, इस कारण (**अन्तः**) भीतरले जो प्राणादि, पवन, मन और इन्द्रियां हैं, इनको (**यच्छ**) नियम में रख। हे (**मघवन्**) परमपूजित धनी के समान! तू (**सोमम्**) योगविद्यासिद्ध ऐश्वर्य्य को (**पाहि**) रक्षा कर और जो अविद्यादि क्लेश हैं, उनको (**उरुष्य**) अत्यन्त योगविद्या के बल से नष्ट कर, जिससे (**रायः**) ऋद्धि और (**इषः**) इच्छासिद्धियों को (**आयजस्व**) अच्छे प्रकार प्राप्त हो॥४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। योग जिज्ञासु पुरुष को चाहिये कि यम, नियम आदि योग के अङ्गों से चित्त आदि अन्तःकरण की वृत्तियों को रोक और अविद्यादि दोषों का निवारण करके संयम से ऋद्धि सिद्धियों को सिद्ध करें॥४॥

अन्तस्त इत्यस्य गोतम ऋषिः। ईश्वरो देवता। आर्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अथेश्वरः प्राथमकल्पिकाय योगिने विज्ञानमाह॥

अब ईश्वर, जो योग में प्रथम ही प्रवृत्त होता है, उसके लिये विज्ञान का उपदेश अगले मन्त्र से करता है॥

अन्तस्ते द्यावापृथिवी दधाम्यन्तर्दधाम्युर्वन्तरिक्षम्।
सजूर्देवेभिरवरैः परैश्चान्तर्यामे मघवन् मादयस्व॥५॥

अन्तरित्यन्तः। ते। द्यावापृथिवीऽइति द्यावापृथिवी। दधामि। अन्तः। दधामि। उरु। अन्तरिक्षम्। सजूरिति सऽजूः। देवेभिः। अवरैः। परैः। च। अन्तर्य्याम इत्यन्तःऽयामे। मघवन्निति मघऽवन्। मादयस्व॥५॥

पदार्थः-(**अन्तः**) आकाशाभ्यन्तर इव (**ते**) तव (**द्यावापृथिवी**) भूमिसूर्य्याविव (**दधामि**) स्थापयामि (**अन्तः**) शरीराभ्यन्तरे (**दधामि**) स्थापयामि (**उरु**) बहु (**अन्तरिक्षम्**) अन्तरालमवकाशम् (**सजूः**) मित्र इव (**देवेभिः**) विद्वद्भिः (**अवरैः**) निकृष्टैः (**परैः**) उत्तमैश्वर्य्यव्यवहारैः (**च**) समुच्चये (**अन्तर्य्यामे**) यमानामयं यामः

अन्तश्चासौ यामश्च तस्मिन् **(मघवन्)** परमोत्कृष्टधनितुल्य **(मादयस्व)** हर्षयस्व॥ अयं मन्त्रः (शत०(४। १। २। १६) व्याख्यातः॥५॥

अन्वयः-हे मघवन् योगिन्! अहं ते तवान्तर्द्यावापृथिवी इव विज्ञानादिपदार्थान् दधामि, उर्वन्तरिक्षमन्तर्दधामि, सजूस्त्वं देवेभिः प्राप्तैरवरैः परैश्च सहान्तर्यामे वर्त्तमानः सन्नन्यान् मादयस्व॥५॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ईश्वर उपदिशति ब्रह्माण्डे यादृशा यावन्तः पदार्थाः सन्ति, तादृशास्तावन्तो मम ज्ञाने वर्तन्ते, योगविद्यादिरहितस्तान् द्रष्टुं न शक्नोति, नहीश्वरोपासनया विना कश्चिद्योगी भवितुमर्हति॥५॥

पदार्थः-हे **(मघवन्)** योगी! मैं परमेश्वर **(ते)** तेरे **(अन्तः)** हृदयाकाश में **(द्यावापृथिवी)** सूर्य्य-भूमि के समान विज्ञानादि पदार्थों को **(दधामि)** स्थापित करता हूं तथा **(उरु)** विस्तृत **(अन्तरिक्षम्)** अवकाश को **(अन्तः)** शरीर के भीतर **(दधामि)** धरता हूं **(सजूः)** मित्र के समान तू **(देवेभिः)** विद्वानों से विद्या को प्राप्त हो के **(अवरैः)** **(परैः)** **(च)** थोड़े वा बहुत योग व्यवहारों से **(अन्तर्य्यामे)** भीतरले नियमों में वर्त्तमान होकर अन्य सब को **(मादयस्व)** प्रसन्न किया कर॥५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। ईश्वर का यह उपदेश है कि ब्रह्माण्ड में जिस प्रकार के जितने पदार्थ हैं, उसी प्रकार के उतने ही मेरे ज्ञान में वर्त्तमान हैं। योगविद्या को नहीं जानने वाला उनको नहीं देख सकता और मेरी उपासना के विना कोई योगी नहीं हो सकता है॥५॥

स्वाङ्कृतोसीत्यस्य गोतम ऋषिः। योगी देवता। भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनरीश्वरो योगजिज्ञासुं प्रत्याह॥

फिर ईश्वर योगविद्या चाहने वाले के प्रति उपदेश करता है॥

स्वाङ्कृतोऽसि विश्वेभ्यऽइन्द्रियेभ्यो दिव्येभ्यः पार्थिवेभ्यो मनस्त्वाष्टु स्वाहा त्वा सुभव सूर्याय देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्यऽउदानाय त्वा॥६॥

स्वाङ्कृत इति स्वाम्ऽकृतः। असि। विश्वेभ्यः। इन्द्रियेभ्यः। दिव्येभ्यः। पार्थिवेभ्यः। मनः। त्वा। अष्टु। स्वाहा। त्वा। सुभवेति सुऽभव। सूर्य्याय। देवेभ्यः। त्वा। मरीचिपेभ्य इति मरीचिपेभ्यः। उदानायेत्युत्ऽआनाय। त्वा॥६॥

पदार्थः-**(स्वाङ्कृतः)** स्वयंसिद्धोऽनादिस्वरूपः **(असि)** **(विश्वेभ्यः)** अखिलेभ्यः **(इन्द्रियेभ्यः)** कार्य्यसाधकतमेभ्यः **(दिव्येभ्यः)** निर्मलेभ्यः **(पार्थिवेभ्यः)** पृथिव्यां विदितेभ्यः **(मनः)** योगमननम् **(त्वा)** त्वां योगमभीप्सुम् **(अष्टु)** प्राप्नोतु **(स्वाहा)** सत्यवचनरूपा क्रिया **(त्वा)** त्वाम् **(सुभव)** सुष्ठ्वैश्वर्य्य **(सूर्य्याय)** सूर्य्यस्येव योगप्रकाशाय **(देवेभ्यः)** प्रशस्तगुणपदार्थेभ्यः **(त्वा)** त्वाम् **(मरीचिपेभ्यः)** रश्मिभ्यः। **मरीचिपा इति रश्मिनामसु पठितम्।** (निघं०१।४) **(उदानाय)** उत्कृष्टाय जीवनबलसाधनायैव **(त्वा)** त्वाम्॥ अयं मन्त्रः (शत०(४। १। २। २१-२४) व्याख्यातः॥६॥

अन्वयः-हे सुभव योगिंस्त्वं स्वाङ्कृतोस्यहं दिव्येभ्यो विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरीचिपेभ्यश्च त्वा त्वां स्वीकरोमि, पार्थिवेभ्यस्त्वा त्वां स्वीकरोमि, यतस्त्वा त्वां मनः स्वाहा सत्यारूढा क्रिया चाष्टु॥६॥

भावार्थः-यावन्मनुष्यः श्रेष्ठाचारी न भवति तावदीश्वरोऽपि तं न स्वीकरोति, यावदयं न स्वीकरोति तावत्

तस्यात्मबलं पूर्णं न भवति, यावदिदं न जायते तावन्नात्यन्तं सुखं भवतीति॥६॥

पदार्थः-हे **(सुभव)** शोभन ऐश्वर्य्य युक्त योगी! तू **(स्वाङ्कृतः)** अनादि काल से स्वयंसिद्ध **(असि)** है मैं **(दिव्येभ्यः)** शुद्ध **(विश्वेभ्यः)** समस्त **(देवेभ्यः)** प्रशस्त गुण और प्रशंसनीय पदार्थों से युक्त विद्वानों और **(मरीचिपेभ्यः)** योग के प्रकाश से युक्त व्यवहारों से **(त्वा)** तुझको स्वीकार करता हूं, **(पार्थिवेभ्यः)** पृथिवी पर प्रसिद्ध पदार्थों के लिये भी **(त्वा)** तुझ को स्वीकार करता हूं, **(सूर्य्याय)** सूर्य्य के समान योग प्रकाश करने के लिये वा **(उदानाय)** उत्कृष्ट जीवन और बल के अर्थ **(त्वा)** तुझे ग्रहण करता हूं, जिससे **(त्वा)** तुझ योग चाहने वाले को **(मनः)** योग समाधियुक्त मन और **(स्वाहा)** सत्यानुष्ठान करने की क्रिया **(अष्टु)** प्राप्त हो॥६॥

भावार्थः-मनुष्य जब तक श्रेष्ठाचार करने वाला नहीं होता, तब तक ईश्वर भी उसको स्वीकार नहीं करता, जब तक उसको ईश्वर स्वीकार नहीं करता है, तब तक उसका पूरा-पूरा आत्मबल नहीं हो सकता और जब तक आत्मबल नहीं बढ़ता, तब तक उसको अत्यन्त सुख भी नहीं होता॥६॥

आ वायो भूषेत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। वायुर्देवता। निचृज्जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनर्योगिकृत्यमाह॥

फिर योगी का कृत्य अगले मन्त्र में कहा है ॥

आ वा॑यो भूष शुचिपा॒ऽउप॑ नः स॒हस्रं॑ ते नि॒युतो॑ विश्ववार।

उपो॑ ते॒ऽअन्धो॒ मद्य॑मयामि॒ यस्य॑ देव दधि॒षे पू॒र्व॒पेयं॑ वा॒यवे॑ त्वा॥७॥

आ। वा॒यो॒ऽइति॑ वायो। भू॒ष॒। शु॒चि॒पा॒ इति॑ शुचि॒ऽपाः। उप॑ नः॒। स॒हस्र॑म्। ते॒। नि॒यु॒त॒ इति॑ नि॒ऽयुतः॑। वि॒श्व॒वा॒रेति॑ विश्व॒ऽवार। उपो॒ऽइत्युपो॑। ते॒। अन्धः॑। मद्य॑म्। अ॒या॒मि॒। यस्य॑। दे॒व॒। द॒धि॒षे॒। पू॒र्व॒पेय॒मिति॑ पूर्व॒ऽपेय॑म्। वा॒यवे॑। त्वा॒॥७॥

पदार्थः-**(आ)** समन्तात् **(वायो)** वायुरिव वर्त्तमान **(भूष)** अलंकुरु **(शुचिपाः)** शुचि पवित्रतां पालयतीति शुचिपाः पवित्रपालक **(उप)** **(नः)** अस्मान् **(सहस्रम्)** **(ते)** तव **(नियुतः)** नियुज्यन्ते ये तान् निश्चितान् शमादिगुणान्, अत्र कर्म्मणि क्विप्। **(विश्ववार)** विश्वान् सर्वानानन्दान् वृणोति तत्सम्बुद्धौ **(उपो)** समीपम् **(ते)** **(अन्धः)** अन्नम् **(मद्यम्)** तृप्तिप्रदम् **(अयामि)** प्राप्नोमि **(यस्य)** **(देव)** योगेनात्माप्रकाशित **(दधिषे)** धरसि **(पूर्वपेयम्)** पूर्वैः पातुं योग्यमिव **(वायवे)** **(त्वा)** त्वाम्॥ अयं मन्त्रः (शत०(४।१।३।१८) व्याख्यातः॥७॥

अन्वयः-हे शुचिपा वायो त्वं सहस्रं नियुत आभूष, हे विश्ववार! ते तव सकाशान्मद्यमन्ध उपो अयामि। हे देव! यस्य ते तव पूर्वपेयमस्ति, यच्च त्वं दधिषे, तद्वायवे त्वा त्वामहं स्वीकरोमि॥७॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यो योगी प्राण इव सर्वानलङ्करोति, ईश्वर इव सद्गुणेषु व्याप्नोत्यन्नजले इव सर्वान् सुखयति, स एव योगे प्रभवति॥७॥

पदार्थः-हे **(शुचिपाः)** अत्यन्त शुद्धता को पालने और **(वायो)** पवन के तुल्य योगक्रियाओं में प्रवृत्त होने वाले योगी! तू **(सहस्रम्)** हजारों **(नियुतः)** निश्चित शमादिक गुणों को **(आभूष)** सब प्रकार सुभूषित कर। हे **(विश्ववार)** समस्त गुणों के स्वीकार करने वाले! जो **(ते)** तेरा **(मद्यम्)** अच्छी तृप्ति देने वाला **(अन्धः)** अन्न है,

उसको **(उपो)** तेरे समीप **(अयामि)** पहुंचाता हूं। हे **(देव)** योगबल से आत्मा को प्रकाश करने वाले! **(यस्य)** जिस तेरा **(पूर्वपेयम्)** श्रेष्ठ योगियों की रक्षा करने के योग्य योगबल है, जिसको तू **(दधिषे)** धारण कर रहा है, **(वायवे)** उस योग के जानने के लिये **(त्वा)** तुझे स्वीकार करता हूं॥७॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो योगी प्राण के तुल्य सब को भूषित करता, ईश्वर के तुल्य अच्छे-अच्छे गुणों में व्याप्त होता है और अन्न वा जल के सदृश सुख देता है, वही योग में समर्थ होता है॥७॥

इन्द्रवायू इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। इन्द्रवायू देवते। इन्द्रवायू इत्यस्यार्षी गायत्री छन्दः।
उपयामगृहीत इत्यस्यार्षी स्वराड् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनः स योगी कीदृशो भवतीत्युच्यते॥

फिर वह योगी कैसा होता है, यह अगले मन्त्र में कहा है॥

इन्द्र॑वायूऽइ॒मे सु॒ताऽउप॒ प्रयो॑भि॒राग॑तम्। इन्द॑वो वामु॒शन्ति॒ हि।
उ॒प॒या॒मगृ॑हीतोऽसि वा॒यवे॑ऽइन्द्रवा॒युभ्यां॑ त्वै॒ष ते॒ योनिः॑ स॒जोषो॑भ्यां त्वा॥ ८॥

इन्द्र॑वायू॒ इ॒तीन्द्र॑ऽवायू। इ॒मे। सु॒ताः। उप॒ प्रयो॑भि॒रिति॒ प्रयः॑ऽभिः। आग॑तम्। इन्द॑वः। वा॒म्। उ॒शन्ति॑। हि। उ॒प॒या॒मगृ॑हीत॒ इत्यु॑पया॒मऽगृ॑हीतः। अ॒सि। वा॒यवे॑। इ॒न्द्र॒वा॒युभ्या॒मिती॑न्द्रवा॒युऽभ्या॑म्। त्वा॒। ए॒षः। ते। योनिः॑। स॒जोषो॑भ्या॒मिति॑ स॒जोष॑ऽभ्याम्। त्वा॒॥ ८॥

पदार्थः-**(इन्द्रवायू)** प्राणसूर्य्यसदृशौ योगस्योपदेष्टृभ्यासिनौ **(इमे)** समक्षाः **(सुताः)** निष्पन्नाः पदार्थाः **(उप)** समीपे **(प्रयोभिः)** कमनीयैर्लक्षणैः **(आगतम्)** आगच्छतम्। गम्लृ गतावित्यस्माद्। **बहुलं छन्दसि। (अष्टा०**२।४।७३) इति शपो लुकि सति शित्वाभावाच्छस्याभावः। **अनुदात्तोपदेश०। (अष्टा०**६।४।३७) इत्यादिना मलोपश्च। **(इन्दवः)** सुखकारका जलादिपदार्थाः। **इन्दुरित्युदकनामसु पठितम्।** (निघं०१।१२) **(वाम्)** युवाम् **(उशन्ति)** कामयन्ते **(हि)** सादृश्ये **(उपयामगृहीतः)** योगस्य यमनियामाङ्गैः सह स्वीकृतः **(असि) (वायवे)** वायुवद् गत्यादिसिद्धये यद्वा वाति प्रापयति योगबलेन व्यवहारानिति वायुर्योगविचक्षणस्तस्मै तादृशसम्पन्नाय **(इन्द्रवायुभ्याम्)** विद्युत्प्राणाभ्यामिव योगाकर्षणनिष्कर्षणाभ्याम् **(त्वा)** त्वाम् **(एषः)** योगः **(ते)** तव **(योनिः)** गृहम्। **योनिरिति गृहनामसु पठितम्।** (निघं०३।४) **(सजोषोभ्याम्)** यौ जोषसा सेवनेन सह वर्त्तमानौ ताभ्याम् **(त्वा)** त्वाम्॥ अयं मन्त्रः (शत०(४।१।३।१८) व्याख्यातः॥८॥

अन्वयः-हे इन्द्रवायू हि यत इमे सुता इन्दवो वामुशन्ति, तस्माद् युवामेतैः प्रयोभिः पदार्थैः सहैवोपागतमुपागच्छतम्। भो योगमभीप्सो! त्वमनेनाध्यापकेन वायवे उपयामगृहीतोऽसि। हे भगवन्! योगाध्यापक! एष योगस्ते तव योनिः सर्वदुःखनिवारकं गृहमिवास्ति। इन्द्रवायुभ्यां जुष्टं त्वा त्वां तथा योगमभीप्सो सजोषोभ्यामुक्तगुणाभ्यां जुष्टं त्वा त्वां चाहं वश्मि॥८॥

भावार्थः-त एव जना योगनस्सिद्धाश्च भवितुं शक्नुवन्ति, ये योगविद्याभ्यासं कृत्वेश्वरमारभ्य भूमिपर्य्यन्तान् पदार्थान् साक्षात्कर्तुं प्रयतन्ते, यमादिसाधनान्विताश्च योगे रमन्ते, ये चैतान् सेवन्ते तेऽप्येतत्सर्वं प्राप्नुवन्ति नेतरे॥८॥

पदार्थः-हे **(इन्द्रवायू)** प्राण और सूर्य्य के समान योगशास्त्र के पढ़ने-पढ़ाने वालो! **(हि)** जिससे **(इमे)** ये

(सुताः) उत्पन्न हुए **(इन्दवः)** सुखकारक जलादि पदार्थ **(वाम्)** तुम दोनों को **(उशन्ति)** प्राप्त होते हैं, इससे तुम **(प्रयोभिः)** इन मनोहर पदार्थों के साथ ही **(आगतम्)** आओ। हे योग चाहने वाले! तू इस योग पढ़ाने वाले अध्यापक से **(वायवे)** पवन के तुल्य योगसिद्धि को पाने के लिये अथवा योगबल से चराचर के ज्ञान की प्राप्ति के लिये **(उपयामगृहीतः)** योग के यम, नियमों के साथ स्वीकार किया गया **(असि)** है। हे भगवन् योगाध्यापक! **(एषः)** यह योग **(ते)** तुम्हारा **(योनिः)** सब दुःखों के निवारण करने वाले घर के समान है और **(इन्द्रवायुभ्याम्)** बिजुली और प्राणवायु के समान योगवृद्धि और समाधि चढ़ाने और उतारने की शक्तियों से **(जुष्टम्)** प्रसन्न हुए **(त्वा)** आपको और हे योग चाहने वाले! **(सजोषोभ्याम्)** सेवन किये हुए उक्त गुणों से प्रसन्न हुए **(त्वा)** तुझे मैं अपने सुख के लिये चाहता हूँ॥८॥

भावार्थः-वे ही लोग पूर्ण योगी और सिद्ध हो सकते हैं जो कि योगविद्याभ्यास करके ईश्वर से लेके पृथिवी पर्य्यन्त पदार्थों को साक्षात् करने का यत्न किया करते और यम, नियम आदि साधनों से युक्त योग में रम रहे हैं और जो इन सिद्धों का सेवन करते हैं, वे भी इस योगसिद्धि को प्राप्त होते हैं, अन्य नहीं॥८॥

अयं वामित्यस्य गृत्समद ऋषिः। मित्रावरुणौ देवते। आर्षी गायत्री छन्दः।
उपयामगृहीतोऽसीत्यस्यासुरी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनरध्यापकशिष्यकृत्यमाह॥

फिर अध्यापक और शिष्य का कर्म्म अगले मन्त्र में कहा है॥

अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोमऽऋतावृधा। ममेदिह श्रुतꣳ हवम्।
उपयामगृहीतोऽसि मित्रावरुणाभ्यां त्वा॥ ९॥

अयम्। वाम्। मित्रावरुणा। सुतः। सोमः। ऋतावृधेत्यृतऽवृधा। मम। इत्। इह। श्रुतम्। हवम्। उपयामगृहीत इत्युपयामऽगृहीतः। असि। मित्रावरुणाभ्याम्। त्वा॥ ९॥

पदार्थः-**(अयम्)** **(वाम्)** युवयोः **(मित्रावरुणा)** प्राणोदानाविव वर्त्तमानौ **(सुतः)** निष्पादितः **(सोमः)** योगैश्वर्य्यवृन्दः **(ऋतावृधा)** यौ ऋतं विज्ञानं वर्द्धयतस्तौ **(मम)** योगविद्याप्रियस्य **(इत्)** इव **(इह)** अस्मिन् योगविद्याग्राहके व्यवहारे **(श्रुतम्)** शृणुतम् **(हवम्)** स्तुतिसमूहम् **(उपयामगृहीतः)** **(असि)** **(मित्रावरुणाभ्याम्)** **(त्वा)** त्वाम्॥ अयं मन्त्रः (शत०(४।१।४।७) व्याख्यातः॥९॥

अन्वयः-भो मित्रावरुणा ऋतावृधाध्यापकाध्येतारौ! युवयोरयं सोमः सुतोस्ति, युवामिह मम हवं श्रुतम्। हे यजमान! यतस्त्वमुपयामगृहीत इदेवास्यतोहं मित्रावरुणाभ्यां सह वर्त्तमानं त्वा त्वां गृह्णामि॥९॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्याणामुचितमेतद्विद्यां गृहीत्वोपदेशं श्रुत्वा यमनियमान् धृत्वा योगाभ्यासेन सह वर्तितव्यम्॥९॥

पदार्थः-हे **(मित्रावरुणा)** प्राण और उदान के समान वर्त्तमान **(ऋतावृधा)** सत्यविज्ञानवर्द्धक योगविद्या के पढ़ने वालो! **(वाम्)** तुम्हारा **(अयम्)** यह **(सोमः)** योग का ऐश्वर्य **(सुतः)** सिद्ध किया हुआ है, उससे तुम **(इह)** यहाँ **(मम)** योगविद्या से प्रसन्न होने वाले मेरी **(हवम्)** स्तुति को **(श्रुतम्)** सुनो, हे यजमान! जिससे तू **(उपयामगृहीतः)** अच्छे नियमों के साथ स्वीकार किया हुआ **(इत्)** ही **(असि)** है, इससे मैं **(मित्रावरुणाभ्याम्)**

प्राण और उदान के साथ वर्त्तमान **(त्वा)** तुझको ग्रहण करता हूं॥९॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को उचित है कि इस योगविद्या का ग्रहण, श्रेष्ठ पुरुषों का उपदेश सुन और यमनियमों को धारण करके योगाभ्यास के साथ अपना वर्त्ताव रक्खें॥९॥

राया वयमित्यस्य त्रिसदस्युर्ऋषिः। मित्रावरुणौ देवते। ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनरेतयोः कृत्यमाह॥

फिर भी योग पढ़ने-पढ़ाने वालो के कृत्य का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

राया वयꣳ ससवाꣳसो मदेम हव्येन देवा यवसेन गावः।

तां धेनुं मित्रावरुणा युवं नो विश्वाहा धत्तमनपस्फुरन्तीमेष ते योनिर्ऋतायुभ्यां त्वा॥ १०॥

राया। वयम्। ससवाꣳस इति ससऽवाꣳसः। मदेम। हव्येन। देवाः। यवसेन। गावः। ताम्। धेनुम्। मित्रावरुणा। युवम्। नः। विश्वाहा। धत्तम्। अनपस्फुरन्तीमित्यनपऽस्फुरन्तीम्। एषः। ते। योनिः। ऋतायुभ्याम्। ऋतयुभ्यामित्यृतयुऽभ्याम्। त्वा॥ १०॥

पदार्थः-**(राया)** धनेन सह **(वयम्)** पुरुषार्थिनः **(ससवांसः)** संविभक्ताः **(मदेम)** हृष्येम **(हव्येन)** गृहीतव्येन **(देवाः)** विद्वांसः **(यवसेन)** अभीष्टेन तृणबुसादिना **(गावः)** गवादयः पशवः **(ताम्)** **(धेनुम्)** धयति पिबत्यानन्दरसमनया ताम्। **धेनुरिति वाङ्नामसु पठितम्।** (निघं०१।११) **(मित्रावरुणा)** प्राणवत् सखायावुत्तमौ जनौ **(युवम्)** युवाम् **(नः)** अस्मभ्यम् **(विश्वाहा)** सर्वाणि दिनानि **(धत्तम्)** **(अनपस्फुरन्तीम्)** विज्ञापयित्रीमिव योगविद्याजन्यां वाचम् **(एषः)** **(ते)** **(योनिः)** **(ऋतायुभ्याम्)** आत्मन ऋतमिच्छद्भ्यामिव **(त्वा)** त्वाम्॥ अयं मन्त्रः (शत०(४।१।४।१०) व्याख्यातः॥१०॥

अन्वयः-ससवांसो देवा वयं यवसेन गाव इव हव्येन राया मदेम। हे मित्रावरुणा! युवं युवां नोऽस्मभ्यं विश्वाहा विश्वान्यहान्यनपस्फुरन्तीं तां धेनुं धत्तम्। हे यजमान! यस्यैष ते विद्याबोधो योनिरस्ति, अत ऋतायुभ्यां सहितं त्वा त्वां वयमाददीमहे॥१०॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। मनुष्यैः पुरुषार्थेन विद्वत्संगेन च परोपकारनिष्पादयित्रीं कामदुघां वेदवाचं प्राप्यानन्दयितव्यमिति॥१०॥

पदार्थः-**(हे ससवांसः)** भले-बुरे के अलग-अलग करने वाले **(देवाः)** विद्वानो! आप और **(वयम्)** हम लोग **(यवसेन)** तृण, घास, भूसा से **(गावः)** गौ आदि पशुओं के समान **(हव्येन)** ग्रहण करने के योग्य **(राया)** धन से **(मदेम)** हर्षित हों और हे **(मित्रावरुणा)** प्राण के समान उत्तम जनो! **(युवम्)** तुम दोनों **(नः)** हमारे लिये **(विश्वाहा)** सब दिनों में **(अनपस्फुरन्तीम्)** ठीक-ठीक ज्ञान देने वाली **(धेनुम्)** वाणी को **(धत्तम्)** धारण कीजिये। हे यजमान! जिससे **(ते)** तेरा **(एषः)** यह विद्याबोध **(योनिः)** घर है, इससे **(ऋतायुभ्याम्)** सत्य व्यवहार चाहने वालों के सहित **(त्वा)** तुझ को हम लोग स्वीकार करते हैं॥१०॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। मनुष्यों को चाहिये कि अपने पुरुषार्थ और विद्वानों के संग से परोपकार की सिद्धि और कामना को पूर्ण करने वाली वेदवाणी को प्राप्त होकर आनन्द में

रहें॥१०॥

या वां कशेत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। अश्विनौ देवते। ब्राह्मी उष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

पुनरप्येतयोः कर्त्तव्यमुपदिश्यते॥

फिर भी इन योगविद्या पढ़ने-पढ़ाने वालों के करने योग्य काम का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

या वां कशा मधुमत्यश्विना सूनृतावती। तया यज्ञं मिमिक्षितम्।
उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वैष ते योनिर्माध्वीभ्यां त्वा॥ ११॥

या। वाम्। कशा। मधुमतीति मधुऽमती। अश्विना। सूनृतावतीति सूनृताऽवती। तया। यज्ञम्। मिमिक्षतम्। उपयामगृहीत इत्युपयामऽगृहीतः। असि। अश्विभ्यामित्यश्विऽभ्याम्। त्वा। एषः। ते। योनिः। माध्वीभ्याम्। त्वा॥ ११॥

पदार्थः-(**या**) (**वाम्**) युवयोः (**कशा**) वाणी। **कशेति वाङ्नामसु पठितम्।** (निघं०१।११) (**मधुमती**) प्रशस्तमाधुर्य्यगुणयुक्तेव। (**अश्विना**) सूर्य्यचन्द्रवत् प्रकाशमानौ (**सूनृतावती**) उषा इव (**तया**) (**यज्ञम्**) योगम् (**मिमिक्षतम्**) सेक्तुमिच्छतम् (**उपयामगृहीतः**) उपनियमैः स्वीकृतः (**असि**) (**अश्विभ्याम्**) प्राणापानाभ्याम् (**त्वा**) त्वाम् (**एषः**) (**ते**) तव (**योनिः**) गृहम् (**माध्वीभ्याम्**) सुनीतियोगरीतिभ्याम् (**त्वा**) त्वाम्॥ अयं मन्त्रः (शत०(४। १।५।१७ तथा ४।१।६।१-७॥) व्याख्यातः॥११॥

अन्वयः-हे अश्विनौ योगाध्येत्रध्यापकौ! या वां मधुमती सूनृतावती कशाऽस्ति, तया यज्ञं मिमिक्षतम्। हे योगमभीप्सो! त्वमुपयामगृहीतोऽसि, किं च ते तवैष योगो योनिरस्त्यतोऽश्विभ्यां सह वर्त्तमानं त्वाम्। हे योगाध्यापक! माध्वीभ्यां सह वर्त्तमानं च त्वां वयमुपाश्रयामः॥११॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। योगिनो मधुरवाचाध्येतॄन् प्रति योगमुपदिशेयुरात्मसर्वस्वं योगमेव मन्येरन्नितरे जनास्तादृशं योगिनं सर्वत्राऽऽश्रयेयुरिति॥११॥

पदार्थः-हे (**अश्विना**) सूर्य्य और चन्द्र के तुल्य प्रकाशित योग के पढ़ने-पढ़ाने वालो! (**या**) जो (**वाम्**) तुम्हारी (**मधुमती**) प्रशंसनीय मधुरगुणयुक्त (**सूनृतावती**) प्रभात समय में क्रम-क्रम से प्रदीप्त होने वाली उषा के समान (**कशा**) वाणी है, (**तया**) उससे (**यज्ञम्**) ईश्वर से संग कराने हारे योगरूपी यज्ञ को (**मिमिक्षतम्**) सिद्ध करना चाहो। हे योग पढ़ने वाले! तू (**उपयामगृहीतः**) यम-नियमादिकों से स्वीकार किया गया (**असि**) है, (**ते**) तेरा (**एषः**) यह योग (**योनिः**) घर के समान सुखदायक है, इससे (**अश्विभ्याम्**) प्राण और अपान के योगोचित नियमों के साथ वर्त्तमान (**त्वा**) तुझ और हे योगाध्यापक! (**माध्वीभ्याम्**) माधुर्य्य लिये जो श्रेष्ठ नीति और योगरीति हैं, उनके साथ वर्त्तमान (**त्वा**) आप का हम लोग आश्रय करते हैं अर्थात् समीपस्थ होते हैं॥११॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। योगी लोग मधुर प्यारी वाणी से योग सीखने वालों को उपदेश करें और अपना सर्वस्व योग ही को जानें तथा अन्य मनुष्य वैसे योगी का सदा आश्रय किया करें॥११॥

तं प्रत्नथेत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। निचृदार्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः। उपयामगृहीत इत्यस्य पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनर्योगिगुणा उपदिश्यन्ते॥

फिर भी अगले मन्त्र में योगी के गुणों का उपदेश किया है॥

तं प्रत्नथा पूर्वथा विश्वथेमथा ज्येष्ठतातिं बर्हिषदꣳ स्वर्विदम्।

प्रतीचीनं वृजनं दोहसे धुनिमाशुं जयन्तमनु यासु वर्धसे।

उपयामगृहीतोऽसि शण्डाय त्वैष ते योनिर्वीरतां पाह्यपमृष्टः।

शण्डो देवास्त्वा शुक्रपाः प्रणयन्त्वनाधृष्टासि॥ १२॥

तम्। प्रत्नथेति प्रत्नऽथा। पूर्वथेति पूर्वऽथा। विश्वथेति विश्वऽथा। इमथेतीमऽथा। ज्येष्ठतातिमिति ज्येष्ठऽतातिम्। बर्हिषदम्। बर्हिसदमिति बर्हिःऽसदम्। स्वर्विदमिति स्वःऽविदम्। प्रतीचीनम्। वृजनम्। दोहसे। धुनिम्। आशुम्। जयन्तम्। अनु। यासु। वर्द्धसे। उपयामगृहीत इत्युपयामऽगृहीतः। असि। शण्डाय। त्वा। एषः। ते। योनिः। वीरताम्। पाहि। अपमृष्ट इत्यपऽमृष्टः। शण्डः। देवाः। त्वा। शुक्रपा इति शुक्रऽपाः। प्र। नयन्तु। अनाधृष्टा असि॥ १२॥

पदार्थः-(**तम्**) योगम् (**प्रत्नथा**) प्राक्तनानां योगिनामिव (**पूर्वथा**) पूर्वेषां योगिनामिव (**विश्वथा**) सर्वेषामिव (**इमथा**) इदानीन्तनानामिव (**ज्येष्ठतातिम्**) प्रशस्तं ज्येष्ठम् (**बर्हिषदम्**) यो बर्हिरन्तरिक्षे सीदति तम् (**स्वर्विदम्**) स्वः सुखं वेदयति तम् (**प्रतीचीनम्**) अविद्यादिदोषेभ्यः प्रतिकूलम् (**वृजनम्**) योगबलम् (**दोहसे**) प्रपिपर्षि (**धुनिम्**) इन्द्रियकम्पकम् (**आशुम्**) शीघ्रं सिद्धप्रदम् (**जयन्तम्**) उत्कर्षप्रापकम् (**अनु**) क्रियायोगे (**यासु**) कुशलासु (**वर्द्धसे**) शमादिषु स्वात्मानमुन्नयसि (**उपयामगृहीतः**) उपयामाः शौचादयो नियमा गृहीता येन सः (**असि**) वर्त्तसे (**शण्डाय**) (**त्वा**) त्वाम् (**एषः**) योगयुक्तः स्वभावः (**ते**) योगविद्याध्यापकस्य तव (**योनिः**) सुखहेतुः (**वीरताम्**) वीरस्य भावम् (**पाहि**) रक्ष (**अपमृष्टः**) अपमृज्यते दूरीक्रियतेऽविद्यादिक्लेशैर्यः सः शुद्धः (**शण्डः**) शमान्वितः (**देवाः**) देदीप्यमाना योगिनः (**त्वा**) त्वाम् (**शुक्रपाः**) शुक्रं योगवीर्य्यं योगबलं वा पान्ति ते (**प्र**) (**नयन्तु**) (**अनाधृष्टा**) समन्ताद्धर्षितुमनर्हा (**असि**) अस्तु॥ अयं मन्त्रः (शत०(४।१।६।९-१५॥१२॥

अन्वयः-हे योगिन् त्वमुपयामगृहीतोऽसि ते तवैष योगस्वभावो योनिः सुखहेतुरस्ति। येन योगेन त्वमपमृष्टः शण्डोऽसि, यासु योगक्रियासु त्वं वर्द्धसे, विश्वथा प्रत्नथा पूर्वथेमथा ज्येष्ठतातिं बर्हिषदं स्वर्विदं प्रतीचीनमाशुं जयन्तं धुनिं वृजनं दोहसे च, तं योगबलं शुक्रपा देवास्त्वां प्रणयन्तु, तस्मै शण्डाय तुभ्यमस्य योगस्यानाधृष्टा वीरतास्तु त्वमिमां वीरतां पाहि, तदनु त्वामियं वीरता पातु॥ १२॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। हे योगिन्! त्वं यथा शमादिगुणप्रसक्तः पुरुषो योगबलेन विद्याबलमुन्नेतुं शक्नोति, सा चाविद्याध्वान्तौघविध्वंसिनी योगविद्या पुरुषानभ्येत्य यथार्थं सुखयति, तथा त्वामपि सुखयतु॥ १२॥

पदार्थः-हे योगिन्! आप (**उपयामगृहीतः**) योग के अङ्गों अर्थात् शौच आदि नियमों के ग्रहण करने वाले (**असि**) हैं, (**ते**) आपका (**एषः**) यह योगयुक्त स्वभाव (**योनिः**) सुख का हेतु है। जिस योग से आप (**अपमृष्टः**) अविद्यादि दोषों से अलग हुए (**शण्डः**) शमादि गुणयुक्त (**असि**) हैं, (**यासु**) जिन योगक्रियाओं में आप (**वर्द्धसे**) वृद्धि को प्राप्त होते हैं और (**विश्वथा**) समस्त (**प्रत्नथा**) प्राचीन महर्षि (**पूर्वथा**) पूर्वकाल के योगी और (**इमथा**) वर्त्तमान योगियों के समान (**ज्येष्ठतातिम्**) अत्यन्त प्रशंसनीय (**बर्हिषदम्**) हृदयाकाश में स्थिर (**स्वर्विदम्**) सुख

लाभ करने **(प्रतीचीनम्)** अविद्यादि दोषों से प्रतिकूल होने **(आशुम्)** शीघ्र सिद्धि देने **(जयन्तम्)** उत्कर्ष पहुंचाने और **(धुनिम्)** इन्द्रियों को कंपाने वाले **(वृजनम्)** योगबल को **(दोहसे)** परिपूर्ण करते हैं, **(तम्)** उस योगबल को **(शुक्रपाः)** जो कि योगबल से रक्षा करने हारे **(देवाः)** योगबल के प्रकाश से प्रकाशित योगी लोग हैं, वे **(त्वा)** आप को **(प्रणयन्तु)** अच्छे प्रकार पहुंचावें। उस योगबल को प्राप्त हुए **(शण्डाय)** शमदमादिगुणयुक्त आप के लिये उसी योग की **(अनाधृष्टा)** दृढ़ वीरता **(असि)** हो, आप उस **(वीरताम्)** वीरता की **(पाहि)** रक्षा कीजिये **(अनु)** वह रक्षा को प्राप्त हुई वीरता **(त्वा)** आप को पाले॥१२॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे योगविद्या की इच्छा करने वाले! जैसे शमदमादि गुणयुक्त पुरुष योगबल से विद्याबल की उन्नति कर सकता है, वही अविद्यारूपी अन्धकार का विध्वंस करने वाली योगविद्या सज्जनों को प्राप्त होकर जैसे यथोचित सुख देती है, वैसे आप को दे॥१२॥

सुवीर इत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः।

शुक्रस्येत्यस्य प्राजापत्या गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

उक्तयोगमनुष्ठाता योगी कीदृग् भवतीत्युपदिश्यते॥

उक्त योग का अनुष्ठान करने वाला योगी कैसा होता है, यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

सुवीरो वीरान् प्रजनयन् परीह्यभि रायस्पोषेण यजमानम्।

सञ्जग्मानो दिवा पृथिव्या शुक्रः शुक्रशोचिषा निरस्तः शण्डः शुक्रस्याधिष्ठानमसि॥१३॥

सुवीर इति सुऽवीरः। वीरान्। प्रजनयन्निति प्रऽजनयन्। परि। इहि। अभि। रायः। पोषेण। यजमानम्। सञ्जग्मान इति सम्ऽजग्मानः। दिवा। पृथिव्या। शुक्रः। शुक्रशोचिषेति शुक्रऽशोचिषा। निरस्त इति निःऽअस्तः। शण्डः। शुक्रस्य। अधिष्ठानम्। अधिस्थानमित्यधिऽस्थानम्। असि॥१३॥

पदार्थः-**(सुवीरः)** शोभनश्चासौ वीर इव **(वीरान्)** उत्कृष्टगुणान् **(प्रजनयन्)** निष्पादयन्नेव **(परि)** सर्वतः **(इहि)** प्राप्नुहि **(अभि)** आभिमुख्ये **(रायः)** धनस्य **(पोषेण)** पुष्ट्या **(यजमानम्)** दातारम् **(सञ्जग्मानः)** संगतवान् **(दिवा)** सूर्य्येण **(पृथिव्या)** भूम्या सह **(शुक्रः)** वीर्य्यवान् **(शुक्रशोचिषा)** शुक्रस्य शोधकस्य सूर्य्यस्य शोचिर्दीपनं तेनैव **(निरस्तः)** निःसारितोऽन्धकार इव **(शण्डः)** शमादिसहितः **(शुक्रस्य)** शोधकस्य योगस्य **(अधिष्ठानम्)** अधितिष्ठन्ति यस्मिन्निति तत् **(असि)**॥ अयं मन्त्रः (शत०(४।२।१।१६) व्याख्यातः॥१३॥

अन्वयः-हे योगिन्! सुवीरस्त्वं वीरान् प्रजनयन् परीहि एवं यजमानमभि रायस्पोषेण सञ्जग्मानो दिवा पृथिव्या सह शुक्रः शुक्रशोचिषा निरस्त एव विषयवासनारहितः शण्डस्त्वं शुक्रस्याधिष्ठानमसि॥१३॥

भावार्थः-शमदमादिगुणाधिष्ठानो योगाभ्यासनिरतो योगी स्वयोगविद्याप्रचारेण जिज्ञासूनात्मबलं वर्द्धयन् सर्वथा सूर्य्य इव प्रकाशमानो भवति॥१३॥

पदार्थः-हे योगिन्! **(सुवीरः)** श्रेष्ठ वीर के समान योगबल को प्राप्त हुए आप **(वीरान्)** अच्छे-अच्छे गुणयुक्त पुरुषों को **(प्रजनयन्)** प्रसिद्ध करते हुए **(परीहि)** सब जगह भ्रमण कीजिये। इसी प्रकार **(यजमानम्)** धन आदि पदार्थों को देने वाले उत्तम पुरुषों के **(अभि)** सन्मुख **(रायः)** धन की **(पोषेण)** पुष्टि से **(सञ्जग्मानः)** संगत हूजिये और आप **(दिवा)** सूर्य्य और **(पृथिव्या)** पृथिवी के गुणों के साथ **(शुक्रः)** अति बलवान् **(शुक्रशोचिषा)**

सब को शोधने वाले सूर्य्य की दीप्ति से **(निरस्तः)** अन्धकार के समान पृथक् हुए ही योगबल के प्रकाश से विषयवासना से छूटे हुए **(शण्डः)** शमदमादि गुणयुक्त **(शुक्रस्य)** अत्यन्त योगबल के **(अधिष्ठानम्)** आधार **(असि)** हैं॥१३॥

भावार्थः-शमदमादि गुणों का आधार योगाभ्यास में तत्पर योगीजन अपनी योगविद्या के प्रचार से योगविद्या चाहने वालों का आत्मबल बढ़ाता हुआ सब जगह सूर्य्य के समान प्रकाशित होता है॥१३॥

अच्छिन्नस्य त इत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। स्वराड् जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

अथ शिष्यायाध्यापककृत्यमाह॥

अब शिष्य के लिये पढ़ाने की युक्ति अगले मन्त्र में कही है॥

अच्छिन्नस्य ते देव सोम सुवीर्यस्य रायस्पोषस्य ददितारः स्याम।
सा प्रथमा सँस्कृतिर्विश्ववारा स प्रथमो वरुणो मित्रोऽअग्निः॥१४॥

अच्छिन्नस्य। ते। देव। सोम। सुवीर्य्यस्येति सुऽवीर्य्यस्य। रायः। पोषस्य। ददितारः। स्याम। सा। प्रथमा। संस्कृतिः। विश्ववारेति विश्वऽवारा। सः। प्रथमः। वरुणः। मित्रः। अग्निः॥१४॥

पदार्थः-**(अच्छिन्नस्य)** अखण्डितस्य **(ते)** तुभ्यं तव वा **(देव)** योगजिज्ञासो **(सोम)** प्रशस्तगुण शिष्य! **(सुवीर्य्यस्य)** शोभनानि वीर्य्यणि पराक्रमाणि यस्मात् तस्येव **(रायः)** सर्वविद्याजनितस्य बोधधनस्य **(पोषस्य)** पुष्टेः **(ददितारः)** **(स्याम)** **(सा)** **(प्रथमा)** आदिमा **(संस्कृतिः)** विद्यासु शिक्षाजनिता नीतिः **(विश्ववारा)** सर्वैरेव स्वीकर्त्तुं योग्या **(सः)** **(प्रथमः)** **(वरुणः)** श्रेष्ठः **(मित्रः)** सखा **(अग्निः)** पावक इव देदीप्यमानः॥ अयं मन्त्रः (शत०(४। २। १। २२-२७) व्याख्यातः॥१४॥

अन्वयः-हे देव सोम! वयमध्यापकास्ते तुभ्यं सुवीर्य्यस्येवाच्छिन्नस्य रायस्पोषस्य ददितारः स्याम, या प्रथमा विश्ववारा संस्कृतिरस्ति, सा तुभ्यं सुखदा भवतु। योऽस्माकं मध्ये वरुणोऽग्निरिवाध्यापकोऽस्ति, स प्रथमस्ते मित्रो भवतु॥१४॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। योगविद्यासम्पन्नमनसां योगिनां योग्यतास्ति जिज्ञासुभ्यो नित्यं योगविद्यां प्रदाय ते सुशरीरात्मबलाः सम्पादनीयाः॥१४॥

पदार्थः-हे **(देव)** योगविद्या चाहने वाले **(सोम)** प्रशंसनीय गुणयुक्त शिष्य! हम अध्यापक लोग **(ते)** तेरे लिये **(सुवीर्य्यस्य)** जिस पदार्थ से शुद्ध पराक्रम बढ़े उसके समान **(अच्छिन्नस्य)** अखण्ड **(रायः)** योगविद्या से उत्पन्न हुए धन की **(पोषस्य)** दृढ़पुष्टि के **(ददितारः)** देने वाले **(स्याम)** हों। जो यह **(प्रथमा)** पहिली **(विश्ववारा)** सब ही सुखों के स्वीकार कराने योग्य **(संस्कृतिः)** विद्यासुशिक्षाजनित नीति है, **(सा)** वह तेरे लिये इस जगत् में सुखदायक हो और हम लोगों में जो **(वरुणः)** श्रेष्ठ **(अग्निः)** अग्नि के समान सब विद्याओं से प्रकाशित अध्यापक है **(सः)** वह **(प्रथमः)** सब से प्रथम तेरा **(मित्रः)** मित्र हो॥१४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। योगविद्या में सम्पन्न शुद्धचित युक्त योगियों को योग्य है कि जिज्ञासुओं के लिये नित्य योगविद्या का दान देकर उन्हें शारीरिक और आत्मबल से युक्त किया करें॥१४॥

स प्रथम इत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। निचृद्ब्राह्म्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथ स्वामिसेवककृत्यमाह॥

अब स्वामी और सेवक के कर्म्म को अगले मन्त्र में कहा है॥

स प्रथमो बृहस्पतिश्चिकित्वाँस्तस्माऽइन्द्राय सुतमाजुहोत स्वाहा।
तृम्पन्तु होत्रा मध्वो याः स्विष्टा याः सुप्रीताः सुहुता यत्स्वाहायाडग्नीत्॥ १५॥

सः। प्रथमः। बृहस्पतिः। चिकित्वान्। तस्मै। इन्द्राय। सुतम्। आ। जुहोत। स्वाहा। तृम्पन्तु। होत्राः। मध्वः। याः। स्विष्टा इति सुऽइष्टाः। याः। सुप्रीता इति सुऽप्रीताः। सुहुता इति सुऽहुताः। यत्। स्वाहा। अयाट्। अग्नीत्॥ १५॥

पदार्थः-(**सः**) (**प्रथमः**) आदिमः (**बृहस्पतिः**) बृहत्या विद्यायुक्ताया वाचः पालकः (**चिकित्वान्**) विज्ञानवान् (**तस्मै**) (**इन्द्राय**) ऐश्वर्य्याय (**सुतम्**) निष्पादितं व्यवहारम् (**आजुहोत**) आदत्त (**स्वाहा**) सत्यां वाचम् (**तृम्पन्तु**) प्रीणन्तु (**होत्राः**) स्वीकर्तुमर्हाः (**मध्वः**) माधुर्यादिगुणोपेताः (**याः**) (**स्विष्टाः**) शोभनानीष्टानि याभ्यस्ताः (**याः**) (**सुप्रीताः**) सुप्रसन्नाः (**सुहुताः**) सुष्ठु हुतानि योगादानरूपाणि कर्म्माणि याभिर्योगिनीभिः स्त्रीभिस्ताः (**यत्**) या (**स्वाहा**) शोभनया वाचा (**अयाट्**) अयाक्षीत् (**अग्नीत्**) संप्रेषितः॥ अयं मन्त्रः (शत०(४। २। १। २७-२८) व्याख्यातः॥ १५॥

अन्वयः-हे शिष्या! यूयं यथा स पूर्वोक्तो मित्रः प्रथमश्चिकित्वान् बृहस्पतिर्यस्मै प्रयतेत, तस्मै इन्द्राय स्वाहा सुतमाजुहोत। तथा यद्या होत्रा या मध्वः स्विष्टा याः सुहूता सुप्रीताः स्त्रियोऽग्नीत् कश्चिद् योगी च स्वाहायाट् तथा भवन्तस्तृम्पन्तु॥ १५॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा योगिनो विद्वांसो योगिन्यो विदुष्यश्च परमैश्वर्य्यप्राप्तये प्रयतन्ते, यथा च सेवकः स्वामिसेवनमाचरति, तथैवान्यैः तत्तत् कर्म्मणि प्रवृत्त्य स्वाभीष्टसिद्धिः सम्पादनीया॥ १५॥

पदार्थः-हे शिष्यो! तुम लोग जैसे वह पूर्व मन्त्र से प्रतिपादित (**प्रथमः**) आदि मित्र (**चिकित्वान्**) विज्ञानवान् (**बृहस्पतिः**) सब विद्यायुक्त वाणी का पालने वाला जिस ऐश्वर्य्य के लिये प्रयत्न करता है, वैसे (**तस्मै**) उस (**इन्द्राय**) ऐश्वर्य के लिये (**स्वाहा**) सत्य वाणी और (**सुतम्**) निष्पादित श्रेष्ठ व्यवहार का (**आजुहोत**) अच्छे प्रकार ग्रहण करो और जैसे (**यत्**) जो (**होत्राः**) योग स्वीकार करने के योग्य वा (**याः**) जो (**मध्वः**) माधुर्य्यादिगुणयुक्त (**स्विष्टाः**) जिनसे कि अच्छे-अच्छे इष्ट काम बनते हैं (**याः**) वा जो ऐसी हैं कि (**सुहुताः**) जिनसे अच्छे प्रकार हवन आदि कर्म्म सिद्ध होते हैं (**सुप्रीताः**) और अच्छे प्रकार प्रसन्न रहती हैं, वे विद्वान् स्त्रीजन वा (**अग्नीत्**) कोई अच्छी प्रेरणा को प्राप्त हुआ विद्वान् योगी (**स्वाहा**) सत्यवाणी से (**अयाट्**) सभों को सत्कृत करता और तृप्त रहता है। आप लोग उन स्त्रियों और उस योगी के समान (**तृम्पन्तु**) तृप्त हूजिये॥ १५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे योगी विद्वान् और योगिनी विद्वानों की स्त्रीजन परमैश्वर्य्य के लिये यत्न करें और जैसे सेवक अपने स्वामी का सेवन करता है, वैसे अन्य पुरुषों को भी उचित है कि उन-उन कामों में प्रवृत होकर अपनी अभीष्ट सिद्धि को पहुँचे॥ १५॥

अयं वेन इत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। आद्यस्य निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। उपयाम इत्यस्य साम्नी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अथ सभाध्यक्षेण राज्ञा किं कर्त्तव्यमित्युपदिश्यते॥

अब सभाध्यक्ष राजा को क्या करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

अयं वेनश्चोदयत् पृश्निगर्भा ज्योतिर्जरायू रजसो विमाने। इममपाथं सङ्गमे सूर्यस्य शिशुं न विप्रा मतिभी रिहन्ति। उपयामगृहीतोऽसि मर्काय त्वा॥ १६॥

अयम्। वेनः। चोदयत्। पृश्निगर्भा इति पृश्निऽगर्भाः। ज्योतिर्जरायुरिति ज्योतिःऽजरायुः। रजसः। विमान इति विऽमाने। इमम। अपाम्। सङ्गम इति सम्ऽगमे। सूर्य्यस्य। शिशुम्। न। विप्राः। मतिभिरिति मतिऽभिः। रिहन्ति। उपयामगृहीत इत्युपयामऽगृहीतः। असि। मर्काय। त्वा॥ १६॥

पदार्थः-**(अयम्)** **(वेनः)** कमनीयश्चन्द्रः **(चोदयत्)** प्रेरयति, अत्र लडर्थे लङडभावश्च। **(पृश्निगर्भाः)** पृश्निरन्तरिक्षं गर्भो येषां ते पृश्निगर्भाः **(ज्योतिर्जरायुः)** ज्योतिषां जरायुरिवाच्छादकः **(रजसः)** लोकसमूहस्य **(विमाने)** विगतं मानं परिमाणं यस्यान्तरिक्षस्य तस्मिन् **(इमम्)** प्रत्यक्षम् **(अपाम्)** जलानाम् **(सङ्गमे)** सङ्ग्राम इव। **सङ्गम इति सङ्ग्रामनामसु पठितम्।** (निघं०२।१७) **(सूर्य्यस्य)** मार्तण्डस्य **(शिशुम्)** शासनीयं कुमारं बालकम् **(न)** इव **(विप्राः)** मेधाविनः **(मतिभिः)** बुद्धिभिः **(रिहन्ति)** सत्कुर्वन्ति। **रिहन्तीत्यर्चतिकर्म्मसु पठितम्।** (निघं०३।१४) **(उपयामगृहीतः)** राज्याङ्गैर्युक्तः **(मर्काय)** मृत्युनिमित्ताय वायवे **(त्वा)** त्वाम्॥ इमं मन्त्रं निरुक्तकार एवं समाचष्टे-**वेनो वेनतेः कान्तिकर्म्मणस्तस्यैषा भवति। (निरु०१०।३८) अयं वेनश्चोदयत् पृश्निगर्भा प्राष्टवर्णगर्भा आप इति वा ज्योतिर्जरायुर्ज्योतिरस्य जरायुस्थानीयं भवति, जरायु जरया गर्भस्थ जरया यूयत इति वा। इममपां च सङ्गमने सूर्य्यस्य च शिशुमिव विप्रा मतिभी रिहन्ति लिहन्ति स्तुवन्ति वर्द्धयन्ति पूजयन्तीति वा। शिशुः शंसनीयो भवति, शिशीतेर्वा स्याद्,दानकर्म्मणश्चिरलब्धो गर्भो भवति।** (निरु०१०।३९)। अयं मन्त्रः (शत०(४।२।१।१०-११) व्याख्यातः॥१६॥

अन्वयः-हे शिल्पविधिविद्विद्वन्! त्वमुपयामगृहीतोऽस्यतोऽहं रजसो मध्ये पृश्निगर्भा लोका इव ज्योतिर्जरायुरिवायं वेनश्चोदयादिमं चन्द्रमपां सूर्य्यस्य सङ्गमे शिशुं विप्रा मतिभी रिहन्ति नेव मर्काय दुष्टानां प्रशमनाय श्रेष्ठव्यवहारस्थापनाय च विमाने त्वा त्वां गृह्णामि॥१६॥

भावार्थः-सभाध्यक्षेण सूर्य्याचन्द्रमसोर्गुणानिव श्रेष्ठगुणान् प्रकाशयित्वा दुष्टप्रशमनेन श्रेष्ठव्यवहारेण सज्जना आह्लादयितव्याः॥१६॥

पदार्थः-हे शिल्पविधि के जानने वाले सभाध्यक्ष विद्वन्! आप **(उपयामगृहीतः)** सेना आदि राज्य के अङ्गों से युक्त **(असि)** हैं, इससे मैं **(रजसः)** लोकों के मध्य **(पृश्निगर्भाः)** जिनमें अवकाश अधिक है, उन लोगों के **(ज्योतिर्जरायुः)** तारागणों को ढांपने वाले के समान **(अयम्)** यह **(वेनः)** अति मनोहर चन्द्रमा **(चोदयत्)** यथायोग्य अपने-अपने मार्ग में अभियुक्त करता है, **(इमम्)** इस चन्द्रमा को **(अपाम्)** जलों और **(सूर्य्यस्य)** सूर्य्य के **(सङ्गमे)** सम्बन्धी आकर्षणादि विषयों में **(शिशुम्)** शिक्षा के योग्य बालक को **(मतिभिः)** विद्वान् लोग अपनी बुद्धियों से **(रिहन्ति)** सत्कार कर के **(न)** समान आदर के साथ ग्रहण कर रहे हैं और मैं **(मर्काय)** दुष्टों को शान्त

करने और श्रेष्ठ व्यवहारों के स्थापन करने के लिये **(विमाने)** अनन्त अन्तरिक्ष में **(त्वा)** तुझे विविध प्रकार के यान बनाने के लिये स्वीकार करता हूं॥१६॥

भावार्थः-सभाध्यक्ष को चाहिये कि सूर्य्य और चन्द्रमा के समान श्रेष्ठ गुणों को प्रकाशित और दुष्ट व्यवहारों को शान्त करके श्रेष्ठ व्यवहार से सज्जन पुरुषों को आह्लाद देवें॥१६॥

मनो न येष्वित्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। स्वराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

मनो न येषु हवनेषु तिग्मं विपः शच्या वनुथो द्रवन्ता। आ यः शर्याभिस्तुविनृम्णोऽअस्याश्रीणीतादिशं गभस्तावेष ते योनिः प्रजाः पाह्यपमृष्टो मर्को देवास्त्वा मन्थिपाः प्रणयन्त्वनाधृष्टासि॥ १७॥

मनः। न। येषु। हवनेषु। तिग्मम्। विपः। शच्या। वनुथः। द्रवन्ता। आ। यः। शर्य्याभिः। तुविनृम्ण इति तुविऽनृम्णः। अस्य। अश्रीणीत। आदिशमित्याऽदिशम्। गभस्तौ। एषः। ते। योनिः। प्रजा इति प्रऽजाः। पाहि। अपमृष्ट इत्यपऽमृष्टः। मर्कः। देवाः। त्वा। मन्थिपा इति मन्थिऽपाः। प्र। नयन्तु। अनाधृष्टा। असि॥ १७॥

पदार्थः-**(मनः)** विज्ञानम् **(न)** इव **(येषु)** **(हवनेषु)** धर्म्मेणैवादानेषु **(तिग्मम्)** वज्रवत् तीव्रम्। **तिग्ममिति वज्रनामसु पठितम्।** (निघं०२।२०) **(विपः)** विविधं पातीति विपो मेधावी। **विप इति मेधाविनामसु पठितम्।** (निघं०३।१५) **(शच्या)** प्रज्ञया। **शचीति प्रज्ञानामसु पठितम्।** (निघं०३।९) **(वनुथः)** कामयेथे। **वनोतीति कान्तिकर्म्मसु पठितम्।** (निघं०२।६) **(द्रवन्ता)** गन्तारौ। अत्र **सुपां सुलुग्** [अष्टा०७.१.३९] इत्याकारदेशः (अष्टा०७।१।१३९) **(आ)** **(यः)** **(शर्य्याभिः)** गतिभिः **(तुविनृम्णः)** तुवीनि बहूनि धनानि यस्य सः। **तुवीति बहुनामसु पठितम्।** (निघं०२।५) **(अस्य)** **(अश्रीणीत)** श्रीणाति पचति **(आदिशम्)** दिशमभिव्याप्येव **(गभस्तौ)** अङ्गुल्या निर्देशे। **गभस्तयः इत्यङ्गुलिनामसु पठितम्।** (निघं०२.५) **(एषः)** राजधर्म्मः **(ते)** तव **(योनिः)** गृहम् **(प्रजाः)** संरक्षणीयाः **(पाहि)** **(अपमृष्टः)** दूरीकृतः **(मर्कः)** मरणदुःखदो दुर्नयः **(देवाः)** विद्वांसः **(त्वा)** त्वाम् **(मन्थिपाः)** ये मन्थन्ति शत्रून् तान् वीरान् पान्ति ते **(प्र)** **(नयन्तु)** प्रीणयन्तु **(अनाधृष्टा)** अधर्षणीया **(असि)** लोडर्थे लट्॥ अयं मन्त्रः (शत०(४।१।६।१२-१५) व्याख्यातः॥१७॥

अन्वयः-हे शिल्पिद्याविचक्षण सभापते विद्वन्नेष राजधर्मस्ते तव योनिरस्ति, त्वं यथा यस्तुविनृम्णः प्रजापतिर्विपः प्रजाजनश्चैतौ द्वौ युवां येषु हवनेषु शर्य्याभिस्तिग्मं मनो न द्रवन्तौ शच्या सह आवनुथः, इत्थं प्रत्येकः प्रजाजनोऽस्य गभस्तावादिशं यथा स्यात् तथा शत्रूनाश्रीणीत, मर्कश्चापमृष्टो भवतु। प्रजाः पाहि मन्थिपा देवास्त्वा त्वां प्रणयन्तु, हे प्रजे! यतोऽनाधृष्टा निर्भया स्वतन्त्रा त्वमसि, तं राजानं सततं रक्ष॥१७॥

भावार्थः-प्रजापुरुषा राज्यकर्म्मणि यं राजानमाश्रयेयुस्स तेषां न्यायेन रक्षां कुर्य्यात्। ते च तं न्यायाधीशं प्रति स्वाभिप्रायं प्रवदेयुः। राजसेवकाश्च न्यायकर्म्मणैव प्रजापुरुषान् रक्षेयुरिति॥१७॥

पदार्थः-हे शिल्पविद्या में चतुर सभापते! **(एषः)** यह राजधर्म **(ते)** तेरा **(योनिः)** सुखपूर्वक स्थिरता का स्थान है। जैसे तू **(यः)** जो **(तुविनृम्णः)** अत्यन्त धनयुक्त प्रजा का पालने वाला वा **(विपः)** बुद्धिमान् प्रजाजन ये तुम दोनों **(येषु)** जिन हवनादि कर्म्मों में **(शर्य्याभिः)** वेगों से **(तिग्मम्)** वज्र के तुल्य अतिदृढ़ **(मनः)** मन के **(न)** समान वेग से **(द्रवन्ता)** चलते हुए **(शच्या)** बुद्धि के साथ **(आवनुथः)** परस्पर कामना करते हो, वैसे प्रत्येक प्रजापुरुष **(अस्य)** इस प्रजापति के **(गभस्तौ)** अंगुली-निर्देश से **(आदिशम्)** सब दिशाओं में तेज जैसे हो, वैसे शुत्रओं को **(आ, अश्रीणीत)** अच्छे प्रकार दुःख दिया करे **(मर्कः)** मरण के तुल्य दुःख देने और कुढंग चालचलन रखने वाला शत्रु **(अपमृष्टः)** दूर हो और तू **(प्रजाः)** प्रजा का **(पाहि)** पालन कर **(मन्थिपाः)** शत्रुओं का मंथने वाले वीरों के रक्षक **(देवाः)** विद्वान् लोग **(त्वा)** तुझे **(प्र, नयन्तु)** प्रसन्न करें। हे प्रजाजनो! तुम जिससे **(अनाधृष्टा)** प्रगल्भ निर्भय और स्वाधीन **(असि)** हो, उस राजा की रक्षा किया करो॥१७॥

भावार्थः-प्रजापुरुष राज्यकर्म में जिस राजा का आश्रय करें, वह उन की रक्षा करे और प्रजाजन उस न्यायाधीश के प्रति अपने अभिप्राय को शंका-समाधान के साथ कहें, राजा के नौकर-चाकर भी न्यायकर्म्म ही से प्रजाजनों की रक्षा करें॥१७॥

सुप्रजा इत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः

मन्थिनोऽधिष्ठानमित्यस्य प्राजापत्या गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

न्यायाधीशेन प्रजाः प्रति कथं वर्त्तितव्यमित्युपदिश्यते॥

न्यायाधीश को प्रजाजनों के प्रति कैसे वर्त्तना चाहिये, यह अगले मन्त्र में कहा है॥

सुप्रजाः प्रजाः प्रजनयन् परीह्यभि रायस्पोषेण यजमानम्।

सञ्जग्मानो दिवा पृथिव्या मन्थी मन्थिशोचिषा निरस्तो मर्को मन्थिनोऽधिष्ठानमसि॥ १८॥

सुप्रजा इति सुऽप्रजाः। प्रजा इति प्रऽजाः। प्रजनयन्निति प्रऽजनयन्। परि। इहि। अभि। रायः। पोषेण। यजमानम्। सञ्जग्मान इति समऽजग्मानः। दिवा। पृथिव्या। मन्थी। मन्थिशोचिषेति मन्थिशोचिषा। निरस्त इति निःऽअस्तः। मर्कः। मन्थिनः। अधिष्ठानम्। अधिस्थानमित्यधिऽस्थानम्। असि॥ १८॥

पदार्थः-**(सुप्रजाः)** शोभना प्रजा यस्य सः सुप्रजाः स यथा स्यात् तथा **(प्रजाः)** प्रजा एव **(प्रजनयन्)** परमेश्वर इव प्रकटयन् **(परि)** सर्वतः **(इहि)** जानीहि **(अभि)** आभिमुख्ये **(रायः)** धनसमूहस्य **(पोषेण)** पुष्ट्या **(यजमानम्)** सुखप्रदम् **(सञ्जग्मानः)** धीरतादिशुभगुणेष्वासक्तः **(दिवा)** सूर्य्येण **(पृथिव्या)** भूम्या **(मन्थी)** मन्थितुं शीलमस्य न्यायाधीशस्य सः **(मन्थिशोचिषा)** सूर्य्यदीप्त्येव **(निरस्तः)** नितरां प्रक्षिप्त इव **(मर्कः)** मृत्युनिमित्तः खल्वन्यायकारी **(मन्थिनः)** न्यायकारिणः **(अधिष्ठानम्)** आधार इव **(असि)**॥ अयं मन्त्रः (शत०(४। २। १। १७-२०) व्याख्यातः॥१८॥

अन्वयः-भो न्यायधीश! सुप्रजास्त्वं प्रजाः प्रजनयन् रायस्पोषेण सह यजमानमभिपरीहि सर्वथा तस्य धनवृद्धिमिच्छ, मन्थी त्वं दिवा पृथिव्या सञ्जग्मानो भव तद्गुणी भवेति भावः। यतस्त्वं मन्थिनोऽधिष्ठानमस्यतस्ते मन्थिशोचिषा मर्को निरस्तो भवतु॥१८॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। न्यायाधीशो यजमानस्य पुरोहित इव प्रजाः सततं पालयेत्॥१८॥

पदार्थः-भो न्यायाधीश! (**सुप्रजाः**) उत्तम प्रजायुक्त आप (**प्रजाः**) प्रजाजनों को (**प्रजनयन्**) प्रकट करते हुए (**रायः**) धन की (**पोषेण**) दृढ़ता के साथ (**यजमानम्**) यज्ञादि अच्छे कर्मों के करने वाले पुरुष को (**अभि**) (**परि**) (**इहि**) सर्वथा धन की वृद्धि से युक्त कीजिये (**मन्थी**) वाद-विवाद के मन्थन करने और (**दिवा**) सूर्य्य वा (**पृथिव्या**) पृथिवी के तुल्य (**सङ्गमानः**) धीरतादि गुणों में वर्तने वाले आप (**मन्थिनः**) सदसद्विवेचन करने योग्य गुणों के (**अधिष्ठानम्**) आधार के समान (**असि**) हो, इस कारण तुम्हारी (**मन्थिशोचिषा**) सूर्य्य की दीप्ति के समान न्यायदीप्ति से (**मर्कः**) मृत्यु देने वाला अन्यायी (**निरस्तः**) निवृत्त होवे॥१८॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। न्यायाधीश राजा को चाहिये कि धर्म्म से यज्ञ करने वाले सत्पुरुष पुरोहित के समान प्रजा का निरन्तर पालन करे॥१८॥

ये देवास इत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ राजसभ्यजनकृत्यमाह॥

अब राजा और सभासदों के काम अगले मन्त्र में कहे हैं॥

ये देवासो दिव्येकादश स्थ पृथिव्यामध्येकादश स्थ।
अप्सुक्षितो महिनैकादश स्थ ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम्॥१९॥

ये। देवासः। दिवि। एकादश। स्थ। पृथिव्याम्। अधि। एकादश। स्थ। अप्सुक्षित इत्यप्सुऽक्षितः। महिना। एकादश। स्थ। ते। देवासः। यज्ञम्। इमम्। जुषध्वम्॥१९॥

पदार्थः-(**ये**) (**देवासः**) दिव्यगुणयुक्ताः (**दिवि**) विद्युति (**एकादश**) प्राणापानोदानव्यानसमाननागकूर्म्म-कृकलदेवदत्तधनञ्जयजीवाः (**स्थ**) सन्ति, अत्र पुरुषव्यत्ययः। (**पृथिव्याम्**) भूमौ (**अधि**) उपरिभावे (**एकादश**) पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशादित्यचन्द्रनक्षत्राहङ्कारमहत्तत्त्वप्रकृतयः (**स्थ**) सन्ति (**अप्सुक्षितः**) प्राणेषु क्षयन्ति निवसन्ति ते (**महिना**) महिम्ना (**एकादश**) श्रोत्रत्वक्चक्षूरसनाघ्राणवाक्पाणिपादपायूपस्थमनांसि (**स्थ**) सन्ति (**ते**) (**देवासः**) राजसभासदो विद्वांसः (**यज्ञम्**) राजप्रजासम्बद्धव्यवहारम् (**इमम्**) प्रत्यक्षम् (**जुषध्वम्**) सेवध्वम्॥ अयं मन्त्रः (शत०(४।२।२।९) व्याख्यातः॥१९॥

अन्वयः-ये महिना स्वमहिम्ना दिव्येकादश देवासः स्थ सन्ति, पृथिव्यामध्येकादश स्थ सन्ति, अप्सुक्षितश्चैकादश स्थ सन्ति, ते यथा स्वस्वकर्म्मसु वर्त्तन्ते, तद्वद्वर्त्तमाना हे देवासो राजसभायाः सभ्यजना! यूयमिमं यज्ञं जुषध्वम्॥१९॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा स्वकर्म्मणि प्रवर्त्तमाना इमेऽन्तरिक्षादिषु पदार्थाः सन्ति, तथा सभाजनैस्स्वन्यायकर्म्मणि प्रवर्तितव्यमिति॥१९॥

पदार्थः-(**ये**) जो (**महिना**) अपनी महिमा से (**दिवि**) विद्युत् के स्वरूप में (**एकादश**) ग्यारह अर्थात् प्राण, अपान, उदान, व्यान, समान, नाग, कूर्म्म, कृकल, देवदत, धनञ्जय और जीवात्मा (**देवासः**) दिव्यगुणयुक्त देव (**स्थ**) हैं, (**पृथिव्याम्**) भूमि के (**अधि**) ऊपर (**एकादश**) ग्यारह अर्थात् पृथिवी, जल, अग्नि, पवन, आकाश, आदित्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, अहंकार महत्तत्त्व और प्रकृति (**स्थ**) हैं तथा (**अप्सुक्षितः**) प्राणों में ठहरने वाले

(एकादश) ग्यारह श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, नासिका, वाणी, हाथ, पांव, गुदा, लिङ्ग और मन **(स्थ)** हैं, **(ते)** वे जैसे अपने-अपने कामों में वर्त्तमान हैं, वैसे हे **(देवासः)** राजसभा के सभासदो! आप लोग यथायोग्य अपने-अपने कामों में वर्त्तमान होकर **(इमम्)** इस **(यज्ञम्)** राज और प्रजा सम्बन्धी व्यवहार का **(जुषध्वम्)** सेवन किया करें॥१९॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे अपने-अपने कामों में प्रवृत्त हुए अन्तरिक्षादिकों में सब पदार्थ हैं, वैसे राजसभासदों को चाहिये कि अपने-अपने न्यायमार्ग में प्रवृत्त रहें॥१९॥

उपयामगृहीतोऽसीत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः। यज्ञो देवता। निचृदार्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

अथ राज्ञां विदुषां चोपदेशप्रकारमाह॥

अब राजा और विद्वानों के उपदेश की रीति अगले मन्त्र में कही है॥

उपयामगृहीतोऽस्याग्रयणोऽसि स्वाग्रयणः। पाहि यज्ञं पाहि यज्ञपतिं विष्णुस्त्वामिन्द्रियेण पातु विष्णुं त्वं पाह्यभि सवनानि पाहि॥२०॥

उपयामगृहीत इत्युपयामऽगृहीतः। असि। आग्रयणः। असि। स्वाग्रयण इति सुऽआग्रयणः। पाहि। यज्ञम्। पाहि। यज्ञम्। पाहि। यज्ञपतिमिति यज्ञऽपतिम्। विष्णुः। त्वाम्। इन्द्रियेण। पातु। विष्णुम्। त्वम्। पाहि। अभि। सवनानि। पाहि॥२०॥

पदार्थः-**(उपयामगृहीतः)** विनयादिराजगुणैर्युक्तः **(असि)** **(आग्रयणः)** समन्तादग्राणि विज्ञानयुक्तानि प्रशस्तानि कर्म्माण्ययते सः। **शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्।** [अष्टा०वा०६.१.९१] इति पररूपम्। **(असि)** **(स्वाग्रयणः)** शोभनश्चासावाग्रयणश्च तद्वत् **(पाहि)** **(यज्ञम्)** राजप्रजापालकम् **(पाहि)** **(यज्ञपतिम्)** संगतस्य न्यायस्य पालकम् **(विष्णुः)** सकलशुभगुणकर्म्मव्यापी विद्वान् **(त्वाम्)** **(इन्द्रियेण)** मनसा धनेन वा। **इन्द्रियमिति धननामसु पठितम्।** (निघं०२।१०) **(पातु)** **(विष्णुम्)** विद्वांसम् **(त्वम्)** न्यायाधीशः **(पाहि)** **(अभि)** **(सवनानि)** ऐश्वर्य्याणि **(पाहि)**॥ अयं मन्त्रः (शत०(४।२।२।९-१९) व्याख्यातः॥२०॥

अन्वयः-हे सभापते राजन् उपदेशक वा! यतस्त्वमुपयामगृहीतोऽस्यतो यज्ञम्पाहि, स्वाग्रयण इवाग्रयणोसि, तस्माद् यज्ञपतिं पाहि। अयं विष्णुरिन्द्रियेण त्वां पातु त्वमेनं विष्णुम्पाहि सवनान्यभिपाहि॥२०॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। राज्ञो विदुषां च योग्यतास्ति ते सततं राज्योन्नतिं कुर्य्युर्नहि राज्योन्नत्या विना विद्वांसो स्वास्थ्येन विद्याप्रचारयितुमुपदेष्टुं च शक्नुवन्ति, न खलु विदुषां संगोपदेशाभ्यां विना राज्यं रक्षितुमर्हति, न खलु राजप्रजोत्तमविदुषां परस्परं प्रीतिमन्तरैश्वर्य्योन्नतिरैश्वर्य्योन्नत्या विनाऽऽनन्दश्च सततं जायते॥२०॥

पदार्थः-हे सभापते राजन् वा उपदेश करने वाले! जिस कारण आप **(उपयामगृहीतः)** विनय आदि राजगुणों वा वेदादि शास्त्रबोध से युक्त **(असि)** हैं, इससे **(यज्ञम्)** राजा और प्रजा की पालना कराने हारे यज्ञ को **(पाहि)** पालो और **(स्वाग्रयणः)** जैसे उत्तम विज्ञानयुक्त कर्म्मों को पहुँचाने वाले होते हैं, वैसे **(आग्रयणः)** उत्तम विचारयुक्त कर्म्मों को प्राप्त होने वाले हूजिये, इससे **(यज्ञपतिम्)** यथावत् न्याय की रक्षा करने वाले को **(पाहि)** पालो। यह **(विष्णुः)** जो समस्त अच्छे गुण और कर्म्मों को ठीक-ठीक जानने वाला विद्वान् है, वह **(इन्द्रियेण)** मन

और धन से **(त्वाम्)** तुझे **(पातु)** पाले और तुम उस **(विष्णुम्)** विद्वान् की **(पाहि)** रक्षा करो **(सवनानि)** ऐश्वर्य्य देने वाले कामों की **(अभि)** सब प्रकार से **(पाहि)** रक्षा करो॥२०॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। राजा और विद्वानों को योग्य है कि वे निरन्तर राज्य की उन्नति किया करें, क्योंकि राज्य की उन्नति के विना विद्वान् लोग सावधानी से विद्या का प्रचार और उपदेश भी नहीं कर सकते और न विद्वानों के संग और उपदेश के विना कोई राज्य की रक्षा करने के योग्य होता है तथा राजा, प्रजा और उत्तम विद्वानों की परस्पर प्रीति के विना ऐश्वर्य्य की उन्नति और ऐश्वर्य के विना आनन्द भी निरन्तर नहीं हो सकता॥२०॥

सोमः पवत इत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः। सोमो देवता। स्वराट् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। एष त इत्यस्य याजुषी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

अथ राजकृत्यमाह।

अब राजा का कर्म्म अगले मन्त्र में कहा है॥

सोमः॑ पवते सोमः॑ पवते॒ऽस्मै ब्रह्म॑णे॒ऽस्मै क्ष॒त्राया॒स्मै सु॒न्व॒ते यज॑मानाय पवतऽइ॒षऽऊ॒र्ज्जे पव॑ते॒ऽद्भ्यऽओष॑धीभ्यः पवते॒ द्यावा॑पृथि॒वाभ्या॑ पवते सुभू॒ताय॑ पवते॒ विश्वे॑भ्यस्त्वा दे॒वेभ्य॑ऽए॒ष ते॒ योनि॒र्विश्वे॑भ्यस्त्वा दे॒वेभ्यः॑॥ २१॥

सोमः॑। प॒व॒ते॒। सोमः॑। प॒व॒ते॒। अ॒स्मै। ब्रह्म॑णे। अ॒स्मै। क्ष॒त्राय॑। अ॒स्मै। सु॒न्व॒ते। यज॑मानाय। प॒व॒ते॒। इ॒षे। ऊ॒र्ज्जे। प॒व॒ते॒। अ॒द्भ्यऽइत्य॒त्ऽभ्यः। ओष॑धीभ्यः। प॒व॒ते॒। द्यावा॑पृथि॒वीभ्या॑म्। प॒व॒ते॒। सु॒भू॒तायेति॑ सुऽभू॒ताय॑। प॒व॒ते॒। विश्वे॑भ्यः। त्वा॒। दे॒वेभ्यः॑। ए॒षः। ते॒। योनिः॑। विश्वे॑भ्यः। त्वा॒। दे॒वेभ्यः॑॥ २१॥

पदार्थः-**(सोमः)** सोम्यगुणसम्पन्नो राजा **(पवते)** विजानीयात्, लेट्प्रयोगः **(सोमः)** राजसभायाः सभासत् प्रजाजनो वा **(पवते)** पूतो भवेत् **(अस्मै)** प्रत्यक्षाय **(ब्रह्मणे)** परमेश्वराय वेदाय वा **(अस्मै)** **(क्षत्राय)** राज्याय क्षत्रियाय वा **(अस्मै)** **(सुन्वते)** सर्वविद्यासिद्धान्तं निष्पादयते **(यजमानाय)** संगच्छमानाय **(पवते)** **(इषे)** अन्नाय **(ऊर्ज्जे)** पराक्रमाय **(पवते)** **(अद्भ्यः)** जलेभ्यः प्राणेभ्यो वा **(ओषधीभ्यः)** सोमादिभ्यः **(पवते)** **(द्यावापृथिवीभ्याम्)** सूर्य्यभूमिभ्याम् **(पवते)** **(सुभूताय)** सुष्ठु सत्याय व्यवहाराय **(पवते)** **(विश्वेभ्यः)** समस्तेभ्यः **(त्वा)** त्वाम् **(देवेभ्यः)** दिव्येभ्यो गुणेभ्यः **(एषः)** राजधर्म्मगुणग्रहणम् **(ते)** तव **(योनिः)** वसतिः **(विश्वेभ्यः)** अखिलेभ्यः **(त्वा)** त्वाम् **(देवेभ्यः)** विद्वद्भ्यः॥ अयं मन्त्रः (शत०(४। २। २। १२-१६॥ तथा ब्रा० ३। १-९) व्याख्यातः॥२१॥

अन्वयः-हे विद्वांसः! यथाऽयं सोमोऽस्मै ब्रह्मणे पवतेऽस्मै क्षत्राय पवतेऽस्मै सुन्वते यजमानाय पवत इष ऊर्ज्जे पवतेऽद्भ्य ओषधीभ्यः पवते द्यावापृथिवीभ्यां पवते सुभूताय पवते, तद्वत् सोमः सभ्यजनः प्रजाजनोऽप्येतस्मै सर्वस्मै पवताम्। हे राजन्! यस्य ते तवैष योनिरस्ति, तं त्वां विश्वेभ्यो देवेभ्यो वयं स्वीकुर्म्मस्तथा विश्वेभ्यो गुणेभ्यश्च त्वा त्वामङ्गीकुर्महे॥२१॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा चन्द्रलोकः सर्वस्मै जगते हितकारी वर्त्तते, यथा च राजा

सभ्यजनप्रजाजनाभ्यां सह तदुपकाराय धर्म्मानुकूलं व्यवहारमाचरति, तथैव सभ्यजनप्रजाजनौ राज्ञा सह वर्त्तेताम्। य उत्तमव्यवहारगुणकर्म्मानुष्ठाता भवति, स एव राजा सभ्यजनश्च न्यायाधीशो भवितुमर्हति। यो धर्म्मात्मा जनः स एव प्रजायामग्र्यो गुणनीयोऽस्त्येवमेते त्रयः परस्परं प्रीत्या पुरुषार्थेन विद्यादिगुणेभ्यः पृथिव्यादिपदार्थेभ्यश्चाखिलं प्राप्तुं शक्नुवन्ति॥२१॥

पदार्थः-हे विद्वान् लोगो! जैसे यह **(सोमः)** सोम्यगुण सम्पन्न राजा **(अस्मै)** इस **(ब्रह्मणे)** परमेश्वर वा वेद को जानने के लिये **(पवते)** पवित्र होता है, **(अस्मै)** इस **(क्षत्राय)** क्षत्रिय धर्म के लिये **(पवते)** ज्ञानवान् होता है, **(अस्मै)** इस **(सुन्वते)** समस्त विद्या के सिद्धान्त को निष्पादन **(यजमानाय)** और उत्तम संग करने हारे विद्वान् के लिये **(पवते)** निर्मल होता है, **(इषे)** अन्न के गुण और **(ऊर्ज्जे)** पराक्रम के लिये **(पवते)** शुद्ध होता है, **(अद्भ्यः)** जल और प्राण वा **(ओषधीभ्यः)** सोम आदि ओषधियों को **(पवते)** जानता है, **(द्यावापृथिवाभ्यीम्)** सूर्य्य और पृथिवी के लिये **(पवते)** शुद्ध होता है, **(सुभूताय)** अच्छे व्यवहार के लिये **(पवते)** बुरे कामों से बचता है, वैसे **(सोमः)** सभाजन वा प्रजाजन सबको यथोक्त जाने-माने और आप भी वैसा पवित्र रहे। हे राजन् सभ्यजन वा प्रजाजन! जिस **(ते)** आप का **(एषः)** यह राजधर्म्म **(योनिः)** घर है, उस **(त्वा)** आप को **(विश्वेभ्यः)** समस्त **(देवेभ्यः)** विद्वानों के लिये तथा **(त्वा)** आप को **(विश्वेभ्यः)** सम्पूर्ण दिव्यगुणों के लिये हम लोग स्वीकार करते हैं॥२१॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे इन्द्रलोक सब जगत् के लिये हितकारी होता है और जैसे राजा सभा के जन और प्रजाजनों के साथ उनके उपकार के लिये धर्म्म के अनुकूल व्यवहार का आचरण करता है, वैसे ही सभ्य पुरुष और प्रजाजन राजा के साथ वर्त्तें। जो उत्तम व्यवहार, गुण और कर्म का अनुष्ठान करने वाला होता है, वही राजा और सभा-पुरुष न्यायकारी हो सकता है तथा जो धर्मात्मा जन है, वही प्रजा में अग्रगण्य समझा जाता है। इस प्रकार ये तीनों परस्पर प्रीति के साथ पुरुषार्थ से विद्या आदि गुण और पृथिवी आदि पदार्थों से अखिल सुख को प्राप्त हो सकते हैं॥२१॥

उपयामगृहीतोऽसीत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

कीदृशं जनं सेनापतिं कुर्य्यादित्युपदिश्यते॥

अब कैसे मनुष्य को सेनापति करे, यह अगले मन्त्र में कहा है॥

उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा बृहद्वते वयस्वतऽउक्थाव्यं गृह्णामि। यत्तऽइन्द्र बृहद्वयस्तस्मै त्वा विष्णवे त्वैष ते योनिरुक्थेभ्यस्त्वा देवेभ्यस्त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामि॥२२॥

उपयामगृहीत इत्युपयामऽगृहीतः। असि। इन्द्राय। त्वा। बृहद्वत इति बृहत्ऽवते। वयस्वते। उक्थाव्यमित्युक्थऽअव्यम्। गृह्णामि। यत्। ते। इन्द्र। बृहत्। वयः। तस्मै। त्वा। विष्णवे। त्वा। एषः। ते। योनिः। उक्थेभ्यः। त्वा। देवेभ्यः। त्वा। देवाव्यमिति देवऽअव्यम्। यज्ञस्य। आयुषे। गृह्णामि॥२२॥

पदार्थः-**(उपयामगृहीतः)** सुनियमैरधीतविद्यः **(असि)** **(इन्द्राय)** परमैश्वर्यवते **(त्वा)** त्वाम् **(बृहद्वते)** प्रशस्तानि बृहन्ति कर्म्माणि यस्य तस्मै **(वयस्वते)** बहु जीवनं विद्यते यस्य तस्मै **(उक्थाव्यम्)** प्रशंसार्हाणि स्तोत्राणि

शस्त्रविशेषाणि वा तस्य तमिव सेनापतिम् **(गृह्णामि)** **(यत्)** **(ते)** तव **(इन्द्र)** **(बृहत्)** **(वयः)** जीवनम् **(तस्मै)** **(त्वा)** त्वाम् **(विष्णवे)** परमेश्वराय यज्ञाय वा **(त्वा)** त्वाम् **(एषः)** **(ते)** तव **(योनिः)** स्थित्यर्थं स्थानविशेषः **(उक्थेभ्यः)** प्रशंसनीयेभ्यो वेदोक्तेभ्यः कर्म्मभ्यः **(त्वा)** त्वाम् **(देवेभ्यः)** विद्वद्भ्यो दिव्यगुणेभ्यो वा **(त्वा)** त्वाम् **(देवाव्यम्)** उक्तानां देवानां पालकम् **(यज्ञस्य)** राज्यपालनादेः **(आयुषे)** जीवनाय **(गृह्णामि)**॥ अयं मन्त्रः (शत०(४। २। ३। १०-११) व्याख्यातः॥२२॥

अन्वयः-धर्मार्थकाममोक्षानिच्छुरहं हे इन्द्र सेनापते! त्वमुपयामगृहीतोऽस्यतो बृहद्वते वयस्वत इन्द्रायोक्थाव्यं त्वा त्वां गृह्णामि। यत् ते बृहत् वयस्तस्मै तत् पालनाय विष्णवे त्वा त्वां गृह्णामि। एष सेनाधिकारस्ते योनिरस्ति, उक्थेभ्यस्त्वा त्वां देवेभ्यो देवाव्यं त्वा त्वां यज्ञस्यायुषे वर्द्धनायापि गृह्णामि॥२२॥

भावार्थः-सर्ववेत्ता विद्वान् राज्यव्यवहारे सैन्यवीराणां पालनाय सुशिक्षितं शस्त्रास्त्रपरमप्रवीणं यज्ञकर्म्मानुष्ठातारं वीरपुरुषं सेनापतित्वेऽभियुञ्जीयात्। सभापतिसेनापती परस्परानुमत्या राज्यं यज्ञं च वर्द्धयेतामिति॥२२॥

पदार्थः-हे **(इन्द्र)** सेनापते! तू **(उपयामगृहीतः)** अच्छे नियमों से विद्या को पढ़ने वाला **(असि)** है, इस हेतु से **(बृहद्वते)** जिसके अच्छे बड़े-बड़े कर्म्म हैं **(वयस्वते)** और जिसकी दीर्घ आयु है, उस **(इन्द्राय)** परमैश्वर्य्यवाले सभापति के लिये **(उक्थाव्यम्)** प्रशंसनीय स्तोत्र वा विशेष शस्त्रविद्या वाले **(त्वा)** तेरा **(गृह्णामि)** ग्रहण जैसे मैं करता हूं, वैसे **(यत्)** जो **(ते)** तेरा **(बृहत्)** अत्यन्त **(वयः)** जीवन है, **(तस्मै)** उसके पालन करने के अर्थ और **(विष्णवे)** ईश्वरज्ञान वा वेदज्ञान के लिये **(त्वा)** तुझे **(गृह्णामि)** स्वीकार करता हूं और **(एषः)** यह सेना का अधिकार **(ते)** तेरा **(योनिः)** स्थित होने के लिये स्थान है। हे सेनापते! **(उक्थेभ्यः)** प्रशंसा योग्य वेदोक्त कर्मों के लिये **(त्वा)** तुझे **(देवेभ्यः)** और विद्वानों वा दिव्य गुणों के लिये **(देवाव्यम्)** उनके पालन करने वाले **(त्वा)** तुझ को **(यज्ञस्य)** राज्यपालनादि व्यवहार के **(आयुषे)** बढ़ाने के लिये **(गृह्णामि)** ग्रहण करता हूं॥२२॥

भावार्थः-सब विद्याओं के जानने वाले विद्वान् को योग्य है कि राज्यव्यवहार में सेना के वीर पुरुषों की रक्षा करने के लिये अच्छी शिक्षायुक्त, शस्त्र और अस्त्र विद्या में परम प्रवीण, यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले वीर पुरुष को सेनापति के काम में युक्त करें और सभापति तथा सेनापति को चाहिये कि परस्पर सम्मति कर के राज्य और यज्ञ को बढ़ावें॥२२॥

मित्रावरुणाभ्यां त्वेत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। मित्रावरुणाभ्यामित्यस्यानुष्टुप्, इन्द्राग्निभ्यामित्यस्य प्राजापत्यानुष्टुप्, इन्द्रावरुणाभ्यामित्यस्य स्वराट् साम्न्यनुष्टुप् छन्दांसि। गान्धारः स्वरः। इन्द्राबृहस्पतिभ्यामित्यस्य भुरिगार्ची गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥ इन्द्राविष्णुभ्यामित्यस्य भुरिक् साम्न्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरश्च॥

सर्वविद्याप्रवीणं सभापतिं कुर्य्यादित्युपदिश्यते॥

सब विद्याओं में प्रवीण पुरुष को सभा का अधिकारी करे, यह अगले मन्त्र में कहा है॥

मि॒त्रावरु॑णाभ्यां त्वा दे॒वा॒व्यं॒ य॒ज्ञस्यायु॑षे गृह्णामीन्द्रा॑य त्वा दे॒वा॒व्यं॒ य॒ज्ञस्यायु॑षे गृह्णामीन्द्रा॒ग्निभ्यां॑ त्वा दे॒वा॒व्यं॒ य॒ज्ञस्यायु॑षे गृह्णामीन्द्रा॒वरु॑णाभ्यां त्वा दे॒वा॒व्यं॒ य॒ज्ञस्यायु॑षे

गृह्णामीन्द्राबृहस्पतिभ्यां त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्राविष्णुभ्यां त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामि॥२३॥

मित्रावरुणाभ्याम्। त्वा। देवाव्यमिति देवऽअव्यम्। यज्ञस्य। आयुषे। गृह्णामि। इन्द्राय। त्वा। देवाव्यमिति देवऽअव्यम्। यज्ञस्य। आयुषे। गृह्णामि। इन्द्राग्निभ्यामितीन्द्राग्निऽभ्याम्। त्वा। देवाव्यमिति देवऽअव्यम्। यज्ञस्य। आयुषे। गृह्णामि। इन्द्रावरुणाभ्याम्। त्वा। देवाव्यमिति देवऽअव्यम्। यज्ञस्य। आयुषे। गृह्णामि। इन्द्राबृहस्पतिभ्यामितीन्द्रा-बृहस्पतिऽभ्याम्। त्वा। देवाव्यमिति देवऽअव्यम्। यज्ञस्य। आयुषे। गृह्णामि। इन्द्राविष्णुभ्यामितीन्द्राविष्णुभ्यामितीन्द्रा-विष्णुऽभ्याम्। त्वा। देवाव्यमिति देवऽअव्यम्। यज्ञस्य। आयुषे। गृह्णामि॥२३॥

पदार्थः-(**मित्रावरुणाभ्याम्**) सख्युत्कृष्टाभ्याम् (**त्वा**) सभापतिं पूर्णविद्यमुपदेशकं वा (**देवाव्यम्**) यो देवानवति स देवावीस्तम्। **अवितृस्तृतन्त्रिभ्य ईः।** (उणा०३।१५८) इति रक्षणाद्यर्थादवधातोरीः प्रत्ययः। (**यज्ञस्य**) अग्निहोत्रादे राज्यपालनान्तस्य (**आयुषे**) उन्नत्यै (**गृह्णामि**) (**इन्द्राय**) परमैश्वर्य्यवते (**त्वा**) त्वाम् (**देवाव्यम्**) विद्वद्रक्षकम् (**यज्ञस्य**) सत्संगतिकरणस्य (**आयुषे**) (**गृह्णामि**) (**इन्द्राग्निभ्याम्**) विद्युत्प्रसिद्धाभ्यां वह्निभ्याम् (**त्वा**) त्वाम् (**देवाव्यम्**) दिव्यविद्याबोधकम् (**यज्ञस्य**) शिल्पविद्याकार्य्यसिद्धिकरस्य (**आयुषे**) (**गृह्णामि**) वृणोमि (**इन्द्रावरुणाभ्याम्**) विद्युज्जलाभ्याम् (**त्वा**) त्वाम् (**देवाव्यम्**) एतद्दिव्यविद्याव्यापकम् (**यज्ञस्य**) क्रियाकौशलसंगतस्य (**आयुषे**) (**गृह्णामि**) (**इन्द्राबृहस्पतिभ्याम्**) राजानूचानाभ्यां विद्वद्भ्याम् (**त्वा**) त्वाम् (**देवाव्यम्**) प्रशस्तयोगविद्याप्रापकम् (**यज्ञस्य**) योगविद्याप्रापकस्य विज्ञानस्य (**आयुषे**) (**गृह्णामि**) अङ्गीकरोमि (**इन्द्राविष्णुभ्याम्**) ईश्वरवेदज्ञानाभ्याम् (**त्वा**) त्वाम् (**देवाव्यम्**) ब्रह्मविदां तर्पकम् (**यज्ञस्य**) ज्ञानमयस्य (**आयुषे**) वृद्धये (**गृह्णामि**)॥ अयं मन्त्रः (शत०(४।२।३।१२-१८) व्याख्यातः॥२३॥

अन्वयः-हे सभापते! धर्मार्थकाममोक्षानिच्छुरहं यज्ञस्यायुषे मित्रावरुणाभ्यां देवाव्यं त्वां गृह्णामि। हे सेनापते विद्वन्! यज्ञस्यायुष इन्द्राय देवाव्यं त्वा गृह्णामि। हे शस्त्रास्त्रविद्याविद् यज्ञस्यायुष इन्द्राग्निभ्यां देवाव्यं त्वा त्वां गृह्णामि। हे शिल्पिन्! यज्ञस्यायुष इन्द्रावरुणाभ्यां देवाव्यं त्वा त्वां गृह्णामि तथा यज्ञस्यायुष इन्द्राबृहस्पतिभ्यां देवाव्यं त्वा त्वां गृह्णामि। हे विद्वन्! यज्ञस्यायुष इन्द्राविष्णुभ्यां देवाव्यं त्वा त्वां गृह्णामि॥२३॥

भावार्थः-प्रजाजनैः सकलशास्त्रप्रचाराय सर्वविद्याकुशलोऽतिशयितब्रह्मचर्य्यादिकर्म्मानुष्ठाता सभाध्यक्षः कर्त्तव्यः, सोऽपि प्रीत्या सकलशास्त्रं प्रचारयेत्॥२३॥

पदार्थः-हे सभापते! धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की इच्छा करने वाला मैं (**यज्ञस्य**) अग्निहोत्र से लेकर राज्य पालन पर्य्यन्त यज्ञ की (**आयुषे**) उन्नति होने के लिये (**मित्रावरुणाभ्याम्**) मित्र और उत्तम विद्यायुक्त पुरुषों के अर्थ (**देवाव्यम्**) विद्वानों की रक्षा करने वाले (**त्वा**) तुझको (**गृह्णामि**) स्वीकार करता हूं। हे सेनापते विद्वन्! (**यज्ञस्य**) सत्संगति करने की (**आयुषे**) उन्नति के लिये (**इन्द्राय**) परमैश्वर्य्यवान् पुरुष के अर्थ (**देवाव्यम्**) विद्वानों की रक्षा करने वाला (**त्वा**) तुझ को (**गृह्णामि**) ग्रहण करता हूं। हे शस्त्रास्त्रविद्या के जानने वाले प्रवीण! (**यज्ञस्य**) शिल्पविद्या के कामों की सिद्धि की (**आयुषे**) प्राप्ति के लिये (**इन्द्राग्निभ्याम्**) बिजुली और प्रसिद्ध आग के गुण प्रकाश होने के अर्थ (**देवाव्यम्**) दिव्य विद्या बोध की रक्षा करने वाले (**त्वा**) तुझको (**गृह्णामि**) ग्रहण करता हूं। हे शिल्पिन्! (**यज्ञस्य**) क्रिया-चतुराई का (**आयुषे**) ज्ञान होने के (**इन्द्रावरुणाभ्याम्**) बिजुली और जल के गुण प्रकाश

होने के अर्थ **(देवाव्यम्)** उन की विद्या जानने वाले **(त्वा)** तुझ को **(गृह्णामि)** ग्रहण करता हूं। हे अध्यापक! **(यज्ञस्य)** पढ़ने-पढ़ाने की **(आयुषे)** उन्नति के लिये **(इन्द्राबृहस्पतिभ्याम्)** राजा और शस्त्रवेत्ताओं के अर्थ **(देवाव्यम्)** प्रशंसित योगविद्या के जानने और प्राप्त कराने वाले **(त्वा)** तुझको **(गृह्णामि)** ग्रहण करता हूं। हे विद्वन्! **(यज्ञस्य)** विज्ञान की **(आयुषे)** बढ़ती के लिये **(इन्द्राविष्णुभ्याम्)** ईश्वर और वेदशास्त्र के जानने के अर्थ **(देवाव्यम्)** ब्रह्मज्ञानी को तृप्त करने वाले **(त्वा)** तुझको **(गृह्णामि)** ग्रहण करता हूं॥२३॥

भावार्थः-प्रजाजनों को उचित है कि सकल शास्त्र का प्रचार होने के लिये सब विद्याओं में कुशल और अत्यन्त ब्रह्मचर्य्य के अनुष्ठान करने वाले पुरुष को सभापति करें और यह वह सभापति भी परम प्रीति के साथ सकल शास्त्र का प्रचार करता कराता रहे॥२३॥

मूर्द्धानमित्यस्य भरद्वाज ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ विद्वत्कृत्यमाह॥

इसके अनन्तर विद्वानों का कर्म्म अगले मन्त्र में कहा है॥

मूर्द्धानं दिवोऽअरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृतऽआ जातमग्निम्।
कविꣳ सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः॥२४॥

मूर्द्धानम्। दिवः। अरतिम्। पृथिव्याः। वैश्वानरम्। ऋते। आ। जातम्। अग्निम्। कविम्। सम्राजमिति सम्ऽराजम्। अतिथिम्। जनानाम्। आसन्। आ। पात्रम्। जनयन्त। देवाः॥२४॥

पदार्थः-**(मूर्द्धानम्)** शिरोवद्वर्त्तमानम् **(दिवः)** द्योतमानस्य सूर्य्यस्य **(अरतिम्)** ऋच्छति प्राप्नोति तम् **(पृथिव्याः) (वैश्वानरम्)** यो विश्वान् नरानानन्दान् नयति तम्। **वैश्वानरः कस्माद्विश्वान्नरान्नयति विश्व एनं नरा नयन्तीति वापि वा विश्वानर एव स्यात्। (निरु०७।२१)। (ऋते)** सत्ये, **ऋतमिति सत्यनामसु पठितम्।** (निघं०३।१०) **(आ)** समन्तात् **(जातम्)** प्रसिद्धम् **(अग्निम्)** शुभगुणैः प्रकाशमानम् **(कविम्)** क्रान्तदर्शनम् **(सम्राजम्)** चक्रवर्त्तिनमिव **(अतिथिम्)** अतिथिवत्पूज्यम् **(जनानाम्)** सत्पुरुषाणाम् **(आसन्)** मुखे, अत्रास्य शब्दस्य **पद्दन्नोमास०** (अष्टा०६।१।६३) अनेनासन्नादेशः। **सुपां सुलुक्०** (अष्टा०७।१।३९) इति सप्तम्येकवचनस्य लुक्। **(आ)** समन्तात् **(पात्रम्)** पाति रक्षति समस्तं शिल्पव्यवहारं यस्तम् **(जनयन्त)** उत्पादयन्तु, अत्र लोडर्थे लङडभावश्च। **(देवाः)** धनुर्वेदविदो विद्वांसः॥ अयं मन्त्रः (शत०(४।२।४।२४॥ तथा ब्रा० ५। १) व्याख्यातः॥२४॥

अन्वयः-यथा देवा धनुर्विदो विद्वांसो धनुर्वेदशिक्षया दिवो मूर्द्धानं पृथिव्या अरतिमृमाजातं वैश्वानरं जनानामतिथिमासन् पात्रं कविमग्निं सम्राजमिवाजनयन्त तथा सर्वैरनुष्ठेयम्॥२४॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। यथा सत्पुरुषाः धनुर्वेदज्ञाः परोपकारिणो विद्वांसो धनुर्वेदोक्तक्रियाभिः यानेषु शस्त्रास्त्रविद्यायां चानेकधाग्निं प्रदीप्य शत्रून् विजयन्ते, तथैवान्यैरपि सर्वैर्जनैराचरणीयम्॥२४॥

पदार्थः-जैसे **(देवाः)** धनुर्वेद के जानने वाले विद्वन् लोग उस धनुर्वेद की शिक्षा से **(दिवः)** प्रकाशमान सूर्य के **(मूर्द्धानम्)** शिर के समान **(पृथिव्याः)** पृथिवी के गुणों को **(अरतिम्)** प्राप्त होने वाले **(ऋते)** सत्य मार्ग में **(आजातम्)** सत्य व्यवहार में अच्छे प्रकार प्रसिद्ध **(वैश्वानरम्)** समस्त मनुष्यों को आनन्द पहुंचाने और **(जनानाम्)**

सत्पुरुषों के **(अतिथिम्)** अतिथि के समान सत्कार करने योग्य और **(आसन्)** अपने शुद्ध यज्ञरूप मुख में **(पात्रम्)** समस्त शिल्प-व्यवहार की रक्षा करने **(कविम्)** और अनेक प्रकार से प्रदीप्त होने वाले **(अग्निम्)** शुभगुण प्रकाशित अग्नि को **(सम्राजम्)** एकचक्र राज्य करने वाले के समान **(आ)** अच्छे प्रकार से **(जनयन्त)** प्रकाशित करते हैं, वैसे सब मनुष्यों को करना योग्य है॥२४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे सत्पुरुष धनुर्वेद के जानने वाले परोपकारी विद्वान् लोग धनुर्वेद में कही हुई क्रियाओं से यानों और शस्त्रास्त्र विद्या में अनेक प्रकार से अग्नि को प्रदीप्त कर शत्रुओं को जीता करते हैं, वैसे ही अन्य सब मनुष्यों को भी अपना आचरण करना योग्य है॥२४॥

उपयामगृहीत इत्यस्य भरद्वाज ऋषिः। वैश्वानरो देवतो। याजुष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः।
ध्रुवोऽसीत्यस्य ध्रुवमित्यस्य च विराडार्षी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

अथेश्वरगुणा उपदिश्यन्ते॥

अब अगले मन्त्र में ईश्वर के गुणों का उपदेश किया है॥

उपयामगृहीतोऽसि ध्रुवोऽसि ध्रुवक्षितिर्ध्रुवाणां ध्रुवतमोऽच्युतानामच्युतक्षित्तमऽएष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा। ध्रुवं ध्रुवेण मनसा वाचा सोममवनयामि। अथा नऽइन्द्रऽइद्विशोऽसपत्नाः समनसस्करत्॥२५॥

उपयामगृहीत इत्युपयामऽगृहीतः। असि। ध्रुवः। असि। ध्रुवक्षितिरिति ध्रुवऽक्षितिः। ध्रुवाणाम्। ध्रुवतम इति ध्रुवऽतमः। अच्युतानाम्। अच्युतक्षित्तम इत्यच्युतक्षित्ऽतमः। एषः। ते। योनिः। वैश्वानराय। त्वा। ध्रुवम्। ध्रुवेण। मनसा। वाचा। सोमम्। अव। नयामि। अथ। नः। इन्द्रः। इत्। विशः। असपत्नाः। समनस इति सऽमनसः। करत्॥२५॥

पदार्थः-**(उपयामगृहीतः)** यमानां समूहो यामम्, उपगतं च तद्यामं चोपयाममुपयामेन गृहीत उपयामगृहीतः परमेश्वरः **(असि)** **(ध्रुवः)** स्थिरः **(असि)** **(ध्रुवक्षितिः)** ध्रुवा क्षितयो भूमयो यस्मिन् **(ध्रुवाणाम्)** आकाशादीनां मध्ये **(ध्रुवतमः)** अतिशयेन ध्रुवो ध्रुवतमः **(अच्युतानाम्)** कारणजीवानाम् **(अच्युतक्षित्तमः)** अच्युतं क्षयति निवासयति सोऽतिशयितः **(एषः)** सत्यमार्गप्रकाशः **(ते)** तव **(योनिः)** स्थानमिव **(वैश्वानराय)** विश्वेषां नराणां नायकाय सत्यप्रकाशकाय **(त्वा)** त्वाम् **(ध्रुवम्)** निश्चयम् **(ध्रुवेण)** निष्कम्पेण **(मनसा)** अन्तःकरणेन **(वाचा)** वाण्या **(सोमम्)** सकलजगतः प्रसवितारम् **(अव)** **(नयामि)** स्वीकरोमि **(अथ)** अनन्तरम् **(नः)** अस्माकम् **(इन्द्रः)** सर्वदुःखविदारकः **(इत्)** एव **(विशः)** प्रजाः **(असपत्नाः)** अजातशत्रवः **(समनसः)** समानं मनः स्वान्तं यासां ताः **(करत्)** करोतु। लेट्प्रयोगोऽयम्॥ अयं मन्त्रः (शत०(४।२।४।२४) व्याख्यातः॥२५॥

अन्वयः-हे परमेश्वर! त्वमुपयामगृहीतोऽसि ध्रुवोऽसि ध्रुवक्षितिर्ध्रुवाणां ध्रुवतमस्तथा चाच्युतानामच्युतक्षित्तमोऽसि। एष ते योनिरस्ति। अस्मै वैश्वानराय राज्यप्रकाशकाय ध्रुवेण मनसा ध्रुवया वाचा च सोमं त्वां ध्रुवमवनयामि। अथेन्द्रो भवान् नो विशोऽसपत्नाः समनस इदेव करत् करोतु॥२५॥

भावार्थः-योऽनित्यानां नित्यो ध्रुवाणामपि ध्रुवः परमेश्वरस्तस्य सर्वजगत्प्रेरकस्येश्वरस्य प्राप्त्या योगाभ्यासानुष्ठानेन चैव विज्ञानं जायते नान्यथा॥२५॥

पदार्थः-हे परमेश्वर! आप **(उपयामगृहीतः)** शास्त्रप्राप्त नियमों से स्वीकार किये जाते **(असि)** हैं, ऐसे ही **(ध्रुवः)** स्थिर **(असि)** हैं कि **(ध्रुवक्षितिः)** जिन आप में भूमि स्थिर हो रही है और **(ध्रुवाणाम्)** स्थिर आकाश आदि पदार्थों में **(ध्रुवतमाः)** अत्यन्त स्थिर **(असि)** हैं तथा **(अच्युतानाम्)** जगत् का अविनाशी कारण और अनादि सिद्ध जीवों में **(अच्युतक्षित्तमः)** अतिशय करके अविनाशीपन बसाने वाले हैं। **(एषः)** यह सत्य के मार्ग का प्रकाश **(ते)** आप के **(योनिः)** निवास-स्थान के समान है। **(वैश्वानराय)** समस्त मनुष्यों को सत्य मार्ग में प्राप्त कराने वाले वा इस राज्यप्रकाश के लिये **(ध्रुवेण)** दृढ़ **(मनसा)** मन और **(वाचा)** वाणी से **(सोमम्)** समस्त जगत् के उत्पन्न कराने वाले **(त्वा)** आप को **(ध्रुवम्)** निश्चयपूर्वक जैसे हो वैसे **(अवनयामि)** स्वीकार करता हूं। **(अथ)** इसके अनन्तर **(इन्द्रः)** सब दुःख के विनाश करने वाले आप **(नः)** हमारे **(विशः)** प्रजाजनों को **(असपत्नाः)** शत्रुओं से रहित और **(समनसः)** एक मन अर्थात् एक दूसरे के चाहने वाले **(इत्)** ही **(करत्)** कीजिये॥ २५॥

भावार्थः-जो नित्य पदार्थों में नित्य और स्थिरों में भी स्थिर परमेश्वर है, उस समस्त जगत् के उत्पन्न करने वाले परमेश्वर की प्राप्ति और योगाभ्यास के अनुष्ठान से ही ठीक-ठीक ज्ञान हो सकता है, अन्यथा नहीं॥ २५॥

यस्त इत्यस्य देवश्रवा ऋषिः। यज्ञो देवता। स्वराड् ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

अथेश्वरो यज्ञानुष्ठातारमुपदिशति॥

अब ईश्वर यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले को उपदेश करता है॥

यस्ते॑ द्रप्स स्कन्द॑ति यस्ते॑ऽअ॒ꣳशुर्ग्राव॑च्युतो धि॒षण॑योरु॒पस्था॑त्। अ॒ध्व॒र्योर्वा॑ परि॑ वा॒ यः प॒वित्रा॒त्तं ते॑ जुहोमि॒ मन॑सा॒ वष॑ट्कृत॒ꣳ स्वाहा॑ दे॒वाना॑मुत्क्रम॑णमसि॥ २६॥

यः। ते॒। द्र॒प्सः। स्कन्द॑ति। यः। ते॒। अ॒ꣳशुः। ग्राव॑च्युत॒ इति॒ ग्राव॑ऽच्युतः। धि॒षण॑योः। उ॒पस्था॒दित्यु॒पऽस्था॑त्। अ॒ध्व॒र्य्योः। वा॒। परि॑। वा॒। यः। प॒वित्रा॑त्। तम्। ते॒। जु॒हो॒मि॒। मन॑सा। वष॑ट्कृत॒मिति॒ वष॑ट्ऽकृतम्। स्वाहा॑। दे॒वाना॑म्। उ॒त्क्रम॑ण॒मित्यु॒त्ऽक्रम॑णम्। अ॒सि॒॥ २६॥

पदार्थः-(यः) यजमानः **(ते)** तव **(द्रप्सः)** यज्ञपदार्थसमूहः। अत्र **वा शर्प्रकरणे खर्परे लोप इति विसर्जनीयलोपः। (अष्टा०** भा०वा०८।३।३६)। **(स्कन्दति)** अन्यान् प्रति गच्छति **(यः)** **(ते)** तव **(अंशुः)** संविभागः, अत्रामधातो रुः प्रत्ययः शकारागमश्च। **(ग्रावच्युतः)** ग्राव्णो मेघाच्च्युतः। **ग्रावेति मेघनामसु पठितम्।** (निघं०१।१०) **(धिषणयोः)** द्यावापृथिव्योः। **धिषणे इति द्यावापृथिवीनामसु पठितम्।** (निघं०३।३०) **(उपस्थात्)** समीपस्थात् **(अध्वर्य्योः)** **(वा)** होत्रादीनां समुच्चये **(परि)** सर्वतः **(वा)** शुद्धगुणानां समुच्चये **(यः)** शुद्धपदार्थसमूहः **(पवित्रात्)** निर्मलात् **(तम्)** **(ते)** तुभ्यम् **(जुहोमि)** ददामि **(मनसा)** सुविचारेण **(वषट्कृतम्)** संकल्पितमिव **(स्वाहा)** सत्यवाचा **(देवानाम्)** आप्तानां विदुषाम् **(उत्क्रमणम्)** ऊर्ध्वक्रमण तेज इव **(असि)**॥ अयं मन्त्रः (शत०(४।२।५।२५) व्याख्यातः॥ २६॥

अन्वयः-हे यज्ञपते! द्रप्स स्कन्दति वायुना सह सर्वत्र गच्छति, यश्च ते ग्रावाच्युतोंऽशुर्धिषणयोः पवित्रादुपस्थात् यो वा अध्वर्य्योः सकाशात् परितो वा प्रकाशते, यस्मात् तमहं ते स्वाहा मनसा वषट्कृतं जुहोमि, तत्फलदानेन तुभ्यं प्रयच्छामि, यतस्त्वं यज्ञानुष्ठाता देवानामुत्क्रमणमिवासि॥ २६॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कारः। होत्रादयो विद्वांसोऽतीव दृढया सामग्र्या यज्ञमनुष्ठीयमानान् सुरभियुक्तान् पदार्थानग्नौ प्रक्षिपन्ति, ते जलवायू संशोध्य मेघेन सह पृथिवीं प्राप्य सर्वान् रोगान्निवर्त्त्य सर्वान् प्राणिन आनन्दयन्ति। अत: सर्वैर्मनुष्यैरयं यज्ञ: सदा सेव्य:॥२६॥

पदार्थ:-हे यज्ञपते! **(य:)** जो **(ते)** तेरा **(द्रप्स:)** यज्ञ के पदार्थों का समूह **(स्कन्दति)** पवन के साथ सब जगह में प्राप्त होता है और **(य:)** जो **(ते)** तेरे यज्ञ से युक्त **(ग्रावच्युत:)** मेघमण्डल से छूटा हुआ **(अंशु:)** यज्ञ के पदार्थों का विभाग **(धिषणयो:)** प्रकाश और भूमि के **(पवित्रात्)** पवित्र **(उपस्थात्)** गोद के समान स्थान से **(वा)** अथवा **(य:)** जो **(अध्वर्य्यो:)** यज्ञ करने वालों से **(वा)** अथवा **(परि)** सब से प्रकाशित होता है, इससे **(तम्)** उस यज्ञ को मैं **(ते)** तेरे लिये **(स्वाहा)** सत्यवाणी और **(मनसा)** मन से **(वषट्कृतम्)** किये हुए संकल्प के समान **(जुहोमि)** देता हूं अर्थात् उसके फलदायक होने से तेरे लिये उस पदार्थ को पहुंचाता हूं, जिसलिये यज्ञ का अनुष्ठान करने हारा तू **(देवानाम्)** विद्वानों के लिये **(उत्क्रमणम्)** ऊंची श्रेणी को प्राप्त करने वाले ऐश्वर्य्य के समान **(असि)** है, इससे तुझ को सुख प्राप्त होता है॥२६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। होता आदि विद्वान् लोग अत्यन्त दृढ़ सामग्री से यज्ञ करते हुए जिन सुगन्धि आदि पदार्थों को अग्नि में छोड़ते हैं, वे पवन और जलादि पदार्थों को पवित्र कर उसके साथ पृथिवी पर आ सब प्रकार के रोगों को निवृत्त करके सब प्राणियों को आनन्द देते हैं। इस कारण सब मनुष्यों को इस यज्ञ का सदा सेवन करना चाहिये॥२६॥

प्राणायेत्यस्य देवश्रवा ऋषि:। यज्ञपतिर्देवता। प्राणायेत्यस्य चासुर्य्यनुष्टुप्, उदानायेत्यस्यासुर्य्युष्णिक्, वाचे म इत्यस्य साम्नी गायत्री, क्रतूदक्षाभ्यामित्यस्यासुरी गायत्री, श्रोत्राय मेत्यस्यासुर्य्यनुष्टुप्, चक्षुर्भ्यामित्यस्य चासुर्य्युष्णिक् छन्दांसि। अनुष्टुभो गान्धार:, गायत्र्या: षड्ज:, उष्णिज ऋषभश्च स्वरा:॥

पुनरध्ययनाध्यापनाख्ययज्ञकर्त्तुर्विषयान्तरमाह॥

फिर पठन-पाठन यज्ञ के करने वाले का विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

प्राणाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व व्यानाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वोदानाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व वाचे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व क्रतूदक्षाभ्यां मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व श्रोत्राय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व चक्षुर्भ्यां मे वर्चोदसौ वर्चसे पवेथाम्॥२७॥

प्राणाय। मे। वर्चोदा इति वर्च:ऽदा:। वर्चसे। पवस्व। व्यानायेति विऽआनाय। मे। वर्चोदा इति वर्च:ऽदा:। वर्चसे। पवस्व। उदानायेत्युत्ऽआनाय। मे। वर्चोदा इति वर्च:ऽदा:। वर्चसे। पवस्व। वाचे। मे। वर्चोदा इति वर्च:ऽदा:। वर्चसे। पवस्व। क्रतूदक्षाभ्याम्। मे। वर्चोदा इति वर्च:ऽदा:। वर्चसे। पवस्व। श्रोत्राय। मे। वर्चोदा इति वर्च:ऽदा:। वर्चसे। पवस्व। चक्षुर्भ्यामिति चक्षु:ऽभ्याम्। मे। वर्चोदसाविति वर्च:ऽदसौ। वर्चसे। पवेथाम्॥२७॥

पदार्थ:-**(प्राणाय)** प्राणति जीवयतीति प्राणो हृदयस्थो वायुस्तस्मै **(मे)** मम **(वर्चोदा:)** यथायोग्यं ददाति, तत्संबुद्धौ **(वर्चसे)** विद्याप्रकाशाय **(पवस्व)** पवित्रतया प्राप्नुहि **(व्यानाय)** सर्वशरीरगतवायवे **(मे)** मम **(वर्चोदा:)**

दीप्तिप्रदो जाठराग्निरिव **(वर्चसे)** अन्नाय। **वर्च इत्यन्ननामसु पठितम्।** (निघं०२।७) **(पवस्व)** **(उदानाय)** **(मे)** मम **(वर्चोदाः)** वर्चो विद्याबलं ददातीति **(वर्चसे)** पराक्रमाय **(पवस्व)** **(वाचे)** वाण्यै **(मे)** मम **(वर्चोदाः)** सत्यवक्तृत्वप्रदः **(वर्चसे)** प्रागल्भ्याय **(पवस्व)** प्रवर्त्तस्व **(क्रतूदक्षाभ्याम्)** प्रज्ञाबलाभ्याम् **(मे)** मम **(वर्चोदाः)** विज्ञानप्रदः **(वर्चसे)** शब्दार्थसम्बन्धविज्ञानाय **(पवस्व)** उपदिश **(श्रोत्राय)** शब्दज्ञानाय **(मे)** मम **(वर्चोदाः)** तज्ज्ञानदः **(वर्चसे)** अध्ययनदीप्त्यै **(पवस्व)** प्रापको भव **(चक्षुर्भ्याम्)** **(मे)** मम **(वर्चोदसौ)** सूर्य्याचन्द्रमसाविवातिथ्यध्यापकौ **(वर्चसे)** शुद्धसिद्धान्तप्रकाशाय **(पवेथाम्)** प्राप्नुतम्॥ अयं मन्त्रः (शत०(४।५।६।२) व्याख्यातः॥२७॥

अन्वयः- हे वर्चोदा अध्येतरध्यापक! त्वं मम प्राणाय वर्चसे पवस्व, हे वर्चोदा! मम व्यानाय वर्चसे पवस्व, हे वर्चोदा! मे ममोदनाय वर्चसे पवस्व, हे वर्चोदा मे मम वाचे वर्चसे पवस्व, हे वर्चोदसौ युवां मे मम चक्षुर्भ्यां वर्चसे पवेथाम्॥२७॥

भावार्थः-यो मनुष्यो विद्यावृद्धये पठनपाठनरूपं यज्ञं कर्म करोति, स सर्वपुष्टिसन्तुष्टिकरो भवत्यत एवं सर्वैरनुष्ठातव्यम्॥२७॥

पदार्थः-हे **(वर्चोदाः)** यथायोग्य विद्या पढ़ने-पढ़ाने रूप यज्ञकर्म करने वाले! आप **(मे)** मेरे **(प्राणाय)** हृदयस्थ जीवन के हेतु प्राणवायु और **(वर्चसे)** वेदविद्या के प्रकाश के लिये **(पवस्व)** पवित्रता से वर्त्तें। हे **(वर्चोदाः)** ज्ञानदीप्ति के देने वाले जाठराग्नि के समान आप **(मे)** मेरे **(व्यानाय)** सब शरीर में रहने वाले पवन और **(वर्चसे)** अन्न आदि पदार्थों के लिये **(पवस्व)** पवित्रता से प्राप्त होवें। हे **(वर्चोदाः)** विद्याबल देने वाले! आप **(मे)** **(उदानाय)** श्वास से ऊपर को आने वाले उदान-संज्ञक पवन और **(वर्चसे)** पराक्रम के लिये **(पवस्व)** ज्ञान दीजिये। हे **(वर्चोदाः)** सत्य बोलने का उपदेश करने वाले आप **(मे)** मेरी **(वाचे)** वाणी और **(वर्चसे)** प्रगल्भता के लिये **(पवस्व)** प्रवृत्त हूजिये। **(वर्चोदाः)** विज्ञान देने वाले आप **(मे)** मेरे **(क्रतूदक्षाभ्याम्)** बुद्धि और आत्मबल की उन्नति और **(वर्चसे)** अच्छे बोध के लिये **(पवस्व)** शिक्षा कीजिये। हे **(वर्चोदाः)** शब्दज्ञान के देने वाले यज्ञपति! आप **(मे)** मेरे **(श्रोत्राय)** शब्द ग्रहण करने वाले कर्णेन्द्रिय के लिये **(वर्चसे)** शब्दों के अर्थ और सम्बन्ध का **(पवस्व)** उपदेश करें। हे **(वर्चोदसौ)** सूर्य्य और चन्द्रमा के समान अतिथि और पढ़ाने वाले आप दोनों **(मे)** मेरे **(चक्षुर्भ्याम्)** नेत्रों के लिये **(वर्चसे)** शुद्ध सिद्धान्त के प्रकाश को **(पवेथाम्)** प्राप्त हूजिये॥२७॥

भावार्थः-जो विद्या की वृद्धि के लिये पठन-पाठन रूप यज्ञकर्म्म करने वाला मनुष्य है, वह अपने यज्ञ के अनुष्ठान से सब की पुष्टि तथा सन्तोष करने वाला होता है, इससे ऐसा प्रयत्न सब मनुष्यों को करना उचित है॥२७॥

आत्मन इत्यस्य देवश्रवा ऋषिः। यज्ञपतिर्देवता। ब्राह्मी बृहतीच्छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनस्तदेवाह॥

फिर भी उक्त विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

आत्मने मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वौजसे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वायुषे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व विश्वाभ्यो मे प्रजाभ्यो वर्चोदसौ वर्चसे पवेथाम्॥२८॥

आत्मने। मे। वर्चोदा इति वर्चःऽदाः। वर्चसे। पवस्व। ओजसे। मे। वर्चोदा इति वर्चःऽदाः। वर्चसे। पवस्व। आयुषे। मे। वर्चोदा इति वर्चःऽदाः। वर्चसे। पवस्व। विश्वाभ्यः। मे। प्रजाभ्य इति प्रऽजाभ्यः। वर्चोदसाविति वर्चःऽदसौ। वर्चसे। पवेथाम्॥२८॥

पदार्थः-(**आत्मने**) इच्छादिगुणसमवेताय स्वस्वरूपाय (**मे**) मम (**वर्चोदाः**) योगब्रह्मविद्याप्रद! (**वर्चसे**) निजात्मप्रकाशाय (**पवस्व**) प्रापय (**ओजसे**) आत्मबलाय। **ओज इति बलनामसु पठितम्।** (निघं०२।९) (**मे**) मम (**वर्चोदाः**) विद्याप्रद! (**वर्चसे**) योगबलप्रकाशाय (**पवस्व**) विज्ञापय (**आयुषे**) जीवनाय (**मे**) (**वर्चोदाः**) वर्चो बलं ददाति तत्सम्बुद्धौ (**वर्चसे**) रोगापहारकायौषधाय (**पवस्व**) गमय (**विश्वाभ्यः**) समस्ताभ्यः (**मे**) मम (**प्रजाभ्यः**) पालनीयाभ्यः (**वर्चोदसौ**) न्यायप्रकाशकौ सर्वाधिष्ठातारौ सभापतिन्यायाधीशाविव योगारूढयोगजिज्ञासू (**वर्चसे**) सद्गुणप्रकाशाय (**पवेथाम्**) प्रापयेथाम्॥ अयं मन्त्रः (शत०(४।५।६।३) व्याख्यातः॥२८॥

अन्वयः-हे वर्चोदा विद्वंस्त्वं मे ममात्मने वर्चसे पवस्व। हे वर्चोदा! म ओजसे वर्चसे पवस्व। हे वर्चोदा! मे ममायुषे वर्चसे पवस्व। हे वर्चोदसौ युवां मे मम विश्वाभ्यः प्रजाभ्यो वर्चसे पवेथाम्॥२८॥

भावार्थः-नैव योगेन विना कश्चिदपि पूर्णविद्यो भवति, न च पूर्णया विद्वत्तया विना स्वात्मपरमात्मनोर्बोधः कथंचिज्जायते, नापि तेन विना सत्पुरुषवत् प्रजाः पालयितुं कश्चिदपि शक्नोति, तस्माद् योगविधिरयं सर्वजनैः संसेव्यः॥२८॥

पदार्थः-हे (**वर्चोदाः**) योग और ब्रह्मविद्या देने वाले विद्वन्! आप (**मे**) मेरे (**आत्मने**) इच्छादि गुणयुक्त चेतन के लिये (**वर्चसे**) अपने आत्मा के प्रकाश को (**पवस्व**) प्राप्त कीजिये। हे (**वर्चोदाः**) उक्त विद्या देने वाले विद्वन्! आप (**मे**) मेरे (**ओजसे**) आत्मबल होने के लिये (**वर्चसे**) योगबल को (**पवस्व**) जनाइये। हे (**वर्चोदाः**) बल देने वाले! (**मे**) मेरे (**आयुषे**) जीवन के लिये (**वर्चसे**) रोग छुड़ाने वाले औषध को (**पवस्व**) प्राप्त कीजिये। हे (**वर्चोदसौ**) योगविद्या के पढ़ने-पढ़ाने वालो! तुम दोनों (**मे**) मेरी (**विश्वाभ्यः**) समस्त (**प्रजाभ्यः**) प्रजाओं के लिये (**वर्चसे**) सद्गुण प्रकाश करने को (**पवेथाम्**) प्राप्त कराया करो॥२८॥

भावार्थः-योगविद्या के विना कोई भी मनुष्य पूर्ण विद्यावान् नहीं हो सकता और न पूर्णविद्या के विना अपने स्वरूप और परमात्मा का ज्ञान कभी होता है और न इसके विना कोई न्यायाधीश सत्पुरुषों के समान प्रजा की रक्षा कर सकता है, इसलिये सब मनुष्यों को उचित है कि इस योगविद्या का सेवन निरन्तर किया करें॥२८॥

कोऽसीत्यस्य देवश्रवा ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। आर्ची पङ्क्तिश्छन्दः। भूर्भुवः स्वरित्यस्य भुरिक्साम्नी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

सभापती राजा प्रजासेनासभ्यजनान् प्रति किं किं वदेदित्याह॥

सभापति राजा प्रजा, सेना और सभ्यजनों को क्या-क्या कहे, यही अगले मन्त्र में कहा है॥

कोऽसि कतमोऽसि कस्यासि को नामासि।

यस्य ते नामामन्महि यं त्वा सोमेनातीतृपाम।

भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याᳬसुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः॥२९॥

कः। असि। कतमः। असि। कस्य। असि। कः। नाम। असि। यस्य। ते। नाम। अमन्महि। यम्। त्वा। सोमेन। अतीतृपाम। भूरिति भूः। भुवरिति भुवः। स्वरिति स्वः। सुप्रजा इति सुऽप्रजाः। प्रजाभिरिति प्रऽजाभिः। स्याम्। सुवीर इति सुऽवीरः। वीरैः। सुपोष इति सुऽपोषः। पोषैः॥ २९॥

पदार्थः-(**कः**) (**असि**) (**कतमः**) बहूनां मध्ये कः (**असि**) (**कस्य**) (**असि**) (**कः**) (**नाम**) ख्यातिः (**असि**) (**यस्य**) (**ते**) तव (**नाम**) (**अमन्महि**) विजानीमहि, अत्र लिडर्थे लङ्। **बहुलं छन्दसि। (अष्टा०**४।४।७३) इति विकरणलुक्। (**यम्**) (**त्वा**) त्वाम् (**सोमेन**) ऐश्वर्य्येण (**अतीतृपाम**) तर्प्ययाम (**भूः**) भूमेः (**भुवः**) अन्तरिक्षस्य (**स्वः**) आदित्यलोकस्य (**सुप्रजाः**) सुष्ठु प्रजासहितः (**प्रजाभिः**) अनुकूलाभिः पालनीयाभिः सह (**स्याम्**) भवेयम् (**सुवीरः**) प्रशस्तवीरयुक्तः (**वीरैः**) शरीरात्मबलयुक्तैर्युद्धकुशलैः सह (**सुपोषः**) प्रशस्तपुष्टिः (**पोषैः**) पुष्टिभिः॥ अयं मन्त्रः (शत०(४।५।६।४) व्याख्यातः॥२९॥

अन्वयः-सभ्यसेनास्थप्रजाजना वयं त्वं कोऽसि, कतमोऽसि, कस्यासि, को नामासि किन्नाम्ना प्रसिद्धोऽसि, यस्य ते तव नाम वयममन्महि, यं त्वा त्वां सोमेनातीतृपामेति पृच्छामो ब्रूहि। तान् प्रति सभापतिराह भूर्भुवःस्वर्ल्लोकसुखमिवात्मसुखमभीप्सुरहं युष्माभिः प्रजाभिः सुप्रजाः वीरैः सुवीरः पौषैः सुपोषश्च स्यामिति प्रतिजाने॥ २९॥

भावार्थः-सभापती राजा सत्यन्यायप्रियव्यवहारेण सभ्यसैन्यप्रजाजनानभिरक्ष्य वर्द्धयेत्। प्रबलतरवीरान् सेनासु सम्पादयेद्, यत उत्कृष्टसुखवर्द्धकेन राज्येन भूम्यादिसुखं प्राप्नुयादिति॥ २९॥

पदार्थः-सभा, सेना और प्रजा में रहने वाले हम लोग पूछते हैं कि तू (**कः**) कौन (**असि**) है, (**कतमः**) बहुतों के बीच कौन-सा (**असि**) है, (**कस्य**) किसका (**असि**) है, (**कः**) क्या (**नाम**) तेरा नाम (**असि**) है, (**यस्य**) जिस (**ते**) तेरी (**नाम**) संज्ञा को (**अमन्महि**) जानें और (**यम्**) जिस (**त्वा**) तुझ को (**सोमेन**) धन आदि पदार्थों से (**अतीतृपाम**) तृप्त करें। यह कह उनसे सभापति कहता है कि (**भूः**) भूमि (**भुवः**) अन्तरिक्ष और (**स्वः**) आदित्यलोक के सुख के सदृश आत्मसुख की कामना करने वाला मैं तुम (**प्रजाभिः**) प्रजालोगों के साथ (**सुप्रजाः**) श्रेष्ठ प्रजा वाला (**वीरैः**) तुम वीरों से (**सुवीरः**) श्रेष्ठ वीरयुक्त (**पोषैः**) पुष्टिकारक पदार्थों से (**सुपोषः**) अच्छा पुष्ट (**स्याम्**) होऊं अर्थात् तुम सब लोगों से पृथक् न तो स्वतन्त्र मेरा कोई नाम और न कोई विशेष सम्बन्धी है॥ २९॥

भावार्थः-सभापति राजा को योग्य है कि सत्य न्याययुक्त प्रिय व्यवहार से सभा सेना और प्रजा के जनों की रक्षा करके उन सभों को उन्नति देवे और अति प्रबल वीरों को सेना में रक्खे, जिससे कि बहुत सुख बढ़ाने वाले राज्य से भूमि आदि लोकों के सुख को प्राप्त होवे॥ २९॥

उपयामगृहीतोऽसीत्यस्य देवश्रवा ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। आद्यस्य साम्नी गायत्री, द्वितीयस्यासुर्य्यनुष्टुप्, तृतीयचतुर्थपञ्चमानां साम्नी गायत्री, षष्ठस्यासुर्य्यनुष्टुप्, सप्तमाष्टमयोर्याजुषी पङ्क्तिः, नवमस्य साम्नी गायत्री, दशमस्यासुर्य्यनुष्टुप्, एकादशस्य साम्नी गायत्री, द्वादशस्यासुर्य्यनुष्टुप्, त्रयोदशस्यासुर्य्युष्णिक् छन्दांसि। अत्र गायत्र्या षड्जः, अनुष्टुभो गान्धारः, पङ्क्तेः पञ्चमः, उष्णिज ऋषभश्च स्वराः॥

पुनर्विषयान्तरेण तदेवाह॥

फिर भी विषयान्तर से वही उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

उपयामगृहीतोऽसि मधवे त्वोपयामगृहीतोऽसि माधवाय त्वोपयामगृहीतोऽसि शुक्राय त्वोपयामगृहीतोऽसि शुचये त्वोपयामगृहीतोऽसि नभसे त्वोपयामगृहीतोऽसि नभस्याय त्वोपयामगृहीतोऽसीषे त्वोपयामगृहीतोऽस्यूर्जे त्वोपयामगृहीतोऽसि सहसे त्वोपयामगृहीतोऽसि सहस्याय त्वोपयामगृहीतोऽसि तपसे त्वोपयामगृहीतोऽसि तपस्याय त्वोपयामगृहीतोऽस्यंहसस्पतये त्वा॥ ३०॥

उपयामगृहीत इत्युपयामऽगृहीतः। असि। मधवे। त्वा। उपयामगृहीत इत्युपयामऽगृहीतः। असि। माधवाय। त्वा। उपयामगृहीत इत्युपयामऽगृहीतः। असि। शुक्राय। त्वा। उपयामऽगृहीतः। असि। शुचये। त्वा। उपयामगृहीत इत्युपयामऽगृहीतः। असि। नभसे। त्वा। उपयामगृहीत इत्युपयामऽगृहीतः। असि। नभस्याय। त्वा। उपायामगृहीत इत्युपयामऽगृहीतः। असि। इषे। त्वा। उपयामगृहीत इत्युपयामगृहीतः। असि। ऊर्ज्जे। त्वा। उपयामगृहीत इत्युपयामऽगृहीतः। असि। सहसे। त्वा। उपयामगृहीत इत्युपयामऽगृहीतः। असि। सहस्याय। त्वा। उपयामगृहीत इत्युपयामऽगृहीतः। असि। तपसे। त्वा। उपयामगृहीत इत्युपयामऽगृहीतः। असि। तपस्याय। त्वा। उपयामगृहीत इत्युपयामऽगृहीतः। असि। अंहसस्पतये। अंहसःपतय इत्यंहसःऽपतये। त्वा॥ ३०॥

पदार्थः-(**उपयामगृहीतः**) सुनियमैस्स्वीकृतः (**असि**) (**मधवे**) चैत्रमासाय (**त्वा**) त्वाम् (**उपयामगृहीतः**) (**असि**) (**माधवाय**) वैशाखमासाय (**त्वा**) त्वाम् (**उपयामगृहीतः**) (**असि**) (**शुक्राय**) ज्येष्ठाय (**त्वा**) त्वाम् (**उपयामगृहीतः**) (**असि**) (**शुचये**) आषाढाय (**त्वा**) त्वाम् (**उपयामगृहीतः**) (**असि**) (**नभसे**) श्रावणाय (**त्वा**) (**त्वाम्**) (**उपयामगृहीतः**) (**असि**) (**नभस्याय**) भाद्राय (**त्वा**) (**त्वाम्**) (**उपयामगृहीतः**) (**असि**) (**इषे**) आश्विनाय (**त्वा**) त्वाम् (**उपयामगृहीतः**) (**असि**) (**ऊर्ज्जे**) कार्त्तिकाय (**त्वा**) त्वाम् (**उपयामगृहीतः**) (**असि**) (**सहसे**) मार्गशीर्षाय (**त्वा**) त्वाम् (**उपयामगृहीतः**) (**असि**) (**सहस्याय**) पौषाय (**त्वा**) त्वाम् (**उपयामगृहीतः**) (**असि**) (**तपसे**) माघाय (**त्वा**) त्वाम् (**उपयामगृहीतः**) (**असि**) (**तपस्याय**) फाल्गुनाय (**त्वा**) त्वाम् (**उपयामगृहीतः**) (**असि**) (**अंहसस्पतये**) सर्वेषां वेगस्य पालकाय (**त्वा**) त्वाम्॥ अयं मन्त्रः (शत०(४। ३। १। १४-२३) व्याख्यातः॥ ३०॥

अन्वयः-हे राजन्! यतस्त्वमुपयामगृहीतोऽसि तस्मात् त्वा त्वां मधवे वयं स्वीकुर्म्मः। सभापतिराह-हे प्रजासभासेनाजना! यतो युष्माकं प्रत्येक उपयामगृहीतोऽस्ति, तस्मादेकैकं त्वा त्वां मधवेऽहं स्वीकरोमि। इत्थं सर्वत्र योजना कार्य्या॥ ३०॥

भावार्थः-सभापतिर्यथाकालं श्रेष्ठं राज्यं प्राप्याप्तव्यवहारेण प्रजाजनेभ्यः सर्वं सुखं दद्यात्, ते च राजाज्ञानुकूलव्यवहारे वर्तेरन्निति॥ ३०॥

पदार्थः-हे राजन्! जिस से आप (**उपयामगृहीतः**) अच्छे-अच्छे राज्य प्रबन्ध के नियमों से स्वीकार किये हुए (**असि**) हैं, इससे (**त्वा**) आपको (**मधवे**) चैत्र मास की सभा के लिये अर्थात् चैत्र मास प्रसिद्ध सुख कराने वाले व्यवहार की रक्षा के लिये हम लोग स्वीकार करते हैं। सभापति कहता है कि हे सभासदो तथा प्रजा वा

सेनाजनो! तुममें से एक-एक **(उपयामगृहीत:)** अच्छे-अच्छे नियमों से स्वीकार किया हुआ **(असि)** है, इसलिये तुम को चैत्र मास के सुख के लिये स्वीकार करता हूं। इसी प्रकार बारहों महीनों के यथोक्त सुख के लिये राजा, राजसभासद्, प्रजाजन और सेनाजन परस्पर एक-दूसरे को स्वीकार करते रहें॥३०॥

भावार्थ:-सभाध्यक्ष राजा को चाहिये कि यथोचित समय को प्राप्त होकर श्रेष्ठ राज्य व्यवहार से प्रजाजनों के लिये सब सुख देता रहे और प्रजाजन भी राजा की आज्ञा के अनुकूल व्यवहारों में वर्त्ता करें॥३०॥

इन्द्राग्नीत्यस्य विश्वामित्र: ऋषि:। इन्द्राग्नी देवते। आर्षी त्रिष्टुप् छन्द:। धैवत: स्वर:॥

अथ राज्यव्यवहारेण नियुक्ते कर्म्मणि प्रवर्त्तमानौ राजप्रजापुरुषौ प्रति कश्चित् सत्कारेणाह॥

अब राज्य व्यवहार से नियत राजकर्म्म में प्रवृत्त हुए राजा और प्रजा के पुरुषों के प्रति कोई सत्कार से कहता है, यह अगले मन्त्र में कहा है॥

इन्द्रा॑ग्नी॒ऽआग॑तꣳ सु॒तं गी॒र्भिर्नभो॒ वरे॑ण्यम्। अ॒स्य पा॑तं धि॒येषि॒ता।
उ॒प॒या॒मगृ॑हीतोऽसीन्द्रा॒ग्निभ्यां॑ त्वै॒ष ते॒ योनि॑रिन्द्रा॒ग्निभ्यां॑ त्वा॥३१॥

इन्द्रा॑ग्नी॒ऽइतीन्द्रा॑ग्नी। आ। ग॒त॒म्। सु॒तम्। गी॒र्भिरिति॑ गी॒:ऽभि:। नभ॑:। वरे॑ण्यम्। अ॒स्य। पा॒त॒म्। धि॒या। इ॒षि॒ता। उ॒प॒या॒मगृ॑हीत॒ इत्यु॑पया॒मगृ॑हीत:। अ॒सि॒। इ॒न्द्रा॒ग्निभ्या॒मितीन्द्रा॒ग्निऽभ्याम्। त्वा॒। ए॒ष:। ते॒। योनि॑:। इ॒न्द्रा॒ग्निभ्या॒मितीन्द्रा॒ग्निऽभ्याम्। त्वा॒॥३१॥

पदार्थ:-**(इन्द्राग्नी)** सूर्य्याग्नी इव प्रकाशमानौ सभापतिसभासदौ **(आगतम्)** आगच्छतम् **(सुतम्)** सुनुतम्। अत्र **बहुलं छन्दसि। (अष्टा०**२।४।७३) इति विकरणस्य लुक्। **(गीर्भि:)** सुशिक्षिताभिर्वाग्भि: **(नभ:)** सुखम्। **नभ इति साधारणनामसु पठितम्।** (निघं०१।४) **(वरेण्यम्) (अस्य)** नभस:, कर्म्मणि षष्ठी। **(पातम्)** रक्षतम् **(धिया)** प्रज्ञया कर्म्मणा वा **(इषिता)** प्रेषितौ प्रार्थितौ वा **(उपयामगृहीत:) (असि) (इन्द्राग्निभ्याम्) (त्वा)** त्वाम् **(एष:)** राजन्याय: **(ते)** तव **(योनि:)** गृहम् **(इन्द्राग्निभ्याम्) (त्वा)** त्वाम्॥ अयं मन्त्र: (शत०(४। ३। १। २४) व्याख्यात:॥३१॥

अन्वय:-हे राजप्रजाजनौ! युवामिन्द्राग्नी इवागतं गीर्भिरस्मभ्यं वरेण्य नभ: सुतं धियेषिता युवामस्य नभस: पातं रक्षतम्। तावाहतु:-हे प्रजाजन! त्वमुपयामगृहीतोऽसि त्वा त्वामिन्द्राग्निभ्यां स्वीकृतं वयं मन्यामहे एष ते योनिरस्त्यतस्त्वामिन्द्राग्निभ्यां चेतयामहे॥३१॥

भावार्थ:-नह्येकाकी पुमान् यथोक्तराज्यकर्म्मकर्त्तुं शक्नोति, अत: प्रजाजनान् सत्कृत्य राज्यकर्म्मणि नियोजयेत्, ते च यथोक्तव्यवहारेण तं राजानं सत्कुर्य्युरिति॥३१॥

पदार्थ:-हे **(इन्द्राग्नी)** सूर्य्य और अग्नि के तुल्य प्रकाशमान सभापति और सभासद! तुम दोनों **(आगतम्)** आओ मिलकर **(गीर्भि:)** अच्छी शिक्षायुक्त वाणियों से हमारे लिये **(वरेण्यम्)** श्रेष्ठ **(नभ:)** सुख को **(सुतम्)** उत्पन्न करो तथा **(इषिता)** पढ़ाये हुए वा हमारी प्रार्थना को प्राप्त हुए तुम **(धिया)** अपनी बुद्धि वा राजशासन कर्म से **(अस्य)** इस सुख की **(पातम्)** रक्षा करो। वे राजा और सभासद् कहते हैं कि हे प्रजाजन! तू **(उपयामगृहीत:)** प्रजा के धर्म्म और नियमों से स्वीकार किया हुआ **(असि)** है, **(त्वा)** तुझ को **(इन्द्राग्निभ्याम्)** उक्त महाशयों के लिये हम लोग वैसा ही मानते हैं, **(एष:)** यह राजनीति **(ते)** तेरा **(योनि:)** घर है **(इन्द्राग्निभ्याम्)** उक्त महाशयों

के लिये **(त्वा)** तुझ को हम चिताते हैं अर्थात् राजशासन को प्रकाशित करते हैं॥३१॥

भावार्थः-अकेला पुरुष यथोक्त राजशासन कर्म नहीं कर सकता, इस कारण और श्रेष्ठ पुरुषों का सत्कार करके राज कार्य्यों में युक्त करे, वे भी यथायोग्य व्यवहार में इस राजा का सत्कार करें॥३१॥

आ घा ये अग्निमित्यस्य त्रिशोक ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। आद्यस्यार्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः। उपेत्यस्यार्च्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

अथोक्तमर्थं प्रकारान्तरेणाह॥

अब उक्त विषय को प्रकारान्तर से अगले मन्त्र में कहा है॥

आ घाऽअग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक्। येषामिन्द्रो युवा सखा।
उपयामगृहीतोऽस्यग्नीन्द्राभ्यां त्वैष ते योनिरग्नीन्द्राभ्यां त्वा॥३२॥

आ। घ। ये। अग्निम्। इन्धते। स्तृणन्ति। बर्हिः। आनुषक्। येषाम्। इन्द्रः। युवा। सखा। उपयामगृहीत इत्युपयामऽगृहीतः। असि। अग्नीन्द्राभ्याम्। त्वा। एषः। ते। योनिः। अग्नीन्द्राभ्याम्। त्वा॥३२॥

पदार्थः-**(आ)** समन्तात् **(घ)** एव, अत्र **ऋचि तुनुघ०।** (अष्टा०६।३।१३३) इति दीर्घः। **(ये)** वेदपारगा विद्वांसः **(अग्निम्)** विद्युदादिस्वरूपम् **(इन्धते)** प्रदीपयन्ति **(स्तृणन्ति)** यन्त्रैश्छादयन्ति **(बर्हिः)** अन्तरिक्षम् **(आनुषक्)** अनुकूलतया **(येषाम्)** विदुषाम् **(इन्द्रः)** सकलैश्वर्य्यवान् सभापतिः प्रत्येकाङ्गपुष्टः **(युवा)** तरुणावस्थः **(सखा)** सुहृत् **(उपयामगृहीतः)** **(असि)** **(अग्नीन्द्राभ्याम्)** सकलराज्यकर्म्मविचारविचक्षणाभ्यामग्नीन्द्रगुण-युक्ताभ्याम् **(त्वा)** त्वाम् **(एषः)** **(ते)** **(योनिः)** **(अग्नीन्द्राभ्याम्)** **(त्वा)** त्वाम्॥३२॥

अन्वयः-ये वेदपारगा विद्वांसस्सभासदोऽग्निं घेन्धते। येषामानुषग्बर्हिरास्तृणन्ति, युवेन्द्रः सभापतिः सखास्ति, यस्त्वमग्नीन्द्राभ्यामुपयामगृहीतोऽसि, यस्य ते तवैष ते योनिरस्ति, तं त्वां प्राप्ता वयमग्नीन्द्राभ्यां त्वामुपदिशामः॥३२॥

भावार्थः-राजधर्म्मे सर्वकर्म्मणः सभाधीनत्वाद् विचारसभासु प्रवृत्तेषु राजवर्गीयजनेषु द्वौ त्रयो बहवो वा सभासदः स्वविचारेण यमर्थं निष्पादयेयुस्तदनुकूला एव राजप्रजाजना वर्त्तेरन्॥३२॥

पदार्थः-**(ये)** वेदविद्यासम्पन्न विद्वान् सभासद् **(अग्निम्)** विद्युत् आदि **(घ)** ही को **(इन्धते)** प्रकाशित करते और **(आनुषक्)** अनुक्रम अर्थात् यज्ञ के यथोक्त क्रम से **(बर्हिः)** अन्तरिक्ष का **(आ)** **(स्तृणन्ति)** आच्छादन करते हैं तथा **(येषाम्)** जिनका **(युवा)** सर्वाङ्ग पुष्ट, सर्वाङ्ग सुन्दर, सर्वविद्या विचक्षण तरुण अवस्था और **(इन्द्रः)** सकलैश्वर्य्ययुक्त सभापति **(सखा)** मित्र है, **(अग्नीन्द्राभ्याम्)** उन अग्नि और सूर्य्य के समान प्रकाशमान सभासदों से **(उपयामगृहीतः)** प्रजाधर्म्म से युक्त तू ग्रहण किया गया **(असि)** है। जिस **(ते)** तेरा **(एषः)** न्याययुक्त सिद्धान्त **(योनिः)** घर के सदृश है, उस **(त्वा)** तुझ को प्राप्त हुए हम लोग **(अग्नीन्द्राभ्याम्)** उक्त महापदार्थों के लिये **(त्वा)** तुझ को उपदेश करते हैं॥३२॥

भावार्थः-राजधर्म्म में सब काम सभा के आधीन होने से विचार-सभाओं में प्रवृत्त राजमार्गी जनों में से दो, तीन वा बहुत सभासद् मिलकर अपने विचार से जिस अर्थ को सिद्ध करें, उसी के अनुकूल राजपुरुष और प्रजाजन अपना वर्ताव रक्खें॥३२॥

ओमास इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। आद्यस्यार्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

उपयाम इत्यस्यार्ची बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

अध्यापकाध्येतॄणां परस्परं कर्त्तव्यमुपदिश्यते॥

पढ़ने और पढ़ाने वालों का परस्पर व्यवहार अगले मन्त्र में कहा है॥

ओमा॑सश्चर्षणीधृतो॒ विश्वे॑ देवास॒ऽआग॑त। दा॒श्वाᳬसो॑ दा॒शुषः॑ सु॒तम्। उ॒प॒या॒मगृ॑हीतोऽसि॒ विश्वे॑भ्यस्त्वा दे॒वेभ्य॑ऽए॒ष ते॒ योनि॒र्विश्वे॑भ्यस्त्वा दे॒वेभ्यः॑॥ ३३॥

ओमा॑सः। च॒र्ष॒णी॒धृत॒ः। च॒र्ष॒णि॒धृत॒ इति॑ चर्षणिऽधृतः। विश्वे॑। दे॒वास॒ः। आ। ग॒त। दा॒श्वाᳬस॑ः। दा॒शुषः॑। सु॒तम्। उ॒प॒या॒मगृ॑हीत॒ इत्यु॑पया॒मऽगृ॑हीतः। अ॒सि॒। विश्वे॑भ्यः। त्वा॒। दे॒वेभ्य॑ः। ए॒षः। ते॒। योनि॑ः। विश्वे॑भ्यः। त्वा॒। दे॒वेभ्य॑ः॥ ३३॥

पदार्थः-(**ओमासः**) अवन्ति सद्गुणै रक्षन्ति ते (**चर्षणीधृतः**) चर्षणयो मनुष्यास्तान् धरन्ति पोषयन्ति ते। **अन्येषामपि दृश्यते। (अष्टा०६।३।१३७)** इति दीर्घः। (**विश्वे**) सर्वे (**देवासः**) विद्वांसः (**आ**) (**गत**) (**दाश्वांसः**) उत्कृष्टज्ञानं दत्तवन्तः। **दाश्वान् साह्वान्०। (अष्टा०६।१।१२)** इति निपातनम्। (**दाशुषः**) दानशीलस्योत्तमजनस्य (**सुतम्**) सवति सत्कर्मानुष्ठानेनैश्वर्य्यं प्राप्नोति तं बालकम् (**उपयामगृहीतः**) अध्यापननियमैः स्वीकृतः (**असि**) (**विश्वेभ्यः**) अखिलेभ्यः (**त्वा**) त्वाम् (**देवेभ्यः**) विद्वद्भ्यः (**ते**) तव (**एषः**) विद्याशिक्षासंग्रहः (**ते**) तव (**योनिः**) कारणम् (**विश्वेभ्यः**) अखिलेभ्यः (**देवेभ्यः**) विद्वद्भ्यः (**त्वा**) त्वाम्॥ अयं मन्त्रः (शत०(४। ३। १। २७) व्याख्यातः॥ ३३॥

अन्वयः-हे चर्षणीधृत ओमासो विश्वे देवासो यूयं दाश्वांसो दाशुषः सुतमागत। हे दाशुष सुताध्येतस्त्वमुपयामगृहीतोऽसि। अतस्त्वा विश्वेभ्यो देवेभ्यस्तत्सेवनायाज्ञापयामि, यतस्त एष योनिरस्ति। अतस्त्वा विश्वेभ्यः देवेभ्यः शिक्षयामि॥ ३३॥

भावार्थः-सर्वेषां विदुषीणां च योग्यतास्ति सर्वेभ्यो बालकेभ्यः कन्याभ्यश्चाहर्निशं विद्यादानं राज्ञां धनिनां च पदार्थैः स्वजीविकां च कुर्य्युः। ते राजानो धनिनश्च विद्यासुशिक्षाभ्यां प्रवीणा भूत्वा स्वस्याध्यापकेभ्यो विद्वद्भ्यो विदुषीभ्यश्च धनादिपदार्थान् दत्त्वा तेषां सेवनं कुर्य्युः। मातापितरावष्टवार्षिकुमारान् कुमारींश्च विद्याब्रह्मचर्य्यसेवनशिक्षाकरणाय विद्वद्भ्यो विदुषीभ्यश्च समर्प्पयेताम्। तेऽध्येतारो विद्याग्रहणे चेतो नित्यमभिदद्युस्तथाध्यापकांश्च विद्यासुशिक्षादाने नित्यं प्रयतेरन्॥ ३३॥

पदार्थः-हे (**चर्षणीधृतः**) मनुष्यों की पुष्टि-संतुष्टि करने और (**ओमासः**) उत्तम-उत्तम गुणों से रक्षा करने हारे (**विश्वे**) समस्त (**देवासः**) विद्वानो! तुम (**दाश्वांसः**) उत्कृष्ट ज्ञान को देते हुए (**दाशुषः**) दान करने वाले उत्तम जन का (**सुतम्**) जो अच्छे कामों के करने से ऐश्वर्य्य को प्राप्त होने वाला है, उसके (**आ, गत**) सन्मुख आओ। हे उक्त दानशील पुरुष के पढ़ने वाले बालक! तू (**उपयामगृहीतः**) पढ़ाने के नियमों से ग्रहण किया हुआ (**असि**) है, इसलिये (**त्वा**) तुझे (**विश्वेभ्यः**) समस्त (**देवेभ्यः**) विद्वानों के लिये अर्थात् उनकी सेवा करने को आज्ञा देता हूं, जिसलिये (**ते**) तेरा (**एषः**) यह विद्या और अच्छी-अच्छी शिक्षा का संग्रह होना (**योनिः**) कारण है, इसलिये (**त्वा**) तुझे (**विश्वेभ्यः**) समस्त (**देवेभ्यः**) विद्वानों से विद्या और अच्छी-अच्छी शिक्षा दिलाता हूं॥ ३३॥

भावार्थः-सब विद्वान् और विदुषी स्त्रियों की योग्यता है कि समस्त बालक और कन्याओं के लिये निरन्तर विद्यादान करें, राजा और धनी आदि लोगों के धन आदि पदार्थों से अपनी जीविका करें और वे राजा आदि धनी जन भी विद्या और अच्छी शिक्षा से प्रवीण होकर अपने पढ़ाने वाले विद्वान् वा विदुषी स्त्रियों को धन आदि अच्छे-अच्छे पदार्थों को देकर उनकी सेवा करें। माता और पिता आठ-आठ वर्ष के पुत्र वा आठ-आठ वर्ष की कन्याओं को विद्याभ्यास, ब्रह्मचर्य्य सेवन और अच्छी शिक्षा किये जाने के लिये विद्वान् और विदुषी स्त्रियों को सौंप दें। वे भी विद्या ग्रहण करने में नित्य मन लगावें और पढ़ाने वाले भी विद्या और अच्छी शिक्षा देने में नित्य प्रयत्न करें॥३३॥

विश्वेदेवास आगत इत्यस्य गृत्समद ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। आद्यस्यार्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः। उपयाम इत्यस्य निचृदार्ष्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

अथ प्रत्यहमध्यापनविषयमाह॥

अब प्रतिदिन पढ़ाने की योग्यता का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

विश्वे॑ देवास॒ऽआग॑त शृणु॒ता म॑ऽइ॒मꣳ हव॑म्। एदं ब॒र्हिर्नि॑षी॑दत।
उ॒प॒या॒मगृ॑हीतोऽसि॒ विश्वे॑भ्यस्त्वा दे॒वेभ्य॑ऽए॒ष ते॒ योनि॒र्विश्वे॑भ्यस्त्वा दे॒वेभ्य॑ः॥३४॥

विश्वे॑। दे॒वास॑ः। आ। ग॒त॒। शृ॒णु॒त॒। मे॒। इ॒मम्। हव॑म्। आ। इ॒दम्। ब॒र्हिः। नि। सी॒द॒त॒। उ॒प॒या॒मगृ॑हीत इत्यु॑पया॒मऽगृ॑हीतः। अ॒सि॒। विश्वे॑भ्यः। त्वा॒। दे॒वेभ्य॑ः। ए॒षः। ते॒। योनि॑ः। विश्वे॑भ्यः। त्वा। दे॒वेभ्य॑ः॥३४॥

पदार्थः-(**विश्वे**) सर्वे (**देवासः**) विद्वांसः (**आ**) (**गत**) आगच्छत (**शृणुत**) अत्र **संहितायाम्।** (**अष्टा०**६।३।११४) इति दीर्घः। (**मे**) मम विद्यार्थिनः (**इमम्**) वक्ष्यमाणम् (**हवम्**) स्तुतिवादम् (**आ**) समन्तात् (**इदम्**) अस्माभिर्दत्तम् (**बर्हिः**) उत्तममासनम् (**नि**) नितराम् (**सीदत**) आध्वम् (**उपयामगृहीतः**) (**असि**) (**विश्वेभ्यः**) समस्तेभ्यः (**त्वा**) त्वाम् (**देवेभ्यः**) अध्यापकेभ्यः (**एषः**) सकलविद्यासंग्रहः (**ते**) तव (**योनिः**) गृहम् (**विश्वेभ्यः**) (**त्वा**) त्वाम् (**देवेभ्यः**)॥ अयं मन्त्रः (शत०(४।२।५।२६) व्याख्यातः॥३४॥

अन्वयः-हे पूर्वमन्त्रप्रतिपादितगुणकर्म्मस्वभावा विश्वे देवासो यूयमस्माकं निकटमागत अस्माभिर्दत्तमिदं बर्हिरासनमानिषीदत, मे ममेमं हवं शृणुत। गृहस्थाः स्वपुत्रादीन् प्रत्येवं ब्रूयुर्यतस्त्वमुपयामगृहीतोऽसि तस्मात् त्वा त्वां विश्वेभ्यो देवेभ्यो प्रयच्छेम, ते तवैष योनिरस्ति, त्वा त्वां विश्वेभ्यो देवेभ्योऽधिकां विद्यां दापयेम॥३४॥

भावार्थः-एके विद्वांसोऽन्वहं विद्यार्थिनः पाठयेयुरपरे विपश्चितो विद्वांसः प्रतिमासमध्येतॄणां परीक्षणं च कुर्य्युः। तत्कृत्वाऽध्यापकाः प्रतीततीव्रबुद्धीन् परिश्रमं कुर्वतोऽध्येतॄनतिश्रमेण पाठयेयुरिति॥३४॥

पदार्थः-हे पूर्वमन्त्रप्रतिपादित गुणकर्म्मस्वभाववाले (**विश्वे देवासः**) समस्त विद्वान् लोगो! आप हमारे समीप (**आगत**) आइये और हम लोगों के दिये हुए (**इदम्**) इस (**बर्हिः**) आसन पर (**आ निषीदत**) यथावकाश सुखपूर्वक बैठिये (**मे**) मेरी (**हवम्**) इस स्तुतियुक्त वाणी को (**शृणुत**) सुनिये। गृहस्थ अपने पुत्रादिकों के प्रति कहे कि हे पुत्र! जिस कारण तू (**उपयामगृहीतः**) विद्वानों का ग्रहण किया हुआ (**असि**) है, इससे हम (**त्वा**) तुझे (**विश्वेभ्यः**) समस्त (**देवेभ्यः**) अच्छे-अच्छे विद्या पढ़ाने वाले विद्वानों को सौंपें, जिसलिये (**एषः**) यह समस्त विद्या का संग्रह (**ते**) तेरा (**योनिः**) घर के तुल्य है, इसलिये (**त्वा**) तुझे (**विश्वेभ्यः**) (**देवेभ्यः**) समस्त उक्त

महाशयों से विद्या दिलाना चाहते हैं॥३४॥

भावार्थः-विद्वान् लोगों को उचित है कि प्रतिदिन विद्यार्थियों को पढ़ावें और परम विद्वान् पण्डित लोग उन की परीक्षा भी प्रत्येक महीने में किया करें। उस परीक्षा से जो तीक्ष्णबुद्धियुक्त परिश्रम करने वाले प्रतीत हों, उनको अत्यन्त परिश्रम से पढ़ाया करें॥३४॥

इन्द्र इत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। निचृदार्षीत्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। उपयाम इत्यस्यार्ष्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

अथ राजाऽध्यापनादिव्यवहाररक्षणं कथं कुर्य्यादित्युपदिश्यते॥

अब राजा पढ़ने आदि व्यवहार की रक्षा को किस प्रकार से करे, यह अगले मन्त्र में कहा है॥

इन्द्र॑ मरुत्वऽइ॒ह पा॑हि॒ सोम॒ं यथा॑ शार्या॒तेऽअपि॑बः सु॒तस्य॑।

तव॒ प्रणी॑ती॒ तव॑ शूर॒ शर्म॒न्नावि॑वासन्ति क॒वय॑ः सु॒य॒ज्ञाः।

उ॒प॒या॒मगृ॑हीतो॒ऽसीन्द्रा॑य त्वा म॒रुत्व॑तऽए॒ष ते॒ योनि॒रिन्द्रा॑य त्वा म॒रुत्व॑ते॥३५॥

इन्द्र॑। म॒रु॒त्व॒। इ॒ह। पा॒हि॒। सोम॑म्। यथा॑। शा॒र्य्या॒ते। अपि॑बः। सु॒तस्य॑। तव॑। प्रणी॑ती। प्रनी॑तीति॒ प्रऽनी॑ती। तव॑। शू॒र॒। शर्म्म॑न्। आ। वि॒वा॒स॒न्ति॒। क॒वय॑ः। सु॒य॒ज्ञा इति॑ सु॒ऽय॒ज्ञाः। उ॒प॒या॒मगृ॑हीत॒ इत्यु॑पया॒मऽगृ॑हीतः। अ॒सि॒। इन्द्रा॑य। त्वा॒। म॒रुत्व॑ते। ए॒षः। ते॒। योनि॑ः। इन्द्रा॑य। त्वा॒। म॒रुत्व॑ते॥३५॥

पदार्थः-(**इन्द्र**) सर्वविघ्नविदारक सकलैश्वर्य्ययुक्त सम्राट्! (**मरुत्वः**) मरुतः प्रशस्ता धर्म्मसम्बद्धाः प्रजा यस्य तत्सम्बुद्धौ (**इह**) अस्मिन् संसारे (**पाहि**) रक्ष (**सोमम्**) सकलगुणैश्वर्य्यकल्याणकर्माध्ययनाध्यापनाख्यं यज्ञम् (**यथा**) (**शार्य्याते**) शर्य्याभिरङ्गुलिभिनिर्वृत्तानि कर्म्माणि शर्य्याणि तान्यतति व्याप्नोनि स शार्य्यातस्तस्मिन्। **शर्य्या इत्यङ्गुलिनामसु पठितम्।** (निघं०२।५) (**अपिबः**) (**सुतस्य**) (**तव**) (**प्रणीती**) प्रकृष्टां नीतिम्। अत्र **सुपां सुलुक्।** (**अष्टा०७।१।३९**) इति पूर्वसवर्णादेशः। (**तव**) (**शूर**) धर्म्मविरोधिहिंसक (**शर्म्मन्**) न्यायगृहे। अत्र **सुपां सुलुग्०** [अष्टा०७.१.३९] इति ङेर्लुक्। **न ङिसम्बुद्ध्योः।** (**अष्टा०**८।२।८) इति नलोपाभावः। (**आ**) (**विवासन्ति**) परिचरन्ति। **विवासतीति परिचरणकर्म्मसु पठितम्।** (निघं०३।५) (**कवयः**) मेधाविनः। **कविरिति मेधाविनामसु पठितम्।** (निघं०३।१५) (**सुयज्ञाः**) शोभनोऽध्ययनाध्यापनाख्यो यज्ञो येषां त इव (**उपायमगृहीतः**) (**असि**) (**इन्द्राय**) परमैश्वर्य्याय (**त्वा**) त्वाम् (**मरुत्वते**) प्रजासम्बन्धाय, अत्र सम्बन्धे मतुप्, **झयः** [अष्टा०८.२.१०] इति मस्य वत्वम्। (**एषः**) (**ते**) (**योनिः**) (**त्वा**) (**मरुत्वते**)॥ अयं मन्त्रः (शत०(४।३।३।१३) व्याख्यातः॥३५॥

अन्वयः-हे मरुत्व इन्द्र! त्वमिह यथा शार्य्याते सुतस्यापिबस्तथा सोमं पाहि। हे शूर! तव शर्म्मन् न्यायगृहे सुयज्ञा इव कवयस्तव प्रणीतिमाविवासन्ति, यस्त्वमुपयामगृहीतोऽसि तस्मात् त्वामिन्द्राय मरुत्वते वयं सेवेमहि, ते तवैष विद्याप्रचारो योनिरस्त्यतस्त्वामिन्द्राय मरुत्वते मन्यामहे॥३५॥

भावार्थः-सर्वेषां विदुषामुचितमस्ति न्यायराजसभाज्ञां नोल्लङ्घेरन्, तथैते राजसभासभ्यजना अपि विद्वदाज्ञां नोल्लङ्घेरन्। यः सर्वोत्कृष्टस्तं सभापतिं कुर्य्युः, स सभापतिरुत्तमनीत्या सर्वराज्यप्रबन्धं कुर्य्यात्॥३५॥

पदार्थः-हे (**इन्द्र**) सब विघ्नों के दूर करने वाले सब सम्पत्ति से युक्त तेजस्वी (**मरुत्वः**) प्रशंसनीय

धर्म्मयुक्त प्रजा पालनेहारे सभापति राजन्! आप **(इह)** इस संसार में **(यथा)** जैसे **(शार्य्याते)** अपने हाथ पैरों के परिश्रम से निष्पन्न किये हुए व्यवहार में **(सुतस्य)** अभ्यास किये हुए विद्या रस को **(अपिबः)** पी चुके हो, वैसे **(सोमम्)** समस्त अच्छे गुण, ऐश्वर्य और सुख करने वाले पठनपाठन-रूपी यज्ञ को **(पाहि)** पालो। हे **(शूर)** धर्म्मविरोधियों को दण्ड देने वाले! **(तव)** तुम्हारे) **(शर्म्मन्)** राज्य घर में **(सुयज्ञाः)** अच्छे पढ़ने-पढ़ाने वाले विद्वानों के समान **(कवयः)** बुद्धिमान् लोग **(तव)** तुम्हारी **(प्रणीती)** उत्तम नीति का **(आविवासन्ति)** सेवन करते हैं। हे शूर! जिस कारण तुम **(उपयामगृहीतः)** प्रजापालनादि नियमों से स्वीकार किये हुए **(असि)** हो, इससे **(त्वा)** **(इन्द्राय)** परमैश्वर्य और **(मरुत्वते)** प्रजा-सम्बन्ध के लिये हम लोग चाहते हैं कि जो **(ते)** **(एषः)** यह विद्या का प्रचार **(योनिः)** घर के समान है। इससे **(त्वा)** तुम को **(इन्द्राय)** परमैश्वर्य्य और **(मरुत्वते)** प्रजापालन सम्बन्ध के लिये मानते हैं॥३५॥

भावार्थः-सब विद्वानों को उचित है कि जैसे न्यायधीशों की न्याययुक्त सभा से जो आज्ञा हो, उस को कभी उल्लङ्घन न करें, वैसे वे राजसभा के सभासद् भी वेदज्ञ विद्वानों की आज्ञा का उल्लङ्घन न करें, जो सब गुणों से उत्तम हो, उसी को सभापति करें और वह सभापति भी उत्तम नीति से समस्त राज्य के प्रबन्धों को चलावे॥३५॥

मरुत्वन्तमित्यस्य विश्वामित्र ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः।
उपयामेत्यस्य द्वितीयभागस्यार्षी, तृतीयस्य साम्न्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

पुनः राजप्रजाकृत्यमाह॥

फिर भी राजा और प्रजा को क्या करना चाहिये, यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानमकवारिं दिव्यꣳ शासमिन्द्रम्।
विश्वासाहमवसे नूतनायोग्रꣳ सहोदामिह तꣳ हुवेम।
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वतऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते।
उपयामगृहीतोऽसि मरुतां त्वौजसे॥३६॥

मरुत्वन्तम्। वृषभम्। वावृधानम्। वावृधानमिति ववृधानम्। अकवारिमित्यकवऽअरिम्। दिव्यम्। शासम्। इन्द्रम्। विश्वासाहम्। विश्वसहमिति विश्वऽसहम्। अवसे। नूतनाय। उग्रम्। सहोदामिति सहःऽदाम्। इह। तम्। हुवेम। उपयामगृहीत इत्युपयामऽगृहीतः। असि। इन्द्राय। त्वा। मरुत्वते। एषः। ते। योनिः। इन्द्राय। त्वा। मरुत्वते। उपयामगृहीत इत्युपयामऽगृहीतः। असि। मरुताम् त्वा। ओजसे॥३६॥

पदार्थः-**(मरुत्वन्तम्)** प्रशस्तप्रजायुक्तम् **(वृषभम्)** सर्वोत्तमम् **(वावृधानम्)** अतिशयेन शुभगुणकर्मसु वर्द्धमानम् **(अकवारिम्)** कौति धर्म्ममुपदिशतीति कवो न कवोऽकवोऽधर्म्मात्मा तस्यारिः शत्रुस्तम् **(दिव्यम्)** शुद्धम् **(शासम्)** शासितारम् **(इन्द्रम्)** ऐश्वर्य्यवन्तम् **(विश्वासाहम्)** विश्वान् सर्वान् सहते तम्। अत्र विश्वपूर्वात् सहधातोः **छन्दसि सहः। (अष्टा०३।२।६३)** इति ण्विः। **अन्येषामपि दृश्यते। (अष्टा०६।३।१३७)** इति दीर्घश्च। **(अवसे)** रक्षणाद्याय **(नूतनाय)** नवीनाय **(उग्रम्)** प्रचण्डपराक्रमम् **(सहोदाम्)** यः सहो बलं ददाति तम् **(इह)** अस्यां

प्रजायाम् **(तम्)** **(हुवेम)** स्वीकुर्वीमहि **(उपयामगृहीतः)** सर्वनियमोपनियमसामग्रीसहितः **(असि)** **(इन्द्राय)** परमैश्वर्याय **(त्वा)** त्वाम् **(मरुत्वते)** प्रशंसितप्रजायुक्ताय **(एषः)** **(ते)** **(योनिः)** **(इन्द्राय)** **(त्वा)** **(मरुत्वते)** **(उपयामगृहीतः)** **(असि)** **(मरुताम्)** **(त्वा)** त्वाम् **(ओजसे)** बलाय॥ अयं मन्त्रः (शत०(४। ३। ३। १४) व्याख्यातः॥३६॥

अन्वयः-कवयो वयं नूतनायावसे मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानमकवारिं दिव्यं विश्वासाहमुग्रं सहोदां शासं तं पूर्वोक्तमिन्द्रं हुवेम। हे मुख्यसभासद्! यतस्त्वमुपयामगृहीतोऽसि तस्मात् त्वा त्वां मरुत्वत इन्द्राय यतस्ते तवैष योनिरस्त्यतस्त्वा मरुत्वत इन्द्राय यतस्त्वमुपयामगृहीतोऽसि तस्मान्मरुतामोजसे बलाय च त्वा त्वां हुवेम॥३६॥

भावार्थः-अत्र पूर्वस्मान्मन्त्रात् **(कवयः)** इत्येतत्पदमनुवर्तते। प्रजाजनानां योग्यतास्ति, यः सर्वोत्तमः सकलगुणयुक्तो विपश्चिच्छूरवीरो भवेत् तं सभाया मुख्यकर्मणि संस्थापयेयुः, स सभायां नियुक्तः सत्यन्यायधर्म-युक्तराज्यकर्मणा प्रजाबलं वर्द्धयेत्॥३६॥

पदार्थः-**(कवयः)** पूर्वोक्त हम विद्वान् लोग **(नूतनाय)** नवीन-नवीन **(अवसे)** रक्षा आदि गुणों के लिये **(मरुत्वन्तम्)** प्रशंसनीय प्रजायुक्त **(वृषभम्)** सब से उत्तम **(वावृधानम्)** अत्यन्त शुभगुण और कर्मों में उन्नति को प्राप्त **(अकवारिम्)** समस्त धर्मविरोधी दुष्टों का निवारण करने वाले **(दिव्यम्)** शुद्ध **(विश्वासाहम्)** सर्व सहनशील **(उग्रम्)** प्रचण्ड पराक्रमयुक्त **(सहोदाम्)** सहायता **(शासम्)** और सब को शिक्षा देने वाले **(तम्)** उस पूर्वोक्त **(इन्द्रम्)** परमैश्वर्य्ययुक्त सभापति को निम्नलिखित प्रकार से **(हुवेम)** स्वीकार करें। हे मुख्य सभासद् राजन्! तू जिस कारण **(उपयामगृहीतः)** समस्त बड़े-बड़े और छोटे-छोटे नियमों की सामग्री से सहित **(असि)** है, इससे **(त्वा)** तुझ को **(मरुत्वते)** प्रशंसनीय प्रजायुक्त **(इन्द्राय)** परमैश्वर्यवान् सभापति होने के लिये स्वीकार करते हैं, **(एषः)** यह सभा में न्याय करने का काम **(ते)** तेरा **(योनिः)** घर के तुल्य है, इससे **(त्वा)** तुझे **(मरुत्वते)** उत्तम प्रजा से युक्त **(इन्द्राय)** अत्यन्त ऐश्वर्य्य के पालन और वृद्धि होने के लिये स्वीकार करते हैं और जिस कारण तू **(उपयामगृहीतः)** उक्त सब नियम और उपनियमों से संयुक्त **(असि)** है, इससे **(मरुताम्)** प्रजाजनों का **(ओजसे)** बल बढ़ाने के लिये **(त्वा)** तुझे ग्रहण करते हैं॥३६॥

भावार्थः-इस मन्त्र में पिछले मन्त्र से (कवयः) इस पद की अनुवृत्ति आती है। प्रजाजनों को योग्य है कि जो सर्वोत्तम, समस्त विद्याओं में निपुण, सकल शुभगुणयुक्त विद्वान् शूरवीर हो, उसको सभा के मुख्य काम में स्थापन करें और वह सभा के सब कामों में स्थापित किया हुआ सभापति सत्य, न्याययुक्त धर्म्म कार्य्य से प्रजा के उत्साह की उन्नति करे॥३६॥

सजोषेत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। आद्यस्य निचृदार्षी त्रिष्टुप्, उपयामेत्यस्य प्राजापत्या त्रिष्टुप् छन्दसी। धैवतः स्वरः॥

अथ सेनापतिकृत्यमाह॥

अब सेनापति का काम अगले मन्त्र में कहा है॥

सजोषाऽइन्द्र सगणो मरुद्भिः सोमं पिब वृत्रहा शूर विद्वान्।
जहि शत्रूँ२रप मृधो नुदस्वाथाभयं कृणुहि विश्वतो नः।

उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वतऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते॥३७॥

सजोषा इति सऽजोषाः। इन्द्र। सगण इति सऽगणः। मरुद्भिरिति मरुत्ऽभिः। सोमम्। पिब। वृत्रहेति वृत्रऽहा। शूर। विद्वान्। जहि। शत्रून्। अप। मृधः। नुदस्व। अथ। अभयम्। कृणुहि। विश्वतः। नः। उपयामगृहीत इत्युपयामऽगृहीतः। असि। इन्द्राय। त्वा। मरुत्वते। एषः। ते। योनिः। इन्द्राय। त्वा। मरुत्वते॥३७॥

पदार्थः-(**सजोषाः**) समानं जोषः प्रीतिर्यस्य (**इन्द्र**) सर्वसुखधारक सेनापते! (**सगणः**) गणेन स्वजनसेनापरिकरेण सहितः (**मरुद्भिः**) वायुभिरिव (**सोमम्**) सकलपदार्थरसम् (**पिब**) (**वृत्रहा**) यो वृत्रं मेघं हन्ति स वृत्रहा सूर्य्यस्तद्वत् (**शूर**) शत्रुविनाशक निर्भय (**विद्वान्**) सकलविद्यावेत्ता (**जहि**) विनाशय (**शत्रून्**) सत्यन्यायविरोधे प्रवर्त्तमानान् (**अप**) दूरीकरणे (**मृधः**) मृर्द्धन्ति उन्दन्ति परसुखैः स्वमनांसि येषु तान् सङ्ग्रामान् (**नुदस्व**) प्रेरय (**अथ**) अनन्तरम् (**अभयम्**) (**कृणुहि**) (**विश्वतः**) सर्वतः (**नः**) अस्मभ्यम् (**उपयामगृहीतः**) सेनासु नियमस्वीकृतः (**असि**) (**इन्द्राय**) परमैश्वर्यप्रापकाय युद्धाय (**त्वा**) त्वाम् (**मरुत्वते**) प्रशस्तानि मरुदस्त्राणि विद्यन्ते यस्मिंस्तस्मै (**एषः**) सेनाकृत्यव्यवहारः (**ते**) (**योनिः**) (**इन्द्राय**) (**त्वा**) (**मरुत्वते**)॥३७॥

अन्वयः-हे इन्द्र सेनापते शूर! यतस्त्वमुपयामगृहीतोऽस्यतो मरुत्वत इन्द्राय त्वा त्वामुपदिशामि। किमित्यपेक्षायामाह ते तवैष योनिरस्त्यतस्त्वां मरुत्वत इन्द्राय प्रयतमानमङ्गीकरोमि, सजोषा सगणस्त्वं मरुद्भिर्वृत्रहा इव सोमं पिब, तं पीत्वा विद्वान् सन् शत्रूञ्जहि, अथ मृधोपनुदस्व नोऽस्मभ्यं विश्वतोऽभयं कृणुहि॥३७॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। यथा जीवः प्रेम्णा स्वस्य मित्रस्य वा शरीरस्य रक्षणं करोति, तथा राजा प्रजां पालयेत्। यथा वा सूर्य्यो वायुविद्युद्भ्यां संहत्य मेघान्निहत्य जलेन सर्वस्मै सुखं ददाति, तथा राजा युद्धसाधनानि सम्पाद्य शत्रून्निहत्य प्रजायै सुखं दद्यात्, धर्म्मात्मभ्योऽभयं दुष्टेभ्यो भयं च दद्यात्॥३७॥

पदार्थः-ईश्वर कहता है कि (**इन्द्र**) सब सुखों के धारण करने हारे (**शूर**) शत्रुओं के नाश करने में निर्भय! जिससे तू (**उपयामगृहीतः**) सेना के अच्छे-अच्छे नियमों से स्वीकार किया हुआ (**असि**) है, इससे (**मरुत्वते**) जिसमें प्रशंसनीय वायु की अस्त्रविद्या है, उस (**इन्द्राय**) परमैश्वर्य्य पहुंचाने वाले युद्ध के लिये (**त्वा**) तुझ को उपदेश करता हूं कि (**ते**) तेरा (**एषः**) यह सेनाधिकार (**योनिः**) इष्ट सुखदायक है, इससे (**मरुत्वते**) (**इन्द्राय**) उक्त युद्ध के लिये यत्न करते हुए तुझ को मैं अङ्गीकर करता हूं और (**सजोषाः**) सबसे समान प्रीति करने वाला (**सगणः**) अपने मित्रजनों के सहित तू (**मरुद्भिः**) जैसे पवन के साथ (**वृत्रहा**) मेघ के जल को छिन्न-भिन्न करने वाला सूर्य्य (**सोमम्**) समस्त पदार्थों के रस को खींचता है, वैसे सब पदार्थों के रस को (**पिब**) सेवन कर और इससे (**विद्वान्**) ज्ञानयुक्त हुआ तू (**शत्रून्**) सत्यन्याय के विरोध में प्रवृत्त हुए दुष्टजनों का (**जहि**) विनाश कर। (**अथ**) इसके अनन्तर (**मृधः**) जहां दुष्टजन दूसरे के दुःख से अपने मन को प्रसन्न करते हैं, उन सङ्ग्रामों को (**अपनुदस्व**) दूर कर और (**नः**) हम लोगों को (**विश्वतः**) सब जगह से (**अभयम्**) भयरहित (**कृणुहि**) कर॥३७॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे जीव प्रेम के साथ अपने मित्र वा शरीर की रक्षा करता है, वैसे ही राजा प्रजा की पालना करे और जैसे सूर्य्य वायु और बिजुली के साथ मेघ का भेदन कर जल से सब को सुख देता है, वैसे राजा को चाहिये कि युद्ध की सामग्री जोड़ और शत्रुओं को मार कर प्रजा को सुख धर्म्मात्माओं की निर्भयता और दुष्टों को भय देवे॥३७॥

मरुत्वानित्यस्य विश्वामित्र ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। उपयामेत्यस्य प्राजापत्या त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ सभाध्यक्षायोपदेशः क्रियते॥

अब सभाध्यक्ष के लिये अगले मन्त्र में उपदेश किया है॥

मरुत्वाँ२इन्द्र वृषभो रणाय पिबा सोममनुष्वधं मदाय।
आसिञ्चस्व जठरे मध्वऽऊर्म्मिं त्वꣳ राजासि प्रतिपत् सुतानाम्।
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वतऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते॥ ३८॥

मरुत्वान्। इन्द्र। वृषभः। रणाय। पिब। सोमम्। अनुष्वधम्। अनुस्वधमित्यनुऽस्वधम्। मदाय। आ। सिञ्चस्व। जठरे। मध्वः। ऊर्म्मिम्। त्वम्। राजा। असि। प्रतिपदिति प्रतिऽपत्। सुतानाम्। उपयामगृहीत इत्युपयामऽगृहीतः। असि। इन्द्राय। त्वा। मरुत्वते। एषः। ते। योनिः। इन्द्राय। त्वा। मरुत्वते॥ ३८॥

पदार्थः-(**मरुत्वान्**) प्रशस्ता मरुतः प्रजा सेना वा विद्यन्ते यस्य सः (**इन्द्र**) शत्रुजित् (**वृषभः**) शरीरात्मबलैश्वर्य्ययुक्तः (**रणाय**) सङ्ग्रामाय। **रण इति सङ्ग्रामनामसु पठितम्।** (निघं०२।१७) (**पिब**) अत्र **द्व्यचोऽतस्तिङः।** (**अष्टा०६।३।१३५**) इति दीर्घः। (**सोमम्**) सोमाद्योषधिसमूहम् (**अनुष्वधम्**) सर्वेषु पक्वान्नेष्वनुकूलम्, अत्र विभक्त्यर्थेऽव्ययीभावः समासः। (**मदाय**) हर्षाय (**आसिञ्चस्व**) (**जठरे**) उदरे (**मध्वः**) मधुरस्य (**ऊर्म्मिम्**) लहरीम् (**त्वम्**) सभासेनापतिः (**राजा**) प्रकाशमानः (**असि**) (**प्रतिपत्**) पद्यते विचार्य्यते योऽर्थविषयः स पतं पतं प्रतीति प्रतिपत् (**सुतानाम्**) सुसंस्कारेण निष्पादितानामन्नानाम् (**उपयामगृहीतः**) राजनियमैः स्वीकृतः (**असि**) (**इन्द्राय**) परमैश्वर्यप्रापकाय रणाय (**त्वा**) मरुत्वते प्रशस्तानि मरुदस्त्राणि विद्यन्ते यत्र तस्मै (**एषः**) (**ते**) (**योनिः**) (**इन्द्राय**) राज्यैश्वर्य्याय (**त्वा**) (**मरुत्वते**) प्रजापालनसम्बद्धाय॥ ३८॥

अन्वयः-हे इन्द्र! यतस्त्वमुपयामगृहीतोऽसि तस्माद् वयं त्वा त्वां मरुत्वत इन्द्राय नियोजयामो यतस्ते तवैष योनिरस्ति, तस्मात् त्वा त्वां प्रतिपद्राजा प्रत्येककर्म्मणि प्रकाशमानो मरुत्वान् वृषभोऽस्त्यतो रणायानुष्वधं मदाय सोमं पिब, सुतानामन्नानां मध्व ऊर्म्मिं जठर आसिञ्चस्व॥ ३८॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। सभासेनापत्यादिमनुष्या उत्तमोत्तमान् पदार्थान् भुक्त्वा शरीरात्मबलं सम्पाद्य शत्रून् विजित्य न्यायव्यवस्थया सर्वान् पालयेयुरिति॥ ३८॥

पदार्थः-हे (**इन्द्र**) शत्रुओं के जीतने वाले सभापते! जिस कारण आप (**उपयामगृहीतः**) राजनियमों से स्वीकार किये हुए (**असि**) हो, इसलिये हम लोग तुम को (**मरुत्वते**) जिसमें अच्छे-अच्छे अस्त्रों और शस्त्रों का काम है, उस (**इन्द्राय**) परमैश्वर्य्य को प्राप्त करने वाले युद्ध के लिये युक्त करते हैं, जिससे (**ते**) आपका (**एषः**) यह युद्ध परमैश्वर्य्य का (**योनिः**) कारण है, इसलिये (**त्वा**) तुम को (**मरुत्वते**) (**इन्द्राय**) उस युद्ध के लिये कहते हैं कि आप (**प्रतिपत्**) प्रत्येक बड़े-बड़े विचार के कामों में (**राजा**) प्रकाशमान (**मरुत्वान्**) प्रशंसनीय प्रजायुक्त और (**वृषभः**) अत्यन्त श्रेष्ठ हो, इससे (**रणाय**) युद्ध और (**मदाय**) आनन्द के लिये (**अनुष्वधम्**) प्रत्येक भोजन में (**सोमम्**) सोमलतादि पुष्ट करने वाली ओषधियों के रस को (**पिब**) पीओ (**सुतानाम्**) उत्तम संस्कारो से बनाये हुए अन्नों के (**मध्वः**) मधुर रस की (**ऊर्म्मिम्**) लहरी को अपने (**जठरे**) उदर में (**आसिञ्चस्व**) अच्छे प्रकार स्थापन

करो॥३८॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। सभा और सेनापति आदि मनुष्यों को चाहिये कि उत्तम से उत्तम पदार्थों के भोजन से शरीर और आत्मा को पुष्ट और शत्रुओं को जीत कर न्याय की व्यवस्था से सब प्रजा का पालन किया करें॥३८॥

महानित्यस्य भरद्वाज ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। आद्यस्य भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। उपयामेत्यस्य साम्नी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथेश्वरः स्वगुणानाह॥

अब ईश्वर अपने गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में करता है॥

म॒हाँ२ऽइन्द्रो॒ नृ॒वदा च॑र्षणि॒प्राऽउ॒त द्वि॒बर्हा॑ऽअमि॒नः सहो॑भिः।

अ॒स्म॒द्र्य॒ग्वावृधे वी॒र्या॒योरुः पृ॒थुः सुकृ॑तः क॒र्तृभि॑र्भू॒त्।

उ॒प॒या॒मगृ॑हीतोऽसि महे॒न्द्राय॑ त्वै॒ष ते॒ योनि॑र्महे॒न्द्राय॑ त्वा॥३९॥

म॒हान्। इन्द्रः॑। नृ॒वदिति॑ नृ॒ऽवत्। आ। च॒र्षणि॒प्रा इति॑ चर्षणि॒ऽप्राः। उ॒त। द्वि॒बर्हा॒ इति॑ द्वि॒बर्हाः॑। अ॒मि॒नः। सहो॑भि॒रिति॒ सहः॒ऽभिः। अ॒स्म॒द्र्य॒क्। वा॒वृ॒धे। व॒वृ॒ध इति॑ ववृधे। वी॒र्य्या॒य। उ॒रुः। पृ॒थुः। सु॒कृ॑त इति॒ सु॒ऽकृ॑तः। क॒र्तृभि॒रिति॑ क॒र्तृऽभिः॑। भू॒त्। उ॒प॒या॒मगृ॑हीत॒ इत्यु॑पया॒मऽगृ॑हीतः। अ॒सि॒। म॒हे॒न्द्राये॑ति॑ महाऽइ॒न्द्राय॑। त्वा॒। ए॒षः। ते॒। योनिः॑। म॒हे॒न्द्राये॑ति॑ महाऽइ॒न्द्राय॑। त्वा॒॥३९॥

पदार्थः-(**महान्**) सर्वोत्कृष्टः पूज्यतमश्च (**इन्द्रः**) अत्युत्कृष्टैश्वर्य्यैः (**नृवत्**) न्यायशीलैर्मनुष्यैस्तुल्यः (**आ**) (**चर्षणिप्राः**) चर्षणिप्राः मनुष्यान् प्राति सुखैः प्रपूरयति सः (**उत**) अपि (**द्विबर्हाः**) द्वे बर्हसी व्यावहारिकपारमार्थिकवृद्धिकरे विज्ञाने यस्य सः। **द्विबर्हा इति पदनामसु पठितम्।** (निघं०४।३) (**अमिनः**) अनुपमोऽतुलपराक्रमः। **अमिनोऽमितमात्रो महान् भवत्यमितो वा। (निरु०६।१६)** (**सहोभिः**) बलैः (**अस्मद्र्यक्**) अस्मानञ्चति सर्वज्ञतया जानाति (**वावृधे**) वर्द्धते वर्द्धयति वा (**वीर्य्याय**) पराक्रमाय (**उरुः**) बहुः (**पृथुः**) विस्तीर्णः (**सुकृतः**) शोभनं कृतं क्रियते येन सः (**कर्तृभिः**) सुकर्म्मकारिभिर्जीवैः सह (**भूत्**) भवति, अत्राडभावः। (**उपयामगृहीतः**) योगाभ्यासेन स्वीकर्त्तुं योग्यः (**असि**) (**महेन्द्राय**) अनुत्तमायैश्वर्य्याय (**त्वा**) (**एषः**) (**ते**) (**योनिः**) (**महेन्द्राय**) (**त्वा**) त्वाम्॥ अयं मन्त्रः (शत०(४।३।३।१८) व्याख्यातः॥३९॥

अन्वयः-हे भगवन् जगदीश्वर! यतस्त्वमुपयामगृहीतोऽसि तस्मान्महेन्द्राय त्वा वयमुपास्महे, उतापि यतस्ते तवैष योनिरस्ति, तस्मात् त्वां महेन्द्राय वयं सेवामहे। यो महान् नृवदाचर्षणिप्रा द्विबर्हास्मद्र्यङ् अमिन उरुः पृथुः कर्तृभिः सह सुकृत इन्द्रो भूत्। तमेवाश्रितः सर्वो जनः सहोभिः सह वीर्य्याय वावृधे॥३९॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। ईश्वरमनाश्रित्य कश्चिदपि पुरुषः प्रजाः पालयितुं न शक्नोति। यथेश्वरः शाश्वतं न्यायमाश्रित्य सर्वान् प्राणिनः सुखयति, तथैव राजापि सर्वान् तर्पयेत्॥३९॥

पदार्थः-हे भगवन् जगदीश्वर! जिस कारण आप (**उपयामगृहीतः**) योगाभ्यास से ग्रहण करने के योग्य (**असि**) हैं, इससे (**महेन्द्राय**) अत्यन्त उत्तम ऐश्वर्य के लिये हम लोग (**त्वा**) आपकी उपासना करते हैं (**उत**) और

जिससे **(ते)** आपकी **(एषः)** यह उपासना हमारे लिये **(योनिः)** कल्याण का कारण है, इससे **(त्वा)** तुम को **(महेन्द्राय)** परमैश्वर्य्य पाने के लिये हम सेवन करते हैं, जो **(महान्)** सर्वोत्तम अत्यन्त पूज्य **(नृवत्)** मनुष्यों के तुल्य **(आ)** अच्छे प्रकार **(चर्षणिप्राः)** सब मनुष्यों को सुखों से परिपूर्ण करने **(द्विबर्हाः)** व्यवहार और परमार्थ के ज्ञान को बढ़ाने वाले दो प्रकार के ज्ञान से संयुक्त **(अस्मद्र्यक्)** हम सब प्राणियों को अपनी सर्वज्ञता से जानने वाले **(अमिनः)** अतुल पराक्रमयुक्त **(उरुः)** बहुत **(पृथुः)** विस्तारयुक्त **(कर्तृभिः)** अच्छे कर्म्म करने वाले जीवों ने **(सुकृतः)** अच्छे कर्म्म करने वाले के समान ग्रहण किये हुए और **(इन्द्रः)** अत्यन्त उत्कृष्ट ऐश्वर्य्य वाले आप हैं, उन्हीं का आश्रय किये हुए समस्त हम लोग **(सहोभिः)** अच्छे-अच्छे बलों के साथ **(वीर्य्याय)** परम उत्तम बल की प्राप्ति के लिये **(वावृधे)** दृढ़ उत्साहयुक्त होते हैं॥३९॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। ईश्वर का आश्रय न करके कोई भी मनुष्य प्रजा की रक्षा नहीं कर सकता। जैसे ईश्वर सनातन न्याय का आश्रय करके सब जीवों को सुख देता है, वैसे ही राजा को भी चाहिये कि प्रजा को अपनी न्याय व्यवस्था से सुख देवे॥३९॥

महानिन्द्र इत्यस्य वत्स ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। आर्षी गायत्री छन्दः। उपयामेत्यस्य विराडार्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनरीश्वरगुणा उपदिश्यन्ते॥

फिर भी ईश्वर के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

म॒हाँ२ऽइन्द्रो॒ यऽओज॑सा प॒र्जन्यो॑ वृष्टि॒माँ२ऽइ॑व। स्तोमै॑र्व॒त्सस्य॑ वावृधे।

उ॒प॒या॒मगृ॑हीतोऽसि म॒हेन्द्राय॑ त्वै॒ष ते॒ योनि॑र्म॒हेन्द्राय॑ त्वा॥४०॥

म॒हान्। इन्द्रः॑। यः। ओज॑सा। प॒र्जन्यः॑। वृ॒ष्टि॒माँ२इ॑व। वृ॒ष्टि॒मानि॒वेति॑ वृष्टि॒मान्ऽइ॑व। स्तोमैः॑। व॒त्सस्य॑। वा॒वृ॒धे॒। व॒वृ॒ध इति॑ ववृधे। उ॒प॒या॒मगृ॑हीत॒ इत्यु॑पया॒मगृ॑हीतः। अ॒सि॒। म॒हे॒न्द्रायेति॑ महाऽइ॒न्द्राय॑। त्वा॒। ए॒षः। ते॒। योनिः॑। म॒हे॒न्द्रायेति॑ महाऽइ॒न्द्राय॑। त्वा॒॥४०॥

पदार्थः-**(महान्)** महागुणकर्मस्वभावः **(इन्द्रः)** अखिलैश्वर्यः **(यः)** **(ओजसा)** अनन्तबलेन **(पर्जन्यः)** मेघः **(वृष्टिमानिव)** बह्व्यो वृष्टयो विद्यन्ते यस्मिंस्तद्वत् **(स्तोमैः)** स्तुतिभिः **(वत्सस्य)** यो वदति तस्य **(वावृधे)** अत्यन्तं वर्द्धते **(उपयामगृहीतः)** यमनियमादिभिर्योगाङ्गैः साक्षात् स्वीकृतः **(असि)** **(महेन्द्राय)** योगजाय महैश्वर्य्याय **(त्वा)** त्वाम् **(एषः)** **(ते)** तव **(योनिः)** निमित्तम् **(महेन्द्राय)** मोक्षप्रापकाय महैश्वर्य्याय **(त्वा)** त्वाम्॥४०॥

अन्वयः-हे अनादिसिद्ध महायोगिन् सर्वव्यापिन्नीश्वर! यतत्वं योगिभिरुपयामगृहीतोऽसि तस्मात् त्वा त्वां महेन्द्रायोपश्रयामहे, यतस्ते तवैष योगो योनिरस्त्यतस्त्वा त्वां महेन्द्राय वयं ध्यायेम। यो महान् वृष्टिमान् पर्जन्य इव वत्सस्य स्तोमैरोजसेन्द्रः सुखवर्षको भवति, तं विदित्वा योगी वावृधेऽत्यन्तं वर्द्धते॥४०॥

भावार्थः-यथा मेघो वृष्टिसमये स्वजलसमूहेन सर्वान् पदार्थान् तर्पयन् सन् वर्द्धयति, तथैवश्वरो योगाराधनतत्परं योगिनमभिवर्द्धयति॥४०॥

पदार्थः-हे अनादिसिद्ध योगिन् सर्वव्यापी ईश्वर! जो आप योगियों के **(उपयामगृहीतः)** यमनियमादि योग के अङ्गों से स्वीकार किये हुए **(असि)** हैं, इस कारण हम लोग **(त्वा)** आप के **(महेन्द्राय)** योग से प्रकट होने

वाले अच्छे ऐश्वर्य्य के लिये आश्रय करते हैं, **(ते)** आपका **(एषः)** यह योग हमारे कल्याण का **(योनिः)** निमित्त है, इसलिये **(त्वा)** आपका **(महेन्द्राय)** मोक्ष कराने वाले ऐश्वर्य के लिये ध्यान करते हैं, **(यः)** जो **(महान्)** बड़े-बड़े गुण, कर्म्म और स्वभाव वाला **(वृष्टिमान्)** वर्षने वाले **(पर्जन्य इव)** मेघ के तुल्य **(वत्सस्य)** स्तुतिकर्त्ता की **(स्तोमैः)** स्तुतियों से **(ओजसा)** अनन्त बल के साथ प्रकाशित होता है, उस ईश्वर को जानकर योगी **(वावृधे)** अत्यन्त उन्नति को प्राप्त होता है॥४०॥

भावार्थः-जैसे मेघ वर्षा समय में अपने जल के समूह से सब पदार्थों को तृप्त करता हुआ उन्नति देता है, वैसे ईश्वर भी योगाभ्यास करने वाले योगी पुरुष के योग को अत्यन्त बढ़ाता है॥४०॥

उदुत्यमित्यस्य प्रस्कण्व ऋषिः। सूर्य्यो देवता। भुरिगार्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अथ सूर्य्यदृष्टान्तेनेश्वरस्य गुणा उपदिश्यन्ते॥

इसके पीछे सूर्य्य की उपमा से ईश्वर के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्यँ स्वाहा॥४१॥

उत्। ऊँऽइत्यूँ। त्यम्। जातवेदसमिति जातऽवेदसम्। देवम्। वहन्ति। केतवः। दृशे। विश्वाय। सूर्य्यम्। स्वाहा॥४१॥

पदार्थः-**(उत्)** क्रियायोगे **(उ)** वितर्के **(त्यम्)** अमुम् **(जातवेदसम्)** जातानि भूतानि सर्वाणि वेद, जातान् मूर्त्तिमतः पदार्थान् विन्दत इति वा तम्। इमं पदं यास्कमुनिरेवं निर्वक्ति-'**जातवेदाः कस्माज्जातानि वेद जातानि वैनं विदुर्जाते जाते विद्यत इति वा जातविद्यो वा जातप्रज्ञानो यत्तज्जात पशूनविन्दतेति तज्जातवेदसो जातवेदस्त्वमिति।** **(निरु०७.१९)** **(देवम्)** दिव्यगुणसम्पन्नम् **(वहन्ति)** प्रापयन्ति **(केतवः)** प्रज्ञानानि, **केतुरिति प्रज्ञानामसु पठितम्।** (निघं०३.९) **(दृशे)** द्रष्टुम्, **दृशे विख्ये च। (अष्टा०३.४.११)** **(विश्वाय)** सर्वार्थाय **(सूर्य्यम्)** यः स्रियते विज्ञाप्यते वा विप्रैर्विद्वद्भिश्च तम् **(स्वाहा)** सत्यया वाचा॥ इमं मन्त्रं यास्कमुनिरेवं व्याचष्टे-'**उद्वहन्ति तं जातवेदसं रश्मयः केतवः सर्वेषां भूतानां दर्शनाय सूर्य्यमिति कमन्यमादित्यादेवमवक्ष्यत्।** (निरु०१२.१५) अयं मन्त्रः (शत०(४।६।२।२) व्याख्यातः॥४१॥

अन्वयः-यथा किरणा विश्वाय दृशे जातवेदसं त्यं सूर्य्यं देवमुद्वहन्तीव विदुषः केतवः स्वाहाऽन्यान् मनुष्यान् परं ब्रह्म प्रापयन्ति॥४१॥

भावार्थः-यथा प्राणिभ्यः किरणाः सूर्य्यं प्रकाशयन्ति, तथा मनुष्यस्य प्रज्ञानानीश्वरं प्रापयन्ति॥४१॥

पदार्थः-जैसे किरण **(विश्वाय)** समस्त जगत् के प्रयोजन के **(दृशे)** देखने जानने के लिये **(जातवेदसम्)** जो उत्पन्न हुए सब पदार्थों को जानता वा मूर्तिमान् पदार्थों को प्राप्त होता है, **(त्यम्)** उस **(सूर्य्यम्)** **(देवम्)** दिव्यगुणसम्पन्न सूर्य्य को **(उ)** तर्क के साथ **(उत्)** **(वहन्ति)** प्राप्त कराते हैं, वैसे विद्वान् के **(केतवः)** प्रकृष्ट ज्ञान और **(स्वाहा)** सत्य वाणी या उपदेश मनुष्य को परब्रह्म की प्राप्ति करा देता है॥४१॥

भावार्थः-जैसे प्राणियों के लिये सूर्य्य की किरण उसको प्रकाशित करती है, वैसे मनुष्य की अनेक विद्यायुक्त बुद्धियाँ ईश्वर का प्रकाश करा देती हैं॥४१॥

चित्रं देवानामित्यस्य कुत्स ऋषिः। सूर्य्यो देवता। भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनरित्थमेवेश्वरस्य गुणा उपदिश्यन्ते॥

फिर भी वैसे ही ईश्वर के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

चि॒त्रं दे॒वाना॒मुद॑गा॒दनी॑कं॒ चक्षु॑र्मि॒त्रस्य॒ वरु॑णस्या॒ग्नेः।
आप्रा॒ द्यावा॑पृथि॒वीऽअ॒न्तरि॑क्ष॒ꣳ सूर्य॑ऽआ॒त्मा जग॑तस्त॒स्थुष॑श्च॒ स्वाहा॑॥४२॥

चि॒त्रम्। दे॒वाना॑म्। उत्। अ॒गा॒त्। अनी॑कम्। चक्षुः॑। मि॒त्रस्य॑। वरु॑णस्य। अ॒ग्नेः। आ। अ॒प्राः। द्यावा॑पृथि॒वीऽइति॒ द्यावा॑पृथि॒वी। अ॒न्तरि॑क्षम्। सूर्य्यः॑। आ॒त्मा। जग॑तः। त॒स्थुषः॑। च॒। स्वाहा॑॥४२॥

पदार्थः-(**चित्रम्**) अद्भुतम् (**देवानाम्**) चक्षुरादीनामिव विदुषाम् (**उत्**) उद्गमने (**अगात्**) प्राप्नोति (**अनीकम्**) बलवत्तरं सैन्यमिव प्रसिद्धम्। अनिति जीवयति सर्वान् प्राणिनः सः। **अनिहृषिभ्यां किच्च।** (उणा०४।१७) अनेन ईकन् प्रत्ययः। (**चक्षुः**) दर्शकम् (**मित्रस्य**) सख्युः प्राणस्य वा (**वरुणस्य**) श्रेष्ठस्योदानस्य वा (**अग्नेः**) विद्युतः (**आ**) समन्तात् (**अप्राः**) यः प्राति पिपर्त्ति, अत्र लडर्थे लुङ्। (**द्यावापृथिवी**) भूमिवियतौ (**अन्तरिक्षम्**) सर्वान्तर्गतमनन्तमाकाशम् (**सूर्य्यः**) स्वयंप्रकाशः (**आत्मा**) अतति सर्वत्र व्याप्नोति (**जगतः**) जङ्गमस्य (**तस्थुषः**) स्थावरस्य (**च**) जीवानां समुच्चये (**स्वाहा**) सत्यया क्रियया॥ इमं मन्त्रं यास्कमुनिरेवं समाचष्टे- **चायनीयं देवानामुदगमदनीकं ख्यानं मित्रस्य वरुणस्याग्नेश्चापूपुरद् द्यावापृथिव्यौ चान्तरिक्षं च महत्त्वेन तेन सूर्य आत्मा जङ्गमस्य च स्थावरस्य च।** (निरु०१२।१६)। अयं मन्त्रः (शत०(४। ३। ४। १०) व्याख्यातः॥४२॥

अन्वयः-हे मनुष्या! युष्माभिः सूर्य्यः स्वाहा देवानां मित्रस्य वरुणस्याग्नेश्चित्रमनीकं चक्षुरुदगात् जगतस्तस्थुषश्चात्मा सन् द्यावापृथिवी अन्तरिक्षमाप्रा इव यो जगदीश्वरोऽस्ति, स एव सततमुपासनीयः॥४२॥

भावार्थः-यतः परमेश्वरः आकाश इव सर्वत्र व्याप्तः, सवितेव स्वयम्प्रकाशः, प्राण इव सर्वान्तर्य्याम्यस्त्यतः सर्वेभ्यो जीवेभ्यः सत्यासत्यविज्ञापकोऽस्ति। यस्य परमेश्वरस्य ज्ञीप्सा भवेत्, स योगमभ्यस्य स्वात्मन्येव तं द्रष्टुं शक्नोति, नान्यत्रेति॥४२॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम को अति उचित है कि जो (**सूर्य्यः**) सविता (**स्वाहा**) सत्य क्रिया से (**देवानाम्**) नेत्र आदि के समान विद्वानों (**मित्रस्य**) मित्र वा प्राण (**वरुणस्य**) श्रेष्ठ पुरुष वा उदान और (**अग्नेः**) अग्नि के (**चित्रम्**) अद्भुत (**अनीकम्**) बलवत्तर सेना के तुल्य प्रसिद्ध (**चक्षुः**) प्रभाव के दिखलाने वाले गुणों को (**उत्**) (**अगात्**) अच्छे प्रकार प्राप्त होता और (**जगतः**) जङ्गम प्राणी और (**तस्थुषः**) स्थावर संसारी पदार्थों का (**आत्मा**) आत्मा के तुल्य होकर (**द्यावापृथिवी**) आकाश तथा भूमि और (**अन्तरिक्षम्**) अन्तरिक्ष को (**आ**) सब प्रकार से (**अप्राः**) व्याप्त होने के समान परमात्मा है, उसी की उपासना निरन्तर किया करो॥४२॥

भावार्थः-जिस कारण परमेश्वर आकाश के समान सब जगह व्याप्त, सूर्य्य के तुल्य स्वयं प्रकाशमान और सूत्रात्मा वायु के सदृश सब का अन्तर्यामी है, इससे सब जीवों के लिये सत्य और असत्य को बोध कराने वाला है। जिस किसी पुरुष को परमेश्वर को जानने की इच्छा हो, वह योगाभ्यास करके अपने आत्मा में उसे देख सकता है, अन्यत्र नहीं॥४२॥

अग्ने नयेत्यस्याङ्गिरस ऋषिः। अन्तर्यामी जगदीश्वरो देवता। भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथैतदीश्वरप्रार्थनामाह॥

अब ईश्वर की प्रार्थना अगले मन्त्र में कही है॥

अग्ने नय॑ सु॒पथा॑ रा॒येऽअ॒स्मान् विश्वा॑नि देव व॒युना॑नि वि॒द्वान्।

यु॒यो॒ध्य॒स्मज्जु॑हुरा॒णमेनो॒ भूयि॑ष्ठां ते॒ नम॑ऽउक्तिं विधेम॒ स्वाहा॑॥४३॥

अग्ने॑। नय॑। सु॒पथेति॑ सु॒ऽपथा॑। रा॒ये। अ॒स्मान्। विश्वा॑नि। दे॒व॒। व॒युना॑नि। वि॒द्वान्। यु॒यो॒धि। अ॒स्मत्। जु॒हु॒रा॒णम्। एन॑:। भूयि॑ष्ठाम्। ते॒। नम॑उक्तिमिति॒ नम॑:ऽउक्तिम्। वि॒धे॒म॒। स्वाहा॑॥४३॥

पदार्थ:-(**अग्ने**) सर्वेषां प्रकाशक! (**नय**) प्रापय (**सुपथा**) योगमार्गेण (**राये**) योगसिद्धये (**अस्मान्**) योगिन: (**विश्वानि**) अखिलानि (**देव**) योगप्रद! (**वयुनानि**) योगविज्ञानानि (**विद्वान्**) यो वेत्ति सर्वं योगं स: (**युयोधि**) वियोजय (**अस्मत्**) अस्माकं योगानुष्ठातॄणां सकाशात् (**जुहुराणम्**) अस्मदन्त:करणस्य कौटिल्यम् (**एन:**) दुष्कृतात्मकमपराधम् (**भूयिष्ठाम्**) भूयसीम् (**ते**) तव योगोपदेष्टु: परमगुरो: (**नमउक्तिम्**) नातिपुर:सरां स्तुतिम् (**विधेम**) कुर्य्याम (**स्वाहा**) सत्यया स्वकीयया वाचा वेदवाचा वा॥ अयं मन्त्र: (शत०(४।३।४।१२) व्याख्यात:॥४३॥

अन्वय:-हे अग्ने! त्वं राये अस्मान् विश्वानि वयुनानि नय। यतो वयं स्वाहा ते भूयिष्ठां नमउक्तिं विधेम। हे देव! विद्वंस्त्वं कृपया जुहुराणमेनश्चास्मद्युयोधि॥४३॥

भावार्थ:-न कश्चिदपि पुरुष: परमात्मन: सत्यप्रेमभक्त्या विना योगसिद्धिं प्राप्नोति, यश्चेत्थम्भूतो योगबलेन परमेश्वरं स्मरति, तस्मै स दयालु: शीघ्रं योगसिद्धिं ददाति॥४३॥

पदार्थ:-हे (**अग्ने**) सब के अन्त:करण में प्रकाश करने वाले परमेश्वर! आप (**सुपथा**) सत्यविद्या धर्म्मयोगयुक्त मार्ग से (**राये**) योग की सिद्धि के लिये (**अस्मान्**) हम लोगों को (**विश्वानि**) समस्त (**वयुनानि**) योग के विद्वानों को (**नय**) पहुंचाइये जिससे हम लोग (**स्वाहा**) अपनी सत्यवाणी वा वेदवाणी से (**ते**) आप की (**भूयिष्ठाम्**) बहुत (**नमउक्तिम्**) नमस्कारपूर्वक स्तुति को (**विधेम**) करें। हे (**देव**) योगविद्या को देनेवाले ईश्वर! (**विद्वान्**) समस्त योग के गुण और क्रियाओं को जानने वाले आप कृपा करके (**जुहुराणम्**) हम लोगों के अन्त:करण के कुटिलतारूप (**एन:**) दुष्ट कर्म्मों को (**अस्मत्**) योगानुष्ठान करने वाले हम लोगों से (**युयोधि**) दूर कर दीजिये॥४३॥

भावार्थ:-कोई भी पुरुष परमात्मा की प्रेमभक्ति के विना योगसिद्धि को प्राप्त नहीं होता और जो प्रेम-भक्तियुक्त होकर योगबल से परमेश्वर का स्मरण करता है, उसको वह दयालु परमात्मा शीघ्र योगसिद्धि देता है॥४३॥

अयमित्यस्याङ्गिरस ऋषि:। प्रजापतिर्देवता। भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्द:। धैवत: स्वर:॥

अथ सङ्ग्रामे ब्रह्मोपासकै: शूरवीरै: कथं योद्धव्यमित्युदिश्यते॥

अब सङ्ग्राम में परमेश्वर के उपासक शूरवीरों को किस प्रकार युद्ध करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अ॒यं नो॑ऽअ॒ग्निर्वरि॑वस्कृणोत्व॒यं मृध॑: पु॒रऽए॑तु प्रभि॒न्दन्।

अयं वाजाञ्जयतु वाजसातावयꣳ शत्रूञ्जयतु जर्हृषाणः स्वाहा॥४४॥

अयम्। नः। अग्निः। वरिवः। कृणोतु। अयम्। मृधः। पुरः। एतु। प्रभिन्दन्निति प्रऽभिन्दन्। अयम्। वाजान्। जयतु। वाजसाताविति वाजऽसातौ। अयम्। शत्रून्। जयतु। जर्हृषाणः। स्वाहा॥४४॥.

पदार्थः-(**अयम्**) सर्वाभिरक्षकः (**नः**) अस्माकम् (**अग्निः**) वैद्यविद्याप्रकाशकः सर्वरोगनिवारकः सद्वैद्यः (**वरिवः**) सुखकारकं सेवनम् (**कृणोतु**) करोतु (**अयम्**) मुख्ययोद्धा (**मृधः**) सङ्ग्रामात् (**पुरः**) पुरस्तात् (**एतु**) गच्छतु (**प्रभिन्दन्**) विदारयन् (**अयम्**) वक्तृत्वेनोपदेष्टुं कुशलो योद्धा (**वाजान्**) वेगादिगुणयुक्तान् स्वसेनास्थान् वीरान् (**जयतु**) उत्कर्षतु (**वाजसातौ**) वाजानां सङ्ग्रामाणां संविभागे (**अयम्**) सर्वोत्कृष्टः (**शत्रून्**) धर्मशातकान् (**जयतु**) स्वोत्कर्षाय तिरस्करोतु (**जर्हृषाणः**) भृशमाह्लादितः (**स्वाहा**) वैद्यकयुद्धविद्यया शिक्षितया वाचा। **स्वाहेति वाङ्नामसु पठितम्।** (निघं०१।११)। अयं मन्त्रः (शत०(४।३।४।१३) व्याख्यातः॥४४॥

अन्वयः-अयमग्निः स्वाहा वाजसातौ नो वरिवस्कृणोतु। अयं प्रभिन्दन् मृधः पुर एतु। अयं वाजाञ्जयतु। अयं जर्हृषाणः सन् शत्रून् जयतु॥४४॥

भावार्थः-यदा युद्धकर्मणि चत्वारो वीरा अवश्यमेव भवेयुस्तेष्वेको वैद्यकक्रियाकुशलः सर्वरक्षकः, द्वितीयो हि शौर्य्यादिगुणप्रदेन व्याख्यानेन हर्षयिता, तृतीयः शत्रूणां तिरस्कर्त्ता, चतुर्थः शत्रुविघातुकः स्यात्, तदा सर्वा युद्धक्रिया प्रशस्ता भवेत्॥४४॥

पदार्थः-(**अयम्**) यह प्रथम (**अग्निः**) वैद्यक विद्या का प्रकाश करने वाला वैद्य (**स्वाहा**) वैद्यक और युद्ध की शिक्षायुक्त वाणी से (**वाजसातौ**) युद्ध में (**नः**) हम लोगों को (**वरिवः**) सुखकारक सेवन (**कृणोतु**) करे, (**अयम्**) यह दूसरा युद्ध करने वाला मुख्य वीर (**प्रभिन्दन्**) शत्रुओं को विदीर्ण करता हुआ (**मृधः**) सङ्ग्राम के (**पुरः**) आगे (**एतु**) चले, (**अयम्**) यह तीसरा वीर रसकारक उपदेश करने वाला योद्धा (**वाजान्**) अत्यन्त वेगादिगुणयुक्त वीरों को (**जयतु**) उत्साहयुक्त करता रहे, (**अयम्**) यह चौथा वीर (**जर्हृषाणः**) निरन्तर आनन्दयुक्त होकर (**शत्रून्**) धर्म्मविरोधी शत्रुजनों को (**जयतु**) जीते॥४४॥

भावार्थः-जब युद्धकर्म में चार वीर अवश्य हों उनमें से एक तो वैद्यकशास्त्र की क्रियाओं में चतुर सब की रक्षा करनेहारा वैद्य, दूसरा सब वीरों को हर्ष देने वाला उपदेशक, तीसरा शत्रुओं का अपमान करनेहारा और चौथा शत्रुओं का विनाश करने वाला हो, तब समस्त युद्ध की क्रिया प्रशंसनीय होती है॥४४॥

रूपेणेत्यस्याङ्गिरस ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। निचृज्जगतीच्छन्दः। निषादः स्वरः॥

अथ सभात्रयेण राज्यं शासनीयमित्युपदिश्यते॥

अब तीन सभाओं से राज्य की शिक्षा करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

रूपेण वो रूपमभ्यागां तुथो वो विश्ववेदा विभजतु।

ऋतस्य पथा प्रेत चन्द्रदक्षिणा वि स्वः पश्य व्युन्तरिक्षं यतस्व सदस्यैः॥४५॥

रूपेण। वः। रूपम्। अभि। आ। अगाम्। तुथः। वः। विश्ववेदा इति विश्वऽवेदाः। वि। भजतु। ऋतस्य। पथा। प्र। इत। चन्द्रदक्षिणा इति चन्द्रऽदक्षिणाः। वि। स्वरिति स्वः। पश्य। वि। अन्तरिक्षम्। यतस्व। सदस्यैः॥४५॥

पदार्थः-(**रूपेण**) चक्षुग्राह्येण प्रियेण (**वः**) युष्माकम् (**रूपम्**) स्वरूपम् (**अभि**) सम्मुखे (**आ**) समन्तात् (**अगाम्**) (**तुथः**) ज्ञानवृद्धः, अत्र तु गतिवृद्धिहिंसास्वित्यस्मादौणादिकस्थक् प्रत्ययः। (**वः**) युष्मान् (**विश्ववेदाः**) यः परत्मात्मा विश्वं सर्वं वेत्ति तद्वद्वर्त्तमानः (**वि**) (**भजतु**) विभागं करोतु (**ऋतस्य**) सत्यस्य (**पथा**) मार्गेण (**प्र**) (**इत**) प्राप्नुत (**चन्द्रदक्षिणाः**) चन्द्रं सुवर्णं दक्षिणा दानं येषा ते। **चन्द्रमिति हिरण्यनामसु पठितम्।** (निघं०१।२) (**वि**) (**स्वः**) उपतपन्नादित्य इव। **स्वरादित्यो भवति। (निरु०२।१४)** (**पश्य**) प्रचक्ष्व (**वि**) विविधार्थे (**अन्तरिक्षम्**) क्षयरहितमन्तर्य्यामिस्वाभाविकं ब्रह्मविज्ञानं वा। **अन्तरिक्षम् कस्मादन्तरा क्षान्तं भवत्यन्तरेमे इति वा शरीरेष्वन्तरक्षयमिति वा।** (निरु०२।१०) (**यतस्व**) प्रयत्नं कुरु (**सदस्यैः**) सदसि भवैः सभ्यैर्जनैः सह॥ अयं मन्त्रः (शत०(४।३।४।१४-१८) व्याख्यातः॥४५॥

अन्वयः-हे सेना प्रजाजना! यथाहं रूपेण वो युष्माकं रूपमभ्यागाम्, तथा विश्ववेदा वो युष्मान् विभजतु। तुथस्त्वं स्वरिवर्त्तस्य पथान्तरिक्षं विपश्य, सभायां सदस्यैः सहर्त्तस्य पथा प्रयतस्व। चन्द्रदक्षिणा यूयमृतस्य धर्म्यं मार्गं वीत॥४५॥

भावार्थः-सभापती राजा स्वात्मजानिव प्रजासेनासभ्यपुरुषान् प्रीणयेत्, तथा पक्षपातरहितः परमेश्वर इव सततं न्यायं कुर्यात्। धार्मिकाणां सभ्यानां जनानां तिस्रः सभा भवेयुः। तास्वेका **राजसभा**-यया राजकार्याणि निष्पद्येरन्, सर्वे विघ्ना निवर्तेरंश्च। द्वितीया **विद्यासभा**-यया विद्याप्रचारः स्यादविद्या नश्येत्। तृतीया **धर्मसभा**-यया धर्मोन्नतिरधर्महानिश्च सततं भवेत्, सर्वे स्वात्मानं परमात्मानं समीक्ष्यान्यायमार्गात् पृथग्भूत्वा धर्मं सेवित्वा समयं पर्य्यालोच्य सत्यासत्यनिर्णये प्रयतेरन्॥४५॥

पदार्थः-हे सेना और प्रजाजनो! जैसे मैं (**रूपेण**) अपने दृष्टिगोचर आकार से (**वः**) तुम्हारे (**रूपम्**) स्वरूप को (**अभि**) (**आ**) (**अगाम्**) प्राप्त होता हूं, वैसे (**विश्ववेदाः**) सब को जानने वाले परमात्मा के समान सभापति (**वः**) तुम लोगों को (**वि**) (**भजतु**) पृथक्-पृथक् अपने-अपने अधिकार में नियत करे। हे सभापते! (**तुथः**) सब से अधिक ज्ञान वाले प्रतिष्ठित आप (**स्वः**) प्रताप को प्राप्त हुए सूर्य्य के समान (**ऋतस्य**) सत्य के (**पथा**) मार्ग से (**अन्तरिक्षम्**) अविनाशी राजनीति वा ब्रह्मविज्ञान को (**वि**) अनेक प्रकार से (**पश्य**) देखो और सभा के बीच में (**सदस्यैः**) सभासदों के साथ सत्य मार्ग से (**प्र**) (**यतस्व**) विशेष-विशेष यत्न करो तथा हे (**चन्द्रदक्षिणाः**) सुवर्ण के दान करने वाले राजपुरुषो! तुम लोग धर्म्म को (**वीत**) विशेषता से प्राप्त होओ॥४५॥

भावार्थः-सभापति राजा को चाहिये कि प्रजा, सेना के पुरुषों को अपने पुत्रों के तुल्य प्रसन्न रक्खे और परमेश्वर के तुल्य पक्षपात छोड़ कर न्याय करे। धार्म्मिक सभ्यजनों की तीन सभा होनी चाहियें उनमें से एक **राजसभा** जिस के आधीन राज्य के सब कार्य्य चलें और सब उपद्रव निवृत्त रहें। दूसरी **विद्यासभा** जिससे विद्या का प्रचार अनेकविधि किया जावे और अविद्या का नाश होता रहे और तीसरी **धर्म्मसभा** जिससे धर्म्म की उन्नति और अधर्म्म की हानि निरन्तर की जाय। सब लोगों को उचित है कि अपने आत्मा और परमात्मा को देखकर अन्याय मार्ग से अलग हों, धर्म्म का सेवन और सभासदों के साथ समयानुकूल अनेक प्रकार से विचार करके सत्य और असत्य के निर्णय करने में प्रयत्न किया करें॥४५॥

ब्राह्मणमित्यस्याङ्गिरस ऋषिः। विद्वांसो देवताः। भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ दक्षिणा कस्मै कथं च दातव्येत्युपदिश्यते॥

अब दक्षिणा किस को और किस प्रकार देनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है॥

ब्राह्मणमद्य विदेयं पितृमन्तं पैतृमत्यमृषिमार्षेयः सुधातुदक्षिणम्।

अस्मद्राता देवत्रा गच्छत प्रदातारमाविशत॥४६॥

ब्राह्मणम्। अद्य। विदेयम्। पितृमन्तमिति पितृऽमन्तम्। पैतृमत्यमिति पैतृऽमत्यम्। ऋषिम्। आर्षेयम्। सुधातुदक्षिणमिति सुधातुऽदक्षिणम्। अस्मद्राता इत्यस्मत्ऽराताः। देवत्रेति देवऽत्रा। गच्छत। प्रदातारमिति प्रऽदातारम्। आ। विशत॥४६॥

पदार्थः-(**ब्राह्मणम्**) वेदेश्वरविदम् (**अद्य**) (**विदेयम्**) अत्र **छान्दसो वर्णलोपो वा** [अष्टा०भा०वा०८.२.२५] इति नलोपः। (**पितृमन्तम्**) प्रशस्ताः पितरो रक्षकाः सत्यासत्योपदेशकाः विद्यन्ते यस्य तमिव (**पैतृमत्यम्**) पितृमतां भावं प्राप्तम् (**ऋषिम्**) वेदार्थविज्ञापकम् (**आर्षेयम्**) ऋषीणामिदं योगजं विज्ञानं प्राप्तम् (**सुधातुदक्षिणम्**) शोभना धातवो दक्षिणा यस्य दातुस्तम् (**अस्मद्राताः**) येऽस्मभ्यं रान्ति शुभान् गुणान् ददति ते (**देवत्रा**) देवेषु पवित्रगुणकर्मस्वभावेषु वर्त्तमानाः (**गच्छत**) प्राप्नुत (**प्रदातारम्**) प्रकृष्टतया दानशीलम् (**आ**) समन्तात् (**विशत**)॥ अयं मन्त्रः (शत०(४।३।१९-२४) व्याख्यातः॥४६॥

अन्वयः-हे प्रजासभासेनाजना! यथाहमद्य ब्राह्मणं पितृमन्तं पैतृमत्यमृषिमार्षेयं सुधातुदक्षिणं प्रदातारं च विदेयम्, तथाऽस्मद्राताः सन्तो यूयं देवत्रा गच्छत, शुभान् गुणानाविशत॥४६॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। उत्साहितेन पुरुषेण किमाप्तुमशक्यमस्ति, को नाम खलु प्रयत्नेन विदुषः सेवित्वार्षं योगविज्ञानं साधितुन्न शक्नुयात्। नहि कश्चिदपि विद्वान् सद्गुणस्वभावग्रहणाद् विरज्येत, नहि दातॄन् कार्प्पण्यं कदाचिदाविशत्वतो यैर्दक्षिणायां प्रशस्ताः पदार्थाः प्रदीयन्ते, तेषामतुला कीर्तिः कुतो न जायेत॥४६॥

पदार्थः-हे प्रजा सभा और सेना के मनुष्यो! जैसे मैं (**अद्य**) आज (**ब्राह्मणम्**) वेद और ईश्वर को जानने वाला (**पितृमन्तम्**) प्रशंसनीय पितृ अर्थात् सत्यासत्य के विवेक से जिसके सर्वथा रक्षक हैं, उस (**पैतृमत्यम्**) पितृभाव को प्राप्त (**ऋषिम्**) वेदार्थ विज्ञान कराने वाला ऋषि (**आर्षेयम्**) जो ऋषिजनों के इस योग से उत्पन्न हुए विज्ञान को प्राप्त (**सुधातुदक्षिणम्**) जिसके अच्छी-अच्छी पुष्टिकारक दक्षिणारूप धातु हैं, उस (**प्रदातारम्**) अच्छे दानशील पुरुष को (**विदेयम्**) प्राप्त होऊं, वैसे तुम लोग (**अस्मद्राताः**) हमारे लिये अच्छे गुणों के देने वाले होकर (**देवत्रा**) शुद्ध गुण, कर्म, स्वभावयुक्त विद्वानों के (**आगच्छत**) समीप आओ और शुभ गुणों में (**आविशत**) प्रवेश करो॥४६॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। उत्साही पुरुष को क्या नहीं प्राप्त हो सकता, कौन ऐसा पुरुष है कि जो प्रयत्न के साथ विद्वानों का सेवन कर ऋषि लोगों के प्रकाशित किये हुए योगविज्ञान को न सिद्ध कर सके। कोई भी विद्वान् अच्छे गुण, कर्म्म और स्वभाव से विपरीत नहीं हो सकता और दाताजनों को कृपणता कभी नहीं आती है। इससे जो देने वाले दक्षिणा में प्रशंसनीय पदार्थ सुपात्र, धार्मिक, सर्वोपकारक विद्वानों को देते हैं, उनकी अचल कीर्ति क्यों कर न हो॥४६॥

अग्नये त्वेत्यस्याङ्गिरस ऋषिः। वरुणो देवता। आद्यस्य भुरिक् प्राजापत्या, रुद्राय त्वेत्यस्य स्वराट् प्राजापत्या, बृहस्पत्ये त्वेत्यस्य निचृदार्ची, यमाय त्वेत्यस्य विराडार्ची जगत्यश्छन्दांसि। निषादः स्वरः॥

अथ कस्मै प्रयोजनाय दानं प्रतिग्रहणं च सेवितव्यमित्युपदिश्यते॥

अब किस प्रयोजन के लिये दान और प्रतिग्रह का सेवन करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अग्नये त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्त्वमशीयायुर्दात्रऽएधि मयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे रुद्राय त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्त्वमशीय प्राणो दात्रऽएधि वयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे बृहस्पतये त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्त्वमशीय त्वग्दात्रऽएधि मयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे यमाय त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्त्वमशीय हयो दात्रऽएधि वयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे॥ ४७॥

अग्नये। त्वा। मह्यम्। वरुणः। ददातु। सः। अमृतत्वमित्यमृतऽत्वम्। अशीय। आयुः। दात्रे। एधि। मयः। मह्यम्। प्रतिग्रहीत्र इति प्रतिऽग्रहीत्रे। रुद्राय। त्वा। मह्यम्। वरुणः। ददातु। सः। अमृतत्वमित्यमृतऽत्वम्। अशीय। प्राणः। दात्रे। एधि। वयः। मह्यम्। प्रतिग्रहीत्र इति प्रतिऽग्रहीत्रे। बृहस्पतये। त्वा। मह्यम्। वरुणः। ददातु। सः। अमृतत्वमित्यमृतऽत्वम्। अशीय। त्वक्। दात्रे। एधि। मयः। मह्यम्। प्रतिग्रहीत्र इति प्रतिऽग्रहीत्रे। यमाय। त्वा। मह्यम्। वरुणः। ददातु। सः। अमृतत्वमित्यमृतऽत्वम्। अशीय। हयः। दात्रे। एधि। वयः। मह्यम्। प्रतिग्रहीत्र इति प्रतिऽग्रहीत्रे॥ ४७॥

पदार्थः-(**अग्नये**) चतुर्विंशतिवर्षपर्य्यन्तम्ब्रह्मचर्य्यं संसेव्याग्निवत् तेजस्विभवाय (**त्वा**) वसुसंज्ञक-मध्यापकम् (**मह्यम्**) (**वरुणः**) वरः सर्वोत्तमः प्रशस्तविद्योऽनूचानो विद्वानध्यापकः (**ददातु**) (**सः**) विद्यार्थी (**अमृतत्वम्**) क्रियासिद्धं नित्यं विज्ञानम् (**अशीय**) प्राप्नुयाम् (**आयुः**) अधिकं जीवनम् (**दात्रे**) विद्यादानशीलाय वरुणाय (**एधि**) वर्धयिता भव (**मयः**) सुखम्। **मय इति सुखनामसु पठितम्।** (निघं०३।६) (**मह्यम्**) विद्यार्थिने (**प्रतिग्रहीत्रे**) प्रतिग्रहकर्त्रे स्वस्तु (**रुद्राय**) चतुश्चत्वारिंशद्वर्षपर्य्यन्तम्ब्रह्मचर्यं सुसेव्य रुद्रगुणधारणाय (**त्वा**) रुद्राख्यमध्यापकम् (**मह्यम्**) विद्यार्ज्जनतत्पराय (**वरुणः**) वरगुणप्रदः (**ददातु**) (**सः**) (**अमृतत्वम्**) (**अशीय**) (**प्राणः**) योगसिद्धबलयुक्तः (**दात्रे**) (**एधि**) वर्धय (**वयः**) अवस्थात्रये सुखभोगं जीवनम् (**मह्यम्**) विद्याग्रहणप्रवृत्ताय (**प्रतिग्रहीत्रे**) अध्यापकादागताया विद्यायाः संवेत्रे (**बृहस्पतये**) अष्टचत्वारिंशद्वर्षपर्यन्तं ब्रह्मचर्य्यं सेवित्वा बृहत्या वेदविद्यावाचः पालकाय (**त्वा**) पूर्णविद्याध्यापयितारम् (**मह्यम्**) पूर्णविद्यामभीप्सवे (**वरुणः**) (**ददातु**) (**सः**) (**अमृतत्वम्**) (**अशीय**) (**त्वक्**) स्पर्शेन्द्रियसुखम् (**दात्रे**) (**एधि**) (**मयः**) सुखविशेषम् (**मह्यम्**) (**प्रतिग्रहीत्रे**) (**यमाय**) गृहाश्रमजन्यविषयसेवनादुपरताय यमनियमादियुक्ताय (**त्वा**) सर्वदोषरहितमुपदेशकम् (**मह्यम्**) सत्यासत्ययोर्निश्चयकरणशीलाय (**वरुणः**) सत्योपदेष्टाप्तः (**ददातु**) (**सः**) (**अमृतत्वम्**) (**अशीय**) (**हयः**) ज्ञानवर्द्धनम्, हि गति वृद्ध्योरित्यस्मादौणादिकोऽसुन् प्रत्ययः। (**दात्रे**) (**एधि**) (**वयः**) चिरजीवनसुखम् (**मह्यम्**) सर्ववृद्धिं चिकीर्षवे (**प्रतिग्रहीत्रे**)॥ अयं मन्त्रः (शत०(४।३।४।२८-३१) व्याख्यातः॥४७॥

अन्वयः-हे वसुसंज्ञकाध्यापक! यस्मा अग्नये मह्यं त्वा वरुणो ददातु, सोऽहं यदमृतत्वमशीय प्राप्नुयां तत्तस्मै दात्रे वरुणायायुश्चिरजीवनमेधि, प्रतिग्रहीत्रे मह्यं शिष्याय मयः सुखं च। हे रुद्रसंज्ञकाध्यापक! यस्मै रुद्राय मह्यं त्वा वरुणो ददातु, सोऽहं यदमृतत्वमशीय तत्तस्मै दात्रे वरुणाय प्राणत्वमेधि, प्रतिग्रहीत्रे मह्यं वयोऽवस्थात्रयसुखं च। हे आदित्यानामध्यापक! यस्मै बृहस्पतये मह्यं त्वा वरुणो ददातु, सोऽहं यदमृतत्वमशीय तत्तस्मै दात्रे वरुणाय त्वगिन्द्रियसुखं त्वमेधि, प्रतिग्रहीत्रे मह्यं सुखं च। यस्मै जितेन्द्रिययमाय मह्यं त्वा वरुणो ददातु सोऽहं यदमृतत्वमशीय तत्तस्मै दात्रे वरुणाय हयो ज्ञानवर्द्धनं त्वमेधि, प्रतिग्रहीत्रे मह्यं वयोऽवस्थात्रयसुखं च॥४७॥

भावार्थः-सर्वेषां जनानां योग्यमस्ति यः सर्वोत्कृष्टोऽनूचानो विद्वान् भवेत् तस्य सकाशादितरानध्यापकान् परीक्ष्य स्वस्वकन्याः पुत्रान् तत्तत्सदृशादध्यापकात् पाठयेयुः। अध्येतारश्च स्वस्वबुद्धिं न्यूनाधिकां ज्ञात्वा स्वस्वसदृशानध्यापकान् प्रीत्या सेवमानास्तेभ्यो नैरन्तर्य्येण विद्याग्रहणं कुर्य्युः॥४७॥

पदार्थः-हे वसुसंज्ञक पढ़ाने वाले! जिस **(अग्नये)** चौबीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य्य का सेवन करके अग्नि के समान तेजस्वी होने वाले **(मह्यम्)** मेरे लिये **(त्वा)** तुझ अध्यापक को **(वरुणः)** सर्वोत्तम विद्वान् **(ददातु)** देवे, **(सः)** वह मैं **(अमृतत्वम्)** अपने शुद्ध कर्म्मों से सिद्ध किये गये सत्य आनन्द को **(अशीय)** प्राप्त होऊं, उस **(दात्रे)** दानशील विद्वान् का **(आयुः)** बहुत कालपर्य्यन्त जीवन **(एधि)** बढ़ाइये और **(प्रतिग्रहीत्रे)** विद्याग्रहण करने वाले **(मह्यम्)** मुझ विद्यार्थी के लिये **(मयः)** सुख बढ़ाइये। हे दुष्टों को रुलाने वाले अध्यापक! जिस **(रुद्राय)** चवालीस वर्ष पर्य्यन्त ब्रह्मचर्य्याश्रम का सेवन करके रुद्र के गुण धारण करने की इच्छा वाले **(मह्यम्)** मेरे लिये **(त्वा)** रुद्र नामक पढ़ाने वाले आपको **(वरुणः)** अत्युत्तम गुणयुक्त **(ददातु)** देवे, **(सः)** वह मैं **(अमृतत्वम्)** मुक्ति के साधनों को **(अशीय)** प्राप्त होऊं, उस **(दात्रे)** विद्या देने वाले विद्वान् के लिये **(प्राणः)** योगविद्या का बल **(एधि)** प्राप्त कराइये और **(प्रतिग्रहीत्रे)** विद्याग्रहण करने वाले **(मह्यम्)** मेरे लिये **(वयः)** तीनों अवस्था का सुख प्राप्त कीजिये। हे सूर्य्य के समान तेजस्वी अध्यापक! जिस **(बृहस्पतये)** अड़तालीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य्य सेवन की इच्छा करने वाले **(मह्यम्)** मेरे लिये **(त्वा)** पूर्णविद्या पढ़ाने वाले आप को **(वरुणः)** पूर्णविद्या से शरीर और आत्मा के बलयुक्त विद्वान् **(ददातु)** देवे, **(सः)** वह मैं **(अमृतत्वम्)** विद्या के आनन्द का **(अशीय)** भोग करूं, उस **(दात्रे)** पूर्ण विद्या देने वाले महाविद्वान् के अर्थ **(त्वक्)** सरदी-गरमी के स्पर्श का सुख **(एधि)** बढ़ाइये और **(प्रतिग्रहीत्रे)** पूर्ण विद्या के ग्रहण करने वाले **(मह्यम्)** मुझ शिष्य के लिये **(मयः)** पूर्ण विद्या का सुख उन्नत कीजिये। हे गृहाश्रम से होने वाले विषय सुख से विमुख विरक्त सत्योपदेश करनेहारे आप्त विद्वन्! जिस **(यमाय)** गृहाश्रम के सुख के अनुराग से होने वाले **(मह्यम्)** मेरे लिये **(त्वा)** सर्वदोषरहित उपदेश करने वाले आप को **(वरुणः)** सकल शुभगुणयुक्त विद्वान् **(ददातु)** देवे, **(सः)** वह मैं **(अमृतत्वम्)** मुक्ति के सुख को **(अशीय)** प्राप्त होऊं। उस **(दात्रे)** ब्रह्मविद्या देने वाले महाविद्वान् के लिये **(हयः)** ब्रह्मज्ञान की वृद्धि **(एधि)** कीजिये और **(प्रतिग्रहीत्रे)** मोक्षविद्या के ग्रहण करने वाले **(मह्यम्)** मेरे लिये **(वयः)** तीनों अवस्था के सुख को प्राप्त कीजिये॥४७॥

भावार्थः-सब मनुष्यों को योग्य है कि जो सब से उत्तम गुण वाला, सब विद्याओं में सब से बढ़कर विद्वान् हो, उसके आश्रय से अन्य अध्यापक विद्वानों की परीक्षा करके अपनी-अपनी कन्या और पुत्रों को उन-उन के पढ़ाने योग्य विद्वानों से पढ़वावें और पढ़ने वालों को भी चाहिये कि अपनी-अपनी अधिक/न्यून बुद्धि को जान के अपने-अपने अनुकूल अध्यापकों की प्रीतिपूर्वक सेवा करते हुए उनसे निरन्तर विद्या का ग्रहण करें॥४७॥

कोऽदादित्यस्याङ्गिरस ऋषिः। आत्मा देवता। आर्ष्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

अथेश्वरो जीवानुपदिशति॥

अब अगले मन्त्र में ईश्वर जीवों को उपदेश करता है॥

कोऽदात् कस्मा॑ऽअदात् कामो॑ऽदात् कामा॑यादात्।

कामो॑ दाता काम॑: प्रतिग्रहीता कामै॒तत्ते॑॥४८॥

कः। अदात्। कस्मै॑। अदात्। काम॑:। अदात्। कामा॑य। अदात्। काम॑:। दाता। काम॑:। प्रतिग्रहीतेति॑ प्रतिऽग्रहीता। काम॑। ए॒तत्। ते॒॥४८॥

पदार्थः-(**कः**) (**अदात्**) कर्म्मफलानि ददाति (**कस्मै**) (**अदात्**) (**कामः**) काम्यते यः परमेश्वरः (**अदात्**) ददाति (**कामाय**) कामयमानाय जीवाय (**अदात्**) ददाति (**कामः**) यः काम्यते सर्वैर्योगिभिः स परमेश्वरः (**दाता**) सर्वपदार्थप्रदायकः (**कामः**) जीवः (**प्रतिग्रहीता**) (**काम**) कामयते असौ तत्सम्बुद्धौ (**एतत्**) आज्ञापनम् (**ते**) त्वदर्थम्॥ अयं मन्त्रः (शत०(४।३।४।३२) व्याख्यातः॥४८॥

अन्वयः-कोऽदात्, कस्मा अदात्, कामोऽदात्, कामयादात्, कामो दाता, कामः प्रतिग्रहीता। हे काम जीव! ते त्वदर्थमेतत् सर्वं मयाज्ञप्तमिति त्वं निश्चिनुहि॥४८॥

भावार्थः-अस्मिञ्जगति कर्मकर्त्तारो जीवाः फलप्रदातेश्वरोऽस्तीति विज्ञेयम्। नहि कामनया विना केनचित् चक्षुषो निमेषोन्मेषनङ्कर्तुं शक्यते, तत्सर्वैर्मनुष्यैर्विचारेण धर्मस्यैव कामना कार्य्या, नेतरस्य चेतीश्वराज्ञास्ति। अत्राह मनुः-कामात्मता न प्रशस्ता न चैवेहास्त्यकामता। काम्यो हि वेदाधिगमः कर्म्मयोगश्च वैदिकः॥ अकामस्य क्रिया काचिद् दृश्यते नेह कर्हिचित्। यद्यद्धि कुरुते किञ्चित् तत्तत् कामस्य चेष्टितम्॥४८॥

अस्मिन्नध्याये बाह्याभ्यन्तरव्यवहारो मनुष्याणां परस्परं वर्त्तनमात्मकर्म्मात्मनि मनसः प्रवर्त्तनम्, प्रथमकल्पाय योगिन ईश्वरोपदेशो जिज्ञासुं प्रति च, योगिकृत्यं तल्लक्षणमध्यापकशिष्यकर्म्म, योगविद्याभ्यासिनां कृत्यम्, योगेनान्तःकरणशोधनम्, योगाभ्यासिलक्षणम्, शिष्याध्यापकव्यवहारः, स्वामिसेवककृत्यम्, न्यायाधीशेन प्रजारक्षणप्रकारो, राजसभ्यजनकृत्यम्, राजोपदेशकरणम्, राजभिः कार्य्यम्, परीक्ष्य सेनापतिकरणम्, पूर्णविद्यस्य सभापतित्वाधिकारो, विद्वत्कृत्यमीश्वरोपासकोपदेशो, यज्ञानुष्ठातुर्विषयः, प्रजादीन् प्रति सभापतेर्वर्त्तनम्, राजप्रजाजनसत्कारोऽध्यापकाध्येतॄणां परस्परं प्रवृत्तिः, प्रतिदिनं पठनविषयो, विद्यावृद्धिकरणम्, राज्ञः कर्त्तव्यं कर्म्म, सेनापतिकृत्यम्, सभाध्यक्षक्रियेश्वरगुणवर्णनम्, तत्प्रार्थना शूरवीरैर्युद्धानुष्ठानम्, सेनास्थपुरुषकृत्यम्, ब्रह्मचर्य्यसेवनप्रकारः, ईश्वरस्य जीवान् प्रत्युपदेशश्चोक्तोऽत एतदध्यायार्थस्योक्तषष्ठाध्यायार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति बोध्यम्॥

पदार्थः-(**कः**) कौन कर्म्म-फल को (**अदात्**) देता और (**कस्मै**) किसके लिये (**अदात्**) देता है। इन दो प्रश्नों के उत्तर (**कामः**) जिसकी कामना सब करते हैं, वह परमेश्वर (**अदात्**) देता और (**कामाय**) कामना करने वाले जीव को (**अदात्**) देता है। अब विवेक करते हैं कि (**कामः**) जिसकी योगीजन कामना करते हैं, वह परमेश्वर (**दाता**) देने वाला है, (**कामः**) कामना करने वाला जीव (**प्रतिग्रहीता**) लेनेवाला है। हे (**काम**) कामना करने वाले जीव! (**ते**) तेरे लिये मैंने वेदों के द्वारा (**एतत्**) यह समस्त आज्ञा की है, ऐसा तू निश्चय करके जान॥४८॥

भावार्थः-इस संसार में कर्म्म करने वाले जीव और फल देने वाला ईश्वर है। यहां यह जानना चाहिये कि कामना के विना कोई आंख का पलक भी नहीं हिला सकता। इस कारण जीव कामना करे, परन्तु धर्म्म सम्बन्धी कामना करे, अधर्म्म की नहीं। यह निश्चय कर जानना चाहिये कि जो इस विषय में मनुजी ने कहा है, वह वेदानुकूल है, जैसे- 'इस संसार में अति कामना प्रशंसनीय नहीं और कामना के विना कोई कार्य्य सिद्ध नहीं हो सकता, इसलिये धर्म्म की कामना करनी और अधर्म्म की नहीं, क्योंकि वेदों का पढ़ना-पढ़ाना और वेदोक्त धर्म का आचरण करना आदि कामना इच्छा के विना कभी सिद्ध नहीं हो सकती॥१॥ इस संसार में तीनों काल में इच्छा के विना कोई क्रिया नहीं देख पड़ती, जो-जो कुछ किया जाता है, सो-सो सब इच्छा ही का व्यापार है, इसलिये श्रेष्ठ वेदोक्त कामों की इच्छी करनी, इतर दुष्ट कामों की नहीं॥४८॥

इस अध्याय में बाहर भीतर का व्यवहार, मनुष्यों का परस्पर वर्ताव, आत्मा का कर्म्म, आत्मा में मन की प्रवृत्ति, प्रथम सिद्ध योगी के लिये ईश्वर का उपदेश, ज्ञान चाहने वाले को योगाभ्यास करना, योग का लक्षण, पढ़ने-पढ़ाने वालों की रीति, योगविद्या के अभ्यास करने वालों का वर्त्ताव, योगविद्या से अन्तःकरण की शुद्धि, योगभ्यासी का लक्षण, गुरु-शिष्य का परस्पर व्यवहार, स्वामी-सेवक का वर्ताव, न्यायाधीश को प्रजा के रक्षा करने की रीति, राजपुरुष और सभासदों का कर्म्म, राजा का उपदेश, राजाओं का कर्त्तव्य, परीक्षा करके सेनापति का करना, पूर्ण विद्वान् को सभापति का अधिकार देना, विद्वानों का कर्त्तव्य कर्म्म, ईश्वर के उपासक को उपदेश, यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले का विषय, प्रजाजन आदि के साथ सभापति का वर्त्ताव, राजा और प्रजा के जनों का सत्कार, गुरु शिष्य की परस्पर प्रवृत्ति, नित्य पढ़ने का विषय, विद्या की वृद्धि करना, राजा को कर्त्तव्य, सेनापति का कर्म्म, सभाध्यक्ष की क्रिया, ईश्वर के गुणों का वर्णन, उसकी प्रार्थना, शूरवीरों को युद्ध का अनुष्ठान, सेना में रहने वाले पुरुषों का कर्त्तव्य, ब्रह्मचर्य्य सेवन की रीति और ईश्वर का जीवों के प्रति उपदेश, इस वर्णन के होने से सप्तम अध्याय के अर्थ की षष्ठाध्याय के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये॥

इति श्रीमत्परिव्राजकाचार्य्येण श्रीयुतमहाविदुषां विरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचिते संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां विभूषिते सुप्रमाणयुक्ते यजुर्वेदभाष्ये सप्तमोऽध्यायः पूर्त्तिमगात्॥७॥

॥ओ३म्॥

अथाष्टमाध्यायस्यारम्भः

अब आठवें अध्याय का आरम्भ किया जाता है॥

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव। यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व॥ यजु० ३०.३॥

उपयाम इत्यस्याङ्गिरस ऋषिः। बृहस्पतिस्सोमो देवता। आर्ची पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

तस्य प्रथममन्त्रेण गृहस्थधर्माय ब्रह्मचारिण्या कन्यया कुमारो ब्रह्मचारी स्वीकरणीय इत्युपदिश्यते॥

उसके प्रथम मन्त्र में गृहस्थ धर्म के लिये ब्रह्मचारिणी कन्या को कुमार ब्रह्मचारी का ग्रहण करना चाहिये, यह अगले मन्त्र में उपदेश किया है॥

उ॒प॒या॒मगृ॑हीतोऽस्यादि॒त्येभ्य॑स्त्वा। विष्णो॑ऽउरुगाये॒ष ते॒ सोम॒स्तꣳ र॑क्षस्व॒ मा त्वा॑ दभन्॥ १॥

उ॒प॒या॒मगृ॑हीत॒ इत्यु॑पया॒मऽगृ॒हीतः। अ॒सि॒। आ॒दि॒त्येभ्य॑ः। त्वा॒। विष्णो॒ऽइति॒ विष्णो॑। उ॒रु॒गा॒येत्यु॑रुऽगाय। ए॒षः। ते॒। सोम॑ः। तम्। र॒क्ष॒स्व॒। मा। त्वा॒। द॒भ॒न्॥ १॥

पदार्थः-**(उपयामगृहीतः)** शास्त्रनियमोपनियमा गृहीता येन सः **(असि)** **(आदित्येभ्यः)** कृताष्टचत्वारिंशद् वर्षब्रह्मचर्य्येभ्यः पुंभ्यः **(त्वा)** त्वां सेविताष्टचत्वारिंशद्वर्षब्रह्मचर्यम् **(विष्णो)** सर्वशुभविद्यागुणकर्मस्वभावव्याप्ताप्त! **(उरुगाय)** उरूणि बहूनि शास्त्राणि गायति पठति तत्सम्बुद्धौ **(एषः)** प्रत्यक्षो गृहाश्रमः **(ते)** तव **(सोमः)** मृदुगुणवर्द्धकः **(तम्)** **(रक्षस्व)** **(मा)** निषेधे **(त्वा)** त्वाम् **(दभन्)** दभ्नवन्तु हिंसन्तु, अत्र लोडर्थे लुङडभावश्च। अयं मन्त्रः (शत० ४।३।५।६-८) व्याख्यातः॥१॥

अन्वयः-हे कुमारब्रह्मचारिन्! सेवितचतुर्विंशतिवर्षब्रह्मचर्या ब्रह्मचारिण्यहमादित्येभ्यः त्वामङ्गीकरोमि, त्वमुपयामगृहीतोऽसि। हे विष्णो! ते तवैषः सोमोऽस्ति, तं त्वं रक्ष। हे उरुगाय! त्वां कामबाणा मा दभन् मा हिंसन्तु॥१॥

भावार्थः-सर्वासां सेवितब्रह्मचर्याणां युवतीनां कन्यानामिदमवश्यमीप्सितव्यम्। ताः स्वस्वसदृशरूपगुण-कर्मस्वभावविद्यान् बलाधिकान् स्वाभीष्टान् हृद्यान् पतीन् स्वयंवरविधिनोरीकृत्य परिचरेयुः। एवं ब्रह्मचारिभिरपि स्वतुल्ययुवत्यः स्त्रीत्वेनङ्गीकर्त्तव्याः। एवं द्वाभ्यां सनातनो गृहस्थधर्मः पालनीयः। परस्परमत्यन्तं विषयभोगलोलुपतावीर्यक्षयाः कदाचिन्न विधेयाः, किन्तु सदर्त्तुगामिनौ सन्तौ दश सन्तानानुत्पाद्य तान् सुशिक्ष्यैश्वर्यमुन्नीय प्रीत्या रमेताम्। यथा इतरेतरस्मिन्नप्रसन्नता वियोगव्यभिचारादयो दोषा न भवेयुः, तथानुष्ठाय परस्परं सर्वथा सर्वदा रक्षा कार्या॥१॥

पदार्थः-हे कुमार ब्रह्मचारिन्! चौबीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य सेवने वाली मैं **(आदित्येभ्यः)** जिन्होंने अड़तालीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य सेवन किया है, उन सज्जनों की सभा में **(त्वा)** अड़तालीस वर्ष ब्रह्मचर्य सेवन करने वाले आप को स्वीकार करती हूं, आप **(उपयामगृहीतः)** शास्त्र के नियम और उपनियमों को ग्रहण करने वाले **(असि)** हो। हे **(विष्णो)** समस्त श्रेष्ठ विद्या, गुण, कर्म और स्वभाव वाले श्रेष्ठजन! **(ते)** आपका **(एषः)** यह

गृहस्थाश्रम **(सोमः)** सोमलता आदि के तुल्य ऐश्वर्य का बढ़ाने वाला है, **(तम्)** उसकी **(रक्षस्व)** रक्षा करें। हे **(उरुगाय)** बहुत शास्त्रों को पढ़ने वाले! **(त्वा)** आप को काम के बाण जैसे **(मा दभन्)** दुःख देने वाले न होवें, वैसा साधन कीजिये॥१॥

भावार्थः-सब ब्रह्मचर्याश्रम सेवन की हुई युवती कन्याओं की ऐसी आकांक्षा अवश्य रखनी चाहिये कि अपने सदृश रूप, गुण, कर्म, स्वभाव और विद्या वाला, अपने से अधिक बलयुक्त, अपनी इच्छा के योग्य, अन्तःकरण से जिस पर विशेष प्रीति हो, ऐसे पति को स्वयंवर विधि से स्वीकार करके उसकी सेवा किया करें। ऐसे ही कुमार ब्रह्मचारी लोगों को भी चाहिये कि अपने-अपने समान युवती स्त्रियों का पाणिग्रहण करें। इस प्रकार दोनों स्त्री-पुरुषों को सनातन गृहस्थों के धर्म का पालन करना चाहिये और परस्पर अत्यन्त विषय की लोलुपता तथा वीर्य का विनाश कभी न करें, किन्तु सदा ऋतगामी हों। दश सन्तानों को उत्पन्न करें, उन्हें अच्छी शिक्षा देकर, अपने ऐश्वर्य की वृद्धि कर प्रीतिपूर्वक रमण करें, जैसे आपस में एक से दूसरे का वियोग, अप्रीति और व्यभिचार आदि दोष न हों, वैसा वर्त्ताव वर्त कर आपस में एक दूसरे की रक्षा सब प्रकार सब काल में किया करें॥१॥

कदा चन इत्यस्याङ्गिरस ऋषिः। गृहपतिर्मघवा देवता। भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेवाह॥

फिर भी गृहस्थों के धर्म का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे।

उपोपेन्नु मघवन् भूयऽइन्नु ते दानं देवस्य पृच्यतऽआदित्येभ्यस्त्वा॥२॥

कदा। चन। स्तरीः। असि। न। इन्द्र। सश्चसि। दाशुषे। उपोपेत्युपऽउप। इत्। नु। मघवन्निति मघऽवन्। भूयः। इत्। नु। ते। दानम्। देवस्य। पृच्यते। आदित्येभ्यः। त्वा॥२॥

पदार्थः-**(कदा)** कस्मिन् काले **(चन)** अपि **(स्तरीः)** स्वभावाच्छादकः संकुचितः **(असि)** भवसि **(न)** निषेधे **(इन्द्र)** परमैश्वर्य्यपते! **(सश्चसि)** प्राप्नोषि। **सश्चतीति गतिकर्मसु पठितम्।** (निघं०२।१४) **(दाशुषे)** दानशीलाय **(उपोप)** सामीप्ये। **उपर्य्यध्यधसः सामीप्ये।** (अष्टा०८।१।७) इति द्वित्वम्। **(इत्)** एव **(नु)** क्षिप्रम्। **न्विति क्षिप्रनामसु पठितम्।** (निघं०२।१५) **(मघवन्)** प्रशंसितधनयुक्त **(भूयः)** अधिकम् **(इत्)** एव **(नु)** शीघ्रम् **(ते)** तव **(दानम्)** **(देवस्य)** विदुषः **(पृच्यते)** सम्बध्यते **(आदित्येभ्यः)** मासेभ्यः **(त्वा)** त्वां सुखदातारम्। अयं मन्त्रः (शत० ४।३।५।१०-११) व्याख्यातः॥२॥

अन्वयः-हे इन्द्र परमैश्वर्ययुक्त पते! यतस्त्वं कदाचन स्तरीर्नासि, तस्माद् दाशुष इन्नुपोप सश्चसि। हे मघवन्! देवस्य ते तव यद् दानमिन्नु भूयः पृच्यते, अतोऽहं स्त्रीत्वेनादित्येभ्यः सदा सुखप्रापकं त्वा त्वामाश्रये॥२॥

भावार्थः-विवाहकामनया युवत्या स्त्रिया यच्छलकपटाचरणरहितः सत्यभावप्रकाशक एकस्त्रीव्रतो जितेन्द्रिय उद्योगी धार्मिको दाता विद्वान् भवेत्, तमुपयम्य निरन्तरमानन्दितव्यम्॥२॥

पदार्थः-हे **(इन्द्र)** परमैश्वर्य्य से युक्त पति! जिस कारण आप **(कदा)** कभी **(चन)** भी **(स्तरीः)** अपने स्वभाव को छिपाने वाले **(न)** नहीं **(असि)** हैं, इस कारण **(दाशुषे)** दान देने वाले पुरुष के लिये **(उपोप)** समीप **(सश्चसि)** प्राप्त होते हैं। हे **(मघवन्)** प्रशंसित धनयुक्त भर्ता! **(देवस्य)** विद्वान् **(ते)** आप का जो **(दानम्)** दान

अर्थात् अच्छी शिक्षा वा धन आदि पदार्थों का देना है, **(इत्)** वही **(नु)** शीघ्र **(भूयः)** अधिक करके मुझ को **(पृच्यते)** प्राप्त होवे, इसी से मैं स्त्रीभाव से **(आदित्येभ्यः)** प्रति महीने सुख देने वाले आपका आश्रय करती हूं॥२॥

भावार्थः-विवाह की कामना करने वाली युवती स्त्री को चाहिये कि जो छल-कपटादि आचरणों से रहित प्रकाश करने और एक ही स्त्री को चाहने वाला, जितेन्द्रिय, सब प्रकार का उद्योगी, धार्मिक और विद्वान् पुरुष हो, उसके साथ विवाह करके आनन्द में रहे॥२॥

कदा चन प्रयुच्छसीत्यस्याङ्गिरस ऋषिः। आदित्यो गृहपतिर्देवता। निचृदार्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनर्गृहस्थधर्ममाह॥

फिर भी गृहस्थ का धर्म अगले मन्त्र में कहा है॥

कदा चन प्रयुच्छस्युभे निपासि जन्मनी।
तुरीयादित्य सवनं तऽइन्द्रियमातस्थावमृतं दिव्यादित्येभ्यस्त्वा॥ ३॥

कदा। चन। प्र। युच्छसि। उभेऽइत्युभे। नि। पासि। जन्मनिऽइति जन्मनी। तुरीय। आदित्य। सवनम्। ते। इन्द्रियम्। आ। तस्थौ। अमृतम्। दिवि। आदित्येभ्यः। त्वा॥ ३॥

पदार्थः-**(कदा)** **(चन)** **(प्र)** **(युच्छसि)** अत्यन्तं प्रमाद्यसि **(उभे)** द्वे **(नि)** नितराम् **(पासि)** **(जन्मनी)** वर्त्तमानं प्राप्स्यमानं च **(तुरीय)** चतुर्थवन्। अत्र अर्श आदित्वादच्। **(आदित्य)** विद्यया सूर्य्य इव प्रकाशमान! **(सवनम्)** सवति प्रसूयतेऽनेन तत् **(ते)** तव **(इन्द्रियम्)** मन आदिकार्य्यसाधकम् **(आ)** **(तस्थौ)** **(अमृतम्)** मरणधर्म्मरहितम् **(दिवि)** द्योतनात्मके व्यवहारे **(आदित्येभ्यः)** संवत्सरेभ्यः **(त्वा)** त्वां दृढेन्द्रियम्। अयं मन्त्रः (शत० ४।३।५।१२) व्याख्यातः॥३॥

अन्वयः-अत्र नेत्यध्याहार्य्यम्। हे पते! त्वं यदि कदाचन न प्रयुच्छसि, तर्हि स्वकीये उभे जन्मनी निपासि। हे आदित्य! यदि ते तव सवनमिन्द्रियमातस्थौ, तर्हि दिव्यमृतं प्राप्नुयाः। हे तुरीय! आदित्येभ्यस्त्वा त्वामहमुपयच्छे॥३॥

भावार्थः-यः प्रमादी विवाहितां स्त्रियं त्यक्त्वा परस्त्रियं सेवते, स इहामुत्र च दुर्भगो भवति। यश्च संयमी स्वस्त्रीसेवी त्यक्तपरस्त्रीकः स उभयत्र परमं सुखं कथं न भुञ्जीत, अतः सर्वासां स्त्रीणां योग्यतास्ति जितेन्द्रियान् पतीन् सेवेरन्निति॥३॥

पदार्थः-इस मन्त्र में नकार का अध्याहार आकांक्षा के होने से होता है। हे पते! आप जो **(कदा)** कभी **(चन)** भी **(प्र)** **(युच्छसि)** प्रमाद नहीं करते हो तो अपने **(उभे)** दोनों **(जन्मनी)** वर्त्तमान और परजन्म को निरन्तर **(पासि)** पालते हो। हे **(आदित्य)** विद्या गुणों में सूर्य के तुल्य प्रकाशमान! जो **(ते)** आपके **(सवनम्)** उत्पत्ति धर्मयुक्त कार्य्य सिद्ध करने हारे **(इन्द्रियम्)** मन आदि इन्द्रिय के **(आ)** **(तस्थौ)** वश में रहें तो आप **(दिवि)** प्रकाशित व्यवहारों में **(अमृतम्)** अविनाशी सुख को प्राप्त हो जावें। हे **(तुरीय)** चतुर्थाश्रम के पूर्ण करने वाले! **(आदित्येभ्यः)** प्रति मास के सुख के लिये **(त्वा)** दृढ़ेन्द्रिय आप को मैं स्त्री स्वीकार करती हूं॥३॥

भावार्थः-जो प्रमादी पुरुष विवाहित स्त्री को छोड़ कर परस्त्री का सेवन करता है, वह इस लोक और परलोक में दुर्भागी होता है और जो संयमी अपनी ही स्त्री का चाहने वाला दूसरे की स्त्री को नहीं चाहता, वह दोनों लोक में परम सुख को क्यों न भोगे? इस से सब स्त्रियों को योग्य है कि जितेन्द्रिय पति का सेवन करें, अन्य का नहीं॥३॥

यज्ञो देवानामित्यस्य कुत्स ऋषिः। आदित्यो गृहपतिर्देवता। निचृज्जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनर्गृहाश्रमविषयमाह॥

फिर भी गृहाश्रम का विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवता मृडयन्तः।

आ वोऽर्वाची सुमतिर्ववृत्यादꣳहोश्चिद्या वरिवोवित्तरासदादित्येभ्यस्त्वा॥४॥

यज्ञः। देवानाम्। प्रति। एति। सुम्नम्। आदित्यासः। भवत। मृडयन्तः। आ। वः। अर्वाची। सुमतिरिति सुऽमतिः। ववृत्यात्। अꣳहोः। चित्। या। वरिवोवित्तरेति वरिवोवित्ऽतरा। असत्। आदित्येभ्यः। त्वा॥४॥

पदार्थः-**(यज्ञः)** स्त्रीपुरुषाभ्यां सङ्गमनीयः **(देवानाम्)** विदुषाम् **(प्रति)** प्रतीतम् **(एति)** प्रापयति **(सुम्नम्)** सुखम्। **सुम्नमिति सुखनामसु पठितम्।** (निघं०३।६) **(आदित्यासः)** आदित्यवद्विद्यादिशुभगुणैः प्रकाशमानाः **(भवत)** **(मृडयन्तः)** सर्वान् सुखयन्तः **(आ)** **(वः)** युष्माकम् **(अर्वाची)** सुशिक्षाविद्याभ्यासात् पश्चाद् विज्ञानमञ्चति प्राप्नोत्यनया सा **(सुमतिः)** शोभना चाऽसौ मतिः **(ववृत्यात्)** वर्त्तताम्। अत्र **बहुलं छन्दसि।** (अष्टा०२।४।७६) इति शपः श्लुर्व्यत्ययेन परस्मैपदञ्च। **(अंहोः)** सुखप्रापकस्य गृहाश्रमस्याऽनुष्ठानस्य **(चित्)** अपि **(या)** **(वरिवोवित्तरा)** वरिवः सत्यं व्यवहारं वेत्यनया साऽतिशयिता **(असत्)** भवेत्, लेट् प्रयोगोऽयम्। **(आदित्येभ्यः)** सर्वेभ्यो मासेभ्यः **(त्वा)** त्वाम्॥ अयं मन्त्रः (शत० ४।३।५।१५) व्याख्यातः॥४॥

अन्वयः-हे आदित्यासः! यूयं देवानां वो युष्माकं यो गृहाश्रमाख्यो यज्ञः सुम्नं प्रत्येति, यांहोऽर्वाची वरिवोवित्तरा सुमतिराववृत्यात्। या त्वादित्येभ्यः प्राप्तोत्तमविद्याशिक्षाऽसत्, तया चिद् युक्त्या वा वां सदा मृडयन्तो भवत॥४॥

भावार्थः-विवाहं कृत्वा स्त्रीपुरुषाभ्यामाप्तानां विदुषां सङ्गाद्येन येन कर्मणा विद्यासुशिक्षाबुद्धिधनं सौहार्दं परोपकारश्च वर्द्धेत, तत्तदनुष्ठेयमिति॥४॥

पदार्थः-हे **(आदित्यासः)** सूर्य्यलोकों के समान विद्या आदि शुभ गुणों से प्रकाशमान! आप जो **(देवानाम्)** विद्वान् **(वः)** आप लोगों का यह **(यज्ञः)** स्त्रीपुरुषों के वर्त्तने योग्य गृहाश्रम व्यवहार **(सुम्नम्)** सुख को **(प्रति)** **(एति)** निश्चय करके प्राप्त करता है और **(या)** जो **(अंहोः)** गृहाश्रम के सुख को सिद्ध करने वाली **(अर्वाची)** अच्छी शिक्षा और विद्याभ्यास के पीछे विज्ञानप्राप्ति का हेतु **(वरिवोवित्तरा)** सत्यव्यवहार का निरन्तर विज्ञान देने वाली आप लोगों की **(सुमतिः)** श्रेष्ठ बुद्धि, श्रेष्ठ मार्ग में **(आ)** निरन्तर **(ववृत्यात्)** प्रवृत्त होवे, जो **(आदित्येभ्यः)** आप्त विद्वानों से उत्तम विद्या और शिक्षा जो **(त्वा)** तुझ को **(असत्)** प्राप्त हो, **(चित्)** उस बुद्धि से ही युक्त हम दोनों स्त्री-पुरुष को **(मृडयन्तः)** सदा सुख देते **(भवत)** रहिये॥४॥

भावार्थः-विवाह करके स्त्रीपुरुषों को चाहिये कि जिस-जिस काम से विद्या, अच्छी शिक्षा, बुद्धि, धन,

सुहृद्भाव और परोपकार बढ़े, उस कर्म का सेवन अवश्य किया करें॥४॥

विवस्वन्नित्यस्य कुत्स ऋषिः। गृहपतयो देवताः। आद्यस्य प्राजापत्याऽनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः। श्रदित्युत्तरस्य निचृदार्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनरपि गृहस्थधर्म्ममाह॥

फिर भी गृहस्थ का धर्म अगले मन्त्र में कहा है॥

विव॑स्वन्नादित्यै॒ष ते॑ सोमपी॒थस्तस्मि॑न् मत्स्व।
श्रद॑स्मै नरो॒ वच॑से दधातन॒ यदा॑शी॒र्दा दम्प॑ती वा॒मम॑श्नु॒तः।
पुमा॑न् पु॒त्रो जा॑यते वि॒न्दते॒ वस्वधा॑ वि॒श्वाहा॑र॒पऽए॑धते गृहे॥५॥

विव॑स्वन्। आ॒दि॒त्य॒। ए॒षः। ते॒। सो॒म॒पी॒थ इति॑ सोमऽपी॒थः। तस्मि॑न्। म॒त्स्व॒। श्रत्। अ॒स्मै॒। न॒रः। वच॑से। द॒धा॒त॒न॒। यत्। आ॒शी॒र्देत्या॑शीः॒ऽदा। दम्प॑ती॒ इति॒ दम्ऽप॑ती। वा॒मम्। अ॒श्नु॒तः। पुमा॑न्। पु॒त्रः। जा॒य॒ते॒। वि॒न्दते॑। वसु॑। अध॑। वि॒श्वाहा॑। अ॒र॒पः। ए॒ध॒ते॒। गृ॒हे॥५॥

पदार्थः-(**विवस्वन्**) विविधे स्थाने वसति तत् सम्बुद्धौ (**आदित्य**) अविनाशिस्वरूप विद्वन्! (**एषः**) गृहाश्रमः (**ते**) तव (**सोमपीथः**) सोमः पीयते यस्मिन् सः (**तस्मिन्**) गृहाश्रमे (**मत्स्व**) आनन्दितो भव (**श्रत्**) सत्यम्। **श्रत् इति सत्यनामसु पठितम्।** (निघं०३।१०) (**अस्मै**) (**नरः**) ये नयन्ति तत् सम्बुद्धौ (**वचसे**) गृहाश्रमवाग्व्यवहाराय (**दधातन**) धरत। **सुपां सुलुक्।** (अष्टा०७।१।३९) इति सुपो लुक्। (**यत्**) यस्मिन् (**आशीर्दा**) आशीरिच्छां ददाति सः (**दम्पती**) जायापती (**वामम्**) प्रशस्यं गृहाश्रमं धर्मम्। **वाम इति प्रशस्यनामसु पठितम्।** (निघं०३।८) (**अश्नुतः**) व्याप्नुतः (**पुमान्**) (**पुत्रः**) पुन्नाम्नो वृद्धावस्थाजन्यदुःखात् त्रायते सः। अत्राह मनुः- **पुन्नाम्नो नरकाद् यस्मात् त्रायते पितरं सुतः। तस्मात् पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयंभुवा।** (मनु०९।१३८)। (**जायते**) उत्पद्यते (**विन्दते**) लभते (**वसु**) धनम् (**अध**) अधेत्यनन्तरे। अत्र पृषोदरादित्वात् थस्य धः। **निपातस्य च।** (अष्टा०६।३।१।१३६) दीर्घः। (**विश्वाहा**) बहूनि च तान्यहानि च, अत्र **शेश्छन्दसि बहुलम्॥** इति लुक्। **विश्वमिति बहुनामसु पठितम्।** (निघं०३।१) (**अरपः**) निष्पापः (**एधते**) वर्द्धते (**गृहे**)। अयं मन्त्रः (शत० ४। ३। ५। १६-२४ तथा ४। ४। ४। १-५) व्याख्यातः॥५॥

अन्वयः-हे विवस्वन्नादित्य! गृहिन्नेष ते तव सोमपीथो गृहाश्रमोऽस्ति, तस्मिँस्त्वं विश्वाहा मत्स्व हर्षितो भव। हे नरो गृहाश्रमस्था यूयमस्मै वचसे श्रद्धातन, यत् यस्मिन् गृहे दम्पती वाममश्नुतस्तस्मिन् आशीर्दा अरपः पुमान् पुत्रो जायते, वसु विन्दते, अधैधते च॥५॥

भावार्थः-स्त्रीपुंसौ सुप्रेम्णा परस्परपरीक्षापूर्वकं स्वयंवरोद्वाहं विधाय, सत्याचरणेन सन्तानानुत्पाद्य महदैश्वर्यं लब्ध्वा सुखन्नित्यमुन्नीयेताम्॥५॥

पदार्थः-हे (**विवस्वन्**) विविध प्रकार के स्थानों में बसने वाले (**आदित्य**) अविनाशीस्वरुप विद्वन् गृहस्थ! (**एषः**) यह जो (**ते**) आपका (**सोमपीथः**) जिसमें सोम लता आदि ओषधियों के रस पीने में आवें, ऐसा गृहाश्रम है (**तस्मिन्**) उस में आप (**विश्वाहा**) सब दिन (**मत्स्व**) आनन्दित रहो। हे (**नरः**) गृहाश्रम करने वाले गृहस्थो! आप

लोग **(अस्मै)** इस **(वचसे)** गृहाश्रम के वाग् व्यवहार के लिये **(श्रत्)** सत्य ही का **(दधातन)** धारण करो। **(यत्)** जिस **(गृहे)** गृहाश्रम में **(दम्पती)** स्त्रीपुरुष **(वामम्)** प्रशंसनीय गृहाश्रम के धर्म को **(अश्नुतः)** प्राप्त होते हैं, उस में **(आशीर्दा)** कामना देने वाला **(अरपः)** निष्पाप धर्मात्मा **(पुमान्)** पुरुषार्थी **(पुत्रः)** वृद्धावस्था के दुःखों से रक्षा करने वाला पुत्र **(जायते)** उत्पन्न होता है, वह उत्तम **(वसु)** धन को **(विन्दते)** प्राप्त होता है, **(अध)** इस के अनन्तर वह कुटुम्ब और विद्या धन के ऐश्वर्य से **(एधते)** बढ़ता है॥५॥

भावार्थः-स्त्रीपुरुषों को चाहिये कि अच्छी प्रीति से परस्पर परीक्षापूर्वक स्वयंवर विवाह और सत्य आचरणों से सन्तानों को उत्पन्न कर बहुत ऐश्वर्य को प्राप्त होके नित्य उन्नति पावें॥५॥

वाममद्येत्यस्य भरद्वाज ऋषिः। गृहपतयो देवताः। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनश्च गृहाश्रमिणां कथं प्रयतितव्यमित्युपदिश्यते॥

फिर भी गृहस्थों को किस प्रकार प्रयत्न करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

वाममद्य सवितर्वाममु श्वो दिवेदिवे वाममस्मभ्यꣳ सावीः।
वामस्य हि क्षयस्य देव भूरेरया धिया वामभाजः स्याम॥६॥

वामम्। अद्य। सवितः। वामम्। ॐऽइत्यूँ। श्वः। दिवेदिव इति दिवेऽदिवे। वामम्। अस्मभ्यम्। सावीः। वामस्य। हि। क्षयस्य। देव। भूरेः। अया। धिया। वामभाज इति वामऽभाजः। स्याम॥६॥

पदार्थः-**(वामम्)** प्रशस्यं सुखम् **(अद्य)** अस्मिन्नहनि **(सवितः)** सर्वस्यैश्वर्यस्य प्रसवितरीश्वर! **(वामम्)** **(उ)** वितर्के **(श्वः)** परस्मिन् दिने **(दिवेदिवे)** प्रतिदिनम् **(वामम्)** **(अस्मभ्यम्)** **(सावीः)** सव, अत्र लोडर्थे लुङडभावश्च। **(वामस्य)** अत्युत्कृष्टस्य **(हि)** खलु **(क्षयस्य)** गृहस्य **(देव)** सुखप्रद! **(भूरेः)** बहुपदार्थान्वितस्य **(अया)** अनया। **छान्दसो वर्णलोपो वा।** (अष्टा०भा०वा०८।२।२५) इति नलोपः। **(धिया)** श्रेष्ठबुद्ध्या **(वामभाजः)** प्रशस्यकर्म्मसेविनः **(स्याम)** भवेम। अयं मन्त्रः (शत० ४।४।१।६) व्याख्यातः॥६॥

अन्वयः-हे देव सवितः पुरषार्थेन बह्वैश्वर्यजनक त्वमस्मभ्यमद्य वाममु श्वो वामं वा दिवेदिवे वामं सावीः सव। येन वयमया धिया भूरेर्वामस्य क्षयस्य गृहाश्रमस्य मध्ये वामभाजो हि स्याम॥६॥

भावार्थः-गृहस्थैर्जनैरीश्वरानुग्रहेण परमपुरुषार्थेन प्रशस्तधिया माङ्गलिकाः सन्तो गृहाश्रमिणो भूत्वैव प्रयतेरन्, यतस्त्रिषु कालेषु प्रवृद्धसुखाः स्युः॥६॥

पदार्थः-हे **(देव)** सुख देने **(सवितः)** और समस्त ऐश्वर्य के उत्पन्न करने वाले मुख्यजन! आप **(अस्मभ्यम्)** हम लोगों के लिये **(अद्य)** आज **(वामम्)** अति प्रशंसनीय सुख **(उ)** और आज ही क्या किन्तु **(श्वः)** अगले दिन **(वामम्)** उक्त सुख तथा **(दिवेदिवे)** दिन-दिन **(वामम्)** उस सुख को **(सावीः)** उत्पन्न कीजिये, जिससे हम लोग आप की कृपा से उत्पन्न हुई **(अया)** इस **(धिया)** श्रेष्ठ बुद्धि से **(भूरेः)** अनेक पदार्थों से युक्त **(वामस्य)** अत्यन्त सुन्दर **(क्षयस्य)** गृहाश्रम के बीच में **(वामभाजः)** प्रशंसनीय कर्म करने वाले **(हि)** ही **(स्याम)** होवें॥६॥

भावार्थः-गृहस्थजनों को चाहिये कि ईश्वर के अनुग्रह से प्रशंसनीय बुद्धियुक्त मङ्गलकारी गृहाश्रमी होकर

इस प्रकार का प्रयत्न करें कि जिससे तीनों अर्थात् भूत, भविष्यत् और वर्तमान काल में अत्यन्त सुखी हों॥६॥

उपयामगृहीतोऽसीत्यस्य भरद्वाज ऋषिः। सविता गृहपतिर्देवता। विराड् ब्राह्म्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनश्च गृहस्थधर्ममुपदिश्यते॥

फिर भी गृहाश्रम का धर्म अगले मन्त्र में कहा है॥

उपयामगृहीतोऽसि सावित्रोऽसि चनोधाश्चनोधाऽअसि चनो मयि धेहि।
जिन्व यज्ञं जिन्व यज्ञपतिं भगाय देवाय त्वा सवित्रे॥७॥

उपयामगृहीत इत्युपयामऽगृहीतः। असि। सावित्रः। असि। चनोधा इति चनःऽधाः। चनोधा इति चनःऽधाः। असि। चनः। मयि। धेहि। जिन्व। यज्ञम्। जिन्व। यज्ञपतिमिति यज्ञऽपतिम्। भगाय। देवाय। त्वा। सवित्रे॥७॥

पदार्थः-(**उपयामगृहीतः**) उपयामेन विवाहनियमेन गृहीतः (**असि**) (**सावित्रः**) सविता सकलजगदुत्पादकः परमेश्वरो देवता यस्य सः (**असि**) (**चनोधाः**) चनांस्यन्नानि दधातीति। **चन इत्यन्ननामसु पठितम्।** (निरु०६।१६) (**चनोधाः**) अभ्यासेनाधिकार्थो ग्राह्यः, सर्वेभ्योऽधिकान्नवान् गम्यते। **अभ्यासे भूयांसमर्थं मन्यते।** (निरु०१०।४२) (**असि**) (**चनः**) (**मयि**) अन्नग्रहणनिमित्तायां विवाहितायां स्त्रियाम् (**धेहि**) धर (**जिन्व**) प्राप्नुहि जानीहि वा। **जिन्वतीति गतिकर्मसु पठितम्।** (निघं०२।१४) (**यज्ञम्**) धर्म्मदृढैः पुरुषैः सङ्गन्तव्यम् (**जिन्व**) प्रीणीहि (**यज्ञपतिम्**) गृहाश्रमस्य पालकं पुरुषपालिकां स्त्रियं वा (**भगाय**) धनाढ्याय सेवनीयायैश्वर्य्याय। **भग इति धननामसु पठितम्।** (निघं०२।१०) (**देवाय**) दिव्याय कमनीयाय (**त्वा**) त्वाम् (**सवित्रे**) सन्तानोत्पादकाय। अयं मन्त्रः (शत० ४।४।१।६) व्याख्यातः॥७॥

अन्वयः-हे पुरुष! त्वया यथाहं नियमोपनियमैः सङ्गृहीतास्मि, तथा मया त्वमुपयामगृहीतोऽसि, त्वं [चनोधाः] चनोधा असि सावित्रश्चासि, तथाहमस्मि त्वं मयि चनो धेहि। अहमपि त्वयि दध्याम्। त्वं यज्ञं जिन्व अहमपि जिन्वेयम्। सवित्रे भगाय देवाय यज्ञपत्नीं मां जिन्व, एतस्मै यज्ञपतिं त्वामहमपि जिन्वेयम्॥७॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। विवाहितस्त्रीपुरुषौ प्राप्त्यनुकूलव्यवहारेण परस्परमैश्वर्य्यं प्राप्नुयाताम्, प्रीत्या सन्तानोत्पत्तिं चाचरेताम्॥७॥

पदार्थः-हे पुरुष! तुझ से जैसे मैं नियम और उपनियमों से ग्रहण करी गई हूं, वैसे मैंने आप को (**उपयामगृहीतः**) विवाह नियम से ग्रहण किया (**असि**) है, जैसे आप (**चनोधाः चनोधाः**) अन्न-अन्न के धारण करने वाले (**असि**) हैं और (**सावित्रः**) सविता समस्त सन्तानादि सुख उत्पन्न करने वाले परमेश्वर को अपना इष्टदेव मानने वाले (**असि**) हैं, वैसे मैं भी हूँ। जैसे आप (**मयि**) मेरे निमित्त (**चनः**) अन्न को (**धेहि**) धरिये, वैसे मैं भी आपके निमित्त धारण करूं। जैसे आप (**यज्ञम्**) दृढ़ पुरुषों के सेवन योग्य धर्म व्यवहार को (**जिन्व**) प्राप्त हों, वैसे मैं भी प्राप्त होऊं और जैसे (**सवित्रे**) सन्तानों की उत्पति के हेतु (**भगाय**) धनादि सेवनीय (**देवाय**) दिव्य ऐश्वर्य के लिये (**यज्ञपतिम्**) गृहाश्रम को पालनेहारे आप को मैं प्रसन्न रक्खूं, वैसे आप भी (**जिन्व**) तृप्त कीजिये॥७॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। विवाहित स्त्री-पुरुषों को योग्य है कि लाभ के अनुकूल व्यवहार से परस्पर ऐश्वर्य पावें और प्रीति के साथ सन्तानोत्पत्ति का आचरण करें॥७॥

उपयामगृहीतोऽसीत्यस्य भरद्वाज ऋषिः। विश्वेदेवा गृहपतयो देवताः। आद्यस्य प्राजापत्या गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः। सुशर्म्मेत्यस्य निचृदार्षी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनरपि गृहिकर्त्तव्यमुपदिश्यते॥

फिर भी गृहस्थ को सेवने योग्य धर्म्म का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

उपयामगृहीतोऽसि सुशर्मासि सुप्रतिष्ठानो बृहदुक्षाय नमः।
विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यऽएष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः॥ ८॥

उपयामगृहीत इत्युपयामऽगृहीतः। असि। सुशर्म्मेति सुऽशर्म्मा। असि। सुप्रतिष्ठानः। सुप्रतिस्थान इति सुऽप्रतिस्थानः। बृहदुक्षायेति बृहत्ऽउक्षाय। नमः। विश्वेभ्यः। त्वा। देवेभ्यः। एषः। ते। योनिः। विश्वेभ्यः। त्वा। देवेभ्यः॥ ८॥

पदार्थः-(**उपयामगृहीतः**) (**असि**) (**सुशर्म्मा**) शोभनानि गृहाणि यस्य सः। **शर्म्मेति गृहनामसु पठितम्।** (निघं०३।४) (**असि**) (**सुप्रतिष्ठानः**) सुष्ठु प्रतिष्ठानं प्रतिष्ठा यस्य सः (**बृहदुक्षाय**) बृहद्वीर्य्यमुक्षति सिञ्चति तस्मै। **बृहदिति महन्नामसु पठितम्।** (निघं०३।३) (**नमः**) अन्नम्। **नम इत्यन्ननामसु पठितम्।** (निघं०२।७) (**विश्वेभ्यः**) अखिलेभ्यः (**त्वा**) त्वाम् (**देवेभ्यः**) कमनीयदिव्यसुखेभ्यः (**एषः**) (**ते**) (**योनिः**) गृहम् (**विश्वेभ्यः**) समस्तेभ्यः (**त्वा**) त्वाम् (**देवेभ्यः**) विद्वद्भ्यः। अयं मन्त्रः (शत० ४। ४। १। १४-१८ तथा ४। ४। २। १-११) व्याख्यातः॥ ८॥

अन्वयः-हे पते! अहं यस्त्वमुपयामगृहीतोऽसि, सुप्रतिष्ठानः सुशर्मासि, तस्मै बृहदुक्षाय तुभ्यं नमोऽस्तु, सुसंस्कृतं हृद्यमन्नमुचितसमये ददामि, यथाहं यस्य ते तवैष योनिः प्रासादोऽस्ति, तं त्वा विश्वेभ्यो देवेभ्यः सेवे, तथा त्वं विश्वेभ्यो देवेभ्यो मां नियुङ्क्ष्व॥ ८॥

भावार्थः-यस्य गृहाश्रममभीप्सोर्जनस्य सर्वर्तुसुखसम्पादकं गृहं स्यात्, स्वयं च वीर्यवान्, तमेव स्त्री पतित्वेन गृह्णीयात्। तस्मै यथोचितसमये सुखं दद्यात्, स्वयञ्च तस्यै दिव्यसुखमादद्यात्, तौ द्वौ विदुषां सेवनमाचरेताम्॥ ८॥

पदार्थः-हे पते! जैसे मैंने आप को (**उपयामगृहीतः**) नियम-उपनियमों से ग्रहण किया (**असि**) है और (**सुप्रतिष्ठानः**) अच्छी प्रतिष्ठा और (**सुशर्मा**) अच्छे घर वाले (**असि**) हो, उन (**बृहदुक्षाय**) अत्यन्त वीर्य देने वाले आप को (**नमः**) अच्छे प्रकार संस्कार किया हुआ, चित्त को प्रसन्न करने वाला अन्न उचित समय पर देती हूं, जिस आप का (**एषः**) यह (**योनिः**) सुखदायक महल है, (**त्वा**) उस आप को (**विश्वेभ्यः**) सब (**देवेभ्यः**) दिव्य सुखों के लिये सेवन करती हूं और (**त्वा**) आप को (**विश्वेभ्यः**) समस्त (**देवेभ्यः**) विद्वानों के लिये नियुक्त करती हूं, वैसे आप मुझ को कीजिये॥ ८॥

भावार्थः-जिस गृहाश्रम भोगने की इच्छा रखने वाले पुरुष का सब ऋतुओं में सुख देने वाला घर हो और आप वीर्यवान् हो, उसी को स्त्री पतिभाव से स्वीकार करे और उस के लिये यथोचित समय पर सुख देवे तथा आप उस पति से उचित समय में दिव्य सुख भोगे और वे स्त्री-पुरुष दोनों विद्वानों का सत्सङ्ग किया करें॥ ८॥

उपयामगृहीतोऽसीत्यस्य भरद्वाज ऋषि:। गृहपतयो विश्वेदेवा देवता:। आद्यस्य प्राजापत्या गायत्री, बृहस्पतिसुतस्येति मध्यमस्यार्ष्युष्णिक्, अहमित्युत्तरस्य स्वराडार्षी पङ्क्तिश्च छन्दांसि। क्रमेण षड्जर्षभपञ्चमा: स्वरा:॥

पुनर्गार्हस्थ्यधर्म्ममाह॥

फिर गृहस्थ का धर्म्म अगले मन्त्र में कहा है॥

उपयामगृहीतोऽसि बृहस्पतिसुतस्य देव सोम तऽइन्दोरिन्द्रियावत: पत्नीवतो ग्रहाँ२ऽऋध्यासम्। अहं परस्तादहमवस्ताद् यदन्तरिक्षं तदु मे पिताभूत्। अहꣳ सूर्यमुभयतो ददर्शाहं देवानां परमं गुहा यत्॥ ९॥

उपयामगृहीत इत्युपयामगृहीत:। असि। बृहस्पतिसुतस्येति बृहस्पतिऽसुतस्य। देव। सोम। ते। इन्दो:। इन्द्रियावत:। इन्द्रियवत इतीन्द्रियऽवत:। पत्नीवत इति पत्नीऽवत:। ग्रहान्। ऋध्यासम्। अहम्। परस्तात्। अहम्। अवस्तात्। यत्। अन्तरिक्षम्। तत्। ऊँऽइत्यूँ। मे। पिता। अभूत्। अहम्। सूर्य्यम्। उभयत:। ददर्श। अहम्। देवानाम्। परमम्। गुहा। यत्॥ ९॥

पदार्थ:-(**उपयामगृहीत:**) (**असि**) (**बृहस्पतिसुतस्य**) बृहत्या वेदवाण्या: पते: पालकस्य पुत्रस्य (**देव**) कमनीयतम (**सोम**) ऐश्वर्य्यसम्पन्न (**ते**) तव (**इन्दो:**) सोमगुणसम्पन्नस्य (**इन्द्रियावत:**) बहुधनयुक्तस्य। **इन्द्रियमिति धननामसु पठितम्।** (निघं०२।१०) (**पत्नीवत:**) प्रशस्ता यज्ञसम्बन्धिनी जाया यस्य (**ग्रहान्**) गृह्यन्ते स्वीक्रियन्ते विवाहकाले नियतशिक्षाविषया ये तान् (**ऋध्यासम्**) वर्द्धिषीय (**अहम्**) (**परस्तात्**) उत्तरस्मात् (**अहम्**) (**अवस्तात्**) अर्वाचीनात् समयात् (**यत्**) (**अन्तरिक्षम्**) अन्तरं क्षयमन्त:करणे क्षयरहितं विज्ञानम् (**तत्**) (उ) वितर्के (**मे**) मम (**पिता**) पालको जनक: (**अभूत्**) भवति। वर्त्तमाने लट् उक्तपूर्वापरभावत: (**अहम्**) (**सूर्यम्**) चराचरात्मानमीश्वरम् (**उभयत:**) (**ददर्श**) दृष्टवान् दृष्टवती चास्मि (**अहम्**) (**देवानाम्**) विदुषाम् (**परमम्**) अत्युत्तमम् (**गुहा**) गुह्यन्ते संव्रियन्ते सकला विद्या यया बुद्ध्या तस्याम्। अत्र **सुपां सुलुक्।** (अष्टा०७।१।३९) इति ङेर्लुक् (**यत्**)। अयं मन्त्र: (शत० ४।४।२।१२-१४) व्याख्यात:॥९॥

अन्वय:-हे सोम देव! यस्त्वम्मया कुमार्य्योपयामगृहीतोऽसि, तस्येन्दोरिन्द्रियावत: पत्नीवतो बृहस्पतिसुतस्य ते तव गृहान् प्राप्याहम्परस्तादवस्तादृध्यासं यद्देवानां गुहास्थितमन्तरिक्षं विज्ञानमन्वेमि, तत्त्वमपि प्राप्नुहि, यो मे मम पिता पालकोऽध्यापको वा विद्वानभूत् तत्सकाशात् पूर्णो विद्यां प्राप्याहं यं परमं सूर्य्यमुभयतो ददर्श तं त्वमपि पश्य॥९॥

भावार्थ:-स्त्रीपुरुषौ परस्परं विवाहात् पूर्वं सम्यक् परीक्षां कृत्वा तुल्यगुणकर्म्मस्वभावरूपबलारोग्य-पुरुषार्थविद्यायुक्तौ स्वयंवरविधानेन विवाहं विधायेत्थं प्रयतेताम्, यतो धर्म्मार्थकाममोक्षाणां वृद्धिं प्राप्नुयाताम्। यस्य मातापितरौ विद्वांसौ न स्याताम्, तयोरपत्यान्यप्युत्तमानि भवितुं न शक्नुवन्ति। अत: पूर्णविद्यासुशिक्षौ भूत्वैव गृहाश्रममारभेताम्॥९॥

पदार्थ:-हे (**सोम**) ऐश्वर्य्यसम्पन्न (**देव**) अति मनोहर पते! जिस आप को मैं कुमारी ने (**उपयामगृहीत:**)

विवाह नियमों से स्वीकार किया **(असि)** है, उन **(इन्दोः)** सोमगुणसम्पन्न **(इन्द्रियावतः)** बहुत धन वाले और **(पत्नीवतः)** यज्ञ समय में प्रशंसनीय स्त्री ग्रहण करने वाले **(बृहस्पतिसुतस्य)** और बड़ी वेदवाणी के पालने वाले के पुत्र **(ते)** आपके गृह और सम्बन्धियों को प्राप्त होके मैं **(परस्तात्)** आगे और **(अवस्तात्)** पीछे के समय में **(ऋध्यासम्)** सुखों से बढ़ती जाऊं **(यत्)** जिस **(देवानाम्)** विद्वानों की **(गुहा)** बुद्धि में स्थित **(अन्तरिक्षम्)** सत्य विज्ञान को मैं **(एमि)** प्राप्त होती हूं, उसी को तू भी प्राप्त हो और जो **(मे)** मेरा **(पिता)** पालन करने हारा **(अभूत्)** है, **(अहम्)** मैं जिस **(सूर्य्यम्)** चर-अचर के आत्मा रूप परमेश्वर को **(उभयतः)** उसके अगले-पिछले उन शिक्षा-विषयों से जिस **(ददर्श)** देखूं, उसी को तू भी देख॥९॥

भावार्थः-स्त्री और पुरुष विवाह से पहिले परस्पर एक-दूसरे की परीक्षा करके अपने समान गुण, कर्म्म, स्वभाव, रूप, बल, आरोग्य, पुरुषार्थ और विद्यायुक्त होकर स्वयंवर विधि से विवाह करके ऐसा यत्न करें कि जिससे धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि को प्राप्त हों। जिसके माता और पिता विद्वान् न हों, सन्तान भी उत्तम नहीं हो सकते, इससे अच्छी और पूर्ण विद्या को ग्रहण कर के ही गृहाश्रम के आचरण करें, इस के पूर्व नहीं॥९॥

अग्ना३इ पत्नीवन्नित्यस्य भरद्वाज ऋषिः। गृहपतयो देवताः। विराड् ब्राही बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पत्नी स्वपुरुषस्य कथं प्रशंसां प्रार्थनाञ्च कुर्य्यादित्युपदिश्यते

स्त्री अपने पुरुष की किस प्रकार से प्रशंसा और प्रार्थना करे, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अग्ना३इ पत्नीव॑न्त्स॒जूर्दे॒वेन॒ त्वष्ट्रा॒ सोम॑ं पिब॒ स्वाहा॑।
प्र॒जाप॑ति॒र्वृषा॑सि रेतो॒धा रेतो॒ मयि॑ धेहि प्र॒जाप॑तेस्ते॒ वृष्णो॑ रेतो॒धसो॑ रेतो॒धाम॑शीय॥१०॥

अग्ना॑ऽ२इ। पत्नी॑व॒न्निति॒ पत्नी॑ऽवन्। स॒जूरिति॑ स॒ऽजूः। दे॒वेन॑। त्वष्ट्रा॑। सोम॑म्। पि॒ब॒। स्वाहा॑। प्र॒जाप॑ति॒रिति॑ प्र॒जाऽप॑तिः। वृषा॑। अ॒सि॒। रे॒तो॒धा इति॑ रेतः॒ऽधः। रेतः॑। मयि॑। धे॒हि॒। प्र॒जाप॑ते॒रिति॑ प्र॒जाऽप॑तेः। ते॒। वृष्णः॑। रे॒तो॒धस॒ इति॑ रेत॒ःऽधसः॑। रे॒तो॒धामिति॑ रे॒तःऽधाम्। अ॒शी॒य॒॥१०॥

पदार्थः-**(अग्न३इ)** सर्वसुखप्रापक! **(पत्नीवन्)** प्रशस्ता यज्ञसम्बन्धिनी पत्नी यस्य तत्सम्बुद्धौ **(सजूः)** यः समानं जुषते सः **(देवेन)** दिव्यसुखप्रदेन **(त्वष्ट्रा)** सर्वदुःखविच्छेदकेन गुणेन **(सोमम्)** सोमम् सोमवल्ल्यादि-निष्पन्नमाह्लादकमासवविशेषम् **(पिब)** **(स्वाहा)** सत्यवाग्विशिष्टया क्रियया **(प्रजापतिः)** सन्तानादिपालकः **(वृषा)** वीर्य्यसेचकः **(असि)** **(रेतोधाः)** रेतो वीर्य्यं दधातीति **(रेतः)** वीर्य्यम् **(मयि)** विवाहितायां स्त्रियाम् **(धेहि)** धर **(प्रजापतेः)** सन्तानादिरक्षकस्य **(ते)** तव **(वृष्णः)** वीर्य्यवतः **(रेतोधसः)** पराक्रमधारकस्य **(रेतोधाम्)** वीर्य्यधारकमिति पराक्रमवन्तं पुत्रम् **(अशीय)** प्राप्नुयाम्। अयं मन्त्रः (शत० ४। ४। २। १५-१८) व्याख्यातः॥१०॥

अन्वयः-हे अग्ने स्वामिन्! मया सजूस्त्वं देवेन त्वष्ट्रा स्वाहा सोमं पिब। हे पत्नीवन्! त्वं वृषा रेतोधाः प्रजापतिरसि, मयि रेतो धेहि। हे स्वामिन्! अहं वृष्णो रेतोधसः प्रजापतेस्ते तव सकाशाद् रेतोधां पुत्रमशीय॥१०॥

भावार्थः-इह जगाति मनुष्यजन्म प्राप्य स्त्रीपुरुषौ ब्रह्मचर्य्योत्तमविद्यासद्‌गुणपराक्रमिणौ भूत्वा विवाहं कुर्य्याताम्, विवाहमर्य्यादयैव सन्तानोत्पत्तिरतिक्रीडाजन्यसुखसम्भोगं प्राप्य नित्यं प्रमुदेताम्। विना विवाहेन पुरुषः स्त्रियम्, स्त्री पुरुषं वा मनसापि नेच्छेद्, यतः स्त्रीपुरुषसम्बन्धेनैव मनुष्यवृद्धिर्भवति, तस्माद् गृहाश्रमं कुर्य्याताम्॥१०॥

पदार्थः-हे **(अग्ने)** समस्त सुख पहुंचाने वाले स्वामिन्! **(सजूः)** समान प्रीति करने वाले आप मेरे **(देवेन)** दिव्य सुख देने वाले **(त्वष्ट्रा)** समस्त दुःख विनाश करने वाले गुण के साथ **(स्वाहा)** सत्यवाणीयुक्त क्रिया से **(सोमम्)** सोमवल्ली आदि औषधियों के विशेष आसव को **(पिब)** पीओ। हे **(पत्नीवन्)** प्रशंसनीय यज्ञसम्बधिनी स्त्री को ग्रहण करने **(वृषा)** वीर्य्य सींचने **(रेतोधाः)** वीर्य्य धारण करने **(प्रजापतिः)** और सन्तानादि के पालने वाले! जो आप **(असि)** हैं, वह **(मयि)** मुझ विवाहित स्त्री में **(रेतः)** वीर्य्य को **(धेहि)** धारण कीजिये। हे स्वामिन्! मैं **(वृष्णः)** वीर्य्य सीचने **(रेतोधसः)** पराक्रम धारण करने **(प्रजापतेः)** सन्तान आदि की रक्षा करने वाले **(ते)** आपके संग से **(रेतोधाम्)** वीर्य्यवान् अति पराक्रमयुक्त पुत्र को **(अशीय)** प्राप्त होऊं॥१०॥

भावार्थः-इस संसार में मनुष्यजन्म को पाकर स्त्री और पुरुष ब्रह्मचर्य्य, उत्तम विद्या, अच्छे गुण और पराक्रमयुक्त होकर विवाह करें। विवाह की मर्यादा ही से सन्तानों की उत्पत्ति और रतिक्रीड़ा से उत्पन्न हुए सुख को प्राप्त होकर नित्य आनन्द में रहें। विना विवाह के स्त्री-पुरुष वा पुरुष-स्त्री के समागम की इच्छा मन से भी न करें। जिससे मनुष्यशक्ति की बढ़ती होवे, इससे गृहाश्रम का आरम्भ स्त्री-पुरुष करें॥१०॥

उपयामगृहीतोऽसीत्यस्य भरद्वाज ऋषिः। गृहपतयो देवताः। निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनर्गार्हस्थ्यधर्म्ममाह॥

फिर गृहस्थों का धर्म अगले मन्त्र में कहा है॥

उ॒प॒या॒मगृ॑हीतोऽसि॒ हरि॑रसि हारियोज॒नो हरि॑भ्यां त्वा।

हर्यो॑र्धा॒ना स्थ॑ स॒हसो॑मा॒ऽइन्द्रा॑य॥ ११॥

उ॒प॒या॒मगृ॑हीत॒ इत्यु॑पया॒मऽगृ॑हीतः। अ॒सि॒। हरिः॑। अ॒सि॒। हा॒रि॒यो॒ज॒न इति॑ हारिऽयोज॒नः। हरि॑ऽभ्या॒मिति॒ हरि॑ऽभ्याम्। त्वा॒। हर्य्योः॑। धा॒नाः। स्थ॒। स॒हसो॑मा इति॑ स॒हऽसो॑माः। इन्द्रा॑य॥ ११॥

पदार्थः-**(उपयामगृहीतः)** उपयामाय गृहाश्रमाय गृहीतः **(असि)** **(हरिः)** हरते वहते यथायोग्यं गृहाश्रमव्यवहारान् **(असि)** **(हारियोजनः)** हरीन् योजयति यः सारथिः स हरियोजनः। हरियोजन एव हारियोजनस्तद्वत् **(हरिभ्याम्)** सुशिक्षिताभ्यां तुरङ्गाभ्याम् **(त्वा)** त्वाम् **(हर्य्योः)** अश्वयोः **(धानाः)** धारकाः, अत्र दधातेरौणादिको नः प्रत्ययः। **(स्थ)** भवत **(सहसोमाः)** सोमेन श्रेष्ठगुणसमूहेन सह वर्त्तमाना इव **(इन्द्राय)** परमैश्वर्य्यप्राप्तये। अयं मन्त्रः (शत० ४।४।३।१-१०) व्याख्यातः॥११॥

अन्वयः-हे पते! त्वमुपयामगृहीतोऽसि हारियोजन इव हरिरसि, अतो हरिभ्यां युक्ते स्यन्दने विराजमानं त्वा त्वामहं सेवे, यूयं गृहाश्रमिणः सन्त इन्द्राय सहसोमाः सन्तो हर्य्योर्धाना स्थ॥११॥

भावार्थः-ब्रह्मचर्यसंस्कृता विवाहमिच्छवो युवतयः कन्या युवानश्चान्योऽन्यस्य धनोन्नतिं परीक्ष्य विवाहं कुर्याताम्, नो चेद्धनाभावे दुःखोन्नतिर्भवेत्। एवमुपयम्य परस्परमाह्लादयन्तः सन्तः प्रतिदिनमैश्वर्यमुन्नयेयुः॥११॥

पदार्थः-हे पते! आप **(उपयामगृहीतः)** गृहाश्रम के लिये ग्रहण किये हुए **(असि)** हैं, **(हारियोजनः)** घोड़ों को जोड़ने वाले सारथि के समान **(हरिः)** यथायोग्य गृहाश्रम के व्यवहार को चलाने वाले **(असि)** हैं, इस कारण **(हरिभ्याम्)** अच्छी शिक्षा को पाए हुए घोड़े से युक्त रथ में विराजमान **(त्वा)** आप की मैं सेवा करूं। तुम लोग गृहाश्रम करने वाले **(इन्द्राय)** परमैश्वर्य्य की प्राप्ति के लिये **(सहसोमाः)** उत्तम गुणयुक्त होकर **(हर्य्योः)** वेगादि गुण वाले घोड़ों को **(धानाः)** स्थानादिकों में स्थापन करने वाले **(स्थ)** होओ॥११॥

भावार्थः-ब्रह्मचर्य्य से शुद्ध शरीर सद्गुण सद्विद्या युक्त होकर विवाह की इच्छा करने वाले कन्या और पुरुष युवास्था को पहुंच और परस्पर एक-दूसरे के धन की उन्नति को अच्छे प्रकार देख कर विवाह करें, नहीं तो धन के अभाव में दुःख की उन्नति होती है। इसलिये उक्त गुणों से विवाह कर आनन्दित हुए प्रतिदिन ऐश्वर्य्य की उन्नति करें॥११॥

यस्त इत्यस्य भरद्वाज ऋषिः। गृहपतयो देवताः। आर्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः।

अथ गृहस्थानां मित्रतामाह॥

अब गृहस्थों की मित्रता अगले मन्त्र में कही है॥

यस्तेऽअश्वसनिर्भक्षो यो गोसनिस्तस्य तऽइष्टयजुष स्तुतस्तोमस्य शस्तोक्थस्योपहूतस्योपहूतो भक्षयामि॥१२॥

यः। ते। अश्वसनिरित्यश्वऽसनिः। भक्षः। यः। गोसनिरिति गोऽसनिः। तस्य। ते। इष्टयजुष इतीष्टऽयजुषः। स्तुतस्तोमस्येति स्तुतऽस्तोमस्य। शस्तोक्थस्येति शस्तऽउक्थस्य। उपहूतस्येत्युपऽहूतस्य। उपहूत इत्युपऽहूतः। भक्षयामि॥१२॥

पदार्थः-**(यः)** **(ते)** तव **(अश्वसनिः)** अश्वानामग्न्यादिपदार्थानां वा सनिर्दाता **(भक्षः)** सेवनीयः **(यः)** **(गोसनिः)** संस्कृतवाचो भूमेर्विद्याप्रकाशादेः सनिर्दाता **(तस्य)** **(ते)** तव **(इष्टयजुषः)** इष्टानि यजूंषि यस्य **(स्तुतस्तोमस्य)** स्तुतः स्तोमः सामवेदगानविशेषो येन सः **(शस्तोक्थस्य)** शस्तानि प्रशंसितानि उक्थानि ऋक्सूक्तानि येन यस्य **(उपहूतस्य)** सत्कारेणाहूयोपस्थितस्य **(उपहूतः)** सम्मानित उपस्थितः **(भक्षयामि)** लेट् प्रयोगोऽयम्। अयं मन्त्रः (शत० ४।४।३।११-१३) व्याख्यातः॥१२॥

अन्वयः-हे प्रिय वीरपते! यस्त्वं मयोपहूतोऽश्वसनिर्गोसनिरसि, तस्य शस्तोक्थस्येष्टयजुषः स्तुतस्तोमस्योपहूतस्य तव यो भक्षोऽस्ति, तमुपहूता सत्यहं भक्षयामि। हे प्रिये सखे! या त्वमश्वसनिर्गोसनिरसि, तस्याः शस्तो कथाया इष्टयजुषः स्तुतस्तोमाया उपहूतायास्ते तव यो भक्षोऽस्ति, तमुपहूतोऽहं भक्षयामि॥१२॥

भावार्थः-सदुत्साहवर्द्धकेषु कार्य्येषु गृहाश्रममाचरन्त्यः स्त्रियः स्वसखिस्त्रीजनान् गृहाश्रममिणः पुरुषा वा स्वेष्टमित्रबन्धुजनादीनाहूय यथायोग्यं सत्कारेण भोजनादिना प्रसादयेयुरन्योन्यमुपदेशं शास्त्रार्थं विद्यावाग्विलासं च कुर्य्युः॥१२॥

पदार्थः-हे प्रियवीर पुरुष मित्र! जो आप **(उपहूतः)** मुझ से सत्कार को प्राप्त होकर **(अश्वसनिः)** अग्नि आदि पदार्थ वा घोड़ों और **(गोसनिः)** संस्कृत वाणी, भूमि और विद्या प्रकाश आदि अच्छे पदार्थों के देने वाले **(असि)** हैं, उन **(शस्तोक्थस्य)** प्रशंसित ऋग्वेद के सूक्तयुक्त **(इष्टयजुषः)** इष्ट सुखकर यजुर्वेद के भागयुक्त वा

(स्तुतस्तोमस्य) सामवेद के गान के प्रशंसा करनेहारे **(ते)** आप का **(यः)** जो **(भक्षः)** चाहना से भोजन करने योग्य पदार्थ है, उस को आप से सत्कृत हुई मैं **(भक्षयामि)** भोजन करूं तथा हे प्रिय सखि! जो तू अग्नि आदि पदार्थ वा घोड़ों के देने और संस्कृत वाणी, भूमि, विद्या, प्रकाश आदि अच्छे-अच्छे पदार्थ देने वाली है, उस प्रशंसनीय ऋक्सूक्त यजुर्वेद भाग से स्तुति किये हुए सामगान करने वाली तेरा जो यह भोजन करने योग्य पदार्थ है, उस को अच्छे मान से बुलाया हुआ मैं भोजन करता हूं॥१२॥

भावार्थः-अच्छे उत्साह बढ़ाने वाले कामों में गृहाश्रम का आचरण करने वाली स्त्री अपनी सहेलियों वा पुरुष गृहाश्रमी पुरुष अपने इष्टमित्र और बन्धुजन आदि को बुला कर भोजन आदि पदार्थों से यथायोग्य सत्कार करके प्रसन्न करें और परस्पर भी सदा प्रसन्न रहें और उपदेश, शास्त्रार्थ, विद्या, वाग्विलास को करें॥१२॥

देवकृतस्येत्यस्य भरद्वाज ऋषिः। गृहपतयो विश्वेदेवा देवताः। मनुष्यकृतस्येत्यस्य साम्न्युष्णिक्, पितृकृतस्येत्यस्यात्मकृतस्येत्यस्य च निचृत् साम्न्युष्णिक्, एनस इत्यस्य प्राजापत्योष्णिक्, यच्चाहमित्यस्य निचृदार्ष्युष्णिक् च छन्दांसि। ऋषभः स्वरः॥

पूर्वोक्तविषयं प्रकारान्तरेणाह॥

अगले मन्त्र में पूर्वोक्त विषय प्रकारान्तर से कहा है॥

देवकृतस्यैनसोऽवयजनमसि मनुष्यकृतस्यैनसोऽवयजनमसि पितृकृतस्यैनसोऽवयजनमस्यात्मकृतस्यैनसोऽवयजनमस्येनसऽएनसोऽवयजनमसि। यच्चाहमेनो विद्वाँश्चकार यच्चाविद्वाँस्तस्य सर्वस्यैनसोऽवयजनमसि॥१३॥

देवकृतस्येति देवऽकृतस्य। एनसः। अवयजनमित्यवऽयजनम्। असि। मनुष्यकृतस्येति मनुष्यऽकृतस्य। एनसः। अवयजनमित्यवऽयजनम्। असि। पितृकृतस्येति पितृऽकृतस्य। एनसः। अवयजनमित्यवऽयजनम्। असि। आत्मकृतस्येत्यात्मऽकृतस्य। एनसः। अवयजनमित्यवऽयजनम्। असि। एनस एनस इत्येनसःऽएनसः। अवयजनमित्यवऽयजनम्। असि। यत्। च। अहम्। एनः। विद्वान्। चकार। यत्। च। अविद्वान्। तस्य। सर्वस्य। एनसः। अवयजनमित्यवऽयजनम्। असि॥१३॥

पदार्थः-**(देवकृतस्य)** दानशीलकृतस्य **(एनसः)** पापस्य **(अवयजनम्)** पृथक्करणम् **(असि)** **(मनुष्यकृतस्य)** साधारणजनेनाचरितस्य **(एनसः)** अपराधस्य **(अवयजनम्)** दूरीकरणम् **(असि)** **(पितृकृतस्य)** जनककृतस्य **(एनसः)** विरोधाचरणस्य **(अवयजनम्)** परिहरणम् **(असि)** **(आत्मकृतस्य)** स्वयमाचरितस्य **(एनसः)** पापस्य **(अवयजनम्)** **(असि)** **(एनसः)** **(एनसः)** अधर्म्मस्याधर्म्मस्य **(अवयजनम्)** परिहरणम् **(असि)** **(यत्)** अतीते काले **(च)** वर्त्तमाने **(अहम्)** **(एनः)** अधर्म्माचरणम् **(विद्वान्)** जानन् सन् **(चकार)** कृतवान्, करोमि, करिष्यामि वा, अत्र **छन्दसि लुङ्लिङ्लिटः।** (अष्टा०३।४।६) इति कालसामान्ये लिट्। **(यत्)** **(च)** अविद्यासमुच्चये **(अविद्वान्)** अजानन् सन् **(तस्य)** **(सर्वस्य)** **(एनसः)** दुष्टाचरणस्य **(अवयजनम्)** दूरीकरणम् **(असि)**। अयं मन्त्रः (शत० ४।३।६।१) व्याख्यातः॥१३॥

अन्वयः-हे सर्वोपकारिन् सखे! त्वं देवकृतस्यैनसोऽवयजनमसि, मनुष्यकृतस्यैनसोऽवयजनमसि,

पितृकृतस्यैनसोऽवयजमसि, आत्मकृतस्यैनसोऽवयजनमसि। एनस एनसोऽवयजनमसि, विद्वानहं यच्चैनः पापं चकार कृतवान, करोमि, करिष्यामि, अविद्वानहं यच्चैनः कृतवान् करोमि, करिष्यामि वा तस्य सर्वस्यैनसोऽवयजनं चासि॥१३॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। यथा विद्वान् गृहाश्रमी पुरुषो दानादिप्रसक्तपुरुषाणामपराधदूरीकरणे प्रयतेत। जानन्नजानन् वात्मकृतमपराधं स्वयं त्यजेदन्यकृतमन्यस्मान्निवारयेत्। तथानुष्ठाय सर्वे यथोक्तं सुखं प्राप्नुयुरिति॥१३॥

पदार्थः-हे सब के उपकार करने वाले मित्र! आप **(देवकृतस्य)** दान देने वाले के **(एनसः)** अपराध के **(अवयजनम्)** विनाश करने वाले **(असि)** हो, **(मनुष्यकृतस्य)** साधारण मनुष्यों के किये हुए **(एनसः)** अपराध के **(अवयजनम्)** विनाश करने वाले **(असि)** हो, **(पितृकृतस्य)** पिता के किये हुए **(एनसः)** विरोध आचरण के **(अवयजनम्)** अच्छे प्रकार हरने वाले **(असि)** हो, **(आत्मकृतस्य)** अपने किये हुए **(एनसः)** पाप के **(अवयजनम्)** दूर करने वाले **(असि)** हो, **(एनसः) (एनसः)** अधर्म्म-अधर्म्म के **(अवयजनम्)** नाश करनेहारे **(असि)** हो, **(विद्वान्)** जानता हुआ मैं **(यत्)** जो **(च)** कुछ भी **(एनः)** अधर्म्माचरण **(चकार)** किया, करता हूं वा करूं **(अविद्वान्)** अनजान मैं **(यत्)** जो **(च)** कुछ भी किया, करता हूं वा करूं **(तस्य)** उस **(सर्वस्य)** सब **(एनसः)** दुष्ट आचरण के **(अवयजनम्)** दूर करने वाले आप **(असि)** हैं॥१३॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे विद्वान् गृहस्थ पुरुष दान आदि अच्छे काम के करने वाले जनों के अपराध दूर करने में अच्छा प्रयत्न करें। जाने वा विना जाने अपने कर्त्तव्य अर्थात् जिस को चाहता हो, उस अपराध को आप छोड़ें तथा औरों के किये हुए अपराध को औरों से छुड़ावें, वैसे कर्म करके सब लोग यथोक्त समस्त सुखों को प्राप्त हों॥१३॥

सं वर्चसेत्यस्य भरद्वाज ऋषिः। गृहपतयो देवताः। विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तदेवाह॥

फिर भी मित्रकृत्य का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

सं वर्च॑सा॒ पय॑सा॒ सं त॒नूभि॒रग॑न्महि॒ मन॑सा॒ सꣳशि॒वेन॑।

त्वष्टा॑ सु॒दत्रो॒ वि द॑धातु॒ रायो॒ऽनु॑मार्ष्टु त॒न्वो॒ यद्विलि॑ष्टम्॥१४॥

सम्। वर्च॑सा पय॑सा। सम्। त॒नूभि॒रिति॑। अग॑न्महि। मन॑सा। सम्। शि॒वेन॑। त्वष्टा॑। सु॒दत्र॒ इति॑ सु॒ऽदत्रः॑। वि। द॒धा॒तु॒। रायः॑। अनु॑। मा॒र्ष्टु॒। त॒न्वः॒। यत्। विलि॑ष्टमिति॒ विऽलि॑ष्टम्॥१४॥

पदार्थः-**(सम्)** क्रियायोगे **(वर्चसा)** अध्ययनाध्यापनप्रकाशेन **(पयसा)** जलेनान्नेन वा। **पय इत्युदकनामसु पठितम्।** (निघं०१।१२) **अन्ननामसु च।** (निघं०२।९) **(सम्) (तनूभिः)** शरीरैः **(अगन्महि)** प्राप्नुयाम, अत्र गम्लृधातोर्लिङर्थे लुङ्। **मन्त्रे घसह्वर०।** (अष्टा०२।४।८०) इत्यादिना च्लेर्लुक्। **म्वोश्च।** (अष्टा०८।२।६५) इति मस्य नः। **(मनसा)** विज्ञानवतान्तःकरणेन **(सम्) (शिवेन)** कल्याणकारकेण **(त्वष्टा)** सर्वव्यवहाराणां तनुकर्त्ता **(सुदत्रः)** सुदानः **(वि) (दधातु)** करोतु **(रायः)** धनानि **(अनु) (मार्ष्टु)** पुनः पुनः शुन्धतु **(तन्वः)** शरीरस्य **(यत्) (विलिष्टम्)** विशेषेण न्यूनमङ्गम्। अयं मन्त्रः (शत० ४।४।४।१४-१५) व्याख्यातः॥१४॥

अन्वयः-हे अध्यापक! त्वष्टा सुदत्रो विद्वान् भवान् संशिवेन मनसा संवर्चसा पयसा यत् तन्वो विलिष्टमनुमार्ष्टि रायो विदधातु तत् तानि च वयं तनूभिः समगन्महि॥१४॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्याणां योग्यतास्ति पुरुषार्थेन विद्यां सम्पाद्य विधिवदन्नोदकं संसेव्य शरीराण्यारोगीकृत्य मनो धर्म्मे निवेश्य सदा सुखोन्नतिं कृत्वा या काचिन्न्यूनतास्ति तां सम्पूरयन्तु, यथा कश्चित् सुहृत् सख्युः सुखाय वर्त्तेत, तथा तत्सुखाय स्वयमपि वर्त्तेत॥१४॥

पदार्थः-हे सब विद्याओं के पढ़ाने **(त्वष्टा)** सब व्यवहारों के विस्तारकारक **(सुदत्रः)** अत्युत्तम दान के देने वाले विद्वन्! आप **(संशिवेन)** ठीक-ठीक कल्याणकारक **(मनसा)** विज्ञानयुक्त अन्तःकरण **(संवर्चसा)** अच्छे अध्ययन-अध्यापन के प्रकाश **(पयसा)** जल और अन्न से **(यत्)** जिस **(तन्वः)** शरीर की **(विलिष्टम्)** विशेष न्यूनता को **(अनुमार्ष्टि)** अनुकूल शुद्धि से पूर्ण और **(रायः)** उत्तम धनों को **(विदधातु)** विधान करो। उस देह और शरीरों को हम लोग **(तनूभिः)** ब्रह्मचर्य व्रतादि सुनियमों से बलयुक्त शरीरों से **(समगन्महि)** सम्यक् प्राप्त हों॥१४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि पुरुषार्थ से विद्या का सम्पादन, विधिपूर्वक अन्न और जल का सेवन, शरीरों को नीरोग और मन को धर्म में निवेश करके सदा सुख की उन्नति करें और जो कुछ न्यूनता हो, उस को परिपूर्ण करें, तथा जैसे कोई मित्र तुम्हारे सुख के लिये वर्त्ताव वर्त्ते, वैसे उसके सुख के लिये आप भी वर्त्तो॥१४॥

समिन्द्रेत्यस्यात्रिर्ऋषिः। गृहपतिर्देवता। भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनर्मित्रकृत्यमाह॥

फिर मित्र का कृत्य अगले मन्त्र में कहा है॥

समिन्द्र णो मनसा नेषि गोभिः सꣳ सूरिभिर्मघवन्त्सꣳ स्वस्त्या।
सं ब्रह्मणा देवकृतं यदस्ति सं देवानाꣳ सुमतौ यज्ञियानाꣳ स्वाहा॥ १५॥

सम्। इन्द्र। नः। मनसा। नेषि। गोभिः। सम्। सूरिभिरिति सूरिऽभिः। मघवन्निति मघऽवन्। सम्। स्वस्त्या। सम्। ब्रह्मणा। देवकृतमिति देवऽकृतम्। यत्। अस्ति। सम्। देवानाम्। सुमताविति सुऽमतौ। यज्ञियानाम्। स्वाहा॥ १५॥

पदार्थः-**(सम्)** **(इन्द्र)** परमैश्वर्ययुक्त गृहपते! **(नः)** अस्मान् **(मनसा)** विज्ञानसहितेनान्तःकरणेन **(नेषि)** प्राप्नोषि। अत्र **बहुलं छन्दसि।** (अष्टा०२।४।७३) इति शबभावः। **(गोभिः)** धेनुभिः सुष्ठुवाग्युक्तैर्व्यवहारैर्वा **(सम्)** **(सूरभिः)** मेधाविभिर्विद्वद्भिरिव **(मघवन्)** परमपूजितधनयुक्त! **(सम्)** **(स्वस्त्या)** सुखेन **(सम्)** **(ब्रह्मणा)** बृहता वेदज्ञानेन धनेन वा, **ब्रह्मेति धननामसु पठितम्।** (निघं०२।१०)। **(देवकृतम्)** इन्द्रियकृतं कर्म्म **(यत्)** **(अस्ति)** **(देवानाम्)** आप्तानां विपश्चिताम् **(सुमतौ)** शोभनायां बुद्धाविव **(यज्ञियानाम्)** यज्ञस्य पतिं विधातुमर्हाणाम् **(स्वाहा)** सत्यया वाचा। अयं मन्त्रः (शत० ४।४।४।७) व्याख्यातः॥१५॥

अन्वयः-हे मघवन्निन्द्र विद्यादिपरमैश्वर्य्ययुक्त समध्यापकोपदेशक! यतस्त्वं संमनसा सन्मार्गं गोभिः संस्वस्त्या पुरुषार्थं सूरभिः सह ब्रह्मणा विद्यां यज्ञियानां देवानां स्वाहा सुमतौ देवकृतं यज्ञकृतं नोऽस्मान् सन्नेषि, तस्माद् भवानस्माभिः सत्कर्त्तव्योऽसि॥१५॥

भावार्थः-गृहस्थैर्विद्वांसोऽतः पूजनीया यतस्ते बालकान् स्वशिक्षया सुगुणयुक्तान् राजप्रजाजनांश्चैश्वर्य्य-सहितान् सम्पादयन्ति॥१५॥

पदार्थः-हे **(मघवन्)** पूज्य धनयुक्त **(इन्द्र)** सत्यविद्यादि ऐश्वर्य्य सहित **(सम्)** सम्यक् पढ़ाने और उपदेश करनेहारे! आप जिससे **(सम्)** **(मनसा)** उत्तम अन्तःकरण से **(सम्)** अच्छे मार्ग **(गोभिः)** गोओं वा **(सम्)** **(स्वस्त्या)** अच्छे-अच्छे वचनयुक्त सुखरूप व्यवहारों से **(सूरिभिः)** विद्वानों के साथ **(ब्रह्मणा)** वेद के विज्ञान वा धन से विद्या और **(यत्)** जो **(यज्ञियानाम्)** यज्ञ के पालन करने वाले को करने योग्य **(देवानाम्)** विद्वानों की **(स्वाहा)** सत्य वाणीयुक्त **(सुमतौ)** श्रेष्ठ बुद्धि में **(देवकृतम्)** विद्वानों के किये कर्म्म हैं, उसको **(स्वाहा)** सत्य वाणी से **(नः)** हम लोगों को **(संनेषि)** सम्यक् प्रकार से प्राप्त करते हो, इसी से आप हमारे पूज्य हो॥१५॥

भावार्थः-गृहस्थ जनों के द्वारा विद्वान् लोग इसलिये सत्कार करने योग्य हैं कि वे बालको को अपनी शिक्षा से गुणवान् और राजा तथा प्रजा के जनों को ऐश्वर्य्ययुक्त करते हैं॥१५॥

सं वर्चसा इत्यस्यात्रिर्ऋषिः। गृहपतिर्देवता। विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तदेवाह

फिर भी उक्त विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सꣳशिवेन।

त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायोऽनुमार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम्॥१६॥

सम्। वर्चसा। पयसा। सम्। तनूभिः। अगन्महि। मनसा। सम्। शिवेन। त्वष्टा। सुदत्र इति सुऽदत्रः। वि। दधातु। रायः। अनु। मार्ष्टु। तन्वः। यत्। विलिष्टमिति विऽलिष्टम्॥१६॥

पदार्थः-**(सम्)** एकीभावे **(वर्चसा)** तेजसा **(पयसा)** रात्र्या, **पय इति रात्रिनामसु पठितम्।** (निघं०१.७) **(सम्)** **(तनूभिः)** बलविशिष्टशरीरैर्विद्वद्भिः। **(अगन्महि)** प्राप्नुयाम **(मनसा)** मननेन **(सम्)** **(शिवेन)** सुखप्रदेन **(त्वष्टा)** अविद्याविच्छेदकः **(सुदत्रः)** सुष्ठु ज्ञानकर्त्ता **(विदधातु)** **(रायः)** विद्यादिधनानि **(अनु)** **(मार्ष्टु)** **(तन्वः)** शरीरस्य **(यत्)** **(विलिष्टम्)** रोमादिमललेशम्। अयं मन्त्रः (शत०४।४।४।८) व्याख्यातः॥१६॥

अन्वयः-हे आप्ता विद्वांसः! युष्माकं सुमतौ प्रवृत्ता वयं यो युष्माकं मध्ये श्रेष्ठः सुदत्रस्त्वष्टा विद्वानस्मभ्यं संवर्चसा पयसा संशिवेन मनसा यान् रायो विदधातु यत् तन्वो विलिष्टमनुमार्ष्टु तैस्तांस्तद्यागन्महि॥१६॥

भावार्थः-मनुष्यैरहर्निशमाप्तसङ्गेन धर्म्मार्थकाममोक्षाः सम्यक् साधनीयाः॥१६॥

पदार्थः-हे आप्त अत्युत्तम विद्वानो! आप लोगों की सुमति में प्रवृत्त हुए हम लोग जो आप लोगों के मध्य **(सुदत्रः)** विद्या के दान से विज्ञान को देने और **(त्वष्टा)** अविद्यादि दोषों का नष्ट करने वाला विद्वान् हम को **(संवर्चसा)** उत्तम दिन और **(पयसा)** रात्रि से **(संशिवेन)** अति कल्याणकारक **(मनसा)** विज्ञान से **(यत्)** जिस **(तन्वः)** शरीर से हानिकारक कर्म्म को **(अनुमार्ष्टु)** दूर करे और **(रायः)** पुष्टिकारक द्रव्यों को **(विदधातु)** प्राप्त करावें, उस और उन पदार्थों को **(समगन्महि)** प्राप्त हों॥१६॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि दिन रात उत्तम सज्जनों के संग से धर्म्मार्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि करते रहें॥१६॥

धाता रातिरित्यस्यात्रिर्ऋषिः। विश्वेदेवा गृहपतयो देवताः। स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनर्गार्हस्थ्यकर्म्म आह॥

फिर गृहस्थों का कर्म्म का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है॥

धाता रातिः सवितेदं जुषन्तां प्रजापतिर्निधिपा देवोऽअग्निः।

त्वष्टा विष्णुः प्रजया सꣳरराणा यजमानाय द्रविणं दधात स्वाहा॥ १७॥

धाता। रातिः। सविता। इदम्। जुषन्ताम्। प्रजापतिरिति प्रजाऽपतिः। निधिपा इति निधिऽपाः। देवः। अग्निः। त्वष्टा। विष्णुः। प्रजयेति प्रऽजया। सꣳरराणा इति सम्ऽरराणाः। यजमानाय। द्रविणम्। दधात। स्वाहा॥ १७॥

पदार्थः-(**धाता**) गृहाश्रमधर्त्ता (**रातिः**) सर्वेभ्यः सुखदायकः (**सविता**) सकलैश्वर्य्योत्पादकः (**इदम्**) गृहकृत्यम् (**जुषन्ताम्**) प्रीत्या सेवन्ताम् (**प्रजापतिः**) सन्तानादिपालकः (**निधिपाः**) विद्यावृद्धिरक्षकाः (**देवः**) दोषविजेता (**अग्निः**) अविद्यान्धकारदाहकः (**त्वष्टा**) सुखविस्तारकः (**विष्णुः**) सर्वशुभगुणकर्म्मसु व्याप्तः (**प्रजया**) स्वसन्तानादिना (**संरराणः**) सम्यग्दातारः सन्तः (**यजमानाय**) यज्ञानुष्ठात्रे (**द्रविणम्**) द्रवन्ति भूतानि यस्मिन् तद्धनम्। **द्रविणमिति धननामसु पठितम्।** (निघं० २।९) (**दधात**) धरत (**स्वाहा**) सत्यया क्रियया। अयं मन्त्रः (शत० ४। ४। ४। ९) व्याख्यातः॥ १७॥

अन्वयः-हे गृहस्थाः! भवन्तो धाता रातिः सविता प्रजापतिर्निधिपा देवोऽग्निस्त्वष्टा विष्णुरिवैतत् स्वभावा भूत्वा प्रजया सह संरराणास्सन्तः स्वाहेदं जुषन्तां बलवन्तो भूत्वा यजमानाय स्वाहा द्रविणं दधात॥ १७॥

भावार्थः-गृहस्थैः सततं यथोचितसमये गृहाश्रमे स्थित्वा सद्गुणकर्म्मधारणमैश्वर्य्योन्नतिरक्षणे प्रजापालनम्, सुपात्रेभ्यो दानम्, दुःखिनां दुःखच्छेदनम्, शत्रुविजयः, शरीरात्मबलव्याप्तिश्च धार्य्या॥ १७॥

पदार्थः-हे गृहस्थो! तुम (**धाता**) गृहाश्रम धर्म्म धारण करने (**रातिः**) सब के लिये सुख देने (**सविता**) समस्त ऐश्वर्य्य के उत्पन्न करने (**प्रजापतिः**) सन्तानादि के पालने (**निधिपाः**) विद्या आदि ऋद्धि अर्थात् धन समृद्धि के रक्षा करने (**देवः**) दोषों के जीतने (**अग्निः**) अविद्या रूप अन्धकार के दाह करने (**त्वष्टा**) सुख के बढ़ाने और (**विष्णुः**) समस्त उत्तम-उत्तम शुभ गुण कर्म्मों में व्याप्त होने वालों के सदृश हो के (**प्रजया**) अपने सन्तानादि के साथ (**संरराणाः**) उत्तम दानशील होते हुए (**स्वाहा**) सत्य क्रिया से (**इदम्**) इस गृहकार्य्य को (**जुषन्ताम्**) प्रीति के साथ सेवन करो और बलवान् गृहाश्रमी होकर (**यजमानाय**) यज्ञ का अनुष्ठान करने वाले के लिये जिस बल से उत्तम-उत्तम बली पुरुष बढ़ते जायें, उस (**द्रविणम्**) धन को (**दधात**) धारण करो॥ १७॥

भावार्थः-गृहस्थों को उचित है कि यथायोग्य रीति से निरन्तर गृहाश्रम में रह के अच्छे गुण कर्मों का धारण, ऐश्वर्य की उन्नति तथा रक्षा, प्रजापालन, योग्य पुरुषों को दान, दुःखियो का दुःख छुड़ाना, शत्रुओं को जीतने और शरीरात्मबल में प्रवृत्ति आदि गुण धारण करें॥ १७॥

सुगा व इत्यस्यात्रिर्ऋषिः। गृहपतयो देवताः। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनर्गृहकृत्यमाह॥

फिर गृहकर्म का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

सुगा वो देवाः सदनाऽअकर्म यऽआजग्मेदꣳ सवनं जुषाणाः।
भरमाणा वहमाना हवीꣳष्यस्मे धत्त वसवो वसूनि स्वाहा॥ १८॥

सुगेति सुऽगा। वः। देवाः। सदना। अकर्म। ये। आजग्मेत्याऽजग्म। इदम्। सवनम्। जुषाणाः। भरमाणाः। वहमानाः। हवीꣳषि। अस्मेऽइत्यस्मे। धत्त। वसवः। वसूनि। स्वाहा॥ १८॥

पदार्थः-(**सुगा**) सुष्ठु गन्तुं प्राप्तुं योग्यानि, अत्र **शेश्छन्दसि बहुलम्।** (अष्टा०६।१।७०) इति लुक् (**वः**) युष्माकम् (**देवाः**) व्यवहरमाणाः (**सदना**) सीदन्ति गच्छन्ति पुरुषार्थेन येषु तानि गृहाणि (**अकर्म्म**) अकार्ष्म, कुर्याम, अत्र डुकृञ् धातोर्लुङि **मन्त्रे घस०।** (अष्टा०२।४।८०) इत्यादिना च्लेर्लुक् (**ये**) (**आजग्म**) प्राप्नुवन्तु (**इदम्**) प्रत्यक्षम् (**सवनम्**) ऐश्वर्यम् (**जुषाणाः**) सेवमानाः (**भरमाणाः**) धरमाणाः (**वहमानाः**) प्राप्नुवन्तः (**हवींषि**) दातुमादातुमर्हाणि (**अस्मे**) अस्मभ्यम्। अत्र भ्यसः स्थाने **सुपां सुलुक्।** (अष्टा०७।१।३९) इति शे इत्यादेशः (**धत्त**) धरत (**वसवः**) ये वसन्ति सद्गुणकर्मसु ते (**वसूनि**) धनानि, **वस्विति धननामसु पठितम्।** (निघं०२।१०) (**स्वाहा**) श्रेष्ठक्रियया। अयं मन्त्रः (शत० ४।४।४।१०) व्याख्यातः॥ १८॥

यास्कमुनिरत्राह-**सुगा वो देवाः सदनमकर्म्म य आजग्मुः सवनमिदं जुषाणाः जक्षिवांसः पपिवांसश्च विश्वेऽस्मे धत्त वसवो वसूनि स्वागमनानि वो देवाः सुपथान्यकर्म्म य आगच्छत सवनानीमानि जुषाणाः खादितवन्तः पीतवन्तश्च सर्वेऽस्मासु धत्त वसवो वसूनि।** (निरु०१२।४२॥ १८॥

अन्वयः-हे वसवो देवाः! ये वयं स्वाहेदं सवनं जुषाणा भरमाणा वहमाना वो युष्मभ्यं यानि सुखसदना हवींषि वसूनि अकर्म्माजग्म तेभ्योऽस्मे तानि यूयमपि धत्त॥ १८॥

भावार्थः-यथा पितृपतिश्वश्रूर्मित्रस्वामिनः पदार्थैः पुत्रपुत्रीस्त्रीसखिभृत्यानां पालनं कुर्वन्तः सुखं ददति, तथैव पुत्रादयोऽप्येतेषां सेवनं कुर्य्युः॥ १८॥

पदार्थः-हे (**वसवः**) श्रेष्ठ गुणों में रमण करने वाले (**देवाः**) व्यवहारी जनो! (**ये**) जो (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया से (**इदम्**) इस (**सवनम्**) ऐश्वर्य का (**जुषाणाः**) सेवन (**भरमाणाः**) धारण करने (**वहमानाः**) औरों से प्राप्त होते हुए हम लोग तुम्हारे लिये (**सुगा**) अच्छी प्रकार प्राप्त होने योग्य (**सदना**) जिनके निमित्त पुरुषार्थ किया जाता है, उन (**हवींषि**) देने-लेने योग्य (**वसूनि**) धनों को (**अकर्म**) प्रकट कर रहे और (**आजग्म**) प्राप्त हुए हैं, (**अस्मे**) हमारे लिये उन (**वसूनि**) धनों को आप (**धत्त**) धरो॥ १८॥

भावार्थः-जैसे पिता, पति, श्वशुर, सासू, मित्र और स्वामी, पुत्र, कन्या, स्त्री, स्नुषा, सखा और भृत्यों का पालन करते हुए सुख देते हैं, वैसे पुत्रादि भी इनकी सेवा करना उचित समझें॥ १८॥

याँ२ऽआवह इत्यस्यात्रिर्ऋषिः। विश्वेदेवा गृहपतयो देवताः। भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनर्गृहकृत्यमाह॥

फिर भी घर का काम अगले मन्त्र में कहा है॥

याँ२ऽआवहऽउशतो देव देवाँस्तान् प्रेरय स्वेऽअग्ने सधस्थे।
जक्षिवाꣳसः पपिवाꣳसश्च विश्वेऽसुं घर्मꣳ स्वरातिष्ठतानु स्वाहा॥ १९॥

यान्। आ। अवहः। उशतः। देव। देवान्। तान्। प्र। ईरय। स्वे। अग्ने। सधस्थ इति सधऽस्थे। जक्षिवाꣳस इति जक्षिऽवाꣳसः। पपिवाꣳस इति पपिऽवाꣳसः। च। विश्वे। असुम्। घर्म्मम्। स्वः। आ। तिष्ठत। अनु। स्वाहा॥ १९॥

पदार्थः-**(यान्)** वक्ष्यमाणान् **(आ)** **(अवहः)** प्राप्नुयाः **(उशतः)** विद्यादिसद्गुणान् कामयमानान् **(देव)** दिव्यशीलयुक्ताध्यापक! **(देवान्)** विदुषः **(तान्)** **(प्र)** **(ईरय)** नियोजय **(स्वे)** स्वकीये **(अग्ने)** विज्ञानाढ्य विद्वन्। **(सधस्थे)** सहस्थाने **(जक्षिवांसः)** अन्नं जग्धवन्तः **(पपिवांसः)** पीतवन्तः **(च)** अन्यसुखसेवनसमुच्चये **(विश्वे)** सर्वे **(असुम्)** प्रज्ञाम्। **असुरिति प्रज्ञानामसु पठितम्।** (निघं०३।९) अस्यति दोषाननेन सोऽसुः प्रज्ञा ताम् **(घर्म्मम्)** अन्नं यज्ञं वा। **घर्म्म इत्यन्ननामसु पठितम्।** (निघं०१।९) **यज्ञनामसु च।** (निघं०३।१७) **(स्वः)** सुखम् **(आ)** सर्वतः **(तिष्ठत)** **(अनु)** **(स्वाहा)** सत्यया वाचा। अयं मन्त्रः (शत० ४।४।४।१९) व्याख्यातः॥१९॥

अन्वयः-हे देवाग्ने! त्वं स्वे सधस्थे यानुशतो देवानावहस्तान् धर्म्मे प्रेरय। हे गृहस्थाः! जक्षिवांसः पपिवांसो विश्वे यूयं स्वाहा घर्म्ममसुं स्वश्चान्वातिष्ठत्॥१९॥

भावार्थः-इहाध्यापकेनोपदेष्ट्रा ये जना विद्यां शिक्षां प्रापिताः सत्यधर्म्मकर्मचारिणो भवेयुस्ते सुखभाजिनः स्युर्नेतरे॥१९॥

पदार्थः-हे **(देव)** दिव्य स्वभाव वाले अध्यापक! तू **(स्वे)** अपने **(सधस्थे)** साथ बैठने के स्थान में **(यान्)** जिन **(उशतः)** विद्या आदि अच्छे-अच्छे गुणों की कामना करते हुए **(देवान्)** विद्वानों को **(आ)** **(अवहः)** प्राप्त हो **(तान्)** उन को धर्म्म में **(प्र)** **(ईरय)** नियुक्त कर। हे गृहस्थ! **(जक्षिवांसः)** अन्न खाते और **(पपिवांस)** पानी पीते हुए **(विश्वे)** सब तुम लोग **(स्वाहा)** सत्य वाणी से **(घर्मम्)** अन्न और यज्ञ तथा **(असुम्)** श्रेष्ठ बुद्धि वा **(स्वः)** अत्यन्त सुख को **(अनु)** **(आ)** **(तिष्ठत)** प्राप्त होकर सुखी रहो॥१९॥

भावार्थः-इस संसार में उपदेश करने वाले अध्यापक से विद्या और श्रेष्ठगुण को प्राप्त जो बालक सत्य धर्म्म कर्म्म वर्त्तने वाले हों, वे सुखभागी हों और नहीं॥१९॥

वयमित्यस्यात्रिर्ऋषिः। गृहपतयो देवताः। स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ व्यवहारिणे गृहस्थायोपदिशति॥

अब व्यवहार करने वाले गृहस्थ के लिये उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

वयꣳ हि त्वा प्रयति यज्ञेऽअस्मिन्नग्ने होतारमवृणीमहीह।
ऋधगयाऽऋधगुताशमिष्ठाः प्रजानन् यज्ञमुपयाहि विद्वान्त्स्वाहा॥ २०॥

वयम्। हि। त्वा। प्रयतीति प्रऽयति। यज्ञे। अस्मिन्। अग्ने। होतारम्। अवृणीमहि। इह। ऋधक्। अयाः। ऋधक्। उत। अशमिष्ठाः। प्रजानन्निति प्रऽजानन्। यज्ञम्। उप। याहि। विद्वान्। स्वाहा॥ २०॥

पदार्थः-**(वयम्)** गृहाश्रमस्थाः **(हि)** यतः **(त्वा)** विद्वांसम् **(प्रयति)** प्रयत्यते जनैर्यस्तस्मिन्, **कृतो बहुलम्।** (अष्टा०वा०३।३।११३) इति कर्म्मणि क्विप् **(यज्ञे)** सम्यग्ज्ञातव्ये **(अस्मिन्)** **(अग्ने)** विज्ञापक् विद्वन्! **(होतारम्)** यज्ञनिष्पादकम् **(अवृणीमहि)** स्वीकुर्वीमहि, अत्र लिङर्थे लङ् **(इह)** अस्मिन् संसारे **(ऋधक्)**

समृद्धिवर्द्धके **(अयाः)** यजेः सङ्गच्छस्व, अत्र लिङर्थे लङ् **(ऋधक्)** समृद्धिर्यथा स्यात् तथा **(उत)** अपि **(अशमिष्ठाः)** शमादिगुणान् गृहाण **(प्रजानन्)** **(यज्ञम्)** **(उप)** **(याहि)** उपगतं प्राप्नुहि **(विद्वान्)** वेत्ति यज्ञविद्याक्रियाम् **(स्वाहा)** शास्त्रोक्त्या क्रियया। अयं मन्त्रः (शत० ४।४।४।१२) व्याख्यातः॥२०॥

अन्वयः-हे अग्ने! वयमिह प्रयति यज्ञे त्व होतारमवृणीमहि, विद्वान् प्रजानँस्त्वमस्मानयाः ऋधग् यज्ञं स्वाहोपयाहि, उताप्युपयाहि ऋधगशमिष्ठाः॥२०॥

भावार्थः-सर्वेषां व्यवहरतां योग्यतास्ति यो मनुष्यो यत्र कर्म्मणि विचक्षणः सः तस्मिन्नेव कार्य्येऽभिप्रयोज्यः॥२०॥

पदार्थः-हे **(अग्ने)** ज्ञान देने वाले **(वयम्)** हम लोग **(इह)** **(प्रयति)** इस प्रयत्नसाध्य **(यज्ञे)** गृहाश्रमरूप यज्ञ में **(त्वा)** तुझ को **(होतारम्)** सिद्ध करने वाला **(अवृणीमहि)** ग्रहण करें **(विद्वान्)** सब विद्यायुक्त **(प्रजानन्)** क्रियाओं को जानने वाले आप **(ऋधक्)** समृद्धिकारक **(यज्ञम्)** गृहाश्रमरूप यज्ञ को **(स्वाहा)** शास्त्रोक्त क्रिया से **(उप)** **(याहि)** समीप प्राप्त हो **(उत)** और केवल प्राप्त ही नहीं, किन्तु **(अयाः)** उस से दान, सत्सङ्ग, श्रेष्ठ गुण वालों का सेवन कर **(हि)** निश्चय करके **(अस्मिन्)** इस **(ऋधक्)** अच्छी ऋद्धि-सिद्धि के बढ़ाने वाले गृहाश्रम के निमित्त में **(अशमिष्ठाः)** शान्त्यादि गुणों को ग्रहण करके सुखी हो॥२०॥

भावार्थः-सब व्यवहार करने वालों को चाहिये कि जो मनुष्य जिस काम में चतुर हो, उस को उसी काम में प्रवृत्त करें॥२०॥

देवा गात्वित्यस्यात्रिर्ऋषिः। गृहपतयो देवताः। स्वराडार्ष्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

पुनर्गृहस्थकर्म्मविधिमाह॥

फिर भी गृहस्थों का कर्म अगले मन्त्र में कहा है॥

देवा॑ गातुविदो गा॒तुं वि॒त्त्वा गा॒तुमि॑त।

म॒न॑सस्पतऽइ॒मं दे॑व य॒ज्ञꣳ स्वाहा॒ वाते॑ धाः॥२१॥

देवाः॑। गा॒तु॒वि॒द॒ इति॑ गातुऽविदः। गा॒तुम्। वि॒त्त्वा। गा॒तुम्। इ॒त। मन॑सः। प॒ते। इ॒मम्। दे॒व। य॒ज्ञम्। स्वाहा॑। वाते॑। धा॒ः॥२१॥

पदार्थः-**(देवाः)** सत्यासत्यस्तावका गृहस्थाः **(गातुविदः)** स्वगुणकर्मस्वभावेन गातुं पृथ्वीं विदन्तः, **गातुरिति पृथ्वीनामसु पठितम्।** (निघं०१।१) **(गातुम्)** भूगर्भविद्यान्वितं भूगोलम् **(वित्त्वा)** विज्ञाय **(गातुम्)** पृथिवीराज्यादिनिष्पन्नमुपकारम् **(इत)** प्राप्नुत **(मनसस्पते)** निगृहीतमनाः **(इमम्)** प्राप्तम् **(देव)** दिव्यविद्याव्युत्पन्न **(यज्ञम्)** सर्वसुखावहं गृहाश्रमम् **(स्वाहा)** धर्म्यया क्रियया **(वाते)** विज्ञातव्ये व्यवहारे। **वात इति पदनामसु पठितम्।** (निघं०५।४) **(धाः)** धेहि। अत्राडभावः। अयं मन्त्रः (शत० ४।४।४।१३) व्याख्यातः॥२१॥

अन्वयः-हे गातुविदो देवाः! यूयं गातुं वित्त्वा गातुमित। हे मनसस्पते देव! प्रतिगृहस्थस्त्वं स्वाहेम यज्ञं वाते धाः॥२१॥

भावार्थः-गृहस्थानां योग्यतास्त्यतिप्रयत्नेन भूगर्भादिविद्याः संप्राप्य जितेन्द्रियाः परोपकारिणो भूत्वा सद्धर्म्मेण गृहाश्रमव्यवहारानुन्नीय सर्वान् प्राणिनः सुखयेयुः॥२१॥

पदार्थः-हे **(गातुविदः)** अपने गुण, कर्म और स्वभाव से पृथिवी के आने-जाने को जानने **(देवाः)** तथा सत्य और असत्य के अत्यन्त प्रशंसा के साथ प्रचार करने वाले विद्वान् लोगो! तुम **(गातुम्)** भूगर्भविद्यायुक्त भूगोल को **(वित्त्वा)** जान कर **(गातुम्)** पृथिवी राज्य आदि उत्तम कामों के उपकार को **(इत)** प्राप्त हूजिये। हे **(मनसस्पते)** इन्द्रियों के रोकनेहारे **(देव)** श्रेष्ठ विद्याबोधसम्पन्न विद्वानो! तुममें से प्रत्येक विद्वान् गृहस्थ **(स्वाहा)** धर्म बढ़ाने वाली क्रिया से **(इमम्)** इस गृहाश्रम रूप **(यज्ञम्)** सब सुख पहुंचाने वाले यज्ञ को **(वाते)** विशेष जानने योग्य व्यवहारों में **(धाः)** धारण करो॥२१॥

भावार्थः-गृहस्थों को चाहिये कि अत्यन्त प्रयत्न के साथ भूगर्भ-विद्याओं को जान, इन्द्रियों को जीत, परोपकारी होकर और उत्तम धर्म्म से गृहाश्रम के व्यवहारों को उन्नति देकर सब प्राणीमात्र को सुखी करें॥२१॥

यज्ञ यज्ञमित्यस्यात्रिर्ऋषिः। गृहपतयो देवताः। विराडार्च्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः। एष इत्यस्य विराडार्ची बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनर्गृहस्थेभ्यो विशेषोपदेशमाह॥

फिर गृहस्थों के लिये विशेष उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

यज्ञ॑ य॒ज्ञं ग॑च्छ य॒ज्ञप॑तिं गच्छ॒ स्वां योनि॑ं गच्छ॒ स्वाहा॑।

ए॒ष ते॑ य॒ज्ञो य॑ज्ञपते स॒हसू॑क्तवाक॒ः सर्व॑वीर॒स्तं जु॑षस्व॒ स्वाहा॑॥२२॥

यज्ञ॑। य॒ज्ञम्। ग॒च्छ॒। य॒ज्ञप॑ति॒मिति॑ य॒ज्ञऽप॑तिम्। ग॒च्छ॒। स्वाम्। योनि॑म्। ग॒च्छ॒। स्वाहा॑। ए॒षः। ते॒। य॒ज्ञः। य॒ज्ञ॒प॒त॒ इति॑ यज्ञऽपते। स॒हसू॑क्तवाक॒ इति॑ स॒हऽसू॑क्तवाकः। सर्व॑वीर॒ इति॒ सर्व॑ऽवीरः। तम्। जु॒ष॒स्व॒। स्वाहा॑॥२२॥

पदार्थः-**(यज्ञ)** यो यजति सङ्गच्छते सः यज्ञो गृहस्थस्तत्सम्बुद्धौ, अत्रौणादिको नप्रत्ययः **(यज्ञम्)** विद्वत्सत्काराख्यं गृहाश्रमधर्म्मम् **(गच्छ)** प्राप्नुहि **(यज्ञपतिम्)** संगम्यानां गृहाश्रमिणां पालकं राजानम् **(गच्छ)** **(स्वाम्)** स्वकीयाम् **(योनिम्)** प्रकृतिं स्वात्मस्वभावम् **(गच्छ)** **(स्वाहा)** सत्यया क्रियया **(एषः)** विद्यमानः **(ते)** तव **(यज्ञः)** सम्पूजनीयः प्रजारक्षणनिमित्तो विद्याप्रचारार्थो गृहाश्रमः **(यज्ञपते)** राजधर्म्माग्निहोत्रादिपालक **(सहसूक्तवाकः)** ऋग्यजुरादिलक्षणैः सूक्तैर्वाकैः सह वर्त्तमानः **(सर्ववीरः)** शरीरात्मबलसुभूषिताः सर्वे वीरा यस्मात् **(तम्)** **(जुषस्व)** सेवस्व **(स्वाहा)** सत्यन्यायप्रकाशिकया वाचा। अयं मन्त्रः (शत० ४। ४। ४। १४) व्याख्यातः॥२२॥

अन्वयः-हे यज्ञ! त्वं स्वाहा, यज्ञं गच्छ, यज्ञपतिं गच्छ, स्वां योनिं गच्छ, यज्ञपते ते य एष सहसूक्तवाक्तः सर्ववीरो यज्ञोऽस्ति, तं त्वं स्वाहा जुषस्व॥२२॥

भावार्थः-प्रजाजनो गृहस्थः पुरुषः प्रयत्नेन गृहकर्म्माणि यथावत् कुर्य्यात्, राजभक्त्या राजाश्रयेण सद्धर्म्मव्यवहारेण च गृहाश्रमं परिपालयेत्, राजा च सद्विद्या प्रचारेण सर्वान् पोषयेत्॥२२॥

पदार्थः-हे **(यज्ञ)** सत्कर्म्मों से संगत होने वाले गृहाश्रमी! तू **(स्वाहा)** सत्य-सत्य क्रिया से **(यज्ञम्)** विद्वानों के सत्कारपूर्वक गृहाश्रम को **(गच्छ)** प्राप्त हो, **(यज्ञपतिम्)** संग करने योग्य गृहाश्रम के पालने वाले को **(गच्छ)** प्राप्त हो, **(स्वाम्)** अपने **(योनिम्)** घर और स्वभाव को **(गच्छ)** प्राप्त हो, **(यज्ञपते)** गृहाश्रम धर्म्मपालक तू **(ते)** तेरा जो **(एषः)** यह **(सहसूक्तवाकः)** ऋग्, यजुः, साम और अथर्ववेद के सूक्त और अनुवाकों से कथित

(सर्ववीरः) जिससे आत्मा और शरीर के पूर्णबलयुक्त समस्त वीर प्राप्त होते हैं **(यज्ञः)** प्रशंसनीय प्रजा की रक्षा के निमित्त विद्याप्रचाररूप यज्ञ है, **(तम्)** उसका तू **(स्वाहा)** सत्यविद्या, न्याय प्रकाश करने वाली वेदवाणी से **(जुषस्व)** प्रीति से सेवन कर॥२२॥

भावार्थः-प्रजाजन गृहस्थ पुरुष बड़े-बड़े यत्नों से घर के कार्यों को उत्तम रीति से करें। राजभक्ति, राजसहायता और उत्तम धर्म्म से गृहाश्रम को सब प्रकार से पालें और राजा भी श्रेष्ठ विद्या के प्रचार से सब को सन्तुष्ट करे॥२२॥

माहिर्भूरित्यस्यात्रिर्ऋषिः। गृहपतयो देवताः। आद्यस्य याजुष्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः। ऊरुमित्यस्य शुनःशेप ऋषिः। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। नम इत्यस्यासुरी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अथ राजोपदेशमाह॥

अब अगले मन्त्र में राजा के लिये उपदेश किया है॥

माहिर्भूर्मा पृदाकुः। उरुꣳ हि राजा वरुणश्चकार सूर्याय पन्थामन्वेतवाऽउ।
अपदे पादा प्रतिधातवेऽकरुतापवक्ता हृदयाविधश्चित्।
नमो वरुणायाभिष्ठितो वरुणस्य पाशः॥२३॥

मा। अहिः। भूः। मा। पृदाकुः। उरुम्। हि। राजा। वरुणः। चकार। सूर्य्याय। पन्थाम्। अन्वेतवा इत्यनुऽएतवै। ऊँऽइत्यूँ। अपदे। पादा। प्रतिधातव इति प्रतिऽधातवे। अकः। उत। अपवक्तेत्यपऽवक्ता। हृदयाविधः। हृदयविध इति हृदयऽविधः। चित्। नमः। वरुणाय। अभिष्ठितः। अभिस्थित इत्यभिऽस्थितः। वरुणस्य। पाशः॥२३॥

पदार्थः-**(मा)** निषेधे **(अहिः)** सर्प्पवत् क्रुद्धो विषधरः **(भूः)** भवेः **(मा)** **(पृदाकुः)** कुत्सितवाक् **(उरुम्)** बहुगुणान्वितं न्यायम् **(हि)** खलु **(राजा)** प्रशस्तगुणस्वभावैः प्रकाशमानः **(वरुणः)** वरः **(चकार)** कुर्य्याः, अत्र लिङर्थे लिट् **(सूर्य्याय)** चराचरात्मेश्वरप्रकाशाय **(पन्थाम्)** न्यायमार्गम् **(अन्वेतवै)** अनुक्रमेण गन्तुम् **(उ)** वितर्के **(अपदे)** चौरादिनिष्पादितेऽप्रसिद्धे व्यवहारे **(पादा)** चरणौ, अत्राकारादेशः **(प्रतिधातवे)** प्रतिधर्त्तुम् **(अकः)** कुरु **(उत)** अपि **(अपवक्ता)** मिथ्यावादी **(हृदयाविधः)** यो हृदयमाविध्यति सः **(चित्)** इव **(नमः)** वज्रम् **(वरुणाय)** प्रशस्तैश्वर्याय **(अभिष्ठितः)** अभितः स्थितः जाज्वल्यमानः **(वरुणस्य)** वीरगुणोपेतस्य **(पाशः)** बन्धनम्। अयं मन्त्रः (शत० ४।४।५।३-११) व्याख्यातः॥२३॥

अन्वयः-हे राजन् सभेश्वर! त्वं वरुणायोरुं न्यायं कुर्वन्नन्वेतवै अपदे पादा प्रतिधातवेऽकः सूर्य्याय पन्थां चकार, उतापवक्ता हृदयाविधश्चिदिव मा पृदाकुर्माहिर्भूर्यथा वरुणस्य तवाभिष्ठितो नमः पाशश्च प्रकाशेत, तथा सततं प्रयतस्व॥२३॥

भावार्थः-प्रजापुरुषाणां योग्यतास्ति यो हि विद्वान् जितेन्द्रियो धार्म्मिकः पिता पुत्रानिव प्रजापालने तत्परः सर्वेभ्यः सुखकारी भवेत्, तं सभापतिं कुर्वीरन्। राजा वा प्रजापुरुषः कदापि दुष्टकर्म्मकारी न भवेत्, कथंचिद् यदि स्यात् तर्हि प्रजा यथापराधं राजानं दण्डयेत्, राजा च प्रजापुरुषं कदाप्यपराधिनं दण्डेन विना न त्यजेत्, अनपराधिनं

च वृथा न पीडयेत्। एवं सर्वे न्यायाचरणतत्परा भूत्वा प्रयतेरन्, यतोऽधिका मित्रोदासीनशत्रवो न स्युः। पुनर्विद्याधर्म्ममार्गान् शुद्धान् प्रचार्य्य सर्वे परमात्मभक्तिपरायणा भूत्वा सदा सुखिनः स्युः॥२३॥

पदार्थः-हे राजन् सभापते! तू **(वरुणाय)** उत्तम ऐश्वर्य्य के वास्ते **(उरुम्)** बहुत गुणों से युक्त न्याय को **(अकः)** कर **(सूर्य्याय)** चराचर के आत्मा जगदीश्वर के विज्ञान होने **(सूर्य्याय)** और प्रजागणों को यथायोग्य धर्म्म प्रकाश में चलने के लिये **(पन्थाम्)** न्यायमार्ग को **(चकार)** प्रकाशित कर **(उत)** और कभी **(अपवक्ता)** झूंठ बोलने वाला **(हृदयाविधः)** धर्मात्माओं के मन को सन्ताप देने वाले के **(चित्)** सदृश **(पृदाकुः)** खोटे वचन कहने वाला **(मा)** मत हो और **(अहिः)** सर्प्प के समान क्रोधरूपी विष का धारण करने वाला **(मा)** मत **(भूः)** हो और जैसे **(वरुणस्य)** वीर गुण वाले तेरा **(अभिष्ठितः)** अति प्रकाशित **(नमः)** वज्ररूप दण्ड और **(पाशः)** बन्धन करने की सामग्री प्रकाशमान रहे, वैसे प्रयत्न को सदा किया कर॥२३॥

भावार्थः-प्रजाजनों को चाहिये कि जो विद्वान् इन्द्रियों का जीतने वाला, धर्मात्मा और पिता जैसे अपने पुत्रों को वैसे प्रजा की पालना करने में अति चित्त लगावे और सब के लिये सुख करने वाला सत्पुरुष हो, उसी को सभापति करें और राजा वा प्रजाजन कभी अधर्म के कामों को न करें, जो किसी प्रकार कोई करे तो अपराध के अनुकूल प्रजा राजा को और राजा प्रजा को दण्ड देवे, किन्तु कभी अपराधी को दण्ड दिये विना न छोड़े और निरपराधी को निष्प्रयोजन पीड़ा न देवे। इस प्रकार सब कोई न्यायमार्ग से धर्माचरण करते हुए अपने-अपने प्रत्येक कामों के चिन्तन में रहें, जिससे अधिक मित्र, थोड़े प्रीति रखने वाले और शत्रु न हों और विद्या तथा धर्म के मार्गों का प्रचार करते हुए सब लोग ईश्वर की भक्ति में परायण हो के सदा सुखी रहें॥२३॥

अग्नेरनीकमित्यस्यात्रिर्ऋषिः। गृहपतिर्देवता। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथोभयेषां गृहस्थानामुपदेशमाह॥

अब राजा और प्रजाजन गृहस्थों के लिये उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अ॒ग्नेरनी॑कम॒पऽआवि॑वेशा॒पां नपा॑त् प्रति॒रक्ष॑न्नसु॒र्य्य॑म्।

दमे॑दमे स॒मिधं॑ यक्ष्यग्ने॒ प्रति॑ ते जि॒ह्वा घृ॒तमुच्च॑रण्यत् स्वाहा॑॥२४॥

अ॒ग्नेः। अनी॑कम्। अ॒पः। आ। वि॒वे॒श॒। अ॒पाम्। नपा॑त्। प्र॒ति॒रक्ष॒न्निति॑ प्रति॒ऽरक्ष॑न्। अ॒सु॒र्य्य॑म्। दमे॑दम॒ इति॒ दमे॑ऽदमे। स॒मिध॒मिति॑ स॒म्ऽइध॑म्। य॒क्षि॒। अ॒ग्ने॒। प्रति॑। ते॒। जि॒ह्वा। घृ॒तम्। उत्। च॒र॒ण्य॒त्। स्वाहा॑॥२४॥

पदार्थः-**(अग्नेः)** पावकस्य **(अनीकम्)** सैन्यमिव ज्वालासमूहम् **(अपः)** जलानि **(आ)** **(विवेश)** **(अपाम्)** आप्नुवन्ति याभिस्तासामुदकानाम् **(नपात्)** नाधःपतनशीलः **(प्रति)** **(रक्षन्)** पालयन् **(असुर्य्यम्)** असुरेषु मेघेषु प्राणक्रीडासाधनेषु भवं द्रव्यम् **(दमेदमे)** दाम्यन्ति जना यस्मिन् तस्मिन् गृहे गृहे। **दम इति गृहनामसु पठितम्।** (निघं०३।४) वीप्सया द्वित्वम् **(समिधम्)** समिध्यते प्रकाशयतेऽर्थतत्त्वमनया क्रियया ताम् **(यक्षि)** यजसि सङ्गच्छसे। अत्र **बहुलं छन्दसि।** (अष्टा०२।४।७३) इति शपो लुक् **(अग्ने)** विज्ञानयुक्त! **(प्रति)** **(ते)** तव **(जिह्वा)** रसेन्द्रियम् **(घृतम्)** आज्यम् **(उत्)** **(चरण्यत्)** चरणमिवाचरेत्। **वा छन्दसि।** (अष्टा०भा०वा०१।४।९) इत्यत्राल्लोप ईत्वाऽभावश्च **(स्वाहा)** सत्यया क्रियया। अयं मन्त्रः (शत० ४।४।५।१२) व्याख्यातः॥२४॥

अन्वयः-हे गृहस्थ! त्वमग्नेरनीकमपश्चाविवेशापां न पात्वमसुर्यं प्रतिरक्षन् दमेदमे समिधं यक्षि, ते जिह्वा

घृतमुत स्वाहोच्चरण्यत्॥२४॥

भावार्थः-अग्निजले सर्वेषां सांसारिकपदार्थानां हेतू स्तः। अतो गृहस्थो विशेषतोऽनयोर्गुणान् ज्ञात्वा गृहस्थो सर्वाणि कार्य्याणि सत्यव्यवहारेण कुर्यात्॥२४॥

पदार्थः-हे गृहस्थ! तू **(अग्नेः)** अग्नि की **(अनीकम्)** लपटरूपी सेना के प्रभाव और **(अपः)** जलों को **(आ)** **(विवेश)** अच्छी प्रकार समझ **(अपाम्)** उत्तम व्यवहार सिद्धि कराने वाले गुणों को जान कर **(नपात्)** अविनाशीस्वरूप! तू **(असुर्यम्)** मेघ और प्राण आदि अचेतन पदार्थों से उत्पन्न हुए सुवर्ण आदि धन को **(प्रतिरक्षन्)** प्रत्यक्ष रक्षा करता हुआ **(दमेदमे)** घर-घर में **(समिधम्)** जिस क्रिया से ठीक-ठीक प्रयोजन निकले उसको **(यक्षि)** प्रचार कर और **(ते)** तेरी **(जिह्वा)** जीभ **(घृतम्)** घी का स्वाद लेवे। **(स्वाहा)** सत्यव्यवहार से **(उत्)** **(चरण्यत्)** देह आदि साधनसमूह सब काम किया करे॥२४॥

भावार्थः-अग्नि और जल संसार के सब व्यवहारों के कारण हैं, इससे गृहस्थजन विशेष कर अग्नि और जल के गुणों को जानें और गृहस्थ के सब काम सत्य व्यवहार से करें॥२४॥

समुद्रे त इत्यस्यात्रिर्ऋषिः। गृहपतिर्देवता। भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनर्गृहस्थोपदेशमाह॥

फिर गृहस्थों के लिये उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

समुद्रे ते हृदयमप्स्वन्तः सं त्वा विशन्त्वोषधीरुतापः।

यज्ञस्य त्वा यज्ञपते सूक्तोक्तौ नमोवाके विधेम यत् स्वाहा॥२५॥

समुद्रे। ते। हृदयम्। अप्स्वित्यप्ऽसु। अन्तरित्यन्तः। सम्। त्वा। विशन्तु। ओषधीः। उत। आपः। यज्ञस्य। त्वा। यज्ञपत इति यज्ञऽपते। सूक्तोक्ताविति सूक्तऽउक्तौ। नमोवाक इति नमःऽवाके। विधेम। यत्। स्वाहा॥२५॥

पदार्थः-**(समुद्रे)** सम्यग् द्रवीभूते व्यवहारे **(ते)** तव **(हृदयम्)** **(अप्सु)** प्राणेषु **(अन्तः)** अन्तःकरणम् **(सम्)** **(त्वा)** **(विशन्तु)** **(ओषधीः)** यवाद्याः **(उत)** अपि **(आपः)** जलानि **(यज्ञस्य)** गृहाश्रमानुकूलस्य व्यवहारस्य **(त्वा)** त्वाम् **(यज्ञपते)** गृहाश्रमस्य रक्षक! **(सूक्तोक्तौ)** सूक्तानां वेदस्थानां प्रामाण्यस्योक्तिर्यस्मिन् गृहाश्रमे **(नमोवाके)** वेदस्थस्य नम इत्यन्नस्य सत्कारस्य च वाका वचनानि यस्मिन् **(विधेम)** निष्पादयेम **(यत्)** यतः **(स्वाहा)** प्रेमोत्पादयित्र्या वाचा। अयं मन्त्रः (शत० ४।४।५।१३-२०) व्याख्यातः॥२५॥

अन्वयः-हे यज्ञपते! यथा वयं स्वाहा यज्ञस्य सूक्तोक्तौ नमोवाके समुद्रेऽप्सु च ते तव हृदयमप्स्वन्तोऽन्तःकरणं विधेम, तथा तेन विदिता ओषधीस्त्वा समाविशन्तु। उताप्यापस्तव सुखकारिकाः सन्तु॥२५॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। अध्यापकोपदेशका गृहस्थान् सत्यां विद्यां ग्राहयित्वा प्रयत्नसाध्ये गृहकृत्यानुष्ठाने सर्वान् युञ्जीयुः। यतश्चैते शरीरात्मबलं वर्द्धयेरन्॥२५॥

पदार्थः-हे **(यज्ञपते)** जैसे गृहाश्रम धर्म्म के पालनेहारे! हम लोग **(स्वाहा)** प्रेमास्पदवाणी से **(यज्ञस्य)** गृहाश्रमानुकूल व्यवहार के **(सूक्तोक्तौ)** उस प्रबन्ध कि जिस में वेद के वचनों के प्रमाण से अच्छी-अच्छी बातें हैं और **(नमोवाके)** वेद प्रमाणसिद्ध अन्न और सत्कारादि पदार्थों के वादानुवाद रूप **(समुद्रे)** आर्द्र व्यवहार और

(अप्सु) सब प्रमाणों में **(ते)** तेरे **(यत्)** जिस **(हृदयम्)** हृदय को सन्तुष्टि में **(विधेम)** नियत करें, वैसे उससे जानी हुई **(ओषधीः)** यव, गेहूं, चना, सोमलतादि सुख देने वाले पदार्थ **(आ) (विशन्तु)** प्राप्त हों, **(उत)** और न केवल ये ही किन्तु **(आपः)** अच्छे जल भी तुझ को सुख करने वाले हों॥२५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। पढ़ाने और उपदेश करने वाले सज्जन पुरुष गृहस्थों को सत्यविद्या को ग्रहण कराकर अच्छे यत्नों से सिद्ध होने योग्य घर के कामों में सब को युक्त करें, जिससे गृहाश्रम चाहने और करने वाले पुरुष शरीर और अपने आत्मा का बल बढ़ावें॥२५॥

देवीराप इत्यस्यात्रिर्ऋषिः। गृहपतयो देवताः। स्वराडार्षी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

अथ विवाहितस्त्रीभ्यः कर्त्तव्यमुपदिश्यते॥

अब विवाहित स्त्रियों को करने योग्य उपदेश अगले मन्त्र में किया जाता है॥

देवीरापऽएष वो गर्भस्तꣳ सुप्रीतꣳ सुभृतं बिभृत।

देव सोमैष ते लोकस्तस्मिञ्छञ्च वक्ष्व परि च वक्ष्व॥२६॥

देवीः। आपः। एषः। वः। गर्भः। तम्। सुप्रीतमिति सुऽप्रीतम्। सुभृतमिति सुऽभृतम्। बिभृत। देव सोम। एषः। ते। लोकः। तस्मिन्। शम्। च। वक्ष्व। परि। च। वक्ष्व॥२६॥

पदार्थः-**(देवीः)** देदीप्यमाना विदुष्यः **(आपः)** सर्वाः शुभगुणकर्म्मविद्याव्यापिन्यः **(एषः) (वः)** युष्माकम् **(गर्भः) (तम्) (सुप्रीतम्)** सुष्ठु प्रीतिनिबद्धम् **(सुभृतम्)** सुष्ठु धारितम् **(बिभृत)** धरत, पुष्यत **(देव)** दिव्यगुणैः कमनीय! **(सोम)** ऐश्वर्य्याढ्य गृहस्थजन! **(एषः)** प्रत्यक्षः **(ते)** तव **(लोकः)** लोकनीयः पुत्रपत्यादिसम्बन्धसुखकरो गृहाश्रमः **(तस्मिन्) (शम्)** कल्याणकारकं ज्ञानम् **(च)** शिक्षाम् **(वक्ष्व)** प्रापय **(परि) (च)** अनुक्तसमुच्चये **(वक्ष्व)** वेह। अयं मन्त्रः (शत० ४।४।५।२१) व्याख्यातः॥२६॥

अन्वयः-हे आपो देवीर्देव्यः! यूयं वो युष्माकं य एषो गर्भो लोकस्तं सुप्रीतं सुभृतं यथा स्यात् तथा बिभृत। हे देव! सोम य एष ते तव लोकोऽस्ति, तस्मिन् शं चाच्छिक्षां वक्ष्व चाद् रक्षणं परिवक्ष्व॥२६॥

भावार्थः-विदुषी स्त्री यथोक्तविवाहविधिना विद्वांसं पतिं प्राप्य, तन्मनोरञ्जनपुरःसरं गर्भमादधीत, स च पतिः स्त्रीरक्षणे तन्मनोरञ्जने च नित्यमुत्सहेत॥२६॥

पदार्थः-हे **(आपः)** समस्त शुभ गुण, कर्म्म और विद्यार्थी में व्याप्त होने वाली **(देवीः)** अति शोभायुक्त स्त्रीजनो! तुम सब **(यः)** जो **(एषः)** यह **(वः)** तुम्हारा **(गर्भः)** गर्भ **(लोकः)** पुत्र आदि के साथ सुखदायक है, **(तम्)** उसको **(सुप्रीतम्)** श्रेष्ठ प्रीति के साथ **(सुभृतम्)** जैसे उत्तम रक्षा से धारण किया जाय वैसे **(बिभृत)** धारण और उस की रक्षा करो। हे **(देव)** दिव्य गुणों से मनोहर **(सोम)** ऐश्वर्य्ययुक्त! तू जो **(एषः)** यह **(ते)** तुम्हारा **(लोकः)** देखने योग्य पुत्र, स्त्री, भृत्यादि सुखकारक गृहाश्रम है, **(तस्मिन्)** इस के निमित्त **(शम्)** सुख **(च)** और शिक्षा **(वक्ष्व)** पहुंचा **(च)** तथा इसकी रक्षा **(परिवक्ष्व)** सब प्रकार कर॥२६॥

भावार्थः-पढ़ी हुई स्त्री यथोक्त विवाह की विधि से विद्वान् पति को प्राप्त होकर उस को आनन्दित कर परस्पर प्रसन्नता के अनुकूल गर्भ को धारण करे। वह पति भी स्त्री की रक्षा और उसकी प्रसन्नता करने को नित्य उत्साही हो॥२६॥

अवभृथेत्यस्यात्रिर्ऋषिः। दम्पती देवते। भुरिक् प्राजापत्यानुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः। अव देवैरित्यस्य स्वराडार्षी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनर्गृहस्थधर्म्मे स्त्रीविषयमाह॥

फिर गृहस्थ धर्म्म में स्त्री का विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अव॑भृथ निचुम्पुण निचे॒रुर॑सि निचुम्पु॒णः। अव॑ दे॒वैर्दे॒वकृ॑त॒मेनो॑ऽयासिष॒मव॒ मर्त्यै॒र्मर्त्य॑कृतं पु॒रु॒राव्णो॑ देव रि॒षस्पा॑हि। दे॒वाना॑ᳪं स॒मिद॑सि॥२७॥

अव॑भृ॒थेत्यव॑ऽभृथ। नि॒चु॒म्पु॒णेति॑ निऽचुम्पुण। नि॒चे॒रुरिति॑ निऽचे॒रुः। अ॒सि॒। नि॒चु॒म्पु॒ण इति॑ निऽचुम्पु॒णः। अव॑। दे॒वैः। दे॒वकृ॑त॒मिति॑ दे॒वऽकृ॑तम्। एनः॑। अ॒या॒सि॒ष॒म्। अव॑। मर्त्यैः॑। मर्त्य॑कृत॒मिति॒ मर्त्य॑कृतम्। पु॒रु॒राव्ण॒ इति॑ पु॒रु॒ऽराव्णः॑। दे॒व॒। रि॒षः। पा॒हि॒। दे॒वाना॑म्। स॒मिदिति॑ स॒म्ऽइत्। अ॒सि॒॥२७॥

पदार्थः-(**अवभृथ**) यो निषेकेण गर्भं बिभर्त्ति तत्सम्बुद्धौ (**निचुम्पुण**) नितरां मन्दगामिन्! (**निचेरुः**) यो धर्म्मेण द्रव्याणि नित्यं चिनोति (**निचुम्पुणः**) नित्यं कमनीयः (**अव**) अर्वागर्थे (**देवैः**) विद्वद्भिः (**देवकृतम्**) कामिभिरनुष्ठितम् (**एनः**) दुष्टाचरणम् (**अयासिषम्**) प्राप्तवती (**अव**) निषेधे (**मर्त्यैः**) मृत्युधर्म्मैः (**मर्त्यकृतम्**) साधारणमनुष्याचरितम् (**पुरुराव्णः**) पुरवो बहवो राव्णोऽपराधा दानशीला यस्मिन् तस्मात् (**देव**) विजिगाषो! (**रिषः**) धर्म्मस्य हिंसनात् (**पाहि**) रक्ष (**देवानाम्**) विदुषां मध्ये (**समित्**) सम्यग्दीप्तः (**असि**)। अयं मन्त्रः (शत० ४।४।१।२२-२३॥ तथा ४।५।१।१-१६॥ तथा ४।५।२।१-३) व्याख्यातः॥२७॥

अन्वयः-हे अवभृथ निचुम्पुण पते! त्वं निचुम्पुणो निचेरुरसि देवानां समिदसि। हे देव! देवैर्मर्त्यैः सह वर्त्तमानस्त्वं यद्देवकृतमेनोऽपराधमहमयासिषं तस्मात् पुरुराव्णो रिषो मां पाहि दूरे रक्ष॥२७॥

भावार्थः-स्त्री स्वपतिं नित्यं प्रार्थयेद् यथाहं सेव्यं प्रसन्नचित्तं त्वामनुदिनमिच्छामि, तथा त्वमपि मामिच्छ, स्वबलेन रक्ष च। यतोऽहं कस्यचिद् दुष्टाचरणशीलाज्जनाद् दुश्चरितं कथंचिन्न प्राप्नुयाम्, भवांश्च नाप्नुयात्॥२७॥

पदार्थः-हे (**अवभृथ**) गर्भ के धारण करने के पश्चात् उसकी रक्षा करने (**निचुम्पुण**) और मन्द-मन्द चलने वाले पति! आप (**निचुम्पुणः**) नित्य मन हरने और (**निचेरुः**) धर्म्म के साथ नित्य द्रव्य का संचय करने वाले (**असि**) हैं तथा (**देवानाम्**) विद्वानों के बीच में (**समित्**) अच्छे प्रकार तेजस्वी (**असि**) हैं। हे (**देव**) सब से अपनी जय चाहने वाले! (**देवैः**) विद्वान् और (**मर्त्यैः**) साधारण मनुष्यों के साथ वर्त्तमान आप, जो मैं (**देवकृतम्**) कामी पुरुषों वा (**मृर्त्यकृतम्**) साधारण मनुष्यों के किये हुए (**एनः**) अपराध को (**अयासिषम्**) प्राप्त होना चाहूं, उस (**पुरुराव्णः**) बहुत से अपराध करने वालों के (**रिषः**) धर्म्म छुड़ाने वाले काम से मुझे (**पाहि**) दूर रख॥२७॥

भावार्थः-स्त्री अपने पति से नित्य प्रार्थना करे कि जैसे मैं सेवा के योग्य आनन्दित चित्त आप को प्रतिदिन चाहती हूं, वैसे आप भी मुझे चाहो और अपने पुरुषार्थ भर मेरी रक्षा करो, जिससे मैं दुष्टाचरण करने वाले मनुष्य के किये हुए अपराध की भागिनी किसी प्रकार न होऊं॥२७॥

एजत्वित्यस्यात्रिर्ऋषिः। दम्पती देवते। एवायमित्यस्यापि साम्न्यासुर्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः। यथायमित्यस्य प्राजापत्यानुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथ गार्हस्थ्यधर्म्मे गर्भव्यवस्थामाह॥

अब गृहस्थ धर्म्म में गर्भ की व्यवस्था अगले मन्त्र में कही है॥

एज॑तु दश॑मास्यो॒ गर्भो॑ ज॒रायु॑णा स॒ह। यथा॒यं वा॒युरेज॑ति॒ यथा॑ समु॒द्रऽएज॑ति।
ए॒वायं दश॑मास्यो॒ऽअस्र॒ज्ज॒रायु॑णा स॒ह॥ २८॥

एज॑तु। दश॑मास्य॒ इति॒ दश॑ऽमास्यः। गर्भः॑। ज॒रायु॑णा। स॒ह। यथा॑। अ॒यम्। वा॒युः। एज॑ति। यथा॑। स॒मु॒द्रः। एज॑ति। ए॒व। अ॒यम्। दश॑मास्य॒ इति॒ दश॑ऽमास्यः। अस्र॑त्। ज॒रायु॑णा। स॒ह॥ २८॥

पदार्थः-(**एजतु**) चलतु (**दशमास्यः**) दशसु मासेषु भवः (**गर्भः**) ग्रियते सिच्यते गृह्यते वा स गर्भः, **गर्भो गृभेर्गृणात्यर्थे, गिरत्यनर्थानिति वा। यदा हि स्त्रीगुणान् गृह्णाति गुणाश्चास्या गृह्यन्ते [अथ गर्भो भवति]।** (निरु०१०।२३) (**जरायुणा**) आवरणेन (**सह**) (**यथा**) (**अयम्**) (**वायुः**) (**एजति**) कम्पते (**यथा**) (**समुद्रः**) उदधिः (**एजति**) वर्द्धते (**एव**) अवधारणार्थे (**अयम्**) वर्त्तमानः (**दशमास्यः**) (**अस्रत्**) स्रंसतोऽधः स्रवतु, लोडर्थे लङ् (**जरायुणा**) (**सह**)। अयं मन्त्रः (शत० ४।५।२।४-९) व्याख्यातः॥२८॥

अन्वयः-हे दम्पती! यथायं वायुरेजति, यथा समुद्र एजति, तथा जरायुणा सह दशामास्यो गर्भ एजतु, क्रमेण वर्द्धमानोऽयं जरायुणा सह दशमास्य एवास्रत् स्रंसताम्॥२८॥

भावार्थः-ब्रह्मचर्य्येण शरीरपुष्टिमनःसन्तुष्टिविद्यावृद्धिसम्पन्नौ कृतविवाहौ दम्पती यत्नेन गर्भरक्षणं कुर्य्याताम्, यतः स दशमास्यो दशमासात् पूर्वं न स्खलेत्। यो हि दशमासादूर्ध्वं जायते, स प्रायशो बलबुद्धियुक्तो भवति, तस्मात् पूर्वमुत्पद्यते नायं तादृग्भवति॥२८॥

पदार्थः-हे स्त्री-पुरुष! जैसे (**वायुः**) पवन (**एजति**) कम्पता है, वा जैसे (**समुद्रः**) समुद्र (**एजति**) अपनी लहरी से उछलता है, वैसे तुम्हारा (**अयम्**) यह (**दशमास्यः**) पूर्ण दश महीने का गर्भ (**एजतु**) क्रम-क्रम से बढ़े और ऐसे बढ़ाता हुआ (**अयम्**) यह (**दशमास्यः**) दश महीने में परिपूर्ण होकर ही (**अस्रत्**) उत्पन्न होवे॥२८॥

भावार्थः-ब्रह्मचर्यधर्म्म से शरीर की पुष्टि, मन की सन्तुष्टि और विद्या की वृद्धि को प्राप्त होकर और विवाह किये हुए जो स्त्री-पुरुष हों, वे यत्न के साथ गर्भ को रक्खें कि जिससे वह दश महीने के पहिले गिर न जाये, क्योंकि जो गर्भ दश महीने से अधिक दिनों का होता है, वह प्रायः बल और बुद्धि वाला होता है और जो इससे पहिले होता है, वह वैसा नहीं होता है॥२८॥

यस्या इत्यस्यात्रिर्ऋषिः। दम्पती देवते। भुरिगार्च्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनरपि गार्हस्थ्यधर्म्मे गर्भव्यवस्थामाह॥

फिर भी गृहस्थ धर्म्म में गर्भ की व्यवस्था अगले मन्त्र में कही है॥

यस्यै॑ ते य॒ज्ञियो॒ गर्भो॒ यस्यै॒ योनि॑र्हि॒र॒ण्ययी॑।
अङ्गा॒न्यह्रु॑ता॒ यस्य॒ तं मा॒त्रा सम॑जीगम॒ꣳ स्वाहा॑॥ २९॥

यस्यै॑। ते॒। य॒ज्ञियः॑। गर्भः॑। यस्यै॑। योनिः॑। हि॒र॒ण्ययी॑। अङ्गा॑नि। अह्रु॑ता। यस्य॑। तम्। मा॒त्रा। सम्। अ॒जी॒ग॒म॒म्। स्वाहा॑॥ २९॥

पदार्थः-(**यस्यै**) सुलक्षणायाः स्त्रियाः, षष्ठ्यर्थे चतुर्थी (**ते**) तव (**यज्ञियः**) यो यज्ञमर्हति (**गर्भः**) (**यस्यै**) सुभागायाः (**योनिः**) जन्मस्थानम् (**हिरण्ययी**) रोगरहिता शुद्धा (**अङ्गानि**) अङ्कितानि व्यञ्जकानि वा। **अङ्गेति क्षिप्रनाम, अङ्गितमेवाञ्चितं भवति।** (निरु०५।१७) (**अह्रुता**) अकुटिलानि सरलानि शोभनानि, **शेश्छन्दसि बहुलम्।** (अष्टा०६।१।७०) इति लुक् (**यस्य**) (**तम्**) (**मात्रा**) गर्भमानकर्त्र्या त्वया सह समागम्य (**सम्**) (**अजीगमम्**) सम्यक् प्राप्नुयाम् (**स्वाहा**) धर्म्मयुक्त्या क्रियया। अयं मन्त्रः (शत० ४।५।२।१०-११) व्याख्यातः॥२९॥

अन्वयः-हे विवाहिते सुभगे! अहं पतिः यस्यै यस्यास्ते तव हिरण्ययी योनिरस्ति, यस्यै यस्यास्तव यज्ञियो गर्भोऽस्ति, तस्यां त्वयि यस्य गर्भस्याह्रुता कुटिलान्यङ्गानि स्युस्तम्मात्रा गर्भमानकर्त्र्या त्वया सह स्वाहा समजीगमं सम्यक् प्राप्नुयाम्॥२९॥

भावार्थः-पुरुषेण गृहाश्रमे जितेन्द्रियता वीर्य्यशुद्ध्युन्नतिब्रह्मचर्य्यता सम्पादनीया, स्त्रियाप्येवम्, अन्यच्च गर्भधारणं गर्भाशययोन्यारोग्यकरणं तद्रक्षणं च कार्य्यम्, परस्परमाह्लादेन सन्तानोत्पादने कृते प्रशस्तरूपगुणकर्मस्वभावान्यपत्यानि जायन्त इति वेद्यम्॥२९॥

पदार्थः-हे विवाहित सौभाग्यवती स्त्री! मैं तेरा स्वामी (**यस्यै**) जिस (**ते**) तेरा (**हिरण्ययी**) रोगरहित शुद्ध गर्भाशय है और (**यस्यै**) जिस तेरा (**यज्ञियः**) यज्ञ के योग्य (**गर्भः**) गर्भ है, (**यस्य**) जिस गर्भ के (**अह्रुता**) सुन्दर सीधे (**अङ्गानि**) अङ्ग हैं, (**तम्**) उस को (**मात्रा**) गर्भ की कामना करने वाली तेरे साथ समागम करके (**स्वाहा**) धर्म्मयुक्त क्रिया से (**सम्**) (**अजीगमम्**) अच्छे प्रकार प्राप्त होऊं॥२९॥

भावार्थः-पुरुष को चाहिये कि गृहाश्रम के बीच इन्द्रियों का जीतना, वीर्य्य की बढ़ती, शुद्धि से उस की उन्नति करें, स्त्री भी ऐसा ही करे, और पुरुष से गर्भ को प्राप्त होके उसकी स्थिति और योनि आदि की आरोग्यता तथा रक्षा करे और जो स्त्री-पुरुष परस्पर आनन्द से सन्तान को उत्पन्न करें तो प्रशंसनीय रूप, गुण, कर्म, स्वभाव और बल वाले सन्तान उत्पन्न हों, ऐसा सब लोग निश्चित जानें॥२९॥

पुरुदस्म इत्यस्यात्रिर्ऋषिः। दम्पती देवते। आर्षी जगती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनर्गर्भव्यवस्थामाह॥

फिर भी गर्भ की व्यवस्था अगले मन्त्र में कही हैं॥

पु॒रु॒द॒स्मो विषु॑रूप॒ऽइन्दु॑र॒न्तर्म॑हि॒मान॑मानञ्ज॒ धीर॑ः।

एक॑पदीं द्वि॒पदीं॑ त्रि॒पदीं॒ चतु॑ष्पदीम॒ष्टाप॑दीं॒ भुव॒नानु॑ प्रथन्ता॒ᳪ स्वाहा॑॥३०॥

पु॒रु॒द॒स्म इति॑ पुरु॒ऽद॒स्मः। विषु॑रूप॒ इति॒ विषु॑ऽरूपः। इन्दु॑ः। अ॒न्तः। म॒हि॒मान॑म्। आ॒न॒ञ्ज॒। धीर॑ः। एक॑पदी॒मित्येक॑ऽपदीम्। द्वि॒पदी॒मिति॑ द्वि॒ऽपदी॑म्। त्रि॒पदी॒मिति॒ त्रि॒ऽपदी॑म्। चतु॑ष्पदीम्। चतु॒ःपदी॒मिति॒ चतु॒ःऽपदीम्। अ॒ष्टाप॑दी॒मित्य॒ष्टाऽप॑दीम्। भुव॑ना। अनु॒। प्र॒थ॒न्ता॒म्। स्वाहा॑॥३०॥

पदार्थः-(**पुरुदस्मः**) पुरुर्बहुर्दस्म उपक्षयो दुःखानां यस्मात् सः (**विषुरूपः**) विषूणि व्याप्तानि रूपाणि येन सः (**इन्दुः**) परमैश्वर्य्यकारी (**अन्तः**) आभ्यन्तरे (**महिमानम्**) पूज्यं ब्रह्मचर्य्यजितेन्द्रियत्वादिशुभकर्म्मसंस्कारजन्यम् (**आनञ्ज**) अञ्जयेत कामयेत, अत्र लिङर्थे लिट् (**धीरः**) सर्वव्यवहारध्यानशीलः (**एकपदीम्**) एकमोमिति पदं प्राप्तव्यं यस्यां ताम् (**द्विपदीम्**) द्वे अभ्युदये निःश्रेयसे सुखे पदे यस्यां ताम् (**त्रिपदीम्**) त्रीणि वाङ्मनःशरीरस्थानि

सुखानि यस्यास्ताम् **(चतुष्पदीम्)** चत्वारि धर्म्मार्थकाममोक्षाः पदानि यस्यास्ताम् **(अष्टापदीम्)** अष्टौ ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राश्चत्वारो वर्णा ब्रह्मचर्य्यगृहस्थवानप्रस्थसंन्यासाश्चत्वार आश्रमाः पदानि प्राप्तव्यानि यस्यास्ताम् **(भुवना)** भवन्ति भूतानि येषु तानि गृहाणि। **शेश्छन्दसि बहुलम्।** (अष्टा०६।१।७०) इति लुक् **(अनु)** **(प्रथन्ताम्)** प्रख्यान्तु **(स्वाहा)** सत्यां सकलविद्यायुक्तां वाचम्। अयं मन्त्रः (शत० ४।५।२।१२-१६) व्याख्यातः॥३०॥

अन्वयः-पुरुदस्मो विषुरूप इन्दुर्धीरो गृहस्थो धर्मेण विवाहितायाः स्त्रियाः अन्तर्महिमानमानञ्ज। हे गृहस्थाः! यूयं सृष्ट्युन्नतिं विधाय यामेकपदीं द्विपदीं त्रिपदीं चतुष्पदीमष्टापदीं स्वाहा समस्तविद्यान्वितां वाचं विदित्वा भुवनानि प्रथन्तां तया सर्वान् मनुष्याननुप्रथन्ताम्॥३०॥

भावार्थः-दम्पतिभ्यां सर्वा गृहाश्रमविद्यामभिव्याप्य तदनुसारेण सन्तानानुत्पाद्य मनुष्यवृद्धिं विधाय ब्रह्मचर्य्येणाखिलविद्याः सर्वान् ग्राहयित्वा सुखानि प्राप्यानुमोदेताम्॥३०॥

पदार्थः-**(पुरुदस्मः)** जिसके गुणों से बहुत दुःखों का नाश होता है **(विषुरूपः)** जिसने जन्मक्रम से अनेक रूप-रूपान्तर विद्या-विषयों में प्रवेश किया है **(इन्दुः)** जो परमैश्वर्य्य को सिद्ध करने वाला **(धीरः)** समस्त व्यवहारो में ध्यान देने हारा पुरुष है, वह गृहस्थधर्म्म से विवाही हुई अपनी स्त्री के **(अन्तः)** भीतर **(महिमानम्)** प्रशंसनीय ब्रह्मचर्य्य और जितेन्द्रियता आदि शुभ कर्मों से संस्कार प्राप्त होने योग्य गर्भ को **(आनञ्ज)** कामना करे, गृहस्थ लोग ऐसे सृष्टि की उत्पत्ति का विधान करके जिस **(एकपदीम्)** जिस में एक यह 'ओम्' पद **(द्विपदीम्)** जिस में दो अर्थात् संसार सुख और मोक्षसुख **(त्रिपदीम्)** जिससे वाणी, मन और शरीर तीनों के आनन्द **(चतुष्पदीम्)** जिससे चारों धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्ष **(अष्टापदीम्)** और जिससे आठों अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चारों वर्ण तथा ब्रह्मचर्य्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास ये चारों आश्रम प्राप्त होते हैं, उस **(स्वाहा)** समस्त विद्यायुक्त वाणी को जान कर सब गृहस्थ जन **(भुवना** जिनमें प्राणीमात्र निवास किया करते हैं, उन घरों की **(प्रथन्ताम्)** प्रशंसा करें और उससे सब मनुष्यों को **(अनु)** अनुकूलता से बढ़ावें॥३०॥

भावार्थः-विवाह किये हुए स्त्री-पुरुषों को चाहिये कि गृहाश्रम की विद्या को सब प्रकार जानकर उसके अनुसार सन्तानों को उत्पन्न कर मनुष्यों को बढ़ा और उन को ब्रह्मचर्य्य नियम से समस्त अङ्ग-उपाङ्ग सहित विद्या का ग्रहण करा के उत्तम-उत्तम सुखों को प्राप्त होके आनन्दित करें॥३०॥

मरुतो यस्येत्यस्य गोतम ऋषिः। दम्पती देवते। आर्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनरपि गार्हस्थ्यधर्मविषयमाह॥

अगले मन्त्र में भी गृहस्थधर्म्म का विषय कहा है॥

मरु॑तो॒ यस्य॒ हि क्षये॑ पा॒था दि॒वो वि॑महसः। स सु॑गो॒पात॑मो॒ जनः॑॥३१॥

मरु॑तः। यस्य॑। हि। क्षये॑। पा॒थ। दि॒वः। वि॒म॒ह॒स॒ इति॑ विऽमहसः। सः। सु॒गो॒पात॑म॒ इति॑ सुऽगो॒पात॑मः। जनः॑॥३१॥

पदार्थः- **(मरुतः)** हिरण्यानि रूपाण्यृत्विजो विद्वांसश्च। **मरुदिति हिरण्यनामसु पठितम्।** (निघं०१।२) **रूपनामसु पठितम्।** (निघं० ३।७) **ऋत्विङ्नामसु पठितम्।** (निघं०३।१) **पदनामसु च।** (निघं०५।५) **(यस्य)** गृहस्थस्य **(हि)** खलु **(क्षये)** गृहे **(पाथ)** प्राप्नुत। **द्व्यचोऽतस्तिङः।** (अष्टा०६।३।१३५) इति दीर्घः **(दिवः)** दिव्या

गुणा: स्वभावा: क्रिया वा **(विमहस:)** विविधतया पूजनीया: **(स:)** **(सुगोपातम:)** शोभनधर्म्मेण गां पृथिवीं वाचं वा पाति सोऽतिशयित: **(जन:)** प्रसिद्ध:। अयं मन्त्र: (शत० ४।५।२।१७) व्याख्यात:॥३१॥

अन्वय:-हे कृतविवाहा विमहस ऋत्विजो मरुतो गृहस्था! यूयं यस्य गृहस्थस्य क्षये गृहे हिरण्यानि सुरूपाणि दिव: पाथ स हि सुगोपातमो जन: सदा सेव्य:॥३१॥

भावार्थ:-नहि केनचित् मनुष्येण किल ब्रह्मचर्य्यसुशिक्षाविद्याशरीरात्मबलारोग्यपुरुषार्थैश्वर्य्यसज्जन-सङ्गालस्यत्यागयमनियमसेवनसुसहायैर्विना गृहाश्रमो धर्तुं शक्य:। नह्येतेन विना धर्मार्थकाममोक्षसिद्धिर्भवितुं योग्या, तस्मादयं सर्वै: प्रयत्नेन सेवितव्य:॥३१॥

पदार्थ:-हे **(विमहस:)** विविध प्रकार से प्रशंसा करने योग्य **(मरुत:)** विद्वान् गृहस्थ लोगो! तुम **(यस्य)** जिस गृहस्थ के **(क्षये)** घर में सुवर्ण उत्तम रूप **(दिव:)** दिव्य गुण स्वभाव वा प्रत्येक कामों के करने की रीति को **(पाथ)** प्राप्त हों, **(स:)** **(हि)** वह **(सुगोपातम:)** अच्छे प्रकार वाणी और पृथिवी की पालना करने वाला **(जन:)** मनुष्य सेवा के योग्य है॥३१॥

भावार्थ:-इस बात का निश्चय है कि ब्रह्मचर्य्य, उत्तम शिक्षा, विद्या, शरीर और आत्मा का बल, आरोग्य, पुरुषार्थ, ऐश्वर्य, सज्जनों का संग, आलस्य का त्याग, यम-नियम और उत्तम सहाय के विना किसी मनुष्य से गृहाश्रम धारा जा नहीं सकता। [इसके विना धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि नहीं हो सकती, इसलिये इस का पालन सब को बड़े यत्न से करना चाहिये]॥३१॥

मही द्यौरित्यस्य मेधातिथिर्ऋषि:। दम्पती देवते। आर्षी गायत्री छन्द:। षड्ज: स्वर:॥

पुनर्गार्हस्थ्यकर्म्मोपदेशमाह॥

फिर गृहस्थों के कर्मों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

म॒ही द्यौः पृ॑थि॒वी च॑ नऽइ॒मं य॒ज्ञं मि॑मिक्षताम्। पि॒पृ॒तां नो॒ भरी॑मभिः॥३२॥

म॒ही। द्यौ:। पृ॒थि॒वी। च॒। न॒:। इ॒मम्। य॒ज्ञम्। मि॒मि॒क्ष॒ता॒म्। पि॒पृ॒ताम्। न॒:। भरी॑मभि॒रिति॒ भरी॑मऽभि:॥३२॥

पदार्थ:-**(मही)** महती पूज्या **(द्यौ:)** दिव्या पुरुषाकृति: **(पृथिवी)** विस्तृतशीला क्षमाधारणादिशक्तिमती **(च)** **(न:)** अस्माकम् **(इमम्)** वर्त्तमानम् **(यज्ञम्)** विद्वत्पूज्यं गृहाश्रमम् **(मिमिक्षताम्)** सुखै: सेक्तुमिच्छताम् **(पिपृताम्)** पिपूर्त: **(न:)** अस्माकम् **(भरीमभि:)** धारणपोषणादिगुणयुक्तैर्व्यवहारैर्वा पदार्थै: सह। अयं मन्त्र: (शत० ४।५।२।१८) व्याख्यात:॥३२॥

अन्वय:-हे दम्पती! भवन्तौ मही द्यौ: महान् प्रकाशमान: पति: मही पृथिवी स्त्री च त्वं भरीमभिर्नोऽस्माकं चादन्येषामिमं यज्ञं मिमिक्षतां पिपृताञ्च॥३२॥

भावार्थ:-यथा सूर्य्यो जलाद्याकृष्य वर्षित्वा पाति, पृथिव्यादिपदार्थान् प्रकाशयति, तद्वदयम्पति: सद्गुणान् पदार्थान् सङ्गृह्य तद्दानेन रक्षेत्, विद्यादिगुणन् प्रकाशयेत्। यथेयं पृथिवी सर्वान् प्राणिनो धृत्वा पालयति, तथेयं स्त्री गर्भादीन् धृत्वा पालयेत् एवं सहितौ भूत्वा स्वार्थं संसाध्य मनोवाक्कर्म्मभिरन्यान् सर्वान् प्राणिन: सततं सुखयेताम्॥३२॥

पदार्थ:-हे स्त्री-पुरुष! तुम दोनों **(मही)** अति प्रशंसनीय **(द्यौ:)** दिव्य पुरुष की आकृतियुक्त पति और

अति प्रशंसनीय **(पृथिवी)** बढ़े हुए शील और क्षमा धारण करने आदि की सामर्थ्य वाली तू **(भरीमभिः)** धीरता और सब को सन्तुष्ट करने वाले गुणों से युक्त व्यवहारों वा पदार्थों से **(नः)** हमारा **(च)** औरों का भी **(इमम्)** इस **(यज्ञम्)** विद्वानों के प्रशंसा करने योग्य गृहाश्रम को **(मिमिक्षताम्)** सुखों से अभिषिक्त और **(पिपृताम्)** परिपूर्ण करना चाहो॥३२॥

भावार्थः-जैसे सूर्यलोक जलादि पदार्थों को खींच और वर्षा कर रक्षा और पृथिवी आदि पदार्थों का प्रकाश करता है, वैसे यह पति श्रेष्ठ गुण और पदार्थों का संग्रह करके देने से रक्षा और विद्या आदि गुणों को प्रकाशित करता है तथा जिस प्रकार यह पृथिवी सब प्राणियों को धारण कर उन की रक्षा करती है, वैसे स्त्री गर्भ आदि व्यवहारों को धारण कर सब की पालना करती है। इस प्रकार स्त्री और पुरुष इकट्ठे होकर स्वार्थ को सिद्ध कर मन, वचन और कर्म से सब प्राणियों को भी सुख देवें॥३२॥

अतिष्ठेत्यस्य गोतम ऋषिः। गृहपतयो देवताः। आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः। उपयामेत्यस्य आर्ष्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

अथ प्रकारान्तरेण गृहस्थधर्म्ममाह॥

अब प्रकारान्तर से गृहस्थ का धर्म्म अगले मन्त्र में कहा है॥

आतिष्ठ वृत्रहन् रथं युक्ता ते ब्रह्मणा हरी। अर्वाचीनꣳ सु ते मनो ग्रावा कृणोतु वग्नुना। उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा षोडशिनऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा षोडशिने॥ ३३॥

आ। तिष्ठ। वृत्रहन्निति वृत्रऽहन्। रथम्। युक्ता। ते। ब्रह्मणा। हरीऽइति हरी। अर्वाचीनम्। सु। ते। मनः। ग्रावा। कृणोतु। वग्नुना। उपयामगृहीत इत्युपयामऽगृहीतः। असि। इन्द्राय। त्वा। षोडशिने। एषः। ते। योनिः। इन्द्राय। त्वा। षोडशिने॥ ३३॥

पदार्थः-**(आ)** **(तिष्ठ)** **(वृत्रहन्)** वृत्रान् शत्रून् हन्ति तत्सम्बुद्धौ **(रथम्)** रमणीयं विद्याप्रकाशं यानं वा **(युक्ता)** युक्तौ **(ते)** तव **(ब्रह्मणा)** जलेन धनेन वा **(हरी)** हरणशीलौ धारणाकर्षणगुणाविवाश्वौ **(अर्वाचीनम्)** अधोगामि **(सु)** **(ते)** तव **(मनः)** अन्तःकरणम् **(ग्रावा)** मेघः, **ग्राव इति मेघनामसु पठितम्।** (निघं०१।१०) **(कृणोतु)** **(वग्नुना)** वाण्या, **वग्नुरिति वाङ्नामसु पठितम्।** (निघं०१।११) **(उपयामगृहीतः)** उपयामा सामग्री गृहीता येन सः **(असि)** **(इन्द्राय)** परमैश्वर्य्याय **(त्वा)** त्वाम् **(षोडशिने)** प्रशस्ताः षोडश कला विद्यन्ते यस्मिंस्तस्मै **(एषः)** गृहाश्रमः **(ते)** तव **(योनिः)** गृहम् **(इन्द्राय)** ऐश्वर्य्यप्रदाय गृहाय **(त्वा)** त्वाम् **(षोडशिने)**। अयं मन्त्रः (शत० ४।५।४।१-९) व्याख्यातः॥३३॥

अन्वयः-हे वृत्रहन्! ग्रावेव सुखवर्षिता गृहस्थ! ते तव यत्र रथे ब्रह्मणा सह हरी युक्ता युक्तौ स्वीक्रियेते तं त्वमातिष्ठास्मिन् गृहाश्रमे ते तव यन्मनोऽर्वाचीनमनुत्कृष्टगति जायते तद् वग्नुना वेदवाचा भवान् शान्तं कृणोतु, यतस्त्वमुपयामगृहीतोऽस्यतः षोडशिन इन्द्राय त्वा त्वामुपदिशामि। हे गृहाश्रममभीप्सो! एष ते योनिरस्ति। अस्मै षोडशिन इन्द्राय त्वा त्वां नियुनज्मीति॥३३॥

भावार्थः-गृहाश्रमाधीना एव सर्व आश्रमास्ते वेदोक्तसद्व्यवहारेण सेविताः सन्तोऽभ्युदयनिःश्रेयससुख-सम्पत्तये भवन्त्येवातः परमैश्वर्य्यप्राप्तये गृहाश्रम एव सेव्य इति॥३३॥

पदार्थः-हे **(वृत्रहन्)** शत्रुओं को मारने वाले गृहाश्रमी! तू **(ग्रावा)** मेघ के तुल्य सुख बरसाने वाला है, **(ते)** तेरे जिस रमणीय विद्या प्रकाशमय गृहाश्रम वा रथ में **(ब्रह्मणा)** जल वा धन से **(हरी)** धारण और आकर्षण अर्थात् खींचने के समान घोड़े **(युक्ता)** युक्त किये जाते हैं, उस गृहाश्रम करने की **(आतिष्ठ)** प्रतिज्ञा कर, इस गृहाश्रम में **(ते)** तेरा जो **(मनः)** मन **(अर्वाचीनम्)** मन्दपन को पहुंचता है, उसको **(वग्नुना)** वेदवाणी से शान्त भलीप्रकार कर, जिससे तू **(उपयामगृहीतः)** गृहाश्रम करने की सामग्री ग्रहण किये हुए **(असि)** है, इस कारण **(षोडशिने)** सोलह कलाओं से परिपूर्ण **(इन्द्राय)** परमैश्वर्य्य के लिये **(त्वा)** तुझ को उपदेश करता हूं, कि जो **(एषः)** यह **(ते)** तेरा **(योनिः)** घर है, इस **(षोडशिने)** सोलह कलाओं से परिपूर्ण **(इन्द्राय)** परमैश्वर्य्य देने वाले गृहाश्रम करने के लिये **(त्वा)** तुझ को आज्ञा देता हूँ॥३३॥

भावार्थः-गृहाश्रम के आधीन सब आश्रम हैं और वेदोक्त श्रेष्ठ व्यवहार से जिस गृहाश्रम की सेवा की जाय, उससे इस लोक और परलोक का सुख होने से परमैश्वर्य्य पाने के लिये गृहाश्रम ही सेवना उचित है॥३३॥

युक्ष्वा हीत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। गृहपतिर्देवता। विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः।
उपयामेत्यस्य पूर्ववच्छन्दः स्वरश्च॥

अथ राजविषये प्रतिपादितप्रकारेण गृहस्थधर्म्ममाह॥

अब राजविषय में उक्त प्रकार से गृहाश्रम का धर्म अगले मन्त्र में कहा है॥

युक्ष्वा हि केशिना हरी वृषणा कक्ष्यप्रा। अथा नऽइन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुतिं चर।
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा षोडशिनऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा षोडशिने॥३४॥

युक्ष्व। हि। केशिना। हरीऽइति हरी। वृषणा। कक्ष्यप्रेति कक्ष्यऽप्रा। अथ। नः। इन्द्र। सोमपा इति सोमऽपाः। गिराम्। उपश्रुतिमित्युपऽश्रुतिम्। चर। उपयामगृहीत इत्युपयामऽगृहीतः। असि। इन्द्राय। त्वा। षोडशिने। एषः। ते। योनिः। इन्द्राय। त्वा। षोडशिने॥३४॥

पदार्थः-**(युक्ष्व)** **(हि)** खलु **(केशिना)** प्रशस्ताः केशा विद्यन्ते ययोस्तौ, अत्र सर्वत्र **सुपां सुलुक्।** (अष्टा०७।१।३९) इति विभक्तेराकारः **(हरी)** यानस्य हरणशीलौ **(वृषणा)** वृषवद्बलिष्ठौ **(कक्ष्यप्रा)** कक्ष्यं प्रातः पिपूर्तः **(अथ)** आनन्तर्य्ये **(नः)** अस्माकम् **(इन्द्र)** शत्रुविदारक सेनाध्यक्ष! **(सोमपाः)** ऐश्वर्य्यरक्षक! **(गिराम्)** वाचम् **(उपश्रुतिम्)** उपगतां श्रूयमाणाम् **(चर)** विजानीहि। अत्र चर इत्यस्य गत्यर्थत्वात् प्राप्त्यर्थो गृह्यते **(उपयामगृहीतः)** इत्यादि पूर्ववत्। अयं मन्त्रः (शत० ४।५।३।१०-११) व्याख्यातः॥३४॥

अन्वयः-हे सोमपा इन्द्र! त्वं केशिना वृषणा कक्ष्यप्रा हरी रथे युक्ष्व। अथेत्यनन्तरं नोऽस्माकं गिरामुपश्रुतिं हि चर! उपयामेत्यस्यान्वयोऽपि पूर्ववत्॥३४॥

भावार्थः-अस्मिन्मन्त्रे रथमिति पदस्य सम्बन्धः। प्रजासभासेनाजनाः सभाध्यक्षं ब्रूयुः। शुचिना त्वया न्यायस्थितये चत्वारि सेनाङ्गानि सुशिक्षितानि हृष्टपुष्टानि रक्षणीयानि, पुनरस्माकं प्रार्थनानुकूल्येन राजैश्वर्य्यरक्षापि कार्य्येति॥३४॥

पदार्थः-हे **(सोमपाः)** ऐश्वर्य्य की रक्षा करने और **(इन्द्र)** शत्रुओं का विनाश करने वाले! तुम **(केशिना)** जिनके अच्छे-अच्छे बाल हैं, उन **(वृषणा)** बैल के समान बलवान् **(कक्ष्यप्रा)** अभीष्ट देश तक पहुंचाने वाले

(हरी) यान के चलानेहारे घोड़ों को **(रथे)** रथ **में** **(युक्ष्व)** जोड़ो **(अथ)** इसके अनन्तर **(न:)** हम लोगों की **(गिराम्)** विनयपत्रों को **(उपश्रुतिम्)** प्रार्थना को **(हि)** चित्त देकर **(चर)** जानो। आप **(उपयमागृहीत:)** गृहाश्रम की सामग्री को ग्रहण किये हुए **(असि)** हैं, इस कारण **(षोडशिने)** सोलह कलाओं से परिपूर्ण **(इन्द्राय)** परमैश्वर्य्य के लिये **(त्वा)** तुझ को उपदेश करता हूं कि जो **(एष:)** यह **(ते)** तेरा **(योनि:)** घर है, इस **(षोडशिने)** सोलह कलाओं से परिपूर्ण **(इन्द्राय)** परमैश्वर्य्य देने वाले गृहाश्रम के लिये **(त्वा)** तुझे आज्ञा देता हूं॥३४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में पिछले मन्त्र से 'रथम्' यह पद अर्थ से आता है। प्रजा, सेना और सभा के मनुष्य सभाध्यक्ष से ऐसे कहें कि आपको शत्रुओं के विनाश और राज्य भर में न्याय रखने के लिये घोड़े आदि सेना के अङ्गों की अच्छी शिक्षा देकर आनन्दित और बल वाले रखने चाहियें, फिर हम लोगों के विनयपत्रों को सुनकर राज्य और ऐश्वर्य्य की भी रक्षा करनी चाहिये॥३४॥

इन्द्रमिदित्यस्य गोतम ऋषि:। गृहपतिर्देवता। विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्द:। गान्धार: स्वर:। उपयामेत्यस्य सर्वं पूर्ववत्॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी उक्त विषय को अगले मन्त्र में कहाहै॥

इन्द्रमिद्धरी वहतोऽप्रतिधृष्टशवसम्। ऋषीणां च स्तुतीरुप यज्ञं च मानुषाणाम्। उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा षोडशिनऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा षोडशिने॥३५॥

इन्द्रम्। इत्। हरीऽइति हरी। वहत:। अप्रतिधृष्टशवसमित्यप्रतिऽधृष्टशवसम्। ऋषीणाम्। च। स्तुती:। उप। यज्ञम्। च। मानुषाणाम्। उपयामेत्यारभ्य पूर्ववत्॥३५॥

पदार्थ:-**(इन्द्रम्)** परमैश्वर्य्यवर्द्धकं सेनारक्षकम् **(इत्)** एव **(हरी)** शिक्षितावश्वौ **(वहत:)** **(अप्रतिधृष्टशवसम्)** धृष्टं प्रगल्भं शवो बलं येन तं प्रतीति **(ऋषीणाम्)** मन्त्रार्थद्रष्टॄणां विदुषाम् **(च)** वीराणाम् **(स्तुती:)** गुणस्तवनानि **(उप)** **(यज्ञम्)** सङ्गमनीयं व्यवहारम् **(च)** **(मानुषाणाम्)** **(उपयामेति)** पूर्ववत्। अयं मन्त्र: (शत० ४।४।५।१ व्याख्यात:॥३५॥

अन्वय:-हे सोमपास्त्वं षोडशिन इन्द्राय यौ हरी अप्रतिधृष्टशवसमिन्द्र वहतस्ताभ्यामृषीणां चाद् वीराणां स्तुतीर्मानुषाणां यज्ञं चात् पालनमुपचर, यस्य ते तवैष योनिरस्ति, यस्त्वमुपयामगृहीतोऽसि, तं त्वां षोडशिन इन्द्राय जना उपाश्रयन्तु वयमपि त्वामाश्रयेम॥३५॥

भावार्थ:-अत्र पूर्वस्मान्मन्त्रात् इन्द्र सोमपाश्चेरेति पदत्रयमनुवर्त्तते। राज्ञो राजसभासभ्यानां प्रजास्थानां च जनानामिदं योग्यमस्ति प्रशंसनीयविदुषां सकाशाद् विद्योपदेशं प्राप्यान्येषामुपकारादिकं च सततं कुर्य्यु:॥३५॥

पदार्थ:-हे **(सोमपा:)** ऐश्वर्य्य की रक्षा और **(इन्द्र)** शत्रुओं का विनाश करने वाले सभाध्यक्ष! आप जो **(हरी)** हरणकारक बल और आकर्षणरूप घोड़ों से **(अप्रतिधृष्टशवसम्)** जिसने अपना अच्छा बल बढ़ा रक्खा है, उस **(इन्द्रम्)** परमैश्वर्य्य बढ़ाने और सेना रखने वाले सेना समूह को **(वहत:)** बहाते हैं, उनसे युक्त होकर **(ऋषीणाम्)** वेदमन्त्र जानने वाले विद्वानों और **(च)** वीरों के **(स्तुती:)** गुणों के ज्ञान और **(मानुषाणाम्)** साधारण मनुष्यों के **(यज्ञम्)** सङ्गम करने योग्य व्यवहार और **(च)** उन की पालना करो और **(उप)** समीप प्राप्त हो, जिस

(ते) तेरा **(एषः)** यह **(योनिः)** निमित्त राजधर्म्म है, जो तू **(उपयामगृहीतः)** सब सामग्री से सयुंक्त है, उस **(त्वा)** तुझ को **(षोडशिने)** षोडश कलायुक्त **(इन्द्राय)** उत्तम ऐश्वर्य्य के लिये प्रजा, सेनाजन आश्रय लेवें और हम भी लेवें॥३५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में पिछले मन्त्र से (इन्द्र) (सोमपाः) (चर) इन तीन पदों की योजना होती है। राजा राज्यकर्म्म में विचार करने वाले जन प्रजाजनों को यह योग्य है कि प्रशंसा करने योग्य विद्वानों से विद्या और उपदेश पाकर औरों का उपकार सदा किया करें॥३५॥

यस्मान्नेत्यस्य विवस्वान् ऋषिः। परमेश्वरो देवता। भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ गृहाश्रममिच्छद्भ्यो जनेभ्यः परमेश्वर एवोपास्य इत्युपदिश्यते॥

अब गृहाश्रम की इच्छा करने वालों को ईश्वर ही की उपासना करनी चाहिये, यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

यस्मान्न जातः परोऽअन्योऽअस्ति यऽआविवेश भुवनानि विश्वा।
प्रजापतिः प्रजया सꣳरराणस्त्रीणि ज्योतीꣳषि सचते स षोडशी॥३६॥

यस्मात्। न। जातः। परः। अन्यः। अस्ति। यः। आविवेशेत्याऽविवेश। भुवनानि। विश्वा। प्रजापतिरिति प्रजाऽपतिः। प्रजयेति प्रऽजया। सꣳरराण इति सम्ऽरराणः। त्रीणि। ज्योतीꣳषि। सचते। सः। षोडशी॥३६॥

पदार्थः-**(यस्मात्)** परमात्मनः **(न)** निषेधे **(जातः)** प्रसिद्धः **(परः)** उत्तमः **(अन्यः)** भिन्नः **(अस्ति)** **(यः)** **(आविवेश)** **(भुवनानि)** स्थानानि **(विश्वा)** सर्वाणि, अत्र शेर्लुक् **(प्रजापतिः)** विश्वस्याध्यक्षः **(प्रजया)** सर्वेण संसारेण **(संरराणः)** सम्यग्दातृशीलः, अत्र व्यत्ययेनात्मनेपदम्। **बहुलं छन्दसि।** (अष्टा०२।४।७६) इति शपः स्थाने श्लुः **(त्रीणि)** **(ज्योतींषि)** सूर्य्यविद्युदग्न्याख्यानि **(सचते)** सर्वेषु समवैति **(सः)** **(षोडशी)** प्रशस्ताः षोडश कला विद्यन्ते यस्मिन् सः। इच्छा प्राणः श्रद्धा पृथिव्यापोऽग्निर्वायुराकाशमिन्द्रियाणि मनोऽन्नं वीर्य्यन्तपो मन्त्रा लोको नाम चैताः कलाः प्रश्नोपनिषदि प्रतिपादिताः। अयं मन्त्रः (शत० ४।४।५।६ व्याख्यातः॥३६॥

अन्वयः-यस्मात् परोऽन्यो न जातः किंच यो विश्वा भुवनान्याविवेश, स प्रजापतिः प्रजया संरराणः षोडशी त्रीणि ज्योतींषि सचते॥३६॥

भावार्थः-गृहाश्रममिच्छद्भिर्मनुष्यैर्यः सर्वत्राभिव्यापि सर्वेषां लोकानां स्रष्टा धर्ता दाता न्यायकारी सनातनः सच्चिदानन्दो नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावः सूक्ष्मात् सूक्ष्मो महतो महान् सर्वशक्तिमान् परमात्माऽस्ति, यस्मात् कश्चिदपि पदार्थ उत्तमः समो वा नास्ति, स एवोपास्यः॥३६॥

पदार्थः-**(यस्मात्)** जिस परमेश्वर से **(परः)** उत्तम **(अन्यः)** और दूसरा **(न)** नहीं **(जातः)** हुआ और **(यः)** जो परमात्मा **(विश्वा)** समस्त **(भुवनानि)** लोकों को **(आविवेश)** व्याप्त हो रहा है, **(सः)** वह **(प्रजया)** सब संसार से **(संरराणः)** उत्तम दाता होता हुआ **(षोडशी)** इच्छा, प्राण, श्रद्धा, पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, दशों इन्द्रिय, मन, अन्न, वीर्य्य, तप, मन्त्र, लोक और नाम इन सोलह कलाओं के स्वामी **(प्रजापतिः)** संसार मात्र के स्वामी परमेश्वर **(त्रीणि)** तीन **(ज्योतींषि)** ज्योति अर्थात् सूर्य्य, बिजुली और अग्नि को **(सचते)** सब पदार्थों में स्थापित करता है॥३६॥

भावार्थः-गृहाश्रम की इच्छा करने वाले पुरुषों को चाहिये कि जो सर्वत्र व्याप्त, सब लोकों का रचने और धारण करने वाला, दाता, न्यायकारी, सनातन अर्थात् सदा ऐसा ही बना रहता है, सत्, अविनाशी, चैतन्य और आनन्दमय, नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्तस्वभाव और सब पदार्थों से अलग रहने वाला, छोटे से छोटा, बड़े से बड़ा, सर्वशक्तिमान् परमात्मा जिस से कोई भी पदार्थ उत्तम वा जिसके समान नहीं है, उसकी उपासना करें॥३६॥

इन्द्रश्चेत्यस्य विवस्वानृषिः। सम्राड्माण्डलिकौ राजानौ देवते। साम्नी त्रिष्टुप् छन्दः। तयोरहमित्यस्य विराडार्च्ची त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ गृहस्थोपयोगिराजविषयमाह॥

अथ गृहाश्रम के उपयोगी राजविषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

इन्द्र॑श्च स॒म्राड् वरु॑णश्च॒ राजा॒ तौ ते॑ भ॒क्षं च॑क्रतु॒रग्र॑ऽए॒तम्।
तयो॑र॒हमनु॑ भ॒क्षं भ॑क्षयामि॒ वाग्दे॒वी जु॑षा॒णा सोम॑स्य तृप्यतु स॒ह प्रा॒णेन॒ स्वाहा॑॥३७॥

इन्द्रः॑। च॒। स॒म्राडिति॑ स॒म्ऽराट्। वरु॑णः। च॒। राजा॑। तौ। ते॒। भ॒क्षम्। च॒क्र॒तुः। अग्रे॑। ए॒तम्। तयोः॑। अ॒हम्। अनु॑। भ॒क्षम्। भ॒क्ष॒या॒मि॒। वाक्। दे॒वी। जु॒षा॒णा। सोम॑स्य। तृ॒प्य॒तु॒। स॒ह। प्रा॒णेन॑। स्वाहा॑॥३७॥

पदार्थः-**(इन्द्रः)** परमैश्वर्य्ययुक्तः **(च)** साङ्गपाङ्गोराज्याङ्गसहितः **(सम्राट्)** सम्यग् राजते स चक्रवर्ती **(वरुणः)** श्रेष्ठः **(च)** माण्डलिकः प्रतिमाण्डलिकश्च **(राजा)** न्यायादिगुणैः प्रकाशमानः **(तौ)** **(ते)** तव प्रजाजनस्य **(भक्षम्)** भजनं सेवनम् **(चक्रतुः)** कुर्य्याताम्, अत्र लिङर्थे लिट् **(अग्रे)** **(एतम्)** **(तयोः)** रक्षकयो राज्ञोः **(अहम्)** **(अनु)** पश्चात् **(भक्षम्)** सेवनम् **(भक्षयामि)** पालयामि **(वाक्)** वाणी **(देवी)** दिव्या **(जुषाणा)** प्रसन्ना सेवमाना सती **(सोमस्य)** विद्यैश्वर्य्यस्य **(तृप्यतु)** प्रीणातु **(सह)** **(प्राणेन)** बलेन **(स्वाहा)** सत्यया वाचा। अयं मन्त्रः (शत० ४।४। ५।८ व्याख्यातः॥३७॥

अन्वयः-हे प्रजाजन! य इन्द्रश्च सम्राड् वरुणश्च राजास्ति, तावग्रे ते तव भक्षं चक्रतुः। अहन्तयोरेतं भक्षमनुभक्षयामि, या सोमस्य प्राप्तये जुषाणा देवी वागस्ति, तया स्वाहा प्राणेन सह सर्वो जनस्तृप्यतु॥३७॥

भावार्थः-प्रजायां द्वौ ससभौ राजानौ भवितुं योग्यौ, एकश्चक्रवर्त्ती द्वितीयो माण्डलिकश्चैतौ श्रेष्ठन्यायविनयादिभ्यां प्रजाः संरक्ष्य पुनस्ताभ्यः करं सङ्गृह्णीयाताम्। सर्वस्मिन् व्यवहारे विद्यावृद्धिं सत्यवचनं चाचरेताम्। त एवं धर्म्मार्थकामैः प्रजाः सन्तोष्य स्वयं सन्तुष्टौ स्याताम्। आपत्काले राजा प्रजां प्रजा च राजानं संरक्ष्य परस्परमानन्देताम्॥३७॥

पदार्थः-हे प्रजाजन! जो **(इन्द्रः)** परमैश्वर्य्ययुक्त **(च)** राज्य के अङ्ग-उपाङ्गसहित **(सम्राट्)** सब जगह एकचक्र राज करने वाला राजा **(वरुणः)** अति उत्तम **(च)** और **(राजा)** न्यायादि गुणों से प्रकाशमान माण्डलिक सेनापति हैं, **(तौ)** वे दोनों **(अग्रे)** प्रथम **(ते)** तेरा **(भक्षम्)** सेवन अर्थात् नाना प्रकार से रक्षा करें और **(अहम्)** मैं **(तयोः)** उनका **(एतम्)** इस **(भक्षम्)** स्थित पदार्थ का **(अनु)** पीछे **(भक्षयामि)** सेवन करके कराऊं। ऐसे करते हुए हम तुम सब को **(सोमस्य)** विद्यारूपी ऐश्वर्य्य के बीच **(जुषाणा)** प्रीति कराने वाली **(देवी)** सब विद्याओं की प्रकाशक **(वाक्)** वेदवाणी है, उससे **(स्वाहा)** सब मनुष्य **(तृप्यतु)** सन्तुष्ट रहें॥३७॥

भावार्थः-प्रजा के बीच अपनी अपनी सभाओं सहित राजा होने के योग्य दो होते हैं। एक चक्रवर्ती अर्थात्

एक चक्र राज करने वाला और दूसरा माण्डलिक कि जो मण्डल-मण्डल का ईश्वर हो। ये दोनों प्रकार के राजाजन उत्तम-उत्तम न्याय, नम्रता, सुशीलता और वीरतादि गुणों से प्रजा की रक्षा अच्छे प्रकार करें। फिर उन प्रजाजनों से यथायोग्य राज्यकर लेवें और सब व्यवहारों में विद्या की वृद्धि। सत्यवचन का आचरण करें। इस प्रकार धर्म्म, अर्थ और कामनाओं से प्रजाजनों को सन्तोष देकर आप सन्तोष पावें। आपत्काल में राजा प्रजा की तथा प्रजा राजा की रक्षा कर परस्पर आनन्दित हों॥३७॥

अग्ने पवस्वेत्यस्य वैखानस ऋषिः। राजादयो गृहपतयो देवताः। भुरिक् त्रिपाद् गायत्रीः छन्दः। षड्जः स्वरः। उपयामेत्यस्य स्वराडार्च्यनुष्टुप् छन्दः। अग्ने वर्चस्विन्नित्यस्य भुरिगार्च्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनः प्रकारान्तरेण तदेवाह॥

फिर भी प्रकारान्तर से पूर्वोक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अग्ने पवस्व स्वपाऽअस्मे वर्चः सुवीर्यम्। दधद्रयिं मयि पोषम्।
उपयामगृहीतोऽस्यग्नये त्वा वर्चसऽएष ते योनिरग्नये त्वा वर्चसे।
अग्ने वर्चस्विन् वर्चस्वाँस्त्वं देवेष्वसि वर्चस्वानहं मनुष्येषु भूयासम्॥३८॥

अग्ने। पवस्व। स्वपा इति सुऽअपाः। अस्मेऽइत्यस्मे। वर्चः सुवीर्य्यमिति सुऽवीर्य्यम्। दधत्। रयिम्। मयि। पोषम्। उपयामगृहीत इत्युपयामऽगृहीतः। असि। अग्नये। त्वा। वर्चसे। एषः। ते। योनिः। अग्नये। त्वा। वर्चसे। अग्ने। वर्चस्विन्। वर्चस्वान्। त्वम्। देवेषु। असि। वर्चस्वान्। अहम्। मनुष्येषु। भूयासम्॥३८॥

पदार्थः-(**अग्ने**) विज्ञानादिगुणप्रकाशक सभापते राजन्! (**पवस्व**) शुन्ध (**स्वपाः**) शोभनान्यपांसि कर्म्माणि यस्य तद्वन्! (**अस्मे**) अस्मभ्यम् (**वर्चः**) वेदाध्ययनम् (**सुवीर्य्यम्**) सुष्ठु वीर्य्यं बलं यस्मात् (**दधत्**) धरन् सन् (**रयिम्**) धनम् (**मयि**) पालनीये जने (**पोषम्**) पुष्टिम् (**उपयामगृहीतः**) राज्यव्यवहाराय स्वीकृतः (**असि**) (**अग्नये**) विज्ञानमयाय न्यायव्यवहाराय (**त्वा**) त्वाम् (**वर्चसे**) तेजसे (**एषः**) (**ते**) तव (**योनिः**) राज्यभूमिर्निवसतिः (**अग्नये**) विज्ञानमयाय परमेश्वराय (**त्वा**) त्वाम् (**वर्चसे**) स्वप्रकाशाय वेदप्रवर्त्तकाय (**अग्ने**) तजोमय (**वर्चस्विन्** बहु वर्चोऽध्ययनं विद्यते यस्मिन् (**वर्चस्वान्**) सर्वविद्याध्ययनयुक्तः (**त्वम्**) (**देवेषु**) विद्वद्वर्य्येषु (**असि**) भवसि (**वर्चस्वान्**) प्रशस्तविद्याध्ययनः (**अहम्**) प्रजासभासेनाजनः (**मनुष्येषु**) मनस्विषु। **मनुष्याः कस्मान्मत्वा कर्माणि सीव्यन्ति, मनस्यमानेन सृष्टा, मनस्यतिः पुनर्मनस्वीभावे मनोरपत्यं मनुष्यो वा।** (निरु०३।७) (**भूयासम्**)। अयं मन्त्रः (शत० ४।५।४।९-१०) व्याख्यातः॥३८॥

अन्वयः-हे स्वपा वर्चस्विन्नग्ने त्वमस्मे सुवीर्य्यं वर्चो मयि रयिं पोषं च दधत् सन् पवस्व। त्वमुपयामगृहीतोऽसि त्वां वर्चसे अग्नये वयं स्वीकुर्म्मः। ते तव एष योनिस्त्वा वर्चसेऽग्नये सम्प्रेरयामः। हे सभापते! यथा त्वं देवेषु वर्चस्वानसि तथाहम्मनुष्येषु वर्चस्वान् भूयासम्॥३८॥

भावार्थः-राजादिसभ्यजनानामिदमुचितमस्ति मनुष्येषु सर्वाः सद्विद्याः सद्गुणांश्च वर्द्धयेयुर्यतस्सर्वे श्रेष्ठगुणकर्मप्रचारेषूत्तमा भूयासुरिति॥३८॥

पदार्थः-हे **(स्वपाः)** उत्तम-उत्तम काम तथा **(वर्चस्विन्)** सुन्दर प्रकार से वेदाध्ययन करने वाले **(अग्ने)** सभापति! आप **(अस्मे)** हम लोगों के लिये **(सुवीर्य्यम्)** उत्तम पराक्रम **(वर्चः)** वेद का पढ़ना तथा **(मयि)** निरन्तर रक्षा करने योग्य अस्मदादि जन में **(रयिम्)** धन और **(पोषम्)** पुष्टि को **(दधत्)** धारण करते हुए **(पवस्व)** पवित्र हूजिए। **(उपयामगृहीतः)** राज्य-व्यवहार के लिये हम ने स्वीकार किये हुए **(असि)** आप हैं, **(त्वा)** तुझको **(वर्चसे)** उत्तम तेज, बल, पराक्रम के लिये **(अग्नये)** वा विज्ञानयुक्त परमेश्वर की प्राप्ति के लिये हम स्वीकार करते हैं। **(ते)** तुम्हारी **(एषः)** यह **(योनिः)** राजभूमि निवासस्थान है, **(त्वा)** तुझ को **(वर्चसे)** हम लोग अपने विद्या प्रकाश सब प्रकार सुख के लिये बार-बार प्रत्येक कामों में प्रार्थना करते हैं। हे तेजधारी सभापते राजन्! जैसे **(त्वम्)** आप **(देवेषु)** उत्तम-उत्तम विद्वानों में **(वर्चस्वान्)** प्रशंसनीय विद्याध्ययन करने वाले **(असि)** हैं, वैसे **(अहम्)** मैं **(मनुष्येषु)** विचारशील पुरुषों में आप के सदृश **(भूयासम्)** होऊं॥३८॥

भावार्थः-राजा आदि सभ्य जनों को उचित है कि सब मनुष्यों में उत्तम-उत्तम विद्या और अच्छे-अच्छे गुणों को बढ़ाते रहें, जिससे समस्त लोग श्रेष्ठ गुण और कर्म्म प्रचार करने में उत्तम होवें॥३८॥

उत्तिष्ठन्नित्यस्य वैखानस ऋषिः। राजादयो गृहस्था देवताः। उत्तिष्ठन्नित्यस्योपेत्येतस्य चार्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः। इन्द्रेत्यस्यार्च्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

पुनस्तदेवाह॥

फिर भी उक्त विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उत्तिष्ठन्नोज॑सा स॒ह पी॒त्वी शिप्रे॑ऽअवेपयः। सोम॑मिन्द्र च॒मू सु॒तम्।
उ॒प॒या॒मगृ॑हीतो॒ऽसीन्द्रा॑य॒ त्वौज॑सऽए॒ष ते॒ योनि॒रिन्द्रा॑य॒ त्वौज॑से।
इन्द्रौ॑जि॒ष्ठौजि॑ष्ठ॒स्त्वं दे॒वेष्व॒स्योजि॑ष्ठो॒ऽहं म॑नु॒ष्ये॒षु भूयासम्॥३९॥

उ॒त्तिष्ठ॒न्नित्यु॒त्ऽतिष्ठ॑न्। ओज॑सा। स॒ह। पी॒त्वी। शिप्रे॒ऽइति॒ शिप्रे॑। अ॒वे॒प॒यः॒। सोम॑म्। इ॒न्द्र॒। च॒मूऽइति॑ च॒मू। सु॒तम्। उ॒प॒या॒मगृ॑हीत॒ इत्यु॑पया॒मऽगृ॑हीतः। अ॒सि॒। इन्द्रा॑य। त्वा॒। ओज॑से। ए॒षः। ते॒। योनिः॑। इन्द्रा॑य। त्वा॒। ओज॑से। इन्द्र॑। ओ॒जि॒ष्ठ॒। ओजि॑ष्ठः। त्वम्। दे॒वेषु॑। असि॑। ओजि॑ष्ठः। अ॒हम्। म॒नु॒ष्ये॒षु॒। भू॒या॒स॒म्॥३९॥

पदार्थः-**(उत्तिष्ठन्)** सद्गुणकर्मस्वभावेषूर्ध्वन्तिष्ठन् **(ओजसा)** प्रशस्तशरीरात्मसभासेनाबलेन **(सह)** **(पीत्वी)** पीत्वा। **स्नात्व्यादयश्च।** (अष्टा०७।१।४९) इतीकारादेशः **(शिप्रे)** हनुप्रभृत्यङ्गानि, शिप्रे इत्युपलक्षणमन्येषाञ्च **शिप्रे हनुनासिके।** (निरु०६।१७) **(अवेपयः)** वेपय, अत्र लोडर्थे लङ् **(सोमम्)** ऐश्वर्य्यं सोमवल्ल्यादिरसं वा **(इन्द्र)** ऐश्वर्य्याय द्रवन्, ऐश्वर्य्ये रममाण वा। **इन्दवे द्रवतीति वेन्दौ रमत इति वा।** (निरु०१०।८) **(चमू)** सेनया, अत्र **सुपां सुलुक०।** (अष्टा०७।१।३९) इति तृतीयैकवचनस्य लुक् **(सुतम्)** सम्पादितम् **(उपयामगृहीतः)** **(असि)** **(इन्द्राय)** ऐश्वर्य्याय **(त्वा)** **(ओजसे)** पराक्रमाय **(एषः)** **(ते)** **(योनिः)** ऐश्वर्य्यकारणम् **(इन्द्राय)** परमैश्वर्य्यप्रदाय राज्याय **(त्वा)** **(ओजसे)** अनन्तपराक्रमाय **(इन्द्र)** दुःखविदारक विद्वन्! **(ओजिष्ठ)** अतिशयेनौजस्विन् **(ओजिष्ठः)** अतिपराक्रमी **(त्वम्)** **(देवेषु)** विजिगीषमाणेषु राजसु **(असि)** **(ओजिष्ठः)** अतिशयेन पराक्रमी **(अहम्)** **(मनुष्येषु)** **(भूयासम्)**। अयं मन्त्रः (शत० ४।५।४।१०) व्याख्यातः॥३९॥

अन्वयः-हे इन्द्र सभापते! त्वं चमू सुतं सोमं पीत्वी ओजसा सहोत्तिष्ठन् सन् युद्धादिकर्म्मसु शिप्रे अवेपयः। अस्माभिस्त्वमुपयामगृहीतोऽसि, ते तवैष योनिरस्त्यतस्त्वां स्वस्थतयेन्द्रायौजसे परिचरामः। ओजस इन्द्राय परमेश्वराय त्वा प्रणोदयामः। हे ओजिष्ठेन्द्र! यथा त्वं देवेष्वोजिष्ठोऽसि, तथाऽहम्मनुष्येष्वोजिष्ठो भूयासम्॥३९॥

भावार्थः-राज्यपुरुषाणां योग्यमस्ति भोजनाच्छादनादिपरिकरैश्शरीरबलमुन्नयेयुर्व्यभिचारादिदोषेषु कथंचिन्न प्रवर्त्तेरन्, परमेश्वरोपासनं च यथोक्तव्यवहारेण कुर्य्युरिति॥३९॥

पदार्थः-हे **(इन्द्र)** ऐश्वर्य रखने वाले वा ऐश्वर्य में रमने वाले सभापते! आप **(चमू)** सेना के साथ **(सुतम्)** उत्पादन किये हुए **(सोमम्)** सोम को **(पीत्वी)** पीके **(ओजसा)** शरीर, आत्मा, राजसभा और सेना के बल के **(सह)** साथ **(उत्तिष्ठन्)** अच्छे गुण, कर्म और स्वभावों में उन्नति को प्राप्त होते हुए **(शिप्रे)** युद्धादि कर्मों से डाढ़ी और नासिका आदि अङ्गों को **(अवेपयः)** कम्पाओ अर्थात् यथायोग्य कामों में अङ्गों की चेष्टा करो। हम लोगों ने आप **(उपयामगृहीतः)** राज्य के नियम उपनियमों से ग्रहण किये **(असि)** हैं, **(ते)** आपका **(एषः)** यह राज्य कर्म **(योनिः)** ऐश्वर्य का कारण है, इससे **(त्वा)** आप को सावधानता से **(इन्द्राय)** परमैश्वर्य देने वाले जगदीश्वर की प्राप्ति के लिये सेवन करते हैं, **(ओजसे)** अत्यन्त पराक्रम और **(इन्द्राय)** शत्रुओं के विदारण के लिये **(त्वा)** आप को प्रेरणा करते हैं। हे **(ओजिष्ठ)** अत्यन्त तेजधारी जैसे **(त्वम्)** आप **(देवेषु)** शत्रुओं को जीतने की इच्छा करने वालों में **(ओजिष्ठः)** अत्यन्त पराक्रम वाले **(असि)** हैं, वैसे ही मैं भी **(मनुष्येषु)** साधारण मनुष्यों में **(भूयासम्)** होऊं॥३९॥

भावार्थः-राजपुरुषों को यह योग्य है कि भोजन, वस्त्र और खाने-पीने के पदार्थों से शरीर के बल को उन्नति देवें, किन्तु व्यभिचारादि दोषों में कभी न प्रवृत्त होवें और यथोक्त व्यवहारों में परमेश्वर की उपासना भी करें॥३९॥

अदृश्रमित्यस्य प्रस्कण्व ऋषिः। गृहपतयो राजादयो देवताः। अदृश्रमित्यस्य सूर्य्येत्यस्य चार्षी गायत्री छन्दः। उपयामगृहीतोऽसीत्यस्य स्वराडार्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनः प्रकारान्तरेण तदेवाह॥

फिर भी प्रकारान्तर से पूर्वोक्त विषय ही अगले मन्त्र में कहा है॥

अदृ॑श्रमस्य के॒तवो॒ वि र॒श्मयो॒ जनाँ॑२ऽअनु॑। भ्राज॑न्तो अ॒ग्नयो॑ यथा।
उ॒प॒या॒मगृ॑हीतोऽसि॒ सूर्या॑य त्वा भ्रा॒जायै॒ष ते॒ योनि॒ः सूर्या॑य त्वा भ्रा॒जाय॑।
सूर्य॑ भ्राजिष्ठ भ्राजि॑ष्ठस्त्वं दे॒वेष्व॑सि॒ भ्राजि॑ष्ठो॒ऽहं म॑नु॒ष्ये॒षु भूयासम्॥४०॥

अदृ॑श्रम्। अ॒स्य॒। के॒तव॑ः। वि। र॒श्मय॑ः। जना॑न्। अनु॑। भ्राज॑न्तः। अ॒ग्नय॑ः। य॒था॒। उ॒प॒या॒मगृ॑हीत॒ इत्यु॑पया॒मऽगृ॑हीतः। अ॒सि॒। सूर्य्या॑य। त्वा॒। भ्रा॒जाय॑। ए॒षः। ते॒। योनि॑ः। सूर्या॑य। त्वा॒। भ्रा॒जाय॑। सूर्य्य॑। भ्रा॒जि॒ष्ठ॒। भ्राजि॑ष्ठः। त्वम्। दे॒वेषु॑। अ॒सि॒। भ्राजि॑ष्ठः। अ॒हम्। म॒नु॒ष्ये॒षु॒। भू॒या॒सम्॥४०॥

पदार्थः-**(अदृश्रम्)** पश्येयम्, अत्र लिङर्थे लुङ्। उत्तमैकवचनप्रयोगो **बहुलं छन्दसि** [अष्टा०७.१.८] इति रुडागमः। **ऋदृशोऽङि गुणः।** (अष्टा०७।४।१६) इति प्राप्तौ गुणाभावश्च **(अस्य)** जगतः **(केतवः)** ज्ञापकाः **(वि)**

विशेषेण **(रश्मयः)** किरणाः **(जनान्)** मनुष्यादीन् प्राणिनः **(अनु)** **(भ्राजन्तः)** प्रकाशमानाः **(अग्नयः)** सूर्य्यविद्युत्प्रसिद्धास्त्रयः **(यथा)** **(उपयामगृहीतः)** **(असि)** **(सूर्य्याय)** सूर्य्य इव विद्यादिसद्गुणैः प्रकाशमानाय **(त्वा)** **(भ्राजाय)** जीवनादिप्रकाशाय **(एषः)** **(ते)** **(योनिः)** चराचरात्मने जगदीश्वराय **(त्वा)** **(भ्राजाय)** सर्वत्र प्रकाशमानाय **(सूर्य्य)** सूर्य्यस्येव न्यायविद्यासु प्रकाशमान **(भ्राजिष्ठ)** अतिशयेन सुशोभित **(भ्राजिष्ठः)** **(त्वम्)** **(देवेषु)** अखिलविद्यासु प्रकाशमानेषु विद्वत्सु **(असि)** **(भ्राजिष्ठः)** **(अहम्)** **(मनुष्येषु)** विद्यान्यायाचरणे प्रकाशमानेषु मानवेषु **(भूयासम्)**। अयं मन्त्रः (शत० ४।५।४।११-१२) व्याख्यातः॥४०॥

अन्वयः-यथाऽस्य जगतः पदार्थान् भ्राजन्तो रश्मयः केतवोऽग्नयस्सन्ति, तथैव जनानन्वहमदृश्रम्। त्वमुपयामगृहीतोऽसि यस्य ते तवैष योनिरस्ति, तं त्वां भ्राजाय सूर्याय प्रचोदयामि। तं त्वां भ्राजाय सूर्याय परमात्मने नियोजयामि। हे भ्राजिष्ठ! सूर्य्य यथां त्वं देवेषु भ्राजिष्ठोऽसि, तथाऽहम्मनुष्येषु भूयासम्॥४०॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। यथेह सूर्य्यकिरणाः सर्वत्र प्रसृताः प्रकाशन्ते, तथा राजप्रजासभाजनाश्शुभगुण-कर्मस्वभावेषु प्रकाशमानास्सन्तु। कुतो नहि मनुष्यशरीरं प्राप्य कस्यचिदुत्साहपुरुषार्थसत्पुरुषसङ्गयोगाभ्यासाचरितस्य जनस्य धर्म्मार्थकाममोक्षसिद्धिः शरीरात्मसमाजोन्नतिश्च दुर्लभास्ति, तस्मात् सर्वैरालस्यं त्यक्त्वा नित्यं प्रयतितव्यम्॥४०॥

पदार्थः-जैसे **(अस्य)** इस जगत् के पदार्थों में **(भ्राजन्तः)** प्रकाश को प्राप्त हुई **(रश्मयः)** कान्ति **(केतवः)** वा उन पदार्थों को जनाने वाले **(अग्नयः)** सूर्य्य, विद्युत् और प्रसिद्ध अग्नि हैं, वैसे ही **(जनान्)** मनुष्यों को **(अनु)** एक अनुकूलता के साथ **(अदृश्रम्)** मैं दिखलाऊं। हे सभापते! आप **(उपयामगृहीतः)** राज्य के नियम और उपनियमों से स्वीकार किये हुए **(असि)** हैं, जिन **(ते)** आपका **(एषः)** यह राज्यकर्म्म **(योनिः)** ऐश्वर्य्य का कारण है, उन **(त्वा)** आपको **(भ्राजाय)** जिलाने वाले **(सूर्य्याय)** प्राण के लिये चिताता हूं तथा उन्हीं आपको **(भ्राजाय)** सर्वत्र प्रकाशित **(सूर्य्याय)** चराचरात्मा जगदीश्वर के लिये भी चिताता हूं। हे **(भ्राजिष्ठ)** अति पराक्रम से प्रकाशमान **(सूर्य्य)** सूर्य्य के समान सत्य विद्या और गुणों से प्रकाशमान जैसे **(त्वम्)** आप **(देवेषु)** समस्त विद्याओं से युक्त विद्वानों में प्रकाशमान **(भ्राजिष्ठः)** अत्यन्त प्रकाशित हैं, वैसे मैं भी **(मनुष्येषु)** साधरण मनुष्यों में **(भूयासम्)** प्रकाशमान होऊं॥४०॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे इस संसार में सूर्य्य की किरण सब जगह फैल के प्रकाश करती हैं, वैसे राजा, प्रजा और सभासद् जन शुभ गुण, कर्म्म और स्वभावों में प्रकाशमान हों, क्योंकि ऐसा है कि मनुष्य शरीर पाकर किसी उत्साह पुरुषार्थ सत्पुरुषों का सङ्ग और योगाभ्यास का आचरण करते हुए मनुष्य को धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि तथा शरीर, आत्मा और समाज की उन्नति करना दुर्लभ नहीं है। इससे सब मनुष्यों को चाहिये कि आलस्य को छोड़ के नित्य प्रयत्न किया करें॥४०॥

उदु त्यमित्यस्य प्रस्कण्व ऋषिः। सूर्य्यो देवता। पूर्वस्य निचृदार्षी। उपयामेत्यस्य स्वराडार्षी गायत्री च छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अथेश्वरपक्षे गृहस्थकर्म्माह॥

अब ईश्वरपक्ष में गृहस्थ के कर्म का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्यम्।
उपयामगृहीतोऽसि सूर्याय त्वा भ्राजायैष ते योनिः सूर्याय त्वा भ्राजाय॥४१॥

उत्। ऊँऽइत्यूँ। त्यम्। जातवेदसमिति जातऽवेदसम्। देवम्। वहन्ति। केतवः। दृशे। विश्वाय। सूर्य्यम्। उपयामगृहीत इत्युपयामगृहीतः। असि। सूर्य्याय। त्वा। भ्राजाय। एषः। ते। योनिः। सूर्य्याय। त्वा। भ्राजाय॥४१॥

पदार्थः-(**उत्**) (उ) वितर्के (**त्यम्**) अमुम् (**जातवेदसम्**) यो जातान् वेत्ति विन्दते वा, जाता वेदसो वेदाः पदार्था वा यस्मात् तम् (**देवम्**) शुद्धस्वरूपम् (**वहन्ति**) प्रापयन्ति (**केतवः**) किरणा इव प्रकाशमाना विद्वांसः (**दृशे**) द्रष्टुम् (**विश्वाय**) सर्वजगदुपकाराय (**सूर्यम्**) चराचरात्मानमीश्वरम् (**उपयामगृहीतः**) उपगतैर्यामैर्यमैः स्वीकृतः (**असि**) (**सूर्य्याय**) प्राणाय सवित्रे वा (**त्वा**) त्वाम् (**भ्राजाय**) प्रकाशकाय (**एषः**) कार्यकारणसङ्गत्या यदनुमीयते (**ते**) तव (**योनिः**) असमं प्रमाणम् (**सूर्य्याय**) ज्ञानसूर्यस्य प्राप्तये (**त्वा**) त्वाम् (**भ्राजाय**)। अयं मन्त्रः (शत० ४।३।४।९) व्याख्यातः॥४१॥

अन्वयः-यं जातवेदसं देवं सूर्यं जगदीश्वरं विश्वाय दृशे केतवो विद्वांस उद्वहन्त्यु त्यं जगदीश्वरं वयं प्राप्नुयाम। हे जगदीश्वर! यस्त्वमस्माभिर्भ्राजाय सूर्यायोपयामगृहीतोऽसि, तं त्वा त्वां सर्वे गृह्णन्तु, यस्य ते तवैष योनिरास्ति, तं त्वां भ्राजाय सूर्याय कारणं विजानीमः॥४१॥

भावार्थः-यथा वेदविदो विद्वांसो वेदाऽनुकूलमार्गेण परमेश्वरं विज्ञाय श्रेष्ठविज्ञानेन तदुपासनं कुर्वन्ति, तथैव स ईश्वरः सर्वैरुपासनीयः। न तादृशेन ज्ञानेन विनेश्वरोपासना भवितुं शक्या, कुतो विज्ञानमेव परमेश्वरोपासनावधिरिति॥४१॥

पदार्थः-(**जातवेदसम्**) जो उत्पन्न हुए पदार्थों को जानता वा प्राप्त कराता वा वेद और संसार के पदार्थ जिससे उत्पन्न हुए हैं (**देवम्**) शुद्धस्वरूप जगदीश्वर जिसको (**विश्वाय**) संसार के उपकार के लिये (**दृशे**) ज्ञानचक्षु से देखने को (**केतवः**) किरणों के तुल्य सर्व अंशों में प्रकाशमान विद्वान् (**उत्**) (**वहन्ति**) अपने उत्कर्ष से वादानुवाद कर व्याख्यान करते हैं (**उ**) तर्क-वितर्क के साथ (**त्यम्**) उस जगदीश्वर को हम लोग प्राप्त हों। हे जगदीश्वर! जो आप हम लोगों ने (**भ्राजाय**) प्रकाशमान अर्थात् अत्यन्त उत्साह और पुरुषार्थयुक्त (**सूर्य्याय**) प्राण के लिये (**उपयामगृहीतः**) यम-नियमादि योगाभ्यास उपासना आदि साधनों से स्वीकार किये हुए (**असि**) हैं, उन (**त्वा**) आपको उक्त कामना के लिये समस्त जन स्वीकार करें और हे ईश्वर! जिन (**ते**) आपका (**एषः**) यह कार्य्य और कारण की व्याप्ति से एक अनुमान होना (**योनिः**) अनुपम प्रमाण है, उन (**त्वा**) आपको (**भ्राजाय**) प्रकाशमान (**सूर्य्याय**) ज्ञानरूपी सूर्य्य के पाने के लिये एक कारण जानते हैं॥४१॥

भावार्थः-जैसे वेद के वेत्ता विद्वान् लोग वेदानुकूल मार्ग से परमेश्वर को जानकर उत्तम ज्ञान से उसका सेवन करते हैं, वैसे ही वह जगदीश्वर सब को उपासनीय अर्थात् सेवन करने के योग्य है। वैसे ज्ञान के विना ईश्वर की उपासना कभी नहीं हो सकती, क्योंकि विज्ञान ही उसकी अवधि है॥४१॥

आजिघ्रेत्यस्य कुसुरुविन्दुर्ऋषिः। पत्नी देवता। स्वराड् ब्राह्म्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

अथ गृहस्थकर्म्मणि पत्न्युपदेशविषयमाह॥

अब गृहस्थ के कर्म्म में स्त्री के उपदेश विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आजिघ्र कुलशं मुह्या त्वा विशन्त्विन्दवः।

पुनरूर्जा निवर्त्तस्व सा नः सहस्रं धुक्ष्वोरुधारा पयस्वती पुनर्माविशताद् रयिः॥४२॥

आ। जिघ्र। कलशम्। महि। आ। त्वा। विशन्तु। इन्दवः। पुनः। ऊर्जा। नि। वर्त्तस्व। सा। नः। सहस्रम्। धुक्ष्व। उरुधारेत्युरुऽधारा। पयस्वती। पुनः। मा। आ। विशतात्। रयिः॥४२॥

पदार्थः-(**आ**) (**जिघ्र**) (**कलशम्**) नूतनं घटम् (**महि**) महागुणविशिष्टे पत्नि (**आ**) (**त्वा**) (**विशन्तु**) (**इन्दवः**) सोमाद्योषधिरसाः (**पुनः**) (**ऊर्जा**) पराक्रमेण (**नि**) (**वर्त्तस्व**) (**सा**) (**नः**) अस्मान् (**सहस्रम्**) असंख्यम् (**धुक्ष्व**) प्रपूर्द्धि (**उरुधारा**) उर्वी धारा विद्यासुशिक्षाधारणा यस्याः सा (**पयस्वती**) प्रशस्तानि पयांस्यन्नान्युदकानि वा यस्यां सा (**पुनः**) (**मा**) माम् (**आ**) विशताम् (**रयिः**) धनम्॥ अयं मन्त्रः (शत०४।५।८।६-९) व्याख्यातः॥४२॥

अन्वयः-हे महि पत्नि! या त्वमुरुधारा पयस्वत्यसि, सा गृहस्थशुभकर्मसु कलशमाजिघ्र, पुनस्त्वा त्वां सहस्रमिन्दव आविशन्तु, पुनरूर्जा नोऽस्मान् धुक्ष्व, पुनर्म्मा मां रयिराविशतात्, यतस्त्वं दुःखान्निवर्त्तस्व॥४२॥

भावार्थः-विदुषीणां स्त्रीणां योग्यताऽस्ति, यादृशान् सुपरीक्षितान् पदार्थान् स्वयं भुञ्जीरन्, तादृशानेव पत्ये दद्युः, यतो बुद्धिबलविद्यावृद्धिः स्यात्, धनादिपदार्थानामुन्नतिं च कुर्य्युः॥४२॥

पदार्थः-हे (**महि**) प्रशंसनीय गुणवाली स्त्री! जो तू (**उरुधारा**) विद्या और अच्छी अच्छी शिक्षाओं को अत्यन्त धारण करो (**पयस्वती**) प्रशंसित अन्न और जल रखने वाली है, वह गृहाश्रम के शुभ कामों में (**कलशम्**) नवीन घट का (**आजिघ्र**) आघ्राण कर अर्थात् उसको जल से पूर्ण कर उस की उत्तम सुगन्ध को प्राप्त हो (**पुनः**) फिर (**त्वा**) तुझे (**सहस्रम्**) असंख्यात (**इन्दवः**) सोम आदि ओषधियों के रस (**आविशन्तु**) प्राप्त हों, जिससे तू दुःख से (**निवर्तस्व**) दूर रहे अर्थात् कभी तुझ को दुःख न प्राप्त हो। तू (**ऊर्जा**) पराक्रम से (**नः**) हम को (**धुक्ष्व**) परिपूर्ण कर (**पुनः**) पीछे (**मा**) मुझे (**रयिः**) धन (**आविशतात्**) प्राप्त हो॥४२॥

भावार्थः-विद्वान् स्त्रियों को योग्य है कि अच्छी परीक्षा किये हुए पदार्थ को जैसे आप खायें, वैसे ही अपने पति को भी खिलावें कि जिससे बुद्धि बल और विद्या की वृद्धि हो और धनादि पदार्थों को भी बढ़ाती रहें॥४२॥

इडे रन्त इत्यस्य कुसुरुविन्दुर्ऋषिः। पत्नी देवता। आर्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनः प्रकारान्तरेण तदेवाह॥

फिर भी प्रकारान्तर से उसी विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योतेऽदिते सरस्वति महि विश्रुति।

एता तेऽअघ्न्ये नामानि देवेभ्यो मा सुकृतं ब्रूतात्॥४३॥

इडे। रन्ते। हव्ये। काम्ये। चन्द्रे। ज्योते। अदिते। सरस्वति। महि। विश्रुतीति विऽश्रुति। एता। ते। अघ्न्ये। नामानि। देवेभ्यः। मा। सुकृतमिति सुऽकृतम्। ब्रूतात्॥४३॥

पदार्थः-(**इडे**) स्तोतुमर्हे (**रन्ते**) रमणीये (**हव्ये**) स्वीकर्तुमर्हे (**काम्ये**) कमनीये (**चन्द्रे**) आह्लादकारके (**ज्योते**) सुशीलेन द्योतमाने (**अदिते**) आत्मस्वरूपेणाविनाशिनि (**सरस्वति**) प्रशंस्त सरो विज्ञानं विद्यते

यस्यास्तत्सम्बुद्धौ **(महि)** पूज्यतमे **(विश्रुति)** विविधाः श्रुतयः श्रवणानि तद्वति **(एता)** एतानि **(ते)** तव **(अघ्न्ये)** हन्तुं तिरस्कर्तुमयोग्ये **(नामानि)** गौणिक्य आख्याः **(देवेभ्यः)** दिव्यगुणेभ्यो दिव्यगुणयुक्तपतिभ्यः **(मा)** माम् **(सुकृतम्)** सुष्ठु कर्त्तव्यं कर्म **(ब्रूतात्)** ब्रूहि। अयं मन्त्रः (शत० ४।५।८।१०) व्याख्यातः॥४३॥

अन्वयः-हे अघ्न्येऽदिते ज्योते इडे हव्ये काम्ये रन्ते चन्द्रे विश्रुति महि सरस्वति पत्नि! त एता नामानि सन्ति, त्वं देवेभ्यो मा सुकृतं ब्रूतात्॥४३॥

भावार्थः-या विद्वद्भ्यः शिक्षां प्राप्तवती विदुषी स्त्री सा यथोक्तया शिक्षया शिक्षेत्। यतस्सर्वा अधर्म्ममार्गे न प्रवर्त्तेरन्, परस्परं विद्यावृद्धिं स्वतनयान् कन्याश्च शिक्षिताः कुर्य्युः॥४३॥

पदार्थः-हे **(अघ्न्ये)** ताड़ना न देने योग्य **(अदिते)** आत्मा से विनाश को प्राप्त न होने वाली **(ज्योते)** श्रेष्ठ शील से प्रकाशमान **(इडे)** प्रशंसनीय गुणयुक्त **(हव्ये)** स्वीकार करने योग्य **(काम्ये)** मनोहर स्वरूप **(रन्ते)** रमण करने योग्य **(चन्द्रे)** अत्यन्त आनन्द देने वाली **(विश्रुति)** अनेक अच्छी बातें और वेद जानने वाली **(महि)** अत्यन्त प्रशंसा करने योग्य **(सरस्वति)** प्रशंसित विज्ञान वाली पत्नी! उक्त गुण प्रकाश करने वाले **(ते)** तेरे **(एता)** ये **(नामानि)** नाम हैं, तू **(देवेभ्यः)** उत्तम गुणों के लिये **(मा)** मुझ को **(सुकृतम्)** उत्तम उपदेश **(ब्रूतात्)** किया कर॥४३॥

भावार्थः-जो विद्वानों से शिक्षा पाई हुई स्त्री हो, वह अपने-अपने पति और अन्य सब स्त्रियों को यथायोग्य उत्तम कर्म्म सिखलावें, जिससे किसी तरह वे अधर्म्म की ओर न डिगें। वे दोनों स्त्री-पुरुष विद्या की वृद्धि और बालकों तथा कन्याओं को शिक्षा किया करें॥४३॥

वि न इत्यस्य शास ऋषिः। इन्द्रो देवता। भुरिगनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः। उपयामेत्यस्य विराडार्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

सिंहावलोकन्यायेन गृहस्थधर्म्मे राजपक्षे किंचिदाह॥

अब सिंह जैसे पीछे लौट कर देखता है, इस प्रकार गृहस्थ कर्म्म के निमित्त राजपक्ष में कुछ उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

वि नऽइन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः। योऽअस्माँ२ऽअभिदासत्यधरं गमया तमः। उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा विमृधऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा विमृधे॥४४॥

वि। नः। इन्द्र। मृधः। जहि। नीचा। यच्छ। पृतन्यतः। यः। अस्मान्। अभिदासतीत्यभिऽदासति। अधरम्। गमय। तमः। उपयामगृहीत इत्युपयामऽगृहीतः। असि। विमृध इति विऽमृधे। एषः। ते। योनिः। इन्द्राय। त्वा। विमृध इति विऽमृधे॥४४॥

पदार्थः-**(वि)** विशेषेण **(नः)** अस्माकम् **(इन्द्र)** सेनाध्यक्ष! **(मृधः)** शत्रून् **(जहि)** **(नीचा)** दुष्टकारिणः **(यच्छ)** निगृह्णीहि **(पृतन्यतः)** आत्मनः सेनामिच्छतः **(यः)** **(अस्मान्)** **(अभिदासति)** सर्वत उपक्षयति। दसु उपक्षये, अत्र वर्णव्यत्ययेनाकारस्य स्थान आकारः। **(अधरम्)** अधोगतिम् **(गमय)** अत्र **संहितायाम्।** (अष्टा०६।३।११४) इति दीर्घः **(तमः)** अन्धकारम् **(उपयामगृहीतः)** सेनादिसामग्रीसङ्गृहीतः **(असि)** **(इन्द्राय)** ऐश्वर्य्यप्रदाय **(त्वा)** **(विमृधे)**

विशिष्टा मृधः शत्रवो यस्मिंस्तस्मै संग्रामाय **(एषः)** **(ते)** **(योनिः)** **(इन्द्राय)** परमानन्दप्राप्तये **(त्वा)** त्वाम् **(विमृधे)** विगतत्रवे। अयं मन्त्रः (शत० ४।५।६।४) व्याख्यातः॥४४॥

अन्वयः-हे इन्द्र सेनापते! त्वं नोऽस्माकं विमृधो जहि, पृतन्यतो नीचा नीचान् यच्छ। यः शत्रुरस्मानभिदासति तं तमस्सूर्य्य इवाधरं गमय। यस्य ते तवैष योनिरस्ति, स त्वमस्माभिरुपयामगृहीतोऽसि, अत एवेन्द्राय विमृधे त्वां स्वीकुर्म्मो विमृध इन्द्राय त्वा नियोजयामश्च॥४४॥

भावार्थः-यो दुष्टकर्म्मशीलपुरुषोऽनेकधा बलमुन्नीय सर्वान् पीडयितुमिच्छति, तं राजा सर्वथा दण्डेयत्। यदि स प्रबलतरोपाधिशीलतां न त्यजेत्, तर्हि राष्ट्रादेनं दूरं गमयेद् विनाशयेद्वा॥४४॥

पदार्थः-हे **(इन्द्र)** सेनापते! तू **(नः)** हमारे **(पृतन्यतः)** हम से युद्ध करने के लिये सेना की इच्छा करनेहारे शत्रुओं को **(जहि)** मार और उन **(नीचा)** नीचों को **(यच्छ)** वश में ला और जो शत्रुजन **(अस्मान्)** हम लोगों को **(अभिदासति)** सब प्रकार दुःख देवे उस **(विमृधः)** दुष्ट को **(तमः)** जैसे अन्धकार को सूर्य्य नष्ट करता है, वैसे **(अधरम्)** अधोगति को **(गमय)** प्राप्त करा, जिस **(ते)** तेरा **(एषः)** उक्त कर्म्म करना **(योनिः)** राज्य का कारण है, इससे तू हम लोगों से **(उपयामगृहीतः)** सेना आदि सामग्री से ग्रहण किया हुआ **(असि)** है, इसी से **(त्वा)** तुझ को **(विमृधे)** जिस में बड़े-बड़े युद्ध करने वाले शत्रुजन हैं, **(इन्द्राय)** ऐश्वर्य्य देने वाले उस युद्ध के लिये स्वीकार करते हैं **(त्वा)** तुझ को **(विमृधे)** जिस के शत्रु नष्ट हो गये हैं, उस **(इन्द्राय)** राज्य के लिये प्रेरणा देते हैं अर्थात् अधर्म्म से अपना वर्त्ताव न वर्त्ते॥४४॥

भावार्थः-जो खोटे काम करने वाला पुरुष अनेक प्रकार से अपने बल को उन्नति देकर सब को दुःख देना चाहे, उस को राजा सब प्रकार से दण्ड दे। यदि फिर भी वह अपनी अत्यन्त खोटाइयों को न छोड़े तो उसको मार डाले अथवा नगर से इसको दूर निकाल बन्द रक्खे॥४४॥

वाचस्पतिमित्यस्य शास ऋषिः। ईश्वरसभेशौ राजानौ देवते। भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। उपयामेत्यस्य स्वराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। आद्यस्य धैवतः। परस्य गान्धारः स्वरश्च॥

अथ गृहस्थकर्म्मणि राजविषयमीश्वरविषयं चाह॥

अब गृहस्थ कर्म में राजा और ईश्वर का विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतये मनोजुवं वाजेऽअद्या हुवेम।
स नो विश्वानि हवनानि जोषद् विश्वशम्भूरवसे साधुकर्म्मा।
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा विश्वकर्मणऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा विश्वकर्मणे॥४५॥

वाचः। पतिम्। विश्वकर्म्माणमिति विश्वऽकर्म्माणम्। ऊतये। मनोजुवमिति मनःऽजुवम्। वाजे। अद्य। हुवेम। सः। नः। विश्वानि। हवनानि। जोषत्। विश्वशम्भूरिति विश्वऽशम्भूः। अवसे। साधुकर्म्मेति साधुऽकर्म्मा। उपयामगृहीत इत्युपयामऽगृहीतः। असि। इन्द्राय। त्वा। विश्वकर्म्मण इति विश्वऽकर्म्मणे। एषः। ते। योनिः। इन्द्राय। त्वा। विश्वकर्म्मण इति विश्वऽकर्म्मणे॥४५॥

पदार्थः-**(वाचः)** देववाण्याः **(पतिम्)** स्वामिनं पालकं वा **(विश्वकर्म्माणम्)** विश्वानि सर्वाणि धर्म्माणि

कर्म्माणि यस्य तम् **(ऊतये)** रक्षणाय **(मनोजुवम्)** मनोगतिम् **(वाजे)** विज्ञाने युद्धे वा **(अद्य)** अस्मिन्नहनि। **निपातस्य च।** (अष्टा०६।३।१३६) इति दीर्घः **(हुवेम)** आह्वयेम **(सः)** **(नः)** अस्माकम् **(विश्वानि)** अखिलानि **(हवनानि)** प्रार्थनावाग्दत्तानि **(जोषत्)** जुषेत, अत्र व्यत्ययेन परस्मैपदम् **(विश्वशम्भूः)** विश्वं सर्व सुखं भावयति **(अवसे)** प्रीतये **(साधुकर्म्मा)** साधूनि श्रेष्ठानि कर्म्माणि यस्य **(उपयामगृहीतः)** **(असि)** **(इन्द्राय)** ऐश्वर्य्याय **(त्वा)** त्वाम् **(विश्वकर्म्मणे)** अखिलकर्म्मणोत्पादनाय **(एषः)** **(ते)** **(योनिः)** **(इन्द्राय)** शिल्पविद्यैश्वर्य्याय **(त्वा)** त्वाम् **(विश्वकर्म्मणे)** साधनाय। अयं मन्त्रः (शत० ४।६।४।५।) व्याख्यातः॥४५॥

अन्वयः-वयमद्य वाच ऊतये यं वाचस्पतिं विश्वकर्म्माणं मनोजुवं हुवेम। यः साधुकर्म्मा विश्वशम्भूः सभापतिर्नोऽवसे विश्वानि हवनानि जोषत्। यस्य ते तवैष योनिरस्ति, यस्त्वमुपयामगृहीतोऽस्यतस्त्वां विश्वकर्म्मण इन्द्राय हुवेम, विश्वकर्म्मण इन्द्राय त्वा सेवेमहि चेत्युपाश्लिष्टोऽन्वयार्थः॥४५॥

भावार्थः-अत्र श्लेषालङ्कारः। यः परमेश्वरो न्यायाधीशो वाऽस्मदनुष्ठितानि कर्म्माणि विदित्वा तदनुसारेणास्मान् नियच्छति। यः कस्याप्यकल्याणमधर्म्मकं कर्म च न करोति, यस्य सहायेन मनुष्यो योगमोक्षव्यवहारविद्याः प्राप्य धर्म्मशीलो जायेत, स एवास्माभिः परमार्थव्यवहारसिद्धये सेवनीयोऽस्ति॥४५॥

पदार्थः-हम **(अद्य)** अब **(वाजे)** विज्ञान वा युद्ध के निमित्त जिन **(वाचः)** वेदवाणी के **(पतिम्)** स्वामी वा रक्षा करने वाले **(विश्वकर्म्माणम्)** जिन के सब धर्म्मयुक्त कर्म्म हैं, जो **(मनोजुवम्)** मन चाहती गति का जानने वाला है, उस परमेश्वर वा सभापति को **(हुवेम)** चाहते हैं सो आप **(साधुकर्म्मा)** अच्छे-अच्छे कर्म्म करने वाले **(विश्वशम्भूः)** समस्त सुख को उत्पन्न कराने वाले जगदीश्वर वा सभापति **(नः)** हमारे **(अवसे)** प्रेम बढ़ाने के लिये **(विश्वानि)** **(हवनानि)** दिये हुए सब प्रार्थनावचनों को **(जोषत्)** प्रेम से मानें जिन **(ते)** आपका **(एषः)** यह उक्त कर्म्म **(योनिः)** एक प्रेमभाव का कारण है, वे आप **(उपयामगृहीतः)** यमनियमों से ग्रहण किये **(असि)** हैं, इससे **(विश्वकर्म्मणे)** समस्त कामों के उत्पन्न करने तथा **(इन्द्राय)** ऐश्वर्य्य के लिये **(त्वा)** आप की प्रार्थना तथा **(विश्वकर्म्मणे)** समस्त काम की सिद्धि के लिये **(इन्द्राय)** शिल्पक्रिया कुशलता से उत्तम ऐश्वर्य्य वाले **(त्वा)** आप का सेवन करते हैं॥४५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जो परमेश्वर वा न्यायधीश सभापति हमारे किये हुए कामों को जांच कर उन के अनुसार हम को यथायोग्य नियमों में रखता है, जो किसी को दुःख देने वाले छल-कपट काम को नहीं करता, जिस परमेश्वर वा सभापति के सहाय से मनुष्य मोक्ष और व्यवहारसिद्धि को पाकर धर्म्मशील होता है, वही ईश्वर परमार्थसिद्धि वा सभापति व्यवहारसिद्धि के निमित्त हम लोगों को सेवने योग्य है॥४५॥

विश्वकर्म्मन्नित्यस्य शास ऋषिः। विश्वकर्मेन्द्रो देवता। भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः।
उपयामेत्यस्य विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथ राजधर्ममुपदिशति॥

अब अगले मन्त्र में राजधर्म का उपदेश किया है॥

विश्वकर्मन् हविषा वर्धनेन त्रातारमिन्द्रमकृणोरवध्यम्।
तस्मै विशः समनमन्त पूर्वीरयमुग्रो विहव्यो यथासत्।

उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा विश्वकर्मणऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा विश्वकर्मणे॥ ४६॥

विश्वकर्मन्निति विश्वऽकर्मन्। हविषा। वर्द्धनेन। त्रातारम्। इन्द्रम्। अकृणोः। अवध्यम्। तस्मै। विशः। सम्। अनमन्त। पूर्वीः। अयम्। उग्रः। विहव्य इति विऽहव्यः। यथा। असत्। उपयामगृहीत इत्युपयामऽगृहीतः। असि। इन्द्राय। त्वा। विश्वकर्मण इति विश्वऽकर्मणे। एषः। ते। योनिः। इन्द्राय। त्वा। विश्वकर्मण इति विश्वऽकर्मणे॥ ४६॥

पदार्थः-(**विश्वकर्म्मन्**) अखिलसाधुकर्मयुक्त! (**हविषा**) आदातव्येन (**वर्द्धनेन**) वृद्धिनिमित्तेन न्यायेन सह (**त्रातारम्**) रक्षितारम् (**इन्द्रम्**) परमैश्वर्य्यप्रदम् (**अकृणोः**) कुर्य्याः (**अवध्यम्**) हन्तुमर्नहम् (**तस्मै**) (**विशः**) प्रजाः (**सम्**) (**अनमन्त**) नमन्ते, लडर्थे लुङ् (**पूर्वीः**) प्राक्तनैर्धार्मिकैः प्राप्तशिक्षाः, अत्र पूर्वसवर्णादेशः (**अयम्**) सभाधिकृतः (**उग्रः**) दुष्टदलने तेजस्वी (**विहव्यः**) विविधानि हव्यानि साधनानि यस्य (**यथा**) (**असत्**) भवेत् (**उपयामगृहीतः**) इत्यादि पूर्ववत्। अयं मन्त्रः (शत० ४। ६। ४। ६) व्याख्यातः॥ ४६॥

अन्वयः-हे विश्वकर्म्मस्त्वं वर्द्धनेन हविषा यमवध्यमिन्द्रं त्रातारमकृणोस्तस्मै पूर्वीर्विशः समनमन्त यथायमुग्रो विहव्योऽसत् तथा विधेहि। उपयामेत्यस्यान्वयः पूर्ववद् योजनीयः॥ ४६॥

भावार्थः-अस्मिन् संसारे केचिदपि सर्वजगद्रक्षितारमीश्वरं सभाध्यक्षं च नैव तिरस्कुर्य्युः, किन्तु तदनुमतौ वर्त्तेरन्। न प्रजाविरोधन कश्चिद् राजापि समृध्नोति, न चैतयोराश्रयेण विना प्रजा धर्म्मार्थकाममोक्षसाधकानि कर्म्माणि कर्तुं शक्नुवन्ति, तस्मादेतौ प्रजाराजानावीश्वरमाश्रित्य परस्परोपकाराय धर्म्मेण वर्त्तेयाताम्॥ ४६॥

पदार्थः-हे (**विश्वकर्म्मन्**) समस्त अच्छे काम करने वाले जन! आप (**वर्द्धनेन**) वृद्धि के निमित्त (**हविषा**) ग्रहण करने योग्य विज्ञान से (**अवध्यम्**) जिस बुरे व्यसन और अधर्म्म से रहित (**इन्द्रम्**) परम ऐश्वर्य्य देने तथा (**त्रातारम्**) समस्त प्रजाजनों की रक्षा करने वाले सभापति को (**अकृणोः**) कीजिये कि (**तस्मै**) उसे (**पूर्वीः**) प्राचीन धार्म्मिक जनों ने जिन प्रजाओं को शिक्षा दी हुई है, वे (**विशः**) प्रजाजन (**समनमन्त**) अच्छे प्रकार मानें, जैसे (**अयम्**) यह सभापति (**उग्रः**) दुष्टों को दण्ड देने को अच्छे प्रकार चमत्कारी और (**विहव्यः**) अनेक प्रकार के राज्यसाधन पदार्थ अर्थात् शस्त्र आदि रखने वाला (**असत्**) हो, वैसे प्रजा भी इस के साथ वर्ते, ऐसी युक्ति कीजिये। (**उपयामगृहीतः**) यहां से लेकर मन्त्र का पूर्वोक्त ही अर्थ जानना चाहिये॥ ४६॥

भावार्थः-इस संसार में मनुष्य सब जगत् की रक्षा करनेवाले ईश्वर तथा सभाध्यक्ष को न भूले, किन्तु उनकी अनुमति में सब कोई अपना-अपना वर्त्ताव रक्खें। प्रजा के विरोध से कोई राजा भी अच्छी ऋद्धि को नहीं पहुंचता और ईश्वर वा राजा के विना प्रजाजन धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के सिद्ध करनेवाले काम भी नहीं कर सकते, इससे प्रजाजन और राजा ईश्वर का आश्रय कर एक-दूसरे के उपकार में धर्म्म के साथ अपना वर्त्ताव रक्खें॥ ४६॥

उपयामगृहीतोऽसीत्यस्य शास ऋषिः। विश्वकर्म्मेन्द्रो देवता। विराड् ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनः प्रकारान्तरेण तदेवाह॥

फिर भी प्रकारान्तर से उसी विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

उपयामगृहीतोऽस्यग्नये त्वा गायत्रछन्दसं गृह्णामीन्द्राय त्वा त्रिष्टुप्छन्दसं गृह्णामि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जगच्छन्दसं गृह्णाम्यनुष्टुप्तेऽभिगरः॥४७॥

उपयामगृहीत इत्युपयामऽगृहीतः। असि। अग्नये। त्वा। गायत्रछन्दसमिति गायत्रऽछन्दसम्। गृह्णामि। इन्द्राय। त्वा। त्रिष्टुप्छन्दसम्। त्रिस्तुप्छन्दसमिति त्रिस्तुप्ऽछन्दसम्। गृह्णामि। विश्वेभ्यः। त्वा। देवेभ्यः। जगच्छन्दसमिति जगत्ऽछन्दसम्। गृह्णामि। अनुष्टुप्। अनुस्तुबित्यनुऽस्तुप्। ते। अभिगर। इत्यभिऽगरः॥४७॥

पदार्थः-(**उपयामगृहीतः**) साङ्गोपाङ्गसाधनैः स्वीकृतः (**अग्नये**) अग्न्यादिपदार्थविज्ञानाय (**त्वा**) त्वाम् (**गायत्रछन्दसम्**) गायत्रीछन्दोऽर्थविज्ञापकम् (**गृह्णामि**) वृणोमि (**इन्द्राय**) परमैश्वर्य्यप्राप्तये (**त्वा**) त्वाम् (**त्रिष्टुप्छन्दसम्**) त्रिष्टुप्छन्दोऽर्थबोधयितारम् (**गृह्णामि**) (**विश्वेभ्यः**) अखिलेभ्यः (**त्वा**) त्वाम् (**देवेभ्यः**) दिव्यगुणकर्म्मस्वभावेभ्यः (**जगच्छन्दसम्**) जगच्छन्दोऽवगमकम् (**गृह्णामि**) (**अनुष्टुप्**) अनुष्टोभते स्तभ्नात्यज्ञानं यः (**ते**) तव (**अभिगरः**) अभिगतस्त्वः। अयं मन्त्रः (शत० ११।५।९।७) व्याख्यातः॥४७॥

अन्वयः-हे विश्वकर्म्मन्नहं यस्य ते तवानुष्टुबभिगरोऽस्ति, तं गायत्रच्छन्दसं त्वाग्नये गृह्णामि, त्रिष्टुप्छन्दसं त्वेन्द्राय गृह्णामि, जगच्छन्दसं त्वा विश्वेभ्यो देवेभ्यो गृह्णामि। एतदर्थमस्माभिस्त्वमुपयामगृहीतोऽसि॥४७॥

भावार्थः-अत्र मन्त्रे पूर्वस्मान्मन्त्राद् विश्वकर्म्मन्निति पदमनुवर्त्तते। मनुष्यैरग्न्यादिविद्यासाधनक्रिया-विज्ञापकानां गायत्र्यादिछन्दोन्वितानामृग्वेदादीनां बोधायाध्यापकः संसेवनीयोऽस्ति, नह्येतेन विना कस्यचिद् विद्याप्राप्तिर्भवितुं शक्या॥४७॥

पदार्थः-हे (**विश्वकर्म्मन्**) अच्छे अच्छे कर्म्म करने वाले जन! मैं जो (**ते**) आप का (**अनुष्टुप्**) अज्ञान का छुड़ाने वाला (**अभिगरः**) सब प्रकार से विख्यात प्रशंसावाक्य है, उन अग्नि आदि पदार्थों के गुण कहने वाले गायत्री छन्दयुक्त वेदमन्त्रों के अर्थ को जानने वाले (**त्वा**) आप को (**अग्नये**) अग्नि आदि पदार्थों के गुण जानने के लिये (**गृह्णामि**) स्वीकार करता हूं, वा (**त्रिष्टुप्छन्दसम्**) परम ऐश्वर्य्य देने वाले त्रिष्टुप् छन्दयुक्त वेदमन्त्रों का अर्थ करानेहारे (**त्वा**) आपको (**इन्द्राय**) परम ऐश्वर्य्य की प्राप्ति के लिये (**गृह्णामि**) स्वीकार करता हूं, (**जगच्छन्दसम्**) समस्त जगत् के दिव्य-दिव्य गुण, कर्म्म और स्वभाव के बोधक वेदमन्त्रों का अर्थविज्ञान कराने वाले (**त्वा**) आप को (**विश्वेभ्यः**) समस्त (**देवेभ्यः**) अच्छे-अच्छे गुण, कर्म्म और स्वभावों के लिये (**गृह्णामि**) स्वीकार करता हूं, (**उपयामगृहीतः**) उक्त सब काम के लिये हम लोगों ने आप को सब प्रकार स्वीकार कर रक्खा (**असि**) है॥४७॥

भावार्थः-इस मन्त्र में पिछले मन्त्र से (**विश्वकर्म्मन्**) इस पद की अनुवृत्ति आती है। मनुष्यों को चाहिये कि अग्नि आदि पदार्थविद्या साधन कराने वाली क्रियाओं का उत्तम बोध कराने वाले गायत्री आदि छन्दयुक्त ऋग्वेदादि वेदों के बोध होने के लिये उत्तम पढ़ाने वाले का सेवन करें, क्योंकि उत्तम पढ़ाने वाले के विना किसी को विद्या नहीं प्राप्त हो सकती॥४७॥

व्रेशीनां त्वेत्यस्य देवा ऋषयः। प्रजापतयो देवताः। आसुरी त्रिष्टुप्, कुकूननानामित्यस्य याजुषी जगती, भन्दनानामित्यस्य मदिन्तमानामित्यस्य मधुन्तमानामित्यस्य च याजुषी जगती, शुक्रं त्वेत्यस्य साम्नी बृहती छन्दांसि। तेषु त्रिष्टुभो धैवतः, जगत्या निषादः, बृहत्या मध्यमश्च स्वराः॥

अथ गार्हस्थ्यकर्म्मणि पत्नी पतिमुपदिशति॥

अब गार्हस्थ्य कर्म्म में पत्नी अपने पति को उपदेश देती है, यह अगले मन्त्र में कहा है॥

व्रेशीनां त्वा पत्मन्नाधूनोमि। कुकूननानां त्वा पत्मन्नाधूनोमि।

भन्दनानां त्वा पत्मन्नाधूनोमि मदिन्तमानां त्वा पत्मन्नाधूनोमि मधुन्तमानां त्वा पत्मन्नाधूनोमि शुक्रं त्वा शुक्रऽआधूनोम्यह्नो रूपे सूर्यस्य रश्मिषु॥४८॥

व्रेशीनाम्। त्वा। पत्मन्। आ। धूनोमि। कुकूननानाम्। त्वा। पत्मन्। आ। धूनोमि। भन्दनानाम्। त्वा। पत्मन्। आ। धूनोमि। मदिन्तमानामिति मदिन्ऽतमानाम्। त्वा। पत्मन्। आ। धूनोमि। मधुन्तमानामिति मधुन्ऽतमानाम्। त्वा। पत्मन्। आ। धूनोमि। शुक्रम्। त्वा। शुक्रे। आ। धूनोमि। अह्नः। रूपे। सूर्य्यस्य। रश्मिषु॥४८॥

पदार्थः-(**व्रेशीनाम्**) दिव्यानामपामिव निर्मलविद्यासुशीलव्याप्तानाम्, **एता वै दैवीरापस्तद्याश्चैव दैवीरापो याश्चेमा मानुष्यस्ताभिरेवास्मिन्नेतदुभयीभी रसं दधाति।** (शत०११।५।९।८) (**त्वा**) त्वाम् (**पत्मन्**) धर्मात् पतनशील (**आ**) (**धूनोमि**) समन्तात् कम्पयामि, अत्रान्तर्गतो णिच् (**कुकूननानाम्**) भृशं शब्दविद्यया नम्राणाम्, कुङ् शब्दे इत्यस्माद् यङि गुणाभावेऽभ्यस्ततः कुकूपपदान्नम धातोरौणादिको नक् प्रत्ययश्च ततः षष्ठीबहुवचनम् (**त्वा**) (**पत्मन्**) (**आ**) (**धूनोमि**) (**भन्दनानाम्**) कल्याणचरणानाम् (**त्वा**) (**पत्मन्**) (**आ**) (**धूनोमि**) (**मदिन्तमानाम्**) अतिशयितानन्दितानां परस्त्रीणां समीपे (**त्वा**) (**पत्मन्**) चञ्चलचेतः (**आ**) (**धूनोमि**) (**मधुन्तमानाम्**) अतिशयेन माधुर्यगुणोपेतानाम्, **वा छन्दासि सर्वे विषयो भवन्ति।** (अष्टा०भा०वा०१।४।९) इति नुडागमः (**त्वा**) (**पत्मन्**) (**आ**) (**धूनोमि**) (**शुक्रम्**) शुद्धं वीर्यवन्तम् (**त्वा**) (**शुक्रे**) (**आ**) (**धूनोमि**) (**अह्नः**) दिनस्य (**रूपे**) (**सूर्यस्य**) (**रश्मिषु**)। अयं मन्त्रः (शत० ११।५।९।८-९) व्याख्यातः॥४५॥

अन्वयः-हे पत्मन्! व्रेशीनामपामिव वर्त्तमानानां पत्नीनां मध्ये व्यभिचारेण वर्तमानं त्वाऽहमाधूनोमि। हे पत्मन्! कुकूननानां समीपे मौर्ख्येण वर्तमानं त्वाहमाधूनोमि। हे पत्मन्! भन्दनानां सन्निधावधर्मचारित्वेन प्रवृत्तं त्वाहमाधूनोमि। हे पत्मन्! मदिन्तमानां सनीडे दुःखदायित्वेन चरन्तं त्वाहमाधूनोमि। हे पत्मन्! मधुन्तमानां समर्यादं कुचारिणं त्वाहमाधूनोमि। हे पत्मन्नह्नो रूपे सूर्यस्य रश्मिषु च गृहे सङ्गतिमभीप्सुं शुक्रं त्वा शुक्रे आधूनोमि॥४८॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा सूर्यस्य रश्मीन् प्राप्य जगत्पदार्थाः शुद्धा जायन्ते, तथैव दुराचारी सुशिक्षां दण्डं च प्राप्य पवित्रो भवति, गृहस्थैरत्यन्तदुष्टो व्यभिचारव्यवहारः सदैव निर्वतनीयः, कुतोऽस्य शरीरात्मबलनाशकत्वेन धर्मार्थकाममोक्षाणां प्रतिबन्धकत्वात्॥४८॥

पदार्थः-हे (**पत्मन्**) धर्म्म में न चित्त देने वाले पते! (**व्रेशीनाम्**) जलों के समान निर्मल विद्या और सुशीलता में व्याप्त जो पराई पत्नियां हैं, उनमें व्यभिचार से वर्त्तमान (**त्वा**) तुम को मैं वहां से (**आधूनोमि**) अच्छे प्रकार डिगाती हूं। हे (**पत्मन्**) अधर्म्म में चित्त देने वाले पते! (**कुकूननानाम्**) निरन्तर शब्दविद्या से नम्रीभाव को प्राप्त हो रही हुई औरों की पत्नियों के समीप मूर्खपन से जाने वाले (**त्वा**) तुझ को मैं (**आ**) (**धूनोमि**) वहां से अच्छे प्रकार छुड़ाती हूं। हे (**पत्मन्**) कुचाल में चित्त देने वाले पते! (**भन्दनानाम्**) कल्याण का आचरण करती हुई पर पत्नियों के समीप अधर्म से जाने वाले (**त्वा**) तुझ को वहां से मैं (**आ**) अच्छे प्रकार (**धूनोमि**) पृथक् करती हूं। हे (**पत्मन्**) चञ्चल चित्त वाले पते! (**मदिन्तमानाम्**) अत्यन्त आनन्दित परपत्नियों के समीप उनको दुःख देते हुए (**त्वा**) तुम को मैं वहां से (**आ**) वार-वार (**धूनोमि**) कंपाती हूं। हे (**पत्मन्**) कठोरचित्त पते! (**मधुन्तमानाम्**)

अतिशय करके मीठी-मीठी बोलने वाली परपत्नियों के निकट कुचाल से जाते हुए **(त्वा)** तुम को मैं **(आ)** अच्छे प्रकार **(धूनोमि)** हटाती हूं। हे **(पत्मन्)** अविद्या में रमण करने वाले! **(अह्नः)** दिन के **(रूपे)** रूप में अर्थात् **(सूर्यस्य)** सूर्य की फैली हुई किरणों के समय में घर में सङ्गति की चाह करते हुए **(शुक्रम्)** शुद्ध वीर्य वाले **(त्वा)** तुम को **(शुक्रे)** वीर्य के हेतु **(आ)** भले प्रकार **(धूनोमि)** छुड़ाती हूं॥४८॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य्य की किरणों को प्राप्त होकर संसार के पदार्थ शुद्ध होते हैं, वैसे ही दुराचारी पुरुष अच्छी शिक्षा और स्त्रियों के सत्य उपदेश से दण्ड को पाकर पवित्र होते हैं। गृहस्थों को चाहिये कि अत्यन्त दुःख देने और कुल को भ्रष्ट करने वाले व्यभिचार कर्म्म से सदा दूर रहें, क्योंकि इससे शरीर और आत्मा के बल का नाश होने से धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि नहीं होती॥४८॥

ककुभमित्यस्य देवा ऋषयः। विश्वेदेवा प्रजापतयो देवताः। विराट् प्राजापत्या जगती छन्दः। निषादः स्वरः। यत्ते सोमेत्यस्य निचृदार्ष्युष्णिक् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ गृहस्थान् राजपक्षे पुनरुपदिशति॥

अब फिर गृहस्थों को राजपक्ष में उपदेश अगले मन्त्र में किया है

ककुभꣳ रूपं वृषभस्य रोचते बृहच्छुक्रः शुक्रस्य पुरोगाः सोमः सोमस्य पुरोगाः।
यत्ते सोमादाभ्यं नाम जागृवि तस्मै त्वा गृह्णामि तस्मै ते सोम सोमाय स्वाहा॥४९॥

ककुभम्। रूपम्। वृषभस्य। रोचते। बृहत्। शुक्रः। शुक्रस्य। पुरोगा इति पुरःऽगाः। सोमः। सोमस्य। पुरोगा इति पुरःऽगाः। यत्। ते। सोम। अदाभ्यम्। नाम। जागृवि। तस्मै। त्वा। गृह्णामि। तस्मै। ते। सोम। सोमाय। स्वाहा॥४९॥

पदार्थः-**(ककुभम्)** दिग्वच्छुद्धम् **(रूपम्)** **(वृषभस्य)** सुखाभिवर्षकस्य सभापतेः **(रोचते)** प्रकाशते **(बृहत्)** **(शुक्रः)** शुद्धः **(शुक्रस्य)** शुद्धस्य धर्म्मस्य **(पुरोगाः)** पुरःसराः **(सोमः)** सोमगुणसम्पन्नः **(सोमस्य)** ऐश्वर्य्यगुणयुक्तस्य गृहाश्रमस्य **(पुरोगाः)** पुरोगामिनः **(यत्)** यस्य **(ते)** तव **(सोम)** प्राप्तैश्वर्य्य विद्वन्! **(अदाभ्यम्)** अहिंसनीयम् **(नाम)** ख्यातिः **(जागृवि)** जागरूकम् **(तस्मै)** **(त्वा)** त्वाम् **(गृह्णामि)** **(तस्मै)** **(ते)** तुभ्यम् **(सोम)** सत्कर्म्मसु प्रेरक! **(सोमाय)** शुभकर्म्मसु प्रवृत्ताय **(स्वाहा)** सत्या वाक्॥ अयं मन्त्रः (शत०११।५।९।१०-११) व्याख्यातः॥४९॥

अन्वयः-हे सोम! यद्यस्य वृषभस्य बृहत्ककुभं रूपं रोचते, स त्वं शुक्रस्य पुरोगाः शुक्रः पुरोगाः सोमो भव। यत्ते तवादाभ्यन्नाम जागृव्यस्ति तस्मै नाम्ने त्वा गृह्णामि। हे सोम! तस्मै सोमाय ते तुभ्यं स्वाहाऽस्तु॥४९॥

भावार्थः-सभाप्रजाजनैर्यस्य पुण्या प्रशंसा सौन्दर्य्यगुणयुक्तं रूपं विद्यान्यायो विनयः शौर्य्यं तेजः पक्षराहित्यं सुहृत्तोत्साह आरोग्यं बलं पराक्रमो धैर्य्यं जितेन्द्रियता वेदादिशास्त्रे श्रद्धा प्रजापालनप्रियत्वं च वर्त्तते, स एव सभाधिपती राजा मन्तव्यः॥४९॥

पदार्थः-हे **(सोम)** ऐश्वर्य्य को प्राप्त हुए विद्वन्! आप **(यत्)** जिस **(वृषभस्य)** सब सुखों के वर्षानेवाले आप का **(ककुभम्)** दिशाओं के समान शुद्ध **(बृहत्)** बड़ा **(रूपम्)** सुन्दर स्वरूप **(रोचते)** प्रकाशमान होता है, सो आप **(शुक्रस्य)** शुद्ध धर्म्म के **(पुरोगाः)** अग्रगामी वा **(सोमस्य)** अत्यन्त ऐश्वर्य्य के **(पुरोगाः)** अग्रेगन्ता **(शुक्रः)**

शुद्ध **(सोमः)** सोमगुणसम्पन्न ऐश्वर्य्ययुक्त हूजिये, जिससे आपका **(अदाभ्यम्)** प्रशंसा करने योग्य **(नाम)** नाम **(जागृवि)** जाग रहा है, **(तस्मै)** उसी के लिये **(त्वा)** आपको **(गृह्णामि)** ग्रहण करता हूं और हे **(सोम)** उत्तम कामों में प्रेरक! **(तस्मै)** उन **(सोमाय)** श्रेष्ठ कामों में प्रवृत्त हुए **(ते)** आप के लिये **(स्वाहा)** सत्य वाणी प्राप्त हो॥४९॥

भावार्थः-सभाजन और प्रजाजनों को चाहिये कि जिसकी पुण्य प्रशंसा, सुन्दररूप, विद्या, न्याय, विनय, शूरता, तेज, अपक्षपात, मित्रता, सब कामों में उत्साह, आरोग्य, बल, पराक्रम, धीरज, जितेन्द्रियता, वेदादि शास्त्रों में श्रद्धा और प्रजापालन में प्रीति हो, उसी को सभा का अधिपति राजा मानें॥४९॥

उशिक् त्वमित्यस्य देवा ऋषयः। प्रजापतयो देवताः। भुरिगार्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनः प्रकारान्तरेण राजविषयमाह॥

फिर प्रकारान्तर से राजविषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उशिक् त्वं देव सोमाग्नेः प्रियं पाथोऽपीहि वशी त्वं देव सोमेन्द्रस्य प्रियं पाथोऽपीह्यस्मत्सखा त्वं देव सोम विश्वेषां देवानां प्रियं पाथोऽपीहि॥५०॥

उशिक्। त्वम्। देव। सोम। अग्नेः। प्रियम्। पाथः। अपि। इहि। वशी। त्वम्। देव। सोम। इन्द्रस्य। प्रियम्। पाथः। अपि। इहि। अस्मत्सखेत्यस्मत्ऽसखा। त्वम्। देव। सोम। विश्वेषाम्। देवानाम्। प्रियम्। पाथः। अपि। इहि॥५०॥

पदार्थः-**(उशिक्)** कामयमानः **(त्वम्)** **(देव)** दिव्यगुणसम्पन्न **(सोम)** सकलैश्वर्य्याढ्य **(अग्नेः)** सद्विदुषः **(प्रियम्)** प्रीतिजनकम् **(पाथः)** रक्षणीयमाचरणम्, **पाथ इति पदनामसु पठितम्।** (निघं०४।३) **(अपि)** निश्चयार्थे **(इहि)** प्राप्नुहि जानीहि वा **(वशी)** जितेन्द्रियः **(त्वम्)** **(देव)** दातः **(सोम)** ऐश्वर्य्योन्नतौ प्रेरक **(इन्द्रस्य)** परमैश्वर्य्ययुक्तस्य धार्म्मिकस्य राज्ञः **(प्रियम्)** सुखैस्तर्प्पकम् **(पाथः)** ज्ञातव्यं कर्म्म **(अपि)** **(इहि)** **(अस्मत्सखा)** वयं सखायो यस्य सः **(त्वम्)** **(देव)** विद्यासु द्योतमान **(सोम)** विद्यैश्वर्य्यसहित **(विश्वेषाम्)** सर्वेषाम् **(देवानाम्)** धार्म्मिकाणामाप्तानां विदुषाम् **(प्रियम्)** कमनीयम् **(पाथः)** विज्ञानाचरणम् **(अपि)** **(इहि)**। अयं मन्त्रः (शत० ११। ५।९।१२) व्याख्यातः॥५०॥

अन्वयः-हे देव सोम राजन्! त्वमुशिग्भवन्नग्नेः प्रियम्पाथोऽपीहि। हे देव सोम! त्वं वशी भूत्वेन्द्रस्य प्रियम्पाथोऽपीहि। हे देव सोम! त्वमस्मत्सखा विश्वेषां देवानां प्रियं पाथोऽपीहि॥५०॥

भावार्थः-राज्ञो राजपुरुषाणां सभ्यानां चोचितमस्ति पुरुषार्थेन संयमेन मित्रतया धार्म्मिकाणां वेदपारगानां मार्गे गच्छेयुर्नहि सत्पुरुषसङ्गानुकरणाभ्यां विना कश्चिद्विद्यां धर्म्मं सार्वजनिकप्रियातामैश्वर्य्यं च प्राप्तुं शक्नोति॥५०॥

पदार्थः-हे **(देव)** दिव्यगुणसम्पन्न **(सोम)** समस्त ऐश्वर्य्ययुक्त राजन्! आप **(उशिक्)** अति मनोहर होके **(अग्नेः)** उत्तम विद्वान् के **(प्रियम्)** प्रेम उत्पन्न कराने वाले **(पाथः)** रक्षायोग्य व्यवहार को **(अपि)** निश्चय से **(इहि)** प्राप्त करो और जानो। हे **(देव)** दानशील **(सोम)** हर एक प्रकार से ऐश्वर्य्य की उन्नति कराने वाले! आप **(वशी)** जितेन्द्रिय होकर **(इन्द्रस्य)** परमैश्वर्य्य वाले धार्म्मिक जन के **(प्रियम्)** प्रेम उत्पन्न कराने वाले **(पाथः)** जानने योग्य कर्म को **(अपि)** निश्चय से **(इहि)** जानो। हे **(देव)** समस्त विद्याओं में प्रकाशमान **(सोम)** ऐश्वर्य्ययुक्त! आप **(अस्मत्सखा)** हम लोग जिनके मित्र हैं, ऐसे आप होकर **(विश्वेषाम्)** समस्त **(देवानाम्)** विद्वानों के प्रेम उत्पन्न

करानेहारे **(पाथः)** विज्ञान के आचरण को **(अपि)** निश्चय से **(इहि)** प्राप्त हो तथा जानो॥५०॥

भावार्थः-राजा, राजपुरुष, सभासद् तथा अन्य सब सज्जनों को उचित है कि पुरुषार्थ अच्छे-अच्छे नियम और मित्रभाव से धार्म्मिक वेद के पारगन्ता विद्वानों के मार्ग को चलें, क्योंकि उनके तुल्य आचरण किये विना कोई विद्या, धर्म्म, सब से एक प्रीतिभाव और ऐश्वर्य्य को नहीं पा सकता है॥५०॥

इह रतिरित्यस्य देवा ऋषयः। प्रजापतयो गृहस्था देवताः। आर्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

अथ गार्हस्थ्यविषये विशेषमाह॥

अब गार्हस्थ्य धर्म्म में विशेष उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

इह रतिरिह रमध्वमिह धृतिरिह स्वधृतिः स्वाहा।
उपसृजन् धरुणं मात्रे धरुणो मातरं धयन्। रायस्पोषमस्मासु दीधरत् स्वाहा॥५१॥

इह। रतिः। इह। रमध्वम्। इह। धृतिः। इह। स्वधृतिरिति स्वऽधृतिः। स्वाहा। उपसृजन्नित्युपऽसृजन्। धरुणम्। मात्रे। धरुणः। मातरम्। धयन्। रायः। पोषम्। अस्मासु। दीधरत्। स्वाहा॥५१॥

पदार्थः-**(इह)** अस्मिन् गृहाश्रमे **(रतिः)** रमणम् **(इह)** **(रमध्वम्)** **(इह)** **(धृतिः)** सर्वेषां व्यवहाराणां धारणा **(इह)** **(स्वधृतिः)** स्वेषां पदार्थानां धारणाम् **(स्वाहा)** सत्या वाक् क्रिया वा **(उपसृजन्)** समीपं प्रापयन्निव **(धरुणम्)** धर्त्तव्यं पुत्रम् **(मात्रे)** मान्यकर्त्र्यै **(धरुणः)** धर्त्ता **(मातरम्)** मान्यप्रदाम् **(धयन्)** तस्याः पयः पिबन् **(रायः)** धनस्य **(पोषम्)** पुष्टिम् **(अस्मासु)** **(दीधरत्)** धारय, अत्र लोडर्थे लुङडभावश्च **(स्वाहा)** सत्यया वाचा। अयं मन्त्रः (शत० ४।६।९।८-९) व्याख्यातः॥५१॥

अन्वयः-हे गृहस्थाः! युष्माकमिह रतिरिह धृतिरिह स्वधृतिः स्वाहा चास्तु, यूयमिह रमध्वम्। हे गृहिँस्त्वमपत्यस्य मात्रेयं धरुणं गर्भमुपसृजन् स्वगृहे रमस्व, स धरुणो मातरं धयन्निवास्मासु रायस्पोषं स्वाहा दीधरत्॥५१॥

भावार्थः-यावद् राजादयः सभ्याः प्रजाजनाश्च सत्ये धैर्य्ये, सत्येनोपार्ज्जितेषु पदार्थेषु, धर्म्मे व्यवहारे च न वर्त्तन्ते, तावत् प्रजासुखं राज्यसुखं च प्राप्तुं न शक्नुवन्ति। यावद् राजपुरुषाः प्रजापुरुषाश्च पितृपुत्रवत् परस्परं प्रीत्युपकारं न कुर्वन्ति, तावत् सुखं क्व॥५१॥

पदार्थः-हे गृहस्थो! तुम लोगों की **(इह)** इस गृहाश्रम में **(रतिः)** प्रीति **(इह)** इसमें **(धृतिः)** सब व्यवहारों की धारणा **(इह)** इसी में **(स्वधृतिः)** अपने पदार्थों की धारणा **(स्वाहा)** तथा तुम्हारी सत्य वाणी और सत्य क्रिया हो तुम **(इह)** इस गृहाश्रम में **(रमध्वम्)** रमण करो। हे गृहाश्रमस्थ पुरुष! तू सन्तानों की माता, जो कि तेरी विवाहित स्त्री है, उस **(मात्रे)** पुत्र का मान करने वाली के लिये **(धरुणम्)** सब प्रकार से धारण-पोषण कराने योग्य गर्भ को **(उपसृजन्)** उत्पन्न कर और वह **(धरुणः)** उक्त गुण वाला पुत्र **(मातरम्)** उस अपनी माता का **(धयन्)** दूध पीवे, वैसे **(अस्मासु)** हम लोगों के निमित्त **(रायः)** धन की **(पोषम्)** समृद्धि को **(स्वाहा)** सत्यभाव से **(दीधरत्)** उत्पन्न कीजिये॥५१॥

भावार्थः-जब तक राजा आदि सभ्यजन वा प्रजाजन सत्य धैर्य्य वा सत्य से जोड़े हुए पदार्थ वा सत्य व्यवहार में अपना वर्त्ताव न रक्खें, तब तक प्रजा और राज्य के सुख नहीं पा सकते और जब तक राजपुरुष तथा

प्रजापुरुष पिता और पुत्र के तुल्य परस्पर प्रीति और उपकार नहीं करते, तब तक निरन्तर सुख भी प्राप्त नहीं हो सकता॥५१॥

सत्रस्येत्यस्य देवा ऋषयः। प्रजापतिर्देवता। भुरिगार्षी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनरपि गृहस्थविषये विशेषमाह॥

फिर भी गृहस्थों के विषय में विशेष उपदेश अगले मन्त्र में किया हैं॥

स॒त्रस्य॒ऽऋद्धि॑र॒स्यग॑न्म॒ ज्योति॑र॒मृता॑ऽअभूम।

दिवं॑ पृथि॒व्याऽअध्या॑रुहा॒मावि॑दाम दे॒वान्त्स्व॒र्ज्योतिः॑॥५२॥

स॒त्रस्य॑। ऋद्धिः॑। अ॒सि॒। अग॑न्म। ज्योतिः॑। अ॒मृताः॑। अ॒भू॒म॒। दिव॑म्। पृ॒थि॒व्याः। अधि। आ। अ॒रु॒हा॒म॒। अवि॑दाम। दे॒वान्। स्वः॑। ज्योतिः॑॥५२॥

पदार्थः-(**सत्रस्य**) सङ्गतस्य राजव्यवहाररूपस्य यज्ञस्य (**ऋद्धिः**) सम्यग् वृद्धिः (**असि**) (**अगन्म**) प्राप्नुयाम (**ज्योतिः**) विज्ञानप्रकाशम् (**अमृताः**) प्राप्तामोक्षाः (**अभूम**) भवेम, अत्रोभयत्र लिङर्थे लुङ् (**दिवम्**) सूर्यादिम् (**पृथिव्याः**) भूम्यादेश्च जगतः (**अधि**) उपर्य्युत्कृष्टभावे (**आ**) समन्तात् (**अरुहाम**) प्रादुर्भवेम, अत्र विकरणव्यत्ययः (**अविदाम**) विन्देमहि (**देवान्**) विदुषो दिव्यान भोगान् वा (**स्वः**) सुखम् (**ज्योतिः**) विज्ञानविषयम्॥ अयं मन्त्रः (शत० ४।६।९।११-१२) व्याख्यातः॥५२॥

अन्वयः-हे विद्वँस्त्वं सत्रस्य ऋद्धिरसि, त्वत्सङ्गेन वयं ज्योतिरगन्म, अमृता अभूम, दिवः पृथिव्या अध्यारुहाम, देवाञ्ज्योतिः स्वश्चऽविदाम॥५२॥

भावार्थः-यावत् सर्वेषां रक्षको धार्मिको राजाऽऽप्तो विद्वाँश्च न भवेत्, तावत् कश्चिन्निर्विघ्नं विद्यामोक्षानुष्ठानं कृत्वा तत्सुखं प्राप्तुन्नार्हति, न च मोक्षसुखादधिकतरं किञ्चित् सुखमस्ति॥५२॥

पदार्थः-हे विद्वन्! आप (**सत्रस्य**) प्राप्त हुए राजप्रजाव्यवहाररूप यज्ञ के (**ऋद्धिः**) समृद्धिरूप (**असि**) हैं, आप के संग से हम लोग (**ज्योतिः**) विज्ञान के प्रकाश को (**अगन्म**) प्राप्त होवें और (**अमृताः**) मोक्ष पाने के योग्य (**अभूम**) हों, (**दिवम्**) सूर्यादि (**पृथिव्याः**) पृथिवी आदि लोकों के (**अधि**) बीच (**अरुहाम**) पूर्ण वृद्धि को पहुँचें (**देवान्**) विद्वानों दिव्य-दिव्य भोगों (**ज्योतिः**) विज्ञानविषय और (**स्वः**) अत्यन्त सुख को (**अविदाम**) प्राप्त होवें॥५२॥

भावार्थः-जब तक सब की रक्षा करने वाला धार्म्मिक राजा वा आप्त विद्वान् न हो, तब तक विद्या और मोक्ष के साधनों को निर्विघ्नता से पाने के योग्य कोई भी मनुष्य नहीं हो सकता और न मोक्षसुख से अधिक कोई सुख है॥५२॥

युवमित्यस्य देवा ऋषयः। गृहपतयो देवताः। पूर्वस्यार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः। दूरे चेत्यस्यासुर्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः। अस्माकमित्यस्य प्राजापत्या बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः। भूर्भुवरित्यस्य विराट् प्राजापत्या पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

युवं तमिन्द्रापर्वता पुरोयुधा यो नः पृतन्यादप तन्तमिद्धतं वज्रेण तन्तमिद्धतम्। दूरे चत्ताय छन्त्सद् गहनं यदिनक्षत्। अस्माकꣳ शत्रून् परि शूर विश्वतो दुर्मा दर्षीष्ट विश्वतः। भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याम सुवीरा वीरैः सुपोषाः पोषैः॥५३॥

युवम्। तम्। इन्द्रापर्वता। पुरोयुधेति पुरःयुधा। यः। नः। पृतन्यात् अप। तन्तमिति तम्ऽतम्। इत्। हतम्। वज्रेण। तन्तमिति तम्ऽतम्। इत्। हतम्। दूरे। चत्ताय। छन्त्सत्। गहनम्। यत्। इनक्षत्। अस्माकम्। शत्रून्। परि। शूर। विश्वतः। दुर्म्मा। दर्षीष्ट। विश्वतः। भूरिति भूः। भुवरिति भुवः। स्वरिति स्वः। सुप्रजा इति सुऽप्रजाः। प्रजाभिः। स्याम। सुवीरा इति सुऽवीराः। वीरैः। सुपोषा इति सुऽपोषाः। पोषैः॥५३॥

पदार्थः-(**युवम्**) युवाम् (**तम्**) (**इन्द्रापर्वता**) सूर्य्यमेघसदृशौ सेनापतिसेनाजनौ, अत्र **सुपां सुलुक्।** (अष्टा०७।१।३९) इत्याकारः (**पुरोयुधा**) पूर्वं युध्येते तौ (**यः**) (**नः**) अस्माकम् (**पृतन्यात्**) पृतनां सेनामिच्छेत् (**अप**) (**तन्तम्**) शत्रुम् (**इत्**) एव (**हतम्**) हन्याताम् (**वज्रेण**) शस्त्रास्त्रविद्याबलेन (**तन्तम्**) (**इत्**) एव (**हतम्**) विनश्यतम् (**दूरे**) (**चत्ताय**) आह्लादाय (**छन्त्सत्**) ऊर्जेत् (**गहनम्**) कठिनं सैन्यम् (**यत्**) (**इनक्षत्**) व्याप्नुयात्, **इनक्षदिति व्याप्तिकर्मसु पठितम्।** (निघं०२।१८) (**अस्माकम्**) (**शत्रून्**) (**परि**) सर्वतः (**शूरः**) शृणाति शत्रून् तत्सम्बुद्धौ (**विश्वतः**) सर्वतः (**दर्म्मा**) शत्रुविदारयिता (**दर्षीष्ट**) विदारय (**विश्वतः**) (**भूः**) भूमौ (**भुवः**) अन्तरिक्षम् (**स्वः**) सुखे (**सुप्रजाः**) प्रशस्तसन्तानाः (**प्रजाभिः**) (**स्याम**) (**सुवीराः**) बहुश्रेष्ठवीरयुक्ताः (**वीरैः**) उत्तमबलयुक्तैः पुरुषैः (**सुपोषाः**) अनुत्तमपुष्टयः (**पोषैः**) पुष्टिभिः। अयं मन्त्रः (शत० ४।५।११।१४) व्याख्यातः॥५३॥

अन्वयः-हे पुरोयुधेन्द्रापर्वता युवं यो यो नः प्रतन्यात् तन्तं वज्रेणदपहतम्। तद्गहनं शत्रुदलमस्माकं सैन्यमिनक्षत्। यच्च छन्त्सत् तन्तं चत्तायानन्दायेद्धतं दूरे प्रापयतम्। हे शूर सभापते दर्म्मा! त्वमस्माकं शत्रून् विश्वतः परि दर्षीष्ट, यतो वयं प्रजाभिः सुप्रजा वीरैः सुवीराः पोषैस्सुपोषा विश्वतः स्याम॥५३॥

भावार्थः-यावत् सभापतिसेनापती प्रगल्भौ सन्तौ सर्वकार्येषु पुरस्सरौ न स्याताम्, तावत् सेनावीरा हर्षतो युद्धे न प्रवर्तन्ते, नह्येतेन कर्मणा विना कदाचिद् विजयो जायते, यावदजातशत्रवः सभापत्यादयो न जायेरन्न तावत् प्रजाः पालयितुं शक्नुवन्ति, न च सुप्रजाः सन्तः सुखिनः स्युः॥५३॥

पदार्थः-हे (**पुरोयुधा**) युद्धसमय में आगे लड़ने वाले (**इन्द्रापर्वता**) सूर्य्य और मेघ के समान सेनापति और सेनाजन! (**युवम्**) तुम दोनों (**यः**) जो (**नः**) हमारी (**पृतन्यात्**) सेना से लड़ना चाहे (**तन्तम्**) (**इत्**) उसी-उसी को (**वज्रेण**) शस्त्र और अस्त्रविद्या के बल से (**हतम्**) मारो और (**यत्**) जो (**अस्माकम्**) हमारे शत्रुओं की (**गहनम्**) दुर्जय सेना हमारी सेना को (**इनक्षत्**) व्याप्त हो और (**यत्**) जो-जो (**छन्त्सत्**) बल को बढ़ावे, (**तन्तम्**) उस-उस को (**चत्ताय**) आनन्द बढ़ाने के लिये (**इद्धतम्**) अवश्य मारो और (**दूरे**) दूर पहुंचा दो। हे (**शूर**) शत्रुओं को सुख से बचाने वाले सभापते! आप हमारे (**शत्रून्**) शत्रुओं को (**विश्वतः**) सब प्रकार से (**परिदर्षीष्ट**) विदीर्ण कर दीजिये जिससे हम लोग (**भूः**) इस भूलोक (**भुवः**) अन्तरिक्ष और (**स्वः**) सुखकारक अर्थात् दर्शनीय अत्यन्त सुखरूप लोक में (**प्रजाभिः**) अपने सन्तानों से (**सुप्रजाः**) प्रशंसित सन्तानों वाले (**वीरैः**) वीरों से (**सुवीराः**) बहुत अच्छे-

अच्छे वीरों वाले और **(पोषैः)** पुष्टियों से **(सुपोषाः)** अच्छी-अच्छी पुष्टि वाले **(विश्वतः)** सब ओर से **(स्याम)** होवें॥५३॥

भावार्थः-जब तक सभापति और सेनापति प्रगल्भ हुए सब कामों में अग्रगामी न हों, तब तक सेनावीर आनन्द से युद्ध में प्रवृत्त नहीं हो सकते और इस काम के विना कभी विजय नहीं होता तथा जब तक शत्रुओं को निर्म्मूल करनेहारे सभापति आदि नहीं होते, तब तक प्रजा का पालन नहीं कर सकते और न प्रजाजन सुखी हो सकते हैं॥५३॥

परमेष्ठीत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। परमेष्ठी प्रजापतिर्देवता। निचृद् ब्राह्म्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

पुनर्गार्हस्थ्यकर्म्माह॥

फिर भी गृहस्थ का कर्म्म अगले मन्त्र में कहा हैं॥

प॒र॒मे॒ष्ठ्य॑भिधी॑तः प्र॒जाप॑तिर्वा॒चि व्याहृ॑ताया॒मन्धो॒ऽअच्छे॑तः।
स॒वि॒ता स॒न्यां वि॒श्वक॑र्मा दी॒क्षायां॑ पू॒षा सो॑म॒क्रय॑ण्याम्॥५४॥

प॒र॒मे॒ष्ठी। प॒र॒मे॒स्थीति॑ परमे॒ऽस्थी। अ॒भिधी॑त॒ इत्य॒भिऽधी॑तः। प्र॒जाप॑ति॒रिति॑ प्र॒जाऽप॑तिः। वा॒चि। व्याहृ॑ताया॒मिति॑ विऽआहृ॑तायाम्। अन्धः॑। अच्छे॑त॒ इत्यच्छ॑ऽइतः। स॒वि॒ता। स॒न्याम्। वि॒श्वक॒र्म्मेति॑ वि॒श्वऽक॑र्म्मा। दी॒क्षाया॑म्। पू॒षा। सो॒म॒क्रय॑ण्या॒मिति॑ सोम॒ऽक्रय॑ण्याम्॥५४॥

पदार्थः-**(परमेष्ठी)** परमे प्रकृष्टे स्वरूपे तिष्ठतीति **(अभिधीतः)** निश्चितः **(प्रजापतिः)** प्रजायाः स्वामी **(वाचि)** वेदवाण्याम् **(व्याहृतायाम्)** उपदिष्टायां सत्याम् **(अन्धः)** अद्यते यत्तदन्धोऽन्नम्। **अदेर्नुम् धौ च।** (उणा०४।२०६) अनेनादधातोरसुनि नुम् धश्च। **अन्ध इत्यन्ननामसु पठितम्।** (निघं०२।७) उपलक्षणं चान्येषां पदार्थानाम् **(अच्छेतः)** अच्छं निर्मलं स्वरूपमितः प्राप्तः **(सविता)** जगदुत्पादकः **(सन्याम्)** सत्यं नीयते यया तस्याम् **(विश्वकर्म्मा)** सर्वोत्तमकर्म्मा सभापतिः **(दीक्षायाम्)** नियमधारणारम्भे **(पूषा)** पोषको वैद्यः **(सोमक्रयण्याम्)** सोमाद्योषधीनां ग्रहणे। अयं मन्त्रः (शत० १२। ६। १। १-८) व्याख्यातः॥५४॥

अन्वयः-हे गृहस्था! युष्माभिर्यदि व्याहृतायां वाचि परमेष्ठी प्रजापतिरच्छेतो विश्वकर्मा दीक्षायां सोमक्रयण्यां पूषा सन्यां चाभिधीतोऽन्धश्च प्राप्तम्, तर्हि सततं सुखिनः स्युः॥५४॥

भावार्थः-यदीश्वरो वेदविद्यायाः स्वस्य जीवानां जगतश्च गुणकर्मस्वभावान् न प्रकाशयेत्, तर्हि कस्यापि मनुष्यस्य विद्यैतेषां विज्ञानं च न स्यात्, एताभ्यां विना कुतः सततं सुखं च॥५४॥

पदार्थः-हे गृहस्थो! तुम न यदि **(व्याहृतायाम्)** उच्चरित उपदृष्टि की हुई **(वाचि)** वेदवाणी में **(परमेष्ठी)** परमान्दस्वरूप में स्थित **(प्रजापतिः)** समस्त प्रजा के स्वामी को **(अच्छेतः)** अच्छे प्रकार प्राप्त **(विश्वकर्मा)** सब विद्या और कर्म्मों को जानने वाले सर्वथा श्रेष्ठ सभापति को **(दीक्षायाम्)** सभा के नियमों के धारण में **(सोमक्रयण्याम्)** ऐश्वर्य ग्रहण करने में **(पूषा)** सब को पुष्ट करनेहारे उत्तम वैद्य को और **(सन्याम्)** जिससे सनातन सत्य प्राप्त हो, उसमें **(सविता)** सब जगत् का उत्पादक **(अभिधीतः)** सुविचार से धारण किया **(अन्धः)** उत्तम सुसंस्कृत अन्न का सेवन किया तो सदा सुखी हों॥५४॥

भावार्थः-जो ईश्वर वेदविद्या से अपने सांसारिक जीवों और जगत् के गुण कर्म्म स्वभावों को प्रकाशित न करता तो किसी मनुष्य को विद्या और इन का ज्ञान न होता और विद्या वा उक्त पदार्थों के ज्ञान के विना निरन्तर सुख क्योंकर हो सकता है॥५४॥

इन्द्रश्चेत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। इन्द्रादयो देवताः। आर्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनर्गार्हस्थ्यविषयमाह॥

फिर भी उक्त विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

इन्द्रश्च मरुतश्च क्रयायोपोत्थितोऽसुरः पण्यमानो मित्रः क्रीतो विष्णुः शिपिविष्टऽऊरावासन्नो विष्णुर्नरन्धिषः॥५५॥

इन्द्रः। च। मरुतः। च। क्रयाय। उपोत्थित इत्युपऽउत्थितः। असुरः। पण्यमानः। मित्रः। क्रीतः। विष्णुः। शिपिविष्ट इति शिपिऽविष्टः। ऊरौ। आसन्न इत्याऽसन्नः। विष्णुः। नरन्धिषः॥५५॥

पदार्थः-(**इन्द्रः**) विद्युत् (**च**) पृथिव्यादयः (**मरुतः**) वायवः (**च**) जलादिकम् (**क्रयाय**) व्यवहारसिद्धये (**उपोत्थितः**) समीपे प्रकाशित इव (**असुरः**) मेघः, **असुर इति मेघनामसु पठितम्।** (निघं०१।१०) (**पण्यमानः**) स्तूयमानः (**मित्रः**) सुहृत् (**क्रीतः**) व्यवहृतः (**विष्णुः**) व्याप्तो धनञ्जयः (**शिपिविष्टः**) शिपिषु पदार्थेषु प्रविष्टः (**ऊरौ**) आच्छादने (**आसन्नः**) सर्वेषां निकटः (**विष्णुः**) हिरण्यगर्भः (**नरन्धिषः**) नरान् दिधेष्टि शब्दयति। अयं मन्त्रः (शत० १२।३।१।९-१३) व्याख्यातः॥५५॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यूयं विद्वद्भर्य्यो क्रयायेन्द्रो मरुतोऽसुरः पण्यमानो मित्रः शिपिविष्टो विष्णुर्नरन्धिषो विष्णुश्चैवासन्न उपोत्थितः क्रीतोऽस्ति, तं विजानीत॥५५॥

भावार्थः-मनुष्यैः परब्रह्मप्रकाशितानामग्न्यादीनां पदार्थानां सकाशात् क्रियाकौशलेनोपयोगं गृहीत्वा गार्हस्थ्यव्यवहारास्साधनीयाः॥५५॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम लोग जो विद्वानों ने (**क्रयाय**) व्यवहारसिद्धि के लिये (**इन्द्रः**) बिजुली (**मरुतः**) पवन (**असुरः**) मेघ (**पण्यमानः**) स्तुति के योग्य (**मित्रः**) सखा (**शिपिविष्टः**) समस्त पदार्थों में प्रविष्ट (**विष्णुः**) सर्वशरीरव्याप्त धनञ्जय वायु और इन में से एक-एक पदार्थ (**नरन्धिषः**) मनुष्यादि के आत्माओं में साक्षी (**विष्णुः**) हिरण्यगर्भ ईश्वर (**ऊरौ**) ढांपने आदि क्रियाओं में (**आसन्नः**) सन्निकट वा (**उपोत्थितः**) समीपस्थ प्रकाश के समान और जो (**क्रीतः**) व्यवहार में वर्ता हुआ पदार्थ है, इन सब को जानो॥५५॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि ईश्वर से प्रकाशित अग्नि आदि पदार्थों को क्रिया कुशलता से उपयोग लेकर गार्हस्थ्य व्यवहारों को सिद्ध करें॥५५॥

प्रोह्यमाण इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। विश्वेदेवा गृहस्था देवताः। आर्षी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनस्तदेवाह॥

फिर उक्त विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प्रोह्यमाणः सोमऽआगतो वरुणऽआसन्द्यामासन्नोऽग्निराग्नीध्रऽइन्द्रो हविर्द्धानेऽथर्वोपावह्रियमाणः॥५६॥

प्रोह्यमाणः। प्रोह्यमान इति प्रऽउह्यमानः। सोमः। आगत इत्याऽगतः। वरुणः। आसन्द्यामित्याऽसन्द्याम्। आसन्न इत्याऽसन्नः। अग्निः। आग्नीध्रे। इन्द्रः। हविर्द्धान इति हविःऽधाने। अथर्वा। उपावह्रियमाण इत्युपऽअवह्रियमाणः॥५६॥

पदार्थः-(**प्रोह्यमाणः**) प्रकृष्टतर्केणाऽनुष्ठितः। प्रोह्यमाण इति पदं महीधरेण भ्रान्त्या पूर्वस्मिन् मन्त्रे पठितम्। (**सोमः**) ऐश्वर्य्यसमूहः (**आगतः**) समन्तात् प्राप्तः सहायकारी पुरुष इव (**वरुणः**) जलसमूहः (**आसन्द्याम्**) यानासनविशेषे (**आसन्नः**) समीपस्थः (**अग्निः**) (**आग्नीध्रे**) प्रदीपनसाधन इन्धनादौ (**इन्द्रः**) विद्युत् (**हविर्द्धाने**) हविषां ग्रहीतुं योग्यानां पदार्थानां धारणे (**अथर्वा**) अहिंसनीयः (**उपावह्रियमाणः**) क्रियाकौशलेनोपयुज्यमानः। अयं मन्त्रः (शत० १२।६।१।१४-१८) व्याख्यातः॥५६॥

अन्वयः-हे गृहस्थाः! युष्माभिरस्यामीश्वरस्य सृष्टावासन्द्यामागत इव प्रोह्यमाणः सोमो वरुण आग्नीध्रेऽग्निरुपावह्रियमाणोऽथर्वा हविर्द्धान इन्द्रः सततमुपयोजनीयः॥५६॥

भावार्थः-नहि तर्केण विना काचिद् विद्या कस्यचिद् भवति, नहि विद्यया विना कश्चित् पदार्थेभ्य उपभोगं ग्रहीतुं शक्नोति॥५६॥

पदार्थः-हे गृहस्थो! तुम को इस ईश्वर की सृष्टि में (**आसन्द्याम्**) बैठने की एक अच्छी चौकी आदि स्थान पर (**आगत**) आया हुआ पुरुष जैसे विराजमान हो, वैसे (**प्रोह्यमाणः**) तर्क-वितर्क के साथ वादानुवाद से जाना हुआ (**सोमः**) ऐश्वर्य्य का समूह (**वरुणः**) सहायकारी पुरुष के समान जल का समूह (**आग्नीध्रे**) बहुत इन्धनों में (**अग्निः**) अग्नि (**उपावह्रियमाणः**) क्रिया की कुशलता से युक्त किये हुए (**अथर्वा**) प्रशंसा करने योग्य के समान पदार्थ और (**हविर्द्धाने**) ग्रहण करने योग्य पदार्थों में (**इन्द्रः**) बिजुली निरन्तर युक्त करनी चाहिये॥५६॥

भावार्थः-तर्क के विना कोई भी विद्या किसी मनुष्य को नहीं होती और विद्या के विना पदार्थों से उपयोग भी कोई नहीं ले सकता॥५६॥

विश्वे देवा इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। निचृद् ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

अथ गार्हस्थ्यकर्म्मणि विद्वत्पक्षे किंचिदाह॥

अब गृहस्थ कर्म्म में कुछ विद्वानों का पक्ष अगले मन्त्र में कहा है॥

विश्वे देवाऽअंशुषु न्युप्तो विष्णुराप्रीतपाऽआप्याय्यमानो यमः सूयमानो विष्णुः सम्भ्रियमाणो वायुः पूयमानः शुक्रः पूतः। शुक्रः क्षीरश्रीर्मन्थी सक्तुश्रीः॥५७॥

विश्वे। देवाः। अंशुषु। न्युप्त इति निऽउप्तः। विष्णुः। आप्रीतपा इत्याप्रीतऽपाः। आप्याय्यमान इत्याऽप्याय्यमानः। यमः। सूयमानः। विष्णुः। सम्भ्रियमाण इति सम्ऽभ्रियमाणः। वायुः। पूयमानः। शुक्रः। पूतः। शुक्रः। क्षीरश्रीरिति क्षीरऽश्रीः। मन्थी। सक्तुश्रीरिति सक्तुऽश्रीः॥५७॥

पदार्थः-(**विश्वे**) सर्वे (**देवाः**) विद्वांसः (**अंशुषु**) विभक्तेषु सांसारिकेषु पदार्थेषु (**न्युप्तः**) नित्यं स्थापितो

व्यवहारः **(विष्णुः)** व्यापिका विद्युत् **(आप्रीतपाः)** समन्तात् प्रीतान् कमनीयान् पदार्थान् पाति रक्षति **(आप्याय्यमानः)** वृद्ध इव **(यमः)** यच्छति सोऽयं सूर्य्यः **(सूयमानः)** उत्पद्यमानः **(विष्णुः)** व्यापकः **(सम्भ्रियमाणः)** सम्यक् पोषितः **(वायुः)** प्राणः **(पूयमानः)** पवित्रीकृतः **(शुक्रः)** वीर्य्यसमूहः **(पूतः)** शुद्धः **(शुक्रः)** आशुकर्त्ता **(क्षीरश्रीः)** यः क्षीरादीनि शृणाति **(मन्थी)** मथ्नातीति **(सक्तुश्रीः)** यः सक्तूनि समवेतानि द्रव्याणि श्रयति। अयं मन्त्रः (शत० १२।६।१।१९-२६) व्याख्यातः॥५७॥

अन्वयः-हे विश्वे देवा! युष्माभिरंशुषु न्युप्त आप्रीतपा विष्णुराप्याय्यमानो यमः, सूयमानो विष्णुः, संभ्रियमाणो वायुः, पूयमानः शुक्रः, पूतः शुक्रो मन्थी सेवमानः सन् क्षीरश्रीः सक्तुश्रीश्च जायते॥५७॥

भावार्थः-मनुष्यैर्युक्तिविद्याभ्यां सेविता विद्युदादयः पदार्थाः शरीरात्मसमाजसुखप्रदा जायन्ते॥५७॥

पदार्थः-हे **(विश्वेदेवाः)** समस्त विद्वानो! तुम्हारा जो **(अंशुषु)** अलग-अलग संसार के पदार्थों में **(न्युप्तः)** नित्य स्थापित किया हुआ व्यवहार **(आप्रीतपाः)** अच्छी प्रीति के साथ **(विष्णुः)** व्याप्त होने वाली बिजुली **(आप्याय्यमानः)** अति बढ़े हुए के समान **(यमः)** सूर्य्य **(सूयमानः)** उत्पन्न होनेहारा **(विष्णुः)** व्यापक अव्यक्त **(सम्भ्रियमाणः)** अच्छे प्रकार पुष्टि किया हुआ **(वायुः)** प्राण **(पूयमानः)** पवित्र किया हुआ **(शुक्रः)** पराक्रम का समूह **(पूतः)** शुद्ध **(शुक्रः)** शीघ्र चेष्टा करने हारा और **(मन्थी)** विलोडने वाला ये सब प्रत्येक सेवन किये हुए **(क्षीरश्रीः)** दुग्धादि पदार्थों को पकाने और **(सक्तुश्रीः)** प्राप्त हुए पदार्थों का आश्रय करने वाले होते हैं॥५७॥

भावार्थः-मनुष्यों को युक्ति और विद्या से सेवन किये हुए सब सृष्टिस्थ पदार्थ, शरीर, आत्मा और सामाजिक सुख कराने वाले होते हैं॥५७॥

विश्वे देवोश्चेत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। निचृदार्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनः प्रकारान्तरेण विद्वद्विषयमाह॥

फिर प्रकारान्तर से विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

विश्वे॑ दे॒वाश्च॑म॒सेषू॒न्नी॒तोऽसु॒र्होमा॒योद्य॑तो रु॒द्रो ह्‌॒यमा॑नो॒ वातो॒ऽभ्यावृ॑तो नृ॒चक्षा॒ः प्रति॑ख्यातो भ॒क्षो भ॒क्ष्यमा॑णः पि॒तरो॑ नाराश॒ꣳसाः॥५८॥

विश्वे॑। दे॒वाः। च॒म॒सेषु॑ उन्नी॑त॒ इत्यु॒त्ऽनी॑तः। असुः॑। होमा॑य। उद्य॑त॒ इत्यु॒त्ऽय॑तः। रु॒द्रः। ह्‌॒यमा॑नः। वात॑ः। अ॒भ्यावृ॑त॒ इत्य॒भि॒ऽआवृ॑तः। नृ॒चक्षा॒ इति॑ नृ॒ऽचक्षा॑ः। प्रति॑ख्यात॒ इति॒ प्रति॑ऽख्यातः। भ॒क्षः। भ॒क्ष्यमा॑णः। पि॒तर॑ः। ना॒रा॒श॒ꣳसाः॥५८॥

पदार्थः-(**विश्वे**) सर्वे (**देवाः**) विद्वांसः (**चमसेषु**) मेघेषु। **चमस इति मेघनामसु पठितम्।** (निघं०१।१०) (**उन्नीतः**) ऊर्ध्वं नीतः सुगन्धादिपदार्थः (**असुः**) प्राणः (**होमाय**) दानायादानाय वा (**उद्यतः**) प्रयत्नेन प्रेरितः (**रुद्रः**) जीवः (**हूयमानः**) स्वीकृतः (**वातः**) बाह्यो वायुः (**अभ्यावृतः**) आभिमुख्येनाङ्गीकृतः (**नृचक्षाः**) नॄन् मनुष्यान् चष्ट इति (**प्रतिख्यातः**) ख्यातं ख्यातं प्रतीति (**भक्षाः**) भोज्यसमूहः (**भक्ष्यमाणः**) भुज्यमानः (**पितरः**) ज्ञानिनः (**नाराशंसाः**) नारानाशंसन्ति नराशंसानामिम उपदेशकाः। अयं मन्त्रः (शत० १२। ३। १। २७-३३) व्याख्यातः॥५८॥

अन्वयः-यैर्होमाय यज्ञविधानेन चमसेषु सुगन्ध्यादिरुन्नीतोऽसुरुद्यतो रुद्रो हूयमानो नृचक्षाः प्रतिख्यातो वातोऽभ्यावृतस्तच्छोधितो भक्ष्यमाणो भक्षः कृतस्ते विश्वे देवा नाराशंसाः पितरश्च वेद्याः॥५८॥

भावार्थः-ये विद्वांसः परोपकारबुद्ध्या विद्यां विस्तार्य्य सुगन्धिपुष्टिमधुरता रोगनाशकगुणयुक्तानां द्रव्याणां यथावन्मेलनं कृत्वाऽग्नौ हुत्वा वायुवृष्टिजलौषधी सेवित्वा शरीरारोग्यं जनयन्ति, त इह पूज्यतमाः सन्ति॥५८॥

पदार्थः-जिन विद्वानों ने यज्ञ-विधान से (**चमसेषु**) मेघों में सुगन्धित आदि वस्तुओं को (**उन्नीतः**) ऊँचा पहुंचाया (**असुः**) अपना प्राण (**उद्यतः**) अच्छे यत्न से लगाया (**रुद्रः**) जीव को पवित्र कर (**हूयमानः**) स्वीकार किया, (**नृचक्षाः**) मनुष्यों को देखने वाले का (**प्रतिख्यातः**) जिन्होंने वादानुवाद किया (**वातः**) बाहर के वायु अर्थात् मैदान के कठिन वायु के सह वायु शुद्ध किये फल (**भक्ष्यमाणः**) कुछ भोजन करने योग्य पदार्थ (**भक्षः**) खाइये (**नाराशंसाः**) प्रशंसाकर मनुष्यों के उपदेशक (**विश्वेदेवाः**) सब विद्वान् (**पितरः**) उन सब के उपकारकों को ज्ञानी समझने चाहियें॥५८॥

भावार्थः-जो विद्वान् लोग परोपकार बुद्धि से विद्या का विस्तार, करने, सुगन्धि पुष्टि मधुरता और रोगनाशक गुणयुक्त पदार्थों का यथायोग्य मेल अग्नि, के बीच में उन का होम कर शुद्ध वायु वर्षा का जल वा ओषधियों का सेवन कर के शरीर को आरोग्य करते हैं वे इस संसार में अत्यन्त प्रशंसा के योग्य होते हैं॥५८॥

सन्न इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। निचृज्जगती छन्दः। निषादः स्वरः। या पत्येते इत्यस्य विराडार्षी गायत्री छन्दः॥ षड्जः स्वरः॥

अथ गार्हस्थ्यकर्म्मणि यज्ञादिव्यवहारमाह॥

अब गृहस्थ के कर्म्म में यज्ञादि व्यवहार का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

स॒न्नः सिन्धु॑रवभृ॒थायोद्य॑तः समु॒द्रोऽभ्यवह्रि॒यमा॑णः सलि॒लः प्रप्लु॑तो॒ ययो॒रोज॑सा स्कभि॒ता रजा॑ᳬसि वी॒र्ये॒भिर्वी॒रत॑मा॒ शवि॑ष्ठा। या पत्ये॑ते॒ऽअप्र॑तीता॒ सहो॑भि॒र्विष्णू॑ऽअग॒न् व॑रुणा पू॒र्वहू॑तौ॥५९॥

स॒न्नः। सिन्धुः॑। अ॒व॒भृ॒थायेत्य॑वऽभृ॒थाय॑। उद्य॒त इत्यु॒त्ऽय॑तः। स॒मु॒द्रः। अ॒भ्य॒व॒ह्रि॒यमा॒ण इत्य॒भिऽअवह्रि॒यमा॑णः। स॒लि॒लः। प्रप्लु॒त॒ इति॒ प्रऽप्लु॑तः। ययोः॑। ओज॑सा। स्क॒भि॒ता। रजा॑ᳬसि। वी॒र्ये॒भिः॑। वी॒रत॒मेति॒ वी॒रऽत॑मा। शवि॑ष्ठा। या। पत्ये॑ते॒ऽइति॒ पत्ये॑ते। अप्र॑तीते॒त्यप्र॑तिऽइता। सहो॑भि॒रिति॒ सह॑ऽभिः। विष्णू॒ऽइति॒ विष्णू॑। अ॒ग॒न्। वरु॑णा। पू॒र्वहू॑ता॒विति॒ पू॒र्वऽहू॑तौ॥५९॥

पदार्थः-(**सन्नः**) अवस्थापितः। सन्न इति पदं महीधरेण भ्रान्त्या पूर्वस्य मन्त्रस्यान्ते स्वीकृतम् (**सिन्धुः**) नदी। **सिन्धव इति नदीनामसु पठितम्।** (निघं०१।१३) (**अवभृथाय**) पवित्रीकरणाय यज्ञान्तस्नानाय वा (**उद्यतः**) उत्कृष्टतया यतः (**समुद्रः**) अन्तरिक्षम्। **समुद्र इत्यन्तरिक्षनामसु पठितम्।** (निघं०१।३) (**अभ्यवह्रियमाणः**) भुज्यमानः (**सलिलः**) शुद्धं जलं विद्यते यस्मिन् सः। अर्शआदित्वादच्। **सलिलमित्युदकनामसु पठितम्।** (निघं०१।१२) (**प्रप्लुतः**) प्रकृष्टगुणैः प्राप्तः (**ययोः**) होतृयजमानयोः प्रशंसिता गुणाः सन्ति (**ओजसा**) बलेन (**स्कभिता**) स्तम्भितानि धृतानि (**रजांसि**) लोकाः (**वीर्य्येभिः**) (**वीरतमा**) अतिशयेन वीरौ। अत्र सर्वत्राकारादेशः (**शविष्ठा**) अतिशयेन नित्यबलसाधकौ (**या**) यौ (**पत्येते**) श्रेष्ठैः प्राप्येते (**अप्रतीता**) अप्रतीतगुणौ (**सहोभिः**) बलादिभिः (**विष्णू**) व्याप्तिशीलौ (**अगन्**) गच्छन्तु प्राप्नुवन्तु, अत्र गमधातोर्लोडर्थे लुङ्। **मन्त्रे घसह्वरणश०।**

(अष्टा०२।४।८०) इति च्लेर्लुगनुनासिकलोपश्च **(वरुणा)** श्रेष्ठौ **(पूर्वहूतौ)** पूर्वैः शिष्टैर्विद्वद्भिराहूतौ। अयं मन्त्रः (शत० १२।६।१।३४-३६) व्याख्यातः॥५९॥

अन्वयः-यैरवभृथायाभ्यवह्रियमाणः सलिल उद्यतः सिन्धुः सन्नः समुद्रः प्रप्लुतः क्रियते, ययोरोजसा रजांसि स्कभिता स्कभितानि, या वीर्य्येभिर्वीरतमा शविष्ठा सहोभिरप्रतीता विष्णू वरुणा पूर्वहूतौ पत्येते तावगंस्ते सुखिनो भवन्ति॥५९॥

भावार्थः-मनुष्याणां यज्ञादिव्यवहारेण विना गार्हस्थ्यकर्म्मणि सुखं न जायते॥५९॥

पदार्थः-जिन्होंने **(अवभृथाय)** यज्ञान्त स्नान और अपने आत्मा के पवित्र करने के लिये **(अभ्यवह्रियमाणः)** भोगने योग्य **(सलिलः)** जिसमें उत्तम जल है, वह व्यवहार **(उद्यतः)** नियम से सम्पादन किया **(सिन्धुः)** नदियां **(सन्नः)** निर्माण कीं **(समुद्रः)** समुद्र **(प्रप्लुतः)** अपने उत्तमों गुणों से पाया है, वे विद्वान् लोग **(ययोः)** जिन के **(ओजसा)** बल से **(रजांसि)** लोक-लोकान्तर **(स्कभिता)** स्थित हैं, **(या)** जो **(वीर्येभिः)** और पराक्रमों से **(वीरतमा)** अत्यन्त वीर **(शविष्ठा)** नित्य बल सम्पादन करने वाले **(सहोभिः)** बलों से **(अप्रतीता)** मूर्खों को जानने अयोग्य **(विष्णू)** व्याप्त होनेहारे **(वरुणा)** अतिश्रेष्ठ स्वीकार करने योग्य **(पूर्वहूतौ)** जिस का सत्कार पूर्व उत्तम विद्वानों ने किया हो, जो **(पत्येते)** श्रेष्ठ सज्जनों को प्राप्त होते हैं, उन यज्ञकर्म्म, भक्ष्य पदार्थ और विद्वानों को **(अगन्)** प्राप्त होते हैं, वे सदा सुखी रहते हैं॥५९॥

भावार्थः-यज्ञ आदि व्यवहारों के विना गृहाश्रम में सुख नहीं होता॥५९॥

देवानित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। स्वराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तदेवाह॥

फिर भी यज्ञ विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है॥

देवान् दिवमगन् यज्ञस्ततो मा द्रविणमष्टु मनुष्यानन्तरिक्षमगन् यज्ञस्ततो मा द्रविणमष्टु पितॄन् पृथिवीमगन् यज्ञस्ततो मा द्रविणमष्टु यं कं च लोकमगन् यज्ञस्ततो मे भद्रमभूत्॥ ६०॥

देवान्। दिवम्। अगन्। यज्ञः। ततः। मा। द्रविणम्। अष्टु। मनुष्यान्। अन्तरिक्षम्। अगन्। यज्ञः। ततः। मा। द्रविणम्। अष्टु। पितॄन्। पृथिवीम्। अगन्। यज्ञः। ततः। मा। द्रविणम्। अष्टु। यम्। कम्। च। लोकम्। अगन्। यज्ञः। ततः। मे। भद्रम्। अभूत्॥

पदार्थः-**(देवान्)** दिव्यभोगान् **(दिवम्)** विद्याप्रकाशम् **(अगन्)** प्राप्नुवन्ति, अत्र लिङर्थे लुङ् **(यज्ञः)** पूर्वोक्तस्सर्वैः सङ्गमनीयः **(ततः)** तस्मात् **(मा)** माम् **(द्रविणम्)** विद्यादिकम् **(अष्टु)** प्राप्नोतु **(मनुष्यान्)** **(अन्तरिक्षम्)** मेघमण्डलम् **(अगन्)** **(यज्ञः)** **(ततः)** **(मा)** **(द्रविणम्)** धनादिकम् **(अष्टु)** **(पितॄन्)** ऋतून् **(पृथिवीम्)** **(अगन्)** **(यज्ञः)** **(ततः)** **(मा)** **(द्रविणम्)** प्रत्युत सुखकरम् **(अष्टु)** **(यम्)** **(कम्)** **(च)** **(लोकम्)** **(अगन्)** गच्छन्तु **(यज्ञः)** **(ततः)** **(मे)** मम **(भद्रम्)** भजनीयं कल्याणम् **(अभूत्)** भवतु। अयं मन्त्रः (शत० ४।५।७।८) व्याख्यातः॥६०॥

अन्वयः-विद्वांसो यो यज्ञो दिवं देवान् प्रापयति तमगँस्ततो मा द्रविणमष्टु, यो यज्ञोऽन्तरिक्षं मनुष्यानाप्नोति

तमगँस्ततो मा द्रविणमष्टु, यो यज्ञः पृथिवीं पितॄन् प्रापयति तमगँस्ततो मा द्रविणमष्टु, यो यज्ञो यं कं च लोकमगँस्ततो मे भद्रमभूत्॥६०॥

भावार्थः-यस्माद् यज्ञात् सर्वाणि सुखानि जायन्ते तस्यानुष्ठानं सर्वैर्मनुष्यैः कुतो न कार्य्यमिति॥६०॥

पदार्थः-जो **(यज्ञः)** पूर्वोक्त सब के करने योग्य यज्ञ **(दिवम्)** विद्या के प्रकाश और **(देवान्)** दिव्य भोगों को प्राप्त करता है, जिसको विद्वान् लोग **(अगन्)** प्राप्त हों, **(ततः)** उससे **(मा)** मुझ को **(द्रविणम्)** विद्यादि गुण **(अष्टु)** प्राप्त हों, जो **(यज्ञः)** यज्ञ **(अन्तरिक्षम्)** मेघमण्डल और **(मनुष्यान्)** मनुष्यों को प्राप्त होता है, जिसको भद्र मनुष्य **(अगन्)** प्राप्त होते हैं, **(ततः)** उस से **(मा)** मुझ को **(द्रविणम्)** धनादि पदार्थ **(अष्टु)** प्राप्त हों, जो **(यज्ञः)** यज्ञ **(पृथिवीम्)** पृथिवी और **(पितॄन्)** वसन्त आदि ऋतुओं को प्राप्त होता है, जिस को आप्त लोग **(अगन्)** प्राप्त होते हैं, **(ततः)** उससे **(मा)** मुझ को **(द्रविणम्)** प्रत्येक ऋतु का सुख **(अष्टु)** प्राप्त हो, जो **(यज्ञः)** **(कम्)** किसी **(च)** **(लोकम्)** लोक को प्राप्त होता है, **(यम्)** जिस को धर्मात्मा लोग **(अगन्)** प्राप्त होते हैं, **(ततः)** उससे **(मे)** मेरा **(भद्रम्)** कल्याण **(अभूत्)** हो॥६०॥

भावार्थः-जिस यज्ञ से सब सुख होते हैं, उसका अनुष्ठान सब मनुष्यों को क्यों न करना चाहिये॥६०॥

चतुस्त्रिंशदित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। ब्राह्म्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

अस्य जगत उत्पत्तौ कति कारणानि सन्तीत्याह॥

इस जगत् की उत्पत्ति में कितने कारण हैं, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

चतु॑स्त्रि॒ꣳश॒त् तन्त॑वो॒ ये वि॑तत्नि॒रे य इ॒मं य॒ज्ञꣳ स्व॒धया॒ दद॑न्ते।

तेषां॑ छि॒न्नꣳ सम्वे॒तद्द॑धामि॒ स्वाहा॑ घ॒र्मोऽअप्ये॑तु दे॒वान्॥६१॥

चतु॑स्त्रि॒ꣳश॒दिति॒ चतुः॑ऽत्रि॒ꣳशत्। तन्त॑वः। ये। वि॒त॒त्नि॒र इति॑ विऽतत्नि॒रे। ये। इ॒मम्। य॒ज्ञम्। स्व॒धया॑। दद॑न्ते। तेषा॑म्। छि॒न्नम्। सम्। ऊँऽइत्यूँ। ए॒तत्। द॒धा॒मि॒। स्वाहा॑। घ॒र्मः। अपि॑। ए॒तु॒। दे॒वान्॥६१॥

पदार्थः-**(चतुस्त्रिंशत्)** अष्टौ वसव एकादश रुद्रा द्वादशादित्या इन्द्रः प्रजापतिः प्रकृतिश्चेति **(तन्तवः)** सूत्रवत् समवेतुं शीलाः **(ये)** **(वितत्निरे)** **(ये)** **(इमम्)** **(यज्ञम्)** सौख्यजनकम् **(स्वधया)** अन्नादिना **(ददन्ते)** **(तेषाम्)** **(छिन्नम्)** द्वैधीकृतम् **(सम्)** (उ) वितर्के **(एतत्)** **(दधामि)** **(स्वाहा)** सत्यया क्रियया वाचा वा **(घर्म्मः)** यज्ञः, **घर्म्म इति यज्ञनामसु पठितम्।** (निघं०३।१७) **(अपि)** निश्चये **(एतु)** **(देवान्)** विदुषः। अयं मन्त्रः (शत० १२।६।१।३७) व्याख्यातः॥६१॥

अन्वयः-ये चतुस्त्रिंशत् तन्तवो यज्ञं वितत्निरे, ये च स्वधयेमं ददन्ते, तेषां छिन्नं यद् द्वैधीकृतं तदेतत् स्वाहा सन्दधामि उ इति वितर्के घर्म्मो देवानप्येतु॥६१॥

भावार्थः-अस्य प्रत्यक्षस्य जगतश्चतुस्त्रिंशत् तत्त्वानि कारणानि सन्ति, तेषां गुणदोषान् ये जानन्ति, तानेव सुखमेति॥६१॥

पदार्थः-**(ये)** जो **(चतुस्त्रिंशत्)** आठों वसु, ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, इन्द्र, प्रजापति और प्रकृति **(तन्तवः)** सूत के समान **(यज्ञम्)** सुख उत्पन्न करनेहारे यज्ञ को **(वितत्निरे)** विस्तार करते हैं, अथवा **(ये)** जो **(स्वधया)** अन्न आदि उत्तम पदार्थों से **(इमम्)** इस यज्ञ को **(ददन्ते)** देते हैं **(तेषाम्)** उनका जो **(छिन्नम्)** अलग

किया हुआ यज्ञ **(एतत्)** उस को **(स्वाहा)** सत्य क्रिया वा सत्य वाणी से **(सम्)** **(दधामि)** इकट्ठा करता हूं (उ) और वही **(घर्म्मः)** यज्ञ **(देवान्)** विद्वानों को **(अपि)** निश्चय से **(एतु)** प्राप्त हो॥६१॥

भावार्थः-इस प्रत्यक्ष चराचर जगत् के चौंतीस तत्त्व कारण हैं, उनके गुण और दोषों को जो जानते हैं, उन्हीं को सुख मिलता है॥६१॥

यज्ञस्येत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। यज्ञो देवता। स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनर्यज्ञविषयमाह॥

फिर यज्ञ का विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

यज्ञस्य दोहो विततः पुरुत्रा सोऽअष्टधा दिवमन्वाततान।

स यज्ञ धुक्ष्व महि मे प्रजायांश्ं रायस्पोषं विश्वमायुरशीय स्वाहा॥६२॥

यज्ञस्य। दोहः। वितत इति विऽततः। पुरुत्रेति पुरुऽत्रा। सः। अष्टधा। दिवम्। अन्वाततानेत्यनुऽआततान। सः। यज्ञ। धुक्ष्व। महि। मे। प्रजायामिति प्रऽजायाम्। रायः। पोषम्। विश्वम्। आयुः। अशीय। स्वाहा॥६२॥

पदार्थः-**(यज्ञस्य)** **(दोहः)** प्रपूर्णः सामग्रीसमूहः **(विततः)** विस्तीर्णः **(पुरुत्रा)** पुरुषु पदार्थेषु **(सः)** **(अष्टधा)** दिग्भिरष्टप्रकारः **(दिवम्)** सूर्य्यप्रकाशम् **(अन्वाततान)** आच्छाद्य विस्तारयति **(सः)** सूर्य्यप्रकाशः **(यज्ञ)** यः सङ्गम्यते तत्सम्बुद्धौ **(धुक्ष्व)** **(महि)** महान्तं महद्वा **(मे)** मम **(प्रजायाम्)** **(रायः)** धनादेः **(पोषम्)** पुष्टिम् **(विश्वम्)** सर्वम् **(आयुः)** जीवनम् **(अशीय)** प्राप्नुयाम **(स्वाहा)** सत्यवाग्युक्तया क्रियया॥६२॥

अन्वयः-हे यज्ञसम्पादक विद्वन्! यो यज्ञस्य पुरुत्रा विततोऽष्टधा दोहोऽस्ति, तं दिवमन्वाततान, स त्वं तं यज्ञं धुक्ष्व, यो मे मम प्रजायां विश्वं महि रायस्पोषमायुश्चान्वातनोति तमहं स्वाहामशीय॥६२॥

भावार्थः-मनुष्यैः सदा यज्ञारम्भपूर्त्ती कृत्वा प्रजाभ्यो महत्सुखं प्रापणीयमिति॥६२॥

पदार्थः-हे **(यज्ञ)** सङ्गति करने योग्य विद्वन्! आप जो **(यज्ञस्य)** यज्ञ का **(पुरुत्रा)** बहुत पदार्थों में **(विततः)** विस्तृत **(अष्टधा)** आठों दिशाओं से आठ प्रकार का **(दोहः)** परिपूर्ण सामग्रीसमूह है **(सः)** वह **(दिवम्)** सूर्य्य के प्रकाश को **(अन्वाततान)** ढाँपकर फिर फैलने देता है, **(सः)** वह आप सूर्य्य के प्रकाश में यज्ञ करने वाले गृहस्थ तू उस यज्ञ को **(धुक्ष्व)** परिपूर्ण कर, जो **(मे)** मेरी **(प्रजायाम्)** प्रजा में **(विश्वम्)** सब **(महि)** महान् **(रायः)** धनादि पदार्थों की **(पोषम्)** समृद्धि को वा **(आयुः)** जीवन को वार-वार विस्तारता है, उस को मैं **(स्वाहा)** सत्ययुक्त क्रिया से **(अशीय)** प्राप्त होऊँ॥६२॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि सदा यज्ञ का आरम्भ और समाप्ति करें और संसार के जीवों को अत्यन्त सुख पहुंचावें॥६२॥

आ पवस्वेत्यस्य कश्यप ऋषिः। यज्ञो देवता। स्वराडार्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

मनुष्यैः किंवद् यज्ञः सेवनीय इत्याह॥

मनुष्य किस के तुल्य यज्ञ का सेवन करें, यह अगले मन्त्र में कहा है॥

आ पवस्व हिरण्यवदश्ववत् सोम वीरवत्।

वाजं गोमन्तमाभर स्वाहा॥६३॥

आ। पवस्व। हिरण्यवदिति हिरण्यऽवत्। अश्ववदित्यश्वऽवत्। सोम। वीरवदिति वीरऽवत्। वाजम्। गोमन्तमिति गोऽमन्तम्। आ। भर। स्वाहा॥६३॥

पदार्थः-(**आ**) समन्तात् (**पवस्व**) पवित्रीकुरु (**हिरण्यवत्**) हिरण्यादिना तुल्यम् (**अश्ववत्**) अश्वादिभिः समानम् (**सोम**) ऐश्वर्य्यमिच्छुक गृहस्थ! (**वीरवत्**) प्रशस्तवीरसदृशम् (**वाजम्**) अन्नादिपदार्थमयं यज्ञम्, अत्रार्शआदित्वादच् (**गोमन्तम्**) प्रशस्तेन्द्रियादिसम्बन्धम् (**आ**) (**भर**) धर (**स्वाहा**) सत्यया वाचा सत्यक्रियया वा॥६३॥

अन्वयः-हे सोम! त्वं स्वाहा हिरण्यवदश्ववद् वीरवद् गोमन्तमन्नं वाजमाभर, तेन जगदापवस्व॥६३॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। मनुष्यैः पुरुषार्थेन सुवर्णादिधनमासाद्याश्वादयो रक्षणीयास्तदनन्तरं वीराश्च, कुतो यावदेतां सामग्रीं नाभरन्ति, तावद्गृहाश्रमारब्धव्यो यज्ञमप्यलं कर्त्तुं न शक्नुवन्ति॥६३॥

अस्मिन्नध्याये गृहस्थधर्मसेवनाय ब्रह्मचारिण्या कन्यया कुमारब्रह्मचारिस्वीकरणं गृहाश्रमधर्मवर्णनं राजप्रजासभापत्यादिकृत्यमुक्तमत एतदध्यायोक्तार्थस्य पूर्वाध्यायोक्तर्थेन सह सङ्गतिरस्तीति बोद्धव्यम्॥६३॥

पदार्थः-हे सोम ऐश्वर्य्य चाहने वाले गृहस्थ! तू (**स्वाहा**) सत्य वाणी वा सत्य क्रिया से (**हिरण्यवत्**) सुवर्ण आदि पदार्थों के तुल्य (**अश्ववत्**) अश्व आदि उत्तम पशुओं के समान (**वीरवत्**) प्रशंसित वीरों के तुल्य (**गोमन्तम्**) उत्तम इन्द्रियों से सम्बन्ध रखने वाले (**वाजम्**) अन्नादिमय यज्ञ का (**आभर**) आश्रय रख और उससे संसार को (**आ**) अच्छे प्रकार (**पवस्व**) पवित्र कर॥६३॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि अपने पुरुषार्थ से सुवर्ण आदि धन को इकट्ठा कर, घोड़े आदि उत्तम पशुओं को रक्खें, तदनन्तर वीरों को रक्खें, क्योंकि जब तक इस सामग्री को नहीं रखते, तब तक गृहाश्रमरूपी यज्ञ परिपूर्ण नहीं कर सकते, इसलिये सदा पुरुषार्थ से गृहाश्रम की उन्नति करते रहें॥६३॥

इस अध्याय से गृहस्थ धर्म सेवन के लिये ब्रह्मचारिणी कन्या को कुमार ब्रह्मचारी का स्वीकार, गृहस्थ धर्म का वर्णन, राजा-प्रजा और सभापति आदि का कर्त्तव्य कहा है, इसलिये इस अध्यायोक्त अर्थ के साथ पूर्व अध्याय में कहे अर्थ की सङ्गति जाननी चाहिये॥

इति श्रीमत्परिव्राजकाचार्य्येण श्रीयुतमहाविदुषां विरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचिते संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां विभूषिते सुप्रमाणयुक्ते यजुर्वेदभाष्येऽष्टमोऽध्यायः पूर्त्तिमगात्॥८॥

॥ओ३म्॥

अथ नवमाऽध्यायारम्भः॥

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव। यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व॥ यजु० ३०.३॥

देव सवितरित्यस्य इन्द्राबृहस्पती ऋषी। सविता देवता। स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

विद्वद्भिश्चक्रवर्त्ती कथं कथमुपदेष्टव्य इत्युपदिश्यते॥

विद्वान् लोग चक्रवर्ती राजा को कैसा-कैसा उपदेश करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

देव॑ सवित॒ः प्रसु॑व य॒ज्ञं प्रसु॑व य॒ज्ञप॑तिं॒ भगा॑य।

दि॒व्यो ग॑न्ध॒र्वः के॑त॒पूः केत॑ं नः पुनातु वा॒चस्पति॒र्वाज॑ं नः स्वदतु॒ स्वाहा॑॥ १॥

देव॑। स॒वि॒त॒रिति॑ सवितः। प्र। सु॒व॒। य॒ज्ञम्। प्र। सु॒व॒। य॒ज्ञप॑ति॒मिति॑ य॒ज्ञऽप॑तिम्। भगा॑य। दि॒व्यः। ग॒न्ध॒र्वः। के॒त॒पूरिति॑ केत॒ऽपूः। केत॑म्। न॒ः। पु॒ना॒तु॒। वा॒चः। पति॑ः। वाज॑म्। न॒ः। स्व॒द॒तु॒। स्वाहा॑॥ १॥

पदार्थः-(**देव**) दिव्यगुणसम्पन्न (**सवितः**) सकलैश्वर्यसंयुक्त सम्राट्! (**प्र**) (**सुव**) ईर्ष्व (**यज्ञम्**) सर्वेषां सुखजनकं राजधर्मम् (**प्र**) (**सुव**) (**यज्ञपतिम्**) राजधर्मपालकम् (**भगाय**) समग्रैश्वर्य्याय (**दिव्यः**) प्रकाशमानेषु क्षत्रगुणेषु भवः (**गन्धर्वः**) गां पृथिवीं धरतीति, पृषोदरादिना गोशब्दस्य गम्भावः (**केतपूः**) यः केतं प्रज्ञां पुनाति पवित्रीकरोति सः (**केतम्**) प्रज्ञाम्। **केतमिति प्रज्ञानामसु पठितम्।** (निघं०३।९) (**नः**) अस्माकं प्रजाराजपुरुषाणाम् (**पुनातु**) शुन्धतु (**वाचस्पतिः**) अध्ययनाध्यापनोपदेशैर्वाण्याः पालकः (**वाजम्**) अन्नम् (**नः**) अस्माकम् (**स्वदतु**) आभुनक्तु **स्वाहा**) वेदवाचा। अयं मन्त्रः (शत०(५।१।१।१६) व्याख्यातः॥१॥

अन्वयः-हे देव सवितस्त्वं भगाय स्वाहा यज्ञं प्रसुव, यज्ञपतिं प्रसुव, यतो दिव्यो गन्धर्वः केतपूर्वाचस्पतिः स्वाहा नः केतं पुनातु, नः स्वाहा वाजं स्वदतु॥१॥

भावार्थः-न्यायेन प्रजापालनं विद्याप्रदानकरणमेव राज्ञां यज्ञोऽस्ति॥१॥

पदार्थः-हे (**देव**) दिव्यगुणयुक्त (**सवितः**) सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य वाले राजन्! आप (**भगाय**) सब ऐश्वर्य्य की प्राप्ति के लिये (**स्वाहा**) वेदवाणी से (**यज्ञम्**) सब को सुख देने वाले राजधर्म का (**प्र**) (**सुव**) प्रचार और (**यज्ञपतिम्**) राजधर्म के रक्षक पुरुष को (**प्र**) (**सुव**) प्रेरणा कीजिये, जिससे (**दिव्यः**) प्रकाशमान दिव्य गुणों में स्थित (**गन्धर्वः**) पृथिवी को धारण और (**केतपूः**) बुद्धि को शुद्ध करने वाला (**वाचस्पतिः**) पढ़ने-पढ़ाने और उपदेश से विद्या का रक्षक सभापति राजपुरुष है, वह (**नः**) हमारी (**केतम्**) बुद्धि को (**पुनातु**) शुद्ध करे और हमारे (**वाजम्**) अन्न को सत्य वाणी से (**स्वदतु**) अच्छे प्रकार भोगे॥१॥

भावार्थः-न्याय से प्रजा का पालन और विद्या का दान करना ही राजपुरुषों का यज्ञ करना है॥१॥

ध्रुवसदं त्वेत्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः। इन्द्रो देवता। ध्रुवसदमिति पूर्वस्यार्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। अप्सुसदमित्यस्य विकृतिश्छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

मनुष्याः कीदृशं राजानं स्वीकुर्य्युरित्याह॥

फिर मनुष्य लोग किस प्रकार के पुरुष को राज्याऽधिकार में स्वीकार करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ध्रुवसदं त्वा नृषदं मनःसदमुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम्। अप्सुषदं त्वा घृतसदं व्योमसदमुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम्। पृथिविसदं त्वाऽन्तरिक्षसदं दिविसदं देवसदं नाकसदमुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम्॥ २॥

ध्रुवसदमिति ध्रुवऽसदम्। त्वा। नृषदम्। नृसदमिति नृऽसदम्। मनःसदमिति मनःऽसदम्। उपयामगृहीत इत्युपयामगृहीतः। असि। इन्द्राय। त्वा। जुष्टम्। गृह्णामि। एषः। ते। योनिः। इन्द्राय। त्वा। जुष्टतममिति जुष्टऽतमम्। अप्सुषदम्। अप्सुसदमित्यप्सुऽसदम्। त्वा। घृतसदमिति घृतऽसदम्। व्योमसदमिति व्योमऽसदम्। उपयामगृहीत इत्युपयामगृहीतः। असि। इन्द्राय। त्वा। जुष्टम्। गृह्णामि। एषः। ते। योनिः। इन्द्राय। त्वा। जुष्टतममिति जुष्टऽतमम्। पृथिविसदमिति पृथिविऽसदम्। त्वा। अन्तरिक्षसदमित्यन्तरिक्षऽसदम्। दिविसदमिति दिविऽसदम्। देवसदमिति देवऽसदम्। नाकसदमिति नाकऽसदम्। उपयामगृहीत इत्युपयामगृहीतः। असि। इन्द्राय। त्वा। जुष्टम्। गृह्णामि। एषः। ते। योनिः। इन्द्राय। त्वा। जुष्टतममिति जुष्टऽतमम्॥ २॥

पदार्थः-(**ध्रुवसदम्**) ध्रुवेषु विद्याविनययोगधर्मेषु सीदन्तम् (**त्वा**) त्वाम् (**नृसदम्**) नायकेषु सीदन्तम् (**मनःसदम्**) मनसि विज्ञाने तिष्ठन्तम् (**उपयामगृहीतः**) उपगतैर्यमानामिमकैः सेवकैः पुरुषैः स्वीकृतः (**असि**) भवसि (**इन्द्राय**) परमैश्वर्ययुक्ताय जगदीश्वराय (**त्वा**) त्वाम् (**जुष्टम्**) जुषमाणम् (**गृह्णामि**) स्वीकरोमि (**एषः**) (**ते**) तव (**योनिः**) कारणम् (**इन्द्राय**) राज्यैश्वर्य्याय (**त्वा**) (**जुष्टतमम्**) अतिशयेन जुषमाणम् (**अप्सुसदम्**) जलेषु गच्छन्तम् (**त्वा**) (**घृतसदम्**) आज्यं प्राप्नुवन्तम् (**व्योमसदम्**) विमानैर्व्योम्नि गच्छन्तम् (**उपयामगृहीतः**) उपयामैः प्रजाराजजनैः स्वीकृतः (**असि**) (**इन्द्राय**) ऐश्वर्य्यधारणाय (**त्वा**) (**जुष्टम्**) प्रीतम् (**गृह्णामि**) (**एषः**) (**ते**) (**योनिः**) (**इन्द्राय**) दुष्टशत्रुविदारणाय (**जुष्टतमम्**) (**पृथिविसदम्**) पृथिव्यां गच्छन्तम्। अत्र **ङ्यापोः सञ्ज्ञाछन्दसोर्बहुलम्।** (अष्टा०६।३।६३) इति पूर्वपदस्य ह्रस्वः (**त्वा**) (**अन्तरिक्षसदम्**) अवकाशे गमकम् (**दिविसदम्**) न्यायप्रकाशे व्यवस्थितम् (**देवसदम्**) देवेषु धार्मिकेषु विद्वत्स्ववस्थितम् (**नाकसदम्**) अविद्यमानं कं सुखं यस्मिन् तदकमेतन्नास्ति यस्मिन् परमेश्वरे धर्मे वा तत्रस्थम् (**उपयामगृहीतः**) साधनोपसाधनैः संयुक्तः (**असि**) (**इन्द्राय**) विद्यायोगमोक्षैश्वर्य्याय (**त्वा**) (**जुष्टम्**) (**गृह्णामि**) (**एषः**) (**ते**) (**योनिः**) निवसतिः (**इन्द्राय**) सर्वैश्वर्य्यसुखप्राप्तये (**त्वा**) (**जुष्टतमम्**)। अयं मन्त्रः (शत०(५।१।२।३-६) व्याख्यातः॥२॥

अन्वयः-हे सम्राडहमिन्द्राय यस्त्वमुपयामगृहीतोऽसि तं ध्रुवसदं नृषदं मनः सदं जुष्टं त्वा गृह्णामि। यस्यैष ते योनिरस्ति तं जुष्टतमं त्वेन्द्राय गृह्णामि। हे राजन्नहमिन्द्राय यस्त्वमुपयामगृहीतोऽसि तमप्सुसदं घृतसदं व्योमसदं जुष्टं त्वा गृह्णामि। हे सर्वरक्षक सभाध्यक्ष! यस्यैष ते योनिरस्ति तं जुष्टतमं त्वेन्द्राय गृह्णामि। हे सार्वभौम राजन्नहमिन्द्राय यस्त्वमुपयामगृहीतोऽसि पृथिविसदमन्तरिक्षसदं दिविसदं देवसदं नाकसदं जुष्टं त्वा गृह्णामि। हे

सर्वसुखप्रद प्रजापते! यस्यैष ते योनिरस्ति तं जुष्टतमं त्वेन्द्राय गृह्णामि॥२॥

भावार्थः-हे राजप्रजाजनाः! यथा सर्वव्यापकेन परमेश्वराय सर्वैश्वर्य्याय जगन्निर्माय सर्वेभ्यः सुखं दीयते, तथा यूयमप्याचरत, यतो धर्मार्थकाममोक्षफलानां प्राप्तिः सुगमा स्यात्॥२॥

पदार्थः-हे चक्रवर्ति राजन्! मैं **(इन्द्राय)** परमैश्वर्ययुक्त परमात्मा के लिये जो आप **(उपयामगृहीतः)** योगविद्या के प्रसिद्ध अङ्ग यम के सेवने वाले पुरुषों से स्वीकार किये **(असि)** हो। उस **(ध्रुवसदम्)** निश्चल विद्या विनय और योगधर्मों में स्थित **(नृषदम्)** नायक पुरुषों में अवस्थित **(मनःसदम्)** विज्ञान में स्थिर **(जुष्टम्)** प्रीतियुक्त **(त्वा)** आपको **(गृह्णामि)** स्वीकार करता हूं। जिस **(ते)** आप का **(एषः)** यह **(योनिः)** सुखनिमित्त है, उस **(जुष्टतमम्)** अत्यन्त सेवनीय **(त्वा)** आपका **(गृह्णामि)** धारण करता हूं। हे राजन्! मैं **(इन्द्राय)** ऐश्वर्य्य धारण के लिये जो आप **(उपयामगृहीतः)** प्रजा और राजपुरुषों ने स्वीकार किये **(असि)** हो। उस **(अप्सुसदम्)** जलों के बीच चलते हुए **(घृतसदम्)** घी आदि पदार्थों को प्राप्त हुए और **(व्योमसदम्)** विमानादि यानों से आकाश में चलते हुए **(जुष्टम्)** सब के प्रिय **(त्वा)** आपका **(गृह्णामि)** ग्रहण करता हूं। हे सब की रक्षा करनेहारे सभाध्यक्ष राजन्! जिस **(ते)** आप का **(एषः)** यह **(योनिः)** सुखदायक घर है, उस **(जुष्टतमम्)** अति प्रसन्न **(त्वा)** आपको **(इन्द्राय)** दुष्ट शत्रुओं के मारने के लिये **(गृह्णामि)** स्वीकार करता हूं। हे सब भूमि में प्रसिद्ध राजन्! मैं **(इन्द्राय)** विद्या योग और मोक्षरूप ऐश्वर्य्य की प्राप्ति के लिये जो आप **(उपयामगृहीतः)** साधन-उपसाधानों से युक्त **(असि)** हो, उस **(पृथिविसदम्)** पृथिवी में भ्रमण करते हुए **(अन्तरिक्षसदम्)** आकाश में चलने वाले **(दिविसदम्)** न्याय के प्रकाश में नियुक्त **(देवसदम्)** धर्मात्मा और विद्वानों के मध्य में अवस्थित **(नाकसदम्)** सब दुःखों से रहित परमेश्वर और धर्म्म में स्थिर **(जुष्टम्)** सेवनीय **(त्वा)** आपको **(गृह्णामि)** स्वीकार करता हूं। हे सब सुख देने और प्रजापालन करनेहारे राजपुरुष! जिस **(ते)** तेरा **(एषः)** यह **(योनिः)** रहने का स्थान है, उस **(जुष्टतमम्)** अत्यन्त प्रिय **(त्वा)** आपको **(इन्द्राय)** समग्र सुख देने के लिये **(गृह्णामि)** ग्रहण करता हूं॥२॥

भावार्थः-हे राजप्रजाजनो! जैसे सर्वव्यापक परमेश्वर सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य भोगने के लिये जगत् रच के सब के लिये सुख देता, वैसा ही आचरण तुम लोग भी करो कि जिस से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष फलों की प्राप्ति सुगम होवे॥२॥

अपामित्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः। इन्द्रो देवता। निचृद् अतिशक्वरी छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनः प्रजाजनैः कथंभूतो जनो राजा माननीय इत्युपदिश्यते॥

फिर प्रजाजनों को कैसा पुरुष राजा मानना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अपाꣳ रसमुद्वयसꣳ सूर्ये सन्तꣳ समाहितम्। अपाꣳ रसस्य यो रसस्तं वो गृह्णाम्युत्तममुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम्॥३॥

अपाम्। रसम्। उद्वयसमित्युत्ऽवयसम्। सूर्ये। सन्तम्। समाहितमिति सम्ऽआहितम्। अपाम्। रसस्य। यः। रसः। तम्। वः। गृह्णामि। उत्तममित्युत्ऽतमम्। उपयामगृहीत इत्युपयामऽगृहीतः। असि। इन्द्राय। त्वा। जुष्टम्। गृह्णामि। एषः। ते। योनिः। इन्द्राय। त्वा। जुष्टतममिति जुष्टऽतमम्॥३॥

पदार्थः-**(अपाम्)** जलानाम् **(रसम्)** सारम् **(उद्वयसम्)** उत्कृष्टं वयो जीवनं यस्मात् तम् **(सूर्य्ये)**

सवितृप्रकाशे **(सन्तम्)** वर्त्तमानम् **(समाहितम्)** सम्यक् सर्वतो धृतम् **(अपाम्)** जलानाम् **(रसस्य)** सारस्य **(यः)** **(रसः)** वीर्य्यं धातुः **(तम्)** **(वः)** युष्मभ्यम् **(गृह्णामि)** **(उत्तमम्)** श्रेयांसम् **(उपयामगृहीतः)** साधनोपसाधनैः स्वीकृतः **(असि)** **(इन्द्राय)** परमेश्वराय **(त्वा)** **(जुष्टम्)** प्रीत्या वर्त्तमानम् **(गृह्णामि)** स्वीकरोमि **(एषः)** **(ते)** तव **(योनिः)** गृहम् **(इन्द्राय)** परमैश्वर्य्याय **(त्वा)** **(जुष्टतमम्)।** अयं मन्त्रः (शत०(५।१।२।७) व्याख्यातः॥३॥

अन्वयः-हे राजन्नहमिन्द्राय वः सूर्य्ये सन्तं समाहितमुद्वयसमपां रसं गृह्णामि। योऽपां रसस्य रसस्तमुत्तमं वो गृह्णामि, यस्यैष ते योनिरस्ति तमिन्द्राय जुष्टतमं त्वा गृह्णामि॥३॥

भावार्थः-राजा स्वभृत्यप्रजाजनान् शरीरात्मबलवर्धनाय ब्रह्मचर्य्यौषधविद्यायोगाभ्याससेवने नियुञ्जीत, यतः सर्वे रोगरहिताः सन्तः पुरुषार्थिनः स्युः॥३॥

पदार्थः-हे राजन्! मैं **(इन्द्राय)** ऐश्वर्य्यप्राप्ति के लिये **(वः)** तुम्हारे लिये **(सूर्य्ये)** सूर्य के प्रकाश में **(सन्तम्)** वर्त्तमान **(समाहितम्)** सर्व प्रकार चारों ओर धारण किये **(उद्वयसम्)** उत्कृष्ट जीवन के हेतु **(अपाम्)** जलों के **(रसम्)** सार का ग्रहण करता हूं, **(यः)** जो **(अपाम्)** जलों के **(रसस्य)** सार का **(रसः)** वीर्य धातु है, **(तम्)** उस **(उत्तमम्)** कल्याणकारक रस का तुम्हारे लिये **(गृह्णामि)** स्वीकार करता हूं, जो आप **(उपयामगृहीतः)** साधन तथा उपसाधनों से स्वीकार किये गये **(असि)** हो, उस **(इन्द्राय)** परमेश्वर की प्राप्ति के लिये **(जुष्टम्)** प्रीतिपूर्वक वर्त्तनेवाले आप का **(गृह्णामि)** ग्रहण करता हूं, जिस **(ते)** आप का **(एषः)** यह **(योनिः)** घर है, उस **(जुष्टतमम्)** अत्यन्त सेवनीय **(त्वा)** आप को **(इन्द्राय)** परम सुख होने के लिये **(गृह्णामि)** ग्रहण करता हूं॥३॥

भावार्थः-राजा को चाहिये कि अपने नौकर प्रजापुरुषों को शरीर और आत्मा के बल बढ़ाने के लिये ब्रह्मचर्य, ओषधि, विद्या और योगाभ्यास के सेवन में नियुक्त करे, जिससे सब मनुष्य रोगरहित होकर पुरुषार्थी होवें॥३॥

ग्रहा इत्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः। राजधर्मराजादयो देवताः। भुरिक्कृतिश्छन्दः। निषादः स्वरः॥

मनुष्यैराप्तं विद्वांसं सुपरीक्ष्य सङ्गन्तव्य इत्युपदिश्यते॥

मनुष्यों को चाहिये कि आप्त विद्वान् की अच्छे प्रकार परीक्षा कर के सङ्ग करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

ग्रहाऽऊर्जाहुतयो व्यन्तो विप्राय मतिम्। तेषां विशिप्रियाणां वोऽहमिषमूर्जꣳ समग्रभमुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम्। सम्पृचौ स्थः सं मा भद्रेण पृङ्क्तं विपृचौ स्थो वि मा पाप्मना पृङ्क्तम्॥४॥

ग्रहाः। ऊर्जाहुतय इत्यूर्जाऽआहुतयः। व्यन्तः। विप्राय। मतिम्। तेषाम्। विशिप्रियाणामिति विऽशिप्रियाणाम्। वः। अहम्। इषम्। ऊर्जम्। सम्। अग्रभम्। उपयामगृहीत इत्युपयामऽगृहीतः। असि। इन्द्राय। त्वा। जुष्टम्। गृह्णामि। एषः। ते। योनिः। इन्द्राय। त्वा। जुष्टतममिति जुष्टऽतमम्। सम्पृचाविति सम्ऽपृचौ। स्थः। सम्। मा। भद्रेण। पृङ्क्तम्। विपृचाविति विऽपृचौ। स्थः। वि। मा। पाप्मना। पृङ्क्तम्॥४॥

पदार्थः-**(ग्रहाः)** ग्रहीतारो गृहाश्रमिणः **(ऊर्जाहुतयः)** ऊर्जा बलप्राणनकारिका आहुतयो ग्रहणानि दानानि

वा येषां ते **(व्यन्तः)** वेदविद्यासु व्याप्नुवन्तः **(विप्राय)** मेधाविने **(मतिम्)** बुद्धिम् **(तेषाम्)** **(विशिप्रियाणाम्)** विविधे धर्म्मे कर्मणि हनुनासिके येषाम्। **शिप्रे हनुनासिके वा।** (निरु०६।१७) **(वः)** युष्मभ्यम् **(अहम्)** गृहस्थो राजा **(इषम्)** अन्नम् **(ऊर्जम्)** पराक्रमम् **(सम्)** **(अग्रभम्)** गृहीतवानसि **(उपयामगृहीतः)** राज्यगृहाश्रमसामग्रीसहितः **(असि)** **(इन्द्राय)** पुरुषार्थे द्रवणाय **(त्वा)** **(जुष्टम्)** सेवमानम् **(गृह्णामि)** **(एषः)** **(ते)** **(योनिः)** सुखनिमित्तम् **(इन्द्राय)** शत्रुविदारकाय बलाय **(त्वा)** **(जुष्टतमम्)** अतिशयेन प्रसन्नम् **(सम्पृचौ)** राजगृहाश्रमव्यवहाराणां सम्यक् पृङ्क्तारौ राजप्रजाजनौ **(स्थः)** भवतम् **(सम्)** **(मा)** माम् **(भद्रेण)** भजनीयेन सुखप्रदेनैश्वर्येण **(पृङ्क्तम्)** स्पर्शं कुरुतम् **(विपृचौ)** विगतसम्पर्कौ **(स्थः)** स्यातम् **(वि)** **(मा)** माम् **(पाप्मना)** अधर्मात्मना जनेन **(पृङ्क्तम्)।** अयं मन्त्रः (शत०(५।१।२।८) व्याख्यातः॥४॥

अन्वयः-हे प्रजाराजपुरुष! यथाऽहं विप्राय मतिं व्यन्त ऊर्जाहुतयो ग्रहाः सन्ति, यथा तेषां विशिप्रियाणां मतिमिषमूर्जं च समग्रभम्, तथा त्वमपि गृहाण। हे विद्वन्! यथा त्वमुपयामगृहीतोऽसि, तथाऽहमपि भवेयम्, यथाहमिन्द्राय जुष्टं त्वा गृह्णामि, तथा त्वमपि मां गृहाण। यस्यैष ते योनिरस्ति तमिन्द्राय जुष्टतमं त्वाहं यथा गृह्णामि, तथा त्वमपि मां गृहाण। यथा स त्वं च धर्म्ये व्यवहारे सम्पृचौ स्थस्तथा भद्रेण मा मां सम्पृङ्क्तम्। यथा युवां पाप्मना विपृचौ स्थस्तथाऽनेन मा मामपि विपृङ्क्तम्॥४॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये राजप्रजाजना गृहस्थाः मेधाविने सन्तानाय विद्यार्थिने वा विद्याप्रज्ञां जनयन्ति, दुष्टाचारात् पृथक् स्थायपन्ति, कल्याणकारकं कर्माचारयन्ति, असत्सङ्गं विहाय सत्सङ्गं सेवयन्ति, त एवाभ्युदयनिःश्रेयसे लभन्ते, नातो विपरीताः॥४॥

पदार्थः-हे राजपुरुष! जैसे **(अहम्)** मैं गृहस्थजन **(विप्राय)** बुद्धिमान् पुरुष के सुख के लिये **(मतिम्)** बुद्धि को देता हूं, वैसे तू भी किया कर **(व्यन्तः)** जो सब विद्याओं में व्याप्त **(ऊर्जाहुतयः)** बल और जीवन बढ़ने के लिये दान देने और **(ग्रहाः)** ग्रहण करनेहारे गृहस्थ लोग हैं, जैसे **(तेषाम्)** उन **(विशिप्रियाणाम्)** अनेक प्रकार के धर्मयुक्त कर्मों में मुख और नासिका वालों के **(मतिम्)** बुद्धि **(इषम्)** अन्न आदि और **(ऊर्जम्)** पराक्रम को **(समग्रभम्)** ग्रहण कर चुका हूं, वैसे तुम भी ग्रहण करो। हे विद्वान् मनुष्य! जैसे तू **(उपयामगृहीतः)** राज्य और गृहाश्रम की सामग्री के सहित वर्त्तमान **(असि)** है, वैसे मैं भी होऊं। जैसे मैं **(इन्द्राय)** उत्तम ऐश्वर्य्य के लिये **(जुष्टम्)** प्रसन्न **(त्वा)** आप को **(गृह्णामि)** ग्रहण करता हूं, वैसे तू भी मुझे ग्रहण कर, जिस **(ते)** तेरा **(एषः)** यह **(योनिः)** घर है, उस **(इन्द्राय)** पशुओं को नष्ट करने के लिये **(जुष्टतमम्)** अत्यन्त प्रसन्न **(त्वा)** तुझे मैं जैसे वह और तुम दोनों युक्त कर्म्म में **(सम्पृचौ)** संयुक्त **(स्थः)** हो, वैसे **(भद्रेण)** सेवने योग्य सुखदायक ऐश्वर्य्य से **(मा)** मुझ को **(संपृङ्क्तम्)** संयुक्त करो, जैसे तुम **(पाप्मना)** अधर्मी पुरुष से **(विपृचौ)** पृथक् **(स्थः)** हो, इससे **(मा)** मुझ को भी **(विपृङ्क्तम्)** पृथक् करो॥४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो राजा और और प्रजा में गृहस्थ लोग बुद्धिमान् सन्तान वा विद्यार्थी के लिये विद्या होने की बुद्धि देते, दुष्ट आचरणों से पृथक् रखते, कल्याणकारक कर्मों को सेवन कराते और दुष्टसङ्ग छुड़ाके सत्सङ्ग कराते हैं, वे ही इस लोक और परलोक के सुख को प्राप्त होते हैं, इनसे विपरीत नहीं॥४॥

इन्द्रस्येत्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः। सविता देवता। भुरिगष्टिश्छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

अथ किमर्थः सेनापतिरत्र प्रार्थनीय इत्याह॥

अब किसलिये सेनापति की प्रार्थना यहां करनी चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

इन्द्रस्य वज्रोऽसि वाजसास्त्वयायं वाजꣳ सेत्।
वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीमदितिं नाम वचसा करामहे।
यस्यामिदं विश्वं भुवनमाविवेश तस्यां नो देवः सविता धर्म साविषत्॥५॥

इन्द्रस्य। वज्रः। असि। वाजसा इति वाजऽसाः। त्वया। अयम्। वाजम्। सेत्। वाजस्य। नु। प्रसव इति प्रऽसवे। मातरम्। महीम्। अदितिम्। नाम। वचसा। करामहे। यस्याम्। इदम्। विश्वम्। भुवनम्। आविवेशेत्याऽविवेश। तस्याम्। नः। देवः। सविता। धर्म। साविषत्॥५॥

पदार्थः-(**इन्द्रस्य**) परमैश्वर्य्ययुक्तस्य राज्ञः पुरुषः (**वज्रः**) वज्र इव शत्रुच्छेदकः (**असि**) भवसि (**वाजसाः**) यो वाजान् सङ्ग्रामान् विभजति सः (**त्वया**) रक्षकेण सेनापतिना सह (**अयम्**) जनः (**वाजम्**) सङ्ग्रामम् (**सेत्**) सिनुयात्, अत्र सिञ् बन्धन इत्यस्माल्लङि विकरणलुगडभावश्च (**वाजस्य**) सङ्ग्रामस्य (**नु**) क्षिप्रम् (**प्रसवे**) ऐश्वर्य्ये (**मातरम्**) मान्यप्रदाम् (**महीम्**) पृथिवीम् (**अदितिम्**) अखण्डिताम् (**नाम**) प्रसिद्धौ (**वचसा**) वेदोक्तन्यायोपदेशकवचनेन (**करामहे**) कुर्य्याम, अत्र लेटि व्यत्ययेन शप् अथवा भ्वादिर्मन्तव्यः (**यस्याम्**) पृथिव्याम् (**इदम्**) प्रत्ययालम्बनम् (**विश्वम्**) सर्वम् (**भुवनम्**) जगत् (**आविवेश**) आविष्टमस्ति (**तस्याम्**) (**नः**) अस्माकम् (**देवः**) सर्वप्रकाशकः (**सविता**) सकलजगदुत्पादकः (**धर्म**) धारणम् (**साविषत्**) सवेत्। अत्र **सिब्बहुलं णिद०**। (अष्टा०भा०वा०३।१।३४) इति सिपि वृद्धिः। अयं मन्त्रः (शत०(५।१।४।३-४) व्याख्यातः॥५॥

अन्वयः-हे वीर! यस्यां त्वमिन्द्रस्य वाजसा वज्रोऽसि, तेन त्वया सहाऽयं वाजं सेद्, यत्रेदं विश्वं भुवनमाविवेमश यत्र देवः सविता नो धर्म साविषत्, तस्यां नाम वाजस्य प्रसवे मातरमदितिं महीं वचसा नु करामहे॥५॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे मनुष्याः! येयं भूमिर्भूतानां सौभाग्यजननी मातृवत् पालिकाऽऽधारभूता प्रसिद्धास्ति, तां विद्यान्यायधर्मयोगेन राज्याय यूयं सेवध्वम्॥५॥

पदार्थः-हे वीर पुरुष (**यस्याम्**) जिसमें (**त्वम्**) आप (**इन्द्रस्य**) परम ऐश्वर्य्ययुक्त राजा के (**वाजसाः**) सङ्ग्रामों का विभाग करने वाले (**वज्रः**) वज्र के समान शत्रुओं को काटने वाले (**असि**) हो, उस (**त्वया**) रक्षक आप के साथ (**अयम्**) यह पुरुष (**वाजम्**) सङ्ग्राम का (**सेत्**) प्रबन्ध करे, जहां (**इदम्**) प्रत्यक्ष वर्त्तमान (**विश्वम्**) सब (**भुवनम्**) जगत् (**आविवेश**) प्रविष्ट है और जहां (**देवः**) सब का प्रकाशक (**सविता**) सब जगत् का उत्पादक परमात्मा (**नः**) हमारा (**धर्म्म**) धारण (**साविषत्**) करे, (**तस्याम्**) उसमें (**नाम**) प्रसिद्ध (**वाजस्य**) सङ्ग्राम के (**प्रसवे**) ऐश्वर्य्य में (**मातरम्**) मान्य देनेहारी (**अदितिम्**) अखण्डित (**महीम्**) पृथिवी को (**वचसा**) वेदोक्त न्याय के उपदेशरूप वचन से हम लोग (**नु**) शीघ्र (**करामहे**) ग्रहण करें॥५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जो यह भूमि प्राणियों के लिये सौभाग्य के

उत्पन्न, माता के समान रक्षा और सब को धारण करनेहारी प्रसिद्ध है, उसका विद्या, न्याय और धर्म्म के योग से राज्य के लिये तुम लोग सेवन करो॥५॥

अप्स्वन्तरित्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः। अश्वो देवता। भुरिग्जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनः स्त्रीपुरुषैः कथं भवितव्यमित्याह॥

फिर स्त्री-पुरुषों को कैसा होना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तिष्वश्वा भवत वाजिनः।
देवीरापो यो वऽऊर्मिः प्रतूर्तिः ककुन्मान् वाजसास्तेनायं वाजꣳ सेत्॥६॥

अप्स्वित्यप्ऽसु। अन्तः। अमृतम्। अप्स्वित्यप्ऽसु। भेषजम्। अपाम्। उत। प्रशस्तिष्विति प्रऽशस्तिषु। अश्वाः। भवत। वाजिनः। देवीः। आपः। यः। वः। ऊर्मिः। प्रतूर्त्तिरिति प्रऽतूर्त्तिः। ककुन्मानिति ककुत्ऽमान्। वाजसा इति वाजऽसाः। तेन। अयम्। वाजम्। सेत्॥६॥

पदार्थः-(**अप्सु**) प्राणेषु (**अन्तः**) मध्ये (**अमृतम्**) मरणधर्मरहितं कारणमल्पमृत्युनिवारकं वा (**अप्सु**) जलेषु (**भेषजम्**) रोगनाशकमौषधम् (**अपाम्**) उक्तानाम् (**उत**) अपि (**प्रशस्तिषु**) गुणानां प्रशंसासु (**अश्वाः**) वेगवन्तः (**भवत**) (**वाजिनः**) वाजः प्रशस्तः पराक्रमो बलं वा येषां ते (**देवीः**) दिव्यगुणाः (**आपः**) अन्तरिक्षे व्याप्तिशीलाः (**यः**) (**वः**) युष्माकम् (**ऊर्मिः**) आच्छादकस्तरङ्गः (**प्रतूर्त्तिः**) प्रकृष्टा तूर्णगतिर्यस्य सः (**ककुन्मान्**) प्रशस्ताः ककुतः लौल्या गुणा विद्यन्ते यस्मिन्। अत्र ककधातोरौणदिक **उतिः**। (उणा०१।९४) (**वाजसाः**) वाजान् सङ्ग्रामान् सनन्ति संभजन्ति येन सः (**तेन**) (**अयम्**) सेनापतिः (**वाजम्**) सङ्ग्राममन्नं च (**सेत्**) संबध्नीयात्। अयं मन्त्रः (शत०(५।१।४।६) व्याख्यातः॥६॥

अन्वयः-हे देवीरापो देवा विद्वांसश्च यूयं यो वः समुद्रस्य ककुन्मान् वाजसाः प्रतूर्तिरूर्मिरिव पराक्रमोऽस्ति, यदप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजं चास्ति, येनायं वाजं सेत्, तेनाऽपां प्रशस्तिषु वाजिनोऽश्वा इव भवत॥६॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। स्त्रियः सागर इव गम्भीरा जलमिव शान्तस्वभावा वीरप्रसवाः सदौषधसेविन्यो जलादिपदार्थाभिज्ञाः स्युरेवं ये पुरुषा वायुजलवेतृभिः सह सम्प्रयुञ्जते, तास्ते चारोगाः सन्तो विजयिनश्च स्युः॥६॥

पदार्थः-हे (**देवीः**) दिव्यगुण वाली (**आपः**) अन्तरिक्ष में व्यापक स्त्री-पुरुष लोगो। तुम (**यः**) जो (**वः**) तुम्हारा (**समुद्रस्य**) सागर के (**ककुन्मान्**) प्रशस्त चञ्चल गुणों से युक्त (**वाजसाः**) सङ्ग्रामों के सेवने के हेतु (**प्रतूर्त्तिः**) अतिशीघ्र चलने वाला समुद्र के (**ऊर्मिः**) आच्छादन करनेहारे तरङ्गों के समान पराक्रम और जो (**अप्सु**) प्राण के (**अन्तः**) मध्य में (**अमृतम्**) मरणधर्मरहित कारण और जो (**अप्सु**) जलों के मध्य अल्पमृत्यु से छुड़ाने वाला (**भेषजम्**) रोगनिवारक ओषध के समान गुण है, जिससे (**अयम्**) यह सेनापति (**वाजम्**) सङ्ग्राम और अन्न का प्रबन्ध करे (**तेन**) उससे (**अपाम्**) उक्त प्राणों और जलों की (**प्रशस्तिषु**) गुण प्रशंसाओं में (**वाजिनः**) प्रशंसित बल और पराक्रम वाले (**अश्वाः**) कुलीन घोड़ों के समान वेगवाले (**भवत**) हूजिये॥६॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। स्त्रियों को चाहिये कि समुद्र के समान गम्भीर, जल के समान शान्तस्वभाव, वीरपुत्रों को उत्पन्न करने, नित्य ओषधियों को सेवने और जलादि पदार्थों को ठीक-ठीक

जानने वाली होवें। इसी प्रकार जो पुरुष वायु और जल के गुणों के वेत्ता पुरुषों से संयुक्त होते हैं, वे रोगरहित होकर विजयकारी होते हैं॥६॥

वातो वेत्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः। सेनापतिर्देवता। भुरिगुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

मनुष्या कथं किं कृत्वा वेगवन्तो भवेयुरित्याह॥

मनुष्य लोग किस प्रकार क्या करके वेग वाले हों, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

वातो॑ वा॒ मनो॑ वा गन्ध॒र्वाः स॒प्तवि॑ꣳशतिः।

तेऽअग्रेऽश्व॑मयुञ्जँ॒स्तेऽअ॑स्मिन् ज॒वमाद॑धुः॥७॥

वात॑ः। वा॒। मन॑ः। वा॒। ग॒न्ध॒र्वाः। स॒प्तवि॑ꣳशति॒रिति॑ स॒प्तऽवि॑ꣳशतिः। ते। अग्रे॑। अश्व॑म्। अ॒यु॒ञ्ज॒न्। ते। अ॒स्मि॒न्। ज॒वम्। आ। अ॒द॒धुः॒॥७॥

पदार्थः-(**वातः**) वायुः (**वा**) इव (**मनः**) स्वान्तम् (**वा**) इव (**गन्धर्वाः**) ये वायव इन्द्रियाणि च धरन्ति ते (**सप्तविंशतिः**) एतत्संख्याकाः (**ते**) (**अग्रे**) (**अश्वम्**) व्यापकत्ववेगादिगुणसमूहम् (**अयुञ्जन्**) युञ्जन्ति (**ते**) (**अस्मिन्**) जगति (**जवम्**) वेगम् (**आ**) (**अदधुः**)। अयं मन्त्रः (शत०(५।१।४।८) व्याख्यातः॥७॥

अन्वयः-ये विद्वांसो वातो वा मनो वा यथा सप्तविंशतिर्गन्धर्वा अस्मिन् जगत्यग्रेऽश्वमयुञ्जँस्ते खलु जवमादधुः॥७॥

भावार्थः-यान्येकः समष्टिर्वायुः; प्राणाऽपानव्यानोदानसमाननागकूर्मकृकलदेवदत्तधनञ्जया दश; द्वादशं मनस्तत्सहचरितानि श्रोत्रादीनि दशेन्द्रियाणि पञ्च सूक्ष्मभूतानि च मिलित्वा सप्तविंशति, पूर्वमीश्वरेणास्मिन् जगति वेगवन्ति निर्मितानि, य एतानि यथागुणकर्मस्वभावं विज्ञाय यथायोग्यं कार्य्येषु संप्रयुज्य स्वस्त्रीभिरेव साकं रमन्ते, तेऽखिलमैश्वर्य्यं जनयित्वा राज्यं कर्त्तुमर्हन्ति॥७॥

पदार्थः-जो विद्वान् लोग (**वातः**) वायु के (**वा**) समान (**मनः**) मन के (**वा**) समतुल्य और जैसे (**सप्तविंशतिः**) सत्ताईस (**गन्धर्वाः**) वायु, इन्द्रिय और भूतों के धारण करनेहारे (**अस्मिन्**) इस जगत् में (**अग्रे**) पहिले (**अश्वम्**) व्यापकता और वेगादि गुणों को (**अयुञ्जन्**) संयुक्त करते हैं, (**ते**) वे ही (**जवम्**) उत्तम वेग को (**आदधुः**) धारण करते हैं॥७॥

भावार्थः-जो एक समष्टि वायु; प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनञ्जय दश; बारहवां मन तथा इस के साथ श्रोत्र आदि दश इन्द्रिय और पांच सूक्ष्मभूत ये सब २७ सत्ताईस पदार्थ ईश्वर ने इस जगत् में पहिले रचे हैं, जो पुरुष इनके गुण, कर्म और स्वभाव को ठीक-ठीक जान और यथायोग्य कार्य्यों में संयुक्त करके अपनी-अपनी ही स्त्री के साथ क्रीड़ा करते हैं, वे सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य को संचित कर राज्य के योग्य होते हैं॥७॥

वातरंहेत्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

तं राजानं विद्वांसः किंकिमुपदिशेयुरित्याह॥

उस राजा को विद्वान् लोग क्या-क्या उपदेश करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

वार्तरꣳहा भव वाजिन् युज्यमानऽइन्द्रस्येव दक्षिणः श्रियैधि।
युञ्जन्तु त्वा मरुतो विश्ववेदसऽआ ते त्वष्टा पत्सु जवं दधातु॥८॥

वार्तरꣳहा इति वार्तऽरꣳहाः। भव। वाजिन्। युज्यमानः। इन्द्रस्येवेतीन्द्रस्यऽइव। दक्षिणः। श्रिया। एधि। युञ्जन्तु। त्वा। मरुतः। विश्ववेदस इति विश्वऽवेदसः। आ। ते। त्वष्टा। पत्स्विति पत्ऽसु। जवम्। दधातु॥८॥

पदार्थः-(**वातरंहाः**) वायुवद्रंहो वेगो यस्य: सः (**भव**) (**वाजिन्**) शास्त्रोक्तक्रियाकुशलताबोधयुक्त (**युज्यमानः**) समाहितः सन् (**इन्द्रस्येव**) यथा परमैश्वर्य्ययुक्ताय राज्ञः (**दक्षिणः**) दक्षः प्रशस्तं बलं गतिर्विद्यते यस्य तस्य (**श्रिया**) शोभायुक्त्या राज्यलक्ष्म्या देदीप्यमानया राज्ञ्या वा (**एधि**) वृद्धो भव (**युञ्जन्तु**) प्रेरताम् (**त्वा**) त्वाम् (**मरुतः**) विद्वांसो मनुष्याः (**विश्ववेदसः**) सकलविद्यावेत्तारः (**आ**) (**ते**) तव (**त्वष्टा**) वेगादिगुणविद्यावित् (**पत्सु**) पादेषु (**जवम्**) वेगम् (**दधातु**)। अयं मन्त्रः (शत०(५।१।४।९) व्याख्यातः॥८॥

अन्वयः-हे वाजिन्! यं त्वा विश्ववेदसो मरुतो राज्यशिल्पकार्य्येषु युञ्जन्तु, त्वष्टा ते तव पत्सु जवमादधातु, स त्वं वातरंहा भव, युज्यमानस्त्वं दक्षिण इन्द्रस्येव श्रिया सहैधि॥८॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। हे राजस्त्रीपुरुषाः! यूयं निरभिमानिनो निर्मत्सरा भूत्वा विद्वत्सङ्गेन राज्यधर्मं पालयित्वा विमानादियानेषु स्थित्वाऽभीष्टदेशेषु गत्वागत्य जितेन्द्रियाः सन्तः प्रजाः सततं प्रसाद्य श्रीमन्तो भवत॥८॥

पदार्थः-हे (**वाजिन्**) शास्त्रोक्त क्रियाकुशलता के प्रशस्त बोध से युक्त राजन्! जिस (**त्वा**) आप को (**विश्ववेदसः**) समस्त विद्याओं के जाननेहारे (**मरुतः**) विद्वान् लोग राज्य और शिल्पविद्याओं के कार्य्यों में (**युञ्जन्तु**) युक्त और (**त्वष्टा**) वेगादि गुणविद्या का जाननेहारा मनुष्य (**ते**) आपके (**पत्सु**) पगों में (**जवम्**) वेग को (**आदधातु**) अच्छे प्रकार धारण करे। वह आप (**वातरंहाः**) वायु के समान वेग वाले (**भव**) हूजिये और (**युज्यमानः**) सावधान होके (**दक्षिणः**) प्रशंसित धर्म से चलने के बल से युक्त होके (**इन्द्रस्येव**) परम ऐश्वर्य्य वाले राजा के समान (**श्रिया**) शोभायुक्त राज्य सम्पत्ति वा राणी के सहित (**एधि**) वृद्धि को प्राप्त हूजिये॥८॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। राजसम्बन्धी स्त्री-पुरुषो! आप लोग अभिमानरहित और निर्मत्सर अर्थात् दूसरों की उन्नति देखकर प्रसन्न होने वाले होकर विद्वानों के साथ मिल के राजधर्म की रक्षा किया करो तथा विमानादि यानों में बैठ के अपने अभीष्ट देशों में जा जितेन्द्रिय हो और प्रजा को निरन्तर प्रसन्न कर के श्रीमान् हुआ कीजिये॥८॥

जव इत्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः। वीरो देवता। धृतिश्छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

पुनः स राजा कीदृशो भवेदित्याह॥

फिर वह राजा कैसा होवे, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

जवो यस्ते वाजिन्निहितो गुहा यः श्येने परीत्तोऽअचरच्च वाते।
तेन नो वाजिन् बलवान् बलेन वाजजिच्च भव समने च पारयिष्णुः।
वाजिनो वाजजितो वाजꣳ सरिष्यन्तो बृहस्पतेर्भागमवजिघ्रत॥९॥

जवः। यः। ते। वाजिन्। निहित इति निऽहितः। गुहा। यः। श्येने। परीत्तः। अचरत्। च। वाते। तेन। नः। वाजिन्। बलवानिति बलऽवान्। बलेन। वाजजिदिति वाजऽजित्। च। भव। समने। च। पारयिष्णुः। वाजिनः। वाजजित इति वाजऽजितः। वाजम्। सरिष्यन्तः। बृहस्पतेः। भागम्। अव। जिघ्रत॥९॥

पदार्थः-(**जवः**) वेगः (**यः**) (**ते**) तव (**वाजिन्**) प्रशस्तशास्त्रयोगाभ्यासकृत्यसहित (**निहितः**) स्थितः (**गुहा**) गुहायां बुद्धौ (**यः**) वेगः (**श्येने**) पक्षिणीव (**परीत्तः**) सर्वतो दत्तः (**अचरत्**) चरति (**च**) (**वाते**) वायाविव (**तेन**) (**नः**) अस्माकम् (**वाजिन्**) वेगवन् (**बलवान्**) बहुबलयुक्तः (**बलेन**) सैन्येन पराक्रमेण वा (**वाजजित्**) सङ्ग्रामं विजयमानः (**च**) (**भव**) (**समने**) सङ्ग्रामे (**च**) (**पारयिष्णुः**) दुःखात् पारयिता (**वाजिनः**) प्रशस्तवेगयुक्ताः (**वाजजितः**) सङ्ग्रामं जयन्तः (**वाजम्**) बोधमन्नादिकं वा (**सरिष्यन्तः**) प्राप्स्यन्तः (**बृहस्पतेः**) महतां वीराणां पालयितुः सेनाध्यक्षस्य (**भागम्**) सेवनम् (**अव**) अधोऽर्थे (**जिघ्रत**) सुगन्धान् बोधान् वा गृहीत॥ अयं मन्त्रः (शत०(५।१।४।१०) व्याख्यातः॥९॥

अन्वयः-हे वाजिन् सेनाध्यक्ष राजन्! ते तव जवो गुहा निहितो यः श्येने इव परीत्तो वाते इवाचरच्च, तेन नो बलेन बलवान् भव। हे वाजिन्! तेन च समने पारयिष्णुर्वाजजिच्च भव। हे वाजिनो योद्धारः! यूयं बृहस्पतेः सेवनं प्राप्य वाजं सरिष्यन्तः सन्तो भवत, सुगन्धानवजिघ्रत॥९॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। राजा पूर्णं शरीरात्मबलं संप्राप्य श्येनवद्वायुवच्छत्रुविजये यशस्वी भूत्वा स्वामात्यान् सेनास्थान् सर्वान् भृत्यांश्च सुशिक्षितान् बलसुखयुक्तान् धार्मिकान् सततं रक्षेत सर्वे राजप्रजाजनाः शत्रून् विजित्य परस्परं प्रीणन्तु॥९॥

पदार्थः-हे (**वाजिन्**) श्रेष्ठ शास्त्रबोध और योगाभ्यास से युक्त सेना वा सभा के स्वामी राजन्! (**ते**) आप का (**यः**) जो (**जवः**) वेग (**गुहा**) बुद्धि में (**निहितः**) स्थित है, (**यः**) जो (**श्येने**) पक्षी में जैसा (**परीत्तः**) सब ओर दिया हुआ (**च**) और जैसे (**वाते**) वायु में (**अचरत्**) विचरता है, (**तेन**) उससे (**नः**) हम लोगों के (**बलेन**) सेना वा पराक्रम से (**बलवान्**) बहुत बल से युक्त (**भव**) हूजिये। हे (**वाजिन्**) वेगयुक्त राजपुरुष! उसी बल से (**समने**) सङ्ग्राम में (**पारयिष्णुः**) दुःख के पार करने और (**वाजजित्**) सङ्ग्राम के जीतने वाले हूजिये। हे (**वाजिनः**) प्रशंसित वेग से युक्त योद्धा लोगो! तुम (**बृहस्पतेः**) बड़ों की रक्षा करनेहारे सभाध्यक्ष की (**भागम्**) सेवा को प्राप्त हो के (**वाजम्**) बोध वा अन्नादि पदार्थों को (**सरिष्यन्तः**) प्राप्त होते हुए (**वाजजितः**) सङ्ग्राम के जीतनेहारे होओ और सुगन्धियुक्त पदार्थों का (**अवजिघ्रत**) सेवन करो॥९॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। राजा को चाहिये कि शरीर और आत्मा के पूर्ण बल को पा और शत्रुओं के जीतने में श्येन पक्षी और वायु के तुल्य शीघ्रकारी हो के, अपने सब सभासद् सेना के पुरुष और सब नौकरों को अच्छे शिक्षित बल तथा सुख को युक्त कर, धर्मात्माओं की निरन्तर रक्षा करे और सब राजा प्रजा के पुरुषों को चाहिये कि इस प्रकार के हों और शत्रुओं को जीत के परस्पर प्रसन्न रहें॥९॥

देवस्याहमित्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः। इन्द्राबृहस्पती देवते। विराडुत्कृतिश्छन्दः। षड्जः स्वरः॥

मनुष्यैर्विदुषामेवाऽनुकरणं कार्य्यं न मूढानामित्युपदिश्यते॥

मनुष्य लोगों को उचित है कि विद्वानों का अनुकरण करें, मूढ़ों का नहीं, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

देवस्याहꣳ सवितुः सवे सत्यसंवसो बृहस्पतेरुत्तमं नाकꣳ रुहेयम्। देवस्याहꣳ सवितुः सवे सत्यसंवसऽइन्द्रस्योत्तमं नाकꣳरुहेयम्। देवस्याहꣳ सवितुः सवे सत्यप्रसवसो बृहस्पतेरुत्तमं नाकमरुहम्। देवस्याहꣳ सवितुः सवे सत्यप्रसवसऽइन्द्रस्योत्तमं नाकमरुहम्॥ १०॥

देवस्य। अहम्। सवितुः। सवे। सत्यसंवस इति सत्यऽसंवसः। बृहस्पतेः। उत्तममित्युत्ऽतमम्। नाकम्। रुहेयम्। देवस्य। अहम्। सवितुः। सवे। सत्यसंवस इति सत्यऽसंवसः। इन्द्रस्य। उत्तममित्युत्ऽतमम्। नाकम्। रुहेयम्। देवस्य। अहम्। सवितुः। सवे। सत्यप्रसवस इति सत्यऽप्रसवसः। बृहस्पतेः। उत्तममित्युत्ऽतमम्। नाकम्। अरुहम्। देवस्य। अहम्। सवितुः। सवे। सत्यप्रसवस इति सत्यऽप्रसवसः। इन्द्रस्य। उत्तममित्युत्ऽतमम्। नाकम्। अरुहम्॥ १०॥

पदार्थः-(**देवस्य**) सर्वतः प्रकाशमानस्य (**अहम्**) सभाध्यक्षो राजा (**सवितुः**) सकलजगत्प्रसवितुः परमेश्वरस्य (**सवे**) प्रसूते जगति (**सत्यसवसः**) सत्यं सव ऐश्वर्यं जगतः कारणं कार्यं च यस्य तस्य (**बृहस्पतेः**) बृहतां प्रकृत्यादीनां पालकस्य (**उत्तमम्**) सर्वथोत्कृष्टम् (**नाकम्**) अविद्यामानदुःखं सर्वसुखयुक्तं तत्स्वरूपं मोक्षपदम् (**रुहेयम्**) (**देवस्य**) सर्वसुखप्रदातुः (**अहम्**) परोपकारी (**सवितुः**) सकलैश्वर्यप्रसवितुः (**सवे**) ऐश्वर्य्ये (**सत्यसवसः**) सत्यन्याययुक्तस्य (**इन्द्रस्य**) परमैश्वर्य्यसहितस्य सम्राजः (**उत्तमम्**) प्रशस्तम् (**नाकम्**) अविद्यामानदुःखं भोगम् (**रुहेयम्**) (**देवस्य**) अखिलविद्याशुभगुणकर्म्मस्वभावद्योतकस्य (**अहम्**) विद्यामभीप्सुः (**सवितुः**) समग्रविद्याबोधप्रसवितुः (**सवे**) विद्याप्रचारैश्वर्ये (**सत्यप्रसवसः**) सत्योऽविनाशी प्रसवः प्रकटो बोधो यस्मात् तस्य (**बृहस्पतेः**) बृहत्या वेदवाण्या पालकस्य (**उत्तमम्**) (**नाकम्**) सर्वदुःखप्रणाशकमानन्दम् (**अरुहम्**) आरूढोऽस्मि (**देवस्य**) धनुर्वेदादियुद्धविद्या प्रापकस्य (**अहम्**) योद्धा (**सवितुः**) शत्रुविजयप्रसवितुः (**सवे**) प्रेरणे (**सत्यप्रसवसः**) सत्यानां न्यायविजयादीनां प्रसवो यस्मात् तस्य (**इन्द्रस्य**) दुष्टशत्रुविदारकस्य (**उत्तमम्**) विजयाख्यम् (**नाकम्**) सर्वसुखप्रदम् (**अरुहम्**) आरूढोऽस्मि। अयं मन्त्रः (शत०(५।१।५।२-५) व्याख्यातः॥१०॥

अन्वयः-हे प्रजाराजजनाः! यथाऽहं सत्यसवसो देवस्य बृहस्पतेः सवितुर्जगदीश्वरस्य सव उत्तमं नाकं रुहेयम्। हे राजामात्यपुरुषाः! यथाऽहं सत्यवसो देवस्य सवितुरिन्द्रस्य सम्राजः सव उत्तमं नाकं रुहेयम्। हे अध्येताध्यापका विद्याप्रिया जनाः! यथाऽहं सत्यप्रसवसः सवितुर्देवस्य बृहस्पतेरुत्तमं नाकमरुहम्। हे विजयाभिकांक्षिणो योद्धारो वीराः। यथाहं सत्यप्रसवसो देवस्य सवितुरिन्द्रस्य सव उत्तमं नाकमरुहं तथा यूयमप्यारोहत॥१०॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। राजप्रजाजनैः परस्परविरोधेनेश्वरचक्रवर्त्तिराज्यसमग्रविद्याः सम्भज्य सर्वाण्युत्तमानि सुखानि प्राप्तव्यानि प्रापयितव्यानि च॥१०॥

पदार्थः-हे राजा और प्रजा के पुरुषो! जैसे (**अहम्**) मैं सभाध्यक्ष राजा (**सत्यसवसः**) जिसका ऐश्वर्य्य और जगत् का कारण सत्य है, उस (**देवस्य**) सब ओर से प्रकाशमान (**बृहस्पतेः**) बड़े प्रकृत्यादि पदार्थों के रक्षक (**सवितुः**) सब जगत् को उत्पन्न करनेहारे जगदीश्वर के (**सवे**) उत्पन्न किये जगत् में (**उत्तमम्**) सब से उत्तम

(नाकम्) सब दुःखों से रहित सच्चिदानन्द स्वरूप को **(रुहेयम्)** आरूढ़ होऊं। हे राजा के सभासद् लोगो! जैसे **(अहम्)** मैं परोपकारी पुरुष **(सत्यसवसः)** सत्य न्याय से युक्त **(देवस्य)** सब सुख देने **(सवितुः)** सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य के उत्पन्न करनेहारे **(इन्द्रस्य)** परम ऐश्वर्य्य के सहित चक्रवर्ती राजा के **(सवे)** ऐश्वर्य्य में **(उत्तमम्)** प्रशंसा के योग्य **(नाकम्)** दुःखरहित भोग को प्राप्त हो के **(रुहेयम्)** आरूढ़ होऊं। हे पढ़ने-पढ़ानेहारे विद्याप्रिय लोगो! जैसे **(अहम्)** मैं विद्या चाहनेहारा जन **(सत्यप्रसवसः)** जिससे अविनाशी प्रकट बोध हो, उस **(देवस्य)** सम्पूर्ण विद्या और शुभ गुण, कर्म और स्वभाव के प्रकाश से युक्त **(सवितुः)** समग्र विद्याबोध के उत्पन्नकर्त्ता **(बृहस्पतेः)** उत्तम वेदवाणी की रक्षा करनेहारे वेद, वेदाङ्गोपाङ्गों के पारदर्शी के **(सवे)** उत्पन्न किये विज्ञान में **(उत्तमम्)** सब से उत्तम **(नाकम्)** सब दुःखों से रहित आनन्द को **(अरुहम्)** आरूढ़ हुआ हूं। हे विजयप्रिय लोगो! जैसे **(अहम्)** मैं योद्धा मनुष्य **(सत्यप्रसवसः)** जिससे सत्य, न्याय, विनय और विजयादि उत्पन्न हों, उस **(देवस्य)** धनुर्वेद युद्धविद्या के प्रकाशक **(सवितुः)** शत्रुओं के विजय में प्रेरक **(इन्द्रस्य)** दुष्ट शत्रुओं को विदीर्ण करनेहारे पुरुष की **(सवे)** प्रेरणा में **(उत्तमम्)** विजयनामक उत्तम **(नाकम्)** सब सुख देनेहारे सङ्ग्राम को **(अरुहम्)** आरूढ़ हुआ हूं, वैसे आप भी सब लोग आरूढ़ हूजिये॥१०॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। सब राजा और प्रजा के पुरुषों को चाहिये कि परस्पर विरोध को छोड़, ईश्वर चक्रवर्ती राज्य और समग्र विद्याओं का सेवन करके, सब उत्तम सुखों को प्राप्त हों और दूसरों को प्राप्त करावें॥१०॥

बृहस्पत इत्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः। इन्द्राबृहस्पती देवते। जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

अथोपदेष्टृविधिमाह॥

अब उपदेश करने और सुनने वालों का विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

बृह॑स्पते॒ वाजं॑ जय॒ बृह॒स्पत॑ये॒ वाचं॑ वदत॒ बृह॒स्पतिं॒ वाजं॑ जापयत।

इन्द्र॒ वाजं॑ ज॒येन्द्रा॑य॒ वाचं॑ व॒दतेन्द्रं॒ वाजं॑ जापयत॥ ११॥

बृह॑स्पते। वाज॑म्। ज॒य॒। बृह॒स्पत॑ये। वाच॑म्। व॒द॒त॒। बृह॒स्पति॑म्। वाज॑म्। जा॒प॒य॒त॒। इन्द्र॑। वाज॑म्। ज॒य॒। इन्द्रा॑य। वाच॑म्। व॒द॒त॒। इन्द्र॑म्। वाज॑म्। जा॒प॒य॒त॒॥ ११॥

पदार्थः-**(बृहस्पते)** सकलविद्याप्रचारकोपदेशक! **(वाजम्)** विज्ञानं सङ्ग्रामं वा **(जय)** **(बृहस्पतये)** अध्ययनाध्यापनाभ्यां विद्याप्रचाररक्षकाय **(वाचम्)** वेदसुशिक्षाजनितां वाणीम् **(वदत)** अध्यापयतोपदिशत वा **(बृहस्पतिम्)** सम्राजमनूचानमध्यापकं वा **(वाजम्)** विद्याबोधं युद्धं वा **(जापयत)** उत्कर्षेण बोधयत **(इन्द्र)** विद्यैश्वर्यप्रकाशक शत्रुविदारक वा **(वाजम्)** परमैश्वर्य्यं शत्रुविजयाख्यं युद्धं वा **(जय)** उत्कर्ष **(इन्द्राय)** परमैश्वर्यप्रापकाय **(वाचम्)** राजधर्मप्रचारिणीं वाणीम् **(वदत)** **(इन्द्रम्)** **(वाजम्)** **(जापयत)** उत्कृष्टतां प्रापयत। अयं मन्त्रः (शत०(५।१।५।८-९) व्याख्यातः॥११॥

अन्वयः-हे बृहस्पते सर्वविद्याध्यापकोपदेशक वा! त्वं वाजं जय। हे विद्वांसः! यूयमस्मै बृहस्पतये वाचं वदतेमं बृहस्पतिं वाजं जापयत। हे इन्द्र! त्वं वाजं जय। हे युद्धविद्याकुशला विद्वांसः! यूयमस्मा इन्द्राय वाचं वदतेममिन्द्रं वाजं जापयत॥११॥

भावार्थः-अत्र श्लेषालङ्कारः। राजा तथा प्रयतेत यथा वेदविद्याप्रचारः शत्रुविजयश्च सुगमः स्यात्। उपदेशका योद्धारश्चेत्थं प्रयतेरन्, यतो राज्ये वेदादिशास्त्राध्ययनाऽध्यापनप्रवृत्तिः स्वराजा विजयाऽलङ्कृतो भवेद्, येन धर्मवृद्धिरधर्महानिश्च सुतिष्ठेत्॥११॥

पदार्थः-हे **(बृहस्पते)** सम्पूर्ण विद्याओं का प्रचार और उपदेश करनेहारे राजपुरुष! आप **(वाजम्)** विज्ञान वा सङ्ग्राम को **(जय)** जीतो। हे विद्वानो! तुम लोग इस **(बृहस्पतये)** राजपुरुष के लिये **(वाचम्)** वेदोक्त सुशिक्षा से प्रसिद्ध वाणी को **(वदत)** पढ़ाओ और उपदेश करो इस **(बृहस्पतिम्)** राजा वा सर्वोत्तम अध्यापक को **(वाजम्)** विद्याबोध व युद्ध को **(जापयत)** बढ़ाओ और जिताओ। हे **(इन्द्र)** विद्या के ऐश्वर्य्य का प्रकाश वा शत्रुओं को विदीर्ण करनेहारे राजपुरुष! आप **(वाजम्)** परम ऐश्वर्य्य वा शत्रुओं के विजयरूपी युद्ध को **(जय)** जीतो। हे युद्धविद्या में कुशल विद्वानो! तुम लोग इस **(इन्द्राय)** परम ऐश्वर्य्य को प्राप्त करने वाले राजपुरुष के लिये **(वाजम्)** राजधर्म का प्रचार करनेहारी वाणी को **(वदत)** कहो, इस **(इन्द्रम्)** राजपुरुष को **(वाजम्)** सङ्ग्राम को **(जापयत)** जिताओ॥११॥

भावार्थः-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। राजा को ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि जिस से वेदविद्या का प्रचार और शत्रुओं का विजय सुगम हो और उपदेशक तथा योद्धा लोग ऐसा प्रयत्न करें कि जिस राज्य में वेदादिशास्त्र पढ़ने-पढ़ाने की प्रवृत्ति और अपना राजा विजयरूपी आभूषणों से सुशोभित होवे कि जिससे अधर्म का नाश और धर्म की वृद्धि अच्छे प्रकार से स्थिर होवे॥११॥

एषा व इत्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः। इन्द्राबृहस्पती देवते। स्वराडतिधृतिश्छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अथ मनुष्यैः सर्वदा सर्वथा सत्यं वक्तव्यं श्रोतव्यं चेत्याह॥

मनुष्यों को अति उचित है कि सब समय में सब प्रकार से सत्य ही बोलें, यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

एषा वः सा सत्या संवागभूद् यया बृहस्पतिं वाजमजीजपताजीजपत बृहस्पतिं वाजं वनस्पतयो विमुच्यध्वम्। एषाः वः सत्या संवागभूद् ययेन्द्रं वाजमजीजपताजीजपतेन्द्रं वाजं वनस्पतयो विमुच्यध्वम्॥१२॥

एषा। वः। सा। सत्या। संवागिति सम्ऽवाक्। अभूत्। यया। बृहस्पतिम्। वाजम्। अजीजपत। अजीजपत। बृहस्पतिम्। वाजम्। वनस्पतयः। वि। मुच्यध्वम्। एषा। वः। सा। सत्या। संवागिति सम्ऽवाक्। अभूत्। यया। इन्द्रम्। वाजम्। अजीजपत। अजीजपत। इन्द्रम्। वाजम्। वनस्पतयः। वि। मुच्यध्वम्॥१२॥

पदार्थः-**(एषा)** उक्ता वक्ष्यमाणा च **(वः)** युष्माकम् **(सा)** **(सत्या)** यथार्थोक्ता **(संवाक्)** राजनीतिनिष्ठा सम्यग्वाणी **(अभूत्)** भवतु **(यया)** **(बृहस्पतिम्)** वेदशास्त्रपालकम् **(वाजम्)** वेदशास्त्रबोधम् **(अजीजपत)** उत्कर्षयत **(अजीजपत)** **(बृहस्पतिम्)** बृहतो राज्यस्य पालकम् **(वाजम्)** सङ्ग्रामम् **(वनस्पतयः)** वनस्य किरणसमूहस्येव न्यायस्य पालकाः। **वनमिति रश्मिनामसु पठितम्।** (निघं०१।५) **(वि)** **(मुच्यध्वम्)** मुक्ता भवत, विकरणव्यत्ययेन श्यन् **(एषा)** पूर्वापरप्रतिपादिता **(वः)** युष्माकम् **(सा)** **(सत्या)** सत्यभाषणयुक्ता **(संवाक्)**

विनयपुरुषार्थयोः सम्यक् प्रकाशिनी वाणी **(अभूत्)** भवेत् **(यया)** **(अजीजपत)** जापयत **(अजीजपत)** सम्यक् प्रापयत **(इन्द्रम्)** परमैश्वर्यवते पुरुषाय **(वाजम्)** युद्धम् **(इन्द्रम्)** परमैश्वर्ययुक्तमुत्तमश्रीप्रापकमुद्योगम् **(वाजम्)** वेगयुक्तम् **(वनस्पतयः)** वनानां जङ्गलानां पालकाः **(वि)** **(मुच्यध्वम्)**। अयं मन्त्रः (शत०(५।१।५।११-१२) व्याख्यातः॥१२॥

अन्वयः-हे वनस्पतयः! यूयं यया बृहस्पतिं वाजमजीजपत बृहस्पतिमजीजपत सैषा वः संवाक् सत्याऽभूत्। हे वनस्पतयः! यूयं ययेन्द्रं वाजमजीजपतेन्द्रमजीजपत सैषा वः संवाक् सत्याऽभूत्॥१२॥

भावार्थः-नैव कदाचिदपि राजा राजाऽमात्यभृत्याः प्रजाजनाश्च स्वकीयां प्रतिज्ञां वाचं चासत्यां कुर्य्युः। यावतीं ब्रूयुस्तावतीं तथ्यामेव कुर्य्युः। यस्य वाणी सर्वदा सत्याऽस्ति, स एव सम्राड् भवितुमर्हति, यावदेवं न भवति तावद् राजप्रजाजना विश्वसिताः सुखस्योत्कर्षकाश्च भवितुं नार्हन्ति॥१२॥

पदार्थः-हे **(वनस्पतयः)** किरणों के समान न्याय के पालनेहारे राजपुरुषो! तुम लोग **(यया)** जिस से **(बृहस्पतिम्)** वेदशास्त्र के पालनेहारे विद्वान् को **(वाजम्)** वेदशास्त्र के बोध को **(अजीजपत)** बढ़ाओ **(बृहस्पतिम्)** बड़े राज्य के रक्षक राजपुरुष के **(वाजम्)** सङ्ग्राम को **(अजजीपत)** जिताओ **(सा)** वह **(एषा)** पूर्व कही वा आगे जिस को कहेंगे **(वः)** तुम लोगों की **(संवाक्)** राजनीति में स्थित अच्छी वाणी **(सत्या)** सत्यस्वरूप **(अभूत्)** होवे। हे **(वनस्पतयः)** सूर्य की किरणों के समान न्याय के प्रकाश से प्रजा की रक्षा करनेहारे राजपुरुषो! तुम लोग **(यया)** जिससे **(इन्द्रम्)** परम ऐश्वर्य प्राप्त करानेहारे सेनापति को **(वाजम्)** युद्ध को **(अजीजपत)** जिताओ **(इन्द्रम्)** परम ऐश्वर्ययुक्त पुरुष को **(वाजम्)** अत्युत्तम लक्ष्मी को प्राप्त करनेहारे उद्योग को **(अजजीपत)** अच्छे प्रकार प्राप्त करावें, **(सा)** वह **(एषा)** आगे-पीछे जिसका प्रतिपादन किया है **(वः)** तुम लोगों की **(संवाक्)** विनय और पुरुषार्थ का अच्छे प्रकार प्रकाश करने वाली वाणी **(सत्या)** सदा सत्यभाषणादि लक्षणों से युक्त **(अभूत्)** होवे॥१२॥

भावार्थः-राजा, उस के नौकर और प्रजापुरुषों को उचित है कि अपनी प्रतिज्ञा और वाणी को असत्य होने कभी न दें, जितना कहें उतना ठीक-ठीक करें। जिसकी वाणी सब काल में सत्य होती है, वही पुरुष राज्यधिकार के योग्य होता है, जब तक ऐसा नहीं होता, तब तक उन राजा और प्रजा के पुरुषों का विश्वास और वे सुखों को नहीं बढ़ा सकते॥१२॥

देवस्याहमित्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः। सविता देवता। जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

राजपुरुषैर्धार्मिकजनानामनुकरणं कर्त्तव्यं नेतरेषामित्याह॥

राजपुरुषों को चाहिये कि धर्म्मात्मा राजपुरुषों का अनुकरण करें, अन्य तुच्छ बुद्धियों का नहीं, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

दे॒वस्या॒हꣳ स॑वि॒तुः स॒वे स॒त्यप्र॑सवसो॒ बृह॒स्पते॑र्वाज॒जितो॒ वाजं॑ जेषम्।

वाजि॑नो वाज॒जि॒तोऽध्व॑न स्कभ्नु॒वन्तो॒ योज॑ना॒ मिमा॑ना॒ः काष्ठां॑ गच्छत॥ १३॥

दे॒वस्य॑। अ॒हम्। स॒वि॒तुः। स॒वे। स॒त्यप्र॑सव॒ इति॑ स॒त्यऽप्र॑सवः। बृह॒स्पते॑ः। वा॒ज॒जित॒ इति॑ वाज॒ऽजित॑ः। वाज॑म्। जे॒ष॒म्। वाजि॑नः। वा॒ज॒जित॒ इति॑ वाज॒ऽजित॑ः। अध्व॑नः। स्क॒भ्नु॒वन्त॑ः। योज॑नाः। मिमा॑नाः। काष्ठा॑म्। ग॒च्छ॒त॒॥ १३॥

पदार्थः-(**देवस्य**) सर्वप्रकाशस्य जगदीश्वरस्य (**अहम्**) शरीरात्मबलयुक्तः सेनापतिः (**सवितुः**) सकलैश्वर्य्यस्य (**सवे**) उत्पादितेऽस्मिन्नैश्वर्ये (**सत्यप्रसवसः**) सत्यानि प्रसवांसि जगत्स्थानि कारणरूपेण नित्यानि यस्य तस्य (**बृहस्पतेः**) वेदवाण्याः पालकस्य (**वाजजितः**) सङ्ग्रामं विजयमानस्य (**वाजम्**) सङ्ग्रामम् (**जेषम्**) जयेयम्, लेडुत्तमैकवचने प्रयोगः (**वाजिनः**) विज्ञानवेगयुक्ताः (**वाजजितः**) सङ्ग्रामं जेतुं शीलाः (**अध्वनः**) शत्रोर्मार्गान् (**स्कभ्नुवन्तः**) प्रतिष्टम्भनं कुर्वन्तः (**योजना**) योजनानि बहून् क्रोशान् (**मिमानाः**) शत्रून् प्रक्षेपमाणाः (**काष्ठाम्**) दिशम् (**गच्छत**)। अयं मन्त्रः (शत०(५।१।५।१५-१७) व्याख्यातः॥१३॥

अन्वयः-हे वीराः! यथाऽहं सत्यप्रसवसः सवितुर्देवस्य वाजजितो बृहस्पतेः सवे वाजं जेषम्, तथा यूयमपि जयत। हे वाजिनो वाजजितो जना! यथा यूयं योजना मिमाना अध्वनः स्कभ्नुवन्तः काष्ठां गच्छत, तथा वयमपि गच्छेम॥१३॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। योद्धारः सेनाऽध्यक्षसहायपालनाभ्यामेव शत्रून् जेतुं शक्नुवन्ति। शत्रूणां मार्गान् प्रतिबद्धुं च प्रभवन्ति, यस्यां दिशि शत्रवो विकुर्वते, तत्र तान् वशं नयेयुः॥१३॥

पदार्थः-हे वीर पुरुषो! जैसे (**अहम्**) मैं शरीर और आत्मा के बल से पूर्ण सेनापति (**सत्यप्रसवसः**) जिस के बनाये जगत् में कारणरूप से पदार्थ नित्य हैं, उस (**सवितुः**) सब ऐश्वर्य्य के देने (**देवस्य**) सब के प्रकाशक (**वाजजितः**) विज्ञान आदि से उत्कृष्ट (**बृहस्पतेः**) उत्तम वेदवाणी के पालनेहारे जगदीश्वर के (**सवे**) उत्पन्न किये इस ऐश्वर्य्य में (**वाजम्**) सङ्ग्राम को (**जेषम्**) जीतूं, वैसे तुम लोग भी जीतो। हे (**वाजिनः**) विज्ञानरूपी वेग से युक्त (**वाजजितः**) सङ्ग्राम को जीतनेहारे! (**योजना**) बहुत कोशों से शत्रुओं को (**मिमानाः**) खदेड़ और (**अध्वनः**) शत्रुओं के मार्गों को रोकते हुए तुम लोग जैसे (**काष्ठाम्**) दिशाओं में (**गच्छत**) चलते हो, वैसे हम लोग भी चलें॥१३॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। योद्धा लोग सेनाध्यक्ष के सहाय और रक्षा से ही शत्रुओं को जीत और उनके मार्गों को रोक सकते हैं और इन अध्यक्षादि राजपुरुषों को चाहिये कि जिस दिशा में शत्रु लोग उपाधि करते हों, वहीं जाके उन को वश में करें॥१३॥

एष स्येत्यस्य दधिक्रावा ऋषिः। बृहस्पतिर्देवता। जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

यदा सेनासेनेशौ सुशिक्षितौ परस्परं प्रीतियुक्तौ स्यातां तदैव विजयलाभः स्यादित्याह॥

जब सेना और सेनापति अच्छे शिक्षित होकर परस्पर प्रीति करने वाले होवें, तभी विजय प्राप्त होवे, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

एष स्य वाज क्षिपणिं तुरण्यति ग्रीवायां बद्धोऽअपिकक्षऽआसनि।
क्रतुं दधिक्राऽअनु सꣳसनिष्यदत् पथामङ्काꣳस्यन्वापनीफणत् स्वाहा॥ १४॥

एषः। स्यः। वाजी। क्षिपणिम्। तुरण्यति। ग्रीवायाम्। बद्धः। अपिकक्ष इत्यपिऽकक्षे। आसनि। क्रतुम्। दधिक्रा इति दधिऽक्राः। अनु। सꣳसनिष्यदत्। सꣳसनिस्यददिति सम्ऽसनिस्यदत। पथाम्। अङ्कांꣳसि। अनु। आपनीफणदित्याऽपनीफणत्। स्वाहा॥ १४॥

पदार्थः-(**एषः**) वीरः (**स्यः**) असौ। अत्र **स्यश्छन्दसि बहुलम्**। (अष्टा०६।१।१३३) इति सोर्लोपः (**वाजी**)

वेगवान् **(क्षिपणिम्)** दूरे क्षिपन्ति शत्रून् यया तां सेनाम् **(तुरण्यति)** त्वरयति **(ग्रीवायाम्)** कण्ठे **(बद्धः)** **(अपिकक्षे)** निश्चितपार्श्वावयवे **(आसनि)** आस्ये **(क्रतुम्)** कर्म **(दधिक्राः)** यो दधीन् धारकान् क्राम्यति स दधिक्रा अश्वः। **दधिक्रा इत्यश्वनामसु पठितम्।** (निघं०१।१४) **(अनु)** **(संसनिष्यदत्)** अतिशयेन प्रस्रवन्। अत्र स्यन्दू धातोर्यङ्लुक् शतृप्रत्ययेऽभ्यासस्य निक् निपात्यते **(पथाम्)** मार्गाणाम् **(अङ्कांसि)** लक्षणानि **(अनु)** **(आपनीफणत्)** अतिशयेन गच्छन् **(स्वाहा)** सत्यया वाचा। अयं मन्त्रः (शत०(५।१।५।१९) व्याख्यातः॥१४॥

अन्वयः-यथैष स्योऽसौ वाज्यासनि ग्रीवायां बद्धः क्रतुं संसनिष्यददपिकक्षे पथामङ्कांस्यन्वापनीफणद् दधिक्राः क्षिपणिं गच्छति, तथा सेनेशः स्वाहा स्वसेनां पराक्रमयेत्॥१४॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। सेनापतिरक्षिता वीरा अश्ववद्धावन्तः सद्यः शत्रून् हन्तुं शक्नुवन्ति, सेनापतिः सुकर्मकारिभिः संशिक्षितैर्वीरैः सहैव युद्ध्यमानः सन् प्रशंसितो विजयते, नाऽन्यथा॥१४॥

पदार्थः-जैसे **(स्यः)** वह **(एषः)** और यह **(वाजी)** वेगयुक्त **(आसनि)** मुख और **(ग्रीवायाम्)** कण्ठ में **(बद्धः)** बंधा **(क्रतुम्)** कर्म अर्थात् गति को **(संसनिष्यदत्)** अतीव फैलाता हुआ **(पथाम्)** मार्गों के **(अङ्कांसि)** चिह्नों को **(अनु)** समीप **(आपनीफणत्)** अच्छे प्रकार चलता हुआ **(दधिक्राः)** धारण करनेहारों का चलानेहारा घोड़ा **(क्षिपणिम्)** सेना को जाता है, वैसे ही **(अपिकक्षे)** इधर-उधर के ठीक-ठीक अवयवों में सेनापति अपनी सेना को **(स्वाहा)** सत्य वाणी से **(तुरण्यति)** वेगयुक्त करता है॥१४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। सेनापति से रक्षा को प्राप्त हुए वीरपुरुष घोड़ों के समान दौड़ते हुए शीघ्र शत्रुओं को मार सकते हैं। जो सेनापति उत्तम कर्म्म करनेहारे अच्छे शिक्षित वीर पुरुषों के साथ ही युद्ध करता हुआ, प्रशंसित होता हुआ विजय को प्राप्त होता है, अन्यथा पराजय ही होता है॥१४॥

उतेत्यस्य दधिक्रावा ऋषिः। बृहस्पतिर्देवता। जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

सेनापत्यादयः कथं पराक्रमेरन्नित्युपदिश्यते॥

सेनापति आदि राजपुरष कैसा पराक्रम करें, इस विषय का अगले मन्त्र में किया है॥

उ॒त स्मा॑स्य॒ द्रव॑तस्तुरण्य॒तः प॒र्णं न वेरनु॑वाति प्रग॒र्धिन॑ः।

श्ये॒नस्ये॑व॒ ध्रज॑तोऽअङ्क॒सं परि॑ दधि॒क्राव्णः॑ स॒होर्जा तरि॑त्र॒तः स्वाहा॑॥ १५॥

उ॒त। स्म॒। अ॒स्य॒। द्रव॑तः। तु॒र॒ण्य॒तः। प॒र्णम्। न। वेः। अनु॑। वा॒ति॒। प्र॒ग॒र्धिन॒ इति॑ प्रऽग॒र्धिन॑ः। श्ये॒नस्ये॒वेति॑ श्ये॒नस्य॑ऽइव। ध्रज॑तः। अ॒ङ्क॒सम्। परि॑। द॒धि॒क्राव्ण॒ इति॑ दधि॒ऽक्राव्ण॑ः। स॒ह। ऊ॒र्जा। तरि॑त्रतः। स्वाहा॑॥ १५॥

पदार्थः-**(उत)** अपि **(स्म)** एव **(अस्य)** **(द्रवतः)** द्रवीभूतस्य **(तुरण्यतः)** शीघ्रं गच्छतः **(पर्णम्)** पत्रं पक्षो वा **(न)** इव **(वेः)** पक्षिणः **(अनु)** **(वाति)** गच्छति **(प्रगर्धिनः)** प्रकर्षेणाभिकाङ्क्षिणः **(श्येनस्येव)** **(ध्रजतः)** गच्छतः **(अङ्कसम्)** लक्षणान्वितं मार्गम् **(परि)** **(दधिक्राव्णः)** अश्वस्य **(सह)** **(ऊर्जा)** पराक्रमेण **(तरित्रतः)** अतिश्येन संप्लवतः **(स्वाहा)** सत्यया क्रियया॥ अयं मन्त्रः (शत०(५।१।५।२०) व्याख्यातः॥१५॥

अन्वयः-हे राजप्रजनाः! य ऊर्जा स्वाहाऽस्य द्रवतस्तुरण्यतो वेः पर्णं नोत प्रगर्धिनो ध्रजतः श्येनस्येव तरित्रतो दधिक्राव्ण इवाङ्कसं पर्यनुवाति स्म स एव शत्रुं जेतुं शक्नोति॥१५॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। ये वीराः! नीलकण्ठपक्षिवच्छ्येनवदश्ववच्च पराक्रमन्ते, तेषां

शत्रवः सर्वतो निलीयन्ते॥१५॥

पदार्थः-हे राजपुरुषो! जो **(ऊर्जा)** पराक्रम और **(स्वाहा)** सत्यक्रिया के **(सह)** साथ **(अस्य)** इस **(द्रवतः)** रसप्रद वृक्ष का पत्ता और **(तुरण्यतः)** शीघ्र उड़ने वाले **(वेः)** पक्षी के **(पर्णम्)** पंखों के **(न)** समान **(उत)** और **(प्रगर्धिनः)** अत्यन्त इच्छा करने **(ध्रजतः)** चाहते हुए **(श्येनस्येव)** बाज पक्षी के समान तथा **(तरित्रतः)** अति शीघ्र चलते हुए **(दधिक्राव्णः)** घोड़े के सदृश **(अङ्कसम्)** अच्छे लक्षणयुक्त मार्ग में **(परि)** **(अनु)** **(वाति)** सब प्रकार अनुकूल चलता है, **(स्म)** वही पुरुष शत्रुओं को जीत सकता है॥१५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो वीर पुरुष नीलकण्ठ श्येनपक्षी और घोड़े के समान पराक्रमी होते हैं, उनके शत्रु लोग सब ओर से विलीन हो जाते हैं॥१५॥

शन्न इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। बृहस्पतिर्देवता। भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

के प्रजापालने शत्रुविनाशने च शक्तिमन्तो भवन्तीत्याह॥

कौन पुरुष प्रजा के पालने और शत्रुओं के विनाश करने में समर्थ होते हैं, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

शन्नो॑ भवन्तु वा॒जिनो॒ हवे॑षु दे॒वता॑ता मि॒तद्र॑वः स्व॒र्काः।

ज॒म्भय॒न्तोऽहिं॒ वृक॒ꣳ रक्षा॒ꣳसि॒ सने॑म्य॒स्मद्यु॑यव॒न्नमी॑वाः॥१६॥

शम्। नः॒। भ॒व॒न्तु॒। वा॒जिनः॑। हवे॑षु। दे॒वता॒तेति॑ दे॒वऽता॑ता। मि॒तद्र॑व॒ इति॑ मि॒तऽद्र॑वः। स्व॒र्का इति॑ सुऽअ॒र्काः। ज॒म्भय॑न्तः। अहि॑म्। वृक॑म्। रक्षा॑ꣳसि। सने॑मि। अ॒स्मत्। यु॒य॒व॒न्। अमी॑वाः॥१६॥

पदार्थः-**(शम्)** सुखम् **(नः)** अस्माकम् **(भवन्तु)** **(वाजिनः)** प्रशस्तयुद्धविद्याविदः सुशिक्षितास्तुरङ्गा **(हवेषु)** सङ्ग्रामेषु **(देवताता)** देवानां विदुषां कर्मसु। अत्र **देवात्तातिल्।** (अष्टा०४।४।१४२) **सुपां सुलुक्०।** (अष्टा०७।१।३९) इति डादेशश्च **(मितद्रवः)** ये परिमितं द्रवन्ति गच्छन्ति ते **(स्वर्काः)** शोभनोऽर्कोऽन्नं सत्कारो वा येषान्ते। **अर्क इत्यन्ननामसु पठितम्।** (निघं०२।७) **(जम्भयन्तः)** गात्राणि विनमयन्तः **(अहिम्)** मेघमिव चेष्टमानमुन्नतम् **(वृकम्)** चोरम् **(रक्षांसि)** हिंसकान् दस्यून् **(सनेमि)** सनातनम्। **सनेमीति पुराणनामसु पठितम्।** (निघं०३।१७) **(अस्मत्)** **(युयवन्)** युवन्तु पृथक् कुर्वन्तु। अत्र लेटि शपः श्लुः **(अमीवाः)** ये रोगवद्वर्त्तमानाः शत्रवस्तान्। अयं मन्त्रः (शत०(५।१।५।२२) व्याख्यातः॥१६॥

अन्वयः-ये मितद्रवः स्वर्का अहिं वृकं रक्षांसि च जम्भयन्तो वाजिनो वीरा नो देवताता हवेषु सनेमि शम्भवन्तु, तेऽस्मदमीवा इव वर्त्तमानानरीन् युयवन्॥१६॥

भावार्थः-ये श्रेष्ठाः प्रजापालने व्याधिवच्छत्रूणां विनाशका न्यायकारिणो राजजनाः सन्ति, त एव सर्वेषां सुखं कर्तुं शक्नुवन्ति॥१६॥

पदार्थः-जो **(मितद्रवः)** नियम से चलने **(स्वर्काः)** जिन का अन्न वा सत्कार सुन्दर हो, वे योद्धा लोग **(अहिम्)** मेघ के समान चेष्टा करते और बढ़े हुए **(वृकम्)** चोर और **(रक्षांसि)** दूसरों को क्लेश देनेहारे डाकुओं के **(जम्भयन्तः)** हाथ-पांव तोड़ते हुए **(वाजिनः)** श्रेष्ठ युद्धविद्या के जानने वाले वीर पुरुष **(नः)** हम **(देवताता)** विद्वान् लोगों के कर्मों तथा **(हवेषु)** सङ्ग्रामों में **(सनेमि)** सनातन **(शम्)** सुख को **(भवन्तु)** प्राप्त होवें **(अस्मत्)**

हमारे लिये **(अमीवाः)** रोगों के समान वर्त्तमान शत्रुओं को **(युयवन्)** पृथक् करें॥१६॥

भावार्थः-श्रेष्ठ प्रजापुरुषों के पालने में तत्पर और रोगों के समान शत्रुओं के नाश करनेहारे राजपुरुष ही सब को सुख दे सकते हैं, अन्य नहीं॥१६॥

ते न इत्यस्य नाभानेदिष्ठ ऋषिः। बृहस्पतिर्देवता। जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

प्रजाजनाः स्वरक्षार्थमेव करं दद्युस्तदर्थमेव राजजना गृह्णन्तु नान्यथेत्याह॥

प्रजाजन अपनी रक्षा के लिये कर देवें और इसलिये राजपुरुष ग्रहण करें, अन्यथा नहीं, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

ते नोऽअर्वन्तो हवनश्रुतो हवं विश्वे शृण्वन्तु वाजिनो मितद्रवः।
सहस्रसा मेधसाता सनिष्यवो महो ये धनꣳ समिथेषु जभ्रिरे॥१७॥

ते। नः। अर्वन्तः। हवनश्रुत इति हवनऽश्रुतः। हवम्। विश्वे। शृण्वन्तु। वाजिनः। मितद्रव इति मितऽद्रवः। सहस्रसा इति सहस्रऽसाः। मेधसातेति मेधऽसाता। सनिष्यवः। महः। ये। धनम्। समिथेष्विति सम्ऽइथेषु। जभ्रिरे॥१७॥

पदार्थः-**(ते)** **(नः)** अस्माकम् **(अर्वन्तः)** जानन्तः **(हवनश्रुतः)** ये हवनानि ग्राह्याणि शास्त्राणि शृण्वन्ति ते **(हवम्)** अध्ययनाध्यापनजन्यं बोधशब्दसमूहमर्थिप्रत्यर्थिनां विवादं च **(विश्वे)** सर्वे विद्वांसः **(शृण्वन्तु)** **(वाजिनः)** प्रशस्तप्रज्ञाः **(मितद्रवः)** ये मितं शास्त्रप्रमितं विषयं द्रवन्ति ते **(सहस्रसाः)** ये सहस्रं विद्याविषयान् सनन्ति ते **(मेधसाता)** मेधानां सङ्गमानां सातिर्दानं येषु, अत्र सप्तमीबहुवचनस्य **सुपां सुलुक्।** (अष्टा०७।१।३९) इति डादेशः **(सनिष्यवः)** आत्मनः सनिं संविभागमिच्छवः। सनिशब्दात् क्यचि लालसायां सुक् तत उः **(महः)** महत् **(ये)** **(धनम्)** श्रियम् **(समिथेषु)** सङ्ग्रामेषु। **समिथ इति सङ्ग्रामनामसु पठितम्।** (निघं०२।१७) **(जभ्रिरे)** भरेयुः। अत्राभ्यासस्य वर्णव्यत्ययेन बस्य जः। अयं मन्त्रः (शत०(५।१।५।२३) व्याख्यातः॥१७॥

अन्वयः-येऽर्वन्तो हवनश्रुतो वाजिनो मितद्रवः सहस्रसाः सनिष्यवो राजजना मेधसाता समिथेषु नो महो धनं जभ्रिरे, ते विश्वेऽस्माकं हवं शृण्वन्तु॥१७॥

भावार्थः-ये इमे राजपुरुषा अस्माकं सकाशात् करं गृह्णन्ति, तेऽस्मान् सततं रक्षन्तु, नोचेन्मा गृह्णन्तु, वयमपि तेभ्यः करं नैव दद्याम। अतः प्रजारक्षयाणायैव करदानं दुष्कर्मिभिः सह योद्धुं च नान्यदर्थमिति निश्चयः॥१७॥

पदार्थः-**(ये)** जो **(अर्वन्तः)** ज्ञानवान् **(हवनश्रुतः)** ग्रहण करने योग्य शास्त्रों को सुनने **(वाजिनः)** प्रशंसित बुद्धिमान् **(मितद्रवः)** शास्त्रयुक्त विषय को प्राप्त होने **(सहस्रसाः)** असंख्य विद्या के विषयों को सेवने और **(सनिष्यवः)** अपने आत्मा की सुन्दर भक्ति करनेहारे राजपुरुष **(मेधसाता)** समागमों के दान से युक्त **(समिथेषु)** सङ्ग्रामों में **(नः)** हमारे बड़े **(धनम्)** ऐश्वर्य्य को **(जभ्रिरे)** धारण करें, वे **(विश्वे)** सब विद्वान् लोग हमारा **(हवम्)** पढ़ने-पढ़ाने से होने वाले योग्य बोध शब्दों और वादी-प्रतिवादियों के विवाद को **(शृण्वन्तु)** सुनें॥१७॥

भावार्थः-जो वे राजपुरुष हम लोगों से कर लेते हैं, वे हमारी निरन्तर रक्षा करें, नहीं तो न लें, हम भी

उन को कर न देवें। इस कारण प्रजा की रक्षा और दुष्टों के साथ युद्ध करने के लिये ही कर देना चाहिये, अन्य किसी प्रयोजन के लिये नहीं, यह निश्चित है॥१७॥

वाजेवाज इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। बृहस्पतिर्देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। निषादः स्वरः॥

अथैते परस्परस्मिन् कथं वर्त्तेरन्नित्युपदिश्यते॥

अब ये राजा और प्रजा के पुरुष आपस में कैसे वर्त्तें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

वाजेवाजेऽवत वाजिनो नो धनेषु विप्राऽअमृताऽऋतज्ञाः।
अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देवयानैः॥१८॥

वाजेवाज इति वाजेऽवाजे। अवत। वाजिनः। नः। धनेषु। विप्राः। अमृताः। ऋतज्ञा इत्यृतऽज्ञाः। अस्य। मध्वः। पिबत। मादयध्वम्। तृप्ताः। यात। पथिभिरिति पथिऽभिः। देवयानैरिति देवयानैः॥१८॥

पदार्थः-(**वाजेवाजे**) सङ्ग्रामे सङ्ग्रामे (**अवत**) पालयत (**वाजिनः**) वेगवन्तः (**नः**) अस्मान् (**धनेषु**) (**विप्राः**) विद्यासुशिक्षाजातप्रज्ञाः (**अमृताः**) स्वस्वरूपेण नाशरहिताः प्राप्तजीवन्मुक्तिसुखाः (**ऋतज्ञाः**) ये ऋतं सत्यं जानन्ति ते (**अस्य**) प्रत्यक्षस्य (**मध्वः**) मधुनो मधुरस्य रसस्य, अत्र कर्मणि षष्ठी (**पिबत**) (**मादयध्वम्**) हृष्यत (**तृप्ताः**) प्रीणिताः (**यात**) गच्छत (**पथिभिः**) मार्गैः (**देवयानैः**) देवा विद्वांसो यान्ति यैर्धर्म्यैः। अयं मन्त्रः (शत०(५।१।५।२४) व्याख्यातः॥१८॥

अन्वयः-हे ऋतज्ञा अमृता वाजिनो विप्राः! यूयं वाजेवाजे नोऽवत। अस्य मध्वः पिबताऽस्माकं धनैस्तृप्ताः सन्तो मादयध्वम्। देवयानैः पथिभिः सततं यात॥१८॥

भावार्थः-राजपुरुषैः वेदादीनि शास्त्राण्यधीत्य सुशिक्षया यथार्थं बोधं प्राप्य धार्म्मिकाणां विदुषां मार्गेण सदा गन्तव्यम्, नेतरेषाम्। शरीरात्मबलपालनेनैव सततमानन्दितव्यम्, प्रजाजनाः स्वधनैरेतान् सततं तर्पयन्तु॥१८॥

पदार्थः-हे (**ऋतज्ञाः**) सत्यविद्या के जाननेहारे (**अमृताः**) अपने-अपने स्वरूप से नाशरहित जीते ही मुक्तिसुख को प्राप्त (**वाजिनः**) वेगयुक्त (**विप्राः**) विद्या और अच्छी शिक्षा से बुद्धि को प्राप्त हुए विद्वान् राजपुरुषो! तुम लोग (**वाजेवाजे**) सङ्ग्राम-सङ्ग्राम के बीच (**नः**) हमारी (**अवत**) रक्षा करो (**अस्य**) इस (**मध्वः**) मधुर रस को (**पिबत**) पीओ। हमारे धनों से (**तृप्ताः**) तृप्त होके (**मादयध्वम्**) आनन्दित होओ और (**देवयानैः**) जिनमें विद्वान् लोग चलते हैं, उन (**पथिभिः**) मार्गों से सदा (**यात**) चलो॥१८॥

भावार्थः-राजपुरुषों को चाहिये कि वेदादि शास्त्रों को पढ़ और सुन्दर शिक्षा से ठीक-ठीक बोध को प्राप्त होकर, धर्मात्मा विद्वानों के मार्ग से सदा चलें, अन्य मार्ग से नहीं। तथा शरीर और आत्मा का बल बढ़ाने के लिये वैद्यक शास्त्र से परीक्षा किये और अच्छे प्रकार पकाये हुए अन्न आदि से युक्त रसों का सेवन कर प्रजा की रक्षा से ही आनन्द को प्राप्त होवें और प्रजापुरुषों को निरन्तर प्रसन्न रक्खें॥१८॥

आ मा वाजस्येत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। निचृद्धृतिश्छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

मनुष्यैर्धर्माचरणेन किं किमेष्टव्यमित्याह॥

मनुष्यों को धर्माचरण से किस-किस पदार्थ की इच्छा करनी चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

आ मा वाजस्य प्रसवो जगम्यादेमे द्यावापृथिवी विश्वरूपे।
आ मा गन्तां पितरा मातरा चा मा सोमोऽअमृतत्वेन गम्यात्।
वाजिनो वाजजितो वाजꣳ ससृवाꣳसो बृहस्पतेर्भागमवजिघ्रत निमृजानाः॥ १९॥

आ। मा। वाजस्य। प्रसव इति प्रऽसवः। जगम्यात्। आ। इमेऽइतीमे। द्यावापृथिवीऽइति द्यावापृथिवी। विश्वरूपेऽइति विश्वऽरूपे। आ। मा। गन्ताम्। पितरामातरा। च। आ। मा। सोमः। अमृतत्वेनेत्यमृतऽत्वेन। गम्यात्। वाजिनः। वाजजित इति वाजऽजितः। वाजम्। ससृवाꣳस इति ससृवाꣳसः। बृहस्पतेः। भागम्। अव। जिघ्रत। निमृजाना इति निऽमृजानाः॥ १९॥

पदार्थः-(**आ**) (**मा**) माम् (**वाजस्य**) वेदादिशास्त्रार्थप्रसूतज्ञानबोधस्य (**प्रसवः**) प्रकृष्टैश्वर्य्यसमूहः (**जगम्यात्**) भृशं प्राप्नुयात् (**आ**) (**इमे**) (**द्यावापृथिवी**) प्रकाशभूमी राज्यार्थे (**विश्वरूपम्**) विश्वानि सर्वाणि रूपाणि ययोस्ते (**आ**) (**मा**) माम् (**गन्ताम्**) प्राप्नुतः, अत्र विकरणलुक् (**पितरामातरा**) पिता च माता च ते, अत्र **पितरामातरा च च्छन्दसि।** (अष्टा०६।३।३३) इति पूर्वपदस्याऽनङ्, उत्तरपदस्याऽकारादेशश्च निपात्यते (**च**) सुसहायः (**आ**) (**मा**) माम् (**सोमः**) सोमवल्ल्याद्योषधिगणः (**अमृतत्वेन**) सर्वरोगनिवारकत्वेन सह (**गम्यात्**) प्राप्नुयात् (**वाजिनः**) प्रशस्तबलिनः (**वाजजितः**) विजितसङ्ग्रामः (**वाजम्**) सङ्ग्रामम् (**ससृवांसः**) प्राप्तवन्तः (**बृहस्पतेः**) बृहत्याः सेनायाः स्वामिनः (**भागम्**) भजनीयम् (**अव**) (**जिघ्रत**) (**निमृजानः**) नितरां शुन्धन्तः। अयं मन्त्रः (शत०(५।१।५।२६-२७) व्याख्यातः॥१९॥

अन्वयः-हे पूर्वोक्ता विद्वांसः! येषां भवतां सहायेन वाजस्य प्रसवो मा जगम्यात् समन्तात् प्राप्नुयादिमे विश्वरूपे द्यावापृथिवी चामृतत्वेन सोमो गम्यात्। पितरामातरा चागन्ताम्॥ ते वाजिनो वाजजितो वाजं ससृवांसो निमृजानाः सन्तो यूयं बृहपस्तेर्भागमवजिघ्रत॥१९॥

भावार्थः-ये मनुष्या विद्वत्सङ्गेन विद्यासुशिक्षे प्राप्य धर्ममाचरन्ति, तानिहामुत्र परमैश्वर्य्यसाधकं राज्यम्, विद्वांसौ मातापितरौ, रोगराहित्यं च प्राप्नोति। ये विदुषां सेवनं कुर्वन्ति, ते शरीरात्मबलं प्राप्ताः सन्तः सर्वाणि सुखानि प्राप्नुवन्ति, नातो विरुद्धाचरणा एतत्सर्वमाप्तुं शक्नुवन्ति॥१९॥

पदार्थः-हे पूर्वोक्त विद्वान् लोगो! जिन आप लोगों के सहाय से (**वाजस्य**) वेदादि शास्त्रों के अर्थों के बोधों का (**प्रसवः**) सुन्दर ऐश्वर्य्य (**मा**) मुझ को (**जगम्यात्**) शीघ्र प्राप्त होवे (**इमे**) ये (**विश्वरूपे**) सब रूप विषयों के सम्बन्धी (**द्यावापृथिवी**) प्रकाश और भूमि का राज्य (**च**) और (**अमृतत्वेन**) सब रोगों की निवृत्तिकारक गुण के साथ (**सोमः**) सोमवल्ली आदि ओषधि विज्ञान मुझको प्राप्त हो और (**पितरामातरा**) विद्यायुक्त पिता-माता मुझको (**आगन्ताम्**) प्राप्त होवें, वे आप (**वाजिनः**) प्रशंसित बलवान् (**वाजजितः**) सङ्ग्राम के जीतने वाले (**वाजम्**) सङ्ग्राम को प्राप्त होते हुए (**निमृजानाः**) निरन्तर शुद्ध हुए तुम लोग (**बृहस्पतेः**) बड़ी सेना के स्वामी के (**भागम्**) सेवने योग्य भाग को (**अवजिघ्रत**) निरन्तर प्राप्त होओ॥१९॥

भावार्थः-जो मनुष्य विद्वान् के साथ विद्या और उत्तम शिक्षा को प्राप्त हो के धर्म का आचरण करते हैं, उन को इस लोक और परलोक में परमैश्वर्य का साधक राज्य, विद्वान् माता-पिता और नीरोगता प्राप्त होती है। जो पुरुष विद्वानों का सेवन करते हैं, वे शरीर और आत्मा की शुद्धि को प्राप्त हुए सब सुखों को भोगते हैं। इससे विरुद्ध चलनेहारे नहीं॥१९॥

आपय इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। भुरिक्कृतिश्छन्दः। निषादः स्वरः॥

विद्यासुशिक्षितया वाचा मनुष्याणां किं किं प्राप्नोतीत्याह॥

विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त वाणी से मनुष्यों को क्या-क्या प्राप्त होता है, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

आपये स्वाहा स्वापये स्वाहाऽपिजाय स्वाहा क्रतवे स्वाहा वसवे स्वाहाहर्पतये स्वाहाह्ने मुग्धाय स्वाहा मुग्धाय वैनंशिनाय स्वाहा विनंशिनऽआन्त्यायनाय स्वाहाऽनन्त्याय भौवनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहाऽधिपतये स्वाहा॥२०॥

आपये। स्वाहा। स्वापय इति सुऽआपये। स्वाहा। अपिजायेत्यपिऽजाय। स्वाहा। क्रतवे। स्वाहा। वसवे। स्वाहा। अहर्पतये। अहःऽपतय इत्यहःऽपतये। स्वाहा। अह्ने। मुग्धाय। स्वाहा। मुग्धाय। वैनंशिनाय। स्वाहा। विनंशिन इति विनंशिने। आन्त्यायनायेत्यान्त्यऽआयनाय। स्वाहा। आन्त्याय। भौवनाय। स्वाहा। भुवनस्य। पतये। स्वाहा। अधिपतय इत्यधिऽपतये। स्वाहा॥२०॥

पदार्थः-(**आपये**) सकलविद्याव्याप्तये (**स्वाहा**) सत्या क्रिया (**स्वापये**) सुखानां सुष्ठु प्राप्तये (**स्वाहा**) धर्म्या क्रिया (**अपिजाय**) निश्चयेन जायमानाय (**स्वाहा**) पुरुषार्थयुक्ता क्रिया (**क्रतवे**) प्रज्ञायै (**स्वाहा**) अध्ययनाध्यापनप्रवर्त्तिका क्रिया (**वसवे**) विद्यानिवासाय (**स्वाहा**) सत्यां वाणीम् (**अहर्पतये**) पुरुषार्थेन गणितविद्यया दिवसपालकाय (**स्वाहा**) कालविज्ञापिका वाणी (**अह्ने**) दिनाय (**मुग्धाय**) प्राप्तमोहनिमित्ताय (**स्वाहा**) विज्ञानयुक्ता वाक् (**मुग्धाय**) मूर्खाय (**वैनंशिनाय**) विनाशशीलेषु कर्मसु भवाय (**स्वाहा**) चेतयित्रीं वाणीम् (**विनंशिने**) विनष्टुं शीलाय (**आन्त्यायनाय**) अन्त्यं नीचमयनं प्रापणं यस्य तस्मै (**स्वाहा**) नष्टकर्मनिवारिका वाणी (**आन्त्याय**) अन्ते भवाय (**भौवनाय**) भुवनेषु प्रभवाय (**स्वाहा**) पदार्थविज्ञापिका वाक् (**भुवनस्य**) संसारस्य (**पतये**) स्वामिन ईश्वराय (**स्वाहा**) योगविद्याजनिता प्रज्ञा (**अधिपतये**) सर्वाधिष्ठातॄणामुपरि वर्त्तमानाय (**स्वाहा**) सर्वव्यवहारविज्ञापिका वाक्। अयं मन्त्रः (शत०(५।२।१।२) व्याख्यातः॥२०॥

अन्वयः-हे विद्वांसः! यूयं यथा मामापये स्वाहा स्वापये स्वाहाऽपिजाय स्वाहा क्रतवे स्वाहा वसवे स्वाहाऽहर्पतये स्वाहा मुग्धायाह्ने स्वाहा मुग्धाय वैनंशिनाय स्वाहा। आन्त्यायनाय विनंशिने स्वाहाऽऽन्त्याय भौवनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहाऽधिपतये च स्वाहा प्राप्नुयात् तथा प्रयतध्वम्॥२०॥

भावार्थः-मनुष्यैः सकलविद्याप्राप्त्यादिप्रयोजनाय विद्यासुशिक्षायुक्ता वाणी प्राप्तव्याः, यतः सर्वाणि सुखानि प्राप्नुयुः॥२०॥

पदार्थः-हे विद्वानो! तुम लोग जैसे मुझको (**आपये**) सम्पूर्ण विद्या की प्राप्ति के लिये (**स्वाहा**) सत्य

क्रिया **(स्वापये)** सुखों की अच्छी प्राप्ति के वास्ते **(स्वाहा)** धर्मयुक्त क्रिया **(क्रतवे)** बुद्धि बढ़ाने के लिये **(स्वाहा)** पढ़ाने की प्रवृत्ति करानेहारी क्रिया **(अपिजाय)** निश्चय करके प्रकट होने के लिये **(स्वाहा)** पुरुषार्थ क्रिया **(वसवे)** विद्यानिवास के लिये **(स्वाहा)** सत्य वाणी **(अहर्पतये)** पुरुषार्थपूर्वक गणितविद्या से दिन पालने के लिये **(स्वाहा)** कालगति को जाननेहारी वाणी **(मुग्धाय)** मोहप्राप्ति के निमित्त **(अह्ने)** दिन होने के लिये **(स्वाहा)** विज्ञानयुक्त वाणी **(वैनंशिनाय)** नष्टस्वभावयुक्त कर्मों में रहनेहारे **(मुग्धाय)** मूर्ख के लिये **(स्वाहा)** चिताने वाले वाणी **(आन्त्यायनाय)** नीच प्राप्ति वाले **(विनंशिने)** नष्टस्वभावयुक्त पुरुष के लिये **(स्वाहा)** नष्ट-भ्रष्ट कर्मों का निवारण करनेहारी वाणी **(आन्त्याय)** अधोगति में होने वाले **(भौवनाय)** लोगों के बीच समर्थ पुरुष के लिये **(स्वाहा)** पदार्थों की जाननेहारी वाणी **(भुवनस्य पतये)** संसार के स्वामी ईश्वर के लिये **(स्वाहा)** योगविद्या को प्रकट करनेहारी बुद्धि और **(अधिपतये)** सब अधिष्ठाताओं के ऊपर रहने वाले पुरुष के लिये **(स्वाहा)** सब व्यवहारों को जनानेहारी वाणी **(गम्यात्)** प्राप्त होवे, वैसा प्रयत्न आलस्य छोड़ के किया करो॥२०॥

भावार्थ:-मनुष्यों को चाहिये कि सब विद्याओं की प्राप्ति आदि प्रयोजनों के लिये विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त वाणी को प्राप्त होवें कि जिससे सब सुख सदा मिलते रहें॥२०॥

आयुर्यज्ञेनेत्यस्य वसिष्ठ ऋषि:। यज्ञो देवता। अत्यष्टिश्छन्द:। गान्धार: स्वर:॥

अथ मनुष्यान् प्रतीश्वर आहेत्युपदिश्यते॥

पुन: मनुष्यों के प्रति ईश्वर उपदेश करता है, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पताᳬं श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पताम्। प्रजापते: प्रजाऽअभूम स्वर्देवाऽअगन्मामृताऽअभूम॥२१॥

आयु:। यज्ञेन। कल्पताम्। प्राण:। यज्ञेन। कल्पताम्। चक्षु:। यज्ञेन। कल्पताम्। श्रोत्रम्। यज्ञेन। कल्पताम्। पृष्ठम्। यज्ञेन। कल्पताम्। यज्ञ:। यज्ञेन। कल्पताम्। प्रजापतेरिति प्रजाऽपते:। प्रजा इति प्रऽजा:। अभूम। स्व:। देवा:। अगन्म। अमृता:। अभूम॥२१॥

पदार्थ:-**(आयु:)** जीवनम् **(यज्ञेन)** धर्म्येणेश्वराज्ञापालनेन **(कल्पताम्)** समर्थताम् **(प्राण:)** जीवनहेतुर्बलकारी **(यज्ञेन)** धर्म्येण विद्याभ्यासेन **(कल्पताम्)** **(चक्षु:)** चष्टेऽनेन तत् **(यज्ञेन)** शिष्टाचरितेन प्रत्यक्षविषयेण **(कल्पताम्)** **(श्रोत्रम्)** शृणोति येन तत् **(यज्ञेन)** शब्दप्रमाणाभ्यासेन **(कल्पताम्)** **(पृष्ठम्)** प्रच्छन्नम् **(यज्ञेन)** संवादाख्येन **(कल्पताम्)** **(यज्ञ:)** यजधातोरर्थ: **(यज्ञेन)** ब्रह्मचर्याद्याचरणेन **(कल्पताम्)** **(प्रजापते:)** विश्वम्भरस्य जगदीश्वरस्येव धार्मिकस्य राज्ञ: **(प्रजा:)** तदधीनपालना: **(अभूम)** भवेम **(स्व:)** सुखम् **(देवा:)** विद्वांस: **(अगन्म)** प्राप्नुयाम **(अमृता:)** प्राप्तमोक्षसुखा: **(अभूम)** भवेम। अयं मन्त्र: (शत०(५। २। १। ४) व्याख्यात:॥२१॥

अन्वय:-हे मनुष्या:! युष्माकमायु: सततं यज्ञेन कल्पताम्, प्राणो यज्ञेन कल्पताम्, चक्षुर्यज्ञेन कल्पताम्, श्रोत्रं यज्ञेन कल्पताम्, पृष्ठं यज्ञेन कल्पताम्, यथा वयं प्रजापते: प्रजा अभूम, देवा: सन्तोऽमृता अभूम स्वरगन्मेति, तथा यूयं निश्चिनुत॥२१॥

भावार्थ:-ईश्वर: सर्वान् मनुष्यानिदमाज्ञापयति यूयं मत्सदृशस्य सत्यगुणकर्म्मस्वभावस्यैव प्रजा भवतेतरस्य

क्षुद्राऽऽशयस्य च कदाचित् प्रजाभावं मा स्वीकुरुत। यथा मां न्यायाधीशं मत्वा मदाज्ञायां वर्त्तित्वा सर्वं स्वं धर्मेण सहचरितं कृत्वाऽऽभ्युदयिकनिश्श्रेयसे सुखे नित्यं प्राप्नुत:, तथा यो हि धर्मेण न्यायेन युष्मान् निरन्तरं पालयेत् तं च सभेशं राजानं मन्यध्वम्॥२१॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! तुम्हारी **(आयु:)** अवस्था **(यज्ञेन)** ईश्वर की आज्ञा पालन से निरन्तर **(कल्पताम्)** समर्थ होवे **(प्राण:)** जीवन का हेतु बलकारी प्राण **(यज्ञेन)** धर्मयुक्त विद्याभ्यास से **(कल्पताम्)** समर्थ होवे **(चक्षु:)** नेत्र **(यज्ञेन)** प्रत्यक्ष के विषय शिष्टाचार से **(कल्पताम्)** समर्थ हो **(श्रोत्रम्)** कान **(यज्ञेन)** वेदाभ्यास से **(कल्पताम्)** समर्थ हो और **(पृष्ठम्)** पूछना **(यज्ञेन)** संवाद से **(कल्पताम्)** समर्थ हो, **(यज्ञ:)** यज धातु का अर्थ **(यज्ञेन)** ब्रह्मचर्यादि के आचरण से **(कल्पताम्)** समर्थित हो, जैसे हम लोग **(प्रजापते:)** सब के पालनेहारे ईश्वर के समान धर्मात्मा राजा के **(प्रजा:)** पालने योग्य सन्तानों के सदृश **(अभूम)** होवें तथा **(देवा:)** विद्वान् हुए **(अमृता:)** जीवन-मरण से छूटे **(अभूम)** हों **(स्व:)** मोक्षसुख को **(अगन्म)** अच्छे प्रकार प्राप्त होवें॥२१॥

भावार्थ:-मैं ईश्वर सब मनुष्यों को आज्ञा देता हूं कि तुम लोग मेरे तुल्य धर्मयुक्त गुण, कर्म और स्वभाव वाले पुरुष ही की प्रजा होओ, अन्य किसी मूर्ख, क्षुद्राशय पुरुष की प्रजा होना स्वीकार कभी मत करो। जैसे मुझ को न्यायधीश मान मेरी आज्ञा में वर्त और अपना सब कुछ धर्म के साथ संयुक्त करके इस लोक और परलोक के सुख को नित्य प्राप्त होते रहो, वैसे जो पुरुष धर्मयुक्त न्याय से तुम्हारा निरन्तर पालन करे, उसी को सभापति राजा मानो॥२१॥

अस्मे इत्यस्य वसिष्ठ ऋषि:। दिशो देवता:। निचृदत्यष्टिश्छन्द:। गान्धार: स्वर:॥

ईश्वराज्ञातो मनुष्यैरिह कथं वर्त्तितव्यमित्युपदिश्यते॥

ईश्वर की आज्ञा के अनुकूल मनुष्यों को संसार में कैसे वर्तना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अस्मे वोऽअस्त्विन्द्रियमस्मे नृम्णमुत क्रतुरस्मे वर्चांᳪसि सन्तु व:।
नमो मात्रे पृथिव्यै नमो मात्रे पृथिव्याऽइयं ते राड्यन्तासि यमनो ध्रुवोऽसि धरुण:।
कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा॥२२॥

अस्मेऽइत्यस्मे। व:। अस्तु। इन्द्रियम्। अस्मेऽइत्यस्मे। नृम्णम्। उत। क्रतु:। अस्मेऽइत्यस्मे। वर्चांᳪसि। सन्तु। व:। नम:। मात्रे। पृथिव्यै। नम:। मात्रे। पृथिव्यै। इयम्। ते। राट्। यन्ता। असि। यमन:। ध्रुव:। असि। धरुण:। कृष्यै। त्वा। क्षेमाय। त्वा। रय्यै। त्वा। पोषाय। त्वा॥२२॥

पदार्थ:-**(अस्मे)** अस्माकमस्मभ्यं वा **(व:)** युष्माकं युष्मभ्यं वा **(अस्तु)** भवतु **(इन्द्रियम्)** मन आदीनि **(अस्मे)** **(नृम्णम्)** धनम् **(उत)** अपि **(क्रतु:)** प्रज्ञा कर्म वा **(अस्मे)** **(वर्चांसि)** प्रकाशमानाध्ययनानि। **वर्च इत्यन्ननामसु पठितम्।** (निघं०२।७) **(सन्तु)** **(व:)** युष्माकं युष्मभ्यं वा **(नम:)** अन्नादिकम् **(मात्रे)** मान्यनिमित्तायै **(पृथिव्यै)** विस्तृतायै भूमये **(नम:)** जलादिकम् **(मात्रे)** **(पृथिव्यै)** **(इयम्)** **(ते)** तव **(राट्)** राजमाना **(यन्ता)** नियन्ता **(असि)** **(यमन:)** उपयन्ता **(ध्रुव:)** निश्चल: **(असि)** **(धरुण:)** धर्त्ता **(कृष्यै)** कृषन्ति विलिखन्ति भूमिं यया

तस्यै **(त्वा)** त्वाम् **(क्षेमाय)** रक्षणाय **(त्वा)** **(रय्यै)** श्रियै **(त्वा)** **(पोषाय)** पुष्टये **(त्वा)**॥ अयं मन्त्रः (शत०(५।२।१।१५-२५) व्याख्यातः॥२२॥

अन्वयः-हे मनुष्याऽहमीश्वरः कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा नियुञ्जामि, यस्त्वं ध्रुवो यन्तासि धरुणो यमनोऽसि यस्य ते तवेयं राडस्ति। अस्यै मात्रे पृथिव्यै नमोऽस्यै मात्रे पृथिव्यै नमो विधेहि। सर्वे यूयं यदस्मे इन्द्रियं तद्वोऽस्तु, यदस्मे नृम्णं तद्वोऽस्तु, उतापि योऽस्मे क्रतुः स वोऽस्तु। यान्यस्माकं वर्चांसि तानि वः सन्तु। यदेतत्सर्वं वोऽस्तु तदस्माकमस्त्वित्येवं परस्परं यूयं समाचरत॥२२॥

भावार्थः-मनुष्यान् प्रतीश्वरस्येमाज्ञाऽस्ति भवन्तः सदैव सत्कर्मसु प्रयतन्ताम्, आलस्यं मा कुर्वताम्, पृथिव्याः सकाशादन्नादीन्युत्पाद्य संरक्ष्यैतत्सर्वं परस्परमुपकाराय यथा स्यात् तथा तद्धितं विदधताम्॥२२॥

पदार्थः-हे मनुष्य! मैं ईश्वर **(कृष्यै)** खेती के लिये **(त्वा)** तुझे **(क्षेमाय)** रक्षा के लिये **(त्वा)** तुझे **(रय्यै)** सम्पत्ति के लिये **(त्वा)** तुझे और **(पोषाय)** पुष्टि के लिये **(त्वा)** तुझ को नियुक्त करता हूं। जो तू **(ध्रुवः)** दृढ़ **(यन्ता)** नियमों से चलनेहारा **(असि)** है, **(धरुणः)** धारण करने वाला **(यमनः)** उद्योगी **(असि)** है, जिस **(ते)** तेरी **(इयम्)** यह **(राट्)** शोभायुक्त है, इस **(मात्रे)** मान्य की हेतु **(पृथिव्यै)** पृथिवीयुक्त भूमि से **(नमः)** अन्नादि पदार्थ प्राप्त हों, इस **(मात्रे)** मान्य देने हारी **(पृथिव्यै)** पृथिवी को अर्थात् भूगर्भविद्या को जानके इससे **(नमः)** अन्न जलादि पदार्थ प्राप्त कर तुम सब लोग परस्पर ऐसे कहो और वर्त्तो कि जो **(अस्मे)** हमारे **(इन्द्रियम्)** मन आदि इन्द्रिय हैं, वे **(वः)** तुम्हारे लिये हों, जो **(अस्मे)** हमारा **(नृम्णम्)** धन है, वह **(वः)** तुम्हारे लिये हो **(उत)** और जो **(अस्मे)** हमारे **(क्रतुः)** बुद्धि वा कर्म हैं, वे **(वः)** तुम्हारे हित के लिये हों, जो हमारे **(वर्चांसि)** पढ़ा-पढ़ाया और अन्न हैं, वे **(वः)** तुम्हारे लिये **(सन्तु)** हों, जो यह सब तुम्हारा है, वह हमारा भी हो, ऐसा आचरण आपस में करो॥२२॥

भावार्थः-मनुष्यों के प्रति ईश्वर की यह आज्ञा है कि तुम लोग सदैव पुरुषार्थ में प्रवृत्त रहो और आलस्य मत करो और जो पृथिवी से अन्न आदि उत्पन्न हों, उनकी रक्षा करके यह सब जिस प्रकार परस्पर उपकार के लिये हो, वैसा यत्न करो। कभी विरोध मत करो, कोई अपना कार्य्य सिद्ध करे, उसका तुम भी किया करो॥२२॥

वाजस्येत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तैरत्र कथं भवितव्यमित्याह॥

फिर उन को इस विषय में कैसा होना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

वाज॑स्ये॒मं प्र॑स॒वः सु॑षुवेऽग्रे॒ सोम॒ꣳ राजा॑न॒मोष॑धीष्व॒प्सु।

ताऽअ॒स्मभ्यं॒ मधु॑मतीर्भवन्तु व॒यꣳ रा॒ष्ट्रे जा॑गृयाम पु॒रोहि॑ताः॒ स्वाहा॑॥२३॥

वाज॑स्यः। इ॒मम्। प्र॒स॒व इति॒ प्रऽस॒वः। सु॒षु॒वे। सु॒सु॒व इति सुसुवे। अग्रे॑। सोम॑म्। राजा॑नम्। ओष॑धीषु। अ॒प्स्वित्य॒प्ऽसु। ताः। अ॒स्मभ्य॑म्। मधु॑मती॒रिति॒ मधु॑ऽमतीः। भ॒व॒न्तु॒। व॒यम्। रा॒ष्ट्रे। जा॒गृ॒या॒म॒। पु॒रोहि॑ता॒ इति॑ पु॒रःऽहि॑ताः। स्वाहा॑॥२३॥

पदार्थः-**(वाजस्य)** बोधस्य सकाशात् **(इमम्)** **(प्रसवः)** ऐश्वर्य्ययुक्तः **(सुषुवे)** प्रसुव उत्पादये **(अग्रे)** पूर्वम् **(सोमम्)** सोममिव सर्वदुःखप्रणाशकं **(राजानम्)** विद्यान्यायविनयैः प्रकाशमानं स्वामिनम् **(ओषधीषु)** पृथिवीस्थासु यवादिषु **(अप्सु)** जलेषु वर्त्तमानाः **(ताः)** **(अस्मभ्यम्)** **(मधुमतीः)** प्रशस्ता मधवो मधुरादयो गुणा

विद्यन्ते यासु ताः **(भवन्तु)** **(वयम्)** अमात्यादयो भृत्याः **(राष्ट्रे)** राज्ये **(जागृयाम)** सचेतना अनलसाः सन्तो वर्त्तेमहि **(पुरोहिताः)** सर्वेषां हितकारिणः **(स्वाहा)** सत्यया क्रियया सह॥ अयं मन्त्रः (शत०(५। २। २। ५) व्याख्यातः॥२३॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथाऽहमग्रे प्रसवः सन् वाजस्येमं सोमं राजानं सुषुवे, यथा तद्रक्षणेन या ओषधीष्वप्स्वोषधयः सन्ति, ताः अस्मभ्यं मधुमतीर्भवन्तु। यथा स्वाहा पुरोहिता वयं राष्ट्रे सततं तथा यूयमपि वर्त्तध्वम्॥२३॥

भावार्थः-शिष्टा मनुष्याः सर्वविद्याचातुर्य्यारोग्यसहितं सोम्यादिगुणालङ्कृतं राजानं संस्थाप्य तद्रक्षको वैद्य एवं प्रवर्त्तेत, यथाऽस्य शरीरे बुद्धावात्मनि च रोगावेशो न स्यात्। इत्थमेव राजवैद्यौ सर्वानमात्यादीन् भृत्यानरोगान् सम्पादयेताम्। यत एते राज्यस्थसज्जनपालने दुष्टताडने सदा प्रयतेरन्, राजा प्रजा च पिता पुत्रवत् सदा वर्त्तेयाताम्॥२३॥

पदार्थः-हे मनुष्य लोगो! जैसे मैं **(अग्रे)** प्रथम **(प्रसवः)** ऐश्वर्य्ययुक्त होकर **(वाजस्य)** वैद्यकशास्त्र बोधसम्बन्धी **(इमम्)** इस **(सोमम्)** चन्द्रमा के समान सब दुःखों के नाश करनेहारे **(राजानम्)** विद्या न्याय और विनयों से प्रकाशमान राजा को **(सुषुवे)** ऐश्वर्य्ययुक्त करता हूं, जैसे उसकी रक्षा में **(ओषधीषु)** पृथिवी पर उत्पन्न होने वाली यव आदि ओषधियों और **(अप्सु)** जलों के बीच में वर्त्तमान ओषधी हैं, **(ताः)** वे **(अस्मभ्यम्)** हमारे लिये **(मधुमतीः)** प्रशस्त मधुर वाणी वाली **(भवन्तु)** हों, जैसे **(स्वाहा)** सत्य क्रिया के साथ **(पुरोहिताः)** सब के हितकारी हम लोग **(राष्ट्रे)** राज्य में निरन्तर **(जागृयाम)** आलस्य छोड़ के जागते रहें, वैसे तुम भी वर्ता करो॥२३॥

भावार्थः-शिष्ट मनुष्यों की योग्य है कि सब विद्याओं को चतुराई, रोगरहित और सुन्दर गुणों में शोभायमान पुरुष को राज्यधिकार देकर, उसकी रक्षा करने वाला वैद्य ऐसा प्रयत्न करे कि जिससे इसके शरीर बुद्धि और आत्मा में रोग का आवेश न हो। इसी प्रकार राजा और वैद्य दोनों सब मन्त्री आदि भृत्यों और प्रजाजनों को रोगरहित करें। जिससे ये राज्य के सज्जनों के पालने और दुष्टों के ताड़ने में प्रयत्न करते रहें, राजा और प्रजा के पुरुष परस्पर पिता पुत्र के समान सदा वर्त्तें॥२३॥

वाजस्येमामित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

राजा किमाश्रित्य केन किं कुर्य्यादित्युपदिश्यते॥

राजा किसका आश्रय लेकर किसके साथ क्या करे, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

वाज॑स्ये॒मां प्र॑स॒वः शि॑श्रिये॒ दिव॑मि॒मा च॒ विश्वा॒ भुव॑नानि स॒म्राट्।

अदि॑त्सन्तं दापयति प्रजा॒नन्त्स नो॑ र॒यिꣳ सर्व॑वीरं॒ निय॑च्छतु॒ स्वाहा॑॥२४॥

वाज॑स्य। इ॒माम्। प्र॒स॒व इति॑ प्रऽस॒वः। शि॒श्रि॒ये॒। दिव॑म्। इ॒मा। च॒। विश्वा॑। भुव॑नानि। स॒म्राडिति॑ स॒म्ऽराट्। अदि॑त्सन्तम्। दा॒प॒य॒ति॒। प्र॒जा॒नन्निति॑ प्रऽजा॒नन्। सः। नः॒। र॒यिम्। सर्व॑वीर॒मिति॒ सर्व॑ऽवीर॒म्। नि। य॒च्छ॒तु॒। स्वाहा॑॥२४॥

पदार्थः-**(वाजस्य)** राज्यस्य **(इमाम्)** भूमिम् **(प्रसवः)** प्रसूताः **(शिश्रिये)** समाश्रये **(दिवम्)** देदीप्यमानां राजनीतिम् **(इमा)** इमानि **(च)** **(विश्वा)** सर्वाणि **(भुवनानि)** गृहाणि **(सम्राट्)** यो राजधर्मे सम्यग्राजते सः **(अदित्सन्तम्)** राजकरं दातुमनिच्छन्तम् **(दापयति)** **(प्रजानन्)** प्रज्ञावान् सन् **(सः)** **(नः)** अस्माकं प्रजास्थानाम्

(रयिम्) धनम् **(सर्ववीरम्)** सर्वे वीरा यस्मात्तत् **(नि)** नितराम् **(यच्छतु)** गृह्णातु **(स्वाहा)** धर्म्यया वाचा। अयं मन्त्रः (शत० (५।२।२।६) व्याख्यातः॥२४॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा वाजस्य मध्ये प्रसवः सम्राडहमिमां दिवमिमा विश्वा भुवनानि च शिश्रिये, तथा यूयमप्येनमेतानि चाश्रयत। यः स्वाहा प्रजानन्नदित्सन्तं दापयति, स नः सर्ववीरं रयिं नियच्छतु॥२४॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यो मूलस्य राज्यस्य मध्ये सनातनीं राजनीतिं विदित्वा राज्यं संरक्षितुं शक्नुयात्, तमेव चक्रवर्तिनं राजानं कुरुत। यः करस्यादातुः करं दापयेत्, सोऽमात्यो भवितुमर्हेत। यः शत्रून् निग्रहीतुं शक्नुयात्, तं सेनापतिं कुरुत। यो विद्वान् धार्मिको भवेत् तं न्यायाधीशं कोशाध्यक्षं वा कुरुत॥२४॥

पदार्थः-हे मनुष्य लोगो! जैसे **(वाजस्य)** राज्य के मध्य में **(प्रसवः)** उत्पन्न हुए **(सम्राट्)** अच्छे प्रकार राजधर्म में प्रवर्त्तमान मैं **(इमाम्)** इस भूमि को **(दिवम्)** प्रकाशित और **(इमा)** इन **(विश्वा)** सब और **(भुवनानि)** घरों को **(शिश्रिये)** अच्छे प्रकार आश्रय करता हूं, वैसे तुम भी इस को अच्छे प्रकार शोभित करो और जो **(स्वाहा)** धर्म्मयुक्त सत्यवाणी से **(प्रजानन्)** जानता हुआ **(अदित्सन्तम्)** राज्यकर देने की इच्छा न करने वाले से **(दापयति)** दिलाता है, **(सः)** सो **(नः)** हमारे **(सर्ववीरम्)** सब वीरों को प्राप्त करानेहारे **(रयिम्)** धन को **(नियच्छतु)** ग्रहण करे॥२४॥

भावार्थः-हे मनुष्य लोगो! मूल राज्य के बीच सनातन राजनीति को जान कर, जो राज्य की रक्षा करने को समर्थ हो, उसी को चक्रवर्त्ती राजा करो और जो कर देने वालों से कर दिलावे, वह मन्त्री होने को योग्य होवे। जो शत्रुओं को बांधने में समर्थ हो, उसे सेनापति नियुक्त करो और जो विद्वान् धार्मिक हो, उसे न्यायाधीश वा कोषाध्यक्ष करो॥२४॥

वाजस्य न्वित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुना राजा कीदृशो भवेदित्याह॥

फिर राजा कैसा हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

वाजस्य नु प्रसव आबभूवेमा च विश्वा भुवनानि सर्वतः।
सनेमि राजा परियाति विद्वान् प्रजां पुष्टिं वर्धयमानोऽअस्मे स्वाहा॥२५॥

वाजस्य। नु। प्रसव इति प्रऽसवः। आ। बभूव। इमा। च। विश्वा। भुवनानि। सर्वतः। सनेमि। राजा। परि। याति। विद्वान्। प्रजामिति प्रऽजाम्। पुष्टिम्। वर्धयमानः। अस्मेऽइत्यस्मे। स्वाहा॥२५॥

पदार्थः-**(वाजस्य)** वेदादिशास्त्रोत्पन्नबोधस्य **(नु)** शीघ्रम् **(प्रसवः)** य प्रसूते सः **(आ)** समन्तात् **(बभूव)** भवेत् **(इमा)** इमानि **(च)** **(विश्वा)** सर्वाणि **(भुवनानि)** माण्डलिकराजनिवासस्थानानि **(सर्वतः)** **(सनेमि)** सनातनेन नेमिना धर्मेण सह वर्त्तमानं राज्यमण्डलम् **(राजा)** वेदोक्तराजगुणैः प्रकाशमानः **(परि)** **(याति)** प्राप्नोति **(विद्वान्)** सकलविद्यावित् **(प्रजाम्)** पालनीयाम् **(पुष्टिम्)** पोषणम् **(वर्धयमानः)** **(अस्मे)** अस्माकम् **(स्वाहा)** सत्यया नीत्या। अयं मन्त्रः (शत०(५।२।२।७) व्याख्यातः॥२५॥

अन्वयः-यो वाजस्य स्वाहा प्रसवो विद्वानाबभूवेमा विश्वा भुवनानि सनेमि च प्रजां पुष्टिं नु वर्धयमानः परियाति, सो अस्मे राजा भवतु॥२५॥

भावार्थः-ईश्वरोऽभिवदति- हे मनुष्या! यूयं प्रशंसितगुणकर्मस्वभावो राज्यं रक्षितुं समर्थो भवेत् तं सभाध्यक्षं कृत्वाऽऽप्तनीत्या साम्राज्यं कुरुतेति॥ २५॥

पदार्थः-जो **(वाजस्य)** वेदादि शास्त्रों से उत्पन्न बोध को **(स्वाहा)** सत्यनीति से **(प्रसवः)** प्राप्त होकर **(विद्वान्)** सम्पूर्ण विद्या को जानने वाला पुरुष **(आ)** अच्छे प्रकार **(बभूव)** होवे **(च)** और **(इमा)** इन **(विश्वा)** सब **(भुवनानि)** माण्डलिक राजनिवास स्थानों और **(सनेमि)** सनातन नियम धर्मसहित वर्त्तमान **(प्रजाम्)** पालने योग्य प्रजाओं को **(पुष्टिम्)** पोषण **(नु)** शीघ्र **(वर्धयमानः)** बढ़ाता हुआ **(परि)** सब ओर से **(याति)** प्राप्त होता है, वह **(अस्मे)** हम लोगों का राजा होवे॥ २५॥

भावार्थः-ईश्वर सब को उपदेश करता है कि हे मनुष्य लोगो! तुम जो प्रशंसित गुण, कर्म, स्वभाव वाला, राज्य की रक्षा में समर्थ हो, उसको सभाध्यक्ष करके आप्तनीति से चक्रवर्त्ती राज्य करो॥ २५॥

सोममित्यस्य तापस ऋषिः। सोमाग्न्यादित्यविष्णुसूर्य्यबृहस्पतयो देवताः। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनः कीदृशं राजानं स्वीकुर्य्युरित्युपदिश्यते॥

फिर कैसे राजा को स्वीकार करें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

सोमꣳ राजानमवसेऽग्निमन्वारभामहे।

आदित्यान् विष्णुꣳ सूर्य्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिꣳ स्वाहा॥ २६॥

सोमम्। राजानम्। अवसे। अग्निम्। अन्वारभामह इत्यनुऽआरभामहे। आदित्यान्। विष्णुम्। सूर्यम्। ब्रह्माणम्। च। बृहस्पतिम्। स्वाहा॥ २६॥

पदार्थः-**(सोमम्)** सोमगुणसम्पन्नम् **(राजानम्)** धर्माचरणेन प्रकाशमानम् **(अवसे)** रक्षणाद्याय **(अग्निम्)** अग्निमिव शत्रुदाहकम् **(अन्वारभामहे)** **(आदित्यान्)** विद्याऽर्जनाय कृताऽष्टचत्वारिंशद्वर्षब्रह्मचर्य्यान् विदुषः **(विष्णुम्)** व्यापकं परमेश्वरम् **(सूर्य्यम्)** सूरिषु विद्वत्सु भवम् **(ब्रह्माणम्)** अधीतसाङ्गोपाङ्गचतुर्वेदम् **(च)** **(बृहस्पतिम्)** बृहतामाप्तानां पालकम् **(स्वाहा)** सत्यया वाण्या॥ २६॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा वयं स्वाहाऽवसे सह वर्त्तमानं विष्णुं सूर्य्यं ब्रह्माणं बृहस्पतिमग्निं सोमं राजानमादित्याँश्चान्वारभामहे तथा यूयमप्यारभध्वम्॥ २६॥

भावार्थः-ईश्वराज्ञाऽस्ति सर्वे मनुष्या रक्षणाद्याय ब्रह्मचर्य्यादिना विद्यापारगान् विदुषस्तन्मध्य उत्तमं सूर्य्यादिगुणसम्पन्नं राजानं च स्वीकृत्य सत्यां नीतिं वर्धयन्त्विति॥ २६॥

पदार्थः-हे मनुष्य लोगो! जैसे हम लोग **(स्वाहा)** सत्यवाणी से **(अवसे)** रक्षा आदि के अर्थ **(विष्णुम्)** व्यापक परमेश्वर **(सूर्य्यम्)** विद्वानों में सूर्य्यवद् विद्वान् **(ब्रह्माणम्)** साङ्गोपाङ्ग चार वेदों को पढ़ने वाले **(बृहस्पतिम्)** बड़ों के रक्षक **(अग्निम्)** अग्नि के समान शत्रुओं को जलाने वाले **(सोमम्)** शान्त गुणसम्पन्न **(राजानम्)** धर्माचरण से प्रकाशमान राजा और **(आदित्यान्)** विद्या के लिये जिसने अड़तालीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य्य रहकर पूर्ण विद्या पढ़, सूर्यवत् प्रकाशमान विद्वानों के सङ्ग से विद्या पढ़ के गृहाश्रम का **(अन्वारभामहे)** आरम्भ करें, वैसे तुम भी किया करो॥ २६॥

भावार्थः-ईश्वर की आज्ञा है कि सब मनुष्य रक्षा आदि के लिये ब्रह्मचर्य्य व्रतादि से विद्या के पारगन्ता विद्वानों के बीच, जिसने अड़तालीस वर्ष ब्रह्मचर्य्य व्रत किया हो, ऐसे राजा को स्वीकार करके सच्ची नीति को बढ़ावें॥२६॥

अर्य्यमणमित्यस्य तापस ऋषिः। अर्य्यमादिमन्त्रोक्ता देवताः। स्वराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुना राजा कान् कस्मिन् प्रेरयेदित्याह॥

फिर राजा किनको किसमें प्रेरणा करे, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अ॒र्य॒मणं॒ बृह॒स्पति॒मिन्द्रं॒ दाना॑य चोदय।

वाचं॒ विष्णु॒ꣳ सर॑स्वतीꣳ सवि॒तारं॑ च वा॒जिन॒ꣳ स्वाहा॑॥२७॥

अ॒र्य्य॒मण॑म्। बृह॒स्पति॑म्। इन्द्र॑म्। दाना॑य। चो॒द॒य॒। वाच॑म्। विष्णु॑म्। सर॑स्वतीम्। स॒वि॒तार॑म्। च॒। वा॒जिन॑म्। स्वाहा॑॥२७॥

पदार्थः-(**अर्यमणम्**) पक्षपातराहित्येन न्यायकर्त्तारम् (**बृहस्पतिम्**) सकलविद्याध्यापकम् (**इन्द्रम्**) परमैश्वर्य्ययुक्तम् (**दानाय**) (**चोदय**) प्रेरय (**वाचम्**) वेदवाणीम् (**विष्णुम्**) सर्वाधिष्ठातारम् (**सरस्वतीम्**) बहुविधं सरो वेदादिशास्त्रविज्ञानं विद्यते यस्यास्तां विज्ञानयुक्तामध्यापिकां स्त्रियम् (**सवितारम्**) वेदविद्यैश्वर्य्योत्पादकम् (**च**) (**वाजिनम्**) प्रशस्तबलवेगादियुक्तं शूरवीरम् (**स्वाहा**) सत्यया नीत्या। अयं मन्त्रः (शत०(५।२।२।९) व्याख्यातः॥२७॥

अन्वयः-हे राजँस्त्वं स्वाहा दानायार्य्यमणं बृहस्पतिमिन्द्रं वाचं विष्णुं सवितारं वाजिनं सरस्वतीं च सत्कर्मसु सदा चोदय॥२७॥

भावार्थः-ईश्वरोऽभिवदति राजा स्वयं धार्मिको विद्वान् भूत्वा सर्वान्न्यायाधीशान् मनुष्यान् विद्याधर्मवर्धनाय सततं प्रेरयेद् यतो विद्याधर्मवृद्ध्याऽविद्याऽधर्मौ निवृत्तौ स्याताम्॥२७॥

पदार्थः-हे राजन्! आप (**स्वाहा**) सत्यनीति से (**दानाय**) विद्यादि दान के लिये (**अर्यमणम्**) पक्षपातरहित न्याय करने (**बृहस्पतिम्**) सब विद्याओं को पढ़ाने (**इन्द्रम्**) बड़े ऐश्वर्य्ययुक्त (**वाचम्**) वेदवाणी (**विष्णुम्**) सब के अधिष्ठाता (**सवितारम्**) वेदविद्या तथा सब ऐश्वर्य उत्पन्न करने (**वाजिनम्**) अच्छे बल वेग से युक्त शूरवीर और (**सरस्वतीम्**) बहुत प्रकार वेदादि शास्त्र विज्ञानयुक्त पढ़ाने वाली विदुषी स्त्री को अच्छे कर्मों में (**चोदय**) सदा प्रेरणा किया कीजिये॥२७॥

भावार्थः-ईश्वर सब से कहता है कि राजा आप धर्मात्मा विद्वान् होकर सब न्याय के करने वाले मनुष्यों को विद्या धर्म्म बढ़ाने के लिये निरन्तर प्रेरणा करे, जिससे विद्या धर्म की बढ़ती से अविद्या और अधर्म दूर हों॥२७॥

अग्न इत्यस्य तापस ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनः स राजा किं किं कुर्य्यादित्याह॥

फिर वह राजा क्या करे, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अग्नेऽअच्छा वदेह नः प्रति नः सुमना भव।
प्र नो यच्छ सहस्रजित् त्वꣳ हि धनदाऽअसि स्वाहा॥२८॥

अग्ने। अच्छ। वद। इह। नः। प्रति। नः। सुमना इति सुऽमनाः। भव। प्र। नः। यच्छ। सहस्रजिदिति सहस्रऽजित्। त्वम्। हि। धनदा इति धनऽदाः। असि। स्वाहा॥२८॥

पदार्थः-(**अग्ने**) विद्वन् (**अच्छ**) सम्यक्, **निपातस्य च।** (अष्टा०६।३।१३६) इति दीर्घः (**वद**) सत्यमुपदिश (**इह**) अस्मिन् समये (**नः**) अस्मान् (**प्रति**) (**नः**) अस्मान् (**सुमनाः**) सुहृद्भावः (**भव**) (**प्र**) (**नः**) अस्मभ्यम् (**यच्छ**) देहि (**सहस्रजित्**) असहायः सन् सहस्रं योद्धॄन् जेतुं शीलः (**त्वम्**) (**हि**) यतः (**धनदाः**) ऐश्वर्य्यदाता (**असि**) (**स्वाहा**) सत्यया वाण्या। अयं मन्त्रः (शत०(५।२।२।१०) व्याख्यातः॥२८॥

अन्वयः-हे अग्ने! त्वमिह स्वाहा नोऽच्छ वद, नोऽस्मान् प्रति सुमना भव। त्वं हि सहस्रजिद् धनदा असि, तस्मान्नः सुखं प्रयच्छ॥२८॥

भावार्थः-ईश्वर आह राजा प्रजासेनाजनान् प्रति सदा सत्यं प्रियं च दद्याद् गृह्णीयाच्च, शरीरात्मबलं वर्धित्वा नित्यं शत्रून् जित्वा धर्मेण प्रजाः पालयेदिति॥२८॥

पदार्थः-हे (**अग्ने**) विद्वन्! आप (**इह**) इस समय में (**स्वाहा**) सत्य वाणी से (**नः**) हम को (**अच्छ**) अच्छे प्रकार (**वद**) सत्य उपदेश कीजिये (**नः**) हमारे ऊपर (**सुमनाः**) मित्रभावयुक्त (**भव**) हूजिये (**हि**) जिससे आप (**सहस्रजित्**) विना सहाय हजार को जीतने (**धनदाः**) ऐश्वर्य्य देने वाले (**असि**) हैं, इससे (**नः**) हमारे लिये (**प्रयच्छ**) दीजिये॥२८॥

भावार्थः-ईश्वर उपदेश करता है कि राजा, प्रजा और सेनाजन मनुष्यों से सदा सत्य प्रिय वचन कहे, उनको धन दे, उनसे धन ले। शरीर आत्मा का बल बढ़ा और नित्य शत्रुओं को जीतकर धर्म से प्रजा को पाले॥२८॥

प्र न इत्यस्य तापस ऋषिः। अर्य्यमादिमन्त्रोक्ता देवताः। भुरिगार्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

राजा मात्रादयश्च प्रजाः किं किमुपदिशेयुरित्याह॥

प्रजा और सन्तानों से राजा और माता आदि कैसे वर्त्तें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

प्र नो यच्छत्वर्यमा प्र पूषा बृहस्पतिः। प्र वाग्देवी ददातु नः स्वाहा॥२९॥

प्र। नः। यच्छतु। अर्य्यमा। प्र। पूषा। प्र। बृहस्पतिः। प्र। वाक्। देवी। ददातु। नः। स्वाहा॥२९॥

पदार्थः-(**प्र**) (**नः**) अस्मभ्यम् (**यच्छतु**) ददातु (**अर्य्यमा**) न्यायाधीशः (**प्र**) (**पूषा**) पोषकः (**प्र**) (**बृहस्पतिः**) विद्वान् (**प्र**) (**वाक्**) विद्यासुशिक्षितवाणीयुक्ता (**देवी**) देदीप्यमानाऽध्यापिका माता (**ददातु**) (**नः**) अस्मभ्यम् (**स्वाहा**) सत्यविद्यायुक्तां वाणीम्। अयं मन्त्रः (शत०(५।२।२।११) व्याख्यातः॥२९॥

अन्वयः-यथाऽर्यमा नोऽस्मभ्यं सुशिक्षां प्रयच्छतु, यथा पूषा पुष्टिं प्रददातु, यथा बृहस्पतिः स्वाहा प्रार्पयतु, तथा वाग्देवी माताऽस्मभ्यं विद्यां ददातु॥२९॥

भावार्थः-अत्राऽऽह जगदीश्वरः। राजादयः सर्वे पुरुषा मात्रादिस्त्रियश्च सर्वदा प्रजाः पुत्रादीन् प्रति सत्युमपदेशं कुर्य्युर्विद्यां सुशिक्षां च सततं ग्राहयेयुर्यतः प्रजाः सदाऽऽनन्दिताः स्युः॥२९॥

पदार्थः-जैसे **(अर्य्यमा)** न्यायाधीश **(नः)** हमारे लिये उत्तम शिक्षा **(प्रयच्छतु)** देवे, जैसे **(पूषा)** पोषण करने वाला शरीर और आत्मा की पुष्टि की शिक्षा **(प्र)** अच्छे प्रकार देवे, जैसे **(बृहस्पतिः)** विद्वान् **(प्र) (स्वाहा)** अत्युत्तम विद्या देवे, जैसे **(वाक्)** उत्तम विद्या सुशिक्षा सहित वाणीयुक्त **(देवी)** प्रकाशमान पढ़ाने वाली माता हमारे लिये सत्यविद्यायुक्त वाणी का **(प्रददातु)** उपदेश सदा किया करे॥२९॥

भावार्थः-यहां जगदीश्वर उपदेश करता है कि राजा आदि सब पुरुष और माता आदि स्त्री सदा प्रजा और पुत्रादिकों को सत्य-सत्य उपदेश कर विद्या और अच्छी शिक्षा को निरन्तर ग्रहण करावें, जिससे प्रजा और पुत्र-पुत्री आदि सदा आनन्द में रहें॥२९॥

देवस्येत्यस्य तापस ऋषिः। सम्राड् देवता। जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनः क्व कीदृशं राजानं कुर्य्युरित्युपदिश्यते॥

फिर कहां कैसे को राजा करें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्।
सरस्वत्यै वाचो यन्तुर्यन्त्रिये दधामि बृहस्पतेष्ट्वा साम्राज्येनाभिषिञ्चाम्यसौ॥३०॥

देवस्य। त्वा। सवितुः। प्रसव इति प्रऽसवे। अश्विनोः। बाहुभ्यामिति बाहुऽभ्याम्। पूष्णः। हस्ताभ्याम्। सरस्वत्यै। वाचः। यन्तुः। यन्त्रिये। दधामि। बृहस्पतेः। त्वा। साम्राज्येनेति साम्ऽराज्येन। अभि। सिञ्चामि। असौ॥३०॥

पदार्थः-**(देवस्य)** प्रकाशमानस्य **(त्वा)** त्वाम् **(सवितुः)** सकलजगत्प्रसवितुरीश्वरस्य **(प्रसवे)** जगदुत्पादे **(अश्विनोः)** सूर्याचन्द्रमसोर्बलाकर्षणाभ्यामिव **(बाहुभ्याम्)** भुजाभ्याम् **(पूष्णः)** पोषकस्य वायोर्धारणपोषणाभ्यामिव **(हस्ताभ्याम्)** कराभ्याम् **(सरस्वत्यै)** विज्ञानसुशिक्षायुक्तायाः, अत्र षष्ठ्यर्थे चतुर्थी **(वाचः)** वेदवाण्याः **(यन्तुः)** नियन्तुः **(यन्त्रिये)** शिल्पविद्यासिद्धानां यन्त्राणामर्हे योग्ये निष्पादने **(दधामि)** धरामि **(बृहस्पतेः)** परमविदुषः **(त्वा)** **(साम्राज्येन)** सम्राजो भावेन **(अभि)** आभिमुख्ये **(सिञ्चामि)** सुगन्धेन रसेन मार्ज्मि **(असौ)** अदो नामा। अयं मन्त्रः (शत०(५।२।२।१२-१५) व्याख्यातः॥३०॥

अन्वयः-हे अखिलशुभगुणकर्मस्वभावयुक्त विद्वन्! असावहं सवितुर्देवस्य जगदीश्वरस्य प्रसवे सरस्वत्यै वाचोऽश्विनोर्बाहूभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां त्वा दधामि, यन्तुर्बृहस्पतेर्यन्त्रिये साम्राज्येन त्वाभिषिञ्चामि॥३०॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैरीश्वरप्रियं बलवीर्यपुष्टियुक्तं प्रगल्भं सत्यवादिनं जितेन्द्रियं धार्मिकं प्रजापालनक्षमं विद्वांसं सुपरीक्ष्य सभाया अधिष्ठातृत्वेनाभिषिच्य राजधर्म उन्नेयः॥३०॥

पदार्थः-हे सब अच्छे गुण कर्म्म स्वभावयुक्त विद्वन्! **(असौ)** यह मैं **(सवितुः)** सब जगत् के उत्पन्न करने वाले ईश्वर **(देवस्य)** प्रकाशमान जगदीश्वर के **(प्रसवे)** उत्पन्न किये संसार में **(सरस्वत्यै)** अच्छे प्रकार शिल्पविद्यायुक्त **(वाचः)** वेदवाणी के मध्य **(अश्विनोः)** सूर्य्य-चन्द्रमा के बल और आकर्षण के समान **(बाहुभ्याम्)** भुजाओं से **(पूष्णः)** वायु के समान धारण-पोषण गुणयुक्त **(हस्ताभ्याम्)** हाथों से **(त्वा)** तुम को **(दधामि)** धारण करता हूं और **(बृहस्पतेः)** बड़े विद्वान् के **(यन्त्रिये)** कारीगरी विद्या से सिद्ध किये राज्य में

(साम्राज्येन) चक्रवर्ती राजा के गुण से सहित **(त्वा)** तुझ को **(अभि)** सब ओर से **(सिञ्चामि)** सुगन्धित रसों से मार्जन करता हूं॥३०॥

भावार्थः-मनुष्यों को योग्य है कि ईश्वर में प्रेमी, बल, पराक्रम, पुष्टियुक्त, चतुर, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, धर्मात्मा, प्रजापालन में समर्थ विद्वान् को अच्छे प्रकार परीक्षा कर सभा का स्वामी करने के लिये अभिषेक करके राजधर्म की उन्नति अच्छे प्रकार नित्य किया करें॥३०॥

अग्निरेकेत्यस्य तापस ऋषिः। अग्न्यादयो मन्त्रोक्ता देवताः। स्वराडतिधृतिश्छन्दः। षड्जः स्वरः॥

राजा प्रजाः प्रजाश्च राजानं सततं वर्द्धयेयुरित्याह॥

राजा प्रजाओं को और प्रजा राजा को निरन्तर बढ़ाया करें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अग्निरेकाक्षरणे प्राणमुदजयत् तमुज्जेषमश्विनौ द्व्यक्षरेण द्विपदो मनुष्यानुदजयतां तानुज्जेषं विष्णुस्त्र्यक्षरेण त्रीँल्लोकानुदजयत् तानुज्जेषꣳ सोमश्चतुरक्षरेण चतुष्पदः पशूनुदजयत् तानुज्जेषम्॥ ३१॥

अग्निः। एकाक्षरेणेत्येकऽअक्षरेण। प्राणम्। उत्। अजयत्। तम्। उत्। जेषम्। अश्विनौ। द्व्यक्षरेणेति द्विऽअक्षरेण। द्विपद इति द्विऽपदः। मनुष्यान्। उत्। अजयताम्। तान्। उत्। जेषम्। विष्णुः। त्र्यक्षरेणेति त्रिऽअक्षरेण। त्रीन्। लोकान्। उत्। अजयत्। तान्। उत्। जेषम्। सोमः। चतुरक्षरेणेति चतुःऽअक्षरेण। चतुष्पदः। चतुःपद इति चतुःऽपदः। पशून्। उत्। अजयत्। तान्। उत्। जेषम्॥ ३१॥

पदार्थः-**(अग्निः)** अग्निरिव वर्त्तमानो राजा **(एकाक्षरेण)** ओमित्यनेन विज्ञापकेन दैव्या गायत्र्या छन्दसा **(प्राणम्)** शरीरस्थं वायुमिव प्रजाजनम् **(उत्)** उत्कृष्टया नीत्या **(अजयत्)** जयेदुत्कर्षेत् **(तम्)** **(उत्)** **(जेषम्)** जयेयमुत्कर्षेयम् **(अश्विनौ)** सूर्याचन्द्रमसाविव राजराजपुरुषौ **(द्व्यक्षरेण)** दैव्या उष्णिहा **(द्विपदः)** **(मनुष्यान्)** मननशीलान् **(उत्)** **(अजयताम्)** **(तान्)** **(उत्)** **(जेषम्)** **(विष्णुः)** परमेश्वर इव न्यायकारी **(त्र्यक्षरेण)** दैव्याऽनुष्टुभा **(त्रीन्)** जन्मस्थाननामवाच्यान् **(लोकान्)** दर्शनीयान् **(उत्)** **(अजयत्)** **(तान्)** **(उत्)** **(जेषम्)** **(सोमः)** ऐश्वर्य्यमिच्छुः **(चतुरक्षरेण)** दैव्या बृहत्या **(चतुष्पदः)** **(पशून्)** हरिणादीनारण्यान् **(उत्)** **(अजयत्)** **(तान्)** **(उत्)** **(जेषम्)**। अयं मन्त्रः (शत०(५।२।२।१७) व्याख्यातः॥३१॥

अन्वयः-हे राजन्नग्निर्भवान् यथा एकाक्षरेण प्राणमिव यं प्रजाजनमुदजयत्, तथा तमहमप्युज्जेषम्। हे राजजनावश्विनौ! भवन्तौ यथा द्व्यक्षरेण यान् द्विपदो मनुष्यानुदजयताम्, तथा तानहमप्युज्जेषम्। हे सर्वप्रधानपुरुष! विष्णुर्भवान् यथा त्र्यक्षरेण यान् त्रींल्लोकानुदजयत् तथा तानहमप्युज्जेषम्। हे न्यायाधीश! सोमो भवान् यथा चतुरक्षरेण याँश्चतुष्पदः पशूनुदजयत्, तथा तानहमप्युज्जेषम्॥३१॥

भावार्थः-यदि राजा सर्वान् प्रजाजनानुन्नयेत् तर्हि प्रजापुरुषास्तं कथं नोन्नयेयुर्नोचेन्न॥३१॥

पदार्थः-हे राजन्! **(अग्निः)** अग्नि के समान वर्त्तमान आप जैसे **(एकाक्षरेण)** चितानेहारी एक अक्षर की दैवी गायत्री छन्द से **(प्राणम्)** शरीर में स्थित वायु के समान प्रजाजनों को **(उत्)** **(अजयत्)** उत्तम करे वैसे **(उत्)**

उत्तम नीति से **(तम्)** उसको मैं भी **(उत्)** **(जेषम्)** उत्तम करूं। हे राजप्रजाजनो! **(अश्विनौ)** सूर्य्य और चन्द्रमा के समान आप जैसे **(द्व्यक्षरेण)** दो अक्षर की दैवी उष्णिक् छन्द से जिन **(द्विपदः)** दो पैर वाले **(मनुष्यान्)** मननशील मनुष्यों को **(उज्जयताम्)** उत्तम करो, वैसे **(तान्)** उन को मैं भी **(उज्जेषम्)** उत्तम करूं। हे सर्वप्रधान पुरुष! **(विष्णुः)** परमेश्वर के समान न्यायकारी आप जैसे **(त्र्यक्षरेण)** तीन अक्षर की दैवी अनुष्टप् छन्द से जिन **(त्रीन्)** जन्म, स्थान और नामवाची **(लोकान्)** देखने योग्य लोकों को **(उदजयत्)** उत्तम करते हो, वैसे **(तान्)** उनको मैं भी **(उज्जेषम्)** उत्तम करूं। हे **(सोमः)** ऐश्वर्य की इच्छा करने वाले न्यायाधीश! आप जैसे **(चतुरक्षरेण)** चार अक्षर के दैवी बृहती छन्द से **(चतुष्पदः)** चौपाये **(पशून्)** हिरणादि पशुओं को **(उदजयत्)** उत्तम करते हो, वैसे **(तान्)** उनको मैं भी **(उज्जेषम्)** उत्तम करूं॥३१॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो राजा सब प्रजाओं को अच्छे प्रकार बढ़ावे तो उसको भी प्रजाजन क्यो न बढ़ावें और जो ऐसा न करे तो उसको प्रजा भी कभी न बढ़ावे॥३१॥

पूषेत्यस्य तापस ऋषिः। पूषादयो मन्त्रोक्ता देवताः। कृतिश्छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुना राजप्रजाजनाः किंवत् किं कुर्य्युरित्याह॥

फिर राजा और प्रजाजन किनके दृष्टान्तों से क्या-क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

पूषा पञ्चाक्षरेण पञ्च दिशऽउदजयत् ताऽउज्जेषꣳ सविता षडक्षरेण षड् ऋतूनुदजयत् तानुज्जेषं मरुतः सप्ताक्षरेण सप्त ग्राम्यान् पशूनुदजयँस्तानुज्जेषं बृहस्पतिरष्टाक्षरेण गायत्रीमुदजयत् तामुज्जेषम्॥ ३२॥

पूषा। पञ्चाक्षरेणेति पञ्चऽअक्षरेण। पञ्च। दिशः। उत्। अजयत्। ताः। उत्। जेषम्। सविता। षडक्षरेणेति षट्ऽअक्षरेण। षट्। ऋतून्। उत्। अजयत्। तान्। उत्। जेषम्। मरुतः। सप्ताक्षरेणेति सप्तऽअक्षरेण। सप्त। ग्राम्यान्। पशून्। उत्। अजयन्। तान्। उत्। जेषम्। बृहस्पतिः। अष्टाक्षरेणेत्यष्टऽअक्षरेण। गायत्रीम्। उत्। अजयत्। ताम्। उत्। जेषम्॥ ३२॥

पदार्थः-**(पूषा)** चन्द्र इव सर्वस्य पोषकः **(पञ्चाक्षरेण)** दैव्या पङ्क्त्या **(पञ्च)** चतस्रः पार्श्वस्था एका अध ऊर्ध्वस्था **(दिशः)** **(उत्)** **(अजयत्)** **(ताः)** **(जेषम्)** **(सविता)** सूर्य इव **(षडक्षरेण)** दैव्या त्रिष्टुभा **(षट्)** **(ऋतून्)** वसन्तादीन् **(उत्)** **(अजयत्)** **(तान्)** **(उत्)** **(जेषम्)** **(मरुतः)** वायव इव **(सप्ताक्षरेण)** दैव्या जगत्या **(सप्त)** गोऽश्वमहिषोष्ट्राजाविगर्दभान् **(ग्राम्यान्)** ग्रामे भवान् **(पशून्)** गवादीन् **(उत्)** **(अजयन्)** **(तान्)** **(उत्)** **(जेषम्)** **(बृहस्पतिः)** अनूचानो विद्वानिव **(अष्टाक्षरेण)** याजुष्याऽनुष्टुआ **(गायत्रीम्)** यया गायन्तं त्रायते तां नीतिम् **(उत्)** **(अजयत्)** **(ताम्)** **(उत्)** **(जेषम्)**॥३२॥

अन्वयः-हे राजन्! पूषा भवान् यथा पञ्चाक्षरेण याः पञ्च दिश उदजयत्, तथाऽहमपि ता उज्जेषम्। हे राजन्! सविता भवान् यथा षडक्षरेण यान् षड्ऋतूनुदजयत्, तथा तानहमप्युज्जेषम्। हे सभ्या जनाः! मरुतो भवन्तो यथा सप्ताक्षरेण यान् ग्राम्यान् सप्त पशूनुदजयत्, तथा तानहमप्युज्जेषम्। हे विद्वन् सभाध्यक्ष! बृहस्पतिर्भवान् यथाऽष्टाक्षरेण यां गायत्रीमुदजयत् तामहमप्युज्जेषम्॥३२॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः! यो राजा सर्वस्य पोषकः, समस्तदिक्षु कीर्तिरैश्वर्य्यवान्, सुसभ्यः, पशुपालको, वेदविद् भवेत्, तं सर्वे राजप्रजासेनाजना उत्कर्षयेयुः॥३२॥

पदार्थः-हे राजन्! **(पूषा)** चन्द्रमा के समान सबको पुष्ट करने वाले आप जैसे **(पञ्चाक्षरेण)** पांच प्रकार की दैवी पङ्क्ति से **(पञ्च)** पूर्वादि चार और एक ऊपर नीचे की **(दिशः)** दिशाओं को **(उदजयत्)** उत्तम कीर्ति से भरते हो, वैसे **(ताः)** उनको मैं भी **(उज्जेषम्)** श्रेष्ठ कीर्ति से भर देऊं। हे राजन्! **(सविता)** सूर्य्य के समान आप जैसे **(षडक्षरेण)** छः अक्षरों की दैवी त्रिष्टुप् से जिन **(षट्)** छः **(ऋतून्)** वसन्तादि ऋतुओं को **(उदयजत्)** शुद्ध करते हो, वैसे **(तान्)** उनको मैं भी **(उज्जेषम्)** शुद्ध करूं। हे सभाजनो! **(मरुतः)** वायु के समान आप जैसे **(सप्ताक्षरेण)** सात अक्षरों की दैवी जगती से **(सप्त)** गाय, घोड़ा भैंस, ऊंट, बकरी, भेड़ और गधा इन सात **(ग्राम्यान्)** गांव के **(पशून्)** पशुओं को **(उदजयन्)** बढ़ाते हो, वैसे **(तान्)** उनको मैं भी बढ़ाऊं। हे सभेश! **(बृहस्पतिः)** समस्त विद्याओं के जानने वाले विद्वान् के समान आप जैसे **(अष्टाक्षरेण)** आठ अक्षरों की याजुषी अनुष्टुप् से जिस **(गायत्रीम्)** गान करने वाले की रक्षा करने वाली विद्वान् स्त्री की **(उदजयत्)** प्रतिष्ठा करते हो, वैसे **(ताम्)** उसकी मैं भी **(उज्जेषम्)** प्रतिष्ठा करूं॥३२॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो राजा सब का पोषक, जिसकी सब दिशाओं में कीर्ति, ऐश्वर्य्ययुक्त, सभा के कामों में चतुर, पशुओं का रक्षक और वेदों का ज्ञाता हो, उसी को राजा और सेना के सब मनुष्य अपना अधिष्ठाता बनाकर उन्नति देवें॥३२॥

मित्र इत्यस्य तापस ऋषिः। मित्रादयो मन्त्रोक्ता देवताः। कृतिश्छन्दः। निषादः स्वरः॥

राज्ञः सत्याचाराऽनुकरणं प्रजया प्रजयाश्च राज्ञा कार्य्यमित्याह॥

राजा के सत्याचार के अनुसार प्रजा और प्रजा के अनुसार राजा करे, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

मित्रो नवाक्षरेण त्रिवृतꣳ स्तोममुदजयत् तमुज्जेषं वरुणो दशाक्षरेण विराजमुदजयत् तामुज्जेषमिन्द्रऽएकादशाक्षरेण त्रिष्टुभमुदजयत् तामुज्जेषं विश्वे देवा द्वादशाक्षरेण जगतीमुदजयँस्तामुज्जेषम्॥ ३ ३॥

मित्रः। नवाक्षरेणेति नवऽअक्षरेण। त्रिवृतमिति त्रिऽवृतम्। स्तोमम्। उत्। अजयत्। तम्। उत्। जेषम्। वरुणः। दशाक्षरेणेति दशऽअक्षरेण। विराजमिति विऽराजम्। उत्। अजयत्। ताम्। उत्। जेषम्। इन्द्रः। एकादशाक्षरेणेत्येकादशऽअक्षरेण। त्रिष्टुभम्। त्रिस्तुभमिति त्रिऽस्तुभम्। उत्। अजयत्। ताम्। उत्। जेषम्। विश्वे। देवाः। द्वादशाक्षरेणेति द्वादशऽअक्षरेण। जगतीम्। उत्। अजयन्। ताम्। उत्। जेषम्॥३३॥

पदार्थः-**(मित्रः)** सर्वस्य सुहृत् **(नवाक्षरेण)** याजुष्या बृहत्या **(त्रिवृतम्)** कर्मोपासनाज्ञानयुक्तम् **(स्तोमम्)** स्तोतुं योग्यम् **(उत्) (अजयत्) (तम्) (उत्) (जेषम्) (वरुणः)** श्रेष्ठः **(दशाक्षरेण)** याजुष्या पङ्क्त्या **(विराजम्)** विराट्छन्दोवाच्यम् **(उत्) (अजयत्) (ताम्) (उत्) (जेषम्) (इन्द्रः)** परमैश्वर्यवान् **(एकादशाक्षरेण)** आसुर्य्या पङ्क्त्या **(त्रिष्टुभम्)** त्रिष्टुप्छन्दोवाच्यम् **(उत्) (अजयन्) (ताम्) (उत्) (जेषम्) (विश्वे)** सर्वे **(देवाः)** विद्वांसः

(द्वादशाक्षरेण) साम्न्या गायत्र्या **(जगतीम्)** एतच्छन्दोऽभिहितां नीतिम् **(उत्) (अजयन्) (ताम्) (उत्) (जेषम्)**॥३३॥

अन्वयः-हे राजन्! मित्रो भवान् यथा नवाक्षरेण छन्दसा यं त्रिवृतं स्तोममुदजयत्, तथा तमहमप्युज्जेषम्। हे प्रशंसनीय सभेश! वरुणो भवान् यथा दशाक्षरेण छन्दसा यां विराजमुदजयत्, तथाहमप्युज्जेषम्। हे परमैश्वर्यप्रदेन्द्रो भवान् यथैकादशाक्षरेण यां त्रिष्टुभमुदजयत् तथा तामहमप्युज्जेषम्। हे सभाजना विश्वे देवाः! भवन्तो यथा द्वादशाक्षरेण यां जगतीमुदजयँस्तामहमप्युज्जेषम्॥३३॥

भावार्थः-राजजनाः सर्वेषु प्राणिषु मैत्रीं विधाय सुशिक्षयोत्कृष्टान् विदुषः सम्पादयेयुर्यतस्ते ऐश्वर्य्यभागिनो भूत्वा राजभक्ता भवेयुः॥३३॥

पदार्थः-हे राजन्! **(मित्रः)** सब के हितकारी आप जैसे **(नवाक्षरेण)** नव अक्षर की याजुषी बृहती से जिस **(त्रिवृतम्)** कर्म्म, उपासना और ज्ञान के **(स्तोमम्)** स्तुति के योग्य को **(उदजयत्)** उत्तमता से जानते हो, वैसे **(तम्)** उसको मैं भी **(उज्जेषम्)** अच्छे प्रकार जानूं। हे प्रशंसा के योग्य सभेश! **(वरुणः)** सब प्रकार से श्रेष्ठ आप **(दशाक्षरेण)** दश अक्षरों की याजुषी पङ्क्ति से जिस **(विराजम्)** विराट् छन्द से प्रतिपादित अर्थ को **(उदजयत्)** प्राप्त हुए हो, वैसे **(ताम्)** उसको मैं भी **(उज्जेषम्)** प्राप्त होऊं **(इन्द्रः)** परम ऐश्वर्य्य देने वाले आप जैसे **(एकादशाक्षरेण)** ग्यारह अक्षरों की आसुरी पङ्क्ति से जिस **(त्रिष्टुभम्)** त्रिष्टुप् छन्दवाची को **(उदजयत्)** अच्छे प्रकार जानते हो, वैसे **(ताम्)** उसको मैं भी **(उज्जेषम्)** अच्छे प्रकार जानूं। हे सभ्य जनो **(विश्वे)** सब **(देवाः)** विद्वानो! आप जैसे **(द्वादशाक्षरेण)** बारह अक्षरों की साम्नी गायत्री से जिस **(जगतीम्)** जगती से कही हुई नीति का **(उदजयन्)** प्रचार करते हो, वैसे **(ताम्)** उसको मैं भी **(उज्जेषम्)** प्रचार करूं॥३३॥

भावार्थः-राजपुरुषों को चाहिये कि सब प्राणियों में मित्रता से अच्छे प्रकार शिक्षा कर इन प्रजाजनों को उत्तम गुणयुक्त विद्वान् करें, जिससे ये ऐश्वर्य्य के भागी होकर राजभक्त हों॥३३॥

वसव इत्यस्य तापस ऋषिः। वस्वादयो मन्त्रोक्ता देवताः। वसव इत्यस्य निचृज्जगती छन्दः। निषादः स्वरः। आदित्या इत्यस्य निचृद् धृतिश्छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

पुनरपि राजप्रजाधर्मकृत्यमाह॥

फिर भी राजा और प्रजा के धर्म्म कार्य्य का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

वस॑व॒स्त्रयो॑दशाक्षरेण त्रयो॒द॒शꣳ स्तोम॒मुद॑जयँ॒स्तमुज्जे॑षꣳ रु॒द्राश्च॒तु॑र्दशाक्षरेण चतु॒र्द॒शꣳ स्तोम॒मुद॑जयँ॒स्तमुज्जे॑षमादि॒त्याः पञ्च॑दशाक्षरेण पञ्चद॒शꣳ स्तोम॒मुद॑जयँ॒स्तामुज्जे॑ष॒मदि॑ति॒ः षोड॑शाक्षरेण षो॒ड॒शꣳस्तोम॒मुद॑जय॒त् तमुज्जे॑षं प्र॒जाप॑तिः स॒प्तद॑शाक्षरेण सप्तद॒शꣳ स्तोम॒मुद॑जय॒त् तमुज्जे॑षम्॥३४॥

वस॑वः। त्रयो॑दशाक्षरे॒णेति॒ त्रयो॑दशऽअक्षरेण। त्र॒यो॒द॒शमिति॑ त्रयःऽद॒शम्। स्तोम॑म्। उत्। अ॒ज॒य॒न्। तम्। उत्। जे॒ष॒म्। रुद्राः। चतु॑र्दशाक्षरे॒णेति॒ चतु॑र्दशऽअक्षरेण। च॒तु॒र्द॒शमिति॑ चतुःऽद॒शम्। स्तोम॑म्। उत्। अ॒ज॒य॒न्। तम्। उत्। जे॒ष॒म्। आ॒दि॒त्याः। पञ्च॑दशाक्षरे॒णेति॒ पञ्च॑दशऽअक्षरेण। प॒ञ्च॒द॒शमिति॒ पञ्चऽद॒शम्। स्तोम॑म्। उत्। अ॒ज॒य॒न्। तम्। उत्। जे॒ष॒म्। अदि॑तिः। षोड॑शाक्षरे॒णेति॒ षोड॑शऽअक्षरेण। षो॒ड॒शम्। स्तोम॑म्। उत्। अ॒ज॒य॒त्। तम्। उत्। जे॒ष॒म्। प्र॒जाप॑ति॒रिति॑

प्रजाऽपतिः। सप्तदशाक्षरेणेति सप्तदशऽअक्षरेण। सप्तदशमिति सप्तऽदशम्। स्तोमम्। उत्। अजयत्। तम्। उत्। जेषम्॥ ३४॥

पदार्थः-(**वसवः**) कृतचतुर्विंशतिवर्षब्रह्मचर्य्येण गृहीतविद्याः (**त्रयोदशाक्षरेण**) आसुर्याऽनुष्टुभा (**त्रयोदशम्**) दशप्राणजीवमहत्तत्त्वानां संख्यापूरकमव्यक्तं कारणम् (**स्तोमम्**) स्तोतुं योग्यम् (**उत्**) (**अजयन्**) (**तम्**) (**उत्**) (**जेषम्**) (**रुद्राः**) कृतेन चतुश्चत्वारिंशद्वर्षब्रह्मचर्य्येणाधीतविद्याः (**चतुर्दशाक्षरेण**) साम्न्युष्णिहा (**चतुर्दशम्**) दशेन्द्रियमनोबुद्धिचित्तानां संख्यापूरकमहङ्कारम् (**स्तोमम्**) स्तवनीयम् (**उत्**) (**अजयन्**) (**तम्**) (**उत्**) (**जेषम्**) (**आदित्याः**) समाचरितेनाष्टचत्वारिंशद्वर्षपरिमितब्रह्मचर्य्येण गृहीतसमस्तविद्याः (**पञ्चदशाक्षरेण**) आसुर्य्या गायत्र्या (**पञ्चदशम्**) चत्वारो वेदाश्चत्वार उपवेदाः षडङ्गानि च मिलित्वा चर्तुदशविद्यास्तासां संख्यापूरकं क्रियाकौशलम् (**स्तोमम्**) स्तोतुमर्हम् (**उत्**) (**अजयन्**) (**तम्**) (**उत्**) (**जेषम्**) (**अदितिः**) अविद्यामाना दितिर्नाशो यस्याः सा राजपत्नी (**षोडशाऽक्षरेण**) साम्न्यानुष्टुभा (**षोडशम्**) प्रमाणादिपदार्थसमूहम् (**स्तोमम्**) प्रशंसनीयम् (**उत्**) (**अजयत्**) (**तम्**) (**उत्**) (**जेषम्**) (**प्रजापतिः**) प्रजायाः पालकः (**सप्तदशाक्षरेण**) निचृदार्च्या गायत्र्या (**सप्तदशम्**) चत्वारो वर्णाश्चत्वार आश्रमाः श्रवणमनननिदध्यासनानि च कर्माणि। अलब्धस्य लिप्सा, लब्धस्य प्रयत्नेन रक्षणम्, रक्षितस्य वृद्धिः, वृद्धस्य सन्मार्गे सर्वोपकारके सत्कर्मणि व्ययकरणमेव चतुर्विधः पुरुषार्थः, मोक्षाऽनुष्ठानं चेति सप्तदशम् (**स्तोमम्**) अतिप्रशंसनीयम् (**उत्**) उत्कृष्टरीत्या (**अजयत्**) उत्कर्षेत् (**तम्**) (**उत्**) (**जेषम्**) उत्कृष्टरीत्या॥ मन्त्रोऽयं शत० (५।२।२।१७) व्याख्यातः॥३४॥

अन्वयः-हे राजादयः सभ्या वसवो जनाः! भवन्तो यथा त्रयोदशाक्षरेण यं त्रयोदशं स्तोममुदजयंस्तथाऽहमप्युज्जेषम्। हे बलवीर्य्यवन्तः पुरुषार्थिनो रुद्राः! भवन्तो यथा चतुर्दशाक्षरेण यं चतुर्दशं स्तोममुदजयंस्तथा तमहमप्युज्जेषम्। हे पूर्णविद्यया शरीरात्माखिलबला आदित्याः! भवन्तो यथा पञ्चदशाक्षरेण यं पञ्चदशं स्तोममुदजयँस्तथा तमहमप्युज्जेषम्। हे सभाध्यक्षस्य राज्ञः पत्न्यदिते अखण्डितैश्वर्य्या भवती यथा षोडशाक्षरेण यं षोडशं स्तोममुदजयत्, तथा तमहमप्युज्जेषम्। हे सर्वाभिरक्षक सज्जन नरेश प्रजापतिर्भवान् यथा सप्तदशाक्षरेण यं सप्तदशं स्तोममुदजयत् तथा तमहमप्युज्जेषम्॥३४॥

भावार्थः-हे मनुष्या! एतैश्चतुर्भिर्मन्त्रैर्यावान् राजप्रजाधर्मो विहितस्तमनुष्ठाय यूयं सुखिनो भवत॥३४॥

पदार्थः-हे राजादि सभ्यजनो! (**वसवः**) चौबीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य्य से विद्या पढ़ने वाले विद्वानो! आप लोग जैसे (**त्रयोदशाक्षरेण**) तेरह अक्षरों की आसुरी अनुष्टुप् वेदस्थ छन्द से जिस (**त्रयोदशम्**) दश प्राण, जीव, महत्तत्त्व और अव्यक्त कारणरूप (**स्तोमम्**) प्रशंसा के योग्य पदार्थ समूह को (**उदजयन्**) श्रेष्ठता से जानें, वैसे (**तम्**) उसको मैं भी (**उज्जेषम्**) उत्तमता से जानूं। हे बल, पराक्रम और पुरुषार्थयुक्त (**रुद्राः**) चवालीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य्य से विद्या पढ़नेहारे विद्वानो! जैसे आप (**चतुर्दशाक्षरेण**) चौदह अक्षरों की साम्नी उष्णिक् छन्द से (**चतुर्दशम्**) दश इन्द्रिय, मन, बुद्धि, चित्त और अहंकाररूप (**स्तोमम्**) प्रशंसा के योग्य पदार्थविद्या को (**उदजयन्**) प्रशंसित करें, वैसे मैं भी (**तम्**) उसको (**उज्जेषम्**) प्रशंसित करूं। हे (**आदित्याः**) अड़तालीस वर्ष ब्रह्मचर्य्य से समस्त विद्याओं को ग्रहण करनेहारे पूर्ण विद्या से शरीर और आत्मा के समस्त बल से युक्त सूर्य्य के समान प्रकाशमान विद्वानो! आप लोग जैसे (**पञ्चदशाक्षरेण**) पन्द्रह अक्षरों की आसुरी गायत्री से (**पञ्चदशम्**) चार वेद, चार उपवेद अर्थात् आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद (गानविद्या) तथा अर्थवेद (शिल्पशास्त्र) छः अङ्ग (शिक्षा,

कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष) मिल के चौदह, उनका संख्यापूरक पन्द्रहवां क्रियाकुशलतारूप **(स्तोमम्)** स्तुति के योग्य को **(उदजयन्)** अच्छे प्रकार से जानें, वैसे मैं भी **(तम्)** उसको **(उज्जेषम्)** अच्छे प्रकार से जानूं। हे **(अदितिः)** आत्मारूप से नाशरहित सभाध्यक्ष राजा की विदुषी स्त्री अखण्डित ऐश्वर्ययुक्त! आप जैसे **(षोडशाक्षरेण)** सोलह अक्षर की साम्नी अनुष्टुप् से **(षोडशम्)** प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, जाति और निग्रहस्थान इन सोलह पदार्थों की व्याख्यायुक्त **(स्तोमम्)** प्रशंसा के योग्य को **(उदजयत्)** उत्तमता से जानें, वैसे मैं भी **(तम्)** उसको **(उज्जेषम्)** उत्तमता से जानूं। हे नरेश! **(प्रजापतिः)** प्रजा के रक्षक आप जैसे **(सप्तदशाक्षरेण)** सत्रह अक्षरों की निचृदार्षी छन्द से **(सप्तदशम्)** चार वर्ण, चार आश्रम, सुनना, विचारना, ध्यान करना, अप्राप्त की इच्छा, प्राप्त का रक्षण, रक्षित का बढ़ाना, बढ़े हुए को अच्छे मार्ग सबके उपकार में खर्च करना, यह चार प्रकार का पुरुषार्थ और मोक्ष के अनुष्ठानरूप **(स्तोमम्)** अच्छे प्रकार प्रशंसनीय को उत्तमता से जानें, वैसे मैं भी उसको **(उज्जेषम्)** उत्तमता से जानूं॥३४॥

भावार्थः-हे मनुष्य लोगो! इन चार मन्त्रों से जितना राजा और प्रजा का धर्म कहा, उसका अनुष्ठान कर तुम सुखी होओ॥३४॥

एष त इस्स्य वरुण ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। विराडुत्कृतिश्छन्दः। षड्जः स्वरः॥

कीदृग्जनः साम्राज्यं सेवितुं योग्यो जायत इत्याह॥

कैसा मनुष्य चक्रवर्त्ती राज्य सेवने को योग्य होता है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

एष ते निर्ऋते भागस्तं जुषस्व स्वाहाऽग्निनेत्रेभ्यो देवेभ्यः पुरःसद्भ्यः स्वाहा यमनेत्रेभ्यो देवेभ्यो दक्षिणासद्भ्यः स्वाहा विश्वदेवनेत्रेभ्यो देवेभ्यः पश्चात्सद्भ्यः स्वाहा मित्रावरुणनेत्रेभ्यो वा मरुन्नेत्रेभ्यो वा देवेभ्यऽउत्तरासद्भ्यः स्वाहा सोमनेत्रेभ्यो देवेभ्यऽउपरिसद्भ्यो दुवस्वद्भ्यः स्वाहा॥ ३५॥

एषः। ते। निर्ऋत इति निःऽऋते। भागः। तम्। जुषस्व। स्वाहा। अग्निनेत्रेभ्य इत्यग्निऽनेत्रेभ्यः। देवेभ्यः। पुरःसद्भ्य इति पुरःसत्ऽभ्यः। स्वाहा। यमनेत्रेभ्य इति यमऽनेत्रेभ्यः। देवेभ्यः। दक्षिणासद्भ्य इति दक्षिणासत्ऽभ्यः। स्वाहा। विश्वदेवनेत्रेभ्य इति विश्वदेवऽनेत्रेभ्यः। देवेभ्यः। पश्चात्सद्भ्य इति पश्चात्सत्ऽभ्यः। स्वाहा। मित्रावरुणनेत्रेभ्य इति मित्रावरुणऽनेत्रेभ्यः। वा। मरुन्नेत्रेभ्य इति मरुत्ऽनेत्रेभ्यः। वा। देवेभ्यः। उत्तरासद्भ्य इत्युत्तरासत्ऽभ्यः। स्वाहा। सोमनेत्रेभ्य इति सोमऽनेत्रेभ्यः। देवेभ्यः। उपरिसद्भ्य इत्युपरिसत्ऽभ्यः। दुवस्वद्भ्य इति दुवस्वत्ऽभ्यः। स्वाहा॥ ३५॥

पदार्थः-**(एषः)** पूर्वापरप्रतिपादितः **(ते)** तव **(निर्ऋते)** नितरामृतं सत्यमाचरणं यस्मिन् तत्सम्बुद्धौ **(भागः)** भजनीयः, सेवितुं योग्यः **(तम्)** **(जुषस्व)** सेवस्व **(स्वाहा)** सत्यां वाचम् **(अग्निनेत्रेभ्यः)** अग्नेः प्रकाश इव नेत्रं नयनं येषां तेभ्यः **(देवेभ्यः)** धार्मिकेभ्यो विद्वद्भ्यः **(पुरःसद्भ्यः)** ये पुरः पूर्वं सभायां राष्ट्रे वा सीदन्ति तेभ्यः **(स्वाहा)** धर्म्यां क्रियाम् **(यमनेत्रेभ्यः)** यमस्य वायोर्नेत्रं नयनमिव नीतिर्येषां तेभ्यः **(देवेभ्यः)** विपश्चिद्भ्यः **(दक्षिणासद्भ्यः)** विश्वेषां देवानां विदुषां नेत्रं नीतिरिव नीतिर्येषां तेभ्यः **(स्वाहा)** दानक्रियाम् **(विश्वदेवनेत्रेभ्यः)**

सर्वविद्वत्तुल्या नेत्रा नीतिर्येषां तेभ्यः **(देवेभ्यः)** दिव्यसुखप्रदेभ्यः **(पश्चात्सद्भ्यः)** ये पश्चात् सीदन्ति तेभ्यः **(स्वाहा)** उत्साहकारिकां वाचम् **(मित्रावरुणनेत्रेभ्यः)** प्राणापानतुल्येभ्यः **(वा)** पक्षान्तरे **(मरुन्नेत्रेभ्यः)** मरुतामृत्विजां प्रजास्थानां सज्जनानां वा नेत्रमिव नायकत्वं येषां तेभ्यः **(वा)** **(देवेभ्यः)** दिव्यन्यायप्रकाशकेभ्यः **(उत्तरासद्भ्यः)** य उत्तरस्यां दिशि सीदन्ति तेभ्यः **(स्वाहा)** दौत्यकुशलताम् **(सोमनेत्रेभ्यः)** सोमस्य चन्द्रस्यैश्वर्य्यवती नेत्रं नयनमिव नीतिर्येषां तेभ्यः **(देवेभ्यः)** सकलविद्याप्रचारकेभ्यः **(उपरिसद्भ्यः)** सर्वोपरि विराजमानेभ्यः **(दुवस्वद्भ्यः)** विद्याविनयधर्मेश्वरान् सेवमानेभ्यः **(स्वाहा)** आप्तवाणीम्। अयं मन्त्रः (शत०(५।२।३।३-१०; ५।२।४।१-५) व्याख्यातः॥ ३५॥

अन्वयः-हे निर्ऋते राजँस्ते तव य एष भागो भजनीयो न्यायोऽस्ति, तमग्निनेत्रेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा पुरःसद्भ्यो देवेभ्यः स्वाहा। यमनेत्रेभ्यो दक्षिणासद्भ्यो देवेभ्यः स्वाहा। विश्वदेवनेत्रेभ्यः पश्चात्सद्भ्यो देवेभ्यः स्वाहा। मित्रावरुणनेत्रेभ्यो वा मरुन्नेत्रेभ्यो वोत्तरासद्भ्यो देवेभ्यः स्वाहा। सोमनेत्रेभ्यः उपरिसद्भ्यो दुवस्वद्भ्यो देवेभ्यः स्वाहा च प्राप्य त्वं धर्मेण राज्यं सदा जुषस्व॥ ३५॥

भावार्थः-हे राजन् सभाध्यक्ष! यदा भवान् सर्वतो विद्वद्वरेभ्यः परिवृतः प्राप्तशिक्षः कृतसभो रक्षितसेनः सुसहायः सन् सनातया वेदोक्त्या राजधर्मनीत्या प्रजाः पालयेत्, तदैवेहामुत्र सुखमेव प्राप्नुयात्। एतद्विरुद्धश्चेत् तर्हि ते कुतः सुखमिति, नहि मूर्खसहायः सुखमेधते, न खलु विद्वदुपदेशानुगामी कदाचित् सुखं जहाति, अस्माद्राजा सदैव विद्याधर्माप्तसहायेन राज्यं रक्षेत्। यस्य सभायां राज्ये वा पूर्णविद्या धर्मिका वर्त्तन्ते, मिथ्यावादिनो व्यभिचारिणोऽजितेन्द्रियाः परुषवाचोऽन्यायाचाराः स्तेना दस्यवश्च न सन्ति, स्वयमप्येवं भूतोऽस्ति, स एव चक्रवर्त्तिराज्यं कर्त्तुमर्हति, नातो विरुद्धो जन इति बोध्यम्॥ ३५॥

पदार्थः-हे **(निर्ऋते)** सदैव सत्याचरणयुक्त राजन्! **(ते)** आप का जो **(एषः)** यह **(भागः)** सेवने योग्य है, उसको **(अग्निनेत्रेभ्यः)** अग्नि के प्रकाश के समान नीतियुक्त **(देवेभ्यः)** विद्वानों से **(स्वाहा)** सत्य वाणी **(पुरःसद्भ्यः)** जो प्रथम सभा वा राज्य में स्थित हो, उन **(देवेभ्यः)** न्यायाधीश विद्वानों से **(स्वाहा)** धर्मयुक्त क्रिया **(यमनेत्रेभ्यः)** जिनकी वायु के समान सर्वत्र गति **(दक्षिणासद्भ्यः)** जो दक्षिण दिशा में राजप्रबन्ध के लिये स्थित हों, उन **(देवेभ्यः)** विद्वानों से **(स्वाहा)** दानक्रिया **(विश्वेदेवनेत्रेभ्यः)** सब विद्वानों के तुल्य नीति के ज्ञानी **(पश्चात्सद्भ्यः)** जो पश्चिम दिशा में राजकर्मचारी हों, उन **(देवेभ्यः)** दिव्य सुख देनेहारे विद्वानों से **(स्वाहा)** उत्साहकारक वाणी **(मित्रावरुणनेत्रेभ्यः)** प्राण और अपान के समान वा **(मरुन्नेत्रेभ्यः)** ऋत्विक् यज्ञ के कर्त्ता **(वा)** सत्पुरुष के समान न्यायकारक **(वा)** वा **(उत्तरासद्भ्यः)** जो उत्तर दिशा में न्यायधीश हों, उन **(देवेभ्यः)** विद्वानों से **(स्वाहा)** दूतकर्म की कुशल क्रिया **(सोमनेत्रेभ्यः)** चन्द्रमा के समान ऐश्वर्य्ययुक्त होकर सब को आनन्ददायक **(उपरिसद्भ्यः)** विद्या, विनय, धर्म और ईश्वर की सेवा करनेहारे **(देवेभ्यः)** विद्वानों से **(स्वाहा)** आप्त पुरुषों की वाणी को प्राप्त हो के तू सदा धर्म का **(जुषस्व)** सेवन किया कर॥ ३५॥

भावार्थः-हे राजन् सभाध्यक्ष! जब आप सब ओर से उत्तम विद्वानों से युक्त होकर सब प्रकार की शिक्षा को प्राप्त सभा का करनेहारा सेना का रक्षक उत्तम सहाय से सहित होकर सनातन वेदोक्त राजधर्मनीति से प्रजा का पालन कर इस लोक और परलोक में सुख ही को प्राप्त होवे, जो कर्म से विरुद्ध रहेगा तो तुझ को सुख भी न होगा। कोई भी मनुष्य मूर्खों के सहाय से सुख की वृद्धि नहीं कर सकता और न कभी विद्वानों के अनुसार चलने

वाला मनुष्य सुख को छोड़ देता है। इससे राजा सर्वदा विद्या, धर्म और आप्त विद्वानों के सहाय से राज्य की रक्षा किया करे। जिसकी सभा वा राज्य में पूर्ण विद्यायुक्त धार्मिक मनुष्य सभासद् वा कर्मचारी होते हैं और जिसके सभा वा राज्य में मिथ्यावादी, व्यभिचारी, अजितेन्द्रिय, कठोर वचनों के बोलने वाले, अन्याकारी, चोर और डाकू आदि नहीं होते और आप भी इसी प्रकार का धार्मिक हो तो वही पुरुष चक्रवर्त्ती राज्य करने के योग्य होता है, इससे विरुद्ध नहीं॥३५॥

ये देवा इत्यस्य वरुण ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। विकृतिश्छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

मनुष्याः सर्वत्र भ्रमणं विधाय विद्या गृह्णीयुरित्युपदिश्यते॥

मनुष्य लोग सर्वत्र घूम-घाम कर विद्या ग्रहण करें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

ये दे॒वाऽअ॒ग्निने॑त्राः पु॒रः॒सद॒स्तेभ्य॒ः स्वाहा॒ ये दे॒वा य॒मने॑त्रा दक्षिणा॒सद॒स्तेभ्य॒ः स्वाहा॒ ये दे॒वा वि॒श्वदे॑वनेत्राः पश्चा॒त्सद॒स्तेभ्य॒ः स्वाहा॒ ये दे॒वा मि॒त्रावरु॑णनेत्रा वा म॒रुन्ने॑त्रा वोत्तरा॒सद॒स्तेभ्य॒ः स्वाहा॒ ये दे॒वाः सोम॑नेत्राऽउपरि॒सदो॒ दुव॑स्वन्त॒स्तेभ्य॒ः स्वाहा॑॥ ३६॥

ये। दे॒वाः। अग्निने॑त्रा॒ इत्य॒ग्निऽने॑त्राः। पु॒रः॒सद॒ इति॑ पु॒रः॒ऽसदः॑। तेभ्यः॑। स्वाहा॑। ये। दे॒वाः। य॒मने॑त्रा॒ इति॑ य॒मऽने॑त्राः। द॒क्षि॒णा॒सद॒ इति॑ दक्षिणा॒ऽसदः॑। तेभ्यः॑। स्वाहा॑। ये। दे॒वाः। वि॒श्वदे॑वनेत्रा॒ इति॑ वि॒श्वदे॑वऽनेत्राः। प॒श्चा॒त्सद॒ इति॑ प॒श्चा॒त्ऽसदः॑। तेभ्यः॑। स्वाहा॑। ये। दे॒वाः। मि॒त्रावरु॑णनेत्रा॒ इति॑ मि॒त्रावरु॑णऽनेत्राः। वा॒। म॒रुन्ने॑त्रा॒ इति॑ म॒रुत्ऽने॑त्राः। वा॒। उ॒त्त॒रा॒सद॒ इत्यु॑त्तरा॒ऽसदः॑। तेभ्यः॑। स्वाहा॑। ये। दे॒वाः। सोम॑नेत्रा॒ इति सोम॑ऽनेत्राः। उ॒प॒रि॒सद॒ इत्यु॑परि॒ऽसदः॑। दुव॑स्वन्तः। तेभ्यः॑। स्वाहा॑॥३६॥

पदार्थः-(**ये**) (**देवाः**) विद्वांसः (**अग्निनेत्राः**) अग्नौ विद्युदादौ नेत्रं नयनं विज्ञानं येषां ते (**पुरःसदः**) ये सभायां राष्ट्रे वा पुरः पूर्वस्यां दिशि सीदन्ति (**तेभ्यः**) (**स्वाहा**) सत्यां वाचम् (**ये**) (**देवाः**) योगिनो न्यायाधीशाः (**यमनेत्राः**) यमेष्वहिंसादिषु योगाङ्गेषु नीतिषु वा नेत्रं प्रापणं येषां ते (**दक्षिणासदः**) ये दक्षिणस्यां दिश्यवतिष्ठन्ते (**तेभ्यः**) (**स्वाहा**) सत्यां क्रियाम् (**ये**) (**देवाः**) सर्वविद्याविदः (**विश्वदेवनेत्राः**) विश्वेषु देवेषु नेत्रं प्रज्ञानं येषां ते (**पश्चात्सदः**) ये पश्चिमायां दिशि सीदन्ति (**तेभ्यः**) (**स्वाहा**) आन्वीक्षिकीं विद्यां (**ये**) (**देवाः**) सर्वेभ्यः सुखदातारः (**मित्रावरुणनेत्राः**) प्राणोदानवत्सर्वान् धर्म्मं नयन्तः (**वा**) (**मरुन्नेत्राः**) मरुति ब्रह्माण्डस्थे वायौ नेत्रं नयनं येषां ते (**वा**) अध ऊर्ध्वस्थाः (**उत्तरासदः**) ये प्रश्नोत्तराणि समादधाना उत्तरस्यां दिशि सीदन्ति (**तेभ्यः**) (**स्वाहा**) सर्वोपकारिणीं विद्याम् (**ये**) (**देवाः**) आयुर्वेदविदः (**सोमनेत्राः**) सोमलतादिष्वोषधीषु नेत्रं नयनं येषां ते (**उपरिसदः**) ये उपरि उत्कृष्ट आसने व्यवहारे वा सीदन्ति ते (**दुवस्वन्तः**) दुवो बहुविद्याधर्मपरिचरणं विद्यते येषु (**तेभ्यः**) (**स्वाहा**) धर्मौषधिविद्याम्। अयं मन्त्रः (शत०(५।२।४।६) व्याख्यातः॥३६॥

अन्वयः-हे सभाध्यक्षराजँस्त्वं येऽग्निनेत्राः पुरःसदो देवा सन्ति, तेभ्यः स्वाहा जुषस्व। ये यमनेत्रा दक्षिणासदो देवाः सन्ति, तेभ्यः स्वाहा जुषस्व। ये पश्चात्सदो विश्वदेवनेत्रा देवाः सन्ति, तेभ्यः स्वाहा जुषस्व। ये उत्तरासदो वाऽध ऊर्ध्वस्था मित्रावरुणनेत्रा वा मरुन्नेत्रा देवाः सन्ति, तेभ्यः स्वाहा जुषस्व। ये उपरिसदो दुवस्वन्तः सोमनेत्रा देवाः सन्ति, तेभ्यः स्वाहा जुषस्व॥३६॥

भावार्थः-हे राजादयो मनुष्याः! यूयं यदा धार्मिकाः सुशीला विद्वांसो भूत्वा सर्वदिक्स्थानां सर्वविद्याविदामाप्तानां विदुषां परीक्षासत्करार्थं सर्वा विद्याः प्राप्नुयात, तदैते भवत्समीपमागत्य युष्माभिः सह सङ्गत्य धर्मार्थकाममोक्षाणां सिद्धिं कुर्युः। ये देशदेशान्तरं द्वीपद्वीपान्तरं विद्याविनयसुशिक्षाक्रियाकौशलानि गृह्णन्ति त एव सर्वेषां सुसुखैरलङ्कर्त्तारः स्युः॥३६॥

पदार्थः-हे सभाध्यक्ष राजन्! आप **(ये)** जो **(अग्निनेत्राः)** बिजुली आदि पदार्थों के समान जानने वाले **(पुरःसदः)** जो सभा वा देश वा पूर्व की दिशा में स्थित **(देवाः)** विद्वान् हैं, **(तेभ्यः)** उनसे **(स्वाहा)** सत्यवाणी **(ये)** जो **(यमनेत्राः)** अहिंसादि योगाङ्ग रीतियों में निपुण **(दक्षिणासदः)** दक्षिण दिशा में स्थित **(देवाः)** योगी और न्यायाधीश हैं, **(तेभ्यः)** उनसे **(स्वाहा)** सत्यक्रिया **(ये)** जो **(पश्चात्सदः)** पश्चिम दिशा में **(विश्वदेवनेत्राः)** सब पृथिवी आदि पदार्थों के ज्ञाता **(देवाः)** सब विद्या जानने वाले विद्वान् हैं, **(तेभ्यः)** उनसे **(स्वाहा)** दण्डनीति **(ये)** जो **(उत्तरासदः)** प्रश्नोत्तरों का समाधान करने वाले उत्तर दिशा में **(वा)** नीचे-ऊपर स्थित **(मित्रावरुणनेत्राः)** प्राण-उदान के समान सब धर्मों के बताने वाले **(वा)** अथवा **(मरुन्नेत्राः)** ब्रह्माण्ड के वायु में नेत्रविज्ञान और **(देवाः)** सब को सुख देने वाले विद्वान् हैं, **(तेभ्यः)** उनसे **(स्वाहा)** सबकी उपकारक विद्या को सेवन करो। और **(ये)** जो **(उपरिसदः)** ऊँचे आसन वा व्यवहार में स्थित **(दुवस्वन्तः)** बहुत प्रकार से धर्म के सेवन से युक्त **(सोमनेत्राः)** सोम आदि औषधियों के जानने तथा **(देवाः)** आयुर्वेद को जाननेहारे हैं, **(तेभ्यः)** उनसे **(स्वाहा)** अमृतरूपी औषधीविद्या का सेवन कीजिये॥३६॥

भावार्थः-हे राजा आदि मनुष्यो! तुम लोग जब धार्मिक सुशील विद्वान् होकर सब दिशाओं में स्थित सब विद्याओं के जानने वाले आप्त विद्वानों की परीक्षा और सत्कार के लिये सब विद्याओं को प्राप्त होंगे, तब यह तुम्हारे समीप आके तुम्हारे साथ सङ्ग करके धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को सिद्धि करावें। जो देश-देशान्तर तथा द्वीप-द्वीपान्तर में विद्या, नम्रता, अच्छी शिक्षा, काम की चतुराई को ग्रहण करते हैं, वे ही सब को अच्छे सुख कराने वाले होते हैं॥३६॥

अग्ने सहस्वेत्यस्य देवावत ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनरपि राजादिभिः कथं वर्तितव्यमित्युपदिश्यते॥

फिर भी राजा आदि किस प्रकार वर्त्तें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अग्ने सहस्व पृतनाऽअभिमातीरपास्य। दुष्टरस्तरन्नरातीर्वर्चो धा यज्ञवाहसि॥३७॥

अग्ने। सहस्व। पृतनाः। अभिमातीरित्यभिऽमातीः। अप। अस्य। दुष्टरः। दुस्तर इति दुःऽतरः। तरन्। अरातीः। वर्चः। धाः। यज्ञवाहसीति यज्ञऽवाहसि॥३७॥

पदार्थः-**(अग्ने)** सकलविद्याविद् विद्वन् राजन्! **(सहस्व)** क्षमस्व **(पृतनाः)** बलसुशिक्षान्विता वीरमनुष्यसेनाः **(अभिमातीः)** अभिमानहर्षयुक्ताः **(अप)** दूरे **(अस्य)** प्रक्षिप **(दुष्टरः)** दुःखेन तरितुं संप्लवितुं योग्यः **(तरन्)** शत्रुबलं संप्लवन् **(अरातीः)** अदानशीलान् शत्रून् **(वर्चः)** विद्याबलन्यायदीपनम् **(धाः)** धेहि **(यज्ञवाहसि)** यज्ञान् सङ्गतान् राजधर्मादीन् वहन्ति यस्मिन् राज्ये तस्मिन्। अयं मन्त्रः (शत०(५। २। ४। १६) व्याख्यातः॥३७॥

अन्वयः-हे अग्ने! दुष्टरस्तरँस्त्वं यज्ञवाहस्यभिमातीः पृतनाः सहस्वारातीरपास्य वर्चो धाः॥३७॥

भावार्थः-राजादयः सभासेनादयः स्वकीयेन दृढेन विद्यासुशिक्षायुक्तेन धृतेन सैन्येन सहिताः स्वयमजयाः सन्तः शत्रून् विजयमानाः पृथिव्यां कीर्तिं प्रसारयेयुः॥३७॥

पदार्थः-हे **(अग्ने)** सब विद्या जानने वाले विद्वान् राजन्! **(दुष्टरः)** दुःख से तरने योग्य **(तरन्)** शत्रु सेना को अच्छे प्रकार तरते हुए आप **(यज्ञवाहसि)** जिसमें राजधर्मयुक्त राज्य में **(अभिमातीः)** अभिमान आनन्दयुक्त **(पृतनाः)** बल और अच्छी शिक्षायुक्त वीरसेना को **(सहस्व)** सहो **(अरातीः)** दुःख देने वाले शत्रुओं को **(अपास्य)** दूर निकालिये और **(वर्चः)** विद्या बल और न्याय को **(धाः)** धारण कीजिये॥३७॥

भावार्थः-राजादि सभा सेना के स्वामी लोग अपनी दृढ़ विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त सेना के सहित आप अजय और शत्रुओं को जीतते हुए भूमि पर उत्तम यज्ञ का विस्तार करें॥३७॥

देवस्य त्वेत्यस्य देववात ऋषिः। रक्षोघ्नो देवता। भुरिग्ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

प्रजाजना इह कीदृशं सभाधीशं राजानं स्वीकुर्युरित्याह॥

प्रजाजन राज्य में कैसे सभाधीश को स्वीकार करें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

दे॒वस्य॑ त्वा सवि॒तुः प्र॑स॒वे॒ऽश्विनो॑र्बा॒हुभ्या॒ं पू॒ष्णो हस्ता॑भ्याम्। उ॒पा॒ꣳशोर्वी॒र्ये॒ण जुहोमि ह॒तꣳ रक्ष॒ः स्वाहा॒ रक्ष॑सां त्वा व॒धायाव॑धिष्म॒ रक्षोऽव॑धिष्मा॒मुम॒सौ ह॒तः॥३८॥

दे॒वस्य॑। त्वा॒। स॒वि॒तुः। प्र॒स॒व इति॑ प्र॒ऽस॒वे। अ॒श्विनोः॑। बा॒हुभ्या॒मिति॑ बा॒हुऽभ्या॑म्। पू॒ष्णः। हस्ता॑भ्याम्। उ॒पा॒ꣳशोरित्यु॑पऽअ॒ꣳशोः। वी॒र्ये॒ण। जु॒हो॒मि॒। ह॒तम्। रक्षः॑। स्वाहा॑। रक्ष॑साम्। त्वा॒। व॒धाय॑। अव॑धिष्म। रक्षः॑। अव॑धिष्म। अ॒मुम्। अ॒सौ। ह॒तः॥३८॥

पदार्थः-**(देवस्य)** प्रकाशितन्यायस्य **(त्वा)** त्वाम् **(सवितुः)** ऐश्वर्य्योत्पादकस्य सेनेशस्य **(प्रसवे)** ऐश्वर्ये **(अश्विनोः)** सूर्य्याचन्द्रमसोरिव सभासेनापत्योः **(बाहुभ्याम्)** **(पूष्णः)** पुष्टिकर्तुर्वैद्यस्य **(हस्ताभ्याम्)** **(उपांशोः)** उप समीपेऽनिति तस्य, अत्रान धातोरुः शुगागमश्च **(वीर्य्येण)** सामर्थ्येन **(जुहोमि)** गृह्णामि **(हतम्)** विनष्टम् **(रक्षः)** राक्षसम्। **रक्षो रक्षितव्यमस्माद् रहसि क्षणोतीति वा रात्रौ नक्षत इति वा।** (निरु०४।१८) **(स्वाहा)** सत्यया क्रियया **(रक्षसाम्)** दुष्टानाम् **(त्वा)** त्वाम् **(वधाय)** विनाशाय **(अवधिष्म)** हन्याम **(रक्षः)** दुष्टाचारम् **(अवधिष्म)** ताडये **(अमुम्)** परोक्षम् **(असौ)** दूरस्थः **(हतः)** विनष्टः। अयं मन्त्रः (शत०(५।२।४।१७-२०) व्याख्यातः॥३८॥

अन्वयः-हे राजन्नहं स्वाहा सवितुर्देवस्य प्रसव उपांशोर्वीर्य्येणाश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां रक्षसां वधाय त्वा जुहोमि, यथा त्वया रक्षो हतम्, तथा वयमप्यवधिष्म। यथासौ हतः स्यात्, तथा वयमेतमवधिष्म॥३८॥

भावार्थः-प्रजास्थजनाः स्वरक्षणाय दुष्टनिवारणाय विद्याधर्मप्रवृत्तये च सुशीलं राजानं स्वीकुर्युः॥३८॥

पदार्थः-हे राजन्! मैं **(स्वाहा)** सत्य क्रिया से **(सवितुः)** ऐश्वर्य्य के उत्पन्न करने वाले **(देवस्य)** प्रकाशित न्याययुक्त **(प्रसवे)** ऐश्वर्य्य में **(उपांशोः)** समीपस्थ सेना के **(वीर्य्येण)** सामर्थ्य से **(अश्विनोः)** सूर्य्य-चन्द्रमा के समान सेनापति के **(बाहुभ्याम्)** भुजाओं से **(पूष्णः)** पुष्टिकारक वैद्य के **(हस्ताभ्याम्)** हाथों से **(रक्षसाम्)** राक्षसों के **(वधाय)** नाश के अर्थ **(त्वा)** आपको **(जुहोमि)** ग्रहण करता हूं, जैसे तूने **(रक्षसाम्)** दुष्ट को **(हतम्)** नष्ट किया,

वैसे हम लोग भी दुष्टों को (**अवधिष्म**) मारें, जैसे (**असौ**) वह दुष्ट (**हतः**) नष्ट हो जाय, वैसे हम लोग इन सब को (**अवधिष्म**) नष्ट करें॥३८॥

भावार्थः-प्रजाजनों को चाहिये कि अपने बचाव और दुष्टों के निवारणार्थ विद्या और धर्म की प्रवृत्ति के लिये अच्छे स्वभाव, विद्या और धर्म के प्रचार करनेहारे, वीर, जितेन्द्रिय, सत्यवादी, सभा के स्वामी राजा को स्वीकार करें॥३८॥

सविता त्वेत्यस्य देववात ऋषिः। रक्षोघ्नो देवता। अतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

सभ्यैर्मनुष्यै राजा क्व क्व प्रेरयितव्य इत्याह॥

सभ्य मनुष्य राजा को किस-किस विषय में प्रेरणा करें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

सविता त्वा सवानाᳬं सुवतामग्निर्गृहपतीनाᳬं सोमो वनस्पतीनाम्।
बृहस्पतिर्वाचऽइन्द्रो ज्यैष्ठ्याय रुद्रः पशुभ्यो मित्रः सत्यो वरुणो धर्मपतीनाम्॥३९॥

सविता। त्वा। सवानाम्। सुवताम्। अग्निः। गृहपतीनामिति गृहऽपतीनाम्। सोमः। वनस्पतीनाम्। बृहस्पतिः। वाचे। इन्द्रः। ज्यैष्ठ्याय। रुद्रः। पशुभ्य इति पशुऽभ्यः। मित्रः। सत्यः। वरुणः। धर्मपतीनामिति धर्मऽपतीनाम्॥३९॥

पदार्थः-(**सविता**) ऐश्वर्य्यस्य प्रसविता (**त्वा**) त्वाम् (**सवानाम्**) ऐश्वर्य्यणाम् (**सुवताम्**) प्रेर्ताम्, अत्र व्यत्ययेनात्मनेपदम् (**अग्निः**) प्रकाशयुक्तः (**गृहपतीनाम्**) गृहाऽऽश्रमपालकानाम् (**सोमः**) सोम्यगुणसम्पन्नो वैद्यकविषय ओषधीराजः (**वनस्पतीनाम्**) पिप्पल्यादीनाम् (**बृहस्पतिः**) पूर्णविद्य आप्तः (**वाचे**) वेदाऽर्थसुशिक्षायुक्तवाणीविज्ञानाय (**इन्द्रः**) परमैश्वर्य्ययोगारूढो वृद्धः (**ज्यैष्ठ्याय**) अतिशयेन वृद्धस्य भावाय (**रुद्रः**) शत्रूणां रोदयिता शूरवीरः (**पशुभ्यः**) गवादीनाम् (**मित्रः**) सर्वस्य सुहृत् (**सत्यः**) सत्पुरुषेषु भवः (**वरुणः**) धर्म्माऽऽचरणेन श्रेष्ठः (**धर्म्मपतीनाम्**) धर्म्मस्य रक्षितॄणाम्। अयं मन्त्रः (शत०(५।३।३।१०) व्याख्यातः॥३९॥

अन्वयः-हे सभेश राजन्! यस्त्वं सवानां सवितेव गृहपतीनामग्निरिव वनस्पतीनां सोम इव धर्मपतीनां सत्यो वरुणो मित्र इव वाचे बृहस्पतिरिव ज्यैष्ठ्यायेन्द्र इव पशुभ्यो रुद्र इवासि, तं त्वाप्त उपदेष्टा प्रजापालने सुवताम्॥३९॥

भावार्थः-हे राजँस्त्वं ये त्वामधर्मान्निवर्त्त्य धर्मानुष्ठाने प्रेरयुयुस्तेषामेव सङ्गं सदा कुरु नेतरेषाम्॥३९॥

पदार्थः-हे सभापते राजन्! जो तू (**सवानाम्**) ऐश्वर्य्य के (**सविता**) सूर्य्य के समान प्रेरक (**गृहपतीनाम्**) गृहस्थों के उपकारक (**अग्निः**) पावक के सदृश (**वनस्पतीनाम्**) पीपल आदि वृक्षों में (**सोमः**) सोमवल्ली के सदृश (**धर्म्मपतीनाम्**) धर्म के पालनेहारों के मध्य में (**सत्यः**) सज्जनों में सज्जन (**वरुणः**) शुभगुण कर्मों में श्रेष्ठ (**मित्रः**) सखा के तुल्य (**वाचे**) वेदवाणी के लिये (**बृहस्पतिः**) महाविद्वान् के सदृश (**ज्यैष्ठ्याय**) श्रेष्ठता के लिये (**इन्द्र**) परमैश्वर्य्य से युक्त के तुल्य (**पशुभ्यः**) गौ आदि पशुओं के लिये (**रुद्रः**) शुद्ध वायु के सदृश है, उस (**त्वा**) तुझको धर्मात्मा, सत्यवादी विद्वान् धर्म से प्रजा की रक्षा में (**सुवताम्**) प्रेरणा करें॥३९॥

भावार्थः-हे राजन्! जो आपको अधर्म से लौटाकर धर्म के अनुष्ठान में प्रेरणा करें, उन्हीं का सङ्ग सदा करो, औरों का नहीं॥३९॥

इमं देवा इत्यस्य देववात ऋषिः। यजमानो देवता। स्वराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

कस्मै कस्मै प्रयोजनाय कथंभूतो राजा स्वीकार्य्य इत्याह॥

किस-किस प्रयोजन के लिये कैसे राजा का स्वीकार करें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

इमं देवाऽअसपत्नꣳ सुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय। इममुमुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विशऽएष वोऽमी राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानाꣳ राजा॥४०॥

इमम्। देवाः। असपत्नम्। सुवध्वम्। महते। क्षत्राय। महते। ज्यैष्ठ्याय। महते। जानराज्यायेति जानऽराज्याय। इन्द्रस्य। इन्द्रियाय। इमम्। अमुष्य। पुत्रम्। अमुष्यै। पुत्रम्। अस्यै। विशे। एषः। वः। अमीऽइत्यमी। राजा। सोमः। अस्माकम्। ब्राह्मणानाम्। राजा॥४०॥

पदार्थः-(**इमम्**) समक्षे वर्त्तमानम् (**देवाः**) धार्मिका विद्वांसः (**असपत्नम्**) अजातशत्रुम् (**सुवध्वम्**) निष्पादयत (**महते**) महागुणविशिष्टाय (**क्षत्राय**) क्षत्रियाणां पालनाय (**महते**) (**ज्यैष्ठ्याय**) ज्येष्ठत्वाय (**महते**) (**जानराज्याय**) जनानां राजसु भवाय (**इन्द्रस्य**) परमैश्वर्य्ययुक्तस्य पुरुषस्य (**इन्द्रियाय**) धनाय (**इमम्**) (**अमुष्य**) (**पुत्रम्**) प्रतिष्ठितस्य धार्मिकस्य विदुषः सन्तानम् (**अमुष्यै**) अमुष्या धार्मिकाया विदुष्याः (**पुत्रम्**) पवित्रमपत्यम् (**अस्यै**) वर्त्तमानायाः (**विशे**) प्रजायाः (**एषः**) सर्वैः स्वीकृतः (**वः**) युष्माकं क्षत्रियादीनाम् (**अमी**) परोक्षे वर्त्तमानाः (**राजा**) न्यायप्रकाशकः (**सोमः**) सोम इव प्रजासु वर्त्तमानाः (**अस्माकम्**) (**ब्राह्मणानाम्**) ब्रह्मणः परमेश्वरस्य वेदचतुष्टयस्य वा सेवकानाम् (**राजा**)। अयं मन्त्रः (शत०(५।३।३।११॥ व्याख्यात॥४०॥

अन्वयः-हे प्रजास्था देवाः! यूयं त एष सोमो वोऽस्माकं च ब्राह्मणानां राजा येऽमी परोक्षे वर्त्तन्ते तेषाञ्च राजाऽस्ति, तमिमममुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विश इममेव महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियायाऽसपत्नं सुवध्वम्॥४०॥

भावार्थः-हे राजप्रजाजनाः! यो विद्वद्भ्यां मातापितृभ्यां सुशिक्षितः कुलीनो महागुणकर्मस्वभावो जितेन्द्रियत्वादिगुणयुक्तः सेविताऽष्टचत्वारिंशद्वर्षब्रह्मचर्यविद्यासुशिक्षः पूर्णशरीरात्मबलः प्रजापालनप्रियो विद्वानस्ति, तं सभाध्यक्षं राजानं कृत्वा साम्राज्यं सेवध्वम्॥४०॥

अस्मिन्नध्याये राजधर्मवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वाध्यायार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति जानन्तु॥

पदार्थः-हे प्रजास्थ (**देवाः**) विद्वान् लोगो! तुम जो (**एषः**) यह (**सोमः**) चन्द्रमा के समान प्रजा में प्रियरूप (**वः**) तुम क्षत्रियादि और हम ब्राह्मणादि और जो (**अमी**) परोक्ष में वर्त्तमान हैं, उन सब का राजा है, उस (**इमम्**) इस (**अमुष्य**) उस उत्तम पुरुष का (**पुत्रम्**) पुत्र (**अमुष्यै**) उस विद्यादि गुणों से श्रेष्ठ धर्मात्मा विद्वान् स्त्री के पुत्र को (**अस्यै**) इस (**विशे**) प्रजा के लिये इसी पुरुष को (**महते**) बड़े (**ज्यैष्ठ्याय**) प्रशंसा के योग्य (**महते**) बड़े (**जानराज्याय**) धार्मिक जनों के राज्य करने (**इन्द्रस्य**) परमैश्वर्य्ययुक्त (**इन्द्रियाय**) धन के वास्ते (**असपत्नम्**) शत्रु रहित (**सुवध्वम्**) कीजिये॥४०॥

भावार्थः-हे राजा और प्रजा के मनुष्यो! तुम जो विद्वान् माता और पिता से अच्छे प्रकार सुशिक्षित,

कुलीन, बड़े उत्तम-उत्तम गुण, कर्म और स्वभावयुक्त जितेन्द्रियादि गुणयुक्त, ४८ अड़तालीस वर्षपर्यन्त ब्रह्मचर्य्य से पूर्ण विद्या से सुशील, शरीर और आत्मा के पूर्ण बलयुक्त, धर्म से प्रजा का पालक, प्रेमी, विद्वान् हो, उसको सभापति राजा मान कर चक्रवर्त्तिराज्य का सेवन करो॥४०॥

इस अध्याय में राजधर्म के वर्णन से इस अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये॥

इति श्रीमत्परिव्राजकाचार्य्येण श्रीयुतमहाविदुषां विरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचिते संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां विभूषिते सुप्रमाणयुक्ते यजुर्वेदभाष्ये नवमोऽध्यायः पूर्तिमगात्॥ ९॥

॥ओ३म्॥

अथ दशमोऽध्यायारम्भः॥

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव। यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व॥ यजु० ३०.३॥

अपो देवा इत्यस्य वरुण ऋषिः। आपो देवताः। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ मनुष्यैर्विदुषामनुकरणेन पदार्थेभ्य उपयोगो ग्राह्य इत्याह॥

इसके पश्चात् इस दशवें अध्याय के प्रथम मन्त्र में मनुष्य लोग विद्वानों के अनुकूल चलें, इस विषय का उपदेश किया है॥

अ॒पो दे॒वा मधु॑मतीरगृभ्ण॒न्नूर्ज॑स्वती रा॒ज॒स्व॒श्चिता॑नाः।
याभि॑र्मि॒त्रावरु॑णाव॒भ्यषि॑ञ्च॒न् याभि॒रिन्द्र॒मन॑य॒न्नत्यरा॑तीः॥ १॥

अ॒पः। दे॒वाः। मधु॑मती॒रिति॒ मधु॑ऽमतीः। अ॒गृ॒भ्ण॒न्। ऊर्ज॑स्वतीः। रा॒ज॒स्व॒ इति॑ रा॒ज॒ऽस्व॒ः। चिता॑नाः। याभि॑ः। मि॒त्रावरु॑णौ। अ॒भि। असि॑ञ्चन्। याभि॑ः। इन्द्र॑म्। अन॑यन्। अति॑। अरा॑तीः॥ १॥

पदार्थः-(**अपः**) जलानि प्राणान् वा (**देवाः**) विद्वांसः (**मधुमतीः**) प्रशस्तमधुरादिगुणयुक्ताः (**अगृभ्णन्**) गृह्णीत (**ऊर्जस्वतीः**) बलपराक्रमप्रदाः (**राजस्वः**) राजजनिकाः (**चितानाः**) संज्ञाकारिण्यः, अत्र विकरणलुग्व्यत्ययेनात्मनेपदं च (**याभिः**) (**मित्रावरुणौ**) प्राणोदानौ (**अभि**) (**असिञ्चन्**) सिञ्चन्ति (**याभिः**) क्रियाभिः (**इन्द्रम्**) विद्युतम् (**अनयन्**) प्राप्नुवन्ति (**अति**) (**अरातीः**) शत्रून्॥ अयं मन्त्रः (शत० ५।३।४।२-३) व्याख्यातः॥१॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यूयं विपश्चितो देवा याभिर्मित्रावरुणावभ्यसिञ्चन्, याभिरिन्द्रमरातीश्चानयन्, ताभिर्मधुमतीरूर्जस्वतीश्चिताना राजस्वोऽपोऽगृभ्णन् गृह्णीत॥१॥

भावार्थः-मनुष्यैर्विद्वत्सहायेनाऽपः सुपरीक्ष्योपयुज्यन्ताम्। शत्रून्निवर्त्य प्रजया सह प्राणवत्प्रियत्वे वर्त्तितव्यमाभ्य उपकारो नेयः॥१॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम लोग (**देवाः**) चतुर विद्वान् लोग (**याभिः**) जिन क्रियाओं से (**मित्रावरुणौ**) प्राण तथा उदान को (**अभ्यसिञ्चन्**) सब प्रकार सींचते और जिन क्रियाओं से (**इन्द्रम्**) बिजुली को प्राप्त और (**अरातीः**) शत्रुओं को (**अनयन्**) जीतते हैं, उन क्रियाओं से (**मधुमतीः**) प्रशंसनीय मधुरादि गुणयुक्त (**ऊर्जस्वतीः**) बल पराक्रम बढ़ाने (**चितानाः**) चेतनता देने और (**राजस्वः**) ज्ञान-प्रकाश-युक्त राज्य को प्राप्त करानेहारे (**अपः**) जल वा प्राणों को (**अगृभ्णन्**) ग्रहण करो॥१॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों के सहाय से जल वा प्राणों की परीक्षा करके उनसे उपयोग लेवें। शत्रुओं को निवृत्त करके प्रजा के साथ प्राणों के समान प्रीति से वर्त्तें और इन जल तथा प्राणों से उपकार लेवें॥१॥

वृष्ण ऊर्मिरित्यस्य वरुण ऋषिः। वृषा देवता। स्वराड् ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अथ विद्वांसः कीदृशं राजानं प्रति किं किं याचेरन्नित्याह॥

अब विद्वान् लोग कैसे राजा से क्या-क्या मागें, यह उपदेश अगले मन्त्र में कहा है॥

वृष्णऽऊर्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा वृष्णऽऊर्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि वृषसेनोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा वृषसेनोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि॥ २॥

वृष्णः। ऊर्मिः। असि। राष्ट्रदा इति राष्ट्रऽदाः। राष्ट्रम्। मे। देहि। स्वाहा। वृष्णः। ऊर्मिः। असि। राष्ट्रदा इति राष्ट्रऽदाः। राष्ट्रम्। अमुष्मै। देहि। वृषसेन इति वृषऽसेनः। असि। राष्ट्रदा इति राष्ट्रऽदाः। राष्ट्रम्। मे। देहि। स्वाहा। वृषसेन इति वृषऽसेनः। असि। राष्ट्रदा इति राष्ट्रऽदाः। राष्ट्रम्। अमुष्मै। देहि॥ २॥

पदार्थः-(**वृष्णः**) सुखवर्षकस्य विज्ञानस्य (**ऊर्मिः**) प्रापकः। **अर्त्तेरूच्च।** (उणा० ४।४४) इति ऋधातोर्मिः (**असि**) (**राष्ट्रदाः**) राष्ट्रं ददातीति (**राष्ट्रम्**) राज्यम् (**मे**) मह्यम् (**देहि**) (**स्वाहा**) सत्यया नीत्या (**वृष्णः**) सुखवर्षकस्य राज्यस्य (**ऊर्मिः**) ज्ञाता (**असि**) (**राष्ट्रदाः**) राज्यप्रदाः (**राष्ट्रम्**) न्यायप्रकाशितम् (**अमुष्मै**) राज्यपालकाय (**देहि**) (**वृषसेनः**) वृषा बलयुक्ता सेना यस्य सः (**असि**) (**राष्ट्रदाः**) राज्ञां कर्मप्रदाः (**राष्ट्रम्**) राज्यम् (**मे**) प्रत्यक्षाय मह्यम् (**देहि**) (**स्वाहा**) सुष्ठु वाचा (**वृषसेनः**) हृष्टपुष्टसेनः (**असि**) (**राष्ट्रदाः**) (**राष्ट्रम्**) (**अमुष्मै**) परोक्षाय जनाय (**देहि**)॥ अयं मन्त्रः (शत० ५।३।४।५-६॥) व्याख्यातः॥ २॥

अन्वयः-हे राजन्! यतस्त्वं वृष्ण ऊर्मी राष्ट्रदा असि, तस्मान्मे स्वाहा राष्ट्रं देहि। वृष्ण ऊर्मी राष्ट्रदा असि, अमुष्मै राष्ट्रं देहि। राष्ट्रदा वृषसेनोऽसि, स्वाहा राष्ट्रं देहि। राष्ट्रदा वृषसेनोऽसि त्वममुष्मै राष्ट्रं देहि॥ २॥

भावार्थः-यो मनुष्यो दुष्टान् जित्वा प्रत्यक्षान् श्रेष्ठान् सत्कृत्य राज्याधिकारं राज्यश्रियं ददाति, स चक्रवर्त्ती भवितुं योग्यो जायते॥ २॥

पदार्थः-हे राजन्! जिस कारण आप (**वृष्णः**) सुख के वर्षाकारक ज्ञान के प्राप्त कराने (**राष्ट्रदाः**) राज्य के देनेहारे (**असि**) हैं, इससे (**मे**) मुझे (**स्वाहा**) सत्यनीति से (**राष्ट्रम्**) राज्य को (**देहि**) दीजिये। (**वृष्णः**) सुख की वृष्टि करने वाले राज्य के (**ऊर्मिः**) जानने और (**राष्ट्रदाः**) राज्य प्रदान करनेहारे (**असि**) हैं, (**अमुष्मै**) उस राज्य की रक्षा करने वाले को (**राष्ट्रम्**) न्याय से प्रकाशित राज्य को (**देहि**) दीजिये। (**राष्ट्रदा**) राजाओं के कर्मों के देनेहारे (**वृषसेनः**) बलवान् सेना से युक्त (**असि**) हैं, (**मे**) प्रत्यक्ष वर्त्तमान मेरे लिये (**स्वाहा**) सुन्दर वाणी से (**राष्ट्रम्**) राज्य को (**देहि**) दीजिये तथा (**राष्ट्रदाः**) प्रत्यक्ष राज्य को देने वाले (**वृषसेनः**) आनन्दित पुष्टसेना से युक्त (**असि**) हैं, इससे आप (**अमुष्मै**) उस परोक्ष पुरुष के लिये (**राष्ट्रम्**) राज्य को (**देहि**) दीजिये॥ २॥

भावार्थः-जो राजपुरुष दुष्ट प्राणियों को जीत प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष श्रेष्ठ पुरुषों का सत्कार करके अधिकार और शोभा को देता है, उसके लिये चक्रवर्त्ती राज्य का अधिकार होना योग्य है॥ २॥

अर्थेत इत्यस्य वरुण ऋषिः। अपां पतिर्देवता। पूर्वस्याभिकृतिश्छन्दः। ऋषभः स्वरः। देहीत्यस्य निचृज्जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुना राजाऽमात्यसेनाप्रजाजनाः परस्परं कथं वर्त्तेरन्नित्युपदिश्यते॥

राजा, मन्त्री, सेना और प्रजा के पुरुष आपस में किस प्रकार वर्त्तें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अ॒र्थेत॑ स्थ राष्ट्र॒दा रा॒ष्ट्रं मे॑ दत्त॒ स्वाहा॒र्थेत॑ स्थ राष्ट्र॒दा रा॒ष्ट्रम॒मुष्मै॑ द॒त्तौज॑स्वती स्थ राष्ट्र॒दा रा॒ष्ट्रं मे॑ दत्त॒ स्वाहौज॑स्वती स्थ राष्ट्र॒दा रा॒ष्ट्रम॒मुष्मै॑ द॒त्तापः॑ परिवा॒हिणी॑ स्थ राष्ट्र॒दा रा॒ष्ट्रं मे॑ दत्त॒ स्वाहापः॑ परिवा॒हिणी॑ स्थ राष्ट्र॒दा रा॒ष्ट्रम॒मुष्मै॑ दत्ता॒पां पति॑रसि राष्ट्र॒दा रा॒ष्ट्रं मे देहि॒ स्वाहा॒ऽपां पति॑रसि राष्ट्र॒दा रा॒ष्ट्रम॒मुष्मै॑ देह्य॒पां गर्भो॑ऽसि राष्ट्र॒दा रा॒ष्ट्रं मे॑ देहि॒ स्वाहा॒ऽपां गर्भो॑ऽसि राष्ट्र॒दा रा॒ष्ट्रम॒मुष्मै॑ देहि॥ ३॥

अ॒र्थेत॒ इत्य॑र्थ॒ऽइ॑तः। स्थ॒। रा॒ष्ट्र॒दा इति राष्ट्र॒ऽदाः। रा॒ष्ट्रम्। मे॒। द॒त्त। स्वाहा॑। अ॒र्थेत॒ इत्य॑र्थ॒ऽइ॒तः। स्थ॒। रा॒ष्ट्र॒दा इति॑ राष्ट्र॒ऽदाः। रा॒ष्ट्रम्। अ॒मुष्मै॑। द॒त्त। ओज॑स्वतीः। स्थ॒। रा॒ष्ट्र॒दा इति॑ राष्ट्र॒ऽदाः। रा॒ष्ट्रम्। मे॒। द॒त्त। स्वाहा॑। ओज॑स्वतीः। स्थ॒। रा॒ष्ट्र॒दा इति॑ राष्ट्र॒ऽदाः। रा॒ष्ट्रम्। अ॒मुष्मै॑। द॒त्त। आपः॑। प॒रिवा॒हिणीः॑। प॒रि॒वा॒हि॒नी॒रिति॑ परि॒ऽवा॒हिनीः॑। स्थ॒। रा॒ष्ट्र॒दा इति॑ राष्ट्र॒ऽदाः। रा॒ष्ट्रम्। मे॒। द॒त्त। स्वाहा॑। आपः॑। प॒रिवा॒हिणीः॑। प॒रि॒वा॒हि॒नी॒रिति॑ परि॒ऽवा॒हिनीः॑। स्थ॒। रा॒ष्ट्र॒दा इति॑ राष्ट्र॒ऽदाः। रा॒ष्ट्रम्। अ॒मुष्मै॑। द॒त्त। अ॒पाम्। पतिः॑। अ॒सि॒। रा॒ष्ट्र॒दा इति॑ राष्ट्र॒ऽदाः। रा॒ष्ट्रम्। मे॒। दे॒हि॒। स्वाहा॑। अ॒पाम्। पतिः॑। अ॒सि॒। रा॒ष्ट्र॒दा इति॑ राष्ट्र॒ऽदाः। रा॒ष्ट्रम्। अ॒मुष्मै॑। दे॒हि॒। अ॒पाम्। गर्भः॑। अ॒सि॒। रा॒ष्ट्र॒दा इति॑ राष्ट्र॒ऽदाः। रा॒ष्ट्रम्। मे॒। दे॒हि॒। स्वाहा॑। अ॒पाम्। गर्भः॑। अ॒सि॒। रा॒ष्ट्र॒दा इति॑ राष्ट्र॒ऽदाः। रा॒ष्ट्रम्। अ॒मुष्मै॑। दे॒हि॒॥ ३॥

पदार्थः-(**अर्थेतः**) येऽर्थं यन्ति (**स्थ**) भवत (**राष्ट्रदाः**) राज्यप्रदाः सभासदः (**राष्ट्रम्**) राज्यम् (**मे**) मह्यम् (**दत्त**) (**स्वाहा**) सत्यया वाचा (**अर्थेतः**) (**स्थ**) (**राष्ट्रदाः**) (**राष्ट्रम्**) (**अमुष्मै**) (**दत्त**) (**ओजस्वतीः**) विद्याबलपराक्रमयुक्ता राजस्त्रियः (**स्थ**) (**राष्ट्रदाः**) (**राष्ट्रम्**) (**मे**) मह्यम् (**दत्त**) (**स्वाहा**) न्याययुक्त्या नीत्या (**ओजस्वतीः**) जितेन्द्रियाः (**स्थ**) (**राष्ट्रदाः**) (**राष्ट्रम्**) (**अमुष्मै**) (**दत्त**) (**आपः**) जलप्राणवत् प्रियाः (**परिवाहिणीः**) स्वसदृशान् पतीन् परि वोढुं शीलाः (**स्थ**) (**राष्ट्रदाः**) (**राष्ट्रम्**) (**मे**) (**दत्त**) (**स्वाहा**) विनययुक्त्या वाण्या (**आपः**) (**परिवाहिणीः**) (**स्थ**) (**राष्ट्रदाः**) (**राष्ट्रम्**) (**अमुष्मै**) (**दत्त**) (**अपाम्**) पूर्वोक्तानाम् (**पतिः**) पालकः (**असि**) (**राष्ट्रदाः**) (**राष्ट्रम्**) (**मे**) (**देहि**) (**स्वाहा**) प्रियया वाचा (**अपाम्**) प्राणानाम् (**पतिः**) रक्षकः (**असि**) (**राष्ट्रदाः**) (**राष्ट्रम्**) (**अमुष्मै**) (**देहि**) (**अपाम्**) (**गर्भः**) अन्तर्हितः (**असि**) (**राष्ट्रदाः**) (**राष्ट्रम्**) (**मे**) (**देहि**) (**स्वाहा**) युक्तिमत्या वाचा (**अपाम्**) (**गर्भः**) स्तोतुं योग्यः (**असि**) (**राष्ट्रदाः**) (**राष्ट्रम्**) (**अमुष्मै**) (**देहि**)॥ अयं मन्त्रः (शत० ५। ३। ४। ७-११) व्याख्यातः॥ ३॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! ये यूयमर्थेतस्सन्तः स्वाहा राष्ट्रदाः स्थ ते मे राष्ट्रं दत्त। ये यूयमर्थेतः सन्तो राष्ट्रदाः स्थ तेऽमुष्मै राष्ट्रं दत्त या यूयं स्वाहौजस्वतीः सत्यो राष्ट्रदाः स्थ ता मे राष्ट्रं दत्त। या ओजस्वती राष्ट्रदाः स्थ ता अमुष्मै राष्ट्रं दत्त। या यूयं स्वाहा परिवाहिणी राष्ट्रदाः स्थ ता मे राष्ट्रं दत्त। या यूयं परिवाहिणीरापो राष्ट्रदाः स्थ ता अमुष्मै राष्ट्रं दत्त। यस्त्वं अपां पतिरसि सोऽमुष्मै राष्ट्रं देहि। यस्त्वं स्वाहा राष्ट्रदा अपां गर्भोऽसि, स त्वं मे राष्ट्रं देहि। यस्त्वं राष्ट्रदा अपां गर्भोऽसि सोऽमुष्मै राष्ट्रं देहि॥ ३॥

भावार्थः-ये पुरुषा राजानो या राजस्त्रियश्च स्युस्ताः स्वोत्कर्षार्थं परोत्कर्षसहनं सर्वान् मनुष्यान् विद्यासुशिक्षायुक्तांश्च कृत्वा राज्यभागिनो राज्यसेवन्यश्च स्युः। न खल्वीर्ष्यया परेषां हानिकरणात्

स्वराज्यभ्रंशमाकारयेयुः॥३॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो तुम लोग **(अर्थेतः)** श्रेष्ठ पदार्थों को प्राप्त होते हुए **(स्वाहा)** सत्यनीति से **(राष्ट्रदाः)** राज्य सेवनेहारे सभासद् **(स्थ)** हो, वे आप लोग **(मे)** मुझे **(राष्ट्रम्)** राज्य को **(दत्त)** दीजिये, जो तुम लोग **(अर्थेतः)** पदार्थों को जानते हुए **(राष्ट्रदाः)** राज्य देने वाले **(स्थ)** हो, वे तुम लोग **(अमुष्मै)** राज्य के रक्षक उस पुरुष को **(राष्ट्रम्)** राज्य को **(दत्त)** दीजिये, जो तुम लोग **(स्वाहा)** सत्यनीति के साथ **(ओजस्वतीः)** विद्या बल और पराक्रम से युक्त हुई रानी लोग आप **(राष्ट्रदाः)** राज्य देने हारी **(स्थ)** हैं, वे **(मे)** मुझे **(राष्ट्रम्)** राज्य को **(दत्त)** दीजिये। जो आप लोग **(ओजस्वतीः)** जितेन्द्रिय **(राष्ट्रदाः)** राज्य की देने वाली **(स्थ)** हैं, वे आप लोग **(अमुष्मै)** विद्या, बल और पराक्रम से युक्त पुरुष को **(राष्ट्रम्)** राज्य को **(दत्त)** दीजिये। जो तुम लोग **(स्वाहा)** सत्यनीति से **(परिवाहिणीः)** अपने तुल्य पतियों के साथ विवाह करनेहारी **(आपः)** जल तथा प्राण के समान प्यारी **(राष्ट्रदाः)** राज्य देनेहारी **(स्थ)** हैं, वे आप लोग **(मे)** मुझे **(राष्ट्रम्)** राज्य को **(दत्त)** दीजिये। जो तुम लोग **(परिवाहिणीः)** अपने अनुकूल पतियों के साथ प्रसन्न होने वाली **(आपः)** आत्मा के समान प्रिय **(राष्ट्रदाः)** राज्य देने वाली **(स्थ)** हैं, वे आप **(अमुष्मै)** उस ब्रह्मचारी वीर पुरुष को **(राष्ट्रम्)** राज्य को **(दत्त)** दीजिये। हे सभाध्यक्ष! जो आप **(राष्ट्रदाः)** राज्य देनेहारे **(अपाम्)** जलाशयों के **(पतिः)** रक्षक **(असि)** हैं, सो **(मे)** मुझे **(स्वाहा)** सत्यनीति के साथ **(राष्ट्रम्)** राज्य को **(देहि)** दीजिए, हे सभापति! जो आप **(स्वाहा)** सत्य वचनों से **(राष्ट्रदाः)** राज्य देने वाले **(अपाम्)** प्राणों के **(पतिः)** रक्षक **(असि)** हैं, वे **(अमुष्मै)** उस प्राणियों के पोषक पुरुष को **(राष्ट्रम्)** राज्य को **(देहि)** दीजिये। हे वीर पुरुष राजन्! जो आप **(स्वाहा)** सत्यनीति के साथ **(राष्ट्रदाः)** राज्य देने वाले **(अपाम्)** सेनाओं के बीच **(गर्भः)** गर्भ के समान रक्षित **(असि)** हैं, सो आप **(मे)** विचारशील मुझे **(राष्ट्रम्)** राज्य को **(देहि)** दीजिये। हे राजन्! जो आप **(राष्ट्रदाः)** राज्य देनेहारे **(अपाम्)** प्रजाओं के विषय **(गर्भः)** स्तुति के योग्य **(असि)** हैं, सो आप **(अमुष्मै)** उस प्रशंसित पुरुष को **(राष्ट्रम्)** राज्य को **(देहि)** दीजिये॥३॥

भावार्थः-जो राज्य के अधिकारी पुरुष और उनकी स्त्रियां हों, उनको चाहिये कि अपनी उन्नति के लिये दूसरों की उन्नति को सह के सब मनुष्यों को राज्य के योग्य कर और आप भी चक्रवर्त्ती राज्य का भोग किया करें, ऐसा न हो कि ईर्ष्या से दूसरों की हानि करके अपने राज्य का भङ्ग करें॥३॥

सूर्य्यत्वचस इत्यस्य वरुण ऋषिः। सूर्य्यादयो मन्त्रोक्ता देवताः। पूर्वस्य जगती छन्दः। निषादः स्वरः। सूर्य्यवर्चस इति द्वितीयस्य स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। व्रजक्षित इति तृतीयस्य शविष्ठा इति चतुर्थस्य च स्वराट् ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः। जनभृत इति पञ्चमस्यार्ची पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। विश्वभृत इति षष्ठस्य मधुमतीरिति सप्तमस्य भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

मनुष्याः कीदृशा भूत्वा कस्मै किं किं प्रदद्युरित्याह॥

मनुष्यों को कैसा हो के किस-किस के लिये क्या-क्या देना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

सूर्यत्वचस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा सूर्यत्वचस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त सूर्यवर्चस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा सूर्यवर्चस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त मान्दा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा मान्दा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त व्रजक्षित स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा व्रजक्षित स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त वाशा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा वाशा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त शविष्ठा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा शविष्ठा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त शक्वरी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा शक्वरी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त जनभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा जनभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त विश्वभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा विश्वभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तापः स्वराज स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त। मधुमतीर्मधुमतीभिः पृच्यन्तां महि क्षत्रं क्षत्रियाय वन्वानाऽअनाधृष्टाः सीदत सहौजसो महि क्षत्रं क्षत्रियाय दधतीः॥४॥

सूर्यत्वचस इति सूर्यऽत्वचसः। स्थ। राष्ट्रदा इति राष्ट्रऽदाः। राष्ट्रम्। मे। दत्त। स्वाहा। सूर्यत्वचस इति सूर्यऽत्वचसः। स्थ। राष्ट्रदा इति राष्ट्रऽदाः। राष्ट्रम्। अमुष्मै। दत्त। सूर्यवर्चस इति सूर्यऽवर्चसः। स्थ। राष्ट्रदा इति राष्ट्रऽदाः। राष्ट्रम्। मे। दत्त। स्वाहा। सूर्यवर्चस इति सूर्यऽवर्चसः। स्थ। राष्ट्रदा इति राष्ट्रऽदाः। राष्ट्रम्। अमुष्मै। दत्त। मान्दाः। स्थ। राष्ट्रदा इति राष्ट्रदाः। राष्ट्रम्। मे। दत्त। स्वाहा। मान्दाः। स्थः। राष्ट्रदा इति राष्ट्रऽदाः। राष्ट्रम्। अमुष्मै। दत्त। व्रजक्षित इति व्रजऽक्षितः। स्थ। राष्ट्रदा इति राष्ट्रऽदाः। राष्ट्रम्। मे। दत्त। स्वाहा। व्रजक्षित इति व्रजऽक्षितः। स्थ। राष्ट्रदा इति राष्ट्रऽदाः। राष्ट्रम्। अमुष्मै। दत्त। वाशाः। स्थ। राष्ट्रदा इति राष्ट्रऽदाः। राष्ट्रम्। मे। दत्त। स्वाहा। वाशाः। स्थ। राष्ट्रदा इति राष्ट्रऽदाः। राष्ट्रम्। अमुष्मै। दत्त। शविष्ठाः। स्थ। राष्ट्रदा इति राष्ट्रऽदाः। राष्ट्रम्। मे। दत्त। स्वाहा। शविष्ठाः। स्थ। राष्ट्रदा इति राष्ट्रऽदाः। राष्ट्रम्। मे। दत्त। स्वाहा। शक्वरीः। स्थ। राष्ट्रदा इति राष्ट्रऽदाः। राष्ट्रम्। मे। दत्त। स्वाहा। शक्वरीः। स्थ। राष्ट्रदा इति राष्ट्रऽदाः। राष्ट्रम्। अमुष्मै। दत्त। जनभृत इति जनऽभृतः। स्थ। राष्ट्रदा इति राष्ट्रऽदाः। राष्ट्रम्। मे। दत्त। स्वाहा। जनभृत इति जनऽभृतः। स्थ। राष्ट्रदा इति राष्ट्रऽदाः। राष्ट्रम्। मे। दत्त। स्वाहा। विश्वभृत इति विश्वऽभृतः। स्थ। राष्ट्रदा इति राष्ट्रऽदाः। राष्ट्रम्। मे। दत्त। स्वाहा। विश्वभृत इति विश्वऽभृतः। स्थ। राष्ट्रदा इति राष्ट्रऽदाः। राष्ट्रम्। अमुष्मै। दत्त। आपः। स्वराज इति स्वऽराजः। स्थ। राष्ट्रदा इति राष्ट्रऽदाः। राष्ट्रम्। अमुष्मै। दत्त। मधुमतीरिति मधुऽमतीः। मधुमतीभिरिति मधुमतीऽभिः। पृच्यन्ताम्। महि। क्षत्रम्। क्षत्रियाय। वन्वानाः। अनाधृष्टाः। सीदत। सहौजस इति सहऽओजसः। महि। क्षत्रम्। क्षत्रियाय। दधतीः॥४॥

पदार्थः-(**सूर्यत्वचसः**) सूर्य्यस्य त्वचः संवार इव त्वचो येषां ते (**स्थ**) भवथ (**राष्ट्रदाः**) (**राष्ट्रम्**) (**मे**) (**दत्त**) (**स्वाहा**) (**सूर्यत्वचसः**) (**स्थ**) (**राष्ट्रदाः**) (**राष्ट्रम्**) (**अमुष्मै**) (**दत्त**) (**सूर्यवर्चसः**) सूर्य्यस्य प्रकाश इव वर्चो विद्याध्ययनं येषां ते (**स्थ**) (**राष्ट्रदाः**) (**राष्ट्रम्**) (**मे**) (**दत्त**) (**स्वाहा**) (**सूर्यवर्चसः**) (**स्थ**) (**राष्ट्रदाः**) (**राष्ट्रम्**) (**अमुष्मै**) (**दत्त**) (**मान्दाः**) ये जनान् मन्दयन्त्यानन्दयन्ति त एव मान्दाः (**स्थ**) (**राष्ट्रदाः**) (**राष्ट्रम्**) (**मे**) (**दत्त**) (**स्वाहा**) (**मान्दाः**) (**स्थ**) (**राष्ट्रदाः**) (**राष्ट्रम्**) (**अमुष्मै**) (**दत्त**) (**व्रजक्षितः**) व्रजान् गवादिस्थित्यर्थान् देशान्

क्षियन्ति निवासयन्ति ते **(स्थ)** **(राष्ट्रदाः)** **(राष्ट्रम्)** **(मे)** **(दत्त)** **(स्वाहा)** **(व्रजक्षितः)** **(स्थ)** **(राष्ट्रदाः)** **(राष्ट्रम्)** **(अमुष्मै)** **(दत्त)** **(वाशाः)** य उशन्ति कामयन्ते ते **(स्थ)** **(राष्ट्रदाः)** **(राष्ट्रम्)** **(मे)** **(दत्त)** **(स्वाहा)** **(वाशाः)** **(स्थ)** **(राष्ट्रदाः)** **(राष्ट्रम्)** **(अमुष्मै)** **(दत्त)** **(शविष्ठाः)** अतिशयेन बलवन्तः **(स्थ)** **(राष्ट्रदाः)** **(राष्ट्रम्)** **(मे)** **(दत्त)** **(स्वाहा)** **(शविष्ठाः)** **(स्थ)** **(राष्ट्रदाः)** **(राष्ट्रम्)** **(अमुष्मै)** **(दत्त)** **(शक्वरीः)** शक्तिमत्यः **(स्थ)** **(राष्ट्रदाः)** **(राष्ट्रम्)** **(मे)** **(दत्त)** **(स्वाहा)** **(शक्वरीः)** **(स्थ)** **(राष्ट्रदाः)** **(राष्ट्रम्)** **(अमुष्मै)** **(दत्त)** **(जनभृतः)** ये जनान् बिभ्रति ते **(स्थ)** **(राष्ट्रदाः)** **(राष्ट्रम्)** **(मे)** **(दत्त)** **(स्वाहा)** **(जनभृतः)** **(स्थ)** **(राष्ट्रदाः)** **(राष्ट्रम्)** **(अमुष्मै)** **(दत्त)** **(विश्वभृतः)** ये विश्वं बिभ्रति ते **(स्थ)** **(राष्ट्रदाः)** **(राष्ट्रम्)** **(मे)** **(दत्त)** **(स्वाहा)** **(विश्वभृतः)** **(स्थ)** **(राष्ट्रदाः)** **(राष्ट्रम्)** **(अमुष्मै)** **(दत्त)** **(आपः)** सकलविद्याधर्मव्यापिनः **(स्वराजः)** ये स्वं राजन्ते ते **(स्थ)** **(राष्ट्रदाः)** **(राष्ट्रम्)** **(अमुष्मै)** **(दत्त)** **(मधुमतीः)** मधुरादिगुणयुक्ता ओषधयः **(मधुमतीभिः)** मधुरादिगुणयुक्ताभिर्वसन्तादिभिर्ऋतुभिः **(पृच्यन्ताम्)** परिपच्यन्ताम् **(महि)** महत्पूज्यं **(क्षत्रम्)** क्षत्रियाणां राज्यम् **(क्षत्रियाय)** क्षत्रस्य पुत्राय **(वन्वानाः)** याचमानाः **(अनाधृष्टाः)** शत्रुभिरधर्षिताः **(सीदत)** **(सहौजसः)** ओजसा बलेन सह वर्त्तमानाः **(महि)** **(क्षत्रम्)** **(क्षत्रियाय)** **(दधतीः)** धरमाणाः॥ अयं मन्त्रः (शत० ५।३।४।१२-१८) व्याख्यातः॥४॥

अन्वयः-हे राजपुरुषाः! यतो यूयं सूर्य्यत्वचसः सन्तः स्वाहा राष्ट्रदा स्थ तस्मान्मे राष्ट्रं दत्त। यतः सूर्य्यत्वचसः सन्तो यूयं राष्ट्रदा स्थ तस्मादमुष्मै राष्ट्रं दत्त। यतो यूयं सूर्य्यवर्चसः सन्तः स्वाहा राष्ट्रदा स्थ तस्मान्मे राष्ट्रं दत्त। यतो यूयं सूर्य्यवर्चसो राष्ट्रदा स्थ तस्मादमुष्मै राष्ट्रं दत्त। यतो यूयं व्रजक्षितः सन्तः स्वाहा राष्ट्रदा स्थ तस्मान्मे राष्ट्रं दत्त। यतो यूयं व्रजक्षितः सन्तो राष्ट्रदा स्थ तस्मादमुष्मै राष्ट्रं दत्त। यतो यूयं वाशाः सन्तः स्वाहा राष्ट्रदा स्थ तस्मान्मे राष्ट्रं दत्त। यतो यूयं वाशाः सन्तो राष्ट्रदा स्थ तस्मादमुष्मै राष्ट्रं दत्त। यतो यूयं शविष्ठाः सन्तः स्वाहा राष्ट्रदा स्थ तस्मान्मे राष्ट्रं दत्त। यतो यूयं शविष्ठा राष्ट्रदा स्थ तस्मादमुष्मै राष्ट्रं दत्त। यतो यूयं शक्वरीः सन्तः स्वाहा राष्ट्रदा स्थ तस्मान्मे राष्ट्रं दत्त। यतो यूयं शक्वरी राष्ट्रदा स्थ तस्मादमुष्मै राष्ट्रं दत्त। यतो यूयं जनभृतः सन्तः स्वाहा राष्ट्रदा स्थ तस्मान्मे राष्ट्रं दत्त। यतो यूयं जनभृतो राष्ट्रदा स्थ तस्मादमुष्मै राष्ट्रं दत्त। यतो यूयं विश्वभृतः सन्तः स्वाहा राष्ट्रदा स्थ तस्मान्मे राष्ट्रं दत्त। यतो यूयं विश्वभृतो राष्ट्रदा स्थ तस्मादमुष्मै राष्ट्रं दत्त। यतो यूयमापः स्वराजः सन्तो राष्ट्रदा स्थ तस्मान्मे राष्ट्रं दत्त। यतो यूयमापः स्वराजः स्थ तस्मादमुष्मै राष्ट्रं दत्त। हे सज्जनाः स्त्रियः! युष्माभिः क्षत्रियाय महि क्षत्रं वन्वानाः सहौजसः क्षत्रियाय महि क्षत्रं दधतीरनाधृष्टा मधुमतीर्मधुमतीभिः सुखानि पृच्यन्ताम्। हे सज्जनाः पुरुषाः! यूयमीदृशीः स्त्रियः सीदत प्राप्नुत॥४॥

भावार्थः-हे स्त्रीपुरुषाः! हे मनुष्याः सूर्यवन्न्यायप्रकाशकाः सूर्य इव विद्या दीपकाः सर्वेषामानन्दप्रदा गवादिपशुरक्षकाः शुभगुणैः कमनीया बलवन्तः स्वसदृशस्त्रियः विश्वम्भरा स्वाधीनाः सन्ति, तेऽन्येभ्यो राज्यं दातुं सेवितुं च शक्नुवन्ति, नेतर इति यूयं विजानीत॥४॥

पदार्थः-हे राजपुरुषो! तुम लोग **(सूर्य्यत्वचसः)** सूर्य के समान अपने न्याय प्रकाश से सब तेज को ढांकने वाले होते हुए **(स्वाहा)** सत्य न्याय के साथ **(राष्ट्रदाः)** राज्य देनेहारे **(स्थ)** हो, इसलिये **(मे)** मुझे **(राष्ट्रम्)** राज्य को **(दत्त)** दीजिये। हे मनुष्यो! जिस कारण **(सूर्यत्वचसः)** सूर्य्यप्रकाश के समान विद्या पढ़ने वाले होते हुए तुम लोग **(राष्ट्रदाः)** राज्य देनेहारे **(स्थ)** हो, इसलिये **(अमुष्मै)** उस विद्या में सूर्यवत् प्रकाशमान पुरुष के लिये **(राष्ट्रम्)** राज्य को **(दत्त)** दीजिये। हे विद्वन् मनुष्यो! **(सूर्यवर्चसः)** सूर्य के समान तेजधारी होते हुए तुम लोग

(स्वाहा) सत्य वाणी से **(राष्ट्रदाः)** राज्यदाता **(स्थ)** हो, इस कारण **(मे)** तेजस्वी मुझे **(राष्ट्रम्)** राज्य को **(दत्त)** दीजिये, जिस कारण **(सूर्यवर्चसः)** सूर्य्य के समान प्रकाशमान होते हुए आप लोग **(राष्ट्रदाः)** राज्य देनेहारे **(स्थ)** हो, इसलिये **(अमुष्मै)** उस प्रकाशमान पुरुष के लिये **(राष्ट्रम्)** राज्य को **(दत्त)** दीजिये। जिस कारण **(मान्दाः)** मनुष्यों को आनन्द देनेहारे होते हुए आप लोग **(स्वाहा)** सत्य वचनों के साथ **(राष्ट्रदाः)** राज्य देने वाले **(स्थ)** हो, इसलिये **(मे)** आनन्द देनेहारे मुझे **(राष्ट्रम्)** राज्य को **(दत्त)** दीजिये, जिसलिये आप लोग **(मान्दाः)** प्राणियों को सुख देने वाले होके **(राष्ट्रदाः)** राज्यदाता **(स्थ)** हो, इसलिये **(अमुष्मै)** उस सुखदाता जन को **(राष्ट्रम्)** राज्य को **(दत्त)** दीजिये। जिस कारण आप लोग **(व्रजक्षितः)** गौ आदि पशुओं के स्थानों को बसाते हुए **(स्वाहा)** सत्य क्रियाओं के सहित **(राष्ट्रदाः)** राज्यदाता **(स्थ)** हैं, इसलिये **(मे)** पशुरक्षक मुझे **(राष्ट्रम्)** राज्य को **(दत्त)** दीजिये। जिस कारण आप लोग **(व्रजक्षितः)** स्थान आदि से पशुओं के रक्षक होते हुए **(राष्ट्रदाः)** राज्य देनेहारे **(स्थ)** हैं, इससे **(अमुष्मै)** उस गौ आदि पशुओं के रक्षक पुरुष के लिये राज्य को **(दत्त)** दीजिये। जिसलिये आप लोग **(वाशाः)** कामना करते हुए **(स्वाहा)** सत्यनीति से **(राष्ट्रदाः)** राज्यदाता **(स्थ)** हैं, इसलिये **(मे)** इच्छायुक्त मुझे **(राष्ट्रम्)** राज्य को **(दत्त)** दीजिये। जिस कारण आप लोग **(वाशाः)** इच्छायुक्त होते हए **(राष्ट्रदाः)** राज्य देने वाले **(स्थ)** हैं, इसलिये **(अमुष्मै)** उस इच्छायुक्त पुरुष के लिये **(राष्ट्रम्)** राज्य को **(दत्त)** दीजिये। जिस कारण आप लोग **(शविष्ठाः)** अत्यन्त बल वाले होते हुए **(स्वाहा)** सत्य पुरुषार्थ से **(राष्ट्रदाः)** राज्यदाता **(स्थ)** हैं, इस कारण **(मे)** बलवान् मुझे **(राष्ट्रम्)** राज्य को **(दत्त)** दीजिये। जिस कारण आप लोग **(शविष्ठाः)** अति पराक्रमी **(राष्ट्रदाः)** राज्यदाता **(स्थ)** हैं, इस कारण **(अमुष्मै)** उस अति पराक्रमी जन के लिये **(राष्ट्रम्)** राज्य को **(दत्त)** दीजिये। हे राणी लोगो! जिसलिये आप **(शक्वरीः)** सामर्थ्य वाली होती हुई **(स्वाहा)** सत्य पुरुषार्थ से **(राष्ट्रदाः)** राज्य देने हारी **(स्थ)** हैं, इसलिये **(मे)** सामर्थ्यवान् मुझे **(राष्ट्रम्)** राज्य को **(दत्त)** दीजिये। जिस कारण आप **(शक्वरीः)** सामर्थ्ययुक्त **(राष्ट्रदाः)** राज्य देने वाली **(स्थ)** हैं, इस कारण **(अमुष्मै)** उस सामर्थ्ययुक्त पुरुष के लिये **(राष्ट्रम्)** राज्य को **(दत्त)** दीजिये। जिसलिये आप लोग **(जनभृतः)** श्रेष्ठ मनुष्यों का पोषण करने हारी होती हुई **(स्वाहा)** सत्य कर्मों के साथ **(राष्ट्रदाः)** राज्य देने वाली **(स्थ)** हैं, इसलिये **(मे)** श्रेष्ठ गुणयुक्त मुझे **(राष्ट्रम्)** राज्य को **(दत्त)** दीजिये। जिसलिये आप **(जनभृतः)** सज्जनों को धारण करनेहारे **(राष्ट्रदाः)** राज्यदाता **(स्थ)** हैं, इसलिये **(अमुष्मै)** उस सत्यप्रिय पुरुष के लिये **(राष्ट्रम्)** राज्य को **(दत्त)** दीजिये। हे सभाध्यक्षादि राजपुरुषो! जिसलिये आप लोग **(विश्वभृतः)** सब संसार का पोषण करने वाले होते हुए **(स्वाहा)** सत्य वाणी के साथ **(राष्ट्रदाः)** राज्य देनेहारे **(स्थ)** हैं, इसलिये **(मे)** सब के पोषक मुझे **(राष्ट्रम्)** राज्य को **(दत्त)** दीजिये। जिसलिये आप लोग **(विश्वभृतः)** विश्व को धारण करनेहारे **(राष्ट्रदाः)** राज्यदाता **(स्थ)** हैं, इसलिये **(अमुष्मै)** उस धारण करनेहारे मनुष्य के लिये **(राष्ट्रम्)** राज्य को **(दत्त)** दीजिये। जिस कारण आप लोग **(आपः)** सब विद्या और धर्म विषय में व्याप्ति वाले होते हुए **(स्वाहा)** सत्य क्रिया से **(राष्ट्रदाः)** राज्य देनेहारे **(स्थ)** हैं, इस कारण **(मे)** शुभ गुणों में व्याप्त मुझे **(राष्ट्रम्)** राज्य को **(दत्त)** दीजिये। जिसलिये आप लोग **(आपः)** सब विद्या और धर्म मार्ग को जाननेहारे **(स्वराजः)** आप से आप ही प्रकाशमान **(राष्ट्रदाः)** राज्यदाता **(स्थ)** हैं, इसलिये **(अमुष्मै)** उस धर्मज्ञ पुरुष के लिये **(राष्ट्रम्)** राज्य को **(दत्त)** दीजिये। हे सज्जन स्त्री लोगो! आप को चाहिये कि **(क्षत्रियाय)** राजपूतों के लिये **(महि)** बड़े पूजा के योग्य **(क्षत्रम्)** क्षत्रियों के राज्य को **(वन्वानाः)** चाहती हुई **(सहौजसः)** बल-पराक्रम के सहित वर्त्तमान **(क्षत्रियाय)**

राजपूतों के लिये **(महि)** बड़े **(क्षत्रम्)** राज्य को **(दधती:)** धारण करती हुई **(अनाधृष्टा:)** शत्रुओं के वश में न आने वाली **(मधुमती:)** मधुर आदि रस वाली ओषधी **(मधुमतीभि:)** मधुरादि गुणयुक्त वसन्त आदि ऋतुओं से सुखों को **(पृच्यन्ताम्)** सिद्ध किया करें। हे सज्जन पुरुषो! तुम लोग इस प्रकार की स्त्रियों को **(सीदत)** प्राप्त होओ॥४॥

भावार्थ:-हे स्त्री पुरुषो! जो सूर्य के समान न्याय और विद्या का प्रकाश कर सब को आनन्द देने, गौ आदि पशुओं की रक्षा करने, शुभ गुणों से शोभायमान, बलवान्, अपने तुल्य स्त्रियों से विवाह और संसार का पोषण करने वाले स्वाधीन हैं, वे ही औरों के लिये राज्य देने और आप सेवन करने में समर्थ होते हैं, अन्य नहीं॥४॥

सोमस्येत्यस्य वरुण ऋषि:। अग्न्यादयो मन्त्रोक्ता देवता:। स्वराड्धृतिश्छन्द:। ऋषभ: स्वर:॥

राजन्यैराप्तराज्ञामेवाऽनुकरणं कार्यं नेतरेषां क्षुद्राशयलुब्धान्यायाजितेन्द्रियाणामिति उपदिश्यते॥

राजा लोगों को चाहिये कि सत्यवादी धर्मात्मा राजाओं के समान अपने सब काम करें और क्षुद्राशय, लोभी, अन्यायी तथा लम्पटी के तुल्य कदापि न हों, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

सोम॑स्य॒ त्विषि॑रसि॒ तवे॑व मे॒ त्विषि॑र्भूयात्। अ॒ग्नये॒ स्वाहा॒ सोमा॑य॒ स्वाहा॑ सवि॒त्रे स्वाहा॒ सर॑स्वत्यै॒ स्वाहा॑ पू॒ष्णे स्वाहा॒ बृह॒स्पत॑ये॒ स्वाहेन्द्रा॑य॒ स्वाहा॒ घोषा॑य॒ स्वाहा॒ श्लोका॑य॒ स्वाहाꣳशा॑य॒ स्वाहा॒ भगा॑य॒ स्वाहा॑र्य॒म्णे स्वाहा॑॥५॥

सोम॑स्य। त्विषि॑:। अ॒सि॒। तवे॒वेति तव॑ऽइव। मे॒। त्विषि॑:। भू॒या॒त्। अ॒ग्नये॑। स्वाहा॑। सोमा॑य। स्वाहा॑। स॒वि॒त्रे। स्वाहा॑। सर॑स्वत्यै। स्वाहा॑। पू॒ष्णे। स्वाहा॑। बृ॒ह॒स्पत॑ये। स्वाहा॑। इन्द्रा॑य। स्वाहा॑। घोषा॑य। स्वाहा॑। श्लोका॑य। स्वाहा॑। अꣳशा॑य। स्वाहा॑। भगा॑य। स्वाहा॑। अ॒र्य्य॒म्णे स्वाहा॑॥५॥

पदार्थ:-**(सोमस्य)** ऐश्वर्य्यस्य **(त्विषि:)** ज्योति: **(असि)** **(तवेव)** यथा भवतस्तथा **(मे)** मम **(त्विषि:)** विज्ञानप्रकाश: **(भूयात्)** **(अग्नये)** विद्युदादये **(स्वाहा)** सत्यवाक्प्रियाचरणयुक्ता विद्या **(सोमाय)** औषधविज्ञानाय **(स्वाहा)** वैद्यकपुरुषार्थविद्या **(सवित्रे)** सूर्य्यविज्ञानाय **(स्वाहा)** ज्योतिर्विद्या **(सरस्वत्यै)** वेदार्थसुक्षाविज्ञापिकायै वाचे **(स्वाहा)** व्याकरणाद्यङ्गविद्या **(पूष्णे)** प्राणपशुपालनाय **(स्वाहा)** योगव्यवहारविद्या **(बृहस्पतये)** बृहतां प्रकृत्यादीनां पत्युरीश्वरस्य विज्ञानाय **(स्वाहा)** ब्रह्मविद्या **(इन्द्राय)** इन्द्रियाधिष्ठातुर्जीवस्य बोधाय **(स्वाहा)** विवेकविद्या **(घोषाय)** सत्प्रियभाषणादियुक्तायै वाण्यै **(स्वाहा)** तथ्योपदेशे वक्तृत्वविद्या **(श्लोकाय)** तत्त्वसङ्घातसत्काव्यगद्यपद्यछन्दोनिर्माणादिविज्ञानाय **(स्वाहा)** तत्त्वकाव्यशास्त्रादिविद्या **(अंशाय)** परमाण्ववगमाय **(स्वाहा)** सूक्ष्मपदार्थविद्या **(भगाय)** ऐश्वर्याय **(स्वाहा)** पुरुषार्थविद्या **(अर्य्यम्णे)** न्यायाधीशत्वाय **(स्वाहा)** राजनीतिविद्या॥ अयं मन्त्र: (शत० ५।३।५।३-९) व्याख्यात:॥५॥

अन्वय:-हे राजन्! यथा त्वं सोमस्य त्विषिरसि तथाऽहमपि भवेयम्। यतस्तवेव मे त्विषिर्भूयाद् यथा भवताऽग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहा सवित्रे स्वाहा सरस्वत्यै स्वाहा पूष्णे स्वाहा बृहस्पतये स्वाहेन्द्राय स्वाहा घोषाय स्वाहा श्लोकाय स्वाहांऽशाय स्वाहा भगाय स्वाहाऽर्य्यम्णे च स्वाहा गृह्यते तथा मयापि गृह्यते॥५॥

भावार्थः-मनुष्यैरिदमाशंसितव्यं यथाऽऽप्तानां राज्ञां शुभगुणस्वभावाः सन्ति, तथैव नो भूयासुरिति॥५॥

पदार्थः-हे राजन्! जैसे आप **(सोमस्य)** ऐश्वर्य्य के **(त्विषिः)** प्रकाश करनेहारे **(असि)** हैं, वैसा मैं भी होऊं, जिससे **(तवेव)** आप के समान **(मे)** मेरा **(त्विषिः)** विद्याओं का प्रकाश होवे, जैसे आप ने **(अग्नये)** बिजुली आदि के लिये **(स्वाहा)** सत्य वाणी और प्रियाचरणयुक्त विद्या **(सोमाय)** ओषधि जानने के लिये **(स्वाहा)** वैद्यक की पुरुषार्थयुक्त विद्या **(सवित्रे)** सूर्य्य को समझने के लिये **(स्वाहा)** भूगोल विद्या **(सरस्वत्यै)** वेदों का अर्थ और अच्छी शिक्षा जानने वाली वाणी के लिये **(स्वाहा)** व्याकरणादि वेदों के अङ्गों का ज्ञान **(पूष्णे)** प्राण तथा पशुओं की रक्षा के लिये **(स्वाहा)** योग और व्याकरण की विद्या **(बृहस्पतये)** बड़े प्रकृति आदि के पति ईश्वर को जानने के लिये **(स्वाहा)** ब्रह्मविद्या **(इन्द्राय)** इन्द्रियों के स्वामी जीवात्मा के बोध के लिये **(स्वाहा)** विचारविद्या **(घोषाय)** सत्य और प्रियभाषण से युक्त वाणी के लिये **(स्वाहा)** सत्य उपदेश और व्याख्यान देने की विद्या **(श्लोकाय)** तत्त्वज्ञान का साधक शास्त्र, श्रेष्ठ काव्य, गद्य और पद्य आदि छन्द रचना के लिये **(स्वाहा)** तत्त्व और काव्यशास्त्र आदि की विद्या **(अंशाय)** परमाणुओं के समझने के लिये **(स्वाहा)** सूक्ष्म पदार्थों का ज्ञान **(भगाय)** ऐश्वर्य्य के लिये **(स्वाहा)** पुरुषार्थज्ञान **(अर्य्यम्णे)** न्यायाधीश होने के लिये **(स्वाहा)** राजनीति विद्या को ग्रहण करते हैं, वैसे मुझे भी करना अवश्य है॥५॥

भावार्थः-मनुष्यों को ऐसी इच्छा करनी चाहिये कि जैसे सत्यवादी धर्मात्मा राजा लोगों के गुण, कर्म, स्वभाव होते हैं, वैसे ही हम लोगों के भी होवें॥५॥

पवित्रे स्थ इत्यस्य वरुण ऋषिः। आपो देवताः। स्वराड् ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

यथा कुमारा ब्रह्मचर्येण विद्या गृह्णीयुस्तथैव कुमार्य्योऽपि पठेयुरित्याह॥

जैसे कुमार पुरुष ब्रह्मचर्य्य से विद्या ग्रहण करें, वैसे कन्या भी पढ़े, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वः प्रसवऽउत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः। अनिभृष्टमसि वाचो बन्धुस्तपोजाः सोमस्य दात्रमसि स्वाहा राजस्वः॥६॥

पवित्रेऽइति पवित्रे। स्थः। वैष्णव्यौ। सवितुः। वः। प्रसव इति प्रऽसवे। उत्। पुनामि। अच्छिद्रेण। पवित्रेण। सूर्यस्य। रश्मिभिरिति रश्मिऽभिः। अनिभृष्टमित्यनिऽभृष्टम्। असि। वाचः। बन्धुः। तपोजा इति तपःऽजाः। सोमस्य। दात्रम्। असि। स्वाहा। राजस्व इति राजऽस्वः॥६॥

पदार्थः-**(पवित्रे)** शुद्धाचरणे **(स्थः)** स्याताम् **(वैष्णव्यौ)** सकलविद्या सुशिक्षाशुभगुणस्वभावव्यापिनौ **(सवितुः)** सकलजगत्प्रसवितुरीश्वरस्य **(वः)** युष्मान् ब्रह्मचारिणीर्विद्यार्थिनीः कुमारिकाः **(प्रसवे)** प्रसूतेऽस्मिन् जगति **(उत्)** उत्कृष्टतया **(पुनामि)** पवित्रीकरोमि **(अच्छिद्रेण)** अविच्छिन्नेन निरन्तरेण **(पवित्रेण)** विद्यासुशिक्षाजितेन्द्रियत्वब्रह्मचर्यादिभिः पवित्रीकारकेण व्यवहारेण **(सूर्य्यस्य)** अर्कस्य **(रश्मिभिः)** किरणैरिव **(अनिभृष्टम्)** नित्यं भृष्टं पापरहितमाचरितवान् **(असि)** **(वाचः)** वेदवाण्याः **(बन्धुः)** भ्राता **(तपोजाः)** ब्रह्मचर्यादितपसा जातः **(सोमस्य)** ओषधिगणस्य **(दात्रम्)** दाति रोगान् येन तद्वान् **(असि)** **(स्वाहा)** सत्यक्रियया **(राजस्वः)** राजवीरप्रसविकाः॥ अयं मन्त्रः (शत० ५।३।५।१६-१८) व्याख्यातः॥६॥

अन्वयः-हे सभेश राजन्! यतस्त्वं वाचो निभृष्टं बन्धुरसि सोमस्य दात्रं तपोजा असि। तवाज्ञया सवितुः प्रसवे वैष्णव्यौ पवित्रे स्थः। हे अध्यापकपरिचारिका अध्येत्र्यश्च स्त्रियः! यथाहं सवितुः प्रसवे सूर्य्यस्य रश्मिभिरिवाच्छिद्रेण पवित्रेण व उत्पुनामि तथा यूयं स्वाहा राजस्वो भवत॥६॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे राजादयो राजपुरुषाः! यूयमस्मिन् जगति यथा कुमाराध्यापने सज्जना नियुज्यन्ते, तथा पवित्रविद्यापरीक्षाकारिकाः स्त्रियः कन्यानामध्यापने नियुङ्ग्ध्वम्। यत एत इमाश्च विद्यासुशिक्षाः प्राप्य युवत्यः सत्यः स्वसदृशैः प्रियैर्वरैः पुरुषैः सह स्वयंवरं विवाहं कृत्वा वीरपुरुषान् जनयेयुः॥६॥

पदार्थः-हे सभापति राजपुरुष! जिस लिये आप **(वाचः)** वेदवाणी के **(अनिभृष्टम्)** भृष्टतारहित आचरण के लिये **(बन्धुः)** भाई **(असि)** हैं, **(सोमस्य)** ओषधियों के काटने वाले **(तपोजाः)** ब्रह्मचर्य्यादि तप से प्रसिद्ध **(असि)** हैं, आप की आज्ञा से **(सवितुः)** सब जगत् को उत्पन्न करनेहारे ईश्वर के **(प्रसवे)** उत्पन्न हुए जगत् में **(वैष्णव्यौ)** सब विद्या, अच्छी शिक्षा, शुभ गुण, कर्म और स्वभाव में व्यापनशील और **(पवित्रे)** शुद्ध आचरणवाली **(स्थः)** तुम दोनों हो। हे पढ़ाने, परीक्षा करने और पढ़नेहारी स्त्री लोगो! मैं **(सवितुः)** ईश्वर के **(प्रसवे)** उत्पन्न किये इस जगत् में **(सूर्य्यस्य)** सूर्य्य की **(रश्मिभिः)** किरणों के समान **(अच्छिद्रेण)** छेदरहित **(पवित्रेण)** विद्या, अच्छी शिक्षा, धर्मज्ञान, जितेन्द्रियता और ब्रह्मचर्य्य आदि करके पवित्र किये हुए से **(वः)** तुम लोगों को **(उत्पुनामि)** अच्छे प्रकार पवित्र करता हूं, तुम लोग **(स्वाहा)** सत्य क्रिया से **(राजस्वः)** राजाओं में वीरों को उत्पन्न करने वाली हो॥६॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे राजा आदि पुरुषो! तुम लोग इस जगत् में कन्याओं को पढ़ाने के लिये शुद्धविद्या की परीक्षा करने वाली स्त्री लोगों को नियुक्त करो, जिससे ये कन्या लोग विद्या और शिक्षा को प्राप्त होके जवान हुई प्रिय वर पुरुषों के साथ स्वयंवर विवाह करके वीर पुरुषों को उत्पन्न करें॥६॥

सधमाद इत्यस्य वरुण ऋषिः। वरुणो देवता। विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

राज्ञामिदमावश्यकं यत्सर्वस्याः प्रजायाः स्वकुलस्य चापत्यानि ब्रह्मचर्येण विद्यासुशिक्षान्वितानि कार्य्याणीत्याह॥

राजाओं को यह अवश्य चाहिये कि सब प्रजा और अपने कुल के बालकों को ब्रह्मचर्य्य के साथ विद्या और सुशिक्षायुक्त करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

स॒ध॒मादो॑ द्यु॒म्निनी॒राप॑ऽए॒ताऽअना॑धृष्टाऽअप॒स्यो॒ वसा॑नाः।
प॒स्त्या॒सु चक्रे॒ वरु॑णः स॒धस्थ॑मपाᳫं शिशु॑र्मा॒तृत॑मास्व॒न्तः॥७॥

स॒ध॒माद॒ इति॑ सध॒ऽमाद॑ः। द्यु॒म्निनी॑ः। आप॑ः। ए॒ताः। अना॑धृष्टाः। अ॒प॒स्यु॒ः। वसा॑नाः। प॒स्त्या॒सु। च॒क्रे॒। वरु॑णः। स॒धस्थ॒मिति॑ स॒धऽस्थ॑म्। अ॒पाम्। शिशु॑ः। मा॒तृत॑मा॒स्विति॑ मा॒तृऽत॑मासु। अ॒न्तरित्य॒न्तः॥७॥

पदार्थः-**(सधमादः)** याः सह माद्यन्ति हृष्यन्ति ताः **(द्युम्निनीः)** प्रशस्तं द्युम्नं धनं यशो वा विद्यते यासां ताः **(आपः)** जलानीव शान्ताः **(एताः)** प्राप्तविद्यासुशिक्षाः **(अनाधृष्टाः)** धर्षितुमयोग्याः **(अपस्यः)** अपःसु कर्म्मसु साध्व्यः, अत्र **सुपां सुलुक्** [अष्टा०७.१.३९] इति जसः स्थाने सुः **(वसानाः)** वस्त्राभूषणैराच्छादिताः **(पस्त्यासु)**

गृहशालासु **(चक्रे)** कुर्य्यात् **(वरुणः)** वरो राजा **(सधस्थम्)** सहस्थानम् **(अपाम्)** व्याप्तविद्यानां स्त्रीणाम् **(शिशुः)** बालकः **(मातृतमासु)** अतिशयेन शास्त्रोक्तशिक्षया मानकर्त्रीषु धात्रीषु **(अन्तः)** समीपे॥ अयं मन्त्रः (शत० ५।३।५।१९) व्याख्यातः॥७॥

अन्वयः-यो वरुणो राजा भवेत् स एताः सधमादो द्युम्निनीरनाधृष्टा आपो वसानाः पस्त्यास्वपस्यः स्त्रियो विदुष्यो भवेयुस्तासामपां यः शिशुस्तं मातृतमास्वन्तः सधस्थं समीपस्थं शिक्षार्थं रक्षेत्॥७॥

भावार्थः-राज्ञा प्रयत्नेन स्वराज्ये सर्वाः स्त्रियो विदुष्यः कार्य्यास्तासां सकाशाज्जाता बालका विद्यायुक्तधात्र्यधीनाः कार्य्याः, यतो न कस्याप्यपत्यं विद्यासुशिक्षाहीनं स्त्री निर्बला च स्यात्॥७॥

पदार्थः-जो **(वरुणः)** श्रेष्ठ राजा हो वह **(एताः)** विद्या और अच्छी शिक्षा को प्राप्त हुईं **(सधमादः)** एक साथ प्रसन्न होने वाली **(द्युम्निनीः)** प्रशंसनीय धन कीर्ति से युक्त **(अनाधृष्टाः)** जो किसी से न दबें **(आपः)** जल के समान शान्तियुक्त **(वसानाः)** वस्त्र और आभूषणों से ढपी हुईं **(पस्त्यासु)** घरों के **(अपस्यः)** कामों में चतुर विद्वान् स्त्री होवें, उन **(अपाम्)** विद्याओं में व्याप्त स्त्रियों का जो **(शिशुः)** बालक हो, उसको **(मातृतमासु)** अति मान्य करनेहारी धायियों के **(अन्तः)** समीप **(सधस्थम्)** एक समीप के स्थान में शिक्षा के लिये रक्खे॥७॥

भावार्थः-राजा को चाहिये कि अपने राज्य में प्रयत्न के साथ सब स्त्रियों का विद्वान् और उनसे उत्पन्न हुए बालकों को विद्यायुक्त धाइयों के अधीन करे कि जिससे किसी के बालक विद्या और अच्छी शिक्षा के विना न रहें और स्त्री भी निर्बल न हो॥७॥

क्षत्रस्येत्यस्य वरुण ऋषिः। यजमानो देवता। कृतिश्छन्दः। निषादः स्वरः॥

सर्वाः प्रजाः सर्वथा योग्यं सभेशं राजानं सततं सर्वतो रक्षेयुरित्याह॥

सब प्रजापुरुषों को योग्य है कि सब प्रकार से योग्य सभापति राजा की निरन्तर सब ओर से रक्षा करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

क्षत्रस्योल्बमसि क्षत्रस्य जरायुवसि क्षत्रस्य योनिरसि क्षत्रस्य नाभिरसीन्द्रस्य वार्त्रघ्नमसि मित्रस्यासि वरुणस्यासि त्वयायं वृत्रं वधेत्। दृवासि रुजासि क्षुमासि। पातैनं प्राञ्चं पातैनं प्रत्यञ्चं पातैनं तिर्यञ्चं दिग्भ्यः पात॥८॥

क्षत्रस्य। उल्बम्। असि। क्षत्रस्य। जरायु। असि। क्षत्रस्य। योनिः। असि। क्षत्रस्य। नाभिः। असि। इन्द्रस्य। वार्त्रघ्नमिति वार्त्रऽघ्नम्। असि। मित्रस्य। असि। वरुणस्य। असि। त्वया। अयम्। वृत्रम्। वधेत्। दृवा। असि। रुजा। असि। क्षुमा। असि। पात। एनम्। प्राञ्चम्। पात। एनम्। प्रत्यञ्चम्। पात। एनम्। तिर्यञ्चम्। दिग्भ्य इति दिक्ऽभ्यः पात॥८॥

पदार्थः-**(क्षत्रस्य)** राजकुलस्य **(उल्बम्)** बलम् **(असि)** **(क्षत्रस्य)** क्षत्रियस्य **(जरायु)** वृद्धावस्थाप्रापकम् **(असि)** **(क्षत्रस्य)** राजन्यस्य **(योनिः)** निमित्तम् **(असि)** **(क्षत्रस्य)** राज्यस्य **(नाभिः)** बन्धनम् **(असि)** **(इन्द्रस्य)** सूर्यस्य **(वार्त्रघ्नम्)** मेघविनाशकम् **(असि)** **(मित्रस्य)** सुहृदः **(असि)** **(वरुणस्य)** श्रेष्ठस्य **(असि)** **(त्वया)** राज्ञा **(अयम्)** वीरः **(वृत्रम्)** मेघमिव न्यायावरकं शत्रुम् **(वधेत्)** हन्यात् **(दृवा)** यः शत्रून् दृणाति, अत्र **अन्येभ्योऽपि**

दृश्यन्ते। (अष्टा०३।२।७५) इति क्वनिप् **(असि) (रुजा)** शत्रूणां रोगकारकः, अत्रौणादिकः कनिन् **(असि) (क्षुमा)** सत्योपदेशकः, अत्रौणादिको मनिन् किच्च **(असि) (पात)** रक्षत **(एनम्)** राजानम् **(प्राञ्चम्)** प्राक्प्रबन्धस्य कर्त्तारम् **(पात) (एनम्)** सेनाध्यक्षम् **(प्रत्यञ्चम्)** पश्चात् स्थितम् **(पात) (एनम्)** पार्श्वस्थं वीरम् **(तिर्य्यञ्चम्)** तिरश्चीनम् **(दिग्भ्यः)** सर्वाभ्य आशाभ्यः **(पात)**॥ अयं मन्त्रः (शत० ५।३।५।२०-३०) व्याख्यातः॥८॥

अन्वयः-हे राजन्! यस्त्वं क्षत्रस्योल्बमसि क्षत्रस्य जराय्वसि क्षत्रस्य योनिरसि क्षत्रस्य नाभिरसीन्द्रस्य वार्त्रघ्नमसि मित्रस्य मित्रोऽसि वरुणस्य वरोऽसि दृवासि रुजासि क्षुमासि, यस्त्वया सह वृत्रं वधेत्, तमेनं प्राञ्चं सर्वे यूयं दिग्भ्यः पात, तमेनं प्रत्यञ्चं पात तमेनं तिर्य्यञ्चं पात॥८॥

भावार्थः-यत्पुत्रीपुत्रेषु स्त्रीनरेषु च विद्यावर्धनं कर्मास्ति, तदेव राज्यवर्धकं शत्रुविनाशकं धर्मादिप्रवर्त्तकं च भवति। अनेनैव सर्वेषु कालेषु सर्वासु दिक्षु रक्षणं भवति॥८॥

पदार्थः-हे राजन्! जो आप **(क्षत्रस्य)** अपने राजकुल में **(उल्बम्)** बलवान् **(असि)** हैं, **(क्षत्रस्य)** क्षत्रिय पुरुष को **(जरायु)** वृद्धावस्था देनेहारे **(असि)** हैं, **(क्षत्रस्य)** राज्य के **(योनिः)** निमित्त **(असि)** हैं, **(क्षत्रस्य)** राज्य के **(नाभिः)** प्रबन्धकर्त्ता **(असि)** हैं, **(इन्द्रस्य)** सूर्य्य के **(वार्त्रघ्नम्)** मेघ का नाश करनेहारे के समान कर्मकर्त्ता **(असि)** हैं, **(मित्रस्य)** मित्र के मित्र **(असि)** हैं, **(वरुणस्य)** श्रेष्ठ पुरुषों के साथ श्रेष्ठ **(असि)** हैं, **(दृवा)** शत्रुओं के विदारण करने वाले **(असि)** हैं, **(रुजा)** शत्रुओं को रोगातुर करनेहारे **(असि)** हैं और **(क्षुमा)** सत्य का उपदेश करनेहारे **(असि)** हैं, जो **(अयम्)** यह वीर पुरुष **(त्वया)** आप राजा के साथ **(वृत्रम्)** मेघ के समान न्याय के छिपाने वाले शत्रु को **(वधेत्)** मारे **(एनम्)** इस **(प्राञ्चम्)** प्रथम प्रबन्ध करने वाले **(एनम्)** राजपुरुष की तुम लोग **(दिग्भ्यः)** सब दिशाओं से **(पात)** रक्षा करो, **(प्रत्यञ्चम्)** पीछे खड़े हुए सेनापति की **(पात)** रक्षा करो, इस **(तिर्य्यञ्चम्)** तिरछे खड़े हुए **(एनम्)** राजपुरुष की **(पात)** रक्षा करो॥८॥

भावार्थः-जो कन्या और पुत्रों में स्त्री और पुरुषों मे विद्या बढ़ाने वाला कर्म है, वही राज्य का बढ़ाने, शत्रुओं का विनाश और धर्म आदि की प्रवृत्ति कराने वाला होता है। इसी कर्म से सब कालों और सब दिशाओं में रक्षा होती है॥८॥

आविर्मर्य्या इत्यस्य वरुण ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। भुरिगष्टिश्छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

मनुष्यैः सुशीलतयाऽऽप्तविद्वदादयोऽवश्यं प्राप्तव्या इत्याह॥

मनुष्यों को चाहिये कि अपना स्वभाव अच्छा करके आप्त विद्वान् आदि को अवश्य प्राप्त होवें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

आ॒विर्म॑र्य्या॒ऽआवि॑त्तोऽअ॒ग्निर्गृ॒हप॑ति॒रावि॑त्त॒ऽइन्द्रो॑ वृ॒द्धश्र॑वा॒ऽआवि॑त्तौ मि॒त्रावरु॑णौ धृतव्र॑ता॒वावि॑त्तः पू॒षा वि॒श्ववे॑दा॒ऽआवि॑त्ते॒ द्यावा॑पृथि॒वी वि॒श्वश॑म्भुवा॒वावि॑त्ता॒दि॑तिरु॒रुश॑र्म्मा॥ ९॥

आ॒विः। म॒र्य्याः। आवि॑त्त॒ इत्या॒ऽवि॑त्तः। अ॒ग्निः। गृ॒हप॑ति॒रिति॑ गृ॒हऽप॑तिः। आवि॑त्त॒ इत्या॒ऽवि॑त्तः। इन्द्रः॑। वृ॒द्धश्र॑वा॒ इति॑ वृ॒द्धऽश्र॑वाः। आवि॑त्ता॒वित्या॒ऽवित्तौ। मि॒त्रावरु॑णौ। धृ॒तव्र॑ता॒विति॑ धृ॒तऽव्र॑तौ। आवि॑त्त॒ इत्या॒ऽवि॑त्तः। पू॒षा। वि॒श्ववे॑दा॒ इति॑ वि॒श्वऽवे॑दाः। आवि॑त्ते॒ इत्या॒ऽवि॑त्ते। द्यावा॑पृथि॒वीऽइति॒ द्यावा॑ऽपृथि॒वी। वि॒श्वश॑म्भुवा॒विति॑ वि॒श्वऽश॑म्भुवौ। आवि॒त्तेत्या॒ऽवि॑त्ता। अदि॑तिः। उ॒रुश॒र्म्मेत्यु॒रुऽश॑र्म्मा॥ ९॥

पदार्थ:-(**आवि:**) प्राकट्ये (**मर्य्या:**) **मर्या इति मनुष्यनामसु पठितम्।** (निघं०२।३) (**आवित्त:**) प्राप्तपूर्णभोगो लब्धप्रतीतो वा। **वित्तो भोगप्रत्यययो:।** (अष्टा० ८।२।५८) अनेनायं निपातित: (**अग्नि:**) पावक इव विद्वान् (**गृहपति:**) गृहाणां पालक: (**आवित्त:**) (**इन्द्र:**) शत्रुविदारक: सेनाधीश: (**वृद्धश्रवा:**) वृद्धं श्रव: सर्वशास्त्रश्रवणं यस्य स: (**आवित्तौ**) (**मित्रावरुणौ**) सुहृद्वरौ (**धृतव्रतौ**) धृतानि व्रतानि सत्यादीनि याभ्यां तौ (**आवित्त:**) (**पूषा**) पोषको वैद्य: (**विश्ववेदा:**) विश्वं सर्वमौषधं विदितं येन स: (**आवित्ते**) (**द्यावापृथिवी**) विद्युद्भूमी (**विश्वशम्भुवौ**) विश्वस्मै शं सुखं भावुके (**आवित्ता**) (**अदिति:**) विदुषी माता (**उरुशर्म्मा**) उरूणि बहूनि सुखानि यस्या: सा॥ अयं मन्त्र: (शत० ५।३।५।३१-३७) व्याख्यात:॥९॥

अन्वय:-हे मर्य्या युष्माभिर्यदि गृहपतिरग्निराविरावित्तो वृद्धश्रवा इन्द्र आविरावित्तो धृतव्रतौ मित्रावरुणावाविरावित्तौ विश्ववेदा: पूषाऽऽविरावित्तो विश्वशम्भुवौ द्यावापृथिवी आविरावित्ते उरुशर्म्मादितिश्चावि-रावित्ता स्यात् तर्हि सर्वाणि सुखानि प्राप्यन्ते॥९॥

भावार्थ:-यावन्मनुष्या: सद्विदुष: सतीं विदुषीं मातरं सत्यपदार्थविज्ञानं च नाप्नुवन्ति, तावत्सुखवृद्धिं दु:खनिवृत्तिं च कर्तुं न शक्नुवन्ति॥९॥

पदार्थ:-हे (**मर्य्या:**) मनुष्यो! तुम लोग जो (**गृहपति:**) घरों के पालन करनेहारे (**अग्नि:**) प्रसिद्ध अग्नि के समान विद्वान् पुरुष को (**आवि:**) प्रकटता से (**आवित्त:**) प्राप्त वा निश्चय करके जाना (**वृद्धश्रवा:**) श्रेष्ठता से सब शास्त्रों को सुने हुए (**इन्द्र:**) शत्रुओं के मारनेहारे सेनापति को (**आवि:**) प्रकटता से (**आवित्त:**) प्राप्त हो वा जाना (**धृतवतौ**) सत्य आदि व्रतों को धारण करनेहारे (**मित्रावरुणौ**) मित्र और श्रेष्ठ जनों को (**आवि:**) प्रकटता से (**आवित्तौ**) प्राप्त वा जाना (**विश्ववेदा:**) सब ओषधियों को जाननेहारे (**पूषा**) पोषणकर्त्ता वैद्य को (**आवि:**) प्रसिद्धि से (**आवित्त:**) प्राप्त हुए (**विश्वशम्भुवौ**) सब के लिये सुख देनेहारे (**द्यावापृथिवी**) बिजुली और भूमि को (**आवि:**) प्रकटता से (**आवित्ते**) जाने (**उरुशर्म्मा**) बहुत सुख देने वाली (**अदिति:**) विद्वान् माता को प्रसिद्ध (**आवित्ता**) प्राप्त हुए तो तुम को सब सुख प्राप्त हो जावें॥९॥

भावार्थ:-जब तक मनुष्य लोग श्रेष्ठ विद्वानों, उत्तम विदुषी माता और प्रसिद्ध पदार्थों के विज्ञान को प्राप्त नहीं होते, तब तक सुख की प्राप्ति और दु:खों की निवृत्ति करने को समर्थ नहीं होते॥९॥

अवेष्टा इत्यस्य वरुण ऋषि:। यजमानो देवता। विराडार्षी पङ्क्तिश्छन्द:। पञ्चम: स्वर:॥

पुनर्मनुष्यै: किं कृत्वा किं किं प्राप्तव्यमित्युपदिश्यते॥

फिर मनुष्य क्या करके किस-किस को प्राप्त हों, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अवे॑ष्टा दन्दशूका॒: प्राची॒मारो॑ह गाय॒त्री त्वा॑वतु रथन्त॒रꣳ साम॑ त्रि॒वृत् स्तोमो॑ वस॒न्तऽऋ॒तुर्ब्रह्म॒ द्रवि॑णम्॥ १०॥

अवे॑ष्टा॒ इत्यव॑ऽइष्टा:। द॒न्द॒शूका॑:। प्राची॑म्। आ। रो॒ह॒। गा॒य॒त्री। त्वा॒। अ॒व॒तु॒। र॒थ॒न्त॒रमिति॑ रथम्ऽत॒रम्। साम॑। त्रि॒वृदिति॑ त्रि॒ऽवृत्। स्तोम॑:। व॒स॒न्त:। ऋ॒तु:। ब्रह्म॑। द्रवि॑णम्॥ १०॥

पदार्थ:-(**अवेष्टा:**) विरुद्धस्य सङ्गन्तार: (**दन्दशूका:**) परस्मैदु:खप्रदानाय दंशनशीला: (**प्राचीम्**) पूर्वां दिशम् (**आ**) (**रोह**) प्रसिद्धो भव (**गायत्री**) पठितं गायत्रीछन्द: (**त्वा**) त्वाम् (**अवतु**) प्राप्नोतु (**रथन्तरम्**) रथैस्तरन्ति

येन तत् **(साम)** सामवेदः **(त्रिवृत्)** त्रिभिर्मनोवाक्शरीरबलानां बोधकारकः **(स्तोमः)** स्तूयमानः **(वसन्तः)** **(ऋतुः)** **(ब्रह्म)** वेदो जगदीश्वरो ब्रह्मवित्कुलं वा **(द्रविणम्)** विद्याद्रव्यम्॥ अयं मन्त्रः (शत० ५। ४। १। १-३) व्याख्यातः॥१०॥

अन्वयः-हे राजन्! यस्त्वं येऽवेष्टा दन्दशूकाः सन्ति, तान् जित्वा प्राचीं दिशमारोह, तं त्वा गायत्री रथन्तरं साम त्रिवृत् स्तोम् ऋतुर्वसन्तो ब्रह्म द्रविणं चावतु॥१०॥

भावार्थः-ये मनुष्याः विद्यासु प्रादुर्भवन्ति ते शत्रून् विजित्यैश्वर्यं प्राप्नुवन्ति॥१०॥

पदार्थः-हे राजन्! जो आप **(अवेष्टाः)** विरोधी का सङ्ग करने वाले **(दन्दशूकाः)** दूसरों को दुःख देने के लिये काट खाने वाले हैं, उनको जीत के **(प्राचीम्)** पूर्व दिशा में **(आरोह)** प्रसिद्ध हों, उस **(त्वा)** आप को **(गायत्री)** पढ़ा हुआ गायत्री छन्द **(रथन्तरम्)** रथों से जिसके पार हों, ऐसा वन **(साम)** सामवेद **(त्रिवृत्)** तीन मन, वाणी और शरीर के बलों का बोध कराने वाला **(स्तोमः)** स्तुति के योग्य **(वसन्तः)** वसन्त **(ऋतुः)** ऋतु **(ब्रह्म)** वेद, ईश्वर और ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मणकुलरूप **(द्रविणम्)** धन **(अवतु)** प्राप्त होवे॥१०॥

भावार्थः-जो मनुष्य विद्याओं में प्रसिद्ध होते हैं, वे शत्रुओं को जीत के ऐश्वर्य्य को प्राप्त हो सकते हैं॥१०॥

दक्षिणामित्यस्य वरुण ऋषिः। यजमानो देवता। आर्ची पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनः स सभेशः किं कृत्वा किं कुर्यादित्याह॥

फिर वह सभापति राजा क्या करके क्या करे, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

दक्षिणामारोह त्रिष्टुप् त्वावतु बृहत्साम पञ्चदश स्तोमो ग्रीष्मऽऋतुः क्षत्रं द्रविणम्॥११॥

दक्षिणाम्। आ। रोह। त्रिष्टुप्। त्रिस्तुबिति त्रिऽस्तुप्। त्वा। अवतु। बृहत्। साम। पञ्चदश इति पञ्चऽदशः। स्तोमः। ग्रीष्मः। ऋतुः। क्षत्रम्। द्रविणम्॥११॥

पदार्थः-**(दक्षिणाम्)** दिशम् **(आ)** **(रोह)** **(त्रिष्टुप्)** एतच्छन्दोऽभिहितं विज्ञानम् **(त्वा)** त्वाम् **(अवतु)** प्राप्नोतु **(बृहत्)** महत् **(साम)** सामवेदभागः **(पञ्चदशः)** प्राणेन्द्रियभूतानां पञ्चदशानां पूरकः **(स्तोमः)** स्तोतुं योग्यः **(ग्रीष्मः)** **(ऋतुः)** **(क्षत्रम्)** क्षत्रियधर्मरक्षकं कुलम् **(द्रविणम्)** राज्योद्भवं द्रव्यम्॥ अयं मन्त्रः (शत० ५। ४। १। ४) व्याख्यातः॥११॥

अन्वयः-हे विद्वन् राजन्! यं त्वा त्रिष्टुप् छन्दो बृहत्साम पञ्चदश स्तोमो ग्रीष्म ऋतुः क्षत्रं द्रविणञ्चावतु, स त्वं दक्षिणां दिशमारोह शत्रून् विजयस्व॥११॥

भावार्थः-यो राजा प्राप्तविद्यः क्षत्रियकुलं वर्धयेत्, स एव शत्रुभिः कदापि न तिरस्क्रियेत॥११॥

पदार्थः-हे विद्वान् राजन्! जिस **(त्वा)** आप को **(त्रिष्टुप्)** इस नाम के छन्द से सिद्ध विज्ञान **(बृहत्)** बड़ा **(साम)** सामवेद का भाग **(पञ्चदशः)** पांच प्राण अर्थात् प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान; पांच इन्द्रिय अर्थात् श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, रसना और घ्राण; पांच भूत अर्थात् जल, भूमि, अग्नि, वायु और आकाश, इन पन्द्रह की पूर्त्ति करनेहारा **(स्तोमः)** स्तुति के योग्य **(ग्रीष्मः)** **(ऋतुः)** ग्रीष्म ऋतु **(क्षत्रम्)** क्षत्रियों के धर्म का रक्षक क्षत्रियकुलरूप और **(द्रविणम्)** राज्य से प्रकट हुआ धन **(अवतु)** प्राप्त हो। वह आप **(दक्षिणाम्)** दक्षिण दिशा में **(आरोह)** प्रसिद्ध

हूजिये और शत्रुओं को जीतिये॥११॥

भावार्थः-जो राजा विद्या को प्राप्त हुआ क्षत्रियकुल को बढ़ावे, उस का तिरस्कार शत्रुजन कभी न कर सकें॥११॥

प्रतीचीमित्यस्य वरुण ऋषिः। यजमानो देवता। निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

राजपुरुषैर्नित्यं वैश्यकुलं वर्द्धनीयमित्याह॥

राजपुरुषों को चाहिये कि वैश्य कुल को नित्य बढ़ावें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

प्रतीचीमारोह जगती त्वावतु वैरूपꣳ साम सप्तदश स्तोमो वर्षाऽऋतुर्विड् द्रविणम्॥१२॥

प्रतीचीम्। आ। रोह। जगती। त्वा। अवतु। वैरूपम्। साम। सप्तदश इति सप्तऽदशः। स्तोमः। वर्षाः। ऋतुः। विट्। द्रविणम्॥१२॥

पदार्थः-(**प्रतीचीम्**) पश्चिमां दिशम् (**आ**) (**रोह**) (**जगती**) एतच्छन्दोऽभिहितमर्थम् (**त्वा**) त्वाम् (**अवतु**) (**वैरूपम्**) विविधानि रूपाणि यस्मिन् तत् (**साम**) सामवेदांशः (**सप्तदशः**) पञ्च कर्मेन्द्रियाणि पञ्च विषयाः पञ्च महाभूतानि कार्य्यं कारणं चेति सप्तदशानां पूरकः (**स्तोमः**) स्तुतिसमूहः (**वर्षाः**) (**ऋतुः**) (**विट्**) वणिग्जनः (**द्रविणम्**) द्रव्यम्॥ अयं मन्त्रः (शत० ५।४।१।५) व्याख्यातः॥१२॥

अन्वयः-हे राजन्! यं त्वा जगती वैरूपं साम सप्तदश स्तोम ऋतुर्वर्षा द्रविणं विट् चावतु, स त्वं प्रतीचीं दिशमारोह धनं च लभस्व॥१२॥

भावार्थः-ये राजपुरुषा राजनीत्या वैश्यानुन्नयेयुस्ते श्रियमाप्नुयुः॥१२॥

पदार्थः-हे राजपुरुष! जिस (**त्वा**) आप को (**जगती**) जगती छन्द में कहा हुआ अर्थ (**वैरूपम्**) विविध प्रकार के रूपों वाला (**साम**) सामवेद का अंश (**सप्तदशः**) पांच कर्म इन्द्रिय; पांच शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध विषय; पांच महाभूत अर्थात् सूक्ष्म भूत, कार्य्य और कारण इन सत्रह का पूरण करने वाला (**स्तोमः**) स्तुतियों का समूह (**वर्षाः**) वर्षा (**ऋतुः**) ऋतु (**द्रविणम्**) द्रव्य और (**विट्**) वैश्यजन (**अवतु**) प्राप्त हों। सो आप (**प्रतीचीम्**) पश्चिम दिशा को (**आरोह**) आरूढ़ और धन को प्राप्त हूजिये॥१२॥

भावार्थः-जो राजपुरुष राजनीति के साथ वैश्यों की उन्नति करें, वे ही लक्ष्मी को प्राप्त होवें॥१२॥

उदीचीमित्यस्य वरुण ऋषिः। यजमानो देवता। आर्ची पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुना राजादिनरैः किं लब्धव्यमित्याह॥

फिर राजा आदि पुरुषों को क्या प्राप्त करना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

उदीचीमारोहानुष्टुप् त्वावतु वैराजꣳ सामैकविꣳश स्तोमः शरदृतुः फलं द्रविणम्॥१३॥

उदाचीम्। आ। रोह। अनुष्टुप्। अनुस्तुबित्यनुऽस्तुप्। त्वा। अवतु। वैराजम्। साम। एकविꣳश इत्येकऽविꣳशः। स्तोमः। शरत्। ऋतुः। फलम्। द्रविणम्॥१३॥

पदार्थः-(**उदीचीम्**) उत्तराम् (**आ**) (**रोह**) (**अनुष्टुप्**) यया पठित्वा पुनः सर्वा विद्या अन्येभ्यः स्तुवन्ति सा (**त्वा**) (**अवतु**) (**वैराजम्**) यद्विविधैरर्थै राजते तदेव (**साम**) (**एकविंशः**) षोडश कलाश्चत्वारः पुरुषार्थाऽवयवाः

कर्त्ता चेति तेषामेकाविंशतेः पूरणः **(स्तोमः)** स्तुतिविषयः **(शरत्)** **(ऋतुः)** **(फलम्)** सेवाफलदं शूद्रकुलम् **(द्रविणम्)**॥ अयं मन्त्रः (शत० ५।४।१।६) व्याख्यातः॥१३॥

अन्वयः-हे सभापते! त्वमुदीचीं दिशमारोह। यतोऽनुष्टुप् वैराजं सामैकविंशस्तोम ऋतुः शरद् द्रविणं फलं च त्वाऽवतु॥१३॥

भावार्थः-ये जना आलस्यं विहाय सर्वदा पुरुषार्थमेवानुतिष्ठन्ते ते सच्छूद्रान् प्राप्य फलवन्तो जायन्ते॥१३॥

पदार्थः-हे सभापति राजा! आप **(उदीचीम्)** उत्तर की दिशा में **(आरोह)** प्रसिद्धि को प्राप्त हूजिये, जिससे **(अनुष्टुप्)** जिसको पढ़ के सब विद्याओं से दूसरों की स्तुति करें, वह छन्द **(वैराजम्)** अनेक प्रकार के अर्थों से शोभायमान **(साम)** सामवेद का भाग **(एकविंशः)** सोलह कला, चार पुरुषार्थ के अवयव और एक कर्त्ता इन इक्कीस को पूरण करनेहारा **(स्तोमः)** स्तुति का विषय **(शरत्)** शरद् **(ऋतुः)** ऋतु **(द्रविणम्)** ऐश्वर्य्य और **(फलम्)** फलरूप सेवाकारक शूद्रकुल **(त्वा)** आपको **(अवतु)** प्राप्त होवे॥१३॥

भावार्थः-जो पुरुष आलस्य को छोड़ सब समय में पुरुषार्थ का अनुष्ठान करते हैं, वे अच्छे फलों को भोगते हैं॥१३॥

ऊर्ध्वामित्यस्य वरुण ऋषिः। यजमानो देवता। भुरिज्जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

मनुष्यैरुत्कृष्टविद्ययाऽनेके पदार्था विज्ञातव्या इत्याह॥

मनुष्यों को चाहिये कि प्रबल विद्या से अनेक पदार्थों को जानें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

ऊ॒र्ध्वामारो॑ह प॒ङ्क्तिस्त्वा॑वतु शाक्वररैव॒ते साम॑नी त्रिणवत्रयस्त्रि॒ꣳशौ स्तोमौ॑ हेमन्तशिशि॒रावृ॒तू वर्चो॒ द्रवि॑णं॒ प्रत्य॑स्तं॒ नमु॑चे॒: शिर॑:॥१४॥

ऊ॒र्ध्वाम्। आ। रो॒ह॒। प॒ङ्क्तिः। त्वा॒। अ॒व॒तु॒। शा॒क्व॒र॒रै॒व॒तेऽइति॑ शाक्वररै॒वते। साम॑नी॒ऽइति॑ सामनी। त्रि॒ण॒व॒त्र॒य॒स्त्रि॒ꣳशौ। त्रि॒न॒व॒त्र॒य॒स्त्रि॒ꣳशावि॒ति॑ त्रिनवऽत्रयस्त्रि॒ꣳशौ। स्तोमौ॑। हे॒म॒न्त॒शि॒शि॒रौ। ऋ॒तू॒ऽइत्यृ॒तू। वर्च॑:। द्रवि॑णम्। प्रत्य॑स्त॒मिति॒ प्रति॑ऽअस्तम्। नमु॑चेः। शिर॑:॥१४॥

पदार्थः-**(ऊर्ध्वाम्)** दिशम् **(आ)** **(रोह)** **(पङ्क्तिः)** **(त्वा)** **(अवतु)** **(शाक्वररैवते)** शाक्वरं च रैवतं च ते **(सामनी)** **(त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ)** ये त्रयश्च कालाः नवाङ्कविद्याश्च त्रयश्च त्रिंशच्च वस्वादयः पदार्था व्याख्याता याभ्यां तयोः पूरणौ तौ **(स्तोमौ)** स्तुतिविशेषौ **(हेमन्तशिशिरौ)** **(ऋतू)** **(वर्चः)** विद्याध्ययनम् **(द्रविणम्)** द्रव्यम् **(प्रत्यस्तम्)** प्रतिक्षिप्तम् **(नमुचेः)** न मुञ्चति परपदार्थान् दुष्टाचारान् वा यः स्तेनस्तस्य **(शिरः)** उत्तमाङ्गम्॥ अयं मन्त्रः (शत० ५।४।१।७) व्याख्यातः॥१४॥

अन्वयः-हे राजन्! यद्यूर्ध्वा दिशमारोह तर्हि त्वा पङ्क्तिः शाक्वररैवते सामनी त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ स्तोमौ हेमन्तशिशिरावृतू वर्चो द्रविणं चावतु, नमुचेः शिरश्च प्रत्यस्तं स्यात्॥१४॥

भावार्थः-ये मनुष्या अन्वृतु योग्याऽऽहारविहारस्सन्तो विद्यायोगाभ्याससत्सङ्गान् चरन्ति, ते सर्वेष्वृतुषु सुखं भुञ्जते, न चैभ्यो कश्चिच्चौरः पीडां दातुं शक्नोति॥१४॥

पदार्थः-हे राजन्! आप जो **(ऊर्ध्वाम्)** ऊपर की दिशा में **(आरोह)** प्रसिद्ध होवें तो **(त्वा)** आपको

(पङ्क्तिः) पङ्क्ति नाम का पढ़ा हुआ छन्द **(शाक्वररैवते)** शक्वरी और रेवती छन्द से युक्त **(सामनी)** सामवेद के पूर्व उत्तर दो अवयव **(त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ)** तीन काल, नव अङ्कों की विद्या और तैंतीस वसु आदि पदार्थ जिन दोनों से व्याख्यान किये गये हैं, उनके पूर्ण करने वाले **(स्तोमौ)** स्तोत्रों के दो भेद **(हेमन्तशिशिरौ)** हेमन्त और शिशिर **(ऋतू)** ऋतु **(वर्चः)** ब्रह्मचर्य्य के साथ विद्या का पढ़ना और **(द्रविणम्)** ऐश्वर्य्य **(अवतु)** तृप्त करे और **(नमुचेः)** दुष्ट चोर का **(शिरः)** मस्तक **(प्रत्यस्तम्)** नष्ट-भ्रष्ट होवे॥१४॥

भावार्थः-जो सब ऋतुओं में समय के अनुसार आहार-विहार युक्त होके विद्या योगाभ्यास और सत्सङ्गों का अच्छे प्रकार सेवन करते हैं, वे सब ऋतुओं में सुख भोगते हैं और इनको कोई चोर आदि भी पीड़ा नहीं दे सकता॥१४॥

सोमेत्यस्य वरुण ऋषिः। परमात्मा देवता। विराडार्ची पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

राजप्रजाजनैरीश्वरवद् वर्त्तित्वा परस्परेषां रक्षणं विधेयमित्याह॥

राजा और प्रजापुरुषों को उचित है कि ईश्वर के समान न्यायाधीश होकर आपस में एक-दूसरे की रक्षा करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

सोम॑स्य॒ त्विषि॑रसि॒ तवे॑व मे॒ त्विषि॑र्भूयात्। मृत्योः पा॒ह्योजो॑ऽसि॒ सहो॑ऽस्य॒मृत॑मसि॥ १५॥

सोम॑स्य। त्विषि॑ः। अ॒सि॒। तवे॒वेति॒ तव॑ऽइव। मे॒। त्विषि॑ः। भू॒या॒त्। मृ॒त्योः। पा॒हि॒। ओज॑ः। अ॒सि॒। सह॒ः। अ॒सि॒। अ॒मृत॑म्। अ॒सि॒॥ १५॥

पदार्थः-**(सोमस्य)** ऐश्वर्यस्य **(त्विषिः)** दीप्तिः **(असि)** **(तवेव)** **(मे)** **(त्विषिः)** **(भूयात्)** **(मृत्योः)** मरणात् **(पाहि)** **(ओजः)** पराक्रमयुक्तः **(असि)** **(सहः)** बलवान् **(असि)** **(अमृतम्)** मरणधर्मरहितम् **(असि)**॥ अयं मन्त्र शत० ५।४।१।११-१४) व्याख्यातः॥१५॥

अन्वयः-हे परमाप्त! यथा त्वं सोमस्य त्विषिरस्योजोऽसि सहोऽस्यमृतमसि, तथाऽहं भवेयम्। तवेव मे त्विषिरोजः सहोऽमृतं च भूयात्, त्वं मृत्योर्मा पाहि॥१५॥

भावार्थः-हे पुरुषाः! यथाऽऽप्ताः स्वेष्टं प्रजाभ्योऽपीच्छेयुः, यथा प्रजा राजपुरुषान् रक्षेयुस्तथा प्रजाजनान् सततं रक्षन्तु॥१५॥

पदार्थः-हे परम आप्त विद्वन्! जैसे आप **(सोमस्य)** ऐश्वर्य्य का **(त्विषिः)** प्रकाश करनेहारे **(असि)** हैं, **(ओजः)** पराक्रमयुक्त **(असि)** हैं, **(सहः)** बलवान् **(असि)** हैं **(अमृतम्)** जन्म-मरणादि धर्म से रहित **(असि)** हैं, वैसा मैं भी होऊं। **(तवेव)** आपके समान **(मे)** मेरा **(त्विषिः)** विद्या प्रकाश से भाग्योदय **(भूयात्)** हो। आप मुझ को **(मृत्योः)** मृत्यु से **(पाहि)** बचाइये॥१५॥

भावार्थः-हे पुरुषो! जैसे धार्मिक विद्वान् अपने को जो इष्ट है, उसी को प्रजा के लिये भी इच्छा करें। जैसे प्रजा के जन राजपुरुषों की रक्षा करें, वैसे राजपुरुष भी प्रजाजनों की निरन्तर रक्षा करें॥१५॥

हिरण्यरूपावित्यस्य वरुण ऋषिः। मित्रावरुणौ देवते। स्वराडार्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

अथ विद्वद्भिर्निष्कपटतयाऽज्ञाः सत्यमुपदिश्य विद्वांसो मेधाविनः संपादनीया इत्याह॥

अब विद्वानों को चाहिये कि आप निष्कपट हो और अज्ञानी पुरुषों के लिये सत्य का उपदेश करके उनको बुद्धिमान् विद्वान् बनावें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

हिरण्यरूपाऽउषसो विरोकऽउभाविन्द्राऽउदिथः सूर्य्यश्च।
आरोहतं वरुण मित्र गर्त्तं ततश्चक्षाथामदितिं दितिं च मित्रोऽसि वरुणोऽसि॥ १६॥

हिरण्यरूपाविति हिरण्यऽरूपौ। उषसः। विरोक इति विऽरोके। उभौ। इन्द्रौ। उत्। इथः। सूर्यः। च। आ। रोहतम्। वरुण। मित्र। गर्त्तम्। ततः। चक्षाथाम्। अदितिम् दितिम्। च। मित्रः। असि। वरुणः। असि॥ १६॥

पदार्थः-(**हिरण्यरूपौ**) ज्योतिःस्वरूपौ (**उषसः**) प्रभातान् (**विरोके**) विविधतया रुचिकरे व्यवहारे (**उभौ**) (**इन्द्रौ**) परमैश्वर्य्यकारकौ (**उत्**) (**इथः**) प्राप्नुथः (**सूर्य्यः**) (**च**) चन्द्र इव (**आ**) (**रोहतम्**) (**वरुण**) शत्रुच्छेदक उत्कृष्टसेनापते (**मित्र**) सर्वस्य सुहृत् (**गर्तम्**) उपदेशकगृहम्। **गर्त्त इति गृहनामसु पठितम्।** (निघं० ३।४) (**ततः**) तदनन्तरम् (**चक्षाथाम्**) उपदिशेताम् (**अदितिम्**) अविनाशिनं पदार्थम् (**दितिम्**) नाशवन्तम् (**च**) (**मित्रः**) सुखप्रदः (**असि**) (**वरुणः**) सर्वोत्तमः (**असि**)॥ अयं मन्त्रः (शत० ५।४।१।१५-१७) व्याख्यातः॥१६॥

अन्वयः-हे उपदेशक मित्र! यतस्त्वं मित्रोऽसि। हे वरुण! यतस्त्वं वरुणोऽसि ततस्तौ युवां गर्त्तमारोहतम्। अदितिं दितिं च चक्षाथाम्। हे हिरण्यरूपावुभाविन्द्रौ यथा विरोके सूर्य्यश्चन्द्रश्चोषसो विभातस्तथा युवामुदिथो विद्याः प्रभातम्॥ १६॥

भावार्थः-यत्र देशे सूर्य्यचन्द्रवदुपदेशका व्याख्यानैः सर्वा विद्याः प्रकाशयन्ति, तत्र सत्याऽसत्यपदार्थबोधेन सहितत्वात् कश्चिदप्यविद्यया न विमुह्यति, यत्रेदं न भवति तत्राऽन्धपरम्पराग्रस्ता जनाः प्रत्यहमवनतिं प्राप्नुवन्ति॥ १६॥

पदार्थः-हे उपदेश करनेहारे (**मित्र**) सब के सुहृद्! जिसलिये आप (**मित्रः**) सुख देने वाले (**असि**) हैं तथा हे (**वरुण**) शत्रुओं को मारनेहारे बलवान् सेनापति! जिसलिये आप (**वरुणः**) सबसे उत्तम (**असि**) हैं, इसलिये आप दोनों (**गर्त्तम्**) उपदेश करने वाले के घर पर (**आरोहतम्**) जाओ (**अदितिम्**) अविनाशी (**च**) और (**दितिम्**) नाशवान् पदार्थों का (**चक्षाथाम्**) उपदेश करो। हे (**हिरण्यरूपौ**) प्रकाशस्वरूप (**उभौ**) दोनों (**इन्द्रौ**) परमैश्वर्य्य करनेहारे जैसे (**विरोके**) विविध प्रकार की रुचि करानेहारे व्यवहार में (**सूर्य्यः**) सूर्य्य (**च**) और चन्द्रमा (**उषसः**) प्रातः और निशा काल के अवयवों को प्रकाशित करते हैं, वैसे तुम दोनों जन (**उदिथः**) विद्याओं का उपदेश करो॥ १६॥

भावार्थः-जिस देश में सूर्य्य-चन्द्रमा के समान उपदेश करनेहारे व्याख्यानों से सब विद्याओं का प्रकाश करते हैं, वहां सत्याऽसत्य पदार्थों के बोध से सहित होके कोई भी विद्याहीन होकर भ्रम में नहीं पड़ता। जहां यह बात नहीं होती, वहां अन्धपरम्परा में फंसे हुए मनुष्य नित्य ही क्लेश पाते हैं॥ १६॥

सोमस्येत्यस्य वरुण ऋषिः। क्षत्रपतिर्देवता। आर्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

एतत्प्रवृत्तये कीदृशो राजाभिषेचनीय इत्याह॥

पूर्वोक्त कार्य्यों की प्रवृत्ति के लिये कैसे पुरुष को राज्याऽधिकार देना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

सोमस्य॑ त्वा द्युम्नेना॒भिषि॑ञ्चाम्य॒ग्नेर्भ्राज॑सा॒ सूर्य॑स्य॒ वर्च॒सेन्द्र॑स्येन्द्रि॒येण॑।
क्ष॒त्राणां॑ क्ष॒त्रप॑तिरे॒ध्यति॑ दि॒द्यून् पा॑हि॥ १७॥

सोम॑स्य। त्वा॒। द्यु॒म्नेन॑। अ॒भि। सि॒ञ्चा॒मि॒। अ॒ग्नेः॑। भ्राज॑सा। सूर्य॑स्य। वर्च॑सा। इन्द्र॑स्य। इ॒न्द्रि॒येण॑। क्ष॒त्राणा॑म्। क्ष॒त्रप॑ति॒रिति॑ क्ष॒त्रऽप॑तिः। ए॒धि॒। अति॑। दि॒द्यून्। पा॒हि॒॥ १७॥

पदार्थः-(**सोमस्य**) चन्द्रस्येव (**त्वा**) (**द्युम्नेन**) यशःप्रकाशेन (**अभि**) आभिमुख्ये (**सिञ्चामि**) अधिकरोमि (**अग्नेः**) अग्नितुल्येन (**भ्राजसा**) तेजसा (**सूर्य्यस्य**) सवितुरिव (**वर्चसा**) अध्ययनेन (**इन्द्रस्य**) विद्युत इव (**इन्द्रियेण**) मनआदिना (**क्षत्राणाम्**) क्षत्रकुलोद्भतानाम् (**क्षत्रपतिः**) (**एधि**) भव (**अति**) (**दिद्यून्**) विद्याधर्मप्रकाशकान् व्यवहारान् (**पाहि**) सततं रक्ष॥ अयं मन्त्रः (शत० ५.४.२.२) व्याख्यातः॥१७॥

अन्वयः-हे प्रशस्तगुणकर्मस्वभावयुक्त राजन्! यथाऽहं यं त्वा त्वां सोमस्येव द्युम्नेनाग्नेरिव भ्राजसा सूर्य्यस्येव वर्चसेन्द्रस्येवेन्द्रियेण त्वाऽभिषिञ्चामि, तथा स त्वं क्षत्राणां क्षत्रपतिरत्येधि दिद्यून् पाहि॥१७॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्या यः सोमादिगुणयुक्तो विद्वान् जितेन्द्रियो जनो भवेत् तं राजत्वे स्वीकुर्वन्तु। स च राज्यं प्राप्यातिप्रवृद्धः सन् विद्याधर्मप्रकाशकान् राजप्रजाजनान् सततमतिवर्द्धयेत्॥१७॥

पदार्थः-हे प्रशंसित गुण, कर्म और स्वभाव वाले राजा! जैसे मैं जिस तुझ को (**सोमस्य**) चन्द्रमा के समान (**द्युम्नेन**) यशरूप प्रकाश से (**अग्नेः**) अग्नि के समान (**भ्राजसा**) तेज से (**सूर्य्यस्य**) सूर्य्य के समान (**वर्चसा**) पढ़ने से और (**इन्द्रस्य**) बिजुली के समान (**इन्द्रियेण**) मन आदि इन्द्रियों के सहित (**त्वा**) आपको (**अभिषिञ्चामि**) राज्याधिकारी करता हूं, वैसे वे आप (**क्षत्राणाम्**) क्षत्रिय कुल में जो उत्तम हों, उनके बीच (**क्षत्रपतिः**) राज्य के पालनेहारे (**अत्येधि**) अति तत्पर हूजिये और (**दिद्यून्**) विद्या तथा धर्म का प्रकाश करनेहारे व्यवहारों की (**पाहि**) निरन्तर रक्षा कीजिये॥१७॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि जो शान्ति आदि गुणयुक्त जितेन्द्रिय विद्वान् पुरुष हैं, उसको राज्य का अधिकार देवें और उस राजा को चाहिये कि राज्याऽधिकार को प्राप्त हो अतिश्रेष्ठ होता हुआ विद्या और धर्म आदि के प्रकाश करनेहारे प्रजापुरुषों को निरन्तर बढ़ावे॥१७॥

इमं देवा इत्यस्य देववात ऋषिः। यजमानो देवता। स्वराट् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

सत्योपदेशकैर्विद्वद्भिर्बाल्याऽवस्थामारभ्य सुशिक्षया सर्वे राजकन्याकुमाराः श्रेष्ठाचाराः संपादनीया इत्याह॥

सत्य के उपदेशक विद्वानों को चाहिये कि बाल्यावस्था से लेके अच्छी शिक्षा से राजाओं की कन्या और पुत्रों को श्रेष्ठ आचारयुक्त करें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

इ॒मं दे॑वाऽअसप॒त्नꣳ सु॑वध्वं मह॒ते क्ष॒त्रा॑य मह॒ते ज्यैष्ठ्या॑य मह॒ते जान॑राज्या॒येन्द्र॑स्येन्द्रि॒याय॑।
इ॒मम॒मुष्य॑ पु॒त्रम॒मुष्यै॑ पु॒त्रम॒स्यै वि॒शऽए॒ष वो॑ऽमी॒ राजा॒ सोमो॒ऽस्माकं॑ ब्राह्म॒णाना॒ꣳ राजा॑॥ १८॥

इमम्। देवाः। असपत्नम्। सुवध्वम्। महते। क्षत्राय। महते। ज्यैष्ठ्याय। महते। जानराज्यायेति जानऽराज्याय। इन्द्रस्य। इन्द्रियाय। इमम्। अमुष्य। पुत्रम्। अमुष्यै। पुत्रम्। अस्यै। विशे। एषः। वः। अमीऽइत्यमी। राजा। सोमः। अस्माकम्। ब्राह्मणानाम्। राजा॥ १८॥

पदार्थः- (**इमम्**) (**देवाः**) वेदशास्त्रविदः सेनापतयः (**असपत्नम्**) अजातशत्रुम् (**सुवध्वम्**) प्रेर्ध्वम् (**महते**) सत्कर्त्तव्याय (**क्षत्राय**) क्षत्रियकुलाय (**महते**) (**ज्यैष्ठ्याय**) विद्याधर्मवृद्धानां भावाय (**महते**) (**जानराज्याय**) जनानां राज्ञां माण्डलिकानामुपरि प्रभवाय (**इन्द्रस्य**) ऐश्वर्य्ययुक्तस्य धनिकस्य (**इन्द्रियाय**) धनवर्धनाय (**इमम्**) (**अमुष्य**) सद्‌गुणसम्पन्नस्य राजपूतस्य (**पुत्रम्**) तनयम् (**अमुष्यै**) प्रशंसनीयाया राजपुत्र्याः, अत्र षष्ठ्यर्थे चतुर्थी (**पुत्रम्**) पवित्रगुणकर्मस्वभावैर्मातापितृपालकम् (**अस्यै**) वर्त्तमानायाः सुशिक्षितव्यायाः (**विशे**) प्रजायाः (**एषः**) (**वः**) युष्माकं पालनाय (**अमी**) धार्मिका राजपुरुषाः (**राजा**) सर्वत्रविद्याधर्मसुशिक्षाप्रकाशकः (**सोमः**) शुभगुणैः प्रसिद्धः (**अस्माकम्**) (**ब्राह्मणानाम्**) ब्रह्मवेदभक्तानाम् (**राजा**) वेदेश्वरोपासनया प्रकाशमानः॥अयं मन्त्रः (शत०५.३.३.१२ तथा ५.४.२.३) व्याख्यातः॥१८॥

अन्वयः-हे देवाः! यूयं य एष उपदेशकः सेनेशो वा वोऽस्माकं च ब्राह्मणानां राजाऽस्ति। येऽमी राजपुरुषाः सन्ति, तेषां सोमो राजाऽस्ति तमिमममुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विशे महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियायासपत्नं सुवध्वम्॥१८॥

भावार्थः-यद्युपदेशका राजपुरुषाश्च सर्वस्योन्नतिं चिकीर्षेयुस्तर्हि प्रजाराजजना राजपुरुषोन्नतिं कुतो न कर्त्तुमिच्छेयुः। यदि राजप्रजाजना वेदेश्वराज्ञां विहाय स्वेच्छया प्रवर्त्तेरन् तर्ह्येषामनुन्नतिः कुतो न भवेत्॥१८॥

पदार्थः-हे (**देवाः**) वेद शास्त्रों को जाननेहारे सेनापति लोगो! आप जो (**एषः**) यह उपदेशक वा सेनापति (**वः**) तुम्हारा और (**अस्माकम्**) हमारा (**ब्राह्मणानाम्**) ईश्वर और वेद के सेवक ब्राह्मणों का (**राजा**) वेद और ईश्वर की उपासना से प्रकाशमान अधिष्ठाता है, जो (**अमी**) वे धर्मात्मा राजपुरुष हैं, उनका (**सोमः**) शुभ गुणों से प्रसिद्ध (**राजा**) सर्वत्र विद्या, धर्म और अच्छी शिक्षा का करनेहारा है, उस (**इमम्**) इस (**अमुष्य**) श्रेष्ठगुणों से युक्त राजपूत के (**पुत्रम्**) पुत्र को (**अमुष्यै**) प्रशंसा करने योग्य राजकन्या के (**पुत्रम्**) पवित्र गुण, कर्म और स्वभाव से माता-पिता की रक्षा करने वाले पुत्र और (**अस्यै**) अच्छी शिक्षा करने योग्य इस वर्त्तमान (**विशे**) प्रजा के लिये तथा (**महते**) सत्कार करने योग्य (**क्षत्राय**) क्षत्रिय कुल के लिये (**महते**) बड़े (**ज्यैष्ठ्याय**) विद्या और धर्म विषय में श्रेष्ठ पुरुषों के होने के लिये (**महते**) श्रेष्ठ (**जानराज्याय**) माण्डलिक राजाओं के ऊपर बलवान् समर्थ होने के लिये (**इन्द्रस्य**) सब ऐश्वर्य्यों से युक्त धनाढ्य के (**इन्द्रियाय**) धन बढ़ाने के लिये (**असपत्नम्**) जिसका कोई शत्रु न हो, ऐसे पुत्र को (**सुवध्वम्**) उत्पन्न करो॥१८॥

भावार्थः-जो उपदेशक और राजपुरुष सब प्रजा की उन्नति किया चाहें तो प्रजा के मनुष्य राजा और राजपुरुषों की उन्नति करने की इच्छा क्यों न करें। जो राजपुरुष और प्रजापुरुष वेद और ईश्वर की आज्ञा को छोड़ के अपनी इच्छा के अनुकूल प्रवृत्त होवें, तो इनकी उन्नति का विनाश क्यों न हो॥१८॥

प्रपर्वतस्येत्यस्य देववात ऋषिः। विराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनरत्र राजप्रजाजनैः कीदृशानि यानानि रचनीयानीत्याह॥

फिर इस जगत् में राजा और प्रजाजनों को किस प्रकार के यान बनाने चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

प्र पर्वतस्य वृषभस्य पृष्ठान्नावश्चरन्ति स्वसिचऽइयानाः।
ताऽआववृत्रन्नधरागुदक्ताऽअहिं बुध्न्यमनु रीयमाणाः।
विष्णोर्विक्रमणमसि विष्णोर्विक्रान्तमसि विष्णोः क्रान्तमसि॥१९॥

प्र। पर्वतस्य। वृषभस्य। पृष्ठात्। नावः। चरन्ति। स्वसिच इति स्वऽसिचः। इयानाः। ताः। आ। अववृत्रन्। अधराक्। उदक्ता इत्युत्ऽअक्ताः। अहिम्। बुध्न्यम्। अनु। रीयमाणाः। विष्णोः। विक्रमणमिति विऽक्रमणम्। असि। विष्णोः। विक्रान्तमिति विऽक्रान्तम्। असि। विष्णोः। क्रान्तम्। असि॥१९॥

पदार्थः-(**प्र**) (**पर्वतस्य**) मेघस्य। **पर्वत इति मेघनामसु पठितम्।** (निघं०१.१०) (**वृषभस्य**) वर्षकस्य (**पृष्ठात्**) उपरिभागात् (**नावः**) सागरोपरि नाव इव विमानानि (**चरन्ति**) (**स्वसिचः**) याः स्वैर्जनैर्जलेन सिच्यन्ते ताः (**इयानाः**) गन्त्र्यः (**ताः**) (**आ**) (**अववृत्रन्**) अर्वाचीनो वृत्र इवाचरन्, अत्राचारे सुबन्तात् क्विप् (**अधराक्**) मेघादधस्तात् (**उदक्ताः**) पुनरूर्ध्वं गच्छन्त्यः (**अहिम्**) मेघम् (**बुध्न्यम्**) बुध्नेऽन्तरिक्षे भवम् (**अनु**) पश्चात् (**रीयमाणाः**) चालनेन गच्छन्त्यः (**विष्णोः**) व्यापकस्येश्वरस्य (**विक्रमणम्**) विक्रमतेऽस्मिंस्तत् (**असि**) (**विष्णोः**) व्यापकस्य वायोः (**विक्रान्तम्**) विविधतया क्रान्तम् (**असि**) (**विष्णोः**) व्यापकस्य विद्युद्वस्तुनः (**क्रान्तम्**) क्रमाधिकरणम् (**असि**)॥ अयं मन्त्रः (शत० ५.४.२.५.६) व्याख्यातः॥१९॥

अन्वयः-हे राजशिल्पिन्! यदि त्वया याः स्वसिच इयाना उदक्ता अहिं बुध्न्यमनुरीयमाणा नावो वृषभस्य प्रपर्वतस्य पृष्ठात् प्रचरन्ति याभिस्त्वं विष्णोर्विक्रान्तमसि, विष्णोर्विक्रमणमसि, विष्णोः क्रान्तमसि, या अधरागाववृत्रंस्तास्त्वं साध्नुहि॥१९॥

भावार्थः-यथा मेघो वर्षित्वा भूमितलं प्राप्याकाशमाप्नोति, तज्जलं नदीर्गत्वाऽन्ततः समुद्रं प्राप्नोति, तत्पृष्ठे नावो गच्छन्ति। या अप्स्वन्तरर्थाद् यासामुपर्यधो जलं भवति, तद्वत् सर्वैः शिल्पिभिर्विमानानि नावश्च यानानि रचयित्वा भूमिजलाऽन्तरिक्षमार्गेणाभीष्टे देशे गमनागमने यथेष्टे कार्य्ये। यावदेतानि न साध्नुवन्ति, तावद् द्वीपद्वीपान्तरं गन्तुं कश्चिदपि न शक्नोति, यथा पक्षिण इदं शरीरमयं संघातं गमयन्ति, तथैव विचक्षणैः शिल्पिभिरेतदाकाशं यानैर्विक्रमणीयम्॥१९॥

पदार्थः-हे राजा के कारीगर पुरुष! जो तू (**स्वसिचः**) जिनको अपने लोग जल से सींचते हैं, (**इयानाः**) चलते हुए (**उदक्ताः**) फिर-फिर ऊपर को जावें (**अहिम्, बुध्न्यम्**) अन्तरिक्ष में रहने वाले मेघ के (**अनुरीयमाणाः**) पीछे-पीछे चलाने से चलते हुए (**नावः**) समुद्र के ऊपर नौकाओं के समान चलते हुए विमान (**वृषभस्य**) वर्षा करनेहारे (**पर्वतस्य**) मेघ के (**पृष्ठात्**) ऊपर के भाग से (**प्रचरन्ति**) चलते हैं, जिनसे तू (**विष्णोः**) व्यापक ईश्वर के इस जगत् में (**विक्रमणम्**) पराक्रम सहित (**असि**) है, (**विष्णोः**) व्यापक वायु के बीच (**विक्रान्तम्**) अनेक प्रकार चलने हारा (**असि**) है और (**विष्णोः**) व्यापक बिजुली के बीच (**क्रान्तम्**) चलने का आधार (**असि**) है, जो (**अधराक्**) मेघ से नीचे (**आववृत्रन्**) मेघ के समान विचरते हैं, उन विमानादि यानों को तू सिद्ध कर॥१९॥

भावार्थः-जैसे मेघ वर्ष के भूमि के तले को प्राप्त होके पुनः आकाश को प्राप्त होता है। वह जल नदियों में जाके पीछे समुद्र को प्राप्त होता है। जो जल के भीतर अर्थात् जिनके ऊपर-नीचे जल होता है, वैसे ही सब कारीगर लोगों को चाहिये कि विमानादि यानों और नौकाओं को बना के भूमि जल और आकाश मार्ग से अभीष्ट देशों में यथेष्ट जाना-आना करें। जब तक ऐसे यान नहीं बनाते, तब तक द्वीप-द्वीपान्तरों में कोई भी नहीं जा सकता। जैसे पक्षी अपने शरीररूप संघात को आकाश में उड़ा ले चलते हैं, वैसे चतुर कारीगर लोगों को चाहिये कि इस अपने शरीर आदि को यानों के द्वारा आकाश में फिरावें॥१९॥

प्रजापत इत्यस्य देववात ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। स्वराडतिधृतिश्छन्दः। षड्जः स्वरः॥

मनुष्यैरीश्वरोपासनाऽऽज्ञापालनेन सर्वाः कामनाः प्राप्तव्या इत्याह॥

मनुष्यों को चाहिये कि ईश्वर की उपासना और उसकी आज्ञा पालने से सब कामनाओं को प्राप्त हों,
यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परि ता बभूव। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नोऽअस्त्वयममुष्य पिताऽसावस्य पिता वयꣳ स्याम पतयो रयीणाꣳ स्वाहा। रुद्र यत्ते क्रिवि परं नाम तस्मिन् हुतमस्यमेष्टमसि स्वाहा॥२०॥

प्रजापत इति प्रजाऽपते। न। त्वत्। एतानि। अन्यः। विश्वा। रूपाणि। परि। ता। बभूव। यत्कामा इति यत्ऽकामाः। ते। जुहुमः। तत्। नः। अस्तु। अयम्। अमुष्य। पिता। असौ। अस्य। पिता। वयम्। स्याम। पतयः। रयीणाम्। स्वाहा। रुद्र। यत्। ते। क्रिवि। परम्। नाम। तस्मिन्। हुतम्। असि। अमेष्टमित्यमाऽइष्टम्। असि। स्वाहा॥२०॥

पदार्थः-(**प्रजापते**) प्रजायाः स्वामिन्नीश्वर! (**न**) निषेधे (**त्वत्**) तव सकाशात् (**एतानि**) जीवप्रकृत्यादीनि वस्तूनि (**अन्यः**) भिन्नः पदार्थः (**विश्वा**) सर्वाणि (**रूपाणि**) इच्छारूपादिगुणविशिष्टानि (**परि**) (**ता**) तानि (**बभूव**) अस्ति (**यत्कामाः**) यस्य यस्य कामः कामना येषां ते (**ते**) तव (**जुहुमः**) गृह्णीमः (**तत्**) (**नः**) अस्मभ्यम् (**अस्तु**) भवतु (**अयम्**) (**अमुष्य**) प्रत्यक्षस्य जनस्य (**पिता**) पालकः (**असौ**) सः (**अस्य**) प्रत्यक्षवर्त्तमानस्य (**पिता**) रक्षकः (**वयम्**) (**स्याम**) भवेम (**पतयः**) स्वामिनः पालकाः (**रयीणाम्**) विद्याचक्रवर्त्तिराज्योत्पन्नश्रियाम् (**स्वाहा**) सत्यया क्रियया (**रुद्र**) दुष्टानां रोदयितः (**यत्**) (**ते**) तव (**क्रिवि**) कृणोति हिनस्ति येन तत्, नकारस्थाने वर्णव्यत्ययेनेकारः (**परम्**) प्रकृष्टम् (**नाम**) (**तस्मिन्**) (**हुतम्**) स्वीकृतम् (**असि**) (**अमेष्टम्**) अमायां गृहे इष्टम् (**असि**) (**स्वाहा**) सत्यया वाचा॥ अयं मन्त्रः (शत० ५.४.२.८.१०) व्याख्यातः॥२०॥

अन्वयः-हे प्रजापते! यान्येतानि विश्वा रूपाणि सन्ति, तानि त्वदन्यो न परिबभूव। ते तव सकाशाद् यत्कामाः सन्तो वयं जुहुमस्तत् तव कृपया नोऽस्तु, यथा त्वममुष्य परोक्षस्य जगतः पिताऽसौ भवानस्य समक्षस्य विश्वस्य पिताऽसि, तथा वयं स्वाहा रयीणां पतयः स्याम। हे रुद्र! ते तव यत् क्रिवि परं नामाऽस्ति यस्मिंस्त्वं हुतमस्यमेष्टमसि तं वयं स्वाहा जुहुमः॥२०॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे मनुष्याः! यः सर्वस्मिन् जगति व्याप्तः सर्वान् प्रति मातापितृवद्

वर्त्तमानो दुष्टदण्डक उपासितुमिष्टोऽस्ति, तं जगदीश्वरमेवोपाध्वम्। एवमनुष्ठानेन युष्माकं सर्वे कामा अवश्यं सेत्स्यन्ति॥२०॥

पदार्थ:-हे **(प्रजापते)** प्रजा के स्वामी ईश्वर! जो **(एतानि)** जीव, प्रकृति आदि वस्तु **(विश्वा)** सब **(रूपाणि)** इच्छा, रूप आदि गुणों से युक्त हैं **(ता)** उनके ऊपर आप से **(अन्य:)** दूसरा कोई **(न)** नहीं **(परिबभूव)** जान सकता **(ते)** आप के सेवन से **(यत्कामा:)** जिस-जिस पदार्थ की कामना वाले होते हुए **(वयम्)** हम लोग **(जुहुम:)** आपका सेवन करते हैं, वह-वह पदार्थ आपकी कृपा से **(न:)** हम लोगों के लिये **(अस्तु)** प्राप्त होवे। जैसे आप **(अमुष्य)** उस परोक्ष जगत् के **(पिता)** रक्षा करनेहारे हैं, **(असौ)** सो आप इस प्रत्यक्ष जगत् के रक्षक हैं, वैसे हम लोग **(स्वाहा)** सत्य वाणी से **(रयीणाम्)** विद्या और चक्रवर्त्ति राज्य आदि से उत्पन्न हुई लक्ष्मी के **(पतय:)** रक्षा करने वाले **(स्याम)** हों। हे **(रुद्र)** दुष्टों को रुलानेहारे परमेश्वर! **(ते)** आप का जो **(क्रिवि)** दु:खों से छुड़ाने का हेतु **(परम्)** उत्तम **(नाम)** नाम है, **(तस्मिन्)** उसमें आप **(हुतम्)** स्वीकार किये **(असि)** हैं, **(अमेष्टम्)** घर में इष्ट **(असि)** हैं, उन आप को हम लोग **(स्वाहा)** सत्य वाणी से ग्रहण करते हैं॥२०॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जो सब जगत् में व्याप्त, सब के लिये माता-पिता के समान वर्त्तमान, दुष्टों को दण्ड देनेहारा, उपासना करने को इष्ट है, उसी जगदीश्वर की उपासना करो। इस प्रकार के अनुष्ठान से तुम्हारी सब कामना अवश्य सिद्ध हो जायेंगी॥२०॥

इन्द्रस्येत्यस्य देववात ऋषि:। क्षत्रपतिर्देवता। भुरिग्ब्राह्मी बृहती छन्द:। मध्यम: स्वर:॥

पुनर्विद्वद्भि: किं कर्त्तव्यमित्याह॥

फिर विद्वान् पुरुषों को क्या करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

इन्द्रस्य वज्रोऽसि मित्रावरुणयोस्त्वा प्रशास्त्रो: प्रशिषा युनज्मि। अव्यथायै त्वा स्वधायै त्वाऽरिष्टो अर्जुनो मरुतां प्रसवेन जयापाम मनसा समिन्द्रियेण॥२१॥

इन्द्रस्य। वज्र:। असि। मित्रावरुणयो:। त्वा। प्रशास्त्रोरिति प्रऽशास्त्रो:। प्रशिषेति प्रऽशिषा। युनज्मि। अव्यथाय। त्वा। स्वधायै। त्वा। अरिष्ट:। अर्जुन:। मरुताम्। प्रसवेनेति प्रऽसवेन। जय। आपाम। मनसा। सम्। इन्द्रियेण॥२१॥

पदार्थ:-**(इन्द्रस्य)** परमैश्वर्य्यस्य **(वज्र:)** विज्ञापक: **(असि)** **(मित्रावरुणयो:)** सभासेनेशयो: **(त्वा)** त्वाम् **(प्रशास्त्रो:)** सर्वस्य प्रकाशनकर्त्रो: **(प्रशिषा)** प्रशासनेन **(युनज्मि)** समादधे **(अव्यथायै)** अविद्यामानपीडायै क्रियायै **(त्वा)** **(स्वधायै)** स्ववस्तुधारणलक्षणायै राजनीत्यै **(त्वा)** **(अरिष्ट:)** अहिंसित: **(अर्जुन:)** प्रशस्तं रूपं विद्यतेऽस्य स:। अर्शआदित्वादच्। **अर्जुनमिति रूपनामसु पठितम्।** (निघं०३.७) **(मरुताम्)** ऋत्विजाम् **(प्रसवेन)** प्रेरणेन **(जय)** उत्कर्ष **(आपाम)** आप्नुयाम **(मनसा)** मननशीलेन **(सम्)** **(इन्द्रियेण)** इन्द्रेण जीवेन जुष्टेन प्रीतेन वा॥ अयं मन्त्र: (शत० ५.४.३.४-१०) व्याख्यात:॥२१॥

अन्वय:-हे राजन्! यस्त्वमरिष्टोऽर्जुन इन्द्रस्य वज्रोऽसि, यं त्वाऽव्यथायै प्रशास्त्रोर्मित्रावरुणयो: प्रशिषाऽहं युनज्मि। मरुतां प्रसवेन स्वधायै यं त्वा युनज्मि। मनसेन्द्रियेण यं त्वा वयं समापाम, स त्वं जय दुष्टान् जित्वोत्कर्ष॥२१॥

भावार्थः-विद्वद्भी राजा प्रजापुरुषाश्च धर्मार्थं सदा प्रशासनीयाः। यत एते पीडां राजनीतिविरुद्धं कर्म नाचरेयुः। सर्वतः प्राप्तबलाः शत्रून् जयेयुः, येन कदाप्यैश्वर्य्यस्य हानिर्न स्यात्॥२१॥

पदार्थः-हे राजन्! जो आप **(अरिष्टः)** किसी के मारने में न आने वाले **(अर्जुनः)** प्रशंसा के योग्य रूप से युक्त **(इन्द्रस्य)** परम ऐश्वर्य्य वाले का **(वज्रः)** शत्रुओं के लिये वज्र के समान **(असि)** हैं, जिस **(त्वा)** आपको **(अव्यथायै)** पीड़ा न होने के लिये **(प्रशास्त्रोः)** सब को शिक्षा देने वाले **(मित्रावरुणयोः)** सभा और सेना के स्वामी की **(प्रशिषा)** शिक्षा से मैं **(युनज्मि)** समाहित करता हूं **(मरुताम्)** ऋत्विज लोगों के **(प्रसवेन)** करने से **(स्वधायै)** अपनी चीज को धारण करना रूप राजनीति के लिये जिस **(त्वा)** आपका योगाभ्यास से चिन्तन करता हूं, **(मनसा)** विचारशील मन **(इन्द्रियेण)** जीव से सेवन की हुई इन्द्रिय से जिस **(त्वा)** आपको हम लोग **(समापाम)** सम्यक् प्राप्त होते हैं, सो आप **(जय)** दुष्टों को जीत के निश्चिन्त उत्कृष्ट हूजिये॥२१॥

भावार्थः-विद्वानों को चाहिये कि राजा और प्रजापुरुषों को धर्म और अर्थ की सिद्धि के लिये सदा शिक्षा देवें, जिससे ये किसी को पीड़ा देने रूप राजनीति से विरुद्ध कर्म न करें। सब प्रकार बलवान् होके शत्रुओं को जीतें , जिससे कभी धन-सम्पत्ति की हानि न होवे॥२१॥

मा त इत्यस्य देववात ऋषिः। इन्द्रो देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

प्रजाजनै राजप्रसङ्गे कथं वर्त्तितव्यमित्याह॥

प्रजापुरुषों को राजा के साथ कैसे वर्तना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

मा तऽइन्द्र ते वयं तुराषाडयुक्तासोऽअब्रह्मता विदसाम।

तिष्ठा रथमधि यं वज्रहस्ता रश्मीन् देव यमसे स्वश्वान्॥२२॥

मा। ते। इन्द्र। ते। वयम्। तुराषाट्। अयुक्तासः। अब्रह्मता। वि। दसाम। तिष्ठ। रथम्। अधि। यम्। वज्रहस्तेति वज्रऽहस्त। आ। रश्मीन्। देव। यमसे। स्वश्वानिति सुऽअश्वान्॥२२॥

पदार्थः-**(मा)** निषेधे **(ते)** तव **(इन्द्र)** सभेश राजन्! **(ते)** तव **(वयम्)** राजप्रजाजनाः **(तुराषाट्)** तुरान् त्वरितान् शत्रून् सहते **(अयुक्तासः)** अधर्मकारिणः **(अब्रह्मता)** वेदेश्वरनिष्ठारहितता **(वि)** **(दसाम)** उपक्षयेम **(तिष्ठ)** अत्र **द्व्यचोऽतस्तिङः**। (अष्टा०६.३.१३५) इति दीर्घः **(रथम्)** **(अधि)** **(यम्)** **(वज्रहस्त)** वज्रतुल्यानि शस्त्राणि हस्तयोर्यस्य तत्सम्बुद्धौ **(आ)** **(रश्मीन्)** अश्वनियमार्था रज्जूः **(देव)** **(यमसे)** नियच्छसि **(स्वश्वान्)** शोभनाश्च तेऽश्वाश्च तान्॥ अयं मन्त्रः (शत०५.४.३.१४) व्याख्यातः॥२२॥

अन्वयः-हे देवेन्द्र राजन्! वज्रहस्त वयं ते तव सम्बन्धेऽयुक्तासो मा भवाम, ते तवाब्रह्मता मास्तु, विदसाम यस्तुराषाट् त्वं यान् रश्मीन् स्वश्वान् यमसे यं रथमधितिष्ठ, ताँस्तं च वयमप्यधितिष्ठेम॥२२॥

भावार्थः-राजप्रजाजना राज्ञा सहायोग्यं व्यवहारं कदाचिन्न कुर्य्युः, राजा चैतै सहान्यायं न कुर्यात्। वेदेश्वराज्ञानुष्ठानाः सन्तः सर्वे समानयानासनव्यवहाराः स्युः। न कदाचिदालस्ये प्रमादे वेदेश्वरनिन्दामये नास्तिकत्वे वा वर्त्तेरन्॥२२॥

पदार्थः-हे **(देव)** प्रकाशमान **(इन्द्र)** सभापति राजन्! **(वज्रहस्त)** जिसके हाथों में वज्र के समान शस्त्र हो, उस आप के साथ **(वयम्)** हम राजप्रजापुरुष **(ते)** आप के सम्बन्ध में **(अयुक्तासः)** अधर्मकारी **(मा)** न

होवें, **(ते)** आप की **(अब्रह्मता)** वेद तथा ईश्वर में निष्ठारहितता **(मा)** न हो और न **(विदसाम)** नष्ट करें। जो **(तुराषाट्)** शीघ्रकारी शत्रुओं को सहनेहारे आप जिन **(रश्मीन्)** घोड़े के लगाम की रस्सी और **(स्वश्वान्)** सुन्दर घोड़ों को **(यमसे)** नियम से रखते हैं और जिस **(रथम्)** रथ के ऊपर **(अधितिष्ठ)** बैठें, उन घोड़ों और उस रथ के हम लोग भी अधिष्ठाता होवें॥२२॥

भावार्थः-राजा और प्रजा के पुरुषों को योग्य है कि राजा के साथ अयोग्य व्यवहार कभी न करें तथा राजा भी इन प्रजाजनों के साथ अन्याय न करे। वेद और ईश्वर की आज्ञा का सेवन करते हुए सब लोग एक सवारी एक बिछौने पर बैठें और एकसा व्यवहार करने वाले होवें और कभी आलस्य प्रमाद से ईश्वर और वेदों की निन्दा वा नास्तिकता में न फंसें॥२२॥

अग्नय इत्यस्य देववात ऋषिः। अग्न्यादयो मन्त्रोक्ता देवताः। जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

अथ माताऽपत्यानि परस्परं कीदृशं संवदेयुरित्याह॥

अब माता और पुत्र आपस में कैसे सम्वाद करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अ॒ग्नये॑ गृ॒हप॑तये॒ स्वाहा॒ सोमा॑य॒ वन॒स्पत॑ये॒ स्वाहा म॒रुता॒मोज॑से॒ स्वाहेन्द्र॑स्येन्द्रि॒याय॒ स्वाहा॑। पृथि॑वि मात॒र्मा मा॑ हिꣳसी॒र्मोऽअ॒हं त्वाम्॥२३॥

अ॒ग्नये॑। गृ॒हप॑तय॒ इति॑ गृ॒हऽप॑तये। स्वाहा॑। सोमा॑य। वन॒स्पत॑ये। स्वाहा॑। म॒रुता॑म्। ओज॑से। स्वाहा॑। इन्द्र॑स्य। इ॒न्द्रि॒याय॑। स्वाहा॑। पृथि॑वि। मा॒तः॒। मा। मा॒। हि॒ꣳसीः॒। मोऽइति॒ मो। अ॒हम्। त्वाम्॥२३॥

पदार्थः-**(अग्नये)** धर्मविज्ञानाढ्याय **(गृहपतये)** गृहाश्रमस्वामिने **(स्वाहा)** सत्यां नीतिम् **(सोमाय)** सोमलताद्यायौषधिगणाय **(वनस्पतये)** वनानां पालकायाश्वत्थप्रभृतये **(स्वाहा)** वैद्यकशास्त्रबोधजनितां क्रियाम् **(मरुताम्)** प्राणानामृत्विजां वा **(ओजसे)** बलाय **(स्वाहा)** योगशान्तिदां वाचम् **(इन्द्रस्य)** जीवस्य **(इन्द्रियाय)** नेत्राद्याय अन्तःकरणाय वा **(स्वाहा)** सुशिक्षायुक्तां वाचमुपदिष्टिम् **(पृथिवि)** भूमिवत्पृथुशुभलक्षणे **(मातः)** मान्यकर्त्रि जननि **(मा)** निषेधे **(मा)** माम् **(हिंसीः)** कुशिक्षया मा हिंस्याः **(मो)** **(अहम्)** **(त्वाम्)**॥ अयं मन्त्रः (शत० ५.४.३.१५-२१) व्याख्यातः॥२३॥

अन्वयः-हे प्रजाजनाः! यथा राजजना वयं गृहपतयेऽग्नये स्वाहा सोमाय वनस्पतये स्वाहा मरुतामोजसे स्वाहेन्द्रस्येन्द्रियाय स्वाहा चरेम तथा यूयमप्याचरत। हे पृथिवि मातः! त्वं मा मा हिंसीस्त्वामहं च मो हिंस्याम्॥२३॥

भावार्थः-राजादिराजजनैः प्रजाहिताय प्रजाजनैरेतेषां सुखाय सर्वस्योन्नतये च परस्परं वर्त्तितव्यम्। माता कुशिक्षयाऽविद्यादानेन स्वसन्तानान् नष्टबुद्धीन् कदाचिन्न कुर्य्यात्, सन्तानाश्च मातुरप्रियं नाचरेयुः॥२३॥

पदार्थः-हे प्रजा के मनुष्यो! जैसे राजा और राजपुरुष हम लोग **(गृहपतये)** गृहाश्रम के स्वामी **(अग्नये)** धर्म और विज्ञान से युक्त पुरुष के लिये **(स्वाहा)** सत्यनीति **(सोमाय)** सोमलता आदि ओषधि और **(वनस्पतये)** वनों की रक्षा करनेहारे पीपल आदि के लिये **(स्वाहा)** वैद्यक शास्त्र के बोध से उत्पन्न हुई क्रिया **(मरुताम्)** प्राणों वा ऋत्विज लोगों के **(ओजसे)** बल के लिये **(स्वाहा)** योगाभ्यास और शान्ति की देने हारी वाणी और **(इन्द्रस्य)** जीव के **(इन्द्रियाय)** मन इन्द्रिय के लिये **(स्वाहा)** अच्छी शिक्षा से युक्त उपदेश का आचरण करते हैं, वैसे ही

तुम लोग भी करो। हे **(पृथिवि)** भूमि के समान बहुत से शुभ लक्षणों से युक्त **(मात:)** मान्य करने हारी जननी! तू **(मा)** मुझ को **(मा)** मत **(हिंसी:)** बुरी शिक्षा से दु:ख दे और **(त्वाम्)** तुझ को **(अहम्)** मैं भी **(मो)** न दु:ख देऊं॥ २३॥

भावार्थ:-राजा आदि राजपुरुषों को प्रजा के हित, प्रजापुरुषों को राजपुरुषों के सुख और सब की उन्नति के लिये परस्पर वर्त्तना चाहिये। माता को योग्य है कि बुरी शिक्षा और मूर्खता रूप अविद्या देकर सन्तानों की बुद्धि नष्ट न करे और सन्तानों को उचित है कि अपनी माता के साथ कभी द्वेष न करें॥ २३॥

हंस इत्यस्य वामदेव ऋषि:। सूर्य्यो देवता। भुरिगार्षी जगती छन्द:। निषाद: स्वर:॥

मनुष्यैरीश्वरोपासनेन न्यायसुशिक्षे कार्य्ये इत्याह॥

मनुष्य लोग ईश्वर की उपासनापूर्वक सबके लिये न्याय और अच्छी शिक्षा करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

हुꣳसः शुचिषद् वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्।
नृषद्वरसदृतसद् व्योमसदब्जा गोजाऽऋतजाऽअद्रिजाऽऋतं बृहत्॥ २४॥

हुꣳसः। शुचिषत्। शुचिसदिति शुचिऽसत्। वसुः। अन्तरिक्षसदित्यन्तरिक्षऽसत्। होता। वेदिषत्। वेदिसदिति वेदिऽसत्। अतिथिः। दुरोणसदिति दुरोणऽसत्। नृषत्। नृसदिति नृऽसत्। वरसदिति वरऽसत्। ऋतसदित्यृतऽसत्। व्योमसदिति व्योमऽसत्। अब्जा इत्यप्ऽजाः। गोजा इति गोऽजाः। ऋतजा इत्यृतऽजाः। अद्रिजा इत्यद्रिऽजाः। ऋतम्। बृहत्॥ २४॥

पदार्थ:-**(हंस:)** य: संहन्ति सर्वान् पदार्थान् स जगदीश्वर: **(शुचिषत्)** य: शुचिषु पवित्रेषु पदार्थेषु सीदति स: **(वसु:)** वस्ता वासयिता वा **(अन्तरिक्षसत्)** योऽन्तरिक्षेऽवकाशे सीदति **(होता)** दाता ग्रहीताऽत्ता वा **(वेदिषत्)** वेद्यां पृथिव्यां सीदति **(अतिथि:)** अविद्यमाना तिथिर्यस्य तद्वन्मान्य: **(दुरोणसत्)** यो दुरोणे गृहे सीदति स:। **दुरोण इति गृहनामसु पठितम्।** (निघं०३.४) **(नृषत्)** यो नृषु सीदति स: **(वरसत्)** यो वरेषूत्तमेषु पदार्थेषु सीदति स: **(ऋतसत्)** य ऋतेषु सत्येषु प्रकृत्यादिषु सीदति स: **(व्योमसत्)** यो व्योमनि सीदति स: **(अब्जा:)** योऽपो जनयति **(गोजा:)** यो गा: पृथिव्यादीन् जनयति **(ऋतजा:)** य: सत्यविद्यामयं वेदं जनयति **(अद्रिजा:)** यो मेघपर्वतवृक्षादीन् जनयति स: **(ऋतम्)** सत्यस्वरूपम् **(बृहत्)** महद् ब्रह्म॥ अयं मन्त्र: (शत० ५.४.३.२२) व्याख्यात:॥ २४॥

अन्वय:-हे मनुष्या! भवन्तो य: परमेश्वरो हंस: शुचिषद् वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसन्नृषद् वरसदृतसद् व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहदस्ति तमेवोपासीरन्॥ २४॥

भावार्थ:-मनुष्यै: सर्वव्यापकं पवित्रकरं ब्रह्मैवोपास्यमस्ति। न खल्वेतस्योपासनेन विना किञ्चिदपि पूर्णं धर्मार्थकाममोक्षजं सुखं भवितुं शक्यम्॥ २४॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! आप लोगों को चाहिये कि जो परमेश्वर **(हंस:)** सब पदार्थों को स्थूल करता **(शुचिषत्)** पवित्र पदार्थों में स्थित **(वसु:)** निवास करता और कराता **(अन्तरिक्षसत्)** अवकाश में रहता **(होता)** सब पदार्थ देता ग्रहण करता और प्रलय करता **(वेदिषत्)** पृथिवी में व्यापक **(अतिथि:)** अभ्यागत के समान

सत्कार करने योग्य **(दुरोणसत्)** घर में स्थित **(नृषत्)** मनुष्यों के भीतर रहता **(वरसत्)** उत्तम पदार्थों में वसता **(ऋतसत्)** सत्यप्रकृति आदि नाम वाले कारण में स्थित **(व्योमसत्)** पोल में रहता **(अब्जाः)** जलों को प्रसिद्ध करता **(गोजाः)** पृथिवी आदि तत्त्वों को उत्पन्न करता **(ऋतजाः)** सत्यविद्याओं के पुस्तक वेदों को प्रसिद्ध करता **(अद्रिजाः)** मेघ, पर्वत और वृक्ष आदि को रचता **(ऋतम्)** सत्यास्वरूप और **(बृहत्)** सब से बड़ा अनन्त है, उसी की उपासना करो॥२४॥

भावार्थः-मनुष्यों को उचित है कि सर्वत्र व्यापक और पदार्थों की शुद्धि करनेहारे ब्रह्म परमात्मा ही की उपासना करें, क्योंकि उस की उपासना के बिना किसी को धर्म्म, अर्थ, काम, मोक्ष से होने वाला पूर्ण सुख कभी नहीं हो सकता॥२४॥

इयदित्यस्य वामदेव ऋषिः। सूर्यो देवता। आर्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

मनुष्यै किमर्थं ब्रह्मोपासनीयमित्युपदिश्यते॥

मनुष्य ईश्वर की उपासना क्यों करे, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

इयदस्यायुरस्यायुर्मयि धेहि युङ्ङसि वर्चोऽसि वर्चो मयि धेह्यूर्गस्यूर्जं मयि धेहि।
इन्द्रस्य वां वीर्यकृतो बाहूऽअभ्युपावहरामि॥२५॥

इयत्। असि। आयुः। असि। आयुः। मयि। धेहि। युङ्। असि। वर्चः। असि। वर्चः। मयि। धेहि। ऊर्क्। असि। ऊर्जम्। मयि। धेहि। इन्द्रस्य। वाम्। वीर्यकृत इति वीर्यऽकृतः। बाहू इति बाहू। अभ्युपावहरामीत्यभिऽउपावहरामि॥२५॥

पदार्थः-**(इयत्)** एतावत्परिमाणम् **(असि)** **(आयुः)** जीवनम् **(असि)** **(आयुः)** **(मयि)** जीवात्मनि **(धेहि)** **(युङ्)** समाधाता **(असि)** **(वर्चः)** स्वप्रकाशम् **(असि)** **(वर्चः)** **(मयि)** **(धेहि)** **(ऊर्क्)** बलवान् **(असि)** **(ऊर्जम्)** **(मयि)** **(धेहि)** **(इन्द्रस्य)** परमैश्वर्य्यस्य **(वाम्)** युवयो राजप्रजाजनयोः **(वीर्य्यकृतः)** यो वीर्य्यं करोति तस्य **(बाहू)** बाधते याभ्यां बलवीर्य्याभ्यां तौ **(अभ्युपावहरामि)** अभितः सामीप्येऽर्वाक् स्थापयामि॥ अयं मन्त्रः (शत०५.४.३.२५-२७) व्याख्यातः॥२५॥

अन्वयः-हे ब्रह्मन्! त्वमायुरसीयदायुर्मयि धेहि। त्वं युङ्ङसि वर्चोऽसि योगजं वर्चो मयि धेहि। त्वमूर्गस्यूर्जं मयि धेहि। हे राजप्रजाजनौ! वीर्य्यकृत इन्द्रस्येश्वरस्याश्रयेण वां युवयोर्बाहू बलवीर्य्ये अहमभ्युपावहरामि॥२५॥

भावार्थः-य आत्मस्थं ब्रह्मोपासते ते शोभनं जीवनादिकमश्नुवते। नहि केनचिदीश्वरस्याश्रयमन्तरा पूर्णौ बलपराक्रमौ लभ्येते॥२५॥

पदार्थः-हे परमेश्वर! आप **(इयत्)** इतना **(आयुः)** जीवन **(मयि)** मुझ में **(धेहि)** धरिये, जिससे आप **(युङ्)** सब को समाधि कराने वाले **(असि)** हैं, **(वर्चः)** स्वयं प्रकाशस्वरूप **(असि)** हैं, इस कारण **(वर्चः)** योगाभ्यास से प्रकट हुए तेज को **(मयि)** मुझ में **(धेहि)** धरिये। आप **(ऊर्क्)** अत्यन्त बलवान् **(असि)** हैं, इसलिये **(ऊर्जम्)** बल पराक्रम को **(मयि)** मेरे में **(धेहि)** धारण कीजिये। हे राज और प्रजा के पुरुषो! **(वीर्य्यकृतः)** बल-पराक्रम को बढ़ानेहारे **(इन्द्रस्य)** ऐश्वर्य्य और परमात्मा के आश्रय से **(वाम्)** तुम राजप्रजाओं के **(बाहू)** बल और

पराक्रम को **(अभ्युपावहरामि)** सब प्रकार तुम्हारे समीप में स्थापन करता हूं॥२५॥

भावार्थः-जो मनुष्य अपने हृदय में ईश्वर की उपासना करते हैं, वे सुन्दर जीवन आदि के सुखों को भोगते हैं और कोई भी पुरुष ईश्वर के आश्रय के विना पूर्ण बल और पराक्रम को प्राप्त नहीं हो सकता॥२५॥

स्योनासीत्यस्य वामदेव ऋषिः। आसन्दी राजपत्नी देवता। भुरिगनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

स्त्रीणां न्यायो विद्यासुशिक्षे च स्त्रीभिरेव कार्य्ये नराणां नरैश्चेत्याह॥

स्त्रियों का न्याय, विद्या और उनको शिक्षा स्त्री लोग ही करें और पुरुषों के लिये पुरुष, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

स्योनासि सुषदासि क्षत्रस्य योनिरसि।

स्योनामासीद सुषदामासीद क्षत्रस्य योनिमासीद॥२६॥

स्योना। असि। सुषदा। सुसदेति सुऽसदा। असि। क्षत्रस्य। योनिः। असि। स्योनाम्। आ। सीद। सुषदाम्। सुसदामिति सुऽसदाम्। आ। सीद। क्षत्रस्य। योनिम्। आ। सीद॥२६॥

पदार्थः-**(स्योना)** सुखरूपा **(सुषदा)** या शोभने व्यवहारे सीदति सा **(असि)** **(क्षत्रस्य)** राज्यन्यायस्य **(योनिः)** गृहे न्यायकर्त्री **(असि)** **(स्योनाम्)** सुखकारिकाम् **(आ)** **(सीद)** **(सुषदाम्)** शुभसुखदात्रीम् **(आ)** **(सीद)** **(क्षत्रस्य)** क्षत्रियकुलस्य **(योनिम्)** **(आ)** **(सीद)**॥ अयं मन्त्रः (शत० ५.४.४.२-४) व्याख्यातः॥२६॥

अन्वयः-हे राज्ञि! यतस्त्वं स्योनासि सुषदासि क्षत्रस्य योनिं राजनीतिमासीद॥२६॥

भावार्थः-राजपत्नी सर्वासां स्त्रीणां न्यायसुशिक्षे च सदैव कुर्य्यात्। नैतासामेते पुरुषैः कारयितव्ये। कुतः? पुरुषाणां समीपे स्त्रियो लज्जिता भीताश्च भूत्वा यथावद् वक्तुमध्येतुं च न शक्नुवन्त्यतः॥२६॥

पदार्थः-हे राणी! जिसलिये आप **(स्योना)** सुखरूप **(असि)** हैं, **(सुषदा)** सुन्दर व्यवहार करने वाली **(असि)** हैं, **(क्षत्रस्य)** राज्य के न्याय के **(योनिः)** करने वाली **(असि)** हैं, इसलिये आप **(स्योनाम्)** सुखकारक अच्छी शिक्षा में **(आसीद)** तत्पर हूजिये, **(सुषदाम्)** अच्छे सुख देनेहारी विद्या को **(आसीद)** अच्छे प्रकार प्राप्त कीजिये तथा कराइये और **(क्षत्रस्य)** क्षत्रिय कुल की **(योनिम्)** राजनीति को **(आसीद)** सब स्त्रियों को जनाइये॥२६॥

भावार्थः-राजाओं की स्त्रियों को चाहिये कि सब स्त्रियों के लिये न्याय और अच्छी शिक्षा देवें और स्त्रियों का न्यायादि पुरुष न करें, क्योंकि पुरुषों के सामने स्त्री लज्जित और भययुक्त होकर यथावत् बोल वा पढ़ ही नहीं सकती॥२६॥

निषसादेत्यस्य शुनःशेप ऋषिः। वरुणो देवता। पिपीलिकमध्या प्रतिष्ठागायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

राजवद् राजपत्नयोऽपि राजधर्ममाचरेयुरित्याह॥

राजा के समान राणी भी राजधर्म का आचरण करे, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

निषसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा। साम्राज्याय सुक्रतुः॥२७॥

नि। ससाद। धृतव्रत इति धृतऽव्रतः। वरुणः। पस्त्यासु। आ। साम्राज्यायेति साम्ऽराज्याय। सुक्रतुरिति सुऽक्रतुः॥२७॥

पदार्थः-(**नि**) नित्यम् (**ससाद**) सीदतु (**धृतव्रतः**) धृतानि सत्याचरणब्रह्मचर्य्यादीनि व्रतानि येन सः (**वरुणः**) पुरुषोत्तमः (**पस्त्यासु**) न्यायगृहेषु (**आ**) समन्तात् (**साम्राज्याय**) सम्राजां भावाय कर्मणे वा (**सुक्रतुः**) शोभना क्रतुः प्रज्ञा क्रिया वा यस्य सः॥ अयं मन्त्रः (शत० ५.४.४.५) व्याख्यातः॥२७॥

अन्वयः-हे राज्ञि! यथा तव धृतव्रतः सुक्रतुर्वरुणः पतिः साम्राज्याय पस्त्यास्वा निषसाद तथा तत्र त्वमपि न्यायं कुरु॥२७॥

भावार्थः-यथा सम्राट् साम्राज्यं पालितुं न्यायासने स्थित्वा पुरुषाणां सत्यं न्यायं कुर्य्यात् तथा राजपत्नी स्त्रीणां नित्यं न्यायं कुर्य्यात्। अतः किमागतं यादृशो नीतिविद्याधर्मयुक्तः स्वामी पुरुषाणां न्यायं कुर्य्यात् तादृश्येव तत्स्त्रिया भवितव्यमिति॥२७॥

पदार्थः-हे राणी! जैसे आपका (**धृतव्रतः**) सत्य का आचरण और ब्रह्मचर्य आदि व्रतों का धारण करनेहारा (**सुक्रतुः**) सुन्दर बुद्धि वा क्रिया से युक्त (**वरुणः**) उत्तमपति (**साम्राज्याय**) चक्रवर्त्ती राज्य होने और उसके काम करने के लिये (**पस्त्यासु**) न्यायघरों में (**आ**) निरन्तर (**नि**) नित्य ही (**ससाद**) बैठ के न्याय करे, वैसे तू भी न्यायकारिणी हो॥२७॥

भावार्थः-जैसे चक्रवर्त्ती राजा चक्रवर्त्ती राज्य की रक्षा के लिये न्याय की गद्दी पर बैठ के पुरुषों का ठीक-ठीक न्याय करे, वैसे ही नित्यप्रति राणी स्त्रियों का न्याय करे। इससे क्या आया कि जैसा नीति, विद्या और धर्म से युक्त पति हो, वैसी ही स्त्री को भी होना चाहिये॥२७॥

अभिभूरित्यस्य शुनःशेप ऋषिः। यजमानो देवता। धृतिश्छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

पुनः स राजा कीदृशो भूत्वा कस्मै किं कुर्य्यादित्युपदिश्यते॥

फिर वह राजा कैसा होके किसके लिये क्या करे, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अभिभूरस्येतास्ते पञ्च दिशः कल्पन्तां ब्रह्मँस्त्वं ब्रह्मासि सवितासि सत्यप्रसवो वरुणोऽसि सत्यौजाऽइन्द्रोऽसि विशौजा रुद्रोऽसि सुशेवः। बहुकार श्रेयस्कर भूयस्करेन्द्रस्य वज्रोऽसि तेन मे रध्य॥२८॥

अभिभूरित्यभिऽभूः। असि। एताः। ते। पञ्च। दिशः। कल्पन्ताम्। ब्रह्मन्। त्वम्। ब्रह्मा। असि। सविता। असि। सत्यप्रसव इति सत्यऽप्रसवः। वरुणः। असि। सत्यौजा इति सत्यऽओजाः। इन्द्रः। असि। विशौजाः। रुद्रः। असि। सुशेव इति सुऽशेवः। बहुकारेति बहुऽकार। श्रेयस्कर। श्रेयःकरेति श्रेयःऽकर। भूयस्कर। भूयःकरेति भूयःऽकर। इन्द्रस्य। वज्रः। असि। तेन। मे। रध्य॥२८॥

पदार्थः-(**अभिभूः**) दुष्टानां तिरस्कर्त्ता (**असि**) (**एताः**) (**ते**) तव (**पञ्च**) पूर्वादयश्चतस्रोऽध ऊर्ध्वा चैका (**दिशः**) (**कल्पन्ताम्**) सुखयुक्ता भवन्तु (**ब्रह्मन्**) प्राप्तब्रह्मविद्य (**त्वम्**) (**ब्रह्मा**) चतुर्वेदाखिलराजप्रजासुखनिमित्तानां पदार्थानां निर्माता (**असि**) (**सविता**) ऐश्वर्योत्पादकः (**असि**) (**सत्यप्रसवः**) सत्येन कर्मणा प्रसव ऐश्वर्यं यस्य सः

(वरुणः) वरस्वभावः **(असि)** **(सत्यौजाः)** सत्यमोजो बलं यस्य सः **(इन्द्रः)** सुखानां धाता **(असि)** **(विशौजाः)** विशा प्रजया सहौजः पराक्रमो यस्य सः **(रुद्रः)** शत्रूणां दुष्टानां रोदयिता **(असि)** **(सुशेवः)** शोभनं शेवं सुखं यस्य सः, **शेवमिति सुखनामसु पठितम्।** (निघं०३.६) **(बहुकार)** बहूनां सुखानां कर्त्तः **(श्रेयस्कर)** कल्याणकर्त्तः **(भूयस्कर)** पुनःपुनरनुष्ठातः **(इन्द्रस्य)** ऐश्वर्यस्य **(वज्रः)** प्रापकः **(असि)** **(तेन)** **(मे)** मह्यम् **(रध्य)** संराध्नुहि॥ अयं मन्त्रः (शत० ५.४.४.६-२१) व्याख्यातः॥२८॥

अन्वयः- हे बहुकार श्रेयस्कर भूयस्कर ब्रह्मन्! यथा यस्य ते तवैताः पञ्च दिशः कल्पेरन्, तथा मम भवत्पत्न्याः कल्पन्ताम्। यथा त्वमभिभूरसि सवितासि सत्यप्रसवो वरुणोऽसि सत्यौजा इन्द्रोऽसि विशौजाः सुशेवो रुद्रोऽसीन्द्रस्य वज्रोऽसि, तथाऽहमपि भवेयम्, यथा येन तुभ्यमृद्धिसिद्धी कुर्याम्, तथा त्वं तेन मे रध्य॥२८॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा पुरुषः सर्वदिक्सुकीर्तिर्वेदविद् प्रवीणः सत्यकारी सर्वस्य सुखप्रदो धार्मिको जनो भवेत् तथा तत् पत्नी स्यात्, ते राजधर्मे स्वीकृत्यास्माद् बहुसुखं बहुश्रियं च प्राप्नुवन्तु॥२८॥

पदार्थः-हे **(बहुकार)** बहुत सुखों **(श्रेयस्कर)** कल्याण और **(भूयस्कर)** बार-बार अनुष्ठान करने वाले **(ब्रह्मन्)** आत्मविद्या को प्राप्त हुए जैसे जिस **(ते)** आपके **(एताः)** ये **(पञ्च)** पूर्व आदि चार और ऊपर नीचे एक पांच **(दिशः)** दिशा सामर्थ्ययुक्त हों, वैसे मेरे लिये आपकी पत्नी की कीर्ति से भी **(कल्पन्ताम्)** सुखयुक्त होवें। जैसे आप **(अभिभूः)** दुष्टों का तिरस्कार करने वाले **(असि)** हैं, **(सविता)** ऐश्वर्य के उत्पन्न करनेहारे **(असि)** हैं, **(सत्यप्रसवः)** सत्य कर्म के साथ ऐश्वर्य है जिसका ऐसे **(वरुणः)** उत्तम स्वभाव वाले **(असि)** हैं **(सत्यौजाः)** सत्य बल से युक्त **(इन्द्रः)** सुखों के धारण करनेहारे **(असि)** हैं **(विशौजाः)** प्रजाओं की बीच पराक्रम वाले **(सुशेवः)** सुन्दर सुखयुक्त **(रुद्रः)** शत्रु और दुष्टों को रुलाने वाले **(असि)** हैं, **(इन्द्रस्य)** ऐश्वर्य के **(वज्रः)** प्राप्त करनेहारे **(असि)** हैं, वैसे मैं भी होऊं, जैसे मैं आप के वास्ते ऋद्धि-सिद्धि करूं, वैसे **(तेन)** उससे **(मे)** मेरे लिये **(रध्य)** कार्य्य करने का सामर्थ्य कीजिये॥२८॥

भावार्थः-सब मनुष्यों को चाहिये कि जैसा पुरुष सब दिशाओं में कीर्तियुक्त, वेदों को जानने, धनुर्वेद और अर्थवेद की विद्या में प्रवीण, सत्य करने और सब को सुख देने वाला, धर्मात्मा पुरुष होवे, उसकी स्त्री भी वैसे ही होवे। उनको राजधर्म में स्थापन करके बहुत सुख और बहुत सी शोभा को प्राप्त हों॥२८॥

अग्निरित्यस्य शुनःशेप ऋषिः। अग्निर्देवता। स्वराडार्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुना राजप्रजाजनाः किंवत् किंकुर्युरित्याह॥

फिर राजा और प्रजा के जन किस के समान क्या करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अ॒ग्निः पृ॒थुर्धर्म॑ण॒स्पति॑र्जु॒षा॒णोऽअ॒ग्निः पृ॒थुर्धर्म॑ण॒स्पति॒राज्य॑स्य वे॒तु स्वाहा॑।

स्वाहा॑कृता॒ः सूर्य॑स्य र॒श्मिभि॑र्यतध्वꣳ सजा॒ताना॑ मध्य॒मेष्ठ्या॑य॥ २९॥

अ॒ग्निः। पृ॒थुः। धर्म॑णः। पति॑ः। जु॒षा॒णः। अ॒ग्निः। पृ॒थुः। धर्म॑णः। पति॑ः। आज्य॑स्य। वे॒तु। स्वाहा॑। स्वाहा॑कृता॒ इति॒ स्वाहा॑ऽकृताः। सूर्य॑स्य। र॒श्मिभि॒रिति॑ र॒श्मिऽभि॑ः। य॒त॒ध्व॒म्। स॒जा॒ताना॒मिति॑ सऽजा॒ताना॑म्। म॒ध्य॒मे॒ष्ठ्या॑य। म॒ध्य॒मे॒स्थ्या॒येति॑ मध्य॒मेऽस्थ्या॑य॥ २९॥

पदार्थ:-(**अग्नि:**) सूर्य इव (**पृथु:**) विस्तीर्णपुरुषार्थ: (**धर्मण:**) धर्मस्य (**पति:**) पालयिता (**जुषाण:**) सेवमान: (**अग्नि:**) विद्युदिव (**पृथु:**) महान् (**धर्मण:**) न्यायस्य (**पति:**) रक्षक: (**आज्यस्य**) घृतादेर्हविष: (**वेतु**) व्याप्नोतु (**स्वाहा**) सत्यया क्रियया (**स्वाहाकृता:**) या स्वाहा सत्यां क्रियां कुर्वन्ति ता: (**सूर्यस्य**) (**रश्मिभि:**) (**यतध्वम्**) (**सजातानाम्**) जातै: सह वर्त्तमानानाम् (**मध्यमेष्ठ्याय**) मध्ये पक्षपातरहिते भवे न्याये तिष्ठति तस्य भावाय॥ अयं मन्त्र: (शत० ५.४.४.२२-२३) व्याख्यात:॥२९॥

अन्वय:-हे राजन् राज्ञि वा! यथा पृथुर्धर्मणस्पतिर्जुषाणोऽग्नि: सजातानां मध्यमेष्ठ्याय स्वाहाऽऽज्यस्य वेति। सूर्यस्य रश्मिभि: सह हवि: प्रसार्य्य सुखयति, तथा धर्मणस्पति: पृथुर्जुषाणोऽग्निर्भवान् राष्ट्रं वेतु, तथा च हे स्वाहाकृता: सभासत्स्त्रियो यूयमपि प्रयतध्वम्॥२९॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। हे राजप्रजाजना:! यूयं यथा सूर्यप्रसिद्धविद्युदग्निवद् वर्त्तित्वा पक्षपातं विहाय समानजन्मसु मध्यस्था: सन्तो न्यायं कुरुत। यथाऽयमग्नि: सवितृप्रकाशे वायौ च सुगन्धं द्रव्यं प्राप्य वायुजलौषधिशुद्धिद्वारा सर्वान् प्राणिन: सुखयति तथा न्याययुक्तै: कर्मभि: सहचरिता भूत्वा सर्वा: प्रजा: सुखयत॥२९॥

पदार्थ:-हे राजन् वा राजपत्नि! जैसे (**पृथु:**) महापुरुषार्थयुक्त धर्म का (**पति:**) रक्षक (**जुषाण:**) सेवक (**अग्नि:**) बिजुली के समान व्यापक (**सजातानाम्**) उत्पन्न पदार्थों के रक्षक के साथ वर्त्तमान पदार्थों के (**मध्यमेष्ठ्याय**) मध्य में स्थित होके (**स्वाहा**) सत्य क्रिया से (**आज्यस्य**) घृत आदि होम के पदार्थों को प्राप्त करता हुआ (**सूर्य्यस्य**) सूर्य्य की (**रश्मिभि:**) किरणों के साथ होम किये पदार्थों को फैला के सुख देता है, वैसे (**धर्मण:**) न्याय के (**पति:**) रक्षक (**पृथु:**) बड़े (**जुषाण:**) सेवा करने वाला (**अग्नि:**) तेजस्वी आप राज्य को (**वेतु**) प्राप्त हूजिये। वैसे ही हे (**स्वाहाकृता:**) सत्य काम करने वाले सभासद् पुरुषों वा स्त्री लोगो! तुम भी (**यतध्वम्**) प्रयत्न किया करो॥२९॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे राज और प्रजा के पुरुषो तथा राणी वा राणी के सभासदो! तुम लोग सूर्य्य और प्रसिद्ध विद्युत् अग्नि के समान वर्त्त, पक्षपात छोड़, एक जन्म में मध्यस्थ हो के न्याय करो। वैसे यह अग्नि सूर्य्य के प्रकाश में और वायु में सुगन्धियुक्त द्रव्यों को प्राप्त करा, वायु जल और ओषधियों की शुद्धि द्वारा सब प्राणियों को सुख देता है, वैसे ही न्याययुक्त कर्मों के साथ आचरण करने वाले होके सब प्रजाओं को सुखयुक्त करो॥२९॥

सवित्रेत्यस्य शुन:शेप ऋषि:। सवित्रादिमन्त्रोक्ता देवता:। भुरिग्ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्द:। धैवत: स्वर:॥

कीदृग्गुणै: सह राज्ञा राज्ञ्या वा भवितव्यमित्युपदिश्यते॥

राजा वा राणी को कैसे गुणों से युक्त होना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

स॒वि॒त्रा प्र॑सवि॒त्रा सर॑स्वत्या वा॒चा त्वष्ट्रा॑ रू॒पैः पू॒ष्णा प॒शुभि॒रिन्द्रे॑णा॒स्मे बृह॒स्पति॑ना॒ ब्रह्म॑णा॒ वरु॑णे॒नौज॑सा॒ऽग्निना॒ तेज॑सा॒ सोमे॑न॒ राज्ञा॒ विष्णु॑ना दश॒म्या दे॒वत॑या॒ प्रसू॑तः प्रस॑र्पामि॥३०॥

स॒वि॒त्रा। प्र॒स॒वि॒त्रेति॑ प्रऽसवि॒त्रा। सर॑स्वत्या। वा॒चा। त्वष्ट्रा॑। रू॒पैः। पू॒ष्णा। प॒शुभि॒रिति॑ प॒शुऽभिः॑। इन्द्रे॑ण। अ॒स्मेऽइत्य॒स्मे। बृह॒स्पति॑ना। ब्रह्म॑णा। वरु॑णेन। ओज॑सा। अ॒ग्निना॑। तेज॑सा। सोमे॑न। राज्ञा॑। विष्णु॑ना। द॒शम्या। दे॒वत॑या। प्रसू॑त॒ इति॒ प्रऽसू॑तः। प्र। स॒र्पा॒मि॒॥३०॥

पदार्थः-(**सवित्रा**) प्रेरकेन वायुना (**प्रसवित्रा**) सकलचेष्टोत्पादकेनेव शुभकर्मणा (**सरस्वत्या**) प्रशस्तविज्ञानक्रियायुक्त्या (**वाचा**) वेदवाण्येव सत्यभाषणेन (**त्वष्ट्रा**) छेदकेन प्रतापिना सूर्य्येणेव न्यायेन (**रूपैः**) सुखस्वरूपैः (**पूष्णा**) पृथिव्या। **पूषेति पृथिवीनामसु पठितम्।** (निघं०१.१) (**पशुभिः**) गवादिभिरिव प्रजायाः पालनेन (**इन्द्रेण**) विद्युदिवैश्वर्येण (**अस्मे**) अस्माभिः (**बृहस्पतिना**) बृहतां पालकेन चतुर्वेदविदा विदुषेव विद्यासुशिक्षाप्रचारेण (**ब्रह्मणा**) वेदार्थज्ञानेन ज्ञापनेनेवोपदेशकेन (**वरुणेन**) वरेण जलसमूहेनेव शान्त्या (**ओजसा**) बलेन (**अग्निना**) पावकेन (**तेजसा**) तीक्ष्णेन ज्योतिषेव शत्रुदाहकत्वेन (**सोमेन**) चन्द्रेण प्रकाशमानेनेवाह्लादकत्वेन (**राज्ञा**) प्रकाशमानेन (**विष्णुना**) व्यापकेन परमेश्वरेणेव शुभगुणकर्मस्वभावेन (**दशम्या**) दशानां पूरिकया (**देवतया**) देदीप्यमानया सह (**प्रसूतः**) प्रेरितः (**प्र**) प्रगतः (**सर्पामि**) चलामि॥ अयं मन्त्रः (शत० ५.४.५.२) व्याख्यातः॥३०॥

अन्वयः-हे राजप्रजाजनाः यथाऽहं प्रसवित्रा सवित्रा सरस्वत्या वाचा त्वष्ट्रा रूपैः पूष्णा पशुभिरिन्द्रेणास्मे ब्रह्मणा बृहस्पतिनौजसा वरुणेन तेजसाऽग्निना राज्ञा सोमेन दशम्या देवतया विष्णुना च सह प्रसूतः सन् प्रसर्पामि तथा यूयमपि प्रसर्पध्वम्॥३०॥

भावार्थः-यो जनः सूर्य्यादिगुणयुक्तः पितृवत्प्रजापालकः स्यात्, स राजा भवितुं योग्यः। यश्चैवं पुत्रवद् वर्त्तमानो भवेत् स प्रजा भवितुमर्हति॥३०॥

पदार्थः-हे प्रजा और राजपुरुषो! जैसे मैं (**प्रसवित्रा**) प्रेरणा करने वाले वायु (**सवित्रा**) सम्पूर्ण चेष्टा उत्पन्न करानेहारे के समान शुभ कर्म (**सरस्वत्या**) प्रशंसित विज्ञान और क्रिया से युक्त (**वाचा**) वेदवाणी के समान सत्यभाषण (**त्वष्ट्रा**) छेदक और प्रतापयुक्त सूर्य के समान न्याय (**रूपैः**) सुखरूपों (**पूष्णा**) पृथिवी (**पशुभिः**) गौ आदि पशुओं के समान प्रजा के पालन (**इन्द्रेण**) बिजुली (**अस्मे**) हम (**बृहस्पतिना**) बड़ों के रक्षक चार वेदों के जाननेहारे विद्वान् के समान विद्या और सुन्दर शिक्षा के प्रचार (**ओजसा**) बल (**वरुणेन**) जल के समुदाय (**तेजसा**) तीक्ष्ण ज्योति के समान शत्रुओं के चलाने (**अग्निना**) अग्नि (**राज्ञा**) प्रकाशमान आनन्द के होने (**सोमेन**) चन्द्रमा (**दशम्या**) दशसंख्या को पूर्ण करने वाली (**देवतया**) प्रकाशमान और (**विष्णुना**) व्यापक ईश्वर के समान शुभ गुण, कर्म और स्वभाव से (**प्रसूतः**) प्रेरणा किया हुआ मैं (**प्रसर्पामि**) अच्छे प्रकार चलता हूं, वैसे तुम लोग भी चलो॥३०॥

भावार्थः-जो मनुष्य सूर्य्यादि गुणों से युक्त पिता के समान रक्षा करनेहारा हो, वह राजा होने के योग्य है, और जो पुत्र के समान वर्त्ताव करे, वह प्रजा होने योग्य है॥३०॥

अश्विभ्यामित्यस्य शुनःशेप ऋषिः। क्षत्रपतिर्देवता। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनर्मनुष्या कीदृशा भूत्वा किं कुर्युरित्युपदिश्यते॥

फिर मनुष्य कैसे हो क्या करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अश्विभ्यां पच्यस्व सरस्वत्यै पच्यस्वेन्द्राय सुत्राम्णे पच्यस्व।
वायुःपूतः पवित्रेण प्रत्यङ्क्सोमो अतिस्रुतः। इन्द्रस्य युज्यः सखा॥३१॥

अश्विभ्यामित्यश्विऽभ्याम्। पच्यस्व। सरस्वत्यै। पच्यस्व। इन्द्राय। सुत्राम्ण इति सुऽत्राम्णे। पच्यस्व। वायुः। पूतः। पवित्रेण। प्रत्यङ्। सोमः। अतिस्रुत इत्यतिऽस्रुतः। इन्द्रस्य। युज्यः। सखा॥३१॥

पदार्थः-(**अश्विभ्याम्**) सूर्याचन्द्रमोभ्यामिवाऽध्यापकोपदेशकाभ्याम् (**पच्यस्व**) परिपक्वो भव (**सरस्वत्यै**) सुशिक्षितायै वाचे (**पच्यस्व**) (**इन्द्राय**) परमैश्वर्य्याय (**सुत्राम्णे**) सुष्ठु रक्षकाय (**पच्यस्व**) (**वायुः**) वायुरिव (**पूतः**) (**पवित्रेण**) शुद्धेन धर्माचरणेन निर्दोषः (**प्रत्यङ्**) प्रत्यञ्चतीति पूजितः (**सोमः**) ऐश्वर्य्यवान् सोमगुणसम्पन्नो वा (**अतिस्रुतः**) अत्यन्तज्ञानवान् (**इन्द्रस्य**) परमेश्वरस्य (**युज्यः**) युक्तः (**सखा**) मित्रः॥ अयं मन्त्रः (शत० ५.५.४.२०-२२) व्याख्यातः॥३१॥

अन्वयः-हे राजप्रजाजन! त्वमश्विभ्यां पच्यस्व सरस्वत्यै पच्यस्व सुत्राम्ण इन्द्राय पच्यस्व। पवित्रेण वायुरिव पूतः प्रत्यङ् सोमोऽतिस्रुत इन्द्रस्य युज्यः सखा भव॥३१॥

भावार्थः-मनुष्या आप्तयोरध्यापकोपदेशकयोः सकाशात् सुशिक्षां प्राप्य शुद्धैर्धर्माचरणैः स्वात्मानं पवित्रीकृत्य, योगाङ्गैरीश्वरमुपास्यैश्वर्य्याय प्रयत्य परस्परं सखायो भवन्तु॥३१॥

पदार्थः-हे राजा तथा प्रजापुरुषो! तुम (**अश्विभ्याम्**) सूर्य चन्द्रमा के समान अध्यापक और उपदेशक (**पच्यस्व**) शुद्ध बुद्धि वाले हो (**सरस्वत्यै**) अच्छी शिक्षायुक्त वाणी के लिये (**पच्यस्व**) उद्यत हो, (**सुत्राम्णे**) अच्छी रक्षा करनेहारे (**इन्द्राय**) परमैश्वर्य के लिये (**पच्यस्व**) दृढ़ पुरुषार्थ करो, (**पवित्रेण**) शुद्ध धर्म के आचरण से (**वायुः**) वायु के समान (**पूतः**) निर्दोष (**प्रत्यङ्**) पूजा को प्राप्त (**सोमः**) अच्छे गुणों से युक्त ऐश्वर्य्यवाले (**अतिस्रुतः**) अत्यन्त ज्ञानवान् (**इन्द्रस्य**) परमेश्वर के (**युज्यः**) योगाभ्यासयुक्त (**सखा**) मित्र हो॥३१॥

भावार्थः-मनुष्य को चाहिये कि सत्यवादी धर्मात्मा आप्त अध्यापक और उपदेशक से अच्छी शिक्षा को प्राप्त हो, शुद्ध धर्म के आचरण से अपने आत्मा को पवित्र योग के अङ्गों से ईश्वर की उपासना और सम्पत्ति होने के लिये प्रयत्न करके आपस में मित्रभाव से वर्त्तें॥३१॥

कुविदङ्गेत्यस्य शुनःशेप ऋषिः। क्षत्रपतिर्देवता। निचृद्ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

राजादिसभ्यैः प्रजायै किंवत् किं किं कर्त्तव्यमित्याह॥

राजा आदि सभा के पुरुष किस के तुल्य क्या-क्या करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय।
इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नमउक्तिं यजन्ति।
उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णे॥३२॥

कुवित्। अङ्ग। यवमन्त इति यवऽमन्तः। यवम्। चित्। यथा। दान्ति। अनुपूर्वमित्यनुऽपूर्वम्। वियूयेति विऽयूय। इहेहेतीहऽइह। एषाम्। कृणुहि। भोजनानि। ये। बर्हिषः। नमउक्तिमिति नमःऽउक्तिम्। यजन्ति। उपयामगृहीत इत्युपयामऽगृहीतः। असि। अश्विभ्यामित्यश्विऽभ्याम्। त्वा। सरस्वत्यै। त्वा। इन्द्राय। त्वा। सुत्राम्ण इति सुऽत्राम्णे॥३२॥

पदार्थ:-**(कुवित्)** बह्वैश्वर्य्य, **कुविदिति बहुनामसु पठितम्।** (निघं०३.१) **(अङ्ग)** योऽङ्गति जानाति तत्सम्बुद्धौ **(यवमन्त:)** बहवो यवा विद्यन्ते येषां ते कृषीवला: **(यवम्)** **(चित्)** अपि **(यथा)** **(दान्ति)** लुनन्ति **(अनुपूर्वम्)** क्रमश: **(वियूय)** बुसादिकं पृथक्कृत्य **(इहेह)** अस्मिन्नस्मिन् व्यवहारे **(एषाम्)** कृषीवलानाम् **(कृणुहि)** कुरु **(भोजनानि)** **(ये)** **(बर्हिष:)** वृद्धा: **(नमउक्तिम्)** नमसोऽन्नस्योक्तिं वचनम् **(यजन्ति)** सङ्गच्छन्ते **(उपयामगृहीत:)** ब्रह्मचर्यनियमै: स्वीकृत: **(असि)** **(अश्विभ्याम्)** व्याप्तविद्याभ्यां शिक्षकाभ्याम् **(त्वा)** त्वाम् **(सरस्वत्यै)** विद्यायुक्तवाचे **(त्वा)** **(इन्द्राय)** उत्तमैश्वर्य्याय **(त्वा)** **(सुत्राम्णे)** सुष्ठु त्राणाय॥ अयं मन्त्र: (शत०५.५.४.२४) व्याख्यात:॥३२॥

अन्वय:-हे अङ्ग राजन्! य: कुवित् त्वमश्विभ्यामुपयामगृहीतोऽसि तं सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णे त्वा वयं स्वीकुर्म:। ये बर्हिषो नमउक्तिं यजन्ति, तेभ्य: सत्कारेण भोजनादीनि देहि। यथा यवमन्त इहेह यवमनुपूर्वं दान्ति बुसाच्चिद् यवं वियूय रक्षन्ति, तथैषां सत्यासत्ये विविच्य रक्षणं कृणुहि॥३२॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यथा कृषीवला: परिश्रमेण पृथिव्या: सकाशादनेकानि फलादीन्युत्पाद्य संरक्ष्य भुञ्जते, निस्सारं त्यजन्ति, यथा विहितं भागं राज्ञे ददति, तथैव राजादिभिर्जनैरतिश्रमेणैतान् संरक्ष्य न्यायेनैश्वर्य्यमुत्पाद्य सुपात्रेभ्यो दत्त्वाऽऽनन्दो भोक्तव्य:॥३२॥

पदार्थ:-हे **(अङ्ग)** ज्ञानवान् राजन्! जो **(कुवित्)** बहुत ऐश्वर्य्य वाले आप **(अश्विभ्याम्)** विद्या को प्राप्त हुए शिक्षक लोगों के लिये **(उपयामगृहीत:)** ब्रह्मचर्य के नियमों से स्वीकार किये **(असि)** हैं, उन **(सरस्वत्यै)** विद्यायुक्त वाणी के लिये **(त्वा)** आपको **(इन्द्राय)** उत्तम ऐश्वर्य के लिये **(त्वा)** आप को और **(सुत्राम्णे)** अच्छी रक्षा के लिये **(त्वा)** आपको हम लोग स्वीकार करते हैं। **(ये)** जो **(बर्हिष:)** वृद्धपुरुष **(नमउक्तिम्)** अन्न के कहने को **(यजन्ति)** सङ्गत करते हैं, उन के लिये सत्कार के साथ भोजन आदि दीजिये। जैसे **(यवमन्त:)** बहुत जौ आदि धान्य से युक्त खेती करनेहारे लोग **(इहेह)** इस-इस व्यवहार में **(यवम्)** यवादि अन्न को **(अनुपूर्वम्)** क्रम से **(दान्ति)** लुनते हैं, भुस से **(चित्)** भी **(यवम्)** जवों को **(वियूय)** पृथक् करके रक्षा करते हैं, वैसे सत्य-असत्य को ठीक-ठीक विचार के इन की रक्षा कीजिये॥३२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे खेती करने वाले लोग परिश्रम के साथ पृथिवी से अनेक फलों को उत्पन्न और रक्षा करके भोगते और असार को फेंकते हैं, और जैसे ठीक-ठीक राज्य का भाग राजा को देते हैं, वैसे ही राजा आदि पुरुषों को चाहिये कि अत्यन्त परिश्रम से इनकी रक्षा, न्याय के आचरण से ऐश्वर्य्य को उत्पन्न कर और सुपात्रों के लिये देते हुए आनन्द को भोगें॥३२॥

युवमित्यस्य शुन:शेप ऋषि:। अश्विनौ देवते। निचृदनुष्टुप् छन्द:। गान्धार: स्वर:॥

युवमित्यस्य शुन:शेप ऋषि:। अश्विनौ देवते। निचृदनुष्टुप् छन्द:। गान्धार: स्वर:॥

सभासेनेशाभ्यां प्रयत्नतो वणिग्जना: संरक्ष्या इत्याह॥

सभा और सेनापति प्रयत्न से वैश्यों की रक्षा करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

युवꣳ सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा।

विपिपाना शुभस्पतीऽइन्द्रं कर्मस्वावतम्॥३३॥

युवम्। सुरामम्। अश्विना। नमुचौ। आसुरे। सचा। विपिपानेति विऽपिपाना। शुभः। पतीऽइति पती। इन्द्रम्। कर्मस्विति कर्मऽसु। आवतम्॥ ३३॥

पदार्थः-(**युवम्**) युवाम् (**सुरामम्**) सुष्ठु रमन्ते यस्मिन् तम् (**अश्विना**) सूर्य्यचन्द्रमसाविव सभासेनेशौ (**नमुचौ**) न मुञ्चति स्वकीयं कर्म यस्तस्मिन् (**आसुरे**) असुरस्य मेघस्याऽयं व्यवहारस्तस्मिन्। **असुर इति मेघनामसु पठितम्।** (निघं०१.१०) (**सचा**) सत्यसमवेतौ (**विपिपाना**) विविधं राज्यं रक्षमाणौ (**शुभः**) कल्याणकरस्य व्यवहारस्य (**पती**) पालयितारौ (**इन्द्रम्**) परमैश्वर्यवन्तं धनिकम् (**कर्मसु**) कृष्यादिक्रियासु प्रवर्त्तमानम् (**आवतम्**) रक्षतम्॥ अयं मन्त्रः (शत० ५.५.४.२५) व्याख्यातः॥३३॥

अन्वयः-हे सचाः विपिपाना शुभस्पती अश्विना युवं नमुचावासुरे कर्मसु वर्त्तमानं सुराममिन्द्रं सततमावतम्॥३३॥

भावार्थः-दुष्टेभ्यः श्रेष्ठानां रक्षणायैव राजभावः प्रवर्त्तते। नहि राजरक्षणेन विना कस्यचित् कर्मचारिणः कर्मणि निर्विघ्नेन प्रवृत्तिर्भवितुं योग्याऽस्ति, न च खलु प्रजाजनाऽनुकूल्यमन्तरा राजपुरुषाणां सुस्थिरता जायते, तस्माद् वनसिंहवत् परस्परं सहायेन सर्वे राजप्रजाजनाः सदा सुखिनः स्युः॥३३॥

पदार्थः-हे (**सचा**) मिले हुए (**विपिनाना**) विविध राज्य के रक्षक (**शुभः**) कल्याणकारक व्यवहार के (**पती**) पालन करनेहारे (**अश्विना**) सूर्य्य-चन्द्रमा के समान सभापति और सेनापति (**युवम्**) तुम दोनों (**नमुचौ**) जो अपने दुष्ट कर्म को न छोड़े (**आसुरे**) मेघ के व्यवहार में (**कर्मसु**) खेती आदि कर्मों में वर्त्तमान (**सुरामम्**) अच्छी तरह जिस में रमण करें, ऐसे (**इन्द्रम्**) परमैश्वर्य्य वाले धनी की निरन्तर (**आवतम्**) रक्षा करो॥३३॥

भावार्थः-दुष्टों से श्रेष्ठों की रक्षा के लिये ही राजा होता है। राज्य की रक्षा के विना किसी चेष्टावान् नर की कार्य में निर्विघ्न प्रवृत्ति कभी नहीं हो सकती और न प्रजाजनों के अनुकूल हुए विना राजपुरुषों की स्थिरता होती है। इसलिये वन के सिंहों के समान परस्पर सहायी होके सब राज और प्रजा के मनुष्य सदा आनन्द में रहें॥३३॥

पुत्रमिवेत्यस्य शुनःशेप ऋषिः। अश्विनौ देवते। भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

राजप्रजे पितापुत्रवद् वर्त्तेयातामित्याह॥

राजा और प्रजा को पिता पुत्र के समान वर्त्तना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्रावथुः काव्यैर्दꣳसनाभिः।

यत्सुरामं व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक्॥ ३४॥

पुत्रमिवेति पुत्रम्ऽइव। पितरौ। अश्विना। उभा। इन्द्र। आवथुः। काव्यैः। दꣳसनाभिः। यत्। सुरामम्। वि। अपिबः। शचीभिः। सरस्वती। त्वा मघवन्निति मघऽवन्। अभिष्णक्॥ ३४॥

पदार्थः-(**पुत्रमिव**) यथाऽपत्यानि (**पितरौ**) जननीजनकौ (**अश्विना**) सभासेनेशौ (**उभा**) द्वौ (**इन्द्र**) सर्वसभेश राजन्! (**आवथुः**) सर्वं राज्यं रक्षेथाम् (**काव्यैः**) कविभिः परमविद्वद्भिर्धार्मिकैर्निर्मितैः (**दंसनाभिः**) कर्मभिः (**यत्**) यः (**सुरामम्**) शोभन आरामो येन रसेन तम् (**व्यपिबः**) विविधतया पिब (**शचीभिः**) प्रज्ञाभिः (**सरस्वती**) विद्यासुशिक्षिता वागिव पत्नी (**त्वा**) त्वाम् (**मघवन्**) पूजितधनवन् (**अभिष्णक्**) उपसेवताम्। भिष्णज्

उपसेवायामिति कण्ड्वादिधातोर्लङि विकरणव्यत्ययेन यको लुक्। अन्यत् कार्य्यं स्पष्टम्॥ अयं मन्त्रः (शत०५.५.४.२६) व्याख्यातः॥३४॥

अन्वयः-हे मघवन्निन्द्र यत् वं शचीभिः सुरामं व्यपिबस्तं त्वा सरस्वत्यभिष्णक्। हे अश्विना राजाज्ञापिता-वुभौ सेनापतिन्यायधीशौ युवां काव्यैर्दंसनाभिः पितरौ पुत्रमिव सर्वं राज्यमावथुः॥३४॥

भावार्थः-सर्वशुभगुणयुक्तो राजधर्ममाश्रितः धार्मिकोऽध्यापको युवा सन् हृद्यां स्वदृशीं विदुषीं सुलक्षणां रूपलावण्यादिगुणैः सुशोभितां स्त्रियमुद्वहेत्। या सततं पत्यनुकूला भवेत्, स्वयं च तदनुकूलः स्यात्। सामात्यभृत्यस्त्रीकः प्रजास्वाप्तरीत्या पितृवद् वर्त्तेत, प्रजाश्च पुत्रवत्। एवं परस्परं प्रेम्णा सहाऽऽह्लादिताः सर्वे स्युरिति॥३४॥

अत्र राजप्रजाधर्मोक्तत्वादेतदर्थस्य पूर्वाऽध्यायार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति बोध्यम्॥

पदार्थः-हे **(मघवन्)** विशेष धन के होने से सत्कार के योग्य **(इन्द्र)** सब सभाओं के मालिक राजन्! **(यत्)** जो आप **(शचीभिः)** अपनी बुद्धियों के बल से **(सुरामम्)** अच्छा आराम देनेहारे रस को **(व्यपिबः)** विविध प्रकार से पीवें, उस आप का **(सरस्वती)** विद्या से अच्छी शिक्षा को प्राप्त हुई, वाणी के समान स्त्री **(अभिष्णक्)** सेवन करे **(अश्विना)** राजा से आज्ञा को प्राप्त हुए **(उभा)** तुम दोनों सेनापति और न्यायाधीश **(काव्यैः)** परम विद्वान् धर्मात्मा लोगों के लिये **(दंसनाभिः)** कर्मों से **(पितरौ)** जैसे माता-पिता **(पुत्रमिव)** अपने सन्तान की रक्षा करते हैं, वैसे सब राज्य की **(आवथुः)** रक्षा करो॥३४॥

भावार्थः-सब अच्छे-अच्छे गुणों से युक्त राजधर्म का सेवनेहारा धर्मात्मा, अध्यापक और पूर्ण युवा अवस्था को प्राप्त हुआ पुरुष, अपने हृदय को प्यारी, अपने योग्य, अच्छे लक्षणों से युक्त, रूप और लावण्य आदि गुणों से शोभायमान, विदुषी स्त्री के साथ विवाह करे, जो कि निरन्तर पति के अनुकूल हो, और पति भी उसके सम्मति का हो। राजा अपने मन्त्री, नौकर और स्त्री के सहित प्रजाओं में सत्पुरुषों की रीति पर पिता के समान और प्रजापुरुष पुत्र के समान राजा के साथ वर्त्तें। इस प्रकार आपस में प्रीति के साथ मिल के आनन्दित होवें॥३४॥

इस अध्याय में राजा प्रजा के धर्म का वर्णन होने से इस अध्याय में कहे अर्थ की पूर्व अध्याय के साथ सङ्गति जाननी चाहिये॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य्याणां श्रीमत्परमविदुषां विरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मिते संस्कृतभाषाऽऽर्यभाषाभ्यां विभूषिते सुप्रमाणयुक्ते यजुर्वेदभाष्ये दशमोऽध्यायः सम्पूर्णः॥१०॥

॥ओ३म् ॥

अथैकादशाऽध्यायारम्भः

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव। यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व॥यजु॰३०.३॥

युञ्जान इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। सविता देवता। विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथ योगाभ्यासभूगर्भविद्योपदेशमाह॥

अब ग्यारहवें अध्याय का आरम्भ किया जाता है। इसके प्रथम मन्त्र में योगाभ्यास और भूगर्भविद्या का उपदेश किया है॥

यु॒ञ्जा॒नः प्र॑थ॒मं मन॑स्त॒त्त्वाय॑ सवि॒ता धिय॑ः।
अ॒ग्नेर्ज्योति॑र्नि॒चाय्य॑ पृथि॒व्याऽअध्याभ॑रत्॥ १॥

यु॒ञ्जा॒नः। प्र॒थ॒मम्। मन॑ः। त॒त्त्वाय॑। स॒वि॒ता। धिय॑ः। अ॒ग्नेः। ज्योति॑ः। नि॒चाय्येति॑ नि॒चाऽय्य॑। पृ॒थि॒व्याः। अधि॑। आ। अ॒भ॒र॒त्॥ १॥

पदार्थः-(युञ्जानः) योगाभ्यासं भूगर्भविद्यां च कुर्वाणः **(प्रथमम्)** आदौ **(मनः)** मननात्मिकान्तःकरणवृत्तीः **(तत्त्वाय)** तेषां परमेश्वरादीनां पदार्थानां भावाय **(सविता)** ऐश्वर्यमिच्छुः **(धियः)** धारणात्मिका अन्तःकरणवृत्तीः **(अग्नेः)** पृथिव्यादिस्थाया विद्युतः **(ज्योतिः)** प्रकाशम् **(निचाय्य)** निश्चित्य **(पृथिव्याः)** भूमेः **(अधि)** उपरि **(आ)** समन्तात् **(अभरत्)** धरेत्। [अयं मन्त्रः शत०६.३.१.१३ व्याख्यातः]॥१॥

अन्वयः-यः सविता मनुष्यस्तत्त्वाय प्रथमं मनो धियश्च युञ्जानोऽग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याभरत्, स पदार्थविद्याविच्च जायेत॥१॥

भावार्थः-यो जनो योगं भूगर्भविद्यां च चिकीर्षेत् स यमादिभिः क्रियाकौशलैश्चाऽन्तःकरणं पवित्रीकृत्य तत्त्वानां विज्ञानाय प्रज्ञां समर्ज्यैतानि गुणकर्मस्वभावतो विदित्वोपयुञ्जीत। पुनर्यत् प्रकाशमानानां सूर्य्यादीनां प्रकाशकं ब्रह्मास्ति, तद्विज्ञाय स्वात्मनि निश्चित्य सर्वाणि स्वपरप्रयोजनानि साध्नुयात्॥१॥

पदार्थः-जो **(सविता)** ऐश्वर्य को चाहने वाला मनुष्य **(तत्त्वाय)** उन परमेश्वर आदि पदार्थों के ज्ञान होने के लिये **(प्रथमम्)** पहिले **(मनः)** विचारस्वरूप अन्तःकरण की वृत्तियों को और **(धियः)** धारणा रूप अन्तःकरण की वृत्तियों को **(युञ्जानः)** योगाभ्यास और भूगर्भविद्या में युक्त करता हुआ **(अग्नेः)** पृथिवी आदि में रहने वाली बिजुली के **(ज्योतिः)** प्रकाश को **(निचाय्य)** निश्चय करके **(पृथिव्याः)** भूमि के **(अधि)** ऊपर **(आभरत्)** अच्छे प्रकार धारण करे, वह योगी और भूगर्भ-विद्या का जानने वाला होवे॥१॥

भावार्थः-जो पुरुष योगाभ्यास और भूगर्भविद्या किया चाहे, वह यम आदि योग के अङ्ग और क्रिया-कौशलों से अपने हृदय को शुद्ध करके तत्त्वों को जानने के लिये बुद्धि को प्राप्त करके और इन को गुण, कर्म तथा स्वभाव से जान के उपयोग लेवे। फिर जो प्रकाशमान सूर्य्यादि पदार्थ हैं, उन का भी प्रकाशक ईश्वर है, उस को जान और अपने आत्मा में निश्चय करके अपने और दूसरों के सब प्रयोजनों को सिद्ध करे॥१॥

युक्तेनेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। सविता देवता। शङ्कुमती गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी उक्त विषय ही अगले मन्त्र में कहा है॥

युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे।

स्वर्ग्याय शक्त्या॥ २॥

युक्तेन। मनसा। वयम्। देवस्य। सवितुः। सवे। स्वर्ग्यायेति स्वः ऽग्याय। शक्त्या॥ २॥

पदार्थः-(युक्तेन) कृतयोगाभ्यासेन **(मनसा)** विज्ञानेन **(वयम्)** योगिनः **(देवस्य)** सर्वद्योतकस्य **(सवितुः)** अखिलजगदुत्पादकस्य जगदीश्वरस्य **(सवे)** जगदाख्येऽस्मिन्नैश्वर्ये **(स्वर्ग्याय)** स्वः सुखं गच्छति येन तद्भावाय **(शक्त्या)** सामर्थ्येन। [अयं मन्त्रः शत०६.३.१.१४ व्याख्यातः]॥ २॥

अन्वयः- हे योगं तत्त्वविद्यां च जिज्ञासवो मनुष्याः! यथा वयं युक्तेन मनसा शक्त्या च देवस्य सवितुः सवे स्वर्ग्याय ज्योतिराभरेम तथा यूयमप्याभरत॥ २॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यदि मनुष्याः परमेश्वरस्य सृष्टौ समाहिताः सन्तो योगं तत्त्वविद्यां च यथाशक्ति सेवेरँस्तेषु प्रकाशितात्मनः सन्तो योगं पदार्थविज्ञानं चाभ्यस्येयुस्तर्हि सिद्धीः कथं न प्राप्नुयुः॥ २॥

पदार्थः-हे योग और तत्त्वविद्या को जानने की इच्छा करनेहारे मनुष्यो! जैसे **(वयम्)** हम योगी लोग **(युक्तेन)** योगाभ्यास किये **(मनसा)** विज्ञान और **(शक्त्या)** सामर्थ्य से **(देवस्य)** सब को चिताने तथा **(सवितुः)** समग्र संसार को उत्पन्न करने हारे ईश्वर के **(सवे)** जगत् रूप इस ऐश्वर्य में **(स्वर्ग्याय)** सुख प्राप्ति के लिये प्रकाश को अधिकाई से धारण करें, वैसे तुम लोग भी प्रकाश को धारण करो॥ २॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य परमेश्वर की इस सृष्टि में समाहित हुए योगाभ्यास ओर तत्त्वविद्या को यथाशक्ति सेवन करें, उनमें सुन्दर आत्मज्ञान के प्रकाश से युक्त हुए योग और पदार्थविद्या का अभ्यास करें, तो अवश्य सिद्धियों को प्राप्त हो जावें॥ २॥

युक्त्वायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। सविता देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी उक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

युक्त्वाय सविता देवान्त्स्वर्यतो धिया दिवम्।

बृहज्ज्योतिः करिष्यतः सविता प्रसुवाति तान्॥ ३॥

युक्त्वाय। सविता। देवान्। स्वः। यतः। धिया। दिवम्। बृहत्। ज्योतिः। करिष्यतः। सविता। प्र। सुवाति। तान्॥ ३॥

पदार्थः-(युक्त्वाय) युक्तं कृत्वा **(सविता)** योगपदार्थज्ञानस्य प्रसविता **(देवान्)** दिव्यान् गुणान् **(स्वः)** सुखस्य **(यतः)** प्रापकान् **(धिया)** प्रज्ञया **(दिवम्)** विद्याप्रकाशम् **(बृहत्)** महत् **(ज्योतिः)** विज्ञानम् **(करिष्यतः)** ये करिष्यन्ति तान् **(सविता)** प्रेरकः **(प्र) (सुवाति)** उत्पादयेत् **(तान्)**। **[अयं मन्त्रः** शत०६.३.१.१५

व्याख्यातः]॥३॥

अन्वयः-यान् सविता परमात्मनि मनो युक्त्वाय धियां दिवं स्वर्यतो बृहज्ज्योतिः करिष्यतो देवान् प्रसुवाति तानन्योऽपि सविता प्रसुवेत्॥३॥

भावार्थः-ये योगपदार्थविद्ये अभ्यस्यन्ति, तेऽविद्यादिक्लेशानां निवारकान् शुद्धान् गुणान् जनितुं शक्नुवन्ति। य उपदेशकाद्योगं तत्त्वज्ञानं च प्राप्यैवमभ्यस्येत् सोऽप्येतान् प्राप्नुयात्॥३॥

पदार्थः-जिन को **(सविता)** योग के पदार्थों के ज्ञान का करनेहारा जन परमात्मा में मन को **(युक्त्वाय)** युक्त करके **(धिया)** बुद्धि से **(दिवम्)** विद्या के प्रकाश को **(स्वः)** सुख को **(यतः)** प्राप्त कराने वाले **(बृहत्)** बड़े **(ज्योतिः)** विज्ञान को **(करिष्यतः)** जो करेंगे उन **(देवान्)** दिव्य गुणों को **(प्रसुवाति)** उत्पन्न करे **(तान्)** उनको अन्य भी **(सविता)** उत्पादक जन उत्पन्न करे॥३॥

भावार्थः-जो पुरुष योग और पदार्थविद्या का अभ्यास करते हैं, वे अविद्या आदि क्लेशों को हटाने वाले शुद्ध गुणों को प्रकट कर सकते हैं। जो उपदेशक पुरुष से योग और तत्त्वज्ञान को प्राप्त हो के ऐसा अभ्यास करे, वह भी इन गुणों को प्राप्त होवे॥३॥

युञ्जत इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। सविता देवता। जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

योगाभ्यासं कृत्वा मनुष्याः किं कुर्य्युरित्याह॥

योगाभ्यास करके मनुष्य क्या करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

युञ्जते मनऽउत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः।

वि होत्रा दधे वयुनाविदेकऽइन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः॥४॥

युञ्जते। मनः। उत। युञ्जते। धियः। विप्राः। विप्रस्य। बृहतः। विपश्चित इति विपःऽचितः। वि। होत्राः। दधे। वयुनावित्। वयुनाविदिति वयुनऽवित्। एकः। इत्। मही। देवस्य। सवितुः। परिष्टुतिः। परिस्तुतिरिति परिऽस्तुतिः॥४॥

पदार्थः-**(युञ्जते)** परमात्मनि तत्त्वविज्ञाने वा समादधते **(मनः)** चित्तम् **(उत)** अपि **(युञ्जते)** **(धियः)** बुद्धीः **(विप्राः)** मेधाविनः **(विप्रस्य)** सर्वशास्त्रविदो मेधाविनः **(बृहतः)** महतो गुणान् प्राप्तस्य **(विपश्चितः)** अखिलविद्यायुक्तस्याप्तस्येव वर्त्तमानस्य **(वि)** **(होत्राः)** दातुं ग्रहीतुं शीलाः **(दधे)** **(वयुनावित्)** यो वयुनानि प्रज्ञानानि वेत्ति सः। अत्र **अन्येषामपि०** [अष्टा०६.३.१३७] इति दीर्घः। **(एकः)** असहायः **(इत्)** एव **(मही)** महती **(देवस्य)** सर्वप्रकाशकस्य **(सवितुः)** सर्वस्य जगतः प्रसवितुरीश्वरस्य **(परिष्टुतिः)** परितः सर्वतः स्तुवन्ति यया सा। [अयं मन्त्रः शत०६.३.१.१६ व्याख्यातः]॥४॥

अन्वयः-ये होत्रा विप्रा यस्य बृहतो विपश्चित इव वर्तमानस्य विप्रस्य सकाशात् प्राप्तविद्याः सन्तो या सवितुर्देवस्य जगदीश्वरस्य मही परिष्टुतिरस्ति तत्र यथा मनो युञ्जत उत धियो युञ्जते तथा वयुनाविदेक इदहं विदधे॥४॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये युक्ताहारविहारा एकान्ते देशे परमात्मानं युञ्जते, ते तत्त्वविज्ञानं प्राप्य नित्यं सुखं यान्ति॥४॥

पदार्थ:-जो (**होत्रा:**) दान देने-लेने के स्वभाव वाले (**विप्रा:**) बुद्धिमान् पुरुष जिस (**बृहत:**) बड़े (**विपश्चित:**) सम्पूर्ण विद्याओं से युक्त आप्त पुरुष के समान वर्त्तमान (**विप्रस्य**) सब शास्त्रों के जाननेहारे बुद्धिमान् पुरुष से विद्याओं को प्राप्त हुए विद्वानों से विज्ञानयुक्त जन (**सवितु:**) सब जगत् को उत्पन्न और (**देवस्य**) सब के प्रकाशक जगदीश्वर की (**मही**) बड़ी (**परिष्टुति:**) सब प्रकार की स्तुति है, उस तत्त्वज्ञान के विषय में जैसे (**मन:**) अपने चित्त को (**युञ्जते**) समाधान करते (**उत**) और (**धिय:**) अपनी बुद्धियों को (**युञ्जते**) युक्त करते हैं, वैसे ही (**वयुनावित्**) प्रकृष्टज्ञान वाला (**एक:**) अन्य के सहाय की अपेक्षा से रहित (**इत्**) ही मैं (**विदधे**) विधान करता हूं॥४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो नियम से आहार-विहार करने हारे जितेन्द्रिय पुरुष एकान्त देश में परमात्मा के साथ अपने आत्मा को युक्त करते हैं, वे तत्त्वज्ञान को प्राप्त होकर नित्य ही सुख भोगते हैं॥४॥

युजे वामित्यस्य प्रजापतिर्ऋषि:। सविता देवता। भुरिक्पङ्क्तिश्छन्द:। पञ्चम: स्वर:॥

मनुष्या: परब्रह्मप्राप्तिं कथं कुर्य्युरित्युपदिश्यते॥

मनुष्य लोग ईश्वर की प्राप्ति कैसे करें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्वि श्लोकऽएतु पथ्येव सूरेः।
शृण्वन्तु विश्वेऽअमृतस्य पुत्राऽआ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः॥५॥

युजे। वाम्। ब्रह्म। पूर्व्यम्। नमोभिरिति नम:ऽभि:। वि। श्लोक:। एतु। पथ्येवेति पथ्याऽइव। सूरे:। शृण्वन्तु। विश्वे। अमृतस्य। पुत्रा:। आ। ये। धामानि। दिव्यानि। तस्थु:॥५॥

पदार्थ:-(**युजे**) आत्मनि समादधे (**वाम्**) युवयोर्योगानुष्ठात्रुपदेशकयो: सकाशाच्छ्रुतवन्तौ (**ब्रह्म**) बृहद् व्यापकम् (**पूर्व्यम्**) पूर्वैर्योगिभि: प्रत्यक्षीकृतम् (**नमोभि:**) सत्कारै: (**वि**) विविधेऽर्थे (**श्लोक:**) सत्यवाक्संयुक्त: (**एतु**) प्राप्नोतु (**पथ्येव**) यथा पथि साध्वी गति: (**सूरे:**) विदुष: (**शृण्वन्तु**) (**विश्वे**) सर्वे (**अमृतस्य**) अविनाशिनो जगदीश्वरस्य (**पुत्रा:**) सुसन्ताना आज्ञापालका इव (**आ**) (**ये**) (**धामानि**) स्थानानि (**दिव्यानि**) दिवि सुखप्रकाशे भवानि (**तस्थु:**) आस्थितवन्त:। [अयं मन्त्र: शत०६.३.१.१७ व्याख्यात:]॥५॥

अन्वय:-हे योगजिज्ञासवो जना:! भवन्तो यथा श्लोकोऽहं नमोभिर्यत्पूर्व्यं ब्रह्म युजे, तद्वां सूरे: पथ्येव व्येतु। यथा विश्वे पुत्रा: प्राप्तमोक्षा विद्वांसोऽमृतस्य योगेन दिव्यानि धामान्यातस्थुस्तेभ्य एतां योगविद्यां शृण्वन्तु॥५॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। योगं जिज्ञासुभिराप्ता योगारूढा विद्वांस: सङ्गन्तव्या:। तत्सङ्गेन योगविधिं विज्ञाय ब्रह्माभ्यसनीयम्। यथा विद्वत्प्रकाशितो धर्ममार्ग: सर्वान् सुखेन प्राप्नोति, तथैव कृतयोगाभ्यासानां सङ्गाद्योगविधि: सहजतया प्राप्नोति, नहि कश्चिदेतत्सङ्गमकृत्वा ब्रह्माभ्यासेन विनाऽऽत्मा पवित्रो भूत्वा सर्वं सुखमश्नुते। तस्माद् योगविधिना सहैव सर्वे परं ब्रह्मोपासताम्॥५॥

पदार्थ:-हे योगशास्त्र के ज्ञान की इच्छा करने वाले मनुष्यो! आप लोग जैसे (**श्लोक:**) सत्य वाणी से संयुक्त मैं (**नमोभि:**) सत्कारों से जिस (**पूर्व्यम्**) पूर्व के योगियों ने प्रत्यक्ष किये (**ब्रह्म**) सब से बड़े व्यापक ईश्वर

को **(युजे)** अपने आत्मा में युक्त करता हूँ, वह ईश्वर **(वाम्)** तुम योग के अनुष्ठान और उपदेश करने हारे दोनों को **(सूरे:)** विद्वान् का **(पथ्येव)** उत्तम गति के अर्थ मार्ग प्राप्त होता है, वैसे **(व्येतु)** विविध प्रकार से प्राप्त होवे। जैसे **(विश्वे)** सब **(पुत्रा:)** अच्छे सन्तानों के तुल्य आज्ञाकारी मोक्ष को प्राप्त हुए विद्वान् लोग **(अमृतस्य)** अविनाशी ईश्वर के योग से **(दिव्यानि)** सुख के प्रकाश में होने वाले **(धामानि)** स्थानों को **(आतस्थु:)** अच्छे प्रकार प्राप्त होते हैं, वैसे मैं भी उनको प्राप्त होऊं॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। योगाभ्यास के ज्ञान को चाहने वाले मनुष्यों को चाहिये कि योग में कुशल विद्वानों का सङ्ग करें। उन के सङ्ग से योग की विधि को जान के ब्रह्मज्ञान का अभ्यास करें। जैसे विद्वान् का प्रकाशित किया हुआ धर्म मार्ग सब को सुख से प्राप्त होता है, वैसे ही योगभ्यासियों के सङ्ग से योगविधि सहज में प्राप्त होती है। कोई भी जीवात्मा इस सङ्ग और ब्रह्मज्ञान के अभ्यास के विना पवित्र होकर सब सुखों को प्राप्त नहीं हो सकता, इसीलिये उस योगविधि के साथ ही सब मनुष्य परब्रह्म की उपासना करें॥५॥

यस्य प्रयाणमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषि:। सविता देवता। निचृज्जगती छन्द:। निषाद: स्वर:॥

मनुष्या: कस्योपासनं कुर्य्युरित्याह॥

मनुष्य किस की उपासना करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

यस्य॑ प्र॒याण॒मन्व॒न्यऽइद्य॒युर्दे॒वा दे॒वस्य॑ महि॒मान॒मोज॑सा।

य: पार्थि॑वानि वि॒म॒मे सऽए॒त॑शो॒ रजा॑ᳪसि दे॒व: स॑वि॒ता म॑हित्व॒ना॥६॥

यस्य॑। प्र॒याण॑म्। प्र॒यान॒मिति॑ प्र॒ऽयान॑म्। अनु॑। अ॒न्ये। इत्। य॒यु:। दे॒वा:। दे॒वस्य॑। म॒हि॒मान॑म्। ओज॑सा। य:। पार्थि॑वानि। वि॒म॒म इति॑ वि॒ऽम॒मे। स:। एत॑श:। रजा॑ᳪसि। दे॒व:। स॒वि॒ता। म॒हि॒त्व॒नेति॑ महि॒ऽत्व॒ना॥६॥

पदार्थ:-**(यस्य)** परमेश्वरस्य **(प्रयाणम्)** प्रयान्ति सर्वाणि सुखानि येन तत्प्रकृष्टं प्रयाणम् **(अनु)** पश्चात् **(अन्ये)** जीवादय: **(इत्)** एव **(ययु:)** प्राप्नुयु: **(देवा:)** विद्वांस: **(देवस्य)** सर्वसुखप्रदातु: **(महिमानम्)** स्तुतिविषयम् **(ओजसा)** पराक्रमेण **(य:)** परमेश्वर: **(पार्थिवानि)** पृथिव्यां विदितानि **(विममे)** विमानयानवन्निर्मिमीते **(स:)** **(एतश:)** सर्वं जगदित: स्वव्याप्त्या प्राप्त:। **इणस्तशन्तशसुनौ॥** (उणा०३।१४७) **(रजांसि)** सर्वान् लोकान् **(देव:)** दिव्यस्वरूप: **(सविता)** सर्वस्य जगतो निर्माता **(महित्वना)** स्वमहिम्ना। अत्र बाहुलकादौणादिक इत्वनि: प्रत्यय:। [अयं मन्त्र: शत०६.३.१.१८ व्याख्यात:]॥६॥

अन्वय:-हे योगिन:! युष्माभिर्यस्य देवस्य महिमानं प्रयाणमन्वन्ये देवा ययु:। य एतश: सविता देवो भगवान् महित्वनौजसा पार्थिवानि रजांसि विममे, स इदेव सततमुपास्यो मन्तव्य:॥६॥

भावार्थ:-ये विद्वांस: सर्वस्य जगतोऽन्तरिक्षेऽनन्तबलेन धर्त्तारं निर्मातारं सुखप्रदं शुद्धं सर्वशक्तिमन्तं सर्वान्तर्यामिणमीश्वरमुपासते, त एव सुखयन्ति नेतरे॥६॥

पदार्थ:-हे योगीपुरुषो! तुम को चाहिये कि **(यस्य)** जिस **(देवस्य)** सब सुख देने हारे ईश्वर के **(महिमानम्)** स्तुति विषय को **(प्रयाणम्)** कि जिस से सब सुख प्राप्त होवे उस के **(अनु)** पीछे **(अन्ये)** जीवादि और **(देवा:)** विद्वान् लोग **(ययु:)** प्राप्त होवें **(य:)** जो **(एतश:)** सब जगत् में अपनी व्याप्ति से प्राप्त हुआ **(सविता)** सब जगत् का रचने हारा **(देव:)** शुद्धस्वरूप भगवान् **(महित्वना)** अपनी महिमा और **(ओजसा)**

पराक्रम से (**पार्थिवानि**) पृथिवी पर प्रसिद्ध (**रजांसि**) सब लोकों को (**विममे**) विमान आदि यानों के समान रचता है (**सः**) वह (**इत्**) ही निरन्तर उपासनीय मानना चाहिये॥६॥

भावार्थः-जो विद्वान् लोग सब जगत के बीच पोल में अपने अनन्त बल से धारण करने, रचने और सुख देने हारे सर्वशक्तिमान् सब के हृदयों में व्यापक ईश्वर की उपासना करते हैं, वे ही सुख पाते हैं, अन्य नहीं॥६॥

देवसवितरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। सविता देवता। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ किमर्थं परमेश्वर उपास्यः प्रार्थनीयश्चास्तीत्याह॥

अब किसलिये परमेश्वर की उपासना और प्रार्थना करनी चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

देव॑ सवितः॒ प्रसु॑व य॒ज्ञं प्रसु॑व य॒ज्ञप॑तिं॒ भगा॑य।

दि॒व्यो ग॑न्ध॒र्वः के॑त॒पूः केत॑न्नः पुनातु वा॒चस्पति॒र्वाच॑ नः स्वदतु॥७॥

देव॑। स॒वि॒त॒रिति॑ सवितः। प्र। सु॒व॒। य॒ज्ञम्। प्र। सु॒व॒। य॒ज्ञप॑ति॒मिति॑ य॒ज्ञऽप॑तिम्। भगा॑य। दि॒व्यः। ग॒न्ध॒र्वः। के॒त॒पूरिति॑ केत॒ऽपूः। केत॑म्। न॒ः। पु॒ना॒तु॒। वा॒चः। पति॑ः। वाच॑म्। न॒ः। स्व॒द॒तु॒॥७॥

पदार्थः-(**देव**) दिव्यविज्ञानप्रद (**सवितः**) सर्वसिद्धयुत्पादक (**प्र**) (**सुव**) उत्पादय (**यज्ञम्**) सुखानां सङ्गमकं व्यवहारम् (**प्र**) (**सुव**) (**यज्ञपतिम्**) एतस्य यज्ञस्य पालकम् (**भगाय**) अखिलैश्वर्य्याय (**दिव्यः**) दिवि शुद्धगुणकर्मसु साधुः (**गन्धर्वः**) यो गां पृथिवीं धरति सः (**केतपूः**) यः केतेन विज्ञानेन पुनाति (**केतम्**) विज्ञानम् (**नः**) अस्माकम् (**पुनातु**) पवित्रीकरोतु (**वाचः**) सत्यविद्यान्विताया वेदवाण्याः (**पतिः**) प्रचारेण रक्षकः (**वाचम्**) वाणीम् (**नः**) अस्माकम् (**स्वदतु**) स्वदतां स्वादिष्ठां करोतु, अत्र व्यत्ययेन परस्मैपदम्। [अयं मन्त्रः शत०६.३.१.१९ व्याख्यातः]॥७॥

अन्वयः-हे देव सत्ययोगविद्ययोपासनीय सवितर्भगवन्! त्वं नो भगाय यज्ञं प्रसुव, यज्ञपतिं प्रसुव। गन्धर्वो दिव्यः केतपूर्भवान्नोस्माकं केतं पुनातु, वाचस्पतिर्भवान्नो वाचं स्वदतु॥७॥

भावार्थः-ये सकलैश्वर्य्योपपन्नं शुद्धं ब्रह्मोपासते योगप्राप्तये प्रार्थयन्ते, तेऽखिलैश्वर्य्यं शुद्धात्मानं कर्त्तुं योगं च प्राप्तुं शक्नुवन्ति। ये जगदीश्वरवाग्वत् स्ववाचं शुन्धन्ति, ते सत्यवाचः सन्तः सर्वक्रियाफलान्याप्नुवन्ति॥७॥

पदार्थः-हे (**देव**) सत्य योगविद्या से उपासना के योग्य शुद्ध ज्ञान देने (**सवितः**) और सब सिद्धियों को उत्पन्न करने हारे परमेश्वर! आप (**नः**) हमारे (**भगाय**) सम्पूर्ण ऐश्वर्य के लिये (**यज्ञम्**) सुखों को प्राप्त कराने हारे व्यवहार को (**प्रसुव**) उत्पन्न कीजिये तथा (**यज्ञपतिम्**) इस सुखदायक व्यवहार के रक्षक जन को (**प्रसुव**) उत्पन्न कीजिये (**गन्धर्वः**) पृथिवी को धरने (**दिव्यः**) शुद्ध गुण, कर्म और स्वभावों में उत्तम और (**केतपूः**) विज्ञान से पवित्र करने हारे आप (**नः**) हमारे (**केतम्**) विज्ञान को (**पुनातु**) पवित्र कीजिये और (**वाचस्पतिः**) सत्य विद्याओं से युक्त वेदवाणी के प्रचार से रक्षा करने वाले आप (**नः**) हमारी (**वाचम्**) वाणी को (**स्वदतु**) स्वादिष्ठ अर्थात् कोमल मधुर कीजिये॥७॥

भावार्थः-जो पुरुष सम्पूर्ण ऐश्वर्य से युक्त शुद्ध, निर्मल ब्रह्म की उपासना और योगविद्या की प्राप्ति के लिये प्रार्थना करते हैं, वे सब ऐश्वर्य्य को प्राप्त अपने आत्मा को शुद्ध और योगविद्या को सिद्ध कर सकते हैं। जो ईश्वर की वाणी के तुल्य अपनी वाणी को शुद्ध करते हैं, वे सत्यवादी हो के सब क्रियाओं के फलों को प्राप्त होते

हैं॥७॥

इमं न इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि:। सविता देवता। भुरिक् शक्वरी छन्द:। धैवत: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

इमं नो देव सवितर्यज्ञं प्रणय देवाव्यꣳ सखिविदꣳ सत्राजितं धनजितꣳ स्वर्जितम्। ऋचा स्तोमꣳ समर्धय गायत्रेण रथन्तरं बृहद् गायत्रवर्त्तनि स्वाहा॥८॥

इमम्। न:। देव। सवित:। यज्ञम्। प्र। नय। देवाव्यमिति देवऽअव्यम्। सखिविदमिति सखिऽविदम्। सत्राजितमिति सत्राऽजितम्। धनजितमिति धनऽजितम्। स्वर्जितमिति स्व:ऽजितम्। ऋचा। स्तोमम्। सम्। अर्धय। गायत्रेण। रथन्तरमिति रथम्ऽतरम्। बृहत्। गायत्रवर्त्तनीति गायत्रऽवर्त्तनि। स्वाहा॥८॥

पदार्थ:-(इमम्) उक्तं वक्ष्यमाणं च **(न:)** अस्माकम् **(देव)** सत्यकामनाप्रद **(सवित:)** अन्तर्यामिरूपेण प्रेरक **(यज्ञम्)** विद्याधर्मसङ्गमयितारम् **(प्र) (नय)** प्रापय **(देवाव्यम्)** देवान् दिव्यान् विदुषो गुणान् वाऽवन्ति येन स देवावीस्तम्, अत्रौणादिक ईप्रत्यय:। **(सखिविदम्)** सखीन् सुहृदो विदन्ति येन तम् **(सत्राजितम्)** सत्रा सत्यं जयत्युत्कर्षति येन तम् **(धनजितम्)** धनं जयत्युत्कर्षति येन तम् **(स्वर्जितम्)** स्व: सुखं जयत्युत्कर्षति येन तम् **(ऋचा)** ऋग्वेदेन **(स्तोमम्)** स्तूयते यस्तम् **(सम्) (अर्धय)** वर्धय **(गायत्रेण)** गायत्रीप्रभृतिछन्दसैव **(रथन्तरम्)** रथै रमणीयैर्यानैस्तरन्ति येन तत् **(गायत्रवर्त्तनि)** गायत्रस्य वर्त्तनिर्मार्गो वर्त्तनं यस्मिन् तत् **(बृहत्)** महत् **(स्वाहा)** सत्यक्रियया वाचा वा। [अयं मन्त्र: शत०६.३.१.२० व्याख्यात:]॥८॥

अन्वय:-हे देव सवितर्जगदीश! त्वं न इमं देवाव्यं सखिविदं सत्राजितं धनजितं स्वर्जितमृचा स्तोमं यज्ञं स्वाहा प्रणय गायत्रेण गायत्रवर्त्तनि बृहद्रथन्तरं च समर्धय॥८॥

भावार्थ:-ये जना ईर्ष्याद्विषादिदोषान् विहायेश्वर इव सर्वै: सह सुहृद् भावमाचरन्ति, ते संवर्धितुं शक्नुवन्ति॥८॥

पदार्थ:-हे **(देव)** सत्य कामनाओं को पूर्ण करने और **(सवित:)** अन्तर्यामिरूप से प्रेरणा करने हारे जगदीश्वर! आप **(न:)** हमारे **(इमम्)** पीछे कहे और आगे जिसको कहेंगे उस **(देवाव्यम्)** दिव्य विद्वान् वा दिव्य गुणों की जिस से रक्षा हो **(सखिविदम्)** मित्रों को जिस से प्राप्त हों **(सत्राजितम्)** सत्य को जिससे जीतें **(धनजितम्)** धन की जिससे उन्नति होवे **(स्वर्जितम्)** सुख को जिस से बढ़ावें और **(ऋचा)** ऋग्वेद से जिस की **(स्तोमम्)** स्तुति हो उस **(यज्ञम्)** विद्या और धर्म का संयोग कराने हारे यज्ञ को **(स्वाहा)** सत्य क्रिया के साथ **(प्रणय)** प्राप्त कीजिये **(गायत्रेण)** गायत्री आदि छन्द से **(गायत्रवर्त्तनि)** गायत्री आदि छन्दों की गानविद्या **(बृहत्)** बड़े **(रथन्तरम्)** अच्छे यानों से जिस के पार हों, उस मार्ग को **(समर्धय)** अच्छे प्रकार बढ़ाइये॥८॥

भावार्थ:-जो मनुष्य ईर्ष्या द्वेष आदि दोषों को छोड़ ईश्वर के समान सब जीवों के साथ मित्रभाव रखते हैं, वे संपत् को प्राप्त होते हैं॥८॥

देवस्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि:। सविता देवता। भुरिगतिशक्वरी छन्द:। पञ्चम: स्वर:॥

मनुष्या भूमितत्त्वादिभ्यो विद्युतं स्वीकुर्य्युरित्याह॥

मनुष्य भूमि आदि तत्त्वों से बिजुली का ग्रहण करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

देवस्य॑ त्वा सवि॒तुः प्र॑स॒वे॒ऽश्विनो॑र्बा॒हुभ्यां॑ पू॒ष्णो हस्ता॑भ्याम्। आद॑दे गाय॒त्रेण॒ छन्द॑साङ्गिर॒स्वत् पृ॑थि॒व्याः स॒धस्था॑द॒ग्निं पु॑री॒ष्य॒मङ्गिर॒स्वदाभ॑र॒ त्रैष्टु॑भेन॒ छन्द॑साङ्गिर॒स्वत्॥ ९॥

दे॒वस्य॑। त्वा॒। स॒वि॒तुः। प्र॒स॒व इति॑ प्र॒ऽस॒वे। अ॒श्विनोः॑। बा॒हुभ्या॑म्। पू॒ष्णः। हस्ता॑भ्याम्। आ। द॒दे॒। गा॒य॒त्रेण॑। छन्द॑सा। अ॒ङ्गि॒र॒स्वत्। पृ॒थि॒व्याः। स॒धस्था॒दिति॑ स॒धऽस्था॑त्। अ॒ग्निम्। पु॒री॒ष्य॒म्। अ॒ङ्गि॒र॒स्वत्। आ। भ॒र॒। त्रैष्टु॑भेन। त्रैस्तु॑भे॒नेति॒ त्रैऽस्तु॑भेन। छन्द॑सा। अ॒ङ्गि॒र॒स्वत्॥ ९॥

पदार्थः-(**देवस्य**) सूर्यादिजगतः प्रदीपकस्य (**त्वा**) त्वाम् (**सवितुः**) सर्वेषामैश्वर्य्यव्यवस्थां प्रति प्रेरकस्य (**प्रसवे**) निष्पन्नैश्वर्ये (**अश्विनोः**) प्राणोदानयोः (**बाहुभ्याम्**) बलाकर्षणाभ्याम् (**पूष्णः**) पुष्टिकर्त्र्या (**हस्ताभ्याम्**) धारणाकर्षणाभ्याम् (**आ**) (**ददे**) स्वीकरोमि (**गायत्रेण**) गायत्रीनिर्मितेनार्थेन (**छन्दसा**) (**अङ्गिरस्वत्**) अङ्गिरोभिरङ्गारैस्तुल्यम् (**पृथिव्याः**) (**सधस्थात्**) सहस्थानात् तलात् (**अग्निम्**) विद्युदादिस्वरूपम् (**पुरीष्यम्**) पुरीष उदके साधुम्। अत्र पॄधातोरौणादिक ईषन् किच्च। **पुरीषमित्युदकनामसु पठितम्॥** (निघ० १।१२) (**अङ्गिरस्वत्**) अङ्गिरोभिः प्राणैस्तुल्यम् (**आ**) (**भर**) धर (**त्रैष्टुभेन**) त्रिष्टुभा निर्मितेनार्थेन (**छन्दसा**) स्वच्छन्देन (**अङ्गिरस्वत्**) अङ्गिरोभिरङ्गैस्तुल्यम्। [अयं मन्त्रः शत० ६.३.१.३८ व्याख्यातः]॥ ९॥

अन्वयः-हे विद्वन्! अहं यं त्वा देवस्य सवितुः प्रसवेऽअश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामङ्गिरस्वदाददे, स त्वं गायत्रेण छन्दसा पृथिव्याः सधस्थादङ्गिरस्वत् त्रैष्टुभेन छन्दसाऽङ्गिरस्वत् पुरीष्यमग्निमाभर॥ ९॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। मनुष्यैरीश्वरसृष्टिगुणविदं विद्वांसं संसेव्य पृथिव्यादिस्थोऽग्निः स्वीकार्य्यः॥ ९॥

पदार्थः-हे विद्वन् पुरुष! मैं जिस (**त्वा**) आप को (**देवस्य**) सूर्य्य आदि सब जगत् के प्रकाश करने और (**सवितुः**) सबको ऐश्वर्यव्यवस्था के प्रति प्रेरित करने वाले के (**प्रसवे**) निष्पन्न ऐश्वर्य में (**अश्विनोः**) प्राण और उदान के (**बाहुभ्याम्**) बल और आकर्षण से तथा (**पूष्णः**) पुष्टिकारक बिजुली के (**हस्ताभ्याम्**) धारण और आकर्षण (**अङ्गिरस्वत्**) अंगारों के समान (**आददे**) ग्रहण करता हूँ सो आप (**गायत्रेण**) गायत्री मन्त्र से निकले (**छन्दसा**) आनन्ददायक अर्थ के साथ (**पृथिव्याः**) पृथिवी के (**सधस्थात्**) एक स्थान से (**अङ्गिरस्वत्**) प्राणों के तुल्य और (**त्रैष्टुभेन**) त्रिष्टुप् मन्त्र से निकले (**छन्दसा**) स्वतन्त्र अर्थ के साथ (**अङ्गिरस्वत्**) चिह्नों के सदृश (**पुरीष्यम्**) जल को उत्पन्न करने हारे (**अग्निम्**) बिजुली आदि तीन प्रकार के अग्नि को (**आभर**) धारण कीजिये॥ ९॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि ईश्वर की सृष्टि के गुणों को जानने हारे विद्वान् की अच्छे प्रकार सेवा करके पृथिवी आदि पदार्थों में रहने वाले अग्नि को स्वीकार करें॥ ९॥

अभ्रिरसीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। सविता देवता। भुरिगनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

मनुष्यैः कथं भूम्यादेः सुवर्णादीनि प्राप्तव्यानीत्याह॥

मनुष्य लोग भूमि आदि से सुवर्ण आदि पदार्थों को कैसे प्राप्त होवें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अभ्रिरसि नार्यसि त्वया वयमग्निꣳ शकेम खनितुꣳ सधस्थ आ।

जागतेन छन्दसाङ्गिरस्वत्॥ १०॥

अभ्रिः। असि। नारी। असि। त्वया। वयम्। अग्निम्। शकेम। खनितुम्। सधस्थ इति सधस्थे। आ। जागतेन। छन्दसा। अङ्गिरस्वत्॥ १०॥

पदार्थः-(**अभ्रिः**) अयोमयं खननसाधनम् (**असि**) अस्ति (**नारी**) नरस्य स्त्रीव साध्यसाधिका (**असि**) अस्ति (**त्वया**) त्वया सह (**वयम्**) (**अग्निम्**) विद्युदादिम् (**शकेम**) शक्नुयाम (**खनितुम्**) (**सधस्थे**) समानस्थाने (**आ**) (**जागतेन**) जगत्या विहितेन साधनेन (**छन्दसा**) (**अङ्गिरस्वत्**) प्राणैस्तुल्यम्। [अयं मन्त्रः शत०६.३.१.३९ व्याख्यातः]॥१०॥

अन्वयः-हे शिल्पिन्! त्वया सह सधस्थे वर्त्तमाना वयं याऽभ्रिरसि नार्य्यसि यां गृहीत्वा जागतेन छन्दसाऽङ्गिरस्वदग्निं खनितुमाशकेम शक्नुयाम तां त्वं निर्मिमीष्व॥१०॥

भावार्थः-मनुष्यैः सुसाधनैः पृथिवीं खनित्वाऽग्निना संयोज्य सुवर्णादीनि निर्मातव्यानि, परन्तु पूर्वं भूगर्भतत्त्वविद्यां प्राप्यैवं कर्त्तुं शक्यमिति वेदितव्यम्॥१०॥

पदार्थः-हे कारीगर पुरुष! जो (**त्वया**) तेरे साथ (**सधस्थे**) एक स्थान में वर्त्तमान (**वयम्**) हम लोग जो (**अभ्रिः**) भूमि खोदने और (**नारी**) विवाहित उत्तम स्त्री के समान कार्य्यों को सिद्ध करने हारी लोहे आदि की कसी (**असि**) है, जिससे कारीगर लोग भूगर्भविद्या को जान सकें, उस को ग्रहण करके (**जागतेन**) जगती मन्त्र से विधान किये (**छन्दसा**) सुखदायक स्वतन्त्र साधन से (**अङ्गिरस्वत्**) प्राणों के तुल्य (**अग्निम्**) विद्युत आदि अग्नि को (**खनितुम्**) खोदने के लिये (**आशकेम**) सब प्रकार समर्थ हों, उस को तू बना॥१०॥

भावार्थः-मनुष्यों को उचित है कि अच्छे खोदने के साधनों से पृथिवी को खोद और अग्नि के साथ संयुक्त करके सुवर्ण आदि पदार्थों को बनावें, परन्तु पहिले भूगर्भ की तत्त्वविद्या को प्राप्त होके ऐसा कर सकते हैं, ऐसा निश्चित जानना चाहिये॥१०॥

हस्त इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। सविता देवता। भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनः स एव विषय उच्यते॥

फिर भी वही उक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

हस्तऽआधाय सविता बिभ्रदभ्रिꣳ हिरण्ययीम्।

अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्याऽअध्याभरदानुष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वत्॥ ११॥

हस्ते। आधायेत्याऽधाय। सविता। बिभ्रत्। अभ्रिम्। हिरण्ययीम्। अग्नेः। ज्योतिः। निचाय्येति निऽचाय्य। पृथिव्याः। अधि। आ। अभरत्। आनुष्टुभेन। आनुस्तुभेनेत्यानुऽस्तुभेन। छन्दसा। अङ्गिरस्वत्॥ ११॥

पदार्थः-(**हस्ते**) करे (**आधाय**) (**सविता**) ऐश्वर्यवान् (**बिभ्रत्**) धरन् (**अभ्रिम्**) खननसाधकं शस्त्रम्

(हिरण्ययीम्) तेजोमययीम् **(अग्नेः)** विद्युदादेः **(ज्योतिः)** द्योतमानम् **(निचाय्य)** **(पृथिव्याः)** **(अधि)** **(आ)** **(अभरत्)** धरेत् **(आनुष्टुभेन)** अनुष्टुब्विहितार्थयुक्तेन **(छन्दसा)** **(अङ्गिरस्वत्)** अङ्गिरसा प्राणेन तुल्यस्य। [अयं मन्त्रः शत०६.३.१.४१ व्याख्यातः]॥११॥

अन्वयः-सविता ऐश्वर्य्यप्रसाधकः शिल्प्यानुष्टुभेन छन्दसा हिरण्ययीमभ्रिं हस्ते आधाय बिभ्रत् सन्नङ्गिरस्वदग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याभरत्॥११॥

भावार्थः-मनुष्यैर्यथाऽयसि पाषणे च विद्युद्वर्त्तते, तथैव सर्वत्र पदार्थेषु प्रविष्टाऽस्ति, तद्विद्यां विज्ञाय कार्य्येषूपयुज्य भूमावाग्नेयादीन्यस्त्राणि विमानादीनि यानानि वा साधनीयानि॥११॥

पदार्थः-**(सविता)** ऐश्वर्य का उत्पन्न करने हारा कारीगर मनुष्य **(आनुष्टुभेन)** अनुष्टुप् छन्द में कहे हुए **(छन्दसा)** स्वतन्त्र अर्थ के योग से **(हिरण्ययीम्)** तेजोमय शुद्ध धातु से बने **(अभ्रिम्)** खोदने के शस्त्र को **(हस्ते)** हाथ में **(आधाय)** **(बिभ्रत्)** लिये हुए **(अङ्गिरस्वत्)** प्राण के तुल्य **(अग्नेः)** विद्युत् आदि अग्नि के **(ज्योतिः)** तेज को **(निचाय्य)** निश्चय करके **(पृथिव्याः)** पृथिवी के **(अधि)** ऊपर **(आभरत्)** अच्छे प्रकार धारण करे॥११॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि जैसे लोहे और पत्थरों में बिजुली रहती है, वैसे ही सब पदार्थों में प्रवेश कर रही है। उस की विद्या को ठीक-ठीक जान और कार्यों में उपयुक्त करके इस पृथिवी पर आग्नेय आदि अस्त्र और विमान आदि यानों को सिद्ध करें॥११॥

प्रतूर्त्तमित्यस्य नाभानेदिष्ठ ऋषिः। वाजी देवता। आस्तारपङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

प्रतूर्त्तं वाजिन्नाद्रव वरिष्ठामनु संवतम्।

दिवि ते जन्म परममन्तरिक्षे तव नाभिः पृथिव्यामधि योनिरित्॥१२॥

प्रतूर्त्तमिति प्रऽतूर्त्तम्। वाजिन्। आ। द्रव। वरिष्ठाम्। अनु। संवतमिति सम्ऽवतम्। दिवि। ते। जन्म। परमम्। अन्तरिक्षे। तव। नाभिः। पृथिव्याम्। अधि। योनिः। इत्॥१२॥

पदार्थः-**(प्रतूर्त्तम्)** अतितूर्णम् **(वाजिन्)** प्रशस्तज्ञानयुक्त विद्वन् **(आ)** **(द्रव)** आगच्छ **(वरिष्ठाम्)** अतिशयेन वरां गतिम् **(अनु)** **(संवतम्)** सम्यग्विभक्ताम् **(दिवि)** सूर्य्यप्रकाशे **(ते)** तव **(जन्म)** प्रादुर्भावः **(परमम्)** **(अन्तरिक्षे)** अवकाशे **(तव)** **(नाभिः)** **(पृथिव्याम्)** **(अधि)** उपरि **(योनिः)** निमित्तं प्रयोजनम् **(इत्)** एव। [अयं मन्त्रः शत०६.३.२.२ व्याख्यातः]॥१२॥

अन्वयः-हे वाजिन्! यस्य ते तव शिल्पविद्यया दिवि परमं जन्म तवाऽन्तरिक्षे नाभिः पृथिव्यां योनिरस्ति, स त्वं विमानान्यधिष्ठाय वरिष्ठां संवतं गतिं प्रतूर्त्तमिदन्वाद्रव॥१२॥

भावार्थः-यदा मनुष्या विद्याहस्तक्रिययोर्मध्ये परमप्रयत्नेन प्रादुर्भूत्वा विमानादीनि यानानि विधाय गतानुगतं शीघ्रं कुर्वन्ति, तदा तेषां श्रीः सुलभा भवति॥१२॥

पदार्थः-हे **(वाजिन्)** प्रशंसित ज्ञान से युक्त विद्वन्! जिस **(ते)** आप का शिल्पविद्या से **(दिवि)** सूर्य्य के

प्रकाश में **(परमम्)** उत्तम **(जन्म)** प्रसिद्धि **(तव)** आप का **(अन्तरिक्षे)** आकाश में **(नाभिः)** बन्धन और **(पृथिव्याम्)** इस पृथिवी में **(योनिः)** निमित्त प्रयोजन है सो आप विमानादि यानों के अधिष्ठाता होकर **(वरिष्ठाम्)** अत्यन्त उत्तम **(संवतम्)** अच्छे प्रकार विभाग की हुई गति को **(प्रतूर्त्तम्)** अतिशीघ्र **(इत्)** ही **(अनु)** पश्चात् **(आ)** **(द्रव)** अच्छे प्रकार चलिये॥१२॥

भावार्थः-जब मनुष्य लोग विद्या और क्रिया के बीच में परम प्रयत्न के साथ प्रसिद्ध हो और विमान आदि यानों को रच के शीघ्र जाना-आना करते हैं, तब उन को धन की प्राप्ति सुगम होती है॥१२॥

युञ्जाथामित्यस्य कुश्रिर्ऋषिः। वाजी देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनर्मनुष्यैः किं क्व योजनीयमित्याह॥

फिर मनुष्यों को क्या कहां जोड़ना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

युञ्जाथाꣳ रासभं युवमस्मिन् यामे वृषण्वसू।

अग्निं भरन्तमस्मयुम्॥१३॥

युञ्जाथाम्। रासभम्। युवम्। अस्मिन्। यामे। वृषण्वसू इति वृषण्ऽवसू। अग्निम्। भरन्तम्। अस्मयुमित्यस्मऽयुम्॥१३॥

पदार्थः-**(युञ्जाथाम्)** **(रासभम्)** जलाग्न्योर्वेगगुणाख्यमश्वम् **(युवम्)** युवां शिल्पितत्स्वामिनौ **(अस्मिन्)** **(यामे)** यान्ति येन यानेन तस्मिन् **(वृषण्वसू)** वर्षकौ वसन्तौ च **(अग्निम्)** प्रसिद्धं विद्युतं वा **(भरन्तम्)** धरन्तम् **(अस्मयुम्)** अस्मान् यापयितारम्। अत्रास्मदुपपदाद्याधातोरौणादिकः कुः, छान्दसो वर्णलोपो वेति (महा०८.२.२५) दलोपः। [अयं मन्त्रः शत०६.३.२.३ व्याख्यातः]॥१३॥

अन्वयः-हे वृषण्वसू सूर्य्यवायू इव शिल्पिनौ! युवमस्मिन् यामे रासभमस्मयुं भरन्तमग्निं युञ्जाथाम्॥१३॥

भावार्थः-यैर्मनुष्यैर्यस्मिन् याने यन्त्रकलाजलाग्निप्रयोगाः क्रियन्ते, ते सुखेन देशान्तरं गन्तुं शक्नुवन्ति॥१३॥

पदार्थः-हे **(वृषण्वसू)** सूर्य्य और वायु के समान सुख वर्षाने वा सुख में बसने हारे कारीगर तथा उसके स्वामी लोगो! **(युवम्)** तुम दोनों **(अस्मिन्)** इस **(यामे)** यान में **(रासभम्)** जल और अग्नि के वेगगुणरूप अश्व तथा **(अस्मयुम्)** हम को ले चलने तथा **(भरन्तम्)** धारण करने हारे **(अग्निम्)** प्रसिद्ध वा बिजुली रूप अग्नि को **(युञ्जाथाम्)** युक्त करो॥१३॥

भावार्थः-जो मनुष्य इस विमान आदि यान में यन्त्र, कला, जल और अग्नि के प्रयोग करते हैं, वे सुख से दूसरे देशों में जाने को समर्थ होते हैं॥१३॥

योगेयोग इत्यस्य शुनःशेप ऋषिः। क्षत्रपतिर्देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

प्रजाजनाः कीदृशं राजानमङ्गीकुर्य्युरित्याह॥

प्रजाजन कैसे पुरुष को राजा मानें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे।

सखा॑यऽइन्द्र॑मू॒तये॑॥ १४॥

योगे॑योग॒ इति॒ योगे॑ऽयोगे। त॒वस्त॑र॒मिति॑ त॒वःऽत॑रम्। वाजे॑वाज॒ इति॒ वाजे॑ऽवाजे। ह॒वाम॒हे॒। सखा॑यः। इन्द्र॑म्। ऊ॒तये॑॥ १४॥

पदार्थः-(**योगेयोगे**) युञ्जते यस्मिन् यस्मिन् (**तवस्तरम्**) अत्यन्तं बलयुक्तम्। **तव इति बलनामसु पठितम्॥** (निघं०२।९) ततस्तरप् (**वाजेवाजे**) सङ्ग्रामे सङ्ग्रामे (**हवामहे**) आह्वयामहे (**सखायः**) परस्परं सुहृदः सन्तः (**इन्द्रम्**) परमैश्वर्य्ययुक्तं राजानम् (**ऊतये**) रक्षणाद्याय॥ १४॥

अन्वयः-हे सखायः! यथा वयमूतये योगेयोगे वाजेवाजे तवस्तरमिन्द्रं हवामहे, तथा यूयमप्येतमाह्वयत॥ १४॥

भावार्थः-ये परस्परं मित्रा भूत्वाऽन्योन्यस्य रक्षार्थं बलिष्ठं धार्मिकं राजानं स्वीकुर्वन्ति, ते निर्विघ्नाः सन्तः सुखमेधन्ते॥ १४॥

पदार्थः-हे (**सखायः**) परस्पर मित्रता रखने हारे लोगो! जैसे हम लोग (**ऊतये**) रक्षा आदि के लिये (**योगेयोगे**) जिस-जिस में युक्त होते हैं, उस-उस तथा (**वाजेवाजे**) सङ्ग्राम-सङ्ग्राम के बीच (**तवस्तरम्**) अत्यन्त बलवान् (**इन्द्रम्**) परमैश्वर्ययुक्त पुरुष को राजा (**हवामहे**) मानते हैं, वैसे ही तुम लोग भी मानो॥ १४॥

भावार्थः-जो मनुष्य परस्पर मित्र हो के एक दूसरे की रक्षा के लिये अत्यन्त बलवान् धर्मात्मा पुरुष को राजा मानते हैं, वे सब विघ्नों से अलग हो के सुख की उन्नति कर सकते हैं॥ १४॥

प्रतूर्वन्नित्यस्य शुनःशेप ऋषिः। गणपतिर्देवता। आर्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुना राजा किं कृत्वा किं प्राप्नुयादित्याह॥

फिर राजा क्या करके किस को प्राप्त हो, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

प्र॒तूर्व॒न्नेह्य॑व॒क्राम॒न्नश॑स्ती रु॒द्रस्य॒ गाण॑पत्यं मयो॒भूरेहि॑।

उ॒र्व॒न्तरि॑क्षं वी॒हि स्व॒स्तिग॑व्यूति॒रभ॑यानि कृ॒ण्वन् पू॒ष्णा स॒युजा॑ स॒ह॥ १५॥

प्र॒तूर्व॒न्निति॑ प्र॒ऽतूर्व॑न्। आ। इ॒हि॒। अ॒व॒क्राम॒न्नित्य॑व॒ऽक्राम॑न्। अश॑स्तीः। रु॒द्रस्य॑। गाण॑पत्य॒मिति॒ गाण॑ऽपत्यम्। म॒यो॒भूरिति॑ मय॒ःऽभूः। आ। इ॒हि॒। उ॒रु। अ॒न्तरि॑क्षम्। वि। इ॒हि॒। स्व॒स्तिग॑व्यूति॒रिति॑ स्व॒स्तिऽग॑व्यूतिः। अभ॑यानि। कृ॒ण्वन्। पू॒ष्णा। स॒युजेति॑ स॒ऽयुजा॑। स॒ह॥ १५॥

पदार्थः-(**प्रतूर्वन्**) हिंसन् (**आ**) (**इहि**) आगच्छ (**अवक्रामन्**) देशदेशान्तरानुल्लङ्घयन् (**अशस्तीः**) अप्रशस्ताः शत्रुसेनाः (**रुद्रस्य**) शत्रुरोदकस्य स्वसेनापतेः (**गाणपत्यम्**) गणानां सेनासमूहानां पतित्वम् (**मयोभूः**) मयः सुखं भावयन् (**आ**) (**इहि**) (**उरु**) (**अन्तरिक्षम्**) आकाशम् (**वि**) (**इहि**) विविधतया गच्छ (**स्वस्तिगव्यूतिः**) स्वस्ति सुखेन सह गव्यूतिर्मार्गो यस्य सः (**अभयानि**) स्वराज्ये सेनायां चाविद्यमानं भयं येषु तानि (**कृण्वन्**) सम्पादयन् (**पूष्णा**) पुष्टेन स्वकीयेन सैन्येन (**सयुजा**) यत्समानं युनक्ति तेन सहितः (**सह**) साकम्। [अयं मन्त्रः शत०६.३.२.७-८ व्याख्यातः]॥ १५॥

अन्वयः-हे राजन्! स्वस्तिगव्यूतिस्त्वं पूष्णा सयुजा सहाशस्तीः प्रतूर्वन्नेहि शत्रुदेशानवक्रामन्नेहि मयोभूस्त्वं

रुद्रस्य गाणपत्यमेहि। अभयानि कृण्वन् सन्नन्तरिक्षमुरु वीहि॥१५॥

भावार्थः-राजा सदैव स्वसेनां सुशिक्षितां हृष्टां पुष्टां रक्षेत्। यदाऽरिभिः सह योद्धुमिच्छेत् तदा स्वराज्यमनुपद्रवं संरक्ष्य युक्त्या बलेन च शत्रून् हिंसेत् वा श्रेष्ठान् पालयित्वा सर्वत्र सत्कीर्तिं प्रसारयेत्॥१५॥

पदार्थः-हे राजन्! **(स्वस्तिगव्यूतिः)** सुख के साथ जिस का मार्ग है, ऐसे आप **(सयुजा)** एक साथ युक्त करने वाली **(पूष्णा)** बल पुष्टि से युक्त अपनी सेना के **(सह)** साथ **(अशस्तीः)** निन्दित शत्रुओं की सेनाओं को **(प्रतूर्वन्)** मारते हुए **(एहि)** प्राप्त हूजिये। शत्रुओं के देशों का **(अवक्रामन्)** उल्लङ्घन करते हुए **(एहि)** आइये **(मयोभूः)** सुख को उत्पन्न करते आप **(रुद्रस्य)** शत्रुओं को रुलाने हारे अपने सेनापति के **(गाणपत्यम्)** सेनासमूह के स्वामीपन को **(एहि)** प्राप्त हूजिये और **(अभयानि)** अपने राज्य में सब प्राणियों को भयरहित **(कृण्वन्)** करते हुए **(अन्तरिक्षम्)** **(उरु)** परिपूर्ण आकाश को **(वीहि)** विविध प्रकार से प्राप्त हूजिये॥१५॥

भावार्थः-राजा को अति उचित है कि अपनी सेना को सदैव अच्छी शिक्षा, हर्ष, उत्साह और पोषण से युक्त रक्खे। जब शत्रुओं के साथ युद्ध किया चाहे, तब अपने राज्य को उपद्रवरहित कर युक्ति तथा बल से शत्रुओं को मारे और सज्जनों की रक्षा करके सर्वत्र सुन्दर कीर्ति फैलावे॥१५॥

पृथिव्या इत्यस्य शुनःशेप ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

मनुष्यैः कस्माद् विद्युत् स्वीकार्य्येत्याह॥

मनुष्य किस पदार्थ से बिजुली का ग्रहण करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

पृथिव्याः सधस्थादग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वदाभराग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वदच्छेमोऽग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वद्भरिष्यामः॥ १६॥

पृथिव्याः। सधस्थादिति सधऽस्थात्। अग्निम्। पुरीष्यम्। अङ्गिरस्वत्। आ। भर। अग्निम्। पुरीष्यम्। अङ्गिरस्वत्। अच्छ। इमः। अग्निम्। पुरीष्यम्। अङ्गिरस्वत्। भरिष्यामः॥ १६॥

पदार्थः-**(पृथिव्याः)** भूमेरन्तरिक्षस्य वा **(सधस्थात्)** सहस्थानात् **(अग्निम्)** भूमिस्थं विद्युतं वा **(पुरीष्यम्)** यः सुखं पृणाति स पुरीषस्तत्र साधुम् **(अङ्गिरस्वत्)** अङ्गिरसा सूर्येण तुल्यम् **(आ)** **(भर)** धर **(अग्निम्)** अन्तरिक्षे वाय्वादिस्थम् **(पुरीष्यम्)** **(अङ्गिरस्वत्)** **(अच्छ)** उत्तमरीत्या **(इमः)** प्राप्नुमः **(अग्निम्)** **(पुरीष्यम्)** **(अङ्गिरस्वत्)** **(भरिष्यामः)** धरिष्यामः। [अयं मन्त्रः शत०६.३.२.९; ६.३.३.५ व्याख्यातः]॥१६॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यथा वयं पृथिव्याः सधस्थादङ्गिरस्वत् पुरीष्यमग्निमच्छेमः। यथा चाऽङ्गिरस्वत् पुरीष्यमग्निं भरिष्यामस्तथा त्वमप्यङ्गिरस्वत् पुरीष्यमग्निमाभर॥१६॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। मनुष्यैर्विदुषामेवाऽनुकरणं कर्त्तव्यम्, नाऽविदुषाम्। सर्वदोत्साहेनाग्न्यादिपदार्थविद्यां गृहीत्वा सुखं वर्द्धनीयम्॥१६॥

पदार्थः-हे विद्वन्! जैसे हम लोग **(पृथिव्याः)** भूमि और अन्तरिक्ष के **(सधस्थात्)** एक स्थान से **(अङ्गिरस्वत्)** प्राणों के समान **(पुरीष्यम्)** अच्छा सुख देने हारे **(अग्निम्)** भूमिमण्डल की बिजुली को **(अच्छ)** उत्तम रीति से **(इमः)** प्राप्त होते और जैसे **(अङ्गिरस्वत्)** प्राणों के समान **(पुरीष्यम्)** उत्तम सुखदायक **(अग्निम्)** अन्तरिक्षस्थ बिजुली को **(भरिष्यामः)** धारण करें, वैसे आप भी **(अङ्गिरस्वत्)** सूर्य्य के समान **(पुरीष्यम्)** उत्तम

सुख देनेवाले **(अग्निम्)** पृथिवी पर वर्त्तमान अग्नि को **(आभर)** अच्छे प्रकार धारण कीजिये॥१६॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों के समान काम करें, मूर्खवत् नहीं और सब काल में उत्साह के साथ अग्नि आदि की पदार्थविद्या का ग्रहण करके सुख बढ़ाते रहें॥१६॥

अन्वग्निरित्यस्य पुरोधा ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

विद्वांसः किंवत्किं कुर्य्युरित्युपदिश्यते॥

विद्वान् लोग किस के समान क्या करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अन्वग्निरुषसामग्रमख्यदन्वहानि प्रथमो जातवेदाः।

अनु सूर्यस्य पुरुत्रा च रश्मीननु द्यावापृथिवीऽआततन्थ॥१७॥

अनु। अग्निः। उषसाम्। अग्रम्। अख्यत्। अनु। अहानि। प्रथमः। जातवेदा इति जातऽवेदाः। अनु। सूर्यस्य। पुरुत्रेति पुरुऽत्रा। च। रश्मीन्। अनु। द्यावापृथिवीऽइति द्यावापृथिवी। आ। ततन्थ॥१७॥

पदार्थः-**(अनु) (अग्निः)** पावकः **(उषसाम्) (अग्रम्)** पूर्वम् **(अख्यत्)** प्रख्यातो भवति **(अनु) (अहानि)** दिनानि **(प्रथमः) (जातवेदाः)** यो जातेषु विद्यते स सूर्य्यः **(अनु) (सूर्यस्य) (पुरुत्रा)** बहून् **(च) (रश्मीन्) (अनु) (द्यावापृथिवी) (आ) (ततन्थ)** तनोति। [अयं मन्त्रः शत०६.३.३.६ व्याख्यातः]॥१७॥

अन्वयः-हे विद्वन्! त्वं यथा प्रथमो जातवेदा अग्निरुषसामग्रमहान्यन्वख्यत् सूर्य्यस्याग्रं पुरुत्रा रश्मीनन्वाततन्थ। द्यावापृथिवी च तथा विद्याव्यवहारानन्वातनुहि॥१७॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा कारणकार्य्याख्यो विद्युदग्निरनुपूर्वं सवित्रुषोदिनानि कृत्वा पृथिव्यादीनि प्रकाशयति, तथा विद्वद्भिः सुशिक्षां कृत्वा ब्रह्मचर्य्यविद्याधर्माऽनुष्ठानसुशीलानि सर्वत्र प्रचार्य सर्वे ज्ञानानन्दाभ्यां प्रकाशनीयाः॥१७॥

पदार्थः-हे विद्वन्! आप जैसे **(प्रथमः) (जातवेदाः)** उत्पन्न हुए पदार्थों में पहिले ही विद्यमान सूर्य्यलोक और **(अग्निः)** अग्नि **(उषसाम्)** उषःकाल से **(अग्रम्)** पहिले ही **(अहानि)** दिनों को **(अन्वख्यत्)** प्रसिद्ध करता है **(सूर्य्यस्य)** सूर्य्य के **(अग्रम्)** पहिले **(पुरुत्रा)** बहुत **(रश्मीन्)** किरणों को **(अन्वाततन्थ)** फैलाता **(द्यावापृथिवी च)** तथा सूर्य्य और पृथिवी लोक को प्रसिद्ध करता है, वैसे विद्या के व्यवहारों की प्रवृत्ति कीजिये॥१७॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे कारण रूप विद्युत् और कार्य्यरूप प्रसिद्ध अग्नि क्रम से सूर्य्य, उषःकाल और दिनों को उत्पन्न करके पृथिवी आदि पदार्थों को प्रकाशित करते हैं, वैसे ही विद्वानों को चाहिये कि सुन्दर शिक्षा दे ब्रह्मचर्य्य विद्या धर्म्म के अनुष्ठान और अच्छे स्वभाव आदि का सर्वत्र प्रचार करके सब मनुष्यों को ज्ञान और आनन्द से प्रकाशयुक्त करें॥१७॥

आगत्येत्यस्य मयोभूर्ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथ सभेशः किंवत् किं कुर्य्यादित्याह॥

अब सभापति राजा किसके समान क्या करे, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

आगत्य वाज्यध्वानꣳ सर्वा मृधो विधूनुते।

अग्निꣳ सधस्थे महति चक्षुषा निचिकीषते॥१८॥

आगत्येत्याऽऽगत्य। वाजी। अध्वानम्। सर्वाः। मृधः। वि। धूनुते। अग्निम्। सधस्थ इति सधस्थे। महति। चक्षुषा। नि। चिकीषते॥१८॥

पदार्थः-(**आगत्य**) (**वाजी**) वेगवानश्वः (**अध्वानम्**) मार्गम् (**सर्वाः**) (**मृधः**) सङ्ग्रामान् (**वि**) (**धूनुते**) कम्पयति (**अग्निम्**) (**सधस्थे**) सहस्थाने (**महति**) विशाले (**चक्षुषा**) नेत्रेण (**नि**) (**चिकीषते**) चेतुमिच्छति। [अयं मन्त्रः शत०६.३.३.८ व्याख्यातः]॥१८॥

अन्वयः-हे विद्वन् राजन्! भवान् यथा वाज्यश्वोऽध्वानमागत्य सर्वा मृधो विधूनुते, यथा गृहस्थश्चक्षुषा महति सधस्थेऽग्निं निचिकीषते तथा सर्वान् सङ्ग्रामान् विधूनोतु। गृहे गृहे विद्यानिचयं च करोतु॥१८॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। गृहस्था अश्ववद् गत्वागत्य शत्रून् जित्वाग्नेयास्त्रादिविद्यां संपाद्य बलाबलं पर्य्यालोच्य रागद्वेषादीन् शमित्वाऽधार्मिकान् शत्रून् जयेयुः॥१८॥

पदार्थः-हे राजन्! आप जैसे (**वाजी**) वेगवान् घोड़ा (**अध्वानम्**) अपने मार्ग को (**आगत्य**) प्राप्त हो के (**सर्वाः**) सब (**मृधः**) सङ्ग्रामों को (**विधूनुते**) कंपाता है और जैसे गृहस्थ पुरुष (**चक्षुषा**) नेत्रों से (**महति**) सुन्दर (**सधस्थे**) एक स्थान में (**अग्निम्**) अग्नि का (**निचिकीषते**) चयन किया चाहता है, वैसे सब सङ्ग्रामों को कंपाइये और घर-घर में विद्या का प्रचार कीजिये॥१८॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। गृहस्थों को चाहिये कि घोड़ों के समान जाना-आना कर, शत्रुओं को जीत, आग्नेयादि अस्त्रविद्या को सिद्ध कर, अपने बलाऽबल को विचार और राग-द्वेष आदि दोषों की शान्ति करके अधर्मी शत्रुओं को जीतें॥१८॥

आक्रम्येत्यस्य मयोभूर्ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

मनुष्यजन्म प्राप्य विद्या अधीत्यातः किं कर्त्तव्यमित्याह॥

मनुष्य जन्म पा और विद्या पढ़ के पश्चात् क्या करे, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

आक्रम्य वाजिन् पृथिवीमग्निमिच्छ रुचा त्वम्।

भूम्या वृत्वाय नो ब्रूहि यतः खनेम तं वयम्॥१९॥

आक्रम्येत्याऽक्रम्य। वाजिन्। पृथिवीम्। अग्निम्। इच्छ। रुचा। त्वम्। भूम्याः। वृत्वाय। नः। ब्रूहि। यतः। खनेम। तम्। वयम्॥१९॥

पदार्थः-(**आक्रम्य**) (**वाजिन्**) प्रशस्तविज्ञानवन् (**पृथिवीम्**) भूमिराज्यम् (**अग्निम्**) अग्निविद्याम् (**इच्छ**) (**रुचा**) प्रीत्या (**त्वम्**) (**भूम्याः**) क्षितेर्मध्ये (**वृत्वाय**) स्वीकृत्य। अत्र **क्त्वो यक्** [अष्टा०७.१.४७] इति यगागमः। (**नः**) अस्मान् (**ब्रूहि**) भूगर्भाग्निविद्यामुपदिश (**यतः**) (**खनेम**) (**तम्**) भूगोलम् (**वयम्**)॥१९॥

अन्वयः-हे वाजिन् विद्वन् सभेश राजस्त्वं रुचा शत्रूनाक्रम्य पृथिवीमग्निं चेच्छ, भूम्या नो वृत्वाय ब्रूहि, यतो वयं तं खनेम॥१९॥

भावार्थः-मनुष्यैर्भूगर्भाग्निविद्यया पार्थिवान् पदार्थान् सुपरीक्ष्य सुवर्णादीनि रत्नान्युत्साहेन प्राप्तव्यानि। ये खनितारो भृत्याः सन्ति तान् प्रति तद्विद्योपदेष्टव्या॥१९॥

पदार्थः-हे **(वाजिन्)** प्रशंसित ज्ञान वाले सभापति विद्वान् राजा! **(त्वम्)** आप **(रुचा)** प्रीति से शत्रुओं को **(आक्रम्य)** पादाक्रान्त कर **(पृथिवीम्)** भूमि के राज्य और **(अग्निम्)** [अग्नि] विद्या की **(इच्छ)** इच्छा कीजिये और **(भूम्याः)** पृथिवी के बीच **(नः)** हम लोगों को **(वृत्वाय)** स्वीकार करके हमारे लिये **(ब्रूहि)** भूगर्भ और अग्निविद्या का उपदेश कीजिये **(यतः)** जिस से **(वयम्)** हम लोग **(तम्)** उस विद्या में **(खनेम)** प्रविष्ट होवें॥१९॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये की भूगर्भ और अग्नि विद्या से पृथिवी के पदार्थों को अच्छे प्रकार परीक्षा करके सुवर्ण आदि रत्नों को उत्साह के साथ प्राप्त होवें और जो पृथिवी को खोदने वाले नौकर-चाकर हैं, उन को इस विद्या का उपदेश करें॥१९॥

द्यौस्त इत्यस्य मयोभूर्ऋषिः। क्षत्रपतिर्देवता। निचृदार्षी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

मनुष्याः किं साध्नुयुरित्याह॥

मनुष्य क्या करके क्या सिद्ध करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

द्यौस्ते॑ पृ॒ष्ठं पृ॑थि॒वी स॒धस्थ॑मा॒त्मान्तरि॑क्षꣳ समु॒द्रो योनि॑ः।

वि॒ख्याय॒ चक्षु॑षा॒ त्वम॒भि ति॑ष्ठ पृतन्य॒तः॥२०॥

द्यौः। ते॒। पृ॒ष्ठम्। पृ॒थि॒वी। स॒धस्थ॒मिति॑ स॒धऽस्थ॑म्। आ॒त्मा। अ॒न्तरि॑क्षम्। स॒मु॒द्रः। योनि॑ः। वि॒ख्यायेति॑ वि॒ऽख्याय॑। चक्षु॑षा। त्वम्। अ॒भि। ति॒ष्ठ। पृ॒त॒न्य॒तः॥२०॥

पदार्थः-**(द्यौः)** प्रकाश इव विनयः **(ते)** तव **(पृष्ठम्)** अर्वाग्व्यवहारः **(पृथिवी)** भूमिरिव **(सधस्थम्)** सहस्थानम् **(आत्मा)** स्वस्वरूपम् **(अन्तरिक्षम्)** आकाशइवाक्षयोऽक्षोभः **(समुद्रः)** सागर इव **(योनिः)** निमित्तम् **(विख्याय)** प्रसिद्धीकृत्य **(चक्षुषा)** लोचनेन **(त्वम्)** **(अभि)** आभिमुख्ये **(तिष्ठ)** **(पृतन्यतः)** आत्मनः पृतनामिच्छतो जनस्य। [अयं मन्त्रः शत०६.३.३.१२ व्याख्यातः]॥२०॥

अन्वयः-हे विद्वन् राजन्! यस्य ते तव द्यौः पृष्ठं पृथिवी सधस्थमन्तरिक्षमात्मा समुद्रो योनिरस्ति, स त्वं चक्षुषा विख्याय पृतन्यतोऽभितिष्ठ॥२०॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यो न्यायपथानुगामी, दृढोत्साहस्थानात्मा, यस्य प्रयोजनानि विवेकसाध्यानि सन्ति, तस्य वीरसेना जायते, स ध्रुवं विजयं कर्तुं शक्नुयात्॥२०॥

पदार्थः-हे विद्वन् राजन्! जिस **(ते)** आप का **(द्यौः)** प्रकाश के तुल्य विनय **(पृष्ठम्)** इधर का व्यवहार **(पृथिवी)** भूमि के समान **(सधस्थम्)** साथ स्थिति **(अन्तरिक्षम्)** आकाश के समान अविनाशी धैर्ययुक्त **(आत्मा)** अपना स्वरूप और **(समुद्रः)** समुद्र के तुल्य **(योनिः)** निमित्त है सो **(त्वम्)** आप **(चक्षुषा)** विचार के साथ **(विख्याय)** अपना ऐश्वर्य प्रसिद्ध करके **(पृतन्यतः)** अपनी सेना को लड़ाने की इच्छा करते हुए मनुष्य के **(अभि)** सन्मुख **(तिष्ठ)** स्थित हूजिये॥२०॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो पुरुष न्याय मार्ग के अनुसार उत्साह, स्थान और आत्मा जिसके दृढ़ हों; विचार से सिद्ध करने योग्य जिसके प्रयोजन हों, उसकी सेना वीर होती है, वह निश्चय

विजय करने को समर्थ होवे॥२०॥

उत्क्रामेत्यस्य मयोभूर्ऋषिः। द्रविणोदा देवता। आर्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

मनुष्यैरिह परमपुरुषार्थेनैश्वर्य्यं जनितव्यमित्याह॥

मनुष्यों को योग्य है कि इस संसार में परम पुरुषार्थ से ऐश्वर्य उत्पन्न करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

उत्क्राम महते सौभगायास्मादास्थानाद् द्रविणोदा वाजिन्।

वयꣳ स्याम सुमतौ पृथिव्याऽअग्निं खनन्तऽउपस्थेऽअस्याः॥ २१॥

उत्। क्राम। महते। सौभगाय। अस्मात्। आस्थानादित्याऽस्थानात्। द्रविणोदा इति द्रविणःऽदाः। वाजिन्। वयम्। स्याम। सुमताविति सुऽमतौ। पृथिव्याः। अग्निम्। खनन्तः। उपस्थ इत्युपऽस्थे। अस्याः॥ २१॥

पदार्थः-(**उत्**) (**क्राम**) (**महते**) (**सौभगाय**) शौभनैश्वर्य्याय (**अस्मात्**) (**आस्थानात्**) निवासस्थानस्य सकाशात् (**द्रविणोदाः**) धनप्रदः (**वाजिन्**) प्राप्तैश्वर्य्य (**वयम्**) (**स्याम**) (**सुमतौ**) शोभनप्रज्ञायाम् (**पृथिव्याः**) भूमेः (**अग्निम्**) (**खनन्तः**) (**उपस्थे**) सामीप्ये (**अस्याः**)। [**अयं मन्त्रः** शत०६.३.३.१३ व्याख्यातः]॥२१॥

अन्वयः-हे वाजिन् विद्वन्! यथा द्रविणोदा अस्याः पृथिव्या अस्मादास्थानादुपस्थेऽग्निं खनन्तो वयं महते सौभगाय सुमतौ प्रवृत्ताः स्याम तथा त्वमुत्क्राम॥२१॥

भावार्थः-मनुष्या इहैश्वर्य्यप्राप्तये सततमुत्तिष्ठेरन्। परस्परं सम्मत्या पृथिव्यादेः सकाशाद् रत्नानि प्राप्नुयुः॥२१॥

पदार्थः-हे (**वाजिन्**) ऐश्वर्य्य को प्राप्त हुए विद्वन्! जैसे (**द्रविणोदाः**) धनदाता (**अस्याः**) इस (**पृथिव्याः**) भूमि के (**अस्मात्**) इस (**आस्थानात्**) निवास के स्थान से (**उपस्थे**) समीप में (**अग्निम्**) अग्नि विद्या का (**खनन्तः**) खोज करते हुए (**वयम्**) हम लोग (**महते**) बड़े (**सौभगाय**) सुन्दर ऐश्वर्य्य के लिये (**सुमतौ**) अच्छी बुद्धि में प्रवृत्त (**स्याम**) होवें, वैसे आप (**उत्क्राम**) उन्नति को प्राप्त हूजिये॥२१॥

भावार्थः-मनुष्यों को उचित है कि संसार में ऐश्वर्य पाने के लिये निरन्तर उद्यत रहें और आपस में हिल-मिल के पृथिवी आदि पदार्थों से रत्नों को प्राप्त होवें॥२१॥

उदक्रमीदित्यस्य मयोभूर्ऋषिः। द्रविणोदा देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

मनुष्या इह किंवद् भूत्वा किं प्राप्नुयुरित्याह॥

मनुष्य इस संसार में किस के समान हो के किस को प्राप्त हों, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

उदक्रमीद् द्रविणोदा वाज्यर्वाकः सुलोकꣳ सुकृतं पृथिव्याम्।

ततः खनेम सुप्रतीकमग्निꣳ स्वो रुहाणाऽअधि नाकमुत्तमम्॥ २२॥

उत्। अक्रमीत्। द्रविणोदा इति द्रविणःऽदाः। वाजी। अर्वा। अकरित्यकः। सु। लोकम्। सुकृतमिति सुऽकृतम्। पृथिव्याम्। ततः। खनेम। सुप्रतीकमिति सुऽप्रतीकम्। अग्निम्। स्व इति स्वः। रुहाणाः। अधि। नाकम्। उत्तममित्युत्ऽतमम्॥ २२॥

पदार्थः-(**उत्**) (**अक्रमीत्**) उत्तमतया क्रमणं कुर्यात् (**द्रविणोदाः**) धनदाता (**वाजी**) वेगवान् (**अर्वा**) अश्व इव (**अकः**) कुर्यात् (**सु**) (**लोकम्**) द्रष्टव्यम् (**सुकृतम्**) धर्माचारेण प्राप्यम् (**पृथिव्याम्**) (**ततः**) (**खनेम**) (**सुप्रतीकम्**) शोभना प्रतीतिर्यस्य तम् (**अग्निम्**) व्यापकं विद्युदाख्यम् (**स्वः**) सुखम् (**रुहाणाः**) प्रादुर्भवन्तः (**अधि**) (**नाकम्**) अविद्यमानदुःखम् (**उत्तमम्**) अतिश्रेष्ठम्। [अयं मन्त्रः शत०६.३.३.१४ व्याख्यातः]॥२२॥

अन्वयः-हे भूगर्भविद्याविद्विद्वन्! द्रविणोदा भवान् यथा वाज्यर्वा तथा पृथिव्यामध्युदक्रमीत्, सुलोकं सुकृतमुत्तमं नाकमकः सिद्धं कुर्य्यात्। ततः स्वो रुहाणा वयमप्यस्यां सुप्रतीकमग्निं खनेम॥२२॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे मनुष्याः! सर्वे वयं मिलित्वा यथा पृथिव्यामश्वो विक्रमते तथा पुरुषार्थिनो भूत्वा पृथिव्यादिविद्यां प्राप्य दुःखान्युत्क्राम्य सर्वोत्तमं सुखं प्राप्नुयाम॥२२॥

पदार्थः-हे भूगर्भ विद्या के जानने हारे विद्वन्! (**द्रविणोदाः**) धनदाता आप जैसे (**वाजी**) बल वाला (**अर्वा**) घोड़ा ऊपर को उछलता है, वैसे (**पृथिव्याम्**) पृथिवी के बीच (**अधि**) (**उदक्रमीत्**) सब से अधिक उन्नति को प्राप्त हूजिये (**सुकृतम्**) धर्माचरण से प्राप्त होने योग्य (**सुलोकम्**) अच्छा देखने योग्य (**उत्तमम्**) अति श्रेष्ठ (**नाकम्**) सब दुःखों से रहित सुख को (**अकः**) सिद्ध कीजिये (**ततः**) इसके पश्चात् (**स्वः**) सुखपूर्वक (**रुहाणाः**) प्रकट होते हुए हम लोग भी इस पृथिवी पर (**सुप्रतीकम्**) सुन्दर प्रतीति का विषय (**अग्निम्**) व्यापक बिजुली रूप अग्नि का (**खनेम**) खोज करें॥२२॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जैसे पृथिवी पर घोड़े अच्छी-अच्छी चाल चलते हैं, वैसे हम तुम सब मिल कर पुरुषार्थी हो पृथिवी आदि की पदार्थविद्या को प्राप्त हो और दुःखों को दूर करके सब से उत्तम सुख को प्राप्त हों॥२२॥

आत्वेत्यस्य गृत्समद ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः।

मनुष्या व्यापिनं वायुं केन जानीयुरित्याह॥

मनुष्य व्यापक वायु को किस साधन से जानें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

आ त्वा॑ जिघर्मि॒ मन॑सा घृ॒तेन॑ प्रतिक्षि॒यन्तं॒ भुव॑नानि॒ विश्वा॑।

पृ॒थुं ति॑र॒श्चा वय॑सा बृ॒हन्तं॒ व्यचि॑ष्ठ॒मन्नै॑ रभ॒सं दृशा॑नम्॥२३॥

आ। त्वा॒। जि॒घ॒र्मि॒। मन॑सा। घृ॒तेन॑। प्र॒ति॒क्षि॒यन्त॒मिति॑ प्रतिऽक्षि॒यन्त॑म्। भुव॑नानि। विश्वा॑। पृ॒थुम्। ति॒र॒श्चा। वय॑सा। बृ॒हन्त॑म्। व्यचि॑ष्ठम्। अन्नैः॑। र॒भ॒सम्। दृ॒शा॑नम्॥२३॥

पदार्थः-(**आ**) (**त्वा**) त्वाम् (**जिघर्मि**) (**मनसा**) (**घृतेन**) आज्येन (**प्रतिक्षियन्तम्**) प्रत्यक्षं निवसन्तम् (**भुवनानि**) भवन्ति येषु तानि वस्तूनि (**विश्वा**) सर्वाणि (**पृथुम्**) विस्तीर्णम् (**तिरश्चा**) येन तिरोऽञ्चति तेन (**वयसा**) जीवनेन (**बृहन्तम्**) महान्तम् (**व्यचिष्ठम्**) अतिशेयन विचितारं प्रक्षेप्तारम् (**अन्नैः**) यवादिभिः (**रभसम्**) वेगवन्तम् (**दृशानम्**) संप्रेक्षणीयम्। [अयं मन्त्रः शत०६.३.३.१९ व्याख्यातः]॥२३॥

अन्वयः-हे जिज्ञासो! यथाऽहं मनसा घृतेन सह विश्वा भुवनानि प्रतिक्षियन्तं तिरश्चा वयसा पृथुं बृहन्तमन्नैः सह रभसं व्यचिष्ठं दृशानं वायुमाजिघर्मि तथा त्वा त्वामप्येनं धारयामि॥२३॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्या अग्निद्वारा सुगन्ध्यादीनि द्रव्याणि वायौ प्रक्षिप्य तेन

युक्तसुगन्धेनारोगीकृत्य दीर्घं जीवनं प्राप्नुवन्तु॥२३॥

पदार्थ:-हे ज्ञान चाहने वाले पुरुष! जैसे में **(मनसा)** मन तथा **(घृतेन)** घी के साथ **(विश्वा)** सब **(भुवनानि)** लोकस्थ वस्तुओं में **(प्रतिक्षियन्तम्)** प्रत्यक्ष निवास और निश्चयकारक **(तिरश्चा)** तिरछे चलने रूप **(वयसा)** जीवन से **(पृथुम्)** विस्तारयुक्त **(बृहन्तम्)** बड़े **(अन्नै:)** जौ आदि अन्नों के साथ **(रभसम्)** बल वाले **(व्यचिष्ठम्)** अतिशय करके फेंकने वाले **(दृशानम्)** देखने योग्य वायु के गुणों को **(आजिघर्मि)** अच्छे प्रकार प्रकाशित करता हूं, वैसे **(त्वा)** आप को भी इस वायु के गुणों को धारण कराता हूं॥२३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्य अग्नि के द्वारा सुगन्धि आदि द्रव्यों को वायु में पहुँचा उस सुगन्ध से रोगों को दूर कर अधिक अवस्था को प्राप्त होवें॥२३॥

आ विश्वत इत्यस्य गृत्समद ऋषि:। अग्निर्देवता। आर्षी पङ्क्तिश्छन्द:। पञ्चम: स्वर:॥

पुन: कीदृशौ वाय्वग्नी स्त इत्याह॥

फिर वायु और अग्नि कैसे गुण वाले हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आ विश्वत॑: प्रत्यञ्चं॑ जिघर्म्यरक्षसा॒ मन॑सा॒ तज्जु॑षेत।

मर्य्य॑श्री स्पृहयद्व॑र्णोऽअ॒ग्निर्नाभि॒मृशे॑ त॒न्वा॒ जर्भु॑राण:॥ २४॥

आ। वि॒श्वत॑:। प्र॒त्यञ्च॑म्। जि॒घ॒र्मि॒। अ॒र॒क्षसा॑। मन॑सा। तत्। जु॒षे॒त॒। मर्य्य॑श्रीरिति॒ मर्य्य॑ऽश्री:। स्पृ॒ह॒यद्व॑र्ण॒ इति॑ स्पृ॒ह॒यत्ऽव॑र्ण:। अ॒ग्नि:। न। अ॒भि॒मृश॒ इत्य॑भि॒ऽमृशे॑। त॒न्वा॒। जर्भु॑राण:॥२४॥

पदार्थ:-**(आ) (विश्वत:)** सर्वत: **(प्रत्यञ्चम्)** प्रत्यगञ्चतीति शरीरस्थं वायुम् **(जिघर्मि) (अरक्षसा)** रक्षोवद् दुष्टतारहितेन **(मनसा)** चित्तेन **(तत्)** तेज: **(जुषेत) (मर्य्यश्री:)** मर्य्याणां मनुष्याणां श्रीरिव **(स्पृहयद्वर्ण:)** य: स्पृहयद्भिर्वर्ण्यते स्वीक्रियते स इव **(अग्नि:)** शरीरस्था विद्युत् **(न)** इव **(अभिमृशे)** आभिमुख्येन मृशन्ति सहन्ते येन तस्मै **(तन्वा)** शरीरेण **(जर्भुराण:)** भृशं गात्राणि विनामयत्। अत्र जृभीधातोरौणादिक उरानन् प्रत्यय:। [अयं मन्त्र: शत०६.३.३.२० व्याख्यात:]॥२४॥

अन्वय:-मनुष्यो न यथा विश्वतोऽग्निर्वायुश्चाभिमृशेऽस्ति यथा तन्वा जर्भुराण: स्पृहयद्वर्णो मर्यश्रीरहं यं प्रत्यञ्चमरक्षसा मनसाऽऽजिघर्मि तथा तज्जुषेत॥२४॥

भावार्थ:-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। हे मनुष्या:! यूयं लक्ष्मीप्रापकैरग्न्यादिपदार्थैर्विदितै: कार्य्येषु संयुक्तै: श्रीमन्तो भवत॥२४॥

पदार्थ:-हे मनुष्य! **(न)** जैसे **(विश्वत:)** सब ओर से **(अग्नि:)** बिजुली और प्राण वायु शरीर में व्यापक होके **(अभिमृशे)** सहने वाले के लिये हितकारी हैं, जैसे **(तन्वा)** शरीर से **(जर्भुराण:)** शीघ्र हाथ-पांव आदि अङ्गों को चलाता हुआ **(स्पृहयद्वर्ण:)** इच्छा वालों ने स्वीकार किये हुए के समान **(मर्य्यश्री:)** मनुष्यों की शोभा के तुल्य वायु के समान वेग वाला होके मैं जिस **(प्रत्यञ्चम्)** शरीर के वायु को निरन्तर चलाने वाली विद्युत् को **(अरक्षसा)** राक्षसों की दुष्टता से रहित **(मनसा)** चित्त से **(आजिघर्मि)** प्रकाशित करता हूँ, वैसे **(तत्)** उस तेज को **(जुषेत)** सेवन कर॥२४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। हे मनुष्यो! तुम लोग लक्ष्मी प्राप्त करानेहारे

अग्नि आदि पदार्थों को जान और उनको कार्यों में संयुक्त करके धनवान् होओ॥२४॥

परि वाजपतिरित्यस्य सोमक ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः।

पुनर्गृहस्थः कीदृशो भवेदित्याह॥

फिर गृहस्थ कैसा होवे, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

परि॒ वाज॑पतिः क॒विर॒ग्निर्ह॒व्यान्य॑क्रमीत्।

दध॒द् रत्ना॑नि दा॒शुषे॑॥२५॥

परि॑। वाज॑पति॒रिति॒ वाज॑ऽपतिः। क॒विः। अ॒ग्निः। ह॒व्यानि॑। अ॒क्र॒मी॒त्। दध॑त्। रत्ना॑नि। दा॒शुषे॑॥२५॥

पदार्थः-(**परि**) सर्वतः (**वाजपतिः**) अन्नादिरक्षको गृहस्थ इव (**कविः**) क्रान्तदर्शनः (**अग्निः**) प्रकाशमानः (**हव्यानि**) होतुं ग्रहीतुं योग्यानि वस्तूनि (**अक्रमीत्**) क्रामति (**दधत्**) धरन् (**रत्नानि**) सुवर्णादीनि (**दाशुषे**) दातुं योग्याय विदुषे॥२५॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यो वाजपतिः कविर्दाता गृहस्थो दाशुषे रत्नानि दधदिवाग्निर्हव्यानि पर्य्यक्रमीत् तं त्वं जानीहि॥२५॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। विद्वानग्निना पृथिवीस्थपदार्थेभ्यो धनं प्राप्य सुमार्गे सत्पात्रेभ्यो दत्त्वा विद्याप्रचारेण सर्वान् सुखयेत्॥२५॥

पदार्थः-हे विद्वन्! जो (**वाजपतिः**) अन्न आदि की रक्षा करने हारे गृहस्थों के समान (**कविः**) बहुदर्शी दाता गृहस्थ पुरुष (**दाशुषे**) दान देने योग्य विद्वान् के लिये (**रत्नानि**) सुवर्ण आदि उत्तम पदार्थ (**दधत्**) धारण करते हुए के समान (**अग्निः**) प्रकाशमान पुरुष (**हव्यानि**) देने योग्य वस्तुओं को (**परि**) सब ओर से (**अक्रमीत्**) प्राप्त होता है, उस को तू जान॥२५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। विद्वान् पुरुष को चाहिये कि अग्निविद्या के सहाय से पृथिवी के पदार्थों से धन को प्राप्त हो अच्छे मार्ग में खर्च कर और धर्मात्माओं को दान दे के विद्या के प्रचार से सब को सुख पहुंचावे॥२५॥

परि त्वेत्यस्य पायुर्ऋषिः। अग्निर्देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

कीदृशः सेनापतिः कार्य्य इत्याह॥

कैसा सेनापति करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

परि॑ त्वाग्ने॒ पुरं॑ व॒यं विप्र॑ꣳ सहस्य धीमहि।

धृ॒षद्व॑र्णं दि॒वेदि॑वे ह॒न्तारं॑ भङ्गु॒राव॑ताम्॥२६॥

परि॑। त्वा॒। अ॒ग्ने॒। पुर॑म्। व॒यम्। विप्र॑म्। स॒ह॒स्य॒। धी॒म॒हि॒। धृ॒षद्व॑र्ण॒मिति॑ धृ॒षत्ऽव॑र्णम्। दि॒वेदि॑व॒ इति॑ दि॒वेऽदि॑वे। ह॒न्तार॑म्। भ॒ङ्गु॒राव॑ताम्। भ॒ङ्गु॒रव॑ता॒मिति॑ भ॒ङ्गु॒रऽव॑ताम्॥२६॥

पदार्थः-(**परि**) (**त्वा**) त्वाम् (**अग्ने**) विद्यया प्रकाशमान (**पुरम्**) येन सर्वान् पिपर्त्ति तत् (**वयम्**) (**विप्रम्**) विद्वांसम् (**सहस्य**) य आत्मनः सहो बलमिच्छति तत्सम्बुद्धौ (**धीमहि**) धरेम। अत्र डुधाञ् धातोर्लिङ

आर्धधातुकत्वाच्छबभावः। **(धृषद्वर्णम्)** धृषत्प्रगल्भो दृढो वर्णो यस्य तम् **(दिवेदिवे)** प्रतिदिनम् **(हन्तारम्)** **(भङ्गुरावताम्)** कुत्सिता भङ्गुराः प्रहताः प्रकृतयो विद्यन्ते येषां तेषाम्। [अयं मन्त्रः शत०६.३.३.२५ व्याख्यातः]॥ २६॥

अन्वयः-हे सहस्याऽग्ने! यथा वयं दिवेदिवे भङ्गुरावतां पुरमग्निमिव हन्तारं धृषद्वर्णं विप्रं त्वा परिधीमहि तथा त्वमस्मान् धर॥ २६॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। राजप्रजाजनैर्न्यायेन प्रजारक्षकोऽग्निवच्छत्रुहन्ता सर्वदा सुखप्रदः सेनेशो विधेयः॥ २६॥

पदार्थः-हे **(सहस्य)** अपने बल को चाहने वाले **(अग्ने)** अग्निवत् विद्या से प्रकाशमान विद्वान् पुरुष! जैसे **(वयम्)** हम लोग **(दिवेदिवे)** प्रतिदिन **(भङ्गुरावताम्)** खोटे स्वभाव वालों के **(पुरम्)** नगर को अग्नि के समान **(हन्तारम्)** मारने **(धृषद्वर्णम्)** दृढ़ सुन्दर वर्ण से युक्त **(विप्रम्)** विद्वान् **(त्वा)** आपको **(परि)** सब प्रकार से **(धीमहि)** धारण करें, वैसे तू हम को धारण कर॥ २६॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। राजा और प्रजा के पुरुषों को चाहिये कि न्याय से प्रजा की रक्षा करने, अग्नि के समान शत्रुओं को मारने और सब काल में सुख देने हारे पुरुष को सेनापति करें॥ २६॥

त्वमग्न इत्यस्य गृत्समद ऋषिः। अग्निर्देवता। पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनः सभेशः कीदृशो भवेदित्याह॥

फिर सभाध्यक्ष कैसा होना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

त्वम॑ग्ने द्युभि॒स्त्वमा॑शुशु॒क्षणि॒स्त्वम॒द्भ्यस्त्वमश्म॑न॒स्परि॑।

त्वं वने॑भ्य॒स्त्वमोष॑धीभ्य॒स्त्वं नृ॒णां नृ॑पते जायसे॒ शुचि॑ः॥ २७॥

त्वम्। अ॒ग्ने॒। द्युभि॒रिति॒ द्युऽभि॑ः। त्वम्। आ॒शु॒शु॒क्षणि॑ः। त्वम्। अ॒द्भ्य इत्य॒त्ऽभ्यः। त्वम्। अश्म॑नः। परि॑। त्वम्। वने॑भ्यः। त्वम्। ओष॑धीभ्यः। त्वम्। नृ॒णाम्। नृ॒प॒त॒ इति॑ नृऽपते। जा॒य॒से॒। शुचि॑ः॥ २७॥

पदार्थः-**(त्वम्)** **(अग्ने)** अग्निवत् प्रकाशमान न्यायाधीश राजन्! **(द्युभिः)** दिनैरिव प्रकाशमानैर्न्यायादिगुणैः **(त्वम्)** **(आशुशुक्षणिः)** शीघ्रं शीघ्रं दुष्टान् क्षिणोति हिनस्तीव **(त्वम्)** **(अद्भ्यः)** वायुभ्यो जलेभ्यो वा **(त्वम्)** **(अश्मनः)** मेघात् पाषाणाद्वा। **अश्मेति मेघनामसु पठितम्॥** (निघण्टु १।१०) **(परि)** सर्वतोभावे **(त्वम्)** **(वनेभ्यः)** जङ्गलेभ्यो रश्मिभ्यो वा **(त्वम्)** **(ओषधीभ्यः)** सोमलतादिभ्यः **(त्वम्)** **(नृणाम्)** मनुष्याणाम् **(नृपते)** नृणां पालक **(जायसे)** प्रादुर्भवसि **(शुचिः)** पवित्रः॥ २७॥

इमं मन्त्रं यास्कमुनिरेवं व्याचष्टे-त्वमग्ने द्युभिरहोभिस्त्वमाशुशुक्षणिराशु इति च शु इति च क्षिप्रनामनी भवतः क्षणिरुत्तरः क्षणोतेराशु शुचा क्षणोतीति वा सनोतीति घा शुक् शोचतेः पञ्चम्यर्थे वा प्रथमा तथाहि वाक्यसंयोग आ इत्याकार उपसर्गः पुरस्ताच्चिकीर्षितेऽनुत्तर आशुशोचयिषुरिति शुचिः शोचतेर्ज्वलतिकर्मणोऽयमपीतरः शुचिरेतस्मादेव निष्षिक्तमस्मात् पापकमिति नैरुक्ताः॥ निरु० ६। १॥

अन्वयः-हे नृपते अग्ने सभाध्यक्ष राजन्! यस्त्वं द्युभिः सूर्य्य इव त्वमाशुशुक्षणिस्त्वमद्भ्यस्त्वमश्मनस्त्वं वनेभ्यस्त्वमोषधीभ्यस्त्वं नृणां मध्ये शुचिः परिजायसे तस्मात् त्वामाश्रित्य वयमप्येवम्भूता भवेम॥ २७॥

भावार्थः-यो राजा सभ्यः प्रजाजनो वा सर्वेभ्यः पदार्थेभ्यो गुणग्रहणविद्याक्रियाकौशलाभ्यामुपकारान् ग्रहीतुं शक्नोति, धर्माचरणेन पवित्रः शीघ्रकारी च भवति, स सर्वाणि सुखानि प्राप्नोति नेतरोऽलसः॥२७॥

पदार्थः-हे **(नृपते)** मनुष्यों के पालने हारे **(अग्ने)** अग्नि के समान प्रकाशमान न्यायाधीश राजन्! **(त्वम्)** आप **(द्युभिः)** दिनों के समान प्रकाशमान न्याय आदि गुणों से सूर्य्य के समान **(त्वम्)** आप **(आशुशुक्षणिः)** शीघ्र दुष्टों को मारने हारे **(त्वम्)** आप **(अद्भ्यः)** वायु वा जलों से **(त्वम्)** आप **(अश्मनः)** मेघ वा पाषाणादि से **(त्वम्)** आप **(वनेभ्यः)** जङ्गल वा किरणों से **(त्वम्)** आप **(ओषधीभ्यः)** सोमलता आदि ओषधियों से **(त्वम्)** आप **(नृणाम्)** मनुष्यों के बीच **(शुचिः)** पवित्र **(परि)** सब प्रकार **(जायसे)** प्रसिद्ध होते हो, इस कारण आप का आश्रय लेके हम लोग भी ऐसे ही होवें॥२७॥

भावार्थः-जो राजा, सभासद् वा प्रजा का पुरुष सब पदार्थों से गुण ग्रहण और विद्या तथा क्रिया की कुशलता से उपकार ले सकता है और धर्म के आचरण से पवित्र तथा शीघ्रकारी होता है, वही सब सुखों को प्राप्त हो सकता है, अन्य आलसी पुरुष नहीं॥२७॥

देवस्य त्वेत्यस्य गृत्समद ऋषिः। अग्निर्देवता। प्रकृतिश्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

मनुष्याः किं कृत्वा कस्माद् विद्युतं गृह्णीयुरित्याह॥

मनुष्य क्या करके किस पदार्थ से बिजुली का ग्रहण करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

दे॒वस्य॑ त्वा सवि॒तुः प्र॑स॒वे᳕ऽश्विनो॑र्बा॒हुभ्यां॑ पू॒ष्णो हस्ता॑भ्याम्।

पृ॒थि॒व्याः स॒धस्था॑द॒ग्निं पु॑री॒ष्य॒मङ्गि॒र॒स्वत् ख॑नामि।

ज्योति॑ष्मन्तं त्वाग्ने सु॒प्रती॑क॒मज॑स्रेण भा॒नुना॒ दीद्य॑तम्।

शि॒वं प्र॒जाभ्यो॒ऽहि॑ꣳसन्तं पृथि॒व्याः स॒धस्था॑द॒ग्निं पु॑री॒ष्य॒मङ्गि॒र॒स्वत् ख॑नामः॥२८॥

दे॒वस्य॑। त्वा॒। स॒वि॒तुः। प्र॒स॒व इति॑ प्र॒ऽस॒वे। अ॒श्विनोः॑। बा॒हुभ्या॒म्। पू॒ष्णः। हस्ता॑भ्याम्। पृ॒थि॒व्याः। स॒धस्था॒दिति॑ स॒धऽस्था॑त्। अ॒ग्निम्। पु॒री॒ष्य॒म्। अ॒ङ्गि॒र॒स्वत्। ख॒ना॒मि॒। ज्योति॑ष्मन्तम्। त्वा। अ॒ग्ने॒। सु॒प्रती॑क॒मिति॑ सु॒ऽप्रती॑कम्। अज॑स्रेण। भा॒नुना॑। दीद्य॑तम्। शि॒वम्। प्र॒जाभ्य॒ इति॑ प्र॒ऽजाभ्यः॑। अहि॑ꣳसन्तम्। पृ॒थि॒व्याः। स॒धस्था॒दिति॑ स॒धऽस्था॑त्। अ॒ग्निम्। पु॒री॒ष्य॒म्। अ॒ङ्गि॒र॒स्वत्। ख॒ना॒मः॥२८॥

पदार्थः-**(देवस्य)** प्रकाशमानस्य **(त्वा)** त्वाम् **(सवितुः)** सर्वस्योत्पादकस्येश्वरस्य **(प्रसवे)** प्रसूतेऽस्मिन् संसारे **(अश्विनोः)** द्यावापृथिव्योराकर्षणधारणाभ्यामिव **(बाहुभ्याम्)** **(पूष्णः)** प्राणस्य बलपराक्रमाभ्यामिव **(हस्ताभ्याम्)** **(पृथिव्याः)** **(सधस्थात्)** सहस्थानात् **(अग्निम्)** विद्युतम् **(पुरीष्यम्)** सुखैः पूरकेषु भवम् **(अङ्गिरस्वत्)** वायुवद्वर्त्तमानम् **(खनामि)** निष्पादयामि **(ज्योतिष्मन्तम्)** बहूनि ज्योतींषि विद्यन्ते यस्मिंस्तम् **(त्वा)** त्वाम् **(अग्ने)** भूगर्भादिविद्याविद्विद्वन् **(सुप्रतीकम्)** सुष्ठु प्रतियन्ति सुखानि यस्मात्तम् **(अजस्रेण)** निरन्तरेण **(भानुना)** दीप्त्या **(दीद्यतम्)** देदीप्यमानम् **(शिवम्)** मङ्गलमयम् **(प्रजाभ्यः)** प्रसूताभ्यः **(अहिंसन्तम्)** अताडयन्तम् **(पृथिव्याः)** अन्तरिक्षात् **(सधस्थात्)** सहस्थानात् **(अग्निम्)** वायुस्थं विद्युतम् **(पुरीष्यम्)** पालकेषु साधनेषु साधुम् **(अङ्गिरस्वत्)** सूत्रात्मवायुवद्वर्त्तमानम् **(खनामः)** विलिखामः। [अयं मन्त्रः शत०६.३.४.१-२ व्याख्यातः]॥२८॥

अन्वय:-हे अग्ने शिल्पविद्याविद्विद्वन्! यथाऽहं सवितुर्देवस्य प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां त्वा पुरस्कृत्य पृथिव्या: सधस्थात् पुरीष्यं ज्योतिष्मन्तमजस्रेण भानुना दीद्यतं पुरीष्यमग्निमङ्गिरस्वत् खनामि यथा त्वा त्वामाश्रिता वयं पृथिव्या: सधस्थादङ्गिरस्वदहिंसन्तं पुरीष्यं प्रजाभ्य: शिवमग्निं खनामस्तथा सर्व आचरन्तु॥ २८॥

भावार्थ:-ये राजप्रजाजना: सर्वत्र स्थितं विद्युद् रूपमग्निं सर्वेभ्य: पदार्थेभ्य: साधनोपसाधनै: प्रसिद्धीकृत्य कार्येषु प्रयुञ्जते, ते शङ्करमैश्वर्य्यं लभन्ते। नहि किञ्चिदपि प्रजातं वस्तु विद्युद्व्याप्त्या विना वर्त्तत इति विजानन्तु॥ २८॥

पदार्थ:-हे **(अग्ने)** भूगर्भ तथा शिल्पविद्या के जानने हारे विद्वान्! जैसे मैं **(सवितु:)** सब जगत् के उत्पन्न करने हारे **(देवस्य)** प्रकाशमान ईश्वर के **(प्रसवे)** उत्पन्न किये संसार में **(अश्विनो:)** आकाश और पृथिवी के **(बाहुभ्याम्)** आकर्षण तथा धारण रूप बाहुओं के समान और **(पूष्ण:)** प्राण के **(हस्ताभ्याम्)** बल और पराक्रम के तुल्य **(त्वा)** आप को आगे करके **(पृथिव्या:)** भूमि के **(सधस्थात्)** एक स्थान से **(पुरीष्यम्)** पूर्ण सुख देनेहारे **(ज्योतिष्मन्तम्)** बहुत ज्योति वाले **(अजस्रेण)** निरन्तर **(भानुना)** दीप्ति से **(दीद्यतम्)** अत्यन्त प्रकाशमान **(पुरीष्यम्)** सुन्दर रक्षा करने **(अग्निम्)** वायु में रहने वाली बिजुली को **(अङ्गिरस्वत्)** वायु के समान **(खनामि)** सिद्ध करता हूं और जैसे **(त्वा)** आप का आश्रय लेके हम लोग **(पृथिव्या:)** अन्तरिक्ष के **(सधस्थात्)** एक प्रदेश से **(अङ्गिरस्वत्)** सूत्रात्मा वायु के समान वर्त्तमान **(अहिंसन्तम्)** जो कि ताड़ना न करे ऐसे **(पुरीष्यम्)** पालनेहारे पदार्थों में उत्तम **(प्रजाभ्य:)** प्रजा के लिये **(शिवम्)** मङ्गलकारक **(अग्निम्)** अग्नि को **(खनाम:)** प्रकट करते है, वैसे सब लोग किया करें॥ २८॥

भावार्थ:-जो राज्य और प्रजा के पुरुष सर्वत्र रहने वाले बिजुली रूपी अग्नि को सब पदार्थों से साधन तथा उपसाधनों के द्वारा प्रसिद्ध करके कार्य्यों में प्रयुक्त करते हैं, वे कल्याणकारक ऐश्वर्य्य को प्राप्त होते हैं। कोई भी उत्पन्न हुआ पदार्थ बिजुली की व्याप्ति के बिना खाली नहीं रहता, ऐसा तुम सब लोग जानो॥ २८॥

अपां पृष्ठमित्यस्य गृत्समद ऋषि:। अग्निर्देवता। स्वराट् पङ्क्तिश्छन्द:। पञ्चम: स्वर:॥

पुनर्मनुष्या: कीदृशं विद्युतं गृह्णीयुरित्याह॥

फिर मनुष्य कैसी बिजुली का ग्रहण करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अपां पृष्ठमसि योनिरग्ने: समुद्रमभित: पिन्वमानम्।

वर्धमानो महाँ२ऽआ च पुष्करे दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथस्व॥ २९॥

अपाम्। पृष्ठम्। असि। योनि:। अग्ने:। समुद्रम्। अभित:। पिन्वमानम्। वर्धमान:। महान्। आ। च। पुष्करे। दिव:। मात्रया। वरिम्णा। प्रथस्व॥ २९॥

पदार्थ:-**(अपाम्)** जलानाम् **(पृष्ठम्)** आधार: **(असि)** **(योनि:)** संयोगविभागवित् **(अग्ने:)** सर्वतोऽभिव्याप्तस्य विद्युद्रूपस्य सकाशात् प्रचलन्तम् **(समुद्रम्)** सम्यगूर्ध्वं द्रवन्त्यापो यस्मात् सागरात् तम् **(अभित:)** सर्वत: **(पिन्वमानम्)** सिञ्चन्तम् **(वर्धमान:)** यो विद्यया क्रियाकौशलेन नित्यं वर्धते **(महान्)** पूज्य: **(आ)** **(च)** सर्वमूर्त्तद्रव्यसमुच्चये **(पुष्करे)** अन्तरिक्षे वर्त्तमानाया:। **पुष्करमित्यन्तरिक्षनामसु पठितम्॥** (निघं० १।३) **(दिव:)** दीप्ते: **(मात्रया)** विभागेन **(वरिम्णा)** उरोर्बहोर्भावेन **(प्रथस्व)** विस्तृतसुखो भव। [अयं मन्त्र:

शत०६.३.४.८ व्याख्यात:]॥२९॥

अन्वय:-हे विद्वन्! यतोऽग्नेर्योनिर्महान् वर्धमानस्त्वमसि तस्मादभित: पिन्वमानमपां पृष्ठं पुष्करे दिवो मात्रया वर्धमानं समुद्रं तत्स्थान् पदार्थांश्च विदित्वा वरिम्णाऽऽप्रथस्व॥२९॥

भावार्थ:-हे मनुष्या:! यूयं यथा मूर्त्तेषु पृथिव्यादिषु पदार्थेषु विद्युद्वर्त्तते, तथाऽप्स्वपि मत्वा तामुपकृत्य विस्तृतानि सुखानि संपादयत॥२९॥

पदार्थ:-हे विद्वन्! जिस कारण **(अग्ने:)** सर्वत्र अभिव्याप्त बिजुली रूप अग्नि के **(योनि:)** संयोग-वियोगों के जानने **(महान्)** पूजनीय **(वर्धमान:)** विद्या तथा क्रिया की कुशलता से नित्य बढ़ने वाले आप **(असि)** हैं। इसलिये **(अभित:)** सब ओर से **(पिन्वमानम्)** जल वर्षाते हुए **(अपाम्)** जलों के **(पृष्ठम्)** आधारभूत **(पुष्करे)** अन्तरिक्ष में वर्त्तमान **(दिव:)** दीप्ति के **(मात्रया)** विभाग से बढ़े हुए **(समुद्रम्)** अच्छे प्रकार जिस में ऊपर को जल उठते हैं, उस समुद्र **(च)** और वहां के सब पदार्थों को जान के **(वरिम्णा)** बहुत्व के साथ **(आप्रथस्व)** अच्छे प्रकार सुखों को विस्तार करने वाले हूजिये॥२९॥

भावार्थ:-हे मनुष्यो! तुम लोग पृथिवी आदि स्थूल पदार्थों में बिजुली जिस प्रकार वर्त्तमान है, वैसे ही जलों में भी है, ऐसा समझ और उससे उपकार ले के बड़े-बड़े विस्तारयुक्त सुखों को सिद्ध करो॥२९॥

शर्म चेत्यस्य गृत्समद ऋषि:। दम्पती देवते। विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्द:। गान्धार: स्वर:॥

अथ स्त्रीपुरुषाभ्यां गृहे स्थित्वा किं साधनीयमित्याह॥

अब स्त्री और पुरुष घर में रह के क्या-क्या सिद्ध करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

शर्म॑ च॒ स्थो वर्म॑ च॒ स्थोऽछि॑द्रे बहु॒लेऽउ॒भे।

व्यच॑स्वती॒ संव॑साथां भृतम॒ग्निं पु॑री॒ष्य॒म्॥३०॥

शर्म्म॑। च॒। स्थ॒:। वर्म्म॑। च॒। स्थ॒:। अछि॑द्रे॒ऽइत्यछि॑द्रे। ब॒हु॒लेऽइति॑ ब॒हु॒ले। उ॒भेऽइत्यु॒भे। व्यच॑स्वती॒ऽइति॑ व्यच॑स्वती। सम्। व॒सा॒था॒म्। भृ॒तम्। अ॒ग्निम्। पु॒री॒ष्य॒म्॥३०॥

पदार्थ:-**(शर्म्म)** गृहम् **(च)** तत्सामग्रीम् **(स्थ:)** भवत: **(वर्म्म)** सर्वतो रक्षणम् **(च)** तत्सहायान् **(स्थ:)** **(अच्छिद्रे)** अदोषे **(बहुले)** बहूनर्थान् लान्ति याभ्यां ते **(उभे)** द्वे **(व्यचस्वती)** सुखव्याप्तियुक्ते **(सम्)** **(वसाथाम्)** आच्छादयतम् **(भृतम्)** धृतम् **(अग्निम्)** **(पुरीष्यम्)** पालनेषु साधुम्। [अयं मन्त्र: शत०६.३.४.१० व्याख्यात:]॥३०॥

अन्वय:-हे स्त्रीपुरुषौ! युवां शर्म्म च प्राप्तौ स्थ: वर्म्म चोभे बहुले व्यचस्वती अच्छिद्रे विद्युदन्तरिक्ष इव स्थ:। तत्र गृहे पुरीष्यमग्निं गृहीत्वा संवसाथाम्॥३०॥

भावार्थ:-गृहस्थैर्ब्रह्मचर्येण सत्करणोपकरणक्रियाकुशलां विद्यां सङ्गृह्य बहुद्वाराणि सर्वर्त्तुसुखप्रदानि सर्वतोभिरक्षान्वितान्यग्न्यादिसाधनोपेतानि गृहाणि निर्माय तत्र सुखेन वसितव्यम्॥३०॥

पदार्थ:-हे स्त्रीपुरुषो! तुम दोनों **(शर्म)** गृहाश्रम **(च)** और उस की सामग्री को प्राप्त हुए **(स्थ:)** हो **(वर्म्म)** सब ओर से रक्षा **(च)** और उस के सहायकारी पदार्थों को **(उभे)** दो **(बहुले)** बहुत अर्थों को ग्रहण करने

हारे **(व्यचस्वती)** सुख की व्याप्ति से युक्त **(अच्छिद्रे)** निर्दोष बिजुली और अन्तरिक्ष के समान जिस घर में धर्म, अर्थ के कार्य्य **(स्थः)** हैं, उस घर में **(भृतम्)** पोषण करने हारे **(पुरीष्यम्)** रक्षा करने में उत्तम **(अग्निम्)** अग्नि को ग्रहण करके **(संवसाथाम्)** अच्छे प्रकार आच्छादन करके वसो॥३०॥

भावार्थः-गृहस्थ लोगों को चाहिये कि ब्रह्मचर्य्य के साथ सत्कार और उपकारपूर्वक क्रिया की कुशलता और विद्या का ग्रहण कर बहुत द्वारों से युक्त, सब ऋतुओं में सुखदायक, सब ओर की रक्षा और अग्नि आदि साधनों से युक्त घरों को बना के उन में सुखपूर्वक निवास करें॥३०॥

संवसाथामित्यस्य गृत्समद ऋषिः। जायापती देवते। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी वही उक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

संवसाथाꣳस्वर्विदा समीचीऽउरसा त्मना।

अग्निमन्तर्भरिष्यन्ती ज्योतिष्मन्तमजस्रमित्॥३१॥

सम्। वसाथाम्। स्वर्विदेति स्वःऽविदा। समीचीऽइति समीची। उरसा। त्मना। अग्निम्। अन्तः। भरिष्यन्तीऽइति भरिष्यन्ती। ज्योतिष्मन्तम्। अजस्रम्। इत्॥३१॥

पदार्थः-**(सम्)** सम्यक् **(वसाथाम्)** आच्छादयतम् **(स्वर्विदा)** यौ सुखं विन्दतस्तौ **(समीची)** यौ सम्यगञ्चतो विजानीतस्तौ **(उरसा)** अन्तःकरणेन **(त्मना)** आत्मना **(अग्निम्)** विद्युतम् **(अन्तः)** सर्वेषां मध्ये वर्त्तमानम् **(भरिष्यन्ती)** सर्वान् पालयन्तौ **(ज्योतिष्मन्तम्)** प्रशस्तज्योतिर्युक्तम् **(अजस्रम्)** निरन्तरम् **(इत्)** एव। [अयं मन्त्रः शत०६.४.१.११ व्याख्यातः]॥३१॥

अन्वयः-हे स्त्रीपुरुषौ! युवां यदि समीची भरिष्यन्ती स्वर्विदा सन्तौ ज्योतिष्मन्तमन्तरग्निमित् त्मनोरसाऽजस्रं संवसाथां तर्हि श्रियमश्नुवाताम्॥३१॥

भावार्थः-ये मनुष्या विद्युतमुत्पाद्य स्वीकर्त्तुं शक्नुवन्ति, न च ते व्यवहारे दरिद्रा भवन्ति॥३१॥

पदार्थः-हे स्त्रीपुरुषो! तुम दोनों जो **(समीची)** अच्छे प्रकार पदार्थों को जानने **(भरिष्यन्ती)** और सब का पालन करने हारे **(स्वर्विदा)** सुख को प्राप्त होते हुए **(ज्योतिष्मन्तम्)** अच्छे प्रकाश से युक्त **(अन्तः)** सब पदार्थों के बीच वर्त्तमान **(अग्निम्)** बिजुली को **(इत्)** ही **(त्मना)** **(उरसा)** अपने अन्तःकरण से **(अजस्रम्)** निरन्तर **(संवसाथाम्)** अच्छी तरह आच्छादन करो तो लक्ष्मी भोग सको॥३१॥

भावार्थः-जो गृहस्थ मनुष्य बिजुली को उत्पन्न करके ग्रहण कर सकते हैं, वे व्यवहार में दरिद्र कभी नहीं होते॥३१॥

पुरीष्य इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः। अग्निर्देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

विद्वान् विद्युतं कथमुत्पादयेदित्याह॥

विद्वान् पुरुष बिजुली को कैसे उत्पन्न करे, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

पुरीष्योऽसि विश्वभराऽअथर्वा त्वा प्रथमो निरमन्थदग्ने।

त्वाम॑ग्ने पुष्क॑रा॒दध्यथ॑र्वा॒ निर॑मन्थत॥

मू॒र्ध्नो विश्व॑स्य वा॒घत॑:॥ ३२॥

पु॒री॒ष्य॒:। अ॒सि॒। वि॒श्वभ॑रा॒ इति॑ वि॒श्वऽभ॑रा:। अथ॑र्वा। त्वा॒। प्र॒थ॒म:। नि:। अ॒म॒न्थ॒त्। अ॒ग्ने॒। त्वाम्। अ॒ग्ने॒। पुष्क॑रात्। अधि॑। अथ॑र्वा। नि:। अ॒म॒न्थ॒त॒। मू॒र्ध्न:। विश्व॑स्य। वा॒घत॑:॥ ३२॥

पदार्थ:-(**पुरीष्य:**) पुरीषेषु पशुषु साधु: (**असि**) (**विश्वभरा:**) यो विश्वं बिभर्त्ति स: (**अथर्वा**) अहिंसको विद्वान् (**त्वा**) त्वाम् (**प्रथम:**) आद्य: (**नि:**) नितराम् (**अमन्थत्**) (**अग्ने**) संपादितक्रियाकौशल (**त्वाम्**) (**अग्ने**) विद्वन्! (**पुष्करात्**) अन्तरिक्षात् (**अधि**) (**अथर्वा**) हिंसादिदोषरहित: (**नि:**) (**अमन्थत**) (**मूर्ध्न:**) मूर्धेव वर्त्तमानस्य (**विश्वस्य**) समग्रस्य संसारस्य (**वाघत:**) मेधावी॥ **वाघत इति मेधाविनामसु पठितम्॥** (निघं०३।१५)[अयं मन्त्र: शत०६.४.२.१-२ व्याख्यात:]॥३२॥

अन्वय:-हे अग्ने विद्वन्! यो वाघतो भवान् पुरीष्योसि, तं त्वाऽथर्वा प्रथमो विश्वभरा विश्वस्य मूर्ध्नो वर्त्तमानात् पुष्करादध्यग्निं निरमन्थत्, स ऐश्वर्य्यमाप्नोति॥३२॥

भावार्थ:-येऽस्मिन् जगति विद्वांसो भवेयुस्ते सुविचारपुरुषार्थाभ्यामग्न्यादिविद्यां प्रसिद्धीकृत्य सर्वेभ्य: शिक्षेरन्॥३२॥

पदार्थ:-हे (**अग्ने**) क्रिया की कुशलता को सिद्ध करने हारे विद्वन्! जो (**वाघत:**) शास्त्रवित् आप (**पुरीष्य:**) पशुओं को सुख देने हारे (**असि**) हैं उस (**त्वा**) आपको (**अथर्वा**) रक्षक (**प्रथम:**) उत्तम (**विश्वभरा:**) सब का पोषक विद्वान् (**विश्वस्य**) सब संसार के (**मूर्ध्न:**) ऊपर वर्त्तमान (**पुष्करात्**) अन्तरिक्ष से (**अधि**) समीप अग्नि को (**निरमन्थत्**) नित्य मन्थन करके ग्रहण करता है, वह ऐश्वर्य्य को प्राप्त होता है॥३२॥

भावार्थ:-जो इस जगत् में विद्वान् पुरुष होवें वे अपने अच्छे विचार और पुरुषार्थ से अग्नि आदि की पदार्थविद्या को प्रसिद्ध करके सब मनुष्यों को शिक्षा करें॥३२॥

तमु त्वेत्यस्य भारद्वाज ऋषि:। अग्निर्देवता। निचृद्गायत्री छन्द:। षड्ज: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी उक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

तमु॑ त्वा द॒ध्यङ्ङृषि॑: पु॒त्रऽई॑धे॒ऽअथ॑र्वण:।

वृ॒त्र॒हणं॑ पुरन्द॒रम्॥ ३३॥

तम्। ऊँ॒ इत्यूँ॑। त्वा॒। द॒ध्यङ्। ऋषि॑:। पु॒त्र:। ई॒धे॒। अथ॑र्वण:। वृ॒त्र॒हण॑म्। वृ॒त्र॒ह॒नमिति॑ वृ॒त्रऽहन॑म्। पु॒र॒न्द॒रमिति॑ पुरम्ऽद॒रम्॥ ३३॥

पदार्थ:-(**तम्**) (उ) वितर्के (**त्वा**) त्वाम् (**दध्यङ्**) यो दधीन् सुखधारकानग्न्यादिपदार्थानञ्चति स: (**ऋषि:**) वेदार्थवित् (**पुत्र:**) पवित्र: शिष्य: (**ईधे**) प्रदीपयेत्। अत्र **लोपस्त आत्मनेपदेषु** [अष्टा०७.१.४१] इति तकारलोप:। (**अथर्वण:**) अहिंसकस्य विदुष: (**वृत्रहणम्**) यथा सूर्य्यो वृत्रं हन्ति तथा शत्रुहन्तारम् (**पुरन्दरम्**) य: शत्रूणां पुराणि दृणाति तम्। [अयं मन्त्र: शत०६.४.२.३ व्याख्यात:]॥३३॥

अन्वय:-हे राजन्! यथाऽथर्वण: पुत्रो दध्यङ्ङृषिरु सकलविद्याविद् वृत्रहणं पुरन्दरमीधे, तथा तं त्वा सर्वे विद्वांसो विद्याविनयाभ्यां वर्द्धयन्तु॥३३॥

भावार्थ:-ये याश्च साङ्गोपाङ्गान् वेदानधीत्य विद्वांसो विदुष्यश्च भवेयुस्ते ताश्च राजपुत्रादीन् राजकन्यादींश्च विदुषो विदुषींश्च संपाद्य ताभिर्धर्मेण राजप्रजाव्यवहारान् कारयेयु:॥३३॥

पदार्थ:-हे राजन्! जैसे **(अथर्वण:)** रक्षक विद्वान् का **(पुत्र:)** पवित्र शिष्य **(दध्यङ्)** सुखदायक अग्नि आदि पदार्थों को प्राप्त हुआ **(ऋषि:)** वेदार्थ जानने हारा **(उ)** तर्क-वितर्क के साथ सम्पूर्ण विद्याओं का वेत्ता जिस **(वृत्रहणम्)** सूर्य्य के समान शत्रुओं को मारने और **(पुरन्दरम्)** शत्रुओं के नगरों को नष्ट करने वाले आप को **(ईधे)** तेजस्वी करता है, वैसे **(तम्, त्वा)** उन आपको सब विद्वान् लोग विद्या और विनय से उन्नतियुक्त करें॥३३॥

भावार्थ:-जो पुरुष वा स्त्री साङ्गोपाङ्ग सार्थक वेदों को पढ़ के विद्वान् वा विदुषी होवें, वे राजपुत्र और राजकन्याओं को विद्वान् और विदुषी करके उन से धर्मानुकूल राज्य तथा प्रजा का व्यवहार करवावें॥३३॥

तमु त्वेत्यस्य भारद्वाज ऋषि:। अग्निर्देवता। निचृद्गायत्री छन्द:। षड्ज: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी उक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

तमु॑ त्वा पा॒थ्यो वृषा॒ समी॑धे दस्यु॒हन्त॑मम्।

ध॒न॒ञ्ज॒यꣳ रणे॑रणे॥३४॥

तम्। ऊँ॒ इत्यूँ॑। त्वा॒। पा॒थ्य:। वृषा॑। सम्। ई॒धे॒। द॒स्यु॒हन्त॑म॒मिति॑ दस्युहन्ऽत॑मम्। ध॒न॒ञ्ज॒यमिति॑ धनम्ऽज॒यम्। रणे॑रण॒ इति॒ रणे॑ऽरणे॥३४॥

पदार्थ:-**(तम्)** पूर्वोक्तं पदार्थविद्याविदम् **(उ)** **(त्वा)** त्वाम् **(पाथ्य:)** पाथस्सु जलान्नादिपदार्थेषु साधु: **(वृषा)** वीर्य्यवान् **(सम्)** **(ईधे)** राजधर्मशिक्षया प्रदीप्यताम् **(दस्युहन्तमम्)** अतिशयेन दस्यूनां हन्तारम् **(धनञ्जयम्)** य: शत्रुभ्यो धनं जयति तम् **(रणेरणे)** युद्धेयुद्धे। [अयं मन्त्र: शत०६.४.२.४ व्याख्यात:]॥३४॥

अन्वय:-हे वीर! यस्त्वं पाथ्यो वृषा रणेरणे विद्वान् शौर्य्यादिगुणयुक्तोऽसि, तं धनञ्जयमु दस्युहन्तमं त्वा त्वां वीरसेनया समीधे॥३४॥

भावार्थ:-राजादयो राजपुरुषा आप्तेभ्यो विद्वद्भ्यो विनयं युद्धविद्यां प्राप्य प्रजारक्षायै चोरान् हत्वा शत्रून् विजित्य परमैश्वर्य्यमुन्नयेयु:॥३४॥

पदार्थ:-हे वीर पुरुष! जो आप **(पाथ्य:)** अन्न जल आदि पदार्थों की सिद्धि में कुशल **(वृषा)** पराक्रमी **(रणेरणे)** प्रत्येक युद्ध में शूरता आदि युक्त विद्वान् हैं **(तम्)** पूर्वोक्त पदार्थविद्या जानने **(धनञ्जयम्)** शत्रुओं से धन जीतने **(उ)** और **(दस्युहन्तमम्)** अतिशय करके डाकुओं को मारने वाले **(त्वा)** आप को वीरों की सेना राजधर्म्म की शिक्षा से **(समीधे)** प्रदीप्त करे॥३४॥

भावार्थ:-राजा आदि राजपुरुषों को चाहिये कि आप्त धर्मात्मा विद्वानों से विनय और युद्धविद्या को प्राप्त हो प्रजा की रक्षा के लिये चोरों को मार शत्रुओं को जीत कर परम ऐश्वर्य्य की उन्नति करें॥३४॥

सीदेत्यस्य देवश्रवो देववातावृषी। होता देवता। निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनर्विदुषः किं कृत्यमस्तीत्याह॥

फिर विद्वान् का क्या काम है, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

सीद॑ होतः स्वऽउ॑ लो॒के चि॑कि॒त्वान्त्सा॒दया॑ य॒ज्ञꣳ सु॑कृ॒तस्य॒ योनौ॑।

दे॒वा॒वीर्दे॒वान् ह॒विषा॑ यजा॒स्यग्ने॑ बृ॒हद्यज॑माने॒ वयो॑ धाः॥३५॥

सीद॑। हो॒त॒रिति॑ होतः। स्वे। ॐ इत्यूँ॑। लो॒के। चि॒कि॒त्वान्। सा॒दय॑। य॒ज्ञम्। सु॒कृ॒तस्येति॑ सुऽकृ॒तस्य॑। योनौ॑। दे॒वा॒वीरिति॑ देवऽअ॒वीः। दे॒वान्। ह॒विषा॑। य॒जा॒सि॒। अग्ने॑। बृ॒हत्। यज॑माने। वयः॑। धाः॥३५॥

पदार्थः-(**सीद**) अवस्थितो भव (**होतः**) दातर्ग्रहीतः (**स्वे**) सुखे (**उ**) (**लोके**) लोकनीये (**चिकित्वान्**) विज्ञानयुक्तः (**सादय**) गमय। अत्र **अन्येषामपि दृश्यते** [अष्टा०६.३.१३७] इति दीर्घः। (**यज्ञम्**) धर्म्यं राजप्रजाव्यवहारम् (**सुकृतस्य**) सष्ठुकृतस्य धार्मिकस्य (**योनौ**) कारणे (**देवावीः**) देवै रक्षितः शिक्षितश्च (**देवान्**) विदुषो दिव्यगुणान् वा (**हविषा**) दानग्रहणयोग्येन न्यायेन (**यजासि**) याजयेः (**अग्ने**) विद्वन् (**बृहत्**) महत् (**यजमाने**) राजादौ जने चिरञ्जीविनम् (**वयः**) दीर्घं जीवनम् (**धाः**) धेहि। [अयं मन्त्रः शत०६.४.२.६ व्याख्यातः]॥३५॥

अन्वयः-हे अग्ने! होतश्चिकित्वाँस्त्वं स्वे लोके सीद। सुकृतस्य योनौ यज्ञं सादय। देवावीः सँस्त्वं हविषा देवान् यजासि यजमाने वयोधाः॥३५॥

भावार्थः-विद्वद्भिरस्मिन् जगति द्वे कर्मणी सततं कार्य्ये। आद्यं ब्रह्मचर्य्यजितेन्द्रियत्वादिशिक्षया शरीरारोग्यबलादियुक्तं चिरञ्जीवनमुत्तरं विद्याक्रियाकौशलग्रहणेनात्मबलं च संसाध्यम्, यतः सर्वे मनुष्याः शरीरात्मबलयुक्ताः सन्तः सर्वदानन्देयुः॥३५॥

पदार्थः-हे (**अग्ने**) तेजस्वी विद्वन्! (**होतः**) दान देने वाले (**चिकित्वान्**) विज्ञान से युक्त आप (**लोके**) देखने योग्य (**स्वे**) सुख में (**सीद**) स्थित हूजिये (**सुकृतस्य**) अच्छे करने योग्य कर्म करने हारे धर्म्मात्मा के (**योनौ**) कारण में (**यज्ञम्**) धर्मयुक्त राज्य और प्रजा के व्यवहार को (**सादय**) प्राप्त कराइये (**देवावीः**) विद्वानों से रक्षित और शिक्षित होते हुए आप (**हविषा**) देने-लेने योग्य न्याय से (**देवान्**) विद्वानों या दिव्य गुणों को (**यजासि**) सत्कार सेवा संयोग कीजिये (**यजमाने**) राजा आदि मनुष्यों में बड़ी (**वयः**) उमर को (**धाः**) धारण कीजिये॥३५॥

भावार्थः-विद्वान् लोगों को चाहिये कि इस जगत् में दो कर्म निरन्तर करें। प्रथम ब्रह्मचर्य्य और जितेन्द्रियता आदि की शिक्षा से शरीर को रोगरहित, बल से युक्त और पूर्ण अवस्थावाला करें। दूसरे विद्या और क्रिया की कुशलता के ग्रहण से आत्मा का बल अच्छे प्रकार साधें कि जिस से सब मनुष्य शरीर और आत्मा के बल से युक्त हुए सब काल में आनन्द भोगें॥३५॥

नि होतेत्यस्य गृत्समद ऋषिः। अग्निर्देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनर्मनुष्यकृत्यमाह॥

फिर मनुष्यों का कर्त्तव्य अगले मन्त्र में कहा है॥

नि होता होतृषदने विदानस्त्वेषो दीदिवाँ२ऽअसदत् सुदक्षः।

अदब्धव्रतप्रमतिर्वसिष्ठः सहस्रम्भरः शुचिजिह्वोऽअग्निः॥३६॥

नि। होता। होतृषदने। होतृसदन इति होतृसदने। विदानः। त्वेषः। दीदिवानिति दीदिऽवान्। असदत्। सुदक्ष इति सुऽदक्षः। अदब्धव्रतप्रमतिरित्यदब्धव्रतऽप्रमतिः। वसिष्ठः। सहस्रम्भर इति सहस्रम्ऽभरः। शुचिजिह्व इति शुचिऽजिह्वः। अग्निः॥३६॥

पदार्थः-(**नि**) नितराम् (**होता**) शुभगुणग्रहीता (**होतृषदने**) दातॄणां विदुषां स्थाने (**विदानः**) विविदिषुः सन् (**त्वेषः**) शुभगुणैर्दीप्यमानः (**दीदिवान्**) धर्म्यं व्यवहारं चिकीर्षुः (**असदत्**) सीदेत् (**सुदक्षः**) सुष्ठु दक्षो बलं यस्य सः (**अदब्धव्रतप्रमतिः**) अदब्धैरहिंसनीयैर्व्रतैर्धर्माचरणैः प्रकृष्टा मतिर्मेधा यस्य सः (**वसिष्ठः**) अतिशेयन वसिता (**सहस्रम्भरः**) सहस्रमसंख्यं शुभगुणसमूहं बिभर्त्ति सः (**शुचिजिह्वः**) शुचिः पवित्रा सत्यभाषणेन जिह्वा वाग् यस्य सः (**अग्निः**) पावक इव वर्त्तमानः। [अयं मन्त्रः शत०६.४.२.७ व्याख्यातः]॥३६॥

अन्वयः-यदि नरो मनुष्यजन्म प्राप्य होतृषदने दीदिवान् त्वेषो विदानः शुचिजिह्वः सुदक्षोऽदब्धव्रतप्रमतिर्वसिष्ठः सहस्रम्भरो होता सततं न्यसदत्, तर्हि समग्रं सुखं प्राप्नुयात्॥३६॥

भावार्थः-यदा मातापितरः स्वपुत्रान् कन्याश्च सुशिक्ष्य पुनर्विदुषो विदुष्यश्च समीपे चिरं संस्थाप्याध्यापयेयुस्तदा ताः सूर्य्य इव कुलदेशोद्दीपकाः स्युः॥३६॥

पदार्थः-जो जन मनुष्यजन्म को पाके (**होतृषदने**) दानशील विद्वानों के स्थान में (**दीदिवान्**) धर्मयुक्त व्यवहार का चाहने (**त्वेषः**) शुभगुणों से प्रकाशमान (**विदानः**) ज्ञान बढ़ाने की इच्छा रखने (**शुचिजिह्वः**) सत्यभाषण से पवित्र वाणीयुक्त (**सुदक्षः**) अच्छे बल वाला (**अदब्धव्रतप्रमतिः**) रक्षा करने योग्य धर्माचरणरूपी व्रतों से उत्तम बुद्धियुक्त (**वसिष्ठः**) अत्यन्त वसने (**सहस्रम्भरः**) असंख्य शुभगुणों को धारण करने वाला (**होता**) शुभगुणों का ग्राहक पुरुष निरन्तर (**न्यसदत्**) स्थित होवे तो वह सम्पूर्ण सुख को प्राप्त हो जावे॥३६॥

भावार्थः-जब माता-पिता अपने पुत्र तथा कन्याओं को अच्छी शिक्षा देके पीछे विद्वान् और विदुषी के समीप बहुत काल तक स्थितिपूर्वक पढ़वावें, तब वे कन्या और पुत्र सूर्य्य के समान अपने कुल और देश के प्रकाशक हों॥३६॥

सं सीदस्वेत्यस्य प्रस्कण्व ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

अथेहाध्यापकः कीदृशः स्यादित्याह॥

इस पठन-पाठन विषय में अध्यापक कैसा होवे, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

सꣳसीदस्व महाँ२ऽअसि शोचस्व देववीतमः।

वि धूममग्नेऽअरुषं मियेध्य सृज प्रशस्त दर्शतम्॥३७॥

सम्। सीदस्व। महान्। असि। शोचस्व। देववीतम इति देवऽवीतमः। वि। धूमम्। अग्ने। अरुषम्। मियेध्य। सृज। प्रशस्तेति प्रऽशस्त। दर्शतम्॥३७॥

पदार्थः-(**सम्**) (**सीदस्व**) अध्यापने आस्व (**महान्**) महागुणविशिष्टः (**असि**) (**शोचस्व**) पवित्रो भव

(देववीतमः) देवैर्विद्वद्भिः कमनीयतमः **(वि धूमम्)** विगतमलम् **(अग्ने)** विद्वत्तम **(अरुषम्)** शोभनस्वरूपम्। **अरुषमिति रूपनामसु पठितम्॥** (निघं०३।७) **(मियेध्य)** मिनोति प्रक्षिपति दुष्टान् तत्सम्बुद्धौ। अत्र बाहुलकादौणादिक एध्य प्रत्ययः किच्च। **(सृज)** निष्पद्यस्व **(प्रशस्त)** श्लाघ्य **(दर्शतम्)** द्रष्टव्यम्। [अयं मन्त्रः शत०६.४.२.९ व्याख्यातः]॥३७॥

अन्वयः-हे प्रशस्त मियेध्याग्ने! देववीतमस्त्वं विधूमं दर्शतमरुषं सृज शोचस्व च, यतस्त्वं महान् विद्वानसि, तस्मादध्यापने संसीदस्व॥३७॥

भावार्थः-यो मनुष्यो विदुषां प्रियतमः सुरूपगुणलावण्यसंपन्नः पवित्रोपचितो महानाप्तो विद्वान् भवेत्, स एव शास्त्राण्यध्यापयितुं शक्नोति॥३७॥

पदार्थः-हे **(प्रशस्त)** प्रशंसा के योग्य **(मियेध्य)** दुष्टों को पृथक् करने वाले **(अग्ने)** तेजस्वी विद्वन्! **(देववीतमः)** विद्वानों को अत्यन्त इष्ट आप **(विधूमम्)** निर्मल **(दर्शतम्)** देखने योग्य **(अरुषम्)** सुन्दर रूप को **(सृज)** सिद्ध कीजिये तथा **(शोचस्व)** पवित्र हूजिये। जिस कारण आप **(महान्)** बड़े-बड़े गुणों से युक्त विद्वान् **(असि)** हैं, इसलिए पढ़ाने की गद्दी पर **(संसीदस्व)** अच्छे प्रकार स्थित हूजिये॥३७॥

भावार्थः-जो मनुष्य विद्वानों का अत्यन्त प्रिय, अच्छे रूप, गुण और लावण्य से युक्त, पवित्र, बड़ा धर्मात्मा, आप्त विद्वान् होवे, वही शास्त्रों के पढ़ाने को समर्थ होता है॥३७॥

अपो देवीरित्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः। आपो देवताः। न्यङ्कुसारिणी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

अथ जलादिपदार्थशोधनेन प्रजासु किं जायत इत्याह॥

आगे जल आदि पदार्थों के शोधने से प्रजा में क्या होता है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अपो देवीरुपसृज मधुमतीरयक्ष्माय प्रजाभ्यः।

तासामास्थानादुज्जिहतामोषधयः सुपिप्पलाः॥३८॥

अपः। देवीः। उप। सृज। मधुमतीरिति मधुऽमतीः। अयक्ष्माय। प्रजाभ्य इति प्रऽजाभ्यः। तासाम्। आस्थानादित्याऽस्थानात्। उत्। जिहताम्। ओषधयः। सुपिप्पला इति सुऽपिप्पलाः॥३८॥

पदार्थः-**(अपः)** जलानि **(देवीः)** दिव्यानि पवित्राणि **(उप)** **(सृज)** निष्पादय **(मधुमतीः)** प्रशस्ता मधवो मधुरादयो गुणा विद्यन्ते यासु ताः **(अयक्ष्माय)** यक्ष्मादिरोगनिवारणाय **(प्रजाभ्यः)** पालनीयाभ्यः **(तासाम्)** अपाम् **(आस्थानात्)** आस्थायाः **(उत्)** **(जिहताम्)** प्राप्नुवन्तु **(ओषधयः)** सोमादयः **(सुपिप्पलाः)** शोभनानि पिप्पलानि फलानि यासां ताः। [अयं मन्त्रः शत०६.४.३.१ व्याख्यातः]॥३८॥

अन्वयः-हे सद्वैद्य! त्वं मधुमतीर्देवीरप उपसृज यतस्तासामास्थानात् सुपिप्पला ओषधयः प्रजाभ्योऽयक्ष्मायोज्जिहताम्॥३८॥

भावार्थः-राज्ञा द्विविधा वैद्याः संरक्षणीयाः। एके सुगन्धादिहोमेन वायुवृष्ट्योषधीः शुद्धाः संपादयेयुः। अपरे सन्तो भिषजो विद्वांसो निदानादिद्वारा सर्वान् प्राणिनोऽरोगान् सततं रक्षयेयुः। नैतत्कर्मणा विना समष्टिसुखं कदाचित् संपद्यते॥३८॥

पदार्थः-हे श्रेष्ठ वैद्य पुरुष! आप **(मधुमतीः)** प्रशंसित मधुर आदि गुणयुक्त **(देवीः)** पवित्र **(अपः)** जलों को **(उपसृज)** उत्पन्न कीजिये जिस से **(तासाम्)** उन जलों के **(आस्थानात्)** आश्रय से **(सुपिप्पलाः)** सुन्दर फलों वाली **(ओषधयः)** सोमलता आदि ओषधियों को **(प्रजाभ्यः)** रक्षा करने योग्य प्राणियों के **(अयक्ष्माय)** यक्ष्मा आदि रोगों की निवृत्ति के लिये **(उज्जिहताम्)** प्राप्त हूजिये॥३८॥

भावार्थः-राजा को चाहिये कि दो प्रकार के वैद्य रक्खे। एक तो सुगन्ध आदि पदार्थों के होम से वायु वर्षा जल और ओषधियों को शुद्ध करें। दूसरे श्रेष्ठ विद्वान् वैद्य होकर निदान आदि के द्वारा सब प्राणियों को रोगरहित रक्खें। इस कर्म के विना संसार में सार्वजनिक सुख नहीं हो सकता॥३८॥

सं त इत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः। वायुर्देवता। विराट् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ स्त्रीपुरुषयोः कर्त्तव्यकर्माह॥

अब स्त्री-पुरुष का कर्त्तव्यकर्म अगले मन्त्र में कहा है॥

सं ते वायुर्मातरिश्वा दधातूत्तानाया हृदयं यद्विकस्तम्।

यो देवानां चरसि प्राणथेन कस्मै देव वषडस्तु तुभ्यम्॥३९॥

सम्। ते। वायुः। मातरिश्वा। दधातु। उत्तानायाः। हृदयम्। यत्। विकस्तमिति विऽकस्तम्। यः। देवानाम्। चरसि। प्राणथेन। कस्मै। देव। वषट्। अस्तु। तुभ्यम्॥३९॥

पदार्थः-**(सम्)** **(ते)** तव **(वायुः)** पवनः **(मातरिश्वा)** यो मातर्य्यन्तरिक्षे श्वसिति सः **(दधातु)** धरतु पुष्णातु वा **(उत्तानायाः)** उत्कृष्टस्तानः शुभलक्षणविस्तारो यस्या राज्यास्तस्याः **(हृदयम्)** अन्तःकरणम् **(यत्)** **(विकस्तम्)** विविधतया कस्यते शिष्यते यत् तत् **(यः)** विद्वान् **(देवानाम्)** धार्मिकाणां विदुषाम् **(चरसि)** गच्छसि प्राप्नोषि **(प्राणथेन)** येन प्राणन्ति सुखयन्ति तेन **(कस्मै)** सुखस्वरूपाय **(देव)** दिव्यसुखप्रद **(वषट्)** क्रियाकौशलम् **(अस्तु)** **(तुभ्यम्)**। **[अयं मन्त्रः** शत०६.४.३.४ व्याख्यातः**]**॥३९॥

अन्वयः-हे पत्नि! उत्तानायास्ते यद्विकस्तं हृदयं तद्यज्ञशोधितो मातरिश्वा वायुः संदधातु। हे देव पते स्वामिन्! यस्त्वं प्राणथेन देवानां यद्विकस्तं हृदयं चरसि, तस्मै कस्मै तुभ्यं मत्तो वषडस्तु॥३९॥

भावार्थः-पूर्णयुवा पुरुषो ब्रह्मचारिण्या सह विवाहं कुर्यात् तस्या अप्रियं कदाचिन्नाचरेत्। या स्त्री कन्या ब्रह्मचारिणा सहोपयमं कुर्य्यात् तस्यानिष्टं मनसापि न चिन्तयेत्। एवं प्रमुदितौ सन्तौ परस्परं संप्रीत्या गृहकृत्यानि संसाधयेताम्॥३९॥

पदार्थः-हे पत्नि राणी! **(उत्तानायाः)** बड़े शुभलक्षणों के विस्तार से युक्त **(ते)** आप का **(यत्)** जो **(विकस्तम्)** अनेक प्रकार से शिक्षा को प्राप्त हुआ **(हृदयम्)** अन्तःकरण हो उस को यज्ञ से शुद्ध हुआ **(मातरिश्वा)** आकाश में चलने वाला **(वायुः)** पवन **(संदधातु)** अच्छे प्रकार पुष्ट करे। हे **(देव)** अच्छे सुख देने हारे पति स्वामी! **(यः)** जो विद्वान् आप **(प्राणथेन)** सुख के हेतु प्राणवायु से **(देवानाम्)** धर्मात्मा विद्वानों का जिस अनेक प्रकार से शिक्षित हृदय को **(चरसि)** प्राप्त होते हो, उस **(कस्मै)** सुखस्वरूप **(तुभ्यम्)** आपके लिये मुझ से **(वषट्)** क्रिया की कुशलता **(अस्तु)** प्राप्त होवे॥३९॥

भावार्थः-पूर्ण जवान पुरुष जिस ब्रह्मचारिणी कुमारी कन्या के साथ विवाह करे, उस के साथ विरुद्ध

आचरण कभी न करे। जो कन्या पूर्ण युवती स्त्री जिस कुमार ब्रह्मचारी के साथ विवाह करे, उस का अनिष्ट कभी मन से भी न विचारे। इस प्रकार दोनों परस्पर प्रसन्न हुए प्रीति के साथ घर के कार्य्य संभालें॥३९॥

सुजात इत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी उक्त विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है॥

सुजातो ज्योतिषा सह शर्म वरूथमासदत् स्वः।

वासोऽअग्ने विश्वरूपꣳ संव्ययस्व विभावसो॥४०॥

सुजात इति सुऽजातः। ज्योतिषा। सह। शर्म्म। वरूथम्। आ। असदत्। स्वरिति स्वः। वासः। अग्ने। विश्वरूपमिति विश्वऽरूपम्। सम्। व्ययस्व। विभावसो इति विभाऽवसो॥४०॥

पदार्थः-(**सुजातः**) सुष्ठु प्रसिद्धः (**ज्योतिषा**) विद्याप्रकाशेन (**सह**) (**शर्म**) गृहम् (**वरूथम्**) वरम् (**आ**) (**असदत्**) सीद (**स्वः**) सुखम् (**वासः**) वस्त्रम् (**अग्ने**) अग्निरिव प्रकाशमान (**विश्वरूपम्**) विविधस्वरूपम् (**सम्**) (**व्ययस्व**) धरस्व (**विभावसो**) विविधया भया दीप्त्या सहितं वसु धनं यस्य तत्सम्बुद्धौ। [अयं मन्त्रः शत०६.४.३.६-८ व्याख्यातः]॥४०॥

अन्वयः-हे विभावसोऽग्ने! ज्योतिषा सह सुजातस्त्वं स्वर्वरूथं शर्मासदत् सीद विश्वरूपं वासो संव्ययस्व॥४०॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। विवाहितौ स्त्रीपुरुषौ यथा सूर्य्यो भास्वरतया सर्वं प्रकाशते, तथा सुवस्त्रालङ्कारैरुज्ज्वलौ भूत्वा गृहादीनि वस्तूनि सदा पवित्राणि रक्षेताम्॥४०॥

पदार्थः-हे (**विभावसो**) प्रकाशसहित धन से युक्त (**अग्ने**) अग्नि के तुल्य तेजस्वी! (**ज्योतिषा**) विद्या-प्रकाश के (**सह**) साथ (**सुजातः**) अच्छे प्रसिद्ध आप (**स्वः**) सुखदायक (**वरूथम्**) श्रेष्ठ (**शर्म्म**) घर को (**आसदत्**) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये (**विश्वरूपम्**) अनेक चित्र-विचित्ररूपी (**वासः**) वस्त्र को (**संव्ययस्व**) धारण कीजिये॥४०॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। विवाहित स्त्री पुरुषों को चाहिये कि जैसे सूर्य्य अपने प्रकाश से सब जगत् को प्रकाशित करता है, वैसे ही अपने सुन्दर वस्त्र और आभूष्णों से शोभायमान होके घर आदि वस्तुओं को सदा पवित्र रक्खें॥४०॥

उदु तिष्ठेत्यस्य विश्वमना ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनर्विद्वत्कृत्यमाह॥

फिर भी विद्वानों का कृत्य अगले मन्त्र में कहा है॥

उदु तिष्ठ स्वध्वरावा नो देव्या धिया।

दृशे च भासा बृहता सुशुक्वनिराग्ने याहि सुशस्तिभिः॥४१॥

उत्। ॐ इत्यूँ। तिष्ठ। स्वध्वरेति सुऽअध्वर। अव। नः। देव्या। धिया। दृशे। च। भासा। बृहता। सुशुक्वनिरिति सुऽशुक्वनिः। आ। अग्ने। याहि। सुशस्तिभिरिति सुशस्तिऽभिः॥४१॥

पदार्थः-(**उत्**) (उ) (**तिष्ठ**) (**स्वध्वर**) शोभना अध्वरा अहिंसनीया माननीया व्यवहारा यस्य तत्सम्बुद्धौ (**अव**) रक्ष। अत्र **द्व्यचोऽतस्तिङः** [अष्टा०६.३.१३५] इति दीर्घः। (**नः**) अस्मान् (**देव्या**) शुद्धविद्याशिक्षापन्नया (**धिया**) प्रज्ञया क्रियया वा (**दृशे**) द्रष्टुम् (**च**) (**भासा**) प्रकाशेन (**बृहता**) महता (**सुशुक्वनिः**) सुष्ठु शुचां पवित्राणां वनिः संभक्ता (**आ**) (**अग्ने**) विद्वन् (**याहि**) प्राप्नुहि (**सुशस्तिभिः**) शोभनैः प्रशंसितैर्गुणैः। [अयं मन्त्रः शत०६.४.३.९ व्याख्यातः]॥४१॥

अन्वयः-हे स्वध्वर सज्जन विद्वन् गृहस्थ! त्वं सततमुत्तिष्ठ सर्वदा प्रयतस्व देव्या धिया नोऽव। हे अग्ने अग्निवत्प्रकाशमान! सुशुक्वनिस्त्वमु दृशे बृहता भासा सूर्य्य इव सुशस्तिभिः सर्वा विद्याऽऽयाहि। अस्माँश्च प्रापय॥४१॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। विद्वद्भिः शुद्धविद्याप्रज्ञादानेन सर्वे सततं संरक्ष्याः। नहि सुशिक्षामन्तरा मनुष्याणां सुखायान्यत् किंचिच्छरणमस्ति, तस्मादालस्यकपटादीनि कुकर्माणि विहाय विद्याप्रचाराय सदा प्रयतितव्यम्॥४१॥

पदार्थः-हे (**स्वध्वर**) अच्छे माननीय व्यवहार करने वाले सज्जन विद्वन् गृहस्थ! आप निरन्तर (**उत्तिष्ठ**) पुरुषार्थ से उन्नति को प्राप्त हो के अन्य मनुष्यों को प्राप्त सदा किया कीजिये (**देव्या**) शुद्ध विद्या और शिक्षा से युक्त (**धिया**) बुद्धि वा क्रिया से (**नः**) हम लोगों की (**अव**) रक्षा कीजिये। हे (**अग्ने**) अग्नि के समान प्रकाशमान! (**सुशुक्वनिः**) अच्छे पवित्र पदार्थों के विभाग करने हारे आप (उ) तर्क के साथ (**दृशे**) देखने को (**बृहता**) बड़े (**भासा**) प्रकाशरूप सूर्य्य के तुल्य (**सुशस्तिभिः**) सुन्दर प्रशंसित गुणों के साथ सब विद्याओं को (**आ, याहि**) प्राप्त हूजिये (**च**) और हमारे लिये भी सब विद्याओं को प्राप्त कीजिये॥४१॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। विद्वान् लोगों को चाहिये कि शुद्ध विद्या और बुद्धि के दान से सब मनुष्यों की निरन्तर रक्षा करें, क्योंकि अच्छी शिक्षा के विना मनुष्यों के सुख के लिये और कोई भी आश्रय नहीं है। इसलिये सब को उचित है कि आलस्य और कपट आदि कुकर्मों को छोड़ के विद्या के प्रचार के लिये सदा प्रयत्न किया करें॥४१॥

ऊर्ध्व इत्यस्य कण्व ऋषिः। अग्निर्देवता। उपरिष्टाद् बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनर्विद्वत्कृत्यमाह॥

फिर भी उक्त विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ऊर्ध्वऽऊ षु णऽऊतये तिष्ठा देवो न सविता।

ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदञ्जिभिर्वाघद्भिर्विह्वयामहे॥४२॥

ऊर्ध्वः। ऊ इत्यूँ। सु। नः। ऊतये। तिष्ठ। देवः। न। सविता। ऊर्ध्वः। वाजस्य। सनिता। यत्। अञ्जिभिरित्यञ्जिऽभिः। वाघद्भिरिति वाघत्ऽभिः। विह्वयामहे इति विह्वयामहे॥४२॥

पदार्थः-(**ऊर्ध्वः**) उपरिस्थः (**उ**) (**सु**) (**नः**) अस्माकम् (**ऊतये**) रक्षणाद्याय (**तिष्ठ**) **द्व्यचोऽतस्तिङः** [अष्टा०६.३.१३५] इति दीर्घः। (**देवः**) द्योतकः (**न**) इव (**सविता**) भास्करः (**ऊर्ध्वः**) उत्कृष्टः (**वाजस्य**) विज्ञानस्य (**सनिता**) संभाजकः (**यत्**) यः (**अञ्जिभिः**) व्यक्तिकारकैः किरणैः (**वाघद्भिः**) युद्धविद्याकुशलैर्मेधाविभिः (**विह्वयामहे**) विशेषेण स्पर्द्धामहे। [अयं मन्त्रः शत०६.४.३.१० व्याख्यातः]॥४२॥

अन्वयः-हे विद्वन्नध्यापक! त्वमूर्ध्वः सविता देवो न न ऊतये सुतिष्ठ सुस्थिरो भव। यद्यस्त्वमञ्जिभिर्वाघद्भिः सह वाजस्य सनिता भव तमु वयं विह्वयामहे॥४२॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। अध्यापकोपदेशका जना यथा सविता भूमिचन्द्रादिभ्य उपरिस्थः सन् स्वज्योतिषा सर्वं संरक्ष्य प्रकाशयति, तथोत्कृष्टगुणैर्विद्यान्यायं प्रकाश्य सर्वाः प्रजाः सदा सुशोभयेयुः॥४२॥

पदार्थः-हे अध्यापक विद्वान्! आप (**ऊर्ध्वः**) ऊपर आकाश में रहने वाले (**देवः**) प्रकाशक (**सविता**) सूर्य्य के (**न**) समान (**नः**) हमारी (**ऊतये**) रक्षा आदि के लिये (**सुतिष्ठ**) अच्छे प्रकार स्थित हूजिये (**यत्**) जो आप (**अञ्जिभिः**) प्रकट करने हारे किरणों के सदृश (**वाघद्भिः**) युद्धविद्या में कुशल बुद्धिमानों के साथ (**वाजस्य**) विज्ञान के (**सनिता**) सेवनेहारे हूजिये (उ) उसी को हम लोग (**विह्वयामहे**) विशेष करके बुलाते हैं॥४२॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। अध्यापक और उपदेशक विद्वान् को चाहिये कि जैसे सूर्य्य, भूमि और चन्द्रमा आदि लोकों से ऊपर स्थित होके, अपनी किरणों से सब जगत् की रक्षा के लिये प्रकाश करता है, वैसे उत्तम गुणों से विद्या और न्याय का प्रकाश करके सब प्रजाओं को सदा सुशोभित करें॥४२॥

स जात इत्यस्य त्रित ऋषिः। अग्निर्देवता। विराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ जनकापत्यव्यवहारमाह॥

अब पिता-पुत्र का व्यवहार अगले मन्त्र में कहा है॥

स जातो गर्भोऽअसि रोदस्योरग्ने चारुर्विभृतऽओषधीषु।

चित्रः शिशुः परि तमांᳫं स्यक्तून् प्र मातृभ्योऽअधि कनिक्रदद् गाः॥४३॥

सः। जातः। गर्भः। असि। रोदस्योः। अग्ने। चारुः। विभृत इति विऽभृतः। ओषधीषु। चित्रः। शिशुः। परि। तमांᳫंसि। अक्तून्। प्र। मातृभ्य इति मातृऽभ्यः। अधि। कनिक्रदत्। गाः॥४३॥

पदार्थः-(**सः**) (**जातः**) प्रसिद्धः (**गर्भः**) यो गीर्यते स्वीक्रियते सः (**असि**) (**रोदस्योः**) द्यावापृथिव्योः (**अग्ने**) विद्वन् (**चारुः**) सुन्दरः (**विभृतः**) विशेषेण धृतः पोषितो वा (**ओषधीषु**) सोमादिषु (**चित्रः**) अद्भुतः (**शिशुः**) बालकः (**परि**) (**तमांसि**) रात्रीः (**अक्तून्**) अन्धकारान् (**प्र**) (**मातृभ्यः**) मान्यकर्त्रीभ्यः (**अधि**) (**कनिक्रदत्**) गच्छन् (**गाः**) गच्छति। अत्राऽडभावः। [अयं मन्त्रः शत०६.४.४.२ व्याख्यातः]॥४३॥

अन्वयः-हे अग्ने! यस्त्वं यथा रोदस्योर्जातश्चारुरोषधीषु विभृतश्चित्रो गर्भोऽर्को मातृभ्यस्तमांस्यक्तून् पर्य्यधिकनिक्रदत् सन् गा गच्छति तथाभूतः शिशुर्गा विद्याः प्राप्नुहि॥४३॥

भावार्थः-यथा ब्रह्मचर्य्यादिसुनियमैर्जनितः पुत्रो विद्या अधीत्य पितरौ सुखयति, तथैव जनकौ प्रजाः सुखयेताम्॥४३॥

पदार्थः-हे **(अग्ने)** विद्वान्! जो आप जैसे **(रोदस्योः)** आकाश और पृथिवी में **(जातः)** प्रसिद्ध **(चारुः)** सुन्दर **(ओषधीषु)** सोमलतादि ओषधियों में **(विभृतः)** विशेष करके धारण वा पोषण किया **(चित्रः)** आश्चर्य्यरूप **(गर्भः)** स्वीकार करने योग्य सूर्य्य **(मातृभ्यः)** मान्य करने हारी माता अर्थात् किरणों से **(तमांसि)** रात्रियों तथा **(अक्तून्)** अन्धेरों को **(पर्य्यधिकनिक्रदत्)** सब ओर से अधिक करके चलता हुआ **(गाः)** चलाता है, वैसे ही **(शिशुः)** बालक **(गाः)** विद्या को प्राप्त होवे॥४३॥

भावार्थः-जैसे ब्रह्मचर्य्य आदि अच्छे नियमों से उत्पन्न किया पुत्र विद्या पढ़ के माता-पिता को सुख देता है, वैसे ही माता-पिता को चाहिये कि प्रजा को सुख देवें॥४३॥

स्थिरो भवेत्यस्य त्रित ऋषिः। अग्निर्देवता। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथ पितरौ स्वापत्यानि कथं शिक्षेयातामित्युपदिश्यते॥

अब माता-पिता अपने सन्तानों को किस प्रकार शिक्षा करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

स्थिरो भव वीड्वङ्गऽआशुर्भव वाज्यर्वन्।

पृथुर्भव सुषदस्त्वमग्नेः पुरीषवाहणः॥४४॥

स्थिरः। भव। वीड्वङ्ग इति वीडुऽअङ्गः। आशुः। भव। वाजी। अर्वन्। पृथुः। भव। सुषदः। सुसद इति सुऽसदः। त्वम्। अग्नेः। पुरीषवाहणः। पुरीषवाहन इति पुरीषऽवाहनः॥४४॥

पदार्थः-**(स्थिरः)** निश्चलः **(भव)** **(वीड्वङ्गः)** वीडूनि दृढानि बलिष्ठान्यङ्गानि यस्य सः **(आशुः)** शीघ्रकारी **(भव)** **(वाजी)** प्राप्तनीतिः **(अर्वन्)** विज्ञानयुक्त **(पृथुः)** विस्तृतसुखः **(भव)** **(सुषदः)** यः शोभनेषु व्यवहारेषु सीदति सः **(त्वम्)** **(अग्नेः)** पावकस्य **(पुरीषवाहणः)** यः पुरीषाणि पालनादीनि कर्माणि वाहयति प्रापयति सः। [अयं मन्त्रः शत०६.४.४.३ व्याख्यातः]॥४४॥

अन्वयः-हे अर्वन् पुत्र! त्वं विद्याग्रहणाय स्थिरो भव, वाजी वीड्वङ्ग आशुर्भव। त्वमग्नेः सुषदः पुरीषवाहणः पृथुर्भव॥४४॥

भावार्थः-हे सुसन्तानाः! युष्माभिर्ब्रह्मचर्येण शरीरबलं विद्यासुशिक्षाभ्यामात्मबलं पूर्णं दृढं कृत्वा स्थिरतया रक्षा विधेया। आग्नेयाऽस्त्रादिना शत्रुविनाशश्चेति मातापितरः स्वसन्तानान् सुशिक्षेयुः॥४४॥

पदार्थः-हे **(अर्वन्)** विज्ञानयुक्त पुत्र! तू विद्याग्रहण के लिये **(स्थिरः)** दृढ़ **(भव)** हो **(वाजी)** नीति को प्राप्त होके **(वीड्वङ्गः)** दृढ़ अति बलवान् अवयवों से युक्त **(आशुः)** शीघ्र कर्म करने वाला **(भव)** हो **(त्वम्)** तू **(अग्नेः)** अग्निसंबन्धी **(सुषदः)** सुन्दर व्यवहारों में स्थित और **(पुरीषवाहणः)** पालन आदि शुभ कर्मों को प्राप्त कराने वाला **(पृथुः)** सुख का विस्तार करने हारा **(भव)** हो॥४४॥

भावार्थः-हे अच्छे सन्तानो! तुम को चाहिये कि ब्रह्मचर्य्य सेवन से शरीर का बल और विद्या तथा अच्छी शिक्षा से आत्मा का बल पूर्ण दृढ़ कर स्थिरता से रक्षा करो और आग्नेय आदि अस्त्रविद्या से शत्रुओं का विनाश करो। इस प्रकार माता-पिता अपने सन्तानों को शिक्षा करें॥४४॥

शिव इत्यस्य चित्र ऋषिः। अग्निर्देवता। विराट् पथ्या बृहती छन्दः। मध्यम स्वरः॥

पुनस्तैः प्रजासु कथं वर्त्तितव्यमित्याह॥

फिर उन को प्रजा में कैसे वर्त्तना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

शिवो भव प्रजाभ्यो मानुषीभ्यस्त्वमङ्गिरः।

मा द्यावापृथिवीऽअभि शोचीर्मान्तरिक्षं मा वनस्पतीन्॥ ४५॥

शिवः। भव। प्रजाभ्य इति प्रजाऽभ्यः। मानुषीभ्यः। त्वम्। अङ्गिरः। मा। द्यावापृथिवीऽइति द्यावापृथिवी। अभि। शोचीः। मा। अन्तरिक्षम्। मा। वनस्पतीन्॥ ४५॥

पदार्थः-(**शिवः**) कल्याणकरो मङ्गलमयः (**भव**) (**प्रजाभ्यः**) प्रसिद्धाभ्यः (**मानुषीभ्यः**) मनुष्यादिभ्यः (**त्वम्**) (**अङ्गिरः**) प्राण इव प्रिय (**मा**) निषेधे (**द्यावापृथिवी**) विद्युद्भूमी (**अभि**) आभ्यन्तरे (**शोचीः**) शोकं कुर्य्याः (**मा**) (**अन्तरिक्षम्**) अवकाशम् (**मा**) (**वनस्पतीन्**) वटादीन्। [अयं मन्त्रः शत०६.४.४.४ व्याख्यातः]॥ ४५॥

अन्वयः-हे अङ्गिरः! त्वं मानुषीभ्यः प्रजाभ्यः शिवो भव, द्यावापृथिवी माभिशोचीरन्तरिक्षं माभिशोचीर्वनस्पतीन् माभिशोचीः॥ ४५॥

भावार्थः-सन्तानैः प्रजाः प्रति मङ्गलाचरणेन भूत्वा पृथिव्यादीनां मध्ये निश्शोकैः स्थातव्यम्। किन्त्वेषां रक्षां विधायोपकारायोत्साहतया प्रयतितव्यम्॥ ४५॥

पदार्थः-हे (**अङ्गिरः**) प्राणों के समान प्रिय सुसन्तान! (**त्वम्**) तू (**मानुषीभ्यः**) मनुष्य आदि (**प्रजाभ्यः**) प्रसिद्ध प्रजाओं के लिये (**शिवः**) कल्याणकारी मङ्गलमय (**भव**) हो (**द्यावापृथिवी**) बिजुली और भूमि के विषय में (**मा**) मत (**अभिशोचीः**) अति शोच कर (**अन्तरिक्षम्**) अवकाश के विषय में (**मा**) मत शोच कर और (**वनस्पतीन्**) वट आदि वनस्पतियों का (**मा**) शोच मत कर॥ ४५॥

भावार्थः-सुसन्तानों को चाहिये कि प्रजा के प्रति मङ्गलाचारी हो के पृथिवी आदि पदार्थों के विषय में शोकरहित होवें, किन्तु इन सब पदार्थों की रक्षा विधान कर उपकार के लिये उत्साह के साथ प्रयत्न करें॥ ४५॥

प्रैतु वाजीत्यस्य त्रित ऋषिः। अग्निर्देवता। ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनः स एव विषय उपदिश्यते॥

फिर भी उक्त विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

प्रैतु वाजी कनिक्रदन्नानदद्रासभः पत्वा। भरन्नग्निं पुरीष्यं मा पाद्यायुषः पुरा।

वृषाग्निं वृषणं भरन्नपां गर्भꣳ समुद्रियम्। अग्नऽआयाहि वीतये॥ ४६॥

प्र। एतु। वाजी। कनिक्रदत्। नानदत्। रासभः। पत्वा। भरन्। अग्निम्। पुरीष्यम्। मा। पादि। आयुषः। पुरा। वृषा। अग्निम्। वृषणम्। भरन्। अपाम्। गर्भम्। समुद्रियम्। अग्ने। आ। याहि। वीतये॥ ४६॥

पदार्थः-(**प्र**) (**एतु**) गच्छतु (**वाजी**) अश्वः (**कनिक्रदत्**) गच्छन् (**नानदत्**) भृशं शब्दं कुर्वन् (**रासभः**) दातुं योग्यः (**पत्वा**) पतति गच्छतीति (**भरन्**) धरन् (**अग्निम्**) विद्युतम् (**पुरीष्यम्**) पुरीषेषु पालनेषु साधुम् (**मा**) (**पादि**) गच्छ (**आयुषः**) नियतवर्षाज्जीवनात् (**पुरा**) पूर्वम् (**वृषा**) बलिष्ठः (**अग्निम्**) सूर्य्याख्यम् (**वृषणम्**)

वर्षयितारम् **(भरन्)** **(अपाम्)** जलानाम् **(गर्भम्)** **(समुद्रियम्)** समुद्रे भवम् **(अग्ने)** विद्वन् **(आ)** **(याहि)** प्राप्नुहि **(वीतये)** विविधसुखानां व्याप्तये। [अयं मन्त्र: शत०६.४.४.७ व्याख्यात:]॥४६॥

अन्वय:-हे अग्ने सुसन्तान! भवान् कनिक्रदन्नानदद्रासभ: पत्वा वाजीवायुष: पुरा मा प्रैतु। पुरीष्यमग्निं भरन्मा पादि। इतस्ततो मागच्छ वृषापां गर्भं समुद्रियं वृषणमग्निं भरन् सन् वीतय आयाहि॥४६॥

भावार्थ:-मनुष्या विषयलोलुपतात्यागेन ब्रह्मचर्य्येण पूर्णजीवनं धृत्वाऽग्न्यादिपदार्थविज्ञानाद् धर्म्यं व्यवहारमुन्नयेयु:॥४६॥

पदार्थ:-हे **(अग्ने)** विद्वन् उत्तम सन्तान! तू **(कनिक्रदत्)** चलते और **(नानदत्)** शीघ्र शब्द करते हुए **(रासभ:)** देने योग्य **(पत्वा)** चलने वा **(वाजी)** घोड़ा के समान **(आयुष:)** नियत वर्षों की अवस्था से **(पुरा)** पहिले **(मा)** न **(प्रैतु)** मरे **(पुरीष्यम्)** रक्षा के हेतु पदार्थों में उत्तम **(अग्निम्)** बिजुली **(भरन्)** धारण करता हुआ **(मा पादि)** इधर-उधर मत भाग जैसे **(वृषा)** अति बलवान् **(अपाम्)** जलों के **(समुद्रियम्)** समुद्र में हुए **(गर्भम्)** स्वीकार करने योग्य **(वृषणम्)** वर्षा करने हारे **(अग्निम्)** सूर्य्य को **(भरन्)** धारण करता हुआ **(वीतये)** सुखों की व्याप्ति के लिये **(आयाहि)** अच्छे प्रकार प्राप्त हो॥४६॥

भावार्थ:-राजा आदि मनुष्यों को योग्य है कि अपने सन्तानों को विषयों की लोलुपता से छुड़ा के ब्रह्मचर्य्य के साथ पूर्ण अवस्था को धारण कर अग्नि आदि पदार्थों के विज्ञान से धर्म्मयुक्त व्यवहार की उन्नति करावें॥४६॥

ऋतमित्यस्य त्रित ऋषि:। अग्निर्देवता। विराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्द:। धैवत: स्वर:॥

मनुष्यै: किं किमाचरणीयं किं किं च त्यक्तव्यमित्याह॥

मनुष्यों को क्या-क्या आचरण करना और क्या-क्या छोड़ना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है।

ऋतꣳ सत्यमृतꣳ सत्यमग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वद्भराम:।

ओषधय: प्रतिमोदध्वमग्निमेतꣳ शिवमायन्तमभ्यत्र युष्मा:।

व्यस्यन् विश्वाऽअनिराऽअमीवा निषीदन्नोऽअप दुर्मतिं जहि॥४७॥

ऋतम्। सत्यम्। ऋतम्। सत्यम्। अग्निम्। पुरीष्यम्। अङ्गिरस्वत्। भराम:। ओषधय:। प्रति। मोदध्वम्। अग्निम्। एतम्। शिवम्। आयन्तमित्याऽयन्तम्। अभि। अत्र। युष्मा:। व्यस्यन्निति विऽअस्यन्। विश्वा:। अनिरा:। अमीवा:। निषीदन्। निसीदन्निति निऽसीदन्। न:। अप। दुर्मतिमिति दु:ऽमतिम्। जहि॥४७॥

पदार्थ:-**(ऋतम्)** यथार्थम् **(सत्यम्)** अविनश्वरम् **(ऋतम्)** अव्यभिचारि **(सत्यम्)** सत्सु पुरुषेषु साधु सत्यं मानं भाषणं कर्म च **(अग्निम्)** विद्युतम् **(पुरीष्यम्)** पालनसाधनेषु भवम् **(अङ्गिरस्वत्)** वायुवत् **(भराम:)** धराम: **(ओषधय:)** यवादय: **(प्रति)** **(मोदध्वम्)** सुखयत **(अग्निम्)** **(एतम्)** पूर्वोक्तम् **(शिवम्)** मङ्गलकारिणम् **(आयन्तम्)** प्राप्नुवन्तम् **(अभि)** आभिमुख्ये **(अत्र)** **(युष्मा:)** युष्मान्। अत्र **वाच्छन्दसि** [अष्टा०वा०१.४.९] इति शसो नादेशाभाव:। **(व्यस्यन्)** विविधताय प्रक्षिपन् **(विश्वा:)** सर्वा: **(अनिरा:)** नितरां दातुमयोग्या: **(अमीवा:)**

रोगपीडा: **(निषीदन्)** अवस्थित: सन् **(न:)** अस्माकम् **(अप)** दूरीकरणे **(दुर्मतिम्)** दुष्टां मतिम् **(जहि)** नाशय। [अयं मन्त्र: शत०६.४.४.१० व्याख्यात:]॥४७॥

अन्वय:-हे सन्ताना:! यथा वयमृतं सत्यमृतं सत्यं पुरीष्यमग्निमङ्गिरस्वद् भराम:। एतमायन्तं शिवमग्निं भृत्वा यूयमप्यभिमोदध्वम्। या ओषधयो युष्मा: प्रति प्राप्नुवन्ति ता वयं भराम:। हे वैद्य! त्वं विश्वा अनिरा अमीवा व्यस्यन्नत्र निषीदन्नो दुर्मतिमपजहि दूरीकुर्वित्येनं प्रार्थयत॥४७॥

भावार्थ:-मनुष्या ऋतं सत्यं परं सत्यं कारणं ब्रह्मापरमृतं सत्यमव्यक्तं जीवाख्यं सत्यभाषणादिकं प्रकृतिजमग्न्योषधिसमूहं च विद्यया शरीरस्य ज्वरादिरोगानात्मनोऽविद्यादींश्च निरस्य मादकद्रव्यत्यागेन सुमतिं संपाद्य सुखं प्राप्य नित्यं मोदन्तां मा कदाचिदेतद्विपरीताचरणेन सुखं हित्वा दु:खसागरे पतन्तु॥४७॥

पदार्थ:-हे सुसन्तानो! जैसे हम लोग **(ऋतम्)** यथार्थ **(सत्यम्)** नाशरहित **(ऋतम्)** अव्यभिचारी **(सत्यम्)** सत्पुरुषों में श्रेष्ठ तथा सत्य मानना बोलना और करना **(पुरीष्यम्)** रक्षा के साधनों में उत्तम **(अग्निम्)** बिजुली को **(अङ्गिरस्वत्)** वायु के तुल्य **(भराम:)** धारण करते हैं **(एतम्)** इस पूर्वोक्त **(आयन्तम्)** प्राप्त हुए **(शिवम्)** मङ्गलकारी **(अग्निम्)** बिजुली को प्राप्त हो के तुम लोग भी **(अभिमोदध्वम्)** आनन्दित रहो जो **(ओषधय:)** जौ आदि ओषधि **(युष्मा:)** तुम्हारे **(प्रति)** लिये प्राप्त होवें उन को हम लोग धारण करते हैं, वैसे तुम भी करो। हे वैद्य! आप **(विश्वा:)** सब **(अनिरा:)** जो निरन्तर देने योग्य नहीं **(अमीवा:)** ऐसी रोगों की पीड़ा **(व्यस्यन्)** अनेक प्रकार से अलग करते और **(अत्र)** इस आयुर्वेदविद्या में **(निषीदन्)** स्थित हो के **(न:)** हम लोगों की **(दुर्मतिम्)** दुष्ट बुद्धि को **(अपजहि)** सब प्रकार दूर कीजिये, सब इस प्रकार इस वैद्य की प्रार्थना करो॥४७॥

भावार्थ:-हे मनुष्यो! तुम लोगों को उचित है कि यथार्थ अविनाशी परकारण ब्रह्म, दूसरा कारण यथार्थ अविनाशी अव्यक्त जीव, सत्यभाषणादि तथा प्रकृति से उत्पन्न हुए अग्नि और ओषधि आदि पदार्थों के धारण से शरीर के ज्वर आदि रोगों और आत्मा के अविद्या आदि दोषों को छुड़ा के मद्य आदि द्रव्यों के त्याग से अच्छी बुद्धि कर और सुख को प्राप्त हो के नित्य आनन्द में रहो और कभी इससे विपरीत आचरण कर सुख को छोड़ के दु:खसागर में मत गिरो॥४७॥

ओषधय इत्यस्य त्रित ऋषि:। अग्निर्देवता। भुरिगनुष्टुप् छन्द:। गान्धार स्वर:॥

स्त्रियोऽपि किं किमाचरेयुरित्याह॥

स्त्रियों को क्या-क्या आचरण करना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

ओष॑धयः॒ प्रति॑गृभ्णीत॒ पुष्प॑वतीः सुपिप्प॒लाः।

अ॒यं वो॒ गर्भ॑ऽऋ॒त्विय॑ः प्र॒त्नꣳ स॒धस्थ॒मास॑दत्॥४८॥

ओष॑धयः। प्रति॑। गृ॒भ्णी॒त॒। पुष्प॑वती॒रिति॒ पुष्प॑ऽवतीः। सु॒पि॒प्प॒ला इति॑ सु॒ऽपि॒प्प॒लाः। अ॒यम्। व॒ः। गर्भ॑ः। ऋ॒त्विय॑ः। प्र॒त्नम्। स॒धस्थ॒मिति॑ स॒धऽस्थ॑म्। आ। अ॒स॒द॒त्॥४८॥

पदार्थ:-**(ओषधय:)** सोमादय: **(प्रति)** **(गृभ्णीत)** गृह्णीत **(पुष्पवती:)** श्रेष्ठानि पुष्पाणि यासां ता: **(सुपिप्पला:)** शोभनफला: **(अयम्)** **(व:)** युष्माकम् **(गर्भ:)** यासां ता: **(ऋत्विय:)** ऋतु: प्राप्तोऽस्य **(प्रत्नम्)** पुरातनम् **(सधस्थम्)** सहस्थानम् **(आ)** **(असदत्)** प्राप्नुयात्। [अयं मन्त्र: शत०६.४.४.१७ व्याख्यात:]॥४८॥

अन्वयः-हे स्त्रियः! यूयं या ओषधयः सन्ति, याभ्योऽयमृत्वियो गर्भो वः प्रत्नं सधस्थं गर्भाशयमासदत्, ताः पुष्पवतीः सुपिप्पला ओषधीः प्रति गृभ्णीत॥४८॥

भावार्थः-मातापितृभ्यां कन्याभ्यो व्याकरणादिकमध्याप्य वैद्यकशास्त्रमप्यध्यापनीयम्। यत इमा आरोग्यकारिका गर्भसंपादिनीरोषधीर्विज्ञाय सुसन्तानान्युत्पाद्य सततं प्रमोदेरन्॥४८॥

पदार्थः-हे स्त्रियो! तुम लोग जो **(ओषधयः)** सोमलता आदि ओषधि हैं जिन से **(अयम्)** यह **(ऋत्वियः)** ठीक ऋतु काल को प्राप्त हुआ **(गर्भः)** गर्भ **(वः)** तुम्हारे **(प्रत्नम्)** प्राचीन **(सधस्थम्)** नियत स्थान गर्भाशय को **(आ असदत्)** प्राप्त होवे उन **(पुष्पवतीः)** श्रेष्ठ पुष्पों वाली **(सुपिप्पलाः)** सुन्दर फलों से युक्त ओषधियों को **(प्रतिगृभ्णीत)** निश्चय करके ग्रहण करो॥४८॥

भावार्थः-माता-पिता को चाहिये कि अपनी कन्याओं को व्याकरण आदि शास्त्र पढ़ा के वैद्यक शास्त्र पढ़ावें, जिससे ये कन्या लोग रोगों का नाश और गर्भ का स्थापन करने वाली ओषधियों को जान और अच्छे सन्तानों को उत्पन्न करके निरन्तर आनन्द भोगें॥४८॥

वि पाजसेत्यस्योत्कील ऋषिः। अग्निर्देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

विवाहसमये स्त्रीपुरुषौ किं किं प्रतिजानीयातामित्युपदिश्यते॥

विवाह के समय स्त्री और पुरुष क्या-क्या प्रतिज्ञा करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

वि पाजसा पृथुना शोशुचानो बाधस्व द्विषो रक्षसोऽअमीवाः।

सुशर्मणो बृहतः शर्मणि स्यामग्नेरहꣳ सुहवस्य प्रणीतौ॥४९॥

वि। पाजसा। पृथुना। शोशुचानः। बाधस्व। द्विषः। रक्षसः। अमीवाः। सुशर्म्मण इति सुऽशर्मणः। बृहतः। शर्मणि। स्याम्। अग्नेः। अहम्। सुहवस्येति सुऽहवस्य। प्रणीतौ। प्रनीताविति प्रऽनीतौ॥४९॥

पदार्थः-**(वि)** विविधेन **(पाजसा)** बलेन। **पातेर्बले जुट् च॥** (उणा०४।२०३) इत्यसुन्। **पाज इति बलनामसु पठितम्॥** (निघं०२।९) **(पृथुना)** विस्तीर्णेन **(शोशुचानः)** भृशं शुचिः सन् **(बाधस्व)** **(द्विषः)** शत्रुभूता व्यभिचारिणीर्वृषलीः **(रक्षसः)** दुष्टाः **(अमीवाः)** रोग इव प्राणिनां पीडकाः **(सुशर्मणः)** सुशोभितगृहस्य **(बृहतः)** महतः **(शर्मणि)** सुखकारके गृहे **(स्याम्)** वर्त्तेय **(अग्नेः)** अग्निवद्देदीप्यमानस्य **(अहम्)** पत्नी **(सुहवस्य)** शोभनो हवो ग्रहणं दानं वा यस्य **(प्रणीतौ)** प्रकृष्टायां धर्म्यायां नीतौ। [अयं मन्त्रः शत०६.४.४.२१ व्याख्यातः]॥४९॥

अन्वयः-हे पते! यदि त्वं पृथुना विपाजसा बलेन सह शोशुचानः सदा वर्त्तेथा, अमीवा रक्षसो द्विषो बाधस्व, तर्हि बृहतः सुशर्मणः सुहवस्याग्नेस्ते शर्मणि प्रणीतौ चाहं पत्नी स्याम्॥४९॥

भावार्थः-विवाहसमये पुरुषेण स्त्रिया च व्यभिचारत्यागस्य प्रतिज्ञां कृत्वा व्यभिचारिणीनां स्त्रीणां लम्पटानां पुरुषाणां च सर्वथा सङ्गं त्यक्त्वा परस्परमप्यतिविषयासक्तिं विहाय ऋतुगामिनौ भूत्वान्योऽन्यं प्रीत्या वीर्यवन्त्यपत्यान्युत्पादयेताम्। नहि व्यभिचारेण तुल्यं स्त्रियाः पुरुषस्य चाप्रियमनायुष्यमकीर्तिकरं कर्म विद्यते, तस्मादेतत् सर्वथा त्यक्त्वा धर्माचारिणौ भूत्वा दीर्घायुषौ स्याताम्॥४९॥

पदार्थः-हे पते! जो आप **(पृथुना)** विस्तृत **(वि)** विविध प्रकार के **(पाजसा)** बल के साथ **(शोशुचानः)** शीघ्र शुद्धता से सदा वर्त्ते और **(अमीवाः)** रोगों के समान प्राणियों की पीड़ा देने हारी **(रक्षसः)** दुष्ट **(द्विषः)**

शत्रुरूप व्यभिचारिणी स्त्रियों को **(बाधस्व)** ताड़ना देवें तो **(बृहतः)** बड़े **(सुशर्मणः)** अच्छे शोभायमान **(सुहवस्य)** सुन्दर लेना-देना व्यवहार जिस में हो ऐसे **(अग्नेः)** अग्नि के तुल्य प्रकाशमान आपके **(शर्मणि)** सुखकारक घर में और **(प्रणीतौ)** उत्तम धर्मयुक्त नीति में **(अहम्)** आप की स्त्री मैं **(स्याम्)** होऊँ॥४९॥

भावार्थः-विवाह समय में स्त्री-पुरुष को चाहिये कि व्यभिचार छोड़ने की प्रतिज्ञा कर व्यभिचारिणी स्त्री और लम्पट पुरुषों का सङ्ग सर्वथा छोड़ आपस में भी अति विषयासक्ति को छोड़ और ऋतुगामी होके परस्पर प्रीति के साथ पराक्रम वाले सन्तानों को उत्पन्न करें, क्योंकि स्त्री वा पुरुष के लिये अप्रिय, आयु का नाशक, निन्दा के योग्य कर्म व्यभिचार के समान दूसरा कोई भी नहीं है, इसलिये इस व्यभिचार कर्म को सब प्रकार छोड़ और धर्माचरण करने वाले हो के पूर्ण अवस्था के सुख को भोगें॥४९॥

आपो हिष्ठेत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः। आपो देवताः। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अथ कृतविवाहाः स्त्रीपुरुषा अन्योन्यं कथं वर्त्तेरन्नित्याह॥

अब विवाह किये स्त्री और पुरुष आपस में कैसे वर्त्तें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता नऽऊर्जे दधातन।

महे रणाय चक्षसे॥५०॥

आपः। हि। स्थ। मयोभुव इति मयःऽभुवः। ताः। नः। ऊर्जे। दधातन। महे। रणाय। चक्षसे॥५०॥

पदार्थः-**(आपः)** आप इव शुभगुणव्यापिकाः **(हि)** खलु **(स्थ)** भवत। अत्र **अन्येषामपि दृश्यते** [अष्टा०६.३.१३७] इति दीर्घः। **(मयोभुवः)** सुखं भावुकाः **(ताः)** **(नः)** अस्माकम् **(ऊर्जे)** बलयुक्ताय **(दधातन)** धरत **(महे)** महते **(रणाय)** सङ्ग्रामाय **(चक्षसे)** ख्यातुं योग्याय॥५०॥

अन्वयः-हे जलवद्वर्त्तमाना आप इव याः स्त्रियः! यूयं मयोभुवः स्थ ता ऊर्जे महे रणाय चक्षसे नो हि दधातन॥५०॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा स्त्रियः स्वपतीन् प्रीणयेयुस्तथैव पतयः स्वस्य स्त्रियः सदा सुखयन्तु। एते युद्धकर्मण्यपि पृथङ् न वसेयुरर्थात् सहैव सदा वर्त्तेरन्॥५०॥

पदार्थः-हे **(आपः)** जलों के समान शुभ गुणों में व्याप्त होने वाली श्रेष्ठ स्त्रियो! जो तुम लोग **(मयोभुवः)** सुख भोगने वाली **(स्थ)** हो **(ताः)** वे तुम **(ऊर्जे)** बलयुक्त पराक्रम और **(महे)** बड़े-बड़े **(चक्षसे)** कहने योग्य **(रणाय)** सङ्ग्राम के लिये **(नः)** हम लोगों को **(हि)** निश्चय करके **(दधातन)** धारण करो॥५०॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे स्त्रियां अपने पतियों को तृप्त रक्खें, वैसे पति भी अपनी-अपनी स्त्रियों को सदा सुख देवें। ये दोनों युद्धकर्म में भी पृथक्-पृथक् न बसें अर्थात् इकट्ठे ही सदा वर्त्ताव रक्खें॥५०॥

यो व इत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः। आपो देवताः। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी वही उक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः।

उशतीरिव मातरः॥५१॥

यः। वः। शिवतम इति शिवऽतमः। रसः। तस्य। भाजयत। इह। नः। उशतीरिवेत्युशतीःऽइव। मातरः॥५१॥

पदार्थः-(**यः**) (**वः**) युष्माकम् (**शिवतमः**) अतिशयेन सुखकारी (**रसः**) आनन्दः (**तस्य**) (**भाजयत**) सेवयत (**इह**) अस्मिन् गृहाश्रमे (**नः**) अस्माकमस्मान् वा (**उशतीरिव**) यथा कामयमानाः (**मातरः**) जनन्यः॥५१॥

अन्वयः-हे स्त्रियः! वो न इह यः शिवतमो रसोऽस्ति तस्य मातरः पुत्रानुशतीरिव भाजयत॥५१॥

भावार्थः-स्त्रीभिर्मातापितरौ पुत्रानिव स्वं स्वं पतिं स्वा स्वा पत्नी प्रीत्या सेवताम्। एवमेव स्वां स्वां स्त्रियं पतिश्च। यथा जलानि तृषातुरान् प्राणिनस्तृप्यन्ति, तथैव सुशीलतयानन्देन तृप्ताः सन्तु॥५१॥

पदार्थः-हे स्त्रियो! (**वः**) तुम्हारा और (**नः**) हमारा (**इह**) इस गृहाश्रम में (**यः**) जो (**शिवतमः**) अत्यन्त सुखकारी (**रसः**) कर्त्तव्य आनन्द है (**तस्य**) उस का (**मातरः**) (**उशतीरिव**) जैसे कामयमान माता अपने पुत्रों को सेवन करती है, वैसे (**भाजयत**) सेवन करो॥५१॥

भावार्थः-स्त्रियों को चाहिये कि जैसे माता-पिता अपने पुत्रों का सेवन करते हैं, वैसे अपने-अपने पतियों की प्रीतिपूर्वक सेवा करें, ऐसे ही अपनी-अपनी स्त्रियों की पति भी सेवा करें। जैसे प्यासे प्राणियों को जल तृप्त करता है, वैसे अच्छे स्वभाव के आनन्द से स्त्री-पुरुष भी परस्पर प्रसन्न रहें॥५१॥

तस्मा इत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः। आपो देवताः। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उक्त विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

तस्माऽअरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ।

आपो जनयथा च नः॥५२॥

तस्मै। अरम्। गमाम। वः। यस्य। क्षयाय। जिन्वथ। आपः। जनयथ। च। नः॥५२॥

पदार्थः-(**तस्मै**) वक्ष्यमाणाय (**अरम्**) अलम्। अत्र कपिलकादित्वाल्लत्वम्। (**गमाम**) गच्छेम (**वः**) युष्मान् (**यस्य**) जनस्य (**क्षयाय**) निवासार्थाय गृहाय (**जिन्वथ**) प्रीणयत (**आपः**) जलानीव (**जनयथ**) उत्पादयत। अत्र **अन्येषामपि दृश्यते** [अष्टा०६.३.१३७] इति दीर्घः। (**च**) सुखादीनां समुच्चये (**नः**) अस्माकम्॥५२॥

अन्वयः-हे आपः! जलवद्वर्त्तमानाः या यूयं नः क्षयाय जिन्वथ च ता वो युष्मान् वयमरं गमाम यस्य प्रतिज्ञातस्य धर्म्यव्यवहारस्य पालिका भवत तस्यैव वयमपि भवेम॥५२॥

भावार्थः-पुरुषो यस्याः स्त्रियः पतिर्यस्य या स्त्री पत्नी भवेत् स सा च परस्परस्यानिष्टं कदापि न कुर्य्यात्। एवं सुखसन्तानैरलंकृतौ भूत्वा धर्मेण गृहकृत्यानि कुर्य्याताम्॥५२॥

पदार्थः-हे (**आपः**) जलों के समान शान्त स्वभाव से वर्त्तमान स्त्रियो! तुम लोग (**नः**) हम लोगों के (**क्षयाय**) निवासस्थान के लिये (**जिन्वथ**) तृप्त (**च**) और (**जनयथ**) अच्छे सन्तान उत्पन्न करो उन (**वः**) तुम

लोगों को हम लोग **(अरम्)** सामर्थ्य के साथ **(गमाम)** प्राप्त होवें। **(यस्य)** जिस धर्मयुक्त व्यवहार की प्रतिज्ञा करो, उसका पालन करने वाली होओ और उसी का पालन करने वाले हम लोग भी होवें॥५२॥

भावार्थः-जिस पुरुष की जो स्त्री वा जिस स्त्री का जो पुरुष हो, वे आपस में किसी का अनिष्ट-चिन्तन कदापि न करें। ऐसे ही सुख और सन्तानों से शोभायमान हो के धर्म्म से घर के कार्य्य करें॥५२॥

मित्र इत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः। मित्रो देवता। उपरिष्टाद् बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

मित्रः सꣳसृज्य पृथिवीं भूमिं च ज्योतिषा सह।

सुजातं जातवेदसमयक्ष्माय त्वा सꣳसृजामि प्रजाभ्यः॥५३॥

मित्रः। सꣳसृज्येति सम्ऽसृज्य। पृथिवीम्। भूमिम्। च। ज्योतिषा। सह। सुजातमिति सुऽजातम्। जातवेदसमिति जातऽवेदसम्। अयक्ष्माय। त्वा। सम्। सृजामि। प्रजाभ्य इति प्रऽजाभ्यः॥५३॥

पदार्थः-**(मित्रः)** सर्वेषां सुहृत् सन् **(संसृज्य)** संसर्गी भूत्वा **(पृथिवीम्)** अन्तरिक्षम् **(भूमिम्)** क्षितिम् **(च)** **(ज्योतिषा)** विद्यान्यायसुशिक्षाप्रकाशेन **(सह)** **(सुजातम्)** सुष्ठु प्रसिद्धम् **(जातवेदसम्)** उत्पन्नं वेदविज्ञानम् **(अयक्ष्माय)** आरोग्याय **(त्वा)** त्वाम् **(सम्)** **(सृजामि)** निष्पादयामि **(प्रजाभ्यः)** पालनीयाभ्यः। [अयं मन्त्रः शत०६.५.१.५ व्याख्यातः]॥५३॥

अन्वयः-हे पते! यस्त्वं मित्रः प्रजाभ्योऽयक्ष्माय ज्योतिषा सह पृथिवीं भूमिं च संसृज्य मां सुखयसि। तं सुजातं जातवेदसं त्वाऽहमप्येतदर्थं संसृजामि॥५३॥

भावार्थः-स्त्रीपुरुषाभ्यां सद्गुणविद्वदासङ्गाच्छ्रेष्ठाचारं कृत्वा शरीरात्मनोरारोग्यं संपाद्य सुप्रजा उत्पादनीयाः॥५३॥

पदार्थः-हे पते! जो आप **(मित्रः)** सब के मित्र होके **(प्रजाभ्यः)** पालने योग्य प्रजाओं को **(अयक्ष्माय)** आरोग्य के लिये **(ज्योतिषा)** विद्या और न्याय की अच्छी शिक्षा के प्रकाश के **(सह)** साथ **(पृथिवीम्)** अन्तरिक्ष **(च)** और **(भूमिम्)** पृथिवी के साथ **(संसृज्य)** सम्बन्ध करके मुझ को सुख देते हो। उस **(सुजातम्)** अच्छे प्रकार प्रसिद्ध **(जातवेदसम्)** वेदों के जानने हारे **(त्वा)** आपको मैं **(संसृजामि)** प्रसिद्ध करती हूं॥५३॥

भावार्थः-स्त्री-पुरुषों को चाहिये कि श्रेष्ठ, गुणवान्, विद्वानों के सङ्ग से शुद्ध आचार का ग्रहण कर शरीर और आत्मा के आरोग्य को प्राप्त हो के अच्छे-अच्छे सन्तानों को उत्पन्न करें॥५३॥

रुद्रा इत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः। रुद्रा देवताः। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

रुद्राः सꣳसृज्य पृथिवीं बृहज्ज्योतिः समीधिरे।

तेषां भानुरजस्रऽइच्छुक्रो देवेषु रोचते॥५४॥

रुद्राः। सꣳसृज्येति सम्ऽसृज्य। पृथिवीम्। बृहत्। ज्योतिः। सम्। ईधिरे। तेषाम्। भानुः। अजस्रः। इत्। शुक्रः। देवेषु। रोचते॥५४॥

पदार्थः-(रुद्राः) यथा प्राणरूपा वायवः **(संसृज्य)** सूर्य्यमुत्पाद्य **(पृथिवीम्)** भूमिम् **(बृहत्)** महत् **(ज्योतिः)** प्रकाशम् **(सम्) (ईधिरे)** दीपयन्ति **(तेषाम्)** वायूनां सकाशादुत्पाद्य **(भानुः)** सूर्य्यः **(अजस्रः)** बहुरजस्रं प्रकाशो निरन्तरः विद्यते यस्मिन् सः, अत्र अर्शआदित्वादच्। **(इत्)** इव **(शुक्रः)** भास्वरः **(देवेषु)** दिव्येषु पृथिव्यादिषु **(रोचते)** प्रकाशते। [अयं मन्त्रः शत०६.५.१.७ व्याख्यातः]॥५४॥

अन्वयः-हे स्त्रीपुरुषाः! यथा रुद्राः सूर्य्यं संसृज्य पृथिवीं बृहज्ज्योतिः समीधिरे तेषां सकाशादुत्पन्नः शुक्रो भानुर्देवेष्वजस्रो रोचत इदिव विद्यान्यायार्कमुत्पाद्य प्रजाजनान् प्रकाशयते, तेभ्यः प्रजासु दिव्यानि सुखानि प्रचारयत॥५४॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। यथा वायुः सूर्य्यस्य सूर्य्यः प्रकाशस्य प्रकाशश्चाक्षुषव्यवहारस्य च कारणमस्ति, तथैव स्त्रीपुरुषाः परस्परस्य सुखस्य साधनोपसाधनकारिणो भूत्वा सुखानि साधयेयुः॥५४॥

पदार्थः-हे स्त्रीपुरुषो! जैसे **(रुद्राः)** प्राणवायु के अवयवरूप समानादि वायु **(संसृज्य)** सूर्य्य को उत्पन्न करके **(पृथिवीम्)** भूमि को **(बृहत्)** बड़े **(ज्योतिः)** प्रकाश के साथ **(समीधिरे)** प्रकाशित करते हैं **(तेषाम्)** उन से उत्पन्न हुआ **(शुक्रः)** कान्तिमान् **(भानुः)** सूर्य्य **(देवेषु)** दिव्य पृथिवी आदि में **(अजस्रः)** निरन्तर **(रोचते)** प्रकाश करता है, **(इत्)** वैसे ही विद्यारूपी न्याय सूर्य्य को उत्पन्न कर के प्रजापुरुषों को प्रकाशित और उन से प्रजाओं में दिव्य सुख का प्रचार करो॥५४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे वायु सूर्य्य का, सूर्य्य प्रकाश का, प्रकाश नेत्रों से देखने के व्यवहार का कारण है, वैसे ही स्त्री-पुरुष आपस के सुख के साधन-उपसाधन करने वाले होके सुखों को सिद्ध करें॥५४॥

संसृष्टामित्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः। सिनीवाली देवता। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

स्त्रीभिः किंभूताः सेविका रक्षणीया इत्याह॥

स्त्रियों को कैसी दासी रखनी चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

सꣳसृष्टां वसुभी रुद्रैर्धीरैः कर्मण्यां मृदम्।

हस्ताभ्यां मृद्वीं कृत्वा सिनीवाली कृणोतु ताम्॥५५॥

सꣳसृष्टामिति सम्ऽसृष्टाम्। वसुभिरिति वसुऽभिः। रुद्रैः। धीरैः। कर्मण्याम्। मृदम्। हस्ताभ्याम्। मृद्वीम्। कृत्वा। सिनीवाली। कृणोतु। ताम्॥५५॥

पदार्थः-(संसृष्टाम्) सम्यक् सुशिक्षया निष्पादिताम् **(वसुभिः)** कृतेन चतुर्विंशतिवर्षब्रह्मचर्य्येण प्राप्तविद्यैः **(रुद्रैः)** सेवितेन चतुश्चत्वारिंशद्वर्षब्रह्मचर्य्येण विद्याबलयुक्तैः **(धीरैः)** सुसंयमैः **(कर्मण्याम्)** या कर्मभिः सपंद्यते ताम्। अत्र **कर्मवेषाद्यत्॥** (अष्टा०५।१।१००) इति कर्मशब्दात् संपादिन्यर्थे यत्। **(मृदम्)** कोमलाङ्गीम् **(हस्ताभ्याम्) (मृद्वीम्)** मृदुगुणस्वभावाम् **(कृत्वा) (सिनीवाली)** या सिनीः प्रेमबद्धाः कन्या वलयति सा **(कृणोतु)**

करोतु **(ताम्)**। **[अयं मन्त्रः** शत०६.५.१.९ व्याख्यातः**]**॥५५॥

अन्वयः-हे पते! भवान् शिल्पी हस्ताभ्यां कर्मण्यां मृदमिव धीरैर्वसुभी रुद्रैर्या शिक्षया संसृष्टां मृद्वीं कृणोतु, या सिनीवाली वर्त्तते तां स्त्रियं कृत्वा सुखयतु॥५५॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा कुलालादिभिः शिल्पिभिर्जलेन मृत्तिकां कोमलां कृत्वा तत्संभूतान् घटादीन् रचयित्वा सुखकार्य्याणि साध्नुवन्ति, तथैव विद्वद्भिर्मातापितृभिः शिक्षिता हृद्याः कन्याः ब्रह्मचारिणी विवाहाय सङ्गृह्य गृहकृत्यानि साध्नुवन्तु॥५५॥

पदार्थः-हे पते! आप जैसे कारीगर मनुष्य **(हस्ताभ्याम्)** हाथों से **(कर्मण्याम्)** क्रिया से सिद्ध की हुई **(मृदम्)** मट्टी को योग्य करता है, वैसे **(धीरैः)** अच्छा संयम रखने **(वसुभिः)** जो चौबीस वर्ष ब्रह्मचर्य्य के सेवन से विद्या को प्राप्त हुए **(रुद्रैः)** और जिन्होंने चवालीस वर्ष ब्रह्मचर्य्य के सेवन से विद्या बल को पूर्ण किया हो, उन्हीं से **(संसृष्टाम्)** अच्छी शिक्षा को प्राप्त हुई हो, उस ब्रह्मचारिणी युवती को **(मृद्वीम्)** कोमल गुण वाली **(कृणोतु)** कीजिये और जो स्त्री **(सिनीवाली)** प्रेमबद्ध कन्याओं को बलवान् करने वाली है **(ताम्)** उसको अपनी स्त्री **(कृत्वा)** करके सुखी कीजिये॥५५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे कुम्हार आदि कारीगर लोग जल से मट्टी को कोमल कर उससे घड़े आदि पदार्थ बना के सुख के काम सिद्ध करते हैं, वैसे ही विद्वान् माता-पिता से शिक्षा को प्राप्त हुई हृदय को प्रिय ब्रह्मचारिणी कन्याओं को पुरुष लोग विवाह के लिये ग्रहण कर के सब काम सिद्ध करें॥५५॥

सिनीवालीत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः। अदितिर्देवता। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तदेवाह॥

फिर भी पूर्वोक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

सिनीवाली सुकपर्दा सुकुरीरा स्वौपशा।

सा तुभ्यमदिते मह्योखां दधातु हस्तयोः॥५६॥

सिनीवाली। सुकपर्देति सुऽकपर्दा। सुकुरीरेति सुऽकुरीरा। स्वौपशेति सुऽऔपशा। सा। तुभ्यम्। अदिते। महि। आ। उखाम्। दधातु। हस्तयोः॥५६॥

पदार्थः-**(सिनीवाली)** प्रेमास्पदाढ्या **(सुकपर्दा)** सुकेशी **(सुकुरीरा)** शोभनानि कुरीराण्यलंकृतान्याभूषणानि यस्याः सा। **कृञ उच्च॥** (उणा० ४। ३३) इति ईरन् प्रत्ययः। **(स्वौपशा)** उप समीपे श्यति तनूकरोति यया पाकक्रियया सोपशा तस्या इदं कर्म औपशं तच्छोभनं विद्यते यस्याः सा **(सा)** **(तुभ्यम्)** **(अदिते)** अखण्डितानन्दे **(महि)** पूज्ये **(आ)** **(उखाम्)** सूपादिसाधनीं स्थालीम् **(दधातु)** **(हस्तयोः)**। **[अयं मन्त्रः** शत०६.५.१.१० व्याख्यातः**]**॥५६॥

अन्वयः-हे मह्यदिते! या सिनीवाली सुकपर्दा सुकुरीरा स्वौपशा यस्यै तुभ्यं हस्तयोरुखां दधातु सा, त्वया संसेव्या॥५६॥

भावार्थः-सतीभिः स्त्रीभिः सुशिक्षिताश्चतुराः परिचारिका रक्षणीया। यतः सर्वाः पाकादिसेवा यथाकालं स्युः॥५६॥

पदार्थः-हे **(महि)** सत्कार के योग्य **(अदिते)** अखण्डित आनन्द भोगने वाली स्त्री! जो **(सिनीवाली)** प्रेम से युक्त **(सुकपर्दा)** अच्छे केशों वाली **(सुकुरीरा)** सुन्दर श्रेष्ठ कर्मों को सेवने हारी और **(स्वौपशा)** अच्छे स्वादिष्ट भोजन के पदार्थ बनाने वाली जिस **(तुभ्यम्)** तेरे **(हस्तयोः)** हाथों में **(उखाम्)** दाल आदि रांधने की बटलोई को **(दधातु)** धारण करे **(सा)** उस का तू सेवन कर॥५६॥

भावार्थः-श्रेष्ठ स्त्रियों को उचित है कि अच्छी शिक्षित चतुर दासियों को रक्खें कि जिससे सब पाक आदि की सेवा ठीक-ठीक समय पर होती रहे॥५६॥

उखामित्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः। अदितिर्देवता। भुरिग्बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

उखां कृणोतु शक्त्या बाहुभ्यामदितिर्धिया।

माता पुत्रं यथोपस्थे साग्निं बिभर्तु गर्भऽआ।

मखस्य शिरोऽसि॥५७॥

उखाम्। कृणोतु। शक्त्या। बाहुभ्यामिति बाहुभ्याम्। अदितिः। धिया। माता। पुत्रम्। यथा। उपस्थ इत्युपऽस्थे। सा। अग्निम्। बिभर्तु। गर्भे। आ। मखस्य। शिरः। असि॥५७॥

पदार्थः-**(उखाम्)** पाकस्थालीम् **(कृणोतु)** **(शक्त्या)** पाकविद्यासामर्थ्येन **(बाहुभ्याम्)** **(अदितिः)** जननी **(धिया)** प्रज्ञया कर्मणा वा **(माता)** **(पुत्रम्)** **(यथा)** **(उपस्थे)** स्वाङ्के **(सा)** पत्नी **(अग्निम्)** अग्निमिव वर्त्तमानं वीर्य्यम् **(बिभर्त्तु)** **(गर्भे)** कुक्षौ **(आ)** **(मखस्य)** यज्ञस्य **(शिरः)** उत्तमाङ्गवद्वर्त्तमानः **(असि)**। **[अयं मन्त्रः** शत०६.५.१.११ व्याख्यातः]॥५७॥

अन्वयः-हे गृहस्थ! यतस्त्वं मखस्य शिरोऽसि, तस्माद्भवान् धिया शक्त्या बाहुभ्यामुखां कृणोतु। याऽदितिस्ते स्त्री वर्त्तते, सा गर्भे यथा मातोपस्थे पुत्रं धरति, तथाऽग्निमाबिभर्त्तु॥५७॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। कुमारौ कन्यावरौ ब्रह्मचर्य्येण विद्यासुशिक्षे पूर्णे कृत्वा बलबुद्धिपराक्रमयुक्तसन्तानोत्पादनाय विवाहं कृत्वा वैद्यकशास्त्ररीत्या महौषधिजं पाकं विधाय विधिवद्गर्भाधानं कृत्वोत्तरपथ्यं विदध्याताम्। परस्परं सुहृत्तया वर्त्तित्वाऽपत्यस्य गर्भाधानादिकर्माणि कुर्याताम्॥५७॥

पदार्थः-हे गृहस्थ पुरुष! जिस कारण तू **(मखस्य)** यज्ञ के **(शिरः)** उत्तमाङ्ग के समान **(असि)** है इस कारण आप **(धिया)** बुद्धि वा कर्म से तथा **(शक्त्या)** पाकविद्या के सामर्थ्य और **(बाहुभ्याम्)** दोनों बाहुओं से **(उखाम्)** पकाने की बटलोई को **(कृणोतु)** सिद्ध कर जो **(अदितिः)** जननी आपकी स्त्री है **(सा)** वह **(गर्भे)** अपनी कोख में **(यथा)** जैसे **(माता)** माता **(उपस्थे)** अपनी गोद में **(पुत्रम्)** पुत्र को सुखपूर्वक बैठावे, वैसे **(अग्निम्)** अग्नि के समान तेजस्वी वीर्य्य को **(आबिभर्त्तु)** धारण करे॥५७॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। कुमार स्त्रीपुरुषों को योग्य है कि ब्रह्मचर्य्य के साथ विद्या और अच्छी शिक्षा को पूर्ण कर, बल-बुद्धि और पराक्रमयुक्त सन्तान उत्पन्न होने के लिये वैद्यकशास्त्र की रीति से

बड़ी-बड़ी ओषधियों से पाक बना के और विधिपूर्वक गर्भाधान करके पीछे पथ्य से रहें और आपस में मित्रता के साथ वर्त्त के पुत्रों के गर्भाधानादि कर्म्म किया करें॥५७॥

वसवस्त्वेत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः। वसुरुद्रादित्यविश्वेदेवा देवताः। पूर्वार्द्धस्य स्वराट्संकृतिश्छन्दः। उत्तरार्धस्याभिकृतिश्छन्दः। पूर्वार्धस्य गान्धारः स्वरः। उत्तरार्धस्य ऋषभः स्वरः॥

पुनर्दम्पती किङ्कृत्वा किङ्कुर्य्यातामित्युपदिश्यते।

फिर स्त्री-पुरुष क्या करके क्या करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

वसवस्त्वा कृण्वन्तु गायत्रेण छन्दसाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवासि पृथिव्यसि धारया मयि प्रजाꣳ रायस्पोषं गौपत्यꣳ सुवीर्यꣳ सजातान् यजमानाय रुद्रास्त्वा कृण्वन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवास्यन्तरिक्षमसि धारया मयि प्रजाꣳ रायस्पोषं गौपत्यꣳ सुवीर्यꣳ सजातान् यजमानायाऽऽदित्यास्त्वा कृण्वन्तु जागतेन छन्दसाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवासि द्यौरसि धारया मयि प्रजाꣳ रायस्पोषं गौपत्यꣳ सुवीर्यꣳ सजातान् यजमानाय विश्वे त्वा देवा: वैश्वानरा: कृण्वन्त्वानुष्टुभेन छन्दसाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवासि दिशोऽसि धारया मयि प्रजाꣳ रायस्पोषं गौपत्यꣳ सुवीर्यꣳ सजातान् यजमानाय॥५८॥

वसवः। त्वा। कृण्वन्तु। गायत्रेण। छन्दसा। अङ्गिरस्वत्। ध्रुवा। असि। पृथिवी। असि। धारय। मयि। प्रजामिति प्रऽजाम्। रायः। पोषम्। गौपत्यम्। सुवीर्य्यमिति सुऽवीर्य्यम्। सजातानिति सऽजातान्। यजमानाय। रुद्राः। त्वा। कृण्वन्तु। त्रैष्टुभेन। त्रैस्तुभेनेति त्रैऽस्तुभेन। छन्दसा। अङ्गिरस्वत्। ध्रुवा। असि। अन्तरिक्षम्। असि। धारय। मयि। प्रजामिति प्रऽजाम्। रायः। पोषम्। गौपत्यम्। सुवीर्य्यमिति सुऽवीर्य्यम्। सजातानिति सऽजातान्। यजमानाय। आदित्याः। त्वा। कृण्वन्तु। जागतेन। छन्दसा। अङ्गिरस्वत्। ध्रुवा। असि। द्यौः। असि। धारय। मयि। प्रजामिति प्रऽजाम्। रायः। पोषम्। गौपत्यम्। सुवीर्यमिति सुवीर्यम्। सजातानिति सऽजातान्। यजमानाय। विश्वे। त्वा। देवाः। वैश्वानराः। कृण्वन्तु। आनुष्टुभेन। आनुस्तुभेनेत्यानुऽस्तुभेन। छन्दसा। अङ्गिरस्वत्। ध्रुवा। असि। दिशः। असि। धारय। मयि। प्रजामिति प्रऽजाम्। रायः। पोषम्। गौपत्यम्। सुवीर्यमिति सुऽवीर्यम्। सजातानिति सऽजातान्। यजमानाय॥५८॥

पदार्थः-(वसवः) वसुसंज्ञका विद्वांसः **(त्वा)** त्वाम् **(कृण्वन्तु)** **(गायत्रेण)** वेदविहितेन **(छन्दसा)** **(अङ्गिरस्वत्)** धनञ्जयप्राणवत् **(ध्रुवा)** निश्चला **(असि)** **(पृथिवी)** पृथुसुखकारिणी **(असि)** **(धारय)** स्थापय अत्र **अन्येषामपि दृश्यते** [अष्टा०६.३.१३७] इति दीर्घः। **(मयि)** त्वत्प्रीतायां पत्न्याम् **(प्रजाम्)** सुसन्तानम् **(रायः)** धनस्य **(पोषम्)** पुष्टिम् **(गौपत्यम्)** गोर्धेनोः पृथिव्या वाचो वा पतिस्तस्य भावम् **(सुवीर्य्यम्)** शोभनं च तद्वीर्य्यं च तत् **(सजातान्)** समानात् प्रादुर्भावादुत्पन्नान् **(यजमानाय)** विद्यासङ्गमयित्र आचार्य्याय **(रुद्राः)** रुद्रसंज्ञका विद्वांसः **(त्वा)** **(कृण्वन्तु)** **(त्रैष्टुभेन)** **(छन्दसा)** **(अङ्गिरस्वत्)** आकाशवत् **(ध्रुवा)** अक्षुब्धा **(असि)** **(अन्तरिक्षम्)** अक्षयप्रेमयुक्ता **(असि)** **(धारय)** **(मयि)** **(प्रजाम्)** सत्यबलधर्मयुक्ताम् **(रायः)** राजश्रियः **(पोषम्)** **(गौपत्यम्)** अध्यापकत्वम् **(सुवीर्य्यम्)** सुष्ठु पराक्रमम् **(सजातान्)** **(यजमानाय)** साङ्गोपाङ्गवेदाध्यापकाय **(आदित्याः)**

पूर्णविद्याबलप्राप्त्या विपश्चित: **(त्वा)** **(कृण्वन्तु)** **(जागतेन)** **(छन्दसा)** **(अङ्गिरस्वत्)** **(ध्रुवा)** निष्कम्पा **(असि)** **(द्यौ:)** सूर्य्य इव वर्त्तमान: **(असि)** **(धारय)** **(मयि)** **(प्रजाम्)** सुप्रजाताम् **(राय:)** चक्रवर्त्तिराज्यलक्ष्म्या: **(पोषम्)** **(गौपत्यम्)** सकलविद्याधिस्वामित्वम् **(सुवीर्य्यम्)** **(सजातान्)** **(यजमानाय)** क्रियाकौशलसहितानां सर्वासां विद्यानां प्रवक्त्रे **(विश्वे)** सर्वे **(त्वा)** **(देवा:)** उपदेशका विद्वांस: **(वैश्वानरा:)** ये विश्वेषु नायकेषु राजन्ते **(कृण्वन्तु)** **(आनुष्टुभेन)** **(छन्दसा)** **(अङ्गिरस्वत्)** सूत्रात्मप्राणवत् **(ध्रुवा)** सुस्थिरा **(असि)** **(दिश:)** सर्वासु दिक्षु व्याप्तकीर्त्ति: **(असि)** **(धारय)** **(मयि)** **(प्रजाम्)** **(राय:)** समग्रैश्वर्य्यस्य **(पोषम्)** **(गौपत्यम्)** वाक्चातुर्य्यम् **(सुवीर्य्यम्)** **(सजातान्)** **(यजमानाय)** सत्योपदेशकाय। [अयं मन्त्र: शत०६.५.२.३ व्याख्यात:]॥५८॥

अन्वय:-हे ब्रह्मचारिणि कुमारिके! या त्वमङ्गिरस्वद् ध्रुवासि पृथिव्यसि तां त्वा गायत्रेण छन्दसा वसवो मम स्त्रियं कृण्वन्तु। हे कुमार ब्रह्मचारिन्! यस्त्वङ्गिरस्वद् ध्रुवोऽसि भूमिवत् क्षमावानसि यं त्वा वसवो गायत्रेण छन्दसा मम पतिं कृण्वन्तु स त्वं मयि प्रजां रायस्पोषं गौपत्यं सुवीर्य्यं च धारय। आवां सजातान् संतानान् सर्वान् यजमानाय विद्याग्रहणार्थं समर्पयेव। हे स्त्रि! या त्वमङ्गिरस्वद् ध्रुवोऽस्यन्तरिक्षमसि तां त्वा रुद्रास्त्रैष्टुभेन छन्दसा मम पत्नीं कृण्वन्तु। हे वीर! यस्त्वङ्गिरस्वद् ध्रुवोऽस्यन्तरिक्षमसि यं त्वा रुद्रास्त्रैष्टुभेन छन्दसा मम स्वामिनं कृण्वन्तु। स त्वं मयि प्रजां रायस्पोषं गौपत्यं सुवीर्य्यं च धारय। आवां सजातान् सुशिक्ष्य वेदशिक्षाध्ययनाय यजमानाय प्रदद्याव। हे विदुषि! या त्वमङ्गिरस्वद् ध्रुवाऽसि द्यौरसि तां त्वादित्या जागतेन छन्दसा मम भार्य्यां कृण्वन्तु। हे विद्वन्! यस्त्वमङ्गिरस्वद् ध्रुवोऽसि द्यौरसि यं त्वादित्या जागतेन छन्दसा ममाधिष्ठातार: कृण्वन्तु। स त्वं मयि प्रजां रायस्पोषं गौपत्यं सुवीर्य्यं च धारय। आवां सजातान् जन्मत: सूपदिश्य सर्वविद्याग्रहणार्थं यजमानाय समर्प्पयेव। हे सुभगे! या त्वमङ्गिरस्वद् ध्रुवासि दिशोऽसि तां त्वा वैश्वानरा विश्वे देवा आनुष्टुभेन छन्दसा मदधीनां कृण्वन्तु। हे पुरुष! यस्त्वमङ्गिरस्वद् ध्रुवोऽसि दिशोऽसि यं त्वा वैश्वानरा विश्वेदेवा मदधीनं कृण्वन्तु, स त्वं मयि प्रजां रायस्पोषं गौपत्यं सुवीर्य्यं च धारय। आवां सूपदेशार्थं सजातान् यजमानाय समर्प्पयेव॥५८॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यदा स्त्रीपुरुषौ परस्परं परीक्षां कृत्वाऽन्योन्यं दृढप्रीतौ स्याताम्। तदा वेदविधिना यज्ञं प्रतत्य वेदोक्तनियमान् स्वीकृत्य विवाहं विधाय धर्मेण संतानान्युत्पाद्य यावदष्टवार्षिका: पुत्रा: पुत्र्यश्च भवेयुस्तावन्मातापितरौ तान् सुशिक्षयेतामत ऊर्ध्वं ब्रह्मचर्य्यं ग्राहयित्वा विद्याध्ययनाय स्वगृहादतिदूरे आप्तानां विदुषां विदुषीणां च पाठशालासु प्रेषयेताम्। अत्र यावतो धनस्य व्यय: कर्त्तुं योग्योऽस्ति, तावन्तं कुर्य्याताम्, नहि संतानानां विद्यादानमन्तरा कश्चिदुपकारो धर्मश्चास्ति। तस्मादेतत् सततं समाचरेताम्॥५८॥

पदार्थ:-हे ब्रह्मचारिणी कुमारी स्त्री! जो तू **(अङ्गिरस्वत्)** धनञ्जय प्राणवायु के समतुल्य **(ध्रुवा)** निश्चल **(असि)** है और **(पृथिव्यसि)** विस्तृत सुख करने हारी है उस **(त्वा)** तुझ को **(गायत्रेण)** वेद में विधान किये **(छन्दसा)** गायत्री आदि छन्दों से **(वसव:)** चौबीस वर्ष ब्रह्मचर्य्य रखने वाले विद्वान् लोग मेरी स्त्री **(कृण्वन्तु)** करें। हे कुमार ब्रह्मचारी पुरुष! जो तू **(अङ्गिरस्वत्)** प्राणवायु के समान निश्चल है और **(पृथिवी)** पृथिवी के समान क्षमायुक्त **(असि)** है जिस **(त्वा)** तुझ को **(वसव:)** उक्त वसुसंज्ञक विद्वान् लोग **(गायत्रेण)** वेद में प्रतिपादन किये **(छन्दसा)** गायत्री आदि छन्दों से मेरा पति **(कृण्वन्तु)** करें। सो तू **(मयि)** अपनी प्रिय पत्नी मुझ में **(प्रजाम्)** सुन्दर सन्तानों **(राय:)** धन की **(पोषम्)** पुष्टि **(गौपत्यम्)** गौ, पृथिवी वा वाणी के स्वामीपन और **(सुवीर्य्यम्)** सुन्दर पराक्रम को **(धारय)** स्थापन कर। मैं तू दोनों **(सजातान्)** एक गर्भाशय से उत्पन्न हुए सब सन्तानों को

(यजमानाय) विद्या देने हारे आचार्य्य को विद्या ग्रहण के लिये समर्पण करें। हे स्त्रि! जो तू **(अङ्गिरस्वत्)** आकाश के समान **(ध्रुवा)** निश्चल **(असि)** है और **(अन्तरिक्षम्)** अविनाशी प्रेमयुक्त **(असि)** है उस **(त्वा)** तुझको **(रुद्राः)** रुद्रसंज्ञक चवालीस वर्ष ब्रह्मचर्य्य सेवने हारे विद्वान् लोग **(त्रैष्टुभेन)** वेद में कहे हुए **(छन्दसा)** त्रिष्टुप् छन्द से मेरी स्त्री **(कृण्वन्तु)** करें। हे वीर पुरुष! जो तू आकाश के समान निश्चल है और दृढ़ प्रेम से युक्त है, जिस तुझ को चवालीस वर्ष ब्रह्मचर्य करने हारे विद्वान् लोग वेद में प्रतिपादन किये त्रिष्टुप् छन्द से मेरा स्वामी करें। वह तू **(मयि)** अपनी प्रिय पत्नी मुझ में **(प्रजाम्)** बल तथा सत्य धर्म से युक्त सन्तानों **(रायः)** राज्यलक्ष्मी की **(पोषम्)** पुष्टि **(गौपत्यम्)** पढ़ाने के अधिष्ठातृत्व और **(सुवीर्य्यम्)** अच्छे पराक्रम को **(धारय)** धारण कर मैं तू दोनों **(सजातान्)** एक उदर से उत्पन्न हुए सब सन्तानों को अच्छी शिक्षा देकर वेदविद्या की शिक्षा होने के लिये **(यजमानाय)** अङ्ग-उपाङ्गों के सहित वेद पढ़ाने हारे अध्यापक को देवें। हे विदुषी स्त्री! जो तू **(अङ्गिरस्वत्)** आकाश के समान **(ध्रुवा)** अचल **(असि)** है **(द्यौः)** सूर्य के सदृश प्रकाशमान **(असि)** है उस **(त्वा)** तुझ को **(आदित्याः)** अड़तालीस वर्ष ब्रह्मचर्य्य करके पूर्ण विद्या और बल की प्राप्ति से आप्त सत्यवादी धर्मात्मा विद्वान् लोग **(जागतेन)** वेद में कहे **(छन्दसा)** जगती छन्द से मेरी पत्नी **(कृण्वन्तु)** करें। हे विद्वान् पुरुष! जो तू आकाश के तुल्य दृढ़ और सूर्य्य के तुल्य तेजस्वी है, उस तुझ को अड़तालीस वर्ष ब्रह्मचर्य्य सेवने वाले पूर्ण विद्या से युक्त धर्मात्मा विद्वान् लोग वेदोक्त जगती छन्द से मेरा पति करें। वह तू **(मयि)** अपनी प्रिय भार्य्या मुझ में **(प्रजाम्)** शुभ गुणों से युक्त सन्तानों **(रायः)** चक्रवर्त्ति-राज्यलक्ष्मी को **(पोषम्)** पुष्टि **(गौपत्यम्)** संपूर्ण विद्या के स्वामीपन और **(सुवीर्यम्)** सुन्दर पराक्रम को **(धारय)** धारण कर। मैं तू दोनों **(सजातान्)** अपने सन्तानों को जन्म से उपदेश करके सब विद्या ग्रहण करने के लिये **(यजमानाय)** क्रिया-कौशल के सहित सब विद्याओं के पढ़ाने हारे आचार्य को समर्पण करें। हे सुन्दर ऐश्वर्य्ययुक्त पत्नि! जो तू **(अङ्गिरस्वत्)** सूत्रात्मा प्राणवायु के समान **(ध्रुवा)** निश्चल **(असि)** है और **(दिशः)** सब दिशाओं में कीर्तिवाली **(असि)** है, उस तुझ को **(वैश्वानराः)** सब मनुष्यों में शोभायमान **(विश्वे)** सब **(देवाः)** उपदेशक विद्वान् लोग **(आनुष्टुभेन)** वेद में कहे **(छन्दसा)** अनुष्टुप् छन्द से मेरे आधीन **(कृण्वन्तु)** करें। हे पुरुष! जो तू सूत्रात्मा वायु के सदृश स्थित है **(दिशः)** सब दिशाओं में कीर्तिवाला **(असि)** है, जिस **(त्वा)** तुझ को सब प्रजा में शोभायमान सब विद्वान् लोग मेरे आधीन करें। सो आप **(मयि)** मुझ में **(प्रजाम्)** शुभलक्षणयुक्त सन्तानों **(रायः)** सब ऐश्वर्य्य की **(पोषम्)** पुष्टि **(गौपत्यम्)** वाणी की चतुराई और **(सुवीर्य्यम्)** सुन्दर पराक्रम को **(धारय)** धारण कर। मैं तू दोनों जने अच्छा उपदेश होने के लिये **(सजातान्)** अपने सन्तानों को **(यजमानाय)** सत्य के उपदेशक अध्यापक के समीप समर्पण करें॥५८॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जब स्त्री-पुरुष एक-दूसरे की परीक्षा करके आपस में दृढ़ प्रीति वाले होवें, तब वेदोक्त रीति से यज्ञ का विस्तार और वेदोक्त नियमाऽनुसार विवाह करके धर्म से सन्तानों को उत्पन्न करें। जब तक कन्या और पुत्र आठ वर्ष के हों, तब तक माता-पिता उनको अच्छी शिक्षा देवें। इस के पीछे ब्रह्मचर्य्य धारण करा के विद्या पढ़ने के लिये अपने घर से बहुत दूर आप्त विद्वान् पुरुषों और आप्त विदुषी स्त्रियों की पाठशालाओं में भेज देवें। वहां पाठशाला में जितने धन का खर्च करना उचित हो उतना करें, क्योंकि सन्तानों को विद्यादान के विना कोई उपकार वा धर्म नहीं बन सकता। इसलिये इस का निरन्तर अनुष्ठान किया करें॥५८॥

अदित्या इत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः। अदितिर्देवता। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अदि॑त्यै रास्ना॒स्यदि॑तिष्टे॒ बिलं॑ गृभ्णातु।

कृ॒त्वाय॒ सा म॒हीमु॒खां मृ॒न्मयीं॒ योनि॑म॒ग्नये॑।

पु॒त्रेभ्य॒ः प्राय॑च्छ॒ददि॑तिः श्र॒पया॒निति॑॥५९॥

अदि॑त्यै। रास्ना॑। अ॒सि॒। अदि॑तिः। ते॒। बिल॑म्। गृ॒भ्णा॒तु॒। कृ॒त्वाय॑। सा। म॒हीम्। उ॒खाम्। मृ॒न्मयी॒मिति॑ मृ॒त्ऽमयी॑म्। योनि॑म्। अ॒ग्नये॑। पु॒त्रेभ्य॑ः। प्र। अ॒य॒च्छ॒त्। अदि॑तिः। श्र॒पया॑न्। इति॑॥५९॥

पदार्थः-(**अदित्यै**) दिवे विद्याप्रकाशाय (**रास्ना**) दात्री (**असि**) (**अदितिः**) पुत्रः पुत्री च (**ते**) तव सकाशात् (**बिलम्**) भरणं धारणम्। **बिलं भरं भवति बिभर्तेः॥** (निरु०२।१७) (**गृभ्णातु**) गृह्णातु (**कृत्वाय**) (**सा**) (**महीम्**) महतीम् (**उखाम्**) पाकस्थालीम् (**मृन्मयीम्**) मृद्विकाराम् (**योनिम्**) मिश्रिताम् (**अग्नये**) अग्निसम्बन्धे स्थापनाय (**पुत्रेभ्यः**) सन्तानेभ्यः (**प्र**) (**अयच्छत्**) दद्यात् (**अदितिः**) माता (**श्रपयान्**) श्रपयन्तु परिपाचयन्तु (**इति**) अनेन प्रकारेण। [अयं मन्त्रः शत०६.५.२.१३,२०,२१ व्याख्यातः]॥५९॥

अन्वयः-हे अध्यापिके विदुषि! यतस्त्वमदित्यै रास्नासि, तस्मात् ते तव सकाशाद् बलं ब्रह्मचर्य्यधारणं कृत्वायादितिर्विद्या गृभ्णातु साऽदितिर्भवती मृन्मयीं योनिं महीमुखामग्नये पुत्रेभ्यश्च प्रायच्छत्। विद्यासुशिक्षाभ्यां युक्ता भूत्वोखामिति श्रपयानन्नादिपाकं कुर्वन्तु॥५९॥

भावार्थः-कुमाराः पुरुषशालां कुमार्य्यश्च स्त्रीशालां गत्वा ब्रह्मचर्य्यं विधाय सुशीलतया विद्याः पाकविधिं च गृह्णीयुः। आहारविहारानपि सुनियमेन सेवयेयुः। न कदाचिद्विषयकथां शृणुयुः। मद्यमांसालस्यातिनिद्रां विहायाध्यापकसेवानुकूलताभ्यां वर्त्तित्वा सुव्रतानि धरेयुः॥५९॥

पदार्थः-हे पढ़ाने हारी विदुषी स्त्री! जिस कारण तू (**अदित्यै**) विद्याप्रकाश के लिये (**रास्ना**) दानशील (**असि**) है इसलिये (**ते**) तुझ से (**बिलम्**) ब्रह्मचर्य्य को धारण (**कृत्वाय**) करके (**अदितिः**) पुत्र और कन्या विद्या को (**गृभ्णातु**) ग्रहण करें सो (**सा**) तू (**अदितिः**) माता (**मृन्मयीम्**) मट्टी की (**योनिम्**) मिली और पृथक् (**महीम्**) बड़ी (**उखाम्**) पकाने की बटलोई को (**अग्नये**) अग्नि के निकट (**पुत्रेभ्यः**) पुत्रों को (**प्रायच्छत्**) देवे। विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त होकर बटलोई में (**इति**) इस प्रकार (**श्रपयान्**) अन्नादि पदार्थों को पकाओ॥५९॥

भावार्थः-लड़के पुरुषों की और लड़कियां स्त्रियों की पाठशाला में जा ब्रह्मचर्य्य की विधिपूर्वक सुशीलता से विद्या और भोजन बनाने की क्रिया सीखें और आहार-विहार भी अच्छे नियम से सेवें। कभी विषय की कथा न सुनें। मद्य, मांस, आलस्य और अत्यन्त निद्रा को त्याग के पढ़ाने वाले की सेवा और उस के अनुकूल वर्त्त के अच्छे नियमों को धारण करें॥५९॥

वसवस्त्वेत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः। वस्वादयो मन्त्रोक्ता देवताः। स्वराट् संकृतिश्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनर्विद्वांसोऽध्येतॄनुपदेश्यान् मनुष्यान् कथं शोधयेयुरित्याह॥

फिर विद्वान् लोग पढ़ने हारे और उपदेश के योग्य मनुष्यों को कैसे शुद्ध करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

वसवस्त्वा धूपयन्तु गायत्रेण छन्दसाङ्गिरस्वद् रुद्रास्त्वा धूपयन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वदादित्यास्त्वा धूपयन्तु जागतेन छन्दसाङ्गिरस्वद् विश्वे त्वा देवा वैश्वानरा धूपयन्त्वानुष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वदिन्द्रस्त्वा धूपयतु वरुणस्त्वा धूपयतु विष्णुस्त्वा धूपयतु॥६०॥

वसवः। त्वा। धूपयन्तु। गायत्रेण। छन्दसा। अङ्गिरस्वत्। रुद्राः। त्वा। धूपयन्तु। त्रैष्टुभेन। त्रैस्तुभेनेति त्रैऽस्तुभेन। छन्दसा। अङ्गिरस्वत्। आदित्याः। त्वा। धूपयन्तु। जागतेन। छन्दसा। अङ्गिरस्वत्। विश्वे। त्वा। देवाः। वैश्वानराः। धूपयन्तु। आनुष्टुभेन। आनुस्तुभेनेत्यानुऽस्तुभेन। छन्दसा। अङ्गिरस्वत्। इन्द्रः। त्वा। धूपयतु। वरुणः। त्वा। धूपयतु। विष्णुः। त्वा। धूपयतु॥६०॥

पदार्थः-(**वसवः**) आदिमा विद्वांसः (**त्वा**) त्वाम् (**धूपयन्तु**) सुगन्धान्नादिभिः संस्कुर्वन्तु (**गायत्रेण**) वेदस्थेन (**छन्दसा**) (**अङ्गिरस्वत्**) प्राणैस्तुल्यम् (**रुद्राः**) मध्यमा विपश्चितः (**त्वा**) (**धूपयन्तु**) विद्यासुशिक्षाभ्यां संस्कुर्वन्तु (**त्रैष्टुभेन**) (**छन्दसा**) (**अङ्गिरस्वत्**) विज्ञानवत् (**आदित्याः**) उत्तमा विद्वांसोऽध्यापकाः (**त्वा**) (**धूपयन्तु**) सत्यव्यवहारग्रहणेन संस्कुर्वन्तु (**जागतेन**) (**छन्दसा**) (**अङ्गिरस्वत्**) ब्रह्माण्डस्थशुद्धवायुवत् (**विश्वे**) सर्वे (**त्वा**) (**देवाः**) सत्योपदेशका विद्वांसः (**वैश्वानराः**) सर्वेषु मनुष्येष्विमे सत्यधर्मविद्याप्रकाशकाः (**धूपयन्तु**) सत्योपदेशेन संस्कुर्वन्तु (**आनुष्टुभेन**) (**छन्दसा**) (**अङ्गिरस्वत्**) विद्युद्वत् (**इन्द्रः**) परमैश्वर्य्यवान् राजा (**त्वा**) (**धूपयतु**) राजविद्यया संस्करोतु (**वरुणः**) वरो न्यायाधीशः (**त्वा**) (**धूपयतु**) राजनीत्या संस्करोतु (**विष्णुः**) सकलविद्यायोगाङ्गव्यापी योगिराजः (**त्वा**) (**धूपयतु**) योगविद्याङ्गैः संस्करोतु। [अयं मन्त्रः शत०६.५.३.१० व्याख्यातः]॥६०॥

अन्वयः-हे ब्रह्मचारिन् ब्रह्मचारिणि वा! ये वसवो गायत्रेण छन्दसा त्वाङ्गिरस्वद् धूपयन्तु। रुद्रास्त्रैष्टुभेन छन्दसा त्वाङ्गिरस्वद् धूपयन्तु। आदित्या जागतेन छन्दसा त्वाङ्गिरस्वद् धूपयन्तु। वैश्वानरा विश्वेदेवा आनुष्टुभेन छन्दसा त्वाङ्गिरस्वद् धूपयन्तु। इन्द्रस्त्वा धूपयतु। वरुणस्त्वा धूपयतु। विष्णुस्त्वा धूपयत्वेतांस्त्वं सततं सेवस्व॥६०॥

भावार्थः-सर्वेऽध्यापका अखिला अध्यापिकाश्च सर्वाभिः सत्क्रियाभिर्ब्रह्मचारिणो ब्रह्मचारिणीश्च विद्यासुशिक्षाभ्यां युक्ताः सद्यः संपादयेयुः। यत एते कृतपूर्णब्रह्मचर्य्या गृहाश्रमादीन् यथाकालमाचरेयुः॥६०॥

पदार्थः-हे ब्रह्मचारिन् वा ब्रह्मचारिणि! जो (**वसवः**) प्रथम विद्वान् लोग (**गायत्रेण**) वेद के (**छन्दसा**) गायत्री छन्द से (**त्वा**) तुझ को (**अङ्गिरस्वत्**) प्राणों के तुल्य सुगन्धित पदार्थों के समान (**धूपयन्तु**) संस्कारयुक्त करें (**रुद्राः**) मध्यम विद्वान् लोग (**त्रैष्टुभेन**) वेदोक्त (**छन्दसा**) त्रिष्टुप् छन्द से (**अङ्गिरस्वत्**) विज्ञान के समान (**त्वा**) तेरा (**धूपयन्तु**) विद्या और अच्छी शिक्षा से संस्कार करें (**आदित्याः**) सर्वोत्तम अध्यापक विद्वान् लोग (**जागतेन**) (**छन्दसा**) वेदोक्त जगती छन्द से (**अङ्गिरस्वत्**) ब्रह्माण्ड के शुद्ध वायु के सदृश (**त्वा**) तेरा (**धूपयन्तु**) धर्मयुक्त व्यवहार के ग्रहण से संस्कार करें (**वैश्वानराः**) सब मनुष्यों में सत्य, धर्म और विद्या के प्रकाश करने वाले (**विश्वे**) सब (**देवाः**) सत्योपदेष्टा विद्वान् लोग (**आनुष्टुभेन**) वेदोक्त अनुष्टुप् (**छन्दसा**) छन्द से (**अङ्गिरस्वत्**)

बिजुली के समान **(त्वा)** तेरा **(धूपयन्तु)** सत्योपदेश से संस्कार करें **(इन्द्रः)** परम ऐश्वर्य्ययुक्त राजा **(त्वा)** तेरा **(धूपयतु)** राजनीति विद्या से संस्कार करे **(वरुणः)** श्रेष्ठ न्यायाधीश **(त्वा)** तुझ को **(धूपयतु)** न्यायक्रिया से संयुक्त करे और **(विष्णुः)** सब विद्या और योगाङ्गों का वेत्ता योगीजन **(त्वा)** तुझ को **(धूपयतु)** योगविद्या से संस्कारयुक्त करे, तू इन सब की सेवा किया कर॥६०॥

भावार्थः-सब अध्यापक स्त्री और पुरुषों को चाहिये कि सब श्रेष्ठ क्रियाओं से कन्याओं और पुत्रों को विद्या और शिक्षा से युक्त शीघ्र करें। जिससे ये पूर्ण ब्रह्मचर्य्य ही कर के गृहाश्रम आदि का यथोक्त काल में आचरण करें॥६०॥

अदितिष्ट्वेत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः। अदित्यादयो लिङ्गोक्ता देवताः। भुरिक्कृतिश्छन्दः। निषादः स्वरः। उखे वरुत्रीत्युत्तरस्य निचृत् प्रकृतिश्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

विदुष्यः स्त्रियः कन्याः सुशिक्ष्य धार्मिकीर्विदुषीः कृत्वैहिकपारलौकिकसुखे प्रापयेयुरित्याह॥

विद्वान् स्त्रियाँ कन्याओं को उत्तम शिक्षा से धर्मात्मा विद्यायुक्त करके इस लोक और परलोक के सुखों को प्राप्त करावें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अदितिष्ट्वा देवी विश्वदेव्यावती पृथिव्याः सधस्थेऽअङ्गिरस्वत् खनत्ववट देवानां त्वा पत्नीर्देवीर्विश्वदेव्यावतीः पृथिव्याः सधस्थेऽअङ्गिरस्वद् दधतूखे धिषणास्त्वा देवीर्विश्वदेव्यावतीः पृथिव्याः सधस्थेऽअङ्गिरस्वदभीन्धतामुखे वरूत्रीष्ट्वा देवीर्विश्वदेव्यावतीः पृथिव्याः सधस्थेऽअङ्गिरस्वच्छ्रपयन्तूखे ग्नास्त्वा देवीर्विश्वदेव्यावतीः पृथिव्याः सधस्थेऽअङ्गिरस्वत् पचन्तूखे जनयस्त्वाऽछिन्नपत्रा देवीर्विश्वदेव्यावतीः पृथिव्याः सधस्थेऽअङ्गिरस्वत् पचन्तूखे॥६१॥

अदितिः। त्वा। देवी। विश्वदेव्यावती। विश्वदेव्यवतीति विश्वदेव्यऽवती। पृथिव्याः। सधस्थ इति सधऽस्थे। अङ्गिरस्वत्। खनतु। अवट। देवानाम्। त्वा। पत्नीः। देवीः। विश्वदेव्यावतीः। विश्वदेव्यवतीरिति विश्वदेव्यऽवतीः। पृथिव्याः। सधस्थ इति सधऽस्थे। अङ्गिरस्वत्। दधतु। उखे। धिषणाः। त्वा। देवीः। विश्वदेव्यावतीः। विश्वदेव्यवतीरिति विश्वदेव्यऽवतीः। पृथिव्याः। सधस्थ इति सधऽस्थे। अङ्गिरस्वत्। अभि। इन्धताम्। उखे। वरूत्रीः। त्वा। देवीः। विश्वदेव्यावतीः। विश्वदेव्यवतीरिति विश्वदेव्यऽवतीः। पृथिव्याः। सधस्थ इति सधऽस्थे। अङ्गिरस्वत्। श्रपयन्तु। उखे। ग्नाः। त्वा। देवीः। विश्वदेव्यावतीः। विश्वदेव्यवतीरिति विश्वदेव्यऽवतीः। पृथिव्याः। सधस्थ इति सधऽस्थे। अङ्गिरस्वत। पचन्तु। उखे। जनयः। त्वा। अच्छिन्नपत्रा इत्यच्छिन्नऽपत्राः। देवीः। विश्वदेव्यावतीः। विश्वदेव्यवतीरिति विश्वदेव्यऽवतीः। पृथिव्याः। सधस्थ इति सधऽस्थे। अङ्गिरस्वत्। पचन्तु। उखे॥६१॥

पदार्थः-**(अदितिः)** अध्यापिका **(त्वा)** त्वाम् **(देवी)** विदुषी **(विश्वदेव्यावती)** विश्वेषु देवेषु विद्वत्सु भवं विज्ञानं प्रशस्तं विद्यते यस्यां सा। अत्र **सोमाश्वेन्द्रियविश्वदेव्यस्य मतौ॥** (अष्टा०६।३।१३१) इति दीर्घत्वम्। **(पृथिव्याः)** भूमेः **(सधस्थे)** सहस्थाने **(अङ्गिरस्वत्)** अग्निवत् **(खनतु)** भूमिं खनित्वा कूपजलवद्विद्या-युक्तान्निष्पादयतु **(अवट)** अपरिभाषितानिन्दित **(देवानाम्)** विदुषाम् **(त्वा)** **(पत्नीः)** स्त्रीः **(देवीः)** विदुषीः

(विश्वदेव्यावती:) **(पृथिव्या:)** **(सधस्थे)** **(अङ्गिरस्वत्)** प्राणवत् **(दधतु)** **(उखे)** ज्ञानयुक्ते **(धिषणा:)** प्रशंसितवाग्युक्ता धिय: **(त्वा)** **(देवी:)** विद्यायुक्ता: **(विश्वदेव्यावती:)** **(पृथिव्या:)** **(सधस्थे)** **(अङ्गिरस्वत्)** **(अभि)** आभिमुख्ये **(इन्धताम्)** प्रदीपयन्तु **(उखे)** विज्ञानमिच्छुके **(वरूत्री:)** वरा: **(त्वा)** **(देवी:)** कमनीया: **(विश्वदेव्यावती:)** **(पृथिव्या:)** **(सधस्थे)** **(अङ्गिरस्वत्)** आदित्यवत् **(श्रपयन्तु)** पाचयन्तु **(उखे)** अन्नाधारा स्थालीव विद्याधारे **(ग्ना:)** वेदवाच:। **ग्ना इति वाङ्नामसु॥** (निघं०१।११) **(त्वा)** **(देवी:)** दिव्यविद्यासम्पन्ना: **(विश्वदेव्यावती:)** **(पृथिव्या:)** अन्तरिक्षस्य **(सधस्थे)** **(अङ्गिरस्वत्)** विद्युद्वत् **(पचन्तु)** परिपक्वां कुर्वन्तु **(उखे)** ज्ञानयुक्ते **(जनय:)** शुभगुणै: प्रसिद्धा: **(त्वा)** **(अच्छिन्नपत्रा:)** अखण्डितानि पत्राणि वस्त्राणि यानानि वा यासां ता: **(देवी:)** दिव्यगुणप्रदा: **(विश्वदेव्यावती:)** **(पृथिव्या:)** **(सधस्थे)** **(अङ्गिरस्वत्)** ओषधिरसवत् **(पचन्तु)** **(उखे)** जिज्ञासो। [अयं मन्त्र: शत०६.५.४.३-८ व्याख्यात:]॥६१॥

अन्वय:-हे अवट शिशो! विश्वदेव्यावत्यदितिर्देवी पृथिव्या: सधस्थे त्वाङ्गिरस्वत् खनतु। हे उखे कन्ये! देवानां पत्नीर्विश्वदेव्यावतीर्देवी: पृथिव्या: सधस्थे त्वाङ्गिरस्वद् दधतु। हे उखे! विश्वदेव्यावतीर्धिषणा देवी: पृथिव्या: सधस्थे त्वाङ्गिरस्वदभीन्धताम्। हे उखे! विश्वदेव्यावतीर्वरूत्रीर्देवी: पृथिव्या: सधस्थे त्वाङ्गिरस्वच्छ्रपयन्तु। हे उखे! विश्वदेव्यावतीर्देवीर्ग्ना: पृथिव्या: सधस्थे त्वाङ्गिरस्वत् पचन्तु। हे उखे! विश्वदेव्यावतीरच्छिन्नपत्रा जनयो देवी: पृथिव्या: सधस्थे त्वाङ्गिरस्वत् पचन्तु। हे उखे! त्वमेताभ्य: सर्वाभ्यो ब्रह्मचर्येण विद्यां गृहाण॥६१॥

भावार्थ:-मातापित्राचार्यातिथिभिर्यथा चतुरा: पाचका: स्थाल्यादिष्वन्नादीनि संस्कृत्योत्तमानि संपाद्यन्ते, तथैव बाल्यावस्थामारभ्य विवाहात् पूर्वं कुमारा: कुमार्यश्चात्युत्तमा भावयन्तु॥६१॥

पदार्थ:-हे **(अवट)** बुराई और निन्दारहित बालक **(विश्वदेव्यावती)** सम्पूर्ण विद्वानों में प्रशस्त ज्ञानवाली **(अदिति:)** अखण्ड विद्या पढ़ाने हारी **(देवी)** विदुषी स्त्री **(पृथिव्या:)** भूमि के **(सधस्थे)** एक शुभस्थान में **(त्वा)** तुझ को **(अङ्गिरस्वत्)** अग्नि के समान **(खनतु)** जैसे भूमि को खोद के कूप जल निष्पन्न करते हैं, वैसे विद्यायुक्त करे। हे **(उखे)** ज्ञानयुक्त कुमारी! **(देवानाम्)** विद्वानों की **(पत्नी:)** स्त्री जो **(विश्वदेव्यावती:)** सम्पूर्ण विद्वानों में अधिक विद्यायुक्त **(देवी:)** विदुषी **(पृथिव्या:)** पृथिवी के **(सधस्थे)** एक स्थान में **(अङ्गिरस्वत्)** प्राण के सदृश **(त्वा)** तुझ को **(दधतु)** धारण करें। हे **(उखे)** विज्ञान की इच्छा करने वाली! **(विश्वदेव्यावती:)** सब विद्वानों में उत्तम **(धिषणा:)** प्रशंसित वाणीयुक्त बुद्धिमती **(देवी:)** विद्यायुक्त स्त्री लोग **(पृथिव्या:)** पृथिवी के **(सधस्थे)** एक स्थान में **(त्वा)** तुझ को **(अङ्गिरस्वत्)** प्राण के तुल्य **(अभीन्धताम्)** प्रदीप्त करें। हे **(उखे)** अन्न आदि पकाने की बटलोई के समान विद्या को धारण करने हारी कन्ये! **(विश्वदेव्यावती:)** उत्तम विदुषी **(वरूत्री:)** विद्या-ग्रहण के लिये स्वीकार करने योग्य **(देवी:)** रूपवती स्त्री लोग **(पृथिव्या:)** भूमि के **(सधस्थे)** एक शुद्ध स्थान में **(त्वा)** तुझ को **(अङ्गिरस्वत्)** सूर्य के तुल्य **(श्रपयन्तु)** शुद्ध तेजस्विनी करें। हे **(उखे)** ज्ञान चाहने हारी कुमारी! **(विश्वदेव्यावती:)** बहुत विद्यावानों में उत्तम **(देवी:)** शुद्ध विद्या से युक्त **(ग्ना:)** वेदवाणी को जानने वाली स्त्री लोग **(पृथिव्या:)** भूमि के एक **(सधस्थे)** उत्तम स्थान में **(त्वा)** तुझ को **(अङ्गिरस्वत्)** बिजुली के तुल्य **(पचन्तु)** दृढ़ बलधारिणी करें। हे **(उखे)** ज्ञान की इच्छा रखने वाली कुमारी! **(विश्वदेव्यावती:)** उत्तम विद्या पढ़ी **(अच्छिन्नपत्रा:)** अखण्डित नवीन शुद्ध वस्त्रों को धारने वा यानों में चलने वाली **(जनय:)** शुभगुणों से प्रसिद्ध **(देवी:)** दिव्य गुणों की देने हारी स्त्री लोग **(पृथिव्या:)** पृथिवी के **(सधस्थे)** उत्तम प्रदेश में **(त्वा)** तुझ को

(अङ्गिरस्वत्) ओषधियों के रस के समान **(पचन्तु)** संस्कारयुक्त करें। हे कुमारी कन्ये! तू इन पूर्वोक्त सब स्त्रियों से ब्रह्मचर्य्य के साथ विद्या ग्रहण कर॥६१॥

भावार्थ:-माता-पिता आचार्य्य और अतिथि अर्थात् भ्रमणशील विरक्त पुरुषों को चाहिये कि जैसे रसोइये बटलोई आदि पात्रों में अन्न का संस्कार कर के अन्न को उत्तम सिद्ध करते हैं, वैसे ही बाल्यावस्था से लेके विवाह से पहिले पहिले लड़कों और लड़कियों को उत्तम विद्या और शिक्षा से सम्पन्न करें॥६१॥

मित्रस्येत्यस्य विश्वामित्र ऋषि:। मित्रो देवता। निचृद्गायत्री छन्द:। षड्ज: स्वर:॥

या यस्य स्त्री भवेत् सा तस्यैश्वर्यं सततं रक्षेदित्याह॥

जो जिस पुरुष की स्त्री होवे वह उसके ऐश्वर्य की निरन्तर रक्षा करे, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

मित्रस्य चर्षणीधृतोऽवो देवस्य सानसि।

द्युम्नं चित्रश्रवस्तमम्॥ ६२॥

मित्रस्य। चर्षणीधृत इति चर्षणिऽधृत:। अव:। देवस्य। सानसि। द्युम्नम्। चित्रश्रवस्तममिति चित्रश्रव:ऽतमम्॥ ६२॥

पदार्थ:-(मित्रस्य) सुहृद: **(चर्षणीधृत:)** सुशिक्षया मनुष्याणां धर्त्तु: **(अव:)** रक्ष **(देवस्य)** कमनीयस्य पत्यु: **(सानसि)** संभक्तव्यं पुराणम् **(द्युम्नम्)** धनम् **(चित्रश्रवस्तमम्)** चित्राण्याश्चर्य्यभूतानि श्रवांस्यन्नादीनि यस्मात् तम्। [अयं मन्त्र: शत०६.५.४.१० व्याख्यात:]॥६२॥

अन्वय:-हे स्त्रि! त्वं चर्षणीधृतो मित्रस्य देवस्य पत्युश्चित्रश्रवस्तमं सानसि द्युम्नमव:॥६२॥

भावार्थ:-गृहकृत्यकुशलया स्त्रिया सर्वाण्यन्तगृर्हकृत्यानि स्वाधीनानि रक्षित्वा यथावदुन्नेयानि॥६२॥

पदार्थ:-हे स्त्री! तू **(चर्षणीधृत:)** अच्छी शिक्षा से मनुष्यों का धारण करने हारे **(मित्रस्य)** मित्र **(देवस्य)** कमनीय अपने पति के **(चित्रश्रवस्तमम्)** आश्चर्य्यरूप अन्नादि पदार्थ जिससे हों, ऐसे **(सानसि)** सेवन योग्य प्राचीन **(द्युम्नम्)** धन की **(अव:)** रक्षा कर॥६२॥

भावार्थ:-घर के काम करने में कुशल स्त्री को चाहिये कि घर के भीतर के सब काम अपने आधीन रख के ठीक बढ़ाया करे॥६२॥

देवस्त्वेत्यस्य विश्वामित्र ऋषि:। सविता देवता। भुरिग्बृहती छन्द:। मध्यम: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

देवस्त्वा सवितोद्वपतु सुपाणि: स्वङ्गुरि: सुबाहुरुत शक्त्या।

अव्यथमाना पृथिव्यामाशा दिशऽआपृण॥ ६३॥

देव:। त्वा। सविता। उत्। वपतु। सुपाणिरिति सुऽपाणि:। स्वङ्गुरिरिति सुऽअङ्गुरि:। सुबाहुरिति सुऽबाहु:। उत। शक्त्या। अव्यथमाना। पृथिव्याम्। आशा:। दिश:। आ। पृण॥ ६३॥

पदार्थः-(**देवः**) दिव्यगुणकर्मस्वभावः पतिः (**त्वा**) त्वाम् (**सविता**) सूर्य इवैश्वर्य्यप्रदः (**उत्**) उत्कृष्टया (**वपतु**) बीजवत् संतनोतु (**सुपाणिः**) प्रशस्तहस्तः (**स्वङ्गुरिः**) शोभना अङ्गुलयो यस्य सः। कपिलकादित्वाल्लत्वम्। (**सुबाहुः**) शोभनभुजः (**उत**) अपि (**शक्त्या**) सामर्थ्येन सह वर्त्तमानो वर्त्तमाना वा (**अव्यथमाना**) अभीताऽचलिता सती (**पृथिव्याम्**) पृथिवीस्थायाम् (**आशाः**) इच्छाः (**दिशः**) काष्ठाः (**आ**) (**पृण**) पिपूर्द्धि। [अयं मन्त्रः शत०६.५.४.११ व्याख्यातः]॥६३॥

अन्वयः-हे स्त्रि! सुबाहुः सुपाणिः स्वङ्गुरिः सवितेव देवः पतिः शक्त्या पृथिव्यां त्वोद्वपतूत शक्त्याऽव्यथमाना सती त्वं पत्युः सेवनेन स्वकीया आशा यशसा दिशश्च आपृण॥६३॥

भावार्थः-स्त्रीपुरुषौ परस्परं प्रीतौ हृद्यौ सुपरीक्षितौ स्वेच्छया स्वयंवरं विवाहं कृत्वाऽतिविषयासक्तिं विहाय ऋतुगामिनौ सन्तौ सामर्थ्यहानिं कदाचिन्न कुर्य्याताम्। नहि जितेन्द्रिययोः स्त्रीपुरुषयोरोगप्रादुर्भावो बलहानिश्च जायते। तस्मादेतदनुतिष्ठेताम्॥६३॥

पदार्थः- हे स्त्रि! (**सुबाहुः**) अच्छे जिसके भुजा (**सुपाणिः**) सुन्दर हाथ और (**स्वङ्गुरिः**) शोभायुक्त जिसकी अंगुली हो ऐसा (**सविता**) सूर्य के समान ऐश्वर्य्यदाता (**देवः**) अच्छे गुण, कर्म और स्वभावों से युक्त पति (**शक्त्या**) अपने सामर्थ्य से (**पृथिव्याम्**) पृथिवी पर स्थित (**त्वा**) तुझ को (**उद्वपतु**) वृद्धि के साथ गर्भवती करे। (**उत**) और तू भी अपने सामर्थ्य से (**अव्यथमाना**) निर्भय हुई पति के सेवन से अपनी (**आशाः**) इच्छा और कीर्ति से सब (**दिशः**) दिशाओं को (**आपृण**) पूरण कर॥६३॥

भावार्थः-स्त्रीपुरुषों को चाहिये कि आपस में प्रसन्न एक-दूसरे को हृदय से चाहने वाले परस्पर परीक्षा कर अपनी-अपनी इच्छा से स्वयंवर विवाह कर अत्यन्त विषयासक्ति को त्याग, ऋतुकाल में गमन करनेवाले होकर, अपने सामर्थ्य की हानि कभी न करें। क्योंकि इसीसे जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषों के शरीर में कोई रोग प्रगट और बल की हानि भी नहीं होती। इसलिये इस का अनुष्ठान अवश्य करना चाहिये॥६३॥

उत्थायेत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः। मित्रो देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनः सा कीदृशीत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसी होवे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

उत्थाय॑ बृह॒ती भ॒वोदु॑ तिष्ठ ध्रु॒वा त्वम्।
मित्रै॒तां त॑ऽउ॒खां परि॑ ददा॒म्यभि॑त्याऽए॒षा मा भे॑दि॥६४॥

उ॒त्थाय॑। बृ॒ह॒ती। भ॒व॒। उत्। ऊँ॒ इत्यूँ॑। ति॒ष्ठ॒। ध्रु॒वा। त्वम्। मित्र॑। ए॒ताम्। ते॒। उ॒खाम्। परि॑। द॒दा॒मि॒। अभि॑त्यै। ए॒षा। मा। भे॒दि॒॥६४॥

पदार्थः-(**उत्थाय**) आलस्यं विहाय (**बृहती**) महापुरुषार्थयुक्ता (**भव**) (**उत्**) (उ) (**तिष्ठ**) (**ध्रुवा**) मङ्गलकार्येषु कृतनिश्चया (**त्वम्**) (**मित्र**) सुहृद् (**एताम्**) (**ते**) तुभ्यम् (**उखाम्**) प्राप्तव्यां कन्याम् (**परि**) सर्वतः (**ददामि**) (**अभित्यै**) भयराहित्याय (**एषा**) प्रत्यक्षप्राप्ता पत्नी (**मा**) निषेधे (**भेदि**) भिद्यताम्। [अयं मन्त्रः शत०६.५.४.१३-१४ व्याख्यातः]॥६४॥

अन्वयः-हे विदुषि कन्ये! त्वं ध्रुवा बृहती भव, विवाहायोत्तिष्ठ, उत्थायैतं पतिं स्वीकुरु। हे मित्र! त

एतामुखामभित्यै परिददामि, उ त्वयैषा मा भेदि॥६४॥

भावार्थः-कन्या वरश्च स्वप्रियं पुरुषं स्वकान्तां कन्यां च स्वयं परीक्ष्य स्वीकर्त्तुमिच्छेत्। यदा द्वयोर्विवाहकरणे निश्चयः स्यात्, तदैव मातापित्राचार्यादय एतयोर्विवाहं कुर्युरेतौ परस्परं भेदभावं व्यभिचारं च कदाचिन्न कुर्याताम्। किं तु स्वस्त्रीव्रतः पुमान् स्वपतिव्रता स्त्री च सङ्गतौ स्याताम्॥६४॥

पदार्थः-हे विदुषि कन्ये! **(त्वम्)** तू **(ध्रुवा)** मङ्गल काय्यों में निश्चित बुद्धिवाली और **(बृहती)** बड़े पुरुषार्थ से युक्त **(भव)** हो। विवाह करने के लिये **(उत्तिष्ठ)** उद्यत हो **(उत्थाय)** आलस्य छोड़ के उठकर इस पति का स्वीकार कर। हे **(मित्र)** मित्र **(ते)** तेरे लिये **(एताम्)** इस **(उखाम्)** प्राप्त होने योग्य कन्या को **(अभित्यै)** भयरहित होने के लिये **(परिददामि)** सब प्रकार देता हूँ **(उ)** इसलिये तू **(एषा)** इस प्रत्यक्ष प्राप्त हुई स्त्री को **(मा भेदि)** भिन्न मत कर॥६४॥

भावार्थः-कन्या और वर को चाहिये कि अपनी-अपनी प्रसन्नता से कन्या पुरुष की और पुरुष कन्या की आप ही परीक्षा कर के ग्रहण करने की इच्छा करें। जब दोनों का विवाह करने में निश्चय होवे, तभी माता-पिता और आचार्य आदि इन दोनों का विवाह करें और ये दोनों आपस में भेद वा व्यभिचार कभी न करें, किन्तु अपनी स्त्री के नियम में पुरुष और पतिव्रता स्त्री होकर मिल के चलें॥६४॥

वसवस्त्वेत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः। वस्वादयो लिङ्गोक्ता देवताः। भुरिग्धृतिश्छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तौ स्त्रीपुरुषौ प्रति विद्वांसः किं कुर्युरित्याह॥

फिर उन स्त्री-पुरुषों के प्रति विद्वान् लोग क्या करें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है॥

वसवस्त्वाऽऽछृन्दन्तु गायत्रेण छन्दसाऽङ्गिरस्वद् रुद्रास्त्वाऽऽछृन्दन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसाऽङ्गिरस्वदादित्यास्त्वाऽऽछृन्दन्तु जागतेन छन्दसाऽङ्गिरस्वद् विश्वे त्वा देवा वैश्वानराऽऽआछृन्दन्त्वानुष्टुभेन छन्दसाऽङ्गिरस्वत्॥ ६५॥

वसवः। त्वा। आ। छृन्दन्तु। गायत्रेण। छन्दसा। अङ्गिरस्वत्। रुद्राः। त्वा। आ। छृन्दन्तु। त्रैष्टुभेन। त्रैस्तुभेनेति त्रैऽस्तुभेन। छन्दसा। अङ्गिरस्वत्। आदित्याः। त्वा। आ। छृन्दन्तु। जागतेन। छन्दसा। अङ्गिरस्वत्। विश्वे। त्वा। देवाः। वैश्वानराः। आ। छृन्दन्तु। आनुष्टुभेन। आनुस्तुभेनेत्यानुऽस्तुभेन। छन्दसा। अङ्गिरस्वत्॥ ६५॥

पदार्थः-**(वसवः)** आदिमा विद्वांसः **(त्वा)** त्वां पुमांसं स्त्रियं च **(आ)** समन्तात् **(छृन्दन्तु)** प्रदीप्यन्ताम् **(गायत्रेण)** गायन्ति सद्विद्या येन तेन वेदस्थविभक्तेन स्तोत्रेण **(छन्दसा)** **(अङ्गिरस्वत्)** अग्निवत् **(रुद्राः)** मध्यमा विद्वांसः **(त्वा)** **(आ)** **(छृन्दन्तु)** **(त्रैष्टुभेन)** त्रीणि कर्मोपासनाज्ञानानि स्तोभन्ते स्थिरीकुर्वन्ति येन **(छन्दसा)** **(अङ्गिरस्वत्)** प्राणवत् **(आदित्याः)** उत्तमा विपश्चितः **(त्वा)** **(आ)** **(छृन्दन्तु)** **(जागतेन)** जगद्विद्याप्रकाशकेन **(छन्दसा)** **(अङ्गिरस्वत्)** सूर्यवत् **(विश्वे)** सर्वे **(त्वा)** **(देवाः)** सदुपदेशप्रदातारः **(वैश्वानराः)** सर्वेषु नरेषु राजन्तः **(आ)** **(छृन्दन्तु)** **(आनुष्टुभेन)** विद्यां गृहीत्वा पश्चाद् दुःखानि स्तभ्नुवन्ति येन तेन **(छन्दसा)** **(अङ्गिरस्वत्)** समस्तौषधिरसवत्। [अयं मन्त्रः शत०६.५.४.१७ व्याख्यातः]॥६५॥

अन्वयः-हे स्त्रि पुरुष वा! वसवो गायत्रेण छन्दसा यां यं त्वाऽङ्गिरस्वदाछृन्दन्तु। रुद्रास्त्रैष्टुभेन छन्दसा

त्वाऽङ्गिरस्वदाछृन्दन्तु। आदित्या जागतेन छन्दसा त्वाऽङ्गिरस्वदाछृन्दन्तु। वैश्वानरा विश्वे देवा आनुष्टुभेन छन्दसा त्वाऽङ्गिरस्वदाछृन्दन्तु॥६५॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। हे स्त्रीपुरुषौ! युवां ये याश्च विद्वांसः विदुष्यश्च शरीरात्मबलकारोपदेशेन सुशोभयेयुस्तेषामेव सेवासङ्गौ सततं कुर्याताम्, नेतरेषां क्षुद्राणाम्॥६५॥

पदार्थः-हे स्त्रि वा पुरुष! **(वसवः)** प्रथम विद्वान् लोग **(गायत्रेण)** श्रेष्ठ विद्याओं का जिससे गान किया जावे, उस वेद के विभागरूप स्तोत्र **(छन्दसा)** गायत्री छन्द से जिस **(त्वा)** तुझ को **(अङ्गिरस्वत्)** अग्नि के तुल्य **(आछृन्दन्तु)** प्रकाशमान करें। **(रुद्राः)** मध्यम विद्वान् लोग **(त्रैष्टुभेन)** कर्म, उपासना और ज्ञान जिस से स्थिर हों, उस **(छन्दसा)** वेद के स्तोत्र भाग से **(अङ्गिरस्वत्)** प्राण के समान **(त्वा)** तुझ को **(आछृन्दन्तु)** प्रज्वलित करें। **(आदित्याः)** उत्तम विद्वान् लोग **(जागतेन)** जगत् की विद्या प्रकाश करने हारे **(छन्दसा)** वेद के स्तोत्रभाग से **(त्वा)** तुझ को **(अङ्गिरस्वत्)** सूर्य्य के सदृश तेजधारी **(आछृन्दन्तु)** शुद्ध करें। **(वैश्वानराः)** सम्पूर्ण मनुष्यों में शोभायमान **(देवाः)** सत्य उपदेश देने हारे **(विश्वे)** सब विद्वान् लोग **(आनुष्टुभेन)** विद्या ग्रहण के पश्चात् जिस से दुःखों को छुड़ावें उस **(छन्दसा)** वेदभाग से **(त्वा)** तुझ को **(अङ्गिरस्वत्)** समस्त ओषधियों के रस के समान **(आछृन्दन्तु)** शुद्ध सम्पादित करें॥६५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे स्त्रीपुरुषो! तुम दोनों को चाहिये कि जो विद्वान् पुरुष और विदुषी स्त्री लोग तुम को शरीर और आत्मा का बल कराने हारे उपदेश से सुशोभित करें, उनकी सेवा और सत्सङ्ग निरन्तर करो और अन्य तुच्छ बुद्धि वाले पुरुषों वा स्त्रियों का सङ्ग कभी मत करो॥६५॥

आकूतिमित्यस्य विश्वामित्र ऋषिः। अग्न्यादयो मन्त्रोक्ता देवताः। विराड्ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्ते स्त्रीपुरुषाः किं कुर्य्युरित्याह॥

फिर वे स्त्री-पुरुष क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आकू॑तिम॒ग्निं प्र॒युज॒ꣳ स्वाहा॒ मनो॑ मे॒धाम॒ग्निं प्र॒युज॒ꣳ स्वाहा॑ चि॒त्तं विज्ञा॑तम॒ग्निं प्र॒युज॒ꣳ स्वाहा॑ वा॒चो विधृ॑तिम॒ग्निं प्र॒युज॒ꣳ स्वाहा॑ प्र॒जाप॑तये॒ मन॑वे॒ स्वाहा॒ऽग्नये॑ वैश्वान॒राय॒ स्वाहा॑॥६६॥

आकू॑तिमित्याऽकू॑तिम्। अ॒ग्निम्। प्र॒युज॒मिति॑ प्र॒ऽयुज॑म्। स्वाहा॑। मनः॑। मे॒धाम्। अ॒ग्निम्। प्र॒युज॒मिति॑ प्र॒ऽयुज॑म्। स्वाहा॑। चि॒त्तम्। विज्ञा॑त॒मिति॒ विऽज्ञा॑तम्। अ॒ग्निम्। प्र॒युज॒मिति॑ प्र॒ऽयुज॑म्। स्वाहा॑। वा॒चः। विधृ॑ति॒मिति॒ विऽधृ॑तिम्। अ॒ग्निम्। प्र॒युज॒मिति॑ प्र॒ऽयुज॑म्। स्वाहा॑। प्र॒जाप॑तय॒ इति॑ प्र॒जाऽप॑तये। मन॑वे। स्वाहा॑। अ॒ग्नये॑। वै॒श्वा॒न॒राय॑। स्वाहा॑॥६६॥

पदार्थः-**(आकूतिम्)** उत्साहकारिकां क्रियाम् **(अग्निम्)** प्रसिद्धं पावकम् **(प्रयुजम्)** यः सर्वान् युनक्ति तम् **(स्वाहा)** सत्यया क्रियया **(मनः)** इच्छासाधनम् **(मेधाम्)** प्रज्ञाम् **(अग्निम्)** विद्युतम् **(प्रयुजम्)** **(स्वाहा)** सत्यया वाचा **(चित्तम्)** चेतति येन तत् **(विज्ञातम्)** **(अग्निम्)** अग्निमिव भास्वरम् **(प्रयुजम्)** व्यवहारेषु प्रयुक्तम् **(स्वाहा)** सत्येन व्यवहारेण **(वाचः)** वाण्याः **(विधृतिम्)** विविधं धारणम् **(अग्निम्)** योगाभ्यासजनितां विद्युतम् **(प्रयुजम्)** संप्रयुक्तम् **(स्वाहा)** क्रियायोगरीत्या **(प्रजापतये)** प्रजास्वामिने **(मनवे)** मननशीलाय **(स्वाहा)** सत्यां वाणीम् **(अग्नये)** विज्ञानस्वरूपाय **(वैश्वानराय)** विश्वेषु नरेषु राजमानाय जगदीश्वराय **(स्वाहा)** धर्म्यां क्रियाम्। [अयं मन्त्रः

शत०६.६.१.१५-२० व्याख्यातः]॥६६॥

अन्वयः-हे स्त्रीपुरुषाः! भवन्तो वेदस्थैर्गायत्र्यादिभिश्छन्दोभिः स्वाहा आकूतिं प्रयुजमग्निं स्वाहा मनो मेधां प्रयुजमग्निं स्वाहा चित्तं विज्ञातं प्रयुजमग्निं स्वाहा वाचो विधृतिं प्रयुजमग्निं मनवे प्रजापतये स्वाहाऽग्नये वैश्वानराय स्वाहा च प्रापय्य सततमाछृन्दन्तु॥६६॥

भावार्थः-अत्राऽऽछृन्दन्त्विति पदं पूर्वमन्त्रादनुवर्त्तते। मनुष्याः पुरुषार्थेन वेदादिशास्त्राण्यधीत्योत्साहा-दीनुन्नीय व्यवहारपरमार्थक्रियाप्रयोगेणाभ्युदयिकनिःश्रेयसे समाप्नुवन्तु॥६६॥

पदार्थः-हे स्त्री-पुरुषो! तुम लोग वेद के गायत्री आदि मन्त्रों से **(स्वाहा)** सत्यक्रिया से **(आकूतिम्)** उत्साह देने वाली क्रिया के **(प्रयुजम्)** प्रेरणा करने हारे **(अग्निम्)** प्रसिद्ध अग्नि को **(स्वाहा)** सत्यवाणी से **(मनः)** इच्छा के साधन को **(मेधाम्)** बुद्धि और **(प्रयुजम्)** सम्बन्ध करने हारी **(अग्निम्)** बिजुली को **(स्वाहा)** सत्य व्यवहारों से **(विज्ञातम्)** जाने हुए विषय के **(प्रयुजम्)** व्यवहारों में प्रयोग किये **(अग्निम्)** अग्नि के समान प्रकाशित **(चित्तम्)** चित्त को **(स्वाहा)** योगक्रिया की रीति से **(वाचः)** वाणियों की **(विधृतिम्)** विविध प्रकार की धारणा को **(प्रयुजम्)** संप्रयोग किये हुए **(अग्निम्)** योगाभ्यास से उत्पन्न की हुई बिजुली को **(प्रजापतये)** प्रजा के स्वामी **(मनवे)** मननशील पुरुष के लिये **(स्वाहा)** सत्यवाणी को और **(अग्नये)** विज्ञानस्वरूप **(वैश्वानराय)** सब मनुष्यों के बीच प्रकाशमान जगदीश्वर के लिये **(स्वाहा)** धर्मयुक्त क्रिया को युक्त करा के निरन्तर **(आछृन्दन्तु)** अच्छे प्रकार शुद्ध करो॥६६॥

भावार्थः-यहां पूर्व मन्त्र से **(आछृन्दन्तु)** इस पद की अनुवृत्ति आती है। मनुष्यों को चाहिये कि पुरुषार्थ से वेदादि शास्त्रों को पढ़ और उत्साह आदि को बढ़ा कर व्यवहार परमार्थ की क्रियाओं के सम्बन्ध से इस लोक और परलोक के सुखों को प्राप्त हों॥६६॥

विश्वो देवस्येत्यस्यात्रेय ऋषिः। सविता देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनर्गृहस्थैः किं कार्य्यमित्याह॥

फिर गृहस्थों को क्या करना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

विश्वो॑ दे॒वस्य॑ ने॒तुर्मर्तो॑ वुरीत स॒ख्यम्।

विश्वो॑ रा॒यऽइ॑षुध्यति द्यु॒म्नं वृ॑णीत पु॒ष्यसे॒ स्वाहा॑॥६७॥

विश्वः॑। दे॒वस्य॑। ने॒तुः। मर्त्तः॑। वु॒री॒त॒। स॒ख्यम्। विश्वः॑। रा॒ये। इ॒षु॒ध्य॒ति॒। द्यु॒म्नम्। वृ॒णी॒त॒। पु॒ष्यसे॑। स्वाहा॑॥६७॥

पदार्थः-**(विश्वः)** सर्वः **(देवस्य)** सर्वजगत्प्रकाशकस्य परमेश्वरस्य **(नेतुः)** सर्वनायकस्य **(मर्त्तः)** मनुष्यः **(वुरीत)** स्वीकुर्यात् **(सख्यम्)** सख्युर्भावं कर्म वा **(विश्वः)** अखिलः **(राये)** श्रियै **(इषुध्यति)** शरादीनि शस्त्राणि धरेत्। लेट्प्रयोगोऽयम् **(द्युम्नम्)** प्रकाशयुक्तं यशोऽन्नं वा। **द्युम्नं द्योततेर्यशोऽन्नं वा।** (निरु०५।५) **(वृणीत)** स्वीकुर्य्यात् **(पुष्यसे)** पुष्टो भवेः **(स्वाहा)** सत्यां वाचम्। [अयं मन्त्रः शत०६.६.१.२१ व्याख्यातः]॥६७॥

अन्वयः-यथा विद्वांस्तथा विश्वो मर्त्तो नेतुर्देवस्य सख्यं वुरीत, विश्वो मनुष्यो राय इषुध्यति। स्वाहा द्युम्नं वृणीत यथा चैतेन त्वं पुष्यसे, तथा वयमपि भवेम॥६७॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। गृहस्थैर्मनुष्यैः परमेश्वरेण सह मैत्रीं कृत्वा सत्येन व्यवहारेण श्रियं प्राप्य यशस्वीनि कर्माणि नित्यं कार्य्याणि॥६७॥

पदार्थः-जैसे विद्वान् लोग ग्रहण करते हैं **(विश्वः)** सब **(मर्त्तः)** मनुष्य **(नेतुः)** सब के नायक **(देवस्य)** सब जगत् के प्रकाशक परमेश्वर के **(सख्यम्)** मित्रता को **(वुरीत)** स्वीकार करें **(विश्वः)** सब मनुष्य **(राये)** शोभा वा लक्ष्मी के किये **(इषुध्यति)** बाणादि आयुधों को धारण करें **(स्वाहा)** सत्यवाणी और **(द्युम्नम्)** प्रकाशयुक्त यश वा अन्न को **(वृणीत)** ग्रहण करें और जैसे इससे तू **(पुष्यसे)** पुष्ट होता है, वैसे हम लोग भी होवें॥६७॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। गृहस्थ मनुष्यों को चाहिये कि परमेश्वर के साथ मित्रता कर सत्य व्यवहार से धन को प्राप्त हो के कीर्ति कराने हारे कर्मों को नित्य किया करें॥६७॥

मा स्वित्यस्य आत्रेय ऋषिः। अम्बा देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनर्मातापितरौ प्रति पुत्रादयः किं किं ब्रूयुरित्याह॥

फिर माता-पिता के प्रति पुत्रादि क्या-क्या कहें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

मा सु भित्था मा सु रिषोऽम्ब धृष्णु वीरयस्व सु।

अग्निश्चेदं करिष्यथः॥६८॥

मा। सु। भित्थाः। मा। सु। रिषः। अम्ब। धृष्णु। वीरयस्व। सु। अग्निः। च। इदम्। करिष्यथः॥६८॥

पदार्थः-**(मा) (सु) (भित्था)** भेदं कुर्य्याः **(मा) (सु) (रिषः)** हिंस्याः **(अम्ब)** मातः **(धृष्णु)** दार्ढ्यम् **(वीरयस्व)** आरब्धस्य कर्म्मणः समाप्तिमाचर **(सु) (अग्निः)** पावक इव **(च) (इदम्) (करिष्यथः)** करिष्यमाणं साधयिष्यथः। [अयं मन्त्रः शत०६.६.२.५ व्याख्यातः]॥६८॥

अन्वयः-हे अम्ब! त्वमस्मान् विद्यातो मा सु भित्था मा सुरिषो धृष्णु सुवीरयस्व चैवं कुर्वन्तौ युवां मातापुत्रावग्निरिवेदं करिष्यथः॥६८॥

भावार्थः-माता सुसन्तानान् सुशिक्षेत यत इमे परस्परं प्रीता भवेयुर्वीराश्च यत्कर्त्तव्यं तत्कुर्युरकर्त्तव्यं च नाचरेयुः॥६८॥

पदार्थः-हे **(अम्ब)** माता! तू हम को विद्या से **(मा)** मत **(सुभित्थाः)** छुड़ावे और **(मा)** मत **(सुरिषः)** दुःख दे **(धृष्णु)** दृढ़ता से **(सुवीरयस्व)** सुन्दर आरम्भ किये कर्म्म की समाप्ति कर। ऐसे करते हुए तुम माता और पुत्र दोनों **(अग्निः)** अग्नि के समान **(च) (इदम्)** करने योग्य इस सब कर्म्म को **(करिष्यथः)** आचरण करो॥६८॥

भावार्थः-माता को चाहिये कि अपने सन्तानों को अच्छी शिक्षा देवे, जिससे ये परस्पर प्रीतियुक्त और वीर होवें और जो करने योग्य है वही करें, न करने योग्य कभी न करें॥६८॥

दृꣳहस्वेत्यस्यात्रेय ऋषिः। अम्बा देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनः पतिः स्वपत्नीं प्रति किं किं वदेदित्याह॥

फिर पति अपनी स्त्री से क्या-क्या कहे, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

दृꣳहस्व देवि पृथिवि स्वस्तयऽआसुरी माया स्वधया कृतासि।

जुष्टं देवेभ्यऽइदमस्तु हव्यमरिष्टा त्वमुदिहि यज्ञेऽअस्मिन्॥६९॥

दृꣳहस्व। देवि। पृथिवि। स्वस्तये। आसुरी। माया। स्वधया। कृता। असि। जुष्टम्। देवेभ्यः। इदम्। अस्तु। हव्यम्। अरिष्टा। त्वम्। उत्। इहि। यज्ञे। अस्मिन्॥६९॥

पदार्थ:-(**दृंहस्व**) वर्द्धस्व (**देवि**) विद्यायुक्ते (**पृथिवि**) भूमिरिव पृथुविद्ये (**स्वस्तये**) सुखाय (**आसुरी**) येऽसुषु प्राणेषु रमन्ते तेषां स्वा (**माया**) प्रज्ञा (**स्वधया**) उदकेनान्नेन वा (**कृता**) निष्पादिता (**असि**) (**जुष्टम्**) सेवितम् (**देवेभ्य:**) विद्वद्भ्यो दिव्येभ्यो गुणेभ्यो वा (**इदम्**) (**अस्तु**) (**हव्यम्**) दातुं योग्यं विज्ञानम् (**अरिष्टा**) अहिंसिता (**त्वम्**) (**उत्**) (**इहि**) प्राप्नुहि (**यज्ञे**) सङ्गन्तव्ये गृहाश्रमे (**अस्मिन्**) वर्त्तमाने। [अयं मन्त्र: शत०६.६.२.६ व्याख्यात:]॥६९॥

अन्वय:-हे पृथिवि देवि पत्नि! त्वया स्वस्तये याऽऽसुरी मायाऽस्ति, सा कृतासि, तया त्वं मां पतिं दृंहस्वाऽरिष्टा सत्यस्मिन् यज्ञ उदिहि। यत् त्वयेदं जुष्टं हव्यं कृतमस्ति तद् देवेभ्योऽस्तु॥६९॥

भावार्थ:-या स्त्री पतिं प्राप्य गृहे वर्त्तते, तया सुबुद्ध्या सुखाय प्रयत्नो विधेय:। सुसंस्कृतं सर्वमन्नादिप्रीतिकरं संपादनीयम्। न कदाचित् कस्यचिद्धिंसा वैरबुद्धिर्वा क्वचित् कार्या॥६९॥

पदार्थ:-हे (**पृथिवि**) भूमि के समान विद्या के विस्तार को प्राप्त हुई (**देवि**) विद्या से युक्त पत्नि! तू ने (**स्वस्तये**) सुख के लिये (**स्वधया**) अन्न वा जल से जो (**आसुरी**) प्राणपोषक पुरुषों की (**माया**) बुद्धि है, उस को (**कृता**) सिद्ध की (**असि**) है। उस से (**त्वम्**) तू मुझ पति को (**दृंहस्व**) उन्नति दे (**अरिष्टा**) हिंसारहित हुई (**अस्मिन्**) इस (**यज्ञे**) सङ्ग करने योग्य गृहाश्रम में (**उदिहि**) प्रकाश को प्राप्त हो। जो तू ने (**जुष्टम्**) सेवन किया (**इदम्**) यह (**हव्यम्**) देने-लेने योग्य पदार्थ है, वह (**देवेभ्य:**) विद्वानों वा उत्तम गुण होने के लिये (**अस्तु**) होवे॥६९॥

भावार्थ:-जो स्त्री पति को प्राप्त हो के घर में वर्त्तती है, वह अच्छी बुद्धि से सुख के लिये प्रयत्न करे। सब अन्न आदि खाने-पीने के पदार्थ रुचिकारक बनवावे वा बनावे और किसी को दु:ख वा किसी के साथ वैरबुद्धि कभी न करे॥६९॥

द्रूवन्न इत्यस्य सोमाहुतिर्ऋषि:। अग्निर्देवता। विराड्गायत्री छन्द:। षड्ज: स्वर:॥

पुन: सा स्वभर्त्तारं प्रति कथं कथं संवदेतेत्याह॥

फिर वह स्त्री अपने पति से कैसे-कैसे कहे, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

द्रूवन्न: सर्पिरासुति: प्रत्नो होता वरेण्य:।

सहसस्पुत्रोऽअद्भुत:॥७०॥

द्रूवन्न: इति द्रुऽअन्न:। सर्पिरासुतिरिति सर्पि:ऽआसुति:। प्रत्न:। होता। वरेण्य:। सहस:। पुत्र:। अद्भुत:॥७०॥

पदार्थ:-(**द्रूवन्न:**) द्रवो वृक्षादय ओषधयोऽन्नानि वा यस्य स: (**सर्पिरासुति:**) सर्पिषो घृतादेरासुति: सवनं

यस्य सः (**प्रत्नः**) पुरातनः (**होता**) दाता ग्रहीता (**वरेण्यः**) स्वीकर्त्तुमर्हः (**सहसः**) बलवतः (**पुत्रः**) अपत्यम् (**अद्भुतः**) आश्चर्य्यगुणकर्मस्वभावः। [अयं मन्त्रः शत०६.६.२.१४ व्याख्यातः]॥७०॥

अन्वयः-हे पते! द्रुवन्नः सर्पिरासुतिः प्रत्नो होता वरेण्यः सहसस्पुत्रोऽद्भुतः त्वं स्वस्तयेऽस्मिन् यज्ञ उदिहि उदितो भव॥७०॥

भावार्थः-अत्र स्वस्तये अस्मिन् यज्ञ उदिहीति पदचतुष्टयं पूर्वतोऽनुवर्त्तते। कन्यया यस्य पिता कृतब्रह्मचर्यो बलवान् भवेद्, यः पुरुषार्थेन बहून्यन्नादीन्यर्जयितुं शक्नुयात्, पवित्रस्वभावः पुरुषो भवेत्, तेन साकं विवाहं कृत्वा सततं सुखं भोक्तव्यम्॥७०॥

पदार्थः-हे पते! (**द्रुवन्नः**) वृक्षादि ओषधि ही जिन के अन्न हैं ऐसे (**सर्पिरासुतिः**) घृत आदि पदार्थों को शोधने वाले (**प्रत्नः**) सनातन (**होता**) देने-लेने हारे (**वरेण्यः**) स्वीकार करने योग्य (**सहसः**) बलवान् के (**पुत्रः**) पुत्र (**अद्भुतः**) आश्चर्य्य गुण, कर्म और स्वभाव से युक्त आप सुख होने के लिये इस गृहाश्रम के बीच शोभायमान हूजिये॥७०॥

भावार्थः-यहां पूर्व मन्त्र से (**स्वस्तये**) (**अस्मिन्**) (**यज्ञे**) (**उदिहि**) इन चार पदों की अनुवृत्ति आती है। कन्या को उचित है कि जिस का पिता ब्रह्मचर्य्य से बलवान् हो और जो पुरुषार्थ से बहुत अन्नादि पदार्थों को इकट्ठा कर सके, उस शुद्ध स्वभाव से युक्त पुरुष के साथ विवाह करके निरन्तर सुख भोगे॥७०॥

परस्या इत्यस्य विरूप ऋषिः। अग्निर्देवता। विराड्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनः पतिः स्वपत्नीं प्रति किं किमुपदिशेदित्याह॥

फिर पति अपनी स्त्री को क्या-क्या उपदेश करे, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

परस्याऽअधि संवतोऽवराँ२ऽअभ्यातर।

यत्राहमस्मि ताँ२ऽअव॥७१॥

परस्याः। अधि। संवत इति सम्ऽवतः। अवरान्। अभि। आ। तर। यत्र। अहम्। अस्मि। तान्। अव॥७१॥

पदार्थः-(**परस्याः**) प्रकृष्टायाः कन्यायाः (**अधि**) (**संवतः**) संविभक्तान् (**अवरान्**) नीचाननुत्कृष्टगुणस्वभावान् (**अभि**) (**आ**) (**तर**) प्लव (**यत्र**) (**अहम्**) (**अस्मि**) (**तान्**) (**अव**)। [**अयं मन्त्रः** शत०६.६.३.१ व्याख्यातः]॥७१॥

अन्वयः-हे कन्ये! यस्याः परस्यास्तवाहमधिष्ठाता भवितुमिच्छामि, सा त्वं संवतोऽवरानभ्यातर, यत्र कुलेऽहमस्मि तानव॥७१॥

भावार्थः-कन्यया स्वस्या उत्कृष्टस्तुल्यो वा वरः स्वीकार्य्यः, न नीचः। यस्य पाणिग्रहणं कुर्य्यात्, तस्य सम्बन्धिनो मित्राणि च सर्वदा सन्तोषणीयानि॥७१॥

पदार्थः-हे कन्ये! जिस (**परस्याः**) उत्तम कन्या तेरा मैं (**अधि**) स्वामी हुआ चाहता हूं सो तू (**संवतः**) संविभाग को प्राप्त हुए (**अवरान्**) नीच स्वभावों को (**अभ्यातर**) उल्लङ्घन और (**यत्र**) जिस कुल में (**अहम्**) मैं (**अस्मि**) हूं (**तान्**) उन उत्तम मनुष्यों की (**अव**) रक्षा कर॥७१॥

भावार्थः-कन्या को चाहिये कि अपने से अधिक बल और विद्या वाले वा बराबर के पति को स्वीकार करे, किन्तु छोटे वा न्यून विद्या वाले को नहीं। जिस के साथ विवाह करे उसके सम्बन्धी और मित्रों को सब काल में प्रसन्न रक्खे॥७१॥

परमस्या इत्यस्य वारुणिर्ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

पुनः सा स्वस्वामिनं प्रति किं किमादिशेदित्याह॥

फिर वह स्त्री अपने स्वामी से क्या-क्या कहे, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

प॒र॒मस्याः॑ परा॒वतो॑ रो॒हिद॑श्वऽइ॒हाग॑हि।

पु॒री॒ष्यः॒ पुरुप्रि॒योऽग्ने॒ त्वं त॑रा॒ मृधः॑॥७२॥

प॒र॒मस्याः॑। प॒रा॒वत॒ इति॑ परा॒ऽवतः॑। रो॒हिद॑श्व॒ इति॑ रो॒हित्ऽअ॑श्वः। इ॒ह। आ। ग॒हि। पु॒री॒ष्यः॒। पु॒रु॒प्रि॒य इति॑ पुरुऽप्रि॒यः। अग्ने॑। त्वम्। त॒र। मृधः॑॥७२॥

पदार्थः-(**परमस्याः**) अनुत्तमगुणरूपशीलायाः (**परावतः**) दूरदेशात् (**रोहिदश्वः**) रोहितोऽग्न्यादयोऽश्वा वाहनानि यस्य सः (**इह**) (**आ**) (**गहि**) आगच्छ (**पुरीष्यः**) पुरीषेषु पालनेषु साधुः (**पुरुप्रियः**) पुरूणां बहूनां जनानां मध्ये प्रियः प्रीतः (**अग्ने**) अग्निप्रकाशवद्विज्ञानयुक्त (**त्वम्**) (**तर**) उल्लङ्घ। अत्र **द्व्यचोऽतस्तिङः** [अष्टा०६.३.१३५] इति दीर्घः। (**मृधः**) परपदार्थभिकांक्षिणः शत्रून्। [अयं मन्त्रः शत०६.६.३.४ व्याख्यातः]॥७२॥

अन्वयः-हे अग्ने पावक इव तेजस्विन् स्वामिन्! रोहिदश्वः पुरीष्यः पुरुप्रियस्त्वमिह परावतो देशात् परमस्याः कन्यायाः कीर्त्तिं श्रुत्वाऽऽगहि तया प्राप्तया सह मृघस्तर॥७२॥

भावार्थः-मनुष्यैः स्वस्याः कन्यायाः पुत्रस्य वा समीपदेशे विवाहः कदाचिन्नैव कार्य्यः। यावद्दूरे विवाहः क्रियते तावदेवाऽधिकं सुखं जायते, निकटे कलह एव॥७२॥

पदार्थः-हे (**अग्ने**) पावक के समान तेजस्विन् विज्ञानयुक्त पते! (**रोहिदश्वः**) अग्नि आदि पदार्थों से युक्त वाहनों से युक्त (**पुरीष्यः**) पालने में श्रेष्ठ (**पुरुप्रियः**) बहुत मनुष्यों की प्रीति रखने वाले (**त्वम्**) आप (**इह**) इस गृहाश्रम में (**परावतः**) दूर देश से (**परमस्याः**) अति उत्तम गुण, रूप और स्वभाव वाली कन्या की कीर्ति सुन के (**आगहि**) आइये और उस के साथ (**मृधः**) दूसरों के पदार्थों की आकांक्षा करने हारे शत्रुओं का (**तर**) तिरस्कार कीजिये॥७२॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि अपनी कन्या वा पुत्र का समीप देश में विवाह कभी न करें। जितना ही दूर विवाह किया जावे, उतना ही अधिक सुख होवे, निकट करने में कलह ही होता है॥७२॥

यदग्ने इत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनः स्त्रीपुरुषौ प्रति सम्बन्धिनः किं किं प्रतिजानीरन्नित्याह॥

फिर स्त्रीपुरुषों के प्रति सम्बन्धी लोग क्या-क्या प्रतिज्ञा करें और करावें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

यद॑ग्ने॒ कानि॒ कानि॑ चि॒दा ते॒ दारू॑णि द॒ध्मसि॑।

सर्वं तदस्तु ते घृतं तज्जुषस्व यविष्ठ्य॥७३॥

यत्। अग्ने। कानि। कानि। चित्। आ। ते। दारुणि। दध्मसि। सर्वम्। तत्। अस्तु। ते। घृतम्। तत्। जुषस्व। यविष्ठ्य॥७३॥

पदार्थः-(**यत्**) (**अग्ने**) अग्निरिव वर्तमान (**कानि**) (**कानि**) (**चित्**) अपि (**आ**) (**ते**) तुभ्यं तव वा (**दारुणि**) काष्ठे (**दध्मसि**) धरामः (**सर्वम्**) (**तत्**) (**अस्तु**) (**ते**) तव (**घृतम्**) आज्यम् (**तत्**) (**जुषस्व**) (**यविष्ठ्य**) अतिशयेन युवा यविष्ठः स एव यविष्ठ्यः तत्सम्बुद्धौ। [अयं मन्त्रः शत०६.६.३.५ व्याख्यातः]॥७३॥

अन्वयः-हे यविष्ठ्याग्ने विद्वान् पते स्त्रि वा! यथा कानि कानिचिद्वस्तूनि ते सन्ति, तद्वद्वयं दारुण्यादध्मसि। यदस्माकं वस्त्वस्ति तत्सर्वं तेऽस्तु यदस्माकं घृतं तत्त्वं जुषस्व। यत्ते वस्त्वस्ति तत्सर्वमस्माकमस्तु, यत्ते घृतादिकं वस्त्वस्ति तद्वयं गृह्णीमः॥७३॥

भावार्थः-ब्रह्मचार्यादिभिर्मनुष्यैः स्वकीयाः सर्वे पदार्थाः सर्वार्था निधातव्याः। न कदाचिदीर्ष्यया परस्परं भेत्तव्यम्, यतः सर्वेषां सर्वाणि सुखानि वर्धेरन्, विघ्नाश्च नोत्तिष्ठेरन्नेवं स्त्रीपुरुषावपि परस्परं वर्त्तेयाताम्॥७३॥

पदार्थः-हे (**यविष्ठ्य**) अत्यन्त युवावस्था को प्राप्त हुए (**अग्ने**) अग्नि के समान तेजस्वी विद्वान् पुरुष वा स्त्री! आप जैसे (**कानि कानिचित्**) कोई-कोई भी वस्तु (**ते**) तेरी हैं, वे हम लोग (**दारुणि**) काष्ठ के पात्र में (**आ दध्मसि**) धारण करें (**यत्**) जो कुछ हमारी चीज है (**तत्**) सो (**सर्वम्**) सब (**ते**) तेरी (**अस्तु**) होवे, जो हमारा (**घृतम्**) घृतादि उत्तम पदार्थ है, (**तत्**) उस को तू (**जुषस्व**) सेवन कर। जो कुछ तेरा पदार्थ है, सो सब हमारा हो, जो तेरा घृतादि पदार्थ है, उसको हम ग्रहण करें॥७३॥

भावार्थः-ब्रह्मचारी आदि मनुष्य अपने सब पदार्थ सब के उपकार के लिये रक्खें, किन्तु ईर्ष्या से आपस में कभी भेद न करें, जिस से सब के लिये सब सुखों की वृद्धि होवे और विघ्न न उठें। इसी प्रकार स्त्री-पुरुष भी परस्पर वर्त्तें॥७३॥

यदत्तीत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः। अग्निर्देवता। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

यदत्त्युपजिह्विका यद्वम्रोऽअतिसर्पति।

सर्वं तदस्तु ते घृतं तज्जुषस्व यविष्ठ्य॥७४॥

यत्। अत्ति। उपजिह्विकेत्युपऽजिह्विका। यत्। वम्रः। अतिसर्पतीत्यतिऽसर्पति। सर्वम्। तत्। अस्तु। ते। घृतम्। तत्। जुषस्व। यविष्ठ्य॥७४॥

पदार्थः-(**यत्**) (**अत्ति**) भुङ्क्ते (**उपजिह्विका**) उपगताऽनुकूला जिह्वा यस्याः पत्न्याः सा (**यत्**) (**वम्रः**) उद्गलितोदानः (**अतिसर्पति**) अतिशयेन गच्छति (**सर्वम्**) (**तत्**) (**अस्तु**) (**ते**) (**घृतम्**) (**तत्**) (**जुषस्व**) (**यविष्ठ्य**)। [**अयं मन्त्रः** शत०६.६.३.६ व्याख्यातः]॥७४॥

अन्वयः-हे यविष्ठ्य! त्वमुपजिह्विका च यदत्ति वम्रो यदतिसर्पति तत्सर्वं तेऽस्तु, यत्ते घृतमस्ति तत्त्वं

जुषस्व॥७४॥

भावार्थः-यत्प्रति पतिः प्रवर्त्तते स्त्री वा तदनुकूलौ दम्पती स्याताम्। यत्स्त्रियाः स्वं तत्पुरुषस्य यत्पुरुषस्य तत्स्त्रिया भवतु, नात्र कथंचिद् द्वेषो विधेयः, किंतु परस्परं मिलित्वाऽऽनन्दं भुञ्जीयाताम्॥७४॥

पदार्थः-हे **(यविष्ठ्य)** अत्यन्त युवावस्था को प्राप्त हुए पते! आप और **(उपजिह्विका)** जिसकी जिह्वा इन्द्रिय अनुकूल अर्थात् वश में हो ऐसी स्त्री **(यत्)** जो **(अति)** भोजन करे **(यत्)** जो **(वम्रः)** मुख से बाहर निकाला प्राणवायु **(अतिसर्पति)** अत्यन्त चलता है **(तत्)** वह **(सर्वम्)** सब **(ते)** तेरा **(अस्तु)** होवे। जो तेरा **(घृतम्)** घी आदि उत्तम पदार्थ है **(तत्)** उस को **(जुषस्व)** सेवन किया कर॥७४॥

भावार्थः-जिस पुरुष से पुरुष वा स्त्री का व्यवहार सिद्ध होता हो, उस के अनुकूल स्त्री-पुरुष दोनों वर्त्तें। जो स्त्री का पदार्थ है, वह पुरुष का और जो पुरुष का है, वह स्त्री का भी होवे। इस विषय में कभी द्वेष नहीं करना चाहिये, किन्तु आपस में मिलकर आनन्द भोगें॥७४॥

अहरहरित्यस्य नाभानेदिष्ठ ऋषिः। अग्निर्देवता। विराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनर्गृहस्थाः परस्परं कथं वर्त्तेरन्नित्याह॥

फिर गृहस्थ लोग आपस में कैसे वर्त्तें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अहरहरप्रयावं भरन्तोऽश्वायेव तिष्ठते घासमस्मै।
रायस्पोषेण समिषा मदन्तोऽग्ने मा ते प्रतिवेशा रिषाम॥७५॥

अहरहरित्यहःऽअहः। अप्रयावमित्यप्रऽयावम्। भरन्तः। अश्वायेवेत्यश्वायऽइव। तिष्ठते। घासम्। अस्मै। रायः। पोषेण। सम्। इषा। मदन्तः। अग्ने। मा। ते। प्रतिवेशा इति प्रतिऽवेशाः। रिषाम॥७५॥

पदार्थः-**(अहरहः)** प्रतिदिनम् **(अप्रयावम्)** प्रयुवत्यन्यायं यस्मिन् स प्रयावो न विद्यते प्रयावो यस्मिन् गृहाश्रमे तम् **(भरन्तः)** धरन्तः **(अश्वायेव)** यथाश्वाय **(तिष्ठते)** वर्त्तमानाय **(घासम्)** भक्ष्यम् **(अस्मै)** गृहाश्रमाय **(रायः)** धनस्य **(पोषेण)** पुष्ट्या **(सम्)** **(इषा)** अन्नादिना **(मदन्तः)** हर्षन्तः **(अग्ने)** विद्वन् **(मा)** **(ते)** तव **(प्रतिवेशाः)** प्रतीता वेशा धर्मप्रवेशा येषां ते **(रिषाम)** हिंस्याम। अत्र लिङर्थे लुङ्। [अयं मन्त्रः शत०६.६.३.८ व्याख्यातः]॥७५॥

अन्वयः-हे अग्ने! अहरहस्तिष्ठतेऽश्वायेवास्मा अप्रयावं घासं भरन्तो रायस्पोषेणेषा संमदन्तः प्रतिवेशाः सन्तो वयं त ऐश्वर्य्यं मा रिषाम॥७५॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। गृहस्था यथा अश्वादिपशूनां भोजनार्थं यवदुग्धादिकमश्वपालकाः नित्यं संचिन्वन्ति, तथैश्वर्य्यं समुन्नीय सुखयेयुः। धनमदेन केनचित् सहेर्ष्यां कदाचिन्न कुर्य्युः, परस्योत्कर्षं श्रुत्वा दृष्ट्वा च सदा हृष्येयुः॥७५॥

पदार्थः-हे **(अग्ने)** विद्वन् पुरुष! **(अहरहः)** नित्यप्रति **(तिष्ठते)** वर्त्तमान **(अश्वायेव)** जैसे घोड़े के लिये घास आदि खाने का पदार्थ आगे धरते हैं, वैसे **(अस्मै)** इस गृहस्थ पुरुष के लिये **(अप्रयावम्)** अन्याय से पृथक् गृहाश्रम के योग्य **(घासम्)** भोगने योग्य पदार्थों को **(भरन्तः)** धारण करते हुए **(रायः)** धन की **(पोषेण)** पुष्टि तथा **(इषा)** अन्नादि से **(संमदन्तः)** सम्यक् आनन्द को प्राप्त हुए **(प्रतिवेशाः)** धर्म्मविषयक प्रवेश के निश्चित हम

लोग **(ते)** तेरे ऐश्वर्य्य को **(मा रिषाम)** कभी नष्ट न करें॥७५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। गृहस्थ मनुष्यों को चाहिये कि जैसे घोड़े आदि पशुओं के खाने के लिये जौ, दूध आदि पदार्थों को पशुओं के पालक नित्य इकट्ठे करते हैं, वैसे अपने ऐश्वर्य्य को बढ़ाके सुख देवें और धन के अहङ्कार से किसी के साथ ईर्ष्या कभी न करें, किन्तु दूसरों की वृद्धि सुन वा देख के सदा आनन्द मानें॥७५॥

नाभेत्यस्य नाभानेदिष्ठ ऋषिः। अग्निर्देवता। स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनरेते परस्परं कथं संवदेरन्नित्याह॥

फिर ये मनुष्य लोग आपस में कैसे संवाद करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

नाभा॑ पृथि॒व्याः स॑मिधा॒नेऽअ॒ग्नौ रा॒यस्पोषा॑य बृह॒ते ह॑वामहे।

इ॒र॒म्म॒दं बृ॒हदु॑क्थं॒ यज॑त्रं॒ जेता॑रम॒ग्निं पृत॑नासु सास॒हिम्॥७६॥

नाभा॑। पृ॒थि॒व्याः। स॒मि॒धा॒न इति॑ सम्ऽइ॒धा॒ने। अ॒ग्नौ। रा॒यः। पोषा॑य। बृ॒ह॒ते। ह॒वा॒म॒हे। इ॒र॒म्म॒दमिती॑रम्ऽम॒दम्। बृ॒हदु॑क्थ॒मिति॑ बृ॒हत्ऽउ॑क्थम्। यज॑त्रम्। जेता॑रम्। अ॒ग्निम्। पृत॑नासु। सा॒स॒हिम्। सा॒स॒हि॒मिति॑ सस॒हिम्॥७६॥

पदार्थः-**(नाभा)** नाभौ मध्ये **(पृथिव्याः)** **(समिधाने)** सम्यक् प्रदीप्ते **(अग्नौ)** वह्नौ **(रायः)** श्रियः **(पोषाय)** पोषणकराय **(बृहते)** महते **(हवामहे)** स्पर्द्धामहे **(इरम्मदम्)** य इरयाऽन्नेन माद्यति हृष्यति तम्। **उग्रम्पश्येरम्मदपाणिन्धमाश्च॥** (अष्टा०३।२।३७) इति खश् प्रत्ययान्तो निपातितः। **(बृहदुक्थम्)** बृहन्महदुक्थं प्रशंसनं यस्य तम् **(यजत्रम्)** सङ्गन्तव्यम् **(जेतारम्)** जयशीलम् **(अग्निम्)** विद्युद्वद्वर्त्तमानम् **(पृतनासु)** सेनासु **(सासहिम्)** अतिशयेन सोढारम्। [अयं मन्त्रः शत०६.६.३.९ व्याख्यातः]॥७६॥

अन्वयः-हे गृहिणो! यथा वयं बृहते रायस्पोषाय पृथिव्या नाभा समिधानेऽग्नौ पृतनासु सासहिमिरम्मदं बृहदुक्थं यजत्रमग्निमिव जेतारं सेनापतिं हवामहे तथा यूयमप्याह्वयत॥७६॥

भावार्थः-भूमिराज्यं कुर्वद्भिर्जनैः शस्त्रास्त्राणि संचित्य पूर्णबुद्धिविद्याशरीरात्मबलसहितं पुरुषं सेनापतिं विधाय निर्भयतया प्रवर्तन्ताम्॥७६॥

पदार्थः-हे गृही लोगो! जैसे हम लोग **(बृहते)** बड़े **(रायः)** लक्ष्मी के **(पोषाय)** पुष्ट करने हारे पुरुष के लिये **(पृथिव्याः)** पृथिवी के **(नाभा)** बीच **(समिधाने)** अच्छे प्रकार प्रज्वलित हुए **(अग्नौ)** अग्नि में और **(पृतनासु)** सेनाओं में **(सासहिम्)** अत्यन्त सहनशील **(इरम्मदम्)** अन्न से आनन्दित होने वाले **(बृहदुक्थम्)** बड़ी प्रशंसा से युक्त **(यजत्रम्)** सङ्ग्राम करने योग्य **(अग्निम्)** बिजुली के समान शीघ्रता करने हारे **(जेतारम्)** विजयशील सेनापति पुरुष को **(हवामहे)** बुलाते हैं, वैसे तुम लोग भी इसको बुलाओ॥७६॥

भावार्थः-पृथिवी का राज्य करते हुए मनुष्यों को चाहिये कि आग्नेय आदि अस्त्रों और तलवार आदि शस्त्रों का सञ्चय कर और पूर्ण बुद्धि तथा शरीरबल से युक्त पुरुष को सेनापति कर के निर्भयता के साथ वर्तें॥७६॥

याः सेना इत्यस्य नाभानेदिष्ठ ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनः पुनरेते चोरादीन् प्रयत्नेन निवर्त्तयेयुरित्याह॥

राजपुरुषों को योग्य है कि अपने प्रयत्न से चोर आदि दुष्टों का वार-वार निवारण करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

याः सेनाऽअभीत्वरीराव्याधिनीरुगणाऽउत।

ये स्तेना ये च तस्कंरास्ताँस्तेऽअग्नेऽपिदधाम्यास्ये॥७७॥

याः। सेनाः। अभीत्वरीरित्यभिऽइत्वरीः। आव्याधिनीरित्याऽव्याधिनीः। उगणाः। उत। ये। स्तेनाः। ये। च। तस्कराः। तान्। ते। अग्ने। अपि। दधामि। आस्ये॥७७॥

पदार्थः-(**याः**) (**सेनाः**) (**अभीत्वरीः**) आभिमुख्यं राजविरोधं कुर्वतीः (**आव्याधिनीः**) समन्ताद् बहुरोगयुक्तास्ताडितुं शीला वा (**उगणाः**) उद्यतायुधसमूहाः। पृषोदरादित्वादभीष्टसिद्धिः (**उत**) अपि (**ये**) (**स्तेनाः**) सुरङ्गं दत्वा परपदार्थापहारिणः (**ये**) (**च**) दस्यवः (**तस्कराः**) द्यूतादिकापट्येन परपदार्थापहर्त्तारः (**तान्**) (**ते**) अस्य, अत्र व्यत्ययः। (**अग्ने**) पावकस्य (**अपि**) (**दधामि**) प्रक्षिपामि (**आस्ये**) प्रज्वलिते ज्वालासमूहेऽग्नौ। [अयं मन्त्रः शत०६.६.३.१० व्याख्यातः]॥७७॥

अन्वयः-हे सेनासभापते! यथाऽहं या अभीत्वरीराव्याधिनीरुगणाः सेनाः सन्ति, ता उत ये स्तेना ये तस्कराश्च सन्ति, ताँस्तेऽस्याग्नेः पावकस्यास्येऽपिदधामि, तथा त्वमेतानीह धेहि॥७७॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। धार्मिकै राजपुरुषैर्या अनूकूलाः सेनाः प्रजाश्च सन्ति, ताः सततं संपूज्या, या विरोधिन्यो ये च दस्य्वादयश्चोरा दुष्टवाचोऽनृतवादिनो व्यभिचारिणो मनुष्या भवेयुः, तानग्निदाहाद् उद्वेजनकरैर्दण्डैर्भृशं ताडयित्वा वशं नेयाः॥७७॥

पदार्थः-हे सेना और सभा के स्वामी! जैसे मैं (**याः**) जो (**अभीत्वरीः**) सम्मुख होके युद्ध करने हारी (**आव्याधिनीः**) बहुत रोगों से युक्त वा ताड़ना देने हारी (**उगणः**) शस्त्रों को लेके विरोध में उद्यत हुई (**सेनाः**) सेना हैं उन (**उत**) और (**ये**) जो (**स्तेनाः**) सुरङ्ग लगा के दूसरों के पदार्थों को हरने वाले (**च**) और (**ये**) जो (**तस्कराः**) द्यूत आदि कपट से दूसरों के पदार्थ लेने हारे हैं (**तान्**) उनको (**ते**) इस (**अग्ने**) अग्नि के (**आस्ये**) जलती हुई लपट में (**अपिदधामि**) गेरता हूं, वैसे तू भी इन को इस में धरा कर॥७७॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। धर्मात्मा राजपुरुषों को चाहिये कि जो अपने अनुकूल सेना और प्रजा हों उनका निरन्तर सत्कार करें और जो सेना तथा प्रजा विरोधी हों तथा डाकू, चोर, खोटे वचन बोलने हारे, मिथ्यावादी, व्यभिचारी मनुष्य होवें, उन को अग्नि से जलाने आदि भयंकर दण्डों से शीघ्र ताड़ना देकर वश में करें॥७७॥

दंष्ट्राभ्यामित्यस्य नाभानेदिष्ठ ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगुष्णिक्छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

पुनस्तान् कथं ताडयेयुरित्याह॥

फिर उन दुष्टों को किस किस प्रकार ताड़ना करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

दꣳष्ट्राभ्यां मलिम्लूञ्जम्भ्यैस्तस्कराँ२ऽउत।

हनुभ्याᳬं स्तेनान् भगवस्ताँस्त्वं खाद सुखादितान्॥७८॥

दꣳष्ट्राभ्याम्। मलिम्लून्। जम्भ्यैः। तस्करान्। उत। हनुभ्यामिति हनुऽभ्याम्। स्तेनान्। भगव इति भगऽवः। तान्। त्वम्। खाद। सुखादितानिति सुऽखादितान्॥७८॥

पदार्थः-(**दंष्ट्राभ्याम्**) तीक्ष्णाग्राभ्यां दन्ताभ्याम् (**मलिम्लून्**) मलिनाचारान् सिंहादीन् (**जम्भ्यैः**) जम्भेषु मुखेषु भवैर्जिह्वादिभिः (**तस्करान्**) चोर इव वर्त्तमानान् (**उत**) अपि (**हनुभ्याम्**) ओष्ठमूलाभ्याम् (**स्तेनान्**) परपदार्थापहर्तॄन् (**भगवः**) ऐश्वर्यसंपन्न राजन् (**तान्**) (**त्वम्**) (**खाद**) विनाशय (**सुखादितान्**) अन्यायेन परपदार्थानां भोक्तॄन्। [अयं मन्त्रः शत०६.६.३.१० व्याख्यातः]॥७८॥

अन्वयः-हे भगवः सभासेनेश! यथा त्वं जम्भ्यैर्दंष्ट्राभ्यां यान् मलिम्लून् तस्करान् हनुभ्यां सुखादितान् स्तेनान् खाद विनाशयेस्तान् वयमुत विनाशयेम॥७८॥

भावार्थः-राजपुरुषैर्ये गवादिहिंसकाः पशवः पुरुषाश्च ये च स्तेनास्ते विविधेन बन्धनेन ताडनेन नाशनेन वा वशं नेयाः॥७८॥

पदार्थः-हे (**भगवः**) ऐश्वर्य्य वाले सभा सेना के स्वामी! जैसे (**त्वम्**) आप (**जम्भ्यैः**) मुख के जीभ आदि अवयवों और (**दंष्ट्राभ्याम्**) तीक्ष्ण दांतों से जिन (**मलिम्लून्**) मलिन आचरण वाले सिंह आदि को और (**हनुभ्याम्**) मसूड़ो से (**तस्करान्**) चोरों के समान वर्त्तमान (**सुखादितान्**) अन्याय से दूसरों के पदार्थों को भोगने और (**स्तेनान्**) रात में भीति आदि फोड़-तोड़ के पराया माल मारने हारे मनुष्यों को (**खाद**) जड़ से नष्ट करें, वैसे (**तान्**) उन को हम लोग (**उत**) भी नष्ट करें॥७८॥

भावार्थः-राजपुरुषों को चाहिये कि जो गौ आदि बड़े उपकार के पशुओं को मारने वाले सिंह आदि वा मनुष्य हों, उन तथा जो चोर आदि मनुष्य हैं, उन को अनेक प्रकार के बन्धनों से बांध ताड़ना दे नष्ट कर वश में लावें॥७८॥

ये जनेष्वित्यस्य नाभानेदिष्ठ ऋषिः। सेनापतिर्देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनरेते काँस्कान् निवर्त्तयेयुरित्याह॥

फिर ये राजपुरुष किस-किस का निवारण करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

ये जनेषु मलिम्लव स्तेनासस्तस्करा वने।

ये कक्षेष्वघायवस्ताँस्ते दधामि जम्भयोः॥७९॥

ये। जनेषु। मलिम्लवः। स्तेनासः। तस्कराः। वने। ये। कक्षेषु। अघायवः। अघयव इत्यघऽयवः। तान्। ते। दधामि। जम्भयोः॥७९॥

पदार्थः-(**ये**) (**जनेषु**) मनुष्येषु (**मलिम्लवः**) ये मलिनाः सन्तो म्लोचन्ति गच्छन्ति ते (**स्तेनासः**) गुप्ताश्चोराः (**तस्कराः**) प्रसिद्धाः (**वने**) अरण्ये (**ये**) (**कक्षेषु**) सामन्तेषु (**अघायवः**) आत्मनोऽघेन पापेनायुरिच्छवः (**तान्**) (**ते**) तव (**दधामि**) (**जम्भयोः**) बन्धने मुखमध्ये ग्रासमिव। [अयं मन्त्रः शत०६.६.३.१० व्याख्यातः]॥७९॥

अन्वयः-हे सभेश! सेनापतिरहं ये जनेषु मलिम्लवः स्तेनासो ये वने तस्करा ये कक्षेष्वघायवः सन्ति, ताँस्ते जम्भयोर्ग्रासमिव दधामि॥७९॥

भावार्थः-सेनापत्यादिराजपुरुषाणामिदमेव कर्त्तव्यमस्ति यद् ग्रामारण्यस्थाः प्रसिद्धा अप्रसिद्धाश्चोराः पापाचाराश्च पुरुषाः सन्ति, तेषां राजाधीनत्वं कुर्य्युरिति॥७९॥

पदार्थः-हे सभापते! मैं सेनाध्यक्ष **(ये)** जो **(जनेषु)** मनुष्यों में **(मलिम्लवः)** मलिन स्वभाव से आते-जाते **(स्तेनासः)** गुप्त चोर जो **(वने)** वन में **(तस्कराः)** प्रसिद्ध चोर लुटेरे और **(ये)** जो **(कक्षेषु)** कटरी आदि में **(अघायवः)** पाप करते हुए जीवन की इच्छा करने वाले हैं **(तान्)** उन को **(ते)** आप के **(जम्भयोः)** फैलाये मुख में ग्रास के समान **(दधामि)** धरता हूं॥७९॥

भावार्थः-सेनापति आदि राजपुरुषों का यही मुख्य कर्त्तव्य है कि जो ग्राम और वनों में प्रसिद्ध चोर तथा लुटेरे आदि पापी पुरुष हैं, उन को राजा के आधीन करें॥७९॥

यो अस्मभ्यमित्यस्य नाभानेदिष्ठ ऋषिः। अध्यापकोपदेशकौ देवते। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

योऽअस्मभ्यमरातीयाद्यश्च नो द्वेषते जनः।

निन्दाद्योऽअस्मान् धिप्साच्च सर्वं तं भस्मसा कुरु॥८०॥

यः। अस्मभ्यम्। अरातीयात्। अरातियादित्यरातिऽयात्। यः। च। नः। द्वेषते। जनः। निन्दात्। यः। अस्मान्। धिप्सात्। च। सर्वम्। तम्। भस्मसा। कुरु॥८०॥

पदार्थः-**(यः)** मनुष्यः **(अस्मभ्यम्)** धार्मिकेभ्यः **(अरातीयात्)** शत्रुत्वमाचरेत् **(यः)** **(च)** **(नः)** अस्मान् **(द्वेषते)** अप्रीतयति। अत्र **बहुलं छन्दसि** [अष्टा०२.४.७३] इति शपो लुगभावः। **(जनः)** **(निन्दात्)** निन्देत् **(यः)** **(अस्मान्)** **(धिप्सात्)** दम्भितुमिच्छेत् **(च)** **(सर्वम्)** **(तम्)** **(भस्मसा)** कृत्स्नम्भस्मेति भस्मसा, अत्र छान्दसो वर्णलोप इति तलोपः। **(कुरु)** संपादय। [अयं मन्त्रः शत०६.६.३.१० व्याख्यातः]॥८०॥

अन्वयः-हे सभासेनेश! त्वं यो जनोऽस्मभ्यमरातीयाद्, यो नो द्वेषते निन्दाच्च योऽस्मान् धिप्साच्छलेच्च, तं सर्वं भस्मसा कुरु॥८०॥

भावार्थः-अध्यापकोपदेशकराजपुरुषाणामिदं योग्यमस्ति यदध्यापनेन शिक्षयोपदेशेन दण्डेन च विरोधस्य सततं विनाशकरणमिति॥८०॥

पदार्थः-हे सभा और सेना के स्वामिन्! आप **(यः)** जो **(जनः)** मनुष्य **(अस्मभ्यम्)** हम धर्मात्माओं के लिये **(अरातीयात्)** शत्रुता करे **(यः)** जो **(नः)** हमारे साथ **(द्वेषते)** दुष्टता करे **(च)** और हमारी **(निन्दात्)** निन्दा करे **(यः)** जो **(अस्मान्)** हम को **(धिप्सात्)** दम्भ दिखावे **(च)** और हमारे साथ छल करे **(तम्)** उस **(सर्वम्)** सब को **(भस्मसा)** जला के सम्पूर्ण भस्म **(कुरु)** कीजिये॥८०॥

भावार्थः-अध्यापक, उपदेशक और राजपुरुषों को चाहिये कि पढ़ाने, शिक्षा, उपदेश और दण्ड से निरन्तर

विरोध का विनाश करें॥८०॥

संशितमित्यस्य नाभानेदिष्ठ ऋषिः। पुरोहितयजमानौ देवते। निचृदार्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अथ पुरोहितो यजमानादिभ्यः किं किमिच्छेत् कुर्याच्चेत्याह॥

अब पुरोहित यजमान आदि से किस-किस पदार्थ की इच्छा करे और क्या-क्या करे॥

सꣳशि॑तं मे॒ ब्रह्म॒ सꣳशि॑तं वी॒र्यं᳖ बल॑म्।

सꣳशि॑तं क्ष॒त्रं जि॒ष्णु यस्या॒हमस्मि॑ पु॒रोहि॑तः॥८१॥

सꣳशि॑त॒मिति॒ सम्ऽशि॑तम्। मे॒। ब्रह्म॑। सꣳशि॑त॒मिति॒ सम्ऽशि॑तम्। वी॒र्य᳖म्। बल॑म्। सꣳशि॑त॒मिति॒ सम्ऽशि॑तम्। क्ष॒त्रम्। जि॒ष्णु। यस्य॑। अ॒हम्। अस्मि॑। पु॒रोहि॑त॒ इति॑ पु॒रःऽहि॑तः॥८१॥

पदार्थः-(**संशितम्**) प्रशंसनीयम् (**मे**) मम यजमानस्य (**ब्रह्म**) वेदविज्ञानम् (**संशितम्**) (**वीर्य्यम्**) पराक्रमः (**बलम्**) (**संशितम्**) (**क्षत्रम्**) क्षत्रियकुलम् (**जिष्णु**) जयशीलम् (**यस्य**) जनस्य (**अहम्**) (**अस्मि**) (**पुरोहितः**) यं यजमानः पुरः पूर्वं दधाति सः। **पुरोहितः पुर एनं दधति॥** (निरु०२।१२)~ [अयं मन्त्रः शत०६.६.३.१४ व्याख्यातः]॥८१॥

अन्वयः-अहं यस्य पुरोहितोऽस्मि तस्य मे मम तस्य च संशितं ब्रह्म मे तस्य च संशितं वीर्य्यं संशितं बलं सं शतं जिष्णु क्षत्रं चास्तु॥८१॥

भावार्थः-यो यस्य पुरोहितो यजमानश्च भवेत् तावन्योऽन्यस्य यया विद्यया योगबलेन धर्माचरणेन चात्मोन्नतिर्ब्रह्मचर्येण जितेन्द्रियत्वेनारोग्येण च शरीरस्य बलं वर्धेत, तदेव कर्म सततं कुर्याताम्॥८१॥

पदार्थः-(**अहम्**) मैं (**यस्य**) जिस यजमान पुरुष का (**पुरोहितः**) प्रथम धारण करने हारा (**अस्मि**) हूं, उसका और (**मे**) मेरा (**संशितम्**) प्रशंसा के योग्य (**ब्रह्म**) वेद का विज्ञान और उस यजमान का (**संशितम्**) प्रशंसा के योग्य (**वीर्य्यम्**) पराक्रम प्रशंसित (**बलम्**) बल (**संशितम्**) और प्रशंसा के योग्य (**जिष्णु**) जय का स्वभाव वाला (**क्षत्रम्**) क्षत्रियकुल होवे॥८१॥

भावार्थः-जो जिसका पुरोहित और जो जिस का यजमान होवे, दोनों आपस में जिस विद्या, योगबल और धर्माचरण से आत्मा की उन्नति और ब्रह्मचर्य्य, जितेन्द्रियता तथा आरोग्यता से शरीर का बल बढ़े, वही कर्म निरन्तर किया करें॥८१॥

उदेषामित्यस्य नाभानेदिष्ठ ऋषिः। सभापतिर्यजमानो देवता। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनर्यजमानः पुरोहितं प्रति कथं वर्त्तेतेत्याह॥

फिर यजमान पुरोहित के साथ कैसे वर्त्ते, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

उदे॑षां बा॒हूऽअ॑तिर॒मुद्वर्चो॒ऽअथो॒ बल॑म्।

क्षि॒णोमि॒ ब्रह्म॑णा॒मित्रा॒नुन्न॑यामि॒ स्वाँ२ऽअ॒हम्॥८२॥

उत्। एषाम्। बाहूऽइति बाहू। अतिरम्। उत्। वर्चः। अथोऽइत्यथो। बलम्। क्षिणोमि। ब्रह्मणा। अमित्रान्। उत्। नयामि। स्वान्। अहम्॥८२॥

पदार्थ:-**(उत्) (एषाम्)** पूर्वोक्तानां चोरादीनां दुष्कर्मकारिणाम् **(बाहू)** बलवीर्य्ये **(अतिरम्)** सन्तरेयमुल्लङ्घेयम् **(उत्) (वर्च:)** तेज: **(अथो)** आनन्तर्ये **(बलम्)** सामर्थ्यम् **(क्षिणोमि)** हिनस्मि **(ब्रह्मणा)** वेदेश्वरविज्ञानप्रदानेन **(अमित्रान्)** शत्रून् **(उत्) (नयामि)** ऊर्ध्वं बध्नामि **(स्वान्)** स्वकीयान् **(अहम्)**। **[अयं मन्त्र:** शत०६.६.३.१५ व्याख्यात:]॥८२॥

अन्वय:-अहं यजमान: पुरोहितो वा ब्रह्मणैषां बाहू उदतिरम्। वर्चो बलममित्रांश्चोत्क्षिणोम्यथो स्वान् सुहृदो वर्चो बलं चोन्नयामि प्रापयामि॥८२॥

भावार्थ:-राजादिभिर्यजमानै: पुरोहितादिभिश्च पापिनां सर्वस्वक्षयो धर्मात्मनां सर्वस्ववृद्धिश्च सर्वथा कार्य्या॥८२॥

पदार्थ:-**(अहम्)** मैं यजमान वा पुरोहित **(ब्रह्मणा)** वेद और ईश्वर के ज्ञान देने से **(एषाम्)** इन पूर्वोक्त चोर आदि दुष्टों के **(बाहू)** बल और पराक्रम को **(उदतिरम्)** अच्छे प्रकार उल्लङ्घन करूं **(वर्च:)** तेज तथा **(बलम्)** सामर्थ्य को और **(अमित्रान्)** शत्रुओं को **(उत्क्षिणोमि)** मारता हूं **(अथो)** इस के पश्चात् **(स्वान्)** अपने मित्रों के तेज और सामर्थ्य को **(उन्नयामि)** वृद्धि के साथ प्राप्त करूं॥८२॥

भावार्थ:-राजा आदि यजमान तथा पुरोहितों को चाहिये कि पापियों के सब पदार्थों का नाश और धर्मात्माओं के सब पदार्थों की वृद्धि सदैव सब प्रकार से किया करें॥८२॥

अन्नपत इत्यस्य नाभानेदिष्ठ ऋषि:। यजमानपुरोहितौ देवते। उपरिष्टाद् बृहती छन्द:। मध्यम: स्वर:॥

अथ मनुष्यै: कथं कथं वर्त्तितव्यमित्युपदिश्यते

अब मनुष्यों को इस संसार में कैसे-कैसे वर्त्तना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिण:।
प्रप्र दातारं तारिषऽऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे॥८३॥

अन्नपत इत्यन्नऽपते। अन्नस्य। न:। देहि। अनमीवस्य। शुष्मिण:। प्रप्रेति प्रऽप्र। दातारम्। तारिष:। ऊर्जम्। न:। धेहि। द्विपद इति द्विऽपदे। चतुष्पदे। चतु:ऽपद इति चतु:ऽपदे॥८३॥

पदार्थ:-**(अन्नपते)** अन्नानां पालक **(अन्नस्य) (न:)** अस्मभ्यम् **(देहि) (अनमीवस्य)** रोगरहितस्य सुखकरस्य **(शुष्मिण:)** बहु शुष्मं बलं भवति यस्मात् तस्य **(प्रप्र)** अतिप्रकृष्टतया **(दातारम्) (तारिष:)** संतर **(ऊर्जम्)** पराक्रमम् **(न:)** अस्माकम् **(धेहि) (द्विपदे)** द्वौ पादौ यस्य मनुष्यादेस्तस्मै **(चतुष्पदे)** चत्वार: पादा यस्य गवादेस्तस्मै। [अयं मन्त्र: शत०६.६.४.७ व्याख्यात:]॥८३॥

अन्वय:-हे अन्नपते यजमान पुरोहित वा! त्वं नोऽनमीवस्य शुष्मिणोऽन्नस्य प्रप्रदेहि। अस्याऽन्नस्य दातारं

तारिषः। नोऽस्माकं द्विपदे चतुष्पदे ऊर्जं धेहि॥८३॥

भावार्थः-मनुष्यैः सदैवारोग्यबलकारकमन्नं स्वैर्भोक्तव्यमन्येभ्यः प्रदातव्यं च। मनुष्याणां पशूनां च सुखबले संवर्धनीये, यत ईश्वरसृष्टिक्रमानुकूलाचरणेन सर्वेषां सुखोन्नतिः सदा वर्धेत॥८३॥

अत्र गृहस्थराजपुरोहितसभासेनाधीशप्रजाजनकर्त्तव्यकर्मादिवर्णनादेतदध्यायोक्तार्थस्य पूर्वाध्यायोक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीत्यवगन्तव्यम्॥

पदार्थः-हे **(अन्नपते)** ओषधि अन्नों के पालन करने हारे यजमान वा पुरोहित! आप **(नः)** हमारे लिये **(अनमीवस्य)** रोगों के नाश से सुख को बढ़ाने **(शुष्मिणः)** बहुत बलकारी **(अन्नस्य)** अन्न को **(प्रप्रदेहि)** अतिप्रकर्ष के साथ दीजिये और इस अन्न के **(दातारम्)** देने हारे को **(तारिषः)** तृप्त कर तथा **(नः)** हमारे **(द्विपदे)** दो पग वाले मनुष्यादि तथा **(चतुष्पदे)** चार पगवाले गौ आदि पशुओं के लिये **(ऊर्जम्)** पराक्रम को **(धेहि)** धारण कर॥८३॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि सदैव बलकारी आरोग्य अन्न आप सेवें, और दूसरों को देवें। मनुष्य तथा पशुओं के सुख और बल बढ़ावें, जिससे ईश्वर की सृष्टि के क्रमाऽनुकूल आचरण से सब के सुखों की सदा उन्नति होवे॥८३॥

इस अध्याय में गृहस्थ राजा के पुरोहित सभा और सेना के अध्यक्ष और प्रजा के मनुष्यों को करने योग्य कर्म आदि के वर्णन से इस अध्याय में कहे अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य्याणां श्रीमत्परमविदुषां विरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मिते संस्कृतभाषाऽऽर्यभाषाभ्यां विभूषिते सुप्रमाणयुक्ते यजुर्वेदभाष्य एकादशोऽध्यायः सम्पूर्णः॥११॥

॥ओ३म्॥

अथ द्वादशाऽध्यायारम्भः

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव। यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व॥ यजु० ३०.३॥

दृशान इत्यस्य वत्सप्रीर्ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

तत्रादौ विद्वद्गुणानाह॥

अब बारहवें अध्याय का आरम्भ किया जाता है, उस के प्रथम मन्त्र में विद्वानों के गुणों का उपदेश किया है॥

दृ॒शा॒नो रु॒क्मऽउ॒र्व्या व्य॑द्यौद् दु॒र्मर्ष॒मायुः॑ श्रि॒ये रु॑चा॒नः।
अ॒ग्निर॒मृतो॑ऽअभव॒द् वयो॑भि॒र्यदे॑नं॒ द्यौरज॑नयत् सु॒रेताः॑॥ १॥

दृ॒शा॒नः। रु॒क्मः। उ॒र्व्या। वि। अ॒द्यौ॒त्। दु॒र्मर्ष॒मिति॑ दुः॒ऽमर्ष॑म्। आयुः॑। श्रि॒ये। रु॒चा॒नः। अ॒ग्निः। अ॒मृत॑ः। अ॒भ॒व॒त्। वयो॑भि॒रिति॒ वय॑ःऽभिः। यत्। ए॒न॒म्। द्यौः। अज॑नयत्। सु॒रेता॒ इति॑ सु॒ऽरेताः॑॥ १॥

पदार्थः-(**दृशानः**) दर्शकः (**रुक्मः**) दीप्तिमान् (**उर्व्या**) महत्या पृथिव्या सह (**वि**) (**अद्यौत्**) द्योतयति (**दुर्मर्षम्**) दुःखेन मर्षितुं सोढुं शीलम् (**आयुः**) अन्नम्। **आयुरित्यन्ननामसु पठितम्॥** (निघं०२.७) (**श्रिये**) शोभायै (**रुचानः**) रोचकः (**अग्निः**) कारणाख्यः पावकः (**अमृतः**) नाशरहितः (**अभवत्**) भवति (**वयोभिः**) यावज्जीवनैः (**यत्**) यम् (**एनम्**) (**द्यौः**) विज्ञानादिभिः प्रकाशमानः (**अजनयत्**) जनयति (**सुरेताः**) शोभनानि रेतांसि वीर्याणि यस्य सः। [अयं मन्त्रः शत०६.७.२.१-२ व्याख्यातः]॥१॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा दृशानो द्यौरग्निः सूर्य उर्व्या सह सर्वान् मूर्तान् पदार्थान् व्यद्यौत्, तथा यः श्रिये रुचानो रुक्मो जनोऽभवद् यश्च सुरेता अमृतो दुर्मषमायुरजनयद् वयोभिः सह यदेनं विद्वांसमजनयत् तं यूयं सततं सेवध्वम्॥१॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथाऽस्मिन् जगति सूर्यादयः सर्वे पदार्थाः स्वदृष्टान्तैः परमेश्वरं निश्चाययन्ति, तथा मनुष्या अपि भवेयुः॥१॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे (**दृशानः**) दिखलाने हारा (**द्यौः**) स्वयं प्रकाशस्वरूप (**अग्निः**) सूर्यरूप अग्नि (**उर्व्या**) अति स्थूल भूमि के साथ सब मूर्त्तिमान् पदार्थों को (**व्यद्यौत्**) विविध प्रकार से प्रकाशित करता है, वैसे जो (**श्रिये**) सौभाग्यलक्ष्मी के अर्थ (**रुचानः**) रुचिकर्त्ता (**रुक्मः**) सुशोभित जन (**अभवत्**) होता और (**यत्**) जो (**सुरेताः**) उत्तम वीर्ययुक्त (**अमृतः**) नाशरहित (**दुर्मर्षम्**) शत्रुओं के दुःख से निवारण के योग्य (**आयुः**) जीवन को (**अजनयत्**) प्रकट करता है, (**वयोभिः**) अवस्थाओं के साथ (**एनम्**) इस विद्वान् पुरुष को प्रकट करता हो, उसको तुम सदा निरन्तर सेवन करो॥१॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे इस जगत् में सूर्य आदि सब पदार्थ अपने-अपने दृष्टान्त से परमेश्वर को निश्चय कराते हैं, वैसे ही मनुष्यों को होना चाहिये॥१॥

नक्तोषासेत्यस्य कुत्स ऋषिः। अग्निर्देवता। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

नक्तोषासा समनसा विरूपे धापयेते शिशुमेकꣳ समीची।

द्यावाक्षामा रुक्मोऽअन्तर्विभाति देवाऽअग्निं धारयन् द्रविणोदाः॥ २॥

नक्तोषासा। नक्तोषसेति नक्तोषसा। समनसेति सऽमनसा। विरूपे इति विऽरूपे। धापयेतेऽइति धापयेते। शिशुम्। एकम्। समीची इति सम्ऽईची। द्यावाक्षामा। रुक्मः। अन्तः। वि। भाति। देवाः। अग्निम्। धारयन्। द्रविणोदा इति द्रविणःऽदाः॥ २॥

पदार्थः-(**नक्तोषासा**) नक्तं रात्रिं चोषा दिनं च ते (**समनसा**) समानं मनो विज्ञानं ययोस्ते (**विरूपे**) तमःप्रकाशाभ्यां विरुद्धरूपे (**धापयेते**) पाययतः (**शिशुम्**) बालकम् (**एकम्**) असहायम् (**समीची**) ये सम्यगञ्चतः सर्वान् प्राप्नुतस्ते (**द्यावाक्षामा**) प्रकाशभूमी, अत्र **अन्येषामपि०** [अष्टा०६.३.१३७] इति दीर्घः (**रुक्मः**) रुचिकरः (**अन्तः**) आभ्यन्तरे (**वि**) (**भाति**) प्रकाशते (**देवाः**) दिव्याः प्राणाः (**अग्निम्**) विद्युतम् (**धारयन्**) धारयेयुः (**द्रविणोदाः**) ये द्रविणं बलं ददति ते। **द्रविणोदाः कस्माद्धनं द्रविणमुच्यते यदेनदभिद्रवन्ति बलं वा द्रविणं यदेनेनाभिद्रवन्ति, तस्य दाता द्रविणोदाः॥** निरु० ८.१)। [अयं मन्त्रः शत०६.७.२.३ व्याख्यातः]॥ २॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यमग्निं द्रविणोदा देवा धारयन्, यो रुक्मः सन्नन्तर्विभाति यः समनसा विरूपे समीची द्यावाक्षामा नक्तोषासा यथैकं शिशुं द्वे मातरौ धापयेते, तथा वर्त्तमानं तं विजानन्तु॥ २॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा जननी धात्री च बालकं पालयतस्तथाहोरात्रौ सर्वान् पालयतः। यश्च विद्युद्रूपेणाभिव्याप्तोऽस्ति, सोऽग्निः सूर्य्यादेः कारणमस्तीति सर्वे निश्चिन्वन्तु॥ २॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जिस (**अग्निम्**) बिजुली को (**द्रविणोदाः**) बलदाता (**देवाः**) दिव्य प्राण (**धारयन्**) धारण करें, जो (**रुक्मः**) रुचिकारक होके (**अन्तः**) अन्तःकरण में (**विभाति**) प्रकाशित होता है, जो (**समनसा**) एक विचार से विदित (**विरूपे**) अन्धकार और प्रकाश से विरुद्ध रूपयुक्त (**समीची**) सब प्रकार सब को प्राप्त होने वाली (**द्यावाक्षामा**) प्रकाश और भूमि तथा (**नक्तोषासा**) रात्रि और दिन जैसे (**एकम्**) एक (**शिशुम्**) बालक को दो माताएँ (**धापयेते**) दूध पिलाती हैं, वैसे उसको तुम लोग जानो॥ २॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे जननी माता और धायी बालक को दूध पिलाती हैं, वैसे ही दिन और रात्रि सब की रक्षा करते हैं, और जो बिजुली के रूप से सर्वत्र व्यापक है, वह अग्नि सूर्य आदि का कारण है, इस बात का तुम सब निश्चय करो॥ २॥

विश्वारूपाणीत्यस्य श्यावाश्व ऋषिः। सविता देवता। विराड् जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

अथाग्रे परमात्मनः कृत्यमुपदिश्यते॥

अब अगले मन्त्र में परमेश्वर के कृत्य का उपदेश किया है॥

विश्वा रूपाणि प्रतिमुञ्चते कविः प्रासावीद् भद्रं द्विपदे चतुष्पदे।

वि नाकमख्यत् सविता वरेण्योऽनु प्रयाणमुषसो विराजति॥ ३॥

विश्वा। रूपाणि। प्रति। मुञ्चते। कविः। प्र। असावीत्। भद्रम्। द्विपद इति द्विऽपदे। चतुष्पदे। चतुःपद इति चतुःपदे। वि। नाकम्। अख्यत्। सविता। वरेण्यः। अनु। प्रयाणम्। प्रयानमिति प्रऽयानम्। उषसः। वि। राजति॥ ३॥

पदार्थः-(**विश्वा**) सर्वाणि (**रूपाणि**) (**प्रति**) (**मुञ्चते**) (**कविः**) क्रान्तदर्शनः क्रान्तप्रज्ञः सर्वज्ञो वा (**प्र**) (**असावीत्**) उत्पादयति (**भद्रम्**) जननीयं सुखम् (**द्विपदे**) मनुष्याद्याय (**चतुष्पदे**) गवाद्याय (**वि**) (**नाकम्**) सर्वदुःखरहितम् (**अख्यत्**) प्रकाशयति (**सविता**) सकलजगत् प्रसविता जगदीश्वरः सूर्य्यो वा (**वरेण्यः**) स्वीकर्त्तुमर्हः (**अनु**) (**प्रयाणम्**) प्रकृष्टं प्रापणम् (**उषसः**) प्रभातस्य (**वि**) (**राजति**) प्रकाशते॥ ३॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यो वरेण्यः कविः सवितोषसः प्रयाणमनुविराजति विश्वा रूपाणि प्रतिमुञ्चते। द्विपदे चतुष्पदे नाकं व्यख्यत् भद्रं प्रासावीत् तमीदृशमुत्पादकं सूर्यं परमेश्वरं विजानीत॥ ३॥

भावार्थः-अत्र श्लेषालङ्कारः। येन जगदीश्वरेण सकलरूपप्रकाशकः प्राणिनां सुखहेतुः प्रकाशमानः सूर्य्यो रचितस्तस्यैव भक्तिं सर्वे मनुष्याः कुर्वन्त्विति॥ ३॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो (**वरेण्यः**) ग्रहण करने योग्य (**कविः**) जिसकी दृष्टि और बुद्धि सर्वत्र है वा सर्वज्ञ (**सविता**) सब संसार का उत्पादक जगदीश्वर वा सूर्य्य (**उषसः**) प्रातःकाल का समय (**प्रयाणम्**) प्राप्त करने को (**अनुविराजति**) प्रकाशित होता है (**विश्वा**) सब (**रूपाणि**) पदार्थों के स्वरूप (**प्रतिमुञ्चते**) प्रसिद्ध करता है और (**द्विपदे**) मनुष्यादि दो पग वाले (**चतुष्पदे**) तथा गौ आदि चार पग वाले प्राणियों के लिये (**नाकम्**) सब दुःखों से पृथक् (**भद्रम्**) सेवने योग्य सुख को (**व्यख्यत्**) प्रकाशित करता और (**प्रासावीत्**) उत्पन्न करता है, ऐसे उस सूर्य्यलोक को उत्पन्न करने वाले ईश्वर को तुम लोग जानो॥ ३॥

भावार्थः-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जिस परमेश्वर ने सम्पूर्ण रूपवान् द्रव्यों का प्रकाशक, प्राणियों के सुख का हेतु, प्रकाशमान सूर्यलोक रचा है, उसी की भक्ति सब मनुष्य करें॥ ३॥

सुपर्णोऽसीत्यस्य श्यावाश्व ऋषिः। गरुत्मान् देवता। भुरिग्धृतिश्छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

पुनर्विद्वद्गुणा उपदिश्यन्ते॥

फिर विद्वानो के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

सुपर्णोऽसि गरुत्माँस्त्रिवृत्ते शिरो गायत्रं चक्षुर्बृहद्रथन्तरे पक्षौ।

स्तोमऽआत्मा छन्दाᳬंस्यङ्गानि यजूᳬंषि नाम।

साम ते तनूर्वामदेव्यं यज्ञायज्ञियं पुच्छं धिष्ण्याः शफाः।

सुपर्णोऽसि गरुत्मान् दिवं गच्छ स्वः पत॥ ४॥

सुपर्ण इति सुऽपर्णः। असि। गरुत्मान्। त्रिवृदिति त्रिऽवृत्। ते। शिरः। गायत्रम्। चक्षुः। बृहद्रथन्तरे इति बृहत्ऽरथन्तरे। पक्षौ। स्तोमः। आत्मा। छन्दाᳬंसि। अङ्गानि। यजूᳬंषि। नाम। साम। ते। तनूः। वामदेव्यमिति

वामऽदेव्यम्। यज्ञायज्ञियमिति यज्ञाऽयज्ञियम्। पुच्छम्। धिष्ण्याः। शफाः। सुपर्ण इति सुऽपर्णः। असि। गरुत्मान्। दिवम्। गच्छ। स्वरिति स्वः। पत॥ १४॥

पदार्थः-(**सुपर्णः**) शोभनानि पर्णानि लक्षणानि यस्य सः (**असि**) (**गरुत्मान्**) गुर्वात्मा (**त्रिवृत्**) त्रीणि कर्मोपासनाज्ञानानि वर्त्तन्ते यस्मिन् तत् (**ते**) तव (**शिरः**) शृणाति हिनस्ति दुःखानि येन तत् (**गायत्रम्**) गायत्र्या विहितं विज्ञानम् (**चक्षुः**) नेत्रमिव (**बृहद्रथन्तरे**) बृहद्भी रथैस्तरन्ति दुःखानि याभ्यां सामभ्यां ते (**पक्षौ**) पार्श्वाविव (**स्तोमः**) स्तोतुमर्ह ऋग्वेदः (**आत्मा**) स्वरूपम् (**छन्दांसि**) उष्णिगादीनि (**अङ्गानि**) श्रोत्रादीनि (**यजूंषि**) यजुः श्रुतयः (**नाम**) आख्या (**साम**) तृतीयो वेदः (**ते**) तव (**तनूः**) शरीरम् (**वामदेव्यम्**) वामदेवेन दृष्टं विज्ञातं विज्ञापितं वा (**यज्ञायज्ञियम्**) यज्ञाः सङ्गन्तव्या व्यवहारा अयज्ञास्त्यक्तव्याश्च तान् यदर्हति तत् (**पुच्छम्**) पुच्छमिवान्त्योऽवयवः (**धिष्ण्याः**) दिधिषति शब्दयन्ति यैस्ते धिषणाः खुरोपरिभागास्तेषु साधवः (**शफाः**) खुराः (**सुपर्णः**) शोभनपतनशीलः (**असि**) अस्ति (**गरुत्मान्**) गरुतः प्रशस्ता शब्दा विद्यन्ते यस्य सः (**दिवम्**) दिव्यं विज्ञानम् (**गच्छ**) प्राप्नुहि (**स्वः**) सुखम् (**पत**) गृहाण। [अयं मन्त्रः शत०६.७.२.६ व्याख्यातः]॥४॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यतस्ते तव त्रिवृत् शिरो गायत्रं चक्षुर्बृहद्रथन्तरे पक्षौ स्तोम आत्मा छन्दांस्यङ्गानि यजूंषि नाम यज्ञायज्ञियं वामदेव्यं साम ते तनूश्चास्ति तस्मात् त्व गरुत्मान् सुपर्णोऽसि, यस्य धिषायाः शफा दीर्घं पुच्छमस्ति, तद्वद् यो गरुत्मान् सुपर्णोऽस्यस्ति, स इव त्वं दिवं गच्छ स्वः पत॥४॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा सुन्दरशाखापत्रपुष्पफलमूला वृक्षाः शोभन्ते, तथा वेदादिशास्त्राऽध्येतारोऽध्यापकाः सुरोचन्ते। यथा पशवः पुच्छाद्यवयवैः स्वकार्याणि साध्नुवन्ति, यथा च पक्षी पक्षाभ्यामाकाशमार्गेण गत्वाऽऽगत्य च मोदते तथा मनुष्या विद्यासुशिक्षाः प्राप्य पुरुषार्थेन सुखान्याप्नुवन्तु॥४॥

पदार्थः-हे विद्वन्! जिससे (**ते**) आपका (**त्रिवृत्**) तीन कर्म्म, उपासना और ज्ञानों से युक्त (**शिरः**) दुःखों का जिससे नाश हो (**गायत्रम्**) गायत्री छन्द से कहे विज्ञानरूप अर्थ (**चक्षुः**) नेत्र (**बृहद्रथन्तरे**) बड़े-बड़े रथों के सहाय से दुःखों को छुड़ाने वाले (**पक्षौ**) इधर-उधर के अवयव (**स्तोमः**) स्तुति के योग्य ऋग्वेद (**आत्मा**) अपना स्वरूप (**छन्दांसि**) उष्णिक् आदि छन्द (**अङ्गानि**) कान आदि (**यजूंषि**) यजुर्वेद के मन्त्र (**नाम**) नाम (**यज्ञायज्ञियम्**) ग्रहण करने और छोड़ने योग्य व्यवहारों के योग्य (**वामदेव्यम्**) वामदेव ऋषि ने जाने वा पढ़ाये (**साम**) तीसरे सामवेद (**ते**) आपका (**तनूः**) शरीर है, इससे आप (**गरुत्मान्**) महात्मा (**सुपर्णः**) सुन्दर सम्पूर्ण लक्षणों से युक्त (**असि**) हैं, जिससे (**धिष्ण्याः**) शब्द करने के हेतुओं में साधु (**शफाः**) खुर तथा (**पुच्छम्**) बड़ी पूंछ के समान अन्त्य का अवयव है, उसके समान जो (**गरुत्मान्**) प्रशंसित शब्दोच्चारण से युक्त (**सुपर्णः**) सुन्दर उड़ने वाले (**असि**) हैं, उस पक्षी के समान आप (**दिवम्**) सुन्दर विज्ञान को (**गच्छ**) प्राप्त हूजिये और (**स्वः**) सुख को (**पत**) ग्रहण कीजिये॥४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सुन्दर, शाखा, पत्र, पुष्प, फल और मूलों से युक्त वृक्ष शोभित होते हैं, वैसे ही वेदादि शास्त्रों के पढ़ने और पढ़ाने हारे सुशोभित होते हैं। जैसे पशु पूंछ आदि अवयवों से अपने काम करते और जैसे पक्षी पंखों से आकाश मार्ग से जाते-आते आनन्दित होते हैं, वैसे मनुष्य विद्या और अच्छी शिक्षा को प्राप्त हो पुरुषार्थ के साथ सुखों को प्राप्त हों॥४॥

विष्णोः क्रम इत्यस्य श्यावाश्व ऋषिः। विष्णुर्देवता। भुरिगुत्कृतिश्छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुना राजधर्ममाह॥

फिर भी अगले मन्त्र में राजधर्म का उपदेश किया है॥

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा गायत्रं छन्दऽआरोह पृथिवीमनु विक्रमस्व विष्णोः क्रमोऽस्यभिमातिहा त्रैष्टुभं छन्दऽआरोहान्तरिक्षमनु विक्रमस्व विष्णोः क्रमोऽस्यरातीयतो हन्ता जागतं छन्दऽआरोह दिवमनु विक्रमस्व विष्णोः क्रमोऽसि शत्रूयतो हन्तानुष्टुभं छन्दऽआरोह दिशोऽनु विक्रमस्व॥५॥

विष्णोः। क्रमः। असि। सपत्नहेति सपत्नऽहा। गायत्रम्। छन्दः। आ। रोह। पृथिवीम्। अनु। वि। क्रमस्व। विष्णोः। क्रमः। असि। अभिमातिहेत्यभिमातिऽहा। त्रैष्टुभम्। त्रैस्तुभमिति त्रैऽस्तुभम्। छन्दः। आ। रोह। अन्तरिक्षम्। अनु। वि। क्रमस्व। विष्णोः। क्रमः। असि। अरातीयतः। अरातियत इत्यरातिऽयतः। हन्ता। जागतम्। छन्दः। आ। रोह। दिवम्। अनु। वि। क्रमस्व। विष्णोः। क्रमः। असि। शत्रूयतः। शत्रुयत इति शत्रुऽयतः। हन्ता। आनुष्टुभम्। आनुस्तुभमित्यानुऽ स्तुभम्। छन्दः। आ। रोह। दिशः। अनु। वि। क्रमस्व॥५॥

पदार्थः-(**विष्णोः**) व्यापकस्य जगदीश्वरस्य (**क्रमः**) व्यवहारः (**असि**) (**सपत्नहा**) यः सपत्नानरीन् हन्ति सः (**गायत्रम्**) गायत्रीनिष्पन्नमर्थम् (**छन्दः**) स्वच्छम् (**आ**) (**रोह**) आरूढो भव (**पृथिवीम्**) पृथिव्यादिकम् (**अनु**) (**वि**) (**क्रमस्व**) व्यवहर (**विष्णोः**) व्यापकस्य कारणस्य (**क्रमः**) अवस्थान्तरम् (**असि**) (**अभिमातिहा**) योऽभिमातीनभिमानयुक्तान् हन्ति (**त्रैष्टुभम्**) त्रिभिः सुखैः सम्बद्धम् (**छन्दः**) बलप्रदम् (**आ**) (**रोह**) (**अन्तरिक्षम्**) आकाशम् (**अनु**) (**वि**) (**क्रमस्व**) (**विष्णोः**) व्याप्तुं शीलस्य विद्युद्रूपाग्नेः (**क्रमः**) (**असि**) (**अरातीयतः**) विद्यादिदानं कर्त्तुमनिच्छतः (**हन्ता**) नाशकः (**जागतम्**) जगज्जानाति येन तत् (**छन्दः**) सृष्टिविद्याबलकरम् (**आ**) (**रोह**) (**दिवम्**) सूर्याद्यग्निम् (**अनु**) (**वि**) (**क्रमस्व**) (**विष्णोः**) हिरण्यगर्भस्य वायोः (**क्रमः**) (**असि**) (**शत्रूयतः**) आत्मनः शत्रुमाचरतः (**हन्ता**) (**आनुष्टुभम्**) अनुकूलतया स्तोभते सुखं बध्नाति येन तत् (**छन्दः**) आनन्दकरम् (**आ**) (**रोह**) (**दिशः**) पूर्वादीन् (**अनु**) (**वि**) (**क्रमस्व**) प्रयतस्व। [अयं मन्त्रः शत०६.७.२.१३-१६ व्याख्यातः]॥५॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यतस्त्वं विष्णोः क्रमः सपत्नहाऽसि, तस्माद् गायत्रं छन्द आरोह पृथिवीमनुविक्रमस्व। यतस्त्वं विष्णोः क्रमोऽभिमातिहासि, तस्मात् त्वं त्रैष्टुभं छन्द आरोहान्तरिक्षमनुविक्रमस्व। यतस्त्वं विष्णोः क्रमोऽरातीयतो हन्ताऽसि, तस्माज्जागतं छन्द आरोह दिवमनुविक्रमस्व। यस्त्वं विष्णोः क्रमः शत्रूयतो हन्ताऽसि, स त्वमानुष्टुभं छन्द आरोह, दिशोऽनुविक्रमस्व॥५॥

भावार्थः-मनुष्यैर्वेदविद्यया भूगर्भादिविद्या निश्चित्य पराक्रमेणोन्नीय रोगाः शत्रवश्च निहन्तव्याः॥५॥

पदार्थः-हे विद्वन् पुरुष! जिससे आप (**विष्णोः**) व्यापक जगदीश्वर के (**क्रमः**) व्यवहार से शोधक और (**सपत्नहा**) शत्रुओं के मारनेहारे (**असि**) हो, इससे (**गायत्रम्**) गायत्री मन्त्र से निकले (**छन्दः**) शुद्ध अर्थ पर (**आरोह**) आरूढ़ हूजिये (**पृथिवीम्**) पृथिव्यादि पदार्थों से (**अनुविक्रमस्व**) अपने अनुकूल व्यवहार साधिये तथा जिस कारण आप (**विष्णोः**) व्यापक कारण के (**क्रमः**) कार्य्यरूप (**अभिमातिहा**) अभिमानियों को मारनेहारे

(असि) हैं, इससे आप **(त्रैष्टुभम्)** तीन प्रकार के सुखों से संयुक्त **(छन्दः)** बलदायक वेदार्थ को **(आरोह)** ग्रहण और **(अन्तरिक्षम्)** आकाश को **(अनुविक्रमस्व)** अनुकूलव्यवहार में युक्त कीजिये जिससे आप **(विष्णोः)** व्यापनशील बिजुली रूप अग्नि के **(क्रमः)** जाननेहारे **(अरातीयतः)** विद्या आदि दान के विरोधी पुरुष के **(हन्ता)** नाश करनेहारे **(असि)** हैं, इससे आप **(जागतम्)** जगत् को जानने का हेतु **(छन्दः)** सृष्टिविद्या को बलयुक्त करनेहारे विज्ञान को **(आरोह)** प्राप्त हूजिये और **(दिवम्)** सूर्य आदि अग्नि को **(अनुविक्रमस्व)** अनुक्रम से उपयुक्त कीजिये, जो आप **(विष्णोः)** हिरण्यगर्भ वायु के **(क्रमः)** ज्ञापक तथा **(शत्रूयतः)** अपने को शत्रु का आचरण करने वाले पुरुषों के **(हन्ता)** मारने वाले **(असि)** हैं, सो आप **(आनुष्टुभम्)** अनुकूलता के साथ सुख सम्बन्ध के हेतु **(छन्दः)** आनन्दकारक वेदभाग को **(आरोह)** उपयुक्त कीजिये और **(दिशः)** पूर्व आदि दिशाओं के **(अनुविक्रमस्व)** अनुकूल प्रयत्न कीजिये॥५॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि वेदविद्या से भूगर्भ विद्याओं का निश्चय तथा पराक्रम से उनकी उन्नति करके रोग और शत्रुओं का नाश करें॥५॥

अक्रन्ददित्यस्य वत्सप्रीर्ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अक्रन्ददुग्नि स्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहद् वीरुधः समुञ्जन्।
सुद्यो जज्ञानो वि हीमिद्धोऽअख्युदा रोदसी भानुना भात्युन्तः॥६॥

अक्रन्दत्। अग्निः। स्तनयन्निवेति स्तनयन्ऽइव। द्यौः। क्षामा। रेरिहत्। वीरुधः। समञ्जन्निति सम्ऽअञ्जन्। सद्यः। जज्ञानः। वि। हि। ईम्। इद्धः। अख्यत्। आ। रोदसीऽइति रोदसी। भानुना। भाति। अन्तरित्यन्तः॥६॥

पदार्थः-**(अक्रन्दत्)** प्राप्नोति **(अग्निः)** विद्युत् **(स्तनयन्निव)** यथा दिव्यं शब्दं कुर्वन् **(द्यौः)** सूर्य्यप्रकाशः **(क्षामा)** पृथिवी। **क्षमेति पृथिवीनामसु पठितम्॥** (निघं०१.१) अत्र **अन्येषामपि दृश्यते** [अष्टा०६.३.१३७] इत्युपधादीर्घः **(रेरिहत्)** भृशं फलानि दादाति **(वीरुधः)** वृक्षान् **(समञ्जन्)** सम्यक् प्रकाशयन् **(सद्यः)** समानेऽह्नि **(जज्ञानः)** प्रादुर्भूतः सन् **(वि)** **(हि)** खलु **(ईम्)** सर्वतः **(इद्धः)** प्रदीप्तः **(अख्यत्)** प्रकाशयति **(आ)** **(रोदसी)** द्यावापृथिव्यौ **(भानुना)** स्वदीप्त्या **(भाति)** प्रकाशते **(अन्तः)** मध्ये वर्त्तमानः सन्। [अयं मन्त्रः शत०६.७.३.१-२ व्याख्यातः]॥६॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यः सभेशः सद्यो जज्ञानो द्यौरग्निः स्तनयन्निवारीनाक्रन्ददद्, यथा क्षामा वीरुधस्तथा प्रजाभ्यः सुखानि रेरिहत्, यथा सवितेद्धः समञ्जन् रोदसी व्यख्यद् भानुनाऽन्तराभाति, तथा यः शुभगुणकर्मस्वभावैः प्रकाशते, तं हि राजकर्मसु प्रयुङ्ध्वम्॥६॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। हे मनुष्याः! यथा सूर्यः सर्वलोकमध्यस्थः सर्वान् प्रकाश्याकर्षति, यथा पृथिवी बहुफलदा वर्त्तते, तथाभूतः पुरुषः राज्यकार्येषु सम्यगुपयोक्तव्यः॥६॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो सभापति **(सद्यः)** एक दिन में **(जज्ञानः)** प्रसिद्ध हुआ **(द्यौः)** सूर्यप्रकाश रूप **(अग्निः)** विद्युत् अग्नि के समान **(स्तनयन्निव)** शब्द करता हुआ शत्रुओं को **(अक्रन्दत्)** प्राप्त होता है, जैसे **(क्षामा)**

पृथिवी **(वीरुधः)** वृक्षों को फल-फूलों से युक्त करती है, वैसे प्रजाओं के लिये सुखों को **(रेरिहत्)** अच्छे-बुरे कर्मों का शीघ्र फल देता है, जैसे सूर्य **(इद्धः)** प्रदीप्त और **(समञ्जन्)** सम्यक् पदार्थों को प्रकाशित करता हुआ **(रोदसी)** आकाश और पृथिवी को **(व्यख्यत्)** प्रसिद्ध करता और **(भानुना)** अपनी दीप्ति के साथ **(अन्तः)** सब लोकों के बीच **(आभाति)** प्रकाशित होता है, वैसे जो सभापति शुभ गुण-कर्मों से प्रकाशित हो, उसको तुम लोग राजकार्य्यों में संयुक्त करो॥६॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। हे मनुष्यो! जैसे सूर्य सब लोकों के बीच में स्थित हुआ सबको प्रकाशित और आकर्षण करता है, और जैसे पृथिवी बहुत फलों को देती है, वैसे ही मनुष्य को राज्य के कार्यों में अच्छे प्रकार से उपयुक्त करो॥६॥

अग्न इत्यस्य वत्सप्रीर्ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनर्विद्वद्गुणानुपदिशति॥

फिर विद्वानों के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अग्नेऽभ्यावर्त्तिन्नभि मा निवर्त्तस्वायुषा वर्चसा प्रजया धनेन।

सन्या मेधया रय्या पोषेण॥७॥

अग्ने। अभ्यावर्त्तिन्नित्यभिऽआवर्त्तिन्। अभि। मा। नि। वर्त्तस्व। आयुषा। वर्चसा। प्रजयेति प्रऽजया। धनेन। सन्या। मेधया। रय्या। पोषेण॥७॥

पदार्थः-**(अग्ने)** विद्वन्! **(अभ्यावर्त्तिन्)** आभिमुख्येन वर्त्तितुं शीलमस्य तत्सम्बुद्धौ **(अभि)** **(मा)** माम् **(नि)** नितराम् **(वर्त्तस्व)** **(आयुषा)** चिरञ्जीवनेन **(वर्चसा)** अन्नाध्ययनादिना **(प्रजया)** सन्तानेन **(धनेन)** **(सन्या)** सर्वासां विद्यानां संविभागकर्त्र्या **(मेधया)** प्रज्ञया **(रय्या)** विद्याश्रिया **(पोषेण)** पुष्ट्या। [अयं मन्त्रः शत०६.७.३.६ व्याख्यातः]॥७॥

अन्वयः-हे अभ्यावर्त्तिन्नग्ने पुरुषार्थिन् विद्वन्! त्वमायुषा वर्चसा प्रजया धनेन सन्या मेधया रय्या पोषेण च सहाभिनिवर्त्तस्व मा मां चैतैः संयोजय॥७॥

भावार्थः-मनुष्यैर्भूगर्भादिविद्यया विनैश्वर्य्यं प्राप्तुं नैव शक्येत, न प्रज्ञया विना विद्या भवितुं शक्या॥७॥

पदार्थः-हे **(अभ्यावर्त्तिन्)** सन्मुख होके वर्तने वाले **(अग्ने)** तेजस्वी पुरुषार्थी विद्वान् पुरुष! आप **(आयुषा)** बड़े जीवन **(वर्चसा)** अन्न तथा पढ़ने आदि **(प्रजया)** सन्तानों **(धनेन)** धन **(सन्या)** सब विद्याओं का विभाग करनेहारी **(मेधया)** बुद्धि **(रय्या)** विद्या की शोभा और **(पोषेण)** पुष्टि के साथ **(अभिनिवर्त्तस्व)** निरन्तर वर्त्तमान हूजिये और **(मा)** मुझको भी इन उक्त पदार्थों से संयुक्त कीजिये॥७॥

भावार्थः-मनुष्य लोग भूगर्भादि विद्या के विना ऐश्वर्य्य को प्राप्त नहीं कर सकते और बुद्धि के विना विद्या भी नहीं हो सकती॥७॥

अग्ने अङ्गिर इत्यस्य वत्सप्रीर्ऋषिः। अग्निर्देवता। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनर्विद्याभ्यासमाह॥

फिर विद्याभ्यास करना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अग्ने॑ऽअङ्गिरः श॒तं ते॑ सन्त्वा॒वृतः॑ स॒हस्र॑ त॒ऽउपा॒वृतः॑।

अधा॒ पोष॑स्य॒ पोषे॑ण॒ पुन॑र्नो न॒ष्टमाकृ॑धि॒ पुन॑र्नो र॒यिमाकृ॑धि॥८॥

अग्ने॑। अ॒ङ्गि॒रः॒। श॒तम्। ते॒। स॒न्तु॒। आ॒वृत॒ इत्या॒ऽवृतः॑। स॒हस्र॑म्। ते॒। उ॒पा॒वृत॒ इत्यु॑पऽआ॒वृतः॑। अध॑। पोष॑स्य। पोषे॑ण। पुन॑रिति॒ पुनः॑। नः॒। न॒ष्टम्। आ। कृ॒धि॒। पुन॑रिति॒ पुनः॑। नः॒। र॒यिम्। आ। कृ॒धि॒॥८॥

पदार्थः-(**अग्ने**) पदार्थविद्यावित् (**अङ्गिरः**) विद्यारसयुक्त (**शतम्**) (**ते**) तव (**सन्तु**) (**आवृतः**) आवृत्तिरूपाः क्रियाः (**सहस्रम्**) (**ते**) (**उपावृतः**) ये भोगा उपावर्त्तन्ते (**अध**) अथ **निपातस्य च** [अष्टा०६.३.१३६] इति दीर्घः (**पोषस्य**) पोषकस्य जनस्य (**पोषेण**) पालनेन (**पुनः**) (**नः**) अस्मभ्यम् (**नष्टम्**) अदृष्टं विज्ञानम् (**आ**) समन्तात् (**कृधि**) कुरु (**पुनः**) (**नः**) अस्मभ्यम् (**रयिम्**) प्रशस्तां श्रियम् (**आ**) (**कृधि**) कुरु। [अयं मन्त्रः शत०६.७.३.६ व्याख्यातः]॥८॥

अन्वयः-हे अग्नेऽङ्गिरो विद्वन्! यस्य पुरुषार्थिनस्ते तवाऽग्नेरिव शतमावृतः सहस्रं ते तवोपावृतः सन्तु, अध त्वमेतैः पोषस्य पोषेण नष्टमपि नः पुनराकृधि नो रयिं पुनराकृधि॥८॥

भावार्थः-मनुष्यैर्विद्यासु शतश आवृत्तीः कृत्वा शिल्पविद्यासु सहस्रमुपावृत्तीश्च गुप्तागुप्ता विद्याः प्रकाश्य सर्वेषां श्रीसुखं जननीयम्॥८॥

पदार्थः-हे (**अग्ने**) पदार्थविद्या के जाननेहारे (**अङ्गिरः**) विद्या के रसिक विद्वन् पुरुष! जिस पुरुषार्थी (**ते**) आपकी अग्नि के समान (**शतम्**) सैकड़ों (**आवृतः**) आवृत्तिरूप क्रिया और (**सहस्रम्**) हजारह (**ते**) आपके (**उपावृतः**) आवृत्तिरूप सुखों के भोग (**सन्तु**) होवें, (**अध**) इसके पश्चात् आप इनसे (**पोषस्य**) पोषक मनुष्य की (**पोषेण**) रक्षा से (**नष्टम्**) परोक्ष भी विज्ञान को (**नः**) हमारे लिये (**पुनः**) फिर भी (**आकृधि**) अच्छे प्रकार कीजिये तथा बिगड़ी हुई (**रयिम्**) प्रशंसित शोभा को (**पुनः**) फिर भी (**नः**) हमारे अर्थ (**आकृधि**) अच्छे प्रकार कीजिये॥८॥

भावार्थः-मनुष्यों को योग्य है कि विद्याओं में सैकड़ों आवृत्ति और शिल्प विद्याओं में हजारह प्रकार की प्रवृत्ति और प्रसिद्ध अप्रसिद्ध विद्याओं का प्रकाश करके सब प्राणियों के लिये लक्ष्मी और सुख उत्पन्न करें॥८॥

पुनरूर्जेत्यस्य वत्सप्रीर्ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनरध्यापककृत्यमाह॥

फिर पढ़ानेहारे का कर्त्तव्य अगले मन्त्र में कहा है॥

पुन॑रू॒र्जा निव॑र्त्तस्व॒ पुन॑रग्नऽइ॒षायु॑षा। पुन॑र्नः पा॒ह्यꣳह॑सः॥९॥

पुन॒रिति॒ पुनः॑। ऊ॒र्जा। नि। व॒र्त्त॒स्व॒। पुन॒रिति॒ पुनः॑। अ॒ग्ने॒। इ॒षा। आयु॑षा। पुन॒रिति॒ पुनः॑। नः॒। पा॒हि॒। अꣳह॑सः॥९॥

पदार्थः-(**पुनः**) (**ऊर्जा**) पराक्रमयुक्तानि कर्माणि (**नि**) (**वर्त्तस्व**) (**पुनः**) (**अग्ने**) विद्वन्! (**इषा**) इच्छया (**आयुषा**) अन्नेन (**पुनः**) (**नः**) अस्मान् (**पाहि**) रक्ष (**अंहसः**) पापात्। [अयं मन्त्रः शत०६.७.३.६ व्याख्यातः]॥९॥

अन्वयः-हे अग्ने! त्वं नोऽस्मानंहसः पुनर्निवर्त्तस्व, पुनरस्मान् पाहि, पुनरिषाऽऽयुषोर्जा प्रापय॥९॥

भावार्थः-विद्वांसः सर्वानुपदेश्यान् मनुष्यान् पापात् सततं निवर्त्य शरीरात्मबलयुक्तान् सम्पादयन्तु, स्वयं च पापान्निवृत्ताः परमपुरुषार्थिनः स्युः॥९॥

पदार्थः-हे **(अग्ने)** अग्नि के समान तेजस्वी अध्यापक विद्वान् जन! आप **(नः)** हम लोगों को **(अंहसः)** पापों से **(पुनः)** बार-बार **(निवर्त्तस्व)** बचाइये, **(पुनः)** फिर हम लोगों की **(पाहि)** रक्षा कीजिये, और **(पुनः)** फिर **(इषा)** इच्छा तथा **(आयुषा)** अन्न से **(ऊर्जा)** पराक्रमयुक्त कर्मों को प्राप्त कीजिये॥९॥

भावार्थः-विद्वान् लोगों को चाहिये कि सब उपदेश के योग्य मनुष्यों को पापों से निरन्तर हटा के शरीर और आत्मा के बल से युक्त करें और आप भी पापों से बच के परम पुरुषार्थी होवें॥९॥

सह रय्येत्यस्य वत्सप्रीर्ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी उक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

सह रय्या निवर्त्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया। विश्वप्स्न्या विश्वतस्परि॥१०॥

सह। रय्या। नि। वर्त्तस्व। अग्ने। पिन्वस्व। धारया। विश्वप्स्न्येति विश्वऽप्स्न्या। विश्वतः। परि॥१०॥

पदार्थः-**(सह)** **(रय्या)** धनेन **(नि)** **(वर्त्तस्व)** **(अग्ने)** विद्वन् **(पिन्वस्व)** सेवस्व **(धारया)** धरति सकला विद्या यया सा वाक् तया। **धारेति वाङ्नामसु पठितम्॥** (निघं०१.११) **(विश्वप्स्न्या)** विश्वं सर्वं भोग्यं वस्तु प्सायते भक्ष्यते यया **(विश्वतः)** सर्वतः **(परि)**। [अयं मन्त्रः शत०६.७.३.६ व्याख्यातः]॥१०॥

अन्वयः-हे अग्ने विद्वन्! त्वं दुष्टाद् व्यवहारान्निवर्तस्व, विश्वप्स्न्या धारया रय्या च सह विश्वतः परि पिन्वस्व सर्वदा सुखानि सेवस्व॥१०॥

भावार्थः-न खलु विद्वांसः कदाचिदप्यधर्म्ममाचरेयुः, न चान्यानुपदिशेयुः। एवं सकलशास्त्रविद्यया विराजमानाः सन्तः प्रशंसिताः स्युः॥१०॥

पदार्थः-हे **(अग्ने)** तेजस्वी विद्वन् पुरुष! आप दुष्ट व्यवहारों से **(निवर्त्तस्व)** पृथक् हूजिये **(विश्वप्स्न्या)** सब भोगने योग्य पदार्थों की भुगवाने हारी **(धारया)** सम्पूर्ण विद्याओं के धारण करने का हेतु वाणी तथा **(रय्या)** धन के **(सह)** साथ **(विश्वतः)** सब ओर से **(परि)** सब प्रकार **(पिन्वस्व)** सुखों का सेवन कीजिये॥१०॥

भावार्थः-विद्वान् पुरुषों को चाहिये कि कभी अधर्म्म का आचरण न करें और दूसरों को वैसा उपदेश भी न करें। इस प्रकार सब शास्त्र और विद्याओं से विराजमान हुए प्रशंसा के योग्य होवें॥१०॥

आ त्वेत्यस्य ध्रुव ऋषिः। अग्निर्देवता। आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुना राजप्रजाकर्म्माह॥

फिर राजा और प्रजा के कर्मों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

आ त्वाहार्षमन्तरभूर्ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलिः।

विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद्राष्ट्रमधिभ्रशत्॥११॥

आ। त्वा। अहार्षम्। अन्तः। अभूः। ध्रुवः। तिष्ठ। अविचाचलिरित्यविऽचाचलिः। विशः। त्वा। सर्वाः। वाञ्छन्तु। मा। त्वत्। राष्ट्रम्। अधि। भ्रशत्॥ ११॥

पदार्थः-(**आ**) (**त्वा**) त्वां राजानम् (**अहार्षम्**) हरेयम् (**अन्तः**) सभामध्ये (**अभूः**) भवेः (**ध्रुवः**) न्यायेन राज्यपालने निश्चितः (**तिष्ठ**) स्थिरो भव (**अविचाचलिः**) सर्वथा निश्चलः (**विशः**) प्रजाः (**त्वा**) त्वाम् (**सर्वाः**) अखिलाः (**वाञ्छन्तु**) अभिलषन्तु (**मा**) न (**त्वत्**) (**राष्ट्रम्**) राज्यम् (**अधि**) (**भ्रशत्**) नष्टं स्यात्। [अयं मन्त्रः शत०६.७.३.८ व्याख्यातः]॥ ११॥

अन्वयः-हे शुभगुणलक्षण सभेश राजन्! त्वा राज्यपालनायाहमन्तराहार्षम्। त्वमन्तरभूः, अविचाचलिर्ध्रुव- स्तिष्ठ। सर्वा विशस्त्वा वाञ्छन्तु, तव सकाशाद् राष्ट्रं माऽधिभ्रशत्॥ ११॥

भावार्थः-उत्तमाः प्रजाजनाः सर्वोत्तमं पुरुषं सभाध्यक्षं राजानं कृत्वाऽनूपदिशन्तु। त्वं जितेन्द्रियः सन् सर्वदा धर्मात्मा पुरुषार्थी भवेः। न तवानाचाराद् राष्ट्रं कदाचिन्नष्टं भवेद् यतः सर्वाः प्रजास्त्वदनुकूलाः स्युः॥ ११॥

पदार्थः-हे शुभ गुण और लक्षणों से युक्त सभापति राजन्! (**त्वा**) आपको राज्य की रक्षा के लिये मैं (**अन्तः**) सभा के बीच (**आहार्षम्**) अच्छे प्रकार ग्रहण करूं। आप सभा में (**अभूः**) विराजमान हूजिये (**अविचाचलिः**) सर्वथा निश्चल (**ध्रुवः**) न्याय से राज्यपालन में निश्चित बुद्धि होकर (**तिष्ठ**) स्थिर हूजिये (**सर्वाः**) सम्पूर्ण (**विशः**) प्रजा (**त्वा**) आपकी (**वाञ्छन्तु**) चाहना करें, (**त्वत्**) आपके पालने से (**राष्ट्रम्**) राज्य (**माधिभ्रशत्**) नष्ट-भ्रष्ट न होवे॥ ११॥

भावार्थः-उत्तम प्रजाजनों को चाहिये कि सब से उत्तम पुरुष को सभाध्यक्ष राजा मान के उसको उपदेश करें कि आप जितेन्द्रिय हुए सब काल में धार्मिक पुरुषार्थी हूजिये। आपके बुरे आचरणों से राज्य कभी नष्ट न होवे, जिससे सब प्रजापुरुष आप के अनुकूल वर्त्तें॥ ११॥

उदुत्तममित्यस्य शुनःशेप ऋषिः। वरुणो देवता। विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमꣳ श्रथाय।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसोऽअदितये स्याम॥ १२॥

उत्। उत्तममित्युत्ऽतमम्। वरुण। पाशम्। अस्मत्। अव। अधमम्। वि। मध्यमम्। श्रथाय। श्रथयेति श्रथय। अथ। वयम्। आदित्य। व्रते। तव। अनागसः। अदितये। स्याम॥ १२॥

पदार्थः-(**उत्**) (**उत्तमम्**) (**वरुण**) शत्रूणां बन्धक (**पाशम्**) बन्धनम् (**अस्मत्**) अस्माकं सकाशात् (**अव**) (**अधमम्**) निकृष्टम् (**वि**) (**मध्यमम्**) मध्यस्थम् (**श्रथाय**) विमोचय (**अथ**) पश्चात्। अत्र **निपातस्य च** [अष्टा०६.३.१३६] इति दीर्घः (**वयम्**) प्रजास्थाः (**आदित्य**) अविनाशिस्वरूप सूर्य्य इव सत्यन्यायप्रकाशक (**व्रते**) सत्यन्यायपालननियमे (**तव**) (**अनागसः**) अनपराधिनः (**अदितये**) पृथिवीराज्याय। **अदितिरिति पृथिवीनामसु पठितम्॥** (निघं०१.१) (**स्याम**) भवेम। [अयं मन्त्रः शत०६.७.३.८ व्याख्यातः]॥ १२॥

अन्वयः-हे वरुणादित्य! त्वमस्मदधमं मध्यममुत्तमं पाशमुदवविश्रथायाथ वयमदितये तव व्रतेऽनागसः स्याम॥१२॥

भावार्थः-यथेश्वरस्य गुणकर्मस्वभावानुकूला धार्मिका जनाः सत्याचरणे वर्त्तमानाः सन्तः पापबन्धान्मुक्त्वा सुखिनो भवन्ति तथैवोत्तमं राजानं प्राप्य प्रजाजना आनन्दिता जायन्ते॥१२॥

पदार्थः-हे **(वरुण)** शत्रुओं को बांधने **(आदित्य)** स्वरूप से अविनाशी सूर्य्य के समान सत्य न्याय के प्रकाशक सभापति विद्वान्! आप **(अस्मत्)** हमसे **(अधमम्)** निकृष्ट **(मध्यमम्)** मध्यस्थ और **(उत्तमम्)** उत्तम **(पाशम्)** बन्धन को **(उदवविश्रथाय)** विविध प्रकार से छुड़ाइये। **(अथ)** इसके पश्चात् **(वयम्)** हम प्रजा के पुरुष **(अदितये)** पृथिवी के अखण्डित राज्य के लिये **(तव)** आपके **(व्रते)** सत्य-न्याय के पालनरूप नियम में **(अनागसः)** अपराधरहित **(स्याम)** होवें॥१२॥

भावार्थः-जैसे ईश्वर के गुण, कर्म और स्वभाव के अनुकूल सत्य आचरणों में वर्त्तमान हुए धर्मात्मा मनुष्य पाप के बन्धनों से छूट के सुखी होते हैं, वैसे ही उत्तम राजा को प्राप्त होके प्रजा के पुरुष आनन्दित होते हैं॥१२॥

अग्रे बृहन्नित्यस्य त्रित ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अग्रे॑ बृ॒हन्नु॒षसा॑मू॒र्ध्वोऽअ॑स्थान्निर्जग॒न्वान् तम॑सो॒ ज्योति॒षागा॑त्।
अ॒ग्निर्भा॒नुना॒ रुश॑ता॒ स्वङ्ग॒ऽआ जा॒तो विश्वा॒ सद्मा॒न्यप्राः॥१३॥

अग्रे॑। बृ॒हन्। उ॒षसा॑म्। ऊ॒र्ध्वः। अ॒स्था॒त्। नि॒र्ज॒ग॒न्वानिति॑ निःऽजग॒न्वान्। तम॑सः। ज्योति॑षा। आ। अ॒गा॒त्। अ॒ग्निः। भा॒नुना॑। रुश॑ता। स्वङ्ग॒ इति॑ सु॒ऽअङ्गः॑। आ। जा॒तः। विश्वा॑। सद्मा॑नि। अ॒प्राः॥१३॥

पदार्थः-**(अग्रे)** प्रथमतः **(बृहन्)** महत् **(उषसाम्)** प्रभातानाम् **(ऊर्ध्वः)** उपर्य्याकाशस्थः **(अस्थात्)** तिष्ठति **(निर्जगन्वान्)** निर्गतः सन् **(तमसः)** अन्धकारात् **(ज्योतिषा)** प्रकाशेन **(आ)** **(अगात्)** प्राप्नोति **(अग्निः)** पावकः **(भानुना)** दीप्त्या **(रुशता)** सुरूपेण **(स्वङ्गः)** शोभनान्यङ्गानि यस्य सः **(आ)** **(जातः)** निष्पन्नः **(विश्वा)** **(सद्मानि)** साकाराणि स्थानानि **(अप्राः)** व्याप्नोति॥१३॥

अन्वयः-हे राजन्! यस्त्वमग्रे यथा सूर्य्यः स्वङ्ग आजातो बृहन्नुषसामूर्ध्वोऽस्थाद् रुशता भानुना ज्योतिषा तमसो निर्जगन्वान् सन्नागाद् विश्वा सद्मान्यप्रास्तद्वत् प्रजायां भव॥१३॥

भावार्थः-यः सूर्य्यवत् सद्गुणैर्महान् सत्पुरुषाणां शिक्षयोत्कृष्टो दुर्व्यसनेभ्यः पृथग्वर्त्तमानः सत्यन्यायप्रकाशितः सुन्दराङ्गः प्रसिद्धः सर्वैः सत्कर्त्तुं योग्यो विदितवेदितव्यो दूतैः सर्वजनहृदयाशयविच्छुभन्यायेन प्रजा व्याप्नोति, स एव राजा भवितुं योग्यः॥१३॥

पदार्थः-हे राजन्! जो आप **(अग्रे)** पहिले से जैसे सूर्य्य **(स्वङ्गः)** सुन्दर अवयवों से युक्त **(आजातः)** प्रकट हुआ **(बृहन्)** बड़ा **(उषसाम्)** प्रभातों के **(ऊर्ध्वः)** ऊपर आकाश में **(अस्थात्)** स्थिर होता और **(रुशता)** सुन्दर **(भानुना)** दीप्ति तथा **(ज्योतिषा)** प्रकाश से **(तमसः)** अन्धकार को **(निर्जगन्वान्)** निरन्तर पृथक् करता हुआ

(आगात्) सब लोक-लोकान्तरों को प्राप्त होता है, **(विश्वा)** सब **(सद्मानि)** स्थूल स्थानों को **(अप्राः)** प्राप्त होता है, उसके समान प्रजा के बीच आप हूजिये॥१३॥

भावार्थः-जो सूर्य्य के समान श्रेष्ठ गुणों से प्रकाशित, सत्पुरुषों की शिक्षा से उत्कृष्ट, बुरे व्यसनों से अलग, सत्य-न्याय से प्रकाशित, सुन्दर अवयव वाला, सर्वत्र प्रसिद्ध, सबके सत्कार और जानने योग्य व्यवहारों का ज्ञाता, और दूतों के द्वारा सब मनुष्यों के आशय को जानने वाला, शुद्ध, न्याय से प्रजाओं में प्रवेश करता है, वही पुरुष राजा होने के योग्य होता है॥१३॥

हंस इत्यस्य त्रित ऋषिः। जीवेश्वरौ देवते। भुरिग् जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

अथात्मलक्षणान्याह॥

अब अगले मन्त्र में परमात्मा और जीव के लक्षण कहे हैं॥

हुंसः शुचिषद् वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्।

नृषद् वरसदृतसद् व्योमसदब्जा गोजाऽऋतजाऽअद्रिजाऽऋतं बृहत्॥ १४॥

हुंसः। शुचिषत्। शुचिसदिति शुचिऽसत्। वसुः। अन्तरिक्षसदित्यन्तरिक्षऽसत्। होता। वेदिषत्। वेदिसदिति वेदिऽसत्। अतिथिः। दुरोणसदिति दुरोणऽसत्। नृषत्। नृसदिति नृऽसत्। वरसदिति वरऽसत्। ऋतसदित्यृतऽसत्। व्योमसदिति व्योमऽसत्। अब्जा इत्यप्ऽजाः। गोजा इति गोऽजाः। ऋतजा इत्यृतऽजाः। अद्रिजा इत्यद्रिऽजाः। ऋतम्। बृहत्॥ १४॥

पदार्थः-**(हंसः)** दुष्टकर्महन्ता **(शुचिषत्)** शुचिषु पवित्रेषु व्यवहारेषु वर्त्तमानः **(वसुः)** सज्जनेषु निवस्ता तेषां निवासयिता वा **(अन्तरिक्षसत्)** यो धर्मावकाशे सीदति **(होता)** सत्यस्य ग्रहीता ग्राहयिता वा **(वेदिषत्)** यो वेद्यां जगत्यां यज्ञशालायां वा सीदति **(अतिथिः)** अविद्यमाना तिथिर्यस्य स राज्यरक्षणाय यथासमयं भ्रमणकर्त्ता **(दुरोणसत्)** यो दुरोणे सर्वर्त्तुसुखप्रापके गृहे सीदति सः **(नृषत्)** यो नायकेषु सीदति सः **(वरसत्)** य उत्तमेषु विद्वत्सु सीदति **(ऋतसत्)** य ऋते सत्ये संस्थितः **(व्योमसत्)** यो व्योमवद् व्यापके परमेश्वरे सीदति **(अब्जाः)** योऽपः प्राणान् जनयति **(गोजाः)** यो गाव इन्द्रियाणि पशून् वा जनयति **(ऋतजाः)** य ऋतं सत्यं ज्ञानं जनयति सः **(अद्रिजाः)** योऽद्रीन् मेघान् जनयति **(ऋतम्)** सत्यम् **(बृहत्)** महत्। [अयं मन्त्रः शत०६.७.३.१० व्याख्यातः]॥१४॥

अन्वयः-हे प्रजाजनाः! यूयं यो हंसः शुचिषद् वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसन्नृषद् वरसदृतसद् व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहद् ब्रह्म जीवश्चास्ति, यस्तौ जानीयात् तं सभाधीशं राजानं कृत्वा सततमानन्दत॥१४॥

भावार्थः-य ईश्वरवत्प्रजाः पालयितुं सुखयितुं शक्नुयात् स एव राजा भवितुं योग्यः स्यान्न हीदृशेन राज्ञा विना प्रजाः सुखिन्यो भवितुमर्हन्ति॥१४॥

पदार्थः-हे प्रजा के पुरुषो! तुम लोग जो **(हंसः)** दुष्ट कर्मों का नाशक **(शुचिषत्)** पवित्र व्यवहारों में वर्त्तमान **(वसुः)** सज्जनों में बसने वा उनको बसाने वाला **(अन्तरिक्षसत्)** धर्म के अवकाश में स्थित **(होता)** सत्य

का ग्रहण करने और कराने वाला **(वेदिषत्)** सब पृथिवी वा यज्ञ के स्थान में स्थित **(अतिथिः)** पूजनीय वा राज्य की रक्षा के लिये यथोचित समय में भ्रमण करने वाला **(दुरोणसत्)** ऋतुओं में सुखदायक आकाश में व्याप्त वा घर में रहने वाला **(नृषत्)** सेना आदि के नायकों का अधिष्ठाता **(वरसत्)** उत्तम विद्वानों की आज्ञा में स्थित **(ऋतसत्)** सत्याचरणों में आरुढ़ **(व्योमसत्)** आकाश के समान सर्वव्यापक ईश्वर में स्थित **(अब्जाः)** प्राणों को प्रकट करनेहारा **(गोजाः)** इन्द्रिय वा पशुओं को प्रसिद्ध करनेहारा **(ऋतजाः)** सत्य विज्ञान को उत्पन्न करने हारा **(अद्रिजाः)** मेघों को वर्षाने वाला विद्वान् **(ऋतम्)** सत्यस्वरूप **(बृहत्)** अनन्त ब्रह्म और जीव को जाने, उस पुरुष को सभा का स्वामी राजा बना के निरन्तर आनन्द में रहो॥१४॥

भावार्थः-जो पुरुष ईश्वर के समान प्रजाओं को पालने और सुख देने में समर्थ हो, वही राजा होने के योग्य होता है, और ऐसे राजा के बिना प्रजाओं को सुख भी नहीं हो सकता॥१४॥

सीद त्वमित्यस्य त्रित ऋषिः। अग्निर्देवता। विराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनर्मातृकृत्यमाह॥

माता का कर्म्म अगले मन्त्र में कहा है॥

सीद॒ त्वं मा॒तुर॒स्याऽउ॒पस्थे॒ विश्वा॑न्यग्ने व॒युना॑नि वि॒द्वान्।

मैनां॒ तप॑सा॒ मार्चिषा॒ऽभिशो॑चीर॒न्तर॑स्याᳬं शु॒क्रज्यो॑ति॒र्विभा॑हि॥ १५॥

सीद॑। त्वम्। मा॒तुः। अ॒स्याः। उ॒पस्थ॒ इत्यु॒पऽस्थे॑। विश्वा॑नि। अ॒ग्ने॒। व॒युना॑नि। वि॒द्वान्। मा। ए॒ना॒म्। तप॑सा। मा। अ॒र्चिषा॑। अ॒भि। शो॒ची॒ः। अ॒न्तः। अ॒स्या॒म्। शु॒क्रज्यो॑ति॒रिति॑ शु॒क्रऽज्यो॑तिः। वि। भा॒हि॒॥ १५॥

पदार्थः-**(सीद)** तिष्ठ **(त्वम्)** **(मातुः)** जनन्याः **(अस्याः)** प्रत्यक्षाया भूमेरिव **(उपस्थे)** समीपे **(विश्वानि)** सर्वाणि **(अग्ने)** विद्यामभीप्सो **(वयुनानि)** प्रज्ञानानि **(विद्वान्)** यो वेत्ति सः **(मा)** **(एनाम्)** **(तपसा)** सन्तापेन **(मा)** **(अर्चिषा)** तेजसा **(अभि)** **(शोचीः)** शोकयुक्तां कुर्याः **(अन्तः)** आभ्यन्तरे **(अस्याम्)** मातरि **(शुक्रज्योतिः)** शुक्रं शुद्धाचरणं ज्योतिः प्रकाशो यस्य सः **(वि)** **(भाहि)** प्रकाशय। [अयं मन्त्रः शत०६.७.३.१५ व्याख्यातः]॥१५॥

अन्वयः-हे अग्ने! त्वमस्यां मातरि सत्यां विभाहि प्रकाशितो भवास्या भूमेरिव शुक्रज्योतिर्विद्वान् मातुरुपस्थे सीद। अस्याः सकाशाद् विश्वानि वयुनानि प्राप्नुहि। एनामन्तर्मा तपसार्चिषा माभिशोचीः किन्त्वेतच्छिक्षां प्राप्य विभाहि॥१५॥

भावार्थः-यो विदुष्या मात्रा विद्यासुशिक्षां प्रापितो मातृसेवको जननीवत् प्रजाः पालयेत्, स राज्यैश्वर्येण प्रकाशेत॥१५॥

पदार्थः-हे **(अग्ने)** विद्या को चाहने वाले पुरुष! **(त्वम्)** आप **(अस्याम्)** इस माता के विद्यमान होने पर **(विभाहि)** प्रकाशित हो **(शुक्रज्योतिः)** शुद्ध आचरणों के प्रकाश से युक्त **(विद्वान्)** विद्यावान् आप **(अस्याः)** इस प्रत्यक्ष पृथिवी के समान आधार रूप **(मातुः)** इस माता की **(उपस्थे)** गोद में **(सीद)** स्थित हूजिये। इस माता से **(विश्वानि)** सब प्रकार की **(वयुनानि)** बुद्धियों को प्राप्त हूजिये। **(एनाम्)** इस माता को **(अन्तः)** अन्तःकरण में **(मा)** मत **(तपसा)** सन्ताप से तथा **(अर्चिषा)** तेज से **(मा)** मत **(अभिशोचीः)** शोकयुक्त कीजिये, किन्तु इस माता से शिक्षा को प्राप्त होके प्रकाशित हूजिये॥१५॥

भावार्थः-जो विद्वान् माता के द्वारा विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त किया हुआ, माता का सेवक, जैसे माता पुत्रों को पालती है, वैसे प्रजाओं का पालन करे, वह पुरुष राज्य के ऐश्वर्य्य से प्रकाशित होवे॥१५॥

अन्तरग्न इत्यस्य त्रित ऋषिः। अग्निर्देवता। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुना राजकर्म्माह॥

फिर राजा क्या करे, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अन्तरग्ने रुचा त्वमुखायाः सदने स्वे।

तस्यास्त्वꣳ हरसा तपञ्जातवेदः शिवो भव॥१६॥

अन्तः। अग्ने। रुचा। त्वम्। उखायाः। सदने। स्वे। तस्याः। त्वम्। हरसा। तपन्। जातवेद इति जातऽवेदः। शिवः। भव॥१६॥

पदार्थः-(**अन्तः**) मध्ये (**अग्ने**) विद्वन् (**रुचा**) प्रीत्या (**त्वम्**) (**उखायाः**) प्राप्तायाः प्रजायाः (**सदने**) अध्ययनस्थाने (**स्वे**) स्वकीये (**तस्याः**) (**त्वम्**) (**हरसा**) ज्वलनेन। **हर इति ज्वलतो नामसु पठितम्॥** (निघं०१.१७) (**तपन्**) शत्रून् सन्तापयन् (**जातवेदः**) जाता विदिता वेदा यस्य तत्सम्बुद्धौ (**शिवः**) मङ्गलकारी (**भव**)। [अयं मन्त्रः शत०६.७.३.१५ व्याख्यातः]॥१६॥

अन्वयः-हे जातवेदोऽग्ने! यस्त्वं यस्या उखाया अधोऽग्निरिव स्वे सदने तपन् सन्नन्ता रुचा वर्तेथास्तस्या हरसा सन्तपँस्त्वं शिवो भव॥१६॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा सभाध्यक्षो राजा न्यायासने स्थित्वा परमरुच्या राज्यपालनकृत्यानि कुर्यात्, तथा प्रजा राजानं सुखयन्ती सती दुष्टान् संतापयेत्॥१६॥

पदार्थः-हे (**जातवेदः**) वेदों के ज्ञाता (**अग्ने**) तेजस्वी विद्वन्! (**त्वम्**) आप जिस (**उखायाः**) प्राप्त हुई प्रजा के नीचे से अग्नि के समान (**स्वे**) अपने (**सदने**) पढ़ने के स्थान में (**तपन्**) शत्रुओं को संताप कराते हुए (**अन्तः**) मध्य में (**रुचा**) प्रीति से वर्त्तो, (**तस्याः**) उस प्रजा के (**हरसा**) प्रज्वलित तेज से (**त्वम्**) आप शत्रुओं का निवारण करते हुए (**शिवः**) मङ्गलकारी (**भव**) हूजिये॥१६॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सभाध्यक्ष राजा को चाहिये कि न्याय करने की गद्दी पर बैठ के अत्यन्त प्रीति के साथ राज्य के पालन रूप कार्यों को करे, वैसे प्रजाओं को चाहिये कि राजा को सुख देती हुई दुष्टों को ताड़ना करें॥१६॥

शिवो भूत्वेत्यस्य त्रित ऋषिः। अग्निर्देवता। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

शिवो भूत्वा मह्यमग्नेऽअथो सीद शिवस्त्वम्।

शिवाः कृत्वा दिशः सर्वाः स्वं योनिमिहासदः॥१७॥

शिवः। भूत्वा। मह्यम्। अग्ने। अथोऽइत्यथो। सीद। शिवः। त्वम्। शिवाः। कृत्वा। दिशः। सर्वाः। स्वम्। योनिम्। इह। आ। असदः॥ १७॥

पदार्थः-(**शिवः**) स्वयं मङ्गलाचारी (**भूत्वा**) (**मह्यम्**) प्रजाजनाय (**अग्ने**) शत्रुविदारक (**अथो**) (**सीद**) (**शिवः**) मङ्गलकारी (**त्वम्**) (**शिवाः**) मङ्गलचारिणीः (**कृत्वा**) (**दिशः**) या दिश्यन्त उपदिश्यन्ते दिग्भिः सहचरितास्ताः प्रजाः (**सर्वाः**) (**स्वम्**) (**योनिम्**) राजधर्मासनम् (**इह**) अस्मिन् जगति (**आ**) (**असदः**) आस्व। [अयं मन्त्रः शत०६.७.३.१५ व्याख्यातः]॥ १७॥

अन्वयः-हे अग्ने! त्वं मह्यं शिवः भूत्वेह शिवः सन् सर्वा दिशः शिवाः कृत्वा स्वं योनिमासदोऽथो राजधर्मे सीद॥ १७॥

भावार्थः-राजा स्वयं धार्मिको भूत्वा प्रजाजनानपि धार्मिकान् सम्पाद्य न्यायासनमधिष्ठाय सततं न्यायं कुर्यात्॥ १७॥

पदार्थः-हे (**अग्ने**) अग्नि के समान शत्रुओं को जलाने वाले विद्वन् पुरुष! (**त्वम्**) आप (**मह्यम्**) हम प्रजाजनों के लिये (**शिवः**) मङ्गलाचरण करनेहारे (**भूत्वा**) होकर (**इह**) इस संसार में (**शिवः**) मङ्गलकारी हुए (**सर्वाः**) सब (**दिशः**) दिशाओं में रहने हारी प्रजाओं को (**शिवाः**) मङ्गलाचरण से युक्त (**कृत्वा**) करके (**स्वम्**) अपने (**योनिम्**) राजधर्म के आसन पर (**आसदः**) बैठिये और (**अथो**) इसके पश्चात् राजधर्म में (**सीद**) स्थिर हूजिये॥ १७॥

भावार्थः-राजा को चाहिये कि आप धर्मात्मा होके प्रजा के मनुष्यों को धार्मिक कर और न्याय की गद्दी पर बैठ के निरन्तर न्याय किया करे॥ १७॥

दिवस्परीत्यस्य वत्सप्रीर्ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुना राजविषयमाह॥

फिर राजधर्म का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

दिवस्परि प्रथमं जज्ञेऽअग्निरस्मद् द्वितीयं परि जातवेदाः।

तृतीयमप्सु नृमणाऽअजस्रमिन्धानऽएनं जरते स्वाधीः॥ १८॥

दिवः। परि। प्रथमम्। जज्ञे। अग्निः। अस्मत्। द्वितीयम्। परि। जातवेदा इति जातऽवेदाः। तृतीयम्। अप्स्वित्यप्ऽसु। नृमणाः। नृमना इति नृऽमनाः। अजस्रम्। इन्धानः। एनम्। जरते। स्वाधीरिति सुऽआधीः॥ १८॥

पदार्थः-(**दिवः**) विद्युतः (**परि**) उपरि (**प्रथमम्**) (**जज्ञे**) जायते (**अग्निः**) (**अस्मत्**) अस्माकं सकाशात् (**द्वितीयम्**) (**परि**) (**जातवेदाः**) जातप्रज्ञानः (**तृतीयम्**) (**अप्सु**) प्राणेषु जलेषु वा (**नृमणाः**) नृषु नायकेषु मनो यस्य सः (**अजस्रम्**) निरन्तरम् (**इन्धानः**) प्रदीपयन् (**एनम्**) (**जरते**) स्तौति (**स्वाधीः**) शोभनाध्यानयुक्ताः प्रजाः॥ १८॥

अन्वयः-हे सभेश! योऽग्निरिव त्वं दिवस्परि जज्ञे, तमेनं प्रथमं यो जातवेदास्त्वमस्मज्जज्ञे, तमेनं द्वितीयं यो नृमणास्त्वमप्सु जज्ञे, तमेनं तृतीयमजस्रमिन्धानो विद्वान् परिजरते, स त्वं स्वाधीः प्रजाः स्तुहि॥ १८॥

भावार्थः-मनुष्यैरादौ ब्रह्मचर्य्येण विद्यासुशिक्षा द्वितीयेन गृहाश्रमेणैश्वर्य्यं तृतीयेन वानप्रस्थेन तपश्चरणं

चतुर्थेन संन्यासाश्रमेण नित्यं वेदविद्या धर्मे प्रकाशनं च कर्त्तव्यम्॥१८॥

पदार्थः-हे सभापति राजन्! जो **(अग्निः)** अग्नि के समान आप **(अस्मत्)** हम लोगों से **(दिवः)** बिजुली के **(परि)** ऊपर **(जज्ञे)** प्रकट होते हैं, उन **(एनम्)** आपको **(प्रथमम्)** पहिले जो **(जातवेदाः)** बुद्धिमानों में प्रसिद्ध उत्पन्न हुए उस आपको **(द्वितीयम्)** दूसरे जो **(नृमणाः)** मनुष्यों में विचारशील आप **(तृतीयम्)** तीसरे **(अप्सु)** प्राण वा जल क्रियाओं में विदित हुए उस आपको **(अजस्रम्)** निरन्तर **(इन्धानः)** प्रकाशित करता हुआ विद्वान् **(परिजरते)** सब प्रकार स्तुति करता है, सो आप **(स्वाधीः)** सुन्दर ध्यान से युक्त प्रजाओं को प्रकाशित कीजिये॥१८॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि प्रथम ब्रह्मचर्य्याश्रम के सहित विद्या तथा शिक्षा का ग्रहण, दूसरे गृहाश्रम से धन का सञ्चय, तीसरे वानप्रस्थ आश्रम से तप का आचरण और चौथे संन्यास लेकर वेदविद्या और धर्म का नित्य प्रकाश करें॥१८॥

विद्मा त इत्यस्य वत्सप्रीर्ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

वि॒द्मा ते॑ऽअग्ने त्रे॒धा त्र॒याणि॑ वि॒द्मा ते॒ धाम॒ विभृ॑ता पु॒रु॒त्रा।
वि॒द्मा ते॒ नाम॑ प॒र॒मं गुहा॒ यद्वि॒द्मा तमु॒त्सं॒ यत॑ऽआज॒गन्थ॑॥१९॥

वि॒द्म। ते॒। अ॒ग्ने॒। त्रे॒धा। त्र॒याणि॑। वि॒द्म। ते॒। धाम॑। विभृ॒तेति॒ विभृ॑ऽता। पु॒रु॒त्रेति॑ पु॒रु॒ऽत्रा। वि॒द्म। ते॒। नाम॑। प॒र॒मम्। गुहा॑। यत्। वि॒द्म। तम्। उ॒त्सम्। यत॑ः। आ॒ज॒गन्थेत्या॑ऽज॒गन्थ॑॥१९॥

पदार्थः-**(विद्म)** जानीयाम, अत्र चतसृषु क्रियासु संहितायां **द्व्यचोऽतस्तिङः** [अष्टा०६.३.१३५] इति दीर्घः। **विदो लटो वा** [अष्टा०३.४.८३] इति णलादय आदेशाः। **(ते)** तव **(अग्ने)** विद्वन्! **(त्रेधा)** त्रिभिः प्रकारैः **(त्रयाणि)** त्रीणि **(विद्म)** **(ते)** तव **(धाम)** धामानि **(विभृता)** विशेषेण धर्तुं योग्यानि **(पुरुत्रा)** पुरूणि बहूनि **(विद्म)** **(ते)** **(नाम)** **(परमम्)** **(गुहा)** गुहायां स्थितं गुप्तम् **(यत्)** **(विद्म)** **(तम्)** **(उत्सम्)** कूप इवार्द्रीकरम्। **उत्स इति कूपनामसु पठितम्॥** (निघं०३.२३) **(यतः)** यस्मात् **(आजगन्थ)** आगच्छेः। [अयं मन्त्रः शत०६.७.४.४ व्याख्यातः]॥१९॥

अन्वयः-हे अग्ने! ते तव यानि त्रेधा त्रयाणि कर्माणि सन्ति, तानि वयं विद्म। हे स्थानेश! ते यानि विभृता पुरुत्रा धाम धामानि सन्ति, तानि वयं विद्म। हे विद्वन्! ते तव यद् गुहा परमं नामास्ति, तद्वयं विद्म। यतस्त्वमाजगन्थ, तं त्वामुत्समिव विद्म विजानीमः॥१९॥

भावार्थः-प्रजास्थैर्जनै राज्ञा च राजनीतिकर्माणि, स्थानानि, सर्वेषां नामानि च विज्ञेयानि। यथा कृषीवलाः कूपाज्जलमुत्कृष्य क्षेत्रादीनि तर्पयन्ति, तथैव प्रजास्थैर्धनादिभी राजा तर्पणीयो राज्ञा प्रजाश्च तर्प्पणीयाः॥१९॥

पदार्थः-हे **(अग्ने)** विद्वन् पुरुष! **(ते)** आपके जो **(त्रेधा)** तीन प्रकार से **(त्रयाणि)** तीन कर्म हैं, उनको हम लोग **(विद्म)** जानें। हे स्थानों के स्वामी! **(ते)** आपके जो **(विभृता)** विशेष करके धारण करने के योग्य **(पुरुत्रा)** बहुत **(धाम)** नाम, जन्म और स्थान रूप हैं, उनको हम लोग **(विद्म)** जानें। हे विद्वन् पुरुष! **(ते)** आपका **(यत्)** जो **(गुहा)** बुद्धि में स्थित गुप्त **(परमम्)** श्रेष्ठ **(नाम)** नाम है, उसको हम लोग **(विद्म)** जानें **(यतः)** जिस कारण

आप **(आजगन्थ)** अच्छे प्रकार प्राप्त होवें **(तम्)** उस **(उत्सम्)** कूप के तुल्य तर करनेहारे आपको **(विद्म)** हम लोग जानें॥१९॥

भावार्थः-प्रजा के पुरुष और राजा को योग्य है कि राजनीति के कामों, सब स्थानों और सब पदार्थों के नामों को जानें। जैसे कृषक कुएं से जल निकाल खेत आदि को तृप्त करते हैं, वैसे ही धनादि पदार्थों से प्रजा राजा को और राजा प्रजाओं को तृप्त करे॥१९॥

समुद्र इत्यस्य वत्सप्रीर्ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुना राजप्रजासम्बन्धमाह॥

फिर भी राजा और प्रजा के सम्बन्ध का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

समुद्रे त्वा नृमणाऽअप्स्वन्तर्नृचक्षाऽईधे दिवो अग्नऽऊधन्।

तृतीये त्वा रजसि तस्थिवाꣳसमपामुपस्थे महिषाऽअवर्धन्॥२०॥

समुद्रे। त्वा। नृमणाः। नृमना इति नृऽमनाः। अप्स्वित्यप्ऽसु। अन्तः। नृचक्षा इति नृचऽक्षाः। ईधे। दिवः। अग्ने। ऊधन्। तृतीये। त्वा। रजसि। तस्थिवाꣳसमिति तस्थिऽवाꣳसम्। अपाम्। उपस्थ इत्युपऽस्थे। महिषाः। अवर्धन्॥२०॥

पदार्थः-**(समुद्रे)** अन्तरिक्षे **(त्वा)** त्वाम् **(नृमणाः)** नायकेषु मनो यस्य सः **(अप्सु)** अन्नेषु जलेषु वा **(अन्तः)** मध्ये **(नृचक्षाः)** नृषु मनुष्येषु चक्षो दर्शनं यस्य सः **(ईधे)** प्रदीपये **(दिवः)** सूर्यप्रकाशस्य **(अग्ने)** विद्वान् **(ऊधन्)** ऊधनि उषसि। **ऊध इत्युषसो नामसु पठितम्॥** (निघं०१.८) **(तृतीये)** त्रयाणां पूरके **(त्वा)** त्वाम् **(रजसि)** लोके **(तस्थिवांसम्)** तिष्ठन्तम् **(अपाम्)** जलानाम् **(उपस्थे)** समीपे **(महिषाः)** महान्तो विद्वांसः। **महिष इति महन्नामसु पठितम्॥** (निघं०३.३) **(अवर्धन्)** वर्धेरन्। [अयं मन्त्रः शत०६.७.४.५ व्याख्यातः]॥२०॥

अन्वयः-हे अग्नेः! नृमणा अहं यं त्वा समुद्रेऽग्निमिवेधे नृचक्षा अहमप्स्वन्तरीधे दिव ऊधन्नीधे, तृतीये रजसि तस्थिवांसं सूर्यमिव यं त्वा त्वामपामुपस्थे महिषा अवर्धन्, स त्वमस्मान् सततं वर्धय॥२०॥

भावार्थः-प्रजासु वर्त्तमानाः सर्वे प्रधानपुरुषा राजवर्गं नित्यं वर्द्धयेयुः, राजपुरुषाः प्रजापुरुषांश्च॥२०॥

पदार्थः-हे **(अग्ने)** विद्वन् पुरुष! **(नृमणाः)** नायक पुरुषों को विचारने वाला मैं जिस **(त्वा)** आपको **(समुद्रे)** आकाश में अग्नि के समान **(ईधे)** प्रदीप्त करता हूं **(नृचक्षाः)** बहुत मनुष्यों का देखने वाला मैं **(अप्सु)** अन्न वा जलों के **(अन्तः)** बीच प्रकाशित करता हूं **(दिवः)** सूर्य के प्रकाश के **(ऊधन्)** प्रातःकाल में प्रकाशित करता हूं **(तृतीये)** तीसरे **(रजसि)** लोक में **(तस्थिवांसम्)** स्थित हुए सूर्य के तुल्य जिस **(त्वा)** आप को **(अपाम्)** जलों के **(उपस्थे)** समीप **(महिषाः)** महात्मा विद्वान् लोग **(अवर्धन्)** उन्नति को प्राप्त करें, सो आप हम लोगों की निरन्तर उन्नति कीजिये॥२०॥

भावार्थः-प्रजा के बीच वर्त्तमान सब श्रेष्ठ पुरुष राजपुरुषों को और राजपुरुष प्रजापुरुषों को नित्य बढ़ाते रहें॥२०॥

अक्रन्ददित्यस्य वत्सप्रीर्ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ मनुष्याः कीदृशा भवेयुरित्युपदिश्यते॥

अब मनुष्यों को कैसा होना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अक्र॑न्दद॒ग्नि स्त॒नय॑न्निव॒ द्यौः क्षामा॒ रेरि॑हद् वी॒रुधः॑ सम॒ञ्जन्।

स॒द्यो ज॑ज्ञा॒नो वि हीमि॒द्धोऽअख्य॒दा रोद॑सी भा॒नुना॑ भात्य॒न्तः॥ २१॥

अक्र॑न्दत्। अ॒ग्निः। स्त॒नय॑न्नि॒वेति॑ स्त॒नय॑न्ऽइव। द्यौः। क्षामा॑। रेरि॑हत्। वी॒रुधः॑। स॒म॒ञ्जन्निति॑ सम्ऽअ॒ञ्जन्। स॒द्यः। ज॒ज्ञानः। वि। हि। ईम्। इ॒द्धः। अख्य॑त्। आ। रोद॑सी॒ इति॒ रोद॑सी। भा॒नुना॑। भा॒ति। अ॒न्तरित्य॒न्तः॥ २१॥

पदार्थः-(**अक्रन्दत्**) गमयति (**अग्निः**) विद्युत् (**स्तनयन्निव**) यथा शब्दयन् (**द्यौः**) सूर्यः (**क्षामा**) पृथिवीम्। अत्र **अन्येषामपि दृश्यते** [अष्टा०६.३.१३७] इत्युपधादीर्घः, **सुपाम्०** [अष्टा०७.१.३९] इति विभक्तिलोपः (**रेरिहत्**) ताडयति (**वीरुधः**) ओषधीः। **वीरुध ओषधयो भवन्ति विरोहणात्॥** (निरु०६.३) (**समञ्जन्**) प्रकटयन् (**सद्यः**) शीघ्रम् (**जज्ञानः**) जायमानः (**वि**) (**हि**) प्रसिद्धौ (**ईम्**) सर्वतः (**इद्धः**) प्रदीप्यमानः (**अख्यत्**) ख्याति (**आ**) (**रोदसी**) प्रकाशभूमी (**भानुना**) किरणसमूहेन (**भाति**) राजति (**अन्तः**) मध्ये॥२१॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यूयं यथा द्यौः सूर्योऽग्निस्तनयन्निव वीरुधः समञ्जन् सन् सद्यो ह्यक्रन्दत्। क्षामा रेरिहदयं जज्ञान इद्धः सन् भानुना रोदसी ईं व्यख्यत्। ब्रह्माण्डस्यान्तरा भातीति तथा भवत॥२१॥

भावार्थः-ईश्वरेण यदर्थः सूर्य उत्पादितः, स विद्युदिव सर्वान् लोकानाकृष्य, संप्रकाश्यौषध्यादिवृद्धिहेतुः सन् सर्वभूगोलानां मध्ये यथा विराजते, तथा राजादिभिर्भवितव्यम्॥२१॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे (**द्यौः**) सूर्यलोक (**अग्निः**) विद्युत् अग्नि (**स्तनयन्निव**) शब्द करते हुए के समान (**वीरुधः**) ओषधियों को (**समञ्जन्**) प्रकट करता हुआ (**सद्यः**) शीघ्र (**हि**) ही (**अक्रन्दत्**) पदार्थों को इधर-उधर चलाता (**क्षामा**) पृथिवी को (**रेरिहत्**) कंपाता और यह (**जज्ञानः**) प्रसिद्ध हुआ (**इद्धः**) प्रकाशमान होकर (**भानुना**) किरणों के साथ (**रोदसी**) प्रकाश और पृथिवी को (**ईम्**) सब ओर से (**व्यख्यत्**) विख्यात करता है और ब्रह्माण्ड के (**अन्तः**) बीच (**आभाति**) अच्छे प्रकार शोभायमान होता है, वैसे तुम लोग भी होओ॥२१॥

भावार्थः-ईश्वर ने जिसलिये सूर्यलोक को उत्पन्न किया है, इसलिये वह बिजुली के समान सब लोकों का आकर्षण कर और सम्यक् प्रकाश देकर ओषधि आदि पदार्थों को बढ़ाने का हेतु और सब भूगोलों के बीच जैसे शोभायमान होता है, वैसे राजा आदि पुरुषों को भी होना चाहिये॥२१॥

श्रीणामित्यस्य वत्सप्रीर्ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अत्र राजकर्मणि कीदृग्जनोऽभिषेचनीय इत्याह॥

इन राजकार्यों में कैसे पुरुष को राजा बनावें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

श्री॒णामु॑दा॒रो ध॒रुणो॑ रयी॒णां म॑नी॒षाणां॒ प्रार्प॑ण॒ः सोम॑गोपाः।

वसु॑ः सू॒नुः सह॑सोऽअ॒प्सु राजा॒ विभा॒त्यग्र॑ऽउ॒षसा॑मिधा॒नः॥ २२॥

श्री॒णाम्। उ॒दा॒र इत्यु॑त्ऽआ॒रः। ध॒रुण॑ः। र॒यी॒णाम्। म॒नी॒षाणा॑म्। प्रार्प॑ण॒ इति॑ प्र॒ऽअर्प॑णः। सोम॑गोपा॒ इति॒ सोम॑ऽगोपाः। वसु॑ः। सु॒नुः। सह॑सः। अ॒प्स्वित्य॒प्ऽसु। राजा॑। वि। भा॒ति। अग्रे॑। उ॒षसा॑म्। इ॒धा॒नः॥ २२॥

पदार्थः-(**श्रीणाम्**) लक्ष्मीणां मध्ये (**उदारः**) य उत्कृष्टं परीक्ष्य ऋच्छति ददाति (**धरुणः**) धर्त्ताऽऽधारभूतः (**रयीणाम्**) धनानाम् (**मनीषाणाम्**) प्रज्ञानाम्। याभिर्मन्यते जानन्ति ता मनीषाः प्रज्ञास्तासाम् (**प्रार्पणः**) प्रापकः (**सोमगोपाः**) सोमानामोषधीनामैश्वर्य्याणां वा रक्षकः (**वसुः**) कृतब्रह्मचर्य्यः (**सूनुः**) सुतः (**सहसः**) बलवतः पितुः (**अप्सु**) प्राणेषु (**राजा**) प्रकाशमानः (**वि**) (**भाति**) प्रदीप्यते (**अग्रे**) सम्मुखे (**उषसाम्**) प्रभातानाम् (**इधानः**) प्रदीप्यमानः॥२२॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यूयं यो जन उषसामग्र इधानः सूर्य इव श्रीणामुदारो रयीणां धरुणो मनीषाणां प्रार्पणः सोमगोपाः सहसः सूनुर्वसुः सन्नप्सु राजा विभाति, तं सर्वाध्यक्षं कुरुत॥२२॥

भावार्थः-मनुष्यैर्यः सुपात्रेभ्यो दाता धनस्य व्यर्थव्ययस्याकर्त्ता, सर्वेषां विद्याबुद्धिप्रदः, कृतब्रह्मचर्यस्य जितेन्द्रियस्य तनयो योगाङ्गानुष्ठानेन प्रकाशमानः, सूर्यवत् शुभगुणकर्मस्वभावानां मध्ये देदीप्यमानो, पितृवत् प्रजापालको जनोऽस्ति, स राज्यकरणायाभिषेचनीयः॥२२॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम लोगों को चाहिये कि जो पुरुष (**उषसाम्**) प्रभात समय के (**अग्रे**) आरम्भ में (**इधानः**) प्रदीप्यमान सूर्य के समान (**श्रीणाम्**) सब उत्तम लक्ष्मियों के मध्य (**उदारः**) परीक्षित पदार्थों का देने (**रयीणाम्**) धनों का (**धरुणः**) धारण करने (**मनीषाणाम्**) बुद्धियों का (**प्रार्पणः**) प्राप्त कराने और (**सोमगोपाः**) ओषधियों वा ऐश्वर्यों की रक्षा करने (**सहसः**) ब्रह्मचर्य किये जितेन्द्रिय बलवान् पिता का (**सूनुः**) पुत्र (**वसुः**) ब्रह्मचर्याश्रम करता हुआ, (**अप्सु**) प्राणों में (**राजा**) प्रकाशयुक्त होकर (**विभाति**) शुभ गुणों का प्रकाश करता हो, उसको सब का अध्यक्ष करो॥२२॥

भावार्थः-सब मनुष्यों को उचित है कि जो सुपात्रों को दान देने, धन का व्यर्थ खर्च न करने, सब को विद्या-बुद्धि देने, जिसने ब्रह्मचर्याश्रम सेवन किया हो, अपने इन्द्रिय जिसके वश में हों, उसका पुत्र योग के यम आदि आठ अङ्गों के सेवन से प्रकाशमान, सूर्य के समान अच्छे गुण-कर्म्म और स्वभावों से सुशोभित, और पिता के समान अच्छे प्रकार प्रजाओं का पालन करनेहारा पुरुष हो, उसको राज्य करने के लिये स्थापित करें॥२२॥

विश्वस्येत्यस्य वत्सप्रीर्ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद् आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

विश्वस्य केतुर्भुवनस्य गर्भऽआ रोदसीऽअपृणाज्जायमानः।

वीडुं चिदद्रिमभिनत् परायञ्जना यदग्निमयजन्त पञ्च॥२३॥

विश्वस्य। केतुः। भुवनस्य। गर्भः। आ। रोदसीऽइति रोदसी। अपृणात्। जायमानः। वीडुम्। चित्। अद्रिम्। अभिनत्। परायन्निति पराऽयन्। जनाः। यत्। अग्निम्। अयजन्त। पञ्च॥२३॥

पदार्थः-(**विश्वस्य**) (**केतुः**) (**भुवनस्य**) भवन्ति भूतानि यस्मिंस्तस्य लोकमात्रस्य (**गर्भः**) अन्तःस्थः (**आ**) (**रोदसी**) प्रकाशभूमी (**अपृणात्**) प्रपूर्यात् (**जायमानः**) उत्पद्यमानः (**वीडुम्**) दृढबलम् (**चित्**) इव (**अद्रिम्**) मेघम् (**अभिनत्**) भिन्द्यात् (**परायन्**) परेतः सन् (**जनाः**) (**यत्**) यः (**अग्निम्**) विद्युतम् (**अयजन्त**) सङ्गमयन्ति (**पञ्च**) प्राणाः॥२३॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यद्यो विद्वान् विश्वस्य भुवनस्य केतुर्गर्भो जायमानः परायन् रोदसी आपृणाद् वीडुमद्रिमभिनत्, पञ्च जना अग्निमयजन्त चिदिव विद्यादिशुभगुणान् प्रकाशयेत्, तं न्यायाधीशं मन्यध्वम्॥२३॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। यथा भुवनस्य मध्ये सूर्य आकर्षणेन सर्वस्य धर्त्ता मेघस्य भेत्ता प्राणेभ्यो जात इव विद्वान् सर्वविद्याप्रज्ञापको राज्यधर्त्ता शत्रूच्छेदकः सुखानां जनयिता गर्भस्य मातेव प्रजापालको विद्वान् भवेत्, तं राज्याधिकारिणं कुर्यात्॥२३॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम लोग **(यत्)** जो विद्वान् **(विश्वस्य)** सब **(भुवनस्य)** लोकों का **(केतुः)** पिता के समान रक्षक प्रकाशनेहारा **(गर्भः)** उन के मध्य में रहने **(जायमानः)** उत्पन्न होने वाला **(परायन्)** शत्रुओं को प्राप्त होता हुआ **(रोदसी)** प्रकाश और पृथिवी को **(आपृणात्)** पूरण कर्त्ता हो, **(वीडुम्)** अत्यन्त बलवान् **(अद्रिम्)** मेघ को **(अभिनत्)** छिन्न-भिन्न करे, **(पञ्च)** पांच **(जनाः)** प्राण **(अग्निम्)** बिजुली को **(अयजन्त)** संयुक्त करते हैं, **(चित्)** इसी प्रकार जो विद्या आदि शुभ गुणों का प्रकाश करे, उसको न्यायाधीश राजा मानो॥२३॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे ब्रह्माण्ड के बीच सूर्यलोक अपनी आकर्षण शक्ति से सब को धारण करता और मेघ को काटने वाला तथा प्राणों से प्रसिद्ध हुए के समान सब विद्याओं को जताने और जैसे माता गर्भ की रक्षा करे, वैसे प्रजा का पालनेहारा विद्वान् पुरुष हो, उसको राज्याधिकार देना चाहिये॥२३॥

उशिगित्यस्य वत्सप्रीर्ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनर्मनुष्यैः किं कर्त्तव्यमित्याह॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

उशिक् पावको अरतिः सुमेधा मर्त्येष्वग्निरमृतो नि धायि।

इयर्त्ति धूममरुषं भरिभ्रदुच्छुक्रेण शोचिषा द्यामिनक्षन्॥२४॥

उशिक्। पावकः। अरतिः। सुमेधा इति सुऽमेधाः। मर्त्येषु। अग्निः। अमृतः। नि। धायि। इयर्त्ति। धूमम्। अरुषम्। भरिभ्रत्। उत्। शुक्रेण। शोचिषा। द्याम्। इनक्षन्॥२४॥

पदार्थः-**(उशिक्)** कामयमानः **(पावकः)** पवित्रकर्त्ता **(अरतिः)** ज्ञाता **(सुमेधाः)** शोभनप्रज्ञः **(मर्त्येषु)** **(अग्निः)** कारणाख्यः **(अमृतः)** अविनाशी **(नि)** **(धायि)** निधीयते **(इयर्त्ति)** प्राप्नोति **(धूमम्)** **(अरुषम्)** रूपम् **(भरिभ्रत्)** अत्यन्तं धरन् पुष्यन् **(उत्)** **(शुक्रेण)** आशुकरेण **(शोचिषा)** दीप्त्या **(द्याम्)** सूर्यम् **(इनक्षन्)** व्याप्नुवन्। **इनक्षतीति व्याप्तिकर्मसु पठितम्॥** (निघं०२.१८)॥२४॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यूयमीश्वरेण मर्त्येषु य उशिक् पावकोऽरतिः सुमेधाऽमृतोऽग्निर्निधायि, यः शुक्रेण शोचिषा द्यामिनक्षन् धूममरुषं भरिभ्रदुदियर्त्ति तमीश्वरमुपाध्वमुपकुरुत वा॥२४॥

भावार्थः-मनुष्यैरीश्वरसृष्टानां पदार्थानां कारणकार्यपुरस्सरं विज्ञानं कृत्वा प्रज्ञोन्नेया॥२४॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम लोग ईश्वर ने **(मर्त्येषु)** मनुष्यों में जो **(उशिक्)** मानने योग्य **(पावकः)** पवित्र करनेहारा **(अरतिः)** ज्ञान वाला **(सुमेधाः)** अच्छी बुद्धि से युक्त **(अमृतः)** मरणधर्मरहित **(अग्निः)** आकाररूप ज्ञान का प्रकाश **(निधायि)** स्थापित किया है, जो **(शुक्रेण)** शीघ्रकारी **(शोचिषा)** प्रकाश से **(द्याम्)** सूर्यलोक को **(इनक्षन्)** व्याप्त होता हुआ **(धूमम्)** धुएं **(अरुषम्)** रूप को **(भरिभ्रत्)** अत्यन्त धारण वा पुष्ट करता हुआ

(उदियर्ति) प्राप्त होता है, उसी ईश्वर की उपासना करो वा उस अग्नि से उपकार लेओ॥२४॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि कार्य्य-कारण के अनुसार ईश्वर के रचे हुए सब पदार्थों को ठीक-ठीक जान के अपनी बुद्धि बढ़ावें॥२४॥

दृशान इत्यस्य वत्सप्रीर्ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनर्नरैः किं किं वेद्यमित्याह॥

फिर मनुष्यों को क्या-क्या जानना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

दृशानो रुक्मऽउर्व्या व्यद्यौद् दुर्मर्षमायुः श्रिये रुचानः।
अग्निरमृतोऽअभवद् वयोभिर्यदेनं द्यौरजनयत् सुरेताः॥२५॥

दृशानः। रुक्मः। उर्व्या। वि। अद्यौत्। दुर्मर्षमिति दुःऽमर्षम्। आयुः। श्रिये। रुचानः। अग्निः। अमृतः। अभवत्। वयोभिरिति वयःऽभिः। यत्। एनम्। द्यौः। अजनयत्। सुरेता इति सुऽरेताः॥२५॥

पदार्थः-**(दृशानः)** दर्शकः **(रुक्मः)** **(उर्व्या)** पृथिव्या सह **(वि)** **(अद्यौत्)** प्रकाशयति **(दुर्मर्षम्)** दुर्गतो मर्षः सेचनं यस्मात्तत् **(आयुः)** जीवनम् **(श्रिये)** शोभायै **(रुचानः)** प्रदीपकः **(अग्निः)** तेजः **(अमृतः)** नाशरहितः **(अभवत्)** **(वयोभिः)** व्यापकैर्गुणैः **(यत्)** यस्मात् **(एनम्)** **(द्यौः)** स्वप्रकाशः **(अजनयत्)** जनयति **(सुरेताः)** शोभनानि रेतांसि वीर्याणि यस्य सः॥२५॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यूयं यद्यो दृशानो रुक्मः श्रिये रुचानोऽमृतो दुर्मर्षमायुः कुर्वन्नमृतोऽग्निरुर्व्या सह व्यद्यौद्, वयोभिः सहाभवत्, तद् द्यौः सुरेता जगदीश्वरो यदेनमजनयत्, तं तत् तां च विजानीत॥२५॥

भावार्थः-ये मनुष्या जगत्स्रष्टारमनादिमीश्वरमनादिजगत्कारणं गुणकर्मस्वभावैः सह विज्ञायोपासत उपयुञ्जते च ते दीर्घायुषः श्रीमन्तो जायन्ते॥२५॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम लोग **(यत्)** जिस कारण **(दृशानः)** दिखाने हारा **(रुक्मः)** रुचि का हेतु **(श्रिये)** शोभा का **(रुचानः)** प्रकाशक **(दुर्मर्षम्)** सब दुःखों से रहित **(आयुः)** जीवन करता हुआ **(अमृतः)** नाशरहित **(अग्निः)** तेजस्वरूप **(उर्व्या)** पृथिवी के साथ **(व्यद्यौत्)** प्रकाशित होता है, **(वयोभिः)** व्यापक गुणों के साथ **(अभवत्)** उत्पन्न होता और जो **(द्यौः)** प्रकाशक **(सुरेताः)** सुन्दर पराक्रम वाला जगदीश्वर **(यत्)** जिस के लिये **(एनम्)** इस अग्नि को **(अजनयत्)** उत्पन्न करता है, उस ईश्वर, आयु और विद्युत् रूप अग्नि को जानो॥२५॥

भावार्थः-जो मनुष्य गुण-कर्म और स्वभावों के सहित जगत् रचने वाले अनादि ईश्वर और जगत् के कारण को ठीक-ठीक जान के उपासना करते और उपयोग लेते हैं, वे चिरंजीव होकर लक्ष्मी को प्राप्त होते हैं॥२५॥

यस्त इत्यस्य वत्सप्रीर्ऋषिः। अग्निर्देवता। विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनर्विद्वद्भिः कीदृशः पाचकः स्वीकार्य इत्याह॥

फिर विद्वान् लोग कैसे रसोइया को स्वीकार करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

यस्तेऽअद्य कृणवद् भद्रशोचेऽपूपं देव घृतवन्तमग्ने।

प्र तं नय प्रतरं वस्यो॒ऽअच्छा॒भि सु॒म्नं दे॒वभ॑क्तं यविष्ठ॥ २६॥

यः। ते॒। अ॒द्य। कृ॒णव॑त्। भ॒द्रशो॒च॒ इति॑ भद्र॒ऽशोचे। अ॒पू॒पम्। दे॒व॒। घृ॒तव॑न्त॒मिति॑ घृ॒तऽव॑न्तम्। अ॒ग्ने॒। प्र। तम्। न॒य॒। प्र॒त॒रमिति॑ प्र॒ऽत॒रम्। वस्य॑ः। अच्छ॑। अ॒भि। सु॒म्नम्। दे॒वभ॑क्त॒मिति॑ दे॒वऽभ॑क्तम्। य॒वि॒ष्ठ॒॥ २६॥

पदार्थः-(**यः**) (**ते**) (**अद्य**) (**कृणवत्**) कुर्यात् (**भद्रशोचे**) भद्रा भजनीया शोचिर्दीप्तिर्यस्य तत्सम्बुद्धौ (**अपूपम्**) (**देव**) दिव्यभोगप्रद (**घृतवन्तम्**) बहु घृतं विद्यते यस्मिन् तम् (**अग्ने**) विद्वन् (**प्र**) (**तम्**) (**नय**) प्राप्नुहि (**प्रतरम्**) पाकस्य संतारकम् (**वस्यः**) अतिशयितं वसु तत् (**अच्छ**) (**अभि**) (**सुम्नम्**) सुखस्वरूपम् (**देवभक्तम्**) देवैर्विद्वद्भिः सेवितम् (**यविष्ठ**) अतिशयेन युवन्॥ २६॥

अन्वयः-हे भद्रशोचे यविष्ठ देवाग्ने! यस्ते तव घृतवन्तमभिसुम्नं वस्यो देवभक्तमपूपमच्छ कृणवत् तं प्रतरं पाककर्त्तारं त्वमद्य प्रणय॥ २६॥

भावार्थः-मनुष्यैर्विद्वत्सुशिक्षितोऽत्युत्तमानां व्यञ्जनानां सुस्वादिष्ठानामन्नानां रुचिकराणां निर्माता पाककर्त्ता संग्राह्यः॥ २६॥

पदार्थः-हे (**भद्रशोचे**) सेवने योग्य दीप्ति से युक्त (**यविष्ठ**) तरुण अवस्था वाले (**देव**) दिव्य भोगों के दाता (**अग्ने**) विद्वन् पुरुष! (**यः**) जो (**ते**) आपका (**घृतवन्तम्**) बहुत घृत आदि पदार्थों से संयुक्त (**अभि**) सब प्रकार से (**सुम्नम्**) सुखरूप (**देवभक्तम्**) विद्वानों के सेवने योग्य (**अपूपम्**) भोजन के योग्य पदार्थों वाला (**वस्यः**) अत्यन्त भोग्य (**अच्छ**) अच्छे-अच्छे पदार्थों को (**कृणवत्**) बनावे, (**तम्**) उस (**प्रतरम्**) पाक बनाने हारे पुरुष को आप (**अद्य**) आज (**प्रणय**) प्राप्त हूजिये॥ २६॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों से अच्छी शिक्षा को प्राप्त हुए अति उत्तम व्यञ्जन और शष्कुली आदि तथा शाक आदि स्वाद से युक्त रुचिकारक पदार्थों को बनाने वाले पाचक पुरुष का ग्रहण करें॥ २६॥

आ तमित्यस्य वत्सप्रीर्ऋषिः। अग्निर्देवता। विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

आ तं भ॑ज सौश्रव॒सेष्व॑ग्नऽउ॒क्थऽउ॑क्थ॒ऽआभ॑ज श॒स्यमा॑ने।

प्रि॒यः सूर्ये॑ प्रि॒योऽअ॒ग्ना भ॑वा॒त्युज्जा॒तेन॑ भि॒नद॒दुज्जनि॑त्वैः॥ २७॥

आ। तम्। भ॒ज॒। सौ॒श्र॒व॒सेषु॑। अ॒ग्ने॒। उ॒क्थउ॑क्थ॒ इत्यु॒क्थेऽउ॑क्थे। आ। भ॒ज॒। श॒स्यमा॑ने। प्रि॒यः। सूर्ये॑। प्रि॒यः। अ॒ग्ना। भ॒वा॒ति॒। उत्। जा॒तेन॑। भि॒नद॑त्। उत्। जनि॑त्वै॒रिति॒ जनि॑ऽत्वैः॥ २७॥

पदार्थः-(**आ**) (**तम्**) (**भज**) सेवस्व (**सौश्रवसेषु**) शोभनानि च श्रवांसि च तानि सुश्रवांसि तेषु सुश्रवस्सु भवास्तेषु (**अग्ने**) विद्वन् (**उक्थऽउक्थे**) वक्तुं योग्ये योग्ये व्यवहारे (**आ**) (**भज**) (**शस्यमाने**) स्तूयमाने (**प्रियः**) कान्तः (**सूर्य्ये**) सूरिषु स्तोतृषु भवे (**प्रियः**) सेवनीयः (**अग्ना**) अग्नौ (**भवाति**) भवेत् (**उत्**) (**जातेन**) (**भिनदत्**) भिन्द्यात् (**उत्**) (**जनित्वैः**) जनिष्यमाणैः॥ २७॥

अन्वयः-हे अग्ने विद्वन्! त्वं यः सौश्रवसेषु वर्त्तमानस्तमाभज, यः शस्यमान उक्थऽउक्थे प्रियः

सूर्येऽअग्ना च प्रियो, जातेन जनित्वैः सहोद्भवात्युद्भिनदत्, तं त्वमाभज॥२७॥

भावार्थः-मनुष्यैर्यः पाककरणे साधुः, सर्वस्य प्रियोऽन्नव्यञ्जनानां भेदकः पाचको भवेत्, स स्वीकर्त्तव्यः॥२७॥

पदार्थः-हे **(अग्ने)** विद्वन् पुरुष! आप जो **(सौश्रवसेषु)** सुन्दर धन वालों में वर्त्तमान हो, **(तम्)** उसको **(आभज)** सेवन कीजिये, जो **(शस्यमाने)** स्तुति के योग्य **(उक्थऽउक्थे)** अत्यन्त कहने योग्य व्यवहार में **(प्रियः)** प्रीति रक्खे **(सूर्य्ये)** स्तुतिकारक पुरुषों में हुए व्यवहार **(अग्ना)** और अग्निविद्या में **(प्रियः)** सेवने योग्य **(जातेन)** उत्पन्न हुए और **(जनित्वैः)** उत्पन्न होने वालों के साथ **(उद्भवाति)** उत्पन्न होवे और शत्रुओं को **(उद्भिनदत्)** उच्छिन्न-भिन्न करे, **(तम्)** उसको आप **(आभज)** सेवन कीजिये॥२७॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि जो पाक करने में साधु, सब का हितकारी, अन्न और व्यञ्जनों को अच्छे प्रकार बनावे, उसको अवश्य ग्रहण करें॥२७॥

त्वामग्न इत्यस्य वत्सप्रीर्ऋषिः। अग्निर्देवता। विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनर्मनुष्यैर्विद्याः कथं वर्द्धनीया इत्याह॥

फिर मनुष्य लोग विद्या को किस प्रकार बढ़ावें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

त्वाम॑ग्ने यज॑मानाऽअनु॒ द्यून् विश्वा॒ वसु॑ दधिरे॒ वार्या॑णि।

त्वया॑ स॒ह द्रवि॑णमि॒च्छमा॑ना व्र॒जं गोम॑न्तमु॒शिजो॒ विव॑व्रुः॥२८॥

त्वाम्। अ॒ग्ने॒। यज॑मानाः। अनु॑। द्यून्। विश्वा॑। वसु॑। द॒धि॒रे॒। वार्या॑णि। त्वया॑। स॒ह। द्रवि॑णम्। इ॒च्छमा॑नाः। व्र॒जम्। गोम॑न्त॒मिति॒ गोऽम॑न्तम्। उ॒शिज॑ः। वि। व॒व्रुः॥२८॥

पदार्थः-**(त्वाम्)** **(अग्ने)** विद्वन् **(यजमानाः)** सङ्गन्तारः **(अनु)** **(द्यून्)** दिनानि **(विश्वा)** सर्वाणि **(वसु)** वसूनि द्रव्याणि **(दधिरे)** धरेयुः **(वार्याणि)** स्वीकर्त्तुमर्हाणि **(त्वया)** **(सह)** साकम् **(द्रविणम्)** धनम् **(इच्छमानाः)** व्यत्ययेनाऽत्रात्मनेपदम् **(व्रजम्)** मेघम् **(गोमन्तम्)** प्रशस्ता गावः किरणा यस्मिंस्तम् **(उशिजः)** मेधाविनः। **उशिगिति मेधाविनामसु पठितम्॥** (निघं०३.१५) **(वि)** **(वव्रुः)** वृणुयुः॥२८॥

अन्वयः-हे अग्ने विद्वन्! यन्त्वामाश्रित्योशिजो यजमानास्त्वया सह याननुद्यून् विश्वा वार्याणि वसु दधिरे, द्रविणमिच्छमाना गोमन्तं व्रजं विवव्रुः, तथाभूता वयमपि भवेम॥२८॥

भावार्थः-मनुष्यैः प्रयतमानानां विदुषां सङ्गात् पुरुषार्थेन प्रतिदिनं विद्यासुखे वर्द्धनीये॥२८॥

पदार्थः-हे **(अग्ने)** विद्वन् पुरुष! जिस **(त्वाम्)** आपका आश्रय लेकर **(उशिजः)** बुद्धिमान् **(यजमानाः)** सङ्गतिकारक लोग **(त्वया)** आप के **(सह)** साथ **(विश्वा)** सब **(वार्याणि)** ग्रहण करने योग्य **(अनुद्यून्)** दिनों में **(वसु)** द्रव्यों को **(दधिरे)** धारण करें, **(द्रविणम्)** धन की **(इच्छमानाः)** इच्छा करते हुए **(गोमन्तम्)** सुन्दर किरणों के रूप से युक्त **(व्रजम्)** मेघ वा गोस्थान को **(विवव्रुः)** विविध प्रकार से ग्रहण करें, वैसे हम लोग भी होवें॥२८॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि प्रयत्नशील विद्वानों के सङ्ग से पुरुषार्थ के साथ विद्या और सुख को

नित्यप्रति बढ़ाते जावें॥२८॥

अस्तावीत्यस्य वत्सप्रीर्ऋषिः। अग्निर्देवता। विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तत्सङ्गेन किं भवतीत्याह॥

फिर उन विद्वानों के सङ्ग से क्या होता है, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अस्ताव्यग्निर्नराᳪं सुशेवो वैश्वानरऽऋषिभिः सोमगोपाः।

अद्वेषे द्यावापृथिवी हुवेम देवा धत्त रयिमस्मे सुवीरम्॥२९॥

अस्तावि। अग्निः। नराम्। सुशेव इति सुऽशेवः। वैश्वानरः। ऋषिभिरित्यृषिऽभिः। सोमगोपा इति सोमऽगोपाः। अद्वेषेऽइत्यद्वेषे। द्यावापृथिवीऽइति द्यावापृथिवी। हुवेम। देवाः। धत्त। रयिम्। अस्मेऽइत्यस्मे। सुवीरमिति सुऽवीरम्॥२९॥

पदार्थः-(**अस्तावि**) स्तूयते (**अग्निः**) परमेश्वरः (**नराम्**) नायकानां विदुषाम्। (**सुशेवः**) सुष्ठु सुखः। **शेवमिति सुखनामसु पठितम्॥** (निघं०३.६) (**वैश्वानरः**) विश्वे सर्वे नरा यस्मिन् स एव (**ऋषिभिः**) वेदविद्भिर्विद्वद्भिः (**सोमगोपाः**) ऐश्वर्य्यपालकाः (**अद्वेषे**) द्वेष्टुमनर्हे प्रीतिविषये (**द्यावापृथिवी**) राजनीतिभूराज्ये (**हुवेम**) स्वीकुर्याम (**देवाः**) शत्रून् विजिगीषमाणाः (**धत्त**) धरत (**रयिम्**) राज्यश्रियम् (**अस्मे**) अस्मभ्यम् (**सुवीरम्**) शोभना वीरा यस्मात् तम्॥२९॥

अन्वयः-हे देवाः! यैर्युष्माभिर्ऋषिभिर्यो नरां सुशेवो वैश्वानरोऽग्निरस्तावि, ये यूयमस्मे सुवीरं रयिं धत्त, तदाश्रिताः सोमगोपा वयमद्वेषे द्यावापृथिवी हुवेम॥२९॥

भावार्थः-ये सच्चिदानन्दस्वरूपेश्वरसेवका धार्मिका विद्वांसः सन्ति, ते परोपकारकत्वादाप्ता भवन्ति, नहीदृशानां सङ्गमन्तरा सुस्थिरे विद्याराज्ये कर्त्तुं शक्नुवन्ति॥२९॥

पदार्थः-हे (**देवाः**) शत्रुओं को जीतने की इच्छा वाले विद्वानो! जिन तुम (**ऋषिभिः**) ऋषि लोगों ने (**नराम्**) नायक विद्वानों में (**सुशेवः**) सुन्दर सुखयुक्त (**वैश्वानरः**) सब मनुष्यों के आधार (**अग्निः**) परमेश्वर की (**अस्तावि**) स्तुति की है, जो तुम लोग (**अस्मे**) हमारे लिये (**सुवीरम्**) जिससे सुन्दर वीर पुरुष हों, उस (**रयिम्**) राज्यलक्ष्मी को (**धत्त**) धारण करो, उसके आश्रित (**सोमगोपाः**) ऐश्वर्य के रक्षक हम लोग (**अद्वेषे**) द्वेष करने के अयोग्य प्रीति के विषय में (**द्यावापृथिवी**) प्रकाशरूप राजनीति और पृथिवी के राज्य का (**हुवेम**) ग्रहण करें॥२९॥

भावार्थः-जो सच्चिदानन्दस्वरूप ईश्वर के सेवक, धर्मात्मा, विद्वान् लोग हैं, वे परोपकारी होने से आप्त यथार्थवक्ता होते हैं, ऐसे पुरुषों के सत्सङ्ग के विना स्थिर विद्या और राज्य को कोई भी नहीं कर सकता॥२९॥

समिधाग्निमित्यस्य विरूपाक्ष ऋषिः। अग्निर्देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनर्मनुष्याणां के सेवनीयाः सन्तीत्याह॥

फिर मनुष्य किन का सेवन करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्। आस्मिन् हव्या जुहोतन॥३०॥

समिधेति सम्ऽइधा। अग्निम्। दुवस्यत। घृतैः। बोधयत। अतिथिम्। आ। अस्मिन्। हव्या। जुहोतन॥३०॥

पदार्थः-(**समिधा**) सम्यगग्निसंस्कृतेनान्नादिना (**अग्निम्**) उपदेशकं विद्वांसम् (**दुवस्यत**) सेवध्वम् (**घृतैः**) घृतादिभिः (**बोधयत**) चेतयत (**अतिथिम्**) अनियततिथिमुपदेशकम् (**आ**) (**अस्मिन्**) (**हव्या**) दातुमर्हाणि (**जुहोतन**) दत्त। [अयं मन्त्रः शत०६.८.१.६ व्याख्यातः]॥३०॥

अन्वयः-हे गृहस्था! यूयं समिधाग्निमिवान्नादिनोपदेशकं दुवस्यत, घृतैरतिथिं बोधयत, अस्मिन् हव्या आजुहोतन॥३०॥

भावार्थः-मनुष्यैः सत्पुरुषाणामेव सेवा कार्या, सत्पात्रेभ्य एव दानं च देयम्। यथाग्नौ घृतादिकं हुत्वा संसारोपकारं जनयन्ति, तथैव विद्वत्सूत्तमानि दानानि संस्थाप्यैतैर्जगति विद्यासुशिक्षे वर्धनीये॥३०॥

पदार्थः-हे गृहस्थो! तुम लोग जैसे (**समिधा**) अच्छे प्रकार इन्धनों से (**अग्निम्**) अग्नि को प्रकाशित करते हैं, वैसे उपदेश करने वाले विद्वान् पुरुष की (**दुवस्यत**) सेवा करो और जैसे सुसंस्कृत अन्न तथा (**घृतैः**) घी आदि पदार्थों से अग्नि में होम करके जगदुपकार करते हैं, वैसे (**अतिथिम्**) जिसके आने-जाने के समय का नियम न हो, उस उपदेशक पुरुष को (**बोधयत**) स्वागत उत्साहादि से चैतन्य करो और (**अस्मिन्**) इस जगत् में (**हव्या**) देने योग्य पदार्थों को (**आजुहोतन**) अच्छे प्रकार दिया करो॥३०॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि सत्पुरुषों ही की सेवा और सुपात्रों ही को दान दिया करें, जैसे अग्नि में घी आदि पदार्थों का हवन करके संसार का उपकार करते हैं, वैसे ही विद्वानों में उत्तम पदार्थों का दान करके जगत् में विद्या और अच्छी शिक्षा को बढ़ा के विश्व को सुखी करें॥३०॥

उदु त्वेत्यस्य तापस ऋषिः। अग्निर्देवता। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

विद्वान् स्वतुल्यानन्यान् विदुषः कुर्यात्॥

विद्वान् पुरुष को चाहिये कि अपने तुल्य अन्य मनुष्यों को विद्वान् करे, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

उदु॑ त्वा॒ विश्वे॑ दे॒वाऽअग्ने॒ भर॑न्तु चित्ति॑भिः।
स नो॑ भव शि॒वस्त्वꣳ सु॒प्रती॑को वि॒भाव॑सुः॥३१॥

उत्। ऊँइत्यूँ। त्वा॒। विश्वे॑। दे॒वाः। अग्ने॑। भर॑न्तु। चित्ति॑भि॒रिति॒ चित्ति॑ऽभिः। सः। न॒ः। भ॒व॒। शि॒वः। त्वम्। सु॒प्रती॑क॒ इति॑ सु॒ऽप्रती॑कः। वि॒भाव॑सु॒रिति॑ वि॒भाऽव॑सुः॥३१॥

पदार्थः- (**उत्**) (**उ**) (**त्वा**) (**विश्वे**) सर्वे (**देवाः**) विद्वांसः (**अग्ने**) विद्वन् (**भरन्तु**) पुष्णन्तु (**चित्तिभिः**) सम्यग् विज्ञानैस्सह (**सः**) (**नः**) अस्मभ्यम् (**भव**) (**शिवः**) मङ्गलोपदेष्टा (**त्वम्**) (**सुप्रतीकः**) शोभनानि प्रतीकानि लक्षणानि यस्य सः (**विभावसुः**) येन विविधा भा विद्यादीप्तिर्वास्यते॥३१॥

अन्वयः-हे अग्ने विद्वन्! यं त्वा विश्वे देवाश्चित्तिभिरुदुभरन्तु, स विभावसुः सुप्रतीकस्त्वं नः शिवो भव॥३१॥

भावार्थः-यो यथा विद्वद्भ्यो विद्यां सञ्चिनोति, तथैवान्यान् विद्यासञ्चितान् सम्पादयेत्॥३१॥

पदार्थः-हे (**अग्ने**) विद्वन्! जिस (**त्वा**) आपको (**विश्वे**) सब (**देवाः**) विद्वान् लोग (**चित्तिभिः**) अच्छे

विज्ञानों के साथ अग्नि के समान **(उदुभरन्तु)** पुष्ट करें **(सः)** जो **(विभावसुः)** जिससे विविध प्रकार की शोभा वा विद्या प्रकाशित हों, **(सुप्रतीकः)** सुन्दर लक्षणों से युक्त **(त्वम्)** आप **(नः)** हम लोगों के लिये **(शिवः)** मङ्गलमय वचनों के उपदेशक **(भव)** हूजिये॥३१॥

भावार्थः-जो मनुष्य जैसे विद्वानों से विद्या का सञ्चय करता है, वह वैसे दूसरों के लिये विद्या का प्रचार करे॥३१॥

प्रेदग्न इत्यस्य तापस ऋषिः। अग्निर्देवता। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुना राजा किं कृत्वा किं प्राप्नुयादित्याह

फिर राजा क्या करके किस को प्राप्त होवे, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

प्रेदग्ने ज्योतिष्मान् याहि शिवेभिरर्चिभिष्ट्वम्।

बृहद्भिर्भानुभिर्भासन् मा हिꣳसीस्तन्वा प्रजाः॥३२॥

प्र। इत्। अग्ने। ज्योतिष्मान्। याहि। शिवेभिः। अर्चिभिरित्यर्चिऽभिः। त्वम्। बृहद्भिरिति बृहत्ऽभिः। भानुभिरिति भानुऽभिः। भासन्। मा। हिꣳसीः। तन्वा। प्रजा इति प्रऽजाः॥३२॥

पदार्थः-**(प्र)** **(इत्)** **(अग्ने)** विद्याप्रकाशक **(ज्योतिष्मान्)** बहूनि ज्योतींषि विज्ञानानि विद्यन्ते यस्य सः **(याहि)** प्राप्नुहि **(शिवेभिः)** मङ्गलकारकैः **(अर्चिभिः)** पूजितैः **(त्वम्)** **(बृहद्भिः)** महद्भिः **(भानुभिः)** विद्याप्रकाशकैर्गुणैः **(भासन्)** प्रकाशकः सन् **(मा)** **(हिंसीः)** हिंस्याः **(तन्वा)** शरीरेण **(प्रजाः)** पालनीयाः। [अयं मन्त्रः शत०६.८.१.१९ व्याख्यातः]॥३२॥

अन्वयः-हे अग्ने विद्वन्! त्वं यथा ज्योतिष्मान् सूर्य्यः शिवेभिरर्चिभिर्बृहद्भिर्भानुभिरिदेव भासन् वर्त्तते तथा प्रयाहि, तन्वा प्रजा मा हिंसीः॥३२॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे सराजपुरुष राजन्! त्वं शरीरेणानपराधिनः कस्यापि प्राणिनो हिंसामकृत्वा विद्यान्यायप्रकाशेन प्रजाः पालयन् जीवन्नभ्युदयं मृत्वा मुक्तिसुखं प्राप्नुयाः॥३२॥

पदार्थः-हे **(अग्ने)** विद्या प्रकाश करनेहारे विद्वन्! **(त्वम्)** तू जैसे **(ज्योतिष्मान्)** सूर्य्यज्योतियों से युक्त **(शिवेभिः)** मङ्गलकारी **(अर्चिभिः)** सत्कार के साधन **(बृहद्भिः)** बड़े-बड़े **(भानुभिः)** प्रकाशगुणों से **(इत्)** ही **(भासन्)** प्रकाशमान है, वैसे **(प्रयाहि)** सुखों को प्राप्त हूजिये और **(तन्वा)** शरीर से **(प्रजाः)** पालने योग्य प्राणियों को **(मा)** मत **(हिंसीः)** मारिये॥३२॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे सेनापति आदि राजपुरुषों के सहित राजन्! आप अपने शरीर से किसी अनपराधी प्राणी को न मार के, विद्या और न्याय के प्रकाश से प्रजाओं का पालन करके, जीवते हुए संसार के सुख को और शरीर छूटने के पश्चात् मुक्ति के सुख को प्राप्त हूजिये॥३२॥

अक्रन्ददित्यस्य वत्सप्रीर्ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

राज्यप्रबन्धः कथं कार्य्य इत्युपदिश्यते॥

राज्य का प्रबन्ध कैसे करे, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अक्र॑न्दद॒ग्नि स्त॒नय॑न्निव॒ द्यौः क्षामा॒ रेरि॑हद् वी॒रुधः॑ सम॒ञ्जन्।

स॒द्यो॒ ज॑ज्ञा॒नो वि हीमि॒द्धोऽअख्य॒दा रोद॑सी भा॒नुना॑ भात्य॒न्तः॥३३॥

अक्र॑न्दत्। अ॒ग्निः। स्त॒नय॑न्नि॒वेति॑ स्त॒नय॑न्ऽइव। द्यौः। क्षामा॑। रेरि॑हत्। वी॒रुधः॑। स॒म॒ञ्जन्निति॑ सम्ऽअ॒ञ्जन्। स॒द्यः ज॒ज्ञा॒नः। वि। हि। ई॒म्। इ॒द्धः। अख्य॑त्। आ। रोद॑सी॒ऽइति॒ रोद॑सी। भा॒नुना॑। भा॒ति॒। अ॒न्तरित्य॒न्तः॥३३॥

पदार्थः-(**अक्रन्दत्**) विजानाति (**अग्निः**) शत्रुदाहको विद्वान् (**स्तनयन्निव**) विद्युद्वद् गर्जयन् (**द्यौः**) विद्यान्यायप्रकाशकः (**क्षामा**) भूमिम् (**रेरिहत्**) भृशं युध्यस्व (**वीरुधः**) वनस्थान् वृक्षान् (**समञ्जन्**) सम्यक् रक्षन् (**सद्यः**) तूर्णम् (**जज्ञानः**) राजनीत्या प्रादुर्भूतः (**वि**) (**हि**) खलु (**ईम्**) सर्वतः (**इद्धः**) शुभलक्षणैः प्रकाशितः (**अख्यत्**) धर्म्यानुपदेशान् प्रकथयेः (**आ**) (**रोदसी**) अग्निभूमी (**भानुना**) पुरुषार्थप्रकाशेन (**भाति**) (**अन्तः**) राजधर्म्ममध्ये स्थितः। [अयं मन्त्रः शत०६.८.१.११ व्याख्यातः]॥३३॥

अन्वयः-हे प्रजाजनाः! युष्माभिर्यथा द्यौरग्निः स्तनयन्निवाक्रन्दद्, वीरुधः समञ्जन् क्षामा रेरहित् जज्ञान इद्धः सद्यो व्यख्यत् भानुना हि रोदसी अन्तराभाति, तथा स राजा भवितुं योग्योऽस्तीति वेद्यम्॥३३॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। नहि वनवृक्षरक्षणेन वृष्टिबाहुल्यमारोग्यं तडिद्व्यवहारवद् दूरसमाचारग्रहणेन शत्रुविनाशनेन राज्ये विद्यान्यायप्रकाशेन च विना सुराज्यं च जायते॥३३॥

पदार्थः-हे प्रजा के लोगो! तुम लोगों को चाहिये कि जैसे (**द्यौः**) सूर्य प्रकाशकर्त्ता है, वैसे विद्या और न्याय का प्रकाश करने और (**अग्निः**) पावक के तुल्य शत्रुओं का नष्ट करनेहारा विद्वान् (**स्तनयन्निव**) बिजुली के समान (**अक्रन्दत्**) गर्जता और (**वीरुधः**) वन के वृक्षों की (**समञ्जन्**) अच्छे प्रकार रक्षा करता हुआ (**क्षामा**) पृथिवी पर (**रेरिहत्**) युद्ध करे (**जज्ञानः**) राजनीति से प्रसिद्ध हुआ, (**इद्धः**) शुभ लक्षणों से प्रकाशित (**सद्यः**) शीघ्र (**व्यख्यत्**) धर्मयुक्त उपदेश करे तथा (**भानुना**) पुरुषार्थ के प्रकाश से (**हि**) ही (**रोदसी**) अग्नि और भूमि को (**अन्तः**) राजधर्म में स्थिर करता हुआ (**आभाति**) अच्छे प्रकार प्रकाश करता है, वह पुरुष राजा होने के योग्य है, ऐसा निश्चित जानो॥३३॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। वन के वृक्षों की रक्षा के विना बहुत वर्षा और रोगों की न्यूनता नहीं होती, और बिजुली के तुल्य दूर के समाचारों शत्रुओं को मारने और विद्या तथा न्याय के प्रकाश के विना अच्छा स्थिर राज्य ही नहीं हो सकता॥३३॥

प्रप्रायमित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। अग्निर्देवता। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनः कीदृशं जनं राजव्यवहारे नियुञ्जीरन्नित्याह॥

फिर कैसे पुरुष को राजव्यवहार में नियुक्त करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

प्रप्रा॒यम॒ग्निर्भ॑र॒तस्य॑ शृण्वे॒ वि यत्सूर्यो॒ न रोच॑ते बृ॒हद्भाः।

अ॒भि यः पू॒रुं पृत॑नासु त॒स्थौ दी॒दाय॒ दैव्यो॒ऽअति॑थिः शि॒वो नः॑॥३४॥

प्रप्रेति॒ प्रऽप्र॑। अ॒यम्। अ॒ग्निः। भ॒र॒तस्य॑। शृ॒ण्वे॒। वि। यत्। सूर्य्यः॑। न। रोच॑ते। बृ॒हत्। भाः। अ॒भि। यः। पू॒रुम्। पृत॑नासु। त॒स्थौ। दी॒दाय॑। दैव्यः॑। अति॑थिः। शि॒वः। न॒ः॥३४॥

पदार्थः-(**प्रप्र**) अतिप्रकर्षेण (**अयम्**) (**अग्निः**) सेनेशः (**भरतस्य**) पालितव्यस्य राज्यस्य (**शृण्वे**) (**वि**) (**यत्**) यः (**सूर्य्यः**) सविता (**न**) इव (**रोचते**) प्रकाशते (**बृहद्भाः**) महाप्रकाशः (**अभि**) (**यः**) (**पूरुम्**) पूर्णबलं सेनाध्यक्षम्। **पूरव इति मनुष्यनामसु पठितम्॥** (निघं०२.३) (**पृतनासु**) सेनासु (**तस्थौ**) तिष्ठेत् (**दीदाय**) धर्मं प्रकाशयेत् (**दैव्यः**) देवेषु विद्वत्सु प्रीतः (**अतिथिः**) नित्यं भ्रमणकर्त्ता विद्वान् (**शिवः**) मङ्गलप्रदः (**नः**) अस्मान्। [अयं मन्त्रः शत०६.८.१.१४ व्याख्यातः]॥३४॥

अन्वयः-हे राजप्रजाजनाः! यूयं यद्योऽयमग्निः सूर्यो न बृहद्भाः प्रप्र रोचते, यो नः पृतनासु पूरुमभि तस्थौ, दैव्योऽतिथिः शिवो विद्या दीदाय, यमहं भरतस्य रक्षकं शृण्वे तं सेनापतिं कुरुत॥३४॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। मनुष्यैः यस्य पुण्यकीर्त्तेः पुरुषस्य शत्रुषु विजयो विद्याप्रचारश्च श्रूयते, स कुलीनः सेनाया योधयिताऽधिकर्त्तव्यः॥३४॥

पदार्थः-हे राजा और प्रजा के पुरुषो! तुम लोगों को चाहिये कि (**यत्**) जो (**अयम्**) यह (**अग्निः**) सेनापति (**सूर्य्यः**) सूर्य्य के (**न**) समान (**बृहद्भाः**) अत्यन्त प्रकाश से युक्त (**प्रप्र**) अतिप्रकर्ष के साथ (**रोचते**) प्रकाशित होता है, (**यः**) जो (**नः**) हमारी (**पृतनासु**) सेनाओं में (**पूरुम्**) पूर्ण बलयुक्त सेनाध्यक्ष के निकट (**अभितस्थौ**) सब प्रकार स्थित होवे (**दैव्यः**) विद्वानों का प्रिय (**अतिथिः**) नित्य भ्रमण करनेहारा अतिथि (**शिवः**) मङ्गलता विद्वान् पुरुष (**दीदाय**) विद्या और धर्म को प्रकाशित करे, जिसको मैं (**भरतस्य**) सेवने योग्य राज्य का रक्षक (**शृण्वे**) सुनता हूँ, उसको सेना का अधिपति करो॥३४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि जिस पुण्य कीर्त्ति पुरुष का शत्रुओं में विजय और विद्याप्रचार सुना जावे, उस कुलीन पुरुष को सेना को युद्ध कराने हारा अधिकारी करें॥३४॥

आप इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। आपो देवताः। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ सर्वैर्मनुष्यैः स्वयंवरो विवाहः कार्य इत्याह॥

अब सब मनुष्यों को स्वयंवर विवाह करना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

आपो॑ दे॒वीः प्रति॑गृभ्णीत॒ भस्मै॒तत् स्यो॒ने कृ॑णुध्वꣳ सुर॒भाऽउ॑ लो॒के।

तस्मै॑ नमन्तां॒ जन॑यः सु॒पत्नी॑र्मा॒तेव॑ पु॒त्रं बि॑भृता॒प्स्वे॒नत्॥३५॥

आप॑ः। दे॒वीः। प्रति॑। गृ॒भ्णी॒त॒। भस्म॑। ए॒तत्। स्यो॒ने। कृ॒णु॒ध्व॒म्। सु॒र॒भौ। ॐ इत्यूँ॑। लो॒के। तस्मै॑। न॒म॒न्ता॒म्। जन॑यः। सु॒पत्नी॒रिति॑ सु॒ऽपत्नीः॑। मा॒तेवेति॑ मा॒ताऽइ॑व। पु॒त्रम्। बि॒भृ॒त॒। अ॒प्स्वित्य॒प्ऽसु। ए॒न॒त्॥३५॥

पदार्थः-(**आपः**) पवित्रजलानीव सकलशुभगुणव्यापिकाः कन्या (**देवीः**) दिव्यरूपसुशीलाः (**प्रति**) (**गृभ्णीत**) स्वीकुर्वीत (**भस्म**) प्रदीपकं तेजः (**एतत्**) (**स्योने**) सुसुखकारिके (**कृणुध्वम्**) (**सुरभौ**) ऐश्वर्यप्रकाशके, अत्र षुर ऐश्वर्य्यदीप्त्योरित्यस्माद् बाहुलकादौणादिकोऽभिच् प्रत्ययः (उ) (**लोके**) द्रष्टव्ये (**तस्मै**) (**नमन्ताम्**) नम्राः सन्तु (**जनयः**) विद्यासुशिक्षया प्रादुर्भूताः (**सुपत्नीः**) शोभनाश्च ताः पत्न्यश्च ताः (**मातेव**) (**पुत्रम्**) (**बिभृत**) धरत (**अप्सु**) प्राणेषु (**एनत्**) अपत्यम्। [अयं मन्त्रः शत०६.८.२.३ व्याख्यातः]॥३५॥

अन्वयः-हे विद्वांसो मनुष्याः! या आपो देवीः सुरभौ लोके पतीन् सुखिनः कुर्वन्ति, ताः प्रतिगृभ्णीतैताः सुखिनीः कृणुध्वम्। यदेतद् भस्मास्ति, तस्मै याः सुपत्नीर्जनयो नमन्ति, ताः प्रति भवन्तोऽपि नमन्तामुभये मिलित्वा

पुत्रं मातेवाप्स्वेनद् बिभृत॥३५॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। मनुष्यैः परस्परं प्रसन्नतया स्वयंवरं विवाहं विधाय धर्मेण सन्तानानुत्पाद्यैतान् विदुषः कृत्वा गृहाश्रमैश्वर्य्यमुन्नेयम्॥३५॥

पदार्थः-हे विद्वान् मनुष्यो! जो (**आपः**) पवित्र जलों के तुल्य सम्पूर्ण शुभगुण और विद्याओं में व्याप्त बुद्धि (**देवीः**) सुन्दर रूप और स्वभाव वाली कन्या (**सुरभौ**) ऐश्वर्य्य के प्रकाश से युक्त (**लोके**) देखने योग्य लोकों में अपने पतियों को प्रसन्न करें, उन को (**प्रति गृभ्णीत**) स्वीकार करो तथा उन को सुखयुक्त (**कृणुध्वम्**) करो, जो (**एतत्**) यह (**भस्म**) प्रकाशक तेज है (**तस्मै**) उस के लिये जो (**सुपत्नीः**) सुन्दर (**जनयः**) विद्या और अच्छी शिक्षा से प्रसिद्ध हुई स्त्री नमती हैं, उनके प्रति आप लोग भी (**नमन्ताम्**) नम्र हूजिये (**उ**) और तुम स्त्री-पुरुष दोनों मिल के (**पुत्रम्**) पुत्र को (**मातेव**) माता के तुल्य (**अप्सु**) प्राणों में (**एनत्**) इस पुत्र को (**बिभृत**) धारण करो॥३५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि परस्पर प्रसन्नता के साथ स्वयंवर विवाह, धर्म के अनुसार पुत्रों को उत्पन्न और उन को विद्वान् करके गृहाश्रम के ऐश्वर्य्य की उन्नति करें॥३५॥

अप्स्वग्न इत्यस्य विरूप ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अथ जीवाः कथं कथं पुनर्जन्म प्राप्नुवन्तीत्याह॥

अब जीव किस किस प्रकार पुनर्जन्म को प्राप्त होते हैं, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अप्स्वग्ने सधिष्टव सौषधीरनु रुध्यसे। गर्भे सञ्जायसे पुनः॥३६॥

अप्स्वित्यप्ऽसु। अग्ने। सधिः। तव। सः। ओषधीः। अनु। रुध्यसे। गर्भे। सन्। जायसे। पुनरिति पुनः॥२६॥

पदार्थः-(**अप्सु**) जलेषु (**अग्ने**) अग्निवद्वर्त्तमान विद्वन् (**सधिः**) सोढा, अत्र वर्णव्यत्ययेन हस्य धः, इश्च प्रत्ययः (**तव**) (**सः**) **सोऽचि लोपे चेत्पादपूरणम्** [अष्टा०६.१.१३४] इति सन्धिः (**ओषधीः**) सोमादीन् (**अनु**) (**रुध्यसे**) (**गर्भे**) कुक्षौ (**सन्**) (**जायसे**) (**पुनः**)। [अयं मन्त्रः शत०६.८.२.४ व्याख्यातः]॥३६॥

अन्वयः-हे अग्ने अग्निरिव जीव! सधिर्यस्त्वमप्सु गर्भे ओषधीरनुरुध्यसे, स त्वं गर्भे स्थितः सन् पुनर्जायसे। इमावेव क्रमानुक्रमौ तव स्त इति जानीहि॥३६॥

भावार्थः-ये जीवाः शरीरं त्यजन्ति, ते वायावोषध्यादिषु च भ्रान्त्वा, गर्भं प्राप्य यथासमयं सशरीरा भूत्वा पुनर्जायन्ते॥३६॥

पदार्थः-हे (**अग्ने**) अग्नि के तुल्य विद्वान् जीव! जो तू (**सधिः**) सहनशील (**अप्सु**) जलों में (**ओषधीः**) सोमलता आदि ओषधियों को (**अनुरुध्यसे**) प्राप्त होता है, (**सः**) सो (**गर्भे**) गर्भ में (**सन्**) स्थित होकर (**पुनः**) फिर-फिर (**जायसे**) जन्म लेता है, ये ही दोनों प्रकार आने-जाने अर्थात् जन्म-मरण (**तव**) तेरे हैं, ऐसा जान॥३६॥

भावार्थः-जो जीव शरीर को छोड़ते हैं, वे वायु और ओषधि आदि पदार्थों से भ्रमण करते-करते गर्भाशय को प्राप्त होके नियत समय पर शरीर धारण करके प्रकट होते हैं॥३६॥

गर्भो असीत्यस्य विरूप ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगार्ष्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

पुनर्जीवस्य क्व क्व गतिर्भवतीत्याह॥

फिर जीव कहां-कहां जाता है, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

गर्भोऽअस्योषधीनां गर्भो वनस्पतीनाम्।

गर्भो विश्वस्य भूतस्याग्ने गर्भोऽअपामसि॥ ३७॥

गर्भः। असि। ओषधीनाम्। गर्भः। वनस्पतीनाम्। गर्भः। विश्वस्य। भूतस्य। अग्ने। गर्भः। अपाम्। असि॥ ३७॥

पदार्थः-(**गर्भः**) योऽनर्थान् गिरति विनाशयति सः। **गर्भो गृभेर्गृणात्यर्थे गिरत्यनर्थानिति यदा हि स्त्री गुणान् गृह्णाति गुणाश्चास्या गृह्यन्तेऽथ गर्भो भवति॥** (निरु०१०.२३) (**असि**) (**ओषधीनाम्**) सोमयवादीनाम् (**गर्भः**) (**वनस्पतीनाम्**) अश्वत्थादीनाम् (**गर्भः**) (**विश्वस्य**) सर्वस्य (**भूतस्य**) उत्पन्नस्य (**अग्ने**) देहान्तरप्रापक जीव (**गर्भः**) (**अपाम्**) प्राणानां जलानां वा (**असि**)। [अयं मन्त्रः शत०६.८.२.४ व्याख्यातः]॥३७॥

अन्वयः-हे अग्ने! अग्नितुल्यजीव यतस्त्वमग्निरिवौषधीनां गर्भो वनस्पतीनां गर्भः, विश्वस्य भूतस्य गर्भोऽपां गर्भश्चासि, तस्मात् त्वमजोऽसि॥३७॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे मनुष्याः! ये विद्युवत् सर्वान्तर्गता जीवा जन्मवन्तः सन्ति, तान् जानन्त्विति॥३७॥

पदार्थः-हे (**अग्ने**) दूसरे शरीर को प्राप्त होने वाले जीव! जिससे तू अग्नि के समान जो (**ओषधीनाम्**) सोमलता आदि वा यवादि ओषधियों के (**गर्भः**) दोषों के मध्य (**गर्भः**) गर्भ (**वनस्पतीनाम्**) पीपल आदि वनस्पतियों के बीच (**गर्भः**) शोधक (**विश्वस्य**) सब (**भूतस्य**) उत्पन्न हुए संसार के मध्य (**गर्भः**) ग्रहण करनेहारा और जो (**अपाम्**) प्राण वा जलों का (**गर्भः**) गर्भरूप भीतर रहनेहारा (**असि**) है, इसलिये तू अज अर्थात् स्वयं जन्मरहित (**असि**) है॥३७॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! तुम लोगों को चाहिये कि जो बिजुली के समान सब के अन्तर्गत जीव जन्म लेने वाले हैं, उनको जानो॥३७॥

प्रसद्येत्यस्य विरूप ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

मरणान्ते शरीरस्य का गतिः कार्य्येत्याह॥

मरण समय में शरीर का क्या होना चाहिये, यह विषये अगले मन्त्र में कहा है॥

प्रसद्य भस्मना योनिमपश्च पृथिवीमग्ने।

सꣳसृज्य मातृभिष्ट्वं ज्योतिष्मान् पुनरासदः॥ ३८॥

प्रसद्येति प्रऽसद्य। भस्मना। योनिम्। अपः। च। पृथिवीम्। अग्ने। संऽसृज्येति समऽसृज्य। मातृभिरिति मातृऽभिः। त्वम्। ज्योतिष्मान्। पुनः। आ। असदः॥ ३८॥

पदार्थः-(**प्रसद्य**) प्रगत्य (**भस्मना**) दग्धेन (**योनिम्**) देहधारणकारणम् (**अपः**) (**च**) अग्न्यादिकम् (**पृथिवीम्**) (**अग्ने**) प्रकाशमान (**संसृज्य**) संसर्गीभूत्वा (**मातृभिः**) (**त्वम्**) (**ज्योतिष्मान्**) प्रशस्तप्रकाशयुक्तः (**पुनः**)

पश्चात् **(आ)** **(असदः)** प्राप्नोषि। [अयं मन्त्रः शत०६.८.२.६ व्याख्यातः]॥३८॥

अन्वयः-हे अग्ने सूर्य्य इव ज्योतिष्मान्! त्वं भस्मना पृथिवीं चापश्च योनिं प्रसद्य मातृभिः सह संसृज्य पुनरासदः॥३८॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे जीवाः! भवन्तो यदा शरीरं त्यजत, तदैतद्भस्मीभूतं सत् पृथिव्यादिना सह संयुनक्ति, यूयमात्मानश्चाम्बाशरीरेषु गर्भाशयं प्रविश्य पुनः सशरीराः सन्तो विद्यमाना भवत॥३८॥

पदार्थः-हे **(अग्ने)** प्रकाशमान पुरुष सूर्य्य के समान **(ज्योतिष्मान्)** प्रशंसित प्रकाश से युक्त जीव! **(त्वम्)** तू **(भस्मना)** शरीर दाह के पीछे **(पृथिवीम्)** पृथिवी **(च)** अग्नि आदि और **(अपः)** जलों के बीच **(योनिम्)** देह धारण के कारण को **(प्रसद्य)** प्राप्त हो और **(मातृभिः)** माताओं के उदर में वास करके **(पुनः)** फिर **(आसदः)** शरीर को प्राप्त होता है॥३८॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे जीवो! तुम लोग जब शरीर को छोड़ो, तब यह शरीर राख रूप होकर पृथिवी आदि पांच भूतों के साथ मिल जाता है। तुम अर्थात् आत्मा माता के शरीर में गर्भाशय में पहुंच, फिर शरीर धारण किये हुए विद्यमान होते हो॥३८॥

पुनरासद्येत्यस्य विरूप ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथ मातापित्रपत्यानि परस्परं कथं वर्त्तेरन्नित्याह॥

अब माता-पिता और पुत्र आपस में कैसे वर्त्तें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

पुन॑रा॒सद्य॒ सद॑नम॒पश्च॑ पृथि॒वीम॑ग्ने।

शेषे॑ मा॒तुर्यथो॒पस्थे॒ऽन्तर॑स्याꣳ शि॒वत॑मः॥ ३९॥

पुन॒रिति॒ पुनः॑। आ॒सद्येत्या॒ऽसद्य॑। सद॑नम्। अ॒पः। च॒। पृ॒थि॒वीम्। अ॒ग्ने॒। शेषे॑। मा॒तुः। यथा॑। उ॒पस्थ॒ इत्यु॒पऽस्थे॑। अ॒न्तः। अ॒स्या॒म्। शि॒वत॑म॒ इति॑ शि॒वऽत॑मः॥ ३९॥

पदार्थः-**(पुनः)** **(आसद्य)** आगत्य **(सदनम्)** गर्भस्थानम् **(अपः)** **(च)** भोजनादिकम् **(पृथिवीम्)** भूमितलम् **(अग्ने)** इच्छादिगुणप्रकाशित **(शेषे)** स्वपिषि **(मातुः)** जनन्याः **(यथा)** **(उपस्थे)** उत्सङ्गे **(अन्तः)** आभ्यन्तरे **(अस्याम्)** मातरि **(शिवतमः)** अतिशयेन मङ्गलकारी। [अयं मन्त्रः शत०६.८.२.६ व्याख्यातः]॥३९॥

अन्वयः-हे अग्ने! यतस्त्वमपः पृथिवीं च सदनं पुनरासद्यास्यामन्तः शिवतमः सन् यथा बालो मातुरुपस्थे शेषे तस्मादस्यां शिवतमो भव॥३९॥

भावार्थः-पुत्रैर्यथा मातरः स्वापत्यानि सुखयन्ति, तथैवानुकूलया सेवया स्वमातरः सततमानन्दयितव्याः। न कदाचिन्मातापितृभ्यां विरोधः समाचरणीयः, न च मातापितृभ्यामेतेऽधर्मकुशिक्षायुक्ताः कदाचित् कार्य्याः॥३९॥

पदार्थः-हे **(अग्ने)**! इच्छा आदि गुणों से प्रकाशित जन! जिस कारण तू **(अपः)** जलों **(च)** और **(पृथिवीम्)** भूमितल के **(सदनम्)** स्थान को **(पुनः)** फिर-फिर **(आसद्य)** प्राप्त होके **(अस्याम्)** इस माता के **(अन्तः)** गर्भाशय में **(शिवतमः)** मङ्गलकारी होके **(यथा)** जैसे **(मातुः)** माता की **(उपस्थे)** गोद में **(शेषे)** सोता है, वैसे ही माता की सेवा में मङ्गलकारी हो॥३९॥

भावार्थः-पुत्रों को चाहिये कि जैसे माता अपने पुत्रों को सुख देती है, वैसे ही अनुकूल सेवा से अपनी माताओं को निरन्तर आनन्दित करें और माता-पिता के साथ विरोध कभी न करें और माता-पिता को भी चाहिये कि अपने पुत्रों को अधर्म और कुशिक्षा से युक्त कभी न करें॥३९॥

पुनरुर्जेत्यस्य वत्सप्रीर्ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनः पुत्रैर्जनकजननीभ्यां परस्परं वर्त्तमानं योग्यं कार्य्यमित्याह॥

फिर पुत्रों को माता-पिता के विषय में परस्पर योग्य वर्त्ताव करना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

पुन॑रू॒र्जा निव॑र्त्तस्व॒ पुन॑रग्नऽइ॒षायु॑षा। पुन॑र्नः पा॒ह्यꣳह॑सः॥४०॥

पुनः॑। ऊ॒र्जा। नि। व॒र्त्त॒स्व॒। पुनः॑। अ॒ग्ने॒। इ॒षा। आयु॑षा। पुनः॑। न॒ः। पा॒हि॒। अꣳह॑सः॥४०॥

पदार्थः-(**पुनः**) (**ऊर्जा**) पराक्रमेण (**नि**) (**वर्त्तस्व**) (**पुनः**) (**अग्ने**) (**इषा**) अन्नेन (**आयुषा**) जीवनेन (**पुनः**) (**नः**) अस्मभ्यम् (**पाहि**) (**अंहसः**) पापाचरणात्। [अयं मन्त्रः शत०६.८.२.६ व्याख्यातः]॥४०॥

अन्वयः-हे अग्ने मातः पितश्च! त्वमिषायुषा सह नो वर्धय पुनरंहसः पाहि। हे पुत्र! त्वमूर्जा सह निवर्त्तस्व। पुनर्नोऽस्मानंहसः पाहि॥४०॥

भावार्थः-यथा विद्वांसो मातापितरः सुसन्तानान् विद्यया सुशिक्षया दुष्टाचारात् पृथग् रक्षेयुस्तथाऽपत्यान्यप्येतान् पापाचरणात् सततं पृथग् रक्षेयुः। नैवं विना सर्वे धर्मचारिणो भवितुं शक्नुवन्ति॥४०॥

पदार्थः-हे (**अग्ने**) तेजस्विन् माता-पिता! आप (**इषायुषा**) अन्न और जीवन के साथ (**नः**) हम लोगों को बढ़ाइये (**पुनः**) बार-बार (**अंहसः**) दुष्ट आचरणों से (**पाहि**) रक्षा कीजिये। हे पुत्र! तू (**ऊर्जा**) पराक्रम के साथ पापों से (**निवर्त्तस्व**) अलग हूजिये और (**पुनः**) फिर हम लोगों को भी पापों से पृथक् रखिये॥४०॥

भावार्थः-जैसे विद्वान् माता-पिता अपने सन्तानों को विद्या और अच्छी शिक्षा से दुष्टाचारों से पृथक् रक्खें, वैसे ही सन्तानों को भी चाहिये कि इन माता-पिताओं को बुरे व्यवहार से निरन्तर बचावें, क्योंकि इस प्रकार किये विना सब मनुष्य धर्मात्मा नहीं हो सकते॥४०॥

सह रय्येत्यस्य वत्सप्रीर्ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

विद्वद्भिः कथं वर्तितव्यमित्याह॥

विद्वानों को कैसे वर्त्तना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

स॒ह र॒य्या निव॑र्त्त॒स्वाग्ने॒ पिन्व॑स्व॒ धार॑या। वि॒श्वप्स्न्या॑ वि॒श्वत॒स्परि॑॥४१॥

स॒ह। र॒य्या। नि। व॒र्त्त॒स्व॒। अग्ने॑। पिन्व॑स्व। धार॑या। वि॒श्वप्स्न्येति॑ वि॒श्वऽप्स्न्या॑। वि॒श्वतः॑। परि॑॥४१॥

पदार्थः-(**सह**) (**रय्या**) श्रीप्रापिकया (**नि**) (**वर्त्तस्व**) (**अग्ने**) विद्वन् (**पिन्वस्व**) सेवस्व (**धारया**) सुसंस्कृतया वाचा (**विश्वप्स्न्या**) विश्वान् सर्वान् भोगान् यया प्साति तया (**विश्वतः**) सर्वस्य जगतः (**परि**) मध्ये। [अयं मन्त्रः शत०६.८.२.६ व्याख्यातः]॥४१॥

अन्वयः-हे अग्ने! त्वं विश्वप्स्न्या रय्या धारया सह विश्वतस्परि निवर्त्तस्वास्मान् पिन्वस्व च॥४१॥

भावार्थः-विद्वद्भिर्मनुष्यैरस्मिन् जगति सुबुद्ध्या पुरुषार्थेन श्रीमन्तो भूत्वाऽन्येऽपि धनवन्तः सम्पादनीयाः॥४१॥

पदार्थः-हे **(अग्ने)** विद्वन् पुरुष! आप **(विश्वप्स्न्या)** सब पदार्थों के भोगने का साधन **(रय्या)** लक्ष्मी को प्राप्त कराने वाली **(धारया)** अच्छी संस्कृत वाणी के **(सह)** साथ **(विश्वतस्परि)** सब संसार के बीच **(नि)** निरन्तर **(वर्त्तस्व)** वर्त्तमान हूजिये और हम लोगों का **(पिन्वस्व)** सेवन कीजिये॥४१॥

भावार्थः-विद्वान् मनुष्यों को चाहिये कि इस जगत् में अच्छी बुद्धि और पुरुषार्थ के साथ श्रीमान् होकर अन्य मनुष्यों को भी धनवान् करें॥४१॥

बोधा म इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। अग्निर्देवता। विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

मनुष्याः परस्परमध्ययनाध्यापनं कथं कुर्युरित्याह॥

मनुष्य लोग आपस में कैसे पढ़ें और पढ़ावें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

बोधा मेऽअस्य वचसो यविष्ठ मꣳहिष्ठस्य प्रभृतस्य स्वधावः।

पीयति त्वोऽअनु त्वो गृणाति वन्दारुष्टे तन्वं वन्देऽअग्ने॥४२॥

बोध। मे। अस्य। वचसः। यविष्ठ। मꣳहिष्ठस्य। प्रभृतस्येति प्रऽभृतस्य। स्वधाव इति स्वधाऽवः। पीयति। त्वः। अनु। त्वः। गृणाति। वन्दारुः। ते। तन्वम्। वन्दे। अग्ने॥४२॥

पदार्थः-**(बोध)** अवगच्छ। अत्र **द्व्यचोऽतस्तिङः** [अष्टा०६.३.१३५] इति दीर्घः **(मे)** मम **(अस्य)** वर्त्तमानस्य **(वचसः)** **(यविष्ठ)** अतिशयेन युवन् **(मंहिष्ठस्य)** अतिशयेन भाषितुं योग्यस्य महतः **(प्रभृतस्य)** प्रकर्षेण धारकस्य पोषकस्य वा **(स्वधावः)** प्रशस्ता स्वधा बहून्यन्नानि विद्यन्ते यस्य सः **(पीयति)** निन्देत्, अत्रानेकार्था अपि धातवो भवन्तीति निन्दार्थः **(त्वः)** कश्चित् निन्दकः **(अनु)** पश्चात् **(त्वः)** कश्चित् **(गृणाति)** स्तुयात् **(वन्दारुः)** अभिवादनशीलः **(ते)** तव **(तन्वम्)** शरीरम् **(वन्दे)** स्तुवे **(अग्ने)** श्रोतः। [अयं मन्त्रः शत०६.८.२.९ व्याख्यातः]॥४२॥

अन्वयः-हे यविष्ठ स्वधावोऽग्ने! त्वं मे मम प्रभृतस्य मंहिष्ठस्यास्य वचसोऽभिप्रायं बोध। यदि त्वो यं त्वां पीयति निन्देत् त्वोऽनुगृणाति स्तुयात् यस्य ते तव तन्वं वन्दारुरहं वन्दे॥४२॥

भावार्थः-यदा कश्चित् कंचिदध्यापयेदुपदिशेद् वा तदाऽध्येता श्रोता च ध्यानं दत्त्वाऽधीयीत शृणुयाच्च, यदा सत्यासत्ययोर्निर्णयः स्यात्, तदा सत्यं गृह्णीयादसत्यं त्यजेद्, एवं कृते सति कश्चिन्निन्द्यात् कश्चित् स्तुयात्, तर्ह्यपि कदाचित् सत्यं न त्यजेदनृतं च न भजेदिदमेव मनुष्यस्यासाधारणो गुणः॥४२॥

पदार्थः-हे **(यविष्ठ)** अत्यन्त जवान **(स्वधावः)** प्रशंसित बहुत अन्नों वाले **(अग्ने)** उपदेश के योग्य श्रोता जन! तू **(मे)** मेरे **(प्रभृतस्य)** अच्छे प्रकार से धारण वा पोषण करने वाले **(मंहिष्ठस्य)** अत्यन्त कहने योग्य **(अस्य)** इस **(वचसः)** वचन के अभिप्राय को **(बोध)** जान, जो **(त्वः)** यह निन्दक पुरुष **(पीयति)** निन्दा करे, **(त्वः)** कोई **(अनु)** परोक्ष में **(गृणाति)** स्तुति करे, उस **(ते)** आप के **(तन्वम्)** शरीर को **(वन्दारुः)** अभिवादनशील मैं **(वन्दे)** स्तुति करता हूँ॥४२॥

भावार्थः-जब कोई किसी को पढ़ावे वा उपदेश करे, तब पढ़ने वाला ध्यान देकर पढ़े वा सुने। जब सत्य

वा मिथ्या का निश्चय हो जावे, तब सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग कर देवे। ऐसे करने में कोई निन्दा और स्तुति करे तो भी सत्य को कभी न छोड़े और मिथ्या का ग्रहण कभी न करे। यही मनुष्यों के लिये विशेष गुण है॥४२॥

स बोधीत्यस्य सोमाहुतिर्ऋषिः। अग्निर्देवता। आर्ची पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

मनुष्याः किं कृत्वा किं प्राप्नुयुरित्याह॥

मनुष्य लोग क्या करके किस को प्राप्त हों, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

स बो॑धि सू॒रिर्म॒घवा॒ वसु॑पते॒ वसु॑दावन्।

यु॒यो॒ध्य॒स्मद् द्वेषा॑ꣳसि वि॒श्वक॑र्मणे॒ स्वाहा॑॥४३॥

सः। बो॒धि॒। सू॒रिः। म॒घवेति॑ म॒घऽवा॑। वसु॑पत॒ इति॒ वसु॑ऽपते। वसु॑दाव॒न्निति॒ वसु॑ऽदावन्। यु॒यो॒धि। अ॒स्मत्। द्वेषा॑ꣳसि। वि॒श्वक॑र्मण॒ इति॑ वि॒श्वऽक॑र्मणे। स्वाहा॑॥४३॥

पदार्थः-(**सः**) श्रोता वक्ता च (**बोधि**) बुध्येत (**सूरिः**) मेधावी (**मघवा**) पूजितविद्यायुक्तः (**वसुपते**) वसूनां धनानां पालक (**वसुदावन्**) वसूनि धनानि सुपात्रेभ्यो ददाति तत्सम्बुद्धौ (**युयोधि**) वियोजय (**अस्मत्**) अस्माकं सकाशात् (**द्वेषांसि**) द्वेषयुक्तानि कर्माणि (**विश्वकर्मणे**) अखिलशुभकर्मानुष्ठानाय (**स्वाहा**) सत्यां वाणीम्। [अयं मन्त्रः शत०६.८.२.९ व्याख्यातः]॥४३॥

अन्वयः-हे वसुपते वसुदावन्! यो मघवा सूरिर्भवान् सत्यं बोधि, स विश्वकर्मणे स्वाहा सत्यवाणीमुपदिशन् संस्त्वमस्मद् द्वेषांसि वियुयोधि सततं दूरीकुरु॥४३॥

भावार्थः-ये मनुष्याः! ब्रह्मचर्य्येण जितेन्द्रिया भूत्वा द्वेषं विहाय धर्मेणोपदिश्य श्रुत्वा च प्रयतन्ते, त एव धार्मिका विद्वांसोऽखिलं सत्यासत्यं ज्ञातुमुपदेष्टुं चार्हन्ति, नेतरे हठाभिमानयुक्ताः क्षुद्राशयाः॥४३॥

पदार्थः-हे (**वसुपते**) धनों के पालक (**वसुदावन्**) सुपुत्रों के लिये धन देने वाले जो (**मघवा**) प्रशंसित विद्या से युक्त (**सूरिः**) बुद्धिमान् आप सत्य को (**बोधि**) जानें, (**सः**) सो आप (**विश्वकर्म्मणे**) सम्पूर्ण शुभ कर्मों के अनुष्ठान के लिये (**स्वाहा**) सत्य वाणी का उपदेश करते हुए आप (**अस्मत्**) हमसे (**द्वेषांसि**) द्वेषयुक्त कर्मों से (**युयोधि**) पृथक् कीजिये॥४३॥

भावार्थः-जो मनुष्य ब्रह्मचर्य्य के साथ जितेन्द्रिय हो, द्वेष को छोड़, धर्मानुसार उपदेश कर और सुन के प्रयत्न करते हैं, वे ही धर्मात्मा विद्वान् लोग सम्पूर्ण सत्य-असत्य के जानने और उपदेश करने के योग्य होते हैं, और अन्य हठ अभिमान युक्त क्षुद्र पुरुष नहीं॥४३॥

पुनस्त्वेत्यस्य सोमाहुतिर्ऋषिः। अग्निर्देवता। स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

कीदृशा मनुष्याः सत्यसङ्कल्पा भवन्तीत्युपदिश्यते॥

कैसे मनुष्यों के संकल्प सिद्ध होते हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

पुन॑स्त्वादि॒त्या रु॒द्रा वस॑वः॒ समि॑न्धतां॒ पुन॑र्ब्र॒ह्माणो॑ वसुनीथ य॒ज्ञैः।

घृ॒तेन॒ त्वं त॒न्वं॒ वर्धयस्व स॒त्याः स॑न्तु॒ यज॑मानस्य॒ कामाः॑॥४४॥

पुनरिति पुनः। त्वा। आदित्याः। रुद्राः। वसवः। सम्। इन्धताम्। पुनः। ब्रह्माणः। वसुनीथेति वसुऽनीथ। यज्ञैः। घृतेन। त्वम्। तन्वम्। वर्धयस्व। सत्याः। सन्तुः। यजमानस्य। कामाः॥४४॥

पदार्थः-(**पुनः**) अध्ययनाध्यापनाभ्यां पश्चात् (**त्वा**) त्वाम् (**आदित्याः**) पूर्णविद्याबलयुक्ताः (**रुद्राः**) मध्यस्थाः (**वसवः**) प्रथमे च विद्वांसः (**सम्**) (**इन्धताम्**) प्रकाशयन्तु (**पुनः**) (**ब्रह्माणाः**) चतुर्वेदाध्ययनेन ब्रह्मा इति संज्ञां प्राप्ताः (**वसुनीथ**) वेदादिशास्त्रबोधाख्यं सुवर्णादिधनं न च यो नयति तत्सम्बुद्धौ (**यज्ञैः**) अध्ययनाध्यापनादि-क्रियामयैः (**घृतेन**) सुसंस्कृतेनाज्यादिना जलेन वा (**त्वम्**) अध्यापकः श्रोता वा (**तन्वम्**) शरीरम् (**वर्धयस्व**) (**सत्याः**) सत्सु धर्मेषु साधवः (**सन्तु**) भवन्तु (**यजमानस्य**) यष्टुं सङ्गन्तुं विदुषः पूजितुं च शीलं यस्य तस्य (**कामाः**) अभिलाषाः। [अयं मन्त्रः शत०६.६.४.१२ व्याख्यातः]॥४४॥

अन्वयः-हे वसुनीथ त्वं यज्ञैर्घृतेन च तन्वं शरीरं नित्यं वर्धयस्व, पुनस्त्वा त्वामादित्या रुद्रा वसवो ब्रह्माणाः समिन्धताम्। एवमनुष्ठानाद् यजमानस्य कामाः सत्याः सन्तु॥४४॥

भावार्थः-ये प्रयत्नेन सर्वा विद्या अधीत्याध्याप्य च पुनः पुनः सत्सङ्गं कुर्वन्ति, कुपथ्यविषयत्यागेन शरीरात्मनोरारोग्यं वर्धयित्वा नित्यं पुरुषार्थमनुतिष्ठन्ति, तेषामेव संकल्पाः सत्याः भवन्ति, नेतरेषाम्॥४४॥

पदार्थः-हे (**वसुनीथ**) वेदादि शास्त्रों के बोधरूप और सुवर्णादि धन प्राप्त कराने वाले (**त्वम्**) आप (**यज्ञैः**) पढ़ने-पढ़ाने आदि क्रियारूप यज्ञों और (**घृतेन**) अच्छे संस्कार किये हुए घी आदि वा जल से (**तन्वम्**) शरीर को नित्य (**वर्धयस्व**) बढ़ाइये। (**पुनः**) पढ़ने-पढ़ाने के पीछे (**त्वा**) आप को (**आदित्याः**) पूर्ण विद्या के बल से युक्त (**रुद्राः**) मध्यस्थ विद्वान् और (**वसवः**) प्रथम विद्वान् लोग (**ब्रह्माणः**) चार वेदों को पढ़ के ब्रह्मा की पदवी को प्राप्त हुए विद्वान् (**समिन्धताम्**) सम्यक् प्रकाशित करें। इस प्रकार के अनुष्ठान से (**यजमानस्य**) यज्ञ, सत्सङ्ग और विद्वानों का सत्कार करने वाले पुरुष की (**कामाः**) कामना (**सत्याः**) सत्य (**सन्तु**) होवें॥४४॥

भावार्थः-जो मनुष्य प्रयत्न के साथ सब विद्याओं को पढ़ के और पढ़ा के बारंबार सत्सङ्ग करते हैं, कुपथ्य और विषय के त्याग से शरीर तथा आत्मा के आरोग्य बढ़ा के नित्य पुरुषार्थ का अनुष्ठान करते हैं, उन्ही के संकल्प सत्य होते हैं, दूसरों के नहीं॥४४॥

अपेतेत्यस्य सोमाहुतिर्ऋषिः। पितरो देवताः। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ जन्यजनकाः किं किं कर्माचरेयुरित्याह॥

सन्तान और पिता-माता परस्पर किन-किन कर्मों का आचरण करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अपेत वीत वि च सर्पतातो येऽत्र स्थ पुराणा ये च नूतनाः।
अदाद्यमोऽवसानं पृथिव्याऽअक्रन्निमं पितरो लोकमस्मै॥४५॥

अप। इत। वि। इत। वि। च। सर्पत। अतः। ये। अत्र। स्थ। पुराणाः। ये। च। नूतनाः। अदात्। यमः। अवसानमित्यवऽसानम्। पृथिव्याः। अक्रन्। इमम्। पितरः। लोकम्। अस्मै॥४५॥

पदार्थः-(**अप**) (**इत**) त्यजत (**वि**) (**इत**) विविधतया प्राप्नुत (**वि**) (**च**) (**सर्पत**) गच्छत (**अतः**)

कारणात् **(ये)** **(अत्र)** अस्मिन् समये **(स्थ)** भवथ **(पुराणाः)** प्रागधीतविद्याः **(ये)** **(च)** **(नूतनाः)** संप्रतिगृहीतविद्याः **(अदात्)** दद्यात् **(यमः)** उपरतः परीक्षकः **(अवसानम्)** अवकाशमधिकारं वा **(पृथिव्याः)** भूमेर्मध्ये वर्त्तमानाः **(अक्रन्)** कुर्वन्तु **(इमम्)** प्रत्यक्षम् **(पितरः)** जनका अध्यापका उपदेशकाः परीक्षका वा **(लोकम्)** आर्षं दर्शनम् **(अस्मै)** सत्यसंकल्पाय। [अयं मन्त्रः शत०७.१.१.१ व्याख्यातः]॥४५॥

अन्वयः-हे विद्वांसः येऽत्र पृथिव्या मध्ये पुराणा ये च नूतनाः पितरः स्थ, तेऽस्मै इमं लोकमक्रन्। यान् युष्मान् यमोऽवसानमदात्, ते यूयमतोऽधर्मादपेत धर्म्मं वीतात्रैव च विसर्पत॥४५॥

भावार्थः-अयमेव मातापित्राचार्याणां परमो धर्मोऽस्ति यत्सन्तानेभ्यो विद्यासुशिक्षाप्राप्तिकारणं येऽधर्मान्मुक्ता धर्मेण युक्ताः परोपकारप्रिया वृद्धा युवानश्च विद्वांसः सन्ति, ते सततं सत्योपदेशेनाविद्यां निवर्त्य विद्यां जनयित्वा कृतकृत्या भवन्तु॥४५॥

पदार्थः-हे विद्वान् लोगो! जो **(ये)** जो **(अत्र)** इस समय **(पृथिव्याः)** भूमि के बीच वर्त्तमान **(पुराणाः)** प्रथम विद्या पढ़ चुके **(च)** और **(ये)** जो **(नूतनाः)** वर्त्तमान समय में विद्याभ्यास करने हारे **(पितरः)** पिता=पढ़ाने, उपदेश करने और परीक्षा करने वाले **(स्थ)** होवें, वे **(अस्मै)** इस सत्यसंकल्पी मनुष्य के लिये **(इमम्)** इस **(लोकम्)** वैदिक ज्ञान सिद्ध लोक को **(अक्रन्)** सिद्ध करें। जिन तुम लोगों को **(यमः)** प्राप्त हुआ परीक्षक पुरुष **(अवसानम्)** अवकाश वा अधिकार को **(अदात्)** देवे, वे तुम लोग **(अतः)** इस अधर्म से **(अपेत)** पृथक् रहो और धर्म्म को **(वीत)** विशेष कर प्राप्त होओ **(अत्र)** और इसी में **(विसर्पत)** विशेषता से गमन करो॥४५॥

भावार्थः-माता-पिता और आचार्य्य का यही परम धर्म है-जो सन्तानों के लिये विद्या और अच्छी शिक्षा को प्राप्त कराना। जो अधर्म से पृथक् और धर्म्म से युक्त परोपकार में प्रीति रखने वाले वृद्ध और जवान विद्वान् लोग हैं, वे निरन्तर सत्य उपदेश से अविद्या का निवारण और विद्या की प्रवृत्ति करके कृतकृत्य होवें॥४५॥

संज्ञानमित्यस्य सोमाहुतिर्ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अध्येत्रध्यापकाः किं कृत्वा सुखिनः स्युरित्याह॥

पढ़ने-पढ़ाने वाले क्या करके सुखी हों, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

संज्ञानमसि कामधरणं मयि ते कामधरणं भूयात्।

अग्नेर्भस्मास्यग्नेः पुरीषमसि चित स्थ परिचितऽऊर्ध्वचितः श्रयध्वम्॥४६॥

संज्ञानमिति सम्ऽज्ञानम्। असि। कामधरणमिति कामऽधरणम्। मयि। ते। कामधरणमिति कामऽधरणम्। भूयात्। अग्नेः। भस्म। असि। अग्नेः। पुरीषम्। असि। चितः। स्थ। परिचित इति परिऽचितः। ऊर्ध्वचित इत्यूर्ध्वऽचितः। श्रयध्वम्॥४६॥

पदार्थः-**(संज्ञानम्)** सम्यग्विज्ञानम् **(असि)** **(कामधरणम्)** संकल्पानामाधरणम् **(मयि)** **(ते)** तव **(कामधरणम्)** **(भूयात्)** **(अग्नेः)** पावकस्य **(भस्म)** दग्धदोषः **(असि)** **(अग्नेः)** विद्युतः **(पुरीषम्)** पूर्णं बलम् **(असि)** **(चितः)** सञ्चिताः **(स्थ)** भवत **(परिचितः)** परितः सर्वतः सञ्चेतारः **(ऊर्ध्वचितः)** ऊर्ध्वं सञ्चिन्वन्तः **(श्रयध्वम्)** सेवध्वम्। [अयं मन्त्रः शत०७.१.१.८-१४ व्याख्यातः]॥४६॥

अन्वयः-हे विद्वन्! त्वं यत्संज्ञां प्राप्तोऽसि, यत् त्वमग्नेर्भस्मास्याग्नेर्यत्पुरीषमाप्तोऽसि तन्मां प्रापय। यस्य ते तव यत्कामधरणमस्ति तत्कामधरणं मयि भूयाद्, यथा यूयं विद्यादिशुभगुणैश्चितः परिचितः ऊर्ध्वचितः स्थ पुरुषार्थं चाश्रयध्वम्, तथा वयमपि भवेम॥४६॥

भावार्थः-जिज्ञासवः सदा विदुषां सकाशाद्विद्याः प्रार्थ्य पृच्छेयुर्यावद् युष्मासु पदार्थविज्ञानमस्ति, तावत् सर्वमस्मासु धत्त। यावतीर्हस्तक्रिया भवन्तो जानन्ति, तावतीरस्मान् शिक्षत, यथा वयं भवदाश्रिता भवेम, तथैव भवन्तोऽप्यस्माकमाश्रयाः सन्तु॥४६॥

पदार्थः-हे विद्वन्! आप जिस **(संज्ञानम्)** पूरे विज्ञान को प्राप्त **(असि)** हुए हो, जो आप **(अग्नेः)** अग्नि से हुई **(भस्म)** राख के समान दोषों के भस्मकर्त्ता **(असि)** हो, **(अग्नेः)** बिजुली के जिस **(पुरीषम्)** पूर्ण बल को प्राप्त हुए **(असि)** हो, उस विज्ञान, भस्म और बल को मेरे लिये भी दीजिये। जिस **(ते)** आप का जो **(कामधरणम्)** सङ्कल्पों का आधार अन्तःकरण है, वह **(कामधरणम्)** कामना का आधार **(मयि)** मुझ में **(भूयात्)** होवे। जैसे तुम लोग विद्या आदि शुभगुणों से **(चितः)** इकट्ठे हुए **(परिचितः)** सब पदार्थों को सब ओर से इकट्ठे करने हारे **(ऊर्ध्वचितः)** उत्कृष्ट गुणों के संचयकर्त्ता पुरुषार्थ को आप **(श्रयध्वम्)** सेवन करो, वैसे हम लोग भी करें॥४६॥

भावार्थः-जिज्ञासु मनुष्यों को चाहिये कि सदैव विद्वानों से विद्या की इच्छा कर प्रश्न किया करें कि जितना तुम लोगों में पदार्थों का विज्ञान है, उतना सब तुम लोग हम लोगों में धारण करो और जितना हस्तक्रिया आप जानते हैं, उतनी सब हम लोगों को सिखाइये, जैसे हम लोग आपके आश्रित हैं, वैसे ही आप भी हमारे आश्रय हूजिये॥४६॥

अयं स इत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः। अग्निर्देवता। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

मनुष्यैरुत्तमाचरणानुकरणं कार्य्यमित्याह॥

मनुष्यों को उत्तम आचरणों के अनुसार वर्त्तना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अयꣳसोऽअग्निर्यस्मिन्त्सोममिन्द्रः सुतं दधे जठरे वावशानः।

सहस्त्रियं वाजमत्यं न सप्तिꣳ ससवान्त्सन्त्स्तूयसे जातवेदः॥४७॥

अयम्। सः। अग्निः। यस्मिन्। सोमम्। इन्द्रः। सुतम्। दधे। जठरे। वावशानः। सहस्त्रियम्। वाजम्। अत्यम्। न। सप्तिम्। ससवानिति ससऽवान्। सन्। स्तूयसे। जातवेद इति जातऽवेदः॥४७॥

पदार्थः-**(अयम्)** **(सः)** **(अग्निः)** **(यस्मिन्)** **(सोमम्)** सर्वौषध्यादिरसम् **(इन्द्रः)** सूर्य्यः **(सुतम्)** निष्पन्नम् **(दधे)** धरे **(जठरे)** उदरे। **जठरमुदरं भवति जग्धमस्मिन् ध्रियते धीयते वा॥** (निरु०४.७) **(वावशानः)** भृशं कामयमानः **(सहस्त्रियम्)** सहप्राप्ताम् भार्य्याम् **(वाजम्)** अन्नादिकम् **(अत्यम्)** अतितुं व्याप्तुं योग्यम् **(न)** इव **(सप्तिम्)** अश्वम् **(ससवान्)** ददत् **(सन्)** **(स्तूयसे)** प्रशस्यसे **(जातवेदः)** उत्पन्नविज्ञान। [अयं मन्त्रः शत०७.१.१.२२ व्याख्यातः]॥४७॥

अन्वयः-हे जातवेदः! यथा ससवान्सँस्त्वं स्तूयसेऽयमग्निरिन्द्रश्च यस्मिन् सोमं दधाति, यं सुतं जठरेऽहं दधे, सोऽहं वावशानः सन् सहस्त्रियं दधे। त्वया सह वाजमत्यं न सप्तिं दधे, तादृशस्त्वं भव॥४७॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। यथा विद्युत्सूर्यौ सर्वान् रसान् गृहीत्वा जगद्रसयतो यथा पत्या

सह स्त्री स्त्रिया सह पतिश्चानन्दं भुङ्क्ते, तथाऽहमेतद्दधे। यथा सद्गुणैर्युक्तस्त्वं स्तूयसे, तथाऽहमपि प्रशंसितो भवेयम्॥४७॥

पदार्थः-हे **(जातवेदः)** विज्ञान को प्राप्त हुए विद्वन्! जैसे **(ससवान्)** दान देते **(सन्)** हुए आप **(स्तूयसे)** प्रशंसा के योग्य हो, **(अयम्)** यह **(अग्निः)** अग्नि और **(इन्द्रः)** सूर्य्य **(यस्मिन्)** जिसमें **(सोमम्)** सब ओषधियों के रस को धारण करता है, जिस **(सुतम्)** सिद्ध हुए पदार्थ को **(जठरे)** पेट में मैं **(दधे)** धारण करता हूं, **(सः)** वह मैं **(वावशानः)** शीघ्र कामना करता हुआ **(सहस्त्रियम्)** साथ वर्त्तमान अपनी स्त्री को धारण करता हूं, आप के साथ **(वाजम्)** अन्न आदि पदार्थों को **(अत्यम्)** व्याप्त होने योग्य के **(न)** समान **(सप्तिम्)** घोड़े को **(दधे)** धारण करता हूं, वैसा ही तू भी हो॥४७॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार और उपमालङ्कार हैं। जैसे बिजुली और सूर्य, सब रसों का ग्रहण कर जगत् को रसयुक्त करते हैं वा जैसे पति के साथ स्त्री और स्त्री के साथ पति आनन्द भोगते हैं, वैसे मैं इस सब को धारण करता हूं। जैसे श्रेष्ठ गुणों से युक्त आप प्रशंसा के योग्य हो, वैसें मैं भी प्रशंसा के योग्य होऊं॥४७॥

अग्ने यत इत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अध्यापकैर्निष्कपटत्वेन सर्वे विद्यार्थिनः पाठनीया इत्याह॥

अध्यापक लोगों को निष्कपटता से सब विद्यार्थीजन पढ़ाने चाहियें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अग्ने यत्ते दिवि वर्चः पृथिव्यां यदोषधीष्वप्स्वा यजत्र।
येनान्तरिक्षमुर्वाततन्थ त्वेषः स भानुरर्णवो नृचक्षाः॥४८॥

अग्ने। यत्। ते। दिवि। वर्चः। पृथिव्याम्। यत्। ओषधीषु। अप्स्वित्यप्ऽसु। आ। यजत्र। येन। अन्तरिक्षम्। उरु। आततन्थेत्याऽततन्थ। त्वेषः। सः। भानुः। अर्णवः। नृचक्षा इति नृऽचक्षाः॥४८॥

पदार्थः-**(अग्ने)** विद्वन् **(यत्)** यस्य **(ते)** तव **(दिवि)** द्योतनात्मके विद्युदादौ **(वर्चः)** विज्ञानप्रकाशः **(पृथिव्याम्)** भूमौ **(यत्)** **(ओषधीषु)** यवादिषु **(अप्सु)** प्राणेषु जलेषु वा **(आ)** **(यजत्र)** सङ्गन्तुं योग्य **(येन)** **(अन्तरिक्षम्)** आकाशम् **(उरु)** बहु **(आ ततन्थ)** समन्तात्तनु हि **(त्वेषः)** प्रकाशः **(सः)** **(भानुः)** प्रभाकरः **(अर्णवः)** अर्णांसि बहून्युदकानि विद्यन्ते यस्मिन् सः। **अर्णसो लोपश्च॥** (अष्टा०वा०५.२.१०९) इति मत्वर्थे वः सलोपश्च **(नृचक्षाः)** नॄन् चक्षते सः॥४८॥

अन्वयः-हे यजत्राग्ने! यद्यस्य ते तवाऽग्नेरिव दिवि वर्चः यत् पृथिव्यामोषधीष्वप्सु वर्चोऽस्ति, येन नृचक्षा भानुरर्णवस्त्वेषो येनान्तरिक्षमुर्वाततन्थ, तथा स त्वं तदस्मासु धेहि॥४८॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यस्मिन् जगति यस्य सृष्टिपदार्थविज्ञानं यादृशं स्यात् तादृशं सद्योऽन्यान् ग्राहयेत्। यदि न ग्राहयेत् तर्हि तन्नष्टं सदन्यैः प्राप्तुमशक्यं स्यात्॥४८॥

पदार्थः-हे **(यजत्र)** सङ्गम करने योग्य **(अग्ने)** विद्वन् **(यत्)** जिस **(ते)** आप का अग्नि के समान **(दिवि)** द्योतनशील आत्मा में **(वर्चः)** विज्ञान का प्रकाश **(यत्)** जो **(पृथिव्याम्)** पृथिवी **(ओषधीषु)** यवादि ओषधियों और

(अप्सु) प्राणों वा जलों में **(वर्चः)** तेज है, **(येन)** जिससे **(नृचक्षाः)** मनुष्यों को दिखाने वाला **(भानुः)** सूर्य **(अर्णवः)** बहुत जलों को वर्षाने हारा **(त्वेषः)** प्रकाश है, **(येन)** जिससे **(अन्तरिक्षम्)** आकाश को **(उरु)** बहुत **(आ ततन्थ)** विस्तारयुक्त करते हो, **(सः)** सो आप वह सब हम लोगों में धारण कीजिये॥४८॥

भावार्थः-यहां वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। इस जगत् में जिस को सृष्टि के पदार्थों का विज्ञान जैसा होवे, वैसा ही शीघ्र दूसरों को बतावें। जो कदाचित् दूसरों को न बतावे, तो वह नष्ट हुआ किसी को प्राप्त नहीं हो सके॥४८॥

अग्ने दिव इत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अग्ने॑ दि॒वोऽअर्ण॒मच्छा॑ जिगा॒स्यच्छा॑ दे॒वाँ२ऽऊ॑चिषे॒ धिष्ण्या॒ ये।

या रो॑च॒ने प॒रस्ता॒त् सूर्य॑स्य॒ याश्चा॒वस्ता॑दुप॒तिष्ठ॑न्त॒ऽआप॑ः॥४९॥

अग्ने॑। दि॒वः। अर्ण॑म्। अच्छ॑। जि॒गा॒सि॒। अच्छ॑। दे॒वान्। ऊ॒चि॒षे॒। धिष्ण्या॑ः। ये। याः। रो॒च॒ने। प॒रस्ता॑त्। सूर्य॑स्य। याः। च॒। अ॒वस्ता॑त्। उ॒प॒तिष्ठ॑न्त॒ इत्यु॑प॒ऽतिष्ठ॑न्ते। आप॑ः॥४९॥

पदार्थः-**(अग्ने)** विद्वन् **(दिवः)** प्रकाशात् **(अर्णम्)** विज्ञानम् **(अच्छ)** **(जिगासि)** स्तौषि **(अच्छ)** **(देवान्)** दिव्यगुणान् विदुषो विद्यार्थिनो वा **(ऊचिषे)** वक्ति **(धिष्ण्याः)** ये दिधिषन्ति ब्रुवन्ति ते धिषाणस्तेषु साधवः, अत्र धिष् धातोर्बाहुलकादौणादिकः कनिन् ततो यत् **(ये)** **(याः)** **(रोचने)** प्रकाशे **(परस्तात्)** पराः **(सूर्यस्य)** **(याः)** **(च)** **(अवस्तात्)** अधस्थाः **(उपतिष्ठन्ते)** **(आपः)** प्राणा जलानि वा। [अयं मन्त्रः शत०७.१.१.२४ व्याख्यातः]॥४९॥

अन्वयः-हे अग्ने! यस्त्वं दिवोऽर्णं या आपः सूर्यस्य रोचने परस्ताद् याश्चावस्तादुपतिष्ठन्ते, ता अच्छ जिगासि। ये धिष्ण्याः सन्ति, तान् देवान् प्रत्यर्णमच्छोचिषे, स त्वमस्माकमुपदेष्टा भव॥४९॥

भावार्थः-ये सुविचारेण विद्युतः सूर्य्यकिरणेषूपर्य्यधःस्थानां जलानां वायूनां च बोधं यथा प्राप्नुवन्ति, तेऽन्यान् प्रति सम्यगुपदिशन्तु॥४९॥

पदार्थः-हे **(अग्ने)** विद्वान्! जो आप **(दिवः)** प्रकाश से **(अर्णम्)** विज्ञान को **(याः)** जो **(आपः)** प्राण वा जल **(सूर्यस्य)** सूर्य्य के **(रोचने)** प्रकाश में **(परस्तात्)** पर है **(च)** और **(याः)** जो **(अवस्तात्)** नीचे **(उपतिष्ठन्ते** समीप में स्थित हैं, उनको **(अच्छ)** सम्यक् **(जिगासि)** स्तुति करते हो, **(ये)** जो **(धिष्ण्याः)** बोलने वाले हैं, उन **(देवान्)** दिव्यगुण विद्यार्थियों वा विद्वानों के प्रति विज्ञान को **(अच्छ)** अच्छे प्रकार **(ऊचिषे)** कहते हो, सो आप हमारे लिये उपदेश कीजिये॥४९॥

भावार्थः-जो अच्छे विचार से बिजुली और सूर्य के किरणों में ऊपर-नीचे रहने वाले जलों और वायुओं के बोध को प्राप्त होते हैं, वे दूसरों को भी निरन्तर उपदेश करें॥४९॥

पुरीष्यास इत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः। अग्निर्देवता। आर्ची पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

मनुष्यैर्द्वेषादिकं विहायानन्दितव्यमित्युपदिश्यते॥

मनुष्यों को द्वेषादिक छोड़ के आनन्द में रहना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

पुरीष्यासोऽअग्नयः प्रावणेभिः सजोषसः।

जुषन्तां यज्ञमद्रुहोऽनमीवाऽइषो महीः॥५०॥

पुरीष्यासः। अग्नयः। प्रावणेभिः। प्रवणेभिरिति प्रऽवणेभिः। सजोषस इति सऽजोषसः। जुषन्ताम्। यज्ञम्। अद्रुहः। अनमीवाः। इषः। महीः॥५०॥

पदार्थः-(**पुरीष्यासः**) पूर्णासु गुणक्रियासु भवाः (**अग्नयः**) वह्नय इव वर्त्तमाना विद्वांसः (**प्रावणेभिः**) विज्ञानैः, अत्र **अन्येषामपि०** [अष्टा०६.३.१३७] इति दीर्घत्वम् (**सजोषसः**) समानसेवाप्रीतयः (**जुषन्ताम्**) सेवन्ताम् (**यज्ञम्**) विद्याविज्ञानदानग्रहणाख्यम् (**अद्रुहः**) द्रोहरहिताः (**अनमीवाः**) अरोगाः (**इषः**) इच्छाः (**महीः**) महतीः। [अयं मन्त्रः शत०७.१.१.२५ व्याख्यातः]॥५०॥

अन्वयः-सर्वे मनुष्याः प्रावणेभिः सह वर्त्तमाना अनमीवा अद्रुहः सजोषसः पुरीष्यासोऽग्नय इव सन्तो यज्ञं महीरिषो जुषन्ताम्॥५०॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा विद्युदविरुद्धा सती समानसत्तया सर्वान् पदार्थान् सेवते, तथैव रोगद्रोहादिदोषै रहिताः परस्परं प्रीतिमन्तो भूत्वा विज्ञानवृद्धिकरं यज्ञं प्रतत्य महान्ति सुखानि सततं भुञ्जीरन्॥५०॥

पदार्थः-सब मनुष्यों को चाहिये कि (**प्रावणेभिः**) विज्ञानों के साथ वर्त्तमान हुए (**अनमीवाः**) रोगरहित (**अद्रुहः**) द्रोह से पृथक् (**सजोषसः**) एक प्रकार की सेवा और प्रीति वाले (**पुरीष्यासः**) पूर्ण गुणक्रियाओं में निपुण (**अग्नयः**) अग्नि के समान वर्तमान तेजस्वी विद्वान् लोग (**यज्ञम्**) विद्याविज्ञान दान और ग्रहणरूप यज्ञ और (**महीः**) बड़ी-बड़ी (**इषः**) इच्छाओं को (**जुषन्ताम्**) सेवन करें॥५०॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे बिजुली अनुकूल हुई समान भाव से सब पदार्थों का सेवन करती है, वैसे ही रोगद्रोहादि दोषों से रहित आपस में प्रीति वाले होके विद्वान् लोग विज्ञान बढ़ाने वाले यज्ञ को विस्तृत करके बड़े-बड़े सुखों को निरन्तर भोगें॥५०॥

इडामग्न इत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

मनुष्यैर्गर्भाधानादिसंस्कारैरपत्यानि संस्कर्तव्यानीत्याह॥

मनुष्य गर्भाधानादि संस्कारो से बालकों का संस्कार करें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

इडामग्ने पुरुदꣳसꣳसनिं गोः शश्वत्तमꣳ हवमानाय साध।

स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाऽग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे॥५१॥

इडाम्। अग्ने। पुरुदꣳसमिति पुरुऽदꣳसम्। सनिम्। गोः। शश्वत्तममिति शश्वत्ऽतमम्। हवमानाय। साध। स्यात्। नः। सुनुः। तनयः। विजावेति विजाऽवा। अग्ने। सा। ते। सुमतिरिति सुऽमतिः। भूतु। अस्मेऽइत्यस्मे॥५१॥

पदार्थः-(**इडाम्**) स्तोतुमर्हां वाचम् (**अग्ने**) विद्वान् (**पुरुदंसम्**) पुरूणि बहूनि दंसानि कर्माणि भवन्ति यस्मात् (**सनिम्**) संविभागम् (**गोः**) वाचः (**शश्वत्तमम्**) अतिशयितमनादिरूपं वेदबोधम् (**हवमानाय**) विद्यां स्पर्द्धमानाय (**साध**) साध्नुहि, अत्र व्यत्ययेन शप् (**स्यात्**) भवेत् (**नः**) अस्माकम् (**सूनुः**) उत्पन्नः (**तनयः**) पुत्रः (**विजावा**) विविधैश्वर्य्यजनकः (**अग्ने**) अध्यापक (**सा**) (**ते**) तव (**सुमतिः**) शोभना प्रज्ञा (**भूतु**) भवतु, अत्र शपो लुक्। **भूसुवोस्तिङि** [अष्टा०७.३.८८] इति गुणाभावः (**अस्मे**) अस्माकम्। [अयं मन्त्रः शत०७.१.१.२७ व्याख्यातः]॥५१॥

अन्वयः-हे अग्ने! ते सा सुमतिरस्मे भूतु यया ते नोऽस्माकं च यो विजावा सूनुस्तनयः स्यात्। तया त्वं तस्मै हवमानायेडां गोः शश्वत्तमं पुरुदंसं सनिं साधाग्ने वयं च साध्नुयाम॥५१॥

भावार्थः-मातापितृभ्यामाचार्य्येण च सावधानतया गर्भाधानादिसंस्काररीत्या सुसन्तानानुत्पाद्य वेदेश्वरविद्यायुक्ता धीरुत्पाद्या। नहीदृशोऽन्यो धर्मोऽपत्यसुखनिधिर्वर्त्तत इति निश्चेतव्यम्॥५१॥

पदार्थः-हे (**अग्ने**) विद्वन्! (**ते**) आपकी (**सा**) वह (**सुमतिः**) सुन्दर बुद्धि (**अस्मे**) हम लोगों के लिये (**भूतु**) होवे, जिससे आपका (**नः**) और हमारा जो (**विजावा**) विविध प्रकार के ऐश्वर्यों का उत्पादक (**सूनुः**) उत्पन्न होने वाला (**तनयः**) पुत्र (**स्यात्**) होवे, उस बुद्धि से उस (**हवमानाय**) विद्या ग्रहण करते हुए के लिये (**इडाम्**) स्तुति के योग्य वाणी को (**गौः**) वाणी के सम्बन्ध (**शश्वत्तमम्**) अनादि रूप अत्यन्त वेदज्ञान को और (**पुरुदंसम्**) बहुत कर्म जिससे सिद्ध हों, ऐसे (**सनिम्**) ऋग्वेदादि वेदविभाग को (**साध**) सिद्ध कीजिये और (**अग्ने**) हे अध्यापक! हम लोग भी सिद्ध करें॥५१॥

भावार्थः-माता-पिता और आचार्य्य को चाहिये कि सावधानी से गर्भाधान आदि संस्कारों की रीति के अनुकूल अच्छे सन्तान उत्पन्न करके उन में वेद, ईश्वर और विद्यायुक्त बुद्धि उत्पन्न करें, क्योंकि ऐसा अन्यधर्म अपत्यसुख का हितकारी कोई नहीं है, ऐसा निश्चय रखना चाहिये॥५१॥

अयं त इत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथ जन्यजनकानां कर्त्तव्यं कर्माह॥

अब माता-पिता और पुत्रादिकों को पस्पर क्या करना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातोऽअरोचथाः।

तं जानन्नग्नऽआ रोहाथा नो वर्धया रयिम्॥५२॥

अयम्। ते। योनिः। ऋत्वियः। यतः। जातः। अरोचथाः। तम्। जानन्। अग्ने। आ। रोह। अथ। नः। वर्धय। रयिम्॥५२॥

पदार्थः-(**अयम्**) (**ते**) तव (**योनिः**) दुःखवियोजकः सुखसंयोजको व्यवहारः (**ऋत्वियः**) ऋतुसमयोऽस्य प्राप्तः, अत्र **छन्दसि घस्** [अष्टा०५.१.१०६] इति घस् प्रत्ययः (**यतः**) यस्मात् (**जातः**) प्रादुर्भूतः सन् (**अरोचथाः**) प्रदीप्येथाः (**तम्**) (**जानन्**) (**अग्ने**) अग्निरिव स्वच्छात्मन् (**आ**) (**रोह**) आरूढो भव (**अथ**) अनन्तरम्, अत्र **निपातस्य च** [अष्टा०६.३.१३६] इति संहितायां दीर्घः (**नः**) अस्मभ्यम् (**वर्धय**) अत्र **अन्येषामपि०** [अष्टा०६३.१३७] इति संहितायां दीर्घत्वम् (**रयिम्**) प्रशंस्तां श्रियम्। [अयं मन्त्रः शत०७.१.१.२८

व्याख्यात:]॥५२॥

अन्वय:-हे अग्ने! त्वं यस्ते तव ऋत्वियोऽयं योनिरस्ति, यतो जातस्त्वमरोचथा:। तं जानँस्त्वमारोहाथ नो रयिं वर्धय॥५२॥

भावार्थ:-हे मातापित्राचार्य्या:! यूयं पुत्रान् पुत्रीश्च धर्म्येण ब्रह्मचर्य्येण सेवितेन सद्विद्या जनयित्वोपदिशत। हे सन्ताना:! यूयं सद्विद्यया सदाचारेणास्मान् सुसेवया धनेन च सततं सुखयतेति॥५२॥

पदार्थ:-हे **(अग्ने)** अग्नि के समान शुद्ध अन्त:करण वाले विद्वन् पुरुष! जो **(ते)** आपका **(ऋत्विय:)** ऋतुकाल में प्राप्त हुआ **(अयम्)** यह प्रत्यक्ष **(योनि:)** दु:खों का नाशक और सुखदायक व्यवहार है, **(यत:)** जिससे **(जात:)** उत्पन्न हुए आप **(अरोचथा:)** प्रकाशित होवें, **(तम्)** उसको **(जानन्)** जानते हुए आप **(आरोह)** शुभगुणों पर आरूढ़ हूजिये, **(अथ)** इस के पश्चात् **(न:)** हम लोगों के लिये **(रयिम्)** प्रशंसित लक्ष्मी को **(वर्धय)** बढ़ाइये॥५२॥

भावार्थ:-हे माता-पिता और आचार्य्य! तुम लोग पुत्र और कन्याओं को धर्मानुकूल सेवन किये ब्रह्मचर्य से श्रेष्ठविद्या को प्रसिद्ध कर उपदेश करो। हे सन्तानो! तुम लोग सत्यविद्या और सदाचार के साथ हम को अच्छी सेवा और धन से निरन्तर सुखयुक्त करो॥५२॥

चिदसीत्यस्य विश्वामित्र ऋषि:। अग्निर्देवता। स्वराडनुष्टुप् छन्द:। गान्धार: स्वर:॥

कन्याभि: किं कृत्वा किं कार्य्यमित्याह॥

कन्याओं को क्या करके क्या करना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

चिद॑सि॒ तया॑ दे॒वत॑याङ्गिर॒स्वद् ध्रु॒वा सी॑द।

परि॒चिद॑सि॒ तया॑ दे॒वत॑याङ्गिर॒स्वद् ध्रु॒वा सी॑द॥५३॥

चित्। अ॒सि॒। तया॑। दे॒वत॑या। अ॒ङ्गि॒र॒स्वत्। ध्रु॒वा। सी॒द॒। प॒रि॒चिदिति॑ परि॒ऽचित्। अ॒सि॒। तया॑। दे॒वत॑या। अ॒ङ्गि॒र॒स्वत्। ध्रु॒वा। सी॒द॒॥५३॥

पदार्थ:-**(चित्)** संज्ञप्ता **(असि)** **(तया)** **(देवतया)** दिव्यगुणप्रापिकया **(अङ्गिरस्वत्)** प्राणवत् **(ध्रुवा)** निश्चला **(सीद)** भव **(परिचित्)** विद्यापरिचयं प्राप्ता **(असि)** **(तया)** धर्मानुष्ठानयुक्तया क्रियया **(देवतया)** दिव्यसुखप्रदया **(अङ्गिरस्वत्)** हिरण्यगर्भवत् **(ध्रुवा)** निष्कम्पा **(सीद)** अवतिष्ठस्व। [अयं मन्त्र: शत०७.१.१.३० व्याख्यात:]॥५३॥

अन्वय:-हे कन्ये! या चिदसि सा त्वं तया देवतया सहाङ्गिरस्वत् ध्रुवा सीद। हे ब्रह्मचारिणि! त्वं परिचिदसि सा तया देवतया सहाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद॥५३॥

भावार्थ:-सर्वैर्मातापित्रादिभिरध्यापिकाभिर्विदुषीभिश्च कन्या: सम्बोधनीया:। भो कन्या:! यूयं यदि पूर्णेनाखण्डितेन ब्रह्मचर्य्येणाखिला विद्या: सुशिक्षा: प्राप्य युवतयो भूत्वा स्वसदृशैर्वरै: स्वयंवरविवाहं कृत्वा गृहाश्रमं कुर्यात्, तर्हि सर्वाणि सुखानि लभेध्वं सुसन्तानाश्च जायेरन्॥५३॥

पदार्थ:-हे कन्ये! जो तू **(चित्)** चिताई **(असि)** हुई **(तया)** उस **(देवतया)** दिव्यगुण प्राप्त कराने हारी

विद्वान् स्त्री के साथ **(अङ्गिरस्वत्)** प्राणों के तुल्य **(ध्रुवा)** निश्चल **(सीद)** स्थिर हो। हे ब्रह्मचारिणि! जो तू **(परिचित्)** विविध विद्या को प्राप्त हुई **(असि)** है, सो तू **(तया)** उस **(देवतया)** धर्मानुष्ठान से युक्त दिव्यसुखदायक क्रिया के साथ **(अङ्गिरस्वत्)** ईश्वर के समान **(ध्रुवा)** अचल **(सीद)** अवस्थित हो॥५३॥

भावार्थः-सब माता-पिता और पढ़ानेहारी विदुषी स्त्रियों को चाहिये कि कन्याओं को सम्यक् बुद्धिमती करें। हे कन्या लोगो! तुम जो पूर्ण अखण्डित ब्रह्मचर्य से सम्पूर्ण विद्या और अच्छी शिक्षा को प्राप्त युवती होकर, अपने तुल्य वरों के साथ स्वयंवर विवाह करके, गृहाश्रम का सेवन करो, तो सब सुखी को प्राप्त हो और सन्तान भी अच्छे होवें॥५३॥

लोकं पृणेत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः। अग्निर्देवता। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

लोकं पृण छिद्रं पृणाथो सीद ध्रुवा त्वम्।

इन्द्राग्नी त्वा बृहस्पतिरस्मिन् योनावसीषदन्॥५४॥

लोकम्। पृण। छिद्रम्। पृण। अथोऽइत्यथो। सीद। ध्रुवा। त्वम्। इन्द्राग्नीऽइतीन्द्राग्नी। त्वा। बृहस्पतिः। अस्मिन्। योनौ। असीषदन्। असीषदन्नित्यसीसदन्॥५४॥

पदार्थः-**(लोकम्)** संप्रेक्षितव्यम् **(पृण)** तर्पय **(छिद्रम्)** छिनत्ति यत्तत् **(पृण)** पिपूर्द्धि **(अथो)** **(सीद)** **(ध्रुवा)** दृढनिश्चया **(त्वम्)** **(इन्द्राग्नी)** मातापितरौ **(त्वा)** त्वाम् **(बृहस्पतिः)** बृहत्या वेदवाचः पालिकाध्यापिका **(अस्मिन्)** विद्याबोधे **(योनौ)** बन्धच्छेदेके मोक्षप्रापके **(असीषदन्)** प्रापयन्तु। [अयं मन्त्रः शत०८.७.२.६ व्याख्यातः]॥५४॥

अन्वयः-हे कन्ये! यां त्वा योनाविस्मिन्निन्द्राग्नी बृहस्पतिश्चासीषदन्, तस्मिन् त्वं ध्रुवा सीदाथो छिद्रं पृण लोकं पृण॥५४॥

भावार्थः-मातापित्राचार्यैरीदृशी धर्म्या विद्याशिक्षा क्रियेत, यां स्वीकृत्य सर्वाः कन्या निश्चिन्ता भूत्वा, सर्वाणि दुर्व्यसनानि त्यक्त्वा समावर्त्तनानन्तरं स्वयंवरं विवाहं कृत्वा सुपुरुषार्थेनानन्दयेयुः॥५४॥

पदार्थः-हे कन्ये! जिस **(त्वा)** तुझ को **(योनौ)** बन्ध के छेदक मोक्षप्राप्ति के हेतु **(अस्मिन्)** इस विद्या के बोध में **(इन्द्राग्नी)** माता-पिता तथा **(बृहस्पतिः)** बड़ी-बड़ी वेदवाणियों की रक्षा करने वाली अध्यापिका स्त्री **(असीषदन्)** प्राप्त करावें, उसमें **(त्वम्)** तू **(ध्रुवा)** दृढ़ निश्चय के साथ **(सीद)** स्थित हो, **(अथो)** इसके अनन्तर **(छिद्रम्)** छिद्र को **(पृण)** पूर्ण कर और **(लोकम्)** देखने योग्य प्राणियों को **(पृण)** तृप्त कर॥५४॥

भावार्थः-माता-पिता और आचार्यों को चाहिये कि इस प्रकार की धर्म्मयुक्त विद्या और शिक्षा करें कि जिसको ग्रहण कर कन्या लोग चिन्तारहित हों। सब बुरे व्यसनों को त्याग और समावर्तन संस्कार के पश्चात् स्वयंवर विवाह करके पुरुषार्थ के साथ आनन्द में रहें॥५४॥

ता अस्येत्यस्य प्रियमेधा ऋषिः। आपो देवताः। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी उसी विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

ताऽअ॒स्य सू॒ददो॑हस॒: सोम॑ꣳ श्रीणन्ति॒ पृश्न॑य:।

जन्म॑न् दे॒वानां॒ विश॑स्त्रि॒ष्वा रो॑च॒ने दि॒व:॥५५॥

ता:। अ॒स्य। सू॒ददो॑हस॒ इति॑ सू॒दऽदोहस:। सोम॑म्। श्री॒ण॒न्ति॒। पृश्न॑य:। जन्म॑न्। दे॒वाना॑म्। विश॑:। त्रि॒षु। आ। रो॒च॒ने। दि॒व:॥५५॥

पदार्थ:-(**ता:**) ब्रह्मचारिणी: (**अस्य**) गृहाश्रमस्य (**सूददोहस:**) सूदा: सुष्ठु पाचका दोहसो गवादिदोग्धारश्च यासां ता: (**सोमम्**) सोमरसान्वितं पाकम् (**श्रीणन्ति**) परिपक्वं कुर्वन्ति (**पृश्नय:**) सुस्पर्शास्तन्वङ्ग्य:, अत्र स्पृशधातोर्नि: प्रत्यय: सलोपश्च (**जन्मन्**) जन्मनि प्रादुर्भावे (**देवानाम्**) दिव्यानां विदुषां पतीनाम् (**विश:**) प्रजा: (**त्रिषु**) भूतभविष्यद्वर्त्तमानेषु कालावयवेषु (**आ**) (**रोचने**) रुचिकरे व्यवहारे (**दिव:**) दिवस्य। [अयं मन्त्र: शत०८.७.३.२१ व्याख्यात:]॥५५॥

अन्वय:-या देवानां सूददोहस: पृश्नय: पत्न्यो जन्मन् द्वितीये विद्याजन्मनि विदुष्यो भूत्वा दिवोऽस्य सोमं श्रीणन्ति, ता आरोचने त्रिषु सुखदा भवन्ति, विशश्च प्राप्नुवन्ति॥५५॥

भावार्थ:-यदा सुशिक्षितानां विदुषां यूनां स्वसदृशा रूपगुणसम्पन्ना: स्त्रियो भवेयुस्तदा गृहाश्रमे सर्वदा सुखं सुसन्तानाश्च जायेरन्। नह्येवं विना वर्त्तमानेऽभ्युदयो मरणानन्तरं नि:श्रेयसं च प्राप्तुं शक्यम्॥५५॥

पदार्थ:-जो (**देवानाम्**) दिव्य विद्वान् पतियों की (**सूददोहस:**) सुन्दर रसोइया और गौ आदि के दुहने वाले सेवकों वाली (**पृश्नय:**) कोमल शरीर सूक्ष्म अङ्गयुक्त स्त्री, दूसरे (**जन्मन्**) विद्यारूप जन्म में विदुषी होके (**दिव:**) दिव्य (**अस्य**) इस गृहाश्रम के (**सोमम्**) उत्तम ओषधियों के रस से युक्त भोजन (**श्रीणन्ति**) पकाती हैं, (**ता:**) वे ब्रह्मचारिणी (**आरोचने**) अच्छे रुचिकारक व्यवहार में (**त्रिषु**) तीनों अर्थात् गत, आगामी और वर्त्तमान कालविभागों में सुख देने वाली होती तथा (**विश:**) उत्तम सन्तानों को भी प्राप्त होती हैं॥५५॥

भावार्थ:-जब अच्छी शिक्षा को प्राप्त हुए युवा विद्वानों की अपने सदृश रूप और गुण से युक्त स्त्री होवें, तो गृहाश्रम में सर्वदा सुख और अच्छे सन्तान उत्पन्न होवें। इस प्रकार किये विना संसार का सुख और शरीर छूटने के पश्चात् मोक्ष कभी प्राप्त नहीं हो सकता॥५५॥

इन्द्रं विश्वेत्यस्य सुतजेतृमधुच्छन्दा ऋषि:। इन्द्रो देवता। निचृदनुष्टुप् छन्द:। गान्धार: स्वर:॥

कुमारकुमारिभिरित्थं कर्तव्यमित्याह॥

कुमार और कुमारियों को इस प्रकार करना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

इन्द्रं॒ विश्वा॑ऽअवीवृधन्त्समु॒द्रव्य॑चसं॒ गिर॑:।

र॒थीत॑मꣳ र॒थीनां॒ वाजा॑ना॒ꣳ सत्प॑तिं॒ पति॑म्॥५६॥

इन्द्र॑म्। विश्वा॑:। अ॒वी॒वृ॒ध॒न्। स॒मु॒द्रव्य॑चस॒मिति॑ समु॒द्रऽव्य॑चसम्। गिर॑:। र॒थीत॑मम्। र॒थित॑म॒मिति॑ र॒थिऽत॑मम्। र॒थीना॑म्। र॒थिना॒मिति॑ र॒थिना॑म्। वाजा॑नाम्। सत्प॑ति॒मिति॒ सत्ऽप॑तिम्। पति॑म्॥५६॥

पदार्थः-**(इन्द्रम्)** परमैश्वर्य्यम् **(विश्वाः)** अखिलाः **(अवीवृधन्)** वर्धयेयुः **(समुद्रव्यचसम्)** समुद्रस्य व्यचसो व्याप्तय इव यस्मिंस्तम् **(गिरः)** वेदविद्यासंस्कृता वाचः **(रथीतमम्)** अतिशयेन प्रशस्तरथयुक्तम् **(रथीनाम्)** प्रशस्तानां वीराणाम्, अत्र छन्दसीवनिपौ [अष्टा०वा०५.३.१०९] इतीकारः **(वाजानाम्)** संग्रामाणां मध्ये **(सत्पतिम्)** सत ईश्वरस्य वेदस्य धर्मस्य जनस्य वा पालकम् **(पतिम्)** अखिलैश्वर्य्यस्वामिनम् । [अयं मन्त्रः शत०८.७.३.७ व्याख्यातः]॥५६॥

अन्वयः-हे स्त्रीपुरुषाः! यूयं यथा विश्वा गिरः समुद्रव्यचसं वाजानां रथीनां मध्ये रथीतमं सत्पतिं पतिमवीवृधँस्तथा सर्वान् वर्धयत॥५६॥

भावार्थः-ये कुमारा याश्च कुमार्य्यो दीर्घेण ब्रह्मचर्य्येण साङ्गोपाङ्गान् वेदानधीत्य स्वप्रसन्नतया स्वयंवरं विवाहं कृत्वैश्वर्य्याय प्रयतेरन्। धर्म्येण व्यवहारेणाव्यभिचारतया सुसन्तानानुत्पाद्य परोपकारे प्रवर्त्तेरँस्त इहामुत्र सुखमश्नुवीरन्, न चेतरेऽविद्वांसः॥५६॥

पदार्थः-हे स्त्रीपुरुषो! जैसे **(विश्वाः)** सब **(गिरः)** वेदविद्या से संस्कार की हुई वाणी **(समुद्रव्यचसम्)** समुद्र की व्याप्ति जिसमें हो उन **(वाजानाम्)** संग्रामों और **(रथीनाम्)** प्रशंसित रथों वाले वीर पुरुषों में **(रथीतमम्)** अत्यन्त प्रशंसित रथ वाले **(सत्पतिम्)** सत्य, ईश्वर, वेद, धर्म वा श्रेष्ठ पुरुषों के रक्षक **(पतिम्)** सब ऐश्वर्य के स्वामी को **(अवीवृधन्)** बढ़ावें और **(इन्द्रम्)** परम ऐश्वर्य्य को बढ़ावें, वैसे सब प्राणियों को बढ़ाओ॥५६॥

भावार्थः-जो कुमार और कुमारी दीर्घ ब्रह्मचर्य सेवन से साङ्गोपाङ्ग वेदों को पढ़ और अपनी-अपनी प्रसन्नता से स्वयंवर विवाह करके ऐश्वर्य के लिये प्रयत्न करें, धर्मयुक्त व्यवहार से व्यभिचार को छोड़ के सुन्दर सन्तानों को उत्पन्न करके परोपकार करने में प्रयत्न करें, वे इस संसार और परलोक में सुख भोगें, और इनसे विरुद्ध जनों को सुख नहीं हो सकता॥५६॥

समितमित्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

अथ विवाहं कृत्वा कथं वर्त्तितव्यमित्याह॥

पश्चात् विवाह करके कैसे वर्त्तें, इस विषय उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

समि॑तꣳ संक॑ल्पेथा॒ꣳ संप्रि॑यौ रोचि॒ष्णू सु॑मन॒स्यमा॑नौ।

इ॒षमूर्ज॑म॒भि सं॒वसा॑नौ॥५७॥

सम्। इ॒तम्। सम्। क॒ल्पे॒था॒म्। संप्रि॑या॒विति॒ सम्ऽप्रि॑यौ। रो॒चि॒ष्णूऽइति॑ रोचि॒ष्णू। सु॒म॒न॒स्यमा॑नाविति॑ सुऽमन॒स्यमा॑नौ। इष॑म्। ऊर्ज॑म्। अ॒भि। सं॒वसा॑ना॒विति॑ स॒म्ऽवसा॑नौ॥५७॥

पदार्थः-**(सम्)** एकीभावम् **(इतम्)** प्राप्नुतम् **(सम्)** समानाभिप्राये **(कल्पेथाम्)** समर्थयताम् **(संप्रियौ)** परस्परं सम्यक् प्रीतियुक्तौ **(रोचिष्णू)** विषयासक्तिविरहत्वेन देदीप्यमानौ **(सुमनस्यमानौ)** सुमनसौ सखायौ विद्वांसाविवाचरन्तौ **(इषम्)** इच्छाम् **(ऊर्जम्)** पराक्रमम् **(अभि)** आभिमुख्ये **(संवसानौ)** सम्यक् सुवस्त्रालंकारैराच्छादितौ। [अयं मन्त्रः शत०७.१.१.३८ व्याख्यातः]॥५७॥

अन्वयः-हे विवाहितौ स्त्रीपुरुष! युवां संप्रियौ रोचिष्णू सुमनस्यमानौ संवसानौ सन्ताविषं समितमूर्जमभि संकल्पेथाम्॥५७॥

भावार्थः-यदि स्त्रीपुरुषौ सर्वथा विरोधं विहायान्योन्यस्य प्रियाचरणे रतौ, विद्याविचारयुक्तौ सुवस्त्रालंकृतौ भूत्वा प्रयतेताम्, तदा गृहे कल्याणमारोग्यं वर्धेताम्। यदि च विद्वेषिणौ भवेताम्, तदा दुःखसागरे संमग्नौ भवेताम्॥५७॥

पदार्थः-हे विवाहित स्त्रीपुरुषो! तुम **(संप्रियौ)** आपस में सम्यक् प्रीति वाले **(रोचिष्णू)** विषयासक्ति से पृथक् प्रकाशमान **(सुमनस्यमानौ)** मित्र विद्वान् पुरुषों के समान वर्त्तमान **(संवसानौ)** सुन्दर वस्त्र और आभूषणों से युक्त हुए **(इषम्)** इच्छा से **(समितम्)** इकट्ठे प्राप्त होओ और **(ऊर्जम्)** पराक्रम को **(अभि)** सन्मुख **(संकल्पेथाम्)** एक अभिप्राय में समर्पित करो॥५७॥

भावार्थः-जो स्त्रीपुरुष सर्वथा विरोध को छोड़ के एक-दूसरे की प्रीति में तत्पर, विद्या के विचार से युक्त तथा अच्छे-अच्छे वस्त्र और आभूषण धारण करने वाला होके प्रयत्न करें, तो घर में कल्याण और आरोग्य बढ़े, और जो परस्पर विरोधी हों, तो दुःखसागर में अवश्य डूबें॥५७॥

सं वामित्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगुपरिष्टाद् बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

अध्यापकोपदेशका यावत्सामर्थ्यं तावद् वेदाध्यापनोपदेशौ कुर्य्युरित्याह॥

अध्यापक और उपदेशक लोगों को चाहिये कि जितना सामर्थ्य हो उतना ही वेदों को पढ़ावें और उपदेश करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

सं वां मनांꣳसि सं व्रता समु चित्तान्याकरम्।

अग्ने पुरीष्याधिपा भव त्वं न इषमूर्जं यजमानाय धेहि॥५८॥

सम्। वाम्। मनांꣳसि। सम्। व्रता। सम्। ऊँ इत्यूँ। चित्तानि। आ। अकरम्। अग्ने। पुरीष्य। अधिपा इत्यधिऽपाः। भव। त्वम्। नः। इषम्। ऊर्जम्। यजमानाय। धेहि॥५८॥

पदार्थः-**(सम्)** एकस्मिन् धर्मे **(वाम्)** युवयोः **(मनांसि)** संकल्पविकल्पाद्या अन्तःकरणवृत्तयः **(सम्)** **(व्रता)** सत्यभाषणादीनि **(सम्)** (उ) समुच्चये **(चित्तानि)** संज्ञप्तानि धर्म्याणि कर्माणि **(आ)** समन्तात् **(अकरम्)** कुर्याम् **(अग्ने)** उपदेशकाचार्य **(पुरीष्य)** पुरीषेषु पालकेषु व्यवहारेषु भवस्तत्सम्बुद्धौ **(अधिपाः)** अधिकः पालकः **(भव)** **(त्वम्)** **(नः)** अस्माकम् **(इषम्)** अन्नादिकम् **(ऊर्जम्)** शरीरात्मबलम् **(यजमानाय)** धर्मेण सङ्गन्तुं शीलाय **(धेहि)**। [अयं मन्त्रः शत०७.१.१.३८ व्याख्यातः]॥५८॥

अन्वयः-हे स्त्रीपुरुषौ! यथाऽहमाचार्यो वां संमनांसि संव्रता सञ्चित्तान्याकरम्, तथा युवां मम प्रियमाचरेतम्। हे पुरीष्याग्ने! त्वं नोऽधिपा भव, यजमानायेषमूर्जं च धेहि॥५८॥

भावार्थः-उपदेशका यावच्छक्यन्तावत् सर्वेषामैकधर्म्यमैककर्म्यमेकनिष्ठां तुल्यसुखदुःखे यथा स्यात् तथा शिक्षयेयुः। सर्वे स्त्रीपुरुषा आप्तविद्वांसमेवोपदेष्टारमध्यापकं सेवेरन्, स चैतेषामैश्वर्यपराक्रमवृद्धिं कुर्यात्। नैकधर्मादिभिर्विनाऽत्मसु सौहार्दं जायते, नैतेन विना सततं सुखं च॥५८॥

पदार्थः-हे स्त्रीपुरुषो! जैसे मैं आचार्य **(वाम्)** तुम दोनों के **(संमनांसि)** एक धर्म्म में तथा संकल्प-विकल्प आदि अन्तःकरण की वृत्तियों को **(संव्रता)** सत्यभाषणादि (उ) और **(सम्, चित्तानि)** सम्यक् जाने हुए कर्मों में **(आ)** अच्छे प्रकार **(अकरम्)** करूं, वैसे तुम दोनों मेरी प्रीति के अनुकूल विचारो। हे **(पुरीष्य)** रक्षा के

योग्य व्यवहारों में हुए **(अग्ने)** उपदेशक आचार्य वा राजन्! **(त्वम्)** आप **(नः)** हमारे **(अधिपाः)** अधिक रक्षा करनेहारे **(भव)** हूजिये **(यजमानाय)** धर्मानुकूल सत्सङ्ग के स्वभाव वाले पुरुष वा ऐसी स्त्री के लिये **(इषम्)** अन्न आदि उत्तम पदार्थ और **(ऊर्जम्)** शरीर तथा आत्मा के बल को **(धेहि)** धारण कीजिये॥५८॥

भावार्थः-उपदेशक मनुष्यों को चाहिये कि जितना सामर्थ्य हो उतना सब मनुष्यों का एक धर्म्म, एक कर्म्म, एक प्रकार की चितवृत्ति और बराबर सुख दुःख, जैसे हो, वैसे ही शिक्षा करें। सब स्त्री-पुरुषों को योग्य है कि आप्त विद्वान् ही को उपदेशक और अध्यापक मान के सेवन करें और उपदेशक वा अध्यापक इनके ऐश्वर्य्य और पराक्रम को बढ़ावें। सब मनुष्यों के एक धर्म आदि के विना आत्माओं में मित्रता नहीं होती और मित्रता के विना निरन्तर सुख भी नहीं हो सकता॥५८॥

अग्ने त्वमित्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

केऽध्यापनोपदेशाय नियोजनीया इत्याह॥

किनको पढ़ाने और उपदेश के लिये नियुक्त करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अग्ने त्वं पुरीष्यो रयिमान् पुष्टिमाँ२ऽअसि।

शिवाः कृत्वा दिशः सर्वाः स्वं योनिमिहासदः॥५९॥

अग्ने। त्वम्। पुरीष्यः। रयिमानिति रयिऽमान्। पुष्टिमानिति पुष्टिऽमान्। असि। शिवाः। कृत्वा। दिशः। सर्वाः। त्वम्। योनिम्। इह। आ। असदः॥५१॥

पदार्थः-हे **(अग्ने)** उपदेशक विद्वन्! **(त्वम्)** **(पुरीष्यः)** ऐकमत्यपालनेषु भवः **(रयिमान्)** विद्याविज्ञानधनयुक्तः **(पुष्टिमान्)** प्रशस्तशरीरात्मबलसहितः **(असि)** **(शिवाः)** कल्याणोपदेशयुक्ताः **(कृत्वा)** **(दिशः)** उपदेष्टव्याः प्रजाः **(सर्वाः)** समग्राः **(स्वम्)** स्वकीयम् **(योनिम्)** सुखसाधकं दुःखविच्छेदकमुपदेशम् **(इह)** अस्मिन् संसारे **(आ)** **(असदः)** आस्व। [अयं मन्त्रः शत०७.१.१.३८ व्याख्यातः]॥५९॥

अन्वयः-हे अग्ने! यतस्त्वमिह पुरीष्यो रयिमान् पुष्टिमानसि, तस्मात् सर्वा दिशः शिवाः कृत्वा स्वं योनिमासदः॥५९॥

भावार्थः-राजप्रजाजनैर्येऽत्र जितेन्द्रिया धार्मिकाः परोपकारप्रिया विद्वांसो भवेयुस्ते प्रजासु धर्मोपदेशाय नियोजनीयाः। उपदेशकाश्च प्रयत्नेन सर्वान् शिक्षयैकधर्मयुक्तान् सततमविरोधिनः सुखिनः सम्पादयेयुः॥५९॥

पदार्थः-हे **(अग्ने)** उपदेशक विद्वन्! जिससे **(त्वम्)** आप **(इह)** इस संसार में **(पुरीष्यः)** एक मत के पालने में तत्पर **(रयिमान्)** विद्या विज्ञान और धन से युक्त और **(पुष्टिमान्)** प्रशंसित शरीर और आत्मा के बल से सहित **(असि)** हैं, इसलिये **(सर्वाः)** सब **(दिशः)** उपदेश के योग्य प्रजा **(शिवाः)** कल्याणरूपी उपदेश से युक्त **(कृत्वा)** करके **(स्वम्)** अपने **(योनिम्)** सुखदायक दुःखनाशक उपदेश के घर को **(आसदः)** प्राप्त हूजिये॥५९॥

भावार्थः-राजा और प्रजाजनों को चाहिये कि जो जितेन्द्रिय धर्मात्मा परोपकार में प्रीति रखने वाले विद्वान् होवें, उनको प्रजा में धर्मोपदेश के लिये नियुक्त करें और उपदेशकों को चाहिये कि प्रयत्न के साथ सबको अच्छी शिक्षा से एकधर्म में निरन्तर विरोध को छुड़ा के सुखी करें॥५९॥

भवतन्न इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। दम्पती देवते। आर्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनः सर्वैर्विद्याप्रदानायाप्ता विद्वांसः प्रार्थनीया इत्याह॥

फिर सब को चाहिये कि विद्या देने लिये आप्त विद्वानों की प्रार्थना करें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

भवतन्नः समनसौ सचेतसावरेपसौ।

मा यज्ञꣳ हिꣳसिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः॥६०॥

भवतम्। नः। समनसाविति सऽमनसौ। सचेतसाविति सऽचेतसौ। अरेपसौ। मा। यज्ञम्। हिꣳसिष्टम्। मा। यज्ञपतिमिति यज्ञऽपतिम्। जातवेदसाविति जातऽवेदसौ। शिवौ। भवतम्। अद्य। नः॥६०॥

पदार्थः-(**भवतम्**) (**नः**) अस्मभ्यम् (**समनसौ**) समानविचारौ (**सचेतसौ**) समानसंज्ञानौ (**अरेपसौ**) अनपराधिनौ (**मा**) (**यज्ञम्**) सङ्गन्तव्यं धर्मम् (**हिंसिष्टम्**) हिंस्यातम् (**मा**) (**यज्ञपतिम्**) उपदेशेन धर्मरक्षकम् (**जातवेदसौ**) उत्पन्नाऽखिलविज्ञानौ (**शिवौ**) मङ्गलकारिणौ (**भवतम्**) (**अद्य**) (**नः**) अस्मभ्यम्। [अयं मन्त्रः शत०७.१.१.३८ व्याख्यातः]॥६०॥

अन्वयः-हे विवाहितौ स्त्रीपुरुषौ! युवां नः समनसौ सचेतसावरेपसौ भवतम्। यज्ञं मा हिंसिष्टं यज्ञपतिं मा हिंसिष्टम्। अद्य नो जातवेदसौ शिवौ भवतम्॥६०॥

भावार्थः-स्त्रीपुरुषजनैः सत्योपदेशायाध्यापनाय पूर्णविद्याः प्रगल्भाः निष्कपटा आप्ता नित्यं प्रार्थनीयाः, विद्वांसस्तु सर्वेभ्य एवमुपदिशेयुर्यतः सर्वे धर्माचारिणः स्युः॥६०॥

पदार्थः-हे विवाह किये हुए स्त्रीपुरुषो! तुम दोनों (**नः**) हम लोगों के लिये (**समनसौ**) एक से विचार और (**सचेतसौ**) एक से बोध वाले (**अरेपसौ**) अपराधरहित (**भवतम्**) हूजिये। (**यज्ञम्**) प्राप्त होने योग्य धर्म को (**मा**) मत (**हिंसिष्टम्**) बिगाड़ो और (**यज्ञपतिम्**) उपदेश से धर्म के रक्षक पुरुष को (**मा**) मत मारो। (**अद्य**) आज (**नः**) हमारे लिये (**जातवेदसौ**) सम्पूर्ण विज्ञान को प्राप्त हुए (**शिवौ**) मङ्गलकारी (**भवतम्**) हूजिये॥६०॥

भावार्थः-स्त्रीपुरुषजनों को चाहिये कि सत्य उपदेश और पढ़ाने के लिये सब विद्याओं से युक्त, प्रगल्भ, निष्कपट, धर्मात्मा, सत्यप्रिय पुरुषों की नित्य प्रार्थना और उन की सेवा करें। और विद्वान् लोग सब के लिये ऐसा उपदेश करें कि जिससे सब धर्माचरण करने वाले हो जावें॥६०॥

मातेवेत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। पत्नी देवता। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

माता किंवत् सन्तानान् पालयतीत्याह॥

माता किस के तुल्य सन्तानों को पालती है, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

मातेव पुत्रं पृथिवी पुरीष्यमग्निꣳ स्वे योनावभारुखा।

तां विश्वैर्देवैर्ऋतुभिः संविदानः प्रजापतिर्विश्वकर्म्मा वि मुञ्चतु॥६१॥

मातेवेति माताऽइव। पुत्रम्। पृथिवी। पुरीष्यम्। अग्निम्। स्वे। यौनौ। अभाः। उखा। ताम्। विश्वैः। देवैः। ऋतुभिरित्यृतुऽभिः। संविदान इति सम्ऽविदानः। प्रजापतिरिति प्रजाऽपतिः। विश्वकर्म्मेति विश्वऽकर्मा। वि। मुञ्चतु॥ ६१॥

पदार्थः-(**मातेव**) (**पुत्रम्**) (**पृथिवी**) भूमिवद्वर्त्तमाना विदुषी स्त्री (**पुरीष्यम्**) पुष्टिकरेषु गुणेषु भवम् (**अग्निम्**) विद्युतमिव सुप्रकाशम् (**स्वे**) स्वकीये (**योनौ**) गर्भाशये (**अभाः**) पुष्णाति धरति वा (**उखा**) ज्ञातुमर्हा (**ताम्**) (**विश्वैः**) सर्वैः (**देवैः**) दिव्यैर्गुणैः सह (**ऋतुभिः**) वसन्ताद्यैः (**संविदानः**) सम्यग्ज्ञापयन् (**प्रजापतिः**) परमेश्वरः (**विश्वकर्म्मा**) अखिलोत्तमक्रियः (**वि**) विरुद्धार्थे (**मुञ्चतु**)। [अयं मन्त्रः शत०७.१.१.४३ व्याख्यातः]॥६१॥

अन्वयः-योखा पृथिवीवद्वर्त्तमना स्त्री योनौ पुरीष्यमग्निं पुत्रं मातेवाभा धरति, तां संविदानो विश्वकर्मा प्रजापतिर्विश्वैर्देवैर्ऋतुभिः सह सतत दुःखाद् विमुञ्चतु पृथग् रक्षतु॥६१॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। यथा जननी सन्तानानुत्पाद्य पालयति, तथैव पृथिवी कारणस्थां विद्युतं प्रकटय्य रक्षति। परमेश्वरो याथातथ्येन पृथिव्यादिगुणान् जानाति प्रतिनियतसमयमृत्वादीन् पृथिव्यादींश्च धृत्वा स्वस्वनियतपरिधौ चालयित्वा प्रलयसमये भिनत्ति, तथैव विद्वद्भिर्यथाबुद्ध्येतान् विदित्वा कार्य्यसिद्धये प्रयतितव्यम्॥६१॥

पदार्थः-जो (**उखा**) जानने योग्य (**पृथिवी**) भूमि के समान वर्त्तमान विदुषी स्त्री (**स्वे**) अपने (**यौनौ**) गर्भाशय में (**पुरीष्यम्**) पुष्टिकारक गुणों में हुए (**अग्निम्**) बिजुली के तुल्य अच्छे प्रकाश से युक्त गर्भरूप (**पुत्रम्**) पुत्र को (**मातेव**) माता के समान (**अभाः**) पुष्ट वा धारण करती है, (**ताम्**) उसको (**संविदानः**) सम्यक् बोध करता हुआ (**विश्वकर्मा**) सब उत्तम कर्म करने वाला (**प्रजापतिः**) परमेश्वर (**विश्वैः**) सब (**देवैः**) दिव्य गुणों और (**ऋतुभिः**) वसन्त आदि ऋतुओं के साथ निरन्तर दुःख से (**वि, मुञ्चतु**) छुड़ावे॥६१॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे माता सन्तानों को उत्पन्न कर पालती है, वैसे ही पृथिवी कारणरूप बिजुली को प्रसिद्ध करके रक्षा करती है। जैसे परमेश्वर ठीक-ठीक पृथिवी आदि के गुणों को जानता और नियत समय पर ऋतु आदि और पृथिवी आदि को धारण कर अपनी-अपनी नियत परिधि में चला के प्रलय समय में सब को भिन्न करता है, वैसे ही विद्वानों को चाहिये कि अपनी बुद्धि के अनुसार इन सब पदार्थों को जना के कार्य्यसिद्धि के लिय प्रयत्न करें॥६१॥

असुन्वन्तमित्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। निर्ऋतिर्देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

स्त्रियः कीदृशान् पतीन् नेच्छेयुरित्याह॥

स्त्री लोग कैसे पतियों की इच्छा न करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

असुन्वन्तमयजमानमिच्छ स्तेनस्येत्यामन्विहि तस्करस्य।

अन्यमस्मदिच्छ सा तऽइत्या नमो देवि निर्ऋते तुभ्यमस्तु॥ ६२॥

असुन्वन्तम्। अयजमानम्। इच्छ। स्तेनस्य। इत्याम्। अनु। इहि। तस्करस्य। अन्यम्। अस्मत्। इच्छ। सा। ते। इत्या। नमः। देवि। निर्ऋत इति निःऽऋते। तुभ्यम्। अस्तु॥६२॥

पदार्थः-(**असुन्वन्तम्**) अभिषवादिक्रियानुष्ठानरहितम् (**अयजमानम्**) अदातारम् (**इच्छ**) (**स्तेनस्य**) अप्रसिद्धचोरस्य (**इत्याम्**) एतुमर्हां क्रियाम् (**अनु**) (**इहि**) गच्छ (**तस्करस्य**) प्रसिद्धचोरस्य (**अन्यम्**) भिन्नम् (**अस्मत्**) (**इच्छ**) (**सा**) (**ते**) तव (**इत्या**) एतुमर्हा क्रिया (**नमः**) अन्नम् (**देवि**) विदुषि (**निर्ऋते**) नित्ये सत्याचारे पृथिवीवद्वर्त्तमाने (**तुभ्यम्**) (**अस्तु**) भवतु। [अयं मन्त्रः शत०७.२.१.९ व्याख्यातः]॥६२॥

अन्वयः-हे निर्ऋते देवि! त्वमस्मत्स्तेनस्य तस्करस्य सम्बन्धिनं विहायान्यमिच्छासुन्वन्तमयजमानं मेच्छ। यामित्यामन्विहि सेत्या तेऽस्तु, नमश्च तस्यै तुभ्यमस्तु॥६२॥

भावार्थः-हे स्त्रियः! यूयमपुरुषार्थिनः स्तेनसम्बन्धिनः पुरुषान् पतीन् मेच्छत, आप्तनीतीन् गृह्णीत। यथा पृथिव्यनेकोत्तमफलप्रदानेन जनान् रञ्जयति, तथा भवत। एवंभूताभ्यो युष्मभ्यं वयं नमः कुर्मः। यथा वयमलसेभ्यः स्तेनेभ्यश्च पृथग् वर्त्तेमहि, तथा यूयमपि वर्त्तध्वम्॥६२॥

पदार्थः-हे (**निर्ऋते**) पृथिवी के तुल्य वर्त्तमान (**देवि**) विदुषी स्त्री! तू (**अस्मत्**) हम से भिन्न (**स्तेनस्य**) अप्रसिद्ध चोर और (**तस्करस्य**) प्रसिद्ध चोर के सम्बन्धी को छोड़ के (**अन्यम्**) भिन्न को (**इच्छ**) इच्छा कर और (**असुन्वन्तम्**) अभिषव आदि क्रियाओं के अनुष्ठान से रहित (**अयजमानम्**) दानधर्म से रहित पुरुष की (**इच्छ**) इच्छा मत कर और तू जिस (**इत्याम्**) प्राप्त होने योग्य क्रिया को (**अन्विहि**) ढूंढे (**सा**) वह (**इत्या**) क्रिया (**ते**) तेरी हो तथा उस (**तुभ्यम्**) तेरे लिये (**नमः**) अन्न वा सत्कार (**अस्तु**) होवे॥६२॥

भावार्थः-हे स्त्रियो! तुम लोगों को चाहिये कि पुरुषार्थरहित चोरों के सम्बन्धी पुरुषों को अपने पति करने की इच्छा न करो, आप्त पुरुषों की नीति के तुल्य नीति वाले पुरुषों को ग्रहण करो। जैसे पृथिवी अनेक उत्तम फलों के दान से मनुष्यों को संयुक्त करती है, वैसी होओ। ऐसे गुणों वाली तुम को हम लोग नमस्कार करते हैं। जैसे हम लोग आलसी और चोरों के साथ न वर्त्तें, वैसे तुम लोग भी मत वर्त्तो॥६२॥

नमः सु त इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। निर्ऋतिर्देवता। भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनरेताः कथं भवेयुरित्याह॥

फिर ये स्त्री कैसी हों, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

नमः सु ते निर्ऋते तिग्मतेजोऽयस्मयं विचृता बन्धमेतम्।
यमेन त्वं यम्या संविदानोत्तमे नाकेऽअधि रोहयैनम्॥६३॥

नमः। सु। ते। निर्ऋत इति निःऽऋते। तिग्मतेज इति तिग्मऽतेजः। अयस्मयम्। वि। चृत। बन्धम्। एतम्। यमेन। त्वम्। यम्या। संविदानेति सम्ऽविदाना। उत्तम इत्युत्ऽतमे। नाके। अधि। रोहय। एनम्॥६३॥

पदार्थः-(**नमः**) अन्नादिकम् (**सु**) (**ते**) तव (**निर्ऋते**) नितरामृतं सत्यं यस्यां तत्सम्बुद्धौ (**तिग्मतेजः**) तीव्राणि तेजांसि यस्मात् तत् (**अयस्मयम्**) सुवर्णादिप्रकृतम्। **अय इति हिरण्यनामसु पठितम्॥** (निघं०१.२) (**वि**) (**चृत**) विमुञ्च। **द्व्यचोऽतस्तिङः** [अष्टा०६.३.१३५] इति दीर्घः (**बन्धम्**) बध्नाति येन तम् (**एतम्**) (**यमेन**)

न्यायाधीशेन **(त्वम्)** यम्या न्यायकर्त्र्या **(संविदाना)** सम्यक्कृतप्रतिज्ञा **(उत्तमे)** **(नाके)** आनन्दे भोक्तव्ये सति **(अधि)** **(रोहय)** **(एनम्)**। [अयं मन्त्रः शत०७.२.१.१० व्याख्यातः]॥६३॥

अन्वयः-हे निर्ऋते! यस्यास्ते तिग्मतेजोऽयस्मयं नमोऽस्ति, सा त्वमेतं बन्धं सुविचृत। यमेन यम्या सह च संविदाना सत्येनं पतिमुत्तमे नाकेऽधिरोहय॥६३॥

भावार्थः-हे स्त्रियः! यूयं यथेयं पृथिवी तेजः सुवर्णान्नादिसम्बन्धास्ति तथा भवत। यथा युष्माकं पतयो न्यायाधीशा भूत्वा सापराधानपराधिनां सत्यन्यायेन विवेचनं कृत्वा सापराधान् दण्डयन्ति, निरपराधिनः सत्कुर्वन्ति, युष्माननुत्तमानानन्दान् प्रददति, तथा यूयमपि भवत॥६३॥

पदार्थः-हे **(निर्ऋते)** निरन्तर सत्य आचरणों से युक्त स्त्री! जिस **(ते)** तेरे **(तिग्मतेजः)** तीव्र तेजों वाले **(अयस्मयम्)** सुवर्णादि और **(नमः)** अन्नादि पदार्थ हैं सो **(त्वम्)** तू **(एतम्)** इस **(बन्धम्)** बांधने के हेतु अज्ञान का **(सुविचृत)** अच्छे प्रकार छेदन कर **(यमेन)** न्यायाधीश तथा **(यम्या)** न्याय करने हारी स्त्री के साथ **(संविदाना)** सम्यक् बुद्धियुक्त होकर **(एनम्)** इस अपने पति को **(उत्तमे)** उत्तम **(नाके)** आनन्द भोगने में **(अधिरोहय)** आरूढ़ कर॥६३॥

भावार्थः-हे स्त्रियो! तुम को चाहिये कि जैसे यह पृथिवी अग्नि तथा सुवर्ण अन्नादि पदार्थों से सम्बन्ध रखती है, वैसे तुम भी होओ। जैसे तुम्हारे पति न्यायधीश होकर अपराधी और अपराधरहित मनुष्यों का सत्य-न्याय से विचार करके अपराधियों को दण्ड देते और अपराधरहितों का सत्कार करते हैं, तुम लोगों के लिये अत्यन्त आनन्द देते हैं, वैसे तुम लोग भी होओ॥६३॥

यस्यास्त इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। निर्ऋतिर्देवता। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

कस्मै प्रयोजनाय दम्पती भवेतामित्युपदिश्यते॥

किस प्रयोजन के लिये स्त्री पुरुष संयुक्त होवें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

यस्या॑स्ते घोरऽआ॒सञ्जु॒होम्ये॒षां ब॒न्धाना॑मव॒सर्ज॑नाय।

यां त्वा॒ जनो॒ भूमि॒रिति॑ प्रम॒न्द॑ते॒ निर्ऋ॑तिं त्वा॒हं परि॑ वेद वि॒श्वतः॑॥६४॥

यस्याः॑। ते॒। घो॒रे॒। आ॒सन्। जु॒होमि॑। ए॒षाम्। ब॒न्धाना॑म्। अ॒व॒सर्ज॑ना॒येत्य॑व॒ऽसर्ज॑नाय। याम्। त्वा॒। जनः॑। भूमिः॑। इति॑। प्र॒मन्द॑त॒ इति॑ प्र॒ऽमन्द॑ते। निर्ऋ॑ति॒मिति॒ निःऽऋ॑तिम्। त्वा॒। अ॒हम्। परि॑। वे॒द॒। वि॒श्वतः॑॥६४॥

पदार्थः-**(यस्याः)** सुव्रतायाः स्त्रियाः **(ते)** तव **(घोरे)** भयानके **(आसन्)** आस्ये मुखे **(जुहोमि)** ददामि **(एषाम्)** वर्त्तमानानाम् **(बन्धानाम्)** दुःखकारकत्वेन निरोधकानाम् **(अवसर्जनाय)** त्यागाय **(याम्)** **(त्वा)** त्वाम् **(जनः)** **(भूमिः)** **(इति)** इव **(प्रमन्दते)** आनन्दयति **(निर्ऋतिम्)** भूमिमिव **(त्वा)** **(अहम्)** **(परि)** सर्वतः **(वेद)** जानीयाम् **(विश्वतः)** सर्वतः। [अयं मन्त्रः शत०७.२.१.११ व्याख्यातः]॥६४॥

अन्वयः-हे घोरे पत्नि! यस्यास्त आसन्नेषां बन्धानामवसर्जनायामृतात्मकमन्नादिकं जुहोमि, यो जनो भूमिरिति यां त्वा प्रमन्दते, तामहं विश्वतो निर्ऋतिमिव त्वा परि वेद, सा त्वमित्थं मां विद्धि॥६४॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। यथा पतयः स्वानन्दाय स्त्रियो गृह्णन्ति, तथैव तस्मै स्त्रियोऽपि पतीन् गृह्णीयुः। अत्र गृहाश्रमे पतिव्रता स्त्री स्त्रीव्रतः पतिश्च सुखनिधिरिव भवति। क्षेत्रभूता स्त्री बीजरूपः पुमान्,

यद्येतयोः शुद्धयोर्बलवतोः समागमेनोत्तमा विविधाः प्रजा जायेरँस्तर्हि सर्वदा भद्रं भवतीति वेद्यम्॥६४॥

पदार्थः-हे (**घोरे**) दुष्टों को भय करने हारी स्त्री! (**यस्याः**) जिस सुन्दर नियम युक्त (**ते**) तेरे (**आसन्**) मुख में (**एषाम्**) इन (**बन्धानाम्**) दुःख देते हुए रोकने वालों के (**अवसर्जनाय**) त्याग के लिये अमृतरूप अन्नादि पदार्थों को (**जुहोमि**) देता हूं, जो (**जनः**) मनुष्य (**भूमिरिति**) पृथिवी के समान (**याम्**) जिस (**त्वा**) तुझ को (**प्रमन्दते**) आनन्दित करता है, उस तुझ को (**अहम्**) मैं (**विश्वतः**) सब ओर से (**निर्ऋतिम्**) पृथिवी के समान (**त्वा**) (**परि**) सब प्रकार से (**वेद**) जानूं, सो तू भी इस प्रकार मुझ को जान॥६४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे पति अपने आनन्द के लिये स्त्रियों का ग्रहण करते हैं, वैसे ही स्त्री भी पतियों का ग्रहण करें। इस गृहाश्रम में पतिव्रता स्त्री और स्त्रीव्रत पति सुख का कोश होता है। खेतरूप स्त्री और बीजरूप पुरुष है, जो इन शुद्ध बलवान् दोनों के समागम से उत्तम विविध प्रकार के सन्तान हों, तो सर्वदा कल्याण ही बढ़ता रहता है, ऐसा जानना चाहिये॥६४॥

यं ते देवीत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। यजमानो देवता। आर्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

विवाहसमये कीदृशीः प्रतिज्ञाः कुर्य्युरित्याह॥

विवाह समय में कैसी कैसी प्रतिज्ञा करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यं ते॑ दे॒वी निर्ऋ॑तिराब॒बन्ध॒ पाशं॑ ग्री॒वास्व॑विचृ॒त्यम्।

तं ते॒ विष्या॒म्यायु॑षो॒ न मध्या॒दथै॒तं पि॒तुम॑द्धि॒ प्रसू॑तः।

नमो॒ भूत्यै॒ येदं च॒कार॑॥६५॥

यम्। ते॒। दे॒वी। निर्ऋ॑ति॒रिति॒ निःऽऋ॑तिः। आ॒ब॒बन्धेत्या॑ऽब॒बन्ध॑। पाश॑म्। ग्री॒वासु॑। अ॒वि॒चृ॒त्यमित्य॑विऽचृ॒त्यम्। तम्। ते॒। वि। स्या॒मि॒। आयु॑षः। न। मध्या॑त्। अथ॑। ए॒तम्। पि॒तुम्। अ॒द्धि॒। प्रसू॒त इति॒ प्रऽसू॑तः। नम॑ः। भूत्यै॑। या। इ॒दम्। च॒कार॑॥६५॥

पदार्थः-(**यम्**) (**ते**) तव (**देवी**) दिव्या स्त्री (**निर्ऋतिः**) पृथिवीव (**आबबन्ध**) समन्ताद् बध्नामि (**पाशम्**) धर्म्यं बन्धनम् (**ग्रीवासु**) कण्ठेषु (**अविचृत्यम्**) अमोचनीयम् (**तम्**) (**ते**) तव (**वि**) (**स्यामि**) प्रविशामि (**आयुषः**) जीवनस्य (**न**) इव (**मध्यात्**) (**अथ**) आनन्तर्ये (**एतम्**) (**पितुम्**) अन्नादिकम् (**अद्धि**) भुङ्क्ष्व (**प्रसूतः**) उत्पन्नः सन् (**नमः**) सत्कारे (**भूत्यै**) ऐश्वर्यकारिकायै (**या**) (**इदम्**) प्रत्यक्षं नियमनम् (**चकार**) कुर्यात्। [अयं मन्त्रः शत० ७.२.१.१५ व्याख्यातः]॥६५॥

अन्वयः-हे पते! निर्ऋतिरिवाहं ते तव यं ग्रीवास्वविचृत्यं पाशमाबबन्ध, तं ते तवाप्यहं विष्यामि। आयुषोऽन्नस्य न विष्यामि। अथावयोर्मध्यात् कश्चिदपि नियमात् पृथङ् न गच्छेत्। यथाऽहमेतं पितुमद्मि, तथा प्रसूतः सँस्त्वमेनमद्धि। हे स्त्रि! या देवी त्वमिदं पतिव्रताधर्मेण सुसंस्कृतं चकार, तस्यै भूत्यै नमोऽहं करोमि॥६५॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। विवाहसमये यानव्यभिचाराख्यादीन् नियमान् कुर्य्युस्तेभ्योऽन्यथा कदाचिन्नाचरेयुः। कुतः? यदा पाणिं गृह्णन्ति तदा पुरुषस्य यावत्स्वं तावत्सर्वं स्त्रियाः, यावत् स्त्रियास्तावदखिलं पुरुषस्यैव भवति। यदि पुरुषो विवाहितां विहायाऽन्यस्त्रीगो भवेत्, स्त्री च परपुरुषगामिनी स्यात् तावुभौ स्तेनवत्

पापात्मानौ स्याताम्। अतः स्त्रिया अनुमतिमन्तरा पुरुषः पुरुषाज्ञया च विना स्त्री किञ्चिदपि कर्म न कुर्यात्, इदमेव स्त्रीपुरुषयोः प्रीतिकरं कर्म यदव्यभिचरणमिति॥६५॥

पदार्थः-स्त्री कहे कि हे पते! **(निर्ऋतिः)** पृथिवी के समान मैं **(ते)** तेरे **(ग्रीवासु)** कण्ठों में **(अविचृत्यम्)** न छोड़ने योग्य **(यम्)** जिस **(पाशम्)** धर्मयुक्त बन्धन को **(आबबन्ध)** अच्छे प्रकार बांधती हूं, **(तम्)** उसको **(ते)** तेरे लिये भी प्रवेश करती हूं **(आयुषः)** अवस्था के साधन अन्न के **(न)** समान **(वि, स्यामि)** प्रविष्ट होती हूं। **(अथ)** इसके पश्चात् **(मध्यात्)** मैं तू दोनों में से कोई भी नियम से विरूद्ध न चले। जैसे मैं **(एतम्)** इस **(पितुम्)** अन्नादि पदार्थ को भोगती हूं, वैसे **(प्रसूतः)** उत्पन्न हुआ तू इस अन्नादि को **(अद्धि)** भोग। हे स्त्री! **(या)** जो **(देवी)** दिव्य गुण वाली तू **(इदम्)** इस पतिव्रतरूप धर्म से संस्कार किये हुए प्रत्यक्ष नियम को **(चकार)** करे, उस **(भूत्यै)** ऐश्वर्य्य करने हारी तेरे लिये **(नमः)** अन्नादि पदार्थ को देता हूं॥६५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। विवाह समय में जिन व्यभिचार के त्याग आदि नियमों को [स्वीकार] करें, उनसे विरुद्ध कभी न चलें, क्योंकि पुरुष जब विवाहसमय में स्त्री का हाथ ग्रहण करता है, तभी पुरुष का जितना पदार्थ है, वह सब स्त्री का और जितना स्त्री का है, वह सब पुरुष का समझा जाता है। जो पुरुष अपनी विवाहित स्त्री को छोड़ अन्य स्त्री के निकट जावे वा स्त्री दूसरे पुरुष की इच्छा करे, तो वे दोनों चोर के समान पापी होते हैं, इसलिये स्त्री की सम्मति के विना पुरुष और पुरुष की आज्ञा के विना स्त्री कुछ भी काम न करे, यही स्त्री-पुरुषों में परस्पर प्रीति बढ़ाने वाला काम है कि जो व्यभिचार को सब समय में त्याग दें॥६५॥

निवेशन इत्यस्य विश्वावसुर्ऋषिः। अग्निर्देवता। विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

कीदृशाः स्त्रीपुरुषा गृहाश्रमं कर्तुं योग्याः सन्तीत्याह॥

कैसे स्त्री पुरुष गृहाश्रम करने के योग्य होते हैं, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

निवेशनः सङ्गमनो वसूनां विश्वा रूपाभिचष्टे शचीभिः।

देवऽइव सविता सत्यधर्मेन्द्रो न तस्थौ समरे पथीनाम्॥६६॥

निवेशन इति निऽवेशनः। सङ्गमन इति सम्ऽगमनः। वसूनाम्। विश्वा। रूपा। अभि। चष्टे। शचीभिः। देव इवेति देवःऽइव। सविता। सत्यधर्मेति सत्यऽधर्मा। इन्द्रः। न। तस्थौ। समर इति सम्ऽअरे। पथीनाम्॥६६॥

पदार्थः-**(निवेशनः)** यः स्त्रियां निविशते **(सङ्गमनः)** सम्यग्गन्ता **(वसूनाम्)** पृथिव्यादीनां पदार्थानाम् **(विश्वा)** सर्वाणि **(रूपा)** रूपाणि **(अभि)** **(चष्टे)** पश्यति **(शचीभिः)** प्रज्ञाभिः कर्म्मभिर्वा **(देव इव)** यथेश्वरः **(सविता)** सकलजगतः प्रसविता **(सत्यधर्मा)** सत्यो धर्मो यस्य सः **(इन्द्रः)** सूर्यः **(न)** इव **(तस्थौ)** तिष्ठेत् **(समरे)** संग्रामे। **समर इति संग्रामनामसु पठितम्॥** (निघं०२.१७) **(पथीनाम्)** गच्छताम्। [अयं मन्त्रः शत०७.२.१.२० व्याख्यातः]॥६६॥

अन्वयः-यः सत्यधर्मा सविता देव इव निवेशनः सङ्गमनः शचीभिर्वसूनां विश्वा रूपाऽभिचष्टे। इन्द्रो न समरे पथीनां सम्मुखे तस्थौ, स एव गृहाश्रमाय योग्यो जायते॥६६॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारौ। यथेश्वरेण मनुष्योपकाराय कारणात् कार्य्याख्या अनेके पदार्था रचिता उपयुज्यन्ते, यथा सूर्यो मेघेन सह युद्धाय वर्त्तते, तथा मनुष्यैः सृष्टिक्रमविज्ञानेन सुक्रियया च भूम्यादिपदार्थेभ्योऽनेके

व्यवहारा: संसाधनीया:॥६६॥

पदार्थ:-जो **(सत्यधर्मा)** सत्यधर्म से युक्त **(सविता)** सब जगत् के रचने वाले **(देव इव)** ईश्वर के समान **(निवेशन:)** स्त्री का साथी **(सङ्गमन:)** शीघ्रगति से युक्त **(शचीभि:)** बुद्धि वा कर्मों से **(वसूनाम्)** पृथिवी आदि पदार्थों के **(विश्वा)** सब **(रूपा)** रूपों को **(अभिचष्टे)** देखता है, **(इन्द्र:)** सूर्य्य के **(न)** समान **(समरे)** युद्ध में **(पथीनाम्)** चलते हुए मनुष्यों के सम्मुख **(तस्थौ)** स्थित होवे, वही गृहाश्रम के योग्य होता है॥६६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं। मनुष्यों को योग्य है कि जैसे ईश्वर ने सब के उपकार के लिये कारण से कार्यरूप अनेक पदार्थ रच के उपयुक्त करे हैं; जैसे सूर्य मेघ के साथ युद्ध करके जगत् का उपकार करता है, वैसे रचनाक्रम के विज्ञान और सुन्दर क्रिया से पृथिवी आदि पदार्थों से अनेक व्यवहार सिद्ध कर प्रजा को सुख देवें॥६६॥

सीरा इत्यस्य विश्वावसुर्ऋषि:। कृषीवला: कवयो वा देवता:। गायत्रीच्छन्द:। षड्ज: स्वर:॥

अथ कृषियोगविद्या आह॥

अब खेती और योग करने की विद्या अगले मन्त्र में कही है॥

सीरा॑ युञ्जन्ति क॒वयो॑ यु॒गा वित॑न्वते॒ पृथ॑क्। धीरा॑ दे॒वेषु॑ सुम्न॒या॥६७॥

सीरा॑। यु॒ञ्ज॒न्ति॒। क॒वय॑:। यु॒गा। वि। त॒न्व॒ते॒। पृथ॑क्। धीरा॑:। दे॒वेषु॑। सु॒म्न॒येति॑ सुम्न॒ऽया॥६७॥

पदार्थ:-**(सीरा)** सीराणि हलानि **(युञ्जन्ति)** युञ्जन्तु **(कवय:)** मेधाविन:। **कविरिति मेधाविनामसु पठितम्॥** (निघं०३.१५) **(युगा)** युगानि **(वि) (तन्वते)** विस्तृणन्ति **(पृथक्) (धीरा:)** ध्यानवन्त: **(देवेषु)** विद्वत्सु **(सुम्नया)** सुम्नेन सुखेन, अत्र तृतीयैकवचनस्यायाजादेश: **[आङ्याजयारामुपसङ्ख्यानम्।** (अष्टा०वा०७.१.३९)]। [अयं मन्त्र: शत०७.२.२.४ व्याख्यात:]॥६७॥

अन्वय:-हे मनुष्या:! यथा धीरा: कवय: सीरा युगा च युञ्जन्ति, सुम्नया देवेषु पृथग् वितन्वते, तथा सर्वैरेतदनुष्ठेयम्॥६७॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। मनुष्यैरिह विद्वच्छिक्षया कृषिकर्मोन्नेयम्, यथा योगिनो नाडीषु परमेश्वरं समाधियोगेनोपकुर्वन्ति, तथैव कृषिकर्मद्वारा सुखोपयोग: कर्त्तव्य:॥६७॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! जैसे **(धीरा:)** ध्यानशील **(कवय:)** बुद्धिमान् लोग **(सीरा)** हलों और **(युगा)** जुआ आदि को **(युञ्जन्ति)** युक्त करते और **(सुम्नया)** सुख के साथ **(देवेषु)** विद्वानों में **(पृथक्)** अलग **(वितन्वते)** विस्तारयुक्त करते, वैसे सब लोग इस खेती कर्म का सेवन करें॥६७॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों की शिक्षा से कृषिकर्म की उन्नति करें। जैसे योगी नाड़ियो में परमेश्वर को समाधियोग से प्राप्त होते हैं, वैसे ही कृषिकर्म द्वारा सुखों को प्राप्त होवें॥६७॥

युनक्तेत्यस्य विश्वावसुर्ऋषि:। कृषीवला: कवयो वा देवता:। विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्द:। धैवत: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

युनक्त सीरा वि युगा तनुध्वं कृते योनौ वपतेह बीजम्।
गिरा च श्रुष्टिः सभरा असन्नो नेदीयऽइत्सृण्यः पक्वमेयात्॥६८॥

युनक्त। सीरा। वि। युगा। तनुध्वम्। कृते। योनौ। वपत। इह। बीजम्। गिरा। च। श्रुष्टिः। सभरा इति सऽभराः। असत्। नः। नेदीयः। इत्। सृण्यः। पक्वम्। आ। इयात्॥६८॥

पदार्थः-(**युनक्त**) युङ्ग्ध्वम् (**सीरा**) हलादीनि कृष्युपकरणानि नाडीर्वा (**वि**) विविधार्थे (**युगा**) युगानि (**तनुध्वम्**) विस्तृणीत (**कृते**) हलादिभिः कर्षिते योगाङ्गैर्निष्पादितेऽन्तःकरणे वा (**योनौ**) क्षेत्रे (**वपत**) (**इह**) अस्यां भूमौ बुद्धौ वा (**बीजम्**) यवादिकं सिद्धिमूलं वा (**गिरा**) कृषियोगकर्मोपयुक्तया सुशिक्षितया वाचा (**च**) स्वसुविचारेण (**श्रुष्टिः**) शीघ्रम्। **श्रुष्टीति क्षिप्रनामाशु अष्टीति॥** (निरु०६.१२) (**सभराः**) समानधारणापोषणाः (**असत्**) अस्तु (**नः**) अस्मान् (**नेदीयः**) अतिशयेनान्तिकम् (**इत्**) एव (**सृण्यः**) याः क्षेत्रयोगान् गता यवादिजातयः (**पक्वम्**) (**आ**) (**इयात्**) प्राप्नुयात्। [अयं मन्त्रः शत०७.२.२.५ व्याख्यातः]॥६८॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यूयमिह साधनानि वितनुध्वं सीरा युगा युनक्त। कृते योनौ बीजं वपत, गिरा च सभराः श्रुष्टिर्भवत, याः सृण्यः सन्ति ताभ्यो यन्नेदीयोऽसत् पक्वं भवेत् तदिदेव न एयात्॥६८॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यूयं विद्वद्भ्यः कृषीवलेभ्यश्च कृषियोगकर्मशिक्षां प्राप्यानेकानि साधनानि सम्पाद्य कृषिं योगं च कुरुत। तस्माद् यद् यत् पक्वं स्यात्, तत्तद् गृहीत्वोपभुङ्ग्ध्वं भोजयत वा॥६८॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम लोग (**इह**) इस पृथिवी वा बुद्धि में साधनों को (**वितनुध्वम्**) विविध प्रकार से विस्तारयुक्त करो (**सीरा**) खेती के साधन हल आदि वा नाड़ियां और (**युगा**) जुआओं को (**युनक्त**) युक्त करो (**कृते**) हल आदि से जोते वा योग के अङ्गों से शुद्ध किये अन्तःकरण (**योनौ**) खेत में (**बीजम्**) यव आदि वा सिद्धि के मूल को (**वपत**) बोया करो। (**गिरा**) खेती विषयक कर्मों की उपयोगी सुशिक्षित वाणी (**च**) और अच्छे विचार से (**सभराः**) एक प्रकार के धारण और पोषण में युक्त (**श्रुष्टिः**) शीघ्र हूजिये, जो (**सृण्यः**) खेतों में उत्पन्न हुए यव आदि अन्न जाति के पदार्थ हैं, उनमें जो (**नेदीयः**) अत्यन्त समीप (**पक्वम्**) पका हुआ (**असत्**) होवे, वह (**इत्**) ही (**नः**) हम लोगों को (**आ**) (**इयात्**) प्राप्त होवे॥६८॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! तुम लोगों को उचित है कि विद्वानों से योगाभ्यास और खेती करने हारों से कृषिकर्म की शिक्षा को प्राप्त हो और अनेक साधनों को बना के खेती और योगाभ्यास करो। इससे जो अन्नादि पका हो, उस-उस का ग्रहण कर भोजन करो और दूसरों को कराओ॥६८॥

शुनमित्यस्य कुमारहारित ऋषिः। कृषीवला देवताः। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

शुनꣳ सु फाला वि कृषन्तु भूमिꣳ शुनं कीनाशाऽअभि यन्तु वाहैः।
शुनासीरा हविषा तोशमाना सुपिप्पलाऽओषधीः कर्त्तनास्मे॥६९॥

शुनम्। सु। फालाः। वि। कृषन्तु। भूमिम्। शुनम्। कीनाशाः। अभि। यन्तु। वाहैः। शुनासीरा। हविषा। तोशमाना। सुपिप्पला इति सुऽपिप्पलाः। ओषधीः। कर्त्तन। अस्मेऽइत्यस्मे॥६९॥

पदार्थः-(**शुनम्**) सुखम्। **शुनमिति सुखनामसु पठितम्॥** (निघं०३.६) (**सु**) (**फालाः**) फलन्ति विस्तीर्णां भूमिं कुर्वन्ति यैस्ते (**वि**) (**कृषन्तु**) विलिखन्तु (**भूमिम्**) (**शुनम्**) सुखम् (**कीनाशाः**) ये श्रमेण क्लिश्यन्ति ते कृषीवलाः, अत्र **क्लिशेरीच्चोपधायाः कन् लोपश्च लो नाम् च॥** (उणा०५.५६) इति क्लिशधातोः कनि प्रत्यये लो लोप उपधाया ईत्वं धातोर्नामागमश्च (**अभि**) (**यन्तु**) प्राप्नुवन्तु (**वाहैः**) वहन्ति यैस्तैर्वृषभादिवाहनैः (**शुनासीरा**) यथा वायुसूर्यौ। **शुनासीरौ शुनो वायुः सरत्यन्तरिक्षे सीर आदित्यः सरणात्॥** (निरु०९.४०) (**हविषा**) संस्कृतेन घृतादिना संस्कृतौ (**तोशमाना**) सन्तुष्टिकरौ, अत्र वर्णव्यत्ययेन शः, विकरणात्मनेपदव्यत्ययौ च (**सुपिप्पलाः**) शोभनानि पिप्पलानि फलानि यासु ताः (**ओषधीः**) यवादीन् (**कर्त्तन**) कुर्वन्तु (**अस्मे**) अस्मभ्यम्। [अयं मन्त्रः शत०७.२.२.९ व्याख्यातः]॥६९॥

अन्वयः-ये कीनाशास्ते फाला वाहैः सह वर्त्तमानैर्हलादिभिर्भूमिं विकृषन्तु, शुनमभियन्तु। हविषा तोशमाना शुनासीरेवास्मे सुपिप्पला ओषधीः कर्त्तन। ताभिः सु शुनं च॥६९॥

भावार्थः-ये चतुराः कृषिकारा गोवृषभादीन् संरक्ष्य विचारेण कृषिं कुर्वन्ति, तेऽत्यन्तं सुखं लभन्ते। नात्र क्षेत्रेऽमेध्यं किंचित् प्रक्षेप्यम्। किन्तु बीजान्यपि सुगन्ध्यादियुक्तानि कृत्वैव वपन्तु, यतोऽन्नान्यारोग्यकराणि भूत्वा बलबुद्धी वर्धयेयुः॥६९॥

पदार्थः-जो (**कीनाशाः**) परिश्रम से क्लेशभोक्ता खेती करने हारे हैं, वे (**फालाः**) जिनसे पृथिवी को जोतें, उन फालों से (**वाहैः**) बैल आदि के साथ वर्त्तमान हल आदि से (**भूमिम्**) पृथिवी को (**विकृषन्तु**) जोतें और (**शुनम्**) सुख को (**अभियन्तु**) प्राप्त होवें। (**हविषा**) शुद्ध किये घी आदि से शुद्ध (**तोशमाना**) सन्तोषकारक (**शुनासीरा**) वायु और सूर्य्य के समान खेती के साधन (**अस्मे**) हमारे लिये (**सुपिप्पलाः**) सुन्दर फलों से युक्त (**ओषधीः**) जौ आदि (**कर्त्तन**) करें और उन ओषधियों से (**सु**) सुन्दर (**शुनम्**) सुख भोगें॥६९॥

भावार्थः-जो चतुर खेती करने हारे गौ और बैल आदि की रक्षा करके विचार के साथ खेती करते हैं, वे अत्यन्त सुख को प्राप्त होते हैं। इन खेतों में विष्ठा आदि मलीन पदार्थ नहीं डालने चाहिये, किन्तु बीज भी सुगन्धि आदि से युक्त करके ही बोवें कि जिससे अन्न भी रोगरहित उत्पन्न होकर मनुष्यादि के बल और बुद्धि को बढ़ावें॥६९॥

घृतेनेत्यस्य कुमारहारित ऋषिः। कृषीवला देवताः। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

घृतेन सीता मधुना समज्यतां विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः।
ऊर्जस्वती पयसा पिन्वमानास्मान्सीते पयसाभ्या ववृत्स्व॥७०॥

घृतेन॑। सीता॑। मधु॑ना। सम्। अ॒ज्य॒ता॒म्। विश्वैः॑। दे॒वैः। अनु॑म॒तेत्यनु॑ऽमता। म॒रुद्भि॒रिति॑ म॒रुत्ऽभिः॑। ऊर्ज॑स्वती। पय॑सा। पिन्व॑माना। अ॒स्मान्। सी॒ते॒। पय॑सा। अ॒भि। आ। व॒वृ॒त्स्व॒॥७०॥

पदार्थः-(**घृतेन**) आज्येन (**सीता**) साययन्ति क्षेत्रस्थलोष्ठान् क्षयन्ति यया सा काष्ठपट्टिका (**मधुना**) क्षौद्रेण शर्करादिना वा (**सम्**) एकीभावे (**अज्यताम्**) संयुज्यताम् (**विश्वैः**) सर्वैः (**देवैः**) अन्नादिं कामयमानैर्विद्वद्भिः (**अनुमता**) अनुज्ञापिता (**मरुद्भिः**) मनुष्यैः (**ऊर्जस्वती**) ऊर्जः पराक्रमसम्बन्धो विद्यते यस्याः सा (**पयसा**) जलेन दुग्धेन वा (**पिन्वमाना**) सिक्ता सेविता (**अस्मान्**) (**सीते**) सीता (**पयसा**) जलेन (**अभि**) (**आ**) (**ववृत्स्व**) वर्त्तिता भवतु। [अयं मन्त्रः शत०७.२.२.१० व्याख्यातः]॥७०॥

अन्वयः-विश्वैर्देवैर्मरुद्भिर्युष्माभिरनुमता पयसोर्जस्वती पिन्वमाना सीता घृतेन मधुना समज्यताम्। सा सीते सीतास्मान् घृतादिना संयोक्ष्यतीति पयसाऽभ्याववृत्स्व अभ्यावर्त्तताम्॥७०॥

भावार्थः-सर्वे विद्वांसः कृषीवला विद्ययानुज्ञाता घृतमधुजलादिना सुसंस्कृतामनुमतां क्षेत्रभूमिमन्नसुसाधिकां कुर्वन्तु, यथा सुगन्धादियुक्तानि बीजानि कृत्वा वपन्ति, तथैव तामपि सुगन्धेन संस्कृतां कुर्वन्तु॥७०॥

पदार्थः-(**विश्वैः**) सब (**देवैः**) अन्नादि पदार्थों की इच्छा करने वाले विद्वान् (**मरुद्भिः**) मनुष्यों की (**अनुमता**) आज्ञा से प्राप्त हुआ (**पयसा**) जल वा दुग्ध से (**ऊर्जस्वती**) पराक्रम सम्बन्धी (**पिन्वमाना**) सींचा वा सेवन किया हुआ (**सीता**) पटेला (**घृतेन**) घी तथा (**मधुना**) सहत वा शक्कर आदि से (**समज्यताम्**) संयुक्त करो। (**सीते**) पटेला (**अस्मान्**) हम लोगों को घी आदि पदार्थों से संयुक्त करेगा, इस हेतु से (**पयसा**) जल से (**अभ्याववृत्स्व**) बार-बार वर्त्ताओ॥७०॥

भावार्थः-सब विद्वानों को चाहिये कि किसान लोग विद्या के अनुकूल घी, मीठा और जल आदि से संस्कार कर स्वीकार की हुई खेत की पृथिवी को अन्न को सिद्ध करने वाली करें। जैसे बीज सुगन्धि आदि युक्त करके बोते हैं, वैसे पृथिवी को भी संस्कारयुक्त करें॥७०॥

लाङ्गलमित्यस्य कुमारहारित ऋषिः। कृषीवला देवताः। विराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

लाङ्ग॑लं॒ पवी॑रवत् सु॒शेव॑ꣳ सोम॒पित्स॑रु।

तदुद्व॑पति॒ गामविं॑ प्रफ॒र्व्यं॒ च॒ पीव॑रीं प्र॒स्थाव॑द् रथ॒वाह॑णम्॥७१॥

लाङ्ग॑लम्। पवी॑रवत्। सु॒शेव॒मिति॑ऽसु॒ऽशेव॑म्। सो॒म॒पित्स॒र्विति॑ सोम॒पिऽत्स॑रु। तत्। उत्। व॒प॒ति॒। गाम्। अवि॑म्। प्र॒फ॒र्व्य॒मिति॑ प्रऽफ॒र्व्य॒म्। च॒। पीव॑रीम्। प्र॒स्थाव॒दिति॑ प्र॒स्थाऽव॑त्। र॒थ॒वाह॑नम्। र॒थ॒वाह॑न॒मिति॑ रथ॒ऽवाह॑नम्॥७१॥

पदार्थः-(**लाङ्गलम्**) सीरापश्चाद् भागे दाढर्याय संयोज्यं काष्ठम् (**पवीरवत्**) प्रशस्तः पवीरः फालो विद्यते यस्मिन् तत् (**सुशेवम्**) सुष्ठु सुखकरम् (**सोमपित्सरु**) ये सोमयवाद्योषधीः पालयन्ति तान् त्सरयति कुटिलं गमयति (**तत्**) (**उत्**) (**वपति**) (**गाम्**) पृथिवीम् (**अविम्**) रक्षणादिहेतुम् (**प्रफर्व्यम्**) प्रफर्वितुं गमयितुं योग्यम् (**च**) (**पीवरीम्**) यया पाययन्ति तां स्थूलाम् (**प्रस्थावत्**) प्रशस्तं प्रस्थानं यस्यास्ति तत् (**रथवाहनम्**) रथं वहति येन तत्।

[अयं मन्त्रः शत०७.२.२.११ व्याख्यातः]॥७१॥

अन्वयः-हे कृषीवलाः! यूयं सोमपित्सरु पवीरवत् सुशेवं लाङ्गलं प्रफर्व्यं प्रस्थावद् रथवाहनं चास्ति, येनाविं पीवरीं गामुद्वपति तद्यूयं साध्नुत॥७१॥

भावार्थः-कृषीवलैः स्थूलमृत्स्नामन्नाद्युत्पादनेन रक्षिकां सुपरीक्ष्य हलादिसाधनैः संकृष्य समीकृत्य सुसंस्कृतानि बीजानि समुप्योत्तमानि धान्यान्युत्पाद्य भोक्तव्यानि॥७१॥

पदार्थः-हे किसानो! तुम लोग जो **(सोमपित्सरु)** जौ आदि ओषधियों के रक्षकों को टेढ़ा चलावे **(पवीरवत्)** प्रशंसित फाल से युक्त **(सुशेवम्)** सुन्दर सुखदायक **(लाङ्गलम्)** फाले के पीछे जो दृढ़ता के लिये काष्ठ लगाया जाता है, वह **(च)** और **(प्रफर्व्यम्)** चलाने योग्य **(प्रस्थावत्)** प्रशंसित प्रस्थान वाला **(रथवाहनम्)** रथ के चलने का साधन है, जिससे **(अविम्)** रक्षा आदि के हेतु **(पीवरीम्)** सब पदार्थों को भुगाने का हेतु स्थूल **(गाम्)** पृथिवी को **(उद्वपति)** उखाड़ते हैं **(तत्)** उसको तुम भी सिद्ध करो॥७१॥

भावार्थः-किसान लोगों को उचित है कि मोटी मट्टी अन्न आदि की उत्पत्ति से रक्षा करने हारी पृथिवी की अच्छे प्रकार परीक्षा करके हल आदि साधनों से जोत, एकसार कर, सुन्दर संस्कार किये बीज [बो] के उत्तम धान्य उत्पन्न करके भोगें॥७१॥

काममित्यस्य कुमारहारित ऋषिः। मित्रादयो लिङ्गोक्ता देवताः। आर्ची पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पाचिका स्त्री प्रयत्नेन सुसंस्कृतान्यन्नानि व्यञ्जनानि कुर्यादित्याह॥

पकानेहारी स्त्री अच्छे यत्न से सुन्दर अन्न और व्यञ्जनों को बनावे, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

कामं॑ कामदुघे धुक्ष्व मि॒त्राय॒ वरु॑णाय च।
इन्द्रा॑या॒श्विभ्यां॑ पू॒ष्णे प्र॒जाभ्य॒ऽओष॑धीभ्यः॥७२॥

काम॑म्। का॒म॒दु॒घ॒ इति॑ कामऽदुघे। धु॒क्ष्व॒। मि॒त्राय॑। वरु॑णाय। च॒। इन्द्रा॑य। अ॒श्विभ्या॒मित्य॒श्विऽभ्या॑म्। पू॒ष्णे। प्र॒जाभ्य॒ इति॑ प्र॒जाऽभ्यः॑। ओष॑धीभ्यः॥७२॥

पदार्थः-**(कामम्)** इच्छाम् **(कामदुघे)** इच्छापूरिके **(धुक्ष्व)** पिपूर्धि **(मित्राय)** सुहृदे **(वरुणाय)** उत्तमाय विदुषे **(च)** अतिथये **(इन्द्राय)** परमैश्वर्य्ययुक्ताय **(अश्विभ्याम्)** प्राणापानाभ्याम् **(पूष्णे)** पुष्टिकराय **(प्रजाभ्यः)** स्वसन्तानेभ्यः **(ओषधीभ्यः)** सोमयवादिभ्यः। [अयं मन्त्रः शत०७.२.२.१२ व्याख्यातः]॥७२॥

अन्वयः-हे कामदुघे पाचिके त्वं भूमिरिव सुसंस्कृतैरन्नैर्मित्राय वरुणाय चेन्द्रायाश्विभ्यां पूष्णे प्रजाभ्य ओषधीभ्यः कामं धुक्ष्व॥७२॥

भावार्थः-या स्त्री वा पुरुषः पाकं कुर्य्यात् तां तं च पाकविद्यां सुशिक्ष्य हृद्यान्यन्नानि निर्माय संभोज्य सर्वान् रोगान् दूरीकुर्यात्॥७२॥

पदार्थः-हे **(कामदुघे)** इच्छा को पूर्ण करने हारी रसोइया स्त्री! तू पृथिवी के समान सुन्दर संस्कार किये

अन्नों से **(मित्राय)** मित्र **(वरुणाय)** उत्तम विद्वान् **(च)** अतिथि अभ्यागत **(इन्द्राय)** परम ऐश्वर्य्य से युक्त **(अश्विभ्याम्)** प्राण-अपान **(पूष्णे)** पुष्टिकारक जन **(प्रजाभ्यः)** सन्तानों और **(ओषधीभ्यः)** सोमलता आदि ओषधियों से **(कामम्)** इच्छा को **(धुक्ष्व)** पूर्ण कर॥७२॥

भावार्थः-जो स्त्री वा पुरुष भोजन बनावे, उसको चाहिये कि पकाने की विद्या सीख, प्रिय पदार्थ पका और उनका भोजन करा के सब को रोगरहित रक्खें॥७२॥

विमुच्यध्वमित्यस्य कुमारहारित ऋषिः। अघ्न्या देवताः। भुरिगार्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

मनुष्यैर्गवादिपशुवृद्धिं कृत्वा पयोघृतादीनि वर्द्धयित्वानन्दितव्यमित्याह॥

मनुष्यों को गौ आदि पशुओं को बढ़ा, उन से दूध घी आदि की वृद्धि कर आनन्द में रहना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

विमुच्यध्वमघ्न्या देवयानाऽअगन्म तमसस्पारमस्य। ज्योतिरापाम॥७३॥

वि। मुच्यध्वम्। अघ्न्याः। देवयाना इति देवऽयानाः। अगन्म। तमसः। पारम्। अस्य। ज्योतिः। आपाम॥७३॥

पदार्थः-**(वि) (मुच्यध्वम्)** त्यजत **(अघ्न्याः)** हन्तुमयोग्या गाः **(देवयानाः)** याभिर्देवान् दिव्यान् भोगान् प्राप्नुवन्ति ताः **(अगन्म)** गच्छेम **(तमसः)** रात्रेः **(पारम्) (अस्य)** सूर्य्यस्य **(ज्योतिः)** प्रकाशम् **(आपाम)** व्याप्नुयाम। [अयं मन्त्रः शत०७.२.२.२१ व्याख्यातः]॥७३॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा यूयं अघ्न्या देवयानाः प्राप्य सुसंस्कृतान्यन्नानि भुक्त्वा रोगेभ्यो विमुच्यध्वम्, तथा वयमपि विमुच्येमहि। यथा यूयं तमसः पारं प्राप्नुत, तथा वयमप्यगन्म। यथा यूयमस्य ज्योतिर्व्याप्नुत, तथा वयमप्यापाम॥७३॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्या गवादीन् पशून् कदाचिन्न हन्युर्न घातयेयुश्च। यथा सूर्योदयाद् रात्रिर्निवर्त्तते, तथा वैद्यकशास्त्ररीत्याा पथ्यान्यन्नानि संसेव्य रोगेभ्यो निवर्त्तन्ताम्॥७३॥

पदार्थः- हे मनुष्यो! जैसे तुम लोग **(अघ्न्याः)** रक्षा के योग्य **(देवयानाः)** दिव्य भोगों की प्राप्ति की हेतु गौओं को प्राप्त हो, सुन्दर संस्कार किये अन्नों का भोजन करके रोगों से **(विमुच्यध्वम्)** पृथक् रहते हो, वैसे हम लोग भी बचें। जैसे तुम लोग **(तमसः)** रात्रि के **(पारम्)** पार को प्राप्त होते हो, वैसे हम भी **(अगन्म)** प्राप्त होवें। जैसे तुम लोग **(अस्य)** इस सूर्य्य के **(ज्योतिः)** प्रकाश को व्याप्त होते हो, वैसे हम भी **(वि) (आपाम)** व्याप्त होवें॥७३॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि गौ आदि पशुओं को भी न मारें और न मरवावें तथा न किसी को मारने दें। जैसे सूर्य्य के उदय से रात्रि निवृत्त होती है, वैसे वैद्यकशास्त्र की रीति से पथ्य अन्नादि पदार्थों का सेवन कर रोगों से बचें॥७३॥

सजूरब्द इत्यस्य कुमारहारित ऋषिः। अश्विनौ देवते। आर्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

मनुष्यैः कथं कृत्वा सुखयितव्यमित्याह॥

मनुष्यों को किस प्रकार परस्पर सुखी होना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

स॒जूर॑ब्दो॒ऽअय॑वोभिः स॒जूरु॒षाऽअरु॑णीभिः। स॒जोष॑साव॒श्विना॒ दꣳसो॑भिः स॒जूः सूर॒ऽएत॑शेन स॒जूर्वै॑श्वान॒रऽइड॑या घृ॒तेन॒ स्वाहा॑॥७४॥

स॒जूरिति॑ स॒ऽजूः। अब्द॑ः। अय॑वोभि॒रित्यय॑वःऽभिः। स॒जूरिति॑ स॒ऽजूः। उ॒षाः। अरु॑णीभिः। स॒जोष॑सा॒विति॑ स॒जोष॑ऽसौ। अ॒श्विना॑। दꣳसो॑भि॒रिति॒ दꣳस॑ःऽभिः। स॒जूरिति॑ स॒ऽजूः। सूर॑ः। एत॑शेन। स॒जूरिति॑ स॒ऽजूः। वै॒श्वा॒न॒रः। इड॑या। घृ॒तेन॑। स्वाहा॑॥७४॥

पदार्थः-(**सजूः**) संयुक्तः (**अब्दः**) संवत्सरः (**अयवोभिः**) मिश्रितामिश्रितैरन्नैः क्षणादिभिः कालावयवैः (**सजूः**) सह वर्त्तमानाः (**उषाः**) प्रभातः (**अरुणीभिः**) रक्तप्रभाभिः (**सजोषसौ**) समानसेवनौ (**अश्विना**) प्राणापानाविव दम्पती (**दंसोभिः**) कर्मभिः (**सजूः**) सहितः (**सूरः**) सूर्य्यः (**एतशेन**) अश्वेनेव व्याप्तिशीलेन वेगवता किरणनिमित्तेन वायुना। **एतश इत्यश्वनामसु पठितम्॥** (निघं०१.१४) (**सजूः**) संयुक्तः (**वैश्वानरः**) विद्युदग्निः (**इडया**) अन्नादिनिमित्तरूपया पृथिव्या (**घृतेन**) जलेन (**स्वाहा**) सत्येन वागिन्द्रियेण। [अयं मन्त्रः शत०७.२.३.८ व्याख्यातः]॥७४॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! वयं सर्वे स्त्रीपुरुषा यथाऽयवोभिः सजूरब्दोऽरुणीभिः सजूरुषा दंसोभिः सजोषसावश्विनेव एतशेनेव सजूः सूर इडया घृतेन स्वाहा सजूर्वैश्वानरश्च वर्तते, तथैव प्रीत्या वर्त्तेमहि॥७४॥

भावार्थः-मनुष्येषु यावत् परस्परं सौहार्दं तावदेव सुखम्। यावद् दौहार्दं तावदेव दुःखं च जायते, तस्मात् सर्वैः स्त्रीपुरुषः परोपकारक्रियया सहैव सदा वर्त्तितव्यम्॥७४॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! हम सब लोग स्त्री-पुरुष जैसे (**अयवोभिः**) एकरस क्षणादि काल के अवयवों से (**सजूः**) संयुक्त (**अब्दः**) वर्ष (**अरुणीभिः**) लाल कान्तियों के (**सजूः**) साथ वर्त्तमान (**उषाः**) प्रभात समय (**दंसोभिः**) कर्मों से (**सजोषसौ**) एकसा वर्त्ताव वाले (**अश्विना**) प्राण और अपान के समान स्त्री-पुरुष वा (**एतशेन**) चलते घोड़े के समान व्याप्तिशील वेगवाले किरणनिमित्त पवन के (**सजूः**) साथ वर्त्तमान (**सूरः**) सूर्य (**इडया**) अन्न आदि का निमित्तरूप पृथिवी वा (**घृतेन**) जल से (**स्वाहा**) सत्य वाणी के (**सजूः**) साथ (**वैश्वानरः**) बिजुलीरूप अग्नि वर्त्तमान है, वैसे ही प्रीति से वर्त्तें॥७४॥

भावार्थः-मनुष्यों में जितनी परस्पर मित्रता हो उतना ही सुख और जितना विरोध उतना ही दुःख होता है। उस से सब लोग स्त्रीपुरुष परस्पर उपकार करने के साथ ही सदा वर्त्तें॥७४॥

या ओषधीरित्यस्य भिषगृषिः। वैद्यो देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

मनुष्यैरवश्यमौषधसेवनं कृत्वारोगैर्वर्तितव्यमित्याह॥

मनुष्यों को अवश्य ओषधि सेवन कर रोगों से बचना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

या ओष॑धी॒ः पूर्वा॑ जा॒ता दे॒वेभ्य॑स्त्रियु॒गं पु॒रा।

मनै॒ नु ब॒भ्रूणा॑म॒हꣳ श॒तं धामा॑नि स॒प्त च॑॥७५॥

याः। ओष॑धीः। पूर्वा॑ः। जा॒ताः। दे॒वेभ्य॑ः। त्रि॒यु॒गमिति॑ त्रिऽयु॒गम्। पु॒रा। मनै॑। नु। ब॒भ्रूणा॑म्। अ॒हम्। श॒तम्। धामा॑नि। स॒प्त। च॒॥७५॥

पदार्थः-(**याः**) (**ओषधीः**) सोमाद्याः (**पूर्वाः**) (**जाताः**) प्रसिद्धाः (**देवेभ्यः**) पृथिव्यादिभ्यः (**त्रियुगम्**) वर्षत्रयम् (**पुरा**) (**मनै**) मन्यै, अत्र विकरणव्यत्ययेन शप् (**नु**) शीघ्रम् (**बभ्रूणाम्**) भरणानां धारकाणां रोगिणाम् (**अहम्**) (**शतम्**) अनेकानि (**धामानि**) मर्मस्थानानि (**सप्त**) (**च**)॥७५॥

अन्वयः-अहं या ओषधीर्देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा पूर्वा जाता, या बभ्रूणां शतं सप्त च धामानि मर्माणि व्याप्नुवन्ति, ता नु मनै शीघ्रं जानीयाम्॥७५॥

भावार्थः-मनुष्यैर्याः पृथिव्यामप्सु चौषधयो जायन्ते, गतत्रिवर्षा भवेयुस्ताः सङ्गृह्य यथावैद्यकाशास्त्रविधि संसेव्याः, ता भुक्ताः सत्यः सर्वाणि मर्माण्यभिव्याप्य रोगान्निवार्य शरीरसुखानि सद्यो जनयन्ति॥७५॥

पदार्थः-(**अहम्**) मैं (**याः**) जो (**ओषधीः**) सोमलता आदि ओषधी (**देवेभ्यः**) पृथिवी आदि से (**त्रियुगम्**) तीन वर्ष (**पुरा**) पहिले (**पूर्वाः**) पूर्ण सुख दान में उत्तम (**जाताः**) प्रसिद्ध हुई, जो (**बभ्रूणाम्**) धारण करने हारे रोगियों के (**शतम्**) सौ (**च**) और (**सप्त**) सात (**धामानि**) जन्म वा नाड़ियों के मर्मों में व्याप्त होती हैं, उन को (**नु**) शीघ्र (**मनै**) जानूं॥७५॥

भावार्थः-मनुष्यों को योग्य है कि जो पृथिवी और जल में ओषधी उत्पन्न होती हैं, उन तीन वर्ष के पीछे ठीक-ठीक पकी हुई को ग्रहण कर वैद्यकशास्त्र के अनुकूल विधान से सेवन करें। सेवन की हुई वे ओषधी शरीर के सब अंशों में व्याप्त हो के शरीर के रोगों को छुड़ा सुखों को शीघ्र करती हैं॥७५॥

शतं व इत्यस्य भिषगृषिः। वैद्यो देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

मनुष्याः किं कृत्वा किं साधयेयुरित्याह॥

मनुष्य क्या करके किस को सिद्ध करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

शतं वोऽअम्ब धामानि सहस्रमुत वो रुहः।

अधा शतक्रत्वो यूयमिमं मेऽअगदं कृत॥७६॥

शतम्। वः। अम्ब। धामानि। सहस्रम्। उत। वः। रुहः। अध। शतक्रत्व इति शतऽक्रत्वः। यूयम्। इमम्। मे। अगदम्। कृत॥७६॥

पदार्थः-(**शतम्**) (**वः**) युष्माकम् (**अम्ब**) मातः (**धामानि**) मर्मस्थानानि (**सहस्रम्**) असंख्याः (**उत**) अपि (**वः**) युष्माकम् (**रुहः**) नाड्यङ्कुराः (**अधा**) अथ, अत्र **निपातस्य च** [अष्टा०६.३.१३६] इति दीर्घः (**शतक्रत्वः**) शतं क्रतवः प्रज्ञाः क्रिया वा येषां तत्सम्बन्द्धौ (**यूयम्**) (**इमम्**) देहम् (**मे**) मम (**अगदम्**) रोगरहितम् (**कृत**) कुरुत, अत्र विकरणलुक्। [अयं मन्त्रः शत०७.२.४.२७ व्याख्यातः]॥७६॥

अन्वयः-हे शतक्रत्वः! यूयं यासां शतमुत सहस्रं रुहः सन्ति, ताभिर्मे ममेमं देहमगदं कृत। अध स्वयं वो देहानगदान् कुरुत। यानि वोऽसंख्यानि धामानि तानि प्राप्नुत। हे अम्ब! त्वमप्येवमाचर॥७६॥

भावार्थः-मनुष्याणामिदमादिमं कर्त्तव्यं कर्म्मास्ति यदोषधिसेवनं पथ्याचरणं सुनियमव्यवहरणं च कृत्वा शरीरारोग्यसम्पादनम्। नह्येतेन विना धर्मार्थकाममोक्षाणामनुष्ठानं कर्त्तुं कश्चिदपि शक्नोति॥७६॥

पदार्थः-हे (**शतक्रत्वः**) सैकड़ों प्रकार की बुद्धि वा क्रियाओं से युक्त मनुष्यो! (**यूयम्**) तुम लोग जिन के

(शतम्) सैकड़ों **(उत)** वा **(सहस्रम्)** हजारहों **(रुहः)** नाड़ियों के अंकुर हैं, उन ओषधियों से **(मे)** मेरे **(इमम्)** इस शरीर को **(अगदम्)** नीरोग **(कृत)** करो। **(अधा)** इसके पश्चात् **(वः)** आप अपने शरीरों को भी रोगरहित करो, जो **(वः)** तुम्हारे असंख्य **(धामानि)** मर्म्म स्थान हैं, उनको प्राप्त होओ। हे **(अम्ब)** माता! तू भी ऐसा ही आचरण कर॥७६॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि सबसे पहिले ओषधियों का सेवन, पथ्य का आचरण और नियमपूर्वक व्यवहार करके शरीर को रोगरहित करें, क्योंकि इसके विना धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्षों का अनुष्ठान करने को कोई भी समर्थ नहीं हो सकता॥७६॥

ओषधीरित्यस्य भिषगृषिः। वैद्यो देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

कीदृश्य ओषधयः सेव्या इत्याह॥

कैसी ओषधियों का सेवन करना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

ओषधीः प्रतिमोदध्वं पुष्पवतीः प्रसूवरीः।

अश्वाऽइव सजित्वरीर्वीरुधः पारयिष्ण्वः॥७७॥

ओषधीः। प्रति। मोदध्वम्। पुष्पवतीरिति पुष्पऽवतीः। प्रसूवरीरिति प्रऽसूवरीः। अश्वाःऽइवेत्यश्वाःऽइव। सजित्वरीरिति सऽजित्वरीः। वीरुधः। पारयिष्ण्वः॥७७॥

पदार्थः-**(ओषधीः)** सोमादीन् **(प्रति)** **(मोदध्वम्)** आनन्दयत **(पुष्पवतीः)** प्रशस्तानि पुष्पाणि यासां ताः **(प्रसूवरीः)** सुखप्रसाविकाः **(अश्वा इव)** यथा तुरङ्गा **(सजित्वरीः)** शरीरैः सह संयुक्ता रोगान् जेतुं शीलाः **(वीरुधः)** सोमादीन् **(पारयिष्ण्वः)** रोगजदुःखेभ्यः पारं नेतुं समर्थाः॥७७॥

अन्वयः-हे मनुष्याः यूयमश्वा इव सजित्वरीर्वीरुधः पारयिष्णवः पुष्पवतीः प्रसूवरीरोषधीः संसेव्य प्रतिमोदध्वम्॥७७॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। यथाऽश्वारूढा वीराः शत्रून् जित्वा विजयं प्राप्याऽऽनन्दन्ति, तथा सदौषधसेविनः पथ्यकारिणो जितेन्द्रिया जना आरोग्यमवाप्य नित्यं मोदन्ते॥७७॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम लोग **(अश्वा इव)** घोड़ों के समान **(सजित्वरीः)** शरीरों के साथ संयुक्त रोगों को जीतने वाली **(वीरुधः)** सोमलता आदि **(पारयिष्ण्वः)** दुःखों से पार करने के योग्य **(पुष्पवतीः)** प्रशंसित पुष्पों से युक्त **(प्रसूवरीः)** सुख देने हारी **(ओषधीः)** ओषधियों को प्राप्त होकर **(प्रतिमोदध्वम्)** नित्य आनन्द भोगो॥७७॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे घोड़ों पर चढ़े वीर पुरुष शत्रुओं को जीत, विजय को प्राप्त हो के आनन्द करते हैं, वैसे श्रेष्ठ ओषधियों के सेवन और पथ्याहार करने हारे जितेन्द्रिय मनुष्य रोगों से छूट आरोग्य को प्राप्त हो के नित्य आनन्द भोगते हैं॥७७॥

ओषधीरितीत्यस्य भिषगृषिः। चिकित्सुर्देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनः पित्रपत्यानि परस्परं कथं वर्त्तेरन्नित्याह॥

फिर पिता और पुत्र आपस में कैसे वर्त्तें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

ओषधीरिति मातरस्तद्वो देवीरुप ब्रुवे।

सनेयमश्वं गां वासऽआत्मानं तव पूरुष॥७८॥

ओषधीः। इति। मातरः। तत्। वः। देवीः। उप। ब्रुवे। सनेयम्। अश्वम्। गाम्। वासः। आत्मानम्। तव। पूरुष। पुरुषेति पुरुष॥७८॥

पदार्थः-(**ओषधीः**) (**इति**) इव (**मातरः**) जनन्यः (**तत्**) कर्म (**वः**) युष्मान् (**देवीः**) दिव्या विदुषीः (**उप**) समीपस्थः सन् (**ब्रुवे**) उपदिशेयम् (**सनेयम्**) संभजेयम् (**अश्वम्**) तुरङ्गादिकम् (**गाम्**) धेन्वादिकं पृथिव्यादिकं वा (**वासः**) वस्त्रादिकं निकेतनं वा (**आत्मानम्**) जीवम् (**तव**) (**पूरुष**) प्रयत्नशील॥७८॥

अन्वयः-हे ओषधीरिति देवीर्मातरोऽहं तनयो वस्तत्पथ्यं वच उपब्रुवे। हे पुरुष! सुसन्तानाऽहं माता तवाश्वं गां वास आत्मानं च सततं सनेयम्॥७८॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। यथा यवादय ओषधयः सेविताः शरीराणि पुष्यन्ति, तथैव जनन्यो विद्यासुशिक्षोपदेशेनाऽपत्यानि सुपोषयेयुः। यन्मातुरैश्वर्यं तद्दायोऽपत्यस्य यदपत्यस्यैतन्मातुरस्ति, एवं सर्वे सुप्रीत्या वर्त्तित्वा परस्परस्य सुखानि सततं वर्धयेयुः॥७८॥

पदार्थः- हे (**ओषधीः**) ओषधियों के (**इति**) समान सुखदायक (**देवीः**) सुन्दर विदुषी स्त्री (**मातरः**) माता! मैं पुत्र (**वः**) तुम को (**तत्**) श्रेष्ठ पथ्यरूप कर्म्म (**उपब्रुवे**) समीपस्थित होकर उपदेश करूं। हे (**पूरुष**) पुरुषार्थी श्रेष्ठ सन्तान! मैं माता (**तव**) तेरे (**अश्वम्**) घोड़े आदि (**गाम्**) गौ आदि वा पृथिवी आदि (**वासः**) वस्त्र आदि वा घर और (**आत्मानम्**) जीव को निरन्तर (**सनेयम्**) सेवन करूं॥७८॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे जौ आदि ओषधी सेवन की हुई शरीरों को पुष्ट करती हैं, वैसे ही माता विद्या, अच्छी शिक्षा और उपदेश से सन्तानों को पुष्ट करें। जो माता का धन है, वह भाग सन्तान का और जो सन्तान का है, वह माता का ऐसे सब परस्पर प्रीति से वर्त्त कर निरन्तर सुख को बढ़ावें॥७८॥

अश्वत्थ इत्यस्य भिषगृषिः। वैद्यो देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

मनुष्याः प्रत्यहं कीदृशं विचारं कुर्य्युरित्याह॥

मनुष्य लोग नित्य कैसा विचार करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता।

गोभाजऽइत् किलासथ यत् सनवथ पूरुषम्॥७९॥

अश्वत्थे। वः। निषदनम्। निसदनमिति निऽसदनम्। पर्णे। वः। वसतिः। कृता। गोभाज इति गोऽभाजः। इत्। किल। असथ। यत्। सनवथ। पूरुषम्। पुरुषमिति पुरुषम्॥७९॥

पदार्थः-(**अश्वत्थे**) श्वः स्थाता न स्थाता वा वर्त्तते तादृशे देहे (**वः**) युष्माकं जीवानाम् (**निषदनम्**) निवासः (**पर्णे**) चलिते पत्रे (**वः**) युष्माकम् (**वसतिः**) निवासः (**कृता**) (**गोभाजः**) ये गां पृथिवीं भजन्ते ते (**इत्**) इह (**किल**) खलु (**असथ**) भवत (**यत्**) यतः (**सनवथ**) ओषधिदानेन सेवध्वम्, अत्र विकरणद्वयम् (**पूरुषम्**) अन्नादिना पूर्णं देहम्॥७९॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! ओषधय इव यद्वोऽश्वत्थे निषदनं वः पर्णे वसतिः कृताऽस्ति, तस्माद् गोभाजः किल पूरुषं सनवथ सुखिन इदसथ॥७९॥

भावार्थः-मनुष्यैरेवं भावनीयमस्माकं शरीराण्यनित्यानि, स्थितिश्चञ्चलास्ति, तस्माच्छरीरमरोगिनं संरक्ष्य धर्मार्थकाममोक्षाणामनुष्ठानं सद्यः कृत्वाऽनित्यैः साधनैर्नित्यं मोक्षसुखं खलु लब्धव्यम्। यथौषधितृणादीनि पत्रपुष्पफलमूलस्कन्धशाखादिभिः शोभन्ते, तथैव नीरोगाणि शोभानानि भवन्ति॥७९॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! ओषधियों के समान **(यत्)** जिस कारण **(वः)** तुम्हारा **(अश्वत्थे)** कल रहे वा न रहे, ऐसे शरीर में **(निषदनम्)** निवास है; और **(वः)** तुम्हारा **(पर्णे)** कमल के पत्ते पर जल के समान चलायमान संसार में ईश्वर ने **(वसतिः)** निवास **(कृता)** किया है, इससे **(गोभाजः)** पृथिवी को सेवन करते हुए **(किल)** ही **(पूरुषम्)** अन्न आदि से पूर्ण देह वाले पुरुष को **(सनवथ)** ओषधि देकर सेवन करो और सुख को प्राप्त होते हुए **(इत्)** इस संसार में **(असथ)** रहो॥७९॥

भावार्थः-मनुष्यों को ऐसा विचारना चाहिये कि हमारे शरीर अनित्य और स्थिति चलायमान है, इससे शरीर को रोगों से बचा कर धर्म्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष का अनुष्ठान शीघ्र करके अनित्य साधनों से नित्य मोक्ष के सुख को प्राप्त होवें। जैसे ओषधि और तृण आदि फल, फूल, पत्ते, स्कन्ध और शाखा आदि से शोभित होते हैं, वैसे ही रोगरहित शरीरों से शोभायमान हों॥७९॥

यत्रौषधीरित्यस्य भिषगृषिः। ओषधयो देवताः। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनः पुनः सद्वैद्यसेवनं कार्य्यमित्याह॥

बार-बार श्रेष्ठ वैद्यों का सेवन करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

यत्रौषधीः समग्मत राजानः समिताविव।

विप्रः सऽउच्यते भिषग् रक्षोहामीवचातनः॥८०॥

यत्र। ओषधीः। समग्मतेति सम्ऽअग्मत। राजानः। समिताविवेति समितौऽइव। विप्रः। सः। उच्यते। भिषक्। रक्षोहेति रक्षःऽहा। अमीवचातन इत्यमीवऽचातनः॥८०॥

पदार्थः-**(यत्र)** येषु स्थलेषु **(ओषधीः)** सोमाद्याः **(समग्मत)** प्राप्नुत **(राजानः)** क्षत्रधर्मयुक्ता वीराः **(समिताविव)** यथा संग्रामे तथा **(विप्रः)** मेधावी **(सः)** **(उच्यते)** उपदिश्येत, लेट्प्रयोगोऽयम् **(भिषक्)** यो भिषज्यति चिकित्सति सः, अत्र भिषज् धातोः क्विप् **(रक्षोहा)** यो दुष्टानां रोगाणां हन्ता **(अमीवचातनः)** योऽमीवान् रोगान् शातयति सः, अत्र वर्णव्यत्ययेन शस्य चः॥८०॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यूयं यत्रौषधीः सन्ति ता राजानः समिताविव समग्मत, यो रक्षोहाऽमीवचातनो विप्रो भिषग्भवेत् स युष्मान् प्रत्युच्यत उच्येत, तद्गुणान् प्रकाशयेत्, तास्तं च सदा सेवध्वम्॥८०॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। यथा सेनापतिसुशिक्षिता राज्ञो वीरपुरुषाः परमप्रयत्नेन देशान्तरं गत्वा शत्रून् विजित्य राज्यं प्राप्नुवन्ति, तथा सद्वैद्यसुशिक्षिता यूयमोषधिविद्यां प्राप्नुत। यस्मिन् शुद्धे देश ओषधयः सन्ति, ता विज्ञायोपयुङ्ग्ध्वमन्येभ्यश्चोपदिशत॥८०॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम लोग **(यत्र)** जिन स्थलों में **(ओषधीः)** सोमलता आदि ओषधी होती हों, उन को

जैसे **(राजानः)** राजधर्म से युक्त वीरपुरुष **(समिताविव)** युद्ध में शत्रुओं को प्राप्त होते हैं, वैसे **(समग्मत)** प्राप्त हों, जो **(रक्षोहा)** दुष्ट रोगों का नाशक **(अमीवचातनः)** रोगों को निवृत्त करने वाला **(विप्रः)** बुद्धिमान् **(भिषक्)** वैद्य हो, **(सः)** वह तुम्हारे प्रति **(उच्यते)** ओषधियों के गुणों का उपदेश करे और ओषधियों का तथा उस वैद्य का सेवन करो॥८०॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सेनापति से शिक्षा को प्राप्त हुए राजा के वीर पुरुष अत्यन्त पुरुषार्थ से देशान्तर में जा शत्रुओं को जीत के राज्य को प्राप्त होते हैं, वैसे श्रेष्ठ वैद्य से शिक्षा को प्राप्त हुए तुम लोग ओषधियों की विद्या को प्राप्त होओ। जिस शुद्ध देश में ओषधि हों, वहां उन को जान के उपयोग में लाओ और दूसरों के लिये भी बताओ॥८०॥

अश्वावतीमित्यस्य भिषगृषिः। वैद्यो देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

मनुष्यैः सदा पुरुषार्थ उन्नेय इत्याह॥

मनुष्यों को नित्य पुरुषार्थ बढ़ाना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अ॒श्वा॒व॒तीꣳ सोमा॒व॒तीमू॒र्जय॑न्ती॒मुदो॑जसम्।

आवि॑त्सि॒ सर्वा॒ऽओष॑धीर॒स्माऽअ॑रि॒ष्टता॑तये॥८१॥

अ॒श्वा॒व॒तीम्। अ॒श्वा॒व॒तीमित्य॑श्वऽव॒तीम्। सो॒मा॒व॒तीम्। सो॒म॒व॒तीमिति॑ सोम॑ऽव॒तीम्। ऊ॒र्जय॑न्तीम्। उदो॑जस॒मित्यु॒त्ऽओ॑जसम्। आ। अ॒वि॒त्सि॒। सर्वाः॑। ओष॑धीः। अ॒स्मै। अ॒रि॒ष्टता॑त॒ इत्य॑रि॒ष्टऽता॑तये॥८१॥

पदार्थः-**(अश्वावतीम्)** प्रशस्तशुभगुणयुक्ताम्, अत्रोभयत्र मतौ दीर्घः **(सोमावतीम्)** बहुरससहिताम् **(ऊर्जयन्तीम्)** बलं प्रापयन्तीम् **(उदोजसम्)** उत्कृष्टं पराक्रमम् **(आ)** **(अवित्सि)** जानीयाम् **(सर्वाः)** अखिलाः **(ओषधीः)** सोमयवाद्याः **(अस्मै)** **(अरिष्टतातये)** रिष्टानां हिंसकानां रोगाणामभावाय॥८१॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथाऽहमरिष्टतातयेऽश्वावतीं सोमावतीमुदोजसमूर्जयन्तीं महौषधीमावित्सि, सर्वा ओषधीरस्मै यूयमपि प्रयतध्वम्॥८१॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्याणामादिममिदं कर्माऽस्ति यद्रोगाणां निदानचिकित्सौषधपथ्यसेवनमोषधीनां गुणज्ञानं यथावदुपयोजनं च यतो रोगनिवृत्या निरन्तरं पुरुषार्थोन्नतिः स्यादिति॥८१॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे मैं **(अरिष्टतातये)** दुःखदायक रोगों के छुड़ाने के लिये **(अश्वावतीम्)** प्रशंसित शुभगुणों से युक्त **(सोमावतीम्)** बहुत रस से सहित **(उदोजसम्)** अति पराक्रम बढ़ाने हारी **(ऊर्जयन्तीम्)** बल देती हुई श्रेष्ठ ओषधीयों को **(आ)** सब प्रकार **(अवित्सि)** जानूं कि जिससे **(सर्वाः)** सब **(ओषधीः)** ओषधी **(अस्मै)** इस मेरे लिये सुख देवें, इसलिये तुम लोग भी प्रयत्न करो॥८१॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि रोगों का निदान, चिकित्सा, ओषधि और पथ्य के सेवन से निवारण करें तथा ओषधियों के गुणों का यथावत् उपयोग लेवें कि जिससे रोगों की निवृत्ति होकर पुरुषार्थ की वृद्धि होवे॥८१॥

उच्छुष्मा इत्यस्य भिषगृषिः। ओषधयो देवताः। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

किन्निमित्ता ओषधयः सन्तीत्याह॥

ओषधियों का क्या निमित्त है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उच्छुष्मा ओषधीनां गावो गोष्ठादिवेरते।

धनꣳ सनिष्यन्तीनामात्मानं तव पूरुष॥८२॥

उत्। शुष्माः। ओषधीनाम्। गावः। गोष्ठादिव। गोस्थादिवेति गोस्थात्ऽइव। ईरते। धनम्। सनिष्यन्तीनाम्। आत्मानम्। तव। पूरुष। पुरुषेति पुरुष॥८२॥

पदार्थः-(**उत्**) (**शुष्माः**) प्रशस्तबलकारिण्यः। **शुष्मेति बलनामसु पठितम्॥** (निघं०२.९) अर्शआदित्वादच् (**ओषधीनाम्**) सोमयवादीनाम् (**गावः**) धेनवः किरणा वा (**गोष्ठादिव**) यथा स्वस्थानात् तथा (**ईरते**) वत्सान् प्राप्नुवन्ति (**धनम्**) यद्धिनोति वर्धयति तत्। **धनं कस्माद्धिनोतीति सतः॥** (निरु०३.९) (**सनिष्यन्तीनाम्**) संभजन्तीनाम् (**आत्मानम्**) शरीराऽधिष्ठातारम् (**तव**) (**पूरुष**) पुरि देहे शयान देहधारक वा॥८२॥

अन्वयः-हे पूरुष! या धनं सनिष्यन्तीनामोषधीनां शुष्मा गावो गोष्ठादिव तवात्मानमुदीरते, तास्त्वं सेवस्व॥८२॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। हे मनुष्याः! यथा सम्पालिता गावो दुग्धादिभिः स्ववत्सान् मनुष्यादींश्च सम्पोष्य बलयन्ति, तथैवौषधयो युष्माकमात्मशरीरे सम्पोष्य पराक्रमयन्ति। यदि कश्चिदन्नादिकमौषधं न भुञ्जीत, तर्हि क्रमशो बलविज्ञानह्रासं प्राप्नुयात्, तस्मादेता एतन्निमित्ताः सन्तीति वेद्यम्॥८२॥

पदार्थः-हे (**पूरुष**) पुरुष-शरीर में सोने वाले वा देहधारी! (**धनम्**) ऐश्वर्य्य बढ़ाने वाले को (**सनिष्यन्तीनाम्**) सेवन करती हुई (**ओषधीनाम्**) सोमलता वा जौ आदि ओषधियों के सम्बन्ध से जैसे (**शुष्माः**) प्रशंसित बल करने हारी (**गावः**) गौ वा किरण (**गोष्ठादिव**) अपने स्थान से बछड़ों वा पृथिवी को प्राप्त होती हैं, वैसे ओषधियों का तत्त्व (**तव**) तेरे (**आत्मानम्**) आत्मा को (**उदीरते**) प्राप्त होता है, उन सब की तू सेवा कर॥८२॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जैसे रक्षा की हुई गौ अपने दूध आदि से अपने बच्चों और मनुष्य आदि को पुष्ट करके बलवान् करती है, वैसे ही ओषधियाँ तुम्हारे आत्मा और शरीर को पुष्ट कर पराक्रमी करती हैं। जो कोई न खावे तो क्रम से बल और बुद्धि की हानि हो जावे। इसलिये ओषधी ही बल बुद्धि का निमित्त है॥८२॥

इष्कृतिरित्यस्य भिषगृषिः। वैद्या देवताः। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

सुसेविता ओषधयः किं कुर्वन्तीत्याह॥

अच्छे प्रकार सेवन की हुई ओषधी क्या करती हैं। यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

इष्कृतिर्नाम वो माताथो यूयꣳ स्थ निष्कृतीः।

सीराः पतत्रिणी स्थन यदामयति निष्कृथ॥८३॥

इष्कृ॑तिः। नाम॑। वः॒। मा॒ता। अथो॒ऽइत्यथो॑। यू॒यम्। स्थ॒। निष्कृ॑तीः। निष्कृ॑ती॒रिति॒ निःऽकृ॑तीः। सी॒राः। प॒त॒त्रिणीः॑। स्थ॒न। यत्। आ॒मय॑ति। निः। कृ॒थ॒॥८३॥

पदार्थः-(**इष्कृतिः**) निष्कर्त्री (**नाम**) प्रसिद्धम् (**वः**) युष्माकम् (**माता**) जननीव (**अथो**) (**यूयम्**) (**स्थ**) भवत (**निष्कृतीः**) प्रत्युपकारान् (**सीराः**) नदीः। **सीरा इति नदीनामसु पठितम्॥** (निघं०१.१३) (**पतत्रिणीः**) पतितुं गन्तुं शीलाः (**स्थन**) भवत (**यत्**) या क्रिया (**आमयति**) रोगयति (**निः**) नितराम् (**कृथ**) कुरुत, अत्र विकरणस्य लुक्॥८३॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यूयं या व इष्कृतिर्मातेवौषधिर्नाम वर्त्तते, तस्याः सेवका इवौषधीः सेवितारः स्थ। पतत्रिणीः सीराः नद्य इव निष्कृतीः सम्पादयन्तः स्थनाथो यदाऽऽमयति तान्निष्कृथ॥८३॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे मनुष्याः! यथा मातापितरौ युष्मान् सेवन्ते, तथा यूयमप्येतान् सेवध्वम्। यद्यत्कर्म रोगाविष्करं भवति तत्तत् त्यजत। एवं सुसेविता ओषधयः प्राणिनो मातृवत् पोषयन्ति॥८३॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! (**यूयम्**) तुम लोग जो (**वः**) तुम्हारी (**इष्कृतिः**) कार्य्यसिद्धि करने हारी (**माता**) माता के समान ओषधी (**नाम**) प्रसिद्ध है, उसकी सेवा के तुल्य सेवन की हुई ओषधियों को जानने वाले (**स्थ**) होओ (**पतत्रिणीः**) चलने वाली (**सीराः**) नदियों के समान (**निष्कृतीः**) प्रत्युपकारों को सिद्ध करने वाले (**स्थन**) होओ। (**अथो**) इसके अनन्तर (**यत्**) जो क्रिया वा ओषधी अथवा वैद्य (**आमयति**) रोग बढ़ावे, उसको (**निष्कृथ**) छोड़ो॥८३॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जैसे माता-पिता तुम्हारी सेवा करते हैं, वैसे तुम भी उनकी सेवा करो। जो-जो काम रोगकारी हो, उस-उस को छोड़ो। इस प्रकार सेवन की हुई ओषधी माता के समान प्राणियों को पुष्ट करती है॥८३॥

अति विश्वा इत्यस्य भिषगृषिः। वैद्या देवताः। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

कथं रोगा निवर्त्तन्त इत्याह॥

कैसे रोग निवृत्त होते हैं, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अति॒ विश्वाः॑ परि॒ष्ठा स्ते॒नऽइ॑व व्र॒जम॑क्रमुः।

ओष॑धीः॒ प्राचु॑च्यवु॒र्यत्किं च॑ त॒न्वो॒ रपः॑॥८४॥

अति॑। विश्वाः॑। प॒रि॒ष्ठाः। प॒रि॒स्था इति॑ परि॒ऽस्थाः। स्ते॒नइ॒वेति॑ स्ते॒नःऽइ॑व। व्र॒जम्। अ॒क्र॒मुः॒। ओष॑धीः। प्र। अ॒चु॒च्य॒वुः॒। यत्। किम्। च॒। त॒न्वः॒। रपः॑॥८४॥

पदार्थः-(**अति**) (**विश्वाः**) सर्वाः (**परिष्ठाः**) सर्वतः स्थिताः (**स्तेन इव**) यथा चोरो भित्त्यादिकं तथा (**व्रजम्**) गोस्थानम् (**अक्रमुः**) क्राम्यन्ति (**ओषधीः**) सोमयवाद्याः (**प्र**) (**अचुच्यवुः**) च्यावयन्ति नाशयन्ति (**यत्**) (**किम्**) (**च**) (**तन्वः**) (**रपः**) पापफलमिव रोगाख्यं दुःखम्॥८४॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यूयं याः परिष्ठा विश्वा ओषधीर्व्रजं स्तेन इवात्यक्रमुः, यत् किं च तन्वो रपस्तत्सर्वं प्राचुच्यवुस्ता युक्त्योपयुञ्जीध्वम्॥८४॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। यथा चोरो गोस्वामिना धर्षितः सन् आभीरघोषमुल्लङ्घ्य पलायते, तथैव सदौषधैस्ताडिता रोगा नश्यन्ति॥८४॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम लोग जो **(परिष्ठाः)** सब ओर से स्थित **(विश्वा)** सब **(ओषधीः)** सोमलता और जौ आदि ओषधी **(व्रजम्)** जैसे गोशाला को **(स्तेन इव)** भित्ति फोड़ के चोर जावे, वैसे पृथिवी फोड़ के **(अत्यक्रमुः)** निकलती हैं, **(यत्)** जो **(किञ्च)** कुछ **(तन्वः)** शरीर का **(रपः)** पापों के फल के समान रोगरूप दुःख है, उस सब को **(प्राचुच्यवुः)** नष्ट करती हैं, उन ओषधियों को युक्ति से सेवन करो॥८४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे गौओं के स्वामी से धमकाया हुआ चोर भित्ति को फांद के भागता है, वैसे ही श्रेष्ठ ओषधियों से ताड़ना किये रोग नष्ट हो के भाग जाते हैं॥८४॥

यदिमा इत्यस्य भिषगृषिः। वैद्यो देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यदिमा वाजयन्नहमोषधीर्हस्तऽआदधे।

आत्मा यक्ष्मस्य नश्यति पुरा जीवगृभो यथा॥८५॥

यत्। इमाः। वाजयन्। अहम्। ओषधीः। हस्ते। आदध इत्याऽदधे। आत्मा। यक्ष्मस्य। नश्यति। पुरा। जीवगृभ इति जीवऽगृभः। यथा॥८५॥

पदार्थः-**(यत्)** याः **(इमाः)** **(वाजयन्)** प्रापयन् **(अहम्)** **(ओषधीः)** **(हस्ते)** **(आदधे)** **(आत्मा)** तत्त्वमूलम् **(यक्ष्मस्य)** क्षयस्य राजरोगस्य **(नश्यति)** **(पुरा)** पूर्वम् **(जीवगृभः)** यो जीवं गृह्णाति तस्य व्याधेः **(यथा)** येन प्रकारेण॥८५॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा पुरा वाजयन्नहं ओषधीर्हस्त आदधे याभ्यो जीवगृभो यक्ष्मस्यात्मा नश्यति, ताः सद्युक्त्योपयुञ्जताम्॥८५॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैः सुहस्तक्रिययौषधीः संसाध्य यथाक्रममुपयोज्य यक्ष्मादिरोगान्निवार्य्य नित्यमानन्दाय प्रयतितव्यम्॥८५॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! **(यथा)** जिस प्रकार **(पुरा)** पूर्व **(वाजयन्)** प्राप्त करता हुआ **(अहम्)** मैं **(यत्)** जो **(इमाः)** इन **(ओषधीः)** ओषधियों को **(हस्ते)** हाथ में **(आदधे)** धारण करता हूं, जिनसे **(जीवगृभः)** जीव के ग्राहक व्याधि और **(यक्ष्मस्य)** क्षय=राजरोग का **(आत्मा)** मूलतत्त्व **(नश्यति)** नष्ट हो जाता है, उन ओषधियों को श्रेष्ठ युक्तियों से उपयोग में लाओ॥८५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि सुन्दर हस्तक्रिया से ओषधियों को सिद्ध कर ठीक-ठीक क्रम से उपयोग में ला और क्षय आदि बड़े रोगों को निवृत्त करके आनन्द के लिये प्रयत्न करें॥८५॥

यस्यौषधीरित्यस्य भिषगृषिः। वैद्यो देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

यथायोग्यं सेवितमौषधं रोगान् कथं न नाशयेदित्याह॥

ठीक-ठीक सेवन की हुई ओषधी रोगों को कैसे न नष्ट करे, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

यस्यौषधीः प्रसर्पथाङ्गमङ्गं परुष्परुः।

ततो यक्ष्मं विबाधध्वऽउग्रो मध्यमशीरिव॥८६॥

यस्य। ओषधीः। प्रसर्पथेति प्रऽसर्पथ। अङ्गमङ्गमित्यङ्गम्ऽअङ्गम्। परुष्परुः। परुःपरुरिति परुःऽपरुः। ततः। यक्ष्मम्। वि। बाधध्वे। उग्रः। मध्यमशीरिवेति मध्यमशीःऽइव॥८६॥

पदार्थः-(**यस्य**) (**ओषधीः**) (**प्रसर्पथ**) (**अङ्गमङ्गम्**) प्रत्यवयवम् (**परुष्परुः**) मर्ममर्म (**ततः**) (**यक्ष्मम्**) (**वि**) (**बाधध्वे**) (**उग्रः**) (**मध्यमशीरिव**) यो मध्यमानि मर्माणि शृणातीव॥८६॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यूयं यस्याङ्गमङ्गं परुष्परुः प्रति वर्त्तमानं उग्रो यक्ष्मं मध्यमशीरिव विबाधध्वे। तत ओषधीः प्रसर्पथ विजानीत तान् वयं सेवेमहि॥८६॥

भावार्थः-यदि शास्त्राऽनुसारेणौषधानि सेवेरँस्तर्ह्यङ्गादङ्गाद् रोगान् निःसार्याऽरोगिनो भवन्ति॥८६॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम लोग (**यस्य**) जिसके (**अङ्गमङ्गम्**) सब अवयवों और (**परुष्परुः**) मर्म-मर्म के प्रति वर्त्तमान है, उसके उस (**उग्रः**) तीव्र (**यक्ष्मम्**) क्षय रोग को (**मध्यमशीरिव**) बीच के मर्मस्थानों को काटते हुए के समान (**विबाधध्वे**) विशेष कर निवृत्त कर (**ततः**) उसके पश्चात् (**ओषधीः**) ओषधियों को (**प्रसर्पथ**) प्राप्त होओ॥८६॥

भावार्थः-जो मनुष्य लोग शास्त्र के अनुसार ओषधियों का सेवन करें, तो सब अवयवों से रोगों को निकाल के सुखी रहते हैं॥८६॥

साकमित्यस्य भिषगृषिः। वैद्यो देवता। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

कथं कथं रोगा निहन्तव्या इत्याह॥

कैसे-कैसे रोगों को नष्ट करें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

साकं यक्ष्म प्रपत चाषेण किकिदीविना।

साकं वातस्य ध्राज्या साकं नश्य निहाकया॥८७॥

साकम्। यक्ष्म। प्र। पत। चाषेण। किकिदीविना। साकम्। वातस्य। ध्राज्या। साकम्। नश्य। निहाकयेति निऽहाकया॥८७॥

पदार्थः-(**साकम्**) सह (**यक्ष्म**) राजरोगः (**प्र**) (**पत**) प्रपातय (**चाषेण**) भक्षणेन (**किकिदीविना**) किं किं ज्ञानं दीव्यति ददाति यस्तेन, 'कि ज्ञाने' इत्यस्मादौणादिके सन्वति डौ कृते किकिस्तदुपपदाद् दिवुधातोरौणादिकः किर्बाहुलकाद् दीर्घश्च (**साकम्**) (**वातस्य**) वायोः (**ध्राज्याः**) गत्या (**साकम्**) (**नश्य**) नश्येत्, अत्र व्यत्ययः (**निहाकया**) नितरां हातुं योग्यया पीडया॥८७॥

अन्वयः-हे चिकित्सक विद्वन्! किकिदीविना चाषेण साकं यक्ष्म प्रपत, यथा तस्य वातस्य ध्राज्या साकमयं नश्य, निहाकया साकं दूरीभवेत्, तदर्थं प्रयतस्व॥८७॥

भावार्थः-मनुष्यैरौषधसेवनप्राणायामव्यायामै रोगान् निहत्य सुखेन वर्त्तिव्यम्॥८७॥

पदार्थः-हे वैद्य विद्वन् पुरुष! **(किकिदीविना)** ज्ञान बढ़ाने हारे **(चाषेण)** आहार से **(साकम्)** ओषधियुक्त पदार्थों के साथ **(यक्ष्म)** राजरोग **(प्रपत)** हट जाता है, जैसे उस **(वातस्य)** वायु की **(ध्राज्या)** गति के **(साकम्)** साथ **(नश्य)** नष्ट हो और **(निहाकया)** निरन्तर छोड़ने योग्य पीड़ा के **(साकम्)** साथ दूर हो, वैसा प्रयत्न कर॥८७॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि ओषधियों का सेवन योगाभ्यास और व्यायाम के सेवन से रोगों को नष्ट कर सुख से वर्त्तें॥८७॥

अन्या व इत्यस्य भिषगृषिः। वैद्या देवताः। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

युक्त्या संमेलिता ओषधयो रोगनाशिका जायन्त इत्याह॥

युक्ति से मिलाई हुई ओषधियां रोगों को नष्ट करती हैं, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अ॒न्या वो॑ऽअ॒न्याम॑वत्व॒न्यान्यस्या॒ऽउपा॑वत।

ताः सर्वा॑: संविदा॒नाऽइ॒दं मे॒ प्राव॑ता॒ वच॑:॥८८॥

अ॒न्या। व॒ः। अ॒न्याम्। अ॒व॒तु॒। अ॒न्या। अ॒न्यस्या॑ः। उप॑। अ॒व॒त॒। ताः। सर्वा॑ः। सं॒वि॒दा॒ना इति॑ सम्ऽवि॒दा॒नाः। इ॒दम्। मे॒। प्र। अ॒व॒त॒। वच॑ः॥८८॥

पदार्थः-**(अन्या)** भिन्ना **(वः)** युष्मान् **(अन्याम्)** **(अवतु)** रक्षतु **(अन्या)** **(अन्यस्याः)** **(उप)** **(अवत)** **(ताः)** **(सर्वाः)** **(संविदानाः)** परस्परं संवादं कुर्वाणाः **(इदम्)** **(मे)** मम **(प्र)** **(अवत)** अत्र **अन्येषामपि०** [अष्टा०६.३.१३७] इति दीर्घः **(वचः)**॥८८॥

अन्वयः-हे स्त्रियः! संविदाना यूयमिदं मे वचः प्रावत, तास्सर्वा ओषधीरन्या अन्यस्या इवोपावत। यथाऽन्याऽन्यां रक्षति, तथा वोऽध्यापिकाऽवतु॥८८॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा सद्वृत्ताः स्त्रियोऽन्या अन्यस्या रक्षणं कुर्वन्ति, तथैवानुकूल्येन संमिलिता ओषधयः सर्वेभ्यो रोगेभ्यो रक्षन्ति। हे स्त्रियः! यूयमोषधिविद्यायै परस्परं संवदध्वम्॥८८॥

पदार्थः-हे स्त्रियो! **(संविदानाः)** आपस में संवाद करती हुई तुम लोग **(मे)** मेरे **(इदम्)** इस **(वचः)** वचन को **(प्रावत)** पालन करो, **(ताः)** उन **(सर्वाः)** सब ओषधियों की **(अन्या)** दूसरी **(अन्यस्याः)** दूसरी की रक्षा के समान **(उपावत)** समीप से रक्षा करो। जैसे **(अन्या)** एक **(अन्याम्)** दूसरी की रक्षा करती है, वैसे **(वः)** तुम लोगों को पढ़ाने हारी स्त्री **(अवतु)** तुम्हारी रक्षा करे॥८८॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे श्रेष्ठ नियम वाली स्त्री एक-दूसरे की रक्षा करती हैं, वैसे ही अनुकूलता से मिलाई हुई ओषधी सब रोगों से रक्षा करती हैं। हे स्त्रियो! तुम लोग ओषधिविद्या के लिये परस्पर संवाद करो॥८८॥

या इत्यस्य भिषगृषिः। वैद्या देवताः। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

रोगनिवारणार्था एवौषधय ईश्वरेण निर्मिता इत्याह॥

रोगों के निवृत्त होने के लिये ही ओषधी ईश्वर न रची है, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

याः फलिनीर्याऽअफलाऽअपुष्पा याश्च पुष्पिणीः।

बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वꣳहसः॥८९॥

याः। फलिनीः। याः। अफलाः अपुष्पाः। याः। च। पुष्पिणीः। बृहस्पतिप्रसूता इति बृहस्पतिऽप्रसूताः। ताः। नः। मुञ्चन्तु। अꣳहसः॥८९॥

पदार्थः-(**याः**) (**फलिनीः**) बहुफलाः (**याः**) (**अफलाः**) अविद्यमानफलाः (**अपुष्पाः**) पुष्परहिताः (**याः**) (**च**) (**पुष्पिणीः**) बहुपुष्पाः (**बृहस्पतिप्रसूताः**) बृहतां पतिनेश्वरेणोत्पादिताः (**ताः**) (**नः**) अस्मान् (**मुञ्चन्तु**) मोचयन्तु (**अंहसः**) रोगजन्यदुःखात्॥८९॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! या फलिनीर्याः अफला या अपुष्पा याश्च पुष्पिणीर्बृहस्पतिप्रसूता ओषधयो नोंऽहसो यथा मुञ्चन्तु, ता युष्मानपि मोचयन्तु॥८९॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैर्या ईश्वरेण सर्वेषां प्राणिनां जीवनाय रोगनिवारणाय चौषधयो निर्मिताः, ताभ्यो वैद्यकशास्त्रोक्तोपयोगेन सर्वान् रोगान् हत्वा पापाचाराद् दूरे स्थित्वा धर्मे नित्यं प्रवर्त्तितव्यम्॥८९॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! (**याः**) जो (**फलिनीः**) बहुत फलों से युक्त (**याः**) जो (**अफलाः**) फलों से रहित (**याः**) जो (**अपुष्पाः**) फूलों से रहित (**च**) और जो (**पुष्पिणीः**) बहुत फूलों वाली (**बृहस्पतिप्रसूताः**) वेदवाणी के स्वामी ईश्वर के द्वारा उत्पन्न की हुई औषधियां (**नः**) हमको (**अंहसः**) दुःखदायी रोग से जैसे (**मुञ्चन्तु**) छुड़ावें (**ताः**) वे तुम लोगों के भी वैसे रोगों से छुड़ावें॥८९॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि जो ईश्वर ने सब प्राणियों की अधिक अवस्था और रोगों की निवृत्ति के लिये ओषधी रची हैं, उनसे वैद्यकशास्त्र में कही हुई रीतियों से सब रोगों को निवृत्त कर और पापों से अलग रह कर धर्म में नित्य प्रवृत्त रहें॥८९॥

मुञ्चन्तु मेत्यस्य भिषगृषिः। वैद्या देवताः। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

किं किमौषधं कस्मात् कस्मान्मुञ्चतीत्याह॥

कौन-कौन ओषधि किस-किस से छुड़ाती है, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

मुञ्चन्तु मा शपथ्यादथो वरुण्यादुत।

अथो यमस्य पड्वीशात् सर्वस्माद् देवकिल्विषात्॥९०॥

मुञ्चन्तु। मा। शपथ्यात्। अथोऽइत्यथो। वरुण्यात्। उत। अथोऽइत्यथो। यमस्य। पड्वीशात्। सर्वस्मात्। देवकिल्विषादिति देवऽकिल्विषात्॥९०॥

पदार्थः-(**मुञ्चन्तु**) पृथक्कुर्वन्तु (**मा**) माम् (**शपथ्यात्**) शपथे भवात् कर्मणः (**अथो**) (**वरुण्यात्**) वरुणेषु वरेषु भवादपराधात् (**उत**) अपि (**अथो**) (**यमस्य**) न्यायाधीशस्य (**पड्वीशात्**) न्यायविरोधाचरणत् (**सर्वस्मात्**) (**देवकिल्विषात्**) देवेषु विद्वत्स्वपराधकरणात्॥९०॥

अन्वयः-हे विद्वांसः! भवन्तो यथौषधयो रोगात् पृथग् रक्षन्ति, तथा शपथ्यादथो वरुण्यादथो यमस्य पड्वीशादुत सर्वस्माद् देवकिल्विषान्मा मुञ्चन्तु पृथग् रक्षन्तु, तथा युष्मानपि रोगेभ्यो मुञ्चन्तु॥९०॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैः प्रमादकार्य्यौषधं विहायान्यद् भोक्तव्यम्, न कदाचिच्छपथः कार्य्यः, श्रेष्ठापराधान्न्यायविरोधात् पापाचरणाद् विद्वदीर्ष्याविषयात् पृथग् भूत्वाऽऽनुकूल्येन वर्त्तितव्यमिति॥९०॥

पदार्थः-हे विद्वान् लोगो! आप जैसे वे महौषधि रोगों से पृथक् करती हैं, **(शपथ्यात्)** शपथसम्बन्धी कर्म **(अथो)** और **(वरुण्यात्)** श्रेष्ठों में हुए अपराध से, **(अथो)** इसके पश्चात् **(यमस्य)** न्यायाधीश के **(पड्वीशात्)** न्याय के विरुद्ध आचरण से, **(उत)** और **(सर्वस्मात्)** सब **(देवकिल्विषात्)** विद्वानों के विषय में अपराध से **(मा)** मुझको **(मुञ्चन्तु)** पृथक् रक्खें, वैसे तुम लोगों को भी पृथक् रक्खें॥९०॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि प्रमादकारक पदार्थों को छोड़ के अन्य पदार्थों का भोजन करें और कभी सौगन्द, श्रेष्ठों का अपराध, न्याय से विरोध और मूर्खों के समान ईर्ष्या न करें॥९०॥

अवपन्तीरित्यस्य वरुण ऋषिः। वैद्या देवताः। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अध्यापकाः सर्वेभ्य उत्तमौषधिविज्ञानं कारयेयुरित्याह॥

अध्यापक लोग सब को उत्तम ओषधि जनावें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अ॒व॒पत॑न्तीरवदन् दि॒वऽओष॑धय॒स्परि॑।

यं जी॒वम॒श्नवा॑महै॒ न स रि॑ष्याति॒ पूरु॑षः॥९१॥

अ॒व॒पत॑न्ती॒रित्य॑व॒ऽपत॑न्तीः। अ॒व॒द॒न्। दि॒वः। ओष॑धयः। परि॑। यम्। जी॒वम्। अ॒श्नवा॑महै। नः। सः। रि॒ष्या॒ति॒। पूरु॑षः। पूरु॑ष॒ इति॒ पुरु॑षः॥९१॥

पदार्थः-**(अवपतन्तीः)** अध आगच्छन्तीः **(अवदन्)** उपदिशन्तु **(दिवः)** प्रकाशात् **(ओषधयः)** सोमाद्याः **(परि)** सर्वतः **(यम्)** **(जीवम्)** प्राणधारकम् **(अश्नवामहै)** प्राप्नुयाम **(न)** निषेधे **(सः)** **(रिष्याति)** रोगैर्हिंसितो भवेत् **(पूरुषः)** पुमान्॥९१॥

अन्वयः-वयं या दिवोऽवपतन्तीरोषधयः सन्ति, या विद्वांसः पर्यवदन्, याभ्यो यं जीवमश्नवामहै, याः संसेव्य स पूरुषो न रिष्यति, कदाचिद् रोगैर्हिंसितो न भवेत्॥९१॥

भावार्थः-विद्वांसोऽखिलेभ्यो मनुष्येभ्यो दिव्यौषधीनां विद्यां प्रदद्युः, यतोऽलं जीवनं सर्वे प्राप्नुयुः। एता ओषधीः केनापि कदाचिन्नैव विनाशनीयाः॥९१॥

पदार्थः-हम लोग जो **(दिवः)** प्रकाश से **(अवपतन्तीः)** नीचे को आती हुई **(ओषधयः)** सोमलता आदि ओषधि हैं, जिनका विद्वान् लोग **(पर्य्यवदन्)** सब ओर से उपदेश करते हैं, जिनसे **(यम्)** जिस **(जीवम्)** प्राणधारण को **(अश्नवामहै)** प्राप्त होवें, **(सः)** वह **(पूरुषः)** पुरुष **(न)** कभी न **(रिष्याति)** रोगों से नष्ट होवे॥९१॥

भावार्थः-विद्वान् लोग सब मनुष्यों के लिये दिव्य ओषधिविद्या को देवें, जिससे सब लोग पूरी अवस्था

को प्राप्त होवें। इन ओषधियों को कोई भी कभी नष्ट न करे॥९१॥

या ओषधीरित्यस्य वरुण ऋषिः। वैद्या देवताः। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

स्त्रीभिरवश्यमोषधिविद्या ग्राह्या इत्याह॥

स्त्री लोग अवश्य ओषधिविद्या ग्रहण करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

याऽओषधीः सोमराज्ञीर्बह्वीः शतविचक्षणाः।

तासामसि त्वमुत्तमारं कामाय शꣳ हृदे॥९२॥

या। ओषधीः। सोमराज्ञीरिति सोमऽराज्ञीः। बह्वीः। शतविचक्षणा इति शतऽविऽचक्षणाः। तासाम्। असि। त्वम्। उत्तमेत्युत्ऽतमा। अरम्। कामाय। शम्। हृदे॥ ९२॥

पदार्थः-(**याः**) (**ओषधीः**) (**सोमराज्ञीः**) सोमो राजा यासां ताः (**बह्वीः**) (**शतविचक्षणाः**) शतमसंख्या विचक्षणा गुणा यासु ताः (**तासाम्**) (**असि**) (**त्वम्**) (**उत्तमा**) (**अरम्**) अलम् (**कामाय**) इच्छासिद्धये (**शम्**) कल्याणकारिणी (**हृदे**) हृदयाय॥९२॥

अन्वयः-हे स्त्रि! यतस्त्वं याः शतविचक्षणा बह्वीः सोमराज्ञीरोषधीः सन्ति, तासामुत्तमा विदुष्यसि, तस्माच्छं हृदेऽरं कामाय भवितुमर्हसि॥९२॥

भावार्थः-स्त्रीभिरवश्यमोषधिविद्या ग्राह्या नैतामन्तरा पूर्णं कामसुखं लब्धुं शक्यम्, रोगान्निवर्त्तयितुं च॥९२॥

पदार्थः-हे स्त्रि! जिससे (**त्वम्**) तू (**याः**) जो (**शतविचक्षणाः**) असंख्यात शुभगुणों से युक्त (**बह्वीः**) बहुत (**सोमराज्ञीः**) सोम जिनमें राजा अर्थात् सर्वोत्तम (**ओषधीः**) ओषधि हैं, (**तासाम्**) उन के विषय में (**उत्तमा**) उत्तम विदुषी (**असि**) है, इससे (**शम्**) कल्याणकारिणी (**हृदे**) हृदय के लिये (**अरम्**) समर्थ (**कामाय**) इच्छासिद्धि के लिये योग्य होती है, हमारे लिये उन का उपदेश कर॥९२॥

भावार्थः-स्त्रियों को चाहिये कि ओषधिविद्या का ग्रहण अवश्य करें, क्योंकि इसके विना पूर्ण कामना सुख प्राप्ति और रोगों की निवृत्ति कभी नहीं हो सकती॥९२॥

या इत्यस्य वरुण ऋषिः। ओषधयो देवताः। विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

कथं सन्तानोत्पत्तिः कार्य्येत्याह॥

कैसे सन्तानों को उत्पन्न करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

याऽओषधीः सोमराज्ञीर्विष्ठिताः पृथिवीमनु।

बृहस्पतिप्रसूताऽअस्यै संदत्त वीर्य्यम्॥९३॥

याः। ओषधीः। सोमराज्ञीरिति सोमऽराज्ञीः। विष्ठिताः। विस्थिता इति विऽस्थिताः। पृथिवीम्। अनु। बृहस्पतिप्रसूता इति बृहस्पतिऽप्रसूताः। अस्यै। सम्। दत्त। वीर्य्यम्॥ ९३॥

पदार्थः-(**याः**) (**ओषधीः**) ओषध्यः (**सोमराज्ञीः**) सोमप्रमुखाः (**विष्ठिताः**) विशेषेण स्थिताः (**पृथिवीम्**) (**अनु**) (**बृहस्पतिप्रसूताः**) बृहतः कारणस्य पालकस्येश्वरस्य निर्माणादुत्पन्नाः (**अस्यै**) पत्न्यै (**सम्**) (**दत्त**)

(वीर्य्यम्)॥९३॥

अन्वयः-हे विवाहितपुरुष! याः सोमराज्ञीर्बृहस्पतिप्रसूता ओषधीः पृथिवीमनु विष्ठिताः सन्ति, ताभ्योऽस्यै वीर्य्यं देहि। हे विद्वांसः! यूयमेतासां विज्ञानं सर्वेभ्यः संदत्त॥९३॥

भावार्थः-स्त्रीपुरुषाभ्यां महौषधीः संसेव्य सुनियमेन गर्भाधानमनुधेयम्। ओषधिविज्ञानं विद्वद्भ्यः संग्राह्यम्॥९३॥

पदार्थः-हे विवाहित पुरुष! **(याः)** जो **(सोमराज्ञीः)** सोम जिनमें उत्तम है, वे **(बृहस्पतिप्रसूताः)** बड़े कारण के रक्षक ईश्वर की रचना से उत्पन्न हुई **(ओषधीः)** ओषधियाँ **(पृथिवीम्)** **(अनु)** भूमि के ऊपर **(विष्ठिताः)** विशेषकर स्थित हैं, उनसे **(अस्यै)** इस स्त्री के लिये **(वीर्य्यम्)** बीज का दान दे। हे विद्वानो! आप इन ओषधियों का विज्ञान सब मनुष्यों के लिये **(संदत्त)** अच्छे प्रकार दिया कीजिये॥९३॥

भावार्थः-स्त्रीपुरुषों को उचित है कि बड़ी-बड़ी ओषधियों का सेवन करके सुन्दर नियमों के साथ गर्भ धारण करें और ओषधियों का विज्ञान विद्वानों से सीखें॥९३॥

याश्चेदमित्यस्य वरुण ऋषिः। भिषजो देवताः। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

शुद्धेभ्यो देशेभ्य ओषधयः संग्राह्या इत्याह॥

शुद्ध देशों से ओषधियों का ग्रहण करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

याश्चेदमुपशृण्वन्ति याश्च दूरं परागताः।
सर्वाः संगत्य वीरुधोऽस्यै संदत्त वीर्य्यम्॥९४॥

याः। च। इदम्। उपशृण्वन्तीत्युपऽशृण्वन्ति। याः। च। दूरम्। परागता इति पराऽगताः। सर्वाः। संगत्येति सम्ऽगत्य। वीरुधः। अस्यै। सम्। दत्त। वीर्य्यम्॥९४॥

पदार्थः-**(याः)** **(च)** विदिताः **(इदम्)** **(उपशृण्वन्ति)** **(याः)** **(च)** समीपस्थाः **(दूरम्)** **(परागताः)** **(सर्वाः)** **(संगत्य)** एकीभूत्वा **(वीरुधः)** वृक्षप्रभृतयः **(अस्यै)** प्रजायै **(सम्)** **(दत्त)** **(वीर्य्यम्)** पराक्रमम्॥९४॥

अन्वयः-हे विद्वांसः! भवन्तो याश्चोपशृण्वन्ति, याश्च दूरं परागतास्ताः सर्वा वीरुधः सङ्गत्येदं वीर्य्यं प्रसाध्नुवन्ति, तासां विज्ञानमस्यै कन्यायै संदत्त॥९४॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! या ओषधयो दूरसमीपस्था रोगापहारिण्यो बलकारिण्यः श्रूयन्ते, ता उपयुज्यारोगिणो भवत॥९४॥

पदार्थः-हे विद्वानो! आप लोग **(याः)** जो **(च)** विदित हुई और जिनको **(उपशृण्वन्ति)** सुनते हैं, **(याः)** जो **(च)** समीप हों, और जो **(दूरम्)** दूर देश में **(परागताः)** प्राप्त हो सकती हैं, उन **(सर्वाः)** सब **(वीरुधः)** वृक्ष आदि ओषधियों को **(संगत्य)** निकट प्राप्त कर **(इदम्)** इस **(वीर्य्यम्)** शरीर के पराक्रम को वैद्य मनुष्य लोग जैसे सिद्ध करते हैं, वैसे उन ओषधियों का विज्ञान **(अस्यै)** इस कन्या को **(संदत्त)** सम्यक् प्रकार से दीजिये॥९४॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! तुम लोग, जो ओषधियां दूर वा समीप में रोगों को हरने और बल करने हारी सुनी जाती हैं, उनको उपकार में ला के रोगरहित होओ॥९४॥

मा व इत्यस्य वरुण ऋषिः। वैद्या देवताः। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

केनाप्योषधयो नैव ह्रासनीया इत्याह॥

कोई भी मनुष्य ओषधियों की हानि न करे, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

मा वो॑ रिषत् ख॒नि॒ता यस्मै॑ चा॒हं खना॑मि वः।

द्वि॒पाच्चतु॑ष्पाद॒स्मा॒क॒ꣳ सर्व॑मस्त्वनातु॒रम्॥ ९५॥

मा। वः॒। रि॒ष॒त्। ख॒नि॒ता। यस्मै॑। च॒। अ॒हम्। खना॑मि। वः॒। द्वि॒पादिति॑ द्वि॒ऽपात्। चतु॑ष्पात्। चतुः॑पा॒दिति॒ चतुः॑ऽपात्। अ॒स्माक॑म्। सर्व॑म्। अ॒स्तु॒। अ॒ना॒तु॒रम्॥ ९५॥

पदार्थः-(**मा**) (**वः**) युष्मान् (**रिषत्**) हिंस्यात् (**खनिता**) (**यस्मै**) प्रयोजनाय (**च**) (**अहम्**) (**खनामि**) उत्पाटयामि (**वः**) युष्माकम् (**द्विपात्**) मनुष्यादि (**चतुष्पात्**) गवादि (**अस्माकम्**) (**सर्वम्**) (**अस्तु**) भवतु (**अनातुरम्**) रोगातुरतारहितम्॥ ९५॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! अहं यस्मै यामोषधीं खनामि सा खनिता सती वो युष्मान् मा रिषत्। यतो वोऽस्माकं च सर्वं द्विपाच्चतुष्पादनातुरमस्तु॥ ९५॥

भावार्थः-य ओषधीः खनेत् स ता निर्बीजा न कुर्य्यात्। यावत् प्रयोजनं तावदादाय प्रत्यहं रोगान् निवारयेदोषधिसन्ततिं च वर्धयेत्, येन सर्वे प्राणिनो रोगकष्टमप्राप्य सुखिनः स्युः॥ ९५॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! (**अहम्**) मैं (**यस्मै**) जिस प्रयोजन के लिये ओषधी को (**खनामि**) उपाड़ता वा खोदता हूं, वह (**खनिता**) खोदी हुई (**वः**) तुम को (**मा**) न (**रिषत्**) दुःख देवे, जिससे (**वः**) तुम्हारे (**च**) और (**अस्माकम्**) हमारे (**द्विपात्**) दो पग वाले मनुष्य आदि तथा (**चतुष्पात्**) गौ आदि (**सर्वम्**) सब प्रजा उस ओषधि से (**अनातुरम्**) रोगों के दुःखों से रहित (**अस्तु**) होवें॥ ९५॥

भावार्थः-जो पुरुष जिन ओषधियों को खोदे, वह उनकी जड़ न मेटे। जितना प्रयोजन हो उतनी लेकर नित्य रोगों को हटाता रहे, ओषधियों की परम्परा को बढ़ाता रहे कि जिससे सब प्राणी रोगों के दुःखों से बच के सुखी होवें॥ ९५॥

ओषधय इत्यस्य वरुण ऋषिः। वैद्या देवताः। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

किं कृत्वौषधिविज्ञानं वर्द्धेतेत्याह॥

क्या करने से ओषधियों का विज्ञान बढ़े, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

ओष॑धयः॒ सम॑वदन्त॒ सोमे॑न स॒ह राज्ञा॑।

यस्मै॑ कृ॒णोति॑ ब्राह्म॒णस्तꣳ रा॑जन् पारयामसि॥ ९६॥

ओष॑धयः। सम्। अ॒व॒द॒न्त॒। सोमे॑न। स॒ह। राज्ञा॑। यस्मै॑। कृ॒णोति॑। ब्रा॒ह्म॒णः। तम्। रा॒ज॒न्। पा॒र॒या॒म॒सि॒॥ ९६॥

पदार्थः-(**ओषधयः**) सोमाद्याः (**सम्**) (**अवदन्त**) परस्परं संवादं कुर्य्युः (**सोमेन**) (**सह**) (**राज्ञा**) प्रधानेन (**यस्मै**) रोगिणे (**कृणोति**) (**ब्राह्मणः**) वेदोपवेदवित् (**तम्**) (**राजन्**) प्रकाशमान (**पारयामसि**) रोगसमुद्रात् पारं गमयेम॥ ९६॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! याः सोमेन राज्ञा सह वर्त्तमाना ओषधयः सन्ति, तद्विज्ञानार्थं भवन्तः समवदन्त। हे राजन्! वयं वैद्या ब्राह्मणो यस्मै ओषधीः कृणोति, तं रोगिणं रोगात् पारयामसि॥९६॥

भावार्थः-वैद्याः परस्परं प्रश्नोत्तरैरोषधीविज्ञानं सम्यक् कृत्वा रोगेभ्यो रोगिणः पारं नीत्वा सततं सुखयेयुः, यश्चैतेषां विद्वत्तमः स्यात्, स सर्वानायुर्वेदमध्यापयेत्॥९६॥

पदार्थः-हे मनुष्य लोगो! जो **(सोमेन)** **(राज्ञा)** सर्वोत्तम सोमलता के **(सह)** साथ वर्त्तमान **(ओषधयः)** ओषधि हैं, उनके विज्ञान के लिये आप लोग **(समवदन्त)** आपस में संवाद करो। हे वैद्य **(राजन्)** राजपुरुष! हम लोग **(ब्राह्मणः)** वेदों और उपवेदों का वेत्ता पुरुष। **(यस्मै)** जिस रोगी के लिये इन ओषधियों का ग्रहण **(कृणोति)** करता है, **(तम्)** उस रोगी को रोगसागर से उन ओषधियों से **(पारयामसि)** पार पहुँचाते हैं॥९६॥

भावार्थः-वैद्य लोगों को योग्य है कि आपस में प्रश्नोत्तरपूर्वक निरन्तर ओषधियों के ठीक-ठीक ज्ञान से रोगों से रोगी पुरुषों को पार कर निरन्तर सुखी करें। और जो इन में उत्तम विद्वान् हो, वह सब मनुष्यों को वैद्यकशास्त्र पढ़ावे॥९६॥

नाशयित्रीत्यस्य वरुण ऋषिः। भिषग्वरा देवताः। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

रोगपरिमाणा ओषधयः सन्तीत्याह॥

जितने रोग हैं उतनी ओषधि हैं, उन का सेवन करे, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

नाशयित्री बलासस्यार्शसऽउपचितामसि।

अथो शतस्य यक्ष्माणां पाकारोरसि नाशनी॥९७॥

नाशयित्री। बलासस्य। अर्शसः। उपचितामित्युपऽचिताम्। असि। अथोऽइत्यथो। शतस्य। यक्ष्माणाम्। पाकारोरिति पाकऽअरोः। असि। नाशनी॥९७॥

पदार्थः-**(नाशयित्री)** **(बलासस्य)** आविर्भूतकफस्य **(अर्शसः)** मूलेन्द्रियव्याधेः **(उपचिताम्)** अन्येषां वर्धमानानां रोगाणाम् **(असि)** अस्ति **(अथो)** **(शतस्य)** अनेकेषाम् **(यक्ष्माणाम्)** महारोगाणाम् **(पाकारोः)** मुखादिपाकस्यारोर्मर्मच्छिदः शूलस्य च **(असि)** अस्ति, अत्रोभयत्र व्यत्ययः **(नाशनी)** निवारयितुं शीला॥९७॥

अन्वयः-हे वैद्याः! या बलासस्यार्शस उपचितां नाशयित्र्यसि, अथो शतस्य यक्ष्माणां पाकारोर्नाशन्यसि, तामोषधिं यूयं विजानीत॥९७॥

भावार्थः-मनुष्यैरेवं विज्ञेयं यावन्तो रोगाः सन्ति, तावत्य एव तन्निवारिका ओषधयोऽपि वर्त्तन्ते। एतासां विज्ञानेन रहिताः प्राणिनो रोगैः पच्यन्ते। यदि रोगाणामोषधीर्जानीयुस्तर्हि तेषां निवारणात् सततं सुखिनः स्युरिति॥९७॥

पदार्थः-हे वैद्य लोगो! जो **(बलासस्य)** प्रवृद्ध हुए कफ की **(अर्शसः)** गुदेन्द्रिय की व्याधि वा **(उपचिताम्)** अन्य बढ़े हुए रोगों की **(नाशयित्री)** नाश करने हारी **(असि)** ओषधि है, **(अथो)** और जो **(शतस्य)** असंख्यात **(यक्ष्माणाम्)** राजरोगों अर्थात् भगन्दरादि और **(पाकारोः)** मुखरोगों और मर्मों का छेदन करनेहारे शूल की **(नाशनी)** निवारण करने हारी **(असि)** है, उस ओषधि को तुम लोग जानो॥९७॥

भावार्थः-मनुष्यों को ऐसा जानना चाहिये कि जितने रोग हैं, उतनी ही उनकी नाश करनेहारी ओषधि भी हैं। इन ओषधियों को नहीं जाननेहारे पुरुष रोगों से पीड़ित होते हैं। जो रोगों की ओषधि जानें, तो उन रोगों की निवृत्ति करके निरन्तर सुखी होवें॥९७॥

त्वां गन्धर्वा इत्यस्य वरुण ऋषिः। वैद्या देवताः। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

कः क ओषधिं खनतीत्युपदिश्यते॥

कौन-कौन ओषधि का खनन करता है, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

त्वां ग॒न्ध॒र्वाऽअ॑खनँ॒स्त्वामिन्द्र॒स्त्वां बृह॒स्पति॑ः।

त्वामो॑षधे॒ सोमो॒ राजा॑ वि॒द्वान् यक्ष्मा॑दमुच्यत॥९८॥

त्वाम्। ग॒न्ध॒र्वाः। अ॒ख॒न॒न्। त्वाम्। इन्द्र॑ः। त्वाम्। बृह॒स्पति॑ः। त्वाम्। ओ॒ष॒धे॒। सोम॑ः। राजा॑। वि॒द्वान्। यक्ष्मा॑त्। अ॒मु॒च्य॒त॥९८॥

पदार्थः-**(त्वाम्)** ताम् **(गन्धर्वाः)** गानविद्याकुशलाः **(अखनन्)** खनन्ति **(त्वाम्)** ताम् **(इन्द्रः)** परमैश्वर्य्ययुक्तः **(त्वाम्)** ताम् **(बृहस्पतिः)** वेदवित् **(त्वाम्)** ताम् **(ओषधे)** ओषधिम् **(सोमः)** सोम्यगुणसम्पन्नः **(राजा)** प्रकाशमानो राजन्यः **(विद्वान्)** सत्यशास्त्रवित् **(यक्ष्मात्)** क्षयादिरोगात् **(अमुच्यत)** मुच्येत॥९८॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यया सेवितया रोगी यक्ष्मादमुच्यत, यामोषधे ओषधिं यूयमुपयुङ्ग्ध्वम्, त्वां तां गन्धर्वा अखनँस्त्वां तामिन्द्रस्त्वां तां बृहस्पतिस्त्वां तां सोमो विद्वान् राजा च त्वां तां खनेत्॥९८॥

भावार्थः-याः काश्चिदोषधयो मूलेन काश्चिच्छाखादिना काश्चित् पुष्पेण काश्चित् पत्रेण काश्चित् फलेन काश्चित् सर्वाङ्गैः रोगान् मोचयन्ति, तासां सेवनं मनुष्यैर्यथावत् कार्यम्॥९८॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम लोग जिस ओषधी से रोगी **(यक्ष्मात्)** क्षयरोग से **(अमुच्यत)** छूट जाय और जिस **(ओषधे)** ओषधि को उपयुक्त करो **(त्वाम्)** उसको **(गन्धर्वाः)** गानविद्या में कुशल पुरुष **(अखनन्)** ग्रहण करें, **(त्वाम्)** उसको **(इन्द्रः)** परम ऐश्वर्य से युक्त मनुष्य, **(त्वाम्)** उसको **(बृहस्पतिः)** वेदज्ञ जन और **(त्वाम्)** उसको **(सोमः)** सुन्दर गुणों से युक्त **(विद्वान्)** सब शास्त्रों का वेत्ता **(राजा)** प्रकाशमान राजा **(त्वाम्)** उस ओषधि को खोदे॥९८॥

भावार्थः-जो कोई ओषधि जड़ों से, कोई शाखा आदि से, कोई पुष्पों, कोई पत्तों, कोई फलों और कोई सब अवयवों करके रोगों को बचाती हैं। उन ओषधियों का सेवन मनुष्यों को यथावत् करना चाहिये॥९८॥

सहस्वेत्यस्य वरुण ऋषिः। ओषधिर्देवता। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

मनुष्यैः किं कृत्वा किं कार्य्यमित्याह॥

मनुष्यों को क्या करके क्या करना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

सह॑स्व मे॒ऽअरा॑ती॒ः सह॑स्व पृतनायु॒तः।

सह॑स्व॒ सर्वं॑ पा॒प्मान॒ꣳ सह॑मानास्योषधे॥९९॥

सहस्व। मे। अरातीः। सहस्व। पृतनायत इति पृतनाऽयतः। सहस्व। सर्वम्। पाप्मानम्। सहमाना। असि। ओषधे॥९९॥

पदार्थः-(**सहस्व**) बली भव (**मे**) मम (**अरातीः**) शत्रून् (**सहस्व**) (**पृतनायतः**) आत्मनः पृतनां सेनामिच्छतः (**सहस्व**) (**सर्वम्**) (**पाप्मानम्**) रोगादिकम् (**सहमाना**) बलनिमित्ता (**असि**) (**ओषधे**) ओषधिवद् वर्त्तमाने॥९९॥

अन्वयः-हे ओषधे औषधिवद्वर्त्तमाने स्त्रि! यथौषधिः सहमानासि मे मम रोगान् सहते, तथऽरातीः सहस्व, स्वस्य पृतनायतः सहस्व, सर्वं पाप्मानं सहस्व॥९९॥

भावार्थः-मनुष्यैरोषधिसेवनेन बलं वर्धयित्वा प्रजायाः स्वस्य च शत्रून् पापात्मनो जनाँश्च वशं नीत्वा सर्वे प्राणिनः सुखयितव्याः॥९९॥

पदार्थः-(**ओषधे**) ओषधी के सदृश ओषधिविद्या की जानने हारी स्त्री! जैसे ओषधी (**सहमाना**) बल का निमित्त (**असि**) है, (**मे**) मेरे रोगों का निवारण करके बल बढ़ाती है, वैसे (**अरातीः**) शत्रुओं को (**सहस्व**) सहन कर। अपने (**पृतनायतः**) सेनायुद्ध की इच्छा करते हुओं को (**सहस्व**) सहन कर और (**सर्वम्**) सब (**पाप्मानम्**) रोगादि को (**सहस्व**) सहन कर॥९९॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि ओषधियों के सेवन से बल बढ़ा और प्रजा के तथा अपने शत्रुओं और पापी जनों को वश में करके सब प्राणियों को सुखी करें॥९९॥

दीर्घायुस्त इत्यस्य वरुण ऋषिः। वैद्या देवताः। विराड्बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

मनुष्याः कथं भूत्वा स्वभिन्नान् कथं कुर्युरित्याह॥

मनुष्य कैसे हो के दूसरों को कैसे करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

दीर्घायुस्तेऽओषधे खनिता यस्मै च त्वा खनाम्यहम्।

अथो त्वं दीर्घायुर्भूत्वा शतवल्शा विरोहतात्॥१००॥

दीर्घायुरिति दीर्घऽआयुः। ते। ओषधे। खनिता। यस्मै। च। त्वा। खनामि। अहम्। अथोऽइत्यथो। त्वम्। दीर्घायुरिति दीर्घऽआयुः। भूत्वा। शतवल्शेति शतऽवल्शा। वि। रोहतात्॥१००॥

पदार्थः-(**दीर्घायुः**) चिरमायुः (**ते**) तस्याः (**ओषधे**) ओषधिवद्वर्त्तमान विद्वन् (**खनिता**) सेवकः (**यस्मै**) (**च**) (**त्वा**) ताम् (**खनामि**) (**अहम्**) (**अथो**) (**त्वम्**) (**दीर्घायुः**) (**भूत्वा**) (**शतवल्शा**) शतमसंख्याता वल्शा अङ्कुरा यस्याः सा (**वि**) (**रोहतात्**)॥१००॥

अन्वयः-हे ओषधे ओषध इव मनुष्य! यस्य ते तव यामोषधीं खनिताऽहं यस्मै च खनामि, तया त्वं दीर्घायुर्भव, दीर्घायुर्भूत्वाथो त्वं या शतवल्शौषधी वर्त्तते, त्वा तां सेवित्वाऽथ सुखी भव, तथा विरोहतात्॥१००॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यूयमोषधिसेवनेन दीर्घायुषो भवत। धर्माचारिणश्च भूत्वा सर्वानोषधिसेवनेनेदृशान् कुरुत॥१००॥

पदार्थः-हे (**ओषधे**) ओषधि के तुल्य ओषधियों के गुण-दोष जाननेहारे पुरुष! जिससे (**ते**) तेरी जिस

ओषधि का **(खनिता)** सेवन करने हारा **(अहम्)** मैं **(यस्मै)** जिस प्रयोजन के लिये **(च)** और जिस पुरुष के लिये **(खनामि)** खोदूं, उससे तू **(दीर्घायुः)** अधिक अवस्था वाला हो, **(अथो)** और **(दीर्घायुः)** बड़ी अवस्था वाला **(भूत्वा)** होकर **(त्वम्)** तू जो **(शतवल्शा)** बहुत अङ्कुरों से युक्त ओषधि है, **(त्वा)** उसको सेवन करके सुखी हो और **(वि, रोहतात्)** प्रसिद्ध हो॥१००॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! तुम लोग ओषधियों के सेवन से अधिक अवस्था वाले होओ और धर्म का आचरण करने हारे सब मनुष्यों को ओषधियों के सेवन से दीर्घ अवस्था वाले करो॥१००॥

त्वमुत्तमासीत्यस्य वरुण ऋषिः। भिषजो देवताः। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्सौषधिः कीदृशीत्याह॥

फिर वह ओषधि किस प्रकार की है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

त्वमु॑त्त॒मास्यो॑षधे॒ तव॑ वृ॒क्षाऽउप॑स्तयः।

उप॑स्तिरस्तु॒ सो॒ऽस्माक॒ं योऽअ॒स्माँ२ऽ अ॑भि॒दास॑ति॥१०१

त्वम्। उ॒त्तमेत्यु॑त्ऽत॒मा। अ॒सि॒। ओ॒ष॒धे॒। तव॑। वृ॒क्षाः। उप॑स्तयः। उप॑स्तिः। अ॒स्तु॒। सः। अ॒स्माक॑म्। यः। अ॒स्मान्। अ॒भि॒दास॒तीत्य॑भि॒ऽदास॑ति॥१०१॥

पदार्थः-**(त्वम्)** **(उत्तमा)** **(असि)** अस्ति, अत्र व्यत्ययः **(ओषधे)** ओषधी **(तव)** यस्याः **(वृक्षाः)** वटादयः **(उपस्तयः)** ये उप समीपे स्त्यायन्ति संघ्नन्ति ते। अत्रोपपूर्वात् स्त्यै संघात इत्यस्मादौणादिकः क्विप् संप्रसारणं च **(उपस्तिः)** संहतिः **(अस्तु)** **(सः)** **(अस्माकम्)** **(यः)** **(अस्मान्)** **(अभिदासति)** अभीष्टं सुखं ददाति॥१०१॥

अन्वयः-हे वैद्यजन! योऽस्मान् अभिदासति स त्वमस्माकमुपस्तिरस्तु, योत्तमौषधे ओषधिरसि अस्ति तव यस्य वृक्षा उपस्तयस्तेनौषधिनाऽस्मभ्यं सुखं देहि॥१०१॥

भावार्थः-मनुष्यैर्न कदाचिद् विरोधिनो वैद्यस्यौषधं ग्राह्यम्, न विरोधिमित्रस्य च। किन्तु यो वैद्यकशास्त्रार्थविदाप्तोऽजातशत्रुः सर्वोपकारी सर्वेषां सुहृद् वर्त्तते, तस्मादौषधविद्या संग्राह्या॥१०१॥

पदार्थः-हे वैद्यजन! **(यः)** जो **(अस्मान्)** हमको **(अभिदासति)** अभीष्ट सुख देता है, **(सः)** वह **(त्वम्)** तू **(अस्माकम्)** हमारा **(उपस्तिः)** संगी **(अस्तु)** हो, जो **(उत्तमा)** उत्तम **(ओषधे)** ओषधि **(असि)** है, **(तव)** जिसके **(वृक्षाः)** वट आदि वृक्ष **(उपस्तयः)** समीप इकट्ठे होनेवाले हैं, उस ओषधि से हमारे लिये सुख दे॥१०१॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि विरोधी वैद्य की और विरोधी मित्र की ओषधि कभी न ग्रहण करें, किन्तु जो वैद्यकशास्त्रज्ञ, जिसका कोई शत्रु न हो, धर्मात्मा, सब का मित्र, सर्वोपकारी है, उससे ओषधिविद्या ग्रहण करें॥१०१॥

मा मेत्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः। को देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ किमर्थ ईश्वरः प्रार्थनीयः इत्याह॥

अब किसलिये ईश्वर की प्रार्थना करनी चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

मा मा॑ हिꣳसीज्जनि॒ता यः पृ॑थि॒व्या यो वा॒ दिव॑ꣳ स॒त्यध॑र्मा॒ व्यान॑ट्।

यश्चापश्चन्द्राः प्रथमो जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम॥१०२॥

मा। मा। हिꣳसीत्। जनिता। यः। पृथिव्याः। यः। वा। दिवम्। सत्यधर्मेति सत्यऽधर्मा। वि। आनट्। यः। च। अपः। चन्द्राः। प्रथमः। जजान। कस्मै। देवाय। हविषा। विधेम॥१०२॥

पदार्थः-(**मा**) निषेधे (**मा**) माम् (**हिंसीत्**) रोगैर्हिंस्यात् (**जनिता**) उत्पादकः (**यः**) जगदीश्वरः (**पृथिव्याः**) भूमेः (**यः**) (**वा**) (**दिवम्**) सूर्यादिकं जगत् (**सत्यधर्मा**) सत्यो धर्मो यस्य सः (**वि**) (**आनट्**) व्याप्तोऽस्ति (**यः**) (**च**) अग्निं सूर्यम् (**अपः**) जलानि वायून् (**चन्द्राः**) चन्द्रादिलोकान्, अत्र शसः स्थाने जस् (**प्रथमः**) जन्मादेः पृथगादिमः (**जजान**) जनयति (**कस्मै**) सुखस्वरूपाय सुखकारकाय। **क इति पदनामसु पठितम्॥** (निघं०५.४) **'वाच्छन्दसि सर्वे विधयः'** इति सर्वनामकार्य्यम् (**देवाय**) दिव्यसुखप्रदाय विज्ञानस्वरूपाय (**हविषा**) उपादेयेन भक्तियोगेन (**विधेम**) परिचरेम। [अयं मन्त्रः शत०७.३.१.२ व्याख्यातः]॥१०२॥

अन्वयः-यः सत्यधर्मा जगदीश्वरः पृथिव्या जनिता, यो वा दिवमपश्च व्यानट्, चन्द्राश्च जजान, यस्मै कस्मै देवाय हविषा वयं विधेम, स जगदीश्वरो मा मा हिंसीत्॥१०२॥

भावार्थः-मनुष्यैः सत्यधर्मप्राप्तये ओषध्यादिविज्ञानाय च परमेश्वरः प्रार्थनीयः॥१०२॥

पदार्थः-(**यः**) जो (**सत्यधर्मा**) सत्यधर्म वाला जगदीश्वर (**पृथिव्याः**) पृथिवी का (**जनिता**) उत्पन्न करने वाला (**वा**) अथवा (**यः**) जो (**दिवम्**) सूर्य आदि जगत् को (**च**) और पृथिवी तथा (**अपः**) जल और वायु को (**व्यानट्**) उत्पन्न करके व्याप्त होता है और जो (**चन्द्राः**) चन्द्रमा आदि लोकों को (**जजान**) उत्पन्न करता है। जिस (**कस्मै**) सुखस्वरूप सुख करने हारे (**देवाय**) दिव्य सुखों के दाता विज्ञानस्वरूप ईश्वर का (**हविषा**) ग्रहण करने योग्य भक्तियोग से हम लोग (**विधेम**) सेवन करें, वह जगदीश्वर (**मा**) मुझको (**मा**) नहीं (**हिंसीत्**) कुसंग से ताड़ित होने देवे॥१०२॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि सत्यधर्म की प्राप्ति और ओषधि आदि के विज्ञान के लिये परमेश्वर की प्रार्थना करें॥१०२॥

अभ्यावर्त्तस्वेत्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

भूस्थपदार्थविज्ञानं कथं कर्त्तव्यमित्याह॥

पृथिवी के पदार्थों का विज्ञान कैसे करना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अभ्यावर्त्तस्व पृथिवि यज्ञेन पयसा सह।

वपां तेऽअग्निरिषितोऽअरोहत्॥१०३॥

अभि। आ। वर्त्तस्व। पृथिवि। यज्ञेन। पयसा। सह। वपाम्। ते। अग्निः। इषितः। अरोहत्॥१०३॥

पदार्थः-(**अभि**) (**आ**) (**वर्त्तस्व**) वर्त्तते वा (**पृथिवि**) भूमिः (**यज्ञेन**) सङ्गमनेन (**पयसा**) जलेन (**सह**) (**वपाम्**) वपनम् (**ते**) तव (**अग्निः**) (**इषितः**) प्रेरितः (**अरोहत्**) रोहति। [अयं मन्त्रः शत०७.३.१.२१ व्याख्यातः]॥१०३॥

अन्वयः-हे मनुष्य! त्वं या पृथिवि भूमिर्यज्ञेन पयसा सह वर्त्तते, तामभ्यावर्त्तस्वाभिमुख्येनावर्त्तते। यया ते

वपामिषितोऽग्निररोहत् स गुणकर्मस्वभावतः सर्वैर्वेदितव्यः॥१०३॥

भावार्थः-या भूमिः सर्वस्याधारा रत्नाकरा जीवनप्रदा विद्युद्युक्ताऽस्ति, तस्या विज्ञानं भूगर्भविद्यातः सर्वैर्मनुष्यैः कार्यम्॥१०३॥

पदार्थः-हे मनुष्य! तू जो **(पृथिवि)** भूमि **(यज्ञेन)** सङ्गम के योग्य **(पयसा)** जल के **(सह)** साथ वर्त्तती है, उसको **(अभ्यावर्त्तस्व)** सब ओर से शीघ्र वर्त्ताव कीजिये। जो **(ते)** आप के **(वपाम्)** बोने को **(इषितः)** प्रेरणा किया **(अग्निः)** अग्नि **(अरोहत्)** उत्पन्न करता है, वह अग्नि गुण, कर्म और स्वभाव के साथ सब को जानना चाहिये॥१०३॥

भावार्थः-जो पृथिवी सब का आधार, उत्तम रत्नादि पदार्थों की दाता, जीवन का हेतु, बिजुली से युक्त है, उस का विज्ञान भूगर्भविद्या से सब मनुष्यों को करना चाहिये॥१०३॥

अग्ने यत्त इत्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिग् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

किमर्थाऽग्निविद्यान्वेषणीया इत्याह॥

किसलिये अग्निविद्या की खोज करनी चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अग्ने यत्ते शुक्रं यच्चन्द्रं यत्पूतं यच्च यज्ञियम्। तद्देवेभ्यो भरामसि॥१०४॥

अग्ने। यत्। ते। शुक्रम्। यत्। चन्द्रम्। यत्। पूतम्। यत्। च। यज्ञियम्। तत्। देवेभ्यः। भरामसि॥१०४॥

पदार्थः-**(अग्ने)** विद्वन् **(यत्) (ते)** तुभ्यम् **(शुक्रम्)** आशुकरम् **(यत्) (चन्द्रम्)** हिरण्यवदानन्दप्रदम् **(यत्) (पूतम्)** पवित्रम् **(यत्) (च) (यज्ञियम्)** यज्ञानुष्ठानार्हं स्वरूपम् **(तत्) (देवेभ्यः)** गुणेभ्यः **(भरामसि)** भरेम। [अयं मन्त्रः शत०७.३.१.२२ व्याख्यातः]॥१०४॥

अन्वयः-हे अग्ने विद्वन्! यत्पावकस्य शुक्रं यच्चन्द्रं यत्पूतं यच्च यज्ञियं स्वरूपमस्ति, तत्ते देवेभ्यश्च वयं भरामसि॥१०४॥

भावार्थः-मनुष्यैर्दिव्यगुणकर्म्मसिद्धये विद्युदादेरग्नेर्विद्या संप्रेक्षणीया॥१०४॥

पदार्थः-हे **(अग्ने)** विद्वन् पुरुष! **(यत्)** जो अग्नि का **(शुक्रम्)** शीघ्रकारी, **(यत्)** जो **(चन्द्रम्)** सुवर्ण के समान आनन्द देने हारा, **(यत्)** जो **(पूतम्)** पवित्र, **(च)** और **(यत्)** जो **(यज्ञियम्)** यज्ञानुष्ठान के योग्य स्वरूप है, **(तत्)** वह **(ते)** आप के और **(देवेभ्यः)** दिव्यगुण होने के लिये **(भरामसि)** हम लोग धारण करें॥१०४॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि श्रेष्ठ गुण और कर्मों की सिद्धि के लिये बिजुली आदि अग्निविद्या को विचारें॥१०४॥

इषमूर्जमित्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः। विद्वान् देवता। विराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ युक्ताहारविहारौ कुर्य्युरित्याह॥

अब ठीक-ठीक आहार-विहार करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

इषमूर्जमहमितऽआदमृतस्य योनिं महिषस्य धाराम्।
आ मा गोषु विशत्वा तनुषु जहामि सेदिमनिराममीवाम्॥१०५॥

इषम्। ऊर्जम्। अहम्। इतः। आदम्। ऋतस्य। योनिम्। महिषस्य। धाराम्। आ। मा। गोषु। विशतु। आ। तनूषु। जहामि। सेदिम्। अनिराम् अमीवाम्॥१०५॥

पदार्थः-(**इषम्**) अन्नम् (**ऊर्जम्**) पराक्रमम् (**अहम्**) (**इतः**) अस्मात् पूर्वोक्तात् विद्युत्स्वरूपात् (**आदम्**) अत्तुं योग्यम् (**ऋतस्य**) सत्यस्य (**योनिम्**) कारणम् (**महिषस्य**) महतः (**धाराम्**) धारिकां वाचम् (**आ**) (**मा**) माम् (**गोषु**) इन्द्रियेषु (**विशतु**) प्रविशतु (**आ**) (**तनूषु**) शरीरेषु (**जहामि**) (**सेदिम्**) हिंसाम्। **सदिमनि०॥** (अष्टा०वा०३.२.१७१) इति वार्त्तिकेनास्य सिद्धिः (**अनिराम्**) अविद्यमाना इराऽन्नभुक्तिर्यस्यां ताम् (**अमीवाम्**) रोगोत्पन्नां पीडाम्। [अयं मन्त्रः शत०७.३.१.२३ व्याख्यातः]॥१०५॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथाऽहमित आदमिषमूर्जं महिषस्यर्त्तस्य योनिं धारां प्राप्नुयाम्, यथेयमिडूर्क् मा मामाविशतु, येन मम गोषु तनूषु प्रविष्टां सेदिमनिराममीवां जहामि त्यजामि, तथा यूयमपि कुरुत॥१०५॥

भावार्थः-मनुष्या अग्नेर्यच्छुक्रादियुक्तं स्वरूपं तेन रोगान् हन्युः। इन्द्रियाणि शरीराणि च स्वस्थान्यरोगाणि कृत्वा कार्य्यकारणज्ञापिकां विद्यावाचं प्राप्नुवन्तु, युक्त्याहारविहारौ च कुर्य्युः॥१०५॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे (**अहम्**) मैं (**इतः**) इस पूर्वोक्त विद्युत्स्वरूप से (**आदम्**) भोगने योग्य (**इषम्**) अन्न (**ऊर्जम्**) पराक्रम (**महिषस्य**) बड़े (**ऋतस्य**) सत्य के (**योनिम्**) कारण (**धाराम्**) धारण करने वाली वाणी को प्राप्त होऊं, जैसे अन्न और पराक्रम (**मा**) मुझ को (**आविशतु**) प्राप्त हो, जिससे मेरे (**गोषु**) इन्द्रियों और (**तनूषु**) शरीर में प्रविष्ट हुई (**सेदिम्**) दुःख का हेतु (**अनिराम्**) जिसमें अन्न का भोजन भी न कर सकें, ऐसी (**अमीवाम्**) रोगों से उत्पन्न हुई पीड़ा को (**आ, जहामि**) छोड़ता हूं, वैसे तुम लोग भी करो॥१०५॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि अग्नि का जो वीर्य्य आदि से युक्त स्वरूप है, उसको प्रदीप्त करने से रोगों का नाश करें। इन्द्रिय और शरीर को स्वस्थ रोगरहित करके कार्य्य-कारण की जाननेहारी विद्यायुक्त वाणी को प्राप्त होवें और युक्ति से आहार-विहार भी करें॥१०५॥

अग्ने त्वेत्यस्य पावकाग्निर्ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृत् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

मनुष्यैः कथं भवितव्यमित्याह॥

मनुष्यों को कैसा होना चाहिये, यह विषये अगले मन्त्र में कहा है॥

अग्ने तव श्रवो वयो महि भ्राजन्तेऽअर्चयो विभावसो।
बृहद्भानो शवसा वाजमुक्थ्यं दधासि दाशुषे कवे॥१०६॥

अग्ने। तव। श्रवः। वयः। महि। भ्राजन्ते। अर्चयः। विभावसो इति विभाऽवसो। बृहद्भानो इति बृहत्ऽभानो। शवसा। वाजम्। उक्थ्यम्। दधासि। दाशुषे। कवे॥१०६॥

पदार्थः-(**अग्ने**) पावक इव वर्त्तमान विद्वन् (**तव**) (**श्रवः**) श्रवणम् (**वयः**) जीवनम् (**महि**) पूज्यं महत् (**भ्राजन्ते**) (**अर्चयः**) दीप्तयः (**विभावसो**) यो विविधायां भायां वसति तत्सम्बुद्धौ (**बृहद्भानो**) अग्निवद् बृहन्तो महान्तो भानवो विद्याप्रकाशा यस्य तत्सम्बुद्धौ (**शवसा**) बलेन (**वाजम्**) विज्ञानम् (**उक्थ्यम्**) वक्तुं योग्यम् (**दधासि**) (**दाशुषे**) दातुं योग्याय विद्यार्थिने (**कवे**) विक्रान्तप्रज्ञ। [अयं मन्त्रः शत०७.३.१.२९ व्याख्यातः]॥१०६॥

अन्वयः-हे बृहद्भानो विभावसो कवेऽग्ने विद्वन्! यतस्त्वं शवसा दाशुष उक्थ्यं वाजं दधासि, तस्मात् तवाग्नेरिव महि श्रवो वयोऽर्चयश्च भ्राजन्ते॥१०६॥

भावार्थः-ये मनुष्या अग्निवद् गुणिन आप्तवत् सत्कीर्त्तयः प्रकाशन्ते, ते परोपकारायान्येभ्यो विद्याविनयधर्मान् सततमुपदिशेयुः॥१०६॥

पदार्थः-हे (**बृहद्भानो**) अग्नि के समान अत्यन्त विद्याप्रकाश से युक्त (**विभावसो**) विविध प्रकार की कान्ति में वसने हारे (**कवे**) अत्यन्त बुद्धिमान् (**अग्ने**) अग्नि के समान वर्त्तमान विद्वान् पुरुष! जिससे आप (**शवसा**) बल के साथ (**दाशुषे**) दान के योग्य विद्यार्थी के लिये (**उक्थ्यम्**) कहने योग्य (**वाजम्**) विज्ञान को (**दधासि**) धारण करते हो, इसमें (**तव**) आप का अग्नि के समान (**महि**) अति पूजने योग्य (**श्रवः**) सुनने योग्य शब्द (**वयः**) यौवन और (**अर्चयः**) दीप्ति (**भ्राजन्ते**) प्रकाशित होती हैं॥१०६॥

भावार्थः-जो मनुष्य अग्नि के समान गुणी और आप्तों के तुल्य श्रेष्ठ कीर्त्तियों से प्रकाशित होते हैं, वे परोपकार के लिये दूसरों को विद्या, विनय और धर्म का निरन्तर उपदेश करें॥१०६॥

पावकवर्चेत्यस्य पावकाग्निर्ऋषिः। विद्वान् देवता। भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

जनकजनन्यौ सन्तानान् प्रति किं किं कुर्यातामित्याह॥

माता-पिता सन्तानों के प्रति क्या-क्या करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

पावकवर्चाः शुक्रवर्चाऽअनूनवर्चाऽउदियर्षि भानुना।

पुत्रो मातरा विचरन्नुपावसि पृणक्षि रोदसीऽउभे॥१०७॥

पावकवर्चा इति पावकऽवर्चाः। शुक्रवर्चा इति शुक्रऽवर्चाः। अनूनवर्चा इत्यनूनऽवर्चाः। उत्। इयर्षि। भानुना। पुत्रः। मातरा। विचरन्निति विऽचरन्। उप। अवसि। पृणक्षि। रोदसी इति रोदसी। उभे इत्युभे॥१०७॥

पदार्थः-(**पावकवर्चाः**) पवित्रीकारिकाया विद्युतो वर्चो दीप्तिरिव वर्चोऽध्ययनं यस्य सः (**शुक्रवर्चाः**) शुक्रस्य सूर्यस्य प्रकाश इव वर्चो न्यायाचरणं यस्य सः (**अनूनवर्चाः**) न विद्यते ऊनं न्यूनं वर्चोऽध्ययनं यस्य सः (**उत्**) **इयर्षि**) प्राप्नोषि (**भानुना**) धर्मप्रकाशेन (**पुत्रः**) (**मातरा**) मातापितरौ (**विचरन्**) (**उप**) (**अवसि**) रक्षसि (**पृणक्षि**) सम्बध्नासि (**रोदसी**) द्यावापृथिव्यौ (**उभे**)। [अयं मन्त्रः शत०७.३.१.३० व्याख्यातः]॥१०७॥

अन्वयः-हे जन! यस्त्वं यथा पुत्रो ब्रह्मचर्यादिषु विचरन् सन् विद्यामाप्नोति, यथा सूर्यविद्युतौ भानुना पावकवर्चाः शुक्रवर्चाः अनूनवर्चा न्यायं करोति, यथा उभे रोदसी सम्बध्नीतस्तथा विद्यामुदियर्षि राज्यं पृणक्षि, मातरोपाऽवसि, तस्माद् धार्मिकोऽसि॥१०७॥

भावार्थः-मातापितॄणामिदमत्युचितमस्ति यत्सन्तानानुत्पाद्य बाल्यावस्थायां स्वयं सुशिक्ष्य, ब्रह्मचर्यं कारयित्वाऽऽचार्यकुले विद्याग्रहणाय सम्प्रेष्य विद्यायोगकरणम्। अपत्यानां चेदं समुचितं वर्त्तते यद्विद्यासुशिक्षायुक्ता भूत्वा पुरुषार्थेनैश्वर्यमुन्नीय निरभिमानमत्सरया प्रीत्या मातापितॄणां मनसा वाचा कर्मणा यथावत् परिचर्यानुष्ठानं कर्त्तव्यमिति॥१०७॥

पदार्थः-हे मनुष्य! जैसे (**पुत्रः**) पुत्र ब्रह्मचर्यादि आश्रमों में (**विचरन्**) विचरता हुआ विद्या को प्राप्त होता और (**भानुना**) प्रकाश से (**पावकवर्चाः, शुक्रवर्चाः**) बिजुली और सूर्य के प्रकाश के समान न्याय करने और

(अनूनवर्चा:) पूर्ण विद्याऽभ्यास करने हारा और जैसे **(उभे)** दोनों **(रोदसी)** आकाश और पृथिवी परस्पर सम्बन्ध करते हैं, वैसे **(उत्, इयर्षि)** विद्या को प्राप्त होता राज्य का **(पृणक्षि)** सम्बन्ध करता और **(मातरा)** माता-पिता की **(उपावसि)** रक्षा करता है, इससे तू धर्मात्मा है॥१०७॥

भावार्थ:-मातापिताओं को यह अति उचित है कि सन्तानों को उत्पन्न कर बाल्यावस्था में आप शिक्षा दे, ब्रह्मचर्य करा, आचार्य के कुल में भेज के विद्यायुक्त करें। सन्तानों को चाहिये कि विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त हो और पुरुषार्थ से ऐश्वर्य्य को बढ़ा के अभिमान और मत्सरतारहित प्रीति से माता-पिता की मन, वाणी और कर्म्म से यथावत् सेवा करें॥१०७॥

ऊर्जो नपादित्यस्य पावकाग्निर्ऋषि:। अग्निर्देवता। निचृत् पङ्क्तिश्छन्द:। पञ्चम: स्वर:॥

मातापितृसन्ताना: कीदृशा भवेयुरित्याह॥

माता-पिता और पुत्र कैसे हों, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

ऊर्जो नपाज्जातवेद: सुशस्तिभिर्मन्दस्व धीतिभिर्हित:।

त्वेऽइष: संदधुर्भूरिवर्पसश्चित्रोतयो वामजाता:॥१०८॥

ऊर्ज:। नपात्। जातवेद इति जातऽवेद:। सुशस्तिभिरिति सुशस्तिऽभि:। मन्दस्व। धीतिभिरिति धीतिऽभि:। हित:। त्वेऽइति त्वे। इष:। सम्। दधु:। भूरिवर्पस इति भूरिऽवर्पस:। चित्रोतय इति चित्रऽऊतय:। वामजाता इति वामऽजाता:॥१०८॥

पदार्थ:-**(ऊर्ज:)** पराक्रमस्य **(नपात्)** न विद्यते पातो धर्मात् पतनं यस्य स: **(जातवेद:)** जातप्रज्ञान जातवित्त **(सुशस्तिभि:)** शोभनाभि: प्रशंसाभि: क्रियाभि: सह **(मन्दस्व)** आनन्द **(धीतिभि:)** स्वाङ्गुलीभि:, **धीतय इत्यङ्गुलिनामसु पठितम्॥** (निघं०२.५) **(हित:)** सर्वस्य हितं दधन् **(त्वे)** त्वयि **(इष:)** अन्नादीनि **(सम्) (दधु:)** दधतु **(भूरिवर्पस:)** बहूनि प्रशंसनीयानि वर्पांसि रूपाणि यासु ता:। **वर्प इति रूपनामसु पठितम्॥** (निघं०३.७) **(चित्रोतय:)** चित्रा आश्चर्य्यवद् रक्षणाद्या: क्रिया यासु ता: **(वामजाता:)** वामेषु प्रशस्येषु कर्मसु वा जाता: प्रसिद्धा:, **वाम इति प्रशस्यनामसु पठितम्॥** (निघं०३.८)। [अयं मन्त्र: शत०७.३.१.३१ व्याख्यात:]॥१०८॥

अन्वय:-हे जातवेदस्तनय! यस्मिँस्त्वे त्वयि भूरिवर्पसश्चित्रोतयो वामजाता मात्रादयोऽध्यापिका इष: संदधु:, स सुशस्तिभिर्धीतिभिराहूतस्त्वम् ऊर्ज्जो नपाद्धित: सदा मन्दस्व॥१०८॥

भावार्थ:-येषां कुमाराणां कुमारीणां मातरो विद्याप्रिया विदुष्य: सन्ति, त एव सततं सुखमाप्नुवन्ति। यासां मातॄणां येषां पितॄणां चापत्यानि विद्यासुशिक्षाब्रह्मचर्य्यै: शरीरात्मबलयुक्तानि धर्माचारीणि सन्ति, त एव सदा सुखिन: स्यु:॥१०८॥

पदार्थ:-हे **(जातवेद:)** बुद्धि और धन से युक्त पुत्र! जिस **(त्वे)** तुझ में **(भूरिवर्पस:)** बहुत प्रशंसा के योग्य रूपों से युक्त **(चित्रोतय:)** आश्चर्य के तुल्य रक्षा आदि कर्म्म करने वाली **(वामजाता:)** प्रशंसा के योग्य कुलों वा कर्मों में प्रसिद्ध विद्याप्रिय अध्यापिका माता आदि विदुषी स्त्रियां **(इष:)** अन्नों को **(संदधु:)** धरें, भोजन करावें, सो तू **(सुशस्तिभि:)** उत्तम प्रशंसायुक्त क्रियाओं के साथ **(धीतिभि:)** अङ्गुलियों से बुलाया हुआ **(ऊर्ज:)** **(नपात्)** धर्म के अनुकूल पराक्रमयुक्त सब के **(हित:)** हित को धारण सदा किये हुए **(मन्दस्व)** आनन्द में

रह॥१०८॥

भावार्थः-जिन कुमार और कुमारियों की माता विद्याप्रिय विदुषी हों, वे ही निरन्तर सुख को प्राप्त होते हैं, और जिन माता-पिताओं के सन्तान विद्या, अच्छी शिक्षा और ब्रह्मचर्य्य सेवन से शरीर और आत्मा के बल से युक्त धर्म का आचरण करने वाले हैं, वे ही सदा सुखी हों॥१०८॥

इरज्यन्नित्यस्य पाकाग्निर्ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

मनुष्यः कीदृशो भवेदित्याह॥

मनुष्य कैसा हो, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

इ॒र॒ज्यन्न॑ग्ने प्रथयस्व ज॒न्तुभि॑र॒स्मे रायो॑ऽअमर्त्य।

स द॑र्श॒तस्य॒ वपु॑षो॒ वि रा॑जसि पृ॒णक्षि॑ सान॒सिं क्रतु॑म्॥ १०९॥

इ॒र॒ज्यन्। अ॒ग्ने॒। प्र॒थ॒य॒स्व॒। ज॒न्तुभि॒रिति॑ ज॒न्तुऽभिः॑। अ॒स्मेऽइत्य॒स्मे। राय॑ः। अ॒म॒र्त्य॒। सः। द॒र्श॒तस्य॑। वपु॑षः। वि। रा॒ज॒सि॒। पृ॒णक्षि॑। सा॒न॒सिम्। क्रतु॑म्॥ १०९॥

पदार्थः-(**इरज्यन्**) ऐश्वर्य्यं कुर्वन्, **इरज्यतीति ऐश्वर्य्यकर्मसु पठितम्॥** (निघं०२.२१) (**अग्ने**) अग्निवत् प्राप्तपुरुषार्थ (**प्रथयस्व**) विस्तारय (**जन्तुभिः**) मनुष्यादिभिः (**अस्मे**) अस्मभ्यम् (**रायः**) श्रियः (**अमर्त्य**) नाशप्राकृतमनुष्यस्वभावरहित (**सः**) (**दर्शतस्य**) द्रष्टुं योग्यस्य (**वपुषः**) रूपस्य, **वपुरिति रूपनामसु पठितम्॥** (निघं०३.७) (**वि**) (**राजसि**) (**पृणक्षि**) सम्बध्नासि (**सानसिम्**) सनातनीम् (**क्रतुम्**) प्रज्ञाम्। [अयं मन्त्रः शत०७.३.१.३२ व्याख्यातः]॥१०९॥

अन्वयः-हे अमर्त्याग्ने! य इरज्यंस्त्वं दर्शतस्य वपुषः सानसिं क्रतुं पृणक्षि, तत्रैव विराजसि, सोऽस्मे जन्तुभी रायः प्रथयस्व॥१०९॥

भावार्थः-यो मनुष्येभ्यः सनातनीं वेदविद्यां ददाति, सुरूपाचारे विराजते, स एवैश्वर्य्यं लब्ध्वाऽन्येभ्यः प्रापयितुं शक्नोति॥१०९॥

पदार्थः-हे (**अमर्त्य**) नाश और संसारी मनुष्यों के स्वभाव से रहित (**अग्ने**) अग्नि के समान पुरुषार्थी! जो (**इरज्यन्**) ऐश्वर्य्य का सञ्चय करते हुए आप (**दर्शतस्य**) देखने योग्य (**वपुषः**) रूप का (**सानसिम्**) सनातन (**क्रतुम्**) बुद्धि का (**पृणक्षि**) सम्बन्ध करते हो और उसी बुद्धि में विशेष करके (**विराजसि**) शोभित होते हो, (**सः**) सो आप (**अस्मे**) हम लोगों के लिये (**जन्तुभिः**) मनुष्यादि प्राणियों से (**रायः**) धनों का (**प्रथयस्व**) विस्तार कीजिये॥१०९॥

भावार्थः-जो पुरुष मनुष्यों के लिये सनातन वेदविद्या को देता और सुन्दर आचार में विराजमान होता है, वही ऐश्वर्य्य को प्राप्त हो के दूसरों के लिये प्राप्त करा सकता है॥१०९॥

इष्कर्त्तारमित्यस्य पावकाग्निर्ऋषिः। विद्वान् देवता। आर्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

कः परोपकारी जायत इत्याह॥

कौन पुरुष परोपकारी होता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

इ॒ष्क॒र्त्तार॑मध्व॒रस्य॒ प्रचे॑तस॒ं क्षय॑न्त॒ꣳ राध॑सो म॒हः।
रा॒तिं वा॒मस्य॑ सु॒भगां॑ म॒हीमिषं॒ दधा॑सि सान॒सिꣳ र॒यिम्॥ ११०॥

इ॒ष्क॒र्त्तार॑म्। अ॒ध्व॒रस्य॑। प्रचे॑तस॒मिति॒ प्रऽचे॑तसम्। क्षय॑न्तम्। राध॑सः। म॒हः। रा॒तिम्। वा॒मस्य॑। सु॒भगा॒मिति॑ सु॒ऽभगा॑म्। म॒हीम्। इष॑म्। दधा॑सि। सा॒न॒सिम्। र॒यिम्॥ ११०॥

पदार्थः-(**इष्कर्त्तारम्**) निष्कर्त्तारं संसाधकम्, अत्र 'छान्दसो वर्णलोपः' इति नलोपः (**अध्वरस्य**) अहिंसनीयस्य वर्धितुं योग्यस्य यज्ञस्य (**प्रचेतसम्**) प्रकृतप्रज्ञम्, **चेता इति प्रज्ञानामसु पठितम्॥** (निघं०३.९) (**क्षयन्तम्**) निवसन्तम् (**राधसः**) धनस्य (**महः**) महतः (**रातिम्**) दातारम् (**वामस्य**) प्रशस्यस्य (**सुभगाम्**) सुष्ठ्वैश्वर्यप्रदाम् (**महीम्**) पृथिवीम् (**इषम्**) अन्नादिकम् (**दधासि**) (**सानसिम्**) पुराणम् (**रयिम्**) धनम्। [अयं मन्त्रः शत०७.३.१.३३ व्याख्यातः]॥११०॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यस्त्वध्वरस्येष्कर्त्तारं प्रचेतसं वामस्य महो राधसो रातिं क्षयन्तं सुभगां महीमिषं सानसिं रयिं च दधासि, तस्मादस्माभिः पूज्योऽसि॥११०॥

भावार्थः-मनुष्यो यथा स्वार्थं सुखमिच्छेत् तथा परार्थं च, स एवाप्तः पूज्यो भवेत्॥११०॥

पदार्थः-हे विद्वान् पुरुष! जो आप (**अध्वरस्य**) बढ़ाने योग्य यज्ञ के (**इष्कर्त्तारम्**) सिद्ध करने वाले (**प्रचेतसम्**) उत्तम बुद्धिमान् (**वामस्य**) प्रशंसित (**महः**) बड़े (**राधसः**) धन के (**रातिम्**) देने और (**क्षयन्तम्**) निवास करने वाले पुरुष और (**सुभगाम्**) सुन्दर ऐश्वर्य्य की देने हारी (**महीम्**) पृथिवी तथा (**इषम्**) अन्न आदि को और (**सानसिम्**) प्राचीन (**रयिम्**) धन को (**दधासि**) धारण करते हो, इससे हम लोगों को सत्कार करने योग्य हो॥११०॥

भावार्थः-जो मनुष्य जैसे अपने लिये सुख की इच्छा करे, वैसे ही दूसरों के लिये भी करे, वही आप्त सत्कार के योग्य होवे॥११०॥

ऋतावानमित्यस्य पावकाग्निर्ऋषिः। अग्निर्देवता। स्वराडार्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

मनुष्यैः केषामनुकरणं कार्यमित्याह॥

मनुष्यों को किनका अनुकरण करना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

ऋ॒तावा॑नं महि॒षं वि॒श्वद॑र्शतम॒ग्निꣳ सु॒म्नाय॑ दधिरे पु॒रो जना॑ः।
श्रुत्क॑र्णꣳ स॒प्रथ॑स्तमं त्वा गि॒रा दैव्यं॒ मानु॑षा यु॒गा॥ १११॥

ऋ॒तावा॑नम्। ऋ॒तवा॑न॒मित्यृ॒तऽवा॑नम्। म॒हि॒षम्। वि॒श्वद॑र्शत॒मिति॑ वि॒श्वऽद॑र्शतम्। अ॒ग्निम्। सु॒म्नाय॑। द॒धि॒रे॒। पु॒रः। जना॑ः। श्रुत्क॑र्ण॒मिति॒ श्रुत्ऽक॑र्णम्। स॒प्रथ॑स्तम॒मिति॑ स॒प्रथ॑ःऽतमम्। त्वा॒। गि॒रा। दैव्य॑म्। मानु॑षा। यु॒गा॥ १११॥

पदार्थः-(**ऋतावानम्**) ऋतं बहु सत्यं विद्यते यस्मिँस्तम्, अत्र **छन्दसीवनिपौ** [अष्टा०वा०५.२.१०९] इति वार्तिकेन वनिप् (**महिषम्**) महान्तम् (**विश्वदर्शतम्**) सर्वविद्याबोधस्य द्रष्टारम् (**अग्निम्**) विद्वांसम् (**सुम्नाय**) सुखाय (**दधिरे**) हितवन्तः (**पुरः**) पुरस्तात् (**जनाः**) विद्याविज्ञानेन प्रादुर्भूता मनुष्याः (**श्रुत्कर्णम्**) श्रुतौ श्रवणसाधकौ कर्णौ यस्य बहुश्रुतस्य तम् (**सप्रथस्तमम्**) प्रथसा विस्तरेण सह वर्त्तमानः सप्रथास्तमतिशयितम् (**त्वा**) त्वाम् (**गिरा**) वाचा

(दैव्यम्) देवेषु विद्वत्सु कुशलम् **(मानुषा)** मनुष्याणामिमानि **(युगा)** युगानि वर्षाणि। [अयं मन्त्रः शत०७.३.१.३४ व्याख्यातः]॥१११॥

अन्वयः-हे मनुष्य! यथा जना गिरा सुम्नाय दैव्यं श्रुत्कर्णं विश्वदर्शतं सप्रथस्तममृतावानं महिषमग्निं विद्वांसं मानुषा युगा च पुरो दधिरे, तथैवंभूतं विद्वांसमेतानि च त्वं धेहीति त्वा शिक्षयामि॥१११॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये सत्पुरुषा अतीतास्तेषामेवानुकरणं मनुष्याः कुर्युर्नेतरेषाम-धार्मिकाणाम्॥१११॥

पदार्थः-हे मनुष्य! जैसे **(जनाः)** विद्या और विज्ञान से प्रसिद्ध मनुष्य **(गिरा)** वाणी से **(सुम्नाय)** सुख के लिये **(दैव्यम्)** विद्वानों में कुशल **(श्रुत्कर्णम्)** बहुश्रुत **(विश्वदर्शतम्)** सब देखने हारे **(सप्रथस्तमम्)** अत्यन्तविद्या के विस्तार के साथ वर्त्तमान **(ऋतावानम्)** बहुत सत्याचरण से युक्त **(महिषम्)** बड़े **(अग्निम्)** विद्वान् को **(मानुषा)** मनुष्यों के **(युगा)** वर्ष वा सत्ययुग आदि **(पुरः)** प्रथम **(दधिरे)** धारण करते हैं, वैसे विद्वान् को और इन वर्षों का तू भी धारण कर, यह **(त्वा)** तुझे सिखाता हूं॥१११॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो सत्पुरुष हो चुके हों, उन्हीं का अनुकरण मनुष्य लोग करें, अन्य अधर्मियों का नहीं॥१११॥

आप्यायस्वेत्यस्य गोतम ऋषिः। सोमो देवता। निचृद् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

राजजनाः किं कृत्वा कीदृशा भवेयुरित्याह॥

राजपुरुष क्या करके कैसे हों, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

आप्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम्। भवा वाजस्य सङ्गथे॥११२॥

आ। प्यायस्व। सम्। एतु। ते। विश्वतः। सोम। वृष्ण्यम्। भव। वाजस्य। सङ्गथ इति सम्ऽगथे॥११२॥

पदार्थः-**(आ)** **(प्यायस्व)** वर्धस्व **(सम्)** **(एतु)** सङ्गच्छताम् **(ते)** तुभ्यम् **(विश्वतः)** सर्वतः **(सोम)** चन्द्र इव वर्त्तमान **(वृष्ण्यम्)** वृष्णो वीर्यवतः कर्म **(भव)** **द्वयचोऽतस्तिङः** [अष्टा०६.३.१३५] इति दीर्घः **(वाजस्य)** विज्ञानवेगयुक्तस्य स्वामिन आज्ञया **(सङ्गथे)** संग्रामे। [अयं मन्त्रः शत०७.३.१.४६ व्याख्यातः]॥११२॥

अन्वयः-हे सोम! तादृशस्य विदुषः सङ्गात् ते वृष्ण्यं विश्वतः समेतु, तेन त्वमाप्यायस्व, वाजस्य वेत्ता सन् सङ्गथे विजयी भव॥११२॥

भावार्थः-राजपुरुषैर्नित्यं वीर्य्यं वर्धयित्वा विजयेन भवितव्यम्॥११२॥

पदार्थः-हे **(सोम)** चन्द्रमा के समान कान्तियुक्त राजपुरुष! जैसे सोम गुणयुक्त विद्वान् के सङ्ग से **(ते)** तेरे लिये **(वृष्ण्यम्)** वीर्य्य पराक्रम वाले पुरुष के कर्म को **(विश्वतः)** सब ओर से **(समेतु)** सङ्गत हो, उससे आप **(आप्यायस्व)** बढ़िये, **(वाजस्य)** विज्ञान और वेग से संग्राम के जाननेहारे स्वामी की आज्ञा से **(सङ्गथे)** युद्ध में विजय करने वाले **(भव)** हूजिये॥११२॥

भावार्थः-राजपुरुषों को नित्य पराक्रम बढ़ा के शत्रुओं से विजय को प्राप्त होना चाहिये॥११२॥

सं त इत्यस्य गोतम ऋषिः। सोमो देवता। भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

शरीरात्मबलयुक्ताः किमाप्नुवन्तीत्याह॥

शरीर और आत्मा के बल से युक्त पुरुष किस को प्राप्त होते हैं, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

सं ते पयांꣳसि समु यन्तु वाजाः सं वृष्ण्यान्यभिमातिषाहः।

आप्यायमानोऽअमृताय सोम दिवि श्रवांꣳस्युत्तमानि धिष्व॥११३॥

सम्। ते। पयांꣳसि। सम्। ऊँ इत्यूँ। यन्तु। वाजाः। सम्। वृष्ण्यानि। अभिमातिषाहः। अभिमातिसह इत्यभिमातिऽसहः। आप्यायमान इत्याऽप्यायमानः। अमृताय। सोम। दिवि। श्रवांꣳसि। उत्तमानीत्युत्ऽतमानि। धिष्व॥११३॥

पदार्थः-(**सम्**) (**ते**) तुभ्यम् (**पयांसि**) जलानि दुग्धानि वा (**सम्**) (उ) (**यन्तु**) प्राप्नुवन्तु (**वाजाः**) धनुर्वेदबोधजा वेगाः (**सम्**) (**वृष्ण्यानि**) वीर्य्याणि (**अभिमातिषाहः**) येऽभिमातीनभिमानयुक्तान् शत्रून् सहन्ते निवारयन्ति (**आप्यायमानः**) समन्ताद् वर्धमानः (**अमृताय**) मोक्षसुखाय (**सोम**) ऐश्वर्य्ययुक्त (**दिवि**) द्योतनात्मके परमेश्वरे (**श्रवांसि**) अन्नानि श्रवणानि वा (**उत्तमानि**) (**धिष्व**) धत्स्व। [अयं मन्त्रः शत०७.३.१.४६ व्याख्यातः]॥११३॥

अन्वयः-हे सोम! यस्मै ते पयांसि संयन्त्वभिमातिषाहो वाजाः संयन्तु, वृष्ण्यानि संयन्तु, स आप्यायमानस्त्वं दिव्यमृतायोत्तमानि श्रवांसि धिष्व॥११३॥

भावार्थः-ये मनुष्याः शरीरात्मबलं नित्यं वर्धयन्ति, ते योगाभ्यासेन परमात्मनि मोक्षानन्दं लभन्ते॥११३॥

पदार्थः-हे (**सोम**) शान्तियुक्त पुरुष! जिस (**ते**) तुम्हारे लिये (**पयांसि**) जल वा दुग्ध (**संयन्तु**) प्राप्त होवें, (**अभिमातिषाहः**) अभिमानयुक्त शत्रुओं को सहने वाले (**वाजाः**) धनुर्वेद के विज्ञान (**सम्**) प्राप्त होवें (उ) और (**वृष्ण्यानि**) पराक्रम (**सम्**) प्राप्त होवें, सो (**आप्यायमानः**) अच्छे प्रकार बढ़ते हुए आप (**दिवि**) प्रकाशस्वरूप ईश्वर में (**अमृताय**) मोक्ष के लिये (**उत्तमानि, श्रवांसि**) उत्तम श्रवणों को (**धिष्व**) धारण कीजिये॥११३॥

भावार्थः-जो मनुष्य शरीर और आत्मा के बल को नित्य बढ़ाते हैं, वे योगाभ्यास से परमेश्वर में मोक्ष के आनन्द को प्राप्त होते हैं॥११३॥

आप्यायस्वेत्यस्य गोतम ऋषिः। सोमो देवता। आर्ष्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

कोऽत्र वर्द्धत इत्याह॥

संसार में कौन वृद्धि को प्राप्त होता है, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

आप्यायस्व मदिन्तम सोम विश्वेभिरꣳशुभिः।

भवा नः सुप्रथस्तमः सखा वृधे॥११४॥

आ। प्यायस्व। मदिन्तमेति मदिन्ऽतम। सोम। विश्वेभिः। अꣳशुभिरित्यꣳशुऽभिः। भव। नः। सुप्रथस्तम इति सुप्रथःऽतमः। सखा। वृधे॥११४॥

पदार्थः-(**आ**) (**प्यायस्व**) (**मदिन्तम**) अतिशयेन मदितुं हर्षितुं शील (**सोम**) ऐश्वर्य्ययुक्त (**विश्वेभिः**) सर्वैः (**अंशुभिः**) किरणैः (**भव**) **द्व्यचोऽतस्तिङः** [अष्टा०६.३.१३५] इति दीर्घः (**नः**) अस्माकम् (**सप्रथस्तमः**) अतिशयेन विस्तृतसुखकारकः (**सखा**) मित्रः (**वृधे**) वर्धनाय॥११४॥

अन्वयः-हे मदिन्तम सोम! त्वमंशुभिः किरणैः सूर्य्य इव विश्वेभिः साधनैराप्यायस्व, सप्रथस्तमः सखा सन् नो वृधे भव॥११४॥

भावार्थः-इह सर्वहितकारी सर्वतो वर्धते नेर्ष्यकः॥११४॥

पदार्थः-हे **(मदिन्तम)** अत्यन्त आनन्दी **(सोम)** ऐश्वर्य्य वाले पुरुष! आप **(अंशुभिः)** किरणों से सूर्य्य के समान **(विश्वेभिः)** सब साधनों से **(आप्यायस्व)** वृद्धि को प्राप्त हूजिये, **(सप्रथस्तमः)** अत्यन्त विस्तारयुक्त सुख करने हारे **(सखा)** मित्र हुए **(नः)** हमारे **(वृधे)** बढ़ाने के लिये **(भव)** तत्पर हूजिये॥११४॥

भावार्थः-इस संसार में सब का हित करनेहारा पुरुष सब प्रकार से वृद्धि को प्राप्त होता है, ईर्ष्या करने वाला नहीं॥११४॥

आ त इत्यस्य वत्सार ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

मनुष्याः किं किं वशीकृत्यानन्दं प्राप्नुवन्त्वित्याह॥

मनुष्य लोग किस-किस को वश में करके आनन्द को प्राप्त होवें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

आ ते॑ व॒त्सो मनो॑ यमत् प॒रमाच्चि॑त् स॒धस्था॑त्। अग्ने॒ त्वाङ्का॑मया गि॒रा॥ ११५॥

आ। ते॒। व॒त्सः। मनः॑। य॒म॒त्। प॒रमात्। चि॒त्। स॒धस्था॒दिति॑ स॒धऽस्था॑त्। अग्ने॑। त्वाङ्का॑म॒येति॒ त्वाम्ऽका॑मया। गि॒रा॥ ११५॥

पदार्थः-**(आ)** **(ते)** तव **(वत्सः)** **(मनः)** चित्तम् **(यमत्)** उपरमेत् **(परमात्)** उत्कृष्टात् **(चित्)** अपि **(सधस्थात्)** समानस्थानात् **(अग्ने)** विद्वन् **(त्वाङ्कामया)** यया त्वां कामयते तया, अत्र द्वितीयैकवचनस्यालुक् **(गिरा)**। [अयं मन्त्रः शत०७.३.२.८ व्याख्यातः]॥११५॥

अन्वयः-हे अग्ने सोम! विद्वँस्त्वाङ्कामया गिरा यस्य ते मनः परमात् सधस्थाच्चिद् वत्सो गोरिवायमत्, स त्वं मुक्तिं कथन्नाप्नुयाः॥११५॥

भावार्थः-मनुष्यैः सदैव मनः स्ववशं विधेयं वाणी च॥११५॥

पदार्थः-हे **(अग्ने)** अग्नि के समान तेजस्वी विद्वान् पुरुष! **(त्वाङ्कामया)** तुझको कामना करने के हेतु **(गिरा)** वाणी से जिस **(ते)** तेरा **(मनः)** चित्त जैसे **(परमात्)** अच्छे **(सधस्थात्)** एक से स्थान से **(चित्)** भी **(वत्सः)** बछड़ा गौ को प्राप्त होवे, वैसे **(आ, यमत्)** स्थिर होता है, सो तू मुक्ति को क्यों न प्राप्त होवे॥११५॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि मन और वाणी को सदैव अपने वश में रक्खें॥११५॥

तुभ्यं ता इत्यस्य विरूप ऋषिः। अग्निर्देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अथ राजा किं कुर्यादित्याह॥

अब राजा क्या करे, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

तुभ्य॒ं ताऽअ॑ङ्गिरस्तम॒ विश्वाः॑ सुक्षि॒तयः॒ पृथ॑क्। अग्ने॒ कामा॑य येमिरे॥ ११६॥

तुभ्य॑म्। ताः। अ॒ङ्गि॒र॒स्त॒मेत्य॑ङ्गिरःऽतम। विश्वाः॑। सु॒क्षि॒तय॒ इति॑ सुऽक्षि॒तयः॑। पृथ॑क्। अग्ने॑। कामा॑य। ये॒मि॒रे॒॥ ११६॥

पदार्थः-(**तुभ्यम्**) (**ताः**) (**अङ्गिरस्तम**) अतिशयेन सारग्राहिन् (**विश्वाः**) अखिलाः (**सुक्षितयः**) श्रेष्ठमनुष्याः प्रजाः (**पृथक्**) (**अग्ने**) प्रकाशमान राजन्! (**कामाय**) इच्छासिद्धये (**येमिरे**) प्राप्नुवन्तु। [अयं मन्त्रः शत०७.३.२.८ व्याख्यातः]॥११६॥

अन्वयः-हे अङ्गिरस्तमाग्ने राजन्! या विश्वाः सुक्षितयः प्रजाः पृथक् कामाय तुभ्यं येमिरे, तास्त्वं सततं रक्ष॥११६॥

भावार्थः-यत्र प्रजा धार्मिकं राजानं प्राप्य स्वां स्वामभिलाषां प्राप्नुवन्ति, तत्र राजा कथं न वर्द्धेत॥११६॥

पदार्थः-हे (**अङ्गिरस्तम**) अतिशय करके सार के ग्राहक (**अग्ने**) प्रकाशमान राजन्! जो (**विश्वाः**) सब (**सुक्षितयः**) श्रेष्ठ मनुष्यों वाली प्रजा (**पृथक्**) अलग (**कामाय**) इच्छा की सिद्धि के लिये (**तुभ्यम्**) तुम्हारे लिये (**येमिरे**) प्राप्त होवें, (**ताः**) उन प्रजाओं की आप निरन्तर रक्षा कीजिये॥११६॥

भावार्थः-जहां प्रजा के लोग धर्मात्मा राजा को प्राप्त हो के अपनी अपनी इच्छा पूरी करते हैं, वहां राजा की वृद्धि क्यों न होवे?॥११६॥

अग्निरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। अग्निर्देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनर्मनुष्याः कीदृशा भूत्वा किं कुर्युरित्याह॥

फिर मनुष्य लोग कैसे होकर क्या क्या करें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अ॒ग्निः प्रि॒येषु॒ धाम॑सु॒ कामो॑ भू॒तस्य॒ भव्य॑स्य। स॒म्राडेको॒ विरा॑जति॥ ११७॥

अ॒ग्निः। प्रि॒येषु॑। धाम॒स्विति॒ धाम॑ऽसु। काम॑ः। भू॒तस्य॑। भव्य॑स्य। स॒म्राडिति॑ स॒म्ऽराट्। एक॑ः। वि। रा॒ज॒ति॒॥ ११७॥

पदार्थः-(**अग्निः**) पावक इव वर्त्तमानः (**प्रियेषु**) इष्टेषु (**धामसु**) जन्मस्थाननामसु (**कामः**) यः काम्यते सः (**भूतस्य**) अतीतस्य (**भव्यस्य**) आगामिसमयस्य (**सम्राट्**) सम्यक् प्रकाशकः (**एकः**) अद्वितीयः परमेश्वरः (**वि**) (**राजति**)। [अयं मन्त्रः शत०७.३.२.८ व्याख्यातः]॥११७॥

अन्वयः-यो मनुष्यः सम्राडेकः कामोऽग्निः सभेशः परमेश्वर इव भूतस्य भव्यस्य प्रियेषु धामसु विराजति, स एव राजाभिषेचनीयः॥११७॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये मनुष्याः परमात्मनो गुणकर्मस्वभावानुकूलान् स्वगुणकर्मस्वभावान् कुर्वन्ति, त एव साम्राज्यं भोक्तुमर्हन्तीति॥११७॥

अत्र स्त्रीपुरुषराजप्रजाकृष्यध्ययनाध्यापनादिकर्मवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वाऽध्यायार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति बोध्यम्॥

पदार्थः-जो मनुष्य (**सम्राट्**) सम्यक् प्रकाशक (**एकः**) एक ही असहाय परमेश्वर के सदृश (**कामः**) स्वीकार के योग्य (**अग्निः**) अग्नि के समान वर्त्तमान सभापति (**भूतस्य**) हो चुके और (**भव्यस्य**) आने वाले समय

के **(प्रियेषु)** इष्ट **(धामसु)** जन्म, स्थान और नामों में **(विराजति)** प्रकाशित होवे, वही राज्य का अधिकारी होने योग्य है॥११७॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य परमात्मा के गुण, कर्म और स्वभावों के अनुकूल अपने गुण, कर्म और स्वभाव करते हैं, वे ही चक्रवर्ती राज्य भोगने के योग्य होते हैं॥११७॥

इस अध्याय में स्त्री, पुरुष, राजा, प्रजा, खेती और पठन, पाठन आदि कर्म का वर्णन है, इससे इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिये॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य्याणां श्रीमत्परमविदुषां विरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मिते संस्कृताऽऽर्यभाषाभ्यां विभूषिते सुप्रमाणयुक्ते यजुर्वेदभाष्ये द्वादशोऽध्यायः सम्पूर्णः॥१२॥

॥ओ३म्॥

अथ त्रयोदशाऽध्यायारम्भः

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव। यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व॥ यजु० ३०.३॥

तत्र मयि गृह्णामीत्याद्यस्य वत्सार ऋषिः। अग्निर्देवता। आर्ची पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

मनुष्यैरादिमाऽवस्थायां किं किं कार्य्यमित्याह॥

अब तेरहवें अध्याय का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को पहिली अवस्था में क्या-क्या करना चाहिये, यह विषय कहा है॥

मयि॑ गृह्णाम्यग्रे॑ अ॒ग्निꣳ रा॒यस्पोषा॑य सुप्रजा॒स्त्वाय॑ सु॒वीर्या॑य।
माम॑ु दे॒वता॑: सचन्ताम्॥ १॥

मयि॑। गृ॒ह्णा॒मि॒। अग्रे॑। अ॒ग्निम्। रा॒यः। पोषा॑य। सु॒प्र॒जा॒स्त्वायेति॑ सुप्रजा॒ऽस्त्वाय॑। सु॒वीर्य्या॒येति॑ सु॒ऽवीर्य्या॑य। माम्। उ॒ इत्यूँ॑। दे॒वता॑:। स॒च॒न्ता॒म्॥ १॥

पदार्थः-(**मयि**) आत्मनि (**गृह्णामि**) (**अग्रे**) (**अग्निम्**) परमविद्वांसम् (**रायः**) विज्ञानादिधनस्य (**पोषाय**) पुष्टये (**सुप्रजास्त्वाय**) शोभनाश्च ताः प्रजाः सुप्रजास्तासां भावाय (**सुवीर्य्याय**) आरोग्येण सुष्ठु पराक्रमाय (**माम्**) (उ) (**देवताः**) दिव्या विद्वांसो गुणा वा (**सचन्ताम्**) समवयन्तु। [अयं मन्त्रः शत०७.४.१.२ व्याख्यातः]॥१॥

अन्वयः-हे कुमाराः कुमार्य्यश्च! यथाऽहमग्रे मयि रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्य्यायाग्निं गृह्णामि, येन मामु देवताः सचन्ताम्, तथा यूयमपि कुरुत॥१॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्याणामिदं समुचितमस्ति ब्रह्मचर्यकुमारावस्थायां वेदाद्यध्ययनेन पदार्थविद्यां, ब्रह्मकर्म, ब्रह्मोपासनां, ब्रह्मज्ञानं स्वीकुर्युर्येन दिव्यान् गुणानाप्तान् विदुषश्च प्राप्योत्तमश्रीप्रजापराक्रमान् प्राप्नुयुरिति॥१॥

पदार्थः-हे कुमार वा कुमारियो! जैसे मैं (**अग्रे**) पहिले (**मयि**) मुझ में (**रायः**) विज्ञान आदि धन की (**पोषाय**) पुष्टि (**सुप्रजास्त्वाय**) सुन्दर प्रजा होने के लिये और (**सुवीर्य्याय**) रोगरहित सुन्दर पराक्रम होने के अर्थ (**अग्निम्**) उत्तम विद्वान् को (**गृह्णामि**) ग्रहण करता हूँ, जिससे (**माम्**) मुझ को (उ) ही (**देवताः**) उत्तम विद्वान् वा उत्तम गुण (**सचन्ताम्**) मिलें, वैसे तुम लोग भी करो॥१॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को यह उचित है कि ब्रह्मचर्य्ययुक्त कुमारावस्था में वेदादि शास्त्रों के पढ़ने से पदार्थविद्या, उत्तमकर्म और ईश्वर की उपासना तथा ब्रह्मज्ञान को स्वीकार करें, जिससे श्रेष्ठ गुण और आप्त विद्वानों को प्राप्त होके उत्तम धन, सन्तानों और पराक्रम को प्राप्त होवें॥१॥

अपां पृष्ठमित्यस्य वत्सार ऋषिः। अग्निर्देवता। विराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ परमेश्वरोपासनाविषयमाह॥

अब परमेश्वर की उपासना का विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अपां पृष्ठमसि योनिरग्नेः समुद्रमभितः पिन्वमानम्।

वर्धमानो महाँ२ऽआ च पुष्करे दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथस्व॥ २॥

अपाम्। पृष्ठम्। असि। योनिः। अग्नेः। समुद्रम्। अभितः। पिन्वमानम्। वर्धमानः। महान्। आ। च। पुष्करे। दिवः। मात्रया। वरिम्णा। प्रथस्व॥ २॥

पदार्थः-(अपाम्) व्यापकानां प्राणानां जलानां वा **(पृष्ठम्)** अधिकरणम् **(असि)** **(योनिः)** कारणम् **(अग्नेः)** विद्युदादेः **(समुद्रम्)** अन्तरिक्षमिव सागरम् **(अभितः)** सर्वतः **(पिन्वमानम्)** सिञ्चमानम् **(वर्धमानः)** सर्वथोत्कृष्टः **(महान्)** सर्वेभ्यो वरीयान् सर्वैः पूज्यश्च **(आ)** **(च)** **(पुष्करे)** अन्तरिक्षे। **पुष्करमित्यन्तरिक्षनामसु पठितम्॥** (निघं०१।३) **(दिवः)** द्योतमानस्य **(मात्रया)** यया सर्वं मिमीते **(वरिम्णा)** अतिशयेनोरुर्बहुस्तेन व्यापकत्वेन **(प्रथस्व)** प्रख्यातो भव। [अयं मन्त्रः शत०७.४.९.१ व्याख्यातः]॥ २॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यस्त्वमभितोऽपां पृष्ठं समुद्रं पिन्वमानमग्नेर्योनिर्दिवो मात्रया पुष्करे वर्धमानो महाँश्चासि सोऽस्मासु वरिम्णाऽऽप्रथस्व॥ २॥

भावार्थः-मनुष्यैर्यत् सच्चिदानन्दस्वरूपमखिलस्य जगतो निर्मातृ सर्वत्राभिव्याप्तं सर्वेभ्यो वरं सर्वशक्तिमद् ब्रह्मैवोपास्य सकलविद्याः प्राप्यन्ते, तत् कथं न सेवितव्यं स्यात्॥ २॥

पदार्थः-हे विद्वान् पुरुष! जो तू **(अभितः)** सब ओर से **(अपाम्)** सर्वत्र व्यापक परमेश्वर आकाश दिशा बिजुली और प्राणों वा जलों के **(पृष्ठम्)** अधिकरण (समुद्रम्) आकाश के समान सागर **(पिन्वमानम्)** सींचते हुए समुद्र को **(अग्नेः)** बिजुली आदि अग्नि के **(योनिः)** कारण **(दिवः)** प्रकाशित पदार्थों का **(मात्रया)** निर्माण करनेहारी बुद्धि से **(पुष्करे)** हृदयरूप अन्तरिक्ष में **(वर्धमानः)** उन्नति को प्राप्त हुए **(च)** और **(महान्)** सब श्रेष्ठ वा सब के पूज्य **(असि)** हो, सो आप हमारे लिये **(वरिम्णा)** व्यापकशक्ति से **(आ, प्रथस्व)** प्रसिद्ध हूजिये॥ २॥

भावार्थः-मनुष्यों को जिस सत्, चित् और आनन्दस्वरूप, सब जगत् का रचने हारा, सर्वत्र व्यापक, सब से उत्तम और सर्वशक्तिमान् ब्रह्म की उपासना से सम्पूर्ण विद्यादि अनन्त गुण प्राप्त होते हैं, उसका सेवन क्यों न करना चाहिये॥ २॥

ब्रह्म जज्ञानमित्यस्य वत्सार ऋषिः। आदित्यो देवता। निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

किं स्वरूपं ब्रह्म जनैरुपास्यमित्याह॥

मनुष्यों को किस स्वरूप वाला ब्रह्म उपासना के योग्य है, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेनऽआवः।

स बुध्न्याऽ उपमाऽ अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च वि वः॥ ३॥

ब्रह्म। जज्ञानम्। प्रथमम्। पुरस्तात्। वि। सीमतः। सुरुच इति सुऽरुचः। वेनः। आवरित्यावः। सः। बुध्न्याः। उपमा इत्युपऽमाः। अस्य। विष्ठाः। विस्था इति विऽस्थाः। सतः। च। योनिम्। असतः। च। वि। वरिति वः॥ ३॥

पदार्थः-(ब्रह्म) सर्वेभ्यो बृहत् **(जज्ञानम्)** सर्वस्य जनकं विज्ञातृ **(प्रथमम्)** विस्तृतं विस्तारयितृ **(पुरस्तात्)**

सृष्ट्यादौ **(वि)** **(सीमत:)** सीमातो मर्य्यादात: **(सुरुच:)** सुप्रकाशमान: सुष्ठु रुचिविषयश्च **(वेन:)** कमनीय:। **वेनतीति कान्तिकर्म्मा॥** (निघं०२।६) **(आव:)** आवृणोति स्वव्याप्त्याच्छादयति **(स:)** **(बुध्न्या:)** बुध्ने जलसम्बद्धेऽन्तरिक्षे भवा: सूर्य्यचन्द्रपृथिवीतारकादयो लोका: **(उपमा:)** उपमिमते याभिस्ता: **(अस्य)** जगदीश्वरस्य **(विष्ठा:)** या विविधेषु स्थानेषु तिष्ठन्ति ता: **(सत:)** विद्यमानस्य व्यक्तस्य **(च)** अव्यक्तस्य **(योनिम्)** स्थानमाकाशम् **(असत:)** अविद्यमानस्यादृश्यस्याव्यक्तस्य कारणस्य **(च)** महत्तत्त्वादे: **(विव:)** विवृणोति। अत्र **मन्त्रे घस०** [अष्टा०२.४.८०] इति च्लेर्लुगडभावश्च॥३॥

अत्राह यास्कमुनि:-विसीमत: सुरुचो वेन आवरिति च व्यवृणोत् सर्वत आदित्य: सुरुच आदित्यरश्मय: सुरोचनादपि वा सीमेत्येतदनर्थकमुपबन्धमाददीत पञ्चमीकर्माणं सीम्न: सीमत: सीमातो मर्य्यादात: सीमा मर्य्यादा विषीव्यति देशाविति। निरु०१।७। [अयं मन्त्र: शत०७.४.१.१४ व्याख्यात:]॥३॥

अन्वय:-यत्पुरस्ताज्जज्ञानं प्रथमं ब्रह्म य: सुरुचो वेनो यस्यास्य बुध्न्या विष्ठा उपमा: सन्ति, स सर्वभाव: स विसीमत: सतश्चासतश्च योनिं विवस्तत्सर्वैरुपासनीयम्॥३॥

भावार्थ:-यस्य ब्रह्मणो विज्ञानाय प्रसिद्धाऽप्रसिद्धलोका दृष्टान्ता: सन्ति, तत्सर्वत्राभिव्याप्तं सत्सर्वमावृणोति, सर्वं विकासयति, सुनियमेन स्वस्वकक्षायां विचालयति, तदेवान्तर्य्यामि ब्रह्म सर्वैर्मनुष्यैरुपास्यम्, नातो पृथग्वस्तु भजनीयम्॥३॥

पदार्थ:-जो **(पुरस्तात्)** सृष्टि की आदि में **(जज्ञानम्)** सब का उत्पादक और ज्ञाता **(प्रथमम्)** विस्तारयुक्त और विस्तारकर्ता **(ब्रह्म)** सब से बड़ा जो **(सुरुच:)** सुन्दर प्रकाशयुक्त और सुन्दर रुचि का विषय **(वेन:)** ग्रहण के योग्य जिस **(अस्य)** इस के **(बुध्न्या:)** जल सम्बन्धी आकाश में वर्तमान सूर्य, चन्द्रमा, पृथिवी और नक्षत्र आदि **(विष्ठा:)** विविध स्थलों में स्थित **(उपमा:)** ईश्वर ज्ञान के दृष्टान्त लोक हैं, उन सब को **(स:)** वह **(आव:)** अपनी व्याप्ति से आच्छादन करता है, वह ईश्वर **(विसीमत:)** मर्य्यादा से **(सत:)** विद्यमान देखने योग्य **(च)** और **(असत:)** अव्यक्त **(च)** और कारण के **(योनिम्)** आकाशरूप स्थान को **(विव:)** ग्रहण करता है, उसी ब्रह्म की उपासना सब लोगों को नित्य अवश्य करनी चाहिये॥३॥

भावार्थ:-जिस ब्रह्म के जानने के लिये प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध सब लोक दृष्टान्त हैं, जो सर्वत्र व्याप्त हुआ सब का आवरण और सभी को प्रकाश करता है और सुन्दर नियम के साथ अपनी-अपनी कक्षा में सब लोकों को रखता है, वही अन्तर्य्यामी परमात्मा सब मनुष्यों के निरन्तर उपासना के योग्य है, इससे अन्य कोई पदार्थ सेवने योग्य नहीं॥३॥

हिरण्यगर्भ इत्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषि:। प्रजापतिर्देवता। आर्षी त्रिष्टुप् छन्द:। धैवत: स्वर:॥

पुनस्तत् कीदृशमित्याह॥

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

हि॒र॒ण्य॒ग॒र्भः सम॑वर्त्त॒ताग्रे॑ भू॒तस्य॑ जा॒तः पति॒रेक॑ऽ आसीत्।
स दा॑धार पृथि॒वीं द्यामु॒तेमां कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम॥४॥

हिरण्यगर्भ इति हिरण्यऽगर्भः। सम्। अवर्त्तत। अग्रे। भूतस्य। जातः। पतिः। एकः। आसीत्। सः। दाधार। पृथिवीम्। द्याम्। उत। इमाम्। कस्मै। देवाय। हविषा। विधेम॥४॥

पदार्थः-(हिरण्यगर्भः) हिरण्यानि सूर्य्यादीनि तेजांसि गर्भे मध्ये यस्य सः। **ज्योतिर्वै हिरण्यम्॥** शत०[६.७.२.१]। **हिरण्यं कस्माद् ध्रियत आयम्यमानमिति वा, ह्रियते जनाज्जनमिति वा, हितरमणं भवतीति वा, हर्यतेर्वा स्यात् प्रेप्साकर्मणः॥** निरु०२।१०॥ **(सम्) (अवर्त्तत) (अग्रे)** सृष्टेः प्राक् **(भूतस्य)** उत्पन्नस्य **(जातः)** जनकः **(पतिः)** पालकः **(एकः)** असहायोऽद्वितीयः **(आसीत्) (सः) (दाधार)** धृतवान् **(पृथिवीम्)** प्रकाशरहितं भूगोलादिकम् **(द्याम्)** प्रकाशमयं सूर्यादिकम् **(उत) (इमाम्)** वर्त्तमानां सृष्टिम् **(कस्मै)** सुखस्वरूपाय प्रजापतये **(देवाय)** प्रकाशमानाय **(हविषा)** आत्मादिसामग्र्या **(विधेम)** परिचरेम। **विधेमेति परिचरणकर्मा०॥** निघं०३।५॥ निरुक्तकार एवमाह-**हिरण्यगर्भो हिरण्यमयो गर्भो हिरणमयो गर्भोऽस्येति वा, गर्भो गृभेर्गृणात्यर्थे गिरत्यनर्थानिति वा, यदा हि स्त्री गुणान् गृह्णाति गुणाश्चास्या गृह्यन्तेऽथ गर्भो भवति। समभवदग्रे भूतस्य जातः पतिरेको बभूव, स धारयति पृथिवीं दिवं च कस्मै देवाय हविषा विधेमेति व्याख्यातं विधतिर्दानकर्मा॥** निरु०१०।२३। [अयं मन्त्रः शत०७.४.१.९ व्याख्यातः]॥४॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा वयं योऽस्य भूतस्य जातः पतिरेको हिरण्यगर्भोऽग्रे समवर्त्ततासीत् स इमां सृष्टिं रचयित्वोतापि पृथिवीं द्यां दाधार तस्मै कस्मै सुखस्वरूपाय देवाय परमेश्वराय हविषा विधेम तथा, यूयमप्येनं सेवध्वम्॥४॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यूयमस्या व्यक्तायाः सृष्टेः प्राक् परमेश्वर एव जागरूक आसीत्। जीवा मूर्छिता इवासन्। कारणं चाकाशवत् सुस्थिरं चासीत्। येन सर्वा सृष्टी रचिता, धृता प्रलयसमये भिद्यते, तमेवोपास्यं मन्यध्वम्॥४॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे हम लोग जो इस **(भूतस्य)** उत्पन्न हुए संसार का **(जातः)** रचने और **(पतिः)** पालन करने हारा **(एकः)** सहाय की अपेक्षा से रहित **(हिरण्यगर्भः)** सूर्यादि तेजोमय पदार्थों का आधार **(अग्रे)** जगत् रचने के पहिले **(समवर्त्तत)** वर्त्तमान **(आसीत्)** था **(सः)** वह **(इमाम्)** इस संसार को रच के **(उत)** और **(पृथिवीम्)** प्रकाशरहित और **(द्याम्)** प्रकाशसहित सूर्यादि लोकों को **(दाधार)** धारण करता हुआ, उस **(कस्मै)** सुखरूप प्रजा पालने वाले **(देवाय)** प्रकाशमान परमात्मा की **(हविषा)** आत्मादि सामग्री से **(विधेम)** सेवा में तत्पर हों, वैसे तुम लोग भी इस परमात्मा का सेवन करो॥४॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! तुम को योग्य है कि इस प्रसिद्ध सृष्टि के रचने से प्रथम परमेश्वर ही विद्यमान था, जीव गाढ़ निद्रा सुषुप्ति में लीन और जगत् का कारण अत्यन्त सूक्ष्मावस्था में आकाश के समान एकरस स्थिर था, जिसने सब जगत् को रच के धारण किया और जो अन्त्य समय में प्रलय करता है, उसी परमात्मा को उपासना के योग्य मानो॥४॥

द्रप्स इत्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः। ईश्वरो देवता। निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनः स कीदृश इत्याह॥

फिर वह कैसा है, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

द्रप्सश्चस्कन्द पृथिवीमनु द्यामिमं च योनिमनु यश्च पूर्वः।
समानं योनिमनु संचरन्तं द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्राः॥५॥

द्रप्सः। चस्कन्द। पृथिवीम्। अनु। द्याम्। इमम्। च। योनिम्। अनु। यः। च। पूर्वः। समानम्। योनिम्। अनु। संचरन्तमिति सम्ऽचरन्तम्। द्रप्सम्। जुहोमि। अनु। सप्त। होत्राः॥५॥

पदार्थः-(**द्रप्सः**) हर्ष उत्साहः। अत्र दृप विमोहनहर्षणयोरित्यत औणादिकः सः किच्च (**चस्कन्द**) प्राप्नोति (**पृथिवीम्**) भूमिम् (**अनु**) (**द्याम्**) प्रकाशम् (**इमम्**) (**च**) (**योनिम्**) कारणम् (**अनु**) (**यः**) (**च**) (**पूर्वः**) पूर्णः (**समानम्**) (**योनिम्**) स्थानम् (**अनु**) (**संचरन्तम्**) (**द्रप्सम्**) आनन्दम् (**जुहोमि**) गृह्णामि (**अनु**) (**सप्त**) पञ्च प्राणा मन आत्मा चेति (**होत्राः**) आदातारः। [अयं मन्त्रः शत०७.४.१.२० व्याख्यातः]॥५॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथाहं यस्य सप्त होत्राऽनुग्रहीतारो य इमां पृथिवीं द्यां योनिं चानु यः पूर्वो द्रप्सोऽनु चस्कन्द, तस्य योनिमनु संचरन्तं समानं द्रप्सं सर्वत्राभिव्याप्तमानन्दमनुजुहोमि तथैनमादत्त॥५॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यूयं यस्य जगदीश्वरस्य सानन्दं स्वरूपं सर्वत्रोपलभ्यते, तत्प्राप्तये योगमभ्यस्यत॥५॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे मैं जिस के (**सप्त**) पांच प्राण, मन और आत्मा ये सात (**होत्राः**) अनुग्रहण करनेहारे (**यः**) जो (**इमम्**) इस (**पृथिवीम्**) पृथिवी (**द्याम्**) प्रकाश (**च**) और (**योनिम्**) कारण के अनुकूल जो (**पूर्वः**) सम्पूर्ण स्वरूप (**द्रप्सः**) आनन्द और उत्साह को (**अनु**) अनुकूलता से (**चस्कन्द**) प्राप्त होता है, उस (**योनिम्**) स्थान के (**अनु**) अनुसार (**संचरन्तम्**) संचारी (**समानम्**) एक प्रकार के (**द्रप्सम्**) सर्वत्र अभिव्याप्त आनन्द को मैं (**अनुजुहोमि**) अनुकूल ग्रहण करता हूँ, वैसे तुम लोग भी ग्रहण करो॥५॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! तुम को चाहिये कि जिस जगदीश्वर के आनन्द और स्वरूप का सर्वत्र लाभ होता है, उसकी प्राप्ति के लिये योगाभ्यास करो॥५॥

नमोऽस्त्वित्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिर्देवता च। भुरिगुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

मनुष्यैरत्र कथं वर्त्तितव्यमित्याह॥

मनुष्यों को संसार में कैसे वर्त्तना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

नमोऽस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु।
येऽ अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः॥६॥

नमः। अस्तु। सर्पेभ्यः। ये। के। च। पृथिवीम्। अनु। ये। अन्तरिक्षे। ये। दिवि। तेभ्यः। सर्पेभ्यः। नमः॥६॥

पदार्थः-(**नमः**) अन्नम्। **नम इत्यन्ननामसु पठितम्॥ निघं०**२।७॥ (**अस्तु**) (**सर्पेभ्यः**) ये सर्पन्ति गच्छन्ति ते लोकास्तेभ्यः। **इमे वै लोकाः सर्पास्ते हानेन सर्वेण सर्पन्ति॥** शत०७।३।१।२५॥ (**ये**) (**के**) (**च**) (**पृथिवीम्**) भूमिम् (**अनु**) (**ये**) (**अन्तरिक्षे**) आकाशे (**ये**) (**दिवि**) सूर्यादिलोके (**तेभ्यः**) (**सर्पेभ्यः**) प्राणिभ्यः (**नमः**) अन्नम्। [अयं मन्त्रः शत०७.४.१.२८ व्याख्यातः]॥६॥

अन्वयः-ये के चात्र सर्पाः सन्ति तेभ्यः सर्पेभ्यो नमोऽस्तु। येऽन्तरिक्षे ये दिवि ये च पृथिवीमनुसर्पन्ति

तेभ्यः सर्पेभ्यो नमोऽस्तु॥६॥

भावार्थः-यावन्त इमे लोका दृश्यन्ते ये च न दृश्यन्ते, ते सर्वे स्वस्वकक्षायामीश्वरेण नियताः सन्त आकाशे भ्रमन्ति। तेषु सर्वेषु लोकेषु ये प्राणिनश्चलन्ति तदर्थमन्नमपीश्वरेण रचितम्, यत एतेषां जीवनं भवतीति यूयं विजानीत॥६॥

पदार्थः-जो **(के)** कोई इस जगत् में लोक-लोकान्तर और प्राणी हैं **(तेभ्यः)** उन **(सर्पेभ्यः)** लोकों के जीवों के लिये **(नमः)** अन्न **(अस्तु)** हो। (ये) जो **(अन्तरिक्षे)** आकाश में **(ये)** जो **(दिवि)** प्रकाशमान सूर्य्य आदि लोकों में **(च)** और **(ये)** जो **(पृथिवीम्)** भूमि के **(अनु)** ऊपर चलते हैं, उन **(सर्पेभ्यः)** प्राणियों के लिये **(नमः)** अन्न प्राप्त होवे॥६॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जितने लोक दीख पड़ते हैं, और जो नहीं दीख पड़ते हैं, वे सब अपनी-अपनी कक्षा में नियम से स्थिर हुए आकाश मार्ग में घूमते हैं, उन सबों में जो प्राणी चलते हैं, उन के लिये अन्न भी ईश्वर ने रचा है कि जिससे इन सब का जीवन होता है, इस बात को तुम लोग जानो॥६॥

या इषव इत्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः। स एव देवता च। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तैः कथं भवितव्यमित्युपदिश्यते॥

फिर मनुष्यों को कैसा होना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

याऽइषवो यातुधानानां ये वा वनस्पतीँ१ऽरनु।

ये वावटेषु शेरते तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः॥७॥

याः। इषवः। यातुधानानामिति यातुऽधानानाम्। ये। वा। वनस्पतीन्। अनु। ये। वा। अवटेषु। शेरते। तेभ्यः। सर्पेभ्यः। नमः॥७॥

पदार्थः-**(याः)** **(इषवः)** गतयः **(यातुधानानाम्)** ये यान्ति परपदार्थान् दधति तेषाम् **(ये)** **(वा)** **(वनस्पतीन्)** वटादीन् **(अनु)** **(ये)** **(वा)** **(अवटेषु)** अपरिभाषितेषु मार्गेषु **(शेरते)** **(तेभ्यः)** **(सर्पेभ्यः)** **(नमः)** वज्रम्। [अयं मन्त्रः शत०७.४.१.२९ व्याख्यातः]॥७॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यूयं या यातुधानानामिषवो ये वा वनस्पतीननुवर्त्तन्ते, ये वाऽवटेषु शेरते, तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः प्रक्षिपत॥७॥

भावार्थः-मनुष्या ये मार्गेषु वनेषूत्कोचका दिवसे एकान्ते स्वपन्ति, तान् दस्यून्नागांश्च शस्त्रौषधादिना निवारयन्तु॥७॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम लोग **(याः)** जो **(यातुधानानाम्)** पराये पदार्थों को प्राप्त हो के धारण करने वाले जनों की **(इषवः)** गति हैं **(वा)** अथवा **(ये)** जो **(वनस्पतीन्)** वट आदि वनस्पतियों के **(अनु)** आश्रित रहते हैं और **(ये)** जो **(वा)** अथवा **(अवटेषु)** गुप्तमार्गों में **(शेरते)** सोते हैं, **(तेभ्यः)** उन **(सर्पेभ्यः)** चञ्चल दुष्ट प्राणियों के लिये **(नमः)** वज्र चलाओ॥७॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि जो मार्गों और वनों में उचक्के दुष्ट प्राणी एकान्त में दिन के समय सोते

हैं, उन डाकुओं और सर्पों को शस्त्र, ओषधि आदि से निवारण करें॥७॥

ये वामीत्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः। सूर्य्यो देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनर्मनुष्यैः कण्टकाः कथं बाधनीया इत्याह॥

फिर मनुष्यों को कंटक और दुष्ट प्राणी कैसे हटाने चाहियें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

ये वामी रोचने दिवो ये वा सूर्यस्य रश्मिषु।

येषामप्सु सदस्कृतं तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः॥८॥

ये। वा। अमीऽइत्यमी। रोचने। दिवः। ये। वा। सूर्य्यस्य। रश्मिषु। येषाम्। अप्स्वित्यप्सु। सदः। कृतम्। तेभ्यः। सर्पेभ्यः। नमः॥८॥

पदार्थः- (**ये**) (**वा**) (**अमी**) (**रोचने**) दीप्तौ (**दिवः**) विद्युतः (**ये**) (**वा**) (**सूर्य्यस्य**) (**रश्मिषु**) (**येषाम्**) (**अप्सु**) (**सदः**) सदनम् (**कृतम्**) निष्पन्नम् (**तेभ्यः**) (**सर्पेभ्यः**) दुष्टप्राणिभ्यः (**नमः**) वज्रम्॥८॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! येऽमी दिवो रोचने ये वा सूर्य्यस्य रश्मिषु येषां वाप्सु सदस्कृतमस्ति, तेभ्यः सर्पेभ्यो नमो दत्त॥८॥

भावार्थः-मनुष्यैर्ये जलेष्वन्तरिक्षे सर्पा निवसन्ति, ते वज्रप्रहारेण निवर्त्तनीयाः॥८॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! (**ये**) जो (**अमी**) वे परोक्ष में रहने वाले (**दिवः**) बिजुली के (**रोचने**) प्रकाश में (**वा**) अथवा (**ये**) जो (**सूर्य्यस्य**) सूर्य्य की (**रश्मिषु**) किरणों में (**वा**) अथवा (**येषाम्**) जिनका (**अप्सु**) जलों में (**सदः**) स्थान (**कृतम्**) बना है, (**तेभ्यः**) उन (**सर्पेभ्यः**) दुष्ट प्राणियों को (**नमः**) वज्र से मारो॥८॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि जो जलों में, आकाश में, जो दुष्ट प्राणी वा सर्प रहते हैं, उन को शस्त्रों से निवृत्त करें॥८॥

कृणुष्वेत्यस्य वामदेव ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

राजपुरुषैः कथं शत्रवो बन्धनीया इत्याह॥

राजपुरुषों को शत्रु कैसे बांधने चाहियें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवामवाँ२ऽ इभेन।

तृष्वीमनु प्रसितिं द्रूणानोऽस्तासि विध्य रक्षसस्तपिष्ठैः॥९॥

कृणुष्व। पाजः। प्रसितिमिति प्रऽसितिम्। न। पृथ्वीम्। याहि। राजेवेति राजाऽ इव। अमवानित्यमऽवान्। इभेन। तृष्वीम्। अनु। प्रसितिमिति प्रऽसितिम्। द्रूणानः। अस्ता। असि। विध्य। रक्षसः। तपिष्ठैः॥९॥

पदार्थः-(**कृणुष्व**) कुरुष्व (**पाजः**) बलम्। **पातेर्बले जुट् च॥** (उणा०४।२१०) इत्यसुन् (**प्रसितिम्**) जालम्। **प्रसितिः प्रसयनात् तन्तुर्वा जालं वा॥** (निरु०६।१२) (**न**) इव (**पृथ्वीम्**) भूमिम् (**याहि**) प्राप्नुहि (**राजेव**) (**अमवान्**) बहवः सचिवा विद्यन्ते यस्य तद्वत् (**इभेन**) हस्तिना (**तृष्वीम्**) क्षिप्रगतिम्। **तृष्विति क्षिप्रनामसु पठितम्॥** (निघं०२।१५) ततो **वोतो गुणवचनात्** [अष्टा०४.१.४४] इति ङीष् (**अनु**) (**प्रसितिम्**) बन्धनं जालम् (**द्रूणानः**) हिंसन् (**अस्ता**) प्रक्षेप्ता (**असि**) (**विध्य**) ताडय (**रक्षसः**) शत्रून् (**तपिष्ठैः**) अतिशयेन संतापकरैः शस्त्रैः। अयं

मन्त्रः निरु०६।१२ व्याख्यातः। [अयं मन्त्रः शत०७.४.१.३३ व्याख्यातः]॥९॥

अन्वयः-हे सेनापते! त्वं पाजः कृणुष्व प्रसितिं न पृथ्वीं याहि। यतस्त्वमस्तासि तस्मादिभेनामवान् राजेव तपिष्ठैः प्रसितिं संसाध्य रक्षसश्च दूणानस्तृष्वीमनुविध्य॥९॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। राजवत्सेनापतिः पूर्णं बलं संपाद्यानेकैः पाशैः शत्रून् बध्वा शरादिभिर्विध्वा कारागृहे संस्थाप्य श्रेष्ठान् पालयेत्॥९॥

पदार्थः-हे सेनापते! आप **(पाजः)** बल को **(कृणुष्व)** कीजिये **(प्रसितिम्)** जाल के **(न)** समान **(पृथ्वीम्)** भूमि को **(याहि)** प्राप्त हूजिये, जिससे आप **(अस्ता)** फेंकने वाले **(असि)** हैं, इससे **(इभेन)** हाथी के साथ **(अमवान्)** बहुत दूतों वाले **(राजेव)** राजा के समान **(तपिष्ठैः)** अत्यन्त दुःखदायी शस्त्रों से **(प्रसितिम्)** फाँसी को सिद्ध कर **(रक्षसः)** शत्रुओं को **(दूणानः)** मारते हुए **(तृष्वीम्)** शीघ्र **(अनु)** सन्मुख होकर **(विध्य)** ताड़ना कीजिये॥९॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। सेनापति को चाहिये कि राजा के समान पूर्ण बल से युक्त हो अनेक फांसियों से शत्रुओं को बांध उनको बाण आदि शस्त्रों से ताड़ना दे और बन्दीगृह में बन्द कर के श्रेष्ठ पुरुषों को पाले॥९॥

तव भ्रमास इत्यस्य वामदेव ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनः स किं कुर्यादित्युपदिश्यते॥

फिर वह सेनापति क्या करे, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

तव॑ भ्र॒मास॑ऽ आशु॒या प॑त॒न्त्यनु॑ स्पृश धृष॒ता शोशु॑चानः।

तपू॑ꣳष्यग्ने जु॒ह्वा प॑त॒ङ्गानस॑न्दितो॒ वि सृ॑ज॒ विष्व॑गु॒ल्काः॥ १०॥

तव॑। भ्र॒मास॑ः। आ॒शु॒येत्या॑शु॒या। प॒त॒न्ति॒। अनु॑। स्पृ॒श॒। धृ॒ष॒ता। शोशु॑चानः। तपू॑ꣳषि। अ॒ग्ने॒। जु॒ह्वा। प॒त॒ङ्गान्। अस॑न्दित॒ इत्यस॑म्ऽदितः। वि। सृ॒ज॒। विष्व॑क्। उ॒ल्काः॥ १०॥

पदार्थः-**(तव)** **(भ्रमासः)** भ्रमणशीला वीराः **(आशुया)** शीघ्रगमनाः। अत्र जसः स्थाने यादेशः **(पतन्ति)** श्येनवच्छत्रुदले संचरन्ति **(अनु)** **(स्पृश)** अनुगतो भव **(धृषता)** दृढेन सैन्येन **(शोशुचानः)** भृशं पवित्राचरणः **(तपूंषि)** तापाः **(अग्ने)** अग्निरिव वर्त्तमान **(जुह्वा)** आज्यहवनसाधनया **(पतङ्गान्)** अश्वान्। **पतङ्गा इत्यश्वनामसु पठितम्॥** (निघं०१।१४) **(असन्दितः)** अखण्डितः **(वि)** **(सृज)** निष्पादय **(विष्वक्)** सर्वतः **(उल्काः)** विद्युत्पाताः॥१०॥

अन्वयः-हे सेनापतेऽग्ने! शोशुचानस्त्वं ये तव भ्रमासो यथा विष्वगाशुयोल्कास्तथा शत्रुषु पतन्ति, तान् धृषताऽनुस्पृश। असन्दितोऽखण्डितः सन् जुह्वाग्नेस्तपूंषीव शत्रूणामुपरि सर्वतो विद्युतो विसृज पतङ्गान् सुशिक्षितानश्वान् कुरु॥१०॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। राजसेनापतिसेनाभृत्यैः परस्परं प्रीत्या बलं संवर्ध्य वीरान् हर्षयित्वा संयोध्याग्न्याद्यस्त्रैः शतघ्न्यादिभिश्च शत्रूणामुपरि विद्युद्वृष्टिः कार्य्या, यतः सद्यो विजयः स्यात्॥१०॥

पदार्थ:-हे **(अग्ने)** अग्नि के समान तेजस्वी सेनापते! **(शोशुचानः)** अत्यन्त पवित्र आचरण करने हारे आप जो **(तव)** आप के **(भ्रमासः)** भ्रमणशील वीर पुरुष जैसे **(विष्वक्)** सब ओर से **(आशुया)** शीघ्र चलनेहारी **(उल्काः)** बिजुली की गतियां वैसे **(पतन्ति)** श्येनपक्षी के समान शत्रुओं के दल में तथा शत्रुओं में गिरते हैं, उनको **(धृषता)** दृढ़ सेना से **(अनु)** अनुकूल **(स्पृश)** प्राप्त हूजिये और **(असन्दितः)** अखण्डित हुए **(जुह्वा)** घी के हवन का साधन लपट अग्नि के **(तपूंषि)** तेज के समान शत्रुओं के ऊपर सब ओर से बिजुली को **(विसृज)** छोड़िये और **(पतङ्गान्)** घोड़ों को सुन्दर शिक्षायुक्त कीजिये॥१०॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। सेनापति और सेना के भृत्यों को चाहिये कि आपस में प्रीति के साथ बल बढ़ा वीर पुरुषों को हर्ष दें और सम्यक् युद्ध करा के अग्नि आदि अस्त्रों और भुशुण्डी आदि शस्त्रों से शत्रुओं के ऊपर बिजुली की वृष्टि करें, जिस से शीघ्र विजय हो॥१०॥

प्रति स्पश इत्यस्य वामदेव ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनः स कीदृशो भवेदित्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

प्रति स्पशो विसृज तूर्णितमो भवा पायुर्विशोऽ अस्या अदब्धः।
यो नो दूरेऽ अघशꣳसो योऽ अन्त्यग्ने माकिष्टे व्यथिरादधर्षीत्॥ ११॥

प्रति। स्पशः। वि। सृज। तूर्णितम इति तूर्णिऽतमः। भव। पायुः। विशः। अस्याः। अदब्धः। यः। नः। दूरे। अघशꣳस इत्यघऽशꣳसः। यः। अन्ति। अग्ने। माकिः। ते। व्यथिः। आ। दधर्षीत्॥ ११॥

पदार्थ:-**(प्रति)** **(स्पशः)** बाधनानि **(वि)** **(सृज)** **(तूर्णितमः)** अतिशयेन त्वरिता **(भव)** **द्व्यचोऽतस्तिङः** [अष्टा०६.३.१३५] इति दीर्घः। **(पायुः)** रक्षकः **(विशः)** प्रजायाः **(अस्याः)** वर्त्तमानायाः **(अदब्धः)** अहिंसकः **(यः)** **(नः)** अस्माकम् **(दूरे)** विप्रकृष्टे **(अघशंसः)** योऽघं पापं कर्तुं शंसति स स्तेनः **(यः)** **(अन्ति)** निकटे **(अग्ने)** अग्निवच्छत्रुदाहक **(माकिः)** निषेधे। अत्र मकि धातोर्बाहुलकादिञ् नुमभावश्च **(ते)** तव **(व्यथिः)** व्यथकः शत्रुः **(आ)** **(दधर्षीत्)** धर्षेत्। अत्र **वाच्छन्दसि** [अष्टा०वा०६.१.८] इति द्विर्वचनम्॥११॥

अन्वयः- हे अग्ने! ते तव नोऽस्माकं च यो व्यथिरघशंसो दूरे योऽन्त्यस्ति, यथा सोऽस्मान् माकिरादधर्षीत्, तं प्रति त्वं तूर्णितमः सन् स्पशो विसृज अस्या विशः पायुरदब्धो भव॥११॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये निकटदूरस्थाः प्रजाभ्यो दुःखप्रदा दस्यवः सन्ति, तान् राजादयः सामदामदण्डभेदैः सद्यो वशं नीत्वा दयान्यायाभ्यां धार्मिकीः प्रजाः सततं पालयेयुः॥११॥

पदार्थ:-हे **(अग्ने)** अग्नि के समान शत्रुओं के जलाने वाले पुरुष! **(ते)** आपका और **(नः)** हमारा **(यः)** जो **(व्यथिः)** व्यथा देने हारा **(अघशंसः)** पाप करने में प्रवृत्त चोर शत्रुजन **(दूरे)** दूर तथा **(यः)** जो **(अन्ति)** निकट है, जैसे वह हम लोगों को **(माकिः)** नहीं **(आ, दधर्षीत्)** दुःख देवे, उस शत्रु के **(प्रति)** प्रति आप **(तूर्णितमः)** शीघ्र दण्डदाता होके **(स्पशः)** बन्धनों को **(विसृज)** रचिये और **(अस्याः)** इस वर्त्तमान **(विशः)** प्रजा के **(पायुः)** रक्षक **(अदब्धः)** हिंसारहित **(भव)** हूजिये॥११॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो समीप वा दूर रहने वाले प्रजाओं के दुःखदायी डाकू

हैं, उनको राजा आदि पुरुष साम, दाम, दण्ड और भेद से शीघ्र वश में लाके दया और न्याय से धर्मयुक्त प्रजाओं की निरन्तर रक्षा करें॥११॥

उदग्न इत्यस्य वामदेव ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनः स किं कुर्यादित्याह॥

फिर वह क्या करे, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

उद॑ग्ने तिष्ठ प्रत्यात॑नुष्व न्य᳖मित्राँ॑२ऽ ओषतात् तिग्महेते।

यो नो॒ऽ अरा॑तिः समिधान च॒क्रे नी॒चा तं ध॑क्ष्यत॒सं न शुष्क॑म्॥१२॥

उत्। अ॒ग्ने॒। ति॒ष्ठ॒। प्रति॑। आ। त॒नु॒ष्व॒। नि। अ॒मित्रा॑न्। ओ॒ष॒ता॒त्। ति॒ग्म॒हे॒त॒ इति॑ तिग्मऽहेते। यः। नः॒। अरा॑तिम्। स॒मि॒धा॒नेति॑ सम्ऽइधान। च॒क्रे। नी॒चा। तम्। ध॒क्षि॒। अ॒त॒सम्। न। शुष्क॑म्॥१२॥

पदार्थः-(उत्) (अग्ने) सभाध्यक्ष **(तिष्ठ) (प्रति) (आ) (तनुष्व) (नि) (अमित्रान्)** धर्मद्वेष्टॄन् शत्रून् **(ओषतात्)** दह **(तिग्महेते)** तिग्मस्तीव्रो हेतिवज्रो दण्डो यस्य सः। **हेतिरिति वज्रनामसु पठितम्॥** (निघं०२।२०) **(यः) (नः)** अस्माकम् **(अरातिम्)** शत्रुम् **(समिधान)** सम्यक् तेजस्विन् **(चक्रे)** करोति **(नीचा)** न्यग्भूतं कृत्वा **(तम्) (धक्षि)** दह। अत्र विकरणलुक् **(अतसम्)** काष्ठम् **(न)** इव **(शुष्कम्)** अनार्द्रम्॥१२॥

अन्वयः- हे अग्ने! त्वं राजधर्म उत्तिष्ठ, धार्मिकान् प्रत्यातनुष्व। हे तिग्महेतेऽमित्रान् न्योषतात्। हे समिधान! यो नोऽरातिं चक्रे, तं नीचा शुष्कमतसं न धक्षि॥१२॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। राजादयः सभ्या धर्मे विनये समाहिता भूत्वा जलमिव मित्रान् शीतयेयुः। अग्निरिव शत्रून् दहेयुः। य उदासीनः स्थित्वाऽस्माकं शत्रूनुत्पादयेत् तं दृढं बन्धं बध्वा निष्कण्टकं राज्यं कुर्य्युः॥१२॥

पदार्थः-हे **(अग्ने)** तेजधारी सभा के स्वामी! आप राजधर्म के बीच **(उत्तिष्ठ)** उन्नति को प्राप्त हूजिये। धर्मात्मा पुरुषों के **(प्रति)** लिये **(आतनुष्व)** सुखों का विस्तार कीजिये। हे **(तिग्महेते)** तीव्र दण्ड देने वाले राजपुरुष! **(अमित्रान्)** धर्म के द्वेषी शत्रुओं को **(न्योषतात्)** निरन्तर जलाइये। हे **(समिधान)** सम्यक् तेजधारी जन! **(यः)** जो **(नः)** हमारे **(अरातिम्)** शत्रु को उत्साही **(चक्रे)** करता है, **(तम्)** उसको **(नीचा)** नीची दशा में करके **(शुष्कम्)** सूखे **(अतसम्)** काष्ठ के **(न)** समान **(धक्षि)** जलाइये॥१२॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। राजा आदि सभ्यजनों को चाहिये कि धर्म और विनय में समाहित होके जल के समान मित्रों को शीतल करें, अग्नि के समान शत्रुओं को जलावें। जो उदासीन होकर हमारे शत्रुओं को बढ़ावे, उसको दृढ़ बन्धनों से बांध के निष्कण्टक राज्य करें॥१२॥

ऊर्ध्वो भवेत्यस्य वामदेव ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्ष्यतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनः स कीदृशो भवेदित्याह॥

फिर वह राजा किस प्रकार का हो, इस का विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

ऊ॒र्ध्वो भ॑व॒ प्रति॑वि॒ध्याध्य॒स्मदा॒विष्कृ॑णुष्व॒ दैव्या॒न्यग्ने।

अव॑ स्थि॒रा त॑नुहि यातु॒जूनां॑ जा॒मिमजा॑मिं॒ प्रमृ॑णीहि॒ शत्रू॑न्।

अ॒ग्नेष्ट्वा॒ तेज॑सा सादयामि॥ १३॥

ऊ॒र्ध्वः। भ॒व॒। प्रति॑। वि॒ध्य॒। अधि॑। अ॒स्मत्। आ॒विः। कृ॒णु॒ष्व॒। दैव्या॑नि। अ॒ग्ने॒। अव॑। स्थि॒रा। त॒नु॒हि॒। या॒तु॒जूना॒मिति॑ यातु॒ऽजूना॑म्। जा॒मिम्। अजा॑मिम्। प्र। मृ॒णी॒हि॒। शत्रू॑न्। अ॒ग्नेः। त्वा॒। तेज॑सा। सा॒द॒या॒मि॒॥ १३॥

पदार्थः-(**ऊर्ध्वः**) उत्कृष्टः (**भव**) (**प्रति**) (**विध्य**) ताडय (**अधि**) (**अस्मत्**) (**आविः**) प्राकट्ये (**कृणुष्व**) (**दैव्यानि**) देवैर्विद्वद्भिर्निवृत्तानि वस्तूनि (**अग्ने**) (**अव**) (**स्थिरा**) निश्चलानि (**तनुहि**) विस्तृणुहि (**यातुजूनाम्**) ये यान्ति ये च जवन्ते तेषाम् (**जामिम्**) भोजनयुक्तम् (**अजामिम्**) भोजनरहितं स्थानम्। अत्र जमुधातोर्वपादिभ्य इतीञ् (**प्र**) (**मृणीहि**) हिन्धि (**शत्रून्**) अरीन् (**अग्नेः**) पावकस्य (**त्वा**) त्वाम् (**तेजसा**) प्रकाशेन सह (**सादयामि**) स्थापयामि। [अयं मन्त्रः शत०७.४.१.४१ व्याख्यातः]॥ १३॥

अन्वयः-हे अग्ने विद्वन् राजन्! यतस्त्वमूर्ध्वो भव, शत्रून् प्रति विध्यास्मत् स्थिरा दैव्यान्याविष्कृणुष्व, सुखानि तनुहि, यातुजूनां जामिमजामिमवतनुहि विनाशय, शत्रून् प्रमृणीहि। तस्मादहं त्वाग्नेस्तेजसाधि-सादयामि॥ १३॥

भावार्थः-मनुष्या राज्यैश्वर्य्यं प्राप्योत्तमगुणकर्मस्वभावा भवेयुः, प्रजाभ्यो दरिद्रेभ्यश्च सततं सुखं दद्युः। धर्मे स्थिराः सन्तो दुष्टाधर्माचारिणो मनुष्यान् सततं शिक्षयेयुः, सर्वोत्कृष्टं सभापतिं च मन्येरन्॥ १३॥

पदार्थः-हे (**अग्ने**) तेजस्विन् विद्वान् पुरुष! जिसलिये आप (**ऊर्ध्वः**) उत्तम (**भव**) हूजिये, धर्म के (**प्रति**) अनुकूल होके (**विध्य**) दुष्ट शत्रुओं को ताड़ना दीजिये, (**अस्मत्**) हमारे (**स्थिरा**) निश्चल (**दैव्यानि**) विद्वानों के रचे पदार्थों को (**आविः**) प्रकट (**कृणुष्व**) कीजिये, सुखों को (**तनुहि**) विस्तारिये, (**यातुजूनाम्**) परपदार्थों को प्राप्त होने और वेग वाले शत्रुजनों के (**जामिम्**) भोजन के और (**अजामिम्**) अन्य व्यवहार के स्थान को (**अव**) अच्छे प्रकार विस्तारपूर्वक नष्ट कीजिये और (**शत्रून्**) शत्रुओं को (**प्रमृणीहि**) बल के साथ मारिये, इसिलिये मैं (**त्वा**) आपको (**अग्नेः**) अग्नि के (**तेजसा**) प्रकाश के (**अधि**) सम्मुख (**सादयामि**) स्थापन करता हूं॥ १३॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि राज्य के ऐश्वर्य्य को पाके उत्तम गुण, कर्म और स्वभावों से युक्त होवें, प्रजाओं और और दरिद्रों को निरन्तर सुख देवें। दुष्ट अधर्माचारी मनुष्यों को निरन्तर शिक्षा करें और सबसे उत्तम पुरुष को सभापति मानें॥ १३॥

अग्निर्मूर्द्धेत्यस्य वामदेव ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः।

पुनः स कीदृशो भवेदित्याह॥

फिर वह राजपुरुष कैसा हो, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अ॒ग्निर्मू॒र्द्धा दि॒वः क॒कुत्पतिः॑ पृथि॒व्याऽ अ॒यम्।

अ॒पाᳬं रेता॑ᳬंसि जिन्वति। इन्द्र॑स्य॒ त्वौज॑सा सादयामि॥ १४॥

अ॒ग्निः। मू॒र्द्धा। दि॒वः। क॒कुत्। पतिः॑। पृ॒थि॒व्याः। अ॒यम्। अ॒पाम्। रेता॑ᳬंसि। जि॒न्व॒ति॒। इन्द्र॑स्य। त्वा॒। ओज॑सा। सा॒द॒या॒मि॒॥ १४॥

पदार्थः-(**अग्निः**) सूर्य्यः (**मूर्द्धा**) सर्वेषां शिर इव (**दिवः**) प्रकाशयुक्तस्याकाशस्य मध्ये (**ककुत्**) महान्। **ककुह इति महन्नामसु पठितम्**॥ (निघं०३।३)अस्यान्त्यलोपो वर्णव्यत्ययेन हस्य दः (**पतिः**) पालकः (**पृथिव्याः**) भूमेः (**अयम्**) (**अपाम्**) जलानाम् (**रेतांसि**) वीर्य्याणि (**जिन्वति**) प्रीणाति तर्पयति (**इन्द्रस्य**) सूर्यस्य (**त्वा**) त्वाम् (**ओजसा**) पराक्रमेण (**सादयामि**)। [अयं मन्त्रः शत०७.४.१.४१ व्याख्यातः]॥१४॥

अन्वयः-हे राजन्! यथाऽयमग्निर्दिवः पृथिव्या मूर्द्धा ककुत्पतिरपां रेतांसि जिन्वति, तथा त्वं भव। अहं त्वा त्वामिन्द्रस्यौजसा सह राज्याय सादयामि॥१४॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यो मनुष्यः सूर्यवद् गुणकर्मस्वभावो न्यायेन प्रजापालनतत्परो धार्मिको विद्वान् भवेत् तं राजत्वेन सर्वे मनुष्याः स्वीकुर्य्युः॥१४॥

पदार्थः-हे राजन्! जैसे (**अयम्**) यह (**अग्निः**) सूर्य्य (**दिवः**) प्रकाशयुक्त आकाश के बीच और (**पृथिव्याः**) भूमि का (**मूर्द्धा**) सब प्राणियों के शिर के समान उत्तम (**ककुत्**) सब से बड़ा (**पतिः**) सब पदार्थों का रक्षक (**अपाम्**) जलों के (**रेतांसि**) सारों से प्राणियों को (**जिन्वति**) तृप्त करता है, वैसे आप भी हूजिये। मैं (**त्वा**) आप को (**इन्द्रस्य**) सूर्य्य के (**ओजसा**) पराक्रम के साथ राज्य के लिये (**सादयामि**) स्थापन करता हूँ॥१४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य सूर्य्य के समान गुण, कर्म्म और स्वभाव वाला, न्याय से प्रजा के पालन में तत्पर, धर्मात्मा, विद्वान् हो, उसको राज्याधिकारी सब लोग मानें॥१४॥

भुवो यज्ञस्येत्यस्य त्रिशिरा ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनः स कीदृशो भवेदित्याह॥

फिर वह कैसा हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

भुवो॑ य॒ज्ञस्य॒ रज॑सश्च ने॒ता यत्रा॑ नि॒युद्भिः॒ सच॑से शि॒वाभिः॑।

दि॒वि मू॒र्द्धानं॑ दधिषे स्व॒र्षां जि॒ह्वाम॑ग्ने चकृषे हव्य॒वाह॑म्॥१५॥

भुवः॑। य॒ज्ञस्य॑। रज॑सः। च॒। ने॒ता। यत्र॑। नि॒युद्भि॒रिति॑ नि॒युत्ऽभिः॑। सच॑से। शि॒वाभिः॑। दि॒वि। मू॒र्द्धान॑म्। द॒धि॒षे॒। स्व॒र्षाम्। स्व॒ःसामिति॑ स्व॒ःऽसाम्। जि॒ह्वाम्। अ॒ग्ने॒। च॒कृ॒षे॒। ह॒व्य॒वाह॒मिति॑ ह॒व्य॒ऽवाह॑म्॥१५॥

पदार्थः-(**भुवः**) पृथिव्याः (**यज्ञस्य**) राजधर्मस्य (**रजसः**) लोकस्यैश्वर्यस्य वा (**च**) पश्वादीनाम् (**नेता**) नयनकर्त्ता (**यत्र**) राज्ये। अत्र **निपातस्य च** [अष्टा०६.३.१३६] इति दीर्घः (**नियुद्भिः**) वायोर्वेगादिगुणैः सह (**सचसे**) समवैषि (**शिवाभिः**) कल्याणकारिकाभिर्नीतिभिः (**दिवि**) न्यायप्रकाशे (**मूर्द्धानम्**) शिरः (**दधिषे**) धरसि (**स्वर्षाम्**) स्वः सुखानि सनन्ति भजन्ति यया ताम् (**जिह्वाम्**) जोहवीति यया तां वाचम् (**अग्ने**) विद्वन् (**चकृषे**) करोषि (**हव्यवाहम्**) हव्यानि होतु दातुमर्हाणि प्रज्ञानानि यया ताम्। [अयं मन्त्रः शत०७.४.१.४२ व्याख्यातः]॥१५॥

अन्वयः-हे अग्ने विद्वन्! यथाऽग्निर्नियुद्भिः सह वायू रजसो नेता सन् दिवि मूर्द्धानं धरति, तथा यत्र शिवाभिः सह भुवो यज्ञस्य सचसे राज्यं दधिषे, हव्यवाहं स्वर्षां जिह्वाञ्चकृषे, तत्र सर्वाणि सुखानि वर्द्धन्त इति विजानीहि॥१५॥

भावार्थः-यस्मिन् राज्ये राजादयः सर्वे धार्मिका मङ्गलचारिणो धर्मेण प्रजाः पालयेयुस्तत्र विद्यासुशिक्षाजानि सुखानि कुतो न वर्द्धेरन्॥१५॥

पदार्थ:-हे **(अग्ने)** विद्वान् पुरुष! **(यत्र)** जिस राज्य में आप जैसे **(नियुद्भिः)** वेग आदि गुणों के साथ वायु **(रजसः)** लोकों वा ऐश्वर्य्य का **(नेता)** चलाने हारा **(दिवि)** न्याय के प्रकाश में **(मूर्द्धानम्)** शिर को धारण करता है, वैसे **(यत्र)** जहां **(शिवाभिः)** कल्याणकारक नीतियों के साथ **(भुवः)** अपनी पृथिवी के **(यज्ञस्य)** राजधर्म्म के पालन करनेहारे होके **(सचसे)** संयुक्त होता, अच्छे पुरुषों से राज्य को **(दधिषे)** धारण और **(हव्यवाहम्)** देने योग्य विद्वानों की प्राप्ति का हेतु **(स्वर्षाम्)** सुखों का सेवन करानेहारी **(जिह्वाम्)** अच्छे विषयों की ग्राहक वाणी को **(चकृषे)** करते हो, वहाँ सब सुख बढ़ते हैं, यह निश्चित जानिये॥१५॥

भावार्थ:-जिस राज्य में राजा आदि सब राजपुरुष मंगलाचरण करनेहारे धर्मात्मा होके धर्मानुकूल प्रजाओं का पालन करें, वहां विद्या और अच्छी शिक्षा से होने वाले सुख क्यों न बढ़ें॥१५॥

ध्रुवासीत्यस्य त्रिशिरा ऋषिः। अग्निर्देवता। स्वराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः।

पुनः सा कीदृशी भवेदित्याह॥

फिर वह राजपत्नी कैसी होवे, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

ध्रुवासि धरुणास्तृता विश्वकर्मणा।

मा त्वा समुद्रऽ उद्वधीन्मा सुपर्णोऽअव्यथमाना पृथिवीं दृꣳह॥१६॥

ध्रुवा। असि। धरुणा। आस्तृतेत्याऽस्तृता। विश्वकर्मणेति विश्वऽकर्मणा। मा। त्वा। समुद्रः। उत्। वधीत्। मा। सुपर्ण इति सुऽपर्णः। अव्यथमाना। पृथिवीम्। दृꣳह॥१६॥

पदार्थ:-**(ध्रुवा)** निष्कम्पा **(असि)** **(धरुणा)** विद्याधर्मधर्त्री **(आस्तृता)** वस्त्रालङ्कारशुभगुणैः सम्यगाच्छादिता **(विश्वकर्मणा)** विश्वानि समग्राणि धर्म्यकर्माणि यस्य पत्युस्तेन **(मा)** **(त्वा)** त्वाम् **(समुद्रः)** समुद्द्रवन्ति कामुका यस्मिन् व्यवहारे सः **(उत्)** **(वधीत्)** हन्यात् **(मा)** **(सुपर्णः)** शोभनानि पर्णानि पालितान्यङ्गानि यस्य सः **(अव्यथमाना)** पीडामप्राप्ता **(पृथिवीम्)** स्वराज्यभूमिम् **(दृꣳह)** वर्धय। [अयं मन्त्रः शत०७.४.२.५ व्याख्यातः]॥१६॥

अन्वय:-हे राजपत्नि! यतो विश्वकर्मणा पत्या सह वर्त्तमानाऽऽस्तृता धरुणा ध्रुवाऽसि, साऽव्यथमाना सती त्वं पृथिवीमुद्दृंह त्वा समुद्रो मावधीत्, सुपर्णश्च मा वधीत्॥१६॥

भावार्थ:-यादृशीं राजनीतिविद्यां राजाऽधीतवान् भवेत्, तादृशीमेव राज्ञ्यप्यधीतवती स्यात्। सदैवोभौ पतिव्रतास्त्रीव्रतौ भूत्वा न्यायेन पालनं कुर्य्याताम्। व्यभिचारकामव्यथारहितौ भूत्वा धर्मेण सन्तानानुत्पाद्य स्त्रीन्यायं स्त्री पुरुषन्यायं पुरुषश्च कुर्य्यात्॥१६॥

पदार्थ:-हे राजा की स्त्री! जिस कारण **(विश्वकर्मणा)** सब धर्मयुक्त काम करने वाले अपने पति के साथ वर्त्तती हुई **(आस्तृता)** वस्त्र, आभूषण और श्रेष्ठ गुणों से ढपी हुई **(धरुणा)** विद्या और धर्म की धारणा करनेहारी **(ध्रुवा)** निश्चल **(असि)** है, सो तू **(अव्यथमाना)** पीड़ा से रहित हुई **(पृथिवीम्)** अपनी राज्यभूमि को **(उद्दृंह)** अच्छे प्रकार बढ़ा **(त्वा)** तुझ को **(समुद्रः)** जार लोगों का व्यवहार **(मा)** मत **(वधीत्)** सतावे और **(सुपर्णः)** सुन्दर रक्षा किये अवयवों से युक्त तेरा पति **(मा)** नहीं मारे॥१६॥

भावार्थ:-जैसी राजनीति विद्या को राजा पढ़ा हो, वैसी ही उसकी राणी भी पढ़ी होनी चाहिये। सदैव दोनों

परस्पर पतिव्रता, स्त्रीव्रत हो के न्याय से पालन करें। व्यभिचार और काम की व्यथा से रहित होकर धर्मानुकूल पुत्रों को उत्पन्न करके स्त्रियों का स्त्री राणी और पुरुषों का पुरुष राजा न्याय करे॥१६॥

प्रजापतिष्ट्वेत्यस्य त्रिशिरा ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनः पतिस्तां कथं वर्त्तयेदित्याह॥

फिर राजा अपनी राणी को कैसे वर्त्तावे, यह अगले मन्त्र में कहा है॥

प्रजापतिष्ट्वा सादयत्वपां पृष्ठे समुद्रस्येमन्।

व्यचस्वतीं प्रथस्वतीं प्रथस्व पृथिव्यसि॥ १७॥

प्रजापतिरिति प्रजाऽपतिः। त्वा। सादयतु। अपाम्। पृष्ठे। समुद्रस्य। एमन्। व्यचस्वतीम्। प्रथस्वतीम्। प्रथस्व पृथिवी। असि॥ १७॥

पदार्थः-(**प्रजापतिः**) प्रजायाः स्वामी (**त्वा**) त्वाम् (**सादयतु**) स्थापयतु (**अपाम्**) जलानाम् (**पृष्ठे**) उपरि (**समुद्रस्य**) सागरस्य (**एमन्**) प्राप्तव्ये स्थाने। अत्र सप्तम्या लुक्। अत्र **एमन्नादिषु छन्दसि पररूपम्** [अष्टा०वा०६.१.९१] इति वार्त्तिकेन पररूपम्। (**व्यचस्वतीम्**) बहु व्यचो व्यञ्चनं विद्यागमनं सत्करणं वा विद्यते यस्यास्ताम् (**प्रथस्वतीम्**) प्रथः प्रख्याता कीर्त्तिर्विद्यते यस्यास्ताम् (**प्रथस्व**) प्रख्याता भव (**पृथिवी**) भूमिरिव सुखप्रदा (**असि**)। [अयं मन्त्रः शत०७.४.२.६ व्याख्यातः]॥१७॥

अन्वयः-हे विदुषि प्रजापालिके राज्ञि! यथा प्रजापतिः समुद्रस्यापामेमन् पृष्ठे नौकेव व्यचस्वतीं प्रथस्वतीं त्वा त्वां सादयतु, यतस्त्वं पृथिव्यसि, तस्मात् स्त्रीन्यायकरणे प्रथस्व, तथा ते पतिर्भवेत्॥१७॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। राजपुरुषादयः स्वयं यस्मिन् राजकर्मणि प्रवर्त्तेरँस्तस्मिन् स्वां स्वां स्त्रियं स्थापयेयुः। यः पुरुषः पुरुषाणां न्यायाधिकारे तिष्ठेत् तस्य स्त्री स्त्रीणां न्यायासने स्थिता भवेत्॥१७॥

पदार्थः-हे विदुषि स्त्रि! जैसे (**प्रजापतिः**) प्रजा का स्वामी (**समुद्रस्य**) समुद्र के (**अपाम्**) जलों के (**एमन्**) प्राप्त होने योग्य स्थान के (**पृष्ठे**) ऊपर नौका के समान (**व्यचस्वतीम्**) बहुत विद्या की प्राप्ति और सत्कार से युक्त (**प्रथस्वतीम्**) प्रशंसित कीर्त्ति वाली (**त्वा**) तुझ को (**सादयतु**) स्थापन करे, जिस कारण तू (**पृथिवी**) भूमि के समान सुख देने वाली (**असि**) है, इसलिये स्त्रियों के न्याय करने में (**प्रथस्व**) प्रसिद्ध हो, वैसे तेरा पति पुरुषों का न्याय करे॥१७॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। राजपुरुष आदि को चाहिये कि आप जिस-जिस राजकार्य में प्रवृत्त हों, उस-उस कार्य में अपनी-अपनी स्त्रियों को भी स्थापन करें, जो-जो राजपुरुष जिन-जिन पुरुषों का न्याय करे, उस-उसकी स्त्री स्त्रियों का न्याय किया करें॥१७॥

भूरसीत्यस्य त्रिशिरा ऋषिः। अग्निर्देवता। प्रस्तारपङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनः सा कीदृशी भवेदित्याह॥

फिर वह राणी कैसी हो, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

भूरसि भूमिरस्यदितिरसि विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री।

पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दृꣳह पृथिवीं मा हिꣳसीः॥ १८॥

भूः। असि। भूमिः। असि। अदितिः। असि। विश्वधाया इति विश्वऽधायाः। विश्वस्य। भुवनस्य। धर्त्री। पृथिवीम्। यच्छ। पृथिवीम्। दृꣳह। पृथिवीम्। मा। हिꣳसीः॥ १८॥

पदार्थः-(**भूः**) भवतीति भूः (**असि**) (**भूमिः**) पृथिवीवत् (**असि**) (**अदितिः**) अखण्डितैश्वर्य्यमन्तरिक्षमिवाक्षुब्धा (**असि**) (**विश्वधायाः**) या विश्वं सर्वं गृह्णाति गृहाश्रमी राजव्यवहारं दधाति सा (**विश्वस्य**) सर्वस्य (**भुवनस्य**) भवन्ति भूतानि यस्मिन् राज्ये तस्य (**धर्त्री**) धारिका (**पृथिवीम्**) (**यच्छ**) निगृहाण (**पृथिवीम्**) (**दृंह**) वर्धय (**पृथिवीम्**) (**मा**) (**हिंसीः**) हिंस्याः। [अयं मन्त्रः शत०७.४.२.७ व्याख्यातः]॥ १८॥

अन्वयः-हे राजपत्नि! यतस्त्वं भूरिवासि, तस्मात् पृथिवीं यच्छ। यतस्त्वं विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री भूमिरिवासि, तस्मात् पृथिवीं दृंह। यतस्त्वमदितिरिवासि, तस्मात् पृथिवीं मा हिंसीः॥ १८॥

भावार्थः-याः राजकुलस्त्रियः पृथिव्यादिवद् धैर्यादिगुणयुक्ताः सन्ति, ता एव राज्यं कर्त्तुमर्हन्ति॥ १८॥

पदार्थः-हे राणी! जिससे तू (**भूः**) भूमि के समान (**असि**) है, इस कारण (**पृथिवीम्**) पृथिवी को (**यच्छ**) निरन्तर ग्रहण कर। जिसलिये तू (**विश्वधायाः**) सब गृहाश्रम के और राजसम्बन्धी व्यवहारों और (**विश्वस्य**) सब (**भुवनस्य**) राज्य को (**धर्त्री**) धारण करनेहारी (**भूमिः**) पृथिवी के समान (**असि**) है, इसलिये (**पृथिवीम्**) पृथिवी को (**दृंह**) बढ़ा और जिस कारण तू (**अदितिः**) अखण्ड ऐश्वर्य्य वाले आकाश के समान क्षोभरहित (**असि**) है, इसलिये (**पृथिवीम्**) भूमि को (**मा**) मत (**हिंसीः**) बिगाड़॥ १८॥

भावार्थः-जो राजकुल की स्त्री पृथिवी आदि के समान धीरज आदि गुणों से युक्त हो तो वे ही राज्य करने के योग्य होती हैं॥ १८॥

विश्वस्मा इत्यस्य त्रिशिरा ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तौ परस्परं कथं वर्त्तेयातामित्याह॥

फिर वे स्त्री-पुरुष आपस में कैसे वर्त्तें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय।
अग्निष्ट्वाभिपातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद॥ १९॥

विश्वस्मै। प्राणाय। अपानायेत्यपऽआनाय। व्यानायेति विऽआनाय। उदानायेत्युत्ऽआनाय। प्रतिष्ठायै। प्रतिस्थाया इति प्रतिऽस्थायै। चरित्राय। अग्निः। त्वा। अभि। पातु। मह्या। स्वस्त्या। छर्दिषा। शन्तमेनेति शम्ऽतमेन। तया। देवतया। अङ्गिरस्वत्। ध्रुवा। सीद॥ १९॥

पदार्थः-(**विश्वस्मै**) संपूर्णाय (**प्राणाय**) जीवनहेतवे (**अपानाय**) दुःखनिवारणाय (**व्यानाय**) विविधोत्तमव्यवहाराय (**उदानाय**) उत्कृष्टाय बलाय (**प्रतिष्ठायै**) सत्कृतये (**चरित्राय**) धर्माचरणाय (**अग्निः**) विज्ञानवान् पतिः (**त्वा**) त्वाम् (**अभि**) आभिमुख्यतया (**पातु**) रक्षतु (**मह्या**) महत्या (**स्वस्त्या**) प्रापकसुखक्रियया (**छर्दिषा**) प्रदीप्तेन (**शन्तमेन**) अत्यन्तसुखरूपेण कर्मणा (**तया**) (**देवतया**) विवाहितपतिरूपया सुखप्रदया (**अङ्गिरस्वत्**) कारणवत् (**ध्रुवा**) निश्चलस्वरूपा (**सीद**) अवस्थिता भव। [अयं मन्त्रः शत०७.४.२.८

व्याख्यातः]॥१९॥

अन्वयः-हे स्त्रि! योऽग्निस्ते पतिर्मह्या स्वस्त्या शन्तमेन छर्दिषा विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय यां त्वाभिपातु, सा त्वं तया देवतया सहाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद॥१९॥

भावार्थः-पुरुषाः स्वस्वस्त्रीणां सत्कारसुखाभ्यामव्यभिचारेण च प्रियाचरणं पालनादिकं च सततं कुर्य्युः, स्त्रियोऽप्येवमेव। न स्वस्त्रियं विहायान्यां पुरुषः, स्वपुरुषं विहायान्यं स्त्री च संगच्छेत्। एवं परस्परस्य प्रियाचरणावुभौ सदा वर्त्तेयाताम्॥१९॥

पदार्थः-हे स्त्रि! जो **(अग्निः)** विज्ञानयुक्त तेरा पति **(मह्या)** बड़ी **(स्वस्त्या)** सुख प्राप्त करानेहारी क्रिया और **(छर्दिषा)** प्रकाशयुक्त **(शन्तमेन)** अत्यन्तसुखदायक कर्म के साथ **(विश्वस्मै)** सम्पूर्ण **(प्राणाय)** जीवन के हेतु प्राण **(अपानाय)** दुःखों की निवृत्ति **(व्यानाय)** अनेक प्रकार के उत्तम व्यवहारों की सिद्धि **(उदानाय)** उत्तम बल **(प्रतिष्ठायै)** सत्कार और **(चरित्राय)** धर्म का आचरण करने के लिये जिस **(त्वा)** तेरी **(अभिपातु)** सन्मुख होकर रक्षा करे, सो तू **(तया)** उस **(देवतया)** दिव्यस्वरूप पति के साथ **(अङ्गिरस्वत्)** जैसे कार्य्य-कारण का सम्बन्ध है, वैसे **(ध्रुवा)** निश्चल हो के **(सीद)** प्रतिष्ठायुक्त हो॥१९॥

भावार्थः-पुरुषों को योग्य है कि अपनी-अपनी स्त्रियों के सत्कार से सुख और व्यभिचार से रहित होके प्रीतिपूर्वक आचरण और उनकी रक्षा आदि निरन्तर करें, और इसी प्रकार स्त्री लोग भी रहें। अपनी स्त्री को छोड़ अन्य स्त्री की इच्छा न पुरुष और न अपने पति को छोड़ दूसरे पुरुष का संग स्त्री करे। ऐसे ही आपस में प्रीतिपूर्वक ही दोनों सदा वर्त्तें॥१९॥

काण्डात्काण्डादित्यस्याऽग्निर्ऋषिः। पत्नी देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनः सा कीदृशी भवेदित्याह॥

फिर वह स्त्री कैसी हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

काण्डा॑त्काण्डात्प्ररोह॑न्ती पर॑षःपरुषस्परि॑।

एवा नो॑ दूर्वे॒ प्रत॑नु स॒हस्रे॑ण श॒तेन॑ च ॥२०॥

काण्डा॑त्काण्डा॒दिति॒ काण्डा॑त्ऽकाण्डात्। प्र॒रोह॒न्तीति॑ प्र॒ऽरोह॑न्ती। पर॑षःपरुष॒ इति॒ पर॑षःऽपरुषः। परि॑। ए॒व। नः॒। दू॒र्वे॒। प्र॒। त॒नु॒। स॒हस्रे॑ण। श॒तेन॑। च॒॥२०॥

पदार्थः-**(काण्डात्काण्डात्)** ग्रन्थेर्ग्रन्थेः **(प्ररोहन्ती)** प्रकृष्टतया वर्द्धमाना **(परुषःपरुषः)** मर्मणो मर्मणः **(परि)** सर्वतः **(एवा)** **निपातस्य च** [अष्टा०६.३.१३६] इति दीर्घः **(नः)** अस्मान् **(दूर्वे)** दूर्वावद्वर्त्तमाने **(प्र)** **(तनु)** विस्तृणुहि **(सहस्रेण)** असंख्यातेन **(शतेन)** अनेकैः **(च)**। [अयं मन्त्रः शत०७.४.२.१४ व्याख्यातः]॥२०॥

अन्वयः-हे स्त्रि! त्वं यथा सहस्रेण शतेन च काण्डात्काण्डात् परुषःपरुषस्परि प्ररोहन्ती दूर्वे दूर्वौषधी वर्त्तते, तथैव नोऽस्मान् पुत्रपौत्रैश्वर्यादिभिः प्रतनु॥२०॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा दूर्वौषधी रोगप्रणाशिका सुखवर्द्धिका सुविस्तीर्णा चिरं स्थात्री सती वर्धते, तथा सती विदुषी स्त्री कुलं शतधा सहस्रधा वर्धयेत्, तथा पुरुषोऽपि प्रयतेत॥२०॥

पदार्थ:-हे स्त्रि! तू जैसे **(सहस्रेण)** असंख्यात **(च)** और **(शतेन)** बहुत प्रकार के साथ **(काण्डात्काण्डात्)** सब अवयवों और **(परुष:परुष:)** गांठ-गांठ से **(परि)** सब ओर से **(प्ररोहन्ती)** अत्यन्त बढ़ती हुई **(दूर्वे)** दूर्वा घास होती है, वैसे **(एव)** ही **(न:)** हम को पुत्र-पौत्र और ऐश्वर्य से **(प्रतनु)** विस्तृत कर॥२०॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे दूर्वा ओषधि रोगों का नाश और सुखों को बढ़ानेहारी सुन्दर विस्तारयुक्त होती हुई बढ़ती है। वैसे ही विदुषी स्त्री को चाहिये कि बहुत प्रकार से अपने कुल को बढ़ावे॥२०॥

या शतेनेत्यस्याग्निर्ऋषि:। पत्नी देवता। निचृदनुष्टुप् छन्द:। गान्धार: स्वर:॥

पुन: सा कीदृशी भवेदित्याह॥

फिर वह कैसी हो, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

या श॒तेन॑ प्र॒त॒नोषि॑ स॒हस्रे॑ण वि॒रोह॑सि।

तस्या॑स्ते देवीष्टके वि॒धेम॑ ह॒विषा॑ व॒यम्॥२१॥

या। श॒तेन॑। प्र॒त॒नोषीति॑ प्रऽत॒नोषि॑। स॒हस्रे॑ण। वि॒रो॒ह॒सीति॑ वि॒ऽरोह॑सि। तस्या॑:। ते॒। दे॒वि॒। इ॒ष्ट॒के॒। वि॒धेम॑। ह॒विषा॑। व॒यम्॥२१॥

पदार्थ:-**(या)** **(शतेन)** असंख्यातेन **(प्रतनोषि)** **(सहस्रेण)** असंख्यातेन **(विरोहसि)** विविधतया वर्धसे **(तस्या:)** **(ते)** तव **(देवि)** देदीप्यमाने **(इष्टके)** इष्टकेव शुभैर्गुणै: सुशोभिते **(विधेम)** परिचरेम **(हविषा)** होतुमर्हेण **(वयम्)**। [अयं मन्त्र: शत०७.४.२.१५ व्याख्यात:]॥२१॥

अन्वय:-हे इष्टके इष्टकावद् दृढांगे देवि स्त्रि! यथेष्टका शतेन प्रतनोति सहस्रेण विरोहित, तथा या त्वमस्मान् शतेन प्रतनोषि सहस्रेण च विरोहसि, तस्यास्ते तव हविषा वयं विधेम त्वां परिचरेम॥२१॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यथा शतश: सहस्राणीष्टका गृहाकारा भूत्वा सर्वान् सुखयन्ति, तथैव या: साध्व्य: स्त्रिय: पुत्रपौत्रभृत्यादिभि: सर्वानानन्दयेयुस्ता: पुरुषा: सततं सत्कुर्य्यु:। नहि सत्पुरुषस्त्री-समागमेन विना शुभगुणाढ्यान्यपत्यानि जायेरन्। एवंभूतै: सन्तानैर्विना मातापितॄणां कुत: सुखं जायेत॥२१॥

पदार्थ:-हे **(इष्टके)** ईंट के समान दृढ़ अवयवों से युक्त, शुभ गुणों से शोभायमान **(देवि)** प्रकाशयुक्त स्त्री जैसे ईंट सैकड़ों संख्या से मकान आदि का विस्तार और हजारह से बहुत बढ़ा देती है, वैसे **(या)** जो तू हम लोगों को **(शतेन)** सैकड़ों पुत्र-पौत्रादि सम्पत्ति से **(प्रतनोषि)** विस्तारयुक्त करती और **(सहस्रेण)** हजारह प्रकार के पदार्थों से **(विरोहसि)** विविध प्रकार बढ़ाती है, **(तस्या:)** उस **(ते)** तेरी **(हविषा)** देने योग्य पदार्थों से **(वयम्)** हम लोग **(विधेम)** सेवा करें॥२१॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सैकड़ों प्रकार से हजारह ईंट घर रूप बन के सब प्राणियों को सुख देती हैं, वैसे जो श्रेष्ठ स्त्री लोग पुत्र-पौत्र ऐश्वर्य्य और भृत्य आदि से सब को आनन्द देवें, उनका पुरुष लोग निरन्तर सत्कार करें, क्योंकि श्रेष्ठ पुरुष और स्त्रियों के संग के बिना शुभ गुणों से युक्त सन्तान कभी नहीं हो सकते और ऐसे सन्तानों के बिना माता पिता को सुख कब मिल सकता है॥२१॥

यास्त इत्यस्येन्द्राग्नी ऋषी। अग्निर्देवता। भुरिगनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनः सा कीदृशी भवेदित्युपदिश्यते॥

फिर वह स्त्री कैसी होवे, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

यास्तेऽ अग्ने सूर्य्ये रुचो दिवमातन्वन्ति रश्मिभिः।

ताभिर्नोऽ अद्य सर्वाभी रुचे जनाय नस्कृधि॥२२॥

याः। ते। अग्ने। सूर्ये। रुचः। दिवम्। आतन्वन्तीत्याऽतन्वन्ति। रश्मिभिरिति रश्मिऽभिः। ताभिः। नः। अद्य। सर्वाभिः। रुचे। जनाय। नः। कृधि॥२२॥

पदार्थः-(**याः**) (**ते**) तव (**अग्ने**) अग्निरिव वर्त्तमाने (**सूर्य्ये**) अर्के (**रुचः**) दीप्तयः (**दिवम्**) प्रकाशम् (**आतन्वन्ति**) समन्ताद् विस्तृण्वन्ति (**रश्मिभिः**) किरणैः (**ताभिः**) रुचिभिः (**नः**) अस्मान् (**अद्य**) (**सर्वाभिः**) (**रुचे**) रुचिकारकाय (**जनाय**) प्रसिद्धाय (**नः**) अस्मान् (**कृधि**) कुरु। अत्र विकरणलुक्। [अयं मन्त्रः शत०७.४.२.२१ व्याख्यातः]॥२२॥

अन्वयः-हे अग्ने विदुष्यध्यापिके स्त्रि! यास्ते रुचयः सन्ति, ताभिः सर्वाभिर्नो यथा रुचः सूर्य्ये रश्मिभिर्दिवमातन्वन्ति, तथा त्वमातनु। अद्य रुचे जनाय नः प्रीतान् कृधि॥२२॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा ब्रह्माण्डे सूर्यस्य दीप्तयः सर्वाणि वस्तूनि प्रकाश्य रोचयन्ति, तथैव विदुष्यः साध्व्यः पतिव्रताः स्त्रियः सर्वाणि गृहकर्माणि प्रकाशयन्ति। यत्र स्त्रीपुरुषौ परस्परं प्रीतिमन्तौ स्याताम्, तत्र सर्वं कल्याणमेव॥२२॥

पदार्थः-हे (**अग्ने**) अग्नि के समान तेजधारिणी पढ़ानेहारी विदुषी स्त्री! (**याः**) जो (**ते**) तेरी रुचि हैं, (**ताभिः**) उन (**सर्वाभिः**) सब रुचियों से युक्त (**नः**) हम को जैसे (**रुचः**) दीप्तियां (**सूर्य्ये**) सूर्य्य में (**रश्मिभिः**) किरणों से (**दिवम्**) प्रकाश को (**आतन्वन्ति**) अच्छे प्रकार विस्तारयुक्त करती हैं, वैसे तू भी अच्छे प्रकार विस्तृत सुखयुक्त कर और (**अद्य**) आज (**रुचे**) रुचि करानेहारे (**जनाय**) प्रसिद्ध मनुष्य के लिये (**नः**) हम लोगों को प्रीतियुक्त (**कृधि**) कर॥२२॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे ब्रह्माण्ड में सूर्य्य की दीप्ति सब वस्तुओं को प्रकाशित कर रुचियुक्त करती हैं, वैसे ही विदुषी श्रेष्ठ पतिव्रता स्त्रियां घर के सब कार्य्यों का प्रकाश करती हैं। जिस कुल में स्त्री और पुरुष आपस में प्रीतियुक्त हों, वहाँ सब विषयों में कल्याण ही होता है॥२२॥

या वो देवा इत्यस्येन्द्राग्नी ऋषी। बृहस्पतिर्देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथ स्त्रीपुरुषैः कथं विज्ञानं संपाद्यमित्याह॥

अब स्त्री-पुरुषों को विज्ञान की सिद्धि कैसे करनी चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

या वो देवाः सूर्य्ये रुचो गोष्वश्वेषु या रुचः।

इन्द्राग्नी ताभिः सर्वाभी रुचं नो धत्त बृहस्पते॥२३॥

याः। वः। देवाः। सूर्ये। रुचः। गोषु। अश्वेषु। याः। रुचः। इन्द्राग्नीऽइतीन्द्राग्नी। ताभिः। सर्वाभिः। रुचम्। नः। धत्त। बृहस्पते॥२३॥

पदार्थः-(**याः**) (**वः**) युष्माकम् (**देवाः**) विद्वांसः (**सूर्य्ये**) सवितरि (**रुचः**) रुचयः (**गोषु**) धेनुषु (**अश्वेषु**) गवादिषु (**याः**) (**रुचः**) प्रीतयः (**इन्द्राग्नी**) विद्युत्सूर्य्यवदध्यापकोपदेशकौ (**ताभिः**) (**सर्वाभिः**) (**रुचम्**) कामनाम् (**नः**) अस्माकं मध्ये (**धत्त**) (**बृहस्पते**) बृहतां विदुषां पालक। [अयं मन्त्रः शत०७.४.२.२१ व्याख्यातः]॥२३॥

अन्वयः-हे देवाः! यूयं या वः सूर्ये रुचो या गोष्वश्वेषु रुचश्चेव रुचः सन्ति, ताभिः सर्वाभी रुग्भिर्नो रुचमिन्द्राग्नी इव धत्त। हे बृहस्पते परीक्षक! भवानस्माकं परीक्षां कुरु॥२३॥

भावार्थः-यावन्मनुष्याणां विद्वत्सङ्ग ईश्वरेऽस्य सृष्टौ च रुचिः परीक्षा च न जायते, तावद्विज्ञानं न वर्द्धते॥२३॥

पदार्थः-हे (**देवाः**) विद्वानो! तुम सब लोग (**याः**) जो (**वः**) तुम्हारी (**सूर्य्ये**) सूर्य्य में (**रुचः**) रुचि और (**याः**) जो (**गोषु**) गौओं और (**अश्वेषु**) घोड़ों आदि में (**रुचः**) प्रीतियों के समान प्रीति है, (**ताभिः**) उन (**सर्वाभिः**) सब रुचियों से (**नः**) हमारे बीच (**रुचम्**) कामना को (**इन्द्राग्नी**) बिजुली और सूर्य्यवत् अध्यापक और उपदेशक जैसे धारण करे, वैसे (**धत्त**) धारण करो। हे (**बृहस्पते**) पक्षपात छोड़ के परीक्षा करानेहारे पूर्णविद्या युक्त आप (**नः**) हमारी परीक्षा कीजिये॥२३॥

भावार्थः-जब तक मनुष्य लोगों की विद्वानों के संग ईश्वर उस की रचना में रुचि और परीक्षा नहीं होती, तब तक विज्ञान कभी नहीं बढ़ सकता॥२३॥

विराड्ज्योतिरित्यस्येन्द्राग्नी ऋषी। प्रजापतिर्देवता। निचृद्धृतिश्छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

दम्पती अन्योऽन्यं कथं वर्तेयातामित्याह॥

स्त्री-पुरुष आपस में कैसी वर्त्तें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

विराड् ज्योतिरधारयत् स्वराड् ज्योतिरधारयत्।
प्रजापतिष्ट्वा सादयतु पृष्ठे पृथिव्या ज्योतिष्मतीम्।
विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छ।
अग्निष्टेऽधिपतिस्तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद॥२४॥

विराडिति विऽराट्। ज्योतिः। अधारयत्। स्वराडिति स्वऽराट्। ज्योतिः। अधारयत्। प्रजापतिरिति प्रजाऽपतिः। त्वा। सादयतु। पृष्ठे। पृथिव्याः। ज्योतिष्मतीम्। विश्वस्मै। प्राणाय। अपानायेत्यपऽआनाय। व्यानायेति विऽआनाय। विश्वम्। ज्योतिः। यच्छ। अग्निः। ते। अधिपतिरित्यधिऽपतिः। तया। देवतया। अङ्गिरस्वत्। ध्रुवा। सीद॥२४॥

पदार्थः-(**विराट्**) या विविधासु राजते (**ज्योतिः**) विद्याप्रकाशम् (**अधारयत्**) धारयेत् (**स्वराट्**) सर्वेषु धर्माचरणेषु स्वयं राजते (**ज्योतिः**) विद्युदादिप्रकाशम् (**अधारयत्**) (**प्रजापतिः**) प्रजायाः पालकः (**त्वा**) त्वाम् (**सादयतु**) संस्थापयतु (**पृष्ठे**) तले (**पृथिव्याः**) भूमेः (**ज्योतिष्मतीम्**) प्रशस्तं ज्योतिर्विद्याविज्ञानं विद्यते यस्यास्ताम् (**विश्वस्मै**) अखिलाय (**प्राणाय**) प्राणिति सुखं येन तस्मै (**अपानाय**) अपानिति दुःखं येन तस्मै (**व्यानाय**) व्यानिति

सर्वान् शुभगुणकर्मस्वभावान् येन तस्मै **(विश्वम्)** समग्रम् **(ज्योतिः)** विज्ञानम् **(यच्छ)** गृहाण **(अग्निः)** विज्ञानवान् **(ते)** तव **(अधिपतिः)** स्वामी **(तया)** **(देवतया)** दिव्यया **(अङ्गिरस्वत्)** सूत्रात्मवत् **(ध्रुवा)** निष्कम्पा **(सीद)** स्थिरा भव। [अयं मन्त्रः शत०७.४.२.२३ व्याख्यातः]॥२४॥

अन्वयः-या विराट् स्त्री ज्योतिरधारयत्, यः स्वराट् पुरुषो ज्योतिरधारयत्, सा स चाऽखिलं सुखं प्राप्नुयात्। हे स्त्रि! योऽग्निस्तेऽधिपतिरस्ति, तया देवतया सह त्वमङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद। हे पुरुष! याऽग्निस्तवाऽधिपत्न्यस्ति, तया देवतया सह त्वमङ्गिरस्वद् ध्रुवः सीद। हे स्त्रि! यः प्रजापतिः पृथिव्याः पृष्ठे विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानाय ज्योतिष्मतीं विद्युतमिव त्वा सादयतु, सा त्वं विश्वं ज्योतिर्यच्छैतस्मा एनं पतिं त्वं सादय॥२४॥

भावार्थः-ये स्त्रीपुरुषाः सत्संगविद्याभ्यासाभ्यां विद्युदादिपदार्थविद्यां वर्द्धयन्ते त इह सुखिनो भवन्ति। पतिः स्त्रियं सदा सत्कुर्यात्, स्त्री पतिञ्च कुर्य्यात्। एवं परस्परं प्रीत्या सहैव सुखं भुञ्जाताम्॥२४॥

पदार्थः-जो **(विराट्)** अनेक प्रकार की विद्याओं में प्रकाशमान स्त्री **(ज्योतिः)** विद्या की उन्नति को **(अधारयत्)** धारण करे-करावे, जो **(स्वराट्)** सब धर्म्मयुक्त व्यवहारों में शुद्धाचारी पुरुष **(ज्योतिः)** बिजुली आदि के प्रकाश को **(अधारयत्)** धारण करे-करावे, वे दोनों स्त्री-पुरुष सम्पूर्ण सुखों को प्राप्त होवें। हे स्त्रि! जो **(अग्निः)** अग्नि के समान तेजस्वी विज्ञानयुक्त **(ते)** तेरा **(अधिपतिः)** स्वामी है, **(तया)** उस **(देवतया)** सुन्दर देवस्वरुप पति के साथ तू **(अङ्गिरस्वत्)** सूत्रात्मा वायु के समान **(ध्रुवा)** दृढ़ता से **(सीद)** स्थिर हो। हे पुरुष! जो अग्नि के समान तेजधारिणी तेरी रक्षा को करनेहारी स्त्री है, उस देवी के साथ तू प्राणों के समान प्रीतिपूर्वक निश्चय करके स्थित हो। हे स्त्रि! **(प्रजापतिः)** प्रजा का रक्षक तेरा पति **(पृथिव्याः)** भूमि के **(पृष्ठे)** ऊपर **(विश्वस्मै)** सब **(प्राणाय)** सुख की चेष्टा के हेतु **(अपानाय)** दुःख हटाने के साधन **(व्यानाय)** सब सुन्दर गुण, कर्म्म और स्वभावों के प्रचार के हेतु प्राणविद्या के लिये जिस **(ज्योतिष्मतीम्)** प्रशंसित विद्या के ज्ञान से युक्त **(त्वा)** तुझ को **(सादयतु)** उत्तम अधिकार पर स्थापित करे, सो तू **(विश्वम्)** समग्र **(ज्योतिः)** विज्ञान को **(यच्छ)** ग्रहण कर और इस विज्ञान की प्राप्ति के लिये अपने पति को स्थिर कर॥२४॥

भावार्थः-जो स्त्री-पुरुष सत्संग और विद्या के अभ्यास से विद्युत् आदि पदार्थविद्या और प्रीति को नित्य बढ़ाते हैं, वे इस संसार में सुख भोगते हैं। पति स्त्री का और स्त्री पति का सदा सत्कार करे, इस प्रकार आपस में प्रीतिपूर्वक मिल के ही सुख भोगें॥२४॥

मधुश्चेत्यस्येन्द्राग्नी ऋषी। ऋतवो देवताः। पूर्वस्य भुरिगतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥ ये अग्नय इत्युत्तरस्य भुरिग्ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

अथ वसन्तर्त्तुवर्णनमाह॥

अब अगले मन्त्र में वसन्त ऋतु का वर्णन किया है॥

मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतूऽ अग्नेरन्तः श्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामापऽ ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः। येऽ अग्नयः समनसोऽन्तरा

द्यावापृथिवीऽ इमे। वासन्तिकावृतूऽ अभिकल्पमानाऽ इन्द्रमिव देवाऽ अभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम्॥ २५॥

मधुः। च। माधवः। च। वासन्तिकौ। ऋतूऽइत्यृतू। अग्नेः। अन्तःश्लेष इत्यन्तःऽश्लेषः। असि। कल्पेताम्। द्यावापृथिवीऽइति द्यावापृथिवी। कल्पन्ताम्। आपः। ओषधयः। कल्पन्ताम्। अग्नयः। पृथक्। मम। ज्यैष्ठ्याय। सव्रता इति सऽव्रताः। ये। अग्नयः। समनस इति सऽमनसः। अन्तरा। द्यावापृथिवीऽइति द्यावापृथिवी। इमेऽइतीमे। वासन्तिकौ। ऋतूऽइत्यृतू। अभिकल्पमाना इत्यभिऽकल्पमानाः। इन्द्रमिवेतीन्द्रम्ऽइव। देवाः। अभिसंविशन्त्वित्यभिऽसंविशन्तु। तया। देवतया। अङ्गिरस्वत्। ध्रुवेऽइति ध्रुवे। सीदतम्॥ २५॥

पदार्थः-(मधुः) मधुरसुगन्धयुक्तश्चैत्रः **(च)** **(माधवः)** मधुरादिफलनिमित्तो वैशाखः **(च)** **(वासन्तिकौ)** वसन्ते भवौ **(ऋतू)** सर्वान् प्रापकौ **(अग्नेः)** उष्णत्वनिमित्तस्य **(अन्तःश्लेषः)** आभ्यन्तरे सम्बन्धः **(असि)** भवति। अत्र व्यत्ययः। **(कल्पेताम्)** समर्थयतः **(द्यावापृथिवी)** सूर्यभूमी **(कल्पन्ताम्)** समर्थयन्तु **(आपः)** जलानि **(ओषधयः)** यवादयः सोमादयश्च **(कल्पन्ताम्)** **(अग्नयः)** पावकाः **(पृथक्)** **(मम)** **(ज्यैष्ठ्याय)** ज्येष्ठे मासि भवाय व्यवहाराय मम वृद्धत्वाय वा **(सव्रताः)** व्रतैः सत्यैर्व्यवहारैः सह वर्त्तमानाः **(ये)** **(अग्नयः)** पावक इव कालविदो विद्वांसः **(समनसः)** समानविज्ञानाः **(अन्तरा)** मध्ये **(द्यावापृथिवी)** प्रकाशान्तरिक्षे **(इमे)** प्रत्यक्षे **(वासन्तिकौ)** **(ऋतू)** **(अभिकल्पमानाः)** आभिमुख्येन समर्थयन्तः **(इन्द्रमिव)** यथा परमैश्वर्य्यम् **(देवाः)** **(अभिसंविशन्तु)** **(तया)** **(देवतया)** परमपूज्यया परमेश्वराख्यया **(अङ्गिरस्वत्)** प्राणवत् **(ध्रुवे)** निश्चिते दृढे **(सीदतम्)** भवेताम्। अत्र पुरुषव्यत्ययः। [अयं मन्त्रः शत०७.४.२.२९ व्याख्यातः]॥ २५॥

अन्वयः-यथा मम ज्यैष्ठ्याय यावग्नेरुत्पद्यमानौ ययोरन्तःश्लेषोऽसि भवति, तौ मधुश्च माधवश्च वासन्तिकौ सुखायर्तू कल्पेताम्, याभ्यां द्यावापृथिवी चापः कल्पन्ताम्, पृथगोषधयः कल्पन्तामग्नयश्च। हे सव्रताः समनसो देवाः! वासन्तिकावृतू येऽत्रान्तराग्नयश्च सन्ति, तांश्चाभिकल्पमानाः सन्तो भवन्त इन्द्रमिवाभिसंविशन्तु। यथेमे द्यावापृथिवी तया देवतया सहाङ्गिरस्वद् ध्रुवे वर्त्तेते, तया युवां स्त्रीपुरुषौ निश्चलौ सीदतम्॥ २५॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यूयं यस्मिन् वसन्तर्तौ श्लेष्मोत्पद्यते, यस्मिन् तीव्रप्रकाशः पृथिवी शुष्का आपो मध्यस्था ओषधयो नूतनपुष्पपत्रान्विता अग्निज्वाला इव भवन्ति, तं युक्त्या सेवित्वा पुरुषार्थेन सर्वाणि सुखान्याप्नुत। यथा विद्वांसः परमप्रयत्नेनान्वृतुसुखायैश्वर्य्यमुन्नयन्ति, तथैव प्रयतध्वम्॥ २५॥

पदार्थः-जैसे **(मम)** मेरे **(ज्यैष्ठ्याय)** ज्येष्ठ महीने में हुए व्यवहार वा मेरी श्रेष्ठता के लिये जो **(अग्नेः)** गरमी के निमित्त अग्नि से उत्पन्न होने वाले जिन के **(अन्तःश्लेषः)** भीतर बहुत प्रकार के वायु का सम्बन्ध **(असि)** होता है, वे **(मधु)** मधुर सुगन्धयुक्त चैत्र **(च)** और **(माधवः)** मधुर आदि गुण का निमित्त वैशाख **(च)** इन के सम्बन्धी पदार्थयुक्त **(वासन्तिकौ)** वसन्त महीनों में हुए **(ऋतू)** सब को सुखप्राप्ति के साधन ऋतु सुख के लिये **(कल्पेताम्)** समर्थ होवें, जिन चैत्र और वैशाख महीनों के आश्रय से **(द्यावापृथिवी)** सूर्य और भूमि **(आपः)** जल भी भोग में **(कल्पन्ताम्)** आनन्ददायक हों, **(पृथक्)** भिन्न-भिन्न **(ओषधयः)** जौ आदि वा सोमलता आदि ओषधि और **(अग्नयः)** बिजुली आदि अग्नि भी **(कल्पन्ताम्)** कार्य्यसाधक हों। हे **(सव्रताः)** निरन्तर वर्त्तमान सत्यभाषणादि व्रतों से युक्त **(समनसः)** समान विज्ञान वाले **(देवाः)** विद्वान् **(ये)** जो लोग **(वासन्तिकौ)** **(ऋतू)**

वसन्त ऋतु में हुए चैत्र वैशाख और **(ये)** जो **(अन्तरा)** बीच में हुए **(अग्नयः)** अग्नि हैं, उनको **(अभिकल्पनाः)** सन्मुख होकर कार्य में युक्त करते हुए आप लोग **(इन्द्रमिव)** जैसे उत्तम ऐश्वर्य्य प्राप्त हों, वैसे **(अभिसंविशन्तु)** सब ओर से प्रवेश करो, जैसे **(इमे)** ये **(द्यावापृथिवी)** प्रकाश और भूमि **(तया)** उस **(देवतया)** परमपूज्य परमेश्वर रूप देवता के सामर्थ्य के साथ **(अङ्गिरस्वत्)** प्राण के समान **(ध्रुवे)** दृढ़ता से वर्त्तते हैं, वैसे तुम दोनों स्त्री-पुरुष सदा संयुक्त **(सीदतम्)** स्थिर रहो॥ २५॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! तुम को चाहिये कि जिस वसन्त ऋतु में फल-फूल उत्पन्न होता है और जिसमें तीव्र प्रकाश, रूखी पृथिवी, जल मध्यम, ओषधियां, फल और फूलों से युक्त और अग्नि की ज्वाला के समान होती हैं, उसको युक्तिपूर्वक सेवन कर पुरुषार्थ से सब सुखों को प्राप्त होओ, जैसे विद्वान् लोग अत्यन्त प्रयत्न के साथ सब ऋतुओं में सुख के लिये सम्पत्ति को बढ़ाते हैं, वैसा तुम भी प्रयत्न करो॥ २५॥

अषाढासीत्यस्य सविता ऋषिः। क्षत्रपतिर्देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनः सा कीदृशी भवेदित्याह॥

फिर वह कैसी हो, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अषा॑ढासि॒ सह॑माना॒ सह॒स्वारा॑ती॒: सह॑स्व पृतनाय॒तः।

स॒हस्र॑वीर्य्यासि॒ सा मा॑ जिन्व॥ २६॥

अषा॑ढा। अ॒सि॒। सह॑माना। सह॑स्व। अरा॑तीः। सह॑स्व। पृ॒त॒ना॒य॒त इति॑ पृतनाऽय॒तः। स॒हस्र॑वी॒र्य्येति॑ स॒हस्र॑ऽवीर्य्या। अ॒सि॒। सा। मा॒। जि॒न्व॒॥ २६॥

पदार्थः-**(अषाढा)** शत्रुभिरसह्यमाना **(असि)** **(सहमाना)** पत्यादीन् सोढुमर्हा **(सहस्व)** **(अरातीः)** शत्रून् **(सहस्व)** **(पृतनायतः)** आत्मनः पृतनां सेनामिच्छतः **(सहस्रवीर्य्या)** असंख्यातपराक्रमा **(असि)** **(सा)** **(मा)** माम् **(जिन्व)** प्रीणीहि। [अयं मन्त्रः शत०७.४.२.३९ व्याख्यातः]॥ २६॥

अन्वयः-हे पत्नि! या त्वमषाढासि सा त्वं सहमाना सती पतिं मां सहस्व। या त्वं सहस्रवीर्य्याऽसि सा त्वं पृतनायतोऽरातीः सहस्व, यथाहं त्वां प्रीणामि पतिं तथा मा च जिन्व॥ २६॥

भावार्थः-या कृतदीर्घब्रह्मचर्य्यबलिष्ठा जितेन्द्रिया वसन्ताद्यृतुकृत्यविलक्षणा पत्यपराधक्षमाकारिणी शत्रुनिवारिकोत्तमपराक्रमा स्त्री नित्यं स्वस्वामिनं प्रीणाति, तां पतिरपि नित्यमानन्दयेत्॥ २६॥

पदार्थः-हे पत्नी! जो तू **(अषाढा)** शत्रु के असहने योग्य **(असि)** है, तू **(सहमाना)** पति आदि का सहन करती हुई अपने पति के उपदेश को **(सहस्व)** सहन कर, जो तू **(सहस्रवीर्य्या)** असंख्यात प्रकार के पराक्रमों से युक्त **(असि)** है, **(सा)** सो तू **(पृतनायतः)** अपने आप सेना से युद्ध की इच्छा करते हुए **(अरातीः)** शत्रुओं को **(सहस्व)** सहन कर और जैसे मैं तुझ को प्रसन्न रखता हूं, वैसे **(मा)** मुझ पति को **(जिन्व)** तृप्त किया कर॥ २६॥

भावार्थः-जो बहुत काल तक ब्रह्मचर्य्याश्रम से सेवन की हुई, अत्यन्त बलवान् जितेन्द्रिय वसन्त आदि ऋतुओं के पृथक्-पृथक् काम जानने, पति के अपराध को क्षमा और शत्रुओं का निवारण करने वाली, उत्तम पराक्रम से युक्त स्त्री अपने स्वामी पति को तृप्त करती है, उसी को पति भी नित्य आनन्दित करे॥ २६॥

मधुवाता इत्यस्य गोतम ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अथ वसन्तर्तोर्गुणान्तरानाह॥

आगे के मन्त्र में वसन्त ऋतु के अन्य गुणों का वर्णन किया है॥

मधु वाताऽ ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः।

माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः॥ २७॥

मधु। वाताः। ऋतायते। ऋतयत इत्यृतऽयते। मधु। क्षरन्ति। सिन्धवः। माध्वीः। नः। सन्तु। ओषधीः॥ २७॥

पदार्थः-(मधु) मधुरं यथा स्यात् तथा **(वाताः)** वायवः **(ऋतायते)** ऋतमुदकमिवाचरन्ति। अत्र वचनव्यत्ययेन बहुवचनस्थान एकवचनम्। **ऋतमित्युदकनामसु पठितम्॥** (निघं०१।१२) **न छन्दस्यपुत्रस्य** [अष्टा०७.४.३५] इतीत्वाभावः। **अन्येषामपि०** [अष्टा०६.३.१३७] इति दीर्घः **(मधु) (क्षरन्ति)** वर्षन्ति **(सिन्धवः)** नद्यः समुद्रा वा। **सिन्धव इति नदीनामसु पठितम्॥** (निघं०१।१३) **(माध्वीः)** माध्व्यो मधुरगुणयुक्ताः। अत्र **ऋत्व्यवास्त्व्य०** [अष्टा०६.४.१७५] इति मधुशब्दादणि यणादेशनिपातः **(नः)** अस्मभ्यम् **(सन्तु) (ओषधीः)** ओषधयः। [अयं मन्त्रः शत०७.५.१.४ व्याख्यातः]॥२७॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा वाता वसन्ते नो मधु ऋतायते सिन्धवो मधु क्षरन्ति ओषधीर्नो माध्वीः सन्तु, तथा वयमनुतिष्ठेम॥२७॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यदा वसन्त आगच्छति, तदा पुष्पादिसुगन्धयुक्ता वाय्वादयः पदार्था भवन्ति, तस्मिन् भ्रमणं पथ्यं वर्त्तत इति वेद्यम्॥२७॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे वसन्त ऋतु में **(नः)** हम लोगों के लिये **(वातः)** वायु **(मधु)** मधुरता के साथ **(ऋतायते)** जल के समान चलते हैं, **(सिन्धवः)** नदियां वा समुद्र **(मधु)** कोमलतापूर्वक **(क्षरन्ति)** वर्षते हैं और **(ओषधीः)** ओषधियां **(माध्वीः)** मधुर रस के गुणों से युक्त **(सन्तु)** होवें, वैसा प्रयत्न हम किया करें॥२७॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जब वसन्त ऋतु आता है, तब पुष्प आदि के सुगन्धों से युक्त वायु आदि पदार्थ होते हैं, उस ऋतु में घूमना-डोलना पथ्य होता है, ऐसा निश्चित जानना चाहिये॥२७॥

मधुनक्तमित्यस्य गोतम ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनः स एव विषय उपदिश्यते॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

मधु नक्तमुतोषसो मधुमत् पार्थिवꣳ रजः।

मधु द्यौरस्तु नः पिता॥ २८॥

मधु। नक्तम्। उत। उषसः। मधुमदिति मधुऽमत्। पार्थिवम्। रजः। मधु। द्यौः। अस्तु। नः। पिता॥ २८॥

पदार्थः-(मधु) (नक्तम्) रात्रिः **(उत)** अपि **(उषसः)** प्रातर्मुखानि दिनानि **(मधुमत्)** मधुरगुणयुक्तम् **(पार्थिवम्)** पृथिव्या विकारः **(रजः)** द्व्यणुकादिरेणुः **(मधु) (द्यौः)** प्रकाशः **(अस्तु) (नः)** अस्मभ्यम् **(पिता)** पालकः॥२८॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा वसन्ते नक्तं मधूताप्युषसो मधु पार्थिवं रजो मधुमद् द्यौर्मधु पिता नोऽस्तु, तथा यूयमप्येतं युक्त्या सेवध्वम्॥२८॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। प्राप्ते वसन्ते पक्षिणोऽपि मधुरं स्वनन्ति, हर्षिताः प्राणिनश्च जायन्ते॥२८॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे वसन्त ऋतु में **(नक्तम्)** रात्रि **(मधु)** कोमलता से युक्त **(उत)** और **(उषसः)** प्रातःकाल से लेकर दिन मधुर **(पार्थिवम्)** पृथिवी का **(रजः)** द्व्यणुक वा त्रसरेणु आदि **(मधुमत्)** मधुर गुणों से युक्त और **(द्यौः)** प्रकाश भी **(मधु)** मधुरतायुक्त **(पिता)** रक्षा करनेहारा **(नः)** हमारे लिये **(अस्तु)** होवे, वैसे युक्ति से उस वसन्त ऋतु का सेवन तुम भी किया करो॥२८॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जब वसन्त ऋतु आता है, तब पक्षी भी कोमल मधुर-मधुर शब्द बोलते और अन्य सब प्राणी आनन्दित होते हैं॥२८॥

मधुमानित्यस्य गोतम ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अथ वसन्ते जनैः किमाचरणीयमित्याह॥

अब वसन्त ऋतु में मनुष्यों को कैसा आचरण करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ२ऽ अस्तु सूर्य्यः।

माध्वीर्गावो भवन्तु नः॥२९॥

मधुमानिति मधुऽमान्। नः। वनस्पतिः। मधुमानिति मधुऽमान्। अस्तु। सूर्य्यः। माध्वीः। गावः। भवन्तु। नः॥२९॥

पदार्थः-**(मधुमान्)** प्रशस्ता मधवो गुणा विद्यन्ते यस्मिन् सः **(नः)** अस्मभ्यम् **(वनस्पतिः)** अश्वत्थादिः **(मधुमान्)** प्रशस्तो मधुः प्रतापो विद्यते यस्य सः **(अस्तु)** भवतु **(सूर्य्यः)** सविता **(माध्वीः)** मधुरा गुणा विद्यन्ते यासु ताः **(गावः)** धेनव इव किरणाः **(भवन्तु)** **(नः)** अस्मभ्यम्॥२९॥

अन्वयः-हे विद्वांसः! यया वसन्ते नो वनस्पतिर्मधुमान् सूर्य्यश्च मधुमानस्तु। नो गावो माध्वीर्भवन्तु तथोपदिशत॥२९॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यूयं वसन्तमृतुं प्राप्य यादृग् द्रव्यहोमेन वनस्पत्यादयो मधुरादिगुणाः स्युः, तादृशं यज्ञमाचरतेत्थं वासन्तिकं सुखं सर्वे यूयं प्राप्नुत॥२९॥

पदार्थः-हे विद्वान् लोगो! जैसे वसन्त ऋतु में **(नः)** हमारे लिये **(वनस्पतिः)** पीपल आदि वनस्पति **(मधुमान्)** प्रशंसित कोमल गुणों वाले और **(सूर्य्यः)** सूर्य्य भी **(मधुमान्)** प्रशंसित कोमलतायुक्त **(अस्तु)** होवे और **(नः)** हमारे लिये **(गावः)** गौओं के समान **(माध्वीः)** कोमल गुणों वाली किरणों **(भवन्तु)** हों, वैसा ही उपदेश करो॥२९॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! तुम लोग वसन्त ऋतु को प्राप्त होकर जिस प्रकार के पदार्थों के होम से वनस्पति

आदि कोमल गुणयुक्त हों, ऐसे यज्ञ का अनुष्ठान करो और इस प्रकार वसन्त ऋतु के सुख को सब जने तुम लोग प्राप्त होओ॥२९॥

अपामित्यस्य गोतम ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। आर्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अपां गर्म्भन्त्सीद मा त्वा सूर्य्योऽभिताप्सीन्माग्निर्वैश्वानरः।
अच्छिन्नपत्राः प्रजाऽ अनुवीक्षस्वानु त्वा दिव्या वृष्टिः सचताम्॥३०॥

अपाम्। गर्म्भन्। सीद। मा। त्वा। सूर्य्यः। अभि। ताप्सीत्। मा। अग्निः। वैश्वानरः। अच्छिन्नपत्रा इत्यच्छिन्नऽपत्राः। प्रजा इति प्रऽजाः। अनुवीक्षस्वेत्यनुऽवीक्षस्व। अनु। त्वा। दिव्या। वृष्टिः। सचताम्॥३०॥

पदार्थः-(**अपाम्**) जलानाम् (**गम्भन्**) गम्भनि धारके मेघे। अत्र गमधातोरौणादिको बाहुलकाद् भनिन् प्रत्ययः सप्तम्या लुक् च (**सीद**) आस्स्व (**मा**) (**त्वा**) त्वाम् (**सूर्य्यः**) मार्तण्डः (**अभि**) (**ताप्सीत्**) तपेत् (**मा**) (**अग्निः**) (**वैश्वानरः**) विश्वेषु नरेषु राजमानः (**अच्छिन्नपत्राः**) अच्छिन्नानि पत्राणि यासां ताः (**प्रजाः**) (**अनुवीक्षस्व**) आनुकूल्येन विशेषतः संप्रेक्षस्व (**अनु**) (**त्वा**) त्वाम् (**दिव्या**) शुद्धगुणसम्पन्ना (**वृष्टिः**) (**सचताम्**) समवैतु। [अयं मन्त्रः शत०७.५.२.८ व्याख्यातः]॥३०॥

अन्वयः-हे मनुष्य! त्वं वसन्तेऽपां गम्भन्निव सीद यतः सूर्य्यस्त्वा माऽभिताप्सीत्। वैश्वानरोऽग्निस्त्वा माभिताप्सीदच्छिन्नपत्राः प्रजा अनु त्वा दिव्या वृष्टिः सचताम्, तथा त्वमनुवीक्षस्व॥३०॥

भावार्थः-वसन्तग्रीष्मयोर्मध्ये मनुष्या जलाशयस्थं शीतलं स्थानं संसेवन्ताम्, येन तापाऽभितप्ता न स्युः, येन यज्ञेन पुष्कला वृष्टिः स्यात् प्रजानन्दश्च तं सेवध्वम्॥३०॥

पदार्थः-हे मनुष्य! तू वसन्त ऋतु में (**अपाम्**) जलों के (**गम्भन्**) आधारकर्त्ता मेघ में (**सीद**) स्थिर हो, जिससे (**सूर्य्यः**) सूर्य्य (**त्वा**) तुझ को (**मा**) न (**अभिताप्सीत्**) तपावे (**वैश्वानरः**) सब मनुष्यों में प्रकाशमान (**अग्निः**) अग्नि बिजुली (**त्वा**) तुझ को (**मा**) न (**अभिताप्सीत्**) तप्त करे (**अच्छिन्नपत्राः**) सुन्दर पूर्ण अवयवों वाली (**प्रजाः**) प्रजा (**अनु त्वा**) तेरे अनुकूल और (**दिव्या**) शुद्ध गुणों से युक्त (**वृष्टिः**) वर्षा (**सचताम्**) प्राप्त होवे, वैसे (**अनुवीक्षस्व**) अनुकूलता से विशेष करके विचार कर॥३०॥

भावार्थः-मनुष्य वसन्त और ग्रीष्म ऋतु के जलाशयस्थ शीतल स्थान का सेवन करें, जिससे गर्मी से दुःखित न हों और जिस यज्ञ से वर्षा भी ठीक-ठीक हो और प्रजा आनन्दित हो, उसका सेवन करो॥३०॥

त्रीन्त्समुद्रानित्यस्य गोतम ऋषिः। वरुणो देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ जनैस्तत्र सुखप्राप्तये किमाचरणीयमित्याह॥

अब मनुष्यों को उस वसन्त में सुखप्राप्ति के लिये क्या करना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

त्रीन्त्समुद्रान्त्समसृपत् स्वर्गानपां पतिर्वृषभऽ इष्टकानाम्।

पुरीषं वसानः सुकृतस्य लोके तत्र गच्छ यत्र पूर्वे परेताः॥ ३१॥

त्रीन्। समुद्रान्। सम्। असृपत्। स्वर्गानिति स्वःऽगान्। अपाम्। पतिः। वृषभः। इष्टकानाम्। पुरीषम्। वसानः। सुकृतस्येति सुऽकृतस्य। लोके। तत्र। गच्छ। यत्र। पूर्वे। परेता इति पराऽइताः॥ ३१॥

पदार्थः-(**त्रीन्**) अधोमध्योर्ध्वस्थान् (**समुद्रान्**) समुद्द्रवन्ति पदार्था येषु तान् भूतभविष्यद्वर्त्तमानान् समयान् (**सम्**) (**असृपत्**) सर्पति (**स्वर्गान्**) स्वः सुखं गच्छन्ति प्राप्नुवन्ति येभ्यस्तान् (**अपाम्**) प्राणानाम् (**पतिः**) रक्षकः (**वृषभः**) वर्षकः श्रेष्ठो वा (**इष्टकानाम्**) इज्यन्ते संगम्यन्ते कामा यैः पदार्थैस्तेषाम् (**पुरीषम्**) पूर्णसुखकरमुदकम् (**वसानः**) वासयन् (**सुकृतस्य**) सुष्ठु कृतो धर्मो येन तस्य (**लोके**) द्रष्टव्ये स्थाने (**तत्र**) (**गच्छ**) (**यत्र**) धर्म्ये मार्गे (**पूर्वे**) प्राक्तना जनाः (**परेताः**) सुखं प्राप्ताः॥ ३१॥

अन्वयः-हे विद्वंस्त्वं! यथाऽपांपतिर्वृषभः पुरीषं वसानः सन्निष्टकानां त्रीन् समुद्रांल्लोकान् स्वर्गान् समसृपत्। संसर्पति तथा सर्प। यत्र सुकृतस्य लोके मार्गे पूर्वे परेतास्तत्र त्वमपि गच्छ॥ ३१॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोमालङ्कारः। मनुष्यैर्धार्मिकाणां मार्गेण गच्छद्भिः शारीरिकवाचिकमानसानि त्रिविधानि सुखानि प्राप्तव्यानि। यत्र कामा अलं स्युस्तत्र प्रयतितव्यम्। यथा वसन्तादय ऋतवः क्रमेण वर्त्तित्वा स्वानि स्वानि लिङ्गान्यभिपद्यन्ते, तथर्त्वनुकूलान् व्यवहारान् कृत्वाऽऽनन्दयितव्यम्॥ ३१॥

पदार्थः-हे विद्वान् पुरुष! जैसे (**अपाम्**) प्राणों का (**पतिः**) रक्षक (**वृषभः**) वर्षा का हेतु (**पुरीषम्**) पूर्ण सुखकारक जल को (**वसानः**) धारणा करता हुआ सूर्य्य (**इष्टकानाम्**) कामनाओं की प्राप्ति के हेतु पदार्थों के आधाररूप (**त्रीन्**) ऊपर, नीचे और मध्य में रहने वाले तीन प्रकार के (**समुद्रान्**) सब पदार्थों के स्थान भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान (**स्वर्गान्**) सुख प्राप्त करानेहारे लोकों को (**समसृपत्**) प्राप्त होता है, वैसे आप भी प्राप्त हूजिये। (**यत्र**) जिस धर्मयुक्त वसन्त के मार्ग में (**सुकृतस्य**) सुन्दर धर्म करनेहारे पुरुष के (**लोके**) देखने योग्य स्थान वा मार्ग में (**पूर्वे**) प्राचीन लोग (**परेताः**) सुख को प्राप्त हुए (**तत्र**) उसी वसन्त के सेवनरूप मार्ग में आप भी (**गच्छ**) चलिये॥ ३१॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि धर्मात्माओं के मार्ग से चलते हुए शारीरिक, वाचिक और मानसिक तीनों प्रकार के सुखों को प्राप्त होवें और जिसमें कामना पूरी हो, वैसा प्रयत्न करें। जैसे वसन्त आदि ऋतु अपने क्रम से वर्त्तते हुए अपने-अपने चिह्न प्राप्त करते हैं, वैसे ऋतुओं के अनुकूल व्यवहार कर के आनन्द को प्राप्त होवें॥ ३१॥

मही द्यौरित्यस्य गोतम ऋषिः। द्यावापृथिव्यौ देवते। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

मातापितृभ्यां स्वसन्तानाः कथं शिक्ष्या इत्याह॥

माता पिता अपने सन्तानों को कैसी शिक्षा करें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

मही द्यौः पृथिवी च नऽ इमं यज्ञं मिमिक्षताम्।

पिपृतां नो भरीमभिः॥ ३२॥

मही। द्यौः। पृथिवी। च। नः। इमम्। यज्ञम्। मिमिक्षताम्। पिपृताम्। नः। भरीमभिरिति भरीमऽभिः॥ ३२॥

पदार्थः-(**मही**) महती (**द्यौः**) सूर्यः (**पृथिवी**) भूमिः (**च**) (**नः**) अस्माकम् (**इमम्**) (**यज्ञम्**) सङ्गन्तव्यं गृहाश्रमव्यवहारम् (**मिमिक्षताम्**) सेक्तुमिच्छेताम् (**पिपृताम्**) पालयतम् (**नः**) अस्मान् (**भरीमभिः**) धारणपोषणाद्यैः कर्मभिः॥३२॥

अन्वयः-हे मातापितरौ! यथा मही द्यौः पृथिवी च सर्वं सिञ्चतः पालयतस्तथा युवां न इमं यज्ञं मिमिक्षतां भरीमभिर्नः पिपृताम्॥३२॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा वसन्तर्त्तौ भूमिसूर्यौ सर्वेषां धारणं प्रकाशं पालनञ्च कुरुतस्तथा मातापितरः स्वसन्तानेभ्यो वसन्तादिष्वृतुष्वन्नं विद्यादानं सुशिक्षां च कृत्वा पूर्णान् विदुषः पुरुषार्थिनः संपादयेयुः॥३२॥

पदार्थः-हे माता-पिता! जैसे (**मही**) बड़ा (**द्यौः**) सूर्य्यलोक (**च**) और (**पृथिवी**) भूमि सब संसार को सींचते और पालन करते हैं, वैसे तुम दोनों (**नः**) हमारे (**इमम्**) इस (**यज्ञम्**) सेवने योग्य विद्याग्रहणरूप व्यवहार को (**मिमिक्षताम्**) सेचन अर्थात् पूर्ण होने की इच्छा करो और (**भरीमभिः**) धारण-पोषण आदि कर्मों से (**नः**) हमारा (**पिपृताम्**) पालन करो॥३२॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे वसन्त ऋतु में पृथिवी और सूर्य्य सब संसार का धारण, प्रकाश और पालन करते हैं, वैसे माता-पिता को चाहिये कि अपने सन्तानों के लिये वसन्तादि ऋतुओं में अन्न, विद्यादान और अच्छी शिक्षा करके पूर्ण विद्वान् पुरुषार्थी करें॥३२॥

विष्णोः कर्माणीत्यस्य गोतम ऋषिः। विष्णुर्देवता। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

विद्वद्वदितरैर्जनैराचरणीयमित्याह॥

विद्वानों के तुल्य अन्य मनुष्यों को आचरण करना चाहिये, इसी विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे।

इन्द्रस्य युज्यः सखा॥३३॥

विष्णोः। कर्माणि। पश्यत। यतः। व्रतानि। पस्पशे। इन्द्रस्य। युज्यः। सखा॥३३॥

पदार्थः-(**विष्णोः**) व्यापकेश्वरस्य (**कर्माणि**) जगत्सृष्टिपालनप्रलयकरणन्यायादीनि (**पश्यत**) संप्रेक्षध्वम् (**यतः**) (**व्रतानि**) नियतानि सत्यभाषणादीनि (**पस्पशे**) स्पृशति (**इन्द्रस्य**) परमैश्वर्यमिच्छुकस्य जीवस्य (**युज्यः**) उपयुक्तानन्दप्रदः (**सखा**) मित्र इव वर्त्तमानः। [अयं मन्त्रः शत०७.५.१.२५ व्याख्यातः]॥३३॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! य इन्द्रस्य जीवस्य युज्यः सखास्ति, यतोऽयं विष्णोः कर्माणि व्रतानि च पस्पशे, तस्मादेतस्यैतानि यूयमपि पश्यत॥३३॥

भावार्थः-यथा परमेश्वरस्य सुहृदुपासको धार्मिको विद्वानस्य गुणकर्मस्वभावक्रमानुसाराणि सृष्टिक्रमाणि कुर्याज्जानीयात्, तथैवेतरे मनुष्याः कुर्युर्जानीयुश्च॥३३॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो (**इन्द्रस्य**) परमैश्वर्य्य की इच्छा करनेहारे जीव का (**युज्यः**) उपासना करने योग्य

(सखा) मित्र के समान वर्त्तमान है, **(यतः)** जिसके प्रताप से यह जीव **(विष्णोः)** व्यापक ईश्वर के **(कर्माणि)** जगत् की रचना, पालन, प्रलय करने और न्याय आदि कर्मों और **(व्रतानि)** सत्यभाषणादि नियमों को **(पस्पशे)** स्पर्श करता है, इसलिये इस परमात्मा के इन कर्मों और व्रतों को तुम लोग भी **(पश्यत)** देखो, धारण करो॥३३॥

भावार्थः-जैसे परमेश्वर का मित्र, उपासक, धर्मात्मा, विद्वान् पुरुष परमात्मा के गुण, कर्म और स्वभावों के अनुसार सृष्टि के क्रमों के अनुकूल आचरण करे और जाने, वैसे ही अन्य मनुष्य करें और जानें॥३३॥

ध्रुवासीत्यस्य गोतम ऋषिः। जातवेदा देवताः। भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

विद्वद्वत् स्त्रीभिरप्युपदेष्टव्यमित्याह॥

विद्वान् पुरुषों के समान विदुषी स्त्रियां भी उपदेश करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

ध्रुवासि धरुणेतो जज्ञे प्रथममेभ्यो योनिभ्योऽ अधि जातवेदाः।

स गायत्र्या त्रिष्टुभाऽनुष्टुभा च देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन्॥ ३४॥

ध्रुवा। असि। धरुणा। इतः। जज्ञे। प्रथमम्। एभ्यः। योनिभ्य इति योनिऽभ्यः। अधि। जातवेदा इति जातवेदाः। सः। गायत्र्या। त्रिष्टुभा। त्रिस्तुभेति त्रिऽस्तुभा। अनुष्टुभा। अनुस्तुभेत्यनुऽस्तुभा। च। देवेभ्यः। हव्यम्। वहतु। प्रजानन्निति प्रऽजानन्॥ ३४॥

पदार्थः-**(ध्रुवा)** स्थिरा **(असि)** **(धरुणा)** धर्त्री **(इतः)** कर्मणः **(जज्ञे)** प्रादुर्भवति **(प्रथमम्)** आदिमं कार्यम् **(एभ्यः)** **(योनिभ्यः)** कारणेभ्यः **(अधि)** **(जातवेदाः)** यो जातेषु विद्यते सः **(सः)** **(गायत्र्या)** गायत्रीनिष्पादितया विद्यया **(त्रिष्टुभा)** **(अनुष्टुभा)** **(च)** **(देवेभ्यः)** दिव्यगुणेभ्यो विद्वद्भ्यो वा **(हव्यम्)** होतुमादातुमर्हं विज्ञानम् **(वहतु)** प्राप्नोतु **(प्रजानन्)** प्रकृष्टतया जानन्। [अयं मन्त्रः शत०७.५.१.३० व्याख्यातः]॥३४॥

अन्वयः-हे स्त्रि! यथा त्वं धरुणा ध्रुवासि, यथैभ्यो योनिभ्यः स जातवेदाः प्रथममधिजज्ञे तथेतोऽधिजायस्व। यथा स तव पतिर्गायत्र्या त्रिष्टुभानुष्टुभा च प्रजानन् देवेभ्यो हव्यं वहतु, तथैतया प्रजानन्ती ब्रह्मचारिणी कन्या भवन्तीभ्यः स्त्रीभ्यो विज्ञानं प्राप्नोतु॥३४॥

भावार्थः-मनुष्या जगदीश्वरसृष्टिक्रमनिमित्तानि विदित्वा विद्वांसो भूत्वा यथा पुरुषेभ्यः शास्त्रोपदेशान् कुर्वन्ति, तथैव स्त्रियोऽप्येतानि विदित्वा स्त्रीभ्यो वेदार्थनिष्कर्षोपदेशान् कुर्वन्तु॥३४॥

पदार्थः-हे स्त्रि! जैसे तू **(धरुणा)** शुभगुणों का धारण करनेहारी **(ध्रुवा)** स्थिर **(असि)** है, जैसे **(एभ्यः)** इन **(योनिभ्यः)** कारणों से **(सः)** वह **(जातवेदाः)** प्रसिद्ध पदार्थों में विद्यमान वायु **(प्रथमम्)** पहिले **(अधिजज्ञे)** अधिकता से प्रकट होता है, वैसे **(इतः)** इस कर्म के अनुष्ठान से सर्वोपरि प्रसिद्ध हूजिये। जैसे तेरा पति **(गायत्र्या)** गायत्री **(त्रिष्टुभा)** त्रिष्टुप् **(च)** और **(अनुष्टुभा)** अनुष्टुप् मन्त्र से सिद्ध हुई विद्या से **(प्रजानन्)** बुद्धिमान् होकर **(देवेभ्यः)** अच्छे गुणों वा विद्वानों से **(हव्यम्)** देने-लेने योग्य विज्ञान **(वहतु)** प्राप्त होवे, वैसे इस विद्या से बुद्धिमती हो के आप स्त्री लोगों से ब्रह्मचारिणी कन्या विज्ञान को प्राप्त होवें॥३४॥

भावार्थः-मनुष्य जगत् में ईश्वर की सृष्टि के कामों के निमित्तों को जान विद्वान् होकर जैसे पुरुषों को शास्त्रों का उपदेश करते हैं, वैसे ही स्त्रियों को भी चाहिये कि इन सृष्टिक्रम के निमित्तों को जान के स्त्रियों को

वेदार्थसारोपदेशों को करें॥३४॥

इषे राय इत्यस्य गोतम ऋषिः। जातवेदा देवताः। निचृद्बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

अथ जायापती उद्वाहं कृत्वा कथं वर्तेयातामित्याह॥

अब स्त्री-पुरुष विवाह करके कैसे वर्त्तें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

इ॒षे रा॒ये र॑मस्व॒ सह॑से द्यु॒म्नऽ ऊ॒र्जेऽ अप॑त्याय।

स॒म्राड॑सि स्व॒राड॑सि सारस्व॒तौ त्वोत्सौ॒ प्राव॑ताम्॥३५॥

इ॒षे। रा॒ये। र॒म॒स्व॒। सह॑से। द्यु॒म्ने। ऊ॒र्जे। अप॑त्याय। स॒म्राडिति॑ स॒म्ऽराट्। अ॒सि॒। स्व॒राडिति॑ स्व॒ऽराट्। अ॒सि॒। सा॒र॒स्व॒तौ। त्वा॒। उत्सौ॑। प्र। अ॒व॒ता॒म्॥३५॥

पदार्थः-(इषे) विज्ञानाय **(राये)** श्रिये **(रमस्व)** क्रीडस्व **(सहसे)** बलाय **(द्युम्ने)** यशसेऽन्नाय वा। **द्युम्नं द्योततेर्यशो वाऽन्नं वा।** (निरु०५।५) **(ऊर्जे)** पराक्रमाय **(अपत्याय)** सन्तानाय **(सम्राट्)** यः सम्यग् राजते सः **(असि)** **(स्वराट्)** या स्वयं राजते सा **(असि)** **(सारस्वतौ)** सरस्वत्यां वेदवाचि कुशलावुपदेशकोपदेष्ट्र्यौ **(त्वा)** त्वाम् **(उत्सौ)** कूपोदकमिवार्द्रीभूतौ **(प्र)** **(अवताम्)** रक्षणादिकं कुरुताम्। [अयं मन्त्रः शत०७.५.१.३१ व्याख्यातः]॥३५॥

अन्वयः-हे पुरुष! यस्त्वं सम्राडसि, हे स्त्रि या त्वं स्वराडसि, स त्वं चेषे राये सहसे द्युम्ने ऊर्जेऽपत्याय रमस्व। उत्साविव सारस्वतौ सन्तावेतानि प्रावतामिति त्वा त्वां पुरुषं स्त्रियं चोपदिशामि॥३५॥

भावार्थः-कृतविवाहौ स्त्रीपुरुषौ परस्परं प्रीत्या विद्वांसौ सन्तौ वसन्ते पुरुषार्थेन श्रीमन्तौ सद्गुणौ परस्परस्य रक्षां कुर्वन्तौ धर्मेणापत्यान्युत्पाद्यास्मिन् संसारे नित्यं क्रीडेताम्॥३५॥

पदार्थः-हे पुरुष! जो तू **(सम्राट्)** विद्यादि शुभगुणों से स्वयं प्रकाशमान **(असि)** है, हे स्त्रि! जो तू **(स्वराट्)** अपने आप विज्ञान सत्याचार से शोभायमान **(असि)** है, सो तुम दोनों **(इषे)** विज्ञान **(राये)** धन **(सहसे)** बल **(द्युम्ने)** यश और अन्न **(ऊर्जे)** पराक्रम और **(अपत्याय)** सन्तानों की प्राप्ति के लिये **(रमस्व)** यत्न करो तथा **(उत्सौ)** कूपोदक के समान कोमलता को प्राप्त होकर **(सारस्वतौ)** वेदवाणी के उपदेश में कुशल होके तुम दोनों स्त्री-पुरुष इन स्वशरीर और अन्नादि पदार्थों की **(प्रावताम्)** रक्षा आदि करो, यह **(त्वा)** तुम को उपदेश देता हूँ॥३५॥

भावार्थः-विवाह करके स्त्री-पुरुष दोनों आपस में प्रीति के साथ विद्वान् होकर पुरुषार्थ से धनवान् श्रेष्ठ गुणों से युक्त होके एक-दूसरे की रक्षा करते हुए धर्म्मानुकूलता से वर्त्त के सन्तानों को उत्पन्न कर इस संसार में नित्य क्रीड़ा करें॥३५॥

अग्ने युक्ष्वेत्यस्य भरद्वाज ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अथ शत्रुविजयः कथं कर्त्तव्य इत्याह॥

अब शत्रुओं को कैसे जीतना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अग्ने॑ यु॒क्ष्वा हि ये तवाश्वा॑सो देव सा॒धव॑ः।

अरं वहन्ति मन्यवे॥३६॥

अग्ने। युक्ष्व। हि। ये । तव। अश्वासः। देव। साधवः। अरम्। वहन्ति। मन्यवे॥३६॥

पदार्थः-(**अग्ने**) विद्वन् (**युक्ष्व**) अत्र **द्व्यचोऽतस्तिङः** [अष्टा०६.३.१३५] इति दीर्घः, विकरणस्य लुक् च। (**हि**) खलु (**ये**) (**तव**) (**अश्वासः**) सुशिक्षितास्तुरङ्गाः (**देव**) दिव्यविद्यायुक्त (**साधवः**) अभीष्टं साध्नुवन्तः (**अरम्**) अलम् (**वहन्ति**) रथादीनि यानानि प्रापयन्ति (**मन्यवे**) शत्रूणामुपरि क्रोधाय। [अयं मन्त्रः शत०७.५.१.३३ व्याख्यातः]॥३६॥

अन्वयः-हे देवाऽग्ने! ये तव साधवोऽश्वासो मन्यवेऽरं वहन्ति, तान् हि त्वं युक्ष्व॥३६॥

भावार्थः-राजमनुष्यैर्वसन्ते प्रथममश्वान् सुशिक्ष्य सारथींश्च रथेषु नियोज्य शत्रुविजयाय गन्तव्यम्॥३६॥

पदार्थः-हे (**देव**) श्रेष्ठविद्या वाले (**अग्ने**) तेजस्वी विद्वान्! (**ये**) जो (**तव**) आपके (**साधवः**) अभीष्ट साधने वाले (**अश्वासः**) शिक्षित घोड़े (**मन्यवे**) शत्रुओं के ऊपर क्रोध के लिये (**अरम्**) सामर्थ्य के साथ (**वहन्ति**) रथ आदि यानों को पहुंचाते हैं, उनको (**हि**) निश्चय कर के (**युक्ष्व**) संयुक्त कीजिये॥३६॥

भावार्थः-राजादि मनुष्यों को चाहिये कि वसन्त ऋतु में पहिले घोड़ों को शिक्षा दें और रथियों को रथों पर नियुक्त कर के शत्रुओं के जीतने के लिये यात्रा करें॥३६॥

युक्ष्वा हीत्यस्य विरूप ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अथ राजपुरुषकृत्यमाह॥

अब राजपुरुषों को क्या करना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

युक्ष्वा हि देवहूतमाँ२ऽ अश्वाँ२ऽ अग्ने रथीरिव।

नि होता पूर्व्यः सदः॥३७॥

युक्ष्व। हि। देवहूतमानिति देवऽहूतमान्। अश्वान्। अग्ने। रथीरिवेति रथीःऽइव। नि। होता। पूर्व्यः। सदः॥३७॥

पदार्थः-(**युक्ष्व**) अत्रापि [**द्व्यचोऽतस्तिङः** (अष्टा०६.३.१३५) इति] दीर्घः। (**हि**) किल (**देवहूतमान्**) देवैर्विद्वद्भिः स्पर्द्धितान् (**अश्वान्**) (**अग्ने**) (**रथीरिव**) यथा शत्रुभिः सह बहुरथादिसेनाङ्गवान् योद्धा युध्यति तथा (**नि**) नितराम् (**होता**) दाता (**पूर्व्यः**) पूर्वैर्विद्वद्भिः कृतशिक्षः (**सदः**) सीद। अत्र लुङ्यडभावः। [अयं मन्त्रः शत०७.५.१.३३ व्याख्यातः]॥३७॥

अन्वयः-हे अग्ने! पूर्व्यो होता त्वं देवहूतमानश्वान् रथीरिव युक्ष्व हि न्यायासने निषदः॥३७॥

भावार्थः-सेनापत्यादिराजपुरुषैर्महारथिवदश्वादीनि सेनाङ्गानि कार्य्येषु संयोजनीयानि, सभापत्यादयो न्यायासने स्थित्वा धर्म्यं न्यायमाचरन्तु॥३७॥

पदार्थः-हे (**अग्ने**) विद्वान् पुरुष! (**पूर्व्यः**) पूर्व विद्वानों से शिक्षा को प्राप्त (**होता**) दानशील आप (**देवहूतमान्**) विद्वानों से स्पर्द्धा वा शिक्षा किये (**अश्वान्**) घोड़ों को (**रथीरिव**) शत्रुओं के साथ बहुत रथादि सेना अंगयुक्त योद्धा के समान (**युक्ष्व**) युक्त कीजिये (**हि**) निश्चय कर के न्यायासन पर (**निषदः**) निरन्तर स्थित

हूजिये॥३७॥

भावार्थः-सेनापति आदि राजपुरुषों को चाहिये कि बड़े सेना के अङ्गयुक्त रथ वाले के समान घोड़े आदि सेना के अवयवों को कार्यों में संयुक्त करें और सभापति आदि को चाहिये कि न्यायासन पर बैठ कर धर्मयुक्त न्याय किया करें॥३७॥

सम्यक् स्रवन्तीत्यस्य विरूप ऋषिः। अग्निर्देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

मनुष्यैः किं भूत्वा वाग् धार्य्येत्याह॥

मनुष्यों को कैसे होके वाणी धारण करनी चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

सम्यक् स्रवन्ति सरितो न धेनाऽ अन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः।

घृतस्य धाराऽ अभिचाकशीमि हिरण्ययो वेतसो मध्येऽ अग्नेः॥३८॥

सम्यक्। स्रवन्ति। सरितः। न। धेनाः। अन्तः। हृदा। मनसा। पूयमानाः। घृतस्य। धाराः। अभि। चाकशीमि। हिरण्ययः। वेतसः। मध्ये। अग्नेः॥३८॥

पदार्थः-**(सम्यक्)** **(स्रवन्ति)** गच्छन्ति **(सरितः)** नद्यः। **सरित इति नदीनामसु पठितम्॥** (निघं०१।१६) **(न)** इव **(धेनाः)** वाचः। **धेना इति वाङ्नामसु पठितम्॥** (निघं०१।११) **(अन्तः)** आभ्यन्तरे **(हृदा)** हृदयेन **(मनसा)** विज्ञानवता चित्तेन **(पूयमानाः)** पवित्राः **(घृतस्य)** उदकस्य **(धाराः)** **(अभि)** आभिमुख्ये **(चाकशीमि)** भृशं प्राप्नोमि **(हिरण्ययः)** यशस्वी **(वेतसः)** वेगवत्यः। अत्र वीधातोर्बाहुलकादौणादिकस्तसिः प्रत्ययः **(मध्ये)** **(अग्नेः)** विद्युतः। [अयं मन्त्रः शत०७.५.२.११ व्याख्यातः]॥३८॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथाऽग्नेर्मध्ये हिरण्यय इव वर्त्तमानोऽहं या घृतस्य वेतसो धाराः सरितो नान्तर्हृदा मनसा पूयमाना धेनाः सम्यक् स्रवन्ति, ता अभिचाकशीमि, तथा यूयमप्येताः प्राप्नुत॥३८॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। मनुष्यैर्यथा समं विषमं चलन्त्यः शुद्धाः सत्यो नद्यः समुद्रं प्राप्यं स्थिरत्वं प्राप्नुवन्ति, तथैव विद्यासुशिक्षाधर्मैः पवित्रीभूता वाण्यो निश्चलाः प्राप्तव्याः प्रापयितव्याश्च॥३८॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे **(अग्नेः)** बिजुली के **(मध्ये)** बीच में वर्त्तमान **(हिरण्ययः)** तेजो भाग के समान तेजस्वी कीर्ति चाहने और विद्या की इच्छा रखने वाला मैं जो **(घृतस्य)** जल की **(वेतसः)** वेग वाली **(धाराः)** प्रवाहरूप **(सरितः)** नदियों के **(न)** समान **(अन्तः)** भीतर **(हृदा)** अन्तःकरण के **(मनसा)** विज्ञानरूप वाले चित्त से **(पूयमानाः)** पवित्र हुई **(धेना)** वाणी **(सम्यक्)** अच्छे प्रकार **(स्रवन्ति)** चलती हैं, उन को **(अभिचाकशीमि)** सन्मुख होकर सब के लिये शीघ्र प्रकाशित करता हूँ, वैसे तुम लोग भी इन वाणियों को प्राप्त होओ॥३८॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि जैसे अधिक वा कम चलती शुद्ध हुई नदियां समुद्र को प्राप्त होकर स्थिर होती हैं, वैसे ही विद्या, शिक्षा और धर्म से पवित्र हुई निश्चल वाणी को प्राप्त होकर अन्यों को प्राप्त करावें॥३८॥

ऋचे त्वेत्यस्य विरूप ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद्बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

विद्वद्भ्य इतरैरपि विज्ञानं प्राप्यमित्याह॥

विद्वानों से अन्य मनुष्यों को भी ज्ञान लेना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

ऋचे त्वा॑ रुचे त्वा॑ भासे त्वा ज्योति॑षे त्वा।

अभू॑दिदं विश्व॑स्य भुव॑नस्य वाजि॑नम॒ग्नेर्वैश्वान॒रस्य॑ च॥३९॥

ऋ॒चे। त्वा॒। रु॒चे। त्वा॒। भा॒से। त्वा॒। ज्योति॑षे। त्वा॒। अभू॑त्। इ॒दम्। विश्व॑स्य। भुव॑नस्य। वाजि॑नम्। अ॒ग्नेः। वै॒श्वा॒न॒रस्य॑। च॒॥३९॥

पदार्थ:-(**ऋचे**) स्तुतये (**त्वा**) त्वाम् (**रुचे**) प्रीतये (**त्वा**) (**भासे**) विज्ञानाय (**त्वा**) (**ज्योतिषे**) न्यायप्रकाशाय (**त्वा**) (**अभूत्**) भवेत् (**इदम्**) (**विश्वस्य**) समग्रस्य (**भुवनस्य**) सर्वाधिकारस्य जगत: (**वाजिनम्**) वाजिनां विज्ञानवतामिदमवयवभूतं विज्ञानम् (**अग्ने:**) विद्युदाख्यस्य (**वैश्वानरस्य**) अखिलेषु नरेषु राजमानस्य (**च**)। [अयं मन्त्र: शत०७.५.२.१२ व्याख्यात:]॥३९॥

अन्वय:-हे विद्वन्! यस्य तव विश्वस्य भुवनस्य वैश्वानरस्याग्नेश्च वाजिनमिदं विज्ञानमभूत् जातम्, तमृचे त्वा रुचे त्वा भासे त्वा ज्योतिषे त्वा वयमाश्रयेम॥३९॥

भावार्थ:-यस्य मनुष्यस्य सर्वेषां जगत्पदार्थानां यथार्थो बोध: स्यात्, तमेव सेवित्वा पदार्थविज्ञानं सर्वैर्मनुष्यै: प्राप्तव्यम्॥३९॥

पदार्थ:-हे विद्वान् पुरुष! जिस तुझ को (**विश्वस्य**) समस्त (**भुवनस्य**) संसार के सब पदार्थों (**च**) और (**वैश्वानरस्य**) सम्पूर्ण मनुष्यों में शोभायमान (**अग्ने:**) बिजुलीरूप (**वाजिनम्**) ज्ञानी लोगों का अवयवरूप (**इदम्**) यह विज्ञान (**अभूत्**) प्रसिद्ध हुआ है, उस (**ऋचे**) स्तुति के लिये (**त्वा**) तुझ को (**रुचे**) प्रीति के वास्ते (**त्वा**) तुझ को (**भासे**) विज्ञान की प्राप्ति के अर्थ (**त्वा**) तुझको और (**ज्योतिषे**) न्याय के प्रकाश के लिये भी (**त्वा**) तुझ को हम लोग आश्रय करते हैं॥३९॥

भावार्थ:-जिस मनुष्य को जगत् के पदार्थों का यथार्थ बोध होवे, उसी के सेवन से सब मनुष्य पदार्थविद्या को प्राप्त होवें॥३९॥

अग्निर्ज्योतिषेत्यस्य विरूप ऋषि:। अग्निर्देवता। निचृदुष्णिक् छन्द:। ऋषभ: स्वर:॥

पुन: स एव विषय उपदिश्यते॥

फिर भी उक्त विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अ॒ग्निर्ज्योति॑षा॒ ज्योति॑ष्मान् रु॒क्मो वर्च॑सा॒ वर्च॑स्वान्।

स॒ह॒स्र॒दाऽ अ॑सि स॒हस्रा॑य त्वा॥४०॥

अ॒ग्निः। ज्योति॑षा। ज्योति॑ष्मान्। रु॒क्मः। वर्च॑सा। वर्च॑स्वान्। स॒ह॒स्र॒दा इति॑ सहस्र॒ऽदाः। अ॒सि॒। स॒हस्रा॑य। त्वा॒॥४०॥

पदार्थ:-(**अग्नि:**) पावक: (**ज्योतिषा**) दीप्त्या (**ज्योतिष्मान्**) प्रशस्तप्रकाशयुक्त: (**रुक्म:**) सुवर्णमिव (**वर्चसा**) विद्यादीप्त्या (**वर्चस्वान्**) विद्याविज्ञानवान् (**सहस्रदा:**) सहस्रमसंख्यं सुखं ददातीति (**असि**) (**सहस्राय**) अतुलविज्ञानाय (**त्वा**) त्वाम्। [अयं मन्त्र: शत०७.५.२.१२ व्याख्यात:]॥४०॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यस्त्वं ज्योतिषा ज्योतिषमानग्निरिव वर्चसा वर्चस्वान् रुक्म इव सहस्रदा असि, तं त्वा सहस्राय वयं सत्कुर्याम॥४०॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैर्योऽग्निसूर्यवद् विद्यया प्रकाशमानो विद्वान् भवेत्, तस्मादधीत्य पुष्कला विद्याः स्वीकार्याः॥४०॥

पदार्थः-हे विद्वान् पुरुष! जो आप **(ज्योतिषा)** विद्या के प्रकाश से **(अग्निः)** अग्नि के तुल्य **(ज्योतिष्मान्)** प्रशंसित प्रकाशयुक्त **(वर्चसा)** अपने तेज से **(वर्चस्वान्)** ज्ञान देने वाले और **(रुक्मः)** जैसे सुवर्ण सुख देवे, वैसे **(सहस्रदाः)** असंख्य सुख के देने वाले **(असि)** हैं, उन **(त्वा)** आपका **(सहस्राय)** अतुल विज्ञान की प्राप्ति के लिये हम लोग सत्कार करें॥४०॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोमालङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि जो अग्नि और सूर्य्य के समान विद्या से प्रकाशमान विद्वान् पुरुष हों, उनसे विद्या पढ़ के पूर्ण विद्या के ग्राहक होवें॥४०॥

आदित्यं गर्भमित्यस्य विरूप ऋषिः। अग्निर्देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्ते किं कुर्य्युरित्याह॥

फिर वे विद्वान् स्त्री-पुरुष क्या करें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

आ॒दि॒त्यं गर्भं॒ पय॑सा॒ सम॑ङ्धि स॒हस्र॑स्य प्र॒ति॒मां वि॒श्वरू॑पम्।

परि॑वृ॒ङ्धि॒ हर॑सा॒ माभि म॑ꣳस्थाः श॒तायु॑षं कृणुहि ची॒यमा॑नः॥४१॥

आ॒दि॒त्यम्। गर्भ॑म्। पय॑सा। सम्। अ॒ङ्धि॒। स॒हस्र॑स्य। प्र॒ति॒मामिति॑ प्रति॒ऽमाम्। वि॒श्वरू॑प॒मिति॑ वि॒श्वऽरू॑पम्। परि॑। वृ॒ङ्धि॒। हर॑सा। मा। अ॒भि। म॒ꣳस्थाः॒। श॒तायु॑ष॒मिति॑ श॒तऽआ॑युषम्। कृ॒णु॒हि॒। ची॒यमा॑नः॥४१॥

पदार्थः-**(आदित्यम्)** सूर्यम् **(गर्भम्)** स्तुतिविषयम् **(पयसा)** जलेनेव **(सम्)** **(अङ्धि)** शोधय **(सहस्रस्य)** असंख्यपदार्थसमूहस्य **(प्रतिमाम्)** प्रतीयन्ते सर्वे पदार्था यया ताम् **(विश्वरूपम्)** सर्वरूपवत् पदार्थदर्शकम् **(परि)** सर्वतः **(वृङ्धि)** वर्जय **(हरसा)** ज्वलितेन तेजसा। **हर इति ज्वलतो नामसु पठितम्॥** (निघं०१।१७) **(मा)** **(अभि)** **(मंस्थाः)** मन्येथाः **(शतायुषम्)** शतवर्षपरिमितजीवनम् **(कृणुहि)** **(चीयमानः)** वृध्यमानः। [अयं मन्त्रः शत०७.५.२.१७ व्याख्यातः]॥४१॥

अन्वयः-हे विद्वंस्त्वं यथा विद्युत्पयसा सहस्रस्य प्रतिमां विश्वरूपं गर्भमादित्यं धरति, तथान्तःकरणं समङ्धि, हरसा रोगान् परिवृङ्धि, चीयमानः सन् शतायुषं तनयं कृणुहि, कदाचिन्माऽभिमंस्थाः॥४१॥

भावार्थः-हे स्त्रीपुरुषाः! यूयं सुगन्ध्यादिहोमेन सूर्यप्रकाशं जलं वायुञ्च शोधयित्वा अरोगा भूत्वा शतायुषस्तनयान् कुरुत। यथा विद्युन्निर्मितेन सूर्य्येण रूपवतां पदार्थानां दर्शनं परिमाणं च भवति, तथा विद्यावन्त्यपत्यानि भवन्ति, तस्मात् कदाचिदभिमानिनो भूत्वा प्रमादेन विद्याया आयुषश्च विनाशं मा कुरुत॥४१॥

पदार्थः-हे विद्वान् पुरुष! आप जैसे बिजुली **(पयसा)** जल से **(सहस्रस्य)** असंख्य पदार्थों की **(प्रतिमाम्)** परिमाण करनेहारे सूर्य के समान निश्चय करनेहारी बुद्धि और **(विश्वरूपम्)** सब रूपविषय को दिखानेहारे **(गर्भम्)** स्तुति के योग्य **(आदित्यम्)** सूर्य्य को धारण करती है, वैसे अन्तःकरण को **(समङ्धि)** अच्छे प्रकार शोधिये। **(हरसा)** प्रज्वलित तेज से रोगों को **(परि)** सब ओर से **(वृङ्धि)** हटाइये और **(चीयमानः)** वृद्धि को प्राप्त हो के

(शतायुषम्) सौ वर्ष की अवस्था वाले सन्तान को **(कृणुहि)** कीजिये और कभी **(मा)** मत **(अभिमंस्थाः)** अभिमान कीजिये॥४१॥

भावार्थः-हे स्त्री-पुरुषो! तुम लोग सुगन्धित पदार्थों के होम से सूर्य्य के प्रकाश, जल और वायु को शुद्ध कर और रोगरहित होकर सौ वर्ष जीने वाले संतानों को उत्पन्न करो। जैसे विद्युत् अग्नि से बनाये हुए सूर्य्य से रूप वाले पदार्थों का दर्शन और परिमाण होता है, वैसे विद्या वाले सन्तान सुख दिखानेहारे होते हैं, इससे कभी अभिमानी होके विषयासक्ति से विद्या और आयु का विनाश मत किया करो॥४१॥

वातस्य जूतिमित्यस्य विरूप ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तेन किं कार्य्यमित्याह॥

फिर विद्वान् पुरुष को क्या करना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

वातस्य जूतिं वरुणस्य नाभिमश्वं जज्ञानꣳ सरिरस्य मध्ये।

शिशुं नदीनाꣳ हरिमद्रिबुध्नमग्ने मा हिꣳसीः परमे व्योमन्॥४२॥

वातस्य। जूतिम्। वरुणस्य। नाभिम्। अश्वम्। जज्ञानम्। सरिरस्य। मध्ये। शिशुम्। नदीनाम्। हरिम्। अद्रिबुध्नमित्यद्रिबुध्नम्। अग्ने। मा। हिꣳसीः। परमे। व्योमन्निति विऽओमन्॥४२॥

पदार्थः-(वातस्य) वायोः **(जूतिम्)** वेगम् **(वरुणस्य)** जलसमूहस्य **(नाभिम्)** बन्धनम् **(अश्वम्)** व्याप्तुं शीलम् **(जज्ञानम्)** प्रादुर्भूतम् **(सरिरस्य)** सलिलस्योदकस्य। **सलिलमित्युदकनामसु पठितम्॥** (निघं०१।१२) कपिलकादित्वाद् रेफः **(मध्ये)** **(शिशुम्)** बालकम् **(नदीनाम्)** **(हरिम्)** हरमाणम् **(अद्रिबुध्नम्)** मेघाकाशम् **(अग्ने)** पावकवद्वर्त्तमान **(मा)** **(हिंसीः)** **(परमे)** प्रकृष्टे **(व्योमन्)** व्योम्नि व्याप्ते आकाशे। [अयं मन्त्रः शत०७.५.२.१८ व्याख्यातः]॥४२॥

अन्वयः-हे अग्ने विद्वस्त्वं परमे व्योमन् वातस्य मध्ये जूतिमश्वं सरिरस्य वरुणस्य नाभिं नदीनां जज्ञानं शिशुं बालमिव वर्त्तमानं हरिमद्रिबुध्नं मा हिंसीः॥४२॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैः प्रमादेनावकाशे वर्त्तमानं वायुवेगं वृष्टिप्रबन्धं मेघमहत्वा जीवनं वर्धनीयम्॥४२॥

पदार्थः-हे **(अग्ने)** तेजस्विन् विद्वन्! आप **(परमे व्योमन्)** सर्वव्याप्त उत्तम आकाश में **(वातस्य)** वायु के **(मध्ये)** मध्य में **(जूतिम्)** वेगरूप **(अश्वम्)** अश्व को **(सरिरस्य)** जलमय **(वरुणस्य)** उत्तम समुद्र के **(नाभिम्)** बन्धन को और **(नदीनाम्)** नदियों के प्रभाव से **(जज्ञानम्)** प्रकट हुए **(शिशुम्)** बालक के तुल्य वर्त्तमान **(हरिम्)** नील वर्णयुक्त **(अद्रिबुध्नम्)** सूक्ष्म मेघ को **(मा)** मत **(हिंसीः)** नष्ट कीजिये॥४२॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि प्रमाद को छोड़ के आकाश में वर्त्तमान वायु के वेग और वर्षा के प्रबन्धरूप मेघ का विनाश न करके अपनी-अपनी अवस्था को बढ़ावें॥४२॥

अजस्रमित्यस्य विरूप ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनरयं किं कुर्य्यादित्याह॥

फिर वह विद्वान् क्या करे, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अजस्रमिन्दुमरुषं भुरण्युमग्निमीडे पूर्वचित्तिं नमोभिः।

स पर्वभिर्ऋतुशः कल्पमानो गां मा हिंसीरदितिं विराजम्॥४३॥

अजस्रम्। इन्दुम्। अरुषम्। भुरण्युम्। अग्निम्। ईडे। पूर्वचित्तिमिति पूर्वऽचित्तिम्। नमोभिरिति नमःऽभिः। सः। पर्वभिरिति पर्वऽभिः। ऋतुश इत्यृतुऽशः। कल्पमानः। गाम्। मा। हिंसीः। अदितिम्। विराजमिति विऽराजम्॥४३॥

पदार्थः-(**अजस्रम्**) निरन्तरम् (**इन्दुम्**) जलम् [**इन्दु इति जलनामसु पठितम्** निघं०१.१२] (**अरुषम्**) अश्वम् [**अरुषमिति अश्वनामसु पठितम्** निघं०१.१४] (**भुरण्युम्**) पोषकम्। अत्र भुरणधातोर्युः प्रत्ययः (**अग्निम्**) विद्युतम् (**ईडे**) अध्यन्विच्छामि (**पूर्वचित्तिम्**) पूर्वा चितिश्चयनं यस्य तम् (**नमोभिः**) अन्नैः (**सः**) (**पर्वभिः**) पूर्णैः साधनाङ्गैः (**ऋतुशः**) बहूनृतून् (**कल्पमानः**) समर्थः सन् (**गाम्**) पृथिवीम् (**मा**) (**हिंसीः**) हिंस्याः (**अदितिम्**) अखण्डिताम् (**विराजम्**) विविधैः पदार्थैं राजमानाम्। [अयं मन्त्रः शत०७.५.२.१९ व्याख्यातः]॥४३॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यथाहं पर्वभिर्नमोभिः सह वर्त्तमानमिन्दुमरुषं भुरण्युं पूर्वचित्तिमग्निमजस्रमीडे, तमृतुशः कल्पमानः सन्नदितिं विराजं गां न नाशयामि, तथैव स त्वमेतमेनां च मा हिंसीः॥४३॥

भावार्थः-मनुष्यैर्ऋत्वनुकूलतया क्रिययाऽग्निर्जलमन्नं च संसेव्य राजभूमिः सदैव रक्षणीया, यतः सर्वाणि सुखानि स्युः॥४३॥

पदार्थः-हे विद्वान् पुरुष! जैसे मैं (**पर्वभिः**) पूर्ण साधनयुक्त (**नमोभिः**) अन्नों के साथ वर्त्तमान (**इन्दुम्**) जलरूप (**अरुषम्**) घोड़े के सदृश (**भुरण्युम्**) पोषण करने वाली (**पूर्वचित्तिम्**) प्रथम निर्मित (**अग्निम्**) बिजुली को (**अजस्रम्**) निरन्तर (**ईडे**) अधिकता से खोजता हूँ, उसको (**ऋतुशः**) प्रति ऋतु में (**कल्पमानः**) समर्थ होके करता हुआ (**अदितिम्**) अखण्डित (**विराजम्**) विविध प्रकार के पदार्थों से शोभायमान (**गाम्**) पृथिवी को नष्ट नहीं करता हूँ, वैसे ही (**सः**) सो आप इस अग्नि और इस पृथिवी को (**मा**) मत (**हिंसीः**) नष्ट कीजिये॥४३॥

भावार्थः-मनुष्यों को योग्य है कि ऋतुओं के अनुकूल क्रिया से अग्नि, जल और अन्न का सेवन करके राज्य और पृथिवी की सदैव रक्षा करें, जिससे सब सुख प्राप्त होवें॥४३॥

वरूत्रीमित्यस्य विरूप ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तेन किं न कार्य्यमित्याह॥

फिर उस विद्वान् को क्या नहीं करना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

वरूत्रीं त्वष्टुर्वरुणस्य नाभिमविं जज्ञानाꣳ रजसः परस्मात्।

महीꣳ साहस्रीमसुरस्य मायामग्ने मा हिंसीः परमे व्योमन्॥४४॥

वरूत्रीम्। त्वष्टुः। वरुणस्य। नाभिम्। अविम्। जज्ञानाम्। रजसः। परस्मात्। महीम्। साहस्रीम्। असुरस्य। मायाम्। अग्ने। मा। हिंसीः। परमे। व्योमन्निति विऽओमन्॥४४॥

पदार्थः-(**वरूत्रीम्**) वरयित्रीम् (**त्वष्टुः**) छेदकस्य सूर्य्यस्य (**वरुणस्य**) जलस्य (**नाभिम्**) बन्धिकाम्

(अविम्) रक्षणादिनिमित्ताम् **(जज्ञानाम्)** प्रजाताम् **(रजसः)** लोकात् **(परस्मात्)** श्रेष्ठात् **(महीम्)** महतीं भूमिम् **(साहस्त्रीम्)** असंख्यातां बहुफलप्रदाम् **(असुरस्य)** मेघस्य **(मायाम्)** प्रज्ञापिकां विद्युतम् **(अग्ने)** विद्वन् **(मा)** **(हिंसीः)** हिंस्याः **(परमे)** सर्वोत्कृष्टे **(व्योमन्)** आकाशवद् व्याप्ते ब्रह्मणि। [अयं मन्त्रः शत०७.५.२.२० व्याख्यातः]॥४४॥

अन्वयः-हे अग्ने! त्वं त्वष्टुर्वरूत्रीं वरुणस्य नाभिं परस्माद् रजसो जज्ञानामसुरस्य मायां साहस्त्रीमविं परमे व्योमन् वर्त्तमानां महीं मा हिंसीः॥४४॥

भावार्थः-सर्वैर्मनुष्यैर्येयं पृथिवी परस्मात् कारणाज्जाता, सूर्य्याकर्षणसम्बन्धिनी, जलाधारा, मेघनिमित्ता, बहुभूगोलाकारा, असंख्यसुखप्रदा परमेश्वरेण निर्मिताऽस्ति, तां गुणकर्मस्वभावतो विज्ञाय सुखाय समुपयोक्तव्या॥४४॥

पदार्थः-हे **(अग्ने)** विद्वान् पुरुष! आप **(त्वष्टुः)** छेदनकर्त्ता सूर्य्य के **(वरूत्रीम्)** ग्रहण करने योग्य **(वरुणस्य)** जल की **(नाभिम्)** रोकनेहारी **(परस्मात्)** श्रेष्ठ **(रजसः)** लोक से **(जज्ञानाम्)** उत्पन्न हुई **(असुरस्य)** मेघ की **(मायाम्)** जताने वाली बिजुली को और **(साहस्त्रीम्)** असंख्य भूगोलयुक्त बहुत फल देनेहारी **(अविम्)** रक्षा आदि का निमित्त **(परमे)** सब से उत्तम **(व्योमन्)** आकाश के समान व्याप्त जगदीश्वर में वर्त्तमान **(महीम्)** विस्तारयुक्त पृथिवी को **(मा)** मत **(हिंसीः)** नष्ट कीजिये॥४४॥

भावार्थः-सब मनुष्यों को चाहिये कि जो यह पृथिवी उत्तम कारण से उत्पन्न हुई, सूर्य्य जिसका आकर्षणकर्त्ता, जल का आधार, मेघ का निमित्त, असंख्य सुख देनेहारी परमेश्वर ने रची है; उसको गुण, कर्म और स्वभाव से जान के सुख के लिये उपयुक्त करें॥४४॥

यो अग्निरित्यस्य विरूप ऋषिः। अग्निर्देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनरनेन किं कार्यमित्याह॥

फिर इस विद्वान् को क्या करना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

योऽ अ॒ग्निर॒ग्नेरध्यजा॑यत॒ शोका॑त् पृथि॒व्याऽ उ॒त वा॑ दि॒वस्परि॑।

येन॑ प्र॒जा वि॒श्वक॑र्मा ज॒जान॒ तम॑ग्ने॒ हेड॒ः परि॑ ते वृणक्तु॒॥४५॥

यः। अ॒ग्निः। अ॒ग्नेः। अधि॑। अजा॑यत। शोका॑त्। पृ॒थि॒व्याः। उ॒त। वा॒। दि॒वः। परि॑। येन॑। प्र॒जा इति॑ प्र॒ऽजाः। वि॒श्वक॒र्मेति॑ वि॒श्वऽक॑र्मा। ज॒जान॑। तम्। अ॒ग्ने॒। हेड॑ः। परि॑। ते॒। वृ॒ण॒क्तु॒॥४५॥

पदार्थः-**(यः)** **(अग्निः)** चाक्षुषः **(अग्नेः)** विद्युदाख्यात् **(अधि)** **(अजायत)** जायते **(शोकात्)** शोषकात् **(पृथिव्याः)** **(उत)** **(वा)** **(दिवः)** सूर्यात् **(परि)** सर्वतः **(येन)** **(प्रजाः)** **(विश्वकर्मा)** विश्वानि कर्माणि यस्य सः **(जजान)** जनयति **(तम्)** **(अग्ने)** विद्वन् **(हेडः)** अनादरः **(परि)** **(ते)** तव **(वृणक्तु)** छिन्नो भवतु। [अयं मन्त्रः शत०७.५.२.२१ व्याख्यातः]॥४५॥

अन्वयः-हे अग्ने विद्वन्! यः पृथिव्याः शोकादुत वा दिवोऽग्नेरग्निरध्यजायत, येन विश्वकर्मा प्रजाः परिजजान, तं ते हेडः परिवृणक्तु॥४५॥

भावार्थः-हे विद्वांसः! यूयं योऽग्निः पृथिवीं भित्त्वोत्पद्यते यश्च सूर्यादेः, तस्माद् विघ्नकारिणोऽग्नेः सर्वान्

प्राणिन: पृथग् रक्षत। येनाग्निनेश्वर: सर्वान् रक्षति तद्विद्यां विजानीत॥४५॥

पदार्थ:-हे **(अग्ने)** विद्वान् जन! **(य:)** जो **(पृथिव्या:)** पृथिवी के **(शोकात्)** सुखानेहारे अग्नि **(उत) (वा)** अथवा **(दिव:)** सूर्य्य से **(अग्ने:)** बिजुलीरूप अग्नि से **(अग्नि:)** प्रत्यक्ष अग्नि **(अध्यजायत)** उत्पन्न होता है, **(येन)** जिस से **(विश्वकर्म्मा)** सब कर्मों का आधार ईश्वर **(प्रजा:)** प्रजाओं को **(परि)** सब ओर से **(जजान)** रचता है, **(तम्)** उस अग्नि को **(ते)** तेरा **(हेड:)** क्रोध **(परिवृणक्तु)** सब प्रकार से छेदन करे॥४५॥

भावार्थ:-हे विद्वानो! तुम लोग जो अग्नि पृथिवी को फोड़ के और जो सूर्य्य के प्रकाश से बिजुली निकलती है, उस विघ्नकारी अग्नि से सब प्राणियों को रक्षित रक्खो और जिस अग्नि से ईश्वर सब की रक्षा करता है, उस अग्नि की विद्या जानो॥४५॥

चित्रं देवानामित्यस्य विरूप ऋषि:। सूर्यो देवता। निचृत्त्रिष्टुप् छन्द:। धैवत: स्वर:॥

अथेश्वर: कीदृशोऽस्तीत्याह॥

अब ईश्वर कैसा है, यह यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

चि॒त्रं दे॒वाना॒मुद॑गा॒दनी॑कं॒ चक्षु॑र्मि॒त्रस्य॒ वरु॑णस्या॒ग्नेः।

आ प्रा॒ द्यावा॑पृथि॒वीऽ अ॒न्तरि॑क्ष॒ꣳ सूर्य्य॑ऽ आ॒त्मा जग॑तस्त॒स्थुष॑श्च॥४६॥

चि॒त्रम्। दे॒वाना॑म्। उत्। अ॒गा॒त्। अनी॑कम्। चक्षुः॑। मि॒त्रस्य॑। वरु॑णस्य। अ॒ग्नेः। आ। अ॒प्राः। द्यावा॑पृथि॒वीऽइति॒ द्यावा॑पृथि॒वी। अ॒न्तरि॑क्षम्। सूर्य्यः॑। आ॒त्मा। जग॑तः। त॒स्थुषः॑। च॒॥४६॥

पदार्थ:-**(चित्रम्)** अद्भुतम् **(देवानाम्)** पृथिव्यादीनां मध्ये **(उत्) (अगात्)** उदितोऽस्ति **(अनीकम्)** सेनेव किरणसमूहम् **(चक्षु:)** दर्शकम् **(मित्रस्य)** प्राणस्य **(वरुणस्य)** उदानस्य **(अग्ने:)** प्रसिद्धस्य **(आ) (अप्रा:)** व्याप्नोति **(द्यावापृथिवी)** प्रकाशाप्रकाशे जगती **(अन्तरिक्षम्)** आकाशम् **(सूर्य्य:)** सविता **(आत्मा)** सर्वस्यान्तर्यामी **(जगत:)** जङ्गमस्य **(तस्थुष:)** स्थावरस्य **(च)**। [अयं मन्त्र: शत०७.५.२.२७ व्याख्यात:]॥४६॥

अन्वय:-हे मनुष्या:! भवन्तो यद् ब्रह्म देवानां चित्रमनीकं मित्रस्य वरुणस्याग्नेश्चक्षु: सूर्य इवोदगात्, जगतस्तस्थुषश्चात्मा सद् द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं चाप्रा:, तज्जगन्निर्मातृ पातृ संहतृ व्यापकं सततमुपासीरन्॥४६॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। न खल्विदं निष्कर्तृकमनधिष्ठातृकमनीश्वरं जगदस्ति। यद् ब्रह्म सर्वान्तर्य्यामि सर्वेषां जीवानां पापपुण्यफलदानव्यवस्थापकमनन्तज्ञानप्रकाशं वर्त्तते, तदेवोपास्य धर्मार्थकाममोक्षफलानि मनुष्यैराप्तव्यानि॥४६॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! आप लोग जो जगदीश्वर **(देवानाम्)** पृथिवी आदि दिव्य पदार्थों के बीच **(चित्रम्)** आश्चर्य्यरूप **(अनीकम्)** सेना के समान किरणों से युक्त **(मित्रस्य)** प्राण **(वरुणस्य)** उदान और **(अग्ने:)** प्रसिद्ध अग्नि के **(चक्षु:)** दिखाने वाले **(सूर्य्य:)** सूर्य्य के समान **(उदगात्)** उदय को प्राप्त हो रहा है, उस के समान **(जगत:)** चेतन **(च)** और **(तस्थुष:)** जड़ जगत् का **(आत्मा)** अन्तर्य्यामी हो के **(द्यावापृथिवी)** प्रकाश-अप्रकाशरूप जगत् और **(अन्तरिक्षम्)** आकाश को **(आ)** अच्छे प्रकार **(अप्रा:)** व्याप्त हो रहा है, उसी जगत् के रचने, पालन करने और संहार-प्रलय करनेहारे व्यापक ब्रह्म की निरन्तर उपासना किया करो॥४६॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। यह जगत् ऐसा नहीं कि जिसका कर्त्ता, अधिष्ठाता वा ईश्वर कोई न होवे। जो ईश्वर सब का अन्तर्य्यामी, सब जीवों के पाप-पुण्यों के फलों की व्यवस्था करने हारा और अनन्त ज्ञान का प्रकाश करने हारा है, उसी की उपासना से धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्ष के फलों को सब मनुष्य प्राप्त होवें॥४६॥

इमं मेत्यस्य विरूप ऋषिः। अग्निर्देवता। विराड् ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनर्मनुष्येण किं कार्य्यमित्याह॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

इमं मा हिꣳसीर्द्विपादं पशुꣳ सहस्राक्षो मेधाय चीयमानः।
मयुं पशुं मेधमग्ने जुषस्व तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद।
मयुं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु॥४७॥

इमम्। मा। हिꣳसीः। द्विपादमिति द्विऽपादम्। पशुम्। सहस्राक्ष इति सहस्रऽअक्षः। मेधाय। चीयमानः। मयुम्। पशुम्। मेधम्। अग्ने। जुषस्व। तेन। चिन्वानः। तन्वः। नि। सीद। मयुम्। ते। शुक्। ऋच्छतु। यम्। द्विष्मः। तम्। ते। शुक्। ऋच्छतु॥४७॥

पदार्थः-**(इमम्)** **(मा)** **(हिंसीः)** हिंस्याः **(द्विपादम्)** मनुष्यादिकम् **(पशुम्)** चतुष्पादं गवादिकम् **(सहस्राक्षः)** असंख्यदर्शनः **(मेधाय)** सुखसंगमाय **(चीयमानः)** वर्धमानः **(मयुम्)** जाङ्गलम् **(पशुम्)** प्रसिद्धम् **(मेधम्)** पवित्रकारकम् **(अग्ने)** पावक इव मनुष्यजन्मप्राप्त **(जुषस्व)** प्रीणीहि **(तेन)** **(चिन्वानः)** वर्धमानः **(तन्वः)** शरीरस्य मध्ये पुष्टः सन् **(नि)** नितराम् **(सीद)** तिष्ठ **(मयुम्)** शस्यादिहिंसकं पशुम् **(ते)** तव **(शुक्)** शोकः, भावे क्विप्। **(ऋच्छतु)** प्राप्नोतु **(यम्)** शत्रुम् **(द्विष्मः)** अप्रीतयामः **(तम्)** **(ते)** तव सकाशात् **(शुक्)** शोकः **(ऋच्छतु)**। [अयं मन्त्रः शत०७.५.२.३२ व्याख्यातः]॥४७॥

अन्वयः-हे अग्ने! पावक इव मनुष्य मेधाय चीयमानः सहस्राक्षस्त्वमिमं द्विपादं मेधं मयुं पशुं च मा हिंसीः, तं पशुं जुषस्व। तेन चिन्वानः सन् तन्वो मध्ये निषीद। इयं ते शुङ् मयुमृच्छतु। ते तव यं शत्रुं वयं द्विष्मस्तं शुगृच्छतु॥४७॥

भावार्थः-केनापि मनुष्येणोपकारकाः पशवः कदाचिन्न हिंसनीया, किन्त्वेतान् संपाल्यैतेभ्य उपकारं संगृह्य सर्वे मनुष्या आनन्दयितव्याः। यैर्जाङ्गलैर्हिंसकैः पशुशस्यमनुष्याणां हानिः स्यात्, ते तु राजपुरुषैर्हन्तव्या निग्रहीतव्याश्च॥४७॥

पदार्थः-हे **(अग्ने)** अग्नि के समान मनुष्य के जन्म को प्राप्त हुए **(मेधाय)** सुख की प्राप्ति के लिये **(चीयमानः)** बढ़े हुए **(सहस्राक्षः)** हजारह प्रकार की दृष्टि वाले राजन्! तू **(इमम्)** इस **(द्विपादम्)** दो पग वाले मनुष्यादि और **(मेधम्)** पवित्रकारक फलप्रद **(मयुम्)** जंगली **(पशुम्)** गवादि पशु जीव को **(मा)** मत **(हिंसीः)** मारा कर, उस **(पशुम्)** पशु की **(जुषस्व)** सेवा कर, **(तेन)** उस पशु से **(चिन्वानः)** बढ़ता हुआ तू **(तन्वः)** शरीर में **(निषीद)** निरन्तर स्थिर हो, यह **(ते)** तेरे से **(शुक्)** शोक **(मयुम्)** शस्यादिनाशक जंगली पशु को **(ऋच्छतु)**

प्राप्त होवे **(ते)** तेरे **(यम्)** जिस शत्रु से हम लोग **(द्विष्मः)** द्वेष करें, **(तम्)** उसको **(शुक्)** शोक **(ऋच्छतु)** प्राप्त होवे॥४७॥

भावार्थः-कोई भी मनुष्य सब के उपकार करनेहारे पशुओं को कभी न मारे, किन्तु इनकी अच्छे प्रकार रक्षा कर और इन से उपकार ले के सब मनुष्यों को आनन्द देवे। जिन जंगली पशुओं से ग्राम के पशु, खेती और मनुष्यों की हानि हो, उनको राजपुरुष मारें और बन्धन करें॥४७॥

इमं मेत्यस्य विरूप ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद्ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनरयं मनुष्यः किं कुर्यादित्याह॥

फिर यह मनुष्य क्या करे, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

इमं मा हिꣳसीरेकशफं पशुं कनिक्रदं वाजिनं वाजिनेषु।
गौरमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद।
गौरं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु॥४८॥

इमम्। मा। हिꣳसीः। एकशफमित्येकऽशफम्। पशुम्। कनिक्रदम्। वाजिनम्। वाजिनेषु। गौरम्। आरण्यम्। अनु। ते। दिशामि। तेन। चिन्वानः। तन्वः। नि। सीद। गौरम्। ते। शुक्। ऋच्छतु। यम्। द्विष्मः। तम्। ते। शुक्। ऋच्छतु॥४७॥

पदार्थः-**(इमम्)** **(मा)** **(हिंसीः)** हिंस्याः **(एकशफम्)** एकखुरमश्वादिकम् **(पशुम्)** द्रष्टव्यम् **(कनिक्रदम्)** भृशं विफलं प्राप्तव्यथम् **(वाजिनम्)** वेगवन्तम् **(वाजिनेषु)** वाजिनानां संग्रामाणामवयवेषु कर्मसु कार्यसिद्धिकरम् **(गौरम्)** गौरवर्णम् **(आरण्यम्)** अरण्ये भवम् **(अनु)** **(ते)** तुभ्यम् **(दिशामि)** उपदिशामि **(तेन)** **(चिन्वानः)** वर्द्धमानः **(तन्वः)** शरीरस्य मध्ये **(नि)** **(सीद)** **(गौरम्)** **(ते)** इत्यादि पूर्ववत्। [अयं मन्त्रः शत०७.५.२.३३ व्याख्यातः]॥४८॥

अन्वयः-हे मनुष्य! त्वं वाजिनेष्विममेकशफं कनिक्रदं वाजिनं पशुं मा हिंसीः। ईश्वरोऽहं ते तुभ्यं यमारण्यं गौरं पशुमनु दिशामि, तेन चिन्वानः सँस्तन्वो मध्ये निषीद। ते तव सकाशाद् गौरं शुगृच्छतु यं वयं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु॥४८॥

भावार्थः-मनुष्यैरेकशफा अश्वादयः पशवः कदाचिन्नो हिंस्याः, न चोपकारका आरण्याः। येषां हननेन जगतो हानी रक्षणेनोपकारश्च भवति, ते सदैव पालनीया हिंस्राश्च हन्तव्याः॥४८॥

पदार्थः-हे राजन्! तू **(वाजिनेषु)** संग्राम के कामों में **(इमम्)** इस **(एकशफम्)** एक खुरयुक्त **(कनिक्रदम्)** शीघ्र विकल व्यथा को प्राप्त हुए **(वाजिनम्)** वेगवाले **(पशुम्)** देखने योग्य घोड़े आदि पशु को **(मा)** **(हिंसीः)** मत मार। मैं ईश्वर **(ते)** तेरे लिये **(यम्)** जिस **(आरण्यम्)** जङ्गली **(गौरम्)** गौरपशु की **(दिशामि)** शिक्षा करता हूँ, **(तेन)** उसके रक्षण से **(चिन्वानः)** वृद्धि को प्राप्त हुआ **(तन्वः)** शरीर में **(निषीद)** निरन्तर स्थिर हो, **(ते)** तेरे से **(गौरम्)** श्वेत वर्ण वाले पशु के प्रति **(शुक्)** शोक **(ऋच्छतु)** प्राप्त होवे और **(यम्)** जिस शत्रु को हम लोग **(द्विष्मः)** द्वेष करें, **(तम्)** उसको **(ते)** तुझ से **(शुक्)** शोक **(ऋच्छतु)** प्राप्त होवे॥४८॥

भावार्थः-मनुष्यों को उचित है कि एक खुर वाले घोड़े आदि पशुओं और उपकारक वन के पशुओं को भी कभी न मारें। जिनके मारने से जगत् की हानि और न मारने से सब का उपकार होता है, उनका सदैव पालन-पोषण करें और जो हानिकारक पशु हों, उन को मारें॥४८॥

इमꣳ साहस्रमित्यस्य विरूप ऋषिः। अग्निर्देवता। कृतिश्छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनर्मनुष्यैः के पशवो नो हिंसनीया हिंसनीयाश्चेत्याह॥

फिर मनुष्यों को कौन पशु न मारने और कौन मारने चाहियें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

इमꣳ साहस्रꣳ शतधारमुत्सं व्यच्यमानꣳ सरिरस्य मध्ये।

घृतं दुहानामदितिं जनायाग्ने मा हिꣳसीः परमे व्योमन्।

गवयमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद।

गवयं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु॥४९॥

इमम्। साहस्रम्। शतधारमिति शतऽधारम्। उत्सम्। व्यच्यमानमिति विऽअच्यमानम्। सरिरस्य। मध्ये। घृतम्। दुहानाम्। अदितिम्। जनाय। अग्ने। मा। हिꣳसीः। परमे। व्योमन्निति विऽओमन्। गवयम्। आरण्यम्। अनु। ते। दिशामि। तेन। चिन्वानः। तन्वः। नि। सीद। गवयम्। ते। शुक्। ऋच्छतु। यम्। द्विष्मः। तम्। ते। शुक्। ऋच्छतु॥४९॥

पदार्थः-(**इमम्**) (**साहस्रम्**) सहस्रस्यासंख्यातानां सुखानामयं साधकस्तम् (**शतधारम्**) शतमसंख्याता दुग्धधारा यस्मात् तम् (**उत्सम्**) कूपमिव पालकं गवादिकम् (**व्यच्यमानम्**) विविधप्रकारेण पालनीयम् (**सरिरस्य**) अन्तरिक्षस्य (**मध्ये**) (**घृतम्**) आज्यम् (**दुहानाम्**) प्रपूरयन्तीम् (**अदितिम्**) अखण्डनीयां गाम् (**जनाय**) मनुष्याद्याय प्राणिने (**अग्ने**) विवेकप्राप्तोपकारप्रकाशक राजन् (**मा**) (**हिंसीः**) (**परमे**) प्रकृष्टे (**व्योमन्**) व्योम्नि व्याप्तेऽन्तरिक्षे वर्त्तमानाम् (**गवयम्**) गोसदृशम् (**आरण्यम्**) (**अनु**) (**ते**) (**दिशामि**) (**तेन**) (**चिन्वानः**) पुष्टः सन् (**तन्वः**) (**नि**) (**सीद**) (**गवयम्**) (**ते**) (**शुक्**) शोकः (**ऋच्छतु**) (**यम्**) (**द्विष्मः**) (**तम्**) (**ते**) (**शुक्**) (**ऋच्छतु**)। [अयं मन्त्रः शत०७.५.२.३४ व्याख्यातः]॥४९॥

अन्वयः-हे अग्ने! त्वं जनायेमं साहस्रं शतधारं व्यच्यमानमुत्समिव वीर्य्यसेचकं वृषभं घृतं दुहानामदितिं धेनुं च मा हिंसीः, स ते तुभ्यमपरमारण्यं गवयमनुदिशामि तेन परमे व्योमन् सरिरस्य मध्ये चिन्वानः संस्तन्वो निषीद। तं गवयं ते शुगृच्छतु यन्ते शत्रुं वयं द्विष्मस्तमति शुगृच्छतु शोकः प्राप्नोतु॥४९॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। राजमनुष्या येभ्यो वृषादिभ्यः कृष्यादिनि कर्माणि भवन्ति, याभ्यो गवादिभ्यो दुग्धादिपदार्था जायन्ते, यैः सर्वेषां रक्षणं भवति ते कदाचिन्नैव हिंसनीयाः। य एतान् हिंस्युस्तेभ्यो राजादिन्यायेशा अतिदण्डं दद्युः, ये च जाङ्गला गवयादयो प्रजाहानिं कुर्युस्ते हन्तव्याः॥४९॥

पदार्थः-हे (**अग्ने**) दया को प्राप्त हुए परोपकारक राजन्! तू (**जनाय**) मनुष्यादि प्राणी के लिये (**इमम्**) इस (**साहस्रम्**) असंख्य सुखों का साधन (**शतधारम्**) असंख्य दूध की धाराओं के निमित्त (**व्यच्यमानम्**) अनेक प्रकार से पालन के योग्य (**उत्सम्**) कुए के समान रक्षा करनेहारे वीर्य्यसेचक बैल और (**घृतम्**) घी को (**दुहानाम्**) पूर्ण करती हुई (**अदितिम्**) नहीं मारने योग्य गौ को (**मा हिंसीः**) मत मार और (**ते**) तेरे राज्य में जिस (**आरण्यम्**)

वन में रहने वाले **(गवयम्)** गौ के समान नीलगाय से खेती की हानि होती हो तो उस को **(अनुदिशामि)** उपदेश करता हूँ, **(तेन)** उसके मारने से सुरक्षित अन्न से **(परमे)** उत्कृष्ट **(व्योमन्)** सर्वत्र व्यापक परमात्मा और **(सरिरस्य)** विस्तृत व्यापक आकाश के **(मध्ये)** मध्य में **(चिन्वानः)** वृद्धि को प्राप्त हुआ तू **(तन्वः)** शरीर मध्य में **(निषीद)** निवास कर **(ते)** तेरा **(शुक्)** शोक **(तम्)** उस **(गवयम्)** रोझ को **(ऋच्छतु)** प्राप्त होवे और **(यम्)** जिस **(ते)** तेरे शत्रु का **(द्विष्मः)** हम लोग द्वेष करें, उस को भी **(शुक्)** शोक **(ऋच्छतु)** प्राप्त होवे॥४९॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे राजपुरुषो! तुम लोगों को चाहिये कि जिन बैल आदि पशुओं के प्रभाव से खेती आदि काम; जिन गौ आदि से दूध, घी आदि उत्तम पदार्थ होते हैं कि जिन के दूध आदि से सब प्रजा की रक्षा होती है, उनको कभी मत मारो और जो जन इन उपकारक पशुओं को मारें, उनको राजादि न्यायाधीश अत्यन्त दण्ड देवें और जो जङ्गल में रहने वाले नीलगाय आदि प्रजा की हानि करें, वे मारने योग्य हैं॥४९॥

इममूर्णायुमित्यस्य विरूप ऋषिः। अग्निर्देवता। कृतिश्छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनः के पशवो न हिंस्या हिंस्याश्चेत्याह॥

फिर किन पशुओं को न मारना और किन को मारना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

इममूर्णायुं वरुणस्य नाभिं त्वचं पशूनां द्विपदां चतुष्पदाम्।
त्वष्टुः प्रजानां प्रथमं जनित्रमग्ने मा हिंꣳसीः परमे व्योमन्।
उष्ट्रमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद।
उष्ट्रं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु॥५०॥

इमम्। ऊर्णायुम्। वरुणस्य। नाभिम्। त्वचम्। पशूनाम्। द्विपदामिति द्विऽपदाम्। चतुष्पदाम्। चतुःऽपदामिति चतुःऽपदाम्। त्वष्टुः। प्रजानामिति प्रऽजानाम्। प्रथमम्। जनित्रम्। अग्ने। मा। हिꣳसीः। परमे। व्योमन्निति विऽओमन्। उष्ट्रम्। आरण्यम्। अनु। ते। दिशामि। तेन। चिन्वानः। तन्वः। नि। सीद। उष्ट्रम्। ते। शुक्। ऋच्छतु। यम्। द्विष्मः। तम्। ते। शुक्। ऋच्छतु॥५०॥

पदार्थः-**(इमम्)** **(ऊर्णायुम्)** अविम् **(वरुणस्य)** वरस्य प्राप्तव्यस्य सुखस्य **(नाभिम्)** निबन्धनम् **(त्वचम्)** **(पशूनाम्)** **(द्विपदाम्)** **(चतुष्पदाम्)** **(त्वष्टुः)** सुखप्रकाशकस्य **(प्रजानाम्)** **(प्रथमम्)** आदिमम् **(जनित्रम्)** उत्पत्तिनिमित्तम् **(अग्ने)** **(मा)** **(हिंसीः)** हिंस्याः **(परमे)** **(व्योमन्)** **(उष्ट्रम्)** **(आरण्यम्)** अरण्ये भवम् **(अनु)** **(ते)** **(दिशामि)** **(तेन)** **(चिन्वानः)** **(तन्वः)** **(नि)** **(सीद)** **(उष्ट्रम्)** इत्यादि पूर्ववत्। [अयं मन्त्रः शत०७.५.२.३५ व्याख्यातः]॥५०॥

अन्वयः-हे अग्ने! प्राप्तविद्य राजंस्त्वमिमं वरुणस्य नाभिं द्विपदां चतुष्पदां पशूनां त्वचं त्वष्टुः प्रजानां प्रथमं जनित्रं परमे व्योमन् वर्त्तमानमूर्णायुं मा हिंसीः। ते यं धान्यहिंसकमारण्यमुष्ट्रं हन्तुमनुदिशामि, तेन चिन्वानः सँस्तन्वो मध्ये निषीद। ते शुगारण्यमुष्ट्रमृच्छतु यं ते द्वेष्टारं वयं द्विष्मस्तं शुगृच्छतु॥५०॥

भावार्थः-हे राजन्! येषामव्यादीनां लोमानि त्वगपि मनुष्याणां सुखाय प्रभवति, य उष्ट्रा भारं वहन्तो

मनुष्यान् सुखयन्ति, तान् ये हन्तुमिच्छेयुस्ते जगत्पीडका विज्ञेया: सम्यग् दण्डनीयाश्च, ये चारण्या उष्ट्रा हानिकरास्तेऽपि दण्डनीया:॥५०॥

पदार्थ:-हे **(अग्ने)** विद्या को प्राप्त हुए राजन्! तू **(वरुणस्य)** प्राप्त होने योग्य श्रेष्ठ सुख के **(नाभिम्)** संयोग करनेहारे **(इमम्)** इस **(द्विपदाम्)** दो पगवाले मनुष्य, पक्षी आदि **(चतुष्पदाम्)** चार पगवाले **(पशूनाम्)** गाय आदि पशुओं की **(त्वचम्)** चमड़े से ढांकने वाले और **(त्वष्टु:)** सुखप्रकाशक ईश्वर की **(प्रजानाम्)** प्रजाओं के **(प्रथमम्)** आदि **(जनित्रम्)** उत्पत्ति के निमित्त **(परमे)** उत्तम **(व्योमन्)** आकाश में वर्त्तमान **(ऊर्णायुम्)** भेड़ आदि को **(मा हिंसी:)** मत मार **(ते)** तेरे लिये मैं ईश्वर **(यम्)** जिस **(आरण्यम्)** बनैले **(उष्ट्रम्)** हिंसक ऊंट को **(अनुदिशामि)** बतलाता हूं, **(तेन)** उससे सुरक्षित अन्नादि से **(चिन्वान:)** बढ़ता हुआ **(तन्व:)** शरीर में **(निषीद)** निवास कर **(ते)** तेरा **(शुक्)** शोक उस जंगली ऊंट को **(ऋच्छतु)** प्राप्त हो और जिस द्वेषीजन से हम लोग **(द्विष्म:)** अप्रीति करें **(तम्)** उसको **(ते)** तेरा **(शुक्)** शोक **(ऋच्छतु)** प्राप्त होवे॥५०॥

भावार्थ:-हे राजन्! जिन भेड़ आदि के रोम और त्वचा मनुष्यों के सुख के लिये होती हैं और जो ऊंट भार उठाते हुए मनुष्यों को सुख देते हैं, उनको जो दुष्टजन मारा चाहें, उनको संसार के दु:खदायी समझो और उनको अच्छे प्रकार दण्ड देना चाहिये और जो जंगली ऊंट हानिकारक हों, उन्हें भी दण्ड देना चाहिये॥५०॥

अज इत्यस्य विरूप ऋषि:। अग्निर्देवता। भुरिक्कृतिश्छन्द:। निषाद: स्वर:॥

पुनर्मनुष्यै: के पशवो न हन्तव्या: के च हन्तव्या इत्याह॥

फिर मनुष्यों को कौन से पशु न मारने और कौन से मारने चाहियें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अजो ह्यग्नेरजनिष्ट शोकात् सोऽ अपश्यज्जनितारमग्रे।
तेन देवा देवतामग्रमायँस्तेन रोहमायन्नुप मेध्यास:।
शरभमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद।
शरभं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु॥५१॥

अज:। हि। अग्ने:। अजनिष्ट। शोकात्। स:। अपश्यत्। जनितारम्। अग्रे। तेन। देवा:। देवताम्। अग्रम्। आयन्। तेन। रोहम्। आयन्। उप। मेध्यास:। शरभम्। आरण्यम्। अनु। ते। दिशामि। तेन। चिन्वान:। तन्व:। नि। सीद। शरभम्। ते। शुक्। ऋच्छतु। यम्। द्विष्म:। तम्। ते। शुक्। ऋच्छतु॥५१॥

पदार्थ:-**(अज:)** छाग: **(हि)** खलु **(अग्ने:)** पावकात् **(अजनिष्ट)** जायते **(शोकात्)** **(स:)** **(अपश्यत्)** पश्यति **(जनितारम्)** उत्पादकम् **(अग्रे)** **(तेन)** **(देवा:)** विद्वास: **(देवताम्)** दिव्यगुणताम् **(अग्रम्)** उत्तमं सुखम् **(आयन्)** यन्ति प्राप्नुवन्ति **(तेन)** **(रोहम्)** प्रादुर्भावम् **(आयन्)** प्राप्नुवन्तु **(उप)** **(मेध्यास:)** पवित्रा: सन्त: **(शरभम्)** शल्यकम् **(आरण्यम्)** जंगलोत्पन्नम् **(अनु)** **(ते)** **(दिशामि)** **(तेन)** **(चिन्वान:)** अग्रे पूर्ववत्। [अयं मन्त्र: शत०७.५.२.३६ व्याख्यात:]॥५१॥

अन्वय:-हे राजंस्त्वं यो ह्यजोऽजनिष्ट सोऽग्रे जनितारमपश्यत्, येन मेध्यासो देवा अग्रं देवतां सुखमुपायन्,

येन रोहमुपायन्, तेनोत्तमगुणतामग्रं सुखं तेन वृद्धिं च प्राप्नुहि। यमारण्यं शरभं तेऽनुदिशामि तेन चिन्वानः संस्तन्वो निषीद। तं शरभं ते शुगृच्छतु, यं ते तवारिं वयं द्विष्मस्तं शोकादग्नेः शुगृच्छतु॥५१॥

भावार्थः-राजजनैरजादीनहत्वा संरक्ष्यैते उपकाराय संयोजनीयाः। ये शुभपशुपक्षिहिंसका भवेयुस्ते भृशं ताडनीयाः। यदि शल्यकी हानिकारिका स्यात्, तर्हि सा प्रजापालनाय हन्तव्या॥५१॥

पदार्थः-हे राजन्! तू जो **(हि)** निश्चित **(अजः)** बकरा **(अजनिष्ट)** उत्पन्न होता है, **(सः)** वह **(अग्रे)** प्रथम **(जनितारम्)** उत्पादक को **(अपश्यत्)** देखता है, जिससे **(मेध्यासः)** पवित्र हुए **(देवाः)** विद्वान् **(अग्रम्)** उत्तम सुख और **(देवताम्)** दिव्यगुणों के **(उपायन्)** उपाय को प्राप्त होते हैं और जिससे **(रोहम्)** वृद्धियुक्त प्रसिद्धि को **(आयन्)** प्राप्त होवें, **(तेन)** उससे उत्तम गुणों, उत्तम सुख तथा **(तेन)** उससे वृद्धि को प्राप्त हो। जो **(आरण्यम्)** बनैली **(शरभम्)** शेही **(ते)** तेरी प्रजा को हानि देने वाली है, उसको **(अनुदिशामि)** बतलाता हूं, **(तेन)** उससे बचाए हुए पदार्थ से **(चिन्वानः)** बढ़ता हुआ **(तन्वः)** शरीर में **(निषीद)** निवास कर और **(तम्)** उस **(शरभम्)** शल्यकी को **(ते)** तेरा **(शुक्)** शोक **(ऋच्छतु)** प्राप्त हो और **(ते)** तेरे **(यम्)** जिस शत्रु से हम लोग **(द्विष्मः)** द्वेष करें, उसको **(शोकात्)** शोकरूप **(अग्नेः)** अग्नि से **(शुक्)** शोक अर्थात् शोक से बढ़कर शोक अत्यन्त शोक **(ऋच्छतु)** प्राप्त होवे॥५१॥

भावार्थः-मनुष्यों को उचित है कि बकरे और मोर आदि श्रेष्ठ पशु पक्षियों को न मारें और इनकी रक्षा कर के उपकार के लिये संयुक्त करें और जो अच्छे पशुओं और पक्षियों के मारने वाले हों, उनको शीघ्र ताड़ना देवें। हां, जो खेती को उजाड़ने हारे श्याही आदि पशु हैं, उन को प्रजा की रक्षा के लिये मारें॥५१॥

त्वं यविष्ठेत्यस्योशना ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनः कीदृशा रक्ष्या हिंसनीयाश्चेत्याह॥

फिर कैसे पशुओं की रक्षा करना और हनना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄँः पाहि शृणुधी गिरः।

रक्षा तोकमुत त्मना॥५२॥

त्वम्। यविष्ठ। दाशुषः। नॄन्। पाहि। शृणुधि। गिरः। रक्ष। तोकम्। उत। त्मना॥५२॥

पदार्थः-**(त्वम्) (यविष्ठ)** अतिशयेन युवन् **(दाशुषः)** सुखदातॄन् **(नॄन्)** धर्मनेतॄन् मनुष्यान्। अत्र **नॄन् पे** [अष्टा०८.३.१०] इति रुरादेशः पूर्वस्यानुनासिकत्वं च **(पाहि) (शृणुधि)** अत्र हेर्ध्यादेशः **'अन्येषामपि०** [अष्टा०६.३.१३७] इति दीर्घः **(गिरः)** सत्या वाचः **(रक्ष)** अत्र **द्व्यचोऽतस्तिङः** [अष्टा०६.३.१३५] इति दीर्घः **(तोकम्)** अपत्यम् **(उत)** अपि **(त्मना)** आत्मना। [अयं मन्त्रः शत०७.५.२.३९ व्याख्यातः]॥५२॥

अन्वयः-हे यविष्ठ! त्वं संरक्षितैरेतैः पशुभिर्दाशुषो नॄन् पाहि। इमा गिरः शृणुधि, त्मना मनुष्याणामुत पशूनां तोकं रक्ष॥५२॥

भावार्थः-ये मनुष्या मनुष्यादिरक्षकान् पशून् वर्धयन्ते, करुणामयानुपदेशान् शृण्वन्ति श्रावयन्ति, त आत्मजं सुखं लभन्ते॥५२॥

पदार्थः-हे **(यविष्ठ)** अत्यन्त युवा! **(त्वम्)** तू रक्षा किये हुए इन पशुओं से **(दाशुषः)** सुखदाता **(नॄन्)**

धर्मरक्षक मनुष्यों की **(पाहि)** रक्षा कर, इन **(गिरः)** सत्य वाणियों को **(शृणुधि)** सुन और **(त्मना)** अपने आत्मा से मनुष्य **(उत्)** और पशुओं के **(तोकम्)** बच्चों की **(रक्ष)** रक्षा कर॥५२॥

भावार्थः-जो मनुष्य मनुष्यादि प्राणियों के रक्षक पशुओं को बढ़ाते हैं और कृपामय उपदेशों को सुनते-सुनाते हैं, वे आन्तर्य सुख को प्राप्त होते हैं॥५२॥

अपां त्वेमन्नित्यस्योशना ऋषिः। आपो देवताः। पूर्वस्य ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। सरिरे त्वेति मध्यस्य ब्राह्मी जगती छन्दः। निषादः स्वरः। गायत्रेणेत्युत्तरस्य निचृद्ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अथाध्येतृजनाध्यापकाः किमुपदिशेयुरित्याह॥

अब पढ़ने वालों को पढ़ाने वाले क्या उपदेश करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अपां त्वेमन्त्सादयाम्यपां त्वोद्मन्त्सादयाम्यपां त्वा भस्मन्त्सादयाम्यपां त्वा ज्योतिषि सादयाम्यपां त्वायने सादयाम्यर्णवे त्वा सदने सादयामि समुद्रे त्वा सदने सादयामि। सरिरे त्वा सदने सादयाम्यपां त्वा क्षये सादयाम्यपां त्वा सधिषि सादयाम्यपां त्वा सदने सादयाम्यपां त्वा सधस्थे सादयाम्यपां त्वा योनौ सादयाम्यपां त्वा पुरीषे सादयाम्यपां त्वा पाथसि सादयामि। गायत्रेण त्वा छन्दसा सादयामि त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा सादयामि जागतेन त्वा छन्दसा सादयाम्यानुष्टुभेन त्वा छन्दसा सादयामि पाङ्क्तेन त्वा छन्दसा सादयामि॥५३॥

अपाम्। त्वा। एमन्। सादयामि। अपाम् त्वा ओद्मन्। सादयामि। अपाम्। त्वा। भस्मन्। सादयामि। अपाम्। त्वा। ज्योतिषि। सादयामि। अपाम्। त्वा। अयने। सादयामि। अर्णवे। त्वा। सदने। सादयामि। समुद्रे। त्वा। सदने। सादयामि। सरिरे। त्वा। सदने। सादयामि। अपाम्। त्वा। क्षये। सादयामि। अपाम्। त्वा। सधिषि। सादयामि। अपाम्। त्वा। सदने। सादयामि। अपाम्। त्वा। सधस्थ इति सधऽस्थे। सादयामि। अपाम्। त्वा। योनौ। सादयामि। अपाम्। त्वा। पुरीषे। सादयामि। अपाम्। त्वा। पाथसि। सादयामि। गायत्रेण। त्वा। छन्दसा। सादयामि। त्रैष्टुभेन। त्रैस्तुभेनेति त्रैऽस्तुभेन। त्वा। छन्दसा। सादयामि। जागतेन। त्वा। छन्दसा। सादयामि। आनुष्टुभेन। आनुस्तुभेनेत्यानुऽस्तुभेन। त्वा। छन्दसा। सादयामि। पाङ्क्तेन। त्वा। छन्दसा। सादयामि॥५३॥

पदार्थः-**(अपाम्)** प्राणानां रक्षणे **(त्वा)** त्वाम् **(एमन्)** एति गच्छति तस्मिन् वायौ **(सादयामि)** स्थापयामि **(अपाम्)** जलानाम् **(त्वा)** **(ओद्मन्)** ओषधिषु **(सादयामि)** **(अपाम्)** प्राप्तानां काष्ठादीनाम् **(त्वा)** **(भस्मन्)** भस्मन्यभ्रे। अत्र सर्वत्र सप्तमीलुक् **(सादयामि)** **(अपाम्)** व्याप्नुवतां विद्युदादीनाम् **(त्वा)** **(ज्योतिषि)** विद्युति **(सादयामि)** **(अपाम्)** अन्तरिक्षस्य **(त्वा)** **(अयने)** भूमौ **(सादयामि)** **(अर्णवे)** प्राणे **(त्वा)** **(सदने)** स्थातव्ये **(सादयामि)** **(समुद्रे)** मनसि **(त्वा)** **(सदने)** गन्तव्ये **(सादयामि)** **(सरिरे)** वाचि **(त्वा)** **(सदने)** प्राप्तव्ये **(सादयामि)** **(अपाम्)** प्राप्तव्यानां पदार्थानाम् **(त्वा)** **(क्षये)** चक्षुषि **(सादयामि)** **(अपाम्)** **(त्वा)** **(सधिषि)** समानान् शब्दान् शृणोति येन तस्मिन् श्रोत्रे **(सादयामि)** **(अपाम्)** **(त्वा)** **(सदने)** दिवि **(सादयामि)** **(अपाम्)**

(त्वा) (सधस्थे) अन्तरिक्षे **(सादयामि) (अपाम्) (त्वा) (योनौ)** समुद्रे **(सादयामि) (अपाम्) (त्वा) (पुरीषे)** सिकतासु **(सादयामि) (अपाम्) (त्वा) (पाथसि)** अन्ने **(सादयामि) (गायत्रेण)** गायत्रीनिर्मितेन **(त्वा) (छन्दसा)** स्वच्छेनार्थेन **(सादयामि) (त्रैष्टुभेन)** त्रिष्टुप्प्रोक्तेन **(त्वा) (छन्दसा) (सादयामि) (जागतेन)** जगत्युक्तेन **(त्वा) (छन्दसा) (सादयामि) (आनुष्टुभेन)** अनुष्टुप्कथितेन **(त्वा) (छन्दसा) (सादयामि) (पाङ्क्तेन)** पङ्क्तिप्रकाशितेन **(त्वा) (छन्दसा) (सादयामि)** संस्थापयामि। [अयं मन्त्रः शत०७.५.२.४६-६१ व्याख्यातः]॥५३॥

अन्वयः-हे मनुष्य! यथा शिक्षकोऽहमपामेमंस्त्वा सादयाम्यपामोद्मंस्त्वा सादयाम्यपां भस्मंस्त्वा सादयाम्यपां ज्योतिषि त्वा सादयाम्यपामयने त्वा सादयाम्यर्णवे सदने त्वा सादयामि, समुद्रे सदने त्वा सादयामि, सरिरे सदने त्वा सादयाम्यपां क्षये त्वा सादयाम्यपां सधिषि त्वा सादयाम्यपां सदने त्वा सादयाम्यपां सधस्थे त्वा सादयाम्यपां योनौ त्वा सादयाम्यपां पुरीषे त्वा सादयाम्यपां पाथसि त्वा सादयामि, गायत्रेण छन्दसा त्वा सादयामि, त्रैष्टुभेन छन्दसा त्वा सादयामि, जागतेन छन्दसा त्वा सादयाम्यानुष्टुभेन छन्दसा त्वा सादयामि, पाङ्क्तेन छन्दसा त्वा सादयामि, तथैव वर्तस्व॥५३॥

भावार्थः-विद्वद्भिः सर्वान् पुरुषान् स्त्रियश्च वेदानध्याप्य जगत्स्थानां वाय्वादिपदार्थानां विद्यासु निपुणीकृत्य तेभ्यः प्रयोजनसाधने प्रवर्तनीयाः॥५३॥

पदार्थः-हे मनुष्य! जैसे शिक्षा करने वाला मैं **(अपाम्)** प्राणों की रक्षा के निमित्त **(एमन्)** गमनशील वायु में **(त्वा)** तुझ को **(सादयामि)** स्थापित करता हूं, **(अपाम्)** जलों की **(ओद्मन्)** आर्द्रतायुक्त ओषधियों में **(त्वा)** तुझ को **(सादयामि)** स्थापना करता हूं, **(अपाम्)** प्राप्त हुए काष्ठों की **(भस्मन्)** राख में **(त्वा)** तुझ को **(सादयामि)** संयुक्त करता हूं, **(अपाम्)** व्याप्त हुए बिजुली आदि अग्नि के **(ज्योतिषि)** प्रकाश में **(त्वा)** तुझ को **(सादयामि)** नियुक्त करता हूं, **(अपाम्)** अवकाश वाले **(अयने)** स्थान में **(त्वा)** तुझ को **(सादयामि)** बैठाता हूं, **(सदने)** स्थिति के योग्य **(अर्णवे)** प्राणविद्या में **(त्वा)** तुझ को **(सादयामि)** संयुक्त करता हूं, **(सदने)** गमनशील **(समुद्रे)** मन के विषय में **(त्वा)** तुझ को **(सादयामि)** सम्बद्ध करता हूं, **(सदने)** प्राप्त होने योग्य **(सरिरे)** वाणी के विषय में **(त्वा)** तुझ को **(सादयामि)** संयुक्त करता हूं, **(अपाम्)** प्राप्त होने योग्य पदार्थों के सम्बन्धी **(क्षये)** घर में **(त्वा)** तुझ को **(सादयामि)** स्थापित करता हूं, **(अपाम्)** अनेक प्रकार के व्याप्त शब्दों के सम्बन्धी **(सधिषि)** उस पदार्थ में कि जिससे अनेक शब्दों को समान यह जीव सुनता है अर्थात् कान के विषय में **(त्वा)** तुझ को **(सादयामि)** स्थित करता हूँ, **(अपाम्)** जलों के **(सदने)** अन्तरिक्षरूप स्थान में **(त्वा)** तुझ को **(सादयामि)** स्थापित करता हूं, **(अपाम्)** जलों के **(सधस्थे)** तुल्यस्थान में **(त्वा)** तुझ को **(सादयामि)** स्थापित करता हूं, **(अपाम्)** जलों के **(योनौ)** समुद्र में **(त्वा)** तुझ को **(सादयामि)** नियुक्त करता हूं, **(अपाम्)** जलों की **(पुरीषे)** रेती में **(त्वा)** तुझ को **(सादयामि)** नियुक्त करता हूं, **(अपाम्)** जलों के **(पाथसि)** अन्न में **(त्वा)** तुझ को **(सादयामि)** प्रेरणा करता हूं, **(गायत्रेण)** गायत्री छन्द से निकले **(छन्दसा)** स्वतन्त्र अर्थ के साथ **(त्वा)** तुझको **(सादयामि)** नियुक्त करता हूं, **(त्रैष्टुभेन)** त्रिष्टुप् मन्त्र से विहित **(छन्दसा)** शुद्ध अर्थ के साथ **(त्वा)** तुझ को **(सादयामि)** नियुक्त करता हूं, **(जागतेन)** जगती छन्द में कहे **(छन्दसा)** आनन्दायक अर्थ के साथ **(त्वा)** तुझ को **(सादयामि)** नियुक्त करता हूं, **(आनुष्टुभेन)** अनुष्टुप् मन्त्र में कहे **(छन्दसा)** शुद्ध अर्थ के साथ **(त्वा)** तुझ को **(सादयामि)** प्रेरणा करता हूं और **(पाङ्क्तेन)** पंक्ति मन्त्र से प्रकाशित हुए **(छन्दसा)** निर्मल अर्थ के साथ **(त्वा)** तुझ को

(सादयामि) प्रेरित करता हूँ, वैसे ही तू वर्त्तमान रह॥५३॥

भावार्थ:-विद्वानों को चाहिये कि सब पुरुषों को और सब स्त्रियों को वेद पढ़ा और जगत् के वायु आदि पदार्थों की विद्या में निपुण करके उन को उन पदार्थों से प्रयोजन साधने में प्रवृत्त करें॥५३॥

अयं पुर इत्यस्योशना ऋषि:। प्राणा देवता:। स्वराड् ब्राह्मी जगती छन्द:। निषाद: स्वर:॥

अथ मनुष्यै: सृष्टे: सकाशात् के क उपकारा ग्राह्या इत्याह॥

अब मनुष्यों को सृष्टि से कौन-कौन उपकार लेने चाहियें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अयं पुरो भुवस्तस्य प्राणो भौवायनो वसन्त: प्राणायनो गायत्री वासन्ती गायत्र्यै गायत्रं गायत्रादुपाᳬशुरुपाᳬशोस्त्रिवृत् त्रिवृतो रथन्तरं वसिष्ठऽ ऋषि: प्रजापतिगृहीतया त्वया प्राणं गृह्णामि प्रजाभ्य:॥५४॥

अयम्। पुर:। भुव:। तस्य। प्राण:। भौवायन इति भौवऽआयन:। वसन्त:। प्राणायन इति प्राणऽआयन:। गायत्री। वासन्ती। गायत्र्यै। गायत्रम्। गायत्रात्। उपाᳬशुरित्युपऽअᳬशु:। उपाᳬशोरित्युपऽअᳬशो:। त्रिवृदिति त्रिऽवृत्। त्रिवृत इति त्रिऽवृत:। रथन्तरमिति रथम्ऽतरम्। वसिष्ठ:। ऋषि:। प्रजापतिगृहीतयेति प्रजापतिऽगृहीतया। त्वया। प्राणम्। गृह्णामि। प्रजाभ्य इति प्रजाभ्य:॥५४॥

पदार्थ:-**(अयम्)** अग्नि: **(पुर:)** पूर्वम् **(भुव:)** यो भवति स: **(तस्य)** **(प्राण:)** येन प्राणिति स: **(भौवायन:)** भुवेन सता रूपेण कारणेन निर्वृत्त: **(वसन्त:)** य: सुगन्धादिभिर्वासयति **(प्राणायन:)** प्राणा निर्वृत्ता यस्मात् **(गायत्री)** या गायन्तं त्रायते सा **(वासन्ती)** वसन्तस्य व्याख्यात्री **(गायत्र्यै)** गायत्र्या:। अत्र षष्ठ्यर्थे चतुर्थी **(गायत्रम्)** गायत्र्येव छन्द: **(गायत्रात्)** **(उपांशु:)** उपगृहीता **(उपांशो:)** **(त्रिवृत्)** यस्त्रिभि: कर्मोपासनाज्ञानैर्वर्त्तते स: **(त्रिवृत:)** **(रथन्तरम्)** यद्रथै रमणीयैस्तारयति तत् **(वसिष्ठ:)** अतिशयेन वासयिता **(ऋषि:)** प्रापको विद्वान् **(प्रजापतिगृहीतया)** प्रजापतिर्गृहीतो यया स्त्रिया तया **(त्वया)** **(प्राणम्)** बलयुक्तं जीवनम् **(गृह्णामि)** **(प्रजाभ्य:)**। [अयं मन्त्र: शत०८.१.१.४-६ व्याख्यात:]॥५४॥

अन्वय:-हे स्त्रि! यथाऽयं पुरो भुवोऽग्निस्तस्य भौवायन: प्राण: प्राणायनो वसन्तो वासन्ती गायत्री गायत्र्यै गायत्रं गायत्रादुपांशुरुपांशोस्त्रिवृत् त्रिवृतो रथन्तरं वसिष्ठ ऋषिश्च प्रजापतिगृहीतया त्वया सह प्रजाभ्य: प्राणं गृह्णामि तथा त्वया साकमहं प्रजाभ्यो बलं गृह्णामि॥५४॥

भावार्थ:-स्त्रीपुरुषा अग्न्यादिपदार्थानामुपयोगं कृत्वा परस्परं प्रीत्याऽतिविषयासक्तिं विहाय सर्वस्माज्जगतो बलं संगृह्य प्रजा उत्पाद्या:॥५४॥

पदार्थ:-हे स्त्रि! जैसे **(अयम्)** यह **(पुरो भुव:)** प्रथम होने वाला अग्नि है, **(तस्य)** उसका **(भौवायन:)** सिद्ध कारण से रचा हुआ **(प्राण:)** जीवन का हेतु प्राण **(प्राणायन:)** प्राणों की रचना का हेतु **(वसन्त:)** सुगन्धि आदि में बसाने हारा वसन्त ऋतु **(वासन्ती)** वसन्त ऋतु का जिस में व्याख्यान हो, वह **(गायत्री)** गाते हुए का रक्षक गायत्रीमन्त्रार्थ ईश्वर **(गायत्र्यै)** गायत्री मन्त्र का **(गायत्रम्)** गायत्री छन्द **(गायत्रात्)** गायत्री से **(उपांशु:)** समीप से ग्रहण किया जाय **(उपांशो:)** उस जप से **(त्रिवृत्)** कर्म, उपासना और ज्ञान के सहित वर्त्तमान फल

(त्रिवृत:) उस तीन प्रकार के फल से **(रथन्तरम्)** रमणीय पदार्थों से तारने हारा सुख और **(वसिष्ठ:)** अतिशय करके निवास का हेतु **(ऋषि:)** सुख प्राप्त कराने हारा विद्वान् **(प्रजापतिगृहीतया)** अपने सन्तानों के रक्षक पति को ग्रहण करने वाली **(त्वया)** तेरे साथ **(प्रजाभ्य:)** सन्तानोत्पत्ति के लिये **(प्राणम्)** बलयुक्त जीवन का ग्रहण करते हैं, वैसे तेरे साथ मैं सन्तान होने के लिये बल का **(गृह्णामि)** ग्रहण करता हूं॥५४॥

भावार्थ:-हे स्त्री-पुरुषो! तुम को योग्य है कि अग्नि आदि पदार्थों को उपयोग में ला के परस्पर प्रीति के साथ अति विषयसेवा को छोड़ और सब संसार से बल का ग्रहण करके सन्तानों को उत्पन्न करो॥५४॥

अयं दक्षिणेत्यस्योशना ऋषि:। प्रजापतिर्देवता। निचृदतिधृतिश्छन्द:। षड्ज: स्वर:॥

अथ मनुष्यैर्ग्रीष्म ऋतौ कथं वर्त्तितव्यमित्याह॥

अब मनुष्यों को ग्रीष्म ऋतु में कैसे वर्त्तना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अयं दक्षिणा विश्वकर्मा तस्य मनो वैश्वकर्मणं ग्रीष्मो मानसस्त्रिष्टुब् ग्रैष्मी त्रिष्टुभः स्वारꣳ स्वारादन्तर्य्यामोऽन्तर्यामात् पञ्चदशः पञ्चदशाद् बृहद् भरद्वाजऽ ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया मनो गृह्णामि प्रजाभ्यः॥५५॥

अयम्। दक्षिणा। विश्वकर्मेति विश्वऽकर्मा। तस्य। मनः। वैश्वकर्मणमिति वैश्वऽकर्मणम्। ग्रीष्मः। मानसः। त्रिष्टुप्। त्रिस्तुबिति त्रिऽस्तुप्। ग्रैष्मी। त्रिष्टुभः। त्रिस्तुभ इति त्रिऽस्तुभः। स्वारम्। स्वारात्। अन्तर्याम इत्यन्तःयामः। अन्तर्यामादित्यन्तःऽयामात्। पञ्चदश इति पञ्चऽदशः। पञ्चदशादिति पञ्चऽदशात्। बृहत्। भरद्वाज इति भरत्ऽवाजः। ऋषिः। प्रजापतिगृहीतयेति प्रजापतिऽगृहीतया। त्वया। मनः। गृह्णामि। प्रजाभ्य इति प्रऽजाभ्यः॥५५॥

पदार्थ:-**(अयम्)** वायु: **(दक्षिणा)** दक्षिणत: **(विश्वकर्मा)** विश्वान्यखिलानि कर्माणि यस्मात् स: **(तस्य)** वायो: **(मन:)** मननशीलं प्रेरकं कर्म **(वैश्वकर्मणम्)** यस्माद् विश्वानि कर्माणि निवृत्तानि भवन्ति तत् **(ग्रीष्म:)** यो रसान् ग्रसते स: **(मानस:)** मनस ऊष्मेव वर्त्तमान: **(त्रिष्टुप्)** छन्द: **(ग्रैष्मी)** ग्रीष्मर्तुव्याख्यात्री ऋक् **(त्रिष्टुभ:)** छन्दस: **(स्वारम्)** तापाज्जातं तेज: **(स्वारात्)** **(अन्तर्याम:)** अन्तर्मध्ये यामा: प्रहरा यस्मिन् समये स: **(अन्तर्यामात्)** **(पञ्चदश:)** पञ्चदशानां तिथीनां पूरक: स्तोम: **(पञ्चदशात्)** **(बृहत्)** महान् **(भरद्वाज:)** वाजोऽन्नं विज्ञानं वा बिभर्त्ति येन श्रोत्रेण तत् **(ऋषि:)** विज्ञापक: **(प्रजापतिगृहीतया)** **(त्वया)** **(मन:)** मननात्मकविज्ञानयुक्तं चित्तम् **(गृह्णामि)** **(प्रजाभ्य:)**। [अयं मन्त्र: शत०८.१.१.७-९ व्याख्यात:]॥५५॥

अन्वय:-हे स्त्रि! यथा दक्षिणाऽयं विश्वकर्मा वायुरिवास्ति, तस्य वैश्वकर्मणं मनो मानसो ग्रीष्मो ग्रैष्मी त्रिष्टुप् त्रिष्टुभ: स्वारं स्वारादन्तर्यामोऽन्तर्यामात् पञ्चदश: पञ्चदशाद् बृहद्भरद्वाज ऋषि: प्रजापतिगृहीतया विद्यया सह राजा प्रजाभ्यो मनो गृह्णाति, तथा त्वया साकमहं विश्वस्माद् विज्ञानं गृह्णामि॥५५॥

भावार्थ:-स्त्रीपुरुषै: प्राणस्य मनो नियन्तृ मनसश्च प्राणो नियन्तेति विदित्वा प्राणायामान्मन:शुद्धिं संपादयद्भिरखिलाया: सृष्टे: पदार्थविज्ञानं स्वीकार्यम्॥५५॥

पदार्थ:-हे स्त्रि! जैसे **(दक्षिणा)** दक्षिण दिशा से **(अयम्)** यह **(विश्वकर्मा)** सब कर्मों का निमित्त वायु के समान विद्वान् चलता है, **(तस्य)** उस वायु के योग से **(वैश्वकर्मणम्)** जिससे सब कर्म सिद्ध होते हैं, वह **(मन:)**

विचारस्वरूप प्रेरक मन (**मानसः**) मन की गर्मी से उत्पन्न के तुल्य (**ग्रीष्मः**) रसों का नाशक ग्रीष्म ऋतु (**ग्रैष्मी**) ग्रीष्म ऋतु के व्याख्यान वाला (**त्रिष्टुप्**) त्रिष्टुप् छन्द (**त्रिष्टुभः**) त्रिष्टुप् छन्द के (**स्वारम्**) ताप से हुआ तेज (**स्वारात्**) और तेज से (**अन्तर्यामः**) मध्याह्न के प्रहर में विशेष दिन और (**अन्तर्यामात्**) मध्याह्न के विशेष दिन से (**पञ्चदशः**) पन्द्रह तिथियों की पूरक स्तुति के योग्य पूर्णमासी (**पञ्चदशात्**) उस पूर्णमासी से (**बृहत्**) बड़ा (**भरद्वाजः**) अन्न वा विज्ञान की पुष्टि और धारण का निमित्त (**ऋषिः**) शब्दज्ञान प्राप्त कराने हारा कान (**प्रजापतिगृहीतया**) प्रजापालक पति राजा ने ग्रहण की विद्या से न्याय का ग्रहण करता है, वैसे मैं (**त्वया**) तेरे साथ (**प्रजाभ्यः**) प्रजाओं के लिये (**मनः**) विचारस्वरूप विज्ञानयुक्त चित्त का ग्रहण करता है, वैसे मैं (त्वया) तेरे साथ विज्ञान का (**गृह्णामि**) ग्रहण करता हूँ॥५५॥

भावार्थः-स्त्री पुरुषों को चाहिये कि प्राण का मन और मन का प्राण नियमन करने वाला है, ऐसा जान के प्राणायाम से आत्मा को शुद्ध करते हुए पुरुषों से सम्पूर्ण सृष्टि के पदार्थों का विज्ञान स्वीकार करें॥५५॥

अयं पश्चादित्यस्योशना ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। निचृद्धृतिश्छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अथ स्त्रीपुरुषौ मिथः कथमाचरेतामित्याह॥

अब स्त्री पुरुष आपस में कैसा आचरण करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अयं पश्चाद् विश्वव्यचास्तस्य चक्षुर्वैश्वव्यचसं वर्षाश्चाक्षुष्यो जगती वार्षी जगत्याऽऋक्समम्मृक्समाच्छुक्रः शुक्रात् सप्तदशः सप्तदशाद् वैरूपं जमदग्निर्ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया चक्षुर्गृह्णामि प्रजाभ्यः॥५६॥

अयम्। पश्चात्। विश्वव्यचा इति विश्वऽव्यचाः। तस्य। चक्षुः। वैश्वव्यचसमिति वैश्वऽव्यचसम्। वर्षाः। चाक्षुष्यः। जगती। वार्षी। जगत्याः। ऋक्सममित्यृक्ऽसमम्। ऋक्समादित्यृक्ऽसमात्। शुक्रः। शुक्रात्। सप्तदश इति सप्तऽदशः। सप्तदशादिति सप्तऽदशात्। वैरूपम्। जमदग्निरिति जमत्ऽअग्निः। ऋषिः। प्रजापतिगृहीतयेति प्रजापतिऽगृहीतया। त्वया। चक्षुः। गृह्णामि। प्रजाभ्य इति प्रऽजाभ्यः॥५६॥

पदार्थः-(**अयम्**) आदित्यः (**पश्चात्**) पश्चिमायां दिशि वर्त्तमानः (**विश्वव्यचाः**) विश्वं व्यचति प्रकाशेनाभिव्याप्य प्रकटयति सः (**तस्य**) सूर्यस्य (**चक्षुः**) नयनम् (**वैश्वव्यचसम्**) प्रकाशकम् (**वर्षाः**) यासु मेघा वर्षन्ति ताः (**चाक्षुष्यः**) चक्षुष इमा दर्शनीयाः (**जगती**) जगद्गता (**वार्षी**) वर्षाणां व्याख्यात्री (**जगत्याः**) (**ऋक्समम्**) ऋचः सनन्ति संभजन्ति येन तद् ऋक्समम् (**ऋक्समात्**) (**शुक्रः**) पराक्रमः (**शुक्रात्**) वीर्य्यात् (**सप्तदशः**) सप्तदशानां पूरकः (**सप्तदशात्**) (**वैरूपम्**) विविधानि रूपाणि यस्मात् तस्येदम् (**जमदग्निः**) प्रज्वलिताग्निर्नयनम् (**ऋषिः**) रूपप्रापकः (**प्रजापतिगृहीतया**) (**त्वया**) (**चक्षुः**) (**गृह्णामि**) (**प्रजाभ्यः**)॥५६॥

अन्वयः-हे वरानने! यथाऽयमादित्य इव विद्वान् विश्वव्यचाः सन् पश्चादादित्यस्तस्य वैश्वव्यचसं चक्षुश्चाक्षुष्यो वर्षा वार्षी जगती जगत्या ऋक्सममृक्समाच्छुक्रः शुक्रात् सप्तदशः सप्तदशाद् वैरूपं यथा च जमदग्निर्ऋषिः प्रजापतिगृहीतया सह प्रजाभ्यश्चक्षुर्गृह्णाति तथाऽहं त्वया साकं संसाराद् बलं गृह्णामि॥५६॥

भावार्थः-दम्पतिभ्यां सामवेदाध्ययनेन सूर्यादिप्रसिद्धं जगदर्थतो विज्ञाय सर्वस्याः सृष्टेः सुदर्शनचरित्रे

संग्राह्यो॥५६॥

पदार्थ:-हे उत्तम मुखवाली स्त्री! जैसे **(अयम्)** यह सूर्य्य के समान विद्वान् **(विश्वव्यचा:)** सब संसार को चारों ओर के प्रकाश से व्यापक होकर प्रकट करता **(पश्चात्)** पश्चिम दिशा में वर्त्तमान **(तस्य)** उस सूर्य्य का **(वैश्वव्यचसम्)** प्रकाशक किरणरूप **(चक्षु:)** नेत्र **(चाक्षुष्य:)** नेत्र से देखने योग्य **(वर्षा:)** जिस समय मेघ वर्षते हैं, वह वर्षा ऋतु **(वार्षी)** वर्षा ऋतु के व्याख्यान वाला **(जगती)** संसार में प्रसिद्ध जगती छन्द **(जगत्या:)** जगती छन्द से **(ऋक्समम्)** ऋचाओं के सेवन का हेतु विज्ञान **(ऋक्समात्)** उस विज्ञान से **(शुक्र:)** पराक्रम **(शुक्रात्)** पराक्रम से **(सप्तदश:)** सत्रह तत्त्वों का पूरक विज्ञान **(सप्तदशात्)** उस विज्ञान से **(वैरूपम्)** अनेक रूपों का हेतु जगत् का ज्ञान और जैसे **(जमदग्नि:)** प्रकाशस्वरूप **(ऋषि:)** रूप का प्राप्त कराने हारा नेत्र **(प्रजापतिगृहीतया)** सन्तानरक्षक पति ने ग्रहण की हुई विद्यायुक्त स्त्री के साथ **(प्रजाभ्य:)** प्रजाओं के लिये तेरे साथ **(चक्षु:)** विद्यारूपी नेत्रों का ग्रहण करता है, वैसे मैं तेरे साथ संसार से बल को **(गृह्णामि)** ग्रहण करता हूँ॥५६॥

भावार्थ:-स्त्री-पुरुषों को चाहिये कि सामवेद के पढ़ने से सूर्य आदि प्रसिद्ध जगत् को स्वभाव से जान के सब सृष्टि के गुणों के दृष्टान्त से अच्छा देखें और चरित्र ग्रहण करें॥५६॥

इदमुत्तरादित्यस्योशना ऋषि:। प्रजापतिर्देवता। स्वराड्ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्द:। धैवत: स्वर:॥

अथ शरदृतौ कथं वर्त्तितव्यमित्याह॥

अब शरद् ऋतु में कैसे वर्त्तें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

इ॒दमु॑त्त॒रात् स्व॒स्तस्य॒ श्रोत्र॑ꣳ सौ॒वꣳ श॒रच्छ्रौ॒त्र्य॑नु॒ष्टुप् शा॒र॒द्य॑नु॒ष्टुभ॑ऽ ऐ॒डमै॒डान् म॒न्थी म॒न्थिन॑ऽ एकवि॒ꣳशऽ ए॑कवि॒ꣳशाद् वै॑रा॒जं वि॒श्वामि॑त्रऽ ऋषि॑: प्र॒जाप॑तिगृहीतया॒ त्वया॒ श्रोत्रं॑ गृह्णामि प्र॒जाभ्य॑:॥५७॥

इ॒दम्। उ॒त्त॒रात्। स्व॒रिति॒ स्व॒:। तस्य॑। श्रोत्र॑म्। सौ॒वम्। श॒रत्। श्रौ॒त्री। अ॒नु॒ष्टुप्। अ॒नु॒स्तुबित्य॑नु॒ऽस्तुप्। शा॒र॒दी। अ॒नु॒ष्टुभ॑:। अ॒नु॒स्तुभ॒ इत्य॑नु॒ऽस्तुभ॑:। ऐ॒डम्। ऐ॒डात्। म॒न्थी। म॒न्थिन॑:। ए॒क॒वि॒ꣳश इत्येक॑ऽवि॒ꣳश:। ए॒क॒वि॒ꣳशादित्ये॑कऽवि॒ꣳशात्। वै॒रा॒जम्। वि॒श्वामि॑त्र:। ऋषि॑:। प्र॒जाप॑तिगृहीत॒येति॑ प्र॒जाप॑तिऽगृहीतया। त्वया॑। श्रोत्र॑म्। गृ॒ह्णा॒मि॒। प्र॒जाभ्य॒ इति॑ प्र॒ऽजाभ्य॑:॥५७॥

पदार्थ:-**(इदम्)** **(उत्तरात्)** सर्वेभ्य उत्तरम् **(स्व:)** सुखसंपादकदिग् रूपम् **(तस्य)** **(श्रोत्रम्)** कर्णम् **(सौवम्)** स्व: सुखस्येदं साधनम् **(शरत्)** शृणाति येन सा **(श्रौत्री)** श्रोत्रस्येयं सम्बन्धिनी **(अनुष्टुप्)** **(शारदी)** शरदो व्याख्यात्री **(अनुष्टुभ:)** **(ऐडम्)** इडाया वाचो व्याख्यातृ साम **(ऐडात्)** **(मन्थी)** पदार्थानां मन्थनसाधन: **(मन्थिन:)** **(एकविंश:)** एकविंशतेर्विद्यानां पूरक: **(एकविंशात्)** **(वैराजम्)** विविधानां पदार्थानामिदं प्रकाशकम् **(विश्वामित्र:)** विश्वं मित्रं येन भवति स: **(ऋषि:)** शब्दप्रापक: **(प्रजापतिगृहीतया)** **(त्वया)** **(श्रोत्रम्)** शृणोति येन तत् **(गृह्णामि)** **(प्रजाभ्य:)** प्रजाताभ्यो विद्युदादिभ्य:। [अयं मन्त्र: शत०८.१.२.४-६ व्याख्यात:]॥५७॥

अन्वय:-हे सुभगे! यथेदमुत्तरात् स्वस्तस्य सौवं श्रौत्री शरच्छारद्यनुष्टुबनुष्टुभ ऐडमैडान्मन्थी मन्थिन एकविंश एकविंशाद्वैराजं साम प्राप्तो विश्वामित्र ऋषिश्च प्रजाभ्य: श्रोत्रं गृह्णामि तथा प्रजापतिगृहीतया त्वया सहाहं

प्रजाभ्यः श्रोत्रं गृह्णामि॥५७॥

भावार्थः-ब्रह्मचर्य्येणाधीतविद्यौ कृतविवाहौ स्त्रीपुरुषौ बहुश्रुतौ भवेताम्। नह्याप्तानां सकाशाच्छ्रवणेन विना पठितापि विद्या फलवती जायते। तस्मात् सदा श्रुत्वा सत्यं धरेतामसत्यं त्यजेताम्॥५७॥

पदार्थः-हे सौभाग्यवती! जैसे **(इदम्)** यह **(उत्तरात्)** सब से उत्तर भाग में **(स्वः)** सुखों का साधन दिशारूप है, **(तस्य)** उसके **(सौवम्)** सुख का साधन **(श्रोत्रम्)** कान **(श्रौत्री)** कान की सम्बन्धी **(शरत्)** शरदृतु **(शारदी)** शरद् ऋतु के व्याख्यान वाला **(अनुष्टुप्)** प्रबद्ध अर्थ वाला अनुष्टुप् छन्द **(अनुष्टुभः)** उससे **(ऐडम्)** वाणी के व्याख्यान से युक्त मन्त्र **(ऐडात्)** उस मन्त्र से **(मन्थी)** पदार्थों के मथने का साधन **(मन्थिनः)** उस साधन से **(एकविंशः)** इक्कीस विद्याओं का पूर्ण करने हारा सिद्धान्त **(एकविंशाद्)** उस सिद्धान्त से **(वैराजम्)** विविध पदार्थों के प्रकाशक सामवेद के ज्ञान को प्राप्त हुआ **(विश्वामित्रः)** सब से मित्रता का हेतु **(ऋषिः)** शब्द ज्ञान कराने हारा कान और **(प्रजाभ्यः)** उत्पन्न हुई बिजुली आदि के लिये **(श्रोत्रम्)** सुनने के साधन को ग्रहण करते हैं, वैसे **(प्रजापतिगृहीतया)** प्रजापालक पति ने ग्रहण की **(त्वया)** तेरे साथ में प्रसिद्ध हुई बिजुली आदि से **(श्रोत्रम्)** सुनने के साधन कान को **(गृह्णामि)** ग्रहण करता हूं॥५७॥

भावार्थः-स्त्री पुरुषों को चाहिये कि ब्रह्मचर्य्य के साथ विद्या पढ़ और विवाह करके बहुश्रुत होवें और सत्यवक्ता आप्त जनों से सुने बिना पढ़ी हुई भी विद्या फलदायक नहीं होती, इसलिये सदैव सज्जनों का उपदेश सुन के सत्य का धारण और मिथ्या को छोड़ देवें॥५७॥

इयमुपरीत्यस्योशना ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। विराडाकृतिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अथ हेमन्ते कथं वर्त्तितव्यमित्याह॥

अब हेमन्त ऋतु में किस प्रकार वर्त्तें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

इयमुपरि मतिस्तस्यै वाङ्मात्या हेमन्तो वाच्यः पङ्क्तिर्हैमन्ती पङ्क्त्यै निधनवन्निधनवतऽ आग्रयणऽ आग्रयणात् त्रिणवत्रयस्त्रिꣳशौ त्रिणवत्रयस्त्रिꣳशाभ्याꣳ शाक्वररैवते विश्वकर्मऽ ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया वाचं गृह्णामि प्रजाभ्यः॥५८॥

इयम्। उपरि। मतिः। तस्यै। वाक्। मात्या। हेमन्तः। वाच्यः। पङ्क्तिः। हैमन्ती। पङ्क्त्यै। निधनवदिति निधनऽवत्। निधनवत इति निधनऽवतः। आग्रयणः। आग्रयणात्। त्रिणवत्रयस्त्रिꣳशौ। त्रिनवत्रयस्त्रिꣳशाविति। त्रिनवत्रयस्त्रिꣳशौ। त्रिणवत्रयस्त्रिꣳशाभ्याम्। त्रिनवत्रयस्त्रिꣳशाभ्यामिति त्रिनवत्रयस्त्रिꣳशाभ्याम्। शाक्वररैवते इति शाक्वरऽरैवते। विश्वकर्म्मेति विश्वऽकर्मा। ऋषिः। प्रजापतिगृहीतयेति प्रजापतिऽगृहीतया। त्वया। वाचम्। गृह्णामि। प्रजाभ्य इति प्रजाभ्यः॥५८॥

पदार्थः-**(इयम्)** **(उपरि)** सर्वोपरि विराजमाना **(मतिः)** प्रज्ञा **(तस्यै)** तस्याः। अत्र षष्ठ्यर्थे चतुर्थी। **(वाक्)** वक्ति यया सा **(मात्या)** मतेर्भावः कर्म वा **(हेमन्तः)** हन्त्युष्णतां येन सः। अत्र **हन्तेर्हि मुट् च॥** (उणा०३।१२७) **(वाच्यः)** वाचो भावः कर्म वा **(पङ्क्तिः)** छन्दः **(हैमन्ती)** हेम्नो व्याख्यात्री **(पङ्क्त्यै)** पङ्क्त्याः **(निधनवत्)** निधनं प्रशस्तं मृत्युव्याख्यानं विद्यते यस्मिंस्तत् साम **(निधनवतः)** **(आग्रयणः)** अङ्गति प्राप्नोति येन तस्यायम्

(आग्रयणात्) **(त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ)** त्रिनवं च त्रयस्त्रिंशं च ते साम्नी **(त्रिणवत्रयस्त्रिंशाभ्याम्)** **(शाक्वररैवते)** शक्तिधनप्रतिपादके **(विश्वकर्मा)** विश्वानि कर्माणि यस्य सः **(ऋषिः)** वेदार्थवेत्ता **(प्रजापतिगृहीतया)** **(त्वया)** **(वाचम्)** विद्यासुशिक्षान्वितां वाणीम् **(गृह्णामि)** **(प्रजाभ्यः)**॥५८॥

अत्र लोकन्ता इन्द्रमिति द्वादशाध्यायस्थानां त्रयाणां मन्त्राणां प्रतीकानि सूत्रव्याख्यानं दृष्ट्वा केनचिद्धृतानि शतपथेऽव्याख्यातत्वादत्र न गृह्यन्ते॥५८॥

अन्वयः-हे विदुषि पत्नि! य इयमुपरि मतिस्तस्यै मात्या वाग्वाच्यो हेमन्तो हैमन्ती पङ्क्तिः पङ्क्त्यै निधनवन्निधनवत आग्रयण आग्रयणात् त्रिणवयस्त्रिंशौ त्रिणवत्रयस्त्रिंशाभ्यां शाक्वररैवते विदित्वा विश्वकर्मर्षिर्वर्तते, तथाहं प्रजापतिगृहीतया त्वया सहाऽहं प्रजाभ्यो वाचं गृह्णामि॥५८॥

भावार्थः-पतिपत्नीभ्यां विदुषां वाचं श्रुत्वा प्रज्ञा वर्द्धनीया तया हेमन्तर्तुकृत्यं सामानि च विदित्वा महर्षिवद् वर्तित्वा विद्यासुशिक्षासंस्कृतां वाचं स्वीकृत्य प्रजाभ्योऽप्येताः सदोपदेष्टव्येति॥५८॥

अत्रेश्वरजायापतिव्यवहारस्य प्रतिपादनादेतदर्थस्य पूर्वाध्यायार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेदितव्यम्॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य्याणां श्रीमत्परमविदुषां विरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचिते संस्कृतभाषाऽऽर्यभाषाभ्यां विभूषिते सुप्रमाणयुक्ते यजुर्वेदभाष्ये त्रयोदशोऽध्यायः पूर्त्तिमयासीत्॥ १३॥

पदार्थः-हे विदुषी स्त्री! जो **(इयम्)** यह **(उपरि)** सब से ऊपर विराजमान **(मतिः)** बुद्धि है, **(तस्यै)** उस **(मात्या)** बुद्धि का होना वा कर्म **(वाक्)** वाणी और **(वाच्यः)** उस का होना वा कर्म **(हेमन्तः)** गर्मी का नाशक हेमन्त ऋतु **(हैमन्ती)** हेमन्त ऋतु के व्याख्यान वाला **(पङ्क्तिः)** पंक्ति छन्द **(पङ्क्त्यै)** उस पङ्क्ति छन्द का **(निधनवत्)** मृत्यु का प्रशंसित व्याख्यान वाला सामवेद का भाग **(निधनवतः)** उससे **(आग्रयणः)** प्राप्ति का साधन ज्ञान का फल **(आग्रयणात्)** उससे **(त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ)** बारह और तेतीस सामवेद के स्तोत्र **(त्रिणवत्रयस्त्रिशाभ्याम्)** उन स्तोत्रों से **(शाक्वररैवते)** शक्ति और धन के साधक पदार्थों को जान के **(विश्वकर्मा)** सब सुकर्मों के सेवने वाला **(ऋषिः)** वेदार्थ का वक्ता पुरुष वर्त्तता है, वैसे मैं **(प्रजापतिगृहीतया)** प्रजापालक पति ने ग्रहण की **(त्वया)** तेरे साथ **(प्रजाभ्यः)** प्रजाओं के लिये **(वाचम्)** विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त वाणी को **(गृह्णामि)** ग्रहण करता हूं॥५८॥

भावार्थः-स्त्री पुरुषों को चाहिये कि विद्वानों की शिक्षारूप वाणी को सुन के अपनी बुद्धि बढ़ावें, उस बुद्धि से हेमन्त ऋतु में कर्त्तव्य कर्म और सामवेद के स्तोत्रों को जान महात्मा ऋषि लोगों के समान वर्त्ताव कर विद्या और अच्छी शिक्षा से शुद्ध की वाणी को स्वीकार करके अपने सन्तानों के लिये भी इन वाणियों का उपदेश सदैव किया करें॥५८॥

इस अध्याय में ईश्वर, स्त्री-पुरुष और व्यवहार का वर्णन करने से इस अध्याय में कहे अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ संगति जानो॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य्याख्णां श्रीमत्परमविदुषां विरजानन्दस्वामिनां शिष्येण दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचिते संस्कृतभाषाऽऽर्यभाषाभ्यां विभूषिते सुप्रमाणयुक्ते यजुर्वेदभाष्ये त्रयोदशोऽध्यायः सम्पूर्णः॥ १३॥

॥ओ३म्॥

यजुर्वेदभाष्यम्

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितं संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां समलङ्कृतम्

सम्पादनम्

श्रद्धानन्द वैदिक शोधसंस्थान
गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

द्वितीयो भागः

प्रकाशकः

श्रद्धानन्द अनुसन्धान प्रकाशन केन्द्र

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार.

वर्ष २००८

ओ३म्

अथ चतुर्दशाऽध्यायारम्भः

ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव। यद्भ॒द्रं तन्न॒ ऽ आ सु॑व॥ यजु० ३०.३

ध्रुवक्षितिरित्यस्योशना ऋषिः। अश्विनौ देवते। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथादिमे मन्त्रे स्त्रीभ्य उपदेशमाह॥

अब चौदहवें अध्याय का आरम्भ है, इस के पहिले मन्त्र में स्त्रियों के लिये उपदेश किया है॥

ध्रु॒वक्षि॑तिर्ध्रु॒वयो॑निर्ध्रु॒वासि॑ ध्रु॒वं योनि॒मासी॑द सा॒धु॒या।
उख्य॑स्य के॒तुं प्र॑थ॒मं जु॑षा॒णाऽ अ॒श्विना॑ऽध्व॒र्यू सा॑दयतामि॒ह त्वा॑॥ १॥

ध्रु॒वक्षि॑ति॒रिति॑ ध्रु॒वऽक्षि॑तिः। ध्रु॒वयो॑नि॒रिति॑ ध्रु॒वऽयो॑निः। ध्रु॒वा। अ॒सि॒। ध्रु॒वम्। योनि॑म्। आ। सी॒द॒। सा॒धु॒येति॑ सा॒धु॒ऽया। उख्य॑स्य। के॒तुम्। प्र॒थ॒मम्। जु॒षा॒णा। अ॒श्विना॑। अ॒ध्व॒र्यू॒ऽइत्य॑ध्व॒र्यू। सा॒द॒य॒ता॒म्। इ॒ह। त्वा॒॥ १॥

पदार्थः-(**ध्रुवक्षितिः**) ध्रुवा निश्चला क्षितिर्निवसतिर्जनपदो यस्याः सा (**ध्रुवयोनिः**) ध्रुवा योनिर्गृहं यस्याः सा (**ध्रुवा**) निश्चलधर्मा (**असि**) (**ध्रुवम्**) (**योनिम्**) गृहम् (**आ**) (**सीद**) (**साधुया**) साधुना धर्मेण सह (**उख्यस्य**) उखायां स्थाल्यां भवस्य पाकसमूहस्य (**केतुम्**) प्रज्ञाम् (**प्रथमम्**) विस्तीर्णम् (**जुषाणा**) प्रीत्या सेवमाना (**अश्विना**) व्याप्तसकलविद्यावध्यापकोपदेशकौ (**अध्वर्यू**) आत्मनोऽध्वरमहिंसनीयं गृहाश्रमादिकं यज्ञमिच्छू (**सादयताम्**) अवस्थापयतम् (**इह**) गृहाश्रमे (**त्वा**) त्वाम्। [अयं मन्त्रः शत०८.२.१.४ व्याख्यातः]॥१॥

अन्वयः-हे स्त्रि! या त्वं साधुयोख्यस्य प्रथमं केतुं जुषाणा ध्रुवक्षितिर्ध्रुवयोनिर्ध्रुवासि, सा त्वं ध्रुवं योनिमासीद। त्वा त्वामिहाध्वर्यू अश्विना सादयताम्॥१॥

भावार्थः-कुमारीणां ब्रह्मचर्याऽवस्थायामध्यापिकोपदेशिके विदुष्यौ गृहाश्रमधर्मशिक्षां कृत्वैताः साध्वीः सम्पादयेताम्॥१॥

पदार्थः-हे स्त्रि! जो तू (**साधुया**) श्रेष्ठ धर्म के साथ (**उख्यस्य**) बटलोई में पकाये अन्न की सम्बन्धी और (**प्रथमम्**) विस्तारयुक्त (**केतुम्**) बुद्धि को (**जुषाणा**) प्रीति से सेवन करती हुई (**ध्रुवक्षितिः**) निश्चल वास करने और (**ध्रुवयोनिः**) निश्चल घर में रहने वाली (**ध्रुवा**) दृढ़धर्म्म से युक्त (**असि**) है, सो तू (**ध्रुवम्**) निश्चल (**योनिम्**) घर में (**आसीद**) स्थिर हो (**त्वा**) तुझको (**इह**) इस गृहाश्रम में (**अध्वर्यू**) अपने लिये रक्षणीय गृहाश्रम आदि यज्ञ के चाहने हारे (**अश्विना**) सब विद्याओं में व्यापक अध्यापक और उपदेशक (**सादयताम्**) अच्छे प्रकार स्थापित करें॥१॥

भावार्थः-विदुषी पढ़ाने और उपदेश करने हारी स्त्रियों को योग्य है कि कुमारी कन्याओं को ब्रह्मचर्य अवस्था में गृहाश्रम और धर्म्मशिक्षा दे के इनको श्रेष्ठ करें॥१॥

कुलायिनीत्यस्योशना ऋषिः। अश्विनौ देवते। निचृद्ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनः स एव विषय उपदिश्यते॥

फिर पूर्वोक्त विषय का अगले मन्त्र में उपदेश किया है॥

कुलायिनी घृतवती पुरन्धिः स्योने सीद सदने पृथिव्याः। अभि त्वा रुद्रा वसवो गृणन्त्विमा ब्रह्म पीपिहि सौभगायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा॥२॥

कुलायिनी। घृतवतीति घृतऽवती। पुरन्धिरिति पुरम्ऽधिः। स्योने। सीद। सदने। पृथिव्याः। अभि। त्वा। रुद्राः। वसवः। गृणन्तु। इमा। ब्रह्म। पीपिहि। सौभगाय। अश्विना। अध्वर्यूऽइत्यध्वर्यू। सादयताम्। इह। त्वा॥२॥

पदार्थः-(**कुलायिनी**) कुलं यदेति तत्कुलायं तत्प्रशस्तं विद्यते यस्याः सा (**घृतवती**) घृतं बहूदकमस्ति यस्याः सा (**पुरन्धिः**) या पुरूणि बहूनि सुखानि दधाति सा (**स्योने**) सुखकारिके (**सीद**) (**सदने**) गृहे (**पृथिव्याः**) भूमेः (**अभि**) (**त्वा**) त्वाम् (**रुद्राः**) मध्या विद्वांसः (**वसवः**) आदिमा विपश्चितः (**गृणन्तु**) प्रशंसन्तु (**इमा**) इमानि (**ब्रह्म**) विद्याधनम् (**पीपिहि**) प्राप्नुहि। अत्र पि गतावित्यस्माच्छपः श्लुः, तुजादित्वादभ्यासदीर्घश्च (**सौभगाय**) शोभनैश्वर्य्याणां भावाय (**अश्विना**) (**अध्वर्यू**) (**सादयताम्**) (**इह**) (**त्वा**) त्वाम्॥२॥

अन्वयः-हे स्योने! यां त्वा त्वां वसवो रुद्राश्चेमा ब्रह्मदातॄन् ग्रहीतॄनभिगृणन्तु सा त्वं सौभगायैतानि पीपिहि। घृतवती पुरन्धिः कुलायिनी सती पृथिव्याः सदने सीद। अध्वर्यू अश्विना त्वेह सादयताम्॥२॥

भावार्थः-स्त्रियः साङ्गोपाङ्गगमैश्वर्यसुखभोगाय स्वसदृशान् पतीनुपयम्य विद्यासुवर्णादिधनं प्राप्य सर्वर्त्तुसुखसाधकेषु गृहेषु निवसन्तु। विदुषां सङ्गं शास्त्राभ्यासं च सततं कुर्युः॥२॥

पदार्थः-हे (**स्योने**) सुख करने हारी! जिस (**त्वा**) तुझ को (**वसवः**) प्रथम कोटि के विद्वान् और (**रुद्राः**) मध्य कक्षा के विद्वान् (**इमा**) इन (**ब्रह्म**) विद्याधनों के देने वाले गृहस्थों की (**अभि**) अभिमुख होकर (**गृणन्तु**) प्रशंसा करें, सो तू (**सौभगाय**) सुन्दर संपत्ति होने के लिये इन विद्याधन को (**पीपिहि**) अच्छे प्रकार प्राप्त हो, (**घृतवती**) बहुत जल और (**पुरन्धिः**) बहुत सुख धारण करनेवाली (**कुलायिनी**) प्रशंसित कुल की प्राप्ति से युक्त हुई (**पृथिव्याः**) अपनी भूमि के (**सदने**) घर में (**सीद**) स्थित हो, (**अध्वर्यू**) अपने लिये रक्षणीय गृहाश्रम आदि यज्ञ चाहने वाले (**अश्विना**) सब विद्याओं में व्यापक और उपदेशक पुरुष (**त्वा**) तुझको (**इह**) इस गृहाश्रम में (**सादयताम्**) स्थापित करें॥२॥

भावार्थः-स्त्रियों को योग्य है कि साङ्गोपाङ्ग पूर्ण विद्या और धन ऐश्वर्य का सुख भोगने के लिये अपने सदृश पतियों से विवाह करके विद्या और सुवर्ण आदि धन को पाके सब ऋतुओं में सुख देने हारे घरों में निवास करें तथा विद्वानों का संग और शास्त्रों का अभ्यास निरन्तर किया करें॥२॥

स्वैर्दक्षैरित्यस्योशना ऋषिः। अश्विनौ देवते। विराड् ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी पूर्वोक्त विषय को ही अगले मन्त्र में कहा है॥

स्वैर्दक्षैर्दक्षपितेह सीद देवानांᳬसुम्ने बृहते रणाय।

पितेवैधि सूनवऽआ सुशेवा स्वावेशा तन्वा संविशस्वाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा॥३॥

स्वैः। दक्षैः। दक्षपितेति दक्षऽपिता। इह। सीद। देवानाम्। सुम्ने। बृहते। रणाय। पितेवेति पिताऽइव। एधि। सूनवे। आ। सुशेवेति सुऽशेवा। स्वावेशेति सुऽआवेशा। तन्वा। सम्। विशस्व। अश्विना। अध्वर्यूऽइत्यध्वर्यू। सादयताम्। इह। त्वा॥३॥

पदार्थः-(**स्वैः**) स्वकीयैः (**दक्षैः**) बलैश्चतुरैर्भृत्यैर्वा (**दक्षपिता**) दक्षस्य बलस्य चतुराणां भृत्यानां वा पिता पालकः (**इह**) अस्मिन् लोके (**सीद**) (**देवानाम्**) धार्मिकाणां विदुषां मध्ये (**सुम्ने**) सुखे (**बृहते**) महते (**रणाय**) संग्रामाय (**पितेव**) (**एधि**) भव (**सूनवे**) अपत्याय (**आ**) (**सुशेवा**) सुष्ठु सुखा (**स्वावेशा**) सुष्ठु समन्ताद् वेशो यस्याः सा (**तन्वा**) शरीरेण (**सम्**) एकीभावे (**विशस्व**) (**अश्विना**) (**अध्वर्यू**) (**सादयताम्**) (**इह**) (**त्वा**) त्वाम्। [अयं मन्त्रः शत०८.१.२.६ व्याख्यातः]॥३॥

अन्वयः-हे स्त्रि! त्वं यथा स्वैर्दक्षैः सह वर्तमानो देवानां बृहते रणाय सुम्ने दक्षपिता विजयेन वर्धते तथेहैधि। सुम्न आसीद, पितेव सूनवे सुशेवा स्वावेशा सती तन्वा संविशस्व। अध्वर्यू अश्विना त्वेह सादयताम्॥३॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। स्त्रियो युद्धेऽपि पतिभिः सह तिष्ठेयुः, स्वकीयभृत्यपुत्रपश्वादीन् पितर इव पालयेयुः। सदैवात्युत्तमैर्वस्त्रभूषणैः शरीराणि संसृज्य वर्तेरन्। विद्वांसश्चैवमेताः सदोपदिशेयुः स्त्रियोप्येतांश्च॥३॥

पदार्थः-हे स्त्रि! तू जैसे (**स्वैः**) अपने (**दक्षैः**) बलों और चतुर भृत्यों के साथ वर्तता हुआ (**देवानाम्**) धर्म्मात्मा विद्वानों के मध्य में वर्त्तमान (**बृहते**) बड़े (**रणाय**) संग्राम के लिये (**सुम्ने**) सुख के विषय (**दक्षपिता**) बलों वा चतुर भृत्यों का पालन करने हारा होके विजय से बढ़ता है, वैसे (**इह**) इस लोक के मध्य में (**एधि**) बढ़ती रह। (**सुम्ने**) सुख में (**आसीद**) स्थिर हो और (**पितेव**) जैसे पिता (**सूनवे**) अपने पुत्र के लिये सुन्दर सुख देता है, वैसे (**सुशेवा**) सुन्दर सुख से युक्त (**स्वावेशा**) अच्छी प्रीति से सुन्दर, शुद्ध शरीर, वस्त्र, अलंकार को धारण करती हुई अपने पति के साथ प्रवेश करने हारी होके (**तन्वा**)

शरीर के साथ **(संविशस्व)** प्रवेश कर और **(अध्वर्यू)** गृहाश्रमादि यज्ञ की अपने लिये इच्छा करने वाले **(अश्विना)** पढ़ाने और उपदेश करने हारे जन **(त्वा)** तुझ को **(इह)** इस गृहाश्रम में **(सादयताम्)** स्थित करें॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। स्त्रियों को चाहिये कि युद्ध में भी अपने पतियों के साथ स्थित रहें। अपने नौकर, पुत्र और पशु आदि की पिता के समान रक्षा करें और नित्य ही वस्त्र और आभूषणों से अपने शरीरों को संयुक्त करके वर्त्तें। विद्वान् लोग भी इन को सदा उपदेश करें और स्त्री भी इन विद्वानों के लिये सदा उपदेश करें॥३॥

पृथिव्याः पुरीषमित्यस्योशना ऋषिः। अश्विनौ देवते। भुरिग्ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

पृथिव्याः पुरीषमस्यप्सो नाम तां त्वा विश्वेऽअभिगृणन्तु देवाः।
स्तोमपृष्ठा घृतवतीह सीद प्रजावदस्मे द्रविणायजस्वाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा॥४॥

पृथिव्याः। पुरीषम्। असि। अप्सः। नाम। ताम्। त्वा। विश्वे। अभि। गृणन्तु। देवाः। स्तोमपृष्ठेति स्तोमऽपृष्ठा। घृतवतीति घृतऽवती। इह। सीद। प्रजावदिति प्रजाऽवत्। अस्मेऽइत्यस्मे। द्रविणा। आ। यजस्व। अश्विना। अध्वर्यूऽइत्यध्वर्यू। सादयताम्। इह। त्वा॥४॥

पदार्थः-(पृथिव्याः) **(पुरीषम्)** पालनम् **(असि)** **(अप्सः)** रूपम् **(नाम)** आख्याम् **(ताम्)** **(त्वा)** त्वाम् **(विश्वे)** सर्वे **(अभि)** **(गृणन्तु)** अर्चन्तु सत्कुर्वन्तु। **गृणातीत्यर्चतिकर्मा०॥** (निघं०३।१४) **(देवाः)** विद्वांस **(स्तोमपृष्ठा)** स्तोमानां पृष्ठं ज्ञीप्सा यस्याः सा **(घृतवती)** प्रशस्तान्याज्यादीनि विद्यन्ते यस्याः सा **(इह)** गृहाश्रमे **(सीद)** वर्तस्व **(प्रजावत्)** प्रशस्ताः प्रजा भवन्ति यस्मात् तत् **(अस्मे)** अस्मभ्यम् **(द्रविणा)** धनानि। अत्र **सुपां सुलुक्** [अ०७.१.३९] इत्याकारादेशः **(आ)** समन्तात् **(यजस्व)** देहि **(अश्विना)** **(अध्वर्यू)** **(सादयताम्)** **(इह)** सत्ये व्यवहारे **(त्वा)** त्वाम्। [अयं मन्त्रः शत०८.२.१.७ व्याख्यातः]॥४॥

अन्वयः-हे स्त्रि! या स्तोमपृष्ठा त्वमिह पृथिव्याः पुरीषमप्सो नाम च घृतवत्यसि, तां त्वा विश्वे देवा अभिगृणन्त्विह सीद। त्वाऽध्वर्यू अश्विनेहासादयतां सा त्वमस्मे प्रजावद् द्रविणा यजस्व॥४॥

भावार्थः-याः स्त्रियो गृहाश्रमविद्याक्रियाकौशलयोर्विदुष्यः स्युस्ता एव सर्वेभ्यः सुखानि दातुमर्हन्ति॥४॥

पदार्थः-हे स्त्रि! जो **(स्तोमपृष्ठा)** स्तुतियों को जानने की इच्छायुक्त तू **(इह)** इस गृहाश्रम में **(पृथिव्याः)** पृथिवी की **(पुरीषम्)** रक्षा **(अप्सः)** सुन्दररूप और **(नाम)** नाम और **(घृतवती)** बहुत घी आदि प्रशंसित पदार्थों से युक्त **(असि)** है, **(ताम्)** उस **(त्वा)** तुझको **(विश्वे)** सब **(देवाः)** विद्वान् लोग

(अभिगृणन्तु) सत्कार करें, **(इह)** इसी गृहाश्रम में **(सीद)** वर्त्तमान रह और जिस **(त्वा)** तुझ को **(अध्वर्यू)** अपने लिये रक्षणीय गृहाश्रमादि यज्ञ चाहने वाले **(अश्विना)** व्यापक बुद्धि बढ़ाने और उपदेश करने हारे **(इह)** इस गृहाश्रम में **(सादयताम्)** स्थित करें सो तू **(अस्मे)** हमारे लिये **(प्रजावत्)** प्रशंसित सन्तान होने का साधन **(द्रविणा)** धन **(यजस्व)** दे॥४॥

भावार्थः-जो स्त्री गृहाश्रम की विद्या और क्रिया-कौशल में विदुषी हों, वे ही सब प्राणियों को सुख दे सकती हैं॥४॥

आदित्यास्त्वेत्यस्योशना ऋषिः। अश्विनौ देवते। स्वराड् ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी पूर्वोक्त विषय ही अगले मन्त्र में कहा है॥

अदित्यास्त्वा पृष्ठे सादयाम्यन्तरिक्षस्य धर्त्री विष्टम्भनीं दिशामधिपत्नीं भुवनानाम्।
ऊर्मिर्द्रप्सोऽअपामसि विश्वकर्मा तऽऋषिरश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा॥५॥

अदित्याः। त्वा। पृष्ठे। सादयामि। अन्तरिक्षस्य। धर्त्रीम्। विष्टम्भनीम्। दिशाम्। अधिपत्नीमित्यधिऽपत्नीम्। भुवनानाम्। ऊर्मिः। द्रप्सः। अपाम्। असि। विश्वकर्मेति विश्वऽकर्मा। ते। ऋषिः। अश्विना। अध्वर्यूऽइत्यध्वर्यू। सादयताम्। इह। त्वा॥५॥

पदार्थः-**(अदित्याः)** भूमेः **(त्वा)** त्वाम् **(पृष्ठे)** उपरि **(सादयामि)** स्थापयामि **(अन्तरिक्षस्य)** अन्तरक्षयविज्ञानस्य **(धर्त्रीम्)** **(विष्टम्भनीम्)** **(दिशाम्)** पूर्वादीनाम् **(अधिपत्नीम्)** अधिष्ठातृत्वेन पालिकाम् **(भुवनानाम्)** भवन्ति भूतानि येषु तेषां गृहाणाम् **(ऊर्मिः)** तरङ्ग इव **(द्रप्सः)** हर्षः **(अपाम्)** जलानाम् **(असि)** **(विश्वकर्मा)** शुभाखिलकर्मा **(ते)** तव **(ऋषिः)** विज्ञापकः पतिः **(अश्विना)** **(अध्वर्यू)** **(सादयताम्)** **(इह)** **(त्वा)** त्वाम्। [अयं मन्त्रः शत०८.१.१.१० व्याख्यातः]॥५॥

अन्वयः-हे स्त्रि! यस्ते विश्वकर्मर्षिः पतिरहमन्तरिक्षस्य धर्त्रीं दिशां विष्टम्भनीं भुवानानामधिपत्नीं सूर्य्यामिव त्वादित्याः पृष्ठे सादयामि। योपामूर्मिरिव ते द्रप्स आनन्दस्तेन युक्तासि तां त्वेहाध्वर्यू अश्विना सादयताम्॥५॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। याः स्त्रियोऽक्षयसुखकारिण्यः प्रसिद्धदिक्कीर्त्तयो विद्वत्पतयः सदानन्दिताः सन्ति, ता एव गृहाश्रमधर्मपालनोन्नतये प्रभवन्ति। मधुश्चेति [यजु०१३.२५] मन्त्रमारभ्यैतन्मन्त्रपर्य्यन्तं वसन्तर्त्तुगुणव्याख्यानं प्राधान्येन कृतमिति ज्ञेयम्॥५॥

पदार्थः-हे स्त्रि! जो **(ते)** तेरा **(विश्वकर्मा)** सब शुभ कर्मों से युक्त **(ऋषिः)** विज्ञानदाता पति मैं **(अन्तरिक्षस्य)** अन्तःकरण के नाशरहित विज्ञान को **(धर्त्रीम्)** धारण करने **(दिशाम्)** पूर्वादि दिशाओं की **(विष्टम्भनीम्)** आधार और **(भुवनानाम्)** सन्तानोत्पत्ति के निमित्त घरों की **(अधिपत्नीम्)** अधिष्ठाता होने से

पालन करने वाली **(त्वा)** तुझ को सूर्य्य की किरण के समान **(अदित्याः)** पृथिवी के **(पृष्ठे)** पीठ पर **(सादयामि)** घर की अधिकारिणी स्थापित करता हूँ, जो तू **(अपाम्)** जलों की **(ऊर्मिः)** तरंग के सदृश **(द्रप्सः)** आनन्दयुक्त **(असि)** है, उस **(त्वा)** तुझ को **(इह)** इह गृहाश्रम में **(अध्वर्यू)** रक्षा के निमित्त यज्ञ को करने वाले **(अश्विना)** विद्या में व्याप्तबुद्धि अध्यापक और उपदेशक पुरुष **(सादयताम्)** स्थापित करें॥५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो स्त्रियाँ अविनाशी सुख देनेहारी सब दिशाओं में प्रसिद्ध कीर्ति वाली विद्वान् पतियों से युक्त सदा आनन्दित हैं, वे ही गृहाश्रम का धर्म पालने और उस की उन्नति के लिये समर्थ होती हैं, तेरहवें अध्याय में जो (मधुश्च०मन्त्र २५) कहा है, वहां से यहां तक वसन्त ऋतु के गुणों की प्रधानता से व्याख्यान किया है, ऐसा जानना चाहिये॥५॥

शुक्रश्चेत्यस्योशना ऋषिः। ग्रीष्मर्तुर्देवता। निचृदुत्कृतिश्छन्दः। षड्जः स्वरः।

अथ ग्रीष्मर्तुवर्णनमाह॥

फिर भी ग्रीष्म ऋतु का व्याख्यान अगले मन्त्र में कहा है॥

शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मावृतूऽ अग्नेरन्तःश्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामापऽ ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः। येऽअग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवीऽइमे। ग्रैष्मावृतूऽ अभिकल्पमानाऽइन्द्रमिव देवाऽअभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम्॥६॥

शुक्रः। च। शुचिः। च। ग्रैष्मौ। ऋतू। अग्नेः। अन्तःश्लेष इत्यन्तःऽश्लेषः। असि। कल्पेताम्। द्यावापृथिवी इति द्यावाऽपृथिवी। कल्पन्ताम्। आपः। ओषधयः। कल्पन्ताम्। अग्नयः। पृथक्। मम। ज्यैष्ठ्याय। सव्रता इति सऽव्रताः। ये। अग्नयः। समनस इति सऽमनसः। अन्तरा। द्यावापृथिवी इति द्यावाऽपृथिवी। इमेऽइतीमे। ग्रैष्मौ। ऋतूऽइत्यृतू। अभिकल्पमाना इत्यभिऽकल्पमानाः। इन्द्रमिवेतीन्द्रम्ऽइव। देवाः। अभिसंविशन्त्वित्यभिऽसंविशन्तु। तया। देवतया। अङ्गिरस्वत्। ध्रुवे इति ध्रुवे। सीदतम्॥६॥

पदार्थः-**(शुक्रः)** य आशु पांसुवर्षातीव्रतापाभ्यामन्तरिक्षं मलिनं करोति स ज्येष्ठः **(च)** **(शुचिः)** पवित्रकारक आषाढः **(च)** **(ग्रैष्मौ)** ग्रीष्मे भवौ **(ऋतू)** यावृच्छतस्तौ **(अग्नेः)** पावकस्य **(अन्तःश्लेषः)** मध्य आलिङ्गनम् **(असि)** अस्ति **(कल्पेताम्)** समर्थयेताम् **(द्यावापृथिवी)** प्रकाशान्तरिक्षे **(कल्पन्ताम्)** **(आपः)** जलानि **(ओषधयः)** यवसोमाद्याः **(कल्पन्ताम्)** **(अग्नयः)** पावकाः **(पृथक्)** **(मम)** **(ज्यैष्ठ्याय)** अतिशयेन प्रशस्यस्य भावाय **(सव्रताः)** सत्यैर्नियमैः सह वर्तमानाः **(ये)** **(अग्नयः)** **(समनसः)** मनसा सह वर्तमानाः **(अन्तरा)** मध्ये **(द्यावापृथिवी)** **(इमे)** **(ग्रैष्मौ)** **(ऋतू)** **(अभिकल्पमानाः)** आभिमुख्येन

समर्थयन्त: **(इन्द्रमिव)** यथा विद्युतम् **(देवा:)** विद्वांस: **(अभिसंविशन्तु)** अभित: सम्यक् प्रविशन्तु **(तया)** **(देवतया)** दिव्यगुणया **(अङ्गिरस्वत्)** अङ्गानां रस: कारणं तद्वत् **(ध्रुवे)** निश्चले **(सीदतम्)** विजानीतम्॥६॥

अन्वय:-हे स्त्रीपुरुषौ! यथा मम ज्यैष्ठ्याय यौ शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मावृतू ययोरग्नेरन्त:श्लेषोऽस्यस्ति याभ्यां द्यावापृथिवी कल्पेतामाप: कल्पन्तामोषधयोग्नयश्च ये पृथक् कल्पन्तां यथा समनस: सव्रता अग्नयोऽन्तरा कल्पन्ते तैर्ग्रैष्मावृतू अभिकल्पमाना देवा भवन्त इन्द्रमिव तानग्नीनभिसंविशन्तु तथा तया देवतया सह युवामिमे द्यावापृथिवी ध्रुवे एतौ चाङ्गिरस्वत् सीदतम्॥६॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। वसन्तर्त्तुव्याख्यानानन्तरं ग्रीष्मर्त्तुर्व्याख्यायते। हे मनुष्या:! यूयं ये पृथिव्यादिस्था: शरीरात्ममानसाश्चाग्नयो वर्त्तन्ते, यैर्विना ग्रीष्मर्त्तुसंभवो न जायते, तां विज्ञायोपयुज्य सर्वेभ्य: सुखं प्रयच्छत॥६॥

पदार्थ:-हे स्त्री-पुरुषो! जैसे **(मम)** मेरे **(ज्यैष्ठ्याय)** प्रशंसा के योग्य होने के लिये जो **(शुक्र:)** शीघ्र धूली की वर्षा और तीव्र ताप से आकाश को मलीन करने हारा ज्येष्ठ **(च)** और **(शुचि:)** पवित्रता का हेतु आषाढ़ **(च)** ये दोनों मिल के प्रत्येक **(ग्रैष्मौ)** ग्रीष्म **(ऋतू)** ऋतु कहाते हैं। जिस **(अग्ने:)** अग्नि के **(अन्त:श्लेष:)** मध्य में कफ के रोग का निवारण **(असि)** होता है, जिससे ग्रीष्म ऋतु के महीनों से **(द्यावापृथिवी)** प्रकाश और अन्तरिक्ष **(कल्पेताम्)** समर्थ होवें, **(आप:)** जल **(कल्पन्ताम्)** समर्थ हों, **(ओषधय:)** यव वा सोमलता आदि ओषधियां और **(अग्नय:)** बिजुली आदि अग्नि **(पृथक्)** अलग-अलग **(कल्पन्ताम्)** समर्थ होवें। जैसे **(समनस:)** विचारशील **(सव्रता:)** सत्याचरणरूप नियमों से युक्त **(अग्नय:)** अग्नि के तुल्य तेजस्वी को **(अन्तरा)** **(ग्रैष्मौ)** **(ऋतू)** **(अभिकल्पमाना:)** सन्मुख होकर समर्थ करते हुए **(देवा:)** विद्वान् लोग **(इन्द्रमिव)** बिजुली के समान उन अग्नियों की विद्या में **(अभिसंविशन्तु)** सब ओर से अच्छे प्रकार प्रवेश करें, वैसे **(तया)** उस **(देवतया)** परमेश्वर देवता के साथ तुम दोनों **(इमे)** इन **(द्यावापृथिवी)** प्रकाश और पृथिवी को **(ध्रुवे)** निश्चल स्वरूप से इन का भी **(अङ्गिरस्वत्)** अवयवों के कारणरूप रस के समान **(सीदतम्)** विशेष कर के ज्ञान कर प्रवर्त्तमान रहो॥६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। वसन्त ऋतु के व्याख्यान के पीछे ग्रीष्म ऋतु की व्याख्या करते हैं। हे मनुष्यो! तुम लोग जो पृथिवी आदि पञ्चभूतों के शरीरसम्बन्धी वा मानस अग्नि हैं कि जिन के विना ग्रीष्म ऋतु नहीं हो सकता, उन को जान और उपयोग में ला के सब प्राणियों को सुख दिया करो॥६॥

सजूर्ऋतुभिरित्यस्य विश्वेदेवा ऋषय:। वस्वादयो मन्त्रोक्ता देवता:। सजूर्ऋतुभिरत्यस्य [प्रथमस्य] भुरिक्प्रकृतिश्छन्द:। धैवत: स्वर:॥ सजूर्ऋतुभिरिति द्वितीयस्य स्वराट्पङ्क्तिश्छन्द:। सजूर्ऋतुभिरिति तृतीयस्य निचृदाकृतिश्छन्द:। पञ्चम: स्वरश्च॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्देवैः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्वसुभिः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाऽध्वर्यू सादयतामिह त्वा सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजू रुद्रैः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूरादित्यैः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्विश्वैर्देवैः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा॥७॥

सजूरिति सऽजूः। ऋतुभिरित्यृतुऽभिः। सजूरिति सऽजूः। विधाभिरिति विऽधाभिः। सजूरिति सऽजूः। देवैः। सजूरिति सऽजूः। देवैः। वयोनाधैरिति वयःऽनाधैः। अग्नये। त्वा। वैश्वानराय। अश्विना। अध्वर्यूऽइत्यध्वर्यू। सादयताम्। इह। त्वा। सजूरिति सऽजूः। ऋतुभिरित्यृतुऽभिः। सजूरिति सऽजूः। विधाभिरिति विऽधाभिः। सजूरिति सऽजूः। वसुभिरिति वसुऽभिः। सजूरिति सऽजूः। देवैः। वयोनाधैरिति वयःऽनाधैः। अग्नये। त्वा। वैश्वानराय। अश्विना। अध्वर्यूऽइत्यध्वर्यू सादयताम्। इह। त्वा। सजूरिति सऽजूः। ऋतुभिरित्यृतुऽभिः। सजूरिति सऽजूः। विधाभिरिति विऽधाभिः। सजूरिति सऽजूः। रुद्रैः। सजूरिति सऽजूः। देवैः। वयोनाधैरिति वयःऽनाधैः। अग्नये। त्वा। वैश्वानराय। अश्विना। अध्वर्यूऽइत्यध्वर्यू। सादयताम्। इह। त्वा। सजूरिति सऽजूः। ऋतुभिरित्यृतुऽभिः। सजूरिति सऽजूः। विधाभिरिति विऽधाभिः। सजूरिति सऽजूः। आदित्यैः। सजूरिति सऽजूः। देवैः। वयोनाधैरिति वयःऽनाधैः। अग्नये। त्वा। वैश्वानराय। अश्विना। अध्वर्यूऽइत्यध्वर्यू। सादयताम्। इह। त्वा। सजूरिति सऽजूः। ऋतुभिरित्यृतुऽभिः। सजूरिति सऽजूः। विधाभिरिति विऽधाभिः। सजूरिति सऽजूः। विश्वैः। देवैः। सजूरिति सऽजूः। देवैः। वयोनाधैरिति वयःऽनाधैः। अग्नये। त्वा। वैश्वानराय। अश्विना। अध्वर्यूऽइत्यध्वर्यू। सादयताम्। इह। त्वा॥७॥

पदार्थः-(सजूः) यः समानं प्रीणाति सेवते वा **(ऋतुभिः)** वसन्तादिभिश्च सह **(सजूः) (विधाभिः)** अद्भिः **(सजूः) (देवैः)** दिव्यैर्गुणैः **(सजूः) (देवैः)** दिव्यसुखप्रदैः **(वयोनाधैः)** वयांसि जीवनादीनि गायत्र्यादिछन्दांसि वा नह्यन्ति यैः प्राणैस्तैः **(अग्नये)** पावकाय **(त्वा)** त्वाम् **(वैश्वानराय)** अखिलानां पदार्थानां नयनाय प्रापणाय **(अश्विना) (अध्वर्यू) (सादयताम्) (इह) (त्वा)** त्वां स्त्रियं पुरुषं वा **(सजूः) (ऋतुभिः) (सजूः) (विधाभिः) (सजूः) (वसुभिः)** अग्न्यादिभिरष्टभिः **(सजूः) (देवैः)** दिव्यैः **(वयोनाधैः)** वयांसि विज्ञानानि नह्यन्ति यैर्विद्वद्भिः **(अग्नये)** विज्ञानाय **(त्वा) (वैश्वानराय)** विश्वस्य सर्वस्य जगतो नायकाय **(अश्विना) (अध्वर्यू) (सादयताम्) (इह) (त्वा) (सजूः) (ऋतुभिः) (सजूः) (विधाभिः)** विविधानि वस्तूनि दधति याभिः प्राणचेष्टाभिस्ताभिः **(सजूः) (रुद्रैः)** प्राणापानव्यानोदानसमाननागकूर्मकृकलदेवदत्तधनञ्जयजीवैः **(सजूः) (देवैः)** विद्वद्भिः **(वयोनाधैः)**

वेदादिशास्त्रप्रज्ञापनप्रबन्धकैः **(अग्नये)** शास्त्रविज्ञानाय **(त्वा)** **(वैश्वानराय)** विश्वेषां नराणामिदं सुखसाधकं तस्मै **(अश्विना)** **(अध्वर्यू)** **(सादयताम्)** **(इह)** **(त्वा)** **(सजूः)** **(ऋतुभिः)** सहचरितैः सुखैः **(सजूः)** **(विधाभिः)** विविधाभिः सत्यक्रियाधारिकाभिः क्रियाभिः **(सजूः)** **(आदित्यैः)** संवत्सरस्य द्वादशमासैः **(सजूः)** **(देवैः)** पूर्णविद्यैः **(वयोनाधैः)** पूर्णविद्याविज्ञानप्रचारप्रबन्धकैः **(अग्नये)** पूर्णाय विज्ञानाय **(त्वा)** **(वैश्वानराय)** विश्वेषां नराणामिदं पूर्णसुखसाधनं तस्मै **(अश्विना)** **(अध्वर्यू)** **(सादयताम्)** **(इह)** **(त्वा)** **(सजूः)** **(ऋतुभिः)** सर्वैः कालावयवैः **(सजूः)** **(विधाभिः)** समस्ताभिः सुखव्यापिकाभिः **(सजूः)** **(विश्वैः)** समस्तैः **(देवैः)** परोपकाराय सत्यासत्यविज्ञापयितृभिः **(सजूः)** **(देवैः)** **(वयोनाधैः)** ये वयः कामयमानं जीवनं नह्यन्ति तैः **(अग्नये)** सुशिक्षाप्रकाशाय **(त्वा)** **(वैश्वानराय)** विश्वेषां नराणामिदं हितं तस्मै **(अश्विना)** **(अध्वर्यू)** **(सादयताम्)** **(इह)** **(त्वा)**। [अयं मन्त्रः शत०८.२.२.८ व्याख्यातः]॥७॥

अन्वयः-हे स्त्रि पुरुष वा यं त्वा त्वामिहाध्वर्यू अश्विना वैश्वानरायाग्नये सादयतां वयं च यं त्वा सादयेम स त्वमृतुभिः सह सजूर्विधाभिः सह सजूर्देवैस्सह सजूर्वयोनाधैर्देवैः सह सजूश्च भव। हे पुरुषार्थयुक्ते स्त्रि वा पुरुष! यं त्वा त्वामिह वैश्वानरायाग्नयेऽध्वर्यू अश्विना सादयतां यं त्वा वयं च सादयेम स त्वमृतुभिः सह सजूर्विधाभिः सह सजूर्वसुभिः सह सजूर्वयोनाधैर्देवैः सह च सजूर्भव। हे विद्याध्यायनाय प्रवृत्ते ब्रह्मचारिणि वा ब्रह्मचारिन्! यं त्वेह वैश्वानरायाग्नयेऽध्वर्यू अश्विना सादयतां यं त्वा वयं च सादयेम स त्वमृतुभिः सह सजूर्विधाभिः सह सजूः रुद्रैः सह सजूर्वयोनाधैर्देवैः सह च सजूर्भव। हे पूर्णविद्ये स्त्रि पुरुष वा यं त्वेह वैश्वानरायाग्नयेऽध्वर्यू अश्विना सादयतां यं त्वा वयं च सादयेम स त्वमृतुभिः सह सजूर्विधाभिः सह सजूरादित्यैः सह सजूर्वयोनाधैर्देवैः सह च सजूर्भव। हे सत्यार्थोपदेशिके स्त्रि पुरुष वा यं त्वेह वैश्वानरायाग्नयेऽध्वर्यू अश्विना सादयतां यं त्वा वयं च सादयेम स त्वमृतुभिः सह सजूर्विधाभिः सह सजूर्विश्वैर्देवैः सह सजूर्वयोनाधैर्देवैः सह च सजूर्भव॥७॥

भावार्थः-अस्मिन् जगति मनुष्यजन्म प्राप्य स्त्रियो विदुष्यः पुरुषा विद्वांसश्च भूत्वा येषु ब्रह्मचर्यविद्यासुशिक्षाग्रहणादिषु शुभेषु कर्मसु स्वयं प्रवृत्ता भूत्वा यानन्यान् प्रवर्त्तयेयुस्तेऽत्र प्रवर्त्तित्वा परमेश्वरमारभ्य पृथिवीपर्य्यन्तानां पदार्थानां यथार्थेन विज्ञानेनोपयोगं संगृह्य सर्वेष्वृतुषु स्वयं सुखयन्त्वन्यांश्च॥७॥

पदार्थः-हे स्त्रि वा पुरुष! जिस **(त्वा)** तुझ को **(इह)** इस जगत् में **(अध्वर्यू)** रक्षा करने हारे **(अश्विना)** सब विद्याओं में व्यापक पढ़ाने और उपदेश करने वाले पुरुष और स्त्री **(वैश्वानराय)** सम्पूर्ण पदार्थों की प्राप्ति के निमित्त **(अग्नये)** अग्नि विद्या के लिये **(सादयताम्)** नियुक्त करें और हम लोग भी जिस **(त्वा)** तुझ को स्थापित करें सो तू **(ऋतुभिः)** वसन्त और वर्षा आदि ऋतुओं के साथ **(सजूः)** एक सी तृप्ति वा सेवा से युक्त **(विधाभिः)** जलों के साथ **(सजूः)** प्रीतियुक्त **(देवैः)** अच्छे गुणों के साथ **(सजूः)** प्रीतिवाली वा प्रीति वाला और **(वयोनाधैः)** जीवन आदि वा गायत्री आदि छन्दों के साथ सम्बन्ध

के हेतु **(देवैः)** दिव्य सुख देने हारे प्राणों के साथ **(सजूः)** समान सेवन से युक्त हो। हे पुरुषार्थयुक्त स्त्रि वा पुरुष! जिस **(त्वा)** तुझ को **(इह)** इस गृहाश्रम में **(वैश्वानराय)** सब जगत् के नायक **(अग्नये)** विज्ञानदाता ईश्वर की प्राप्ति के लिये **(अध्वर्यू)** रक्षक **(अश्विना)** सब विद्याओं में व्याप्त अध्यापक और उपदेशक **(सादयताम्)** स्थापित करें और जिस **(त्वा)** तुझको हम लोग नियत करें सो तू **(ऋतुभिः)** ऋतुओं के साथ **(सजूः)** पुरुषार्थी **(विधाभिः)** विविध प्रकार के पदार्थों के धारण के हेतु प्राणों की चेष्टाओं के साथ **(सजूः)** समान सेवन वाले **(वसुभिः)** अग्नि आदि आठ पदार्थों के साथ **(सजूः)** प्रीतियुक्त और **(वयोनाधैः)** विज्ञान का सम्बन्ध कराने हारे **(देवैः)** सुन्दर विद्वानों के साथ **(सजूः)** समान प्रीति वाले हों। हे विद्या पढ़ने के लिये प्रवृत्त हुए ब्रह्मचारिणी वा ब्रह्मचारी! जिस **(त्वा)** तुझ को **(इह)** इस ब्रह्मचर्य्याश्रम में **(वैश्वानराय)** सब मनुष्यों के सुख के साधन **(अग्नये)** शास्त्रों के विज्ञान के लिये **(अध्वर्यू)** पालने हारे **(अश्विना)** पूर्ण विद्यायुक्त अध्यापक और उपदेशक लोग **(सादयताम्)** नियुक्त करें और जिस **(त्वा)** तुझ को हम लोग स्थापित करें सो तू **(ऋतुभिः)** ऋतुओं के साथ **(सजूः)** अनुकूल सेवन वाले **(विधाभिः)** विविध प्रकार के पदार्थों के धारण के निमित्त प्राण की चेष्टाओं से **(सजूः)** समान प्रीति वाले **(रुद्रैः)** प्राण, अपान, व्यान उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय और जीवात्मा इन ग्यारहों के **(सजूः)** अनुसार सेवा करने हारे और **(वयोनाधैः)** वेदादि शास्त्रों के जनाने का प्रबन्ध करनेहारे **(देवैः)** विद्वानों के साथ **(सजूः)** बराबर प्रीति वाले हों। हे पूर्णविद्या वाले स्त्री वा पुरुष! जिस **(त्वा)** तुझ को **(इह)** इस संसार में **(वैश्वानराय)** सब मनुष्यों के लिये पूर्ण सुख के साथ **(अग्नये)** पूर्ण विज्ञान के लिये **(अध्वर्यू)** रक्षक **(अश्विना)** शीघ्र ज्ञानदाता लोग **(सादयताम्)** नियत करें और जिस **(त्वा)** तुझ को हम नियुक्त करें सो तू **(ऋतुभिः)** ऋतुओं के साथ **(सजूः)** अनुकूल आचरण वाले **(विधाभिः)** विविध प्रकार की सत्यक्रियाओं के साथ **(सजूः)** समान प्रीति वाले **(आदित्यैः)** वर्ष के बारह महीनों के साथ **(सजूः)** अनुकूल आहारविहारयुक्त और **(वयोनाधैः)** पूर्ण विद्या के विज्ञान और प्रचार के प्रबन्ध करने हारे **(देवैः)** पूर्ण विद्यायुक्त विद्वानों के **(सजूः)** अनुकूल प्रीति वाले हों। हे सत्य अर्थों का उपदेश करने हारी स्त्री वा पुरुष! जिस **(त्वा)** तुझ को **(इह)** इस जगत् में **(वैश्वानराय)** सब मनुष्यों के हितकारी **(अग्नये)** अच्छे शिक्षा के प्रकाश के लिये **(अध्वर्यू)** ब्रह्मविद्या के रक्षक **(अश्विना)** शीघ्र पढ़ाने और उपदेश करनेहारे लोग **(सादयताम्)** स्थित करें और जिस **(त्वा)** तुझ को हम लोग नियत करें सो तू **(ऋतुभिः)** काल क्षण आदि सब अवयवों के साथ **(सजूः)** अनुकूल सेवी **(विधाभिः)** सुखों में व्यापक सब क्रियाओं के **(सजूः)** अनुसार होकर **(विश्वैः)** सब **(देवैः)** सत्योपदेशक पतियों के साथ **(सजूः)** समान प्रीति वाले और **(वयोनाधैः)** कामयमान जीवन का सम्बन्ध करानेहारे **(देवैः)** परोपकार के लिये सत्य असत्य के जनाने वाले जनों के साथ **(सजूः)** समान प्रीति वाले हों॥७॥

भावार्थः-इस संसार में मनुष्य का जन्म पाके स्त्री तथा पुरुष विद्वान् होकर जिन ब्रह्मचर्य्य-सेवन, विद्या और अच्छी शिक्षा के ग्रहण आदि शुभ-गुण, कर्मों में आप प्रवृत्त होकर जिन अन्य लोगों को प्रवृत्त करें, वे उन में प्रवृत्त होकर परमेश्वर से लेके पृथिवीपर्यन्त पदार्थों के यथार्थ विज्ञान से उपयोग ग्रहण करके सब ऋतुओं में आप सुखी रहें और अन्यों को सुखी करें॥७॥

प्राणम्म इत्यस्य विश्वदेव ऋषिः। दम्पती देवते। भुरिगतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

प्राणम्मे पाह्यपानम्मे पाहि व्यानम्मे पाहि चक्षुर्मऽउर्व्या विभाहि श्रोत्रम्मे श्लोकय। अपः पिन्वौषधीर्जिन्व द्विपादव चतुष्पात् पाहि दिवो वृष्टिमेरय॥८॥

प्राणम्। मे। पाहि। अपानमित्यपऽआनम्। मे। पाहि। व्यानमिति विऽआनम्। मे। पाहि। चक्षुः। मे। उर्व्या। वि। भाहि। श्रोत्रम्। मे। श्लोकय। अपः। पिन्व। ओषधीः। जिन्व। द्विपादिति द्विऽपात्। अव। चतुष्पात्। चतुःपादिति चतुःऽपात्। पाहि। दिवः। वृष्टिम्। आ। ईरय॥८॥

पदार्थः-(**प्राणम्**) नाभेरूर्ध्वगामिनम् (**मे**) मम (**पाहि**) रक्ष (**अपानम्**) यो नाभेरर्वाग्गच्छति तम् (**मे**) मम (**पाहि**) (**व्यानम्**) यो विविधेषु शरीरसंधिष्वनिति तम् (**मे**) (**पाहि**) (**चक्षुः**) नेत्रम् (**मे**) (**उर्व्या**) बहुरूपयोत्तमफलप्रदया पृथिव्या सह। **उर्वीति पृथिवीना०॥** (निघं०१।१) (**वि**) (**भाहि**) (**श्रोत्रम्**) (**मे**) (**श्लोकय**) शास्त्रश्रवणाय सम्बन्धय (**अपः**) प्राणान् (**पिन्व**) पुष्णीहि सिञ्च (**ओषधीः**) सोमयवादीन् (**जिन्व**) प्राप्नुहि। **जिन्वतीति गतिकर्म्मा०॥** (निघं०२।१४) (**द्विपात्**) मनुष्यादीन् (**अव**) रक्ष (**चतुष्पात्**) गवादीन् (**पाहि**) (**दिवः**) सूर्य्यप्रकाशात् (**वृष्टिम्**) (**आ**) (**ईरय**) प्रेरय। [अयं मन्त्रः शत०८.२.३.३ व्याख्यातः]॥८॥

अन्वयः-हे पते स्त्रि पुरुष वा! त्वमुर्व्या सह मे प्राणं पाहि, मेऽपानं पाहि, मे व्यानं पाहि, मे चक्षुर्विभाहि, मे श्रोत्रं श्लोकयापः पिन्वौषधीर्जिन्व द्विपादव चतुष्पात् पाहि। यथा सूर्यो दिवो वृष्टिं करोति तथा गृहकृत्यमेरय॥८॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। स्त्रीपुरुषौ स्वयंवरं विवाहं विधायातिप्रेम्णा परस्परं प्राणप्रियाचरणं शास्त्रश्रवणमोषध्यादिसेवनं कृत्वा यज्ञाद् वृष्टिं च कारयेताम्॥८॥

पदार्थः-हे पते वा स्त्रि! तू (**उर्व्या**) बहुत प्रकार की उत्तम क्रिया से (**मे**) मेरे (**प्राणम्**) नाभि से ऊपर को चलने वाले प्राणवायु की (**पाहि**) रक्षा कर (**मे**) मेरे (**अपानम्**) नाभि के नीचे गुह्येन्द्रिय मार्ग से निकलने वाले अपान वायु की (**पाहि**) रक्षा कर (**मे**) मेरे (**व्यानम्**) विविध प्रकार की शरीर की संधियों में रहने वाले व्यान वायु की (**पाहि**) रक्षा कर (**मे**) मेरे (**चक्षुः**) नेत्रों को (**विभाहि**) प्रकाशित कर (**मे**) मेरे

(श्रोत्रम्) कानों को **(श्लोकय)** शास्त्रों के श्रवण से संयुक्त कर **(अपः)** प्राणों को **(पिन्व)** पुष्ट कर **(ओषधीः)** सोमलता वा यव आदि ओषधियों को **(जिन्व)** प्राप्त हो **(द्विपात्)** मनुष्यादि दो पगवाले प्राणियों की **(अव)** रक्षा कर **(चतुष्पात्)** चार पग वाले गौ आदि की **(पाहि)** रक्षा कर और जैसे सूर्य्य **(दिवः)** अपने प्रकाश से **(वृष्टिम्)** वर्षा करता है, वैसे घर के कार्यों को **(एरय)** अच्छे प्रकार प्राप्त कर॥८॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। स्त्री-पुरुषों को चाहिये कि स्वयंवर विवाह करके अति प्रेम के साथ आपस में प्राण के समान प्रियाचरण, शास्त्रों का सुनना, ओषधि आदि का सेवन और यज्ञ के अनुष्ठान से वर्षा करावें॥८॥

मूर्धा वय इत्यस्य विश्वेदेवा ऋषयः। प्रजापत्यादयो देवताः। पूर्वस्य निचृद्ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। पुरुष इत्युत्तरस्य शक्वरी छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

मूर्धा वयः॑ प्रजाप॑तिश्छन्दः॑ क्षत्रं वयो॒ मय॑न्दं॒ छन्दो॑ विष्टम्भो वयोऽधि॑पतिश्छन्दो॑ वि॒श्वक॑र्मा॒ वयः॑ परमे॒ष्ठी छन्दो॑ ब॒स्तो वयो॑ विब॒लं छन्दो॒ वृष्णि॒र्वयो॑ विशा॒लं छन्दः॒ पु॑रुषो॒ वय॑स्त॒न्द्रं छन्दो॑ व्या॒घ्रो वयोऽना॑धृष्टं छन्दः॑ सिꣳहो वय॑श्छ॒दिश्छन्दः॑ पष्ठवाड् वयो॑ बृह॒ती छन्द॑ऽ उ॒क्षा वयः॑ क॒कुप् छन्द॑ऽ ऋ॒ष॒भो वयः॑ स॒तोबृ॑ह॒ती छन्दः॑॥९॥

मू॒र्धा। वयः॑। प्र॒जाप॑ति॒रिति॑ प्र॒जाऽप॑तिः। छन्दः॑। क्ष॒त्रम्। वयः॑। मय॑न्दम्। छन्दः॑। वि॒ष्ट॒म्भः। वयः॑। अधि॑पति॒रित्यधि॑ऽपतिः। छन्दः॑। वि॒श्वक॒र्म्मेति॑ वि॒श्वऽक॑र्म्मा। वयः॑। प॒र॒मे॒ष्ठी। प॒र॒मे॒स्थीति॑ परमे॒ऽस्थी। छन्दः॑। ब॒स्तः। वयः॑। वि॒ब॒लमिति॑ विऽब॒लम्। छन्दः॑। वृष्णिः॑। वयः॑। वि॒शा॒लमिति॑ विऽशा॒लम्। छन्दः॑। पुरु॑षः। वयः॑। त॒न्द्रम्। छन्दः॑। व्या॒घ्रः। वयः॑। अना॑धृष्टम्। छन्दः॑। सि॒ꣳहः। वयः॑। छ॒दिः। छन्दः॑। प॒ष्ठ॒वाडिति॑ पष्ठ॒ऽवाट्। वयः॑। बृ॒ह॒ती। छन्दः॑। उ॒क्षा। वयः॑। क॒कुप्। छन्दः॑। ऋ॒ष॒भः। वयः॑। स॒तोबृ॑ह॒तीति॑ स॒तःऽबृ॑हती। छन्दः॑॥९॥

पदार्थः-**(मूर्धा)** मूर्धावदुत्तमं ब्राह्मणकुलम् **(वयः)** कमनीयम् **(प्रजापतिः)** प्रजापालकः **(छन्दः)** विद्याधर्मशमादिकर्म **(क्षत्रम्)** क्षत्रियकुलम् **(वयः)** न्यायविनयपराक्रमव्याप्तम् **(मयन्दम्)** यन्मयं सुखं ददाति तत् **(छन्दः)** बलयुक्तम् **(विष्टम्भः)** विशो वैश्यस्य विष्टम्भो रक्षणं येन **(वयः)** प्रजनकः **(अधिपतिः)** अधिष्ठाता **(छन्दः)** स्वाधीनः **(विश्वकर्मा)** अखिलोत्तमकर्मकर्ता राजा **(वयः)** कमिता **(परमेष्ठी)** सर्वेषां स्वामी **(छन्दः)** स्वाधीनः **(वस्तः)** व्यवहारैराच्छादितो युक्तः **(वयः)** विविधव्यवहारव्यापी **(विबलम्)** विविधं बलं यस्मात् **(छन्दः)** **(वृष्णिः)** सुखसेचकः **(वयः)** सुखप्रापकम् **(विशालम्)** विस्तीर्णम् **(छन्दः)** स्वाच्छन्द्यम् **(पुरुषः)** पुरुषार्थयुक्तः **(वयः)** कमनीयं कर्म्म **(तन्द्रम्)** कुटुम्बधारणम्। अत्र **तन्त्रि कुटुम्बधारण** इत्यस्मादच्, वर्णव्यत्ययेन तस्य दः **(छन्दः)** बलम् **(व्याघ्रः)** यो विविधान् समन्ताज्जिघ्रति **(वयः)** कमनीयम्

(अनाधृष्टम्) धार्ष्ट्यम् **(छन्दः)** बलम् **(सिंहः)** यो हिनस्ति पश्वादीन् सः **(वयः)** पराक्रमम् **(छदिः)** अपवारणम् **(छन्दः)** प्रदीपनम् **(पष्ठवाट्)** यः पष्ठेन पृष्ठेन वहत्युष्ट्रादिः। वर्णव्यत्ययेन ऋकारस्यात्राकारादेशः **(वयः)** बलवान् **(बृहती)** महत्त्वम् **(छन्दः)** पराक्रमम् **(उक्षा)** सेचको वृषभः **(वयः)** बलिष्ठः **(ककुप्)** दिशः **(छन्दः)** आनन्दम् **(ऋषभः)** गतिमान् पशुः **(वयः)** बलिष्ठः **(सतोबृहती)** **(छन्दः)** स्वातन्त्र्यम्। [अयं मन्त्रः शत०८.२.४.१-८ व्याख्यातः]॥९॥

अन्वयः-हे स्त्रि पुरुष वा! मूर्धा प्रजापतिरिव त्वं वयो मयन्दं छन्दः क्षत्रमेरय, विष्टम्भोऽधिपतिरिव त्वं वयश्छन्द एरय, विश्वकर्मा परमेष्ठीव त्वं वयश्छन्द एरय, वस्त इव त्वं वयो विबलं छन्द एरय, वृष्णिरिव त्वं विशालं वयश्छन्द एरय। पुरुष इव त्वं वयस्तन्द्रं छन्द एरय, व्याघ्र इव त्वं वयोनाधृष्ट छन्द एरय, सिंह इव त्वं वयश्छदिश्छन्द एरय, पष्ठवाडिव त्वं बृहती वयश्छन्द एरय, उक्षेव त्वं वयः ककुप्छन्द एरय, ऋषभ इव त्वं वयः सतोबृहती छन्द एरय प्रेरय॥९॥

भावार्थः-अत्र श्लेषवाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। एरयेति पूर्वस्मान्मन्त्रादनुवर्त्तते। स्त्रीपुरुषैर्ब्राह्मणादिवर्णान् स्वच्छन्दान् संपाद्य वेदादीन् प्रचार्य्यालस्यादिकं त्यक्त्वा शत्रून्निवार्य्य महद् बलं सदा वर्द्धनीयम्॥९॥

पदार्थः-हे स्त्रि वा पुरुष! **(मूर्धा)** शिर के तुल्य उत्तम ब्राह्मण का कुल **(प्रजापतिः)** प्रजा के रक्षक राजा के समान तू **(वयः)** कामना के योग्य **(मयन्दम्)** सुखदायक **(छन्दः)** बलयुक्त **(क्षत्रम्)** क्षत्रिय कुल को प्रेरणा कर **(विष्टम्भः)** वैश्यों की रक्षा का हेतु **(अधिपतिः)** अधिष्ठाता पुरुष नृप के समान तू **(वयः)** न्याय विनय को प्राप्त हुए **(छन्दः)** स्वाधीन पुरुष को प्रेरणा कर **(विश्वकर्म्मा)** सब उत्तम कर्म करने हारे **(परमेष्ठी)** सब के स्वामी राजा के समान तू **(वयः)** चाहने योग्य **(छन्दः)** स्वतन्त्रता को **(एरय)** बढ़ाइये **(वस्तः)** व्यवहारों से युक्त पुरुष के समान तू **(वयः)** अनेक प्रकार के व्यवहारों में व्यापी **(विबलम्)** विविध बल के हेतु **(छन्दः)** आनन्द को बढ़ा **(वृष्णिः)** सुख के सेचने वाले के सदृश तू **(विशालम्)** विस्तारयुक्त **(वयः)** सुखदायक **(छन्दः)** स्वतन्त्रता को बढ़ा **(पुरुषः)** पुरुषार्थयुक्त जन के तुल्य तू **(वयः)** चाहने योग्य **(तन्द्रम्)** कुटुम्ब के धारणरूप कर्म्म और **(छन्दः)** बल को बढ़ा **(व्याघ्रः)** जो विविध प्रकार के पदार्थों को अच्छे प्रकार सूंघता है, उस जन्तु के तुल्य राजा तू **(वयः)** चाहने योग्य **(अनाधृष्टम्)** दृढ़ **(छन्दः)** बल को बढ़ा **(सिहः)** पशु आदि को मारने हारे सिंह के समान पराक्रमी राजा तू **(वयः)** पराक्रम के साथ **(छदिः)** निरोध और **(छन्दः)** प्रकाश को बढ़ा **(पष्ठवाट्)** पीठ से बोझ उठाने वाले ऊंट आदि के सदृश वैश्य तू **(बृहती)** बड़े **(वयः)** बलयुक्त **(छन्दः)** पराक्रम को प्रेरणा कर **(उक्षा)** सींचने हारे बैल के तुल्य शूद्र तू **(वयः)** अति बल का हेतु **(ककुप्)** दिशाओं और **(छन्दः)** आनन्द को बढ़ा **(ऋषभः)** शीघ्रगन्ता पशु के तुल्य भृत्य तू **(वयः)** बल के साथ **(सतोबृहती)** उत्तम बड़ी **(छन्दः)** स्वतन्त्रता की प्रेरणा कर॥९॥

भावार्थः-इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं और पूर्व मन्त्र से एरय पद की अनुवृत्ति आती है। स्त्री-पुरुषों को चाहिये कि ब्राह्मण आदि वर्णों को स्वतन्त्र कर वेदादि शास्त्रों का प्रचार, आलस्यादि त्याग और शत्रुओं का निवारण करके बड़े बल को सदा बढ़ाया करें॥९॥

अनड्वानित्यस्य विश्वदेव ऋषिः। विद्वांसो देवताः। निचृदष्टिश्छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अनड्वान् वयः पङ्क्तिश्छन्दो धेनुर्वयो जगती छन्दस्त्र्यविर्वयस्त्रिष्टुप् छन्दो दित्यवाड् वयो विराट् छन्दः पञ्चाविर्वयो गायत्री छन्दस्त्रिवत्सो वयऽउष्णिक् छन्दस्तुर्य्यवाड् वयोऽनुष्टुप् छन्दः॥ १०॥

अनड्वान्। वयः। पङ्क्तिः। छन्दः। धेनुः। वयः। जगती। छन्दः। त्र्यविरिति त्रिऽअविः। वयः। त्रिष्टुप्। त्रिस्तुबिति त्रिऽस्तुप्। छन्दः। दित्यवाडिति दित्यऽवाट्। वयः। विराडिति विऽराट्। छन्दः। पञ्चाविरिति पञ्चऽअविः। वयः। गायत्री। छन्दः। त्रिवत्स इति त्रिऽवत्सः। वयः। उष्णिक्। छन्दः। तुर्यवाडिति तुर्यऽवाट्। वयः। अनुष्टुप्। अनुस्तुबित्यनुऽस्तुप्। छन्दः॥ १०॥

पदार्थः-(**अनड्वान्**) वृषभः (**वयः**) बलम् (**पङ्क्तिः**) (**छन्दः**) (**धेनुः**) दुग्धप्रदा (**वयः**) कामनाम् (**जगती**) जगदुपकारकम् (**छन्दः**) आह्लादनम् (**त्र्यविः**) त्रयोऽव्यादयो यस्मात्तम् (**वयः**) प्रजननम् (**त्रिष्टुप्**) त्रीणि कर्मोपासनाज्ञानानि स्तुवन्ति यया सा (**छन्दः**) (**दित्यवाट्**) दितिभिः खण्डनैर्निर्वृत्तान् यवादीन् वहति (**वयः**) प्रापणम् (**विराट्**) (**छन्दः**) आनन्दकरम् (**पञ्चाविः**) पञ्चेन्द्रियाण्यवन्ति येन सः (**वयः**) विज्ञानम् (**गायत्री**) (**छन्दः**) (**त्रिवत्सः**) त्रयः कर्मोपासनाज्ञानानि वत्सा इव यस्य सः (**वयः**) पराक्रमम् (**उष्णिक्**) यद् दुःखानि दहति तम् (**छन्दः**) (**तुर्यवाट्**) तुर्यान् चतुरो वेदान् वहति येन सः (**वयः**) (**अनुष्टुप्**) अनुस्तौति यया सा (**छन्दः**) सुखसाधकम्। अत्र पूर्ववत् मन्त्रत्रयप्रतीकानि लोकन्ता इन्द्रमिति लिखितानि निवारितानि। [अयं मन्त्रः शत०८.२.४.९-१५ व्याख्यातः]॥१०॥

अन्वयः-हे स्त्रि पुरुष वा! अनड्वानिव त्वं पङ्क्तिश्छन्दो वय एरय, धेनुरिव त्वं जगती छन्दो वय एरय, त्र्यविरिव त्वं त्रिष्टुप् छन्दो वय एरय, दित्यवाडिव त्वं विराट् छन्दो वय एरय, पञ्चाविरिव त्वं गायत्री छन्दो वय एरय, त्रिवत्स इव त्वमुष्णिक् छन्दो वय एरय, तुर्य्यवाडिव त्वमनुष्टुप् छन्दो वय एरय॥१०॥

भावार्थः-अत्र श्लेषवाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। एरयपदानुवृत्तिश्च। यथाऽनडुहादीनां रक्षणेन कृषीवला अन्नादीन्युत्पाद्य सर्वान् सुखयन्ति, तथैव विद्वांसः स्त्रीपुरुषा विद्यां प्रचार्य्य सर्वानानन्दयन्ति॥१०॥

पदार्थः-हे स्त्रि वा पुरुष! (**अनड्वान्**) गौ और बैल के समान बलवान् हो के तू (**पङ्क्तिः**) प्रकट (**छन्दः**) स्वतन्त्र (**वयः**) बल की प्रेरणा कर (**धेनुः**) दूध देने हारी गौ के समान तू (**जगती**) जगत् के

उपकारक **(छन्दः)** आनन्द की **(वयः)** कामना को बढ़ा **(त्र्यविः)** तीन भेड़, बकरी और गौ के अध्यक्ष के तुल्य वृद्धियुक्त होके तू **(त्रिष्टुप्)** कर्म्म, उपासना और ज्ञान की स्तुति के हेतु **(छन्दः)** स्वतन्त्र **(वयः)** उत्पत्ति को बढ़ा **(दित्यवाड्)** पृथिवी खोदने से उत्पन्न हुए जौ आदि को प्राप्त कराने हारी क्रिया के तुल्य तू **(विराट्)** विविध प्रकाशयुक्त **(छन्दः)** आनन्दकारक **(वयः)** प्राप्ति को बढ़ा **(पञ्चाविः)** पञ्च इन्द्रियों की रक्षा के हेतु ओषधि के समान तू **(गायत्री)** गायत्री **(छन्दः)** मन्त्र के **(वयः)** विज्ञान को बढ़ा **(त्रिवत्सः)** कर्म, उपासना और ज्ञान को चाहने हारे के तुल्य तू **(उष्णिक्)** दुःखों के नाशक **(छन्दः)** स्वतन्त्र **(वयः)** पराक्रम को बढ़ा और **(तुर्य्यवाट्)** चारों वेदों की प्राप्ति कराने हारे पुरुष के समान तू **(अनुष्टुप्)** अनुकूल स्तुति का निमित्त **(छन्दः)** सुखसाधक **(वयः)** इच्छा को प्रतिदिन बढ़ाया कर॥१०॥

भावार्थः-इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे खेती करने हारे लोग बैल आदि साधनों की रक्षा से अन्नादि पदार्थों को उत्पन्न करके सब को सुख देते हैं, वैसे ही विद्वान् लोग विद्या का प्रचार करके सब प्राणियों को आनन्द देते हैं॥१०॥

इन्द्राग्नी इत्यस्य विश्वेदेवा ऋषयः। इन्द्राग्नी देवते। भुरिगनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

इन्द्रा॑ग्नीऽ अव्य॑थमानामिष्ट॑कां दृꣳहतं युवम्।

पृष्ठेन॒ द्यावा॑पृथिवीऽ अ॒न्तरि॑क्षं च॒ विबा॑धसे॥११॥

इन्द्रा॑ग्नी॒ इतीन्द्रा॑ग्नी। अव्य॑थमानाम्। इष्ट॑काम्। दृꣳह॒तम्। युवम्। पृष्ठेन॑। द्यावा॑पृथि॒वी इति॒ द्यावा॑ऽपृथि॒वी। अ॒न्तरि॑क्षम्। च॒। वि। बा॒ध॒से॥११॥

पदार्थः-**(इन्द्राग्नी)** इन्द्रो विद्युच्चाग्नी सूर्य्यश्चेव **(अव्यथमानाम्)** अपीडितामचलिताम् **(इष्टकाम्)** इष्टं कर्म यस्यास्ताम् **(दृंहतम्)** वर्धेताम् **(युवम्)** युवाम् **(पृष्ठेन) (द्यावापृथिवी)** प्रकाशभूमी **(अन्तरिक्षम्)** आकाशम् **(च) (वि) (बाधसे)**। [अयं मन्त्रः शत०८.३.१.८ व्याख्यातः]॥११॥

अन्वयः-हे इन्द्राग्नी इव वर्त्तमानौ स्त्रीपुरुषौ! युवं युवामव्यथमानां प्रज्ञां प्राप्येष्टकामिव गृहाश्रमं दृंहतम्। यथा द्यावापृथिवी पृष्ठेनान्तरिक्षं बाधेते, तथा दुःखानि शत्रूंश्च बाधेथाम्। हे पुरुष! यथा त्वमेतस्याः स्वपत्न्याः पीडां विबाधसे तथा चेयमपि तव पीडां बाधताम्॥११॥

भावार्थः-अत्र श्लेषवाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। यथा विद्युत्सूर्य्यावपो वर्षित्वौषध्यादीन् वर्धयतस्तथैव स्त्रीपुरुषौ कुटुम्बं वर्धयेताम्। यथा प्रकाशः पृथिवी आकाशमाच्छादयतस्तथैव गृहाश्रमव्यवहारमलङ्कुर्याताम्॥११॥

पदार्थ:-हे **(इन्द्राग्नी)** बिजुली और सूर्य्य के समान वर्त्तमान स्त्री-पुरुषो! **(युवम्)** तुम दोनों **(अव्यथमानाम्)** जमी हुई बुद्धि को प्राप्त होके **(इष्टकाम्)** ईंट के समान गृहाश्रम को **(दृंहतम्)** दृढ़ करो। जैसे **(द्यावापृथिवी)** प्रकाश और भूमि **(पृष्ठेन)** पीठ से **(अन्तरिक्षम्)** आकाश को बांधते हैं, वैसे तुम दुःख **(च)** और शत्रुओं को बांधा करो। हे पुरुष! जैसे तू इस अपनी स्त्री की पीड़ा को **(विबाधसे)** विशेष करके हटाता है, वैसे यह स्त्री भी तेरी सकल पीड़ा को हरा करे॥११॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे बिजुली और सूर्य जल वर्षा के ओषधि आदि पदार्थों को बढ़ाते हैं, वैसे ही स्त्री-पुरुष कुटुम्ब को बढ़ावें, जैसे प्रकाश और पृथिवी आकाश का आवरण करते हैं, वैसे गृहाश्रम के व्यवहारों को पूर्ण करें॥११॥

विश्वकर्मेत्यस्य विश्वकर्मर्षिः। वायुर्देवता। भुरिग्विकृतिश्छन्दः। मध्यमः स्वरः।

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में उपदेश किया है॥

वि॒श्वक॑र्मा त्वा सादयत्व॒न्तरि॑क्षस्य पृ॒ष्ठे व्यच॑स्वतीं॒ प्रथ॑स्वतीम॒न्तरि॑क्षं यच्छा॒न्तरि॑क्षं दृ॒ꣳहा॒न्तरि॑क्षं॒ मा हि॑ꣳसीः। विश्व॑स्मै प्रा॒णाया॑ऽपा॒नाय॑ व्या॒नायो॑दा॒नाय॑ प्रति॒ष्ठायै॑ च॒रित्रा॑य। वा॒युष्ट्वा॒भिपा॑तु म॒ह्या स्व॒स्त्या छ॒र्दिषा॒ शन्त॑मेन॒ तया॑ दे॒वत॑याङ्गिर॒स्वद् ध्रु॒वा सी॑द॥१२॥

वि॒श्वक॒र्मेति॑ वि॒श्वऽक॑र्मा। त्वा॒। सा॒द॒य॒तु॒। अ॒न्तरि॑क्षस्य। पृ॒ष्ठे। व्यच॑स्वती॒मिति॒ व्यचः॑ऽवतीम्। प्रथ॑स्वतीम्। अ॒न्तरि॑क्षम्। य॒च्छ॒। अ॒न्तरि॑क्षम्। दृ॒ꣳह॒। अ॒न्तरि॑क्षम्। मा। हि॒ꣳसीः॒। विश्व॑स्मै। प्रा॒णाय॑। अ॒पा॒नाय॑। व्या॒नाय॑। उ॒दा॒नाय॑। प्र॒ति॒ष्ठायै॑। च॒रित्रा॑य। वा॒युः। त्वा॒। अ॒भि। पा॒तु॒। म॒ह्या। स्व॒स्त्या। छ॒र्दिषा॑। शन्त॑मेन। तया॑। दे॒वत॑या। अ॒ङ्गि॒र॒स्वत्। ध्रु॒वा। सी॒द॒॥१२॥

पदार्थ:-**(विश्वकर्मा)** अखिलशुभक्रियाकुशलः **(त्वा)** त्वाम् **(सादयतु)** संस्थापयतु **(अन्तरिक्षस्य)** आकाशस्य **(पृष्ठे)** भागे **(व्यचस्वतीम्)** प्रशस्तं व्यचो विज्ञानं सत्करणं विद्यते यस्यास्ताम् **(प्रथस्वतीम्)** उत्तमविस्तीर्णविद्यायुक्ताम् **(अन्तरिक्षम्)** जलम्। **अन्तरिक्षमित्युदकनामसु पठितम्॥** (निघं०१।१२) **(यच्छ)** **(अन्तरिक्षम्)** प्रशस्तं शोधितमुदकम् **(दृंह)** **(अन्तरिक्षम्)** मधुरादिगुणयुक्तं रोगनाशकमुदकम् **(मा)** **(हिंसीः)** हिंस्याः **(विश्वस्मै)** समग्राय **(प्राणाय)** **(अपानाय)** **(व्यानाय)** **(उदानाय)** **(प्रतिष्ठायै)** **(चरित्राय)** शुभकर्माचाराय **(वायुः)** प्राण इव **(त्वा)** **(अभि)** **(पातु)** **(मह्या)** महत्या **(स्वस्त्या)** सुखक्रियया **(छर्दिषा)** प्रकाशेन **(शन्तमेन)** अतिशयेन सुखकारकेण **(तया)** **(देवतया)** दिव्यसुखप्रदानक्रियया सह **(अङ्गिरस्वत्)** सूत्रात्मवायुवत् **(ध्रुवा)** निश्चलज्ञानयुक्ता **(सीद)** स्थिरा भव। [अयं मन्त्रः शत०८.३.१.९-१० व्याख्यातः]॥१२॥

अन्वयः-हे स्त्रि! विश्वकर्मा पतिर्यां व्यचस्वतीं प्रथस्वतीमन्तरिक्षस्य पृष्ठे त्वा सादयतु। सा त्वं विश्वस्मै प्राणायाऽपानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्रायान्तरिक्षं यच्छाऽन्तरिक्षं दृंहान्तरिक्षं मा हिंसीः। यो वायुः प्राण इव प्रियस्तव स्वामी मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन त्वा त्वामभिपातु, सा त्वं तया पत्याख्यया देवतया सहाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद॥१२॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा पुरुषः स्त्रियं सत्कर्मसु नियोजयेत् तथा स्त्र्यपि स्वपतिं च प्रेरयेत्, यतः सततमानन्दो वर्द्धेत॥१२॥

पदार्थः-हे स्त्रि! **(विश्वकर्मा)** सम्पूर्ण शुभ कर्म करने में कुशल पति जिस **(व्यचस्वतीम्)** प्रशंसित विज्ञान वा सत्कार से युक्त **(प्रथस्वतीम्)** उत्तम विस्तृत विद्या वाली **(अन्तरिक्षस्य)** प्रकाश के **(पृष्ठे)** एक भाग में **(त्वा)** तुझ को **(सादयतु)** स्थापित करे सो तू **(विश्वस्मै)** सब **(प्राणाय)** प्राण **(अपानाय)** अपान **(व्यानाय)** व्यान और **(उदानाय)** उदानरूप शरीर के वायु तथा **(प्रतिष्ठायै)** प्रतिष्ठा **(चरित्राय)** और शुभ कर्मों के आचरण के लिये **(अन्तरिक्षम्)** जलादि को **(यच्छ)** दिया कर **(अन्तरिक्षम्)** प्रशंसित शुद्ध किये जल से युक्त अन्न और धनादि को **(दृंह)** बढ़ा और **(अन्तरिक्षम्)** मधुरता आदि गुणयुक्त रोगनाशक आकाशस्थ सब पदार्थों को **(मा हिंसीः)** नष्ट मत कर, जिस **(त्वा)** तुझ को **(वायुः)** प्राण के तुल्य प्रिय पति **(मह्या)** बड़ी **(स्वस्त्या)** सुख रूप क्रिया **(छर्दिषा)** प्रकाश और **(शन्तमेन)** अति सुखदायक विज्ञान से तुझ को **(अभिपातु)** सब ओर से रक्षा करे सो तू **(तया)** उस **(देवतया)** दिव्य सुख देने वाली क्रिया के साथ वर्त्तमान पतिरूप देवता के साथ **(अङ्गिरस्वत्)** व्यापक वायु के समान **(ध्रुवा)** निश्चल ज्ञान से युक्त **(सीद)** स्थिर हो॥१२॥

भावार्थः-इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे पुरुष स्त्री को अच्छे कर्मों में नियुक्त करे, वैसे स्त्री भी अपने पति को अच्छे कर्मों में प्रेरणा करे, जिस से निरन्तर आनन्द बढ़े॥१२॥

राज्ञ्यसीत्यस्य विश्वदेव ऋषिः। दिशो देवताः। विराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

राज्ञ्य॑सि प्राची॒ दिग्वि॒राड॑सि दक्षि॑णा॒ दिक् स॒म्राड॑सि प्र॒तीची॒ दिक्
स्व॒राड॒स्युदी॑ची॒ दिगधि॑पत्न्यसि बृह॒ती दिक्॥१३॥

राज्ञी॑। अ॒सि॒। प्राची॑। दिक्। वि॒राडिति॑ वि॒ऽराट्। अ॒सि॒। दक्षि॑णा। दिक्। स॒म्राडिति॑ स॒म्ऽराट्। अ॒सि॒। प्र॒तीची॑। दिक्। स्व॒राडिति॑ स्व॒ऽराट्। अ॒सि॒। उदी॑ची। दिक्। अधि॑प॒त्नीत्यधि॑ऽपत्नी। अ॒सि॒। बृ॒ह॒ती। दिक्॥१३॥

पदार्थः-**(राज्ञी)** राजमाना **(असि)** **(प्राची)** पूर्वा **(दिक्)** दिगिव **(विराट्)** विविधविनयविद्याप्रकाशयुक्ता **(असि)** **(दक्षिणा)** **(दिक्)** दिगिव **(सम्राट्)** सम्यक् सुखे भूगोले राजमाना

(असि) **(प्रतीची)** पश्चिमा **(दिक्)** **(स्वराट्)** या स्वयं राजते सा **(असि)** **(उदीची)** उत्तरा **(दिक्)** **(अधिपत्नी)** गृहेऽधिकृता स्त्री **(असि)** **(बृहती)** महती **(दिक्)** अध ऊर्ध्वा। [अयं मन्त्रः शत०८.३.१.१४ व्याख्यातः]॥१३॥

अन्वयः-हे स्त्रि! या त्वं प्राची दिगिव राज्ञ्यसि, दक्षिणा दिगिव विराडसि, प्रतीची दिगिव सम्राडस्युदीची दिगिव स्वराडसि, बृहती दिगिवाधिपत्न्यसि, सा त्वं सर्वान् पत्यादीन् प्रीणीहि॥१३॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा दिशः सर्वतोऽभिव्याप्ता विज्ञापिका अक्षुब्धाः सन्ति, तथैव स्त्री शुभगुणकर्मस्वभावैः सहिता स्यात्॥१३॥

पदार्थः-हे स्त्रि! जो तू **(प्राची)** पूर्व **(दिक्)** दिशा के तुल्य **(राज्ञी)** प्रकाशमान **(असि)** है, **(दक्षिणा)** दक्षिण **(दिक्)** दिशा के समान **(विराट्)** अनेक प्रकार का विनय और विद्या के प्रकाश से युक्त **(असि)** है, **(प्रतीची)** पश्चिम **(दिक्)** दिशा के सदृश **(सम्राट्)** चक्रवर्ती राजा के सदृश अच्छे सुखयुक्त पृथिवी पर प्रकाशमान **(असि)** है, **(उदीची)** उत्तर **(दिक्)** दिशा के तुल्य **(स्वराट्)** स्वयं प्रकाशमान **(असि)** है, **(बृहती)** बड़ी **(दिक्)** ऊपर-नीचे की दिशा के तुल्य **(अधिपत्नी)** घर में अधिकार को प्राप्त हुई **(असि)** है, सो तू सब पति आदि को तृप्त कर॥१३॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे दिशा सब ओर से अभिव्याप्त बोध करने हारी चञ्चलतारहित हैं, वैसे ही स्त्री शुभ गुण, कर्म और स्वभावों से युक्त होवे॥१३॥

विश्वकर्मेत्यस्य विश्वेदेवा ऋषयः। वायुर्देवता। स्वराड् ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी उक्त विषय ही अगले मन्त्र में कहा है॥

विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे ज्योतिष्मतीम्।
विश्वस्मै प्राणायाऽपानाय व्यानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छ।
वायुष्टेऽधिपतिस्तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद॥१४॥

विश्वकर्मेति विश्वऽकर्मा। त्वा। सादयतु। अन्तरिक्षस्य। पृष्ठे। ज्योतिष्मतीमिति ज्योतिःऽमतीम्। विश्वस्मै। प्राणाय। अपानाय। व्यानाय। विश्वम्। ज्योतिः। यच्छ। वायुः। ते। अधिपतिरित्यधिऽपतिः। तया। देवतया। अङ्गिरस्वत्। ध्रुवा। सीद॥१४॥

पदार्थः-**(विश्वकर्मा)** सकलेष्टक्रियः **(त्वा)** त्वाम् **(सादयतु)** **(अन्तरिक्षस्य)** जलस्य **(पृष्ठे)** उपरिभागे **(ज्योतिष्मतीम्)** बहु ज्योतिर्विद्यते यस्यास्ताम् **(विश्वस्मै)** सर्वस्मै **(प्राणाय)** **(अपानाय)** **(व्यानाय)** **(विश्वम्)** संपूर्णम् **(ज्योतिः)** विज्ञानम् **(यच्छ)** गृहाण **(वायुः)** प्राण इव प्रियः **(ते)** तव

(अधिपतिः) **(तया)** **(देवतया)** **(अङ्गिरस्वत्)** सूर्यवत् **(ध्रुवा)** दृढा **(सीद)**। [अयं मन्त्रः शत०८.३.२.२-४ व्याख्यातः]॥१४॥

अन्वयः-हे स्त्रि! या ज्योतिष्मतीं त्वा विश्वस्मै प्राणायाऽपानाय व्यानायाऽन्तरिक्षस्य पृष्ठे विश्वकर्मा सादयतु, सा त्वं विश्वं ज्योतिर्यच्छ। यो वायुरिव तेऽधिपतिरस्ति तया देवतया सह ध्रुवांगिरस्वत् सीद॥१४॥

भावार्थः-स्त्री ब्रह्मचर्येण स्वयं विदुषी भूत्वा शरीरात्मबलवर्द्धनाय स्वापत्येभ्यो विज्ञानं सततं प्रदद्यादिति ग्रीष्मर्त्तुव्याख्यानं कृतम्॥१४॥

पदार्थः-हे स्त्रि! जिस **(ज्योतिष्मतीम्)** बहुत विज्ञान वाली **(त्वा)** तुझ को **(विश्वस्मै)** सब **(प्राणाय)** प्राण **(अपानाय)** अपान और **(व्यानाय)** व्यान की पुष्टि के लिये **(अन्तरिक्षस्य)** जल के **(पृष्ठे)** ऊपरले भाग में **(विश्वकर्मा)** सब शुभ कर्मों का चाहने हारा पति **(सादयतु)** स्थापित करे सो तू **(विश्वम्)** सम्पूर्ण **(ज्योतिः)** विज्ञान को **(यच्छ)** ग्रहण कर, जो **(वायुः)** प्राण के समान प्रिय **(ते)** तेरा **(अधिपतिः)** स्वामी है, **(तया)** उस **(देवतया)** देवस्वरूप पति के साथ **(ध्रुवा)** दृढ़ **(अङ्गिरस्वत्)** सूर्य्य के समान **(सीद)** स्थिर हो ॥१४॥

भावार्थः-स्त्री को उचित है कि ब्रह्मचर्य्याश्रम के साथ आप विद्वान् हो के शरीर, आत्मा का बल बढ़ाने के लिये अपने सन्तानों को निरन्तर विज्ञान देवे। यहां तक ग्रीष्म ऋतु का व्याख्यान पूरा हुआ॥१४॥

नभश्चेत्यस्य विश्वदेव ऋषिः। ऋतवो देवताः। स्वराडुत्कृतिश्छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अथ वर्षर्त्तुर्व्याख्यायते॥

अब वर्षा ऋतु का व्याख्यान अगले मन्त्र में कहा है॥

नभ॑श्च नभ॒स्य॒श्च॒ वार्षि॑कावृ॒तू॒ऽ अ॒ग्नेर॑न्तःश्लेषो॒ऽसि॒ कल्पे॑तां॒ द्यावा॑पृथि॒वी कल्प॑न्ता॒माप॒ऽ ओष॑धय॒: कल्प॑न्ताम॒ग्नय॒: पृथ॒ङ् मम॒ ज्यैष्ठ्या॑य॒ सव्र॑ताः। येऽअ॒ग्नय॒: सम॑नसोऽन्त॒रा द्यावा॑पृथि॒वीऽ इ॒मे। वार्षि॑कावृ॒तू॒ऽ अ॑भि॒कल्प॑माना॒ऽ इन्द्र॑मिव दे॒वाऽ अ॑भि॒संवि॑शन्तु॒ तया॑ दे॒वत॑याङ्गिर॒स्वद् ध्रु॒वे सीद॑तम्॥ १५॥

नभ॑ः। च॒। न॒भ॒स्य॒ः। च॒। वार्षि॑कौ। ऋ॒तू॒ऽइत्यृ॒तू। अ॒ग्नेः। अ॒न्त॒श्श्ले॒ष इत्य॑न्तःऽश्ले॒षः। अ॒सि॒। कल्पे॑ताम्। द्यावा॑पृथि॒वी इति॒ द्यावा॑ऽपृथि॒वी। कल्प॑न्ताम्। आप॑ः। ओष॑धयः। कल्प॑न्ताम्। अ॒ग्नय॑ः। पृथ॑क्। मम॑। ज्यैष्ठ्या॑य। सव्र॑ता॒ इति॒ सऽव्र॑ताः। ये। अ॒ग्नय॑ः। सम॑नस॒ इति॒ सऽम॑नसः। अ॒न्त॒रा। द्यावा॑पृथि॒वी इति॒ द्यावा॑ऽपृथि॒वी। इ॒मेऽइ॒ती॒मे। वार्षि॑कौ। ऋ॒तू॒ऽइत्यृ॒तू। अ॒भि॒कल्प॑माना॒ इत्य॑भि॒ऽकल्प॑मानाः। इन्द्र॑मि॒वेतीन्द्र॑म्ऽइव। दे॒वाः। अ॒भि॒संवि॑श॒न्त्वित्य॑भि॒ऽसंवि॑शन्तु। तया॑। दे॒वत॑या। अ॒ङ्गि॒र॒स्वत्। ध्रु॒वेऽइति॑ ध्रु॒वे। सी॒द॒त॒म्॥ १५॥

पदार्थः-(**नभः**) नह्यन्ति घना यस्मिन् स श्रावणो मासः (**च**) (**नभस्यः**) नभस्सु भवो भाद्रपदः (**च**) (**वार्षिकौ**) वर्षासु भवौ (**ऋतू**) वर्षर्त्तुसम्बन्धिनौ (**अग्नेः**) ऊष्मणः (**अन्तःश्लेषः**) मध्ये स्पर्शो यस्य (**असि**) अस्ति (**कल्पेताम्**) (**द्यावापृथिवी**) (**कल्पन्ताम्**) (**आपः**) (**ओषधयः**) (**कल्पन्ताम्**) (**अग्नयः**) (**पृथक्**) (**मम**) (**ज्यैष्ठ्याय**) प्रशस्यभावाय (**सव्रताः**) समानानि व्रतानि नियमा येषान्ते (**ये**) (**अग्नयः**) (**समनसः**) समानं मनो ज्ञानं येभ्यस्ते (**अन्तरा**) मध्ये (**द्यावापृथिवी**) (**इमे**) (**वार्षिकौ**) वर्षासु भवौ (**ऋतू**) वृष्टिप्रापकौ (**अभिकल्पमानाः**) अभितः सुखाय समर्थयन्तः (**इन्द्रमिव**) यथा विद्युतम् (**देवाः**) विद्वांसः (**अभिसंविशन्तु**) आभिमुख्येन सम्यक् प्रविशन्तु (**तया**) (**देवतया**) (**अङ्गिरस्वत्**) (**ध्रुवे**) (**सीदतम्**)। [अयं मन्त्रः शत०८.३.२.५ व्याख्यातः]॥१५॥

अन्वयः-हे स्त्रीपुरुषौ! युवां यौ नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतू मम ज्यैष्ठ्याय कल्पेतां, ययोरग्नेरन्तःश्लेषोऽस्यस्ति याभ्यां सह द्यावापृथिवी कल्पेतां, ताभ्यां युवां कल्पेतां, यथाप ओषधयश्च कल्पन्तामग्नयः पृथक् कल्पन्ते, तथा सव्रताः समनसोऽग्नयः कल्पन्ताम्। य इमे द्यावापृथिवी कल्पेते, तौ वार्षिकावृतू अभिकल्पमाना देवा इन्द्रमिव तया देवतया सहाऽभिसंविशन्तु, तयोरन्तराङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम्॥१५॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। मनुष्यैर्विद्वद्वद्वर्षासु सामग्री संग्राह्या यतो वर्षर्तौ सर्वाणि सुखानि भवेयुः॥१५॥

पदार्थः-हे स्त्री-पुरुषो! तुम दोनों जो (**नभः**) प्रबन्धित मेघों वाला श्रावण (**च**) और (**नभस्यः**) वर्षा का मध्यभागी भाद्रपद (**च**) ये दोनों (**वार्षिकौ**) वर्षा (**ऋतू**) ऋतु के महीने (**मम**) मेरे (**ज्यैष्ठ्याय**) प्रशंसित होने के लिये हैं, जिनमें (**अग्नेः**) उष्ण तथा (**अन्तःश्लेषः**) जिन के मध्य में शीत का स्पर्श (**असि**) होता है, जिन के साथ (**द्यावापृथिवी**) आकाश और भूमि समर्थ होते हैं, उन के भोग में तुम दोनों (**कल्पेताम्**) समर्थ हो, जैसे ऋतु योग से (**आपः**) जल और (**ओषधयः**) ओषधि वा (**अग्नयः**) अग्नि (**पृथक्**) जल से अलग समर्थ होते हैं, वैसे (**सव्रताः**) एक प्रकार के श्रेष्ठ नियम (**समनसः**) एक प्रकार का ज्ञान देने हारे (**अग्नयः**) तेजस्वी लोग (**कल्पन्ताम्**) समर्थ होवें, (**ये**) जो (**इमे**) (**द्यावापृथिवी**) आकाश और भूमि वर्षा ऋतु के गुणों में समर्थ होते हैं, उन को (**वार्षिकौ**) (**ऋतू**) वर्षाऋतुरूप (**अभिकल्पमानाः**) सब ओर से सुख के लिये समर्थ करते हुए (**देवाः**) विद्वान् लोग (**इन्द्रमिव**) बिजुली के समान प्रकाश और बल को (**तया**) उस (**देवतया**) दिव्य वर्षा ऋतु के साथ (**अभिसंविशन्तु**) सन्मुख होकर अच्छे प्रकार स्थित होवें (**अन्तरा**) उन दोनों महीनों में प्रवेश करके (**अङ्गिरस्वत्**) प्राण के समान परस्पर प्रेमयुक्त (**ध्रुवे**) निश्चल (**सीदतम्**) रहो॥१५॥

भावार्थः-इन मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोमालङ्कार हैं। सब मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों के समान वर्षा ऋतु में वह सामग्री ग्रहण करें, जिस से सब सुख होवें॥१५॥

इषश्चेत्यस्य विश्वेदेवा ऋषयः। ऋतवो देवताः। उत्कृतिश्छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अथ शरदृतुर्व्याख्यायते॥

अब शरद् ऋतु का व्याख्यान अगले मन्त्र में किया है॥

इषश्चोर्जश्च शारदावृतूऽ अग्नेरन्तःश्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामापऽ ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः। येऽ अग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवीऽ इमे। शारदावृतूऽ अभिकल्पमानाऽ इन्द्रमिव देवाऽ अभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम्॥ १६॥

इषः। च। ऊर्जः। च। शारदौ। ऋतूऽइत्यृतू। अग्नेः। अन्तःश्लेष इत्यन्तःऽश्लेषः। असि। कल्पेताम्। द्यावापृथिवी इति द्यावाऽपृथिवी। कल्पन्ताम्। आपः। ओषधयः। कल्पन्ताम्। अग्नयः। पृथक्। मम। ज्यैष्ठ्याय। सव्रता इति सऽव्रताः। ये। अग्नयः। समनस इति सऽमनसः। अन्तरा। द्यावापृथिवी इति द्यावापृथिवी। इमेऽइतीमे। शारदौ। ऋतूऽइत्यृतू। अभिकल्पमाना इत्यभिऽकल्पमानाः। इन्द्रमिवेतीन्द्रम्ऽइव। देवाः। अभिसंविशन्त्वित्यभिऽसंविशन्तु। तया। देवतया। अङ्गिरस्वत्। ध्रुवेऽइति ध्रुवे। सीदतम्॥ १६॥

पदार्थः-(इषः) इष्यतेऽसावाश्विनो मासः **(च)** **(ऊर्जः)** ऊर्जन्ति सर्वे पदार्थो यस्मिन् स कार्त्तिकः **(च)** **(शारदौ)** शरदि भवौ **(ऋतू)** बलप्रदौ **(अग्नेः)** **(अन्तःश्लेषः)** मध्यस्पर्शः **(असि)** अस्ति **(कल्पेताम्)** **(द्यावापृथिवी)** **(कल्पन्ताम्)** **(आपः)** **(ओषधयः)** **(कल्पन्ताम्)** **(अग्नयः)** बहिःस्थाः **(पृथक्)** **(मम)** **(ज्यैष्ठ्याय)** प्रशस्तसुखभावाय **(सव्रताः)** सनियमाः **(ये)** **(अग्नयः)** शरीरस्थाः **(समनसः)** मनसा सह वर्त्तमानाः **(अन्तरा)** मध्ये **(द्यावापृथिवी)** **(इमे)** **(शारदौ)** **(ऋतू)** **(अभिकल्पमानाः)** **(इन्द्रमिव)** **(देवाः)** **(अभिसंविशन्तु)** **(तया)** **(देवतया)** सह **(अङ्गिरस्वत्)** आकाशवत् **(ध्रुवे)** निश्चलसुखे **(सीदतम्)** सीदतः। अत्र पुरुषव्यत्ययः। [अयं मन्त्रः शत०८.३.२.६ व्याख्यातः]॥१६॥

अन्वयः-हे मनुष्याः। याविषश्चोर्जश्च शारदावृतू यथा मम ज्यैष्ठ्याय भवतो ययोरग्नेरन्तःश्लेषोऽस्यस्ति। तो द्यावापृथिवी कल्पेतामाप ओषधयश्च कल्पन्ताम्। सव्रता अग्नयः पृथक् कल्पन्ताम्। येऽन्तरा समनसोऽग्नय इमे द्यावापृथिवी कल्पेताम्। शारदावृतू इन्द्रमिवाभि कल्पमाना देवा अभिसंविशन्तु, तथा तया देवतया सह ध्रुवे सीदतं गच्छतः॥१६॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। हे मनुष्याः! ये शरद्युपयुक्ताः पदार्थाः सन्ति तान् यथायोग्यं संस्कृत्य सेवध्वम्॥१६॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे **(इषः)** चाहने योग्य क्वार महीना **(च)** और **(ऊर्जः)** सब पदार्थों के बलवान् होने का हेतु कार्त्तिक **(च)** ये दोनों **(शारदौ)** शरद् **(ऋतू)** ऋतु के महीने **(मम)** मेरे **(ज्यैष्ठ्याय)** प्रशंसित सुख होने के लिये होते हैं। जिन के **(अन्तःश्लेषः)** मध्य में किञ्चित् शीतस्पर्श **(असि)** होता है, वे

(द्यावापृथिवी) आकाश और पृथिवी को **(कल्पेताम्)** समर्थ करें, **(आपः)** जल और **(ओषधयः)** औषधियां **(कल्पन्ताम्)** समर्थ होवें, **(सव्रताः)** सब कार्यों के नियम करने हारे **(अग्नयः)** शरीर के अग्नि **(पृथक्)** अलग **(कल्पन्ताम्)** समर्थ हों **(ये)** जो **(अन्तरा)** बीच में **(समनसः)** मन के सम्बन्धी **(अग्नयः)** बाहर के भी अग्नि **(इमे)** इन **(द्यावापृथिवी)** आकाश भूमि को **(कल्पेताम्)** समर्थ करें, **(शारदौ)** शरद् **(ऋतू)** ऋतु के दोनों महीनों में **(इन्द्रमिव)** परमैश्वर्य के तुल्य **(अभिकल्पमानाः)** सब ओर से आनन्द की इच्छा करते हुए **(देवाः)** विद्वान् लोग **(अभिसंविशन्तु)** प्रवेश करें **(तया)** उस **(देवतया)** दिव्य शरद् ऋतु रूप देवता के नियम के साथ **(ध्रुवे)** निश्चल सुख वाले **(सीदतम्)** प्राप्त होते हैं, वैसे तुम लोगों को **(ज्यैष्ठ्याय)** प्रशंसित सुख होने के लिये भी होने योग्य हैं॥१६॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जो शरद् ऋतु में उपयोगी पदार्थ हैं, उन को यथायोग्य शुद्ध करके सेवन करो॥१६॥

आयुर्म इत्यस्य विश्वदेव ऋषिः। ऋतवो देवताः। भुरिगतिजगती छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी पूर्वोक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

आयुर्मे पाहि प्राणं मे पाह्यपानं मे पाहि व्यानं मे पाहि चक्षुर्मे पाहि श्रोत्रं मे पाहि वाचं मे पिन्व मनो मे जिन्वात्मानं मे पाहि ज्योतिर्मे यच्छ॥१७॥

आयुः। मे। पाहि। प्राणम्। मे। पाहि। अपानमित्यपऽआनम्। मे। पाहि। व्यानमिति विऽआनम्। मे। पाहि। चक्षुः। मे। पाहि। श्रोत्रम्। मे। पाहि। वाचम्। मे। पिन्व। मनः। मे। जिन्व। आत्मानम्। मे। पाहि। ज्योतिः। मे। यच्छ॥१७॥

पदार्थः-**(आयुः)** जीवनम् **(मे)** मम **(पाहि)** **(प्राणम्)** **(मे)** **(पाहि)** **(अपानम्)** **(मे)** **(पाहि)** **(व्यानम्)** **(मे)** **(पाहि)** **(चक्षुः)** दर्शनम् **(मे)** **(पाहि)** **(श्रोत्रम्)** श्रवणम् **(मे)** **(पाहि)** **(वाचम्)** वाणीम् **(मे)** **(पिन्व)** सुशिक्षया सिंच **(मनः)** **(मे)** **(जिन्व)** प्रीणीहि **(आत्मानम्)** चेतनम् **(मे)** **(पाहि)** **(ज्योतिः)** विज्ञानम् **(मे)** मह्यम् **(यच्छ)** देहि। [अयं मन्त्रः शत०८.३.२.१४ व्याख्यातः]॥१७॥

अन्वयः-हे स्त्रि पुरुष वा! त्वं शरदृतावायुर्मे पाहि, प्राणं मे पाह्यपानं मे पाहि, व्यानं मे पाहि, चक्षुर्मे पाहि, श्रोत्रं मे पाहि, वाचं मे पिन्व, मनो मे जिन्वात्मानं मे पाहि, ज्योतिर्मे यच्छ॥१७॥

भावार्थः-स्त्री पुरुषस्य पुरुषः स्त्रियाश्च यथाऽऽयुरादीनां वृद्धिः स्यात् तथैव नित्यमाचरेताम्॥१७॥

पदार्थः-हे स्त्री वा पुरुष! तू शरद् ऋतु में **(मे)** मेरी **(आयुः)** अवस्था की **(पाहि)** रक्षा कर **(मे)** मेरे **(प्राणम्)** प्राण की **(पाहि)** रक्षा कर **(मे)** मेरे **(अपानम्)** अपान वायु की **(पाहि)** रक्षा कर **(मे)** मेरे **(व्यानम्)** व्यान की **(पाहि)** रक्षा कर **(मे)** मेरे **(चक्षुः)** नेत्रों की **(पाहि)** रक्षा कर **(मे)** मेरे **(श्रोत्रम्)** कानों

की (**पाहि**) रक्षा कर (**मे**) मेरी (**वाचम्**) वाणी को (**पिन्व**) अच्छी शिक्षा से युक्त कर (**मे**) मेरे (**मनः**) मन को (**जिन्व**) तृप्त कर (**मे**) मेरे (**आत्मानम्**) चेतन आत्मा की (**पाहि**) रक्षा कर और (**मे**) मेरे लिये (**ज्योतिः**) विज्ञान का (**यच्छ**) दान कर॥१७॥

भावार्थः-स्त्री पुरुष की और पुरुष स्त्री की जैसे अवस्था आदि की वृद्धि होवे, वैसे परस्पर नित्य आचरण करें॥१७॥

माच्छन्द इत्यस्य विश्वदेव ऋषिः। छन्दांसि देवताः। भुरिगतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

स्त्रीपुरुषैः कथं विज्ञानं वर्द्धनीयमित्याह॥

स्त्री-पुरुषों को कैसे विज्ञान बढ़ाना चाहिये? इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

मा छन्दः प्रमा छन्दः प्रतिमा छन्दोऽ अस्त्रीवयश्छन्दः पङ्क्तिश्छन्दऽ उष्णिक् छन्दो बृहती छन्दोऽनुष्टुप् छन्दो विराट् छन्दो गायत्री छन्दस्त्रिष्टुप् छन्दो जगती छन्दः॥१८॥

मा। छन्दः। प्रमेति प्रऽमा। छन्दः। प्रतिमेति प्रतिऽमा। छन्दः। अस्त्रीवयः। छन्दः। पङ्क्तिः। छन्दः। उष्णिक्। छन्दः। बृहती। छन्दः। अनुष्टुप्। अनुस्तुबित्यनुऽस्तुप्। छन्दः। विराडिति विऽराट्। छन्दः। गायत्री। छन्दः। त्रिष्टुप्। त्रिस्तुबिति त्रिऽस्तुप्। छन्दः। जगती। छन्दः॥१८॥

पदार्थः-(**मा**) यया मीयते सा (**छन्दः**) आनन्दकरी (**प्रमा**) यया प्रमीयते सा प्रज्ञा (**छन्दः**) बलम् (**प्रतिमा**) प्रतिमीयते यया क्रियया सा (**छन्दः**) (**अस्त्रीवयः**) यदस्यति कामयते च तदस्त्रीवयोऽन्नादिकम् (**छन्दः**) बलकारि (**पङ्क्तिः**) पञ्चावयवो योगः (**छन्दः**) प्रकाशः (**उष्णिक्**) स्नेहनम् (**छन्दः**) (**बृहती**) महती प्रकृतीः (**छन्दः**) (**अनुष्टुप्**) सुखानामनुष्टम्भनम् (**छन्दः**) (**विराट्**) विविधविद्याप्रकाशनम् (**छन्दः**) (**गायत्री**) या गायन्तं त्रायते सा (**छन्दः**) (**त्रिष्टुप्**) यया त्रीणि सुखानि स्तोभति सा (**छन्दः**) (**जगती**) गच्छति सर्वं जगद्यस्यां सा (**छन्दः**)। [अयं मन्त्रः शत०८.३.३.१५ व्याख्यातः]॥१८॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! युष्माभिर्मा छन्दः प्रमा छन्दः प्रतिमा छन्दोऽस्त्रीवयश्छन्दः पङ्क्तिश्छन्द उष्णिक् छन्दो बृहती छन्दोऽनुष्टुप् छन्दो विराट् छन्दो गायत्री छन्दस्त्रिष्टुप् छन्दो जगती छन्दः स्वीकृत्य विज्ञाय च सुखयितव्यम्॥१८॥

भावार्थः-ये मनुष्याः प्रमादिभिः साध्यानि धर्म्याणि कर्माणि साध्नुवन्ति ते सुखालङ्कृता भवन्ति॥१८॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम लोग (**मा**) परिमाण का हेतु (**छन्दः**) आनन्दकारक (**प्रमा**) प्रमाण का हेतु बुद्धि (**छन्दः**) बल (**प्रतिमा**) जिससे प्रतीति निश्चय की क्रिया हेतु (**छन्दः**) स्वतन्त्रता (**अस्त्रीवयः**) बल और कान्तिकारक अन्नादि पदार्थ (**छन्दः**) बलकारी विज्ञान (**पङ्क्तः**) पांच अवयवों से युक्त योग (**छन्दः**) प्रकाश (**उष्णिक्**) स्नेह (**छन्दः**) प्रकाश (**बृहती**) बड़ी प्रकृति (**छन्दः**) आश्रय (**अनुष्टुप्**) सुखों का

आलम्बन **(छन्दः)** भोग **(विराट्)** विविध प्रकार की विद्याओं का प्रकाश **(छन्दः)** विज्ञान **(गायत्री)** गाने वाले का रक्षक ईश्वर **(छन्दः)** उस का बोध **(त्रिष्टुप्)** तीन सुखों का आश्रय **(छन्दः)** आनन्द और **(जगती)** जिस में सब जगत् चलता है, उस **(छन्दः)** पराक्रम को ग्रहण कर और जान के सब को सुखयुक्त करो॥१८॥

भावार्थः-जो मनुष्य निश्चय के हेतु आनन्द आदि से साध्य, धर्मयुक्त कर्मों को सिद्ध करते हैं, वे सुखों से शोभायमान होते हैं॥१८॥

पृथिवी छन्द इत्यस्य विश्वदेव ऋषिः। पृथिव्यादयो देवताः। आर्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर वही उक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

पृथिवी छन्दोऽन्तरिक्षं छन्दो द्यौश्छन्दः समाश्छन्दो नक्षत्राणि छन्दो वाक् छन्दो मनश्छन्दः कृषिश्छन्दो हिरण्यं छन्दो गौश्छन्दोऽजाच्छन्दोऽश्वश्छन्दः॥ १९॥

पृथिवी। छन्दः। अन्तरिक्षम्। छन्दः। द्यौः। छन्दः। समाः। छन्दः। नक्षत्राणि। छन्दः। वाक्। छन्दः। मनः। छन्दः। कृषिः। छन्दः। हिरण्यम्। छन्दः। गौः। छन्दः। अजा। छन्दः। अश्वः। छन्दः॥ १९॥

पदार्थः-**(पृथिवी)** भूमिः **(छन्दः)** स्वच्छन्दा **(अन्तरिक्षम्)** आकाशम् **(छन्दः)** **(द्यौः)** प्रकाशः **(छन्दः)** **(समाः)** वर्षाणि **(छन्दः)** **(नक्षत्राणि)** **(छन्दः)** **(वाक्)** **(छन्दः)** **(मनः)** **(छन्दः)** **(कृषिः)** भूमिविलेखनम् **(छन्दः)** **(हिरण्यम्)** सुवर्णम् **(छन्दः)** **(गौः)** **(छन्दः)** **(अजा)** **(छन्दः)** **(अश्वः)** **(छन्दः)**। [अयं मन्त्रः शत०८.३.३.६ व्याख्यातः]॥१९॥

अन्वयः-हे स्त्रीपुरुषाः! यूयं यथा पृथिवी छन्दोऽन्तरिक्षं छन्दो द्यौश्छन्दः समाश्छन्दो नक्षत्राणि छन्दो वाक् छन्दो मनश्छन्दः कृषिश्छन्दो हिरण्यं छन्दो गौश्छन्दोऽजाच्छन्दोऽश्वश्छन्दोऽस्ति, तथा विद्याविनयधर्माचरणेषु स्वाधीनतया वर्त्तध्वम्॥१९॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। स्त्रीपुरुषैः स्वच्छविद्याक्रियाभ्यां स्वातन्त्र्येण पृथिव्यादिपदार्थानां गुणादीन् विज्ञाय कृष्यादिकर्मभिः सुवर्णादिं प्राप्य गवादीन् संरक्ष्यैश्वर्यमुन्नेयम्॥१९॥

पदार्थः-हे स्त्री-पुरुषो! तुम लोग जैसे **(पृथिवी)** भूमि **(छन्दः)** स्वतन्त्र **(अन्तरिक्षम्)** आकाश **(छन्दः)** आनन्द **(द्यौः)** प्रकाश **(छन्दः)** विज्ञान **(समाः)** वर्ष **(छन्दः)** बुद्धि **(नक्षत्राणि)** तारे लोक **(छन्दः)** स्वतन्त्र **(वाक्)** वाणी **(छन्दः)** सत्य **(मनः)** मन **(छन्दः)** निष्कपट **(कृषिः)** जोतना **(छन्दः)** उत्पत्ति **(हिरण्यम्)** सुवर्ण **(छन्दः)** सुखदायी **(गौः)** गौ **(छन्दः)** आनन्द-हेतु **(अजा)** बकरी **(छन्दः)** सुख का हेतु और **(अश्वः)** घोड़े आदि **(छन्दः)** स्वाधीन हैं, वैसे विद्या, विनय और धर्म के आचरण विषय में स्वाधीनता से वर्त्तो॥१९॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। स्त्री-पुरुषों को चाहिये कि शुद्ध विद्या, क्रिया और स्वतन्त्रता से पृथिवी आदि पदार्थों के गुण, कर्म और स्वभावों को जान; खेती आदि कर्मों से सुवर्ण आदि रत्नों को प्राप्त हों और गौ आदि पशुओं की रक्षा करके ऐश्वर्य्य बढ़ावें॥१९॥

अग्निर्देवतेत्यस्य विश्वदेव ऋषिः। अग्न्यादयो देवताः। भुरिग् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अ॒ग्निर्दे॒वता॒ वातो॑ दे॒वता॒ सूर्यो॑ दे॒वता॑ च॒न्द्रमा॑ दे॒वता॒ वस॑वो दे॒वता॑ रु॒द्रा दे॒वता॑ऽऽदि॒त्या दे॒वता॑ म॒रुतो॑ दे॒वता॒ विश्वे॑ दे॒वा दे॒वता॒ बृह॒स्पति॑र्दे॒वतेन्द्रो॑ दे॒वता॒ वरु॑णो दे॒वता॑॥२०॥

अ॒ग्निः। दे॒वता॑। वातः॑। दे॒वता॑। सूर्यः॑। दे॒वता॑। च॒न्द्रमाः॑। दे॒वता॑। वस॑वः। दे॒वता॑। रु॒द्राः। दे॒वता॑। आ॒दि॒त्याः। दे॒वता॑। म॒रुतः॑। दे॒वता॑। विश्वे॑। दे॒वाः। दे॒वता॑। बृह॒स्पतिः॑। दे॒वता॑। इन्द्रः॑। दे॒वता॑। वरु॑णः। दे॒वता॑॥२०॥

पदार्थः-(**अग्निः**) प्रकटः पावकः (**देवता**) देव एव दिव्यगुणत्वात् (**वातः**) पवनः (**देवता**) (**सूर्य्यः**) सविता (**देवता**) (**चन्द्रमाः**) इन्दुः (**देवता**) (**वसवः**) वसुसंज्ञकाः प्रसिद्धाग्न्यादयोऽष्टौ (**देवता**) (**रुद्राः**) प्राणादय एकादश (**देवता**) (**आदित्याः**) द्वादश मासा वसुरुद्रादिसंज्ञका विद्वांसश्च (**देवता**) (**मरुतः**) ब्रह्माण्डस्थाः प्रसिद्धा मनुष्या विद्वांस ऋत्विजः। **मरुत इत्यृत्विङ्नाम०॥** (निघं०३।१८) (**देवता**) (**विश्वे**) सर्वे (**देवाः**) दिव्यगुणयुक्ता मनुष्याः पदार्थाश्च (**देवता**) (**बृहस्पतिः**) बृहतो वचनस्य ब्रह्माण्डस्य वा पालकः (**देवता**) (**इन्द्रः**) विद्युत्परमैश्वर्य्यं वा (**देवता**) (**वरुणः**) जलं वरगुणाढ्योऽर्थो वा (**देवता**)। [अयं मन्त्रः शत०८.३.३.६ व्याख्यातः]॥२०॥

अन्वयः-हे स्त्रीपुरुषाः! युष्माभिरग्निर्देवता वातो देवता सूर्य्यो देवता चन्द्रमा देवता वसवो देवता रुद्रा देवताऽऽदित्या देवता मरुतो देवता विश्वे देवा देवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता वरुणो देवता सम्यग्विज्ञेयाः॥२०॥

भावार्थः-ये दिव्याः पदार्था विद्वांसश्च सन्ति ते दिव्यगुणकर्मस्वभावत्वाद् देवतासञ्ज्ञां लभन्ते। या च देवतानां देवतात्वान्महादेवः सर्वस्य धर्त्ता स्रष्टा पाता व्यवस्थापकः प्रलायकः सर्वशक्तिमानजोऽस्ति, तमपि परमात्मानं सकलाधिष्ठातारं सर्वे मनुष्या जानीयुः॥२०॥

पदार्थः-हे स्त्री-पुरुषो! तुम लोगों को योग्य है कि (**अग्निः**) प्रसिद्ध अग्नि (**देवताः**) दिव्य गुण वाला (**वातः**) पवन (**देवता**) शुद्धगुणयुक्त (**सूर्य्यः**) सूर्य्य (**देवता**) अच्छे गुणों वाला (**चन्द्रमाः**) चन्द्रमा (**देवता**) शुद्ध गुणयुक्त (**वसवः**) प्रसिद्ध आठ अग्नि आदि वा प्रथम कक्षा के विद्वान् (**देवता**) दिव्यगुण वाले (**रुद्राः**) प्राण आदि ११ ग्यारह वा मध्यम कक्षा के विद्वान् (**देवता**) शुद्ध गुणों वाले (**आदित्याः**) बारह महीने वा उत्तम कक्षा के विद्वान् लोग (**देवता**) शुद्ध (**मरुतः**) मननकर्त्ता विद्वान् ऋत्विग् लोग

(देवता) दिव्य गुण वाले **(विश्वे)** सब **(देवता)** अच्छे गुणों वाले विद्वान् मनुष्य वा दिव्य पदार्थ **(देवता)** देवसंज्ञा वाले हैं **(बृहस्पतिः)** बड़े वचन वा ब्रह्माण्ड का रक्षक परमात्मा **(देवता)** **(इन्द्रः)** बिजुली वा उत्तम धन **(देवता)** दिव्य गुणयुक्त और **(वरुणः)** जल वा श्रेष्ठ गुणों वाला पदार्थ **(देवता)** अच्छे गुणों वाला है, इन को तुम निश्चय जानो॥२०॥

भावार्थः-इस संसार में जो अच्छे गुणों वाले पदार्थ हैं, वे दिव्य गुण कर्म और स्वभाव वाले होने से देवता कहाते हैं और जो देवताओं का देवता होने से महादेव सब का धारक, रचक, रक्षक सब की व्यवस्था और प्रलय करने हारा, सर्वशक्तिमान्, दयालु, न्यायकारी, उत्पत्ति धर्म से रहित है, उस सब के अधिष्ठाता परमात्मा को सब मनुष्य जानें॥२०॥

मूर्द्धासीत्यस्य विश्वदेव ऋषिः। विदुषी देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

किंप्रकारिकया विदुष्या भवितव्यमित्याह॥

विदुषी स्त्री कैसी हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

मूर्द्धासि राड् ध्रुवासि धरुणा धर्त्र्यसि धरणी।
आयुषे त्वा वर्चसे त्वा कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा॥२१॥

मूर्द्धा। असि। राट्। ध्रुवा। असि। धरुणा। धर्त्री। असि। धरणी। आयुषे। त्वा। वर्चसे। त्वा। कृष्यै। त्वा। क्षेमाय। त्वा॥२१॥

पदार्थः-**(मूर्द्धा)** उत्कृष्टा **(असि)** **(राट्)** राजमाना **(ध्रुवा)** दृढा स्वकक्षायां गच्छन्त्यपि निश्चला **(असि)** **(धरुणा)** पुष्टिकर्त्री **(धर्त्री)** धारिका **(असि)** अस्ति **(धरणी)** आधारभूता **(आयुषे)** जीवनाय **(त्वा)** त्वाम् **(वर्चसे)** अन्नाय **(त्वा)** त्वाम् **(कृष्यै)** कृषिकर्मणे **(त्वा)** त्वाम् **(क्षेमाय)** रक्षायै **(त्वा)** त्वाम्। [अयं मन्त्रः शत०८.३.४.६ व्याख्यातः]॥२१॥

अन्वयः-हे स्त्रि! या त्वं सूर्य्यवन्मूर्द्धासि, राडिव ध्रुवासि, धरुणा धरणीव धर्त्र्यसि, तामायुषे त्वा वर्चसे त्वा कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा त्वामहं परिगृह्णामि॥२१॥

भावार्थः-यथोत्तमाङ्गेन स्थितेन शिरसा सर्वेषां जीवनं, राज्येन लक्ष्मीः, कृष्या अन्नादिकं, निवासेन रक्षणं जायते, सेयं सर्वेषामाधारभूता मातृवन्मान्यकर्त्री भूमिवर्त्तते, तथा सती विदुषी स्त्री भवेदिति॥२१॥

पदार्थः-हे स्त्रि! जो तू सूर्य्य के तुल्य **(मूर्द्धा)** उत्तम **(असि)** है, **(राट्)** प्रकाशमान निश्चल के समान **(ध्रुवा)** निश्चल शुद्ध **(असि)** है, **(धरुणा)** पुष्टि करने हारी **(धरणी)** आधार रूप पृथिवी के तुल्य **(धर्त्री)** धारण करने हारी **(असि)** है, उस **(त्वा)** तुझे **(आयुषे)** जीवन के लिये, उस **(त्वा)** तुझे **(वर्चसे)** अन्न के लिये, उस **(त्वा)** तुझे **(कृष्यै)** खेती होने के लिये और उस **(त्वा)** तुझ को **(क्षेमाय)** रक्षा होने के लिये मैं सब ओर से ग्रहण करता हूं॥२१॥

भावार्थः-जैसे स्थित उत्तमांग शिर से सब का जीवन, राज्य से लक्ष्मी, खेती से अन्न आदि पदार्थ और निवास से रक्षा होती है, सो यह सब का आधारभूत माता के तुल्य मान्य करने हारी पृथिवी है, वैसे ही विद्वान् स्त्री को होना चाहिये॥२१॥

यन्त्रीत्यस्य विश्वदेव ऋषिः। विदुषी देवता। निचृदुष्णिक्छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

पुनः पत्नी कीदृशी स्यादित्याह॥

फिर स्त्री कैसी होवे, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

यन्त्री राड् यन्त्र्यसि यमनी ध्रुवासि धरित्री।

इषे त्वोर्जे त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा॥२२॥

यन्त्री। राट्। यन्त्री। असि। यमनी। ध्रुवा। असि। धरित्री। इषे। त्वा। ऊर्ज्जे। त्वा। रय्यै। त्वा। पोषाय। त्वा॥२२॥

पदार्थः-(**यन्त्री**) यन्त्रवत् स्थिता (**राट्**) प्रकाशमाना (**यन्त्री**) यन्त्रनिमित्ता (**असि**) (**यमनी**) आकर्षणेन नियन्तुं शीला आकाशवद् दृढा (**ध्रुवा**) (**असि**) (**धरित्री**) सर्वेषां धारिका (**इषे**) इच्छासिद्धये (**त्वा**) त्वाम् (**ऊर्जे**) पराक्रमप्राप्तये (**त्वा**) त्वाम् (**रय्यै**) लक्ष्म्यै (**त्वा**) त्वाम् (**पोषाय**) (**त्वा**) त्वाम्। [अयं मन्त्रः शत०८.३.४.१० व्याख्यातः]॥२२॥

अन्वयः-हे स्त्रि! या त्वं यन्त्री राट् यन्त्री भूमिरिवाऽसि, यमनी ध्रुवा धरित्र्यसि, त्वेषे त्वोर्जे त्वा रय्यै त्वा पोषाय चाऽहं स्वीकरोमि॥२२॥

भावार्थः-या स्त्री भूमिवत् क्षमान्वितान्तरिक्षवदक्षोभा यन्त्रवज्जितेन्द्रिया भवति सा कुलदीपिकाऽस्ति॥२२॥

पदार्थः-हे स्त्रि! जो तू (**यन्त्री**) यन्त्र के तुल्य स्थित (**राट्**) प्रकाशयुक्त (**यन्त्री**) यन्त्र का निमित्त पृथिवी के समान (**असि**) है, (**यमनी**) आकर्षण शक्ति से नियमन करने हारी (**ध्रुवा**) आकाश-सदृश दृढ़ निश्चल (**धरित्री**) सब शुभगुणों का धारण करने वाली (**असि**) है, (**त्वा**) तुझ को (**इषे**) इच्छा सिद्धि के लिये (**त्वा**) तुझ को (**ऊर्जे**) पराक्रम की प्राप्ति के लिये (**त्वा**) तुझ को (**रय्यै**) लक्ष्मी के लिये और (**त्वा**) तुझ को (**पोषाय**) पुष्टि होने के लिये मैं ग्रहण करता हूं॥२२॥

भावार्थः-जो स्त्री पृथिवी के समान क्षमायुक्त, आकाश के समान निश्चल और यन्त्रकला के तुल्य जितेन्द्रिय होती है, वह कुल का प्रकाश करने वाली है॥२२॥

आशुस्त्रिवृदित्यस्य विश्वदेव ऋषिः। यज्ञो देवता। पूर्वस्य भुरिग्ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। गर्भा इत्युत्तरस्य भुरिगतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

अथ संवत्सर कीदृशोऽस्तीत्याह॥

अब संवत्सर कैसा है, यह विषय अगने मन्त्र में कहा है॥

आशुस्त्रिवृद्भान्तः पञ्चदशो व्योमा सप्तदशो धरुणऽ एकविंशः प्रतूर्त्तिरष्टादशस्तपो नवदशोऽभीवर्त्तः सविंशो वर्चो द्वाविंशः सम्भरणस्त्रयोविंशो योनिश्चतुर्विंशो गर्भाः पञ्चविंशऽ ओजस्त्रिणवः क्रतुरेकत्रिंशः प्रतिष्ठा त्रयस्त्रिंशो ब्रध्नस्य विष्टपं चतुस्त्रिंशो नाकः षट्त्रिंशो विवर्त्तोऽष्टाचत्वारिंशो धर्त्रं चतुष्टोमः॥ २३॥

आशुः। त्रिवृदिति त्रिऽवृत्। भान्तः। पञ्चदश इति पञ्चऽदशः। व्योमेति विऽओमा। सप्तदश इति सप्तऽदशः। धरुणः। एकविंश इत्येकऽविंशः। प्रतूर्त्तिरिति प्रऽतूर्त्तिः। अष्टादश इत्यष्टाऽदशः। तपः। नवदश इति नवऽदशः। अभीवर्त्तः। अभीवर्त्त इत्यभिऽवर्त्तः। सविंश इति सऽविंशः। वर्चः। द्वाविंशः। सम्भरण इति सम्ऽभरणः। त्रयोविंश इति त्रयःऽविंशः। योनिः। चतुर्विंशः इति चतुःऽविंशः। गर्भाः। पञ्चविंश इति पञ्चऽविंशः। ओजः। त्रिणवः। त्रिनव इति त्रिऽनवः। क्रतुः। एकत्रिंश इत्येकऽत्रिंशः। प्रतिष्ठा। प्रतिस्थेति प्रतिऽस्था। त्रयस्त्रिंश इति त्रयःऽत्रिंशः। ब्रध्नस्य। विष्टपम्। चतुस्त्रिंश इति चतुःऽत्रिंशः। नाकः। षट्त्रिंश इति षट्ऽत्रिंशः। विवर्त्त इति विऽवर्त्तः। अष्टाचत्वारिंश इत्यष्टाऽचत्वारिंशः। धर्त्रम्। चतुष्टोमः। चतुस्तोम इति चतुःऽस्तोमः॥ २३॥

पदार्थः-(**आशुः**) (**त्रिवृत्**) शीते चोष्णो द्वयोर्मध्ये च वर्त्तते सः (**भान्तः**) प्रकाशः (**पञ्चदशः**) पञ्चदशानां पूरणः पञ्चदशविधः (**व्योमा**) व्योमवद् विस्तृतः (**सप्तदशः**) सप्तदशविधः (**धरुणः**) धारणगुणः (**एकविंशः**) एकविंशतिधा (**प्रतूर्त्तिः**) शीघ्रगतिः (**अष्टादशः**) अष्टादशधा (**तपः**) संतापो गुणः (**नवदशः**) नवदशधा (**अभीवर्त्तः**) य आभिमुख्ये वर्त्तते सः (**सविंशः**) विंशत्या सह वर्त्तमानः (**वर्चः**) दीप्तिः (**द्वाविंशः**) द्वाविंशतिधा (**सम्भरणः**) सम्यग् धारकः (**त्रयोविंशः**) त्रयोविंशतिधा (**योनिः**) संयोजको वियोजको गुणः (**चतुर्विंशः**) चतुर्विंशतिधा (**गर्भाः**) गर्भधारणशक्तयः (**पञ्चविंशः**) पञ्चविंशतिधा (**ओजः**) पराक्रमः (**त्रिणवः**) सप्तविंशतिधा (**क्रतुः**) कर्म प्रज्ञा वा (**एकत्रिंशः**) एकत्रिंशद्धा (**प्रतिष्ठा**) प्रतिष्ठन्ति यस्यां सा (**त्रयस्त्रिंशः**) त्रयस्त्रिंशत् प्रकारः (**ब्रध्नस्य**) महतः (**विष्टपम्**) व्याप्तिम्। अत्र विष् धातोर्बाहुलकादौणादिकस्तपः प्रत्ययः (**चतुस्त्रिंशः**) चतुस्त्रिंशद्विधः (**नाकः**) आनन्दः (**षट्त्रिंशः**) षट्त्रिंशत्प्रकारः (**विवर्त्तः**) विविधं वर्तते यस्मिन् सः (**अष्टाचत्वारिंशः**) अष्टाचत्वारिंशद्धा (**धर्त्रम्**) धारणम् (**चतुष्टोमः**) चत्वारः स्तोमाः स्तुतयो यस्मिन् संवत्सरे सः। [अयं मन्त्रः शत०८.४.१.९ व्याख्यातः]॥२३॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यूयं यस्मिन् संवत्सर आशुस्त्रिवृद् भान्तः पञ्चदशो व्योमा सप्तदशो धरुण एकविंशः प्रतूर्त्तिरष्टादशस्तपो नवदशोऽभीवर्त्तः सविंशो वर्चो द्वाविंशः संभरणस्त्रयोविंशो योनिश्चतुर्विंशो गर्भाः पञ्चविंश ओजस्त्रिणवः क्रतुरेकत्रिंशः प्रतिष्ठा त्रयस्त्रिंशो ब्रध्नस्य विष्टपं चतुस्त्रिंशो नाकः षट्त्रिंशो विवर्त्तोऽष्टाचत्वारिंशो धर्त्रं चतुष्टोमोऽस्ति, तं संवत्सरं विजानीत॥२३॥

भावार्थः-यस्य संवत्सरस्य सम्बन्धिनो भूतभविष्यद्वर्त्तमानादयोऽवयवाः सन्ति तस्य सम्बन्धादेते व्यवहारा भवन्तीति यूयं बुध्यध्वम्॥२३॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम लोग इस वर्त्तमान संवत् में **(आशुः)** शीघ्र **(त्रिवृत्)** शीत और उष्ण के बीच वर्त्तमान **(भान्तः)** प्रकाश **(पञ्चदशः)** पन्द्रह प्रकार का **(व्योमा)** आकाश के समान विस्तारयुक्त **(सप्तदशः)** सत्रह प्रकार का **(धरुणः)** धारण गुण **(एकविंशः)** इक्कीस प्रकार का **(प्रतूर्त्तिः)** शीघ्र गति वाला **(अष्टादशः)** अठारह प्रकार का **(तपः)** सन्तापी गुण **(नवदशः)** उन्नीस प्रकार का **(अभीवर्त्तः)** सम्मुख वर्त्तने वाला गुण **(सविंशः)** इक्कीस प्रकार की **(वर्चः)** दीप्ति **(द्वाविंशः)** बाईस प्रकार का **(सम्भरणः)** अच्छे प्रकार धारणकारक गुण **(त्रयोविंशः)** तेईस प्रकार का **(योनिः)** संयोग-वियोगकारी गुण **(चतुर्विंशः)** चौबीस प्रकार की **(गर्भाः)** गर्भ धारण की शक्ति **(पञ्चविंशः)** पच्चीस प्रकार का **(ओजः)** पराक्रम **(त्रिणवः)** सत्ताईस प्रकार का **(क्रतुः)** कर्म्म वा बुद्धि **(एकत्रिंशः)** एकतीस प्रकार की **(प्रतिष्ठा)** सब की स्थिति का निमित्त क्रिया **(त्रयस्त्रिंशः)** तेंतीस प्रकार की **(ब्रध्नस्य)** बड़े ईश्वर की **(विष्टपम्)** व्याप्ति **(चतुस्त्रिशः)** चौंतीस प्रकार का **(नाकः)** आनन्द **(षट्त्रिंशः)** छत्तीस प्रकार का **(विवर्त्तः)** विविध प्रकार से वर्त्तन का आधार **(अष्टाचत्वारिंशः)** अड़तालीस प्रकार का **(धर्त्रम्)** धारण और **(चतुष्टोमः)** चार स्तुतियों का आधार है, उस को संवत्सर जानो॥२३॥

भावार्थः-जिस संवत्सर के सम्बन्धी भूत, भविष्यत् और वर्तमान काल आदि अवयव हैं, उस के सम्बन्ध से ही से सब संसार के व्यवहार होते हैं, ऐसा तुम लोग जानो॥२३॥

अग्नेर्भाग इत्यस्य विश्वदेव ऋषिः। मेधाविनो देवताः। भुरिग्विकृतिश्छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

अथ मनुष्यैः कथं विद्या अधीत्य किमाचरणीयमित्याह॥

अब मनुष्य किस प्रकार विद्या पढ़ के कैसा आचरण करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अ॒ग्नेर्भा॒गो॒ऽसि दी॒क्षाया॒ऽ आधि॑पत्यं॒ ब्रह्म॑ स्पृ॒तं त्रि॒वृत्स्तोम॑ऽ इन्द्र॑स्य भा॒गो॒ऽसि॒ विष्णो॒राधि॑पत्यं क्ष॒त्रꣳ स्पृ॒तं प॑ञ्चद॒श स्तोमो॑ नृ॒चक्ष॑सां भा॒गो॒ऽसि धा॒तुराधि॑पत्यं ज॒नित्र॑ꣳ स्पृ॒तꣳ स॑प्तद॒श स्तोमो॑ मि॒त्रस्य॑ भा॒गो॒ऽसि॒ वरु॑ण॒स्याधि॑पत्यं दि॒वो वृ॒ष्टिर्वात॑ स्पृ॒तऽ ए॑कवि॒ꣳश स्तोम॑ः॥२४॥

अ॒ग्नेः। भा॒गः। अ॒सि॒। दी॒क्षायाः॑। आधि॑पत्य॒मित्याधि॑ऽपत्यम्। ब्रह्म॑। स्पृ॒तम्। त्रि॒वृदिति॑ त्रि॒ऽवृ॒त्। स्तोम॑ः। इन्द्र॑स्य। भा॒गः। अ॒सि॒। विष्णोः॑। आधि॑पत्य॒मित्याधि॑ऽपत्यम्। क्ष॒त्रम्। स्पृ॒तम्। प॒ञ्च॒द॒श इति॑ पञ्च॒ऽद॒शः। स्तोम॑ः। नृ॒चक्ष॑सा॒मिति॑ नृ॒ऽचक्ष॑साम्। भा॒गः। अ॒सि॒। धा॒तुः। आधि॑पत्य॒मित्याधि॑ऽपत्यम्। ज॒नित्र॑म्। स्पृ॒तम्। स॒प्त॒ऽद॒श इति॑ सप्त॒ऽद॒शः। स्तोमः। मि॒त्रस्य॑। भा॒गः। अ॒सि॒। वरु॑णस्य। आधि॑पत्य॒मित्याधि॑ऽपत्यम्। दि॒वः। वृ॒ष्टिः॑। वात॑ः। स्पृ॒तः। ए॒क॒वि॒ꣳश इत्येक॑ऽवि॒ꣳशः। स्तोम॑ः॥२४॥

पदार्थः-(**अग्नेः**) सूर्य्यस्य (**भागः**) विभजनीयः (**असि**) (**दीक्षायाः**) ब्रह्मचर्यादेः (**आधिपत्यम्**) (**ब्रह्म**) ब्रह्मवित्कुलम् (**स्पृतम्**) प्रीतं सेवितम् (**त्रिवृत्**) यत्त्रिभिः कायिकवाचिकमानसैः साधनैः शुद्धं वर्त्तते (**स्तोमः**) यः स्तूयते (**इन्द्रस्य**) विद्युतः परमैश्वर्यस्य वा (**भागः**) (**असि**) (**विष्णोः**) व्यापकस्य जगदीश्वरस्य (**आधिपत्यम्**) (**क्षत्रम्**) क्षात्रधर्मप्राप्तं राजन्यकुलम् (**स्पृतम्**) (**पञ्चदशः**) पञ्चदशानां पूर्णः (**स्तोमः**) स्तोता (**नृचक्षसाम्**) येऽर्था नृभिः ख्यायन्ते तेषाम् (**भागः**) (**असि**) (**धातुः**) धर्त्तुः (**आधिपत्यम्**) अधिपतेर्भावः (**जनित्रम्**) जननम् (**स्पृतम्**) (**सप्तदशः**) (**स्तोमः**) स्तावकः (**मित्रस्य**) (**भागः**) (**असि**) (**वरुणस्य**) श्रेष्ठोदकसमूहस्य वा (**आधिपत्यम्**) (**दिवः**) प्रकाशस्य (**वृष्टिः**) वर्षा (**वातः**) वायुः (**स्पृतः**) सेवितः (**एकविंशः**) (**स्तोमः**) स्तुवन्ति येन सः। [अयं मन्त्रः शत०८.४.२.३-६ व्याख्यातः]॥२४॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यस्त्वमग्नेर्भागः संवत्सर इवाऽसि, स त्वं दीक्षायाः स्पृतमाधिपत्यं ब्रह्म प्राप्नुहि। यस्त्रिवृत्स्तोम इन्द्रस्य भाग इवासि, स त्वं विष्णोः स्पृतमाधिपत्यं क्षत्रं प्राप्नुहि। यस्त्वं पञ्चदश स्तोमो नृचक्षसां भाग इवासि, स त्वं धातुः स्पृतं जनित्रमाधिपत्यं प्राप्नुहि। यस्त्वं सप्तदश स्तोमो मित्रस्य भाग इवासि, स त्वं वरुणस्याधिपत्यं याहि। यस्त्वं वातः स्पृत एकविंश स्तोम इवासि तेन त्वया दिवो वृष्टिर्विधेया॥२४॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये बाल्यावस्थामारभ्य सज्जनोपदिष्टविद्याग्रहणाय प्रयत्नेनाधिपत्यं लभन्ते, ते स्तुत्यानि कर्माणि कृत्वोत्तमा भूत्वा सविधं कालं विज्ञाय विज्ञापयेयुः॥२४॥

पदार्थः-हे विद्वान् पुरुष! जो तू (**अग्नेः**) सूर्य्य का (**भागः**) विभाग के योग्य संवत्सर के तुल्य (**असि**) है, सो तू (**दीक्षायाः**) ब्रह्मचर्य्य आदि की दीक्षा का (**स्पृतम्**) प्रीति से सेवन किये हुए (**आधिपत्यम्**) (**ब्रह्म**) ब्रह्मज्ञ कुल के अधिकार को प्राप्त हो, जो (**त्रिवृत्**) शरीर, वाणी और मानस साधनों से शुद्ध वर्त्तमान (**स्तोमः**) स्तुति के योग्य (**इन्द्रस्य**) बिजुली वा उत्तम ऐश्वर्य के (**भागः**) विभाग के तुल्य (**असि**) है, सो तू (**विष्णोः**) व्यापक ईश्वर के (**स्पृतम्**) प्रीति से सेवने योग्य (**क्षत्रम्**) क्षत्रियों के धर्म के अनुकूल राजकुल के (**आधिपत्यम्**) अधिकार को प्राप्त हो, जो तू (**पञ्चदशः**) पन्द्रह का पूरक (**स्तोमः**) स्तुतिकर्त्ता (**नृचक्षसाम्**) मनुष्यों से कहने योग्य पदार्थों के (**भागः**) विभाग के तुल्य (**असि**) है, सो तू (**धातुः**) धारणकर्त्ता के (**स्पृतम्**) ईप्सित (**जनित्रम्**) जन्म और (**आधिपत्यम्**) अधिकार को प्राप्त हो, जो तू (**सप्तदशः**) सत्रह संख्या का पूरक (**स्तोमः**) स्तुति के योग्य (**मित्रस्य**) प्राण का (**भागः**) विभाग के समान (**असि**) है, सो तू (**वरुणस्य**) श्रेष्ठ जलों के (**आधिपत्यम्**) स्वामीपन को प्राप्त हो, जो तू (**वातः स्पृतः**) सेवित पवन और (**एकविंशः**) इक्कीस संख्या का पूरक (**स्तोमः**) स्तुति के साधन के समान (**असि**) है, सो तू (**दिवः**) प्रकाशरूप सूर्य्य से (**वृष्टिः**) वर्षा होने का हवन आदि उपाय कर॥२४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो पुरुष बाल्यावस्था से लेकर सज्जनों ने उपदेश की हुई विद्याओं के ग्रहण के लिये प्रयत्न कर के अधिकारी होते हैं, वे स्तुति के योग्य कर्मों को कर और उत्तम हो के विधान के सहित काल को जान के दूसरों को जनावें॥२४॥

वसूनां भाग इत्यस्य विश्वदेव ऋषि:। वस्वादयो लिङ्गोक्ता देवता:। स्वराट् संकृतिश्छन्द:। ऋषभ: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी पूर्वोक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

वसूनां भागोऽसि रुद्राणामाधिपत्यं चतुष्पात् स्पृतं चतुर्विꣳश स्तोमऽ आदित्यानां भागोऽसि मरुतामाधिपत्यं गर्भा स्पृता: पंचविꣳश स्तोमोऽदित्यै भागोऽसि पूष्णऽ आधिपत्यमोज स्पृतं त्रिणव स्तोमो देवस्य सवितुर्भागोऽसि बृहस्पतेराधिपत्यꣳ समीचीर्दिश स्पृताश्चतुष्टोम स्तोम:॥२५॥

वसूनाम्। भाग:। असि। रुद्राणाम्। आधिपत्यमित्याधिऽपत्यम्। चतुष्पात्। चतु:पादिति चतु:ऽपात्। स्पृतम्। चतुर्विꣳश इति चतु:ऽविꣳश:। स्तोम:। आदित्यानाम्। भाग:। असि। मरुताम्। आधिपत्यमित्याधिऽपत्यम्। गर्भा:। स्पृता:। पञ्चविꣳश इति पञ्चऽविꣳश:। स्तोम:। अदित्यै। भाग:। असि। पूष्ण:। आधिपत्यमित्याधिऽपत्यम्। ओज:। स्पृतम्। त्रिणव:। त्रिनव इति त्रिऽनव:। स्तोम:। देवस्य। सवितु:। भाग:। असि। बृहस्पते:। आधिपत्यमित्याधिऽपत्यम्। समीची:। दिश:। स्पृता:। चतुष्टोम:। चतुस्तोम इति चतु:ऽस्तोम:। स्तोम:॥२५॥

पदार्थ:-**(वसूनाम्)** अग्न्यादीनामादिमानां विदुषां वा **(भाग:)** **(असि)** **(रुद्राणाम्)** प्राणादीनां मध्यमानां विदुषां वा **(आधिपत्यम्)** **(चतुष्पात्)** गवादिकम् **(स्पृतम्)** सेवितम् **(चतुर्विंश:)** चतुर्विंशतिधा **(स्तोम:)** स्तोता **(आदित्यानाम्)** मासानामुत्तमानां विदुषां वा **(भाग:)** **(असि)** **(मरुताम्)** मनुष्याणां पशूनां वा। **मरुत इति पदनामसु पठितम्।** (निघं०५।५) **(आधिपत्यम्)** **(गर्भा:)** गर्भ इव विद्याशुभगुणैरावृता: **(स्पृता:)** प्रीतिमन्त: **(पञ्चविंश:)** पञ्चविंशतिप्रकार: **(स्तोम:)** स्तोतव्य: **(अदित्यै)** प्रकाशस्य **(भाग:)** **(असि)** **(पूष्ण:)** पुष्टिकर्त्र्या भूमे:। **पूषेति पृथिवीनामसु पठितम्।** (निघं०१।१) **(आधिपत्यम्)** **(ओज:)** बलम् **(स्पृतम्)** सेवितम् **(त्रिणव:)** सप्तविंशतिधा **(स्तोम:)** स्तोतव्य: **(देवस्य)** सुखप्रदस्य **(सवितु:)** जनकस्य **(भाग:)** **(असि)** **(बृहस्पते:)** बृहत्या वेदवाच: पालकस्य **(आधिपत्यम्)** **(समीची:)** या: सम्यगच्यन्ते **(दिश:)** **(स्पृता:)** **(चतुष्टोम:)** चतुर्भिर्वेदै: स्तूयते चतु:स्तोम **(स्तोम:)** स्तोता। [अयं मन्त्र: शत०८.४.२.७-१० व्याख्यात:]॥२५॥

अन्वय:-हे विद्वन्! यस्त्वं वसूनां भागोऽसि, स त्वं रुद्राणामाधिपत्यं गच्छ। यश्चतुर्विंशस्तोम आदित्यानां भागोऽसि, स त्वं चतुष्पात्स्पृतं कुरु, मरुतामाधिपत्यं गच्छ। यस्त्वं पञ्चविंशस्तोमोऽदित्यै भागोऽसि, स त्वं पूष्ण ओज: स्पृतमाधिपत्यं प्राप्नुहि। यस्त्वं त्रिणव: स्तोमो देवस्य सवितुर्भागोऽसि, स त्वं

बृहस्पतेराधिपत्यं याहि। यस्त्वं चतुष्टोमोऽसि, स त्वं गर्भाः स्पृता या जानन्ति ताः समीचीः स्पृता दिशो विजानीहि॥ २५॥

भावार्थः-ये सुशीलत्वादिगुणन् गृह्णन्ति ते विद्वत्प्रियाः सन्तः सर्वाधिष्ठातृत्वं प्राप्नुवन्ति। येऽधिपतयो भवेयुस्ते नृषु पितृवद्वर्त्तन्ताम्॥ २५॥

पदार्थः-हे विद्वान्! जो तू **(वसूनाम्)** अग्नि आदि आठ वा प्रथम कक्षा के विद्वानों का **(भागः)** सेवने योग्य **(असि)** है, सो **(रुद्राणाम्)** दश प्राण आदि ग्यारहवां जीव वा मध्यकक्षा के विद्वानों के **(आधिपत्यम्)** अधिकार को प्राप्त हो, जो **(चतुर्विंशः)** चौबीस प्रकार का **(स्तोमः)** स्तुतिकर्त्ता **(आदित्यानाम्)** बारह महीनों वा उत्तम कक्षा के विद्वानों के **(भागः)** सेवने योग्य **(असि)** है, सो तू **(चतुष्पात्)** गौ आदि पशुओं का **(स्पृतम्)** सेवन कर **(मरुताम्)** मनुष्य वा पशुओं के **(आधिपत्यम्)** अधिष्ठाता हो, जो तू **(पञ्चविंशः)** पच्चीस प्रकार का **(स्तोमः)** स्तुति के योग्य **(अदित्यै)** अखण्डित आकाश का **(भागः)** विभाग के तुल्य **(असि)** है, सो तू **(पूष्णः)** पुष्टिकारक पृथिवी से **(स्पृतम्)** सेवने योग्य **(ओजः)** बल को प्राप्त हो के **(आधिपत्यम्)** अधिकार को **(प्राप्नुहि)** प्राप्त हो, जो तू **(त्रिणवः)** सत्ताईस प्रकार का **(स्तोमः)** स्तुति के योग्य **(देवस्य)** सुखदाता **(सवितुः)** पिता का **(भागः)** विभाग **(असि)** है, सो तू **(बृहस्पतेः)** बड़ी वेदरूपी वाणी के पालक ईश्वर के दिये हुए **(आधिपत्यम्)** अधिकार को प्राप्त हो, जो तू **(चतुष्टोमः)** चार वेदों से कहने योग्य स्तुतिकर्त्ता है, सो तू **(गर्भाः)** गर्भ के तुल्य विद्या और शुभ गुणों से आच्छादित **(स्पृताः)** प्रीतिमान् सज्जन लोग जिन को जानते हैं, उन **(समीचीः)** सम्यक् प्राप्ति के साधन **(स्पृताः)** प्रीति का विषय **(दिशः)** पूर्व दिशाओं को जान॥ २५॥

भावार्थः-जो सुन्दर स्वभाव आदि गुणों का ग्रहण करते हैं, वे विद्वानों के प्यारे होके सब के अधिष्ठाता होते हैं और जो सब के ऊपर अधिकारी हों, वे मनुष्यों में पिता के समान वर्त्तें॥ २५॥

यवानां भाग इत्यस्य विश्वदेव ऋषिः। ऋभवो देवताः। निचृदतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनः स शरदि कथं वर्त्तेतेत्याह॥

फिर वह शरद् ऋतु में कैसे वर्त्तें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

यवा॑नां भा॒गो॒ऽस्यय॑वाना॒माधि॑पत्यं प्र॒जा स्पृ॒ताश्च॑तुश्चत्वारि॒ꣳश स्तोम॑ऽ ऋ॒भू॒णां भा॒गो॒ऽसि॒ विश्वे॑षां दे॒वाना॒माधि॑पत्यं भू॒तꣳ स्पृ॒तं त्र॑यस्त्रि॒ꣳश स्तोम॑ः॥ २६॥

यवा॑नाम्। भा॒गः। अ॒सि॒। अय॑वानाम्। आधि॑पत्य॒मित्याधि॑ऽपत्यम्। प्र॒जा इति॑ प्र॒ऽजाः। स्पृ॒ताः। च॒तु॒श्च॒त्वा॒रि॒ꣳश इति॑ चतुःऽच॒त्वा॒रि॒ꣳशः। स्तोम॑ः। ऋ॒भू॒णाम्। भा॒गः। अ॒सि॒। विश्वे॑षाम्। दे॒वाना॑म्। आधि॑पत्य॒मित्याधि॑ऽपत्यम्। भू॒तम्। स्पृ॒तम्। त्र॒य॒स्त्रि॒ꣳश इति॑ त्रयःऽस्त्रि॒ꣳशः। स्तोम॑ः॥ २६॥

पदार्थः-(**यवानाम्**) मिश्रितानाम् (**भागः**) (**असि**) (**अयवानाम्**) अमिश्रितानाम् (**आधिपत्यम्**) (**प्रजाः**) पालनीयाः (**स्पृताः**) प्रीताः (**चतुश्चत्वारिंशः**) एतत्संख्यायाः पूरकः (**स्तोमः**) (**ऋभूणाम्**) मेधाविनाम् (**भागः**) (**असि**) (**विश्वेषाम्**) सर्वेषाम् (**देवानाम्**) विदुषाम् (**आधिपत्यम्**) (**भूतम्**) (**स्पृतम्**) सेवितम् (**त्रयस्त्रिंशः**) एतत्संख्यापूरकः (**स्तोमः**) स्तुतिविषयः। [अयं मन्त्रः शत०८.४.२.११-१३ व्याख्यातः]॥२६॥

अन्वयः-हे मनुष्य! यस्त्वं यवानां भागः शरदृतुरिवासि, योऽयवानामाधिपत्यं प्राप्य प्रजाः स्पृताः करोति, यश्चतुश्चत्वारिंश स्तोम ऋभूणां भागोऽसि, विश्वेषां देवानां भूतं स्पृतमाधिपत्यं प्राप्य यस्त्रयस्त्रिंशः स्तोमोऽसि, स त्वमस्माभिः सत्कर्त्तव्यः॥२६॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैर्य इमे शरदृतोर्गुणा उक्तास्ते यथावत् सेवनीया इति॥२६॥

पदार्थः-हे मनुष्य! जो तू (**यवानाम्**) मिले हुए पदार्थों का (**भागः**) सेवन करने हारा शरद् ऋतु के समान (**असि**) है, जो (**अयवानाम्**) पृथक्-पृथक् धर्म वाले पदार्थों के (**आधिपत्यम्**) अधिकार को प्राप्त होकर प्रीति से (**प्रजाः**) पालने योग्य प्रजाओं को (**स्पृताः**) प्रेमयुक्त करता है, जो (**चतुश्चत्वारिंशः**) चवालीस संख्या का पूर्ण करने वाला (**स्तोमः**) स्तुति के योग्य (**ऋभूणाम्**) बुद्धिमानों के (**भागः**) सेवने योग्य (**असि**) है, (**विश्वेषाम्**) सब (**देवानाम्**) विद्वानों के (**भूतम्**) हो चुके (**स्पृतम्**) सेवन किये हुए (**आधिपत्यम्**) अधिकार को प्राप्त होकर जो (**त्रयस्त्रिशः**) तेंतीस संख्या का पूरक (**स्तोमः**) स्तुति के विषय के समान (**असि**) है, सो तू हम लोगों से सत्कार के योग्य है॥२६॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि जो ये पीछे के मन्त्र में शरद् ऋतु के गुण कहे हैं, उन को यथावत् सेवन करें। यह शरद् ऋतु का व्याख्यान पूरा हुआ॥२६॥

सहश्चेत्यस्य विश्वदेव ऋषिः। ऋतवो देवताः। पूर्वस्य भुरिगतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः। ये अग्नय इत्युत्तरस्य भुरिग्ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

अथ हेमन्तर्त्तुविधानमाह॥

अब हेमन्त ऋतु के विधान को अगले मन्त्र में कहा है॥

सह॑श्च सह॒स्य॒श्च॒ हैम॑न्तिकावृ॒तू॒ऽ अ॒ग्नेर॑न्तःश्ले॒षो॒ऽसि॒ कल्पे॑तां॒ द्यावा॑पृथि॒वी कल्प॑न्ता॒माप॒ऽ ओष॑धय॒: कल्प॑न्ताम॒ग्नय॒: पृथ॒ङ् मम॒ ज्यैष्ठ्या॑य॒ सव्र॑ताः। येऽ अ॒ग्नय॒: सम॑नसोऽन्त॒रा द्यावा॑पृथि॒वीऽ इ॒मे। हैम॑न्तिकावृ॒तू॒ऽ अ॑भि॒कल्प॑माना॒ऽ इन्द्र॑मिव दे॒वाऽ अ॑भि॒संवि॑शन्तु॒ तया॑ दे॒वत॑याङ्गिर॒स्वद् ध्रु॒वे सी॑दतम्॥ २७॥

सहः। च। सहस्यः। च। हैमन्तिकौ। ऋतू इत्यृतू। अग्नेः। अन्तःश्लेष इत्यन्तःऽश्लेषः। असि। कल्पेताम्। द्यावापृथिवी इति द्यावापृथिवी। कल्पन्ताम्। आपः। ओषधयः। कल्पन्ताम्। अग्नयः। पृथक्। मम। ज्यैष्ठ्याय। सव्रता इति सऽव्रताः। ये। अग्नयः। समनस इति सऽमनसः। अन्तरा। द्यावापृथिवी इति द्यावापृथिवी। इमे इतीमे। हैमन्तिकौ। ऋतू इत्यृतू। अभिकल्पमाना इत्यभिऽकल्पमानाः। इन्द्रमिवेतीन्द्रम्ऽइव। देवाः। अभिसंविशन्त्वित्यभिऽसंविशन्तु। तया। देवतया। अङ्गिरस्वत्। ध्रुवे इति ध्रुवे। सीदतम्॥ २७॥

पदार्थः-(**सहः**) बलकारी मार्गशीर्षः (**च**) (**सहस्यः**) सहसि बले भवः पौषः (**च**) (**हैमन्तिकौ**) हेमन्ते भवौ मार्गशीर्षः पौषश्च मासौ (**ऋतू**) स्वलिङ्गप्रापकौ (**अग्नेः**) विद्युतः (**अन्तःश्लेषः**) मध्यः स्पर्शः (**असि**) (**कल्पेताम्**) (**द्यावापृथिवी**) (**कल्पन्ताम्**) (**आपः**) (**ओषधयः**) (**कल्पन्ताम्**) (**अग्नयः**) श्वैत्येन युक्ताः पावकाः (**पृथक्**) (**मम**) (**ज्यैष्ठ्याय**) ज्येष्ठानां वृद्धानां भावाय (**सव्रताः**) नियमैः सहिताः (**ये**) (**अग्नयः**) (**समनसः**) समानं मनो येभ्यस्ते (**अन्तरा**) आभ्यन्तरे (**द्यावापृथिवी**) (**इमे**) (**हैमन्तिकौ**) उक्तौ (**ऋतू**) (**अभिकल्पमानाः**) आभिमुख्येन समर्थयन्तः (**इन्द्रमिव**) यथैश्वर्यम् (**देवाः**) दिव्यगुणाः (**अभिसंविशन्तु**) (**तया**) (**देवतया**) (**अङ्गिरस्वत्**) (**ध्रुवे**) दृढे (**सीदतम्**) तिष्ठेताम्। [अयं मन्त्रः शत०८.४.२.१४ व्याख्यातः]॥ २७॥

अन्वयः-हे मित्र! यौ मम ज्यैष्ठ्याय सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिकावृतू अङ्गिरस्वत् सीदतम्, यस्याग्नेरन्तःश्लेष इवासि, स त्वं तेन द्यावापृथिवी कल्पेतामाप ओषधयोऽग्नयश्च पृथक् कल्पन्तामिति जानीहि। येऽग्नय इवान्तरा सव्रताः समनस इमे ध्रुवे द्यावापृथिवी कल्पन्तामिन्द्रमिव हैमन्तिकावृतू अभिकल्पमाना देवा अभिसंविशन्तु, ते तया देवतया सह युक्ताहारविहारा भूत्वा सुखिनः स्युः॥ २७॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे मनुष्याः! यथा विद्वांसः स्वसुखाय हेमन्तर्त्तौ पदार्थान् सेवेरन् तथैवान्यानपि सेवयेयुः॥ २७॥

पदार्थः-हे मित्रजन! जो (**मम**) मेरे (**ज्यैष्ठ्याय**) वृद्ध श्रेष्ठ जनों के होने के लिये (**सहः**) बलकारी अगहन (**च**) और (**सहस्यः**) बल में प्रवृत्त हुआ पौष (**च**) ये दोनों महीने (**हैमन्तिकौ**) (**ऋतू**) हेमन्त ऋतु में हुए अपने चिह्न जानने वाले (**अङ्गिरस्वत्**) उस ऋतु के प्राण के समान (**सीदतम्**) स्थिर हैं, जिस ऋतु के (**अन्तःश्लेषः**) मध्य में स्पर्श होता है, उस के समान तू (**असि**) है, सो तू उस ऋतु से (**द्यावापृथिवी**) आकाश और भूमि (**कल्पेताम्**) समर्थ हों, (**आपः**) जल और (**ओषधयः**) ओषधियां और (**अग्नयः**) सफेदाई से युक्त अग्नि (**पृथक्**) पृथक्-पृथक् (**कल्पन्ताम्**) समर्थ हों, ऐसा जान (**ये**) जो (**अग्नयः**) अग्नियों के तुल्य (**अन्तरा**) भीतर प्रविष्ट होने वाले (**सव्रताः**) नियमधारी (**समनसः**) अविरुद्ध विचार करने वाले लोग (**इमे**) इन (**ध्रुवे**) दृढ़ (**द्यावापृथिवी**) आकाश और भूमि को (**कल्पन्ताम्**) समर्थित करें, (**इन्द्रमिव**) ऐश्वर्य के तुल्य (**हैमन्तिकौ**) (**ऋतू**) हेमन्त ऋतु के दोनों महीनों को (**अभिकल्पमानाः**) सन्मुख होकर समर्थ करने वाले (**देवाः**) दिव्य गुण बिजुली के समान (**अभिसंविशन्तु**) आवेश करें। वे सज्जन

लोग **(तया)** उस **(देवतया)** प्रकाशस्वरूप परमात्मा देव के साथ प्रेमबद्ध हो के नियम से आहार और विहार कर के सुखी हों॥२७॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। विद्वानों को योग्य है कि यथायोग्य सुख के लिये हेमन्त ऋतु में पदार्थों का सेवन करें और वैसे ही दूसरों को भी सेवन करावें॥२७॥

एकयेत्यस्य विश्वदेव ऋषिः। ईश्वरो देवता। निचृद्विकृतिश्छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

अथैतदृतुचक्रं केन सृष्टमित्याह॥

अब यह ऋतुओं का चक्र किसने रचा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है॥

एकयास्तुवत प्रजाऽ अधीयन्त प्रजापतिरधिपतिरासीत्।
तिसृभिरस्तुवत ब्रह्मासृज्यत ब्रह्मणस्पतिरधिपतिरासीत्।
पञ्चभिरस्तुवत भूतान्यसृज्यन्त भूतानां पतिरधिपतिरासीत्।
सप्तभिरस्तुवत सप्तऽ ऋषयोऽसृज्यन्त धाताधिपतिरासीत्॥२८॥

एकया। अस्तुवत। प्रजा इति प्रऽजाः। अधीयन्त। प्रजापतिरिति प्रजाऽपतिः। अधिपतिरित्यधिऽपतिः। आसीत्। तिसृभिरिति तिसृऽभिः। अस्तुवत। ब्रह्म। असृज्यत। ब्रह्मणः। पतिः। अधिपतिरित्यधिऽपतिः। आसीत्। पञ्चभिरिति पञ्चऽभिः। अस्तुवत। भूतानि। असृज्यन्त। भूतानाम्। पतिः। अधिपतिरित्यधिऽपतिः। आसीत्। सप्तभिरिति सप्तऽभिः। अस्तुवत। सप्तऋषय इति सप्तऋषयः। असृज्यन्त। धाता। अधिपतिरित्यधिऽपतिः। आसीत्॥२८॥

पदार्थः-**(एकया)** वाण्या **(अस्तुवत)** स्तुवन्तु **(प्रजाः)** **(अधीयन्त)** अधीयताम् **(प्रजापतिः)** पालक ईश्वरः **(अधिपतिः)** **(आसीत्)** अस्ति **(तिसृभिः)** प्राणोदानव्यानगतिभिः **(अस्तुवत)** स्तुवन्तु **(ब्रह्म)** परमेश्वरेण वेदः **(असृज्यत)** सृष्टः **(ब्रह्मणस्पतिः)** वेदस्य पालकः **(अधिपतिः)** **(आसीत्)** अस्ति **(पञ्चभिः)** समानचित्तबुद्ध्यहंकारमनोभिः **(अस्तुवत)** स्तुवन्तु **(भूतानि)** पृथिव्यादीनि **(असृज्यन्त)** संसृष्टानि कुर्वन्तु **(भूतानाम्)** **(पतिः)** पालकः **(अधिपतिः)** पत्युः पतिः **(आसीत्)** भवति **(सप्तभिः)** नागकूर्म्मकृकलदेवदत्तधनञ्जयेच्छाप्रयत्नैः **(अस्तुवत)** स्तुवन्तु **(सप्त ऋषयः)** पञ्च मुख्यप्राणा महत्तत्त्वमहंकारश्चेति **(असृज्यन्त)** सृज्यन्ते **(धाता)** धर्त्ता पोषको वा **(अधिपतिः)** सर्वेषां स्वामी **(आसीत्)** अस्ति। [अयं मन्त्रः शत०८.४.३.३-६ व्याख्यातः]॥२८॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यः प्रजापतिरधिपतिः सर्वस्य स्वामीश्वर आसीत् तमेकयाऽस्तुवत। सर्वाः प्रजाश्चाधीयन्त, यो ब्रह्मणस्पतिरधिपतिरासीद् येनेदं सर्वविद्यामयं ब्रह्म वेदोऽसृज्यत, तं तिसृभिरस्तुवत। येन भूतान्यसृज्यन्त यो भूतानां पतिरधिपतिरासीत्, तं सर्वे मनुष्याः पञ्चभिरस्तुवत। येन सप्त ऋषयोऽसृज्यन्त यो धाताऽधिपतिरासीत् तं सप्तभिरस्तुवत॥२८॥

भावार्थः-सर्वैर्मनुष्यैः सर्वस्य जगत उत्पादको न्यायाधीशः परमेश्वरः स्तोतव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः। यथा हेमन्तर्त्तौ सर्वे पदार्थाः शीतला भवन्ति, तथैव परमेश्वरमुपास्य शान्तियुक्ता भवन्तु॥२८॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो (**प्रजापतिः**) प्रजा का पालक (**अधिपतिः**) सब का अध्यक्ष परमेश्वर (**आसीत्**) है, उस की (**एकया**) एक वाणी से (**अस्तुवत**) स्तुति करो और जिस से सब (**प्रजाः**) प्रजा के लोगों को वेद द्वारा (**अधीयन्त**) विद्यायुक्त किये हैं, जो (**ब्रह्मणस्पतिः**) वेद का रक्षक (**अधिपतिः**) सब का स्वामी परमात्मा (**आसीत्**) है, जिस ने यह (**ब्रह्म**) सकल विद्यायुक्त वेद को (**असृज्यत**) रचा है, उस की (**तिसृभिः**) प्राण, उदान और व्यान वायु की गति से (**अस्तुवत**) स्तुति करो, जिसने (**भूतानि**) पृथिवी आदि भूतों को (**असृज्यन्त**) रचा है, जो (**भूतानाम्**) सब भूतों का (**पतिः**) रक्षक (**अधिपतिः**) रक्षकों का भी रक्षक (**आसीत्**) है, उस की सब मनुष्य (**पञ्चभिः**) समान वायु, चित्त, बुद्धि, अहंकार और मन से (**अस्तुवत**) स्तुति करें, जिस ने (**सप्त ऋषयः**) पांच मुख्य प्राण, महत्तत्व समष्टि और अहंकार सात पदार्थ (**असृज्यन्त**) रचे हैं, जो (**धाता**) धारण वा पोषणकर्त्ता (**अधिपतिः**) सब का स्वामी (**आसीत्**) है, उस की (**सप्तभिः**) नाग, कूर्म्म, कृकल, देवदत्त धनञ्जय, और इच्छा तथा प्रयत्नों से (**अस्तुवत**) स्तुति करो॥२८॥

भावार्थः-सब मनुष्यों को योग्य है कि सब जगत् के उत्पादक न्यायकर्त्ता परमात्मा की स्तुति कर, सुनें विचारें और अनुभव करें। जैसे हेमन्त ऋतु में सब पदार्थ शीतल होते हैं, वैसे ही परमेश्वर की उपासना करके शान्तिशील होवें॥२८॥

नवभिरस्तुवतेत्यस्य विश्वदेव ऋषिः। ईश्वरो देवता। पूर्वस्यार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः।
त्रयोदशभिरित्युत्तरस्य ब्राह्मी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनः स जगत्स्रष्टा किंभूत इत्याह॥

फिर वह जगत् का रचने वाला कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

न॒वभि॑रस्तुवत पि॒तरो॑ऽसृज्य॒न्तादि॑ति॒रधि॑पत्न्यासीत्।
एका॒द॒शभि॑रस्तुवतऽ ऋ॒तवो॑ऽसृज्यन्तार्त्त॒वाऽ अधि॑पतयऽआसन्।
त्रयो॒द॒शभि॑रस्तुवत॒ मासा॑ऽ असृज्यन्त संवत्स॒रोऽधि॑पतिरासीत्।
पञ्च॒द॒शभि॑रस्तुवत क्ष॒त्रम॑सृज्य॒तेन्द्रो॒ऽधि॑पतिरासीत्।
सप्त॒द॒शभि॑रस्तुवत ग्रा॒म्याः प॒शवो॑ऽसृज्यन्त॒ बृह॒स्पति॒रधि॑पतिरासीत्॥२९॥

न॒वभि॒रिति॑ न॒वऽभिः॑। अ॒स्तु॒व॒त॒। पि॒तरः॑। अ॒सृ॒ज्य॒न्त॒। अदि॑तिः। अधि॑प॒त्नीत्यधि॑ऽपत्नी। आ॒सी॒त्। ए॒का॒द॒शभि॒रित्येका॑ऽद॒शभिः॑। अ॒स्तु॒व॒त॒। ऋ॒तवः॑। अ॒सृ॒ज्य॒न्त॒। आ॒र्त्त॒वाः। अधि॑पतय॒ इत्यधि॑ऽपतयः। आ॒स॒न्।

त्रयोदशभिरिति त्रयोदशऽभिः। अस्तुवत। मासाः। असृज्यन्त। संवत्सरः। अधिपतिरित्यधिऽपतिः। आसीत्। पञ्चदशभिरिति पञ्चऽदशभिः। अस्तुवत। क्षत्रम्। असृज्यत। इन्द्रः। अधिपतिरित्यधिपतिः। आसीत्। सप्तदशभिरिति सप्तऽदशभिः। अस्तुवत। ग्राम्याः। पशवः। असृज्यन्त। बृहस्पतिः। अधिपतिरित्यधिऽपतिः। आसीत्॥२९॥

पदार्थः-(**नवभिः**) प्राणविशेषैः (**अस्तुवत**) प्रशंसन्तु (**पितरः**) पालका वर्षादयः (**असृज्यन्त**) उत्पादिताः (**अदितिः**) मातेव पालिका भूमिः (**अधिपत्नी**) अधिपतिसहिता (**आसीत्**) अस्ति (**एकादशभिः**) दश प्राणा एकादश आत्मा तैः (**अस्तुवत**) स्तुवन्तु (**ऋतवः**) वसन्तादयः (**असृज्यन्त**) सृष्टाः (**आर्त्तवाः**) ऋतुषु भवा गुणाः (**अधिपतयः**) (**आसन्**) भवन्ति (**त्रयोदशभिः**) दश प्राणा द्वे प्रतिष्ठे त्रयोदश आत्मा तैः (**अस्तुवत**) स्तुवन्तु (**मासाः**) चैत्राद्याः (**असृज्यन्त**) सृष्टाः (**संवत्सरः**) (**अधिपतिः**) अधिष्ठाता (**आसीत्**) अस्ति (**पञ्चदशभिः**) प्रतिपदादितिथिभिः (**अस्तुवत**) स्तुवन्तु संख्यायन्तु (**क्षत्रम्**) राज्यं क्षत्रियकुलं वा (**असृज्यत**) सृष्टम् (**इन्द्रः**) परमैश्वर्य्यहेतुः सूर्य्यः (**अधिपतिः**) अधिष्ठाता (**आसीत्**) (**सप्तदशभिः**) दश पाद्या अङ्गुलयश्चत्वार्यूर्वष्ठीवानि द्वे प्रतिष्ठे यदर्वाङ् नाभेस्तत्सप्तदशं तैः (**अस्तुवत**) स्तुवन्तु (**ग्राम्याः**) ग्रामे भवाः (**पशवः**) गवादयः (**असृज्यन्त**) (**बृहस्पतिः**) बृहतां पालको वैश्यः (**अधिपतिः**) अधिष्ठाता (**आसीत्**) अस्ति। [अयं मन्त्रः शत०८.४.३.७-११ व्याख्यातः]॥२९॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यूयं येन पितरोऽसृज्यन्त यत्राधिपत्न्यदितिरासीत् तं यूयं नवभिरस्तुवत। येनर्त्तवोऽसृज्यन्त, यत्रार्त्तवा अधिपतय आसंस्तमेकादशभिरस्तुवत। येन मासा असृज्यन्त, पञ्चदशभिः संवत्सरोऽधिपतिः सृष्ट आसीत् त्रयोदशभिरस्तुवत। यत्रेन्द्रोऽधिपतिरासीद्येन क्षत्रमसृज्यत, तं सप्तदशभिरस्तुवत। येन बृहस्पतिरधिपतिः सृष्ट आसीद्, ग्राम्याः पशवोऽसृज्यन्त तं परमेश्वरं सप्तदशभिरस्तुवत॥२९॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! भवन्तो येन ऋत्वादयः प्रजापालका निर्मिताः पाल्याश्च, येन कालनिर्मापकाः सूर्य्यादयः सर्वे पदार्थाः सृष्टास्तं परमात्मानमुपासीरन्॥२९॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम लोग जिस ने (**पितरः**) रक्षक मनुष्य (**असृज्यन्त**) उत्पन्न किये हैं, जहां (**अदितिः**) रक्षा के योग्य (**अधिपत्नी**) अत्यन्त रक्षक माता (**आसीत्**) होवे, उस परमात्मा की (**नवभिः**) नव प्राणों से (**अस्तुवत**) गुण प्रशंसा करो, जिस ने (**ऋतवः**) वसन्त आदि ऋतु (**असृज्यन्त**) रचे हैं, जहां (**आर्त्तवाः**) उन-उन ऋतुओं के गुण (**अधिपतयः**) अपने-अपने विषय में अधिकारी (**आसन्**) होते हैं, उस की (**एकादशभिः**) दश प्राणों और ग्यारहवें आत्मा से (**अस्तुवत**) स्तुति करो, जिस ने (**मासाः**) चैत्रादि बारह महीने (**असृज्यन्त**) रचे हैं, (**पञ्चदशभिः**) पन्द्रह तिथियों के सहित (**संवत्सरः**) संवत्सर (**अधिपतिः**) सब काल का अधिकारी रचा (**आसीत्**) है, उस की (**त्रयोदशभिः**) दश प्राण, ग्यारहवां जीवात्मा और दो प्रतिष्ठाओं से (**अस्तुवत**) स्तुति करो, जिन से (**इन्द्रः**) परम सम्पत्ति का हेतु सूर्य्य (**अधिपतिः**) अधिष्ठाता उत्पन्न किया (**आसीत्**) है, जिसने (**क्षत्रम्**) राज्य वा क्षत्रियकुल को (**असृज्यत**) रचा है, उस को

(सप्तदशभिः) दश पांव की अंगुली, दो जंघा, दो जानु, दो प्रतिष्ठा और एक नाभि से ऊपर का अंग- इन सत्रहों से **(अस्तुवत)** स्तुति करो, जिस ने **(बृहस्पतिः)** बड़े-बड़े पदार्थों का रक्षक वैश्य **(अधिपतिः)** अधिकारी रचा **(आसीत्)** है और **(ग्राम्याः)** ग्राम के **(पशवः)** गौ आदि पशु **(असृज्यन्त)** रचे हैं, उस परमेश्वर की पूर्वोक्त सब पदार्थों से युक्त होके **(अस्तुवत)** स्तुति करो॥२९॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! आप लोग जिसने ऋतु आदि प्रजा के रक्षक और रक्षा के योग्य पदार्थ इस जगत् में रचे हैं और जिसने काल के विभाग करने वाले सूर्य्य आदि पदार्थ रचे हैं, उस परमेश्वर की उपासना करो॥२९॥

नवदशभिरित्यस्य विश्वदेव ऋषिः। जगदीश्वरो देवता। पूर्वस्य स्वराड् ब्राह्मी जगती छन्दः। निषादः स्वरः। पञ्चविंशत्येत्यस्य ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनः स कीदृश इत्याह॥

फिर वह कैसा है, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

नवदशभिरस्तुवत शूद्रार्य्यावसृज्येतामहोरात्रेऽ अधिपत्नीऽ आस्ताम्।
एकविंशत्यास्तुवतैकशफाः पशवोऽसृज्यन्त वरुणोऽधिपतिरासीत्।
त्रयोविंशत्यास्तुवत क्षुद्राः पशवोऽसृज्यन्त पूषाधिपतिरासीत्।
पञ्चविंशत्यास्तुवताऽऽरण्याः पशवोऽसृज्यन्त वायुरधिपतिरासीत्।
सप्तविंशत्यास्तुवत द्यावापृथिवी व्यैतां वसवो रुद्राऽ आदित्याऽ अनुव्यायँस्तऽ एवाधिपतयऽ आसन्॥३०॥

नवदशभिरिति नवऽदशभिः। अस्तुवत। शूद्रार्य्यौ। असृज्येताम्। अहोरात्र इत्यहोरात्रे। अधिपत्नी इत्यधिऽपत्नी। आस्ताम्। एकविंशत्येकऽविंशत्या। अस्तुवत। एकशफा इत्येकऽशफाः। पशवः। असृज्यन्त। वरुणः। अधिपतिरित्यधिऽपतिः। आसीत्। त्रयोविंशत्येति त्रयःऽविंशत्या। अस्तुवत। क्षुद्राः। पशवः। असृज्यन्त। पूषा। अधिपतिरित्यधिऽपतिः। आसीत्। पञ्चविंशत्येति पञ्चऽविंशत्या। अस्तुवत। आरण्याः। पशवः। असृज्यन्त। वायुः। अधिपतिरित्यधिऽपतिः। आसीत्। सप्तविंशत्येति सप्तऽविंशत्या। अस्तुवत। द्यावापृथिवी इति द्यावापृथिवी । वि। ऐताम्। वसवः। रुद्राः। आदित्याः। अनुव्यायन्नित्यनुऽव्यायन्। ते। एव। अधिपतय इत्यधिऽपतयः। आसन्॥३०॥

पदार्थः-**(नवदशभिः)** दश प्राणाः पञ्च महाभूतानि मनोबुद्धिचित्ताहंकारैः **(अस्तुवत)** स्तुवन्तु **(शूद्रार्यौ)** शूद्रश्चार्य्यो द्विजश्च तौ **(असृज्येताम्)** **(अहोरात्रे)** **(अधिपत्नी)** अधिष्ठात्र्यौ **(आस्ताम्)** भवतः **(एकविंशत्या)** मनुष्याणामङ्गैः **(अस्तुवत)** **(एकशफाः)** अश्वादयः **(पशवः)** **(असृज्यन्त)** सृष्टाः **(वरुणः)** जलम् **(अधिपतिः)** **(आसीत्)** **(त्रयोविंशत्या)** पश्वङ्गैः **(अस्तुवत)** **(क्षुद्राः)** नकुलपर्यन्ताः **(पशवः)** **(असृज्यन्त)** **(पूषा)** पुष्टिकर्त्ता भूगोलः **(अधिपतिः)** **(आसीत्)** **(पञ्चविंशत्या)** क्षुद्रपश्ववयवैः **(अस्तुवत)**

(आरण्या:) अरण्ये भवा: **(पशव:)** सिंहादय: **(असृज्यन्त)** **(वायु:)** **(अधिपति:)** **(आसीत्)** **(सप्तविंशत्या)** आरण्यपशुगुणै: **(अस्तुवत)** **(द्यावापृथिवी)** **(वि)** विविधतया **(ऐताम्)** प्राप्नुत: **(वसव:)** अग्न्यादयोऽष्टौ **(रुद्रा:)** प्राणादय: **(आदित्या:)** चैत्रादयो द्वादश मासा: प्रथममध्यमोत्तमा विद्वांसो वा **(अनुव्यायन्)** अनुकूलतयोत्पादिता: **(ते)** **(एव)** **(अधिपतय:)** **(आसन्)**। [अयं मन्त्र: शत०८.४.३.१२-१६ व्याख्यात:]॥३०॥

अन्वय:-हे मनुष्या:! यूयं येनोत्पादिते अहोरात्रे अधिपत्नी आस्ताम्, येन शूद्रार्यावसृज्येतां तं नवदशभिरस्तुवत। येनोत्पादितो वरुणोऽधिपतिरासीद्येनैकशफा: पशवोऽसृज्यन्त तं परमात्मानमेकविंशत्यास्तुवत। येन निर्मित: पूषाऽधिपतिरासीद्, येन क्षुद्रा: पशवोऽसृज्यन्त, तं त्रयोविंशत्यास्तुवत। येनोत्पादितो वायुरधिपतिरासीद् येनाऽऽरण्या: पशवोऽसृज्यन्त, तं पञ्चविंशत्यास्तुवत। येन सृष्टे द्यावापृथिव्यैताम्, येन रचिता वसवो रुद्रा आदित्या अनुव्यायंस्त एवाऽधिपतय आसंस्तं सप्तविंशत्यास्तुवत॥३०॥

भावार्थ:-हे मनुष्या:! येनार्या: शूद्रा दस्यवश्च मनुष्या: सृष्टा, येन स्थूलसूक्ष्मा प्राणिदेहा महद्ह्रस्वा: पशव एतेषां पालनसाधनानि च, यस्य सृष्टावल्पविद्या: समग्रविद्याश्च विद्वांसो भवन्ति, तमेव यूयमुपास्यं मन्यध्वम्॥३०॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! तुम जिससे उत्पन्न हुए **(अहोरात्रे)** दिन और रात्रि **(अधिपत्नी)** सब काम कराने के अधिकारी **(आस्ताम्)** हैं, जिस ने **(शूद्रार्य्यौ)** शूद्र और आर्य्य द्विज ये दोनों **(असृज्येताम्)** रचे हैं, उस की **(नवदशभि:)** दश प्राण, पांच महाभूत, मन, बुद्धि, चित्त और अहंकारों से **(अस्तुवत)** स्तुति करो। जिसने उत्पन्न किया **(वरुण:)** जल **(अधिपति:)** प्राण के समान प्रिय अधिष्ठाता **(आसीत्)** है, जिस ने **(एकशफा:)** जुड़े एक खुरों वाले घोड़े आदि **(पशव:)** पशु **(असृज्यन्त)** रचे हैं, उस की **(एकविंशत्या)** मनुष्यों के इक्कीस अवयवों से **(अस्तुवत)** स्तुति करो, जिसने बनाया **(पूषा)** पुष्टिकारक भूगोल **(अधिपति:)** रक्षा करने वाला **(आसीत्)** है, जिस ने **(क्षुद्रा:)** अतिसूक्ष्म जीवों से लेकर नकुल पर्य्यन्त **(पशव:)** पशु **(असृज्यन्त)** रचे हैं, उस की **(त्रयोविंशत्या)** पशुओं के तेईस अवयवों से **(अस्तुवत)** स्तुति करो। जिसने बनाया हुआ **(वायु:)** वायु **(अधिपति:)** पालने हारा **(आसीत्)** है, जिसने **(आरण्या:)** वन के **(पशव:)** सिंह आदि पशु **(असृज्यन्त)** रचे हैं, **(पञ्चविंशत्या)** अनेकों प्रकार के छोटे-छोटे वन्य पशुओं के अवयवों के साथ अर्थात् उन अवयवों की कारीगरी के साथ **(अस्तुवत)** प्रशंसा करो, जिसने बनाये **(द्यावापृथिवी)** आकाश और भूमि **(व्यैताम्)** प्राप्त हैं, जिस के बनाने से **(वसव:)** अग्नि आदि आठ पदार्थ वा प्रथम कक्षा के विद्वान् **(रुद्रा:)** प्राण आदि वा मध्यम विद्वान् **(आदित्या:)** बारह महीने वा उत्तम विद्वान् **(अनुव्यायन्)** अनुकूलता से उत्पन्न हैं, **(ते)** **(एव)** वे अग्नि आदि ही वा विद्वान् लोग **(अधिपतय:)**

अधिष्ठाता **(आसन्)** होते हैं, उस की **(सप्तविंशत्या)** सत्ताईस वन के पशुओं के गुणों से **(अस्तुवत)** स्तुति करो॥३०॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जिसने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र डाकू मनुष्य भी रचे हैं, जिसने स्थूल तथा सूक्ष्म प्राणियों के शरीर अत्यन्त छोटे पशु और इन की रक्षा के साधन पदार्थ रचे और जिसकी सृष्टि में न्यून विद्या और पूर्ण विद्या वाले विद्वान् होते हैं, उसी परमात्मा की तुम लोग उपासना करो॥३०॥

नवविंशत्येत्यस्य विश्वदेव ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। निचृदतिधृतिश्छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनः स एव विषय उपदिश्यते॥

फिर भी वही उक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

नवविꣳशत्याऽस्तुवत वनस्पतयोऽसृज्यन्त सोमोऽधिपतिरासीत्।
एकत्रिꣳशताऽस्तुवत प्रजाऽ असृज्यन्त यवाश्चायवाश्चाधिपतयऽआसन्।
त्रयस्त्रिꣳशताऽस्तुवत भूतान्यशाम्यन् प्रजापतिः परमेष्ठ्यधिपतिरासीत्॥३१॥

नवविꣳशत्येति नवऽविꣳशत्या। अस्तुवत। वनस्पतयः। असृज्यन्त। सोमः। अधिपतिरित्यधिऽपतिः। आसीत्। एकत्रिꣳशतेत्येकऽत्रिꣳशता। अस्तुवत। प्रजा इति प्रऽजाः। असृज्यन्त। यवाः। च। अयवाः। च। अधिपतय इत्यधिऽपतयः। आसन्। त्रयस्त्रिꣳशतेति त्रयःऽत्रिꣳशता। अस्तुवत। भूतानि। अशाम्यन्। प्रजापतिरिति प्रजाऽपतिः। परमेष्ठी। परमेऽस्थीति परमेऽस्थी। अधिपतिरित्यधिऽपतिः। आसीत्॥३१॥

पदार्थः-**(नवविंशत्या)** एतत्संख्याकैर्वनस्पतिगुणैः **(अस्तुवत)** जगत्स्रष्टारं परमात्मानं प्रशंसत **(वनस्पतयः)** अश्वत्थादयः **(असृज्यन्त)** सृष्टाः **(सोमः)** ओषधिराजः **(अधिपतिः)** अधिष्ठाता **(आसीत्)** भवति **(एकत्रिंशता)** प्रजाङ्गैः **(अस्तुवत)** प्रशंसत **(प्रजाः)** **(असृज्यन्त)** निर्मिताः **(यवाः)** मिश्रिताः **(च)** **(अयवाः)** अमिश्रिताः **(च)** **(अधिपतयः)** अधिष्ठातारः **(आसन्)** सन्ति **(त्रयस्त्रिंशता)** महाभूतगुणैः **(अस्तुवत)** प्रशंसत **(भूतानि)** महान्ति तत्त्वानि **(अशाम्यन्)** शाम्यन्ति **(प्रजापतिः)** प्रजापालक ईश्वरः **(परमेष्ठी)** परमेश्वररूपे आकाशे वाऽभिव्याप्य तिष्ठतीति **(अधिपतिः)** अधिष्ठाता **(आसीत्)** अत्राऽपि लोकन्ता इन्द्रमिति मन्त्रत्रयप्रतीकानि पूर्ववत्केनचित् क्षिप्तानीति वेद्यम्। [अयं मन्त्रः शत०८.४.३.१७-१९ व्याख्यातः]॥३१॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यूयं येनोत्पादितः सोमोऽधिपतिरासीद् येन ते वनस्पतयोऽसृज्यन्त, तं जगदीश्वरं नवविंशत्यास्तुवत। यासां यवा मिश्रिताः पर्वतादयश्च त्रसरेण्वादयश्चाऽयवाः प्रकृत्यवयवाः सत्त्वरजस्तमांसि गुणाः परमाण्वादयश्चाऽधिपतय आसन्, ताः प्रजा असृज्यन्त, तमेकत्रिंशतास्तुवत। यस्य प्रभावाद् भूतान्यशाम्यन्, यः प्रजापतिः परमेष्ठ्यधिपतिरासीत्, तं त्रयस्त्रिंशतास्तुवत॥३१॥

भावार्थः-येन जगदीश्वरेण लोकानां रक्षणाय वनस्पत्यादीन् सृष्ट्वा ध्रियन्ते व्यवस्थाप्यन्ते, स एव सर्वैर्मनुष्यैरुपासनीयः॥३१॥

अस्मिन्नध्याये वसन्ताद्यृतुगुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वाऽध्यायार्थेन सह संगतिरस्तीति ज्ञेयम्॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम लोग जिस के बनाने से **(सोमः)** ओषधियों में उत्तम ओषधि **(अधिपतिः)** स्वामी **(आसीत्)** है, जिस ने उन **(वनस्पतयः)** पीपल आदि वनस्पतियों को **(असृज्यन्त)** रचा है, उस परमात्मा की **(नवविंशत्या)** उनतीस प्रकार के वनस्पतियों के गुणों से **(अस्तुवत)** स्तुति करो और जिस ने उत्पन्न किये **(यवाः)** समष्टिरूप बने पर्वत आदि **(च)** और त्रसरेणु आदि **(अयवाः)** भिन्न-भिन्न प्रकृति के अवयव सत्व, रजस् और तमोगुण **(च)** तथा परमाणु आदि **(अधिपतयः)** मुख्य कारण रूप अध्यक्ष **(आसन्)** हैं, उन **(प्रजाः)** प्रसिद्ध ओषधियों को जिस ने **(असृज्यन्त)** रचा है, उस ईश्वर की **(एकत्रिंशता)** इकत्तीस प्रजा के अवयवों से **(अस्तुवत)** प्रशंसा करो। जिसके प्रभाव से **(भूतानि)** प्रकृति के परिणाम महत्तत्व के उपद्रव **(अशाम्यन्)** शान्त हों, जो **(प्रजापतिः)** प्रजा का रक्षक **(परमेष्ठी)** परमेश्वर के समान आकाश में व्यापक हो के स्थित परमेश्वर **(अधिपतिः)** अधिष्ठाता **(आसीत्)** है, उसकी **(त्रयस्त्रिंशता)** महाभूतों के तेतीस गुणों से **(अस्तुवत)** प्रशंसा करो॥३१॥

भावार्थः-जिस परमेश्वर ने लोकों की रक्षा के लिये वनस्पति आदि ओषधियों को रच के धारण और व्यवस्थित किया है, उसी की उपासना सब मनुष्यों को करनी चाहिये॥३१॥

इस अध्याय में वसन्तादि ऋतुओं के गुण-वर्णन होने से इस अध्याय के अर्थ की संगति पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ जाननी चाहिये॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य्याणां श्रीमत्परमविदुषां विरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचिते संस्कृताऽऽर्य्यभाषाभ्यां विभूषिते सुप्रमाणयुक्ते यजुर्वेदभाष्ये चतुर्दशोऽध्यायः सम्पूर्णः॥१४॥

यह यजुर्वेदभाष्य का चौदहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥

॥ओ३म्॥

अथ पञ्चदशाऽध्यायारम्भः

ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव। यद्भ॒द्रं तन्न॒ ऽआ सु॑व॥ यजु० ३०.३

अग्ने जातानित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अस्य प्रथममन्त्रे राजराजपुरुषैः किं किं कर्त्तव्यमित्याह॥

अब पन्द्रहवें अध्याय का आरम्भ है, इसके प्रथम मन्त्र में राजा और राजपुरुषों को क्या-क्या करना चाहिये, इस विषय का उपदेश किया है॥

अग्ने॑ जा॒तान् प्र णु॑दा नः स॒पत्ना॒न् प्रत्यजा॑तान् नुद जातवेदः।

अधि॑ नो ब्रूहि सु॒मना॒ऽअहे॑डँ॒स्तव॑ स्याम॒ शर्म॑ꣳस्त्रि॒वरू॑थऽउ॒द्भौ॥ १॥

अग्ने॑। जा॒तान्। प्र। नु॒द॒। न॒ः। स॒पत्ना॒निति स॒ऽपत्ना॑न्। प्रति॑। अजा॑तान्। नु॒द॒। जा॒तवे॒द॒ इति॑ जातऽवेदः। अधि॑। न॒ः। ब्रू॒हि॒। सु॒मना॒ इति॑ सु॒ऽमना॑ः। अहे॑डन्। तव॑। स्या॒म॒। शर्म॑न्। त्रि॒वरू॑थ इति॑ त्रि॒ऽवरू॑थे। उ॒द्भावित्यु॒त्ऽभौ॥ १॥

पदार्थः-(**अग्ने**) राजन् वा सेनापते (**जातान्**) उत्पन्नान् प्रसिद्धान् (**प्र**) (**नुद**) दूरे प्रक्षिप। अत्र **द्व्यचोऽतस्तिङ** इति दीर्घः (**नः**) अस्माकम् (**सपत्नीन्**) सपत्नीव वर्तमानानरीन् (**प्रति**) (**अजातान्**) अप्रकटान् (**नुद**) प्रेर्ष्व (**जातवेदः**) जातबल (**अधि**) (**नः**) अस्मान् (**ब्रूहि**) उपदिश (**सुमनाः**) प्रसन्नस्वान्तः (**अहेडन्**) अनादरमकुर्वन् (**तव**) (**स्याम**) (**शर्मन्**) गृहे (**त्रिवरूथे**) त्रीणि वरूथान्याध्यात्मिकाधिदैविकाधिभौतिकानि सुखानि यस्मिन् (**उद्भौ**) उदुत्कृष्टानि वस्तूनि भवन्ति यस्मिंस्तस्मिन्॥ १॥

अन्वयः-हे अग्ने! त्वं नो जातान् सपत्नान् प्रणुदा हे जातवेदस्त्वमजातान् शत्रून् नुद अस्मानहेडन् सुमनास्त्वं नोऽस्मान् प्रत्यधिब्रूहि यतो वयं तवोद्भौ त्रिवरूथे शर्मन् सुखिनः स्याम॥ १॥

भावार्थः-राजादिसभ्यजनैर्गुप्तैश्चारैः प्रसिद्धाऽप्रसिद्धान् शत्रून् निश्चित्य वशं नेयाः। न कस्यापि धार्मिकस्यानादरोऽधार्मिकस्यादरश्च कर्त्तव्यः, यतः सर्वे सज्जना विश्वस्ताः सन्तो राष्ट्रे वसेयुः॥ १॥

पदार्थः-हे (**अग्ने**) राजन् वा सेनापते! आप (**नः**) हमारे (**जातान्**) प्रसिद्ध (**सपत्नान्**) शत्रुओं को (**प्र, नुद**) दूर कीजिये। हे (**जातवेदः**) प्रसिद्ध बलवान्! आप (**अजातान्**) अप्रसिद्ध शत्रुओं को (**नुद**) प्रेरणा कीजिये और हमारा (**अहेडन्**) अनादर न करते हुए (**सुमनाः**) प्रसन्नचित आप (**नः**) (**प्रति**) हमारे प्रति (**अधिब्रूहि**) अधिक उपदेश कीजिये, जिससे हम लोग (**तव**) आप के (**उद्भौ**) उत्तम पदार्थों से युक्त (**त्रिवरूथे**) आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक इन तीनों सुखों के हेतु (**शर्मन्**) घर में (**स्याम**) सुखी होवें॥ १॥

भावार्थः-राजा आदि न्यायाधीश सभासदों को चाहिये कि गुप्त दूतों से प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध शत्रुओं को निश्चय करके वश में करें और किसी धर्मात्मा का तिरस्कार और अधर्मी का सत्कार भी कभी न करें, जिस से सब सज्जन लोग विश्वासपूर्वक राज्य में वसें॥१॥

सहसा जातानित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी वही पूर्वोक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

सहसा जातान् प्रणुदा नः सपत्नान् प्रत्यजातान् जातवेदो नुदस्व।
अधि नो ब्रूहि सुमनस्यमानो वयꣳ स्याम प्रणुदा नः सपत्नान्॥२॥

सहसा। जातान्। प्र। नुद। नः। सपत्नानिति सऽपत्नान्। प्रति। अजातान्। जातवेद इति जातऽवेदः। नुदस्व। अधि। नः। ब्रूहि। सुमनस्यमान इति सुऽमनस्यमानः। वयम्। स्याम। प्र। नुद। नः। सपत्नानिति सऽपत्नान्॥२॥

पदार्थः-(**सहसा**) बलेन सह (**जातान्**) प्रादुर्भूतान् विरोधिनः (**प्र**) (**नुद**) विजयस्व। अत्र **द्व्यचोऽतस्तिङ** इति दीर्घः (**नः**) अस्माकम् (**सपत्नान्**) सपत्नीव वर्त्तमानान् शत्रून् (**प्रति**) (**अजातान्**) युद्धेऽप्रकटान् शत्रुसेविनो मित्रान् (**जातवेदः**) जातप्रज्ञान (**नुदस्व**) पृथक् कुरु (**अधि**) (**नः**) (**ब्रूहि**) विजयविधिमुपदिश (**सुमनस्यमानः**) सुष्ठु विचारयन् (**वयम्**) (**स्याम**) भवेम (**प्र**) (**नुद**) हिन्धि। अत्रापि पूर्ववद्दीर्घः (**नः**) अस्माकम् (**सपत्नान्**) विरोधे वर्त्तमानान् सम्बन्धिनः॥२॥

अन्वयः-हे जातवेदस्त्वं नः सहसा जातान् सपत्नान् प्रणुद। तान् प्रत्यजातान् नुदस्व। सुमनस्यमानस्त्वं नोऽधि ब्रूहि। वयं तव सहायाः स्याम। यान्नः सपत्नान् त्वं प्रणुद तान् वयमपि प्रणुदेम॥२॥

भावार्थः-ये राजभृत्याः शत्रुनिवारणे यथाशक्ति न प्रयतन्ते ते सम्यग्दण्ड्याः। ये स्वसहायाः स्युस्तान् राजा सत्कुर्यात्॥२॥

पदार्थः-हे (**जातवेदः**) प्रकृष्ट ज्ञान को प्राप्त हुए राजन्! आप (**नः**) हमारे (**सहसा**) बल के सहित (**जातान्**) प्रसिद्ध हुए (**सपत्नान्**) शत्रुओं को (**प्रणुद**) जीतिये और उन (**प्रति**) (**अजातान्**) युद्ध में छिपे हुए शत्रुओं के सेवक मित्रभाव से प्रसिद्धों को (**नुदस्व**) पृथक् कीजिये तथा (**सुमनस्यमानः**) अच्छे प्रकार विचारते हुए आप (**नः**) हमारे लिये (**अधिब्रूहि**) अधिकता से विजय के विधान का उपदेश कीजिये (**वयम्**) हम लोग आप के सहायक (**स्याम**) होवें, जिन (**नः**) हमारे (**सपत्नान्**) विरोध में प्रवृत्त सम्बन्धियों को आप (**प्रणुद**) मारें, उन को हम लोग भी मारें॥२॥

भावार्थः-राजा को चाहिये कि जो राज्य के सेवक शत्रुओं के निवारण करने में यथाशक्ति प्रयत्न न करें उन को अच्छे प्रकार दण्ड देवे और जो अपने सहायक हों, उन का सत्कार करें॥२॥

षोडशीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। दम्पती देवते। ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ पतिपत्नीधर्म्ममाह॥

अब स्त्री-पुरुष का धर्म अगले मन्त्र में कहा है॥

षो॒ड॒शी स्तोम॒ऽओजो॒ द्रवि॑णं चतुश्चत्वारि॒ꣳश स्तोमो॒ वर्चो॒ द्रवि॑णम्।
अ॒ग्नेः पुरी॑षम॒स्यप्सो॒ नाम॒ तां त्वा॒ विश्वे॑ऽअ॒भिगृ॑णन्तु दे॒वाः।
स्तोम॑पृष्ठा घृ॒तव॑ती॒ह सी॑द प्र॒जाव॑द॒स्मे द्रवि॒णायज॑स्व॥३॥

षो॒ड॒शी। स्तोमः॑। ओजः॑। द्रवि॑णम्। च॒तु॒श्च॒त्वा॒रि॒ꣳश इति॑ चतुःऽच॒त्वा॒रि॒ꣳशः। स्तोमः॑। वर्चः॑। द्रवि॑णम्। अ॒ग्नेः। पुरी॑षम्। अ॒सि॒। अप्सः॑। नाम॑। ताम्। त्वा॒। विश्वे॑। अ॒भि। गृ॒ण॒न्तु॒। दे॒वाः। स्तोम॑पृ॒ष्ठेति॒ स्तोम॑ऽपृष्ठा। घृ॒तव॒तीति॑ घृ॒तऽव॑ती। इ॒ह। सी॒द॒। प्र॒जाव॒दिति॑ प्र॒जाऽव॑त्। अ॒स्मे इत्य॒स्मे। द्रवि॒णा। य॒ज॒स्व॥३॥

पदार्थः-(**षोडशी**) प्रशस्ताः षोडश कलाः सन्ति यस्मिन् सः (**स्तोमः**) स्तोतुमर्हः (**ओजः**) पराक्रमः (**द्रविणम्**) धनम् (**चतुश्चत्वारिंशः**) एतत्संख्यापूरको ब्रह्मचर्यव्यवहारकरः (**स्तोमः**) स्तुवन्ति येन सः (**वर्चः**) अध्ययनम् (**द्रविणम्**) बलं वा (**अग्नेः**) पावकस्य (**पुरीषम्**) पूर्त्तिकरम् (**असि**) (**अप्सः**) न विद्यते परपदार्थस्याप्सो भक्षणं यस्य सः (**नाम**) प्रसिद्धम् (**ताम्**) (**त्वा**) त्वाम् (**विश्वे**) (**अभि**) (**गृणन्तु**) प्रशंसन्तु (**देवाः**) विद्वांसः (**स्तोमपृष्ठा**) स्तोमाः पृष्ठा ज्ञापयितुमिष्टा यस्याः सा (**घृतवती**) प्रशस्ताज्यादियुक्ता (**इह**) गृहाश्रमे (**सीद**) (**प्रजावत्**) बह्व्यः प्रजा यस्मात् तत् (**अस्मे**) अस्मभ्यम् (**द्रविणा**) द्रविणं धनम्। अत्र **सुपां सुलुगि**त्याकारदेशः (**यजस्व**) देहि॥३॥

अन्वयः-यः षोडशी स्तोम ओजो द्रविणं यश्चतुश्चत्वारिंशः स्तोमो नाम वर्चो द्रविणं च ददाति, योऽग्नेः पुरीषं प्राप्तोऽप्सोऽसि, तं त्वा त्वां च विश्वे देवा अभिगृणन्तु। सा त्वं स्तोमपृष्ठा घृतवती सतीह गृहाश्रमे सीद, अस्मे प्रजावद् द्रविणा यजस्व॥३॥

भावार्थः-मनुष्यैः षोडशकलात्मके जगति विद्याबलं विस्तार्य्य गृहाश्रमं कृत्वा विद्यादानादीनि कर्माणि सततं कार्य्याणि॥३॥

पदार्थः-जो (**षोडशी**) प्रशंसित सोलह कलाओं से युक्त (**स्तोमः**) स्तुति के योग्य (**ओजः**) पराक्रम (**द्रविणम्**) धन को जो (**चतुश्चत्वारिंशः**) चवालीस संख्या को पूर्ण करने वाला ब्रह्मचर्य का आचरण (**स्तोमः**) स्तुति का साधन (**नाम**) प्रसिद्ध (**वर्चः**) पढ़ना और (**द्रविणम्**) बल को देती है, जो (**अग्नेः**) अग्नि की (**पुरीषम्**) पूर्त्ति को प्राप्त (**अप्सः**) दूसरे के पदार्थों के भोग की इच्छा से रहित (**असि**) हो, उस (**त्वा**) पुरुष तथा (**ताम्**) स्त्री की (**विश्वे**) सब (**देवाः**) विद्वान् लोग (**अभिगृणन्तु**) प्रशंसा करें सो तू (**स्तोमपृष्ठा**) इष्ट स्तुतियों को जानने वाली (**घृतवती**) प्रशंसित घी आदि पदार्थों से युक्त (**इह**) इस गृहाश्रम

में **(सीद)** स्थित हो और **(अस्मे)** हमारे लिये **(प्रजावत्)** बहुत सन्तानों के हेतु **(द्रविणा)** धन को **(यजस्व)** दिया कर॥३॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि सोलह कला रूप जगत् में विद्यारूप बल को फैला और गृहाश्रम कर के विद्यादानादि कर्मों को निरन्तर किया करें॥३॥

एवश्छन्द इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। विद्वांसो देवताः। भुरिगाकृतिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

मनुष्याः प्रयत्नेन साधनैः सुखानि वर्द्धयन्त्वित्याह॥

मनुष्यों को चाहिये कि प्रयत्नपूर्वक साधनों से सुख बढ़ावें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

एवश्छन्दो वरिवश्छन्दः शम्भूश्छन्दः परिभूश्छन्दऽआच्छच्छन्दो मनश्छन्दो व्यचश्छन्दः सिन्धुश्छन्दः समुद्रश्छन्दः सरिरं छन्दः ककुप् छन्दस्त्रिककुप् छन्दः काव्यं छन्दोऽअङ्कुपं छन्दोऽक्षरपङ्क्तिश्छन्दः पदपङ्क्तिश्छन्दो विष्टारपङ्क्तिश्छन्दः क्षुरश्छन्दो भ्रजश्छन्दः॥ ४॥

एवः। छन्दः। वरिवः। छन्दः। शम्भूरिति शम्ऽभूः। छन्दः। परिभूरिति परिऽभूः। छन्दः। आच्छदित्याऽच्छत्। छन्दः। मनः। छन्दः। व्यचः। छन्दः। सिन्धुः। छन्दः। समुद्रः। छन्दः। सरिरम्। छन्दः। ककुप्। छन्दः। त्रिककुबिति त्रिऽककुप्। छन्दः। काव्यम्। छन्दः। अङ्कुपम्। छन्दः। अक्षरपङ्क्तिरित्यक्षरऽपङ्क्तिः। छन्दः। पदपङ्क्तिरिति पदऽपङ्क्तिः। छन्दः। विष्टारपङ्क्तिः। विस्तारपङ्क्तिरिति विस्तारऽपङ्क्तिः। छन्दः। क्षुरः। छन्दः। भ्रजः। छन्दः॥ ४॥

पदार्थः-**(एवः)** ज्ञानम् **(छन्दः)** आनन्दम् **(वरिवः)** सत्यसेवनम् **(छन्दः)** सुखप्रदम् **(शम्भूः)** सुखं भावुकः **(छन्दः)** आह्लादकारी व्यवहारः **(परिभूः)** सर्वतः पुरुषार्थी **(छन्दः)** सत्यप्रदीपकः **(आच्छत्)** दोषापवारणम् **(छन्दः)** ऊर्जनम् **(मनः)** संकल्पो विकल्पः **(छन्दः)** प्रकाशकरम् **(व्यचः)** शुभगुणव्याप्तिः **(छन्दः)** आनन्दकारि **(सिन्धुः)** नदीव चलनम् **(छन्दः)** **(समुद्रः)** सागर इव गाम्भीर्य्यम् **(छन्दः)** अर्थकरम् **(सरिरम्)** जलमिव सरलता कोमलता **(छन्दः)** जलमिव शान्तिः **(ककुप्)** दिगिव यशः **(छन्दः)** प्रतिष्ठाप्रदम् **(त्रिककुप्)** त्रीणि कानि सुखानि स्कुभ्नाति येन कर्मणा तत्। अत्र छान्दसो वर्णलोप इति सलोपः **(छन्दः)** आनन्दकरम् **(काव्यम्)** कविभिर्निर्मितम् **(छन्दः)** प्रकाशकम् **(अङ्कुपम्)** अङ्कूनि कुटिलानि गमनानि पाति रक्षति तज्जलम् **(छन्दः)** तृप्तिकरं कर्म **(अक्षरपङ्क्तिः)** असौ च लोकः **(छन्दः)** आनन्दकरः **(पदपङ्क्तिः)** अयं लोकः **(छन्दः)** सुखसाधकः **(विष्टारपङ्क्तिः)** सर्वा दिशः **(छन्दः)** सुखसाधिकाः **(क्षुरः)** क्षुर इव छेदक आदित्यः **(छन्दः)** विज्ञानम् **(भ्रजः)** दीप्तम्। अत्र वर्णव्यत्ययेन ह्रस्वत्वम् **(छन्दः)** स्वच्छन्दानन्दकरः॥४॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यूयं परमप्रयत्नेनैवश्छन्दो वरिवश्छन्दः शम्भूश्छन्दः परिभूश्छन्द आच्छच्छन्दो मनश्छन्दो व्यचश्छन्दः सिन्धुश्छन्दः समुद्रश्छन्दः सरिरं छन्दः ककुप् छन्दस्त्रिककुप्छन्दः काव्यं

छन्दोऽङ्कुपं छन्दोऽक्षरपङ्क्तिश्छन्दः पदपङ्क्तिश्छन्दो विष्टारपङ्क्तिश्छन्दः क्षुरश्छन्दो भ्रजश्छन्दः सुखाय साध्नुत॥४॥

भावार्थः-ये मनुष्या धर्म्यकर्मपुरुषार्थानुष्ठानेन प्रिया भवन्ति ते सर्वेभ्यः सृष्टिस्थपदार्थेभ्यः सुखानि संग्रहीतुं शक्नुवन्ति॥४॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम लोग उत्तम प्रयत्न से **(एवः)** **(छन्दः)** आनन्ददायक ज्ञान **(वरिवः)** सत्यसेवनरूप **(छन्दः)** सुखदायक **(शम्भूः)** सुख का अनुभव **(छन्दः)** आनन्दकारी **(परिभूः)** सब ओर से पुरुषार्थी **(छन्दः)** सत्य का प्रकाशक **(आच्छत्)** दोषों का हटाना **(छन्दः)** जीवन **(मनः)** संकल्प विकल्पात्मक **(छन्दः)** प्रकाशकारी **(व्यचः)** शुभ गुणों की व्याप्ति **(छन्दः)** आनन्दकारक **(सिन्धुः)** नदी के तुल्य चलना **(छन्दः)** स्वतन्त्रता **(समुद्रः)** समुद्र के समान गम्भीरता **(छन्दः)** प्रयोजनसिद्धिकारी **(सरिरम्)** जल के तुल्य कोमलता **(छन्दः)** जल के समान शान्ति **(ककुप्)** दिशाओं के तुल्य उज्ज्वल कीर्ति **(छन्दः)** प्रतिष्ठा देने वाला **(त्रिककुप्)** अध्यात्मादि तीन सुखों का प्राप्त करने वाला कर्म **(छन्दः)** आनन्दकारक **(काव्यम्)** दीर्घदर्शी कवि लोगों ने बनाया **(छन्दः)** प्रकाशक, विज्ञानदायक **(अङ्कुपम्)** टेढ़ी गति वाला जल **(छन्दः)** उपकारी **(अक्षरपङ्क्तिः)** परलोक **(छन्दः)** आनन्दकारी **(पदपङ्क्तिः)** यह लोक **(छन्दः)** सुखसाधक **(विष्टारपङ्क्तिः)** सब दिशा **(छन्दः)** सुख का साधक **(क्षुरः)** छुरा के समान पदार्थों का छेदक सूर्य्य **(छन्दः)** विज्ञानस्वरूप **(भ्रजः)** प्रकाशमय **(छन्दः)** स्वच्छ आनन्दकारी पदार्थ सुख के लिये सिद्ध करो॥४॥

भावार्थः-जो मनुष्य धर्मयुक्त कर्म में पुरुषार्थ करने से सब के प्रिय होना अच्छा समझते हैं, वे सब सृष्टि के पदार्थों से सुख लेने को समर्थ होते हैं॥४॥

आच्छच्छन्द इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। विद्वांसो देवताः। निचृदभिकृतिश्छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

अथ मनुष्यैः प्रयत्नेन स्वातन्त्र्यं विधेयमित्याह॥

मनुष्यों को चाहिये कि प्रयत्न के साथ स्वतन्त्रता बढ़ावें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

आ॒च्छच्छन्दः॑ प्र॒च्छच्छन्दः॑ सं॒यच्छन्दो॑ वि॒यच्छन्दो॑ बृ॒हच्छन्दो॑ रथन्त॒रञ्छन्दो॑ निका॒यश्छन्दो॑ विव॒धश्छन्दो॒ गिर॒श्छन्दो॒ भ्रज॒श्छन्दः॑ स॒ꣳस्तुप् छन्दो॑ऽनु॒ष्टुप् छन्द॒ऽएव॒श्छन्दो॒ वरि॑व॒श्छन्दो॒ वय॒श्छन्दो॑ वय॒स्कृच्छन्दो॒ विष्प॑र्द्धा॒श्छन्दो॑ विशा॒लं छन्द॑श्छ॒दिश्छन्दो॑ दूरोह॒णं छन्द॑स्त॒न्द्रं छन्दो॑ऽअङ्का॒ङ्कं छन्दः॑॥५॥

आ॒च्छदित्या॒ऽछत्। छन्दः॑। प्र॒च्छदिति॑ प्र॒ऽछत्। छन्दः॑। सं॒यदिति॑ स॒म्ऽयत्। छन्दः॑। वि॒यदिति॑ वि॒ऽयत्। छन्दः॑। बृ॒हत्। छन्दः॑। र॒थ॒न्त॒रमिति॑ रथम्ऽत॒रम्। छन्दः॑। नि॒का॒य इति॑ निऽका॒यः। छन्दः॑। वि॒व॒ध इति॑ विऽव॒धः। छन्दः॑। गिरः॑। छन्दः॑। भ्रजः॑। छन्दः॑। स॒ꣳऽस्तुबिति॑ स॒म्ऽस्तुप्। छन्दः॑। अ॒नु॒ष्टुप्। अ॒नु॒स्तुबित्य॑नु॒ऽस्तुप्। छन्दः॑। एवः॑। छन्दः॑। वरि॑वः।

छन्दः। वयः। छन्दः। वयस्कृत्। वयःकृदिति वयःऽकृत्। छन्दः। विष्पर्द्धाः। विस्पर्द्धा इति विऽस्पर्द्धाः। छन्दः। विशालमिति विऽशालम्। छन्दः। छदिः। छन्दः। दूरोहणमिति दुःऽरोहणम्। छन्दः। तन्द्रम्। छन्दः। अङ्काङ्कमित्यङ्कऽअङ्कम्। छन्दः॥५॥

पदार्थः-(**आच्छत्**) समन्तात् पापनिवारकं कर्म (**छन्दः**) प्रकाशनम् (**प्रच्छत्**) प्रयत्नेन दुष्टस्वभावदूरीकरणार्थं कर्म (**छन्दः**) उत्साहनम् (**संयत्**) संयमः (**छन्दः**) बलम् (**वियत्**) विविधैः प्रकारैर्यतते येन तत् (**छन्दः**) उत्साहः (**बृहत्**) महद्वर्धनम् (**छन्दः**) स्वातन्त्र्यम् (**रथन्तरम्**) यदस्मिन् लोके तारकं वस्त्वस्ति तत् (**छन्दः**) स्वीकरणम् (**निकायः**) निचिन्वन्ति उपसमादधते येन वायुना तत् (**छन्दः**) स्वीकरणम् (**विवधः**) विशेषेण बध्नन्ति पदार्था यस्मिंस्तदन्तरिक्षम् (**छन्दः**) प्रकाशनम् (**गिरः**) गीर्यते निगल्यते यदेनं तत् (**छन्दः**) स्वीकरणम् (**भ्रजः**) भ्राजते प्रकाशते योऽग्निः सः (**छन्दः**) स्वीकरणम् (**संस्तुप्**) सम्यक् स्तुभ्नाति शब्दार्थसम्बन्धान् यया सा वाक् (**छन्दः**) आह्लादकारि (**अनुष्टुप्**) श्रुत्वा पश्चात् स्तुभ्नाति जानाति शास्त्राणि यया मननक्रियया सा (**छन्दः**) उपदेशः (**एवः**) प्रापणम् (**छन्दः**) प्रयतनम् (**वरिवः**) विद्वत्परिचरणम् (**छन्दः**) स्वीकरणम् (**वयः**) जीवनम् (**छन्दः**) स्वाधीनम् (**वयस्कृत्**) यद्वयस्करोति तज्जीवनसाधनम् (**छन्दः**) स्वीकरणम् (**विष्पर्द्धाः**) विशेषेण यः स्पर्ध्यते सः (**छन्दः**) प्रदीपनम् (**विशालम्**) विस्तीर्णं कर्म (**छन्दः**) परिग्रहणम् (**छदिः**) विघ्नापवारणम् (**छन्दः**) सुखावहम् (**दूरोहणम्**) दुःखेन रोढुमर्हम् (**छन्दः**) ऊर्जनम् (**तन्द्रम्**) स्वतन्त्रताकरणम् (**छन्दः**) प्रकाशनम् (**अङ्काङ्कम्**) गणितविद्या (**छन्दः**) संस्थापनम्॥५॥

अन्वयः-मनुष्यैराच्छच्छन्दः प्रच्छच्छन्दः संयच्छन्दो वियच्छन्दो बृहच्छन्दो रथन्तरं छन्दो निकायश्छन्दो विवधश्छन्दो गिरश्छन्दो भ्रजश्छन्दः संस्तुप्छन्दोऽनुष्टुप् छन्दः एवश्छन्दो वरिवश्छन्दो वयश्छन्दो वयस्कृच्छन्दो विष्पर्द्धाश्छन्दो विशालं छन्दश्छदिश्छन्दो दूरोहणं छन्दस्तन्द्रं छन्दोऽङ्काङ्कं छन्दः स्वीकृत्य प्रचार्य प्रयतितव्यम्॥५॥

भावार्थः-मनुष्यैः पुरुषार्थेन पारतन्त्र्यहानिः स्वातन्त्र्यस्वीकरणं सततं विधेयम्॥५॥

पदार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि (**आच्छत्**) अच्छे प्रकार पापों की निवृत्ति करने हारा कर्म (**छन्दः**) प्रकाश (**प्रच्छत्**) प्रयत्न से दुष्ट स्वभाव को दूर करने वाला कर्म (**छन्दः**) उत्साह (**संयत्**) संयम (**छन्दः**) बल (**वियत्**) विविध यत्न का साधक (**छन्दः**) धैर्य्य (**बृहत्**) बहुत वृद्धि (**छन्दः**) स्वतन्त्रता (**रथन्तरम्**) समुद्ररूप संसार से पार करने वाला पदार्थ (**छन्दः**) स्वीकार (**निकायः**) संयोग का हेतु वायु (**छन्दः**) स्वीकार (**विवधः**) विशेष करके पदार्थों के रहने का स्थान अन्तरिक्ष (**छन्दः**) प्रकाशरूप (**गिरः**) भोगने योग्य अन्न (**छन्दः**) ग्रहण (**भ्रजः**) प्रकाशरूप अग्नि (**छन्दः**) ले लेना (**संस्तुप्**) अच्छे प्रकार शब्दार्थ सम्बन्धों को जनाने हारी वाणी (**छन्दः**) आनन्दकारक (**अनुष्टुप्**) सुनने के पीछे शास्त्रों को जानने हारी मन की क्रिया (**छन्दः**) उपदेश (**एवः**) प्राप्ति (**छन्दः**) प्रयत्न (**वरिवः**) विद्वानों की सेवा (**छन्दः**) स्वीकार

(वय:) जीवन **(छन्द:)** स्वाधीनता **(वयस्कृत्)** अवस्थावर्द्धक जीवन के साधन **(छन्द:)** ग्रहण **(विष्पर्द्धा:)** विशेष करके जिससे ईर्ष्या करे वह **(छन्द:)** प्रकाश **(विशालम्)** विस्तीर्ण कर्म **(छन्द:)** ग्रहण करना **(छदि:)** विघ्नों का हटाना **(छन्द:)** सुखों को पहुंचाने वाला **(दूरोहणम्)** दु:ख से चढ़ने योग्य **(छन्द:)** बल **(तन्द्रम्)** स्वतन्त्रता करना **(छन्द:)** प्रकाश और **(अङ्काङ्कम्)** गणितविद्या का **(छन्द:)** सम्यक् स्थापन करना स्वीकार और प्रचार के लिये प्रयत्न करें॥५॥

भावार्थ:-मनुष्यों को चाहिये कि पुरुषार्थ करने से पराधीनता छुड़ा के स्वाधीनता का निरन्तर स्वीकार करें॥५॥

रश्मिनेत्यस्य परमेष्ठी ऋषि:। विद्वांसो देवता:। विराडभिकृतिश्छन्द:। ऋषभ: स्वर:॥

अथ विद्वद्भि: पदार्थविद्या ज्ञातव्येत्याह॥

विद्वानों को पदार्थविद्या के जानने का उपाय करना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

र॒श्मिना॑ स॒त्याय॑ स॒त्यं जि॑न्व॒ प्रेति॑ना॒ धर्म॑णा॒ धर्मं॑ जि॒न्वान्वि॑त्या दि॒वा दिवं॑ जिन्व स॒न्धिना॒न्तरि॑क्षेणा॒न्तरि॑क्षं जिन्व प्रति॒धिना॑ पृथि॒व्या पृ॑थि॒वीं जि॑न्व विष्ट॒म्भेन॒ वृष्ट्या॒ वृष्टिं॑ जिन्व प्र॒वयाऽह्नाह॑र्जिन्वानु॒या रात्र्या॒ रात्रीं॑ जिन्वो॒शिजा॒ वसु॑भ्यो॒ वसू॑ञ्जिन्व प्रके॒तेना॑दि॒त्येभ्य॑ऽआदि॒त्याञ्जि॑न्व॒॥ ६॥

र॒श्मिना॑। स॒त्याय॑। स॒त्यम्। जि॒न्व॒। प्रेति॒नेति॒ प्रऽइति॑ना। धर्म॑णा। धर्म॑म्। जि॒न्व॒। अन्वि॒त्येत्यनु॑ऽइत्या। दि॒वा। दिव॑म्। जि॒न्व॒। स॒न्धिनेति॑ स॒म्ऽधिना॑। अ॒न्तरि॑क्षेण। अ॒न्तरि॑क्षम्। जि॒न्व॒। प्र॒ति॒धिनेति॑ प्रति॒ऽधिना॑। पृ॒थि॒व्या। पृ॒थि॒वीम्। जि॒न्व॒। वि॒ष्ट॒म्भेन॑। वृष्ट्या॑। वृष्टि॑म्। जि॒न्व॒। प्र॒वयेति॑ प्र॒ऽवया॑। अह्ना॑। अह॑:। जि॒न्व॒। अ॒नु॒येत्य॑नु॒ऽया। रात्र्या॑। रात्री॑म्। जि॒न्व॒। उ॒शिजा॑। वसु॑भ्य॒ इति॒ वसु॒ऽभ्य:। वसू॑न्। जि॒न्व॒। प्र॒के॒तेनेति॑ प्र॒ऽके॒तेन॑। आ॒दि॒त्येभ्य॑:। आ॒दि॒त्यान्। जि॒न्व॒॥६॥

पदार्थ:-**(रश्मिना)** किरणसमूहेन **(सत्याय)** सति वर्त्तमाने भवाय स्थूलाय पदार्थसमूहाय **(सत्यम्)** अव्यभिचारि कर्म **(जिन्व)** प्राप्नुहि **(प्रेतिना)** प्रकृष्टविज्ञानयुक्तेन **(धर्मणा)** न्यायाचरणेन **(धर्मम्)** **(जिन्व)** जानीहि **(अन्वित्या)** अन्वेषणेन **(दिवा)** धर्मप्रकाशेन **(दिवम्)** सत्यप्रकाशम् **(जिन्व)** **(सन्धिना)** सन्धानेन **(अन्तरिक्षेण)** आकाशेन **(अन्तरिक्षम्)** अवकाशम् **(जिन्व)** जानीहि **(प्रतिधिना)** प्रतिदधाति यस्मिंस्तेन **(पृथिव्या)** भूगर्भविद्यया **(पृथिवीम्)** भूमिम् **(जिन्व)** जानीहि **(विष्टम्भेन)** विशेषेण स्तभ्नोति शरीरं येन तेन **(वृष्ट्या)** वृष्टिविद्यया **(वृष्टिम्)** **(जिन्व)** जानीहि **(प्रवया)** कान्तिमता **(अह्ना)** अहर्विद्यया **(अह:)** दिनम् **(जिन्व)** जानीहि **(अनुया)** यानुयाति तया **(रात्र्या)** रात्रिविद्यया **(रात्रीम्)** रजनीम् **(जिन्व)** **(उशिजा)** कामयमानेन **(वसुभ्य:)** अग्न्यादिभ्य: **(वसून्)** अग्न्यादीन् **(जिन्व)** **(प्रकेतेन)** प्रकृष्टेन विज्ञानेन **(आदित्येभ्य:)** मासेभ्य: **(आदित्यान्)** द्वादशमासान् **(जिन्व)** विजानीहि [अयं मन्त्रं शत०८.५.३.३ व्याख्यात:]॥६॥

अन्वयः-हे विद्वंस्त्वं रश्मिना सत्याय सूर्य इव नित्यसुखाय सत्यं जिन्व। प्रेतिना धर्मणा धर्मं जिन्व। अन्वित्या दिवा दिवं जिन्व। सन्धिनान्तरिक्षेणान्तरिक्षं जिन्व। पृथिव्या प्रतिधिना पृथिवीं जिन्व। विष्टम्भेन वृष्ट्या वृष्टिं जिन्व। प्रवयाऽह्नाहर्जिन्व। अनुया रात्र्या रात्रीं जिन्व। उशिजा वसुभ्यो वसून् जिन्व। प्रकेतेनादित्येभ्य आदित्यान् जिन्व॥६॥

भावार्थः-विद्वद्भिर्यथा पदार्थपरीक्षणेन पदार्थविद्या विदिता कार्या तथैवान्येभ्य उपदेष्टव्या॥६॥

पदार्थः-हे विद्वान् पुरुष! तू **(रश्मिना)** किरणों से **(सत्याय)** वर्त्तमान में हुए सूर्य्य के तुल्य नित्य सुख और स्थूल पदार्थों के लिये **(सत्यम्)** अव्यभिचारी कर्म को **(जिन्व)** प्राप्त हो। **(प्रेतिना)** उत्तम ज्ञानयुक्त **(धर्मणा)** न्याय के आचरण से **(धर्मम्)** धर्म को **(जिन्व)** जान। **(अन्वित्या)** खोज के हेतु **(दिवा)** धर्म के प्रकाश से **(दिवम्)** सत्य के प्रकाश को **(जिन्व)** प्राप्त हो। **(सन्धिना)** सन्धिरूप **(अन्तरिक्षेण)** आकाश से **(अन्तरिक्षम्)** अवकाश को **(जिन्व)** जान। **(पृथिव्या)** भूगर्भविद्या के **(प्रतिधिना)** सम्बन्ध से **(पृथिवीम्)** भूमि को **(जिन्व)** जान। **(विष्टम्भेन)** शरीर धारण के हेतु आहार के रस से तथा **(वृष्ट्या)** वर्षा की विद्या से **(वृष्टिम्)** वर्षा को **(जिन्व)** जान। **(प्रवया)** कान्तियुक्त **(अह्ना)** प्रकाश की विद्या से **(अहः)** दिन को **(जिन्व)** जान। **(अनुया)** प्रकाश के पीछे चलने वाली **(रात्र्या)** रात्रि की विद्या से **(रात्रीम्)** रात्रि को **(जिन्व)** जान। **(उशिजा)** कामनाओं से **(वसुभ्यः)** अग्नि आदि आठ वसुओं की विद्या से **(वसून्)** उन अग्नि आदि वसुओं को **(जिन्व)** जान और **(प्रकेतेन)** उत्तम विज्ञान से **(आदित्येभ्यः)** बारह महीनों की विद्या से **(आदित्यान्)** बारह महीनों को **(जिन्व)** तत्त्वस्वरूप से जान॥६॥

भावार्थः-विद्वानों को चाहिये कि जैसे पदार्थों की परीक्षा से अपने आप पदार्थविद्या को जानें, वैसे ही दूसरों के लिये भी उपदेश करें॥६॥

तन्तुनेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। विद्वांसो देवताः। ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

गृहाश्रमिणा केन किं कर्त्तव्यमित्याह॥

गृहाश्रमी पुरुष को किस साधन से क्या करना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

तन्तुना रायस्पोषेण रायस्पोषं जिन्व सꣳसर्पेण श्रुताय श्रुतं जिन्वैडेनौषधीभिरोषधीर्जिन्वोत्तमेन तनूभिस्तनूर्जिन्व वयोधसाधीतेनाधीतं जिन्वाभिजिता तेजसा तेजो जिन्व॥७॥

तन्तुना। रायः। पोषेण। रायः। पोषम्। जिन्व। सꣳसर्पेणेति सम्ऽसर्पेण। श्रुताय। श्रुतम्। जिन्व। ऐडेन। ओषधीभिः। ओषधीः। जिन्व। उत्तमेनेत्युत्ऽतमेन। तनूभिः। तनूः। जिन्व। वयोधसेति वयःऽधसा। आधीतेनेत्याऽधीतेन। आधीतमित्याऽधीतम्। जिन्व। अभिजितेत्यभिऽजिता। तेजसा। तेजः। जिन्व॥७॥

पदार्थः-**(तन्तुना)** विस्तृतेन **(रायः)** धनस्य **(पोषेण)** पुष्ट्या **(रायः)** धनस्य **(पोषम्)** पुष्टिम् **(जिन्व)** प्राप्नुहि **(संसर्पेण)** सम्यक् प्रापणेन **(श्रुताय)** श्रवणाय **(श्रुतम्)** श्रवणम् **(जिन्व)** प्राप्नुहि **(ऐडेन)**

इडायाऽन्नस्येदं संस्करणं तेन **(ओषधीभिः)** यवसोमलतादिभिः **(ओषधीः)** ओषधिविद्याम् **(जिन्व)** प्राप्नुहि **(उत्तमेन)** धर्माचरणेन **(तनूभिः)** सुसंस्कृतैः शरीरैः **(तनूः)** शरीराणि **(जिन्व)** प्राप्नुहि **(वयोधसा)** वयो जीवनं दधाति येन तेन **(आधीतेन)** समन्ताद्धारितेन **(आधीतम्)** सर्वतो धारितम् **(जिन्व)** प्राप्नुहि रक्ष वा **(अभिजिता)** आभिमुख्यगतान् शत्रून् जयति येन तेन **(तेजसा)** निशातेन तीव्रेण कर्मणा **(तेजः)** प्रागल्भ्यम् **(जिन्व)** प्राप्नुहि॥७॥

अन्वयः-हे मनुष्य! त्वं तन्तुना रायस्पोषेण रायस्पोषं जिन्व संसर्पेण श्रुताय श्रुतं जिन्व। ऐडेनोषधीभिरोषधीर्जिन्व। उत्तमेन तनूभिस्तनूर्जिन्व। वयोधसाऽऽधीतेनाधीतं जिन्व। अभिजिता तेजसा तेजो जिन्व॥७॥

भावार्थः-मनुष्यैर्विस्तृतेन पुरुषार्थेनैश्वर्य्यं प्राप्य सार्वजनिकं हिंत संसाध्यम्॥७॥

पदार्थः-हे मनुष्य! तू **(तन्तुना)** विस्तारयुक्त **(रायः)** धन की **(पोषेण)** पुष्टि से **(रायः)** धन की **(पोषम्)** पुष्टि को **(जिन्व)** प्राप्त हो। **(संसर्पेण)** सम्यक् प्राप्ति से **(श्रुताय)** श्रवण के लिये **(श्रुतम्)** शास्त्र के सुनने को **(जिन्व)** प्राप्त हो। **(ऐडेन)** अन्न के संस्कार और **(ओषधीभिः)** यव तथा सोमलता आदि ओषधियों की विद्या से **(ओषधीः)** ओषधियों को **(जिन्व)** प्राप्त हो। **(उत्तमेन)** उत्तम धर्म के आचरणयुक्त **(तनूभिः)** शुद्ध शरीरों से **(तनूः)** शरीरों को **(जिन्व)** प्राप्त हो। **(वयोधसा)** जीवन के धारण करने हारे **(आधीतेन)** अच्छे प्रकार पढ़ने से **(आधीतम्)** सब ओर से धारण की हुई विद्या को **(जिन्व)** प्राप्त हो। **(अभिजिता)** सन्मुख शत्रुओं को जीतने के हेतु **(तेजसा)** तीक्ष्ण कर्म से **(तेजः)** दृढ़ता को **(जिन्व)** प्राप्त हो॥७॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि विस्तारयुक्त पुरुषार्थ से ऐश्वर्य को प्राप्त हो के सब प्राणियों का हित सिद्ध करें॥७॥

प्रतिपदसीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। भुरिगार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनरेतैः किं कर्त्तव्यमित्याह॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

प्रतिपदसि प्रतिपदे त्वानुपदस्यनुपदे त्वा सम्पदसि सम्पदे त्वा तेजोऽसि तेजसे त्वा॥८॥

प्रतिपदिति प्रतिऽपत्। असि। प्रतिपद इति प्रतिऽपदे। त्वा। अनुपदित्यनुऽपत्। असि। अनुपद इत्यनुऽपदे। त्वा। सम्पदिति सम्ऽपत्। असि। सम्पद इति सम्ऽपदे। त्वा। तेजः। असि। तेजसे। त्वा॥८॥

पदार्थः-**(प्रतिपत्)** प्रतिपद्यते प्राप्यते या सा **(असि)** **(प्रतिपदे)** ऐश्वर्याय **(त्वा)** त्वाम् **(अनुपत्)** अनु पश्चात् प्राप्यते या सा **(असि)** **(अनुपदे)** पश्चात् प्राप्तव्याय **(त्वा)** **(सम्पत्)** सम्यक् प्राप्यते या सा **(असि)** **(सम्पदे)** ऐश्वर्याय **(त्वा)** **(तेजः)** प्रागल्भ्यम् **(असि)** **(तेजसे)** **(त्वा)** त्वाम्॥८॥

अन्वयः-हे पुरुषार्थिनि विदुषि स्त्रि! यतस्त्वं प्रतिपदिवासि तस्यै प्रतिपदे त्वा याऽनुपदिवासि तस्या अनुपदे त्वा या संपदिवासि तस्यै संपदे त्वा या तेज इवासि तस्यै तेजसे त्वा त्वां स्वीकरोमि॥८॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैः सर्वसुखसिद्धये तुल्यगुणकर्मस्वभावैः स्त्रीपुरुषैः स्वयंवरेण विवाहेन परस्परं स्वीकृत्यानन्दितव्यम्॥८॥

पदार्थः-हे पुरुषार्थिनि विदुषी स्त्री! जिस कारण तू **(प्रतिपत्)** प्राप्त होने के योग्य लक्ष्मी के तुल्य **(असि)** है, इसलिये **(प्रतिपदे)** ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये **(त्वा)** तुझ को जो **(अनुपत्)** पीछे प्राप्त होने वाली शोभा के तुल्य **(असि)** है, उस **(अनुपदे)** विद्याऽध्ययन के पश्चात् प्राप्त होने योग्य **(त्वा)** तुझ को, जो तू **(संपत्)** सम्पत्ति के तुल्य **(असि)** है, उस **(सम्पदे)** ऐश्वर्य के लिये **(त्वा)** तुझ को, जो तू **(तेजः)** तेज के समान **(असि)** है, इसलिये **(तेजसे)** तेज होने के लिये **(त्वा)** तुझ को ग्रहण करता हूँ॥८॥

भावार्थः-सब सुख सिद्ध होने के लिये तुल्य गुण, कर्म्म और स्वभाव वाले स्त्री-पुरुष स्वयंवर विवाह से परस्पर एक-दूसरे को स्वीकार कर के आनन्द में रहें॥८॥

त्रिवृदसीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। विराड् ब्राह्मी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनर्मनुष्यैः किं कर्त्तव्यमित्याह॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

त्रिवृद॑सि त्रिवृते॑ त्वा प्रवृद॑सि प्रवृते॑ त्वा विवृद॑सि विवृते॑ त्वा सवृद॑सि सवृते॑ त्वाक्रमोऽस्याक्रमाय॑ त्वा संक्रमोसि संक्रमाय॑ त्वोत्क्रमोऽस्युत्क्रमाय त्वोत्क्रा॑न्तिरस्युत्क्रा॑न्त्यै त्वाऽधिपतिनोर्जोर्जं॑ जिन्व॥ ९॥

त्रिवृदिति॑ त्रिऽवृऽत्। असि। त्रिवृत इति॑ त्रिऽवृते॑। त्वा। प्रवृदिति॑ प्रऽवृत्। असि। प्रवृत इति॑ प्रऽवृते॑। त्वा। विवृदिति॑ विऽवृत्। असि। विवृत इति॑ विऽवृते॑। त्वा। सवृदिति॑ सऽवृत्। असि। सवृत इति॑ सऽवृते॑। त्वा। आक्रम इत्या॑ऽक्रमः। असि। आक्रमायेत्या॑ऽक्रमाय॑। त्वा। संक्रम इति॑ सम्ऽक्रमः। असि। संक्रमायेति॑ सम्ऽक्रमाय॑। त्वा। उत्क्रम इत्यु॑त्ऽक्रमः। असि। उत्क्रमायेत्यु॑त्ऽक्रमाय॑। त्वा। उत्क्रा॑न्तिरित्युत्ऽक्रा॑न्तिः। असि। उत्क्रा॑न्त्या इत्युत्ऽक्रा॑न्त्यै। त्वा। अधि॑पतिनेत्यधि॑ऽपतिना। ऊर्जा। ऊर्ज॑म्। जिन्व॥ ९॥

पदार्थः-**(त्रिवृत्)** यत् त्रिभिः सत्त्वरजस्तमोगुणैः सह वर्त्तते तस्याव्यक्तस्य वेत्ता **(असि)** **(त्रिवृते)** **(त्वा)** त्वाम् **(प्रवृत्)** यत्कार्य्यरूपेण प्रवर्त्तते तस्य ज्ञाता **(असि)** **(प्रवृते)** **(त्वा)** **(विवृत्)** यद्विविधैराकारैर्वर्त्तते तज्जगदुपकर्त्ता **(असि)** **(विवृते)** **(त्वा)** **(सवृत्)** यः समानेन धर्मेण सह वर्त्तते तस्य बोधकः **(असि)** **(सवृते)** **(त्वा)** **(आक्रमः)** समन्तात् क्रमन्ते पदार्था यस्मिन्नन्तरिक्षे तस्य विज्ञापकः **(असि)** **(आक्रमाय)** **(त्वा)** **(संक्रमः)** सम्यक् क्रमन्ते यस्मिँस्तस्य **(असि)** **(संक्रमाय)** **(त्वा)** **(उत्क्रमः)** उदूर्ध्वं क्रमः क्रमणं यस्मात् तस्य **(असि)** **(उत्क्रमाय)** **(त्वा)** **(उत्क्रान्तिः)** उत्क्राम्यन्त्युल्लंघयन्ति समान् विषमान्

देशान् यया गत्या तद्विद्याज्ञात्री **(असि)** **(उत्क्रान्त्यै)** **(त्वा)** **(अधिपतिना)** अधिष्ठात्रा **(ऊर्जा)** पराक्रमेण **(ऊर्जम्)** बलम् **(जिन्व)** प्राप्नुहि॥९॥

अन्वयः-हे मनुष्य! यस्त्वं त्रिवृदसि तस्मै त्रिवृते त्वा, यत्प्रवृदसि तस्मै प्रवृते त्वा, यद्विवृदसि तस्मै विवृते त्वा, य आक्रमोऽसि तस्मा आक्रमाय त्वा, यत सवृदसि तस्मै सवृते त्वा, यः संक्रमोऽसि तस्मै संक्रमाय त्वा, य उत्क्रमोऽसि तस्मा उत्क्रमाय त्वा, योत्क्रान्तिरसि तस्या उत्क्रान्त्यै त्वा त्वामहं परिगृह्णामि। तेन मयाधिपतिना सह वर्त्तमाना त्वमूर्जोर्जं जिन्व॥९॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। नहि पृथिव्यादिपदार्थानां गुणकर्मस्वभावविज्ञानेन विना कश्चिदपि विद्वान् भवितुमर्हति तस्मात् कार्य्यकारणसंघातं यथावद्विज्ञायान्येभ्य उपदेष्टव्यो यथाऽध्यक्षेण सह सेना विजयं करोति तथा स्वस्वामिना सह स्त्री सर्वं दुःखं जयति॥९॥

पदार्थः-हे मनुष्य! जो तू **(त्रिवृत्)** सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण के सह वर्त्तमान अव्यक्त कारण का जानने हारा **(असि)** है, उस **(त्रिवृते)** तीन गुणों से युक्त कारण के ज्ञान के लिये **(त्वा)** तुझ को, जो तू **(प्रवृत्)** जिस कार्यरूप से प्रवृत्त संसार का ज्ञाता **(असि)** है, उस **(प्रवृते)** कार्यरूप संसार को जानने के लिये **(त्वा)** तुझ को, जो तू **(विवृत्)** जिस विविध प्रकार से प्रवृत्त जगत् का उपकारकर्त्ता **(असि)** है, उस **(विवृते)** जगदुपकार के लिये **(त्वा)** तुझ को, जो तू **(सवृत्)** जिस समान धर्म के साथ वर्त्तमान पदार्थों का जानने हारा **(असि)** है, उस **(सवृते)** साधर्म्य पदार्थों के ज्ञान के लिये **(त्वा)** तुझ को, जो तू **(आक्रमः)** अच्छे प्रकार पदार्थों के रहने के स्थान अन्तरिक्ष का जानने वाला **(असि)** है, उस **(आक्रमाय)** अन्तरिक्ष को जानने के लिये **(त्वा)** तुझ को, जो तू **(संक्रमः)** सम्यक् पदार्थों को जानता **(असि)** है, उस **(संक्रमाय)** पदार्थ-ज्ञान के लिये **(त्वा)** तुझ को, जो तू **(उत्क्रमः)** ऊपर मेघमण्डल की गति का ज्ञाता **(असि)** है, उस **(उत्क्रमाय)** मेघमण्डल की गति जानने के लिये **(त्वा)** तुझ को तथा हे स्त्रि! जो तू **(उत्क्रान्तिः)** सम-विषम पदार्थों के उल्लंघन के हेतु विद्या को जानने हारी **(असि)** है, उस **(उत्क्रान्त्यै)** गमनविद्या के जानने के लिये **(त्वा)** तुझ को सब प्रकार ग्रहण करते हैं। **(अधिपतिना)** अपने स्वामी के सह वर्त्तमान तू **(ऊर्जा)** पराक्रम से **(ऊर्जम्)** बल को **(जिन्व)** प्राप्त हो॥९॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। पृथिवी आदि पदार्थों के गुण, कर्म और स्वभावों के जाने विना कोई भी विद्वान् नहीं हो सकता। इसलिये कार्य कारण दोनों को यथावत् जान के अन्य मनुष्यों के लिये उपदेश करना चाहिये। जैसे अध्यक्ष के साथ सेना विजय प्राप्त करती है, वैसे ही अपने पति के साथ स्त्री सब दुःखों को जीत लेती है॥९॥

राज्यसीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। वसवो देवताः। पूर्वस्य विराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। प्रथमजा इत्युत्तरस्य ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

अग्न्यादिपदार्थाः कीदृशा इत्याह॥

अग्नि आदि पदार्थ कैसे गुणों वाले हैं, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

राज्ञ्यसि प्राची दिग्वसवस्ते देवाऽअधिपतयोऽग्निर्हेतीनां प्रतिधर्त्ता त्रिवृत् त्वा स्तोमः पृथिव्याᳬंश्रयत्वाज्यमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु रथन्तरᳬं साम प्रतिष्ठित्याऽअन्तरिक्षऽऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु॥१०॥

राज्ञी। असि। प्राची। दिक्। वसवः। ते। देवाः। अधिपतय इत्यधिऽपतयः। अग्निः। हेतीनाम्। प्रतिधर्त्तेति प्रतिऽधर्त्ता। त्रिवृदिति त्रिऽवृत्। त्वा। स्तोमः। पृथिव्याम्। श्रयतु। आज्यम्। उक्थम्। अव्यथायै। स्तभ्नातु। रथन्तरमिति रथम्ऽतरम्। साम। प्रतिष्ठित्यै। प्रतिस्थित्या इति प्रतिऽस्थित्यै। अन्तरिक्षे। ऋषयः। त्वा। प्रथमजा इति प्रथमऽजाः। देवेषु। दिवः। मात्रया। वरिम्णा। प्रथन्तु। विधर्त्तेति विऽधर्त्ता। च। अयम्। अधिपतिरित्यधिऽपतिः। च। ते। त्वा। सर्वे। संविदाना इति सम्ऽविदानाः। नाकस्य। पृष्ठे। स्वर्ग इति स्वःऽगे। लोके। यजमानम्। च। सादयन्तु॥१०॥

पदार्थः-(**राज्ञी**) राजमाना प्रधाना (**असि**) (**प्राची**) पूर्वा (**दिक्**) दिगिव (**वसवः**) अग्न्याद्याः (**ते**) तव (**देवाः**) देदीप्यमानाः (**अधिपतयः**) अधिष्ठातारः (**अग्निः**) विद्युदिव (**हेतीनाम्**) वज्रास्त्रादीनाम्। **हेतिरिति वज्रना०**॥ (निघ०२/२०) (**प्रतिधर्त्ता**) प्रत्यक्षं धारकः (**त्रिवृत्**) यस्त्रिधा वर्त्तते (**त्वा**) (**स्तोमः**) स्तोतुमर्हः (**पृथिव्याम्**) भूमौ (**श्रयतु**) सेवताम् (**आज्यम्**) घृतम् (**उक्थम्**) वक्तुमर्हम् (**अव्यथायै**) अविद्यमानशरीरपीडायै (**स्तभ्नातु**) धरतु (**रथन्तरम्**) रथैस्तारकम् (**साम**) एतदुक्तं कर्म (**प्रतिष्ठित्यै**) प्रतितिष्ठन्ति यस्यां तस्यै (**अन्तरिक्षे**) आकाशे (**ऋषयः**) प्रापकाः (**त्वा**) (**प्रथमजाः**) प्रथमतो जाता वायवः (**देवेषु**) कमनीयेषु पदार्थेषु (**दिवः**) विद्युतः (**मात्रया**) लेशविषयेण (**वरिम्णा**) (**प्रथन्तु**) उपदिशन्तु। अत्र व्यत्ययेन परस्मैपदम् (**विधर्त्ता**) विविधानां धारकः (**च**) (**अयम्**) (**अधिपतिः**) उपरिष्टात् पालकः (**च**) (**ते**) (**त्वा**) (**सर्वे**) (**संविदानाः**) समाननिश्चयाः (**नाकस्य**) सुखप्रापकस्य भूगोलस्य (**पृष्ठे**) उपरि (**स्वर्गे**) सुखप्रापके (**लोके**) द्रष्टव्ये (**यजमानम्**) दातारम् (**च**) (**सादयन्तु**) अवस्थापयन्तु॥१०॥

अन्वयः-हे स्त्रि! तेऽधिपतिर्यथा यस्या वसवो देवा अधिपतय आसन् तथा प्राची दिगिव राज्ञ्यसि। यथा हेतीनां प्रतिधर्त्ता त्रिवृत्स्तोमोऽग्निरस्ति, तथा त्वाऽहं धरामि। भवति पृथिव्यामव्यथाया उक्थमाज्यं श्रयतु प्रतिष्ठित्यै रथन्तरं साम स्तभ्नातु। यथाऽन्तरिक्षे दिवो मात्रया वरिम्णा देवेषु प्रथमजा ऋषयस्त्वा प्रथन्तु, यथा चायं विधर्त्ता ते पतिर्वर्तेत तथा तेन सह त्वं वर्त्तस्व। यथा च सर्वे संविदाना विद्वांसो नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके त्वा यजमानं च सादयन्तु तथा युवां सीदेतम्॥१०॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। पूर्वा दिक् तस्मादुत्तमास्ति यस्मात् प्रथमं सूर्य्य उदेति। ये पूर्वस्या दिशो वायव आगच्छन्ति, ते कस्मिंश्चिद्देशे मेघकराः भवन्ति कस्मिंश्चिन्नैव। अयमग्निरेव सर्वेषां धर्त्ता वायुनिमित्तो वर्धते ये तं जानन्ति ते जगति सुखं संस्थापयन्ति॥१०॥

पदार्थः-हे स्त्रि! **(ते)** तेरा **(अधिपतिः)** स्वामी जैसे जिस के **(वसवः)** अग्न्यादिक **(देवाः)** प्रकाशमान **(अधिपतयः)** अधिष्ठाता हैं, वैसे तू **(प्राची)** पूर्व **(दिक्)** दिशा के समान **(राज्ञी)** राणी **(असि)** है। जैसे **(हेतीनाम्)** वज्रादि शस्त्रास्त्रों का **(प्रतिधर्त्ता)** प्रत्यक्ष धारणकर्त्ता **(त्रिवृत्)** विद्युत् भूमिस्थ और सूर्यरूप से तीन प्रकार वर्त्तमान **(स्तोमः)** स्तुतियुक्त गुणों से सहित **(अग्निः)** महाविद्युत् धारण करने वाली है, वैसे **(त्वा)** तुझ को तेरा पति मैं धारण करता हूं। तू **(पृथिव्याम्)** भूमि पर **(अव्यथायै)** पीड़ा न होने के लिये **(उक्थम्)** प्रशंसनीय **(आज्यम्)** घृत आदि पदार्थों को **(श्रयतु)** धारण कर **(प्रतिष्ठित्यै)** प्रतिष्ठा के लिये **(रथन्तरम्)** रथादि से तारने वाले **(साम)** सिद्धान्त कर्म को **(स्तभ्नातु)** धारण कर। जैसे **(अन्तरिक्षे)** आकाश में **(दिवः)** बिजुली का **(मात्रया)** लेश सम्बन्ध और **(वरिम्णा)** महापुरुषार्थ से **(देवेषु)** विद्वानों में **(प्रथमजाः)** पूर्व हुए **(ऋषयः)** वेदार्थवित् विद्वान् **(त्वा)** तुझ को **(प्रथन्तु)** शुभ गुणों से विशालबुद्धि करें **(च)** और जैसे **(अयम्)** यह **(विधर्त्ता)** विविध रीति से धारणकर्त्ता **(ते)** तेरा पति तुझ से वर्त्ते, वैसे उस के साथ तू वर्त्ता कर। **(च)** और जैसे **(सर्वे)** सब **(संविदानाः)** अच्छे विद्वान् लोग **(नाकस्य)** अविद्यमान दुःख के **(पृष्ठे)** मध्य में **(स्वर्गे)** जो स्वर्ग अर्थात् अति सुख की प्राप्ति **(लोके)** दर्शनीय है, उस में **(त्वा)** तुझ को **(च)** और **(यजमानम्)** तेरे पति को **(सादयन्तु)** स्थापन करें वैसे तुम दोनों स्त्री पुरुष वर्त्ता करो॥१०॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। पूर्व दिशा इसलिए उत्तम कहाती है कि जिस से सूर्य प्रथम वहां उदय को प्राप्त होता है। जो पूर्व दिशा से वायु चलता है, वह किसी देश में मेघ को उत्पन्न करता है, किसी में नहीं और यह अग्नि सब पदार्थों को धारण करता तथा वायु के संयोग से बढ़ता है, जो पुरुष इन वायु और अग्नि को यथार्थ जानते हैं, वे संसार में प्राणियों को सुख पहुँचाते हैं॥१०॥

विराडसीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। रुद्रा देवताः। पूर्वस्य भुरिग्ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः।
प्रथमजा इत्युत्तरस्य ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनः स्त्रीपुरुषाः किं कुर्युरित्याह॥

फिर स्त्री पुरुषों को क्या करना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

विराडसि दक्षिणा दिग्रुद्रास्ते देवाऽअधिपतयऽइन्द्रो हेतीनां प्रतिधर्त्ता पञ्चदशस्त्वा स्तोमः पृथिव्याꣳ श्रयतु प्रऽउगमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु बृहत्साम प्रतिष्ठित्याऽअन्तरिक्षऽऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु॥११॥

विराडिति विऽराट्। असि। दक्षिणा। दिक्। रुद्राः। ते। देवाः। अधिपतय इत्यधिऽपतयः। इन्द्रः। हेतीनाम्। प्रतिधर्त्तेति प्रतिऽधर्त्ता। पञ्चदश इति पञ्चऽदशः। त्वा। स्तोमः। पृथिव्याम्। श्रयतु। प्रऽउगम्। उक्थम्। अव्यथायै। स्तभ्नातु। बृहत्। साम। प्रतिष्ठित्यै। प्रतिस्थित्या इति प्रतिऽस्थित्यै। अन्तरिक्षे। ऋषयः। त्वा। प्रथमजा इति प्रथमऽजाः।

देवेषु। दिवः। मात्रया। वरिम्णा। प्रथन्तु। विधर्त्तेति विऽधर्त्ता। च। अयम्। अधिपतिरित्यधिऽपतिः। च। ते। त्वा। सर्वे। संविदाना इति सम्ऽविदानाः। नाकस्य। पृष्ठे। स्वर्ग इति स्वःऽगे। लोके। यजमानम्। च। सादयन्तु॥ ११॥

पदार्थः-(**विराट्**) विविधैः पदार्थैं राजमाना (**असि**) अस्ति (**दक्षिणा**) (**दिक्**) काष्ठा (**रुद्राः**) बलवन्तो वायवः (**ते**) अस्याः (**देवाः**) मोदकाः (**अधिपतयः**) उपरिष्टात् पालकाः (**इन्द्रः**) सूर्यः (**हेतीनाम्**) वज्राणाम् (**प्रतिधर्ता**) (**पञ्चदशः**) पञ्चदशानां पूरकः (**त्वा**) त्वाम् (**स्तोमः**) स्तुवन्ति येन स ऋचां भागः (**पृथिव्याम्**) भूमौ (**श्रयतु**) सेवताम् (**प्रउगम्**) प्रयोगार्हम् (**उक्थम्**) उपदेष्टुं योग्यम् (**अव्यथायै**) अविद्यमानमानसभयायै (**स्तभ्नातु**) स्थिरीकरोतु (**बृहत्**) महदर्थम् (**साम**) (**प्रतिष्ठित्यै**) प्रतिष्ठायै (**अन्तरिक्षे**) आकाशे (**ऋषयः**) ज्ञापकाः प्राणाः (**त्वा**) (**प्रथमजाः**) आदौ विद्वांसो जाताः (**देवेषु**) कमनीयेषु पदार्थेषु (**दिवः**) द्योतनकर्मणोऽग्नेः (**मात्रया**) भागेन (**वरिम्णा**) बहोर्भावेन (**प्रथन्तु**) अत्र व्यत्ययेन परस्मैपदम् (**विधर्त्ता**) विविधाकर्षणेन पृथिव्यादिधारकः (**च**) (**अयम्**) (**अधिपतिः**) द्योतकानामधिष्ठाता (**च**) (**ते**) (**त्वा**) (**सर्वे**) (**संविदानाः**) सम्यग् विचारशीला (**नाकस्य**) अविद्यमानदुःखस्याकाशस्य (**पृष्ठे**) सेचके भागे (**स्वर्गे**) सुखकारके (**लोके**) विज्ञातव्ये (**यजमानम्**) एतद्विद्यादातारम् (**च**) (**सादयन्तु**) स्थापयन्तु॥ ११॥

अन्वयः-हे स्त्रि! या त्वं विराड् दक्षिणा दिगिवासि यस्यास्ते पतौ रुद्रा देवा अधिपतय इव हेतीनां प्रतिधर्त्ता पञ्चदशः स्तोम इन्द्रस्त्वा पृथिव्यां श्रयत्वव्यथायै प्रउगमुक्थं स्तभ्नातु प्रतिष्ठित्यै बृहत्साम च स्थिरीकरोतु यथा चान्तरिक्षे देवेषु प्रथमजा ऋषयो दिवो मात्रया वरिम्णा सह वर्तन्ते तथा विद्वांसस्त्वा प्रथन्तु। यथा विधर्त्ता पोषकश्चाऽयमधिपतिस्त्वा पुष्णातु तथा संविदाना विद्वांसस्ते सर्वे नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके त्वां यजमानं च सादयन्तु॥ ११॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा विद्वांसो वायुभिः सह वर्त्तमानं सूर्य्यं तद्विद्याविज्ञापकं विद्वांसं च समाश्रित्यैतद्विद्यां विज्ञापयन्ति तथा स्त्रीपुरुषा ब्रह्मचर्य्येण विद्वांसो भूत्वाऽन्यानध्यापयन्तु॥ ११॥

पदार्थः-हे स्त्रि! जो तू (**विराट्**) विविध पदार्थों से प्रकाशमान (**दक्षिणा**) (**दिक्**) दक्षिण दिशा के तुल्य (**असि**) है, जिस (**ते**) तेरा पति (**रुद्राः**) वायु (**देवाः**) दिव्य गुण युक्त वायु (**अधिपतयः**) अधिष्ठाताओं के समान (**हेतीनाम्**) वज्रों का (**प्रतिधर्त्ता**) निश्चय के साथ धारण करने वाला (**पञ्चदशः**) पन्द्रह संख्या का पूरक (**स्तोमः**) स्तुति का साधक ऋचाओं के अर्थों का भागी और (**इन्द्रः**) सूर्य्य (**त्वा**) तुझ को (**पृथिव्याम्**) पृथिवी में (**श्रयतु**) सेवन करे। (**अव्यथायै**) मानस भय से रहित तेरे लिये (**प्रउगम्**) कथनीय (**उक्थम्**) उपदेश के योग्य वचन को (**स्तभ्नातु**) स्थिर करे तथा (**प्रतिष्ठित्यै**) प्रतिष्ठा के लिये (**बृहत्**) बहुत अर्थ से युक्त (**साम**) सामवेद को स्थिर करे, (**च**) और जैसे (**अन्तरिक्षे**) आकाशस्थ (**देवेषु**) कमनीय पदार्थों में (**प्रथमजाः**) पहिले हुए (**ऋषयः**) ज्ञान के हेतु प्राण (**दिवः**) प्रकाशकारक अग्नि के (**मात्रया**) लेश और (**वरिम्णा**) बहुत्व के साथ वर्त्तमान हैं, वैसे विद्वान् लोग (**त्वा**) तुझ को (**प्रथन्तु**) प्रसिद्ध करें, जैसे (**विधर्त्ता**) विविध प्रकार के आकर्षण से पृथिवी आदि लोकों का धारण (**च**) तथा पोषण

करने वाला **(अधिपति:)** सब प्रकाशक पदार्थों में उत्तम सूर्य **(त्वा)** तुझ को पुष्ट करे, वैसे **(संविदाना:)** सम्यक् विचारशील विद्वान् लोग हैं **(ते)** वे **(सर्वे)** सब **(नाकस्य)** दु:खरहित आकाश के **(पृष्ठे)** सेचक भाग में **(स्वर्गे)** सुखकारक **(लोके)** जानने योग्य देश में **(त्वा)** तुझ को **(च)** और **(यजमानम्)** यज्ञविद्या के जानने हारे पुरुष को **(सादयन्तु)** स्थापित करें॥११॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विद्वान् लोग वायु के साथ वर्त्तमान सूर्य को और सूर्य वायु की विद्या को जानने वाले विद्वान् का आश्रय करके इस विद्या को जनावें, वैसे स्त्री-पुरुष ब्रह्मचर्य के साथ विद्वान् होके दूसरों को पढ़ावें॥११॥

सम्राडसीत्यस्य परमेष्ठी ऋषि:। आदित्या देवता:। पूर्वस्य निचृद् ब्राह्मी जगती छन्द:। निषाद: स्वर:। प्रथमजा इत्युत्तरस्य ब्राह्मी बृहती छन्द:। मध्यम: स्वर:॥

पुनस्तौ कीदृशौ स्यातामित्याह॥

फिर वे स्त्री-पुरुष कैसे हों, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

सम्राडसि प्रतीची दिगादित्यास्ते देवाऽअधिपतयो वरुणो हेतीनां प्रतिधर्त्ता सप्तदशस्त्वा स्तोम: पृथिव्याꣳश्रयतु मरुत्वतीयमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु वैरूपꣳ साम प्रतिष्ठित्याऽअन्तरिक्षऽऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु॥१२॥

सम्राडिति सम्ऽराट्। असि। प्रतीची। दिक्। आदित्या:। ते। देवा:। अधिपतय इत्यधिऽपतय:। वरुण:। हेतीनाम्। प्रतिधर्त्तेति प्रतिऽधर्त्ता। सप्तदश इति सप्तऽदश:। त्वा। स्तोम:। पृथिव्याम्। श्रयतु। मरुत्वतीयम्। उक्थम्। अव्यथायै। स्तभ्नातु। वैरूपम्। साम। प्रतिष्ठित्यै। प्रतिस्थित्या इति प्रतिऽस्थित्यै। अन्तरिक्षे। ऋषय:। त्वा। प्रथमजा इति प्रथमऽजा:। देवेषु। दिव:। मात्रया। वरिम्णा। प्रथन्तु। विधर्त्तेति विऽधर्त्ता। च। अयम्। अधिपतिरित्यधिऽपति:। च। ते। त्वा। सर्वे। संविदाना इति सम्ऽविदाना:। नाकस्य। पृष्ठे। स्वर्ग इति स्व:ऽगे। लोके। यजमानम्। च। सादयन्तु॥१२॥

पदार्थ:-**(सम्राट्)** या सम्यक् प्रदीप्यते **(असि)** **(प्रतीची)** पश्चिमा **(दिक्)** दिशन्ति यया सा दिक् तद्वत् **(आदित्या:)** विद्युद्युक्ता: प्राणा वायव: **(ते)** तव **(देवा:)** दिव्यसुखप्रदा: **(अधिपतय:)** स्वामिन: **(वरुण:)** जलसमुदाय इव दुष्टानां बन्धक: **(हेतीनाम्)** विद्युताम् **(प्रतिधर्त्ता)** **(सप्तदश:)** एतत्संख्यापूरक: **(त्वा)** त्वाम् **(स्तोम:)** स्तोतुमर्ह: **(पृथिव्याम्)** **(श्रयतु)** **(मरुत्वतीयम्)** बहवो मरुतो व्याख्यातारो मनुष्या विद्यन्ते यस्मिँस्तत्र भवम् **(उक्थम्)** वाच्यम् **(अव्यथायै)** अविद्यमानात्मसंचलनायै **(स्तभ्नातु)** गृह्णातु **(वैरूपम्)** विविधानि रूपाणि प्रकृतानि यस्मिंस्तत् **(साम)** **(प्रतिष्ठित्यै)** **(अन्तरिक्षे)** **(ऋषय:)** गतिमन्त: **(त्वा)** **(प्रथमजा:)** प्रथमाद् विस्तीर्णात् कारणाज्जाता वायव: **(देवेषु)** दानसाधकेषु **(दिव:)** प्रकाशस्य **(मात्रया)** भागेन **(वरिम्णा)** **(प्रथन्तु)** **(विधर्त्ता)** विविधानां रत्नानां धारक: **(च)** **(अयम्)** **(अधिपति:)** **(च)**

(ते) **(त्वा)** **(सर्वे)** **(संविदानाः)** सम्यग्लब्धज्ञानाः **(नाकस्य)** **(पृष्ठे)** **(स्वर्गे)** **(लोके)** **(यजमानम्)** **(च)** **(सादयन्तु)**॥१२॥

अन्वयः-हे स्त्रि! या प्रतीची दिगिव सम्राडसि तस्यास्ते पतिरादित्या देवा अधिपतय इवायं सप्तदशश्च स्तोमो वरुणो हेतीनां प्रतिधर्त्ताधिपतिस्त्वा पृथिव्यां श्रयत्वव्यथायै मरुत्वतीयमुक्थं प्रतिष्ठित्यै वैरूपं साम च स्तभ्नातु ये च दिवो मात्रया वरिम्णा सहान्तरिक्षे प्रथमजा ऋषयो देवेषु वर्त्तन्ते तद्वत् त्वा विद्वांसः प्रथन्तु। यथा विधर्त्ता चाधिपतिश्च राजा प्रजाः सुखे स्थापयतु तथा ते सर्वे संविदानाः सन्तस्त्वा यजमानं च नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके सादयन्तु॥१२॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा विद्वांसः पश्चिमां दिशं तत्रस्थान् पदार्थांश्चान्येभ्यो विज्ञापयन्ति। तथा स्त्रीपुरुषाः स्वापत्यादीन् विद्ययाऽलंकुर्वन्तु॥१२॥

पदार्थः-हे स्त्रि! जो तू **(प्रतीची)** पश्चिम **(दिक्)** दिशा के समान **(सम्राट्)** सम्यक् प्रकाशित **(असि)** है, उस **(ते)** तेरा पति **(आदित्याः)** बिजुली से युक्त प्राणवायु **(देवाः)** दिव्य सुखदाता **(अधिपतयः)** स्वामियों के तुल्य **(अयम्)** यह **(सप्तदशः)** सत्रह संख्या का पूरक **(च)** और **(स्तोमः)** स्तुति के योग्य **(वरुणः)** जलसमुदाय के समान **(हेतीनाम्)** बिजुलियों का **(प्रतिधर्त्ता)** धारण करने वाला **(अधिपतिः)** स्वामी **(त्वा)** तुझ को **(पृथिव्याम्)** पृथिवी पर **(श्रयतु)** सेवन करे **(अव्यथायै)** स्वरूप से अचल तेरे लिये **(मरुत्वतीयम्)** बहुत मनुष्यों के व्याख्यान से युक्त **(उक्थम्)** कथनयोग्य वेदवचन तथा **(प्रतिष्ठत्यै)** प्रतिष्ठा के लिये **(वैरूपम्)** विविध रूपों के व्याख्यान से युक्त **(साम)** सामवेद को **(स्तभ्नातु)** ग्रहण करे और जो **(दिवः)** प्रकाश के **(मात्रया)** भाग से **(वरिम्णा)** बहुत्व के साथ **(अन्तरिक्षे)** आकाश में **(प्रथमजाः)** विस्तारयुक्त कारण से उत्पन्न हुए **(ऋषयः)** गतियुक्त वायु **(देवेषु)** दान के हेतु अवयवों में वर्त्तमान हैं, वैसे **(त्वा)** तुझ को विद्वान् लोग **(प्रथन्तु)** प्रसिद्ध उपदेश करें। जैसे **(विधर्त्ता)** जो विविध रत्नों का धारने हारा है, **(च)** यह भी **(अधिपतिः)** अध्यक्ष स्वामी प्रजाओं को सुख में रखता है, वैसे **(ते)** तेरे मध्य में **(सर्वे)** सब **(संविदानाः)** अच्छे प्रकार ज्ञान को प्राप्त हुए **(त्वा)** तुझ को **(च)** और **(यजमानम्)** विद्वानों के सेवक पुरुष को **(नाकस्य)** दुःखरहित देश के **(पृष्ठे)** एक भाग में **(स्वर्गे)** सुखप्रापक **(लोके)** दर्शनीय स्थान में **(सादयन्तु)** स्थापित करें॥१२॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विद्वान् लोग पश्चिम दिशा और वहां के पदार्थों को दूसरों को जनाते हैं, वैसे स्त्री-पुरुष अपने सन्तानों आदि को विद्यादि गुणों से सुशोभित करें॥१२॥

स्वराडसीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। मरुतो देवताः। पूर्वस्य भुरिग्ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। प्रथमजा इत्युत्तरस्य ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनस्तौ कीदृशावित्याह॥

फिर वे दोनों कैसे हों, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

स्वराडस्युदीची दिङ्मरुतस्ते देवाऽअधिपतयः सोमो हेतीनां प्रतिधर्त्तैकविꣳशस्त्वा स्तोमः पृथिव्याꣳ श्रयतु निष्केवल्यमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु वैराजꣳसाम प्रतिष्ठित्याऽअन्तरिक्षऽऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु॥ १३॥

स्वराडिति स्वऽराट्। असि। उदीची। दिक्। मरुतः। ते। देवाः। अधिपतय इत्यधिऽपतयः। सोमः। हेतीनाम्। प्रतिधर्त्तेति प्रतिऽधर्त्ता। एकविꣳश इत्येकऽविꣳशः। त्वा। स्तोमः। पृथिव्याम्। श्रयतु। निष्केवल्यम्। निःऽकैवल्यमिति निःऽकैवल्यम्। उक्थम्। अव्यथायै। स्तभ्नातु। वैराजम्। साम। प्रतिष्ठित्यै। प्रतिस्थित्या इति प्रतिऽस्थित्यै। अन्तरिक्षे। ऋषयः। त्वा। प्रथमजा इति प्रथमऽजाः। देवेषु। दिवः। मात्रया। वरिम्णा। प्रथन्तु। विधर्त्तेति विऽधर्त्ता। च। अयम्। अधिपतिरित्यधिऽपतिः। च। ते। त्वा। सर्वे। संविदाना इति सम्ऽविदानाः। नाकस्य। पृष्ठे। स्वर्ग इति स्वःऽगे। लोके। यजमानम्। च। सादयन्तु॥ १३॥

पदार्थः-(**स्वराट्**) या स्वयं राजते (**असि**) अस्ति (**उदीची**) य उदङ्ङुत्तरं देशमञ्चति सा (**दिक्**) (**मरुतः**) वायवः (**ते**) तव (**देवाः**) दिव्यसुखप्रदाः (**अधिपतयः**) (**सोमः**) चन्द्रः (**हेतीनाम्**) वज्रवद्वर्त्तमानानां किरणानाम् (**प्रतिधर्ता**) (**एकविंशः**) एतत्संख्यापूरकः (**त्वा**) त्वाम् (**स्तोमः**) स्तुतिसाधकः (**पृथिव्याम्**) (**श्रयतु**) (**निष्केवल्यम्**) निरन्तरं केवलं स्वरूपं यस्मिंस्तत्र साधुम्। अत्र केधार्तोर्बाहुलकादौणादिको वलच् प्रत्ययः (**उक्थम्**) वक्तुं योग्यम् (**अव्यथायै**) अविद्यमानेन्द्रियभयायै (**स्तभ्नातु**) (**वैराजम्**) विराट्प्रतिपादकम् (**साम**) (**प्रतिष्ठित्यै**) (**अन्तरिक्षे**) (**ऋषयः**) बलवन्तः प्राणाः (**त्वा**) (**प्रथमजाः**) (**देवेषु**) (**दिवः**) (**मात्रया**) (**वरिम्णा**) (**प्रथन्तु**) (**विधर्त्ता**) विविधस्य शीतस्य धर्त्ता (**च**) (**अयम्**) (**अधिपतिः**) अधिष्ठाता (**च**) (**ते**) (**त्वा**) (**सर्वे**) (**संविदानाः**) सम्यक् कृतप्रतिज्ञाः (**नाकस्य**) (**पृष्ठे**) (**स्वर्गे**) (**लोके**) (**यजमानम्**) (**च**) (**सादयन्तु**)॥ १३॥

अन्वयः-हे स्त्रि! यथा स्वराडुदीची दिगस्यस्ति तथा ते पतिर्भवतु यस्या दिशो मरुतो देवा अधिपतयः सन्ति तद्वद् य एकविंशः स्तोमः सोमो हेतीनां प्रतिधर्त्ता जनस्त्वा पृथिव्यां श्रयत्वव्यथायै निष्केवल्यमुक्थं प्रतिष्ठित्यै वैराजं साम च स्तभ्नातु यथा तेऽन्तरिक्षे स्थिता देवेषु प्रथमजा दिवो मात्रया वरिम्णा सह वर्त्तमाना ऋषयः सन्ति तथाऽयमेवैतेषां विधर्त्ता चाधिपतिरस्ति तत्र विषये ते सर्वे संविदाना विद्वांसस्त्वा प्रथन्तु नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके त्वा यजमानं च सादयन्तु॥ १३॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा विद्वांसः सोमं प्राणांश्च साधिष्ठानान् विदित्वा कार्येषूपयुज्य सुखं लभन्ते तथा अध्यापका अध्यापिकाश्च शिष्यान् शिष्याश्च विद्याग्रहणायोपयुज्यानन्दयन्तु॥ १३॥

पदार्थः-हे स्त्रि! जैसे **(स्वराट्)** स्वयं प्रकाशमान **(उदीची)** उत्तर **(दिक्)** दिशा **(असि)** है, वैसा **(ते)** तेरा पति हो जिस दिशा के **(मरुतः)** वायु **(देवाः)** दिव्यरूप **(अधिपतयः)** अधिष्ठाता हैं, उन के सदृश जो **(एकविंशः)** इक्कीस संख्या का पूरक **(स्तोमः)** स्तुति का साधक **(सोमः)** चन्द्रमा **(हेतीनाम्)** वज्र के समान वर्त्तमान किरणों का **(प्रतिधर्त्ता)** धारने हारा पुरुष **(त्वा)** तुझ को **(पृथिव्याम्)** भूमि में **(श्रयतु)** सेवन करे, **(अव्यथायै)** इन्द्रियों के भय से रहित तेरे लिये **(निष्केवल्यम्)** जिस में केवल एक स्वरूप का वर्णन हो, वह **(उक्थम्)** कहने योग्य वेदभाग तथा **(प्रतिष्ठित्यै)** प्रतिष्ठा के लिये **(वैराजम्)** विराट् रूप का प्रतिपादक **(साम)** सामवेद का भाग **(स्तभ्नातु)** ग्रहण करे **(च)** और जैसे तेरे मध्य में **(अन्तरिक्षे)** अवकाश में स्थित **(देवेषु)** इन्द्रियों में **(प्रथमजाः)** मुख्य प्रसिद्ध **(दिवः)** ज्ञान के **(मात्रया)** भागों से **(वरिम्णा)** अधिकता के साथ वर्त्तमान **(ऋषयः)** बलवान् प्राण हैं, वैसे **(अयम्)** यही इन प्राणों का **(विधर्त्ता)** विविध शीत को धारणकर्त्ता **(च)** और **(अधिपतिः)** अधिष्ठाता है **(ते)** वे **(सर्वे)** सब इस विषय में **(संविदानाः)** सम्यक् बुद्धिमान् विद्वान् लोग प्रतिज्ञा से **(त्वा)** तुझ को **(प्रथन्तु)** प्रसिद्ध करें और **(नाकस्य)** उत्तम सुखरूप लोक के **(पृष्ठे)** ऊपर **(स्वर्गे)** सुखदायक **(लोके)** लोक में **(त्वा)** तुझ को **(च)** और **(यजमानम्)** यजमान पुरुष को **(सादयन्तु)** स्थित करें॥१३॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विद्वान् लोग आधार के सहित चन्द्रमा आदि पदार्थों और आधार के सहित प्राणों को यथावत् जान के संसारी कार्यों में उपयुक्त करके सुख को प्राप्त होते हैं, वैसे अध्यापक स्त्री-पुरुष कन्या-पुत्रों को विद्या-ग्रहण के लिये उपयुक्त करके आनन्दित करें॥१३॥

अधिपत्न्यसीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। पूर्वस्य ब्राह्मी जगती छन्दः। निषादः स्वरः।
प्रतिष्ठित्या इत्युत्तरस्य ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अधिपत्न्यसि बृहती दिग्विश्वे ते देवाऽअधिपतयो बृहस्पतिर्हेतीनां प्रतिधर्त्ता त्रिणवत्रयस्त्रिꣳशौ त्वा स्तोमौ पृथिव्याꣳ श्रयतां वैश्वदेवाग्निमारुतेऽउक्थेऽअव्यथायै स्तभ्नीताꣳ शाक्वररैवते सामनी प्रतिष्ठित्याऽअन्तरिक्षऽऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानञ्च सादयन्तु॥१४॥

अधिपत्नीत्यधिऽपत्नी। असि। बृहती। दिक्। विश्वे। ते। देवाः। अधिपतय इत्यधिऽपतयः। बृहस्पतिः। हेतीनाम्। प्रतिधर्त्तेति प्रतिऽधर्त्ता। त्रिणवत्रयस्त्रिꣳशौ। त्रिनवत्रयस्त्रिꣳशाविति त्रिनवऽत्रयस्त्रिꣳशौ। त्वा। स्तोमौ। पृथिव्याम्। श्रयताम्। वैश्वदेवाग्निमारुत इति वैश्वदेवाग्निमारुते। उक्थे इत्युक्थे। अव्यथायै। स्तभ्नीताम्। शाक्वररैवत

इति शाक्वररैवते। सामनी इतिऽसामनी। प्रतिष्ठित्यै। प्रतिस्थित्या इति प्रतिऽस्थित्यै। अन्तरिक्षे। ऋषयः। त्वा। प्रथमजा इति प्रथमऽजाः। देवेषु। दिवः। मात्रया। वरिम्णा। प्रथन्तु। विधर्त्तेति विऽधर्त्ता। च। अयम्। अधिपतिरित्यधिऽपतिः। च। ते। त्वा। सर्वे। संविदाना इति सम्ऽविदानाः। नाकस्य। पृष्ठे। स्वर्ग इति स्वःऽगे। लोके। यजमानम्। च। सादयन्तु॥ १४॥

पदार्थः-(अधिपत्नी) सर्वासां दिशामुपरि वर्त्तमाना **(असि) (बृहती)** महती **(दिक्) (विश्वे)** अखिलाः **(ते)** तव **(देवाः)** द्योतकाः **(अधिपतयः)** अधिष्ठातारः **(बृहस्पतिः)** पालकः सूर्यः **(हेतीनाम्)** वृद्धानाम् **(प्रतिधर्त्ता)** प्रतीत्या धर्त्ता **(त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ) (त्वा) (स्तोमौ)** स्तुतिसाधकौ **(पृथिव्याम्) (श्रयताम्) (वैश्वदेवाग्निमारुते)** वैश्वदेवाग्निमरुद्व्याख्यायिके **(उक्थे)** वक्तव्ये **(अव्यथायै)** अविद्यमानसार्वजनिकपीडायै **(स्तभ्नीताम्) (शाक्वररैवते)** शक्त्यैश्वर्य्यप्रतिपादिके **(सामनी) (प्रतिष्ठित्यै) (अन्तरिक्षे) (ऋषयः)** धनञ्जयादयः सूक्ष्मस्थूला वायवः प्राणाः **(त्वा) (प्रथमजाः)** आदिजाः **(देवेषु)** दिव्यगुणेषु पदार्थेषु वा **(दिवः) (मात्रया) (वरिम्णा) (प्रथन्तु) (विधर्त्ता) (च) (अयम्) (अधिपतिः) (च) (ते) (त्वा) (सर्वे) (संविदानाः)** कृतप्रतिज्ञाः **(नाकस्य) (पृष्ठे) (स्वर्गे) (लोके) (यजमानम्) (च) (सादयन्तु)**॥ १४॥

अन्वयः-हे स्त्रि! या त्वं बृहत्यधिपत्नी दिगिवासि, तस्यास्ते पतिर्विश्वे देवा अधिपतयः सन्ति, तद्वद्यो बृहस्पतिर्हेतीनां प्रतिधर्त्ता त्वा च त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ स्तोमौ पृथिव्यामव्यथायै वैश्वदेवाग्निमारुते उक्थे च श्रयताम्। प्रतिष्ठित्यै शाक्वररैवते सामनी च स्तभ्नीताम्। यथा तेऽन्तरिक्षे प्रथमजा ऋषयो देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा त्वा प्रथन्ते तान् मनुष्याः प्रथन्तु। यथाऽयमधिपतिर्विधर्त्ता सूर्य्योऽस्ति, यथा संविदाना विद्वांसस्त्वा नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके सादयन्ति, यथा सर्वे ते यजमानं च सादयन्तु तथा त्वं पत्या सह वर्त्तेथाः॥ १४॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार। यथा सर्वासां मध्यस्था दिक् सर्वाभ्योऽधिकास्ति तथा सर्वेभ्यो गुणेभ्यः शरीरात्मबलमधिकमस्तीति वेद्यम्॥ १४॥

पदार्थः-हे स्त्रि! जो तू **(बृहती)** बड़ी **(अधिपत्नी)** सब दिशाओं के ऊपर वर्त्तमान **(दिक्)** दिशा के समान **(असि)** है, उस **(ते)** तेरा पति **(विश्वे)** सब **(देवाः)** प्रकाशक सूर्य्यादि पदार्थ **(अधिपतयः)** अधिष्ठाता हैं, वैसे जो **(बृहस्पतिः)** विश्व का रक्षक **(हेतीनाम्)** बड़े लोकों का **(प्रतिधर्त्ता)** प्रतीति के साथ धारण करने वाले सूर्य्य के तुल्य वह तेरा पति **(त्वा)** तुझ को **(च)** और **(त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ)** त्रिणव और तेंतीस **(स्तोमौ)** स्तुति के साधन **(पृथिव्याम्)** पृथिवी में **(अव्यथायै)** पीड़ा रहितता के लिये **(वैश्वदेवाग्निमारुते)** सब विद्वान् और अग्नि वायुओं के व्याख्यान करने वाले **(उक्थे)** कहने योग्य वेद के दो भागों का **(श्रयताम्)** आश्रय करें, **(च)** और जैसे **(प्रतिष्ठित्यै)** प्रतिष्ठा होने के लिये **(शाक्वररैवते)** शक्वरी और रेवती छन्द से कहे अर्थों से **(सामनी)** सामवेद के दो भागों को **(स्तभ्नीताम्)** संगत करो। जैसे वे **(अन्तरिक्षे)** अवकाश में **(प्रथमजाः)** आदि में हुए **(ऋषयः)** धनञ्जय आदि सूक्ष्म स्थूल वायुरूप प्राण

(देवेषु) दिव्य गुण वाले पदार्थों में (दिवः) प्रकाश की (मात्रया) मात्रा और (वरिम्णा) अधिकता से (त्वा) तुझ को प्रसिद्ध करते हैं, उन को मनुष्य लोग (प्रथन्तु) प्रख्यात करें, जैसे (अयम्) यह (अधिपतिः) स्वामी (विधर्त्ता) विविध प्रकार से सब को धारण करने हारा सूर्य है, जैसे (संविदानाः) सम्यक् सत्यप्रतिज्ञायुक्त ज्ञानवान् विद्वान् लोग (त्वा) तुझ को (नाकस्य) (पृष्ठे) सुखदायक देश के उपरि (स्वर्गे) सुखरूप (लोके) स्थान में स्थापित करते हैं, (ते) वे (सर्वे) सब (यजमानम्) तेरे पुरुष (च) और तुझ को (सादयन्तु) स्थित करें, वैसे तुम स्त्री-पुरुष दोनों वर्त्ता करो॥१४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सब के बीच की दिशा सब से अधिक है, वैसे सब गुणों से शरीर और आत्मा का बल अधिक है, ऐसा निश्चित जानना चाहिये॥१४॥

अयं पुर इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। वसन्तर्तुर्देवता। विकृतिश्छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

अथ रश्म्यादिदृष्टान्तेन सद्विद्योपदिश्यते॥

अब किरण आदि के दृष्टान्त से श्रेष्ठ विद्या का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अयं पुरो हरिकेशः सूर्यरश्मिस्तस्य रथगृत्सश्च रथौजाश्च सेनानीग्रामण्यौ। पुञ्जिकस्थला च क्रतुस्थला चाप्सरसौ दङ्क्ष्णवः पशवो हेतिः पौरुषेयो वधः प्रहेतिस्तेभ्यो नमोऽअस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः॥१५॥

अयम्। पुरः। हरिकेश इति हरिऽकेशः। सूर्यरश्मिरिति सूर्यऽरश्मिः। तस्य। रथगृत्स इति रथऽगृत्सः। च। रथौजा इति रथऽओजाः। च। सेनानीग्रामण्यौ। सेनानीग्रामन्याविति सेनानीग्रामन्यौ। पुञ्जिकस्थलेति पुञ्जिकऽस्थला। च। क्रतुस्थलेति क्रतुऽस्थला। च। अप्सरसौ। दङ्क्ष्णवः। पशवः। हेतिः। पौरुषेयः। वधः। प्रहेतिरिति प्रऽहेतिः। तेभ्यः। नमः। अस्तु। ते। नः। अवन्तु। ते। नः। मृडयन्तु। ते। यम्। द्विष्मः। यः। च। नः। द्वेष्टि। तम्। एषाम्। जम्भे। दध्मः॥१५॥

पदार्थः-(**अयम्**) (**पुरः**) पूर्वस्मिन् काले वर्त्तमानः (**हरिकेशः**) हरणशीला हरितवर्णाः केशा इव केशाः प्रकाशा यस्य। अत्र **क्लिशेरन् लो लोपश्च॥** (उणा०५।३३) इत्यन् लकारलोपश्च (**सूर्यरश्मिः**) सूर्य्यस्य किरणः (**तस्य**) (**रथगृत्सः**) रथस्य प्रवेता गृत्सो मेधावीव वर्त्तमानः। (**च**) (**रथौजाः**) रथेनौजो बलं यस्य (**च**) (**सेनानीग्रामण्यौ**) सेनानीश्च ग्रामणीश्च ताविव (**पुञ्जिकस्थला**) समूहस्थाना दिक् (**च**) (**क्रतुस्थला**) प्रज्ञाकर्मज्ञापनोपदिक (**च**) (**अप्सरसौ**) ये अप्सु प्राणेषु सरन्त्यौ गच्छन्त्यौ ते (**दङ्क्ष्णवः**) मांसघासादीनां दंशनशीला व्याघ्रादयः। अत्र दंशधातोर्बाहुलकान्नुः सुडागमश्च (**पशवः**) (**हेतिः**) वज्र इव घातुकः (**पौरुषेयः**) पुरुषाणां समूहः (**वधः**) हन्ति येन (**प्रहेतिः**) प्रकृष्टो हेतिर्वज्र इव वर्त्तमानः (**तेभ्यः**) (**नमः**) वज्रः (**अस्तु**) (**ते**) (**नः**) अस्मान् (**अवन्तु**) रक्षन्तु (**ते**) (**नः**) अस्मान् (**मृडयन्तु**) आनन्दयन्तु (**ते**) रक्षका वयम् (**यम्**) हिंसकम् (**द्विष्मः**) विरुन्ध्मः (**यः**) (**च**) (**नः**) अस्मान् (**द्वेष्टि**) विरुणद्धि (**तम्**)

(एषाम्) पशूनाम् **(जम्भे)** जम्भन्ति गात्राणि विनामयन्ति येन मुखेन तस्मिन् **(दध्मः)** संस्थापयामः। [अयं मन्त्रः शत०८.६.१.१६ व्याख्यातः]॥१५॥

अन्वयः-योऽयं पुरो हरिकेशः सूर्य्यरश्मिरस्ति तस्य रथगृत्सश्च रथौजाश्च सेनानीग्रामण्याविवापरौ रश्मी वर्तेते। तस्य पुञ्जिकस्थला च क्रतुस्थला चाप्सरसौ वर्तेते। ये दंक्ष्णवः पशवः सन्ति तेषामुपरि हेतिर्वज्रः पततु। ये पौरुषेयो वधः प्रहेतिरिव वर्तमानाः सन्ति, तेभ्यो नमोऽस्तु। ये धार्मिका राजादयः सभ्या राजपुरुषाः सन्ति ते नोऽवन्तु। ते नो मृडयन्तु, ते वयं यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः॥१५॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा सूर्य्यस्य रश्मिर्हरितोऽस्ति, तेन साकं रक्तपीतादयः किरणा वर्त्तन्ते तथा सेनानीग्रामण्यौ वर्त्तित्वा रक्षकौ भवेताम्। यथा राजादयः सिंहादिहिंसकान् पशून्निरुध्य गवादीन् रक्षन्ति। तथैव विद्वांसः सुशिक्षयाऽस्मान् मनुष्यानधर्मानुष्ठानान्निरुध्य धर्म्ये कर्मणि वर्त्तयित्वा द्वेष्टॄन् निवारयन्तु। इदमपि वसन्तर्तोर्व्याख्यानम्॥१५॥

पदार्थः-जो **(अयम्)** यह **(पुरः)** पूर्वकाल में वर्त्तमान **(हरिकेशः)** हरितवर्ण केश के समान हरणशील और क्लेशकारी ताप से युक्त **(सूर्यरश्मिः)** सूर्य की किरणें हैं, **(तस्य)** उनका **(रथगृत्सः)** बुद्धिमान् सारथि **(च)** और **(रथौजाः)** रथ के ले चलने के वाहन **(च)** इन दोनों के तथा **(सेनानीग्रामण्यौ)** सेनापति और ग्राम के अध्यक्ष के समान अन्य प्रकार के भी किरण होते हैं, उन किरणों की **(पुञ्जिकस्थला)** सामान्य प्रधान दिशा **(च)** और **(क्रतुस्थला)** प्रज्ञाकर्म को जतानेवाली उपदिशा **(च)** ये दोनों **(अप्सरसौ)** प्राणों में चलने वाली अप्सरा कहाती हैं, जो **(दङ्क्ष्णवः)** मांस और घास आदि पदार्थों को खाने वाले व्याघ्र आदि **(पशवः)** हानिकारक पशु हैं, उनके ऊपर **(हेतिः)** बिजुली गिरे। जो **(पौरुषेयः)** पुरुषों के समूह **(वधः)** मारनेवाले और **(प्रहेतिः)** उत्तम वज्र के तुल्य नाश करने वाले हैं, **(तेभ्यः)** उन के लिये **(नमः)** वज्र का प्रहार **(अस्तु)** हो और जो धार्मिक राजा आदि सभ्य राजपुरुष हैं, **(ते)** वे उन पशुओं से **(नः)** हम लोगों की **(अवन्तु)** रक्षा करें, **(ते)** वे **(नः)** हम को **(मृडयन्तु)** सुखी करें, **(ते)** वे रक्षक हम लोग **(यम्)** जिस हिंसक से **(द्विष्मः)** विरोध करें **(च)** और **(यः)** जो हिंसक **(नः)** हम से **(द्वेष्टि)** विरोध करे **(तम्)** उसको हम लोग **(एषाम्)** इन व्याघ्रादि पशुओं के **(जम्भे)** मुख में **(दध्मः)** स्थापन करें॥१५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य के किरण हरे वर्ण वाले हैं, उस के साथ लाल, पीले आदि वर्ण वाले भी किरण रहते हैं, वैसे ही सेनापति और ग्रामाध्यक्ष वर्त्त के रक्षक होवें। जैसे राजा आदि पुरुष मृत्यु के हेतु सिंह आदि पशुओं को रोक के गौ आदि पशुओं की रक्षा करते हैं, वैसे ही विद्वान् लोग अच्छी शिक्षा से अधर्माचरण से पृथक् रख धर्म में चला के हम सब मनुष्यों की रक्षा करके द्वेषियों का निवारण करें। यह भी सब वसन्त ऋतु का व्याख्यान है॥१५॥

अयं दक्षिणेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। ग्रीष्मर्तुर्देवता। निचृत् प्रकृतिश्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तादृशमेव विषयमाह॥

फिर भी वैसा ही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अयं दक्षिणा विश्वकर्मा तस्य रथस्वनश्च रथेचित्रश्च सेनानीग्रामण्यौ। मेनका च सहजन्या चाप्सरसौ यातुधाना हेती रक्षांꣳसि प्रहेतिस्तेभ्यो नमोऽअस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः॥ १६

अयम्। दक्षिणा। विश्वकर्मेति विश्वऽकर्मा। तस्य। रथस्वन इति रथऽस्वनः। च। रथेचित्र इति रथेऽचित्रः। च। सेनानीग्रामण्यौ। सेनानीग्रामन्याविति सेनानीग्रामन्यौ। मेनका। च। सहजन्येति सहऽजन्या। च। अप्सरसौ। यातुधाना इति यातुऽधानाः। हेतिः। रक्षांꣳसि। प्रहेतिरिति प्रऽहेतिः। तेभ्यः। नमः। अस्तु। ते। नः। अवन्तु। ते। नः। मृडयन्तु। ते। यम्। द्विष्मः। यः। च। नः। द्वेष्टि। तम्। एषाम्। जम्भे। दध्मः॥ १६॥

पदार्थः-**(अयम्)** **(दक्षिणा)** दक्षिणतः **(विश्वकर्मा)** विश्वानि सर्वाणि कर्माणि यस्मात् स वायुः **(तस्य)** **(रथस्वनः)** रथस्य स्वनः शब्द इव शब्दो यस्य सः **(च)** **(रथेचित्रः)** रथे रमणीये चित्राण्याश्चर्य्यरूपाणि चिह्नानि यस्य सः **(च)** **(सेनानीग्रामण्यौ)** **(मेनका)** यया मन्यते सा **(च)** **(सहजन्या)** सहोत्पन्ना **(च)** **(अप्सरसौ)** ये अप्स्वन्तरिक्षे सरतस्ते **(यातुधानाः)** प्रजापीडकाः **(हेतिः)** वज्रः **(रक्षांसि)** दुष्टकर्मकारिणः **(प्रहेतिः)** **(तेभ्यः)** **(नमः)** वज्रः **(अस्तु)** **(ते)** **(नः)** अस्मान् **(अवन्तु)** **(ते)** **(नः)** **(मृडयन्तु)** सुखयन्तु **(ते)** **(यम्)** **(द्विष्मः)** **(यः)** **(च)** **(नः)** **(द्वेष्टि)** **(तम्)** **(एषाम्)** वायूनाम् **(जम्भे)** व्याघ्रस्य मुख इव कष्टे **(दध्मः)**। **[अयं मन्त्रः** शत०८.६.१.१७-१८ व्याख्यातः]॥ १६॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा योऽयं विश्वकर्मा वायुर्दक्षिणा वाति तस्य वायो रथस्वनश्च रथेचित्रश्च सेनानीग्रामण्याविव वर्त्तमाने मेनका च सहजन्या चाप्सरसौ वर्त्तेते। ये यातुधानाः सन्ति तेषामुपरि हेतिर्यानि रक्षांसि वर्त्तन्ते, तेषामुपरि प्रहेतिरिव तेभ्यो नमोस्त्विति कृत्वा शिक्षका न्यायाधीशास्ते नोऽवन्तु, ते नो मृडयन्तु, ते वयं यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां वायूनां जम्भे दध्मस्तथा प्रयतध्वम्॥ १६॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये स्थूलसूक्ष्ममध्यस्थस्य वायोरुपयोगं कर्त्तुं जानन्ति ते शत्रून्निवार्य्य सर्वानानन्दयन्ति। इदमपि ग्रीष्मर्त्तोः शिष्टं व्याख्यानं वेद्यम्॥ १६॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे **(अयम्)** यह **(विश्वकर्मा)** सब चेष्टारूप कर्मों का हेतु वायु **(दक्षिणा)** दक्षिण दिशा से चलता है, **(तस्य)**उस वायु के **(रथस्वनः)** रथ के शब्द के समान शब्द वाला **(च)** और **(रथेचित्रः)** रमणीय रथ में चिह्नयुक्त आश्चर्य कार्यों का करने वाला **(च)** ये दोनों **(सेनानीग्रामण्यौ)** सेनापति और ग्रामाध्यक्ष के समान वर्त्तमान **(मेनका)** जिस से मनन किया जाय वह **(च)** और **(सहजन्या)** एक साथ उत्पन्न हुई **(च)** ये दोनों **(अप्सरसौ)** अन्तरिक्ष में रहने वाली किरणादि अप्सरा हैं, जो **(यातुधाना)** प्रजा को पीड़ा देने वाले हैं, उन के ऊपर **(हेतिः)** वज्र जो **(रक्षांसि)** दुष्ट कर्म करने वाले हैं, उन के ऊपर **(प्रहेतिः)** प्रकृष्ट वज्र के तुल्य **(तेभ्यः)** उन प्रजापीड़क आदि के लिये **(नमः)** वज्र का प्रहार **(अस्तु)** हो। ऐसा करके

जो न्यायाधीश शिक्षक हैं, **(ते)** वे **(नः)** हमारी **(अवन्तु)** रक्षा करें। **(ते)** वे **(नः)** हमको **(मृडयन्तु)** सुखी करें, **(ते)** वे हम लोग **(यम्)** जिस दुष्ट से **(द्विष्मः)** द्वेष करें **(च)** और **(यः)** जो दुष्ट **(नः)** हम से **(द्वेष्टि)** द्वेष करे, **(तम्)** उस को **(एषाम्)** इन वायुओं के **(जम्भे)** व्याघ्र के समान मुख में **(दध्मः)** धारण करते हैं, वैसा प्रयत्न करो॥१६॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो स्थूल, सूक्ष्म और मध्यस्थ वायु से उपयोग लेने को जानते हैं, वे शत्रुओं का निवारण करके सब को आनन्दित करते हैं। यह भी ग्रीष्म ऋतु का शेष व्याख्यान है, ऐसा जानो॥१६॥

अयं पश्चादित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। वर्षर्त्तुर्देवता। कृतिश्छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तादृशमेव विषयमाह॥

फिर वैसा ही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अयं पश्चाद् विश्वव्यचास्तस्य रथप्रोतश्चासमरथश्च सेनानीग्रामण्यौ। प्रम्लोचन्ती चानुम्लोचन्ती चाप्सरसौ व्याघ्रा हेतिः सर्पाः प्रहेतिस्तेभ्यो नमोऽअस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः॥ १७॥

अयम्। पश्चात्। विश्वव्यचा इति विश्वऽव्यचाः। तस्य। रथप्रोत इति रथऽप्रोतः। च। असमरथ इत्यसमऽरथः। च। सेनानीग्रामण्यौ। सेनानीग्रामन्याविति सेनानीग्रामन्यौ। प्रम्लोचन्तीति प्रऽम्लोचन्ती। च। अनुम्लोचन्तीत्यनुऽम्लोचन्ती। च। अप्सरसौ। व्याघ्राः। हेतिः। सर्पाः। प्रहेतिरिति प्रऽहेतिः। तेभ्यः। नमः। अस्तु। ते। नः। अवन्तु। ते। नः। मृडयन्तु। ते। यम्। द्विष्मः। यः। च। नः। द्वेष्टि। तम्। एषाम्। जम्भे। दध्मः॥ १७॥

पदार्थः-**(अयम्)** **(पश्चात्)** **(विश्वव्यचाः)** विश्वं विचति व्याप्नोति स विद्युद्रूपोऽग्निः **(तस्य)** **(रथप्रोतः)** रथो रमणीयस्तेजःसमूहः प्रोतो व्यापितो येन सः **(च)** **(असमरथः)** अविद्यमानः समो रथो यस्य सः **(च)** **(सेनानीग्रामण्यौ)** एताविव **(प्रम्लोचन्ती)** प्रकृष्टतया सर्वानोषध्यादिपदार्थान् म्लोचयन्ती **(च)** **(अनुम्लोचन्ती)** अनुम्लोचयन्ती दीप्तिः **(च)** **(अप्सरसौ)** **(व्याघ्राः)** सिंहाः **(हेतिः)** **(सर्पाः)** ये सर्पन्ति तेऽहयः **(प्रहेतिः)** **(तेभ्यः)** **(नमः)** **(अस्तु)** **(ते)** **(नः)** **(अवन्तु)** **(ते)** **(नः)** **(मृडयन्तु)** **(ते)** **(यम्)** **(द्विष्मः)** **(यः)** **(च)** **(नः)** **(द्वेष्टि)** **(तम्)** **(एषाम्)** **(जम्भे)** **(दध्मः)**। **[अयं मन्त्रः** शत०८.६.१.१८ व्याख्यातः]॥१७॥

अन्वयः-हे मनुष्या! यथाऽयं पश्चाद् विश्वव्यचा अस्ति तस्य सेनानीग्रामण्याविव रथप्रोतश्चासमरथश्च प्रम्लोचन्ती चानुम्लोचन्ती चाप्सरसौ स्तः। यथा हेतिः प्रहेतिर्व्याघ्राः सर्पाश्च सन्ति तेभ्यो नमोऽस्तु। य एतेभ्यो रक्षकास्ते नोऽवन्तु, ते नो मृडयन्तु, ते वयं यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि यमेषां जम्भे दध्मस्तं तेऽपि धरन्तु॥१७॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। इदं वर्षर्तोः शिष्टं व्याख्यानम्, अस्मिन् युक्ताहारविहारौ मनुष्यैः कार्य्यौ॥१७॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे **(अयम्)** यह **(पश्चात्)** पीछे से **(विश्वव्यचाः)** विश्व में व्याप्त बिजुलीरूप अग्नि है, **(तस्य)** उस के **(सेनानीग्रामण्यौ)** सेनापति और ग्रामपति के समान **(रथप्रोतः)** रमणीय तेजःस्वरूप में व्याप्त **(च)** और **(असमरथः)** जिस के समान दूसरा रथ न हो, वह **(च)** ये दोनों **(प्रम्लोचन्ती)** अच्छे प्रकार सब ओषधि आदि पदार्थों को शुष्क कराने वाली **(च)** तथा **(अनुम्लोचन्ती)** पश्चात् ज्ञान का हेतु प्रकाश **(च)** ये दोनों **(अप्सरसौ)** क्रियाकारक आकाशस्थ किरण हैं, जैसे **(हेतिः)** साधारण वज्र के तुल्य तथा **(प्रहेतिः)** उत्तम वज्र के समान **(व्याघ्राः)** सिंहों के तथा **(सर्पाः)** सर्पों के समान प्राणियों को दुःखदायी जीव हैं, **(तेभ्यः)** उन के लिये **(नमः)** वज्रप्रहार **(अस्तु)** हो और जो इन पूर्वोक्तों से रक्षा करें **(ते)** वे **(नः)** हमारे **(अवन्तु)** रक्षक हों, **(ते)** वे **(नः)** हम को **(मृडयन्तु)** सुखी करें तथा **(ते)** वे हम लोग **(यम्)** जिस से **(द्विष्मः)** द्वेष करें **(च)** और **(यः)** जो दुष्ट **(नः)** हम से **(द्वेष्टि)** द्वेष करे, जिस को हम **(एषाम्)** इन सिंहादि के **(जम्भे)** मुख में **(दध्मः)** धरें, **(तम्)** उस को वे रक्षक लोग भी सिंहादि के मुख में धरें॥१७॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। यह वर्षा ऋतु का शेष व्याख्यान है। इस में मनुष्यों को नियमपूर्वक आहार-विहार करना चाहिये॥१७॥

अयमुत्तरादित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। शरदृतुर्देवता। भुरिगतिधृतिश्छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तादृशमेव विषयमाह॥

फिर भी वैसा ही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अयमुत्तरात् संयद्वसुस्तस्य ताक्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च सेनानीग्रामण्यौ। विश्वाची च घृताची चाप्सरसावापो हेतिर्वातः प्रहेतिस्तेभ्यो नमोऽअस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः॥ १८॥

अयम्। उत्तरात्। संयद्वसुरिति संयत्ऽवसुः। तस्य। ताक्ष्यः। च। अरिष्टनेमिरित्यरिष्टऽनेमिः। च। सेनानीग्रामण्यौ। सेनानीग्रामन्याविति सेनानीग्रामन्यौ। विश्वाची। च। घृताची। च। अप्सरसौ। आपः। हेतिः। वातः। प्रहेतिरिति प्रऽहेतिः। तेभ्यः। नमः। अस्तु। ते। नः। अवन्तु। ते। नः। मृडयन्तु। ते। यम्। द्विष्मः। यः। च। नः। द्वेष्टि। तम्। एषाम्। जम्भे। दध्मः॥ १८॥

पदार्थः-**(अयम्)** **(उत्तरात्)** **(संयद्वसुः)** यज्ञस्य संगतिकरणः **(तस्य)** **(ताक्ष्यः)** तीक्ष्णतेजःप्रापक आश्विनः **(च)** **(अरिष्टनेमिः)** अरिष्टानि दुःखानि दूरे नयति स कार्तिकः **(च)** **(सेनानीग्रामण्यौ)** एतद्वद्वर्त्तमानौ **(विश्वाची)** या विश्वं सर्वं जगदञ्चति व्याप्नोति सा **(च)** **(घृताची)** घृतमाज्यमुदकं वाञ्चति प्राप्नोति सा

दीप्तिः **(च)** **(अप्सरसौ)** अप्सु प्राणेषु सरन्त्यौ गती **(आपः)** **(हेतिः)** वृद्धिः **(वातः)** प्रियः पवनः **(प्रहेतिः)** प्रकर्षेण वर्द्धकः **(तेभ्यः)** **(नमः)** **(अस्तु)** **(ते)** **(नः)** **(अवन्तु)** **(ते)** **(नः)** **(मृडयन्तु)** **(ते)** **(यम्)** **(द्विष्मः)** **(यः)** **(च)** **(नः)** **(द्वेष्टि)** **(तम्)** **(एषाम्)** **(जम्भे)** **(दध्मः)**। **[अयं मन्त्रः** शत०८.६.१.१९ व्याख्यातः]॥१८॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथायमुत्तरात् संयद्वसुरिव शरदृतुरस्ति तस्य सेनानीग्रामण्याविव तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च विश्वाची च घृताची चाप्सरसौ स्तः यत्राऽऽपो हेतिरिव वर्तिका वातः प्रहेतिरिवानन्दप्रदो भवति तं ये युक्त्या सेवन्ते तेभ्यो नमोऽस्तु। ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते वयं यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषामब्वातानां जम्भे दध्मस्तथा यूयं वर्तध्वम्॥१८॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। इदं शरदृतोः शिष्टं व्याख्यानम्। अस्मिन्नपि मनुष्यैर्युक्त्या प्रवर्त्तितव्यम्॥१८॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे **(अयम्)** यह **(उत्तरात्)** उत्तर दिशा से **(संयद्वसुः)** यज्ञ को संगत करने हारे के तुल्य शरद् ऋतु है, **(तस्य)** उस के **(सेनानीग्रामण्यौ)** सेनापति और ग्रामाध्यक्ष के समान **(तार्क्ष्यः)** तीक्ष्ण तेज को प्राप्त कराने वाला आश्विन **(च)** और **(अरिष्टनेमिः)** दुःखों को दूर करने वाला कार्त्तिक **(च)** ये दोनों **(विश्वाची)** सब जगत् में व्यापक **(च)** और **(घृताची)** घी वा जल को प्राप्त कराने वाली दीप्ति **(च)** ये दोनों **(अप्सरसौ)** प्राणों की गति हैं, जहां **(आपः)** जल **(हेतिः)** वृद्धि के तुल्य वर्त्तने और **(वातः)** प्रिय पवन **(प्रहेतिः)** अच्छे प्रकार बढ़ाने हारे के समान आनन्ददायक होता है, उस वायु को जो लोग युक्ति के साथ सेवन करते हैं, **(तेभ्यः)** उनके लिये **(नमः)** नमस्कार **(अस्तु)** हो, **(ते)** वे **(नः)** हमारी **(अवन्तु)** रक्षा करें, **(ते)** वे **(नः)** हम को **(मृडयन्तु)** सुखी करें, **(ते)** वे हम **(यम्)** जिससे **(द्विष्मः)** द्वेष करें **(च)** और **(यः)** जो **(नः)** हम से **(द्वेष्टि)** द्वेष करे, **(तम्)** उस को **(एषाम्)** इन जल वायुओं के **(जम्भे)** दुःखदायी गुणरूप मुख में **(दध्मः)** धरें, वैसे तुम लोग भी वर्तो॥१८॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। यह शरद् ऋतु का शेष व्याख्यान है। इस में भी मनुष्यों को चाहिये कि युक्ति के साथ कार्यों में प्रवृत्त हों॥१८॥

अयमुपरीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। हेमन्तर्त्तुर्देवता। निचृत्कृतिश्छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तादृशमेव विषयमाह॥

फिर भी वैसा ही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अयमुपर्यर्वाग्वसुस्तस्य सेनजिच्च सुषेणश्च सेनानीग्रामण्यौ। उर्वशी च पूर्वचित्तिश्चाप्सरसाववस्फूर्जन् हेतिर्विद्युत्प्रहेतिस्तेभ्यो नमोऽअस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः॥ १९॥

अयम्। उपरि। अर्वाग्वसुरित्यर्वाक्ऽवसुः। तस्य। सेनजिदिति सेनऽजित्। च। सुषेणः। सुसेन इति सुऽसेनः। च। सेनानीग्रामण्यौ। सेनानीग्रामन्याविति सेनानीग्रामन्यौ। उर्वशी। च। पूर्वचित्तिरिति पूर्वऽचित्तिः। च। अप्सरसौ। अवस्फूर्जन्नित्यवऽस्फूर्जन्। हेतिः। विद्युदिति विऽद्युत्। प्रहेतिरिति प्रऽहेतिः। तेभ्यः। नमः। अस्तु। ते। नः। अवन्तु। ते। नः। मृडयन्तु। ते। यम्। द्विष्मः। यः। च। नः। द्वेष्टि। तम्। एषाम्। जम्भे। दध्मः॥१९॥

पदार्थः-(**अयम्**) (**उपरि**) वर्त्तमानः (**अर्वाग्वसुः**) अर्वाग्वृष्टेः पश्चाद्वसु धनं यस्मात् स हेमन्तर्तुः (**तस्य**) (**सेनजित्**) यः सेनया जयति सः। अत्र **ङ्यापोः संज्ञाछन्दसोर्बहुलमि**ति ह्रस्वत्वं (**च**) (**सुषेणः**) शोभना सेना यस्य सः (**च**) (**सेनानीग्रामण्यौ**) एतद्वद्वर्त्तमानौ मार्गशीर्षपौषौ मासौ (**उर्वशी**) उरु बहु अश्नाति यया सा दीप्तिः (**च**) (**पूर्वचित्तिः**) पूर्वा प्रथमा चित्तिः संज्ञानं यस्याः सा (**च**) (**अप्सरसौ**) (**अवस्फूर्जन्**) अर्वाचीनं घोषं कुर्वन् (**हेतिः**) वज्रघोषः (**विद्युत्**) (**प्रहेतिः**) प्रकृष्टो वज्र इव (**तेभ्यः**) (**नमः**) (**अस्तु**) (**ते**) (**नः**) (**अवन्तु**) (**ते**) (**नः**) (**मृडयन्तु**) (**ते**) (**यम्**) (**द्विष्मः**) (**यः**) (**च**) (**नः**) (**द्वेष्टि**) (**तम्**) (**एषाम्**) (**जम्भे**) (**दध्मः**)॥१९।

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथाऽयमुपरि वर्त्तमानोऽर्वाग्वसुर्हेमन्तर्तुरस्ति, तस्य सेनजिच्च सुषेणश्च सेनानीग्रामण्याविव मार्गशीर्षपौषौ मासावुर्वशी च पूर्वचित्तिश्चाप्सरसाववस्फूर्जन् हेतिर्विद्युत्प्रहेतिश्चास्ति तेभ्यो नमोऽन्नमस्तु। ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते वयं यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मस्तं यूयमपि तथा विदधत॥१९॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। इयमपि हेमन्तर्त्तोः शिष्टा व्याख्या। इममृतुं मनुष्या युक्त्या सेवित्वा बलिष्ठा भवन्तु॥१९॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे (**अयम्**) यह (**उपरि**) ऊपर वर्त्तमान (**अर्वाग्वसुः**) वृष्टि के पश्चात् धन का हेतु है, (**तस्य**) उस के (**सेनजित्**) सेना से जीतने वाला (**च**) और (**सुषेणः**) सुन्दर सेनापति (**च**) ये दोनों (**सेनानीग्रामण्यौ**) सेनापति और ग्रामाध्यक्ष के तुल्य वर्त्तमान अगहन और पौष महीने (**उर्वशी**) बहुत खाने का हेतु आन्तर्य दीप्ति (**च**) और (**पूर्वचित्तिः**) आदि ज्ञान का हेतु (**च**) ये दोनों (**अप्सरसौ**) प्राणों में रहने वाली (**अवस्फूर्जन्**) भयंकर घोष करते हुए (**हेतिः**) वज्र के तुल्य (**विद्युत्**) बिजुली के चलाने हारे और (**प्रहेतिः**) उत्तम वज्र के समान रक्षक प्राणी हैं, (**तेभ्यः**) उन के लिये (**नमः**) अन्नादि पदार्थ (**अस्तु**) मिलें। (**ते**) वे (**नः**) हम लोगों की (**अवन्तु**) रक्षा करें, (**ते**) वे (**नः**) हम को (**मृडयन्तु**) सुखी करें, (**ते**) वे हम लोग (**यम्**) जिस दुष्ट से (**द्विष्मः**) द्वेष करें, (**च**) और (**यः**) जो (**नः**) हम से (**द्वेष्टि**) द्वेष करे, (**तम्**) उस को हम लोग (**एषाम्**) इन हिंसक प्राणियों के (**जम्भे**) मुख में (**दध्मः**) धरें, वैसे तुम लोग भी उस को धरो॥१९॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। यह भी हेमन्त ऋतु की शेष व्याख्या है। मनुष्यों को चाहिये कि इस ऋतु का युक्ति से सेवन करके बलवान् हों॥१९॥

अग्निर्मूर्द्धेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

कथं जनैर्बलं वर्धनीयमित्याह॥

मनुष्यों को किस प्रकार बल बढ़ाना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अ॒ग्निर्मू॒र्द्धा दि॒वः क॒कुत्पतिः॑ पृथि॒व्याऽअ॒यम्।

अ॒पाᳬं रेता॑ᳬंसि जिन्वति॥ २०॥

अ॒ग्निः। मू॒र्द्धा। दि॒वः। क॒कुत्ऽपतिः॑। पृ॒थि॒व्याः। अ॒यम्। अ॒पाम्। रेता॑ᳬंसि। जि॒न्व॒ति॒॥ २०॥

पदार्थः-(**अग्निः**) प्रसिद्धः पावकः (**मूर्द्धा**) शिर इव सूर्यरूपेण वर्त्तमानः (**दिवः**) प्रकाशस्य (**ककुत्पतिः**) दिशां पालकः (**पृथिव्याः**) भूमेश्च (**अयम्**) (**अपाम्**) प्राणानाम् (**रेतांसि**) वीर्य्याणि (**जिन्वति**) प्रीणाति॥ २०॥

अन्वयः-यथा हेमन्तर्त्तावयमग्निर्दिवः पृथिव्याश्च मध्ये मूर्द्धा ककुत्पतिः सन्नपां रेतांसि जिन्वति, तथैव मनुष्यैर्बलिष्ठैर्भवितव्यम्॥ २०॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैर्युक्त्या जाठराग्निं वर्धयित्वा संयमेनाहारविहारौ कृत्वा सदा बलं वर्धनीयम्॥ २०॥

पदार्थः-जैसे हेमन्त ऋतु में (**अयम्**) यह प्रसिद्ध (**अग्निः**) अग्नि (**दिवः**) प्रकाश और (**पृथिव्याः**) भूमि के बीच (**मूर्द्धा**) शिर के तुल्य सूर्य्यरूप से वर्त्तमान (**ककुत्पतिः**) दिशाओं का रक्षक हो के (**अपाम्**) प्राणों के (**रेतांसि**) पराक्रमों को (**जिन्वति**) पूर्णता से तृप्त करता है, वैसे ही मनुष्यों को बलवान् होना चाहिये॥ २०॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि युक्ति से जाठराग्नि को बढ़ा संयम से आहार-विहार करके नित्य बल बढ़ाते रहें॥ २०॥

अयमग्निरित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनर्मनुष्यः किं कुर्य्यादित्याह॥

फिर मनुष्य क्या करे, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अ॒यम॒ग्निः स॑ह॒स्रिणो॒ वाज॑स्य श॒तिन॒स्पतिः॑।

मू॒र्धा क॒वी र॑यी॒णाम्॥ २१॥

अ॒यम्। अ॒ग्निः। स॒ह॒स्रिणः॑। वाज॑स्य। श॒तिनः॑। पतिः॑। मू॒र्द्धा। क॒विः। र॒यी॒णाम्॥ २१॥

पदार्थः-(**अयम्**) (**अग्निः**) हेमन्ते वर्त्तमानः (**सहस्रिणः**) प्रशस्तासंख्यपदार्थयुक्तस्य (**वाजस्य**) अन्नस्य (**शतिनः**) प्रशस्तैर्गुणैः सह शतधा वर्त्तमानस्य (**पतिः**) पालकः (**मूर्द्धा**) उत्तमाङ्गवद्वर्त्तमानः (**कविः**) क्रान्तदर्शनः (**रयीणाम्**) धनानाम्॥ २१॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथाऽयमग्निः सहस्रिणः शतिनो वाजस्य रयीणां च पतिर्मूर्द्धा कविरस्ति, तथैव यूयं भवत॥२१॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा विद्यायुक्तिभ्यां सेवितोऽग्निः पुष्कले धनधान्ये प्रयच्छति, तथैव सेवितः पुरुषार्थो मनुष्यान् श्रीमतः सम्पादयति॥२१॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! **(अयम्)** यह **(अग्निः)** हेमन्त ऋतु में वर्त्तमान **(सहस्रिणः)** प्रशस्त असंख्य पदार्थों से युक्त **(शतिनः)** प्रशंसित गुणों के सहित अनेक प्रकार वर्त्तमान **(वाजस्य)** अन्न तथा **(रयीणाम्)** धनों का **(पतिः)** रक्षक **(मूर्द्धा)** उत्तम अङ्ग के तुल्य **(कविः)** समर्थ है, वैसे ही तुम लोग भी हो॥२१॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विद्या और युक्ति से सेवन किया अग्नि बहुत अन्न धन प्राप्त कराता है, वैसे ही सेवन किया पुरुषार्थ मनुष्यों को ऐश्वर्यवान् कर देता है॥२१॥

त्वामग्न इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनः स कीदृशः स्यादित्याह॥

फिर वह कैसा हो, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

त्वाम॑ग्ने॒ पुष्क॑रा॒दध्यथ॑र्वा॒ निर॑मन्थत।

मू॒र्ध्नो विश्व॑स्य वा॒घत॑ः॥२२॥

त्वाम्। अ॒ग्ने॒। पुष्क॑रात्। अधि॑। अथ॑र्वा। निः। अ॒म॒न्थ॒त॒। मू॒र्ध्नः। विश्व॑स्य। वा॒घत॑ः॥२२॥

पदार्थः-**(त्वाम्)** **(अग्ने)** विद्वन्! **(पुष्करात्)** अन्तरिक्षात्। **पुष्करमित्यन्तरिक्षनाम०॥** (निघं०१।३) **(अधि)** **(अथर्वा)** अहिंसकः **(निः)** नितराम् **(अमन्थत)** मथित्वा गृह्णीयात् **(मूर्ध्नः)** शिरोवद्वर्त्तमानस्य **(विश्वस्य)** समग्रस्य जगतो मध्ये **(वाघतः)** सुशिक्षिताभिर्वाग्भिरविद्या हन्यते येन स मेधावी। **वाघत इति मेधाविनामसु पठितम्॥** (निघं० ३।२५)॥२२॥

अन्वयः-हे अग्ने! यथाऽथर्वा वाघतो विद्वान् पुष्करादधि मूर्ध्नो विश्वस्य च मध्येऽग्निं विद्युतं निरमन्थत, तथैव त्वां बोधयामि॥२२॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैर्विद्वदनुकरणेनाकाशात् पृथिव्याश्च विद्युतं संगृह्याश्चर्य्याणि कर्माणि साधनीयानि॥२२॥

पदार्थः-हे **(अग्ने)** विद्वन्! जैसे **(अथर्वा)** रक्षक **(वाघतः)** अच्छी शिक्षित वाणी से अविद्या का नाश करने हारा बुद्धिमान् विद्वान् पुरुष **(पुष्करात्)** अन्तरिक्ष के **(अधि)** बीच तथा **(मूर्ध्नः)** शिर के तुल्य वर्त्तमान **(विश्वस्य)** सम्पूर्ण जगत् के बीच अग्नि को **(निरमन्थत)** निरन्तर मन्थन करके ग्रहण करे, वैसे ही **(त्वाम्)** तुझ को मैं बोध कराता हूं॥२२॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों के समान आकाश तथा पृथिवी के सकाश से बिजुली का ग्रहण कर आश्चर्य रूप कर्मों को सिद्ध करें॥२२॥

भुव इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनः स कीदृशः स्यादित्याह॥

फिर वह कैसा हो, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

भुवो॑ य॒ज्ञस्य॒ रज॑सश्च ने॒ता यत्रा॑ नि॒युद्भिः॒ सच॑से शि॒वाभिः॑।

दि॒वि मू॒र्धानं॑ दधिषे स्व॒र्षां जि॒ह्वाम॑ग्ने चकृषे हव्य॒वाह॑म्॥२३॥

भुव॑ः। य॒ज्ञस्य॑। रज॑सः। च॒। ने॒ता। यत्र॑। नि॒युद्भि॒रिति॑ नि॒युत्ऽभिः॑। सच॑से। शि॒वाभिः॑। दि॒वि। मू॒र्धान॑म्। द॒धि॒षे॒। स्व॒र्षाम्। स्व॒ःसामिति॑ स्व॒ःऽसाम्। जि॒ह्वाम्। अ॒ग्ने॒। च॒कृ॒षे॒। ह॒व्य॒वाह॒मिति॑ हव्य॒ऽवाह॑म्॥२३॥

पदार्थः-(**भुवः**) भवतीति तस्य (**यज्ञस्य**) संगतस्य कार्यसाधकस्य व्यवहारस्य (**रजसः**) लोकसमूहस्य (**च**) (**नेता**) नयनकर्त्ता (**यत्र**) अत्र **ऋचितुनु०** इति दीर्घः (**नियुद्भिः**) मिश्रिकामिश्रिकाभिः क्रियाभिः (**सचसे**) युनक्षि (**शिवाभिः**) मंगलकारिणीभिः (**दिवि**) द्योतनात्मके स्वस्वरूपे (**मूर्द्धानम्**) मूर्द्धेव वर्त्तमानं सूर्य्यम् (**दधिषे**) धरसि (**स्वर्षाम्**) स्वः सुखं सनोति ददाति यया ताम् (**जिह्वाम्**) वाचम्। **जिह्वेति वाङ्ना०॥** (निघं०१।११) (**अग्ने**) विद्वन् (**चकृषे**) करोति (**हव्यवाहम्**) यो हव्यान् दातुमादातुं च योग्यान् रसान् वहति तम्॥२३॥

अन्वयः-हे अग्ने! यथाऽयमग्निर्नियुद्भिः शिवाभिः सह वर्त्तमानः भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता सन् सचते यत्र दिवि मूर्द्धानं दधाति हव्यवाहं स्वर्षां जिह्वां चकृषे तथा तत्र त्वं दिवि सचसे विद्यां दधिषे॥२३॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथाग्निरीश्वरेण नियुक्तः सन् सर्वस्य जगतः सुखकारी वर्त्तते, तथैव विद्याग्राहका अध्यापकाः सर्वेषां जनानां सुखकारिणः सन्तीति ज्ञेयम्॥२३॥

पदार्थः-हे (**अग्ने**) विद्वन्! जैसे यह प्रत्यक्ष अग्नि (**नियुद्भिः**) संयोग-विभाग कराने हारी क्रिया तथा (**शिवाभिः**) मङ्गलकारिणी दीप्तियों के साथ वर्त्तमान (**भुवः**) प्रगट हुए (**यज्ञस्य**) कार्यों के साधक संगत व्यवहार (**च**) और (**रजसः**) लोकसमूह को (**नेता**) आकर्षण करता हुआ सम्बन्ध कराता है और (**यत्र**) जिस (**दिवि**) प्रकाशमान अपने स्वरूप में (**मूर्द्धानम्**) उत्तमाङ्ग के तुल्य वर्त्तमान सूर्य को धारण करता तथा (**हव्यवाहम्**) ग्रहण करने तथा देने योग्य रसों को प्राप्त कराने वाली (**स्वर्षाम्**) सुखदायक (**जिह्वाम्**) वाणी को (**चकृषे**) प्रवृत्त करता है, वैसे तू शुभ गुणों के साथ (**सचसे**) युक्त होता और सब विद्याओं को (**दधिषे**) धारण कराता है॥२३॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे ईश्वर ने नियुक्त किया हुआ अग्नि सब जगत् को सुखकारी होता है, वैसे ही विद्या के ग्राहक अध्यापक लोग सब मनुष्यों को सुखकारी होते हैं, ऐसा सब को जानना चाहिये॥२३॥

अबोधीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनः स कीदृशो भवेदित्याह॥

फिर वह कैसा हो, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम्।
यह्वाऽइव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सिस्रते नाकमच्छ॥२४॥

अबोधि। अग्निः। समिधेति सम्ऽइधा। जनानाम्। प्रति। धेनुमिवेति धेनुम्ऽइव। आयतीमित्याऽयतीम्। उषासम्। उषसमित्युषसम्। यह्वा इवेति यह्वाःऽइव। प्र। वयाम्। उज्जिहाना इत्युत्ऽजिहानाः। प्र। भानवः। सिस्रते। नाकम्। अच्छ॥२४॥

पदार्थः-(**अबोधि**) प्रबुध्यते (**अग्निः**) (**समिधा**) प्रदीपसाधनैः (**जनानाम्**) मनुष्याणाम् (**प्रति**) (**धेनुमिव**) यथा दुग्धदां गां तथा (**आयतीम्**) प्राप्नुवतीम् (**उषासम्**) उषसं प्रभातम्। अत्र **अन्येषामपि** [अ०६.३.१३७] इति दीर्घः (**यह्वा इव**) महान्तो धार्मिका जना इव (**प्र**) (**वयाम्**) व्यापिकां सुखनीतिम् (**उज्जिहानाः**) उत्कृष्टतया प्राप्नुवन्तः (**प्र**) (**भानवः**) किरणाः (**सिस्रते**) प्रापयन्ति। अत्र सृधातोर्लटि शपः श्लुर्व्यत्ययेनात्मनेपदमन्तर्गतो ण्यर्थश्च (**नाकम्**) अविद्यमानदुःखमाकाशम् (**अच्छ**) सम्यक्॥२४॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा समिधायमग्निरबोध्यायतीमुषासं प्रति जनानां धेनुमिवास्ति। यस्य यह्वा इव प्रवयामुज्जिहानाः प्रभानवो नाकमच्छ सिस्रते, तं सुखाय यूयं संप्रयुङ्ग्ध्वम्॥२४॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। यथा दुग्धदात्री धेनुर्गौः संसेविता सती दुग्धादिभिः प्राणिनः सुखयति, यथाऽऽप्ता विद्वांसो विद्यादानेनाविद्यां निवार्य्य मनुष्यानुन्नयन्ति, तथैवायमग्निर्वर्त्तत इति वेद्यम्॥२४॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे (**समिधा**) प्रज्वलित करने के साधनों से यह (**अग्निः**) अग्नि (**अबोधि**) प्रकाशित होता है, (**आयतीम्**) प्राप्त होते हुए (**उषासम्**) प्रभात समय के (**प्रति**) समीप (**जनानाम्**) मनुष्यों की (**धेनुमिव**) दूध देने वाली गौ के समान है। जिस अग्नि के (**यह्वा इव**) महान् धार्मिक जनों के समान (**प्र**) उत्कृष्ट (**वयाम्**) व्यापक सुख की नीति को (**उज्जिहानाः**) अच्छे प्रकार प्राप्त करते हुए (**प्र**) उत्तम (**भानवः**) किरण (**नाकम्**) सुख को (**अच्छ**) अच्छे प्रकार (**सिस्रते**) प्राप्त करते हैं, उस को तुम लोग सुखार्थ संयुक्त करो॥२४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे दुग्ध देने वाली सेवन की हुई गौ दुग्धादि पदार्थों से प्राणियों को सुखी करती है और जैसे आप्त विद्वान् विद्यादान से अविद्या का निवारण कर मनुष्यों की उन्नति करते हैं, वैसे ही यह अग्नि है, ऐसा जानना चाहिये॥ २४॥

अवोचामेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनः स कीदृश इत्याह॥

फिर वह कैसा है, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अवो॑चाम क॒वये॒ मेध्या॑य॒ वचो॑ व॒न्दारु॑ वृष॒भाय॒ वृष्णे॑।

गवि॑ष्ठिरो॒ नम॑सा॒ स्तोम॑म॒ग्नौ दि॒वी॒व रु॒क्मम॑रु॒व्यञ्च॑मश्रेत्॥ २५॥

अवो॑चाम। क॒वये॑। मेध्या॑य। वच॑ः। व॒न्दारु॑। वृ॒ष॒भाय॑। वृष्णे॑। गवि॑ष्ठिरः। गवि॑स्थिर॒ इति॒ गवि॑ऽस्थिरः। नम॑सा। स्तोम॑म्। अ॒ग्नौ। दि॒वी॒वेति॑ दि॒विऽइ॑व। रु॒क्मम्। उ॒रु॒व्यञ्च॒मित्यु॑रु॒ऽव्यञ्च॑म्। अ॒श्रे॒त्॥ २५॥

पदार्थः-(**अवोचाम**) उच्याम (**कवये**) मेधाविने (**मेध्याय**) सर्वशुभलक्षणसंगताय पवित्राय (**वचः**) वचनम् (**वन्दारु**) प्रशंसनीयम् (**वृषभाय**) बलिष्ठाय (**वृष्णे**) वृष्टिकर्त्रे (**गविष्ठिरः**) गोषु किरणेषु तिष्ठतीति (**नमसा**) अन्नादिना (**स्तोमम्**) स्तुत्यं कार्य्यम् (**अग्नौ**) पावके (**दिवीव**) यथा सूर्य्यप्रकाशे (**रुक्मम्**) आदित्यम् (**उरुव्यञ्चम्**) उरुषु बहुषु विशेषेणाञ्चति तम् (**अश्रेत्**) श्रयेत्। अत्र विकरणस्य लुक्। लङ्प्रयोगश्च॥ २५॥

अन्वयः-वयं यथा गविष्ठिरो दिवीवोरुव्यञ्चं रुक्ममश्रेत्, तथा मेध्याय वृषभाय वृष्णे कवये वन्दारु वचोऽग्नौ नमसा स्तोमं चावोचाम॥ २५॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। विद्वद्भिः सुशीलाय शुद्धधिये विद्यार्थिने परमप्रयत्नेन विद्या देया। यतोऽसौ विद्यामधीत्य सूर्यप्रकाशे घटपटादीन् पश्यन्निव सर्वान् यथावज्ज्ञातुं शक्नुयात्॥ २५॥

पदार्थः-हम लोग जैसे (**गविष्ठिरः**) किरणों में रहने वाली विद्युत् (**दिवीव**) सूर्यप्रकाश के समान (**उरुव्यञ्चम्**) विशेष करके बहुतों में गमनशील (**रुक्मम्**) सूर्य का (**अश्रेत्**) आश्रय करती है, वैसे (**मेध्याय**) सब शुभ लक्षणों से युक्त पवित्र (**वृषभाय**) बली (**वृष्णे**) वर्षा के हेतु (**कवये**) बुद्धिमान् के लिये (**वन्दारु**) प्रशंसा के योग्य (**वचः**) वचन को और (**अग्नौ**) जाठराग्नि में (**नमसा**) अन्न आदि से (**स्तोमम्**) प्रशस्त कार्यों को (**अवोचाम**) कहें॥ २५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। विद्वानों को चाहिये कि सुशील शुद्धबुद्धि विद्यार्थी के लिये परम प्रयत्न से विद्या देवें, जिससे वह विद्या पढ़ के सूर्य के प्रकाश में घट-पटादि को देखते हुए के समान सब को यथावत् जान सके॥ २५॥

अयमिहेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनः स कीदृश इत्याह॥

फिर वह कैसा हो, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठोऽअध्वरेष्वीड्यः।

यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशेविशे॥२६॥

अयम्। इह। प्रथमः। धायि। धातृभिरिति धातृऽभिः। होता। यजिष्ठः। अध्वरेषु। ईड्यः। यम्। अप्नवानः। भृगवः। विरुरुचुरिति विऽरुरुचुः। वनेषु। चित्रम्। विभ्वमिति विऽभ्वम्। विशेविश इति विशेऽविशे॥२६॥

पदार्थः-(**अयम्**) (**इह**) (**प्रथमः**) विस्तीर्णोऽग्निः (**धायि**) ध्रियते (**धातृभिः**) धारकैः (**होता**) आदाता (**यजिष्ठः**) अतिशयेन यष्टा (**अध्वरेषु**) अहिंसनीयव्यवहारेषु (**ईड्यः**) अन्वेषितुं योग्यः (**यम्**) (**अप्नवानः**) रूपवन्तः। **अप्नमिति रूपना०॥** (निघं०३।५) अत्र छान्दसो वर्णलोप इति मतोस्तलोपः (**भृगवः**) परिपक्वविज्ञानाः (**विरुरुचुः**) विरोचन्ते प्रकाशन्ते (**वनेषु**) रश्मिषु (**चित्रम्**) अद्भुतम् (**विभ्वम्**) व्यापकम् (**विशेविशे**) **प्रजायै प्रजायै॥२६॥**

अन्वयः-य इहाध्वरेष्वीड्यो यजिष्ठो होता प्रथमोऽयमग्निर्धातृभिर्धायि यं वनेषु चित्रं विभ्वं विशेविशेऽप्नवानो भृगवो विरुरुचुस्तं सर्वे मनुष्या अङ्गीकुर्य्युः॥२६॥

भावार्थः-विद्वांसोऽग्निविद्यां धृत्वाऽन्येभ्यः प्रदद्युः॥२६॥

पदार्थः-जो (**इह**) इस जगत् में (**अध्वरेषु**) रक्षा के योग्य व्यवहारों में (**ईड्यः**) खोजने योग्य (**यजिष्ठः**) अतिशय करके यज्ञ का साधक (**होता**) घृतादि का ग्रहणकर्त्ता (**प्रथमः**) सर्वत्र विस्तृत (**अयम्**) यह प्रत्यक्ष अग्नि (**धातृभिः**) धारणशील पुरुषों ने (**धायि**) धारण किया है, (**यम्**) जिस को (**वनेषु**) किरणों में (**चित्रम्**) आश्चर्यरूप से (**विभ्वम्**) व्यापक अग्नि को (**विशेविशे**) समस्त प्रजा के लिये (**अप्नवानः**) रूपवान् (**भृगवः**) पूर्णज्ञानी (**विरुरुचुः**) विशेष करके प्रकाशित करते हैं, उस अग्नि को सब मनुष्य स्वीकार करें॥२६॥

भावार्थः-विद्वान् लोग अग्निविद्या को आप धारके दूसरों को सिखावें॥२६॥

जनस्येत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनः स कीदृश इत्याह॥

फिर वह कैसा हो, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

जनस्य गोपाऽअजनिष्ट जागृविरग्निः सुदक्षः सुविताय नव्यसे।

घृतप्रतीको बृहता दिविस्पृशा द्युमद्विभाति भरतेभ्यः शुचिः॥२७॥

जनस्य। गोपाः। अजनिष्ट। जागृविः। अग्निः। सुदक्ष इति सुऽदक्षः। सुवितायं। नव्यसे। घृतप्रतीक इति घृतऽप्रतीकः। बृहता। दिविस्पृशेति दिविऽस्पृशा। द्युमदिति द्युऽमत्। वि। भाति। भरतेभ्यः। शुचिः॥२७॥

पदार्थः-(**जनस्य**) जातस्य (**गोपाः**) रक्षकः (**अजनिष्ट**) जातः (**जागृविः**) जागरूकः (**अग्निः**) विद्युत् (**सुदक्षः**) सुष्ठुबलः (**सुविताय**) उत्पादनीयायैश्वर्य्याय (**नव्यसे**) अतिशयेन नवीनाय। अत्र छान्दसो वर्णलोपो वेति ईलोपः (**घृतप्रतीकः**) प्रतीतिकरं जलमाज्यं वा यस्य सः (**बृहता**) महता (**दिविस्पृशा**) दिवि प्रकाशे स्पृशति येन तेन (**द्युमत्**) द्यौः प्रकाशोऽस्त्यस्मिन् तद्वत् (**वि**) (**भाति**) (**भरतेभ्यः**) आदित्येभ्यः। **भरत आदित्यः॥** (निघं०८।१३) (**शुचिः**) पवित्रः॥२७॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यो जनस्य गोपा जागृविः सुदक्षो घृतप्रतीकः शुचिरग्निर्नव्यसे सुवितायाऽजनिष्ट, बृहता दिविस्पृशा भरतेभ्यो द्युमद्विभाति, तं यूयं विजानीत॥२७॥

भावार्थः-मनुष्यैर्यदैश्वर्यप्राप्तेरसाधारणं निमित्तं सृष्टिस्थानां सूर्याणां कारणं विद्युत्तेजस्तद्विज्ञायोपयोक्तव्यम्॥२७॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो (**जनस्य**) उत्पन्न हुए संसार का (**गोपाः**) रक्षक (**जागृविः**) जानने रूप स्वभाव वाला (**सुदक्षः**) सुन्दर बल का हेतु (**घृतप्रतीकः**) घृत से बढ़ने हारा (**शुचिः**) पवित्र (**अग्निः**) बिजुली (**नव्यसे**) अत्यन्त नवीन (**सुविताय**) उत्पन्न करने योग्य ऐश्वर्य के लिये (**अजनिष्ट**) प्रकट हुआ है और (**बृहता**) बड़े (**दिविस्पृशा**) प्रकाश में स्पर्श से (**भरतेभ्यः**) सूर्यों से (**द्युमत्**) प्रकाशयुक्त हुआ (**विभाति**) शोभित होता है, उस को तुम लोग जानो॥२७॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि जो ऐश्वर्य्यप्राप्ति का विशेष कारण सृष्टि के सूर्यों का निमित्त बिजुली रूप तेज है, उसको जान के उपकार लिया करें॥२७॥

त्वामग्न इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। विराडार्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनः स कीदृश इत्याह॥

फिर वह कैसा हो, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

त्वाम॑ग्नेऽअङ्गि॑रसो गुहा॑ हि॒तमन्व॑विन्दच्छिश्रिया॒णं वने॑वने।
स जा॑यसे म॒थ्यमा॑नः सहो॑ म॒हत् त्वामा॑हुः सह॑सस्पु॒त्रम॑ङ्गिरः॥२८॥

त्वाम्। अ॒ग्ने॒। अङ्गि॑रसः। गुहा॑। हि॒तम्। अनु॑। अ॒वि॒न्द॒न्। शि॒श्रि॒या॒णम्। वने॑वन॒ इति॒ वने॑ऽवने। सः। जा॒य॒से॒। म॒थ्यमा॑नः। सहः॑। म॒हत्। त्वाम्। आ॒हुः॒। सह॑सः। पु॒त्रम्। अ॒ङ्गि॒रः॒॥२८॥

पदार्थः-(**त्वाम्**) (**अग्ने**) विद्वन्! (**अङ्गिरसः**) विद्वांसः (**गुहा**) गुहायां बुद्धौ। अत्र **सुपां सुलुग्०** [अ०७.१.३९] इति ङेर्लुक् (**हितम्**) हितकारिणम् (**अनु**) (**अविन्दन्**) प्राप्नुयुः (**शिश्रियाणम्**) श्रयन्तम् (**वनेवने**) रश्मौ रश्मौ पदार्थे पदार्थे वा (**सः**) (**जायसे**) (**मथ्यमानः**) संघृष्यमाणः (**सहः**) बलम् (**महत्**) (**त्वाम्**) तम् (**आहुः**) कथयन्ति (**सहसः**) बलवतो वायोः (**पुत्रम्**) उत्पन्नम् (**अङ्गिरः**) प्राणवत् प्रिय॥२८॥

अन्वयः-हेऽङ्गिरोऽग्ने! त्वं स मथ्यमानोऽग्निरिव विद्यया जायसे, यथा महत्सहो युक्तं सहसस्पुत्रं वनेवने शिश्रियाणं गुहा हितं त्वामाहुरङ्गिरसोऽन्वविन्दंस्तथा त्वामहं बोधयामि॥२८॥

भावार्थः-द्विविधोऽग्निर्मानसो बाह्यश्चास्ति तयोराभ्यन्तरं युक्ताभ्यामाहारविहाराभ्यां बाह्यं मन्थनादिभ्यः सर्वे विद्वांसः सेवन्ताम्। तथेतरे भजन्तु॥२८॥

पदार्थः-हे **(अङ्गिरः)** प्राणवत्प्रिय **(अग्ने)** विद्वन्! जैसे **(सः)** वह **(मथ्यमानः)** मथन किया हुआ अग्नि प्रसिद्ध होता है, वैसे तू विद्या से **(जायसे)** प्रकट होता है, जिस को **(महत्)** बड़े **(सहः)** बलयुक्त **(सहसः)** बलवान् वायु से **(पुत्रम्)** उत्पन्न हुए पुत्र के तुल्य **(वनेवने)** किरण-किरण वा पदार्थ-पदार्थ में **(शिश्रियाणम्)** आश्रित **(गुहा)** बुद्धि में **(हितम्)** स्थित हितकारी **(त्वाम्)** उस अग्नि को **(आहुः)** कहते हैं, **(अङ्गिरसः)** विद्वान् लोग **(अन्वविन्दन्)** प्राप्त होते हैं, उसका बोध **(त्वाम्)** तुझे कराता हूँ॥२८॥

भावार्थः-अग्नि दो प्रकार का होता है-एक मानस और दूसरा बाह्य। इस में आभ्यन्तर को युक्त आहार-विहारों से और बाह्य को मन्थनादि से सब विद्वान् सेवन करें, वैसे इतर जन भी सेवन किया करें॥२८॥

सखाय इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

मनुष्याः कीदृशा भूत्वाग्निं विजानीयुरित्याह॥

मनुष्य लोग कैसे होके अग्नि को जानें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

सखा॑यः॒ सं वः॑ स॒म्यञ्च॒मिषं॒स्तोमं॑ चा॒ग्नये॑।

वर्षि॑ष्ठाय क्षिती॒नामू॒र्जो नप्त्रे॒ सह॑स्वते॥२९॥

सखा॑यः। सम्। वः॒। स॒म्यञ्च॑म्। इष॑म्। स्तोम॑म्। च॒। अ॒ग्नये॑। वर्षि॑ष्ठाय। क्षि॒ती॒नाम्। ऊ॒र्जः। नप्त्रे॑। सह॑स्वते॥२९॥

पदार्थः-**(सखायः)** सुहृदः **(सम्)** **(वः)** युष्माकम् **(सम्यञ्चम्)** यः समीचीनमञ्चति तम् **(इषम्)** अन्नम् **(स्तोमम्)** स्तुतिसमूहम् **(च)** **(अग्नये)** पावकाय **(वर्षिष्ठाय)** अतिवृद्धाय **(क्षितीनाम्)** मनुष्याणाम् **(ऊर्जः)** बलस्य **(नप्त्रे)** पौत्र इव वर्त्तमानाय **(सहस्वते)** बलयुक्ताय॥२९॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा विद्वांस सखायः सन्तः क्षितीनां वो युष्माकमूर्जो नप्त्रे सहस्वते वर्षिष्ठायाग्नये यं सम्यञ्चमिषं स्तोमं च समाहुस्तथा यूयमनुतिष्ठत॥२९॥

भावार्थः-अत्र पूर्वमन्त्रादाहुरित्यनुवर्त्तते। शिल्पिनः सुहृदो भूत्वा विद्वदुक्तानुकूलतया पदार्थविद्यामनुतिष्ठेयुः। या विद्युत् कारणाख्याद् बलाज्जायते सा पुत्रवत्, या सूर्य्यादेः सकाशादुत्पद्यते सा पौत्रवदस्तीति वेद्यम्॥२९॥

पदार्थः-हे **(सखायः)** मित्रो! **(क्षितीनाम्)** मननशील मनुष्य **(वः)** तुम्हारे **(ऊर्जः)** बल के **(नप्त्रे)** पौत्र के तुल्य वर्त्तमान **(सहस्वते)** बहुत बल वाले **(वर्षिष्ठाय)** अत्यन्त बड़े **(अग्नये)** अग्नि के लिये जिस **(सम्यञ्चम्)** सुन्दर सत्कार के हेतु **(इषम्)** अन्न को **(च)** और **(स्तोमम्)** स्तुतियों को **(समाहुः)** अच्छे प्रकार कहते हैं, वैसे तुम लोग भी उस का अनुष्ठान करो॥२९॥

भावार्थः-यहां पूर्व मन्त्र से **(आहुः)** इस पद की अनुवृत्ति आती है। कारीगरों को चाहिये कि सब के मित्र होकर विद्वानों के कथनानुसार पदार्थविद्या का अनुष्ठान करें। जो बिजुली कारणरूप बल से उत्पन्न होती है, वह पुत्र के तुल्य है, और जो सूर्य्यादि के सकाश से उत्पन्न होती है सो पौत्र के समान है, ऐसा जानना चाहिये॥२९॥

संसमिदित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

वैश्येन किं कार्यमित्युपदिश्यते॥

वैश्य को क्या करना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

सꣳसमिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य्यऽआ।

इडस्पदे समिध्यसे स नो वसून्याभर॥३०॥

सꣳसमिति सम्ऽसम्। इत्। युवसे। वृषन्। अग्ने। विश्वानि। अर्य्यः। आ। इडः। पदे। सम्। इध्यसे। सः। नः। वसूनि। आ। भर॥३०॥

पदार्थः-**(संसम्)** सम्यक् **(इत्)** एव **(युवसे)** मिश्रय। अत्र विकरणात्मनेपदव्यत्ययौ **(वृषन्)** बलवन् **(अग्ने)** प्रकाशमान **(विश्वानि)** अखिलानि **(अर्यः)** वैश्यः। **अर्यः स्वामिवैश्ययोः** [अ०३.१.१०३] इति वैश्यार्थे निपातितः **(आ)** **(इडः)** प्रशंसनीयस्य। **इड इति पदनामसु पठितम्॥** (निघं०५।२) अत्रेडधातोर्बाहुलकादौणादिकः क्विप्, आदेर्ह्रस्वश्च **(पदे)** प्रापणीये **(सम्)** **(इध्यसे)** प्रदीप्यसे **(सः)** **(नः)** अस्मभ्यम् **(वसूनि)** **(आ)** **(भर)** धर॥३०॥

अन्वयः-हे वृषन्नग्ने अर्यस्त्वं संसमायुवसे, इडस्पदे समिध्यसे, स त्वमिदग्निना नो विश्वानि वसून्याभर॥३०॥

भावार्थः-राजभिः संरक्षिता वैश्या अग्न्यादिविद्याभ्यः स्वेभ्यो राजपुरुषेभ्यश्चाखिलानि धनानि संभरेयुः॥३०॥

पदार्थः-हे **(वृषन्)** बलवन् **(अग्ने)** प्रकाशमान **(अर्यः)** वैश्य! जो तू **(संसमायुवसे)** सम्यक् अच्छे प्रकार सम्बन्ध करते हो **(इडः)** प्रशंसा के योग्य **(पदे)** प्राप्ति के योग्य अधिकार में **(समिध्यसे)** सुशोभित होते हो, **(सः)** सो तू **(इत्)** ही अग्नि के योग से **(नः)** हमारे लिये **(विश्वानि)** सब **(वसूनि)** धनों को **(आभर)** अच्छे प्रकार धारण कर॥३०॥

भावार्थः-राजाओं से रक्षा प्राप्त हुए वैश्य लोग अग्न्यादि विद्याओं से अपने और राजपुरुषों के लिये सम्पूर्ण धन धारण करें॥३०॥

त्वामित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

मनुष्यैरग्निना किं साध्यमित्युपदिश्यते॥

मनुष्य लोग अग्नि से क्या सिद्ध करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

त्वां चि॒त्रश्र॑वस्तम॒ हव॑न्ते वि॒क्षु ज॒न्तव॑ः।

शो॒चिष्के॑शं पुरुप्रि॒याग्ने॑ ह॒व्याय॒ वोढ॑वे॥३१॥

त्वाम्। चि॒त्रश्र॑व॒स्त॒मेति॑ चि॒त्रश्र॑वःऽतम। हव॑न्ते। वि॒क्षु। ज॒न्तव॑ः। शो॒चिष्के॑शम्। शो॒चिःके॑श॒मिति॑ शो॒चिःऽके॑शम्। पु॒रु॒प्रि॒येति॑ पुरुऽप्रिय। अग्ने॑। ह॒व्याय॑। वोढ॑वे॥३१॥

पदार्थः-(**त्वाम्**) (**चित्रश्रवस्तम**) चित्राण्यद्भुतानि श्रवांस्यतिशयितान्यन्नानि वा यस्य (**हवन्ते**) स्वीकुर्वन्ति (**विक्षु**) प्रजासु (**जन्तवः**) जनाः (**शोचिष्केशम्**) शोचिषः केशाः सूर्य्यस्य रश्मय इव तेजांसि यस्य तम् (**पुरुप्रिय**) बहून् प्रीणाति बहूनां प्रियो वा तत्संबुद्धौ (**अग्ने**) विद्वन् (**हव्याय**) स्वीकर्त्तव्यमन्नादिपदार्थम्। अत्र सुब्व्यत्ययेन द्वितीयैकवचनस्य चतुर्थ्यैकवचनम् (**वोढवे**) वोढुम्। अत्र तुमर्थे तवेन् प्रत्ययः॥३१॥

अन्वयः-हे पुरुप्रिय चित्रश्रवस्तमाग्ने! विक्षु हव्याय वोढवे यं शोचिष्केशं त्वां जन्तवो हवन्ते, तं वयमपि हवामहे॥३१॥

भावार्थः-मनुष्या यमग्निं जीवाः सेवन्ते, तेन भारवहनादीनि कार्य्याण्यपि साध्नुवन्तु॥३१॥

पदार्थः-हे (**पुरुप्रिय**) बहुतों के प्रसन्न करने हारे वा बहुतों के प्रिय (**चित्रश्रवस्तम**) आश्चर्य्यरूप अन्नादि पदार्थों से युक्त (**अग्ने**) तेजस्वी विद्वन्! (**विक्षु**) प्रजाओं में (**हव्याय**) स्वीकार के योग्य अन्नादि उत्तम पदार्थों को (**वोढवे**) प्राप्ति के लिये जिस (**शोचिष्केशम्**) सुखाने वाली सूर्य की किरणों के तुल्य तेजस्वी (**त्वाम्**) आपको (**जन्तवः**) मनुष्य लोग (**हवन्ते**) स्वीकार करते हैं, उसी को हम लोग भी स्वीकार करते हैं॥३१॥

भावार्थः-मनुष्य को योग्य है कि जिस अग्नि को जीव सेवन करते हैं, उस से भार पहुँचाना आदि कार्य भी सिद्ध किया करें॥३१॥

एना व इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। विराड् बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनः स कीदृश इत्याह॥

फिर वह कैसा हो, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

ए॒ना वो॑ऽअ॒ग्निं नम॑सो॒र्जो नपा॑त॒माहु॑वे।

प्रियं चेतिष्ठमरतिꣳस्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम्॥३२॥

एना। वः। अग्निम्। नमसा। ऊर्जः। नपातम्। आ। हुवे। प्रियम्। चेतिष्ठम्। अरतिम्। स्वध्वरमिति सुऽअध्वरम्। विश्वस्य। दूतम्। अमृतम्॥३२॥

पदार्थः-(एना) एनेन पूर्वोक्तेन। अत्राकारादेशः **(वः)** युष्मभ्यम् **(अग्निम्)** **(नमसा)** ग्राह्येणान्नेन **(ऊर्जः)** पराक्रमान् **(नपातम्)** अपतनशीलम् **(आ)** **(हुवे)** आह्वये **(प्रियम्)** प्रीत्युत्पादकम् **(चेतिष्ठम्)** अतिशयेन चेतयितारं संज्ञापकम् **(अरतिम्)** नास्ति रतिश्चैतन्यमस्मिस्तम् **(स्वध्वरम्)** सुष्ठ्वध्वरा अहिंसनीया व्यवहारा यस्मात्तम् **(विश्वस्य)** समग्रस्य जगतः **(दूतम्)** सर्वत्राभिगन्तारं विद्युतम् **(अमृतम्)** कारणरूपेण नित्यम्॥३२॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथाऽहं वो युष्मभ्यमेना नमसा नपातं प्रियं चेतिष्ठं स्वध्वरमरतिममृतं विश्वस्य दूतमग्निमूर्जश्चाहुवे तथा यूयं मह्यं जुहुत॥३२॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! वयं युष्मदर्थं या अग्न्यादिविद्याः प्रकटयेम, ता यूयं स्वीकुरुत॥३२॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे मैं **(वः)** तुम्हारे लिये **(एना)** उस पूर्वोक्त **(नमसा)** ग्रहण के योग्य अन्न से **(नपातम्)** दृढ़ स्वभाव **(प्रियम्)** प्रीतिकारक **(चेतिष्ठम्)** अत्यन्त चेतनता करानेहारे **(अरतिम्)** चेतनता रहित **(स्वध्वरम्)** अच्छे रक्षणीय व्यवहारों से युक्त **(अमृतम्)** कारणरूप से नित्य **(विश्वस्य)** सम्पूर्ण जगत् के **(दूतम्)** सब ओर चलनेहारे **(अग्निम्)** बिजुली को और **(ऊर्जः)** पराक्रमों को **(आहुवे)** स्वीकार करूँ, वैसे तुम लोग भी मेरे लिये ग्रहण करो॥३२॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! हम लोग तुम्हारे लिये जो अग्नि आदि की विद्या प्रसिद्ध करें, उनको तुम लोग स्वीकार करो॥३२॥

विश्वस्य दूतमित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद् बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनः सः कीदृशः स्यादित्याह॥

फिर वह कैसा हो, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

विश्वस्य दूतममृतं विश्वस्य दूतममृतम्।
स योजतेऽअरुषा विश्वभोजसा स दुद्रवत् स्वाहुतः॥३३॥

विश्वस्य। दूतम्। अमृतम्। विश्वस्य। दूतम्। अमृतम्। सः। योजते। अरुषा। विश्वभोजसेति विश्वऽभोजसा। सः। दुद्रवत्। स्वाहुत इति सुऽआहुतः॥३३॥

पदार्थः-(विश्वस्य) समग्रस्य भूगोलसमूहस्य **(दूतम्)** परितापकं विद्युदाख्यमग्निम् **(अमृतम्)** कारणरूपेणाविनाशिस्वरूपम् **(विश्वस्य)** अखिलपदार्थजातस्य **(दूतम्)** परितापेन दाहकम् **(अमृतम्)** उदकेऽपि व्यापकं कारणम्। **अमृतमित्युदकना०॥** (निघं०१।१२) **(सः)** **(योजते)** युनक्ति। अत्र व्यत्ययेन

शप् **(अरुषा)** रूपवता पदार्थसमूहेन **(विश्वभोजसा)** विश्वस्य पालकेन **(स:)** **(दुद्रवत्)** शरीरादौ द्रवति गच्छति। अत्र वर्तमाने लङ्। माङ्योगमन्तरेणाप्यडभाव: **(स्वाहुत:)** सुष्ठु समन्ताद्धुत आदत्त: सन्॥३३॥

अन्वय:-हे मनुष्या:! यथाऽहं विश्वस्य दूतममृतं विश्वस्य दूतममृतमग्निमाहुवे तथा विश्वभोजसाऽरुषा सर्वै: पदार्थै: सह वर्त्तते स योजते। य: स्वाहुत: सन् दुद्रवत्, स युष्माभिर्वेद्य:॥३३॥

भावार्थ:-अत्र पूर्वमन्त्रादाहुव इति पदमनुवर्त्तते। विश्वस्य दूतममृतमिति द्विरावृत्त्या द्विविधस्य स्थूलसूक्ष्मस्याग्नेर्ग्रहणम्। स सर्व: कारणरूपेण नित्यं इति वेद्यम्॥३३॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! जैसे मैं **(विश्वस्य)** सब भूगोलों के **(दूतम्)** तपाने वाले सूर्य्यरूप **(अमृतम्)** कारणरूप से अविनाशिस्वरूप **(विश्वस्य)** सम्पूर्ण पदार्थों को **(दूतम्)** ताप से जलाने वाले **(अमृतम्**) जल में भी व्यापक कारणरूप अग्नि को स्वीकार करूं, वैसे **(विश्वभोजसा)** जगत् के रक्षक **(अरुषा)** रूपवान् सब पदार्थों के साथ वर्त्तमान है **(स:)** वह **(योजते)** युक्त करता है, जो **(स्वाहुत:)** अच्छे प्रकार ग्रहण किया हुआ **(दुद्रवत्)** शरीरादि में चलता है **(स:)** वह तुम लोगों को जानना चाहिये॥३३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र से **(आहुवे)** इस पद की अनुवृत्ति आती है तथा **(विश्वस्य दूतममृतम्)** इन तीन पदों की दो वार आवृत्ति से स्थूल और सूक्ष्म दो प्रकार के अग्नि का ग्रहण होता है। वह सब अग्नि कारणरूप से नित्य है, ऐसा जानना चाहिये॥३३॥

स दुद्रवदित्यस्य परमेष्ठी ऋषि:। अग्निर्देवता। आर्ष्यनुष्टुप् छन्द:। गान्धार: स्वर:॥

पुन: स कीदृश इत्याह॥

फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

स दुद्र॑वत् स्वाहुत: स दुद्र॑वत् स्वाहुत:।

सुब्रह्मा॑ य॒ज्ञ: सु॒शमी॒ वसू॑नां दे॒वꣳराधो॒ जना॑नाम्॥३४॥

स:। दु॒द्र॒व॒त्। स्वा॒हु॒त॒ इति॒ सु॒ऽआ॑हुत:। स:। दु॒द्र॒व॒त्। स्वा॒हु॒त॒ इति॒ सु॒ऽआ॑हुत:। सु॒ब्र॒ह्मेति॑ सु॒ऽब्र॒ह्मा॑। य॒ज्ञ:। सु॒शमीति॑ सु॒ऽशमी॑। वसू॑नाम्। दे॒वम्। राध॑:। जना॑नाम्॥३४॥

पदार्थ:-**(स:)** अग्नि: **(दुद्रवत्)** द्रवति **(स्वाहुत:)** सुष्ठु कृताह्वान: सखा **(स:)** **(दुद्रवत्)** गच्छति **(स्वाहुत:)** सुष्ठु निमन्त्रितो विद्वान् **(सुब्रह्मा)** सुष्ठुतया चतुर्वेदवित् **(यज्ञ:)** संगन्तुं योग्य: **(सुशमी)** सुष्ठु शमयितुमर्ह: **(वसूनाम्)** पृथिव्यादीनाम् **(देवम्)** कमनीयम् **(राध:)** सुखसाधनं धनम् **(जनानाम्)**॥३४॥

अन्वय:-हे मनुष्या:! स स्वाहुत: सखिवद् दुद्रवत् स स्वाहुतो विद्वानिव दुद्रवत्। सुब्रह्मा यज्ञ: सुशमीव यो वसूनां जनानां च देवं राधोऽस्ति तं यूयं संप्रयुङ्ग्ध्वम्॥३४॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यो वेगवानन्येभ्यो वेगप्रद: शान्तिकर: पृथिव्यादीनां प्रकाशकोऽग्निर्वत्तते स कथं न विज्ञेय:॥३४॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! **(सः)** वह अग्नि **(स्वाहुतः)** अच्छे प्रकार बुलाये हुए मित्र के समान **(दुद्रवत्)** चलता है तथा **(सः)** वह **(स्वाहुतः)** अच्छे प्रकार निमन्त्रण किये विद्वान् के तुल्य **(दुद्रवत्)** जाता है, **(सुब्रह्मा)** अच्छे प्रकार चारों वेदों के ज्ञाता **(यज्ञः)** समागम के योग्य **(सुशमी)** अच्छे शान्तिशील पुरुष के समान जो **(वसूनाम्)** पृथिवी आदि वसुओं और **(जनानाम्)** मनुष्यों का **(देवम्)** अभीप्सित **(राधः)** धनरूप है, उस अग्नि को तुम लोग उपयोग में लाओ॥३४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो वेगवान्, अन्य पदार्थों को वेग देने वाला, शान्तिकारक, पृथिव्यादि पदार्थों का प्रकाशक अग्नि है, उसका विचार क्यों न करना चाहिये॥३४॥

अग्ने वाजस्येत्यत्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। उष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

पुनः स कीदृश इत्याह॥

फिर वह कैसा है, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अग्ने वाजस्य गोमतऽईशानः सहसो यहो।

अस्मे धेहि जातवेदो महि श्रवः॥३५॥

अग्ने। वाजस्य। गोमत इति गोऽमतः। ईशानः। सहसः। यहो इति यहो। अस्मे इत्यस्मे। धेहि। जातवेद इति जातऽवेदः। महि। श्रवः॥३५॥

पदार्थः-**(अग्ने)** विद्वन्! **(वाजस्य)** अन्नस्य **(गोमतः)** प्रशस्तधेनुपृथिवीयुक्तस्य **(ईशानः)** साधकः समर्थः **(सहसः)** बलवतः **(यहो)** सुसन्तान **(अस्मे)** अस्मभ्यम् **(धेहि)** **(जातवेदः)** जातं विज्ञानं यस्य सः **(महि)** महत् **(श्रवः)** धनम्॥३५॥

अन्वयः-हे सहसो यहो जातवेदोऽग्ने! त्वमग्निरिव वाजस्य गोमत ईशानः सन्नस्मे महि श्रवो धेहि॥३५॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। साधुरीत्योपयुक्तोऽग्निः पुष्कलं धनं प्रयच्छतीति वेद्यम्॥३५॥

पदार्थः-हे **(सहसः)** बलवान् पुरुष के **(यहो)** सन्तान! **(जातवेदः)** विज्ञान को प्राप्त हुए **(अग्ने)** तेजस्वी विद्वान् आप अग्नि के तुल्य **(गोमतः)** प्रशस्त गौ और पृथिवी से युक्त **(वाजस्य)** अन्न के **(ईशानः)** स्वामी समर्थ हुए **(अस्मे)** हमारे लिये **(महि)** बड़े **(श्रवः)** धन को **(धेहि)** धारण कीजिये॥३५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। अच्छी रीति से उपयुक्त किया अग्नि बहुत धन देता है, ऐसा जानना चाहिये॥३५॥

स इधान इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

पुनः स कीदृश इत्याह॥

फिर वह कैसा हो, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

सऽइ॒धा॒नो वसु॑ष्क॒विर॒ग्निरी॒डेन्यो॑ गि॒रा।

रे॒वद॒स्मभ्यं॑ पुर्वणीक दीदिहि॥ ३६॥

स:। इ॒धा॒न:। वसु॑:। क॒वि:। अ॒ग्नि:। ई॒डेन्य॑:। गि॒रा। रे॒वत्। अ॒स्मभ्य॑म्। पु॒र्व॒णी॒क॒। पु॒र्व॒नी॒केति॑ पुरुऽअनीक। दी॒दि॒हि॒॥ ३६॥

पदार्थ:-(**स:**) पूर्वोक्त: (**इधान:**) प्रदीप्त: (**वसु:**) वासयिता (**कवि:**) समर्थ: (**अग्नि:**) पावक: (**ईडेन्य:**) अन्वेषणीय: (**गिरा**) वाण्या (**रेवत्**) प्रशस्तधनयुक्तम् (**अस्मभ्यम्**) (**पुर्वणीक**) पुरु बहु अनीकं सैन्यं यस्य तत्संबुद्धौ (**दीदिहि**) प्रकाशय॥ ३६॥

अन्वय:-हे पुर्वणीक विद्वन्! स गिरेडेन्यो वसु: कविरिधान: सोऽग्निरिवाऽस्मभ्यं रेवद्दीदिहि प्रकाशय॥ ३६॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। विदुषाऽग्निगुणकर्मस्वभावप्रकाशनेन मनुष्येभ्य ऐश्वर्यमुन्नेयम्॥ ३६॥

पदार्थ:-हे (**पुर्वणीक**) बहुत सेना वाले राजपुरुष विद्वन्! (**गिरा**) वाणी से (**ईडेन्य:**) खोजने योग्य (**वसु:**) निवास का हेतु (**कवि:**) समर्थ (**इधान:**) प्रदीप्त (**स:**) उस पूर्वोक्त (**अग्नि:**) अग्नि के समान (**अस्मभ्यम्**) हमारे लिये (**रेवत्**) प्रशंसित धनयुक्त पदार्थों को (**दीदिहि**) प्रकाशित कीजिये॥ ३६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। विद्वान् को चाहिये कि अग्नि के गुण, कर्म और स्वभाव के प्रकाश से मनुष्यों के लिये ऐश्वर्य की उन्नति करे॥ ३६॥

क्षपो राजन्नित्यस्य परमेष्ठी ऋषि:। अग्निर्देवता। निचृदुष्णिक् छन्द:। ऋषभ: स्वर:॥

पुन: स कीदृश इत्याह॥

फिर वह कैसा हो, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

क्ष॒पो रा॑जन्नु॒त त्मनाग्ने॒ वस्तो॑रु॒तोषस॑:।

स ति॑ग्मजम्भ र॒क्षसो॑ दह॒ प्रति॑॥ ३७॥

क्ष॒प:। रा॒ज॒न्। उ॒त। त्मना॑। अग्ने॑। वस्तो॑:। उ॒त। उ॒षस॑:। स:। ति॒ग्म॒ज॒म्भेति॑ तिग्मऽजम्भ। र॒क्षस॑:। द॒ह॒। प्रति॑॥ ३७॥

पदार्थ:-(**क्षप:**) रात्री: (**राजन्**) राजमान (**उत**) (**त्मना**) आत्मना। अत्र छान्दसो वर्णलोप: [अ०वा०८.२.२५] इत्याकारलोप: (**अग्ने**) विद्वन्! (**वस्तो:**) दिनम् (**उत**) (**उषस:**) प्रात: सायं समयान् (**स:**) उक्त: (**तिग्मजम्भ**) तिग्मं तीव्रं जम्भो गात्रविनामनं यस्मात् तत्संबुद्धौ (**रक्षस:**) दुष्टान् (**दह**) भस्मीकुरु (**प्रति**) प्रत्यक्षे॥ ३७॥

अन्वयः-हे तिग्मजम्भ राजन्नग्ने! स त्वं यथा तीक्ष्णतेजा अग्निः क्षप उत वस्तोरुतोषसो जनयति तथा सुशिक्षां जनय रक्षसस्तम इव तीव्रत्मना प्रति दह॥३७॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैर्यथा प्रभातस्य दिनस्य रात्रेश्च निमित्तमग्निर्विज्ञायते तथा राजा न्यायप्रकाशस्यान्यायनिवृत्तेश्च हेतुरस्तीति वेद्यम्॥३७॥

पदार्थः-हे (**तिग्मजम्भ**) तीक्ष्ण अवयवों के चलाने वाले (**राजन्**) प्रकाशमान (**अग्ने**) विद्वान् जन! (**सः**) सो पूर्वोक्त गुणयुक्त आप जैसे तीक्ष्ण तेजयुक्त अग्नि (**क्षपः**) रात्रियों (**उत**) और (**वस्तोः**) दिन के (**उत**) ही (**उषसः**) प्रभात और सायंकाल के प्रकाश को उत्पन्न करता है, वैसे (**त्मना**) तीक्ष्ण स्वभाव युक्त अपने आत्मा से (**रक्षसः**) दुष्ट जनों को रात्रि के समान (**प्रतिदह**) निश्चय करके भस्म कीजिये॥३७॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि जैसे प्रभात, दिन और रात्रि का निमित्त अग्नि को जानते हैं, वैसे राजा न्याय के प्रकाश और अन्याय की निवृत्ति का हेतु है, ऐसा जानें॥३७॥

भद्रो न इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। उष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा हो, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

भद्रो नोऽअग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः।

भद्राऽउत प्रशस्तयः॥३८॥

भद्रः। नः। अग्निः। आहुत इत्याऽहुतः। भद्रा। रातिः। सुभगेति सुऽभग। भद्रः। अध्वरः। भद्राः। उत। प्रशस्तय इति प्रऽशस्तयः॥३८॥

पदार्थः-(**भद्रः**) भजनीयः (**नः**) अस्मभ्यम् (**अग्निः**) पावकः (**आहुतः**) संगृहीतो धर्म इव (**भद्रा**) सेवनीया (**रातिः**) दानम् (**सुभग**) शोभनैश्वर्य्य (**भद्रः**) कल्याणकरः (**अध्वरः**) अहिंसनीयो व्यवहारः (**भद्राः**) कल्याणप्रतिपादिकाः (**उत**) (**प्रशस्तयः**) प्रशंसाः॥३८॥

अन्वयः-हे सुभग विद्वन्! यथाऽऽहुतः सखाग्निर्भद्रो रातिर्भद्राऽध्वरो भद्र उत प्रशस्तयो भद्राः स्युस्तथा त्वं नो भव॥३८॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैर्यथा विद्यया सुसेविता जगत्स्थाः पदार्थाः सुखकारिणो भवन्ति तथाऽऽप्ता विद्वांसः सन्तीति वेद्यम्॥३८॥

पदार्थः-हे (**सुभग**) सुन्दर ऐश्वर्य वाले विद्वान् पुरुष! जैसे (**आहुतः**) धर्म के तुल्य सेवन किया मित्ररूप (**अग्निः**) अग्नि (**भद्रः**) सेवने योग्य (**भद्रा**) कल्याणकारी (**रातिः**) दान (**भद्रः**) कल्याणकारी

(अध्वरः) रक्षणीय व्यवहार **(उत)** और **(भद्राः)** कल्याण करने वाली **(प्रशस्तयः)** प्रशंसा होवें, वैसे आप **(नः)** हमारे लिये हूजिये॥३८॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि जैसे विद्या से अच्छे प्रकार सेवन किये जगत् के पदार्थ सुखकारी होते हैं, वैसे आप्त विद्वान् लोगों को भी जानें॥३८॥

भद्रा उतेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

पुनः स विद्वान् कीदृश इत्याह॥

फिर वह विद्वान् कैसा हो, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

भद्राऽउत प्रशस्तयो भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्य्ये।

येना समत्सु सासहः॥३९॥

भद्राः। उत। प्रशस्तय इति प्रऽशस्तयः। भद्रम्। मनः। कृणुष्व। वृत्रतूर्य्य इति वृत्रऽतूर्य्ये। येन। समत्स्विति समत्ऽसु। सासहः। ससह इति ससहः॥३९॥

पदार्थः-**(भद्राः)** भन्दनीयाः **(उत)** अपि **(प्रशस्तयः)** प्रशंसनीयाः प्रजाः **(भद्रम्)** भन्दनीयं कल्याणकरम् **(मनः)** मननात्मकम् **(कृणुष्व)** कुरु **(वृत्रतूर्य्ये)** संग्रामे **(येन)** अत्र **अन्येषामपि०** [अ०६.३.१३७] इति दीर्घः **(समत्सु)** संग्रामेषु **(सासहः)** अतिशयेन सोढा॥३९॥

अन्वयः-हे सुभग! त्वं येन नोऽस्माकं वृत्रतूर्य्ये भद्रं मन उतापि भद्राः प्रशस्तयो येन च समत्सु सासहः स्यात् तत्कृणुष्व॥३९॥

भावार्थः-अत्र **(सुभग)** **(नः)** इति पदद्वयं पूर्वमन्त्रादनुवर्त्तते। विदुषा राज्ञा तत्कर्मानुष्ठेयं येन प्रजाः सेनाश्चोत्तमाः स्युः॥३९॥

पदार्थः-हे **(सुभग)** शोभन सम्पत्ति वाले पुरुष! आप **(येन)** जिस से हमारे **(वृत्रतूर्य्ये)** युद्ध में **(भद्रम्)** कल्याणकारी **(मनः)** विचारशक्तियुक्त चित्त **(उत)** और **(भद्राः)** कल्याण करने हारी **(प्रशस्तयः)** प्रशंसा के योग्य प्रजा और जिस से **(समत्सु)** संग्रामों में **(सासहः)** अत्यन्त सहनशील वीर पुरुष हों, वैसा कर्म **(कृणुष्व)** कीजिये॥३९॥

भावार्थः-यहां **(सुभग, नः)** इन दो पदों की अनुवृत्ति पूर्व मन्त्र से आती है। विद्वान् राजा को चाहिये कि ऐसे कर्म का अनुष्ठान करे, जिस से प्रजा और सेना उत्तम हों॥३९॥

येनेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

पुनः स कीदृश इत्याह॥

फिर वह कैसा हो, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

येना समत्सु सासहोऽव स्थिरा तनुहि भूरि शर्धताम्।

व॒नेमा॑ तेऽअ॒भिष्टि॑भिः॥४०॥

येन॑। स॒मत्स्विति॑ स॒मत्ऽसु॑। सा॒सहः॑। स॒सह॒ इति॑ स॒सहः॑। अव॑। स्थि॒रा। त॒नु॒हि॒। भूरि॑। शर्ध॑ताम्। व॒नेम॑। ते॒। अ॒भिष्टि॑भि॒रित्य॒भिष्टि॑ऽभिः॥४०॥

पदार्थः-(**येन**) अत्र **संहितायाम्** [अ०६.३.११४] इति दीर्घः (**समत्सु**) संग्रामेषु (**सासहः**) भृशं सोढा (**अव**) (**स्थिर**) स्थिराणि सैन्यानि (**तनुहि**) विस्तृणु (**भूरि**) बहु (**शर्द्धताम्**) बलं कुर्वताम्। बलवाचिशर्धशब्दात् करोत्यर्थे क्विप् ततः शतृ (**वनेम**) संभजेम। अत्र **संहितायाम्** [अ०६.३.११४] इति दीर्घः (**ते**) तव (**अभिष्टिभिः**) इष्टाभिरिच्छाभिः॥४०॥

अन्वयः-हे सुभग! येन त्वं समत्सु सासहः स्यात् स त्वं भूरि शर्धतामस्माकं स्थिरावतनुहि। तेऽभिष्टिभिः सह वर्त्तमाना वयं तानि वनेम॥४०॥

भावार्थः-अत्रापि (**सुभग**) (**नः**) इति पदद्वयं पूर्वतोऽनुवर्त्तते। विद्वद्भिर्बहुबलयुक्तानां वीराणां नित्यमुत्साहो वर्धनीयः। येनोत्साहिताः सन्तो राजप्रजाहितानि कर्माणि कुर्य्युः॥४०॥

पदार्थः-हे (**सुभग**) सुन्दर लक्ष्मीयुक्त पुरुष! आप (**येन**) जिस के प्रताप से हमारे (**समत्सु**) युद्धों में (**सासहः**) शीघ्र सहना हो उस को तथा (**भूरि**) बहुत प्रकार (**शर्धताम्**) बल करते हुए हमारे (**स्थिरा**) स्थिर सेना के साधनों को (**अवतनुहि**) अच्छे प्रकार बढ़ाइये (**ते**) आप की (**अभिष्टिभिः**) इच्छाओं के अनुसार वर्त्तमान हम लोग उस सेना के साधनों का (**वनेम**) सेवन करें॥४०॥

भावार्थः-यहां भी (**सुभग, नः**) इन दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। विद्वानों को उचित है कि बहुत बलयुक्त वीर पुरुषों का उत्साह नित्य बढ़ावें, जिससे ये लोग उत्साही हुए राजा और प्रजा के हितकारी काम किया करें॥४०॥

अग्नि तमित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनः स किं कुर्य्यादित्याह॥

फिर वह क्या करे, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अ॒ग्निं तं म॑न्ये॒ यो वसु॒रस्तं॒ यं यन्ति॑ धे॒नवः॑।
अस्त॒मर्व॑न्तऽआ॒शवोऽस्तं॒ नित्या॑सो वा॒जिन॒ऽइष॑ꣳस्तो॒तृभ्य॒ऽआ भ॑र॥४१॥

अ॒ग्निम्। तम्। म॒न्ये॒। यः। वसुः॑। अस्त॑म्। यम्। यन्ति॑। धे॒नवः॑। अस्त॑म्। अर्व॑न्तः। आ॒शवः॑। अस्त॑म्। नित्या॑सः। वा॒जिनः॑। इष॑म्। स्तो॒तृभ्य॒ इति॑ स्तो॒तृऽभ्यः॑। आ। भ॒र॥४१॥

पदार्थः-(**अग्निम्**) (**तम्**) पूर्वोक्तम् (**मन्ये**) (**यः**) (**वसुः**) सर्वत्र निवस्ता (**अस्तम्**) गृहम् (**यम्**) (**यन्ति**) गच्छन्ति (**धेनवः**) गावः (**अस्तम्**) गृहम् (**अर्वन्तः**) अश्वाः (**आशवः**) आशुगामिनः (**अस्तम्**)

(नित्यासः) कारणरूपेणाविनाशिनः **(वाजिनः)** वेगवन्तः **(इषम्)** अन्नादिकम् **(स्तोतृभ्यः)** स्तावकेभ्यः विद्वद्भ्यः **(आभर)**॥४१॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यो वसुरस्ति यमग्निं धेनवोऽस्तं यन्तीव, नित्यासो वाजिन आशवोऽर्वन्तोऽस्तमिवाहं तं मन्ये। स्तोतृभ्य इषमाभरामि तथैव त्वं तमग्निमस्तं मन्यस्वेषं चाभर॥४१॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। विद्यार्थिनः प्रत्यध्यापक एवं वदेद् यथाऽहमाचरेयं तथा यूयमप्याचरत यथा गवादयः पशवः इतस्ततो दिने भ्रान्त्वा सायं स्वगृहं प्राप्य मोदन्ते, तथैव विद्यागृहं प्राप्य यूयमपि मोदध्वम्॥४१॥

पदार्थः-हे विद्वान् पुरुष! **(यः)** जो **(वसुः)** सर्वत्र रहने वाला अग्नि है, **(यम्)** जिस **(अग्निम्)** वाणी के समान अग्नि को **(धेनवः)** गौ **(अस्तम्)** घर को **(यन्ति)** जाती हैं तथा जैसे **(नित्यासः)** कारणरूप से विनाशरहित **(वाजिनः)** वेग वाले **(आशवः)** शीघ्रगामी **(अर्वन्तः)** घोड़े **(अस्तम्)** घर को प्राप्त होते हैं, वैसे मैं **(तम्)** उस पूर्वोक्त अग्नि को **(मन्ये)** मानता हूं और **(स्तोतृभ्यः)** स्तुतिकारक विद्वानों के लिये **(इषम्)** अच्छे अन्नादि पदार्थों को धारण करता हूं, वैसे ही तू उस अग्नि को **(अस्तम्)** आश्रय मान और अन्नादि पदार्थों को **(आभर)** धारण कर॥४१॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। अध्यापक लोग विद्यार्थियों के प्रति ऐसा कहें कि जैसे हम लोग आचरण करें, वैसे तुम भी करो। जैसे गौ आदि पशु दिन में इधर उधर भ्रमण कर सायङ्काल अपने घर आके प्रसन्न होते हैं, वैसे विद्या के स्थान को प्राप्त होके तुम भी प्रसन्न हुआ करो॥४१॥

सोऽअग्निरित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। आर्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनः सः कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा हो, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

सोऽअ॒ग्निर्यो वसु॑र्गृ॒णे सं यमा॒यन्ति॑ धे॒नवः॑।

समर्व॑न्तो रघु॒द्रुवः॒ सꣳसु॑जा॒तासः॑ सू॒रय॒ऽइषꣳ॑ स्तो॒तृभ्य॒ऽआ भ॑र॥४२॥

सः। अ॒ग्निः। यः। वसुः॑। गृ॒णे। सम्। यम्। आ॒यन्तीत्या॒ऽयन्ति॑। धे॒नवः॑। सम्। अर्व॑न्तः। र॒घु॒द्रुव॒ इति॑ रघु॒ऽद्रुवः॑। सम्। सु॒जा॒तास॒ इति॑ सु॒ऽजा॒तासः॑। सू॒रयः॑। इष॑म्। स्तो॒तृभ्य॒ इति॑ स्तो॒तृभ्यः॑। आ। भ॒र॥४२॥

पदार्थः-**(सः)** **(अग्निः)** **(यः)** **(वसुः)** **(गृणे)** स्तुवे **(सम्)** **(यम्)** **(आयन्ति)** **(धेनवः)** वाण्यः **(सम्)** **(अर्वन्तः)** प्रशस्तविज्ञानवन्तः **(रघुद्रुवः)** ये रघु लघु द्रवन्ति गच्छन्ति ते। अत्र **कपिलकादित्वात्** [अ०वा०८.२.१८] लत्वम् **(सम्)** **(सुजातासः)** विद्यासु सुष्ठु जाताः प्रसिद्धाः **(सूरयः)** विद्वांसः **(इषम्)** ज्ञानम् **(स्तोतृभ्यः)** स्तावकेभ्यो विद्यार्थिभ्यः **(आ)** **(भर)**॥४२॥

अन्वयः-हे विद्वन्। यथाऽहं यो वसुरग्निरस्ति तं गृणे यं धेनवः समायन्ति, रघुद्रुवोऽर्वन्तः सुजातासः सूरयः स्तोतृभ्य इषं समाभरन्ति, स स्तौति च तथा त्वमेतानि समाभर॥४२॥

भावार्थः-अध्यापका यथा धेनवो वत्सान् प्रीणयन्ति तथा विद्यार्थिन आनन्दयेयुः। यथाऽश्वाः शीघ्रं गमयन्ति तथा सर्वविद्यापारगान् कुर्य्युः॥४२॥

पदार्थः-हे विद्यार्थी विद्वान् पुरुष! जैसे मैं **(यः)** जो **(वसुः)** निवास का हेतु **(अग्निः)** अग्नि है, उस की **(गृणे)** अच्छे प्रकार स्तुति करता हूं, **(यम्)** जिस को **(धेनवः)** वाणी **(समायन्ति)** अच्छे प्रकार प्राप्त होती हैं और **(रघुद्रुवः)** धीरज से चलने वाले **(अर्वन्तः)** प्रशंसित ज्ञानी **(सुजातासः)** अच्छे प्रकार विद्याओं में प्रसिद्ध **(सूरयः)** विद्वान् लोग **(स्तोतृभ्यः)** स्तुति करने हारे विद्यार्थियों के लिये **(इषम्)** ज्ञान को **(सम्)** अच्छे प्रकार धारण करते हैं और जैसे **(सः)** वह पढ़ाने हारा ईश्वरादि पदार्थों के गुण-वर्णन करता है, वैसे तू भी इन पूर्वोक्तों को **(समाभर)** ज्ञान से धारण कर॥४२॥

भावार्थः-अध्यापकों को चाहिये कि जैसे गौएँ अपने बछरों को तृप्त करती हैं, वैसे विद्यार्थियों को प्रसन्न करें और जैसे घोड़े शीघ्र चल के पहुँचाते हैं, वैसे विद्यार्थियों को सब विद्याओं के पार शीघ्र पहुँचावें॥४२॥

उभे इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनः सः किं कुर्यादित्याह॥

फिर वह क्या करे, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

उभे सुश्चन्द्र सर्पिषो दर्वी श्रीणीषऽआसनि।

उतो नऽउत्पुपूर्या उक्थेषु शवसस्पतऽइषꣳ स्तोतृभ्यऽआ भर॥४३॥

उभे इत्युभे। सुश्चन्द्र। सुचन्द्रेति सुऽचन्द्र। सर्पिषः। दर्वी इति दर्वी। श्रीणीषे। आसनि। उतो इत्युतो। नः। उत्। पुपूर्याः। उक्थेषु। शवसः। पते। इषम्। स्तोतृभ्य इति स्तोतृऽभ्यः। आ। भर॥४३॥

पदार्थः-**(उभे)** द्वे अध्ययनाध्यापनक्रिये **(सुश्चन्द्र)** शोभनश्चासौ चन्द्र आह्लादकारकश्च तत्सम्बुद्धौ **(सर्पिषः)** घृतस्य **(दर्वी)** ग्रहणाग्रहणसाधने **(श्रीणीषे)** पचसि **(आसनि)** आस्ये **(उतो)** अपि **(नः)** अस्मभ्यम् **(उत्)** **(पुपूर्याः)** पूर्णं कुर्य्याः **(उक्थेषु)** वक्तुं श्रोतुमर्हेषु वेदविभागेषु **(शवसः)** बलस्य **(पते)** पालक **(इषम्)** अन्नम् **(स्तोतृभ्यः)** विद्वद्भ्यः **(आ)** **(भर)**॥४३॥

अन्वयः-हे सुश्चन्द्र! त्वं सर्पिषो दर्वी श्रीणीष इवासन्युभे आ भर। हे शवसस्पते! त्वमुक्थेषु नोऽस्मभ्यमुतो अपि स्तोतृभ्य इषं चोत्पुपूर्याः॥४३॥

भावार्थः-यथर्त्विजो घृतं संशोध्य दर्व्याऽग्नौ हुत्वा वायुवृष्टिजले रोगनाशके कृत्वा सर्वान् सुखयन्ति। तथैवाध्यापका विद्यार्थिमनांसि सुशिक्षा संशोध्य तत्र विद्या हुत्वाऽऽत्मनः पवित्रीकृत्य सर्वान् प्राणिनः सुखयेयुः॥४३॥

पदार्थः-हे **(सुश्चन्द)** सुन्दर आनन्ददाता अध्यापक पुरुष! आप **(सर्पिषः)** घी के **(दर्वी)** चलाने पकड़ने की दो कर्छी से **(श्रीणीषे)** पकाने के समान **(आसनि)** मुख में **(उभे)** पढ़ने पढ़ाने की दो क्रियाओं को **(आभर)** धारण कीजिये। हे **(शवसः)** बल के **(पते)** रक्षकजन! तू **(उक्थेषु)** कहने-सुनने योग्य वेदविभागों में **(नः)** हमारे **(उतो)** और **(स्तोतृभ्यः)** विद्वानों के लिये **(इषम्)** अन्नादि पदार्थों को **(उत्पुपूर्याः)** उत्कृष्टता से पूरण कर॥४३॥

भावार्थः-जैसे ऋत्विज् लोग घृत को शोध कर्छी से अग्नि में होम कर और वायु तथा वर्षाजल को रोगनाशक करके सब को सुखी करते हैं, वैसे ही अध्यापक लोगों को चाहिये कि विद्यार्थियों के मन अच्छी शिक्षा से शोध कर उन को विद्यादान दे के आत्माओं को पवित्र कर सब को सुखी करें॥४३॥

अग्ने तमित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। आर्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनः सः कीदृशः स्यादित्याह॥

फिर वह कैसा हो, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रꣳ हृदिस्पृशम्।
ऋध्यामा तऽओहैः॥४४॥

अग्ने। तम्। अद्य। अश्वम्। न। स्तोमैः। क्रतुम्। न। भद्रम्। हृदिस्पृशमिति हृदिऽस्पृशम्। ऋध्याम। ते ओहैः॥४४॥

पदार्थः-**(अग्ने)** अध्यापक! **(तम्)** विद्याबोधम् **(अद्य)** अस्मिन् वर्त्तमाने समये **(अश्वम्)** सुशिक्षितं तुरङ्गम् **(न)** इव **(स्तोमैः)** विद्यास्तुतिविशेषैर्वेदभागैः **(क्रतुम्)** प्रज्ञानम् **(न)** इव **(भद्रम्)** कल्याणकरम् **(हृदिस्पृशम्)** यो हृद्यात्मनि स्पृशति तम् **(ऋध्याम)** वर्धेमहि। अत्र **अन्येषामपि०** [अ०६.३.१३७] इति दीर्घः **(ते)** तव सकाशात् **(ओहैः)** विद्यासुखप्रापकैः॥४४॥

अन्वयः-हे अग्नेऽध्यापक! वयं ते तव सकाशादोहैः स्तोमैरद्याश्वं न भद्रं क्रतुं न तं हृदिस्पृशं प्राप्य सततमृध्याम॥४४॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारौ। अध्येतारो यथा सुशिक्षितेनाश्वेन सद्योऽभीष्टं स्थानं गच्छन्ति, यथा विद्वांसः सर्वशास्त्रबोधसंपन्नया कल्याणकर्त्र्या प्रज्ञया धर्मार्थकाममोक्षान् प्राप्नुवन्ति तथा तेभ्योऽध्यापकेभ्यो विद्यापारं गत्वा प्रशस्तां प्रज्ञां प्राप्य स्वयं वर्धेरन्, अन्यांश्च वेदाध्यापनोपदेशाभ्यामेधयेयुः॥४४॥

पदार्थ:-हे **(अग्ने)** अध्यापक जन! हम लोग **(ते)** आप से **(ओहै:)** विद्या का सुख देने वाले **(स्तोमै:)** विद्या की स्तुतिरूप वेद के भागों से **(अद्य)** आज **(अश्वम्)** घोड़े के **(न)** समान **(भद्रम्)** कल्याणकारक **(क्रतुम्)** बुद्धि के **(न)** समान **(तम्)** उस **(हृदिस्पृशम्)** आत्मा के साथ सम्बन्ध करने वाले विद्याबोध को प्राप्त हो के निरन्तर **(ऋध्याम)** वृद्धि को प्राप्त हों॥४४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं। अध्येता लोगों को चाहिये कि जैसे अच्छे शिक्षित घोड़े से अभीष्ट स्थान में शीघ्र पहुंच जाते हैं, जैसे विद्वान् लोग सब शास्त्रों के बोध से युक्त कल्याण करने हारी बुद्धि से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष फलों को प्राप्त होते हैं, वैसे उन अध्यापकों से पूर्ण विद्या पढ़ प्रशंसित बुद्धि को पा के आप उन्नति को प्राप्त हों तथा वेद के पढ़ाने और उपदेश से अन्य सब मनुष्यों की भी उन्नति करें॥४४॥

अधा हीत्यस्य परमेष्ठी ऋषि:। अग्निर्देवता। भुरिगार्षी गायत्री छन्द:। षड्ज: स्वर:॥

पुन: स कीदृश: स्यादित्याह॥

फिर वह कैसा हो, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अधा ह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य दक्षस्य साधो:।
रथीर्ऋतस्य बृहतो बभूथ॥४५॥

अध। हि। अग्ने। क्रतो:। भद्रस्य। दक्षस्य। साधो:। रथी:। ऋतस्य। बृहत:। बभूथ॥४५॥

पदार्थ:-**(अध)** अथ मङ्गले। अत्र निपातस्य **निपातस्य च** [अ०६.३.१३६] इति दीर्घ:। वर्णव्यत्ययेन थस्य धश्च **(हि)** खलु **(अग्ने)** विद्वन् **(क्रतो:)** प्रज्ञाया: **(भद्रस्य)** आनन्दकरस्य **(दक्षस्य)** शरीरात्मबलयुक्तस्य **(साधो:)** सन्मार्गे वर्त्तमानस्य **(रथी:)** प्रशस्ता रथा रमणसाधनानि यानानि विद्यन्ते यस्य स: **(ऋतस्य)** प्राप्तसत्यस्य **(बृहत:)** महाविषयस्य **(बभूथ)** भवे:॥४५॥

अन्वय:-हे अग्ने! यथा त्वं भद्रस्य दक्षस्य साधोर्ऋतस्य बृहत: क्रतो: सकाशाद् रथीर्बभूथ तथाऽध हि वयमपि भवेम॥४५॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यथा शास्त्रयोगजां धियं प्राप्य विद्वांसो वर्धन्ते तथैवाध्येतृभिरपि वर्धितव्यम्॥४५॥

पदार्थ:-हे **(अग्ने)** विद्वान् जन! जैसे तू **(भद्रस्य)** आनन्दकारक **(दक्षस्य)** शरीर और आत्मा के बल से युक्त **(साधो:)** अच्छे मार्ग में प्रवर्त्तमान **(ऋतस्य)** सत्य को प्राप्त हुए पुरुष की **(बृहत:)** बड़े विषय वा ज्ञानरूप **(क्रतो:)** बुद्धि से **(रथी:)** प्रशंसित रमणसाधन यानों से युक्त **(बभूथ)** हूजिये, वैसे **(अध)** मङ्गलाचरणपूर्वक **(हि)** निश्चय करके हम भी होवें॥४५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे शास्त्र और योग से उत्पन्न हुई बुद्धि को प्राप्त हो के विद्वान् लोग बढ़ते हैं, वैसे ही अध्येता लोगों को भी बढ़ना चाहिये॥४५॥

एभिर्न इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगार्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

एभिर्नोऽअर्कैर्भवा नोऽअर्वाङ् स्वर्ण ज्योतिः।

अग्ने विश्वेभिः सुमनाऽअनीकैः॥४६॥

एभिः। नः। अर्कैः। भव। नः। अर्वाङ्। स्वः। न। ज्योतिः। अग्ने। विश्वेभिः। सुमना इति सुऽमनाः। अनीकैः॥४६॥

पदार्थः-(**एभिः**) पूर्वोक्तैः (**नः**) अस्मभ्यम् (**अर्कैः**) पूज्यैर्विद्वद्भिः (**भव**) **द्व्यचोऽतस्तिङः** [अ०६.३.१३५] इति दीर्घः (**नः**) अस्मभ्यम् (**अर्वाङ्**) योऽर्वाचीनाननुत्कृष्टानुत्कृष्टान् कर्त्तुमञ्चति जानाति सः (**स्वः**) सुखम् (**न**) इव (**ज्योतिः**) प्रकाशकः (**अग्ने**) विद्याप्रकाशाढ्य (**विश्वेभिः**) समग्रैः (**सुमनाः**) सुखकारिमनाः (**अनीकैः**) सैन्यैरिव॥४६॥

अन्वयः-हे अग्ने! त्वं नोऽस्मभ्यं विश्वेभिरनीकै राजेव सुमना भव। एभिरर्कैर्नोऽस्मभ्यं ज्योतिरर्वाङ् स्वर्न भव॥४६॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। यथा राजा सुशिक्षितैर्बलाढ्यैः सैन्यैः शत्रून् जित्वा सुखी भवति, तथैव प्रज्ञादिभिर्गुणैरविद्याक्लेशान् जित्वा मनुष्याः सुखिनः सन्तु॥४६॥

पदार्थः-हे (**अग्ने**) विद्याप्रकाश से युक्त पुरुष! आप (**नः**) हमारे लिये (**विश्वेभिः**) सब (**अनीकैः**) सेनाओं के सहित राजा के तुल्य (**सुमनाः**) मन से सुखदाता (**भव**) हूजिये (**एभिः**) इन पूर्वोक्त (**अर्कैः**) पूजा के योग्य विद्वानों के सहित (**नः**) हमारे लिये (**ज्योतिः**) ज्ञान के प्रकाशक (**अर्वाङ्**) नीचों को उत्तम करने को जानने वाले (**स्वः**) सुख के (**न**) समान हूजिये॥४६॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे राजा अच्छी शिक्षा और बल से युक्त सेनाओं से शत्रुओं को जीत के सुखी होता है, वैसे ही बुद्धि आदि गुणों से अविद्या से हुए क्लेशों को जीत के मनुष्य लोग सुखी होवें॥४६॥

अग्निꣳ होतारमित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। विराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अग्निꣳ होतारं मन्ये दास्वन्तं वसुꣳ सूनुꣳ सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम्।

यऽऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा।
घृतस्य विभ्राष्टिमनु वष्टि शोचिषाऽऽजुह्वानस्य सर्पिषः॥४७॥

अग्निम्। होतारम्। मन्ये। दास्वन्तम्। वसुम्। सूनुम्। सहसः। जातवेदसमिति जातऽवेदसम्। विप्रम्। न। जातऽवेदसमिति जातऽवेदसम्। यः। ऊर्ध्वया। स्वध्वर इति सुऽअध्वरः। देवः। देवाच्या। कृपा। घृतस्य। विभ्राष्टिमिति विऽभ्राष्टिम्। अनु। वष्टि। शोचिषा। आजुह्वानस्येत्याऽजुह्वानस्य। सर्पिषः॥४७॥

पदार्थः-(अग्निम्) **(होतारम्)** सुखदातारम् **(मन्ये)** सत्करोमि **(दास्वन्तम्)** दातारम् **(वसुम्)** धनप्रदम् **(सूनुम्)** पुत्रमिव **(सहसः)** बलिष्ठस्य **(जातवेदसम्)** सर्वेषु जातेषु पदार्थेषु विद्यमानम् **(विप्रम्)** आप्तं मेधाविनम् **(न)** इव **(जातवेदसम्)** प्रसिद्धप्रज्ञम् **(यः)** **(उर्ध्वया)** उपरिगत्या **(स्वध्वरः)** शोभनकारित्वादहिंसनीयः **(देवः)** दिव्यगुणः **(देवाच्या)** देवानञ्चति तया **(कृपा)** समर्थया क्रियया **(घृतस्य)** उदकस्य **(विभ्राष्टिम्)** विविधा भ्राष्टयः प्रकाशनानि यस्मिंस्तम् **(अनु)** **(वष्टि)** प्रकाशते **(शोचिषा)** दीप्त्या **(आजुह्वानस्य)** समन्ताद्धूयमानस्य **(सर्पिषः)** आज्यस्य॥४७॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवाच्या कृपा देवः शोचिषाऽऽजुह्वानस्य सर्पिषो घृतस्य विभ्राष्टिमनुवष्टि तं होतारं जातवेदसं सहसः सूनुमिव वसुं दास्वन्तं जातवेदसमग्निं विप्रं न यथाऽहं मन्ये तथा यूयमपि मन्यध्वम्॥४७॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। यथा सुसेविता विद्वांसो विद्याधर्मसुशिक्षाभिः सर्वानार्यान् सम्पादयन्ति तथा युक्त्या सेवितोऽग्निः स्वगुणकर्मस्वभावैः सर्वानुन्नयति॥४७॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! **(यः)** जो **(ऊर्ध्वया)** ऊर्ध्वगति के साथ **(स्वध्वरः)** शुभ कर्म करने से अहिंसनीय **(देवाच्या)** विद्वानों के सत्कार के हेतु **(कृपा)** समर्थ क्रिया से **(देवः)** दिव्य गुणों वाला पुरुष **(शोचिषा)** दीप्ति के साथ **(आजुह्वानस्य)** अच्छे प्रकार हवन किये **(सर्पिषः)** घी और **(घृतस्य)** जल के सकाश से **(विभ्राष्टिम्)** विविध प्रकार की ज्योतियों को **(अनुवष्टि)** प्रकाशित करता है, उस **(होतारम्)** सुख के दाता **(जातवेदसम्)** उत्पन्न हुए सब पदार्थों में विद्यमान **(सहसः)** बलवान् पुरुष के **(सूनुम्)** पुत्र के समान **(वसुम्)** धनदाता **(दास्वन्तम्)** दानशील **(जातवेदसम्)** बुद्धिमानों में प्रसिद्ध **(अग्निम्)** तेजस्वी अग्नि के **(न)** समान **(विप्रम्)** आप्त ज्ञानी का मैं **(मन्ये)** सत्कार करता हूं, वैसे तुम लोग भी उस को मानो॥४७॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे अच्छे प्रकार सेवन किये विद्वान् लोग विद्या, धर्म और अच्छी शिक्षा से सब को आर्य करते हैं, वैसे युक्ति से सेवन किया अग्नि अपने गुण, कर्म और स्वभावों से सब के सुख की उन्नति करता है॥४७॥

अग्ने त्वन्न इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। स्वराड् ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अग्ने त्वं नो अन्तमऽउत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः।

वसुरग्निर्वसुश्रवाऽअच्छा नक्षि द्युमत्तमꣳ रयिं दाः।

तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः॥४८॥

अग्ने। त्वम्। नः। अन्तमः। उत। त्राता। शिवः। भव। वरूथ्यः। वसुः। अग्निः। वसुश्रवा इति वसुऽश्रवाः। अच्छ। नक्षि। द्युमत्तममिति द्युमत्ऽतमम्। रयिम्। दाः। तम्। त्वा। शोचिष्ठ। दीदिव इति दीदिऽवः। सुम्नाय। नूनम्। ईमहे। सखिभ्य इति सखिऽभ्यः॥४८॥

पदार्थः-(**अग्ने**) विद्वन्! (**त्वम्**) (**नः**) अस्माकम् (**अन्तमः**) अतिशयेनान्तिकः। **अन्तमानामित्यन्तिकनां०॥** (निघं०२।१६) (**उत**) अपि (**त्राता**) रक्षकः (**शिवः**) मङ्गलकारी (**भव**) **द्व्यचोऽतस्तिङः** [अ०६.३.१३५] इति दीर्घः (**वरूथ्यः**) वरः (**वसुः**) धनप्रदः (**अग्निः**) प्रापकः (**वसुश्रवाः**) वसूनि धनानि श्रवांस्यन्नानि च यस्मात् सः (**अच्छ**) अत्र **संहितायाम्** [अ०६.३.११४] इति दीर्घः (**नक्षि**) प्राप्नोमि। अत्र णक्ष गतावित्यस्माल्लडुत्तमैकवचनेऽ- ड्विकरणयोरभावः (**द्युमत्तमम्**) प्रशस्ता दिवः प्रकाशा कामना वा विद्यन्ते यस्मिन् सोऽतिशयितस्तम् (**रयिम्**) धनम् (**दाः**) ददाति। अत्राप्यडभावः (**तम्**) (**त्वा**) त्वाम् (**शोचिष्ठ**) अतिशयेन तेजस्विन् (**दीदिवः**) ये दीदयन्ति ते दीदयः प्रकाशास्ते बहवो विद्यन्ते यस्मिन् तत्सम्बुद्धौ (**सुम्नाय**) सुखाय (**नूनम्**) निश्चितम् (**ईमहे**) याचामहे (**सखिभ्यः**) मित्रेभ्यः॥४८॥

अन्वयः-हे अग्ने! त्वं यथाऽयं वसुर्वसुश्रवा अग्नी रयिं दा ददाति तथा नोऽस्माकमन्तमस्त्राता वरूथ्य उतापि शिवो भव। हे शोचिष्ठ दीदिवो विद्वन्! यथा वयं त्वा सखिभ्यः सुम्नाय नूनमीमहे तथा तं त्वां सर्वे मनुष्या याचन्ताम्। यथाऽहं द्युमत्तमं त्वामच्छ नक्षि प्राप्नोमि तथा त्वमस्मान् प्राप्नुहि॥४८॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार। यथा सुहृदो मित्राणीच्छन्त्युन्नयन्ति तथा विद्वान् सर्वस्य मित्रः सर्वान् सुखिनः सम्पादयेत्॥४८॥

पदार्थः-हे (**अग्ने**) विद्वन्! (**त्वम्**) आप जैसे यह (**वसुः**) धनदाता (**वसुश्रवाः**) अन्न और धन का हेतु (**अग्निः**) अग्नि (**रयिम्**) धन को (**दाः**) देता है, वैसे (**नः**) हमारे (**अन्तमः**) अत्यन्त समीप (**त्राता**) रक्षक (**वरूथ्यः**) श्रेष्ठ (**उत**) और (**शिवः**) मङ्गलकारी (**भव**) हूजिये। हे (**शोचिष्ठ**) अतितेजस्वी (**दीदिवः**) बहुत प्रकाशों से युक्त वा कामना वाले विद्वान्! जैसे हम लोग (**त्वा**) तुझ को (**सखिभ्यः**) मित्रों से (**सुम्नाय**) सुख के लिये (**नूनम्**) निश्चय (**ईमहे**) मांगते हैं, वैसे (**तम्**) उस तुझ को सब मनुष्य चाहें, जैसे मैं (**द्युमत्तमम्**) प्रशंसित प्रकाशों से युक्त तुझ को (**अच्छ**) अच्छे प्रकार (**नक्षि**) प्राप्त होता हूं, वैसे तू हम को प्राप्त हो॥४८॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे मित्र अपने मित्रों को चाहते और उन की उन्नति करते हैं, वैसे विद्वान् सब का मित्र सब को सुख देवे॥४८॥

येन ऋषय इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

येनऽऋषयस्तपसा सत्रमायन्निन्धानाऽअग्निꣳ स्वराभरन्तः।

तस्मिन्नहं नि दधे नाकेऽअग्निं यमाहुर्मनव स्तीर्णबर्हिषम्॥४९॥

येन। ऋषयः। तपसा। सत्रम्। आयन्। इन्धानाः। अग्निम्। स्वः। आऽभरन्तः। तस्मिन्। अहम्। नि। दधे। नाके। अग्निम्। यम्। आहुः। मनवः। स्तीर्णबर्हिषमिति स्तीर्णऽबर्हिषम्॥४९॥

पदार्थः-(**येन**) कर्मणा (**ऋषयः**) वेदार्थवेत्तारः (**तपसा**) धर्माऽनुष्ठानेन (**सत्रम्**) सत्रा सत्यं विद्यते यस्मिन् विज्ञाने तत् (**आयन्**) प्राप्नुयुः (**इन्धानाः**) प्रकाशमानाः (**अग्निम्**) विद्युदादिम् (**स्वः**) सुखम् (**आभरन्तः**) समन्ताद्धरन्तः (**तस्मिन्**) (**अहम्**) (**निदधे**) (**नाके**) अविद्यमानदुःखे सुखे प्राप्तव्ये सति (**अग्निम्**) उक्तम् (**यम्**) (**आहुः**) वदन्ति (**मनवः**) मननशीला विद्वांसः (**स्तीर्णबर्हिषम्**) स्तीर्णमाच्छादितं बर्हिरन्तरिक्षं येन तम्॥४९॥

अन्वयः-येन तपसेन्धानाः स्वराभरन्त ऋषयः सत्रमग्निमायंस्तस्मिन्नाके मनवो यं स्तीर्णबर्हिषमग्निमाहुस्तमहं निदधे॥४९

भावार्थः-येन प्रकारेण वेदपारगाः सत्यमनुष्ठाय विद्युदादिपदार्थान् सम्प्रयुज्य समर्था भवन्ति तेनैव मनुष्यैः समृद्धियुक्तैर्भवितव्यम्॥४९॥

पदार्थः-(**येन**) जिस (**तपसा**) धर्मानुष्ठानरूप कर्म से (**इन्धानाः**) प्रकाशमान (**स्वः**) सुख को (**आभरन्तः**) अच्छे प्रकार धारण करते हुए (**ऋषयः**) वेद का अर्थ जानने वाले ऋषि लोग (**सत्रम्**) सत्य विज्ञान से युक्त (**अग्निम्**) विद्युत् आदि अग्नि को (**आयन्**) प्राप्त हों, (**तस्मिन्**) उस कर्म के होते (**नाके**) दुःखरहित प्राप्त होने योग्य सुख के निमित्त (**मनवः**) विचारशील विद्वान् लोग (**यम्**) जिस (**स्तीर्णबर्हिषम्**) आकाश को आच्छादन करने वाले (**अग्निम्**) अग्नि को (**आहुः**) कहते हैं, उस को (**अहम्**) मैं (**नि, दधे**) धारण करता हूं॥४९॥

भावार्थः-जिस प्रकार से वेदपारग विद्वान् लोग सत्य का अनुष्ठान कर बिजुली आदि पदार्थों को उपयोग में लाके समर्थ होते हैं, उसी प्रकार मनुष्यों को समृद्धियुक्त होना चाहिये॥४९॥

तं पत्नीभिरित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

विद्वद्भिः कथं भवितव्यमित्याह॥

विद्वानों को कैसा होना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

तं पत्नीभिरनु गच्छेम देवाः पुत्रैर्भ्रातृभिरुत वा हिरण्यैः।

नाकं गृभ्णानाः सुकृतस्य लोके तृतीये पृष्ठेऽअधि रोचने दिवः॥५०॥

तम्। पत्नीभिः। अनु। गच्छेम। देवाः। पुत्रैः। भ्रातृभिरिति भ्रातृऽभिः। उत। वा। हिरण्यैः। नाकम्। गृभ्णानाः। सुकृतस्येति सुऽकृतस्य। लोके। तृतीये। पृष्ठे। अधि। रोचने। दिवः॥५०॥

पदार्थः-(**तम्**) अग्निम् (**पत्नीभिः**) स्वस्वस्त्रीभिः (**अनु**) (**गच्छेम**) (**देवाः**) विद्वांसः (**पुत्रैः**) वृद्धावस्थाजन्यदुःखात् त्रातृभिः (**भ्रातृभिः**) बन्धुभिः (**उत**) (**वा**) अन्यैरनुक्तैः सम्बन्धिभिः (**हिरण्यैः**) सुवर्णादिभिः (**नाकम्**) आनन्दम् (**गृभ्णानाः**) गृह्णन्तः (**सुकृतस्य**) सुष्ठुकृतस्य वेदोक्तकर्मणः (**लोके**) द्रष्टव्ये स्थाने (**तृतीये**) विज्ञानजे (**पृष्ठे**) ज्ञीप्सिते (**अधि**) उपरिभागे (**रोचने**) रुचिकरे (**दिवः**) द्योतनकर्मणः॥५०॥

अन्वयः-हे देवा विद्वांसः! यथा यूयं तं गृभ्णाना दिवः सुकृतस्याधिरोचने तृतीये पृष्ठे लोके वर्त्तमानाः पत्नीभिः पुत्रैर्भ्रातृभिरुत वा हिरण्यैः सह नाकं गच्छत तथैतैः सहिता वयमनुगच्छेम॥५०॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा विद्वांसः स्वस्त्रीपुत्रभ्रातृदुहितृमातृपितृभृत्यपार्श्वस्थान् विद्यासुशिक्षाभ्यां धार्मिकान् पुरुषार्थिनः कृत्वा सन्तुष्टा भवन्ति, तथैव सर्वैरप्यनुवर्त्यम्॥५०॥

पदार्थः-हे (**देवाः**) विद्वान् लोगो! जैसे तुम लोग (**तम्**) उस पूर्वोक्त अग्नि को (**गृभ्णानाः**) ग्रहण करते हुए (**दिवः**) प्रकाशयुक्त (**सुकृतस्य**) सुन्दर वेदोक्त कर्म (**अधि**) में वा (**रोचने**) रुचिकारक (**तृतीये**) विज्ञान से हुए (**पृष्ठे**) जानने को इष्ट (**लोके**) विचारने वा देखने योग्य स्थान में वर्त्तमान (**पत्नीभिः**) अपनी अपनी स्त्रियों (**पुत्रैः**) वृद्धावस्था में हुए दुःख से रक्षक पुत्रों (**भ्रातृभिः**) बन्धुओं (**उत, वा**) और अन्य सम्बन्धियों तथा (**हिरण्यैः**) सुवर्णादि के साथ (**नाकम्**) आनन्द को प्राप्त होते हो, वैसे इन सब के सहित हम लोग भी (**अनु, गच्छेम**) अनुगत हों॥५०॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विद्वान् लोग अपनी स्त्री, पुत्र, भाई, कन्या, माता, पिता, सेवक और पड़ोसियों को विद्या और अच्छी शिक्षा से धर्मात्मा पुरुषार्थी करके सन्तोषी होते हैं, वैसे ही सब मनुष्यों को होना चाहिये॥५०॥

आ वाच इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

ईश्वरवद्राज्ञा किं कार्य्यमित्याह॥

ईश्वर के तुल्य राजा को क्या करना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

आ वाचो मध्यमरुहद् भुरण्युरयमग्निः सत्पतिश्चेकितानः।

पृष्ठे पृथिव्या निहितो दविद्युतदधस्पदं कृणुतां ये पृतन्यवः॥५१॥

आ। वाचः। मध्यम्। अरुहत्। भुरण्युः। अयम्। अग्निः। सत्पतिरिति सत्ऽपतिः। चेकितानः। पृष्ठे। पृथिव्याः। निहित इति निऽहितः। दविद्युतत्। अधस्पदम्। अधःपदमित्यधःऽपदम्। कृणुताम्। ये। पृतन्यवः॥५१॥

पदार्थः-(**आ**) (**वाचः**) (**मध्यम्**) मध्ये भवम् (**अरुहत्**) रोहति (**भुरण्युः**) पोषकः (**अयम्**) (**अग्निः**) विद्वान् (**सत्पतिः**) सतां पालकः (**चेकितानः**) विज्ञानयुक्तः (**पृष्ठे**) उपरिभागे (**पृथिव्याः**) भूमेः (**निहितः**) नितरां धृतः (**दविद्युतत्**) प्रकाशयति (**अधस्पदम्**) नीचाधिकारम् (**कृणुताम्**) करोतु (**ये**) (**पृतन्यवः**) युद्धायात्मनः पृतनां सेनामिच्छवः॥५१॥

अन्वयः-हे विद्वन्! चेकितानः सत्पतिर्भवान् वाचो मध्यं प्राप्य यथाऽयं भुरण्युरग्निः पृथिव्याः पृष्ठे निहितो दविद्युतदारुहत् तेन ये पृतन्यवस्तान्नधस्पदं कृणुताम्॥५१॥

भावार्थः-विद्वांसो राजानो यथेश्वरो ब्रह्माण्डस्य मध्ये सूर्य्यं निधाय सर्वान् सुखेनोपकरोति, तथैव राज्यमध्ये विद्याबले धृत्वा शत्रून् जित्वा प्रजास्थान् मनुष्यानुपकुर्य्युः॥५१॥

पदार्थः-हे विद्वान् पुरुष! (**चेकितानः**) विज्ञानयुक्त (**सत्पतिः**) श्रेष्ठों के रक्षक आप (**वाचः**) वाणी के (**मध्यम्**) बीच हुए उपदेश को प्राप्त हो के जैसे (**अयम्**) यह (**भुरण्युः**) पुष्टिकर्त्ता (**अग्निः**) विद्वान् (**पृथिव्याः**) भूमि के (**पृष्ठे**) ऊपर (**निहितः**) निरन्तर स्थिर किया (**दविद्युतत्**) उपदेश से सब को प्रकाशित करता और धर्म पर (**आ, अरुहत्**) आरूढ़ होता है, उस के साथ (**ये**) जो लोग (**पृतन्यवः**) युद्ध के लिये सेना की इच्छा करते हैं, उन को (**अधस्पदम्**) अपने अधिकार से च्युत जैसे हों, वैसा (**कृणुताम्**) कीजिये॥५१॥

भावार्थः-विद्वान् मनुष्यों को चाहिये कि जैसे ईश्वर ब्रह्माण्ड में सूर्यलोक को स्थापन करके सब को सुख पहुँचाता है, वैसे ही राज्य में विद्या और बल को धारण कर शत्रुओं को जीत के प्रजा के मनुष्यों का सुख से उपकार करें॥५१॥

अयमग्निरित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

धार्मिकजनवदितरैर्वर्तितव्यमित्याह॥

धर्मात्माओं के तुल्य अन्य लोगों को वर्तना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अयमग्निर्वीरतमो वयोधाः सहस्रियो द्योततामप्रयुच्छन्।

विभ्राजमानः सरिरस्य मध्यऽउप प्र याहि दिव्यानि धाम॥५२॥

अयम्। अग्निः। वीरतम इति वीरऽतमः। वयोधा इति वयःऽधाः। सहस्रियः। द्योतताम्। अप्रयुच्छन्नित्यप्रऽयुच्छन्। विभ्राजमान इति विऽभ्राजमानः। सरिरस्य। मध्ये। उप। प्र। याहि। दिव्यानि। धाम॥५२॥

पदार्थः-(**अयम्**) (**अग्निः**) पावक इव सेनापतिः (**वीरतमः**) वेति स्वबलेन शत्रुबलं व्याप्नोति सोऽतिशयितः (**वयोधाः**) यः सर्वेषां जीवनं दधाति सः (**सहस्रियः**) सहस्रेणासङ्ख्यातेन योद्धृसमूहेन

सम्मितस्तुल्यः **(द्योतताम्)** प्रकाशताम् **(अप्रयुच्छन्)** अप्रमाद्यन् **(विभ्राजमानः)** विशेषेण विद्यान्यायाभ्यां देदीप्यमानः **(सरिरस्य)** अन्तरिक्षस्य **(मध्ये)** **(उप)** **(प्र)** **(याहि)** **(प्राप्नुहि)** **(दिव्यानि)** **(धाम)** जन्मकर्मस्थानानि॥५२॥

अन्वयः-योऽयं वीरतमो वयोधाः सहस्रियः सरिरस्य मध्ये विभ्राजमानोऽप्रयुच्छन्नग्निरिव स भवान् द्योतताम्। दिव्यानि धाम धामानि त्वमुपप्रयाहि॥५२॥

भावार्थः-मनुष्या धार्मिकैर्जनैः सहोषित्वा प्रमादं विहाय जितेन्द्रियत्वेन जीवनं वर्धयित्वा विद्याधर्मानुष्ठानेन पवित्रा भूत्वा परोपकारिणः सन्तु॥५२॥

पदार्थः-जो **(अयम्)** यह **(वीरतमः)** अपने बल से शत्रुओं को अत्यन्त व्याप्त होने तथा **(वयोधाः)** सब के जीवन को धारण करने वाला **(सहस्रियः)** असंख्य योद्धाजनों के समान योद्धा **(सरिरस्य)** आकाश के **(मध्ये)** बीच **(विभ्राजमानः)** विशेष करके विद्या और न्याय से प्रकाशित सो **(अप्रयुच्छन्)** प्रमादरहित होते हुए **(अग्निः)** अग्नि के तुल्य सेनापति आप **(द्योतताम्)** प्रकाशित हूजिये और **(दिव्यानि)** अच्छे **(धाम)** जन्म, कर्म और स्थानों को **(उप, प्र, याहि)** प्राप्त हूजिये॥५२॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि धर्मात्मा जनों के साथ निवास कर, प्रमाद को छोड़ और जितेन्द्रियता से अवस्था बढ़ा के विद्या और धर्म के अनुष्ठान से पवित्र होके परोपकारी होवें॥५२॥

संप्रच्यवध्वमित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

कथं विवाहं कृत्वा किं कुर्य्यातामित्याह॥

स्त्री-पुरुष कैसे विवाह करके क्या करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

सम्प्रच्यवध्वमुप संप्रयाताग्ने पथो देवयानान् कृणुध्वम्।

पुनः कृण्वाना पितरा युवानान्वाताꣳसीत् त्वयि तन्तुमेतम्॥५३॥

सम्प्रच्यवध्वमिति सम्ऽप्रच्यवध्वम्। उप। सम्प्रयातेति सम्ऽप्रयात। अग्ने। पथः। देवयानानिति देवऽयानान्। कृणुध्वम्। पुनरिति पुनः। कृण्वाना। पितरा। युवाना। अन्वाताꣳसीदित्यनुऽआताꣳसीत्। त्वयि। तन्तुम। एतम्॥५३॥

पदार्थः-**(संप्रच्यवध्वम्)** सम्यग्गच्छत **(उप)** **(संप्रयात)** सम्यक् प्राप्नुत **(अग्ने)** विद्वन्! **(पथः)** मार्गान् **(देवयानान्)** देवा धार्मिका यान्ति येषु तान् **(कृणुध्वम्)** कुरुत **(पुनः)** **(कृण्वाना)** कुर्वन्तौ **(पितरा)** पालकौ मातापितरौ **(युवाना)** पूर्णयुवावस्थास्थौ। अत्र सर्वत्र विभक्तेराकारादेशः **(अन्वातांसीत्)** पश्चात् समन्तात् तनुताम्। अत्र वचनव्यत्ययेन द्विवचनस्थान एकवचनम् **(त्वयि)** पितामहे विद्यमाने सति **(तन्तुम्)** सन्तानम् **(एतम्)** गर्भाधानादिरीत्या यथोक्तम्॥५३॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यूयं विद्या उपसम्प्रयात देवयानान् पथः सम्प्रच्यवध्वं धर्मं कृणुध्वम्। हे अग्ने! त्वयि पितामहे विद्यमाने सति पितरा ब्रह्मचर्य्यं कृण्वाना युवाना भूत्वा स्वयंवरं विवाहं कृत्वा पुनरेतं तन्तुमन्वातांसीत्॥५३॥

भावार्थः-कुमारा धर्म्येण सेवितब्रह्मचर्य्येण पूर्णा विद्या अधीत्य स्वयं धार्मिका भूत्वा पूर्णयुवावस्थायां प्राप्तायां कन्यानां पुरुषाः पुरुषाणां च कन्याः परीक्षां कृत्वाऽत्यन्तप्रीत्याऽऽकर्षितहृदयाः स्वेच्छया विवाहं विधाय धर्मेण सन्तानानुत्पाद्य सेवया मातापितरौ च सन्तोष्याप्तानां विदुषां मार्गं सततमन्वाययुः, यथा सरलान् धर्ममार्गान् कुर्य्युस्तथैव भूमिजलान्तरिक्षमार्गानपि निष्पादयेरन्॥५३॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम लोग विद्याओं को **(उपसंप्रयात)** अच्छे प्रकार प्राप्त होओ **(देवयानान्)** धार्मिकों के **(पथः)** मार्गों से **(संप्रच्यवध्वम्)** सम्यक् चलो, धर्म को **(कृणुध्वम्)** करो। हे **(अग्ने)** विद्वान् पितामह! **(त्वयि)** तुम्हारे बने रहते ही **(पितरा)** रक्षा करने वाले माता-पिता तुम्हारे पुत्र आदि ब्रह्मचर्य्य को **(कृण्वाना)** करते हुए **(युवाना)** पूर्ण युवावस्था को प्राप्त हो और स्वयंवर विवाह कर **(पुनः)** पश्चात् **(एतम्)** गर्भाधानादिरीति से यथोक्त **(तन्तुम्)** सन्तान को **(अन्वातांसीत्)** अनुकूल उत्पन्न करें॥५३॥

भावार्थः-कुमार स्त्रीपुरुष धर्मयुक्त सेवन किये ब्रह्मचर्य्य से पूर्ण विद्या पढ़ आप धार्मिक हो पूर्ण युवावस्था की प्राप्ति में कन्याओं की पुरुष और पुरुषों की कन्या परीक्षा कर अत्यन्त प्रीति के साथ चित्त से परस्पर आकर्षित होके अपनी इच्छा से विवाह कर, धर्मानुकूल सन्तानों को उत्पन्न और सेवा से अपने माता पिता का संतोष कर के आप्त विद्वानों के मार्ग से निरन्तर चलें और जैसे धर्म के मार्गों को सरल करें, वैसे ही भूमि, जल और अन्तरिक्ष के मार्गों को भी बनावें॥५३॥

उद्बुध्यस्वेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर वही पूर्वोक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

उद् बु॑ध्यस्वाग्ने॒ प्रति॑ जागृहि॒ त्वमि॑ष्टापू॒र्त्ते सꣳसृ॑जेथाम॒यं च॑।

अ॒स्मिन्त्स॒धस्थे॒ऽअध्युत्त॑रस्मि॒न् विश्वे॑ देवा॒ यज॑मानश्च सीदत॥५४॥

उत्। बुध्य॒स्व॒। अ॒ग्ने॒। प्रति॑। जा॒गृ॒हि॒। त्वम्। इ॒ष्टा॒पू॒र्त्ते इती॑ष्टाऽपू॒र्त्ते। सम्। सृ॒जे॒था॒म्। अ॒यम्। च॒। अ॒स्मिन्। स॒ध॒स्थ॒ इति॑ स॒ध॒ऽस्थे॑। अधि॑। उत्त॑रस्मि॒न्नित्युत्॒ऽत॑रस्मिन्। विश्वे॑। दे॒वाः॒। यज॑मानः। च॒। सी॒द॒त॒॥५४॥

पदार्थः-**(उत्)** उत्कृष्टरीत्या **(बुध्यस्व)** जानीहि **(अग्ने)** विद्यया सुप्रकाशिते स्त्रि पुरुष वा **(प्रति)** **(जागृहि)** अविद्यानिद्रां त्यक्त्वा विद्यया चेत **(त्वम्)** स्त्री **(इष्टापूर्त्ते)** इष्टं सुखं विद्वत्सत्करणमीश्वराराधनं सत्सङ्गतिकरणं सत्यविद्यादिदानं च पूर्त्तं पूर्णं बलं ब्रह्मचर्य्यं विद्यालङ्करणं पूर्णं यौवनं पूर्णं साधनोपसाधनं च ते **(सम्)** सम्यक् **(सृजेथाम्)** निष्पादयेतम्। अत्र व्यत्ययेनात्मनेपदम् **(अयम्)** पुरुषः **(च)** **(अस्मिन्)**

वर्त्तमाने **(सधस्थे)** सहस्थाने **(अधि)** उपरि **(उत्तरस्मिन्)** आगामिनि **(विश्वे)** सर्वे **(देवा:)** विद्वांस: **(यजमान:)** पुरुष: **(च)** स्त्री **(सीदत)** अवस्थिता भवत॥५४॥

अन्वय:-हे अग्ने! त्वमुद्बुध्यस्व, सर्वान् प्रति जागृहि, त्वमयं चास्मिन् सधस्थ उत्तरस्मिँश्च सदेष्टापूर्त्ते संसृजेथाम्। विश्वे देवा यजमानश्चैतस्मिन्नधि सीदत॥५४॥

भावार्थ:-यथाऽग्नियजमानौ सुखं पूर्णां सामग्रीं च साध्नुतस्तथा कृतविवाहा: स्त्रीपुरुषा अस्मिन् जगति समाचरन्तु। यदा विवाहाय दृढप्रीती स्त्रीपुरुषौ भवेतां, तदा विदुष आहूयैतेषां सन्निधौ वेदोक्ता: प्रतिज्ञा: कृत्वा पति: पत्नी च भवेताम्॥५४॥

पदार्थ:-हे **(अग्ने)** अच्छी विद्या से प्रकाशित स्त्री वा पुरुष! तू **(उद्बुध्यस्व)** अच्छे प्रकार ज्ञान को प्राप्त हो सब के प्रति, **(प्रति, जागृहि)** अविद्यारूप निद्रा को छोड़ के विद्या से चेतन हो **(त्वम्)** तू स्त्री **(च)** और **(अयम्)** यह पुरुष दोनों **(अस्मिन्)** इस वर्त्तमान **(सधस्थे)** एक स्थान में और **(उत्तरस्मिन्)** आगामी समय में सदा **(इष्टापूर्त्ते)** इष्ट सुख, विद्वानों का सत्कार, ईश्वर का आराधन, अच्छा सङ्ग करना और सत्यविद्या आदि का दान देना यह इष्ट और पूर्णबल, ब्रह्मचर्य्य, विद्या की शोभा, पूर्ण युवा अवस्था, साधन और उपसाधन यह सब पूर्त्त इन दोनों को **(सं, सृजेथाम्)** सिद्ध किया करो **(विश्वे)** सब **(देवा:)** विद्वान् लोग **(च)** और **(यजमान:)** यज्ञ करने वाले पुरुष, तू इस एक स्थान में **(अधि, सीदत)** उन्नतिपूर्वक स्थिर होओ॥५४॥

भावार्थ:-जैसे अग्नि सुगन्धादि के होम से इष्ट सुख देता और यज्ञकर्त्ता जन यज्ञ की सामग्री पूरी करता है, वैसे उत्तम विवाह किये स्त्री-पुरुष इस जगत् में आचरण किया करें। जब विवाह के लिये दृढ़ प्रीति वाले स्त्री-पुरुष हों, तब विद्वानों को बुला के उन के समीप वेदोक्त प्रतिज्ञा करके पति और पत्नी बनें॥५४॥

येन वहसीत्यस्य परमेष्ठी ऋषि:। अग्निर्देवता। निचृदनुष्टुप् छन्द:। गान्धार: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

येन॒ वह॑सि स॒हस्रं॒ येना॑ग्ने सर्ववेद॒सम्।

तेने॒मं य॒ज्ञं नो॑ नय॒ स्व॒र्दे॒वेषु॒ गन्त॑वे॥५५॥

येन॑। वह॑सि। स॒हस्र॑म्। येन॑। अ॒ग्ने॒। स॒र्व॒वे॒द॒समिति॑ सर्वऽवे॒द॒सम्। तेन॑। इ॒मम्। य॒ज्ञम्। न॒:। न॒य॒। स्व॒:। दे॒वेषु॑। गन्त॑वे॥५५॥

पदार्थ:-**(येन)** प्रतिज्ञातेन कर्मणा **(वहसि)** **(सहस्रम्)** असंख्यं गृहाश्रमव्यवहारम् **(येन)** विज्ञानेन **(अग्ने)** विद्वन् विदुषि वा **(सर्ववेदसम्)** सर्वैर्वेदैरुक्तं कर्म **(तेन)** **(इमम्)** गृहाश्रमम् **(यज्ञम्)** संगन्तव्यम्

(नः) अस्मान् **(नय)** **(स्वः)** सुखम् **(देवेषु)** विद्वत्सु **(गन्तवे)** गन्तुं प्राप्तुम्। [अयं मन्त्रः शत०८.६.१.२० व्याख्यातः]॥५५॥

अन्वयः-हे अग्ने! त्वं देवेषु स्वर्गन्तवे येन सहस्रं वहसि, येन सर्ववेदसं वहसि, तेनेमं यज्ञं नोऽस्मांश्च नय॥५५॥

भावार्थः-विवाहप्रतिज्ञास्वियमपि प्रतिज्ञा कारयितव्या। हे स्त्रीपुरुषौ! युवां यथा स्वहितायाचरतं तथास्माकं मातापित्राचार्य्यातिथीनां सुखायापि सततं वर्त्तेयाथामिति॥५५॥

पदार्थः-हे **(अग्ने)** विद्वान् पुरुष वा विदुषी स्त्री! तू **(देवेषु)** विद्वानों में **(स्वः)** सुख को **(गन्तवे)** प्राप्त होने के लिये **(येन)** जिस प्रतिज्ञा किये कर्म से **(सहस्रम्)** गृहाश्रम के असंख्य व्यवहारों को **(वहसि)** प्राप्त होते हो तथा **(येन)** जिस विज्ञान से **(सर्ववेदसम्)** सब वेदों में कहे कर्म को यथावत् करते हो **(तेन)** उससे **(इमम्)** इस गृहाश्रमरूप **(यज्ञम्)** संगति के योग्य यज्ञ को **(नः)** हम को **(नय)** प्राप्त कीजिये॥५५॥

भावार्थः-विवाह की प्रतिज्ञाओं में यह भी प्रतिज्ञा करानी चाहिये कि हे स्त्रीपुरुषो! तुम दोनों जैसे अपने हित के लिये आचरण करो, वैसे हम माता-पिता, आचार्य्य और अतिथियों के सुख के लिये भी निरन्तर वर्त्ताव करो॥५५॥

अयं त इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातोऽअरोचथाः।

तं जानन्नग्नऽआ रोहाथा नो वर्धया रयिम्॥५६॥

अयम्। ते। योनिः। ऋत्वियः। यतः। जातः। अरोचथाः। तम्। जानन्। अग्ने। आ। रोह। अथ। नः। वर्धय। रयिम्॥५६॥

पदार्थः-**(अयम्)** **(ते)** तव **(योनिः)** गृहम् **(ऋत्वियः)** ऋतुः प्राप्तोऽस्य सः **(यतः)** यस्य विद्याध्ययनस्याध्यापनस्य च सकाशात् **(जातः)** जाता च **(अरोचथाः)** प्रदीप्येथाः **(तम्)** **(जानन्)** जानन्ति च **(अग्ने)** विद्वन् विदुषि! च **(आ)** **(रोह)** **(अथ)** आनन्तर्य्ये। **निपातस्य च** [अ०६.३.१३६] इति दीर्घः **(नः)** अस्माकम् **(वर्धय)** **अन्येषामपि०** [अ०६.३.१३७] इति दीर्घः **(रयिम्)** संपत्तिम्। [अयं मन्त्रः शत०८.६.१.२४ व्याख्यातः]॥५६॥

अन्वयः-हे अग्ने! योऽयं ते तव ऋत्वियो योनिरस्ति यतो जातो जाता त्वं चारोचथास्तं जानन् जानन्ति चारोहाथ, नो रयिं वर्धय॥५६॥

भावार्थः-विवाहे स्त्रीपुरुषाभ्यामियमपि द्वितीया प्रतिज्ञा कारयितव्या। येन ब्रह्मचर्य्येण यया विद्यया च युवां स्त्रीपुरुषौ कृतकृत्यौ भवथस्तत्तां च सदैव प्रचारयतम्। पुरुषार्थेन धनादिकं च वर्धयित्वैतत् सन्मार्गे वीतम्। इत्येतत् सर्वं हेमन्तस्य ऋतोर्व्याख्यानं समाप्तम्॥५६॥

पदार्थः-हे **(अग्ने)** विद्वन् वा विदुषि! **(अयम्)** यह **(ते)** तेरा **(ऋत्वियः)** ऋतु अर्थात् समय को प्राप्त हुआ **(योनिः)** घर है, **(यतः)** जिस विद्या के पठन-पाठन से **(जातः)** प्रसिद्ध हुआ वा हुई तू **(अरोचथाः)** प्रकाशित हो **(तम्)** उस को **(जानन्)** जानता वा जानती हुई **(आ, रोह)** धर्म पर आरूढ़ हो, **(अथ)** इसके पश्चात् **(नः)** हमारी **(रयिम्)** सम्पत्ति को **(वर्धय)** बढ़ाया कर॥५६॥

भावार्थः-स्त्री-पुरुषों से विवाह में यह भी दूसरी प्रतिज्ञा करानी चाहिये कि जिस ब्रह्मचर्य और जिस विद्या के साथ तुम दोनों स्त्री-पुरुष कृतकृत्य होते हो, उस-उस को सदैव प्रचारित किया करो और पुरुषार्थ से धनादि पदार्थ को बढ़ा के उस को अच्छे मार्ग में खर्च किया करो। यह सब हेमन्त ऋतु का व्याख्यान पूरा हुआ॥५६॥

तपश्चेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। शिशिरर्त्तुर्देवता। स्वराडुत्कृतिश्छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अथ शिशिरस्य ऋतोर्वर्णनमाह॥

अब अगले मन्त्र में शिशिर ऋतु का वर्णन किया है॥

तप॑श्च तप॒स्य॒श्च॒ शैशि॑रावृ॒तूऽअ॒ग्नेर॑न्तःश्ले॒षो॒ऽसि॒ कल्पे॑तां॒ द्यावा॑पृथि॒वी कल्प॑न्ता॒माप॒ऽओष॑धय॒ः कल्प॑न्ताम॒ग्नय॒ः पृथ॒ङ् मम॒ ज्यैष्ठ्या॑य॒ सव्र॑ताः। येऽअ॒ग्नय॒ः सम॑नसोऽन्त॒रा द्यावा॑पृथि॒वीऽइ॒मे। शै॒शि॒रावृ॒तूऽअ॑भि॒कल्प॑माना॒ऽइन्द्र॑मिव दे॒वाऽअ॑भि॒संवि॑शन्तु॒ तया॑ दे॒वत॑याऽङ्गि॒र॒स्वद् ध्रु॒वे सी॑दतम्॥५७॥

तप॑ः। च॒। त॒प॒स्य॒ः। च॒। शै॒शि॒रौ। ऋ॒तू इत्यृ॒तू। अ॒ग्नेः। अ॒न्त॒ःश्ले॒ष इत्य॑न्तःऽश्ले॒षः। अ॒सि॒। कल्पे॑ताम्। द्यावा॑पृथि॒वी इति॒ द्यावा॑पृथि॒वी। कल्प॑न्ताम्। आप॑ः। ओष॑धयः। कल्प॑न्ताम्। अ॒ग्नय॑ः। पृथ॑क्। मम॑। ज्यैष्ठ्या॑य। सव्र॑ता॒ इति॒ सऽव्र॑ताः। ये। अ॒ग्नय॑ः। सम॑नस॒ इति॒ सऽम॑नसः। अ॒न्त॒रा। द्यावा॑पृथि॒वी इति॒ द्यावा॑पृथि॒वी। इ॒मे इती॒मे। शै॒शि॒रौ। ऋ॒तू इत्यृ॒तू। अ॒भि॒कल्प॑माना॒ इत्य॑भि॒ऽकल्प॑मानाः। इन्द्र॑मि॒वेतीन्द्र॑म्ऽइव। दे॒वाः। अ॒भि॒संवि॑श॒न्त्वित्य॑भि॒सम्ऽवि॑शन्तु। तया॑। दे॒वत॑या। अ॒ङ्गि॒र॒स्वत्। ध्रु॒वे इति॑ ध्रु॒वे। सी॒द॒त॒म्॥५७॥

पदार्थः-**(तपः)** यस्तापहेतुः स माघो मासः **(च)** **(तपस्यः)** तपो घर्मो विद्यतेऽस्मिन् स फाल्गुनो मासः **(च)** **(शैशिरौ)** शिशिरर्त्तौ भवौ **(ऋतू)** स्वलिङ्गप्रापकौ **(अग्नेः)** **(अन्तःश्लेषः)** मध्यप्रवेशः **(असि)** **(कल्पेताम्)** **(द्यावापृथिवी)** **(कल्पन्ताम्)** **(आपः)** **(ओषधयः)** **(कल्पन्ताम्)** **(अग्नयः)** पावकाः **(पृथक्)** **(मम)** **(ज्यैष्ठ्याय)** **(सव्रताः)** समाननियमाः **(ये)** **(अग्नयः)** **(समनसः)** समानमनोनिमित्ताः **(अन्तरा)** मध्ये **(द्यावापृथिवी)** प्रकाशभूमी **(इमे)** **(शैशिरौ)** शिशिरर्त्तुसंपादकौ **(ऋतू)** **(अभिकल्पमानाः)**

सम्पादयन्तः **(इन्द्रमिव)** ऐश्वर्य्यमिव **(देवाः)** विद्वांसः **(अभिसंविशन्तु)** **(तया)** **(देवतया)** पूज्यतमया व्याप्तया ब्रह्माख्यया सह **(अङ्गिरस्वत्)** प्राणवत् **(ध्रुवे)** दृढे **(सीदतम्)** सीदतः। [अयं मन्त्रः शत०८.७.१.५-६ व्याख्यातः]॥५७॥

अन्वयः-हे ईश्वर! मम ज्यैष्ठ्याय तपश्च तपस्यश्च शैशिरावृतू सुखकारकौ भवतः। त्वं ययोरग्नेरन्तःश्लेषोऽसि, ताभ्यां द्यावापृथिवी कल्पेताम्, आप ओषधयश्च कल्पन्ताम्, सव्रता अग्नयः पृथक् कल्पन्ताम्। ये समनसोऽग्नय इमे द्यावापृथिवी अन्तरा शैशिरावृतू अभिकल्पमानाः सन्ति, तानिन्द्रमिव देवा अभिसंविशन्तु। हे स्त्रीपुरुषौ! युवां तया देवतया सहाङ्गिरस्वद् वर्त्तमानो ध्रुवे द्यावापृथिवी इव सीदतम्॥५७॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। मनुष्यैः प्रत्यृतु सुखमीश्वरादेव याचनीयम्। ईश्वरस्य विद्युदन्तःप्रविष्टत्वात् सर्वे पदार्थाः स्वस्वनियमेन समर्था भवन्ति। विद्वांसः सर्वपदार्थगतविद्युदग्नीनां गुणदोषान् विजानन्तु। स्त्रीपुरुषौ गृहाश्रमे शैशिरं सुखं भुञ्जाताम्॥५७॥

पदार्थः-हे ईश्वर! **(मम)** मेरी **(ज्यैष्ठ्याय)** ज्येष्ठता के लिये **(तपः)** ताप बढ़ाने का हेतु माघ महीना **(च)** और **(तपस्यः)** तापवाला फाल्गुन मास **(च)** ये दोनों **(शैशिरौ)** शिशिर ऋतु में प्रख्यात **(ऋतू)** अपने चिह्नों को प्राप्त करने वाले सुखदायी होते हैं। आप जिनके **(अग्नेः)** अग्नि के भी **(अन्तःश्लेषः)** मध्य में प्रविष्ट **(असि)** हैं, उन दोनों से **(द्यावापृथिवी)** आकाश-भूमि **(कल्पेताम्)** समर्थ हों, **(आपः)** जल **(ओषधयः)** ओषधियाँ **(कल्पन्ताम्)** समर्थ हों, **(सव्रताः)** एक प्रकार के नियमों में वर्त्तमान **(अग्नयः)** विद्युत् आदि अग्नि **(पृथक्)** अलग अलग **(कल्पन्ताम्)** समर्थ होवें, **(ये)** जो **(समनसः)** एक प्रकार के मन के निमित्तवाले हैं, वे **(अग्नयः)** विद्युत् आदि अग्नि **(इमे)** इन **(द्यावापृथिवी)** आकाश भूमि के **(अन्तरा)** बीच में होने वाले **(शैशिरौ)** शिशिर ऋतु के साधक **(ऋतू)** माघ-फाल्गुन महीनों को **(अभिकल्पमानाः)** समर्थ करते हैं, उन अग्नियों को **(इन्द्रमिव)** ऐश्वर्य के तुल्य **(देवाः)** विद्वान् लोग **(अभिसंविशन्तु)** ज्ञानपूर्वक प्रवेश करें। हे स्त्री-पुरुषो! तुम दोनों **(तया)** उस **(देवतया)** पूजा के योग्य सर्वत्र व्याप्त जगदीश्वर देवता के साथ **(अङ्गिरस्वत्)** प्राण के समान वर्त्तमान इन आकाश भूमि के तुल्य **(ध्रुवे)** दृढ़ **(सीदतम्)** स्थिर होओ॥५७॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि सब ऋतुओं में ईश्वर से ही सुख चाहें। ईश्वर विद्युत् अग्नि के भी बीच व्याप्त है, इस कारण सब पदार्थ अपने-अपने नियम से कार्य में समर्थ होते हैं। विद्वान् लोग सब वस्तुओं में व्याप्त बिजुलीरूप अग्नियों के गुण-दोष जानें। स्त्री-पुरुष गृहाश्रम में स्थिरबुद्धि होके शिशिर ऋतु के सुख को भोगें॥५७॥

परमेष्ठीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। विदुषी देवता। भुरिग् ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

स्त्रिया किं कार्यमित्याह॥

स्त्री को क्या करना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

प॒र॒मे॒ष्ठी त्वा॑ सादयतु दि॒वस्पृ॒ष्ठे ज्योति॑ष्मतीम्।

विश्वा॑स्मै प्रा॒णाया॑पा॒नाय॑ व्या॒नाय॒ विश्वं॒ ज्योति॑र्यच्छ।

सूर्य॒स्तेऽधि॑पति॒स्तया॑ दे॒वत॑याऽङ्गिर॒स्वद् ध्रु॒वा सी॑द॥५८॥

प॒र॒मे॒ष्ठी। प॒र॒मे॒स्थीति॑ परमे॒ऽस्थी। त्वा॒। सा॒द॒य॒तु॒। दि॒वः। पृ॒ष्ठे। ज्योति॑ष्मतीम्। विश्वा॑स्मै। प्रा॒णाय॑। अ॒पा॒नायेत्य॑पऽआ॒नाय॑। व्या॒नायेति॑ विऽआ॒नाय॑। विश्व॑म्। ज्योतिः॑। य॒च्छ॒। सूर्यः॑। ते॒। अधि॑पति॒रित्यधि॑ऽपतिः। तया॑। दे॒वत॑या। अ॒ङ्गि॒र॒स्वत्। ध्रु॒वा। सी॒द॒॥५८॥

पदार्थः-(**परमेष्ठी**) परम आकाशेऽभिव्याप्य स्थितः (**त्वा**) (**सादयतु**) स्थापयतु (**दिवः**) प्रकाशस्य (**पृष्ठे**) उपरि (**ज्योतिष्मतीम्**) प्रशस्तानि ज्योतींषि ज्ञानानि विद्यन्तेऽस्यां ताम् (**विश्वस्मै**) सर्वस्मै (**प्राणाय**) (**अपानाय**) (**व्यानाय**) (**विश्वम्**) सर्वम् (**ज्योतिः**) प्रकाशम् (**यच्छ**) (**सूर्य्यः**) सूर्य्य इव वर्त्तमानः (**ते**) तव (**अधिपतिः**) स्वामी (**तया**) पत्याख्यया (**देवतया**) दिव्यगुणयुक्तया (**अङ्गिरस्वत्**) (**ध्रुवा**) दृढा (**सीद**) स्थिरा भव॥५८॥

अन्वयः-हे स्त्रि! परमेष्ठी ज्योतिष्मतीं त्वा दिवस्पृष्ठे विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानाय सादयतु, त्वं विश्वं ज्योतिः सर्वाभ्यः स्त्रीभ्यो यच्छ। यस्यास्ते तव सूर्य्य इवाधिपतिरस्ति, तया देवतया सह वर्त्तमानाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद॥५८॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। येन परमेश्वरेण यः शरदृतू रचितस्तस्योपासनापुरस्सरं तं युक्त्या सेवित्वा स्त्रीपुरुषाः सुखं सदा वर्धयन्तु॥५८॥

पदार्थः-हे स्त्रि! (**परमेष्ठी**) महान् आकाश में व्याप्त होकर स्थित परमेश्वर (**ज्योतिष्मतीम्**) प्रशस्त ज्ञानयुक्त (**त्वा**) तुझ को (**दिवः**) प्रकाश के (**पृष्ठे**) उत्तम भाग में (**विश्वस्मै**) सब (**प्राणाय**) प्राण (**अपानाय**) अपान और (**व्यानाय**) व्यान आदि की यथार्थ क्रिया होने के लिये (**सादयतु**) स्थित करे। तू सब स्त्रियों के लिये (**विश्वम्**) समस्त (**ज्योतिः**) ज्ञान के प्रकाश को (**यच्छ**) दिया कर, जिस (**ते**) तेरा (**सूर्यः**) सूर्य के समान तेजस्वी (**अधिपतिः**) स्वामी है, (**तया**) उस (**देवतया**) अच्छे गुणों वाले पति के साथ वर्त्तमान (**अङ्गिरस्वत्**) सूर्य्य के समान (**ध्रुवा**) दृढ़ता से (**सीद**) स्थिर हो॥५८॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमा तथा वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जिस परमेश्वर ने जो शरद् ऋतु बनाया है, उसकी उपासनापूर्वक इस ऋतु को युक्ति से सेवन करके स्त्री-पुरुष सदा सुख बढ़ाया करें॥५८॥

लोकं पृणेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। इन्द्राग्नी देवते। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

लोकं पृण छिद्रं पृणाथो सीद ध्रुवा त्वम्।

इन्द्राग्नी त्वा बृहस्पतिरस्मिन् योनावसीषदन्॥५९॥

लोकम्। पृण। छिद्रम्। पृण। अथो इत्यथो। सीद। ध्रुवा। त्वम्। इन्द्राग्नी इतीन्द्राग्नी। त्वा। बृहस्पतिः। अस्मिन्। योनौ। असीषदन्। असीसदन्नित्यसीसदन्॥५९॥

पदार्थः-(**लोकम्**) इमं परं च (**पृण**) सुखय (**छिद्रम्**) (**पृण**) पिपूर्द्धि (**अथो**) (**सीद**) (**ध्रुवा**) निश्चला (**त्वम्**) (**इन्द्राग्नी**) इन्द्रः परमैश्वर्य्यश्चाग्निर्विज्ञाता च तौ (**त्वा**) त्वाम् (**बृहस्पतिः**) अध्यापकः (**अस्मिन्**) (**योनौ**) गृहाश्रमे (**असीषदन्**) सादयन्तु। [अयं मन्त्रः शत०८.७.२.६ व्याख्यातः]॥५९॥

अन्वयः-हे स्त्रि! त्वं लोकं पृण, छिद्रं पृण, ध्रुवा सीद, अथो इन्द्राग्नी बृहस्पतिश्चास्मिन् योनौ त्वाऽसीषदन्॥५९॥

भावार्थः-सुदक्षया स्त्रिया गृहकृत्यसाधनानि पूर्णानि कृत्वा कार्य्याणि साधनीयानि विदुषीणां च गृहाश्रमकृत्येषु प्रीतिर्यथा स्यात् तथोपदेष्टव्यम्॥५९॥

पदार्थः-हे स्त्रि! (**त्वम्**) तू इस (**लोकम्**) लोक तथा परलोक को (**पृण**) सुखयुक्त कर, (**छिद्रम्**) अपनी न्यूनता को (**पृण**) पूरी कर और (**ध्रुवा**) निश्चलता से (**सीद**) घर में बैठ (**अथो**) इसके अनन्तर (**इन्द्राग्नी**) उत्तम धनी ज्ञानी तथा (**बृहस्पतिः**) अध्यापक (**अस्मिन्**) इस (**योनौ**) गृहाश्रम में (**त्वा**) तुझ को (**असीषदन्**) स्थापित करें॥५९॥

भावार्थः-अच्छी चतुर स्त्री को चाहिये कि घर के कार्यों के साधनों को पूरे करके सब कार्यों को सिद्ध करे। जैसे विदुषी स्त्री और विद्वान् पुरुषों की गृहाश्रम के कर्त्तव्य कर्मों में प्रीति हो, वैसा उपदेश किया करे॥५९॥

ता अस्येत्यस्य प्रियमेधा ऋषिः। आपो देवताः। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथ राजप्रजाधर्ममाह॥

अब राजा प्रजा का धर्म अगले मन्त्र में कहा है॥

ताऽअस्य सूददोहसः सोमꣳ श्रीणन्ति पृश्नयः।

जन्मन्देवानां विशस्त्रिष्वारोचने दिवः॥६०॥

ताः। अस्य। सूददोहस इति सूदऽदोहसः। सोमम्। श्रीणन्ति। पृश्नयः। जन्मन्। देवानाम्। विशः। त्रिषु। आ। रोचने। दिवः॥६०॥

पदार्थः-(**ताः**) (**अस्य**) सभाध्यक्षस्य (**सूददोहसः**) सूदाः पाककर्त्तारो दोहसः प्रपूरकाश्च यासु ताः (**सोमम्**) सोमवल्याद्योषधिरसान्वितं पाकम् (**श्रीणन्ति**) पचन्ति (**पृश्नयः**) प्रष्ठ्यः (**जन्मन्**) जन्मनि

(देवानाम्) विदुषाम् **(विश:)** या विशन्ति **(त्रिषु)** वेदरीत्या कर्मोपासनाज्ञानेषु **(आ)** **(रोचने)** प्रकाशने **(दिव:)** द्योतनात्मकस्य परमात्मन:॥६०॥

अन्वय:-या विद्यासुशिक्षान्विता देवानां जन्मन् पृश्नय: सूददोहसस्त्रिषु दिवो रोचने च प्रवर्त्तमाना विश: सन्ति, ता अस्य सोममाश्रीणन्ति॥६०॥

भावार्थ:-प्रजापतिभि: सर्वा: प्रजा: विद्यासुशिक्षाग्रहणे नियोजनीया:, प्रजाश्च नियुञ्जन्तु। नह्येतेन विना कर्मोपासनाज्ञानेश्वराणां यथार्थो बोधो भवितुमर्हति॥६०॥

पदार्थ:-जो विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त **(देवानाम्)** विद्वानों के **(जन्मन्)** जन्म विषय में **(पृश्नय:)** पूछने हारी **(सूददोहस:)** रसोइया और कार्य्यों के पूर्ण करने वाले पुरुषों से युक्त **(त्रिषु)** वेदरीति से कर्म, उपासना और ज्ञानों तथा **(दिव:)** सब के अन्त:प्रकाशक परमात्मा के **(रोचने)** प्रकाश में वर्त्तमान **(विश:)** प्रजा हैं, **(ता:)** वे **(अस्य)** इस सभाध्यक्ष राजा के **(सोमम्)** सोमवल्ली आदि ओषधियों के रसों से युक्त भोजनीय पदार्थों को **(आ)** सब ओर से **(श्रीणन्ति)** पकाती हैं॥६०॥

भावार्थ:-प्रजापालक पुरुषों को चाहिये कि सब प्रजाओं को विद्या और अच्छी शिक्षा के ग्रहण में नियुक्त करें और प्रजा भी स्वयं नियुक्त हों। इस के विना कर्म, उपासना, ज्ञान और ईश्वर का यथार्थ बोध कभी नहीं हो सकता॥६०॥

इन्द्रं विश्वा इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषि:। इन्द्रो देवता। निचृदनुष्टुप् छन्द:। गान्धार: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

इन्द्रं॒ विश्वा॑ऽअवीवृधन्त्समु॒द्रव्य॑चसं॒ गिर॑:।

र॒थीत॑मꣳ र॒थीनां॒ वाजा॑ना॒ꣳ सत्प॑तिं॒ पति॑म्॥६१॥

इन्द्र॑म्। विश्वा॑:। अ॒वी॒वृ॒ध॒न्। स॒मु॒द्रव्य॑चस॒मिति॑ समु॒द्रऽव्य॑चसम्। गिर॑:। र॒थीत॑मम्। र॒थित॑म॒मिति॑ र॒थिऽत॑मम्। र॒थीना॑म्। र॒थिना॒मिति॑ र॒थिऽना॑म्। वाजा॑नाम्। सत्प॑ति॒मिति॒ सत्ऽप॑तिम्। पति॑म्॥६१॥

पदार्थ:-**(इन्द्रम्)** परमैश्वर्ययुक्तं सभेशम् **(विश्वा:)** अखिला: **(अवीवृधन्)** वर्धयन्तु **(समुद्रव्यचसम्)** समुद्रस्यान्तरिक्षस्य व्यचो व्याप्तिर्यस्य तम् **(गिर:)** विद्यासुशिक्षान्विता वाण्य: **(रथीतमम्)** अतिशयितो रथी। अत्र **ईद्रथिन:॥** (अष्टा०८।२।१७) इति वार्तिकेन ईकारादेश: **(रथीनाम्)** शूरवीराणां मध्ये अत्र **अन्येषामपि०** [अ०६.३.१३७] इति दीर्घ: **(वाजानाम्)** विज्ञानवताम् **(सत्पतिम्)** सतां व्यवहाराणां विदुषां वा पालकम् **(पतिम्)** स्वामिनम्। [अयं मन्त्र: शत०८.७.३.७ व्याख्यात:]॥६१॥

अन्वय:-विश्वा गिर: समुद्रव्यचसं रथीनां रथीतमं वाजानां सत्पतिं प्रजानां पतिमिन्द्रमवीवृधन्॥६१॥

भावार्थः-राजप्रजाजना राजधर्मयुक्तमीश्वरमिव वर्त्तमानं न्यायाधीशं सभापतिं सततं प्रोत्साहयन्तु। एवं सभापतिरेताँश्च॥६१॥

पदार्थः-**(विश्वाः)** सब **(गिरः)** विद्या और शिक्षा से युक्त वाणी **(समुद्रव्यचसम्)** आकाश के तुल्य व्याप्तिवाले **(रथीनाम्)** शूरवीरों में **(रथीतमम्)** उत्तम शूरवीर **(वाजानाम्)** विज्ञानी पुरुषों के **(सत्पतिम्)** सत्यव्यवहारों और विद्वानों के रक्षक तथा प्रजाओं के **(पतिम्)** स्वामी **(इन्द्रम्)** परमसम्पत्तियुक्त सभापति राजा को **(अवीवृधन्)** बढ़ावें॥६१॥

भावार्थः-राजा और प्रजा के जन राजधर्म से युक्त ईश्वर के समान वर्त्तमान न्यायाधीश सभापति को निरन्तर उत्साह देवें, ऐसे ही सभापति इन प्रजा और राजा के पुरुषों को भी उत्साही करें॥६१॥

प्रोथदश्व इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। अग्निर्देवता। विराट्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

प्रोथदश्वो न यवसेऽविष्यन्यदा महः संवरणाद्व्यस्थात्।

आदस्य वातोऽअनु वाति शोचिरध स्म ते व्रजनं कृष्णमस्ति॥६२॥

प्रोथत्। अश्वः। न। यवसे। अविष्यन्। यदा। महः। संवरणादिति सम्ऽवरणात्। वि। अस्थात्। आत्। अस्य। वातः। अनु। वाति। शोचिः। अध। स्म। ते। व्रजनम्। कृष्णम्। अस्ति॥६२॥

पदार्थः-**(प्रोथत्)** पर्याप्नुयात् **(अश्वः)** वाजी **(न)** इव **(यवसे)** बुसाद्याय **(अविष्यन्)** रक्षणादिकं कुर्वन् **(यदा)** **(महः)** महतः **(संवरणात्)** आच्छादनात् **(वि)** **(अस्थात्)** तिष्ठेत् **(आत्)** **(अस्य)** **(वातः)** गन्ता **(अनु)** **(वाति)** गच्छति **(शोचिः)** प्रकाशः **(अध)** अथ **(स्म)** एव **(ते)** तव **(व्रजनम्)** गमनम् **(कृष्णम्)** कर्षकम् **(अस्ति)**। **[अयं मन्त्रः** शत०८.७.३.१२ व्याख्यातः]॥६२॥

अन्वयः-हे राजन्! भवान् यवसेऽश्वो न प्रजाः प्रोथत्। यदा महः संवरणादविष्यन् व्यस्थादादस्य ते तव व्रजनं कृष्णं शोचिरस्ति। अध स्मास्य तव वातोऽनुवाति॥६२॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। यथा पालनात् तुरंगाः पुष्टा भूत्वा कार्य्यसिद्धिक्षमा भवन्ति, तथैव नयेन संपालिताः प्रजाः सन्तुष्टा भूत्वा राज्यं वर्धयन्ति॥६२॥

पदार्थः-हे राजन्! आप **(यवसे)** भूसा आदि के लिये **(अश्वः)** घोड़े के **(न)** समान प्रजाओं को **(प्रोथत्)** समर्थ कीजिये **(यदा)** जब **(महः)** बड़े **(संवरणात्)** आच्छादन से **(अविष्यन्)** रक्षा आदि करते हुए **(व्यस्थात्)** स्थित होवें **(आत्)** पुनः **(अस्य)** इस **(ते)** आप का **(व्रजनम्)** चलने तथा **(कृष्णम्)** आकर्षण करने वाला **(शोचिः)** प्रकाश **(अस्ति)** है, **(अध)** इस के पश्चात् **(स्म)** ही आप का **(वातः)** चलने वाला भृत्य **(अनु, वाति)** पीछे चलता है॥६२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे रक्षा करने से घोड़े पुष्ट होकर कार्य्य सिद्ध करने में समर्थ होते हैं, वैसे ही न्याय से रक्षा की हुई प्रजा सन्तुष्ट होकर राज्य को बढ़ाती हैं॥६२॥

आयोष्ट्वेत्यस्य वसिष्ठ ऋषि:। विदुषी देवता। विराट् त्रिष्टुप् छन्द:। धैवत: स्वर:॥

विदुष्या किं कर्त्तव्यमित्याह॥

विदुषी स्त्री को क्या करना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

आ॒योष्ट्वा॒ सद॑ने सादया॒म्यव॑तश्छा॒याया॑ꣳ समु॒द्रस्य॒ हृद॑ये।
र॒श्मी॒वतीं॒ भास्व॑ती॒मा या द्यां भास्या पृ॑थि॒वीमोर्व॒न्तरि॑क्षम्॥६३॥

आ॒योः। त्वा॒। सद॑ने। सा॒द॒या॒मि॒। अव॑तः। छा॒याया॑म्। स॒मु॒द्रस्य॑। हृद॑ये। र॒श्मी॒वती॒मिति॑ र॒श्मि॒ऽवती॑म्। भास्व॑तीम्। आ। या। द्याम्। भासि॑। आ। पृ॒थि॒वीम्। आ। उ॒रु। अ॒न्तरि॑क्षम्॥६३॥

पदार्थ:-**(आयो:)** न्यायानुगामिनो दीर्घजीवितस्य **(त्वा) त्वाम् (सदने) स्थाने (सादयामि) (अवत:)** रक्षणादि कुर्वत: **(छायायाम्)** आश्रये **(समुद्रस्य) (हृदये)** मध्ये **(रश्मीवतीम्)** प्रशस्तविद्याप्रकाशयुक्ताम्। अत्र अन्येषामपि [अ०६.३.१३७] इति दीर्घ: **(भास्वतीम्)** देदीप्यमानाम् **(आ) (या) (द्याम्)** प्रकाशम् **(भासि)** दीपयसि **(आ) (पृथिवीम्)** भूमिम् **(आ) (उरु) (अन्तरिक्षम्)** आकाशम्। [अयं मन्त्र: शत०८.७.३.१३ व्याख्यात:]॥६३॥

अन्वय:-हे स्त्रि! या त्वं द्यां पृथिवीमन्तरिक्षमुर्वाभासि तां रश्मीवतीं भास्वतीं वा त्वामायो: सदनेऽवतश्छायायामा सादयामि समुद्रस्य हृदयेऽहमा सादयामि॥६३॥

भावार्थ:-हे स्त्रि! सम्यक् पालकस्य पत्यु: सदने तदाश्रये समुद्रवदक्षोभां हृद्यां त्वां स्थापयामि त्वं गृहाश्रमधर्मं प्रकाश्य पत्यादीन् सुखय, त्वां चैते सुखयन्तु॥६३॥

पदार्थ:-हे स्त्रि! **(या)** जो तू **(द्याम्)** प्रकाश **(पृथिवीम्)** भूमि और **(अन्तरिक्षम्)** आकाश को **(उरु)** बहुत **(आ, भासि)** प्रकाशित करती है, उस **(रश्मीवतीम्)** शुद्ध विद्या के प्रकाश से युक्त **(भास्वतीम्)** शोभा को प्राप्त हुई **(त्वा)** तुझ को **(आयो:)** न्यायानुकूल चलने वाले चिरंजीवी पुरुष के **(सदने)** स्थान में और **(अवत:)** रक्षा आदि करते हुए के **(छायायाम्)** आश्रय में **(आ, सादयामि)** अच्छे प्रकार स्थापित तथा **(समुद्रस्य)** अन्तरिक्ष के **(हृदये)** बीच **(आ)** शुद्ध प्रकार से मैं स्थित कराता हूं॥६३॥

भावार्थ:-हे स्त्रि! अच्छे प्रकार पालने हारे पति के आश्रयरूप स्थान में समुद्र के तुल्य चञ्चलतारहित गम्भीरतायुक्त प्यारी तुझ को स्थित करता हूं। तू गृहाश्रम के धर्म का प्रकाश कर पति आदि को सुखी रख और तुझ को भी पति आदि सुखी रक्खें॥६३॥

परमेष्ठीत्यस्य वसिष्ठ ऋषि:। परमात्मा देवता। आकृतिश्छन्द:। पञ्चम: स्वर:॥

दम्पतीभ्यां कथं भवितव्यमित्याह॥

स्त्री-पुरुष परस्पर कैसे हों, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

प॒र॒मे॒ष्ठी त्वा॑ सादयतु दि॒वस्पृ॒ष्ठे व्यच॑स्वतीं॒ प्रथ॑स्वतीं॒ दिवं॑ यच्छ॒ दिवं॑ दृꣳह॒ दिवं॒ मा हिꣳसीः। विश्वा॑स्मै प्रा॒णाया॑पा॒नाय॑ व्या॒नायो॑दा॒नाय॑ प्रति॒ष्ठायै॑ च॒रित्रा॑य। सूर्य॑स्त्वा॒भिपा॑तु म॒ह्या स्व॒स्त्या छ॒र्दिषा॒ शन्त॑मेन॒ तया॑ दे॒वत॑याऽङ्गिर॒स्वद् ध्रु॒वे सी॑दतम्॥६४॥

प॒र॒मे॒ष्ठी। प॒र॒मे॒स्थीति॑ परमेऽस्थी। त्वा॒। सा॒द॒य॒तु॒। दि॒वः। पृ॒ष्ठे। व्यच॑स्वतीम्। प्रथ॑स्वतीम्। दिव॑म्। य॒च्छ॒। दिव॑म्। दृ॒ꣳह॒। दिव॑म्। मा। हि॒ꣳसीः॒। विश्वा॑स्मै। प्रा॒णाय॑। अ॒पा॒नायेत्य॑पऽआ॒नाय॑। व्या॒नायेति॑ विऽआ॒नाय॑। उ॒दा॒नायेत्यु॑त्ऽआ॒नाय॑। प्र॒ति॒ष्ठायै॑। प्र॒ति॒स्थाया॒ इति॑ प्रति॒ऽस्थायै॑। च॒रित्रा॑य। सूर्य्यः॑। त्वा॒। अ॒भि। पा॒तु॒। म॒ह्या। स्व॒स्त्या। छ॒र्दिषा॑। शन्त॑मे॒नेति॒ शम्ऽत॑मेन। तया॑। दे॒वत॑या। अ॒ङ्गि॒र॒स्वत्। ध्रु॒वे। सी॒द॒त॒म्। [अयं मन्त्रः शत०८.७.३.१४-१९ व्याख्यातः]॥६४॥

पदार्थः-(**परमेष्ठी**) परमात्मा (**त्वा**) त्वां सतीं स्त्रियम् (**सादयतु**) (**दिवः**) कमनीयस्य गृहस्थव्यवहारस्य (**पृष्ठे**) आधारे (**व्यचस्वतीम्**) प्रशस्तविद्याव्यापिकाम् (**प्रथस्वतीम्**) बहुः प्रथः प्रख्यातिः प्रशंसा विद्यते यस्यां ताम् (**दिवम्**) न्यायप्रकाशम् (**यच्छ**) देहि (**दिवम्**) विद्यासूर्यम् (**दृंह**) (**दिवम्**) धर्मप्रकाशम् (**मा**) (**हिंसीः**) हिंस्याः (**विश्वस्मै**) समग्राय (**प्राणाय**) जीवनसुखाय (**अपानाय**) दुःखनिवृत्तये (**व्यानाय**) विविधविद्याव्याप्तये (**उदानाय**) उत्कृष्टबलाय (**प्रतिष्ठायै**) सर्वत्र सत्काराय (**चरित्राय**) सत्कर्मानुष्ठानाय (**सूर्यः**) चराचरात्मेश्वरः (**त्वा**) त्वाम् (**अभि**) सर्वतः (**पातु**) रक्षतु (**मह्या**) महत्या (**स्वस्त्या**) सत्क्रियया (**छर्दिषा**) सत्यासत्यदीप्तेन (**शन्तमेन**) अतिशयसुखेन (**तया**) (**देवतया**) (**अङ्गिरस्वत्**) (**ध्रुवे**) पुरुषः स्त्री च (**सीदतम्**)॥६४॥

अन्वयः-हे स्त्रि! परमेष्ठी विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय दिवस्पृष्ठे प्रथस्वतीं व्यचस्वतीं यां त्वा त्वां सादयतु, सा त्वं दिवं यच्छ, दिवं दृंह दिवं मा हिंसीः, सूर्यो मह्या स्वस्त्या शन्तमेन छर्दिषा त्वाभिपातु स पतिस्त्वं च तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम्॥६४॥

भावार्थः-परमेश्वर आज्ञापयति यथा शिशिरर्त्तुः सुखप्रदो भवति तथा स्त्रीपुरुषौ परस्परं संतुष्टौ भूत्वा सर्वाण्युत्तमानि कर्माण्यनुष्ठाय दुष्टानि त्यक्त्वा परमेश्वरोपासनया च सततं प्रमोदेताम्॥६४॥

पदार्थः-हे स्त्रि! (**परमेष्ठी**) परमात्मा (**विश्वस्मै**) समग्र (**प्राणाय**) जीवन के सुख (**अपानाय**) दुःखनिवृत्ति (**व्यानाय**) नाना विद्याओं की व्याप्ति (**उदानाय**) उत्तम बल (**प्रतिष्ठायै**) सर्वत्र सत्कार और (**चरित्राय**) श्रेष्ठ कर्मों के अनुष्ठान के लिये (**दिवः**) कमनीय गृहस्थ व्यवहार के (**पृष्ठे**) आधार में (**प्रथस्वतीम्**) बहुत प्रसिद्ध प्रशंसा वाली (**व्यचस्वतीम्**) प्रशंसित विद्या में व्याप्त जिस (**त्वा**) तुझ को (**सादयतु**) स्थापित करे, सो तू (**दिवम्**) न्याय प्रकाश को (**यच्छ**) दिया कर (**दिवम्**) विद्यारूप सूर्य को (**दृंह**) दृढ़ कर (**दिवम्**) धर्म के प्रकाश को (**मा, हिंसीः**) मत नष्ट कर (**सूर्यः**) चराचर जगत् का स्वामी

ईश्वर **(मह्या)** बड़े अच्छे **(स्वस्त्या)** सत्कार **(शन्तमेन)** अतिशय सुख और **(छर्दिषा)** सत्यासत्य के प्रकाश से **(त्वा)** तुझ को **(अभिपातु)** सब ओर से रक्षा करे, वह तेरा पति और तू दोनों **(तया)** उस **(देवतया)** परमेश्वर देवता के साथ **(अङ्गिरस्वत्)** प्राण के तुल्य **(ध्रुवे)** निश्चल **(सीदतम्)** स्थिर रहो॥६४॥

भावार्थः-परमेश्वर आज्ञा करता है कि जैसे शिशिर ऋतु सुखदायी होता है, वैसे स्त्री-पुरुष परस्पर सन्तोषी हों, सब उत्तम कर्मों का अनुष्ठान कर और दुष्ट कर्मों को छोड़ के परमेश्वर की उपासना से निरन्तर आनन्द किया करें॥६४॥

सहस्रस्येत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। विद्वान् देवता। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनर्मनुष्यैः किं कर्त्तव्यमित्याह॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

स॒हस्र॑स्य प्र॒मासि॑ स॒हस्र॑स्य प्रति॒मासि॑ स॒हस्र॑स्यो॒न्मासि॑ सा॒ह॒स्रोऽसि स॒हस्रा॑य त्वा॥६५॥

स॒हस्र॑स्य। प्र॒मेति॑ प्र॒ऽमा। अ॒सि॒। स॒हस्र॑स्य। प्र॒ति॒मेति॑ प्रति॒ऽमा। अ॒सि॒। स॒हस्र॑स्य। उ॒न्मेत्यु॒त्ऽमा। अ॒सि॒। सा॒ह॒स्रः। अ॒सि॒। स॒हस्रा॑य। त्वा॒॥६५॥

पदार्थः-**(सहस्रस्य)** असंख्यपदार्थयुक्तस्य जगतः **(प्रमा)** प्रमाणं यथार्थविज्ञानम् **(असि)** **(सहस्रस्य)** असंख्यपदार्थविशेषस्य **(प्रतिमा)** प्रतिमीयन्ते परिमीयन्ते सर्वे: पदार्था यया सा **(असि)** **(सहस्रस्य)** असंख्यातस्य स्थूलवस्तुनः **(उन्मा)** ऊर्ध्वं मिनोति यया तुलया तद्वत् **(असि)** **(साहस्रः)** सहस्रमसंख्याताः पदार्था विद्या वा विद्यन्ते यस्य सः **(असि)** **(सहस्राय)** असंख्यप्रयोजनाय **(त्वा)** त्वाम्। [अयं मन्त्रः शत०८.७.४.१० व्याख्यातः]॥६५॥

अन्वयः-हे विद्वन् विदुषि वा यतस्त्वं सहस्रस्य प्रमेवासि सहस्रस्य प्रतिमेवासि सहस्रस्योन्मेवासि साहस्रोऽसि तस्मात् सहस्राय त्वा त्वां परमेष्ठी सत्ये व्यवहारे सादयतु॥६५॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। पूर्वमन्त्रात् परमेष्ठी सादयत्विति पदद्वयमनुवर्त्तते। मनुष्याणां त्रिभिः साधनैर्व्यवहाराः सिध्यन्ति। एकं प्रमा यद्यथार्थविज्ञानम्, द्वितीया प्रतिमा यानि परिमाणसाधनानि पदार्थतोलनार्थानि, तृतीयमुन्मा तुलादिकं चेति॥६५॥

इति शिशिरर्त्तोर्वर्णनम्। अत्रर्त्तुविद्याप्रतिपादनादेतदर्थस्य पूर्वाध्यायार्थेन सह संगतिरस्तीति वेद्यम्॥

पदार्थः-हे विद्वन् पुरुष वा विदुषी स्त्रि! जिस कारण तू **(सहस्रस्य)** असंख्यात पदार्थों से युक्त जगत् के **(प्रमा)** प्रमाण यथार्थ ज्ञान के तुल्य **(असि)** है, **(सहस्रस्य)** असंख्य विशेष पदार्थों के **(प्रतिमा)** तोलनसाधन के तुल्य **(असि)** है, **(सहस्रस्य)** असंख्य स्थूल वस्तुओं के **(उन्मा)** तोलने की तुला के समान **(असि)** है, **(साहस्रः)** असंख्य पदार्थ और विद्याओं से युक्त **(असि)** है, इस कारण **(सहस्राय)** असंख्यात प्रयोजनों के लिये **(त्वा)** तुझ को परमात्मा व्यवहार में स्थित करे॥६५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। यहां पूर्वमन्त्र से परमेष्ठी, सादयतु इन दो पदों की अनुवृत्ति आती है। तीन साधनों से मनुष्यों के व्यवहार सिद्ध होते हैं। एक तो यथार्थविज्ञान, दूसरा पदार्थ तोलने के लिये तोल के साधन बाट और तीसरा तराजू आदि। यह शिशिर ऋतु का वर्णन पूरा हुआ॥६५॥

इस अध्याय में ऋतुविद्या का प्रतिपादन होने से इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये।

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य्याणां श्रीमत्परमविदुषां विरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मिते संस्कृतभाषाऽर्य्यभाषाभ्यां विभूषिते सुप्रमाणयुक्ते यजुर्वेदभाष्ये पञ्चदशोऽध्यायः सम्पूर्णः॥१५॥

॥ओ३म्॥

अथ षोडशोऽध्याय आरभ्यते

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव। यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व॥ यजु० ३०.३॥

नमस्त इत्यस्य परमेष्ठी वा कुत्स ऋषिः। रुद्रो देवता। आर्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अथ राजधर्म उपदिश्यते॥

अब सोलहवें अध्याय का आरम्भ करते हैं। इस के प्रथम मन्त्र में राजधर्म का उपदेश किया है॥

नम॑स्ते रुद्र म॒न्यव॑ऽउ॒तो त॒ऽइष॑वे॒ नमः॑।

बा॒हुभ्या॑मु॒त ते॒ नमः॑॥ १॥

नमः॑। ते॒। रु॒द्र॒। म॒न्यवे॑। उ॒तोऽइत्यु॒तो। ते॒। इष॑वे। नमः॑। बा॒हुभ्या॒मिति॑ बा॒हुऽभ्या॑म्। उ॒त। ते॒। नमः॑॥ १॥

पदार्थः-(नमः) वज्रम्। **नम इति वज्रनामसु पठितम्॥** (निघं०२।२०) **(ते)** तवोपरि **(रुद्र)** दुष्टानां शत्रुणां रोदयितः। **कतमे ते रुद्रा इति दशेमे पुरुषे प्राणा एकादश आत्मा। एकादश रुद्राः कस्मादेते रुद्रा? यदस्मान् मर्त्याच्छरीरादुत्क्रामन्त्यथ रोदयन्ति यत्तद्रोदयन्ति तस्माद् रुद्राः॥** इति शतपथब्राह्मणे। **रोदेर्णिलुक् च।** [उणा०२.२२] अनेनोणादिगणसूत्रेण रोदिधातो रक् प्रत्ययो णिलुक् च। **(मन्यवे)** क्रोधयुक्ताय वीराय **(उतो)** अपि **(ते)** तव **(इषवे)** इष्णात्यभीक्ष्णं हिनस्ति शत्रून् येन तस्मै **(नमः)** अन्नम्। **नम इत्यन्ननामसु पठितम्॥** (निघं०२।७) **(बाहुभ्याम्)** भुजाभ्याम् **(उत)** अपि **(ते)** तव **(नमः)** वज्रम्॥१॥

अन्वयः-हे रुद्र! ते मन्यवे नमोऽस्तु। उतो इषवे ते नमोऽस्तु। उत ते बाहुभ्यां नमोऽस्तु॥१॥

भावार्थः-ये राज्यं चिकीर्षेयुस्ते बाहुबलं युद्धशिक्षाशस्त्रास्त्राणि च सम्पादयेयुः॥१॥

पदार्थः-हे **(रुद्र)** दुष्ट शत्रुओं को रुलानेहारे राजन्! **(ते)** तेरे **(मन्यवे)** क्रोधयुक्त वीर पुरुष के लिये **(नमः)** वज्र प्राप्त हो **(उतो)** और **(इषवे)** शत्रुओं को मारनेहारे **(ते)** तेरे लिये **(नमः)** अन्न प्राप्त हो **(उत)** और **(ते)** तेरे **(बाहुभ्याम्)** भुजाओं से **(नमः)** वज्र शत्रुओं को प्राप्त हो॥१॥

भावार्थः-जो राज्य किया चाहें, वे हाथ पांव का बल, युद्ध की शिक्षा तथा शस्त्र और अस्त्रों का संग्रह करें॥१॥

या त इत्यस्य परमेष्ठी वा कुत्स ऋषिः। रुद्रो देवता। स्वराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथ शिक्षकशिष्यव्यवहारमाह॥

अब शिक्षक और शिष्य का व्यवहार अगले मन्त्र में कहा है॥

या ते॑ रुद्र शि॒वा त॒नूरघो॒राऽपा॑पकाशिनी।

तया॑ नस्त॒न्वा॒ शन्त॑मया॒ गिरि॑शन्ता॒भि चा॑कशीहि॥ २॥

या। ते॒। रु॒द्र॒। शि॒वा। त॒नूः। अघो॑रा। अपा॑पकाशि॒नीत्यपा॑पऽकाशिनी। तया॑। न॒ः। त॒न्वा॒। शन्त॑म॒येति॒ शम्ऽत॑मया। गिरि॑श॒न्तेति॒ गिरि॑ऽशन्त। अ॒भि। चा॒क॒शी॒हि॒॥ २॥

पदार्थः-(**या**) (**ते**) तव (**रुद्र**) दुष्टानां भयङ्कर श्रेष्ठानां सुखकर (**शिवा**) कल्याणकारिणी (**तनूः**) शरीरं विस्तृतोपदेशनीतिर्वा (**अघोरा**) अविद्यमानो घोर उपद्रवो यया सा (**अपापकाशिनी**) अपापान् सत्यधर्मान् काशितुं शीलमस्याः सा (**तया**) (**नः**) अस्मान् (**तन्वा**) विस्तृतया (**शन्तमया**) अतिशयेन सुखप्रापिकया (**गिरिशन्त**) यो गिरिणा मेघेन सत्योपदेशेन वा शं सुखं तनोति तत्सम्बुद्धौ। **गिरिरिति मेघनामसु पठितम्॥** (निघं०१।१०) (**अभि**) सर्वतः (**चाकशीहि**) भृशं कक्ष्व पुनः पुनः शाधि। अयं कशधातोर्यङ्लुगन्तः प्रयोगः। वा छन्दसि (अष्टा०३।४।८८) इति पित्त्वादीट्॥ २॥

अन्वयः-हे गिरिशन्त रुद्र! या ते तवाघोराऽपापकाशिनी शिवा तनूरस्ति, तया शन्तमया तन्वा नस्त्वमभिचाकशीहि॥ २॥

भावार्थः-शिक्षकाः शिष्येभ्यः धर्म्यां नीतिं शिक्षित्वा निष्पापान् कल्याणाचरणान् सम्पादयन्तु॥ २॥

पदार्थः-हे (**गिरिशन्त**) मेघ वा सत्य उपदेश से सुख पहुँचाने वाले (**रुद्र**) दुष्टों को भय और श्रेष्ठों के लिये सुखकारी शिक्षक विद्वन्! (**या**) जो (**ते**) आप की (**अघोरा**) घोर उपद्रव से रहित (**अपापकाशिनी**) सत्य धर्मों को प्रकाशित करने हारी (**शिवा**) कल्याणकारिणी (**तनूः**) देह वा विस्तृत उपदेश रूप नीति है (**तया**) उस (**शन्तमया**) अत्यन्त सुख प्राप्त कराने वाली (**तन्वा**) देह वा विस्तृत उपदेश की नीति से (**नः**) हम लोगों को आप (**अभि, चाकशीहि**) सब ओर से शीघ्र शिक्षा कीजिये॥ २॥

भावार्थः-शिक्षक लोग शिष्यों के लिये धर्मयुक्त नीति की शिक्षा दें और पापों से पृथक् करके कल्याणरूपी कर्मों के आचरण में नियुक्त करें॥ २॥

यामिषुमित्यस्य परमेष्ठी वा कुत्स ऋषिः। रुद्रो देवता। विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथ राजपुरुषैः किं कर्त्तव्यमित्याह॥

अब राजपुरुषों को क्या करना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

यामिषु॑ं गिरिशन्त॒ हस्ते॑ बि॒भर्ष्यस्त॑वे।
शि॒वां गि॑रित्र॒ तां कु॑रु॒ मा हि॑ꣳसी॒ः पुरु॑षं॒ जग॑त्॥ ३॥

याम्। इषु॑म्। गि॒रि॒श॒न्तेति॑ गिरिऽशन्त। हस्ते॑। बि॒भर्षि॑। अस्त॑वे। शि॒वाम्। गि॒रि॒त्रेति॑ गिरिऽत्र। ताम्। कु॒रु॒। मा। हि॒ꣳसी॒ः। पुरु॑षम्। जग॑त्॥ ३॥

पदार्थः-(**याम्**) (**इषुम्**) बाणावलिम् (**गिरिशन्त**) गिरिणा मेघेन शं तनोति तत्सम्बुद्धौ (**हस्ते**) (**बिभर्षि**) धरसि (**अस्तवे**) असितुं प्रक्षेप्तुम्, अत्र अस धातोस्तुमर्थे तवेन् प्रत्ययः। (**शिवाम्**)

मङ्गलकारिणीम् **(गिरित्र)** गिरीन् विद्योपदेशकान् मेघान् वा त्रायते रक्षति तत्सम्बुद्धौ **(ताम्)** **(कुरु)** **(मा)** निषेधे **(हिंसीः)** हिंस्याः **(पुरुषम्)** पुरुषार्थयुक्तम् **(जगत्)** संसारम्॥३॥

अन्वयः-हे गिरिशन्त सेनापते! यतस्त्वमस्तवे यामिषुं हस्ते बिभर्षि, अतस्तां शिवां कुरु। हे गिरित्र! त्वं पुरुषं जगन्मा हिंसीः॥३॥

भावार्थः-राजपुरुषैः युद्धविद्यां बुध्वा शस्त्राणि धृत्वा मनुष्यादयः श्रेष्ठा प्राणिनो नो हिंसनीयाः, किन्तु मङ्गलाचारेण रक्षणीयाः॥३॥

पदार्थः-हे **(गिरिशन्त)** मेघ द्वारा सुख पहुंचाने वाले सेनापति! जिस कारण तू **(अस्तवे)** फेंकने के लिये **(याम्)** जिस **(इषुम्)** बाण को **(हस्ते)** हाथ में **(बिभर्षि)** धारण करता है, इसलिये **(ताम्)** उसको **(शिवाम्)** मङ्गलकारी **(कुरु)** कर। हे **(गिरित्र)** विद्या के उपदेशकों वा मेघों की रक्षा करनेहारे राजपुरुष! तू **(पुरुषम्)** पुरुषार्थयुक्त मनुष्यादि **(जगत्)** संसार को **(मा)** मत **(हिंसीः)** मार॥३॥

भावार्थः-राजपुरुषों को चाहिये कि युद्धविद्या को जान और शस्त्र-अस्त्रों को धारण करके मनुष्यादि श्रेष्ठ प्राणियों को क्लेश न देवें वा न मारें, किन्तु मङ्गलरूप आचरण से सब की रक्षा करें॥३॥

शिवेनेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। रुद्रो देवता। निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथ चिकित्सककृत्यमाह॥

अब वैद्य का कृत्य यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

शि॒वेन॒ वच॑सा॒ त्वा॒ गिरि॒शाच्छा॑ वदामसि।

यथा॑ नः॒ सर्व॒मिज्जग॑दय॒क्ष्मꣳ सु॒मना॒ऽअस॑त्॥४॥

शि॒वेन॑। वच॑सा। त्वा॒। गिरि॒शेति॒ गिरि॑ऽश। अच्छ॑। व॒दा॒म॒सि॒। यथा॑। नः॒। सर्व॑म्। इत्। जग॑त्। अ॒य॒क्ष्मम्। सु॒मना॒ इति॑ सु॒ऽमना॑ः। अस॑त्॥४॥

पदार्थः-**(शिवेन)** कल्याणकारकेण **(वचसा)** वचनेन **(त्वा)** त्वाम् **(गिरिश)** यो गिरिषु पर्वतेषु मेघेषु वा शेते तत्सम्बुद्धौ **(अच्छ)** सम्यक्। **निपातस्य च** [अष्टा०६.३.१३६] इति दीर्घः। **(वदामसि)** वदेम **(यथा)** **(नः)** अस्माकम् **(सर्वम्)** **(इत्)** एव **(जगत्)** मनुष्यादिकं जङ्गमं राज्यम् **(अयक्ष्मम्)** यक्ष्मादिरोगरहितम् **(सुमनाः)** शोभनम् मनो यस्य सः **(असत्)** स्यात्॥४॥

अन्वयः-हे गिरिश रुद्र वैद्यराज! सुमनास्त्वं यथा नः सर्वं जगदयक्ष्ममसत् तथेच्छिवेन वचसा त्वा वयमच्छ वदामसि॥४॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। यो वैद्यकशास्त्रमधीत्य पर्वतादिषु स्थिता ओषधीरपो वा सुपरीक्ष्य सर्वेषां कल्याणाय निष्कपटित्वेन रोगान् निवार्य्य प्रियस्वरूपया वाचा वर्त्तेत तं वैद्यं सर्वे सत्कुर्युः॥४॥

पदार्थ:-हे **(गिरिश)** पर्वत वा मेघों में सोनेवाले रोगनाशक वैद्यराज! तू **(सुमना:)** प्रसन्नचित्त होकर आप **(यथा)** जैसे **(न:)** हमारा **(सर्वम्)** सब **(जगत्)** मनुष्यादि जङ्गम और स्थावर राज्य **(अयक्ष्मम्)** क्षय आदि राजरोगों से रहित **(असत्)** हो वैसे **(इत्)** ही **(शिवेन)** कल्याणकारी **(वचसा)** वचन से **(त्वा)** तुझ को हम लोग **(अच्छ वदामसि)** अच्छा कहते हैं॥४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो पुरुष वैद्यकशास्त्र को पढ़ पर्वतादि स्थानों की ओषधियों वा जलों की परीक्षा कर और सब के कल्याण के लिये निष्कपटता से रोगों को निवृत्त करके प्रिय वाणी से वर्त्ते, उस वैद्य का सब लोग सत्कार करें॥४॥

अध्यवोचदित्यस्य बृहस्पतिर्ऋषि:। एकरुद्रो देवता। भुरिगार्षी बृहती छन्द:। मध्यम: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक्।

अहीँश्च सर्वाञ्जम्भयन्त्सर्वाश्च यातुधान्योऽधराचीः परा सुव॥५॥

अधि। अवोचत्। अधिवक्तेत्यधिऽवक्ता। प्रथमः। दैव्यः। भिषक्। अहीन्। च। सर्वान्। जम्भयन्। सर्वाः। च। यातुधान्य इति यातुऽधान्यः। अधराचीः। परा। सुव॥५॥

पदार्थ:-**(अधि)** **(अवोचत्)** उपदिशेत् **(अधिवक्ता)** सर्वेषामुपर्य्यधिष्ठातृत्वेन वर्त्तमान: सन् वैद्यकशास्त्रस्याध्यापक: **(प्रथम:)** आदिम: **(दैव्य:)** देवेषु विद्वत्सु भव: **(भिषक्)** निदानादिविज्ञानेन रोगनिवारक: **(अहीन्)** सर्पवत् प्राणान्तकान् रोगान् **(च)** **(सर्वान्)** अखिलान् **(जम्भयन्)** औषधैर्निवारयन् **(सर्वा:)** **(च)** **(यातुधान्य:)** रोगकारिण्यो व्यभिचारिण्यश्च स्त्रिय: **(अधराची:)** या अधरान् नीचानञ्चन्ति ता: **(परा)** दूरे **(सुव)** प्रक्षिप॥५॥

अन्वय:-हे रुद्र! य: प्रथमो दैव्योऽधिवक्ता भिषग्भवान् सर्वानहीन् रोगांश्च जम्भयन्नध्यवोचत्, स त्वं याश्च सर्वा यातधान्योऽधराची: सन्ति ताश्च परासुव॥५॥

भावार्थ:-राजादिसभासद: सर्वेषामधिष्ठातारं मुख्यं धार्मिकं लब्धसर्वपरीक्षं वैद्यं राज्ये सेनायां च नियोज्य बलसुखनाशकान् रोगान् व्यभिचारिणो जनान् व्यभिचारिणी: स्त्रीश्च निवारयेयु:॥५॥

पदार्थ:-हे रुद्र रोगनाशक वैद्य! जो **(प्रथम:)** मुख्य **(दैव्य:)** विद्वानों में प्रसिद्ध **(अधिवक्ता)** सब से उत्तम कक्षा के वैद्यकशास्त्र को पढ़ाने तथा **(भिषक्)** निदान आदि को जान के रोगों को निवृत्त करनेवाले आप **(सर्वान्)** सब **(अहीन्)** सर्प के तुल्य प्राणान्त करनेहारे रोगों को **(च)** निश्चय से **(जम्भयन्)** ओषधियों से हटाते हुए **(अध्यवोचत्)** अधिक उपदेश करें सो आप जो **(सर्वा:)** सब **(अधराची:)** नीच गति को

पहुंचाने वाली **(यातुधान्यः)** रोगकारिणी ओषधि वा व्यभिचारिणी स्त्रियाँ हैं, उनको **(परा)** दूर **(सुव)** कीजिये॥५॥

भावार्थः-राजादि सभासद् लोग सब के अधिष्ठाता मुख्य धर्मात्मा जिसने सब रोगों वा ओषधियों की परीक्षा ली हो उस वैद्य को राज्य और सेना में रख के बल और सुख के नाशक रोगों तथा व्यभिचारिणी स्त्री और पुरुषों को निवृत्त करावें॥५॥

असावित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। रुद्रो देवता। निचृदार्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनः स एव राजधर्मः प्रोच्यते॥

फिर भी वही राजधर्म का विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

असौ यस्ताम्रोऽअरुणऽउत बभ्रुः सुमङ्गलः।

ये चैनꣳ रुद्राऽअभितो दिक्षु श्रिताः सहस्रशोऽवैषाꣳ हेडऽईमहे॥६॥

असौ। यः। ताम्रः। अरुणः। उत। बभ्रुः। सुमङ्गल इति सुऽमङ्गलः। ये। च। एनम्। रुद्राः। अभितः। दिक्षु। श्रिताः। सहस्रश इति सहस्रऽशः। अव। एषाम्। हेडः। ईमहे॥६॥

पदार्थः-**(असौ)** श्रुतविषयः **(यः)** **(ताम्रः)** ताम्रमिव कठिनाङ्गः। अत्र **अमितम्योर्दीर्घश्च॥** (उणा०२।१६) अनेनायं सिद्धः। **(अरुणः)** अग्निरिव तीव्रतेजाः **(उत)** अपि **(बभ्रुः)** पिङ्गधूम्रवर्णः **(सुमङ्गलः)** शोभनानि कल्याणकराणि कर्माणि यस्य सः **(ये)** **(च)** **(एनम्)** राजानम् **(रुद्राः)** शत्रूणां रोदयितारः शूरवीराः **(अभितः)** सर्वतः **(दिक्षु)** पूर्वादिषु **(श्रिताः)** सेवमानाः **(सहस्रशः)** असंख्याता बहवः **(अव)** निषेधे **(एषाम्)** वीराणाम् **(हेडः)** अनादरकर्त्ता **(ईमहे)** याचामहे॥६॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! योऽसौ ताम्रो हेडोऽरुणो बभ्रुरुत सुमङ्गलो भवेत्। ये च सहस्रशो रुद्रा अभितो दिक्ष्वेनं श्रिताः स्युरेषामाश्रयेण वयमवेमहे॥६॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यो राजाऽग्निवद् दुष्टदाहकश्चन्द्रवच्छ्रेष्ठाह्लादको न्यायकारी शुभलक्षणो येऽस्येदृशा भृत्या राज्ये सर्वत्र वसन्तु विचरन्तु वा समीपे वर्त्तन्तां तेषां सत्कारेण तैर्दुष्टानां तिरस्कारं यूयं कारयत॥६॥

पदार्थः-हे प्रजास्थ मनुष्यो! **(यः)** जो **(असौ)** वह **(ताम्रः)** ताम्रवत् दृढाङ्गयुक्त **(हेडः)** शत्रुओं का अनादर करने हारा **(अरुणः)** सुन्दर गौराङ्ग **(बभ्रुः)** किञ्चित् पीला वा धुमेला वर्णयुक्त **(उत)** और **(सुमङ्गलः)** सुन्दर कल्याणकारी राजा हो **(च)** और **(ये)** जो **(सहस्रशः)** हजारहों **(रुद्राः)** दुष्ट कर्म करने वालों को रुलानेहारे **(अभितः)** चारों ओर **(दिक्षु)** पूर्वादि दिशाओं में **(एनम्)** इस राजा के **(श्रिताः)** आश्रय से वसते हों **(एषाम्)** इन वीरों का आश्रय लेके हम लोग **(अवेमहे)** विरुद्धाचरण की इच्छा नहीं करते हैं॥६॥

भावार्थ:-हे मनुष्यो! जो राजा अग्नि के समान दुष्टों को भस्म करता, चन्द्र के तुल्य श्रेष्ठों को सुख देता, न्यायकारी, शुभलक्षणयुक्त और जो इस के तुल्य भृत्य राज्य में सर्वत्र वसें, विचरें वा समीप में रहें, उन का सत्कार करके उन से दुष्टों का अपमान तुम लोग कराया करो॥६॥

असौ य इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि:। रुद्रो देवता। विराडार्षी पङ्क्तिश्छन्द:। पञ्चम: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

असौ योऽवसर्पति नीलग्रीवो विलोहित:।
उतैनं गोपाऽअदृश्रन्नदृश्रन्नुदहार्य्यः स दृष्टो मृडयाति न:॥७॥

असौ। य:। अवसर्प्पतीत्यवऽसर्प्पति। नीलग्रीव इति नीलऽग्रीव:। विलोहित इति विऽलोहित:। उत। एनम्। गोपा:। अदृश्रन्। अदृश्रन्। उदहार्य्य इत्युदऽहार्य्य:। स:। दृष्ट:। मृडयाति। न:॥७॥

पदार्थ:-**(असौ)** **(य:)** **(अवसर्पति)** दुष्टेभ्यो विरुद्धं गच्छति **(नीलग्रीव:)** नीलमणियुक्ता ग्रीवा यस्य स: **(विलोहित:)** विविधै: शुभगुणकर्मस्वभावै रोहितो वृद्ध: **(उत)** **(एनम्)** **(गोपा:)** रक्षका भृत्या: **(अदृश्रन्)** समीक्षेरन् **(अदृश्रन्)** पश्येयु: **(उदहार्य्य:)** या उदकं हरन्ति ता: **(स:)** **(दृष्ट:)** समीक्षित: **(मृडयाति)** सुखयतु **(न:)** अस्मान् सज्जनान्॥७॥

अन्वय:-योऽसौ नीलग्रीवो विलोहितो रुद्र: सेनेशोऽवसर्पति यमेनं गोपा अदृश्रन्नुताप्युदहार्य्योऽदृश्रन् स दृष्ट: सन् नोऽस्मान् मृडयाति॥७॥

भावार्थ:-यो दुष्टानां विरोधी श्रेष्ठप्रियो दर्शनीय: सेनापति: सर्वा: सेना रञ्जयेत्, स शत्रून् विजेतुं शक्नुयात्॥७॥

पदार्थ:-**(य:)** जो **(असौ)** वह **(नीलग्रीव:)** नीलमणियों की माला पहिने **(विलोहित:)** विविध प्रकार के शुभ गुण, कर्म और स्वभाव से युक्त श्रेष्ठ **(रुद्र:)** शत्रुओं का हिंसक सेनापति **(अवसर्पति)** दुष्टों से विरुद्ध चलता है। जिस **(एनम्)** इसको **(गोपा:)** रक्षक भृत्य **(अदृश्रन्)** देखें **(उत)** और **(उदहार्य्य:)** जल लाने वाली कहारी स्त्रियां **(अदृश्रन्)** देखें **(स:)** वह सेनापति **(दृष्ट:)** देखा हुआ **(न:)** हम सब धार्मिकों को **(मृडयाति)** सुखी करे॥७॥

भावार्थ:-जो दुष्टों का विरोधी श्रेष्ठों का प्रिय दर्शनीय सेनापति सब सेनाओं को प्रसन्न करे, वह शत्रुओं को जीत सके॥७॥

नमोऽस्त्वित्यस्य प्रजापतिर्ऋषि:। रुद्रो देवता। निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्द:। गान्धार: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

नमो॑ऽस्तु नील॑ग्रीवाय सहस्राक्षाय॑ मी॒ढुषे॑।

अथो॒ येऽअ॒स्य॒ सत्वा॑नो॒ऽहं तेभ्यो॑ऽकरं॒ नम॑ः॥८॥

नम॑ः। अ॒स्तु॒। नील॑ग्रीवा॒येति॒ नील॑ऽग्रीवाय। स॒ह॒स्रा॒क्षायेति॑ सहस्रऽअ॒क्षाय॑। मी॒ढुषे॑। अथो॒ऽइत्यथो॑। ये। अ॒स्य॒। सत्वा॑नः। अ॒हम्। तेभ्य॑ः। अ॒क॒र॒म्। नम॑ः॥८॥

पदार्थः-(**नमः**) अन्नम् (**अस्तु**) भवतु (**नीलग्रीवाय**) शुद्धकण्ठस्वराय (**सहस्राक्षाय**) सहस्रेषु भृत्येष्वक्षिणी यस्य तस्मै (**मीढुषे**) वीर्यवते (**अथो**) अनन्तरम् (**ये**) (**अस्य**) सेनापतेरधिकारे (**सत्वानः**) सत्त्वगुणबलोपेताः (**अहम्**) प्रजासेनापालनाधिकारेऽधिकृतोऽमात्यः (**तेभ्यः**) (**अकरम्**) कुर्याम् (**नमः**) पुष्कलमन्नादिकम्॥८॥

अन्वयः-नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे सेनापतये मद्दत्तं नमोऽस्तु। अथो येऽस्य सत्वानः सन्ति, तेभ्योऽपि नमोऽहमकरं निष्पादयेयम्॥८॥

भावार्थः-सभापत्यादिभिरन्नाद्येन यादृशः सत्कारः सेनापतेः क्रियते, तादृगेव सेनास्थानां भृत्यानामपि कर्त्तव्यः॥८॥

पदार्थः-(**नीलग्रीवाय**) जिसका कण्ठ और स्वर शुद्ध हो उस (**सहस्राक्षाय**) हजारहों भृत्यों के कार्य देखने वाले (**मीढुषे**) पराक्रमयुक्त सेनापति के लिये मेरा दिया (**नमः**) अन्न (**अस्तु**) प्राप्त हो (**अथो**) इसके अनन्तर (**ये**) जो (**अस्य**) इस सेनापति के अधिकार में (**सत्वानः**) सत्त्व गुण तथा बल से युक्त पुरुष हैं (**तेभ्यः**) उनके लिये भी (**अहम्**) मैं (**नमः**) अन्नादि पदार्थों को (**अकरम्**) सिद्ध करुं॥८॥

भावार्थः-सभापति आदि राजपुरुषों को चाहिये कि अन्नादि पदार्थों से जैसा सत्कार सेनापति का करें, वैसा ही सेना के भृत्यों का भी करें॥८॥

प्रमुञ्चेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। रुद्रो देवता। भुरिगार्ष्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

पुनस्तदेवाह॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

प्रमु॑ञ्च॒ धन्व॑न॒स्त्वमु॒भयो॒रार्त्न्यो॒र्ज्याम्।

याश्च॑ ते॒ हस्त॒ऽइष॑व॒ः परा॒ ता भ॑गवो वप॥९॥

प्र। मु॒ञ्च॒। धन्व॑नः। त्वम्। उ॒भयो॑ः। आर्त्न्यो॑ः। ज्याम्। याः। च॒। ते॒। हस्ते॑। इष॑वः। परा॑। ताः। भ॒ग॒व॒ इति॑ भगवः। व॒प॒॥९॥

पदार्थः-(**प्र**) प्रकृष्टार्थे (**मुञ्च**) त्यज (**धन्वनः**) धनुषः (**त्वम्**) सेनेशः (**उभयोः**) (**आर्त्न्योः**) पूर्वापरयोः (**ज्याम्**) बाणसन्धानार्थम् (**याः**) (**च**) (**ते**) तव (**हस्ते**) करे (**इषवः**) बाणाः (**परा**) दूरे (**ताः**) (**भगवः**) ऐश्वर्ययुक्त (**वप**) निक्षिप॥९॥

अन्वयः-हे भगवः सेनापते! ते तव हस्ते या इषवः सन्ति, ता धन्वन उभयोरात्न्योर्ज्यामनुसन्धाय शत्रूणामुपरि त्वं प्रमुञ्च याश्च स्वोपरि शत्रुभिः प्रक्षिप्तास्ताः परा वप॥९॥

भावार्थः-सेनापत्यादिभिर्धनुषा प्रक्षिप्तैर्बाणैः शत्रवो विजेतव्याः शत्रुक्षिप्ताश्च निवारणीयाः॥९॥

पदार्थः-हे **(भगवः)** ऐश्वर्ययुक्त सेनापते! **(ते)** तेरे **(हस्ते)** हाथ में **(याः)** जो **(इषवः)** बाण हैं **(ताः)** उन को **(धन्वनः)** धनुष् के **(उभयोः)** दोनों **(आत्न्योः)** पूर्व पर किनारों की **(ज्याम्)** प्रत्यञ्चा में जोड़ के शत्रुओं पर **(त्वम्)** तू **(प्र, मुञ्च)** बल के साथ छोड़ **(च)** और जो तेरे पर शत्रुओं ने बाण छोड़े हुए हों उन को **(परा, वप)** दूर कर॥९॥

भावार्थः-सेनापति आदि राजपुरुषों को चाहिये कि धनुष् से बाण चलाकर शत्रुओं को जीतें और शत्रुओं के फेंके हुए बाणों का निवारण करें॥९॥

विज्यं धनुरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। रुद्रो देवता। भुरिगार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तदेवाह॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

विज्यं धनुः कपर्दिनो विशल्यो बाणवाँ२ऽउत।

अनेशन्नस्य याऽइषवऽआभुरस्य निषङ्गधिः॥१०॥

विज्यमिति विऽज्यम्। धनुः। कपर्दिनः। विशल्य इति विऽशल्यः। बाणवानिति बाणऽवान्। उत। अनेशन्। अस्य। याः। इषवः। आभुः। अस्य। निषङ्गधिरिति निषङ्गऽधिः॥१०॥

पदार्थः-**(विज्यम्)** विगता ज्या यस्मात् तत् **(धनुः)** **(कपर्दिनः)** प्रशंसितो जटाजूटो विद्यते यस्य तस्य **(विशल्यः)** विगतानि शल्यानि यस्य सः **(बाणवान्)** बहवो बाणा विद्यन्ते यस्य सः **(उत)** यदि **(अनेशन्)** नश्येयुः। णश् अदर्शने, लुङि रूपम्। **नशिमन्योरलिट्येत्वं वक्तव्यम्** [अष्टा०वा०६.४.१२०] अनेन वार्तिकेनात्रैत्वम्। **(अस्य)** सेनापतेः **(याः)** **(इषवः)** बाणाः **(आभुः)** रिक्तः खड्गादिरहितः **(अस्य)** **(निषङ्गधि)** निषङ्गानि शस्त्रास्त्राणि धीयन्ते यस्मिन् सः॥१०॥

अन्वयः-हे धनुर्वेदविदो जनाः! अस्य कपर्दिनः सेनापतेर्धनुर्विज्यं मा भूदयं विशल्य आभुर्मा भूत्। उतास्य शस्त्रास्त्रधारकस्य निषङ्गधिर्मृषा मा भूत्। बाणवांश्चायं भवतु। या अस्येषवोऽनेशन् ता अस्मै न वा दत्त॥१०॥

भावार्थः-युयुत्सुना नरेण धनुर्ज्यादयो दृढा बहुबाणाश्च धार्याः सेनापत्यादिभिर्युध्यमानान् विलोक्य पुनश्च तेभ्यो बाणादीनि साधनानि देयानि॥१०॥

पदार्थः-हे धनुर्वेद को जानने हारे पुरुषो! **(अस्य)** इस **(कपर्दिनः)** प्रशंसित जटाजूट को धारण करने हारे सेनापति का **(धनुः)** धनुष् **(विज्यम्)** प्रत्यञ्चा से रहित न होवे तथा यह **(विशल्यः)** बाण के

अग्रभाग से रहित और **(आभुः)** आयुधों से खाली मत हो **(उत)** और **(अस्य)** इस अस्त्र-शस्त्रों को धारण करने वाले सेनापति की **(निषङ्गधिः)** बाणादि शस्त्रास्त्र कोष खाली मत हो तथा यह **(बाणवान्)** बहुत बाणों से युक्त होवे **(याः)** जो **(अस्य)** इस सेनापति के **(इषवः)** बाण **(अनेशन्)** नष्ट हो जावें, वे इस को तुम लोग नवीन देओ॥१०॥

भावार्थः-युद्ध की इच्छा करने वाले पुरुषों को चाहिये कि धनुष् की प्रत्यञ्चा आदि को दृढ़ और बहुत से बाणों को धारण करें। सेनापति आदि को चाहिये कि लड़ते हुए अपने भृत्यों को देख के यदि उन के पास बाणादि युद्ध के साधन न रहें तो फिर भी दिया करें॥१०॥

या त इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। रुद्रो देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

सेनाधीशादयः कैः कथमुपदेश्या इत्युच्यते॥

सेनापति आदि किन से कैसे उपदेश करने योग्य हैं, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

या ते॑ हे॒तिर्मी॑ढुष्टम॒ हस्ते॑ ब॒भूव॑ ते॒ धनुः॑।

तया॒स्मान् वि॒श्वत॒स्त्वम॑य॒क्ष्मया॒ परि॑ भुज॥ ११॥

या। ते॒। हे॒तिः। मी॒ढु॒ष्ट॒म॒। मी॒ढु॒स्त॒मेति॑ मीढुःऽतम। हस्ते॑। ब॒भूव॑। ते॒। धनुः॑। तया॑। अ॒स्मान्। वि॒श्वतः॑। त्वम्। अ॒य॒क्ष्मया॑। परि॑। भु॒ज॒॥ ११॥

पदार्थः-**(या)** सेना **(ते)** तव **(हेतिः)** वज्रः। **हेतिरिति वज्रनामसु पठितम्॥** (निघं०२।२०) **(मीढुष्टम)** अतिशयेन वीर्यस्य सेचक सेनापते! **(हस्ते)** **(बभूव)** भवेत् **(ते)** **(धनुः)** **(तया)** **(अस्मान्)** **(विश्वतः)** सर्वतः **(त्वम्)** **(अयक्ष्मया)** पराजयादिपीडानिवारिकया **(परि)** समन्तात् **(भुज)** पालय॥११॥

अन्वयः-हे मीढुष्टम सेनापते! या ते सेनाऽस्ति। यच्च ते हस्ते धनुर्हेतिश्च बभूव। तयाऽयक्ष्मया सेनया तेन चास्मान् प्रजासेनाजनान् त्वं विश्वतः परि भुज॥११॥

भावार्थः-विद्यावयोवृद्धैरुपदेशकैर्विद्वद्भिः सेनापत्यादय एवमुपदेष्टव्या भवन्तो यावद् बलं तावता सर्वे श्रेष्ठा सर्वथा रक्षणीया दुष्टाश्च ताडनीया इति॥११॥

पदार्थः-हे **(मीढुष्टम)** अत्यन्त वीर्य के सेचक सेनापते! **(या)** जो **(ते)** तेरी सेना है और जो **(ते)** तेरे **(हस्ते)** हाथ में **(धनुः)** धनुष् तथा **(हेतिः)** वज्र **(बभूव)** हो **(तया)** उस **(अयक्ष्मया)** पराजय आदि की पीड़ा निवृत्त करने हारी सेना से और उस धनुष् आदि से **(अस्मान्)** हम प्रजा और सेना के पुरुषों की **(त्वम्)** तू **(विश्वतः)** सब ओर से **(परि)** अच्छे प्रकार **(भुज)** पालना कर॥११॥

भावार्थः-विद्या और अवस्था में वृद्ध उपदेशक विद्वानों को चाहिये कि सेनापति आदि को ऐसा उपदेश करें कि आप लोगों के अधिकार में जितना सेना आदि बल है, उससे सब श्रेष्ठों की सब प्रकार रक्षा किया करें और दुष्टों को ताड़ना दिया करें॥११॥

परीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। रुद्रो देवता। निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

राजप्रजाजनैरितरेतरं किं कार्यमित्युपदिश्यते॥

राजा और प्रजा के पुरुषों को परस्पर क्या करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

परि॑ ते॒ धन्व॑नो हे॒तिर॒स्मान् वृ॑णक्तु वि॒श्वत॑ः।

अथो॒ यऽइ॑षु॒धिस्तवा॒रेऽअ॒स्मन्निधे॑हि॒ तम्॥ १२॥

परि॑। ते॒। धन्व॑नः। हे॒तिः। अ॒स्मान्। वृ॒ण॒क्तु॒। वि॒श्वत॑ः। अथो॒ऽइत्यथो॑। यः। इ॒षु॒धिरिती॑षु॒ऽधिः। तव॑। आ॒रे। अ॒स्मत्। नि। धे॒हि॒। तम्॥ १२॥

पदार्थः-(**परि**) (**ते**) तव (**धन्वनः**) (**हेतिः**) गतिः (**अस्मान्**) (**वृणक्तु**) परित्यजतु (**विश्वतः**) (**अथो**) आनन्तर्ये (**यः**) (**इषुधिः**) इषवो धीयन्ते यस्मिन् सः (**तव**) (**आरे**) समीपे दूरे वा (**अस्मत्**) अस्माकं सकाशात् (**नि**) (**धेहि**) नितरां धर (**तम्**)॥१२॥

अन्वयः-हे सेनापते! या ते धन्वनो हेतिरस्ति, तयाऽस्मान् विश्वत आरे भवान् परिवृणक्तु। अथो यस्तवेषुधिरस्ति तमस्मच्चारे निधेहि॥१२॥

भावार्थः-राजप्रजाजनैर्युद्धशस्त्राभ्यासं कृत्वा शस्त्रादिसामग्र्यः सदा समीपे रक्षणीयाः। ताभिः परस्परस्य रक्षा कार्य्या सुखं चोन्नेयम्॥१२॥

पदार्थः-हे सेनापति! जो (**ते**) आप के (**धन्वनः**) धनुष् की (**हेतिः**) गति है, उस से (**अस्मान्**) हम लोगों को (**विश्वतः**) सब ओर से (**आरे**) दूर में आप (**परिवृणक्तु**) त्यागिये। (**अथो**) इस के पश्चात् (**यः**) जो (**तव**) आप का (**इषुधिः**) बाण रखने का घर अर्थात् तर्कस है (**तम्**) उस को (**अस्मत्**) हमारे समीप से (**नि, धेहि**) निरन्तर धारण कीजिये॥१२॥

भावार्थः-राज और प्रजाजनों को चाहिये कि युद्ध और शस्त्रों का अभ्यास कर के शस्त्रादि सामग्री सदा अपने समीप रक्खें। उन सामग्रियों से एक-दूसरे की रक्षा और सुख की उन्नति करें॥१२॥

अवतत्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। रुद्रो देवता। निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

राजपुरुषैः कथं भवितव्यमित्याह॥

राजपुरुषों को कैसा होना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अ॒व॒तत्य॒ धनु॒ष्ट्वꣳ सह॑स्राक्ष॒ शते॑षुधे।

नि॒शीर्य॑ श॒ल्याना॒ं मुखा॑ शि॒वो न॑ः सु॒मना॑ भव॥ १३॥

अ॒व॒तत्येत्य॑व॒ऽतत्य॑। धनुः॑। त्वम्। सह॑स्रा॒क्षेति॒ सह॑स्रऽअक्ष। शते॑षु॒ध॒ इति॒ शत॑ऽइषुधे। नि॒शीर्य्येति॑ नि॒ऽशीर्य॑। श॒ल्याना॑म्। मुखा॑। शि॒वः। न॒ः। सु॒मना॒ इति॑ सु॒ऽमना॑ः। भ॒व॒॥ १३॥

पदार्थ:-(**अवतत्य**) विस्तार्य्य (**धनु:**) चापम् (**त्वम्**) (**सहस्राक्ष**) सहस्रेष्वसंख्यातेषु युद्धकार्येक्षिणी यस्य तत्सम्बुद्धौ (**शतेषुधे**) शतमसंख्या: शस्त्रास्त्रप्रकाशा यस्य तत्सम्बुद्धौ (**निशीर्य**) नितरां हिंसित्वा (**शल्यानाम्**) शस्त्राणां (**मुखा**) मुखानि (**शिव:**) मङ्गलकारी (**न:**) अस्मभ्यम् (**सुमना:**) सुहृद्भाव: (**भव**)॥१३॥

अन्वय:-हे सहस्राक्ष शतेषुधे सेनाध्यक्ष! त्वं धनु: शल्यानां मुखा चावतत्य तै: शत्रून्निशीर्य न: सुमना: शिवो भव॥१३॥

भावार्थ:-राजपुरुषा: सामदामदण्डभेदादिराजनीत्यवयवकृत्यानि सर्वतो विदित्वा पूर्णानि शस्त्रास्त्राणि सम्पाद्य तीक्ष्णीकृत्य च शत्रुषु दुर्मनस: दु:खप्रदा: प्रजासु सोम्या: सुखप्रदाश्च सततं स्यु:॥१३॥

पदार्थ:-हे (**सहस्राक्ष**) असंख्य युद्ध के कार्यों को देखने हारे (**शतेषुधे**) शस्त्र-अस्त्रों के असंख्य प्रकाश से युक्त सेना के अध्यक्ष पुरुष! (**त्वम्**) तू (**धनु:**) धनुष् और (**शल्यानाम्**) शस्त्रों के (**मुखा**) अग्रभागों का (**अवतत्य**) विस्तार कर तथा उनसे शत्रुओं को (**निशीर्य**) अच्छे प्रकार मारके (**न:**) हमारे लिये (**सुमना:**) प्रसन्नचित्त (**शिव:**) मङ्गलकारी (**भव**) हूजिये॥१३॥

भावार्थ:-राजपुरुष साम, दाम. दण्ड और भेदादि राजनीति के अवयवों के कृत्यों को सब ओर से जान, पूर्ण शस्त्र-अस्त्रों का सञ्चय कर और उनको तीक्ष्ण करके शत्रुओं में कठोरचित्त दु:खदायी और अपनी प्रजाओं में कोमलचित्त सुख देनेवाले निरन्तर हों॥१३॥

नमस्त इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि:। रुद्रो देवता। स्वराडार्ष्युष्णिक् छन्द:। ऋषभ: स्वर:॥

पुनस्तदेवाह॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

नम॑स्तऽआयु॑धा॒याना॑तताय धृ॒ष्णवे॑।

उ॒भाभ्या॑मु॒त ते॒ नमो॑ बा॒हुभ्यां॒ तव॒ धन्व॑ने॥ १४॥

नम॑:। ते॒। आयु॑धाय। अना॑तताय। धृ॒ष्णवे॑। उ॒भाभ्या॑म्। उ॒त। ते॒। नम॑:। बा॒हुभ्या॒मिति॑ बा॒हुऽभ्या॑म्। तव॑। धन्व॑ने॥ १४॥

पदार्थ:-(**नम:**) (**ते**) तुभ्यम् (**आयुधाय**) य: समन्ताद् युध्यते तस्मै। अत्र **इगुपधा०** [अष्टा०३.१.१३५] इति क:। (**अनातताय**) अविद्यमान आततो विस्तारो यस्य तस्मै (**धृष्णवे**) यो धृष्णोति धार्ष्ट्यं प्राप्नेति तस्मै (**उभाभ्याम्**) (**उत**) (**ते**) तुभ्यम् (**नम:**) (**बाहुभ्याम्**) बलवीर्य्याभ्याम् (**तव**) (**धन्वने**)॥१४॥

अन्वय:-हे सभेश! आयुधायानातताय धृष्णवे ते नमोऽस्तु, उत ते भोक्त्रे तुभ्यं नम: प्रयच्छामि। तवोभाभ्यां बाहुभ्यां धन्वने नमो नियोजयेयम्॥१४॥

भावार्थः-सेनापत्याद्यधिकारिभिरुभयेभ्योऽध्यक्षयोद्धृभ्यः शस्त्राणि दत्त्वा शत्रुभिः सहैते निःशङ्कं सम्यग् योधनीयाः॥१४॥

पदार्थः-हे सभापति! **(आयुधाय)** युद्ध करने **(अनातताय)** अपने आशय को गुप्त सङ्कोच में रखने और **(धृष्णवे)** प्रगल्भता को प्राप्त होने वाले **(ते)** आपके लिये **(नमः)** अन्न प्राप्त हो **(उत)** और **(ते)** भोजन करने हारे आप के लिये अन्न देता हूँ **(तव)** आपके **(उभाभ्याम्)** दोनों **(बाहुभ्याम्)** बल और पराक्रम से **(धन्वने)** योद्धा पुरुष के लिये **(नमः)** अन्न को नियुक्त करूं॥१४॥

भावार्थः-सेनापति आदि राज्याधिकारियों को चाहिये कि अध्यक्ष और योद्धा दोनों को शस्त्र देके शत्रुओं से निःशङ्क अच्छे प्रकार युद्ध करावें॥१४॥

मा नो महान्तमित्यस्य कुत्स ऋषिः। रुद्रो देवता। निचृदार्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

राजजनैः किं न कार्यमित्याह॥

राजपुरुषों को क्या नहीं करना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

मा नो॑ म॒हान्त॑मु॒त मा नो॑ऽअर्भ॒कं मा न॒ऽउक्ष॑न्तमु॒त मा न॑ऽउक्षि॒तम्।

मा नो॑ वधीः पि॒तरं॒ मोत मा॒तरं॒ मा नः॑ प्रि॒यास्त॒न्वो॒ रुद्र रीरिषः॥१५॥

मा। न॒ः। म॒हान्त॑म्। उ॒त। मा। न॒ः। अ॒र्भ॒कम्। मा। न॒ः। उक्ष॑न्तम्। उ॒त। मा। न॒ः। उ॒क्षि॒तम्। मा। न॒ः। व॒धीः। पि॒तर॑म्। मा। उ॒त। मा॒तर॑म्। मा। न॒ः। प्रि॒याः। त॒न्व॒ः। रु॒द्र। री॒रि॒ष॒ इति॑ रीरिषः॥१५॥

पदार्थः-**(मा)** निषेधार्थे **(नः)** अस्माकम् **(महान्तम्)** महागुणविशिष्टं पूज्यं जनम् **(उत)** अपि **(मा)** **(नः)** **(अर्भकम्)** अल्पं क्षुद्रम् **(मा)** **(नः)** **(उक्षन्तम्)** वीर्य्यसेक्तारम् **(उत)** **(मा)** **(नः)** **(उक्षितम्)** सिक्तम् **(मा)** **(नः)** **(वधीः)** हिंस्याः **(पितरम्)** पालकं जनकम् **(मा)** **(उत)** **(मातरम्)** मान्यप्रदां जननीम् **(मा)** **(नः)** **(प्रियाः)** स्त्र्यादेः प्रीत्युत्पादकानि **(तन्वः)** शरीराणि **(रुद्र)** युद्धसेनाधिकृतविद्वन् **(रीरिषः)** हिंस्याः। अत्र लिङर्थे लुङडभावश्च॥१५॥

अन्वयः-हे रुद्र! त्वं नो महान्तं मा वधीरुत नोऽर्भकं मा वधीर्न उक्षन्तं मा वधीरुत न उक्षितं मा वधीः। नः पितरं मा वधीरुत नो मातरं च मा वधीः। नः प्रियास्तन्वो मा रीरिषः॥१५॥

भावार्थः-योद्धृभिर्युद्धसमये कदाचिद् वृद्धा बालका अयोद्धारो युवानो गर्भा योद्धृणां मातरः पितरश्च सर्वेषां स्त्रियः संप्रेक्षितारो दूताश्च नो हिंसनीयाः, किन्तु सदा शत्रुसम्बन्धिनो वशे स्थापनीयाः॥१५॥

पदार्थः-हे **(रुद्र)** युद्ध की सेना के अधिकारी विद्वन् पुरुष! आप **(नः)** हमारे **(महान्तम्)** उत्तम गुणों से युक्त पूज्य को **(मा)** मत **(उत)** और **(अर्भकम्)** छोटे क्षुद्र पुरुष को **(मा)** मत **(नः)** हमारे **(उक्षन्तम्)** गर्भाधान करने हारे को **(मा)** मत **(उत)** और **(नः)** हमारे **(उक्षितम्)** गर्भ को **(मा)** मत **(नः)** हमारे **(पितरम्)** पालन करने हारे पिता को **(मा)** मत **(उत)** और **(नः)** हमारी **(मातरम्)** मान्य करने हारी

माता को भी **(मा)** मत **(वधीः)** मारिये और **(नः)** हमारे **(प्रियाः)** स्त्री आदि के पियारे **(तन्वः)** शरीरों को **(मा)** मत **(रीरिषः)** मारिये॥१५॥

भावार्थः-योद्धा लोगों को चाहिये कि युद्ध के समय वृद्धों, बालकों, युद्ध से हटने वाले ज्वानों, गर्भों, योद्धाओं के माता पितरों, सब स्त्रियों, युद्ध के देखने वा प्रबन्ध करने वालों और दूतों को न मारें, किन्तु शत्रुओं के सम्बन्धी मनुष्यों को सदा वश में रक्खें॥१५॥

मा नस्तोक इत्यस्य कुत्स ऋषिः। रुद्रो देवता। निचृदार्षी जगतीच्छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तदेवाह॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

मा नस्तोके तनये मा नऽआयुषि मा नो गोषु मा नोऽअश्वेषु रीरिषः।
मा नो वीरान् रुद्र भामिनो वधीर्हविष्मन्तः सदमित् त्वा हवामहे॥१६॥

मा। नः। तोके। तनये। मा। नः। आयुषि। मा। नः। गोषु। मा। नः। अश्वेषु। रीरिष इति रीरिषः। मा। नः। वीरान्। रुद्र। भामिनः। वधीः। हविष्मन्तः। सदम्। इत्। त्वा। हवामहे॥१६॥

पदार्थः-**(मा)** **(नः)** अस्माकम् **(तोके)** सद्यो जातेऽपत्ये **(तनये)** पञ्चमाद् वर्षादूर्ध्वं वयः प्राप्ते **(मा)** **(नः)** अस्माकम् **(आयुषि)** वयसि **(मा)** **(नः)** अस्माकम् **(गोषु)** गोजाव्यादिषु **(मा)** **(नः)** **(अश्वेषु)** तुरङ्गहस्त्युष्ट्रादिषु **(रीरिषः)** हिंसको भवेः **(मा)** **(नः)** **(वीरान्)** शूरान् **(रुद्र)** **(भामिनः)** क्रुद्धान् **(वधीः)** **(हविष्मन्तः)** बहूनि हवींषि दातुमादातुं योग्यानि वस्तूनि विद्यन्ते येषां ते **(सदम्)** यो न्याये सीदति तम् **(इत्)** एव **(त्वा)** त्वाम् **(हवामहे)** स्वीकुर्महे॥१६॥

अन्वयः-हे रुद्र सेनेश! त्वं नस्तोके मा रीरिषो नस्तनये मा रीरिषो न आयुषि मा रीरिषो नो गोषु मा रीरिषो नोऽश्वेषु मा रीरिषः नो भामिनो वीरान् मा वधीरतो हविष्मन्तो वयं सदं त्वेद्धवामहे॥१६॥

भावार्थः-राजपुरुषैः कस्यापि प्रजास्थस्य वा बालकुमारगवाश्वादिवीरहत्या नैव कार्या, न बाल्यावस्थायां विवाहेन व्यभिचारेण चायुर्हिंसनीयम्। गवादिपशूनां दुग्धादिप्रदानेन सर्वोपकारकत्वात् सदैवैतेषां वृद्धि कार्या॥१६॥

पदार्थः-हे **(रुद्र)** सेनापति! तू **(नः)** हमारे **(तोके)** तत्काल उत्पन्न हुए सन्तान को **(मा)** मत **(नः)** हमारे **(तनये)** पांच वर्ष से ऊपर अवस्था के बालक को **(मा)** मत **(नः)** हमारी **(आयुषि)** अवस्था को **(मा)** मत **(नः)** हमारे **(गोषु)** गौ, भेड़, बकरी आदि को **(मा)** मत **(नः)** हमारे और **(अश्वेषु)** घोड़े, हाथी और ऊंट आदि को **(मा)** मत **(रीरिषः)** मार और **(नः)** हमारे **(भामिनः)** क्रोध को प्राप्त हुए **(वीरान्)** शूरवीरों को **(मा)** मत **(वधीः)** मार। इस से **(हविष्मन्तः)** बहुत से देने-लेने योग्य वस्तुओं से युक्त हम लोग **(सदम्)** न्याय में स्थिर **(त्वा)** तुझ को **(इत्)** ही **(हवामहे)** स्वीकार करते हैं॥१६॥

भावार्थः-राजपुरुषों को चाहिये कि अपने वा प्रजा के बालकों, कुमार और गौ, घोड़े आदि; वीर, उपकारी जीवों की कभी हत्या न करें और बाल्यावस्था में विवाह कर व्यभिचार से अवस्था की हानि भी न करें। गौ आदि पशु दूध आदि पदार्थों को देने से सब का उपकार करते हैं, उससे उन की सदैव वृद्धि करें॥१६॥

नमो हिरण्यबाहव इत्यस्य कुत्स ऋषिः। रुद्रो देवता। निचृदतिधृतिश्छन्दः। षड्जः स्वरः॥

राजप्रजाजनैः किं कर्त्तव्यमित्युपदिश्यते॥

राज-प्रजा के पुरुषों को क्या करना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

नमो॒ हिर॑ण्यबाहवे सेना॒न्ये॒ दि॒शां च॒ पत॑ये॒ नमो॒ नमो॑ वृ॒क्षेभ्यो॒ हरि॑केशेभ्यः पशू॒नां पत॑ये॒ नमो॒ नम॑: श॒ष्पिञ्ज॑राय॒ त्विषी॑मते पथी॒नां पत॑ये॒ नमो॒ नमो॒ हरि॑केशायोपवी॒तिने॑ पु॒ष्टानां॒ पत॑ये॒ नम॑:॥ १७॥

नम॑:। हिर॑ण्यबाहव॒ इति॒ हिर॑ण्यऽबाहवे। से॒ना॒न्य॒ इति॑ सेना॒ऽन्ये॒। दि॒शाम्। च॒। पत॑ये। नम॑:। नम॑:। वृ॒क्षेभ्य॑:। हरि॑केशेभ्य॒ इति॒ हरि॑ऽकेशेभ्यः। प॒शू॒नाम्। पत॑ये। नम॑:। नम॑:। श॒ष्पिञ्ज॑राय। त्विषी॑मते। त्विषी॑म॒त इति॒ त्विषि॑ऽमते। प॒थी॒नाम्। पत॑ये। नम॑:। नम॑:। हरि॑केशा॒येति॒ हरि॑ऽकेशाय। उ॒प॒वी॒तिन॒ इत्यु॑प॒ऽवी॒तिने॑। पु॒ष्टाना॑म्। पत॑ये। नम॑:॥१७॥

पदार्थः-**(नमः)** वज्रः **(हिरण्यबाहवे)** हिरण्यं ज्योतिरिव तीव्रतेजस्कौ बाहू यस्य तस्मै **(सेनान्ये)** यः सेनां नयति शिक्षां प्रापयति तस्मै **(दिशाम्)** सर्वासु दिक्षु स्थितानां राज्यप्रदेशानाम् **(च)** **(पतये)** पालकाय। अत्र **षष्ठीयुक्तश्छन्दसि वा** [अष्टा०१.४.९] इति घिसंज्ञा। **(नमः)** अन्नादिकम् **(नमः)** वज्रादिशस्त्रसमूहः **(वृक्षेभ्यः)** आम्रादिभ्यः **(हरिकेशेभ्यः)** हरयो हरणशीलाः सूर्यरश्मयो येषु तेभ्यः **(पशूनाम्)** गवादीनाम् **(पतये)** रक्षकाय **(नमः)** सत्करणम् **(नमः)** **(शष्पिञ्जराय)** शडुत्प्लुतं पिञ्जरं बन्धनं येन तस्मै **(त्विषीमते)** बह्व्यस्त्विषयो न्यायदीप्तयो विद्यन्ते यस्य तस्मै। **शरादीनां च** [अष्टा०६.३.१२०] इति दीर्घः। **(पथीनाम्)** मार्गे गन्तॄणाम् **(पतये)** पालकाय **(नमः)** सत्करणमन्नं च **(नमः)** अन्नादिकम् **(हरिकेशाय)** हरिता केशा यस्य तस्मै **(उपवीतिने)** प्रशस्तमुपवीतं यज्ञोपवीतं विद्यते यस्य तस्मै **(पुष्टानाम्)** अरोगाणाम् **(पतये)** रक्षकाय **(नमः)** सत्कारः॥१७॥

अन्वयः-हे रुद्र सेनाधीश! हिरण्यबाहवे सेनान्ये तुभ्यं नमोऽस्तु, दिशां च पतये नमोऽस्तु, त्वं हरिकेशेभ्यो वृक्षेभ्यो नमो गृहाण, पशूनां पतये नमोऽस्तु, शष्पिञ्जराय त्विषीमते नमोऽस्तु, पथीनां पतये नमोऽस्तु, हरिकेशायोपवीतिने नमोऽस्तु, पुष्टानां पतये नमो भवतु॥१७॥

भावार्थः-मनुष्यैः श्रेष्ठानां सत्कारेण बुभुक्षितानामन्नदानेन चक्रवर्तिराज्यशासनेन पशूनां पालनेन गन्तुकानां दस्युचोरादिभ्यो रक्षणेन यज्ञोपवीतधारणेन पुष्ट्या च सहानन्दितव्यम्॥१७॥

पदार्थः-हे शत्रुताड़क सेनाधीश! **(हिरण्यबाहवे)** ज्योति के समान तीव्र तेजयुक्त भुजा वाले **(सेनान्ये)** सेना के शिक्षक तेरे लिये **(नमः)** वज्र प्राप्त हो **(च)** और **(दिशाम्)** सर्व दिशाओं के राज्य भागों के **(पतये)** रक्षक तेरे लिये **(नमः)** अन्नादि पदार्थ मिले **(हरिकेशेभ्यः)** जिन में हरणशील सूर्य की किरण प्राप्त हों ऐसे **(वृक्षेभ्यः)** आम्रादि वृक्षों को काटने के लिये **(नमः)** वज्रादि शस्त्रों को ग्रहण कर **(पशूनाम्)** गौ आदि पशुओं के **(पतये)** रक्षक तेरे लिये **(नमः)** सत्कार प्राप्त हो **(शष्पिञ्जराय)** विषयादि के बन्धनों से पृथक् **(त्विषीमते)** बहुत न्याय के प्रकाशों से युक्त तेरे लिये **(नमः)** नमस्कार और अन्न हो **(पथीनाम्)** मार्ग में चलने हारों के **(पतये)** रक्षक तेरे लिये **(नमः)** आदर प्राप्त हो **(हरिकेशाय)** हरे केशों वाले **(उपवीतिने)** सुन्दर यज्ञोपवीत से युक्त तेरे लिये **(नमः)** अन्नादि पदार्थ प्राप्त हों और **(पुष्टानाम्)** नीरोगी पुरुषों की **(पतये)** रक्षा करने हारे के लिये **(नमः)** नमस्कार प्राप्त हो॥१७॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि श्रेष्ठों के सत्कार, भूख से पीड़ितों को अन्न देने, चक्रवर्ति राज्य की शिक्षा, पशुओं की रक्षा, जाने-आने वालों को डाकू और चोर आदि से बचाने, यज्ञोपवीत के धारण करने और शरीरादि की पुष्टि के साथ प्रसन्न रहें॥१७॥

नमो बभ्लुशायेत्यस्य कुत्स ऋषिः। रुद्रा देवताः। निचृदष्टिश्छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनस्तादृशमेव विषयमाह॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

नमो॑ बभ्लु॒शाय॑ व्या॒धिनेऽन्ना॑नां॒ पत॑ये॒ नमो॒ नमो॑ भ॒वस्य॑ हे॒त्यै जग॑तां॒ पत॑ये॒ नमो॒ नमो॑ रु॒द्राया॑तता॒यिने॒ क्षेत्रा॑णां॒ पत॑ये॒ नमो॒ नमः॑ सू॒ताया॒हन्त्यै॒ वना॑नां॒ पत॑ये॒ नमः॑॥ १८॥

नमः॑। ब॒भ्लु॒शाय॑। व्या॒धिने॑। अन्ना॑नाम्। पत॑ये। नमः॑। नमः॑। भ॒वस्य॑। हे॒त्यै। जग॑ताम्। पत॑ये। नमः॑। नमः॑। रु॒द्राय॑। आ॒त॒ता॒यिन॒ इत्या॑ततऽआ॒यिने॑। क्षेत्रा॑णाम्। पत॑ये। नमः॑। नमः॑। सू॒ताय॑। अह॑न्त्यै। वना॑नाम्। पत॑ये। नमः॑॥ १८॥

पदार्थः-**(नमः)** अन्नम् **(बभ्लुशाय)** यो बभ्लुषु राज्यधारकेषु शेते तस्मै **(व्याधिने)** रोगिणे **(अन्नानाम्)** गोधूमादीनाम् **(पतये)** पालकाय **(नमः)** सत्कारः **(नमः)** अन्नम् **(भवस्य)** संसारस्य **(हेत्यै)** वृद्ध्यै **(जगताम्)** जङ्गमानां मनुष्यादीनाम् **(पतये)** स्वामिने **(नमः)** सत्कारः **(नमः)** अन्नम् **(रुद्राय)** शत्रूणां रोदकाय **(आततायिने)** समन्तात् ततं विस्तृतं शत्रुदलमेतु शीलमस्य तस्मै **(क्षेत्राणाम्)** धान्योद्भवाधिकरणानाम् **(पतये)** पालकाय **(नमः)** अन्नम् **(नमः)** अन्नम् **(सूताय)** क्षत्रियाद् विप्रकन्यायां जाताय वीराय प्रेरकाय वा **(अहन्त्यै)** या राजपत्नी कञ्चन न हन्ति तस्यै **(वनानाम्)** जङ्गलानाम् **(पतये)** पालकाय **(नमः)** अन्नम्॥१८॥

अन्वयः-राजपुरुषादिमनुष्यैर्बभ्लुशाय व्याधिने नमोऽन्नानां पतये नमो भवस्य हेत्यै नमो जगतां पतये नमो रुद्रायाततायिने नमः क्षेत्राणां पतये नमः सूतायाहन्त्यै नमो वनानां पतये नमो देयं कार्यं च॥१८॥

भावार्थः-येऽन्नादिना सर्वान् प्राणिनः सत्कुर्वन्ति, ते जगति प्रशंसिता भवन्ति॥१८॥

पदार्थः-राजपुरुष आदि मनुष्यों को चाहिये कि **(बभ्लुशाय)** राज्यधारक पुरुषों में सोते हुए **(व्याधिने)** रोगी के लिये **(नमः)** अन्न देवें **(अन्नानाम्)** गेहूं आदि अन्न के **(पतये)** रक्षक का **(नमः)** सत्कार करें **(भवस्य)** संसार की **(हेत्यै)** वृद्धि के लिये **(नमः)** अन्न देवें **(जगताम्)** मनुष्यादि प्राणियों के **(पतये)** स्वामी का **(नमः)** सत्कार करें **(रुद्राय)** शत्रुओं को रुलाने और **(आततायिने)** अच्छे प्रकार विस्तृत शत्रुसेना को प्राप्त होने वाले को **(नमः)** अन्न देवें **(क्षेत्राणाम्)** धान्यादियुक्त खेतों के **(पतये)** रक्षक को **(नमः)** अन्न देवें **(सूताय)** क्षत्रिय से ब्राह्मण की कन्या में उत्पन्न हुए प्रेरक वीर पुरुष और **(अहन्त्यै)** किसी को न मारने हारी राजपत्नी के लिये **(नमः)** अन्न देवें और **(वनानाम्)** जङ्गलों की **(पतये)** रक्षा करने हारे पुरुष को **(नमः)** अन्नादि पदार्थ देवें॥१८॥

भावार्थः-जो अन्नादि से सब प्राणियों का सत्कार करते हैं, वे जगत में प्रशंसित होते हैं॥१८॥

नमो रोहितायेत्यस्य कुत्स ऋषिः। रुद्रो देवता। विराडतिधृतिश्छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

नमो रोहिताय स्थपतये वृक्षाणां पतये नमो नमो भुवन्तये वारिवस्कृतायौषधीनां पतये नमो नमो मन्त्रिणे वाणिजाय कक्षाणां पतये नमो नमऽउच्चैर्घोषायाक्रन्दयते पत्तीनां पतये नमः॥१९॥

नमः। रोहिताय। स्थपतये। वृक्षाणाम्। पतये। नमः। नमः। भुवन्तये। वारिवस्कृताय। वारिवःकृतायेति वारिवःऽकृताय। ओषधीनाम्। पतये। नमः। नमः। मन्त्रिणे। वाणिजाय। कक्षाणाम्। पतये। नमः। नमः। उच्चैर्घोषायेत्युच्चैःऽघोषाय। आक्रन्दयत इत्याऽक्रन्दयते। पत्तीनाम्। पतये। नमः॥१९॥

पदार्थः-**(नमः)** अन्नम् **(रोहिताय)** वृद्धिकराय **(स्थपतये)** तिष्ठन्ति यस्मिन्निति स्थं तस्य पतये पालकाय **(वृक्षाणाम्)** आम्रादीनाम् **(पतये)** स्वामिने **(नमः)** अन्नम् **(नमः)** अन्नम् **(भुवन्तये)** यो भवत्याचारवांस्तस्मै **(वारिवस्कृताय)** वारिवस्सेवनं कृतं येन तस्मै, अत्र स्वार्थेऽण्। **(ओषधीनाम्)** सोमादीनाम् **(पतये)** पालकाय वैद्याय **(नमः)** अन्नम् **(नमः)** सत्कारः **(मन्त्रिणे)** विचारकर्त्रे राजपुरुषाय **(वाणिजाय)** वणिजां व्यवहारेषु कुशलाय **(कक्षाणाम्)** गृहप्रान्तावयवेषु स्थितानाम् **(पतये)** रक्षकाय **(नमः)** अन्नम् **(नमः)** सत्कारः **(उच्चैर्घोषाय)** उच्चैर्घोषो यस्य तस्मै **(आक्रन्दयते)** यो दुष्टानाक्रन्दयते रोदयति तस्मै न्यायाधीशाय **(पत्तीनाम्)** सेनाङ्गानाम् **(पतये)** रक्षकाय सेनाध्यक्षाय **(नमः)** सत्कारः॥१९॥

अन्वयः-राजप्रजाजनै रोहिताय स्थपतये नमो वृक्षाणां पतये नमो भुवन्तये वारिवस्कृताय नम ओषधीनां पतये नमो मन्त्रिणे वाणिजाय नमः कक्षाणां पतये नम उच्चैर्घोषायाक्रन्दयते नमः पत्तीनां पतये नमश्च देयं कार्यं च॥१९॥

भावार्थः-मनुष्यैर्वनादिपालकेभ्योऽन्नादिकं दत्त्वा वृक्षौषध्याद्युन्नतिर्विधेया॥१९॥

पदार्थः-राजा और प्रजा के पुरुषों को चाहिये कि **(रोहिताय)** सुखों की वृद्धि के कर्त्ता और **(स्थपतये)** स्थानों के स्वामी रक्षक सेनापति के लिये **(नमः)** अन्न **(वृक्षाणाम्)** आम्रादि वृक्षों के **(पतये)** अधिष्ठाता को **(नमः)** अन्न **(भुवन्तये)** आचारवान् **(वारिवस्कृताय)** सेवन करने हारे भृत्य को **(नमः)** अन्न और **(ओषधीनाम्)** सोमलतादि ओषधियों के **(पतये)** रक्षक वैद्य को **(नमः)** अन्न देवें **(मन्त्रिणे)** विचार करने हारे राजमन्त्री और **(वाणिजाय)** वैश्यों के व्यवहार में कुशल पुरुष का **(नमः)** सत्कार करें **(कक्षाणाम्)** घरों में रहने वालों के **(पतये)** रक्षक को **(नमः)** अन्न और **(उच्चैर्घोषाय)** ऊंचे स्वर से बोलने तथा **(आक्रन्दयते)** दुष्टों को रुलाने वाले न्यायाधीश का **(नमः)** सत्कार और **(पत्तीनाम्)** सेना के अवयवों की **(पतये)** रक्षा करने हारे पुरुष का **(नमः)** सत्कार करें॥१९॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि वन आदि के रक्षक मनुष्यों को अन्नादि पदार्थ देके वृक्षों और ओषधि आदि पदार्थों की उन्नति करें॥१९॥

नमः कृत्स्नायेत्यस्य कुत्स ऋषिः। रुद्रो देवता। अतिधृतिश्छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

नमः॑ कृत्स्नाय॒तया॒ धाव॑ते॒ सत्व॑नां॒ पत॑ये॒ नमो॒ नम॒: सह॑मानाय निव्या॒धिन॑ऽआव्या॒धिनी॑नां॒ पत॑ये॒ नमो॒ नमो॑ निष॒ङ्गिणे॑ ककु॒भाय॑ स्ते॒नानां॒ पत॑ये॒ नमो॒ नमो॑ निचे॒रवे॑ परिच॒रायार॑ण्यानां॒ पत॑ये॒ नमः॑॥२०॥

नमः॑। कृ॒त्स्ना॒य॒तयेति॑ कृ॒त्स्नऽआय॒तया॑। धाव॑ते। सत्व॑नाम्। पत॑ये। नमः॑। नमः॑। सह॑मानाय। नि॒व्या॒धिन॒ इति॑ निऽव्या॒धिने॑। आ॒व्या॒धिनी॑ना॒मित्या॑ऽव्या॒धिनी॑नाम्। पत॑ये। नमः॑। नमः॑। नि॒ष॒ङ्गिणे॑। क॒कु॒भाय॑। स्ते॒नाना॑म्। पत॑ये। नमः॑। नमः॑। नि॒चे॒रव॒ इति॑ निऽचे॒रवे॑। प॒रि॒च॒रायेति॑ परि॑ऽच॒राय॑। अर॑ण्यानाम्। पत॑ये। नमः॑॥२०॥

पदार्थः-**(नमः)** अन्नम् **(कृत्स्नायतया)** आयस्य लाभस्य भाव आयता कृत्स्ना चासावायता कृत्स्नायता तया सम्पूर्णलाभतया **(धावते)** इतस्ततो धावनशीलाय **(सत्वनाम्)** प्राप्तानां पदार्थानाम् **(पतये)** रक्षकाय **(नमः)** सत्कारः **(नमः)** अन्नम् **(सहमानाय)** बलयुक्ताय **(निव्याधिने)** नितरां व्यद्धुं ताडयितुं शीलमस्य तस्मै **(आव्याधिनीनाम्)** समन्तात् शत्रुसेनाः व्यद्धुं शीलं यासां तासां स्वसेनानाम् **(पतये)** पालकाय सेनापतये **(नमः)** सत्करणम् **(नमः)** अन्नम् **(निषङ्गिणे)** प्रशस्ता निषङ्गा बाणासिभुशुण्डीशतघ्नीतोमरादयः शस्त्रसमूहा विद्यन्ते यस्य तस्मै **(ककुभाय)** प्रसन्नमूर्त्तये **(स्तेनानाम्)** अन्यायेन परस्वादायिनाम् **(पतये)** दण्डादिशोषकाय **(नमः)** वज्रम् **(नमः)** सत्करणम् **(निचेरवे)** यो नितरां

पुरुषार्थे चरति तस्मै (**परिचराय**) यो धर्मं विद्यां मातापितरौ स्वामिमित्रादींश्च सेवते तस्मै (**अरण्यानाम्**) वनानाम् (**पतये**) पालकाय (**नमः**) अन्नादिकम्॥२०॥

अन्वयः-मनुष्यः कृत्स्नायतया धावते नमः सत्वनां पतये नमः सहमानाय निव्याधिने नम आव्याधिनीनां पतये नमो निषङ्गिणे नमो निचेरवे परिचराय ककुभाय नमः स्तेनानां पतये नमोऽरण्यानां पतये नमो दद्युः कुर्युश्च॥२०॥

भावार्थः-राजपुरुषैः पुरुषार्थिनामुत्साहाय सत्कारः प्राणिनामुपरि दया सुशिक्षितसेनारक्षणं चौरादीनां ताडनं सेवकानां पालनं वनानामच्छेदनञ्च कृत्वा राज्यं वर्द्धनीयम्॥२०॥

पदार्थः-मनुष्य लोग (**कृत्स्नायतया**) सम्पूर्ण प्राप्ति के अर्थ (**धावते**) इधर-उधर जाने-आने वाले को (**नमः**) अन्न देवें (**सत्वनाम्**) प्राप्त पदार्थों की (**पतये**) रक्षा करने हारे का (**नमः**) सत्कार करें (**सहमानाय**) बलयुक्त और (**निव्याधिने**) शत्रुओं को निरन्तर ताड़ना देने हारे पुरुष को (**नमः**) अन्न देवें (**आव्याधिनीनाम्**) अच्छे प्रकार शत्रुओं की सेनाओं को मारने हारी अपनी सेनाओं के (**पतये**) रक्षक सेनापति का (**नमः**) आदर करें (**निषङ्गिणे**) बहुत से अच्छे बाण, तलवार, भुशुण्डी, शतघ्नी अर्थात् बन्दूक तोप और तोमर आदि शस्त्र जिस के हों उस को (**नमः**) अन्न देवें (**निचेरवे**) निरन्तर पुरुषार्थ के साथ विचरने तथा (**परिचराय**) धर्म, विद्या, माता, स्वामी और मित्रादि की सब प्रकार सेवा करने वाले (**ककुभाय**) प्रसन्नमूर्ति पुरुष का (**नमः**) सत्कार करें (**स्तेनानाम्**) अन्याय से परधन लेने हारे प्राणियों को (**पतये**) जो दण्ड आदि से शुष्क करता हो उस को (**नमः**) वज्र से मारें (**अरण्यानाम्**) वन जङ्गलों के (**पतये**) रक्षक पुरुष को (**नमः**) अन्नादि पदार्थ देवें॥२०॥

भावार्थः-राजपुरुषों को चाहिये कि पुरुषार्थियों का उत्साह के लिये सत्कार, प्राणियों के ऊपर दया, अच्छी शिक्षित सेना को रखना, चोर आदि को दण्ड, सेवकों की रक्षा और वनों को नहीं काटना, इन सब को कर राज्य की वृद्धि करें॥२०॥

नमो वञ्चत इत्यस्य कुत्स ऋषिः। रुद्रा देवताः। निचृदतिधृतिश्छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

नमो॒ वञ्च॑ते परि॒वञ्च॑ते स्ताय॒ूनां पत॑ये॒ नमो॒ नमो॑ नि॒षङ्गि॒णऽइषुधि॒मते॒ तस्क॑राणा॒ं पत॑ये॒ नमो॒ नम॑ः सृका॒यिभ्यो॒ जिघा॑ꣳसद्भ्यो मुष्ण॒तां पत॑ये॒ नमो॒ नमो॑ऽसि॒मद्भ्यो॒ नक्त॒ं चर॑द्भ्यो विकृ॒न्ताना॒ं पत॑ये॒ नम॑ः॥२१॥

नम॑ः। वञ्च॑ते। प॒रि॒वञ्च॑त॒ इति॑ परि॒ऽवञ्च॑ते। स्ता॒यूनाम्। पत॑ये। नम॑ः। नम॑ः। नि॒षङ्गि॑णे। इ॒षु॒धि॒मत॒ इती॑षु॒धि॒ऽमते॑। तस्क॑राणाम्। पत॑ये। नम॑ः। नम॑ः। सृ॒का॒यिभ्य॒ इति॑ सृ॒का॒यिऽभ्य॑ः। जिघा॑ꣳसद्भ्य॒ इति॒ जिघा॑ꣳसद्ऽभ्यः। मु॒ष्ण॒ताम्।

पतये। नमः। नमः। असिमद्भ्य इत्यसिमत्ऽभ्यः। नक्तम्। चरद्भ्य इति चरत्ऽभ्यः। विकृन्तानामिति विऽकृन्तानाम्। पतये। नमः॥२१॥

पदार्थः-(नमः) वज्रप्रहारः **(वञ्चते)** छलेन परपदार्थानां हर्त्रे **(परिवञ्चते)** सर्वतः कापट्येन वर्त्तमानाय **(स्तायूनाम्)** चौर्येण जीवताम् **(पतये)** स्वामिने **(नमः)** वज्रादिशस्त्रप्रहरणम् **(नमः)** अन्नम् **(निषङ्गिणे)** राज्यपालने नित्यं सन्निताय **(इषुधिमते)** प्रशस्तेषुधिधर्त्रे **(तस्कराणाम्)** स्तेयकर्मकर्तॄणाम् **(पतये)** पातयिष्णवे **(नमः)** वज्रप्रहरणम् **(नमः) (सृकायिभ्यः)** सृकेन वज्रेण सज्जनानेतुं प्राप्तुं शीलमेषां तेभ्यः। **सृक इति वज्रनामसु पठितम्॥** (निघं०२।२०) **(जिघांसद्भ्यः)** हन्तुमिच्छद्भ्यः **(मुष्णताम्)** स्तेयकर्मकारिणाम् **(पतये)** दण्डेन निपातयित्रे **(नमः)** सत्करणम् **(नमः)** वज्रप्रहरणम् **(असिमद्भ्यः)** प्रशस्ता असयः खड्गानि विद्यन्ते येषां तेभ्यः **(नक्तम्)** रात्रौ **(चरद्भ्यः) (विकृन्तानाम्)** विविधोपायैर्ग्रन्थिं छित्त्वा परस्वापहर्तॄणाम् **(पतये)** विघातकाय **(नमः)** सत्कारः॥२१॥

अन्वयः-राजपुरुषा वञ्चते परिवञ्चते नमः स्तायूनां पतये नमो निषङ्गिण इषुधिमते नमस्तस्कराणां पतये नमः सृकायिभ्यो जिघांसद्भ्यो नमो मुष्णतां पतये नमोऽसिमद्भ्यो नक्तं चरद्भ्यो नमो विकृन्तानां पतये नमोऽनुसंदधतु॥२१॥

भावार्थः-राजजनैः कपटव्यवहारेण छलयतां दिवा रात्रौ चानर्थकारिणां निग्रहं कृत्वा धार्मिकाणां च पालनं सततं विधेयम्॥२१॥

पदार्थः-राजपुरुष **(वञ्चते)** छल से दूसरों के पदार्थों को हरने वाले **(परिवञ्चते)** सब प्रकार कपट के साथ वर्त्तमान पुरुष को **(नमः)** वज्र का प्रहार और **(स्तायूनाम्)** चोरी से जीने वालों के **(पतये)** स्वामी को **(नमः)** वज्र से मारें **(निषङ्गिणे)** राज्यरक्षा के लिये निरन्तर उद्यत **(इषुधिमते)** प्रशंसित बाणों को धारण करने हारे को **(नमः)** अन्न देवें **(तस्कराणाम्)** चोरी करने हारों को **(पतये)** उस कर्म में चलाने हारे को **(नमः)** वज्र और **(सृकायिभ्यः)** वज्र से सज्जनों को पीड़ित करने को प्राप्त होने और **(जिघांसद्भ्यः)** मारने की इच्छा वालों को **(नमः)** वज्र से मारें **(मुष्णताम्)** चोरी करते हुओं को **(पतये)** दण्डप्रहार से पृथिवी में गिराने हारे का **(नमः)** सत्कार करें **(असिमद्भ्यः)** प्रशंसित खड्गों के सहित **(नक्तम्)** रात्रि में **(चरद्भ्यः)** घूमने वाले लुटेरों को **(नमः)** शस्त्रों से मारें और **(विकृन्तानाम्)** विविध उपायों से गांठ काट के पर-पदार्थों को लेने हारे गठिकठों को **(पतये)** मार के गिराने हारे का **(नमः)** सत्कार करें॥२१॥

भावार्थः-राजपुरुषों को चाहिये कि कपटव्यवहार से छलने और दिन वा रात में अनर्थ करने हारे को रोक के धर्मात्माओं का निरन्तर पालन किया करें॥२१॥

नम उष्णीषिण इत्यस्य कुत्स ऋषिः। रुद्रा देवताः। निचृदष्टिश्छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

नम॑ऽउष्णी॒षिणे॑ गिरिच॒राय॑ कुलु॒ञ्चानां॒ पत॑ये॒ नमो॒ नम॑ऽइषु॒मद्भ्यो॑ धन्वा॒यिभ्य॑श्च वो॒ नमो॒ नम॑ऽआतन्वा॒नेभ्य॑: प्रति॒दधा॑नेभ्यश्च वो॒ नमो॒ नम॑ऽआ॒यच्छ॒द्भ्योऽस्य॑द्भ्यश्च वो॒ नम॑:॥२२॥

नम॑:। उ॒ष्णी॒षिणे॑। गि॒रि॒च॒रायेति॑ गिरिऽच॒राय॑। कु॒लु॒ञ्चाना॑म्। पत॑ये। नम॑:। नम॑:। इ॒षु॒मद्भ्य॒ इती॑षु॒मत्ऽभ्य॑:। ध॒न्वा॒यिभ्य॒ इति॑ धन्वा॒ऽयिभ्य॑:। च॒। व॒:। नम॑:। नम॑:। आ॒त॒न्वा॒नेभ्य॒ इत्या॑ऽतन्वा॒नेभ्य॑:। प्र॒ति॒दधा॑नेभ्य॒ इति॑ प्रति॒ऽदधा॑नेभ्य:। च॒। व॒:। नम॑:। नम॑:। आ॒यच्छ॑द्भ्य॒ इत्या॒यच्छ॑त्ऽभ्य:। अस्य॑द्भ्य॒ इत्यस्य॑त्ऽभ्य:। च॒। व॒:। नम॑:॥२२॥

पदार्थः-(**नमः**) सत्करणम् (**उष्णीषिणे**) प्रशस्तमुष्णीषं शिरोवेष्टनं विद्यते यस्य तस्मै ग्रामण्ये (**गिरिचराय**) यो गिरिषु पर्वतेषु चरति तस्मै जाङ्गलाय (**कुलुञ्चानाम्**) ये कुशीलेन लुञ्चन्ति अपनयन्ति परपदार्थास्तेषाम् (**पतये**) प्रपातकाय (**नमः**) सत्करणम् (**नमः**) अन्नम् (**इषुमद्भ्यः**) बहव इषवो विद्यन्ते येषां तेभ्यः (**धन्वायिभ्यः**) धनूनि धनूंष्येतुं शीलमेषां तेभ्यः (**च**) (**वः**) युष्मभ्यम् (**नमः**) अन्नम् (**नमः**) सत्कारम् (**आतन्वानेभ्यः**) समन्तात् सुखविस्तारकेभ्यः (**प्रतिदधानेभ्यः**) ये शत्रून् प्रति शस्त्राणि दधति तेभ्यः (**च**) (**वः**) युष्मभ्यम् (**नमः**) सत्करणम् (**नमः**) अन्नम् (**आयच्छद्भ्यः**) निग्रहीतृभ्यः (**अस्यद्भ्यः**) प्रक्षिपद्भ्यस्त्यजद्भ्यः (**च**) (**वः**) युष्मभ्यम् (**नमः**) सत्करणम्॥२२॥

अन्वयः-वयं राजप्रजाजना उष्णीषिणे गिरिचराय नमः कुलुञ्चानां पतये नम इषुमद्भ्यो नमो धन्वायिभ्यश्च वो नम आतन्वानेभ्यो नमः प्रतिदधानेभ्यश्च वो नम आयच्छद्भ्यो नमोऽस्यद्भ्यश्च वो नमः कुर्मो दद्मश्च॥२२॥

भावार्थः-राजप्रजाजनैः प्रधानपुरुषादयः वस्त्रान्नादिदानेन सत्करणीयाः॥२२॥

पदार्थः-हम राज और प्रजा के पुरुष (**उष्णीषिणे**) प्रशंसित पगड़ी को धारण करने वाले ग्रामपति और (**गिरिचराय**) पर्वतों में विचरने वाले जंगली पुरुष का (**नमः**) सत्कार और (**कुलुञ्चानाम्**) बुरे स्वभाव से दूसरों के पदार्थ खोंसने वालों को (**पतये**) गिराने हारे का (**नमः**) सत्कार करते (**इषुमद्भ्यः**) बहुत बाणों वाले को (**नमः**) अन्न (**च**) तथा (**धन्वायिभ्यः**) धनुषों को प्राप्त होने वाले (**वः**) तुम लोगों के लिये (**नमः**) अन्न (**आतन्वानेभ्यः**) अच्छे प्रकार सुख के फैलाने हारों का (**नमः**) सत्कार (**च**) और (**प्रतिदधानेभ्यः**) शत्रुओं के प्रति शस्त्र धारण करने हारे (**वः**) तुम को (**नमः**) सत्कार प्राप्त (**आयच्छद्भ्यः**) दुष्टों को बुरे कर्मों से रोकने वालों को (**नमः**) अन्न देते (**च**) और (**अस्यद्भ्यः**) दुष्टों पर शस्त्रादि को छोड़ने वाले (**वः**) तुम्हारे लिये (**नमः**) सत्कार करते हैं॥२२॥

भावार्थः-राजा और प्रजा के पुरुषों को चाहिये कि प्रधान पुरुष आदि का वस्त्र और अन्नादि के दान से सत्कार करें॥२२॥

नमो विसृजद्भ्य इत्यस्य कुत्स ऋषिः। रुद्रा देवताः। निचृदतिजगतीच्छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी वह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

नमो॑ वि॒सृजद्भ्यो॑ वि॒द्ध्य॑द्भ्यश्च वो॒ नमो॒ नम॑: स्व॒पद्भ्यो॒ जाग्र॑द्भ्यश्च वो॒ नमो॒ नम॒: शया॑नेभ्य॒ऽआसी॑नेभ्यश्च वो॒ नमो॒ नम॒स्तिष्ठ॑द्भ्यो॒ धाव॑द्भ्यश्च वो॒ नम॑:॥२३॥

नम॑:। वि॒सृजद्भ्य॒ इति॑ वि॒सृजत्ऽभ्य॑:। वि॒द्ध्य॑द्भ्य॒ इति॑ वि॒द्ध्य॑त्ऽभ्यः। च॒। व॒:। नम॑:। नम॑:। स्व॒पद्भ्य॒ इति॑ स्व॒पत्ऽभ्य॑:। जाग्र॑द्भ्य॒ इति॒ जाग्र॑त्ऽभ्यः। च॒। व॒:। नम॑:। नम॑:। शया॑नेभ्यः। आसी॑नेभ्यः। च॒। व॒:। नम॑:। नम॑:। तिष्ठ॑द्भ्य इति॒ तिष्ठ॑त्ऽभ्यः। धाव॑द्भ्य॒ इति॒ धाव॑त्ऽभ्यः। च॒। व॒:। नम॑:॥२३॥

पदार्थः-(**नमः**) अन्नादिकम् (**विसृजद्भ्यः**) शत्रूणामुपरि शस्त्रादिकं त्यजद्भ्यः (**विद्ध्यद्भ्यः**) शस्त्रैः दुष्टांस्ताडयद्भ्यः (**च**) (**वः**) युष्मभ्यम् (**नमः**) अन्नम् (**नमः**) वज्रम् (**स्वपद्भ्यः**) शयानेभ्यः (**जाग्रद्भ्यः**) प्रबुद्धेभ्यः (**च**) (**वः**) (**नमः**) अन्नम् (**नमः**) अन्नम् (**शयानेभ्यः**) प्राप्तनिद्रेभ्यः (**आसीनेभ्यः**) आसनोपरिस्थितेभ्यः (**च**) (**वः**) (**नमः**) अन्नम् (**नमः**) अन्नम् (**तिष्ठद्भ्यः**) स्थितेभ्यः (**धावद्भ्यः**) शीघ्रगामिभ्यः (**च**) (**वः**) युष्मभ्यम् (**नमः**) अन्नम्॥२३॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यूयमेवं सर्वेभ्य आज्ञापयत वयं विसृजद्भ्यो नमो विद्ध्यद्भ्यश्च वो नमः स्वपद्भ्यो नमो जाग्रद्भ्यश्च वो नमः शयानेभ्यो नम आसीनेभ्यश्च वो नमस्तिष्ठद्भ्यो नमो धावद्भ्यश्च वो नमः प्रदास्याम इति॥२३॥

भावार्थः-गृहस्थैरानृशंस्यं प्रयोज्यान्नादिकं दत्त्वा सर्वे प्राणिनः सुखनीयाः॥२३॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम ऐसा सब को जनाओ कि हम लोग (**विसृजद्भ्यः**) शत्रुओं पर शस्त्रादि छोड़ने वालों को (**नमः**) अन्नादि पदार्थ (**च**) और (**विद्ध्यद्भ्यः**) शस्त्रों से शत्रुओं को मारते हुए (**वः**) तुमको (**नमः**) अन्न (**स्वपद्भ्यः**) सोते हुओं के लिये (**नमः**) वज्र (**च**) और (**जाग्रद्भ्यः**) जागते हुए (**वः**) तुम को (**नमः**) अन्न (**शयानेभ्यः**) निद्रालुओं को (**नमः**) अन्न (**च**) और (**आसीनेभ्यः**) आसन पर बैठे हुए (**वः**) तुम को (**नमः**) अन्न (**तिष्ठद्भ्यः**) खड़े हुओं को (**नमः**) अन्न (**च**) और (**धावद्भ्यः**) शीघ्र चलते हुए (**वः**) तुम लोगों को (**नमः**) अन्न देवेंगे॥२३॥

भावार्थः-गृहस्थों को चाहिये कि करुणामय वचन बोल और अन्नादि पदार्थ देके सब प्राणियों को सुखी करें॥२३॥

नमः सभाभ्य इत्यस्य कुत्स ऋषिः। रुद्रा देवताः। शक्वरी छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

नमः॑ स॒भाभ्यः॑ स॒भाप॑तिभ्यश्च वो॒ नमो॒ नमोऽश्वे॒भ्योऽश्व॑पतिभ्यश्च वो॒ नमो॒ नम॑ऽआव्या॒धिनी॑भ्यो वि॒विध्य॑न्तीभ्यश्च वो॒ नमो॒ नम॒ऽउग॑णाभ्यस्तृꣳह॒तीभ्य॑श्च वो॒ नमः॑॥२४॥

नमः॑। स॒भाभ्यः॑। स॒भाप॑तिभ्य॒ इति॑ स॒भाप॑तिऽभ्यः। च॒। व॒ः। नमः॑। नमः॑। अश्वे॑भ्यः। अश्व॑पतिभ्य॒ इत्यश्व॑पतिऽभ्यः। च॒। व॒ः। नमः॑। नमः॑। आ॒व्या॒धिनी॑भ्य॒ इत्या॑ऽव्या॒धिनी॑भ्यः। वि॒विध्य॑न्तीभ्य॒ इति॑ वि॒ऽविध्य॑न्तीभ्यः। च॒। व॒ः। नमः॑। नमः॑। उग॑णाभ्यः। तृ॒ꣳह॒तीभ्यः॑। च॒। व॒ः। नमः॑॥२४॥

पदार्थः-(**नमः**) सत्करणम् (**सभाभ्यः**) या न्यायादिप्रकाशेन सह वर्त्तन्ते ताभ्यः सभाभ्यः स्त्रीभ्यः (**सभापतिभ्यः**) सभानां पालकेभ्यो राजभ्यः (**च**) (**वः**) (**नमः**) सत्करणम् (**नमः**) अन्नम् (**अश्वेभ्यः**) हयेभ्यः (**अश्वपतिभ्यः**) अश्वानां पालकेभ्यः (**च**) (**वः**) (**नमः**) अन्नम् (**नमः**) अन्नम् (**आव्याधिनीभ्यः**) शत्रुसेनां ताडनशीलाभ्यः स्वसेनाभ्यः (**विविध्यन्तीभ्यः**) शत्रूवीरान् निहन्त्रीभ्यः (**च**) (**वः**) (**नमः**) सत्करणम् (**नमः**) अन्नम् (**उगणाभ्यः**) विविधतर्कयुक्ता गणा यासु ताभ्यः (**तृंहतीभ्यः**) हन्त्रीभ्यः (**च**) (**वः**) (**नमः**) अन्नप्रदानम्॥२४॥

अन्वयः-मनुष्यैः सर्वान् प्रत्येवं वक्तव्यं वयं सभाभ्यो नमः सभापतिभ्यश्च वो नमोऽश्वेभ्यो नमोऽश्वपतिभ्यश्च वो नम आव्याधिनीभ्यो नमो विविध्यन्तीभ्यश्च वो नम उगणाभ्यो नमस्तृंहतीभ्यश्च वो नमः कुर्याम दद्याम च॥२४॥

भावार्थः-मनुष्यैः सभया सभापतिभिश्चैव राज्यव्यवस्था कार्या न खलु कदाचिदेकराजाधीनत्वेन स्थातव्यं यतो नैकेन बहूनां हिताहितसाधनं भवितुं शक्यमतः॥२४॥

पदार्थः-मनुष्यों को सब के प्रति ऐसे कहना चाहिये कि हम लोग (**सभाभ्यः**) न्याय आदि के प्रकाश से युक्त स्त्रियों का (**नमः**) सत्कार (**च**) और (**सभापतिभ्यः**) सभाओं के रक्षक (**वः**) तुम राजाओं का (**नमः**) सत्कार करें (**अश्वेभ्यः**) घोड़ों को (**नमः**) अन्न (**च**) और (**अश्वपतिभ्यः**) घोड़ों के रक्षक (**वः**) तुम को (**नमः**) अन्न तथा (**आव्याधिनीभ्यः**) शत्रुओं की सेनाओं को मारने हारी अपनी सेनाओं के लिये (**नमः**) अन्न देवें (**च**) और (**विविध्यन्तीभ्यः**) शत्रुओं के वीरों को मारती हुई (**वः**) तुम स्त्रियों का (**नमः**) सत्कार करें (**उगणाभ्यः**) विविध तर्कों वाली स्त्रियों को (**नमः**) अन्न (**च**) और (**तृंहतीभ्यः**) युद्ध में मारती हुई (**वः**) तुम स्त्रियों के लिये (**नमः**) अन्न देवें तथा यथायोग्य सत्कार किया करें॥२४॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि सभा और सभापतियों से ही राज्य की व्यवस्था करें। कभी एक राजा की अधीनता से स्थिर न हों, क्योंकि एक पुरुष से बहुतों के हिताहित का विचार कभी नहीं हो सकता इससे॥२४॥

नमो गणेभ्य इत्यस्य कुत्स ऋषिः। रुद्रा देवताः। भुरिक् शक्वरी छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो नमो व्रातेभ्यो व्रातपतिभ्यश्च वो नमो नमो गृत्सेभ्यो गृत्सपतिभ्यश्च वो नमो नमो विरूपेभ्यो विश्वरूपेभ्यश्च वो नमः॥२५॥

नमः। गणेभ्यः। गणपतिभ्य इति गणपतिऽभ्यः। च। वः। नमः। नमः। व्रातेभ्यः। व्रातपतिभ्य इति व्रातपतिऽभ्यः। च। वः। नमः। नमः। गृत्सेभ्यः। गृत्सपतिभ्य इति गृत्सपतिऽभ्यः। च। वः। नमः। नमः। विरूपेभ्य इति विऽरूपेभ्यः। विश्वरूपेभ्य इति विश्वऽरूपेभ्यः। च। वः। नमः॥२५॥

पदार्थः-(**नमः**) अन्नम् (**गणेभ्यः**) सेवकेभ्यः (**गणपतिभ्यः**) गणानां सेवकानां पालकेभ्यः (**च**) (**वः**) (**नमः**) अन्नम् (**नमः**) सत्करणम् (**व्रातेभ्यः**) मनुष्येभ्यः। **व्रात इति मनुष्यनामसु पठितम्॥** (निघं०२।३३) (**व्रातपतिभ्यः**) मनुष्याणां पालकेभ्यः (**च**) (**वः**) (**नमः**) सत्करणम् (**नमः**) सत्करणम् (**गृत्सेभ्यः**) ये गृणन्ति पदार्थगुणान् स्तुवन्ति तेभ्यो विद्वद्भ्यः (**गृत्सपतिभ्यः**) मेधाविरक्षकेभ्यः (**च**) (**वः**) (**नमः**) सत्करणम् (**नमः**) सत्करणम् (**विरूपेभ्यः**) विविधानि रूपाणि येषां तेभ्यः (**विश्वरूपेभ्यः**) अखिलस्वरूपेभ्यः (**च**) (**वः**) (**नमः**) सत्करणम्॥२५॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा वयं गणेभ्यो नमो गणपतिभ्यश्च वो नमो व्रातेभ्यो नमो व्रातपतिभ्यश्च वो नमो गृत्सेभ्यो नमो गृत्सपतिभ्यश्च वो नमो विरूपेभ्यो नमो विश्वरूपेभ्यश्च वो नमो दद्याम कुर्य्याम च तथा युष्माभिरपि दातव्यं कर्त्तव्यं च॥२५॥

भावार्थः-सर्वे जना अखिलप्राण्युपकारं विद्वत्सङ्गं समग्रां श्रियं विद्याश्च धृत्वा सन्तुष्यन्तु॥२५॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे हम लोग (**गणेभ्यः**) सेवकों को (**नमः**) अन्न (**च**) और (**गणपतिभ्यः**) सेवकों के रक्षक (**वः**) तुम लोगों को (**नमः**) अन्न देवें (**व्रातेभ्यः**) मनुष्यों का (**नमः**) सत्कार (**च**) और (**व्रातपतिभ्यः**) मनुष्यों के रक्षक (**वः**) तुम्हारा (**नमः**) सत्कार (**गृत्सेभ्यः**) पदार्थों के गुणों को प्रकट करने वाले विद्वानों का (**नमः**) सत्कार (**च**) तथा (**गृत्सपतिभ्यः**) बुद्धिमानों के रक्षक (**वः**) तुम लोगों का (**नमः**) सत्कार (**विरूपेभ्यः**) विविधरूप वालों का (**नमः**) सत्कार (**च**) और (**विश्वरूपेभ्यः**) सब रूपों से युक्त (**वः**) तुम लोगों का (**नमः**) सत्कार करें, वैसे तुम लोग भी देओ, सत्कार करो॥२५॥

भावार्थः-सब मनुष्य सम्पूर्ण प्राणियों का उपकार, विद्वानों का सङ्ग, समग्र शोभा और विद्याओं को धारण करके सन्तुष्ट हों॥२५॥

नमः सेनाभ्य इत्यस्य कुत्स ऋषिः। रुद्रा देवताः। भुरिगतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

नम॒: सेना॑भ्य: सेना॒निभ्य॑श्च वो॒ नमो॒ नमो॑ र॒थिभ्यो॑ऽअर॒थेभ्य॑श्च वो॒ नमो॒ नम॑: क्ष॒त्तृभ्य॑: सङ्ग्रही॒तृभ्य॑श्च वो॒ नमो॒ नमो॑ म॒हद्भ्यो॑ऽअर्भ॒केभ्य॑श्च वो॒ नम॑:॥२६॥

नम॑:। सेना॑भ्य:। से॒ना॒निभ्य॒ इति॑ सेना॒निऽभ्य॑:। च॒। व॒:। नम॑:। नम॑:। र॒थिभ्य॒ इति॑ र॒थिऽभ्य॑:। अ॒र॒थेभ्य॑:। च॒। व॒:। नम॑:। नम॑:। क्ष॒त्तृभ्य॒ इति॑ क्ष॒त्तृऽभ्य॑:। स॒ङ्ग्र॒ही॒तृभ्य॒ इति॑ सम्ऽग्रही॒तृभ्य॑:। च॒। व॒:। नम॑:। नम॑:। म॒हत्भ्य॑:। अ॒र्भ॒केभ्य॑:। च॒। व॒:। नम॑:॥२६॥

पदार्थ:-(**नम:**) सत्कारम् (**सेनाभ्य:**) सिन्वन्ति बध्नन्ति शत्रून् याभिस्ताभ्य: (**सेनानिभ्य:**) ये सेनां नयन्ति तेभ्यो नायकेभ्य: प्रधानपुरुषेभ्य:, अत्र वर्णव्यत्ययेन ईकारस्य इकार:। (**च**) (**व:**) (**नम:**) अन्नम् (**नम:**) सत्करणम् (**रथिभ्य:**) प्रशस्ता रथा विद्यन्ते येषां तेभ्य: (**अरथेभ्य:**) अविद्यमाना रथा येषां तेभ्य: पदातिभ्य: (**च**) (**व:**) (**नम:**) सत्क्रियाम् (**नम:**) अन्नादिकम् (**क्षत्तृभ्य:**) शूद्रात् क्षत्रियायां जातेभ्य: (**संग्रहीतृभ्य:**) ये युद्धार्थास्सामग्री: सम्यग् गृह्णन्ति तेभ्य: (**च**) (**व:**) (**नम:**) सत्करणम् (**नम:**) सुसंस्कृतान्नादिकम् (**महद्भ्य:**) महाशयेभ्यो विद्यावयोभ्यां वृद्धेभ्य: पूज्येभ्य: (**अर्भकेभ्य:**) कनिष्ठेभ्य: क्षुद्राशयेभ्य: शिक्षणीयेभ्यो विद्यार्थिभ्य: (**च**) (**व:**) (**नम:**) सत्करणम्॥२६॥

अन्वय:-हे राजप्रजाना:! यथा वयं सेनाभ्यो नमो व: सेनानिभ्यो नमश्च रथिभ्यो नमो वोऽरथेभ्यो नमश्च क्षत्तृभ्यो नमो व: संग्रहीतृभ्यो नमश्च महद्भ्यो नमो वोऽर्भकेभ्यो नमश्च सततं कुर्मो दद्मश्च, तथैव यूयमपि कुरुत दत्त च॥२६॥

भावार्थ:-राजपुरुषै: सर्वान् भृत्यान् सत्कृत्य सुशिक्ष्यान्नादिना वर्धयित्वा धर्मेण राज्यं पालनीयम्॥२६॥

पदार्थ:-हे राज और प्रजा के पुरुषो! जैसे हम लोग (**सेनाभ्य:**) शत्रुओं को बांधने हारे सेनास्थ पुरुषों का (**नम:**) सत्कार करते (**च**) और (**व:**) तुम (**सेनानिभ्य:**) सेना के नायक प्रधान पुरुषों को (**नम:**) अन्न देते हैं (**रथिभ्य:**) प्रशंसित रथों वाले पुरुषों का (**नम:**) सत्कार (**च**) और (**व:**) तुम (**अरथेभ्य:**) रथों से पृथक् पैदल चलने वालों का (**नम:**) सत्कार करते हैं (**क्षत्तृभ्य:**) क्षत्रिय की स्त्री में शूद्र से उत्पन्न हुए वर्णसंकर के लिये (**नम:**) अन्नादि पदार्थ देते (**च**) और (**व:**) तुम (**संग्रहीतृभ्य:**) अच्छे प्रकार युद्ध की सामग्री को ग्रहण करने हारों का (**नम:**) सत्कार करते हैं (**महद्भ्य:**) विद्या और अवस्था से वृद्ध पूजनीय महाशयों को (**नम:**) अच्छा पकाया हुआ अन्नादि पदार्थ देते (**च**) और (**व:**) तुम (**अर्भकेभ्य:**) क्षुद्राशय शिक्षा के योग्य विद्यार्थियों का (**नम:**) निरन्तर सत्कार करते हैं, वैसे तुम लोग भी दिया, किया करो॥२६॥

भावार्थ:-राजपुरुषों को चाहिये कि सब भृत्यों को सत्कार और शिक्षापूर्वक अन्नादि पदार्थों से उन्नति देके धर्म से राज्य का पालन करें॥२६॥

नमस्तक्षभ्य इत्यस्य कुत्स ऋषिः। रुद्रा देवताः। निचृच्छक्वरी छन्दः। धैवतः स्वरः॥

विद्वद्भिः के सत्कर्त्तव्या इत्याह॥

विद्वान् लोगों को किन का सत्कार करना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

नमस्तक्षभ्यो रथकारेभ्यश्च वो नमो नमः कुलालेभ्यः कर्मारेभ्यश्च वो नमो नमो निषादेभ्यः पुञ्जिष्ठेभ्यश्च वो नमो नमः श्वनिभ्यो मृगयुभ्यश्च वो नमः॥ २७॥

नमः। तक्षभ्य इति तक्षऽभ्यः। रथकारेभ्य इति रथऽकारेभ्यः। च। वः। नमः। नमः। कुलालेभ्यः। कर्मारेभ्यः। च। वः। नमः। नमः। निषादेभ्यः। निसादेभ्य इति निऽसादेभ्यः। पुञ्जिष्ठेभ्यः। च। वः। नमः। नमः। श्वनिभ्य इति श्वनिऽभ्यः। मृगयुभ्य इति मृगयुऽभ्यः। च। वः। नमः॥ २७॥

पदार्थः-(नमः) अन्नम् **(तक्षभ्यः)** ये तक्ष्णुवन्ति तनूकुर्वन्ति तेभ्यः **(रथकारेभ्यः)** ये रथान् विमानादियानसमूहान् कुर्वन्ति तेभ्यः शिल्पिभ्यः **(च) (वः) (नमः)** वेतनादिदानेन सत्करणम् **(नमः)** अन्नादिकम् **(कुलालेभ्यः)** मृत्स्नापात्रादिरचकेभ्यः **(कर्मारेभ्यः)** असिभुशुण्डीशतघ्न्यादिनिर्मातृभ्यः **(च) (वः) (नमः)** सत्करणम् **(नमः)** अन्नादिदानम् **(निषादेभ्यः)** ये वनपर्वतादिषु तिष्ठन्ति तेभ्यः **(पुञ्जिष्ठेभ्यः)** ये पुञ्जिषु वर्णेषु भाषासु वा तिष्ठन्ति तेभ्यः **(च) (वः) (नमः)** सत्करणम् **(नमः)** अन्नादिदानम् **(श्वनिभ्यः)** ये शुनो नयन्ति शिक्षयन्ति तेभ्यः **(मृगयुभ्यः)** य आत्मनो मृगान् कामयन्ते तेभ्यः **(च) (वः) (नमः)** सत्करणम्॥ २७॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा वयं राजादयो वस्तक्षभ्यो नमो रथकारेभ्यो नमश्च, वः कुलालेभ्यो नमः कर्मारेभ्यो नमश्च, वो निषादेभ्यो नमः पुञ्जिष्ठेभ्यो नमश्च, वः श्वनिभ्यो नमो मृगयुभ्यो नमश्च दद्याम कुर्याम च तथा यूयमपि दत्त कुरुत च॥ २७॥

भावार्थः-विद्वांसो ये पदार्थविद्ययाऽपूर्वाणि शिल्पकृत्यानि साध्नुयुस्तान् पारितोषिकदानेन सत्कुर्युः। ये श्वादिपशुभ्योऽन्नादिदानेन परिपाल्य सुशिक्ष्योपयोजयेयुस्तान् सुखानि प्रापयेयुः॥ २७॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे राजा आदि हम लोग **(तक्षभ्यः)** पदार्थों को सूक्ष्मक्रिया से बनाने हारे तुम को **(नमः)** अन्न देते **(च)** और **(रथकारेभ्यः)** बहुत से विमानादि यानों को बनाने हारे **(वः)** तुम लोगों का **(नमः)** परिश्रमादि का धन देके सत्कार करते हैं **(कुलालेभ्यः)** प्रशंसित मट्टी के पात्र बनाने वालों को **(नमः)** अन्नादि पदार्थ देते **(च)** और **(कर्मारेभ्यः)** खड्ग, बन्दूक और तोप आदि शस्त्र बनाने वाले **(वः)** तुम लोगों का **(नमः)** सत्कार करते हैं **(निषादेभ्यः)** वन और पर्वतादि में रह कर दुष्ट जीवों को ताड़ना देने वाले तुम को **(नमः)** अन्नादि देते **(च)** और **(पुञ्जिष्ठेभ्यः)** श्वेतादि वर्णों वा भाषाओं में प्रवीण **(वः)** तुम्हारा **(नमः)** सत्कार करते हैं **(श्वनिभ्यः)** कुत्तों को शिक्षा करने हारे **(वः)** तुम को **(नमः)** अन्नादि देते **(च)**

और (**मृगयुभ्य:**) अपने आत्मा से वन के हरिण आदि पशुओं को चाहने वाले तुम लोगों का (**नम:**) सत्कार करते हैं, वैसे तुम लोग भी करो॥२७॥

भावार्थ:-विद्वान् लोग जो पदार्थविद्या को जान के अपूर्व कारीगरीयुक्त पदार्थों को बनावें, उनको पारितोषिक आदि देके प्रसन्न करें और जो कुत्ते आदि पशुओं को अन्नादि से रक्षा कर तथा अच्छी शिक्षा देके उपयोग में लावें, उनको सुख प्राप्त करावें॥२७॥

नम: श्वभ्य इत्यस्य कुत्स ऋषि:। रुद्रा देवता:। आर्षी जगती छन्द:। निषाद: स्वर:॥

मनुष्यै: केभ्य: कथमुपकारो ग्राह्य इत्याह॥

मनुष्य लोग किन से कैसा उपकार लेवें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

नम॒: श्वभ्य॒: श्वप॑तिभ्यश्च वो॒ नमो॒ नमो॑ भ॒वाय॑ च रु॒द्राय॑ च॒ नम॑: श॒र्वाय॑ च पशु॒पत॑ये च॒ नमो॒ नील॑ग्रीवाय च शिति॒कण्ठा॑य च॥२८॥

नम॑:। श्वभ्य॒ इति॒ श्वऽभ्य॑:। श्वप॑तिभ्य॒ इति॒ श्वप॑तिऽभ्य:। च॒। व॒:। नम॑:। नम॑:। भ॒वाय॑। च॒। रु॒द्राय॑। च॒। नम॑:। श॒र्वाय॑। च॒। प॒शु॒पत॑य॒ इति॑ पशु॒ऽपत॑ये। च॒। नम॑:। नील॑ग्रीवा॒येति॒ नील॑ऽग्रीवाय। च॒। शि॒ति॒कण्ठा॒येति॑ शिति॒ऽकण्ठा॑य। च॒॥२८॥

पदार्थ:-(**नम:**) अन्नम् (**श्वभ्य:**) कुक्कुरेभ्य: (**श्वपतिभ्य:**) शुनां पालकेभ्य: (**च**) (**व:**) (**नम:**) अन्नं सत्करणं च (**नम:**) सत्करणम् (**भवाय**) य: शुभगुणादिषु भवति तस्मै (**च**) (**रुद्राय**) दुष्टानां रोदकाय (**च**) (**नम:**) अन्नादिकम् (**शर्वाय**) हिंसकाय (**च**) (**पशुपतये**) गवादिपशुपालकाय (**च**) (**नम:**) अन्नम् (**नीलग्रीवाय**) नील: शोभनो वर्णो ग्रीवायां यस्य तस्मै (**च**) (**शितिकण्ठाय**) शितिस्तीक्ष्णीभूत: कृष्णो वा कण्ठो यस्य तस्मै (**च**)॥२८॥

अन्वय:-हे मनुष्या:! यथा वयं परीक्षका: श्वभ्यो नमो व: श्वपतिभ्यो नमश्च, भवाय नमश्च रुद्राय नमश्च शर्वाय नमश्च नमश्च पशुपतये नीलग्रीवाय नमश्च शितिकण्ठाय नमश्च दद्याम कुर्याम तथा यूयमपि दत्त कुरुत च॥२८॥

भावार्थ:-मनुष्यै: श्वादिपशूनन्नादिदानेन वर्द्धयित्वा तैरुपकारो ग्राह्य:। पशुपालकादीनां सत्कारश्च कार्य:॥२८॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! जैसे हम परीक्षक लोग (**श्वभ्य:**) कुत्तों को (**नम:**) अन्न देवें (**च**) और (**व:**) तुम (**श्वपतिभ्य:**) कुत्तों को पालने वालों को (**नम:**) अन्न देवें तथा सत्कार करें (**च**) तथा (**भवाय**) जो शुभगुणों में प्रसिद्ध हो उस जन का (**नम:**) सत्कार (**च**) और (**रुद्राय**) दुष्टों को रुलाने हारे वीर का सत्कार (**च**) तथा (**शर्वाय**) दुष्टों को मारने वालों को (**नम:**) अन्नादि देते (**च**) और (**पशुपतये**) गौ आदि पशुओं के पालक को अन्न (**च**) और (**नीलग्रीवाय**) सुन्दर वर्ण वाले कण्ठ से युक्त (**च**) और (**शितिकण्ठाय**)

तीक्ष्ण वा काले कण्ठ वाले को **(नमः)** अन्न देते और सत्कार करते हैं वैसे तुम भी दिया, किया करो॥२८॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि कुत्ते आदि पशुओं को अन्नादि से बढ़ा के उनसे उपकार लेवें और पशुओं के रक्षकों का सत्कार भी करें॥२८॥

नमः कपर्दिने इत्यस्य कुत्स ऋषिः। रुद्रो देवता। भुरिगतिजगतीछन्दः। निषादः स्वरः॥

गृहस्थैः के सत्कर्त्तव्या इत्युच्यते॥

गृहस्थ लोगों को किनका सत्कार करना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

नमः कपर्दिने च व्युप्तकेशाय च नमः सहस्राक्षाय च शतधन्वने च नमो गिरिशयाय च शिपिविष्टाय च नमो मीढुष्टमाय चेषुमते च॥२९॥

नमः। कपर्दिने। च। व्युप्तकेशायेति व्युप्तऽकेशाय। च। नमः। सहस्राक्षायेति सहस्रऽअक्षाय। च। शतधन्वन इति शतऽधन्वने। च। नमः। गिरिशयायेति गिरिऽशयाय। च। शिपिविष्टायेति शिपिऽविष्टाय। च। नमः। मीढुष्टमाय। मीढुस्तमायेति मीढुःऽतमाय। च। इषुमत इतीषुऽमते। च॥२९॥

पदार्थः-**(नमः)** अन्नम् **(कपर्दिने)** जटिलाय ब्रह्मचारिणे **(च)** **(व्युप्तकेशाय)** विशेषतयोप्ताश्छेदिताः केशा येन तस्मै संन्यासिने **(च)** संन्यासमिच्छवे वा **(नमः)** सत्करणम् **(सहस्राक्षाय)** सहस्रेष्वसंख्यातेषु शास्त्रविषयादिष्वक्षिणी यस्य तस्मै विदुषे ब्राह्मणाय **(च)** **(शतधन्वने)** धनुर्विद्याद्यसंख्यशस्त्रविद्याशिक्षकाय **(च)** **(नमः)** सत्करणम् **(गिरिशयाय)** यो गिरिषु पर्वतेषु श्रितः सन् शेते तस्मै वानप्रस्थाय **(च)** **(शिपिविष्टाय)** शिपिषु पशुषु पालकत्वेन विष्टाय प्रविष्टाय वैश्यप्रभृतये **(च)** शूद्राय **(नमः)** सत्करणम् **(मीढुष्टमाय)** अतिशयेन वृक्षोद्यानक्षेत्रादिसेचकाय कृषीवलाद्याय **(च)** **(इषुमते)** प्रशस्ता इषवो बाणा विद्यन्ते यस्य तस्मै वीराय **(च)** भृत्यवर्गाय॥२९॥

अन्वयः-गृहस्था मनुष्या नमः कपर्दिने च, व्युप्तकेशाय च नमः, सहस्राक्षाय च शतधन्वने च नमो, गिरिशयाय च शिपिविष्टाय च नमो, मीढुष्टमाय चेषुमते च कुर्युः प्रदद्युश्च॥२९॥

भावार्थः-गृहस्थैर्ब्रह्मचारिप्रभृतीन् सत्कृत्य विद्यादानं कर्त्तव्यं कारयितव्यं च तथा संन्यास्यादीन् संपूज्य विशिष्टविज्ञानं ग्राह्यम्॥२९॥

पदार्थः-गृहस्थ लोगों को चाहिये कि **(कपर्दिने)** जटाधारी ब्रह्मचारी **(च)** और **(व्युप्तकेशाय)** समस्त केश मुंडाने हारे संन्यासी **(च)** और संन्यास चाहते हुए को **(नमः)** अन्न देवें **(च)** तथा **(सहस्राक्षाय)** असंख्य शास्त्र के विषयादि को देखने वाले विद्वान् ब्राह्मण का **(च)** और **(शतधन्वने)** धनुष् आदि असंख्य शस्त्र विद्याओं के शिक्षक क्षत्रिय का **(नमः)** सत्कार करें **(गिरिशयाय)** पर्वतों के आश्रय से सोने हारे वानप्रस्थ का **(च)** और **(शिपिविष्टाय)** पशुओं के पालक वैश्य आदि **(च)** और शूद्र का **(नमः)**

सत्कार करें **(मीढुष्टमाय)** वृक्ष, बगीचा और खेत आदि को अच्छे प्रकार सींचने वाले किसान लोगों **(च)** और माली आदि को **(इषुमते)** प्रशंसित बाणों वाले वीर पुरुष को **(च)** भी **(नमः)** अन्नादि देवें और सत्कार करें॥ २९॥

भावार्थः-गृहस्थों को योग्य है कि ब्रह्मचारी आदि को सत्कारपूर्वक विद्यादान करें और करावें तथा संन्यासी आदि की सेवा करके विशेष विज्ञान का ग्रहण किया करें॥ २९॥

नमो ह्रस्वायेत्यस्य कुत्स ऋषिः। रुद्रा देवताः। विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तदेवाह॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

नमो॑ ह्रस्वाय॑ च वामनाय॑ च॒ नमो॑ बृह॒ते च॒ वर्षी॑यसे च॒ नमो॑ वृ॒द्धाय॑ च स॒वृधे॑ च॒ नमोऽग्र्या॑य च प्रथ॒माय॑ च॥ ३०॥

नम॑ः। ह्रस्वाय॑। च॒। वा॒म॒नाय॑। च॒। नम॑ः। बृ॒ह॒ते। च॒। वर्षी॑यसे। च॒। नम॑ः। वृ॒द्धाय॑। च॒। स॒वृध॒ इति॑ स॒ऽवृधे॑। च॒। नम॑ः। अग्र्या॑य। च॒। प्र॒थ॒माय॑। च॒॥ ३०॥

पदार्थः-**(नमः)** अन्नम् **(ह्रस्वाय)** बालकाय **(च)** **(वामनाय)** वामं प्रशस्तं विज्ञानं विद्यते यस्य तस्मै। **वाम इति प्रशस्यनामसु पठितम्॥** (निघं०३।८) अत्र **पामादित्वान्नः॥** (अष्टा०५।२।१००) **(च)** **(नमः)** सत्करणम् **(बृहते)** महते **(च)** **(वर्षीयसे)** अतिशयेन विद्यावृद्धाय **(च)** **(नमः)** सत्करणम् **(वृद्धाय)** वयोऽधिकाय **(च)** **(सवृधे)** यः समानैः सह वर्धते तस्मै **(च)** सर्वमित्राय **(नमः)** सत्करणम् **(अग्र्याय)** अग्रे भवाय सत्कर्मसु पुरःसराय **(च)** **(प्रथमाय)** प्रख्याताय **(च)**॥ ३०॥

अन्वयः-ये गृहस्था मनुष्या ह्रस्वाय च वामनाय च नमो बृहते च वर्षीयसे च नमो वृद्धाय च सवृधे च नमोऽग्र्याय च प्रथमाय नमश्च ददति कुर्वन्ति च ते सुखिनो भवन्ति॥ ३०॥

भावार्थः-गृहस्थैर्मनुष्यैरन्नादिना बालकादीन् सत्कृत्य सद्व्यवहार उन्नेयः॥ ३०॥

पदार्थः-जो गृहस्थ लोग **(ह्रस्वाय)** बालक **(च)** और **(वामनाय)** प्रशंसित ज्ञानी **(च)** तथा मध्यम विद्वान् को **(नमः)** अन्न देते हैं **(बृहते)** बड़े **(च)** और **(वर्षीयसे)** विद्या में अतिवृद्ध **(च)** तथा विद्यार्थी का **(नमः)** सत्कार **(वृद्धाय)** अवस्था में अधिक **(च)** और **(सवृधे)** अपने समानों के साथ बढ़ने वाले **(च)** तथा सब के मित्र का **(नमः)** सत्कार **(च)** और **(अग्र्याय)** सत्कर्म करने में सब से पहिले उद्यत होने वाले **(च)** तथा **(प्रथमाय)** प्रसिद्ध पुरुष का **(नमः)** सत्कार करते हैं॥ ३०॥

भावार्थः-गृहस्थ मनुष्यों को उचित है कि अन्नादि पदार्थों से बालक आदि का सत्कार करके अच्छे व्यवहार की उन्नति करें॥ ३०॥

नम आशव इत्यस्य कुत्स ऋषिः। रुद्रा देवताः। स्वराडार्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अथोद्योगः कथं कार्य इत्युपदिश्यते॥

अब उद्योग कैसे करना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

नमऽआशवे चाजिराय च नमः शीघ्र्याय च शीभ्याय च नमऽऊर्म्याय चावस्वन्याय च नमो नादेयाय च द्वीप्याय च॥३१॥

नमः। आशवे। च। अजिराय। च। नमः। शीघ्र्याय। च। शीभ्याय। च। नमः। ऊर्म्याय। च। अवस्वन्यायेत्यवऽस्वन्याय। च। नमः। नादेयाय। च। द्वीप्याय। च॥३१॥

पदार्थः-(नमः) अन्नादिकम् **(आशवे)** वायुरिवाध्वानं व्याप्तायाश्वाय **(च)** **(अजिराय)** अश्ववारं प्रक्षेप्त्रे **(च)** **(नमः)** अन्नम् **(शीघ्र्याय)** शीघ्रगतौ साधवे **(च)** **(शीभ्याय)** शीभेषु क्षिप्रकारिषु भवाय। **शीभमिति क्षिप्रनामसु पठितम्॥** (निघं०२।१५) **(च)** **(नमः)** अन्नम् **(ऊर्म्याय)** ऊर्मिषु जलतरङ्गेषु भवाय वायुरिव वर्त्तमानाय **(च)** **(अवस्वन्याय)** अर्वाचीनेषु स्वनेषु भवाय **(च)** **(नमः)** अन्नम् **(नादेयाय)** नद्यां भवाय **(च)** **(द्वीप्याय)** द्वीपेषु द्विर्गतजलेषु देशेषु भवाय **(च)**॥३१॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यदि यूयमाशवे चाजिराय च नमः शीघ्र्याय शीभ्याय च नमश्चोर्म्याय चावस्वन्याय च नमो नादेयाय च द्वीप्याय च नमो दत्त तर्हि भवन्तोऽखिलानन्दान् प्राप्नुत॥३१॥

भावार्थः-ये क्रियाकौशलेन रचितैर्विमानादियानैरश्वादिभिश्च शीघ्रं गतिमन्तः सन्ति, ते कं कं द्वीपं देशं वाऽगत्वा राज्याय धनं च नाप्नुवन्ति? किन्तु सर्वत्र गत्वा सर्वमाप्नुवन्ति॥३१॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो तुम लोग **(आशवे)** वायु के तुल्य मार्ग में शीघ्रगामी **(च)** और **(अजिराय)** असवारों को फेंकने वाले घोड़े **(च)** तथा हाथी आदि को **(नमः)** अन्न **(शीघ्र्याय)** शीघ्र चलने में उत्तम **(च)** और **(शीभ्याय)** शीघ्रता करने हारों में प्रसिद्ध **(च)** तथा मध्यस्थ जन को **(नमः)** अन्न **(ऊर्म्याय)** जल-तरंगो में वायु के समान वर्त्तमान **(च)** और **(अवस्वन्याय)** अनुत्तम शब्दों में प्रसिद्ध होने वाले के लिये **(च)** तथा दूर से सुनने हारे को **(नमः)** अन्न **(नादेयाय)** नदी में रहने **(च)** और **(द्वीप्याय)** जल के बीच टापू में रहने **(च)** तथा उनके सम्बन्धियों को **(नमः)** अन्न देते रहो तो आप लोगों को सम्पूर्ण आनन्द प्राप्त हों॥३१॥

भावार्थः-जो क्रियाकौशल से बनाये विमानादि यानों और घोड़ों से शीघ्र चलते हैं, वे किस-किस द्वीप वा देश को न जाके राज्य के लिये धन को नहीं प्राप्त होते? किन्तु सर्वत्र जा आ के सब को प्राप्त होते हैं॥३१॥

नमो ज्येष्ठायेत्यस्य कुत्स ऋषिः। रुद्रा देवताः। स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

मनुष्याः परस्परं कथं सत्कृता भवेयुरित्याह॥

मनुष्य लोग परस्पर कैसे सत्कार करने वाले हों, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

नमो॑ ज्ये॒ष्ठाय॑ च कनि॒ष्ठाय॑ च॒ नम॑: पूर्व॒जाय॑ चापर॒जाय॑ च॒ नमो॑ मध्य॒माय॑ चापग॒ल्भाय॑ च॒ नमो॑ जघ॒न्या॒य च बु॒ध्न्या॒य च॥३२॥

नम॑:। ज्ये॒ष्ठाय॑। च॒। क॒नि॒ष्ठाय॑। च॒। नम॑:। पू॒र्व॒जायेति॑ पूर्व॒ऽजाय॑। च॒। अ॒प॒र॒जायेत्य॑पर॒ऽजाय॑। च॒। नम॑:। म॒ध्य॒माय॑। च॒। अ॒प॒ग॒ल्भायेत्य॑पऽग॒ल्भाय॑। च॒। नम॑:। ज॒घ॒न्या॒य। च॒। बु॒ध्न्या॒य। च॒॥३२॥

पदार्थ:-(नम:) सत्करणमन्नं वा **(ज्येष्ठाय)** अतिशयेन वृद्धाय **(च) (कनिष्ठाय)** अतिशयेन बालकाय **(च) (नम:)** सत्करणमन्नं वा **(पूर्वजाय)** पूर्वं जाताय ज्येष्ठाय भ्रात्रे ब्राह्मणाय वा **(च) (अपरजाय)** अपरे जाताय ज्येष्ठानुजायान्त्यजाय वा **(च) (नम:)** सत्कारादिकम् **(मध्यमाय)** मध्ये भवाय बन्धवे क्षत्रियाय वैश्याय वा **(च) (अपगल्भाय)** अपगतं दूरीकृतं गल्भं धाष्टर्यं येन तस्मै **(च) (नम:)** सत्करणम् **(जघन्याय)** जघने नीचकर्मणि भवाय शूद्राय म्लेच्छाय वा **(च) (बुध्न्याय)** बुध्ने जलबन्धनेऽन्तरिक्षे भवाय मेघायेव वर्त्तमानाय दात्रे **(च)**॥३२॥

अन्वय:-हे मनुष्या:! यूयं ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च नम: पूर्वजाय चापरजाय च नमो मध्यमाय चापगल्भाय च नमो जघन्याय च बुध्न्याय च नमो दत्त॥३२॥

भावार्थ:-सत्कारे कर्त्तव्य नमस्त इति वाक्योच्चारणेन कनिष्ठैर्ज्येष्ठा ज्येष्ठै: कनिष्ठा नीचैरुत्तमा उत्तमैर्नीचा: क्षत्रियाद्यैर्ब्राह्मणा ब्राह्मणाद्यै: क्षत्रियाद्याश्च सततं सत्कर्त्तव्या:। एतेनैव वेदोक्तप्रमाणेन शिष्टाचारे सर्वत्र सर्वैरेतद्वाक्यं सम्प्रयोज्यान्योन्येषां सत्करणात् प्रसन्नैर्भवितव्यम्॥३२॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! तुम लोग **(ज्येष्ठाय)** अत्यन्त वृद्धों **(च)** और **(कनिष्ठाय)** अति बालकों को **(नम:)** सत्कार और अन्न **(च)** तथा **(पूर्वजाय)** ज्येष्ठभ्राता वा ब्राह्मण **(च)** और **(अपरजाय)** छोटे भाई वा नीच का **(च)** भी **(नम:)** सत्कार वा अन्न **(मध्यमाय)** बन्धु, क्षत्रिय वा वैश्य **(च)** और **(अपगल्भाय)** ढीठपन छोड़े हुए सरल स्वभाव वाले **(च)** इन सब का **(नम:)** सत्कार आदि **(च)** और **(जघन्याय)** नीचकर्मकर्त्ता शूद्र वा म्लेच्छ **(च)** तथा **(बुध्न्याय)** अन्तरिक्ष में हुए मेघ के तुल्य वर्त्तमान दाता पुरुष का **(नम:)** अन्नादि से सत्कार करो॥३२॥

भावार्थ:-परस्पर मिलते समय सत्कार करना हो तब **(नमस्ते)** इस वाक्य का उच्चारण करके छोटे बड़ों, बड़े छोटों, नीच उत्तमों, उत्तम नीचों और क्षत्रियादि ब्राह्मणों वा ब्राह्मणादि क्षत्रियादिकों का निरन्तर सत्कार करें। सब लोग इसी वेदोक्त प्रमाण से सर्वत्र शिष्टाचार में इसी वाक्य का प्रयोग करके परस्पर एक-दूसरे का सत्कार करने से प्रसन्न होवें॥३२॥

नम: सोभ्यायेत्यस्य कुत्स ऋषि:। रुद्रा देवता:। आर्षी त्रिष्टुप् छन्द:। धैवत: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

नमः सोभ्याय च प्रतिसर्याय च नमो याम्याय च क्षेम्याय च नमः श्लोक्याय चावसान्याय च नमऽउर्वर्याय च खल्याय च॥३३॥

नमः। सोभ्याय। च। प्रतिसर्यायेति प्रतिऽसर्याय। च। नमः। याम्याय। च। क्षेम्याय। च। नमः। श्लोक्याय। च। अवसान्यायेत्यवऽसान्याय। च। नमः। उर्वर्याय। च। खल्याय। च॥३३॥

पदार्थः-(नमः) अन्नम् **(सोभ्याय)** सोभेष्वैश्वर्य्ययुक्तेषु भवाय **(च) (प्रतिसर्याय)** ये प्रतीते धर्मे सरन्ति तेषु भवाय **(च) (नमः)** सत्करणम् **(याम्याय)** यो यमेषु न्यायकारिषु साधुस्तस्मै, अत्र **अन्येषामपि दृश्यते** [अष्टा०६.३.१३७] इति दीर्घः। **(च) (क्षेम्याय)** क्षेमेषु रक्षकेषु साधुस्तस्मै **(च) (नमः)** सत्करणम् **(श्लोक्याय)** श्लोके वेदवाण्यां साधवे, **श्लोक इति वाङ्नामसु पठितम्॥** (निघं०१।११) **(च) (अवसान्याय)** अवसानव्यवहारे साधवे **(च) (नमः)** सत्करणम् **(उर्वर्याय)** उरूणां महतामर्याय स्वामिने **(च) (खल्याय)** खले संचयाधिकरणे साधवे **(च)**॥३३॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! सोभ्याय च प्रतिसर्याय च नमो याम्याय च क्षेम्याय च नमः श्लोक्याय चावसान्याय च नम उर्वर्याय च खल्याय च नमः प्रयोज्य दत्त्वा चैतान् भवन्त आनन्दयन्तु॥३३॥

भावार्थः-अत्रानेकैश्चकारैरन्येप्युपयोगिनोऽर्थाः संग्राह्याः सत्कर्त्तव्याश्च। प्रजास्थैर्न्यायाधीशादीनां न्यायाधीशाद्यैः प्रजास्थानां च सत्कारः पत्याद्यैर्भार्य्याद्या भार्य्याद्यैः पत्यादयश्च प्रसादनीयाः॥३३॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! **(सोभ्याय)** ऐश्वर्ययुक्तों में प्रसिद्ध **(च)** और **(प्रतिसर्याय)** धर्मात्माओं में उत्पन्न हुए **(च)** तथा धनी धर्मात्माओं को **(नमः)** अन्न दे **(याम्याय)** न्यायकारियों में उत्तम **(च)** और **(क्षेम्याय)** रक्षा करने वालों में चतुर **(च)** और न्यायाधीशादि को **(नमः)** अन्न दे और **(श्लोक्याय)** वेदवाणी में प्रवीण **(च)** और **(अवसान्याय)** कार्यसमाप्तिव्यवहार में कुशल **(च)** तथा आरम्भ करने में उत्तम पुरुष का **(नमः)** सत्कार **(उर्वर्याय)** महान् पुरुषों के स्वामी **(च)** और **(खल्याय)** अच्छे अन्नादि पदार्थों के सञ्चय करने में प्रवीण **(च)** और व्यय करने में विचक्षण पुरुष का **(नमः)** सत्कार करके इन सब को आप लोग आनन्दि करो॥३३॥

भावार्थः-इस मन्त्र में अनेक चकारों से और भी उपयोगी अर्थ लेना और सत्कार करना चाहिये। प्रजास्थ पुरुष न्यायाधीशों, न्यायाधीश प्रजास्थों का सत्कार, पति आदि स्त्री आदि की और स्त्री आदि पति आदि पुरुषों की प्रसन्नता करें॥३३॥

नमो वन्यायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। रुद्रा देवताः। स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

राजपुरुषैः कथं भवितव्यमित्याह॥

राजपुरुषों को कैसा होना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

नमो॒ वन्या॑य च॒ कक्ष्या॑य च॒ नम॑: श्र॒वाय॑ च प्रतिश्र॒वाय॑ च॒ नम॑ऽआ॒शुषे॑णाय चा॒शुर॑थाय च॒ नम॒: शूरा॑य चावभे॒दिने॑ च॥३४॥

नम॑:। वन्या॑य। च॒। कक्ष्या॑य। च॒। नम॑:। श्र॒वाय॑। च॒। प्र॒ति॒श्र॒वायेति॑ प्रतिऽश्र॒वाय॑। च॒। नम॑:। आ॒शुषे॑णाय। आ॒शुसे॑ना॒येत्या॒शुऽसेना॑य। च॒। आ॒शुर॑था॒येत्या॒शुऽर॑थाय। च॒। नम॑:। शूरा॑य। च॒। अ॒व॒भे॒दिन॒ इत्य॑वऽभे॒दिने॑। च॒॥३४॥

पदार्थ:-(**नम:**) अन्नम् (**वन्याय**) वने जङ्गले भवाय (**च**) (**कक्ष्याय**) कक्षासु भवाय (**च**) (**नम:**) सत्करणम् (**श्रवाय**) श्रोत्रे श्रवणहेतवे वा (**च**) (**प्रतिश्रवाय**) य: प्रतिशृणोति प्रतिजानीते तस्मै (**च**) (**नम:**) अन्नदानम् (**आशुषेणाय**) आशु शीघ्रगामिनी सेना यस्य तस्मै (**च**) (**आशुरथाय**) आशु शीघ्रगामिनो रथा यानानि यस्य तस्मै (**च**) (**नम:**) सत्कारम् (**शूराय**) शत्रूणां हिंसकाय (**च**) (**अवभेदिने**) शत्रूनवभेत्तुं विदारयितुं शीलाय (**च**)॥३४॥

अन्वय:-हे मनुष्या:! ये वन्याय च कक्ष्याय च नम: श्रवाय च प्रतिश्रवाय च नम आशुषेणाय चाशुरथाय च नम: शूराय चावभेदिने च नम: प्रदद्यु: कुर्युस्ते सर्वत्र विजयिनो भवन्तु॥३४॥

भावार्थ:-राजपुरुषै: वनकक्षास्थाध्येत्रध्यापकबलिष्ठसेनातूर्णगामियानस्थवीरदूतानन्नधनादिना सत्कारेण प्रोत्साह्य सदा विजयिभिर्भवितव्यम्॥३४॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! जो लोग (**वन्याय**) जङ्गल में रहने (**च**) और (**कक्ष्याय**) वन के समीप कक्षाओं में (**च**) तथा गुफा आदि में रहने वालों को (**नम:**) अन्न देवें (**श्रवाय**) सुनने वा सुनाने के हेतु (**च**) और (**प्रतिश्रवाय**) प्रतिज्ञा करने (**च**) तथा प्रतिज्ञा को पूरी करने हारे का (**नम:**) सत्कार करें (**आशुषेणाय**) शीघ्रगामिनी सेना वाले (**च**) और (**आशुरथाय**) शीघ्र चलने हारे रथों के स्वामी (**च**) तथा सारथि आदि को (**नम:**) अन्न देवें (**शूराय**) शत्रुओं को मारने (**च**) और (**अवभेदिने**) शत्रुओं को छिन्न-भिन्न करने वाले (**च**) तथा दूतादि का (**नम:**) सत्कार करें, उन का सर्वत्र विजय होवे॥३४॥

भावार्थ:-राजपुरुषों को चाहिये कि वन तथा कक्षाओं में रहने वाले अध्येता और अध्यापकों, बलिष्ठ सेनाओं, शीघ्र चलने हारे यानों में बैठने वाले वीरों और दूतों को अन्न, धनादि से सत्कारपूर्वक उत्साह देके सदा विजय को प्राप्त हों॥३४॥

नमो बिल्मिन इत्यस्य कुत्स ऋषि:। रुद्रा देवता:। स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्द:। धैवत: स्वर:॥

योद्धृणां रक्षा कथं कार्येत्याह॥

योद्धाओं की रक्षा कैसे करना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

नमो॑ बि॒ल्मिने॑ च कव॒चिने॑ च॒ नमो॑ व॒र्मिणे॑ च वरू॒थिने॑ च॒ नम॑: श्रु॒ताय॑ च श्रुतसे॒नाय॑ च॒ नमो॑ दुन्दु॒भ्या᳕य चाहन॒न्या᳕य च॥३५॥

नमः। बिल्मिने। च। कवचिने। च। नमः। वर्मिणे। च। वरूथिने। च। नमः। श्रुताय। च। श्रुतसेनायेति श्रुतऽसेनाय। च। नमः। दुन्दुभ्याय। च। आहनन्यायेत्याऽहनन्याय। च॥३५॥

पदार्थः-(नमः) सत्करणम् **(बिल्मिने)** प्रशस्तं बिल्मं धारणं वा विद्यते यस्य तस्मै **(च) (कवचिने)** सम्बद्धं कवचं शरीररक्षासाधनं विद्यते यस्य तस्मै **(च) (नमः)** अन्नादिदानम् **(वर्मिणे)** बहूनि वर्माणि शरीररक्षासाधनानि विद्यन्ते यस्य तस्मै **(च) (वरूथिने)** प्रशस्तानि वरूथानि गृहाणि विद्यन्ते यस्य तस्मै। **वरूथमिति गृहनामसु पठितम्॥** (निघं०३।४) **(च) (नमः)** सत्करणम् **(श्रुताय)** यः शुभगुणेषु श्रूयते तस्मै **(च) (श्रुतसेनाय)** श्रुता प्रख्याता सेना यस्य तस्मै **(च) (नमः)** सत्करणम् **(दुन्दुभ्याय)** दुन्दुभिषु वादित्रेषु साधवे **(च) (आहनन्याय)** वीररसाय वादित्रवादनेषु साधवे **(च)**॥३५॥

अन्वयः-हे राजप्रजाजनाध्यक्षाः! भवन्तो बिल्मिने च कवचिने च नमो वर्मिणे च वरूथिने च नमः श्रुताय च श्रुतसेनाय च नमो दुन्दुभ्याय चाहनन्याय च नमः कुर्युर्दद्युर्यतो युष्माकं पराजयः कदापि न स्यात्॥३५॥

भावार्थः-राजप्रजाजनैर्योद्धॄणां सर्वतो रक्षा, सर्वतः सुखप्रदानि गृहाणि, भोज्यपेयानि वस्तूनि, प्रशंसितजनानां सङ्गोऽत्युत्तमानि वादित्राणि च दत्त्वा स्वाभीष्टानि साधनीयानि॥३५॥

पदार्थः-हे राजन् और प्रजा के अध्यक्ष पुरुषो! आप लोग **(बिल्मिने)** प्रशंसित धारण वा पोषण करने **(च)** और **(कवचिने)** शरीर के रक्षक कवच को धारण करने **(च)** तथा उन के सहायकारियों का **(नमः)** सत्कार करें **(वर्मिणे)** शरीररक्षा के बहुत साधनों से युक्त **(च)** और **(वरूथिने)** प्रशंसित घरों वाले **(च)** तथा घर आदि के रक्षकों को **(नमः)** अन्नादि देवें **(श्रुताय)** शुभ गुणों में प्रख्यात **(च)** और **(श्रुतसेनाय)** प्रख्यात सेना वाले **(च)** तथा सेनाओं का **(नमः)** सत्कार **(च)** और **(दुन्दुभ्याय)** बाजे बजाने में चतुर बजन्तरी **(च)** तथा **(आहनन्याय)** वीरों को युद्ध में उत्साह बढ़ने के बाजे बजाने में कुशल पुरुष का **(नमः)** सत्कार कीजिये जिससे तुम्हारा पराजय कभी न हो॥३५॥

भावार्थः-राजा और प्रजा के पुरुषों को चाहिये कि योद्धा लोगों की सब प्रकार रक्षा, सब के सुखदायी घर, खाने-पीने के योग्य पदार्थ, प्रशंसित पुरुषों का संग और अत्युत्तम बाजे आदि दे के अपने अभीष्ट कार्यों को सिद्ध करें॥३५॥

नमो धृष्णव इत्यस्य कुत्स ऋषिः। रुद्रा देवताः। स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

नमो धृष्णवे च प्रमृशाय च नमो निषङ्गिणे चेषुधिमते च नमस्तीक्ष्णेषवे चायुधिने च नमः स्वायुधाय च सुधन्वने च॥३६॥

नमः। धृष्णवे। च। प्रमृशायेति प्रऽमृशाय। च। नमः। निषङ्गिणे। च। इषुधिमत इतीषुधिऽमते। च। नमः। तीक्ष्णेषव इति तीक्ष्णऽइषवे। च। आयुधिने। च। नमः। स्वायुधायेति सुऽआयुधाय। च। सुधन्वन इति सुऽधन्वने। च॥३६॥

पदार्थः-(**नमः**) अन्नादिदानम् (**धृष्णवे**) यो धृष्णोति दृढो निर्भयो भवति तस्मै (**च**) (**प्रमृशाय**) प्रकृष्टविचारशीलाय (**च**) मृदुस्वभावजनाय (**नमः**) सत्करणम् (**निषङ्गिणे**) बहवो निषङ्गाः शस्त्रसमूहा विद्यन्ते यस्य तस्मै (**च**) (**इषुधिमते**) प्रशस्तशस्त्रास्त्रकोशाय (**च**) (**नमः**) सत्करणम् (**तीक्ष्णेषवे**) तीक्ष्णास्तीव्रा इषवोऽस्त्रशस्त्राणि यस्य तस्मै (**च**) (**आयुधिने**) ये शतघ्न्यादिभिः समन्ताद् युध्यन्ते ते प्रशस्ता विद्यन्ते यस्य तस्मै (**च**) (**नमः**) अन्नदानम् (**स्वायुधाय**) शोभनानि आयुधानि यस्य तस्मै (**च**) (**सुधन्वने**) शोभनानि धन्वानि धनूंषि यस्य तस्मै (**च**) तेषां रक्षकाय॥३६॥

अन्वयः-ये राजप्रजाजनाध्यक्षा धृष्णवे च प्रमृशाय च नमो निषङ्गिणे चेषुधिमते च नमस्तीक्ष्णेषवे चायुधिने च नमः स्वायुधाय च सुधन्वने च नमः प्रदद्युः कुर्युश्च ते सदा विजयिनो भवन्तु॥३६॥

भावार्थः-मनुष्यैर्यत्किंचित्कर्म कार्य्यं तत्सुविचारेण दृढोत्साहेनेति, नहि शरीरत्मबलमन्तरेण शस्त्रप्रहरणं शत्रुविजयश्च कर्त्तुं शक्यते, तस्मात् सततं सेना वर्द्धनीया॥३६॥

पदार्थः-जो राजा और प्रजा के अधिकारी लोग (**धृष्णवे**) दृढ़ (**च**) और (**प्रमृशाय**) उत्तम विचारशील (**च**) तथा कोमल स्वभाव वाले पुरुष को (**नमः**) अन्न देवें (**निषङ्गिणे**) बहुत शस्त्रों वाले (**च**) और (**इषुधिमते**) प्रशंसित शस्त्र, अस्त्र और कोश वाले का (**च**) भी (**नमः**) सत्कार और (**तीक्ष्णेषवे**) तीक्ष्ण शस्त्र-अस्त्रों से युक्त (**च**) और (**आयुधिने**) अच्छे प्रकार तोप आदि से लड़ने वाले वीरों से युक्त अध्यक्ष पुरुष का (**च**) भी (**नमः**) सत्कार करें (**स्वायुधाय**) सुन्दर आयुधों वाले (**च**) और (**सुधन्वने**) अच्छे धनुषों से युक्त (**च**) तथा उनके रक्षकों को (**नमः**) अन्न देवें, वे सदा विजय को प्राप्त होवें॥३६॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि जो कुछ कर्म करें सो अच्छे प्रकार विचार और दृढ़ उत्साह से करें, क्योंकि शरीर और आत्मा के बल के बिना शस्त्रों को चलाना और शत्रुओं का जीतना कभी नहीं कर सकते। इसलिये निरन्तर सेना की उन्नति करें॥३६॥

नमः श्रुतायेत्यस्य कुत्स ऋषिः। रुद्रा देवताः। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

मनुष्यैरुदकेन कथमुपकर्त्तव्यमित्याह॥

मनुष्य लोग जल से कैसे उपकार लेवें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

नमः स्रुत्याय च पथ्याय च नमः काट्याय च नीप्याय च नमः कुल्याय च सरस्याय च नमो नादेयाय च वैशन्ताय च॥३७॥

नम॑ः। स्रुत्या॑य। च॒। पथ्या॑य। च॒। नम॑ः। काट्या॑य। च॒। नीप्या॑य। च॒। नम॑ः। कुल्या॑य। च॒। स॒र॒स्या॒य। च॒। नम॑ः। ना॒दे॒याय॑। च॒। वै॒श॒न्ताय॑। च॒॥ ३७॥

पदार्थः-(नमः) अन्नदानम् **(स्रुत्याय)** स्रुतौ प्रस्रवणे भवाय **(च)** **(पथ्याय)** पथि भवाय गन्तुकाय **(च)** मार्गादिशोधकाय **(नमः)** सत्करणम् **(काट्याय)** काटेषु कूपेषु भवाय। **काट इति कूपनामसु पठितम्॥** (निघं०३।२३) **(च)** **(नीप्याय)** नितरामापो यस्मिन् स नीपस्तत्र भवाय **(च)** तत्सहायिने **(नमः)** सत्करणम् **(कुल्याय)** कुल्यासु नदीषु भवाय। **कुल्या इति नदीनामसु पठितम्॥** (निघं०१।१३) **(च)** **(सरस्याय)** सरसि तडागे भवाय **(च)** **(नमः)** अन्नादिदानम् **(नादेयाय)** नदीषु भवाय **(च)** **(वैशन्ताय)** वेशन्तेषु क्षुद्रेषु जलाशयेषु भवाय **(च)**॥ ३७॥

अन्वयः-मनुष्यैः स्रुत्याय च पथ्याय च नमः काट्याय च नीप्याय च नमः कुल्याय च सरस्याय नमश्च नादेयाय च वैशन्ताय च नमो दत्त्वा दया प्रकाशनीया॥ ३७॥

भावार्थः-मनुष्यैः स्रोतसां मार्गाणां कूपानां जलप्रायदेशानां महदल्पसरसां च जलं चालयित्वा यत्र कुत्र बद्ध्वा क्षेत्रादिषु पुष्कलान्यन्नफलवृक्षलतागुल्मादीनि संवर्धनीयानि॥ ३७॥

पदार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि **(स्रुत्याय)** स्रोता नाले आदि में रहने **(च)** और **(पथ्याय)** मार्ग में चलने **(च)** तथा मार्गादि को शोधने वाले को **(नमः)** अन्न दे **(काट्याय)** कूप आदि में प्रसिद्ध **(च)** और **(नीप्याय)** बड़े जलाशय में होने **(च)** तथा उसके सहायी का **(नमः)** सत्कार **(कुल्याय)** नहरों का प्रबन्ध करने **(च)** और **(सरस्याय)** तालाब के काम में प्रसिद्ध होने वाले का **(नमः)** सत्कार **(च)** और **(नादेयाय)** नदियों के तट पर रहने **(च)** और **(वैशन्ताय)** छोटे-छोटे जलाशयों के जीवों को **(च)** और वापी आदि के प्राणियों को **(नमः)** अन्नादि देके दया प्रकाशित करें॥ ३७॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि नदियों के मार्गों, बंबों, कूपों, जलप्राय देशों, बड़े और छोटे तालाबों के जल को चला, जहां-कहीं बांध और खेत आदि में छोड़ के, पुष्कल अन्न, फल, वृक्ष, लता, गुल्म आदि को अच्छे प्रकार बढ़ावें॥ ३७॥

नमः कूप्यायेत्यस्य कुत्स ऋषिः। रुद्रा देवताः। भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

नम॒ः कूप्या॑य चाव॒ट्या॒य च॒ नमो॒ वीध्र्या॑य चात॒प्या॒य च॒ नमो॒ मेघ्या॑य च विद्यु॒त्या॒य च॒ नमो॒ वर्ष्या॑य चाव॒र्ष्याय॑ च॥ ३८॥

नम॑ः। कूप्या॑य। च॒। अ॒व॒ट्या॒य। च॒। नम॑ः। वीध्र्या॒येति॑ वि॒ऽई॒ध्र्या॑य। च॒। आ॒त॒प्या॒येत्याऽत॒प्या॒य। च॒। नम॑ः। मेघ्या॑य। च॒। वि॒द्यु॒त्या॒येति॑ विऽद्यु॒त्या॒य। च॒। नम॑ः। वर्ष्या॑य। च॒। अ॒व॒र्ष्याय॑। च॒॥ ३८॥

पदार्थः-(**नमः**) अन्नादिकम् (**कूप्याय**) कूपे भवाय (**च**) (**अवट्याय**) अवटेषु गर्त्तेषु भवाय (**च**) जङ्गलेषु भवाय (**नमः**) सस्यादिकम् (**वीध्र्याय**) विविधेषु ईधेषु दीपनेषु भवाय, अत्र विपूर्वकादिन्धिधातोरौणादिको रक् प्रत्ययः। (**च**) (**आतप्याय**) आतपेषु भवाय (**च**) कृष्यादेः प्रबन्धकर्त्रे (**नमः**) अन्नादिकम् (**मेघ्याय**) मेघेषु भवाय (**च**) (**विद्युत्याय**) विद्युति भवाय (**च**) अग्निविद्याविदे (**नमः**) सत्कारक्रियाम् (**वर्ष्याय**) वर्षासु भवाय (**च**) (**अवर्ष्याय**) अविद्यमानासु वर्षासु भवाय (**च**)॥३८॥

अन्वयः-मनुष्याः कूप्याय चावट्याय च नमो वीध्र्याय चातप्याय च नमो मेघ्याय च विद्युत्याय च नमो वर्ष्याय चावर्ष्याय च नमो दत्त्वा कृत्वा चानन्दन्तु॥३८॥

भावार्थः-यदि मनुष्याः कूपादिभ्यः कार्यसिद्धये भृत्यान् सत्कुर्युस्तर्ह्यनेकान्युत्तमानि कार्याणि कर्त्तुं शक्नुयुः॥३८॥

पदार्थः-मनुष्य लोग (**कूप्याय**) कूप के (**च**) और (**अवट्याय**) गड्ढों (**च**) तथा जङ्गलों के जीवों को (**नमः**) अन्नादि दे (**च**) और (**वीध्र्याय**) विविध प्रकाशों में रहने (**च**) और (**आतप्याय**) घाम में रहने वाले वा (**च**) खेती आदि के प्रबन्ध करने वाले को (**नमः**) अन्न दे (**मेघ्याय**) मेघ में रहने (**च**) और (**विद्युत्याय**) बिजुली से काम लेने वाले को (**च**) तथा अग्निविद्या के जानने वाले को (**नमः**) अन्नादि दे (**च**) और (**वर्ष्याय**) वर्षा में रहने (**च**) तथा (**अवर्ष्याय**) वर्षारहित देश में वसने वाले का (**नमः**) सत्कार करके आनन्दित होवें॥३८॥

भावार्थः-जो मनुष्य कूपादि से कार्यसिद्धि होने के लिये भृत्यों का सत्कार करें तो अनेक उत्तम-उत्तम कार्यों को सिद्ध कर सकें॥३८॥

नमो वात्यायेत्यस्य कुत्स ऋषिः। रुद्रा देवताः। स्वराडार्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अथ मनुष्यैरन्येभ्यो जगत्स्थपदार्थेभ्यः कथमुपकारो ग्राह्य इत्युपदिश्यते॥

अब मनुष्य जगत् के अन्य पदार्थों से कैसे उपकार लेवें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

नमो वात्याय च रेष्म्याय च नमो वास्तव्याय च वास्तुपाय च नमः सोमाय च रुद्राय च नमस्ताम्राय चारुणाय च॥३९॥

नमः। वात्याय। च। रेष्म्याय। च। नमः। वास्तव्याय। च। वास्तुपायेति वास्तुऽपाय। च। नमः। सोमाय। च। रुद्राय। च। नमः। ताम्राय। च। अरुणाय। च॥३९॥

पदार्थः-(**नमः**) अन्नादिकम् (**वात्याय**) वायुविद्यायां भवाय (**च**) (**रेष्म्याय**) रेष्मेषु हिंसकेषु भवाय (**च**) (**नमः**) सत्करणम् (**वास्तव्याय**) वास्तुनि निवासस्थाने भवाय (**च**) (**वास्तुपाय**) वास्तूनि निवासस्थानानि पाति तस्मै (**च**) (**नमः**) अन्नादिकम् (**सोमाय**) ऐश्वर्य्योपपन्नाय (**च**) (**रुद्राय**) दुष्टानां

रोदकाय **(च)** **(नमः)** सत्करणम् **(ताम्राय)** यस्ताम्यति ग्लायति तस्मै **(च)** **(अरुणाय)** प्रापकाय **(च)**॥३९॥

अन्वयः-ये मनुष्या वात्याय च रेष्म्याय च नमो वास्तव्याय च वास्तुपाय च नमः सोमाय च रुद्राय च नमस्ताम्राय चारुणाय च नमो विदध्युस्ते श्रिया सम्पन्नाः स्युः॥३९॥

भावार्थः-यदा मनुष्या वाय्वादिगुणान् विदित्वा व्यवहारेषु संप्रयुञ्जीरंस्तदानेकानि सुखानि लभेरन्॥३९॥

पदार्थः-जो मनुष्या **(वात्याय)** वायुविद्या में कुशल **(च)** और **(रेष्म्याय)** मारने वालों में प्रसिद्ध को **(च)** भी **(नमः)** अन्नादि देवें **(च)** तथा **(वास्तव्याय)** निवास के स्थानों में हुए **(च)** और **(वास्तुपाय)** निवासस्थान के रक्षक का **(नमः)** सत्कार करें **(च)** तथा **(सोमाय)** धनाढ्य **(च)** और **(रुद्राय)** दुष्टों को रोदन कराने हारे को **(नमः)** अन्नादि देवें **(च)** तथा **(ताम्राय)** बुरे कामों से ग्लानि करने **(च)** और **(अरुणाय)** अच्छे पदार्थों को प्राप्त कराने हारे का **(नमः)** सत्कार करें, वे लक्ष्मी से सम्पन्न होवें॥३९॥

भावार्थः-जब मनुष्य वायु आदि के गुणों को जान के व्यवहारों में लगावें, तब अनेक सुखों को प्राप्त हों॥३९॥

नमः शङ्गव इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः। रुद्रा देवताः। अतिशक्वरी छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

मनुष्यैः कथं संतोष्टव्यमित्याह॥

मनुष्यों को कैसे संतोषी होना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

नमः॑ शङ्गवे॑ च पशुपत॑ये च नम॑ उग्राय॑ च भीमाय॑ च नमो॑ऽग्रेवधाय॑ च दूरेवधाय॑ च नमो॑ हन्त्रे च हनी॑यसे च नमो॑ वृक्षेभ्यो॒ हरि॑केशेभ्यो॒ नम॑स्ताराय॑॥४०॥

नमः॑। शङ्गव इति॑ शम्ऽगवे॑। च। पशुपत॑य इति॑ पशुऽपत॑ये। च। नमः॑। उग्राय॑। च। भीमाय॑। च। नमः॑। अग्रेवधायेत्य॑ग्रेऽवधाय॑। च। दूरेवधायेति॑ दूरेऽवधाय॑। च। नमः॑। हन्त्रे। च। हनी॑यसे। च। नमः॑। वृक्षेभ्यः॑। हरि॑केशेभ्य इति॑ हरि॑ऽकेशेभ्यः। नमः॑। ताराय॑॥४०॥

पदार्थः-**(नमः)** अन्नादिकम् **(शङ्गवे)** शं सुखं गच्छति प्राप्नोति तस्मै **(च)** **(पशुपतये)** गवादिपशूनां पालकाय **(च)** **(नमः)** सत्करणम् **(उग्राय)** तेजस्विने **(च)** **(भीमाय)** बिभेति यस्मात् तस्मै भयङ्कराय **(च)** **(नमः)** अन्नादिकम् **(अग्रेवधाय)** योऽग्रे पुरः शत्रून् बध्नाति हन्ति वा तस्मै **(च)** **(दूरेवधाय)** योऽरीन् दूरे बध्नाति तस्मै **(च)** **(नमः)** अन्नादिदानम् **(हन्त्रे)** यो दुष्टान् हन्ति तस्मै **(च)** **(हनीयसे)** दुष्टानामतिशयेन हन्त्रे विनाशकाय **(च)** **(नमः)** सत्करणम् **(वृक्षेभ्यः)** ये शत्रून् वृश्चन्ति छिन्दन्ति

तेभ्यः पादपेभ्यो वा **(हरिकेशेभ्यः)** हरयो हरिताः केशा येषां तेभ्यो युवभ्यो वा **(नमः)** अन्नादिकम् **(ताराय)** दुःखात् सन्तारकाय॥४०॥

अन्वयः-ये मनुष्याः शङ्गवे च पशुपतये च नम उग्राय च भीमाय च नमोऽग्रेवधाय च दूरेवधाय च नमो हन्त्रे च हनीयसे च नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यो नमस्ताराय नमो दद्युः कुर्युस्ते सुखिनः स्युः॥४०॥

भावार्थः-मनुष्यैर्गवादिपशुपालनेन भयङ्करादिशान्तिकरणेन च संतोष्टव्यम्॥४०॥

पदार्थः-जो मनुष्य **(शङ्गवे)** सुख को प्राप्त होने **(च)** और **(पशुपतये)** गौ आदि पशुओं की रक्षा करने वाले को **(च)** और गौ आदि को भी **(नमः)** अन्नादि पदार्थ देवें **(उग्राय)** तेजस्वी **(च)** और **(भीमाय)** डर दिखाने वाले का **(च)** भी **(नमः)** सत्कार करें **(अग्रेवधाय)** पहिले शत्रुओं को बांधने हारे **(च)** और **(दूरेवधाय)** दूर पर शत्रुओं को बांधने वा मारने वाले को **(च)** भी **(नमः)** अन्नादि देवें **(हन्त्रे)** दुष्टों को मारने **(च)** और **(हनीयसे)** दुष्टों का अत्यन्त निर्मूल विनाश करने हारे को **(च)** भी **(नमः)** अन्नादि देवें **(वृक्षेभ्यः)** शत्रु को काटने वालों को वा वृक्षों का और **(हरिकेशेभ्यः)** हरे केशों वाले ज्वानों वा हरे पत्तों वाले वृक्षों का **(नमः)** सत्कार करें वा जलादि देवें और **(ताराय)** दुःख से पार करने वाले पुरुष को **(नमः)** अन्नादि देवें वे सुखी हों॥४०॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि गौ आदि पशुओं के पालन और भयङ्कर जीवों की शान्ति करने से संतोष करें॥४०॥

नमः शम्भवायेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः। रुद्रा देवताः। स्वराडार्षी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

जनैः कथं स्वाभीष्टं साध्यमित्याह॥

मनुष्यों को कैसे अपना अभीष्ट सिद्ध करना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च॥४१॥

नमः। शम्भवायेति शम्ऽभवाय। च। मयोभवायेति मयःऽभवाय। च। नमः। शङ्करायेति शम्ऽकराय। च। मयस्कराय। मयःकरायेति मयःऽकराय। च। नमः। शिवाय। च। शिवतरायेति शिवऽतराय। च॥४१॥

पदार्थः-**(नमः)** सत्करणम् **(शम्भवाय)** यः शं सुखं भावयति तस्मै परमेश्वराय सेनाधीशाय वा, अत्रान्तर्भावितो ण्यर्थः। **(च)** **(मयोभवाय)** मयः सुखं भवति यस्मात् तस्मै **(च)** **(नमः)** सत्करणम् **(शङ्कराय)** यः सर्वेषां सुखं करोति तस्मै **(च)** **(मयस्कराय)** यः सर्वेषां प्राणिनां मयः सुखं करोति तस्मै **(च)** **(नमः)** सत्करणम् **(शिवाय)** मङ्गलकारिणे **(च)** **(शिवतराय)** अतिशयेन मङ्गलस्वरूपाय **(च)**॥४१॥

अन्वयः-ये मनुष्याः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च नमः कुर्वन्ति ते कल्याणमाप्नुवन्ति॥४१॥

भावार्थः-मनुष्यैः प्रेमभक्त्या सर्वमङ्गलप्रदः परमेश्वर एवोपास्यो बलाध्यक्षश्च सत्कर्त्तव्यो यतः स्वाभीष्टानि सिध्येयुः॥४१॥

पदार्थः-जो मनुष्य **(शम्भवाय)** सुख को प्राप्त कराने हारे परमेश्वर **(च)** और **(मयोभवाय)** सुखप्राप्ति के हेतु विद्वान् **(च)** का भी **(नमः)** सत्कार **(शङ्कराय)** कल्याण करने **(च)** और **(मयस्कराय)** सब प्राणियों को सुख पहुँचाने वाले का **(च)** भी **(नमः)** सत्कार **(शिवाय)** मङ्गलकारी **(च)** और **(शिवतराय)** अत्यन्त मङ्गलस्वरूप पुरुष का **(च)** भी **(नमः)** सत्कार करते हैं, वे कल्याण को प्राप्त होते हैं॥४१॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि प्रेमभक्ति के साथ सब मङ्गलों के दाता परमेश्वर की ही उपासना और सेनाध्यक्ष का सत्कार करें, जिससे अपने अभीष्ट कार्य्य सिद्ध हों॥४१॥

नमः पार्यायेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः। रुद्रा देवताः। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

नमः॒ पार्या॑य चावा॒र्या॒य च॒ नमः॑ प्र॒तर॑णाय चो॒त्तर॑णाय च॒ नम॒स्तीर्थ्या॑य च॒ कूल्या॑य च॒ नमः॒ शष्प्या॑य च॒ फेन्या॑य च॥४२॥

नमः॑। पार्या॑य। च॒। अ॒वा॒र्या॒य। च॒। नमः॑। प्र॒तर॑णा॒येति॑ प्र॒ऽतर॑णाय। च॒। उ॒त्तर॑णा॒येत्यु॒त्ऽतर॑णाय। च॒। नमः॑। तीर्थ्या॑य। च॒। कूल्या॑य। च॒। नमः॑। शष्प्या॑य। च॒। फेन्या॑य। च॒॥४२॥

पदार्थः-**(नमः)** अवारे सत्करणम् **(पार्याय)** दुःखेभ्यः पारे वर्त्तमानाय **(च)** **(अवार्याय)** अवारे अर्वाचीने भागे भवाय **(च)** **(नमः)** सत्करणम् **(प्रतरणाय)** नौकादिना परतटादर्वाचीने तटे प्राप्ताय प्रापयित्रे वा **(च)** **(उत्तरणाय)** अर्वाचीनतटात् परतटं प्राप्नुवते प्रापयते वा **(च)** **(नमः)** अन्नम् **(तीर्थ्याय)** तीर्थेषु वेदविद्याध्यापकेषु सत्यभाषणादिषु च साधवे **(च)** **(कूल्याय)** कूलेषु समुद्रनद्यादितटेषु साधवे **(च)** **(नमः)** अन्नादिदानम् **(शष्प्याय)** शष्पेषु तृणादिषु साधवे **(च)** **(फेन्याय)** फेनेषु बुद्बुदाकारेषु साधवे **(च)**॥४२॥

अन्वयः-ये मनुष्याः पार्य्याय चावार्याय च नमः प्रतरणाय चोत्तरणाय च नमस्तीर्थ्याय च कूल्याय च नमः शष्प्याय च फेन्याय च नमः कुर्वन्तु प्रदद्युश्च ते सुखं प्राप्नुयुः॥४२॥

भावार्थः-मनुष्यैर्यानेषु नौकादिषु सुशिक्षितान् कैवर्त्तकादीन् संस्थाप्य समुद्रादिपारावारौ गत्वागत्य देशदेशान्तरद्वीपद्वीपान्तरव्यवहारेण धनं निष्पाद्याभीष्टं साधनीयम्॥४२॥

पदार्थः-जो मनुष्य **(पार्याय)** दुःखों से पार हुए **(च)** और **(अवार्याय)** इधर के भाग में हुए का **(च)** भी **(नमः)** सत्कार **(च)** तथा **(प्रतरणाय)** उस तट से नौकादि द्वारा इस पार पहुँचे वा पहुँचाने **(च)** और **(उत्तरणाय)** इस पार से उस पार पहुंचने वा पहुँचाने वाले का **(नमः)** सत्कार करें **(तीर्थ्याय)** वेदविद्या के पढ़ाने वालों और सत्यभाषणादि कामों में प्रवीण **(च)** और **(कूल्याय)** समुद्र तथा नदी आदि के तटों पर रहने वाले को **(च)** भी **(नमः)** अन्न देवें **(शष्प्याय)** तृण आदि कार्यों में साधु **(च)** और **(फेन्याय)** फेन बुद्बुदादि के कार्यों में प्रवीण पुरुष को **(च)** भी **(नमः)** अन्नादि देवें, वे कल्याण को प्राप्त होवें॥४२॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि नौकादि यानों में शिक्षित मल्लाह आदि को रख समुद्रादि के इस पार, उस पार जा-आके देश-देशान्तर और द्वीपद्वीपान्तरों में व्यवहार से धन की उन्नति करके अपना अभीष्ट सिद्ध करें॥४२॥

नमः सिकत्यायेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः। रुद्रा देवताः। जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनर्मनुष्यैः किं कर्त्तव्यमित्याह॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

नमः सिकत्याय च प्रवाह्याय च नमः किꣳशिलाय च क्षयणाय च नमः कपर्दिने च पुलस्तये च नमऽइरिण्याय च प्रपथ्याय च॥४३॥

नमः। सिकत्याय। च। प्रवाह्यायेति प्रऽवाह्याय। च। नमः। किꣳशिलाय। च। क्षयणाय। च। नमः। कपर्दिने। च। पुलस्तये। च। नमः। इरिण्याय। च। प्रपथ्यायेति प्रऽपथ्याय। च॥४३॥

पदार्थः-**(नमः)** अन्नम् **(सिकत्याय)** सिकतासु साधवे **(च)** **(प्रवाह्याय)** ये प्रवोढुं योग्यास्तेषु साधवे **(च)** **(नमः)** **(किंशिलाय)** किं कुत्सितः शिलो वृत्तिर्यस्य तस्मै **(च)** **(क्षयणाय)** निवासे वर्त्तमानाय **(च)** **(नमः)** अन्नम् **(कपर्दिने)** जटायुक्ताय जनाय **(च)** **(पुलस्तये)** महाकायक्षेप्त्रे। अत्र पुल महत्त्वे धातोर्बाहुलकादौणादिकः कस्तिः प्रत्ययः। **(च)** **(नमः)** सत्करणम् **(इरिण्याय)** इरिण ऊषरभूमौ साधवे **(च)** **(प्रपथ्याय)** प्रकृष्टेषु धर्मपथिषु साधवे **(च)**॥४३॥

अन्वयः-ये मनुष्याः सिकत्याय च प्रवाह्याय च नमः किंशिलाय च क्षयणाय च नमः कपर्दिने च पुलस्तये च नम इरिण्याय च प्रपथ्याय च नमो दद्युः कुर्युस्ते सर्वप्रिया जायेरन्॥४३॥

भावार्थः-मनुष्यैर्भूगर्भविद्यया सिकतादिषु भवान् सुवर्णादीन् धातून् निःसार्य महदैश्वर्यमुन्नीयानाथाः पालनीयाः॥४३॥

पदार्थः-जो मनुष्य **(सिकत्याय)** बालू से पदार्थ निकालने में चतुर **(च)** और **(प्रवाह्याय)** बैल आदि के चलाने वालों में प्रवीण को **(च)** भी **(नमः)** अन्न **(किंशिलाय)** शिलावृत्ति करने **(च)** और **(क्षयणाय)** निवासस्थान में रहने वाले को **(च)** भी **(नमः)** अन्न **(कपर्दिने)** जटाधारी **(च)** और **(पुलस्तये)** बड़े-बड़े शरीरों को फेंकने वाले को **(च)** भी **(नमः)** अन्न देवें **(इरिण्याय)** ऊसर भूमि से अति उपकार लेने वाले **(च)** और **(प्रपथ्याय)** उत्तम धर्म के मार्गों में प्रवीण पुरुष का **(च)** भी **(नमः)** सत्कार करें, वे सब के प्रिय होवें॥४३॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि भूगर्भविद्यानुसार बालू, मट्टी आदि से सुवर्णादि धातुओं को निकाल बहुत ऐश्वर्य को बढ़ा के अनाथों का पालन करें॥४३॥

नमो व्रज्यायेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः। रुद्रा देवताः। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

कीदृशा जनाः सुखिनो भवन्तीत्युपदिश्यते॥

कैसे मनुष्य सुखी होते हैं, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

नमो व्रज्याय च गोष्ठ्याय च नमस्तल्प्याय च गेह्याय च नमो हृदय्याय च निवेष्प्याय च नमः काट्याय च गह्वरेष्ठाय च॥४४॥

नमः। व्रज्याय। च। गोष्ठ्याय। गोस्थ्यायेति गोऽस्थ्याय। च। नमः। तल्प्याय। च। गेह्याय। च। नमः। हृदय्याय। च। निवेष्प्यायेति निऽवेष्प्याय। च। नमः। काट्याय। च। गह्वरेष्ठाय। च॥४४॥

पदार्थः-**(नमः)** अन्नादिदानम् **(व्रज्याय)** व्रजिषु क्रियासु भवाय **(च)** **(गोष्ठ्याय)** गोष्ठेषु गवां स्थानेषु साधवे **(च)** **(नमः)** अन्नम् **(तल्प्याय)** तल्पे शयने साधवे **(च)** **(गेह्याय)** गेहे नितरां भवाय **(च)** **(नमः)** सत्कृतिम् **(हृदय्याय)** हृदये साधवे **(च)** **(निवेष्प्याय)** नितरां व्याप्तौ साधवे **(च)** **(नमः)** अन्नादिदानम् **(काट्याय)** कटेष्वावरणेषु भवाय **(च)** **(गह्वरेष्ठाय)** गह्वरेषु गहनेषु तिष्ठति तत्र सुसाधवे **(च)**॥४४॥

अन्वयः-ये मनुष्या व्रज्याय च गोष्ठ्याय च नमस्तल्प्याय च गेह्याय च नमो हृदय्याय च निवेष्प्याय च नमः काट्याय च गह्वरेष्ठाय च नमो दद्युस्ते सुखं भजेरन्॥४४॥

भावार्थः-ये मनुष्या मेघवृष्टिजन्यतृणादिरक्षणेन गवादीन् वर्द्धयेयुस्ते पुष्कलं भोगं लभेरन्॥४४॥

पदार्थः-जो मनुष्य **(व्रज्याय)** क्रियाओं में प्रसिद्ध **(च)** और **(गोष्ठ्याय)** गौ आदि के स्थानों के उत्तम प्रबन्धकर्त्ता को **(च)** भी **(नमः)** अन्नादि देवें **(तल्प्याय)** खट्वादि के निर्माण में प्रवीण **(च)** और **(गेह्याय)** घर में रहने वाले को **(च)** भी **(नमः)** अन्न देवें **(हृदय्याय)** हृदय के विचार में कुशल **(च)** और **(निवेष्प्याय)** विषयों में निरन्तर व्याप्त होने में प्रवीण पुरुष का **(च)** भी **(नमः)** सत्कार करें **(काट्याय)**

आच्छादित गुप्त पदार्थों को प्रकट करने **(च)** और **(गह्वरेष्ठाय)** गहन अति कठिन गिरिकन्दराओं में उत्तम रहने वाले पुरुष को **(च)** भी **(नमः)** अन्नादि देवें, वे सुख को प्राप्त होवें॥४४॥

भावार्थः-जो मनुष्य मेघ से उत्पन्न वर्षा और वर्षा से उत्पन्न हुए तृण आदि की रक्षा से गौ आदि पशुओं को बढ़ावें, वे पुष्कल भोग को प्राप्त होवें॥४४॥

नमः शुष्क्यायेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः। रुद्रा देवताः। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तैः किं कार्यमित्याह॥

फिर उन मनुष्यों को क्या करना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

नमः शुष्क्याय च हरित्याय च नमः पाꣳसव्याय च रजस्याय च नमो लोप्याय चोलप्याय च नमऽऊर्व्याय च सूर्व्याय च॥४५॥

नमः। शुष्क्याय। च। हरित्याय। च। नमः। पाꣳसव्याय। च। रजस्याय। च। नमः। लोप्याय। च। उलप्याय। च। नमः। ऊर्व्याय। च। सूर्व्यायेति सुऽऊर्व्याय। च॥४५॥

पदार्थः-**(नमः)** जलादिकम् **(शुष्क्याय)** शुष्केषु नीरसेषु भवाय **(च)** **(हरित्याय)** हरितेषु सरसेषु आर्द्रेषु भवाय **(च)** **(नमः)** मान्यम् **(पांसव्याय)** पांसुषु धूलिषु भवाय **(च)** **(रजस्याय)** रजःसु लोकेषु परमाणुषु वा भवाय **(च)** **(नमः)** मानम् **(लोप्याय)** लोपेषु छेदनेषु साधवे **(च)** **(उलप्याय)** उलपे उत्क्षेपणे साधवे। अत्रोलश्चौरादिकाद् धातोरौणादिको डपन् प्रत्ययः। **(च)** **(नमः)** सत्क्रियाम् **(ऊर्व्याय)** ऊर्वौ हिंसायां साधवे **(च)** **(सूर्व्याय)** सुष्ठु ऊर्वौ भवाय **(च)**॥४५॥

अन्वयः-ये मनुष्याः शुष्क्याय च हरित्याय च नमः पांसव्याय च रजस्याय च नमो लोप्याय चोलप्याय च नम ऊर्व्याय च सूर्व्याय च नमो दद्युः कुर्युस्तेषां कार्याणि सिध्येयुः॥४५॥

भावार्थः-मनुष्याः शोषणहरितत्वादिकारकान् वायून् विज्ञाय कार्य्यसिद्धिं कुर्युः॥४५॥

पदार्थः-जो मनुष्य **(शुष्क्याय)** नीरस पदार्थों में रहने **(च)** और **(हरित्याय)** सरस पदार्थों में प्रसिद्ध को **(च)** भी **(नमः)** जलादि देवें **(पांसव्याय)** धूलि में रहने **(च)** और **(रजस्याय)** लोक-लोकान्तरों में रहने वाले का **(च)** भी **(नमः)** मान करें **(लोप्याय)** छेदन करने में प्रवीण **(च)** और **(उलप्याय)** फेंकने में कुशल पुरुष का **(च)** भी **(नमः)** मान करें **(ऊर्व्याय)** मारने में प्रसिद्ध **(च)** और **(सूर्व्याय)** सुन्दरता से ताड़ना करने वाले का **(च)** भी **(नमः)** सत्कार करें, उनके सब कार्य सिद्ध होवें॥४५॥

भावार्थः-मनुष्य सुखाने और हरापन आदि करने वाले वायुओं को जान के अपने कार्य सिद्ध करें॥४५॥

नम: पर्णायेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषय:। रुद्रा देवता:। स्वराट् प्रकृतिश्छन्द:। धैवत: स्वर:॥

पुनस्तदेवाह॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

नम॑: पु॒र्णाय॑ च पर्णश॒दाय॑ च॒ नम॑ऽउद्गु॒रमा॑णाय चाभिघ्न॒ते च॒ नम॑ऽआखिद॒ते च॑ प्रखिद॒ते च॒ नम॑ऽइषुकृ॒द्भ्यो॑ धनु॒ष्कृद्भ्य॑श्च वो॒ नमो॒ नमो॑ व: किरि॒केभ्यो॑ दे॒वाना॒ꣳ हृद॑येभ्यो॒ नमो॑ विचिन्व॒त्केभ्यो॒ नमो॑ विक्षिण॒त्केभ्यो॒ नम॑ऽआनिर्ह॒तेभ्य॑:॥४६॥

नम॑:। पु॒र्णाय॑। च॒। पु॒र्ण॒श॒दायेति॑ पर्णऽश॒दाय॑। च॒। नम॑:। उ॒द्गु॒रमा॑णा॒येत्यु॑त्ऽगु॒रमा॑णाय। च॒। अ॒भि॒घ्न॒त इत्य॑भिऽघ्न॒ते। च॒। नम॑:। आ॒खि॒द॒त इत्या॑ऽखि॒द॒ते। च॒। प्र॒खि॒द॒त इति॑ प्रऽखिद॒ते। च॒। नम॑:। इ॒षु॒कृ॒द्भ्य॒ इती॑षु॒कृत्ऽभ्य॑:। ध॒नु॒ष्कृ॒द्भ्य॑:। ध॒नु॒:ऽकृ॒द्भ्य॒ इति॑ धनु॒:कृत्ऽभ्य॑:। च॒। व॒:। नम॑:। नम॑:। व॒:। कि॒रि॒केभ्य॑:। दे॒वाना॑म्। हृद॑येभ्य:। नम॑:। वि॒चि॒न्व॒त्केभ्य॒ इति॑ विऽचिन्व॒त्केभ्य॑:। नम॑:। वि॒क्षि॒ण॒त्केभ्य॒ इति॑ विऽक्षिण॒त्केभ्य॑:। नम॑:। आ॒नि॒र्ह॒तेभ्य॒ इत्या॑नि:ऽह॒तेभ्य॑:॥४६॥

पदार्थ:-(**नम:**) अन्नम् (**पर्णाय**) य: प्रतिपालयति तस्मै (**च**) (**पर्णशदाय**) य: पर्णानि शीयते छिनत्ति तस्मै (**च**) (**नम:**) (**उद्गुरमाणाय**) य उत्कृष्टतया गुरत उद्यच्छत्युद्यमं करोति तस्मै (**च**) (**अभिघ्नते**) य आभिमुख्येन हन्ति तस्मै (**च**) (**नम:**) सत्करणम् (**आखिदते**) आसमन्ताद् दीनायैश्वर्योपक्षीणाय (**च**) (**प्रखिदते**) प्रकृष्टतया क्षीणाय (**च**) (**नम:**) अन्नादिदानम् (**इषुकृद्भ्य:**) बाणनिर्मापकेभ्य: (**धनुष्कृद्भ्य:**) धनुषां निर्मातृभ्य: (**च**) (**व:**) युष्मभ्यम् (**नम:**) मान्यम् (**नम:**) अन्नादिदानम् (**व:**) युष्मभ्यम् (**किरिकेभ्य:**) विक्षेपकेभ्य: (**देवानाम्**) विदुषाम् (**हृदयेभ्य:**) हृद्यवद्वर्त्तमानेभ्य: (**नम:**) सत्करणम् (**विचिन्वत्केभ्य:**) ये विचिन्वन्ति तेभ्य: (**नम:**) सत्कारम् (**विक्षिणत्केभ्य:**) ये शत्रून् विक्षयन्ति तेभ्य: (**नम:**) सत्कारम् (**आनिर्हतेभ्य:**) ये समन्तान्निर्हतास्तेभ्य:॥४६॥

अन्वय:-ये मनुष्या: पर्णाय च पर्णशदाय च नम उद्गुरमाणाय चाभिघ्नते च नम आखिदते च प्रखिदते च नम इषुकृद्भ्यो नमो धनुष्कृद्भ्यश्च वो नमो देवानां हृदयेभ्य: किरिकेभ्यो वो नमो विचिन्वत्केभ्यो नमो विक्षिणत्केभ्यो नम आनिर्हतेभ्यो नमो दद्यु: कुर्युश्च ते सर्वत आढ्या जायन्ते॥४६॥

भावार्थ:-मनुष्यै: सर्वौषधिभ्योऽन्नादिकं संगृह्यानाथमनुष्यादिप्राणिभ्यो दत्त्वा आनन्दयितव्या:॥४६॥

पदार्थ:-जो मनुष्य (**पर्णाय**) प्रत्युपकार से रक्षक को (**च**) और (**पर्णशदाय**) पत्तों को काटने वाले को (**च**) भी (**नम:**) अन्न (**उद्गुरमाणाय**) उत्तम प्रकार से उद्यम करने (**च**) और (**अभिघ्नते**) सन्मुख होके दुष्टों को मारने वाले को (**च**) भी (**नम:**) अन्न देवें (**आखिदते**) दीन निर्धन (**च**) और (**प्रखिदते**)

अतिदरिद्री जन का **(च)** भी **(नमः)** सत्कार करें **(इषुकृद्भ्यः)** बाणों को बनाने वाले को **(नमः)** अन्नादि देवें **(च)** और **(धनुष्कृद्भ्यः)** धनुष् बनाने वाले **(वः)** तुम लोगों का **(नमः)** सत्कार करें **(देवानाम्)** विद्वानों को **(हृदयेभ्यः)** अपने आत्मा के समान प्रिय **(किरिकेभ्यः)** बाण आदि शस्त्र फेंकने वाले **(वः)** तुम लोगों को **(नमः)** अन्नादि देवें **(विचिन्वत्केभ्यः)** शुभ गुणों वा पदार्थों का सञ्चय करने वालों का **(नमः)** सत्कार **(विक्षिणत्केभ्यः)** शत्रुओं के नाशक जनों का **(नमः)** सत्कार और **(आनिर्हतेभ्यः)** अच्छे प्रकार पराजय को प्राप्त हुए लोगों का **(नमः)** सत्कार करें, वे सब ओर से धनी होते हैं॥४६॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि सब ओषधियों से अन्नादि उत्तम पदार्थों का ग्रहण कर अनाथ मनुष्यादि प्राणियों को देके सब को आनन्दित करें॥४६॥

द्राप इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः। रुद्रा देवताः। भुरिगार्षी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

द्रापेऽअन्धसस्पते दरिद्र नीललोहित।

आसां प्रजानामेषां पशूनां मा भेर्मा रोङ् मो च नः किं चनाममत्॥४७॥

द्रापे। अन्धसः। पते। दरिद्र। नीललोहितेति नीलऽलोहित। आसाम्। प्रजानामिति प्रऽजानाम्। एषाम्। पशूनाम्। मा। भेः। मा। रोक्। मोऽइति मो। च। नः। किम्। चन। आममत्॥४७॥

पदार्थः-**(द्रापे)** यो द्रः कुत्साया गतेः पाति रक्षति तत्संबुद्धौ **(अन्धसः)** अन्नादेः **(पते)** स्वामी **(दरिद्र)** यो दरिद्राति तत्सम्बुद्धौ **(नीललोहित)** यो नीलान् वर्णान् रोहयति तत्सम्बुद्धौ **(आसाम्)** प्रत्यक्षाणाम् **(प्रजानाम्)** मनुष्यादीनाम् **(एषाम्)** **(पशूनाम्)** गवादीनाम् **(मा)** **(भेः)** मा भयं प्रापयेः **(मा)** **(रोक्)** रोगं कुर्याः **(मो)** **(च)** **(नः)** अस्मान् **(किम्)** **(चन)** **(आममत्)** अम रोगे। अमागमः लङि रूपम्॥४७॥

अन्वयः-हे द्रापे अन्धसस्पते दरिद्र नीललोहित राजप्रजाजन! त्वमासां प्रजानामेषां पशूनां च सकाशान्मा भेः। मा रोक् नोऽस्मान् किञ्चन मो आममत्॥४७॥

भावार्थः-य आढ्यास्ते दरिद्रान् पालयेयुर्ये राजप्रजाजनास्ते प्रजापशुहिंसनं कदापि मा कुर्युर्यतः सर्वेषां सुखं वर्द्धेत॥४७॥

पदार्थः-हे **(द्रापे)** निन्दित गति से रक्षक **(अन्धसः)** अन्न आदि के **(पते)** स्वामी **(दरिद्र)** दरिद्रता को प्राप्त हुए **(नीललोहित)** नीलवर्णयुक्त पदार्थों का सेवन करने हारे राजा वा प्रजा के पुरुष! तू **(आसाम्)** इन प्रत्यक्ष **(प्रजानाम्)** मनुष्यादि **(च)** और **(एषाम्)** इन **(पशूनाम्)** गौ आदि पशुओं के रक्षक

होके इनसे **(मा)** **(भे:)** मत भय को प्राप्त कर **(मा)** **(रोक्)** मत रोग को प्राप्त कर **(न:)** हम को और अन्य **(किम्)** किसी को **(चन)** भी **(मो)** मत **(आममत्)** रोगी करे॥४७॥

भावार्थ:-जो धनाढ्य हैं, वे दरिद्रों का पालन करें तथा जो राजा और प्रजा के पुरुष हैं, वे प्रजा के पशुओं को कभी न मारें, जिससे प्रजा में सब प्रकार सब का सुख बढ़े॥४७॥

इमा रुद्रायेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषय:। रुद्रा देवता:। आर्षी जगती छन्द:। निषाद: स्वर:॥

विद्वद्भि: किं कार्यमित्युच्यते॥

विद्वानों को क्या करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्र भरामहे मती:।
यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामेऽअस्मिन्ननातुरम्॥४८॥

इमा:। रुद्राय। तवसे। कपर्दिने। क्षयद्वीरायेति क्षयत्ऽवीराय। प्र। भरामहे। मती:। यथा। शम्। असत्। द्विपद इति द्विऽपदे। चतुष्पदे। चतु:पद इति चतु:ऽपदे। विश्वम्। पुष्टम्। ग्रामे। अस्मिन्। अनातुरम्॥४८॥

पदार्थ:-**(इमा:)** प्रजा **(रुद्राय)** शत्रुरोदकाय **(तवसे)** बलिष्ठाय **(कपर्दिने)** कृतब्रह्मचर्याय **(क्षयद्वीराय)** क्षयन्तो दुष्टनाशका वीरा यस्य तस्मै **(प्र)** **(भरामहे)** धरामहे **(मती:)** मेधाविन:। **मतय इति मेधाविनामसु पठितम्॥** (निघं०३।१५) **(यथा)** **(शम्)** सुखम् **(असत्)** भवेत् **(द्विपदे)** मनुष्याद्याय **(चतुष्पदे)** गवाद्याय **(विश्वम्)** सर्वं जगत् **(पुष्टम्)** रोगरहितत्वेन बलिष्ठम् **(ग्रामे)** ब्रह्माण्डसमूहे **(अस्मिन्)** वर्त्तमाने **(अनातुरम्)** अदु:खितम्॥४८॥

अन्वय:-हे वीर रुद्र! यथाऽस्मिन् ग्रामेऽनातुरं पुष्टं विश्वं शमसत् तथा वयं द्विपदे चतुष्पदे तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय रुद्राय चेमा मती: प्रभरामहे तथा त्वमस्मै प्रभर॥४८॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। विद्वद्भिर्यथा प्रजासु स्त्रीपुरुषा धीमन्त: स्युस्तथाऽनुष्ठाय मनुष्यपश्वादियुक्तं राज्यं रोगरहितं पुष्टिमत् सुखी सततं सम्पादनीयम्॥४८॥

पदार्थ:-हे शत्रुरोदक वीरपुरुष! **(यथा)** जैसे **(अस्मिन्)** इस **(ग्रामे)** ब्रह्माण्डसमूह में **(अनातुरम्)** दु:खरहित **(पुष्टम्)** रोगरहित होने से बलवान् **(विश्वम्)** सब जगत् **(शम्)** सुखी **(असत्)** हो वैसे हम लोग **(द्विपदे)** मनुष्यादि **(चतुष्पदे)** गौ आदि **(तवसे)** बली **(कपर्दिने)** ब्रह्मचर्य को सेवन किये **(क्षयद्वीराय)** दुष्टों के नाशक वीरों से युक्त **(रुद्राय)** पापी को रुलाने हारे सेनापति के लिये **(इमा:)** इन **(मती:)** बुद्धिमानों का **(प्रभरामहे)** अच्छे प्रकार पोषण करते हैं, वैसे तू भी उस को धारण कर॥४८॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। विद्वानों को चाहिये कि जैसे प्रजाओं में स्त्रीपुरुष बुद्धिमान् हों वैसे अनुष्ठान कर मनुष्य पश्वादियुक्त राज्य को रोगरहित, पुष्टियुक्त और निरन्तर सुखी करें॥४८॥

या ते रुद्र इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः। रुद्रा देवताः। आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

या ते॑ रुद्र शि॒वा त॒नूः शि॒वा वि॒श्वाहा॑ भेष॒जी।
शि॒वा रु॒तस्य॑ भेष॒जी तया॑ नो मृड जी॒वसे॑॥४९॥

या। ते॒। रु॒द्र॒। शि॒वा। त॒नूः। शि॒वा। वि॒श्वाहा॑। भे॒ष॒जी। शि॒वा। रु॒तस्य॑। भे॒ष॒जी। तया॑। न॒ः। मृ॒ड। जी॒वसे॑॥४९॥

पदार्थः-(**या**) (**ते**) तव (**रुद्र**) राजवैद्य (**शिवा**) कल्याणकारिणी (**तनूः**) शरीरं विस्तृता नीतिर्वा (**शिवा**) प्रियदर्शना (**विश्वाहा**) सर्वाणि दिनानि (**भेषजी**) औषधानीव रोगनिवारिका (**शिवा**) सुखप्रदा (**रुतस्य**) रुग्णस्य। अत्र पृषोदरादित्वाज्जलोपः। (**भेषजी**) आधिविनाशिनी (**तया**) (**नः**) अस्मान् (**मृड**) सुखय (**जीवसे**) जीवितुम्॥४९॥

अन्वयः-हे रुद्र! त्वं या ते शिवा तनूः शिवा भेषजी रुतस्य शिवा भेषज्यस्ति तया जीवसे विश्वाहा नो मृड॥४९॥

भावार्थः-राजवैद्यादिविद्वद्भिर्धर्मनीत्यौषधिदानेन हस्तक्रियाकौशलेन शस्त्रैश्छित्त्वा भित्त्वा च रोगेभ्यो निवार्य्य सर्वाः सेनाः प्रजाश्च रञ्जनीयाः॥४९॥

पदार्थः-हे (**रुद्र**) राजा के वैद्य तू (**या**) जो (**ते**) तेरी (**शिवा**) कल्याण करने वाली (**तनूः**) देह वा विस्तारयुक्त नीति (**शिवा**) देखने में प्रिय (**भेषजी**) ओषधियों के तुल्य रोगनाशक और (**रुतस्य**) रोगी को (**शिवा**) सुखदायी (**भेषजी**) पीड़ा हरने वाली है (**तया**) उससे (**जीवसे**) जीने के लिये (**विश्वाहा**) सब दिन (**नः**) हम को (**मृड**) सुख कर॥४९॥

भावार्थः-राजा के वैद्य आदि विद्वानों को चाहिये कि धर्म की नीति, ओषधि के दान, हस्तक्रिया की कुशलता और शस्त्रों से छेदन-भेदन करके रोगों से बचा के सब सेना और प्रजाओं को प्रसन्न करें॥४९॥

परि न इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः। रुद्रा देवताः। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

राजपुरुषैः किं कार्यमित्याह॥

राजपुरुषों को क्या करना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

परि नो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्तु परि त्वेषस्य दुर्मतिरघायोः।

अव स्थिरा मघवद्भ्यस्तनुष्व मीढ्वस्तोकाय तनयाय मृड॥५०॥

परि। नः। रुद्रस्य। हेतिः। वृणक्तु। परि। त्वेषस्य। दुर्मतिरिति दुःऽमतिः। अघायोः। अघायोरित्यघऽयोः। अव। स्थिरा। मघवद्भ्य इति मघवत्ऽभ्यः। तनुष्व। मीढ्वः। तोकाय। तनयाय। मृड॥५०॥

पदार्थः-(**परि**) सर्वतः (**नः**) अस्मान् (**रुद्रस्य**) सभेशस्य (**हेतिः**) वज्रः (**वृणक्तु**) पृथक् करोतु (**परि**) (**त्वेषस्य**) क्रोधादिना प्रदीप्तस्य (**दुर्मतिः**) दुष्टबुद्धिः (**अघायोः**) आत्मनोऽघमिच्छोर्दुष्टाचारिणः (**अव**) (**स्थिरा**) निश्चला (**मघवद्भ्यः**) पूजितधनेभ्यः (**तनुष्व**) विस्तृणु (**मीढ्वः**) सुखसेचक (**तोकाय**) सद्यो जाताय बालकाय (**तनयाय**) कुमाराय (**मृड**) आनन्दय॥५०॥

अन्वयः-हे मीढ्वः! भवान् यो रुद्रस्य हेतिस्तेन त्वेषस्याघायोः सकाशन्नः परिवृणक्तु, या दुर्मतिर्भवेत् तस्याश्चास्मान् परिवृणक्तु। या च मघवद्भ्यः प्राप्ता स्थिरा मतिरस्ति, तां तोकाय तनयाय परि तनुष्वैतया सर्वान् सततमवमृड॥५०॥

भावार्थः-राजपुरुषाणां तदेव धर्म्यं सामर्थ्यं येन प्रजारक्षणं दुष्टानां हिंसनं च स्यात्, ततः सद्वैद्याः सर्वेषामारोग्यं स्वातन्त्र्यसुखोन्नतिं च कुर्युर्येन सर्वे सुखिनो भवेयुः॥५०॥

पदार्थः-हे (**मीढ्वः**) सुख वर्षाने हारे राजपुरुष! आप जो (**रुद्रस्य**) सभापति राजा का (**हेतिः**) वज्र है, उससे (**त्वेषस्य**) क्रोधादिप्रज्वलित (**अघायोः**) अपने से दुष्टाचार करने हारे पुरुष के सम्बन्ध से (**नः**) हम लोगों को (**परि, वृणक्तु**) सब प्रकार पृथक् कीजिये। जो (**दुर्मतिः**) दुष्टबुद्धि है, उससे भी हम को बचाइये और जो (**मघवद्भ्यः**) प्रशंसित धनवालों से प्राप्त हुई (**स्थिरा**) स्थिर बुद्धि है, उस को (**तोकाय**) शीघ्र उत्पन्न हुए बालक (**तनयाय**) कुमार पुरुष के लिये (**परि, तनुष्व**) सब ओर से विस्तृत करिये और इस बुद्धि से सब को निरन्तर (**अव, मृड**) सुखी कीजिये॥५०॥

भावार्थः-राजपुरुषों का धर्मयुक्त पुरुषार्थ वही है कि जिससे प्रजा की रक्षा और दुष्टों को मारना हो, इससे श्रेष्ठ वैद्य लोग सब को आरोग्य और स्वतन्त्रता के सुख की उन्नति करें, जिससे सब सुखी हों॥५०॥

मीढुष्टम इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः। रुद्रा देवताः। निचृदार्षी यवमध्या त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

सभाध्यक्षादिभिः किं कार्यमित्याह॥

सभाध्यक्षादिकों को क्या करना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

मीढुष्टम शिवतम शिवो नः सुमना भव।

परमे वृक्षऽआयुधं निधाय कृत्तिं वसानऽआ चर पिनाकम्बिभ्रदा गहि॥५१॥

मीढुंष्टम। मीढुंस्तमेति मीढुंःऽतम। शिवंतमेति शिवंऽतम। शिवः। नः। सुमना इति सुऽमनाः। भव। परमे। वृक्षे। आयुंधम्। निधायेति निऽधायं। कृत्तिम्। वसानः। आ। चर। पिनाकम्। बिभ्रंत्। आ। गहि॥५१॥

पदार्थः-(**मीढुष्टम**) योऽतिशयेन मीढ्वान् वीर्य्यवाँस्तत्सम्बुद्धौ (**शिवतम**) अतिशयेन कल्याणकारिन् (**शिवः**) सुखकारी (**नः**) अस्मभ्यम् (**सुमनाः**) शोभनं मनो यस्य सः (**भव**) (**परमे**) प्रकृष्टे (**वृक्षे**) व्रश्चनीये छेदनीये शत्रुसैन्ये (**आयुधम्**) असिभुशुण्डीशतघ्न्यादिकम् (**निधाय**) धृत्वा (**कृत्तिम्**) मृगचर्मादिमयीम् (**वसानः**) शरीरमाच्छादयन् (**आ**) (**चर**) (**पिनाकम्**) पाति रक्षति आत्मानं येन तद्धनुर्वर्मादिकम्। **पातेर्नुक् च** (उणा०४।१५) इति पातेराकः प्रत्ययः। (**बिभ्रत्**) धरन् (**आ**) (**गहि**) आगच्छ॥५१॥

अन्वयः-हे मीढुष्टम शिवतम सभासेनेश! त्वं नः सुमनाः शिवो भव। आयुधं निधाय कृत्तिं वसानः पिनाकं बिभ्रत् सन्नस्माकं रक्षणायागहि परमे वृक्ष आचर॥५१॥

भावार्थः-सभासेनेशादयः स्वप्रजासु मङ्गलाचारिणो दुष्टेषु चाग्निरिव दाहकाः स्युर्येन सर्वे धर्मपथं विहायाधर्मं कदापि नाचरेयुः॥५१॥

पदार्थः-हे (**मीढुष्टम**) अत्यन्तपराक्रमयुक्त (**शिवतम**) अति कल्याणकारी सभा वा सेना के पति! आप (**नः**) हमारे लिये (**सुमनाः**) प्रसन्न चित्त से (**शिवः**) सुखकारी (**भव**) हूजिये (**आयुधम्**) खड्ग, भुशुण्डी और शतघ्नी आदि शस्त्रों का (**निधाय**) ग्रहण कर (**कृत्तिम्**) मृगचर्मादि की अङ्गरखी को (**वसानः**) शरीर में पहिने (**पिनाकम्**) आत्मा के रक्षक धनुष् वा बखतर आदि को (**बिभ्रत्**) धारण किये हुए हम लोगों की रक्षा के लिये (**आगहि**) आइये (**परमे**) प्रबल (**वृक्षे**) काटने योग्य शत्रु की सेना में (**आचर**) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये॥५१॥

भावार्थः-सभा और सेना के अध्यक्ष आदि लोग अपनी प्रजाओं में मङ्गलाचारी और दुष्टों में अग्नि के तुल्य तेजस्वी दाहक हों, जिससे सब लोग धर्ममार्ग को छोड़ के अधर्म का आचरण कभी न करें॥५१॥

विकिरिद्रेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः। रुद्रा देवताः। आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

प्रजाजना राजजनैः सह कथं वर्त्तेरन्नित्युपदिश्यते॥

प्रजा के पुरुष राजपुरुषों के साथ कैसे वर्त्तें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

विकिरिद्र विलोहित नमस्तेऽअस्तु भगवः।

यास्ते सहस्रंꣳ हेतयोऽन्यमुस्मन्नि वपन्तु ताः॥५२॥

विकिरिद्रेति विऽकिरिद्र। विलोहितेति विऽलोहित। नमः। ते। अस्तु। भगव इति भगऽवः। याः। ते। सहस्रम्। हेतयः। अन्यम्। अस्मत्। नि। वपन्तु। ताः॥५२॥

पदार्थः-(**विकिरिद्र**) विशेषेण किरिः सूकर इव द्रायति शेते विशिष्टं किरिं द्राति निन्दति वा तत्सम्बुद्धौ (**विलोहित**) विविधान् पदार्थानारूढस्तत्सम्बुद्धौ (**नमः**) सत्कारः (**ते**) तुभ्यम् (**अस्तु**) (**भगवः**)

ऐश्वर्यसम्पन्न **(याः)** **(ते)** तव **(सहस्रम्)** असंख्याताः **(हेतयः)** वृद्धयो वज्रा वा **(अन्यम्)** इतरम् **(अस्मत्)** अस्माकं सकाशात् **(नि)** **(वपन्तु)** छिन्दन्तु **(ताः)**॥५२॥

अन्वयः-हे विकिरिद्र विलोहित भगवस्सभेश राजँस्ते नमोऽस्तु, येन ते तव याः सहस्रं हेतयः सन्ति, ता अस्मदन्यं निवपन्तु॥५२॥

भावार्थः-प्रजाजना राजजनान् प्रत्येवमुच्युर्या युष्माकमुन्नतयः शस्त्रास्त्राणि च सन्ति, ता अस्मान् सुखे स्थापयन्त्वितरानस्मच्छत्रून् निवारयन्तु॥५२॥

पदार्थः-हे **(विकिरिद्र)** विशेषकर सूअर के समान सोने वा उत्तम सूअर की निन्दा करने वाले **(विलोहित)** विविध पदार्थों को आरूढ़ **(भगवः)** ऐश्वर्य्ययुक्त सभापते राजन्! **(ते)** आपको **(नमः)** सत्कार प्राप्त **(अस्तु)** हो जिससे **(ते)** आपके **(याः)** जो **(सहस्रम्)** असंख्यात प्रकार की **(हेतयः)** उन्नति वा वज्रादि शस्त्र हैं, **(ताः)** वे **(अस्मत्)** हम से **(अन्यम्)** भिन्न दूसरे शत्रु को **(निवपन्तु)** निरन्तर छेदन करें॥५२॥

भावार्थः-प्रजा के लोग राजपुरुषों से ऐसे कहें कि जो आप लोगों की उन्नति और शस्त्र-अस्त्र हैं, वे हम लोगों को सुख में स्थिर करें और इतर हमारे शत्रुओं का निवारण करें॥५२॥

सहस्राणीत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः। रुद्रा देवताः। निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

राजजनैः किं कार्यमित्याह॥

राजपुरुषों को क्या करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

सहस्राणि सहस्रशो बाह्वोस्तव हेतयः।

तासामीशानो भगवः पराचीना मुखा कृधि॥५३॥

सहस्राणि। सहस्रश इति सहस्रऽशः। बाह्वोः। तव। हेतयः। तासाम्। ईशानः। भगव इति भगवः। पराचीना। मुखा। कृधि॥५३॥

पदार्थः-**(सहस्राणि)** **(सहस्रशः)** असंख्याताः **(बाह्वोः)** भुजयोः सम्बन्धिन्यः **(तव)** **(हेतयः)** प्रबला वज्रगतयः **(तासाम्)** **(ईशानः)** ईशनशीलः **(भगवः)** भाग्यवन् **(पराचीना)** पराचीनानि दूरीभूतानि **(मुखा)** मुखानि **(कृधि)** कुरु॥५३॥

अन्वयः-हे भगवः! यास्तव बाह्वोः सहस्राणि हेतयः सन्ति, तासामीशानः सन् सहस्रशः शत्रूणां मुखा पराचीना कृधि॥५३॥

भावार्थः-राजपुरुषैः बाहुबलेन राज्यं प्राप्यासंख्यशूरवीराः सेनाः संपाद्य सर्वे शत्रवः पराङ्मुखाः कार्याः॥५३॥

पदार्थ:-हे **(भगव:)** भाग्यशील सेनापते! जो **(तव)** आपके **(बाह्वो:)** भुजाओं की सबन्धिनी **(सहस्राणि)** असंख्य **(हेतय:)** वज्रों की प्रबल गति हैं **(तासाम्)** उनके **(ईशान:)** स्वामीपन को प्राप्त आप **(सहस्रश:)** हजारहों शत्रुओं के **(मुखा)** मुख **(पराचीना)** पीछे फेर के दूर **(कृधि)** कीजिये॥५३॥

भावार्थ:-राजपुरुषों को उचित है कि बाहुबल से राज्य को प्राप्त हो और असंख्य शूरवीर पुरुषों की सेनाओं को रख के सब शत्रुओं के मुख फेरें॥५३॥

असंख्यातेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषय:। रुद्रा देवता:। विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्द:। गान्धार: स्वर:॥

मनुष्यै: कथमुपकारो ग्राह्य इत्युच्यते॥

मनुष्य लोग कैसे उपकार ग्रहण करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अ॒सं॒ख्या॒ता स॒हस्रा॑णि॒ ये रु॒द्राऽअधि॒ भूम्या॑म्।

तेषा॑ꣳ सहस्रयोज॒नेऽव॒ धन्वा॑नि तन्मसि॥ ५४॥

अ॒सं॒ख्या॒तेत्य॒सम्ऽख्याता। स॒हस्रा॑णि। ये। रु॒द्रा:। अधि॑। भूम्या॑म्। तेषा॑म्। स॒ह॒स्र॒यो॒ज॒न इति॑ सहस्रऽयोज॒ने। अव॑। धन्वा॑नि। त॒न्म॒सि॒॥ ५४॥

पदार्थ:-**(असंख्याता)** संख्यारहितानि **(सहस्राणि)** **(ये)** **(रुद्रा:)** सजीवाऽजीवा: प्राणादयो वायव: **(अधि)** उपरिभावे **(भूम्याम्)** पृथिव्याम् **(तेषाम्)** **(सहस्रयोजने)** सहस्राण्यसंख्यानि चतु:क्रोशपरिमितानि यस्मिन् देशे तस्मिन् **(अव)** अर्वागर्थे **(धन्वानि)** धनूंषि **(तन्मसि)** विस्तारयेम॥५४॥

अन्वय:-हे मनुष्या:! यथा वयं ये असंख्याता सहस्राणि रुद्रा भूम्यामधि सन्ति, तेषां सकाशात् सहस्रयोजने धन्वान्यव तन्मसि तथा यूयमपि तनुत॥५४॥

भावार्थ:-मनुष्यै: प्रतिशरीरं विभक्ता भूमिसम्बन्धिनो जीवा वायवश्च वेद्यास्तैरुपकारो ग्राह्यस्तेषां कर्त्तव्यश्च॥५४॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! जैसे हम लोग **(ये)** जो **(असंख्याता)** संख्यारहित **(सहस्राणि)** हजारों **(रुद्रा:)** जीवों के सम्बन्धी वा पृथक् प्राणादि वायु **(भूम्याम्)** पृथिवी **(अधि)** पर हैं **(तेषाम्)** उनके सम्बन्ध से **(सहस्रयोजने)** असंख्य चार कोश के योजनों वाले देश में **(धन्वानि)** धनुषों का **(अव, तन्मसि)** विस्तार करें, वैसे तुम भी विस्तार करो॥५४॥

भावार्थ:-मनुष्यों को चाहिये कि प्रतिशरीर में विभाग को प्राप्त हुए पृथिवी के सम्बन्धी असंख्य जीवों और वायुओं को जानें, उनसे उपकार लें और उन के कर्त्तव्य को भी ग्रहण करें॥५४॥

अस्मिन्नित्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषय:। रुद्रा देवता:। भुरिगार्ष्युष्णिक् छन्द:। ऋषभ: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अस्मिन् महत्यर्णवेऽन्तरिक्षे भवाऽअधि।

तेषांᳬं सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि॥५५॥

अस्मिन्। महति। अर्णवे। अन्तरिक्षे। भवाः। अधि। तेषाम्। सहस्रयोजन इति सहस्रऽयोजने। अव। धन्वानि। तन्मसि॥५५॥

पदार्थः-(**अस्मिन्**) (**महति**) व्यापकत्वादिमहागुणविशिष्टे (**अर्णवे**) बहून्यर्णांसि जलानि विद्यन्ते यस्मिँस्तस्मिन्निव। **अर्ण इत्युदकनामसु पठितम्॥** (निघं०१।१२) **अर्णसो लोपश्च** [अष्टा०वा०५.२.१०९] इति सलोपो वप्रत्ययश्च। (**अन्तरिक्षे**) अन्तरक्षय आकाशे (**भवाः**) वर्त्तमानाः (**अधि**) (**तेषाम्०**) इति पूर्ववत्॥५५॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा वयं येऽस्मिन् महत्यर्णवेऽन्तरिक्षे भवा रुद्रा जीवा वायवश्च सन्ति, तेषां प्रयोगं कृत्वा सहस्रयोजने धन्वान्यध्यवतन्मसि, तथा यूयमपि कुरुत॥५५॥

भावार्थः-मनुष्यैर्यथा भूमिस्थेभ्यो जीवेभ्यो वायुभ्यश्च कार्योपयोगः क्रियते, तथाऽन्तरिक्षस्थेभ्योऽपि कर्त्तव्यः॥५५॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे हम लोग जो (**अस्मिन्**) इस (**महति**) व्यापकता आदि बड़े-बड़े गुणों से युक्त (**अर्णवे**) बहुत जलों वाले समुद्र के समान अगाध (**अन्तरिक्षे**) सब के बीच अविनाशी आकाश में (**भवाः**) वर्त्तमान जीव और वायु हैं (**तेषाम्**) उनको उपयोग में लाके (**सहस्रयोजने**) असंख्यात चार कोश के योजनों वाले देश में (**धन्वानि**) धनुषों वा अन्नादि धान्यों को (**अध्यव, तन्मसि**) अधिकता के साथ विस्तार करें, वैसे तुम लोग भी करो॥५५॥

भावार्थः-मनुष्यों को योग्य है कि जैसे पृथिवी के जीव और वायुओं से कार्य सिद्ध करते हैं, वैसे आकाशस्थों से भी किया करें॥५५॥

नीलग्रीवा इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः। बहुरुद्रा देवताः। निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः।

गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

नीलग्रीवाः शितिकण्ठा दिवꣳरुद्राऽउपश्रिताः।

तेषांᳬं सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि॥५६॥

नील॑ग्रीवा॒ इति॒ नील॑ऽग्रीवाः। शि॒ति॒कण्ठा॒ इति॑ शिति॒ऽकण्ठाः॑। दिव॑म्। रु॒द्राः। उप॑श्रिता॒ इत्यु॒प॑ऽश्रिताः। तेषा॑म्। स॒ह॒स्र॒यो॒ज॒न इति॑ सहस्रऽयोज॒ने। अव॑। धन्वा॑नि। त॒न्म॒सि॒॥५६॥

पदार्थः-(**नीलग्रीवाः**) नीला ग्रीवा येषां ते (**शितिकण्ठाः**) शितयस्तीक्ष्णाः श्वेता वा कण्ठा येषां ते (**दिवम्**) सूर्यं विद्युदिव (**रुद्राः**) जीवा वायवो वा (**उपश्रिताः**) उपश्लेषतया श्रिताः कण्ठा येषां ते। तेषामिति पूर्ववत्॥५६॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा वयं ये नीलग्रीवाः शितिकण्ठा दिवमुपश्रिता रुद्रा जीवा वा सन्ति, तेषामुपयोगेन सहस्रयोजने धन्वान्यवतन्मसि तथा यूयमपि कुरुत॥५६॥

भावार्थः-विद्वद्भिः वह्निस्थान् वायून् जीवान् वा विज्ञायोपयुज्य आग्नेयास्त्रादीनि निष्पादनीयानि॥५६॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे हम लोग जो (**नीलग्रीवाः**) कण्ठ में नील वर्ण से युक्त (**शितिकण्ठाः**) तीक्ष्ण वा श्वेत कण्ठ वाले (**दिवम्**) सूर्य्य को बिजुली जैसे वैसे (**उपश्रिताः**) आश्रित (**रुद्राः**) जीव वा वायु हैं (**तेषाम्**) उन के उपयोग से (**सहस्रयोजने**) असंख्य योजन वाले देश में (**धन्वानि**) शस्त्रादि को (**अव, तन्मसि**) विस्तार करें, वैसे तुम लोग भी करो॥५६॥

भावार्थः-विद्वानों को चाहिये कि अग्निस्थ वायुओं और जीवों को जान और उपयोग में लाके आग्नेय आदि अस्त्रों को सिद्ध करें॥५६॥

नीलग्रीवा इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः। रुद्रा देवताः। निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

नील॑ग्रीवाः शिति॒कण्ठाः॑ श॒र्वाऽअ॒धः क्ष॑माच॒राः।

तेषा॑ᳫं सहस्रयोज॒नेऽव॒ धन्वा॑नि तन्मसि॥५७॥

नील॑ग्रीवा॒ इति॒ नील॑ऽग्रीवाः। शि॒ति॒कण्ठा॒ इति॑ शिति॒ऽकण्ठाः॑। श॒र्वाः। अ॒धः। क्षमाचरा इति॑ क्षमाऽच॒राः। तेषा॑म्। स॒ह॒स्र॒यो॒ज॒न इति॑ सहस्रऽयोज॒ने। अव॑। धन्वा॑नि। त॒न्म॒सि॒॥५७॥

पदार्थः-(**नीलग्रीवाः**) नीला ग्रीवा येषां ते (**शितिकण्ठाः**) शितिः श्वेतः कण्ठो येषां ते (**शर्वाः**) हिंसकाः (**अधः**) अधोगामिनः (**क्षमाचराः**) ये क्षमायां पृथिव्यां चरन्ति। तेषामिति पूर्ववत्॥५७॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! ये नीलग्रीवाः शितिकण्ठाः शर्वा अधः क्षमाचराः सन्ति, तेषां सहस्रयोजने दूरीकरणाय धन्वानि वयमवतन्मसि॥५७॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैर्ये वायवो भूमेरन्तरिक्षमन्तरिक्षाद् भूमिं च गच्छन्त्यागच्छन्ति तत्र ये तेजोभूम्यादितत्त्वानामवयवाश्चरन्ति, तान् विज्ञायोपयुज्य कार्य्यं साध्यम्॥५७॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो **(नीलग्रीवाः)** नीली ग्रीवा वाले तथा **(शितिकण्ठाः)** श्वेत कण्ठ वाले **(शर्वाः)** हिंसक जीव और **(अधः)** नीचे को वा **(क्षमाचराः)** पृथिवी में चलने वाले जीव हैं **(तेषाम्)** उन के **(सहस्रयोजने)** हजार योजन के देश में दूर करने के लिये **(धन्वानि)** धनुषों को हम लोग **(अव, तन्मसि)** विस्तृत करते हैं॥५७॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि जो वायु भूमि से आकाश और आकाश से भूमि को जाते-आते हैं। उनमें जो अग्नि और पृथिवी आदि के अवयव रहते हैं, उन को जान और उपयोग में लाके कार्य सिद्ध करें॥५७॥

ये वृक्षेष्वित्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः। रुद्रा देवताः। निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

मनुष्यैः सर्पादयो दुष्टा निवारणीया इत्याह॥

मनुष्य लोग सर्पादि दुष्टों का निवारण करें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

ये वृक्षेषु शष्पिञ्जरा नीलग्रीवा विलोहिताः।

तेषाᳬं सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि॥ ५८॥

ये। वृक्षेषु। शष्पिञ्जराः। नीलग्रीवा इति नीलऽग्रीवाः। विलोहिता इति विऽलोहिताः। तेषाम्। सहस्रयोजन इति सहस्रऽयोजने। अव। धन्वानि। तन्मसि॥५८॥

पदार्थः-**(ये)** **(वृक्षेषु)** आम्रादिसमीपेषु **(शष्पिञ्जराः)** शड्हिंसकः पिञ्जरो वर्णो येषां ते **(नीलग्रीवाः)** नीलवर्णा निगरणकर्मोपेताः **(विलोहिताः)** विविधरक्तवर्णाः तेषामिति पूर्ववत्॥५८॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा वयं ये वृक्षेषु शष्पिञ्जरा नीलग्रीवा विलोहिताः सर्पादयः सन्ति, तेषां सहस्रयोजने प्रक्षेपाय धन्वान्यवतन्मसि, तथा यूयमप्याचरत॥५८॥

भावार्थः-मनुष्यैर्ये वृक्षादिषु वृद्धिजीवनाः सर्पादयो वर्तन्ते, तेऽपि यथासामर्थ्यं निवारणीयाः॥५८॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे हम लोग **(ये)** जो **(वृक्षेषु)** आम्रादि वृक्षों में **(शष्पिञ्जराः)** रूप दिखाने से भय के हेतु **(नीलग्रीवाः)** नीली ग्रीवा युक्त काट खाने वाले **(विलोहिताः)** अनेक प्रकार के काले आदि वर्णों से युक्त सर्प आदि हिंसक जीव हैं **(तेषाम्)** उन के **(सहस्रयोजने)** असंख्य योजन देश में निकाल देने के लिये **(धन्वानि)** धनुषों को **(अवतन्मसि)** विस्तृत करें, वैसा आचरण तुम लोग भी करो॥५८॥

भावार्थः-मनुष्यों को योग्य है कि जो वृक्षादि में वृद्धि से जीने वाले सर्प हैं, उन का भी यथाशक्ति निवारण करें॥५८॥

ये भूतानामित्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः। रुद्रा देवताः। आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

जनैरध्यापनोपदेशौ कुतो ग्राह्यावित्याह॥

मनुष्य लोग पढ़ाना और उपदेश किससे ग्रहण करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

ये भूतानामधिपतयो विशिखासः कपर्दिनः।

तेषांᳬ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि॥५९॥

ये। भूतानाम्। अधिपतय इत्यधिऽपतयः। विशिखास इति विऽशिखासः। कपर्दिनः। तेषाम्। सहस्रयोजन इति सहस्रऽयोजने। अव। धन्वानि। तन्मसि॥५९॥

पदार्थः-(**ये**) (**भूतानाम्**) प्राण्यप्राणिनाम् (**अधिपतयः**) अधिष्ठातारः पालकाः (**विशिखासः**) विगतशिखाः संन्यासिनः (**कपर्दिनः**) जटिला ब्रह्मचारिणः। तेषामिति पूर्ववत्॥५९॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा ये भूतानामधिपतयो विशिखासः कपर्दिनः संन्यासिनो ब्रह्मचारिणः सन्ति, तेषां हिताय सहस्रयोजने वयं परिभ्रमामो धन्वान्यवतन्मसि, तथा हे राजपुरुषाः! यूयमपि पर्यटनं सदा कुरुत॥५९॥

भावार्थः-मनुष्यैर्ये सूत्रात्मधनञ्जयादिवत् परिव्राजो ब्रह्मचारिणश्च सर्वेषां शरीरात्मपोषकाः सन्ति, तदध्यापनोपदेशाभ्यां बुद्धिदेहपुष्टिः सम्पादनीया॥५९॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे (**ये**) जो (**भूतानाम्**) प्राणी तथा अप्राणियों के (**अधिपतयः**) रक्षक स्वामी (**विशिखासः**) शिखारहित संन्यासी और (**कपर्दिनः**) जटाधारी ब्रह्मचारी लोग हैं (**तेषाम्**) उनके हितार्थ (**सहस्रयोजने**) हजार योजन देश में हम लोग सर्वथा सर्वदा भ्रमण करते हैं और (**धन्वानि**) अविद्यादि दोषों के निवारणार्थ विद्यादि शस्त्रों का (**अव,तन्मसि**) विस्तार करते हैं, वैसे हे राजपुरुषो! तुम लोग भी सर्वत्र भ्रमण किया करो॥५९॥

भावार्थः-मनुष्यों को उचित है कि जो सूत्रात्मा और धनञ्जय वायु के समान संन्यासी और ब्रह्मचारी लोग सब के शरीर तथा आत्मा की पुष्टि करते हैं, उनसे पढ़ और उपदेश सुन कर सब लोग अपनी बुद्धि तथा शरीर की पुष्टि करें॥५९॥

ये पथामित्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः। रुद्रा देवताः। निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनर्मनुष्यैः किं कार्यमित्याह॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

ये पथां पथिरक्षयऽऐलबृदाऽआयुर्युधः।

तेषा॑ᳪं सहस्रयोज॒नेऽव॒ धन्वा॑नि तन्मसि॥६०॥

ये। प॒थाम्। प॒थि॒रक्ष॑य इति॑ पथि॒ऽरक्ष॑यः। ऐ॒ल॒बृ॒दाः। आ॒यु॒र्यु॒ध इत्या॑यु॒ःऽयुध॑ः। तेषा॑म्। स॒ह॒स्र॒यो॒ज॒न इति॑ सहस्रऽयोज॒ने। अव॑। धन्वा॑नि। त॒न्म॒सि॒॥६०॥

पदार्थः-(**ये**) (**पथाम्**) मार्गाणाम् (**पथिरक्षयः**) ये पथिषु विचरतां जनानां रक्षयो रक्षकाः (**ऐलबृदाः**) इलाया पृथिव्या इमानि वस्तुजातानि ऐलानि तानि ये वर्धयन्ति ते। अत्र वर्णव्यत्ययेन धस्य दः। इगुपधलक्षणः कश्च। (**आयुर्युधः**) ये आयुषा सह युध्यन्ते तेषामिति पूर्ववत्॥६०॥

अन्वयः-वयं ये पथां पथिरक्षय इव ऐलबृदा आयुर्युधो भृत्याः सन्ति, तेषां सहस्रयोजने धन्वान्यवतन्मसि॥६०॥

भावार्थः-मनुष्यैर्यथा राजजना अहर्निशं प्रजाजनान् यथावद्रक्षन्ति, तथा पृथिवीं जीवनादिकं च वायवो रक्षन्तीति वेद्यम्॥६०॥

पदार्थः-हम लोग (**ये**) जो (**पथाम्**) मार्गों के सम्बन्धी तथा (**पथिरक्षयः**) मार्गों में विचरने वाले जनों के रक्षकों के तुल्य (**ऐलबृदाः**) पृथिवीसम्बन्धी पदार्थों के वर्धक (**आयुर्युधः**) पूर्णायु वा अवस्था के साथ युद्ध करने हारे भृत्य हैं (**तेषाम्**) उनके (**सहस्रयोजने**) असंख्य योजन देश में (**धन्वानि**) धनुषों को (**अव, तन्मसि**) विस्तृत करते हैं॥६०॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि जैसे राजपुरुष दिन-रात प्रजाजनों की यथावत् रक्षा करते हैं, वैसे पृथिवी और जीवनादि की रक्षा वायु करते हैं, ऐसा जानें॥६०॥

ये तीर्थानीत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः। रुद्रा देवताः। निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तदेवाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ये ती॒र्थानि॑ प्र॒चर॑न्ति सृ॒काह॑स्ता निष॒ङ्गिण॑ः।

तेषा॑ᳪं सहस्रयोज॒नेऽव॒ धन्वा॑नि तन्मसि॥६१॥

ये। ती॒र्थानि॑। प्र॒चर॒न्तीति॑ प्र॒ऽचर॑न्ति। सृ॒काह॑स्ता॒ इति॑ सृ॒काऽह॑स्ताः। नि॒ष॒ङ्गिण॑ः। तेषा॑म्। स॒ह॒स्र॒यो॒ज॒न इति॑ सहस्रऽयोज॒ने। अव॑। धन्वा॑नि। त॒न्म॒सि॒॥६१॥

पदार्थः-(**ये**) (**तीर्थानि**) यानि वेदाचार्य्यसत्यभाषणब्रह्मचर्यादिसुनियमादीन्यविद्यादुःखेभ्यस्तारयन्ति यद्वा यैः समुद्रादिभ्यस्तारयन्ति तानि (**प्रचरन्ति**) (**सृकाहस्ताः**) सृका वज्राणि हस्तेषु येषां ते। **सृक इति वज्रनामसु पठितम्॥** (निघं०२।२०) (**निषङ्गिणः**) प्रशस्तबाणकोशयुक्ताः। तेषामिति पूर्ववत्॥६१॥

अन्वयः-वयं ये सृकाहस्ता निषङ्गिण इव तीर्थानि प्रचरन्ति तेषां सहस्रयोजने धन्वान्यव तन्मसि॥६१॥

भावार्थः-मनुष्याणां द्विविधानि तीर्थानि वर्त्तन्ते तेष्वाद्यानि ब्रह्मचर्याचार्यसेवावेदाद्यध्ययनाध्यापन-सत्संगेश्वरोपासनासत्यभाषणादीनि दुःखसागराज्जनान् पारं नयन्ति। अपराणि यैः समुद्रादिजलाशयेभ्यः पारावारं गन्तुं शक्याश्चेति॥६१॥

पदार्थः-हम लोग **(ये)** जो **(सृकाहस्ताः)** हाथों में वज्र धारण किये हुए **(निषङ्गिणः)** प्रशंसित बाण और कोश से युक्त जनों के समान **(तीर्थानि)** दुःखों से पार करने हारे वेद आचार्य सत्यभाषण और ब्रह्मचर्यादि अच्छे नियम अथवा जिनसे समुद्रादिकों को पार करते हैं, उन नौका आदि तीर्थों का **(प्रचरन्ति)** प्रचार करते हैं **(तेषाम्)** उन के **(सहस्रयोजने)** हजार योजन के देश में **(धन्वानि)** शस्त्रों को **(अव, तन्मसि)** विस्तृत करते हैं॥६१॥

भावार्थः-मनुष्यों के दो प्रकार के तीर्थ हैं, उन में पहिले तो वे जो ब्रह्मचर्य, गुरु की सेवा, वेदादि शास्त्रों का पढ़ना-पढ़ाना, सत्सङ्ग, ईश्वर की उपासना और सत्यभाषण आदि दुःखसागर से मनुष्यों को पार करते हैं और दूसरे वे जिनसे समुद्रादि जलाशयों के इस पार उस पार जाने आने को समर्थ हों॥६१॥

येऽन्नेष्वित्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः। रुद्रा देवताः। विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तदेवाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

येऽन्ने॑षु वि॒विध्य॑न्ति॒ पात्रे॑षु॒ पिब॑तो॒ जना॑न्।
तेषा॑ᳬं सहस्रयोज॒नेऽव॒ धन्वा॑नि तन्मसि॥६२॥

ये। अन्ने॑षु। वि॒वि॒ध्य॒न्तीति॑ वि॒ऽविध्य॑न्ति। पात्रे॑षु। पिब॑तः। जना॑न्। तेषा॑म्। स॒ह॒स्र॒यो॒ज॒न इति॑ सहस्रऽयो॒ज॒ने। अव॑। धन्वा॑नि। त॒न्म॒सि॒॥६२॥

पदार्थः-**(ये)** **(अन्नेषु)** अत्तव्येषु पदार्थेषु **(विविध्यन्ति)** बाणा इव सक्षतान् कुर्वन्ति **(पात्रेषु)** पानसाधनेषु **(पिबतः)** पानं कुर्वतः **(जनान्)** मनुष्यादिप्राणिनः। तेषामिति पूर्ववत्॥६२॥

अन्वयः-वयं येऽन्नेषु वर्त्तमानान् पात्रेषु पिबतो जनान् विविध्यन्ति, तेषां प्रतिकाराय सहस्रयोजने धन्वान्यवतन्मसि॥६२॥

भावार्थः-येऽन्नाहारं जलादिपानं कुर्वतो विषादिना घ्नन्ति, तेभ्यः सर्वैर्दूरे वसनीयम्॥६२॥

पदार्थः-हम लोग **(ये)** जो **(अन्नेषु)** खाने योग्य पदार्थों में वर्त्तमान **(पात्रेषु)** पात्रों में **(पिबतः)** पीते हुए **(जनान्)** मनुष्यादि प्राणियों को **(विविध्यन्ति)** बाण के तुल्य घायल करते हैं **(तेषाम्)** उन को

हटाने के लिये **(सहस्रयोजने)** असंख्य योजन देश में **(धन्वानि)** धनुषों को **(अव, तन्मसि)** विस्तृत करते हैं॥६२॥

भावार्थः-जो पुरुष अन्न को खाते और जलादि को पीते हुए जीवों को विष आदि से मार डालते हैं, उनसे सब लोग दूर बसें॥६२॥

य एतावन्त इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः। रुद्रा देवताः। भुरिगार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तदेवाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यऽएतावन्तश्च भूयांसश्च दिशो रुद्रा वितस्थिरे।

तेषांथं सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि॥६३॥

ये। एतावन्तः। च। भूयांसः। च। दिशः। रुद्राः। वितस्थिर इति विऽतस्थिरे। तेषाम्। सहस्रयोजन इति सहस्रऽयोजने। अव। धन्वानि। तन्मसि॥६३॥

पदार्थः-**(ये)** **(एतावन्तः)** यावन्तो व्याख्याताः **(च)** **(भूयांसः)** तेभ्योऽप्यधिकाः **(च)** **(दिशः)** पूर्वाद्याः **(रुद्राः)** प्राणजीवाः **(वितस्थिरे)** विविधतया तिष्ठन्ति **(तेषाम्)** **(सहस्रयोजने)** एतत्संख्यापरिमिते देशे **(अव)** विरोधार्थे **(धन्वानि)** अन्तरिक्षावयवान्। **धन्वेत्यन्तरिक्षनामसु पठितम्॥** (निघण्टौ १।३) **(तन्मसि)**॥६३॥

अन्वयः-वयं य एतावन्तश्च भूयांसश्च रुद्रा दिशो वितस्थिरे तेषां सहस्रयोजने धन्वान्यवतन्मसि॥६३॥

भावार्थः-ये मनुष्याः सर्वासु दिक्षु स्थितान् जीवान् वायून् वा यथावदुपयुञ्जते, तेषां सर्वकार्याणि सिद्धानि भवन्ति॥६३॥

पदार्थः-हम लोग **(ये)** जो **(एतावन्तः)** इतने व्याख्यात किये **(च)** और **(रुद्राः)** प्राण वा जीव **(भूयांसः)** इन से भी अधिक **(च)** सब प्राण तथा जीव **(दिशः)** पूर्वादि दिशाओं में **(वितस्थिरे)** विविध प्रकार से स्थित हैं **(तेषाम्)** उन के **(सहस्रयोजने)** हजार योजन के देश में **(धन्वानि)** आकाश के अवयवों के **(अव, तन्मसि)** विरुद्ध विस्तृत करते हैं॥६३॥

भावार्थः-जो मनुष्य सब दिशाओं में स्थित जीवों वा वायुओं को यथावत् उपयोग में लाते हैं, उन के सब कार्य सिद्ध होते हैं॥६३॥

नमोऽस्तु रुद्रेभ्य इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः। रुद्रा देवताः। निचृद्धृतिश्छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

पुनस्तदेवाह॥

फिर वह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

नमो॑ऽस्तु रु॒द्रेभ्यो॒ ये दि॒वि येषां॑ व॒र्षमिष॑वः। तेभ्यो॒ दश॒ प्राची॒र्दश॑ दक्षि॒णा दश॑ प्र॒तीची॒र्दशोदी॑ची॒र्दशो॒र्ध्वाः। तेभ्यो॒ नमो॑ऽअस्तु॒ ते नो॑ऽवन्तु॒ ते नो॑ मृडयन्तु॒ ते यं द्वि॒ष्मो यश्च॑ नो॒ द्वेष्टि॒ तमे॑षां॒ जम्भे॑ दध्मः॥ ६४॥

नम॑ः। अ॒स्तु॒। रु॒द्रेभ्य॑ः। ये। दि॒वि। येषा॑म्। व॒र्षम्। इष॑वः। तेभ्य॑ः। दश॑। प्राची॑ः। दश॑। द॒क्षि॒णाः। दश॑। प्र॒तीची॑ः। दश॑। उदी॑चीः। दश॑। ऊ॒र्ध्वाः। तेभ्य॑ः। नम॑ः। अ॒स्तु॒। ते। न॒ः। अ॒व॒न्तु॒। ते। न॒ः। मृ॒ड॒य॒न्तु॒। ते। यम्। द्वि॒ष्मः। यः। च॒। न॒ः। द्वेष्टि॑। तम्। ए॒षा॒म्। जम्भे॑। द॒ध्म॒ः॥ ६४॥

पदार्थः-(**नमः**) सत्क्रिया (**अस्तु**) भवतु (**रुद्रेभ्यः**) प्राणेभ्य इव वर्त्तमानेभ्यः (**ये**) (**दिवि**) सूर्यप्रकाशादाविव विद्याविनये वर्त्तमाना वीराः (**येषाम्**) (**वर्षम्**) वृष्टिरिव (**इषवः**) बाणाः (**तेभ्यः**) (**दश**) (**प्राचीः**) पूर्वा दिशः (**दश**) (**दक्षिणाः**) (**दश**) (**प्रतीचीः**) पश्चिमाः (**दश**) (**उदीचीः**) उत्तराः (**दश**) (**ऊर्ध्वाः**) उपरिस्थाः (**तेभ्यः**) (**नमः**) अन्नादिकम् (**अस्तु**) (**ते**) (**नः**) अस्मान् (**अवन्तु**) रक्षन्तु (**ते**) (**नः**) अस्मान् (**मृडयन्तु**) सुखयन्तु (**ते**) (**यम्**) (**द्विष्मः**) अप्रीतिं कुर्याम् (**यः**) (**च**) (**नः**) अस्मान् (**द्वेष्टि**) न प्रीणयति (**तम्**) (**एषाम्**) वायूनाम् (**जम्भे**) मार्जारमुखे मूषक इव पीडायाम् (**दध्मः**) निक्षिपाम॥६४॥

अन्वयः-ये रुद्रा दिवि वर्त्तन्ते येषां वर्षमिषवस्तेभ्यो रुद्रेभ्योऽस्माकं नमोऽस्तु, ये दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः प्राप्नुवन्ति तेभ्यो रुद्रेभ्योस्माकं नमोऽस्तु, य एवंभूतास्ते नोऽवन्तु, ते नो मृडयन्तु, ते वयं यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः॥६४॥

भावार्थः-यथा वायूनां सकाशाद् वर्षा जायन्ते, तथा ये सर्वत्राधिष्ठातारः स्युस्ते वीराः पूर्वादिषु दिक्ष्वस्माकं रक्षकाः सन्तु, वयं यं विरोधिनं जानीमस्तं सर्वत आवृत्य वायुवद् बन्धयेमेति॥६४॥

पदार्थः-(**ये**) जो सर्वहितकारी (**दिवि**) सूर्यप्रकाशादि के तुल्य विद्या और विनय में वर्त्तमान हैं (**येषाम्**) जिनके (**वर्षम्**) वृष्टि के समान (**इषवः**) बाण हैं (**तेभ्यः**) उन (**रुद्रेभ्यः**) प्राणादि के तुल्य वर्त्तमान पुरुषों के लिये हम लोगों का किया (**नमः**) सत्कार (**अस्तु**) प्राप्त हो जो (**दश**) दश प्रकार (**प्राचीः**) पूर्व (**दश**) दश प्रकार (**दक्षिणाः**) दक्षिण (**दश**) दश प्रकार (**प्रतीचीः**) पश्चिम (**दश**) दश प्रकार (**उदीचीः**) उत्तर और (**दश**) दश प्रकार (**ऊर्ध्वाः**) ऊपर की दिशाओं को प्राप्त होते हैं (**तेभ्यः**) उन सर्वहितैषी राजपुरुषों के लिये हमारा (**नमः**) अन्नादि पदार्थ (**अस्तु**) प्राप्त हो, जो ऐसे पुरुष हैं (**ते**) वे (**नः**) हमारी (**अवन्तु**) रक्षा करें (**ते**) वे (**नः**) हमको (**मृडयन्तु**) सुखी करें (**ते**) वे हम लोग (**यम्**) जिससे (**द्विष्मः**) अप्रीति करें (**च**) और (**यः**) जो (**नः**) हम को (**द्वेष्टि**) दुःख दे (**तम्**) उसको (**एषाम्**) इन वायुओं की (**जम्भे**) बिलाव के मुख में मूषे के समान पीड़ा में (**दध्मः**) डालें॥६४॥

भावार्थ:-जैसे वायुओं के सम्बन्ध से वर्षा होती है, वैसे जो सर्वत्र अधिष्ठित हों, वे वीर पुरुष पूर्वादि दिशाओं में हमारे रक्षक हों, हम लोग जिस को विरोधी जानें, उसको सब ओर से घेर के वायु के समान बांधें॥६४॥

नमोऽस्तु रुद्रेभ्य इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषय:। रुद्रा देवता:। धृतिश्छन्द:। ऋषभ: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो येऽन्तरिक्षे येषां वातऽइषव:। तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वा:। तेभ्यो नमोऽअस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्म:॥६५॥

नम:। अस्तु। रुद्रेभ्य:। ये। अन्तरिक्षे। येषाम्। वात:। इषव:। तेभ्य:। दश। प्राची:। दश। दक्षिणा:। दश। प्रतीची:। दश। उदीची:। दश। ऊर्ध्वा:। तेभ्य:। नम:। अस्तु। ते। न:। अवन्तु। ते। न:। मृडयन्तु। ते। यम्। द्विष्म:। य:। च। न:। द्वेष्टि। तम्। एषाम्। जम्भे। दध्म:॥६५॥

पदार्थ:-(**नम:**) (**अस्तु**) (**रुद्रेभ्य:**) (**ये**) (**अन्तरिक्षे**) आकाशे (**येषाम्**) (**वात:**) (**इषव:**) (**तेभ्य:०**) इति पूर्ववत्॥६५॥

अन्वय:-ये विमानादिषु स्थित्वाऽन्तरिक्षे विचरन्ति, येषां वात इवेषव: सन्ति, तेभ्यो रुद्रेभ्योऽस्माकं नमोऽस्तु, ये दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोर्ध्वा आशा व्याप्तवन्तस्तेभ्यो नमोऽस्तु, ते नोऽवन्तु, ते नो मृडयन्तु, ते वयं च यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे वशे दध्म:॥६५॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। ये मनुष्या आकाशस्थान् शुद्धान् शिल्पिन: सेवन्ते, तानेते सर्वतो बलयित्वा शिल्पविद्या: शिक्षेरन्॥६५॥

पदार्थ:-(**ये**) जो विमानादि यानों में बैठ के (**अन्तरिक्षे**) आकाश में विचरते हैं (**येषाम्**) जिनके (**वात:**) वायु के तुल्य (**इषव:**) बाण हैं (**तेभ्य:**) उन (**रुद्रेभ्य:**) प्राणादि के तुल्य वर्त्तमान पुरुषों के लिये हमारा किया (**नम:**) सत्कार (**अस्तु**) प्राप्त हो जो (**दश**) दश प्रकार (**प्राची:**) पूर्व (**दश**) दश प्रकार (**दक्षिणा:**) दक्षिण (**दश**) दश प्रकार (**प्रतीची:**) पश्चिम (**दश**) दश प्रकार (**उदीची:**) उत्तर और (**दश**) दश प्रकार (**ऊर्ध्वा:**) ऊपर की दिशाओं में व्याप्त हुए हैं (**तेभ्य:**) उन सर्वहितैषियों को (**नम:**) अन्नादि पदार्थ (**अस्तु**) प्राप्त हो, जो ऐसे पुरुष हैं (**ते**) वे (**न:**) हमारी (**अवन्तु**) रक्षा करें (**ते**) वे (**न:**) हमको (**मृडयन्तु**) सुखी करें (**ते**) वे और हम लोग (**यम्**) जिससे (**द्विष्म:**) अप्रीति करें (**च**) और (**य:**) जो (**न:**)

हम को **(द्वेष्टि)** दुःख दे **(तम्)** उसको **(एषाम्)** इन वायुओं की **(जम्भे)** बिडाल के मुख में मूषे के समान पीड़ा में **(दध्मः)** डालें॥६५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य आकाश में रहने वाले शुद्ध कारीगरों का सेवन करते हैं, उनको ये सब ओर से बलवान् करके शिल्पविद्या की शिक्षा करें॥६५॥

नमोऽस्तु रुद्रेभ्य इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः। रुद्रा देवताः। धृतिश्छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये पृथिव्यां येषामन्नमिषवः। तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः। तेभ्यो नमोऽअस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः॥६६॥

नमः। अस्तु। रुद्रेभ्यः। ये। पृथिव्याम्। येषाम्। अन्नम्। इषवः। तेभ्यः। दश। प्राचीः। दश। दक्षिणाः। दश। प्रतीचीः। दश। उदीचीः। दश। ऊर्ध्वाः। तेभ्यः। नमः। अस्तु। ते। नः। अवन्तु। ते। नः। अवन्तु। ते। नः। मृडयन्तु। ते। यम्। द्विष्मः। यः। च। नः। द्वेष्टि। तम्। एषाम्। जम्भे। दध्मः॥६६॥

पदार्थः-**(नमः) (अस्तु) (रुद्रेभ्यः) (ये) (पृथिव्याम्)** विस्तृतायां भूमौ **(येषाम्) (अन्नम्)** तण्डुलादिकमत्तव्यमिव **(इषवः)** शस्त्रास्त्राणि। तेभ्य इति पूर्ववत्॥६६॥

अन्वयः-ये भूविमानादिषु स्थित्वा पृथिव्यां विचरन्ति, येषामन्नमिषवस्तेभ्यो रुद्रेभ्योऽस्माकं नमोऽस्तु, ये दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वा व्याप्तवन्तः सन्ति, तेभ्योऽस्माकं नमोऽस्तु, ते नः सर्वतोऽवन्तु, ते नो मृडयन्तु, ते वयं च यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः॥६६॥

भावार्थः-ये पृथिव्यामन्नार्थिनस्तान् संपोष्य वर्द्धनीयाः॥६६॥

अस्मिन्नध्याये वायुजीवेश्वरवीरगुणकृत्यवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वाध्यायोक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेद्यम्॥

पदार्थः-**(ये)** जो भूविमान आदि में बैठे के **(पृथिव्याम्)** विस्तृत भूमि में विचरते हैं **(येषाम्)** जिन के **(अन्नम्)** खाने योग्य तण्डुलादि **(इषवः)** बाणरूप हैं **(तेभ्यः)** उन **(रुद्रेभ्यः)** प्राणादि के तुल्य वर्त्तमान पुरुषों के लिये हम लोगों का किया **(नमः)** सत्कार **(अस्तु)** प्राप्त हो जो **(दश)** दश प्रकार **(प्राचीः)** पूर्व **(दश)** दश प्रकार **(दक्षिणाः)** दक्षिण **(दश)** दश प्रकार **(प्रतीचीः)** पश्चिम **(दश)** दश प्रकार **(उदीचीः)** उत्तर और **(दश)** दश प्रकार **(ऊर्ध्वाः)** ऊपर की दिशाओं को व्याप्त होते हैं **(तेभ्यः)** उन सर्वहितैषी राजपुरुषों के लिये हमारा **(नमः)** अन्नादि पदार्थ **(अस्तु)** प्राप्त हो, जो ऐसे पुरुष हैं **(ते)** वे **(नः)** हमारी सब ओर से **(अवन्तु)** रक्षा करें **(ते)** वे **(नः)** हम को **(मृडयन्तु)** सुखी करें **(ते)** वे और हम लोग **(यम्)**

जिसको **(द्विष्मः)** अप्रसन्न करें **(च)** और **(यः)** जो **(नः)** हम को **(द्वेष्टि)** दुःख दे **(तम्)** उस को **(एषाम्)** इन वायुओं की **(जम्भे)** बिलाड़ी के मुख में मूषे के तुल्य पीड़ा में **(दध्मः)** डालें॥६६॥

भावार्थः-जो पृथिवी पर अन्नार्थी पुरुष हैं, उन का अच्छे प्रकार पोषण कर उन्नति करनी चाहिये॥६६॥

इस अध्याय में वायु, जीव, ईश्वर और वीरपुरुष के गुण तथा कृत्य का वर्णन होने से इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय में कहे अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये॥६६॥

इति श्रीमद्विद्वद्वरपरमहंसपरिव्राजकाचार्य्याणां परमविदुषां श्रीयुतविरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचिते संस्कृतभाषाऽऽर्य्यभाषाभ्यां समन्विते सुप्रमाणयुक्ते यजुर्वेदभाष्ये षोडशोऽध्यायः समाप्तिमगात्॥१६॥

॥ओ३म्॥

अथ सप्तदशोऽध्याय आरभ्यते

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव। यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व॥ यजु० ३०.३॥

अश्मन्नूर्जमित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। मरुतो देवताः। भुरिगतिशक्वरी छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अथ वृष्टिविद्योपदिश्यते

अब सत्रहवें अध्याय का आरम्भ किया जाता है॥ इसके पहिले मन्त्र में वर्षा की विद्या का उपदेश किया है॥

अश्म॒न्नूर्जं॒ पर्व॑ते शिश्रिया॒णाम॒द्भ्यऽओष॑धीभ्यो॒ व॒न॒स्पति॑भ्यो॒ऽअधि॒ सम्भृ॑तं॒ पय॑ः। तां न॒ऽइष॒मूर्जं॑ धत्त मरुतः सꣳररा॒णाऽअश्म॑ꣳस्ते॒ क्षुन् मयि॑ त॒ऽऊर्ग्यं॑ द्वि॒ष्मस्तं ते॒ शुगृ॑च्छतु॥ १॥

अश्म॑न्। ऊर्ज॑म्। पर्व॑ते। शिश्रि॒या॒णाम्। अ॒द्भ्य इत्य॒त्ऽभ्यः। ओष॑धीभ्यः। व॒न॒स्पति॑भ्य इति॒ व॒न॒स्पति॑ऽभ्यः अधि॑। सम्भृ॑त॒मिति॒ सम्ऽभृ॑तम्। पय॑ः। ताम्। न॒ः। इष॑म्। ऊर्ज॑म्। ध॒त्त॒। म॒रु॒त॒ः। स॒ꣳर॒रा॒णा इति॑ सम्ऽरराणाः। अश्म॑न्। ते॒। क्षुत्। मयि॑। ते॒। ऊर्क्। यम्। द्वि॒ष्मः। तम्। ते॒। शुक्। ऋ॒च्छ॒तु॒॥ १॥

पदार्थः-(**अश्मन्**) अश्मनि मेघे। **अश्मेति मेघनामसु पठितम्॥** (निघं०१.१०) (**ऊर्जम्**) पराक्रमम् (**पर्वते**) पर्वताकारे (**शिश्रियाणाम्**) मेघावयवानां मध्ये स्थितां विद्युतम् (**अद्भ्यः**) जलाशयेभ्यः (**ओषधीभ्यः**) यवादिभ्यः (**वनस्पतिभ्यः**) अश्वत्थादिभ्यः (**अधि**) (**सम्भृतम्**) सम्यग् धृतं (**पयः**) रसयुक्तं जलम् (**ताम्**) (**नः**) अस्मभ्यम् (**इषम्**) अन्नम् (**ऊर्जम्**) पराक्रमम् (**धत्त**) धरत (**मरुतः**) वायव इव क्रियाकुशला मनुष्याः (**संरराणाः**) सम्यग् रान्ति ददति ते (**अश्मन्**) अश्मनि (**ते**) तव (**क्षुत्**) बुभुक्षा (**मयि**) (**ते**) तव (**ऊर्क्**) पराक्रमोऽन्नं वा (**यम्**) दुष्टम् (**द्विष्मः**) न प्रसादयेम (**तम्**) (**ते**) तव (**शुक्**) शोकः (**ऋच्छतु**) प्राप्नोतु॥ १॥

अन्वयः-हे संरराणा मरुतः! यूयं पर्वतेऽश्मन् शिश्रियाणामूर्जं नोऽधिधत्त, अद्भ्य ओषधीभ्यो वनस्पतिभ्यः सम्भृतं पय इषमूर्जं च ताश्च धत्त। हे मनुष्य! तेऽश्मन्नूर्ग् वर्त्तते, सा मय्यस्तु, या ते क्षुत् सा मयि भवतु, यं वयं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु॥ १॥

भावार्थः-मनुष्यैर्यथा सूर्यो जलाशयौषध्यादिभ्यो रसं हृत्वा मेघमण्डले संस्थाप्य पुनर्वर्षयति, ततोऽन्नादिकं जायते, तदशनेन क्षुन्निवृत्त्या बलोन्नतिस्तया दुष्टानां निवृत्तिरेतया सज्जनानां शोकनाशो भवति, तथा समानसुखदुःखसेवनाः सुहृदो भूत्वा परस्परेषां दुःखं विनाश्य सुखं सततमुन्नेयम्॥ १॥

पदार्थः-हे (**संरराणाः**) सम्यक् दानशील (**मरुतः**) वायुओं के तुल्य क्रिया करने में कुशल मनुष्यो! तुम लोग (**पर्वते**) पहाड़ के समान आकार वाले (**अश्मन्**) मेघ के (**शिश्रियाणाम्**) अवयवों में

स्थिर बिजुली तथा **(ऊर्जम्)** पराक्रम और अन्न को **(नः)** हमारे लिये **(अधि, धत्त)** अधिकता से धारण करो और **(अद्भ्यः)** जलाशयों **(ओषधिभ्यः)** जौ आदि ओषधियों और **(वनस्पतिभ्यः)** पीपल आदि वनस्पतियों से **(सम्भृतम्)** सम्यक् धारण किये **(पयः)** रसयुक्त जल **(इषम्)** अन्न **(ऊर्जम्)** पराक्रम और **(ताम्)** उस पूर्वोक्त विद्युत् को धारण करो। हे मनुष्य! जो **(ते)** तेरा **(अश्मन्)** मेघविषय में **(ऊर्क्)** रस वा पराक्रम है, सो **(मयि)** मुझ में तथा जो **(ते)** तेरी **(क्षुत्)** भूख है, वह मुझ में भी हो अर्थात् समान सुख-दुःख मान के हम लोग एक दूसरे के सहायक हों और **(यम्)** जिस दुष्ट को हम लोग **(द्विष्मः)** द्वेष करें **(तम्)** उसको **(ते)** तेरा **(शुक)** शोक **(ऋच्छतु)** प्राप्त हो॥१॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि जैसे सूर्य्य जलाशय और ओषध्यादि से रस का हरण कर मेघमण्डल में स्थापित करके पुनः वर्षाता है, उससे अन्नादि पदार्थ होते हैं, उसके भोजन से क्षुधा की निवृत्ति, क्षुधा की निवृत्ति से बल की बढ़ती, उससे दुष्टों की निवृत्ति और दुष्टों की निवृत्ति से सज्जनों के शोक का नाश होता है, वैसे अपने समान दूसरों का सुख-दुःख मान, सब के मित्र होके, एक-दूसरे के दुःख का विनाश करके, सुख की निरन्तर उन्नति करें॥१॥

इमा म इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद्विकृतिश्छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

अथेष्टकादिचयनदृष्टान्तेन गणितविद्योपदिश्यते॥

अब इष्टका आदि के दृष्टान्त से गणितविद्या का उपदेश किया है॥

इमा मेऽअग्नऽइष्टका धेनवः सन्त्वेका च दश च दश च शतं च शतं च सहस्रं च सहस्रं चायुतं चायुतं च नियुतं च नियुतं च प्रयुतं चार्बुदं च न्यर्बुदं च समुद्रश्च मध्यं चान्तश्च परार्द्धश्चैता मेऽअग्नऽइष्टका धेनवः सन्त्वमुत्रामुष्मिँल्लोके॥ २॥

इमाः। मे। अग्ने। इष्टकाः। धेनवः। सन्तु। एका। च। दश। च। दश। च। शतम्। च। शतम्। च। सहस्रम्। च। सहस्रम्। च। अयुतम्। च। अयुतम्। च। नियुतमिति निऽयुतम्। च। नियुतमिति निऽयुतम्। च। प्रयुतमिति प्रऽयुतम्। च। अर्बुदम्। च। न्यर्बुदमिति निऽअर्बुदम्। च। समुद्रः। च। मध्यम्। च। अन्तः। च। परार्द्धः। च। एताः। मे। अग्ने। इष्टकाः। धेनवः। सन्तु। अमुत्र। अमुष्मिन्। लोके॥ २॥

पदार्थः-**(इमाः)** वक्ष्यमाणाः **(मे)** मम **(अग्ने)** विद्वन् **(इष्टकाः)** इष्टसुखं साधिकाः **(धेनवः)** दुग्धदात्र्यो गाव इव **(सन्तु)** **(एका)** **(च)** **(दश)** **(च)** **(दश)** **(च)** **(शतम्)** **(च)** **(शतम्)** **(च)** **(सहस्रम्)** **(च)** **(सहस्रम्)** **(च)** **(अयुतम्)** दश सहस्राणि **(च)** **(अयुतम्)** **(च)** **(नियुतम्)** लक्षम् **(च)** **(नियुतम्)** **(च)** **(प्रयुतम्)** दश लक्षाणि प्रयुतमिति कोटेरप्युपलक्षकम् **(च)** **(अर्बुदम्)** दशकोटयः **(च)** **(न्यर्बुदम्)** अब्जम्। न्यर्बुदमिति खर्बनिखर्बमहापद्मशङ्कुसंख्यानामप्युपलक्षकम् **(च)** **(समुद्रः)** **(च)** **(मध्यम्)** **(च)**

(अन्तः) **(च)** **(परार्द्धः)** **(च)** **(एताः)** **(मे)** मम **(अग्ने)** **(इष्टकाः)** **(धेनवः)** **(सन्तु)** **(अमुत्र)** परस्मिन् जन्मनि **(अमुष्मिन्)** परस्मिन् **(लोके)** द्रष्टव्ये॥२॥

अन्वयः-हे अग्ने विद्वन्! या मे ममेमा इष्टका धेनव इव सन्तु तास्तवापि भवन्तु, या एका च दश च दश च शतं च शतं च सहस्रं च सहस्रं चायुतं चायुतं च नियुतं च नियुतं च प्रयुतं चार्बुदं च न्यर्बुदं च समुद्रश्च मध्यं चान्तश्च परार्द्धश्चैता मे अग्न इष्टका धेनव इवामुत्रामुष्मिंल्लोकेऽस्मिन् परजन्मनि वा सन्तु॥२॥

भावार्थः-यथा सुसेविता गावो दुग्धादिदानेन सर्वान् सन्तोषयन्ति, तथैव वेद्यां सञ्चिता इष्टका वृष्टिहेतुका भूत्वा वृष्ट्यादिद्वारा सर्वानानन्दयन्ति। मनुष्यैरेका संख्या दशवारं गुणिता सती दशसंज्ञां लभते, दश दशवारं संख्याताः शतम्, शतं दशवारं संख्यातं सहस्रम्, सहस्रं दशवारं संख्यातमयुतम्, अयुतं दशवारं संख्यातं नियुतम्, नियुतं दशवारं संख्यातं प्रयुतम्, प्रयुतं दशवारं संख्यातं कोटिः, कोटिर्दशवारं संख्याता दश कोट्यः, ता दशवारं संख्याताः खर्बः, खर्बो दशवारं संख्यातो निखर्बः, निखर्बो दशवारं संख्यातो महापद्मः, महापद्मो दशवारं संख्यातः शुङ्कुः, शङ्कुदशवारं संख्यातः समुद्रः, समुद्रो दशवारं संख्यातो मध्यम्, मध्यं दशवारं संख्यातमन्तरन्तो दशवारं संख्यातः परार्द्धः। एताः संख्या उक्ता उक्तैरनेकैश्चकारैरन्या अपि अङ्कबीजरेखाप्रभृतयो यथावद् विज्ञेया। यथास्मिंल्लोक इमाः संख्या सन्ति, तथान्येष्वपि लोकेषु वर्त्तन्ते, यथात्रैतत्संख्याभिः संख्याता इष्टका सुशिल्पिभिश्चिता गृहाकारा भूत्वा शीतोष्णवर्षावाय्वादिभ्यो मनुष्यान् रक्षित्वाऽऽनन्दयन्ति, तथैवाहुतयो जलवाय्वोषधीभिः संहत्य सर्वान् प्राणिन आनन्दयन्ति॥२॥

पदार्थः-हे **(अग्ने)** विद्वन्! जैसे **(मे)** मेरी **(इमाः)** ये **(इष्टकाः)** इष्ट सुख को सिद्ध करनेहारी यज्ञ की सामग्री **(धेनवः)** दुग्ध देने वाली गौओं के समान **(सन्तु)** होवें, आप के लिये भी वैसी हों। जो **(एका)** एक **(च)** दशगुणा **(दश)** दश **(च)** और **(दश)** दश **(च)** दश गुणा **(शतम्)** सौ **(च)** और **(शतम्)** सौ **(च)** दशगुणा **(सहस्रम्)** हजार **(च)** और **(सहस्रम्)** हजार **(च)** दश गुणा **(अयुतम्)** दश हजार **(च)** और **(अयुतम्)** दश हजार **(च)** दश गुणा **(नियुतम्)** लाख **(च)** और **(नियुतम्)** लाख **(च)** दश गुणा **(प्रयुतम्)** दश लाख **(च)** इसका दश गुणा क्रोड़, इसका दश गुणा **(अर्बुदम्)** दशक्रोड़ इस का दश गुणा **(न्यर्बुदम्)** अर्ब **(च)** इसका दश गुणा खर्ब, इसका दश गुणा निखर्ब, इसका दश गुणा महापद्म, इसका दश गुणा शङ्कु, इसका दश गुणा **(समुद्रः)** समुद्र **(च)** इसका दश गुणा **(मध्यम्)** मध्य **(च)** इसका दश गुणा **(अन्तः)** अन्त और **(च)** इसका दश गुणा **(परार्द्धः)** परार्द्ध **(एताः)** ये **(मे)** मेरी **(अग्ने)** हे विद्वन्! **(इष्टकाः)** वेदी की ईंटें **(धेनवः)** गौओं के तुल्य **(अमुष्मिन्)** परोक्ष **(लोके)** देखने योग्य **(अमुत्र)** अगले जन्म में **(सन्तु)** हों, वैसा प्रयत्न कीजिये॥२॥

भावार्थः-जैसे अच्छे प्रकार सेवन की हुई गौ दुग्ध आदि के दान से सब को प्रसन्न करती हैं, वैसे ही वेदी में चयन की हुई ईंटें वर्षा की हेतु हो के वर्षादि के द्वारा सब को सुखी करती हैं। मनुष्यों को चाहिये कि एक संख्या को दशवार गुणने से दश (१०), दश को दश बार गुणने से सौ (१००), उसको दश बार गुणने से हजार (१०००), उसको दश बार गुणने से दस हजार (१०,०००), उसको दश वार गुणने से लाख (१,००,०००), उसको दश बार गुणने से दश लाख (१०,००,०००), इसको दश वार गुणने से क्रोड (१,००, ००,०००), इसको दश वार गुणने से दश क्रोड़ (१०,००,००,०००), इसको दश वार गुणने से अर्ब (१,००,००,००,०००), इसको दश वार गुणने से दश अर्ब (१०,००,००,००,०००), इसको दश वार गुणने से खर्ब (१,००,००,००,००,०००), इसको दश वार गुणने से दश खर्ब (१०,००,००,००,००,०००), इसको दश वार गुणने से नील (१,००,००,००,००,००,०००), इसको दश वार गुणने से दश नील (१०,००,००,००,००,००,०००), इसको दश वार गुणने से पद्म (१,००,००,००,००,००,००,०००), इसको दश वार गुणने से दश पद्म (१०,००,००,००,००,००,००,०००), इसको दश वार गुणने से एक शङ्ख (१,००,००,००,००,००,००,००,०००), इसको दश वार गुणने से दश शङ्ख (१०,००,००,००,००,००,००,००,०००) इन संख्याओं की संज्ञा पड़ती हैं। ये इतनी संख्या तो कहीं, परन्तु अनेक चकारों के होने से और भी अङ्कगणित, बीजगणित और रेखागणित आदि की संख्याओं को यथावत् समझें। जैसे भूलोक में ये संख्या हैं, वैसे अन्य लोकों में भी हैं, जैसे यहां इन संख्याओं से गणना की और कारीगरों से चिनी हुई ईंटें घर के आकार हो शीत, उष्ण, वर्षा और वायु आदि से मनुष्यादि की रक्षा कर आनन्दित करती हैं, वैसे ही अग्नि में छोड़ी हुई आहुतियां जल, वायु और ओषधियों के साथ मिल के सब को आनन्दित करती हैं॥२॥

ऋतव इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। [अग्निर्देवता]। विराडार्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

स्त्रियः पत्यादिभिः सह कथं वर्त्तेरन्नित्याह॥

स्त्री लोग पति आदि के साथ कैसे वर्त्तें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

ऋतवं स्थऽऋतावृधऽऋतुष्ठा स्थऽऋतावृधः।

घृतश्च्युतो मधुश्च्युतो विराजो नाम कामदुघाऽअक्षीयमाणाः॥ ३॥

ऋतवः। स्थ। ऋतावृधः। ऋतवृध इत्यृतऽवृधः। ऋतुष्ठाः। ऋतुस्था इत्यृतुऽस्थाः। स्थ। ऋतावृधः। ऋतवृध इत्यृतऽवृधः। घृतश्च्युत इति घृतऽश्च्युतः। मधुश्च्युत इति मधुऽश्च्युतः। विराज इति विऽराजः। नाम। कामदुघा इति कामदुघाः। अक्षीयमाणाः॥ ३॥

पदार्थः-(**ऋतवः**) यथा वसन्तादयस्तथा (**स्थ**) भवत (**ऋतावृधः**) या ऋतेन जलेन नद्य इव सत्येन वर्द्धन्ते ताः। अत्र **अन्येषामपि दृश्यते** [अष्टा०६.३.१३७] इति दीर्घः (**ऋतुष्ठाः**) या ऋतुषु वसन्तादिषु तिष्ठन्ति

ताः (**स्थ**) भवत (**ऋतावृधः**) या ऋतं सत्यं वर्धयन्ति ताः (**घृतश्च्युतः**) घृतमाज्यं श्च्युतं निस्सृतं याभ्यस्ताः (**मधुश्च्युतः**) या मधुनो मधुरात् रसात् प्राप्ताः (**विराजः**) विविधैर्गुणै राजमानाः प्रकाशमानाः (**नाम**) प्रसिद्धाः (**कामदुघाः**) याः कामान् दुहन्ति प्रपिपुरति ताः (**अक्षीयमाणाः**) क्षेतुमनर्हाः॥३॥

अन्वयः-हे स्त्रियः! या यूयं ऋतवः स्थ, या ऋतावृध ऋतुष्ठा ऋतावृधः स्थ, याश्च यूयं घृतश्च्युतो मधुश्च्युतोऽक्षीयमाणा विराजः कामदुघा नाम धेनव इव स्थ, ता अस्मान् सुखयत॥३॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा ऋतवो गावश्च स्वस्वसमयानुकूलतया सर्वान् प्राणिनः सुखयन्ति, तथैव सत्यस्त्रियः प्रतिसमयं स्वपत्यादीन् सर्वान् संतर्प्यानन्दयन्तु॥३॥

पदार्थः-हे स्त्रियो! जो तुम लोग (**ऋतवः**) वसन्तादि ऋतुओं के समान (**स्थ**) हो तथा जो (**ऋतावृधः**) उदक से नदियों के तुल्य सत्य के साथ उन्नति को प्राप्त होने वा (**ऋतुष्ठाः**) वसन्तादि ऋतुओं में स्थित होने और (**ऋतावृधः**) सत्य को बढ़ाने वाली (**स्थ**) हो और जो तुम (**घृतश्च्युतः**) जिनसे घी निकले उन (**मधुश्च्युतः**) मधुर रस से प्राप्त हुई (**अक्षीयमाणाः**) रक्षा करने योग्य (**विराजः**) विविध प्रकार के गुणों से प्रकाशमान तथा (**कामदुघाः**) कामनाओं को पूरण करनेहारी (**नाम**) प्रसिद्ध गौओं के सदृश होवे, तुम लोग हम लोगों को सुखी करो॥३॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे ऋतु और गौ अपने-अपने समय पर अनुकूलता से सब प्राणियों को सुखी करती हैं, वैसे ही अच्छी स्त्रियां सब समय में अपने पति आदि सब पुरुषों को तृप्त कर आनन्दित करें॥३॥

समुद्रस्येत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगार्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

सभापतिना किं कार्यमित्युपदिश्यते॥

सभापति को क्या करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

समुद्रस्य त्वावकयाग्ने परिव्ययामसि।

पावकोऽअस्मभ्यꣳ शिवो भव॥४॥

समुद्रस्य। त्वा। अवकया। अग्ने। परि। व्ययामसि। पावकः। अस्मभ्यम्। शिवः। भव॥४॥

पदार्थः-(**समुद्रस्य**) अन्तरिक्षस्य मध्ये (**त्वा**) त्वाम् (**अवकया**) यया अवन्ति रक्षन्ति तया क्रियया (**अग्ने**) अग्निवद् वर्त्तमान सभापते (**परि**) सर्वतः (**व्ययामसि**) प्राप्ताः स्मः (**पावकः**) पवित्रकारकः (**अस्मभ्यम्**) (**शिवः**) मङ्गलकारी (**भव**)॥४॥

अन्वयः-हे अग्ने! यथा वयं समुद्रस्यावकया सह वर्त्तमानं त्वा परिव्ययामसि, तथा पावकस्त्वमस्मभ्यं शिवो भव॥४॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा मनुष्याः समुद्रस्थान् जन्तून् रक्षित्वा सुखयन्ति, तथा धार्मिको रक्षकः सभेशः स्वकीयाः प्रजाः संरक्ष्य सततं सुखयेत्॥४॥

पदार्थः-हे **(अग्ने)** अग्नि के तुल्य तेजस्वी सभापते! जैसे हम लोग **(समुद्रस्य)** आकाश के बीच **(अवकया)** जिससे रक्षा करते हैं, उस क्रिया के साथ वर्त्तमान **(त्वा)** आपको **(परि, व्ययामसि)** सब ओर से प्राप्त होते हैं, वैसे **(पावकः)** पवित्रकर्त्ता आप **(अस्मभ्यम्)** हमारे लिये **(शिवः)** मङ्गलकारी **(भव)** हूजिये॥४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे मनुष्य लोग समुद्र के जीवों की रक्षा कर सुखी करते हैं, वैसे धर्मात्मा रक्षक सभापति अपनी प्रजाओं की रक्षा कर निरन्तर सुखी करें॥४॥

हिमस्येत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगार्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तेवाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

हिमस्य॑ त्वा ज॒रायु॒णाग्ने॒ परि॑व्ययामसि।

पा॒व॒कोऽअ॒स्मभ्य॑ꣳ शि॒वो भ॑व॥५॥

हि॒मस्य॑। त्वा॒। ज॒राय॑ुणा। अग्ने॑। परि॑। व्य॒या॒म॒सि॒। पा॒व॒कः। अ॒स्मभ्य॑म्। शि॒वः। भ॒व॒॥५॥

पदार्थः-**(हिमस्य)** शीतस्य **(त्वा)** ताम् **(जरायुणा)** जरामेति येन जरायुस्तेन वस्त्रेणाग्निना वा **(अग्ने)** अग्निवत् तेजस्विन् **(परि)** सर्वतः **(व्ययामसि)** संवृणोमि **(पावकः)** पवित्रः **(अस्मभ्यम्)** **(शिवः)** मङ्गलमयः **(भव)**॥५॥

अन्वयः-हे अग्ने सभेश! वयं हिमस्य जरायुणा त्वा परिव्ययामसि, पावकस्त्वमस्मभ्यं शिवो भव॥५॥

भावार्थः-हे सभेश! यथाग्निर्वस्त्रं वा शीतातुरान् प्राणिनः शैत्याद् वियोज्य प्रसादयति, तथैव त्वदाश्रिता वयं दुःखान्मुक्ताः सन्तः सुखभाजिनः स्याम॥५॥

पदार्थः-हे **(अग्ने)** अग्नि के तुल्य तेजस्विन् सभापते! हम लोग **(हिमस्य)** शीतल को **(जरायुणा)** जीर्ण करने वाले वस्त्र वा अग्नि से **(त्वा)** आपको **(परि, व्ययामसि)** सब प्रकार आच्छादित करते हैं, वैसे **(पावकः)** पवित्रस्वरूप आप **(अस्मभ्यम्)** हमारे लिये **(शिवः)** मङ्गलमय **(भव)** हूजिये॥५॥

भावार्थः-हे सभापते! जैसे अग्नि वा वस्त्र शीत से पीड़ित प्राणियों को जाड़े से छुड़ा के प्रसन्न करता है, वैसे ही आप का आश्रय किये हुए हम लोग दुःख से छूटे हुए सुख सेवने वाले होवें॥५॥

उप ज्मन्नित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। अग्निर्देवता। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ दम्पती कथं वर्त्तेयातामित्युपदिश्यते॥

अब स्त्री-पुरुष आपस में कैसे वर्त्तें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

उप॒ ज्मन्नुप॑ वे॒त॒सेऽव॑तर न॒दीष्वा। अग्ने॑ पि॒त्तम॒पाम॑सि॒ मण्डू॑कि॒ ताभि॒राग॑हि॒ सेमं नो॑ य॒ज्ञं पा॑व॒कव॑र्णꣳ शि॒वं कृ॑धि॥६॥

उप॑। ज्मन्। उप॑। वे॒त॒से। अव॑। त॒र॒। न॒दीषु॑। आ। अग्ने॑। पि॒त्तम्। अ॒पाम्। अ॒सि॒। मण्डू॑कि। ताभिः॑। आ। ग॒हि॒। सा। इ॒मम्। न॒ः। य॒ज्ञम्। पा॒व॒कव॑र्ण॒मिति॑ पाव॒कऽव॑र्णम्। शि॒वम्। कृ॒धि॒॥६॥

पदार्थः-(**उप**) (**ज्मन्**) ज्मनि भूमौ। अत्र **सुपां सुलुग्०** [अष्टा०७.१.३९] इति सप्तम्येकवचनस्य लुक्। **ज्मेति पृथिवीनामसु पठितम्॥** (निघं०१।१) (**उप**) (**वेतसे**) पदार्थविस्तारे (**अव**) (**तर**) (**नदीषु**) (**आ**) (**अग्ने**) वह्निरिव तेजस्विनि विदुषि! (**पित्तम्**) तेजः (**अपाम्**) प्राणानां जलानां वा (**असि**) अस्ति (**मण्डूकि**) सुभूषिते (**ताभिः**) अद्भिः प्राणैर्वा (**आ**) (**गहि**) आगच्छ (**सा**) (**इमम्**) (**नः**) अस्माकम् (**यज्ञम्**) गृहाश्रमाख्यम् (**पावकवर्णम्**) अग्निवत् प्रकाशमानम् (**शिवम्**) कल्याणकारकम् (**कृधि**) कुरु॥६॥

अन्वयः-हे अग्ने वह्निरिव विदुषि मण्डूकि स्त्रि! त्वं ज्मन् नदीषु वेतसेऽवतर, यथाऽग्निरपां पित्तमसि, तथा त्वं ताभिरुपागहि, सा त्वं न इमं पावकवर्णं यज्ञं शिवमुपाकृधि॥६॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। स्त्रीपुरुषौ गृहाश्रमे प्रयत्नेन सर्वाणि कार्याणि संसाध्य शुद्धाचरणेन कल्याणं प्राप्नुयाताम्॥६॥

पदार्थः-हे (**अग्ने**) अग्नि के तुल्य तेजस्विनी विदुषि (**मण्डूकि**) अच्छे प्रकार अलङ्कारों से शोभित विदुषि स्त्रि! तू (**ज्मन्**) पृथिवी पर (**नदीषु**) नदियों तथा (**वेतसे**) पदार्थों के विस्तार में (**अव, तर**) पार हो, जैसे अग्नि (**अपाम्**) प्राण वा जलों के (**पित्तम्**) तेज का रूप (**असि**) है, वैसे तू (**ताभिः**) उन जल वा प्राणों के साथ (**उप, आ, गहि**) हमको समीप प्राप्त हो (**सा**) सो तू (**नः**) हमारे (**इमम्**) इस (**पावकवर्णम्**) अग्नि के तुल्य प्रकाशमान (**यज्ञम्**) गृहाश्रमरूप यज्ञ को (**शिवम्**) कल्याणकारी (**उप, आ, कृधि**) अच्छे प्रकार कर॥६॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। स्त्री और पुरुष गृहाश्रम में प्रयत्न के साथ सब कार्य्यों को सिद्ध कर शुद्ध आचरण के सहित कल्याण को प्राप्त हों॥६॥

अपामिदमित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। अग्निर्देवता। आर्षी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

गृहस्थेन किं कार्यमित्याह॥

गृहस्थ को क्या करना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अ॒पामि॒दं न्यय॑नꣳ समु॒द्रस्य॑ नि॒वेश॑नम्।
अ॒न्याँस्ते॑ऽअ॒स्मत्त॑पन्तु हे॒तय॑ः पाव॒कोऽअ॒स्मभ्य॑ꣳ शि॒वो भ॑व॥७॥

अपाम्। इदम्। न्ययनमिति नि॒ऽअयनम्। समुद्रस्य। निवेशनमिति निऽवेशनम्। अन्यान्। ते। अस्मत्। तपन्तु। हेतयः। पावकः। अस्मभ्यम्। शिवः। भव॥७॥

पदार्थः-(**अपाम्**) जलानां प्राणानां वा (**इदम्**) अन्तरिक्षम् (**न्ययनम्**) निश्चितमयनं स्थानम् (**समुद्रस्य**) सागरस्य (**निवेशनम्**) निविशन्ति यस्मिंस्तत् (**अन्यान्**) (**ते**) तव (**अस्मत्**) अस्माकं सकाशात् (**तपन्तु**) दुःखयन्तु (**हेतयः**) वज्रा वृद्धयो वा (**पावकः**) पवित्रकारी (**अस्मभ्यम्**) (**शिवः**) सुखप्रदः (**भव**)॥७॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यदिदमपां न्ययनमस्ति, तस्य समुद्रस्य निवेशनमिव गृहाश्रमं प्राप्य पावकः संस्त्वमस्मभ्यं शिवो भव, ते हेतयोऽस्मदन्यांस्तपन्तु॥७॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्या यथाऽपामाधारः सागरः समुद्रस्याधिष्ठानं भूमिर्भूमेरधिष्ठानमन्तरिक्षं तथा गार्हपत्यपदार्थानामाधारं गृहं निर्माय मङ्गलमाचर्य श्रेष्ठपालनं दस्युताडनञ्च कुर्वन्तु॥७॥

पदार्थः-हे विद्वन् पुरुष! जो (**इदम्**) यह आकाश (**अपाम्**) जलों वा प्राणों का (**न्ययनम्**) निश्चित स्थान है, उस आकाशस्थ (**समुद्रस्य**) समुद्र की (**निवेशनम्**) स्थिति के तुल्य गृहाश्रम को प्राप्त होके (**पावकः**) पवित्र कर्म करनेहारे होते हुए आप (**अस्मभ्यम्**) हमारे लिये (**शिवः**) मङ्गलकारी (**भव**) हूजिये, (**ते**) आपके (**हेतयः**) वज्र वा उन्नति (**अस्मत्**) हम लोगों से (**अन्यान्**) अन्य दुष्टों को (**तपन्तु**) दुःखी करें॥७॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्य लोग जैसे जलों का आधार समुद्र, सागर का आधार भूमि, उसका आधार आकाश है, वैसे गृहस्थी के पदार्थों के आधार घर को बना और मङ्गलरूप आचरण करके श्रेष्ठों की रक्षा तथा डाकुओं को पीड़ा दिया करें॥७॥

अग्ने पावकेत्यस्य वसुयुर्ऋषिः। अग्निर्देवता। आर्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

आप्तैर्विद्वद्भिः किं कार्य्यमित्याह॥

आप्त विद्वानों को क्या करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया। आ देवान् वक्षि यक्षि च॥८॥

अग्ने। पावक। रोचिषा। मन्द्रया। देव। जिह्वया। आ। देवान्। वक्षि। यक्षि। च॥८॥

पदार्थः-(**अग्ने**) विद्याप्रकाशकोपदेशक (**पावक**) जनान्तःकरणशोधक! (**रोचिषा**) प्रकाशेन (**मन्द्रया**) आनन्दसाधिकया (**देव**) कमनीय (**जिह्वया**) सत्यप्रियया वाचा (**आ**) (**देवान्**) विदुषो दिव्यगुणान् वा (**वक्षि**) उपदिशसि (**यक्षि**) संगच्छसे। अत्र **बहुलं छन्दसि** [अष्टा०२.४.७३] इति शपो लुक् (**च**)॥८॥

अन्वयः-हे पावक देवाग्ने! त्वं मन्द्रया जिह्वया रोचिषा देवानावक्षि यक्षि च॥८॥

भावार्थः-यथा सूर्यः स्वप्रकाशेन सर्वं जगद् रोचयति, तथैवाप्तोपदेशकाः सर्वाञ्जनान् प्रीणीयुः॥८॥

पदार्थः-हे **(पावक)** मनुष्यों के हृदयों को शुद्ध करने वाले **(देव)** सुन्दर **(अग्ने)** विद्या का प्रकाश वा उपदेश करनेहारे पुरुष! आप **(मन्द्रया)** आनन्द को सिद्ध करनेहारी **(जिह्वया)** सत्य प्रिय वाणी वा **(रोचिषा)** प्रकाश से **(देवान्)** विद्वान् वा दिव्य गुणों को **(आ, वक्षि)** उपदेश करते **(च)** और **(यक्षि)** समागम करते हो॥८॥

भावार्थः-जैसे सूर्य अपने प्रकाश से सब जगत् को प्रसन्न करता है, वैसे आप्त उपदेशक विद्वान् सब प्राणियों को प्रसन्न करें॥८॥

स न इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तदेवाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

स नः पावक दीदिवोऽग्ने देवाँ२ऽइहा वह।

उप यज्ञꣳ हविश्च नः॥९॥

सः। नः। पावक। दीदिव इति दीदिऽवः। अग्ने। देवान्। इह। आ। वह। उप। यज्ञम्। हविः। च। नः॥९॥

पदार्थः-**(सः)** विद्वान् **(नः)** अस्मभ्यम् **(पावक)** पवित्र **(दीदिवः)** तेजस्विन् शत्रुदाहक वा। **दीदयतिर्ज्वलतिकर्मा॥** (निघं०१.१६) अत्र **तुजादीनाम्** [अष्टा०६.१.७] इत्यभ्यासस्य दीर्घः **(अग्ने)** सत्यासत्यविभाजक **(देवान्)** विदुषः **(इह)** **(आ)** **(वह)** **(उप)** **(यज्ञम्)** गृहाश्रमम् **(हविः)** हुतं द्रव्यम् **(च)** **(नः)** अस्मभ्यम्॥९॥

अन्वयः-हे पावक दीदिवोऽग्ने! स त्वं यथाऽयमग्निर्नो हविरावहति, तथेह यज्ञं देवांश्च न उपावह॥९॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा सूर्य्यादिरूपेणायमग्निः सर्वेभ्यो रसमूर्ध्वं नीत्वा वर्षयित्वा दिव्यानि सुखानि जनयति, तथैव विद्वांसो विद्यारसमुन्नतं कृत्वा सर्वाणि सुखानि जनयेयुः॥९॥

पदार्थः-हे **(पावक)** पवित्र **(दीदिवः)** तेजस्विन् वा शत्रुदाहक **(अग्ने)** सत्यासत्य का विभाग करनेहारे विद्वन्! **(सः)** पूर्वोक्त गुण वाले आप जैसे यह अग्नि **(नः)** हमारे लिये अच्छे गुणों वाले **(हविः)** हवन किये सुगन्धित द्रव्य को प्राप्त करता है, वैसे **(इह)** इस संसार में **(यज्ञम्)** गृहाश्रम **(च)** और **(देवान्)** विद्वानों को **(नः)** हम लोगों के लिये **(उप, आ, वह)** अच्छे प्रकार समीप प्राप्त करें॥९॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे यह अग्नि अपने सूर्य्यादि रूप से सब पदार्थों से रस को ऊपर ले जा और वर्षा के उत्तम सुखों को प्रकट करता है, वैसे ही विद्वान् लोग विद्यारूप रस को उन्नति दे के सब सुखों का उत्पन्न करें॥९॥

पावकयेत्यस्य भारद्वाजः ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षी छन्दः। निषादः स्वरः॥

सेनापतिना कथम्भवितव्यमित्युपदिश्यते॥

सेनापति को कैसा होना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

पावकया यश्चितयन्त्या कृपा क्षामन् रुरुचऽउषसो न भानुना।

तूर्वन् न यामन्नेतशस्य नू रणऽआ यो घृणे न ततृषाणोऽअजरः॥ १०॥

पावकया। यः। चितयन्त्या। कृपा। क्षामन्। रुरुचे। उषसः। न। भानुना। तूर्वन्। न। यामन्। एतशस्य। नु। रणे। आ। यः। घृणे। न। ततृषाणः। अजरः॥ १०॥

पदार्थः-(**पावकया**) पवित्रकारिकया (**यः**) (**चितयन्त्या**) चेतनतायाः कर्त्र्या (**कृपा**) सामर्थ्येन (**क्षामन्**) क्षामनि राज्यभूमौ। **क्षामेति पृथिवीनामसु पठितम्॥** (निघं०१.१) (**रुरुचे**) रोचते (**उषसः**) प्रभाताः (**न**) इव (**भानुना**) दीप्त्या (**तूर्वन्**) हिंसन् (**न**) इव (**यामन्**) यामनि मार्गे प्रहरे वा (**एतशस्य**) अश्वस्य सम्बन्धीनि बलानि। **एतश इत्यश्वनामसु पठितम्॥** (निघं०१.१४) (**नु**) क्षिप्रम्। अत्र **ऋचितुनु०** [अष्टा०६.३.१३३] इति दीर्घः (**रणे**) (**आ**) (**यः**) (**घृणे**) प्रदीप्ते (**न**) इव (**ततृषाणः**) पिपासितः (**अजरः**) जरारहितः॥ १०॥

अन्वयः-यः पावकया चितयन्त्या कृपा सह वर्त्तमानः सेनापतिर्भानुनोषसो न क्षामन् रुरुचे, यो वा यामन्नेतशस्य नु तूर्वन् न घृणे रणे ततृषाणो नाजर आरुरुचे, स राज्यङ्कर्तुमर्हति॥ १०॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। यथा सूर्यश्चन्द्रश्च दीप्त्या, सुशोभेते तथैवोत्तमया स्त्रिया सुपतिः सेनया सेनापतिश्च सुप्रकाशते॥ १०॥

पदार्थः-(**यः**) जो (**पावकया**) पवित्र करने और (**चितयन्त्या**) चेतनता करानेहारी (**कृपा**) शक्ति के साथ वर्त्तमान सेनापति जैसे (**भानुना**) दीप्ति से (**उषसः**) प्रभात समय शोभित होते हैं (**न**) वैसे (**क्षामन्**) राज्यभूमि में (**रुरुचे**) शोभित होता वा (**यः**) जो (**यामन्**) मार्ग वा प्रहर में जैसे (**एतशस्य**) घोड़े के बलों को (**नु**) शीघ्र (**तूर्वन्**) मारता है (**न**) वैसे (**घृणे**) प्रदीप्त (**रणे**) युद्ध में (**ततृषाणः**) प्यासे के (**न**) समान (**अजरः**) अजर अजेय ज्वान निर्भय (**आ**) अच्छे प्रकार होता वह राज्य करने को योग्य होता है॥ १०॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे सूर्य और चन्द्रमा अपनी दीप्ति से शोभित होते हैं, वैसे ही सती स्त्री के साथ उत्तम पति और उत्तम सेना से सेनापति अच्छे प्रकार प्रकाशित होता है॥ १०॥

नमस्ते हरस इत्यस्य लोपामुद्रा ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगार्षी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

न्यायाधीशेन कथं भवितव्यमित्याह॥

न्यायाधीश को कैसा होना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्तेऽअस्त्वर्चिषे।

अ॒न्याँस्ते॑ अ॒स्मत्त॑पन्तु हे॒तय॑: पाव॒कोऽअ॒स्मभ्य॑ꣳ शि॒वो भ॑व॥११॥

नम॑:। ते॒। हर॑से। शो॒चिषे॑। नम॑:। ते॒। अ॒स्तु॒। अ॒र्चिषे॑। अ॒न्यान्। ते॒। अ॒स्मत्। त॒प॒न्तु॒। हे॒तय॑:। पा॒व॒क:। अ॒स्मभ्य॑म्। शि॒व:। भ॒व॥११॥

पदार्थः-(**नम:**) सत्करणम् (**ते**) तुभ्यम् (**हरसे**) यो दु:खं हरति तस्मै (**शोचिषे**) पवित्राय (**नम:**) (**ते**) (**अस्तु**) (**अर्चिषे**) पूज्याय (**अन्यान्**) भिन्नान् शत्रून् (**ते**) तव (**अस्मत्**) (**तपन्तु**) सन्तापयन्तु (**हेतय:**) वज्रादिशस्त्रास्त्रयुक्ता: सेना: (**पावक:**) शोधक: (**अस्मभ्यम्**) (**शिव:**) न्यायकारी (**भव**)॥११॥

अन्वयः-हे सभापते! ते हरसेऽस्मत्कृतं नमोऽस्तु, शोचिषेऽर्चिषे तेऽस्मत्प्रयुक्तं नमोऽस्तु, यस्ते हेतयस्ता अस्मदन्याँस्तपन्तु, पावकस्त्वमस्मभ्यं शिवो भव॥११॥

भावार्थः-मनुष्यैः पवित्रान् जनान् न्यायाधीशान् कृत्वा दुष्टान् निवार्य्य सत्यो न्याय: प्रकाशयित्व्य:॥११॥

पदार्थः-हे सभापते! (**हरसे**) दु:ख हरने वाले (**ते**) तेरे लिये हमारा किया (**नम:**) सत्कार हो तथा (**शोचिषे**) पवित्र (**अर्चिषे**) सत्कार के योग्य (**ते**) तेरे लिये हमारा कहा (**नम:**) नमस्कार (**अस्तु**) हो जो (**ते**) तेरी (**हेतय:**) वज्रादि शस्त्रों से युक्त सेना हैं वे (**अस्मत्**) हम लोगों से भिन्न (**अन्यान्**) अन्य शत्रुओं को (**तपन्तु**) दु:खी करें (**पावक:**) शुद्धि करनेहारे आप (**अस्मभ्यम्**) हमारे लिये (**शिव:**) न्यायकारी (**भव**) हूजिये॥११॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि अन्त:करण के शुद्ध मनुष्यों को न्यायधीश बनाकर और दुष्टों की निवृत्ति करके सत्य न्याय का प्रकाश करें॥११॥

नृषद इत्यस्य लोपामुद्रा ऋषि:। अग्निर्देवता। निचृद्गायत्री छन्द:। षड्ज: स्वर:॥

पुनस्तदेवाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

नृ॒षदे॒ वेड॑प्सु॒षदे॒ वेड् ब॑र्हि॒षदे॒ वेड् व॑न॒सदे॒ वेट् स्व॒र्विदे॒ वेट्॥१२॥

नृ॒षदे॑। नृ॒सद॒ इति॑ नृ॒ऽसदे॑। वेट्। अ॒प्सु॒षदे॑। अ॒प्सु॒सद॒ इत्य॑प्सु॒ऽसदे॑। वेट्। ब॒र्हि॒षदे॑। ब॒र्हि॒सद इति॑ ब॒र्हि॒ऽसदे॑। वेट्। व॒न॒सद॒ इति॑ व॒न॒ऽसदे॑। वेट्। स्व॒र्वि॒द॒ इति॑ स्व॒:ऽविदे॑। वेट्॥१२॥

पदार्थः-(**नृषदे**) यो नायकेषु सीदति तस्मै (**वेट्**) यो न्यायासने विशति स:। अत्र विशधातो: **अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते** [अष्टा०३.२.७५] इति विच् प्रत्यय: (**अप्सुषदे**) यो जलेषु नौकादिषु सीदति तस्मै (**वेट्**) (**बर्हिषदे**) य: प्रजाया वर्धके व्यवहारे तिष्ठति तस्मै (**वेट्**) अधिष्ठाता (**वनसदे**) यो वनेषु सीदति तस्मै (**वेट्**) (**स्वर्विदे**) य: सुखं वेत्ति तस्मै (**वेट्**)॥१२॥

अन्वयः-हे सभेश! त्वं नृषदे वेड् भवाप्सुषदे वेड् भव। बर्हिषदे वेड् भव, वनसदे वेड् भव, स्वर्विदे च वेड् भव॥१२॥

भावार्थः-यस्मिन् देशे न्यायाधीशनौयायिप्रजावर्द्धकारण्यस्थनायकसुखप्रापका विद्वांसो वर्त्तन्ते, तत्रैव सर्वाणि सुखानि वर्द्धन्ते॥१२॥

पदार्थः-हे सभापते! आप **(नृषदे)** नायकों में स्थिर पुरुष होने के लिये **(वेट्)** न्यायासन पर बैठने **(अप्सुषदे)** जलों के बीच नौकादि में स्थिर होने वाले के लिये **(वेट्)** न्याय गद्दी पर बैठने **(बर्हिषदे)** प्रजा को बढ़ानेहारे व्यवहार में स्थिर होने के लिये **(वेट्)** अधिष्ठाता होने **(वनसदे)** वनों में रहने वाले के लिये **(वेट्)** न्याय में प्रवेश करने और **(स्वर्विदे)** सुख को जाननेहारे के लिये **(वेट्)** उत्साह में प्रवेश करने वाले हूजिये॥१२॥

भावार्थः-जिस देश में न्यायधीश, नौकाओं के चलाने, प्रजा को बढ़ाने, वन में रहने, सेनादि के नायक और सुख पहुँचानेहारे विद्वान् होते हैं, वहीं सब सुखों की वृद्धि होती है॥१२॥

ये देवा इत्यस्य लोपामुद्रा ऋषिः। प्राणो देवता। निचृदार्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

अथ संन्यासिभिः किं कार्यमित्याह॥

अब संन्यासियों को क्या करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

ये देवा देवानां यज्ञिया यज्ञियानाᳬं संवत्सरीणमुप भागमासते।

अहुतादो हविषो यज्ञेऽअस्मिन्त्स्वयं पिबन्तु मधुनो घृतस्य॥ १३॥

ये। देवाः। देवानाम्। यज्ञियाः। यज्ञियानाम्। संवत्सरीणम्। उप। भागम्। आसते। अहुताद इत्यहुतऽअदः। हविषः। यज्ञे। अस्मिन्। स्वयम्। पिबन्तु। मधुनः। घृतस्य॥ १३॥

पदार्थः-**(ये)** **(देवाः)** विद्वांसः **(देवानाम्)** विदुषाम् **(यज्ञियाः)** ये यज्ञमर्हन्ति ते **(यज्ञियानाम्)** यज्ञसम्पादनकुशलानाम् **(संवत्सरीणम्)** यः संवत्सरं भृतस्तम् । **संपरिपूर्वात् खच्॥** (अष्टा०५.१.९२) इति भृतार्थे खः **(उप)** **(भागम्)** सेवनीयम् **(आसते)** **(अहुतादः)** येऽहुतमदन्ति ते **(हविषः)** होतव्यस्य **(यज्ञे)** संगन्तव्ये **(अस्मिन्)** **(स्वयम्)** **(पिबन्तु)** **(मधुनः)** क्षौद्रस्य **(घृतस्य)** आज्यस्य जलस्य वा॥१३॥

अन्वयः-ये देवानां मध्येऽहुतादो देवा यज्ञियानां मध्ये यज्ञिया विद्वांसः संवत्सरीणं भागमुपासते, तेऽस्मिन् यज्ञे मधुनो घृतस्य हविषो भागं स्वयं पिबन्तु॥१३॥

भावार्थः-येऽस्मिन् संसारे अनग्नयोऽर्थादाहवनीयगार्हपत्यदक्षिणाग्निसम्बन्धिबाह्यकर्माणि विहायान्तरग्नयः संन्यासिनः सन्ति, ते होममकुर्वन्तो भुञ्जानाः सर्वत्र विहृत्य सर्वान् जनान् वेदार्थान् बोधयेयुः॥१३॥

पदार्थः-(**ये**) जो (**देवानाम्**) विद्वानों में (**अहुतादः**) बिना हवन किये हुए पदार्थ का भोजन करनेहारे (**देवाः**) विद्वान् (**यज्ञियानाम्**) वा यज्ञ करने में कुशल पुरुषों में (**यज्ञियाः**) योगाभ्यासादि यज्ञ के योग्य विद्वान् लोग (**संवत्सरीणम्**) वर्ष भर पुष्ट किये (**भागम्**) सेवने योग्य उत्तम परमात्मा की (**उपासते**) उपासना करते हैं, वे (**अस्मिन्**) इस (**यज्ञे**) समागमरूप यज्ञ में (**मधुनः**) शहत (**घृतस्य**) जल और (**हविषः**) हवन के योग्य पदार्थों के भाग को (**स्वयम्**) अपने आप (**पिबन्तु**) सेवन करें॥१३॥

भावार्थः-जो विद्वान् लोग इस संसार में अग्निक्रिया से रहित अर्थात् आहवनीय, गार्हपत्य और दक्षिणाग्नि सम्बन्धी बाह्य कर्मों को छोड़ के आभ्यन्तर अग्नि को धारण करने वाले संन्यासी हैं, वे होम को नहीं किये भोजन करते हुए सर्वत्र विचर के सब मनुष्यों को वेदार्थ का उपदेश किया करें॥१३॥

य देवा इत्यस्य लोपामुद्रा ऋषिः। प्राणो देवता। आर्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

अथोत्तमा विद्वांसः कीदृशा भवन्तीत्याह॥

अब उत्तम विद्वान् लोग कैसे होते हैं, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

ये देवा देवेष्वधि देवत्वमायन् ये ब्रह्मणः पुरऽएतारोऽअस्य।
येभ्यो नऽऋते पवते धाम किञ्चन न ते दिवो न पृथिव्याऽअधि स्नुषु॥१४॥

ये। देवाः। देवेषु। अधि। देवत्वमिति देवऽत्वम्। आयन्। ये। ब्रह्मणः। पुरऽएतार इति पुरःऽएतारः। अस्य। येभ्यः। न। ऋते। पवते। धाम। किम्। चन। न। ते। दिवः। न। पृथिव्याः। अधि। स्नुषु॥१४॥

पदार्थः-(**ये**) (**देवाः**) पूर्णविद्वांसः (**देवेषु**) विद्वत्सु (**अधि**) उपरिविराजमानाः (**देवत्वम्**) विदुषां कर्म भावं वा (**आयन्**) प्राप्नुवन्ति (**ये**) (**ब्रह्मणः**) परमेश्वरस्य (**पुरएतारः**) पूर्वं प्राप्तारः (**अस्य**) (**येभ्यः**) (**न**) निषेधे (**ऋते**) विना (**पवते**) पवित्रीभवति (**धाम**) दधति सुखानि यस्मिंस्तत् (**किम्**) (**चन**) (**न**) (**ते**) विद्वांसः (**दिवः**) सूर्यस्य (**न**) (**पृथिव्याः**) भूमेः (**अधि**) (**स्नुषु**) प्रान्तेषु॥१४॥

अन्वयः-ये देवा देवेष्वधि देवत्वमायन्, येऽस्य ब्रह्मणः पुरएतारः सन्ति, येभ्य ऋते किं चन धाम न पवते, ते न दिवः स्नुषु न च पृथिव्याः अधि स्नुष्वायन् नाधिवसन्तीति यावत्॥१४॥

भावार्थः-येऽत्र जगति विद्वत्तमा योगाधिराजा याथातथ्येन परमेश्वरं जानन्ति, ते निखिलजनशोधकाः सन्तो जीवन्मुक्तिदशायां परोपकारमाचरन्तो विदेहमुक्तदशायां न सूर्यलोके न च पृथिव्यां नियतं वसन्ति, किन्तु ब्रह्मणि स्थित्वाऽव्याहतगत्या सर्वत्राभिविहरन्ति॥१४॥

पदार्थः-(**ये**) जो (**देवाः**) पूर्ण विद्वान् (**देवेषु, अधि**) विद्वानों में सब से उत्तम कक्षा में विराजमान (**देवत्वम्**) अपने गुण, कर्म और स्वभाव को (**आयन्**) प्राप्त होते हैं और (**ये**) जो (**अस्य**) इस (**ब्रह्मणः**) परमेश्वर को (**पुरएतारः**) पहिले प्राप्त होने वाले हैं, (**येभ्यः**) जिनके (**ऋते**) विना (**किम्**) (**चन**) कोई भी

(धाम) सुख का स्थान **(न)** नहीं **(पवते)** पवित्र होता **(ते)** वे विद्वान् लोग **(न)** न **(दिवः)** सूर्य्यलोक के प्रदेशों और **(न)** न **(पृथिव्याः)** पृथिवी के **(अधि, स्नुषु)** किसी भाग में अधिक वसते हैं॥१४॥

भावार्थः-जो इस जगत् में उत्तम विद्वान् योगीराज यथार्थता से परमेश्वर को जानते हैं, वे सम्पूर्ण प्राणियों को शुद्ध करने और जीवन्मुक्तिदशा में परोपकार करते हुए विदेहमुक्ति अवस्था में न सूर्य्यलोक और न पृथिवी पर नियम से वसते हैं, किन्तु ईश्वर में स्थिर हो के अव्याहतगति से सर्वत्र विचरा करते हैं॥१४॥

प्राणदा इत्यस्य लोपामुद्रा ऋषिः। अग्निर्देवता। विराडार्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

विद्वद्राजानौ कीदृशौ स्यातामित्याह॥

विद्वान् और राजा कैसे हों, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

प्राणदाऽअपानदा व्यानदा वर्चोदा वरिवोदाः।
अन्याँस्तेऽअस्मत्तपन्तु हेतयः पावकोऽअस्मभ्यꣳ शिवो भव॥१५॥

प्राणदा इति प्राणऽदाः। अपानदा इत्यपानऽदाः। व्यानदा इति व्यानऽदाः। वर्चोदा इति वर्चःऽदाः। वरिवोदा इति वरिवःऽदाः। अन्यान्। ते। अस्मत्। तपन्तु। हेतयः। पावकः। अस्मभ्यम्। शिवः। भव॥१५॥

पदार्थः-**(प्राणदाः)** याः प्राणं जीवनं बलं च ददति ताः **(अपानदाः)** या अपानं दुःखदूरीकरणसाधनं प्रयच्छन्ति ताः **(व्यानदाः)** या व्याप्तिविज्ञानं ददति **(वर्चोदाः)** सकलविद्याध्ययनप्रदाः **(वरिवोदाः)** सत्यधर्मविद्वत्सेवाप्रापिकाः **(अन्यान्)** **(ते)** तव **(अस्मत्)** **(तपन्तु)** **(हेतयः)** वज्रवद्वर्त्तमाना शस्त्रास्त्रोन्नतयः **(पावकः)** शुद्धिप्रचारकः **(अस्मभ्यम्)** **(शिवः)** **(भव)**॥१५॥

अन्वयः-हे विद्वन् राजन्! ते तव या अस्मभ्यं प्राणदा अपानदा व्यानदा वर्चोदा वरिवोदा हेतयो भूत्वाऽस्मदन्यांस्तपन्तु ताभिः पावकः संस्त्वमस्मभ्यं शिवो भव॥१५॥

भावार्थः-स एव राजा यो न्यायस्य वर्द्धकः स्यात्, स एव विद्वान् यो विद्यया न्यायस्य विज्ञापको भवेत्, न स राजा यः प्रजा पीडयेत्, न स विद्वान् योऽन्यान् विदुषो न कुर्यात्, न ताः प्रजा या नीतिज्ञं न सेवेरन्॥१५॥

पदार्थः-हे विद्वन् राजन्! **(ते)** आपकी जो उन्नति वा शस्त्रादि **(अस्मभ्यम्)** हम लोगों के लिये **(प्राणदाः)** जीवन तथा बल को देने वा **(अपानदाः)** दुःख दूर करने के साधन को देने वा **(व्यानदाः)** व्याप्ति और विज्ञान को देने **(वर्चोदाः)** सब विद्याओं के पढ़ने का हेतु को देने और **(वरिवोदाः)** सत्य धर्म्म और विद्वानों की सेवा को व्याप्त कराने वाली **(हेतयः)** वज्रादि शस्त्रों की उन्नतियां **(अस्मत्)** हमसे **(अन्यान्)** अन्य दुष्ट शत्रुओं को **(तपन्तु)** दुःखी करें, उनके सहित **(पावकः)** शुद्धि का प्रचार करते हुए आप हम लोगों के लिये **(शिवः)** मङ्गलकारी **(भव)** हूजिये॥१५॥

भावार्थ:-वही राजा है जो न्याय को बढ़ाने वाला हो, और वही विद्वान् है जो विद्या से न्याय को जानने वाला हो, और वह राजा नहीं जो कि प्रजा को पीड़ा दे, और वह विद्वान् भी नहीं जो दूसरों को विद्वान् न करे, और वे प्रजाजन भी नहीं जो नीतियुक्त राजा की सेवा न करें॥१५॥

अग्निरित्यस्य भारद्वाज ऋषि:। अग्निर्देवता। निचृदार्षी गायत्री छन्द:। षड्ज: स्वर:॥

विद्वान् कीदृशो भवेदित्याह॥

विद्वान् कैसा हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अ॒ग्निस्ति॒ग्मेन॑ शो॒चिषा॒ यास॒द्विश्वं॒ न्य॒त्रिण॑म्।

अ॒ग्निर्नो॑ वनते र॒यिम्॥ १६॥

अ॒ग्नि:। ति॒ग्मेन॑। शो॒चिषा॑। यास॑त्। विश्व॑म्। नि। अ॒त्रिण॑म्। अ॒ग्नि:। न॒:। व॒न॒ते। र॒यिम्॥ १६॥

पदार्थ:-**(अग्नि:)** विद्युत् **(तिग्मेन)** तीव्रेण **(शोचिषा)** प्रकाशेन **(यासत्)** प्राप्नोति **(विश्वम्)** सर्वम् **(नि)** **(अत्रिणम्)** अत्तुं भोक्तुं योग्यम् **(अग्नि:)** **(न:)** अस्मभ्यम् **(वनते)** विभजति **(रयिम्)** द्रव्यम्॥१६॥

अन्वय:-हे विद्वन्! यथाऽग्निस्तिग्मेन शोचिषा विश्वमत्रिणं यासत्, यथाग्निर्विद्युन्नो रयिं निवनते, तथा त्वमस्मदर्थं भव॥१६॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। विद्वद्भिर्यथा पावक: स्वतेजसा शुष्कमशुष्कं तृणादिकं दहति, तथाऽस्माकं सर्वान् दोषान् दग्ध्वा गुणा: प्रापणीया:। यथा विद्युत् सर्वान् पदार्थान् सेवते, तथास्मभ्यं सर्वा विद्यां सेवयित्वा वयमविद्याया: पृथक्करणीया:॥१६॥

पदार्थ:-हे विद्वन् पुरुष! जैसे **(अग्नि:)** अग्नि **(तिग्मेन)** तीव्र **(शोचिषा)** प्रकाश से **(अत्रिणम्)** भोगने योग्य **(विश्वम्)** सबको **(यासत्)** प्राप्त होता है कि जैसे **(अग्नि:)** विद्युत् अग्नि **(न:)** हमारे लिये **(रयिम्)** धन को **(नि, वनते)** निरन्तर विभागकर्त्ता है, वैसे हमारे लिये आप भी हूजिये॥१६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। विद्वानों को चाहिये कि जैसे अग्नि अपने तेज से सूखे गीले सब तृणादि को जला देता है, वैसे हमारे सब दोषों को भस्म कर गुणों को प्राप्त करें। जैसे बिजुली सब पदार्थों का सेवन करती है, वैसे हम को सब विद्या का सेवन करा के अविद्या से पृथक् किया करें॥१६॥

य इमा इत्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषि:। विश्वकर्मा देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्द:। धैवत: स्वर:॥

अथेश्वर: कीदृशोऽस्तीत्युपदिश्यते॥

अब ईश्वर कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

यऽइ॒मा विश्वा॒ भुव॑नानि॒ जुह्व॒दृषि॒र्होता॒ न्यसी॑दत् पि॒ता न॑:।

सऽआशिषा द्रविणमिच्छमानः प्रथमच्छदवराँ२ऽआविवेश॥ १७॥

यः। इमा। विश्वा। भुवनानि। जुह्वत्। ऋषिः। होता। नि। असीदत्। पिता। नः। सः। आशिषेत्याऽशिषा। द्रविणम्। इच्छमानः। प्रथमच्छदिति प्रथमऽछत्। अवरान्। आ। विवेश॥ १७॥

पदार्थः-(**यः**) (**इमा**) इमानि (**विश्वा**) विश्वानि (**भुवनानि**) (**जुह्वत्**) आददत् (**ऋषिः**) ज्ञाता (**होता**) दाताऽऽदाता वा (**नि**) (**असीदत्**) सीदति (**पिता**) पालकः (**नः**) अस्माकम् (**सः**) (**आशिषा**) आशीर्वादेन (**द्रविणम्**) धनम् (**इच्छमानः**) अत्र व्यत्ययेनात्मनेपदम् (**प्रथमच्छत्**) यः प्रथमान् विस्तृतान् छादयति (**अवरान्**) अर्वाचीनानाकाशादीन् (**आ**) समन्तात् (**विवेश**) विष्टोऽस्ति॥ १७॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! य ऋषिर्होता नः पिता परमेश्वर इमा विश्वा भुवनानि न्यसीदत्, सर्वाँल्लोकान् जुह्वत्, स आशिषा द्रविणमिच्छमानः प्रथमच्छदवरानाविवेशेति यूयं विजानीत॥ १७॥

भावार्थः-सर्वे मनुष्याः यः सकलस्य जगतो रचको धारकः पालको विनाशकः सर्वेभ्यो जीवेभ्यः सर्ववस्तुप्रदः परमेश्वरः स्वव्याप्त्याकाशादिषु प्रविष्टोऽस्ति, तमेव सततमुपासीरन्॥ १७॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! (**यः**) जो (**ऋषिः**) ज्ञानस्वरूप (**होता**) सब पदार्थों को देने वा ग्रहण करनेहारा (**नः**) हम लोगों का (**पिता**) रक्षक परमेश्वर (**इमा**) इन (**विश्वा**) सब (**भुवनानि**) लोकों को व्याप्त होके (**न्यसीदत्**) निरन्तर स्थित है और जो सब लोकों का (**जुह्वत्**) धारणकर्त्ता है (**सः**) वह (**आशिषा**) आशीर्वाद से हमारे लिये (**द्रविणम्**) धन को (**इच्छमानः**) चाहता और (**प्रथमच्छत्**) विस्तृत पदार्थों को आच्छादित करता हुआ (**अवरान्**) पूर्ण आकाशादि को (**आविवेश**) अच्छे प्रकार व्याप्त हो रहा है, यह तुम जानो॥ १७॥

भावार्थः-सब मनुष्य लोग जो सब जगत् को रचने, धारण करने, पालने तथा विनाश करने और सब जीवों के लिये सब पदार्थों को देने वाला परमेश्वर अपनी व्याप्ति से आकाशादि में व्याप्त हो रहा है, उसी की उपासना करें॥ १७॥

किंꣳस्विदित्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषिः। विश्वकर्मा देवता। भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तदेवाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

किꣳस्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत् स्वित् कथासीत्।
यतो भूमिं जनयन् विश्वकर्मा वि द्यामौर्णोन्महिना विश्वचक्षाः॥ १८॥

किम्। स्वि॒त्। आ॒सी॒त्। अ॒धि॒ष्ठान॑म्। अ॒धि॒स्थान॒मित्य॑धि॒ऽस्थान॑म्। आ॒रम्भ॑ण॒मित्या॒ऽरम्भ॑णम्। क॒त॒मत्। स्वि॒त्। क॒था। आ॒सी॒त्। यत॑:। भूमि॑म्। ज॒नय॑न्। वि॒श्वक॒र्मेति॑ वि॒श्वऽक॑र्मा। वि। द्याम्। और्णो॑त्। म॒हि॒ना। वि॒श्वच॑क्षा॒ इति॑ वि॒श्वऽच॑क्षाः॥ १८॥

पदार्थः-(**किम्**) प्रश्ने (**स्वित्**) वितर्के (**आसीत्**) (**अधिष्ठानम्**) अधितिष्ठन्ति यस्मिंस्तत् (**आरम्भणम्**) आरभते यस्मात् तत् (**कतमत्**) बहूनामुपादानानां मध्ये किमिति प्रश्ने (**स्वित्**) (**कथा**) केन प्रकारेण (**आसीत्**) अस्ति (**यतः**) (**भूमिम्**) (**जनयन्**) उत्पादयन् (**विश्वकर्मा**) विश्वान्यखिलानि कर्माणि यस्य परमेश्वरस्य सः (**वि**) विविधतया (**द्याम्**) सूर्यादिलोकम् (**और्णोत्**) ऊर्णुत आच्छादयति (**महिना**) स्वस्य महिम्ना। अत्र छान्दसो वर्णलोप इति मकारलोपः (**विश्वचक्षाः**) यो विश्वं सर्वं जगच्चष्टे पश्यति सः॥ १८॥

अन्वयः-हे विद्वन्नस्य जगतोऽधिष्ठानं किं स्विदासीत्? आरम्भणं कतमत्? कथा स्विदासीत्? यतो विश्वकर्मा विश्वचक्षा जगदीश्वरो भूमिं द्यां च जनयन् महिना व्यौर्णोत्॥ १८॥

भावार्थः-हे जनाः! युष्माभिरिदं जगत् क्व वसति? किमारम्भणं चास्य? किमर्थं जायते? इत्यादि-प्रश्नानामिदमुत्तरम्। यो जगदीश्वरः कार्य्याख्यं जगदुत्पाद्य स्वव्याप्त्या सर्वमाच्छाद्य सर्वज्ञतया सर्वं पश्यति, सोऽधिष्ठानमारम्भणं चास्ति, सर्वशक्तिमान् रचनादिसामर्थ्ययुक्तोऽस्ति, जीवेभ्यः पापपुण्यफलदानाय भोजयितुं सर्वं रचितवानिति वेद्यम्॥ १८॥

पदार्थः-हे विद्वन् पुरुष! इस जगत् का (**अधिष्ठानम्**) आधार (**किं, स्वित्**) क्या आश्चर्यरूप (**आसीत्**) है, तथा (**आरम्भणम्**) इस कार्य-जगत् की रचना का आरम्भ कारण (**कतमत्**) बहुत उपादानों में क्या और वह (**कथा**) किस प्रकार से (**स्वित्**) तर्क के साथ (**आसीत्**) है कि (**यतः**) जिससे (**विश्वकर्मा**) सब सत्कर्मों वाला (**विश्वचक्षाः**) सब जगत् का द्रष्टा जगदीश्वर (**भूमिम्**) पृथिवी और (**द्याम्**) सूर्यादि लोक को (**जनयन्**) उत्पन्न करता हुआ (**महिना**) अपनी महिमा से (**व्यौर्णोत्**) विविध प्रकार से आच्छादित करता है॥ १८॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! तुम को यह जगत् कहां वसता? क्या इसका कारण? और किसलिये उत्पन्न होता है? इन प्रश्नों का उत्तर यह है कि जो जगदीश्वर कार्य-जगत् को उत्पन्न तथा अपनी व्याप्ति से सब का आच्छादन करके सर्वज्ञता से सबको देखता है, वह इस जगत् का आधार और निमित्तकारण है। वह सर्वशक्तिमान् रचना आदि के सामर्थ्य से युक्त है, जीवों को पाप-पुण्य का फल देने भोगवाने के लिये इस संसार को रचा है, ऐसा जानना चाहिये॥ १८॥

विश्वत इत्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषिः। विश्वकर्मा देवता। भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तदेवाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देवऽएकः॥ १९॥

विश्वतश्चक्षुरिति विश्वतःऽचक्षुः। उत। विश्वतोमुख इति विश्वतःऽमुखः। विश्वतोबाहुरिति विश्वतःऽबाहुः। उत। विश्वतस्पात्। विश्वतःऽपादिति विश्वतःऽपात्। सम्। बाहुभ्यामिति बाहुऽभ्याम्। धमति। सम्। पतत्रैः। द्यावाभूमी इति द्यावाभूमी। जनयन्। देवः। एकः॥ १९॥

पदार्थः-(**विश्वतश्चक्षुः**) विश्वतः सर्वस्मिञ्जगति चक्षुर्दर्शनं यस्य सः (**उत**) अपि (**विश्वतोमुखः**) विश्वतः सर्वतो मुखमुपदेशनमस्य सः (**विश्वतोबाहुः**) सर्वतो बाहुर्बलं वीर्यं वा यस्य सः (**उत**) अपि (**विश्वतस्पात्**) विश्वतः सर्वत्र पात् गतिर्व्याप्तिर्यस्य सः (**सम्**) सम्यक् (**बाहुभ्याम्**) अनन्ताभ्यां बलवीर्य्याभ्याम् (**धमति**) प्राप्नोति। **धमतीति गतिकर्मा॥** (निघं०२.१४) (**सम्**) (**पतत्रैः**) पतनशीलैः परमाण्वादिभिः (**द्यावाभूमी**) सूर्य्यपृथिवीलोकौ (**जनयन्**) कार्यरूपेण प्रकटयन् सन् (**देवः**) स्वप्रकाशः (**एकः**) अद्वितीयोऽसहायः॥ १९॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यूयं यो विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पादेको देवः पतत्रैर्द्यावाभूमी संजनयन् सन् बाहुभ्यां सर्वं जगत् संधमति, तमेवेष्टमुपास्यमभिरक्षकं परमेश्वरं जानीत॥ १९॥

भावार्थः-यस्सूक्ष्मात् सूक्ष्मो महतो महान् निराकारोऽनन्तसामर्थ्यः सर्वत्राभिव्याप्तो देवोऽद्वितीयः परमात्माऽस्ति, स एवातिसूक्ष्मात् कारणात् स्थूलं कार्यं रचयितुं विनाशयितुं वा समर्थो वर्त्तते। य एतस्योपासनं विहायान्यमुपास्ते कस्तस्मादन्यो जगति दुर्भगोऽस्ति॥ १९॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम लोग जो (**विश्वतश्चक्षुः**) सब संसार को देखने (**उत**) और (**विश्वतोमुखः**) सब ओर से सब का उपदेश करनेहारा (**विश्वतोबाहुः**) सब प्रकार से अनन्त बल तथा पराक्रम से युक्त (**उत**) और (**विश्वतस्पात्**) सर्वत्र व्याप्ति वाला (**एकः**) अद्वितीय सहायरहित (**देवः**) अपने आप प्रकाशस्वरूप (**पतत्रैः**) क्रियाशील परमाणु आदि से (**द्यावाभूमी**) सूर्य्य और पृथिवी लोक को (**सम्, जनयन्**) कार्य्यरूप प्रकट करता हुआ (**बाहुभ्याम्**) अनन्त बल पराक्रम से सब जगत् को (**सम्, धमति**) सम्यक् प्राप्त हो रहा है, उसी परमेश्वर को अपना सब ओर से रक्षक उपास्यदेव जानो॥ १९॥

भावार्थः-जो सूक्ष्म से सूक्ष्म, बड़े से बड़ा, निराकार, अनन्त सामर्थ्य वाला, सर्वत्र अभिव्याप्त, प्रकाशस्वरूप, अद्वितीय परमात्मा है, वही अति सूक्ष्म कारण से स्थूल कार्यरूप जगत् के रचने और विनाश करने को समर्थ है। जो पुरुष इसको छोड़ अन्य की उपासना करता है, उससे अन्य जगत् में भाग्यहीन कौन पुरुष है?॥ १९॥

किंᳬस्विदित्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषिः। विश्वकर्मा देवता। स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तदेवाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

किᳬस्वि॒द्वनं॒ कऽउ॒ स वृ॒क्षऽआ॑स॒ यतो॒ द्यावा॑पृथि॒वी नि॑ष्टत॒क्षुः।
म॒नी॑षिणो॒ मन॑सा पृ॒च्छतेदु॒ तद्यद॒ध्यति॑ष्ठ॒द् भुव॑नानि धा॒रय॑न्॥ २०॥

किम्। स्वि॒त्। वन॑म्। कः। ऊँ॒ऽइत्यूँ॑। सः। वृ॒क्षः। आ॒स॒। यतः॑। द्यावा॑पृथि॒वी इति॒ द्यावा॑पृथि॒वी। नि॒ष्ट॒त॒क्षुः। नि॒स्त॒त॒क्षुरिति॑ निःऽत॒त॒क्षुः। मनी॑षिणः। मन॑सा। पृ॒च्छत॑। इत्। ऊँ॒ऽइत्यूँ॑। तत्। यत्। अ॒ध्यति॑ष्ठ॒दित्य॑धि॒ऽअति॑ष्ठत्। भुव॑नानि। धा॒रय॑न्॥ २०॥

पदार्थः-(**किम्**) (**स्वित्**) (**वनम्**) संभजनीयं कारणवनम् (**कः**) (उ) वितर्के (**सः**) परोक्षे (**वृक्षः**) यो वृश्च्यते छिद्यते स संसारः (**आस**) अस्ति (**यतः**) यस्य प्रकृत्याख्यकारणस्य सकाशात् (**द्यावापृथिवी**) विस्तृतौ सूर्यभूमिलोकौ (**निष्टतक्षुः**) नितरां ततक्ष, अत्र वचनव्यत्ययः। (**मनीषिणः**) मनस ईषिणो योगिनः (**मनसा**) विज्ञानेन (**पृच्छत**) (**इत्**) एव (उ) प्रसिद्धौ (**तत्**) सः (**यत्**) यः (**अध्यतिष्ठत्**) अधिष्ठातृत्वेन वर्त्तते (**भुवनानि**) भवन्ति भूतानि येषु ताँल्लोकान् (**धारयन्**) वायुविद्युत्सूर्यादिना धारणं कारयन्॥ २०॥

अन्वयः-हे मनीषिणः! यूयं मनसा विदुषः प्रति किं स्विद्वनं क उ स वृक्ष आसेति पृच्छत, यतो द्यावापृथिवी को निष्टतक्षुः। यद्यो भुवनानि धारयन्नध्यतिष्ठत् तदिदु ब्रह्म विजानीतेत्युत्तरम्॥ २०॥

भावार्थः-अत्र पादत्रयेण प्रश्नः पादैकेनोत्तरम्। वृक्षशब्देन कार्यं वनशब्देन कारणं चोच्यते, यथा सर्ववस्तूनि पृथिवी, पृथिवीं सूर्यः, सूर्यं विद्युद्, विद्युतं वायुश्च धरति, तथैवैतान् जगदीश्वरो दधाति॥ २०॥

पदार्थः-प्रश्न-हे (**मनीषिणः**) मन का निग्रह करने वाले योगीजनो! तुम लोग (**मनसा**) विज्ञान के साथ विद्वानों के प्रति (**किं, स्वित्**) क्या (**वनम्**) सेवने योग्य कारणरूप वन तथा (**कः**) कौन (**उ**) वितर्क के साथ (**सः**) वह (**वृक्षः**) छिद्यमान अनित्य कार्यरूप संसार (**आस**) है, ऐसा (**पृच्छत**) पूछो कि (**यतः**) जिससे (**द्यावापृथिवी**) विस्तारयुक्त सूर्य्य और भूमि आदि लोकों को किसने (**निष्टतक्षुः**) भिन्न-भिन्न बनाया है? उत्तर-(**यत्**) जो (**भुवनानि**) प्राणियों के रहने के स्थान लोक-लोकान्तरों को (**धारयन्**) वायु, विद्युत् और सूर्य्यादि से धारण करता हुआ (**अध्यतिष्ठत्**) अधिष्ठाता है, (**तत्**) (**इत्**) उसी (**उ**) प्रसिद्ध ब्रह्म को इस सब का कर्त्ता जानो॥ २०॥

भावार्थः-इस मन्त्र के तीन पादों से प्रश्न और अन्त्य के एक पाद से उत्तर दिया है। वृक्ष शब्द से कार्य और वन शब्द से कारण का ग्रहण है। जैसे सब पदार्थों को पृथिवी, पृथिवी को सूर्य्य, सूर्य को विद्युत् और बिजुली को वायु धारण करता है, वैसे ही इन सब को ईश्वर धारण करता है॥ २०॥

या त इत्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषि:। विश्वकर्मा देवता। आर्षी त्रिष्टुप् छन्द:। धैवत: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

या ते धामा॑नि पर॒माणि॒ याऽव॒मा या म॑ध्य॒मा वि॑श्वकर्मन्नु॒तेमा।

शिक्षा॑ सखि॑भ्यो ह॒विषि॑ स्वधाव: स्व॒यं य॑जस्व त॒न्वं॒ वृधा॒न:॥२१॥

या। ते॒। धामा॑नि। प॒र॒माणि॑। या। अ॒व॒मा। या। म॒ध्य॒मा। वि॒श्व॒क॒र्म॒न्निति॑ विश्वऽकर्मन्। उ॒त। इ॒मा। शिक्ष॑। सखि॑भ्य॒ इति॒ सखि॑ऽभ्य:। ह॒विषि॑। स्व॒धा॒व॒ इति॑ स्वधाऽव:। स्व॒यम्। य॒ज॒स्व॒। त॒न्व॒म्। वृ॒धा॒न:॥२१॥

पदार्थ:-(**या**) यानि। अत्र शेर्लुक् (**ते**) तव परमात्मन: (**धामानि**) दधति पदार्थान् येषु यैर्वा तानि जन्मस्थाननामानि (**परमाणि**) उत्तमानि (**या**) यानि (**अवमा**) कनिष्ठानि (**या**) यानि (**मध्यमा**) मध्यमानि मध्यस्थानि (**विश्वकर्मन्**) समग्रोत्तमकर्मकारिन् (**उत**) (**इमा**) इमानि (**शिक्ष**) शुभगुणानुपदिश। अत्र **द्व्यचोऽतस्तिङ:** [अष्टा०६.३.१३५] इति दीर्घ: (**सखिभ्य:**) मित्रेभ्य: (**हविषि**) दातुमादातुमर्हे व्यवहारे (**स्वधाव:**) बह्वन्नयुक्त (**स्वयम्**) आज्ञापालकेभ्य: (**यजस्व**) संगच्छस्व (**तन्वम्**) शरीरम् (**वृधान:**) वृद्धिं कुर्वन्॥२१॥

अन्वय:-हे स्वधावो विश्वकर्मन् जगदीश्वर! ते सृष्टौ या परमाणि याऽवमा या मध्यमा धामानि सन्ति, तानीमा हविषि स्वयं यजस्व। उताप्यस्माकं तन्वं वृधानोऽस्मभ्यं सखिभ्य: शिक्ष॥२१॥

भावार्थ:-यथेहेश्वरेण निकृष्टमध्यमोत्तमानि वस्तूनि स्थानानि च रचितानि, तथैव सभापत्यादिभिस्त्रिविधानि स्थानानि रचयित्वा वस्तूनि प्राप्य ब्रह्मचर्येण शरीरबलं वर्धयित्वा मित्राणि सुशिक्ष्यैश्वर्ययुक्तैर्भवितव्यम्॥२१॥

पदार्थ:-हे (**स्वधाव:**) बहुत अन्न से युक्त (**विश्वकर्मन्**) सब उत्तम कर्म करने वाले जगदीश्वर! (**ते**) आप की सृष्टि में (**या**) जो (**परमाणि**) उत्तम (**या**) जो (**अवमा**) निकृष्ट (**या**) जो (**मध्यमा**) मध्यकक्षा के (**धामानि**) सब पदार्थों के आधारभूत जन्मस्थान तथा नाम हैं (**इमा**) इन सब को (**हविषि**) देने-लेने योग्य व्यवहार में (**स्वयम्**) आप (**यजस्व**) सङ्गत कीजिये (**उत**) और हमारे (**तन्वम्**) शरीर की (**वृधान:**) उन्नति करते हुए (**सखिभ्य:**) आपकी आज्ञापालक हम मित्रों के लिये (**शिक्ष**) शुभगुणों का उपदेश कीजिये॥२१॥

भावार्थ:-जैसे इस संसार में ईश्वर ने निकृष्ट, मध्यम और उत्तम वस्तु तथा स्थान रचे हैं, वैसे ही सभापति आदि को चाहिये कि तीन प्रकार के स्थान रच, वस्तुओं को प्राप्त हो, ब्रह्मचर्य से शरीर का बल बढ़ा और मित्रों को अच्छी शिक्षा देके ऐश्वर्ययुक्त होवें॥२१॥

विश्वकर्मन्नित्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषिः। विश्वकर्मा देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

विश्वकर्मन् हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व पृथिवीमुत द्याम्।
मुह्यन्त्वन्येऽअभितः सपत्नाऽइहास्माकं मघवा सूरिरस्तु॥२२॥

विश्वकर्मन्निति विश्वऽकर्मन्। हविषा। वावृधानः। ववृधान इति ववृधानः। स्वयम्। यजस्व। पृथिवीम्। उत। द्याम्। मुह्यन्तु। अन्ये। अभितः। सपत्ना इति सऽपत्नाः। इह। अस्माकम्। मघवेति मघऽवा। सूरिः। अस्तु॥२२॥

पदार्थः-(**विश्वकर्मन्**) अखिलोत्तमकर्मकारिन् (**हविषा**) हवनेनोत्तमगुणादानेन (**वावृधानः**) वर्धमानः सन् (**स्वयम्**) (**यजस्व**) संगतं कुरु (**पृथिवीम्**) (**उत**) अपि (**द्याम्**) सूर्यादिलोकम् (**मुह्यन्तु**) (**अन्ये**) (**अभितः**) सर्वतः (**सपत्नाः**) शत्रवः (**इह**) (**अस्माकम्**) (**मघवा**) पूजितधनयुक्तः (**सूरिः**) विद्वान् (**अस्तु**)॥२२॥

अन्वयः-हे विश्वकर्मन्! हविषा वावृधानः सन् यथेश्वरः पृथिवीमुत द्यां संगमयति, तथा त्वं स्वयं यजस्वेह मघवा सूरिरस्तु, यतोऽस्माकमन्ये सपत्ना अभितो मुह्यन्तु॥२२॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये मनुष्या ईश्वरेण यस्मै प्रयोजनाय यद्वस्तु रचितं तत्तथा विज्ञायोपकुर्वन्ति, तेषां दारिद्र्यालस्यादिदोषक्षयाच्छत्रवः प्रलीयन्ते, ते स्वयं च विद्वांसो जायन्ते॥२२॥

पदार्थः-हे (**विश्वकर्मन्**) सम्पूर्ण उत्तम कर्म करनेहारे सभापति! (**हविषा**) उत्तम गुणों के ग्रहण से (**वावृधानः**) उन्नति को प्राप्त हुआ जैसे ईश्वर (**पृथिवीम्**) भूमि (**उत**) और (**द्याम्**) सूर्यादि लोक को सङ्गत करता है, वैसे आप (**स्वयम्**) आप ही (**यजस्व**) सब से समागम कीजिये। (**इह**) इस जगत् में (**मघवा**) प्रशंसित धनवान् पुरुष (**सूरिः**) विद्वान् (**अस्तु**) हो, जिससे (**अस्माकम्**) हमारे (**अन्ये**) और (**सपत्नाः**) शत्रुजन (**अभितः**) सब ओर से (**मुह्यन्तु**) मोह को प्राप्त हों॥२२॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य ईश्वर ने जिस प्रयोजन के लिये जो पदार्थ रचा है, उसको वैसा जान के उपकार लेते हैं, उनकी दरिद्रता और आलस्यादि दोषों का नाश होने से शत्रुओं का प्रलय होता और वे आप भी विद्वान् हो जाते हैं॥२२॥

वाचस्पतिमित्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषिः। विश्वकर्मा देवता। भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

किंभूतो जनो राज्याधिकारे नियोज्य इत्याह॥

कैसा पुरुष राज्य के अधिकार पर नियुक्त करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतये मनोजुवं वाजेऽअद्या हुवेम।
स नो विश्वानि हवनानि जोषद् विश्वशम्भूरवसे साधुकर्मा॥२३॥

वाचः। पतिम्। विश्वकर्माणमिति विश्वऽकर्माणम्। ऊतये। मनोजुवमिति मनःऽजुवम्। वाजे। अद्य। हुवेम। सः। नः। विश्वानि। हवनानि। जोषत्। विश्वशम्भूरिति विश्वऽशम्भूः। अवसे। साधुकर्मेति साधुऽकर्मा॥२३॥

पदार्थः-(**वाचस्पतिम्**) वाचो वेदवाण्याः पालकम् (**विश्वकर्माणम्**) अखिलेषु कर्मसु कुशलम् (**ऊतये**) रक्षणाद्याय (**मनोजुवम्**) मनोवद्वेगवन्तम् (**वाजे**) संग्रामादौ कर्मणि (**अद्य**) अस्मिन् दिने। अत्र **संहितायाम्** [अष्टा०६.३.११४] इति दीर्घः (**हुवेम**) स्वीकुर्याम (**सः**) (**नः**) अस्माकम् (**विश्वानि**) सर्वाणि (**हवनानि**) ग्राह्याणि कर्माणि (**जोषत्**) जुषताम्, अत्र व्यत्ययेन परस्मैपदम्। (**विश्वशम्भूः**) विश्वस्मै शं सुखं भावुकः (**अवसे**) रक्षणाद्याय (**साधुकर्मा**) धर्म्यकर्मानुष्ठाता॥२३॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! वयमूतये यं वाचस्पतिं मनोजुवं विश्वकर्माणं महात्मानं वाजे हुवेम, स विश्वशम्भूः साधुकर्मा नोवसेऽद्य विश्वानि हवनानि जोषज्जुषताम्॥२३॥

भावार्थः-मनुष्यैर्येन ब्रह्मचर्येणाखिला विद्याधीता यो धार्मिकोऽनलसो भूत्वा पक्षपातं विहायोत्तमानि कर्माणि सेवते, पूर्णशरीरात्मबलः स सर्वस्याः प्रजाया रक्षणे सर्वाधिपती राजा विधेयः॥२३॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! हम लोग (**ऊतये**) रक्षा आदि के लिये जिस (**वाचस्पतिम्**) वेदवाणी के रक्षक (**मनोजुवम्**) मन के समान वेगवान् (**विश्वकर्माणम्**) सब कर्मों में कुशल महात्मा पुरुष को (**वाजे**) संग्राम आदि कर्म में (**हुवेम**) बुलावें (**सः**) वह (**विश्वशम्भूः**) सब के लिये सुखप्रापक (**साधुकर्मा**) धर्मयुक्त कर्मों का सेवन करनेहारा विद्वान् (**नः**) हमारी (**अवसे**) रक्षा आदि के लिये (**अद्य**) आज (**विश्वानि**) सब (**हवनानि**) ग्रहण करने योग्य कर्मों को (**जोषत्**) सेवन करे॥२३॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि जिसने ब्रह्मचर्य नियम के साथ सब विद्या पढ़ी हों, जो धर्मात्मा आलस्य और पक्षपात को छोड़ के उत्तम कर्मों का सेवन करता तथा शरीर और आत्मा के बल से पूरा हो, उसको सब प्रजा की रक्षा करने में अधिपति राजा बनावें॥२३॥

विश्वकर्मन्नित्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषिः। विश्वकर्मा देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

मनुष्यैः कीदृशो राजा मन्तव्य इत्याह॥

मनुष्यों को कैसा पुरुष राजा मानना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है॥

विश्वकर्मन् हविषा वर्द्धनेन त्रातारमिन्द्रमकृणोरवध्यम्।
तस्मै विशः समनमन्त पूर्वीरयमुग्रो विहव्यो यथासत्॥२४॥

विश्वकर्मन्निति विश्वऽकर्मन्। हविषा। वर्द्धनेन। त्रातारम्। इन्द्रम्। अकृणोः। अवध्यम्। तस्मै। विशः। सम्। अनमन्त। पूर्वीः। अयम्। उग्रः। विहव्य इति विऽहव्यः। यथा। असत्॥ २४॥

पदार्थः-(**विश्वकर्मन्**) अखिलशुभकर्मसेविन् (**हविषा**) आदातव्येन (**वर्द्धनेन**) (**त्रातारम्**) रक्षकम् (**इन्द्रम्**) परमैश्वर्यवन्तं (**अकृणोः**) कुरु (**अवध्यम्**) हन्तुमयोग्यम् (**तस्मै**) (**विशः**) प्रजाः (**सम्**) एकीभावे (**अनमन्त**) नमन्तु (**पूर्वीः**) पूर्वैर्न्यायाधीशैः प्रापिताः (**अयम्**) (**उग्रः**) हिंसने तीव्रः (**विहव्यः**) विविधैः साधनैरादातुमर्हः (**यथा**) (**असत्**) भवेत्॥ २४॥

अन्वयः-हे विश्वकर्मन् सर्वसभेश! त्वं हविषा वर्द्धनेन यमवध्यं त्रातारमिन्द्रं राजकार्ये सम्मतिप्रदं मन्त्रिणमकृणोस्तस्मै पूर्वीर्विशः समनमन्त यथाऽयमुग्रो विहव्योऽसत् तथा विधेहि॥ २४॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। सर्वसभाधिष्ठात्रा सहिताः सभासदस्तस्मै राज्याधिकारं दद्युर्यः पक्षपाती न स्यात्। पितृवत् प्रजा न पालयेयुस्ते प्रजाभिर्नो मन्तव्या, ये च पुत्रमिव न्यायेन प्रजा पालयेयुस्तदनुकूलास्सततं स्युः॥ २४॥

पदार्थः-हे (**विश्वकर्मन्**) सम्पूर्ण शुभकर्मों के सेवन करनेहारे सब सभाओं के पति राजा! आप (**हविषा**) ग्रहण करने योग्य (**वर्द्धनेन**) वृद्धि से जिस (**अवध्यम्**) मारने के अयोग्य (**त्रातारम्**) रक्षक (**इन्द्रम्**) उत्तम सम्पत्ति वाले पुरुष को राजकार्य में सम्मतिदाता मन्त्री (**अकृणोः**) करो, (**तस्मै**) उसके लिये (**पूर्वीः**) पहिले न्यायाधीशों ने प्राप्त कराई (**विशः**) प्रजाओं को (**समनमन्त**) अच्छे प्रकार नम्र करो, (**यथा**) जैसे (**अयम्**) यह मन्त्री (**उग्रः**) मारने में तीक्ष्ण (**विहव्यः**) विविध प्रकार के साधनों से स्वीकार करने योग्य (**असत्**) होवे, वैसा कीजिये॥ २४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। सब सभाओं के अधिष्ठाता के सहित सब सभासद् उस पुरुष को राज्य का अधिकार देवें कि जो पक्षपाती न हो। जो पिता के समान प्रजाओं की रक्षा न करें, उनको प्रजा लोग भी कभी न मानें और जो पुत्र के तुल्य प्रजा की न्याय से रक्षा करें, उनके अनुकूल प्रजा निरन्तर हों॥ २४॥

चक्षुष इत्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषिः। विश्वकर्मा देवता। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

चक्षुषः पिता मनसा हि धीरो घृतमेनेऽअजनन्नम्नमाने।

यदेदन्ताऽअददृहन्त पूर्वऽआदिद् द्यावापृथिवीऽअप्रथेताम्॥ २५॥

चक्षुषः। पिता। मनसा। हि। धीरः। घृतम्। एनऽइत्येने। अजनत्। नम्नमानेऽइति नम्नमाने। यदा। इत्। अन्ताः। अददृहन्त। पूर्वे। आत्। इत्। द्यावापृथिवी। अप्रथेताम्॥ २५॥

पदार्थः-(**चक्षुषः**) न्यायदर्शकस्य (**पिता**) पालकः (**मनसा**) योगाभ्यासेन शान्तान्तःकरणेन (**हि**) खलु (**धीरः**) धैर्य्यवान् (**घृतम्**) आज्यम् (**एने**) राजप्रजादले (**अजनत्**) प्रकटयेत् (**नम्नमाने**) ये नम्न इवाचरतस्ते। अत्राचारे क्विप् व्यत्ययेनात्मनेपदम् (**यदा**) (**इत्**) एव (**अन्ताः**) अन्तावयवाः (**अददृहन्त**) वर्द्धेरन्। अत्र दृंह धातोर्लटि झादेशे कृते शपः श्लुस्ततो द्वित्वम् (पूर्वे) प्रथमतो वर्त्तमाने (**आत्**) अनन्तरम् (**इत्**) (**द्यावापृथिवी**) प्रकाशभूमी इव संगते (**अप्रथेताम्**) प्रख्याते भवेताम्॥ २५॥

अन्वयः-हे प्रजाजनाः! भवन्तो यश्चक्षुषः पिता मनसा हि धीरो घृतमजनत्, तमधिकृत्य एने नम्नमाने पूर्वे द्यावापृथिवी अप्रथेतामिव यदेदन्ता इवाददृहन्त, तथाऽऽदित् स्थिरराज्या भवेयुः॥ २५॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यदा मनुष्या राजप्रजाव्यवहार एकसम्मतयो भूत्वा सदैव प्रयतेरंस्तदा सूर्यपृथिवीवत् स्थिरसुखा भवेयुः॥ २५॥

पदार्थः-हे प्रजा के पुरुषो! आप लोग जो (**चक्षुषः**) न्याय दिखाने वाले उपदेशक का (**पिता**) रक्षक (**मनसा**) योगाभ्यास से शान्त अन्तःकरण (**हि**) ही से (**धीरः**) धीरजवान् (**घृतम्**) घी को (**अजनत्**) प्रकट करता है, उसको अधिकार देके (**एने**) राजा और प्रजा के दल (**नम्नमाने**) नम्न के तुल्य आचरण करते हुए (**पूर्वे**) पहिले से वर्त्तमान (**द्यावापृथिवी**) प्रकाश और पृथिवी के समान मिले हुए जैसे (**अप्रथेताम्**) प्रख्यात होवे, वैसे (**इत्**) ही (**यदा**) जब (**अन्ताः**) अन्त्य के अवयवों के तुल्य (**अददृहन्त**) वृद्धि को प्राप्त हों, तब (**आत्**) उसके पश्चात् (**इत्**) ही स्थिरराज्य वाले होओ॥ २५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जब मनुष्य राज और प्रजा के व्यवहार में एकसम्मति होकर सदा प्रयत्न करें, तभी सूर्य और पृथिवी के तुल्य स्थिर सुख वाले होवें॥ २५॥

विश्वकर्मेत्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषिः। विश्वकर्मा देवता। भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ परमेश्वरः कीदृशोऽस्तीत्युपदिश्यते॥

अब परमेश्वर कैसा है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

विश्वकर्म्मा विमनाऽआद्विहाया धाता विधाता परमोत सन्दृक्।
तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्रा सप्तऽऋषीन् परऽएकमाहुः॥ २६॥

विश्वकर्मेति विश्वऽकर्मा। विमना इति विऽमनाः। आत्। विहाया इति विऽहायाः। धाता। विधातेति विऽधाता। परमा। उत। सन्दृगिति सम्ऽदृक्। तेषाम्। इष्टानि। सम्। इषा। मदन्ति। यत्र। सप्तऋषीनिति सप्तऽऋषीन्। परः। एकम्। आहुः॥ २६॥

पदार्थः-(**विश्वकर्मा**) विश्वं सर्वं जगत् कर्म क्रियमाणं यस्य सः (**विमनाः**) विविधं मनो विज्ञानं यस्य सः (**आत्**) आनन्तर्ये (**विहायाः**) विविधेषु पदार्थेषु व्याप्तः। अत्रोहाङ् गतावित्यस्मादसुन् णित्कार्यं च

(धाता) धर्त्ता पोषको वा **(विधाता)** निर्माता **(परमा)** परमाणि श्रेष्ठानि **(उत)** अपि **(सन्दृक्)** या सम्यक् पश्यति **(तेषाम्)** **(इष्टानि)** सुखसाधकानि कर्माणि **(सम्)** **(इषा)** इच्छया **(मदन्ति)** हर्षन्ति **(यत्र)** अत्र **ऋचि तुनुघ०** [अष्टा०६.३.१३३] इति दीर्घः **(सप्तऋषीन्)** सप्तप्राणादीन्। प्राणदयः पञ्च सूत्रात्मा धनञ्जयश्चेति **(परः)** सर्वोत्तमः **(एकम्)** अद्वितीयम् **(आहुः)** कथयन्ति॥२६॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! विश्वकर्मा यो विमना विहाया धाता विधाता संदृक् परोऽस्ति, यमेकमाहुराद् यत्र सप्तऋषीन् प्राप्येषा जीवाः संमदन्त्युत यस्तेषां परमेष्टानि साध्नोति तं परमेश्वरं यूयमुपाध्वम्॥२६॥

भावार्थः-मनुष्यैः सर्वस्य जगतः स्रष्टा धर्त्ता पालको नाशकोऽद्वितीयः परमेश्वर एवेष्टसाधनायोपासनीयः॥२६॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! **(विश्वकर्मा)** जिसका समस्त जगत् का बनाना क्रियमाण काम और जो **(विमनाः)** अनेक प्रकार के विज्ञान से युक्त **(विहायाः)** विविध प्रकार के पदार्थों में व्याप्त **(धाता)** सब का धारण-पोषण करने **(विधाता)** और रचने वाला **(सन्दृक्)** अच्छे प्रकार सब को देखता **(परः)** और सब से उत्तम है तथा जिसको **(एकम्)** अद्वितीय **(आहुः)** कहते अर्थात् जिसमें दूसरा कहने में नहीं आता **(आत्)** और **(यत्र)** जिसमें **(सप्तऋषीन्)** पांच प्राण, सूत्रात्मा और धनञ्जय इन सात को प्राप्त होकर **(इषा)** इच्छा से जीव **(सं, मदन्ति)** अच्छे प्रकार आनन्द को प्राप्त होते **(उत)** और जो **(तेषाम्)** उन जीवों के **(परमा)** उत्तम **(इष्टानि)** सुखसिद्ध करने वाले कामों को सिद्ध करता है, उस परमेश्वर की तुम लोग उपासना करो॥२६॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि सब जगत् का बनाने, धारण, पालन और नाश करनेहारा एक अर्थात् जिसका दूसरा कोई सहायक नहीं हो सकता, उसी परमेश्वर की उपासना अपने चाहे हुए काम के सिद्ध करने के लिये करना चाहिये॥२६॥

यो न इत्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मर्षिः। विश्वकर्मा देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यो नः॑ पि॒ता ज॑नि॒ता यो वि॑धा॒ता धामा॑नि॒ वेद॒ भुव॑नानि॒ विश्वा॑।

यो दे॒वानां॑ नाम॒धाऽएक॑ऽए॒व तꣳ स॑म्प्र॒श्नं भुव॑ना यन्त्य॒न्या॥२७॥

यः। नः॒। पि॒ता। ज॒नि॒ता। यः। वि॒धा॒तेति॑ वि॒ऽधा॒ता। धामा॑नि। वेद॑। भुव॑नानि। विश्वा॑। यः। दे॒वाना॑म्। ना॒म॒धा इति॑ नाम॒ऽधाः। एक॑ः। ए॒व। तम्। स॒म्प्र॒श्नमिति॑ सम्ऽप्र॒श्नम्। भुव॑ना। य॒न्ति॒। अ॒न्या॥२७॥

पदार्थः-**(यः)** **(नः)** अस्माकम् **(पिता)** पालकः **(जनिता)** सर्वेषां पदार्थानां प्रादुर्भावयिता **(यः)** **(विधाता)** कर्मानुसारेण फलप्रदाता जगन्निर्माता **(धामानि)** जन्मस्थाननामानि **(वेद)** जानाति **(भुवनानि)** सर्वपदार्थाधिकरणानि **(विश्वा)** सर्वाणि **(यः)** **(देवानाम्)** विदुषां पृथिव्यादीनां वा **(नामधाः)** य स्वविद्यया

नामानि दधाति **(एक:)** अद्वितीयोऽसहाय: **(एव)** **(तम्)** **(सम्प्रश्नम्)** सम्यक् पृच्छति यस्मिँस्तम् **(भुवना)** लोकस्थपदार्थान् **(यन्ति)** प्राप्नुवन्ति गच्छन्ति वा **(अन्या)** अन्यानि भुवनस्थानि॥२७॥

अन्वय:-हे मनुष्या:! यो न: पिता जनिता यो विधाता विश्वा भुवनानि धामानि वेद। यो देवानां नामधा एक एवास्ति, यमन्या भुवना यन्ति, सम्प्रश्नं तं यूयं जानीत॥२७॥

भावार्थ:-य: सर्वस्य विश्वस्य पितृवत् पालक: सर्वज्ञोऽद्वितीय: परमेश्वरो वर्त्तते, तस्य तत्सृष्टेश्च विज्ञानेनैव सर्वे मनुष्या: परस्परं मिलित्वा प्रश्नोत्तराणि कुर्वन्तु॥२७॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! **(य:)** जो **(न:)** हमारा **(पिता)** पालन और **(जनिता)** सब पदार्थों का उत्पादन करनेहारा तथा **(य:)** जो **(विधाता)** कर्मों के अनुसार फल देने तथा जगत् का निर्माण करने वाला **(विश्वा)** समस्त **(भुवनानि)** लोकों और **(धामानि)** जन्म, स्थान वा नाम को **(वेद)** जानता **(य:)** जो **(देवानाम्)** विद्वानों वा पृथिवी आदि पदार्थों का **(नामधा:)** अपनी विद्या से नाम धरने वाला **(एक:)** एक अर्थात् असहाय **(एव)** ही है, जिसको **(अन्या)** और **(भुवना)** लोकस्थ पदार्थ **(यन्ति)** प्राप्त होते जाते हैं, **(सम्प्रश्नम्)** जिसके निमित्त अच्छे प्रकार पूछना हो, **(तम्)** उसको तुम लोग जानो॥२७॥

भावार्थ:-जो पिता के तुल्य समस्त विश्व का पालने और सब को जाननेहारा एक परमेश्वर है, उसके और उसकी सृष्टि के विज्ञान से ही सब मनुष्य परस्पर मिल के प्रश्न और उत्तर करें॥२७॥

तऽआयजन्त इत्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषि:। विश्वकर्मा देवता। भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्द:। धैवत: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

तऽआय॑जन्त॒ द्रवि॑ण॒ꣳ सम॑स्मा॒ऽऋष॑य॒: पूर्वे॑ जरि॒तारो॒ न भू॒ना।

अ॒सूर्त्ते॒ सूर्त्ते॒ रज॑सि निष॒त्ते ये भू॒तानि॑ स॒मकृ॑ण्वन्नि॒मानि॑॥२८॥

ते। आ। अ॒य॒ज॒न्त॒। द्रवि॑णम्। सम्। अ॒स्मै॒। ऋष॑य:। पूर्वे॑। ज॒रि॒तार॑:। न। भू॒ना। अ॒सूर्त्ते॑। सूर्त्ते॑। रज॑सि। नि॒ष॒त्ते। नि॒स॒त्त इति॑ निऽस॒त्ते। ये। भू॒तानि॑। स॒मकृ॑ण्व॒न्निति॑ स॒म्ऽअकृ॑ण्वन्। इ॒मानि॑॥२८॥

पदार्थ:-**(ते)** **(आ)** **(अयजन्त)** संगच्छेरन् **(द्रविणम्)** श्रियम् **(सम्)** **(अस्मै)** अस्येश्वरस्याज्ञापालनाय **(ऋषय:)** वेदवेत्तार: **(पूर्वे)** पूर्णविद्यया सर्वस्य पोषका: **(जरितार:)** स्तावका: **(न)** इव **(भूना)** भूमना। अत्र पृषोदरादित्वान्मकारलोप: **(असूर्त्ते)** अप्राप्ते परोक्षे। अत्र सृधातो: क्तान्तं निपातनम्। **नसत्तनिषत्त०** [अष्टा०८.२.६१] इत्यनेन निपात्यते॥ **(सूर्त्ते)** प्राप्ते प्रत्यक्षे **(रजसि)** लोके **(निषत्ते)** स्थिते स्थापिते वा **(ये)** **(भूतानि)** **(समकृण्वन्)** सम्यक् शिक्षितान् कुर्यु: **(इमानि)** प्रत्यक्षविषयाणि॥२८॥

अन्वयः-ये पूर्वे जरितारो न ऋषयो भूनाऽसूर्त्ते सूर्त्ते निषत्ते रजसीमानि भूतानि साक्षात् समकृण्वन्, तेऽस्मै द्रविणं समायजन्त॥ २८॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। यथा विद्वांसोऽत्र जगति परेशाज्ञापालनाय सृष्ट्यनुक्रमेण तत्त्वं जानन्ति, तथैवान्य आचरन्तु। यथा धार्मिका धनमुपार्जन्ति, तथैव सर्व उपार्जन्तु॥ २८॥

पदार्थः-**(ये)** जो **(पूर्वे)** पूर्ण विद्या से सब की पुष्टि **(जरितारः)** और स्तुति करने वाले के **(न)** समान **(ऋषयः)** वेदार्थ के जानने वाले **(भूना)** बहुत से **(असूर्त्ते)** परोक्ष अर्थात् अप्राप्त हुए वा **(सूर्त्ते)** प्रत्यक्ष अर्थात् पाये हुए **(निषत्ते)** स्थित वा स्थापित किये हुए **(रजसि)** लोक में **(इमानि)** इन प्रत्यक्ष **(भूतानि)** प्राणियों को **(समकृण्वन्)** अच्छे प्रकार शिक्षित करते हैं, **(ते)** वे **(अस्मै)** इस ईश्वर की आज्ञा पालने के लिये **(द्रविणम्)** धन को **(सम्, आ, अयजन्त)** अच्छे प्रकार संगत करें॥ २८॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे विद्वान् लोग इस जगत् में परमात्मा की आज्ञा पालने के लिये सृष्टिक्रम से तत्त्वों को जानते हैं, वैसे ही अन्य लोग आचरण करें। जैसे धार्मिक जन धर्म के आचरण से धन को इकट्ठा करते हैं, वैसे ही सब लोग उपार्जन करें॥ २८॥

परो दिवेत्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषिः। विश्वकर्मा देवता। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प॒रो दि॒वा प॒रऽए॒ना पृ॑थि॒व्या प॒रो दे॒वेभि॒रसु॑रै॒र्यदस्ति॑।

क॒ꣳस्वि॒द् गर्भं॑ प्रथ॒मं द॑ध्र॒ऽआपो॒ यत्र॑ दे॒वाः स॒मप॑श्यन्त॒ पूर्वे॑॥ २९॥

प॒रः। दि॒वा। प॒रः। ए॒ना। पृ॒थि॒व्या। प॒रः। दे॒वेभि॑ः। असु॑रैः। यत्। अस्ति॑। कम्। स्वि॒त्। गर्भ॑म्। प्र॒थ॒मम्। द॒ध्रे॒। आप॑ः। यत्र॑। दे॒वाः। स॒मप॑श्य॒न्तेति॑ स॒म्ऽअप॑श्यन्त। पूर्वे॑॥ २९॥

पदार्थः-**(परः)** प्रकृष्टः **(दिवा)** सूर्यादिना **(परः)** **(एना)** एनया **(पृथिव्या)** **(परः)** **(देवेभिः)** विद्वद्भिर्दिव्याभिः प्रकाशयुक्ताभिः प्रजाभिर्वा **(असुरैः)** अविद्वद्भिः, अन्तकरूपाभिः प्रजाभिर्वा **(यत्)** **(अस्ति)** **(कम्)** **(स्वित्)** **(गर्भम्)** ग्रहीतुं योग्यं वस्तु **(प्रथमम्)** विस्तृतम् **(दध्रे)** दधिरे **(आपः)** प्राणाः **(यत्र)** **(देवाः)** विद्वांसो जनाः **(समपश्यन्त)** सम्यक् पश्यन्ति **(पूर्वे)** अधीतपूर्णविद्याः॥ २९॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! य एना दिवा परः पृथिव्या परो देवेभिरसुरैः परोऽस्ति, यत्रापः कं स्वित् प्रथमं गर्भं दध्रे, यत्पूर्वे देवाः समपश्यन्त, तद्ब्रह्मेति यूयं विजानीत॥ २९॥

भावार्थः-मनुष्यैर्यत् सर्वेभ्यः सूक्ष्मं महत् परं सर्वधर्तृविद्वद्विषयमनादिचेतनमस्ति, तदेव ब्रह्मोपासनीयं नेतरत्॥ २९॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो **(एना)** इस **(दिवा)** सूर्य्य आदि लोकों से **(परः)** परे अर्थात् अत्युत्तम **(पृथिव्या)** पृथिवी आदि लोकों से **(परः)** परे **(देवेभिः)** विद्वान् वा दिव्य प्रकाशित प्रजाओं और **(असुरैः)** अविद्वान् तथा कालरूप प्रजाओं से **(परः)** परे **(अस्ति)** है, **(यत्र)** जिसमें **(आपः)** प्राण **(कम्, स्वित्)** किसी **(प्रथमम्)** विस्तृत **(गर्भम्)** ग्रहण करने योग्य पदार्थ को **(दध्रे)** धारण करते हुए वा **(यत्)** जिसको **(पूर्वे)** पूर्णविद्या के अध्ययन करने वाले **(देवाः)** विद्वान् लोग **(समपश्यन्त)** अच्छे प्रकार ज्ञानचक्षु से देखते हैं, वह ब्रह्म है, यह तुम लोग जानो॥२९॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि जो सब से सूक्ष्म, बड़ा, अतिश्रेष्ठ, सब का धारणकर्त्ता, विद्वानों का विषय अर्थात् समस्त विद्याओं का समाधानरूप अनादि और चेतनमात्र है, वही ब्रह्म उपासना करने के योग्य है, अन्य नहीं॥२९॥

तमिदित्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मर्षिः। विश्वकर्मा देवता। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

तमिद् गर्भं प्रथमं दध्रऽआपो यत्र देवाः समगच्छन्त विश्वे।
अजस्य नाभावध्येकमर्पितं यस्मिन् विश्वानि भुवनानि तस्थुः॥३०॥

तम्। इत्। गर्भम्। प्रथमम्। दध्रे। आपः। यत्र। देवाः। समगच्छन्तेति सम्ऽअगच्छन्त। विश्वे। अजस्य। नाभौ। अधि। एकम्। अर्पितम्। यस्मिन्। विश्वानि। भुवनानि। तस्थुः॥३०॥

पदार्थः-**(तम्)** **(इत्)** एव **(गर्भम्)** सर्वलोकानामुत्पत्तिस्थानं प्रकृत्याख्यम् **(प्रथमम्)** विस्तृतमनादि **(दध्रे)** दधिरे **(आपः)** कारणाख्याः प्राणा जीवा वा **(यत्र)** यस्मिन् ब्रह्मणि **(देवाः)** दिव्यात्मान्तःकरणा योगविदः **(समगच्छन्त)** सम्यक् प्राप्नुवन्ति **(विश्वे)** सर्वे **(अजस्य)** अनुत्पन्नस्यानादेर्जीवस्याव्यक्तस्य च **(नाभौ)** मध्ये **(अधि)** अधिष्ठातृत्वेन सर्वोपरि विराजमानम् **(एकम्)** स्वयं सिद्धम् **(अर्पितम्)** प्रार्पितं स्थितम् **(यस्मिन्)** **(विश्वानि)** अखिलानि **(भुवनानि)** लोकजातान्यधिकरणानि **(तस्थुः)** तिष्ठन्ति॥३०॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यत्रापः प्रथमं गर्भं दध्रे, यस्मिन् विश्वे देवाः समगच्छन्त, यदजस्य नाभावध्येकमर्पितं यस्मिन् विश्वानि भुवनानि तस्थुस्तमिदेव परमात्मानं यूयं बुध्यध्वम्॥३०॥

भावार्थः-मनुष्यैर्यो जगत् आधारो योगिभिर्गम्योऽन्तर्यामी स्वयं स्वाधारः सर्वत्र व्याप्तोऽस्ति, स एव सर्वैः सेवनीयः॥३०॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! **(यत्र)** जिस ब्रह्म में **(आपः)** कारणमात्र प्राण वा जीव **(प्रथमम्)** विस्तारयुक्त अनादि **(गर्भम्)** सब लोकों की उत्पत्ति का स्थान प्रकृति को **(दध्रे)** धारण करते हुए वा जिसमें **(विश्वे)** सब **(देवाः)** दिव्य आत्मा और अन्तःकरणयुक्त योगीजन **(समगच्छन्त)** प्राप्त होते हैं, वा जो **(अजस्य)** अनुत्पन्न

अनादि जीव वा अव्यक्त कारणसमूह के **(नाभौ)** मध्य में **(अधि)** अधिष्ठातृपन से सब के ऊपर विराजमान **(एकम्)** आप ही सिद्ध **(अर्पितम्)** स्थित **(यस्मिन्)** जिस में **(विश्वानि)** समस्त **(भुवनानि)** लोकोत्पन्न द्रव्य **(तस्थुः)** स्थिर होते हैं, तुम लोग **(तमित्)** उसी को परमात्मा जानो॥३०॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि जो जगत् का आधार, योगियों को प्राप्त होने योग्य, अन्तर्यामी, आप अपना आधार, सब में व्याप्त है, उसी का सेवन सब लोग करें॥३०॥

न तं विदाथेत्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मर्षिः। विश्वकर्मा देवता। भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

न तं वि॑दाथ॒ यऽइ॒मा ज॒जाना॒न्यद्यु॒ष्माक॒मन्त॑रं बभूव।
नी॒हा॒रेण॒ प्रावृ॑ता॒ जल्प्या॑ चासु॒तृप॑ऽउक्थ॒शास॑श्चरन्ति॥३१॥

न। तम्। वि॒दा॒थ॒। यः। इ॒मा। ज॒जान॑। अ॒न्यत्। यु॒ष्माक॑म्। अन्त॑रम्। ब॒भू॒व॒। नी॒हा॒रेण॑। प्रावृ॑ताः। जल्प्या॑। च॒। अ॒सु॒तृप॒ इत्य॑सु॒ऽतृप॑ः। उ॒क्थ॒शास॑ः। उ॒क्थ॒श॒स॒ इत्यु॑क्थ॒ऽश॒स॑ः। च॒र॒न्ति॒॥३१॥

पदार्थः-**(न)** निषेधे **(तम्)** परमात्मानम् **(विदाथ)** जानीथ। लेट्प्रयोगः **(यः)** **(इमा)** इमानि भूतानि **(जजान)** जनयति **(अन्यत्)** कार्यकारणजीवेभ्यो भिन्नं ब्रह्म **(युष्माकम्)** अधार्मिकाणामविदुषाम् **(अन्तरम्)** मध्ये स्थितमपि दूरस्थमिव **(बभूव)** भवति **(नीहारेण)** धूमाकारेण कुहकेनेवाज्ञानेन **(प्रावृताः)** प्रकृष्टतयाऽऽवृता आच्छन्नाः सन्तः **(जल्प्या)** जल्पेषु सत्यासत्यवादानुवादेषु भवाः। अत्र **सुपां सुलुग्०** [अष्टा०७.१.३९] इति विभक्तेराकारादेशः **(च)** **(असुतृपः)** येऽसुषु प्राणेषु तृप्यन्ति ते **(उक्थशासः)** ये योगाभ्यासं विहाय उक्थानि वचनानि शंसन्ति तेऽर्थात् शब्दार्थयोः खण्डने रताः **(चरन्ति)** व्यवहरन्ति॥३१॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथाऽब्रह्मविदो जना नीहारेण चाज्ञाने प्रावृता जल्प्या असुतृपश्चोक्थशासश्चरन्ति, तथाभूतां यूयं तं न विदाथ य इमा जजान। यद् ब्रह्म युष्माकं सकाशादन्यदन्तरं बभूव, तदतिसूक्ष्ममात्मन आत्मभूतं न विदाथ॥३१॥

भावार्थः-ये ब्रह्मचर्य्यादिव्रताचारविद्यायोगाभ्यासधर्मानुष्ठानसत्सङ्गपुरुषार्थरहितास्तेऽज्ञानान्धकारावृताः सन्तो ब्रह्म ज्ञातुं न शक्नुवन्ति। यद् ब्रह्म जीवादिभ्यो भिन्नमन्तर्यामिसकलनियन्तृ सर्वत्र व्याप्तमस्ति, तज्ज्ञातुं पवित्रात्मान एवार्हन्ति नेतरे॥३१॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे ब्रह्म के न जानने वाले पुरुष **(नीहारेण)** धूम के आकार कुहर के समान अज्ञानरूप अन्धकार से **(प्रावृताः)** अच्छे प्रकार ढके हुए **(जल्प्या)** थोड़े सत्य-असत्य वादानुवाद में स्थिर

रहने वाले **(असुतृपः)** प्राणपोषक **(च)** और **(उक्थशासः)** योगाभ्यास को छोड़ शब्द-अर्थ के सम्बन्ध के खण्डन-मण्डन में रमण करते हुए **(चरन्ति)** विचरते हैं, वैसे तुम लोग **(तम्)** उस परमात्मा को **(न)** नहीं **(विदाथ)** जानते हो **(यः)** जो **(इमा)** इन प्रजाओं को **(जजान)** उत्पन्न करता और जो ब्रह्म **(युष्माकम्)** तुम अधर्मी अज्ञानियों के सकाश से **(अन्यत्)** अर्थात् कार्य्यकारणरूप जगत् और जीवों से भिन्न **(अन्तरम्)** तथा सबों में स्थित भी दूरस्थ **(बभूव)** होता है, उस अतिसूक्ष्म आत्मा अर्थात् परमात्मा को नहीं जानते हो॥३१॥

भावार्थः-जो पुरुष ब्रह्मचर्य्य आदि व्रत, आचार, विद्या, योगाभ्यास, धर्म के अनुष्ठान, सत्संग और पुरुषार्थ से रहित हैं, वे अज्ञानरूप अन्धकार में दबे हुए, ब्रह्म को नहीं जान सकते। जो ब्रह्म जीवों से पृथक्, अन्तर्यामी, सब का नियन्ता और सर्वत्र व्याप्त है, उसके जानने को जिनका आत्मा पवित्र है, वे ही योग्य होते हैं, अन्य नहीं॥३१॥

विश्वकर्मेत्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मर्षिः। विश्वकर्मा देवता। स्वराडार्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

विश्वकर्मा ह्यजनिष्ट देवऽआदिद् गन्धर्वोऽअभवद् द्वितीयः।

तृतीयः पिता जनितौषधीनामपां गर्भं व्यदधात् पुरुत्रा॥३२॥

विश्वऽकर्मा। हि। अजनिष्ट। देवः। आत्। इत्। गन्धर्वः। अभवत्। द्वितीयः। तृतीयः। पिता। जनिता। ओषधीनाम्। अपाम्। गर्भम्। वि। अदधात्। पुरुत्रेति पुरुऽत्रा॥३२॥

पदार्थः-**(विश्वकर्मा)** विश्वानि सर्वाणि शुभानि कर्माणि यस्य सः **(हि)** खलु **(अजनिष्ट)** जनितवान् **(देवः)** दिव्यस्वरूपः **(आत्)** **(इत्)** **(गन्धर्वः)** गां पृथिवीं धरति स सूर्यः सूत्रात्मा वायुर्वा **(अभवत्)** भवति **(द्वितीयः)** द्वयोः संख्यापूरको धनञ्जयः **(तृतीयः)** त्रयाणां संख्यापूरक प्राणादिस्वरूपः **(पिता)** पालकः **(जनिता)** प्रसिद्धिकर्त्ताऽपां धर्त्ता पर्जन्यः **(ओषधीनाम्)** यवादीनाम् **(अपाम्)** जलानां प्राणानां वा **(गर्भम्)** धारणम् **(वि)** **(अदधात्)** दधाति **(पुरुत्रा)** यः पुरून् बहून् त्रायते सः॥३२॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! अत्र जगति विश्वकर्मा देवो वायुरादिम इदभवदादनन्तरं गन्धर्वोऽजनिष्टौषधीनामपां पिता हि द्वितीयो यो गर्भं व्यदधात्, स पुरुत्रा जनिता पर्जन्यः तृतीयोऽभवदिति भवन्तो विदन्तु॥३२॥

भावार्थः-सर्वैर्मनुष्यैरिह सकलकर्मसेवका जीवाः प्रथमा विद्युदग्निसूर्यवायवः पृथिव्यादिधारका द्वितीयास्तृतीयाः पर्जन्यादयस्तेषां जीवा अजा अन्ये सर्वे जातास्तेऽपि कारणरूपेण नित्याश्चेति वेद्यम्॥३२॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! इस जगत् में **(विश्वकर्मा)** जिस के समस्त शुभ काम हैं, वह **(देवः)** दिव्यस्वरूप वायु प्रथम **(इत्)** ही **(अभवत्)** होता है, **(आत्)** इसके अन्तर **(गन्धर्वः)** जो पृथिवी को धारण करता है, वह सूर्य वा सूत्रात्मा वायु **(अजनिष्ट)** उत्पन्न और **(ओषधीनाम्)** यव आदि ओषधियों **(अपाम्)** जलों और प्राणों का **(पिता)** पालन करनेहारा **(हि)** ही **(द्वितीयः)** दूसरा अर्थात् धनञ्जय तथा जो प्राणों के **(गर्भम्)** गर्भ अर्थात् धारण को **(व्यदधात्)** विधान करता है, वह **(पुरुत्रा)** बहुतों का रक्षक **(जनिता)** जलों का धारण करनेहारा मेघ **(तृतीयः)** तीसरा उत्पन्न होता है, इस विषय को आप लोग जानो॥३२॥

भावार्थः-सब मनुष्यों को योग्य है कि इस संसार में सब कामों के सेवन करनेहारे जीव पहिले, बिजुली, अग्नि, वायु और सूर्य पृथिवी आदि लोकों के धारण करनेहारे हैं, वे दूसरे और मेघ आदि तीसरे हैं, उनमें पहिले जीव अज अर्थात् उत्पन्न नहीं होते और दूसरे, तीसरे उत्पन्न हुए हैं, परन्तु वे भी कारणरूप से नित्य हैं, ऐसा जानें॥३२॥

आशुः शिशान इत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः। इन्द्रो देवता। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ सेनापतिकृत्यमुपदिश्यते॥

अब सेनापति के कृत्य का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम्।
संक्रन्दनोऽनिमिषऽएकवीरः शतꣳ सेनाऽअजयत् साकमिन्द्रः॥ ३३॥

आशुः। शिशानः। वृषभः। न। भीमः। घनाघनः। क्षोभणः। चर्षणीनाम्। संक्रन्दन इति सम्ऽक्रन्दनः। अनिमिष इत्यनिऽमिषः। एकवीर इत्येकऽवीरः। शतम्। सेनाः। अजयत्। साकम्। इन्द्रः॥३३॥

पदार्थः-**(आशुः)** शीघ्रकारी **(शिशानः)** तनूकर्त्ता **(वृषभः)** बलीवर्दः **(न)** इव **(भीमः)** भयंकरः **(घनाघनः)** अतिशयेन शत्रून् घातुकः। हन्तेर्घत्वं चेति वार्त्तिकेनाचि प्रत्यये घत्वमभ्यासस्यागागमश्च **(क्षोभणः)** क्षोभकर्त्ता संचालयिता **(चर्षणीनाम्)** मनुष्याणां तत्सम्बन्धिसेनानां वा। **चर्षणय इति मनुष्यनामसु पठितम्॥** (निघं०२.३) **(संक्रन्दनः)** सम्यक् शत्रूणां रोदयिता **(अनिमिषः)** अहर्निशं प्रयतमानः **(एकवीरः)** एकश्चासौ वीरश्च **(शतम्)** असंख्याः **(सेनाः)** सिन्वन्ति बध्नन्ति शत्रून् याभिस्ताः **(अजयत्)** जयति **(साकम्)** सार्द्धम् **(इन्द्रः)** शत्रूणां विदारयिता सेनेशः॥३३॥

अन्वयः-हे विद्वांसो मनुष्या! यूयं यश्चर्षणीनामाशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणः संक्रन्दनोऽनिमिष एकवीर इन्द्रोऽस्माभिः साकं शतं सेना अजयत्, तमेव सेनाधीशं कुरुत॥३३॥

भावार्थः-मनुष्यैर्या धनुर्वेदविदृगादिविन्निर्भयस्सर्वविद्यो बलिष्ठो धार्म्मिकः स्वराज्यानुरागी जितेन्द्रियोऽरीणां विजेता स्वसेनायाः शिक्षणे योधने च कुशलो वीरो भवेत्, स सेनाधीशाधिकारे स्थापनीयः॥३३॥

पदार्थः-हे विद्वान् मनुष्यो! तुम लोग जो **(चर्षणीनाम्)** सब मनुष्यों वा उन की सम्बन्धिनी सेनाओं में **(आशुः)** शीघ्रकारी **(शिशानः)** पदार्थों को सूक्ष्म करने वाला **(वृषभः)** बलवान् बैल के **(न)** समान **(भीमः)** भयंकर **(घनाघनः)** अत्यन्त आवश्यकता के साथ शत्रुओं का नाश करने **(क्षोभणः)** उन को कंपाने **(संक्रन्दनः)** अच्छे प्रकार शत्रुओं को रुलाने और **(अनिमिषः)** रात्रि-दिन प्रयत्न करनेहारा **(एकवीरः)** अकेला वीर **(इन्द्रः)** शत्रुओं को विदीर्ण करने वाला सेना का अधिपति पुरुष हम लोगों के **(साकम्)** साथ **(शतम्)** अनेकों **(सेनाः)** उन सेनाओं को जिनसे शत्रुओं को बांधते हैं, **(अजयत्)** जीतता है, उसी को सेनाधीश करो॥३३॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि जो धनुर्वेद और ऋग्वेदादि शास्त्रों का जानने वाला, निर्भय, सब विद्याओं में कुशल, अति बलवान्, धार्मिक, अपने स्वामी के राज्य में प्रीति करने वाला, जितेन्द्रिय, शत्रुओं का जीतनेहारा तथा अपनी सेना को सिखाने और युद्ध कराने में कुशल वीर पुरुष हो, उसको सेनापति के अधिकार पर नियुक्त करें॥३३॥

संक्रन्दनेनेत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः। इन्द्रो देवता। स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

संक्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुना युत्कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना।
तदिन्द्रेण जयत तत्सहध्वं युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा॥३४॥

संक्रन्दनेनेति सम्ऽक्रन्दनेन। अनिमिषेणेत्यनिऽमिषेण। जिष्णुना। युत्कारेणेति युत्ऽकारेण। दुश्च्यवनेनेति दुःऽच्यवनेन। धृष्णुना। तत्। इन्द्रेण। जयत। तत्। सहध्वम्। युधः। नरः। इषुहस्तेनेतीषुऽहस्तेन। वृष्णा॥३४॥

पदार्थः-**(संक्रन्दनेन)** सम्यग् दुष्टानां रोदयित्रा **(अनिमिषेण)** निरन्तरं प्रयतमानेन **(जिष्णुना)** जयशीलेन **(युत्कारेण)** यो व्यूहैर्युतो मिश्रितानमिश्रितान् भृत्यान् करोति तेन **(दुश्च्यवनेन)** यः शत्रुभिर्दुःखेन कृच्छ्रेण च्यवते तेन **(धृष्णुना)** दृढोत्साहेन **(तत्)** तेन पूर्वोक्तेन **(इन्द्रेण)** परमैश्वर्य्यकारकेण **(जयत)** **(तत्)** शत्रुसैन्यं युद्धजन्यं दुःखं वा **(सहध्वम्)** **(युधः)** ये युध्यन्ते ते **(नरः)** नायकाः **(इषुहस्तेन)** इषवः शस्त्राणि हस्तयोर्यस्य तेन **(वृष्णा)** वीर्यवता॥३४॥

अन्वयः-हे युधो नरः! यूयमनिमिषेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना युत्कारेण वृष्णेषुहस्तेन संक्रन्दनेन जिष्णुना तत्तेनेन्द्रेण सह वर्त्तमानाः सन्तः शत्रून् जयत, तच्छत्रुसैन्यवेगं सहध्वम्॥३४॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यूयं युद्धविद्याकुशलं सर्वशुभलक्षणान्वितं बलपराक्रमाढ्यं जनं सेनाधिष्ठातारं कृत्वा तेन सहाधार्मिकान् शत्रून् जित्वा निष्कण्टकं चक्रवर्त्तिराज्यं संभुङ्ग्ध्वम्॥३४॥

पदार्थः-हे **(युधः)** युद्ध करनेहारे **(नरः)** मनुष्यो! तुम **(अनिमिषेण)** निरन्तर प्रयत्न करते हुए **(दुश्च्यवनेन)** शत्रुओं को कष्ट प्राप्त कराने वाले **(धृष्णुना)** दृढ़ उत्साही **(युत्कारेण)** विविध प्रकार की रचनाओं से योद्धाओं को मिलाने और न मिलानेहारे **(वृष्णा)** बलवान् **(इषुहस्तेन)** बाण आदि शस्त्रों को हाथ में रखने **(संक्रन्दनेन)** और दुष्टों को अत्यन्त रुलानेहारे **(जिष्णुना)** जयशील शत्रुओं को जीतने और वा **(इन्द्रेण)** परम ऐश्वर्य करनेहारे **(तत्)** उस पूर्वोक्त सेनापति आदि के साथ वर्त्तमान हुए शत्रुओं को **(जयत)** जीतो और **(तत्)** उस शत्रु की सेना के वेग वा युद्ध से हुए दुःख को **(सहध्वम्)** सहो॥३४॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! तुम लोग युद्धविद्या में कुशल, सर्वशुभलक्षण और बलपराक्रमयुक्त मनुष्य को सेनापति करके उसके साथ अधार्मिक शत्रुओं को जीत के निष्कंटक चक्रवर्त्ति राज्य भोगो॥३४॥

स इषुहस्तैरित्यस्याप्रतिरथ ऋषिः। इन्द्रो देवता। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

सऽइषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी सꣳस्रष्टा स युधऽइन्द्रो गणेन।
सꣳसृष्टजित् सोमपा बाहुशर्ध्युग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता॥३५॥

सः। इषुहस्तैरितीषुऽहस्तैः। सः। निषङ्गिभिरिति निषङ्गिऽभिः। वशी। सꣳस्रष्टेति सम्ऽस्रष्टा। सः। युधः। इन्द्रः। गणेन। सꣳसृष्टजिदिति सꣳसृष्टऽजित्। सोमपा इति सोमऽपाः। बाहुशर्द्धीति बाहुऽशर्द्धी। उग्रधन्वेत्युग्रऽधन्वा। प्रतिहिताभिरिति प्रतिऽहिताभिः। अस्ता॥३५॥

पदार्थः-**(सः)** सेनापतिः **(इषुहस्तैः)** शस्त्रपाणिभिः सुशिक्षितैर्बलिष्ठैर्भृत्यैः **(सः)** **(निषङ्गिभिः)** निषङ्गाणि भुशुण्डीशतघ्न्याग्न्येयास्त्रादीनि बहूनि विद्यन्ते येषां तैः **(वशी)** जितेन्द्रियान्तःकरणः **(संस्रष्टा)** श्रेष्ठानां मनुष्याणां शस्त्रास्त्राणां वा संसर्गस्य कर्त्ता **(सः)** **(युधः)** यो युध्यते सः **(इन्द्रः)** शत्रूणां दारयिता **(गणेन)** सुशिक्षितभृत्यसमूहेन सैन्येन वा **(संसृष्टजित्)** यः संसृष्टान् मिलिताञ्छत्रूञ्जयति सः **(सोमपाः)** यः सोममोषधिरसं पिबति सः **(बाहुशर्द्धी)** बाह्वोः शर्द्धो बलं यस्य सः **(उग्रधन्वा)** उग्रं धनुर्यस्य सः **(प्रतिहिताभिः)** प्रत्यक्षेण धृताभिः **(अस्ता)** शस्त्रास्त्राणां प्रक्षेप्ता॥३५॥

अन्वयः-स सेनापतिरिषुहस्तैर्निषङ्गिभिः सह वर्त्तमानः स संस्रष्टा वशी संसृष्टजित् सोमपा बाहुशद्ध्र्युग्रधन्वा स युधोऽस्तेन्द्रो गणेन प्रतिहिताभिश्च सह वर्त्तमानः सन् शत्रूञ्जयतु॥३५॥

भावार्थः-सर्वेशो राजा सर्वसेनाधिपतिर्वा सुशिक्षितवीरभृत्यसेनया सह वर्त्तमानो दुर्जयानपि शत्रूञ्जेतुं यथा शक्नुयात्, तथा सर्वैर्विधेयमिति॥३५॥

पदार्थः-**(सः)** वह सेनापति **(इषुहस्तैः)** शस्त्रों को हाथों में रखनेहारे और अच्छे सिखाये हुए बलवान् **(निषङ्गिभिः)** जिनके भुशुण्डी=बन्दूक, शतघ्नी=तोप और आग्नेय आदि बहुत अस्त्र विद्यमान हैं,

उन भृत्यों के साथ वर्त्तमान **(सः)** वह **(संस्रष्टा)** श्रेष्ठ मनुष्यों तथा शस्त्र और अस्त्रों का सम्बन्ध करने वाला **(वशी)** अपने इन्द्रिय और अन्तःकरण को जीते हुए जो **(संसृष्टजित्)** प्राप्त शत्रुओं को जीतता **(सोमपाः)** बलिष्ठ ओषधियों के रस को पीता **(बाहुशर्द्धी)** भुजाओं में जिसके बल विद्यमान हो और **(उग्रधन्वा)** जिसका तीक्ष्ण धनुष् है, **(सः)** वह **(युधः)** युद्धशील **(अस्ता)** शस्त्र और अस्त्रों को अच्छे प्रकार फेंकने तथा **(इन्द्रः)** शत्रुओं को मारने वाला और **(गणेन)** अच्छे सीखे हुए भृत्यों वा सेनावीरों ने **(प्रतिहिताभिः)** प्रत्यक्षता से स्वीकार की हुई सेना के साथ वर्त्तमान होता हुआ जनों को जीते॥३५॥

भावार्थः-सब का ईश राजा वा सब सेनाओं का अधिपति अच्छे सीखे हुए वीर भृत्यों की सेना के साथ वर्त्तमान दुःख से जीतने योग्य शत्रुओं को भी जीत सके, वैसे सब को करना चाहिये॥३५॥

बृहस्पत इत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः। इन्द्रो देवता। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

बृह॑स्पते॒ परि॑ दीया॒ रथे॑न रक्षो॒हामित्राँ॑२ऽ अप॒बाध॑मानः।
प्र॒भ॒ञ्जन्त्सेना॑ः प्रमृ॒णो यु॒धा जय॑न्न॒स्माक॑मेद्ध्यवि॒ता र॒था॑नाम्॥३६॥

बृह॑स्पते। परि॑। दी॒य॒। रथे॑न। र॒क्षो॒हेति॑ रक्षः॒ऽहा। अ॒मित्रा॑न्। अ॒प॒बाध॑मा॒न॒ इत्य॑प॒ऽबाध॑मानः। प्र॒भ॒ञ्जन्निति॑ प्रऽभ॒ञ्जन्। सेना॑ः। प्र॒मृ॒ण इति॑ प्रऽमृ॒णः। यु॒धा। जय॑न्। अ॒स्माक॑म्। ए॒धि। अ॒वि॒ता। र॒था॑नाम्॥३६॥

पदार्थः-**(बृहस्पते)** बृहतां धार्मिकाणां वृद्धानां सेनानां वा पतिस्तत्संबुद्धौ **(परि)** सर्वतः **(दीया)** क्षिणुमहि। अत्र **द्व्यचोऽस्तिङः** [अष्टा०६.३.१३५] इति दीर्घः। अत्र व्यत्ययेनात्मनेपदम् **(रथेन)** रमणीयेन यानसमूहेन **(रक्षोहा)** यो रक्षांसि दुष्टान् हन्ति सः **(अमित्रान्)** न विद्यन्ते मित्राण्येषां तान् **(अपबाधमानः)** अपबाधते सः **(प्रभञ्जन्)** यः प्रभग्नान् करोति सः **(सेनाः)** **(प्रमृणः)** ये प्रकृष्टतया मृणन्ति हिंसन्ति तान् **(युधा)** युद्धे **(जयन्)** उत्कर्षं प्राप्नुवन् **(अस्माकम्)** **(एधि)** भव **(अविता)** रक्षिता **(रथानाम्)** रमणीयानां यानानाम्॥३६॥

अन्वयः-हे बृहस्पते! यो रक्षोहाऽमित्रानपबाधमानः प्रमृणः सेनाः प्रभञ्जँस्त्वं रथेन युधा शत्रून् परिदीया, स जयन्नस्माकं रथानामवितैधि॥३६॥

भावार्थः-राजा सेनापतिं स्वसेनां च वर्द्धयन् शत्रुसेनां हिंसन् धार्मिकीं प्रजां सततमुन्नयेत्॥३६॥

पदार्थः-हे **(बृहस्पते)** धार्मिकों वृद्धों वा सेनाओं के रक्षक जन! **(रक्षोहा)** जो दुष्टों को मारने **(अमित्रान्)** शत्रुओं को **(अपबाधमानः)** दूर करने **(प्रमृणः)** अच्छे प्रकार मारने और **(सेनाः)** उनकी सेनाओं को **(प्रभञ्जन्)** भग्न करने वाला तू **(रथेन)** रथसमूह से **(युधा)** युद्ध में शत्रुओं को **(परि, दीया)** सब ओर

से काटता है, सो **(जयन्)** उत्कर्ष अर्थात् जय को प्राप्त होता हुआ **(अस्माकम्)** हम लोगों के **(रथानाम्)** रथों की **(अविता)** रक्षा करने वाला **(एधि)** हो॥३६॥

भावार्थः-राजा सेनापति और अपनी सेना को उत्साह कराता तथा शत्रुसेना को मारता हुआ धर्मात्मा प्रजाजनों की निरन्तर उन्नति करे॥३६॥

बलविज्ञाय इत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः। इन्द्रो देवता। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान् वाजी सहमानऽउग्रः।
अभिवीरोऽअभिसत्वा सहोजा जैत्रमिन्द्र रथमातिष्ठ गोवित्॥३७॥

बलविज्ञाय इति बलऽविज्ञायः। स्थविरः। प्रवीर इति प्रऽवीरः। सहस्वान्। वाजी। सहमानः। उग्रः। अभिवीर इत्यभिऽवीरः। अभिसत्वेत्यभिऽसत्वा। सहोजा इति सहःऽजाः। जैत्रम्। इन्द्र। रथम्। आ। तिष्ठ। गोविदिति गोऽवित्॥३७॥

पदार्थः-**(बलविज्ञायः)** यो बलं बलयुक्तं सैन्यं कर्तुं जानाति सः **(स्थविरः)** वृद्धो विज्ञातराजधर्मव्यवहारः **(प्रवीरः)** प्रकृष्टश्चासौ वीरश्च **(सहस्वान्)** सहो बहुबलं विद्यते यस्य सः **(वाजी)** प्रशस्तो वाजः शास्त्रबोधो विद्यते यस्य सः **(सहमानः)** यः सुखदुःखादिकं सहते **(उग्रः)** दुष्टानां वधे तीव्रतेजाः **(अभिवीरः)** अभीष्टा वीरा यस्य सः **(अभिसत्वा)** अभितः सर्वतः सत्वानो युद्धविद्वांसो रक्षका भृत्या वा यस्य सः **(सहोजाः)** सहसा बलेन जातः प्रसिद्धः **(जैत्रम्)** जेतृभिः परिवृतं रथम् **(इन्द्र)** युद्धस्य परमसामग्रीसहित **(रथम्)** रमणीयं भूसमुद्राकाशयानम् **(आ)** **(तिष्ठ)** **(गोवित्)** यो गा वाचो धेनुः पृथिवीं वा विन्दति सः॥३७॥

अन्वयः-हे इन्द्र सेनापते! बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान् वाजी सहमान उग्रोऽभिवीरोऽभिसत्वा सहोजा गोवित् संस्त्वं युद्धाय जैत्रं रथमातिष्ठ॥३७॥

भावार्थः-सेनापतिः सेनावीरा वा यदा शत्रुभिः योद्धुमिच्छेयुस्तदा परस्परं सर्वतो रक्षां रक्षासाधनानि वा संगृह्य बुद्ध्युत्साहेन सह वर्त्तमाना अनलसाः सन्तः शत्रुविजयतत्परा भवेयुः॥३७॥

पदार्थः-हे **(इन्द्र)** युद्ध की उत्तम सामग्री युक्त सेनापति! **(बलविज्ञायः)** जो अपनी सेना को बली करना जानता **(स्थविरः)** वृद्ध **(प्रवीरः)** उत्तम वीर **(सहस्वान्)** अत्यन्त बलवान् **(वाजी)** जिसको प्रशंसित शास्त्रबोध है, **(सहमानः)** जो सुख और दुःख को सहने तथा **(उग्रः)** दुष्टों के मारने में तीव्र तेज वाला **(अभिवीरः)** जिस के अभीष्ट अर्थात् तत्काल चाहे हुए काम के करने वाले वा **(अभिसत्वा)** सब ओर से युद्धविद्या में कुशल रक्षा करनेहारे वीर हैं, **(सहोजाः)** बल से प्रसिद्ध **(गोवित्)** वाणी, गौओं वा पृथिवी को

प्राप्त होता हुआ, ऐसा तू युद्ध के लिये **(जैत्रम्)** जीतने वाले वीरों से घेरे हुए **(रथम्)** पृथिवी, समुद्र और आकाश में चलने वाले रथ को **(आ, तिष्ठ)** आकर स्थित हो अर्थात् उसमें बैठ॥३७॥

भावार्थः-सेनापति वा सेना के वीर जब शत्रुओं से युद्ध की इच्छा करें, तब परस्परर सब ओर से रक्षा और रक्षा के साधनों को संग्रह कर विचार और उत्साह के साथ वर्त्तमान आलस्य रहित होते हुए शत्रुओं को जीतने में तत्पर हों॥३७॥

गोत्रभिदमित्यस्याप्रतिरथ ऋषिः। इन्द्रो देवता। भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा।

इमꣳ सजाताऽअनु वीरयध्वमिन्द्रꣳ सखायोऽअनु सꣳरभध्वम्॥३८॥

गोत्रभिदमिति गोत्रऽभिदम्। गोविदमिति गोऽविदम्। वज्रबाहुमिति वज्रऽबाहुम्। जयन्तम्। अज्म। प्रमृणन्तमिति प्रऽमृणन्तम्। ओजसा। इमम्। सजाता इति सऽजाताः। अनु। वीरयध्वम्। इन्द्रम्। सखायः। अनु। सम्। रभध्वम्॥३८॥

पदार्थः-**(गोत्रभिदम्)** यः शत्रूणां गोत्राणि भिनत्ति तम् **(गोविदम्)** योऽरीणां गां भूमिं विन्दति तम् **(वज्रबाहुम्)** वज्राः शस्त्राणि बाह्वोर्यस्य तम् **(जयन्तम्)** शत्रून् पराजयमानम् **(अज्म)** अजन्ति प्रक्षिपन्ति शत्रून् येन यस्मिन् वा। अत्र **सुपां सुलुग्०** [अष्टा०७.१.३९] इति विभक्तेर्लुक्। **अज्मेति संग्रामनामसु पठितम्॥** (निघं०२.१७) **(प्रमृणन्तम्)** प्रकृष्टतया शत्रून् हिंसन्तम् **(ओजसा)** स्वस्य शरीरबुद्धिबलेन सैन्येन वा **(इमम्)** **(सजाताः)** समानदेशे जाता उत्पन्नाः **(अनु)** पश्चादर्थे **(वीरयध्वम्)** विक्रमध्वम् **(इन्द्रम्)** शत्रुदलविदारकम् **(सखायः)** परस्परस्य सहायिनः **(अनु)** सुहृदः सन्तः आनुकूल्ये **(सम्)** सम्यक् **(रभध्वम्)** युद्धारम्भं कुरुत॥३८॥

अन्वयः-हे सजाताः सखायः! यूयमोजसा गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं प्रमृणन्तमज्म जयन्तिमिममिन्द्रं सेनापतिमनुवीरयध्वमनुसंरभध्वं च॥३८॥

भावार्थः-सेनापतयो भृत्याश्च परस्परं सुहृदो भूत्वाऽन्योन्यमनुमोद्य युद्धारम्भविजयौ कृत्वा शत्रुराज्यं लब्ध्वा न्यायेन प्रजाः पालयित्वा सततं सुखिनः स्युः॥३८॥

पदार्थः-हे **(सजाताः)** एकदेश में उत्पन्न **(सखायः)** परस्पर सहाय करने वाले मित्रो! तुम लोग **(ओजसा)** अपने शरीर और बुद्धि वा बल वा सेनाजनों से **(गोत्रभिदम्)** जो कि शत्रुओं के गोत्रों अर्थात् समुदायों को छिन्न-भिन्न करता, उनकी जड़ काटता **(गोविदम्)** शत्रुओं की भूमि को ले लेता **(वज्रबाहुम्)** अपनी भुजाओं में शस्त्रों को रखता **(प्रमृणन्तम्)** अच्छे प्रकार शत्रुओं को मारता **(अज्म)** जिससे वा जिसमें

शत्रुजनों को पटकते हैं, उस संग्राम में **(जयन्तम्)** वैरियों को जीत लेता और **(इमम्)** उनको **(इन्द्रम्)** विदीर्ण करता है, इस सेनापति को **(अनु, वीरयध्वम्)** प्रोत्साहित करो और **(अनु, संरभध्वम्)** अच्छे प्रकार युद्ध का आरम्भ करो॥३८॥

भावार्थः-सेनापति आदि तथा सेना के भृत्य परस्पर मित्र होकर एक-दूसरे का अनुमोदन करा युद्ध का आरम्भ और विजय कर शत्रुओं के राज्य को पा और न्याय से प्रजा को पालन करके निरन्तर सुखी हों॥३८॥

अभिगोत्राणीत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः। इन्द्रो देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदयो वीरः शतमन्युरिन्द्रः।
दुश्च्यवनः पृतनाषाडयुध्योऽअस्माकꣳ सेना अवतु प्र युत्सु॥३९॥

अभि। गोत्राणि। सहसा। गाहमानः। अदयः। वीरः। शतमन्युरिति शतऽमन्युः। इन्द्रः। दुश्च्यवन इति दुःऽच्यवनः। पृतनाऽषाट्। अयुध्यः। अस्माकम्। सेनाः। अवतु। प्र। युत्स्विति युत्सु॥३९॥

पदार्थः-**(अभि)** सर्वतः **(गोत्राणि)** शत्रुकुलानि **(सहसा)** बलेन **(गाहमानः)** विलोडनं कुर्वन् **(अदयः)** अविद्यमाना दया करुणा यस्य सः **(वीरः)** शत्रूणां दरिता **(शतमन्युः)** शतधा मन्युः क्रोधो यस्य सः **(इन्द्रः)** सेनेशः **(दुश्च्यवनः)** शत्रुभिर्दुःखेन च्योतुं योग्यः **(पृतनाषाट्)** यः पृतनां सहते **(अयुध्यः)** शत्रुभिर्योद्धुमयोग्यः **(अस्माकम्)** **(सेनाः)** **(अवतु)** रक्षतु **(प्र)** प्रयत्नेन **(युत्सु)** मिश्रितामिश्रतकरणेषु युद्धेषु॥३९॥

अन्वयः-हे विद्वांसः! यो युत्सु सहसा गोत्राणि प्रगाहमानोऽदयः शतमन्युर्दुश्च्यवनः पृतनाषाडयुध्यो वीरोऽस्माकं सेना अभ्यवतु, स इन्द्रः सेनापतिर्भवत्वित्याज्ञापयत॥३९॥

भावार्थः-धार्मिकेषु करुणाकरः दुष्टेषु निर्दयः सर्वाभिरक्षको नरो भवेत्, स एव सेनापालनेऽधिकर्त्तव्यः॥३९॥

पदार्थः-हे विद्वानो! जो **(युत्सु)** जिनसे अनेक पदार्थों का मेल अमेल करें, उन युद्धों में **(सहसा)** बल से **(गोत्राणि)** शत्रुओं के कुलों को **(प्र, गाहमानः)** अच्छे यत्न से गाहता हुआ **(अदयः)** निर्दय **(शतमन्युः)** जिसको सैकड़ों प्रकार का क्रोध विद्यमान है, **(दुश्च्यवनः)** जो दुःख से शत्रुओं के गिराने योग्य **(पृतनाषाट्)** शत्रु की सेना को सहता है, **(अयुध्यः)** और जो शत्रुओं के युद्ध करने योग्य नहीं है, **(वीरः)** तथा शत्रुओं की विदीर्ण करता है, वह **(अस्माकम्)** हमारी **(सेनाः)** सेनाओं को **(अभि, अवतु)** सब ओर से पाले और **(इन्द्रः)** सेनाधिपति हो, ऐसी आज्ञा तुम देओ॥३९॥

भावार्थः-जो धार्मिक जनों में करुणा करने वाला, दुष्टों में दयारहित और सब ओर से सब की रक्षा करने वाला मनुष्य हो, वही सेना के पालने में अधिकारी करने योग्य है॥३९॥

इन्द्रऽआसामित्यस्याप्रतिरथ ऋषिः। इन्द्रो देवता। विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

इन्द्रऽआसां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुरऽएतु सोमः।

देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रम्॥४०॥

इन्द्रः। आसाम्। नेता। बृहस्पतिः। दक्षिणा। यज्ञः। पुरः। एतु। सोमः। देवसेनानामिति देवऽसेनानाम्। अभिभञ्जतीनामित्यभिऽभञ्जतीनाम्। जयन्तीनाम्। मरुतः। यन्तु। अग्रम्॥४०॥

पदार्थः-(**इन्द्रः**) परमैश्वर्ययुक्तः सेनापतिः शिक्षकः (**आसाम्**) प्रत्यक्षाणाम् (**नेता**) नायकः (**बृहस्पतिः**) बृहतामधिकाराणामध्यक्षः (**दक्षिणा**) दक्षिणस्यां दिशि (**यज्ञः**) संगन्ता (**पुरः**) पूर्वम् (**एतु**) गच्छतु (**सोमः**) सेनाप्रेरकः (**देवसेनानाम्**) विदुषां सेनानाम् (**अभिभञ्जतीनाम्**) शत्रुसेनानामभितो मर्दनमाचरन्तीनाम् (**जयन्तीनाम्**) शत्रुविजयेनोत्कर्षन्तीनाम् (**मरुतः**) वायुवद् बलिष्ठाः शूरवीराः (**यन्तु**) गच्छन्तु (**अग्रम्**)॥४०॥

अन्वयः-युद्धेऽभिभञ्जतीनां जयन्तीनामासां देवसेनानां नेतेन्द्रः पश्चाद् यज्ञः पुरो बृहस्पतिर्दक्षिणा सोम उत्तरस्यां चैतु मरुतोऽग्रं यन्तु॥४०॥

भावार्थः-यदा राजपुरुषाः शत्रुभिर्युयुत्सेयुस्तदा सर्वासु दिक्ष्वध्यक्षान् शूरवीरानग्रतो भीरूनन्तःसंस्थाप्य भोजनाच्छादनवाहनास्त्रशस्त्रयोगेन युध्येरन्। तत्र विद्वत्सेनाधीना मूर्खसेनाः कार्याः। ता विद्वांसो वक्तृत्वेनोत्साहयेयुरध्यक्षाश्च पद्मव्यूहादिभिर्योधयेयुः॥४०॥

पदार्थः-युद्ध में (**अभिभञ्जतीनाम्**) शत्रुओं की सेनाओं को सब ओर से मारती (**जयन्तीनाम्**) और शत्रुओं को जीतने से उत्साह को प्राप्त होती हुई (**आसाम्**) इन (**देवसेनानाम्**) विद्वानों की सेनाओं का (**नेता**) नायक (**इन्द्रः**) उत्तम ऐश्वर्य वाला शिक्षक सेनापति पीछे (**यज्ञः**) सब को मिलने वाला (**पुरः**) प्रथम (**बृहस्पतिः**) सब अधिकारियों का अधिपति (**दक्षिणा**) दाहिनी ओर और (**सोमः**) सेना को प्रेरणा अर्थात् उत्साह देने वाला बाईं ओर (**एतु**) चले तथा (**मरुतः**) पवनों के समान वेग वाले बली शूरवीर (**अग्रम्**) आगे को (**यन्तु**) जावें॥४०॥

भावार्थः-जब राजपुरुष शत्रुओं के साथ युद्ध किया चाहें, तब सब दिशाओं में अध्यक्ष तथा शूरवीरों को आगे और डरपने वालों को बीच में ठीक स्थापन कर भोजन, आच्छादन, वाहन, अस्त्र और

शस्त्रों के योग से युद्ध करें और वहां विद्वानों की सेना के आधीन मूर्खों की सेना करनी चाहिये। उन सेनाओं को विद्वान् लोग अच्छे उपदेश से उत्साह देवें और सेनाध्यक्षादि पद्मव्यूह आदि बांध के युद्ध करावें॥४०॥

इन्द्रस्येत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः। इन्द्रो देवता। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

इन्द्र॑स्य॒ वृष्णो॒ वरु॑णस्य॒ राज्ञ॑ऽआदि॒त्याना॑ꣳ म॒रुता॒ꣳ शर्द्ध॑ऽउ॒ग्रम्।
म॒हाम॑नसां भुवनच्य॒वानां॒ घोषो॑ दे॒वानां॒ जय॑तामु॒द॑स्थात्॥ ४१॥

इन्द्र॑स्य। वृष्णः॑। वरु॑णस्य। राज्ञः॑। आ॒दि॒त्याना॑म्। म॒रुता॑म्। शर्द्धः॑। उ॒ग्रम्। म॒हाम॑नसा॒मिति॑ म॒हाऽम॑नसाम्। भु॒व॒न॒च्य॒वाना॒मिति॑ भुवनऽच्य॒वाना॑म्। घोषः॑। दे॒वाना॑म्। जय॑ताम्। उत्। अ॒स्था॒त्॥ ४१॥

पदार्थः-(**इन्द्रस्य**) सेनापतेः (**वृष्णः**) वीर्य्यवतः (**वरुणस्य**) सर्वोत्कृष्टस्य (**राज्ञः**) न्यायविनयादिभिः प्रकाशमानस्य सर्वाधिष्ठातुः (**आदित्यानाम्**) कृताष्टाचत्वारिंशद् वर्षप्रमितब्रह्मचर्याणाम् (**मरुताम्**) पूर्णविद्याबलयुक्तानां पुरुषाणाम् (**शर्द्धः**) बलं सैन्यम् (**उग्रम्**) शत्रुभिः सोढुमशक्यम् (**महामनसाम्**) महान्ति मनांसि विज्ञानानि येषां तेषाम् (**भुवनच्यवानाम्**) ये भुवनान्युत्तमानि गृहाणि च्यवन्ते प्राप्नुवन्ति तेषाम् (**घोषः**) शौर्योत्साहजनको विचित्रवादित्रस्वरालापशब्दः (**देवानाम्**) विदुषाम् (**जयताम्**) शत्रून् विजेतुं समर्थानाम् (**उत्**) (**अस्थात्**) उत्तिष्ठतु॥४१॥

अन्वयः-वृष्ण इन्द्रस्य वरुणस्य राज्ञो भुवनच्यवानां महामनसां जयतामादित्यानां मरुतां देवानामुग्रं शर्द्धो घोषो युद्धारम्भात् पूर्वमुदस्थात्॥४१॥

भावार्थः-सेनाध्यक्षैः शिक्षासमये युद्धसमये च मनोहरैर्निर्भयादिभावजनकैः शब्दितैर्वादित्रैर्वीरा हर्षणीयाः। ये दीर्घब्रह्मचर्येणाधिकविद्यया शरीरात्मबलास्त एव युद्धसेनास्वधिकर्त्तव्याः॥४१॥

पदार्थः-(**वृष्णः**) वीर्य्यवान् (**इन्द्रस्य**) सेनापति (**वरुणस्य**) सब से उत्तम (**राज्ञः**) न्याय और विनय आदि गुणों से प्रकाशमान सब के अधिपति राजा के (**भुवनच्यवानाम्**) जो उत्तम घरों को प्राप्त होते (**महामनसाम्**) बड़े-बड़े विचार वाले वा (**जयताम्**) शत्रुओं के जीतने को समर्थ (**आदित्यानाम्**) जिन्होंने ४८ वर्ष तक ब्रह्मचर्य्य किया हो, (**मरुताम्**) और जो पूर्ण विद्या बल युक्त हैं, उन (**देवानाम्**) विद्वान् पुरुषों का (**उग्रम्**) जो शत्रुओं को असह्य (**शर्द्धः**) बल (**घोषः**) शूरता और उत्साह उत्पन्न करने वाला विचित्र बाजों का स्वरालाप शब्द है, वह युद्ध के आरम्भ से पहिले (**उदस्थात्**) उठे॥४१॥

भावार्थः-सेनाध्यक्षों को चाहिये कि शिक्षा और युद्ध के समय मनोहर वीरभाव को उत्पन्न करने वाले अच्छे बाजों के बजाए हुए शब्दों से वीरों को हर्षित करावें तथा जो बहुत काल पर्यन्त ब्रह्मचर्य और

अधिक विद्या से शरीर और आत्मबलयुक्त हैं, वे ही योद्धाओं की सेनाओं के अधिकारी करने योग्य है॥४१॥

उद्धर्षयेत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः। इन्द्रो देवता। विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उद्धर्षय मघवन्नायुधान्युत्सत्वनां मामकानां मनांꣳसि।

उद् वृत्रहन् वाजिनां वाजिनान्युद्रथानां जयतां यन्तु घोषाः॥४२॥

उत्। हर्षय। मघवन्निति मघऽवन्। आयुधानि। उत्। सत्वनाम्। मामकानाम्। मनांꣳसि। उत्। वृत्रहन्निति वृत्रऽहन्। वाजिनाम्। वाजिनानि। उत्। रथानाम्। जयताम्। यन्तु। घोषाः॥४२॥

पदार्थः-(**उत्**) (**हर्षय**) उत्कर्षय (**मघवन्**) प्रशस्तानि मघानि धनानि विद्यन्ते यस्य तत्सम्बुद्धौ (**आयुधानि**) समन्ताद् युध्यन्ते यैस्तानि (**उत्**) (**सत्वनाम्**) सेनायां सीदतां प्राणिनाम् (**मामकानाम्**) मदीयानां वीराणाम् (**मनांसि**) अन्तःकरणानि (**उत्**) (**वृत्रहन्**) मेघहन्ता सूर्य इव शत्रुहन्तः सेनापते (**वाजिनाम्**) तुरङ्गाणाम् (**वाजिनानि**) शीघ्रगमनानि (**उत्**) (**रथानाम्**) (**जयताम्**) (**यन्तु**) गच्छन्तु (**घोषाः**) शब्दाः॥४२॥

अन्वयः-सेनास्था जनाः स्वाधीशमेवं ब्रुयुः-हे वृत्रहन्! मघवँस्त्वं मामकानां सत्वनामायुधान्युद्धर्षय। मामकानां सत्वनां मनांस्युद्धर्षय। मामकानां वाजिनां वाजिनान्युद्धर्षय भवत्कृपातो मामकानां जयतां रथानां घोषा उद्यन्तु॥४२॥

भावार्थः-सेनापतिभिः शिक्षकैश्च योद्धॄणां चित्तानि नित्यं हर्षणीयानि। सेनाङ्गानानि सम्यगुन्नीय शत्रवो जेतव्याश्च॥४२॥

पदार्थः-सेना के पुरुष अपने स्वामी से ऐसे कहें कि हे (**वृत्रहन्**) मेघ को सूर्य के समान शत्रुओं को छिन्न-भिन्न करने वाले (**मघवन्**) प्रशंसित धनयुक्त सेनापति! आप (**मामकानाम्**) हम लोगों के (**सत्वनाम्**) सेनास्थ वीर पुरुषों के (**आयुधानि**) जिनसे अच्छे प्रकार युद्ध करते हैं, उन शस्त्रों का (**उद्धर्षय**) उत्कर्ष कीजिए। हमारे सेनास्थ जनों के (**मनांसि**) मनों को (**उत्**) उत्तम हर्षयुक्त कीजिए। हमारे (**वाजिनाम्**) घोड़ों की (**वाजिनानि**) शीघ्र चालों को (**उत्**) बढ़ाइये तथा आपकी कृपा से हमारे (**जयताम्**) विजय कराने वाले (**रथानाम्**) रथों के (**घोषाः**) शब्द (**उद्यन्तु**) उठें॥४२॥

भावार्थः-सेनापति और शिक्षक जनों को चाहिये कि योद्धाओं के चित्तों को नित्य हर्षित करें और सेना के अङ्गों को अच्छे प्रकार उन्नति देकर शत्रुओं को जीतें॥४२॥

अस्माकमित्यस्याप्रतिरथ ऋषिः। इन्द्रो देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं याऽइषवस्ता जयन्तु।
अस्माकं वीराऽउत्तरे भवन्त्वस्माँ२ऽउं देवाऽअवता हवेषु॥४३॥

अस्माकम्। इन्द्रः। समृतेष्विति सम्ऽऋतेषु। ध्वजेषु। अस्माकम्। याः। इषवः। ताः। जयन्तु। अस्माकम्। वीराः। उत्तर इत्युत्ऽतरे। भवन्तु। अस्मान्। ऊँऽइत्यूँ। देवाः। अवत। हवेषु॥४३॥

पदार्थः-(**अस्माकम्**) (**इन्द्रः**) ऐश्वर्यकारकः सेनेशः (**समृतेषु**) सम्यक् सत्यन्यायप्रकाशकचिह्नेषु (**ध्वजेषु**) स्ववीरप्रतीतये रथाद्युपरि स्थापितेषु विजातीयचिह्नेषु (**अस्माकम्**) (**याः**) (**इषवः**) प्राप्ताः सेनाः (**ताः**) (**जयन्तु**) विजयिन्यो भवन्तु (**अस्माकम्**) (**वीराः**) (**उत्तरे**) विजयानन्तरसमये कुशला विद्यमानजीवनाः (**भवन्तु**) (**अस्मान्**) (उ) वितर्के (**देवाः**) विजिगीषवः (**अवत**) रक्षत (**हवेषु**) ह्वयन्ति स्पर्द्धन्ते परस्परं येषु संग्रामेषु तेषु॥४३॥

अन्वयः-हे देवाः! विद्वांसो यूयमस्माकं समृतेषु ध्वजेष्वधोदेशे य इन्द्रोऽस्माकं या इषवः स ताश्च हवेषु जयन्त्वस्माकं वीरा उत्तरे भवन्तु, अस्मानु सर्वत्रावत॥४३॥

भावार्थः-सेनाजनैः सेनापत्यादिभिः स्वस्वरथादिषु भिन्नं भिन्नं चिह्नं संस्थापनीयम्। यतोऽस्यायं रथादिरिति सर्वे जानीयुः, यथा वीराणामश्वानां चाधिकः क्षयो न स्यात्, तथानुष्ठातव्यम्। कुतः? परस्परस्य पराक्रमक्षयेण ध्रुवो विजयो न भवतीति विज्ञेयम्॥४३॥

पदार्थः-हे (**देवाः**) विजय चाहने वाले विद्वानो! तुम (**अस्माकम्**) हम लोगों के (**समृतेषु**) अच्छे प्रकार सत्य-न्याय प्रकाश करानेहारे चिह्न जिनमें हों, उन (**ध्वजेषु**) अपने वीर जनों के निश्चय के लिये रथ आदि यानों के ऊपर एक-दूसरे से भिन्न स्थापित किये हुए ध्वजा आदि चिह्नों में नीचे अर्थात् उनकी छाया में वर्त्तमान जो (**इन्द्रः**) ऐश्वर्य्य करने वाला सेना का ईश और (**अस्माकम्**) हम लोगों की (**याः**) जो (**इषवः**) प्राप्त सेना हैं, वह इन्द्र और (**ताः**) वे सेना (**हवेषु**) जिनमें ईर्ष्या से शत्रुओं को बुलावें, उन संग्रामों में (**जयन्तु**) जीतें (**अस्माकम्**) हमारे (**वीराः**) वीर जन (**उत्तरे**) विजय के पीछे जीवनयुक्त (**भवन्तु**) हों (**अस्मान्**) हम लोगों की (उ) सब जगह युद्धसमय में (**अवत**) रक्षा करो॥४३॥

भावार्थः-सेनाजन और सेनापति आदि को चाहिये कि अपने अपने रथ आदि में भिन्न-भिन्न चिह्न को स्थापन करें, जिससे यह इसका रथ आदि है, ऐसा सब जानें और जैसे अश्व तथा वीरों का अधिक विनाश न हो, वैसा ढंग करें, क्योंकि परस्पर के पराक्रम के क्षय होने से निश्चल विजय नहीं होता, यह जानें॥४३॥

अमीषामित्यस्याप्रतिरथ ऋषिः। इन्द्रो देवता। विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि।

अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैरन्धेनामित्रास्तमसा सचन्ताम्॥४४॥

अमीषाम्। चित्तम्। प्रतिलोभयन्तीति प्रतिऽलोभयन्ती। गृहाण। अङ्गानि। अप्वे। परा। इहि। अभि। प्र। इहि। निः। दह। हृत्स्विति हृत्ऽसु। शोकैः। अन्धेन। अमित्राः। तमसा। सचन्ताम्॥४४॥

पदार्थः-(**अमीषाम्**) परोक्षाणाम् (**चित्तम्**) स्वान्तम् (**प्रतिलोभयन्ती**) प्रत्यक्षे मोहयन्ती (**गृहाण**) (**अङ्गानि**) सेनावयवान् (**अप्वे**) यापवाति शत्रुप्राणान् हिनस्ति तत्सम्बुद्धौ। अपपूर्वाद्वातेः **अन्येभ्योऽपि दृश्यते** [अष्टा०३.२.१७८] इति क्विप् अकारलोपश्छान्दसः (**परा**) (**इहि**) दूरं गच्छ (**अभि**) (**प्र**) (**इहि**) अभिप्रायं दर्शय (**निर्दह**) नितरां भस्मीकुरु (**हृत्सु**) हृदयेषु (**शोकैः**) (**अन्धेन**) आवरकेण (**अमित्राः**) शत्रवः (**तमसा**) रात्र्यन्धकारेण (**सचन्ताम्**) संयुञ्जन्तु॥४४॥

अन्वयः-हे अप्वे शूरवीरे राजस्त्रि क्षत्रिये! अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती या स्वसेनास्ति तस्या अङ्गानि त्वं गृहाण। अधर्मात् परेहि स्वसेनामभिप्रेहि शत्रून् निर्दह, यत इमेऽमित्रा हृत्सु शौकेरन्धेन तमसा सह सचन्तां संयुक्तास्तिष्ठन्तु॥४४॥

भावार्थः-सभापत्यादिभिर्यथाऽतिप्रशंसिता हृष्टपुष्टा साङ्गोपाङ्गा पुरुषसेना स्वीकार्या तथा स्त्रीसेना च। यत्राव्यभिचारिण्यः स्त्रियस्तिष्ठेयुस्तया सेनया शत्रवो वशे स्थापनीयाः॥४४॥

पदार्थः-हे (**अप्वे**) शत्रुओं के प्राणों को दूर करनेहारी राणी क्षत्रिया वीर स्त्री! (**अमीषाम्**) उन सेनाओं के (**चित्तम्**) चित्त को (**प्रतिलोभयन्ती**) प्रत्यक्ष में लुभाने वाली जो अपनी सेना है, उसके (**अङ्गानि**) अङ्गों को तू (**गृहाण**) ग्रहण कर अधर्म्म से (**परेहि**) दूर हो, अपनी सेना को (**अभि, प्रेहि**) अपना अभिप्राय दिखा और शत्रुओं को (**निर्दह**) निरन्तर जला, जिससे ये (**अमित्राः**) शत्रुजन (**हृत्सु**) अपने हृदयों में (**शोकैः**) शोकों से (**अन्धेन**) आच्छादित हुए (**तमसा**) रात्रि के अन्धकार के साथ (**सचन्ताम्**) संयुक्त रहें॥४४॥

भावार्थः-सभापति आदि को योग्य है कि जैसे अतिप्रशंसित हृष्ट-पुष्ट अङ्ग उपाङ्गादियुक्त शूरवीर पुरुषों की सेना को स्वीकार करें, वैसे शूरवीर स्त्रियों की भी सेना स्वीकार करें और जिस स्त्रीसेना में अव्यभिचारिणी स्त्री रहें, उस सेना से शत्रुओं को वश में स्थापन करें॥४४॥

अवसृष्टेत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः। इषुर्देवता। आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसꣳशिते।

गच्छामित्रान् प्र पद्यस्व मामीषां कञ्चनोच्छिषः॥४५॥

अवसृष्टेत्यवऽसृष्टा। परा। पत। शरव्ये। ब्रह्मसꣳशित इति ब्रह्मऽसꣳशिते। गच्छ। अमित्रान्। प्र। पद्यस्व। मा। अमीषाम्। कम्। चन। उत्। शिषः॥४५॥

पदार्थः-(**अवसृष्टा**) प्रेरिता (**परा**) (**पत**) याहि (**शरव्ये**) शरेषु बाणेषु साध्वी स्त्री तत्सम्बुद्धौ (**ब्रह्मसंशिते**) ब्रह्मभिश्चतुर्वेदविद्भिः प्रशंसिते शिक्षया सम्यक् तीक्ष्णीकृते (**गच्छ**) (**अमित्रान्**) शत्रून् (**प्र**) (**पद्यस्व**) प्राप्नुहि (**मा**) निषेधे (**अमीषाम्**) दूरस्थानां विरोधिनाम् (**कम्**) (**चन**) कञ्चिदपि (**उत्**) (**शिषः**) उदूर्ध्वं शिष्टं त्यजेत्॥४५॥

अन्वयः-हे शरव्ये ब्रह्मसंशिते सेनानीपत्नि! त्वमवसृष्टा सती परापतामित्रान् गच्छ, तेषां हनने विजयं प्रपद्यस्वामीषां शत्रूणां मध्ये कञ्चन मोच्छिषो हननेन विना कञ्चिदपि मा त्यजेः॥४५॥

भावार्थः-सभापत्यादिभिः यथा युद्धविद्यया पुरुषाः शिक्षणीयास्तथा स्त्रियश्च, यथा वीरपुरुषा युद्धं कुर्युस्तथा स्त्रियोऽपि कुर्वन्ति। ये शत्रवो युद्धे हताः स्युस्तदवशिष्टाश्च शाश्वते बन्धने कारागृहे स्थापनीयाः॥४५॥

पदार्थः-हे (**शरव्ये**) बाणविद्या में कुशल (**ब्रह्मसंशिते**) वेदवेत्ता विद्वान् से प्रशंसा और शिक्षा पाये हुए सेनाधिपति की स्त्री! तू (**अवसृष्टा**) प्रेरणा को प्राप्त हुई (**परा, पत**) दूर जा (**अमित्रान्**) शत्रुओं को (**गच्छ**) प्राप्त हो और उनके मारने से विजय को (**प्र, पद्यस्व**) प्राप्त हो, (**अमीषाम्**) उन दूर देश में ठहरे हुए शत्रुओं में से मारने के विना (**कम्, चन**) किसी को (**मा**) (**उच्छिषः**) मत छोड़॥४५॥

भावार्थः-सभापति आदि को चाहिये कि जैसे युद्धविद्या से पुरुषों को शिक्षा करें, वैसे स्त्रियों को भी शिक्षा करें। जैसे वीरपुरुष युद्ध करें, वैसे स्त्री भी करे। जो युद्ध में मारे जावें, उनसे शेष अर्थात् बचे हुए कातरों को निरन्तर कारागार में स्थापन करें॥४५॥

प्रेता जयतेत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः। योद्धा देवता। विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

प्रेता जयता नरऽइन्द्रो वः शर्म यच्छतु।

उग्रा वः सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथासथ॥४६॥

प्र। इत। जयत। नरः। इन्द्रः। वः। शर्म। यच्छतु। उग्राः। वः। सन्तु। बाहवः। अनाधृष्याः। यथा। असथ॥४६॥

पदार्थः-(**प्र**) (**इत**) शत्रून् प्राप्नुत। अत्र **द्व्यचोऽतस्तिङः** [अष्टा०६.३.१३५] इति दीर्घः (**जयत**) विजयध्वम्। अत्र **अन्येषामपि दृश्यते** [अष्टा०६.३.१३७] इति दीर्घः (**नरः**) नायकाः (**इन्द्रः**) शत्रूणां दारयिता

सेनापतिः **(वः)** युष्मभ्यम् **(शर्म)** गृहम् **(यच्छतु)** ददातु **(उग्राः)** दृढाः **(वः)** युष्माकम् **(सन्तु)** **(बाहवः)** भुजाः **(अनाधृष्याः)** शत्रुभिर्धर्षितुमयोग्याः **(यथा)** **(असथ)** भवत॥४६॥

अन्वयः-हे नरः! यूयं यथा शत्रूनित जयत, इन्द्रो वः शर्म प्रयच्छतु, वो बाहव उग्राः सन्तु। अनाधृष्या असथ तथा प्रयतध्वम्॥४६॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। ये शत्रूणां विजेतारो वीरास्स्युस्तान् सेनापतिर्धनान्नगृहवस्त्रादिभिः सततं सत्कुर्यात्, सेनास्था जनाश्च यथा बलिष्ठाः स्युस्तथा व्यवहरेयुः॥४६॥

पदार्थः-हे **(नरः)** अनेक प्रकार के व्यवहारों को प्राप्त करने वाले मनुष्यो! तुम **(यथा)** जैसे शत्रुजनों को **(इत)** प्राप्त होओ, उन्हें **(जयत)** जीतो तथा **(इन्द्रः)** शत्रुओं को विदीर्ण करने वाला सेनापति **(वः)** तुम लोगों के लिये **(शर्म्म)** घर **(प्र, यच्छतु)** देवे **(वः)** तुम्हारी **(बाहवः)** भुजा **(उग्राः)** दृढ़ **(सन्तु)** हों और **(अनाधृष्याः)** शत्रुओं से न धमकाने योग्य **(असथ)** होओ, वैसा प्रयत्न करो॥४६॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो शत्रुओं को जीतने वाले वीर हों, उनका सेनापति धन, अन्न, गृह और वस्त्रादिकों से निरन्तर सत्कार करे तथा सेनास्थ जन जैसे बली हों, वैसा व्यवहार अर्थात् व्यायाम और शस्त्र-अस्त्रों का चलाना सीखें॥४६॥

असौ येत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः। मरुतो देवताः। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

असौ या सेना मरुतः परेषामभ्यैति नऽओजसा स्पर्द्धमाना।

तां गूहत तमसापव्रतेन यथामीऽअन्योऽअन्यन्न जानन्॥४७॥

असौ। या। सेना। मरुतः। परेषाम्। अभि। आ। एति। नः। ओजसा। स्पर्द्धमाना। ताम्। गूहत। तमसा। अपव्रतेनेत्यपऽव्रतेन। यथा। अमीऽइत्यमी। अन्यः। अन्यम्। न। जानन्॥४७॥

पदार्थः-**(असौ)** **(या)** **(सेना)** **(मरुतः)** ऋत्विजो विद्वांसः **(परेषाम्)** शत्रूणाम् **(अभि)** आभिमुख्ये **(आ)** सर्वतः **(एति)** प्राप्नोति **(नः)** अस्माकम् **(ओजसा)** बलेन **(स्पर्द्धमाना)** ईर्ष्यन्ती **(ताम्)** **(गूहत)** संवृणुत **(तमसा)** अन्धकारेण शतघ्न्यग्न्याद्युत्थधूमेन मेघपर्वताकारेणास्त्रादिधूमेन वा **(अपव्रतेन)** अनियमेन परुषकर्मणा **(यथा)** **(अमी)** **(अन्यः)** **(अन्यम्)** **(न)** निषेधे **(जानन्)**॥४७॥

अन्वयः-हे मरुतः! यूयं यासौ परेषां स्पर्द्धमाना सेनौजसा नोऽस्मानभ्यैति, तामपव्रतेन तमसा गूहत। अमी शत्रुसेनास्था जना यथा अन्योऽन्यं न जानन् तथा विक्रमध्वम्॥४७॥

भावार्थः-यदा युद्धाय शत्रुसेनासु प्राप्तासु युद्धमाचरेत्, तदा सर्वतः शस्त्रास्त्रप्रहारोत्थधूमधूल्यादिना ता आच्छाद्य यथैते परस्परमपि न जानीयुस्तथा सेनापत्यादिभिर्विधेयम्॥४७॥

पदार्थः-हे **(मरुतः)** ऋतु-ऋतु में यज्ञ करने वाले विद्वानो! तुम **(या)** जो **(असौ)** वह **(परेषाम्)** शत्रुओं की **(स्पर्द्धमाना)** ईर्ष्या करती हुई **(सेना)** सेना **(ओजसा)** बल से **(नः)** हम लोगों के **(अभि, आ, एति)** सन्मुख सब ओर से प्राप्त होती है, **(ताम्)** उसको **(अपव्रतेन)** छेदनरूप कठोर कर्म्म से और **(तमसा)** तोप आदि शस्त्रों के उठे हुए धूम वा मेघ **(या)** पहाड़ के आकार जो अस्त्र का धूम होता है, उससे **(गूहत)** ढांपो **(अमी)** ये शत्रुसेनास्थ जन **(यथा)** जैसे **(अन्यः, अन्यम्)** परस्पर एक-दूसरे को **(न)** न **(जानन्)** जानें, वैसा पराक्रम करो॥४७॥

भावार्थः-जब युद्ध के लिये प्राप्त हुई शत्रुओं की सेनाओं से युद्ध करे, तब सब ओर से शस्त्र और अस्त्रों के प्रहार से उठी धूम-धूली आदि से उसको ढांपकर जैसे ये शत्रुजन परस्पर अपने दूसरे को न जानें, वैसा ढंग सेनापति आदि को करना चाहिये॥४७॥

यत्र बाणा इत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः। इन्द्रबृहस्पत्यादयो देवताः। पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यत्र॑ बा॒णाः स॒म्पत॑न्ति कु॒मा॒रा वि॑शि॒खाऽइ॑व।

तन्न॒ऽइन्द्रो॒ बृह॒स्पति॒रदि॑ति॒ः शर्म॑ यच्छतु वि॒श्वाहा॒ शर्म॑ यच्छतु॥४८॥

यत्र॑। बा॒णाः। स॒म्पत॒न्तीति॑ स॒म्ऽपत॑न्ति। कु॒मा॒राः। वि॒शि॒खाऽइ॒वेति॑ वि॒शि॒खाःऽइ॑व। तत्। न॒ः। इन्द्र॑ः। बृह॒स्पति॑ः। अदि॑तिः। शर्म्म॑। य॒च्छ॒तु॒। वि॒श्वाहा॑। शर्म्म॑। य॒च्छ॒तु॒॥४८॥

पदार्थः-**(यत्र)** यस्मिन् संग्रामे **(बाणाः)** ये बणन्ति शब्दायन्ते ते शस्त्रास्त्रसमूहाः **(संपतन्ति)** **(कुमाराः)** अतिचपला वेगवन्तो बालकाः **(विशिखा इव)** यथा विगतशिखा विविधशिखा वा **(तत्)** तत्र **(नः)** अस्मभ्यम् **(इन्द्रः)** सेनापतिः **(बृहस्पतिः)** बृहत्याः सभायाः सेनाया वा पालकः **(अदितिः)** अखण्डिता सभासदलङ्कृता सभा **(शर्म)** शरणं सुखम् **(यच्छतु)** **(विश्वाहा)** सर्वाण्यहानि दिनानि **(शर्म)** सुखसाधकं गृहम् **(यच्छतु)** ददातु॥४८॥

अन्वयः-यत्र संग्रामे विशिखा कुमारा इव बाणाः संपतन्ति, तद् बृहस्पतिरिन्द्रः शर्म यच्छत्वदितिश्च विश्वाहा नः शर्म यच्छतु॥४८॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। यथा बालका इतस्ततो धावन्ति, तथा युद्धसमये योद्धारोऽपि चेष्टन्ताम्। ये युद्धे क्षताः क्षीणाः श्रान्ताः क्लान्ताश्छिन्नभिन्नाङ्गा मूर्छिताश्च भवेयुस्तान् युद्धभूमेः सद्य उत्थाप्य सुखालयं नीत्वौषधादीनि कृत्वा स्वस्थान् कुर्युः। ये च म्रियेरँस्तान् विधिवद् दहेयुः। राजजनास्तेषां मातृपितृस्त्रीबालकादीनां सदा रक्षां कुर्युः॥४८॥

पदार्थः-**(यत्र)** जिस संग्राम में **(विशिखा इव)** विना चोटी के वा बहुत चोटियों वाले **(कुमाराः)** बालकों के समान **(बाणाः)** बाण आदि शस्त्र अस्त्रों के समूह **(संपतन्ति)** अच्छे प्रकार गिरते हैं, **(तत्)** वहां **(बृहस्पतिः)** बड़ी सभा वा सेना का पालने वाला **(इन्द्रः)** सेनापति **(शर्म)** आश्रय वा सुख के **(यच्छतु)** देवे और **(अदितिः)** नित्य सभासदों से शोभायमान सभा **(विश्वाहा)** सब दिन **(नः)** हम लोगों के लिये **(शर्म)** सुख सिद्ध करने वाले घर को **(यच्छतु)** देवे॥४८॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे बालक इधर-उधर दौड़ते हैं, वैसे युद्ध के समय में योद्धा लोग भी चेष्टा करें। जो युद्ध में घायल, क्षीण, थके, पसीजे, छिदे, भिदे, कटे, फटे अङ्ग वाले मूर्छित हों, उनको युद्धभूमि से शीघ्र उठा सुखालय (शफाखाने) में पहुँचा औषध पट्टी कर स्वस्थ करें और जो मर जावें, उनको विधि से दाह दें, राजजन उनके माता-पिता, स्त्री और बालकों की सदा रक्षा करें॥४८॥

मर्माणीत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः। सोमवरुणदेवा देवताः। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

मर्माणि ते वर्मणा छादयामि सोमस्त्वा राजामृतेनानु वस्ताम्।
उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु॥४९॥

मर्माणि। ते। वर्मणा। छादयामि। सोमः। त्वा। राजा। अमृतेन। अनु। वस्ताम्। उरोः। वरीयः। वरुणः। ते। कृणोतु। जयन्तम्। त्वा। अनु। देवाः। मदन्तु॥४९॥

पदार्थः-**(मर्माणि)** यानि ताडितानि सन्ति सद्यो मरणजनकान्यङ्गानि **(ते)** तव **(वर्मणा)** देहरक्षकेन **(छादयामि)** अपवृणोमि **(सोमः)** सोम्यगुणैश्वर्यसम्पन्नः **(त्वा)** त्वाम् **(राजा)** विद्यान्यायविनयादिभिः प्रकाशमानः **(अमृतेन)** सर्वरोगनिवारकेणामृतात्मकेनौषधेन **(अनु)** पश्चात् **(वस्ताम्)** आच्छादयताम् **(उरोः)** बहुगुणैश्वर्यात् **(वरीयः)** अतिशयितं बह्वैश्वर्यम् **(वरुणः)** सर्वत उत्कृष्टः **(ते)** तुभ्यम् **(कृणोतु)** **(जयन्तम्)** दुष्टान् पराजयन्तम् **(त्वा)** त्वाम् **(अनु)** **(देवाः)** विद्वांसः **(मदन्तु)** उत्साहयन्तु॥४९॥

अन्वयः-हे योद्धः शूरवीर! अहं ते मर्माणि वर्मणा छादयामि। अयं सोमो राजाऽमृतेन त्वानुवस्ताम्। वरुणस्त उरोर्वरीयः कृणोतु, जयन्तं त्वा देवा अनु मदन्तु॥४९॥

भावार्थः-सेनापत्यादिभिः सर्वेषां योद्धॄणां शरीरादिरक्षणं सर्वतः कृत्वैते सततं प्रोत्साहनीया अनुमोदनीयाश्च, यतो विश्वतो विजयं लभेरन्॥४९॥

पदार्थः-हे युद्ध कराने वाले शूरवीर! मैं **(ते)** तेरे **(मर्माणि)** मर्मस्थलों अर्थात् जो ताड़ना किये हुए शीघ्र मरण उत्पन्न करनेवाले शरीर के अङ्ग हैं, उनको **(वर्मणा)** देह की रक्षा करनेहारे कवच से **(छादयामि)** ढांपता हूं। यह **(सोमः)** शान्ति आदि गुणों से युक्त और **(राजा)** विद्या, न्याय तथा विनय

आदि गुणों से प्रकाशमान राजा **(अमृतेन)** समस्त रोगों के दूर करने वाली अमृतरूप ओषधि से **(त्वा)** तुझ को **(अनु, वस्ताम्)** पीछे ढांपे **(वरुणः)** सबसे उत्तम गुणों वाला राजा **(ते)** तेरे **(उरोः)** बहुत गुण और ऐश्वर्य से भी **(वरीयः)** अत्यन्त ऐश्वर्य को **(कृणोतु)** करे तथा **(जयन्तम्)** दुष्टों को पराजित करते हुए **(त्वा)** तुझे **(देवाः)** विद्वान् लोग **(अनु, मदन्तु)** अनुमोदित करें अर्थात् उत्साह देवें॥४९॥

भावार्थः-सेनापति आदि को चाहिये कि सब युद्धकर्त्ताओं के शरीर आदि की रक्षा सब ओर से करके इन को निरन्तर उत्साहित और अनुमोदित करें, जिससे निश्चय करके सब से विजय को पावें॥४९॥

उदेनमित्यस्याप्रतिरथ ऋषिः। अग्निर्देवता। विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उदे॑नमुत्त॒रं न॒याग्ने॑ घृ॒तेनाहुत।

रा॒यस्पोषे॑ण॒ सꣳसृ॑ज प्र॒जया॑ च ब॒हुं कृ॑धि॥५०॥

उत्। ए॒नम्। उ॒त्त॒रामित्यु॑त्ऽत॒राम्। न॒य॒। अग्ने॑। घृ॒ते॒न॒। आ॒हु॒तेत्या॑ऽहुत। रा॒यः। पोषे॑ण। सम्। सृ॒ज॒। प्र॒जयेति॑ प्र॒ऽजया॑। च॒। ब॒हुम्। कृ॒धि॒॥५०॥

पदार्थः-**(उत्)** **(एनम्)** विजेतारम् **(उत्तराम्)** उत्कृष्टतया तरन्ति यया सेनया तां प्राप्तिविजयाम् **(नय)** **(अग्ने)** प्रकाशमय **(घृतेन)** आज्येन **(आहुत)** तृप्तिं प्राप्त **(रायः)** राज्यश्रियः **(पोषेण)** पोषेणेन **(सम्)** सम्यक् **(सृज)** योजय **(प्रजया)** बहुसन्तानैः **(च)** **(बहुम्)** अधिकं कर्म **(कृधि)** कुरु॥५०॥

अन्वयः-हे घृतेनाहुताग्ने सेनापते! त्वमेनमुत्तरामुन्नय रायस्पोषेण संसृज प्रजया च बहुं कृधि॥५०॥

भावार्थः-यः सेनाधिकारी भृत्यो वा धर्म्येण युद्धेन दुष्टान् विजयेत, तं सभासेनापतयो धनादिना बहुधा सत्कुर्युः॥५०॥

पदार्थः-हे **(घृतेन)** घृत से **(आहुत)** तृप्ति को प्राप्त हुए **(अग्ने)** प्रकाशयुक्त सेनापति तू **(एनम्)** इस जीतने वाले वीर को **(उत्तराम्)** जिससे उत्तमता से संग्राम को तरें, विजय को प्राप्त हुई उस सेना को **(उत्, नय)** उत्तम अधिकार में पहुंचा **(रायः, पोषेण)** राजलक्ष्मी की पुष्टि से **(सम्, सृज)** अच्छे प्रकार युक्त कर **(च)** और **(प्रजया)** बहुत सन्तानों से **(बहुम्)** अधिकता को प्राप्त **(कृधि)** कर॥५०॥

भावार्थः-जो सेना का अधिकारी वा भृत्य धर्मयुक्त युद्ध से दुष्टों को जीते, उसका सभा, सेना के पति धनादिकों से बहुत प्रकार सत्कार करें॥५०॥

इन्द्रेममित्यस्याप्रतिरथ ऋषिः। इन्द्रो देवता। आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

इन्द्रेमं प्रतरां नय सजातानामसद्वशी।

समेनं वर्चसा सृज देवानां भागदाऽअसत्॥५१॥

इन्द्रः। इमम्। प्रतरामिति प्रऽतराम्। नय। सजातानामिति सऽजातानाम्। असत्। वशी। सम्। एनम्। वर्चसा। सृज। देवानाम्। भागदा इति भागऽदाः। असत्॥५१॥

पदार्थः-(**इन्द्र**) सुखानां धारक (**इमम्**) विजयमानम् (**प्रतराम्**) प्रतरन्त्युल्लङ्घयन्ति शत्रुबलानि यया नीत्या ताम् (**नय**) प्रापय (**सजातानाम्**) समानजन्मनाम् (**असत्**) भवेत् (**वशी**) जितेन्द्रियः (**सम्**) सम्यक् (**एनम्**) (**वर्चसा**) विद्याप्रकाशेन (**सृज**) युङ्ग्धि (**देवानाम्**) विदुषां योद्धॄणां मध्ये (**भागदाः**) अंशप्रदः (**असत्**)॥५१॥

अन्वयः-हे इन्द्रः! त्वं सजातानां देवानामिमं प्रतरां नय यतोऽयं वश्यसत्। एनं वर्चसा संसृज यतोऽयं भागदा असत्॥५१॥

भावार्थः-युद्धे भृत्याः शत्रूणां यान् पदार्थान् प्राप्नुयुः, तान् सर्वान् सभापती राजा न स्वीकुर्यात्। किन्तु तेषां मध्याद् यथायोग्यं सत्काराय योद्धृभ्यो षोडशांशं प्रदद्याद्, यावतः पदार्थान् भृत्याः प्राप्नुयुस्तावतां षोडशांशं राज्ञे प्रदद्युः। यदि सर्वे सभेशादयो जितेन्द्रियाः स्युस्तर्ह्येतेषां कदापि पराजयो न स्यात्, यदि सभेशः स्वहितं चिकीर्षेत् तर्हि योद्धॄणामंशं स्वयं न स्वीकुर्यात्॥५१॥

पदार्थः-हे (**इन्द्र**) सुखों के धारण करनेहारे सेनापति! तू (**सजातानाम्**) समान अवस्था वाले (**देवानाम्**) विद्वान् योद्धाओं के बीच (**इमम्**) विजय को प्राप्त होते हुए इस वीरजन को (**प्रतराम्**) जिससे शत्रुओं के बलों को हटावें उस नीति को (**नय**) प्राप्त कर, जिससे यह (**वशी**) इन्द्रियों को जीतने वाला (**असत्**) हो और (**एनम्**) इसको (**वर्चसा**) विद्या के प्रकाश से (**सम्, सृज**) संसर्ग करा, जिससे यह (**भागदाः**) अलग-अलग यथायोग्य भागों का देने वाला (**असत्**) हो॥५१॥

भावार्थः-युद्ध में भृत्यजन शत्रुओं के जिन पदार्थों को पावें, उन सबों को सभापति राजा स्वीकार न करे, किन्तु उनमें से यथायोग्य सत्कार के लिये योद्धाओं को सोलहवां भाग देवे। वे भृत्यजन जितना कुछ भाग पावें, उस का सोलहवां भाग राजा के लिये देवें। जो सब सभापति आदि जितेन्द्रिय हों तो उनका कभी पराजय न हो, जो सभापति अपने हित को किया चाहे तो लड़नेहारे भृत्यों का भाग आप न लेवे॥५१॥

यस्य कुर्म इत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथ पुरोहितर्त्विग्यजमानकृत्यमाह॥

अब पुरोहित ऋत्विज् और यजमान के कृत्य को अगले मन्त्र में कहा है॥

यस्य कुर्मो गृहे हविस्तमग्ने वर्द्धया त्वम्।

तस्मै॑ दे॒वाऽअधि॑ब्रुवन्न॒यं च॒ ब्रह्म॑ण॒स्पति॑:॥५२॥

यस्य॑। कु॒र्मः। गृ॒हे। ह॒विः। तम्। अ॒ग्ने। व॒र्द्धय॒। त्वम्। तस्मै॑। दे॒वाः। अधि॑। ब्रु॒व॒न्। अ॒यम्। च॒। ब्रह्म॑णः। पति॑:॥५२॥

पदार्थः-(**यस्य**) राज्ञः (**कुर्मः**) सम्पादयामः (**गृहे**) (**हविः**) होमम् (**तम्**) (**अग्ने**) विद्वन् पुरोहित (**वर्द्धय**) अत्र **अन्येषामपि०** [अष्टा०६.३.१३७] इति दीर्घः (**त्वम्**) (**तस्मै**) तं यजमानम्। अत्र व्यत्ययेन चतुर्थी (**देवाः**) दिव्यगुणा ऋत्विजः (**अधि**) (**ब्रुवन्**) अधिकं ब्रुवन्तु। लेट्प्रयोगोऽयम्। (**अयम्**) (**च**) (**ब्रह्मणः**) वेदस्य (**पतिः**) पालको यजमानः॥५२॥

अन्वयः-हे अग्ने! वयं यस्य गृहे हविष्कुर्मस्तं त्वं वर्धय, देवास्तस्मा अधि ब्रुवन्। अयं ब्रह्मणस्पतिश्च तानधिब्रवीतु॥५२॥

भावार्थः-पुरोहितस्य तत् कर्मास्ति यतो यजमानस्योन्नतिस्स्याद्, यो यस्य यादृशं यावच्च कर्म कुर्यात्, तस्मै तादृशं तावदेव मासिकं वेतनं देयम्। सर्वे विद्वांसः सर्वान् प्रति सत्युमपदिशेयू राजा च॥५२॥

पदार्थः-हे (**अग्ने**) विद्वान् पुरोहित! हम लोग (**यस्य**) जिस राजा के (**गृहे**) घर में (**हविः**) होम (**कुर्मः**) करें, (**तम्**) उसको (**त्वम्**) तू (**वर्द्धय**) बढ़ा अर्थात् उत्साह दे तथा (**देवाः**) दिव्य गुण वाले ऋत्विज् लोग (**तस्मै**) उसको (**अधि, ब्रुवन्**) अधिक उपदेश करें (**च**) और (**अयम्**) यह (**ब्रह्मणः**) वेदों का (**पतिः**) पालन करनेहारा यजमान भी उन को शिक्षा देवे॥५२॥

भावार्थः-पुरोहित का वह काम है कि जिससे यजमान की उन्नति हो और जो, जिसका, जितना, जैसा काम करे, उसको उसी ढंग उतना ही नियम किया हुआ मासिक धन देना चाहिये। सब विद्वान् जन सब के प्रति सत्य का उपदेश करें और राजा भी सत्योपदेश करे॥५२॥

उदु त्वेत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः। अग्निर्देवता। विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथ सभापतिविषयमाह॥

अब सभापति के विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उदु॑ त्वा॒ विश्वे॑ दे॒वाऽअग्ने॒ भर॑न्तु॒ चित्ति॑भिः।
स नो॑ भव शि॒वस्त्वꣳ सु॒प्रती॑को वि॒भाव॑सुः॥५३॥

उत्। ऊँ॒ऽइत्यूँ॑। त्वा॒। विश्वे॑। दे॒वाः। अग्ने॑। भर॑न्तु॒। चित्ति॑भि॒रिति॒ चित्ति॑ऽभिः। सः। न॒ः। भ॒व॒। शि॒वः। त्वम्। सु॒प्रती॑क॒ इति॑ सु॒ऽप्रती॑कः। वि॒भाव॑सु॒रिति॑ वि॒भाऽव॑सुः॥५३॥

पदार्थः-(**उत्**) (उ) (**त्वा**) त्वाम् (**विश्वे**) सर्वे (**देवाः**) विद्वांसः (**अग्ने**) विद्वन् (**भरन्तु**) धरन्तु (**चित्तिभिः**) संज्ञानैः (**सः**) (**नः**) अस्मभ्यम् (**भव**) (**शिवः**) मङ्गलकारी (**त्वम्**) (**सुप्रतीकः**) सुष्ठु प्रतीकं प्रतीतिकरं ज्ञानं यस्य सः (**विभावसुः**) यो विविधासु भासु विद्याप्रकाशेषु वसुः वसति सः॥५३॥

अन्वयः-हे अग्ने! सभेश यं त्वा विश्वे देवाश्चित्तिभिरुद्धरन्तु, स उ त्वं नः शिवः सुप्रतीको विभावसुर्भव॥५३॥

भावार्थः-ये येभ्यो विद्यां दद्युस्ते तेषां सेवकाः स्युः॥५३॥

पदार्थः-हे **(अग्ने)** विद्वान् सभापति! जिस **(त्वा)** तुझे **(विश्वे)** सब **(देवाः)** विद्वान् जन **(चित्तिभिः)** अच्छे-अच्छे ज्ञानों से **(उद्धरन्तु)** उत्कृष्टतापूर्वक धारण और उद्धार करें अर्थात् अपनी शिक्षा से तेरे अज्ञान को दूर करें **(सः, उ)** सोई **(त्वम्)** तू **(नः)** हम लोगों के लिये **(शिवः)** मंगल करनेहारा **(सुप्रतीकः)** अच्छी प्रतीति करने वाले ज्ञान से युक्त तथा **(विभावसुः)** विविध प्रकार के विद्यासिद्धान्तों में स्थिर **(भव)** हो॥५३॥

भावार्थः-जो जिनको विद्या देवें, वे विद्या लेने वाले उन के सेवक हों॥५३॥

पञ्च दिश इत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः। दिग् देवता। स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ स्त्रीपुरुषकृत्यमाह॥

अब स्त्री-पुरुष के कृत्य को अगले मन्त्र में कहा है॥

पञ्च॒ दिशो॒ दैवी॑र्य॒ज्ञम॑वन्तु दे॒वीरपाम॑तिं दु॒र्म॒तिं बाध॑मानाः।
रा॒यस्पो॑षे य॒ज्ञप॑तिमा॒भज॑न्ती रा॒यस्पो॑षे॒ऽअधि॑ य॒ज्ञोऽअ॑स्थात्॥५४॥

पञ्च॑। दिश॑ः। दैवी॑ः। य॒ज्ञम्। अ॒व॒न्तु॒। दे॒वीः। अप॑। अम॑तिम्। दु॒र्म॑तिमिति॑ दुः॒ऽम॒तिम्। बाध॑मानाः। रा॒यः। पोषे॑। य॒ज्ञप॑ति॒मिति॑ य॒ज्ञऽप॑तिम्। आ॒भज॑न्ती॒रित्या॒ऽभज॑न्तीः। रा॒यः। पोषे॑। अधि॑। य॒ज्ञः। अ॒स्था॒त्॥५४॥

पदार्थः-**(पञ्च)** पूर्वादिचतस्रो मध्यस्था चैका **(दिशः)** आशाः **(दैवीः)** देवानामिमाः **(यज्ञम्)** सङ्गन्तव्यं सत्कर्त्तव्यं वा गृहाश्रमम् **(अवन्तु)** कामयन्ताम् **(देवीः)** दिव्या विदुष्यो ब्रह्मचारिण्यः स्त्रियः **(अप)** **(अमतिम्)** अज्ञानम् **(दुर्मतिम्)** दुष्टां प्रज्ञाम् **(बाधमानाः)** निस्सारयन्त्यः **(रायः)** धनस्य **(पोषे)** पोषणे **(यज्ञपतिम्)** राज्यपालकम् **(आभजन्तीः)** समन्तात् सेवमानाः **(रायः)** श्रियः **(पोषे)** पुष्टौ **(अधि)** **(यज्ञः)** गृहाश्रमः **(अस्थात्)** तिष्ठेत्॥५४॥

अन्वयः-अपामतिं दुर्मतिं बाधमाना दैवीर्देवीः पञ्च दिश इव विस्तृता रायस्पोषे यज्ञपतिं स्वामिनामाभजन्ती- र्यज्ञमवन्तु यतोऽयं यज्ञो रायस्पोषेऽध्यस्थादधितिष्ठेत्॥५४॥

भावार्थः-अत्र लुप्तोपमालङ्कारः। यत्र गृहाश्रमे धार्मिका विद्वांसः प्रशंसिता विदुष्य स्त्रियश्च सन्ति, तत्र दुर्व्यसनानि न जायन्ते। यदि सर्वासु दिक्षु प्रशंसिताः प्रजा भवेयुस्तर्हि राज्ञः समीपेऽन्येभ्योऽधिकैश्वर्य्यं स्यात्॥५४॥

पदार्थः-**(अप, अमतिम्)** अत्यन्त अज्ञान और **(दुर्मतिम्)** दुष्ट बुद्धि को **(बाधमानाः)** अलग करती हुईं **(दैवीः)** विद्वानों की ये **(देवीः)** दिव्य गुण वाली पण्डिता ब्रह्मचारिणी स्त्री **(पञ्च, दिशः)** पूर्व आदि

चार और एक मध्यस्थ पांच दिशाओं के तुल्य अलग-अलग कामों में बढ़ी हुई **(रायः, पोषे)** धन की पुष्टि करने के निमित्त **(यज्ञपतिम्)** गृहकृत्य वा राज्यपालन करने वाले अपने स्वामी को **(आभजन्तीः)** सब प्रकार सेवन करती हुई **(यज्ञम्)** संगति करने योग्य गृहाश्रम को **(अवन्तु)** चाहें। जिससे यह **(यज्ञः)** गृहाश्रमः **(रायः, पोषे)** धन की पुष्टाई में **(अधि, अस्थात्)** अधिकता से स्थिर हो॥५४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। जिस गृहाश्रम में धार्मिक विद्वान् और प्रशंसायुक्त पण्डिता स्त्री होती हैं, वहां दुष्ट काम नहीं होते। जो सब दिशाओं में प्रशंसित प्रजा होवें तो राजा के समीप औरों से अधिक ऐश्वर्य्य होवे॥५४॥

समिद्ध इत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

यज्ञः कथं कर्त्तव्य इत्युपदिश्यते॥

यज्ञ कैसे करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

समिद्धेऽअग्नावधि मामहानऽउक्थपत्रऽईड्यो गृभीतः।

तप्तं घर्म्मं परिगृह्यायजन्तोर्जा यद्यज्ञमयजन्त देवाः॥५५॥

समिद्ध इति सम्ऽइद्धे। अग्नौ। अधि। मामहानः। ममहान इति ममहानः। उक्थपत्र इत्युक्थऽपत्रः। ईड्यः। गृभीतः। तप्तम्। घर्म्मम्। परिगृह्येति परिऽगृह्य। अयजन्त। ऊर्जा। यत्। यज्ञम्। अयजन्त। देवाः॥५५॥

पदार्थः-**(समिद्धे)** सम्यक् प्रदीप्ते **(अग्नौ)** पावके **(अधि)** **(मामहानः)** अतिशयेन महान् पूजनीयः **(उक्थपत्रः)** उक्थानि वक्तुं योग्यानि वेदस्तोत्राणि पत्राणि विद्यागमकानि यस्य सः **(ईड्यः)** ईडितुं स्तोतुमध्येषितुं योग्यः **(गृभीतः)** गृहीतः **(तप्तम्)** तापान्वितम् **(घर्मम्)** अग्निहोत्रादिकं यज्ञम्। **घर्म इति यज्ञनामसु पठितम्॥** (निघं०३.१७) **(परिगृह्य)** सर्वतो गृहीत्वा **(अयजन्त)** यजन्तु **(ऊर्जा)** बलेन **(यत्)** यम् **(यज्ञम्)** अग्निहोत्रादिकम् **(अयजन्त)** यजन्ते **(देवाः)** विद्वांसः॥५५॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यूयं यथा देवा समिद्धेऽग्नौ यद्यं यज्ञमयजन्त, तथा योऽधि मामहान उक्थपत्र ईड्यो गृभीतोऽस्ति, तं तप्तं घर्ममूर्जा परिगृह्यायजन्त॥५५॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैर्जगदुपकाराय यथा विद्वांसोऽग्निहोत्रादिकं यज्ञमनुतिष्ठन्ति, तथाऽयमनुष्ठातव्यः॥५५॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम लोग जैसे **(देवाः)** विद्वान् जन **(समिद्धे)** अच्छे जलते हुए **(अग्नौ)** अग्नि में **(यत्)** जिस **(यज्ञम्)** अग्निहोत्र आदि यज्ञ को **(अयजन्त)** करते हैं, वैसे जो **(अधि, मामहानः)** अधिक और अत्यन्त सत्कार करने योग्य **(उक्थपत्रः)** जिसके कहने योग्य विद्यायुक्त वेद के स्तोत्र हैं, **(ईड्यः)** जो स्तुति करने तथा चाहने योग्य वा **(गृभीतः)** जिसको सज्जनों ने ग्रहण किया है, उस **(तप्तम्)** तापयुक्त **(घर्मम्)** अग्निहोत्र आदि यज्ञ को **(ऊर्जा)** बल से **(परिगृह्य)** ग्रहण करके **(अयजन्त)** किया करो॥५५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि संसार के उपकार के लिये जैसे विद्वान् लोग अग्निहोत्र यज्ञ का आचरण करते हैं, वैसे अनुष्ठान किया करें॥५५॥

दैव्यायेत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः। अग्निर्देवता। विराडार्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अथ यज्ञः कथं कर्त्तव्य इत्याह॥

अब यज्ञ कैसे करना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

दैव्या॑य ध॒र्त्रे जोष्ट्रे॑ दे॒व॒श्रीः श्रीम॑नाः श॒तप॑याः।

प॒रि॒गृह्य॑ दे॒वा य॒ज्ञमा॑यन् दे॒वा दे॒वेभ्यो॑ऽअध्व॒र्यन्तो॑ऽअस्थुः॥५६॥

दैव्या॑य। ध॒र्त्रे। जोष्ट्रे॑। दे॒व॒श्रीरिति॑ दे॒व॒ऽश्रीः। श्रीम॑ना इति॑ श्रीऽम॑नाः। श॒तप॑या॒ इति॑ श॒तऽप॑याः। प॒रि॒गृह्येति॑ परि॒ऽगृह्य॑। दे॒वाः। य॒ज्ञम्। आ॒य॒न्। दे॒वाः। दे॒वेभ्य॑ः। अ॒ध्व॒र्यन्त॑ः। अ॒स्थु॒ः॥५६॥

पदार्थः-(**दैव्याय**) दिव्येषु गुणेषु भवाय (**धर्त्रे**) धारणशीलाय (**जोष्ट्रे**) जुषमाणाय (**देवश्रीः**) श्रीयते या सा श्रीर्देवेषु विद्यते यस्य सः (**श्रीमनाः**) श्रियि मनो यस्य सः (**शतपयाः**) शतानि पयांसि दुग्धादीनि वस्तूनि यस्य सः (**परिगृह्य**) (**देवाः**) कामयमानाः (**यज्ञम्**) संगन्तव्यं गृहाश्रममग्निहोत्रादिकं वा (**आयन्**) प्राप्नुवन्तु (**देवाः**) विद्यादातारः (**देवेभ्यः**) विद्वद्भ्यः (**अध्वर्यन्तः**) आत्मनोऽध्वरमिच्छन्तः (**अस्थुः**) तिष्ठेयुः॥५६॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथाऽध्वर्यन्तो देवा विद्वांसो देवेभ्यो यज्ञेऽस्थुः, यथा दैव्याय धर्त्रे जोष्ट्रे होत्रे देवश्रीः श्रीमनाः शतपया यजमानो वर्त्तते, तथा देवा यूयं विद्याः परिगृह्य यजमायन्॥५६॥

भावार्थः-मनुष्यैः श्रीप्राप्तय उद्योगः सदैव कर्त्तव्यो यथा विद्वांसो धनलब्धये प्रयतेरंस्तद्वदनु-प्रयतितव्यम्॥५६॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे (**अध्वर्य्यन्तः**) अपने को यज्ञ की इच्छा करने वाले (**देवाः**) विद्या के दाता विद्वान् लोग (**देवेभ्यः**) विद्वानों की प्रसन्नता के लिये गृहाश्रम वा अग्निहोत्रादि यज्ञ में (**अस्थुः**) स्थिर हों वा जैसे (**दैव्याय**) अच्छे-अच्छे गुणों में प्रसिद्ध हुए (**धर्त्रे**) धारणशील तथा (**जोष्ट्रे**) प्रीति करने वाले होता के लिये (**देवश्रीः**) जो सेवन की जाती वह विद्यारूप लक्ष्मी विद्वानों में जिसकी विद्यमान हो (**श्रीमनाः**) जिसका कि लक्ष्मी में मन और (**शतपयाः**) जिसके सैकड़ों दूध आदि वस्तु हैं, वह यजमान वर्त्तमान है, वैसे (**देवाः**) विद्या के दाता तुम लोग विद्या को (**परिगृह्य**) ग्रहण करके (**यज्ञम्**) प्राप्त करने योग्य गृहाश्रम वा अग्निहोत्र आदि को (**आयन्**) प्राप्त होओ॥५६॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि धनप्राप्ति के लिये सदैव उद्योग करें, जैसे विद्वान् लोग धनप्राप्ति के लिये प्रयत्न करें, वैसे उनके अनुकूल मनुष्यों को भी यत्न करना चाहिये॥५६॥

वीतमित्यस्याप्रतिरथ ऋषिः। यज्ञो देवता। निचृदार्षी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

वी॒तꣳ ह॒विः श॑मि॒तꣳ श॑मि॒ता य॒जध्यै॑ तु॒रीयो॑ य॒ज्ञो यत्र॑ ह॒व्यमेति॑।

ततो॑ वा॒काऽआ॒शिषो॑ नो जुषन्ताम्॥५७॥

वी॒तम्। ह॒विः। श॒मि॒तम्। श॒मि॒ता। य॒जध्यै॑। तु॒रीयः॑। य॒ज्ञः। यत्र॑। ह॒व्यम्। एति॑। ततः॑। वा॒काः। आ॒शिष॒ इत्या॒ऽऽशिषः॑। न॒ः। जु॒ष॒न्ता॒म्॥५७॥

पदार्थः-(**वीतम्**) गमनशीलम् (**हविः**) होतव्यम् (**शमितम्**) उपशान्तम् (**शमिता**) उपशमादिगुणयुक्ता (**यजध्यै**) यष्टुम् (**तुरीयः**) चतुर्थः (**यज्ञः**) संगन्तव्यः (**यत्र**) (**हव्यम्**) (**एति**) गच्छति (**ततः**) तस्मात् (**वाकाः**) उच्यन्ते यास्ताः (**आशिषः**) इच्छासिद्धयः (**नः**) अस्मान् (**जुषन्ताम्**) सेवन्ताम्॥५७॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यः शमिता यजध्यै वीतं शमितं हविरग्नौ प्रक्षिपति, यस्तुरीयो यज्ञोऽस्ति, यत्र हव्यमेति, ततो वाका आशिषश्च नो जुषन्तामितीच्छत॥५७॥

भावार्थः-अग्निहोत्रादौ चत्वारः पदार्थाः सन्ति पुष्कलं पुष्टिसुगन्धिमिष्टगुणयुक्तं रोगनाशकं हविः, तच्छोधनं, यज्ञकर्त्ता, वेद्यग्न्यादिकं चेति। यथावद्धुतः पदार्थ आकाशं गत्वा पुनरावृत्येष्टसाधको भवतीति मनुष्यैर्मन्तव्यम्॥५७॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो (**शमिता**) शान्ति आदि गुणों से युक्त गृहाश्रमी (**यजध्यै**) यज्ञ करने के लिये (**वीतम्**) गमनशील (**शमितम्**) दुर्गुणों की शान्ति करने वाले (**हविः**) होम करने योग्य पदार्थ को अग्नि में छोड़ता है जो (**तुरीयः**) चौथा (**यज्ञः**) प्राप्त करने योग्य यज्ञ है तथा (**यत्र**) जहां (**हव्यम्**) होम करने योग्य पदार्थ (**एति**) प्राप्त होता है (**ततः**) उन सबों से (**वाकाः**) जो कही जाती हैं, वे (**आशिषः**) इच्छासिद्धि (**नः**) हम लोगों को (**जुषन्ताम्**) सेवन करें, ऐसी इच्छा करो॥५७॥

भावार्थः-अग्निहोत्र आदि यज्ञ में चार पदार्थ होते हैं अर्थात् बहुत-सा पुष्टि, सुगन्धि, मिष्ट और रोग विनाश करने वाला होम का पदार्थ, उसका शोधन, यज्ञ का करने वाला तथा वेदी, आग, लकड़ी आदि। यथाविधि से हवन किया हुआ पदार्थ आकाश को जाकर फिर वहां से पवन वा जल के द्वारा आकर इच्छा की सिद्धि करने वाला होता है, ऐसा मनुष्य को जानना चाहिये॥५७॥

सूर्यरश्मिरित्यस्याप्रतिरथ ऋषिः। अग्निर्देवता। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ सूर्य्यलोकस्वरूपमाह॥

अब अगले मन्त्र में सूर्य्यलोक के स्वरूप का कथन किया है॥

सूर्य॑रश्मि॒र्हरि॑केशः पु॒रस्ता॑त् स॒वि॒ता ज्योति॒रुद॑याँ२ऽअज॑स्त्रम्।

तस्य॑ पू॒षा प्र॑स॒वे या॑ति वि॒द्वान्त्स॒म्पश्य॒न् विश्वा॒ भुव॑नानि गो॒पाः॥५८॥

सूर्य॑रश्मि॒रिति॒ सूर्य्य॑ऽरश्मिः। हरि॑केश॒ इति॒ हरि॑ऽकेशः। पु॒रस्ता॑त्। स॒वि॒ता। ज्योति॑ः। उत्। अ॒या॒न्। अज॑स्रम्। तस्य॑। पू॒षा। प्र॒स॒व इति॑ प्रऽस॒वे। या॒ति॒। वि॒द्वान्। सं॒पश्य॒न्निति॑ स॒म्ऽपश्य॑न्। विश्वा॑। भुव॑नानि। गो॒पाः॥५८॥

पदार्थः-(सूर्यरश्मिः) (हरिकेशः) हरितवर्णः **(पुरस्तात्)** प्रथमतः **(सविता)** सूर्यलोकः **(ज्योतिः)** द्युतिम् **(उत्) (अयान्) (अजस्रम्)** निरन्तरम् **(तस्य) (पूषा)** पुष्टिकर्त्ता **(प्रसवे)** प्रसूते जगति **(याति)** प्राप्नोति **(विद्वान्)** विद्यायुक्तः **(संपश्यन्)** सम्यक् प्रेक्षमाणः **(विश्वा)** सर्वान् **(भुवनानि)** लोकान् **(गोपाः)** पृथिव्यादयो जगद्रक्षकाः॥५८॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यः पुरस्तात् सविता ज्योतिः प्रयच्छति, यस्मिन् हरिकेशः सूर्यरश्मिर्वर्तते, यः प्रसवेऽजस्रं पूषाऽस्ति, यं विद्वान् संपश्यन् सन् तद्विद्यां याति, तस्य सकाशाद् गोपा विश्वा भुवनान्युदयान्, स सूर्यमण्डलोऽतिप्रकाशमय इति यूयं वित्त॥५८॥

भावार्थः-योऽयं सूर्यलोकस्तत्प्रकाशे शुक्लहरितादयोऽनेके किरणाः सन्ति, ये सर्वाँल्लोकानभिरक्षन्ति। अत एव सर्वस्व रक्षणं भवतीति वेद्यम्॥५८॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो **(पुरस्तात्)** पहिले से **(सविता)** सूर्यलोक **(ज्योतिः)** प्रकाश को देता है, जिसमें **(हरिकेशः)** हरे रंग वाली **(सूर्यरश्मिः)** सूर्य्य की किरण वर्त्तमान हैं, जो **(प्रसवे)** उत्पन्न हुए जगत् में **(अजस्रम्)** निरन्तर **(पूषा)** पुष्टि करने वाला है, जिसको **(विद्वान्)** विद्यायुक्त पुरुष **(संपश्यन्)** अच्छे प्रकार देखता हुआ उसकी विद्या को **(याति)** प्राप्त होता है, **(तस्य)** उसके सकाश से **(गोपाः)** संसार की रक्षा करने वाले पृथिवी आदि लोक और तारागण भी **(विश्वा)** समस्त **(भुवनानि)** लोक-लोकान्तरों को **(उदयान्)** प्रकाशित करते हैं, वह सूर्य्यमण्डल अतिप्रकाशमय है, यह तुम जानो॥५८॥

भावार्थः-जो यह सूर्य्यलोक है, उसके प्रकाश में श्वेत और हरी रङ्ग-विरङ्ग अनेक किरणें हैं, जो सब लोकों की रक्षा करती हैं, इसी से सब की सब प्रकार से सदा रक्षा होती है, यह जानने योग्य है॥५८॥

विमान इत्यस्य विश्वावसुर्ऋषिः। आदित्यो देवता। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथेश्वरेण किमर्थः सूर्यो निर्मित इत्युपदिश्यते॥

अब ईश्वर ने किसलिये सूर्य का निर्माण किया है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

वि॒मान॑ऽए॒ष दि॒वो मध्य॑ऽआस्तऽआपप्रि॒वान् रोद॑सीऽअ॒न्तरि॑क्षम्।

स वि॒श्वाची॑र॒भिच॑ष्टे घृ॒ताची॑र॒न्त॒रा पूर्व॒मप॑रं च के॒तुम्॥५९॥

वि॒मान॒ इति॑ वि॒ऽमानः॑। ए॒षः। दि॒वः। मध्ये॑। आ॒स्ते॒। आ॒प॒प्रि॒वानित्या॑ऽपप्रि॒वान्। रोद॑सी॒ इति॒ रोद॑सी। अ॒न्तरि॑क्षम्। सः। वि॒श्वाचीः॑। अ॒भि। च॒ष्टे॒। घृ॒ताचीः॑। अ॒न्त॒रा। पूर्व॑म्। अप॑रम्। च॒। के॒तुम्॥५९॥

पदार्थः-(**विमानः**) विमानमिव स्थितः (**एषः**) सूर्यः (**दिवः**) प्रकाशस्य (**मध्ये**) (**आस्ते**) तिष्ठति (**आपप्रिवान्**) स्वतेजसा व्याप्तवान् (**रोदसी**) प्रकाशभूमी (**अन्तरिक्षम्**) अवकाशम् (**सः**) (**विश्वाचीः**) या विश्वमञ्चन्ति प्राप्नुवन्ति ता द्युतीः (**अभि**) (**चष्टे**) पश्यति। **चष्ट इति पश्यतिकर्मा॥** (निघं०३.११) (**घृताचीः**) या घृतमुदकमञ्चन्तिः ताः (**अन्तरा**) द्वयोर्मध्ये (**पूर्वम्**) (**अपरम्**) (**च**) (**केतुम्**) प्रज्ञापकं तेजः॥५९॥

अन्वयः-विद्वान् य एष दिवो मध्ये विमानो रोदसी अन्तरिक्षमापप्रिवान् सन्नास्ते, स विश्वाचीर्घृताचीर्द्युती- र्विस्तारयति, पूर्वमपरमन्तरा च केतुमभिचष्टे, तं विजानीयात्॥५९॥

भावार्थः-यः सूर्यलोको ब्रह्माण्डमध्ये स्थितः सन् स्वप्रकाशेन सर्वमभिव्याप्नोति, स सर्वाभिकर्षको वर्त्तत इति मनुष्यैर्वेद्यम्॥५९॥

पदार्थः-विद्यावान् पुरुष जो (**एषः**) यह सूर्य्यमण्डल (**दिवः**) प्रकाश के (**मध्ये**) बीच में (**विमानः**) विमान अर्थात् जो आकाशादि मार्गों में आश्चर्य्यरूप से चलनेहारा है, उसके समान और (**रोदसी**) प्रकाश-भूमि और (**अन्तरिक्षम्**) अवकाश को (**आपप्रिवान्**) अपने तेज से व्याप्त हुआ (**आस्ते**) स्थिर हो रहा है, (**सः**) वह (**विश्वाचीः**) जो संसार को प्राप्त होती अर्थात् अपने उदय से प्रकाशित करतीं वा (**घृताचीः**) जल को प्राप्त कराती हैं, उन अपनी द्युतियों अर्थात् प्रकाशों को विस्तृत करता है, (**पूर्वम्**) आगे दिन (**अपरम्**) पीछे रात्रि (**च**) और (**अन्तरा**) दोनों के बीच में (**केतुम्**) सब लोकों के प्रकाशक तेज को (**अभिचष्टे**) देखता है, उसे जाने॥५९॥

भावार्थः-जो सूर्य्यलोक ब्रह्माण्ड के बीच स्थित हुआ अपने प्रकाश से सब को व्याप्त हो रहा है, वह सब का अच्छा आकर्षण करने वाला है, ऐसा मनुष्यों को जानना चाहिये॥५९॥

उक्षा इत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः। आदित्यो देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उ॒क्षा स॑मु॒द्रोऽअ॑रु॒णः सु॑प॒र्णः पूर्व॑स्य॒ योनिं॑ पि॒तुरावि॑वेश।

मध्ये॑ दि॒वो निहि॑त॒: पृश्नि॒रश्मा॒ वि च॑क्रमे॒ रज॑सस्पा॒त्यन्तौ॑॥६०॥

उ॒क्षा। स॒मु॒द्रः। अ॒रु॒णः। सु॒प॒र्ण इति॑ सु॒ऽप॒र्णः। पूर्व॑स्य। योनि॑म्। पि॒तुः। आ। वि॒वे॒श॒। मध्ये॑। दि॒वः। निहि॑त॒ इति॒ निऽहि॑तः। पृश्नि॑ः। अश्मा॑। वि। च॒क्र॒मे॒। रज॑सः। पा॒ति॒। अन्तौ॑॥६०॥

पदार्थः-(**उक्षा**) वृष्ट्या सेचकः (**समुद्रः**) सम्यग् द्रवन्त्यापो यस्मात् सः (**अरुणः**) आरक्तः (**सुपर्णः**) शोभनानि पर्णानि पालनानि यस्मात् (**पूर्वस्य**) पूर्णस्य (**योनिम्**) कारणम् (**पितुः**) उत्पादिकाया विद्युतः (**आ**) (**विवेश**) प्रविशति (**मध्ये**) (**दिवः**) प्रकाशमयस्य (**निहितः**) ईश्वरेण स्थापितः (**पृश्निः**)

विचित्रवर्णः सूर्य्यः **(अश्मा)** अश्नुते व्याप्नोति स मेघः। **अश्मेति मेघनामसु पठितम्॥** (निघं०१.१०) **(वि) (चक्रमे)** विविधतया क्रमते **(रजसः)** लोकान् **(पाति)** रक्षति **(अन्तौ)** बन्धने॥६०॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! य ईश्वरेण दिवो मध्ये निहित उक्षा समुद्रोऽरुणः सुपर्णः पृश्निरश्मा मेघश्च रजसोऽन्तौ विचक्रमे पाति च पूर्वस्य पितुर्योनिमाविवेश, स सम्यगुपयोक्तव्यः॥६०॥

भावार्थः-मनुष्यैरीश्वरस्यानेके धन्यवादा वाच्याः, कुतो येन स्वविज्ञापनाय जगत्पालननिमित्तः सूर्यादिदृष्टान्तः प्रदर्शितः, स कथं न सर्वशक्तिमान् भवेत्॥६०॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो परमेश्वर ने **(दिवः)** प्रकाश के **(मध्ये)** बीच में **(निहितः)** स्थापित किया हुआ **(उक्षा)** वृष्टि-जल से सींचने वाला **(समुद्रः)** जिससे कि अच्छे प्रकार जल गिरते हैं, **(अरुणः)** जो लाल रङ्ग वाला तथा **(सुपर्णः)** जिससे कि अच्छी पालना होती है, **(पृश्निः)** वह विचित्र रङ्ग वाला सूर्यरूप तेज और **(अश्मा)** मेघ **(रजसः)** लोकों को **(अन्तौ)** बन्धन के निमित्त **(वि, चक्रमे)** अनेक प्रकार घूमता तथा **(पाति)** रक्षा करता है तथा **(पूर्वस्य)** जो पूर्ण **(पितुः)** इस सूर्य्यमण्डल के तेज को उत्पन्न करने वाला बिजुलीरूप अग्नि है, उसके **(योनिम्)** कारण में **(आ, विवेश)** प्रवेश करता है, वह सूर्य्य और मेघ अच्छे प्रकार उपयोग करने योग्य हैं॥६०॥

भावार्थः-मनुष्यों को ईश्वर के अनेक धन्यवाद कहने चाहियें, क्योंकि जिस ईश्वर ने अपने जानने के लिये जगत् की रक्षा का कारणरूप सूर्य्य आदि दृष्टान्त दिखाया है, वह कैसे न सर्वशक्तिमान् हो॥६०॥

इन्द्रं विश्वेत्यस्य मधुच्छन्दाः सुतजेता ऋषिः। इन्द्रो देवता। निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनर्जगत्स्रष्टुरीश्वरस्य गुणानाह॥

फिर जगत् बनाने वाले ईश्वर के गुणों को अगले मन्त्र में कहा है॥

इन्द्रं विश्वाऽअवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः।

रथीतमꣳ रथीनां वाजानाꣳ सत्पतिं पतिम्॥६१॥

इन्द्रम्। विश्वाः। अवीवृधन्। समुद्रव्यचसमिति समुद्रऽव्यचसम्। गिरः। रथीतमम्। रथीतममिति रथिऽतमम्। रथीनाम्। रथिनामिति रथिनाम्। वाजानाम्। सत्पतिमिति सत्ऽपतिम्। पतिम्॥६१॥

पदार्थः-**(इन्द्रम्)** परमात्मानम् **(विश्वाः)** सर्वाः **(अवीवृधन्)** वर्धयन्तु **(समुद्रव्यचसम्)** समुद्रस्यान्तरिक्षस्य व्यचा व्याप्तिरिव व्याप्तिर्यस्य तम् **(गिरः)** वाचः **(रथीतमम्)** प्रशस्ता रथा सुखहेतवः पदार्था विद्यन्ते यस्मिन् सोऽतिशयितस्तम् **(रथीनाम्)** प्रशस्तरथयुक्तानाम् **(वाजानाम्)** ज्ञानादिगुणयुक्तानां जीवानाम् **(सत्पतिम्)** सदविनाशी चासौ पतिः पालकश्च यद्वा सतामविनाशिनां कारणानां जीवानां च पालकस्तम् **(पतिम्)** स्वामिनम्॥६१॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यूयं यं समुद्रव्यचसं रथीनां रथीतमं वाजानां पतिं सत्पतिमिन्द्रं परमात्मानं विश्वा गिरोऽवीवृधँस्तं सततमुपाध्वम्॥६१॥

भावार्थः-सर्वैर्मनुष्यैर्यं सर्वे वेदाः प्रशंसन्ति, यं योगिन उपासते, यं प्राप्य मुक्ता आनन्दं भुञ्जते, स एव उपास्य इष्टो देवो मन्तव्यः॥६१॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम जिस **(समुद्रव्यचसम्)** अन्तरिक्ष की व्याप्ति के समान व्याप्ति वाले **(रथीनाम्)** प्रशंसायुक्त सुख के हेतु पदार्थ वालों में **(रथीतमम्)** अत्यन्त प्रशंसित सुख के हेतु पदार्थों से युक्त **(वाजानाम्)** ज्ञानी आदि गुणी जनों के **(पतिम्)** स्वामी **(सत्पतिम्)** विनाशरहित वा विनाशरहित कारण और जीवों के पालनेहारे **(इन्द्रम्)** परमात्मा को **(विश्वाः)** समस्त **(गिरः)** वाणी **(अवीवृधन्)** बढ़ाती अर्थात् विस्तार से कहती हैं, उस परमात्मा की निरन्तर उपासना करो॥६१॥

भावार्थः-सब मनुष्यों को चाहिये कि सब वेद जिसकी प्रशंसा करते, योगीजन जिसकी उपासना करते और मुक्त पुरुष जिसको प्राप्त होकर आनन्द भोगते हैं, उसी को उपासना के योग्य इष्टदेव मानें॥६१॥

देवहूरित्यस्य विधृतिर्ऋषिः। यज्ञो देवता। विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनरीश्वरः कीदृशोऽस्तीत्याह॥

फिर ईश्वर कैसा है, यह अगले मन्त्र में कहा है॥

देवहूर्यज्ञऽआ च वक्षत् सुम्नहूर्यज्ञऽआ च वक्षत्।
यक्षदग्निर्देवो देवाँ२ऽआ च वक्षत्॥६२॥

देवहूरिति देवऽहूः। यज्ञः। आ। च। वक्षत्। सुम्नहूरिति सुम्नऽहूः। यज्ञः। आ। च। वक्षत्। यक्षत्। अग्निः। देवः। देवान्। आ। च। वक्षत्॥६२॥

पदार्थः-**(देवहूः)** देवान् विदुष आह्वयति सः **(यज्ञः)** पूजनीयः **(आ)** **(च)** **(वक्षत्)** प्रापयेत् **(सुम्नहूः)** यः सुम्नानि सुखान्याह्वयति सः **(यज्ञः)** संगन्तव्यः **(आ)** **(च)** **(वक्षत्)** **(यक्षत्)** यजेत् दद्यात् **(अग्निः)** स्वयंप्रकाशः **(देवः)** सकलसुखदातेश्वरः **(देवान्)** दिव्यान् गुणान् भोगान् वा **(आ)** **(च)** **(वक्षत्)** प्रापयेत्॥६२॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यो देवहूर्यज्ञ ईश्वरोऽस्मान् सत्यमावक्षत्, चादसत्यादुद्धरेत्। यः सुम्नहूर्यज्ञोऽस्मभ्यं सुखान्यावक्षत्, दुःखानि च नाशयेत्। योऽग्निर्देवोऽस्मान् देवान् यक्षदावक्षच्च तं भवन्तः सततं सेवन्ताम्॥६२॥

भावार्थः-य आप्तैर्विद्वद्भिरुपास्यते, यश्च सुखस्वरूपो मङ्गलप्रदः परमेश्वरोऽस्ति, तं समाधियोगेन मनुष्या उपासीरन्॥६२॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! जो **(देवहू:)** विद्वानों को बुलाने **(यज्ञ:)** पूजा करने योग्य ईश्वर हम लोगों को सत्य **(आ, वक्षत्)** उपदेश करे **(च)** और असत्य से हमारा उद्धार करे वा जो **(सुम्नहू:)** सुखों को बुलाने वाला **(यज्ञ:)** पूजन करने योग्य ईश्वर हम लोगों के लिये सुखों को **(आ, वक्षत्)** प्राप्त करे **(च)** और दु:खों का विनाश करे वा जो **(अग्नि:)** आप प्रकाशमान **(देव:)** समस्त सुख का देने वाला ईश्वर हम लोगों को **(देवान्)** उत्तम गुणों वा भोगों को **(यक्षत्)** देवे **(च)** और **(आ, वक्षत्)** पहुँचावे अर्थात् कार्य्यान्तर से प्राप्त करे, उसको आप लोग निरन्तर सेवो॥६२॥

भावार्थ:-जो उत्तम शास्त्र जानने वाले विद्वानों से उपासना किया जाता तथा जो सुखस्वरूप और मङ्गल कार्य्यों का देने वाला परमेश्वर है, उसकी समाधियोग से मनुष्य उपासना करें॥६२॥

वाजस्येत्यस्य विधृतिर्ऋषि:। इन्द्रो देवता। विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्द:। गान्धार: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

वाजस्य मा प्रसुवऽउद्ग्राभेणोदग्रभीत्।

अधा सुपत्नानिन्द्रो मे निग्राभेणाधराँ२ऽअक:॥६३॥

वाजस्य। मा। प्रसव इति प्रऽसुव: उद्ग्राभेणेत्युत्ऽग्राभेण। उत्। अग्रभीत्। अध। सुपत्नानिति सुऽपत्नान्। इन्द्र:। मे। निग्राभेणेति निऽग्राभेण। अधरान्। अकरित्यक:॥६३॥

पदार्थ:-**(वाजस्य)** विज्ञानस्य **(मा)** माम् **(प्रसव:)** उत्पादक: **(उद्ग्राभेण)** उत्कृष्टतया गृह्णाति येन तेन **(उत्)** **(अग्रभीत्)** **(अध)** अथ। अत्र **निपातस्य च** [अष्टा०६.३.१३६] इति दीर्घ:। **(सपत्नान्)** शत्रून् **(इन्द्र:)** पति: **(मे)** मम **(निग्राभेण)** निग्रहेण **(अधरान्)** अध:पतितान् **(अक:)** कुर्यात्॥६३॥

अन्वय:-हे मनुष्या:! यथेन्द्रो वाजस्य प्रसवो मा मामुद्ग्राभेणोद्ग्रभीत्। तथाऽधाऽथ यो मे मम सपत्नान् निग्राभेणाधरानकस्तं यूयमपि सेनापतिं कुरुत॥६३॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यथेश्वरस्तथा ये मनुष्या: पालनाय धार्मिकान् मनुष्यान् संगृह्णन्ति, ताडनाय दुष्टाँश्च निगृह्णन्ति, त एव राज्यं कर्त्तुं शक्नुवन्ति॥६३॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! जैसे **(इन्द्र:)** पालन करने वाला **(वाजस्य)** विशेष ज्ञान का **(प्रसव:)** उत्पन्न करने वाला ईश्वर **(मा)** मुझे **(उद्ग्राभेण)** अच्छे ग्रहण करने के साधन से **(उद्, अग्रभीत्)** ग्रहण करे, वैसे जो **(अध)** इसके पीछे उसके अनुसार पालना करने और विशेष ज्ञान सिखाने वाला पुरुष **(मे)** मेरे **(सपत्नान्)** शत्रुओं को **(निग्राभेण)** पराजय से **(अधरान्)** नीचे गिराया **(अक:)** करे, उसको तुम लोग भी सेनापति करो॥६३॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे ईश्वर पालना करे, वैसे जो मनुष्य पालना के लिये धार्मिक मनुष्यों को अच्छे प्रकार ग्रहण करते और दण्ड देने के लिये दुष्टों को निग्रह अर्थात् नीचा दिखाते हैं, वे ही राज्य कर सकते हैं॥६३॥

उद्ग्राभमित्यस्य विधृतिर्ऋषिः। इन्द्राग्नी देवते। आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनरग्रे राजधर्म उपदिश्यते॥

फिर अगले मन्त्र में राजधर्म का उपदेश किया है॥

उद्ग्राभं च निग्राभं च ब्रह्म देवाऽअवीवृधन्।
अधा सपत्नानिन्द्राग्नी मे विषूचीनान् व्यस्यताम्॥६४॥

उद्ग्राभमित्युत्ऽग्राभम्। च। निग्राभमिति निऽग्राभम्। च। ब्रह्म। देवाः। अवीवृधन्। अध। सपत्नानिति सऽपत्नान्। इन्द्राग्नीऽइतीन्द्राग्नी। मे। विषूचीनान्। वि। अस्यताम्॥६४॥

पदार्थः-(**उद्ग्राभम्**) उत्कृष्टतया ग्रहणम् (**च**) (**निग्राभम्**) निग्रहम् (**च**) (**ब्रह्म**) धनम् (**देवाः**) विद्वांसः (**अवीवृधन्**) वर्धयन्तु (**अध**) अथ। अत्र **निपातस्य च** [अष्टा०६.३.१३६] इति दीर्घः (**सपत्नान्**) अरीन् (**इन्द्राग्नी**) विद्युत्पावकाविव सेनापती (**मे**) मम (**विषूचीनान्**) विरुद्धमाचरतः (**वि**) (**अस्यताम्**)॥६४॥

अन्वयः-देवा उद्ग्राभं च निग्राभं च कृत्वा ब्रह्मावीवृधन्, अधाथ सेनापती इन्द्राग्नी इव मे विषूचीनान् सपत्नान् व्यस्यतामुत्क्षिपताम्॥६४॥

भावार्थः-ये मनुष्याः सज्जनान् सत्कृत्य दुष्टान् निहत्य ब्रह्म वर्द्धयित्वा निष्कण्टकं राज्यं संपादयन्ति, त एव प्रशंसिताः। यो राजा राष्ट्रवासिनः सज्जनान् सत्कृत्य दुष्टान् निरस्यैश्वर्यं वर्धयति, तस्यैव सभासेनापती शत्रुनाशं कर्त्तुं शक्नुयाताम्॥६४॥

पदार्थः-(**देवाः**) विद्वान् जन (**उद्ग्राभम्**) अत्यन्त उत्साह से ग्रहण (**च**) और (**निग्राभम्, च**) त्याग भी करके (**ब्रह्म**) धन को (**अवीवृधन्**) बढ़ावें (**अध**) इसके अनन्तर (**इन्द्राग्नी**) बिजुली और आग के समान दो सेनापति (**मे**) मेरे (**विषूचीनान्**) विरोधभाव को वर्त्तने वाले (**सपत्नान्**) वैरियों को (**व्यस्यताम्**) अच्छे प्रकार उठा-उठा के पटकें॥६४॥

भावार्थः-जो मनुष्य सज्जनों का सत्कार और दुष्टों को पीट, मार, धन को बढ़ा निष्कण्टक राज्य का सम्पादन करते हैं, वे ही प्रशंसित होते हैं। जो राजा राज्य में वसनेहारे सज्जनों का सत्कार और दुष्टों का निरादर करके अपना तथा प्रजा के ऐश्वर्य्य को बढ़ाता है, उसी के सभा और सेना की रक्षा करने वाले जन शत्रुओं नाश कर सकें॥६४॥

क्रमध्वमित्यस्य विधृतिर्ऋषिः। अग्निर्देवता। विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

क्रमध्वमग्निना नाकमुख्यꣳ हस्तेषु बिभ्रतः।

दिवस्पृष्ठꣳ स्वर्गत्वा मिश्रा देवेभिराध्वम्॥६५॥

क्रमध्वम्। अग्निना। नाकम्। उख्यम्। हस्तेषु। बिभ्रतः। दिवः। पृष्ठम्। स्वः। गत्वा। मिश्राः। देवेभिः। आध्वम्॥६५॥

पदार्थः-(**क्रमध्वम्**) पराक्रमं कुरुत (**अग्निना**) विद्युता (**नाकम्**) अविद्यमानदुःखम् (**उख्यम्**) उखायां संस्कृतं भक्ष्यमोदनादिकम्। अत्र **शूलोखाद्यत्॥** (अष्टा०४.२.१६) अनेन संस्कृतं भक्षा इत्यर्थे यत् (**हस्तेषु**) (**बिभ्रतः**) धरन्तः (**दिवः**) न्यायविनयादिप्रकाशजातस्य (**पृष्ठम्**) ज्ञीप्सितम् (**स्वः**) सुखम् (**गत्वा**) प्राप्य (**मिश्राः**) मिलिताः (**देवेभिः**) विद्वद्भिः (**आध्वम्**) उपविशत॥६५॥

अन्वयः-हे वीराः! यूयमग्निना नाकमुख्यं च हस्तेषु बिभ्रतो धरन्तः क्रमध्वम्, देवेभिर्मिश्राः सन्तो दिवस्पृष्ठं स्वर्गत्वाध्वम्॥६५॥

भावार्थः-राजपुरुषा विद्वद्भिः सह संप्रयोगेणाग्नेयास्त्रादिना शत्रुषु पराक्रमन्तां स्थिरं सुखं प्राप्य पुनः पुनः प्रयतेरन्॥६५॥

पदार्थः-हे वीरो! तुम (**अग्निना**) बिजुली से (**नाकम्**) अत्यन्त सुख और (**उख्यम्**) पात्र में पकाये हुए चावल, दाल, तर्कारी आदि भोजन को (**हस्तेषु**) हाथों में (**बिभ्रतः**) धारण किये हुए (**क्रमध्वम्**) पराक्रम करो। (**देवेभिः**) विद्वानों से (**मिश्राः**) मिले हुए (**दिवः**) न्याय और विनय आदि गुणों के प्रकाश से उत्पन्न हुए दिव्य (**पृष्ठम्**) चाहे हुए (**स्वः**) सुख को (**गत्वा**) प्राप्त होकर (**आध्वम्**) स्थित होओ॥६५॥

भावार्थः-राजपुरुष विद्वानों के साथ सम्बन्ध कर आग्नेय आदि अस्त्रों आदि से शत्रुओं में पराक्रम करें तथा स्थिर सुख को पाकर बारम्बार अच्छा यत्न करें॥६५॥

प्राचीमित्यस्य विधृतिर्ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय के अगले मन्त्र में कहा है॥

प्राचीमनु प्रदिशं प्रेहि विद्वानग्नेरग्ने पुरोऽअग्निर्भवेह।

विश्वाऽआशा दीद्यानो वि भाह्यूर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे॥६६॥

प्राचीम्। अनु। प्रदिशमिति प्रऽदिशम्। प्र। इहि। विद्वान्। अग्नेः। अग्ने। पुरोऽअग्निरिति पुरःऽअग्निः। भव। इह। विश्वाः। आशाः। दीद्यानः। वि। भाहि। ऊर्ज्जम्। नः। धेहि। द्विऽपदे। चतुष्पदे। चतुःपद इति चतुःऽपदे॥६६॥

पदार्थः-(**प्राचीम्**) पूर्वाम् (**अनु**) (**प्रदिशम्**) प्रकृष्टां दिशम् (**प्र**) (**इहि**) प्राप्नुहि (**विद्वान्**) (**अग्नेः**) आग्नेयास्त्रादियोगात् (**अग्ने**) शत्रुदाहक (**पुरोऽअग्निः**) अग्रगन्ता पावक इव (**भव**) (**इह**) अस्मिन् राज्यकर्मणि (**विश्वाः**) अखिलाः (**आशाः**) दिशः। **आशा इति दिङ्नामसु पठितम्॥** (निघं०१.६) (**दीद्यानः**) देदीप्यमानः सूर्य्य इव (**वि, भाहि**) प्रकाशय (**ऊर्ज्जम्**) अन्नादिकम् (**नः**) अस्माकम् (**धेहि**) (**द्विपदे**) मनुष्याद्याय (**चतुष्पदे**) गवाद्याय॥६६॥

अन्वयः-हे अग्ने सभेश! त्वं प्राचीं प्रदिशमनुप्रेहि, त्वमिहाग्नेः पुरो अग्निरिव विद्वान् भव। विश्वा आशा दीद्यानः सन् नोऽस्माकं द्विपदे चतुष्पदे ऊर्जं धेहि, विद्याविनयपराक्रमैरभयं विभाहि॥६६॥

भावार्थः-ये पूर्णेन ब्रह्मचर्येण सर्वा विद्या अभ्यस्य युद्धविद्यां विदित्वा सर्वासु दिक्षु स्तूयन्ते, ते मनुष्याणां पश्वादीनां च भक्ष्यभोज्यमुन्नीय रक्षां विधायानन्दिता भवन्तु॥६६॥

पदार्थः-हे (**अग्ने**) शत्रुओं के जलानेहारे सभापति! तू (**प्राचीम्**) पूर्व (**प्रदिशम्**) दिशा की ओर को (**अनु, प्र, इहि**) अनुकूलता से प्राप्त हो, (**इह**) इस राज्यकर्म में (**अग्नेः**) आग्नेय अस्त्र आदि के योग से (**पुरोऽअग्निः**) अग्नि के तुल्य अग्रगामी (**विद्वान्**) कार्य्य के जानने वाले विद्वान् (**भव**) होओ (**विश्वाः**) समस्त (**आशाः**) दिशाओं को (**दीद्यानः**) निरन्तर प्रकाशित करते हुए सूर्य्य के समान (**नः**) हम लोगों के (**द्विपदे**) मनुष्यादि और (**चतुष्पदे**) गौ आदि पशुओं के लिये (**ऊर्ज्जम्**) अन्नादि पदार्थ को (**धेहि**) धारण कर तथा विद्या, विनय और पराक्रम से अभय का (**वि, भाहि**) प्रकाश कर॥६६॥

भावार्थः-जो पूर्ण ब्रह्मचर्य्य से समस्त विद्याओं का अभ्यास कर युद्धविद्याओं को जान सब दिशाओं में स्तुति को प्राप्त होते हैं, वे मनुष्यों और पशुओं के खाने योग्य पदार्थों की उन्नति और रक्षा का विधान कर आनन्दयुक्त होते हैं॥६६॥

पृथिव्या इत्यस्य विधृतिर्ऋषिः। अग्निर्देवता। पिपीलिकामध्या बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनर्योगिगुणा उपदिश्यन्ते॥

फिर योगियों के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

पृथिव्याऽअहमुदन्तरिक्षमारुहमन्तरिक्षाद् दिवमारुहम्।

दिवो नाकस्य पृष्ठात् स्वर्ज्योतिरगामहम्॥६७॥

पृथिव्याः। अहम्। उत्। अन्तरिक्षम्। आ। अरुहम्। अन्तरिक्षात्। दिवम्। आ। अरुहम्। दिवः। नाकस्य। पृष्ठात्। स्वः। ज्योतिः। अगाम्। अहम्॥६७॥

पदार्थः-(**पृथिव्याः**) भूमेर्मध्ये (**अहम्**) (**उत्**) (**अन्तरिक्षम्**) आकाशम् (**आ**) (**अरुहम्**) रोहेयम् (**अन्तरिक्षात्**) आकाशात् (**दिवम्**) प्रकाशमानं सूर्यम् (**आ**) (**अरुहम्**) समन्ताद् रोहेयम् (**दिवः**)

द्योतमानस्य **(नाकस्य)** सुखनिमित्तस्य **(पृष्ठात्)** समीपात् **(स्वः)** सुखम् **(ज्योतिः)** ज्ञानप्रकाशम् **(अगाम्)** प्राप्नुयाम् **(अहम्)**॥६७॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा कृतयोगाङ्गानुष्ठानसंयमसिद्धोऽहं पृथिव्या अन्तरिक्षमुदारुहम्, अन्तरिक्षाद् दिवमारुहम्, नाकस्य दिवः पृष्ठात् स्वर्ज्योतिश्चाहमगाम्, तथा यूयमप्याचरत॥६७॥

भावार्थः-यदा मनुष्यः स्वात्मना सह परमात्मानं युङ्क्ते तदाऽणिमादयः सिद्धयः प्रादुर्भवन्ति, ततोऽव्याहतगत्याभीष्टानि स्थानानि गन्तुं शक्नोति नान्यथा॥६७॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे किये हुए योग के अङ्गों के अनुष्ठान संयमसिद्ध अर्थात् धारणा, ध्यान और समाधि में परिपूर्ण **(अहम्)** मैं **(पृथिव्याः)** पृथिवी के बीच **(अन्तरिक्षम्)** आकाश को **(उद्, आ, अरुहम्)** उठ जाऊं वा **(अन्तरिक्षात्)** आकाश से **(दिवम्)** प्रकाशमान सूर्य्यलोक को **(आ, अरुहम्)** चढ़ जाऊं वा **(नाकस्य)** सुख करानेहारे **(दिवः)** प्रकाशमान उस सूर्य्यलोक के **(पृष्ठात्)** समीप से **(स्वः)** अत्यन्त सुख और **(ज्योतिः)** ज्ञान के प्रकाश को **(अहम्)** मैं **(अगाम्)** प्राप्त होऊं, वैसा तुम भी आचरण करो॥६७॥

भावार्थः-जब मनुष्य अपने आत्मा के साथ परमात्मा के योग को प्राप्त होता है, तब अणिमादि सिद्धि उत्पन्न होती हैं, उसके पीछे कहीं से न रुकने वाली गति से अभीष्ट स्थानों को जा सकता है, अन्यथा नहीं॥६७॥

स्वर्यन्त इत्यस्य विधृतिर्ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

स्व॒र्यन्तो॒ नापे॑क्षन्त॒ऽआ द्याᳪं रो॑हन्ति॒ रोद॑सी।
य॒ज्ञं ये वि॒श्वतो॑धार॒ᳬ सुवि॑द्वाᳪंसो वितेनि॒रे॥६८॥

स्व॑ः। यन्त॑ः। न। अप॑। ई॒क्ष॒न्ते॒। आ। द्याम्। रो॒ह॒न्ति॒। रोद॑सी॒ इति॒ रोद॑सी। य॒ज्ञम्। ये। वि॒श्वतो॑धार॒मिति॑ वि॒श्वत॑ःऽधारम्। सुवि॑द्वाᳪंस॒ इति॒ सुवि॑द्वाᳪंसः। वि॒ते॒नि॒र इति॑ विऽतेनि॒रे॥६८॥

पदार्थः-**(स्वः)** सुखम् **(यन्तः)** उपयन्तः **(न)** इव **(अप)** **(ईक्षन्ते)** समालोकन्ते **(आ)** समन्तात् **(द्याम्)** प्रकाशमयी योगविद्याम् **(रोहन्ति)** **(रोदसी)** द्यावापृथिव्यौ **(यज्ञम्)** संगन्तव्यम् **(ये)** **(विश्वतोधारम्)** विश्वतः सर्वतो धाराः सुशिक्षिता वाचो यस्मिंस्तम् **(सुविद्वांसः)** शोभनाश्च ते योगिनः **(वितेनिरे)** विस्तृतं कुर्वन्ति॥६८॥

अन्वयः-ये सुविद्वांसो यन्तो न स्वरपेक्षन्ते रोदसी आरोहन्ति, द्यां विश्वतोधारं यज्ञं वितेनिरे, तेऽक्षयं सुखं लभन्ते॥६८॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। यथा सारथिरश्वान् सुशिक्ष्याभीष्टे मार्गे चालयित्वा सुखेनाभीष्टं स्थानं सद्यो गच्छति, तथैव शोभना विद्वांसो योगिनो जितेन्द्रिया भूत्वा संयमेन स्वेष्टं परमात्मानं प्राप्यानन्दं विस्तारयन्ति॥६८॥

पदार्थः-(**ये**) जो (**सुविद्वांसः**) अच्छे पण्डित योगी जन (**यन्तः**) योगाभ्यास के पूर्ण नियम करते हुओं के (**न**) समान (**स्वः**) अत्यन्त सुख की (**अप, ईक्षन्ते**) अपेक्षा करते हैं वा (**रोदसी**) आकाश और पृथिवी को (**आ, रोहन्ति**) चढ़ जाते अर्थात् लोकान्तरों में इच्छापूर्वक चले जाते वा (**द्याम्**) प्रकाशमय योगविद्या और (**विश्वतोधारम्**) सब ओर से सुशिक्षायुक्त वाणी हैं, जिसमें (**यज्ञम्**) प्राप्त करने योग्य उस यज्ञादि कर्म का (**वितेनिरे**) विस्तार करते हैं, वे अविनाशी सुख को प्राप्त होते हैं॥६८॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे सारथि घोड़ों को अच्छे प्रकार सिखा और अभीष्ट मार्ग में चला कर सुख से अभीष्ट स्थान को शीघ्र जाता है, वैसे ही अच्छे विद्वान् योगी जन जितेन्द्रिय होकर नियम से अपने को अभीष्ट परमात्मा को पाकर आनन्द का विस्तार करते हैं॥६८॥

अग्न इत्यस्य विधृतिर्ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनर्विद्वद्व्यवहार उपदिश्यते॥

फिर विद्वान् के व्यवहार का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अग्ने॒ प्रेहि॑ प्रथ॒मो दे॑वय॒तां चक्षु॑र्दे॒वाना॑मु॒त मर्त्या॑नाम्।

इय॑क्षमाणा॒ भृगु॑भिः स॒जोषा॑ः स्व॒र्य्यन्तु॒ यज॑मानाः स्व॒स्ति॥६९॥

अग्ने॑। प्र। इ॒हि॒। प्र॒थ॒मः। दे॒व॒य॒तामिति॑ देवऽय॒ताम्। चक्षु॑ः। दे॒वाना॑म्। उ॒त। मर्त्या॑नाम्। इय॑क्षमाणाः। भृगु॑भि॒रिति॒ भृगु॑ऽभिः। स॒जोषा॒ इति॑ स॒ऽजोषा॑ः। स्व॑ः। य॒न्तु॒। यज॑मानाः स्व॒स्ति॥६९॥

पदार्थः-(**अग्ने**) विद्वन् (**प्र**) (**इहि**) प्राप्नुहि (**प्रथमः**) आदिमः (**देवयताम्**) कामयमानानाम् (**चक्षुः**) दर्शकम् (**देवानाम्**) विदुषाम् (**उत**) अपि (**मर्त्यानाम्**) अविदुषाम् (**इयक्षमाणाः**) यज्ञं चिकीर्षमाणाः (**भृगुभिः**) परिपक्वविज्ञानैर्विपश्चिद्भिः (**सजोषाः**) समानप्रीतिसेवनाः (**स्वः**) सुखम् (**यन्तु**) प्राप्नुवन्तु (**यजमानाः**) सर्वेभ्यः सुखदातारः (**स्वस्ति**) कल्याणम्॥६९॥

अन्वयः-हे अग्ने! देवयतां मध्ये प्रथमः पूर्वं प्रेहि, यतो देवानामुत मर्त्यानां त्वं चक्षुरसि, यथेयक्षमाणाः सजोषा यजमाना भृगुभिः सह स्वस्ति स्वर्यन्तु, तथा त्वमपि भव॥६९॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! विद्वद्भिरविद्वद्भिश्च सह प्रीत्योपदेशेन यूयं सुखं प्राप्नुत॥६९॥

पदार्थः-हे (**अग्ने**) विद्वन्! (**देवयताम्**) कामना करते हुए जनों के बीच तू (**प्रथमः**) पहिले (**प्रेहि**) प्राप्त हो जिससे (**देवानाम्**) विद्वान् (**उत**) और (**मर्त्यानाम्**) अविद्वानों का तू (**चक्षुः**) व्यवहार देखने वाला है, जिससे (**इयक्षमाणाः**) यज्ञ की इच्छा करने (**सजोषाः**) एक-सी प्रीतियुक्त (**यजमानाः**) सबको सुख

देनेहारे जन (**भृगुभिः**) परिपूर्ण विज्ञान वाले विद्वानों के साथ (**स्वस्ति**) सामान्य सुख और (**स्वः**) अत्यन्त सुख को (**यन्तु**) प्राप्त हों, वैसा तू भी हो॥६९॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! विद्वान् और अविद्वानों के साथ प्रीति से बातचीत करके सुख को तुम लोग प्राप्त होओ॥६९॥

नक्तोषासेत्यस्य कुत्स ऋषिः। अग्निर्देवता। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनर्मनुष्यैः कथं वर्त्तितव्यमित्याह॥

फिर मनुष्यों को कैसे वर्त्तना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

नक्तोषासा समनसा विरूपे धापयेते शिशुमेकꣳ समीची।

द्यावाक्षामा रुक्मोऽअन्तर्विभाति देवाऽअग्निं धारयन् द्रविणोदाः॥७०॥

नक्तोषासा। नक्तोषसेति नक्तोषसा। समनसेति सऽमनसा। विरूपे इति विऽरूपे। धापयेते इति धापयेते। शिशुम्। एकम्। समीची इति सम्ऽईची। द्यावाक्षामा। रुक्मः। अन्तः। वि। भाति। देवाः। अग्निम्। धारयन्। द्रविणोदा इति द्रविणःऽदाः॥७०॥

पदार्थः-(**नक्तोषासा**) रात्र्युषसाविव (**समनसा**) समानं मनो विज्ञानं ययोस्ते (**विरूपे**) विरुद्धस्वरूपे (**धापयेते**) पाययतः (**शिशुम्**) बालकमिव वर्त्तमानं जगत् (**एकम्**) असहायम् (**समीची**) ये एकीभावमिच्छन्तस्ते (**द्यावाक्षामा**) (**रुक्मः**) देदीप्यमानोऽग्निः (**अन्तः**) मध्ये (**वि, भाति**) विशेषेण प्रकाशते (**देवाः**) विद्वांसः (**अग्निम्**) (**धारयन्**) अधारयन्। अत्राडभावः (**द्रविणोदाः**) द्रव्यप्रदातारः॥७०॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यूयं यथा समनसा समीची विरूपे मातृधात्र्यौ वैकं शिशुमिव नक्तोषासा जगद्धापयेते, यथा वा द्यावाक्षामान्तो रुक्मो विभाति, द्रविणोदा देवा तमग्निं धारयँस्तथा वर्त्तध्वम्॥७०॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैर्जगति यथा रात्र्युषसौ विरुद्धै रूपैर्वर्त्तेते, यथा च विद्युत् सर्वपदार्थेषु व्याप्ता, यथा वा द्यावाभूमी अतिसहनशीले वर्त्तेते, तद्वत् विवेचकैः शुभगुणेषु व्यापकैर्भूत्वा पुत्रवज्जगत्पालनीयम्॥७०॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम जैसे (**समनसा**) एक से विज्ञान युक्त (**समीची**) एकता चाहती हुई (**विरूपे**) अलग-अलग रूप वाली धाय और माता दोनों (**एकम्**) एक (**शिशुम्**) बालक को दुग्ध पिलाती हैं, वैसे (**नक्तोषासा**) रात्रि और प्रातःकाल की वेला जगत् को (**धापयेते**) दुग्ध सा पिलाती हैं अर्थात् अति आनन्द देती हैं वा जैसे (**रुक्मः**) प्रकाशमान अग्नि (**द्यावाक्षामा, अन्तः**) ब्रह्माण्ड के बीच में (**वि, भाति**) विशेष करके प्रकाश करता है, उस (**अग्निम्**) अग्नि को (**द्रविणोदाः**) द्रव्य के देने वाले (**देवाः**) शास्त्र पढ़े हुए जन (**धारयन्**) धारण करते हैं, वैसे वर्त्ताव वर्त्तो॥७०॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि जैसे संसार में रात्रि और प्रातःसमय की वेला अलग रूपों से वर्त्तमान और जैसे बिजुली अग्नि सर्व पदार्थों में व्याप्त वा जैसे प्रकाश और भूमि अतिसहनशील हैं, वैसे अत्यन्त विवेचना करने और शुभगुणों में व्यापक होने वाले होकर पुत्र के तुल्य संसार को पालें॥७०॥

अग्न इत्यस्य कुत्स ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनर्योगिकर्मफलमुपदिश्यते॥

फिर योगी के कर्मों के फलों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अग्ने सहस्राक्ष शतमूर्द्धञ्छतं ते प्राणाः सहस्रं व्यानाः।

त्वꣳ साहस्रस्य रायऽईशिषे तस्मै ते विधेम वाजाय स्वाहा॥७१॥

अग्ने। सहस्राक्षेति सहस्रऽअक्ष। शतमूर्द्धन्निति शतऽमूर्धन्। शतम्। ते। प्राणाः। सहस्रम्। व्याना इति विऽआनाः। त्वम्। साहस्रस्य। रायः। ईशिषे। तस्मै। ते। विधेम। वाजाय। स्वाहा॥७१॥

पदार्थः-(**अग्ने**) पावक इव प्रकाशमय (**सहस्राक्ष**) सहस्रेष्वसंख्यातेषु व्यवहारेष्वक्षिविज्ञानं यस्य तत्सम्बुद्धौ (**शतमूर्द्धन्**) शतेष्वसंख्यातेषु मूर्द्धा मस्तकं यस्य तत्सम्बुद्धौ (**शतम्**) असंख्याताः (**ते**) तव (**प्राणाः**) जीवसाधनाः (**सहस्रम्**) असंख्याः (**व्यानाः**) चेष्टानिमित्ताः सर्वशरीरस्था वायवः (**त्वम्**) (**साहस्रस्य**) सहस्राणामसंख्यातानामिद- मधिकरणं जगत् तस्य (**रायः**) धनस्य (**ईशिषे**) ईशोऽसि (**तस्मै**) (**ते**) तुभ्यम् (**विधेम**) परिचरेम (**वाजाय**) विज्ञानवते (**स्वाहा**) सत्यया वाचा॥७१॥

अन्वयः-हे सहस्राक्ष शतमूर्द्धन्नग्ने योगिराज! यस्य ते शतं प्राणाः सहस्रं व्यानाः सन्ति, यस्त्वं साहस्रस्य राय ईशिषे, तस्मै वाजाय ते वयं स्वाहा विधेम॥७१॥

भावार्थः-यो योगी तप-आदिसाधनैर्योगबलं प्राप्यासंख्यप्राणिशरीराणि प्रविश्यानेकनेत्रादिभिरङ्गैर्दर्शनादि-कार्याणि कर्त्तुं शक्नोति। अनेकेषां पदार्थानां धनानां च स्वामी भवति, सोऽस्माभिरवश्यं परिचरणीयः॥७१॥

पदार्थः-हे (**सहस्राक्ष**) हजारों व्यवहारों में अपना विशेष ज्ञान वा (**शतमूर्द्धन्**) सैकड़ों प्राणियों में मस्तक वाले (**अग्ने**) अग्नि के समान प्रकाशमान योगिराज! जिस (**ते**) आप के (**शतम्**) सैकड़ों (**प्राणाः**) जीवन के साधन (**सहस्रम्**) (**व्यानाः**) सब क्रियाओं के निमित्त शरीरस्थ वायु जो (**त्वम्**) आप (**साहस्रस्य**) हजारों जीव और पदार्थों का आधार जो जगत् उसके (**रायः**) धन के (**ईशिषे**) स्वामी हैं, (**तस्मै**) उस (**वाजाय**) विशेष ज्ञान वाले (**ते**) आप के लिये हम लोग (**स्वाहा**) सत्यवाणी से (**विधेम**) सत्कारपूर्वक व्यवहार करें॥७१॥

भावार्थः-जो योगी पुरुष तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान आदि योग के साधनों से योग (धारणा, ध्यान, समाधिरूप संयम) के बल को प्राप्त हो, अनेक प्राणियों के शरीरों में प्रवेश करके, अनेक शिर, नेत्र आदि अङ्गों से देखने आदि कार्यों को कर सकता है, अनेक पदार्थों वा धनों का स्वामी भी हो सकता है, उसका हम लोगों को अवश्य सेवन करना चाहिये॥७१॥

सुपर्ण इत्यस्य कुत्स ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनर्विद्वान् कीदृशः स्यादित्याह॥

फिर विद्वान कैसा हो, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

सुपर्णोऽसि गरुत्मान् पृष्ठे पृथिव्याः सीद।

भासान्तरिक्षमापृण ज्योतिषा दिवमुत्तभान तेजसा दिशऽउद्दृꣳह॥७२॥

सुपर्णः। असि। गरुत्मानिति गरुत्मान्। पृष्ठे। पृथिव्याः। सीद। भासा। अन्तरिक्षम्। आ। पृण। ज्योतिषा। दिवम्। उत्। स्तभान। तेजसा। दिशः। उत्। दृꣳह॥७२॥

पदार्थः-(**सुपर्णः**) शोभनानि पर्णानि पूर्णानि शुभलक्षणानि यस्य सः (**असि**) (**गरुत्मान्**) गुर्वात्मा (**पृष्ठे**) उपरि (**पृथिव्याः**) (**सीद**) (**भासा**) प्रकाशेन (**अन्तरिक्षम्**) आकाशम् (**आ**) समन्तात् (**पृण**) सुखय (**ज्योतिषा**) न्यायप्रकाशेन (**दिवम्**) प्रकाशमयम् (**उत्**) ऊर्ध्वम् (**स्तभान**) (**तेजसा**) तीक्ष्णीकरणेन (**दिशः**) (**उत्**) (**दृंह**) उद्वर्धय॥७२॥

अन्वयः-हे विद्वान् योगिंस्त्वं भासा सुपर्णो गरुत्मानसि, यथा सवितान्तरिक्षस्य मध्ये वर्त्तते, तथा पृथिव्याः पृष्ठे सीद। वायुरिव प्रजा आपृण, सविता ज्योतिषा दिवमन्तरिक्षमिव राज्यमुत्तभान, अग्निस्तेजसा दिश इव प्रजा उद्दृंह॥७२॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यदा मनुष्यो रागद्वेषरहितः परोपकारीश्वर इव प्राणिभिः सह वर्त्तेत, तदा सिद्धिं लभेत॥७२॥

पदार्थः-हे विद्वान् योगीजन! आप (**भासा**) प्रकाश से (**सुपर्णः**) अच्छे-अच्छे पूर्ण शुभ लक्षणों से युक्त और (**गरुत्मान्**) बड़े मन तथा आत्मा के बल से युक्त (**असि**) हैं, अतिप्रकाशमान आकाश में वर्त्तमान सूर्यमण्डल के तुल्य (**पृथिव्याः**) पृथिवी के (**पृष्ठे**) ऊपर (**सीद**) स्थिर हो, वा वायु के तुल्य प्रजा को (**आ, पृण**) सुख दे, वा जैसे सूर्य (**ज्योतिषा**) अपने प्रकाश से (**दिवम्**) प्रकाशमय (**अन्तरिक्षम्**) अन्तरिक्ष को वैसे तू राजनीति के प्रकाश से राज्य को (**उत्, स्तभान**) उन्नति पहुँचा, वा जैसे आग अपने (**तेजसा**) अतितीक्ष्ण तेज से (**दिशः**) दिशाओं को वैसे अपने तीक्ष्ण तेज से प्रजाजनों को (**उद्, दृंह**) उन्नति दे॥७२॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जब मनुष्य राग=प्रीति और द्वेष=वैर से रहित परोपकारी होकर, ईश्वर के समान सब प्राणियों के साथ वर्त्ते, तब सब सिद्धि को प्राप्त होवे॥७२॥

आजुह्वान इत्यस्य कुत्स ऋषिः। अग्निर्देवता। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनर्विद्वांसः कीदृशाः स्युरित्याह॥

फिर विद्वान्, गुणी जन कैसे हों, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

आजुह्वानः सुप्रतीकः पुरस्तादग्ने स्वं योनिमासीद साधुया।
अस्मिन्त्सधस्थेऽअध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत॥७३॥

आजुह्वान इत्याजुऽह्वानः। सुप्रतीक इति सुऽप्रतीकः। पुरस्तात्। अग्ने। स्वम्। योनिम्। आ। सीद। साधुयेति साधुऽया। अस्मिन्। सधस्थे। अधि। उत्तरस्मिन्। विश्वे। देवाः। यजमानः। च। सीदत॥७३॥

पदार्थः-(**आजुह्वानः**) सत्कारेणाहूतः (**सुप्रतीकः**) प्राप्तशुभगुणः (**पुरस्तात्**) प्रथमतः (**अग्ने**) योगाभ्यासेन प्रकाशितात्मन् (**स्वम्**) स्वकीयम् (**योनिम्**) परमात्माख्यं गृहम् (**आ**) (**सीद**) समन्तात् स्थिरो भव (**साधुया**) श्रेष्ठैः कर्मभिः (**अस्मिन्**) (**सधस्थे**) सहस्थाने (**अधि**) उपरिभावे (**उत्तरस्मिन्**) (**विश्वे**) सर्वे (**देवाः**) दिव्यात्मानो योगिनः (**यजमानः**) योगप्रद आचार्यः (**च**) (**सीदत**)॥७३॥

अन्वयः-हे अग्ने! पुरस्तादाजुह्वानः सुप्रतीको यजमानस्त्वं साधुयास्मिन् सधस्थे स्वं योनिमासीद। हे विश्वे देवाः! यूयं साधुयोत्तरस्मिन् सधस्थे चाधि सीदत॥७३॥

भावार्थः-ये साधूनि कर्माणि कृत्वा कृतयोगाभ्यासस्य विदुषः सङ्गप्रीतिभ्यां परस्परं संवादं कुर्वन्ति, ते सर्वाधिष्ठानमीशं प्राप्य सिद्धा जायन्ते॥७३॥

पदार्थः-हे (**अग्ने**) योगाभ्यास से प्रकाशित आत्मा युक्त (**पुरस्तात्**) प्रथम से (**आजुह्वानः**) सत्कार के साथ बुलाये (**सुप्रतीकः**) शुभगुणों को प्राप्त हुए (**यजमानः**) योगविद्या के देने वाले आचार्य्य! आप (**साधुया**) श्रेष्ठ कर्मों से (**अस्मिन्**) इस (**सधस्थे**) एक साथ के स्थान में (**स्वम्**) अपने (**योनिम्**) परमात्मा रूप घर में (**आ, सीद**) स्थिर हो (**च**) और हे (**विश्वे**) सब (**देवाः**) दिव्य आत्मा वाले योगीजनो! आप लोग श्रेष्ठ कामों से (**उत्तरस्मिन्**) उत्तर समय एक साथ सत्य सिद्धान्त पर (**अधि, सीदत**) अधिक स्थित होओ॥७३॥

भावार्थः-जो अच्छे कामों को करके योगाभ्यास करने वाले विद्वान् के संग और प्रीति से परस्पर संवाद करते हैं, वे सब के अधिष्ठान परमात्मा को प्राप्त होकर सिद्ध होते हैं॥७३॥

ताꣳ सवितुरित्यस्य कण्व ऋषिः। सविता देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ क ईश्वरं प्राप्तुं शक्नोतीत्याह॥

अब कौन ईश्वर को पा सकता है, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

ताᳬं स॒वि॒तुर्वरे॑ण्यस्य चि॒त्रामाहं वृ॑णे सु॒म॒तिं वि॒श्वज॑न्याम्।
याम॑स्य॒ कण्वो॒ अदु॑हत् प्रपी॑नाᳬं स॒हस्र॑धारां॒ पय॑सा म॒हीं गाम्॥७४॥

ताम्। स॒वि॒तुः। वरे॑ण्यस्य। चि॒त्राम्। आ। अ॒हम्। वृ॒णे। सु॒म॒तिमिति॑ सुऽम॒तिम्। वि॒श्वज॑न्याम्। याम्। अ॒स्य॒। कण्वः॑। अदु॑हत्। प्रपी॑ना॒मिति॒ प्रऽपी॑नाम्। स॒हस्र॑धारा॒मिति॑ स॒हस्र॑ऽधाराम्। पय॑सा। म॒हीम्। गाम्॥७४॥

पदार्थः-(**ताम्**) वक्ष्यमाणाम् (**सवितुः**) योगैश्वर्य्यसंप्रदस्येश्वरस्य (**वरेण्यस्य**) वरितुमर्हस्य (**चित्राम्**) अद्भुतविषयाम् (**आ**) (**अहम्**) (**वृणे**) स्वीकुर्वे (**सुमतिम्**) शोभनां यथाविषयां प्रज्ञाम् (**विश्वजन्याम्**) या विश्वमखिलं जगज्जनयति प्रकटयति ताम् (**याम्**) (**अस्य**) (**कण्वः**) मेधावी (**अदुहत्**) परिपूरयति (**प्रपीनाम्**) प्रवृद्धाम् (**सहस्रधाराम्**) सहस्रमसंख्यानर्थान् धरति तां सर्वज्ञानप्रदाम् (**पयसा**) अन्नादिना (**महीम्**) महतीम् (**गाम्**) वाचम्। **गौरिति वाङ्नामसु पठितम्॥** (निघं०१.११)॥७४॥

अन्वयः-यथा कण्वोऽस्य वरेण्यस्य सवितुरीश्वरस्य यां चित्रां विश्वजन्यां प्रपीनां सहस्रधारां सुमतिं पयसा महीं गां चादुहत्, तथा तामहमावृणे॥७४॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा मेधावी जगदीश्वरस्य विद्यां प्राप्यैधते तथैवैतां लब्ध्वाऽन्येनापि विद्यायोगवृद्ध्यै भवितव्यम्॥७४॥

पदार्थः-जैसे (**कण्वः**) बुद्धिमान् पुरुष (**अस्य**) इस (**वरेण्यस्य**) स्वीकार करने योग्य (**सवितुः**) योग के ऐश्वर्य के देनेहारे ईश्वर की (**याम्**) जिस (**चित्राम्**) अद्भुत आश्चर्य्यरूप वा (**विश्वजन्याम्**) समस्त जगत् को उत्पन्न करती (**प्रपीनाम्**) अति उन्नति के साथ बढ़ती (**सहस्रधाराम्**) हजारों पदार्थों को धारण करनेहारी और (**सुमतिम्**) यथातथ्य विषय को प्रकाशित करती हुई उत्तम बुद्धि तथा (**पयसा**) अन्न आदि पदार्थों के साथ (**महीम्**) बड़ी (**गाम्**) वाणी को (**अदुहत्**) परिपूर्ण करता अर्थात् क्रम से जान अपने ज्ञानविषयक करता है, वैसे (**ताम्**) उसको (**अहम्**) मैं (**आ, वृणे**) अच्छे प्रकार स्वीकार करता हूं॥७४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे मेधावीजन जगदीश्वर की विद्या को पाकर वृद्धि को प्राप्त होता है, वैसे ही इसको प्राप्त होकर और सामान्य जन को भी विद्या और योगवृद्धि के लिये उद्युक्त होना चाहिये॥७४॥

विधेमेत्यस्य गृत्समद ऋषिः। अग्निर्देवता। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

वि॒धेम॑ ते पर॒मे जन्म॑न्नग्ने वि॒धेम॒ स्तोमै॒रव॑रे स॒धस्थे॑।
यस्मा॒द् योने॑रु॒दारि॑था॒ यजे॒ तं प्र त्वे ह॒वीᳬंषि॑ जुहु॒रे समि॑द्धे॥७५॥

वि॒धेम॑। ते॒। प॒र॒मे। जन्म॑न्। अ॒ग्ने॒। वि॒धेम॑। स्तोमैः॑। अव॑रे। स॒धस्थ॒ इति॑ स॒धऽस्थे॑। यस्मा॑त्। योनेः॑। उ॒दारि॒थेत्यु॒त्ऽआरि॑थ। यजे॑। तम्। प्र। त्व इति॒ त्वे। ह॒वीꣳषि॑। जु॒हु॒रे। समि॑द्ध॒ इति॒ सम्ऽइ॑द्धे॥७५॥

पदार्थः-(**विधेम**) परिचरेम (**ते**) तव (**परमे**) सर्वोत्कृष्टे योगसंस्कारजे (**जन्मन्**) जन्मनि। अत्र **सुपां सुलुग्०** [अष्टा०७.१.३९] इति ङेर्लुक्। (**अग्ने**) योगसंस्कारेण दुष्टकर्मदाहक (**विधेम**) सेवेमहि (**स्तोमैः**) स्तुतिभिः (**अवरे**) अर्वाचीने (**सधस्थे**) सहस्थाने (**यस्मात्**) (**योनेः**) स्थानात् (**उदारिथ**) उत्कृष्टैः साधनैः प्राप्नुहि। अत्र **अन्येषामपि०** [अष्टा०६.३.१३७] इति दीर्घः। (**यजे**) संगच्छे (**तम्**) (**प्र**) (**त्वे**) त्वयि (**हवींषि**) होतव्यानि (**जुहुरे**) जुह्वति (**समिद्धे**) सम्यक् प्रदीप्ते॥७५॥

अन्वयः-हे अग्ने योगिन्! ते तव परमे जन्मन् त्वे वर्त्तमानेऽवरे सधस्थे वर्त्तमाना वयं स्तोमैर्विधेम, त्वमस्मान् यस्माद् योनेरुदारिथ, तं योनिमहं प्रयजे, यथा होतारः समिद्धे अग्नौ हवींषि जुहुरे, तथा योगाग्नौ दुःखसमूहस्य होमं विधेम॥७५॥

भावार्थः-इह यस्य योगसंस्कारयुक्तस्य जीवस्य पवित्रोपचितं जन्म जायते, स संस्कारबलात् योगिजिज्ञासुरेव भवति। ये तं सेवन्ते तेऽपि योगजिज्ञासवो सर्व एतेऽग्निरिन्धनानीव सर्वामशुद्धिं योगेन दहन्ति॥७५॥

पदार्थः-हे (**अग्ने**) योगीजन! (**ते**) तेरे (**परमे**) सब से अति उत्तम योग के संस्कार से उत्पन्न हुए (**जन्मन्**) जन्म में वा (**त्वे**) तेरे वर्त्तमान जन्म में (**अवरे**) न्यून (**सधस्थे**) एक साथ स्थान में वर्त्तमान हम लोग (**स्तोमैः**) स्तुतियों से (**विधेम**) सत्कारपूर्वक तेरी सेवा करें, तू हम लोगों को (**यस्मात्**) जिस (**योनेः**) स्थान से (**उदारिथ**) अच्छे-अच्छे साधनों के सहित प्राप्त हो, (**तम्**) उस स्थान को मैं (**प्र, यजे**) अच्छे प्रकार प्राप्त होऊं और जैसे होम करने वाले लोग (**समिद्धे**) अच्छे प्रकार जलते हुए अग्नि में (**हवींषि**) होम करने योग्य वस्तुओं को (**जुहुरे**) होमते हैं, वैसे योगाग्नि में हम लोग दुःखों के होम का (**विधेम**) विधान करें॥७५॥

भावार्थः-इस संसार में योग के संस्कार से युक्त जिस जीव का पवित्र भाव से जन्म होता है, वह संस्कार की प्रबलता से योग ही के जानने की चाहना करने वाला होता है और उसका जो सेवन करते हैं, वे भी योग की चाहना करने वाले होते हैं, उक्त सब योगीजन जैसे अग्नि इन्धन को जलाता है, वैसे समस्त दुःख अशुद्धि भाव को योग से जलाते हैं॥७५॥

प्रेद्ध इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। अग्निर्देवता। आर्ष्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प्रेद्धो॑ऽअग्ने दीदिहि पु॒रो नो॒ऽज॑स्रया सू॒र्म्या॒ यविष्ठ।

त्वाꣳ शश्वन्तऽउपयन्ति वाजाः॥७६॥

प्रेद्ध इति प्रऽइद्धः। अग्ने। दीदिहि। पुरः। नः। अजस्रया। सूर्म्या। यविष्ठ। त्वाम्। शश्वन्तः। उप। यन्ति। वाजाः॥७६॥

पदार्थः-(**प्रेद्धः**) प्रकृष्टतया प्रदीप्तः (**अग्ने**) अग्निरिव दुःखदाहकः योगिन् (**दीदिहि**) कामयस्व (**पुरः**) प्रथमम् (**नः**) अस्मान् (**अजस्रया**) अनुपक्षीणया (**सूर्म्या**) ऐश्वर्येण (**यविष्ठ**) अतिशयेन युवन् (**त्वाम्**) (**शश्वन्तः**) निरन्तरं वर्त्तमानाः (**उप, यन्ति**) प्राप्नुवन्तु (**वाजाः**) विज्ञानवन्तो जनाः॥७६॥

अन्वयः-हे यविष्ठाग्ने! त्वं पुरः प्रेद्धः सन्नजस्रया सूर्म्या नोऽस्मान् दीदिहि शश्वन्तो वाजास्त्वामुपयन्ति॥७६॥

भावार्थः-यदा मनुष्याः शुद्धात्मानो भूत्वाऽन्यानुपकुर्वन्ति, तदा तेऽपि सर्वत्रोपकृता भवन्ति॥७६॥

पदार्थः-हे (**यविष्ठ**) अत्यन्त तरुण (**अग्ने**) आग के समान दुःखों के विनाश करनेहारे योगीजन! आप (**पुरः**) पहिले (**प्रेद्धः**) अच्छे तेज से प्रकाशमान हुए (**अजस्रया**) नाशरहित निरन्तर (**सूर्म्या**) ऐश्वर्य्य के प्रवाह से (**नः**) हम लोगों को (**दीदिहि**) चाहें (**शश्वन्तः**) निरन्तर वर्त्तमान (**वाजाः**) विशेष ज्ञान वाले जन (**त्वाम्**) आपको (**उप, यन्ति**) प्राप्त होवें॥७६॥

भावार्थः-जब मनुष्य शुद्धात्मा होकर औरों का उपकार करते हैं, तब वे भी सर्वत्र उपकारयुक्त होते हैं॥७६॥

अग्ने तमित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। आर्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अग्ने तमद्याश्वन्न स्तोमैः क्रतुन्न भद्रꣳ हृदिस्पृशम्। ऋध्यामा तऽओहैः॥७७॥

अग्ने। तम्। अद्य। अश्वम्। न। स्तोमैः। क्रतुम्। न। भद्रम्। हृदिऽस्पृशम्। ऋध्याम। ते। ओहैः॥७७॥

पदार्थः-(**अग्ने**) विद्वन् (**तम्**) पूर्वमन्त्रोक्तम् (**अद्य**) (**अश्वम्**) तुरङ्गम् (**न**) इव स्तोमैः स्तुतिभिः (**क्रतुम्**) प्रज्ञानम् (**न**) इव (**भद्रम्**) भजनीयं कल्याणकरम् (**हृदिस्पृशम्**) यो हृदये स्पृशति तम् (**ऋध्याम**) वर्धेम। अत्र **अन्येषामपि॰** [अष्टा॰६.३.१३७] इति दीर्घः (**ते**) तव (**ओहैः**) रक्षणादिभिः॥७७॥

अन्वयः-हे अग्ने! विद्युत्सदृशपराक्रमिन्नश्वं न क्रतुं न भद्रं हृदिस्पृशं तं त्वां स्तोमैरद्य प्राप्य ते तवौहैर्वयं सततमृध्याम॥७७॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। यथा शरीरस्थेन विद्युदादिना वृद्धिवेगौ प्रज्ञासुखानि च वर्धेरँस्तथा विद्वच्छिक्षारक्षादिभिर्मनुष्यादयो वर्द्धन्ते॥७७॥

पदार्थः-हे **(अग्ने)** बिजुली के समान पराक्रम वाले विद्वन्! जो **(अश्वम्)** घोड़े के **(न)** समान वा **(क्रतुम्)** बुद्धि के **(न)** समान **(भद्रम्)** कल्याण और **(हृदिस्पृशम्)** हृदय में स्पर्श करने वाला है, **(तम्)** उस पूर्व मन्त्र में कहे तुझ को **(स्तोमैः)** स्तुतियों से **(अद्य)** आज प्राप्त होकर **(ते)** आप के **(ओहैः)** पालन आदि गुणों से **(ऋध्याम)** वृद्धि को पावें॥७७॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे शरीर आदि में स्थिर हुए बिजुली आदि से वृद्धि, वेग और वृद्धि के सुख बढ़ें, वैसे विद्वानों की सिखावट और पालन आदि से मनुष्य आदि सब वृद्धि को पाते हैं॥७७॥

चित्तिमित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। विश्वकर्मा देवता। विराडतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

चित्तिं जुहोमि मनसा घृतेन यथा देवाऽइहागमन् वीतिहोत्राऽऋतावृधः।
पत्ये विश्वस्य भूमनो जुहोमि विश्वकर्मणे विश्वाहादाभ्यꣳ हविः॥७८॥

चित्तिम्। जुहोमि। मनसा। घृतेन। यथा। देवाः। इह। आगमन्नित्यागमन्। वीतिहोत्रा इति वीतिऽहोत्रा। ऋतावृधः। ऋतवृध इत्यृतऽवृधः। पत्ये। विश्वस्य। भूमनः। जुहोमि। विश्वकर्मण इति विश्वऽकर्मणे। विश्वाहा। अदाभ्यम्। हविः॥७८॥

पदार्थः-**(चित्तिम्)** चिन्वन्ति यया ताम् **(जुहोमि)** गृह्णामि **(मनसा)** विज्ञानेन **(घृतेन)** आज्येन **(यथा)** **(देवाः)** कामयमाना विद्वांसः **(इह)** **(आगमन्)** आगच्छन्ति **(वीतिहोत्राः)** वीतिः सर्वतः प्रकाशितो होत्रा यज्ञो येषां ते **(ऋतावृधः)** ये ऋतेन सत्येन वर्धन्ते। अत्र **अन्येषामपि०** [अष्टा०६.३.१३७] इति पूर्वपदस्य दीर्घः। **(पत्ये)** पालकाय **(विश्वस्य)** समग्रस्य जगतः **(भूमनः)** बहुरूपस्य **(जुहोमि)** ददामि **(विश्वकर्मणे)** विश्वं कर्म क्रियमाणं कृतं येन तस्मै **(विश्वाहा)** सर्वाणि दिनानि **(अदाभ्यम्)** अहिंसनीयम् **(हविः)** होतव्यं शुद्धं सुखकरं द्रव्यम्॥७८॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथाऽहं मनसा घृतेन चित्तिं जुहोमि, यथेह वीतिहोत्रा ऋतावृधो देवा भूमनो विश्वस्य विश्वकर्मणे पत्ये जगदीश्वरायादाभ्यं हविर्विश्वाहा होतुमागमन्नहं हविर्जुहोमि, तथा यूयमप्याचरत॥७८॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। यथा काष्ठचितोऽग्निराज्येन वर्द्धते, तथा विज्ञानेनाहं वर्द्धेयम्, यथेश्वरोपासका विद्वांसश्च जगतः कल्याणाय प्रयतन्ते, तथाहमपि प्रयतेय॥७८॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! **(यथा)** जैसे मैं **(मनसा)** विज्ञान वा **(घृतेन)** घी से **(चित्तिम्)** जिस क्रिया से सञ्चय करते हैं, उसको **(जुहोमि)** ग्रहण करता हूँ वा जैसे **(इह)** इस जगत् में **(वीतिहोत्राः)** सब ओर से

प्रकाशमान जिन का यज्ञ है, वे **(ऋतावृधः)** सत्य से बढ़ते और **(देवाः)** कामना करते हुए विद्वान् लोग **(भूमनः)** अनेक रूप वाले **(विश्वस्य)** समस्त संसार के **(विश्वकर्म्मणे)** सब के करने योग्य काम को जिसने किया है, उस **(पत्ये)** पालनेहारे जगदीश्वर के लिये **(अदाभ्यम्)** नष्ट न करने और **(हविः)** होमने योग्य सुख करने वाले पदार्थ का **(विश्वाहा)** सब दिनों होम करने को **(आगमन्)** आते हैं और मैं होमने योग्य पदार्थों को **(जुहोमि)** होमता हूं, वैसे तुम लोग भी आचरण करो॥७८॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे काष्ठों में चिना हुआ अग्नि घी से बढ़ता है, वैसे मैं विज्ञान से बढ़ूं वा जैसे ईश्वर की उपासना करनेहारे विद्वान् संसार के कल्याण करने का प्रयत्न करते हैं, वैसे मैं भी यत्न करूं॥७८॥

सप्त त इत्यस्य सप्तऋषय ऋषयः। अग्निर्देवता। आर्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

सप्त तेऽअग्ने समिधः सप्त जिह्वाः सप्तऽऋषयः सप्त धाम प्रियाणि।

सप्त होत्राः सप्तधा त्वा यजन्ति सप्त योनीरापृणस्व घृतेन स्वाहा॥७९॥

सप्त। ते। अग्ने। समिध इति सम्ऽइधः। सप्त। जिह्वाः। सप्त। ऋषयः। सप्त। धाम। प्रियाणि। सप्त। होत्राः। सप्तऽधा। त्वा। यजन्ति। सप्त। योनीः। आ। पृणस्व। घृतेन। स्वाहा॥७९॥

पदार्थः-**(सप्त)** सप्त संख्याकानि गायत्र्यादीनि छन्दांसि **(ते)** तव **(अग्ने)** तेजस्विन् विद्वन् **(समिधः)** प्रदीपकाः **(सप्त, जिह्वाः)** काल्यादयः सप्त संख्याका ज्वालाः **(सप्त, ऋषयः)** प्राणादयः पञ्च देवदत्तधनञ्जयौ च **(सप्त, धाम)** जन्मनामस्थानधर्मार्थकाममोक्षाख्यानि धामानि **(प्रियाणि)** **(सप्त, होत्राः)** सप्त ऋत्विजः **(सप्तधा)** सप्तभिः प्रकारैः **(त्वा)** त्वाम् **(यजन्ति)** संगच्छन्ते **(सप्त, योनीः)** चितीः **(आ)** **(पृणस्व)** सुखी भव **(घृतेन)** आज्येन **(स्वाहा)**॥७९॥

अन्वयः-हे अग्ने विद्वन्! यथाग्नेः सप्त समिधः सप्त जिह्वाः सप्तर्षयः सप्त प्रियाणि धाम सप्त होत्राश्च सन्ति, तथा ते तव सन्तु। यथा विद्वांसस्तमग्निं सप्तधा यजन्ति, तथा त्वा यजन्तु। यथाऽयमग्निर्घृतेन स्वाहा सप्त योनीरापृणते तथा त्वमापृणस्व॥७९॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथेन्धनैरग्निर्वर्धते तथा विद्यादिशुभगुणैः सर्वे मनुष्या वर्धन्ताम्। यथा विद्वांसोऽग्नौ घृतादिकं हुत्वा जगदुपकुर्वन्ति, तथा वयमपि कुर्याम॥७९॥

पदार्थः-हे **(अग्ने)** तेजस्वी विद्वन्! जैसे आग के **(सप्त, समिधः)** सात जलाने वाले **(सप्त, जिह्वाः)** वा सात काली कराली आदि लपटरूप जीभ वा **(सप्त, ऋषयः)** सात प्राण, अपान, उदान, समान, व्यान, देवदत्त, धनञ्जय वा **(सप्त, प्रियाणि, धाम)** सात पियारे धाम अर्थात् जन्म, स्थान, नाम, धर्म, अर्थ,

काम और मोक्ष वा (**सप्त, होत्राः**) सात प्रकार के ऋतु-ऋतु में यज्ञ करने वाले हैं, वैसे (**ते**) तेरे हों, जैसे विद्वान् उस अग्नि को (**सप्तधा**) सात प्रकार से (**यजन्ति**) प्राप्त होते हैं, वैसे (**त्वा**) तुझको प्राप्त होवें, जैसे यह अग्नि (**घृतेन**) घी से और (**स्वाहा**) उत्तम वाणी से (**सप्त, योनीः**) सात संचयों को सुख से प्राप्त होता है, वैसे तू (**आ, पृणस्व**) सुख से प्राप्त हो॥७९॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे ईंधन से अग्नि बढ़ता है, वैसे विद्या आदि शुभगुणों से समस्त मनुष्य वृद्धि को प्राप्त होवें, जैसे विद्वान् जन अग्नि में घी आदि को होम के जगत् का उपकार करते हैं, वैसे हम लोग भी करें॥७९॥

शुक्रज्योतिरित्यस्य सप्तऋषय ऋषयः। मरुतो देवताः। आर्ष्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

अथेश्वरः कीदृशोऽस्तीत्याह॥

अब ईश्वर कैसा है, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

शुक्रज्योतिश्च चित्रज्योतिश्च सत्यज्योतिश्च ज्योतिष्माँश्च।
शुक्रश्चऽऋतपाश्चात्यꣳहाः॥८०॥

शुक्रज्योतिरिति शुक्रऽज्योतिः। च। चित्रज्योतिरिति चित्रऽज्योतिः। च। सत्यज्योतिरिति सत्यऽज्योतिः। च। ज्योतिष्मान्। च। शुक्रः। च। ऋतपा इत्यृतऽपाः। च। अत्यꣳहा इत्यतिऽअꣳहाः॥८०॥

पदार्थः-(**शुक्रज्योतिः**) शुक्रं शुद्धं ज्योतिर्यस्य सः (**च**) (**चित्रज्योतिः**) चित्रमद्भुतं ज्योतिर्यस्य सः (**च**) (**सत्यज्योतिः**) सत्यमविनाशि ज्योतिः प्रकाशो यस्य सः (**च**) (**ज्योतिष्मान्**) बहूनि ज्योतींषि प्रकाशा विद्यन्ते यस्य सः (**च**) (**शुक्रः**) शीघ्रकर्त्ता शुद्धस्वरूपो वा (**च**) (**ऋतपाः**) य ऋतं सत्यं पाति (**च**) (**अत्यंहाः**) अतिक्रान्तमंहो दुष्कृतं येन सः॥८०॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा शुक्रज्योतिश्च चित्रज्योतिश्च सत्यज्योतिश्च ज्योतिष्माँश्च शुक्रश्चात्यंहा ऋतपाश्चेश्वरोऽस्ति, तथा यूयं भवत॥८०॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथेह विद्युत्सूर्यादीन् प्रभाकरान् शुद्धिकरान् पदार्थान् निर्मायेश्वरेण जगच्छोध्यते, तथैव शुचिसत्यविद्योपदेशक्रियाभिर्मनुष्यादयो विद्वद्भिः शोधनीयाः। अत्रोनेकेषां चकाराणां पाठात् सर्वेषामुपरि प्रीत्यादयोऽपि विधेयाः॥८०॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे (**शुक्रज्योतिः**) शुद्ध जिसका प्रकाश (**च**) और (**चित्रज्योतिः**) अद्भुत जिसका प्रकाश (**च**) और (**सत्यज्योतिः**) विनाशरहित जिसका प्रकाश (**च**) और (**ज्योतिष्मान्**) जिस के बहुत प्रकाश हैं (**च**) और (**शुक्रः**) शीघ्र करने वाला वा शुद्धस्वरूप (**च**) और (**अत्यंहाः**) जिसने दुष्ट काम को दूर किया (**च**) और (**ऋतपाः**) सत्य की रक्षा करने वाला ईश्वर है, वैसे तुम लोग भी होओ॥८०॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे इस जगत् में बिजुली वा सूर्य आदि प्रजा और शुद्धि के करने वाले पदार्थों को बना कर ईश्वर ने जगत् शुद्ध किया है, वैसे ही शुद्धि, सत्य और विद्या के उपदेश की क्रियाओं से विद्वान् जनों को मनुष्यादि शुद्ध करने चाहियें। इस मन्त्र में अनेक चकारों के होने से यह भी ज्ञात होता है कि सब के ऊपर प्रीति आदि गुण भी विधान करने चाहियें॥८०॥

ईदृङ् चेत्यस्य सप्तऋषय ऋषयः। मरुतो देवताः। आर्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनर्विद्वान् कीदृशो भवेदित्याह॥

फिर विद्वान् कैसा हो, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

ई॒दृङ् चा॑न्या॒दृङ् च॑ स॒दृङ् च॒ प्रति॑सदृङ् च। मि॒तश्च॒ सम्मि॑तश्च॒ सभ॑राः॥८१॥

ई॒दृङ्। च॒। अ॒न्या॒दृङ्। च॒। स॒दृङ्। स॒दृङ्ङिति॑ स॒ऽदृङ्। च॒। प्रति॑सदृ॒ङ्ङिति॒ प्रति॑ऽसदृङ्। च॒। मि॒तः। च॒। सम्मि॑त॒ इति॒ सम्ऽमि॑तः। च॒। सभ॑रा॒ इति॒ सऽभ॑राः॥८१॥

पदार्थः-(**ईदृङ्**) अनेन तुल्यः (**च**) (**अन्यादृङ्**) अन्येन समानः (**च**) (**सदृङ्**) समानं पश्यति स सदृङ् (**च**) (**प्रतिसदृङ्**) तं तं प्रति सदृशं पश्यति (**च**) (**मितः**) मानं प्राप्तः (**च**) (**सम्मितः**) सम्यक् परिमितः (**च**) (**सभराः**) समानं बिभ्रतीति सभराः॥८१॥

अन्वयः-ये पुरुषा ईदृङ् चान्यादृङ् च सदृङ् च प्रतिसदृङ् च मितश्च सम्मितश्च सभराश्च वर्त्तन्ते, ते व्यावहारिकीं कार्यसिद्धिं कर्त्तुं शक्नुवन्ति॥८१॥

भावार्थः-यो मनुष्य ईश्वरतुल्य उत्तमस्तदनुकरणं कृत्वा सत्यं धरत्यसत्यं त्यजति, स एव योग्योऽस्ति॥८१॥

पदार्थः-जो पुरुष (**ईदृङ्**) इसके तुल्य (**च**) भी (**अन्यादृङ्**) और के समान (**च**) भी (**सदृङ्**) समान देखने वाला (**च**) भी (**प्रतिसदृङ्**) उस उसके प्रति सदृश देखने वाला (**च**) भी (**मितः**) मान को प्राप्त (**च**) भी (**सम्मितः**) अच्छे प्रकार परिणाम किया गया (**च**) और जो (**सभराः**) समान धारणा को करने वाले वर्त्तमान हैं, वे व्यवहारसम्बन्धी कार्य्यसिद्धि कर सकते हैं॥८१॥

भावार्थः-जो मनुष्य ईश्वर के तुल्य उत्तम और ईश्वर के समान काम को करके सत्य को धारण करता और असत्य का त्याग करता है, वही योग्य है॥८१॥

ऋतश्चेत्यस्य सप्तऋषय ऋषयः। मरुतो देवताः। आर्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनरीश्वरः कीदृशोऽस्तीत्याह॥

फिर ईश्वर कैसा है, यह अगले मन्त्र में कहा है॥

ऋ॒तश्च॑ स॒त्यश्च॑ ध्रु॒वश्च॑ ध॒रुण॑श्च। ध॒र्त्ता च॑ विध॒र्त्ता च॑ विधार॒यः॥८२॥

ऋतः। च। सत्यः। च। ध्रुवः। च। धरुणः। च। धर्त्ता। च। विधर्त्तेति विऽधर्त्ता। च। विधारय इति विऽधारयः॥८२॥

पदार्थः-(**ऋतः**) सत्यज्ञानः (**च**) (**सत्यः**) सत्सु साधुः (**च**) (**ध्रुवः**) दृढनिश्चयः (**च**) (**धरुणः**) आधारः (**च**) (**धर्त्ता**) (**च**) (**विधर्त्ता**) (**च**) (**विधारयः**) यो विशेषेण धारयति सः॥८२॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! य ऋतश्च सत्यश्च ध्रुवश्च धरुणश्च धर्त्ता च विधर्त्ता च विधारयः परमात्माऽस्ति, तमेव इति सर्व उपासीरन्॥८२॥

भावार्थः-ये मनुष्या विद्योत्साहसत्सङ्गपुरुषार्थैः सत्यविज्ञाने धृत्वा सुशीलतां धरन्ति, त एव सुखिनो भवितुमन्याँश्च कर्त्तुं शक्नुवन्ति॥८२॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो (**ऋतः**) सत्य का जानने वाला (**च**) भी (**सत्यः**) श्रेष्ठों में श्रेष्ठ (**च**) भी (**ध्रुवः**) निश्चययुक्त (**च**) भी (**धरुणः**) सब का आधार (**च**) भी (**धर्त्ता**) धारण करने वाला (**च**) भी (**विधर्त्ता**) विशेष करके धारण करने वाला अर्थात् धारकों का धारक (**च**) भी और (**विधारयः**) विशेष करके सब व्यवहार का धारण कराने वाला परमात्मा है, सब लोग उसी की उपासना करें॥८२॥

भावार्थः-जो मनुष्य विद्या, उत्साह, सज्जनों का सङ्ग और पुरुषार्थ से सत्य और विशेष ज्ञान को धारण कर, अच्छे स्वभाव को धारण करते हैं, वे ही आप सुखी हो सकते और दूसरों को कर भी सकते हैं॥८२॥

ऋतजिदित्यस्य सप्तऋषय ऋषयः। मरुतो देवताः। भुरिगार्ष्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

अथ विद्वांसः कीदृशा भवेयुरित्युच्यते

अब विद्वान् लोग कैसे हों, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

ऋतजिच्च सत्यजिच्च सेनजिच्च सुषेणश्च।

अन्तिमित्रश्च दूरेऽअमित्रश्च गणः॥८३॥

ऋतजिदित्यृतऽजित्। च। सत्यजिदिति सत्यऽजित्। च। सेनजिदिति सेनऽजित्। च। सुषेणः। सुसेन इति सुऽसेनः। च। अन्तिमित्र इत्यन्तिऽमित्रः। च। दूरेऽअमित्र इति दूरेऽअमित्रः। च। गणः॥८३॥

पदार्थः-(**ऋतजित्**) य ऋतं विज्ञानमुत्कर्षति सः (**च**) (**सत्यजित्**) सत्यं कारणं धर्मं चोन्नयति (**च**) (**सेनजित्**) यः सेनां जयति सः (**च**) (**सुषेणः**) शोभना सेना यस्य सः (**च**) (**अन्तिमित्रः**) अन्तौ समीपे मित्राः सहायकारिणो यस्य सः (**च**) (**दूरे अमित्रः**) दूरे अमित्राः शत्रवो यस्य सः (**च**) (**गणः**) गणनीयः॥८३॥

अन्वयः-य ऋतजिच्च सत्यजिच्च सेनजिच्च सुषेणश्चान्तिमित्रश्च दूरेऽअमित्रश्च भवेत्, स एव गणो गणनीयो जायते॥८३॥

भावार्थः-ये मनुष्या विद्यासत्यादीनि कर्माण्युन्नयेयुर्मित्रसेविनः शत्रुद्वेषिणश्च भवेयुस्त एव लोके प्रशंसनीयाः स्युः॥८३॥

पदार्थः-जो **(ऋतजित्)** विशेष ज्ञान को बढ़ानेहारा **(च)** और **(सत्यजित्)** कारण तथा धर्म को उन्नति देने वाला **(च)** और **(सेनजित्)** सेना को जीतनेहारा **(च)** और **(सुषेणः)** सुन्दर सेना वाला **(च)** और **(अन्तिमित्रः)** समीप में सहाय करनेहारे मित्र वाला **(च)** और **(दूरे अमित्रः)** शत्रु जिससे दूर भाग गये हों **(च)** और अन्य भी जो इस प्रकार का हो वह **(गणः)** गिनने योग्य होता है॥८३॥

भावार्थः-जो मनुष्य विद्या और सत्य आदि कामों की उन्नति करें तथा मित्रों की सेवा और शत्रुओं से वैर करें, वे ही लोक में प्रशंसा योग्य होते हैं॥८३॥

ईदृक्षास इत्यस्य सप्तऋषय ऋषयः। मरुतो देवताः। निचृदार्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ई॒दृक्षा॑सऽएता॒दृक्षा॑सऽऊ॒ षु णः॑ स॒दृक्षा॑सः॒ प्रति॑सदृक्षास॒ऽएत॑न।

मि॒तास॑श्च॒ सम्मि॑तासो नोऽअ॒द्य सभ॑रसो मरुतो य॒ज्ञेऽअ॒स्मिन्॥८४॥

ई॒दृक्षा॑सः। ए॒ता॒दृक्षा॑सः। ऊँऽइत्यूँ॑। सु। न॒ः। स॒दृक्षा॑स॒ इति॑ स॒ऽदृक्षा॑सः। प्रति॑सदृक्षास॒ इ॒ति॒ प्रति॑ऽसदृक्षासः। आ। इ॒त॒न॒। मि॒तास॑ः। च॒। सम्मि॑तास॒ इ॒ति॒ सम्ऽमि॑तासः। न॒ः। अ॒द्य। सभ॑रस॒ इ॒ति॒ सऽभ॑रसः। म॒रु॒त॒ः। य॒ज्ञे। अ॒स्मिन्॥८४॥

पदार्थः-**(ईदृक्षासः)** एतल्लक्षणसहिताः **(एतादृक्षासः)** एतैः पूर्वोक्तैस्सदृशाः **(उ)** वितर्के **(सु)** सुष्ठु **(नः)** अस्मान् **(सदृक्षासः)** पक्षपातं विहाय समानदृष्टयः **(प्रतिसदृक्षासः)** आप्तसदृशाः **(आ)** **(इतन)** समन्तात् प्राप्नुत **(मितासः)** परिमितविज्ञानाः **(च)** **(सम्मितासः)** तुलावत् सत्यविवेचकाः **(नः)** अस्मान् **(अद्य)** **(सभरसः)** स्वसमानपोषकाः **(मरुतः)** ऋत्विजो विद्वांसः **(यज्ञे)** संगन्तव्ये व्यवहारे **(अस्मिन्)**॥८४॥

अन्वयः-हे मरुतो विद्वांसो य ईदृक्षास एतादृक्षासस्सदृक्षासः प्रतिसदृक्षासो नोऽस्मान् स्वेतन उ मितासः सम्मितासश्चास्मिन् यज्ञे सभरसो भवताऽद्य नो रक्षत, तान् वयमपि सततं सत्कुर्याम॥८४॥

भावार्थः-यदा धार्मिका विद्वांसः क्वापि मिलेयुर्यानुपागच्छेयुरध्यापयेयुः सुशिक्षेरँश्च तदेमे सर्वैः सत्कर्त्तव्याः॥८४॥

पदार्थः-हे **(मरुतः)** ऋतु-ऋतु में यज्ञ करने वाले विद्वानो! जो **(ईदृक्षासः)** इस लक्षण से युक्त **(एतादृक्षासः)** इस पहिले कहे हुओं के सदृश **(सदृक्षासः)** पक्षपात को छोड़ समान दृष्टि वाले **(प्रतिसदृक्षासः)** शास्त्रों को पढ़े हुए सत्य बोलने वाले धर्मात्माओं के सदृश हैं, वे आप **(नः)** हम लोगों को

(सु, आ, इतन) अच्छे प्रकार प्राप्त हों **(उ)** वा **(मितासः)** परिमाणयुक्त जानने योग्य **(सम्मितासः)** तुला के समान सत्य झूठ को पृथक्-पृथक् करने **(च)** और **(अस्मिन्)** इस **(यज्ञे)** यज्ञ में **(सभरसः)** अपने समान प्राणियों की पुष्टि पालना करने वाले हों, वे **(अद्य)** आज **(नः)** हम लोगों की रक्षा करें और उनका हम लोग भी निरन्तर सत्कार करें॥८४॥

भावार्थः-जब धार्मिक विद्वान् जन कहीं मिलें, जिनके समीप जावें, पढ़ावें और शिक्षा देवें, तब वे उन सब लोगों को सत्कार करने योग्य हैं॥८४॥

स्वतवानित्यस्य सप्तऋषय ऋषयः। चातुर्मास्या मरुतो देवताः। स्वराडार्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्स विद्वान् कीदृशो भवेदित्याह॥

फिर वह विद्वान् कैसा हो, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

स्वतवाँश्च प्रघासी च सान्तपनश्च गृहमेधी च।

क्रीडी च शाकी चोज्जेषी॥८५॥

स्वतवानिति स्वऽतवान्। च। प्रघासीति प्रऽघासी। च। सान्तपन इति साम्ऽतपनः। च। गृहमेधीति गृहमेधी। च। क्रीडी। च। शाकी। च। उज्जेषीत्युत्ऽजेषी॥८५॥

पदार्थः-**(स्वतवान्)** यः स्वान् तौति वर्द्धयति सः। अत्र तू धातोरौणादिक आनिः प्रत्ययः **(च)** **(प्रघासी)** बहवः प्रकृष्टा घासा भोज्यानि विद्यन्ते यस्य सः **(च)** **(सान्तपनः)** सम्यक् शत्रून् तापयति तस्यायम् **(च)** **(गृहमेधी)** प्रशस्तो गृहे मेधः सङ्गमोऽस्यास्तीति सः **(च)** **(क्रीडी)** **(च)** अवश्यं क्रीडितुं शीलः **(शाकी)** अवश्यं शक्तुं शीलः **(च)** **(उज्जेषी)** उत्कृष्टतया जेतुं शीलः॥८५॥

अन्वयः-यः स्वतवांश्च प्रघासी च सान्तपनश्च गृहमेधी च क्रीडी च शाकी च भवेत्, स उज्जेषी स्यात्॥८५॥

भावार्थः-यो बहुबलान्नसामर्थ्यो गृहस्थो भवति, स सर्वत्र विजयमाप्नोति॥८५॥

पदार्थः-जो **(स्वतवान्)** अपनों की वृद्धि कराने वाला **(च)** और **(प्रघासी)** जिसके बहुत भोजन करने योग्य पदार्थ विद्यमान हैं, ऐसा **(च)** और **(सान्तपनः)** अच्छे प्रकार शत्रुजनों को तपाने **(च)** और **(गृहमेधी)** जिसका प्रशंसायुक्त घर में सङ्ग ऐसा **(च)** और **(क्रीडी)** अवश्य खेलने के स्वभाव वाला **(च)** और **(शाकी)** अवश्य शक्ति रखने का स्वभाव वाला **(च)** भी हो, वह **(उज्जेषी)** मन से अत्यन्त जीतने वाला हो॥८५॥

भावार्थः-जो बहुत बल और अन्न के सामर्थ्य से युक्त गृहस्थ होता है, वह सब जगह विजय को प्राप्त होता है॥८५॥

इन्द्रमित्यस्य सप्तऋषयः ऋषयः। मरुतो देवताः। निचृच्छक्वरी छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुना राजप्रजाः कथं परस्परं वर्तेरन्नित्याह॥

फिर राजा और प्रजा कैसे परस्पर वर्त्तें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

इन्द्रं दैवीर्विशो मरुतोऽनुवर्त्मानोऽभवन् यथेन्द्रं दैवीर्विशो मरुतोऽनुवर्त्मानोऽभवन्। एवमिमं यजमानं दैवीश्च विशो मानुषीश्चानुवर्त्मानो भवन्तु॥८६॥

इन्द्रम्। दैवीः। विशः। मरुतः। अनुवर्त्मान इत्यनुऽवर्त्मानः। अभवन्। यथा। इन्द्रम्। दैवीः। विशः। मरुतः। अनुवर्त्मान इत्यनुऽवर्त्मानः। अभवन्। एवम्। इमम्। यजमानम्। दैवीः। च। विशः। मानुषीः। च। अनुवर्त्मान इत्यनुऽवर्त्मानः। भवन्तु॥८६॥

पदार्थः-(**इन्द्रम्**) परमैश्वर्ययुक्तं धार्मिकं राजानम् (**दैवीः**) देवानां विदुषामिमाः (**विशः**) प्रजाः (**मरुतः**) ऋत्विजो विद्वांसः (**अनुवर्त्मानः**) अनुकूलो वर्त्मा मार्गो येषां ते (**अभवन्**) भवन्तु (**यथा**) येन प्रकारेण (**इन्द्रम्**) अखिलैश्वर्यं परमेश्वरम् (**दैवीः**) (**विशः**) (**मरुतः**) प्राणा इव प्रियाः (**अनुवर्त्मानः**) अनुकूलाचरणाः (**अभवन्**) (**एवम्**) (**इमम्**) (**यजमानम्**) विद्यासुशिक्षाभ्यां सुखदातारम् (**दैवीः**) (**च**) (**विशः**) (**मानुषीः**) मानुषाणामविदुषामिमाः (**च**) (**अनुवर्त्मानः**) (**भवन्तु**)॥८६॥

अन्वयः-हे राजँस्त्वं तथा वर्त्तस्व यथेमा दैवीर्विशो मरुतश्चेन्द्रमनुवर्त्मानोऽभवन्, यथा मरुतो दैवीर्दिव्या विशश्चेन्द्रमनुवर्त्मानोऽभवन्। एवं दैवीश्च विशो मानुषीश्च विश इमं यजमानमनुवर्त्मानो भवन्तु॥८६॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। यथा प्रजा राजादीनां राजपुरुषाणामनुकूला वर्त्तेरंस्तथैतेऽपि प्रजानुकूला वर्त्तन्ताम्। यथाऽध्यापकोपदेशकाः सर्वेषां सुखाय प्रयतेरंस्तथैव सर्व एतेषां प्रयतन्ताम्॥८६॥

पदार्थः-हे राजन्! आप वैसे अपना वर्त्ताव कीजिये (**यथा**) जैसे (**दैवीः**) विद्वान् जनों के ये (**विशः**) प्रजाजन (**मरुतः**) ऋतु-ऋतु में यज्ञ कराने वाले विद्वान् (**इन्द्रम्**) परमैश्वर्य्ययुक्त राजा के (**अनुवर्त्मानः**) अनुकूल मार्ग से चलने वाले (**अभवन्**) होवें वा जैसे (**मरुतः**) प्राण के समान प्यारे (**दैवीः**) शास्त्र जानने वाले दिव्य (**विशः**) प्रजाजन (**इन्द्रम्**) समस्त ऐश्वर्य्ययुक्त परमेश्वर के (**अनुवर्त्मानः**) अनुकूल आचरण करनेहारे (**अभवन्**) हों (**एवम्**) ऐसे (**दैवीः**) शास्त्र पढ़े हुए (**च**) और (**मानुषीः**) मूर्ख (**च**) ये दोनों (**विशः**) प्रजाजन (**इमम्**) इस (**यजमानम्**) विद्या और अच्छी शिक्षा से सुख देनेहारे सज्जन के (**अनुवर्त्मानः**) अनुकूल आचरण करने वाले (**भवन्तु**) हों॥८६॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमलङ्कार हैं। जैसे प्रजाजन राजा आदि राजपुरुषों के अनुकूल वर्त्तें, वैसे ये लोग भी प्रजाजनों के अनुकूल वर्त्तें। जैसे अध्यापन और उपदेश करने वाले सब के सुख के लिये प्रयत्न करें, वैसे सब लोग इनके सुख के लिये प्रयत्न करें॥८६॥

इममित्यस्य सप्तऋषयः ऋषयः। अग्निर्देवता। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनर्मनुष्यैः कथं वर्त्तितव्यमित्याह॥

फिर मनुष्यों को कैसे वर्त्तना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

इमꣳ स्तनमूर्जस्वन्तं धयापां प्रपीनमग्ने सरिरस्य मध्ये।

उत्सं जुषस्व मधुमन्तमर्वन्त्समुद्रियꣳ सदनमाविशस्व॥८७॥

इमम्। स्तनम्। ऊर्जस्वन्तम्। धय। अपाम्। प्रपीनमिति प्रऽपीनम्। अग्ने। सरिरस्य। मध्ये। उत्सम्। जुषस्व। मधुमन्तमिति मधुऽमन्तम्। अर्वन्। समुद्रियम्। सदनम्। आ। विशस्व॥८७॥

पदार्थः-(**इमम्**) (**स्तनम्**) दुग्धाधारम् (**ऊर्जस्वन्तम्**) प्रशस्तबलकारकम् (**धय**) पिब (**अपाम्**) जलानाम् (**प्रपीनम्**) प्रकृष्टतया स्थूलम् (**अग्ने**) पावक इव वर्त्तमान (**सरिरस्य**) बहोः। **सरिरमिति बहुनामसु पठितम्॥** (निघं०३.१) (**मध्ये**) (**उत्सम्**) उन्दन्ति येन तं कूपम्। **उत्समिति कूपनामसु पठितम्॥** (निघं०३.२३) (**जुषस्व**) सेवस्व (**मधुमन्तम्**) प्रशस्तं मधु माधुर्यं विद्यते यस्मिँस्तम् (**अर्वन्**) अश्व इव वर्त्तयन् (**समुद्रियम्**) सागरे भवम् (**सदनम्**) सीदन्ति गच्छन्ति यत्तत् (**आ**) (**विशस्व**) अत्र व्यत्ययेनात्मनेपदम्॥८७॥

अन्वयः-हे अग्ने! पालक! त्वं प्रपीनं स्तनमिवेममूर्जस्वन्तमपां रसं धय, सरिरस्य मध्ये मधुमन्तमुत्सं जुषस्व। हे अर्वंस्त्वं समुद्रियं सदनमाविशस्व॥८७॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा बालका वत्साश्च स्तनदुग्धं पीत्वा वर्द्धन्ते, यथा वाऽश्वः शीघ्रं धावति तथा मनुष्या युक्ताहारविहारेण वर्धमाना वेगेन गच्छन्तु, यथाऽद्भिः पूर्णे समुद्रे नौकायां स्थित्वा गच्छन्तः सुखेन पारावारे यान्ति, तथैव सुसाधनैर्व्यवहारस्य पारावारौ प्राप्नुवन्तु॥८७॥

पदार्थः-हे (**अग्ने**) अग्नि के समान वर्त्तमान पुरुष! तू (**प्रपीनम्**) अच्छे दूध से भरे हुए (**स्तनम्**) स्तन के समान (**इमम्**) इस (**ऊर्जस्वन्तम्**) प्रशंसित बल करते हुए (**अपाम्**) जलों के रस को (**धय**) पी (**सरिरस्य**) बहुतों के (**मध्ये**) बीच में (**मधुमन्तम्**) प्रशंसित मधुरतादि गुणयुक्त (**उत्सम्**) जिससे पदार्थ गीले होते हैं, उस कूप को (**जुषस्व**) सेवन कर वा हे (**अर्वन्**) घोड़ों के समान वर्त्ताव रखनेहारे जन! तू (**समुद्रियम्**) समुद्र में हुए स्थान कि (**सदनम्**) जिसमें जाते हैं, उस में (**आ, विशस्व**) अच्छे प्रकार प्रवेश कर॥८७॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे बालक और बछड़े स्तन के दूध को पी के बढ़ते हैं, वा जैसे घोड़ा शीघ्र दौड़ता है, वैसे मनुष्य यथायोग्य भोजन और शयनादि आराम से बढ़े हुए वेग से चलें, जैसे जलों से भरे हुए समुद्र के बीच नौका में स्थित होकर जाते हुए सुखपूर्वक पारावार अर्थात् इस पार से उस पार पहुँचते हैं, वैसे ही अच्छे साधनों से व्यवहार के पार और अवार को प्राप्त होवें॥८७॥

घृतमित्यस्य गृत्समद ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनर्मनुष्यैरग्निः क्व क्वान्वेषणीय इत्याह॥

फिर मनुष्यों को अग्नि कहां-कहां खोजना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया हैं॥

घृतं मिमिक्षे घृतमस्य योनिर्घृते श्रितो घृतम्वस्य धाम।

अनुष्वधमावह मादयस्व स्वाहाकृतं वृषभ वक्षि हव्यम्॥८८॥

घृतम्। मिमिक्षे। घृतम्। अस्य। योनिः। घृते। श्रितः। घृतम्। ऊँऽइत्यूँ। अस्य। धाम। अनुष्वधम्। अनुस्वधमित्यनुऽस्वधम्। आ। वह। मादयस्व। स्वाहाकृतमिति स्वाहाऽकृतम्। वृषभ। वक्षि। हव्यम्॥८८॥

पदार्थः-(**घृतम्**) उदकम् (**मिमिक्षे**) सिञ्चितुमिच्छ (**घृतम्**) जलम् (**अस्य**) (**योनिः**) गृहम् (**घृते**) (**श्रितः**) (**घृतम्**) उदकम् (उ) वितर्के (**अस्य**) पावकस्य (**धाम**) अधिकरणम् (**अनुष्वधम्**) स्वधान्नस्यानुकूलम् (**आ**) (**वह**) प्रापय (**मादयस्व**) हर्षयस्व (**स्वाहाकृतम्**) वेदवाणीनिष्पादितम् (**वृषभ**) यो वर्षति तत्सम्बुद्धौ (**वक्षि**) कामयसे प्राप्नोषि वा (**हव्यम्**) होतुमादातुमर्हम्॥८८॥

अन्वयः-हे समुद्रयायिन्! त्वं घृतं मिमिक्षे उ अस्याग्नेर्घृतं योनिरस्ति, यो घृते श्रितो घृतमस्य धाम तमग्निमनुष्वधमावह। हे वृषभ! त्वं यतः स्वाहाकृतं हव्यं वक्षि, तेनास्मान् मादयस्व॥८८॥

भावार्थः-यावानग्निर्जलेऽस्ति तावान् जलाधिकरण उच्यते, यथाज्येन वह्निर्वर्धते तथा जलेन सर्वे पदार्था वर्धन्ते। अन्नमनुकूलमाज्यं चानन्दकारि जायते, तस्मात् सर्वैरेतत्कमनीयम्॥८८॥

पदार्थः-हे समुद्र में जाने वाले मनुष्य! आप (**घृतम्**) जल को (**मिमिक्षे**) सींचना चाहो (**उ**) वा (**अस्य**) इस आग का (**घृतम्**) घी (**योनिः**) घर है, जो (**घृते**) घी में (**श्रितः**) आश्रय को प्राप्त हो रहा है वा (**घृतम्**) जल (**अस्य**) इस आग का (**धाम**) धाम अर्थात् ठहरने का स्थान है, उस अग्नि को तू (**अनुष्वधम्**) अन्न की अनुकूलता को (**आ, वह**) पहुँचा। हे (**वृषभ**) वर्षाने वाले जन! तू जिस कारण (**स्वाहाकृतम्**) वेदवाणी से सिद्ध किये (**हव्यम्**) लेने योग्य पदार्थ को (**वक्षि**) चाहता वा प्राप्त होता है, इसलिये हम लोगों को (**मादयस्व**) आनन्दित कर॥८८॥

भावार्थः-जितना अग्नि जल में है, उतना जलाधिकरण अर्थात् जल में रहने वाला कहाता है, जैसे घी से अग्नि बढ़ता है, वैसे जल से सब पदार्थ बढ़ते हैं और अन्न अनुकूल घी आनन्द कराने वाला होता है, इससे उक्त व्यवहार की चाहना सब लोगों को करनी चाहिये॥८८॥

समुद्रादित्यस्य वामदेव ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनर्मनुष्यैः कथं वर्त्तितव्यमित्याह॥

फिर मनुष्यों को कैसे वर्त्ताव रखना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

समुद्रादूर्मिर्मधुमाँ२ऽउदारदुपाꣳशुना सममृतत्वमानट्।

घृतस्य नाम गुह्यं यदस्ति जिह्वा देवानाममृतस्य नाभिः॥८९॥

समुद्रात्। ऊर्मिः। मधुमानिति मधुऽमान्। उत्। आरत्। उप। अꣳशुना। सम्। अमृतत्वमित्यमृतत्वम्। आनट्। घृतस्य नाम। गुह्यम्। यत्। अस्ति। जिह्वा। देवानाम्। अमृतस्य। नाभिः॥८९॥

पदार्थः-(**समुद्रात्**) अन्तरिक्षात् (**ऊर्मिः**) तरङ्गः (**मधुमान्**) मधुरगुणयुक्तः (**उत्**) (**आरत्**) उदूर्ध्वं प्राप्नोति (**उप**) (**अंशुना**) किरणसमूहेन (**सम्**) (**अमृतत्वम्**) अमृतस्य भावम् (**आनट्**) समन्ताद् व्याप्नोति (**घृतस्य**) जलस्य (**नाम**) संज्ञा (**गुह्यम्**) रहस्यम् (**यत्**) (**अस्ति**) (**जिह्वा**) वाणी (**देवानाम्**) विदुषाम् (**अमृतस्य**) मोक्षस्य (**नाभिः**) स्तम्भनं स्थिरीकरणं प्रबन्धनम्॥८९॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! भवन्तो यत्समुद्रादंशुना मधुमानूर्मिरुदारत् सममृतत्वमानट् यद् घृतस्य गुह्यं नामास्ति, या देवानां जिह्वाऽमृतस्य नाभिरस्ति तत्सर्वं सेवन्ताम्॥८९॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यथाऽग्निर्मिलितयोर्जलभूम्योर्विभागेन मेघमण्डलं प्रापय्य मधुरं जलं संपादयति, यत्कारणाख्यामपां नाम तद् गुह्यमस्ति, मोक्षश्चैतत्सर्वमुपदेशेनैव लभ्यमिति वेद्यम्॥८९॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! आप लोग जो (**समुद्रात्**) अन्तरिक्ष से (**अंशुना**) किरणसमूह के साथ (**मधुमान्**) मिठास लिये हुए (**ऊर्मिः**) जलतरङ्ग (**उदारत्**) ऊपर को पहुँचे वह (**सममृतत्वम्**) अच्छे प्रकार अमृतरूप स्वाद के (**उपानट्**) समीप में व्याप्त हो अर्थात् अतिस्वाद को प्राप्त होवे (**यत्**) जो (**घृतस्य**) जल का (**गुह्यम्**) गुप्त (**नाम**) नाम (**अस्ति**) है और जो (**देवानाम्**) विद्वानों की (**जिह्वा**) वाणी (**अमृतस्य**) मोक्ष का (**नाभिः**) प्रबन्ध करने वाली है, उस सब का सेवन करो॥८९॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जैसे अग्नि, मिले हुए जल और भूमि के विभाग से अर्थात् उनमें से जल पृथक् कर मेघमण्डल को प्राप्त करा उसको भी मीठा कर देता है तथा जो जलों का कारणरूप नाम है, वह गुप्त अर्थात् कारणरूप जल अत्यन्त छिपे हुए और जो मोक्ष है यह सब विद्वानों के उपदेश से ही मिलता है, ऐसा जानना चाहिये॥८९॥

वयमित्यस्य वामदेव ऋषिः। अग्निर्देवता। विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

वयं नाम प्र ब्रवामा घृतस्यास्मिन् यज्ञे धारयामा नमोभिः।

उप ब्रह्मा शृणवच्छस्यमानं चतुःशृङ्गोऽवमीद् गौरऽएतत्॥९०॥

वयम्। नाम। प्र। ब्रवाम। घृतस्य। अस्मिन्। यज्ञे। धारयाम। नमोभिरिति नमःऽभिः। उप। ब्रह्मा। शृणवत्। शस्यमानम्। चतुःशृङ्ग इति चतुःऽशृङ्गः। अवमीत्। गौरः। एतत्॥९०॥

पदार्थः-(**वयम्**) (**नाम**) पदार्थानां संज्ञाम् (**प्र, ब्रवाम**) उपदिशेम (**घृतस्य**) आज्यस्य जलस्य वा (**अस्मिन्**) (**यज्ञे**) गृहाश्रमव्यवहारे (**धारयाम**) अत्र **अन्येषामपि०** [अष्टा०६.३.१३७] इति दीर्घः। (**नमोभिः**) अन्नादिभिः (**उप**) (**ब्रह्मा**) चतुर्वेदवित् (**शृणवत्**) शृणुयात् (**शस्यमानम्**) प्रशंसितं सत् (**चतुःशृङ्गः**) चत्वारो वेदाः शृङ्गवदुत्तमा यस्य सः (**अवमीत्**) उपदिशेत् (**गौरः**) यो वेदविद्यावाचि रमते स एव (**एतत्**)॥९०॥

अन्वयः-यच्चतुःशृङ्गो गौरो ब्रह्माऽवमीदुपशृणवत्, तद् घृतस्य शस्यमानं गुह्यं नामास्त्येतद् वयमन्यान् प्रति प्रब्रवामास्मिन् यज्ञे नमोभिर्धारयाम च॥९०॥

भावार्थः-मनुष्या मनुष्यदेहं प्राप्य सर्वेषां पदार्थानां नामान्यर्थांश्चाध्यापकेभ्यः श्रुत्वान्येभ्यो ब्रूयुः। एतैः सृष्टिस्थैः पदार्थैः सर्वाणि कार्याणि च साधयेयुः॥९०॥

पदार्थः-जिसको (**चतुःशृङ्गः**) जिसके चारों वेद सींगों के समान उत्तम हैं, वह (**गौरः**) वेदवाणी में रमण करने वा वेदवाणी को देने और (**ब्रह्मा**) चारों वेदों को जानने वाला विद्वान् (**अवमीत्**) उपदेश करे वा (**उप, शृणवत्**) समीप में सुने, वह (**घृतस्य**) घी वा जल का (**शस्यमानम्**) प्रशंसित हुआ गुप्त (**नाम**) नाम है, (**एतत्**) इसको (**वयम्**) हम लोग औरों के प्रति (**प्र, ब्रवाम**) उपदेश करें और (**अस्मिन्**) इस (**यज्ञे**) गृहाश्रम व्यवहार में (**नमोभिः**) अन्न आदि पदार्थों के साथ (**धारयाम**) धारण करें॥९०॥

भावार्थः-मनुष्य लोग मनुष्य देह को पाकर सब पदार्थों के नाम और अर्थों को पढ़ाने वालों से सुनकर औरों के लिये कहें और इस सृष्टि में स्थित पदार्थों से समस्त कामों की सिद्धि करावें॥९०॥

चत्वारीत्यस्य वामदेव ऋषिः। यज्ञपुरुषो देवता। विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ यज्ञादिगुणानाह॥

अब यज्ञ के गुणों वा शब्दशास्त्र के गुणों को अगले मन्त्र में कहा है॥

चत्वारि शृङ्गा त्रयोऽअस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासोऽअस्य।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्याँ २ऽआविवेश॥९१॥

चत्वारि। शृङ्गा। त्रयः। अस्य। पादाः। द्वेऽइति द्वे। शीर्षेऽइति शीर्षे। सप्त। हस्तासः। अस्य। त्रिधा। बद्धः। वृषभः। रोरवीति। महः। देवः। मर्त्यान्। आ। विवेश॥९१॥

पदार्थः-(**चत्वारि**) (**शृङ्गा**) शृङ्गाणीव चत्वारो वेदा नामाख्यातोपसर्गनिपाता वा (**त्रयः**) प्रातर्मध्यसायं सवनानि, भूतभविष्यद्वर्त्तमानाः काला वा (**अस्य**) यज्ञस्य शब्दस्य वा (**पादाः**) अधिगमसाधनानि (**द्वे**) (**शीर्षे**) शिरसी प्रायणीयोदयनीये, नित्यः कार्यश्च शब्दात्मानौ वा (**सप्त**)

एतत्संख्याकानि गायत्र्यादीनि छन्दांसि, विभक्तयो वा **(हस्तासः)** हस्तेन्द्रियमिव **(अस्य)** **(त्रिधा)** त्रिभिः प्रकारैर्मन्त्रब्राह्मणकल्पैः, उरसि कण्ठे शिरसि वा **(बद्धः)** **(वृषभः)** सुखानामभिवर्षकः **(रोरवीति)** ऋग्वेदादिना सवनक्रमेण वा शब्दायते **(महः)** महान् **(देवः)** संगमनीयः प्रकाशको वा **(मर्त्यान्)** मनुष्यान् **(आ, विवेश)** आविशति। अत्राहुर्नैरुक्ताः-**चत्वारि शृङ्गेति वेदा वा एत उक्तास्त्रयोऽस्य पादा इति सवनानि त्रिणि, द्वे शीर्षे प्रायणीयोदयनीये, सप्त हस्तासः सप्त छन्दांसि, त्रिधा बद्धस्त्रेधा बद्धो मन्त्रब्राह्मणकल्पैर्वृषभो रोरवीति। रोरवणमस्य सवनक्रमेण ऋग्भियजुर्भिः सामभिर्यदेनमृग्भिः शंसन्ति यजुर्भिर्यजन्ति सामभिः स्तुवन्ति। महो देव इत्येष हि महान् देवो यद्यज्ञो मर्त्याँ आ विवेशेत्येष हि मनुष्यानाविशति यजनाय॥** (निरु०१३.७) पक्षान्तरं पतञ्जलिमुनिरेवमाहः-**चत्वारि शृङ्गाणि। चत्वारि पदजातानि नामाख्यातोपसर्गनिपाताश्च॥ त्रयो अस्य पादाः। त्रयः काला भूतभविष्यद्वर्त्तमानाः॥ द्वे शीर्षे। द्वौ शब्दात्मानौ नित्यः कार्यश्च॥ सप्तहस्तासो अस्य। सप्त विभक्तयः॥ त्रिधा बद्धः। त्रिषु स्थानेषु बद्ध उरसि कण्टे शिरसीति॥ वृषभो वर्षणात्॥ रोरवीति शब्दं करोति॥ कुत एतत्? रौतिः शब्दकर्मा महो देवो मर्त्याँ आविवेशेति। महान् देवः शब्दो मर्त्या मरणधर्माणो मनुष्यास्तानाविवेश॥** (महा०भा०अ०१. पा०१. आ०१)॥९१॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यूयं यस्यास्य त्रयः पादाश्चत्वारि शृङ्गा द्वे शीर्षे यस्यास्य सप्त हस्तासः सन्ति, यस्त्रिधा बद्धो महो देवो वृषभो यज्ञः शब्दो वा रोरवीति मर्त्यानाविवेश तमनुष्ठायाभ्यस्य च सुखिनो विद्वांसो भवत॥९१॥

भावार्थः-अत्रोभयोक्त्या रूपकः श्लेषोऽलङ्कारश्च। ये मनुष्या यज्ञविद्यां शब्दविद्यां च जानन्ति, ते महाशया विद्वांसो भवन्ति॥९१॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम जिस **(अस्य)** इसके **(त्रयः)** प्रातःसवन, मध्यन्दिनसवन और सायंसवन ये तीन **(पादाः)** प्राप्ति के साधन **(चत्वारि)** चार वेद **(शृङ्गा)** सींग **(द्वे)** दो **(शीर्षे)** अस्तकाल और उदयकाल शिर वा जिस **(अस्य)** इसके **(सप्त, हस्तासः)** गायत्री आदि छन्द सात हाथ हैं वा जो **(त्रिधा)** मन्त्र, ब्राह्मण और कल्प इन तीन प्रकारों से **(बद्धः)** बंधा हुआ **(महः)** बड़ा **(देवः)** प्राप्त करने योग्य **(वृषभः)** सुखों को सब ओर से वर्षाने वाला यज्ञ **(रोरवीति)** प्रातः, मध्य और सायं सवन क्रम से शब्द करता हुआ **(मर्त्यान्)** मनुष्यों को **(आ, विवेश)** अच्छे प्रकार प्रवेश करता है, उस का अनुष्ठान करके सुखी होओ॥१॥९१॥

द्वितायपक्षः-हे मनुष्यो! तुम जिस **(अस्य)** इसके **(त्रयः)** भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान तीन काल **(पादाः)** पग **(चत्वारि)** नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात चार **(शृङ्गा)** सींग **(द्वे)** दो **(शीर्षे)** नित्य और कार्य शब्द शिर वा जिस **(अस्य)** इसके **(सप्त, हस्तासः)** प्रथमा आदि सात विभक्ति सात हाथ वा जो **(त्रिधा, बद्धः)** हृदय कण्ठ और शिर इन तीनों स्थानों में बंधा हुआ **(महः)** बड़ा **(देवः)** शुद्ध, अशुद्ध का

प्रकाशक **(वृषभ:)** सुखों का वर्षाने वाला शब्दशास्त्र **(रोरवीति)** ऋक्, यजु:, साम और अथर्ववेद से शब्द करता हुआ **(मर्त्यान्)** मनुष्यों को **(आ, विवेश)** प्रवेश करता है, उस का अभ्यास करके विद्वान् होओ॥२॥९१॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उभयोक्ति अर्थात् उपमान के न्यूनाधिक धर्मों के कथन से रूपक और श्लेषालङ्कार है। जो मनुष्य यज्ञविद्या और शब्दविद्या को जानते हैं, वे महाशय विद्वान् होते हैं॥९१॥

त्रिधेत्यस्य वामदेव ऋषि:। यज्ञपुरुषो देवता। आर्षी त्रिष्टुप् छन्द:। धैवत: स्वर:॥

अथ मनुष्यै: कथं वर्त्तितव्यमित्याह॥

अब मनुष्यों को कैसे वर्त्तना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

त्रिधा हितं पणिभिर्गुह्यमानं गवि देवासो घृतमन्वविन्दन्।

इन्द्रऽएकः सूर्यऽएकञ्जजान वेनादेकꣳस्वधया निष्टतक्षु:॥९२॥

त्रिधा। हितम्। पणिभिरिति पणिऽभि:। गुह्यमानम्। गवि। देवास:। घृतम्। अनु। अविन्दन्। इन्द्र:। एकम्। सूर्य:। एकम्। जजान। वेनात्। एकम्। स्वधया। नि:। ततक्षु:॥९२॥

पदार्थ:-**(त्रिधा)** त्रिभि: प्रकारै: **(हितम्)** स्थितम् **(पणिभि:)** व्यवहारज्ञै: स्तावकै: **(गुह्यमानम्)** रहसि स्थितम् **(गवि)** वाचि **(देवास:)** विद्वांस: **(घृतम्)** प्रदीप्तं विज्ञानम् **(अनु)** **(अविन्दन्)** लभन्ते **(इन्द्र:)** विद्युत् **(एकम्)** **(सूर्य:)** सविता **(एकम्)** **(जजान)** जनयति **(वेनात्)** कमनीयात् मेधाविन:। **वेन इति मेधाविनामसु पठितम्॥** (निघं०३.१५) **(एकम्)** विज्ञानम् **(स्वधया)** स्वेन धारितया क्रियया **(नि:)** नितराम् **(ततक्षु:)** तनूकुर्य्यु:॥९२॥

अन्वय:-हे मनुष्या:! यथा देवास: पणिभिस्त्रिधा हितं गवि गुह्यमानं घृतमन्वविन्दन् यदीन्द्र एकं सूर्य एकं जजान वेनाच्च स्वधयैकं निष्टतक्षुस्तथा यूयमप्याचरत॥९२॥

भावार्थ:-त्रिप्रकारकं स्थूलसूक्ष्मकारणविज्ञापकं तं विद्युत्सूर्यप्रकाशमिव प्रकाशितमाप्तेभ्यो ये मनुष्या: प्राप्नुयुस्ते स्वकीयं ज्ञानं व्याप्तं कुर्यु:॥९२॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! जैसे **(देवास:)** विद्वान् जन **(पणिभि:)** व्यवहार के ज्ञाता स्तुति करने वालों ने **(त्रिधा)** तीन प्रकार से **(हितम्)** स्थित किये और **(गवि)** वाणी में **(गुह्यमानम्)** छिपे हुए **(घृतम्)** प्रकाशित ज्ञान को **(अनु, अविन्दन्)** खोजने के पीछे पाते हैं, **(इन्द्र:)** बिजुली जिस **(एकम्)** एक विज्ञान और **(सूर्य:)** सूर्य **(एकम्)** एक विज्ञान को **(जजान)** उत्पन्न करते तथा **(वेनात्)** अति सुन्दर मनोहर बुद्धिमान् से तथा **(स्वधया)** आप धारण की हुई क्रिया से **(एकम्)** अद्वितीय विज्ञान को **(नि:)** निरन्तर **(ततक्षु:)** अतितीक्ष्ण सूक्ष्म करते हैं, वैसे तुम लोग भी आचरण करो॥९२॥

भावार्थः-तीन प्रकार के स्थूल, सूक्ष्म और कारण के ज्ञान करानेहारे बिजुली तथा सूर्य के प्रकार के तुल्य प्रकाशित बोध को आप्त अर्थात् उत्तम शास्त्रज्ञ विद्वानों से जो मनुष्य प्राप्त हों, वे अपने ज्ञान को व्याप्त करें॥९२॥

एता इत्यस्य वामदेव ऋषिः। यज्ञपुरुषो देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनर्मनुष्यैः कीदृशी वाक् प्रयोज्येत्याह॥

फिर मनुष्यों को कैसी वाणी का प्रयोग करना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

एताऽअर्षन्ति हृद्यात् समुद्राच्छतव्रजा रिपुणा नावचक्षे।
घृतस्य धाराऽअभि चाकशीमि हिरण्ययो वेतसो मध्यऽआसाम्॥९३॥

एताः। अर्षन्ति। हृद्यात्। समुद्रात्। शतव्रजा इति शतऽव्रजाः। रिपुणा। न। अवचक्ष इत्यवऽचक्षे। घृतस्य। धाराः। अभि। चाकशीमि। हिरण्ययः। वेतसः। मध्ये। आसाम्॥९३॥

पदार्थः-(**एताः**) (**अर्षन्ति**) गच्छन्ति निस्सरन्ति (**हृद्यात्**) हृदये भवात् (**समुद्रात्**) अन्तरिक्षात् (**शतव्रजाः**) शतमसंख्याता व्रजा मार्गा यासां ताः (**रिपुणा**) शत्रुणा स्तेनेन। **रिपुरिति स्तेननामसु पठितम्॥** (निघं०३.२४) (**न**) निषेधे (**अवचक्षे**) अवख्यातव्याः (**घृतस्य**) आज्यस्य (**धाराः**) (**अभि**) (**चाकशीमि**) सर्वतोऽनुशास्मि (**हिरण्ययः**) तेजःस्वरूपः (**वेतसः**) कमनीयः (**मध्ये**) (**आसाम्**) वेदधर्मयुक्तवाणीनाम्॥९३॥

अन्वयः-या रिपुणा नावचक्षे शतव्रजा एता वाचो हृद्यात् समुद्रादर्षन्त्यासां मध्ये या अग्नौ घृतस्य धारा इव जनेषु पतिताः प्रकाशन्ते, ता हिरण्ययो वेतसोऽहमभिचाकशीमि॥९३॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथोपदेशका विद्वांसो याः पवित्रा विज्ञानयुक्ता अनेकमार्गाः शत्रुभिरखण्ड्या घृतस्य प्रवाहोऽग्निमिव श्रोतॄन् प्रसादयन्ति, ता वाचः प्राप्नुवन्ति, तथा सर्वे मनुष्याः प्रयत्नेनैताः प्राप्नुयुः॥९३॥

पदार्थः-जो (**रिपुणा**) शत्रु चोर से (**न, अवचक्षे**) न काटने योग्य (**शतव्रजाः**) सैकड़ों जिनके मार्ग हैं, (**एताः**) वे वाणी (**हृद्यात्, समुद्रात्**) हृदयाकाश से (**अर्षन्ति**) निकलती हैं, (**आसाम्**) इन वैदिक धर्मयुक्त वाणियों के (**मध्ये**) बीच जो अग्नि में (**घृतस्य**) घी की (**धाराः**) धाराओं के समान मनुष्यों में गिरी हुई प्रकाशित होती हैं, उनकी (**हिरण्ययः**) तेजस्वी (**वेतसः**) अतिसुन्दर मैं (**अभि, चाकशीमि**) सब ओर से शिक्षा करता हूं॥९३॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे उपदेशक विद्वान् लोग जो वाणी पवित्र, विज्ञानयुक्त, अनेक मार्गों वाली शत्रुओं से अखण्ड्य और घी का प्रवाह अग्नि को जैसे उत्तेजित करता है,

वैसे श्रोताओं को प्रसन्न करने वाली हैं, उन वाणियों को प्राप्त होते हैं, वैसे सब मनुष्य अच्छे यत्न से इन को प्राप्त होवें॥९३॥

सम्यगित्यस्य वामदेव ऋषिः। यज्ञपुरुषो देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

सम्यक् स्रवन्ति सरितो न धेनाऽअन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः।
एतेऽअर्षन्त्यूर्मयो घृतस्य मृगाऽइव क्षिपणोरीषमाणाः॥९४॥

सम्यक्। स्रवन्ति। सरितः। न। धेनाः। अन्तः। हृदा। मनसा। पूयमानाः। एते। अर्षन्ति। ऊर्मयः। घृतस्य। मृगाःऽइव। क्षिपणोः। ईषमाणाः॥९४॥

पदार्थः-(**सम्यक्**) (**स्रवन्ति**) क्षरन्ति (**सरितः**) नद्यः। **सरित इति नदीनामसु पठितम्॥** (निघं०१.१३) (**न**) इव (**धेनाः**) वाचः। **धेनेति वाङ्नामसु पठितम्॥** (निघं०१.११) (**अन्तः**) शरीरान्तर्व्यवस्थितेन (**हृदा**) विषयहारकेण (**मनसा**) शुद्धान्तःकरणेन (**पूयमानाः**) पवित्राः सत्यः (**एते**) (**अर्षन्ति**) गच्छन्ति प्राप्नुवन्ति (**ऊर्मयः**) तरङ्गाः (**घृतस्य**) प्रकाशितस्य विज्ञानस्य (**मृगा इव**) (**क्षिपणोः**) हिंसकस्य भयात् (**ईषमाणाः**) भयात् पलायमानाः॥९४॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! या अन्तर्हृदा मनसा पूयमाना धेनाः सरितो न सम्यक् स्रवन्ति, ता ये चैते घृतस्योर्मयः क्षिपणोरीषमाणा मृगा इवार्षन्ति, ताँश्च यूयं विजानीत॥९४॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्काराः। यथा नद्यः समुद्रान् गच्छन्ति, तथैवान्तरिक्षस्थाच्छब्दसमुद्राद् वाचो विचरन्ति। यथा समुद्रस्य तरङ्गाश्चलन्ति यथा च व्याधाद् भीता मृगा धावन्ति, तथैव सर्वेषां प्राणिनां शरीरस्थेन विज्ञानेन पवित्राः सत्यो वाण्यः प्रचरन्ति, ये शास्त्राभ्याससत्यवचनादिभिर्वाचः पवित्रयन्ति, त एव शुद्धा जायन्ते॥९४॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो (**अन्तः, हृदा**) शरीर के बीच में (**मनसा**) शुद्ध अन्तःकरण से (**पूयमानाः**) पवित्र हुई (**धेनाः**) वाणी (**सरितः**) नदियों के (**न**) समान (**सम्यक्**) अच्छे प्रकार (**स्रवन्ति**) प्रवृत्त होती हैं, उनको जो (**एते**) ये वाणी के द्वार (**घृतस्य**) प्रकाशित आन्तरिक ज्ञान की (**ऊर्मयः**) लहरें (**क्षिपणोः**) हिंसक जन के भय से (**ईषमाणाः**) भागते हुए (**मृगा इव**) हरिणों के तुल्य (**अर्षन्ति**) उठती तथा सबको प्राप्त होती हैं, उनको भी तुम लोग जानो॥९४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में दो उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे नदी समुद्रों को जाती हैं, वैसे ही आकाशस्थ शब्दसमुद्र से (आकाश का शब्द गुण है इससे) वाणी विचरती हैं, तथा जैसे समुद्र की तरङ्गें चलती हैं, वा जैसे बहेलियों से डरपे हुए मृग इधर-उधर भागते हैं, वैसे ही सब प्राणियों की

शरीरस्थ विज्ञान से पवित्र हुई वाणी प्रचार को प्राप्त होती हैं। जो लोग शास्त्र के अभ्यास और सत्य-वचन आदि से वाणियों को पवित्र करते हैं, वे ही शुद्ध होते हैं॥९४॥

सिन्धोरित्यस्य वामदेव ऋषिः। यज्ञपुरुषो देवता। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

सिन्धोरिव प्राध्वने शूघनासो वातप्रमियः पतयन्ति यह्वाः।
घृतस्य धाराऽअरुषो न वाजी काष्ठा भिन्दन्नूर्मिभिः पिन्वमानः॥९५॥

सिन्धोरिवेति सिन्धाःऽइव। प्राध्वन इति प्रऽअध्वने। शूघनासः। वातप्रमिय इति वातऽप्रमियः। पतयन्ति। यह्वाः। घृतस्य। धाराः। अरुषः। न। वाजी। काष्ठाः। भिन्दन्। ऊर्मिभिरित्यूर्मिः। पिन्वमानः॥९५॥

पदार्थः-(**सिन्धोरिव**) नद्या इव (**प्राध्वने**) प्रकृष्टश्चासावध्वा च तस्मिन्। सप्तम्यर्थे चतुर्थी (**शूघनासः**) क्षिप्रगमनाः। **शूघनास इति क्षिप्रनामसु पठितम्॥** (निघं०२.१५) (**वातप्रमियः**) वातेन प्रमातुं ज्ञातुं योग्याः (**पतयन्ति**) पतन्ति गच्छन्ति, चुरादित्वात् स्वार्थे णिच् (**यह्वाः**) महत्यः। **यह्व इति महन्नामसु पठितम्॥** (निघं०३.३) (**घृतस्य**) विज्ञानस्य (**धाराः**) वाचः (**अरुषः**) य ऋच्छत्यध्वानं सः (**न**) इव (**वाजी**) वेगवानश्वः (**काष्ठाः**) संग्रामप्रदेशान्। **काष्ठा इति संग्रामनामसु पठितम्॥** (निघं०२.१७) (**भिन्दन्**) विदारयन् (**ऊर्मिभिः**) शत्रुभेदनोत्थश्रमस्वेदोदकैः (**पिन्वमानः**) सिञ्चन्॥९५॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! प्राध्वने सिन्धोरिव शूघनासो वातप्रमियः काष्ठा भिन्दन्नूर्मिभिर्भूमिं पिन्वमानोऽरुषो वाजी न या यह्वा घृतस्य धाराः पतयन्ति, ता यूयं विजानीत॥९५॥

भावार्थः-अत्राप्युपमाद्वयम्-ये नदीवत् कार्यसिद्धये तूर्णगामिनोऽश्ववद् वेगवन्तः सर्वासु दिक्षु प्रवृत्तकीर्त्तयो जनाः परोपकारायोपदेशेन महान्ति दुःखानि सहन्ते, ते तेषां श्रोतारश्च जगत्स्वामिनो भवन्ति, नेतरे॥९५॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! (**प्राध्वने**) जल चलने के उत्तम मार्ग में (**सिन्धोरिव**) नदी की जैसे (**शूघनासः**) शीघ्र चलनेहारी (**वातप्रमियः**) वायु से जानने योग्य लहरें गिरें और (**न**) जैसे (**काष्ठाः**) संग्राम के प्रदेशों को (**भिन्दन्**) विदीर्ण करता तथा (**ऊर्मिभिः**) शत्रुओं को मारने के श्रम से उठे पसीने रूप जल से पृथिवी को (**पिन्वमानः**) सींचता हुआ (**अरुषः**) चालाक (**वाजी**) वेगवान् घोड़ा गिरे वैसे जो (**यह्वाः**) बड़ी गम्भीर (**घृतस्य**) विज्ञान की (**धाराः**) वाणी (**पतयन्ति**) उपदेशक के मुख से निकल के श्रोताओं पर गिरती हैं, उनको तुम जानो॥९५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में भी दो उपमालङ्कार हैं। जो नदी के समान कार्यसिद्धि के लिये शीघ्र धावने वाले वा घोड़े के समान वेग वाले जन जिनकी सब दिशाओं में कीर्ति प्रवर्त्तमान हो रही है और परोपकार

के लिये उपदेश से बड़े-बड़े दु:ख सहते हैं, वे तथा उनके श्रोताजन संसार के स्वामी होते हैं और नहीं॥९५॥

अभिप्रवन्तेत्यस्य वामदेव ऋषि:। यज्ञपुरुषो देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्द:। धैवत: स्वर:॥

पुनस्तदेवाह॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अभिप्रवन्त समनेव योषा: कल्याण्य: स्मयमानासोऽअग्निम्।
घृतस्य धारा: समिधो नसन्त ता जुषाणो हर्यति जातवेदा:॥९६॥

अभि। प्रवन्त। समनेवेति समनाऽइव। योषा:। कल्याण्य:। स्मयमानास:। अग्निम्। घृतस्य। धारा:। समिध इति सम्ऽइध:। नसन्त। ता:। जुषाण:। हर्यति। जातवेदा:॥९६॥

पदार्थ:-**(अभि) (प्रवन्त)** गच्छन्ति। लङ्यडभाव:। **(समनेव)** समानं मनो यासां ता इव। **सुपां सुलुग्०** [अष्टा०७.१.३९] इति विभक्तेर्डादेश: **(योषा:)** स्त्रिय: **(कल्याण्य:)** कल्याणाचरणशीला: **(स्मयमानास:)** किञ्चिद्धासेन प्रसन्नताकारिण्य: **(अग्निम्)** तेजस्विनं विद्वांसम् **(घृतस्य)** शुद्धस्य ज्ञानस्य **(धारा:)** वाच: **(समिध:)** शब्दार्थसबन्धै: सम्यग् दीपिता: **(नसन्त)** प्राप्नुवन्ति। **नसत इति गतिकर्मा॥** (निघं०२.१४) **(ता:) (जुषाण:)** सेवमान: **(हर्यति)** कामयते। **हर्यतीति कान्तिकर्मा॥** (निघं०२.६) **(जातवेदा:)** जातं वेदो विज्ञानं यस्य स:॥९६॥

अन्वय:-स्मयमानास: कल्याण्य: समनेव योषा या: समिधो घृतस्य धारा अग्निमभिप्रवन्त नसन्त च ता जुषाणो जातवेदा हर्यति॥९६॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यथा प्रसन्नचित्ता हर्षं प्राप्ता: सौभाग्यवत्य: स्त्रिय: स्वस्वपतीन् प्राप्नुवन्ति, तथैव विद्याविज्ञानाभरणभूषिता वाचो विद्वांसं प्राप्नुवन्ति॥९६॥

पदार्थ:-**(स्मयमानास:)** किञ्चित् हंसने से प्रसन्नता करने **(कल्याण्य:)** कल्याण के लिये आचरण करने तथा **(समनेव, योषा)** एक से चित्त वाली स्त्रियां जैसे पतियों को प्राप्त हों, वैसे जो **(समिध:)** शब्द-अर्थ और सम्बन्धों से सम्यक् प्रकाशित **(घृतस्य)** शुद्ध ज्ञान की **(धारा:)** वाणी **(अग्निम्)** तेजस्वी विद्वान् को **(अभि, प्रवन्त)** सब ओर से पहुँचती और **(नसन्त)** प्राप्त होती हैं, **(ता:)** उन वाणियों का **(जुषाण:)** सेवन करता हुआ **(जातवेदा:)** ज्ञानी विद्वान् **(हर्यति)** कान्ति को प्राप्त होता है॥९६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे प्रसन्नचित्त आनन्द को प्राप्त सौभाग्यवती स्त्रियां अपने-अपने पतियों को प्राप्त होती हैं, वैसे ही विद्या तथा विज्ञानरूप आभूषण से शोभित वाणी विद्वान् पुरुष को प्राप्त होती है॥९६॥

कन्याऽइवेत्यस्य वामदेव ऋषि:। यज्ञपुरुषो देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्द:। धैवत: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

कन्याऽइव वहतुमेतवा उँऽअञ्ज्यञ्जानाऽअभि चाकशीमि।

यत्र सोमः सूयते यत्र यज्ञो घृतस्य धाराऽअभि तत्पवन्ते॥९७॥

कन्याऽइवेति कन्याःऽइव। वहतुम्। एतवै। ऊँऽइत्यूँ। अञ्जि। अञ्जानाः। अभि। चाकशीमि। यत्र। सोमः। सूयते। यत्र। यज्ञः। घृतस्य। धाराः। अभि। तत्। पवन्ते॥९७॥

पदार्थः-(**कन्याऽइव**) कुमार्य्य इव (**वहतुम्**) वहति प्राप्नोति स्त्रियमिति वहतुर्भर्त्ता तम् (**एतवै**) प्राप्तुम् (**उ**) वितर्के (**अञ्जि**) कमनीयरूपम् (**अञ्जानाः**) ज्ञापयन्तः (**अभि**) (**चाकशीमि**) पुनः पुनः प्राप्नोमि (**यत्र**) (**सोमः**) ऐश्वर्यसमूहः (**सूयते**) उत्पद्यते (**यत्र**) (**यज्ञः**) (**घृतस्य**) विज्ञानस्य (**धाराः**) (**अभि**) सर्वतः (**तत्**) (**पवन्ते**) पवित्रीभवन्ति॥९७॥

अन्वयः-अञ्ज्यञ्जाना वहतुमेतवै कन्या इव यत्र सोमः सूयते, उ यत्र च यज्ञस्तद्या घृतस्य धारा अभिपवन्ते ता अहमभि चाकशीमि॥९७॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। यथा कन्याः स्वयंवरविधानेन स्वाभीष्टान् पतीन् स्वीकृत्य शोभन्ते, तथा ऐश्वर्य्योत्पत्त्यवसरे यज्ञसमृद्धौ च विदुषां वाचः पवित्रास्सत्यः शोभन्ते॥९७॥

पदार्थः-(**अञ्जि**) चाहने योग्य रूप को (**अञ्जानाः**) प्रकट करती हुई (**वहतुम्**) प्राप्त होने वाले पति को (**एतवै**) प्राप्त होने के लिये (**कन्या इव**) जैसे कन्या शोभित होती हैं, वैसे (**यत्र**) जहां (**सोमः**) बहुत ऐश्वर्य्य (**सूयते**) उत्पन्न होता (**उ**) और (**यत्र**) जहां (**यज्ञः**) यज्ञ होता है, (**तत्**) वहां जो (**घृतस्य**) ज्ञान की (**धाराः**) वाणी (**अभि, पवन्ते**) सब ओर से पवित्र होती हैं, उनको मैं (**अभि चाकशीमि**) अच्छे प्रकार बार-बार प्राप्त होता हूं॥९७॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे कन्या स्वयंवर के विधान से अपनी इच्छा के अनुकूल पतियों को स्वीकार करके शोभित होती हैं, वैसे ऐश्वर्य्य उत्पन्न होने के अवसर और यज्ञसिद्धि में विद्वानों की वाणी पवित्र हुई शोभायमान होती हैं॥९७॥

अभ्यर्षतेत्यस्य वामदेव ऋषिः। यज्ञपुरुषो देवता। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

विवाहितैः स्त्रीपुरुषैः किं कार्यमित्याह॥

विवाहित स्त्री-पुरुषों को क्या करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अभ्यर्षत सुष्टुतिं गव्यमाजिमस्मासु भद्रा द्रविणानि धत्त।

इमं यज्ञं नयत देवता नो घृतस्य धारा मधुमत्पवन्ते॥९८॥

अभि। अर्षत। सुष्टुतिम्। सुस्तुतिमिति सुऽस्तुतिम्। गव्यम्। आजिम्। अस्मासु। भद्रा। द्रविणानि। धत्त। इमम्। यज्ञम्। नयत। देवता। नः। घृतस्य। धाराः। मधुमदिति मधुऽमत्। पवन्ते॥९८॥

पदार्थः-(**अभि**) सर्वतः (**अर्षत**) प्राप्नुत (**सुष्टुतिम्**) शोभनां प्रशंसाम् (**गव्यम्**) गवि वाचि भवं बोधं धेनौ भवं दुग्धादिकं वा (**आजिम्**) अजन्ति जानन्ति सुकर्माणि येन तं संग्रामम्। **इणजादिभ्य** [उणा०४.१३२] इतीण् प्रत्ययः। (**अस्मासु**) (**भद्रा**) कल्याणकराणि (**द्रविणानि**) (**धत्त**) (**इमम्**) (**यज्ञम्**) संगन्तव्यं गृहाश्रमव्यवहारम् (**नयत**) प्रापयत (**देवता**) विद्वांसः। अत्र **सुपां सुलुग्०** [अष्टा०७.१.३९] इति जसो लुक्। (**नः**) अस्मान् (**घृतस्य**) प्रदीप्तस्य विज्ञानस्य सम्बन्धिन्यः (**धाराः**) सुशिक्षिता वाचः (**मधुमत्**) बहु मधु विद्यते यस्मिंस्तद् यथा स्यात् तथा (**पवन्ते**) प्राप्नुवन्ति॥९८॥

अन्वयः-हे स्त्रीपुरुषाः। यूयमुत्तमाचारेण सुष्टुतिमाजिं गव्यं चाभ्यर्षत, देवताऽस्मासु भद्रा द्रविणानि धत्त, न इमं यज्ञं नयत, या घृतस्य धारा विदुषो मधुमत्पवन्ते, ता अस्मान्नयत॥९८॥

भावार्थः-स्त्रीपुरुषैः सखिभिर्भूत्वा जगति प्रख्यातैर्भवितव्यम्। यथा स्वेभ्यस्तथान्येभ्योऽपि कल्याणकारकाणि द्रव्याण्युन्नेयानि। परमपुरुषार्थेन गृहाश्रमस्य शोभा कर्त्तव्या। वेदविद्या सततं प्रचारणीया च॥९८॥

पदार्थः-हे विवाहित स्त्रीपुरुषो! तुम उत्तम वर्त्ताव से (**सुष्टुतिमम्**) अच्छी प्रशंसा तथा (**आजिम्**) जिस से उत्तम कामों को जानते हैं, उस संग्राम और (**गव्यम्**) वाणी में होने वाले बोध वा गौ में होने वाले दूध, दही, घी आदि को (**अभ्यर्षत**) सब ओर से प्राप्त होओ (**देवता**) विद्वान् जन (**अस्मासु**) हम लोगों में (**भद्रा**) अति आनन्द कराने वाले (**द्रविणानि**) धनों को (**धत्त**) स्थापित करो (**नः**) हम लोगों को (**इमम्**) इस (**यज्ञम्**) प्राप्त होने योग्य गृहाश्रम-व्यवहार को (**नयत**) प्राप्त करावो, जो (**घृतस्य**) प्रकाशित विज्ञान से युक्त (**धाराः**) अच्छी शिक्षायुक्त वाणी विद्वानों को (**मधुमत्**) मधुर आलाप जैसे हो वैसे (**पवन्ते**) प्राप्त होती हैं, उन वाणियों को हम को प्राप्त कराओ॥९८॥

भावार्थः-स्त्रीपुरुषों को चाहिये कि परस्पर मित्र होकर संसार में विख्यात होवें, जैसे अपने लिये वैसे औरों के लिये भी अत्यन्त सुख करने वाले धनों को उन्नतियुक्त करें, परम पुरुषार्थ से गृहाश्रम की शोभा करें और वेदविद्या का निरन्तर प्रचार करें॥९८॥

धामन्नित्यस्य वामदेव ऋषिः। यज्ञपुरुषो देवता। स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथेश्वरराजविषयमाह॥

अब ईश्वर और राजा का विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

धामन्ते विश्वं भुवनमधि श्रितमन्तः समुद्रे हृद्यन्तरायुषि।
अपामनीके समिथे यऽआभृतस्तमश्याम मधुमन्तं तऽऊर्मिम्॥९९॥

धाम॑न्। ते॒। विश्व॑म्। भुव॑नम्। अधि॑। श्रि॒तम्। अ॒न्तरित्य॒न्तः। स॒मु॒द्रे। हृ॒दि। अ॒न्तरित्य॒न्तः। आयु॑षि। अ॒पाम्। अनी॑के। स॒मि॒थ इति॑ सम्ऽइ॒थे। यः। आभृ॑त॒ इत्याऽभृ॑तः। तम्। अ॒श्या॒म॒। मधु॑मन्त॒मिति॒ मधु॑ऽमन्तम्। ते॒। ऊ॒र्मिम्॥९९॥

पदार्थः-(**धामन्**) दधाति यस्मिंस्तस्मिन् (**ते**) तव (**विश्वम्**) सर्वम् (**भुवनम्**) भवन्ति भूतानि यस्मिन् (**अधि**) (**श्रितम्**) (**अन्तः**) मध्ये (**समुद्रे**) आकाशमिव व्याप्तस्वरूपे (**हृदि**) हृदये (**अन्तः**) मध्ये (**आयुषि**) जीवनहेतौ (**अपाम्**) प्राणानाम् (**अनीके**) सैन्ये (**समिथे**) संग्रामे (**यः**) संभारः (**आभृतः**) समन्ताद्धृतः (**तम्**) (**अश्याम**) प्राप्नुयाम (**मधुमन्तम्**) प्रशस्तमधुरादिगुणोपेतम् (**ते**) तव (**ऊर्मिम्**) बोधम्॥९९॥

अन्वयः-हे जगदीश! यस्य ते धामन्नन्तः समुद्रे विश्वं भुवनाधिश्रितं तद्वयमश्याम। हे सभापते! तेऽपामन्तर्हृद्यायुष्यपामनीके समिथे यः सम्भार आभृतस्तं मधुमन्तमूर्मिं च वयमश्याम॥९९॥

भावार्थः-मनुष्यैर्जगदीश्वरसृष्टौ परमप्रयत्नेन सख्युन्नतिः कार्या, सर्वाः साम्रगीर्धृत्वा युक्ताहारविहारेण शरीरारोग्यं संतत्य स्वेषामन्येषां चोपकारः कार्य इति शम्॥९९॥

अत्र सूर्यमेघगृहाश्रमगणितविद्येश्वरादिपदार्थविद्यावर्णनादेतदध्यायोक्तार्थस्य पूर्वाध्यायोक्तार्थेन सह संगतिरस्तीति बोद्धव्यमिति॥

पदार्थः-हे जगदीश्वर! जिस (**ते**) आपके (**धामन्**) जिसमें कि समस्त पदार्थों को आप धरते हैं (**अन्तः, समुद्रे**) उस आकाश के तुल्य सब के बीच व्याप्तस्वरूप में (**विश्वम्**) सब (**भुवनम्**) प्राणियों की उत्पत्ति का स्थान संसार (**अधि, श्रितम्**) आश्रित होके स्थित है, उसको हम लोग (**अश्याम**) प्राप्त होवें। हे सभापते! (**ते**) तेरे (**अपाम्**) प्राणों के (**अन्तः**) बीच (**हृदि**) हृदय में तथा (**आयुषि**) जीवन के हेतु प्राणधारियों के (**अनीके**) सेना और (**समिथे**) संग्राम में (**यः**) जो भार (**आभृतः**) भलीभांति धरा है, (**तम्**) उसको तथा (**मधुमन्तम्**) प्रशंसायुक्त मधुर गुणों से भरे हुए (**ऊर्मिम्**) बोध को हम लोग प्राप्त होवें॥९९॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि जगदीश्वर की सृष्टि में परम प्रयत्न से मित्रों की उन्नति करें और समस्त सामग्री को धारण करके यथायोग्य आहार और विहार अर्थात् परिश्रम से शरीर की आरोग्यता का विस्तार कर अपना और पराया उपकार करें॥९९॥

इस अध्याय में सूर्य, मेघ, गृहाश्रम और गणित की विद्या तथा ईश्वर आदि पदार्थों की विद्या के वर्णन से इस अध्याय के अर्थ की पिछले अध्याय के अर्थ के साथ एकता है, यह समझना चाहिये॥९९॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां श्रीमत्परमविदुषां विरजान्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचिते संस्कृतार्यभाषाभ्यां विभूषिते सुप्रमाणयुक्ते यजुर्वेदभाष्ये सप्तदशोऽध्यायः समाप्तः॥१७॥

॥ओ३म्॥

अथ अथाष्टादशाऽध्यारम्भः॥

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव। यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व॥ यजु०३०.३॥

वाजश्च म इत्यस्य देवा ऋषयः। अग्निर्देवता। शक्वरी छन्दः। धैवतः स्वरः॥

तत्रादौ मनुष्यैर्यज्ञेन किं किं साधनीयमित्याह॥

अब अठारहवें अध्याय का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को ईश्वर वा धर्मानुष्ठानादि से क्या क्या सिद्ध करना चाहिये, विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

वाज॑श्च मे प्रस॒वश्च॑ मे॒ प्रय॑तिश्च मे॒ प्रसि॑तिश्च मे धी॒तिश्च॑ मे॒ क्रतु॑श्च मे॒ स्व॑रश्च मे॒ श्लोक॑श्च मे॒ श्र॒वश्च॑ मे॒ श्रुति॑श्च मे॒ ज्योति॑श्च मे॒ स्व॒श्च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम्॥ १॥

वाज॑ः। च॒। मे॒। प्र॒स॒व इति॑ प्र॒ऽस॒वः। च॒। मे॒। प्रय॑ति॒रिति॒ प्र॒ऽय॑तिः। च॒। मे॒। प्रसि॑ति॒रिति॒ प्र॒ऽसि॑तिः। च॒। मे॒। धी॒तिः। च॒। मे॒। क्रतु॑ः। च॒। मे॒। स्वर॑ः। च॒। मे॒। श्लोक॑ः। च॒। मे॒। श्र॒वः। च॒। मे॒। श्रुति॑ः। च॒। मे॒। ज्योति॑ः। च॒। मे॒। स्व॒रिति॒ स्व॒ः। च॒। मे॒। य॒ज्ञेन॑। कल्प॒न्ताम्॥ १॥

पदार्थः-(वाजः) अन्नम् **(च)** विज्ञानादिकम् **(मे)** मम **(प्रसवः)** ऐश्वर्यम् **(च)** तत्साधनानि **(मे) (प्रयतिः)** प्रयतते येन सः। अत्र **सार्वधातुभ्य०** [उणा०४.११९] इत्यौणादिक इन् प्रत्ययः। **(च)** तत्साधनम् **(मे) (प्रसितिः)** प्रबन्धः **(च)** रक्षणम् **(मे) (धीतिः)** धारणा **(च)** ध्यानम् **(मे) (क्रतुः)** प्रज्ञा **(च)** उत्साहः **(मे) (स्वरः)** स्वयं राजमानं स्वातन्त्र्यम् **(च)** परं तपः **(मे) (श्लोकः)** प्रशंसिता शिक्षिता वाक्। **श्लोक इति वाङ्नामसु पठितम्॥** (निघं०१.११) **(च)** वक्तृत्वम् **(मे) (श्रवः)** श्रवणम् **(च)** श्रावणम् **(मे) (श्रुतिः)** शृण्वन्ति सकला विद्या यया सा वेदाख्या **(च)** तदनुकूला स्मृतिः **(मे) (ज्योतिः)** विद्याप्रकाशः **(च)** अन्यस्मै विद्याप्रकाशनम् **(मे) (स्वः)** सुखम् **(च)** परमसुखम् **(मे) (यज्ञेन)** पूजनीयेन परमेश्वरेण जगदुपकारकेण व्यवहारेण वा **(कल्पन्ताम्)** समर्था भवन्तु॥१॥

अन्वयः-मे वाजश्च मे प्रसवश्च मे प्रयतिश्च मे प्रसितिश्च मे धीतिश्च मे क्रतुश्च मे स्वरश्च मे श्लोकश्च मे श्रवश्च मे श्रुतिश्च मे ज्योतिश्च मे स्वश्च यज्ञेन कल्पन्ताम्॥१॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! युष्माभिरन्नाद्येन सर्वसुखाय यज्ञ उपासनीयः साधनीयश्च, यतः सर्वेषां मनुष्यादीनामुन्नतिर्भवेत्॥१॥

पदार्थः-(मे) मेरा **(वाजः)** अन्न **(च)** विशेष ज्ञान **(मे)** मेरा **(प्रसवः)** ऐश्वर्य्य **(च)** और उसके ढंग **(मे)** मेरा **(प्रयतिः)** जिस व्यवहार से अच्छा यत्न बनता है, सो **(च)** और उसके साधन **(मे)** मेरा **(प्रसितिः)** प्रबन्ध **(च)** और रक्षा **(मे)** मेरी **(धीतिः)** धारणा **(च)** और ध्यान **(मे)** मेरी **(क्रतुः)** श्रेष्ठ बुद्धि

(च) उत्साह **(मे)** मेरी **(स्वरः)** स्वतन्त्रता **(च)** उत्तम तेज **(मे)** मेरी **(श्लोकः)** पदरचना करने हारी वाणी **(च)** कहना **(मे)** मेरा **(श्रवः)** सुनना **(च)** और सुनाना **(मे)** मेरी **(श्रुतिः)** जिससे समस्त विद्या सुनी जाती हैं, वह वेदविद्या **(च)** और उसके अनुकूल स्मृति अर्थात् धर्मशास्त्र **(मे)** मेरी **(ज्योतिः)** विद्या का प्रकाश होना **(च)** और दूसरे को विद्या का प्रकाश करना **(मे)** मेरा **(स्वः)** सुख **(च)** और अन्य का सुख **(यज्ञेन)** सेवन करने योग्य परमेश्वर वा जगत् के उपकारी व्यवहार से **(कल्पन्ताम्)** समर्थ होवें॥१॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! तुम को अन्न आदि पदार्थों से सब के सुख के लिये ईश्वर की उपासना और जगत् के उपकारक व्यवहार की सिद्धि करनी चाहिये, जिससे सब मनुष्यादिकों की उन्नति हो॥१॥

प्राणश्चेत्यस्य देवा ऋषयः। प्रजापतिर्देवता। भुरिगतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प्राणश्च मेऽपानश्च मे व्यानश्च मेऽसुश्च मे चित्तं च मऽआधीतं च मे वाक् च मे मनश्च मे चक्षुश्च मे श्रोत्रं च मे दक्षश्च मे बलं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्॥२॥

प्राणः। च। मे। अपान इत्यपऽआनः। च। मे। व्यान इति विऽआनः। च। मे। असुः। च। मे। चित्तम्। च। मे। आधीतमित्याऽधीतम्। च। मे। वाक्। च। मे। मनः। च। मे। चक्षुः। च। मे। श्रोत्रम्। च। मे। दक्षः। च। मे। बलम्। च। मे। यज्ञेन। कल्पन्ताम्॥२॥

पदार्थः-**(प्राणः)** हृदिस्थो वायुः **(च)** उदानः कण्ठदेशस्थः पवनः **(मे)** **(अपानः)** नाभेरधोगमी वातः **(च)** समानो नाभिसंस्थितो वायुः **(मे)** **(व्यानः)** शरीरस्य सर्वेषु संधिषु व्याप्तः पवनः **(च)** धनञ्जयः **(मे)** **(असुः)** नागादिर्मरुत् **(च)** अन्ये वायवः **(मे)** **(चित्तम्)** स्मृतिः **(च)** बुद्धिः **(मे)** **(आधीतम्)** समन्ताद् धृतिर्निश्चयवृत्तिः **(च)** रक्षितम् **(मे)** **(वाक्)** वाणी **(च)** श्रवणम् **(मे)** **(मनः)** संकल्पविकल्पात्मिका वृत्तिः **(च)** अहङ्कारः **(मे)** **(चक्षुः)** चक्षे पश्यामि येन तन्नेत्रम् **(च)** प्रत्यक्षप्रमाणम् **(मे)** **(श्रोत्रम्)** शृणोमि येन तत् **(च)** आगमप्रमाणम् **(मे)** **(दक्षः)** चातुर्य्यम् **(च)** सामयिकं भानम् **(मे)** **(बलम्)** **(च)** पराक्रमः **(मे)** **(यज्ञेन)** धर्मानुष्ठानेन **(कल्पन्ताम्)**॥२॥

अन्वयः-मे प्राणश्च मेऽपानश्च मे व्यानश्च मेऽसुश्च मे चित्तं म आधीतं च मे वाक् च मे मनश्च मे चक्षुश्च मे श्रोत्रं च मे दक्षश्च मे बलं च यज्ञेन कल्पन्तां समर्था भवन्तु॥२॥

भावार्थः-मनुष्याः ससाधनान् प्राणादीन् धर्मानुष्ठानाय नियोजयन्तु॥२॥

पदार्थः-**(मे)** मेरा **(प्राणः)** हृदयस्थ जीवनमूल **(च)** और कण्ठ देश में रहने वाला पवन **(मे)** मेरा **(अपानः)** नाभि से नीचे को जाने **(च)** और नाभि में ठहरने वाला पवन **(मे)** मेरा **(व्यानः)** शरीर की सन्धियों में व्याप्त **(च)** और धनञ्जय जो कि शरीर के रुधिर आदि को बढ़ाता है, वह पवन **(मे)** मेरा

(असुः) नाग आदि प्राण का भेद **(च)** तथा अन्य पवन **(मे)** मेरी **(चित्तम्)** स्मृति अर्थात् सुधि रहनी **(च)** और बुद्धि **(मे)** मेरा **(आधीतम्)** अच्छे प्रकार किया हुआ निश्चित ज्ञान **(च)** और रक्षा किया हुआ विषय **(मे)** मेरी **(वाक्)** वाणी **(च)** और सुनना **(मे)** मेरी **(मनः)** संकल्प-विकल्प रूप अन्तःकरण की वृत्ति **(च)** अहङ्कारवृत्ति **(मे)** मेरा **(चक्षुः)** जिससे कि मैं देखता हूं, वह नेत्र **(च)** और प्रत्यक्ष प्रमाण **(मे)** मेरा **(श्रोत्रम्)** जिससे कि मैं सुनता हूं, वह कान **(च)** और प्रत्येक विषय पर वेद का प्रमाण **(मे)** मेरी **(दक्षः)** चतुराई **(च)** और तत्काल भान होना तथा **(मे)** मेरा **(बलम्)** बल **(च)** और पराक्रम ये सब **(यज्ञेन)** धर्म के अनुष्ठान से **(कल्पन्ताम्)** समर्थ हों॥२॥

भावार्थः-मनुष्य लोग साधनों के सहित अपने प्राण आदि पदार्थों को धर्म के आचरण करने में संयुक्त करें॥२॥

ओजश्चेत्यस्य देवा ऋषयः। प्रजापतिर्देवता। भुरिक् शक्वरी छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ओज॑श्च मे॒ सह॑श्च मऽआ॒त्मा च॑ मे त॒नूश्च॑ मे॒ शर्म॑ च मे॒ वर्म॑ च॒ मेऽङ्गा॑नि च॒ मेऽस्थी॑नि च मे॒ परू॑ꣳषि च मे॒ शरी॑राणि च म॒ऽआयु॑श्च मे ज॒रा च॑ मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम्॥३॥

ओज॑ः। च॒। मे॒। सह॑ः। च॒। मे॒। आ॒त्मा। च॒। मे॒। त॒नूः। च॒। मे॒। शर्म॑। च॒। मे॒। वर्म॑। च॒। मे॒। अङ्गा॑नि। च॒। मे॒। अस्थी॑नि। च॒। मे॒। परू॑ꣳषि। च॒। मे॒। शरी॑राणि। च॒। मे॒। आयु॑ः। च॒। मे॒। ज॒रा। च॒। मे॒। य॒ज्ञेन॑। क॒ल्प॒न्ता॒म्॥३॥

पदार्थः-**(ओजः)** शरीरस्थं तेजः **(च)** सेना **(मे)** **(सहः)** शारीरं बलम् **(च)** मानसम् **(मे)** **(आत्मा)** स्वस्वरूपम् **(च)** स्वसामर्थ्यम् **(मे)** **(तनूः)** शरीरम् **(च)** सम्बन्धिनः **(मे)** **(शर्म)** गृहम् **(च)** गृह्याः पदार्थाः **(मे)** **(वर्म)** रक्षकं कवचम् **(च)** शस्त्रास्त्राणि **(मे)** **(अङ्गानि)** **(च)** उपाङ्गानि **(मे)** **(अस्थीनि)** **(च)** अन्यान्तरङ्गानि **(मे)** **(परूंषि)** मर्मस्थलानि **(च)** जीवननिमित्तानि **(मे)** **(शरीराणि)** मत्सम्बन्धिनां देहाः **(च)** सूक्ष्मा देहावयवाः **(मे)** **(आयुः)** जीवनम् **(च)** जीवनसाधनानि **(मे)** **(जरा)** वृद्धावस्था **(च)** युवावस्था **(मे)** **(यज्ञेन)** सत्कर्त्तव्येन परमात्मना **(कल्पन्ताम्)**॥३॥

अन्वयः-मे ओजश्च मे सहश्च म आत्मा च मे तनूश्च मे शर्म च मे वर्म च मेऽङ्गानि च मेऽस्थीनि च मे परूंषि च मे शरीराणि च म आयुश्च मे जरा च यज्ञेन कल्पन्ताम्॥३॥

भावार्थः-राजपुरुषैः सबलाः सेनादयो धार्मिकरक्षणाय दुष्टताडनाय च प्रवर्त्तनीयाः॥३॥

पदार्थः-**(मे)** मेरे **(ओजः)** शरीर का तेज **(च)** और मेरी सेना **(मे)** मेरे **(सहः)** शरीर का बल **(च)** तथा मन **(मे)** मेरा **(आत्मा)** स्वरूप और **(च)** मेरा सामर्थ्य **(मे)** मेरा **(तनूः)** शरीर **(च)** और सम्बन्धीजन **(मे)** मेरा **(शर्म)** घर **(च)** और घर के पदार्थ **(मे)** मेरी **(वर्म)** रक्षा जिससे हो, वह बख्तर **(च)** और

शस्त्र-अस्त्र **(मे)** मेरे **(अङ्गानि)** शिर आदि अङ्ग **(च)** और अङ्गुलि आदि प्रत्यङ्ग **(मे)** मेरे **(अस्थीनि)** हाड़ **(च)** और भीतर के अङ्ग प्रत्यङ्ग अर्थात् हृदय मांस नसें आदि **(मे)** मेरे **(परूंषि)** मर्मस्थल **(च)** और जीवन के कारण **(मे)** मेरे **(शरीराणि)** सम्बन्धियों के शरीर **(च)** और अत्यन्त छोटे-छोटे देह के अङ्ग **(मे)** मेरी **(आयुः)** ऊमर **(च)** तथा जीवन के साधन अर्थात् जिनसे जीते हैं **(मे)** मेरा **(जरा)** बुढ़ापा **(च)** और जवानी ये सब पदार्थ **(यज्ञेन)** सत्कार के योग्य परमेश्वर से **(कल्पन्ताम्)** समर्थ होवें॥३॥

भावार्थः-राजपुरुषों को चाहिये कि धार्मिक सज्जनों की रक्षा और दुष्टों को दण्ड देने के लिये बली सेना आदि जनों को प्रवृत्त करें॥३॥

ज्यैष्ठ्यं चेत्यस्य देवा ऋषयः। प्रजापतिर्देवता। निचृदत्यष्टिश्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ज्यैष्ठ्यं च मऽआधिपत्यं च मे मन्युश्च मे भामश्च मेऽमश्च मेऽम्भश्च मे जेमा च मे महिमा च मे वरिमा च मे प्रथिमा च मे वर्षिमा च मे द्राघिमा च मे वृद्धं च मे वृद्धिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्॥४॥

ज्यैष्ठ्यम्। च। मे। आधिपत्यमित्याधिऽपत्यम्। च। मे। मन्युः। च। मे। भामः। च। मे। अमः। च। मे। अम्भः। च। मे। जेमा। च। मे। महिमा। च। मे। वरिमा। च। मे। प्रथिमा। च। मे। वर्षिमा। च। मे। द्राघिमा। च। मे। वृद्धम्। च। मे। वृद्धिः। च। मे। यज्ञेन। कल्पन्ताम्॥४॥

पदार्थः-**(ज्यैष्ठ्यम्)** प्रशस्यस्य भावः **(च)** उत्तमानि वस्तूनि **(मे)** **(आधिपत्यम्)** अधिपतेर्भावः **(च)** अधिपतिः **(मे)** **(मन्युः)** अभिमानः **(च)** शान्तिः **(मे)** **(भामः)** क्रोधः। **भाम इति क्रोधनामसु पठितम्॥** (निघं०२.१३) **(च)** सुशीलम् **(मे)** **(अमः)** न्यायेन प्राप्तो गृहादिपदार्थः **(च)** प्राप्तव्यः **(मे)** **(अम्भः)** उदकम्। **अम्भ इत्युदकनामसु पठितम्॥** (निघं०१.१२) **(च)** दुग्धादिकम् **(मे)** **(जेमा)** जेतुर्भावः **(च)** विजयः **(मे)** **(महिमा)** महतो भावः **(च)** प्रतिष्ठा **(मे)** **(वरिमा)** वरस्य श्रेष्ठस्य भावः **(च)** उत्तमाचरणम् **(मे)** **(प्रथिमा)** पृथोर्भावः **(च)** विस्तीर्णाः पदार्थाः **(मे)** **(वर्षिमा)** वृद्धस्य भावः **(च)** बाल्यम् **(मे)** **(द्राघिमा)** दीर्घस्य भावः **(च)** ह्रस्वत्वम् **(मे)** **(वृद्धम्)** प्रभूतं बहुरूपं धनादिकम् **(च)** स्वल्पमपि **(मे)** **(वृद्धिः)** वर्द्धन्ते यया सत्क्रियया सा **(च)** तज्जन्यं सुखम् **(मे)** **(यज्ञेन)** धर्मपालनेन **(कल्पन्ताम्)** समर्था भवन्तु॥४॥

अन्वयः-मे ज्यैष्ठ्यं च म आधिपत्यं च मे मन्युश्च मे भामश्च मेऽमश्च मेऽम्भश्च मे जेमा च मे महिमा च मे वरिमा च मे प्रथिमा च मे वर्षिमा च मे द्राघिमा च मे वृद्धं च मे वृद्धिश्च यज्ञेन कल्पन्ताम्॥४॥

भावार्थः-हे सखायो जनाः! यूयं यज्ञसिद्धये सर्वस्य जगतो हिताय च प्रशंसितानि वस्तूनि संयुङ्ग्ध्वम्॥४॥

पदार्थः-(**मे**) मेरी (**ज्यैष्ठ्यम्**) प्रशंसा (**च**) और उत्तम पदार्थ (**मे**) मेरा (**आधिपत्यम्**) स्वामीपन (**च**) और स्वकीय द्रव्य (**मे**) मेरा (**मन्युः**) अभिमान (**च**) और शान्ति (**मे**) मेरा (**भामः**) क्रोध (**च**) और उत्तम शील (**मे**) मेरा (**अमः**) न्याय से पाये हुए गृहादि (**च**) और पाने योग्य पदार्थ (**मे**) मेरा (**अम्भः**) जल (**च**) और दूध, दही, घी आदि पदार्थ (**मे**) मेरा (**जेमा**) जीत का होना (**च**) और विजय (**मे**) मेरा (**महिमा**) बड़प्पन (**च**) प्रतिष्ठा (**मे**) मेरी (**वरिमा**) बड़ाई (**च**) और उत्तम वर्त्ताव (**मे**) मेरा (**प्रथिमा**) फैलाव (**च**) और फैले हुए पदार्थ (**मे**) मेरा (**वर्षिमा**) बुढ़ापा (**च**) और लड़काई (**मे**) मेरी (**द्राघिमा**) बढ़वार (**च**) और छुटाई (**मे**) मेरा (**वृद्धम्**) प्रभुता को पाया हुआ बहुत प्रकार का धन आदि पदार्थ (**च**) और थोड़ा पदार्थ तथा (**मे**) मेरा (**वृद्धिः**) जिस अच्छी क्रिया से वृद्धि को प्राप्त होते हैं, वह (**च**) और उससे उत्पन्न हुआ सुख उक्त समस्त पदार्थ (**यज्ञेन**) धर्म की रक्षा करने से (**कल्पन्ताम्**) समर्थित होवें॥४॥

भावार्थः-हे मित्रजनो! तुम यज्ञ की सिद्धि और समस्त जगत् के हित के लिये प्रशंसित पदार्थों को संयुक्त करो॥४॥

सत्यं चेत्यस्य देवा ऋषयः। प्रजापतिर्देवता। स्वराट् शक्वरी छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

स॒त्यं च॑ मे श्र॒द्धा च॑ मे॒ जग॑च्च मे॒ धनं॑ च मे॒ विश्वं॑ च मे॒ मह॑श्च मे क्री॒डा च॑ मे॒ मोद॑श्च मे जा॒तं च॑ मे जनि॒ष्यमा॑णं च मे सू॒क्तं च॑ मे सुकृ॒तं च॑ मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम्॥५॥

स॒त्यम्। च॒। मे॒। श्र॒द्धा। च॒। मे॒। जग॑त्। च॒। मे॒। धन॑म्। च॒। मे॒। विश्व॑म्। च॒। मे॒। मह॑ः। च॒। मे॒। क्री॒डा। च॒। मे॒। मोद॑ः। च॒। मे॒। जा॒तम्। च॒। मे॒। ज॒नि॒ष्यमा॑णम्। च॒। मे॒। सू॒क्तमिति॑ सुऽउ॒क्तम्। च॒। मे॒। सु॒कृ॒तमिति॑ सुऽकृ॒तम्। च॒। मे॒। य॒ज्ञेन॑। क॒ल्प॒न्ता॒म्॥५॥

पदार्थः-(**सत्यम्**) यथार्थम् (**च**) सर्वहितम् (**मे**) (**श्रद्धा**) श्रत् सत्यं दधाति यया सा। **श्रदिति सत्यनामसु पठितम्॥** (निघं०३.१०) (**च**) एतत्साधनानि (**मे**) (**जगत्**) यद् गच्छति तत् (**च**) एतत्स्थाः सर्वे पदार्थाः (**मे**) (**धनम्**) सुवर्णादिकम् (**च**) धान्यम् (**मे**) (**विश्वम्**) सर्वम् (**च**) अखिलोपकरणम् (**मे**) (**महः**) महत्त्वयुक्तं पूज्यं वस्तु (**च**) सत्कारः (**मे**) (**क्रीडा**) विहारः (**च**) एतत्साधनम् (**मे**) (**मोदः**) हर्षः (**च**) परमानन्दः (**मे**) (**जातम्**) यावदुत्पन्नम् (**च**) यावदुत्पद्यते तावत् (**मे**) (**जनिष्यमाणम्**) उत्पत्स्यमानम्

(च) यावत्तत्सम्बन्धि **(मे)** **(सूक्तम्)** सुष्ठु कथितम् **(च)** सुविचारितम् **(मे)** **(सुकृतम्)** पुण्यात्मकं सुष्ठु निष्पादितं कर्म **(च)** एतत्साधनानि **(मे)** **(यज्ञेन)** सत्यधर्मोन्नतिकरणेनोपदेशाख्येन **(कल्पन्ताम्)**॥५॥

अन्वयः-मे सत्यं च मे श्रद्धा च मे जगच्च मे धनञ्च मे विश्वं च मे महश्च मे क्रीडा च मे मोदश्च मे जातञ्च मे जनिष्यमाणं च मे सूक्तं च मे सुकृतं च यज्ञेन कल्पन्ताम्॥५॥

भावार्थः-ये मनुष्या विद्याध्ययनाध्यापनश्रवणोपदेशान् कुर्वन्ति कारयन्ति च ते नित्यमुन्नता जायन्ते॥५॥

पदार्थः-**(मे)** मेरा **(सत्यम्)** यथार्थ विषय **(च)** और सब का हित करना **(मे)** मेरी **(श्रद्धा)** अर्थात् जिससे सत्य को धारण करते हैं **(च)** और उक्त श्रद्धा की सिद्धि देने वाले पदार्थ **(मे)** मेरा **(जगत्)** चेतन सन्तान आदि वर्ग **(च)** और उस में स्थिर हुए पदार्थ **(मे)** मेरा **(धनम्)** सुवर्ण आदि धन **(च)** और धान्य अर्थात् अनाज आदि **(मे)** मेरा **(विश्वम्)** सर्वस्व **(च)** और सबों पर उपकार **(मे)** मेरी **(महः)** बड़ाई से भरी हुई प्रशंसा करने योग्य वस्तु **(च)** और सत्कार **(मे)** मेरा **(क्रीडा)** खेलना विहार **(च)** और उसके पदार्थ **(मे)** मेरा **(मोदः)** हर्ष **(च)** और अति हर्ष **(मे)** मेरा **(जातम्)** उत्पन्न हुआ पदार्थ **(च)** तथा जो होता है **(मे)** मेरा **(जनिष्यमाणम्)** जो उत्पन्न होने वाला **(च)** और जितना उससे सम्बन्ध रखने वाला **(मे)** मेरा **(सूक्तम्)** अच्छे प्रकार कहा हुआ **(च)** और अच्छे प्रकार विचारा हुआ **(मे)** मेरा **(सुकृतम्)** उत्तमता से किया हुआ काम **(च)** और उसके साधन ये उक्त सब पदार्थ **(यज्ञेन)** सत्य और धर्म की उन्नति करने रूप उपदेश से **(कल्पन्ताम्)** समर्थ हों॥५॥

भावार्थः-जो मनुष्य विद्या का पठन-पाठन, श्रवण और उपदेश करते वा कराते हैं, वे नित्य उन्नति को प्राप्त होते हैं॥५॥

ऋतं चेत्यस्य देवा ऋषयः। प्रजापतिर्देवता। भुरिगतिशक्वरी छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ऋतं च मेऽमृतं च मेऽयक्ष्मं च मेऽनामयच्च मे जीवातुश्च मे दीर्घायुत्वं च मेऽनमित्रं च मेऽभयं च मे सुखं च मे शयनं च मे सूषाश्च मे सुदिनं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्॥६॥

ऋतम्। च। मे। अमृतम्। च। मे। अयक्ष्मम्। च। मे। अनामयत्। च। मे। जीवातुः। च। मे। दीर्घायुत्वमिति दीर्घायुऽत्वम्। च। मे। अनमित्रम्। च। मे। अभयम्। च। मे। सुखमिति सुऽखम्। च। मे। शयनम्। च। सूषा इति सुऽउषाः। च। मे। सुदिनमिति सुऽदिनम्। च। मे। यज्ञेन। कल्पन्ताम्॥६॥

पदार्थः-**(ऋतम्)** यथार्थविज्ञानम् **(च)** एतत्साधकम् **(मे)** **(अमृतम्)** स्वस्वरूपं मुक्तिसुखं यज्ञशिष्टमन्नं वा **(च)** पेयम् **(मे)** **(अयक्ष्मम्)** यक्ष्मादिरोगरहितं शरीरादिकम् **(च)** एतत्साधकं कर्म **(मे)**

(अनामयत्) रोगादिरहितम् **(च)** एतत्साधकमौषधम् **(मे)** **(जीवातुः)** येन जीवन्ति यज्जीवयति वा **(च)** पथ्यादिकम् **(मे)** **(दीर्घायुत्वम्)** चिरायुषो भावः **(च)** ब्रह्मचर्यजितेन्द्रियत्वादिकम् **(मे)** **(अनमित्रम्)** अविद्यमानशत्रुः **(च)** पक्षपातरहितं कर्म **(मे)** **(अभयम्)** भयराहित्यम् **(च)** शौर्यम् **(मे)** **(सुखम्)** परमानन्दः प्रसन्नता **(च)** एतत्साधकं कर्म **(मे)** **(शयनम्)** **(च)** एतत्साधनम् **(मे)** **(सूषाः)** शोभना उषा यस्मिन् स कालः **(च)** एतत्सम्बन्धि कर्म **(मे)** **(सुदिनम्)** शोभनम् च तद्दिनं च तत् **(च)** एतदुपयोगि कर्म **(मे)** **(यज्ञेन)** सत्यभाषणादिव्यवहारेण **(कल्पन्ताम्)** समर्था भवन्तु॥६॥

अन्वयः-मे ऋतं च मेऽमृतं च मेऽयक्ष्मं च मेऽनामयच्च मे जीवातुश्च मे दीर्घायुत्वं च मेऽनमित्रं च मेऽभयं च मे सुखं च मे शयनं च मे सूषाश्च मे सुदिनं च यज्ञेन कल्पन्ताम्॥६॥

भावार्थः-ये मनुष्याः सत्यभाषणादीनि कर्माणि कुर्वन्ति, ते सर्वदा सुखिनो भवन्ति॥६॥

पदार्थः-**(मे)** मेरा **(ऋतम्)** यथार्थ विज्ञान **(च)** और उसकी सिद्धि करने वाला पदार्थ **(मे)** मेरा **(अमृतम्)** आत्मस्वरूप वा यज्ञ से बचा हुआ अन्न **(च)** तथा पीने योग्य रस **(मे)** मेरा **(अयक्ष्मम्)** यक्ष्मा आदि रोगों से रहित शरीर आदि **(च)** और रोगविनाशक कर्म **(मे)** मेरा **(अनामयत्)** रोग आदि रहित आयु **(च)** और इसकी सिद्धि करने वाली ओषधियां **(मे)** मेरा **(जीवातुः)** जिससे जीते हैं वा जो जिलाता है, वह व्यवहार **(च)** और पथ्य भोजन **(मे)** मेरा **(दीर्घायुत्वम्)** अधिक आयु का होना **(च)** ब्रह्मचर्य और इन्द्रियों को अपने वश में रखना आदि कर्म **(मे)** मेरा **(अनमित्रम्)** मित्र **(च)** और पक्षपात को छोड़ के काम **(मे)** मेरा **(अभयम्)** न डरपना **(च)** और शूरपन **(मे)** मेरा **(सुखम्)** अति उत्तम आनन्द **(च)** और इसको सिद्ध करने वाला **(मे)** मेरा **(शयनम्)** सो जाना **(च)** और उस काम की सिद्धि करने वाला पदार्थ **(मे)** मेरा **(सूषाः)** वह समय कि जिसमें अच्छी प्रातःकाल की वेला हो **(च)** और उक्त काम का सम्बन्ध करने वाली क्रिया तथा **(मे)** मेरा **(सुदिनम्)** सुदिन **(च)** और उपयोगी कर्म ये सब **(यज्ञेन)** सत्य वचन बोलने आदि व्यवहारों से **(कल्पन्ताम्)** समर्थित होवें॥६॥

भावार्थः-जो मनुष्य सत्यभाषण आदि कामों को करते हैं, वे सदा सुखी होते हैं॥६॥

यन्ता चेत्यस्य देवा ऋषयः। प्रजापतिर्देवता। भुरिगतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यन्ता च मे धर्त्ता च मे क्षेमश्च मे धृतिश्च मे विश्वं च मे महश्च मे संविच्च मे ज्ञात्रं च मे सूश्च मे प्रसूश्च मे सीरं च मे लयश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्॥७॥

य॒न्ता। च॒। मे॒। ध॒र्त्ता। च॒। मे॒। क्षेमः॑। च॒। मे॒। धृतिः॑। च॒। मे॒। विश्व॑म्। च॒। मे॒। महः॑। च॒। मे॒। सं॒विदिति॑ स॒म्ऽवित्। च॒। मे॒। ज्ञात्र॑म्। च॒। मे॒। सूः। च॒। मे॒। प्र॒सूरिति॑ प्र॒ऽसूः। च॒। मे॒। सीर॑म्। च॒। मे॒। लयः॑। च॒। मे॒। य॒ज्ञेन॑। क॒ल्प॒न्ता॒म्॥७॥

पदार्थः-(**यन्ता**) नियमकर्त्ता (**च**) नियतः (**मे**) (**धर्त्ता**) धारकः (**च**) धृतः (**मे**) (**क्षेमः**) रक्षणम् (**च**) रक्षकः (**मे**) (**धृतिः**) धरन्ति यया सा (**च**) क्षमा (**मे**) (**विश्वम्**) अखिलं जगत् (**च**) एतदनुकूला क्रिया (**मे**) (**महः**) महत् (**च**) महान् (**मे**) (**संवित्**) प्रतिज्ञा (**च**) विज्ञातम् (**मे**) (**ज्ञात्रम्**) जानामि येन (**च**) ज्ञातव्यम् (**मे**) (**सूः**) या सुवति प्रेरयति सा (**च**) उत्पन्नम् (**मे**) (**प्रसूः**) या प्रसूतम्, उत्पादयति सा (**च**) प्रसवः (**मे**) (**सीरम्**) कृषिसाधकं हलादिकम् (**च**) कृषीवलाः (**मे**) (**लयः**) लीयन्ते यस्मिन् सः (**च**) लीनम् (**मे**) (**यज्ञेन**) सुनियमानुष्ठानाख्येन (**कल्पन्ताम्**)॥७॥

अन्वयः-मे यन्ता च मे धर्त्ता च मे क्षेमश्च मे धृतिश्च मे विश्वं च मे महश्च मे संविच्च मे ज्ञात्रं च मे सूश्च मे प्रसूश्च मे सीरं च मे लयश्च यज्ञेन कल्पन्ताम्॥७॥

भावार्थः-ये शमदमादिगुणान्विताः सुनियमान् पालयेयुस्ते स्वाभीष्टानि साधयेयुः॥७॥

पदार्थः-(**मे**) मेरा (**यन्ता**) नियम करने वाला (**च**) और नियमित पदार्थ (**मे**) मेरा (**धर्त्ता**) धारण करने वाला (**च**) और धारण किया हुआ पदार्थ (**मे**) मेरी (**क्षेमः**) रक्षा (**च**) और रक्षा करने वाला (**मे**) मेरी (**धृतिः**) धारणा (**च**) और सहनशीलता (**मे**) मेरे सम्बन्ध का (**विश्वम्**) जगत् (**च**) और उसके अनुकूल मर्यादा (**मे**) मेरा (**महः**) बड़ा कर्म (**च**) और बड़ा व्यवहार (**मे**) मेरी (**संवित्**) प्रतिज्ञा (**च**) और जाना हुआ विषय (**मे**) मेरा (**ज्ञात्रम्**) जिससे जानता हूं, वह ज्ञान (**च**) और जानने योग्य पदार्थ (**मे**) मेरी (**सूः**) प्रेरणा करने वाली चित्त की वृत्ति (**च**) और उत्पन्न हुआ पदार्थ (**मे**) मेरी (**प्रसूः**) जो उत्पत्ति करानेवाली वृत्ति (**च**) और उत्पत्ति का विषय (**मे**) मेरे (**सीरम्**) खेती की सिद्धि कराने वाले हल आदि (**च**) और खेती करने वाले तथा (**मे**) मेरा (**लयः**) लय अर्थात् जिसमें एकता को प्राप्त होना हो, वह विषय (**च**) और जो मुझ में एकता को प्राप्त हुआ, वह विद्यादि गुण। ये उक्त सब (**यज्ञेन**) अच्छे नियमों के आचरण से (**कल्पन्ताम्**) समर्थ हों॥७॥

भावार्थः-जो शम, दम आदि गुणों से युक्त अच्छे-अच्छे नियमों को भलीभांति पालन करें, वे अपने चाहे हुए कामों को सिद्ध करावें॥७॥

शं चेत्यस्य देवा ऋषयः। आत्मा देवता। स्वराट् शक्वरी छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

शं च मे मयश्च मे प्रियं च मेऽनुकामश्च मे कामश्च मे सौमनसश्च मे भगश्च मे द्रविणं च मे भद्रं च मे श्रेयश्च मे वसीयश्च मे यशश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्॥८॥

शम्। च। मे। मयः। च। मे। प्रियम्। च। मे। अनुकाम इत्यनुऽकामः। च। मे। कामः। च। मे। सौमनसः। च। मे। भगः। च। मे। द्रविणम्। च। मे। भद्रम्। च। मे। श्रेयः। च। मे। वसीयः। च। मे। यशः। च। मे। यज्ञेन। कल्पन्ताम्॥८॥

पदार्थः-(**शम्**) कल्याणम् (**च**) (**मे**) (**मयः**) ऐहिकं सुखम् (**च**) (**मे**) (**प्रियम्**) प्रीतिकारकम् (**च**) (**मे**) (**अनुकामः**) धर्मानुकूला कामना (**च**) (**मे**) (**कामः**) काम्यते येन यस्मिन् वा (**च**) (**मे**) (**सौमनसः**) शोभनं च तन्मनः सुमनस्तस्य भावः (**च**) (**मे**) (**भगः**) ऐश्वर्य्यसंघातः (**च**) (**मे**) (**द्रविणम्**) बलम् (**च**) (**मे**) (**भद्रम्**) भन्दनीयं सुखम् (**च**) (**मे**) (**श्रेयः**) मुक्तिसुखम् (**च**) (**मे**) (**वसीयः**) अतिशयेन वस्तृ वसीयः (**च**) (**मे**) (**यशः**) कीर्तिः (**च**) (**मे**) (**यज्ञेन**) सुखसिद्धिकरेणेश्वरेण (**कल्पन्ताम्**)॥८॥

अन्वयः-मे शं च मे मयश्च मे प्रियं च मेऽनुकामश्च मे कामश्च मे सौमनसश्च मे भगश्च मे द्रविणं च मे भद्रं च मे श्रेयश्च मे वसीयश्च मे यशश्च यज्ञेन कल्पन्ताम्॥८॥

भावार्थः-मनुष्यैर्येन कर्मणा सुखादयो वर्द्धेरंस्तदेव कर्म सततं सेवनीयम्॥८॥

पदार्थः-(**मे**) मेरा (**शम्**) सर्व सख (**च**) और सुख की सब सामग्री (**मे**) मेरा (**मयः**) प्रत्यक्ष आनन्द (**च**) और इसके साधन (**मे**) मेरा (**प्रियम्**) पियारा (**च**) और इसके साधन (**मे**) मेरी (**अनुकामः**) धर्म के अनुकूल कामना (**च**) और इसके साधन (**मे**) मेरा (**कामः**) काम अर्थात् जिससे वा जिसमें कामना करें (**च**) तथा (**मे**) मेरा (**सौमनसः**) चित्त का अच्छा होना (**च**) और इसके साधन (**मे**) मेरा (**भगः**) ऐश्वर्य्य का समूह (**च**) और इसके साधन (**मे**) मेरा (**द्रविणम्**) बल (**च**) और इसके साधन (**मे**) मेरा (**भद्रम्**) अति आनन्द देने योग्य सुख (**च**) और सुख के साधन (**मे**) मेरा (**श्रेयः**) मुक्ति सुख (**च**) और इसके साधन (**मे**) मेरा (**वसीयः**) अतिशय करके वसने वाला (**च**) और इसकी सामग्री (**मे**) मेरी (**यशः**) कीर्ति (**च**) और इसके साधन (**यज्ञेन**) सुख की सिद्धि करने वाले ईश्वर से (**कल्पन्ताम्**) समर्थ होवें॥८॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि जिस काम से सुख आदि की वृद्धि हो, उस काम का निरन्तर सेवन करें॥८॥

उर्क् चेत्यस्य देवा ऋषयः। आत्मा देवता। शक्वरी छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ऊर्क् च मे सूनृता च मे पयश्च मे रसश्च मे घृतं च मे मधु च मे सग्धिश्च मे सपीतिश्च मे कृषिश्च मे वृष्टिश्च मे जैत्रं च मऽऔद्भिद्यं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्॥९॥

ऊर्क्। च। मे। सूनृता। च। मे। पयः। च। मे। रसः। च। मे। घृतम्। च। मे। मधु। च। मे। सग्धिः। च। मे। सपीतिरिति सऽपीतिः। च। मे। कृषिः। च। मे। वृष्टिः। च। मे। जैत्रम्। च। मे। औद्भिद्यमित्यौत्ऽभिद्यम्। च। मे। यज्ञेन। कल्पन्ताम्॥ ९॥

पदार्थः-(**ऊर्क्**) सुसंस्कृतमन्नम् (**च**) सुगन्ध्यादियुक्तम् (**मे**) (**सूनृता**) प्रिया वाक् (**च**) सत्या (**मे**) (**पयः**) दुग्धम् (**च**) उत्तमं पक्वमौषधम् (**मे**) (**रसः**) सर्वद्रव्यसारः (**च**) महौषधीभ्यो निष्पादितः (**मे**) (**घृतम्**) आज्यम् (**च**) सुसंस्कृतम् (**मे**) (**मधु**) क्षौद्रम् (**च**) शर्करादिकम् (**मे**) (**सग्धिः**) समानभोजनम् (**च**) भक्ष्यादिकम् (**मे**) (**सपीतिः**) समाना पीतिः पानं यस्यां सा (**च**) चूष्यम् (**मे**) (**कृषिः**) भूमिकर्षणम् (**च**) शस्यविशेषाः (**मे**) (**वृष्टिः**) जलवर्षणम् (**च**) आहुतिभिः संस्क्रिया (**मे**) (**जैत्रम्**) जेतुं शीलम् (**च**) सुशिक्षितं सेनादिकम् (**मे**) (**औद्भिद्यम्**) उद्भिदां पृथिवीं भित्त्वा जातानां भावम् (**च**) फलादिकम् (**मे**) (**यज्ञेन**) सर्वरसपदार्थवर्द्धकेन कर्मणा (**कल्पन्ताम्**)॥ ९॥

अन्वयः-म ऊर्क् च मे सूनृता च मे पयश्च मे रसश्च मे घृतञ्च मे मधु च मे सग्धिश्च मे सपीतिश्च मे कृष्टिश्च मे वृष्टिश्च मे जैत्रञ्च म औद्भिद्यं च यज्ञेन कल्पन्ताम्॥ ९॥

भावार्थः-मनुष्याः सर्वानुत्तमरसयुक्तान् पदार्थान् सञ्चित्य तान् यथाकालं होमाद्युत्तमेषु व्यवहारेषु नियोजयेयुः॥ ९॥

पदार्थः-(**मे**) मेरा (**ऊर्क्**) अच्छा संस्कार किया अर्थात् बनाया हुआ अन्न (**च**) और सुगन्धि आदि पदार्थों से युक्त व्यञ्जन (**मे**) मेरा (**सूनता**) प्रियवाणी (**च**) और सत्य वचन (**मे**) मेरा (**पयः**) दूध (**च**) और उत्तम पकाये ओषधि आदि पदार्थ (**मे**) मेरा (**रसः**) सब पदार्थों का सार (**च**) और बड़ी-बड़ी ओषधियों से निकाला हुआ रस (**मे**) मेरा (**घृतम्**) घी (**च**) और उसका संस्कार करने तपाने आदि से सिद्ध हुआ पक्वान्न (**मे**) मेरा (**मधु**) सहत (**च**) और खांड, गुड़ आदि (**मे**) मेरा (**सग्धिः**) एकसा भोजन (**च**) और उत्तम भोग साधन (**मे**) मेरी (**सपीतिः**) एकसा जिसमें जल का पान (**च**) और जो चूसने योग्य पदार्थ (**मे**) मेरा (**कृषिः**) भूमि की जुताई (**च**) और गेहूं आदि अन्न (**मे**) मेरी (**वृष्टिः**) वर्षा (**च**) और होम की आहुतियों से पवन आदि की शुद्धि करना (**मे**) मेरा (**जैत्रम्**) जीतने का स्वभाव (**च**) और अच्छे शिक्षित सेना आदि जन तथा (**मे**) मेरे (**औद्भिद्यम्**) भूमि को तोड़-फोड़ के निकालने वाले वृक्षों वा वनस्पतियों का होना (**च**) और फूल-फल ये सब पदार्थ (**यज्ञेन**) समस्त रस और पदार्थों की बढ़ती करने वाले कर्म से (**कल्पन्ताम्**) समर्थ होवें॥ ९॥

भावार्थः-मनुष्य समस्त उत्तम रसयुक्त पदार्थों को इकट्ठा करके उनको समय-समय के अनुकूल होमादि उत्तम व्यवहारों में लगावें॥ ९॥

रयिश्चेत्यस्य देवा ऋषयः। आत्मा देवता। निचृच्छक्वरी छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

र॒यिश्च॑ मे॒ राय॑श्च मे पु॒ष्टं च॑ मे॒ पुष्टि॑श्च मे वि॒भु च॑ मे प्र॒भु च॑ मे पू॒र्णं च॑ मे पू॒र्णत॑रं च मे॒ कुय॑वं च॒ मेऽक्षि॑तं च॒ मेऽन्नं॑ च॒ मेऽक्षु॑च्च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम्॥ १०॥

र॒यिः। च॒। मे॒। रायः॑। च॒। मे॒। पु॒ष्टम्। च॒। मे॒। पुष्टिः॑। च॒। मे॒। वि॒भ्विति॑ वि॒ऽभु। च॒। मे॒। प्र॒भ्विति॑ प्र॒ऽभु। च॒। मे॒। पू॒र्णम्। च॒। मे॒। पू॒र्णत॑र॒मिति॑ पू॒र्णऽत॑रम्। च॒। मे॒। कुय॑वम्। च॒। मे॒। अक्षि॑तम्। च॒। मे॒। अन्न॑म्। च॒। मे॒। अक्षु॑त्। च॒। मे॒। य॒ज्ञेन॑। क॒ल्प॒न्ता॒म्॥ १०॥

पदार्थः-(रयिः) विद्याश्रीः **(च)** पुरुषार्थः **(मे) (रायः)** प्रशस्तलक्ष्म्यः **(च)** पक्वान्नादिकम् **(मे) (पुष्टम्) (च)** आरोग्यम् **(मे) (पुष्टिः)** पुष्टिकरणम् **(च)** सुपथ्यम् **(मे) (विभु)** अखिलविषयेषु व्याप्तं मन आदि **(च)** परमात्मध्यानम् **(मे) (प्रभु)** समर्थम् **(च)** सर्वसामर्थ्यम् **(मे) (पूर्णम्)** अलङ्कारि **(च)** एतत्साधनम् **(मे) (पूर्णतरम्)** अतिशयेन पूर्णमाभरणादिकम् **(च)** सर्वमुपकरणम् **(मे) (कुयवम्)** कुत्सितैर्यवैर्वियुक्तम् **(च)** व्रीह्यादिकम् **(मे) (अक्षितम्)** क्षयरहितम् **(च)** तृप्तिः **(मे) (अन्नम्)** अत्तुं योग्यम् **(च)** व्यञ्जनम् **(मे) (अक्षुत्)** क्षुधाराहित्यम् **(च)** तृषादिराहित्यम् **(मे) (यज्ञेन)** प्रशस्तधनप्रापकेणेश्वरेण **(कल्पन्ताम्)**॥ १०॥

अन्वयः-मे रयिश्च मे रायश्च मे पुष्टं च मे पुष्टिश्च मे विभु च मे प्रभु च मे पूर्णं च मे पूर्णतरं च मे पूर्णतरं च मे कुयवं च मेऽक्षितं च मेऽन्नं च मेऽक्षुच्च यज्ञेन कल्पन्ताम्॥ १०॥

भावार्थः-मनुष्यैः परमपुरुषार्थेन जगदीश्वरभक्तिप्रार्थनाभ्यां च विद्यादिकं धनं लब्ध्वा सर्वोपकारः साधनीयः॥ १०॥

पदार्थः-(मे) मेरी **(रयिः)** विद्या की कान्ति **(च)** और पुरुषार्थ **(मे)** मेरे **(रायः)** प्रशंसित धन **(च)** और पक्वान्न आदि **(मे)** मेरे **(पुष्टम्)** पुष्ट पदार्थ **(च)** और आरोग्यपन **(मे)** मेरी **(पुष्टिः)** पुष्टि **(च)** और पथ्य भोजन **(मे)** मेरा **(विभु)** सब विषयों मे व्याप्त मन आदि **(च)** परमात्मा का ध्यान **(मे)** मेरा **(प्रभु)** समर्थ व्यवहार **(च)** और सब सामर्थ्य **(मे)** मेरा **(पूर्णम्)** पूर्ण काम का करना **(च)** और उस का साधन **(मे)** मेरे **(पूर्णतरम्)** आभूषण, गौ, भैंस, घोड़ा, छेरी तथा अन्न आदि पदार्थ **(च)** और सब का उपकार करना **(मे)** मेरा **(कुयवम्)** निन्दित यवों से न मिला हुआ अन्न **(च)** और धान चावल आदि अन्न **(मे)** मेरा **(अक्षितम्)** अक्षय पदार्थ **(च)** और तृप्ति **(मे)** मेरा **(अन्नम्)** खाने योग्य अन्न **(च)** और मसाला आदि तथा **(मे)** मेरी **(अक्षुत्)** क्षुधा की तृप्ति **(च)** और प्यास आदि की तृप्ति ये सब पदार्थ **(यज्ञेन)** प्रशंसित धनादि देने वाले परमात्मा से **(कल्पन्ताम्)** समर्थ होवें॥ १०॥

भावार्थः-मनुष्यों को परम पुरुषार्थ और ईश्वर की भक्ति, प्रार्थना से विद्या आदि धन पाकर सब का उपकार सिद्ध करना चाहिये॥ १०॥

वित्तं चेत्यस्य देवा ऋषयः। श्रीमदात्मा देवता। भुरिक् शक्वरी छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

वि॒त्तं च॑ मे॒ वेद्यं॑ च मे भू॒तं च॑ मे भवि॒ष्यच्च॑ मे सु॒गं च॑ मे सु॒प॒थ्यं॒ च मऽऋ॒द्धं च॑ म॒ऽऋद्धि॑श्च म क्लृ॒प्तं च॑ मे॒ क्लृप्ति॑श्च मे मति॒श्च मे सुम॒तिश्च॑ मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम्॥ ११॥

वि॒त्तम्। च॒। मे॒। वेद्य॑म्। च॒। मे॒। भू॒तम्। च॒। मे॒। भ॒वि॒ष्यत्। च॒। मे॒। सु॒गमिति॑ सु॒ऽगम्। च॒। मे॒। सु॒प॒थ्य॒मिति॑ सु॒प॒थ्य॒म्। च॒। मे॒। ऋ॒द्धम्। च॒। मे॒। ऋद्धिः॑। च॒। मे॒। क्लृ॒प्तम्। च॒। मे॒। क्लृप्तिः॑। च॒। मे॒। म॒तिः। च॒। मे॒। सु॒म॒तिरिति॑ सु॒ऽम॒तिः। च॒। मे॒। य॒ज्ञेन॑। क॒ल्प॒न्ता॒म्॥ ११॥

पदार्थः-(**वित्तम्**) विचारितम् (**च**) विचारः (**मे**) (**वेद्यम्**) विचार्य्यम् (**च**) विचारकर्त्ता (**मे**) (**भूतम्**) अतीतम् (**च**) वर्त्तमानम् (**मे**) (**भविष्यत्**) आगामि (**च**) सर्वसामयिकम् (**मे**) (**सुगम्**) सुष्ठु गच्छन्ति यस्मिँस्तत् (**च**) उचितं कर्म (**मे**) (**सुपथ्यम्**) शोभनस्य पथो भावम् (**च**) निदानम् (**मे**) (**ऋद्धम्**) समृद्धम् (**च**) सिद्धयः (**मे**) (**ऋद्धिः**) योगेन प्राप्ता समृद्धिः (**च**) तुष्टयः (**मे**) (**क्लृप्तम्**) समर्थितम् (**च**) कल्पना (**मे**) (**क्लृप्तिः**) समर्थोहा (**च**) तर्कः (**मे**) (**मतिः**) मननम् (**च**) विवेचनम् (**मे**) (**सुमतिः**) शोभना प्रज्ञा (**च**) उत्तमा निष्ठा (**मे**) (**यज्ञेन**) शमदमादियुक्तेन योगाभ्यासेन (**कल्पन्ताम्**)॥११॥

अन्वयः-मे वित्तं च मे वेद्यं च मे भूतं च मे भविष्यश्च मे सुगं च मे सुपथ्यं च म ऋद्धं च म ऋद्धिश्च मे क्लृप्तं च मे क्लृप्तिश्च मे मतिश्च मे सुमतिश्च यज्ञेन कल्पन्ताम्॥११॥

भावार्थः-ये शमादियुक्ताः संयता योगमभ्यस्यन्त्यृद्धिसिद्धिसहिताश्च भवन्ति, तेऽन्यानपि समर्द्धयितुं शक्नुवन्ति॥११॥

पदार्थः-(**मे**) मेरा (**वित्तम्**) विचारा हुआ विषय (**च**) और विचार (**मे**) मेरा (**वेद्यम्**) विचारने योग्य विषय (**च**) और विचारने वाला (**मे**) मेरा (**भूतम्**) व्यतीत हुआ विषय (**च**) और वर्त्तमान (**मे**) मेरा (**भविष्यत्**) होने वाला (**च**) और सब समय का उत्तम व्यवहार (**मे**) मेरा (**सुगम्**) सुगम मार्ग (**च**) और उचित कर्म (**मे**) मेरा (**सुपथ्यम्**) सुगम युक्ताहार-विहार का होना (**च**) और सब कामों में प्रथम कारण (**मे**) मेरा (**ऋद्धम्**) अच्छी वृद्धि को प्राप्त पदार्थ (**च**) और सिद्धि (**मे**) मेरी (**ऋद्धिः**) योग से पाई हुई अच्छी वृद्धि (**च**) और तुष्टि अर्थात् सन्तोष (**मे**) मेरा (**क्लृप्तम्**) सामर्थ्य को प्राप्त हुआ काम (**च**) और कल्पना (**मे**) मेरी (**क्लृप्तिः**) सामर्थ्य की कल्पना (**च**) और तर्क (**मे**) मेरा (**मतिः**) विचार (**च**) और पदार्थ-पदार्थ का विचार करना (**मे**) मेरी (**सुमतिः**) उत्तम बुद्धि तथा (**च**) अच्छी निष्ठा ये सब (**यज्ञेन**) शम, दम आदि नियमों से युक्त योगाभ्यास से (**कल्पन्ताम्**) समर्थ हों॥११॥

भावार्थः-जो शम आदि नियमों से युक्त संयम को प्राप्त योग का अभ्यास करते और ऋद्धि-सिद्धि को प्राप्त हुए हैं, वे औरों को भी अच्छे प्रकार ऋद्धि-सिद्धि दे सकते हैं॥११॥

व्रीहयश्चेत्यस्य देवा ऋषयः। धान्यदा आत्मा देवता। भुरिगतिशक्वरी छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

व्रीहयश्च मे यवाश्च मे माषाश्च मे तिलाश्च मे मुद्गाश्च मे खल्वाश्च मे प्रियङ्गवश्च मेऽणवश्च मे श्यामाकाश्च मे नीवाराश्च मे गोधूमाश्च मे मसूराश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्॥१२॥

व्रीहयः। च। मे। यवाः। च। मे। माषाः। च। मे। तिलाः। च। मे। मुद्गाः। च। मे। खल्वाः। च। मे। प्रियङ्गवः। च। मे। अणवः। च। मे। श्यामाकाः। च। मे। नीवाराः। च। मे। गोधूमाः। च। मे। मसूराः। च। मे। यज्ञेन। कल्पन्ताम्॥१२॥

पदार्थः-**(व्रीहयः)** तण्डुलाः **(च)** षष्टिकाः **(मे)** **(यवाः)** **(च)** आढक्यः **(मे)** **(माषाः)** **(च)** कलायाः **(मे)** **(तिलाः)** **(च)** नारिकेलाः **(मे)** **(मुद्गाः)** **(च)** तत्संस्काराः **(मे)** **(खल्वाः)** चणकाः **(च)** तत्साधनम् **(मे)** **(प्रियङ्गवः)** धान्यविशेषाः **(च)** अन्यानि क्षुद्रान्नानि **(मे)** **(अणवः)** सूक्ष्मतण्डुलाः **(च)** तत्पाकः **(मे)** **(श्यामाकाः)** **(च)** **(मे)** **(नीवाराः)** विना वपनेनोत्पन्नाः **(च)** एतत्संस्करणम् **(मे)** **(गोधूमाः)** **(च)** एतत्संस्करणम् **(मे)** **(मसूराः)** **(च)** एतत्सम्बन्धि **(मे)** **(यज्ञेन)** सर्वान्नप्रदेन परमात्मना **(कल्पन्ताम्)**॥१२॥

अन्वयः-मे व्रीहयश्च मे यवाश्च मे माषाश्च मे तिलाश्च मे मुद्गाश्च मे खल्वाश्च मे प्रियङ्गवश्च मेऽणवश्च मे श्यामाकाश्च मे नीवाराश्च मे गोधूमाश्च मे मसूराश्च यज्ञेन कल्पन्ताम्॥१२॥

भावार्थः-मनुष्यैर्व्रीह्यादिभ्यः सुसंस्कृतानोदनादीन् संपाद्य तेऽग्नौ होतव्या भोक्तव्या, अन्ये भोजयितव्याश्च॥१२॥

पदार्थः-**(मे)** मेरे **(व्रीहयः)** चावल **(च)** और साठी के धान **(मे)** मेरे **(यवाः)** जौ **(च)** और अरहर **(मे)** मेरे **(माषाः)** उरद **(च)** और मटर **(मे)** मेरा **(तिलाः)** तिल **(च)** और नारियल **(मे)** मेरे **(मुद्गाः)** मूंग **(च)** और उसका बनाना **(मे)** मेरे **(खल्वाः)** चणे **(च)** और उनका सिद्ध करना **(मे)** मेरी **(प्रियङ्गवः)** कंगुनी **(च)** और उसका बनाना **(मे)** मेरे **(अणवः)** सूक्ष्म चावल **(च)** और उनका पाक **(मे)** मेरा **(श्यामाकाः)** समा **(च)** और मडुआ, पटेरा, चेना आदि छोटे अन्न **(मे)** मेरा **(नीवाराः)** पसाई के चावल जो कि विना बोए उत्पन्न होते हैं **(च)** और इनका पाक **(मे)** मेरे **(गोधूमाः)** गेहूं **(च)** और उन को पकाना तथा **(मे)** मेरी **(मसूराः)** मसूर **(च)** और उनका सम्बन्धी अन्य अन्न ये सब **(यज्ञेन)** सब अन्नों के दाता परमेश्वर से **(कल्पन्ताम्)** समर्थ हों॥१२॥

भावार्थः-मनुष्यों को योग्य है कि चावल आदि से अच्छे प्रकार संस्कार किये हुए भात आदि को बना अग्नि में होम करें तथा आप खावें, औरों को खवावें॥१२॥

अश्मा चेत्यस्य देवा ऋषयः। रत्नवान् धनवानात्मा देवता। भुरिगतिशक्वरी छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अश्मा॑ च मे॒ मृत्ति॑का च मे गि॒रय॑श्च मे॒ पर्व॑ताश्च मे॒ सिक॑ताश्च मे॒ व॒नस्पत॑यश्च मे॒ हिर॑ण्यं च॒ मेऽय॑श्च मे श्या॒मं च॑ मे लो॒हं च॑ मे॒ सीसं॑ च मे॒ त्रपु॑ च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम्॥१३॥

अश्मा॑। च॒। मे॒। मृत्ति॑का। च॒। मे॒। गि॒रय॑ः। च॒। मे॒। पर्व॑ताः। च॒। मे॒। सिक॑ताः। च॒। मे॒। व॒नस्पत॑यः। च॒। मे॒। हिर॑ण्यम्। च॒। मे॒। अय॑ः। च॒। मे॒। श्या॒मम्। च॒। मे॒। लो॒हम्। च॒। मे॒। सीस॑म्। च॒। मे॒। त्रपु॑। च॒। मे॒। य॒ज्ञेन॑। क॒ल्प॒न्ता॒म्॥१३॥

पदार्थः-**(अश्मा)** पाषाणः **(च)** हीरकादीनि रत्नानि **(मे)** **(मृत्तिका)** प्रशंसिता मृत् **(च)** साधारणा मृत् **(मे)** **(गिरयः)** मेघाः **(च)** अन्नादि **(मे)** **(पर्वताः)** ह्रस्वा महान्तः शैलाः **(च)** सर्वधनम् **(मे)** **(सिकताः)** **(च)** तत्रस्थाः पदार्थाः सूक्ष्मा बालुकाः **(मे)** **(वनस्पतयः)** वटादयः **(च)** आम्रादयो वृक्षाः **(मे)** **(हिरण्यम्)** **(च)** रजतादि **(मे)** **(अयः)** **(च)** शस्त्राणि **(मे)** **(श्यामम्)** श्याममणिः **(च)** शुक्त्यादि **(मे)** **(लोहम्)** सुवर्णम्। **लोहमिति सुवर्णनामसु पठितम्॥** (निघं०१.२) **(च)** कान्तिसारादिः **(मे)** **(सीसम्)** **(च)** जतु **(मे)** **(त्रपु)** **(च)** रङ्गम् **(मे)** **(यज्ञेन)** सङ्गतिकरणयोग्येन **(कल्पन्ताम्)**॥१३॥

अन्वयः-मेऽश्मा च मे मृत्तिका च मे गिरयश्च मे पर्वताश्च मे सिकताश्च मे वनस्पतयश्च मे हिरण्यं च मेऽयश्च मे श्यामं च मे लोहं च मे सीसं च मे त्रपु च यज्ञेन कल्पन्ताम्॥१३॥

भावार्थः-मनुष्याः पृथिवीस्थान् पदार्थान् सुपरीक्ष्यैभ्यो रत्नानि धातूंश्च प्राप्य सर्वहितायोगपयुञ्जीरन्॥१३॥

पदार्थः-**(मे)** मेरा **(अश्मा)** पत्थर **(च)** और हीरा आदि रत्न **(मे)** मेरी **(मृत्तिका)** अच्छी माटी **(च)** और साधारण माटी **(मे)** मेरे **(गिरयः)** मेघ **(च)** और अन्न आदि **(मे)** मेरे **(पर्वताः)** बड़े-छोटे पर्वत **(च)** और पर्वतों में होने वाले पदार्थ **(मे)** मेरी **(सिकताः)** बड़ी बालू **(च)** और छोटी-छोटी बालू **(मे)** मेरे **(वनस्पतयः)** बड़ आदि वृक्ष **(च)** और आम आदि वृक्ष **(मे)** मेरा **(हिरण्यम्)** सब प्रकार का धन **(च)** तथा चांदी आदि **(मे)** मेरा **(अयः)** लोहा **(च)** और शस्त्र **(मे)** मेरा **(श्यामम्)** नीलमणि वा लहसुनिया आदि **(च)** और चन्द्रकान्तमणि **(मे)** मेरा **(लोहम्)** सुवर्ण **(च)** तथा कान्तिसार आदि **(मे)** मेरा **(सीसम्)** सीसा **(च)** और लाख **(मे)** मेरा **(त्रपु)** जस्ता **(च)** और पीतल आदि ये सब **(यज्ञेन)** सङ्ग करने योग्य व्यवहार से **(कल्पन्ताम्)** समर्थ हों॥१३॥

भावार्थः-मनुष्य लोग पृथिवीस्थ पदार्थों को अच्छी परीक्षा से जान के इनसे रत्न और अच्छे-अच्छे धातुओं को पाकर सबके हित के लिये उपयोग में लावें॥१३॥

अग्निश्चेत्यस्य देवा ऋषयः। अग्न्यादियुक्ता आत्मा देवता। भुरिगष्टिश्छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अ॒ग्निश्च॑ म॒ऽआप॑श्च मे वी॒रुध॑श्च म॒ऽओष॑धयश्च मे कृष्टप॒च्याश्च॑ मेऽकृष्टप॒च्याश्च॑ मे ग्रा॒म्याश्च॑ मे प॒शव॑ऽआर॒ण्याश्च॑ मे वि॒त्तञ्च॑ मे॒ वित्ति॑श्च मे भू॒तञ्च॑ मे॒ भूति॑श्च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम्॥१४॥

अ॒ग्निः। च॒। मे॒। आप॑ः। च॒। मे॒। वी॒रुध॑ः। च॒। मे॒। ओष॑धयः। च॒। मे॒। कृ॒ष्ट॒प॒च्याः इति॑ कृष्टऽप॒च्याः। च॒। मे॒। अ॒कृ॒ष्ट॒प॒च्या इत्य॑कृष्टऽप॒च्याः। च॒। मे॒। ग्रा॒म्याः। च॒। मे॒। प॒शव॑ः। आ॒र॒ण्याः। च॒। मे॒। वि॒त्तम्। च॒। मे॒। वित्ति॑ः। च॒। मे॒। भू॒तम्। च॒। मे॒। भूति॑ः। च॒। मे॒। य॒ज्ञेन॑। क॒ल्प॒न्ता॒म्॥१४॥

पदार्थः-(**अग्निः**) वह्निः (**च**) विद्युदादिः (**मे**) (**आपः**) जलानि (**च**) जलरत्नानि (**मे**) (**वीरुधः**) गुल्मविशेषाः (**च**) तृणशाकादि (**मे**) (**ओषधयः**) यवसोमलताद्याः (**च**) सर्वौषधादि (**मे**) (**कृष्टपच्याः**) या कृष्टेषु क्षेत्रेषु पच्यन्ते ताः (**च**) उत्तमानि शस्यादीनि (**मे**) (**अकृष्टपच्याः**) या अकृष्टेषु जङ्गलादिषु पच्यन्ते ताः (**च**) पर्वतादिषु पक्तव्याः (**मे**) (**ग्राम्याः**) ग्रामे भवाः (**च**) नगरस्थाः (**मे**) (**पशवः**) गवाद्याः (**आरण्याः**) अरण्ये वने भवा मृगादयः (**च**) सिंहादयः (**मे**) (**वित्तम्**) लब्धम् (**च**) सर्वं धनम् (**मे**) (**वित्तिः**) प्राप्तिः (**च**) प्राप्तव्यम् (**मे**) (**भूतम्**) रूपम् (**च**) नानाविधम् (**मे**) (**भूतिः**) ऐश्वर्यम् (**च**) एतत्साधनम् (**मे**) (**यज्ञेन**) सङ्गतिकरणयोग्येन (**कल्पन्ताम्**)॥१४॥

अन्वयः-मेऽग्निश्च म आपश्च मे वीरुधश्च म ओषधयश्च मे कृष्टपच्याश्च मेऽकृष्टपच्याश्च मे ग्राम्याश्च म आरण्याश्च पशवो मे वित्तं च मे वित्तिश्च मे भूतं च मे भूतिश्च यज्ञेन कल्पन्ताम्॥१४॥

भावार्थः-ये मनुष्याः पावकादिविद्यया सङ्गन्तव्यं शिल्पयज्ञं साध्नुवन्ति, त ऐश्वर्य लभन्ते॥१४॥

पदार्थः-(**मे**) मेरा (**अग्निः**) अग्नि (**च**) और बिजुली आदि (**मे**) मेरे (**आपः**) जल (**च**) और जल में होने वाले रत्न मोती आदि (**मे**) मेरे (**वीरुधः**) लता गुच्छा (**च**) और शाक आदि (**मे**) मेरी (**ओषधयः**) सोमलता आदि ओषधि (**च**) और फल-पुष्पादि (**मे**) मेरे (**कृष्टपच्याः**) खेतों में पकते हुए अन्न आदि (**च**) और उत्तम अन्न (**मे**) मेरे (**अकृष्टपच्याः**) जो जङ्गल में पकते हैं, वे अन्न (**च**) और जो पर्वत आदि स्थानों में पकने योग्य हैं, वे अन्न (**मे**) मेरे (**ग्राम्याः**) गांव मे हुए गौ आदि (**च**) और नगर में ठहरे हुए तथा (**मे**) मेरे (**आरण्याः**) वन में होने हारे मृग आदि (**च**) और सिंह आदि (**पशवः**) पशु (**मे**) मेरा (**वित्तम्**) पाया हुआ पदार्थ (**च**) और सब धन (**मे**) मेरी (**वित्तिः**) प्राप्ति (**च**) और पाने योग्य (**मे**) मेरा (**भूतम्**) रूप (**च**)

और नाना प्रकार का पदार्थ तथा **(मे)** मेरा **(भूतिः)** ऐश्वर्य **(च)** और उस का साधन ये सब पदार्थ **(यज्ञेन)** मेल करने योग्य शिल्प विद्या से **(कल्पन्ताम्)** समर्थ हों॥१४॥

भावार्थः-जो मनुष्य अग्नि आदि की विद्या से सङ्गति करने योग्य शिल्पविद्या रूप यज्ञ को सिद्ध करते हैं, वे ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं॥१४॥

वसु चेत्यस्य देवा ऋषयः। धनादियुक्ता आत्मादेवता। विराडार्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

वसु॑ चे मे वस॒तिश्च॑ मे॒ कर्म॑ च मे॒ शक्ति॑श्च॒ मेऽर्थ॑श्च म॒ऽएम॑श्च मऽइ॒त्या च॑ मे॒ गति॑श्च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम्॥ १५॥

वसु॑। च॒। मे॒। व॒स॒तिः। च॒। मे॒। कर्म॑। च॒। मे॒। शक्ति॑ः। च॒। मे॒। अर्थ॑ः। च॒। मे॒। एम॑ः। च॒। मे॒। इ॒त्या। च॒। मे॒। गति॑ः। च॒। मे॒। य॒ज्ञेन॑। क॒ल्प॒न्ता॒म्॥ १५॥

पदार्थः-**(वसु)** वस्तु **(च)** प्रियम् **(मे)** **(वसतिः)** यत्र वसन्ति सा **(च)** सामन्ता **(मे)** **(कर्म)** अभीप्सिततमा क्रिया **(च)** कर्त्ता **(मे)** **(शक्तिः)** सामर्थ्यम् **(च)** प्रेम **(मे)** **(अर्थः)** सकलपदार्थसञ्चयः **(च)** सञ्चेता **(मे)** **(एमः)** एति येन स प्रयत्नः **(च)** बोधः **(मे)** **(इत्या)** एमि जानामि यया रीत्या सा **(च)** युक्तिः **(मे)** **(गतिः)** गमनम् **(च)** उत्क्षेपणादि कर्म **(मे)** **(यज्ञेन)** पुरुषार्थानुष्ठानेन **(कल्पन्ताम्)**॥१५॥

अन्वयः-मे वसु च मे वसतिश्च मे कर्म च मे शक्तिश्च मेऽर्थश्च म एमश्च म इत्या च मे गतिश्च यज्ञेन कल्पन्ताम्॥१५॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! ये जनाः सर्वं सामर्थ्यादिकं सर्वहितायैव कुर्वन्ति, त एव प्रशंसिता भवन्ति॥१५॥

पदार्थः-**(मे)** मेरा **(वसु)** वस्तु **(च)** और प्रिय पदार्थ वा पियारा काम **(मे)** मेरी **(वसतिः)** जिसमें वसते हैं, वह वस्ती **(च)** और भृत्य **(मे)** मेरा **(कर्म)** काम **(च)** और करने वाला **(मे)** मेरा **(शक्तिः)** सामर्थ्य **(च)** और प्रेम **(मे)** मेरा **(अर्थः)** सब पदार्थों को इकट्ठा करना **(च)** और इकट्ठा करने वाला **(मे)** मेरा **(एमः)** अच्छा यत्न **(च)** और बुद्धि **(मे)** मेरी **(इत्या)** वह रीति जिससे व्यवहारों को जानता हूं **(च)** और युक्ति तथा **(मे)** मेरी **(गतिः)** चाल **(च)** और उछलना आदि क्रिया ये सब पदार्थ **(यज्ञेन)** पुरुषार्थ के अनुष्ठान से **(कल्पन्ताम्)** समर्थ होवें॥१५॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जो मनुष्य अपना समस्त सामर्थ्य आदि सबके हित के लिये ही करते हैं, वे ही प्रशंसायुक्त होते हैं॥१५॥

अग्निश्चेत्यस्य देवा ऋषयः। अग्न्यादिविद्याविदात्मा देवता। निचृदतिशक्वरी छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अग्निश्च मऽइन्द्रश्च मे सोमश्च मऽइन्द्रश्च मे सविता च मऽइन्द्रश्च मे सरस्वती च मऽइन्द्रश्च मे पूषा च मऽइन्द्रश्च मे बृहस्पतिश्च मऽइन्द्रश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्॥१६॥

अग्निः। च। मे। इन्द्रः। च। मे। सोमः। च। मे। इन्द्रः। च। मे। सविता। च। मे। इन्द्रः। च। मे। सरस्वती। च। मे। इन्द्रः। च। मे। पूषा। च। मे। इन्द्रः। च। मे। बृहस्पतिः। च। मे। इन्द्रः। च। मे। यज्ञेन। कल्पन्ताम्॥१६॥

पदार्थः-(**अग्निः**) सूर्यः प्रसिद्धस्वरूपः (**च**) भौमः (**मे**) (**इन्द्रः**) विद्युत् (**च**) वायुः (**मे**) (**सोमः**) सोम्यगुणसम्पन्नो जनः पदार्थो वा (**च**) वृष्टिः (**मे**) (**इन्द्रः**) अन्यायविदारकः सभेशः (**च**) सभ्याः (**मे**) (**सविता**) ऐश्वर्य्ययुक्तः (**च**) एतत्साधनानि (**मे**) (**इन्द्रः**) सकलाऽविद्याच्छेदकोऽध्यापकः (**च**) विद्यार्थिनः (**मे**) (**सरस्वती**) प्रशस्तबोधः शिक्षायुक्ता वाणी वा (**च**) सत्यवक्ता (**मे**) (**इन्द्रः**) विद्यार्थिनो जाड्यविच्छेदक उपदेशकः (**च**) श्रोतारः (**मे**) (**पूषा**) पोषकः (**च**) युक्ताहारविहारौ (**मे**) (**इन्द्रः**) यः पुष्टिकरणविद्यायां रमते (**च**) वैद्यः (**मे**) (**बृहस्पतिः**) बृहतां व्यवहाराणां रक्षकः (**च**) राजा (**मे**) (**इन्द्रः**) सकलैश्वर्यवर्द्धकः (**च**) सेनेशः (**मे**) (**यज्ञेन**) विद्यैश्वर्य्योन्नतिकरणेन (**कल्पन्ताम्**)॥१६॥

अन्वयः-मेऽग्निश्च म इन्द्रश्च मे सोमश्च म इन्द्रश्च मे सविता च म इन्द्रश्च मे सरस्वती च म इन्द्रश्च मे पूषा च म इन्द्रश्च मे बृहस्पतिश्च म इन्द्रश्च यज्ञेन कल्पन्ताम्॥१६॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! युष्माभिः सुविचारेण स्वकीयाः सर्वे पदार्थाः श्रेष्ठपालनाय दुष्टशिक्षणाय च सततं योजनीयाः॥१६॥

पदार्थः-(**मे**) मेरा (**अग्निः**) प्रसिद्ध सूर्यरूप अग्नि (**च**) और पृथिवी पर मिलने वाला भौतिक (**मे**) मेरा (**इन्द्रः**) बिजुलीरूप अग्नि (**च**) तथा पवन (**मे**) मेरा (**सोमः**) शन्तिगुण वाला पदार्थ वा मनुष्य (**च**) और वर्षा मेघ जल (**मे**) मेरा (**इन्द्रः**) अन्याय को दूर करने वाला सभापति (**च**) और सभासद् (**मे**) मेरा (**सविता**) ऐश्वर्ययुक्त काम (**च**) और इसके साधन (**मे**) मेरा (**इन्द्रः**) समस्त अविद्या का नाश करने वाला अध्यापक (**च**) और विद्यार्थी (**मे**) मेरा (**सरस्वती**) प्रशंसित बोध वा शिक्षा से भरी हुई वाणी (**च**) और सत्य बोलने वाला (**मे**) मेरा (**इन्द्रः**) विद्यार्थी की जड़ता का विनाश करने वाला उपदेशक (**च**) और सुनने वाले (**मे**) मेरा (**पूषा**) पुष्टि करने वाला (**च**) और योग्य आहार=भोजन, विहार=सोना आदि (**मे**) मेरा जो (**इन्द्रः**) पुष्टि करने की विद्या में रम रहा है, वह (**च**) और वैद्य (**मे**) मेरा (**बृहस्पतिः**) बड़े-बड़े व्यवहारों

की रक्षा करने वाला **(च)** और राजा तथा **(मे)** मेरा **(इन्द्रः)** समस्त ऐश्वर्य का बढ़ाने वाला उद्योगी **(च)** और सेनापति ये सब **(यज्ञेन)** विद्या और ऐश्वर्य की उन्नति करने से **(कल्पन्ताम्)** समर्थ हों॥१६॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! तुम लोगों को अच्छे विचार से अपने सब पदार्थ उत्तमों का पालन करने और दुष्टों को शिक्षा देने के लिये निरन्तर युक्त करने चाहिये॥१६॥

मित्रश्चेत्यस्य देवा ऋषयः। मित्रैश्वर्य्यसहित आत्मा देवता। स्वराट् शक्वरी छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

मित्रश्च मऽइन्द्रश्च मे वरुणश्च मऽइन्द्रश्च मे धाता च मऽइन्द्रश्च मे त्वष्टा च मऽइन्द्रश्च मे मरुतश्च मऽइन्द्रश्च मे विश्वे च मे देवाऽइन्द्रश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्॥ १७॥

मित्रः। च। मे। इन्द्रः। च। मे। वरुणः। च। मे। इन्द्रः। च। मे। धाता। च। मे। इन्द्रः। च। मे। त्वष्टा। च। मे। इन्द्रः। च। मे। मरुतः। च। मे। इन्द्रः। च। मे। विश्वे। च। मे। देवाः। इन्द्रः। च। मे। यज्ञेन। कल्पन्ताम्॥ १७॥

पदार्थः-**(मित्रः)** प्राणः **(च)** समानः **(मे)** **(इन्द्रः)** विद्युत् **(च)** तेजः **(मे)** **(वरुणः)** उदानः। **प्राणोदानौ मित्रावरुणौ॥** (शत०१.८.३.१२) **(च)** व्यानः **(मे)** **(इन्द्रः)** सूर्य्यः **(च)** धृतिः **(मे)** **(धाता)** धर्त्ता **(च)** धैर्य्यम् **(मे)** **(इन्द्रः)** परमैश्वर्य्यप्रापकः **(च)** न्यायः **(मे)** **(त्वष्टा)** विच्छेदकोऽग्निः **(च)** पुरुषार्थः **(मे)** **(इन्द्रः)** शत्रुविदारको राजा **(च)** शिल्पम् **(मे)** **(मरुतः)** ब्रह्माण्डस्था अन्ये वायवः **(च)** शारीरा धातवः **(मे)** **(इन्द्रः)** सर्वाभिव्यापिका तडित् **(च)** एतत्प्रयोगः **(मे)** **(विश्वे)** सर्वे **(च)** सर्वस्वम् **(मे)** **(देवाः)** दिव्यगुणाः पृथिव्यादयः **(इन्द्रः)** परमैश्वर्यप्रदाता **(च)** एतदुपयोगः **(मे)** **(यज्ञेन)** वायुविद्याविधानेन **(कल्पन्ताम्)**॥१७॥

अन्वयः-मे मित्रश्च म इन्द्रश्च मे वरुणश्च म इन्द्रश्च मे धाता च म इन्द्रश्च मे त्वष्टा च म इन्द्रश्च मे मरुतश्च म इन्द्रश्च मे विश्वे च देवा म इन्द्रश्च यज्ञेन कल्पन्ताम्॥१७॥

भावार्थः-मनुष्याः प्राणविद्युद्विद्यां विज्ञायैतयोः सर्वत्राभिव्याप्तिं च ज्ञात्वा दीर्घजीवनं सम्पादयेयुः॥१७॥

पदार्थः-**(मे)** मेरा **(मित्रः)** प्राण अर्थात् हृदय में रहने वाला पवन **(च)** और समान नाभिस्थ पवन **(मे)** मेरा **(इन्द्रः)** बिजुलीरूप अग्नि **(च)** और तेज **(मे)** मेरा **(वरुणः)** उदान अर्थात् कण्ठ मे रहने वाला पवन **(च)** और समस्त शरीर में विचरने हारा पवन **(मे)** मेरा **(इन्द्रः)** सूर्य **(च)** और धारणाकर्षण **(मे)** मेरा **(धाता)** धारण करनेहारा **(च)** और धीरज **(मे)** मेरा **(इन्द्रः)** परम ऐश्वर्य का प्राप्त कराने वाला **(च)** और न्याययुक्त पुरुषार्थ **(मे)** मेरा **(त्वष्टा)** पदार्थों को छिन्न-भिन्न करने वाला अग्नि **(च)** और शिल्प अर्थात् कारीगरी **(मे)** मेरा **(इन्द्रः)** शत्रुओं को विदीर्ण करनेहारा राजा **(च)** तथा कारीगरी **(मे)** मेरे **(मरुतः)**

इस ब्रह्माण्ड में रहने वाले अन्य पवन **(च)** और शरीर के धातु **(मे)** मेरी **(इन्द्रः)** सर्वत्र व्यापक बिजुली **(च)** और उसका काम **(मे)** मेरे **(विश्वे)** समस्त पदार्थ **(च)** और सर्वस्व **(देवाः)** उत्तम गुणयुक्त पृथिवी आदि **(मे)** मेरे लिये **(इन्द्रः)** परम ऐश्वर्य का दाता **(च)** और उसका उपयोग ये सब **(यज्ञेन)** पवन की विद्या के विधान करने से **(कल्पन्ताम्)** समर्थ होवें॥१७॥

भावार्थः-मनुष्य प्राण और बिजुली की विद्या को जान और इनकी सब जगह सब ओर से व्याप्ति को जानकर अपने बहुत [दीर्घ] जीवन को सिद्ध करें॥१७॥

पृथिवी चेत्यस्य देवा ऋषयः। राज्यैश्वर्यादियुक्तात्मा देवता। भुरिक् शक्वरी छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

पृथिवी च मऽइन्द्रश्च मेऽन्तरिक्षं च मऽइन्द्रश्च मे द्यौश्च मऽइन्द्रश्च मे समाश्च मऽइन्द्रश्च मे नक्षत्राणि च मऽइन्द्रश्च मे दिशश्च मऽइन्द्रश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्॥१८॥

पृथिवी। च। मे। इन्द्रः। च। मे। अन्तरिक्षम्। च। मे। इन्द्रः। च। मे। द्यौः। च। मे। इन्द्रः। च। मे। समाः। च। मे। इन्द्रः। च। मे। नक्षत्राणि। च। मे। इन्द्रः। च। मे। दिशः। च। मे। इन्द्रः। च। मे। यज्ञेन। कल्पन्ताम्॥१८॥

पदार्थः-**(पृथिवी)** विस्तीर्णा भूमिः **(च)** अत्रस्थाः पदार्थाः **(मे)** **(इन्द्रः)** विद्युत्क्रिया **(च)** बलप्रदा **(मे)** **(अन्तरिक्षम्)** अक्षयमाकाशम् **(च)** अत्रस्थाः पदार्थाः **(मे)** **(इन्द्रः)** सर्वैश्वर्याधारः **(च)** एतत्प्रयोगः **(मे)** **(द्यौः)** प्रकाशकर्मा **(च)** एतत्साधकाः पदार्थाः **(मे)** **(इन्द्रः)** सकलपदार्थविच्छेत्ता **(च)** विच्छेद्याः पदार्थाः **(मे)** **(समाः)** संवत्सराः **(च)** क्षणादयः **(मे)** **(इन्द्रः)** कालज्ञाननिमित्तः **(च)** गणितम् **(मे)** **(नक्षत्राणि)** यानि कारणरूपेण न क्षीयन्ते तानि भुवनानि **(च)** एतत्सम्बन्धिनः **(मे)** **(इन्द्रः)** लोकलोकान्तरस्था विद्युत् **(च)** **(मे)** **(दिशः)** पूर्वाद्याः **(च)** एतत्स्थानि वस्तूनि **(मे)** **(इन्द्रः)** दिग्ज्ञापकः **(च)** ध्रुवतारा **(मे)** **(यज्ञेन)** पृथिवीकालविज्ञापकेन **(कल्पन्ताम्)**॥१८॥

अन्वयः-मे पृथिवी च म इन्द्रश्च मेऽन्तरिक्षं च म इन्द्रश्च मे द्यौश्च म इन्द्रश्च मे समाश्च म इन्द्रश्च मे नक्षत्राणि च म इन्द्रश्च मे दिशश्च म इन्द्रश्च यज्ञेन कल्पन्ताम्॥१८॥

भावार्थः-मनुष्या पृथिव्यादिपदार्थांस्तत्रस्थां विद्युतं च यावन्न जानन्ति, तावदैश्वर्यं नह्याप्नुवन्ति॥१८॥

पदार्थः-**(मे)** मेरी **(पृथिवी)** विस्तारयुक्त भूमि **(च)** और उसमें स्थित जो पदार्थ **(मे)** मेरी **(इन्द्रः)** बिजुलीरूप क्रिया **(च)** और बल देने वाली व्यायाम आदि क्रिया **(मे)** मेरा **(अन्तरिक्षम्)** विनाशरहित आकाश **(च)** और आकाश में ठहरे हुए सब पदार्थ **(मे)** मेरा **(इन्द्रः)** समस्त ऐश्वर्य का आधार **(च)** और उस का करना **(मे)** मेरी **(द्यौः)** प्रकाश के काम कराने वाली विद्या **(च)** और उसके सिद्ध कराने वाले

पदार्थ **(मे)** मेरा **(इन्द्रः)** सब पदार्थों को छिन्न-भिन्न करने वाला सूर्य आदि **(च)** और छिन्न-भिन्न करने योग्य पदार्थ **(मे)** मेरी **(समाः)** वर्ष **(च)** और क्षण, पल, विपल, घटी, मुहूर्त, दिन आदि **(मे)** मेरा **(इन्द्रः)** समय के ज्ञान का निमित्त **(च)** और गणितविद्या **(मे)** मेरे **(नक्षत्राणि)** नक्षत्र अर्थात् जो कारण रूप से स्थिर रहते, किन्तु नष्ट नहीं होते, वे लोक **(च)** और उनके साथ सम्बन्ध रखने वाले प्राणी आदि **(मे)** मेरी **(इन्द्रः)** लोक-लोकान्तरों में स्थित होने वाली बिजुली **(च)** और बिजुली के संयोग करते हुए उन लोकों में रहने वाले पदार्थ **(मे)** मेरी **(दिशः)** पूर्व आदि दिशा **(च)** और उनमें ठहरी हुई वस्तु तथा **(मे)** मेरा **(इन्द्रः)** दिशाओं के ज्ञान का देने वाला **(च)** और ध्रुव का तारा ये सब पदार्थ **(यज्ञेन)** पृथिवी और समय के विशेष ज्ञान देने वाले काम से **(कल्पन्ताम्)** समर्थ होवें॥१८॥

भावार्थः-मनुष्य लोग पृथिवी आदि पदार्थों और उनमें ठहरी हुई बिजुली आदि को जब तक नहीं जानते, तब तक ऐश्वर्य को नहीं प्राप्त होते॥१८॥

अꣳशुश्चेत्यस्य देवा ऋषयः। पदार्थविदात्मा देवता। निचृदत्यष्टिश्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अꣳशुश्च॑ मे र॒श्मिश्च॒ मेऽदा॑भ्यश्च॒ मेऽधि॑पतिश्च मऽउपा॒ꣳशुश्च॑ मेऽन्तर्या॒मश्च॑ मऽऐन्द्रवाय॒वश्च॑ मे मैत्रावरु॒णश्च॑ मऽआश्वि॒नश्च॑ मे प्रतिप्र॒स्थान॑श्च मे शु॒क्रश्च॑ मे म॒न्थी च॑ मे य॒ज्ञेन॑ कल्पताम्॥ १९॥

अ॒ꣳशुः। च॒। मे॒। र॒श्मिः। च॒। मे॒। अदा॑भ्यः। च॒। मे॒। अधि॑पति॒रित्यधि॑ऽपतिः। च॒। मे॒। उ॒पा॒ꣳशुरित्यु॑पऽअꣳशुः। च॒। मे॒। अ॒न्त॒र्या॒म इत्य॑न्तःऽया॒मः। च॒। मे॒। ऐ॒न्द्र॒वा॒य॒वः। च॒। मे॒। मै॒त्रा॒व॒रु॒णः। च॒। मे॒। आ॒श्वि॒नः। च॒। मे॒। प्र॒ति॒प्र॒स्था॒न इति॑ प्रति॒ऽप्र॒स्थानः॑। च॒। मे॒। शु॒क्रः। च॒। मे॒। म॒न्थी। च॒। मे॒। य॒ज्ञेन॑। क॒ल्प॒न्ता॒म्॥ १९॥

पदार्थः-**(अंशुः)** व्याप्तिमान् सूर्यः। अत्राशूङ् व्याप्तावित्यस्माद् बाहुलकेनौणादिक उः प्रत्ययो नुमागमश्च **(च)** प्रतापः **(मे)** **(रश्मिः)** येनाश्नाति सः। अत्राश भोजने धातोर्बाहुलकान् मिः प्रत्ययो रशादेशश्च॥ (उणा०४.४७) **(च)** विविधम् **(मे)** **(अदाभ्यः)** उपक्षयरहितः **(च)** रक्षकः **(मे)** **(अधिपतिः)** अधिष्ठाता **(च)** अध्यस्तम् **(मे)** **(उपांशुः)** उपगता अंशवो यत्र स उपांशुर्जपः **(च)** रहस्यविचारः **(मे)** **(अन्तर्यामः)** योऽन्तर्मध्ये याति स वायुः **(च)** बलम् **(मे)** **(ऐन्द्रवायवः)** इन्द्रो विद्युद्वायुश्च तयोरयं सम्बन्धी **(च)** जलम् **(मे)** **(मैत्रावरुणः)** प्राणोदानयोरयं सहचारी **(च)** व्यानः **(मे)** **(आश्विनः)** सूर्याचन्दमसोरयं मध्यवर्त्ती **(च)** प्रभावः **(मे)** **(प्रतिप्रस्थानः)** यः प्रस्थानं गमनं प्रति वर्त्तते सः **(च)** भ्रमणम् **(मे)** **(शुक्रः)** शुद्धस्वरूपः **(च)** वीर्यकरः **(मे)** **(मन्थी)** मथितुं शीलः **(च)** पयः काष्ठादिः **(मे)** **(यज्ञेन)** अग्निपदार्थोपयोगेन **(कल्पन्ताम्)**॥१९॥

अन्वयः-मेंऽशुश्च मे रश्मिश्च मेऽदाभ्यश्च मेऽधिपतिश्च म उपांशुश्च मेऽन्तर्यामश्च म ऐन्द्रवायवश्च मे मैत्रावरुणश्च म आश्विनश्च मे प्रतिप्रस्थानश्च मे शुक्रश्च मे मन्थी च यज्ञेन कल्पन्ताम्॥१९॥

भावार्थः-यदि मनुष्याः सूर्यप्रकाशदिभ्योऽप्युपकारं गृह्णीयुस्तर्हि विद्वांसो भूत्वा क्रियाकौशलं कुतो न प्राप्नुयुः॥१९॥

पदार्थः-(**मे**) मेरा (**अंशु**) व्याप्ति वाला सूर्य (**च**) और उसका प्रताप (**मे**) मेरा (**रश्मिः**) भोजन करने का व्यवहार (**च**) और अनेक प्रकार का भोजन (**मे**) मेरा (**अदाभ्यः**) विनाश रहित (**च**) और रक्षा करने वाला (**मे**) मेरा (**अधिपतिः**) स्वामी (**च**) और जिसमें स्थिर हो वह स्थान (**मे**) मेरा (**उपांशुः**) मन में जप का करना (**च**) और एकान्त का विचार (**मे**) मेरा (**अन्तर्यामः**) मध्य में जाने वाला पवन (**च**) और बल (**मे**) मेरा (**ऐन्द्रवायवः**) बिजुली और पवन के साथ सम्बन्ध करने वाला काम (**च**) और जल (**मे**) मेरा (**मैत्रावरुणः**) प्राण और उदान के साथ चलनेहारा वायु (**च**) और व्यान पवन (**मे**) मेरा (**आश्विनः**) सूर्य चन्द्रमा के बीच में रहने वाला तेज (**च**) और प्रभाव (**मे**) मेरा (**प्रतिस्थापनः**) चलने-चलने के प्रति वर्त्ताव रखने वाला (**च**) भ्रमण (**मे**) मेरा (**शुक्रः**) शुद्धस्वरूप (**च**) और वीर्य करने वाला तथा (**मे**) मेरा (**मन्थी**) विलोने के स्वभाव वाला (**च**) और दूध वा काष्ठ आदि ये सब पदार्थ (**यज्ञेन**) अग्नि के उपयोग से (**कल्पन्ताम्**) समर्थ हों॥१९॥

भावार्थः-जो मनुष्य सूर्यप्रकाशादिकों से भी उपकारों को लेवें तो विद्वान् होकर क्रिया की चतुराई को क्यों न पावें॥१९॥

आग्रयणश्चेत्यस्य देवा ऋषयः। यज्ञानुष्ठानात्मा देवता। स्वराडतिधृतिश्छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आग्रयणश्च मे वैश्वदेवश्च मे ध्रुवश्च मे वैश्वानरश्च मऽऐन्द्राग्नश्च मे महावैश्वदेवश्च मे मरुत्वतीयाश्च मे निष्केवल्यश्च मे सावित्रश्च मे सारस्वतश्च मे पात्नीवतश्च मे हारियोजनश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्॥२०॥

आग्रयणः। च। मे। वैश्वदेव इति वैश्वऽदेवः। च। मे। ध्रुवः। च। मे। वैश्वानरः। च। मे। ऐन्द्राग्नः। च। मे। महावैश्वदेव इति महाऽवैश्वदेवः। च। मे। मरुत्वतीयाः। च। मे। निष्केवल्यः। निःकेवल्य इति निःऽकेवल्यः। च। मे। सावित्रः। च। मे। सारस्वतः। च। मे। पात्नीवत इति पात्नीऽवतः। च। मे। हारियोजन इति हारिऽयोजनः। च। मे। यज्ञेन। कल्पन्ताम्॥२०॥

पदार्थ:-(**आग्रयण:**) मार्गशीर्षादिमासनिष्पन्नो यज्ञविशेष: (**च**) (**मे**) (**वैश्वदेव:**) विश्वेषां देवानामयं सम्बन्धी (**च**) (**मे**) (**ध्रुव:**) निश्चल: (**च**) (**मे**) (**वैश्वानर:**) विश्वेषां सर्वेषां नराणामयं सत्कार: (**च**) (**मे**) (**ऐन्द्राग्न:**) इन्द्रो वायुरग्निर्विद्युच्च ताभ्यां निर्वृत्त: (**च**) (**मे**) (**महावैश्वदेव:**) महतां विश्वेषां सर्वेषामयं व्यवहार: (**च**) (**मे**) (**मरुत्वतीया:**) मरुतां सम्बन्धिनो व्यवहारा: (**च**) (**मे**) (**निष्केवल्या:**) नितरां केवलं सुखं यस्मिंस्तस्मिन् भव: (**च**) (**मे**) (**सावित्र:**) सवितु: सूर्यस्यायं प्रभाव: (**च**) (**मे**) (**सारस्वत:**) सरस्वत्या वाण्या अयं सम्बन्धी (**च**) (**मे**) (**पात्नीवत:**) प्रशस्ता पत्नी यज्ञसम्बन्धिनी तद्वतोऽयम् (**च**) (**मे**) (**हारियोजन:**) हरीणामश्वानां योजयिता तस्यायमनुक्रम: (**च**) (**मे**) (**यज्ञेन**) संगतिकरणेन (**कल्पन्ताम्**)॥२०॥

अन्वय:-म आग्रयणश्च मे वैश्वदेवश्च मे ध्रुवश्च मे वैश्वानरश्च म ऐन्द्राग्नश्च मे महावैश्वदेवश्च मे मरुत्वतीयाश्च मे निष्केवल्यश्च मे सावित्रश्च मे सारस्वतश्च मे पात्नीवतश्च मे हारियोजनश्च यज्ञेन कल्पन्ताम्॥२०॥

भावार्थ:-ये मनुष्यास्सामयिकीं क्रियां विद्वत्सङ्गं चाश्रित्य विवाहितस्त्रीव्रता भवेयुस्ते पदार्थविद्यां कुतो न जानीयु:॥२०॥

पदार्थ:-(**मे**) मेरा (**आग्रयण:**) अगहन आदि महीनों में सिद्ध हुआ यज्ञ (**च**) और इसकी सामग्री (**मे**) मेरा (**वैश्वदेव:**) समस्त विद्वानों से सम्बन्ध करने वाला विचार (**च**) और इसका फल (**मे**) मेरा (**ध्रुव:**) निश्चल व्यवहार (**च**) और इसके साधन (**मे**) मेरा (**वैश्वानर:**) सब मनुष्यों का सत्कार (**च**) तथा सत्कार करने वाला (**मे**) मेरा (**ऐन्द्राग्न:**) पवन और बिजुली से सिद्ध काम (**च**) और इसके साधन (**मे**) मेरा (**महावैश्वदेव:**) समस्त बड़े लोगों का यह व्यवहार (**च**) इनके साधन (**मे**) मेरे (**मरुत्वतीया:**) पवनों का सम्बन्ध करनेहारे व्यवहार (**च**) तथा इनका फल (**मे**) मेरा (**निष्केवल्य:**) निरन्तर केवल सुख हो जिसमें वह काम (**च**) और इसके साधन (**मे**) मेरा (**सावित्र:**) सूर्य का यह प्रभाव (**च**) और इससे उपकार (**मे**) मेरा (**सारस्वत:**) वाणी सम्बन्धी व्यवहार (**च**) और इनका फल (**मे**) मेरा (**पात्नीवत:**) प्रशंसित यज्ञसम्बन्धिनी स्त्री वाले का काम (**च**) इसके साधन (**मे**) मेरा (**हारियोजन:**) घोड़ों को रथ में जोड़ने वाले का यह आरम्भ (**च**) इसकी सामग्री (**यज्ञेन**) पदार्थों के मेल करने से (**कल्पन्ताम्**) समर्थ हों॥२०॥

भावार्थ:-जो मनुष्य कार्यकाल की क्रिया और विद्वानों के सङ्ग का आश्रय लेकर विवाहित स्त्री का नियम किये हों, वे पदार्थविद्या को क्यों न जानें॥२०॥

स्रुचश्चेत्यस्य देवा ऋषय:। यज्ञाङ्गवानात्मा देवता। विराड्धृतिश्छन्द:। ऋषभ: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

स्रुचश्च मे चमसाश्च मे वायव्यानि च मे द्रोणकलशश्च मे ग्रावाणश्च मेऽधिषवणे च मे पूतभृच्च मऽआधवनीयश्च मे वेदिश्च मे बर्हिश्च मेऽवभृथश्च मे स्वगाकारश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्॥ २१॥

स्रुचः। च। मे। चमसाः। च। मे। वायव्यानि। च। मे। द्रोणकलश इति द्रोणऽकलशः। च। मे। ग्रावाणः। च। मे। अधिषवणे। अधिसवने इत्यधिऽसवने। च। मे। पूतभृदिति पूतऽभृत्। च। मे। आधवनीय इत्याऽधवनीयः। च। मे। वेदिः। च। मे। बर्हिः। च। मे। अवभृथ इत्यवऽभृथः। च। मे। स्वगाकार इति स्वगाऽकारः च। मे। यज्ञेन। कल्पन्ताम्॥ २१॥

पदार्थः-(**स्रुचः**) जुह्वादयः (**च**) तच्छुद्धिः (**मे**) (**चमसाः**) होमभोजनपात्राणि (**च**) उपकरणानि (**मे**) (**वायव्यानि**) वायुषु साधूनि (**च**) पवनशुद्धिकराणि (**मे**) (**द्रोणकलशः**) द्रोणश्चासौ कलशश्च पात्रविशेषः (**च**) परिमाणविशेषाः (**मे**) (**ग्रावाणः**) शिलाफलकादयः (**च**) मुसलोलूखले (**मे**) (**अधिषवणे**) सोमलताद्योषधिसाधके (**च**) कुट्टनपेषणक्रिया (**मे**) (**पूतभृत्**) येन पूतं बिभर्त्ति तच्छुद्धिकरं सूर्यादिकम् (**च**) मार्जन्यादिकम् (**मे**) (**आधवनीयः**) आधवनसाधनपात्रविशेषः (**च**) मल्लिकादयः (**मे**) (**वेदिः**) यत्र हूयते (**च**) चतुष्कादिः (**मे**) (**बर्हिः**) उपवर्धको दर्भसमूहः (**च**) तद्योग्यम् (**मे**) (**अवभृथः**) यज्ञान्तस्नानादिकम् (**च**) सुगन्धलेपनम् (**मे**) (**स्वगाकारः**) येन स्वान् पदार्थान् गाते तं करोतीति (**च**) पवित्रीकरणम् (**मे**) (**यज्ञेन**) हवनादिना (**कल्पन्ताम्**) समर्थयन्तु॥ २१॥

अन्वयः-मे स्रुचश्च मे चमसाश्च मे वायव्यानि च मे द्रोणकलश्च मे ग्रावाणश्च मेऽधिषवणे च मे पूतभृच्च म आधवनीयश्च मे वेदिश्च मे बर्हिश्च मेऽवभृथश्च मे स्वगाकारश्च यज्ञेन कल्पन्ताम्॥ २१॥

भावार्थः-त एव मनुष्या यज्ञं कर्त्तुं शक्नुवन्ति, ये साधनोपसाधनसामग्रीरलंकुर्वन्ति॥ २१॥

पदार्थः-(**मे**) मेरे (**स्रुचः**) स्रुवा आदि (**च**) और उनकी शुद्धि (**मे**) मेरे (**चमसाः**) यज्ञ वा पाक बनाने के पात्र (**च**) और उनके पदार्थ (**मे**) मेरे (**वायव्यानि**) पवनों में अच्छे पदार्थ (**च**) और पवनों की शुद्धि करने वाले काम (**मे**) मेरा (**द्रोणकलशः**) यज्ञ की क्रिया का कलश (**च**) और विशेष परिमाण (**मे**) मेरे (**ग्रावाणः**) शिलबट्टा आदि पत्थर (**च**) और उखली-मूसल (**मे**) मेरे (**अधिवषणे**) सोमवल्ली आदि ओषधि जिनसे कूटी पीसी जावे, वे साधन (**च**) और कूटना-पीसना (**मे**) मेरा (**पूतभृत्**) पवित्रता जिससे मिलती हो, वह सूप आदि (**च**) और बुहारी आदि (**मे**) मेरा (**आधवनीयः**) अच्छे प्रकार धोने आदि का पात्र (**च**) और नलिका आदि यन्त्र अर्थात् जिस नली नरकुल की चोगी आदि से तारागणों को देखते हैं, वह (**मे**) मेरी (**वेदिः**) होम करने की वेदि (**च**) और चौकाना आदि (**मे**) मेरा (**बर्हिः**) समीप में वृद्धि देने वाला वा कुशसमूह (**च**) और जो यज्ञसमय के योग्य पदार्थ (**मे**) मेरा (**अवभृथः**) यज्ञसमाप्ति समय का स्नान (**च**) और चन्दन आदि का अनुलेपन करना तथा (**मे**) मेरा (**स्वगाकारः**) जिससे अपने पदार्थों को

प्राप्त होते हैं, उस कर्म को जो करे वह **(च)** और पदार्थ को पवित्र करना ये सब **(यज्ञेन)** होम करने की क्रिया से **(कल्पन्ताम्)** समर्थ हों॥२१॥

भावार्थ:-वे ही मनुष्य यज्ञ करने को समर्थ होते हैं जो साधन उपसाधनरूप यज्ञ के सिद्ध करने की सामग्री को पूरी करते हैं॥२१॥

अग्निश्चेत्यस्य देवा ऋषयः। यज्ञवानात्मा देवता। भुरिक् शक्वरी छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अ॒ग्निश्च॑ मे घ॒र्मश्च॑ मे॒ऽर्कश्च॑ मे॒ सूर्य॑श्च मे प्रा॒णश्च॑ मेऽश्वमे॒धश्च॑ मे पृथि॒वी च॒ मेऽदि॑तिश्च मे॒ दिति॑श्च मे॒ द्यौश्च॑ मे॒ऽङ्गुल॑यः॒ शक्व॑रयो॒ दिश॑श्च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम्॥२२॥

अ॒ग्निः। च॒। मे॒। घ॒र्मः। च॒। मे॒। अ॒र्कः। च॒। मे॒। सूर्यः॑। च॒। मे॒। प्रा॒णः। च॒। मे॒। अ॒श्व॒मे॒धः। च॒। मे॒। पृ॒थि॒वी। च॒। मे॒। अदि॑तिः। च॒। मे॒। दिति॑ः। च॒। मे॒। द्यौः। च॒। मे॒। अ॒ङ्गुल॑यः। शक्व॑रयः। दिश॑ः। च॒। मे॒। य॒ज्ञेन॑। क॒ल्प॒न्ता॒म्॥२२॥

पदार्थ:-**(अग्निः)** पावकः **(च)** तत्प्रयोगः **(मे)** **(घर्मः)** तापः **(च)** शान्तिः **(मे)** **(अर्कः)** पूजनीयसामग्रीविशेषः **(च)** एतच्छुद्धिकरो व्यवहारः **(मे)** **(सूर्यः)** सविता **(च)** जीविकाहेतुः **(मे)** **(प्राणः)** जीवनहेतुः **(च)** बाह्यो वायुः **(मे)** **(अश्वमेधः)** राष्ट्रम् **(च)** राजनीतिः **(मे)** **(पृथिवी)** भूमिः **(च)** एतस्थाः सर्वपदार्थाः **(मे)** **(अदितिः)** अखण्डिता नीतिः **(च)** जितेन्द्रियत्वम् **(मे)** **(दितिः)** खण्डिता सामग्री **(च)** अनित्यं जीवनं शरीरादिकं वा **(मे)** **(द्यौः)** धर्मप्रकाशः **(च)** अहर्निशम् **(मे)** **(अङ्गुलयः)** अङ्गन्ति प्राप्नुवन्ति याभिस्ताः **(शक्वरयः)** शक्तयः **(दिशः)** **(च)** उपदिशः **(मे)** **(यज्ञेन)** सङ्गतिकरणयोग्येन परमात्मना **(कल्पन्ताम्)**॥२२॥

अन्वय:-मेऽग्निश्च मे घर्मश्च मेऽर्कश्च मे सूर्यश्च मे प्राणश्च मेऽश्वमेधश्च मे पृथिवी च मेऽदितिश्च मे दितिश्च मे द्यौश्च मेऽङ्गुलयः शक्वरयो दिशश्च यज्ञेन कल्पन्ताम्॥२२॥

भावार्थ:-ये प्राणिसुखाय यज्ञमनुतिष्ठन्ति, ते महाशयाः सन्तीति वेद्यम्॥२२॥

पदार्थ:-**(मे)** मेरे **(अग्निः)** आग **(च)** और उस का काम में लाना **(मे)** मेरा **(घर्मः)** घाम **(च)** और शान्ति **(मे)** मेरी **(अर्कः)** सत्कार करने योग्य विशेष सामग्री **(च)** और उसकी शुद्धि करने का व्यवहार **(मे)** मेरा **(सूर्यः)** सूर्य **(च)** और जीविका का हेतु **(मे)** मेरा **(प्राणः)** जीवन का हेतु वायु **(च)** और बाहर का पवन **(मे)** मेरे **(अश्वमेधः)** राज्यदेश **(च)** और राजनीति **(मे)** मेरी **(पृथिवी)** भूमि **(च)** और इसमें स्थिर सब पदार्थ **(मे)** मेरी **(अदितिः)** अखण्ड नीति **(च)** और इन्द्रियों को वश में रखना **(मे)** मेरी **(दितिः)** खण्डित सामग्री **(च)** और अनित्य जीवन वा शरीर आदि **(मे)** मेरे **(द्यौः)** धर्म का प्रकाश **(च)** और दिन-रात **(मे)** मेरी **(अङ्गुलयः)** अंगुली **(शक्वरयः)** शक्ति **(दिशः)** पूर्व, उत्तर, पश्चिम, दक्षिण

दिशा **(च)** और ईशान, वायव्य, नैर्ऋत्य, आग्नेय उपदिशा ये सब **(यज्ञेन)** मेल करने योग्य परमात्मा से **(कल्पन्ताम्)** समर्थ हों॥२२॥

भावार्थः-जो प्राणियों के सुख के लिये यज्ञ का अनुष्ठान करते हैं, वे महाशय होते हैं, ऐसा जानना चाहिये॥२२॥

व्रतं चेत्यस्य देवा ऋषयः। कालविद्याविदात्मा देवता। पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

व्रतं च मऽऋतवश्च मे तपश्च मे संवत्सरश्च मेऽहोरात्रेऽऊर्वष्ठीवे बृहद्रथन्तरे च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्॥२३॥

व्रतम्। च। मे। ऋतवः। च। मे। तपः। च। मे। संवत्सरः। च। मे। अहोरात्रे इत्यहोरात्रे। ऊर्वष्ठीवेऽइत्यूर्वष्ठीवे। बृहद्रथन्तरे इति बृहत्ऽरथन्तरे। च। मे। यज्ञेन। कल्पन्ताम्॥२३॥

पदार्थः-**(व्रतम्)** सत्याचरणनियमपालनम् **(च)** सत्यकथनं सत्योपदेशश्च **(मे)** **(ऋतवः)** वसन्ताद्याः **(च)** अयनम् **(मे)** **(तपः)** प्राणायामो धर्मानुष्ठानं वा **(च)** शीतोष्णादि द्वन्द्वसहनम् **(मे)** **(संवत्सरः)** द्वादशभिर्मासैरलंकृतः **(च)** कल्पमहाकल्पादि **(मे)** **(अहोरात्रे)** **(ऊर्वष्ठीवे)** ऊरू चाष्ठीवन्तौ च ते। अत्र **अचतुरवि०॥** (अष्टा०५.४.७७) इति निपातः॥ **(बृहद्रथन्तरे)** बृहच्च रथन्तरं च ते **(च)** वोढॄन् **(मे)** **(यज्ञेन)** कालचक्रज्ञानधर्माद्यनुष्ठानेन **(कल्पन्ताम्)**॥२३॥

अन्वयः-मे व्रतं च म ऋतवश्च मे तपश्च मे संवत्सरश्च मेऽहोरात्रे ऊर्वष्ठीवे बृहद्रथन्तरे च यज्ञेन कल्पन्ताम्॥२३॥

भावार्थः-ये नियतसमये कार्याणि सततं धर्मं चाचरन्ति, तेऽभीष्टसिद्धिमाप्नुवन्ति॥२३॥

पदार्थः-**(मे)** मेरे **(व्रतम्)** सत्य आचरण के नियम की पालना **(च)** और सत्य कहना और सत्य उपदेश **(मे)** मेरे **(ऋतवः)** वसन्त आदि ऋतु **(च)** और उत्तरायण दक्षिणायन **(मे)** मेरा **(तपः)** प्राणायाम तथा धर्म का आचरण **(च)** शीत उष्ण आदि का सहना **(मे)** मेरा **(संवत्सरः)** साल **(च)** तथा कल्प, महाकल्प आदि **(मे)** मेरे **(अहोरात्रे)** दिन-रात **(ऊर्वष्ठीवे)** जङ्घा और घोंटू **(बृहद्रथन्तरे)** बड़ा पदार्थ, अत्यन्त सुन्दर रथ तथा **(च)** घोड़े वा बैल **(यज्ञेन)** धर्मज्ञान आदि के आचरण और कालचक्र के भ्रमण के अनुष्ठान से **(कल्पन्ताम्)** समर्थ हों॥२३॥

भावार्थः-जो पुरुष नियम किये हुए समय में काम और निरन्तर धर्म का आचरण करते हैं, वे चाही हुई सिद्धि को पाते हैं॥२३॥

एका चेत्यस्य देवा ऋषयः। विषमाङ्कगणितविद्याविदात्मा देवता। पूर्वार्द्धस्य संकृतिश्छन्दः। एकविंशतिश्चेत्युत्तरस्य विराट् संकृतिश्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथ गणितविद्याया मूलमुपदिश्यते॥

अब गणितविद्याया के मूल का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

एका च मे तिस्रश्च मे तिस्रश्च मे पञ्च च मे पञ्च च मे सप्त च मे सप्त च मे नव च मे नव च मऽएकादश च मऽएकादश च मे त्रयोदश च मे त्रयोदश च मे पञ्चदश च मे पञ्चदश च मे सप्तदश च मे सप्तदश च मे नवदश च मे नवदश च मऽएकविंशतिश्च मऽएकविंशतिश्च मे त्रयोविंशतिश्च मे त्रयोविंशतिश्च मे पञ्चविंशतिश्च मे पञ्चविंशतिश्च मे सप्तविंशतिश्च मे सप्तविंशतिश्च मे नवविंशतिश्च मे नवविंशतिश्च मऽएकत्रिंशच्च मऽएकत्रिंशच्च मे त्रयस्त्रिंशच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्॥२४॥

एका। च। मे। तिस्रः। च। मे। तिस्रः। च। मे। पञ्च। च। मे। पञ्च। च। मे। सप्त। च। मे। सप्त। च। मे। नव। च। मे। नव। च। मे। एकादश। च। मे। एकादश। च। मे। त्रयोदशेति त्रयःऽदश। च। मे। त्रयोदशेति त्रयःऽदशः। च। मे। पञ्चदशेति पञ्चऽदश। च। मे। पञ्चदशेति पञ्चदश। च। मे। सप्तदशेति सप्तऽदश। च। मे। सप्तदशेति सप्तऽदश। च। मे नवदशेति नवऽदश। च। मे। नवदशेति नवऽदश। च। मे। एकविंशतिरित्येकऽविंशतिः। च। मे। एकविंशतिरित्येकऽविंशतिः। च। मे। त्रयोविंशतिरिति त्रयःऽविंशतिः। च। मे। त्रयोविंशतिरिति त्रयःऽविंशतिः। च। मे। पञ्चविंशतिरिति पञ्चऽविंशतिः। च। मे। पञ्चविंऽशतिरिति पञ्चऽविंशतिः। च। मे। सप्तविंशतिरिति सप्तऽविंशतिः। च। मे। सप्तविंशतिरिति सप्तऽविंशतिः। च। मे। नवविंशतिरिति नवऽविंशतिः। च। मे। नवविंशतिरिति नवऽविंशतिः। च। मे। एकत्रिंशदित्येकऽत्रिंशत्। च। मे। एकत्रिंशदित्येकऽत्रिंशत्। च। मे। त्रयस्त्रिंशदिति त्रयःऽत्रिंशत्। च। मे। यज्ञेन। कल्पन्ताम्॥२४॥

पदार्थः-(एका) एकत्वविशिष्टा सङ्ख्या **(च) (मे) (तिस्रः)** त्रित्वविशिष्टा संख्या **(च) (मे) (तिस्रः) (च) (मे) (पञ्च)** पञ्चत्वविशिष्टा गणना **(च) (मे) (पञ्च) (च) (मे) (सप्त)** सप्तत्वविशिष्टा गणना **(च) (मे) (सप्त) (च) (मे) (नव)** नवत्वविशिष्टा संख्या **(च) (मे) (नव) (च) (मे) (एकादश)** एकाधिका दश **(च) (मे) (एकादश) (च) (मे) (त्रयोदश)** त्र्यधिका दश **(च) (मे) (त्रयोदश) (च) (मे) (पञ्चदश)** पञ्चोत्तर दश **(च) (मे) (पञ्चदश) (च) (मे) (सप्तदश)** सप्ताधिका दश **(च) (मे) (सप्तदश) (च) (मे) (नवदश)** नवोत्तरा दश **(च) (मे) (नवदश) (च) (मे) (एकविंशतिः)** एकाधिका विंशतिः **(च) (मे) (एकविंशतिः) (च) (मे) (त्रयोविंशतिः)** त्र्यधिका विंशतिः **(च) (मे) (त्रयोविंशतिः) (च) (मे) (पञ्चविंशतिः)** पञ्चाधिका विंशतिः **(च) (मे) (पञ्चविंशतिः) (च) (मे) (सप्तविंशतिः)** सप्ताधिका विंशति **(च) (मे) (सप्तविंशतिः) (च) (मे) (नवविंशतिः)** नवाधिका विंशतिः **(च) (मे) (नवविंशतिः) (च)**

(मे) (एकत्रिंशत्) एकाधिका त्रिंशत् **(च) (मे) (एकत्रिंशत्) (च) (मे) (त्रयस्त्रिंशत्)** त्र्यधिकास्त्रिशत् **(च) (मे) (यज्ञेन)** सङ्गतिकरणेन योगेन दानेन वियोगेन वा **(कल्पन्ताम्)**॥२४॥

अन्वयः-यज्ञेन सङ्गतिकरणेन म एका संख्या च-द्वे मे तिस्रः, च-पुनर्मे तिस्रश्च-द्वे मे पञ्च, च-पुनर्मे पञ्च च-द्वे मे सप्त, च-पुनर्मे सप्त च-द्वे मे नव, च-पुनर्मे नव च-द्वे म एकादश, च-पुनर्म एकादश च-द्वे मे त्रयोदश, च-पुनर्मे त्रयोदश च-द्वे मे पञ्चदश, च-पुनर्मे पञ्चदश च-द्वे मे सप्तदश, च-पुनर्मे सप्तदश च-द्वे मे नवदश, च-पुनर्मे नवदश च-द्वे म एकविंशतिः, च-पुनर्मे एकविंशतिश्च-द्वे मे त्रयोविंशतिः, च-पुनर्मे त्रयोविंशतिश्च-द्वे मे पञ्चविंशतिः, च-पुनर्मे पञ्चविंशतिश्च-द्वे मे सप्तविंशतिः, च-पुनर्मे सप्तविंशतिश्च-द्वे मे नवविंशतिः, च-पुनर्मे नवविंशतिश्च-द्वे म एकत्रिंशच्च, पुनर्म एकत्रिंशच्च-द्वे मे त्रयस्त्रिंशच्चादग्रेऽप्येवं संख्याः कल्पन्ताम्॥ इत्येको योगपक्षः॥१॥२४॥

अथ द्वितीयः पक्ष-

यज्ञेन योगतो विपरीतेन दानरूपेण वियोगमार्गेण विपरीताः संगृहीताश्चान्यान्याः संख्या द्वयोर्वियोगेन यथा मे कल्पन्तां तथा मे त्रयस्त्रिंशच्च-द्वयोर्दानेन वियोगेन म एकत्रिंशत्, च-पुनर्मे ममैकत्रिंशच्च-द्वयोर्वियोगेन मे नवविंशतिः, च-पुनर्मे नवविंशतिश्च द्वयोर्वियोगेन मे सप्तविंशतिरेवं सर्वत्र॥ इति वियोगेनान्तरेण द्वितीयः पक्षः॥२॥२४॥

अथ तृतीयः-

म एका च मे तिस्रश्च, मे तिस्रश्च मे पञ्च च, मे पञ्च च मे सप्त च, मे सप्त च मे नव च, मे नव च म एकादश चैवंविधाः संख्याः अग्रेऽपि यज्ञेन उक्तपुनःपुनर्योगेन गुणनेन कल्पन्तां समर्था भवन्तु॥ इति गुणनविषये तृतीयः पक्षः॥३॥२४॥

भावार्थः-अस्मिन् मन्त्रे यज्ञेनेति पदेन योगवियोगौ गृह्येते कुतो यजधातोर्हि यः सङ्गतिकरणार्थस्तेन सङ्गतिकरणं कस्याश्चित् सङ्ख्यायाः कयाचिद्योगकरणं यश्च दानार्थस्तेनैवं सम्भाव्य कस्याश्चिद्दानं व्ययीकरणमिदमेवान्तरमेवं गुणनभागवर्गवर्गमूलघनघनमूलभागजातिप्रभागजातिप्रभृतयो ये गणितभेदाः सन्ति, ते योगवियोगाभ्यामेवोत्पद्यन्ते। कुतः काञ्चित् संख्यां कयाचित् संख्यया सकृत् संयोजयेत् स योगो भवति, यथा २+४=६ द्वयोर्मध्ये चत्वारो युक्ताः षट् संपद्यन्ते। इत्थमनेकवारं चेत् संख्यायां संख्यां योजयेत् तर्हि तद्गुणनमाहुः। यथा 2X4=8 अर्थात् द्विरूपां संख्यां चतुर्वारं पृथक् पृथग् योजयेद्वा द्विरूपां संख्यां चतुर्भिर्गुणयेत् तदाष्टौ जायन्ते। एवं चत्वारश्चतुर्वारं युक्ता वा चतुर्भिर्गुणितास्तदा चतुर्णां वर्गः षोडश संपद्यन्ते, इत्थमन्तरेण भाग-वर्गमूल-घनमूलाद्याः क्रिया निष्पद्यन्ते अर्थात् यस्यां कस्याञ्चित् संख्यायां काञ्चित् संख्यां योजयेद्वा केनचित् प्रकारान्तरेण वियोजयेदित्यनेनैव योगेन वियोगेन वा बुद्धिमतां यथामतिकल्पनया व्यक्ताव्यक्ततराः सर्वा गणितक्रिया निष्पद्यन्तेऽतोऽत्र मन्त्रे द्वयोर्योगेनोत्तरोत्तरा

द्वयोर्वियोगेन वा पूर्वा पूर्वा विषमसंख्या प्रदर्शिता तथा गुणनस्यापि कश्चित्प्रकारः प्रदर्शित इति वेदितव्यम्॥ २४॥

पदार्थः-(**यज्ञेन**) मेल करने अर्थात् योग करने से (**मे**) मेरी (**एका**) एक संख्या (**च**) और दो (**मे**) मेरी (**तिस्रः**) तीन संख्या (**च**) फिर (**मे**) मेरी (**तिस्रः**) तीन (**च**) और दो (**मे**) मेरी (**पञ्च**) पांच (**च**) फिर (**मे**) मेरी (**पञ्च**) पांच (**च**) और दो (**मे**) मेरी (**सप्त**) सात (**च**) फिर (**मे**) मेरी (**सप्त**) सात (**च**) और दो (**मे**) मेरी (**नव**) नौ (**च**) फिर (**मे**) मेरी (**नव**) नौ (**च**) और दो (**मे**) मेरी (**एकादश**) ग्यारह (**च**) फिर (**मे**) मेरी (**मे**) मेरी (**एकादश**) ग्यारह (**च**) और दो (**मे**) मेरी (**त्रयोदश**) तेरह (**च**) फिर (**मे**) मेरी (**त्रयोदश**) तेरह (**च**) और दो (**मे**) मेरी (**पञ्चदश**) पन्द्रह (**च**) फिर (**मे**) मेरी (**पञ्चदश**) पन्द्रह (**च**) और दो (**मे**) मेरी (**सप्तदश**) सत्रह (**च**) फिर (**मे**) मेरी (**सप्तदश**) सत्रह (**च**) और दो (**मे**) मेरी (**नवदश**) उन्नीस (**च**) फिर (**नवदश**) उन्नीस (**च**) और दो (**मे**) मेरी (**एकविंशतिः**) इक्कीस (**च**) फिर (**मे**) मेरी (**एकविंशतिः**) इक्कीस (**च**) और दो (**मे**) मेरी (**त्रयोविंशतिः**) तेईस (**च**) फिर (**मे**) मेरी (**त्रयोविंशतिः**) तेईस (**च**) और दो (**मे**) मेरी (**पञ्चविंशतिः**) पच्चीस (**च**) फिर (**मे**) मेरी (**पञ्चविंशतिः**) पच्चीस (**च**) और दो (**मे**) मेरी (**सप्तविंशतिः**) सत्ताईस (**च**) फिर (**मे**) मेरी (**सप्तविंशतिः**) सत्ताईस (**च**) और दो (**मे**) मेरी (**नवविंशतिः**) उनतीस (**च**) फिर (**मे**) मेरी (**नवविंशतिः**) उनतीस (**च**) और दो (**मे**) मेरी (**एकत्रिंशत्**) इकतीस (**च**) फिर (**मे**) मेरी (**एकत्रिंशत्**) इकतीस (**च**) और दो (**मे**) मेरी (**त्रयस्त्रिंशत्**) तेंतीस (**च**) और आगे भी इसी प्रकार संख्या (**कल्पन्ताम्**) समर्थ हों। यह एक योगपक्ष है॥ १॥ २४॥

अब दूसरा पक्ष-

(**यज्ञेन**) योग से विपरीत दानरूप वियोगमार्ग से विपरीत संगृहीत (**च**) और संख्या दो के वियोग अर्थात् अन्तर से [जैसे] (**मे**) मेरी (**कल्पन्ताम्**) समर्थ हों, वैसे (**मे**) मेरी (**त्रयस्त्रिंशत्**) तेंतीस संख्या (**च**) दो के देने अर्थात् वियोग से (**मे**) मेरी (**एकत्रिंशत्**) इकतीस (**च**) फिर (**मे**) मेरी (**एकत्रिंशत्**) इकतीस (**च**) दो के वियोग से (**मे**) मेरी (**नवविंशतिः**) उनतीस (**च**) फिर (**मे**) फि (**मे**) मेरी (**नवविंशतिः**) उनतीस (**च**) दो के वियोग से (**मे**) मेरी (**सप्तविंशतिः**) सत्ताईस समर्थ हों, ऐसे सब संख्याओं में जानना चाहिये॥ यह वियोग से दूसरा पक्ष है॥ २॥ २४॥

अब तीसरा

(**मे**) मेरी (**एका**) एक संख्या (**च**) और (**मे**) मेरी (**तिस्रः**) तीन संख्या (**च**) परस्पर गुणी, (**मे**) मेरी (**तिस्रः**) तीन संख्या (**च**) और (**मे**) मेरी (**पञ्च**) पांच संख्या (**च**) परस्पर गुणित, (**मे**) मेरी (**पञ्च**) पांच संख्या (**च**) और (**मे**) मेरी (**सप्त**) सात संख्या (**च**) परस्पर गुणित, (**मे**) मेरी (**सप्त**) सात संख्या (**च**) और (**मे**) मेरी (**नव**) नव संख्या (**च**) परस्पर गुणित, (**मे**) मेरी (**नव**) नव संख्या (**च**) और (**मे**) मेरी

(एकादश) ग्यारह संख्या **(च)** परस्पर गुणित, इस प्रकार अन्य संख्या **(यज्ञेन)** उक्त बार-बार योग अर्थात् गुणन से **(कल्पन्ताम्)** समर्थ हों। यह गुणन विषय से तीसरा पक्ष है॥३॥२४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में **(यज्ञेन)** इस पद से जोड़ना-घटाना लिये जाते हैं, क्योंकि जो यज धातु का सङ्गतिकरण अर्थ है, उससे सङ्ग कर देना अर्थात् किसी संख्या को किसी संख्या से योग कर देना वा यज धातु का जो दान अर्थ है, उससे ऐसी सम्भावना करनी चाहिये कि किसी संख्या का दान अर्थात् व्यय करना निकाल-डालना यही अन्तर है। इस प्रकार गुणन, भाग, वर्ग, वर्गमूल, घन, घनमूल, भागजाति, प्रभागजाति आदि जो गणित के भेद हैं, वे योग और अन्तर से ही उत्पन्न होते हैं, क्योंकि किसी संख्या को किसी संख्या से एक बार मिला दे तो योग कहाता है, जैसे २+४=६ अर्थात् २ में ४ जोड़ें तो ६ होते हैं। ऐसे यदि अनेक वार संख्या में संख्या जोड़ें तो उसको गुणन कहते हैं, जैसे अर्थात् 2X4=2 को ४ वार अलग अलग जोड़ें वा २ को ४ चार से गुणे तो ८ होते हैं। ऐसे ही ४ को ४ चौगुना कर दिया तो ४ का वर्ग १६ हुए, ऐसे ही अन्तर से भाग, वर्गमूल, घनमूल आदि निष्पन्न होते हैं अर्थात् किसी संख्या को जोड़ देवे वा किसी प्रकारान्तर से घटा देवे, इसी योग वा वियोग से बुद्धिमानों की यथामति कल्पना से व्यक्त, अव्यक्त, अङ्कगणित और बीजगणित आदि समस्त गणितक्रिया उत्पन्न होती हैं। इस कारण इस मन्त्र में दो के योग से उत्तरोत्तर संख्या वा दो के वियोग से पूर्व पूर्व संख्या अच्छे प्रकार दिखलाई हैं, वैसे गुणन का भी कुछ प्रकार दिखलाया है, यह जानना चाहिये॥२४॥

चतस्रश्चेत्यस्य पूर्वदेवा ऋषयः। समाङ्कगणितविद्याविदात्मा देवता। भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। चतुर्विंशतिश्चेत्युत्तरस्याकृतिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अथ समाङ्कगणितविषयमाह॥

अब सम अङ्कों के गणित विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

चत॑स्रश्च मे॒ऽष्टौ च॑ मे॒ऽष्टौ च॑ मे॒ द्वाद॑श च मे॒ द्वाद॑श च मे॒ षोड॑श च मे॒ षोड॑श च मे विꣳश॒तिश्च॑ मे विꣳश॒तिश्च॑ मे॒ चतु॑र्विꣳशतिश्च मे॒ चतु॑र्विꣳशतिश्च मे॒ऽष्टावि॑ꣳशतिश्च मे॒ऽष्टावि॑ꣳशतिश्च मे॒ द्वात्रि॑ꣳशच्च मे॒ द्वात्रि॑ꣳशच्च मे॒ षट्त्रि॑ꣳशच्च मे॒ षट्त्रि॑ꣳशच्च मे चत्वारि॒ꣳशच्च॑ मे चत्वारि॒ꣳशच्च मे॒ चतु॑श्चत्वारिꣳशच्च मे॒ चतु॑श्चत्वारिꣳशच्च मेऽष्टाच॑त्वारिꣳशच्च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम्॥ २५॥

चत॑स्रः। च॒। मे॒। अ॒ष्टौ। च॒। मे॒। अ॒ष्टौ। च॒। मे॒। द्वाद॑श। च॒। मे॒। द्वाद॑श। च॒। मे॒। षोड॑श। च॒। मे॒। षोड॑श। च॒। मे॒। वि॒ꣳश॒तिः। च॒। मे॒। वि॒ꣳश॒तिः। च॒। मे॒। चतु॑र्विꣳशति॒रिति॒ चतुः॑ऽविꣳशतिः। च॒। मे॒। चतु॑र्विꣳशति॒रिति॒ चतुः॑ऽविꣳशतिः। च॒। मे॒। अ॒ष्टावि॑ꣳशति॒रित्य॒ष्टाऽविꣳशतिः। च॒। मे॒। अ॒ष्टावि॑ꣳशति॒रित्य॒ष्टाऽवि॑ꣳशतिः। च॒। मे॒। द्वात्रि॑ꣳशत्। च॒। मे॒। द्वात्रि॑ꣳशत्। च॒। मे॒। षट्त्रि॑ꣳश॒दिति॒ षट्ऽत्रि॑ꣳशत्। च॒। मे॒। षट्त्रि॑ꣳश॒दिति॒ षट्ऽत्रि॑ꣳशत्। च॒। मे॒।

च॒त्वा॒रि॒ꣳश॑त्। च॒। मे॒। च॒त्वा॒रि॒ꣳश॑त्। च॒। मे॒। चतु॑श्चत्वारिꣳश॒दिति॒ चतु॑:ऽचत्वारिꣳशत्। च॒। मे॒। चतु॑श्चत्वारिꣳश॒दिति॒ चतु॑:ऽचत्वारिꣳशत्। च॒। मे॒। अ॒ष्टाच॑त्वारिꣳश॒दित्य॒ष्टाऽच॑त्वारिꣳशत्। च॒। मे॒। य॒ज्ञेन॑। क॒ल्प॒न्ता॒म्॥ २५॥

पदार्थ:-(चतस्र:) चतुष्ट्वविशिष्टा संख्या **(च) (मे) (अष्टौ)** अष्टत्वविशिष्टा संख्या **(च) (मे) (अष्टौ) (च) (मे) (द्वादश)** द्व्यधिका दश **(च) (मे) (द्वादश) (च) (मे) (षोडश)** षडधिका दश **(च) (मे) (षोडश) (च) (मे) (विंशति:) (च) (मे) (विंशति:) (च) (मे) (चतुर्विंशति:)** चतुराधिका विंशति: **(च) (मे) (चतुर्विंशति:) (च) (मे) (अष्टाविंशति:)** अष्टाधिका विंशति: **(च) (मे) (अष्टाविंशति:) (च) (मे) (द्वात्रिंशत्)** द्व्यधिका त्रिंशत् **(च) (मे) (द्वात्रिंशत्) (च) (मे) (षट्त्रिंशत्)** षडुत्तरा त्रिंशत् **(च) (मे) (षट्त्रिंशत्) (च) (मे) (चत्वारिंशत्) (च) (मे) (चत्वारिंशत्) (च) (मे) (चतुश्चत्वारिंशत्)** चतुरधिका चत्वारिंशत् **(च) (मे) (चतुश्चत्वारिंशत्) (च) (मे) (अष्टाचत्वारिंशत्)** अष्टाधिका चत्वारिंशत् **(च) (मे) (यज्ञेन)** योगेन वियोगेन वा **(कल्पन्ताम्)** समर्था भवन्तु॥ २५॥

अन्वय:-यज्ञेन सङ्गतिकरणेन मे चतस्र:-चतु:संख्या च-चतस्रो मेऽष्टौ, च-पुनर्मे अष्टौ-च-चतस्रो मे द्वादश, च-पुनर्मे द्वादश च-चतस्रो मे षोडश, च-पुनर्मे षोडश च-चतस्रो मे विंशति:, च-पुनर्मे विंशतिश्च-चतस्रो मे चतुर्विंशति:, च-पुनर्मे चतुर्विंशतिश्च-चतस्रो मेऽष्टाविंशति:, च-पुनर्मेऽष्टाविंशतिश्च-चतस्रो मे द्वात्रिंशत्, च-पुनर्मे द्वात्रिंशच्च-चतस्रो मे षट्त्रिंशच्च-पुनर्मे षट्त्रिंशच्च-चतस्रो मे चत्वारिंशत्, च-पुनर्मे चत्वारिंशच्च-चतस्रो मे चतुश्चत्वारिंशत्, च पुनर्मे चतुश्चत्वारिंशच्च-चतस्रो मेऽष्टाचत्वारिंशत् चादग्रेऽपि पूर्वोक्तविधिना संख्या: कल्पन्ताम्॥ इत्येको योगपक्ष:॥ १॥ २५॥

अथ द्वितीय:-

यज्ञेन योगतो विपरीतेन दानरूपेण वियोगमार्गेण विपरीता: संगृहीताश्चान्यान्यासंख्या चतुर्णां वियोगेन यथा मे कल्पन्तां तथा मेऽष्टाचत्वारिंशच्च-चतुर्णां दानेन वियोगेन मे चतुश्चत्वारिंशत् च-पुनर्मे चतुश्चत्वारिंशच्च-चतुर्णां वियोगेन मे चत्वारिंशत् च-पुनर्मे चत्वारिंशच्च-चतुर्णां वियोगेन मे षट्त्रिंशत् च-पुनर्मे षट्त्रिंशच्च-चतुर्णां वियोगेन मे द्वात्रिंशदेवं सर्वत्र॥ इति वियोगेन द्वितीय: पक्ष:॥ २॥ २५॥

अथ तृतीय:-

मे चतस्रश्च मेऽष्टौ च, मेऽष्टौ च मे द्वादश च, मे द्वादश च मे षोडश च, मे षोडश च मे विंशतिश्चैवंविधा: संख्या अग्रेऽपि यज्ञेन उक्तपुन:पुनर्योगेन गुणनेन कल्पन्तां समर्था भवन्तु, इति गुणनविषयेण तृतीय: पक्ष:॥ ३॥ २५॥

भावार्थ:-पूर्वस्मिन्नेकां संख्यां संगृह्य द्वयोर्योगवियोगाभ्यां विषमा: संख्या: प्रतिपादिता:। अत: पूर्वत्र क्रमेणागतैकद्वित्रिसंख्या विहायात्र मन्त्रे चतसृणां योगेन वियोगेन वा चतु:संख्यामारभ्य समसंख्या:

प्रतिपादिताः। अनेन मन्त्रद्वयेन विषमसंख्यानां समसंख्यानाञ्च भेदान् विज्ञाय यथाबुद्धिकल्पनया सर्वा गणितविद्या विज्ञातव्याः॥२५॥

पदार्थः-(**यज्ञेन**) मेल करने अर्थात् योग करने में (**मे**) मेरी (**चतस्रः**) चार संख्या (**च**) और चारि संख्या (**मे**) मेरी (**अष्टौ**) आठ संख्या (**च**) फिर (**मे**) मेरी (**अष्टौ**) आठ संख्या (**च**) और चारि (**मे**) मेरी (**द्वादश**) बारह (**च**) फिर (**मे**) मेरी (**द्वादश**) बारह (**च**) और चारि (**मे**) मेरी (**षोडश**) सोलह (**च**) फिर (**मे**) मेरी (**षोडश**) सोलह (**च**) और चारि (**मे**) मेरी (**विंशतिः**) बीस (**च**) फिर (**मे**) मेरी (**विंशतिः**) बीस (**च**) और चारि (**मे**) मेरी (**चतुर्विंशतिः**) चौबीस (**च**) फिर (**मे**) मेरी (**चतुर्विंशतिः**) चौबीस (**च**) और चारि (**मे**) मेरी (**अष्टाविंशतिः**) अट्ठाईस (**च**) फिर (**मे**) मेरी (**अष्टाविंशतिः**) अट्ठाईस (**च**) और चारि (**मे**) मेरी (**द्वात्रिंशत्**) बत्तीस (**च**) फिर (**मे**) मेरी (**द्वात्रिंशत्**) बत्तीस (**च**) चारि (**मे**) मेरी (**षट्त्रिंशत्**) छत्तीस (**च**) फिर (**मे**) मेरी (**षट्त्रिंशत्**) छत्तीस (**च**) और चारि (**मे**) मेरी (**चत्वारिंशत्**) चालीस (**च**) फिर (**मे**) मेरी (**चत्वारिंशत्**) चालीस (**च**) और चारि (**मे**) मेरी (**चतुश्चत्वारिंशत्**) चवालीस (**च**) फिर (**मे**) मेरी (**चतुश्चत्वारिंशत्**) चवालीस (**च**) और चारि (**मे**) मेरी (**अष्टाचत्वारिंशत्**) अड़तालीस (**च**) आगे भी उक्तविधि से संख्या (**कल्पन्ताम्**) समर्थ हों, यह प्रथम योगपक्ष है॥१॥२५॥

अब दूसरा-

(**यज्ञेन**) योग से विपरीत दानरूप वियोगमार्ग से विपरीत संगृहीत (**च**) और संख्या चारि-चारि के वियोग से जैसे (**मे**) मेरी (**कल्पन्ताम्**) समर्थ हों वैसे (**मे**) मेरी (**अष्टाचत्वारिंशत्**) अड़तालीस (**च**) चारि के वियोग से (**मे**) मेरी (**चतुश्चत्वारिंशत्**) चवालीस (**च**) फिर (**मे**) मेरी (**चतुश्चत्वारिंशत्**) चवालीस (**च**) चारि के वियोग से (**मे**) मेरी (**चत्वारिंशत्**) चालीस (**च**) फिर (**मे**) मेरी (**चत्वारिंशत्**) चालीस (**च**) चारि के वियोग से (**मे**) मेरी (**षट्त्रिंशत्**) छत्तीस (**च**) फिर (**मे**) मेरी (**षट्त्रिंशत्**) छत्तीस (**च**) चारि के वियोग से (**मे**) मेरी (**द्वात्रिंशत्**) बत्तीस इस प्रकार सब संख्याओं में जानना चाहिये। यह वियोग से दूसरा पक्ष है॥२॥२५॥

अब तीसरा पक्ष-

(**मे**) मेरी (**चतस्रः**) चारि संख्या (**च**) और (**मे**) मेरी (**अष्टौ**) आठ (**च**) परस्पर गुणी, (**मे**) मेरी (**अष्टौ**) आठ (**च**) और (**मे**) मेरी (**द्वादश**) बारह (**च**) परस्पर गुणी, (**मे**) मेरी (**द्वादश**) बारह (**च**) और (**मे**) मेरी (**षोडश**) सोलह (**च**) परस्पर गुणी, (**मे**) मेरी (**षोडश**) सोलह (**च**) और (**मे**) मेरी (**विंशतिः**) बीस (**च**) परस्पर गुणी, इस प्रकार संख्या आगे भी (**यज्ञेन**) उक्त वार-वार गुणन से (**कल्पन्ताम्**) समर्थ हों। यह गुणनविषय से तीसरा पक्ष है॥३॥२५॥

भावार्थः-पिछले मन्त्र में एक संख्या को लेकर दो के योग वियोग से विषम संख्या कही। इससे पूर्व मन्त्र में क्रम से आई हुई एक, दो, तीन संख्या को छोड़ इस मन्त्र में चारि के योग वा वियोग से चौथी संख्या को लेकर सम संख्या प्रतिपादन किई। इन दोनों मन्त्रों से विषम संख्या और सम संख्याओं का भेद जानके बुद्धि के अनुकूल कल्पना से सब गणित विद्या जाननी चाहिये॥ २५॥

त्र्यविश्चेत्यस्य देवा ऋषयः। पशुविद्याविदात्मा देवता। ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

अथ पशुपालनविषयमाह॥

अथ पशुपालन विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

त्र्यविश्च मे त्र्यवी च मे दित्यवाट् च मे दित्यौही च मे पञ्चाविश्च मे पञ्चावी च मे त्रिवत्सश्च मे त्रिवत्सा च मे तुर्यवाट् च मे तुर्यौही च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्॥ २६॥

त्र्यविरिति त्रिऽअविः। च। मे। त्र्यवीति त्रिऽअवी। च। मे। दित्यवाडिति दित्यऽवाट्। च। मे। दित्यौही। च। मे। पञ्चाविरिति पञ्चऽअविः। च। मे। पञ्चावीति पञ्चऽअवी। च। मे। त्रिवत्स इति त्रिऽवत्सः। च। मे। त्रिवत्सेति त्रिऽवत्सा। च। मे। तुर्यवाडिति तुर्यऽवाट्। च। मे। तुर्यौही। च। मे। यज्ञेन। कल्पन्ताम्॥ २६॥

पदार्थः-**(त्र्यविः)** तिस्रोऽवयो यस्य सः **(च)** अतो भिन्ना सामग्री **(मे)** **(त्र्यवी)** तिस्रोऽवयो यस्याः सा **(च)** एतज्जन्यं घृतादि **(मे)** **(दित्यवाट्)** दितौ खण्डितायां क्रियायां भवा दित्यास्तान् यो वहति पृथक् करोति सः **(च)** एतत्पालनम् **(मे)** **(दित्यौही)** तत्स्त्री **(च)** अन्यदपि **(मे)** **(पञ्चाविः)** पञ्चावयो यस्य सः **(च)** एतद्रक्षणम् **(मे)** **(पञ्चावी)** स्त्री **(च)** एतत्पालनम् **(मे)** **(त्रिवत्सः)** त्रयो वत्सा यस्य सः **(च)** एतच्छिक्षणम् **(मे)** **(त्रिवत्सा)** त्रयो वत्सा यस्याः सा **(च)** एतस्या रक्षा **(मे)** **(तुर्यवाट्)** यस्तुर्यं चतुर्थं वर्षं वहति प्राप्नोति स वृषभादिः। यस्य त्रीणि वर्षाणि पूर्णानि जातानि चतुर्थः प्रविष्टः स इत्यर्थः **(च)** अस्य शिक्षणम् **(मे)** **(तुर्यौही)** पूर्वोक्तसदृशी गौः **(च)** अस्याः शिक्षा **(मे)** **(यज्ञेन)** पशुपालनविधिना **(कल्पन्ताम्)** समर्थयन्तु॥ २६॥

अन्वयः-मे त्र्यविश्च मे त्र्यवी च मे दित्यवाट् च मे दित्यौही च मे पञ्चाविश्च मे पञ्चावी च मे त्रिवत्सश्च मे त्रिवत्सा च मे तुर्यवाट् च मे तुर्यौही च यज्ञेन कल्पन्ताम्॥ २६॥

भावार्थः-अत्र गोजाविग्रहणमुपलक्षणार्थम्। ये मनुष्याः पशून् वर्द्धयन्ति ते रसाढ्या जायन्ते॥ २६॥

पदार्थः-**(मे)** मेरा **(त्र्यविः)** तीन प्रकार का भेड़ों वाला **(च)** और इससे भिन्न सामग्री **(मे)** मेरी **(त्र्यवी)** तीन प्रकार की भेड़ों वाली स्त्री **(च)** और इनसे उत्पन्न हुए घृतादि **(मे)** मेरे **(दित्यवाट्)** खण्डित क्रियाओं में हुए विघ्नों को पृथक् करने वाला **(च)** और इसके सम्बन्धी **(मे)** मेरी **(दित्यौही)** उन्हीं क्रियाओं को प्राप्त कराने हारी गाय आदि **(च)** और उसकी रक्षा **(मे)** मेरा **(पञ्चाविः)** पांच प्रकार की भेड़ों वाला **(च)** और उसके घृतादि **(मे)** मेरी **(पञ्चावी)** पांच प्रकार की भेड़ों वाली स्त्री **(च)** और **(मे)** मेरा

(त्रिवत्स:) तीन बछड़े वाला **(च)** और उसके बछड़े आदि **(मे)** मेरी **(त्रिवत्सा)** तीन बछड़े वाली गौ **(च)** और उसके घृतादि **(मे)** मेरा **(तुर्यवाट्)** चौथे वर्ष को प्राप्त हुआ बैल आदि **(च)** और इसको काम में लाना **(मे)** मेरी **(तुर्यौही)** चौथे वर्ष को प्राप्त गौ **(च)** और इसको शिक्षा ये सब पदार्थ **(यज्ञेन)** पशुओं के पालन के विधान से **(कल्पन्ताम्)** समर्थ होवें॥ २६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में गौ और भेड़ के उपलक्षण से अन्य पशुओं का भी ग्रहण होता है। जो मनुष्य पशुओं को बढ़ाते हैं, वे इनके रसों से आढ्य होते हैं॥ २६॥

पष्ठवाट् चेत्यस्य देवा ऋषय:। पशुपालनविद्याविदात्मा देवता। भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्द: पञ्चम: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

पष्ठवाट् च मे पष्ठौही च मऽउक्षा च मे वशा च मऽऋषभश्च मे वेहच्च मेऽनड्वाँश्च मे धेनुश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्॥ २७॥

पष्ठवाडिति पष्ठऽवाट्। च। मे। पष्ठौही। च। मे। उक्षा। च। मे। वशा। च। मे। ऋषभ:। च। मे। वेहत्। च। मे। अनड्वान्। च। मे। धेनु:। च। मे। यज्ञेन। कल्पन्ताम्॥ २७॥

पदार्थ:-**(पष्ठवाट्)** य: पष्ठेन पृष्ठेन वहति सो हस्त्युष्ट्रादि: **(च)** तत्सम्बन्धी **(मे)** **(पष्ठौही)** वडवादि: **(च)** हस्तिन्यादिभिरुत्थापिता: पदार्था: **(मे)** **(उक्षा:)** वीर्यसेचक: **(च)** वीर्यधारिका **(मे)** **(वशा)** वन्ध्या गौ: **(च)** वीर्यहीन: **(मे)** **(ऋषभ:)** बलिष्ठ: **(च)** बलवती **(मे)** **(वेहत्)** यस्य वीर्यं यस्या गर्भो वा विहन्यते स सा च **(च)** सामर्थ्यहीन: **(मे)** **(अनड्वान्)** हलशकटादिवहनसमर्थ: **(च)** शकटवाही जन: **(मे)** **(धेनु:)** दुग्धदात्री **(च)** दोग्धा **(मे)** **(यज्ञेन)** पशुशिक्षाख्येन **(कल्पन्ताम्)** समर्थयन्तु॥ २७॥

अन्वय:-मे पष्टवाट् च मे पष्ठौही च म उक्षा च मे वशा च मे ऋषभश्च मे वेहच्च मेऽनड्वाँश्च मे धेनुश्च यज्ञेन कल्पन्ताम्॥ २७॥

भावार्थ:-ये पशून् सुशिक्ष्य कार्येषु संयुञ्जते, ते सिद्धार्था जायन्ते॥ २७॥

पदार्थ:-**(मे)** मेरे **(पष्ठवाट्)** पीठ से भार उठानेहारे हाथी, ऊंट आदि **(च)** और उनके सम्बन्धी **(मे)** मेरी **(पष्ठौही)** पीठ से भार उठाने हारी घोड़ो, ऊंटनी आदि **(च)** और उनसे उठाये गये पदार्थ **(मे)** मेरा **(उक्षा)** वीर्य सेचन में समर्थ वृषभ **(च)** और वीर्य धारण करने वाली गौ आदि **(मे)** मेरी **(वशा)** वन्ध्या गौ **(च)** और वीर्यहीन बैल **(मे)** मेरा **(ऋषभ:)** समर्थ बैल **(च)** और बलवती गौ **(मे)** मेरी **(वेहत्)** गर्भ गिराने वाली **(च)** और सामर्थ्यहीन गौ **(मे)** मेरा **(अनड्वान्)** हल और गाड़ी आदि को चलाने में

समर्थ बैल **(च)** और गाड़ीवान आदि **(मे)** मेरी **(धेनुः)** नवीन व्यानी दूध देने हारी गाय **(च)** और उसको दोहने वाला जन ये सब **(यज्ञेन)** पशुशिक्षारूप यज्ञकर्म से **(कल्पन्ताम्)** समर्थ होवें॥ २७॥

भावार्थः-जो पशुओं को अच्छी शिक्षा देके कार्यों में सयुक्त करते हैं, वे अपने प्रयोजन सिद्ध करके सुखी होते हैं॥ २७॥

वाजायेत्यस्य देवा ऋषयः। सङ्ग्रामादिविदात्मा देवता। पूर्वस्य भुरिगाकृतिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥
इयमित्युत्तरस्यार्ची बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

अथ कीदृशी वाक् स्वीकार्य्येत्याह॥

अब कैसी वाणी का स्वीकार करना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

वाजा॑य॒ स्वाहा॑ प्रस॒वाय॒ स्वाहा॑पि॒जाय॒ स्वाहा॒ क्रत॑वे॒ स्वाहा॒ वस॑वे॒ स्वाहा॑ह॒र्पत॑ये॒ स्वाहाह्ने॑ मु॒ग्धाय॒ स्वाहा॑ मु॒ग्धाय॒ वैन॑ꣳशि॒नाय॒ स्वाहा॑ विन॒ꣳशिन॑ऽआन्त्याय॒नाय॒ स्वाहान्त्या॑य भौव॒नाय॒ स्वाहा॒ भुव॑नस्य॒ पत॑ये॒ स्वाहाधि॑पतये॒ स्वाहा॑ प्र॒जाप॑तये॒ स्वाहा॑। इ॒यं ते॒ राण्मि॒त्राय॑ य॒न्तासि॒ यम॑नऽऊ॒र्जे त्वा॒ वृष्ट्यै॑ त्वा प्र॒जाना॒ं त्वाधि॑पत्याय॥ २८॥

वाजा॑य। स्वाहा॑। प्र॒स॒वायेति॑ प्रऽस॒वाय॑। स्वाहा॑। अ॒पि॒जाय॑। स्वाहा॑। क्रत॑वे। स्वाहा॑। वस॑वे। स्वाहा॑। अ॒ह॒र्पत॑ये। स्वाहा॑। अह्ने॑। मु॒ग्धाय॑ स्वाहा॑। मु॒ग्धाय॑। वै॒न॒ꣳशि॒नाय॑। स्वाहा॑। वि॒न॒ꣳशि॒न इति॑ विन॒ꣳशिने॑। आ॒न्त्या॒य॒नाय॑। स्वाहा॑। आन्त्या॑य। भौ॒व॒नाय॑। स्वाहा॑। भुव॑नस्य। पत॑ये। स्वाहा॑। अधि॑पतय॒ इत्यधि॑ऽपतये। स्वाहा॑। प्र॒जाप॑तय॒ इति॑ प्र॒जाऽप॑तये। स्वाहा॑। इ॒यम्। ते॒। राट्। मि॒त्राय॑। य॒न्ता। अ॒सि॒। यम॑नः। ऊ॒र्जे। त्वा॒। वृष्ट्यै॑। त्वा॒। प्र॒जाना॒मिति॑ प्र॒ऽजाना॑म्। त्वा॒। आधि॑पत्या॒येत्याधि॑ऽपत्याय॥ २८॥

पदार्थः-**(वाजाय)** सङ्ग्रामाय **(स्वाहा)** सत्या क्रिया **(प्रसवाय)** ऐश्वर्याय सन्तानोत्पादनाय वा **(स्वाहा)** पुरुषार्थबलयुक्ता सत्या वाक् **(अपिजाय)** स्वीकाराय **(स्वाहा)** साध्वी क्रिया **(क्रतवे)** विज्ञानाय **(स्वाहा)** योगाभ्यासादिक्रिया **(वसवे)** वासाय **(स्वाहा)** धनप्रापिका क्रिया **(अहर्पतये)** अह्नां पालकाय **(स्वाहा)** कालविज्ञापिता क्रिया **(अह्ने)** दिनाय **(मुग्धाय)** प्रापितमोहाय **(स्वाहा)** वैराग्ययुक्ता क्रिया **(मुग्धाय)** मोहं प्राप्ताय **(वैनंशिनाय)** विनष्टुं शीलं यस्य तस्यायं बोधस्तस्मै **(स्वाहा)** सत्योपदेशिका वाक् **(विनंशिने)** विनष्टुं शीलाय **(आन्त्यायनाय)** अन्ते भवमयनं यस्य स आन्त्यायनः स एव तस्मै **(स्वाहा)** सत्या वाणी **(आन्त्याय)** अन्ते भवायान्त्याय **(भौवनाय)** भुवनानामयं सम्बन्धी तस्मै **(स्वाहा)** सुष्ठूपदेशः **(भुवनस्य)** भवन्ति भूतानि यस्मिन् यस्य **(पतये)** स्वामिने **(स्वाहा)** उत्तमा वाक् **(अधिपतये)** पतीनां पालिकानामधिष्ठात्रे **(स्वाहा)** राजव्यवहारसूचिका क्रिया **(प्रजापतये)** प्रजारक्षकाय **(स्वाहा)** राजधर्मद्योतिका नीतिः **(इयम्)** नीतिः **(ते)** तव **(राट्)** या राजते सा **(मित्राय)** सुहृदे **(यन्ता)** नियामकः **(असि)** **(यमनः)**

यस्सद्गुणान् यच्छति सः **(ऊर्ज्जे)** पराक्रमाय **(त्वा)** त्वाम् **(वृष्ट्यै)** वर्षणाय **(त्वा)** त्वाम् **(प्रजानाम्)** पालनीयानाम् **(त्वा)** त्वाम् **(आधिपत्याय)** अधिष्ठातृत्वाय॥२८॥

अन्वयः-येन विदुषा वाजाय स्वाहा प्रसवाय स्वाहाऽपिजाय स्वाहा क्रतवे स्वाहा वसवे स्वाहाऽहर्पतये स्वाहाऽह्ने मुग्धाय स्वाहा मुग्धाय वैनंशिनाय स्वाहा विनंशिन आन्त्यायनाय स्वाहाऽऽन्त्याय भौवनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहाऽधिपतये स्वाहा प्रजापतये स्वाहा स्वीक्रियते यस्य ते तवेयं राडस्ति यो यमनस्त्वं मित्राय यन्तासि तं त्वा त्वामूर्जे त्वा वृष्ट्यै त्वा प्रजानामाधिपत्याय च वयं स्वीकुर्वीमहि॥२८॥

भावार्थः-ये मनुष्या धर्म्यवाक् क्रियाभ्यां सह प्रवर्त्तन्ते, ते सुखानि लभन्ते, ये जितेन्द्रियास्ते राज्यं रक्षितुं शक्नुवन्ति॥२८॥

पदार्थः-जिस विद्वान् में **(वाजाय)** सङ्ग्राम के लिये **(स्वाहा)** सत्यक्रिया **(प्रसवाय)** ऐश्वर्य वा सन्तानोत्पत्ति के अर्थ **(स्वाहा)** पुरुषार्थ बलयुक्त सत्य वाणी **(अपिजाय)** ग्रहण करने के अर्थ **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया **(क्रतवे)** विज्ञान के लिये **(स्वाहा)** योगाभ्यासादि क्रिया **(वसवे)** निवास के लिये **(स्वाहा)** धनप्राप्ति कराने हारी क्रिया **(अहर्पतये)** दिनों के पालन करने के लिये **(स्वाहा)** कालविज्ञान को देने हारी क्रिया **(अह्ने)** दिन के लिये वा **(मुग्धाय)** मूढ़जन के लिये **(स्वाहा)** वैराग्ययुक्त क्रिया **(मुग्धाय)** मोह को प्राप्त हुए के लिये **(वैनंशिनाय)** विनाशी अर्थात् विनष्ट होनेहारे को जो बोध उसके लिये **(स्वाहा)** सत्य हितोपदेश करने वाली वाणी **(विनंशिने)** विनाश होने वाले स्वभाव के अर्थ वा **(आन्त्यायनाय)** अन्त में घर जिसका हो उसके लिये **(स्वाहा)** सत्य वाणी **(आन्त्याय)** नीच वर्ण में उत्पन्न हुए **(भौवनाय)** भुवन सम्बन्धी के लिये **(स्वाहा)** उत्तम उपदेश **(भुवनस्य)** जिस संसार में सब प्राणीमात्र होते हैं, उसके **(पतये)** स्वामी के अर्थ **(स्वाहा)** उत्तम वाणी **(अधिपतये)** पालने वालों के अधिष्ठाता के अर्थ **(स्वाहा)** राजव्यवहार को जनाने हारी क्रिया तथा **(प्रजापतये)** प्रजा के पालन करने वाले के अर्थ **(स्वाहा)** राजधर्म प्रकाश करनेहारी नीति स्वीकार की जाती है तथा जिस **(ते)** आप को **(इयम्)** यह **(राट्)** विशेष प्रकाशमान नीति है और जो **(यमनः)** अच्छे गुणों के ग्रहणकर्त्ता आप **(मित्राय)** मित्र के लिये **(यन्ता)** उचित सत्कार करनेहारे **(असि)** हैं, उन **(त्वा)** आप को **(ऊर्जे)** पराक्रम के लिये **(त्वा)** आपको **(वृष्ट्यै)** वर्षा के लिये और **(त्वा)** आपको **(प्रजानाम्)** पालन के योग्य प्रजाओं के **(आधिपत्याय)** अधिपति होने के लिये हम स्वीकार करते हैं॥२८॥

भावार्थः-जो मनुष्य धर्मयुक्त वाणी और क्रिया से सहित वर्त्तमान रहते है, वे सुखों को प्राप्त होते हैं और जो जितेन्द्रिय होते हैं, वे राज्य के पालन में समर्थ होते है॥२८॥

आयुर्यज्ञेनेत्यस्य देवा ऋषयः। यज्ञानुष्ठातात्मा देवता। पूर्वस्य स्वराड्विकृतिश्छन्दः। मध्यमः स्वरः। स्तोमश्चेत्यस्य ब्राह्म्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

अथ किं किं यज्ञसिद्धये नियोजनीयमित्याह॥

अब क्या-क्या यज्ञ की सिद्धि के लिये युक्त करना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

आयु॑र्य॒ज्ञेन॑ कल्पतां प्रा॒णो य॒ज्ञेन॑ कल्पता॒ञ्चक्षु॑र्य॒ज्ञेन॑ कल्पता॒ꣳ श्रोत्रं॑ य॒ज्ञेन॑ कल्पता॒ं वाग्य॒ज्ञेन॑ कल्पता॒ं मनो॑ य॒ज्ञेन॑ कल्पतामा॒त्मा य॒ज्ञेन॑ कल्पतां ब्र॒ह्मा य॒ज्ञेन॑ कल्पता॒ं ज्योति॑र्य॒ज्ञेन॑ कल्पता॒ꣳ स्व॒र्य॒ज्ञेन॑ कल्पतां पृ॒ष्ठं य॒ज्ञेन॑ कल्पतां य॒ज्ञो य॒ज्ञेन॑ कल्पताम्। स्तोम॑श्च॒ यजु॑श्च॒ऽऋक् च॒ साम॑ च बृ॒हच्च॑ रथन्त॒रञ्च॑। स्व॑र्दे॒वाऽअगन्मा॒मृता॑ऽअभूम प्र॒जाप॑तेः प्र॒जाऽअ॑भूम॒ वेट् स्वाहा॑॥ २९॥

आयु॑ः। य॒ज्ञेन॑। क॒ल्प॒ता॒म्। प्रा॒णः। य॒ज्ञेन॑। क॒ल्प॒ता॒म्। चक्षु॑ः। य॒ज्ञेन॑। क॒ल्प॒ता॒म्। श्रोत्र॑म्। य॒ज्ञेन॑। क॒ल्प॒ता॒म्। वाक्। य॒ज्ञेन॑। क॒ल्प॒ता॒म्। मन॑ः। य॒ज्ञेन॑। क॒ल्प॒ता॒म्। आ॒त्मा। य॒ज्ञेन॑। क॒ल्प॒ता॒म्। ब्र॒ह्मा। य॒ज्ञेन॑। क॒ल्प॒ता॒म्। ज्योति॑ः। य॒ज्ञेन॑। क॒ल्प॒ता॒म्। स्व॒ः। य॒ज्ञेन॑। क॒ल्प॒ता॒म्। पृ॒ष्ठम्। य॒ज्ञेन॑। क॒ल्प॒ता॒म्। य॒ज्ञः। य॒ज्ञेन॑। क॒ल्प॒ता॒म्। स्तोम॑ः। च॒। यजु॑ः। च॒। ऋक्। च॒। साम॑। च॒। बृ॒हत्। च॒। र॒थ॒न्त॒रमिति॑ रथम्ऽत॒रम। च॒। स्व॒ः। दे॒वाः। अ॒ग॒न्म॒। अ॒मृता॑ः। अ॒भू॒म॒। प्र॒जाप॑ते॒रिति॑ प्र॒जाऽप॑तेः। प्र॒जा इति॑ प्र॒ऽजाः। अ॒भू॒म॒। वेट्। स्वाहा॑॥ २९॥

पदार्थः-(**आयुः**) एति जीवनं येन तत् (**यज्ञेन**) परमेश्वरस्य विदुषां च सत्कारेण (**कल्पताम्**) समर्थं भवतु (**प्राणः**) जीवनहेतुः (**यज्ञेन**) सङ्गतिकरणेन (**कल्पताम्**) (**चक्षुः**) नेत्रम् (**यज्ञेन**) (**कल्पताम्**) (**श्रोत्रम्**) श्रवणेन्द्रियम् (**यज्ञेन**) (**कल्पताम्**) (**वाक्**) वक्ति यया सा वाणी (**यज्ञेन**) (**कल्पताम्**) (**मनः**) अन्तःकरणम् (**यज्ञेन**) (**कल्पताम्**) (**आत्मा**) अतति शरीरमिन्द्रियाणि प्राणांश्च व्याप्नोति सः (**यज्ञेन**) (**कल्पताम्**) (**ब्रह्मा**) चतुर्वेदविद्विद्वान् (**यज्ञेन**) (**कल्पताम्**) (**ज्योतिः**) न्यायप्रकाशः (**यज्ञेन**) (**कल्पताम्**) (**स्वः**) सुखम् (**यज्ञेन**) (**कल्पताम्**) (**पृष्ठम्**) ज्ञातुमिच्छा (**यज्ञेन**) अध्ययनाख्येन (**कल्पताम्**) (**यज्ञः**) सङ्गन्तव्यो धर्मः (**यज्ञेन**) सत्यव्यवहारेण (**कल्पताम्**) (**स्तोमः**) स्तुवन्ति यस्मिन् सोऽथर्ववेदः (**च**) (**यजुः**) यजति येन स यजुर्वेदः (**च**) (**ऋक्**) ऋग्वेदः (**च**) (**साम**) सामवेदः (**च**) (**बृहत्**) महत् (**च**) (**रथन्तरम्**) सामस्तोत्रविशेषः (**च**) (**स्वः**) मोक्षसुखम् (**देवाः**) विद्वांसः (**अगन्म**) प्राप्नुयाम (**अमृताः**) जन्ममरणदुःखरहिताः सन्तः (**अभूम**) भवेम (**प्रजापतेः**) सकलसंसारस्य स्वामिनो जगदीश्वरस्य (**प्रजाः**) पालनीयाः (**अभूम**) भवेम (**वेट्**) सत्क्रियया (**स्वाहा**) सत्यया वाण्या॥ २९॥

अन्वयः-हे मनुष्य! ते तव प्रजानामाधिपत्यायायुर्यज्ञेन कल्पताम्, प्राणो यज्ञेन कल्पताम्, चक्षुर्यज्ञेन कल्पताम्, श्रोत्रं यज्ञेन कल्पताम्, वाग्यज्ञेन कल्पताम्, मनो यज्ञेन कल्पताम्, आत्मा यज्ञेन कल्पताम्, ब्रह्मा यज्ञेन कल्पताम्, ज्योतिर्यज्ञेन कल्पताम्, स्वर्यज्ञेन कल्पताम्, पृष्ठं यज्ञेन कल्पताम्, यज्ञो यज्ञेन कल्पताम्, स्तोमश्च यजुश्च ऋक् च साम च बृहच्च रथन्तरं च यज्ञेन कल्पताम्। हे देवा विद्वांसो यथा वयममृताः स्वरगन्म प्रजापतेः प्रजा अभूम वेट् स्वाहायुक्ताश्चाभूम, तथा यूयमपि भवत॥ २९॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। पूर्वमन्त्रात् **(ते, आधिपत्याय)** इति पदद्वयमनुवर्त्तते। मनुष्या धार्मिकविद्वदनुकरणेन यज्ञाय सर्वं समर्प्य परमेश्वरं न्यायाधीशं राजानं च मत्वा सततं न्यायपरायणा भूत्वा सुखिनः स्युः॥२९॥

पदार्थः-हे मनुष्य। तेरे प्रजाजनों के स्वामी होने के लिये **(आयुः)** जिससे जीवन होता है, वह आयुर्दा **(यज्ञेन)** परमेश्वर और अच्छे महात्माओं के सत्कार से **(कल्पताम्)** समर्थ हो, **(प्राणः)** जीवन का हेतु प्राणवायु **(यज्ञेन)** सङ्ग करने से **(कल्पताम्)** समर्थ होवे, **(चक्षुः)** नेत्र **(यज्ञेन)** परमेश्वर वा विद्वान् के सत्कार से **(कल्पताम्)** समर्थ हों, **(श्रोत्रम्)** कान **(यज्ञेन)** ईश्वर वा विद्वान् के सत्कार से **(कल्पताम्)** समर्थ हों, **(वाक्)** वाणी **(यज्ञेन)** ईश्वर वा विद्वान् के सत्कार से **(कल्पताम्)** समर्थ हों **(मनः)** संकल्पविकल्प करने वाला मन **(यज्ञेन)** ईश्वर वा विद्वान् के सत्कार **(कल्पताम्)** समर्थ हो, **(आत्मा)** जो कि शरीर इन्द्रिय तथा प्राण आदि पवनों को व्याप्त होता है, वह आत्मा **(यज्ञेन)** ईश्वर वा विद्वान् के सत्कार **(कल्पताम्)** समर्थ हो, **(ब्रह्मा)** चारों वेदों का जानने वाला विद्वान् **(यज्ञेन)** ईश्वर वा विद्वान् के सत्कार से **(कल्पताम्)** समर्थ हो, **(ज्योतिः)** न्याय का प्रकाश **(यज्ञेन)** ईश्वर वा विद्वान् के सत्कार से **(कल्पताम्)** समर्थ हो, **(स्वः)** सुख **(यज्ञेन)** ईश्वर वा विद्वान् के सत्कार से **(कल्पताम्)** समर्थ हो, **(पृष्ठम्)** जानने की इच्छा **(यज्ञेन)** पठनरूप यज्ञ से **(कल्पताम्)** समर्थ हो, **(यज्ञः)** पाने योग्य धर्म **(यज्ञेन)** सत्यव्यवहार से **(कल्पताम्)** समर्थ हो, **(स्तोमः)** जिसमें स्तुति होती है, वह अथर्ववेद **(च)** और **(यजुः)** जिससे जीव सत्कार आदि करता है, वह यजुर्वेद **(च)** और **(ऋक्)** स्तुति का साधक ऋग्वेद **(च)** और **(साम)** सामवेद **(च)** और **(बृहत्)** अत्यन्त बड़ा वस्तु **(च)** और सामवेद का **(रथन्तरम्)** रथन्तर नाम वाला स्तोत्र **(च)** भी ईश्वर वा विद्वान के सत्कार से समर्थ हो। हे **(देवाः)** विद्वानो! जैसे हम लोग **(अमृताः)** जन्म-मरण के दुःख से रहित हुए **(स्वः)** मोक्षसुख को **(अगन्म)** प्राप्त हों तथा **(प्रजापतेः)** समस्त संसार के स्वामी जगदीश्वर की **(प्रजाः)** पालने योग्य प्रजा **(अभूम)** हों तथा **(वेट्)** उत्तम क्रिया और **(स्वाहा)** सत्यवाणी से युक्त **(अभूम)** हों, वैसे तुम भी होओ॥२९॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। यहाँ पूर्व मन्त्र से **(ते, आधिपत्याय)** इन दो पदों की अनुवृत्ति आती है। मनुष्य धार्मिक विद्वान् जनों के अनुकरण से यज्ञ के लिये सब समर्पण कर परमेश्वर और राजा को न्यायाधीश मान के न्यायपरायण होकर निरन्तर सुखी हों॥२९॥

वाजस्येत्यस्य देवा ऋषयः। राज्यवानात्मा देवता। स्वराड् जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनर्मनुष्यैः कस्य कथमुपासना कार्येत्याह॥

फिर मनुष्यों को कैसे किसकी उपासना करना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीमदितिं नाम वचसा करामहे।

यस्या॑मि॒दं विश्वं॒ भुव॑नमावि॒वेश॒ तस्यां॑ नो दे॒वः स॑वि॒ता धर्म॑ साविषत्॥३०॥

वाज॑स्य। नु। प्र॒स॒व इति॑ प्रऽस॒वे। मा॒तर॑म्। म॒हीम्। अदि॑तिम्। नाम॑। वच॑सा। क॒रा॒म॒हे॒। यस्या॑म्। इ॒दम्। विश्व॑म्। भुव॑नम्। आ॒वि॒वेशेत्या॑ऽवि॒वेश॑। तस्या॑म्। नः॒। दे॒वः। स॒वि॒ता। धर्म॑। सा॒वि॒ष॒त्॥३०॥

पदार्थः-(**वाजस्य**) विविधोत्तमस्यान्नस्य (**नु**) एव (**प्रसवे**) उत्पादने (**मातरम्**) मान्यनिमित्तम् (**महीम्**) महतीं भूमिम् (**अदितिम्**) कारणरूपेण नित्याम् (**नाम**) प्रसिद्धौ (**वचसा**) वचेनन (**करामहे**) कुर्य्याम। अत्र विकरणव्यत्ययेन शप् (**यस्याम्**) पृथिव्याम् (**इदम्**) प्रत्यक्षम् (**विश्वम्**) सर्वम् (**भुवनम्**) भवन्ति यस्मिँस्तत्स्थूलं जगत् (**आविवेश**) आविष्टमस्ति (**तस्याम्**) (**नः**) अस्माकम् (**देवः**) शुद्धस्वरूपः (**सविता**) सकलैश्वर्ययुक्त ईश्वरः (**धर्म**) धारणाम् (**साविषत्**) सुवतु॥३०॥

अन्वयः-वाजस्य प्रसवे नु वर्त्तमाना वयं मातरमदितिं महीं नाम वचसा करामहे, यस्यामिदं विश्वं भुवनमाविवेश, तस्यां सविता देवो नो धर्म साविषत्॥३०॥

भावार्थः-येन जगदीश्वरेण सर्वस्याधिकरणं या भूमिर्निर्मिता सा सर्वं धरति, स एव सर्वैर्मनुष्यैरुपासनीयः॥३०॥

पदार्थः-(**वाजस्य**) विविध प्रकार के उत्तम अन्न के (**प्रसवे**) उत्पन्न करने में (**नु**) ही वर्त्तमान हम लोग (**मातरम्**) मान्य की हेतु (**अदितिम्**) कारणरूप से नित्य (**महीम्**) भूमि को (**नाम**) प्रसिद्धि में (**वचसा**) वाणी से (**करामहे**) युक्त करें (**यस्याम्**) जिस पृथिवी में (**इदम्**) यह प्रत्यक्ष (**विश्वम्**) समस्त (**भुवनम्**) स्थूल जगत् (**आविवेश**) व्याप्त है, (**तस्याम्**) उस पृथिवी में (**सविता**) समस्त ऐश्वर्ययुक्त (**देवः**) शुद्धस्वरूप ईश्वर (**न**) हमारी (**धर्म**) उत्तम कर्मों की धारणा को (**साविषत्**) उत्पन्न करे॥३०॥

भावार्थः-जिस जगदीश्वर ने सब का आधार जो भूमि बनाई, वह सब को धारण करती है, वही ईश्वर सब मनुष्यों को उपासना करने योग्य है॥३०॥

विश्वेऽअद्येत्यस्य देवा ऋषयः। विश्वेदेवा देवताः। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ प्राणिनां कर्त्तव्यमुपदिश्यते॥

अब अगले मन्त्र में प्राणियों के कर्त्तव्य विषय को कहा है॥

विश्वे॑ऽअ॒द्य म॒रुतो॒ विश्व॑ऽऊ॒ती विश्वे॑ भवन्त्व॒ग्नयः॒ समि॑द्धाः।

विश्वे॑ नो दे॒वाऽअव॒साग॑मन्तु॒ विश्व॑मस्तु॒ द्रवि॑णं॒ वाजो॑ऽअ॒स्मे॥३१॥

विश्वे॑। अ॒द्य। म॒रुतः॑। विश्वे॑। ऊ॒ती। विश्वे॑। भ॒व॒न्तु॒। अ॒ग्नयः॑। समि॑द्धा॒ इति॒ सम्ऽइ॑द्धाः। विश्वे॑। नः॒। दे॒वाः। अ॒व॒सा। आ। ग॒म॒न्तु॒। विश्व॑म्। अ॒स्तु॒। द्रवि॑णम्। वाजः॑। अ॒स्मेऽइत्य॒स्मे॥३१॥

पदार्थः-(**विश्वे**) सर्वे (**अद्य**) (**मरुतः**) वायवः (**विश्वे**) (**ऊती**) ऊत्या रक्षणादिना सह। अत्र **सुपां सुलुग्०** [अष्टा०७.१.३९] इति पूर्वसवर्णादेशः (**विश्वे**) (**भवन्तु**) (**अग्नयः**) पावका इव (**समिद्धाः**) सम्यक्

प्रदीप्ताः (**विश्वे**) (**नः**) अस्माकं (**देवाः**) विद्वांसः (**अवसा**) पालनादिना (**आ**) समन्तात् (**गमन्तु**) गच्छन्तु। अत्र **बहुलं छन्दसि** [अष्टा०२.४.७३] इति शपो लुक् (**विश्वम्**) अखिलम् (**अस्तु**) प्राप्तं भवतु (**द्रविणम्**) धनम् (**वाजः**) अन्नम् (**अस्मे**) अस्मभ्यम्॥३१॥

अन्वयः-अस्यां पृथिव्यामद्य विश्वे मरुतो विश्वे प्राणिनः पदार्थाश्च विश्वे समिद्धा अन्य इव न ऊती भवन्तु, विश्वे देवा अवसाऽऽगमन्तु, यतोऽस्मे विश्वं द्रविणं वाजश्चास्तु॥३१॥

भावार्थः-ये मनुष्या आलस्यं विहाय विदुषः सङ्गत्य पृथिव्यां प्रयतन्ते, ते समग्रानुत्तमान् पदार्थान् प्राप्नुवन्ति॥३१॥

पदार्थः-इस पृथिवीं में (**अद्य**) आज (**विश्वे**) सब (**मरुतः**) पवन (**विश्वे**) सब प्राणी और पदार्थ (**विश्वे**) सब (**समिद्धाः**) अच्छे प्रकार लपट दे रहे हुए (**अग्नयः**) अग्नियों के समान मनुष्य लोग (**नः**) हमारी (**ऊती**) रक्षा आदि के साथ (**भवन्तु**) प्रसिद्ध हों, (**विश्वे**) सब (**देवाः**) विद्वान् लोग (**अवसा**) पालन आदि से सहित (**आ, गमन्तु**) आवें अर्थात् आकर हम लोगों की रक्षा करें, जिससे (**अस्मे**) हम लोगों के लिये (**विश्वम्**) समस्त (**द्रविणम्**) धन और (**वाजः**) अन्न (**अस्तु**) प्राप्त हो॥३१॥

भावार्थः-जो मनुष्य आलस्य को छोड़ विद्वानों का सङ्ग कर इस पृथिवी में प्रयत्न करते हैं, वे समस्त अति उत्तम पदार्थों को पाते हैं॥३१॥

वाजो न इत्यस्य देवा ऋषयः। अन्नवान् विद्वान् देवता। निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथ विद्वान् प्रजाश्च कथं वर्त्तेरन्नित्याह॥

अब विद्वान् और प्रजाजन कैसे वर्त्तें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

वाजो॑ नः स॒प्त प्र॒दिश॒श्चत॑स्रो वा परा॒वत॑ः।

वाजो॑ नो॒ विश्वै॑र्दे॒वैर्धन॑सातावि॒हाव॑तु॥३२॥

वाज॑ः। न॒ः। स॒प्त। प्र॒दिश॒ः। इति॑ प्र॒दिश॑ः। चत॑स्रः। वा॒। प॒रा॒वत॒ इति॑ परा॒ऽवत॑ः। वाज॑ः। न॒ः। विश्वै॑ः। दे॒वैः। धन॑साता॒विति॒ धन॑ऽसातौ। इ॒ह। अ॒व॒तु॥३२॥

पदार्थः-(**वाजः**) अन्नादिः (**नः**) अस्मान् (**सप्त**) (**प्रदिशः**) प्रदिश्यन्ते ताः (**चतस्रः**) पूर्वाद्या दिशः (**वा**) चार्थे (**परावतः**) दूरस्थाः (**वाजः**) शास्त्रबोधो वेगो वा (**नः**) अस्माकम् (**विश्वैः**) अखिलैः (**देवैः**) विद्वद्भिः (**धनसातौ**) धनानां संविभक्तौ (**इह**) अस्मिंल्लोके (**अवतु**) रक्षतु प्राप्नोतु वा॥३२॥

अन्वयः-हे विद्वांसो यथा विश्वैर्देवैः सह वर्त्तमानो वाज इह धनसातौ नोऽवतु वा, नो वाजः सप्त प्रदिशः परावतश्चतस्रो दिशोऽवतु, तथैता यूयं सततं रक्षत॥३२॥

भावार्थः-मनुष्यैः पुष्कलान्नेन स्वेषां पालनमस्यां पृथिव्यां सर्वासु दिक्षु सत्कीर्त्तिः स्यादिति सज्जना आदर्त्तव्याः॥३२॥

पदार्थ:-हे विद्वानो! जैसे **(विश्वै:)** सब **(देवै:)** विद्वानों के साथ **(वाज:)** अन्नादि **(इह)** इस लोक में **(धनसातौ)** धन के विभाग करने में **(न:)** हम लोगों को **(अवतु)** प्राप्त होवे **(वा)** अथवा **(न:)** हम लोगों का **(वाज:)** शास्त्रज्ञान और वेग **(सप्त)** सात **(प्रदिश:)** जिनका अच्छे प्रकार उपदेश किया जाय, उन लोक-लोकान्तरों वा **(परावत:)** दूर-दूर जो **(चतस्र:)** पूर्व आदि चार दिशा उनको पाले अर्थात् सब पदार्थों की रक्षा करे, वैसे इनकी रक्षा तुम भी निरन्तर किया करो॥३२॥

भावार्थ:-मनुष्यों को चाहिये कि बहुत अन्न से अपनी रक्षा तथा इस पृथिवी पर सब दिशाओं में अच्छी कीर्त्ति हो, इस प्रकार सत्पुरुषों का सन्मान किया करें॥३२॥

वाजो न इत्यस्य देवा ऋषय:। अन्नपतिर्देवता। त्रिष्टुप् छन्द:। धैवत: स्वर:॥

पुनर्मनुष्यै: किं किमभीप्सितव्यमित्याह॥

फिर मनुष्यों को क्या-क्या चाहने योग्य है, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

वाजो नोऽअद्य प्र सुवाति दानं वाजो देवाँ२ऽऋतुभि: कल्पयाति।
वाजो हि मा सर्ववीरं जजान विश्वाऽआशा वाजपतिर्जयेयम्॥३३॥

वाज:। न:। अद्य। प्र। सुवाति। दानम्। वाज:। देवान्। ऋतुभिरित्यृतुऽभि:। कल्पयाति। वाज:। हि। मा। सर्ववीरमिति सर्वऽवीरम्। जजान। विश्वा:। आशा:। वाजपतिरिति वाजऽपति:। जयेयम्॥३३॥

पदार्थ:-**(वाज:)** अन्नम् **(न:)** अस्मभ्यम् **(अद्य)** अस्मिन् दिने **(प्र)** **(सुवाति)** प्रेरयेत् **(दानम्)** **(वाज:)** **(देवान्)** विदुषो दिव्यान् गुणान् वा **(ऋतुभि:)** वसन्तादिभि: **(कल्पयाति)** समर्थयेत् **(वाज:)** **(हि)** खलु **(मा)** माम् **(सर्ववीरम्)** सर्वे वीरा यस्मात् तम् **(जजान)** जनयतु। अत्र लोडर्थे लिट् **(विश्वा:)** समग्रा: **(आशा:)** दिश: **(वाजपति:)** अन्नाद्यधिष्ठाता **(जयेयम्)** उत्कर्षेयम्॥३३॥

अन्वय:-हे मनुष्या:! ययाऽद्य यद्वाजो नो दानं प्रसुवाति, वाज ऋतुभिर्देवान् कल्पयाति, यद्धि वाज: सर्ववीरं मा जजान, तेनाहं वाजपतिर्भूत्वा विश्वा आशा जयेयम्, तथा यूयमपि जयत॥३३॥

भावार्थ:-यावन्तीह खलु वस्तूनि सन्ति, तावतामन्नमेव श्रेष्ठमस्ति, यतोऽन्नवान् सर्वत्र विजयी जायते॥३३॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! जैसे **(अद्य)** आज जो **(वाज:)** अन्न **(न:)** हमारे लिये **(दानम्)** दान=दूसरे को देना **(प्रसुवाति)** चितावे और **(वाज:)** वेगरूप गुण **(ऋतुभि:)** वसन्त आदि ऋतुओं से **(देवान्)** अच्छे-अच्छे गुणों को **(कल्पयाति)** प्राप्त होने में समर्थ करे वा जो **(हि)** ही **(वाज:)** अन्न **(सर्ववीरम्)** सब वीर जिससे हों, ऐसे अति बलवान् **(मा)** मुझ को **(जजान)** प्रसिद्ध करे, उससे ही मैं **(वाजपति:)** अन्नादि का अधिष्ठाता होकर **(विश्वा:)** समस्त **(आशा:)** दिशाओं को **(जयेयम्)** जीतूं, वैसे तुम भी जीता करो॥३३॥

भावार्थः-जितने इस पृथिवी पर पदार्थ हैं, उन सबों में अन्न ही अत्यन्त प्रशंसा के योग्य है, क्योंकि अन्नवान् पुरुष सब जगह विजय को प्राप्त होता है॥३३॥

वाजः पुरस्तादित्यस्य देवा ऋषयः। अन्नपतिर्देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अन्नमेव सर्वान् पालयतीत्याह॥

अन्न ही सब की रक्षा करता है, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

वाजः पुरस्तादुत मध्यतो नो वाजो देवान् हविषा वर्द्धयाति।

वाजो हि मा सर्ववीरं चकार सर्वाऽआशा वाजपतिर्भवेयम्॥३४॥

वाजः। पुरस्तात्। उत। मध्यतः। नः। वाजः। देवान्। हविषा। वर्द्धयाति। वाजः। हि। मा। सर्ववीरमिति सर्वऽवीरम्। चकार। सर्वाः। आशाः। वाजपतिरिति वाजऽपतिः। भवेयम्॥३४॥

पदार्थः-**(वाजः)** अन्नम् **(पुरस्तात्)** प्रथमतः **(उत)** अपि **(मध्यतः)** **(नः)** अस्मान् **(वाजः)** अन्नम् **(देवान्)** दिव्यान् गुणान् **(हविषा)** दानेनादानेन च **(वर्द्धयाति)** वर्द्धयेत् **(वाजः)** **(हि)** किल **(मा)** माम् **(सर्ववीरम्)** सर्वे वीरा यस्य तम् **(चकार)** करोति **(सर्वाः)** **(आशाः)** दिशः **(वाजपतिः)** अन्नादिरक्षकः **(भवेयम्)**॥३४॥

अन्वयः-यद्वाजो हविषा पुरस्तादुत मध्यतो नो वर्द्धयाति, यद्वाजो देवाँश्च वर्द्धयाति, यद्धि वाजो मा सर्ववीरं चकार, तेनाहं वाजपतिर्भवेयम्, सर्वा आशा जयेयं च॥३४॥

भावार्थः-अन्नमेव सर्वान् प्राणिनो वर्द्धयति, अन्नेनैव प्राणिनः सर्वासु दिक्षु भ्रमन्ति, अनेन विना किमपि कर्तुं न शक्नुवन्ति॥३४॥

पदार्थः-जो **(वाजः)** अन्न **(हविषा)** देने-लेने और खाने से **(पुरस्तात्)** पहिले **(उत)** और **(मध्यतः)** बीच में **(नः)** लोगों को **(वर्द्धयाति)** बढ़ावे तथा जो **(वाजः)** अन्न **(देवान्)** दिव्यगुणों को बढ़ावे जो **(हि)** ही **(वाजः)** अन्न **(मा)** मुझ को **(सर्ववीरम्)** जिससे समस्त वीर पुरुष होते हैं, ऐसा **(चकार)** करता है, उससे मैं **(वाजपतिः)** अन्न आदि पदार्थों की रक्षा करने वाला **(भवेयम्)** होऊं और **(सर्वाः)** सब **(आशाः)** दिशाओं को जीतूं॥३४॥

भावार्थः-अन्न ही सब प्राणियों को बढ़ाता है, अन्न से ही प्राणी सब दिशाओं में भ्रमते हैं, अन्न के विना कुछ भी नहीं कर सकते॥३४॥

सं मा सृजामीत्यस्य देवा ऋषयः। रसविद्याविद्विद्वान् देवता। विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनर्मनुष्याः किं कुर्य्युरित्युपदिश्यते॥

फिर मनुष्य क्या करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

सं मा॑ सृजामि॒ पय॑सा पृथि॒व्याः सं मा॑ सृजाम्य॒द्भिरोष॑धीभिः।
सो॒ऽहं वाज॑ꣳ सनेयमग्ने॥३५॥

सम्। मा। सृ॒जा॒मि॒। पय॑सा। पृ॒थि॒व्याः। सम्। मा। सृ॒जा॒मि॒। अ॒द्भिरित्य॒त्ऽभिः। ओष॑धीभिः। सः। अ॒हम्। वाज॑म्। स॒ने॒य॒म्। अ॒ग्ने॒॥३५॥

पदार्थः-(**सम्**) एकीभावे (**मा**) माम् (**सृजामि**) संबध्नामि (**पयसा**) रसेन (**पृथिव्याः**) (**सम्**) (**मा**) (**सृजामि**) (**अद्भिः**) संसाधितैर्जलैः (**ओषधीभिः**) सोमलतादिभिः (**सः**) (**अहम्**) (**वाजम्**) अन्नम् (**सनेयम्**) संभजेयम् (**अग्ने**) विद्वन्॥३५॥

अन्वयः-हे अग्ने रसविद्याविद्विद्वन्! योऽहं पृथिव्याः पयसा मा संसृजामि, अद्भिरोषधीभिः सह च मा संसृजामि, सोऽहं वाजं सनेयमेवं त्वमप्याचर॥३५॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे मनुष्याः! यथाऽहं वैद्यकशास्त्ररीत्याऽन्नपानादिकं कृत्वा सुखी भवामि, तथा यूयमपि प्रयतध्वम्॥३५॥

पदार्थः-हे (**अग्ने**) रसविद्या के जाननेहारे विद्वन्! जो मैं (**पृथिव्याः**) पृथिवी के (**पयसा**) रस के साथ (**मा**) अपने को (**संसृजामि**) मिलाता हूं वा (**अद्भिः**) अच्छे शुद्ध जल और (**ओषधीभिः**) सोमलता आदि ओषधियों के साथ (**मा**) अपने को (**संसृजामि**) मिलाता हूं, (**सः**) सो (**अहम्**) मैं (**वाजम्**) अन्न का (**सनेयम्**) सेवन करूं, इसी प्रकार तू आचरण कर॥३५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जैसे मैं वैद्यक शास्त्र की रीति से अन्न और पान आदि को करके सुखी होता हूं, वैसे तुम लोग भी प्रयत्न किया करो॥३५॥

पयः पृथिव्यामित्यस्य देवा ऋषयः। रसविद्विद्वान् देवता। आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

मनुष्याः जलरसविदः स्युरित्याह॥

मनुष्य जल के रस को जानने वाले हों, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

पयः॑ पृथि॒व्यां पय॒ऽओष॑धीषु॒ पयो॑ दि॒व्य॒न्तरि॑क्षे॒ पयो॑ धाः।
पय॑स्वतीः प्र॒दिशः॑ सन्तु॒ मह्य॑म्॥३६॥

पयः॑। पृ॒थि॒व्याम्। पयः॑। ओष॑धीषु। पयः॑। दि॒वि। अ॒न्तरि॑क्षे। पयः॑। धा॒ः। पय॑स्वतीः। प्र॒दिश॒ इति॑ प्र॒ऽदिशः॑। स॒न्तु॒। मह्य॑म्॥३६॥

पदार्थः-(**पयः**) जलरसश्च (**पृथिव्याम्**) (**पयः**) (**ओषधीषु**) (**पयः**) (**दिवि**) शुद्धे प्रकाशे (**अन्तरिक्षे**) सूर्यपृथिव्योर्मध्ये (**पयः**) रसम् (**धाः**) दधीथाः (**पयस्वतीः**) पयो बहुरसो विद्यते यासु ताः (**प्रदिशः**) प्रकृष्टा दिशः (**सन्तु**) (**मह्यम्**)॥३६॥

अन्वयः-हे विद्वंस्त्वं पृथिव्यां यत्पय ओषधीषु यत्पयो दिव्यन्तरिक्षे यत्पयो धास्तत्सर्वं पयोऽहमपि धरामि। याः प्रदिशः पयस्वतीस्तुभ्यं सन्तु, ता मह्यमपि भवन्तु॥३६॥

भावार्थः-ये मनुष्या जलादिसंयुक्तेभ्यः पृथिव्यादिभ्यः उत्तमान्नान् रसांश्च संगृह्य खादन्ति पिबन्ति च, तेऽरोगा भूत्वा सर्वासु दिक्षु कार्यं साद्धुं गन्तुमागन्तुं वा शक्नुवन्ति, दीर्घायुषश्च जायन्ते॥३६॥

पदार्थः-हे विद्वान्! तू **(पृथिव्याम्)** पृथिवी पर जिस **(पयः)** जल वा दुग्ध आदि के रस **(ओषधीषु)** ओषधियों में जिस **(पयः)** रस **(दिवि)** शुद्ध निर्मल प्रकाश वा **(अन्तरिक्षे)** सूर्य और पृथिवी के बीच में जिस **(पयः)** रस को **(धाः)** धारण करता है, उस सब **(पयः)** जल वा दुग्ध के रस को मैं भी धारण करूं, जो **(प्रदिशः)** दिशा-विदिशा **(पयस्वतीः)** बहुत रस वाली तेरे लिये **(सन्तु)** हों, वे **(मह्यम्)** मेरे लिये भी हों॥३६॥

भावार्थः-जो मनुष्य बल आदि पदार्थों से युक्त पृथिवी आदि से उत्तम अन्न और रसों का संग्रह करके खाते और पीते हैं, वे नीरोग होकर सब विद्याओं में कार्य की सिद्धि कर तथा जा आ सकते और बहुत आयु वाले होते हैं॥३६॥

देवस्य त्वेत्यस्य देवा ऋषयः। सम्राड् राजा देवता। आर्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनर्मनुष्याः कीदृशं राजानं मन्येरन्नित्युपदिश्यते॥

फिर मनुष्य कैसे को राजा मानें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

दे॒वस्य॑ त्वा सवि॒तुः प्रस॒वे॒ऽश्विनो॑र्बा॒हुभ्यां॑ पू॒ष्णो हस्ता॑भ्याम्।

सर॑स्वत्यै वा॒चो य॒न्तुर्य॒न्त्रेणा॒ग्नेः साम्रा॑ज्येना॒भिषि॑ञ्चामि॥३७॥

दे॒वस्य॑। त्वा॒। स॒वि॒तुः। प्र॒स॒व इति॑ प्र॒ऽस॒वे। अ॒श्विनोः॑। बा॒हुभ्या॒मिति॑ बा॒हुऽभ्या॑म्। पू॒ष्णः। हस्ता॑भ्याम्। सर॑स्वत्यै। वा॒चः। य॒न्तुः। य॒न्त्रेण॑ अग्नेः॑। साम्रा॑ज्ये॒नेति॒ साम्ऽरा॑ज्येन। अ॒भिषि॑ञ्चामीत्य॒भिऽसि॑ञ्चामि॥३७॥

पदार्थः-**(देवस्य)** स्वप्रकाशस्येश्वरस्य **(त्वा)** त्वाम् **(सवितुः)** सकलैश्वर्यप्रापकस्य **(प्रसवे)** प्रसवे जगति **(अश्विनोः)** सूर्याचन्द्रमसोः प्रतापशीतलत्वाभ्यामिव **(बाहुभ्याम्)** भुजाभ्याम् **(पूष्णः)** प्राणस्य धारणाकर्षणाभ्यामिव **(हस्ताभ्याम्)** कराभ्याम् **(सरस्वत्यै)** सरो विज्ञानं विद्यते यस्यास्तस्याः। अत्र षष्ठ्यर्थे चतुर्थी **(वाचः)** वाण्याः **(यन्तुः)** नियन्तुः **(यन्त्रेण)** कलाकौशलतयोत्पादितेन **(अग्नेः)** विद्युदादेः **(साम्राज्येन)** यः भूमेर्मध्ये सम्यक् राजते स सम्राट् तस्य भावेन सार्वभौमत्वेन **(अभिषिञ्चामि)**॥३७॥

अन्वयः-हे विद्वन् राजन्! यथाऽहं त्वा सवितुर्देवस्य प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। सरस्वत्यै वाचो यन्तुरग्नेर्यन्त्रेण साम्राज्येनाभिषिञ्चामि तथा भवान् सुखेन मामभिषिञ्चतु॥३७॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैः सर्वविद्याविद्भिर्भूत्वा त्वा सूर्यादिगुणकर्मसदृशस्वभावो राजा मन्तव्यः॥३७॥

पदार्थः- हे विद्वन् राजन्! जैसे मैं **(त्वा)** आप को **(सवितुः)** सकल ऐश्वर्य की प्राप्ति करानेहारा जो **(देवस्य)** आप ही प्रकाश को प्राप्त परमेश्वर उसके **(प्रसवे)** उत्पन्न किये हुए जगत् में **(अश्विनोः)** सूर्य और चन्द्रमा के प्रताप और शीतलपन के समान **(बाहुभ्याम्)** भुजाओं से **(पूष्णः)** पुष्टि करने वाले प्राण के धारण और खींचने के समान **(हस्ताभ्याम्)** हाथों से **(सरस्वत्यै)** विज्ञान वाली **(वाचः)** वाणी के **(यन्तुः)** नियम करने वाले **(अग्नेः)** बिजुली आदि अग्नि की **(यन्त्रेण)** कारीगरी से उत्पन्न किये हुए **(साम्राज्येन)** सब भूमि के राजपन से **(अभिषिञ्चामि)** अभिषेक करता हूं, वैसे आप सुख से मेरा अभिषेक करें॥३७॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि समस्त विद्या के जाननेहारे होके सूर्य आदि के गुण-कर्म सदृश स्वभाव वाले पुरुष को राजा मानें॥३७॥

ऋताषाडित्यस्य देवा ऋषयः। ऋतुविद्याविद्विद्वान् देवता। विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुना राजा किं कुर्य्यादित्याह॥

फिर राजा क्या करे, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

ऋ॒ता॒षाडृ॒तधा॑मा॒ग्निर्ग॑न्ध॒र्वस्तस्यौष॑धयोऽप्स॒रसो॒ मुदो॒ नाम॑।

स न॑ऽइ॒दं ब्रह्म॑ क्ष॒त्रं पा॑तु॒ तस्मै॒ स्वाहा॒ वाट् ताभ्यः॒ स्वाहा॑॥३८॥

ऋ॒ता॒षाट्। ऋ॒तधा॒मेत्यृ॒तऽधा॑मा। अ॒ग्निः। ग॒न्ध॒र्वः। तस्य॑। ओष॑धयः। अ॒प्स॒रसः॑। मुदः॑। नाम॑। सः। नः॒। इ॒दम्। ब्रह्म॑। क्ष॒त्रम्। पा॒तु॒। तस्मै॑। स्वाहा॑। वाट्। ताभ्यः॑। स्वाहा॑॥३८॥

पदार्थः-(ऋताषाट्) य ऋतं सत्यं व्यवहारं सहते सः **(ऋतधामा)** ऋतं यथार्थं धाम स्थित्यर्थं स्थानं यस्य सः **(अग्निः)** पावकः **(गन्धर्वः)** यो गां पृथिवीं धरति सः **(तस्य) (ओषधयः) (अप्सरसः)** या अप्सु सरन्ति ताः **(मुदः)** मोदन्ते यासु ताः **(नाम)** ख्यातिः **(सः) (नः)** अस्माकम् **(इदम्) (ब्रह्म)** ब्रह्मवित् कुलम् **(क्षत्रम्)** राजन्यकुलम् **(पातु)** रक्षतु **(तस्मै) (स्वाहा)** सत्या वाणी **(वाट्)** येन वहति सः **(ताभ्यः) (स्वाहा)** सत्या क्रिया॥३८॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! य ऋताषाडृतधामा गन्धर्वोऽग्निरिवास्ति, तस्यौषधयोऽप्सरसो मुदो नाम सन्ति, स न इदं ब्रह्म क्षत्रं च पातु, तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहाऽस्तु॥३८॥

भावार्थः-यो जनोऽग्निवच्छत्रुदाहक ओषधिवदानन्दकारी भवेत्, स एव सर्वं राज्यं रक्षितुं शक्नोति॥३८॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो **(ऋताषाट्)** सत्य व्यवहार को सहने वाला **(ऋतधामा)** जिसके ठहरने के लिये ठीक-ठीक स्थान है, वह **(गन्धर्वः)** पृथिवी को धारण करनेहारा **(अग्निः)** आग के समान है, वह **(तस्य)** उसकी **(ओषधयः)** ओषधि **(अप्सरसः)** जो कि जलों में दौड़ती हैं, वे **(मुदः)** जिनमें आनन्द होता है, ऐसे **(नाम)** नाम वाली हैं **(सः)** वह **(नः)** हम लोगों के **(इदम्)** इस **(ब्रह्म)** ब्रह्म को जानने वालों के

कुल और **(क्षत्रम्)** राज्य वा क्षत्रियों के कुल की **(पातु)** रक्षा करे, **(तस्मै)** उसके लिये **(स्वाहा)** सत्य वाणी **(वाट्)** जिससे कि व्यवहारों को यथायोग्य वर्त्ताव में लाता है और **(ताभ्य:)** उक्त उन ओषधियों के लिये **(स्वाहा)** सत्य क्रिया हो॥३८॥

भावार्थ:-जो मनुष्य अग्नि के समान दुष्ट शत्रुओं के कुल को दु:खरूपी अग्नि में जलाने वाला और ओषधियों के समान आनन्द का करने वाला हो, वही समस्त राज्य की रक्षा कर सकता है॥३८॥

सꣳहित इत्यस्य देवा ऋषय:। सूर्यो देवता। भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्द:। धैवत: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

सꣳहितो विश्वसामा सूर्यो गन्धर्वस्तस्य मरीचयोऽप्सरसऽआयुवो नाम।
स नऽइदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्य: स्वाहा॥३९॥

सꣳहित इति सम्ऽहित:। विश्वसामेति विश्वऽसामा। सूर्य:। गन्धर्व:। तस्य। मरीचय:। अप्सरस:। आयुव:। नाम। स:। न:। इदम्। ब्रह्म। क्षत्रम्। पातु। तस्मै। स्वाहा। वाट्। ताभ्य:। स्वाहा॥३९॥

पदार्थ:-(संहित:) सर्वैर्भूतैर्द्रव्यै: सत्पुरुषैर्वा सह मिलित: **(विश्वसामा)** विश्वं सर्वं साम सन्निधौ समीपे यस्य स: **(सूर्य:)** सविता **(गन्धर्व:)** यो गां पृथिवीं धरति स: **(तस्य) (मरीचय:)** किरणा:। **मृकणिभ्यामीचि:॥** (उण०४.१७०) **(अप्सरस:)** या अप्स्वन्तरिक्षे सरन्ति गच्छन्ति ता: **(आयुव:)** समन्तात् संयोजका वियोजकाश्च **(नाम)** ख्याति: **(स:) (न:) (इदम्)** वर्त्तमानम् **(ब्रह्म)** विद्वत्कुलम् **(क्षत्रम्)** शूरवीरकुलम् **(पातु)** रक्षतु **(तस्मै) (स्वाहा)** सत्यां क्रियाम् **(वाट्)** वहनम् **(ताभ्य:)** अप्सरोभ्य: **(स्वाहा)** सुष्ठु क्रियया॥३९॥

अन्वय:-हे विद्वन्! भवान् य: संहितो सूर्यो गन्धर्वोऽस्ति, तस्य मरीचयोऽप्सरस आयुवो नाम सन्ति, ताभ्यो विश्वसामा स्वाहा कार्यसिद्धिं करोतु, यस्त्वं तस्मै स्वाहा प्रयुङ्क्षे, स भवान् न इदं ब्रह्म क्षत्रं च वाट् पातु॥३९॥

भावार्थ:-मनुष्या: सूर्यकिरणान् युक्त्या सेवित्वा विद्याशौर्ये वर्द्धयित्वा स्वप्रयोजनं साधयेयु:॥३९॥

पदार्थ:-हे विद्वन्! आप जो **(संहित:)** सब मूर्तिमान् वस्तु वा सत्पुरुषों के साथ मिला हुआ **(सूर्य:)** सूर्य **(गन्धर्व:)** पृथिवी को धारण करने वाला है **(तस्य)** उसकी **(मरीचय:)** किरणें **(अप्सरस:)** जो अन्तरिक्ष में जाती हैं, वे **(आयुव:)** सब और से संयोग और वियोग करने वाली **(नाम)** प्रसिद्ध हैं अर्थात् जल आदि पदार्थों का संयोग करती और छोड़ती हैं **(ताभ्य:)** उन अन्तरिक्ष में जाने-आने वाली किरणों के लिये **(विश्वसामा)** जिसके समीप सामवेद विद्यमान वह आप **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया से कार्य सिद्धि करो, जिससे वे यथायोग्य काम में आवें, जो आप **(तस्मै)** उस सूर्य के लिये **(स्वाहा)** सत्य क्रिया को अच्छे

प्रकार युक्त करते हो, **(सः)** वह आप **(नः)** हमारे **(इदम्)** इस **(ब्रह्म)** विद्वानों और **(क्षत्रम्)** शूरवीरों के कुल तथा **(वाट्)** कामों के निर्वाह करने की **(पातु)** रक्षा करो॥३९॥

भावार्थः-मनुष्य सूर्य की किरणों का युक्ति के साथ सेवन कर, विद्या और शूरवीरता को बढ़ा के अपने प्रयोजन को सिद्ध करें॥३९॥

सुषुम्ण इत्यस्य देवा ऋषयः। चन्द्रमा देवता। निचृदार्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनर्मनुष्यैश्चन्द्रादिभ्य उपकारो ग्राह्य इत्याह॥

फिर मनुष्यों को चन्द्र आदि लोकों से उपकार लेना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वस्तस्य नक्षत्राण्यप्सरसो भेकुरयो नाम।
स नऽइदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा॥४०॥

सुषुम्णः। सुसुम्न इति सुऽसुम्नः। सूर्यरश्मिरिति सूर्यऽरश्मिः। चन्द्रमाः। गन्धर्वः। तस्य। नक्षत्राणि। अप्सरसः। भेकुरयः। नाम। सः। नः। इदम्। ब्रह्म। क्षत्रम्। पातु। तस्मै। स्वाहा। वाट्। ताभ्यः। स्वाहा॥४०॥

पदार्थः-**(सुषुम्णः)** सुशोभनं सुम्नं सुखं यस्मात् सः **(सूर्य्यरश्मिः)** सूर्यस्य रश्मयः किरणा दीप्तयो यस्मिन् सः **(चन्द्रमाः)** यस्सर्वान् चन्दत्याह्लादयति सः **(गन्धर्वः)** यो गाः सूर्यकिरणान् धरति सः **(तस्य)** **(नक्षत्राणि)** अश्विन्यादीनि **(अप्सरसः)** आकाशगताः किरणाः **(भेकुरयः)** या भां दीप्तिं कुर्वन्ति ताः। पृषोदरादिनाऽभीष्टरूपसिद्धिः **(नाम)** प्रसिद्धिः **(सः)** **(नः)** अस्मभ्यम् **(इदम्)** **(ब्रह्म)** अध्यापककुलम् **(क्षत्रम्)** दुष्टनाशकं कुलम् **(पातु)** रक्षतु **(तस्मै)** **(स्वाहा)** **(वाट्)** **(ताभ्यः)** **(स्वाहा)**॥४०॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यः सूर्यरश्मिः सुषुम्णो गन्धर्वश्चन्द्रमा अस्ति, यास्तस्य नक्षत्राण्यप्सरसो भेकुरयो नाम सन्ति, स यथा न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तथा विधाय तस्मै वाट् स्वाहा ताभ्यः स्वाहा युष्माभिः संप्रयोज्या॥४०॥

भावार्थः-मनुष्यैश्चन्द्रादिभ्योऽपि तद्विद्यया सुखं साधनीयम्॥४०॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो **(सूर्य्यरश्मिः)** सूर्य की किरणों वाला **(सुषुम्णः)** जिससे उत्तम सुख होता और **(गन्धर्वः)** जो सूर्य की किरणों को धारण किये है, वह **(चन्द्रमाः)** सब को आनन्दयुक्त करने वाला चन्द्रलोक है **(तस्य)** उसके जो **(नक्षत्राणि)** अश्विनी आदि नक्षत्र और **(अप्सरसः)** आकाश में विद्यमान किरणें **(भेकुरयः)** प्रकाश को करने वाली **(नाम)** प्रसिद्ध हैं, वे चन्द्र की अप्सरा हैं **(सः)** वह जैसे **(नः)** हम लोगों के **(इदम्)** इस **(ब्रह्म)** पढ़ाने वाले ब्राह्मण और **(क्षत्रम्)** दुष्टों के नाश करनेहारे क्षत्रियकुल की **(पातु)** रक्षा करे **(तस्मै)** उक्त उस प्रकार के चन्द्रलोक के लिये **(वाट्)** कार्यनिर्वाहपूर्वक **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया और **(ताभ्यः)** उन किरणों के लिये **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया तुम लोगों को प्रयुक्त करनी चाहिये॥४०॥

भावार्थः-मनुष्यों को चन्द्र आदि लोकों से भी उनकी विद्या से सुख सिद्ध करना चाहिये॥४०॥

इषिर इत्यस्य देवा ऋषयः। वातो देवता। ब्राह्म्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

पुनर्मनुष्यैर्वातादिभ्य उपकारा ग्राह्या इत्याह॥

फिर मनुष्यों को पवन आदि से उपकार लेने चाहियें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

इ॒षि॒रो वि॒श्वव्य॑चा॒ वातो॑ गन्ध॒र्वस्तस्यापो॑ऽअप्स॒रस॒ऽऊर्जो॒ नाम॑।

स न॑ऽइ॒दं ब्रह्म॑ क्ष॒त्रं पा॑तु॒ तस्मै॒ स्वाहा॒ वाट् ताभ्यः॒ स्वाहा॑॥४१॥

इ॒षि॒रः। वि॒श्वव्य॑चाः। वात॑ः। ग॒न्ध॒र्वः। तस्य॑। आप॑ः। अ॒प्स॒रस॑ः। ऊर्ज॑ः। नाम॑। सः। न॒ः। इ॒दम्। ब्रह्म॑। क्ष॒त्रम्। पा॒तु। तस्मै॑। स्वाहा॑। वाट्। ताभ्य॑ः। स्वाहा॑॥४१॥

पदार्थः-(**इषिरः**) येनेच्छन्ति सः (**विश्वव्यचाः**) विश्वस्मिन् सर्वस्मिञ्जगति व्यचो व्याप्तिर्यस्य सः (**वातः**) वाति गच्छतीति (**गन्धर्वः**) यः पृथिवीं किरणांश्च धरति सः (**तस्य**) (**आपः**) जलानि प्राणा वा (**अप्सरसः**) या अन्तरिक्षे जलादौ च सरन्ति गच्छन्ति ताः (**ऊर्जः**) बलपराक्रमप्रदाः (**नाम**) संज्ञा (**सः**) (**नः**) अस्मभ्यम् (**इदम्**) (**ब्रह्म**) सर्वेषां सत्योपदेशेन वर्द्धकं ब्रह्मकुलम् (**क्षत्रम्**) विद्यावर्धकं राजकुलम् (**पातु**) रक्षतु (**तस्मै**) (**स्वाहा**) (**वाट्**) (**ताभ्यः**) (**स्वाहा**)॥४१॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! य इषिरो विश्वव्यचा गन्धर्वो वातोऽस्ति, तस्य या आपोऽप्सरस ऊर्जो नाम वर्त्तन्ते, यथा स न इदं ब्रह्म क्षत्रं च पातु, तथा यूयमाचरत, तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा संप्रयुङ्ग्ध्वम्॥४१॥

भावार्थः-शरीरे यावन्तश्चेष्टाबलपराक्रमा जायन्ते, तावन्तो वायोः सकाशादेव जायन्ते, वायव एव प्राणरूपा गन्धर्वाः सर्वधराः सन्तीति मनुष्यैर्वेद्यम्॥४१॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो (**इषिरः**) जिससे इच्छा करते वा (**विश्वव्यचाः**) जिसकी सब संसार में व्याप्ति है, वह (**गन्धर्वः**) पृथिवी और किरणों को धारण करता (**वातः**) सब जगह भ्रमण करने वाला पवन है (**तस्य**) उसके जो (**आपः**) जल और प्राण, अपान, उदान, समान, व्यान आदि भाग हैं, वे (**अप्सरसः**) अन्तरिक्ष जल में जाने-आने और (**ऊर्जः**) बल-पराक्रम के देने वाले (**नाम**) प्रसिद्ध हैं, जैसे (**सः**) वह (**नः**) हम लोगों के लिये (**इदम्**) इस (**ब्रह्म**) सत्य के उपदेश से सब की वृद्धि करने वाले ब्राह्मणकुल तथा (**क्षत्रम्**) विद्या के बढ़ाने वाले राजकुल की (**पातु**) रक्षा करे, वैसे तुम लोग भी आचरण करो और (**तस्मै**) उक्त पवन के लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया की (**वाट्**) प्राप्ति तथा (**ताभ्यः**) उन जल आदि के लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया वा उत्तम वाणी को युक्त करो॥४१॥

भावार्थः-शरीर में जितनी चेष्टा और बल-पराक्रम उत्पन्न होते हैं, वे सब पवन से होते हैं और पवन ही प्राणरूप और जल गन्धर्व अर्थात् सबको धारण करने वाले हैं, यह मनुष्यों को जानना चाहिये॥४१॥

भुज्युरित्यस्य देवा ऋषयः। यज्ञो देवता। विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

मनुष्या यज्ञानुष्ठानं कुर्वन्त्वित्याह॥

मनुष्य लोग यज्ञ का अनुष्ठान करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वस्तस्य दक्षिणाऽअप्सरसं स्तावा नाम।

स नऽइदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा॥४२॥

भुज्युः। सुपर्ण इति सुऽपर्णः। यज्ञः। गन्धर्वः। तस्य। दक्षिणाः। अप्सरसः। स्तावाः। नाम। सः। नः। इदम्। ब्रह्म। क्षत्रम्। पातु। तस्मै। स्वाहा। वाट्। ताभ्यः। स्वाहा॥४२॥

पदार्थः-(**भुज्युः**) भुज्यन्ते सुखानि यस्मात् सः (**सुपर्णः**) शोभनानि पर्णानि पालनानि यस्मात् सः (**यज्ञः**) य इज्यते संगम्यते सः (**गन्धर्वः**) यो गां वाणीं धरति सः (**तस्य**) (**दक्षिणाः**) दक्षन्ते दीयन्ते सुपात्रेभ्यस्ताः (**अप्सरसः**) या अप्सु प्राणेषु सरन्ति प्राप्नुवन्ति ताः (**स्तावाः**) या स्तूयन्ते प्रशस्यन्ते ताः (**नाम**) प्रसिद्धौ (**सः**) (**नः**) अस्मभ्यम् (**इदम्**) (**ब्रह्म**) ब्राह्मणं विद्वांसम् (**क्षत्रम्**) चक्रवर्त्तिनं राजानम् (**पातु**) (**तस्मै**) (**स्वाहा**) (**वाट्**) (**ताभ्यः**) (**स्वाहा**)॥४२॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यो भुज्युः सुपर्णो गन्धर्वो यज्ञोऽस्ति, तस्य या दक्षिणा अप्सरसः स्तावा नाम सन्ति, स यथा न इदं ब्रह्म क्षत्रं च पातु, तथा यूयमप्यनुतिष्ठत, तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा च प्रयुङ्ग्ध्वम्॥४२॥

भावार्थः-ये मनुष्या अग्निहोत्रादियज्ञान् प्रत्यहं कुर्वन्ति, ते सर्वस्य संसारस्य सुखानि वर्द्धयन्तीति बोध्यम्॥४२॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो (**भुज्युः**) सुखों के भोगने और (**सुपर्णः**) उत्तम-उत्तम पालना का हेतु (**गन्धर्वः**) वाणी को धारण करने वाला (**यज्ञः**) सङ्गति करने योग्य यज्ञकर्म है (**तस्य**) उसकी (**दक्षिणाः**) जो सुपात्र अच्छे-अच्छे धर्मात्मा विद्वानों को दक्षिणा दी जाती हैं, वे (**अप्सरसः**) प्राणों में पहुँचने वाली (**स्तावाः**) जिनकी प्रशंसा की जाती है, ऐसी (**नाम**) प्रसिद्ध हैं, (**सः**) वह जैसे (**नः**) हमारे लिये (**इदम्**) इस (**ब्रह्म**) विद्वान्, ब्राह्मण और (**क्षत्रम्**) चक्रवर्ती राजा की (**पातु**) रक्षा करे, वैसा तुम लोग भी अनुष्ठान करो। (**तस्मै**) उसके लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया की (**वाट्**) प्राप्ति (**ताभ्यः**) उक्त दक्षिणाओं के लिये (**स्वाहा**) उत्तम रीति से उत्तम क्रिया को संयुक्त करो॥४२॥

भावार्थः-जो मनुष्य अग्निहोत्र आदि यज्ञों को प्रतिदिन करते हैं, वे समस्त संसार के सुखों को बढ़ाते हैं, यह जानना चाहिये॥४२॥

प्रजापतिरित्यस्य देवा ऋषयः। विश्वकर्मा देवता। विराडार्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

नृजनैः कथं भवितव्यमित्युपदिश्यते॥

फिर मनुष्य कैसे हों, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

प्रजापतिर्विश्वकर्मा मनो गन्धर्वस्तस्यऽऋक्सामान्यप्सरसऽएष्टयो नाम।

स नऽइदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा॥४३॥

प्रजापतिरिति प्रजाऽपतिः। विश्वकर्मेति विश्वऽकर्म्मा। मनः। गन्धर्वः। तस्य। ऋक्सामानीत्यृक्ऽसामानि। अप्सरसः। एष्टय इत्याऽइष्टयः। नाम। सः। नः। इदम्। ब्रह्म। क्षत्रम्। पातु। तस्मै। स्वाहा। वाट्। ताभ्यः। स्वाहा॥४३॥

पदार्थः-(**प्रजापतिः**) प्रजायाः स्वामी (**विश्वकर्मा**) विश्वानि सर्वाणि कर्माणि यस्य सः (**मनः**) ज्ञानसाधनमन्तःकरणम् (**गन्धर्वः**) येन वागादीन् धरति सः (**तस्य**) (**ऋक्सामानि**) ऋक् च सामानि च तानि (**अप्सरसः**) या अप्सु व्याप्येषु प्राणादिपदार्थेषु सरन्ति गच्छन्ति ताः (**एष्टयः**) समन्तादिष्टयो विद्वत्पूजा सत्सङ्गो विद्यादानं च याभ्यस्ताः (**नाम**) संज्ञा (**सः**) (**नः**) (**इदम्**) (**ब्रह्म**) वेदम् (**क्षत्रम्**) धनुर्वेदम् (**पातु**) (**तस्मै**) (**स्वाहा**) (**वाट्**) (**ताभ्यः**) (**स्वाहा**)॥४३॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यूयं यो विश्वकर्मा प्रजापतिर्मनुष्योऽस्ति, तस्य मनो गन्धर्व ऋक्सामान्यप्सरस एष्टयो नाम सन्ति, यथा स न इदं ब्रह्म क्षत्रं च पातु, तस्मै स्वाहा सत्या वाणी वाट् धर्मप्रापणं ताभ्यः स्वाहा सत्यया क्रिययोपकारं च कुरुत॥४३॥

भावार्थः-ये मनुष्याः पुरुषार्थिनो मनस्विनो वेदविदो जायन्ते, त एव जगद्भूषणाः सन्तीति वेद्यम्॥४३॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम जो (**विश्वकर्मा**) समस्त कामों का हेतु और (**प्रजापतिः**) जो प्रजा का पालने वाला स्वामी मनुष्य है, (**तस्य**) उसके (**गन्धर्वः**) जिससे वाणी आदि को धारण करता है (**मनः**) ज्ञान की सिद्धि करनेहारा मन (**ऋक्सामानि**) ऋग्वेद और सामवेद के मन्त्र (**अप्सरसः**) हृदयाकाश में व्याप्त प्राण आदि पदार्थों में जाती हुई क्रिया (**एष्टयः**) जिनसे विद्वानों का सत्कार, सत्य का सङ्ग और विद्या का दान होता है, ये सब (**नाम**) प्रसिद्ध हैं, जैसे (**सः**) वह (**नः**) हम लोगों के लिये (**इदम्**) इस (**ब्रह्म**) वेद और (**क्षत्रम्**) धनुर्वेद की (**पातु**) रक्षा करे, वैसे (**तस्मै**) उसके लिये (**स्वाहा**) सत्य वाणी (**वाट्**) धर्म की प्राप्ति और (**ताभ्यः**) उन उक्त पदार्थों के लिये (**स्वाहा**) सत्य क्रिया से उपकार को करो॥४३॥

भावार्थः-जो मनुष्य पुरुषार्थी, विचारशील, वेदविद्या के जानने वाले होते हैं, वे ही संसार के भूषण होते हैं॥४३॥

स न इत्यस्य देवा ऋषयः। प्रजापतिर्देवता। भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

स नो भुवनस्य पते प्रजापते यस्य तऽउपरि गृहा यस्य वेह।
अस्मै ब्रह्मणेऽस्मै क्षत्राय महि शर्म यच्छ स्वाहा॥४४॥

सः। नः। भुवनस्य। पते। प्रजापत इति प्रजाऽपते। यस्य। ते। उपरि। गृहा। यस्य। वा। इह। अस्मै। ब्रह्मणे। अस्मै। क्षत्राय। महि। शर्म। यच्छ। स्वाहा॥४४॥

पदार्थः-(**सः**) विद्वान् (**नः**) अस्माकम् (**भुवनस्य**) गृहस्य (**पते**) स्वामिन् (**प्रजापते**) प्रजापालक (**यस्य**) (**ते**) तव (**उपरि**) ऊर्ध्वमुत्कृष्टे व्यवहारे (**गृहाः**) ये गृह्णन्ति ते गृहस्थादयः (**यस्य**) (**वा**) (**इह**) अस्मिन् संसारे (**अस्मै**) (**ब्रह्मणे**) वेदेश्वरविदे जनाय (**अस्मै**) (**क्षत्राय**) राजधर्मनिष्ठाय (**महि**) महत् (**शर्म**) गृहं सुखं वा (**यच्छ**) देहि (**स्वाहा**) सत्यया क्रियया॥४४॥

अन्वयः-हे भुवनस्य पते प्रजापते! इह यस्य ते तवोपरि गृहा वा यस्य सर्वाः शुभाः क्रियाः सन्ति, स त्वं नोऽस्मै ब्रह्मणेऽस्मै क्षत्राय स्वाहा महि शर्म यच्छ॥४४॥

भावार्थः-ये मनुष्या विद्वत्कुलं राजकुलं च नित्यं वर्द्धयन्ति, ते महत्सुखमाप्नुवन्ति॥४४॥

पदार्थः-हे (**भुवनस्य**) घर के (**पते**) स्वामी (**प्रजापते**) प्रजा की रक्षा करने वाले पुरुष! (**इह**) इस संसार में (**यस्य**) जिस (**ते**) तेरे (**उपरि**) अति उच्चता को देनेहारे उत्तम व्यवहार में (**गृहाः**) पदार्थों के ग्रहण करनेहारे गृहस्थ मनुष्य आदि (**वा**) वा (**यस्य**) जिसकी सब उत्तम क्रिया हैं (**सः**) सो तू (**नः**) हमारे (**अस्मै**) इस (**ब्रह्मणे**) वेद और ईश्वर के जाननेहारे मनुष्य तथा (**अस्मै**) इस (**क्षत्राय**) राजधर्म में निरन्तर स्थित क्षत्रिय के लिये (**स्वाहा**) सत्य क्रिया से (**महि**) बहुत (**शर्म**) घर और सुख को (**यच्छ**) दे॥४४॥

भावार्थः-जो मनुष्य विद्वानों और क्षत्रियों के कुल को नित्य बढ़ाते हैं, वे अत्यन्त सुख को प्राप्त होते हैं॥४४॥

समुद्रोऽसीत्यस्य शुनःशेप ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। अष्टिश्छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

समुद्रोऽसि नभस्वानार्द्रदानुः शम्भूर्मयोभूरभि मा वाहि स्वाहा मारुतोऽसि मरुतां गणः शम्भूर्मयोभूरभि मा वाहि स्वाहाऽवस्यूरसि दुवस्वाञ्छम्भूर्मयोभूरभि मा वाहि स्वाहा॥४५॥

स॒मु॒द्रः। अ॒सि॒। नभ॑स्वान्। आ॒र्द्रदा॑नु॒रित्या॒र्द्रऽदा॑नुः। श॒म्भूरिति॑ श॒म्ऽभूः। म॒यो॒भूरिति॑ म॒यः॒ऽभूः। अ॒भि। मा। वा॒हि॒। स्वाहा॑। मा॒रु॒तः। अ॒सि॒। म॒रुता॑म्। ग॒णः। श॒म्भूरिति॑ श॒म्ऽभूः। म॒यो॒भूरिति॑ म॒यः॒ऽभूः। अ॒भि। मा। वा॒हि॒। स्वाहा॑। अ॒व॒स्यूः। अ॒सि॒। दुव॑स्वान्। श॒म्भूरिति॑ श॒म्ऽभूः। म॒यो॒भूरिति॑ म॒यः॒ऽभूः। अ॒भि। मा। वा॒हि॒। स्वाहा॑॥४५॥

पदार्थः-(**समुद्रः**) समुद्द्रवन्त्यापो यस्मिन् सः (**असि**) (**नभस्वान्**) बहु नभो जलं विद्यते यस्मिन् सः। **नभ इत्युदकनामसु पठितम्॥** (निघं०१.१२) (**आर्द्रदानुः**) य आर्द्राणां गुणानां दानुर्दाता सः (**शंभूः**) यः शं सुखं भावयति सः (**मयोभूः**) यो मय आनन्दं भावयति सः (**अभि**) आभिमुख्ये (**मा**) माम् (**वाहि**) प्राप्नुहि (**स्वाहा**) सत्यया क्रियया (**मारुतः**) मरुतां पवनानामयं सम्बन्धी ज्ञाता (**असि**) (**मरुताम्**) विदुषाम् (**गणः**) समूहः (**शम्भूः**) शं कल्याणं भावयति सः (**मयोभूः**) सुखं भावुकः (**अभि**) (**मा**) (**वाहि**) (**स्वाहा**) (**अवस्यूः**) आत्मनोऽव इच्छुः (**असि**) (**दुवस्वान्**) दुवः प्रशस्तं परिचरणं विद्यते यस्य सः (**शंभूः**) (**मयोभूः**) (**अभि**) (**मा**) (**वाहि**) (**स्वाहा**)॥४५॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यस्त्वं नभस्वानार्द्रदानुः समुद्र इवासि स स्वाहा शंभूर्मयोभूः सन्माभिवाहि, यस्त्वं मारुतो मरुतां गण इवासि स स्वाहा शम्भूर्मयोभूस्सन्माभिवाहि, यस्त्वं दुवस्वानवस्यूरिवासि स तस्मात् स्वाहा शम्भूर्मयोभूः सन्माभिवाहि॥४५॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये मनुष्या समुद्रवद्गम्भीरा रत्नाढ्या ऋजवो वायुवद् बलिष्ठा विद्वद्वत् परोपकारिणः स्वात्मवत् सर्वेषां रक्षकास्सन्ति, त एव सर्वेषां कल्याणं सुखं च कर्तुं शक्नुवन्ति॥४५॥

पदार्थः-हे विद्वन्! जो तू (**नभस्वान्**) जिसके समीप जल और (**आर्द्रदानुः**) शीतल गुणों का देने वाला और (**समुद्रः**) जिसमें उलट-पलट जल गिरते उस समुद्र के समान (**असि**) है, वह (**स्वाहा**) सत्य क्रिया से (**शम्भूः**) उत्तम सुख और (**मयोभूः**) सामान्य सुख उत्पन्न कराने वाला होता हुआ (**मा**) मुझको (**अभि, वाहि**) सब ओर से प्राप्त हो तू (**मारुतः**) पवनों का सम्बन्धी जाननेहारा (**मरुताम्**) विद्वानों के (**गणः**) समूह के समान (**असि**) है, वह (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया से (**शम्भूः**) विशेष परजन्म के सुख और (**मयोभूः**) इस जन्म में सामान्य सुख का उत्पन्न करने वाला होता हुआ (**मा**) मुझ को (**अभि, वाहि**) सब ओर से प्राप्त हो, जो तू (**दुवस्वान्**) प्रशंसित सत्कार से युक्त (**अवस्यूः**) अपनी रक्षा चाहने वाले के समान (**असि**) है, वह (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया से (**शम्भूः**) विशेष सुख और (**मयोभूः**) सामान्य अपने सुख का उत्पन्न करनेहारा होता हुआ (**मा**) मुझ को (**अभि, वाहि**) सब ओर से प्राप्त हो॥४५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य समुद्र के समान गम्भीर और रत्नों से युक्त, कोमल पवन के तुल्य बलवान्, विद्वानों के तुल्य परोपकारी और अपने आत्मा के तुल्य सब की रक्षा करते हैं, वे ही सब के कल्याण और सुखों को कर सकते हैं॥४५॥

यास्त इत्यस्य शुनःशेप ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनर्विदुषा किं कर्त्तव्यमित्याह॥

फिर विद्वान् को क्या करना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

यास्ते॑ अग्ने॒ सूर्ये॒ रुचो॒ दिव॑मात॒न्वन्ति॑ र॒श्मिभिः॑।

ताभि॑र्नोऽअ॒द्य सर्वा॑भी रु॒चे जना॑य नस्कृधि॥४६॥

याः। ते॒। अ॒ग्ने॒। सूर्ये॑। रुचः॑। दिव॑म्। आ॒त॒न्वन्तीत्या॑ऽत॒न्वन्ति॑। र॒श्मिभि॒रिति॑ र॒श्मिऽभिः॑। ताभिः॑। न॒ः। अ॒द्य। सर्वा॑भिः। रु॒चे। जना॑य। न॒ः। कृ॒धि॒॥४६॥

पदार्थः-**(याः)** **(ते)** तव **(अग्ने)** परमेश्वर विद्वन् वा **(सूर्ये)** सवितरि प्राणे वा **(रुचः)** दीप्तयः प्रीतयो वा **(दिवम्)** प्रकाशम् **(आतन्वन्ति)** सर्वतो विस्तृणन्ति **(रश्मिभिः)** **(ताभिः)** रुग्भिः **(नः)** अस्मान् **(अद्य)** **(सर्वाभिः)** **(रुचे)** प्रीतिकराय **(जनाय)** **(नः)** अस्मान् **(कृधि)** कुरु॥४६॥

अन्वयः-हे अग्ने विद्वन्! याः सूर्ये रुचः सन्ति, या रश्मिभिर्दिवमातन्वन्ति, ताभिः सर्वाभिस्ते रुग्भिरद्य नः संयोजय, रुचे जनाय च नस्कृधि॥४६॥

भावार्थः-अत्र श्लेषालङ्कारः। यथा परमेश्वरः सूर्यादीनां प्रकाशकानामपि प्रकाशकोऽस्ति, तथाऽनूचानो विद्वान् विदुषामपि विद्याप्रदो भवति, यथेश्वरोऽत्र जगति सर्वेषां सत्ये रुचिमसत्येऽरुचिं जनयति, तथा विद्वानप्याचरेत्॥४६॥

पदार्थः-हे **(अग्ने)** परमेश्वर वा विद्वन्! **(याः)** जो **(सूर्ये)** सूर्य वा प्राण में **(रुचः)** दीप्ति वा प्रीति हैं और जो **(रश्मिभिः)** अपनी किरणों से **(दिवम्)** प्रकाश को **(आतन्वन्ति)** सब ओर से फैलाती हैं, **(ताभिः)** उन **(सर्वाभिः)** सब **(ते)** अपनी दीप्ति वा प्रीतियों से **(अद्य)** आज **(नः)** हम लोगों को संयुक्त करो और **(रुचे)** प्रीति करनेहारे **(जनाय)** मनुष्य के अर्थ **(नः)** हम लोगों को **(कृधि)** नियत करो॥४६॥

भावार्थः-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जैसे परमेश्वर सूर्य आदि प्रकाश करनेहारे लोकों का भी प्रकाश करनेहारा है, वैसे सब शास्त्र को यथावत् कहने वाला विद्वान् विद्वानों को भी विद्या देनेहारा होता है। जैसे ईश्वर इस संसार में सब प्राणियों की सत्य में रुचि और असत्य में अरुचि को उत्पन्न करता है, वैसा विद्वान् भी आचरण करे॥४६॥

या व इत्यस्य शुनःशेप ऋषिः। बृहस्पतिर्देवता। आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

या वो॑ दे॒वाः सूर्ये॒ रुचो॒ गोष्वश्वे॑षु॒ या रुचः॑।

इन्द्रा॑ग्नी॒ ताभि॒ः सर्वा॑भी॒ रुचं॑ नो धत्त बृहस्पते॥४७॥

याः। वः। देवाः। सूर्य्ये। रुचः। गोषु। अश्वेषु। याः। रुचः। इन्द्राग्नी। ताभिः। सर्वाभिः। रुचम्। नः। धत्त। बृहस्पते॥४७॥

पदार्थः-(**याः**) (**वः**) युष्माकम् (**देवाः**) विद्वांसः (**सूर्ये**) चराचरात्मनि जगदीश्वरे (**रुचः**) प्रीतयः (**गोषु**) किरणेन्द्रियेषु दुग्धादिदात्रीषु वा (**अश्वेषु**) वह्नितुरङ्गादिषु (**याः**) (**रुचः**) प्रीतयः (**इन्द्राग्नी**) इन्द्रः प्रसिद्धो विद्युदग्निः पावकश्च (**ताभिः**) (**सर्वाभिः**) (**रुचम्**) प्रीतिम् (**नः**) अस्माकं मध्ये (**धत्त**) धरत (**बृहस्पते**) बृहतां पदार्थानां पते पालकेश्वर॥४७॥

अन्वयः-हे बृहस्पतेः। देवा या वस्सूर्ये रुचो या गोष्वश्वेषु रुचः सन्ति, या वैतेष्विन्द्राग्नी वर्त्तेते, तौ च ताभिस्सर्वाभी रुग्भिर्नो रुचं धत्त॥४७॥

भावार्थः-अत्र श्लेषालङ्कारः। यथा परमेश्वरो गवादिपालने पदार्थविद्यायां च सर्वान् मनुष्यान् प्रेरयति, तथैव विद्वांसोऽप्याचरेयुः॥४७॥

पदार्थः-हे (**बृहस्पते**) बड़े-बड़े पदार्थों की पालना करनेहारे ईश्वर और (**देवाः**) विद्वान् मनुष्यो! (**याः**) जो (**वः**) तुम सबों की (**सूर्य्ये**) चराचर में व्याप्त परमेश्वर में अर्थात् ईश्वर की अपने में और तुम विद्वानों की ईश्वर में (**रुचः**) प्रीति हैं वा (**याः**) जो इन (**गोषु**) किरण, इन्द्रिय और दुग्ध देने वाली गौ और (**अश्वेषु**) अग्नि तथा घोड़ा आदि में (**रुचः**) प्रीति हैं वा जो इन में (**इन्द्राग्नी**) प्रसिद्ध बिजुली और आग वर्त्तमान हैं, वे भी (**ताभिः**) उन (**सर्वाभिः**) सब प्रीतियों से (**नः**) हम लोगों में (**रुचम्**) प्रीति को (**धत्त**) स्थापन करो॥४७॥

भावार्थः-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जैसे परमेश्वर गौ आदि की रक्षा और पदार्थविद्या में सब मनुष्यों को प्रेरणा देता है, वैसे ही विद्वान् लोग भी आचरण किया करें॥४७॥

रुचन्न इत्यस्य शुनःशेप ऋषिः। बृहस्पतिर्देवता। भुरगार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचꣳ राजसु नस्कृधि।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम्॥४८॥

रुचम्। नः। धेहि। ब्राह्मणेषु। रुचम्। राजस्विति राजऽसु। नः। कृधि। रुचम्। विश्येषु। शूद्रेषु। मयि। धेहि। रुचा। रुचम्॥४८॥

पदार्थः-(**रुचम्**) प्रेम (**नः**) अस्माकम् (**धेहि**) धर (**ब्राह्मणेषु**) ब्रह्मवित्सु (**रुचम्**) प्रीतिम् (**राजसु**) क्षत्रियेषु राजपुत्रेषु (**नः**) अस्माकम् (**कृधि**) कुरु (**रुचम्**) (**विश्येषु**) विक्षु प्रजासु भवेषु वणिग्जनेषु (**शूद्रेषु**) सेवकेषु (**मयि**) (**धेहि**) (**रुचा**) प्रीत्या (**रुचम्**) प्रीतिम्॥४८॥

अन्वयः-हे जगदीश्वर वा विद्वँस्त्वं नो ब्राह्मणेषु रुचा रुचं धेहि, नो राजसु रुचा रुचं कृधि, विश्येषु शूद्रेषु रुचा रुचं मयि च रुचा रुचं धेहि॥४८॥

भावार्थः-अत्र श्लेषालङ्कारः। यथा परमेश्वरः पक्षपातं विहाय ब्राह्मणादिवर्णेषु समानां प्रीतिं करोति, तथैव विद्वांसोऽपि तुल्यां प्रीतिं कुर्य्युः। ये हीश्वरगुणकर्मस्वभावाद् विरुद्धा वर्त्तन्ते, ते सर्वे नीचास्तिरस्करणीया भवन्ति॥४८॥

पदार्थः-हे जगदीश्वर वा विद्वन्! आप **(नः)** हम लोगों के **(ब्राह्मणेषु)** ब्रह्मवेत्ता विद्वानों में **(रुचा)** प्रीति से **(रुचम्)** प्रीति को **(धेहि)** धरो, स्थापन करो **(नः)** हम लोगों के **(राजसु)** राजपूत क्षत्रियों में प्रीति से **(रुचम्)** प्रीति को **(कृधि)** करो **(विश्येषु)** प्रजाजनों में हुए वैश्यों में तथा **(शूद्रेषु)** शूद्रों में प्रीति से **(रुचम्)** प्रीति को और **(मयि)** मुझ में भी प्रीति से **(रुचम्)** प्रीति को **(धेहि)** स्थापन करो॥४८॥

भावार्थः-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जैसे परमेश्वर पक्षपात को छोड़ ब्राह्मणादि वर्णों में समान प्रीति करता है, वैसे ही विद्वान् लोग भी समान प्रीति करें। जो ईश्वर के गुण, कर्म और स्वभाव से विरुद्ध वर्त्तमान हैं, वे सब नीच और तिरस्कार करने योग्य होते हैं॥४८॥

तत्त्वेत्यस्य शुनःशेप ऋषिः। बृहस्पतिर्देवता। निचृच्छक्वरी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

मनुष्यैर्विद्वद्वदाचरणीयमित्याह॥

मनुष्यों को विद्वानों के तुल्य आचरण करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

तत्त्वा॑ यामि॒ ब्रह्म॑णा॒ वन्द॑मान॒स्तदा शा॑स्ते॒ यज॑मानो ह॒विर्भिः॑।
अहे॑डमानो वरुणे॒ह बो॒ध्युरु॑शꣳस॒ मा न॒ऽआयुः॒ प्रमो॑षीः॥४९॥

तत्। त्वा॒। या॒मि। ब्रह्म॑णा। वन्द॑मानः। तत्। आ। शा॒स्ते॒। यज॑मानः। ह॒विर्भि॒रिति ह॒विःऽभिः॑। व॒रु॒ण॒। इ॒ह। बो॒धि॒। उरु॑श॒ꣳसेत्युरु॑ऽशꣳस। मा। न॒ः। आयुः॑। प्र। मो॒षीः॒॥४९॥

पदार्थः-**(तत्)** **(त्वा)** **(यामि)** प्राप्नोमि **(ब्रह्मणा)** वेदेन **(वन्दमानः)** स्तुवन सन् **(तत्)** प्रेम **(आ)** **(शास्ते)** इच्छति **(यजमानः)** यो यजते सः **(हविर्भिः)** होतुमर्हैः संस्कृतैर्द्रव्यैः **(अहेडमानः)** सत्कृतः **(वरुण)** वर **(इह)** **(बोधि)** बुध्यस्व **(उरुशंस)** य उरून् बहून शंसति तत्सम्बुद्धौ **(मा)** निषेधे **(नः)** अस्मान् **(आयुः)** **(प्र)** **(मोषीः)** चोरयेः॥४९॥

अन्वयः-हे उरुशंस वरुण! ब्रह्मणा वन्दमानो यजमानोऽहेडमानो हविर्भिर्यदाशास्ते, तदहं यामि यदुत्तममायुस्त्वाश्रित्याहं यामि, तत्त्वमपि प्राप्नुहि, त्वमिह तद् बोधि त्व नोऽस्माकं तदायुर्मा प्रमोषीः॥४९॥

भावार्थः-आप्ता विद्वांसो यदिच्छेयुस्तदेव मनुष्यैरेषितव्यम्, न केनापि केषाञ्चिद् विदुषामनादरः कार्यः। न खलु स्त्रीपुरुषैरब्रह्मचर्य्यायुक्ताहारविहारव्यभिचारातिविषयासक्त्यादिभिरायुः कदापि ह्रसनीयम्॥४९॥

पदार्थः-हे **(उरुशंस)** बहुतों की प्रशंसा करनेहारे **(वरुण)** श्रेष्ठ विद्वन्! **(ब्रह्मणा)** वेद से **(वन्दमानः)** स्तुति करता हुआ **(यजमानः)** यज्ञ करने वाला **(अहेडमानः)** सत्कार को प्राप्त हुआ पुरुष **(हविर्भिः)** होम करने के योग्य अच्छे बनाये हुए पदार्थों से जो **(आ, शास्ते)** आशा करते है, **(तत्)** उसको मैं **(यामि)** प्राप्त होऊं तथा जिस उत्तम **(आयुः)** सौ वर्ष की आयुर्दा को **(त्वा)** तेरा आश्रय करके मैं प्राप्त होऊं **(तत्)** उस को तू भी प्राप्त हो, तू **(इह)** इस संसार में उक्त आयुर्दा को **(बोधि)** जान और तू **(नः)** हमारी उस आयुर्दा को **(मा, प्र, मोषीः)** मत चोर॥४९॥

भावार्थः-सत्यवादी, शास्त्रवेत्ता, सज्जन, विद्वान् जो चाहे वही चाहना मनुष्यों को भी करनी चाहिये। किसी को किन्हीं विद्वानों का अनादर न करना चाहिये तथा स्त्री पुरुषों को ब्रह्मचर्यत्याग, अयोग्य आहार-विहार, व्यभिचार, अत्यन्त विषयासक्ति आदि खोटे कामों से आयुर्दा का नाश कभी न करना चाहिये॥४९॥

स्वर्ण घर्म इत्यस्य शुनःशेप ऋषिः। सूर्यो देवता। भुरिगार्ष्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

कीदृशा जनाः पदार्थान् शुन्धन्तीत्युपदिश्यते॥

कैसे जन पदार्थों को शुद्ध करते हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

स्वर्ण घर्मः स्वाहा स्वर्णार्कः स्वाहा स्वर्ण शुक्रः स्वाहा स्वर्ण ज्योतिः स्वाहा स्वर्ण सूर्यः स्वाहा॥५०॥

स्वः। न। घर्मः। स्वाहा। स्वः। न। अर्कः। स्वाहा। स्वः। न। शुक्रः। स्वाहा। स्वः। न। ज्योतिः। स्वाहा। स्वः। न। सूर्यः। स्वाहा॥५०॥

पदार्थः-**(स्वः)** सुखम् **(न)** इव **(घर्मः)** तापः **(स्वाहा)** सत्यया क्रियया **(स्वः)** **(न)** इव **(अर्कः)** अग्निः **(स्वाहा)** **(स्वः)** **(न)** इव **(शुक्रः)** वायुः **(स्वाहा)** **(स्वः)** **(न)** इव **(ज्योतिः)** विद्युतो दीप्तिः **(स्वाहा)** **(स्वः)** **(न)** इव **(सूर्यः)** **(स्वाहा)**॥५०॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा स्वाहा स्वर्न घर्मः स्वाहा स्वर्नार्कः स्वाहा स्वर्न शुक्रः स्वाहा स्वर्न ज्योतिः स्वाहा स्वर्न सूर्यः स्यात्, तथा यूयमप्याचरत॥५०॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। यज्ञकारिणो मनुष्याः सुगन्धादिद्रव्यहोमैः सर्वान् वाय्वादिपदार्थान् शुद्धान् कर्त्तुं शक्नुवन्ति, येन रोगराहित्येन सर्वेषां दीर्घायुः स्यात्॥५०॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे **(स्वाहा)** सत्य क्रिया से **(स्वः)** सुख के **(न)** समान **(घर्मः)** प्रताप **(स्वाहा)** सत्य क्रिया से **(स्वः)** सुख के **(न)** तुल्य **(अर्कः)** अग्नि **(स्वाहा)** सत्य क्रिया से **(स्वः)** सुख के **(न)** सदृश **(शुक्रः)** वायु **(स्वाहा)** सत्य क्रिया से **(स्वः)** सुख के **(न)** समान **(ज्योतिः)** बिजुली की चमक **(स्वाहा)** सत्य क्रिया से **(स्वः)** सुख के **(न)** समान **(सूर्यः)** सूर्य हो, वैसे तुम भी आचरण करो॥५०॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। यज्ञ के करने वाले मनुष्य सुगन्धियुक्त आदि पदार्थों के होम से समस्त वायु आदि पदार्थों को शुद्ध कर सकते हैं, जिससे रोगक्षय होकर सब की बहुत आयुर्दा हो॥५०॥

अग्निमित्यस्य शुनःशेप ऋषिः। अग्निर्देवता। स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

कीदृशा नराः सुखिनो भवन्तीत्युपदिश्यते॥

कैसे नर सुखी होते हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अ॒ग्निं यु॑नज्मि॒ शव॑सा घृ॒तेन॑ दि॒व्यꣳ सु॑प॒र्णं वय॑सा बृ॒हन्त॑म्।
तेन॑ व॒यं ग॑मेम ब्र॒ध्नस्य॑ वि॒ष्टप॒ꣳ स्वो॒ रुहा॑णा॒ऽअधि॒ नाक॑मुत्त॒मम्॥५१॥

अ॒ग्निम्। यु॒न॒ज्मि॒। शव॑सा। घृ॒तेन॑। दि॒व्यम्। सु॒प॒र्णमिति॑ सुऽप॒र्णम्। वय॑सा। बृ॒हन्त॑म्। तेन॑। व॒यम्। ग॒मे॒म॒। ब्र॒ध्नस्य॑। वि॒ष्टप॑म्। स्वः॑। रुहा॑णाः। अधि॑। नाक॑म्। उ॒त्त॒मम्॥५१॥

पदार्थः-**(अग्निम्)** पावकम् **(युनज्मि)** सुगन्धैर्द्रव्यैर्युक्तं करोमि **(शवसा)** बलेन **(घृतेन)** आज्येन **(दिव्यम्)** दिवि शुद्धगुणे भवम् **(सुपर्णम्)** सुष्ठु पालनपूर्तिकरम् **(वयसा)** व्याप्त्या **(बृहन्तम्)** महान्तम् **(तेन)** **(वयम्)** **(गमेम)** गच्छेम। अत्र **बहुलं छन्दसि** [अष्टा०२.४.७३] इति शपो लुक् **(ब्रध्नस्य)** महतः **(विष्टपम्)** विष्टान् प्रविष्टान् पाति येन तत् **(स्वः)** सुखम् **(रुहाणाः)** रोहतः **(अधि)** उपरिभावे **(नाकम्)** अविद्यमानदुःखम् **(उत्तमम्)** श्रेष्ठम्॥५१॥

अन्वयः-अहं वयसा बृहन्तं दिव्यं सुपर्णमग्निं शवसा घृतेन युनज्मि, तेन स्वो रुहाणा वयं ब्रध्नस्य विष्टपमुत्तमं नाकमधिगमेम॥५१॥

भावार्थः-ये मनुष्या अग्नौ सुसंस्कृतानि सुगन्ध्यादियुक्तानि द्रव्याणि प्रक्षिप्य वाय्वादिशुद्धिद्वारा सर्वान् सुखयन्ति, तेऽत्युत्तमं सुखमाप्नुवन्ति॥५१॥

पदार्थः-मैं **(वयसा)** वायु की व्याप्ति से **(बृहन्तम्)** बड़े हुए **(दिव्यम्)** शुद्ध गुणों में प्रसिद्ध होने वाले **(सुपर्णम्)** अच्छे प्रकार रक्षा करने में परिपूर्ण **(अग्निम्)** अग्नि को **(शवसा)** बलदायक **(घृतेन)** घी आदि सुगन्धित पदार्थों से **(युनज्मि)** युक्त करता हूं **(तेन)** उससे **(स्वः)** सुख को **(रुहाणाः)** आरूढ़ हुए **(वयम्)** हम लोग **(ब्रध्नस्य)** बड़े से बड़े के **(विष्टपम्)** उस व्यवहार को कि जिससे सामान्य और विशेष

भाव से प्रवेश हुए जीवों की पालना की जाती है और (**उत्तमम्**) उत्तम (**नाकम्**) दुःखरहित सुखस्वरूप स्थान है, उसको (**अधि, गमेम**) प्राप्त होते हैं॥५१॥

भावार्थः-जो मनुष्य अच्छे बनाए हुए सुगन्धि आदि से युक्त पदार्थों को आग में छोड़ कर पवन आदि की शुद्धि से सब प्राणियों को सुख देते हैं, वे अत्यन्त सुख को प्राप्त होते हैं॥५१॥

इमावित्यस्य शुनःशेप ऋषिः। अग्निर्देवता। विराडार्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

इमौ ते॑ प॒क्षाव॒जरौ॑ पत॒त्रिणौ॒ याभ्या॒ꣳ रक्षा॒ꣳस्यप॒हꣳस्य॑ग्ने।

ताभ्यां॑ पतेम सु॒कृता॑मु लो॒कं यत्र॒ऽऋष॑यो ज॒ग्मुः प्र॑थम॒जाः पु॑रा॒णाः॥५२॥

इ॒मौ। ते॒। प॒क्षौ। अ॒जरौ॑। प॒त॒त्रिणौ॑। याभ्या॑म्। रक्षा॑ꣳसि। अ॒प॒हꣳसीत्य॑प॒ऽहꣳसि॑। अ॒ग्ने॒। ताभ्या॑म्। प॒ते॒म॒। सु॒कृ॒तामिति॑ सु॒ऽकृता॑म्। ऊ॒ऽइत्यूँ॑। लो॒कम्। यत्र॑। ऋष॑यः। ज॒ग्मुः। प्र॒थ॒म॒जा इति॑ प्रथम॒ऽजाः। पु॒रा॒णाः॥५२॥

पदार्थः-(**इमौ**) (**ते**) तव (**पक्षौ**) परिग्रहौ कार्य्यकारणरूपौ (**अजरौ**) अविनाशिनौ (**पतत्रिणौ**) पतत्राण्यूर्ध्वगमनानि सन्ति ययोस्तौ (**याभ्याम्**) (**रक्षांसि**) दुष्टान् दोषान् वा (**अपहंसि**) दूरे प्रक्षिपसि (**अग्ने**) अग्निरिव वर्त्तमान तेजस्विन् विद्वन् (**ताभ्याम्**) (**पतेम**) गच्छेम (**सुकृताम्**) शोभनमकार्षुस्ते सुकृतस्तेषाम् (उ) वितर्के (**लोकम्**) द्रष्टव्यमानन्दम् (**यत्र**) (**ऋषयः**) वेदार्थविदः (**जग्मुः**) गतवन्तः (**प्रथमजाः**) प्रथमे विस्तीर्णे ब्रह्मणि जाताः प्रसिद्धाः (**पुराणाः**) पुरा अध्ययनसमये नवीनाः॥५२॥

अन्वयः-हे अग्ने! ते याविमौ पतत्रिणावजरौ पक्षौ स्तो याभ्यां रक्षांस्यपहंसि, ताभ्यामु तं सुकृतां लोकं वयं पतेम, यत्र प्रथमजाः पुराणा ऋषयो जग्मुः॥५२॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथाप्ता विद्वांसो दोषान् हत्वा धर्मादिसद्गुणान् गृहीत्वा ब्रह्म प्राप्यानन्दन्ति, तथैतान् प्राप्य मनुष्यैरपि सुखयितव्यम्॥५२॥

पदार्थः-हे (**अग्ने**) अग्नि के समान प्रताप वाले विद्वन्! (**ते**) आपके जो (**इमौ**) ये (**पतत्रिणौ**) उच्च श्रेणी को प्राप्त हुए (**अजरौ**) कभी नष्ट नही होते अजर-अमर (**पक्षौ**) कार्य्यकारण रूप समीप के पदार्थ हैं (**याभ्याम्**) जिनसे आप (**रक्षांसि**) दुष्ट प्राणियों वा दोषों को (**अपहंसि**) दूर बहा देते हैं, (**ताभ्याम्**) उनसे (उ) ही उस (**सुकृताम्**) सुकृती सज्जनों के (**लोकम्**) देखने योग्य आनन्द को हम लोग (**पतेम**) पहुँचें (**यत्र**) जिस आनन्द में (**प्रथमजाः**) सर्वव्याप्त परमेश्वर में प्रसिद्ध वा अतिविस्तारयुक्त वेद में प्रसिद्ध अर्थात् उसके जानने से कीर्ति पाये हुए (**पुराणाः**) पहिले पढ़ने के समय नवीन (**ऋषयः**) वेदार्थ जानने वाले विद्वान् ऋषिजन (**जग्मुः**) पहुँचे॥५२॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे शास्त्रवेत्ता विद्वान् जन दोषों को खोके, धर्म आदि अच्छे गुणों का ग्रहण कर, ब्रह्म को प्राप्त होके, आनन्दयुक्त होते हैं, वैसे उनको पाकर मनुष्यों को भी सुखी होना चाहिये॥५२॥

इन्दुरित्यस्य शुनःशेप ऋषिः। इन्दुर्देवता। आर्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

विद्वद्भिः किं कार्यमित्याह॥

विद्वानों को क्या करना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

इन्दुर्दक्षः श्येनऽऋतावा हिरण्यपक्षः शकुनो भुरण्युः।
महान्त्सधस्थे ध्रुवऽआ निषत्तो नमस्तेऽअस्तु मा मा हिꣳसीः॥५३॥

इन्दुः। दक्षः। श्येनः। ऋतावेत्यृतऽवा। हिरण्यपक्ष इति हिरण्यऽपक्षः। शकुनः। भुरण्युः। महान्। सधस्थ इति सधऽस्थे। ध्रुवः। आ। निषत्तः। निऽसत्त इति निऽसत्तः। नमः। ते। अस्तु। मा। मा। हिꣳसीः॥५३॥

पदार्थः-(**इन्दुः**) चन्द्र इव आर्द्रस्वभावः (**दक्षः**) बलचातुर्ययुक्तः (**श्येनः**) श्येन इव पराक्रमी (**ऋतावा**) ऋतस्य सत्यस्य सम्बन्धो विद्यते यस्य सः। अत्र **अन्येषामपि**० [अष्टा०६.३.१३७] इति दीर्घः। **सुपां सुलुग्**० [अष्टा०७.१.३९] इति डादेशः (**हिरण्यपक्षः**) हिरण्यस्य सुवर्णस्य पक्षः परिग्रहो यस्य सः (**शकुनः**) शक्तिमान् (**भुरण्युः**) भर्त्ता (**महान्**) (**सधस्थे**) सह स्थाने (**ध्रुवः**) निश्चलः (**आ**) समन्तात् (**निषत्तः**) नितरां स्थितः (**नमः**) सत्करणम् (**ते**) तुभ्यम् (**अस्तु**) (**मा**) निषेधे (**मा**) माम् (**हिंसीः**) ताडयेः॥५३॥

अन्वयः-हे विद्वन्! सभेश यस्त्वमिन्दुर्दक्षः श्येन ऋतावा हिरण्यपक्षः शकुनो भुरण्युर्महान् सधस्थ आनिषत्तो ध्रुवः सन्मा मा हिंसीस्तस्मै तेऽस्माकं नमोऽस्तु॥५३॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। इह जगति विद्वांसः स्थिरा भूत्वा सर्वान् विद्यार्थिनः सुशिक्षितान् कुर्युर्यतस्ते हिंसका न भवेयुः॥५३॥

पदार्थः-हे विद्वन्! सभापति जो आप (**इन्दुः**) चन्द्रमा के समान शीतल स्वभाव सहित (**दक्षः**) बल चतुराई युक्त (**श्येनः**) बाज के समान पराक्रमी (**ऋतावा**) जिनका सत्य का सम्बन्ध विद्यमान है और (**हिरण्यपक्षः**) सुवर्ण के लाभ वाले (**शकुनः**) शक्तिमान् (**भुरण्युः**) सब के पालनेहारे (**महान्**) सब से बड़े (**सधस्थे**) दूसरे के साथ स्थान में (**आ, निषत्तः**) निरन्तर स्थित (**ध्रुवः**) निश्चल हुए (**मा**) मुझे (**मा**) मत (**हिंसीः**) मारो, उन (**ते**) आपके लिये हमारा (**नमः**) सत्कार (**अस्तु**) प्राप्त हो॥५३॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। इस संसार में विद्वान् जन स्थिर होकर सब विद्यार्थियों को अच्छी शिक्षा से युक्त करें, जिससे वे हिंसा करनेहारे न होवें॥५३॥

दिव इत्यस्य गालव ऋषिः। इन्दुर्देवता। भुरिगार्ष्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

किं भूतो जनो दीर्घायुर्भवतीत्युपदिश्यते॥

कैसा मनुष्य दीर्घजीवी होता है? इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

दिवो मूर्द्धासि पृथिव्या नाभिरूर्गपामोषधीनाम्।

विश्वायुः शर्म सप्रथा नमस्पथे॥५४॥

दिवः। मूर्द्धा। असि। पृथिव्याः। नाभिः। ऊर्क्। अपाम्। ओषधीनाम्। विश्वायुरिति विश्वऽआयुः। शर्म। सप्रथा इति सऽप्रथाः। नमः। पथे॥५४॥

पदार्थः-(**दिवः**) प्रकाशस्य (**मूर्द्धा**) शिर इव वर्त्तमानः (**असि**) (**पृथिव्याः**) (**नाभिः**) बन्धनमिव (**ऊर्क्**) रसः (**अपाम्**) जलानाम् (**ओषधीनाम्**) (**विश्वायुः**) पूर्णायुः (**शर्म**) शरणम् (**सप्रथाः**) प्रथसा प्रख्यया सह वर्त्तमानः (**नमः**) अन्नम् (**पथे**) मार्गाय॥५४॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यस्त्वं दिवो मूर्द्धा पृथिव्या नाभिरपामोषधीनामूर्गिव विश्वायुः सप्रथा असि, स त्वं पथे नमः शर्म च प्राप्नुहि॥५४॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यो मनुष्यो न्यायवान् क्षमावान् औषधसेवी युक्ताहारविहारो जितेन्द्रियो भवति, स शतायुर्जायते॥५४॥

पदार्थः-हे विद्वन्! जो आप (**दिवः**) प्रकाश अर्थात् प्रताप के (**मूर्द्धा**) शिर के समान (**पृथिव्याः**) पृथिवी के (**नाभिः**) बन्धन के समान (**अपाम्**) जलों और (**ओषधीनाम्**) ओषधियों के (**ऊर्क्**) रस के समान (**विश्वायुः**) पूर्ण सौ वर्ष जीने वाले और (**सप्रथाः**) कीर्तियुक्त (**असि**) हैं, सो आप (**पथे**) सन्मार्ग के लिये (**नमः**) अन्न (**शर्म**) शरण और सुख को प्राप्त होओ॥५४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य न्यायवान्, सहनशील, औषध का सेवन करने और आहार-विहार से यथायोग्य रहने वाला, इन्द्रियों को वश में रखता है, वह सौ वर्ष की अवस्था वाला होता है॥५४॥

विश्वत्येत्यस्य गालव ऋषिः। इन्दुर्देवता। आर्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनर्मनुष्यैः किं कर्त्तव्यमित्युपदिश्यते॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

विश्वस्य मूर्द्धन्नधि तिष्ठसि श्रितः समुद्रे ते हृदयमप्स्वायुरपो दत्तोदधिं भिन्त।

दिवस्पर्जन्यादन्तरिक्षात् पृथिव्यास्ततो नो वृष्ट्याव॥५५॥

विश्वस्य। मूर्द्धन्। अधि। तिष्ठसि। श्रितः। समुद्रे। ते। हृदयम्। अप्सु। आयुः। अपः। दत्त। उदधिमित्युदऽधिम्। भिन्त। दिवः। पर्जन्यात्। अन्तरिक्षात्। पृथिव्याः। ततः। नः। वृष्ट्या। अव॥५५॥

पदार्थः-(**विश्वस्य**) सर्वस्य जगतः (**मूर्द्धन्**) (**अधि**) उपरि (**तिष्ठसि**) (**श्रितः**) (**समुद्रे**) अन्तरिक्षवद् व्याप्ते परमेश्वरे (**ते**) तव (**हृदयम्**) (**अप्सु**) प्राणेषु (**आयुः**) जीवनम् (**अपः**) प्राणान् (**दत्त**) ददासि (**उदधिम्**) उदकधारकं सागरम् (**भिन्त**) भिनत्सि (**दिवः**) प्रकाशात् (**पर्जन्यात्**) मेघात् (**अन्तरिक्षात्**) आकाशात् (**पृथिव्याः**) भूमेः (**ततः**) तस्मात् (**नः**) (**वृष्ट्या**) (**अव**) रक्ष॥५५॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यस्त्वं विश्वस्य मूर्द्धन् श्रितः सूर्य इवाधितिष्ठसि, यस्य ते समुद्रे हृदयमप्स्वायुरस्ति, स त्वमपो दत्तोदधिं भिन्त, यतः सूर्यो दिवोऽन्तरिक्षात् पर्जन्यात् पृथिव्या वृष्ट्या सर्वानवति, ततो नोऽस्मानव॥५५॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये मनुष्याः सूर्यवत्सुखवर्षका उत्तमाचारिणो भवन्ति, ते सर्वान् सुखिनः कर्त्तुं शक्नुवन्ति॥५५॥

पदार्थः-हे विद्वन्! जो आप (**विश्वस्य**) सब संसार के (**मूर्द्धन्**) शिर पर (**श्रितः**) विराजमान सूर्य के समान (**अधि, तिष्ठसि**) अधिकार पाये हुए हैं, जिन (**ते**) आपका (**समुद्रे**) अन्तरिक्ष के तुल्य व्यापक परमेश्वर में (**हृदयम्**) मन (**अप्सु**) प्राणों में (**आयुः**) जीवन है, उन (**अपः**) प्राणों को (**दत्त**) देते हो, (**उदधिम्**) समुद्र का (**भिन्त**) भेदन करते हो, जिससे सूर्य (**दिवः**) प्रकाश (**अन्तरिक्षात्**) आकाश (**पर्जन्यात्**) मेघ और (**पृथिव्याः**) भूमि से (**वृष्ट्या**) वर्षा के योग से सब चराचर प्राणियों की रक्षा करता है, (**ततः**) इससे अर्थात् सूर्य के तुल्य (**नः**) हम लोगों की (**अव**) रक्षा करो॥५५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य सूर्य के समान सुख वर्षाने और उत्तम आचरणों के करनेहारे हैं, वे सबको सुखी कर सकते हैं॥५५॥

इष्ट इत्यस्य गालव ऋषिः। यज्ञो देवता। आर्ष्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

इ॒ष्टो य॒ज्ञो भृगु॑भिराशी॒र्दा वसु॑भिः।

तस्य॑ न इ॒ष्टस्य॑ प्री॒तस्य॒ द्रवि॑णे॒हा ग॑मेः॥५६॥

इ॒ष्टः। य॒ज्ञः। भृगु॑भि॒रिति॒ भृगु॑ऽभिः। आ॒शी॒र्दा इत्या॑शीः॒ऽदा। वसु॑भि॒रिति॒ वसु॑ऽभिः। तस्य॑। नः। इ॒ष्टस्य॑। प्री॒तस्य॑। द्रवि॑ण। इ॒ह। आ। ग॒मेः॥५६॥

पदार्थः-(**इष्टः**) कृतः (**यज्ञः**) यष्टुमर्हः (**भृगुभिः**) परिपक्वविज्ञानैः (**आशीर्दाः**) य इच्छासिद्धिं ददाति (**वसुभिः**) प्राथमकल्पिकैर्विद्वद्भिः (**तस्य**) (**नः**) अस्माकम् (**इष्टस्य**) (**प्रीतस्य**) कमनीयस्य (**द्रविण**) धनम्। अत्र **सुपां सुलुग्०** [अष्टा०७.१.३९] इति विभक्तेर्लुक् (**इह**) संसारे (**आ, गमेः**) समन्ताद् गच्छ। **वा छन्दसि सर्वे विधयो भवन्ति** [अ०१.४.९ भा०] इति छत्वाभावः॥५६॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यो वसुभिर्भृगुभिराशीर्दा यज्ञ इष्टस्तस्येष्टस्य प्रीतस्य यज्ञस्य सकाशादिह त्वन्नो द्रविण आ गमेः॥५६॥

भावार्थः-ये विद्वद्वत् प्रयतन्ते, त इह पुष्कलां श्रियमाप्नुवन्ति॥५६॥

पदार्थः-हे विद्वन्! जो **(भृगुभिः)** परिपूर्ण विज्ञान वाले **(वसुभिः)** प्रथम कक्षा के विद्वानों के **(आशीर्दाः)** इच्छासिद्धि को देने वाला **(यज्ञः)** यज्ञ **(इष्टः)** किया है, **(तस्य)** उस **(इष्टस्य)** किये हुए **(प्रीतस्य)** मनोहर यज्ञ के सकाश से **(इह)** इस संसार में आप **(नः)** हम लोगों के **(द्रविण)** धन को **(आ, गमेः)** प्राप्त हूजिये॥५६॥

भावार्थः-जो विद्वानों के तुल्य अच्छा यत्न करते हैं, वे इस संसार में बहुत धन को प्राप्त होते हैं॥५६२॥

इष्ट इत्यस्य गालव ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

इ॒ष्टोऽअ॒ग्निराहु॑तः पिपर्त्तु नऽइ॒ष्टꣳ ह॒विः। स्व॒गेदं दे॒वेभ्यो॒ नमः॑॥५७॥

इ॒ष्टः। अ॒ग्निः। आहु॑त॒ इत्याहु॑तः। पि॒प॒र्त्तु॒। न॒ः। इ॒ष्टम्। ह॒विः। स्व॒गेति॑ स्व॒ऽगा। इ॒दम्। दे॒वेभ्य॑ः। नमः॑॥५७॥

पदार्थः-**(इष्टः)** सत्कृत आहुतिभिर्वर्धितो वा **(अग्निः)** सभाद्यध्यक्षो विद्वान् पावको वा **(आहुतः)** समन्तात् तर्पितो हुतो वा **(पिपर्त्तु)** पालयतु पूरयतु वा **(नः)** अस्मानस्माकं वा **(इष्टम्)** सुखं तत्साधनं वा **(हविः)** हविषा। संस्कृतद्रव्येण विभिक्तिव्यत्ययः **(स्वगा)** यत्स्वान् गच्छति प्राप्नोति तत् स्वगा। अत्र विभक्तेः **सुपां सुलुग्०** [अष्टा०७.१.३९] इत्याकारदेशः **(इदम्)** **(देवेभ्यः)** विद्वद्भ्यः **(नमः)** अन्नं सत्कारो वा॥५७॥

अन्वयः-हविराहुत इष्टोऽग्निर्न इष्टं पिपर्त्तु नः पिपर्त्तु वा इदं स्वगा नमो देवेभ्योऽस्तु॥५७॥

भावार्थः-मनुष्यैरग्नौ यत् सुसंस्कृतं द्रव्यं हूयते यदिह बह्वन्नकारि जायतेऽतस्तेन विद्वदादीनां सत्कारः कर्त्तव्यः॥५७॥

पदार्थः-**(हविः)** संस्कार किये पदार्थों से **(आहुतः)** अच्छे प्रकार तृप्त वा हवन किया **(इष्टः)** सत्कार किया वा आहुतियों से बढ़ाया हुआ **(अग्निः)** यह सभा आदि का अध्यक्ष विद्वान् वा अग्नि **(नः)** हमारे **(इष्टम्)** सुख वा सुख के साधनों को **(पिपर्त्तु)** पूरा करे वा हमारी रक्षा करे **(इदम्)** यह **(स्वगा)** अपने को प्राप्त होने वाला **(नमः)** अन्न वा सत्कार **(देवेभ्यः)** विद्वानों के लिये हो॥५७॥

भावार्थः-मनुष्य अग्नि में अच्छे संस्कार से बनाये हुए जिस पदार्थ का होम करते हैं, सो इस संसार में बहुत अन्न का उत्पन्न करने वाला होता है, इस कारण उससे विद्वान् आदि सत्पुरुषों का सत्कार करना चाहिये॥५७॥

यदेत्यस्य विश्वकर्मा ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

अथ विद्वद्विषये सत्यनिर्णयमाह॥

अब विद्वानों के विषय में सत्य का निर्णय, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

यदाकूतात् समसुस्रोद्धृदो वा मनसो वा सम्भृतं चक्षुषो वा।

तदनु प्रेत सुकृतामु लोकं यत्रऽऋषयो जग्मुः प्रथमजाः पुराणाः॥५८॥

यत्। आकूतादित्याऽकूतात्। समसुस्रोदिति सम्ऽअसुस्रोत्। हृदः। वा। मनसः। वा। सम्भृतमिति सम्ऽभृतम्। चक्षुषः। वा। तत्। अनुप्रेतेत्यनुऽप्रेत। सुकृतामिति सुकृताम्। ऊँऽइत्यूँ। लोकम्। यत्र। ऋषयः। जग्मुः। प्रथमजाः। पुराणाः॥५८॥

पदार्थः-(**यत्**) (**आकूतात्**) उत्साहात् (**समसुस्रोत्**) सम्यक् प्राप्नुयात्। अत्र **बहुलं छन्दसि** [अष्टा०२.४.७६] इति शपः श्लुः (**हृदः**) आत्मनः (**वा**) प्राणात् (**मनसा**) संकल्पविकल्पात्मकात् (**वा**) बुद्ध्यादेः (**सम्भृतम्**) सम्यग् धृतम् (**चक्षुषः**) प्रत्यक्षादेरिन्द्रियोत्पन्नात् (**वा**) श्रोत्रादिभ्यः (**तत्**) (**अनुप्रेत**) आनुकूल्येन प्राप्नुत (**सुकृताम्**) मुमुक्षूणाम् (उ) (**लोकम्**) दर्शनसुखसङ्घातं मोक्षपदं वा (**यत्र**) यस्मिन् (**ऋषयः**) वेदविद्यापुरस्सराः परमयोगिनः (**जग्मुः**) गताः (**प्रथमजाः**) अस्मदादौ जाताः (**पुराणाः**) अस्मदपेक्षायां प्राचीनाः॥५८॥

अन्वयः-हे सत्यासत्यजिज्ञासवो जनाः! यूयं यदाकूताद्धृदो वा मनसो वा चक्षुषो वा संभृतमस्ति, तत्समसुस्रोदतः प्रथमजाः पुराणा ऋषयो यत्र जग्मुस्तं सुकृतामु लोकमनुप्रेत॥५८॥

भावार्थः-यदा मनुष्याः सत्यासत्यनिर्णयं जिज्ञासेयुस्तदा यद्यदीश्वरगुणकर्मस्वभावात् सृष्टिक्रमात् प्रत्यक्षादिप्रमाणेभ्य आप्ताचारादात्ममनोभ्यानुकूलं स्यात् तत्तत् सत्यमितरदसत्यमिति निश्चिनुयुर्य एवं धर्मं परीक्ष्याचरन्ति, तेऽतिसुखं प्राप्नुवन्ति॥५८॥

पदार्थः-हे सत्य-असत्य का ज्ञान चाहते हुए मनुष्यो! तुम लोग (**यत्**) जो (**आकूतात्**) उत्साह (**हृदः**) आत्मा (**वा**) वा प्राण (**मनसः**) मन (**वा**) वा बुद्धि आदि तथा (**चक्षुषः**) नेत्रादि इन्द्रियों से उत्पन्न हुए प्रत्यक्षादि प्रमाणों से (**वा**) वा कान आदि इन्द्रियों से (**सम्भृतम्**) अच्छे प्रकार धारण किया अर्थात् निश्चय से ठीक जाना, सुना, देखा और अनुमान किया है, (**तत्**) वह (**समसुस्रोत्**) अच्छे प्रकार प्राप्त हो, इस कारण (**प्रथमजाः**) हम लोगों से पहिले उत्पन्न हुए (**पुराणाः**) हम से प्राचीन (**ऋषयः**) वेदविद्या के

जानने वाले परमयोगी ऋषिजन **(यत्र)** जहां **(जग्मुः)** पहुँचे, उस **(सुकृताम्)** सुकृति मोक्ष चाहते हुए सज्जनों के **(उ)** ही **(लोकम्)** प्रत्यक्ष सुख समूह वा मोक्षपद को **(अनुप्रेत)** अनुकूलता से पहुँचो॥५८॥

भावार्थः-जब मनुष्य सत्य-असत्य के निर्णय के जानने की चाहना करें, तब जो-जो ईश्वर के गुण, कर्म और स्वभाव से तथा सृष्टिक्रम, प्रत्यक्ष आदि आठ प्रमाणों से, अच्छे-अच्छे सज्जनों के आचार से, आत्मा और मन के अनुकूल हो, वह सत्य और उससे भिन्न झूठ है, यह निश्चय करें। जो ऐसे परीक्षा करके धर्म का आचरण करते हैं, वे अत्यन्त सुख को प्राप्त होते हैं॥५८॥

एतमित्यस्य विश्वकर्मा ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

एतꣳ सधस्थ परि ते ददामि यमावहाच्छेवधिं जातवेदाः।

अन्वागन्ता यज्ञपतिर्वोऽअत्र तꣳ स्म जानीत परमे व्योमन्॥५९॥

एतम्। सधस्थेति सधऽस्थ। परि। ते। ददामि। यम्। आवहादित्याऽवहात्। शेवधिमिति शेवऽधिम्। जातवेदा इति जातऽवेदाः। अन्वागन्तेत्यनुऽआऽगन्ता। यज्ञपतिरिति यज्ञऽपतिः। वः। अत्र। तम्। स्म। जानीत। परमे! व्योमन्निति विऽओमन्॥५९॥

पदार्थः-**(एतम्)** पूर्वोक्तम् **(सधस्थ)** समानस्थान **(परि)** सर्वतः **(ते)** तुभ्यम् **(ददामि)** **(यम्)** **(आवहात्)** समन्तात् प्राप्नुयात् **(शेवधिम्)** शेवं सुखं धीयते यस्मिँस्तं निधिम् **(जातवेदाः)** जातप्रज्ञो वेदार्थवित् **(अन्वागन्ता)** धर्ममन्वागच्छति **(यज्ञपतिः)** यज्ञस्य पालक इव वर्त्तमानः **(वः)** युष्मभ्यम् **(अत्र)** **(तम्)** **(स्म)** एव **(जानीत)** **(परमे)** प्रकृष्टे **(व्योमन्)** व्योम्न्याकाशे॥५९॥

अन्वयः-हे ईश्वरं जिज्ञासवो मनुष्याः! हे सधस्थ! च जातवेदा यज्ञपतिर्ये शेवधिमावहादेतमत्र परमे व्योमन् व्याप्तं परमात्मानमहं ते तथा परिददाम्यन्वागन्ताऽहं यं वो युष्मभ्यमुपदिशानि स्म, तं यूयं विजानीत॥५९॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये मनुष्या विद्वनुकूलमाचरन्ति, ते सर्वव्यापिनमन्तर्यामिणमीश्वरं प्राप्तुमर्हन्ति॥५९॥

पदार्थः-हे ईश्वर के ज्ञान चाहने वाले मनुष्यो! और हे **(सधस्थ)** समान स्थान वाले सज्जन! **(जातवेदाः)** जिसको ज्ञान प्राप्त है, वह वेदार्थ को जानने वाला **(यज्ञपतिः)** यज्ञ की पालना करने वाले के समान वर्त्तमान पुरुष **(यम्)** जिस **(शेवधिम्)** सुखनिधि परमेश्वर को **(आवहात्)** अच्छे प्रकार प्राप्त होवे, **(एतम्)** इसको **(अत्र)** इस **(परमे)** परम उत्तम **(व्योमन्)** आकाश में व्याप्त परमात्मा को मैं **(ते)** तेरे लिये

जैसे **(परि, ददामि)** सब प्रकार से देता हूं, उपदेश करता हूं, **(अन्वागन्ता)** धर्म्म के अनुकूल चलनेहारा मैं **(व:)** तुम सबों के लिये जिस परमेश्वर का **(स्म)** उपदेश करूं, **(तम्)** उसको तुम **(जानीत)** जानो॥५९॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य विद्वानों के अनुकूल आचरण करते हैं, वे सर्वव्यापी अन्तर्यामी परमेश्वर के पाने को योग्य होते हैं॥५९॥

एतमित्यस्य विश्वकर्मर्षि:। प्रजापतिर्देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्द:। धैवत: स्वर:॥

पुनस्स एव विषय उपदिश्यते॥

फिर उसी विषय का अगले मन्त्र में उपदेश किया है॥

एतं जानाथ परमे व्योमन् देवा: सधस्था विद रूपमस्य।
यदागच्छात् पथिभिर्देवयानैरिष्टापूर्त्ते कृणवाथाविरस्मै॥६०॥

एतम्। जानाथ। परमे। व्योमन्निति विऽओमन्। देवा:। सधस्था इति सधऽस्था:। विद। रूपम्। अस्य। यत्। आगच्छादित्याऽगच्छात्। पथिभिरिति पथिभि:। देवयानैरिति देवऽयानै:। इष्टापूर्त्ते इतीष्टाऽपूर्त्ते। कृणवाथ। आवि:। अस्मै॥६०॥

पदार्थ:-**(एतम्)** परमात्मानम् **(जानाथ)** विजानीत। लेट्प्रयोगोऽयम् **(परमे)** **(व्योमन्)** **(देवा:)** विद्वांस: **(सधस्था:)** सहस्थाना: **(विद)** बुद्ध्यध्वम् **(रूपम्)** सच्चिदानन्दस्वरूपम् **(अस्य)** **(यत्)** **(आगच्छात्)** समन्तात् प्राप्नुयात् **(पथिभि:)** मार्गै: **(देवयानै:)** देवा धार्मिका विद्वांसो गच्छन्ति येषु तै: **(इष्टापूर्त्ते)** इष्टं श्रौतं कर्म च पूर्त्तं स्मार्त्तं कर्म च ते **(कृणवाथ)** कुरुथ **(आवि:)** प्राकट्ये **(अस्मै)** परमात्मने॥६०॥

अन्वय:-हे सधस्था देवा:! यूयं परमे व्योमन् व्याप्तमेतं जानाथास्य रूपं विद यद्देवयानै: पथिभिरागच्छादस्मै परमात्मने इष्टापूर्त्ते आवि: कृणवाथ॥६०॥

भावार्थ:-सर्वे मनुष्या विद्वत्सङ्गयोगाभ्यासधर्माचारै: परमेश्वरमवश्यं जानीयुर्नोचेदिष्टापूर्त्ते साधयितुं न शक्नुयु:, न च मुक्तिं प्राप्नुयु:॥६०॥

पदार्थ:- हे **(सधस्था:)** एक साथ स्थान वाले **(देवा:)** विद्वानो! तुम **(परमे)** परम उत्तम **(व्योमन्)** आकाश में व्याप्त **(एतम्)** इस परमात्मा को **(जानाथ)** जानो और **(अस्य)** इसके व्यापक **(रूपम्)** सत्य चैतन्यमात्र आनन्दमय स्वरूप को **(विद)** जानो, **(यत्)** जिस सच्चिदानन्द-लक्षण परमेश्वर को **(देवयानै:)** धार्मिक विद्वानों के **(पथिभि:)** मार्गों से पुरुष **(आगच्छात्)** अच्छे प्रकार प्राप्त होवे, **(अस्मै)** इस परमेश्वर के लिये **(इष्टापूर्त्ते)** वेदोक्त यज्ञादि कर्म और उसके साधक स्मार्त्त कर्म को **(आवि:)** प्रकाशित **(कृणवाथ)** किया करो॥६०॥

भावार्थः-सब मनुष्य विद्वानों के सङ्ग, योगाभ्यास और धर्म के आचरण से परमेश्वर को अवश्य जानें। ऐसा न करें तो यज्ञ आदि श्रौत स्मार्त्त कर्मों को नहीं सिद्ध करा सकें और न मुक्ति पा सकें॥६०॥

उद्बुध्यस्वेत्यस्य गालव ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्स एव विषयः प्रोच्यते॥

फिर वही विषय कहा जाता है॥

उद्बु॑ध्यस्वाग्ने॒ प्रति॑ जागृहि॒ त्वमि॑ष्टापू॒र्ते सꣳसृजेथाम॒यं च॑।

अ॒स्मिन्त्स॒धस्थे॒ऽअध्युत्त॑रस्मि॒न् विश्वे॑ देवा॒ यज॑मानश्च सीदत॥६१॥

उत्। बु॒ध्य॒स्व॒। अ॒ग्ने॒। प्रति॑। जा॒गृ॒हि॒। त्वम्। इ॒ष्टा॒पू॒र्ते इती॑ष्टाऽपू॒र्ते। सम्। सृ॒जे॒था॒म्। अ॒यम्। च॒। अ॒स्मिन्। स॒धस्थ॒ इति॑ स॒धऽस्थे॑। अधि॑। उत्त॑रस्मि॒न्नित्युत्ऽत॑रस्मिन्। विश्वे॑। दे॒वाः। यज॑मानः। च॒। सी॒द॒त॒॥६१॥

पदार्थः-(**उत्**) ऊर्ध्वम् (**बुध्यस्व**) जानीहि (**अग्ने**) अग्निरिव वर्त्तमान पुरुष (**प्रति**) (**जागृहि**) यजमानं प्रबोधयाविद्यानिद्रां पृथक्कृत्य विद्यायां जागरूकं कुरु (**त्वम्**) (**इष्टापूर्त्ते**) इष्टं च पूर्त्तं च ते (**सम्**) संसर्गे (**सृजेथाम्**) निष्पादयेताम् (**अयम्**) ब्रह्मविद्योपदेष्टा (**च**) (**अस्मिन्**) (**सधस्थे**) सहस्थाने (**अधि**) उपरि (**उत्तरस्मिन्**) उत्तमासने (**विश्वे**) समग्राः (**देवाः**) विद्यायाः कामयितारः (**यजमानः**) विद्याप्रदाता यज्ञकर्त्ता (**च**) (**सीदत**) तिष्ठत॥६१॥

अन्वयः- हे अग्ने! त्वमुद्बुध्यस्व प्रति जागृहि, त्वं चायं इष्टापूर्त्ते संसृजेथाम्। हे विश्वेदेवा! कृतेष्टापूर्त्तो यजमानश्च यूयं सधस्थेऽस्मिन्नुत्तरस्मिन्नधि सीदत॥६१॥

भावार्थः-ये सचेतना धीमन्तो विद्यार्थिनः स्युस्तेऽध्यापकैः सम्यगध्यापनीयाः स्युर्ये विद्याभीप्सवोऽध्यापकानुकूलाचरणाः स्युर्ये च तदधीना अध्यापकास्ते परस्परं प्रीत्या सततं विद्योन्नतिं कुर्युर्येऽतोऽन्ये प्रशस्ता विद्वांसः स्युस्त एतेषां सततं परीक्षां कुर्युर्यत एते विद्यावर्द्धने सततं प्रयतेरँस्तथार्त्विग्यजमानादयो भवेयुः॥६१॥

पदार्थः-हे (**अग्ने**) अग्नि के समान वर्त्तमान ऋत्विक् पुरुष! (**त्वम्**) तू (**उद्, बुध्यस्व**) उठ, प्रबोध को प्राप्त हो (**प्रति, जागृहि**) यजमान को अविद्यारूप निद्रा से छुड़ा के विद्या में चेतन कर, तू (**च**) और (**अयम्**) यह ब्रह्मविद्या का उपदेश करनेहारा यजमान दोनों (**इष्टापूर्त्ते**) यज्ञसिद्धि कर्म और उसकी सामग्री को (**संसृजेथाम्**) उत्पन्न करो। हे (**विश्वे**) समग्र (**देवाः**) विद्वानो! (**च**) और (**यजमानः**) विद्या देने तथा यज्ञ करनेहारे यजमान! तुम सब (**अस्मिन्**) इस (**सधस्थे**) एक साथ के स्थान में (**उत्तरस्मिन्**) उत्तम आसन पर (**अधि, सीदत**) बैठो॥६१॥

भावार्थः-जौ चैतन्य और बुद्धिमान् विद्यार्थी हों, वे पढ़ाने वालों को अच्छे प्रकार पढ़ाने चाहियें। जो विद्या की इच्छा से पढ़ानेहारों के अनुकूल आचरण करने वाले हों और जो उनके अनुकूल पढ़ानेहारे हों,

वे परस्पर प्रीति से निरन्तर विद्याओं की बढ़ती करें और जो इन पढ़ने-पढ़ाने हारों से पृथक् उत्तम विद्वान् हों, वे इन विद्यार्थियों की सदा परीक्षा किया करें, जिससे ये अध्यापक और विद्यार्थी लोग विद्याओं की बढ़ती करने में निरन्तर प्रयत्न किया करें, वैसे ऋत्विज्, यजमान और सभ्य परीक्षक विद्वान् लोग यज्ञ की उन्नति किया करें॥६१॥

येनेत्यस्य देवश्रवदेववातावृषी। विश्वकर्माग्निर्वा देवता। निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनः स एव विषयः प्रकाश्यते॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

येन॒ वह॑सि स॒हस्रं॒ येना॑ग्ने सर्ववेद॒सम्। तेने॒मं य॒ज्ञं नो॑ नय॒ स्व॒र्दे॒वेषु॒ गन्त॑वे॥६२॥

येन॑। वह॑सि। स॒हस्र॑म्। येन॑। अ॒ग्ने॒। स॒र्व॒वे॒द॒समिति॑ सर्वऽवेद॒सम्। तेन॑। इ॒मम्। य॒ज्ञम्। नः॒। न॒य॒। स्वः॒। दे॒वेषु॑। गन्त॑वे॥६२॥

पदार्थः-(**येन**) अध्यापनेन (**वहसि**) प्राप्नोषि (**सहस्रम्**) असंख्यमतुलं बोधम् (**येन**) अध्ययनेन (**अग्ने**) अध्यापकाध्येतर्वा (**सर्ववेदसम्**) सर्वे वेदसो वेदा विज्ञायन्ते यस्मिँस्तम् (**तेन**) (**इमम्**) वक्ष्यमाणम् (**यज्ञम्**) अध्ययनाध्यापनाख्यम् (**नः**) अस्मान् (**नय**) प्राप्नुहि प्रापय वा (**स्वः**) सुखम् (**देवेषु**) दिव्येषु गुणेषु विद्वत्सु वा (**गन्तवे**) गन्तुं प्राप्तुम्॥६२॥

अन्वयः-हे अग्ने! त्वं येन सहस्रं सर्ववेदसं वहसि प्राप्नोषि, येन च प्रापयसि, तेनेमं यज्ञं नो देवेषु स्वर्गन्तवे नय॥६२॥

भावार्थः-ये धर्माचरणनिष्कपटत्वाभ्यां विद्यां प्रयच्छन्ति गृह्णन्ति च, त एव सुखभागिनो भवन्ति॥६२॥

पदार्थः-हे (**अग्ने**) पढ़ने वा पढ़ाने वाले पुरुष! तू (**येन**) जिस पढ़ाने से (**सहस्रम्**) हजारों प्रकार के अतुल बोध को (**सर्ववेदसम्**) कि जिसमें सब वेद जाने जाते हैं, उसको (**वहसि**) प्राप्त होता और (**येन**) जिस पढ़ने से दूसरों को प्राप्त कराता है, (**तेन**) उससे (**इमम्**) इस (**यज्ञम्**) पढ़ने-पढ़ाने रूप यज्ञ को (**नः**) हम लोगों को (**देवेषु**) दिव्य गुण वा विद्वानों में (**स्वर्गन्तवे**) सुख के प्राप्त होने के लिये (**नय**) पहुंचा॥६२॥

भावार्थः-जो धर्म के आचरण और निष्कपटता से विद्या देते और ग्रहण करते हैं, वे ही सुख के भागी होते हैं॥६२॥

प्रस्तरेणेत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः। यज्ञो देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनर्मनुष्यैः क्रियायज्ञः कथं साधनीय इत्युपदिश्यते॥

फिर मनुष्यों को क्रियायज्ञ कैसे सिद्ध करना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

प्र॒स्त॒रेण॑ परि॒धिना॑ स्रु॒चा वेद्या॑ च ब॒र्हिषा॑। ऋ॒चेमं य॒ज्ञं नो॑ नय॒ स्व॒र्दे॒वेषु॒ गन्त॑वे॥६३॥

प्रस्तरेणेति प्रऽस्तरेण। परिधिनेति परिऽधिना। स्रुचा। वेद्या। च। बर्हिषा। ऋचा। इमम्। यज्ञम्। नः। नय। स्वः। देवेषु। गन्तवे॥६३॥

पदार्थः-(**प्रस्तरेण**) आसनेन (**परिधिना**) यः परितः सर्वतोऽधीते तेन (**स्रुचा**) येन यज्ञः साध्यते (**वेद्या**) यस्यां हूयते तया (**च**) (**बर्हिषा**) उत्तमेन कर्मणा (**ऋचा**) स्तुत्या ऋग्वेदादिना वा (**इमम्**) पदार्थमयम् (**यज्ञम्**) अग्निहोत्रादिकम् (**नः**) अस्मान् (**नय**) (**स्वः**) सांसारिकं सुखम् (**देवेषु**) दिव्येषु पदार्थेषु विद्वत्सु वा (**गन्तवे**) गन्तुं प्राप्तुम्॥६३॥

अन्वयः-हे विद्वंस्त्वं वेद्या स्रुचा बर्हिषा प्रस्तरेण परिधिनर्चा चेमं यज्ञं देवेषु गन्तवे स्वर्नो नय॥६३॥

भावार्थः-ये मनुष्या धर्मेण प्राप्तैर्द्रव्यैर्वेदरीत्या च साङ्गोपाङ्गं यज्ञं साध्नुवन्ति, ते सर्वप्राण्युपकारिणो भवन्ति॥६३॥

पदार्थः-हे विद्वन्! आप (**वेद्या**) जिसमें होम किया जाता है, उस वेदी तथा (**स्रुचा**) होमने का साधन (**बर्हिषा**) उत्तम क्रिया (**प्रस्तेरण**) आसन (**परिधिना**) जो सब ओर धारण किया जाय, उस यजुर्वेद (**च**) तथा (**ऋचा**) स्तुति वा ऋग्वेद आदि से (**इमम्**) इस पदार्थमय अर्थात् जिसमें उत्तम भोजनों के योग्य पदार्थ होमे जाते हैं, उस (**यज्ञम्**) अग्निहोत्र आदि यज्ञ को (**देवेषु**) दिव्य पदार्थ वा विद्वानों में (**गन्तवे**) प्राप्त होने के लिये (**स्वः**) संसारसम्बन्धी सुख (**नः**) हम लोगों को (**नय**) पहुँचाओ॥६३॥

भावार्थः-जो मनुष्य धर्म से पाये हुए पदार्थों तथा वेद की रीति से साङ्गोपाङ्ग यज्ञ को सिद्ध करते हैं, वे सब प्राणियों के उपकारी होते हैं॥६३॥

यद्दत्तमित्यस्य विश्वकर्मर्षिः। यज्ञो देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यद्दत्तं यत्परादानं यत्पूर्त्तं याश्च दक्षिणाः। तदग्निर्वैश्वकर्मणः स्वर्देवेषु नो दधत्॥६४॥

यत्। दत्तम्। यत्। परादानमिति पराऽदानम्। यत्। पूर्त्तम्। याः। च। दक्षिणाः। तत्। अग्निः। वैश्वकर्मण इति वैश्वऽकर्मणः। स्वः। देवेषु। नः। दधत्॥६४॥

पदार्थः-(**यत्**) (**दत्तम्**) सुपात्रेभ्यः समर्पितम् (**यत्**) (**परादानम्**) परेभ्य आदानम् (**यत्**) (**पूर्त्तम्**) पूर्णां सामग्रीम् (**याः**) (**च**) (**दक्षिणाः**) कर्मानुसारेण दानानि (**तत्**) (**अग्निः**) पावक इव गृहस्थो विद्वान् (**वैश्वकर्मणः**) विश्वानि समग्राणि कर्माणि यस्य स एव (**स्वः**) ऐन्द्रियं सुखम् (**देवेषु**) दिव्येषु धर्म्येषु व्यवहारेषु (**नः**) अस्मान् (**दधत्**) दधातु॥६४॥

अन्वयः-हे गृहस्थ! त्वया यद्दत्तं यत्परादानं यत्पूर्त्तं याश्च दक्षिणा दीयन्ते, तत्स्वश्च वैश्वकर्मणोऽग्निरिव भवान् देवेषु नो दधत्॥६४॥

भावार्थः-ये याश्च गृहाश्रमं चिकीर्षेयुस्ते पुरुषास्ताः स्त्रियश्च विवाहात् प्राक् प्रागल्भ्यादिसामग्रीं कृत्वैव युवावस्थायां विवाहं कृत्वा धर्मेण दानादानमानादिव्यवहारं कुर्युः॥६४॥

पदार्थः-हे गृहस्थ विद्वन्! आपने **(यत्)** जो **(दत्तम्)** अच्छे धर्मात्माओं को दिया वा **(यत्)** जो **(परादानम्)** और से लिया वा **(यत्)** जो **(पूर्त्तम्)** पूर्ण सामग्री **(याश्च)** और जो कर्म के अनुसार **(दक्षिणाः)** दक्षिणा दी जाती है, **(तत्)** उस सब **(स्वः)** इन्द्रियों के सुख को **(वैश्वकर्मणः)** जिसके समग्र कर्म विद्यमान हैं, उस **(अग्निः)** अग्नि के समान गृहस्थ विद्वान् आप **(देवेषु)** दिव्य धर्मसम्बन्धी व्यवहारों में **(नः)** हम लोगों को **(दधत्)** स्थापन करें॥६४॥

भावार्थः-जो पुरुष और जो स्त्री गृहाश्रम किया चाहें, वे विवाह से पूर्व प्रगल्भता अर्थात् अपने में बल, पराक्रम, परिपूर्णता आदि सामग्री कर ही के युवास्था में स्वयंवरविधि के अनुकूल विवाह कर धर्म से दान-आदान, मान-सन्मान आदि व्यवहारों को करें॥६४॥

यत्र धारा इत्यस्य विश्वकर्मर्षिः। यज्ञो देवता। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनर्मनुष्याः किं कुर्युरित्याह॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

यत्र धाराऽअनपेता मधोर्घृतस्य च याः। तदग्निर्वैश्वकर्मणः स्वर्देवेषु नो दधत्॥६५॥

यत्र। धाराः। अनपेता इत्यनपऽइताः। मधोः। घृतस्य। च। याः। तत्। अग्निः। वैश्वकर्मण इति वैश्वऽकर्मणः। स्वः। देवेषु। नः। दधत्॥६५॥

पदार्थः-**(यत्र)** यज्ञे **(धाराः)** प्रवाहा **(अनपेताः)** नापेताः पृथग्भूताः **(मधोः)** मधुरगुणान्वितस्य द्रव्यस्य **(घृतस्य)** आज्यस्य **(च)** **(याः)** **(तत्)** ताभिः **(अग्निः)** पावकः **(वैश्वकर्मणः)** विश्वान्यखिलानि कर्माणि यस्मात् स एव **(स्वः)** सुखम् **(देवेषु)** दिव्येषु व्यवहारेषु **(नः)** अस्मभ्यम् **(दधत्)** दधाति। दधातेर्लेटो रूपम्॥६५॥

अन्वयः-यत्र मधोर्घृतस्य च या अनपेता धारा विद्वद्भिः क्रियन्ते, तद्वैश्चकर्मणोऽग्निर्नो देवेषु स्वर्दधत्॥६५॥

भावार्थः-ये मनुष्या वेद्यादिकं निर्माय सुगन्धिमिष्टादियुक्तं बहुघृतमग्नौ जुह्वति, ते सर्वान् रोगान्निहत्यातुलं सुखं जनयन्ति॥६५॥

पदार्थः-**(यत्र)** जिस यज्ञ में **(मधोः)** मधुरादि गुणयुक्त सुगन्धित द्रव्यों **(च)** और **(घृतस्य)** घृत के **(याः)** जिन **(अनपेताः)** संयुक्त **(धाराः)** प्रवाहों को विद्वान् लोग करते हैं, **(तत्)** उन धाराओं से

(वैश्वकर्मणः) सब कर्म होने का निमित्त **(अग्निः)** अग्नि **(नः)** हमारे लिये **(देवेषु)** दिव्य व्यवहारों में **(स्वः)** सुख को **(दधत्)** धारण करता है॥६५॥

भावार्थः-जो मनुष्य वेदि आदि को बना के सुगन्ध और मिष्टादियुक्त बहुत घृत को अग्नि में हवन करते हैं, वे सब रोगों का निवारण करके अतुल सुख को उत्पन्न करते हैं॥६५॥

अग्निरस्मीत्यस्य देवश्रवदेववातावृषी। अग्निर्देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

यज्ञेन किं जायत इत्याह॥

यज्ञ से क्या होता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अ॒ग्निर॑स्मि॒ जन्म॑ना जा॒तवे॑दा घृ॒तं मे॒ चक्षु॑र॒मृतं॑ मऽआ॒सन्।

अ॒र्कस्त्रि॒धातू॒ रज॑सो वि॒मानोऽज॑स्रो घ॒र्मो ह॒विर॑स्मि॒ नाम॑॥६६॥

अ॒ग्निः। अ॒स्मि॒। जन्म॑ना। जा॒तवे॑दा इति॑ जा॒तऽवे॑दाः। घृ॒तम्। मे॑। चक्षुः॑। अ॒मृत॑म्। मे॒। आ॒सन्। अ॒र्कः। त्रि॒धातु॒रिति॑ त्रि॒ऽधातुः॑। रज॑सः। वि॒मान॒ इति॑ वि॒ऽमानः॑। अज॑स्रः। घ॒र्मः। ह॒विः। अ॒स्मि॒। नाम॑॥६६॥

पदार्थः-**(अग्निः)** पावक इव **(अस्मि)** **(जन्मना)** प्रादुर्भावेन **(जातवेदाः)** यो जातेषु विद्यते सः **(घृतम्)** आज्यम् **(मे)** मह्यम् **(चक्षुः)** दर्शकं प्रकाशकम् **(अमृतम्)** अमृतात्मकं भोज्यं वस्तु **(मे)** मम **(आसन्)** आस्ये **(अर्कः)** सर्वान् प्राणिनोऽर्चन्ति येन सः **(त्रिधातुः)** त्रयो धातवो यस्मिन् सः **(रजसः)** लोकसमूहस्य **(विमानः)** विमानयानमिव धर्त्ता **(अजस्रः)** अजस्रं गमनं विद्यते यस्य सः। अत्र **अर्शऽआदिभ्योऽच्** [अष्टा० ५.२.१२७] इत्यच् **(घर्मः)** जिघ्रति येन सः प्रकाश इव यज्ञः **(हविः)** होतव्यं द्रव्यम् **(अस्मि)** **(नाम)** ख्यातिः॥६६॥

अन्वयः-अहं जन्मना जातवेदा अग्निरिवास्मि, यथाऽग्नेर्घृतं चक्षुरस्ति, तथा मेऽस्तु। यथा पावकं संस्कृतं हविर्हुतं सदमृतं जायते, तथा म आसन् मुखेऽस्तु। यथा त्रिधातू रजसो विमानोऽजस्रो घर्मोऽर्को यस्य नाम संशोधितं हविश्चास्ति तथाऽहमस्मि॥६६॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथाग्निर्हुतं हविर्वायौ प्रसार्य दुर्गन्धं निवार्य सुगन्धं प्रकटय्य रोगान् समूलघातं निहत्य सर्वान् प्राणिनः सुखयति, तथैव मनुष्यैर्भवितव्यम्॥६६॥

पदार्थः-मैं **(जन्मना)** जन्म से **(जातवेदाः)** उत्पन्न हुए पदार्थों में विद्यमान **(अग्निः)** अग्नि के समान **(अस्मि)** हूं, जैसे अग्नि का **(घृतम्)** घृतादि **(चक्षुः)** प्रकाशक है, वैसे **(मे)** मेरे लिये हो। जैसे अग्नि में अच्छे प्रकार संस्कार किया **(हविः)** हवन करने योग्य द्रव्य होमा हुआ **(अमृतम्)** सर्वरोगानाशक आनन्दप्रद होता है, वैसे **(मे)** मेरे **(आसन्)** मुख में प्राप्त हो। जैसे **(त्रिधातुः)** सत्त्व, रज और तमोगुण तत्त्व जिसमें हैं, उस **(रजसः)** लोक-लोकान्तर को **(विमानः)** विमान यान के समान धारण करता **(अजस्रः)** निरन्तर गमनशील **(घर्मः)** प्रकाश के समान यज्ञ, जिससे सुगन्ध का ग्रहण होता है, **(अर्कः)** जो सत्कार

का साधन जिसका **(नाम)** प्रसिद्ध होना अच्छे प्रकार शोधा हुआ हवन करने योग्य पदार्थ है, वैसे मैं **(अस्मि)** हूं॥६६॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। अग्नि होम किये हुए पदार्थ को वायु में फैला कर दुर्गन्ध का निवारण, सुगन्ध की प्रकटता और रोगों को निर्मूल (नष्ट) करके सब प्राणियों को सुखी करता है, वैसे ही सब मनुष्यों को होना योग्य है॥६६॥

ऋचो नामेत्यस्य देवश्रवदेववातावृषी। अग्निर्देवता। आर्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

अथर्गादिवेदाध्ययनेन किं कार्यमित्युपदिश्यते॥

अब ऋग्वेद आदि को पढ़के क्या करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

ऋचो नामास्मि यजूंꣳषि नामास्मि सामानि नामास्मि।
येऽअग्नयः पाञ्चजन्याऽअस्यां पृथिव्यामधि।
तेषामसि त्वमुत्तमः प्र नो जीवातवे सुव॥६७॥

ऋचः। नाम। अस्मि। यजूंꣳषि। नाम। अस्मि। सामानि। नाम। अस्मि। ये। अग्नयः। पाञ्चजन्या इति पाञ्चजन्याः। अस्याम्। पृथिव्याम्। अधि। तेषाम्। असि। त्वम्। उत्तम इत्युत्ऽतमः। प्र। नः। जीवातवे। सुव॥६७॥

पदार्थः-(ऋचः) ऋग्वेदश्रुतयः **(नाम)** प्रसिद्धौ **(अस्मि)** भवामि **(यजूंषि)** यजुर्मन्त्राः **(नाम)** **(अस्मि)** **(सामानि)** सामवेदमन्त्रगानानि **(नाम)** **(अस्मि)** **(ये)** **(अग्नयः)** आहवनीयादयः पावकाः **(पाञ्चजन्याः)** पञ्चजनेभ्यो हिताः। **पञ्चजना इति मनुष्यनामसु पठितम्॥** (निघं०२.३) **(अस्याम्)** **(पृथिव्याम्)** **(अधि)** उपरि **(तेषाम्)** **(असि)** **(त्वम्)** **(उत्तमः)** **(प्र)** **(नः)** अस्माकम् **(जीवातवे)** जीवनाय **(सुव)** प्रेरय॥६७॥

अन्वयः-हे विद्वन्! योऽहमृचो नामास्मि, यजूंषि नामास्मि, सामानि नामास्मि, तस्मान्मत्तो वेदविद्यां गृहाण। येऽस्यां पृथिव्यां पाञ्चजन्या अग्नयोऽधिषन्ति, तेषां मध्ये त्वमुत्तमोऽसि, स त्वं नो जीवातवे शुभकर्मसु प्रसुव॥६७॥

भावार्थः-यो मनुष्य ऋग्वेदमधीते स ऋग्वेदी, यो यजुर्वेदमधीते स यजुर्वेदी, यः सामवेदमधीते स सामवेदी, योऽथर्ववेदं चाधीते सोऽथर्ववेदी। यो द्वौ वेदावधीते स द्विवेदी, यस्त्रीन् वेदानधीते स त्रिवेदी, यश्चतुरो वेदानधीते स चतुर्वेदी। यश्च कमपि वेदं नाऽधीते स कामपि संज्ञां न लभते। ये वेदविदस्तेऽग्निहोत्रादियज्ञैः सर्वहितं सम्पादयेयुर्यत उत्तमा कीर्त्तिः स्यात्, सर्वे प्राणिनो दीर्घायुषश्च भवेयुः॥६७॥

पदार्थः-हे विद्वन्! जो मैं **(ऋचः)** ऋचाओं की **(नाम)** प्रसिद्धिकर्त्ता **(अस्मि)** हूं **(यजूंषि)** यजुर्वेद की **(नाम)** प्रख्यातिकर्ता **(अस्मि)** हूं **(सामानि)** सामवेद के मन्त्रगान का **(नाम)** प्रकाशकर्त्ता **(अस्मि)** हूं,

उस मुझ से वेदविद्या का ग्रहण कर **(ये)** जो **(अस्याम्)** इस **(पृथिव्याम्)** पृथिवी में **(पाञ्चजन्याः)** मनुष्यों के हितकारी **(अग्नयः)** अग्नि **(अधि)** सर्वोपरि हैं, **(तेषाम्)** उनके मध्य **(त्वम्)** तू **(उत्तमः)** अत्युत्तम **(असि)** है सो तू **(नः)** हमारे **(जीवातवे)** जीवन के लिये सत्कर्मों में **(प्र, सुव)** प्रेरणा कर॥६७॥

भावार्थः-जो मनुष्य ऋग्वेद को पढ़ते वे ऋग्वेदी, जो यजुर्वेद को पढ़ते वे यजुर्वेदी, जो सामवेद को पढ़ते वे सामवेदी और जो अथर्ववेद पढ़ते हैं वे अथर्ववेदी। जो दो वेदों को पढ़ते वे द्विवेदी, जो तीन वेदों को पढ़ते वे त्रिवेदी और जो चार वेदों को पढ़ते हैं वे चतुर्वेदी। जो किसी वेद को नहीं पढ़ते, वे किसी संज्ञा को प्राप्त नहीं होते। जो वेदवित् हों, वे अग्निहोत्रादि यज्ञों से सब मनुष्यों के हित को सिद्ध करें, जिससे उनकी उत्तम कीर्त्ति होवे और सब प्राणी दीर्घायु होवें॥६७॥

वार्त्रहत्यायेत्यस्य इन्द्र ऋषिः। इन्द्रो देवता। निचृद् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

सेनाध्यक्षः कथं विजयी भवेदित्याह॥

सेनाध्यक्ष कैसे विजयी हो, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

वार्त्रहत्याय शवसे पृतनाषाह्याय च। इन्द्र त्वावर्त्तयामसि॥६८॥

वार्त्रहत्यायेति वार्त्रऽहत्याय। शवसे। पृतनाषाह्याय। पृतनासह्यायेति पृतनाऽसह्याय। च। इन्द्र। त्वा। आ। वर्त्तयामसि॥६८॥

पदार्थः-**(वार्त्रहत्याय)** विरुद्धभावेन वर्त्ततेऽसौ वृत्रः वृत्र एव वार्त्रः। वार्त्रस्य वर्त्तमानस्य शत्रोर्हत्या हननं तत्र साधुस्तस्मै **(शवसे)** बलाय **(पृतनाषाह्याय)** ये मनुष्याः पृतनाः सहन्ते ते पृतनासाहस्तेषु साधवे। **(च)** **(इन्द्र)** परमैश्वर्य्ययुक्त सेनेश **(त्वा)** त्वाम् **(आ)** समन्तात् **(वर्त्तयामसि)** प्रवर्त्तयामः॥६८॥

अन्वयः-हे इन्द्र! यथा वयं वार्त्रहत्याय शवसे पृतनाषाह्याय तेनान्येन योग्यसाधनेन च त्वाऽऽवर्त्तयामसि तथा त्वं वर्त्तस्व॥६८॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यो विद्वान् सूर्य्यो मेघमिव शत्रून् हन्तुं शूरवीरसेनां सत्करोति, स सततं विजयी भवति॥६८॥

पदार्थः-हे **(इन्द्र)** परमैश्वर्य्युक्त सेनापते! जैसे हम लोग **(वार्त्रहत्याय)** विरुद्ध भाव से वर्त्तमान शत्रु के मारने में जो कुशल **(शवसे)** उत्तम बल **(पृतनाषाह्याय)** जिससे शत्रुसेना का बल सहन किया जाय उससे **(च)** और अन्य योग्य साधनों से युक्त **(त्वा)** तुझको **(आ, वर्तयामासि)** चारों ओर से यथायोग्य वर्त्ताया करें, वैसे तू यथायोग्य वर्त्ता कर॥६८॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो विद्वान्, जैसे सूर्य मेघ को वैसे, शत्रुओं के मारने को शूरवीरों की सेना का सत्कार करता है, वह सदा विजयी होता है॥६८॥

सहदानुमित्यस्येन्द्रविश्वामित्रावृषी। इन्द्रो देवता। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनर्जनैः कथम्भवितव्यमित्युपदिश्यते॥

फिर मनुष्यों को कैसा होना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

स॒हदा॑नुम्पुरुहूत क्षि॒यन्त॑मह॒स्तमि॑न्द्र॒ सम्पि॑ण॒क् कुणा॑रुम्।

अ॒भि वृ॒त्रं वर्द्ध॑मान॒ं पिया॑रुम॒पाद॑मिन्द्र त॒वसा॑ जघन्थ॥६९॥

स॒हदा॑नु॒मिति॑ स॒हऽदा॑नुम्। पु॒रु॒हू॒तेति॑ पुरुऽहूत। क्षि॒यन्त॑म्। अ॒ह॒स्तम्। इ॒न्द्र॒। सम्। पि॒ण॒क्। कु॒णा॑रुम्। अ॒भि। वृ॒त्रम्। वर्द्ध॑मानम्। पिया॑रुम्। अ॒पाद॑म्। इ॒न्द्र॒। त॒वसा॑। ज॒घ॒न्थ॒॥६९॥

पदार्थः-(**सहदानुम्**) यः सहैव ददाति तम् (**पुरुहूत**) बहुभिस्सज्जनैः सत्कृत (**क्षियन्तम्**) गच्छन्तम् (**अहस्तम्**) अविद्यमानौ हस्तौ यस्य तम् (**इन्द्र**) शत्रुविदारक सेनेश (**सम्**) (**पिणक्**) पिनष्टि (**कुणारुम्**) शब्दयन्तम्। अत्र 'क्वण शब्दे' इत्यस्माद्धातोरौणादिक आरुः प्रत्ययः। (**अभि**) (**वृत्रम्**) मेघमिव (**वर्द्धमानम्**) (**पियारुम्**) पानकारकम् (**अपादम्**) पादेन्द्रियरहितम् (**इन्द्र**) सभेश (**तवसा**) बलेन। **तव इति बलनामसु पठितम्॥** (निघं०२.९) (**जघन्थ**) जहि॥६९॥

अन्वयः-हे पुरुहूतेन्द्र! यथा सूर्यः सहदानुं क्षियन्तं कुणारुमहस्तं पियारुमपादमभिवर्द्धमानं वृत्रं सम्पिणक् तथा हे इन्द्र! शत्रूँस्तवसा जघन्थ॥६९॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये मनुष्याः सूर्यवत्प्रतापिनो भवन्ति, तेऽजातशत्रवो जायन्ते॥६९॥

पदार्थः-हे (**पुरुहूत**) बहुत विद्वानों से सत्कार को प्राप्त (**इन्द्र**) शत्रुओं को नष्ट करनेहारे सेनापति! जैसे सूर्य (**सहदानुम**) साथ देनेहारे (**क्षियन्तम्**) आकाश में निवास करने (**कुणारुम्**) शब्द करने वाले (**अहस्तम्**) हस्त से रहित (**पियारुम्**) पान करनेहारे (**अपादम्**) पादेन्द्रियरहित (**अभि**) (**वर्द्धमानम्**) सब ओर से बढ़े हुए (**वृत्रम्**) मेघ को (**सम्, पिणक्**) अच्छे प्रकार चूर्णीभूत करता है, वैसे हे (**इन्द्र**) सभापति! आप शत्रुओं को (**तवसा**) बल से (**जघन्थ**) मारा करो॥६९॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य सूर्य के समान प्रतापयुक्त होते हैं, वे शत्रुरहित होते हैं॥६९॥

वि न इत्यस्य शास ऋषिः। इन्द्रो देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथ सेनापतिः कीदृशो भवेदित्युपदिश्यते॥

अब सेनापति कैसा हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

वि न॑ऽइन्द्र॒ मृधो॑ जहि नी॒चा य॑च्छ पृतन्य॒तः।

योऽअ॒स्माँ२ऽअ॑भि॒दास॒त्यध॑रं गमया॒ तम॑ः॥७०॥

वि। नः। इन्द्र। मृधः। जहि। नीचा। यच्छ। पृतन्यतः। यः। अस्मान्। अभिदासतीत्यभिऽदासति। अधरम्। गमय। तमः॥७०॥

पदार्थः-(**वि**) (**नः**) अस्माकम् (**इन्द्र**) सेनेश (**मृधः**) मर्धन्त्यार्द्रीभवन्ति येषु तान् सङ्ग्रामान्। **मृध इति सङ्ग्रामनामसु पठितम्॥** (निघं०२.१७) (**जहि**) (**नीचा**) न्यग्भूतान् नम्रान्। अत्र **सुपां सुलुग्०** [अष्टा०७.१.३९] इत्याकारः (**यच्छ**) निगृह्णीहि (**पृतन्यतः**) आत्मनः पृतनां सेनामिच्छतः (**यः**) विरोधी (**अस्मान्**) (**अभिदासति**) अभिमुखेनोपक्षयति (**अधरम्**) अधोगतिम् (**गमय**) प्रापय। अत्र **अन्येषामपि०** [अष्टा०६.३.१३७] इति दीर्घः (**तमः**) अन्धकारं कारागृहम्॥७०॥

अन्वयः-हे इन्द्र सेनेश! त्वं मृधो वि जहि पृतन्यतो नः शत्रून् नीचा यच्छ, योऽस्मानभिदासति तमधरं तमो गमय॥७०॥

भावार्थः-सेनेशेन सङ्ग्रामा जेतव्यास्तेन नीचकर्मकारिणां निग्रहः कर्त्तव्यो राजप्रजाविरोधकारयिता भृशं दण्डनीयश्च॥७०॥

पदार्थः-हे (**इन्द्र**) परम बलयुक्त सेना के पति! तू (**मृधः**) सङ्ग्रामों को (**वि, जहि**) विशेष करके जीत (**पृतन्यतः**) सेनायुक्त (**नः**) हमारे शत्रुओं को (**नीचा**) नीच गति को (**यच्छ**) प्राप्त करा (**यः**) जो (**अस्मान्**) हम को (**अभिदासति**) नष्ट करने की इच्छा करता है, उसको (**अधरम्**) अधोगतिरूप (**तमः**) अन्धकार को (**गमय**) प्राप्त करा॥७०॥

भावार्थः-सेनापति को योग्य है कि सङ्ग्रामों को जीते, उस विजयकारक सङ्ग्राम से नीचकर्म करनेहारे का निरोध करे, राजप्रजा में विरोध करनेहारे को अत्यन्त दण्ड देवे॥७०॥

मृगो नेत्यस्य जय ऋषिः। इन्द्रो देवता। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

राजजनैः कीदृशैर्भवितव्यमित्युपदिश्यते॥

राजपुरुषों को कैसा होना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावतऽआ जगन्था परस्याः।

सृकꣳ सꣳशाय पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रून् ताढि वि मृधो नुदस्व॥७१॥

मृगः। न। भीमः। कुचर इति कुऽचरः। गिरिष्ठाः। गिरिस्था इति गिरिऽस्थाः। परावतः। आ। जगन्थ। परस्याः। सृकम्। सꣳशायेति सम्ऽशाय। पविम्। इन्द्र। तिग्मम्। वि। शत्रून्। ताढि। वि। मृधः। नुदस्व॥७१॥

पदार्थः-(**मृगः**) मृगेन्द्रः सिंहः (**न**) इव (**भीमः**) बिभेत्यस्मात् सः (**कुचरः**) यः कुत्सितां गतिं चरति सः (**गिरिष्ठाः**) यो गिरौ तिष्ठति सः (**परावतः**) दूरदेशात् (**आ**) समन्तात् (**जगन्थ**) गच्छ। अत्र पुरुषव्यत्ययः। **अन्येषामपि०** [अष्टा०६.३.१३७] इति दीर्घश्च (**परस्याः**) शत्रूणां सेनाया उपरि (**सृकम्**) वज्रतुल्यं शस्त्रम्। **सृक इति वज्रनामसु पठितम्॥** (निघं०२.२०) (**संशाय**) सम्यक् सूक्ष्मबलान् कृत्वा

(पविम्) पुनाति दुष्टान् दण्डयित्वा येन तम् **(इन्द्र)** सेनाध्यक्ष **(तिग्मम्)** तीक्ष्णीकृतम् **(वि)** **(शत्रून्)** **(ताढि)** आजहि **(वि)** **(मृधः)** **(नुदस्व)**॥७१॥

अन्वयः-हे इन्द्र! त्वं कुचरो गिरिष्ठा भीमो मृगो न परावत आजगन्थ परस्यास्तिग्मं पविं सृकं संशाय शत्रून् विताढि मृधो विनुदस्व च॥७१॥

भावार्थः-ये सेनापुरुषाः सिंहवत् पराक्रम्य तीक्ष्णैः शस्त्रैः शत्रुसेनाङ्गानि छित्त्वा सङ्ग्रामान् विजयन्ते, तेऽतुलां प्रशंसां प्राप्नुवन्ति, नेतरे क्षुद्राशया भीरवः॥७१॥

पदार्थः-हे **(इन्द्र)** सेनाओं के पति! तू **(कुचरः)** कुटिल चाल चलता **(गिरिष्ठाः)** पर्वतों में रहता **(भीमः)** भयङ्कर **(मृगः)** सिंह के **(न)** समान **(परावतः)** दूरदेशस्थ शत्रुओं को **(आ, जगन्थ)** चारों ओर से घेरे **(परस्याः)** शत्रु की सेना पर **(तिग्मम्)** अति तीव्र **(पविम्)** दुष्टों को दण्ड से पवित्र करनेहारे **(सृकम्)** वज्र के तुल्य शस्त्र को **(संशाय)** सम्यक् तीव्र करके **(शत्रून्)** शत्रुओं को **(वि, ताढि)** ताड़ित कर और **(मृघः)** सङ्ग्रामों को **(वि, नुदस्व)** जीत कर अच्छे कर्मों में प्रेरित कर॥७१॥

भावार्थः-जो सेना के पुरुष सिंह के समान पराक्रम कर तीक्ष्ण शस्त्रों से शत्रुओं के सेनाङ्गों का छेदन कर सङ्ग्रामों को जीतते हैं, वे अतुल प्रशंसा को प्राप्त होते हैं, इतर क्षुद्राशय मनुष्य विजयसुख को प्राप्त कभी नहीं हो सकते॥७१॥

वैश्वानरो न इत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः। अग्निर्देवता। आर्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

वैश्वानरो नऽऊतयऽआ प्र यातु परावतः। अग्निर्नः सुष्टुतीरुप॥७२॥

वैश्वानरः। नः। ऊतये। आ। प्र। यातु। परावत इति पराऽवतः। अग्निः। नः। सुष्टुतीः। सुस्तुतीरिति सुऽस्तुतीः। उप॥७२॥

पदार्थः-**(वैश्वानरः)** विश्वेषु नरेषु यो राजते स एव **(नः)** अस्माकम् **(ऊतये)** रक्षाद्याय **(आ)** **(प्र)** **(यातु)** प्राप्नोतु **(परावतः)** दूरदेशात् **(अग्निः)** सूर्यः **(नः)** अस्माकम् **(सुष्टुतीः)** या शोभनाः स्तुतयस्ताः **(उप)**॥७२॥

अन्वयः-हे सेनेश सभेश! यथा वैश्वानरोऽग्निः सूर्यः परावतः सर्वान् पदार्थान् प्राप्नोति, तथा भवानूतये न आ प्र यातु। यथाऽग्निर्विद्युत संहितास्ति, तथा त्वं नः सुष्टुतीरुपशृणु॥७२॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यः सूर्यवद् दूरस्थोऽपि न्यायेन सर्वान् पदार्थान् प्रकाशयति, यथा च दूरस्थोऽपि सद्गुणाढ्यो जनः प्रशस्यते, तथा राजपुरुषैर्भवितव्यम्॥७२॥

पदार्थः-हे सेना सभा के पति! जैसे **(वैश्वानरः)** सम्पूर्ण नरों में विराजमान **(अग्निः)** सूर्यरूप अग्नि **(परावतः)** दूरदेशस्थ सब पदार्थों को प्राप्त होता है वैसे आप **(ऊतये)** रक्षादि के लिये **(नः)** हमारे समीप **(आ, प्र, (यातु)** अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये, जैसे बिजुली सब में व्यापक होकर समीपस्थ रहती है, वैसे **(नः)** हमारी **(सुष्टुतीः)** उत्तम स्तुतियों को **(उप)** अच्छे प्रकार सुनिये॥७२॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो पुरुष सूर्य्य के समान दूरस्थ होकर भी न्याय से सब व्यवहारों को प्रकाशित कर देता है और जैसे दूरस्थ सत्यगुणों से युक्त सत्पुरुष प्रशंसित होता है, वैसे ही राजपुरुषों को होना चाहिये॥७२॥

पृष्टो दिवीत्यस्य कुत्स ऋषिः। अग्निर्देवता। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

पृष्टो दिवि पृष्टोऽअग्निः पृथिव्यां पृष्टो विश्वाऽओषधीराविवेश।
वैश्वानरः सहसा पृष्टोऽअग्निः स नो दिवा स रिषस्पातु नक्तम्॥७३॥

पृष्टः। दिवि। पृष्टः। अग्निः। पृथिव्याम्। पृष्टः। विश्वाः। ओषधीः। आ। विवेश। वैश्वानरः। सहसा। पृष्टः। अग्निः। सः। नः। दिवा। सः। रिषः। पातु। नक्तम्॥७३॥

पदार्थः-**(पृष्टः)** ज्ञातुमिष्टः **(दिवि)** सूर्ये **(पृष्टः)** **(अग्निः)** प्रसिद्धः पावकः **(पृथिव्याम्)** **(पृष्टः)** **(विश्वाः)** अखिलाः **(ओषधीः)** सोमयवाद्याः **(आ)** **(विवेश)** विष्टोऽस्ति **(वैश्वानरः)** विश्वस्य नेता स एव **(सहसा)** बलेन **(पृष्टः)** **(अग्निः)** विद्युत् **(सः)** **(नः)** अस्मान् **(दिवा)** दिवसे **(सः)** **(रिषः)** हिंसकात् **(पातु)** रक्षतु **(नक्तम्)** रात्रौ॥७३॥

अन्वयः-मनुष्यैर्यो दिवि पृष्टोऽग्निः पृथिव्यां पृष्टोऽग्निर्जले वायौ च पृष्टोऽग्निः सहसा वैश्वानरः पृष्टोऽग्निर्विश्वा ओषधीराविवेश, स दिवा स च नक्तं यथा पाति, तथा सेनेशो भवान्नोऽस्मान् रिषः सततं पातु॥७३॥

भावार्थः-ये मनुष्या आकाशस्थं सूर्यं पृथिवीस्थं ज्वलितं सर्वपदार्थव्यापिनं विद्युदग्निं च विद्वद्भ्यो निश्चित्य कार्येषु संयुञ्जते, ते शत्रुभ्यो निर्भया जायन्ते॥७३॥

पदार्थः-मनुष्यों से कि जो **(दिवि)** प्रकाशस्वरूप सूर्य **(पृष्टः)** जानने के योग्य **(अग्निः)** अग्नि **(पृथिव्याम्)** पृथिवी में **(पृष्टः)** जानने को इष्ट अग्नि तथा जल और वायु में **(पृष्टः)** जानने के योग्य पावक **(सहसा)** बलादि गुणों से युक्त **(वैश्वानरः)** विश्व में प्रकाशमान **(पृष्टः)** जानने के योग्य **(अग्निः)** बिजुली रूप अग्नि **(विश्वाः)** समग्र **(ओषधीः)** ओषधियों में **(आ, विवेश)** प्रविष्ट हो रहा है **(सः)** सो अग्नि

(दिवा) दिन और **(सः)** वह अग्नि **(नक्तम्)** रात्रि में जैसे रक्षा करता, वैसे सेना के पति आप **(नः)** हमको **(रिषः)** हिंसक जन से निरन्तर **(पातु)** रक्षा करें॥७३॥

भावार्थः-जो मनुष्य आकाशस्थ सूर्य और पृथिवी में प्रकाशमान सब पदार्थों में व्यापक विद्युद्रूप अग्नि को विद्वानों से निश्चय कर कार्यों में संयुक्त करते हैं, वे शत्रुओं से निर्भय होते हैं॥७३॥

अश्यामेत्यस्य भरद्वाज ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ प्रजाराजजनैरितरेतरं किं कार्यमित्याह॥

अब प्रजा और राजपुरुषों को परस्पर क्या करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अश्याम तं काममग्ने तवोतीऽअश्याम रयिꣳ रयिवः सुवीरम्।

अश्याम वाजमभि वाजयन्तोऽश्याम द्युम्नमजराजरं ते॥७४॥

अश्याम। तम्। कामम्। अग्ने। तव। ऊती। अश्याम। रयिम्। रयिव इति रयिऽवः। सुवीरमिति सुऽवीरम्। अश्याम। वाजम्। अभि। वाजयन्तः। अश्याम। द्युम्नम्। अजर। अजरम्। ते॥७४॥

पदार्थः-**(अश्याम)** प्राप्नुयाम **(तम्)** **(कामम्)** **(अग्ने)** युद्धविद्यावित्सेनेश **(तव)** **(ऊती)** रक्षाद्यया क्रियया। अत्र **सुपां सुलग्०** [अष्टा०७.१.३९] इति पूर्वसवर्णः **(अश्याम)** **(रयिम्)** राज्यश्रियम् **(रयिवः)** प्रशस्ता रययो विद्यन्ते यस्य तत्सबुद्धौ। अत्र **छन्दसीरः** [अष्टा०८.२.१५] इति मस्य वः **(सुवीरम्)** शोभना वीराः प्राप्यन्ते यस्मात् तम् **(अश्याम)** **(वाजम्)** सङ्ग्रामविजयम् **(अभि)** **(वाजयन्तः)** सङ्ग्रामयन्तो योधयन्तः **(अश्याम)** **(द्युम्नम्)** यशो धनं वा **(अजर)** जरादोषरहित **(अजरम्)** जरादोषरहितम् **(ते)** तव॥७४॥

अन्वयः-हे अग्ने! वयं तवोती तं काममश्याम। हे रयिवः! सुवीरं रयिमश्याम, वाजयन्तो वयं वाजमभ्यश्याम। हे अजर! तेऽजरं द्युम्नमश्याम॥७४॥

भावार्थः-प्रजास्थैर्मनुष्यै राजपुरुषरक्षया राजपुरुषैः प्रजाजनरक्षणेन च परस्परं सर्वे कामाः प्राप्तव्याः॥७४॥

पदार्थः-हे **(अग्ने)** युद्धविद्या के जाननेहारे सेनापति! हम लोग **(तव)** तेरी **(ऊती)** रक्षा आदि की विद्या से **(तम्)** उस **(कामम्)** कामना को **(अश्याम)** प्राप्त हों। हे **(रयिवः)** प्रशस्त धनयुक्त! **(सुवीरम्)** अच्छे वीर प्राप्त होते हैं, जिससे उस **(रयिम्)** धन को **(अश्याम)** प्राप्त हों, **(वाजयन्तः)** सङ्ग्राम करते-कराते हुए हम लोग **(वाजम्)** सङ्ग्राम में विजय को **(अभ्यश्याम)** अच्छे प्रकार प्राप्त हों। हे **(अजर)** वृद्धपन से रहित सेनापते! हम लोग **(ते)** तेरे प्रताप से **(अजरम्)** अक्षय **(द्युम्नम्)** धन और कीर्ति को **(अश्याम)** प्राप्त हों॥७४॥

भावार्थः-प्रजा के मनुष्यों को योग्य है कि राजपुरुषों की रक्षा से और राजपुरुष प्रजाजन की रक्षा से परस्पर सब इष्ट कामों को प्राप्त हों॥७४॥

वयमित्यस्योत्कील ऋषिः। अग्निर्देवता। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुरुषार्थेन किं साध्यमित्याह॥

पुरुषार्थ से क्या सिद्ध करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

वयं तेऽअद्य ररिमा हि काममुत्तानहस्ता नमसोपसद्य।

यजिष्ठेन मनसा यक्षि देवानस्रेधता मन्मना विप्रोऽअग्ने॥७५॥

वयम्। ते। अद्य। ररिम। हि। कामम्। उत्तानहस्ता इत्युत्तानऽहस्ताः। नमसा। उपसद्येत्युपऽसद्य। यजिष्ठेन। मनसा। यक्षि। देवान्। अस्रेधता। मन्मना। विप्रः। अग्ने॥७५॥

पदार्थः-(**वयम्**) (**ते**) तव (**अद्य**) अस्मिन् दिने (**ररिम**) दद्मः। रा दाने लिट्। **अन्येषामपि दृश्यते** [अष्टा०६.३.१३७] इति दीर्घः। (**हि**) खलु (**कामम्**) (**उत्तानहस्ताः**) उत्तानावूर्ध्वगतावभयदातारौ हस्तौ येषां ते (**नमसा**) सत्कारेण (**उपसद्य**) सामीप्यं प्राप्य (**यजिष्ठेन**) अतिशयेन यष्टृ संगन्तृ तेन (**मनसा**) विज्ञानेन (**यक्षि**) यजसि (**देवान्**) विदुषः (**अस्रेधता**) इतस्ततो गमनरहितेन स्थिरेण (**मन्मना**) येन मन्यते विजानाति तेन (**विप्रः**) मेधावी (**अग्ने**) विद्वन्॥७५॥

अन्वयः-हे अग्ने! उत्तानहस्ता वयं ते नमसोपसद्याद्य कामं हि ररिम, यथा विप्रोऽस्रेधता मन्मना यजिष्ठेन मनसा देवान् यजति संगच्छते, यथा च त्वं यक्षि, तथा वयमपि यजेम॥७५॥

भावार्थः-ये मनुष्याः पुरुषार्थेनालंकामाः स्युस्ते विद्वत्संगेनैतत् प्राप्तुं शक्नुयुः॥७५॥

पदार्थः-हे (**अग्ने**) विद्वन्! (**उत्तानहस्ताः**) उत्कृष्टता से अभय देनेहारे हस्तयुक्त (**वयम्**) हम लोग (**ते**) आपके (**नमसा**) सत्कार से (**उपसद्य**) समीप प्राप्त होके (**अद्य**) आज ही (**कामम्**) कामना को (**हि**) निश्चय (**ररिम**) देते हैं, जैसे (**विप्रः**) बुद्धिमान् (**अस्रेधता**) इधर-उधर गमन अर्थात् चञ्चलतारहित स्थिर (**मन्मना**) बल और (**यजिष्ठेन**) अतिशय करके संयमयुक्त (**मनसा**) चित्त से (**देवान्**) विद्वानों और शुभ गुणों को प्राप्त होता है और जैसे तू (**यक्षि**) शुभ कर्मों में युक्त हो, हम भी वैसे ही सङ्गत होवें॥७५॥

भावार्थः-जो मनुष्य पुरुषार्थ से पूर्ण कामना वाले हों, वे विद्वानों के सङ्ग से इस विषय को प्राप्त होने को समर्थ होवें॥७५॥

धामच्छदग्निरित्यस्योत्कील ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

कथ सर्वविद्वत्कर्त्तव्यमाह॥

अब सब विद्वानों को जो करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

धामच्छदग्निरिन्द्रो ब्रह्मा देवो बृहस्पतिः।

सचेतसो विश्वे देवा यज्ञं प्रावन्तु नः शुभे॥७६॥

धामच्छदिति धामऽछत्। अग्निः। इन्द्रः। ब्रह्मा। देवः। बृहस्पतिः। सचेतस इति सऽचेतसः। विश्वे। देवाः। यज्ञम्। प्र। अवन्तु। नः। शुभे॥७६॥

पदार्थः-(**धामच्छत्**) यो धामानि छादयति संवृणोति सः (**अग्निः**) विद्वान् (**इन्द्रः**) परमैश्वर्यवान् (**ब्रह्मा**) चतुर्वेदवित् (**देवः**) विद्यादाता (**बृहस्पतिः**) अध्यापकः (**सचेतसः**) ये चेतसा प्रज्ञया सह वर्त्तन्ते (**विश्वे**) सर्वे (**देवाः**) विद्वांसः (**यज्ञम्**) उक्तम् (**प्र**) (**अवन्तु**) कामयन्ताम् (**नः**) अस्माकम् (**शुभे**) कल्याणाय॥७६॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! देवो धामच्छदग्निरिन्द्रो ब्रह्मा बृहस्पतिश्चेमे सचेतसो विश्वे देवाः नः शुभे यज्ञं प्रावन्तु॥७६॥

भावार्थः-सर्वे विद्वांसः सर्वेषां सुखाय सततं सत्योपदेशान् कुर्वन्तु॥७६॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! (**देवः**) विद्वान् (**धामच्छत्**) जन्म, स्थान, नाम का विस्तार करनेहारे (**अग्निः**) पावक (**इन्द्रः**) विद्युत् के समान अमात्य और राजा (**ब्रह्मा**) चारों वेदों का जाननेहारा (**बृहस्पतिः**) वेदवाणी का पठन-पाठन से पालन करनेहारा (**सचेतसः**) विज्ञान वाले (**विश्वे, देवाः**) सब विद्वान् लोग (**नः**) हमारे (**शुभे**) कल्याण के लिये (**यज्ञम्**) विज्ञान योगरूपा क्रिया को (**प्र, अवन्तु**) अच्छे प्रकार कामना करें॥७६॥

भावार्थः-सब विद्वान् लोग सब मनुष्यादि प्राणियों के कल्याणर्थ निरन्तर सत्य उपदेश करें॥७६॥

त्वमित्यस्योशना ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। निचृद् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अथ सभेशसेनेशयोः कर्त्तव्यमाह॥

अब सभापति तथा सेनापति के कर्त्तव्य को अगले मन्त्र में कहा है॥

त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄँः पाहि शृणुधी गिरः। रक्षा तोकमुत त्मना॥७७॥

त्वम्। यविष्ठ। दाशुषः। नॄन्। पाहि। शृणुधि। गिरः। रक्ष। तोकम्। उत। त्मना॥७७॥

पदार्थः-(**त्वम्**) सभेश (**यविष्ठ**) अतिशयेन युवन् (**दाशुषः**) विद्यादातॄन् (**नॄन्**) अध्यापकान् मनुष्यान् (**पाहि**) (**शृणुधि**) अत्र **अन्येषामपि दृश्यते** [अष्टा०६.३.१३७] इति दीर्घः। (**गिरः**) विदुषां विद्यासुशिक्षिता वाचः (**रक्ष**) अत्र **द्व्यचोऽतस्तिङः** [अष्टा०६.३.१३५] इति दीर्घः। (**तोकम्**) पुत्रादिकम् (**उत**) (**त्मना**) आत्मना॥७७॥

अन्वयः-हे यविष्ठ राजन्! त्वं दाशुषो नॄन् पाह्येतेषां गिरः शृणुधि, यो वीरो युद्धे म्रियेत तस्य तोकं त्मना रक्षोतापि स्त्रियादिकं च॥७७॥

भावार्थः-सभेशसेनेशयोर्द्वे कर्मणी अवश्यं कर्त्तव्ये स्त, एकं विदुषां पालनं तदुपदेशश्रवणञ्च, द्वितीयं युद्धे हतानामपत्यस्त्र्यादिपालनञ्चैवं समाचरतां पुरुषाणां सदैव विजयः श्रीः सुखानि च भवन्तीति विद्वद्भिर्ध्येयम्॥७७॥

अत्र गणित विद्याराजप्रजापठकपाठककर्मादिवर्णनादेतदध्यायोक्तार्थानां पूर्वाध्यायोक्तार्थैः सह संगतिरस्तीति बोध्यम्॥

पदार्थः-हे **(यविष्ठ)** पूर्ण युवास्था को प्राप्त राजन्! **(त्वम्)** तू **(दाशुषः)** विद्यादाता **(नॄन्)** मनुष्यों की **(पाहि)** रक्षा कर और इनकी **(गिरः)** विद्या शिक्षायुक्त वाणियों को **(शृणुधि)** सुन। जो वीर पुरुष युद्ध में मर जावे, उसके **(तोकम्)** छोटे सन्तानों की **(उत)** और स्त्री आदि की भी **(त्मना)** आत्मा से **(रक्ष)** रक्षा कर॥७७॥

भावार्थः-सभा और सेना के अधिष्ठाताओं को दो कर्म अवश्य कर्त्तव्य हैं, एक विद्वानों का पालन और उनके उपदेश का श्रवण, दूसरा युद्ध में मरे हुओं के सन्तान, स्त्री आदि का पालन। ऐसे आचरण करने वाले पुरुष के सदैव विजय, धन और सुख की वृद्धि होती है॥७७॥

इस अठारहवें अध्याय में गणितविद्या, राजा, प्रजा और पढ़नेहारे पुरुषों के कर्म आदि के वर्णन से इस अध्याय में कहे हुए अर्थों की पूर्व अध्याय में कहे हुए अर्थों के साथ सङ्गति है, यह जानना चाहिये।

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य्याणां परमविदुषां श्रीविरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य्येण श्रीदयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मिते संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां समन्विते सुप्रमाणयुक्ते यजुर्वेदभाष्येऽष्टादशोऽध्यायः सम्पूर्णः॥१८॥

॥ओ३म्॥

अथैकोनविंशोऽध्याय आरभ्यते॥

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव। यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व॥ यजु० ३०.३॥

स्वाद्वीमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। सोमो देवता। निचृच्छक्वरी छन्दः। धैवतः स्वरः॥

मनुष्यैर्धमार्थकाममोक्षसिद्धये किं कर्त्तव्यमित्याह॥

अब उन्नीसवें अध्याय का आरम्भ है, इसके प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि के लिये क्या करना चाहिये, इस विषय का उपदेश किया है॥

स्वा॒द्वीं त्वा॑ स्वा॒दुना॑ ती॒व्रां ती॒व्रेणा॒मृता॑म॒मृते॑न।

मधु॑मती॒ं मधु॑मता सृ॒जामि॒ सꣳसोमे॑न॒।

सोमो॑ऽस्य॒श्विभ्या॑ं पच्यस्व॒ सर॑स्वत्यै पच्य॒स्वेन्द्रा॑य सु॒त्राम्णे॑ पच्यस्व॥ १॥

स्वा॒द्वीम्। त्वा॒। स्वा॒दुना॑। ती॒व्राम्। ती॒व्रेण॑। अ॒मृता॑म्। अ॒मृते॑न। मधु॑मती॒मिति॒ मधु॑ऽमतीम्। मधु॑म॒तेति॒ मधु॑ऽमता। सृ॒जा॒मि॒। सम्। सोमे॑न। सोम॑ः। अ॒सि॒। अ॒श्विभ्या॒मित्य॒श्विऽभ्या॑म्। प॒च्य॒स्व॒। सर॑स्वत्यै। प॒च्य॒स्व॒। इन्द्रा॑य। सु॒त्राम्ण॒ इति॑ सु॒ऽत्राम्णे॑। प॒च्य॒स्व॒॥ १॥

पदार्थः-(**स्वाद्वीम्**) सुस्वादुयुक्ताम् (**त्वा**) त्वाम् (**स्वादुना**) मधुरादिना (**तीव्राम्**) तीक्ष्णस्वभावाम् (**तीव्रेण**) आशुकारिगुणेन (**अमृताम्**) अमृतात्मिकाम् (**अमृतेन**) सर्वरोगप्रहारकेण गुणेन (**मधुमतीम्**) प्रशस्तमधुरगुणयुक्ताम् (**मधुमता**) स्वादिष्टगुणेन (**सृजामि**) निष्पादयामि (**सम्**) (**सोमेन**) सोमलताद्योषधिसमूहेन (**सोमः**) ऐश्वर्ययुक्तः (**असि**) (**अश्विभ्याम्**) व्याप्तविद्याभ्यां स्त्रीपुरुषाभ्याम् (**पच्यस्व**) परिपक्वां कुरु (**सरस्वत्यै**) विद्यासुशिक्षितवाणीयुक्तायै स्त्रियै (**पच्यस्व**) (**इन्द्राय**) ऐश्वर्य्ययुक्ताय पुरुषाय (**सुत्राम्णे**) यः सर्वान् दुःखेभ्यः सुष्ठु त्रायते तस्मै (**पच्यस्व**)॥१॥

अन्वयः-हे वैद्य यस्त्वं! सोमोऽसि तं त्वौषधीविद्यायां संसृजामि, यथाऽहं यां स्वादुना सह स्वाद्वीं तीव्रेण सह तीव्राममृतेन सहाऽमृतां मधुमता सोमेन सह मधुमतीमोषधीं संसृजामि, तथैतां त्वमश्विभ्यां पच्यस्व, सरस्वत्यै पच्यस्व, सुत्राम्ण इन्द्राय पच्यस्व॥१॥

भावार्थः-मनुष्यैर्वैद्यकशास्त्ररीत्याऽनेकानि मधुरादिप्रशस्तवादयुक्तान्यौषधानि निर्माय तत्सेवनेनारोग्यं सम्पाद्य धर्मार्थकाममोक्षसिद्धये सततं प्रयतितव्यम्॥१॥

पदार्थः-हे वैद्यराज! जो तू (**सोमः**) सोम के सदृश ऐश्वर्ययुक्त (**असि**) है, उस (**त्वा**) तुझ को ओषधियों की विद्या में (**सम्, सृजामि**) अच्छे प्रकार उत्तम शिक्षायुक्त करता हूँ, जैसे मैं जिस (**स्वादुना**) मधुर रसादि के साथ (**स्वाद्वीम्**) सुस्वादयुक्त (**तीव्रेण**) शीघ्रकारी तीक्ष्ण स्वभाव सहित (**तीव्राम्**) तीक्ष्ण

स्वभावयुक्त को **(अमृतेन)** सर्वरोगापहारी गुण के साथ **(अमृताम्)** नाशरहित **(मधुमता)** स्वादिष्ट गुणयुक्त **(सोमेन)** सोमलता आदि से **(मधुमतीम्)** प्रशस्त मीठे गुणों से युक्त ओषधि को सम्यक् सिद्ध करता हूं, वैसे तू इस को **(अश्विभ्याम्)** विद्यायुक्त स्त्री-पुरुषों सहित **(पच्यस्व)** पका **(सरस्वत्यै)** उत्तम शिक्षित वाणी से युक्त स्त्री के अर्थ **(पच्यस्व)** पका **(सुत्राम्णे)** सब को दु:ख से अच्छे प्रकार बचाने वाले **(इन्द्राय)** ऐश्वर्ययुक्त पुरुष के लिये **(पच्यस्व)** पका॥१॥

भावार्थ:-मनुष्यों को योग्य है कि वैद्यकशास्त्र की रीति से अनेक मधुरादि प्रशंसित स्वादयुक्त अत्युत्तम औषधों को सिद्ध कर उनके सेवन से आरोग्य को प्राप्त होकर धर्मार्थ, काम, मोक्ष की सिद्धि के लिये निरन्तर प्रयत्न किया करें॥१॥

परीत इत्यस्य भारद्वाज: ऋषि:। सोमो देवता। स्वराडनुष्टुप् छन्द:। गान्धार: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

परीतो षिञ्चता सुतꣳ सोमो यऽउत्तमꣳ हविः।

दधन्वा यो नर्योऽअप्स्वन्तरा सुषाव सोममद्रिभिः॥२॥

परि। इत:। सिञ्चत। सुतम्। सोम:। य:। उत्तममित्युत्ऽतमम्। हवि:। दधन्वान्। य:। नर्य्य:। अप्स्वित्यप्ऽसु। अन्त:। आ। सुषाव। सुषावेति सुऽसाव। सोमम्। अद्रिभिरित्यद्रिऽभि:॥२॥

पदार्थ:-(**परि**) सर्वत: (**इत:**) प्राप्त: (**सिञ्चत**) अत्र **अन्येषामपि०** [अष्टा०६.३.१३७] इति दीर्घ:। (**सुतम्**) निष्पन्नम् (**सोम:**) प्रेरको विद्वान् (**य:**) (**उत्तमम्**) (**हवि:**) अत्तुमर्हम् (**दधन्वान्**) धरन् सन् (**य:**) (**नर्य:**) नरेषु साधु: (**अप्सु**) जलेषु (**अन्त:**) मध्ये (**आ**) (**सुषाव**) निष्पादयेत् (**सोमम्**) ओषधिसारम् (**अद्रिभि:**) मेघै:॥२॥

अन्वय:-हे मनुष्या:! य य उत्तमं हवि: सोम इत: स्याद्, यो नर्यो दधन्वानप्स्वन्तरासुषाव तमद्रिभि: सुतं सोमं यूयं परिसिञ्चत॥२॥

भावार्थ:-मनुष्यैरुत्तमा ओषधीर्जले संस्थाप्य मथित्वाऽऽसवं निस्सार्यानेन यथायोग्यं जाठराग्निं सेवित्वा बलारोग्ये वर्द्धनीये॥२॥

पदार्थ:-हे मनुष्य लोगो! **(य:)** जो **(उत्तमम्)** उत्तम श्रेष्ठ **(हवि:)** खाने योग्य अन्न **(सोम:)** प्रेरणा करनेहारा विद्वान् **(इत:)** प्राप्त होवे **(य:)** जो **(नर्य:)** मनुष्यों में उत्तम **(दधन्वान्)** धारण करता हुआ **(अप्सु)** जलों के **(अन्त:)** मध्य में **(आसुषाव)** सिद्ध करे, उस **(अद्रिभि:)** मेघों में **(सुतम्)** उत्पन्न हुए **(सोमम्)** ओषधिगण की तुम लोग **(परिसिञ्चत)** सब ओर से सींच के बढ़ाओ॥२॥

भावार्थः-मनुष्यों को योग्य है कि उत्तम ओषधियों को जल में डाल, मन्थन कर, सार रस को निकाल, इससे यथायोग्य जाठराग्नि को सेवन करके बल और आरोग्यता को बढ़ाया करें॥२॥

वायोरित्यस्य आभूतिर्ऋषिः। सोमो देवता। भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

वायोः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ् सोमोऽअतिद्रुतः। इन्द्रस्य युज्यः सखा।

वायोः पूतः पवित्रेण प्राङ् सोमोऽअतिद्रुतः। इन्द्रस्य युज्यः सखा॥३॥

वायोः। पूतः। पवित्रेण। प्रत्यङ्। सोमः। अतिद्रुत इत्यतिऽद्रुतः। इन्द्रस्य। युज्यः। सखा। वायोः। पूतः। पवित्रेण। प्राङ्। सोमः। अतिद्रुत इत्यतिऽद्रुतः। इन्द्रस्य। युज्यः। सखा॥३॥

पदार्थः-(**वायोः**) पवनात् (**पूतः**) शुद्धः (**पवित्रेण**) शुद्धिकरेण (**प्रत्यङ्**) यः प्रत्यक्षमञ्चति प्राप्नोति सः (**सोमः**) सोमलताद्योषधिगणः (**अतिद्रुतः**) योऽतिद्रवति सः (**इन्द्रस्य**) इन्द्रियस्वामिनो जीवस्य (**युज्यः**) युक्तः (**सखा**) मित्रमिव (**वायोः**) शुद्धाच्छुद्धिनिमित्तात् (**पूतः**) निर्मलः (**पवित्रेण**) शुद्धिकरेण कर्मणा (**प्राङ्**) प्रकृष्टतयाऽञ्चति सः (**सोमः**) निष्पादितौषधिरसः (**अतिद्रुतः**) अत्यन्तं शीघ्रकारी (**इन्द्रस्य**) परमैश्वर्ययुक्तस्य राज्ञः (**युज्यः**) समाधातुमर्हः (**सखा**) सुहृदिव॥३॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यः सोमः प्राङतिद्रुतो वायोः पवित्रेण पूत इन्द्रस्य युज्यः सखेवास्ति, यश्च सोमः प्रत्यङ्ङतिद्रुतो वायोः पवित्रेण पूत इन्द्रस्य युज्यः सखेवास्ति, तं यूयं सततं सेवध्वम्॥३॥

भावार्थः-या ओषधयः शुद्धे स्थले जले वायौ चोत्पद्यन्ते, पूर्वापरान् रोगान् शीघ्रं निस्सारयन्ति च, ता मनुष्यैर्मित्रवत् सदा सेवनीयाः॥३॥

पदार्थः-हे मनुष्य लोगो! जो (**सोमः**) सोमलतादि ओषधियों का गुण (**प्राङ्**) जो प्रकृष्टता से (**अतिद्रुतः**) शीघ्रगामी (**वायोः**) वायु से (**पवित्रेण**) शुद्ध करने वाले कर्म से (**पूतः**) पवित्र (**इन्द्रस्य**) इन्द्रियों के अधिष्ठाता जीव का (**युज्यः**) योग्य (**सखा**) मित्र के समान रहता है और जो (**सोमः**) सिद्ध किया हुआ ओषधियों का रस (**प्रत्यङ्**) प्रत्यक्ष शरीरों से युक्त होके (**अतिद्रुतः**) अत्यन्त वेग वाला (**वायोः**) वायु से (**पवित्रेण**) पवित्रता कर के (**पूतः**) शुद्ध और (**इन्द्रस्य**) परमैश्वर्ययुक्त राजा का (**युज्यः**) अतियोग्य (**सखा**) मित्र के समान है, उसका तुम निरन्तर सेवन किया करो॥३॥

भावार्थः-जो ओषधि शुद्ध स्थल, जल और वायु में उत्पन्न होती और पूर्व और पश्चात् होने वाले रोगों का शीघ्र निवारण करती है, उनका मनुष्य लोग मित्र के समान सदा सेवन करें॥३॥

पुनातीत्यस्य आभूतिर्ऋषिः। सोमो देवता। आर्षी गायत्रीच्छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

पुनाति ते परिस्रुतꣳ सोमꣳ सूर्यस्य दुहिता। वारेण शश्वता तना॥४॥

पुनाति। ते। परिस्रुतमिति परिऽस्रुतम्। सोमम्। सूर्य्यस्य। दुहिता। वारेण। शश्वता तना॥४॥

पदार्थः-(**पुनाति**) पवित्रीकरोति (**ते**) तव (**परिस्रुतम्**) सर्वतः प्राप्तम् (**सोमम्**) ओषधिरसम् (**सूर्य्यस्य**) (**दुहिता**) पुत्रीवोषा (**वारेण**) वरणीयेन (**शश्वता**) सनातनेन गुणेन (**तना**) विस्तृतेन प्रकाशेन॥४॥

अन्वयः-हे मनुष्य! या तना सूर्यस्य दुहितेवोषा शश्वता वारेण ते परिस्रुतं सोमं पुनाति, तस्या त्वमोषधिरसं सेवस्व॥४॥

भावार्थः-ये मनुष्याः सूर्योदयात् प्राक् शौचं विधाय यथानुकूलमौषधं सेवन्ते, तेऽरोगा भूत्वा सुखिनो जायन्ते॥४॥

पदार्थः-हे मनुष्य! जो (**तना**) विस्तीर्ण प्रकाश से (**सूर्यस्य**) सूर्य की (**दुहिता**) कन्या के समान उषा (**शश्वता**) अनादिरूप (**वारेण**) ग्रहण करने योग्य स्वरूप से (**ते**) तेरे (**परिस्रुतम्**) सब ओर से प्राप्त (**सोमम्**) ओषधियों के रस को (**पुनाति**) पवित्र करती है, उसमें तू ओषधियों के रस का सेवन कर॥४॥

भावार्थः-जो मनुष्य सूर्योदय से पूर्व शौचकर्म करके यथानुकूल ओषधि का सेवन करते हैं, वे रोगरहित होकर सुखी होते हैं॥४॥

ब्रह्मे त्यस्याभूतिर्ऋषिः। सोमो देवता। निचृज्जगतीछन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ब्रह्म क्षत्रं पवते तेजऽइन्द्रियꣳ सुरया सोमः सुतऽआसुतो मदाय।

शुक्रेण देव देवताः पिपृग्धि रसेनान्नं यजमानाय धेहि॥५॥

ब्रह्म। क्षत्रम्। पवते। तेजः। इन्द्रियम्। सुरया। सोमः। सुतः। आसुत इत्याऽसुतः। मदाय। शुक्रेण। देव। देवताः। पिपृग्धि। रसेन। अन्नम्। यजमानाय। धेहि॥५॥

पदार्थः-(**ब्रह्म**) विद्वत्कुलम् (**क्षत्रम्**) न्यायकारिक्षत्रियकुलम् (**पवते**) पवित्रीकरोति (**तेजः**) प्रागल्भ्यम् (**इन्द्रियम्**) मनआदिकम् (**सुरया**) या सूयते सा सुरा तया (**सोमः**) ओषधिरसः (**सुतः**) सम्पादितः (**आसुतः**) समन्ताद् रोगनिवारणे सेवितः (**मदाय**) हर्षाय (**शुक्रेण**) आशु शुद्धिकरेण (**देव**) सुखप्रदातः (**देवताः**) देवा एव देवतास्ताः (**पिपृग्धि**) प्रीणीहि (**रसेन**) (**अन्नम्**) भोज्यम् (**यजमानाय**) सुखप्रदात्रे (**धेहि**) धर॥५॥

अन्वयः-हे देव विद्वन्! यः शुक्रेण मदाय सुरया सुत आसुतः सोमस्तेज इन्द्रियं ब्रह्म क्षत्रं च पवते, तेन रसेनान्नं यजमानाय धेहि, देवताः पिपृग्धि॥५॥

भावार्थः-नात्र केनचिन्मनुष्येण नीरसमन्नमत्तव्यम्, सदा विद्याशौर्यबलबुद्धिवर्द्धनाय महौषधिसारास्सेवनीयाः॥५॥

पदार्थः-हे **(देव)** सुखदाता विद्वान्! जो **(शुक्रेण)** शीघ्र शुद्ध करनेहारे व्यवहार से **(मदाय)** आनन्द के लिये **(सुरया)** उत्पन्न होती हुई क्रिया से **(सुतः)** उत्पादित **(आसुतः)** अच्छे प्रकार रोगनिवारण के निमित्त सेवित **(सोमः)** ओषधियों का रस **(तेजः)** प्रग्ल्भता **(इन्द्रियम्)** मन आदि इन्द्रियगण **(ब्रह्म)** ब्रह्मवित् कुल और **(क्षत्रम्)** न्यायकारी क्षत्रिय-कुल को **(पवते)** पवित्र करता है, उस **(रसेन)** रस से युक्त **(अन्नम्)** अन्न को **(यजमानाय)** धर्मात्मा जन के लिये **(धेहि)** धारण कर **(देवताः)** विद्वानों को **(पिपृग्धि)** प्रसन्न कर॥५॥

भावार्थः-इस जगत् में किसी मनुष्य को योग्य नहीं है कि जो श्रेष्ठ रस के विना अन्न खावे, सदा विद्या शूरवीरता, बल और बुद्धि की वृद्धि के लिये महौषधियों के सारों को सेवन करना चाहिये॥५॥

कुविदङ्गेत्यस्याऽऽभूतिर्ऋषिः। इन्द्रो देवता। विराट् प्रकृतिश्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

राजपुरुषैः किं कर्त्तव्यमित्याह॥

राजपुरुषों को क्या करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय। इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नमऽ उक्तिं यजन्ति। उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णऽएष ते योनिस्तेजसे त्वा वीर्याय त्वा बलाय त्वा॥६॥

कुवित्। अङ्ग। यवमन्त इति यवऽमन्तः। यवम्। चित्। यथा। दान्ति। अनुपूर्वमित्यनुऽपूर्वम्। वियूयेति विऽयूय। इहेहेतीहऽइह। एषाम्। कृणुहि। भोजनानि। ये। बर्हिषः। नमउक्तिमिति नमःऽउक्तिम्। यजन्ति। उपयामगृहीत इत्युपयामऽगृहीतः। असि। अश्विभ्यामित्यश्विऽभ्याम्। त्वा। सरस्वत्यै। त्वा। इन्द्राय। त्वा। सुत्राम्ण इति सुऽत्राम्णे। एषः। ते। योनिः। तेजसे। त्वा। वीर्याय। त्वा। बलाय। त्वा॥६॥

पदार्थः-**(कुवित्)** बलम्। **कुविदिति बलनामसु पठितम्॥** (निघं०३.१) **(अङ्ग)** मित्र **(यवमन्तः)** बहवो यवा विद्यन्ते येषां ते **(यवम्)** यवादिधान्यम् **(चित्)** अपि **(यथा)** **(दान्ति)** छिन्दन्ति **(अनुपूर्वम्)** अनुकूलं प्रथमम् **(वियूय)** विभज्य **(इहेह)** अस्मिन् संसारे व्यवहारे च **(एषाम्)** कृषीवलानाम् **(कृणुहि)** कुरु **(भोजनानि)** पालनान्यभ्यवहरणानि वा **(ये)** **(बर्हिषः)** अन्नादिप्रापकाः **(नमउक्तिम्)** नमसामन्नादीनामुक्तिं वृद्धय उपदेशम् **(यजन्ति)** ददति **(उपयामगृहीतः)** कर्षकादिभिः स्वीकृतः **(असि)** **(अश्विभ्याम्)** द्यावापृथिवीभ्याम् **(त्वा)** त्वाम् **(सरस्वत्यै)** कृषिकर्मप्रचारिकायै वाचे **(त्वा)** **(इन्द्राय)** शत्रुविदारणाय **(त्वा)** **(सुत्राम्णे)** सुष्ठु रक्षित्रे **(एषः)** **(ते)** तव **(योनिः)** कारणम् **(तेजसे)** प्रागल्भ्याय **(त्वा)** **(वीर्याय)** पराक्रमाय **(त्वा)** **(बलाय)** **(त्वा)**॥६॥

अन्वयः-हे अङ्ग! ये बर्हिषो यवमन्तः कृषीवला नमउक्तिं यजन्त्येषां पदार्थानामिहेह त्वं भोजनानि कृणुहि, यथैते यवं चिद् वियूयानुपूर्वं दान्ति, तथा त्वमेषां विभागेन कुवित् प्रापय यस्य ते तवैष योनिरस्ति, तं त्वाऽश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय सुत्राम्णे त्वा तेजसे त्वा वीर्याय त्वा बलाय ये यजन्ति, यैर्वा त्वमुपयामगृहीतोऽसि तैस्त्वं विहर॥६॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। ये राजपुरुषाः कृष्यादिकर्मकर्तॄन् राज्ये करदातॄन् परिश्रमिणो जनाँश्च प्रीत्या रक्षन्त्युपदिशन्ति, तेऽस्मिन् संसारे सौभाग्यवन्तो भवन्ति॥६॥

पदार्थः-हे **(अङ्ग)** मित्र! **(ये)** जो **(बर्हिषः)** अन्नादि की प्राप्ति कराने वाले **(यवमन्तः)** यवादि धान्ययुक्त किसान लोग **(नमउक्तिम्)** अन्नादि की वृद्धि के लिये उपदेश **(यजन्ति)** देते हैं, **(एषाम्)** उनके पदार्थों का **(इहेह)** इस संसार और इस व्यवहार में तू **(भोजनानि)** पालन वा भोजन आदि **(कृणुहि)** किया कर, **(यथा)** जैसे ये किसान लोग **(यवम्)** यव को **(चित्)** भी **(वियूय)** वुषादि से पृथक् कर **(अनुपूर्वम्)** पूर्वापर की योग्यता से **(दान्ति)** काटते हैं, वैसे तू इनके विभाग से **(कुवित्)** बड़ा बल प्राप्त कर, जिस **(ते)** तेरी उन्नति का **(एषः)** यह **(योनिः)** कारण है, उस **(त्वा)** तुझको **(अश्विभ्याम्)** प्रकाश-भूमि की विद्या के लिये **(त्वा)** तुझको **(सरस्वत्यै)** कृषिकर्म प्रचार करनेहारी उत्तम वाणी के लिये **(त्वा)** तुझको **(इन्द्राय)** शत्रुओं के नाश करने वाले **(सुत्राम्णे)** अच्छे रक्षक के लिये **(त्वा)** तुझ को **(तेजसे)** प्रगल्भता के लिये **(त्वा)** तुझ को **(वीर्याय)** पराक्रम के लिये **(त्वा)** तुझ को **(बलाय)** बल के लिये जो प्रसन्न करते हैं वा जिससे तू **(उपयामगृहीतः)** श्रेष्ठ व्यवहारों से स्वीकार किया हुआ **(असि)** है, उनके साथ तू विहार कर॥६॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो राजपुरुष कृषि आदि कर्म करने, राज्य में कर देने और परिश्रम करने वाले मनुष्यों को प्रीति से रखते और सत्य उपदेश करते हैं, वे इस संसार में सौभाग्य वाले होते हैं॥६॥

नानेत्यस्याऽऽभूतिर्ऋषिः। सोमो देवता। भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

राजप्रजे कथं स्यातामित्युपदिश्यते॥

राजा और प्रजा कैसे हों, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

नाना हि वां देवहितꣳ सदस्कृतं मा सꣳसृक्षाथां परमे व्योमन्।

सुरा त्वमसि शुष्मिणी सोमऽएष मा मा हिꣳसीः स्वां योनिमाविशन्ती॥७॥

नाना। हि। वाम्। देवहितमिति देवऽहितम्। सदः। कृतम्। मा। सम्। सृक्षाथाम्। परमे। व्योमन्निति विऽओमन्। सुरा। त्वम्। असि। शुष्मिणी। सोमः। एषः। मा। मा। हिꣳसीः। स्वाम्। योनिम्। आविशन्तीत्याऽविशन्ती॥७॥

पदार्थः-(**नाना**) अनेकप्रकारेण (**हि**) किल (**वाम्**) युवाभ्याम् (**देवहितम्**) देवेभ्यः प्रियम् (**सदः**) स्थानम् (**कृतम्**) (**मा**) (**सम्, सृक्षाथाम्**) संसर्गं कुरुतम् (**परमे**) उत्कृष्टे (**व्योमन्**) व्योम्नि बुद्ध्यवकाशे (**सुरा**) सोमवल्ल्यादिलता। अत्र षुञ् अभिषवे इत्यस्यामद्धातोरौणादिको रः प्रत्ययः। (**त्वम्**) सा (**असि**) अस्ति (**शुष्मिणी**) बहु शुष्म बलं यस्यामस्ति सा (**सोमः**) महौषधिगणः (**एषः**) (**मा**) (**मा**) माम् (**हिंसीः**) हिंस्याः (**स्वाम्**) स्वकीयाम् (**योनिम्**) कारणम् (**आविशन्ती**) समन्तात् प्रविशन्ती॥७॥

अन्वयः-हे राजप्रजाजनौ! नाना सदस्कृतं देवहितं वां प्राप्नोति, या हि स्वां योनिमाविशन्ती शुष्मिणी सुरास्ति, त्वं परमे व्योमन् वर्त्तमानाऽसि तां युवां प्राप्नुतम्। मादकद्रव्याणि मा संसृक्षाथाम्, विद्वन् एष सोमोऽस्ति, तं मा च त्वं मा हिंसीः॥७॥

भावार्थः-ये राजप्रजास्थमनुष्या बुद्धिबलारोग्यायुर्वर्द्धकानोषधिरसान् सततं सेवन्ते, प्रमादकरांश्च त्यजन्ति, तेऽत्र परत्र च धर्मार्थकाममोक्षसाधका भवन्ति॥७॥

पदार्थः-हे राजा और प्रजा के जनो! (**नाना**) अनेक प्रकार (**सदः, कृतम्**) स्थान किया हुआ (**देवहितम्**) विद्वानों को प्रियाचरण (**वाम्**) तुम दोनों को प्राप्त होवे जो (**हि**) निश्चय से (**स्वाम्**) अपने (**योनिम्**) कारण को (**आविशन्ती**) अच्छा प्रवेश करती हुई (**शुष्मिणी**) बहुत बल करने वाली (**सुरा**) सोमवल्ली आदि की लता हैं, (**त्वम्**) वह (**परमे**) उत्कृष्ट (**व्योमन्**) बुद्धिरूप अवकाश में वर्तमान (**असि**) है, उसको तुम दोनों प्राप्त होओ और प्रमादकारी पदार्थों का (**मा**) मत (**संसृक्षाथाम्**) संग किया करो। हे विद्वत्पुरुष! जो (**एषः**) यह (**सोमः**) सोमादि ओषधिगण है, उसको तथा (**मा**) मुझ को तू (**मा**) मत (**हिंसीः**) नष्ट कर॥७॥

भावार्थः-जो राजा-प्रजा के सम्बन्धी मनुष्य बुद्धि, बल, आरोग्य और आयु बढ़ानेहारे ओषधियों के रसों को सदा सेवन करते और प्रमादकारी पदार्थों का सेवन नहीं करते, वे इस जन्म और परजन्म में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को सिद्ध करने वाले होते हैं॥७॥

उपयामगृहीत इत्यस्याऽऽभूतिर्ऋषिः। सोमो देवता। निचृत् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनर्मनुष्यैः किं कर्त्तव्यमित्युपदिश्यते॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

उपयामगृहीतोऽस्याश्विनं तेजः सारस्वतं वीर्यमैन्द्रं बलम्।

एष ते योनिर्मोदाय त्वानन्दाय त्वा महसे त्वा॥८॥

उपयामगृहीतः। असि। आश्विनम्। तेजः। सारस्वतम्। वीर्यम्। ऐन्द्रम्। बलम्। एषः। ते। योनिः। मोदाय। त्वा। आनन्दायेत्याऽऽनन्दाय। त्वा। महसे। त्वा॥८॥

पदार्थः-(**उपयामगृहीतः**) उपगतैर्धर्म्यैर्यामैर्यमसम्बन्धभिर्नियमैर्गृहीतः संयुतः (**असि**) (**आश्विनम्**) अश्विनोः सूर्याचन्द्रमसोरिदम् (**तेजः**) प्रकाशः (**सारस्वतम्**) सरस्वत्या वेदवाण्या इदम् (**वीर्यम्**) पराक्रमः (**ऐन्द्रम्**) इन्द्रस्य विद्युत इदम् (**बलम्**) (**एषः**) (**ते**) तव (**योनिः**) गृहम् (**मोदाय**) हर्षाय (**त्वा**) त्वाम् (**आनन्दाय**) परम सुखाय (**त्वा**) (**महसे**) महते सत्काराय (**त्वा**)॥८॥

अन्वयः-हे राजप्रजाजन! यस्त्वमुपयामगृहीतोऽसि यस्य ते एष योनिरस्ति, तस्य त आश्विनमिव तेजः सारस्वतं वीर्यमैन्द्रमिव बलञ्चास्तु, तं त्वा मोदाय त्वानन्दाय त्वा महसे च सर्वे स्वीकुर्वन्तु॥८॥

भावार्थः-ये मनुष्याः सूर्यचन्द्रवत् तेजस्विनो विद्यापराक्रमवन्तो विद्युद्वद्बलिष्ठा भूत्वा स्वयमानन्दिनोऽन्येभ्यो ह्यानन्दं प्रददति, तेऽत्र परमानन्दभोगिनो भवन्ति॥८॥

पदार्थः-हे राजप्रजाजन! जो तू (**उपयामगृहीतः**) प्राप्त धर्मयुक्त यमसम्बन्धी नियमों से संयुक्त (**असि**) है, जिस (**ते**) तेरा (**एषः**) यह (**योनिः**) घर है, उस तेरा जो (**आश्विनम्**) सूर्य और चन्द्रमा के रूप के समान (**तेजः**) तीक्ष्ण कोमल तेज (**सारस्वतम्**) विज्ञानयुक्त वाणी का (**वीर्यम्**) तेज (**ऐन्द्रम्**) बिजुली के समान (**बलम्**) बल हो, उस (**त्वा**) तुझ को (**मोदाय**) हर्ष के लिये (**त्वा**) तुझ को (**आनन्दाय**) परम सुख के अर्थ (**त्वा**) तुझे (**महसे**) महापराक्रम के लिये सब मनुष्य स्वीकार करें॥८॥

भावार्थः-जो मनुष्य सूर्य-चन्द्रमा के समान तेजस्वी, विद्या पराक्रम वाले, बिजुली के तुल्य अति बलवान् होके आप आनन्दित हों और अन्य सब को आनन्द दिया करते हैं, वे यहां परमानन्द को भोगते हैं॥८॥

तेजोऽसीत्यस्याऽऽभूतिर्ऋषिः। सोमो देवता। निचृच्छक्वरीच्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि बलमसि बलं मयि धेह्योजोऽस्योजो मयि धेहि मन्युरसि मन्युं मयि धेहि सहोऽसि सहो मयि धेहि॥९॥

तेजः। असि। तेजः। मयि। धेहि। वीर्यम्। असि। वीर्यम्। मयि। धेहि। बलम्। असि। बलम्। मयि। धेहि। ओजः। असि। ओजः। मयि। धेहि। मन्युः। असि। मन्युम्। मयि। धेहि। सहः। असि। सहः। मयि। धेहि॥९॥

पदार्थः-(**तेजः**) प्रागल्भ्यम् (**असि**) अस्ति। अत्र सर्वत्र पुरुषव्यत्ययः (**तेजः**) (**मयि**) (**धेहि**) (**वीर्यम्**) सर्वाङ्गस्फूर्तिः (**असि**) (**वीर्यम्**) (**मयि**) (**धेहि**) (**बलम्**) सर्वाङ्गदृढत्वम् (**असि**) (**बलम्**) (**मयि**) (**धेहि**) (**ओजः**) महाप्राणवत्त्वम् (**असि**) (**ओजः**) (**मयि**) (**धेहि**) (**मन्युः**) क्रोधः (**असि**) (**मन्युम्**) (**मयि**) (**धेहि**) (**सहः**) सहनम् (**असि**) (**सहः**) (**मयि**) (**धेहि**)॥९॥

अन्वयः-हे शुभगुणकर राजन्! यत्त्वयि तेजोऽस्यस्ति तत्तेजो मयि धेहि, यत्त्वयि वीर्यमसि तद्वीर्यं मयि धेहि, यत्त्वयि बलमसि तद् बलं मयि धेहि, यत्त्वय्योजोऽसि तदोजो मयि धेहि, यस्त्वयि मन्युरसि तम्मन्युं मयि धेहि, यत्त्वयि सहोऽसि तत्सहो मयि धेहि॥९॥

भावार्थः-सर्वान् मनुष्यान् प्रतीयमीश्वरस्याज्ञास्ति यान् शुभगुणकर्मस्वभावान् विद्वांसो धरेयुस्तानन्येष्वपि धारयेयुर्यथा दुष्टाचाराणामुपरि क्रोधं कुर्युस्तथा धार्मिकेषु प्रीतिं सततं कुर्युः॥९॥

पदार्थः-हे सकल शुभगुणकर राजन्! जो तेरे में **(तेजः)** तेज **(असि)** हैं, उस **(तेजः)** तेज को **(मयि)** मेरे में **(धेहि)** धारण कीजिये। जो तेरे में **(वीर्यम्)** पराक्रम **(असि)** है, उस **(वीर्यम्)** पराक्रम को **(मयि)** मुझ में **(धेहि)** धरिये। जो तेरे में **(बलम्)** बल **(असि)** है, उस **(बलम्)** बल को **(मयि)** मुझ में भी **(धेहि)** धरिये। जो तेरे में **(ओजः)** प्राण का सामर्थ्य **(असि)** है, उस **(ओजः)** सामर्थ्य को **(मयि)** मुझ में **(धेहि)** धरिये। जो तुझ में **(मन्युः)** दुष्टों पर क्रोध **(असि)** है, उस **(मन्युम्)** क्रोध को **(मयि)** मुझ में **(धेहि)** धरिये। जो तुझ में **(सहः)** सहनशीलता **(असि)** है, उस **(सहः)** सहनशीलता को **(मयि)** मुझ में भी **(धेहि)** धारण कीजिये॥९॥

भावार्थः-सब मनुष्यों के प्रति ईश्वर की यह आज्ञा है कि जिन शुभ गुण-कर्म-स्वभावों को विद्वान् लोग धारण करें, उनको औरों में भी धारण करावें और जैसे दुष्टाचारी मनुष्यों पर क्रोध करें, वैसे धार्मिक मनुष्यों में प्रीति भी निरन्तर किया करें॥९॥

या व्याघ्रमित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः। सोमो देवता। आर्ष्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

पुनः स्त्रीपुरुषौ कथं वर्त्तेयातामित्याह॥

फिर स्त्री-पुरुष कैसे वर्त्तें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

या व्याघ्रं विषूचिकोभौ वृकं च रक्षति।

श्येनं पतत्रिणꣳ सिꣳहꣳ सेमं पात्वꣳहसः॥१०॥

या। व्याघ्रम्। विषूचिका। उभौ। वृकम्। च। रक्षति। श्येनम्। पतत्रिणम्। सिꣳहम्। सा। इमम्। पातु। अꣳहसः॥१०॥

पदार्थः-**(या)** विदुषी स्त्री **(व्याघ्रम्)** यो विशेषेणाजिघ्रति तम् **(विषूचिका)** या विविधानर्थान सूचयति सा **(उभौ)** **(वृकम्)** अजादीनां हन्तारम् **(च)** **(रक्षति)** **(श्येनम्)** यः शीघ्रं धावित्वान्यान् पक्षिणो हन्ति तम् **(पतत्रिणम्)** पतत्रः शीघ्रं गन्तुं बहुवेगो यस्यास्ति तम् **(सिंहम्)** यो हस्त्यादीनपि हिनस्ति तम् **(सा)** **(इमम्)** **(पातु)** रक्षतु **(अंहसः)** मिथ्याचारात्॥१०॥

अन्वयः-या विषूचिका व्याघ्रं वृकमुभौ पतत्रिणं श्येनं सिहं च दत्त्वा प्रजां रक्षति, सेमं राजानमंहसः पातु॥१०॥

भावार्थः-यथा शूरवीरो राजा स्वयं व्याघ्रादिकं हन्तुं न्यायेन प्रजां रक्षितुं स्वस्त्रियं प्रसादयितुं च शक्नोति, तथैव राज्ञी भवेत्। यथा सुप्रियाचारेण राज्ञी स्वपतिं प्रमादात् पृथक्कृत्य प्रसादयति, तथैव राजापि तां सदा प्रसादयेत्॥१०॥

पदार्थः-**(या)** जो **(विषूचिका)** विविध अर्थों की सूचना करनेहारी राजा की राणी **(व्याघ्रम्)** जो कूद के मारता है उस बाघ और **(वृकम्)** बकरे आदि को मारनेहारा भेड़िया **(उभौ)** इन दिनों को **(पतत्रिणम्)** शीघ्र चलने के लिये बहुवेग वाले और **(श्येनम्)** शीघ्र धावन करके अन्य पक्षियों को मारनेहारे पक्षी **(च)** और **(सिंहम्)** हस्ति आदि को भी मारने वाले दुष्ट पशु को मार के प्रजा को **(रक्षति)** रक्षा करती है **(सा)** सो राणी **(इमम्)** इस राजा को **(अंहसः)** अपराध से **(पातु)** रक्षा करे॥१०॥

भावार्थः-जैसे शूरवीर राजा स्वयं व्याघ्रादि को मारने, न्याय से प्रजा की रक्षा करने और अपनी स्त्री को प्रसन्न करने को समर्थ होता है, वैसे ही राजा की राणी भी होवे। जैसे अच्छे प्रिय आचरण से राणी अपने पति राजा को प्रमाद से पृथक् करके प्रसन्न करती है, वैसे राजा भी अपनी स्त्री को सदा प्रसन्न करे॥१०॥

यदित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः। अग्निर्देवता। शक्वरीच्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

सन्तानैः पितृभ्यां सह कथं वर्त्तितव्यमित्याह॥

सन्तानों को अपने माता-पिता के साथ कैसे वर्त्तना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

यदा॑पिपे॒ष मा॒तरं॑ पु॒त्रः प्रमु॑दितो॒ धय॑न्। ए॒तत्तद॑ग्नेऽअनृ॒णो भ॑वाम्यह॑तौ पि॒तरौ॒ मया॑।

स॒म्पृच॑ स्थ॒ सं मा॑ भ॒द्रेण॑ पृङ्क्त वि॒पृच॑ स्थ॒ वि मा॑ पा॒प्मना॑ पृङ्क्त॥११॥

यत्। आ॒पि॒पेषेत्या॑ऽपि॒पेष॑। मा॒तर॑म्। पु॒त्रः। प्रमु॑दि॒त इति॒ प्रऽमु॑दितः। धय॑न्। ए॒तत्। तत्। अ॒ग्ने॒। अ॒नृ॒णः। भ॒वा॒मि॒। अह॑तौ। पि॒तरौ॑। मया॑। स॒म्पृच॒ इति॒ स॒म्ऽपृच॑ः। स्थ॒। सम्। मा॒। भ॒द्रेण॑। पृ॒ङ्क्त॒। वि॒पृच॒ इति॑ वि॒ऽपृच॑ः। स्थ॒। वि। मा॒। पा॒प्मना॑। पृ॒ङ्क्त॒॥११॥

पदार्थः-**(यत्)** यः **(आपिपेष)** समन्तात् पिनष्टि **(मातरम्)** जननीम् **(पुत्रः)** **(प्रमुदितः)** प्रकृष्टत्वेन हर्षितः **(धयन्)** दुग्धं पिबन् **(एतत्)** वर्त्तमानं सुखम् **(तत्)** **(अग्ने)** विद्वन् **(अनृणः)** अविद्यमानं ऋणं यस्य सः **(भवामि)** **(अहतौ)** न हितौ हिंसितौ **(पितरौ)** माता-पिता च द्वौ **(मया)** अपत्येन **(सम्पृचः)** ये सम्पृचन्ति ते **(स्थ)** भवत **(सम्)** **(मा)** माम् **(भद्रेण)** भजनीयेन व्यवहारेण **(पृङ्क्त)** बध्नीत **(विपृचः)** ये वियुञ्जते वियुक्ता भवन्ति ते **(स्थ)** **(वि)** **(मा)** **(पाप्मना)** पापेन **(पृङ्क्त)** संसर्गं कुरुत॥११॥

अन्वयः-हे अग्ने विद्वन्! यद्यः प्रमुदितः पुत्रो दुग्धं धयन् मातरमापिपेष, तेन पुत्रेणानृणो भवामि, यतो मे पितरावहतौ मया भद्रेण सह वर्त्तमानौ च स्याताम्। हे मनुष्याः। यूयं सम्पृचः स्थ, मा भद्रेण सम्पृङ्क्त पाप्मना विपृचः स्थ, माप्यैतेन विपृङ्क्त, तदेतत् सुखं प्रापयत॥११॥

भावार्थः-यथा मातापितरौ पुत्रं पालयतस्तथा पुत्रेण मातापितरौ सेवनीयौ। सर्वैरत्रेदं ध्येयं वयं मातापितरौ सेवित्वा पितृऋणान्मुक्ता भवेमेति। यथा विद्वांसौ धार्मिकौ पितरौ स्वापत्यानि पापाचरणाद् वियोज्य धर्माचरणे प्रवर्त्तयेयुस्तथा सन्ताना अपि पितॄन्नेवं वर्त्तयेरन्॥११॥

पदार्थः-हे **(अग्ने)** विद्वन्! **(यत्)** जो **(प्रमुदितः)** अत्यन्त आनन्दयुक्त **(पुत्रः)** पुत्र दुग्ध को **(धयन्)** पीता हुआ **(मातरम्)** माता को **(आपिपेष)** सब ओर से पीड़ित करता है, उस पुत्र से मैं **(अनृणः)** ऋणरहित **(भवामि)** होता हूं, जिससे मेरे **(पितरौ)** माता-पिता **(अहतौ)** हननरहित और **(मया)** मुझ से **(भद्रेण)** कल्याण के साथ वर्त्तमान हों। हे मनुष्यो! तुम **(सम्पृचः)** सत्यसम्बन्धी **(स्थ)** हो, **(मा)** मुझ को कल्याण के साथ **(सम्, पृङ्क्त)** संयुक्त करो और **(पाप्मना)** पाप से **(विपृचः)** पृथक् रहनेहारे **(स्थ)** हों, इसलिये **(मा)** मुझे भी इस पाप से **(विपृङ्क्त)** पृथक् कीजिये और **(तदेतत्)** परजन्म तथा इस जन्म के सुख को प्राप्त कीजिये॥११॥

भावार्थः-जैसे माता-पिता पुत्र का पालन करते हैं, वैसे पुत्र को माता-पिता की सेवा करनी चाहिये। सब मनुष्यों को इस जगत् में यह ध्यान देना चाहिये कि हम माता-पिता का यथावत् सेवन करके पितृऋण से मुक्त होवें। जैसे विद्वान् धार्मिक माता-पिता अपने सन्तानों को पापरूप आचरण से पृथक् करके धर्माचरण में प्रवृत्त करें, वैसे सन्तान भी अपने माता-पिता को वर्त्ताव करावें॥११॥

देवा यज्ञमित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः। विद्वांसो देवताः। भुरिगनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

मातापित्रपत्यानि परस्परं कथं वर्त्तेरन्नित्याह॥

माता-पिता और सन्तान परस्पर कैसे वर्त्तें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

दे॒वा य॒ज्ञम॑तन्वत भेष॒जं भि॒षजा॒श्विना॑।

वा॒चा सर॑स्वती भि॒षगिन्द्रा॑येन्द्रि॒याणि॒ दध॑तः॥१२॥

दे॒वाः। य॒ज्ञम्। अ॒त॒न्व॒त॒। भे॒ष॒जम्। भि॒षजा॑। अ॒श्विना॑। वा॒चा। सर॑स्वती। भि॒षक्। इन्द्रा॑य। इ॒न्द्रि॒याणि॑। दध॑तः॥१२॥

पदार्थः-**(देवाः)** विद्वांसः **(यज्ञम्)** सुखप्रदम् **(अतन्वत)** विस्तृतं कुरुत **(भेषजम्)** रोगप्रणाशकमौषधरूपम् **(भिषजा)** आयुर्वेदविदौ **(अश्विनौ)** आयुर्वेदाङ्गव्यापिनौ **(वाचा)** तदानुकूल्यया वाण्या **(सरस्वती)** सरः प्रशस्त आयुर्वेदबोधो विद्यते यस्याः सा **(भिषक्)** चिकित्साद्यङ्गवित् **(इन्द्राय)** परमैश्वर्याय **(इन्द्रियाणि)** चक्षुरादीनि धनानि वा **(दधतः)**॥१२॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथेन्द्रियाणि दधतो भिषक् सरस्वती भिषजाऽश्विना च देवा वाचेन्द्राय भेषजं यज्ञमतन्वत, तथैव यूयं कुरुत॥१२॥

भावार्थः-यावन्मनुष्याः पथ्यौषधिब्रह्मचर्य्यसेवनेन शरीरारोग्यबलबुद्धीर्न वर्द्धयन्ते, तावत् सर्वाणि सुखानि प्राप्तुं न शक्नुवन्ति॥१२॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे **(इन्द्रियाणि)** उत्तम प्रकार विषयग्राहक नेत्र आदि इन्दियों वा धनों को **(दधतः)** धारण करते हुए **(भिषक्)** चिकित्सा आदि वैद्यकशास्त्र के अङ्गों को जाननेहारी **(सरस्वती)** प्रशस्त वैद्यकशास्त्र के ज्ञान से युक्त विदुषी स्त्री और **(भिषजा)** आयुर्वेद के जाननेहारी **(अश्विना)** ओषधिविद्या में व्याप्तबुद्धि वाले दो उत्तम विद्वान् वैद्य ये तीनों और **(देवाः)** उत्तम ज्ञानीजन **(वाचा)** वाणी से **(इन्द्राय)** परमैश्वर्य्य के लिये **(भेषजम्)** रोगविनाशक औषधरूप **(यज्ञम्)** सुख देने वाले यज्ञ को **(अतन्वत)** विस्तृत करें, वैसे ही तुम लोग भी करो॥१२॥

भावार्थः-जब तक मनुष्य लोग पथ्य ओषधि और ब्रह्मचर्य के सेवन से शरीर के आरोग्य, बल और बुद्धि को नहीं बढ़ाते, तब तक सब सुखों के प्राप्त होने को समर्थ नहीं होते॥१२॥

दीक्षायायित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः। यज्ञो देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

कीदृशा जनाः सुखिनो भवन्तीत्याह॥

कैसे मनुष्य सुखी होते हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

दी॒क्षायै॑ रू॒पꣳ शष्पा॑णि प्राय॒णीय॑स्य॒ तोक्मा॑नि।

क्र॒यस्य॑ रू॒पꣳ सोम॑स्य ला॒जाः सो॑मा॒ꣳशवो॒ मधु॑॥ १३॥

दी॒क्षायै॑ रू॒पम्। शष्पा॑णि। प्रा॒य॒णीय॑स्य। प्रा॒य॒नी॒य॒स्येति॑ प्र॒ऽअ॒य॒नीय॑स्य। तोक्मा॑नि। क्र॒यस्य॑। रू॒पम्। सोम॑स्य। ला॒जाः। सो॒मा॒ꣳश॒व॒ इति॑ सोम॒ऽअ॒ꣳशवः॑। मधु॑॥ १३॥

पदार्थः-**(दीक्षायै)** यज्ञसाधननियमपालनाय **(रूपम्)** **(शष्पाणि)** आहत्य संशोध्य ग्राह्याणि धान्यानि **(प्रायणीयस्य)** प्रकृष्टं सुखं यन्ति येन व्यवहारेण तत्र भवस्य **(तोक्मानि)** अपत्यानि। **तोक्मेत्यपत्यनामसु पठितम्॥** (निघं०२.२) **(क्रयस्य)** द्रव्यविक्रयस्य **(रूपम्)** **(सोमस्य)** ओषधीरसस्य **(लाजाः)** प्रफुल्लिता व्रीहयः **(सोमांशवः)** सोमस्यांशाः **(मधु)** क्षौद्रम्॥१३॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यानि प्रायणीयस्य दीक्षायै रूपं तोक्मानि क्रयस्य रूपं शष्पाणि सोमस्य लाजाः सोमांशवो मधु च सन्ति, तानि यूयमतन्वत॥१३॥

भावार्थः-अत्रातन्वतेति क्रियापदं पूर्वमन्त्रादनुवर्त्तते। ये मनुष्या यज्ञाऽर्हाण्यपत्यानि वस्तूनि च सम्पादयन्ति, तेऽत्र सुखं लभन्ते॥१३॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो **(प्रायणीयस्य)** जिस व्यवहार से उत्तम सुख को प्राप्त होते हैं, उसमें होने वाले को **(दीक्षायै)** यज्ञ के नियम-रक्षा के लिये **(रूपम्)** सुन्दर रूप और **(तोक्मानि)** अपत्य **(क्रयस्य)** द्रव्यों के बेचने का **(रूपम्)** रूप **(शष्पाणि)** छांट-फटक शुद्ध कर ग्रहण करने योग्य धान्य **(सोमस्य)**

सोमलतादि के रस के सम्बन्धी **(लाजाः)** परिपक्व फूले हुए अन्न **(सोमांशवः)** सोम के विभाग और **(मधु)** सहत हैं, उनको तुम लोग विस्तृत करो॥१३॥

भावार्थः-इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र से **'अतन्वत'** इस क्रियापद की अनुवृत्ति आती है, जो मनुष्य यज्ञ के योग्य सन्तान और पदार्थों को सिद्ध करते हैं, वे इस संसार में सुख को प्राप्त होते हैं॥१३॥

आतिथ्यरूपमित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः। आतिथ्यादयो लिङ्गोक्ता देवताः। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

कीदृशा जना यशस्विनो भवन्तीत्याह॥

कैसे जन कीर्ति वाले होते हैं, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

आ॒ति॒थ्य॒रू॒पं मास॑रं महावी॒रस्य॑ न॒ग्नहुः॑। रू॒पमु॑प॒सदा॑मे॒तत्ति॒स्रो रात्रीः॒ सुरासु॑ता॥१४॥

आ॒ति॒थ्य॒रू॒पमित्या॑तिथ्यऽरू॒पम्। मास॑रम्। म॒हा॒वी॒रस्येति॑ महाऽवी॒रस्य॑। न॒ग्नहुः॑। रू॒पम्। उ॒प॒सदा॒मित्यु॑प॒ऽसदा॑म्। ए॒तत्। ति॒स्रः। रात्रीः॑। सुरा॑। आसु॒तेत्याऽसु॑ता॥१४॥

पदार्थः-**(आतिथ्यरूपम्)** अतिथीनां भावः कर्म्म वाऽऽतिथ्यं तद्रूपं च तत् **(मासरम्)** येनाऽतिथयो मासेषु रमन्ते तत् **(महावीरस्य)** महांश्चासौ वीरश्च तस्य **(नग्नहुः)** यो नग्नान् जुहोत्यादत्ते **(रूपम्)** सुरूपकरणम् **(उपसदाम्)** य उपसीदन्ति तेषामतिथीनाम् **(एतत्)** **(तिस्रः)** **(रात्रीः)** **(सुरा)** सोमरसः **(आसुता)** समन्तान्निष्पादिता॥१४॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यानि मासरमातिथ्यरूपं महावीरस्य नग्नहू रूपमुपसदां तिस्रो रात्रीर्निवासनमेतद् रूपं सुता सुराऽऽसुता च सन्ति, तानि यूयं गृह्णीत॥१४॥

भावार्थः-ये मनुष्या धार्मिकाणां विदुषामतिथीनां सत्कारसङ्गोपदेशान् वीराणां च मान्यं दरिद्रेभ्यो वस्त्रादिदानं स्वभृत्यानामुत्तमं निवासदानं सोमरससिद्धिं च सततं कुर्वन्ति, ते यशस्विनो जायन्ते॥१४॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो **(मासरम्)** जिससे अतिथिजन महीनों में रमण करते हैं, ऐसे **(आतिथ्यरूपम्)** अतिथियों का होना वा उनका सत्काररूप कर्म वा **(महावीरस्य)** बड़े वीर पुरुष का **(नग्नहुः)** जो नग्न अकिञ्चनों का धारण करता है, वह **(रूपम्)** रूप वा **(उपसदाम्)** गृहस्थादि के समीप में भोजनादि के अर्थ ठहरनेहारे अतिथियों का **(तिस्रः)** तीन **(रात्रीः)** रात्रियों में निवास कराना **(एतत्)** यह रूप वा **(सुरा)** सोमरस **(आसुता)** सब ओर से सिद्ध की हुई क्रिया है, उन सब का तुम लोग ग्रहण करो॥१४॥

भावार्थः-जो मनुष्य धार्मिक, विद्वान् अतिथियों का सत्कार, सङ्ग और उपदेशों को और वीरों को मान्य तथा द्ररिद्रों को वस्त्रादि दान, अपने भृत्यों को निवास देना और सोमरस की सिद्धि को सदा करते हैं, वे कीर्तिमान् होते हैं॥१४॥

सोमस्येत्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः। सोमो देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

कुमारीभिः किं कर्त्तव्यमित्याह॥

कुमारी कन्याओं को क्या करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

सोम॑स्य रू॒पं क्री॒तस्य॑ परि॒स्रुत्परि॑षिच्यते।

अ॒श्विभ्यां॑ दु॒ग्धं भे॑ष॒जमिन्द्रा॑यै॒न्द्रꣳ सर॑स्वत्या॥ १५॥

सोम॑स्य। रू॒पम्। क्री॒तस्य॑। प॒रि॒स्रुदिति॑ परि॒ऽस्रुत्। परि॑। सि॒च्य॒ते॒। अ॒श्विभ्या॒मित्य॒श्विऽभ्या॑म्। दु॒ग्धम्। भे॒ष॒जम्। इन्द्रा॑य। ऐ॒न्द्रम्। सर॑स्वत्या॥ १५॥

पदार्थः-(**सोमस्य**) सोमलताद्योषधिसमूहस्य (**रूपम्**) उत्तमस्वरूपम् (**क्रीतस्य**) गृहीतस्य (**परिस्रुत्**) यः परितः सर्वत स्रवति प्राप्नोति स रसः (**परि**) सर्वतः (**सिच्यते**) (**अश्विभ्याम्**) वैदिकविद्याव्यापिभ्यां विद्वद्भ्याम् (**दुग्धम्**) गवादिभ्यः पयः (**भेषजम्**) सर्वौषधम् (**इन्द्राय**) ऐश्वर्येच्छुकाय (**ऐन्द्रम्**) इन्द्रो विद्युद्देवता यस्य तत् विज्ञानम् (**सरस्वत्या**) प्रशस्तविद्याविज्ञानयुक्तया पत्न्या॥ १५॥

अन्वयः-हे स्त्रियो! यथा सरस्वत्या विदुष्या क्रीतस्य सोमस्य परिस्रुद् रूपमश्विभ्यां दुग्धं भेषजमिन्द्रायैन्द्रं परिषिच्यते, तथा यूयमप्याचरत॥ १५॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। सर्वाभिः कुमारीभिर्ब्रह्मचर्य्येण व्याकरणधर्म्मविद्यायुर्वेदादीनधीत्य स्वयंवरविवाहं कृत्वा प्रशस्तान्यौषधान्यौषधवदन्नव्यञ्जनानि च परिपच्य सुरसैः संयोज्य पत्यादीन् सम्भोज्य स्वयं च भुक्त्वा बलारोग्योन्नतिः सततं कार्या॥ १५॥

पदार्थः-हे स्त्री लोगो! जैसे (**सरस्वत्या**) विदुषी स्त्री से (**क्रीतस्य**) ग्रहण किए हुए (**सोमस्य**) सोमादि ओषधिगण का (**परिस्रुत्**) सब ओर से प्राप्त होने वाला रस (**रूपम्**) सुस्वरूप और (**अश्विभ्याम्**) वैदिक विद्या में पूर्ण दो विद्वानों के लिये (**दुग्धम्**) दुहा हुआ (**भेषजम्**) औषधरूप दूध तथा (**इन्द्राय**) ऐश्वर्य चाहने वाले के लिये (**ऐन्द्रम्**) विद्युत्सम्बन्धी विशेष ज्ञान (**परिषिच्यते**) सब ओर से सिद्ध किया जाता है, वैसे तुम भी आचरण करो॥ १५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। सब कुमारियों को योग्य है कि ब्रह्मचर्य से व्याकरण, धर्म्म, विद्या और आयुर्वेदादि को पढ़, स्वयंवर विवाह कर, ओषधियों को और औषधवत् अन्न और दाल कढ़ी आदि को अच्छा पका, उत्तम रसों से युक्त कर, पति आदि को भोजन करा तथा स्वयं भोजन करके बल, आरोग्य की सदा उन्नति किया करें॥ १५॥

आसन्दीत्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः। यज्ञो देवता। भुरिगनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

मनुष्येण कथं कार्य्यं साध्यमित्युपदिश्यते॥

मनुष्य को कैसे कार्य्य साधना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

आसन्दी रूपꣳ राजासन्द्यै वेद्यै कुम्भी सुराधानी।
अन्तरऽउत्तरवेद्या रूपं कारोतरो भिषक्॥ १६॥

आसन्दीत्याऽसन्दी। रूपम्। राजासन्द्या इति राजऽआसन्द्यै। वेद्यै। कुम्भी। सुराधानीति सुराऽधानी। अन्तरः। उत्तरवेद्या इत्युत्तरऽवेद्याः। रूपम्। कारोतरः। भिषक्॥ १६॥

पदार्थः-(**आसन्दी**) समन्तात् सन्यते सेव्यते या सा। '**सन्**' धातोरौणादिको '**द**' प्रत्ययस्ततो 'ङीष्' (**रूपम्**) सुक्रिया (**राजासन्द्यै**) राजानः सीदन्ति यस्यां तस्यै (**वेद्यै**) विदन्ति सुखानि यया तस्यै (**कुम्भी**) धान्यादिपदार्थाऽऽधारा (**सुराधानी**) सुरा सोमरसो धीयते यस्यां सा गर्गरी (**अन्तरः**) येनानिति प्राणिति सः (**उत्तरवेद्याः**) उत्तरा चासौ वेदी च तस्याः (**रूपम्**) (**कारोतरः**) कर्मकारी (**भिषक्**) वैद्यः॥ १६॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! युष्माभिर्यज्ञायासन्दी रूपं राजासन्द्यै वेद्यै कुम्भी सुराधान्युत्तरवेद्या अन्तरो रूपं कारोतरो भिषक् चैतानि संग्राह्याणि॥ १६॥

भावार्थः-मनुष्यो यद्यत्कार्यं कर्त्तुमिच्छेत्, तस्य तस्य सकलसाधनानि सञ्चिनुयात्॥ १६॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम लोगों को योग्य है कि यज्ञ के लिये (**आसन्दी**) जो सब ओर से सेवन की जाती है, वह (**रूपम्**) सुन्दर क्रिया (**राजासन्द्यै**) राजा लोग जिस में बैठते हैं, उस (**वेद्यै**) सुख-प्राप्ति कराने वाली वेदि के अर्थ (**कुम्भी**) धान्यादि पदार्थों का आधार (**सुराधानी**) जिसमें सोमरस धरा जाता है, वह गगरी (**अन्तरः**) जिससे जीवन होता है, यह अन्नादि पदार्थ (**उत्तरवेद्याः**) उत्तर की वेदी के (**रूपम्**) रूप को (**कारोतरः**) कर्मकारी और (**भिषक्**) वैद्य इन सब का संग्रह करो॥ १६॥

भावार्थः-मनुष्य जिस-जिस कार्य के करने की इच्छा करे, उस-उस के समस्त साधनों का सञ्चय करे॥ १६॥

वेद्या वेदिरित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः। यज्ञो देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

केषां कार्य्याणि सिध्यन्तीत्याह॥

किन जनों के कार्य्य सिद्ध होते हैं, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

वेद्या वेदिः समाप्यते बर्हिषा बर्हिरिन्द्रियम्।
यूपेन यूपऽआप्यते प्रणीतोऽअग्निरग्निना॥ १७॥

वेद्या। वेदिः। सम्। आप्यते। बर्हिषा। बर्हिः। इन्द्रियम्। यूपेन। यूपः। आप्यते। प्रणीतः। प्रनीत इति प्रऽनीतः। अग्निः। अग्निना॥ १७॥

पदार्थः-(**वेद्या**) यज्ञसामग्र्या (**वेदिः**) यज्ञभूमिः (**सम्**) सम्यक् (**आप्यते**) प्राप्यते (**बर्हिषा**) महता पुरुषार्थेन (**बर्हिः**) वृद्धम् (**इन्द्रियम्**) धनम् (**यूपेन**) मिश्रिता मिश्रितेन व्यवहारेण (**यूपः**) मिश्रितो

व्यवहारयत्नोदयः **(आप्यते)** **(प्रणीतः)** प्रकृष्टतया सम्मिलितः **(अग्निः)** पावकः **(अग्निना)** विद्युदादिना॥१७॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा विद्वद्भिर्वेद्या वेदिर्बर्हिषा बर्हिरिन्द्रियं समाप्यते, यूपेन यूपोऽग्निना प्रणीतोऽग्निराप्यते, तथैव यूयं साधनैः साधनानि सम्मेल्य सर्वं सुखामाप्नुत॥१७॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये मनुष्याः साधकतमेन साधनेन साध्यं कार्य्यं साद्धुमिच्छन्ति, त एव सिद्धसाध्या जायन्ते॥१७॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे विद्वान् लोग **(वेद्या)** यज्ञ की सामग्री से **(वेदिः)** वेदि और **(बर्हिषा)** महान् पुरुषार्थ से **(बर्हिः)** बड़ा **(इन्द्रियम्)** धन **(समाप्यते)** अच्छे प्रकार प्राप्त किया जाता है, **(यूपेन)** मिले हुए वा पृथक्-पृथक् व्यवहार से **(यूपः)** मिला हुआ व्यवहार के यत्न का प्रकाश और **(अग्निना)** बिजुली आदि अग्नि से **(प्रणीतः)** अच्छे प्रकार सम्मिलित **(अग्निः)** अग्नि **(आप्यते)** प्राप्त कराया जाता है, वैसे ही तुम लोग भी साधनों से साधन मिला कर सब सुखों को प्राप्त होओ॥१७॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य उत्तम साधन से साध्य कार्य्य को सिद्ध करने की इच्छा करते हैं, वे ही साध्य की सिद्धि करने वाले होते हैं॥१७॥

हविर्धानमित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः। गृहपतिर्देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

स्त्रीपुरुषाभ्यां किं कार्य्यमित्याह॥

स्त्री-पुरुषों को क्या करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

हविर्धानं यदश्विनाग्नीध्रं यत्सरस्वती।

इन्द्रायैन्द्रꣳसदस्कृतं पत्नीशालं गार्हपत्यः॥ १८॥

हविर्धानमिति हविःऽधानम्। यत्। अश्विना। आग्नीध्रम्। यत्। सरस्वती। इन्द्राय। ऐन्द्रम्। सदः। कृतम्। पत्नीशालमिति पत्नीऽशालम्। गार्हपत्य इति गार्हऽपत्यः॥ १८॥

पदार्थः-**(हविर्धानम्)** हवींषि ग्राह्याणि देयानि वा संस्कृतानि वस्तूनि धीयन्ते यस्मिन् **(यत्)** **(अश्विना)** स्त्रीपुरुषौ **(आग्नीध्रम्)** अग्नीध ऋत्विजः शरणम् **(यत्)** **(सरस्वती)** विदुषी स्त्री **(इन्द्राय)** ऐश्वर्यसुखप्रदाय पत्ये **(ऐन्द्रम्)** इन्द्रस्यैश्वर्यस्येदम् **(सदः)** सीदन्ति यस्मिँस्तम् **(कृतम्)** निष्पन्नम् **(पत्नीशालम्)** पत्न्याः शाला पत्नीशालम् **(गार्हपत्यः)** गृहपतिना संयुक्तः॥१८॥

अन्वयः-हे गृहस्था स्त्रीपुरुषाः! यथा विद्वांसावश्विना यद्धविर्धानं कृतवन्तौ, यच्च सरस्वती आग्नीध्रं कृतवती, इन्द्रायैन्द्रं सदः पत्नीशालं च विद्वद्भिः कृतम्, तदिदं सर्वं गार्हपत्यो धर्म एवास्ति, तथा तत् सर्वं यूयमपि कुरुत॥१८॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे मनुष्याः! यथर्त्विजः सम्भारान् सञ्चित्य यज्ञमलङ्कुर्वन्ति, तथा प्रीतियुक्तौ स्त्रीपुरुषौ गृहकृत्यानि सततं साध्नुतम्॥१८॥

पदार्थः-हे गृहस्थ पुरुषो! जैसे विद्वान् **(अश्विना)** स्त्री और पुरुष **(यत्)** जो **(हविर्धानम्)** देने वा लेने योग्य पदार्थों का धारण जिसमें किया जाता वह और **(यत्)** जो **(सरस्वती)** विदुषी स्त्री **(आग्नीध्रम्)** ऋत्विज का शरण करती हुई तथा विद्वानों ने **(इन्द्राय)** ऐश्वर्य से सुख देनेहारे पति के लिये **(ऐन्द्रम्)** ऐश्वर्य के सम्बन्धी **(सदः)** जिसमें स्थित होते हैं, उस सभा और **(पत्नीशालम्)** पत्नी की शाला घर को **(कृतम्)** किया है, सो यह सब **(गार्हपत्यः)** गृहस्थ का संयोगी धर्म ही है, वैसे उस सब कर्त्तव्य को तुम भी करो॥१८॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जैसे ऋत्विज् लोग सामग्री का सञ्चय करके यज्ञ को शोभित करते हैं, वैसे प्रीतियुक्त स्त्री-पुरुष घर के कार्यों को नित्य सिद्ध किया करें॥१८॥

प्रैषेभिरित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः। यज्ञो देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

कीदृशो विद्वान् सुखमाप्नोतीत्युच्यते॥

कैसा विद्वान् सुख को प्राप्त होता है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प्रैषेभिः प्रैषानाप्नोत्याप्रीभिराप्रीर्यज्ञस्य। प्रयाजेभिरनुयाजान् वषट्कारेभिराहुतीः॥ १९॥

प्रैषेभिरिति प्रऽएषेभिः। प्रैषानिति प्रऽएषान्। आप्नोति। आप्रीभिरित्याऽप्रीभिः। आप्रीरित्याऽप्रीः। यज्ञस्य। प्रयाजेभिरिति प्रयाजेभिः। अनुयाजानित्यनुऽयाजान्। वषट्कारेभिरिति वषट्ऽकारेभिः। आहुतीरित्याहुतीः॥ १९॥

पदार्थः-**(प्रैषेभिः)** प्रैषणकर्मभिः **(प्रैषान्)** प्रैषणीयान् भृत्यान् **(आप्नोति)** **(आप्रीभिः)** या समन्तात् प्रीणन्ति ताभिः **(आप्रीः)** सर्वथा प्रीत्युत्पादिकाः परिचारिकाः **(यज्ञस्य)** **(प्रयाजेभिः)** प्रयजन्ति यैस्तैः **(अनुयाजान्)** अनुकूलान् यज्ञपदार्थान् **(वषट्कारेभिः)** कर्मभिः **(आहुतीः)** या आहूयन्ते प्रदीयन्ते ताः॥१९॥

अन्वयः-यो विद्वान् प्रैषेभिः प्रैषानाप्रीभिराप्रीः प्रयाजेभिरनुयाजान् यज्ञस्य वषट्कारेभिराहुतीश्चाप्नोति, स सुखी जायते॥१९॥

भावार्थः-यस्सुशिक्षितसेवकसेविका साधनोपसाधनयुक्तः श्रेष्ठानि कार्य्याणि करोति, स सर्वान् सुखयितुं शक्नोति॥१९॥

पदार्थः-जो विद्वान् **(प्रैषेभिः)** भेजने रूप कर्मों से **(प्रैषान्)** भेजने योग्य भृत्यों को **(आप्रीभिः)** सब ओर से प्रसन्नता करनेहारी क्रियाओं से **(आप्रीः)** सर्वथा प्रीति उत्पन्न करनेहारी परिचारिका स्त्रियों को **(प्रयाजेभिः)** उत्तम यज्ञ के कर्मों से **(अनुयाजान्)** अनुकूल यज्ञ-पदार्थों को और **(यज्ञस्य)** यज्ञ की

(वषट्कारेभिः) क्रियाओं से **(आहुतीः)** अग्नि में छोड़ने योग्य आहुतियों को **(आप्नोति)** प्राप्त होता है, वह सुखी रहता है॥१९॥

भावार्थः-जो सुशिक्षित सेवकों तथा सेविकाओं वाला साधनों और उपसाधनों से युक्त श्रेष्ठ कार्यों को करता है, वह सब को सुखी करने में समर्थ होता है॥१९॥

पशुभिरित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः। यजमानो देवता। भुरिगुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

पशुभिः पशूनाप्नोति पुरोडाशैर्हवीꣳष्या।

छन्दोभिः सामिधेनीर्याज्याभिर्वषट्कारान्॥२०॥

पशुभिरिति पशुभिः। पशून्। आप्नोति। पुरोडाशैः। हवीꣳषि। आ। छन्दोभिरिति छन्दःऽभिः। सामिधेनीरिति साम्ऽइधेनीः। याज्याभिः। वषट्कारानिति वषट्ऽकारान्॥२०॥

पदार्थः-**(पशुभिः)** गवादिभिः **(पशून्)** गवादीन् **(आप्नोति)** **(पुरोडाशैः)** पचनक्रियासंस्कृतैः **(हवींषि)** होतुमर्हाणि वस्तूनि **(आ)** **(छन्दोभिः)** प्रज्ञापकैर्गायत्र्यादिभिः **(सामिधेनीः)** सम्यगिध्यन्ते याभिस्ताः सामिधेनीः **(याज्याभिः)** याभिः क्रियाभिरिज्यन्ते ताभिः **(वषट्कारान्)** ये वषट् धर्म्यां क्रियां कुर्वन्ति तान्॥२०॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा सद्गृहस्थः पशुभिः पशून् पुरोडाशैर्हवींषि छन्दोभिस्सामिधेनीर्याज्याभिर्वषट्कारानाऽऽप्नोति तथैतान् यूयमाप्नुत॥२०॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। योऽत्र बहुपशुर्हविर्भुग्वेदवित्सत्क्रियो मनुष्यो भवेत्, स प्रशंसामाप्नोति॥२०॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे सद्गृहस्थ **(पशुभिः)** गवादि पशुओं से **(पशून्)** गवादि पशुओं को **(पुरोडाशैः)** पचन क्रियाओं से पके हुए उत्तम पदार्थों से **(हवींषि)** हवन करते योग्य उत्तम पदार्थों को **(छन्दोभिः)** गायत्री आदि छन्दों की विद्या से **(सामिधेनीः)** जिससे अग्नि प्रदीप्त हो, उस सुन्दर समिधाओं को **(याज्याभिः)** यज्ञ की क्रियाओं से **(वषट्कारान्)** जो धर्मयुक्त क्रिया को करते हैं, उनको **(आ, आप्नोति)** प्राप्त होता है, वैसे इनको तुम भी प्राप्त होओ॥२०॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो संसार में बहुत पशु वाला होम करके, हुतशेष का भोक्ता, वेदवित् और सत्यक्रिया का कर्त्ता मनुष्य होवे, सो प्रशंसा को प्राप्त होता है॥२०॥

धानाः करम्भ इत्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः। सोमो देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

के पदार्था हविष्या इत्याह॥

कौन पदार्थ होम के योग्य हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

धानाः करम्भः सक्तवः परीवापः पयो दधि।

सोमस्य रूपꣳ हविषऽआमिक्षा वाजिनं मधु॥२१॥

धानाः। करम्भः। सक्तवः। परीवाप इति परिऽवापः। पयः। दधि। सोमस्य। रूपम्। हविषः। आमिक्षा। वाजिनम्। मधु॥२१॥

पदार्थः-(**धानाः**) भृष्टयवादयः (**करम्भः**) करोति मथनं येन सः (**सक्तवः**) (**परीवापः**) परितः सर्वतो वापो बीजारोपणं यस्मिन् सः (**पयः**) दुग्धम् (**दधि**) (**सोमस्य**) अभिषोतुमर्हस्य (**रूपम्**) (**हविषः**) होतुमर्हस्य (**आमिक्षा**) दधिदुग्धमिष्टैर्निर्मिता (**वाजिनम्**) वाजः प्रशस्तान्यन्नानि विद्यन्ते येषु तेषामिदं सारं वस्तु (**मधु**) मधुरम्॥२१॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यूयं हविषस्सोमस्य रूपं धानाः करम्भः सक्तवः परीवापः पयो दध्यामिक्षा वाजिनं मधु च विजानीत॥२१॥

भावार्थः-ये पदार्थाः पुष्टिसुगन्धमधुररोगनाशकत्वगुणयुक्तात्सन्ति, ते हविः संज्ञका सन्ति॥२१॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम लोग (**हविषः**) होम करने योग्य (**सोमस्य**) यन्त्र द्वारा खींचने योग्य ओषधिरूप रस के (**रूपम्**) रूप को (**धानाः**) भुने हुए अन्न (**करम्भः**) मथन का साधन (**सक्तवः**) सत्तू (**परीवापः**) सब ओर से बीज का बोना (**पयः**) दूध (**दधि**) दही (**आमिक्षा**) दही, दूध, मीठे का मिलाया हुआ (**वाजिनम्**) प्रशस्त अन्नों को सम्बन्धी सार वस्तु और (**मधु**) सहत के गुण को जानो॥२१॥

भावार्थः-जो पदार्थ पुष्टिकारक, सुगन्धयुक्त, मधुर और रोगनाशक गुणयुक्त हैं, वे होम करने के योग्य हविः संज्ञक हैं॥२१॥

धानानामित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः। यज्ञो देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

कीदृशा जना नीरोगा भवन्तीत्युपदिश्यते॥

कैसे मनुष्य नीरोग होते हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

धानानाꣳ रूपं कुवलं परीवापस्य गोधूमाः।

सक्तूनाꣳ रूपं बदरमुपवाकाः। करम्भस्य॥२२॥

धानानाम्। रूपम्। कुवलम्। परीवापस्य। परीवापस्येति परिऽवापस्य। गोधूमाः। सक्तूनाम्। रूपम्। बदरम्। उपवाका इत्युपऽवाकाः। करम्भस्य॥२२॥

पदार्थः-(**धानानाम्**) भृष्टयवाद्यन्नानाम् (**रूपम्**) (**कुवलम्**) कोमलं बदरीफलमिव (**परीवापस्य**) पिष्टादेः (**गोधूमाः**) (**सक्तूनाम्**) (**रूपम्**) (**बदरम्**) बदरीफलवद्वर्णयुक्तम् (**उपवाकाः**) उपगताः प्राप्ता यवाः (**करम्भस्य**) दधिसंसृष्टस्य सक्तुनः॥२२॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यूयं धानानां कुवलं रूपं परीवापस्य गोधूमा रूपं सक्तूनां बदरं रूपं करम्भस्योपवाका रूपमस्तीति विजानीत॥२२॥

भावार्थः-ये मनुष्याः सर्वेषामन्नानां सुरूपं कृत्वा भुञ्जते भोजयन्ति च त आरोग्यमाप्नुवन्ति॥२२॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम लोग **(धानानाम्)** भुंजे हुए जौ आदि अन्नों का **(कुवलम्)** कोमल बेर सा रूप **(परीवापस्य)** पिसान आदि का **(गोधूमाः)** गेहूं **(रूपम्)** रूप **(सक्तूनाम्)** सत्तुओं का **(बदरम्)** बेरफल के समान रूप **(करम्भस्य)** दही मिले सत्तू का **(उपवाकाः)** समीप प्राप्त जौ **(रूपम्)** रूप है, ऐसा जाना करो॥२२॥

भावार्थः-जो मनुष्य सब अन्नों का सुन्दर रूप करके भोजन करते और कराते हैं, वे आरोग्य को प्राप्त होते हैं॥२२॥

पयसो रूपमित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः। सोमो देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

पय॑सो रू॒पं यद्यवा॑ द॒ध्नो रू॒पं क॒र्कन्धू॑नि।

सोम॑स्य रू॒पं वा॒जिन॑ꣳ सौ॒म्यस्य॑ रू॒पमा॒मिक्षा॑॥२३॥

पय॑सः। रू॒पम्। यत्। यवाः॑। द॒ध्नः। रू॒पम्। क॒र्कन्धू॑नि। सोम॑स्य। रू॒पम्। वा॒जिन॑म्। सौ॒म्यस्य॑। रू॒पम्। आ॒मिक्षा॑॥२३॥

पदार्थः-**(पयसः)** दुग्धस्य जलस्य **(रूपम्)** **(यत्)** ये **(यवाः)** **(दध्नः)** **(रूपम्)** **(कर्कन्धूनि)** कर्कन्धु फलानि स्थूलानि पक्वानि बदरीफलानीव **(सोमस्य)** **(रूपम्)** **(वाजिनम्)** बह्वन्नसाररूपम् **(सौम्यस्य)** सोमानामोषधिसाराणां भावस्य **(रूपम्)** **(आमिक्षा)** मधुराम्लादिसंयोगयुक्ता॥२३॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यद्यवास्ते पयसो रूपं कर्कन्धूनीव दध्नो रूपं वाजिनमिव सोमस्य रूपमामिक्षेव सौम्यस्य रूपं सम्पादयत॥२३॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैर्यस्य यस्यान्नस्य सुन्दरं रूपं यथा स्यात्तस्य तस्य रूपं तथा सदा सम्पादनीयम्॥२३॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम लोग **(यत्)** जो **(यवाः)** यव हैं, उनको **(पयसः)** पानी वा दुग्ध के **(रूपम्)** रूप **(कर्कन्धूनि)** मोटे पके हुए बेरी के फलों के समान **(दध्नः)** दही के **(रूपम्)** स्वरूप **(वाजिनम्)** बहुत अन्न के सार के समान **(सोमस्य)** सोम ओषधि के **(रूपम्)** स्वरूप और **(आमिक्षा)** दूध, दही के संयोग से बने पदार्थ के समान **(सौम्यस्य)** सोमादि ओषधियों के सार होने के **(रूपम्)** स्वरूप को सिद्ध किया करो॥२३॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि जिस-जिस अन्न का सुन्दररूप जिस प्रकार हो, उस-उस के रूप को उसी प्रकार सदा सिद्ध करें॥२३॥

आश्रावयेत्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः। विद्वान् देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

कथं विद्वांसो भवन्तीत्युपदिश्यते॥

कैसे विद्वान् होते हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

आ श्रा॒वयेति॒ स्तो॒त्रियाः॒ प्रत्याश्रा॒वोऽअनु॒रूपः।

यजेति॒ धाय्यारू॒पं प्र॒गा॒था ये॑यजाम॒हाः॥२४॥

आ। श्रा॒व॒य॒ इति॑। स्तो॒त्रियाः॑। प्र॒त्या॒श्रा॒व इति॑ प्रति॒ऽआ॒श्रा॒वः। अनु॒रू॒प इत्यनु॑ऽरूपः। यज॒ाइति॑। धा॒य्या॒रू॒पमिति॑ धाय्याऽरू॒पम्। प्र॒गा॒था इति॑ प्रऽगा॒थाः। ये॒य॒जा॒म॒हा इति॑ येऽयजाम॒हाः॥२४॥

पदार्थः-(**आ**) समन्तात् (**श्रावय**) विद्योपदेशान् कुरु (**इति**) प्रकारार्थे (**स्तोत्रियाः**) ये स्तोत्राण्यर्हन्ति ते (**प्रत्याश्रावः**) यः प्रतिश्राव्यते सः (**अनुरूपः**) अनुकूलः (**यजा इति**) (**धाय्यारूपम्**) या धेयमर्हा तस्या रूपम् (**प्रगाथाः**) ये प्रकर्षेण गीयन्ते ते (**येयजामहाः**) ये भृशं यजन्ति ते॥२४॥

अन्वयः-हे विद्वंस्त्वं विद्यार्थिन आश्रावय। ये स्तोत्रियास्तान् प्रत्याश्रावोऽनुरूप इति येयजामहाः प्रगाथा इति यजेति धाय्यारूपं यथावत् जानीहि॥२४॥

भावार्थः-ये परस्परं प्रीत्या विद्याविषयान् शृण्वन्ति श्रावयन्ति च, ते विद्वांसो जायन्ते॥२४॥

पदार्थः-हे विद्वन्! तू विद्यार्थियों को विद्या (**आ, श्रावय**) सब प्रकार से सुना, जो (**स्तोत्रियाः**) स्तुति करने योग्य हैं, उनको (**प्रत्याश्रावः**) पीछे सुनाया जाता है और (**अनुरूपः**) अनुकूल जैसा यज्ञ है, वैसे (**येयजामहाः**) जो यज्ञ करते हैं (**इति**) इस प्रकार अर्थात् उन के समान (**प्रगाथाः**) जो अच्छे प्रकार गान किये जाते हैं, उनको (**यजेति**) सङ्गत कर, इस प्रकार (**धाय्यारूपम्**) धारण करने योग्य रूप को यथावत् जानें॥२४॥

भावार्थः-जो परस्पर प्रीति से विद्या के विषयों को सुनते और सुनाते हैं, वे विद्वान् होते हैं॥२४॥

अर्द्धऽऋचैरित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः। सोमो देवता। भुरिगनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

कथमध्यापकैर्भवितव्यमित्युपदिश्यते॥

अध्यापको को कैसा होना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अ॒र्ध॒ऽऋ॒चैरु॒क्थाना॑ꣳ रू॒पं प॒दैरा॑प्नोति नि॒विदः॑।

प्र॒ण॒वैः श॒स्त्राणा॑ꣳ रू॒पं पय॑सा॒ सोम॑ऽआप्यते॥२५॥

अ॒र्द्ध॒ऽऋ॒चैरित्य॑र्द्धऽऋ॒चैः। उ॒क्थाना॑म्। रू॒पम्। प॒दैः। आ॒प्नो॒ति॒। नि॒विद॒ इति॑ नि॒ऽविदः॑। प्र॒ण॒वैः। प्र॒न॒वैरिति॑ प्रऽन॒वैः। श॒स्त्राणा॑म्। रू॒पम्। पय॑सा। सोमः॑। आ॒प्य॒ते॒॥२५॥

पदार्थः-(**अर्द्धऽऋचैः**) ऋचामर्द्धान्यर्द्धर्चास्तैर्मन्त्रभागैः (**उक्थानाम्**) स्तोत्रविशेषाणाम् (**रूपम्**) (**पदैः**) विभक्त्यन्तैः (**आप्नोति**) (**निविदः**) ये निश्चयेन विन्दन्ति तान् (**प्रणवैः**) ओङ्कारैः (**शस्त्राणाम्**) शसन्ति यैस्तैषाम् (**रूपम्**) (**पयसा**) उदकेन (**सोमः**) रसविशेषः (**आप्यते**) प्राप्यते॥ २५॥

अन्वयः-यो विद्वानर्द्धऽऋचैरुक्थानां रूपं पदैः प्रणवैः शस्त्राणां रूपं निविदश्चाप्नोति, येन विदुषा पयसा सोम आप्यते, स वेदवित् कथ्यते॥ २५॥

भावार्थः-ये विदुषः सकाशादधीत्य वेदस्थानां पदवाक्यमन्त्रविभागशब्दार्थसम्बन्धानां यथार्थं विज्ञानं कुर्वन्ति, तेऽत्राऽध्यापका भवन्ति॥ २५॥ ३

पदार्थः-जो विद्वान् (**अर्द्धऽऋचैः**) ऋचाओं के अर्ध भागों से (**उक्थानाम्**) कथन करने योग्य वैदिक स्तोत्रों का (**रूपम्**) स्वरूप (**पदैः**) सुबन्त-तिङन्त पदों और (**प्रणवैः**) ओंकारों से (**शस्त्राणाम्**) शस्त्रों का (**रूपम्**) स्वरूप और (**निविदः**) जो निश्चय से प्राप्त होते हैं, उनको (**आप्नोति**) प्राप्त होता है वा जिस विद्वान् से (**पयसा**) जल के साथ (**सोमः**) सोम ओषधि का रस (**आप्यते**) प्राप्त होता है, सो वेद का जानने वाला कहाता है॥ २५॥

भावार्थः-जो विद्वान् के समीप वस के, पढ़ के, वेदस्थ पद-वाक्य-मन्त्र-विभागों के शब्द-अर्थ और सम्बन्धों का यथावद्विज्ञान करते हैं, वे इस संसार में अध्यापक होते हैं॥ २५॥

अश्विभ्यामित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः। यज्ञो देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

सत्पुरुषैः कथं भवितव्यमित्याह॥

सत्पुरुषों को कैसा होना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अ॒श्विभ्यां॑ प्रातः सव॒नमिन्द्रे॑णै॒न्द्रं माध्य॑न्दिनम्।

वै॒श्व॒दे॒वꣳ सर॑स्वत्या तृ॒तीय॑मा॒प्तꣳ सव॑नम्॥ २६॥

अ॒श्विभ्या॒मित्य॒श्विऽभ्या॑म्। प्रा॒त॒:स॒व॒नमिति॑ प्रातःऽसव॒नम्। इन्द्रे॑ण। ऐ॒न्द्रम्। माध्य॑न्दिनम्। वै॒श्व॒दे॒वमिति॑ वैश्वऽदे॒वम्। सर॑स्वत्या। तृ॒तीय॑म्। आ॒प्तम्। सव॑नम्॥ २६॥

पदार्थः-(**अश्विभ्याम्**) सूर्य्याचन्द्रमोभ्याम् (**प्रातस्सवनम्**) प्रातःकाले सवनं यज्ञक्रियाप्रेरणम् (**इन्द्रेण**) विद्युता (**ऐन्द्रम्**) ऐश्वर्यकारकम् (**माध्यन्दिनम्**) मध्याह्ने भवम् (**वैश्वदेवम्**) विश्वेषां देवानामिदम् (**सरस्वत्या**) सत्यया वाचा (**तृतीयम्**) त्रयाणां पूरकम् (**आप्तम्**) व्याप्तं प्राप्तम् (**सवनम्**) आरोग्यकरं होमादिकम्॥ २६॥

अन्वयः-यैरश्विभ्यां प्रथमं सवनमिन्द्रेणैन्द्रं द्वितीयं माध्यन्दिनं सवनं सरस्वत्या वैश्वदेवं तृतीयं सवनमाप्तन्ते जगदुपकारकाः सन्ति॥ २६॥

भावार्थः-ये त्रिषु कालेषु सार्वजनिकहितमाचरन्ति, तेऽत्र सत्पुरुषास्सन्ति॥ २६॥

पदार्थः-जिन मनुष्यों ने **(अश्विभ्याम्)** सूर्य्य-चन्द्रमा से प्रथम **(प्रातःसवनम्)** प्रातःकाल यज्ञक्रिया की प्रेरणा **(इन्द्रेण)** बिजुली से **(ऐन्द्रम्)** ऐश्वर्यकारक दूसरा **(माध्यन्दिनम्)** मध्याह्न में होने और **(सवनम्)** आरोग्यता करने वाला होमादि कर्म और **(सरस्वत्या)** सत्यवाणी से **(वैश्वदेवम्)** सम्पूर्ण विद्वानों के सत्काररूप **(तृतीयम्)** तीसरा सवन अर्थात् सायङ्काल की क्रिया को यथावत् **(आप्तम्)** प्राप्त किया है, वे जगत् के उपकारक हैं॥२६॥

भावार्थः-जो भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान इन तीनों कालों में सब मनुष्यादि प्राणियों का हित करते हैं, वे जगत् में सत्पुरुष होते हैं॥२६॥

वायव्यैरित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः। यज्ञो देवता। भुरिगनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

विदुषां कथं भवितव्यमित्याह॥

विद्वान् को कैसा होना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

वायव्यैर्वायव्यान्याप्नोति सतेन द्रोणकलशम्।

कुम्भीभ्यामम्भृणौ सुते स्थालीभिः स्थालीराप्नोति॥२७॥

वायव्यैः। वायव्यानि। आप्नोति। सतेन। द्रोणकलशमिति द्रोणऽकलशम्। कुम्भीभ्याम्। अम्भृणौ। सुते। स्थालीभिः। स्थालीः। आप्नोति॥२७॥

पदार्थः-**(वायव्यैः)** वायुषु भवैर्वायुदेवताकैर्वा **(वायव्यानि)** वायुषु भवानि वायुदेवताकानि वा **(आप्नोति)** **(सतेन)** विभक्तेन कर्मणा **(द्रोणकलशम्)** द्रोणश्च कलशश्च तत् **(कुम्भीभ्याम्)** धान्यजलाधाराभ्याम् **(अम्भृणौ)** अपो बिभर्ति याभ्यां तौ **(सुते)** निष्पादिते। लिङ्गव्यत्ययश्छान्दसः **(स्थालीभिः)** यासु पदार्थान् स्थापयन्ति पाचयन्ति वा ताभिः **(स्थालीः)** **(आप्नोति)**॥२७॥

अन्वयः-यो विद्वान् वायव्यैर्वायव्यानि सतेन द्रोणकलशमाप्नोति, कुम्भीभ्यामम्भृणौ सुते स्थालीभिः स्थालीराप्नोति, स आढ्यो जायते॥२७॥

भावार्थः-कश्चिदपि मनुष्यो वायुकार्याण्यविदित्वैतत्कारणेन विना परिमाणविद्यामनया विना पाकविद्यां तामन्तरान्नसंस्कारक्रियाञ्च प्राप्तुन्न शक्नोति॥२७॥

पदार्थः-जो विद्वान् **(वायव्यैः)** वायु में होने वाले गुणों वा वायु जिनका देवता दिव्यगुणोत्पादक है, उन पदार्थों से **(वायव्यानि)** वायु में होने वा वायु देवता वाले कर्मों को **(सतेन)** विभागयुक्त कर्म से **(द्रोणकलशम्)** द्रोणपरिमाण और कलश को **(आप्नोति)** प्राप्त होता है। **(कुम्भीभ्याम्)** धान्य और जल के पात्रों से **(अम्भृणौ)** जिनसे जल धारण किया जाता है, उन **(सुते)** सिद्ध किये हुए दो प्रकार के रसों को **(स्थालीभिः)** जिनमें पदार्थ धरते वा पकाते हैं, उन स्थालियों से **(स्थालीः)** स्थालियों को **(आप्नोति)** प्राप्त होता है, वही धनाढ्य होता है॥२७॥

भावार्थः-कोई भी मनुष्य वायु के कर्मों को न जान कर इस के कारण के विना परिमाणविद्या को, इस विद्या के विना पाकविद्या को और इस के विना के अन्न के संस्कार की क्रिया को प्राप्त नहीं हो सकता॥२७॥

यजुर्भिरित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः। यज्ञो देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

सर्वे वेदमभ्यस्येयुरित्याह॥

सब लोग वेद का अभ्यास करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यजु॑र्भिराप्यन्ते ग्रहा ग्रहै स्तोमा॑श्च विष्टु॑तीः।

छन्दो॑भिरुक्थाशस्त्राणि साम्ना॑वभृथऽआ॑प्यते॥२८॥

यजु॑र्भिरिति यजुः॑ऽभिः। आप्यन्ते। ग्रहाः॑। ग्रहैः॑। स्तोमाः॑। च। विष्टु॑तीः। विस्तु॑तीरिति विऽस्तु॑तीः। छन्दो॑भिरिति छन्दः॑ऽभिः। उक्थाशस्त्राणि॑। उक्थशस्त्राणीत्यु॑क्थऽशस्त्राणि॑। साम्ना॑। अवभृथ इत्य॑वऽभृथः। आप्यते॥२८॥

पदार्थः-(**यजुर्भिः**) यजन्ति सङ्गच्छन्ते यैर्यजुर्वेदविद्यावयवैस्तैः (**आप्यन्ते**) (**ग्रहाः**) यैः सर्वं क्रियाकाण्डं गृह्णन्ति ते व्यवहाराः (**ग्रहैः**) (**स्तोमाः**) पदार्थगुणप्रशंसा (**च**) (**विष्टुतीः**) विविधाश्च ताः स्तुतयश्च ताः (**छन्दोभिः**) गायत्र्यादिभिर्विद्वद्भिः स्तोतृभिर्वा। **छन्द इति स्तोतृनामसु पठितम्॥** (निघं०३.१६) (**उक्थाशस्त्राणि**) उक्थानि च तानि शस्त्राणि च। अत्र **अन्येषामपि०** [अष्टा०६.३.१३७] इति पूर्वपदस्य दीर्घः। (**साम्ना**) सामवेदेन (**अवभृथः**) शोधनम् (**आप्यते**) प्राप्यते॥२८॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! युष्माभिर्यैर्यजुर्भिर्ग्रहा ग्रहैः स्तोमा विष्टुतीश्च छन्दोभिरुक्थाशस्त्राणि चाप्यन्ते, साम्नावभृथ आप्यते, तेषामुपयोगो यथावत् कर्त्तव्यः॥२८॥

भावार्थः-कश्चिदपि मनुष्यो वेदाभ्यासेन विना अखिलाः साङ्गोपाङ्गविद्याः प्राप्तुं नार्हति॥२८॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम लोगों को जिन (**यजुर्भिः**) यजुर्वेदोक्त विद्या के अवयवों से (**ग्रहाः**) जिससे समस्त क्रियाकाण्ड का ग्रहण किया जाता है, वे व्यवहार (**ग्रहैः**) ग्रहों से (**स्तोमाः**) पदार्थों के गुणों की प्रशंसा (**च**) और (**विष्टुतीः**) विविध स्तुतियां (**छन्दोभिः**) गायत्र्यादि छन्द वा विद्वान् और गुणों की स्तुति करने वालों से (**उक्थाशस्त्राणि**) कथन करने योग्य वेद के स्तोत्र और शस्त्र (**आप्यन्ते**) प्राप्त होते हैं तथा (**साम्ना**) सामवेद से (**अवभृथः**) शोधन (**आप्यते**) प्राप्त होता है, उनका उपयोग यथावत् करना चाहिये॥२८॥

भावार्थः-कोई भी मनुष्य वेदाभ्यास के विना सम्पूर्ण साङ्गोपाङ्ग वेदविद्याओं को प्राप्त होने योग्य नहीं होता॥२८॥

इडाभिरित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः। इडा देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

गृहस्थैः पुरुषैः किं कर्त्तव्यमित्याह॥

गृहस्थ पुरुषों को क्या करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

इडा॑भिर्भ॒क्षाना॑प्नोति सूक्तवा॒केना॒शिष॑ः।

शं॒युना॑ पत्नीसंया॒जान्त्स॑मिष्टय॒जुषा॑ सं॒स्थाम्॥२९॥

इडा॑भिः। भ॒क्षान्। आ॒प्नो॒ति॒। सू॒क्त॒वा॒केनेति॑ सूक्तऽवा॒केन॑। आ॒शिष॒ इत्या॒ऽशिष॑ः। शं॒युनेति॑ शम्ऽयुना॑। प॒त्नी॒सं॒या॒जानिति॑ पत्नीऽसंया॒जान्। स॒मि॒ष्ट॒य॒जुषेति॑ समिष्टऽय॒जुषा॑। सं॒स्थामिति॑ स॒म्ऽस्थाम्॥२९॥

पदार्थः-(**इडाभिः**) पृथिवीभिः। **इडेति पृथिवीनामसु पठितम्॥** (निघं०१.१) (**भक्षान्**) भक्षितुमर्हान् भोज्यान् पदार्थान् (**आप्नोति**) (**सूक्तवाकेन**) सुष्ठूच्यते तत् सूक्तवाकन्तेन (**आशिषः**) इच्छाः (**शंयुना**) सुखमयेन (**पत्नीसंयाजान्**) ये पत्न्या सह समिज्यन्ते तान् (**समिष्टयजुषा**) सम्यगिष्टं येन भवति तेन (**संस्थाम्**) सम्यक् तिष्ठन्ति यस्यां ताम्॥२९॥

अन्वयः-यो विद्वान्निडाभिर्भक्षान् सूक्तवाकेनाशिषः शंयुना पत्नीसंयाजान् समिष्टयजुषा संस्थामाप्नोति, स सुखी कथं न स्यात्॥२९॥

भावार्थः-गृहस्था वेदविज्ञानेनैव पृथिवीराज्यभोगेच्छां तत्सिद्धिसंस्थितिं चाप्नुवन्तु॥२९॥

पदार्थः-जो विद्वान् (**इडाभिः**) पृथिवियों से (**भक्षान्**) भक्षण करने योग्य अन्नादि पदार्थों को (**सूक्तवाकेन**) जो सुन्दरता से कहा जाय उस के कहने से (**आशिषः**) इच्छा-सिद्धियों को (**शंयुना**) जिस से सुख प्राप्त होता है, उससे (**पत्नीसंयाजान्**) जो पत्नी के साथ मिलते हैं, उनको (**समिष्टयजुषा**) अच्छे इष्टसिद्धि करने वाले यजुर्वेद के कर्म से (**संस्थाम्**) अच्छे प्रकार रहने के स्थान को (**आप्नोति**) प्राप्त होता है, वह सुखी क्यों न होवे॥२९॥

भावार्थः-गृहस्थ लोग वेदविज्ञान ही से पृथिवी के राज्य-भोग की इच्छा और उसकी सिद्धि को प्राप्त होवें॥२९॥

व्रतेनेत्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः। यज्ञो देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

मनुष्यैः सत्यं ग्राह्यमसत्यञ्च त्याज्यमित्याह॥

मनुष्यों को सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

व्र॒तेन॑ दी॒क्षामा॑प्नोति दी॒क्षया॑प्नोति॒ दक्षि॑णाम्।

दक्षि॑णा श्र॒द्धामा॑प्नोति श्र॒द्धया॑ स॒त्यमा॑प्यते॥३०॥

व्र॒तेन॑। दी॒क्षाम्। आ॒प्नो॒ति॒। दी॒क्षया॑। आ॒प्नो॒ति॒। दक्षि॑णाम्। दक्षि॑णा। श्र॒द्धाम्। आ॒प्नो॒ति॒। श्र॒द्धया॑। स॒त्यम्। आ॒प्य॒ते॒॥३०॥

पदार्थः-(**व्रतेन**) सत्यभाषणब्रह्मचर्य्यादिनियमेन (**दीक्षाम्**) ब्रह्मचर्यविद्यादिसुशिक्षाप्रज्ञाम् (**आप्नोति**) (**दीक्षया**) (**आप्नोति**) (**दक्षिणाम्**) प्रतिष्ठां श्रियं वा (**दक्षिणा**) दक्षिणया। अत्र विभक्तिलोपः। (**श्रद्धाम्**) श्रत्सत्यं दधाति ययेच्छया ताम्। **श्रदिति सत्यनामसु पठितम्॥** (निघं०३.१०) (**आप्नोति**) (**श्रद्धया**) (**सत्यम्**) सत्सु नित्येषु व्यवहारेषु वा साधुस्तं परमेश्वरं धर्मं वा (**आप्यते**) प्राप्यते॥३०॥

अन्वयः-यो बालकः कन्यका मनुष्यो वा व्रतेन दीक्षामाप्नोति, दीक्षया दक्षिणामाप्नोति, दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति, तया श्रद्धया वा येन सत्यमाप्यते, स सुखी भवति॥३०॥

भावार्थः-कश्चिदपि मनुष्यो विद्यासुशिक्षाश्रद्धाभिर्विना सत्यान् व्यवहारान् प्राप्तुमसत्याँश्च त्यक्तुं न शक्नोति॥३०॥

पदार्थः-जो बालक कन्या वा पुरुष (**व्रतेन**) ब्रह्मचर्यादि नियमों से (**दीक्षाम्**) ब्रह्मचर्यादि सत्कर्मों के आरम्भरूप दीक्षा को (**आप्नोति**) प्राप्त होता है, (**दीक्षया**) उस दीक्षा से (**दक्षिणाम्**) प्रतिष्ठा और धन को (**आप्नोति**) प्राप्त होता है, (**दक्षिणा**) उस प्रतिष्ठा वा धनरूप से (**श्रद्धाम्**) सत्य के धारण में प्रीतिरूप श्रद्धा को (**आप्नोति**) प्राप्त होता है वा उस (**श्रद्धया**) श्रद्धा से जिसने (**सत्यम्**) नित्य पदार्थ वा व्यवहारों में उत्तम परमेश्वर वा धर्म की (**आप्यते**) प्राप्ति की है, वह सुखी होता है॥३०॥

भावार्थः-कोई भी मनुष्य विद्या, अच्छी शिक्षा और श्रद्धा के विना सत्य व्यवहारों को प्राप्त होने और दुष्ट व्यवहारों के छोड़ने को समर्थ नहीं होता॥३०॥

एतावद्रूपमित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः। यज्ञो देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनर्मनुष्यः किं कुर्युरित्याह॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

एतावद् रूपं यज्ञस्य यद्देवैर्ब्रह्मणा कृतम्।

तदेतत्सर्वमाप्नोति यज्ञे सौत्रामणी सुते॥३१॥

एतावत्। रूपम्। यज्ञस्य। यत्। देवैः। ब्रह्मणा। कृतम्। तत्। एतत्। सर्वम्। आप्नोति। यज्ञे। सौत्रामणी। सुते॥३१॥

पदार्थः-(**एतावत्**) एतत् परिमाणमस्य तत् (**रूपम्**) स्वरूपम् (**यज्ञस्य**) यजनकर्मणः (**यत्**) (**देवैः**) विद्वद्भिः (**ब्रह्मणा**) परमेश्वरेण वेदचतुष्टयेन वा (**कृतम्**) निष्पादितं प्रकाशितं वा (**तत्**) परोक्षम् (**एतत्**) प्रत्यक्षम् (**सर्वम्**) (**आप्नोति**) (**यज्ञे**) (**सौत्रामणी**) सूत्राणि यज्ञोपवीतादीनि मणिना ग्रन्थिना युक्तानि ध्रियन्ते यस्मिंस्तस्मिन् (**सुते**) सम्पादिते॥३१॥

अन्वयः-यो मनुष्यो यद्देवैर्ब्रह्मणा यज्ञस्यैतावद् रूपं कृतं तदेतत् सर्वं सौत्रामणी सुते यज्ञ आप्नोति, स द्विजत्वारम्भं करोति॥३१॥

भावार्थः-विद्वद्भिर्मनुष्यैर्यावद् यज्ञानुष्ठानानुसन्धानं क्रियेत तावदेवानुष्ठाय महोत्तमं यज्ञफलमाप्तव्यम्॥३१॥

पदार्थः-जो मनुष्य **(यत्)** जिस **(देवैः)** विद्वानों और **(ब्रह्मणा)** परमेश्वर वा चार वेदों ने **(यज्ञस्य)** यज्ञ के **(एतावत्)** इतने **(रूपम्)** स्वरूप को **(कृतम्)** सिद्ध किया वा प्रकाशित किया है, **(तत्)** उस **(एतत्)** इस **(सर्वम्)** समस्त को **(सौत्रामणी)** जिसमें यज्ञोपवीतादि ग्रन्थियुक्त सूत्र धारण किये जाते हैं, उस **(सुते)** सिद्ध किये हुए **(यज्ञे)** यज्ञ में **(आप्नोति)** प्राप्त होता है, वह द्विज होने का आरम्भ करता है॥३१॥

भावार्थः-विद्वान् मनुष्यों को योग्य है कि जितना यज्ञ के अनुष्ठान का अनुसन्धान किया जाता है, उतना ही अनुष्ठान करके बड़े उत्तम यज्ञ के फल को प्राप्त होवें॥३१॥

सुरावन्तमित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः। इन्द्रो देवता। निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

सुरावन्तं बर्हिषदꣳ सुवीरं यज्ञꣳ हिन्वन्ति महिषा नमोभिः।

दधानाः सोमं दिवि देवतासु मदेमेन्द्रं यजमानाः स्वर्काः॥३२॥

सुरावन्तमिति सुराऽवन्तम्। बर्हिषदम्। बर्हिषदमिति बर्हिऽसदम्। सुवीरमिति सुऽवीरम्। यज्ञम्। हिन्वन्ति। महिषाः। नमोभिरिति नमःऽभिः। दधानाः। सोमम्। दिवि। देवतासु। मदेम। इन्द्रम्। यजमानाः। स्वर्का इति सुऽअर्काः॥३२॥

पदार्थः-**(सुरावन्तम्)** सुराः प्रशस्ताः सोमा विद्यन्ते यस्मिंस्तम् **(बर्हिषदम्)** यो बर्हिष्याकाशे सीदति तम् **(सुवीरम्)** शोभना वीराः शरीरात्मबलयुक्ता यस्मात् तम् **(यज्ञम्)** **(हिन्वन्ति)** वर्धयन्ति **(महिषाः)** महान्तः पूजनीयाः **(नमोभिः)** अन्नैः **(दधानाः)** धरन्तः **(सोमम्)** ऐश्वर्य्यम् **(दिवि)** शुद्धे व्यवहारे **(देवतासु)** विद्वत्सु **(मदेम)** हर्षेम **(इन्द्रम्)** परमैश्वर्ययुक्तञ्जनम् **(यजमानाः)** ये यजन्ति ते विद्वांसः **(स्वर्काः)** शोभना अर्का अन्नादयः पदार्था येषान्ते॥३२॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! ये महिषास्स्वर्का यजमाना नमोभिः सुरावन्तं बर्हिषदं सुवीरं यज्ञं हिन्वन्ति, ते दिवि देवतासु सोममिन्द्रं दधानाः सन्तो वयञ्च मदेम॥३२॥

भावार्थः-ये मनुष्या अन्नाद्यैश्वर्य्यं सञ्चित्य तेन विदुषः सन्तोष्य सद्विद्यासु शिक्षाः संगृह्य सर्वहितैषिणः स्युस्तेऽत्र पुत्रकलत्रानन्दमाप्नुवन्तु॥३२॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो **(महिषाः)** महान् पूजनीय **(स्वर्काः)** उत्तम अन्न आदि पदार्थों से युक्त **(यजमानाः)** यज्ञ करने वाले विद्वान् लोग **(नमोभिः)** अन्नादि से **(सुरावन्तम्)** उत्तम सोमरस युक्त **(बर्हिषदम्)** जो प्रशस्त आकाश में स्थिर होता उस **(सुवीरम्)** उत्तम शरीर तथा आत्मा के बल से युक्त

वीरों की प्राप्ति करनेहारे **(यज्ञम्)** यज्ञ को **(हिन्वन्ति)** बढ़ाते हैं, वे और **(दिवि)** शुद्ध व्यवहारों में तथा **(देवतासु)** विद्वानों में **(सोमम्)** ऐश्वर्य्य और **(इन्द्रम्)** परमैश्वर्य्ययुक्त जन को **(दधानाः)** धारण करते हुए हम लोग **(मदेम)** आनन्दित हों॥३२॥

भावार्थः-जो मनुष्य अन्नादि ऐश्वर्य का सञ्चय कर उससे विद्वानों को प्रसन्न और सत्य विद्याओं में शिक्षा ग्रहण करके सब के हितैषी हों, वे इस संसार में पुत्र-स्त्री के आनन्द को प्राप्त हों॥३२॥

यस्ते रस इत्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः। इन्द्रो देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

किम्भूता जना धन्या इत्याह॥

कैसे पुरुष धन्यवाद के योग्य हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

यस्ते रसः सम्भृतऽओषधीषु सोमस्य शुष्मः सुरया सुतस्य।

तेन जिन्व यजमानं मदेन सरस्वतीमश्विनाविन्द्रमग्निम्॥३३॥

यः। ते। रसः। सम्भृत इति सम्ऽभृतः। ओषधीषु। सोमस्य। शुष्मः। सुरया। सुतस्य। तेन। जिन्व। यजमानम्। मदेन। सरस्वतीम्। अश्विनौ। इन्द्रम्। अग्निम्॥३३॥

पदार्थः-**(यः)** **(ते)** तव **(रसः)** आनन्दः **(सम्भृतः)** सम्यग्धृतः **(ओषधीषु)** सोमलतादिषु **(सोमस्य)** अशुंमदादिसंज्ञस्य चतुर्विंशतिधा भिद्यमानस्य **(शुष्मः)** शुष्मं बलं विद्यते यस्मिन् सः **(सुरया)** शोभनदानशीलया स्त्रिया **(सुतस्य)** निष्पादितस्य **(तेन)** **(जिन्व)** प्रीणीहि **(यजमानम्)** सर्वेभ्यः सुखं ददमानम् **(मदेन)** आनन्दप्रदेन **(सरस्वतीम्)** प्रशस्तविद्यायुक्तां स्त्रियम् **(अश्विनौ)** विद्याव्याप्तावध्यापकोपदेशकौ **(इन्द्रम्)** ऐश्वर्ययुक्तं सभासेनेशम् **(अग्निम्)** पावकवच्छत्रुदाहकं योद्धारम्॥३३॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यस्त ओषधीषु वर्त्तमानस्य सुतस्य सोमस्य सुरया सम्भृतः शुष्मो रसोऽस्ति, तेन मदेन यजमानं सरस्वतीमश्विनाविन्द्रमग्निञ्च जिन्व॥३३॥

भावार्थः-ये विद्वांसो जना महौषधिसारं स्वयं संसेव्यान्यान् सेवयित्वा सततमानन्दं वर्द्धयेयुस्ते धन्याः सन्ति॥३३॥

पदार्थः-हे विद्वन्! **(यः)** जो **(ते)** आपका **(ओषधीषु)** सोमलतादि ओषधियों में वर्त्तमान **(सुतस्य)** सिद्ध किये हुए **(सोमस्य)** अंशुमान् आदि चौबीस प्रकार के भेद वाले सोम का **(सुरया)** उत्तम दानशील स्त्री ने **(सम्भृतः)** अच्छे प्रकार धारण किया हुआ **(शुष्मः)** बलकारी **(रसः)** रस है, **(तेन)** उस **(मदेन)** आनन्ददायक रस से **(यजमानम्)** सब को सुख देने वाले यजमान **(सरस्वतीम्)** उत्तम विद्यायुक्त स्त्री **(अश्विनौ)** विद्याव्याप्त अध्यापक और उपदेशक **(इन्द्रम्)** ऐश्वर्ययुक्त सभा और सेना के पति **(अग्निम्)** पावक के समान शत्रु को जलानेहारे योद्धा को **(जिन्व)** प्रसन्न कीजिये॥३३॥

भावार्थः-जो विद्वान् मनुष्य महौषधियों के सारों को आप सेवन कर अन्यों को सेवन कराके निरन्तर आनन्द बढ़ावें, वे धन्यवाद के योग्य हैं॥३३॥

यमश्विनेत्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः। सोमो देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

कीदृशा जनाः सुखिनो भवन्तीत्याह॥

कैसे पुरुष सुखी होते हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

यमश्विना नमुचेरासुरादधि सरस्वत्यसुनोदिन्द्रियाय।

इमं तꣳ शुक्रं मधुमन्तमिन्दुꣳ सोमꣳ राजानमिह भक्षयामि॥३४॥

यम्। अश्विना। नमुचेः। आसुरात्। अधि। सरस्वती। असुनोत्। इन्द्रियाय। इमम्। तम्। शुक्रम्। मधुमन्तम्। इन्दुम्। सोमम्। राजानम्। इह। भक्षयामि॥३४॥

पदार्थः-(**यम्**) (**अश्विना**) सभासेनेशौ (**नमुचेः**) यो जलं न मुञ्चति तस्मात् (**आसुरात्**) असुरस्य मेघस्यायं तस्मात् (**अधि**) (**सरस्वती**) विदुषी स्त्री (**असुनोत्**) सुनोति (**इन्द्रियाय**) धनायेन्द्रियबलाय वा (**इमम्**) (**तम्**) (**शुक्रम्**) शीघ्रं बलकरम् (**मधुमन्तम्**) प्रशस्तमधुरादिगुणयुक्तम् (**इन्दुम्**) परमैश्वर्यकारकम् (**सोमम्**) पुरुषार्थे प्रेरकम् (**राजानम्**) प्रकाशमानम् (**इह**) अस्मिन् संसारे (**भक्षयामि**) भुञ्जे भोजयामि वा॥३४॥

अन्वयः-मनुष्याः! इहेन्द्रियाय यं नमुचेरासुरादधि शुक्रं मधुमन्तमिन्दुं राजानं सोमं सरस्वत्यसुनोदश्विना सुनुतां तमिममहं भक्षयामि॥३४॥

भावार्थः-ये मनुष्याः सारान्नरसभोजिनो भवन्ति, ते बलिष्ठेन्द्रियाः सन्तः सदानन्दं भुञ्जते॥३४॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! (**इह**) इस संसार में (**इन्द्रियाय**) धन और इन्द्रियबल के लिये (**यम्**) जिस (**नमुचेः**) जल को जो नहीं छोड़ता (**आसुरात्**) उस मेघ-व्यवहार से (**अधि**) अधिक (**शुक्रम्**) शीघ्र बलकारी (**मधुमन्तम्**) उत्तम मधुरादिगुणयुक्त (**इन्दुम्**) परमैश्वर्य्य करनेहारे (**राजानम्**) प्रकाशमान (**सोमम्**) पुरुषार्थ में प्रेरक सोम ओषधि को (**सरस्वती**) विदुषी स्त्री (**असुनोत्**) सिद्ध करती तथा (**अश्विना**) सभा और सेना के पति सिद्ध करते हैं, (**तम्, इमम्**) उस इस को मैं (**भक्षयामि**) भोग करता और भोगवाता हूं॥३४॥

भावार्थः-जो मनुष्य उत्तम अन्न रस के भोजन करनेहारे होते हैं, वे बलयुक्त इन्द्रियों वाले होकर सदा आनन्द को भोगते हैं॥३४॥

यदत्रमित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः। सोमो देवता। विराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

मनुष्यैः सर्व आनन्दयितव्य इत्याह॥

मनुष्यों को चाहिये कि सब को आनन्द करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यदत्र॑ रि॒प्तꣳ र॒सिनः॑ सु॒तस्य॒ यदिन्द्रो॒ऽअपि॑ब॒च्छची॑भिः।
अ॒हं तद॑स्य॒ मन॑सा शि॒वेन॒ सोम॒ꣳ राजा॑नमि॒ह भ॑क्षयामि॥३५॥

यत्। अत्र॑। रि॒प्तम्। र॒सिनः॑। सु॒तस्य॑। यत्। इन्द्रः॑। अपि॑बत्। शची॑भिः। अ॒हम्। तत्। अ॒स्य॒। मन॑सा। शि॒वेन॑। सोम॑म्। राजा॑नम्। इ॒ह। भ॒क्ष॒या॒मि॒॥३५॥

पदार्थः-(**यत्**) (**अत्र**) अस्मिन् संसारे (**रिप्तम्**) लिप्तं प्राप्तम्। अत्र लकारस्य रेफादेशः (**रसिनः**) प्रशस्त रसो विद्यते यस्मिंस्तस्य (**सुतस्य**) निष्पादितस्य (**यत्**) यम् (**इन्द्रः**) सूर्यः (**अपिबत्**) (**शचीभिः**) क्रियाभिः। **शचीति कर्मनामसु पठितम्॥** (निघं०२.१) (**अहम्**) (**तत्**) तम् (**अस्य**) (**मनसा**) (**शिवेन**) मङ्गलमयेन (**सोमम्**) ओषधीरसम् (**राजानम्**) देदीप्यमानम् (**इह**) (**भक्षयामि**)॥३५॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथाहमिहास्य सुतस्य रसिनो यदत्र रिप्तमस्तीन्द्रश्शचीभिर्यदपिबत्, तद् राजानं सोमं च शिवेन मनसा भक्षयामि, तथा यूयमपि भक्षयत॥३५॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यथा सूर्यः स्वकिरणैर्जलान्याकृष्य वर्षित्वा सर्वान् सुखयति, तथैवानुकूलाभिः क्रियाभी रसान् संसेव्य बलमुन्नीय यशोवृष्ट्या सर्वान् यूयमानन्दयत॥३५॥

पदार्थः-हे मनुष्य लोगो! जैसे (**अहम्**) मैं (**इह**) इस संसार में (**अस्य**) इस (**सुतस्य**) सिद्ध किये हुए (**रसिनः**) प्रशंसित रसयुक्त पदार्थ का (**यत्**) जो भाग (**अत्र**) इस संसार ही में (**रिप्तम्**) लिप्त=प्राप्त है वा (**इन्द्रः**) सूर्य्य (**शचीभिः**) आकर्षणादि कर्मों के साथ (**यत्**) जो (**अपिबत्**) पीता है, (**तत्**) उसको और (**राजानम्**) प्रकाशमान (**सोमम्**) ओषधियों के रस को (**शिवेन**) कल्याणकारक (**मनसा**) मन से (**भक्षयामि**) भक्षण करता और पीता हूं, वैसे तुम भी किया और पिया करो॥३५॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जैसे सूर्य अपनी किरणों से जलों का आकर्षण कर और वर्षा से सबको सुखी करता है, वैसे ही अनुकूल क्रियाओं से रसों का सेवन अच्छे प्रकार करके बल को बढ़ा कीर्ति से सब को तुम लोग आनन्दित करो॥३५॥

पितृभ्य इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। पितरो देवताः। निचृदष्टिश्छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पित्रपत्यादिभिरितरेतरं कथं वर्त्तितव्यमित्याह॥

माता-पिता पुत्रादि को परस्पर कैसे वर्त्तना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

पि॒तृभ्यः॑ स्वधा॒यिभ्यः॑ स्व॒धा नमः॑ पिताम॒हेभ्यः॑ स्वधा॒यिभ्यः॑ स्व॒धा नमः॒ प्रपि॑तामहेभ्यः स्वधा॒यिभ्यः॑ स्व॒धा नमः॑। अक्ष॑न् पि॒तरोऽमी॑मदन्त पि॒तरोऽतीतृ॑पन्त पि॒तरः॒ पित॑रः॒ शुन्ध॑ध्वम्॥३६॥

पि॒तृभ्य॒ इति॑ पि॒तृऽभ्यः॑। स्व॒धा॒यिभ्य॒ इति॑ स्वधा॒यिऽभ्यः॑। स्व॒धा। नमः॑। पि॒ता॒म॒हेभ्यः॑। स्व॒धा॒यिभ्य॒ इति॑ स्वधा॒यिऽभ्यः॑। स्व॒धा। नमः॑। प्रपि॑तामहेभ्य॒ इति॒ प्रऽपि॑तामहेभ्यः। स्व॒धा॒यिभ्य॒ इति॑ स्वधा॒यिऽभ्यः॑। स्व॒धा। नमः॑। अक्ष॑न्। पि॒तरः॑। अमी॑मदन्त। पि॒तरः॑। अती॑तृपन्त। पि॒तरः॑। पित॑रः। शुन्ध॑ध्वम्॥३६॥

पदार्थ:-(**पितृभ्य:**) पालकेभ्यो जनकाध्यापकादिभ्य: (**स्वधायिभ्य:**) ये स्वधायिभ्य: ये स्वधामुदकमन्नं वैतुं प्राप्तुं शीलास्तेभ्य:। **स्वधेत्युदकनामसु पठितम्॥** (निघं०१.१२) **स्वधेत्यन्ननामसु पठितम्॥** (निघं०२.७) (**स्वधा**) अन्नम् (**नम:**) सत्करणम् (**पितामहेभ्य:**) ये पितॄणां पितरस्तेभ्य: (**स्वधायिभ्य:**) (**स्वधा**) स्वान् दधाति यया सा क्रिया (**नम:**) नमनम् (**प्रपितामहेभ्य:**) ये पितामहानां पितरस्तेभ्य: (**स्वधायिभ्य:**) (**स्वधा**) स्वेन धारिता सेवा (**नम:**) अन्नादिकम् (**अक्षन्**) अदन्तु। योऽद्धातो: स्थाने **'घस्लृ'** आदेशस्तस्य लुङि रूपम् (**पितर:**) ज्ञानिन: (**अमीमदन्त**) अतिशयेन हर्षयत (**पितर:**) (**अतीतृपन्त**) अतिशयेन तर्पयत (**पितर:**) (**पितर:**) (**शुन्धध्वम्**) पवित्रीकुरुत॥३६॥

अन्वय:-अस्माभि: पुत्रशिष्यादिमनुष्यैर्येभ्य: स्वधायिभ्य: पितृभ्य: स्वधा नम: स्वधायिभ्य: पितामहेभ्य: स्वधा नम: स्वधायिभ्य: प्रपितामहेभ्य: स्वधा नम: क्रियते। हे पितरस्ते भवन्तोऽस्मत्सुसंस्कृतान्यन्नादीन्यक्षन्। हे पितरो! यूयमानन्दिता भूत्वाऽस्मानमीमदन्त। हे पितरो! यूयं तृप्ता भूत्वास्मानतीतृपन्त। हे पितरो! यूयं शुद्धा भूत्वाऽस्मान् शुन्धध्वम्॥३६॥

भावार्थ:-हे पुत्रशिष्यस्नुषादयो जना:! यूयमुत्तमैरन्नादिभि: पित्रादीन् वृद्धान् सततं सत्कुरुत, पितरो युष्मानप्यानन्दयेयु:। यथा मातापित्रादयो बाल्यावस्थायां युष्मान् सेवन्ते, तथैव यूयं वृद्धावस्थायां तेषां सेवां यथावत् कुरुत॥३६॥

पदार्थ:-हम पुत्र शिष्यादि मनुष्य (**स्वधायिभ्य:**) जिस स्वधा अन्न और जल को प्राप्त होने के स्वभाव वाले (**पितृभ्य:**) ज्ञानियों को (**स्वधा**) अन्न देते और (**नम:**) सत्कार करते (**स्वधायिभ्य:**) बहुत अन्न को चाहने वाले (**पितामहेभ्य:**) पिता के पिताओं को (**स्वधा**) सुन्दर अन्न देते तथा (**नम:**) सत्कार करते और (**स्वधायिभ्य:**) उत्तम अन्न के चाहने वाले (**प्रपितामहेभ्य:**) पितामह के पिताओं को (**स्वधा**) अन्न देते और उनका (**नम:**) सत्कार करते हैं, वे हे (**पितर:**) पिता आदि ज्ञानियो! आप लोग हमने अच्छे प्रकार बनाये हुये अन्न आदि का (**अक्षन्**) भोजन कीजिये। हे (**पितर:**) अध्यापक लोगो! आप आनन्दित होके हम को (**अमीमदन्त**) आनन्दयुक्त कीजिये। हे (**पितर:**) उपदेशक लोगो! आप तृप्त होकर हमको (**अतीतृपन्त**) तृप्त कीजिये। हे (**पितर:**) विद्वानो! आप लोग शुद्ध होकर हमको (**शुन्धध्वम्**) शुद्ध कीजिये॥३६॥

भावार्थ:-हे पुत्र, शिष्य और पुत्रवधू आदि लोगो! तुम उत्तम अन्नादि पदार्थों से पिता आदि वृद्धों का निरन्तर सत्कार किया करो तथा पितर लोग तुमको भी आनन्दित करें। जैसे माता-पितादि बाल्यावस्था में तुम्हारी सेवा करते हैं, वैसे ही तुम लोग वृद्धावस्था में उनकी सेवा यथावत् किया करो॥३६॥

पुनन्तु मा पितर इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि:। सरस्वती देवता। भुरिगष्टिश्छन्द:। मध्यम: स्वर:॥

पुनस्तदेवाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

पुनन्तु मा पितरः सोम्यासः पुनन्तु मा पितामहाः पुनन्तु प्रपितामहाः।
पवित्रेण शतायुषा। पुनन्तु मा पितामहाः पुनन्तु प्रपितामहाः।
पवित्रेण शतायुषा विश्वमायुर्व्यश्नवै॥ ३७॥

पुनन्तु। मा। पितरः। सोम्यासः। पुनन्तु। मा। पितामहाः। पुनन्तु। प्रपितामहा इति प्रऽपितामहाः। पवित्रेण। शतायुषेति शतऽआयुषा। पुनन्तु। मा। पितामहाः। पुनन्तु। प्रपितामहा इति प्रऽपितामहाः। पवित्रेण। शतायुषेति शतऽआयुषा। विश्वम्। आयुः। वि। अश्नवै॥ ३७॥

पदार्थः-(**पुनन्तु**) अशुद्धाद् व्यवहारान्निवर्त्य शुद्धे प्रवर्त्य पवित्रीकुर्वन्तु (**मा**) माम् (**पितरः**) ज्ञानप्रदानेन पालकाः (**सोम्यासः**) सोमे ऐश्वर्ये भवाः सोमवच्छान्ता वा (**पुनन्तु**) (**मा**) (**पितामहाः**) (**पुनन्तु**) (**प्रपितामहाः**) (**पवित्रेण**) शुद्धाचरणयुक्तेन (**शतायुषा**) शतं वर्षाणि यस्मिन्नायुषि तेन (**पुनन्तु**) (**मा**) (**पितामहाः**) (**पुनन्तु**) (**प्रपितामहाः**) (**पवित्रेण**) ब्रह्मचर्य्यादिधर्माचरणयुक्तेन (**शतायुषा**) (**विश्वम्**) पूर्णम् (**आयुः**) जीवनम् (**वि**) विविधार्थे (**अश्नवै**) प्राप्नुयाम्। लोट्प्रयोगोऽयम्॥ ३७॥

अन्वयः-सोम्यासः पितरः पवित्रेण शतायुषा मा पुनन्तु, सोम्यासः पितामहाः पवित्रेण शतायुषा मा पुनन्तु, सोम्यासः प्रपितामहाः पवित्रेण शतायुषा मा पुनन्तु, सोम्यासः पितामहाः पवित्रेण शतायुषा मा पुनन्तु, सोम्यासः प्रपितामहाः पवित्रेण शतायुषा मा पुनन्तु, यतोऽहं विश्वमायुर्व्यश्नवै प्राप्नुयाम्॥ ३७॥

भावार्थः-पितृपितामहप्रपितामहैः स्वकन्याः पुत्रांश्च ब्रह्मचर्यसुशिक्षाधर्मोपदेशेन संयोज्य विद्यासुशीलयुक्ताः कार्याः सन्तानैः सेवानुकूलाचरणाभ्यां सर्वे नित्यं सेवनीयाः। एवं परस्परोपकारेण गृहाश्रमे आनन्देन वर्त्तितव्यम्॥ ३७॥

पदार्थः-(**सोम्यासः**) ऐश्वर्य से युक्त वा चन्द्रमा के तुल्य शान्त (**पितरः**) ज्ञान देने से पालक पितर लोग (**पवित्रेण**) शुद्ध (**शतायुषा**) सौ वर्ष की आयु से (**मा**) मुझ को (**पुनन्तु**) पवित्र करें, अति बुद्धिमान् चन्द्रमा के तुल्य आनन्दकर्त्ता (**पितामहाः**) पिताओं के पिता उस अतिशुद्ध सौ वर्षयुक्त आयु से (**मा**) मुझ को (**पुनन्तु**) पवित्र करें। ऐश्वर्यदाता चन्द्रमा के तुल्य शीतल स्वभाव वाले (**प्रपितामहाः**) पितामहों के पिता लोग शुद्ध सौ वर्ष पर्य्यन्त जीवन से (**मा**) मुझ को (**पुनन्तु**) पवित्र करें। विद्यादि ऐश्वर्ययुक्त वा शान्तस्वभाव (**पितामहाः**) पिताओं के पिता (**पवित्रेण**) अतीव शुद्धानन्दयुक्त (**शतायुषा**) शत वर्ष पर्य्यन्त आयु से मुझ को (**पुनन्तु**) पवित्राचरणयुक्त करें। सुन्दर ऐश्वर्य के दाता वा शन्तियुक्त (**प्रपितामहाः**) पितामहों के पिता पवित्र धर्माचरणयुक्त सौ वर्ष पर्यन्त आयु से मुझ को (**पुनन्तु**) पवित्र करें, जिससे मैं (**विश्वम्**) सम्पूर्ण (**आयुः**) जीवन को (**व्यश्नवै**) प्राप्त होऊं॥ ३७॥

भावार्थः-पिता, पितामह और प्रपितामहों को योग्य है कि अपने कन्या और पुत्रों को ब्रह्मचर्य, अच्छी शिक्षा और धर्मोपदेश से संयुक्त करके विद्या और उत्तम शील से युक्त करें। सन्तानों को योग्य है

कि पितादि की सेवा और अनुकूल आचरण से पिता आदि सभों की नित्य सेवा करें, ऐसे परस्पर उपकार से गृहाश्रम में आनन्द के साथ वर्त्तना चाहिये॥३७॥

अग्न आयूंषि इत्यस्य वैखानस ऋषि:। इन्द्रो देवता। गायत्री छन्द:। षड्ज: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय का अगले मन्त्र में उपदेश किया है॥

अग्न॒ऽआयू॑ꣳषि पवस॒ऽआ सु॒वोर्ज॒मिषं॑ च न:। आ॒रे बा॑धस्व दु॒च्छुना॑म्॥३८॥

अग्ने॑। आयू॑ꣳषि। प॒व॒से॒। आ। सु॒व॒। ऊर्ज॑म्। इषं॑म्। च॒। न॒:। आ॒रे। बा॒ध॒स्व॒। दु॒च्छुना॑म्॥३८॥

पदार्थ:-(**अग्ने**) विद्वन् पित: पितामह प्रपितामह (**आयूंषि**) अन्नादीनि (**पवसे**) पवित्रीकुर्या:। लेट्प्रयोगोऽयम् (**आ**) समन्तात् (**सुव**) प्रेर्ष्व (**ऊर्जम्**) पराक्रमम् (**इषम्**) इच्छासिद्धिम् (**च**) (**न:**) अस्माकम् (**आरे**) दूरे निकटे (**बाधस्व**) निवर्त्तय (**दुच्छुनाम्**) दुतो दुष्टाश्श्वान इव वर्त्तमानास्तेषाम्॥३८॥

अन्वय:-हे अग्ने! यस्त्वं न आयूंषि पवसे, स त्वमूर्ज्जमिषं चासुव, आरे दुच्छुनां सङ्गं बाधस्व॥३८॥

भावार्थ:-पित्रादयोऽपत्येषु दीर्घायु: पराक्रमशुभेच्छा धारयित्वा स्वसन्तानान् दुष्टानां सङ्गान्निवार्य श्रेष्ठानां सङ्गे प्रवर्त्य धार्मिकान् दीर्घायुष: कुर्वन्तु, यतस्ते वृद्धावस्थायामप्यप्रियाचरणं कदाचिन्न कुर्यु:॥२८॥

पदार्थ:-हे (**अग्ने**) विद्वन् पिता, पितामह और प्रपितामह! जो आप (**न:**) हमारे (**आयूंषि**) आयुर्दाओं को (**पवसे**) पवित्र करें, सो आप (**ऊर्जम्**) पराक्रम (**च**) और (**इषम्**) इच्छासिद्धि को (**आ, सुव**) चारों ओर से सिद्ध करिये और (**आरे**) दूर और निकट वसनेहारे (**दुच्छुनाम्**) दुष्ट कुत्तों के समान मनुष्यों के सङ्ग को (**बाधस्व**) छुड़ा दीजिये॥३८॥

भावार्थ:-पिता आदि लोग अपने सन्तानों में दीर्घ आयु, पराक्रम और शुभ इच्छा को धारण कराके अपने सन्तानों को दुष्टों के सङ्ग से रोक और श्रेष्ठों के सङ्ग में प्रवृत्त कराके धार्मिक चिरञ्जीवी करें, जिससे वे वृद्धावस्था में भी अप्रियाचरण कभी न करें॥३८॥

पुनन्तु मा देवजना इत्यस्य वैखानस ऋषि:। विद्वांसो देवता:। अनुष्टुप् छन्द:। गान्धार: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय का अगले मन्त्र में उपदेश किया है॥

पु॒नन्तु॑ मा देवज॒ना: पु॒नन्तु॒ मन॑सा॒ धिय॑:।

पु॒नन्तु॒ विश्वा॑ भू॒ताि॒न जात॑वेद: पुनी॒हि मा॑॥३९॥

पु॒नन्तु॑। मा॒। दे॒व॒ज॒ना इति॑ देवऽज॒ना:। पु॒नन्तु॑। मन॑सा। धिय॑:। पु॒नन्तु॑। विश्वा॑। भू॒तानि॑। जात॑वेद॒ इति॒ जात॑ऽवेद:। पु॒नी॒हि। मा॒॥३९॥

पदार्थ:-(**पुनन्तु**) (**मा**) (**देवजना:**) देवा विद्वांसश्च ते जना धर्मे प्रसिद्धाश्च (**पुनन्तु**) (**मनसा**) विज्ञानेन (**धिय:**) बुद्धी: (**पुनन्तु**) (**विश्वा**) सर्वाणि (**भूतानि**) (**जातवेद:**) जातेषु जनेषु ज्ञानिन् विद्वन् (**पुनीहि**) (**मा**) माम्॥३९॥

अन्वय:-हे जातवेदो विद्वन्! यथा देवजना मनसा मा पुनन्तु, मम धियश्च पुनन्तु, मम विश्वा भूतानि मा पुनन्तु, तथा त्वं मा पुनीहि॥३९॥

भावार्थ:-विदुषां विदुषीणां चेदमेव मुख्यं कृत्यमस्ति यत् पुत्रा: पुत्र्यश्च ब्रह्मचर्यसुशिक्षाभ्यां विद्वांस: विदुष्यश्च सुशीला: सततं सम्पादनीया इति॥३९॥

पदार्थ:-हे (**जातवेद:**) उत्पन्न हुए जनों में ज्ञानी विद्वन्! जैसे (**देवजना:**) विद्वान् जन (**मनसा**) विज्ञान और प्रीति से (**मा**) मुझ को (**पुनन्तु**) पवित्र करें और हमारी (**धिय:**) बुद्धियों को (**पुनन्तु**) पवित्र करें और (**विश्वा**) सम्पूर्ण (**भूतानि**) भूत=प्राणिमात्र मुझ को (**पुनन्तु**) पवित्र करें, वैसे आप (**मा**) मुझ को (**पुनीहि**) पवित्र कीजिये॥३९॥

भावार्थ:-विद्वान् पुरुष और विदुषी स्त्रियों का मुख्य कर्त्तव्य यही है कि जो पुत्र और पुत्रियों को ब्रह्मचर्य और सुशिक्षा से विद्वान् और विदुषी, सुन्दर, शीलयुक्त निरन्तर किया करें॥३९॥

पवित्रेणेत्यस्य वैखानस ऋषि:। अग्निर्देवता। निचृद्गायत्री छन्द:। षड्ज: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

पवित्रेण पुनीहि मा शुक्रेण देव दीद्यत्। अग्ने क्रत्वा क्रतूँ२ऽरनु॥४०॥

पवित्रेण। पुनीहि। मा। शुक्रेण। देव। दीद्यत्। अग्ने। क्रत्वा। क्रतून्। अनु॥४०॥

पदार्थ:-(**पवित्रेण**) शुद्धेन (**पुनीहि**) (**मा**) (**शुक्रेण**) वीर्येण पराक्रमेण (**देव**) विद्यादात: (**दीद्यत्**) प्रकाशमान (**अग्ने**) विद्वन् (**क्रत्वा**) प्रज्ञया कर्मणा वा (**क्रतून्**) प्रज्ञा कर्माणि वा (**अनु**)॥४०॥

अन्वय:-हे दीद्यद्देवाग्ने! त्वं पवित्रेण शुक्रेण स्वंय पवित्रो भूत्वा मा माञ्चैतेनानुपुनीहि, स्वस्य क्रत्वा प्रज्ञया कर्मणा वा स्वां प्रज्ञा स्वं कर्म च पवित्रीकृत्यास्माकं क्रतूननु पुनीहि॥४०॥

भावार्थ:-पित्रध्यापकोपदेशका: स्वयं धार्मिका विद्वांसो भूत्वा स्वसन्तानानपीदृशानेव योग्यान् धार्मिकान् विदुष: कुर्य्यु:॥४०॥

पदार्थ:-हे (**दीद्यत्**) प्रकाशमान (**देव**) विद्या के देनेहारे (**अग्ने**) विद्वन्! आप (**पवित्रेण**) शुद्ध (**शुक्रेण**) वीर्य=पराक्रम से स्वयं पवित्र होकर (**मा**) मुझ को इससे (**अनु, पुनीहि**) पीछे पवित्र कर अपनी (**क्रत्वा**) बुद्धि वा कर्म से अपनी प्रज्ञा और कर्म को पवित्र करके हमारी (**क्रतून्**) बुद्धियों वा कर्मों को पुन: पुन: पवित्र किया करो॥४०॥

भावार्थ:-पिता, अध्यापक और उपदेशक लोग स्वयं धार्मिक और विद्वान् होकर अपने सन्तानों को भी ऐसे ही धार्मिक योग्य विद्वान् करें॥४०॥

यत्त इत्यस्य वैखानस ऋषि:। अग्निर्देवता। निचृद्गायत्री छन्द:। षड्ज: स्वर:॥

जनै: कथं शुद्धैर्भवितव्यमित्याह॥

मनुष्यों को कैसे शुद्ध होना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यत्ते॑ प॒वित्र॑म॒र्चिष्यग्ने॒ वित॑तमन्त॒रा। ब्रह्म॒ तेन॑ पुनातु मा॥४१॥

यत्। ते॒। प॒वित्र॑म्। अ॒र्चिषि॑। अग्ने॑। वित॑त॒मिति॒ विऽत॑तम्। अ॒न्त॒रा। ब्रह्म॑। तेन॑। पु॒ना॒तु॒। मा॒॥४१॥

पदार्थ:-(**यत्**) (**ते**) तव (**पवित्रम्**) शुद्धम् (**अर्चिषि**) अर्चितुं योग्ये शुद्धे तेजसि (**अग्ने**) स्वप्रकाशस्वरूपेश्वर (**विततम्**) व्याप्तम् (**अन्तरा**) (**ब्रह्म**) बृहद्विद्यं वेदचतुष्टयम् (**तेन**) (**पुनातु**) (**मा**) माम्॥४१॥

अन्वय:-हे अग्ने! ते तवार्चिष्यन्तरा यत् विततं पवित्रं ब्रह्मास्ति, तेन मा मां भवान् पुनातु॥४१॥

भावार्थ:-हे मनुष्या:! यूयं यो देवानां देव: पवित्राणां पवित्रो व्याप्तेषु व्याप्तोऽन्तर्यामीश्वरस्तद्विद्या वेदश्चाऽस्ति, तदनुकूलाचरणेन सततं पवित्रा भवत॥४१॥

पदार्थ:-हे (**अग्ने**) स्वप्रकाशस्वरूप जगदीश्वर (**ते**) तेरे (**अर्चिषि**) सत्कार करने योग्य शुद्ध तेज:स्वरूप में (**अन्तरा**) सब से भिन्न (**यत्**) जो (**विततम्**) विस्तृत सब में व्याप्त (**पवित्रम्**) शुद्धस्वरूप (**ब्रह्म**) उत्तम वेद विद्या है, (**तेन**) उससे (**मा**) मुझ को आप (**पुनातु**) पवित्र कीजिये॥४१॥

भावार्थ:-हे मनुष्यो! तुम लोग जो देवों का देव, पवित्रों का पवित्र, व्याप्तों में व्याप्त अन्तर्यामी ईश्वर और उसकी विद्या वेद है, उसके अनुकूल आचरण से निरन्तर पवित्र हूजिये॥४१॥

पवमान इत्यस्य वैखानस ऋषि:। सोमो देवता। गायत्री छन्द:। षड्ज: स्वर:॥

पुनर्मनुष्यै: पुत्रादय: कथं पवित्रा: करणीया इत्याह॥

फिर मनुष्यों को पुत्रादि कैसे पवित्र करने चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

पव॑मान॒: सोऽअ॒द्य न॑: प॒वित्रे॑ण॒ विच॑र्षणि:। य: पोता॒ स पु॑नातु मा॥४२॥

पव॑मान:। स:। अ॒द्य। न॒:। प॒वित्रे॑ण। विच॑र्षणि॒रिति॒ विऽच॑र्षणि:। य:। पोता॑। स:। पु॒ना॒तु॒। मा॒॥४२॥

पदार्थ:-(**पवमान:**) पवित्र: (**स:**) (**अद्य**) (**न:**) अस्माकं मध्ये (**पवित्रेण**) शुद्धाचरणेन (**विचर्षणि:**) विविधविद्याप्रद ईश्वर: (**य:**) (**पोता**) पवित्रकर्त्ता (**स:**) (**पुनातु**) (**मा**) माम्॥४२॥

अन्वय:-यो नो मध्ये पवित्रेण पवमानो विचर्षणिरस्ति, सोऽद्यास्माकं पवित्रकर्त्तोपदेशकश्चास्ति, स पोता मा पुनातु॥४२॥

भावार्थ:-मनुष्या ईश्वरवद्धार्मिका भूत्वा स्वसन्तानान् धर्मात्मनः कुर्युरीदृशानन्तराऽन्यानपि ते पवित्रयितुं न शक्नुवन्ति॥४२॥

पदार्थ:-(**यः**) जो जगदीश्वर (**नः**) हमारे मध्य में (**पवित्रेण**) शुद्ध आचरण से (**पवमानः**) पवित्र (**विचर्षणिः**) विविध विद्याओं का दाता है, (**सः**) सो (**अद्य**) आज हमको पवित्र करने वाला और हमारा उपदेशक है, (**सः**) सो (**पोता**) पवित्रस्वरूप परमात्मा (**मा**) मुझको (**पुनातु**) पवित्र करे॥४२॥

भावार्थ:-मनुष्य लोग ईश्वर के समान धार्मिक होकर अपने सन्तानों को धर्मात्मा करें, ऐसे किये विना अन्य मनुष्यों को भी वे पवित्र नहीं कर सकते॥४२॥

उभाभ्यामित्यस्य वैखानस ऋषिः। सविता देवता। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

मनुष्यैरधर्मात् कथं भेत्तव्यमित्याह॥

मनुष्यों को अधम से कैसे डरना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च। मां पुनीहि विश्वतः॥४३॥

उभाभ्याम्। देव। सवितरिति सवितः। पवित्रेण। सवेन। च। माम्। पुनीहि। विश्वतः॥४३॥

पदार्थ:-(**उभाभ्याम्**) विद्यापुरुषार्थाभ्याम् (**देव**) सुखप्रदातः (**सवितः**) सत्कर्मसु प्रेरकेश्वर (**पवित्रेण**) शुद्धाचरणेन (**सवेन**) ऐश्वर्येण (**च**) (**माम्**) (**पुनीहि**) (**विश्वतः**) सर्वतः॥४३॥

अन्वयः-हे देव सवितर्जगदीश्वर! त्वं पवित्रेण सवेन चोभाभ्यां विश्वतो मां पुनीहि॥४३॥

भावार्थ:-हे मनुष्याः! य ईश्वरः सर्वान् शुद्धिं धर्मं च ग्राहयति, तमाश्रित्याऽधर्माचरणात् सदा भयं कुरुत॥४३॥

पदार्थ:-हे (**देव**) सुख के देनेहारे (**सवितः**) सत्यकर्मों में प्रेरक जगदीश्वर आप (**पवित्रेण**) पवित्र वर्त्ताव (**च**) और (**सवेन**) सकलैश्वर्य्य तथा (**उभाभ्याम्**) विद्या और पुरुषार्थ से (**विश्वतः**) सब ओर से (**माम्**) मुझ को (**पुनीहि**) पवित्र कीजिये॥४३॥

भावार्थ:-हे मनुष्यो! जो ईश्वर सब मनुष्यों को शुद्धि और धर्म को ग्रहण कराता है, उसी का आश्रय करके अधर्माचरण से सदा भय किया करो॥४३॥

वैश्वदेवीत्यस्य वैखानस ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। विराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

कथं राज्ञा राज्यं वर्द्धनीयमित्याह॥

राजा को कैसे राज्य बढ़ाना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

वैश्वदेवी पुनती देव्यागाद् यस्यामिमा बह्व्यस्तन्वो वीतपृष्ठाः।
तया मदन्तः सधमादेषु वयꣳ स्याम पतयो रयीणाम्॥४४॥

वैश्वदेवीति वैश्वऽदेवी। पुनती। देवी। आ। अगात्। यस्याम्। इमाः। बह्व्यः। तन्वः। वीतपृष्ठा इति वीतऽपृष्ठाः। तया। मदन्तः। सधमादेष्विति सधऽमादेषु। वयम्। स्याम। पतयः। रयीणाम्॥४४॥

पदार्थः-(**वैश्वदेवी**) विश्वासां देवीनां विदुषीणां मध्य इयं विदुषी (**पुनती**) पवित्रतां कुर्वती (**देवी**) सकलविद्याधर्माचरणेन प्रकाशमाना (**आ**) सर्वतः (**अगात्**) प्राप्नुयात् (**यस्याम्**) (**इमाः**) (**बह्व्यः**) अनेकाः (**तन्वः**) विस्तृतविद्याः (**वीतपृष्ठाः**) विविधानि इतानि विदितानि पृष्ठानि प्रश्ननानि याभिस्ताः (**तया**) (**मदन्तः**) हृष्यन्तः (**सधमादेषु**) सहस्थानेषु (**वयम्**) (**स्याम**) (**पतयः**) (**रयीणाम्**) धनानाम्॥४४॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! या वैश्वदेवी पुनती देव्यध्यापिका ब्रह्मचारिणी कन्यास्मानागात्, यस्यां सत्यामिमां बह्व्यस्तन्वो वीतपृष्ठाः स्युस्तया सुशिक्षिता भार्य्याः प्राप्य वयं सधमादेषु मदन्तो रयीणां पतयः स्याम॥४४॥

भावार्थः-यथा राजा सर्वकन्याऽध्यापनाय पूर्णविद्यावतीः स्त्रीर्नियोज्य सर्वा बालिकाः पूर्णविद्यासुशिक्षा- युक्ताः कुर्यात्, तथैव बालकानपि कुर्य्याद्, यदैते यौवनस्थाः स्युस्तदैव स्वयंवरं विवाहं कारयेदेवं राज्यवृद्धिं सदा कुर्य्यात्॥४४॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो (**वैश्वदेवी**) सब विदुषी स्त्रियों में उत्तम (**पुनती**) सब की पवित्रता करती हुई (**देवी**) सकल विद्या और धर्म के आचरण से प्रकाशमान विद्याओं की पढ़ानेहारी ब्रह्मचारिणी कन्या हमको (**आ, अगात्**) प्राप्त होवे (**यस्याम्**) जिसके होने में (**इमाः**) ये (**बह्व्यः**) बहुत-सी (**तन्वः**) विस्तृत विद्यायुक्त (**वीतपृष्ठाः**) विविध प्रश्नों को जाननेहारी हों (**तया**) उससे अच्छी शिक्षा को प्राप्त भार्य्याओं को प्राप्त होकर (**वयम्**) हम लोग (**सधमादेषु**) समान स्थानों में (**मदन्तः**) आनन्दयुक्त हुए (**रयीणाम्**) धनादि ऐश्वर्यों के (**पतयः**) स्वामी (**स्याम**) होवें॥४४॥

भावार्थः-जैसे राजा सब कन्याओं को पढ़ाने के लिये पूर्ण विद्या वाली स्त्रियों को नियुक्त करके सब बालिकाओं को पूर्णविद्या और सुशिक्षायुक्त करे, वैसे ही बालकों को भी किया करे। जब ये सब पूर्ण युवावस्था वाले हों, तभी स्वयंवर विवाह करावे, ऐसे राज्य की वृद्धि को सदा किया करे॥४४॥

ये समाना इत्यस्य वैखानस ऋषिः। पितरो देवताः। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

कुत्र जनाः सुखं निवसन्तीत्याह॥

कहां मनुष्य सुखपूर्वक निवास करते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ये समानाः समनसः पितरो यमराज्ये।

तेषां लोकः स्वधा नमो यज्ञो देवेषु कल्पताम्॥४५॥

ये। समानाः। समनस इति सऽमनसः। पितरः। यमराज्य इति यमऽराज्ये। तेषाम्। लोकः। स्वधा। नमः। यज्ञः। देवेषु। कल्पताम्॥४५॥

पदार्थः-(**ये**) (**समानाः**) सदृशाः (**समनसः**) समानं मनो विज्ञानं येषां ते (**पितरः**) प्रजापालकाः (**यमराज्ये**) यमस्य सभाधीशस्य राष्ट्रे (**तेषाम्**) (**लोकः**) सभादर्शनं वा (**स्वधा**) अन्नम् (**नमः**) सत्करणम् (**यज्ञः**) संगन्तव्यो न्यायः (**देवेषु**) विद्वत्सु (**कल्पताम्**) समर्थितोऽस्तु॥४५॥

अन्वयः-ये समानाः समनसः पितरो यमराज्ये सन्ति, तेषां लोकः स्वधा नमो यज्ञश्च देवेषु कल्पताम्॥४५॥

भावार्थः-यत्र बहुदर्शिनामन्नाद्यैश्वर्युक्तानां सज्जनैः सत्कृतानां धर्मैकनिष्ठानां विदुषां सभा सत्यं न्यायं करोति, तत्रैव सर्वे मनुष्या ऐश्वर्ये सुखे च निवासं कुर्वन्ति॥४५॥

पदार्थः-(**ये**) जो (**समानाः**) सदृश (**समनसः**) तुल्य विज्ञानयुक्त (**पितरः**) प्रजा के रक्षक लोग (**यमराज्ये**) यथावत् न्यायकारी सभाधीश राजा के राज्य में हैं, (**तेषाम्**) उनका (**लोकः**) सभा का दर्शन (**स्वधा**) अन्न (**नमः**) सत्कार और (**यज्ञः**) प्राप्त होने योग्य न्याय (**देवेषु**) विद्वानों में (**कल्पताम्**) समर्थ होवे॥४५॥

भावार्थः-जहां बहुदर्शी अन्नादि ऐश्वर्य से संयुक्त सज्जनों से सत्कार को प्राप्त एक धर्म ही में जिनकी निष्ठा है, उन विद्वानों की सभा सत्यन्याय को करती है, उसी राज्य में सब मनुष्य ऐश्वर्य्य और सुख में निवास करते हैं॥४५॥

ये समाना इत्यस्य वैखानस ऋषिः। श्रीर्देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पितृसन्तानाः परस्परं कथं वर्त्तेरन्नित्याह॥

माता-पिता और सन्तान आपस में कैसे वर्त्तें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ये स॑मा॒नाः सम॑नसो जी॒वा जी॒वेषु॑ माम॒काः।

तेषा॒ꣳ श्रीर्मयि॑ कल्पता॒मस्मिँ॑ल्लो॒के श॒तꣳ समाः॑॥४६॥

ये। स॒मा॒नाः। सम॑नस॒ इति॒ सऽम॑नसः। जी॒वाः। जी॒वेषु॑। मा॒म॒काः। तेषा॑म्। श्रीः। मयि॑। क॒ल्प॒ता॒म्। अ॒स्मिन्। लो॒के। श॒तम्। समाः॑॥४६॥

पदार्थः-(**ये**) (**समानाः**) सदृग्गुणकर्मस्वभावाः (**समनसः**) समाने धर्मे मनो येषान्ते (**जीवाः**) ये जीवन्ति ते (**जीवेषु**) (**मामकाः**) मदीयाः (**तेषाम्**) (**श्रीः**) राज्यलक्ष्मीः (**मयि**) (**कल्पताम्**) (**अस्मिन्**) (**लोके**) (**शतम्**) (**समाः**) संवत्सराः॥४६॥

अन्वयः-येऽस्मिँल्लोके जीवेषु समानाः समनसो मामका जीवास्सन्ति, तेषां श्रीर्मयि शतं समाः कल्पताम्॥४६॥

भावार्थः-सन्ताना यावत् पितरो जीवेयुस्तावत् तान् सेवन्ताम्। पुत्रा यावत् पितृसेवकाः स्युस्तावत् ते सत्कर्त्तव्याः स्युर्यत् पितॄणां धनादिवस्तु तत्पुत्राणां यत्पुत्राणां तत्पितॄणाञ्चास्तु॥४६॥

पदार्थः-(**ये**) जो (**अस्मिन्**) इस (**लोके**) लोक में (**जीवेषु**) जीवते हुओं में (**समानाः**) समान गुण-कर्म-स्वभाव वाले (**समनसः**) समान धर्म में मन रखनेहारे (**मामकाः**) मेरे (**जीवाः**) जीते हुए पिता आदि हैं, (**तेषाम्**) उन की (**श्रीः**) लक्ष्मी (**मयि**) मेरे समीप (**शतम्**) सौ (**समाः**) वर्षपर्यन्त (**कल्पताम्**) समर्थ होवे॥४६॥

भावार्थः-सन्तान लोग जब तक पिता आदि जीवें, तब तक उनकी सेवा किया करें। पुत्र लोग जब तक पिता आदि की सेवा करें, तब तक वे सत्कार के योग्य होवें और जो पिता आदि का धनादि वस्तु हो, वह पुत्रों और जो पुत्रों का हो वह पिता आदि का रहे॥४६॥

द्वे सृती इत्यस्य वैखानस ऋषिः। पितरो देवताः। स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

जीवानां द्वौ मार्गौ स्त इत्याह॥

जीवों के दो मार्ग हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

द्वे सृतीऽअंश्रृणवं पितॄणामहं देवानांमुत मर्त्यानाम्।
ताभ्यांमिदं विश्वमेजत्समेति यदन्तरा पितरं मातरं च॥४७॥

द्वेऽइति द्वे। सृतीऽइति सृती। अश्रृणवम्। पितॄणाम्। अहम्। देवानाम्। उत। मर्त्यानाम्। ताभ्याम्। इदम्। विश्वम्। एजत्। सम्। एति। यत्। अन्तरा। पितरम्। मातरम्। च॥४७॥

पदार्थः-(**द्वे**) (**सृती**) सरन्ति गच्छन्त्याऽऽगच्छन्ति जीवा ययोस्ते (**अश्रृणवम्**) शृणोमि (**पितॄणाम्**) जनकादीनाम् (**अहम्**) (**देवानाम्**) आचार्य्यादीनां विदुषाम् (**उत**) अपि (**मर्त्यानाम्**) मनुष्याणाम् (**ताभ्याम्**) (**इदम्**) (**विश्वम्**) सर्वं जगत् (**एजत्**) चलत्सत् (**सम्**) (**एति**) गच्छति (**यत्**) (**अन्तरा**) मध्ये (**पितरम्**) जनकम् (**मातरम्**) जननीम् (**च**)॥४७॥

अन्वयः-हे मनुष्याः। अहं ये पितॄणां मर्त्यानां देवानां च द्वे सृती अश्रृणवं शृणोमि, ताभ्यामिदं विश्वमेजत्समेत्युत यत् पितरं मातरमन्तरा शरीरान्तरेणान्यौ मातापितरौ प्राप्नोति, तदेतद् यूयं विजानीत॥४७॥

भावार्थः-द्वे एव जीवानां गती वर्त्तेते, एका मातापितृभ्यां जन्म प्राप्य संसारे विषयसुखभोगरूपा। द्वितीया विद्वत्सङ्गादिना मुक्तिसुखभोगाख्याऽस्ति, आभ्यां सहैव सर्वे प्राणिनश्चरन्ति॥४७॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! (**अहम्**) मैं जो (**पितॄणाम्**) पिता आदि (**मर्त्यानाम्**) मनुष्यों (**च**) और (**देवानाम्**) विद्वानों की (**द्वे**) दो गतियों (**सृती**) जिनमें आते-जाते अर्थात् जन्म-मरण को प्राप्त होते हैं, उनको (**अश्रृणवम्**) सुनता हूँ (**ताभ्याम्**) उन दोनों गतियों से (**इदम्**) यह (**विश्वम्**) सब जगत् (**एजत्**) चलायमान हुआ (**समेति**) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है (**उत**) और (**यत्**) जो (**पितरम्**) पिता और (**मातरम्**) माता से (**अन्तरा**) पृथक् होकर दूसरे शरीर से अन्य माता-पिता को प्राप्त होता है, सो यह तुम लोग जानो॥४७॥

भावार्थ:-दो ही जीवों की गति हैं- एक माता-पिता से जन्म को प्राप्त होकर संसार में विषय-सुख के भोगरूप और दूसरी विद्वानों के सङ्ग आदि से मुक्ति-सुख के भोगरूप है। इन दोनों गतियों के साथ ही सब प्राणी विचरते हैं॥४७॥

इदं हविरित्यस्य वैखानस ऋषि:। अग्निर्देवता। निचृदष्टिश्छन्द:। मध्यम: स्वर:॥

सन्तानै: किं कर्त्तव्यमित्याह॥

सन्तानों को क्या करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

इदꣳ हवि: प्रजननं मेऽअस्तु दशवीरꣳ सर्वगणꣳ स्वस्तये।
आत्मसनि प्रजासनि पशुसनि लोकसन्यभयसनि।
अग्नि: प्रजां बहुलां मे करोत्वन्नं पयो रेतोऽअस्मासु धत्त॥४८॥

इदम्। हवि:। प्रजननमिति प्रऽजननम्। मे। अस्तु। दशवीरमिति दशऽवीरम्। सर्वऽगणम्। स्वस्तये। आत्मसनीत्यात्मऽसनि। प्रजासनीति प्रजाऽसनि। पशुसनीति पशुऽसनि। लोकसनीति लोकऽसनि। अभयसनीत्यभयऽसनि। अग्नि:। प्रजामिति प्रऽजाम्। बहुलाम्। मे। करोतु। अन्नम्। पय:। रेत:। अस्मासु। धत्त॥४८॥

पदार्थ:-(**इदम्**) (**हवि:**) होतुमर्हम् (**प्रजननम्**) प्रजनयन्ति येन तत् (**मे**) मम (**अस्तु**) (**दशवीरम्**) दश वीर: पुत्रा यस्मात् तत् (**सर्वगणम्**) सर्वे गणा: गण्या: प्रशंसनीया: पदार्था यस्मात् (**स्वस्तये**) सुखाय (**आत्मसनि**) आत्मानं सनति सम्भजति येन तत् (**प्रजासनि**) प्रजा: सनति येन तत् (**पशुसनि**) पशून् सनति सम्भजति येन (**लोकसनि**) लोकान् सनति सम्भजति येन (**अभयसनि**) अभयं सनति सम्भजति येन (**अग्नि:**) अग्निरिव देदीप्यमान: पति: (**प्रजाम्**) पुत्रपौत्रप्रभृतिम् (**बहुलाम्**) बहूनि सुखानि ददाति या ताम् (**मे**) मह्यम् (**करोतु**) (**अन्नम्**) (**पय:**) दुग्धम् (**रेत:**) वीर्यम् (**अस्मासु**) (**धत्त**)॥४८॥

अन्वय:-अग्निर्मे बहुलां प्रजां करोतु मे यदिदं प्रजननं हविर्दशवीरं सर्वगणमात्मसनि प्रजासनि पशुसनि लोकसन्यभयसन्यपत्यं करोतु, तत् स्वस्तयेऽस्तु। हे मातापित्रादयो यूयमस्मासु प्रजामन्नं पयो रेतो धत्त॥४८॥

भावार्थ:-ये स्त्रीपुरुषा: पूर्णेन ब्रह्मचर्येण सर्वा विद्याशिक्षा: सङ्गृह्य परस्परं प्रीत्या स्वयंवरं विवाहं कृत्वा ऋतुगामिनो भूत्वा विधिवत् प्रजामुत्पादयन्ति, तेषां सा प्रजा शुभगुणयुक्ता भूत्वा पितॄन् सततं सुखयति॥४८॥

पदार्थ:-(**अग्नि:**) अग्नि के समान प्रकाशमान पति (**मे**) मेरे लिये (**बहुलाम्**) बहुत सुख देनेवाली (**प्रजाम्**) प्रजा को (**करोतु**) करे, (**मे**) मेरा जो (**इदम्**) यह (**प्रजजनम्**) उत्पत्ति करने का निमित्त (**हवि:**) लेने-देने योग्य (**दशवीरम्**) दश सन्तानों का उत्पन्न करनेहारा (**सर्वगणम्**) सब समुदायों से सहित (**आत्मसनि**) जिससे आत्मा का सेवन (**प्रजासनि**) प्रजा का सेवन (**पशुसनि**) पशु का सेवन (**लोकसनि**)

लोकों का अच्छे प्रकार सेवन और **(अभयसनि)** अभय का दानरूप कर्म होता है, उस सन्तान को करे। वह **(स्वस्तये)** सुख के लिये **(अस्तु)** होवे। हे माता-पिता आदि लोगो! आप **(अस्मासु)** हमारे बीच में प्रजा **(अन्नम्)** अन्न **(पयः)** दूध और **(रेतः)** वीर्य को **(धत्त)** धारण करो॥४८॥

भावार्थः-जो स्त्री-पुरुष पूर्ण ब्रह्मचर्य से सकल विद्या की शिक्षाओं का संग्रह कर, परस्पर प्रीति से स्वयंवर विवाह करके ऋतुगामी होकर विधिपूर्वक प्रजा की उत्पत्ति करते हैं, उनकी वह प्रजा शुभगुणयुक्त होकर माता-पिता आदि को निरन्तर सुखी करती है॥४८॥

उदीरतामित्यस्य शङ्ख ऋषिः। पितरो देवताः। विराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पितृभिः किम्भूतैः किं कार्य्यमित्याह॥

पिता आदि को कैसे होकर क्या करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उदीरतामवरऽउत्परासऽउन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः।

असुं यऽईयुरवृकाऽऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु॥४९॥

उत्। ईरताम्। अवरे। उत्। परासः। उत्। मध्यमाः। पितरः। सोम्यासः। असुम्। ये। ईयुः। अवृकाः। ऋतज्ञा इत्यृतऽज्ञाः। ते। नः। अवन्तु। पितरः। हवेषु॥४९॥

पदार्थः-**(उत्) (ईरताम्)** प्रेरताम् **(अवरे)** अर्वाचीनाः **(उत्) (परासः)** प्रकृष्टाः **(उत्) (मध्यमाः)** मध्ये भवाः **(पितरः)** पालकाः **(सोम्यासः)** सौम्यगुणसम्पन्नाः **(असुम्)** प्राणम् **(ये) (ईयुः)** प्राप्नुयुः **(अवृकाः)** अविद्यमानाः वृकाश्चौरा येषु ते **(ऋतज्ञाः)** ये ऋतं सत्यं जानन्ति **(ते) (नः)** अस्मान् **(अवन्तु)** रक्षन्तु **(पितरः)** रक्षितारः **(हवेषु)** संग्रामादिषु व्यवहारेषु॥४९॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! येऽवृका ऋतज्ञाः पितरो हवेष्वसुमुदीयुस्ते न उदवन्तु, ये सोम्यासोऽवरे परासो मध्यमाः पितरसन्ति, तेऽस्मान् हवेषूदीरताम्॥४९॥

भावार्थः-ये जीवन्तो निकृष्टमध्यमोत्तमाः स्तेयादिदोषरहिता विदितवेदितव्या अधिगतयाथातथ्या विद्वांसस्सन्ति, ते विद्याभ्यासोपदेशाभ्यां सत्यधर्मग्राहकत्वेन बाल्यावस्थायां विवाहनिषेधेन सर्वाः प्रजाः पालयन्तु॥४९॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! **(ये)** जो **(अवृकाः)** चौर्यादि दोषरहित **(ऋतज्ञाः)** सत्य के जाननेहारे **(पितरः)** पिता आदि बड़े लोग **(हवेषु)** संग्रामदि व्यवहारों में **(असुम्)** प्राण को **(उदीयुः)** उत्तमता से प्राप्त हों, **(ते)** वे **(नः)** हमारी **(उत्, अवन्तु)** उत्कृष्टता से रक्षा करें और जो **(सोम्यासः)** शान्त्यादिगुणसम्पन्न **(अवरे)** प्रथम अवस्था युक्त **(परासः)** उत्कृष्ट अवस्था वाले **(मध्यमाः)** बीच के विद्वान् **(पितरः)** पिता आदि लोग हैं, वे हमको संग्रामादि कामों में **(उदीरताम्)** अच्छे प्रकार प्रेरणा करें॥४९॥

भावार्थः-जो जीते हुए प्रथम-मध्यम और उत्तम, चोरी आदि दोषरहित, जानने के योग्य, विद्या को जाननेहारे, तत्त्वज्ञान को प्राप्त विद्वान् लोग हैं, वे विद्या के अभ्यास और उपदेश से सत्य धर्म के ग्रहण करानेहारे कर्म से बाल्यावस्था में विवाह का निषेध करके सब प्रजाओं को पालें॥४९॥

अङ्गिरस इत्यस्य शङ्ख ऋषिः। पितरो देवताः। विराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पितृसन्तानैरितरेतरं कथं वर्त्तितव्यमित्याह॥

माता-पिता और सन्तानों को परस्पर कैसे वर्त्तना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वाऽअथर्वाणो भृगवः सोम्यासः।

तेषां वयꣳ सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम॥५०॥

अङ्गिरसः। नः। पितरः। नवग्वा इति नवऽग्वाः। अथर्वाणः। भृगवः। सोम्यासः। तेषाम्। वयम्। सुमताविति सुऽमतौ। यज्ञियानाम्। अपि। भद्रे। सौमनसे। स्याम॥५०॥

पदार्थः-(**अङ्गिरसः**) सर्वविद्यासिद्धान्तविदः (**नः**) अस्माकम् (**पितरः**) पालकाः (**नवग्वाः**) (**अथर्वाणः**) अहिंसकाः (**भृगवः**) परिपक्वविज्ञानाः (**सोम्यासः**) ये सोममैश्वर्यमर्हन्ति ते (**तेषाम्**) (**वयम्**) (**सुमतौ**) शोभना चासौ मतिश्च तस्याम् (**यज्ञियानाम्**) ये यज्ञमर्हन्ति तेषाम् (**अपि**) (**भद्रे**) कल्याणकरे (**सौमनसे**) शोभनं मनः सुमनस्तस्य भावे (**स्याम**) भवेम॥५०॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! ये नोऽङ्गिरसो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः पितरः सन्ति, तेषां यज्ञियानां सुमतौ भद्रे सौमनसे वयं प्रवृत्तास्स्यामैवं यूयमपि भवत॥५०॥

भावार्थः-अपत्यैर्यद्यत् पितॄणां धर्म्यं कर्म तत्तत् सेवनीयं यद्यदधर्म्यं तत्तत् त्यक्तव्यं पितृभिरप्येवं समाचरणीयम्॥५०॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो (**नः**) हमारे (**अङ्गिरसः**) सब विद्याओं के सिद्धान्तों को जानने और (**नवग्वाः**) नवीन ज्ञान के उपदेशों को करानेहारे (**अथर्वाणः**) अहिंसक (**भृगवः**) परिपक्वविज्ञानयुक्त (**सोम्यासः**) ऐश्वर्य पाने योग्य (**पितरः**) पितादि ज्ञानी लोग हैं, (**तेषाम्**) उन (**यज्ञियानाम्**) उत्तम व्यवहार करनेहारों की (**सुमतौ**) सुन्दर प्रज्ञा और (**भद्रे**) कल्याणकारक (**सौमनसे**) प्राप्त हुए श्रेष्ठ बोध में (**वयम्**) हम लोग प्रवृत्त (**स्याम**) होवें, वैसे तुम (**अपि**) भी होओ॥५०॥

भावार्थः-सन्तानों को योग्य है कि जो-जो पिता आदि बड़ों का धर्मयुक्त कर्म होवे, उस-उस का सेवन करें और जो-जो अधर्मयुक्त हो, उस-उस को छोड़ देवें, ऐसे ही पिता आदि बड़े लोग भी सन्तानों के अच्छे-अच्छे गुणों का ग्रहण और बुरों का त्याग करें॥५०॥

ये न इत्यस्य शङ्ख ऋषिः। पितरो देवताः। भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासोऽनूहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः।

तेभिर्यमः सꣳरराणो हवीꣳष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु॥५१॥

ये। नः। पूर्वे। पितरः। सोम्यासः। अनूहिर इत्यनुऽऊहिरे। सोमपीथमिति। सोमऽपीथम्। वसिष्ठाः। तेभिः। यमः। सꣳरराण इति सम्ऽरराणः। हवीꣳषि। उशन्। उशद्भिरित्युशत्ऽभिः। प्रतिकाममिति प्रतिऽकामम्। अत्तु॥५१॥

पदार्थः-(**ये**) (**नः**) (**पूर्वे**) पूर्वज्ञाः (**पितरः**) ज्ञानिनो जनकाः (**सोम्यासः**) सोमगुणानर्हन्तः (**अनूहिरे**) अनु वहन्ति पुनः पुनः प्राप्नुवन्ति च (**सोमपीथम्**) सोमपानम् (**वसिष्ठाः**) येऽतिशयेन धनिनः (**तेभिः**) तैः (**यमः**) न्यायी संयमी सन्तानः (**संरराणः**) सम्यक्सुखानि राति ददाति सः (**हवींषि**) अत्तुमर्हाण्यन्नादीनि (**उशन्**) कामयमानः (**उशद्भिः**) कामयमानैः (**प्रतिकामम्**) कामं कामं प्रतीति प्रतिकामम् (**अत्तु**) भुङ्क्ताम्॥५१॥

अन्वयः-ये नः सोम्यासो वसिष्ठाः पूर्वे पितरः सोमपीथमनूहिरे, तेभिरुशद्भिः सह हवींष्युशन् संरराणो यमः प्रतिकाममत्तु॥५१॥

भावार्थः-पितृभिः पुत्रैः सह पुत्रैः पितृभिः सह च सर्वे सुखदुःखभोगाः कार्य्याः, प्रतिक्षणं सुखं वर्द्धनीयं दुःखं च ह्रासनीयम्॥५१॥

पदार्थः-(**ये**) जो (**नः**) हमारे (**सोम्यासः**) शान्त्यादि गुणों के योग से योग्य (**वसिष्ठाः**) अत्यन्त धनी (**पूर्वे**) पूर्वज (**पितरः**) पालन करनेहारे ज्ञानी पिता आदि (**सोमपीथम्**) सोमपान को (**अनूहिरे**) प्राप्त होते और कराते हैं, (**तेभिः**) उन (**उशद्भिः**) हमारे पालन की कामना करनेहारे पितरों के साथ (**हवींषि**) लेने-देने योग्य पदार्थों की (**उशन्**) कामना करनेहारा (**संरराणः**) अच्छे प्रकार सुखों का दाता (**यमः**) न्याय और योगयुक्त सन्तान (**प्रतिकामम्**) प्रत्येक काम को (**अत्तु**) भोगे॥५१॥

भावार्थः-पिता आदि पुत्रों के साथ और पुत्र पिता आदि के साथ सब सुख-दुःखों का भोग करें और सदा सुख की वृद्धि और दुःख का नाश किया करें॥५१॥

त्वꣳ सोम इत्यस्य शङ्ख ऋषिः। पितरो देवताः। स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

त्वꣳसोम प्र चिकितो मनीषा त्वꣳ रजिष्ठमनु नेषि पन्थाम्।

तव प्रणीती पितरो नऽइन्दो देवेषु रत्नमभजन्त धीराः॥५२॥

त्वम्। सोम। प्र। चिकितः। मनीषा। त्वम्। रजिष्ठम्। अनु। नेषि। पन्थाम्। तव। प्रणीती। प्रनीतीति प्रऽनीती। पितरः। नः। इन्दोऽइति इन्दो। देवेषु। रत्नम्। अभजन्त। धीराः॥५२॥

पदार्थः-(**त्वम्**) (**सोम**) विविधैश्वर्ययुक्त (**प्र**) (**चिकितः**) प्राप्तविज्ञान (**मनीषा**) सुसंस्कृतया प्रज्ञया। अत्र वाच्छन्दसीत्येकाराऽऽदेशो न। (**त्वम्**) (**रजिष्ठम्**) अतिशयेन ऋजु कोमलम् (**अनु**) (**नेषि**) नयसि। अत्र **बहुलं छन्दसि** [अष्टा०२.४.] इति शबभावः (**पन्थाम्**) पन्थानम् (**तव**) (**प्रणीती**) प्रकृष्टा चासौ नीतिश्च तया। अत्र **सुपां सुलुग्०** [अष्टा०७.१.३९] इति पूर्वसवर्णादेशः। (**पितरः**) पालकाः (**नः**) अस्मभ्यम् (**इन्दो**) इन्दुश्चन्द्र इव वर्त्तमान (**देवेषु**) विद्वत्सु (**रत्नम्**) (**अभजन्त**) भजन्तु (**धीराः**) ध्यानवन्तः॥५२॥

अन्वयः-हे सोम! प्रचिकितस्त्वं मनीषा यं रजिष्ठं पन्थां नेषि, तं त्वं मामनुनय। हे इन्दो! ये तव प्रणीती धीराः पितरो देवेषु नो रत्नमभजन्त, तेऽस्माभिर्नित्यं सेवनीयाः सन्तु॥५२॥

भावार्थः-ये सन्तानाः पितृसेवकाः सन्तो विद्याविनयाभ्यां धर्ममनुतिष्ठन्ति, ते स्वजन्मसाफल्यं कुर्वन्ति॥५२॥

पदार्थः-हे (**सोम**) ऐश्वर्य्ययुक्त! (**प्र, चिकितः**) विज्ञान को प्राप्त (**त्वम्**) तू (**मनीषा**) उत्तम प्रज्ञा से जिस (**रजिष्ठम्**) अतिशय कोमल सुखदायक (**पन्थाम्**) मार्ग को (**नेषि**) प्राप्त होता है, उसको (**त्वम्**) तू मुझ को भी (**अनु**) अनुकूलता से प्राप्त कर। हे (**इन्दो**) आनन्दकारक चन्द्रमा के तुल्य वर्त्तमान! जो (**तव**) तेरी (**प्रणीती**) उत्तम नीति के साथ वर्त्तमान (**धीराः**) योगीराज (**पितरः**) पिता आदि ज्ञानी लोग (**देवेषु**) विद्वानों में (**नः**) हमारे लिये (**रत्नम्**) उत्तम धन का (**अभजन्त**) सेवन करते हैं, वे हम को नित्य सत्कार करने योग्य हों॥५२॥

भावार्थः-जो सन्तान माता-पिता आदि के सेवक होते हुए विद्या और विनय से धर्म का अनुष्ठान करते हैं, वे अपने जन्म की सफलता करते हैं॥५२॥

त्वयेत्यस्य शङ्ख ऋषिः। पितरो देवताः। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी पूर्वोक्त विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

त्वया हि नः पितरः सोम पूर्वे कर्माणि चक्रुः पवमान धीराः।
वन्वन्नवातः परिधीँ१ऽरपोर्णु वीरेभिरश्वैर्मघवा भवा नः॥५३॥

त्वया। हि। नः। पितरः। सोम। पूर्वे। कर्माणि। चक्रुः। पवमान। धीराः। वन्वन्। अवातः। परिधीनिति परिऽधीन्। अप। ऊर्णु। वीरेभिः। अश्वैः। मघवेति मघऽवा। भव। नः॥५३॥

पदार्थः-(**त्वया**) विदुषा (**हि**) खलु (**नः**) अस्माकम् (**पितरः**) पित्रध्यापकादयः (**सोम**) ऐश्वर्यसम्पन्न (**पूर्वे**) प्राचीना वृद्धाः (**कर्माणि**) (**चक्रुः**) कृतवन्तः (**पवमान**) पवित्र शुद्धकारक (**धीराः**) धीमन्तः (**वन्वन्**) धर्मं सेवमानः (**अवातः**) अविद्यमानो वातो हिंसनं यस्य (**परिधीन्**) यत्र परितः सर्वतो

धीयन्ते तान् **(अप)** दूरीकरणे **(ऊर्णु)** आच्छादय **(वीरेभिः)** वीरैः **(अश्वैः)** तुरङ्गैः **(मघवा)** प्रशंसितधनयुक्त **(भव)** अत्र **द्व्यचोऽतस्तिङः।** [अष्टा०६.३.१३५] इति दीर्घः। **(नः)** अस्माकम्॥५३॥

अन्वयः-हे पवमान सोम! त्वया सह नः पूर्वे धीराः पितरो यानि धर्म्याणि कर्माणि चक्रुस्तानि हि वयमप्यनुतिष्ठेम। अवातो वन्वन् त्वं वीरेभिरश्वैश्च सह नः शत्रून् परिधीनपोर्णु मघवा च भव॥५३॥

भावार्थः-मनुष्याः स्वेषां धार्मिकाणां पितॄणामनुकरणं कृत्वा शत्रून्निवार्य्य स्वसेनाङ्गप्रशंसायुक्तास्सन्तः सुखिनः स्युः॥५३॥

पदार्थः-हे **(पवमान)** पवित्रस्वरूप पवित्र कर्मकर्त्ता और पवित्र करनेहारे **(सोम)** ऐश्वर्य्ययुक्त सन्तान **(त्वया)** तेरे साथ **(नः)** हमारे **(पूर्वे)** पूर्वज **(धीराः)** बुद्धिमान् **(पितरः)** पिता आदि ज्ञानी लोग जिन धर्मयुक्त **(कर्माणि)** कर्मों को **(चक्रुः)** करने वाले हुए, **(हि)** उन्हीं का सेवन हम लोग भी करें **(अवातः)** हिंसाकर्मरहित **(वन्वन्)** धर्म का सेवन करते हुए सन्तान तू **(वीरेभिः)** वीर पुरुष और **(अश्वैः)** घोड़े आदि के साथ **(नः)** हमारे शत्रुओं की **(परिधीन्)** परिधि अर्थात् जिनमें चारों ओर से पदार्थों को धारण किया जाय, उन मार्गों को **(अपोर्णु)** आच्छादन कर और हमारे मध्य में **(मघवा)** धनवान् **(भव)** हूजिये॥५३॥

भावार्थः-मनुष्य लोग अपने धार्मिक पिता आदि का अनुसरण कर और शत्रुओं को निवारण करके अपनी सेना के अङ्गों की प्रशंसा से युक्त हुए सुखी होवें॥५३॥

त्वꣳ सोमेत्यस्य शङ्ख ऋषिः। सोमो देवता। भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

त्वꣳ सो॑म पि॒तृभि॑: संवि॒दा॒नोऽनु॒ द्यावा॑पृथि॒वीऽआ त॑तन्थ।
तस्मै॑ तऽइन्दो ह॒विषा॑ विधेम व॒यꣳ स्या॑म॒ पत॑यो रयी॒णाम्॥५४॥

त्वम्। सो॒म॒। पि॒तृभि॒रिति॑ पि॒तृऽभि॑ः। सं॒वि॒दा॒न इति॑ सम्ऽवि॒दा॒नः। अनु॑। द्यावा॑पृथि॒वीऽइति॒ द्यावा॑पृथि॒वी। आ। त॒त॒न्थ॒। तस्मै॑। ते॒। इ॒न्दो॒ऽइति॑ इन्दो। ह॒विषा॑। वि॒धे॒म॒। व॒यम्। स्या॒म॒। पत॑यः। र॒यी॒णाम्॥५४॥

पदार्थः-**(त्वम्)** **(सोम)** सोमवद्वर्त्तमान **(पितृभिः)** ज्ञानयुक्तैः **(संविदानः)** प्रतिजानन् **(अनु)** **(द्यावापृथिवी)** सूर्यश्च पृथिवी च ते **(आ)** **(ततन्थ)** विस्तृणीहि **(तस्मै)** **(ते)** तुभ्यम् **(इन्दो)** चन्द्रवत् प्रियदर्शन **(हविषा)** दातुमादातुमर्हेण पदार्थेन **(विधेम)** परिचरेम **(वयम्)** **(स्याम)** भवेम **(पतयः)** अधिष्ठातारः **(रयीणाम्)** राज्यश्रियादीनाम्॥५४॥

अन्वयः-हे सोम सुसन्तान! पितृभिः सह संविदानो यस्त्वमनु द्यावापृथिवी सुखमाततन्थ। हे इन्दो! तस्मै ते वयं हविषा सुखं विधेम यतो रयीणां पतयः स्याम॥५४॥

भावार्थः-हे सन्तानाः! यूयं यथा चन्द्रलोकः पृथिवीमभितो भ्रमन् सन् सूर्यमनुभ्रमति, तथैव पित्रध्यापकादीननुचरत, यतो यूयं श्रीमन्तो भवत॥५४॥

पदार्थः-हे **(सोम)** चन्द्रमा के सदृश आनन्दकारक उत्तम सन्तान! **(पितृभिः)** ज्ञानयुक्त पितरों के साथ **(संविदानः)** प्रतिज्ञा करता हुआ जो **(त्वम्)** तू **(अनु, द्यावापृथिवी)** सूर्य और पृथिवी के मध्य में धर्मानुकूल आचरण से सुख का **(आ, ततन्थ)** विस्तार कर। हे **(इन्दो)** चन्द्रमा के समान प्रियदर्शन! **(तस्मै)** उस **(ते)** तेरे लिये **(वयम्)** हम लोग **(हविषा)** लेने-देने योग्य व्यवहार से सुख का **(विधेम)** विधान करें, जिससे हम लोग **(रयीणाम्)** धनों के **(पतयः)** पालन करनेहारे स्वामी **(स्याम)** हों॥५४॥

भावार्थः-हे सन्तानो! तुम लोग जैसे चन्द्रलोक पृथिवी के चारों और भ्रमण करता हुआ सूर्य की परिक्रमा देता है, वैसे ही माता-पिता आदि के अनुचर होओ, जिससे तुम श्रीमन्त हो जाओ॥५४॥

बर्हिपद इत्यस्य शङ्ख ऋषिः। पितरो देवताः। भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

बर्हिषदः पितरऽऊत्युर्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम्।

तऽआगतावसा शन्तमेनाथा नः शंयोररपो दधात॥५५॥

बर्हिषदः। बर्हिसद इति बर्हिऽसदः। पितरः। ऊती। अर्वाक्। इमा। वः। हव्या। चकृम। जुषध्वम्। ते। आ। गत। अवसा। शन्तमेनेति शम्ऽतमेन। अथ। नः। शम्। योः। अरपः। दधात॥५५॥

पदार्थः-**(बर्हिषदः)** ये बर्हिषि उत्तमायां सभायां सीदन्ति **(पितरः)** न्यायेन पालकाः **(ऊती)** ऊत्या रक्षणादिक्रियया **(अर्वाक्)** पश्चात् **(इमा)** इमानि **(वः)** युष्मभ्यम् **(हव्या)** अत्तुमर्हाणि **(चकृम)** संस्कृतानि कुर्याम। **अन्येषामपि दृश्यते** [अष्टा०६.३.१३७] इति दीर्घः। **(जुषध्वम्)** सेवध्वम् **(ते)** **(आ)** **(गत)** गच्छत **(अवसा)** रक्षाद्येन **(शन्तमेन)** अतिशयितं शं सुखं तेन **(अथ)** अत्र **निपातस्य च** [अष्टा०६.३.१३६] इति दीर्घः। **(नः)** अस्मभ्यम् **(शम्)** सुखम् **(योः)** दूरीकरणे **(अरपः)** अविद्यमानं पापं यस्मिन् तत् सत्याचरणम्। **रपो रिप्रमिति पापनामनी भवतः॥** (निरु०४.२९) **(दधात)**॥५५॥

अन्वयः-हे बर्हिषदः पितरः! वयमर्वाग्येभ्यो व ऊतीमा हव्या चकृम, तानि यूयं जुषध्वम्, ते शन्तमेनावसा सहागत। अथ नः शमरपश्च दधात दुःखं च योः॥५५॥

भावार्थः-येषां पितृणां सेवां सन्तानाः कुर्युस्ते स्वापत्येषु सुशिक्षया सुशीलतां धारयेयुः॥५५॥

पदार्थः-हे **(बर्हिषदः)** उत्तम सभा में बैठनेहारे **(पितरः)** न्याय से पालना करने वाले पितर लोगो! हम **(अर्वाक्)** पश्चात् जिन **(वः)** तुम्हारे लिये **(ऊती)** रक्षणादि क्रिया से **(इमा)** इन **(हव्या)** भोजन के योग्य पदार्थों का **(चकृम)** संस्कार करते हैं, उन का तुम लोग **(जुषध्वम्)** सेवन किया करो। वे आप लोग

(शन्तमेन) अत्यन्त कल्याणकारक **(अवसा)** रक्षणादि कर्म के साथ **(आ, गत)** आवें। **(अथ)** इसके अनन्तर **(नः)** हमारे लिये **(शम्)** सुख तथा **(अरपः)** सत्याचरण को **(दधात)** धारण करें और दुःख को **(योः)** हम से पृथक् रक्खें॥५५॥

भावार्थः-जिन पितरों की सेवा सन्तान करें, वे अपने सन्तानों में अच्छी शिक्षा से सुशीलता को धारण करें॥५५॥

आहमित्यस्य शङ्ख ऋषिः। पितरो देवताः। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

आहं पितॄन्त्सुविदत्राँ२ऽअवित्सि नपातं च विक्रमणं च विष्णोः।

बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्तऽइहागमिष्ठाः॥५६॥

आ। अहम्। पितॄन्। सुविदत्रानिति सुऽविदत्रान्। अवित्सि। नपातम्। च। विक्रमणमिति विऽक्रमणम्। च। विष्णोः। बर्हिषद इति बर्हिऽसदः। ये। स्वधया। सुतस्य। भजन्त। पित्वः। ते। इह। आगमिष्ठा इत्याऽगमिष्ठाः॥५६॥

पदार्थः-**(आ)** **(अहम्)** **(पितॄन्)** जनकान् **(सुविदत्रान्)** सुष्ठु विविधानां सुखानां दातॄन् **(अवित्सि)** विद्मि **(नपातम्)** न विद्यते पातो यस्य तम् **(च)** **(विक्रमणम्)** विक्रमन्ते यस्मिन् जगति तत् **(च)** **(विष्णोः)** वेवेष्टि चराचरं जगत् तस्येश्वरस्य **(बर्हिषदः)** उत्तम आसने सीदन्ति ते **(ये)** **(स्वधया)** अन्नेन **(सुतस्य)** निष्पादितस्य **(भजन्त)** भजन्ते सेवन्ते **(पित्वः)** सुरभिपानम् **(ते)** **(इह)** **(आगमिष्ठाः)** आगच्छन्तु। अत्र लोडर्थे लुङ् पुरुषवचनव्यत्ययः॥५६॥

अन्वयः-ये बर्हिषदः पितर इह स्वधया सुतस्य पित्वश्चाभजन्त सेवन्ते, त आगमिष्ठा आगच्छन्तु, य इह विष्णोर्नपातं विक्रमणं च विदन्ति, तान् सुविदत्रान् पितॄनहमवित्सि॥५६॥

भावार्थः-ये पितरो विद्यासुशिक्षां कुर्वन्ति कारयन्ति च, ते पुत्रैः कन्याभिश्च सम्यक् सेवनीयाः॥५६॥

पदार्थः-**(ये)** जो **(बर्हिषदः)** उत्तम आसन में बैठने योग्य पितर लोग **(इह)** इस वर्त्तमान काल में **(स्वधया)** अन्नादि से तृप्त **(सुतस्य)** सिद्ध किये हुए **(पित्वः)** सुगन्धयुक्त पान का **(च)** भी **(आ, भजन्त)** सेवन करते हैं, **(ते)** वे **(आगमिष्ठाः)** हमारे पास आवें। जो इस संसार में **(विष्णोः)** व्यापक परमात्मा के **(नपातम्)** नाशरहित **(विक्रमणम्)** विविध सृष्टिक्रम को **(च)** भी जानते हैं, उस **(सुविदत्रान्)** उत्तम सुखादि के दान देनेहारे **(पितॄन्)** पितरों को **(अहम्)** मैं **(अवित्सि)** जानता हूं॥५६॥

भावार्थः-जो पितर लोग विद्या की उत्तम शिक्षा करते और कराते हैं, वे पुत्र और कन्याओं के सम्यक् सेवन करने योग्य हैं॥५६॥

उपहूता इत्यस्य शङ्ख ऋषिः। पितरो देवता। निचृत् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उप॑हूताः पि॒तर॑ः सो॒म्यासो॑ बर्हि॒ष्ये᳖षु नि॒धिषु॑ प्रि॒येषु॑।

तऽआग॑मन्तु॒ तऽइ॒ह श्रु॑व॒न्त्वधि॑ ब्रुवन्तु॒ ते॒ऽवन्त्व॒स्मान्॥५७॥

उप॑हूता॒ इत्युप॑ऽहूताः। पि॒तर॑ः। सो॒म्यास॑ः। ब॒र्हि॒ष्ये᳖षु। नि॒धिष्विति॑ नि॒ऽधिषु॑। प्रि॒येषु॑। ते। आ। ग॒म॒न्तु॒। ते। इ॒ह। श्रु॒व॒न्तु॒। अधि॑। ब्रु॒वन्तु॑। ते। अ॒व॒न्तु॒। अ॒स्मान्॥५७॥

पदार्थः-(**उपहूताः**) समीप आहूताः (**पितरः**) जनकादयः (**सोम्यासः**) ये सोममैश्वर्यमर्हन्ति ते (**बर्हिष्येषु**) बर्हिःषूत्तमेषु साधुषु (**निधिषु**) धनकोशेषु (**प्रियेषु**) प्रीतिकारकेषु (**ते**) (**आ**) (**गमन्तु**) गच्छन्तु। अत्र **बहुलं छन्दसि** [अष्टा०२.४.७३] इति शपो लुक् (**ते**) (**इह**) (**श्रुवन्तु**) अत्र विकरणव्यत्ययेन शः। (**अधि**) आधिक्ये (**ब्रुवन्तु**) (**ते**) (**अवन्तु**) रक्षन्तु (**अस्मान्**)॥५७॥

अन्वयः-ये सोम्यासः पितरो बर्हिष्येषु प्रियेषु निधिषूपहूतास्त इहागमन्तु, तेऽस्मद्वचांसि श्रुवन्तु, तेऽस्मानधिब्रुवन्तु, तेऽवन्तु॥५७॥

भावार्थः-ये विद्यार्थिनोऽध्यापकानुपहूय सत्कृत्यैतेभ्यो विद्यां जिघृक्षेयुस्ताँस्ते प्रीत्याऽध्यापयेयुः, सर्वतो विषयासक्त्यादिभ्यो दुष्कर्मभ्यः पृथग्रक्षेयुश्च॥५७॥

पदार्थः-जो (**सोम्यासः**) ऐश्वर्य को प्राप्त होने के योग्य (**पितरः**) पितर लोग (**बर्हिष्येषु**) अत्युत्तम (**प्रियेषु**) प्रिय (**निघिषु**) रत्नादि से भरे हुए कोशों के निमित्त (**उपहूताः**) बुलाये हुए हैं (**ते**) वे (**इह**) इस हमारे समीप स्थान में (**आ, गमन्तु**) आवें, (**ते**) वे हमारे वचनों को (**श्रुवन्तु**) सुनें, वे (**अस्मान्**) हम को (**अधि, ब्रुवन्तु**) अधिक उपदेश से बोधयुक्त करें, (**ते**) वे हमारी (**अवन्तु**) रक्षा करें॥५७॥

भावार्थः-जो विद्यार्थीजन अध्यापकों को बुला उनका सत्कार कर, उनसे विद्याग्रहण की इच्छा करें, उन विद्यार्थियों को वे अध्यापक भी प्रीतिपूर्वक पढ़ावें और सर्वथा विषयासक्ति आदि दुष्कर्मों से पृथक् रक्खें॥५७॥

आयन्त्वित्यस्य शङ्ख ऋषिः। पितरो देवताः। विराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आ य॑न्तु नः पि॒तर॑ः सो॒म्यासो॑ऽग्निष्वा॒त्ताः प॒थिभि॑र्देव॒यानै॑ः।

अ॒स्मिन् य॒ज्ञे स्व॒धया॒ मद॒न्तोऽधि॑ ब्रुवन्तु॒ ते॒ऽवन्त्व॒स्मान्॥५८॥

आ। यन्तु। नः। पितरः। सोम्यासः। अग्निष्वात्ताः। अग्निष्वात्ता इत्यग्निऽस्वात्ताः। पथिभिरिति पथिऽभिः। देवयानैरिति देवऽयानैः। अस्मिन्। यज्ञे। स्वधया। मदन्तः। अधि। ब्रुवन्तु। ते। अवन्तु। अस्मान्॥५८॥

पदार्थः-(**आ**) (**यन्तु**) आगच्छन्तु (**नः**) अस्माकम् (**पितरः**) पालका जनकाध्यापकोपदेशकाः (**सोम्यासः**) सोम इव शमदमादिगुणान्विताः (**अग्निष्वात्ताः**) गृहीताग्निविद्याः (**पथिभिः**) मार्गैः (**देवयानैः**) देवा आप्ता विद्वांसो यान्ति यैस्तैः (**अस्मिन्**) वर्त्तमाने (**यज्ञे**) उपदेशाध्यापनाख्ये (**स्वधया**) अन्नाद्येन (**मदन्तः**) आनन्दन्तः (**अधि**) अधिष्ठातृभावे (**ब्रुवन्तु**) उपदिशन्त्वध्यापयन्तु वा (**ते**) (**अवन्तु**) रक्षन्तु (**अस्मान्**) पुत्रान् विद्यार्थिनश्च॥५८॥

अन्वयः-ये सोम्यासोऽग्निष्वात्ता नः पितरः सन्ति, ते देवयानैः पथिभिरायन्त्वस्मिन्यज्ञे वर्त्तमाना भूत्वा स्वधया मदन्तः सन्तोऽस्मानधिब्रुवन्त्वस्मानवन्तु॥५८॥

भावार्थः-विद्यार्थिभिर्विद्यावयोवृद्धेभ्यो विद्यां रक्षां च प्राप्याप्तमार्गेण गत्वागत्य सर्वेषां रक्षा विधेया॥५८॥

पदार्थः-जो (**सोम्यासः**) चन्द्रमा के तुल्य शान्त शमदमादि गुणयुक्त (**अग्निष्वात्ताः**) अग्न्यादि पदार्थविद्या में निपुण (**नः**) हमारे (**पितरः**) अन्न और विद्या के दान से रक्षक जनक, अध्यापक और उपदेशक लोग हैं, (**ते**) वे (**देवयानैः**) आप्त लोगों के जाने-आने योग्य (**पथिभिः**) धर्मयुक्त मार्गों से (**आ, यन्तु**) आवें (**अस्मिन्**) इस (**यज्ञे**) पढ़ाने उपदेश करने रूप व्यवहार में वर्त्तमान होके (**स्वधया**) अन्नादि से (**मदन्तः**) आनन्द को प्राप्त हुए (**अस्मान्**) हम को (**अधि, ब्रुवन्तु**) अधिष्ठाता होकर उपदेश करें और पढ़ावें और हमारी (**अवन्तु**) सदा रक्षा करें॥५८॥

भावार्थः-विद्यार्थियों को योग्य है कि विद्या और आयु में वृद्ध विद्वानों से विद्या और रक्षा को प्राप्त होकर सत्यवादी निष्कपटी परोपकारी उपदेशकों के मार्ग से जा आ के सब की रक्षा करें॥५८॥

अग्निष्वात्ता इत्यस्य शङ्ख ऋषिः। पितरो देवताः। निचृज्जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी उक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अग्निष्वात्ताः पितरऽएह गच्छत सदःसदः सदत सुप्रणीतयः।
अत्ता हवीꣳषि प्रयतानि बर्हिष्यथा रयिꣳ सर्ववीरं दधातन॥५९॥

अग्निष्वात्ताः। अग्निष्वात्ता इत्यग्निऽस्वात्ताः। पितरः। आ। इह। गच्छत। सदःसद इति सदःऽसदः। सदत। सुप्रणीतयः। सुप्रणीतय इति सुऽप्रनीतयः। अत्त। हवीꣳषि। प्रयतानीति प्रऽयतानि। बर्हिषि। अथ। रयिम्। सर्ववीरमिति सर्वऽवीरम्। दधातन॥५९॥

पदार्थः-(**अग्निष्वात्ताः**) अधीताग्निविद्याः (**पितरः**) पालकाः (**आ**) (**इह**) अस्मिन् वर्त्तमाने काले विद्याप्रचाराय (**गच्छत**) (**सदःसदः**) सीदन्ति यस्मिन् यस्मिन् तत्तद् गृहम् (**सदत**) (**सुप्रणीतयः**) शोभना प्रगता नीतिर्न्यायो येषान्ते (**अत्त**) अत्र **द्व्यचोऽतस्तिङः** [अष्टा०६.३.१३५] इति दीर्घः (**हवींषि**) अत्तुमर्हाण्यन्नादीनि (**प्रयतानि**) प्रयत्नेन साधितानि (**बर्हिषि**) उत्तमे व्यवहारे (**अथ**) अत्र **निपातस्य च** [अष्टा०६.३.१३६] इति दीर्घः। (**रयिम्**) धनम् (**सर्ववीरम्**) सर्वे वीरा यस्मात् प्राप्यन्ते तम् (**दधातन**) धरत॥५९॥

अन्वयः-हे सुप्रणीतयोऽग्निष्वात्ताः पितरो! यूयमिहागच्छत सदःसदः सदत, प्रयतानि हवींष्यत्ताऽथ बर्हिषि स्थित्वाऽस्मदर्थं सर्ववीरं रयिं दधातन॥५९॥

भावार्थः-ये विद्वांस उपदेशाय गृहङ्गृहं प्रति गत्वाऽऽगत्य च सत्यं धर्मं प्रचारयन्ति, ते गृहस्थैः श्रद्धया दत्तान्यन्नपानादीनि सेवन्ताम्, सर्वाञ्छरीरात्मबलयोग्यान् पुरुषार्थिनः कृत्वा श्रीमन्तः कुर्वन्तु॥५९॥

पदार्थः-हे (**सुप्रणीतयः**) अत्युत्तम न्यायधर्म से युक्त (**अग्निष्वात्ताः**) अग्न्यादि पदार्थविद्या में निपुण (**पितरः**) पालन करनेहारे पितरो! आप लोग (**इह**) इस वर्त्तमान समय में विद्याप्रचार के लिये (**आ, गच्छत**) आओ (**सदःसद**) जहां-जहां बैठें, उस-उस घर में (**सदत**) स्थित होओ (**प्रयतानि**) अति विचार से सिद्ध किये हुए (**हवींषि**) भोजन के योग्य अन्नादि का (**अत्त**) भोग करो। (**अथ**) इसके पश्चात् (**बर्हिषि**) विद्याप्रचाररूप उत्तम व्यवहार में स्थित होकर हमारे लिये (**सर्ववीरम्**) सब वीर पुरुषों को प्राप्त करानेहारे (**रयिम्**) धन को (**दधातन**) धारण कीजिये॥५९॥

भावार्थः-जो विद्वान् लोग उपदेश के लिये घर-घर के प्रति गमनागमन करके सत्यधर्म का प्रचार करते हैं, वे गृहस्थों में श्रद्धा से दिये हुए अन्नपानादि का सेवन करें। सब को शरीर और आत्मा के बल से योग्य पुरुषार्थी करके श्रीमान् करें॥५९॥

ये अग्निष्वात्ता इत्यस्य शङ्ख ऋषिः। पितरो देवताः। विराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

मनुष्यैरीश्वरः कथं प्रार्थनीय इत्याह॥

मनुष्यों को ईश्वर की प्रार्थना कैसे करनी चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

येऽअग्निष्वात्ता येऽअनग्निष्वात्ता मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते।

तेभ्यः स्वराडसुनीतिमेतां यथावशं तन्वं कल्पयाति॥६०॥

ये। अग्निष्वात्ताः। अग्निष्वात्ता इत्यग्निऽस्वात्ताः। ये। अनग्निष्वात्ताः। अनग्निष्वात्ता इत्यनग्निऽस्वात्ताः। मध्ये। दिवः। स्वधया। मादयन्ते। तेभ्यः। स्वराडिति स्वऽराट्। असुनीतिमित्यसुऽनीतिम्। एताम्। यथावशमिति यथाऽवशम्। तन्वम्। कल्पयाति॥६०॥

पदार्थः-(**ये**) (**अग्निष्वात्ताः**) सम्यग्गृहीताऽग्निविद्याः (**ये**) (**अनग्निष्वात्ताः**) अविद्यमानाग्निविद्याग्रहणा ज्ञाननिष्ठाः पितरः (**मध्ये**) (**दिवः**) विज्ञानादिप्रकाशस्य (**स्वधया**) स्वकीयपदार्थधारणक्रियया (**मादयन्ते**) आनन्दन्ति (**तेभ्यः**) पितृभ्यः (**स्वराट्**) यः स्वयं राजतेऽसौ परमात्मा (**असुनीतिम्**) या असून् प्राणान् नयति प्राप्नोति ताम् (**एताम्**) (**यथावशम्**) वशं कामनामनतिक्रम्य करोतीति (**तन्वम्**) (**कल्पयाति**) कल्पयेत् समर्थं कुर्य्यात्॥६०॥

अन्वयः-येऽग्निष्वात्ता ये अनग्निष्वात्ता दिवो मध्ये स्वधया मादयन्ते, तेभ्यः स्वराडेतामसुनीतिं तन्वं यथावशं कल्पयाति॥६०॥

भावार्थः-हे परमेश्वर! येऽग्न्यादिपदार्थविद्यां विज्ञाय प्रवर्तयन्ति, ये च ज्ञाननिष्ठा विद्वांसः स्वेनैव पदार्थेन तुष्टा भवन्ति, तेषां शरीराणि दीर्घायूंषि सम्पादय इति प्रार्थनीयः॥६०॥

पदार्थः-(**ये**) जो (**अग्निष्वात्ताः**) अच्छे प्रकार अग्निविद्या के ग्रहण करने तथा (**ये**) जो (**अनग्निष्वात्ताः**) अग्नि से भिन्न अन्य पदार्थविद्याओं को जाननेहारे वा ज्ञानी पितृलोग वा (**दिवः**) विज्ञानादि प्रकाश के (**मध्ये**) बीच (**स्वधया**) अपने पदार्थ के धारण करने रूप क्रिया से (**मादयन्ते**) आनन्द को प्राप्त होते हैं, (**तेभ्यः**) उन पितरों के लिये (**स्वराट्**) स्वयं प्रकाशमान परमात्मा (**एताम्**) इस (**असुनीतिम्**) प्राणों को प्राप्त होने वाले (**तन्वम्**) शरीर को (**यथावशम्**) कामना के अनुकूल (**कल्पयाति**) समर्थ करे॥६०॥

भावार्थः-मनुष्यों को परमेश्वर से ऐसी प्रार्थना करनी चाहिये कि हे परमेश्वर! जो अग्नि आदि की पदार्थविद्या को यथार्थ जान के प्रवृत्त करते और जो ज्ञान में तत्पर विद्वान् अपने ही पदार्थ के भोग से सन्तुष्ट रहते हैं, उनके शरीरों को दीर्घायु कीजिये॥६०॥

अग्निष्वात्तानित्यस्य शङ्ख ऋषिः। पितरो देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पितृसन्तानैरितेतरं किं कर्त्तव्यमित्याह॥

माता-पिता और सन्तानों को परस्पर क्या करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अ॒ग्नि॒ष्वा॒त्तानृ॑तु॒मतो॑ हवामहे नाराश॒ꣳसे सो॑मपी॒थं यऽआ॒शुः।

ते नो॒ विप्रा॑सः सु॒हवा॑ भवन्तु व॒यꣳ स्या॑म॒ पत॑यो र॒यी॒णाम्॥६१॥

अ॒ग्नि॒ष्वा॒त्तान्। अ॒ग्नि॒स्वा॒त्तानित्य॑ग्निऽस्वा॒त्तान्। ऋ॒तुमत॒ इत्यृ॑तु॒ऽमत॑ः। ह॒वा॒म॒हे॒। ना॒रा॒श॒ꣳसे। सो॒म॒पी॒थमिति॑ सोमऽपी॒थम्। ये। आ॒शुः। ते। न॒ः। विप्रा॑सः। सु॒हवा॒ इति॑ सु॒ऽहवा॑ः। भ॒व॒न्तु॒। व॒यम्। स्या॒म॒। पत॑यः। र॒यी॒णाम्॥६१॥

पदार्थः-(**अग्निष्वात्तान्**) सुष्ठुगृहीताऽग्निविद्यान् (**ऋतुमतः**) प्रशस्ता वसन्तादय ऋतवो विद्यन्ते येषां तान् (**हवामहे**) (**नाराशंसे**) नराणां प्रशंसामये सत्कारव्यवहारे (**सोमपीथम्**) सोमपानम् (**ये**) (**आशुः**) अश्नीयुः (**ते**) (**नः**) अस्मभ्यम् (**विप्रासः**) मेधाविनः (**सुहवाः**) सुष्ठुदानाः (**भवन्तु**) (**वयम्**) (**स्याम**) (**पतयः**) स्वामिनः (**रयीणाम्**) धनानाम्॥६१॥

अन्वय:-ये सोमपीथमाशुर्यानृतुमतोऽग्निष्वात्तान् पितॄन् वयं नराशंसे हवामहे, ते विप्रासो न: सुहवा भवन्तु, वयं च तत्कृपातो रयीणां पतय: स्याम॥६१॥

भावार्थ:-सन्ताना: पदार्थविद्याविदो देशकालज्ञान् प्रशस्तौषधिरससेवकान् विद्यावयोवृद्धान् सत्कारार्थमाहूय तत्सहायेन धनाद्यैश्वर्य्यवन्तो भवन्तु॥६१॥

पदार्थ:-**(ये)** जो **(सोमपथीम्)** सोम आदि उत्तम ओषधिरस को **(आशु:)** पीवें, जिन **(ऋतुमत:)** प्रशंसित वसन्तादि ऋतु में उत्तम कर्म करने वाले **(अग्निष्वात्तान्)** अच्छे प्रकार अग्निविद्या को जाननेहारे पिता आदि ज्ञानियों को हम लोग **(नाराशंसे)** मनुष्यों के प्रशंसारूप सत्कार के व्यवहार में **(हवामहे)** बुलाते हैं, **(ते)** वे **(विप्रास:)** बुद्धिमान् लोग **(न:)** हमारे लिये **(सुहवा:)** अच्छे दान देनेहारे **(भवन्तु)** हों और **(वयम्)** हम उनकी कृपा से **(रयीणाम्)** धनों के **(पतय:)** स्वामी **(स्याम)** होवें॥६१॥

भावार्थ:-सन्तान लोग पदार्थविद्या और देश, काल के जानने और प्रशंसित औषधियों के रस को सेवन करनेहारे, विद्या और अवस्था में वृद्ध पिता आदि को सत्कार के अर्थ बुला के, उनके सहाय से धनादि ऐश्वर्य्य वाले हों॥६१॥

आच्या जान्वित्यस्य शङ्ख ऋषि:। पितरो देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्द:। धैवत: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येमं यज्ञमभिगृणीत विश्वे।

मा हिंꣳसिष्ट पितर: केन चिन्नो यद्वऽआग: पुरुषता कराम॥६२॥

आच्येत्याऽअच्य। जानु। दक्षिणत:। निषद्य। निषद्येति निऽसद्य। इमम्। यज्ञम्। अभि। गृणीत। विश्वे। मा। हिꣳसिष्ट। पितर:। केन। चित्। न:। यत्। व:। आग:। पुरुषता। कराम॥६२॥

पदार्थ:-**(आच्य)** अधो निपात्य **(जानु)** **(दक्षिणत:)** दक्षिणपार्श्वत: **(निषद्य)** समास्य **(इमम्)** **(यज्ञम्)** सत्काराख्यम् **(अभि)** आभिमुख्ये **(गृणीत)** प्रशंसत **(विश्वे)** सर्वे **(मा)** **(हिंसिष्ट)** **(पितर:)** ज्ञानप्रदा: **(केन)** **(चित्)** **(न:)** अस्माकम् **(यत्)** **(व:)** **(आग:)** अपराधम् **(पुरुषता)** पुरुषस्य भाव: **(कराम)** कुर्याम। अत्र विकरणव्यत्ययेन शप्॥६२॥

अन्वय:-हे विश्वे पितर:! यूयं केनचिद्धेतुना नो या पुरुषता तां मा हिंसिष्ट, यतो वयं सुखं कराम, यद्व आगस्तत् त्याजयेम,यूयमिमं यज्ञमभिगृणीत, वयमाच्य जानु दक्षिणतो निषद्य युष्मान् सततं सत्कुर्याम॥६२॥

भावार्थः-येषां पितरो यदा सामीप्यमागच्छेयुः स्वयं वैतेषां निकटे समभिगच्छेयुस्तदा भूमौ जानुनी निपात्य नमस्कृत्यैतान् प्रसादयेयुः, पितरश्चाशीर्विद्यासुशिक्षोपदेशेन स्वसन्तानान् प्रसन्नान् कृत्वा सततं रक्षेयुः॥६२॥

पदार्थः-हे (**विश्वे**) सब (**पितरः**) पितृलोगो! तुम (**केन, चित्**) किसी हेतु से (**नः**) हमारी जो (**पुरुषता**) पुरुषार्थता है, उसको (**मा, हिंसिष्ट**) मत नष्ट करो, जिससे हम लोग सुख को (**कराम**) प्राप्त करें, (**यत्**) जो (**वः**) तुम्हारा (**आगः**) अपराध है, उसको हम छुड़ावें, तुम लोग (**इमम्**) इस (**यज्ञम्**) सत्कारक्रियारूप व्यवहार को (**अभि, गृणीत**) हमारे सन्मुख प्रशंसित करो, हम (**जानु**) जानु अवयव को (**आच्य**) नीचे टेक के (**दक्षिणतः**) तुम्हारे दक्षिण पार्श्व में (**निषद्य**) बैठ के तुम्हारा निरन्तर सत्कार करें॥६२॥

भावार्थः-जिनके पितृ लोग जब समीप आवें अथवा सन्तान लोग इन के समीप जावें, तब भूमि में घुटने टिका नमस्कार कर इनको प्रसन्न करें, पितर लोग भी आशीर्वाद, विद्या और अच्छी शिक्षा के उपदेश से अपने सन्तानों को प्रसन्न करके सदा रक्षा किया करें॥६२॥

आसीनास इत्यस्य शङ्ख ऋषिः। पितरो देवताः। विराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आसीनासोऽअरुणीनामुपस्थे रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय।

पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः प्रयच्छत तऽइहोर्जं दधात॥६३॥

आसीनासः। अरुणीनाम्। उपस्थ इत्युपऽस्थे। रयिम्। धत्त। दाशुषे। मर्त्याय। पुत्रेभ्यः। पितरः। तस्य। वस्वः। प्र। यच्छत। ते। इह। ऊर्ज्जम्। दधात॥६३॥

पदार्थः-(**आसीनासः**) उपस्थिताः सन्तः (**अरुणीनाम्**) अरुणवर्णानां स्त्रीणाम् (**उपस्थे**) उत्सङ्गे (**रयिम्**) श्रियम् (**धत्त**) (**दाशुषे**) दात्रे (**मर्त्याय**) मनुष्याय (**पुत्रेभ्यः**) (**पितरः**) (**तस्य**) (**वस्वः**) वसुनो धनस्य (**प्र**) (**यच्छत**) (**ते**) (**इह**) (**ऊर्ज्जम्**) पराक्रमम् (**दधात**) दधीरन्॥६३॥

अन्वयः-हे पितरः! यूयमिहारुणीनामुपस्थ आसीनासः सन्तः पुत्रेभ्यो दाशुषे मर्त्याय च रयिं धत्त, तस्य वस्वोंऽशान् प्रयच्छत, यतस्त ऊर्जं दधात॥६३॥

भावार्थः-त एव वृद्धाः सन्ति ये स्वस्त्रीव्रताः स्वपत्नीनां सत्कर्त्तारोऽपत्येभ्यो यथायोग्यं दायं सत्पात्रेभ्यो दानं च सदा ददति, ते च सन्तानैर्माननीयाः सन्ति॥६३॥

पदार्थः-हे (**पितरः**) पितृ लोगो! तुम (**इह**) इस गृहाश्रम में (**अरुणीनाम्**) गौरवर्णयुक्त स्त्रियों के (**उपस्थे**) समीप में (**आसीनासः**) बैठे हुए (**पुत्रेभ्यः**) पुत्रों के और (**दाशुषे**) दाता (**मर्त्याय**) मनुष्य के लिये

(रयिम्) धन को **(धत्त)** धरो, **(तस्य)** उस **(वस्वः)** धन के भागों को **(प्र, यच्छत)** दिया करो, जिससे **(ते)** वे स्त्री आदि सब लोग **(ऊर्ज्जम्)** पराक्रम को **(दधात)** धारण करें॥६३॥

भावार्थः-वे ही वृद्ध हैं जो अपनी स्त्री ही के साथ प्रसन्न, अपनी पत्नियों का सत्कार करनेहारे, सन्तानों के लिये यथायोग्य दायभाग और सत्पात्रों को सदा दान देते हैं और वे सन्तानों को सत्कार करने योग्य होते हैं॥६३॥

यमग्न इत्यस्य शङ्ख ऋषिः। अग्निर्देवता। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यमग्ने कव्यवाहन् त्वं चिन्मन्यसे रयिम्।

तन्नो गीर्भिः श्रवाय्यं देवत्रा पनया युजम्॥६४॥

यम्। अग्ने। कव्यवाहनेति कव्यऽवाहन। त्वम्। चित्। मन्यसे। रयिम्। तम्। नः। गीर्भिरिति गीःऽभिः। श्रवाय्यम्। देवत्रेति देवऽत्रा। पनय। युजम्॥६४॥

पदार्थः-**(यम्)** **(अग्ने)** अग्निरिव प्रकाशमान विद्वन् **(कव्यवाहन)** यः कविषु साधूनि वस्तूनि वहति प्रापयति तत्सम्बुद्धौ **(त्वम्)** **(चित्)** अपि **(मन्यसे)** **(रयिम्)** ऐश्वर्यम् **(तम्)** **(नः)** अस्मभ्यम् **(गीर्भिः)** **(श्रवाय्यम्)** श्रावयितुमर्हम्। **श्रुदक्षि०** (उणा०३.९६) इत्यादिना आय्य प्रत्ययः। **(देवत्रा)** देवेषु विद्वत्सु **(पनय)** देहि। अत्र **अन्येषामपि०** [अष्टा०६.३.१३७] इति दीर्घः। **(युजम्)** योक्तुमर्हम्॥६४॥

अन्वयः-हे कव्यवाहनाऽग्ने! त्वं गीर्भिः श्रवाय्यं देवत्रा युजं यं रयिं मन्यसे तं चिन्नः पनय॥६४॥

भावार्थः-पितृभिः पुत्रेभ्यस्सत्पात्रेभ्यश्च प्रशंसनीयं धनं सञ्चेयम्। तेनैतान् विदुषो गृहीत्वा सत्यधर्मोपदेशकान् कारयित्वा विद्याधर्मौ प्रचारणीयौ॥६४॥

पदार्थः-हे **(कव्यवाहन)** बुद्धिमानों के समीप उत्तम पदार्थ पहुँचानेहारे **(अग्ने)** अग्नि के समान प्रकाशयुक्त! **(त्वम्)** आप **(गीर्भिः)** कोमल वाणियों से **(श्रवाय्यम्)** सुनाने योग्य **(देवत्रा)** विद्वानों में **(युजम्)** युक्त करने योग्य **(यम्)** जिस **(रयिम्)** ऐश्वर्य्य को **(मन्यसे)** जानते हो, **(तम्)** उसको **(चित्)** भी **(नः)** हमारे लिये **(पनय)** कीजिये॥६४॥

भावार्थः-पिता आदि ज्ञानी लोगों को चाहिये कि पुत्रों और सत्पात्रों से प्रशंसित धन का सञ्चय करें, उस धन से उत्तम विद्वानों को ग्रहण कर, उनको सत्यधर्म के उपदेशक बनाके विद्या और धर्म का प्रचार करें और करावें॥६४॥

योऽअग्निरित्यस्य शङ्ख ऋषिः। अग्निर्देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

योऽअग्निः कव्यवाहनः पितृन् यक्षदृतावृधः।

प्रेदु हव्यानि वोचति देवेभ्यश्च पितृभ्य आ॥६५॥

यः। अग्निः। कव्यवाहन इति कव्यऽवाहनः। पितृन्। यक्षत्। ऋतावृधः। ऋतवृध इत्यृतऽवृधः। प्र। इत्। ॐऽइत्यूँ। हव्यानि। वोचति। देवेभ्यः। च। पितृभ्य इति पितृऽभ्यः। आ॥६५॥

पदार्थः-(**यः**) (**अग्निः**) अग्निरिव विद्यासु प्रकाशमानः (**कव्यवाहनः**) यः कव्यानि कवीनां प्रशस्तानि कर्माणि प्रापयति सः (**पितृन्**) जनकादीन् (**यक्षत्**) सत्कुर्यात् (**ऋतावृधः**) य ऋतेन वेदविज्ञानेन वर्द्धन्ते। अत्र **अन्येषामपि०** [अष्टा०६.३.१३७] इति दीर्घः। (**प्र**) (**इत्**) एव (उ) वितर्के (**हव्यानि**) आदातुमर्हाणि विज्ञानानि (**वोचति**) वदति। वचेर्लेट्यट् वच उमित्युमागमः। (**देवेभ्यः**) विद्वद्भ्यः (**च**) (**पितृभ्यः**) जनकादिभ्यः (**आ**) समन्तात्॥६५॥

अन्वयः-यः कव्यवाहनोऽग्निर्विद्वान् ऋतावृधः पितृन् यक्षत्, स इदु देवेभ्यः पितृभ्यश्च हव्यानि प्रावोचति॥६५॥

भावार्थः-ये ब्रह्मचर्येण पूर्णविद्या भवन्ति, ते विद्वत्सु विद्वांसः पितृषु पितरश्च गण्यन्ते॥६५॥

पदार्थः-(**यः**) जो (**कव्यवाहनः**) विद्वानों के श्रेष्ठ कर्मों को प्राप्त करानेहारा (**अग्निः**) अग्नि के समान विद्याओं में प्रकाशमान विद्वान् (**ऋतावृधः**) वेदविद्या से वृद्ध (**पितृन्**) पितरों का (**यक्षत्**) सत्कार करे, सो (**इत्**) ही (उ) अच्छे प्रकार (**देवेभ्यः**) विद्वानों (**च**) और (**पितृभ्यः**) पितरों के लिये (**हव्यानि**) ग्रहण करने योग्य विद्वानों का (**प्रावोचति**) अच्छे प्रकार सब ओर से उपदेश करता है॥६५॥

भावार्थः-जो पूर्ण ब्रह्मचर्य से पूर्णविद्या वाले होते हैं, वे विद्वानों में विद्वान् और पितरों में पितर गिने जाते हैं॥६५॥

त्वमग्न इत्यस्य शङ्ख ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

त्वमग्नऽईडितः कव्यवाहनावाड्ढव्यानि सुरभीणि कृत्वी।

प्रादाः पितृभ्यः स्वधया तेऽअक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता हवीᳪषि॥६६॥

त्वम्। अग्ने। ईडितः। कव्यवाहनेति कव्यऽवाहन। अवाट्। हव्यानि। सुरभीणि। कृत्वी। प्र। अदाः। पितृभ्य इति पितृऽभ्यः। स्वधया। ते। अक्षन्। अद्धि। त्वम्। देव। प्रयतेति प्रऽयता। हवीᳪषि॥६६॥

पदार्थः-(**त्वम्**) (**अग्ने**) पावक इव पवित्र (**ईडितः**) प्रशंसितः (**कव्यवाहन**) कवीनां प्रागल्भ्यानि कर्माणि प्राप्त (**अवाट्**) वहसि (**हव्यानि**) अत्तुमर्हाणि (**सुरभीणि**) सुगन्धादियुक्तानि (**कृत्वी**) कृत्वा।

स्नात्व्यादयश्च। (अष्टा०७.१.४९) **(प्र) (अदाः)** प्रदेहि **(पितृभ्यः) (स्वधया)** अन्नेन सह **(ते) (अक्षन्)** अदन्तु **(अद्धि)** भुङ्क्ष्व **(त्वम्) (देव)** दातः **(प्रयता)** प्रयत्नेन साधितानि **(हवींषि)** आदातुमर्हाणि॥६६॥

अन्वयः-हे कव्यवाहनाग्ने विद्वन्! पुत्र! ईडितस्त्वं सुरभीणि हव्यानि कृत्व्यवाट् तानि पितृभ्यः प्रादास्ते पितरः स्वधया सहैतान्यक्षन्। हे देव! त्वं प्रयत हवींष्यद्धि॥६६॥

भावार्थः-पुत्रादयः सर्वे सुसंस्कृतैः सुगन्धादियुक्तैरन्नपानैः पितॄन् भोजयित्वा स्वयमेतानि भुञ्जीरन्नियमेव पुत्राणां योग्यतास्ति। ये सुसंस्कृतान्नपाने कुर्वन्ति, तेऽरोगाः शतायुषो भवन्ति॥६६॥

पदार्थः-हे **(कव्यवाहन)** कवियों के प्रगल्भतादि कर्मों को प्राप्त हुए **(अग्ने)** अग्नि के समान पवित्र विद्वन्! पुत्र! **(ईडितः)** प्रशंसित **(त्वम्)** तू **(सुरभीणि)** सुगन्धादि युक्त **(हव्यानि)** खाने के योग्य पदार्थ **(कृत्वी)** कर के **(अवाट्)** प्राप्त करता है, उनको **(पितृभ्यः)** पितरों के लिये **(प्रादाः)** दिया कर। **(ते)** वे पितर लोग **(स्वधया)** अन्नादि के साथ इन पदार्थों का **(अक्षन्)** भोग किया करें। हे **(देव)** विद्वन दातः! **(त्वम्)** तू **(प्रयता)** प्रयत्न से साधे हुए **(हवींषि)** खाने के योग्य अन्नों को **(अद्धि)** भोजन किया कर॥६६॥

भावार्थः-पुत्रादि सब लोग अच्छे संस्कार किये हुए सुगन्धादि से युक्त अन्न-पानों से पितरों को भोजन कराके आप भी इन अन्नों का भोजन करें, यही पुत्रों की योग्यता है। जो अच्छे संस्कार किये हुए अन्न-पानों को करते हैं, वे रोगरहित होकर शतवर्ष पर्यन्त जीते हैं॥६६॥

ये चेहेत्यस्य शङ्ख ऋषिः। पितरो देवता। स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ये चे॒ह पि॒तरो॒ ये च॒ नेह याँश्च॑ वि॒द्म याँ२ऽउ॑ च॒ न प्र॑वि॒द्म।

त्वं वे॑त्थ॒ यति॒ ते जा॑तवेदः स्व॒धाभि॑र्य॒ज्ञꣳ सु॒कृ॑तं जुषस्व॥६७॥

ये। च॒। इ॒ह। पि॒तर॑ः। ये। च॒। न। इ॒ह। यान्। च॒। वि॒द्म। यान्। ऊँऽइत्यूँ॑। च॒। न। प्र॒वि॒द्मेति॑ प्रऽवि॒द्म। त्वम्। वे॒त्थ॒। यति॑। ते। जा॒त॒वे॒द॒ इति॑ जातऽवेदः। स्व॒धाभि॑ः। य॒ज्ञम्। सु॒कृ॑त॒मिति॒ सुऽकृ॑तम्। जु॒ष॒स्व॒॥६७॥

पदार्थः-**(ये) (च) (इह) (पितरः) (ये) (च) (न) (इह) (यान्) (च) (विद्म)** जानीमः **(यान्) (उ)** वितर्के **(च) (न) (प्रविद्म) (त्वम्) (वेत्थ) (यति)** या सङ्ख्या येषान्तान् **(ते) (जातवेदः)** जाता वेदः प्रज्ञा यस्य तत्सम्बुद्धौ। हे विद्वन्! **(स्वधाभिः) (यज्ञम्) (सुकृतम्)** सुष्ठु कर्माणि क्रियन्ते यस्मिन् **(जुषस्व)** सेवस्व॥६७॥

अन्वयः-हे जातवेदः! ये चेह पितरो ये चेह न सन्ति, वयं यांश्च विद्म यांश्च न प्रविद्म, तान् यति यावतस्त्वं वेत्थ, उ ते त्वां विदुस्तत् सेवामयं सुकृतं यज्ञं स्वधाभिर्जुषस्व॥६७॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! ये प्रत्यक्षा वा येऽप्रत्यक्षा विद्वांसोऽध्यापका उपदेशकाश्च सन्ति, तान् सर्वानाहूयाऽन्नादिभिस्सदा सत्कुरुत, येन स्वयं सर्वत्र सत्कृता भवत॥६७॥

पदार्थः-हे **(जातवेदः)** नवीन तीक्ष्ण बुद्धि वाले विद्वन्! **(ये)** जो **(इह)** यहां **(च)** ही **(पितरः)** पिता आदि ज्ञानी लोग हैं **(च)** और **(ये)** जो **(इह)** यहां **(न)** नहीं हैं **(च)** और हम **(यान्)** जिनको **(विद्म)** जानते **(च)** और **(यान्)** जिनको **(न, प्रविद्म)** नहीं जानते हैं, उन **(यति)** यावत् पितरों को **(त्वम्)** आप **(वेत्थ)** जानते हो (उ) और **(ते)** वे आप को भी जानते हैं, उनकी सेवारूप **(सुकृतम्)** पुण्यजनक **(यज्ञम्)** सत्काररूप व्यवहार को **(स्वधाभिः)** अन्नादि से **(जुषस्व)** सेवन करो॥६७॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जो प्रत्यक्ष वा जो अप्रत्यक्ष विद्वान् अध्यापक और उपदेशक हैं, उन सब को बुला अन्नादि से सदा सत्कार करो, जिससे आप भी सर्वत्र सत्कारयुक्त होओ॥६७॥

इदमित्यस्य शङ्ख ऋषिः। पितरो देवताः। स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

इ॒दं पि॒तृभ्यो॒ नमो॑ऽअस्त्व॒द्य ये पूर्वा॑सो॒ यऽउप॑रास ई॒युः।
ये पार्थि॑वे॒ रज॒स्या निष॑त्ता॒ ये वा॑ नू॒नꣳ सु॑वृ॒जना॑सु वि॒क्षु॥६८॥

इ॒दम्। पि॒तृभ्य॒ इति॑ पि॒तृभ्यः॑। नमः॑। अ॒स्तु॒। अ॒द्य। ये। पूर्वा॑सः। ये। उप॑रासः। ई॒युः। ये। पार्थि॑वे। रज॑सि। आ। निष॑त्ताः। निस॑त्ता॒ इति॒ निऽस॑त्ताः। ये। वा॒। नू॒नम्। सु॒वृ॒जना॒स्विति॑ सुऽवृ॒जना॑सु। वि॒क्षु॥६८॥

पदार्थः-**(इदम्)** प्रत्यक्षम् **(पितृभ्यः)** जनकादिभ्यः **(नमः)** सुसंस्कृतमन्नम् **(अस्तु)** **(अद्य)** इदानीम् **(ये)** **(पूर्वासः)** अस्मत्तो वृद्धाः **(ये)** **(उपरासः)** वानप्रस्थसंन्यासाश्रमाप्ता गृहाश्रमविषयभोगेभ्य उपरताः **(ईयुः)** प्राप्नुयुः **(ये)** **(पार्थिवे)** पृथिव्यां विदिते **(रजसि)** लोके **(आ)** **(निषत्ताः)** कृतनिवासाः **(ये)** **(वा)** **(नूनम्)** निश्चितम् **(सुवृजनासु)** शोभना वृजनाः गतयो यासां तासु **(विक्षु)** प्रजासु॥६८॥

अन्वयः-ये पितरः पूर्वासो य उपरास ईयुर्ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता वा नूनं ये सुवृजनासु विक्षु प्रयतन्ते, तेभ्यः पितृभ्योऽद्येदं नमोऽस्तु॥६८॥

भावार्थः-अस्मिन् संसारे ये प्रजाशोधका अस्मत्तो वरा विरक्ताश्रमं प्राप्ताः पित्रादयस्सन्ति, ते पुत्रादिभिर्मनुष्यैः सदा सेवनीया नोचेत् कियती हानिः॥६८॥

पदार्थः-**(ये)** जो पितर लोग **(पूर्वासः)** हम से विद्या वा अवस्था में वृद्ध हैं, **(ये)** जो **(उपरासः)** वानप्रस्थ वा संन्यासाश्रम को प्राप्त होके गृहाश्रम के विषयभोग से उदासीनचित्त हुए **(ईयुः)** प्राप्त हों, **(ये)** जो **(पार्थिवे)** पृथिवी पर विदित **(रजसि)** लोक में **(आ, निषत्ताः)** निवास किये हुए **(वा)** अथवा **(ये)** जो

(**नूनम्**) निश्चय कर के (**सुवृजनासु**) अच्छी गतिवाली (**विक्षु**) प्रजाओं में प्रयत्न करते हैं, उन (**पितृभ्यः**) पितरों के लिये (**अद्य**) आज (**इदम्**) यह (**नमः**) सुसंस्कृत अन्न (**अस्तु**) प्राप्त हो॥६८॥

भावार्थः-इस संसार में जो प्रजा के शोधने वाले हमसे श्रेष्ठ विरक्ताश्रम अर्थात् संन्यासाश्रम को प्राप्त पिता आदि हैं, वे पुत्रादि मनुष्यों को सदा सेवने योग्य हैं, जो ऐसा न करें तो कितनी हानि हो॥६८॥

अधेत्यस्य शङ्ख ऋषिः। पितरो देवताः। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अधा यथा नः पितरः परासः प्रत्नासोऽअग्नऽऋतमाशुषाणाः।
शुचीदयन् दीधितिमुक्थशासः क्षामा भिन्दन्तोऽअरुणीरप व्रन्॥६९॥

अध। यथा। नः। पितरः। परासः। प्रत्नासः। अग्ने। ऋतम्। आशुषाणाः। शुचि। इत्। अयन्। दीधितिम्। उक्थशासः। उक्थशास इत्युक्थऽशसः। क्षामा। भिन्दन्तः। अरुणीः। अप। व्रन्॥६९॥

पदार्थः-(**अध**) अथ। अत्र वर्णव्यत्ययेन थस्य धः। (**यथा**) (**नः**) अस्माकम् (**पितरः**) (**परासः**) प्रकृष्टाः (**प्रत्नासः**) प्राचीनाः (**अग्ने**) विद्वन् (**ऋतम्**) सत्यम्। (**आशुषाणाः**) प्राप्नुवन्तः (**शुचि**) पवित्रम् (**इत्**) एव (**अयन्**) प्राप्नुवन्ति (**दीधितिम्**) विद्याप्रकाशम् (**उक्थशासः**) य उक्थानि वक्तुं योग्यानि वचनानि शंसन्ति (**क्षामा**) निवासभूमिम्। अत्र विभक्तेर्लुक् (**भिन्दन्तः**) विदारयन्तः (**अरुणीः**) सुशीलतया प्रकाशमयाः स्त्रियः (**अप**) (**व्रन्**) दूरीकुर्वन्ति॥६९॥

अन्वयः-हे अग्ने विद्वन्! यथा नः परासः प्रत्नास उक्थशासः शुचि ऋतमाशुषाणाः पितरो दीधितिमरुणीः क्षामा चायन्नधाऽथाविद्यां भिन्दन्त इदावरणान्यपव्रँस्तांस्त्वं तथा सेवस्व॥६९॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। ये जनकादयो विद्यां प्रापय्याऽविद्यां निवर्तयन्ति, तेऽत्र सर्वैस्सत्कर्त्तव्याः सन्तु॥६९॥

पदार्थः-हे (**अग्ने**) विद्वन्! (**यथा**) जैसे (**नः**) हमारे (**परासः**) उत्तम (**प्रत्नासः**) प्राचीन (**उक्थशासः**) उत्तम शिक्षा करनेहारे (**शुचि**) पवित्र (**ऋतम्**) सत्य को (**आशुषाणाः**) अच्छे प्रकार प्राप्त हुए (**पितरः**) पिता आदि ज्ञानी जन (**दीधितिम्**) विद्या के प्रकाश (**अरुणीः**) सुशीलता से प्रकाश वाली स्त्रियों और (**क्षामा**) निवासभूमि को (**अयन्**) प्राप्त होते हैं, (**अध**) इस के अनन्तर अविद्या का (**भिन्दन्तः**) विदारण करते हुए (**इत्**) ही अन्धकाररूप आवरणों को (**अप, व्रन्**) दूर करते हैं, उनका तू वैसे सेवन कर॥६९॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो पिता आदि विद्या को प्राप्त कराके अविद्या का निवारण करते हैं, वे इस संसार में सब लोगों से सत्कार करने योग्य हों॥६९॥

उशन्त इत्यस्य शङ्ख ऋषिः। पितरो देवताः। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उशन्तस्त्वा नि धीमह्युशन्तः समिधीमहि।

उशन्नुशतऽआ वह पितॄन् हविषेऽअत्तवे॥७०॥

उशन्तः। त्वा। नि। धीमहि। उशन्तः। सम्। इधीमहि। उशन्। उशतः। आ। वह। पितॄन्। हविषे। अत्तवे॥७०॥

पदार्थः-(**उशन्तः**) कामयमानाः (**त्वा**) त्वाम् (**नि**) (**धीमहि**) धरेम। अत्र **बहुलं छन्दसि** [अष्टा०२.४.७३] इति शपो लुक् **छन्दस्युभयथा** [अष्टा०३.४.११७] इत्यार्द्धधातुकसंज्ञा **घुमास्था०** [अष्टा०६.४.६६] इत्यादिना ईत्वम्। (**उशन्तः**) (**सम्**) एकीभावे (**इधीमहि**) दीपयेम (**उशन्**) कामयमानः (**उशतः**) कामयमानान् (**आ**) (**वह**) प्राप्नुहि (**पितॄन्**) जनकादीन् (**हविषे**) हविर्दातुमर्हम्। अत्र व्यत्ययेन द्वितीयास्थाने चतुर्थी (**अत्तवे**) अत्तुं भोक्तुम्॥७०॥

अन्वयः-हे विद्यार्थिन् पुत्र वा! त्वामुशन्तो वयं त्वा निधीमह्युशन्तः सन्तः समिधीमहि। उशंस्त्वं हविषेऽत्तवे उशतोऽस्मान् पितॄनावह॥७०॥

भावार्थः-यथा विद्वांसो धीमतो जितेन्द्रियान् कृतज्ञान् परिश्रमिणो विचारशीलान् विद्यार्थिनो नित्यं कामयेरँस्तथा विद्यार्थिनोऽपीदृशानध्यापकान् विदुषः संसेव्य विद्वांसो भवन्तु॥७०॥

पदार्थः-हे विद्या की इच्छा करने वाले अथवा पुत्र तेरी (**उशन्तः**) कामना करते हुए हम लोग (**त्वा**) तुझ को (**नि, धीमहि**) विद्या का निधिरूप बनावें (**उशन्तः**) कामना करते हुए हम तुझ को (**समिधीमहि**) अच्छे प्रकार विद्या से प्रकाशित करें, (**उशन्**) कामना करता हुआ तू (**हविषे**) भोजन करने योग्य पदार्थ के (**अत्तवे**) खाने को (**उशतः**) कामना करते हुए हम (**पितॄन्**) पितरों को (**आ, वह**) अच्छे प्रकार प्राप्त हों॥७०॥

भावार्थः-जैसे विद्वान् लोग बुद्धिमान्, जितेन्द्रिय, कृतज्ञ, परिश्रमी, विचारशील विद्यार्थियों की नित्य कामना करें, वैसे विद्यार्थी लोग भी ऐसे उत्तम अध्यापक विद्वान् लोगों की सेवा करके विद्वान् होवें॥७०॥

अपामित्यस्य शङ्ख ऋषिः। इन्द्रो देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अथ सेनेशः कीदृशः स्यादित्याह॥

अब सेनापति कैसा हो, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अपां फेनेन नमुचेः शिरऽइन्द्रोदवर्त्तयः। विश्वा यदजयः स्पृधः॥७१॥

अपाम्। फेनेन। नमुचेः। शिरः। इन्द्र। उत्। अवर्त्तयः। विश्वाः। यत्। अजयः। स्पृधः॥७१॥

पदार्थः-(**अपाम्**) जलानाम् (**फेनेन**) वर्द्धनेन (**नमुचेः**) योऽपः स्वस्वरूपं न मुञ्चति तस्य मेघस्य (**शिरः**) घनाकारमुपरिभागम् (**इन्द्र**) सूर्य इव वर्त्तमान सेनेश (**उत्**) (**अवर्त्तयः**) ऊर्ध्वं वर्त्तय (**विश्वाः**) अखिलाः (**यत्**) याः (**अजयः**) जय (**स्पृधः**) याः स्पर्द्धन्ते ताः शत्रुसेनाः॥७१॥

अन्वयः-हे इन्द्र! यथा सूर्योऽपां फेनेन नमुचेर्मेघस्य शिरश्छिनत्ति, तथैव त्वं स्वकीयाः सेना उदवर्त्तयो यद्या विश्वाः स्पृधः सन्ति, ता अजयः॥७१॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा सूर्येणाच्छादितोऽपि मेघः पुनः पुनरुत्तिष्ठति, तथैव ते शत्रवोऽपि पुनः पुनरुत्थानं कुर्वन्ति, ते यावत् स्वं बलं न्यूनं परेषामधिकं च पश्यन्ति, तावच्छान्ता वर्त्तन्ते॥७१॥

पदार्थः-हे (**इन्द्र**) सूर्य्य के समान वर्त्तमान सेनापते! जैसे सूर्य (**अपाम्**) जलों की (**फेनेन**) वृद्धि से (**नमुचेः**) अपने स्वरूप को न छोड़ने वाले मेघ के (**शिरः**) घनाकार बद्दलों को काटता है, वैसे ही तू अपनी सेनाओं को (**उदवर्त्तयः**) उत्कृष्टता को प्राप्त कर (**यत्**) जो (**विश्वाः**) सब (**स्पृधः**) स्पर्द्धा करनेहारी शत्रुओं की सेना हैं, उन को (**अजयः**) जीत॥७१॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य से आच्छादित भी मेघ वारंवार उठता है, वैसे ही वे शत्रु भी वारंवार उत्थान करते हैं। वे जब तक अपने बल को न्यून और दूसरों का बल अधिक देखते हैं, तब तक शान्त रहते हैं॥७१॥

सोमो राजेत्यस्य शङ्ख ऋषिः। सोमो देवता। भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

के मुक्तिमाप्नुवन्तीत्याह॥

कौन पुरुष मुक्ति को प्राप्त होते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

सोमो राजामृतꣳ सुतऽऋजीषेणाजहान्मृत्युम्।

ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धसऽइन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु॥७२॥

सोमः। राजा। अमृतम्। सुतः। ऋजीषेण। अजहात्। मृत्युम्। ऋतेन। सत्यम्। इन्द्रियम्। विपानमिति विऽपानम्। शुक्रम्। अन्धसः। इन्द्रस्य। इन्द्रियम्। इदम्। पयः। अमृतम्। मधु॥७२॥

पदार्थः-(**सोमः**) ऐश्वर्यवान् प्रेरकः (**राजा**) देदीप्यमानः (**अमृतम्**) अमृतात्मक ब्रह्म ओषधेः सारं वा (**सुतः**) (**ऋजीषेण**) सरलभावेन (**अजहात्**) जह्यात् (**मृत्युम्**) (**ऋतेन**) सत्येन ब्रह्मणा (**सत्यम्**) सत्सु साधु (**इन्द्रियम्**) इन्द्रस्य जीवस्य लिङ्गम (**विपानम्**) विविधं पानं यस्मात् तत् (**शुक्रम्**) आशु कार्य्यकरम् (**अन्धसः**) अन्नस्य (**इन्द्रस्य**) परमैश्वर्यस्य (**इन्द्रियम्**) धनम् (**इदम्**) जलम्। **इदमित्युकदनामसु पठितम्॥** (निघं०१.१२) (**पयः**) दुग्धम् (**अमृतम्**) एतत्स्वरूपमानन्दम् (**मधु**) क्षौद्रम्॥७२॥

अन्वयः-य ऋतेनान्धसः सत्यं विपानं शुक्रमिन्द्रियमिन्द्रस्येन्द्रियमिदम्पयोऽमृतं मधु च सङ्गृह्णीयात्, सोऽमृतं प्राप्तः सन् सुतस्सोमो राजर्जीषेण मृत्युमजहात्॥७२॥

भावार्थः-ये सुशीलेन विद्वत्सङ्गात् सर्वाणि शुभलक्षणानि प्राप्नुवन्ति, ते मृत्युदुःखं हित्वा मोक्षसुखं गृह्णन्ति॥७२॥

पदार्थः-जो **(ऋतेन)** सत्य ब्रह्म के साथ **(अन्धसः)** सुसंस्कृत अन्नादि के सम्बन्धी **(सत्यम्)** विद्यमान द्रव्यों में उत्तम पदार्थ **(विपानम्)** विविध पान करने के साधन **(शुक्रम्)** शीघ्र कार्य करानेहारे **(इन्द्रियम्)** धन **(इन्द्रस्य)** परम ऐश्वर्य वाले जीव के **(इन्द्रियम्)** श्रोत्र आदि इन्द्रिय **(इदम्)** जल **(पयः)** दुग्ध **(अमृतम्)** अमृतरूप ब्रह्म वा ओषधि के सार और **(मधु)** सहत का संग्रह करे, सो **(अमृतम्)** अमृतरूप आनन्द को प्राप्त हुआ **(सुतः)** संस्कारयुक्त **(सोमः)** ऐश्वर्यवान् प्रेरक **(राजा)** न्यायविद्या से प्रकाशमान राजा **(ऋजीषेण)** सरल भाव से **(मृत्युम्)** मृत्यु को **(अजहात्)** छोड़ देवे॥७२॥

भावार्थः-जो उत्तम शील और विद्वानों के सङ्ग से सब शुभलक्षणों को प्राप्त होते हैं, वे मृत्यु के दुःख को छोड़कर मोक्षसुख को ग्रहण करते हैं॥७२॥

अद्भ्य इत्यस्य शङ्ख ऋषिः। अङ्गिरसो देवताः। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

के जना विज्ञानमाप्नुवन्तीत्याह॥

कौन पुरुष विज्ञान को प्राप्त होते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अ॒द्भ्यः क्षी॒रं व्य॑पिब॒त् क्रुङ्ङा॑ङ्गिर॒सो धि॒या।
ऋ॒तेन॑ स॒त्यमि॑न्द्रि॒यं वि॒पान॑ꣳशु॒क्रमन्ध॑स॒ऽइन्द्र॑स्येन्द्रि॒यमि॒दं पयो॒ऽमृतं॒ मधु॑॥७३॥

अ॒द्भ्य इत्य॒त्ऽभ्यः। क्षी॒रम्। वि। अ॒पि॒ब॒त्। क्रुङ्। आ॒ङ्गि॒र॒सः। धि॒या। ऋ॒तेन॑। स॒त्यम्। इ॒न्द्रि॒यम्। वि॒पान॒मिति॑ वि॒ऽपान॑म्। शु॒क्रम्। अन्ध॑सः। इन्द्र॑स्य। इ॒न्द्रि॒यम्। इ॒दम्। पयः॑। अ॒मृत॑म्। मधु॑॥७३॥

पदार्थः-**(अद्भ्यः)** जलेभ्यः **(क्षीरम्)** दुग्धम् **(वि) (अपिबत्)** पिबेत् **(क्रुङ्)** यथा पक्षी अल्पमल्पं पिबति तथा **(आङ्गिरसः)** अङ्गिरसो विदुषा कृतो विद्वान् **(धिया)** कर्मणा **(ऋतेन)** यथार्थेन योगाभ्यासेन **(सत्यम्)** अविनश्वरम् **(इन्द्रियम्)** दिव्यां वाचम् **(विपानम्)** विविधशब्दार्थसम्बन्धयुक्ताम् **(शुक्रम्)** पवित्राम् **(अन्धसः)** अन्नादियोगात् **(इन्द्रस्य)** परमैश्वर्ययुक्तस्य **(इन्द्रियम्)** दिव्यं श्रोत्रम् **(इदम्)** प्रत्यक्षम् **(पयः)** रसम् **(अमृतम्)** रोगनाशकम् **(मधु)** मधुरम्॥७३॥

अन्वयः-य आङ्गिरसो धियाऽद्भ्यः क्षीरं क्रुङ् व्यपिबत्, स ऋतेनेन्द्रस्यान्धसः सकाशादिदं सत्यं विपानं शुक्रमिन्द्रियं पयोऽमृतं मध्विन्द्रियं च प्राप्नुयात्॥७३॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये सत्याऽऽचरणैर्वैद्यकशास्त्रविधानात् युक्ताहारविहारं कुर्वन्ति, ते सत्यं बोधं विज्ञानञ्च यान्ति॥७३॥

पदार्थ:-जो **(आङ्गिरस:)** अङ्गिरा विद्वान् से किया हुआ विद्वान् **(धिया)** कर्म के साथ **(अद्भ्य:)** जलों से **(क्षीरम्)** दूध को **(क्रुङ्)** क्रुञ्चा पक्षी के समान थोड़ा-थोड़ा करके **(व्यपिबत्)** पीवे, वह **(ऋतेन)** यथार्थ योगाभ्यास से **(इन्द्रस्य)** ऐश्वर्य्ययुक्त जीव के **(अन्धस:)** अन्नादि के योग से **(इदम्)** इस प्रत्यक्ष **(सत्यम्)** सत्य पदार्थों में अविनाशी **(विपानम्)** विविध शब्दार्थ सम्बन्धयुक्त **(शुक्रम्)** पवित्र **(इन्द्रियम्)** दिव्यवाणी और **(पय:)** उत्तम रस **(अमृतम्)** रोगनाशक ओषधि **(मधु)** मधुरता और **(इन्द्रियम्)** दिव्य श्रोत्र को प्राप्त होवे॥७३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो सत्याचरणादि कर्मों करके वैद्यक शास्त्र के विधान से युक्ताहारविहार करते हैं, वे सत्य बोध और सत्य विज्ञान को प्राप्त होते हैं॥७३॥

सोममित्यस्य शङ्ख ऋषि:। सोमो देवता। त्रिष्टुप् छन्द:। धैवत: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

सोम॑म॒द्भ्यो व्य॑पिब॒च्छन्द॑सा ह॒ꣳस: शु॑चि॒षत्।

ऋ॒तेन॑ स॒त्यमि॑न्द्रि॒यं वि॒पान॑ꣳ शु॒क्रमन्ध॑स॒ऽइन्द्र॑स्येन्द्रि॒यमि॒दं पयो॒ऽमृतं॒ मधु॑॥७४॥

सोम॑म्। अ॒द्भ्य इत्य॒त्ऽभ्य:। वि। अ॒पि॒ब॒त्। छन्द॑सा। ह॒ꣳस:। शु॒चि॒षत्। शु॒चि॒सदिति॑ शु॒चि॒ऽसत्। ऋ॒तेन॑। स॒त्यम्। इ॒न्द्रि॒यम्। वि॒पान॒मिति॑ वि॒ऽपान॑म्। शु॒क्रम्। अन्ध॑स:। इन्द्र॑स्य। इ॒न्द्रि॒यम्। इ॒दम्। पय॑:। अ॒मृत॑म्। मधु॑॥७४॥

पदार्थ:-**(सोमम्)** सोमलतादिमहौषधिसारम् **(अद्भ्य:)** सुसंस्कृतेभ्यो जलेभ्य: **(वि)** **(अपिबत्)** **(छन्दसा)** स्वच्छन्दतया **(हंस:)** यो हन्ति दु:खानि स: **(शुचिषत्)** य: पवित्रेषु विद्वत्सु सीदति स: **(ऋतेन)** सत्येन वेदविज्ञानेन **(सत्यम्)** सत्सु परमेश्वरादिपदार्थेषु साधु **(इन्द्रियम्)** प्रज्ञानम् **(विपानम्)** विविधरक्षान्वितम् **(शुक्रम्)** शुद्धिकरम् **(अन्धस:)** सुसंस्कृतस्यान्नस्य **(इन्द्रस्य)** योगजन्यस्य परमैश्वर्यस्य **(इन्द्रियम्)** जीवेन जुष्टम् **(इदम्)** प्रत्यक्षप्रत्ययालम्बम् **(पय:)** उत्तमरसम् **(अमृतम्)** मोक्षम् **(मधु)** मधुविद्यासमन्वितम्॥७४॥

अन्वय:-य: शुचिषद्धंसो विवेकी जनश्छन्दसाऽद्भ्य: सोमं व्यपिबत्, स ऋतेनाऽन्धसो दोषनिवर्तकं शुक्रं विपानं सत्यमिन्द्रियमिन्द्रस्य प्रापकमिदं पयोऽमृतं मध्विन्द्रियं चाप्तुमर्हति, स एवाखिलानन्दं प्राप्नोति॥७४॥

भावार्थ:-ये युक्ताहारविहारा वेदानधीत्य योगमभ्यस्याऽविद्यादिक्लेशान्निवर्त्य योगसिद्धी: प्राप्य तदभिमानमपि विहाय कैवल्यमाप्नुवन्ति, ते ब्रह्मानन्दम्भुञ्जते॥७४॥

पदार्थ:-जो **(शुचिषत्)** पवित्र विद्वानों में बैठता है **(हंस:)** दु:ख का नाशक विवेकी जन **(छन्दसा)** स्वच्छन्दता क साथ **(अद्भ्य:)** उत्तम संस्कारयुक्त जलों से **(सोमम्)** सोमलतादि महौषधियों के सार रस

को **(व्यपिबत्)** अच्छे प्रकार पीता है, सो **(ऋतेन)** सत्य वेदविज्ञान से **(अन्धसः)** उत्तम संस्कार किये हुए अन्न के दोषनिवर्तक **(शुक्रम्)** शुद्धि करनेहारे **(विपानम्)** विविध रक्षा से युक्त **(सत्यम्)** परमेश्वरादि सत्य पदार्थों में उत्तम **(इन्द्रियम्)** विज्ञान रूप **(इन्द्रस्य)** योगविद्या से उत्पन्न हुए परम ऐश्वर्य की प्राप्ति करानेहारे **(इदम्)** इस प्रत्यक्ष प्रतीति के आश्रय **(पयः)** उत्तम ज्ञान रस वाले **(अमृतम्)** मोक्ष **(मधु)** विद्यायुक्त **(इन्द्रियम्)** जीव ने सेवन किये हुए सुख को प्राप्त होने को योग्य होता है, वही अखिल आनन्द को पाता है॥७४॥

भावार्थः-जो युक्ताहार-विहार करनेहारे वेदों को पढ़, योगाभ्यास कर, अविद्यादि क्लेशों को छुड़ा, योग की सिद्धियों को प्राप्त हो और उनके अभिमान को भी छोड़ के कैवल्य को प्राप्त होते हैं, वे ब्रह्मानन्द का भोग करते हैं॥७४॥

अन्नात् परिस्रुत इत्यस्य शङ्ख ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। भुरिगतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

कथं राज्यमुन्नेयमित्याह॥

कैसे राज्य की उन्नति करनी चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अन्ना॑त् परि॒स्रुतो॒ रसं॒ ब्रह्म॑णा॒ व्य॒पिबत् क्षत्रं पय॒ः सोमं॑ प्र॒जाप॑तिः।

ऋ॒तेन॑ स॒त्यमि॑न्द्रि॒यं वि॒पान॑ꣳ शु॒क्रमन्ध॑स॒ऽइन्द्र॑स्येन्द्रि॒यमि॒दं पयो॒ऽमृतं॒ मधु॑॥७५॥

अन्ना॑त्। प॒रि॒स्रुत॒ इति॑ परि॒ऽस्रुत॑ः। रस॑म्। ब्रह्म॑णा। वि। अ॒पि॒ब॒त्। क्ष॒त्रम्। पय॑ः। सोम॑म्। प्र॒जाप॑ति॒रिति॑ प्र॒जाऽप॑तिः। ऋ॒तेन॑। स॒त्यम्। इ॒न्द्रि॒यम्। वि॒पान॒मिति॑ वि॒ऽपान॑म्। शु॒क्रम्। अन्ध॑सः। इन्द्र॑स्य। इ॒न्द्रि॒यम्। इ॒दम्। पय॑ः। अ॒मृत॑म्। मधु॑॥७५॥

पदार्थः-**(अन्नात्)** यवादेः **(परिस्रुतः)** सर्वतः स्रुतः पक्वात् **(रसम्)** सारभूतम् **(ब्रह्मणा)** अधीतचतुर्वेदेन **(वि)** **(अपिबत्)** गृह्णीयात् **(क्षत्रम्)** क्षत्रियकुलम् **(पयः)** दुग्धमिव **(सोमम्)** ऐश्वर्ययुक्तम् **(प्रजापतिः)** प्रजापालकः सभेशो राजा **(ऋतेन)** विद्याविनययुक्तेन न्यायेन **(सत्यम्)** सत्सु व्यवहारेषु साधु **(इन्द्रियम्)** इन्द्रेणेश्वरेण दत्तम् **(विपानम्)** विविधं पानं रक्षणं यस्मात् तत् **(शुक्रम्)** वीर्यकरम् **(अन्धसः)** अन्धकाररूपस्याऽन्यायस्य निवर्तकम् **(इन्द्रस्य)** समग्रैश्वर्यप्रदस्य राज्यस्य **(इन्द्रियम्)** इन्द्रै राजभिर्जुष्टं न्यायाऽऽचरणम् **(इदम्)** **(पयः)** पातुमर्हम् **(अमृतम्)** अमृतमिव सुखप्रदम् **(मधु)** माधुर्यगुणोपेतम्॥७५॥

अन्वयः-यो ब्रह्मणा सह प्रजापतिः परिस्रुतोऽन्नान्निःसृतं पयः सोमं रसं क्षत्रं च व्यपिबत्, स ऋतेनाऽन्धसो निवर्तकं शुक्रं विपानं सत्यमिन्द्रियमिन्द्रस्य प्रापकमिदं पयोऽमृतं मध्विन्द्रियं च प्राप्नुयात्, स सदा सुखी भवेत्॥७५॥

भावार्थः-ये विद्वदनुमत्या राज्यं वर्द्धितुमिच्छन्ति, तेऽन्यायं निवर्तयितुं राज्यं वर्द्धयितुं च शक्नुवन्ति॥७५॥

पदार्थः-जो **(ब्रह्मणा)** चारों वेद पढ़े हुए विद्वान् के साथ **(प्रजापतिः)** प्रजा का रक्षक सभाध्यक्ष राजा **(परिस्रुतः)** सब ओर से पके हुए **(अन्नात्)** जौ आदि अन्न से निकले **(पयः)** दुग्ध के तुल्य **(सोमम्)** ऐश्वर्ययुक्त **(रसम्)** साररूप रस और **(क्षत्रम्)** क्षत्रियकुल को **(व्यपिबत्)** ग्रहण करे, सो **(ऋतेन)** विद्या तथा विनय से युक्त न्याय से **(अन्धसः)** अन्धकाररूप अन्याय के निवारक **(शुक्रम्)** पराक्रम करनेहारे **(विपानम्)** विविध रक्षण के हेतु **(सत्यम्)** सत्य व्यवहारों में उत्तम **(इन्द्रियम्)** इन्द्र नामक परमात्मा ने दिये हुए **(इन्द्रस्य)** समग्र ऐश्वर्य के देनेहारे राज्य की प्राप्ति करानेहारे **(इदम्)** इस प्रत्यक्ष **(पयः)** पीने के योग्य **(अमृतम्)** अमृत के तुल्य सुखदायक रस और **(मधु)** मधुरादि गुणयुक्त **(इन्द्रियम्)** राजादि पुरुषों ने सेवे हुए न्यायाचरण को प्राप्त होवे, यह सदा सुखी होवे॥७५॥

भावार्थः-जो विद्वानों की अनुमति से राज्य को बढ़ाने की इच्छा करते हैं, वे अन्याय की निवृत्ति करने और राज्य को बढ़ाने में समर्थ होते हैं॥७५॥

रेत इत्यस्य शङ्ख ऋषिः। इन्द्रो देवता। भुरिगतिशक्वरी छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

शरीरात् कथं वीर्य्यमुत्पद्यत इत्याह॥

शरीर से वीर्य्य कैसे उत्पन्न होता है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

रेतो मूत्रं विजहाति योनिं प्रविशदिन्द्रियम्।

गर्भो जरायुणावृतऽउल्बं जहाति जन्मना।

ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धसऽइन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु॥७६॥

रेतः। मूत्रम्। वि। जहाति। योनिम्। प्रविशदिति प्रऽविशत्। इन्द्रियम्। गर्भः। जरायुणा। आवृत इत्यावृतः। उल्वम्। जहाति। जन्मना। ऋतेन। सत्यम्। इन्द्रियम्। विपानमिति विऽपानम्। शुक्रम्। अन्धसः। इन्द्रस्य। इन्द्रियम्। इदम्। पयः। अमृतम्। मधु॥७६॥

पदार्थः-**(रेतः)** वीर्यम् **(मूत्रम्)** प्रस्रावः **(वि)** **(जहाति)** **(योनिम्)** जन्मस्थानम् **(प्रविशत्)** प्रवेशं कुर्वत् सत् **(इन्द्रियम्)** उपस्थः पुरुषलिङ्गम् **(गर्भः)** यो गृह्यते सः **(जरायुणा)** बहिराच्छादनेन **(आवृतः)** **(उल्वम्)** आवरणम् **(जहाति)** त्यजति **(जन्मना)** प्रादुर्भावेन **(ऋतेन)** बहिस्थेन वायुना सह **(सत्यम्)** वर्त्तमाने साधु **(इन्द्रियम्)** जिह्वादिकम् **(विपानम्)** विविधं पानं येन तत् **(शुक्रम्)** पवित्रम् **(अन्धसः)** आवरणस्य **(इन्द्रस्य)** जीवस्य **(इन्द्रियम्)** धनम् **(इदम्)** **(पयः)** रसवत् **(अमृतम्)** नाशरहितम् **(मधु)** येन मन्यते तत्॥७६॥

अन्वयः-इन्द्रियं योनिं प्रविशत् सद् रेतो विजहाति। अतोऽन्यत्र मूत्रं विजहाति तज्जरायुणावृतो गर्भो जायते जन्मनोल्वं जहाति, स ऋतेनान्धसो निवर्तकं विपानं शुक्रं सत्यमिन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मध्विन्द्रियं चैति॥७६॥

भावार्थः-प्राणिना यत् किञ्चिद् भुज्यते पीयते तत् परम्परया शुक्रं भूत्वा शरीरकारणं जायते, पुरुषस्योपस्थेन्द्रियं स्त्रीसंयोगेन शुक्रं मुञ्चति। अतोऽन्यत्र मूत्रं त्यजति, तेन ज्ञायते शरीरे मूत्रस्थानादन्यत्र रेतस्तिष्ठति तद्यस्मात् सर्वेभ्योऽङ्गेभ्य उत्पद्यते, तस्मात् सर्वाङ्गाकृतिर्वर्त्तते। अत एव यस्य शरीराद् वीर्यमुत्पद्यते, तदाकृतिरेव सन्तानो जायते॥७६॥

पदार्थः-(**इन्द्रियम्**) पुरुष का लिङ्ग इन्द्रिय (**योनिम्**) स्त्री की योनि में (**प्रविशत्**) प्रवेश करता हुआ (**रेतः**) वीर्य को (**वि, जहाति**) विशेष कर छोड़ता है, इससे अलग (**मूत्रम्**) प्रस्राव को छोड़ता है, वह वीर्य (**जरायुणा**) जरायु से (**आवृतः**) ढका हुआ (**गर्भः**) गर्भरूप होकर जन्मता है, (**जन्मना**) जन्म से (**उल्वम्**) आवरण को (**जहाति**) छोड़ता है, वह (**ऋतेन**) बाहर के वायु से (**अन्धसः**) आवरण को निवृत्त करनेहारे (**विपानम्**) विविध पान के साधन (**शुक्रम्**) पवित्र (**सत्यम्**) वर्त्तमान में उत्तम (**इन्द्रस्य**) जीव के सम्बन्धी (**इन्द्रियम्**) धन को और (**इदम्**) इस (**पयः**) रस के तुल्य (**अमृतम्**) नाशरहित (**मधु**) प्रत्यक्षादि ज्ञान के साधन (**इन्द्रियम्**) चक्षुरादि इन्द्रिय को प्राप्त होता है॥७६॥

भावार्थः-प्राणी जो कुछ खाता-पीता है, परम्परा से वीर्य होकर शरीर का कारण होता है। पुरुष का लिङ्ग इन्द्रिय स्त्री के संयोग से वीर्य छोड़ता और इससे अलग मूत्र को छोड़ता है, इससे जाना जाता है कि शरीर में मूत्र के स्थान से पृथक् स्थान में वीर्य रहता है, वह वीर्य्य जिस कारण सब अङ्गों की आकृति उसमें रहती है, इसी से जिसके शरीर से वीर्य उत्पन्न होता है, उसी की आकृति वाला सन्तान होता है॥७६॥

दृष्ट्वेत्यस्य शङ्ख ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। अतिशक्वरी छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अथ धर्माधर्मौ कीदृशावित्युपदिश्यते॥

अब धर्म-अधर्म कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत् सत्यानृते प्रजापतिः। अश्रद्धामनृतेऽदधाच्छ्रद्धाᳬं सत्ये प्रजापतिः। ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानᳬं शुक्रमन्धसऽइन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु॥७७॥

दृष्ट्वा। रूपेऽइति रूपे। वि। आ। अकरोत्। सत्यानृते इति सत्यऽअनृते। प्रजापतिरिति प्रजाऽपतिः। अश्रद्धाम्। अनृते। अदधात्। श्रद्धाम्। सत्ये। प्रजापतिरिति प्रजाऽपतिः। ऋतेन। सत्यम्। इन्द्रियम्। विपानमिति विऽपानम्। शुक्रम्। अन्धसः। इन्द्रस्य। इन्द्रियम्। इदम्। पयः। अमृतम्। मधु॥७७॥

पदार्थः-(**दृष्ट्वा**) संप्रेक्ष्य (**रूपे**) निरूपिते (**वि**) (**आ**) (**अकरोत्**) करोति (**सत्यानृते**) सत्यं चानृतं च ते (**प्रजापतिः**) प्रजायाः पालकः (**अश्रद्धाम्**) अप्रीतिम् (**अनृते**) अविद्यमानमृतं यस्मिँस्तस्मिन्नधर्मे (**अदधात्**) दधाति (**श्रद्धाम्**) श्रत् सत्यं दधाति यया ताम् (**सत्ये**) सत्सु भवे (**प्रजापतिः**) परमेश्वरः (**ऋतेन**) यथार्थेन (**सत्यम्**) (**इन्द्रियम्**) चित्तम् (**विपानम्**) विविधरक्षणम् (**शुक्रम्**) शुद्धिकरम् (**अन्धसः**)

अधर्माऽऽचरणस्य नाशकम् **(इन्द्रस्य)** परमैश्वर्यवतो धर्मस्य प्रापकम् **(इन्द्रियम्)** विज्ञानसाधकम् **(इदम्)** **(पयः)** सुखप्रदम् **(अमृतम्)** मृत्युरोगात् पृथक्करम् **(मधु)** मन्तव्यम्॥७७॥

अन्वयः-यः प्रजापतिर्ऋतेन स्वकीयेन सत्येन विज्ञानेन सत्यानृते रूपे दृष्ट्वा व्याकरोत्, योऽनृतेऽश्रद्धामदधात् सत्ये श्रद्धां च यश्चाऽन्धसो निवर्तकं शुक्रं विपानं सत्यमिन्द्रियं यश्चेन्द्रस्य प्रापकमिदं पयोऽमृतं मध्विन्द्रियं चाऽदधात्, स एव प्रजापतिः सर्वैरुपासनीयः॥७७॥

भावार्थः-ये मनुष्याः ईश्वराज्ञापितं धर्ममाचरन्ति, अधर्मं न सेवन्ते, ते सुखं लभन्ते। यदीश्वरो धर्माऽधर्मौ न ज्ञापयेत्, तर्ह्येतयोः स्वरूपविज्ञानं कस्यापि न स्यात्। य आत्मानुकूलमाचरणं कुर्वन्ति, प्रतिकूलं च त्यजन्ति, ते हि धर्माऽधर्मबोधयुक्ता भवन्ति, नेतरे॥७७॥

पदार्थः-जो **(प्रजापतिः)** प्रजा का रक्षक परमेश्वर **(ऋतेन)** यथार्थ अपने सत्य विज्ञान से **(सत्यानृते)** सत्य और झूठ जो **(रूपे)** निरूपण किये हुए हैं, उनको **(दृष्ट्वा)** ज्ञानदृष्टि से देखकर **(व्याकरोत्)** विविध प्रकार से उपदेश करता है। जो **(अनृते)** मिथ्याभाषणादि में **(अश्रद्धाम्)** अप्रीति को **(अदधात्)** धारण करता और **(सत्ये)** सत्य में **(श्रद्धाम्)** प्रीति को धारण कराता और जो **(अन्धसः)** अधर्माचरण के निवर्त्तक **(शुक्रम्)** शुद्धि करनेहारे **(विपानम्)** विविध रक्षा के साधन **(सत्यम्)** सत्यस्वरूप **(इन्द्रियम्)** चित्त को और जो **(इन्द्रस्य)** परमैश्वर्ययुक्त धर्म के प्रापक **(इदम्)** इस **(पयः)** अमृतरूप सुखदाता **(अमृतम्)** मृत्युरोगनिवारक **(मधु)** मानने योग्य **(इन्द्रियम्)** विज्ञान के साधन को धारण करे, वह **(प्रजापतिः)** परमेश्वर सब का उपासनीय देव है॥७७॥

भावार्थः-जो मनुष्य ईश्वर के आज्ञा किये धर्म का आचरण करते और निषेध किये हुए अधर्म का सेवन नहीं करते हैं, वे सुख को प्राप्त होते हैं। जो ईश्वर धर्म-अधर्म को न जनावे तो धर्माऽधर्म्म के स्वरूप का ज्ञान किसी को भी नहीं हो। जो आत्मा के अनुकूल आचरण करते और प्रतिकूलाचरण को छोड़ देते हैं, वे धर्माधर्म के बोध से युक्त होते हैं, इतर जन नहीं॥७७॥

वेदेनेत्यस्य शङ्ख ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ वेदज्ञाः कीदृशा इत्युपदिश्यते॥

अब वेद के जानने वाले कैसे होते हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है॥

वेदेन रूपे व्यपिबत् सुतासुतौ प्रजापतिः।

ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धसऽइन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु॥७८॥

वेदेन। रूपेऽइति रूपे। वि। अपिबत्। सुतासुतौ। प्रजापतिरिति प्रजाऽपतिः। ऋतेन। सत्यम्। इन्द्रियम्। विपानमिति विऽपानम्। शुक्रम्। अन्धसः। इन्द्रस्य। इन्द्रियम्। इदम्। पयः। अमृतम्। मधु॥७८॥

पदार्थः-(**वेदेन**) ईश्वरप्रकाशितेन वेदचतुष्टयेन (**रूपे**) सत्यानृतस्वरूपे (**वि**) (**अपिबत्**) गृह्णीयात् (**सुतासुतौ**) प्रेरितोप्रेरितौ धर्माधर्मौ (**प्रजापतिः**) प्रजापालको जीवः (**ऋतेन**) सत्यविज्ञानयुक्तेन (**सत्यम्**) सत्सु धर्माचरणेषु साधु (**इन्द्रियम्**) धनम् (**विपानम्**) विविधपाननिमित्तम् (**शुक्रम्**) पराक्रमप्रदम् (**अन्धसः**) अन्नादेः (**इन्द्रस्य**) ऐश्वर्ययुक्तस्य जीवस्य (**इन्द्रियम्**) इन्द्रेणेश्वरेण दत्तं ज्ञानम् (**इदम्**) जलादि (**पयः**) दुग्धादि (**अमृतम्**) मृत्युधर्मरहितं विज्ञानम् (**मधु**) माधुर्यगुणोपेतम्॥७८॥

अन्वयः-यः प्रजापतिर्ऋतेन वेदेन सुतासुतौ रूपे व्यपिबत्, स इन्द्रस्यान्धसो विपानं शुक्रं सत्यमिन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मध्विन्द्रियं चाप्नुयात्॥७८॥

भावार्थः-वेदविद एव धर्माधर्मौ ज्ञातुं धर्माचरणेनाऽधर्मत्यागेन च सुखिनो भवितुं शक्नुवन्ति॥७८॥

पदार्थः-जो (**प्रजापतिः**) प्रजा का पालन करने वाला जीव (**ऋतेन**) सत्य विज्ञानयुक्त (**वेदेन**) ईश्वरप्रकाशित चारों वेदों से (**सुतासुतौ**) प्रेरित अप्रेरित धर्माधर्म्म (**रूपे**) स्वरूपों को (**व्यपिबत्**) ग्रहण करे सो (**इन्द्रस्य**) ऐश्वर्य्ययुक्त जीव के (**अन्धसः**) अन्नादि के (**विपानम्**) विविध पान के निमित्त (**शुक्रम्**) पराक्रम देनेहारे (**सत्यम्**) सत्यधर्माचरण में उत्तम (**इन्द्रियम्**) धन और (**इदम्**) जलादि (**पयः**) दुग्धादि (**अमृतम्**) मृत्युधर्मरहित विज्ञान (**मधु**) मधुरादि गुणयुक्त पदार्थ और (**इन्द्रियम्**) ईश्वर के दिये हुए ज्ञान को प्राप्त होवे॥७८॥

भावार्थः-वेदों को जानने वाले ही धर्माधर्म्म के जानने तथा धर्म के आचरण और अधर्म के त्याग से सुखी होने को समर्थ होते हैं॥७८॥

दृष्ट्वेत्यस्य शङ्ख ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। भुरिगतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

कीदृग्जनो बलमुन्नेतुं शक्नोतीत्याह॥

कैसा जन बल बढ़ा सकता है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

दृष्ट्वा परिस्रुतो रसꣳ शुक्रेण शुक्रं व्यपिबत् पयः सोमं प्रजापतिः।
ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धसऽइन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु॥७९॥

दृष्ट्वा। परिस्रुत इति परिस्रुतः। रसम्। शुक्रेण। शुक्रम्। वि। अपिबत्। पयः। सोमम्। प्रजापतिरिति प्रजाऽपतिः। ऋतेन। सत्यम्। इन्द्रियम्। विपानमिति विऽपानम्। शुक्रम्। अन्धसः। इन्द्रस्य। इन्द्रियम्। इदम्। पयः। अमृतम्। मधु॥७९॥

पदार्थः-(**दृष्ट्वा**) पर्यालोच्य (**परिस्रुतः**) सर्वतः प्राप्तः (**रसम्**) विद्यानन्दम् (**शुक्रेण**) शुद्धेन भावेन (**शुक्रम्**) शीघ्रं सुखकरम् (**वि**) (**अपिबत्**) पिबेत् (**पयः**) पातुमर्हम् (**सोमम्**) महौषधिरसम् (**प्रजापतिः**) प्रजायाः स्वामी (**ऋतेन**) यथार्थेन (**सत्यम्**) सतीष्वोषधीषु भवम् (**इन्द्रियम्**) इन्द्रेण जुष्टम् (**विपानम्**)

विशिष्टेन पानेन युक्तम् (**शुक्रम्**) वीर्यवत् (**अन्धसः**) संस्कृतस्यान्नादेः (**इन्द्रस्य**) परमैश्वर्यस्य (**इन्द्रियम्**) इन्द्रेणेश्वरेण सृष्टम् (**इदम्**) (**पयः**) सुरसम् (**अमृतम्**) मृत्युनिमित्तरोगनिवारकम् (**मधु**) ज्ञातं सत्॥७९॥

अन्वयः-यः परिस्रुतः प्रजापतिर्ऋतेन सत्यं दृष्ट्वा शुक्रेण शुक्रं पयः सोमं रसं व्यपिबत्, सोऽन्धसः प्रापकं विपानं शुक्रमिन्द्रियमिन्द्रस्येदं पयोऽमृतं मध्विन्द्रियञ्च प्राप्नुयात्॥७९॥

भावार्थः-यो वैद्यकशास्त्ररीत्योत्तमानोषधीरसान्निर्माय यथाकालं यथायोग्यं पिबेत्, स रोगेभ्यः पृथग्भूत्वा शरीरात्मबलं वर्द्धयितुं शक्नुयात्॥७९॥

पदार्थः-जो (**परिस्रुतः**) सब ओर से प्राप्त (**प्रजापतिः**) प्रजा का स्वामी राजा आदि जन (**ऋतेन**) यथार्थ व्यवहार से (**सत्यम्**) वर्त्तमान उत्तम ओषधियों में उत्पन्न हुए रस को (**दृष्ट्वा**) विचारपूर्वक देख के (**शुक्रेण**) शुद्ध भाव से (**शुक्रम्**) शीघ्र सुख करने वाले (**पयः**) पान करने योग्य (**सोमम्**) महौषधि के रस को तथा (**रसम्**) विद्या के आनन्दरूप रस को (**व्यपिबत्**) विशेष करके पीता वा ग्रहण करता है, वह (**अन्धसः**) शुद्ध अन्नादि के प्रापक (**विपानम्**) विशेष पान से युक्त (**शुक्रम्**) वीर्य वाले (**इन्द्रियम्**) विद्वान् ने सेवे हुए इन्द्रिय को और (**इन्द्रस्य**) परम ऐश्वर्ययुक्त पुरुष के (**इदम्**) इस (**पयः**) अच्छे रस वाले (**अमृतम्**) मृत्युकारक रोग के निवारक (**मधु**) मधुरादि गुणयुक्त और (**इन्द्रियम्**) ईश्वर के बनाये हुए धन को प्राप्त होवे॥७९॥

भावार्थः-जो वैद्यक शास्त्र की रीति से उत्तम ओषधियों के रसों को बना, उचित समय जितना चाहिये उतना पीवे, वह रोगों से पृथक् होके शरीर और आत्मा के बल के बढ़ाने को समर्थ होता है॥७९॥

सीसेनेत्यस्य शङ्ख ऋषिः। सविता देवता। भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

विद्वद्वदन्यैराचरणीयमित्याह॥

विद्वानों के तुल्य अन्यों को भी आचरण करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

सीसे॑न॒ तन्त्रं॒ मन॑सा मनी॒षिण॑ऽऊर्णासू॒त्रेण॑ क॒वयो॑ वयन्ति।

अ॒श्विना॑ य॒ज्ञꣳ स॑वि॒ता सर॑स्व॒तीन्द्र॑स्य रू॒पं वरु॑णो भिष॒ज्यन्॥८०॥

सीसे॑न। तन्त्र॑म्। मन॑सा। म॒नी॒षिण॑ः। ऊ॒र्णा॒सू॒त्रेणेत्यू॑र्णाऽसू॒त्रेण॑। क॒वय॑ः। व॒य॒न्ति॒। अ॒श्विना॑। य॒ज्ञम्। स॒वि॒ता। सर॑स्वती। इन्द्र॑स्य। रू॒पम्। वरु॑णः। भि॒ष॒ज्यन्॥८०॥

पदार्थः-(**सीसेन**) सीसकधातुपात्रेणेव (**तन्त्रम्**) कुटुम्बधारणमिव तन्त्रकलानिर्माणम् (**मनसा**) अन्तःकरणेन (**मनीषिणः**) मेधाविनः (**ऊर्णासूत्रेण**) ऊर्णाकम्बलेनेव (**कवयः**) विद्वांसः (**वयन्ति**) निर्मिमते (**अश्विना**) विद्याव्याप्तावध्यापकोपदेशकौ (**यज्ञम्**) सङ्गन्तुमर्हं व्यवहारम् (**सविता**) विद्याव्यवहारेषु प्रेरकः (**सरस्वती**) प्रशस्तविज्ञानयुक्ता स्त्री (**इन्द्रस्य**) परमैश्वर्यस्य (**रूपम्**) स्वरूपम् (**वरुणः**) श्रेष्ठः (**भिषज्यन्**) चिकित्सुः सन्॥८०॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा कवयो मनीषिणः सीसेनोर्णासूत्रेण मनसा तन्त्रं वयन्ति, यथा सविता सरस्वत्यश्विना च यज्ञं कुरुतो यथा भिषज्यन् वरुण इन्द्रस्य रूपं विदधाति, तथा यूयमप्याचरत॥८०॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा विद्वांसोऽनेकैर्धातुभिः साधनविशेषैर्वस्त्रादीनि निर्माय कुटुम्बं पालयन्ति, यज्ञं च कृत्वौषधानि च दत्त्वाऽरोगयन्ति, शिल्पक्रियाभिः प्रयोजनानि साध्नुवन्ति, तथाऽन्यैरप्य-नुष्ठेयम्॥८०॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे **(कवयः)** विद्वान् **(मनीषिणः)** बुद्धिमान् लोग **(सीसेन)** सीसे के पात्र के समान कोमल **(ऊर्णासूत्रेण)** ऊन के सूत्र से कम्बल के तुल्य प्रयोजनसाधक **(मनसा)** अन्तःकरण से **(तन्त्रम्)** कुटुम्ब के धारण के समान यन्त्रकलाओं को **(वयन्ति)** रचते हैं, जैसे **(सविता)** अनेक विद्या-व्यवहारों में प्रेरणा करनेहारा पुरुष और **(सरस्वती)** उत्तम विद्यायुक्त स्त्री तथा **(अश्विना)** विद्याओं में व्याप्त पढ़ाने और उपदेश करनेहारे दो पुरुष **(यज्ञम्)** संगति=मेल करने योग्य व्यवहार को करते हैं, जैसे **(भिषज्यन्)** चिकित्सा की इच्छा करता हुआ **(वरुणः)** श्रेष्ठ पुरुष **(इन्द्रस्य)** परम ऐश्वर्य के **(रूपम्)** स्वरूप का विधान करता है, वैसे तुम भी किया करो॥८०॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विद्वान् लोग अनेक धातु और साधन विशेषों से वस्त्रादि को बना के अपने कुटुम्ब का पालन करते हैं तथा पदार्थों के मेलरूप यज्ञ को कर पथ्य ओषधिरूप पदार्थों को देके रोगों से छुड़ाते और शिल्प-क्रियाओं से प्रयोजनों को सिद्ध करते हैं, वैसे अन्य लोग भी किया करें॥८०॥

तदित्यस्य शङ्ख ऋषिः। वरुणो देवता। भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

के यज्ञमर्हन्तीत्याह॥

कौन पुरुष यज्ञ करने योग्य हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

तद॑स्य रू॒पम॒मृत॒ꣳ शची॑भिस्ति॒स्रो द॑धुर्दे॒वता॑ः सꣳररा॒णाः।

लोमा॑नि॒ शष्पै॒र्ब॑हु॒धा न तोक्म॑भि॒स्त्वग॑स्य मा॒ꣳसम॑भव॒न्न ला॒जाः॥८१॥

तत्। अ॒स्य॒। रू॒पम्। अ॒मृत॑म्। शची॑भिः। ति॒स्रः। द॒धुः। दे॒वता॑ः। स॒ꣳर॒रा॒णा इति॑ सम्ऽर॒रा॒णाः। लोमा॑नि। शष्पैः। ब॒हु॒धा। न। तोक्म॑भि॒रिति॒ तोक्म॑ऽभिः। त्वक्। अ॒स्य॒। मा॒ꣳसम्। अ॒भ॒व॒त्। न। ला॒जाः॥८१॥

पदार्थः-**(तत्)** पूर्वोक्तं सत्यादिकम् **(अस्य)** यज्ञस्य **(रूपम्)** स्वरूपम् **(अमृतम्)** नाशरहितम् **(शचीभिः)** प्रज्ञाभिः कर्मभिर्वा **(तिस्रः)** अध्यापकाऽध्येतृपरीक्षकाः **(दधुः)** दध्युः **(देवताः)** देवा विद्वांसः **(संरराणाः)** सम्यग्दातारः **(लोमानि)** रोमाणि **(शष्पैः)** दीर्घैर्लोमभिः **(बहुधा)** बहुप्रकारैः **(न)** **(तोक्मभिः)** बालकैः **(त्वक्)** **(अस्य)** **(मांसम्)** **(अभवत्)** भवेत् **(न)** निषेधार्थे **(लाजाः)**॥८१॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यं संरराणास्तिस्रो देवताः शचीभिर्बहुधा यं यज्ञं शष्पैः सह लोमानि च दधुस्तदस्यामृतं रूपं यूयं विजानीत। अयं तोक्मभिर्नानुष्ठेयः, अस्य मध्ये त्वङ्मांसं लाजा वा हविर्नाभवदिति च वित्त॥८१॥

भावार्थः-ये दीर्घसमयावधिजटिला ब्रह्मचारिणो वा पूर्णविद्या जितेन्द्रिया भद्रा जनाः सन्ति, त एव यजधातोरर्थं ज्ञातुमर्हन्ति, न बाला अविद्वांसो वा। स होमाख्यो यज्ञो यत्र मांसक्षाराम्लतिक्तगुणादिरहितम्, किन्तु सुगन्धिपुष्टमिष्टं रोगनाशकादिगुणसहितं हविः स्यात्, तदेव होतव्यं च स्यात्॥८१॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! **(संरराणाः)** अच्छे प्रकार देने **(तिस्रः)** पढ़ाने, पढ़ने और परीक्षा करनेहारे तीन **(देवताः)** विद्वान् लोग **(शचीभिः)** उत्तम प्रज्ञा और कर्मों के साथ **(बहुधा)** बहुत प्रकारों से जिस यज्ञ को और **(शष्पैः)** दीर्घ लोमों के साथ **(लोमानि)** लोमों को **(दधुः)** धारण करें और **(तत्)** उस **(अस्य)** इस यज्ञ के **(अमृतम्)** नाशरहित **(रूपम्)** रूप को तुम लोग जानो, यह **(तोक्मभिः)** बालकों से **(न)** नहीं अनुष्ठान करने योग्य और **(अस्य)** इस के मध्य **(त्वक्)** त्वचा **(मांसम्)** मांस और **(लाजाः)** भुंजा हुआ सूखा अन्न आदि होम करने योग्य **(न, अभवत्)** नहीं होता, इस को भी तुम जानो॥८१॥

भावार्थः-जो बहुत काल पर्य्यन्त डाढ़ी-मूंछ धारणपूर्वक ब्रह्मचारी अथवा पूर्ण विद्या वाले जितेन्द्रिय भद्रजन हैं, वे ही यज धातु के अर्थ को जानने योग्य अर्थात् यज्ञ करने योग्य होते हैं, अन्य बालबुद्धि अविद्वान् नहीं हो सकते। वह हवनरूप ऐसा है कि जिसमें मांस, क्षार, खट्टे से भिन्न पदार्थ वा तीखा आदि गुणरहित; सुगन्धित पुष्ट, मिष्ट तथा रोगनाशकादि गुणों के सहित हों, वही हवन करने योग्य होवे॥८१॥

तदित्यस्य शङ्ख ऋषिः। अश्विनौ देवते। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

विदुषीभिः किं कर्त्तव्यमित्याह॥

विदुषी स्त्रियों को क्या करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

तद॒श्विना॑ भि॒षजा॑ रु॒द्रव॑र्तनी॒ सर॑स्वती वयति॒ पेशो॒ऽअन्त॑रम्।

अस्थि॑ म॒ज्जान॒ं मास॑रैः कारोत॒रेण॒ दध॑तो॒ गवा॑ं त्व॒चि॥८२॥

तत्। अ॒श्विना॑। भि॒षजा॑। रु॒द्रव॑र्त्तनी॒ इति॑ रु॒द्रऽव॑र्त्तनी। सर॑स्वती। व॒य॒ति॒। पेश॑ः। अन्त॑रम्। अस्थि॑। म॒ज्जान॑म्। मास॑रैः। का॒रो॒त॒रेण॑। दध॑तः। गवा॑म्। त्व॒चि॥८२॥

पदार्थः-**(तत्)** पूर्वोक्तं हविः **(अश्विना)** विद्याव्यापिनौ **(भिषजा)** वैद्यकशास्त्रविदौ **(रुद्रवर्तनी)** रुद्रस्य प्राणस्य वर्तनिरिव वर्त्तनिर्मार्गो ययोस्तौ **(सरस्वती)** प्रशस्तज्ञानयुक्ता पत्नी **(वयति)** सन्तनोति **(पेशः)** **(अन्तरम्)** मध्यस्थम् **(अस्थि)** **(मज्जानम्)** **(मासरैः)** परिपक्वौषधिसंस्रावैः **(कारोतरेण)** कूपेनेव।

कारोतर इति कूपनामसु पठितम्॥ (निघं०३.२३) **(दधतः)** धरतः **(गवाम्)** पृथिव्यादीनाम् **(त्वचि)** उपरि भागे॥८२॥

अन्वयः-यत् सरस्वती वयति तत्पेशोऽस्थि मज्जानमन्तरं मासरैः कारोतरेण गवां त्वचि रुद्रवर्त्तनी भिषजाऽश्विना दधतो दध्याताम्॥८२॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा वैद्यकशास्त्रविदः पतयः शरीरारोग्यादिकं विधाय स्त्रियः सततं सुखयेयुस्तथैव विदुष्यः स्त्रियः स्वपतीन् रोगरहितान् कुर्युः॥८२॥

पदार्थः-जिसको **(सरस्वती)** श्रेष्ठ ज्ञानयुक्त पत्नी **(वयति)** उत्पन्न करती है, **(तत्)** उस **(पेशः)** सुन्दर स्वरूप **(अस्थि)** हाड़ **(मज्जानम्)** मज्जा **(अन्तरम्)** अन्तःस्थ को **(मासरैः)** परिपक्व ओषधि के सारों से **(कारोतरेण)** जैसे कूप से सब कामों को वैसे **(गवाम्)** पृथिव्यादि की **(त्वचि)** त्वचारूप उपरि भाग में **(रुद्रवर्तनी)** प्राण के मार्ग के समान मार्ग से युक्त **(भिषजा)** वैद्यक विद्या के जाननेहारे **(अश्विना)** विद्याओं में पूर्ण दो पुरुष **(दधतः)** धारण करें॥८२॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे वैद्यक शास्त्र के जाननेहारे पति लोग शरीर को आरोग्य करके स्त्रियों को निरन्तर सुखी करें, वैसे ही विदुषी स्त्री लोग भी अपने पतियों को रोगरहित किया करें॥८२॥

सरस्वतीत्यस्य शङ्ख ऋषिः। सरस्वती देवता। भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

विद्वद्वदितरैराचरणीयमित्याह॥

विद्वानों के समान अन्यों को आचरण करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

सर॑स्वती॒ मन॑सा पेश॒लं वसु॒ नास॑त्याभ्यां वयति दर्श॒तं वपुः॑।
रसं॑ परि॒स्रुता॒ न रोहि॑तं न॒ग्नहु॒र्धीर॒स्तस॑रं॒ न वेम॑॥८३॥

सर॑स्वती। मन॑सा। पे॒श॒लम्। वसु॑। नास॑त्याभ्याम्। व॒य॒ति॒। द॒र्श॒तम्। वपुः॑। रस॑म्। प॒रि॒स्रुतेति॑ परि॒ऽस्रुता॑। न। रोहि॑तम्। न॒ग्नहुः॑। धीरः॑। तस॑रम्। न। वेम॑॥८३॥

पदार्थः-**(सरस्वती)** प्रशस्तं सरो विज्ञानं विद्यते यस्याः सा **(मनसा)** विज्ञानेन **(पेशलम्)** उत्तमाङ्गवत् **(वसु)** द्रव्यम् **(नासत्याभ्याम्)** न विद्यते असत्यं ययोस्ताभ्यां मातापितृभ्याम् **(वयति)** विस्तृणाति **(दर्शतम्)** दर्शनीयम् **(वपुः)** शरीरमुदकं वा। **वपुरित्युदकनामसु पठितम्॥** (निघं०१.१२) **(रसम्)** आनन्दम् **(परिस्रुता)** परितः सर्वतः स्रुतम्। अत्र **सुपां सुलुग्०** [अष्टा०७.१.३९] इत्याकारादेशः **(न)** इव **(रोहितम्)** प्रादुर्भूतम् **(नग्नहुः)** नग्नं शुद्धं जुहोति गृह्णाति सः **(धीरः)** ध्यानशीलः **(तसरम्)** तस्यत्युपक्षयति दुःखानि येन तम् **(न)** इव **(वेम)** प्रजननम्॥८३॥

अन्वयः-सरस्वती मनसा वेम न यत् पेशलं दर्शतं वपुस्तसरं रोहितं परिस्रुता रसं न वसु वयति, नासत्याभ्यां नग्नहुर्धीरश्चाऽस्ति, तौ द्वौ वयं प्राप्नुयाम॥८३॥

भावार्थः-यथा विद्वांसावध्यापकोपदेशकौ सारं सारं वस्तु गृह्णन्ति, तथैव सर्वैः स्त्रीपुरुषैर्ग्राह्यम्॥८३॥

पदार्थः-(**सरस्वती**) उत्तम विज्ञानयुक्त स्त्री (**मनसा**) विज्ञान से (**वेम**) उत्पत्ति के (**न**) समान जिस (**पेशलम्**) उत्तम अङ्गों से युक्त (**दर्शतम्**) देखने योग्य (**वपुः**) शरीर वा जल को तथा (**तसरम्**) दुःखों के क्षय करनेहारे (**रोहितम्**) प्रकट हुए (**परिस्रुता**) सब ओर से प्राप्त (**रसम्**) आनन्द को देनेहारे रस के (**न**) समान (**वसु**) द्रव्य को (**वयति**) बनाती है, जिन (**नासत्याभ्याम्**) असत्य व्यवहार से रहित माता-पिता दोनों से (**नग्नहुः**) शुद्ध को ग्रहण करनेहारा (**धीरः**) ध्यानवान् तेरा पति है, उन दोनों को हम लोग प्राप्त होवें॥८३॥

भावार्थः-जैसे विद्वान् अध्यापक और उपदेशक सार-सार वस्तुओं का ग्रहण करते हैं, वैसे ही सब स्त्री-पुरुषों को ग्रहण करना योग्य है॥८३॥

पयसेत्यस्य शङ्ख ऋषिः। सोमो देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

स्वकुलं प्रशस्तं कर्त्तव्यमित्याह॥

अपने कुल को श्रेष्ठ करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

पयसा शुक्रममृतं जनित्रꣳ सुरया मूत्राज्जनयन्त रेतः।

अपामतिं दुर्मतिं बाधमानाऽऊवध्यं वातꣳ सब्वं तदारात्॥८४॥

पयसा। शुक्रम्। अमृतम्। जनित्रम्। सुरया। मूत्रात्। जनयन्त। रेतः। अप। अमतिम्। दुर्मतमिति दुःऽमतिम्। बाधमानाः। ऊवध्यम्। वातम्। सब्वम्। तत्। आरात्॥८४॥

पदार्थः-(**पयसा**) जलेन दुग्धेन वा (**शुक्रम्**) शुद्धम् (**अमृतम्**) अल्पमृत्युरोगनिवारकम् (**जनित्रम्**) अपत्यजन्मनिमित्तम् (**सुरया**) सोमलतादिरसेन (**मूत्रात्**) मूत्राधारेन्द्रियात् (**जनयन्त**) उत्पादयेयुः। अत्र लुङ्यडभावः (**रेतः**) वीर्यम् (**अप**) (**अमतिम्**) नष्टा मतिरमतिस्ताम् (**दुर्मतिम्**) दुष्टा चासौ मतिश्च ताम् (**बाधमानाः**) निवर्त्तयन्तः (**ऊवध्यम्**) ऊरू वध्ये येन तत्। अत्र छान्दसो वर्णलोपो वेति रुलोपः। (**वातम्**) प्राप्तम् (**सब्वम्**) समवेतम्। अत्र सप समवाये धातोरौणादिको वः प्रत्ययः (**तत्**) (**आरात्**) निकटात्॥८४॥

अन्वयः-ये विद्वांसोऽमतिं दुर्मतिमपबाधमानाः सन्तो यदूवध्यं वातं सब्वं पयसा सुरयोत्पन्नं मूत्रात् जनित्रममृतं शुक्रं रेतोऽसि तदाराज्जनयन्त, ते प्रजावन्तो भवन्ति॥८४॥

भावार्थः-ये दुर्गुणान् दुष्टसङ्गास्त्यक्त्वा व्यभिचाराद् दूरे निवसन्तो वीर्यं वर्द्धयित्वा सन्तानानुत्पादयन्ति, ते स्वकुलं प्रशस्तं कुर्वन्ति॥८४॥

पदार्थ:-जो विद्वान् लोग **(अमतिम्)** नष्टबुद्धि **(दुर्मतिम्)** वा दुष्टबुद्धि को **(अप, बाधमाना:)** हटाते हुए जो **(ऊवध्यम्)** ऐसा है कि जिससे परिआं अंगुल आदि काटे जायें अर्थात् बहुत नाश करने का साधन **(वातम्)** प्राप्त **(सब्वम्)** सब पदार्थों में सम्बन्ध वाला **(पयसा)** जल दुग्ध वा **(सुरया)** सोमलता आदि ओषधी के रस से उत्पन्न हुए **(मूत्रात्)** मूत्राधार इन्द्रिय से **(जनित्रम्)** सन्तानोत्पत्ति का निमित्त **(अमृतम्)** अल्पमृत्युरोगनिवारक **(शुक्रम्)** शुद्ध **(रेत:)** वीर्य है, **(तत्)** उस को **(आरात्)** समीप से **(जनयन्त)** उत्पन्न करते हैं, वे ही प्रजा वाले होते हैं॥८४॥

भावार्थ:-जो मनुष्य दुर्गुण और दुष्ट सङ्गों को छोड़ कर व्यभिचार से दूर रहते हुए वीर्य को बढ़ा के सन्तानों को उत्पन्न करते हैं, वे अपने कुल को प्रशंसित करते हैं॥८४॥

इन्द्र इत्यस्य शङ्ख ऋषि:। सविता देवता। भुरिक् त्रिष्टुप् छन्द:। धैवत: स्वर:॥

मनुष्यै रोगात् पृथक् भवितव्यमित्याह॥

मनुष्यों को रोग से पृथक् होना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

इन्द्र॑: सु॒त्रामा॒ हृद॑येन स॒त्यं पु॑रो॒डशे॑न सवि॒ता ज॑जान।
यकृ॑त् क्लो॒मानं॒ वरु॑णो भिषज्यन् मत॑स्ने वाय॒व्यै॒र्न मि॑नाति पि॒त्तम्॥८५॥

इन्द्र॑:। सु॒त्रामेति॑ सु॒ऽत्रामा॑। हृद॑येन। स॒त्यम्। पु॒रो॒डाशे॑न। स॒वि॒ता। ज॒जा॒न॒। यकृ॑त्। क्लो॒मान॑म्। वरु॑ण:। भि॒ष॒ज्यन्। मत॑स्ने॒ इति॒ मत॑ऽस्ने। वा॒य॒व्यै॒:। न। मि॒ना॒ति॒। पि॒त्तम्॥८५॥

पदार्थ:-**(इन्द्र:)** रोगविच्छेदक: **(सुत्रामा)** य: सुष्ठु त्रायते रोगाच्छरीरं स: **(हृदयेन)** स्वात्मना **(सत्यम्)** यथार्थम्। **(पुरोडाशेन)** सुसंस्कृतेनान्नेन **(सविता)** प्रेरक: **(जजान)** जनयति। अत्र व्यत्ययेन परस्मैपदम्। **(यकृत्)** हृदयाद् दक्षिणे स्थितं मांसपिण्डम् **(क्लोमानम्)** कण्ठनाडिकाम् **(वरुण:)** श्रेष्ठ: **(भिषज्यन्)** चिकित्सां कुर्वन् **(मतस्ने)** हृदयोभयपार्श्वस्थे अस्थिनी **(वायव्यै:)** वायुषु साधुभिर्मार्गै: **(न)** **(मिनाति)** हिनस्ति **(पित्तम्)**॥८५॥

अन्वय:-हे मनुष्या:! यथा सुत्रामा सवितेन्द्रो वरुणो विद्वान् भिषज्यन् सन् हृदयेन सत्यं जजान, पुरोडाशेन वायव्यैश्च यकृत् क्लोमानं मतस्ने पित्तं च न मिनाति, तथैतत्सर्वं यूयं मा हिंस्त॥८५॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। सद्वैद्या: स्वयमरोगा भूत्वान्येषां रोगं विज्ञायारोगान् सततं कुर्यु:॥८५॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! जैसे **(सुत्रामा)** अच्छे प्रकार रोग से शरीर की रक्षा करनेहारा **(सविता)** प्रेरक **(इन्द्र:)** रोगनाशक **(वरुण:)** श्रेष्ठ विद्वान् **(भिषज्यन्)** चिकित्सा करता हुआ **(हृदयेन)** अपने आत्मा से **(सत्यम्)** यथार्थ भाव को **(जजान)** प्रसिद्ध करता और **(पुरोडाशेन)** अच्छे प्रकार संस्कार किये हुए अन्न और **(वायव्यै:)** पवनों में उत्तम अर्थात् सुख देने वाले मार्गों से **(यकृत्)** जो हृदय से दाहिनी ओर में स्थित

मांसपिंड (**क्लोमानम्**) कण्ठनाड़ी (**मतस्ने**) हृदय के दोनों ओर के हाड़ों और (**पित्तम्**) पित्त को (**न, मिनाति**) नष्ट नहीं करता, वैसे इन सबों की हिंसा तुम भी मत करो॥८५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। सद्वैद्य लोग स्वयं रोगरहित होकर अन्यों के शरीर में हुए रोग को जानकर रोगरहित निरन्तर किया करें॥८५॥

आन्त्राणीत्यस्य शङ्ख ऋषिः। सविता देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आन्त्राणि स्थालीर्मधु पिन्वमाना गुदाः पात्राणि सुदुघा न धेनुः।
श्येनस्य पत्रं न प्लीहा शचीभिरासन्दी नाभिरुदरं न माता॥८६॥

आन्त्राणि। स्थालीः। मधु। पिन्वमानाः। गुदाः। पात्राणि। सुदुघेति सुऽदुघा। न। धेनुः। श्येनस्य। पत्रम्। न। प्लीहा। शचीभिः। आसन्दीत्याऽसन्दी। नाभिः। उदरम्। न। माता॥८६॥

पदार्थः-(**आन्त्राणि**) उदरस्था अन्नपाकाधारा नाडीः (**स्थालीः**) यासु पच्यन्तेऽन्नानि (**मधु**) मधुरगुणान्वितमन्नम् (**पिन्वमानाः**) सेवमानाः प्रीतिहेतवः। पिवि सेवने च। (**गुदाः**) गुह्येन्द्रियाणि (**पात्राणि**) यैः पिबन्ति तानि (**सुदुघा**) सुष्ठु सुखेन दुह्यत इति। दुहः कप् घश्चेति कर्मणि कप्। (**न**) इव (**धेनुः**) गौः (**श्येनस्य**) (**पत्रम्**) पक्षः (**न**) इव (**प्लीहा**) (**शचीभिः**) प्रज्ञाकर्मभिः (**आसन्दी**) समन्तात् रसप्रापिका (**नाभिः**) शरीरमध्यस्था (**उदरम्**) (**न**) इव (**माता**)॥८६॥

अन्वयः-युक्तिमता पुरुषेण शचीभिः स्थालीरग्नेरुपरि निधायौषधिपाकान् विधाय, तत्र मधु प्रक्षिप्य, भुक्त्वाऽऽन्त्राणि पिन्वमाना गुदाः पात्राणि भोजनार्थानि सुदुघा धेनुर्न प्लीहा श्येनस्य पत्रं न माता नासन्दी नाभिरुदरं पुष्येत्॥८६॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। ये मनुष्या उत्तमैः सुसंस्कृतैरन्नै रसैः शरीरमरोगीकृत्य प्रयतन्ते, तेऽभीष्टं सुखं लभन्ते॥८६॥

पदार्थः-युक्ति वाले पुरुष को योग्य है कि (**शचीभिः**) उत्तम बुद्धि और कर्मों से (**स्थालीः**) दाल आदि पकाने के बर्त्तनों को अग्नि के ऊपर धर ओषधियों का पाक बना (**मधु**) उसमें सहत डाल भोजन करके (**आन्त्राणि**) उदरस्थ अन्न पकाने वाली नाड़ियों को (**पिन्वमानाः**) सेवन करते हुए प्रीति के हेतु (**गुदाः**) गुदेन्द्रियादि तथा (**पात्राणि**) जिनसे खाया-पिया जाय, उन पात्रों को (**सुदुघा**) दुग्धादि से कामना सिद्ध करने वाली (**धेनुः**) गाय के (**न**) समान (**प्लीहा**) रक्तशोधक लोहू का पिण्ड (**श्येनस्य**) श्येन पक्षी के तथा (**पत्रम्**) पांख के (**न**) समान (**माता**) और माता के (**न**) तुल्य (**आसन्दी**) सब ओर से रस प्राप्त करानेहारी (**नाभिः**) नाभि नाड़ी (**उदरम्**) उदर को पुष्ट करती है॥८६॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो मनुष्य लोग उत्तम संस्कार किये हुए उत्तम अन्न और रसों से शरीर को रोगरहित करके प्रयत्न करते हैं, वे अभीष्ट सुख को प्राप्त होते हैं॥८६॥

कुम्भ इत्यस्य शङ्ख ऋषिः। पितरो देवताः। भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

दम्पती कीदृशावित्याह॥

स्त्री-पुरुष कैसे हों, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

कुम्भो व॒नि॒ष्ठुर्ज॑नि॒ता शची॑भि॒र्यस्मि॑न्न॒ग्रे योन्यां॒ गर्भो॑ऽअ॒न्तः।

प्ला॒शिर्व्य॑क्तः श॒तधा॑र॒ऽउत्सो॑ दु॒हे न कु॒म्भी स्व॒धां पि॒तृभ्यः॑॥८७॥

कु॒म्भः। व॒नि॒ष्ठुः। ज॒नि॒ता। शची॑भिः। यस्मि॑न्। अग्रे॑। योन्या॑म्। गर्भः॑। अ॒न्तरित्य॒न्तः। प्ला॒शिः। व्य॑क्त॒ इति॑ वि॒ऽअ॑क्तः। श॒तधा॑र॒ इति॑ श॒तऽधा॑रः। उत्सः॑। दु॒हे। न। कु॒म्भी। स्व॒धाम्। पि॒तृभ्य॒ इति॑ पि॒तृऽभ्यः॑॥८७॥

पदार्थः-(**कुम्भः**) कलश इव वीर्यादिधातुभिः पूर्णः (**वनिष्ठुः**) सम्भाजी। अत्र वन् सम्भक्तावित्यस्मा-दौणादिक इष्ठुप् प्रत्ययः। (**जनिता**) उत्पादकः (**शचीभिः**) कर्मभिः (**यस्मिन्**) (**अग्रे**) पुरा (**योन्याम्**) गर्भाधारे (**गर्भः**) (**अन्तः**) अभ्यन्तरे (**प्लाशिः**) यः प्रकृष्टतयाऽश्नुते सः (**व्यक्तः**) विविधाभिः पुष्टिभिः प्रसिद्धः (**शतधारः**) शतशो धारा वाचो यस्यः स (**उत्सः**) उन्दन्ति यस्मात् स कूप इव (**दुहे**) प्रपूर्त्तिकरे व्यवहारे (**न**) इव (**कुम्भी**) धान्याधारा (**स्वधाम्**) अन्नम् (**पितृभ्यः**) पालकेभ्यः॥८७॥

अन्वयः-यः कुम्भो वनिष्ठुर्जनिता प्लाशिर्व्यक्तः शचीभिः शतधार उत्सो दुहे न पुरुषो या च कुम्भीव स्त्री तौ पितृभ्यः स्वधां प्रदद्याताम्, यस्मिन्नग्रे योन्यामन्तर्गर्भो धीयते, तं सततं रक्षेताम्॥८७॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। स्त्रीपुरुषौ वीर्यवन्तौ पुरुषार्थिनौ भूत्वा अन्नादिभिर्विद्वांसं सन्तोष्य धर्मेण सन्तानोत्पत्तिं कुर्याताम्॥८७॥

पदार्थः-जो (**कुम्भः**) कलश के समान वीर्यादि धातुओं से पूर्ण (**वनिष्ठुः**) सम विभाग हरनेहारा (**जनिता**) सन्तानों का उत्पादक (**प्लाशिः**) अच्छे प्रकार भोजन का करने वाला (**व्यक्तः**) विविध पुष्टियों से प्रसिद्ध (**शचीभिः**) उत्तम कर्मों करके (**शतधारः**) सैकड़ों वाणियों से युक्त (**उत्सः**) जिससे गीला किया जाता है, उस कूप के समान (**दुहे**) पूर्त्ति करनेहारे व्यवहार में स्थित के (**न**) समान पुरुष और जो (**कुम्भी**) कुम्भी के सदृश स्त्री है, इन दोनों को योग्य है कि (**पितृभ्यः**) पितरों को (**स्वधाम्**) अन्न देवें और (**यस्मिन्**) जिस (**अग्रे**) नवीन (**योन्याम्**) गर्भाशय के (**अन्तः**) बीच (**गर्भः**) गर्भ धारण किया जाता, उसकी निरन्तर रक्षा करें॥८७॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। स्त्री और पुरुष वीर्य वाले पुरुषार्थी होकर अन्नादि से विद्वान् को प्रसन्न कर, धर्म से सन्तानों की उत्पत्ति करें॥८७॥

मुखमित्यस्य शङ्ख ऋषिः। सरस्वती देवता। स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

मुखꣳ सद॑स्य शिर॒ऽइत् सते॑न जि॒ह्वा प॒वित्र॑म॒श्विना॒सन्त्सर॑स्वती।

चप्यं॒ न पा॒युर्भि॒षग॑स्य वालो॑ व॒स्तिर्न शेपो॒ हर॑सा तर॒स्वी॥८८॥

मुख॑म्। सत्। अ॒स्य॒। शिरः॑। इत्। सते॑न। जि॒ह्वा। प॒वित्र॑म्। अ॒श्विना॑। आ॒सन्। सर॑स्वती। चप्य॑म्। न। पा॒युः। भि॒षक्। अ॒स्य॒। वालः॑। व॒स्तिः। न। शेपः॑। हर॑सा। त॒र॒स्वी॥८८॥

पदार्थः-(**मुखम्**) (**सत्**) (**अस्य**) पुरुषस्य (**शिरः**) (**इत्**) एव (**सतेन**) उत्तमावयवैर्विभक्तेन शिरसा। **सत् इत्युत्तरनामसु पठितम्॥** (निघं०३.२९) (**जिह्वा**) जुहोति गृह्णाति यया सा (**पवित्रम्**) शुद्धम् (**अश्विना**) गृहाश्रमव्यवहारव्यापिनौ (**आसन्**) आस्ये (**सरस्वती**) वाणीव ज्ञानवती स्त्री (**चप्यम्**) चपेषु सान्त्वनेषु भवम्। चप सान्त्वने धातोरेच् ततो यत्। (**न**) इव (**पायुः**) रक्षकः (**भिषक्**) वैद्यः (**अस्य**) (**वालः**) बालकः (**वस्तिः**) वासहेतुः (**न**) इव (**शेपः**) उपस्थेन्द्रियम् (**हरसा**) हरति येन तेन बलेन (**तरस्वी**) प्रशस्तं तरो विद्यते यस्य सः॥८८॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा जिह्वा सरस्वती स्त्र्यस्य पत्युः सतेन शिरसा सह शिरः कुर्यादासन् पवित्रं मुखं कुर्यादेवमश्विना द्वाविद्वर्त्तेताम्, यदस्य पायुर्भिषग् वालो न वस्तिः शेपो हरसा तरस्वी भवति, स चप्यन्न सद् भवेत्, तत्सर्वं यथावत्कुर्यात्॥८८॥

भावार्थः-स्त्रीपुरुषौ गर्भाधानसमये परस्पराङ्गव्यापिनौ भूत्वा मुखेन मुखं चक्षुषा चक्षुः मनसा मनः शरीरेण शरीरं चानुसंधाय गर्भं दध्याताम्, यतः कुरूपं वक्राङ्गं वाऽपत्यन्न स्यात्॥८८॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे (**जिह्वा**) जिससे रस ग्रहण किया जाता है, वह (**सरस्वती**) वाणी के समान स्त्री (**अस्य**) इस पति के (**सतेन**) सुन्दर अवयवों से विभक्त शिर के साथ (**शिरः**) शिर करे तथा (**आसन्**) मुख के समीप (**पवित्रम्**) पवित्र (**मुखम्**) मुख करे। इसी प्रकार (**अश्विना**) गृहाश्रम के व्यवहार में व्याप्त स्त्री-पुरुष दोनों (**इत्**) ही वर्त्तें तथा जो (**अस्य**) इस रोग से (**पायुः**) रक्षक (**भिषक्**) वैद्य और (**वालः**) बालक के (**न**) समान (**वस्तिः**) वास करने का हेतु पुरुष (**शेपः**) उपस्थेन्द्रिय को (**हरसा**) बल से (**तरस्वी**) करनेहारा होता है, वह (**चप्यम्**) शान्ति करने के (**न**) समान (**सत्**) वर्त्तमान में सन्तानोत्पत्ति का हेतु होवे, उस सब को यथावत् करे॥८८॥

भावार्थः-स्त्री-पुरुष गर्भाधान के समय में परस्पर मिल कर प्रेम से पूरित होकर मुख के साथ मुख, आंख के साथ आंख, मन के साथ मन, शरीर के साथ शरीर का अनुसंधान करके गर्भ को धारण करें, जिससे कुरूप वा वक्राङ्ग सन्तान न होवे॥८८॥

अश्विभ्यामित्यस्य शङ्ख ऋषिः। अश्विनौ देवते। भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अश्विभ्यां चक्षुरमृतं ग्रहाभ्यां छागेन तेजो हविषा शृतेन।

पक्ष्माणि गोधूमैः कुवलैरुतानि पेशो न शुक्रमसितं वसाते॥८९॥

अश्विभ्यामित्यश्विऽभ्याम्। चक्षुः। अमृतम्। ग्रहाभ्याम्। छागेन। तेजः। हविषा। शृतेन। पक्ष्माणि। गोधूमैः। कुवलैः। उतानि। पेशः। न। शुक्रम्। असितम्। वसातेऽइति वसाते॥८९॥

पदार्थः-(**अश्विभ्याम्**) बहुभोजिभ्यां स्त्रीपुरुषाभ्याम् (**चक्षुः**) नेत्रम् (**अमृतम्**) अमृतात्मकम् (**ग्रहाभ्याम्**) यौ गृह्णीतस्ताभ्याम् (**छागेन**) अजादिदुग्धेन (**तेजः**) प्रकाशयुक्तम् (**हविषा**) आदातुमर्हेण (**शृतेन**) परिपक्वेन (**पक्ष्माणि**) परिगृहीतान्यन्यानि (**गोधूमैः**) (**कुवलैः**) सुशब्दैः (**उतानि**) संततानि वस्त्राणि (**पेशः**) रूपम् (**न**) इव (**शुक्रम्**) शुद्धम् (**असितम्**) कृष्णम् (**वसाते**) वसेताम्॥८९॥

अन्वयः-यथा ग्रहाभ्यामश्विभ्यां सह कौचिद्विद्वांसौ स्त्रीपुरुषावुतानि पक्ष्माणि वसाते, यथा वा भवन्तोऽपि छागेनाऽजादिदुग्धेन शृतेन हविषा सह तेजोऽमृतं चक्षुः कुवलैर्गोधूमैः शुक्रमसितं पेशो न स्वीक्रियेरंस्तथाऽन्ये गृहस्था अपि कुर्य्युः॥८९॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। यथा कृतक्रियौ स्त्रीपुरुषौ प्रियदर्शनौ प्रियभोजिनौ गृहीतपूर्णसामग्रीकौ भवतस्तथान्ये गृहस्था अपि भवेयुः॥८९॥

पदार्थः-जैसे (**ग्रहाभ्याम्**) ग्रहण करनेहारे (**अश्विभ्याम्**) बहुभोजी स्त्री-पुरुषों के साथ कोई भी विदुषी स्त्री और विद्वान् पुरुष (**उतानि**) विने हुए विस्तृत वस्त्र और (**पक्ष्माणि**) ग्रहण किये हुए अन्य रेशम और द्विशाले आदि को (**वसाते**) ओढ़ें, पहनें वा जैसे आप भी (**छागेन**) अजा आदि के दूध के साथ और (**शृतेन**) पकाये हुए (**हविषा**) ग्रहण करने योग्य होम के पदार्थ के साथ (**तेजः**) प्रकाशयुक्त (**अमृतम्**) अमृतस्वरूप (**चक्षुः**) नेत्र को (**कुवलैः**) अच्छे शब्दों और (**गोधूमैः**) गेहूं के साथ (**शुक्रम्**) शुद्ध (**असितम्**) काले (**पेशः**) रूप के (**न**) समान स्वीकार करें, वैसे अन्य गृहस्थ भी करें॥८९॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे क्रिया किये हुए स्त्री-पुरुष प्रियदर्शन, प्रियभोजनशील, पूर्णसामग्री को ग्रहण करनेहारे होते हैं, वैसे अन्य गृहस्थ भी होवें॥८९॥

अविरित्यस्य शङ्ख ऋषिः। सरस्वती देवता। भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अथ योगिकृत्यमाह॥

अब योगी का कर्त्तव्य अगले मन्त्र में कहते हैं॥

अविर्न मेषो नसि वीर्याय प्राणस्य पन्थाऽअमृतो ग्रहाभ्याम्।

सरस्वत्युपवाकैर्व्यानं नस्यानि बर्हिर्बदरैर्जजान॥९०॥

अविः। न। मेषः। नसि। वीर्याय। प्राणस्य। पन्थाः। अमृतः। ग्रहाभ्याम्। सरस्वती। उपवाकैरित्युपऽवाकैः। व्यानमिति विऽआनम्। नस्यानि। बर्हिः। बदरैः। जजान॥९०॥

पदार्थः-(**अविः**) योऽवति रक्षति सः (**न**) इव (**मेषः**) यो मिषति स्पर्द्धते सः (**नसि**) नासिकायाम् (**वीर्याय**) योगबलाय (**प्राणस्य**) (**पन्थाः**) मार्गः (**अमृतः**) मृत्युधर्मरहितः (**ग्रहाभ्याम्**) यौ गृह्णीतस्ताभ्याम् (**सरस्वती**) प्रशस्तविज्ञानयुक्ता स्त्री (**उपवाकैः**) उपयन्ति यैस्तैः (**व्यानम्**) विविधमनन्ति येन तम् (**नस्यानि**) नासिकायै हितानि (**बर्हिः**) वर्द्धनम् (**बदरैः**) बदरीफलैः (**जजान**) जनयति॥९०॥

अन्वयः-यथा ग्रहाभ्यां सह सरस्वती बदरैरुपवाकैर्जजान, तथा वीर्याय नसि प्राणस्याऽमृतः पन्था अविर्न मेषो व्यानं नस्यानि बर्हिश्च उपयुज्यते॥९०॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। यथा धार्मिको न्यायाधीशः प्रजा रक्षति, तथैव प्राणायामादिभिः संसाधिताः प्राणा योगिनं सर्वेभ्यो दुःखेभ्यस्त्रायन्ते, यथा विदुषी माता विद्यासुशिक्षाभ्यां स्वसन्तानान् वर्द्धयति, तथाऽनुष्ठितानि योगकर्माणि योगिनो वर्द्धयन्ति॥९०॥

पदार्थः-जैसे (**ग्रहाभ्याम्**) ग्रहण करनेहारों के साथ (**सरस्वती**) प्रशस्त विज्ञानयुक्त स्त्री (**बदरैः**) बेरों के समान (**उपवाकैः**) सामीप्यभाव किया जाय, जिनसे उन कर्मों से (**जजान**) उत्पत्ति करती है, वैसे जो (**वीर्याय**) वीर्य के लिये (**नसि**) नासिका में (**प्राणस्य**) प्राण का (**अमृतः**) नित्य (**पन्थाः**) मार्ग वा (**मेषः**) दूसरे से स्पर्द्धा करने वाला और (**अविः**) जो रक्षा करता है, उसके (**न**) समान (**व्यानम्**) शरीर में व्याप्त वायु (**नस्यानि**) नासिका के हितकारक धातु और (**बर्हिः**) बढ़ानेहारा उपयुक्त किया जाता है॥९०॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे धार्मिक न्यायाधीश प्रजा की रक्षा करता है, वैसे ही प्राणायामादि से अच्छे प्रकार सिद्ध किये हुए प्राण योगी की सब दुःखों से रक्षा करते हैं। जैसे विदुषी माता विद्या और अच्छी शिक्षा से अपने सन्तानों बढ़ाती है, वैसे अनुष्ठान किये हुए योग के अङ्ग योगियों को बढ़ाते हैं॥९०॥

इन्द्रस्येत्यस्य शङ्ख ऋषिः। इन्द्रो देवता। भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

इन्द्रस्य रूपमृषभो बलाय कर्णाभ्याँश्रोत्रममृतं ग्रहाभ्याम्।
यवा न बर्हिर्भ्रुवि केसराणि कर्कन्धु जज्ञे मधु सारघं मुखात्॥९१॥

इन्द्रस्य। रूपम्। ऋषभः। बलाय। कर्णाभ्याम्। श्रोत्रम्। अमृतम्। ग्रहाभ्याम्। यवाः। न। बर्हिः। भ्रुवि। केसराणि। कर्कन्धु। जज्ञे। मधु। सारघम्। मुखात्॥९१॥

पदार्थः-(**इन्द्रस्य**) परमैश्वर्य्यस्य (**रूपम्**) स्वरूपम् (**ऋषभः**) विज्ञानवान् (**बलाय**) योगसामर्थ्याय (**कर्णाभ्याम्**) कुर्वन्ति श्रवणं याभ्याम् (**श्रोत्रम्**) शब्दविषयम् (**अमृतम्**) अमृतात्मकमुदकम् (**ग्रहाभ्याम्**) याभ्यां गृह्णीतस्ताभ्याम् (**यवाः**) धान्यविशेषाः (**न**) इव (**बर्हिः**) वर्द्धनम् (**भ्रुवि**) नेत्रललाटयोर्मध्ये (**केसराणि**) विज्ञानानि। अत्र कि ज्ञाने इत्यस्मादौणादिकः सरन् प्रत्ययः। (**कर्कन्धु**) येन कर्म दधाति (**जज्ञे**) जायते (**मधु**) विज्ञानम् (**सारघम्**) यदारघ्यते स्वाद्यते तदारघं समानं च तदारघं त तत् (**मुखात्**)॥९१॥

अन्वयः-यथा ग्रहाभ्यां सहर्षभो बलाय यवा न कर्णाभ्यां श्रोत्रममृतं कर्कन्धु सारघं मधु बर्हिर्भ्रुवि केसराणि मुखात् जनयति, तथैतत् सर्वमिन्द्रस्य रूपं जज्ञे॥९१॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। यथा निवृत्तिमार्गे परमयोगी योगबलेन सर्वाः सिद्धीः प्राप्नोति, तथैवान्यैर्गृहस्थैरपि प्रवृत्तिमार्गे सर्वमैश्वर्य्यं प्राप्तव्यमिति॥९१॥

पदार्थः-जैसे (**ग्रहाभ्याम्**) जिनसे ग्रहण करते हैं, उन व्यवहारों के साथ (**ऋषभः**) ज्ञानी पुरुष (**बलाय**) योग-सामर्थ्य के लिये (**यवाः**) यवों के (**न**) समान (**कर्णाभ्याम्**) कानों से (**श्रोत्रम्**) शब्दविषय को (**अमृतम्**) नीरोग जल को और (**कर्कन्धु**) जिससे कर्म को धारण करें, उसको (**सारघम्**) एक प्रकार के स्वाद से युक्त (**मधु**) सहत (**बर्हिः**) वृद्धिकारक व्यवहार और (**भ्रुवि**) नेत्र और ललाट के बीच में (**केसराणि**) विज्ञानों अर्थात् सुषुम्ना में प्राण वायु का निरोध कर ईश्वरविषयक विशेष ज्ञानों को (**मुखात्**) मुख से उत्पन्न करता है, वैसे वह सब (**इन्द्रस्य**) परमैश्वर्य्य का (**रूपम्**) स्वरूप (**जज्ञे**) उत्पन्न होता है॥९१॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे निवृत्ति मार्ग में परम योगी योगबल से सब सिद्धियों को प्राप्त होता है, वैसे ही अन्य गृहस्थ लोगों को भी प्रवृत्ति मार्ग में सब ऐश्वर्य्य को प्राप्त होना चाहिये॥९१॥

आत्मन्नित्यस्य शङ्ख ऋषिः। आत्मा देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आत्मन्नुपस्थे न वृकस्य लोम मुखे श्मश्रूणि न व्याघ्रलोम।

केशा न शीर्षन् यशसे श्रियै शिखा सिꣳहस्य लोम त्विषिरिन्द्रियाणि॥९२॥

आत्मन्। उपस्थऽइत्युपस्थे। न। वृकस्य। लोम। मुखे। श्मश्रूणि। न। व्याघ्रलोमेति व्याघ्रऽलोम। केशाः। न। शीर्षन्। यशसे। श्रियै। शिखा। सिꣳहस्य। लोम। त्विषिः। इन्द्रियाणि॥९२॥

पदार्थः-(**आत्मन्**) आत्मनि (**उपस्थे**) उपतिष्ठन्ति यस्मिंस्तस्मिन् (**न**) इव (**वृकस्य**) यो वृश्चति छिनत्ति तस्य (**लोम**) (**मुखे**) (**श्मश्रूणि**) (**न**) इव (**व्याघ्रलोम**) व्याघ्रस्य लोम व्याघ्रलोम (**केशाः**) (**न**)

इव **(शीर्षन्)** शिरसि **(यशसे)** **(श्रियै)** **(शिखा)** **(सिंहस्य)** **(लोम)** **(त्विषिः)** दीप्तिः **(इन्द्रियाणि)** श्रोत्रादीनि॥९२॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यस्यात्मन्नुपस्थे सति वृकस्य लोम न व्याघ्रलोम न मुखे श्मश्रूणि शीर्षन् केशा न शिखा सिंहस्य लोमेव त्विषिरिन्द्रिययाणि सन्ति, स यशसे श्रियै प्रभवति॥९२॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। ये परमात्मानमुपतिष्ठन्ते ते यशस्विनो भवन्ति, ये योगमभ्यस्यन्ति ते वृकवद् व्याघ्रवत् सिंहवदेकान्तदेशं सेवित्वा पराक्रमिणो जायन्ते, ये पूर्णब्रह्मचर्यं कुर्वन्ति ते क्षत्रियाः पूर्णोपमा भवन्ति॥९२॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जिसके **(आत्मन्)** आत्मा में **(उपस्थे)** समीप स्थिति होने में **(वृकस्य)** भेड़िया के **(लोम)** बालों के **(न)** समान वा **(व्याघ्रलोम)** बाघ के बालों के **(न)** समान **(मुखे)** मुख पर **(श्मश्रूणि)** दाढ़ी और मूंछ **(शीर्षन्)** शिर में **(केशाः)** बालों के **(न)** समान **(शिखा)** शिखा **(सिंहस्य)** सिंह के **(लोम)** बालों के समान **(त्विषिः)** कान्ति तथा **(इन्द्रियाणि)** श्रोत्रादि शुद्ध इन्द्रियां हैं, वह **(यशसे)** कीर्ति और **(श्रियै)** लक्ष्मी के लिये प्राप्त होने को समर्थ होता है॥९२॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो परमात्मा का उपस्थान करते हैं, वे यशस्वी कीर्तिमान् होते हैं। जो योगाभ्यास करते हैं, वे भेड़िया, व्याघ्र और सिंह के समान एकान्त देश सेवन करके पराक्रम वाले होते हैं। जो पूर्ण ब्रह्मचर्य करते हैं, वे क्षत्रिय भेड़िया, व्याघ्र और सिंह के समान पराक्रम वाले होते हैं॥९२॥

अङ्गानीत्यस्य शङ्ख ऋषिः। अश्विनौ देवते। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अङ्गा॑न्या॒त्मन् भि॒षजा॒ तद॒श्विना॒त्मान॒मङ्गैः॒ सम॑धा॒त् सर॑स्वती।

इन्द्र॑स्य रू॒पꣳ श॒तमा॑न॒मायु॑श्च॒न्द्रेण॒ ज्योति॑र॒मृतं॒ दधा॑नाः॥ ९३॥

अङ्गा॑नि। आ॒त्मन्। भि॒षजा॑। तत्। अ॒श्विना॑। आ॒त्मान॑म्। अङ्गैः॑। सम्। अ॒धा॒त्। सर॑स्वती। इन्द्र॑स्य। रू॒पम्। श॒तमा॑न॒मिति॑ श॒तऽमा॑नम्। आयुः॑। च॒न्द्रेण॑। ज्योतिः॑। अ॒मृत॑म्। दधा॑नाः॥ ९३॥

पदार्थः-**(अङ्गानि)** योगाङ्गानि **(आत्मन्)** आत्मनि **(भिषजा)** सद्वैद्यवदरोगौ **(तत्)** **(अश्विना)** सिद्धसाधकौ **(आत्मानम्)** **(अङ्गैः)** योगाङ्गैः **(सम्)** **(अधात्)** समादधाति **(सरस्वती)** योगिनी स्त्री **(इन्द्रस्य)** परमैश्वर्यस्य **(रूपम्)** **(शतमानम्)** शतमसंख्यं मानं यस्य तत् **(आयुः)** जीवनम् **(चन्द्रेण)** आनन्देन **(ज्योतिः)** प्रकाशम् **(अमृतम्)** **(दधानाः)** धरन्तः॥९३॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! भिषजाऽश्विना सिद्धसाधकौ विद्वांसौ यथा सरस्वत्यात्मन् स्थिरा सत्यङ्गानि योगाङ्गान्यनुष्ठायात्मानं समधात्, तथैवाङ्गैर्यदिन्द्रस्य रूपमस्ति, तत् संदध्याताम्। यथा योगं दधानाः शतमान-मायुर्धरन्ति, तथा चन्द्रेणऽमृतं ज्योतिर्दध्यात्॥९३॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा रोगिणः सद्वैद्यं प्राप्यौषधं पथ्यं च सेवित्वा नीरोगा भूत्वाऽऽनन्दन्ति, तथा योगजिज्ञासवो योगिन इममवाप्य योगाङ्गान्यनुष्ठाय निष्क्लेशा भूत्वा सततं सुखिनो भवन्ति॥९३॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! **(भिषजा)** उत्तम वैद्य के समान रोगरहित **(अश्विना)** सिद्ध साधक दो विद्वान् जैसे **(सरस्वती)** योगयुक्त स्त्री **(आत्मन्)** अपने आत्मा में स्थित हुई **(अङ्गानि)** योग अङ्गों का अनुष्ठान करके **(आत्मानम्)** अपने आत्मा को **(समधात्)** समाधान करती है, वैसे ही **(अङ्गैः)** योगाङ्गों से जो **(इन्द्रस्य)** ऐश्वर्य्य का **(रूपम्)** रूप है, **(तत्)** उस का समाधान करें। जैसे योग को **(दधानाः)** धारण करते हुए जन **(शतमानम्)** सौ वर्ष पर्यन्त **(आयुः)** जीवन को धारण करते हैं, वैसे **(चन्द्रेण)** आनन्द से **(अमृतम्)** अविनाशी **(ज्योतिः)** प्रकाशस्वरूप परमात्मा का धारण करो॥९३॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे रोगी लोग उत्तम वैद्य को प्राप्त हो, औषध और पथ्य का सेवन करके, रोगरहित होकर आनन्दित होते हैं, वैसे योग को जानने की इच्छा करने वाले योगी लोग इस को प्राप्त हो, योग के अङ्गों का अनुष्ठान कर और अविद्यादि क्लेशों से दूर होके निरन्तर सुखी होते हैं॥९३॥

सरस्वतीत्यस्य शङ्ख ऋषिः। सरस्वती देवता। विराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

सरस्वती योन्यां गर्भमन्तरश्विभ्यां पत्नी सुकृतं बिभर्ति।
अपाꣳ रसेन वरुणो न साम्नेन्द्रꣳ श्रियै जनयन्नप्सु राजा॥९४॥

सरस्वती। योन्याम्। गर्भम्। अन्तः। अश्विभ्यामित्यश्विऽभ्याम्। पत्नी। सुकृतमिति सुऽकृतम्। बिभर्ति। अपाम्। रसेन। वरुणः। न। साम्ना। इन्द्रम्। श्रियै। जनयन्। अप्स्वित्यप्ऽसु। राजा॥९४॥

पदार्थः-**(सरस्वती)** विदुषी **(योन्याम्)** **(गर्भम्)** **(अन्तः)** आभ्यन्तरे **(अश्विभ्याम्)** अध्यापकोपदेशकाभ्याम् **(पत्नी)** **(सुकृतम्)** पुण्यात्मकम् **(बिभर्त्ति)** **(अपाम्)** जलानाम् **(रसेन)** **(वरुणः)** श्रेष्ठः **(न)** इव **(साम्ना)** सन्धिना **(इन्द्रम्)** परमैश्वर्यम् **(श्रियै)** शोभायै **(जनयन्)** उत्पादयन् **(अप्सु)** प्राणेषु **(राजा)** प्रकाशमानः॥९४॥

अन्वयः-हे योगिन्! यथा सरस्वती पत्नी स्वपत्युर्योन्यामन्तस्सुकृतं गर्भं बिभर्त्ति, यथा वा वरुणो राजाऽश्विभ्यामपां रसेनाप्सु साम्ना न सुखेनेन्द्रं श्रियै जनयन् विराजते, तथा त्वं भवेः॥९४॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा धर्मपत्नी पतिं शुश्रूषते, यथा च राजा सामादिभी राज्यैश्वर्यमुन्नयति, तथैव विद्वान् योगोपदेशकं संसेव्य योगाङ्गैर्योगसिद्धिमुन्नयेत्॥९४॥

पदार्थः-हे योग करनेहारे पुरुष! जैसे **(सरस्वती)** विदुषी **(पत्नी)** स्त्री अपने पति से **(योन्याम्)** योनि के **(अन्तः)** भीतर **(सुकृतम्)** पुण्यरूप **(गर्भम्)** गर्भ को **(बिभर्त्ति)** धारण करती है वा जैसे **(वरुणः)** उत्तम **(राजा)** राजा **(अश्विभ्याम्)** अध्यापक और उपदेशक के साथ **(अपाम्)** जलों के **(रसेन)** रस से **(अप्सु)** प्राणों में **(साम्ना)** मेल के **(न)** समान सुख से **(इन्द्रम्)** ऐश्वर्य को **(श्रियै)** लक्ष्मी के लिये **(जनयन्)** प्रकट करता हुआ विराजमान होता है, वैसे तू हो॥९४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे धर्मपत्नी पति की सेवा करती है और जैसे राजा साम-दाम आदि से राज्य के ऐश्वर्य्य को बढ़ाता है, वैसे ही विद्वान् योग के उपदेशक की सेवा कर योग के अङ्गों की सिद्धियों को बढ़ाया करे॥९४॥

तेज इत्यस्य शङ्ख ऋषिः। अश्विनौ देवते। निचृज्जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

तेजः॑ पशूनाᳬं᳭ ह॒विरि॑न्द्रि॒याव॑त् परि॒स्रुता॒ पय॑सा सार॒घं मधु॑।

अ॒श्विभ्यां॑ दु॒ग्धं भि॒षजा॒ सर॑स्वत्या सुतासु॒ताभ्या॑म॒मृतः॒ सोम॒ऽइन्दुः॑॥९५॥

तेजः॑। प॒शू॒नाम्। ह॒विः। इ॒न्द्रि॒याव॑त्। इ॒न्द्रि॒यव॒दिती॑न्द्रि॒यऽव॑त्। प॒रि॒स्रुतेति॑ प॒रि॒ऽस्रुता॑। पय॑सा। सा॒र॒घम्। मधु॑। अ॒श्विभ्या॒मित्य॒श्विऽभ्या॑म्। दु॒ग्धम्। भि॒षजा॑। सर॑स्वत्या। सु॒ता॒सु॒ताभ्या॒मिति॑ सुतासु॒ताभ्या॑म्। अ॒मृत॑ः। सोम॑ः। इन्दु॑ः॥९५॥

पदार्थः-**(तेजः)** प्रकाशः **(पशूनाम्)** गवादीनां सकाशात् **(हविः)** दुग्धादिकम् **(इन्द्रियावत्)** प्रशस्तानि इन्द्रियाणि भवन्ति यस्मिन् **(परिस्रुता)** परितः स्रवन्ति प्राप्नुवन्ति येन तत् **(पयसा)** दुग्धेन **(सारघम्)** सुस्वादुयुक्तम् **(मधु)** मधुरादिगुणोपेतम् **(अश्विभ्याम्)** विद्याव्यापिभ्याम् **(दुग्धम्)** पयः **(भिषजा)** वैद्यकविद्याविदौ **(सरस्वत्या)** विदुष्या स्त्रिया **(सुतासुताभ्याम्)** निष्पादिताऽनिष्पादिताभ्याम् **(अमृतः)** मृत्युधर्मरहितः **(सोमः)** ऐश्वर्यम् **(इन्दुः)** सुस्नेहयुक्तः॥९५॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! याभ्यां सुताऽसुताभ्यां भिषजाऽश्विभ्यां पशूनां परिस्रुता पयसा तेज इन्द्रियावत् सारघं मधु हविर्दुग्धं सरस्वत्यामृतः सोम इन्दुश्चोत्पाद्यते, तौ योगसिद्धिं प्राप्नुतः॥९५॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा गोपा गवादीन् पशून् संरक्ष्य दुग्धादिना संतुष्यन्ति, तथैव मनआदीन्द्रियाणि दुष्टाचारात् पृथक् संरक्ष्य योगिभिरानन्दितव्यमिति॥९५॥

अत्र सोमादिपदार्थगुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वाध्यायार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेद्यम्॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जिन **(सुतासुताभ्याम्)** सिद्ध असिद्ध किये हुए **(भिषजा)** वैद्यक विद्या के जाननेहारे **(अश्विभ्याम्)** विद्या में व्याप्त दो विद्वान् **(पशूनाम्)** गवादि पशुओं के सम्बन्ध से **(परिस्रुता)** सब ओर से प्राप्त होने वाले **(पयसा)** दूध से **(तेजः)** प्रकाशरूप **(इन्द्रियावत्)** कि जिसमें उत्तम इन्द्रिय होते हैं, उस **(सारघम्)** उत्तम स्वादयुक्त **(मधु)** मधुर **(हविः)** खाने-पीने योग्य **(दुग्धम्)** दुग्धादि पदार्थ और **(सरस्वत्या)** विदुषी स्त्री से **(अमृतः)** मृत्युधर्मरहित नित्य रहने वाला **(सोमः)** ऐश्वर्य्य और **(इन्दुः)** उत्तम स्नेहयुक्त पदार्थ उत्पन्न किया जाता है, वे योगसिद्ध को प्राप्त होते हैं॥९५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे गौ के चराने वाले गोपाल लोग गौ आदि पशुओं की रक्षा करके दूध आदि से सन्तुष्ट होते हैं, वैसे ही मन आदि इन्द्रियों को दुष्टाचार से पृथक् संरक्षण करके योगी लोगों को आनन्दित होना चाहिये॥९५॥

इस अध्याय में सोम आदि पदार्थों के गुण वर्णन करने से इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य्याणां श्रीयुतपरमविदुषां विरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचिते सुप्रमाणयुक्ते संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां विभूषिते यजुर्वेदभाष्ये एकोनविंशोऽध्यायः समाप्तिमगमत्॥ १९॥

॥ओ३म्॥

अथ विंशाऽध्यायारम्भः॥

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव। यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व॥ यजु० ३०.३॥

क्षत्रस्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। सभेशो देवता। द्विपदा विराड् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अस्यादितो राजधर्मविषयमाह॥

अब बीसवें अध्याय का आरम्भ है, इसके आदि से राजधर्म विषय का वर्णन करते हैं॥

क्ष॒त्रस्य॒ योनि॑रसि क्ष॒त्रस्य॒ नाभि॑रसि। मा त्वा॑ हि॑ꣳसी॒न्मा मा॑ हि॑ꣳसीः॥ १॥

क्ष॒त्रस्य॑। योनिः॑। अ॒सि॒। क्ष॒त्रस्य॑। नाभिः॑। अ॒सि॒। मा। त्वा॒। हि॒ꣳसी॒त्। मा। मा॒। हि॒ꣳसीः॥ १॥

पदार्थः-(**क्षत्रस्य**) राज्यस्य (**योनिः**) निमित्तम् (**असि**) (**क्षत्रस्य**) राजकुलस्य (**नाभिः**) नाभिरिव जीवनहेतुः (**असि**) (**मा**) निषेधे (**त्वा**) त्वां सभापतिम् (**हिंसीत्**) हिंस्यात् (**मा**) (**मा**) माम् (**हिंसीः**) हिंस्याः॥ १॥

अन्वयः-हे सभेश! यतस्त्वं क्षत्रस्य योनिरसि क्षत्रस्य नाभिरसि, तस्मात् त्वा कोऽपि मा हिंसीत्, त्वं मा मा हिंसीः॥ १॥

भावार्थः-स्वामी भृत्यजनाश्च परस्परमेवं प्रतिज्ञां कुर्यू राजजनाः प्रजाजनान् प्रजाजना राजजनाँश्च सततं रक्षेयुः, येन सर्वेषां सुखोन्नतिः स्यात्॥ १॥

पदार्थः-हे सभापते! जिससे तू (**क्षत्रस्य**) राज्य का (**योनिः**) निमित्त (**असि**) है, (**क्षत्रस्य**) राजकुल का (**नाभिः**) नाभि के समान जीवन हेतु (**असि**) है, इससे (**त्वा**) तुझको कोई भी (**मा, हिंसीत्**) मत मारे, तू (**मा**) मुझे (**मा, हिंसीः**) मत मारे॥ १॥

भावार्थः-स्वामी और भृत्यजन परस्पर ऐसी प्रतिज्ञा करें कि राजपुरुष प्रजापुरुषों और प्रजापुरुष राजपुरुषों की निरन्तर रक्षा करें, जिससे सबके सुख की उन्नति होवे॥ १॥

निषसादेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। सभेशो देवता। भुरिगुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

नि ष॑साद धृतव्र॑तो॒ वरु॑णः प॒स्त्या॒॒स्वा।

साम्रा॑ज्याय सु॒क्रतु॑ः। मृत्योः पा॑हि वि॒द्योत् पा॑हि॥ २॥

नि। स॒सा॒द॒। धृतव्र॑त॒ इति॑ धृतऽव्र॑तः। वरु॑णः। प॒स्त्या॒॒सु। आ। साम्रा॑ज्या॒येति॒ साम्ऽरा॑ज्याय। सु॒क्रतु॒रिति॑ सु॒ऽक्रतु॑ः। मृ॒त्योः। पा॒हि॒। वि॒द्योत्। पा॒हि॒॥ २॥

पदार्थः-(**नि**) नित्यम् (**ससाद**) सीद (**धृतव्रतः**) धृतं व्रतं सत्यं येन (**वरुणः**) उत्तमस्वभावः (**पस्त्यासु**) न्यायगृहेषु (**आ**) समन्तात् (**साम्राज्याय**) भूगोले चक्रवर्त्तिराज्यकरणाय (**सुक्रतुः**) शोभनकर्मप्रज्ञः (**मृत्योः**) अल्पमृत्युना प्राणत्यागात् (**पाहि**) रक्ष (**विद्योत्**) दीप्यमानाग्न्यास्त्रादेः। अत्र द्युतधातोर्विच् (**पाहि**) रक्ष॥२॥

अन्वयः-हे सभेश! भवान् सुक्रतुर्धृतव्रतो वरुणः सन् साम्राज्याय पस्त्यास्वा निषसाद। अस्मान् वीरान् मृत्योः पाहि विद्योत् पाहि॥२॥

भावार्थः-यो धर्म्यगुणकर्मस्वभावो न्यायाधीशः सभेशो भवेत्, स चक्रवर्त्तिराज्यं कर्त्तुं प्रजाश्च रक्षितुं शक्नोति, नेतरः॥२॥

पदार्थः-हे सभापति! आप (**सुक्रतुः**) उत्तम बुद्धि और कर्मयुक्त (**धृतव्रतः**) सत्य का धारण करनेहारे (**वरुणः**) उत्तम स्वभावयुक्त होते हुए (**साम्राज्याय**) भूगोल मे चक्रवर्त्ती राज्य करने के लिये (**पस्त्यासु**) न्यायघरों में (**आ, नि, षसाद**) निरन्तर स्थित हूजिये तथा हम वीरों की (**मृत्योः**) मृत्यु से (**पाहि**) रक्षा कीजिये और (**विद्योत्**) प्रकाशमान अग्नि अस्त्रादि से (**पाहि**) रक्षा कीजिये॥२॥

भावार्थः-जो धर्मयुक्त गुण-कर्म-स्वभाव वाला न्यायाधीश सभापति होवे, सो चक्रवर्त्ती राज्य और प्रजा की रक्षा करने को समर्थ होता है, अन्य नहीं॥२॥

देवस्येत्यस्याश्विनावृषी। सभेशो देवता। निचृदतिधृतिश्छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

दे॒वस्य॑ त्वा सवि॒तुः प्र॑स॒वेऽश्विनो॑र्बा॒हुभ्यां॑ पू॒ष्णो हस्ता॑भ्याम्। अ॒श्विनो॒र्भैष॑ज्येन॒ तेज॑से ब्रह्मवर्च॒साया॒भि षि॑ञ्चामि॒ सर॑स्वत्यै॒ भैष॑ज्येन वी॒र्या॒यान्ना॒द्याया॒भि षि॑ञ्चा॒मीन्द्र॑स्येन्द्रि॒येण॒ बला॑य श्रि॒यै यश॑से॒ऽभि षि॑ञ्चामि॥३॥

दे॒वस्य॑। त्वा॒। स॒वि॒तुः। प्र॒स॒व इति॑ प्रऽस॒वे। अ॒श्विनोः॑। बा॒हुभ्या॒मिति॑ बा॒हुऽभ्या॑म्। पू॒ष्णः। हस्ता॑भ्याम्। अ॒श्विनोः॑। भैष॑ज्येन। तेज॑से। ब्र॒ह्म॒व॒र्च॒साये॑ति॑ ब्रह्मऽवर्च॒साय॑। अ॒भि। सि॒ञ्चा॒मि॒। सर॑स्वत्यै। भैष॑ज्येन। वी॒र्या॒य। अ॒न्ना॒द्या॒येत्य॑न्नऽअ॒द्याय॑। अ॒भि। सि॒ञ्चा॒मि॒। इन्द्र॑स्य। इ॒न्द्रि॒येण॑। बला॑य। श्रि॒यै। यश॑से। अ॒भि। सि॒ञ्चा॒मि॒॥३॥

पदार्थः-(**देवस्य**) सर्वतो दीप्यमानस्य (**त्वा**) त्वाम् (**सवितुः**) सकलैश्वर्याऽधिष्ठातुः (**प्रसवे**) उत्पादिते जगति (**अश्विनोः**) सकलविद्याव्याप्तयोरध्यापकोपदेशकयोः (**बाहुभ्याम्**) (**पूष्णः**) पूर्णबलस्य (**हस्ताभ्याम्**) उत्साहपुरुषार्थाभ्याम् (**अश्विनोः**) वैद्यकविद्यां प्राप्तयोरध्यापनौषधिकारिणोः (**भैषज्येन**) भिषजां वैद्यानां भावेन (**तेजसे**) प्रागल्भ्याय (**ब्रह्मवर्चसाय**) वेदाध्ययनाय (**अभि**) सर्वतः (**सिञ्चामि**) मार्जनेन स्वीकरोमि (**सरस्वत्यै**) सुशिक्षितायै वाचे (**भैषज्येन**) भिषजामोषधीनां भावेन (**वीर्याय**) पराक्रमाय

(अन्नाद्याय) अत्तुं योग्यायान्नाद्याय **(अभि)** **(सिञ्चामि)** सर्वथा स्वीकरोमि **(इन्द्रस्य)** परमैश्वर्यस्य **(इन्द्रियेण)** धनेन **(बलाय)** पुष्टत्वाय **(श्रियै)** सुशोभितायै राजलक्ष्म्यै **(यशसे)** सत्कीर्त्यै **(अभि)** **(सिञ्चामि)**॥३॥

अन्वयः-हे शुभलक्षणान्वित पुरुष! सवितुर्देवस्येश्वरस्य प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामश्विनोर्भैषज्येन तेजसे ब्रह्मवर्चसाय त्वा राजप्रजाजनोऽहमभिषिञ्चामि भैषज्येन सरस्वत्यै वीर्य्यायान्नाद्यायाऽभिषिञ्चामीन्द्रस्येन्द्रियेण बलाय श्रियै यशसेऽभिषिञ्चामि॥३॥

भावार्थः-जनैरत्र जगति धर्म्यकर्मप्रकाशकरणाय शुभगुणकर्मस्वभावो जनो राज्यपालनायाऽधिकर्त्तव्यः॥३॥

पदार्थः-हे शुभ लक्षणों से युक्त पुरुष! **(सवितुः)** सकल ऐश्वर्य के अधिष्ठाता **(देवस्य)** सब ओर से प्रकाशमान जगदीश्वर के **(प्रसवे)** उत्पन्न किये हुए जगत् में **(अश्विनोः)** सम्पूर्ण विद्या में व्याप्त अध्यापक और उपदेशक के **(बाहुभ्याम्)** बल और पराक्रम से **(पूष्णः)** पूर्ण बल वाले वायुवत् वर्त्तमान पुरुष के **(हस्ताभ्याम्)** उत्साह और पुरुषार्थ से **(अश्विनोः)** वैद्यक विद्या में व्याप्त पढ़ाने और ओषधि करनेहारे के **(भैषज्येन)** वैद्यकपन से **(तेजसे)** प्रगल्भता के लिये **(ब्रह्मवर्चसाय)** वेदों के पढ़ने के लिये **(त्वा)** तुझ को राज प्रजाजन मैं **(अभि, षिञ्चामि)** अभिषेक करता हूं **(भैषज्येन)** ओषधियों के भाव से **(सरस्वत्यै)** अच्छे प्रकार शिक्षा की हुई वाणी **(वीर्याय)** पराक्रम और **(अन्नाद्याय)** अन्नादि की प्राप्ति के लिये **(अभि, षिञ्चामि)** अभिषेक करता हूं **(इन्द्रस्य)** परम ऐश्वर्य्य वाले के **(इन्द्रियेण)** धन से **(बलाय)** पुष्ट होने **(श्रियै)** सुशोभायुक्त राजलक्ष्मी और **(यशसे)** पुण्य कीर्ति के लिये **(अभि, षिञ्चामि)** अभिषेक करता हूँ॥३॥

भावार्थः-सब मनुष्यों को योग्य है कि इस जगत् में धर्मयुक्त कर्मों का प्रकाश करने के लिये शुभ गुण, कर्म और स्वभाव वाले जन को राज्य पालन करने के लिये अधिकार देवें॥३॥

कोऽसीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। सभापतिर्देवता। निचृदार्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

कोऽसि कत॒मो॒ऽसि॒ कस्मै॒ त्वा॒ काय॑ त्वा। सु॒श्लो॑क॒ सु॒म॑ङ्गल॒ सत्य॑राजन्॥४॥

कः। अ॒सि॒। क॒त॒मः। अ॒सि॒। कस्मै॑। त्वा॒। काय॑। त्वा॒। सु॒श्लो॒केति॒ सु॒ऽश्लो॑क। सु॒म॑ङ्ग॒लेति॒ सु॒ऽम॑ङ्गल। सत्य॑रा॒ज॒न्निति॒ सत्य॑ऽराजन्॥४॥

पदार्थः-**(कः)** सुखस्वरूपः **(असि)** **(कतमः)** अतिशयेन सुखकारी **(असि)** **(कस्मै)** सुखस्वरूप परमेश्वराय **(त्वा)** त्वाम् **(काय)** को ब्रह्म देवता यस्य वेदमन्त्रस्य तस्मै **(त्वा)** **(सुश्लोक)** शुभकीर्ते सत्यवाक् **(सुमङ्गल)** प्रशस्तमङ्गलाऽनुष्ठातः **(सत्यराजन्)** सत्यप्रकाशक॥४॥

अन्वयः-हे सुश्लोक सुमङ्गल सत्यराजन्! यस्त्वं कोऽसि कतमोऽसि तस्मात् कस्मै त्वा काय त्वाऽहमभिषिञ्चामि॥४॥

भावार्थः-अत्र पूर्वमन्त्रादभिषिञ्चामीत्यभिसम्बध्यते। यः सर्वेषां मनुष्याणां मध्येऽतिप्रशंसनीयो भवेत्, स सभेशत्वमर्हेत्॥४॥

पदार्थः-हे **(सुश्लोक)** उत्तम कीर्ति और सत्य बोलनेहारे **(सुमङ्गल)** प्रशस्त मङ्गलकारी कर्मों के अनुष्ठान करने और **(सत्यराजन्)** सत्यन्याय के प्रकाश करनेहारे! जो तू **(कः)** सुखस्वरूप **(असि)** है, और **(कतमः)** अतिसुखकारी **(असि)** है, इससे **(कस्मै)** सुखस्वरूप परमेश्वर के लिये **(त्वा)** तुझको तथा **(काय)** परमेश्वर जिसका देवता उस मन्त्र के लिये **(त्वा)** तुझ को मैं अभिषेकयुक्त करता हूं॥४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र से **(अभि, षिञ्चामि)** इन पदों की अनुवृत्ति आती है। जो सब मनुष्यों के मध्य में अतिप्रशंसनीय होवे, वह सभापतित्व के योग्य होता है॥४॥

शिरो म इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। सभापतिर्देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

शिरो॑ मे॒ श्रीर्यशो॒ मुखं॒ त्विषि॒: केशा॑श्च॒ श्मश्रू॑णि।

राजा॑ मे प्रा॒णोऽअ॒मृत॑ꣳ स॒म्राट् चक्षु॑र्वि॒राट् श्रोत्र॑म्॥५॥

शिर॑ः। मे॒। श्रीः। यश॑ः। मुख॑म्। त्विषि॑ः। केशा॑ः। च॒। श्मश्रू॑णि। राजा॑। मे॒। प्रा॒णः। अ॒मृत॑म्। स॒म्राडिति॑ स॒म्ऽराट्। चक्षु॑ः। वि॒राडिति॑ वि॒ऽराट्। श्रोत्र॑म्॥५॥

पदार्थः-**(शिरः)** उत्तमाङ्गम् **(मे)** मम **(श्रीः)** श्रीः शोभा धनं च **(यशः)** सत्कीर्तिकथनम् **(मुखम्)** आस्यम् **(त्विषिः)** न्यायप्रदीप्तिरिव **(केशाः)** **(च)** **(श्मश्रूणि)** मुखकेशाः **(राजा)** प्रकाशमानः **(मे)** **(प्राणः)** प्राणादिवायुः **(अमृतम्)** मरणधर्मरहितं चेतनं ब्रह्म **(सम्राट्)** सम्यक् प्रकाशमानम् **(चक्षुः)** नेत्रम् **(विराट्)** विविधशास्त्रश्रवणयुक्तम् **(श्रोत्रम्)** श्रवणेन्द्रियम्॥५॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! राज्येऽभिषिक्तस्य मे मम श्रीः शिरो यशो मुखं त्विषिः केशाः श्मश्रूणि च राजा मे प्राणोऽमृतं सम्राट् चक्षुर्विराट् श्रोत्रं चास्त्येवं यूयं जानीत॥५॥

भावार्थः-यो राज्येऽभिषिक्तस्स्यात्, स शिरआद्यवयवान् शुभकर्मसु प्रेरयेत्॥५॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! राज्य में अभिषेक को प्राप्त हुए **(मे)** मेरी **(श्रीः)** शोभा और धन **(शिरः)** शिरस्थानी **(यशः)** सत्कीर्ति का कथन **(मुखम्)** मुखस्थानी **(त्विषिः)** न्याय के प्रकाश के समान **(केशाः)** केश **(च)** और **(श्मश्रूणि)** दाढ़ी-मूंछ **(राजा)** प्रकाशमान **(मे)** मेरा **(प्राणः)** प्राण आदि वायु **(अमृतम्)**

मरणधर्मरहित चेतन ब्रह्म **(सम्राट्)** अच्छे प्रकार प्रकाशमान **(चक्षुः)** नेत्र **(विराट्)** विविध शास्त्रश्रवणयुक्त **(श्रोत्रम्)** कान है, ऐसा तुम लोग जानो॥५॥

भावार्थः-जो राज्य में अभिषिक्त राजा होवे सो शिर आदि अवयवों को शुभ कर्मों में प्रेरित रक्खे॥५॥

जिह्वा म इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। सभापतिर्देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

जि॒ह्वा मे॑ भ॒द्रं वाङ् मह॒ो मनो॑ म॒न्युः स्व॒राड् भाम॑ः।
मोदा॑ः प्रम॒ोदा अ॒ङ्गुली॒रङ्गा॑नि मि॒त्रं मे॒ सह॑ः॥६॥

जि॒ह्वा। मे॒। भ॒द्रम्। वाक्। मह॑ः। मन॑ः। म॒न्युः। स्व॒राडिति॑ स्व॒ऽराट्। भाम॑ः। मोदा॑ः। प्र॒मो॒दा इति॑ प्रऽमो॒दाः। अ॒ङ्गुली॑ः। अङ्गा॑नि। मि॒त्रम्। मे॒। सह॑ः॥६॥

पदार्थः-**(जिह्वा)** जुहोति शब्दमन्नं वा यया सा जिह्वा **(मे) (भद्रम्)** कल्याणकरान्नभोजिनी **(वाक्)** वक्ति यया सा **(महः)** पूज्यवेदशास्त्रबोधयुक्ता **(मनः)** मननात्मकमन्तःकरणम् **(मन्युः)** दुष्टाचारोपरि क्रोधकृत् **(स्वराट्)** बुद्धिः **(भामः)** भाति येन सः **(मोदाः)** हर्षा उत्साहाः **(प्रमोदाः)** प्रकृष्टाऽऽनन्दयोगाः **(अङ्गुलीः)** करचरणाऽवयवाः **(अङ्गानि)** शिर आदीनि **(मित्रम्)** सखा **(मे) (सहः)** सहनम्॥६॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! मे जिह्वा भद्रं वाङ् महो मनो मन्युः स्वराड् भामो मोदाः प्रमोदा अङ्गुलीरङ्गानि मित्रं च सहो मे सहायो भवेत्॥६॥

भावार्थः-ये राजजना ब्रह्मचर्य्यजितेन्द्रियत्वधर्म्माचरणैः पथ्याहाराः सत्यवाचो दुष्टेषु क्रोधाविष्कारा आनन्दन्तोऽन्यानानन्दयन्तः पुरुषार्थिनः सर्वसुहृदो बलिष्ठा भवेयुस्ते सर्वदा सुखिनः स्युः॥६॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! **(मे)** मेरी **(जिह्वा)** जीभ **(भद्रम्)** कल्याणकारक अन्नादि के भोग करनेहारी **(वाक्)** जिससे बोला जाता है, वह वाणी **(महः)** बड़ी पूजनीय वेदशास्त्र के बोध से युक्त **(मनः)** विचार करने वाला अन्तःकरण **(मन्युः)** दुष्टाचारी मनुष्यों पर क्रोध करनेहारा **(स्वराट्)** स्वयं प्रकाशमान बुद्धि **(भामः)** जिससे प्रकाश होता है **(मोदाः)** हर्ष, उत्साह **(प्रमोदाः)** प्रकृष्ट आनन्द के योग **(अङ्गुलीः)** अङ्गुलियां **(अङ्गानि)** और अन्य सब अङ्ग **(मित्रम्)** सखा और **(सहः)** सहन **(मे)** मेरे सहायक हों॥६॥

भावार्थः-जो राजपुरुष ब्रह्मचर्य, जितेन्द्रियता और धर्माचरण से पथ्य आहार करने, सत्य वाणी बोलने, दुष्टों में क्रोध का प्रकाश करनेहारे, आनन्दित हो अन्यों को आनन्दित करते हुए, पुरुषार्थी, सब के मित्र और बलिष्ठ होवें, वे सर्वदा सुखी रहें॥६॥

बाहू इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। राजा देवता। निचृद् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

बाहू मे बलमिन्द्रियꣳ हस्तौ मे कर्म वीर्यम्। आत्मा क्षत्रमुरो मम॥७॥

बाहूऽइति बाहू। मे। बलम्। इन्द्रियम्। हस्तौ। मे। कर्म। वीर्यम्। आत्मा। क्षत्रम्। उरः। मम॥७॥

पदार्थः-(**बाहू**) भुजौ (**मे**) मम (**बलम्**) (**इन्द्रियम्**) धनम् (**हस्तौ**) (**मे**) (**कर्म**) (**वीर्य्यम्**) पराक्रमः (**आत्मा**) स्वयम्भूर्जीवः (**क्षत्रम्**) क्षताद् रक्षकम् (**उरः**) हृदयम् (**मम**)॥७॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! मे बलमिन्द्रियं बाहू मे कर्म वीर्य्यं हस्तौ ममात्मा उरो हृदयं च क्षत्रमस्तु॥७॥

भावार्थः-राजपुरुषैरात्मान्तःकरणबाहुबलं विधाय सुखमुन्नेयम्॥७॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! (**मे**) मेरा (**बलम्**) बल और (**इन्द्रियम्**) धन (**बाहू**) भुजारूप (**मे**) मेरा (**कर्म**) कर्म और (**वीर्य्यम्**) पराक्रम (**हस्तौ**) हाथ रूप (**मम**) मेरा (**आत्मा**) स्वस्वरूप और (**उरः**) हृदय (**क्षत्रम्**) अति दुःख से रक्षा करनेहारा हो॥७॥

भावार्थः-राजपुरुषों को योग्य है कि आत्मा, अन्तःकरण और बाहुओं के बल को उत्पन्न कर सुख बढ़ावें॥७॥

पृष्ठीरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। सभापतिर्देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

पृष्ठीर्मे राष्ट्रमुदरमꣳसौ ग्रीवाश्च श्रोणी।
ऊरूऽअरत्नी जानुनी विशो मेऽङ्गानि सर्वतः॥८॥

पृष्ठीः। मे। राष्ट्रम्। उदरम्। अꣳसौ। ग्रीवाः। च। श्रोणीऽइति श्रोणी। ऊरूऽइत्यूरू। अरत्नी। जानुनीऽइति जानुनी। विशः। मे। अङ्गानि। सर्वतः॥८॥

पदार्थः-(**पृष्ठीः**) पृष्ठदेशः पश्चाद्भागः। अत्र **सुपां सुलुग्०** [अष्टा०७.१.३९] इति सोः स्थाने सुः (**मे**) (**राष्ट्रम्**) राजमानं राज्यम् (**उदरम्**) (**अंसौ**) बाहुमूले (**ग्रीवाः**) कण्ठप्रदेशाः (**च**) (**श्रोणी**) कटिप्रदेशौ (**ऊरू**) सक्थिनी (**अरत्नी**) भुजमध्यप्रदेशौ (**जानुनी**) ऊरूजङ्घयोर्मध्यभागौ (**विशः**) प्रजाः (**मे**) (**अङ्गानि**) अवयवाः (**सर्वतः**) सर्वाभ्यो दिग्भ्यस्सर्वेभ्यो देशेभ्यो वा॥८॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! मे मम पृष्ठी राष्ट्रमुदरमंसौ ग्रीवाः श्रोणी ऊरू अरत्नी जानुनी सर्वतोऽन्यानि चाङ्गानि मे विशः सन्ति॥८॥

भावार्थः-यः स्वदेहाङ्गवत् प्रजाः जानीयात्, स एव राजा सर्वदा वर्द्धते॥८॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! **(मे)** मेरा **(राष्ट्रम्)** राज्य **(पृष्ठीः)** पीठ **(उदरम्)** पेट **(अंसौ)** स्कन्ध **(ग्रीवाः)** कण्ठप्रदेश **(श्रोणी)** कटिप्रदेश **(ऊरू)** जंघा **(अरत्नी)** भुजाओं का मध्यप्रदेश और **(जानुनी)** गोड़ का मध्यप्रदेश तथा **(सर्वतः)** सब ओर से **(च)** और **(अङ्गानि)** अङ्ग **(मे)** मेरे **(विशः)** प्रजाजन हैं॥८॥

भावार्थः-जो अपने अङ्गों के तुल्य प्रजा को जाने, वही राजा सर्वदा बढ़ता रहता है॥८॥

नाभिर्म इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। सभेशो देवता। निचृज्जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

नाभिर्मे चित्तं विज्ञानं पायुर्मेऽपचितिर्भसत्।

आनन्दनन्दावाण्डौ मे भगः सौभाग्यं पसः।

जङ्घाभ्यां पद्भ्यां धर्मोऽस्मि विशि राजा प्रतिष्ठितः॥९॥

नाभिः। मे। चित्तम्। विज्ञानमिति विऽज्ञानम्। पायुः। मे। अपचितिरित्यपऽचितिः। भसत्। आनन्दनन्दावित्यानन्दऽनन्दौ। आण्डौ। मे। भगः। सौभाग्यम्। पसः। जङ्घाभ्याम्। पद्भ्यामिति पत्ऽभ्याम्। धर्मः। अस्मि। विशि। राजा। प्रतिष्ठितः। प्रतिस्थित इति प्रतिऽस्थितः॥९॥

पदार्थः-**(नाभिः)** शरीरमध्यदेशः **(मे)** मम **(चित्तम्)** **(विज्ञानम्)** सम्यग् ज्ञानं विविधज्ञानं वा **(पायुः)** गुदेन्द्रियम् **(मे)** **(अपचितिः)** प्रजाजनकम् **(भसत्)** भगेन्द्रियम् **(आनन्दनन्दौ)** आनन्देन संभोगजनितसुखेन नन्दतस्तौ **(आण्डौ)** अण्डाकारौ वृषणौ **(मे)** **(भगः)** ऐश्वर्यम् **(सौभाग्यम्)** उत्तमैश्वर्यस्य भावः **(पसः)** लिङ्गम् **(जङ्घाभ्याम्)** **(पद्भ्याम्)** **(धर्मः)** पक्षपातरहितो न्यायो धर्म इव **(अस्मि)** **(विशि)** प्रजायाम् **(राजा)** प्रकाशमानः **(प्रतिष्ठितः)** प्राप्तप्रतिष्ठः॥९॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! मे चित्तं नाभिर्विज्ञानं पायुर्मेऽपचितिर्भसदाण्डावानन्दनन्दौ मे भगः पसः सौभाग्यं सौभाग्ययुक्तं स्यादेवमहं जङ्घाभ्यां पद्भ्यां सह विशि प्रतिष्ठितो धर्मो राजाऽस्मि, यस्माद्यूयं मदनुकूला भवत॥९॥

भावार्थः-यस्सर्वैरङ्गैः शुभं कर्माऽऽचरेत्, स धर्मात्मा सन् प्रजायां सुप्रतिष्ठितो राजा स्यात्॥९॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! **(मे)** मेरी **(चित्तम्)** स्मरण करनेहारी वृत्ति **(नाभिः)** मध्यप्रदेश **(विज्ञानम्)** विशेष वा अनेक ज्ञान **(पायुः)** मूलेन्द्रिय **(मे)** मेरी **(अपचितिः)** प्रजाजनक **(भसत्)** योनि **(आण्डौ)** अण्डे के आकार के वृषणावयव **(आनन्दनन्दौ)** संभोग के सुख से आनन्दकारक **(मे)** मेरा **(भगः)** ऐश्वर्य्य **(पसः)** लिङ्ग और **(सौभाग्यम्)** पुत्र-पौत्रादि युक्त होवे, इसी प्रकार मैं **(जङ्घाभ्याम्)** जङ्घा और **(पद्भ्याम्)** पगों के साथ **(विशि)** प्रजा में **(प्रतिष्ठितः)** प्रतिष्ठा को प्राप्त **(धर्मः)** पक्षपातरहित न्यायधर्म के समान **(राजा)** राजा **(अस्मि)** हूं, जिससे तुम लोग मेरे अनुकूल रहो॥९॥

भावार्थः-जो सब अङ्गों से शुभ कर्म करता है, सो धर्मात्मा होकर प्रजा में सत्कार के योग्य उत्तम प्रतिष्ठित राजा होवे॥९॥

प्रतीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। सभेशो देवता। स्वराट् शक्वरी छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प्रति॑ क्ष॒त्रे प्रति॑ तिष्ठामि रा॒ष्ट्रे प्रत्यश्वे॑षु प्रति॑ तिष्ठामि॒ गोषु॑। प्रत्यङ्गे॑षु॒ प्रति॑ तिष्ठाम्या॒त्मन् प्रति॑ प्रा॒णेषु॒ प्रति॑ तिष्ठामि पु॒ष्टे प्रति॒ द्यावा॑पृथि॒व्योः प्रति॑ तिष्ठामि य॒ज्ञे॥ १०॥

प्रति॑। क्ष॒त्रे। प्रति॑। ति॒ष्ठा॒मि॒। रा॒ष्ट्रे। प्रति॑। अश्वे॑षु। प्रति॑। ति॒ष्ठा॒मि॒। गोषु॑। प्रति॑। अङ्गे॑षु। प्रति॑। ति॒ष्ठा॒मि॒। आ॒त्मन्। प्रति॑। प्रा॒णेषु॑। प्रति॑। ति॒ष्ठा॒मि॒। पु॒ष्टे। प्रति॑। द्यावा॑पृथि॒व्योः। प्रति॑। ति॒ष्ठा॒मि॒। य॒ज्ञे॥ १०॥

पदार्थः-**(प्रति)** प्रतिनिधौ **(क्षत्रे)** क्षताद् रक्षके क्षत्रियकुले **(प्रति)** **(तिष्ठामि)** **(राष्ट्रे)** प्रकाशमाने राज्ये **(प्रति)** **(अश्वेषु)** तुरङ्गादिषु **(प्रति)** **(तिष्ठामि)** **(गोषु)** गोषु पृथिव्यादिषु च **(प्रति)** **(अङ्गेषु)** राज्याऽवयवेषु **(प्रति)** **(तिष्ठामि)** **(आत्मन्)** आत्मनि **(प्रति)** **(प्राणेषु)** **(प्रति)** **(तिष्ठामि)** **(पुष्टे)** **(प्रति)** **(द्यावापृथिव्योः)** सूर्याचन्द्रवन्न्यायप्रकाशभूम्योः **(प्रति)** **(तिष्ठामि)** **(यज्ञे)** विद्वत्सेवासङ्गविद्यादानादिक्रियायाम्॥१०॥

अन्वयः-विशि प्रतिष्ठितो राजाऽहं धर्म्येण क्षत्रे प्रति तिष्ठामि, राष्ट्रे प्रति तिष्ठाम्यश्वेषु प्रति तिष्ठामि, गोषु प्रतितिष्ठाम्यङ्गेषु प्रति तिष्ठाम्यात्मन् प्रति तिष्ठामि, प्राणेषु प्रति तिष्ठामि, पुष्टे प्रति तिष्ठामि, द्यावापृथिव्योः प्रति तिष्ठामि, यज्ञे प्रति तिष्ठामि॥१०॥

भावार्थः-यो राजा प्रियाऽप्रिये विहाय न्यायधर्मेण प्रजाः प्रशास्य सर्वेषु राजकर्मसु चारचक्षुर्भूत्वा मध्यस्थया वृत्त्या सर्वाः प्रजाः पालयित्वा सततं विद्यासुशिक्षावर्धको भवेत्, स एव सर्वपूज्यो भवेत्॥१०॥

पदार्थः-प्रजाजनों में प्रतिष्ठा को प्राप्त मैं राजा धर्मयुक्त व्यवहार से **(क्षत्रे)** क्षय से रक्षा करनेहारे क्षत्रियकुल में **(प्रति)** प्रतिष्ठा को प्राप्त होता हूं, **(राष्ट्रे)** राज्य में **(प्रति, तिष्ठामि)** प्रतिष्ठा को प्राप्त होता हूं, **(अश्वेषु)** घोड़े आदि वाहनों में **(प्रति)** प्रतिष्ठा को प्राप्त होता हूं, **(गोषु)** गौ और पृथिवी आदि पदार्थों में **(प्रति, तिष्ठामि)** प्रतिष्ठित होता हूं **(अङ्गेषु)** राज्य के अङ्गों में **(प्रति)** प्रतिष्ठित होता हूं, **(आत्मन्)** आत्मा में **(प्रति, तिष्ठामि)** प्रतिष्ठित होता हूं, **(प्राणेषु)** प्राणों में **(प्रति)** प्रतिष्ठित होता हूं, **(पुष्टे)** पुष्टि करने में **(प्रति, तिष्ठामि)** प्रतिष्ठित होता हूं, **(द्यावापृथिव्योः)** सूर्य-चन्द्र के समान न्याय-प्रकाश और पृथिवी में **(प्रति)** प्रतिष्ठित होता **(यज्ञे)** विद्वानों की सेवा संग और विद्यादानादि क्रिया में **(प्रति, तिष्ठामि)** प्रतिष्ठित होता हूं॥१०॥

भावार्थः-जो राजा प्रिय-अप्रिय को छोड़, न्यायधर्म से समस्त प्रजा का शासन, सब राजकर्मों में चाररूप आंखों वाला अर्थात् राज्य के गुप्त हाल को देने वाले दूत ही जिसके नेत्र के समान, वैसा ही मध्यस्थ वृत्ति से सब प्रजाओं का पालन कर कराके निरन्तर विद्या की शिक्षा को बढ़ावे, वही सब का पूज्य होवे॥१०॥

त्रया इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। उपदेशका देवताः। पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अथोपदेशकविषयमाह॥

अब उपदेशक विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

त्रया देवा एकादश त्रयस्त्रिꣳशाः सुराधसः।
बृहस्पतिपुरोहिता देवस्य सवितुः सवे। देवा देवैरवन्तु मा॥११॥

त्रयाः। देवाः। एकादश। त्रयस्त्रिꣳशा इति त्रयःऽत्रिꣳशाः। सुराधस इति सुऽराधसः। बृहस्पतिपुरोहिता इति बृहस्पतिऽपुरोहिताः। देवस्य। सवितुः। सवे। देवाः। देवैः। अवन्तु। मा॥११॥

पदार्थः-(**त्रयाः**) त्रयाणामवयवभूताः (**देवाः**) दिव्यगुणाः (**एकादश**) एतत्संख्याताः (**त्रयस्त्रिंशाः**) त्र्यधिकास्त्रिंशत् (**सुराधसः**) सुष्ठु राधसः संसिद्धयो येभ्यस्ते (**बृहस्पतिपुरोहिताः**) बृहस्पतिः सूर्य्यः पुरः पूर्वो हितो धृतो येषु ते (**देवस्य**) प्रकाशमानेश्वरस्य (**सवितुः**) सकलजगदुत्पादकस्य (**सवे**) परमैश्वर्ययुक्ते प्रेरितव्ये जगति (**देवाः**) विद्वांसः (**देवैः**) द्योतमानैः (**अवन्तु**) रक्षन्तु (**मा**) माम्॥११॥

अन्वयः-ये त्रया देवा बृहस्पतिपुरोहिताः सुराधस एकादश त्रयस्त्रिंशाः सवितुर्देवस्य सवे वर्त्तन्ते, तैर्देवैः सहितं मा देवा अवन्तु, उन्नतं सम्पादयन्तु॥११॥

भावार्थः-ये पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशद्युचन्द्रनक्षत्राण्यष्टौ प्राणादयो दश वायव एकादशो जीवात्मा द्वादश मासा विद्युद्यज्ञश्चैतेषां दिव्यपृथिव्यादीनां पदार्थानां गुणकर्मस्वभावोपदेशेन सर्वान् मनुष्यानुत्कर्षयन्ति, ते सर्वोपकारका भवन्ति॥११॥

पदार्थः-जो (**त्रयाः**) तीन प्रकार के (**देवाः**) दिव्यगुण वाले (**बृहस्पतिपुरोहिताः**) जिनमें कि बड़ों का पालन करनेहारा सूर्य्य प्रथम धारण किया हुआ है, (**सुराधसः**) जिनसे अच्छे प्रकार कार्यों की सिद्धि होती वे (**एकादश**) ग्यारह (**त्रयस्त्रिंशाः**) तेंतीस दिव्यगुण वाले पदार्थ (**सवितुः**) सब जगत् की उत्पत्ति करनेहारे (**देवस्य**) प्रकाशमान ईश्वर के (**सवे**) परमैश्वर्य्ययुक्त उत्पन्न किये हुए जगत् में हैं, उन (**देवैः**) पृथिव्यादि तेंतीस पदार्थों से सहित (**मा**) मुझ को (**देवाः**) विद्वान् लोग (**अवन्तु**) रक्षा और बढ़ाया करें॥११॥

भावार्थः-जो पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, सूर्य्य, चन्द्र, नक्षत्र ये आठ और प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय तथा ग्यारहवाँ जीवात्मा, बारह महीने, बिजुली

और यज्ञ इन तेंतीस दिव्यगुण वाले पृथिव्यादि पदार्थों के गुण, कर्म और स्वभाव के उपदेश से सब मनुष्यों की उन्नति करते हैं, वे सर्वोपकारक होते हैं॥११॥

प्रथमा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। निचृत् प्रकृतिश्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प्रथमा द्वितीयैर्द्वितीयास्तृतीयैस्तृतीयाः सत्येन सत्यं यज्ञेन यज्ञो यजुर्भिर्यजूꣳषि सामभिः सामान्यृग्भिर्ऋचः। पुरोऽनुवाक्याभिः पुरोऽनुवाक्या याज्याभिर्याज्या वषट्कारैर्वषट्काराऽ आहुतिभिराहुतयो मे कामान्त्समर्धयन्तु भूः स्वाहा॥१२॥

प्रथमा। द्वितीयैः। द्वितीयाः। तृतीयैः। तृतीयाः। सत्येन। सत्यम्। यज्ञेन। यज्ञः। यजुर्भिरिति यजुःऽभिः। यजूꣳषि। सामभिरिति सामऽभिः। सामानि। ऋग्भिरित्यृक्ऽभिः। ऋचः। पुरोनुवाक्याभिरिति पुरःऽअनुवाक्याभिः। पुरोनुवाक्या इति पुरःऽअनुवाक्याः। याज्याभिः। याज्याः। वषट्कारैरिति वषट्ऽकारैः। वषट्कारा इति वषट्ऽकाराः। आहुतिभिरित्याहुतिऽभिः। आहुतय इत्याऽहुतयः। मे। कामान्। सम्। अर्धयन्तु। भूः। स्वाहा॥१२॥

पदार्थः-(**प्रथमाः**) आदिमाः पृथिव्यादयोऽष्टौ वसवः (**द्वितीयैः**) एकादशप्राणाद्यै रुद्रैः (**द्वितीयाः**) रुद्राः (**तृतीयैः**) द्वादशमासैः (**तृतीयाः**) (**सत्येन**) कारणेन (**सत्यम्**) (**यज्ञेन**) शिल्पक्रियया (**यज्ञः**) (**यजुर्भिः**) (**यजूंषि**) (**सामभिः**) (**सामानि**) (**ऋग्भिः**) (**ऋचः**) (**पुरोनुवाक्याभिः**) अथर्ववेदप्रकरणैः (**पुरोनुवाक्याः**) (**याज्याभिः**) यज्ञसम्बन्धक्रियाभिः (**याज्याः**) (**वषट्कारैः**) उत्तमकर्मभिः (**वषट्काराः**) (**आहुतिभिः**) (**आहुतयः**) (**मे**) मम (**कामान्**) इच्छाः (**सम्**) सम्यगर्थे (**अर्धयन्तु**) (**भूः**) अस्यां भूमौ (**स्वाहा**) सत्यक्रियया॥१२॥

अन्वयः-हे विद्वांसः! यथा प्रथमा द्वितीयैर्द्वितीयास्तृतीयैस्तृतीयाः सत्येन सत्यं यज्ञेन यज्ञो यजुर्भिर्यजुषि सामभिः सामान्यृग्भिर्ऋचः पुरोऽनुवाक्याभिः पुरोनुवाक्या याज्याभिर्याज्या वषट्कारैर्वषट्कारा आहुतिभिराहुतयः स्वाहैते सर्वे भूर्मे कामान्त्समर्धयन्तु तथा मां भवन्तो बोधयन्तु॥१२॥

भावार्थः-अध्यापकोपदेशकाः पूर्वं वेदानध्याप्य पृथिव्यादिपदार्थविद्याः संज्ञाप्य कारणकार्यसम्बन्धेन तद्गुणान् साक्षात् कारयित्वा हस्तक्रियया सर्वान् जनान् कुशलान् सम्पादयेयुः॥१२॥

पदार्थः-हे विद्वान् लोगो! (**प्रथमाः**) आदि में कहे पृथिव्यादि आठ वसु (**द्वितीयैः**) दूसरे ग्यारह प्राण आदि रुद्रों के साथ (**द्वितीयाः**) दूसरे ग्यारह रुद्र (**तृतीयैः**) तीसरे महीनों के साथ (**तृतीयाः**) तीसरे महीने (**सत्येन**) नाशरहित कारण के सहित (**सत्यम्**) नित्यकारण (**यज्ञेन**) शिल्पविद्यारूप क्रिया के साथ (**यज्ञः**) शिल्पक्रिया आदि कर्म (**यजुर्भिः**) यजुर्वेदोक्त क्रियाओं से युक्त (**यजूंषि**) यजुर्वेदोक्त क्रिया (**सामभिः**) सामवेदोक्त विद्या के साथ (**सामानि**) सामवेदस्थ क्रिया आदि (**ऋग्भिः**) ऋग्वेदस्थ विद्या

क्रियाओं के साथ (**ऋचः**) ऋग्वेदस्थ व्यवहार (**पुरोनुवाक्याभिः**) अथर्ववेदोक्त प्रकरणों के साथ (**पुरोनुवाक्याः**) अथर्ववेदस्थ व्यवहार (**याज्याभिः**) यज्ञ के सम्बन्ध में जो क्रिया है, उन के साथ (**याज्याः**) यज्ञक्रिया (**वषट्कारैः**) उत्तम कर्मों के साथ (**वषट्काराः**) उत्तम क्रिया (**आहुतिभिः**) होम क्रियाओं के साथ (**आहुतयः**) आहुतियां (**स्वाहा**) सत्य क्रियाओं के साथ ये सब (**भूः**) भूमि में (**मे**) मेरी (**कामान्**) इच्छाओं को (**समर्धयन्तु**) अच्छे प्रकार सिद्ध करें, वैसे मुझ को आप लोग बोध कराओ॥१२॥

भावार्थः-अध्यापक और उपदेशक प्रथम वेदों को पढ़ा, पृथिव्यादि पदार्थ विद्याओं को जना, कार्य-कारण के सम्बन्ध से उनके गुणों को साक्षात् कराके, हस्तक्रिया से सब मनुष्यों को कुशल अच्छे प्रकार किया करें॥१२॥

लोमानीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। अध्यापकोपदेशकौ देवते। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

लोमा॑नि॒ प्रय॑ति॒र्मम॒ त्वङ् म॒ऽआन॑ति॒राग॑तिः।

मा॒ꣳसं म॒ऽउप॑नति॒र्वस्व॒स्थि॑ म॒ज्जा म॒ऽआन॑तिः॥ १३॥

लोमा॑नि। प्रय॑ति॒रिति॒ प्रऽय॑तिः। मम॑। त्वक्। मे॒। आन॑ति॒रि॒त्याऽन॑तिः। आग॑ति॒रित्याऽग॑तिः। मा॒ꣳसम्। मे॒। उप॑नति॒रित्युप॑ऽनतिः। वसु॑। अस्थि॑। म॒ज्जा। मे॒। आन॑ति॒रित्याऽन॑तिः॥ १३॥

पदार्थः-(**लोमानि**) रोमाणि (**प्रयतिः**) प्रयतन्ते यया सा (**मम**) (**त्वक्**) (**मे**) (**आनतिः**) आनमन्ति यया सा (**आगतिः**) आगमनम् (**मांसम्**) (**मे**) (**उपनतिः**) उपनमन्ति यया सा (**वसु**) द्रव्यम् (**अस्थि**) (**मज्जा**) (**मे**) (**आनतिः**) समन्तात् नमनम्॥१३॥

अन्वयः-हे अध्यापकोपदेशकाः! यथा मम लोमानि प्रयतिर्मे त्वगानतिर्मांसमागतिर्मे वसूपनतिर्मेऽस्थि मज्जा चानतिः स्यात् तथा यूयं प्रयतध्वम्॥१३॥

भावार्थः-अध्यापकोपदेशकैरेवं प्रयतितव्यं यतः सुशिक्षया युक्ताः सर्वे पुरुषाः सर्वाः कन्याश्च सुन्दराङ्गस्वभावा दृढबला धार्मिका विद्यायुक्ताः स्युरिति॥१३॥

पदार्थः-हे अध्यापक और उपदेशक लोगो! जैसे (**मम**) मेरे (**लोमानि**) रोम वा (**प्रयतिः**) जिससे प्रयत्न करते हैं वा (**मे**) मेरी (**त्वक्**) त्वचा (**आनतिः**) वा जिससे सब ओर से नम्र होते हैं, (**मांसम्**) मांस वा (**आगतिः**) आगमन तथा (**मे**) मेरा (**वसु**) द्रव्य (**उपनतिः**) वा जिससे नम्र होते हैं (**मे**) मेरे (**अस्थि**) हाड़ और (**मज्जा**) हाड़ा के बीच का पदार्थ (**आनतिः**) वा अच्छे प्रकार नमन होता हो, वैसे तुम लोग प्रयत्न किया करो॥१३॥

भावार्थः-अध्यापक, उपदेशक लोगों को इस प्रकार प्रयत्न करना चाहिये कि जिससे सुशिक्षायुक्त सब पुरुष और सब कन्या सुन्दर अङ्ग और स्वभाव वाले दृढ़, बलयुक्त, धार्मिक विद्याओं से युक्त होवें॥१३॥

यदित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यद्दे॑वा दे॑वहेड॑नं देवा॑सश्चकृ॒मा व॒यम्।

अ॒ग्निर्मा॒ तस्मा॒देन॑सो॒ विश्वा॑न्मुञ्च॒त्वꣳह॑सः॥१४॥

यत्। दे॒वाः। दे॒व॒हेड॑न॒मिति॑ देव॒ऽहेड॑नम्। देवा॑सः। च॒कृ॒म। व॒यम्। अ॒ग्निः। मा॒। तस्मा॑त्। एन॑सः। विश्वा॑त्। मु॒ञ्च॒तु॒। अꣳह॑सः॥१४॥

पदार्थः-**(यत्)** ये **(देवाः)** अध्यापकोपदेशका विद्वांसः **(देवहेडनम्)** देवानां हेडनमनादरम् **(देवासः)** विद्वांसः **(चकृम)** कुर्याम। अत्र **संहितायाम्** [अष्टा०६.३.११४] इति दीर्घः। **(वयम्)** **(अग्निः)** अग्निरिव सर्वासु विद्यासु देदीप्यमानो विद्वान् **(मा)** माम् **(तस्मात्)** **(एनसः)** अपराधात् **(विश्वात्)** समग्रात् **(मुञ्चतु)** पृथक् करोतु **(अंहसः)** दुष्टाद् व्यसनात्॥१४॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यत् वयं देवा अन्ये देवासश्च परस्परं देवहेडनं चकृम, तस्माद् विश्वादेनसोंऽहसश्चाग्निर्मा मुञ्चतु॥१४॥

भावार्थः-यदि कदाचिदकस्माद् भ्रान्त्या कस्यापि विदुषोऽनादरं कश्चित् कुर्यात्, तर्हि तदैव क्षमां कारयेत्। यथाग्निः सर्वेषु प्रविष्टः सन् सर्वान् स्वस्वरूपस्थान् करोति, तथा विदुषा सत्योपदेशेनासत्याचाराद् वियोज्य सत्याचारे प्रवर्त्य सर्वे धार्मिकाः कार्य्याः॥१४॥

पदार्थः-हे विद्वान्! **(यत्)** जो **(वयम्)** हम **(देवाः)** अध्यापक और उपदेशक, विद्वान् तथा अन्य **(देवासः)** विद्वान् लोग परस्पर **(देवहेडनम्)** विद्वानों का अनादर **(चकृम)** करें, **(तस्मात्)** उस **(विश्वात्)** समस्त **(एनसः)** अपराध और **(अंहसः)** दुष्ट व्यसन से **(अग्निः)** पावक के समान सब विद्याओं में प्रकाशमान आप **(मा)** मुझको **(मुञ्चतु)** पृथक् करो॥१४॥

भावार्थः-जो कभी अकस्मात् भ्रान्ति से किसी विद्वान् का अनादर कोई करे तो उसी समय क्षमा करावे। जैसे अग्नि सब पदार्थों में प्रविष्ट हुआ सब को अपने स्वरूप में स्थिर करता है, वैसे विद्वान् को चाहिये कि सत्य के उपदेश से असत्याचरण से पृथक् और सत्याचार में प्रवृत्त करके सब को धार्मिक करें॥१४॥

यदीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। वायुर्देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यदि दिवा यदि नक्तमेनांꣳसि चकृमा वयम्।

वायुर्मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वꣳहसः॥ १५॥

यदि। दिवा। यदि। नक्तम्। एनांꣳसि। चकृम। वयम्। वायुः। मा। तस्मात्। एनसः। विश्वात्। मुञ्चतु। अꣳहसः॥ १५॥

पदार्थः-(**यदि**) (**दिवा**) दिवसे (**यदि**) (**नक्तम्**) रात्रौ (**एनांसि**) अपराधान् (**चकृम**) अत्र पूर्ववद् दीर्घः। (**वयम्**) (**वायुः**) वायुरिव वर्त्तमान आप्तः (**मा**) माम् (**तस्मात्**) (**एनसः**) (**विश्वात्**) (**मुञ्चतु**) (**अंहसः**)॥ १५॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यदि दिवा यदि नक्तमेनांसि वयं चकृम, तस्माद् विश्वादेनसोंऽहसश्च मा वायुर्मुञ्चतु॥ १५॥

भावार्थः-यदहोरात्रे अज्ञानात् पापं कुर्य्युस्तस्मादपि पापात् सर्वान् शिष्यान् शिक्षकाः पृथक् कुर्वन्तु॥ १५॥

पदार्थः-हे विद्वन्! (**यदि**) जो (**दिवा**) दिवस में (**यदि**) जो (**नक्तम्**) रात्रि में (**एनांसि**) अज्ञात अपराधों को (**वयम्**) हम लोग (**चकृम**) करें, (**तस्मात्**) उस (**विश्वात्**) समग्र (**एनसः**) अपराध और (**अंहसः**) दुष्ट व्यसन से (**मा**) मुझे (**वायुः**) वायु के समान वर्त्तमान आप्त (**मुञ्चतु**) पृथक् करे॥ १५॥

भावार्थः-जो दिवस और रात्रि में अज्ञान से पाप करें, उस पाप से भी सब शिष्यों को शिक्षक लोग पृथक् किया करें॥ १५॥

यदीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। सूर्य्यो देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यदि जाग्रद् यदि स्वप्नऽएनांꣳसि चकृमा वयम्।

सूर्यो मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वꣳहसः॥ १६॥

यदि। जाग्रत्। यदि। स्वप्ने। एनांꣳसि। चकृम। वयम्। सूर्यः। मा। तस्मात्। एनसः। विश्वात्। मुञ्चतु। अꣳहसः॥ १६॥

पदार्थः-(**यदि**) (**जाग्रत्**) जागरणे (**यदि**) (**स्वप्ने**) निद्रायाम् (**एनांसि**) (**चकृम**) अत्रापि पूर्ववद् दीर्घः (**वयम्**) (**सूर्यः**) सवितृवद्वर्त्तमानः (**मा**) माम् (**तस्मात्**) (**एनसः**) (**विश्वात्**) (**मुञ्चतु**) (**अंहसः**)॥ १६॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यदि जाग्रत् यदि स्वप्न एनांसि वयं चकृम, तस्माद् विश्वादेनसोंऽहसश्च सूर्य इव भवान् मा मुञ्चतु॥१६॥

भावार्थः-यां काञ्चित् दुश्चेष्टां जनाः कुर्युर्विद्वांसस्तस्यास्तान् सर्वान् सद्यो निवारयेयुः॥१६॥

पदार्थः-हे विद्वन्! **(यदि)** जो **(जाग्रत्)** जाग्रत् अवस्था और **(यदि)** जो **(स्वप्ने)** स्वप्नावस्था में **(एनांसि)** अपराधों को **(वयम्)** हम **(चकृम)** करें, **(तस्मात्)** उस **(विश्वात्)** समग्र **(एनसः)** पाप और **(अंहसः)** प्रमाद से **(सूर्यः)** सूर्य के समान वर्त्तमान आप **(मा)** मुझको **(मुञ्चतु)** पृथक् करें॥१६॥

भावार्थः-जिस किसी दुष्ट चेष्टा को मनुष्य लोग करें, विद्वान् लोग उस चेष्टा से उन सब को शीघ्र निवृत्त करें॥१६॥

यदित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। लिङ्गोक्ता देवताः। भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यद् ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये।

यच्छूद्रे यदर्ये यदेनश्चकृमा वयं यदेकस्याधि धर्मणि तस्यावयजनमसि॥१७॥

यत्। ग्रामे। यत्। अरण्ये। यत्। सभायाम्। यत्। इन्द्रिये। यत्। शूद्रे। यत्। अर्ये। यत्। एनः। चकृम। वयम्। यत्। एकस्य। अधि। धर्मणि। तस्य। अवयजनमित्यवऽयजनम्। असि॥१७॥

पदार्थः-**(यत्)** **(ग्रामे)** **(यत्)** **(अरण्ये)** जङ्गले **(यत्)** **(सभायाम्)** **(यत्)** **(इन्द्रिये)** मनसि **(यत्)** **(शूद्रे)** **(यत्)** **(अर्ये)** स्वामिनि वैश्ये वा **(यत्)** **(एनः)** **(चकृम)** कुर्मो वा करिष्यामः **(वयम्)** **(यत्)** **(एकस्य)** **(अधि)** **(धर्मणि)** **(तस्य)** **(अवयजनम्)** दूरीकरणसाधनम् **(असि)**॥१७॥

अन्वयः-हे विद्वन्! वयं यद् ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये यच्छूद्रे यदर्य्ये यदेकस्याधि धर्म्मणि यदेनश्चकृम, तस्य सर्वस्य त्वमवयजनमसि, तस्मान्महाशयोऽसि॥१७॥

भावार्थः-मनुष्यैः कदाचित् क्वापि पापाचरणं नैव कर्त्तव्यम्, यदि कथंचित् क्रियेत तर्हि तत्सर्वं स्वकुटुम्बविद्वत्सन्निधौ राजसभायां च सत्यं वाच्यम्। येऽध्यापकोपदेशकाः स्वयं धार्मिका भूत्वाऽन्यान् सम्पादयन्ति, तेभ्योऽधिकः को भूषकः परः॥१७॥

पदार्थः-हे विद्वन्! **(वयम्)** हम लोग **(यत्)** जो **(ग्रामे)** गांव में **(यत्)** जो **(अरण्ये)** जङ्गल में **(यत्)** जो **(सभायाम्)** सभा में **(यत्)** जो **(इन्द्रिये)** मन में **(यत्)** जो **(शूद्रे)** शूद्र में **(यत्)** जो **(अर्ये)** स्वामी वा वैश्य में **(यत्)** जो **(एकस्य)** एक के **(अधि)** ऊपर **(धर्मणि)** धर्म में तथा **(यत्)** जो और **(एनः)** अपराध **(चकृम)** करते हैं वा करने वाले हैं **(तस्य)** उस सबका आप **(अवयजनम्)** छुड़ाने के साधन हैं, इससे महाशय **(असि)** हैं॥१७॥

भावार्थः-मनुष्यों को योग्य है कि कभी कहीं पापाचरण न करें, जो कथंचित् करते बन पड़े तो उस सब को अपने कुटुम्ब और विद्वान् के समाने और राजसभा में सत्यता से कहें। जो पढ़ाने और उपदेश करनेहारे स्वयं धार्मिक होकर अन्य सब को धर्माचरण में युक्त करते हैं, उनसे अधिक मनुष्यों को सुभूषित करनेहारा दूसरा कौन है॥१७॥

यदित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। वरुणो देवता। भुरिगत्यष्टिश्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यदापोऽअघ्न्या इति वरुणेति शपामहे ततो वरुण नो मुञ्च।
अवभृथ निचुम्पुण निचेरुरसि निचुम्पुणः।
अव देवैर्देवकृतमेनोऽयक्ष्यव मर्त्यैर्मर्त्यकृतं पुरुराव्णो देव रिषस्पाहि॥१८॥

यत्। आपः। अघ्न्याः। इति। वरुण। इति। शपामहे। ततः। वरुण। नः। मुञ्च। अवभृथेत्यवऽभृथ। निचिम्पुणेति निऽचुम्पुण। निचेरुरिति निऽचेरुः। असि। निचिम्पुण इति निऽचुम्पुणः। अव। देवैः। देवकृतमिति देवऽकृतम्। एनः। अयक्षि। अव। मर्त्यैः। मर्त्यकृतमिति मर्त्यऽकृतम्। पुरुराव्ण इति पुरुऽराव्णः। देव। रिषः। पाहि॥१८॥

पदार्थः-(**यत्**) याः (**आपः**) प्राणाः (**अघ्न्याः**) हन्तुमयोग्या गावः (**इति**) (**वरुण**) सर्वोत्कृष्ट (**इति**) अनेन प्रकारेण (**शपामहे**) उपालभामहे (**ततः**) तस्मादविद्यादिक्लेशादधर्माचरणाच्च (**वरुण**) वरप्रापक (**नः**) अस्मान् (**मुञ्च**) पृथक् कुरु (**अवभृथ**) विद्याव्रतस्नातक (**निचुम्पुण**) मन्दगामिन्। अत्र चुप मन्दायां गतावित्यस्मादौणादिक उणन् प्रत्ययो मुमागमश्च (**निचेरुः**) निश्चितानन्दप्रदः (**असि**) (**निचुम्पुणः**) निश्चितानन्दयुक्तः (**अव**) (**देवैः**) विद्वद्भिः (**देवकृतम्**) देवैराचरितम् (**एनः**) पापम् (**अयक्षि**) नाशयसि (**अव**) (**मर्त्यैः**) अविद्वद्भिर्मनुष्यैः (**मर्त्यकृतम्**) मर्त्यैराचरितम् (**पुरुराव्णः**) बहुदुःखप्रदात् (**देव**) दिव्यबोधप्रद (**रिषः**) हिंसनात् (**पाहि**)॥१८॥

अन्वयः-हे वरुण देव! यतस्त्वं यदापोऽघ्न्या इति वरुणेति वयं शपामहे ततो नो मुञ्च। हे अवभृथ निचुम्पुण! त्वं निचेरुर्निचुम्पुणोऽसीति पुरुराव्णो रिषस्पाहि, यद्देवकृतमेनोऽस्ति तद् देवैरवायक्षि, यन्मर्त्यकृतमेनोऽस्ति तन्मर्त्यैः सहावायक्षि॥१८॥

भावार्थः-अध्यापकोपदेशकैः शिष्या ईदृशाः सत्यवादिनः सम्पादनीया यदेतैः यद्यत् पापात्मकं तत्तत् कदाचित् केनचित् नो अनुष्ठेयम्॥१८॥

पदार्थः-हे (**वरुण**) उत्तम प्राप्ति कराने और (**देव**) दिव्य बोध का देनेहारा तू (**यत्**) जो (**आपः**) प्राण (**अघ्न्याः**) मारने को अयोग्य गौवें (**इति**) इस प्रकार से वा हे (**वरुण**) सर्वोत्कृष्ट! (**इति**) इस प्रकार

से हम लोग (**शपामहे**) उलाहना देते हैं, (**ततः**) उस अविद्यादि क्लेश और अधर्माचरण से (**नः**) हम को (**मुञ्च**) अलग कर। हे (**अवभृथ**) ब्रह्मचर्य और विद्या से निष्णात (**निचुम्पुण**) मन्द गमन करनेहारे! तू (**निचेरुः**) निश्चित आनन्द का देनेहारा और (**निचुम्पुणः**) निश्चित आनन्दयुक्त (**असि**) है, इस हेतु से (**पुरुराव्णः**) बहु दुःख देनेहारी (**रिषः**) हिंसा से (**पाहि**) रक्षा कर, (**देवकृतम्**) जो विद्वानों का किया (**एनः**) अपराध है, उसको (**देवैः**) विद्वानों के साथ (**अवायक्षि**) नाश करता है, जो (**मर्त्यकृतम्**) मनुष्यों का किया अपराध है, उसको (**मर्त्यैः**) मनुष्यों के साथ से (**अव**) छुड़ा देता है॥१८॥

भावार्थः-अध्यापक और उपदेशक मनुष्यों को शिष्यजन ऐसे सत्यवादी सिद्ध करने चाहियें कि जो इन को कहीं शपथ करना न पड़े। जो-जो मनुष्यों को श्रेष्ठ कर्म का आचरण करना हो, वह-वह सबको आचरण करना चाहिये और जो अधर्मरूप हो, वह किसी को कभी न करना चाहिये॥१८॥

समुद्र इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। आपो देवताः। निचृदतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

समुद्रे ते हृदयमप्स्वन्तः सं त्वा विशन्त्वोषधीरुतापः। सुमित्रिया नऽआपऽओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः॥१९॥

समुद्रे। ते। हृदयम्। अप्स्वित्यप्सु। अन्तरित्यन्तः। सम्। त्वा। विशन्तु। ओषधीः। उत। आपः। सुमित्रिया इति सुऽमित्रियाः। नः। आपः। ओषधयः। सन्तु। दुर्मित्रिया इति दुःऽमित्रियाः। तस्मै। सन्तु। यः। अस्मान्। द्वेष्टि। यम्। च। वयम्। द्विष्मः॥१९॥

पदार्थः-(**समुद्रे**) अन्तरिक्षे (**ते**) तव (**हृदयम्**) आत्मबलं जीवनहेतुस्थानम् (**अप्सु**) प्राणेषु (**अन्तः**) अन्तःकरणम् (**सम्**) सम्यगर्थे (**त्वा**) (**विशन्तु**) (**ओषधीः**) ओषध्यः (**उत**) (**आपः**) प्राणाः (**सुमित्रियाः**) सुमित्रा इव (**नः**) अस्मभ्यम् (**आपः**) प्राणा जलानि वा (**ओषधयः**) सोमयवाद्याः (**सन्तु**) (**दुर्मित्रियाः**) दुर्मित्राः शत्रव इव (**तस्मै**) (**सन्तु**) (**यः**) (**अस्मान्**) (**द्वेष्टि**) (**यम्**) (**च**) (**वयम्**) (**द्विष्मः**) अप्रीतयामः॥१९॥

अन्वयः-हे शिष्य! ते हृदयं समुद्रे अप्स्वन्तरस्तु, त्वौषधीः संविशन्तूतापः संविशन्तु, यतो न आप ओषधयश्च सुमित्रियाः सन्तु, योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तस्मै दुर्मित्रियाः सन्तु॥१९॥

भावार्थः-अध्यापकैरेवं चिकीर्षितव्यं येन शिक्षणीया मनुष्या सावकाशाः प्राणौषधीविद्यावेत्तारः सद्यः स्युः। ओषधय आपः प्राणाश्च सम्यक् सेविता मित्रवत् विदुषः पालयेयुरविदुषश्च शत्रुवत् पीडयेयुस्तेषां सेवनं तेषां त्यागश्चावश्यं कर्त्तव्यः॥१९॥

पदार्थः-हे शिष्य! **(ते)** तेरा **(हृदयम्)** हृदय **(समुद्रे)** आकाशस्थ **(अप्सु)** प्राणों के **(अन्तः)** बीच में हो **(त्वा)** तुझ को **(ओषधीः)** ओषधियां **(सम्, विशन्तु)** अच्छे प्रकार प्राप्त हों **(उत)** और **(आपः)** प्राण वा जल अच्छे प्रकार प्रविष्ट हों, जिससे **(नः)** हमारे लिये **(आपः)** जल और **(ओषधयः)** ओषधि **(सुमित्रियाः)** उत्तम मित्र के समान सुखदायक **(सन्तु)** हों, **(यः)** जो **(अस्मान्)** हमारा **(द्वेष्टि)** द्वेष करे **(यम्, च)** और जिसका **(वयम्)** हम **(द्विष्मः)** द्वेष करें, **(तस्मै)** उसके लिये ये सब **(दुर्मित्रियाः)** शत्रुओं के समान **(सन्तु)** होवें॥१९॥

भावार्थः-अध्यापक लोगों को इस प्रकार करने की इच्छा करना चाहिये कि जिससे शिक्षा करने योग्य मनुष्य अवकाशसहित प्राण तथा ओषधियों की विद्या के जाननेहारे शीघ्र हों। ओषधि, जल और प्राण अच्छे प्रकार सेवा किये हुए मित्र के समान विद्वानों की पालना करें और अविद्वान् लोगों को शत्रु के समान पीड़ा देवें, उनका सेवन और उनका त्याग अवश्य करें॥१९॥

द्रुपदादिवेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। आपो देवताः। भुरिगनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव।

पूतं पवित्रेणेवाज्यमापः शुन्धन्तु मैनसः॥२०॥

द्रुपदादिवेति द्रुपदात्ऽइव। मुमुचानः। स्विन्नः। स्नातः। मलादिवेति मलात्ऽइव। पूतम्। पवित्रेणेवेति पवित्रेणऽइव। आज्यम्। आपः। शुन्धन्तु। मा। एनसः॥२०॥

पदार्थः-**(द्रुपदादिव)** वृक्षात् फलादिवत् **(मुमुचानः)** पृथग्भूतः **(स्विन्नः)** स्वेदयुक्तः **(स्नातः)** कृतस्नानः **(मलादिव)** यथा मलिनतायाः **(पूतम्)** **(पवित्रेणेव)** यथा शुद्धिकरेण **(आज्यम्)** घृतम् **(आपः)** प्राणा जलानीव विद्वांसः **(शुन्धन्तु)** पवित्रयन्तु **(मा)** माम् **(एनसः)** दुष्टाचारात्॥२०॥

अन्वयः-हे आपो भवन्तः! द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव पवित्रेणेव पूतमाज्यं भवति, मैनसः शुन्धन्तु॥२०॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। अध्यापकोपदेशकैरित्थं सर्वे सुशिक्षिताः कार्य्या, येन ते पवित्रात्मारोगशरीर-धर्मयुक्तकर्माणः स्युः॥२०॥

पदार्थः-हे **(आपः)** प्राण वा जलों के समान निर्मल विद्वान् लोगो! आप **(द्रुपदादिव, मुमचानः)** वृक्ष से जैसे फल, रस, पुष्प, पत्ता आदि अलग होते वा जैसे **(स्विन्नः)** स्वेदयुक्त मनुष्य **(स्नातः)** स्नान करके **(मलादिव)** मल से छूटता है, वैसे वा **(पवित्रेणेव)** जैसे पवित्र करने वाले पदार्थ से **(पूतम्)** शुद्ध **(आज्यम्)** घृत होता है, वैसे **(मा)** मुझ को **(एनसः)** अपराध से पृथक् करके **(शुन्धन्तु)** शुद्ध करें॥२०॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। अध्यापक उपदेशक लोगों को योग्य है कि इस प्रकार सब को अच्छी शिक्षा से युक्त करें, जिससे वे शुद्ध आत्मा, नीरोग शरीर और धर्मयुक्त कर्म करने वाले हों॥२०॥

उद्वयमित्यस्य प्रस्कण्व ऋषिः। सूर्यो देवता। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथ प्रकृतविषये उपासनाविषयमाह॥

अब प्रकृत विषय में उपासना विषय कहा है॥

उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्।

देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्॥२१॥

उत्। वयम्। तमसः। परि। स्वः। पश्यन्तः। उत्तरमित्युत्ऽतरम्। देवम्। देवत्रेति देवऽत्रा। सूर्यम्। अगन्म। ज्योतिः। उत्तममित्युत्ऽतमम्॥२१॥

पदार्थः-(**उत्**) (**वयम्**) (**तमसः**) अन्धकारात् (**परि**) सर्वतः (**स्वः**) सुखरूपम् (**पश्यन्तः**) (**उत्तरम्**) सर्वेभ्यः सूक्ष्मत्वादुत्तरम् (**देवम्**) दिव्यसुखप्रदम् (**देवत्रा**) दिव्यगुणेषु देवेषु (**सूर्य्यम्**) सवितारं चराचरात्मानं परमेश्वरं वा (**अगन्म**) प्राप्नुयाम (**ज्योतिः**) स्वप्रकाशस्वरूपम् (**उत्तमम्**) सर्वोत्कृष्टम्॥२१॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा वयं तमसः परं ज्योतिः सूर्यं परि पश्यन्तः सन्तो देवत्रा देवं स्वरुत्तरमुत्तमं ज्योतिः स्वप्रकाशं परमेश्वरमुदगन्म, तथैव यूयमप्येनं प्राप्नुत॥२१॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यः सूर्यवत् स्वप्रकाशः सर्वात्मनां प्रकाशको महादेवो जगदीश्वरोऽस्ति, तमेव सर्वे मनुष्या उपासीरन्॥२१॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे (**वयम्**) हम लोग (**तमसः**) अन्धकार से परे (**ज्योतिः**) प्रकाशस्वरूप (**सूर्यम्**) सूर्यलोक वा चराचर के आत्मा परमेश्वर को (**परि**) सब ओर से (**पश्यन्तः**) देखते हुए (**देवत्रा**) दिव्यगुण वाले देवों में (**देवम्**) उत्तम सुख के देने वाले (**स्वः**) सुखस्वरूप (**उत्तरम्**) सबसे सूक्ष्म (**उत्तमम्**) उत्कृष्ट स्वप्रकाशस्वरूप परमेश्वर को (**उदगन्म**) उत्तमता से प्राप्त हों, वैसे ही तुम लोग भी इसको प्राप्त होओ॥२१॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो सूर्य्य के समान स्वप्रकाश सब आत्माओं का प्रकाशक महादेव जगदीश्वर है, उसी की सब मनुष्य उपासना करें॥२१॥

अप इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। अग्निर्देवता। पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनरध्यापकोदेशकविषयमाह॥

फिर अध्यापक और उपदेशक विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अपोऽअद्यान्वचारिषꣳ रसेन समसृक्ष्महि।

पयस्वाग्नऽआगमं तं मा सꣳसृज वर्चसा प्रजया च धनेन च॥२२॥

अप:। अद्य। अनु। अचारिषम्। रसेन। सम्। असृक्ष्महि। पयस्वान्। अग्ने। आ। अगमम्। तम्। मा। सम्। सृज। वर्चसा। प्रजयेति प्रजया। च। धनेन। च॥२२॥

पदार्थ:-(**अप:**) जलानि (**अद्य**) अस्मिन् दिने (**अनु**) (**अचारिषम्**) चरेयम् (**रसेन**) मधुरादिना (**सम्**) (**असृक्ष्महि**) संसृजेम, व्यत्येनात्मनेपदम् (**पयस्वान्**) प्रशस्तजलविद्यायुक्त: (**अग्ने**) अग्निरिव विद्वन् (**आ**) (**अगमम्**) प्राप्नुयाम् (**तम्**) (**मा**) माम् (**सम्**) (**सृज**) संयोजय (**वर्चसा**) साङ्गोपाङ्गवेदाध्ययनेन (**प्रजया**) सुसन्तानै: (**च**) (**धनेन**) (**च**)॥२२॥

अन्वय:-हे अग्ने! य: पयस्वानहं त्वामागममद्य रसेन सहापोऽन्वचारिषम्, तं मा वर्चसा प्रजया च धनेन च संसृज, यत इमेऽहं च सर्वे वयं सुखाय समसृक्ष्महि॥२२॥

भावार्थ:-यदि विद्वांसोऽध्यापनोपदेशाभ्यामन्यान् विदुष: कुर्युस्तर्हि तेऽपि प्रत्यहमधिकविद्या: स्यु:॥२२॥

पदार्थ:-हे (**अग्ने**) अग्नि के समान विद्वान्! जो (**पयस्वान्**) प्रशंसित जल की विद्या से युक्त मैं तुझ को (**आ, अगमम्**) प्राप्त होऊं वा (**अद्य**) आज (**रसेन**) मधुरादि रस से युक्त (**अप:**) जलों को (**अन्वचारिषम्**) अनुकूलता से पान करूं, (**तम्**) उस (**मा**) मुझको (**वर्चसा**) साङ्गोपाङ्ग वेदाध्ययन (**प्रजया**) प्रजा (**च**) और (**धनेन**) धन से (**च**) भी (**सम्, सृज**) सम्यक् संयुक्त कर, जिससे ये लोग और मैं सब हम सुख के लिये (**समसृक्ष्महि**) संयुक्त होवें॥२२॥

भावार्थ:-यदि विद्वान् लोग पढ़ाने और उपदेश करने से अन्य लोगों को विद्वान् करें तो वे भी नित्य अधिक विद्या वाले हों॥२२॥

एधोऽसीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि:। समिद्देवता। स्वराडतिशक्वरी छन्द:। पञ्चम: स्वर:॥

अथ प्रकृतविषये पुनरुपासनाविषयमाह॥

अब प्रकरणगत विषय में फिर उपासना विषय कहते हैं॥

एधोऽस्येधिषीमहि समिदसि तेजोऽसि तेजो मयि धेहि।
समाववर्ति पृथिवी समुषा: समु सूर्य:। समु विश्वमिदं जगत्।
वैश्वानरज्योतिर्भूयासं विभून् कामान् व्यश्नवै भू: स्वाहा॥२३॥

एध:। असि। एधिषीमहि। समिदिति समऽइत्। असि। तेज:। असि। तेज:। मयि। धेहि। समाववर्तीति सम्ऽआववर्ति। पृथिवी। सम्। उषा:। सम्। ऊँऽइत्यूँ। सूर्य:। सम्। ऊँऽइत्यूँ। विश्वम्। इदम्। जगत्। वैश्वानरज्योतिरिति वैश्वानरऽज्योति:। भूयासम्। विभूनिति विऽभून्। कामान्। वि। अश्नवै। भू:। स्वाहा॥२३॥

पदार्थः-(**एधः**) वर्द्धकः (**असि**) (**एधिषीमहि**) वर्द्धिषीमहि (**समित्**) अग्नेरिन्धनमिव मनुष्याणामात्मनां प्रकाशकः (**असि**) (**तेजः**) तीव्रप्रज्ञः (**असि**) (**तेजः**) ज्ञानप्रकाशम् (**मयि**) (**धेहि**) (**समाववर्त्ति**) सम्यग् वर्त्तेत। अत्र व्यत्ययेन परस्मैपदं शपः श्लुश्च (**पृथिवी**) भूमिः (**सम्**) (**उषाः**) प्रभातः (**सम्**) (**उ**) इति वितर्के (**सूर्यः**) (**सम्**) (**उ**) (**विश्वम्**) (**इदम्**) (**जगत्**) (**वैश्वानरज्योतिः**) विश्वेषु नरेषु प्रकाशमानं वैश्वानरं वैश्वानरं च तज्ज्योतिश्च वैश्वानरज्योतिः (**भूयासम्**) (**विभून्**) व्यापकान् (**कामान्**) संकल्पितान् (**वि**) विविधतया (**अश्नवै**) प्राप्नुयाम् (**भूः**) सत्तात्मिकाम् (**स्वाहा**) सत्यया वाचा क्रियया च॥२३॥

अन्वयः-हे जगदीश्वर! त्वमेधोऽसि समिदसि तेजोऽसि, तस्मात् तेजो मयि धेहि। यो भवान् सर्वत्र समाववर्त्ति येन भवता पृथिव्युषाश्च संसृष्टा सूर्यः संसृष्ट इदं विश्वं जगत् संसृष्टम्, तदु वैश्वानरज्योतिर्ब्रह्म प्राप्य वयमेधिषीमहि, यथाऽहं स्वाहाभूविभून् कामान् व्यश्नवै सुखी न भूयासमु तथैव यूयमपि सिद्धकामाः सुखिनः स्यात॥२३॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यच्छुद्धं सर्वत्र व्यापकं सर्वप्रकाशकं जगत्स्रष्टृधर्तृप्रलयकृद् ब्रह्मोपास्य यूयमानन्दिता यथा भवत, तथैतल्लब्ध्वा वयमप्यानन्दिता भवेमाऽऽकाशकालदिशोऽपि विभून् जानीयाम॥२३॥

पदार्थः-हे जगदीश्वर! आप (**एधः**) बढ़ानेहारे (**असि**) हैं, जैसे (**समित्**) अग्नि का प्रकाशक इन्धन है, वैसे मनुष्यों के आत्मा का प्रकाश करनेहारे (**असि**) हैं और (**तेजः**) तीव्रबुद्धि वाले (**असि**) हैं, इससे (**तेजः**) ज्ञान के प्रकाश को (**मयि**) मुझ में (**धेहि**) धारण कीजिये। जो आप सर्वत्र (**समाववर्त्ति**) अच्छे प्रकार व्याप्त हो जिन आपने (**पृथिवी**) भूमि और (**उषाः**) उषा (**सम्**) अच्छे प्रकार उत्पन्न की (**सूर्य्यः**) सूर्य्य (**सम्**) अच्छे प्रकार उत्पन्न किया (**इदम्**) यह (**विश्वम्**) सब (**जगत्**) जगत् (**सम्**) उत्पन्न किया (**उ**) उसी (**वैश्वानरज्योतिः**) विश्व के नायक प्रकाशस्वरूप ब्रह्म को प्राप्त होके लोग (**एधिषीमहि**) नित्य बढ़ा करें, जैसे मैं (**स्वाहा**) सत्यवाणी वा क्रिया से (**भूः**) सत्ता वाली प्रकृति (**विभून्**) व्यापक पदार्थ और (**कामान्**) कामों को (**व्यश्नवै**) प्राप्त होऊं और सुखी (**भूयासम्**) होऊं (**उ**) और वैसे तुम भी सिद्धकाम और सुखी होओ॥२३॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जिस शुद्ध, सर्वत्र व्यापक, सब के प्रकाशक, जगत् के उत्पादन, धारण, पालन और प्रलय करनेहारे ब्रह्म की उपासना करके तुम लोग जैसे आनन्दित होते हो, वैसे इस को प्राप्त होके हम भी आनन्दित होवें; आकाश, काल और दिशाओं को भी व्यापक जानें॥२३॥

अभ्यादधामीत्यस्याश्वतराश्विर्ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अभ्यादधामि समिधमग्ने व्रतपते त्वयि।

व्रतं च श्रद्धां चोपैमीन्धे त्वा दीक्षितोऽअहम्॥२४॥

अभि। आ। दधामि। समिधमिति सम्ऽइधम्। अग्ने। व्रतपत इति व्रतऽपते। त्वयि। व्रतम्। च। श्रद्धाम्। च। उप। एमि। इन्धे। त्वा। दीक्षितः। अहम्॥२४॥

पदार्थ:-(**अभि**) (**आ**) (**दधामि**) (**समिधम्**) समिधमिव ध्यानम् (**अग्ने**) स्वप्रकाशस्वरूप जगदीश्वर (**व्रतपते**) सत्यभाषणादीनां व्रतानां कर्मणां वा पालक। **व्रतमिति कर्मनामसु पठितम्॥** (निघं०२.१) (**त्वयि**) (**व्रतम्**) सत्यभाषणादिकं कर्म (**च**) (**श्रद्धाम्**) सत्यधारिकां क्रियाम् (**च**) (**उप**) (**एमि**) प्राप्नोमि (**इन्धे**) प्रकाशयामि (**त्वा**) त्वाम् (**दीक्षित:**) ब्रह्मचर्यादिदीक्षां प्राप्य जातविद्य: (**अहम्**)॥२४॥

अन्वय:-हे व्रतपतेऽग्ने! त्वयि स्थिरीभूयाहं समिधमिव ध्यानमभ्यादधामि, यतो व्रतं च श्रद्धां चोपैमि दीक्षित: संस्त्वा त्वामिन्धे॥२४॥

भावार्थ:-ये मनुष्या: परमेश्वराज्ञप्तानि सत्यभाषणादीनि व्रतानि धरन्ति, तेऽतुलां श्रद्धां प्राप्य धर्माऽर्थकाम-मोक्षसिद्धिं कर्तुं शक्नुवन्ति॥२४॥

पदार्थ:-हे (**व्रतपते**) सत्यभाषणादि कर्मों के पालन करनेहारे (**अग्ने**) स्वप्रकाशस्वरूप जगदीश्वर! (**त्वयि**) तुझमें स्थिर हो के (**अहम्**) मैं (**समिधम्**) अग्नि में समिधा के समान ध्यान को (**अभ्यादधामि**) धारण करता हूं, जिससे (**व्रतम्**) सत्यभाषणादि व्यवहार (**च**) और (**श्रद्धाम्**) सत्य के धारण करने वाले नियम को (**च**) भी (**उपैमि**) प्राप्त होता हूं, (**दीक्षित:**) ब्रह्मचर्य्यादि दीक्षा को प्राप्त होकर विद्या को प्राप्त हुआ मैं (**त्वा**) तुझे (**इन्धे**) प्रकाशित करता हूं॥२४॥

भावार्थ:-जो मनुष्य परमेश्वर के आज्ञा दिये हुए सत्यभाषणादि नियमों को धारण करते हैं, वे अतुल श्रद्धा को प्राप्त होकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि को करने में समर्थ होते हैं॥२४॥

यत्र ब्रह्मेत्यस्याश्वतराश्विर्ऋषि:। अग्निर्देवता। अनुष्टुप् छन्द:। गान्धार: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरत: सह।

तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवा: सहाग्निना॥२५॥

यत्र। ब्रह्म। च। क्षत्रम्। च। सम्यञ्चौ। चरत:। सह। तम्। लोकम्। पुण्यम्। प्र। ज्ञेषम्। यत्र। देवा:। सह। अग्निना॥२५॥

पदार्थः-(**यत्र**) यस्मिन् ब्रह्मणि (**ब्रह्म**) ब्राह्मणकुलमर्थाद् विद्वत्कुलम् (**च**) (**क्षत्रम्**) क्षत्रियकुलमर्थाद् विद्याशौर्यादिगुणोपेतम् (**च**) वैश्यादिकुलानि (**सम्यञ्चौ**) सम्यगेकीभावेनाञ्चतस्तौ (**चरतः**) वर्त्तेते (**सह**) सार्द्धम् (**तम्**) (**लोकम्**) द्रष्टव्यम् (**पुण्यम्**) निष्पापं सुखस्वरूपम् (**प्र**) (**ज्ञेषम्**) जानीयाम्। जानातेर्लेटि सिपि रूपम् (**यत्र**) (**देवाः**) दिव्याः पृथिव्यादयो विद्वांसो वा (**सह**) (**अग्निना**) विद्युता॥ २५॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथाऽहं यत्र ब्रह्म च क्षत्रं सह सम्यञ्चौ च चरतो यत्र देवा अग्निना सह वर्त्तन्ते, तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषम्, तथा यूयमप्येतं विजानीत॥ २५॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यद् ब्रह्मैकचेतनमात्रं सर्वेषामधिकारि निष्पापं ज्ञानेन द्रष्टुं योग्यं सर्वत्राऽभिव्याप्तं सहचरितं वर्तते, तदेव सर्वैरुपास्यम्॥ २५॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे मैं (**यत्र**) जिस परमात्मा में (**ब्रह्म**) ब्राह्मण अर्थात् विद्वानों का कुल (**च**) और (**क्षत्रम्**) विद्या, शौर्यादि गुणयुक्त क्षत्रियकुल ये दोनों (**सह**) साथ (**सम्यञ्चौ**) अच्छे प्रकार प्रीतियुक्त (**च**) तथा वैश्य आदि के कुल (**चरतः**) मिलकर व्यवहार करते हैं और (**यत्र**) जिस ब्रह्म में (**देवाः**) दिव्यगुण वाले पृथिव्यादि लोक वा विद्वान् जन (**अग्निना**) बिजुली रूप अग्नि के (**सह**) साथ वर्तते हैं, (**तम्**) उस (**लोकम्**) देखने के योग्य (**पुण्यम्**) सुखस्वरूप निष्पाप परमात्मा को (**प्र, ज्ञेषम्**) जानूं, वैसे तुम लोग भी इस को जानो॥ २५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो ब्रह्म एक चेतनमात्र स्वरूप, सब का अधिकारी, पापरहित, ज्ञान से देखने योग्य, सर्वत्र व्याप्त, सब के साथ वर्त्तमान है, वही सब मनुष्यों का उपास्य देव है॥ २५॥

यत्रेत्यस्याश्वतराश्विर्ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यत्रेन्द्र॑श्च वा॒युश्च॑ स॒म्यञ्चौ॒ चरतः स॒ह।

तं लो॒कं पुण्यं॒ प्रज्ञे॑षं॒ यत्र॑ से॒दिर्न वि॒द्यते॑॥ २६॥

यत्र॑। इन्द्रः॑। च॒। वा॒युः। च॒। स॒म्यञ्चौ॑। चर॑तः। स॒ह। तम्। लो॒कम्। पुण्य॑म्। प्र। ज्ञे॒षम्। यत्र॑। से॒दिः। न। वि॒द्यते॑॥ २६॥

पदार्थः-(**यत्र**) यस्मिन्नीश्वरे (**इन्द्रः**) सर्वत्राऽभिव्याप्ता विद्युत् (**च**) (**वायुः**) धनञ्जयादिस्वरूपः पवनः (**च**) (**सम्यञ्चौ**) (**चरतः**) (**सह**) (**तम्**) (**लोकम्**) सर्वस्य द्रष्टारम् (**पुण्यम्**) पुण्यजन्यज्ञानेन ज्ञातुमर्हम् (**प्र**) (**ज्ञेषम्**) जानीयाम् (**यत्र**) यस्मिन् (**सेदिः**) नाश उत्पत्तिर्वा (**न**) निषेधे (**विद्यते**) ॥ २६॥

अन्वयः-हे मनुष्या! यथाऽहं यत्रेन्द्रश्च वायुः सह सम्यञ्चौ चरतश्च, यत्र सेदिर्न विद्यते, तं पुण्यं लोकं प्रज्ञेषम्, तथैतं यूयं विजानीत॥२६॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यदि कश्चिद् विद्वान् वायुविद्युदाकाशादीनामियत्तां जिज्ञासेत, तर्ह्यन्तं न प्राप्नोति, यत्र चैते व्याप्याः सन्ति, तस्य ब्रह्मणोऽन्तं ज्ञातुं कः शक्नुयात्॥२६॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे मैं **(यत्र)** जिस ईश्वर में **(इन्द्रः)** सर्वव्याप्त बिजुली **(च)** और **(वायुः)** धनञ्जय आदि वायु **(सह)** साथ **(सम्यञ्चौ)** अच्छे प्रकार मिले हुए **(चरतः)** विचरते हैं **(च)** और **(यत्र)** जिस ब्रह्म में **(सेदिः)** नाश वा उत्पत्ति **(न, विद्यते)** नहीं विद्यमान है, **(तम्)** उस **(पुण्यम्)** पुण्य से उत्पन्न हुए ज्ञान से जानने योग्य **(लोकम्)** सबको देखनेहारे परमात्मा को **(प्र, ज्ञेषम्)** जानूं, वैसे इसको तुम लोग भी जानो॥२६॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो कोई विद्वान् वायु बिजुली और आकाशादि की सीमा को जानना चाहे तो अन्त को प्राप्त नहीं होता। जिस ब्रह्म में ये सब आकाशादि विभु पदार्थ भी व्याप्य हैं, उस ब्रह्म के अन्त के जानने को कौन समर्थ हो सकता है॥२६॥

अꣳशुनेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। सोमो देवता। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अꣳशुना ते अꣳशुः पृच्यतां परुषा परुः।

गन्धस्ते सोममवतु मदाय रसोऽअच्युतः॥२७॥

अꣳशुना। ते। अꣳशुः। पृच्यताम्। परुषा। परुः। गन्धः। ते। सोमम्। अवतु। मदाय। रसः। अच्युतः॥२७॥

पदार्थः-**(अंशुना)** भागेन **(ते)** तव **(अंशुः)** भागः **(पृच्यताम्)** सम्बध्यताम् **(परुषा)** मर्मणा **(परुः)** मर्म्म **(गन्धः)** **(ते)** तव **(सोमम्)** ऐश्वर्यम् **(अवतु)** **(मदाय)** आनन्दाय **(रसः)** सारः **(अच्युतः)** नाशरहितः॥२७॥

अन्वयः-हे विद्वन्! ते तवांऽशुनांऽशुः परुषा परुः पृच्यताम्, तेऽच्युतो गन्धो रसश्च मदाय सोममवतु॥२७॥

भावार्थः-यदा ध्यानावस्थितस्य मनुष्यस्य मनसा सहेन्द्रियाणि प्राणाश्च ब्रह्मणि स्थिरा भवन्ति, तदा स नित्यमानन्दति॥२७॥

पदार्थः-हे विद्वान्! **(ते)** तेरे **(अंशुना)** भाग से **(अंशुः)** भाग और **(परुषा)** मर्म से **(परुः)** मर्म **(पृच्यताम्)** मिले तथा **(ते)** तेरा **(अच्युतः)** नाशरहित **(गन्धः)** गन्ध और **(रसः)** रस पदार्थ सार **(मदाय)** आनन्द के लिये **(सोमम्)** ऐश्वर्य की **(अवतु)** रक्षा करे॥२७॥

भावार्थः-जब ध्यानावस्थित मनुष्य के मन के साथ इन्द्रियां और प्राण ब्रह्म में स्थिर होते हैं, तभी वह नित्य आनन्द को प्राप्त होता है॥२७॥

सिञ्चन्तीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। इन्द्रो देवता। भुरिगुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

अथ विद्वद्विषये शारीरिकविषयमाह॥

अब विद्वानों के विषय में शरीरसम्बन्धी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

सि॒ञ्चन्ति॒ परि॑ षिञ्च॒न्त्यु॒त्सिञ्चन्ति पु॒नन्ति॑ च।

सुरा॑यै ब॒भ्र्वै मदे॑ कि॒न्त्वो व॑दति कि॒न्त्वः॥२८॥

सि॒ञ्चन्ति॒। परि॑। सि॒ञ्च॒न्ति॒। उत् । सि॒ञ्च॒न्ति॒। पु॒नन्ति॑। च॒। सुरा॑यै। ब॒भ्र्वै। मदे॑। कि॒न्त्वः। व॒द॒ति॒। कि॒न्त्वः॥२८॥

पदार्थः-**(सिञ्चन्ति)** **(परि)** सर्वतः **(सिञ्चन्ति)** **(उत्)** **(सिञ्चन्ति)** **(पुनन्ति)** पवित्रीभवन्ति **(च)** **(सुरायै)** सोमाय **(बभ्र्वै)** बलधारकाय **(मदे)** आनन्दाय **(किन्त्वः)** किमसौ **(वदति)** **(किन्त्वः)** किमन्यः॥२८॥

अन्वयः-ये बभ्र्वै सुरायै मदे महौषधिरसं सिञ्चन्ति परिसिञ्चन्त्युत्सिञ्चन्ति पुनन्ति च, ते शरीरात्मबल-माप्नुवन्ति, यः किन्त्वः किन्त्वश्चेति वदति, स किञ्चिदपि नाप्नोति॥२८॥

भावार्थः-येऽन्नादीनि पवित्रीकृत्य संस्कृत्योत्तमरसैः परिषिच्य युक्ताहारविहारेण भुञ्जते, ते बहुसुखं लभन्ते। यो मूढतयैवं नाचरति, स बलबुद्धिहीनः सततं दुःखं भुङ्क्ते॥२८॥

पदार्थः-जो **(बभ्र्वै)** बल के धारण करनेहारे **(सुरायै)** सोम वा **(मदे)** आनन्द के लिये महौषधियों के रस को **(सिञ्चन्ति)** जाठराग्नि में सींचते सेवन करते **(परि, सिञ्चन्ति)** सब ओर से पीते **(उत्सिञ्चन्ति)** उत्कृष्टता से ग्रहण करते **(च)** और **(पुनन्ति)** पवित्र होते हैं, वे शरीर और आत्मा के बल को प्राप्त होते हैं और जो **(किन्त्वः)** क्या वह **(किन्त्वः)** क्या और ऐसा **(वदति)** कहता है, वह कुछ भी नहीं पाता है॥२८॥

भावार्थः-जो अन्नादि को पवित्र और संस्कार कर उत्तम रसों से युक्त करके युक्त आहार-विहार से खाते पीते हैं, वे बहुत सुख को प्राप्त होते हैं, जो मूढ़ता से ऐसा नहीं करता, वह बलबुद्धिहीन हो निरन्तर दुःख को भोगता है॥२८॥

धानावन्तमित्यस्य विश्वामित्र ऋषिः। इन्द्रो देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

धा॒नाव॑न्तं क॒र॒म्भिण॑मपू॒पव॑न्तमु॒क्थिन॑म्। इन्द्र॑ प्रा॒तर्जु॑षस्व नः॥२९॥

धा॒नाव॑न्त॒मिति॑ धा॒नाऽव॑न्तम्। क॒र॒म्भिण॑म्। अ॒पू॒पव॑न्त॒मित्य॑पू॒पऽव॑न्तम्। उ॒क्थिन॑म्। इन्द्र॑। प्रा॒तः। जु॒ष॒स्व॒। न॒:॥२९॥

पदार्थ:-(धानावन्तम्) सुसंस्कृतैर्धान्यान्नैर्युक्तम् **(करम्भिणम्)** सुष्ठु क्रियया निष्पन्नम् **(अपूपवन्तम्)** सुष्ठु सम्पादितापूपसहितम् **(उक्थिनम्)** प्रशस्तोक्थवाक्यजन्यबोधनिष्पादितम् **(इन्द्र)** सुखेच्छो विद्यैश्वर्ययुक्तजन **(प्रात:)** प्रभाते **(जुषस्व)** सेवस्व **(न:)** अस्माकम्॥२९॥

अन्वय:-हे इन्द्र! त्वं नो धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनं भक्ष्याद्यन्वितं भोज्यमन्नरसादिकं प्रातर्जुषस्व॥२९॥

भावार्थ:-ये विद्याध्यापनोपदेशै: सर्वेषामलङ्कर्त्तारो विश्वोद्धारका विद्वांसो जना: सुसंस्कृतै रसादिभिर्युक्तान्यन्नादीनि यथासमयं भुञ्जते, ये च तान् विद्यासुशिक्षायुक्तां वाचं ग्राहयेयुस्ते धन्यवादार्हा जायन्ते॥२९॥

पदार्थ:-हे **(इन्द्र)** सुख की इच्छा करनेहारे विद्या और ऐश्वर्य्य से युक्त जन! तू **(न:)** हमारे **(धानावन्तम्)** अच्छे प्रकार संस्कार किये हुए धान्य अन्नों से युक्त और **(करम्भिणम्)** अच्छी क्रिया से सिद्ध किये और **(अपूपवन्तम्)** सुन्दरता से संपादित किये हुए मालपुए आदि से युक्त तथा **(उक्थिनम्)** उत्तम वाक्य से उत्पन्न हुए बोध को सिद्ध करानेहारे और भक्ष्य आदि से युक्त भोजन-योग्य अन्न रसादि को **(प्रात:)** प्रात:काल **(जुषस्व)** सेवन किया कर॥२९॥

भावार्थ:-जो विद्या के पढ़ाने और उपदेशों से सब को सुभूषित और विश्व का उद्धार करनेहारे विद्वान् जन अच्छे संस्कार किये हुए रसादि पदार्थों से युक्त अन्नादि को ठीक समय में भोजन करते हैं और जो उनको विद्या सुशिक्षा से युक्त वाणी का ग्रहण करावें, वे धन्यवाद के योग्य होते हैं॥२९॥

बृहदित्यस्य नृमेधपुरुषमेधावृषी। इन्द्रो देवता। बृहती छन्द:। मध्यम: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

बृ॒हदिन्द्रा॑य गायत॒ मरु॑तो वृत्र॒हन्त॑मम्।
येन॒ ज्योति॒रज॑नयन्नृता॒वृधो॑ दे॒वं दे॒वाय॒ जागृ॑वि॥३०॥

बृ॒हत्। इन्द्रा॑य। गा॒य॒त॒। मरु॑तः। वृ॒त्र॒हन्त॑म॒मिति॑ वृ॒त्र॒हन्ऽत॑मम्। येन॑। ज्योति॑:। अज॑नयन्। ऋ॒ता॒वृध॑:। ऋ॒त॒वृध॒ इत्यृ॑त॒ऽवृध॑:। दे॒वम्। दे॒वाय॑। जागृ॑वि॥३०॥

पदार्थ:-(बृहत्) महत् साम **(इन्द्राय)** परमैश्वर्ययुक्ताय **(गायत)** प्रशंसत **(मरुत:)** विद्वांस: **(वृत्रहन्तमम्)** यो वृत्र मेघं हन्ति तमतिशयितं सूर्यमिव **(येन) (ज्योति:)** तेज: **(अजनयन्)** उत्पादयन्तु

(ऋतावृध) ये ऋतं सत्यं वर्द्धयन्ति ते **(देवम्)** दिव्यसुखप्रदम् **(देवाय)** दिव्यगुणाय **(जागृवि)** जागरूकम्॥३०॥

अन्वयः-हे मरुतः! ऋतावृधो भवन्तो येन देवायेन्द्राय देवं जागृवि ज्योतिरजनयँस्तद् वृत्रहन्तमं बृहत् तस्मै गायत॥३०॥

भावार्थः-मनुष्यैः सदैव युक्ताहारविहारेण शरीरात्मरोगान् निवार्य पुरुषार्थमुन्नीय परमेश्वरप्रतिपादकं गानं कर्त्तव्यम्॥३०॥

पदार्थः-हे **(मरुतः)** विद्वान् लोगो! **(ऋतावृधः)** सत्य के बढ़ानेहारे आप **(येन)** जिससे **(देवाय)** दिव्यगुण वाले **(इन्द्राय)** परमैश्वर्य्य से युक्त ईश्वर के लिये **(देवम्)** दिव्य सुख देने वाले **(जागृवि)** जागरूक अर्थात् अतिप्रसिद्ध **(ज्योतिः)** तेज पराक्रम को **(अजनयन्)** उत्पन्न करें, उस **(वृत्रहन्तमम्)** अतिशय करके मेघहन्ता सूर्य्य के समान **(बृहत्)** बड़े सामगान को उक्त उस ईश्वर के लिये **(गायत)** गाओ॥३०॥

भावार्थः-मनुष्यों को योग्य है कि सर्वदा युक्त, आहार और व्यवहार से शरीर और आत्मा के रोगों का निवारण कर पुरुषार्थ को बढ़ा के परमेश्वर का प्रतिपादन करनेहारे गान को किया करें॥३०॥

अध्वर्यो इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। इन्द्रो देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनः प्रकारान्तरेणोक्तविषयमाह॥

फिर प्रकारान्तर से उक्त विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अध्वर्योऽअद्रिभिः सुतꣳ सोमं पवित्रऽआ नय। पुनाहीन्द्राय पातवे॥३१॥

अध्वर्योऽइत्यध्वर्यो। अद्रिभिरित्यद्रिऽभिः। सुतम्। सोमम्। पवित्रे। आ। नय। पुनीहि। इन्द्राय। पातवे॥३१॥

पदार्थः-**(अध्वर्यो)** यो अध्वरं यज्ञं युनक्ति तत्संबुद्धौ **(अद्रिभिः)** मेघैः। **अद्रिरिति मेघनामसु पठितम्॥** (निघं०१.१०) **(सुतम्)** निष्पन्नम् **(सोमम्)** सोमवल्ल्याद्योषधिसारं रसम् **(पवित्रे)** शुद्धे व्यवहारे **(आ)** **(नय)** **(पुनीहि)** पवित्रय **(इन्द्राय)** परमैश्वर्याय **(पातवे)** पातुम्॥३१॥

अन्वयः-हे अध्वर्यो! त्वमिन्द्राय पातवे अद्रिभिः सुतं सोमं पवित्र आनय, तेन त्वं पुनीहि॥३१॥

भावार्थः-वैद्यराजैः शुद्धदेशोत्पन्नौषधिसारान् निर्मायैतद्दानेन सर्वेषां रोगनिवृत्तिः सततं कार्या॥३१॥

पदार्थः-हे **(अध्वर्यो)** यज्ञ को युक्त करनेहारे पुरुष! तू **(इन्द्राय)** परमैश्वर्यवान् के लिये **(पातवे)** पीने को **(अद्रिभिः)** मेघों से **(सुतम्)** उत्पन्न हुए **(सोमम्)** सोमवल्ल्यादि ओषधियों के साररूप रस को **(पवित्रे)** शुद्ध व्यवहार में **(आनय)** ले आ, उससे तू **(पुनीहि)** पवित्र हो॥३१॥

भावार्थः-वैद्यराजों को योग्य है कि शुद्ध देश में उत्पन्न हुई ओषधियों के सारों को बना, उस के दान से सब के रोगों की निवृत्ति निरन्तर करें॥३१॥

यो भूतानामित्यस्य कौण्डिन्य ऋषिः। परमात्मा देवता। पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः।

पुनर्विद्वद्विषयमाह॥

फिर विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यो भूतानामधिपतिर्यस्मिँल्लोकाऽअधि श्रिताः।

यऽईशे महतो महाँस्तेन गृह्णामि त्वामहं मयि गृह्णामि त्वामहम्॥३२॥

यः। भूतानाम्। अधिपतिरित्यधिऽपतिः। यस्मिन्। लोकाः। अधि। श्रिताः। यः। ईशे। महतः। महान्। तेन। गृह्णामि। त्वाम्। अहम्। मयि। गृह्णामि। त्वाम्। अहम्॥३२॥

पदार्थः-(**यः**) परमेश्वरः (**भूतानाम्**) पृथिव्यादितत्त्वानां तत्कार्याणां लोकानाम् (**अधिपतिः**) अधिष्ठाता (**यस्मिन्**) (**लोकाः**) संघाताः (**अधि**) (**श्रिताः**) (**यः**) (**ईशे**) ईष्टे। अत्र **लोपस्त आत्मनेपदेषु** [अष्टा०७.१.४१] इति तलोपः (**महतः**) आकाशादेः (**महान्**) (**तेन**) (**गृह्णामि**) (**त्वाम्**) (**अहम्**) (**मयि**) (**गृह्णामि**) (**त्वाम्**) (**अहम्**)॥३२॥

अन्वयः-हे सर्वहितेच्छो! यो भूतानामधिपतिर्महतो महानस्ति, य ईशे यस्मिन् सर्वे लोका अधिश्रितास्तेन त्वामहं गृह्णामि मयि त्वामहं गृह्णामि॥३२॥

भावार्थः-य उपासकोऽनन्तब्रह्मनिष्ठो ब्रह्मभिन्नमुपास्यं किञ्चिद् वस्तु न जानाति, स एवात्र विद्वान् मन्तव्यः॥३२॥

पदार्थः-हे सब के हित की इच्छा करनेहारे पुरुष! (**यः**) जो (**भूतानाम्**) पृथिव्यादि तत्त्वों और उनसे उत्पन्न हुए कार्यरूप लोकों का (**अधिपतिः**) अधिष्ठाता (**महतः**) बड़े आकाशादि से (**महान्**) बड़ा है, (**यः**) जो (**ईशे**) सब का ईश्वर है, (**यस्मिन्**) जिसमें सब (**लोकाः**) लोक (**अधिश्रिताः**) अधिष्ठित आश्रित हैं, (**तेन**) उससे (**त्वाम्**) तुझ को (**अहम्**) मैं (**गृह्णामि**) ग्रहण करता हूं (**मयि**) मुझ में (**त्वाम्**) तुझ को (**अहम्**) मैं (**गृह्णामि**) ग्रहण करता हूं॥३२॥

भावार्थः-जो उपासक अनन्त ब्रह्म में निष्ठा रखने वाला ब्रह्म से भिन्न किसी वस्तु को उपास्य नहीं जानता, वही इस जगत् में विद्वान् माना जाना चाहिये॥३२॥

उपयामगृहीतोऽसीत्यस्य काक्षीवतसुकीर्त्तिर्ऋषिः। सोमो देवता। विराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः।

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उपयामगृहीतोस्यश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णऽएष ते योनिरश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णे॥३३॥

उपयामगृहीत इत्युपयामऽगृहीतः। असि। अश्विभ्यामित्यश्विऽभ्याम्। त्वा। सरस्वत्यै। त्वा। इन्द्राय। त्वा। सुत्राम्ण इति सुऽत्राम्णे। एषः। ते। योनिः। अश्विभ्यामित्यश्विऽभ्याम्। त्वा। सरस्वत्यै। त्वा। इन्द्राय। त्वा। सुत्राम्ण इति सुऽत्राम्णे॥ ३३॥

पदार्थः-(**उपयामगृहीतः**) उपयामैरुत्तमनियमैः संगृहीतः (**असि**) (**अश्विभ्याम्**) पूर्णविद्याऽध्यापको-पदेशकाभ्याम् (**त्वा**) त्वाम् (**सरस्वत्यै**) सुशिक्षितायै वाचे (**त्वा**) त्वाम् (**इन्द्राय**) परमैश्वर्याय (**त्वा**) (**सुत्राम्णे**) सुष्ठु रक्षकाय। अत्र **कृतो बहुलम्** [अष्टा०भा०वा०३.२.११३] इत्यनेन करणे मनिन् (**एषः**) (**ते**) तव (**योनिः**) विद्यासम्बन्धः (**अश्विभ्याम्**) (**त्वा**) (**सरस्वत्यै**) प्रशस्तगुणायै विदुष्यै (**त्वा**) (**इन्द्राय**) परमोत्तमव्यवहाराय (**त्वा**) (**सुत्राम्णे**) सुष्ठु रक्षकाय॥३३॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यस्त्वमश्वियामुपयामगृहीतोऽसि, यस्य त एषोऽश्विभ्यां सह योनिरस्ति, तं त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णे चाहं गृह्णामि, सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णे त्वा गृह्णामि॥३३॥

भावार्थः-यो विद्वद्भिः शिक्षितः स्वयं सुप्रज्ञो जितेन्द्रियो विविधविद्यो विद्वत्प्रियः स्यात्, स एव विद्याधर्मप्रवृत्तयेऽधिष्ठाता कर्त्तव्यो भवेत्॥३३॥

पदार्थः-हे विद्वन्! जो तू (**अश्विभ्याम्**) पूर्ण विद्या वाले अध्यापक और उपदेशक से (**उपयामगृहीतः**) उत्तम नियमों के साथ ग्रहण किया हुआ (**असि**) है, जिस (**ते**) तेरा (**एषः**) यह (**अश्विभ्याम्**) अध्यापक और उपदेशक के साथ (**योनिः**) विद्यासम्बन्ध है, उस (**त्वा**) तुझ को (**सरस्वत्यै**) अच्छी शिक्षायुक्त वाणी के लिये (**त्वा**) तुझ को (**इन्द्राय**) उत्कृष्ट ऐश्वर्य्य के लिये और (**त्वा**) तुझ को (**सुत्राम्णे**) अच्छे प्रकार रक्षा करनेहारे के लिये मैं ग्रहण करता हूं, (**सरस्वत्यै**) उत्तम गुण वाली विदुषी स्त्री के लिये (**त्वा**) तुझ को (**इन्द्राय**) परमोत्तम व्यवहार के लिये (**त्वा**) तुझ को और (**सुत्राम्णे**) उत्तम रक्षा के लिये (**त्वा**) तुझ को ग्रहण करता हूं॥३३॥

भावार्थः-जो विद्वानों से शिक्षा पाये हुए स्वयं उत्तम बुद्धिमान्, जितेन्द्रिय, अनेक विद्याओं से युक्त विद्वानों में प्रेम करनेहारा होवे, वही विद्या और धर्म की प्रवृत्ति के लिये अधिष्ठाता करने योग्य होवे॥३३॥

प्राणपा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। लिङ्गोक्ता देवताः। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प्राणपा मेऽअपानपाश्चक्षुष्पाः श्रोत्रपाश्च मे।

वाचो मे विश्वभेषजो मनसोऽसि विलायकः॥ ३४॥

प्राणपा इति प्राणऽपाः। मे। अपानपा इत्यपानऽपाः। चक्षुष्पाः। चक्षुःपा इति चक्षुःऽपाः। श्रोत्रपा इति श्रोत्रऽपाः। च। मे। वाचः। मे। विश्वभेषज इति विश्वऽभेषजः। मनसः। असि। विलायक इति विऽलायकः॥ ३४॥

पदार्थ:-(**प्राणपा:**) य: प्राणं पाति रक्षति (**मे**) मम (**अपानपा:**) योऽपानं पाति (**चक्षुष्पा:**) यश्चक्षु: पाति (**श्रोत्रपा:**) य: श्रोत्रं पाति (**च**) (**मे**) मम (**वाच:**) (**मे**) (**विश्वभेषज:**) (**मनस:**) (**असि**) (**विलायक:**) येन विविधतया लीयते श्लिष्यते॥३४॥

अन्वय:-हे विद्वन्! यतस्त्वं मे प्राणपा अपानपा मे चक्षुष्पा: श्रोत्रपाश्च मे वाचो विश्वभेषजो मनसो विज्ञानसाधकस्य विलायकोऽसि, तस्मात् त्वं पितृवत् सत्कर्त्तव्योऽसि॥३४॥

भावार्थ:-मनुष्यैर्ये बाल्याऽवस्थामारभ्य विद्यासुशिक्षाभ्यां जितेन्द्रियत्वं विद्यासत्पुरुषसङ्गप्रियत्वं धर्मात्मपरोपकारित्वं च ग्राहयन्ति ते मातृवत् मित्रवच्च विज्ञेया:॥३४॥

पदार्थ:-हे विद्वन्! जिससे तू (**मे**) मेरे (**प्राणपा:**) प्राण का रक्षक (**अपानपा:**) अपान का रक्षक (**मे**) मेरे (**चक्षुष्पा:**) नेत्रों का रक्षक (**श्रोत्रपा:**) श्रोत्रों का रक्षक (**च**) और (**मे**) मेरी (**वाच:**) वाणी का (**विश्वभेषज:**) सम्पूर्ण ओषधिरूप (**मनस:**) विज्ञान का सिद्ध करनेहारे मन का (**विलायक:**) विविध प्रकार से सम्बन्ध करने वाला (**असि**) है, इस से तू हमारे पिता के समान सत्कार करने योग्य है॥३४॥

भावार्थ:-मनुष्यों को योग्य है कि जो बाल्यावस्था का आरम्भ कर विद्या और अच्छी शिक्षा से जितेन्द्रियपन, विद्या सत्पुरुषों के साथ प्रीति तथा धर्मात्मा और परोपकारीपन को ग्रहण कराते हैं, वे माता के समान और मित्र के समान जानने चाहियें॥३४॥

अश्विनकृतस्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि:। लिङ्गोक्ता देवता:। निचृदुपरिष्टाद्बृहती छन्द:। मध्यम: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अश्विनकृतस्य ते सरस्वतिकृतस्येन्द्रेण सुत्राम्णा कृतस्य।

उपहूत उपहूतस्य भक्षयामि॥३५॥

अश्विनकृतस्येत्यश्विनऽकृतस्य। ते। सरस्वतिकृतस्येति सरस्वतिऽकृतस्य। इन्द्रेण। सुत्राम्णेति सुऽत्राम्णा। कृतस्य। उपहूत इत्युपऽहूत:। उपहूतस्येत्युपऽहूतस्य। भक्षयामि॥३५॥

पदार्थ:-(**अश्विनकृतस्य**) यौ सद्गुणमश्नुवाते तावश्विनौ तावेवाश्विनौ ताभ्यां कृतस्य। अत्राश्विन् शब्दात् स्वार्थेऽण् वृद्ध्यस्त्वभावस्त्वार्ष: (**ते**) तव (**सरस्वतिकृतस्य**) विदुष्या स्त्रिया कृतस्य। अत्र स्वार्थेऽण् **संज्ञाछन्दसोर्बहुलम्** [अष्टा०वा०२.४.५४] इति पूर्वपदस्य ह्रस्व: (**इन्द्रेण**) विद्यैश्वर्येण राज्ञा (**सुत्राम्णा**) सुष्ठुतया रक्षकेण (**कृतस्य**) (**उपहूत:**) सत्कृत्याहूत: (**उपहूतस्य**) (**भक्षयामि**)॥३५॥

अन्वय:-हे विद्वन्नुपहूतोऽहं तेऽश्विनकृतस्य सरस्वतिकृतस्य सुत्राम्णेन्द्रेण कृतस्योपहूतस्यान्नादिकं भक्षयामि॥३५॥

भावार्थः-मनुष्यैर्विद्वदैश्वर्ययुक्तैर्जनैरनुष्ठितमनुष्ठेयम्। सुशिक्षितनिष्पादितमन्नमत्तव्यं सत्कर्त्तुः सत्कारश्च कार्यः॥३५॥

पदार्थः-हे विद्वन्! **(उपहूतः)** बुलाया हुआ मैं **(ते)** तेरा **(अश्विनकृतस्य)** जो सद्गुणों को व्याप्त होते हैं, उनके लिये **(सरस्वतिकृतस्य)** विदुषी स्त्री के लिये **(सुत्राम्णा)** अच्छे प्रकार रक्षा करनेहारे **(इन्द्रेण)** विद्या और ऐश्वर्य से युक्त राजा के **(कृतस्य)** किये हुए **(उपहूतस्य)** समीप में लाये अन्नादि का **(भक्षयामि)** भक्षण करता हूँ॥३५॥

भावार्थः-मनुष्यों को योग्य है कि विद्वान् और ऐश्वर्ययुक्त जनों ने अनुष्ठान किये हुए का अनुष्ठान करें और अच्छी शिक्षा किये हुए पाककर्त्ता के बनाये हुए अन्न को खावें और सत्कार करनेहारे का सत्कार किया करें॥३५॥

समिद्ध इत्यस्याङ्गिरस ऋषिः। इन्द्रो देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

समिद्धऽइन्द्रऽउषसामनीके पुरोरुचा पूर्वकृद्वावृधानः।

त्रिभिर्देवैस्त्रिꣳशता वज्रबाहुर्जघान वृत्रं वि दुरो ववार॥३६॥

समिद्ध इति सम्ऽइद्धः। इन्द्रः। उषसाम्। अनीके। पुरोरुचेति पुरःऽरुचा। पूर्वकृदिति पूर्वऽकृत्। ववृधानऽइति ववृधानः। त्रिभिरिति त्रिऽभिः। देवैः। त्रिꣳशता। वज्रबाहुरिति वज्रऽबाहुः। जघान। वृत्रम्। वि। दुरः। ववार॥३६॥

पदार्थः-**(समिद्धः)** प्रदीप्तः **(इन्द्रः)** सूर्यः **(उषसाम्)** प्रभातानाम् **(अनीके)** सैन्ये **(पुरोरुचा)** प्राक् प्रसृतया दीप्त्या **(पूर्वकृत्)** पूर्वं करोतीति पूर्वकृत् **(वावृधानः)** वर्द्धमानः **(त्रिभिः)** **(देवैः)** **(त्रिंशता)** त्रयस्त्रिंशत्संख्याकैः पृथिव्यादिभिर्दिव्यैः पदार्थैः **(वज्रबाहुः)** वज्रो बाहौ यस्य सः **(जघान)** हन्ति **(वृत्रम्)** प्रकाशावरकं मेघम् **(वि)** विगतार्थे **(दुरः)** द्वाराणि **(ववार)** विवृणोति॥३६॥

अन्वयः-हे विद्वन्! पूर्वकृद्वावृधानो वज्रबाहुः सन्नुषसामनीके यथा पुरोरुचा समिद्ध इन्द्रस्त्रिभिरधिकैः त्रिंशता देवैः सह वर्त्तमानः सन् वृत्रं जघान दुरो वि ववार तथातिबलैर्योद्धृभिः सह शत्रून् हत्वा विद्याधर्मद्वाराणि प्रकाशितानि कुरु॥३६॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। विद्वांसः सूर्यवद्विद्याधर्मप्रकाशकाः स्युर्विद्वद्भिः सह शान्त्या प्रीत्या सत्याऽसत्ययोर्विवेकाय संवादान् कृत्वा सुनिश्चित्य सर्वान्निःसंशयाञ्जनान् कुर्युः॥३६॥

पदार्थः-हे विद्वन्! **(पूर्वकृत्)** पूर्व करनेहारा **(वावृधानः)** बढ़ता हुआ **(वज्रबाहुः)** जिसके हाथ में वज्र है, वह **(उषसाम्)** प्रभात वेलाओं की **(अनीके)** सेना में जैसे **(पुरोरुचा)** प्रथम विथुरी हुई दीप्ति से **(समिद्धः)** प्रकाशित हुआ **(इन्द्रः)** सूर्य्य **(त्रिभिः)** तीन अधिक **(त्रिंशता)** तीस **(देवैः)** पृथिवी आदि दिव्य

पदार्थों के साथ वर्त्तमान हुआ **(वृत्रम्)** मेघ को **(जघान)** मारता है, **(दुर:)** द्वारों को **(वि, ववार)** प्रकाशित करता है, वैसे अत्यन्त बलयुक्त योद्धाओं के साथ शत्रुओं को मार कर विद्या और धर्म के द्वारों को प्रकाशित कर॥३६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। विद्वान् लोग सूर्य के समान विद्या धर्म के प्रकाशक हों, विद्वानों के साथ शान्ति, प्रीति से सत्य और असत्य के विवेक के लिये संवाद कर अच्छे प्रकार निश्चय करके सब मनुष्यों को संशयरहित करें॥३६॥

नराशंस इत्यस्याङ्गिरस ऋषि:। तनूनपाद्देवता। त्रिष्टुप् छन्द:। धैवत: स्वर:॥

अथ प्रकारान्तरेण विद्वद्विषयमाह॥

फिर प्रकारान्तर से विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

न॒रा॒शꣳस॒: प्रति॒ शूरो॒ मिमा॑न॒स्तनू॒नपा॒त् प्रति॑ य॒ज्ञस्य॒ धाम॑।

गोभि॑र्व॒पावा॒न् मधु॑ना सम॒ञ्जन् हिर॑ण्यैश्च॒न्द्री य॑जति॒ प्रचे॑ता:॥३७॥

न॒रा॒शꣳस॑:। प्रति॑। शूर॑:। मिमा॑न:। तनू॒नपा॒दिति॒ तनू॒ऽनपा॑त्। प्रति॑। य॒ज्ञस्य॑। धाम॑। गोभि॑:। व॒पावा॒निति॑ व॒पाऽवा॑न्। मधु॑ना। स॒म॒ञ्जन्निति॑ सम्ऽअ॒ञ्जन्। हिर॑ण्यै:। च॒न्द्री। य॒ज॒ति॒। प्रचे॑ता॒ इति॒ प्रऽचे॑ता:॥३७॥

पदार्थ:-**(नराशंस:)** यो नरैराशस्यते स्तूयते स: **(प्रति)** व्याप्तौ **(शूर:)** सर्वतो निर्भय: **(मिमान:)** योऽनेकानुत्तमान् पदार्थान् मिमीते **(तनूनपात्)** यस्तनूं न पातयति **(प्रति)** **(यज्ञस्य)** सत्यव्यवहारस्य **(धाम)** **(गोभि:)** धेनुवृषभै: **(वपावान्)** वपन्ति यया क्रियया सा वपा सा प्रशस्ता विद्यते यस्य स: **(मधुना)** मधुरगुणेन रसेन **(समञ्जन्)** व्यक्तीकुर्वन् **(हिरण्यै:)** सुवर्णादिभि: **(चन्द्री)** चन्द्रं बहुसुवर्णं विद्यते यस्य स: **(यजति)** **(प्रचेता:)** प्रकृष्टं चेत: प्रज्ञा यस्य स:॥३७॥

अन्वय:-हे मनुष्या:! यो नराशंसो यज्ञस्य धाम प्रति मिमान: शूरस्तनूनपाद् गोभिर्वपावान् मधुना समञ्जन् हिरण्यैश्चन्द्री प्रचेता: प्रति यजति, सोऽस्माभिराश्रयितव्य:॥३७॥

भावार्थ:-मनुष्यै: कश्चिन्निन्दितो भीरु: स्वशरीरनाशक उद्यमहीनोऽलसो मूढो दरिद्रश्च नैव संगन्तव्य:॥३७॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! **(नराशंस:)** जो मनुष्यों से प्रशंसा किया जाता **(यज्ञस्य)** सत्य व्यवहार के **(धाम)** स्थान का और **(प्रति, मिमान:)** अनेक उत्तम पदार्थों का निर्माण करनेहारा **(शूर:)** सब ओर से निर्भय **(तनूनपात्)** जो शरीर का पात न करनेहारा **(गोभि:)** गाय और बैलों से **(वपावान्)** जिससे क्षेत्र बोये जाते हैं, उस प्रशंसित उत्तम क्रिया से युक्त **(मधुना)** मधुरादि रस से **(समञ्जन्)** प्रकट करता हुआ **(हिरण्यै:)** सुवर्णादि पदार्थों से **(चन्द्री)** बहुत सुवर्णवान् **(प्रचेता:)** उत्तम प्रज्ञायुक्त विद्वान् **(प्रति, यजति)** यज्ञ करता कराता है, सो हमारे आश्रय के योग्य है॥३७॥

भावार्थः-मनुष्यों को योग्य है कि किसी निन्दित, भीरु, अपने शरीर के नाश करनेहारे, उद्यमहीन, आलसी, मूढ़ और दरिद्री का संग कभी न करें॥३७॥

ईडित इत्यस्याङ्गिरस ऋषिः। इन्द्रो देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ई॒डि॒तो दे॒वैर्हरि॑वाँ२ऽअभि॒ष्टिरा॒जुह्वा॑नो ह॒विषा॒ शर्द्ध॑मानः।
पु॒र॒न्द॒रो गो॑त्र॒भिद्॒ वज्र॑बाहु॒राया॑तु य॒ज्ञमुप॑ नो जु॒षा॒णः॥३८॥

ई॒डि॒तः। दे॒वैः। हरि॑वा॒निति॒ हरि॑ऽवान्। अ॒भि॒ष्टिः। आ॒जुह्वा॑न॒ इत्या॒ऽजुह्वा॑नः। ह॒विषा॑। शर्द्ध॑मानः। पु॒र॒न्द॒र इति॑ पुरम्ऽद॒रः। गो॒त्र॒भिदिति॑ गोत्र॒ऽभित्। वज्र॑बाहु॒रिति॒ वज्र॒ऽबाहुः। आ। या॒तु। य॒ज्ञम्। उप॑। न॒ः। जु॒षा॒णः॥३८॥

पदार्थः-**(ईडितः)** स्तुतः **(देवैः)** विद्वद्भिः **(हरिवान्)** प्रशस्ता हरयोऽश्वा विद्यन्ते यस्य सः **(अभिष्टिः)** अभितः सर्वत इष्टयो यज्ञा यस्य सः। अत्र छान्दसो वर्णलोपो वेति इकारलोपः **(आजुह्वानः)** सर्वतो विद्वद्भिः कृताह्वानः **(हविषा)** सद्विद्यादानाऽऽदानेन **(शर्द्धमानः)** सहमानः **(पुरन्दरः)** यो रिपुपुराणि दृणाति सः **(गोत्रभित्)** यो गोत्रं मेघं भिनत्ति सः **(वज्रबाहुः)** वज्रहस्तः **(आ)** **(यातु)** आगच्छतु **(यज्ञम्)** **(उप)** **(नः)** **(जुषाणः)** प्रीतः सन्॥३८॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यथा हरिवान् वज्रबाहुः पुरन्दरः सेनेशो गोत्रभित् सूर्य्यो रसानिव स्वसेनां सेवते तथा देवैरीडितोऽभिष्टिराजुह्वानो हविषा शर्द्धमानो जुषाणो भवान्नो यज्ञमुपायातु॥३८॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा सेनापतिः सेनां सूर्यो मेघं च वर्द्धयित्वा सर्वं जगद्रक्षति, तथा धार्मिकैरध्यापकैरध्येतृभिः सहाऽध्यापनाध्ययने कृत्वा विद्यया सर्वप्राणिनो रक्षणीयाः॥३८॥

पदार्थः-हे विद्वन्! आप जैसे **(हरिवान्)** उत्तम घोड़ों वाला **(वज्रबाहुः)** जिसकी भुजाओं में वज्र विद्यमान **(पुरन्दरः)** जो शत्रुओं के नगरों का विदीर्ण करनेहारा सेनापति **(गोत्रभित्)** मेघ को विदीर्ण करनेहारा सूर्य जैसे रसों का सेवन करे, वैसे अपनी सेना का सेवन करता है, वैसे **(देवैः)** विद्वनों से **(ईडितः)** प्रशंसित **(अभिष्टिः)** सब ओर से यज्ञ के करनेहारे **(आजुह्वानः)** विद्वानों ने सत्कारपूर्वक बुलाये हुए **(हविषा)** सद्विद्या के दान और ग्रहण से **(शर्द्धमानः)** सहन करते और **(जुषाणः)** प्रसन्न होते हुए आप **(नः)** हमारे **(यज्ञम्)** यज्ञ को **(उप, आ, यातु)** अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये॥३८॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सेनापति सेना को और सूर्य मेघ को बढ़ाकर सब जगत् की रक्षा करता है, वैसे धार्मिक अध्यापकों को अध्ययन करनेहारों के साथ पढ़ना और पढ़ाना कर, विद्या से सब प्राणियों की रक्षा करनी चाहिये॥३८॥

जुषाण इत्यस्याङ्गिरस ऋषिः। इन्द्रो देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

जुषाणो बर्हिर्हरिवान्नऽइन्द्रः प्राचीनꣳ सीदत् प्रदिशा पृथिव्याः।
उरुप्रथाः प्रथमानꣳ स्योनमादित्यैरक्तं वसुभिः सजोषाः॥३९॥

जुषाणः। बर्हिः। हरिवानिति हरिऽवान्। नः। इन्द्रः। प्राचीनम्। सीदत्। प्रदिशेति प्रऽदिशा। पृथिव्याः। उरुप्रथा इत्युरुऽप्रथाः। प्रथमानम्। स्योनम्। आदित्यैः। अक्तम्। वसुभिरिति वसुऽभिः। सजोषा इति सऽजोषाः॥३९॥

पदार्थः-(**जुषाणः**) सेवमानः (**बर्हिः**) अन्तरिक्षम्। **बर्हिरित्यन्तरिक्षनामसु पठितम्॥** (निघं०१.३) (**हरिवान्**) बहवो हरयो हरणशीलाः किरणा विद्यन्ते यस्य सः (**नः**) अस्माकम् (**इन्द्रः**) जलानां धर्त्ता (**प्राचीनम्**) प्राक्तनम् (**सीदत्**) सीदति (**प्रदिशा**) उपदिशा (**पृथिव्याः**) भूमेः (**उरुप्रथाः**) बहुविस्तारः (**प्रथमानम्**) (**स्योनम्**) सुखकारकं स्थानम् (**आदित्यैः**) मासैः (**अक्तम्**) प्रसिद्धम् (**वसुभिः**) पृथिव्यादिभिः (**सजोषाः**) सह वर्त्तमानः॥३९॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यथा बर्हिर्जुषाणो हरिवान् उरुप्रथा आदित्यैर्वसुभिः सजोषा इन्द्रः पृथिव्याः प्रदिशा प्रथमानमक्तं प्राचीनं स्योनं सीदत् तथा त्वं नोऽऽस्माकं मध्ये भव॥३९॥

भावार्थः-मनुष्यैरहर्निशं प्रयत्नादादित्यवदविद्यान्धकारं निवार्य जगति महत्सुखं कार्य्यम्। यथा पृथिव्याः सकाशात् सूर्यो महान् वर्तते, तथाऽविदुषां मध्ये विद्वानिति बोध्यम्॥३९॥

पदार्थः-हे विद्वन्! जैसे (**बर्हिः**) अन्तरिक्ष को (**जुषाणः**) सेवन करता हुआ (**हरिवान्**) जिस के हरणशील बहुत किरणें विद्यमान (**उरुप्रथाः**) बहुत विस्तार युक्त (**आदित्यैः**) महीनों और (**वसुभिः**) पृथिव्यादि लोकों के (**सजोषाः**) साथ वर्त्तमान (**इन्द्रः**) जलों का धारणकर्त्ता सूर्य्य (**पृथिव्याः**) पृथिवी से (**प्रदिशा**) उपदिशा के साथ (**प्रथमानम्**) विस्तीर्ण (**अक्तम्**) प्रसिद्ध (**प्राचीनम्**) पुरातन (**स्योनम्**) सुखकारक स्थान को (**सीदत्**) स्थित होता है, वैसे तू (**नः**) हमारे मध्य में हो॥३९॥

भावार्थः-मनुष्यों को योग्य है कि रात-दिन प्रयत्न से आदित्य के तुल्य अविद्यारूपी अन्धकार का निवारण करके जगत् में बड़ा सुख प्राप्त करें। जैसे पृथिवी से सूर्य बड़ा है, वैसे अविद्वानों में विद्वान् को बड़ा जानें॥३९॥

इन्द्रमित्यस्याङ्गिरस ऋषिः। इन्द्रो देवता। भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनः प्रकारान्तरेणोपदेशविषयमाह॥

फिर प्रकारान्तर से उपदेश विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

इन्द्रं दुरः कवष्यो धावमाना वृषाणं यन्तु जनयः सुपत्नीः।
द्वारो देवीरभितो विश्रयन्ताꣳ सुवीरा वीरं प्रथमाना महोभिः॥४०॥

इन्द्र॑म्। दुर॑:। क॒व॒ष्य॑:। धाव॑मानाः। वृषा॑णम्। य॒न्तु॒। जन॑यः। सु॒पत्नी॒रिति॑ सु॒ऽपत्नी॑:। द्वार॑:। दे॒वी:। अ॒भित॑:। वि। श्र॒य॒न्ता॒म्। सु॒वी॒रा इति॑ सु॒ऽवी॒रा॑:। वी॒रम्। प्रथ॑मानाः। महो॑भि॒रिति॒ मह॑:ऽभिः॥४०॥

पदार्थ:-(**इन्द्रम्**) परमैश्वर्यवन्तम् (**दुर:**) द्वाराणि (**कवष्य:**) शब्दे साधवः (**धावमाना:**) शीघ्रं गच्छन्त्यः (**वृषाणम्**) अतिवीर्यवन्तम् (**यन्तु**) प्राप्नुवन्तु (**जनय:**) जनिकाः (**सुपत्नी:**) शोभनाः (**द्वार:**) (**देवी:**) विद्यादिगुणैः प्रकाशमानाः (**अमित:**) (**वि**) (**श्रयन्ताम्**) (**सुवीरा:**) शोभनाश्च वीराश्च ते (**वीरम्**) बलवन्तम् (**प्रथमाना:**) प्रख्याताः (**महोभि:**) सुपूजितैर्गुणैः॥४०॥

अन्वय:-हे मनुष्याः! यथा कवष्यो वृषाणं वीरमिन्द्रं धावमाना जनयो दुरो यन्तु, यथा प्रथमानाः सुवीरा महोभिर्द्वारो देवीः सुपत्नीरभितो विश्रयन्ताम्, तथा यूयमप्याचरत॥४०॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यत्र परस्परस्य प्रीत्या स्वयंवरं विवाहं कुर्वन्ति, तत्र मनुष्याः सदा नन्दन्ति॥४०॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! जैसे (**कवष्य:**) बोलने में चतुर (**वृषाणम्**) अति वीर्यवान् (**इन्द्रम्**) परमैश्वर्य वाले (**वीरम्**) वीर पुरुष के प्रति (**धावमाना:**) दौड़ती हुई (**जनय:**) सन्तानों को जनने वाली स्त्रियां (**दुर:**) द्वारों को (**यन्तु**) प्राप्त हों वा जैसे (**प्रथमाना:**) प्रख्यात (**सुवीरा:**) अत्युत्तम वीर पुरुष (**महोभि:**) अच्छे पूजित गुणों से युक्त (**द्वार:**) द्वार के तुल्य वर्त्तमान (**देवी:**) विद्यादि गुणों से प्रकाशमान (**सुपत्नी:**) अच्छी स्त्रियों को (**अभित:**) सब ओर से (**वि, श्रयन्ताम्**) विशेष कर आश्रय करें, वैसे तुम भी किया करो॥४०॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जिस कुल वा देश में परस्पर प्रीति से स्वयंवर विवाह करते हैं, वहां मनुष्य सदा आनन्द में रहते हैं॥४०॥

उषासानक्तेत्यस्याङ्गिरस ऋषिः। उषासानक्ता देवते। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उ॒षासा॒नक्ता॑ बृह॒ती बृ॒हन्तं॒ पय॑स्वती सु॒दुघे॒ शूर॒मिन्द्र॑म्।
तन्तुं॑ त॒तं पेश॑सा सं॒वय॑न्ती दे॒वाना॑ दे॒वं य॑जतः सु॒रु॒क्मे॥४१॥

उ॒षासा॒नक्ता॑। उ॒षसा॒नक्तेत्यु॒षसा॒ऽक्ता॑। बृ॒ह॒तीऽइति॑ बृ॒ह॒ती। बृ॒हन्त॑म्। पय॑स्वती॒ऽइति॒ पय॑स्वती। सु॒दु॒घे॒ऽइति॑ सु॒दुघे॑। शू॒र॑म्। इन्द्र॑म्। तन्तु॑म्। त॒तम्। पेश॑सा। सं॒वय॑न्ती॒ इति॑ स॒म्ऽवय॑न्ती। दे॒वाना॑म्। दे॒वम्। य॒ज॒तः। सु॒रु॒क्मे इति॑ सु॒ऽरु॒क्मे॥४१॥

पदार्थ:-(**उषासानक्ता**) उषाश्च नक्तं च ते (**बृहती**) वर्द्धमाने (**बृहन्तम्**) महान्तम् (**पयस्वती**) रात्र्यन्धकारयुक्ते (**सुदुघे**) सुष्ठु प्रपूरिके (**शूरम्**) निर्भयम् (**इन्द्रम्**) सूर्यम् (**तन्तुम्**) विस्तारकम् (**ततम्**) विस्तृतम् (**पेशसा**) रूपेण (**संवयन्ती**) प्रापयन्त्यौ। अत्र सर्वत्र बृहती इत्यादौ **सुपां सुलुग्०**

[अष्टा०७.१.३९] इति पूर्वसवर्णदीर्घः **(देवानाम्)** पृथिव्यादीनाम् **(देवम्)** द्योतकम् **(यजतः)** संगच्छेते **(सुरुक्मे)** सुष्ठु दीप्यमाने॥४१॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा पेशसा संवयन्ती पयस्वती सुदुघे बृहती सुरुक्मे उषासानक्ता ततं देवानां देवं बृहन्तमिन्द्रं सूर्यं यजतस्तथैव तन्तुं शूरं पुरुषं यूयं सङ्गच्छध्वम्॥४१॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा सर्वे लोका अखिलेभ्यो बृहत्तमं सूर्यलोकमाश्रयन्ति, तथैव सर्वे श्रेष्ठतमं पुरुषमाश्रयन्तु॥४१॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे **(पेशसा)** रूप से **(संवयन्ती)** प्राप्त करनेहारे **(पयस्वती)** रात्रि के अन्धकार से युक्त **(सुदुघे)** अच्छे प्रकार पूर्ण करने वाले **(बृहती)** बढ़ते हुए **(सुरुक्मे)** अच्छे प्रकाश वाले **(उषासानक्ता)** रात्रि और दिन **(ततम्)** विस्तारयुक्त **(देवानाम्)** पृथिव्यादिकों के **(देवम्)** प्रकाशक **(बृहन्तम्)** बड़े **(इन्द्रम्)** सूर्य्यमण्डल को **(यजतः)** संग करते हैं, वैसे ही **(तन्तुम्)** विस्तार करनेहारे **(शूरम्)** शूरवीर पुरुष को तुम लोग प्राप्त होओ॥४१॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सब लोक सब से बड़े सूर्यलोक का आश्रय करते हैं, वैसे ही श्रेष्ठ पुरुष का आश्रय सब लोग करें॥४१॥

दैव्येत्यस्याङ्गिरस ऋषिः। दैव्याध्यापकोपदेशकौ देवते। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

दैव्या मिमाना मनुषः पुरुत्रा होताराविन्द्रं प्रथमा सुवाचा।
मूर्द्धन् यज्ञस्य मधुना दधाना प्राचीनं ज्योतिर्हविषा वृधातः॥४२॥

दैव्या। मिमाना। मनुषः। पुरुत्रेति पुरुऽत्रा। होतारौ। इन्द्रम्। प्रथमा। सुवाचेति सुऽवाचा। मूर्द्धन्। यज्ञस्य। मधुना। दधाना। प्राचीनम्। ज्योतिः। हविषा। वृधातः॥४२॥

पदार्थः-**(दैव्या)** देवेषु भवौ **(मिमाना)** निर्मातारौ **(मनुषः)** मनुष्यान् **(पुरुत्रा)** बहून् **(होतारौ)** दातारौ **(इन्द्रम्)** परमैश्वर्य्यम् **(प्रथमा)** आदिमौ विद्वांसौ **(सुवाचा)** सुशिक्षिता वाग्ययोस्तौ **(मूर्द्धन्)** मूर्द्धनि **(यज्ञस्य)** संगन्तव्यस्य **(मधुना)** मधुरेण **(दधाना)** धरन्तौ **(प्राचीनम्)** पुरातनम् **(ज्योतिः)** प्रकाशम् **(हविषा)** होतव्येन द्रव्येण **(वृधातः)** वर्द्धेताम्। अत्र लेटि विकरणव्यत्ययेन शः परस्मैपदं च॥४२॥

अन्वयः-यौ दैव्या मिमाना होतारौ सुवाचा यज्ञस्य मूर्द्धन् प्रथमा वर्त्तमानो पुरुत्रा मनुषो दधाना मधुना हविषा प्राचीनं ज्योतिरिन्द्रं वृधातस्तौ सर्वैर्मनुष्यैः सत्कर्तव्यौ॥४२॥

भावार्थः-ये विद्वांसोऽध्यापनोपदेशाभ्यां सर्वान् मनुष्यानुन्नयन्ति, तेऽखिलजनसुभूषकाः सन्ति॥४२॥

पदार्थ:-जो (**दैव्या**) दिव्य पदार्थों और विद्वानों में हुए (**मिमाना**) निर्माण करनेहारे (**होतारौ**) दाता (**सुवाचा**) जिनकी सुशिक्षित वाणी वे विद्वान् (**यज्ञस्य**) संग करने योग्य व्यवहार के (**मूर्द्धन्**) ऊपर (**प्रथमा**) वर्त्तमान (**पुरुत्रा**) बहुत (**मनुषः**) मनुष्यों को (**दधाना**) धारण करते हुए (**मधुना**) मधुरादिगुणयुक्त (**हविषा**) होम करने योग्य पदार्थ से (**प्राचीनम्**) पुरातन (**ज्योतिः**) प्रकाश और (**इन्द्रम्**) परम ऐश्वर्य को (**वृधातः**) बढ़ाते हैं, वे सब मनुष्यों के सत्कार करने योग्य हैं॥४२॥

भावार्थ:-जो विद्वान् पढ़ाने और उपदेश से सब मनुष्यों को उन्नति देते हैं, वे सम्पूर्ण मनुष्यों को सुभूषित करनेहारे हैं॥४२॥

तिस्रो देवीरित्यस्याङ्गिरस ऋषिः। तिस्रो देव्यो देवताः। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ति॒स्रो दे॒वीर्ह॒विषा॒ वर्द्ध॑माना॒ऽइन्द्रं॑ जुषा॒णा जन॑यो॒ न पत्नीः॑।

अच्छि॑न्नं॒ तन्तुं॑ पय॑सा॒ सर॑स्व॒तीडा॑ दे॒वी भार॑ती वि॒श्वतू॑र्त्तिः॥४३॥

ति॒स्रः। दे॒वीः। ह॒विषा॑। वर्द्ध॑मानाः। इन्द्र॑म्। जु॒षा॒णाः। जन॑यः। न। पत्नीः॑। अच्छि॑न्नम्। तन्तु॑म्। पय॑सा। सर॑स्वती। इडा॑। दे॒वी। भार॑ती। वि॒श्वतू॑र्त्ति॒रिति॑ वि॒श्वऽतू॑र्त्तिः॥४३॥

पदार्थ:-(**तिस्रः**) त्रित्वसंख्याकाः (**देवीः**) देदीप्यमानाः (**हविषा**) दानाऽदानेन प्राणेन वा (**वर्द्धमानाः**) (**इन्द्रम्**) विद्युतम् (**जुषाणाः**) सेवमानाः (**जनयः**) जनित्र्यः (**न**) इव (**पत्नीः**) स्त्रियः (**अच्छिन्नम्**) छेदभेदरहितम् (**तन्तुम्**) विस्तीर्णम् (**पयसा**) शब्दार्थसबन्धरसेन (**सरस्वती**) प्रशस्तविज्ञानवती (**इडा**) शुभैर्गुणैः स्तोतुं योग्या (**देवी**) देदीप्यमाना (**भारती**) धारणपोषणकर्त्री (**विश्वतूर्त्तिः**) विश्वस्मिँस्त्वरमाणा॥४३॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! या विश्वतूर्त्तिर्देवी सरस्वतीडा भारती च तिस्रो देवीर्देव्यः पयसा हविषा वर्द्धमाना जनयः पत्नीर्नेवाऽच्छिन्नं तन्तुमिन्द्रं जुषाणाः सन्ति, ता यूयं सेवध्वम्॥४३॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कारः। या विद्वत्संयुक्ता वाङ्नाडीधारणशक्तयस्त्रिविधाः सर्वाभिव्याप्ताः सर्वदा प्रसूता व्यवहारहेतवः सन्ति, ता मनुष्यैर्व्यवहारेषु यथावत्संयोक्तव्या॥४३॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! जो (**विश्वतूर्त्तिः**) जगत् में शीघ्रता करनेहारी (**देवी**) प्रकाशमान (**सरस्वती**) उत्तम विज्ञानयुक्त वा (**इडा**) शुभगुणों से स्तुति करने योग्य तथा (**भारती**) धारण और पोषण करनेहारी ये (**तिस्रः**) तीन (**देवीः**) प्रकाशमान शक्तियां (**पयसा**) शब्द, अर्थ और सम्बन्ध रूप रस से (**हविषा**) देने-लेने के व्यवहार और प्राण से (**वर्द्धमानाः**) बढ़ती हुई (**जनयः**) सन्तानोत्पत्ति करनेहारी (**पत्नीः**) स्त्रियों के

(न) समान **(अच्छिन्नम्)** छेद-भेदरहित **(तन्तुम्)** विस्तारयुक्त **(इन्द्रम्)** बिजुली का **(जुषाणाः)** सेवन करनेहारे हैं, उनका सेवन तुम लोग किया करो॥४३॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो विद्वान् से युक्त वाणी, नाड़ी और धारण करने वाली शक्ति ये तीन प्रकार की शक्तियां सर्वत्र व्याप्त, सर्वदा उत्पन्न हुई व्यवहार के हेतु हैं, उनको मनुष्य लोग व्यवहारों में यथावत् प्रयुक्त करें॥४३॥

त्वष्टेत्यस्याङ्गिरस ऋषिः। त्वष्टा देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनर्विद्वद्विषयमाह॥

फिर विद्वज्जन के विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

त्वष्टा दधच्छुष्ममिन्द्राय वृष्णेऽपाकोऽचिष्टुर्यशसे पुरूणि।

वृषा यजन्वृषणं भूरिरेता मूर्द्धन् यज्ञस्य समनक्तु देवान्॥४४॥

त्वष्टा। दधत्। शुष्मम्। इन्द्राय। वृष्णे। अपाकः। अचिष्टुः। यशसे। पुरूणि। वृषा। यजन्। वृषणम्। भूरिरेता इति भूरिऽरेताः। मूर्द्धन्। यज्ञस्य। सम्। अनक्तु। देवान्॥४४॥

पदार्थः-**(त्वष्टा)** विद्युदिव वर्त्तमानो विद्वान् **(दधत्)** दधन् **(शुष्मम्)** बलम् **(इन्द्राय)** परमैश्वर्याय **(वृष्णे)** परशक्तिबन्धकाय **(अपाकः)** अप्रशस्यः। **पाक इति प्रशस्यनामसु पठितम्॥** (निघं०३. ८) **(अचिष्टुः)** गमनकर्त्ता **(यशसे)** कीर्त्यै **(पुरूणि)** बहूनि **(वृषा)** सेक्ता **(यजन्)** संगच्छमानः **(वृषणम्)** मेघम् **(भूरिरेताः)** बहुवीर्यः **(मूर्द्धन्)** मूर्द्धनि **(यज्ञस्य)** संगतस्य जगतः **(सम्)** **(अनक्तु)** कामयताम् **(देवान्)** विदुषः॥४४॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यथा त्वष्टा वृषेन्द्राय वृष्णे शुष्ममपाकोऽचिष्टुर्यशसे पुरूणि दधद् भूरिरेता वृषणं यजन् यज्ञस्य मूर्द्धन् देवान् समनक्तु तथा त्वमपि कुरु॥४४॥

भावार्थः-यावन् मनुष्यः शुद्धान्तःकरणो न भवेत्, तावद् विद्वत्सङ्गसत्यशास्त्रप्राणायामाभ्यासं च कुर्याद्, यतः शीघ्रं शुद्धान्तःकरणः स्यादिति॥४४॥

पदार्थः-हे विद्वन्! जैसे **(त्वष्टा)** विद्युत् के समान वर्त्तमान विद्वान् **(वृषा)** सेचनकर्त्ता **(इन्द्राय)** परमैश्वर्य और **(वृष्णे)** पराये सामर्थ्य को रोकनेहारे के लिये **(शुष्मम्)** बल को **(अपाकः)** अप्रशंसनीय **(अचिष्टुः)** प्राप्त होनेहारा **(यशसे)** कीर्ति के लिये **(पुरूणि)** बहुत पदार्थों को **(दधत्)** धारण करते हुए **(भूरिरेताः)** अत्यन्त पराक्रमी **(वृषणम्)** मेघ को **(यजन्)** संगत करता हुआ **(यज्ञस्य)** संगति से उत्पन्न हुए जगत् के **(मूर्द्धन्)** उत्तम भाग में **(देवान्)** विद्वानों की **(समनक्तु)** कामना करे, वैसे तू भी कर॥४४॥

भावार्थः-जब तक मनुष्य शुद्धान्तःकरण नहीं होवे, तब तक विद्वानों का संग, सत्यशास्त्र और प्राणायाम का अभ्यास किया करे, जिससे शीघ्र शुद्धान्तःकरणवान् हो॥४४॥

वनस्पतिरित्यस्याङ्गिरस ऋषिः। वनस्पतिर्देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

वनस्पतिरवसृष्टो न पाशैस्त्मन्या समञ्जञ्छमिता न देवः।

इन्द्रस्य हव्यैर्जठरं पृणानः स्वदाति यज्ञं मधुना घृतेन॥४५॥

वनस्पतिः। अवसृष्ट इत्यवऽसृष्टः। न। पाशैः। त्मन्या। समञ्जन्निति सम्ऽअञ्जन्। शमिता। न। देवः। इन्द्रस्य। हव्यैः। जठरम्। पृणानः। स्वदाति। यज्ञम्। मधुना। घृतेन॥४५॥

पदार्थः-(**वनस्पतिः**) वनस्य वृक्षसमूहस्य पतिः पालकः (**अवसृष्टः**) आज्ञप्तः पुरुषः (**न**) इव (**पाशैः**) दृढबन्धनैः (**त्मन्या**) आत्मना। अत्र **सुपां सुलुग्०** [अष्टा०७.१.३९] इति टास्थाने यादेशः (**समञ्जन्**) सम्पृचानः (**शमिता**) यज्ञः (**न**) इव (**देवः**) दिव्यसुखदाता (**इन्द्रस्य**) ऐश्वर्यस्य (**हव्यैः**) अत्तुमर्हैः (**जठरम्**) उदरमिव कोशम् (**पृणानः**) पूर्णं कुर्वन् (**स्वदाति**) आस्वदेत। अत्र लेटि व्यत्ययेन परस्मैपदम् (**यज्ञम्**) अनुष्ठेयम् (**मधुना**) क्षौद्रेण (**घृतेन**) आज्येन॥४५॥

अन्वयः-यः पाशैर्वनस्पतिरवसृष्टो न त्मन्या समञ्जन् देवः शमिता नेन्द्रस्य जठरं पृणानो हव्यैर्मधुना घृतेन च सह यज्ञं कुर्वन् स्वदाति स रोगहीनः स्यात्॥४५॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। यथा वनस्पतिः वर्द्धमानः सन् फलानि ददाति यथा पाशैर्द्धबद्धश्चोरः पापान्निवर्त्तते यथा वा यज्ञः सर्वं जगद्रक्षति, तथा यज्ञसेवी युक्ताऽहारविहारी जनो जगदुपकारको भवति॥४५॥

पदार्थः-जो (**पाशैः**) दृढ़ बन्धनों से (**वनस्पतिः**) वृक्षसमूह का पालन करनेहारा (**अवसृष्टः**) आज्ञा दिये हुए पुरुष के (**न**) समान (**त्मन्या**) आत्मा के साथ (**समञ्जन्**) सम्पर्क करता हुआ (**देवः**) दिव्य सुख का देनेहारा (**शमिता**) यज्ञ के (**न**) समान (**इन्द्रस्य**) ऐश्वर्य्य के (**जठरम्**) उदर के समान कोश को (**पृणानः**) पूर्ण करता हुआ (**हव्यैः**) खाने के योग्य (**मधुना**) सहत और (**घृतेन**) घृत आदि पदार्थों से (**यज्ञम्**) अनुष्ठान करने योग्य यज्ञ को करता हुआ (**स्वदाति**) अच्छे प्रकार स्वाद लेवे, वह रोगरहित होवे॥४५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे बड़ आदि वनस्पति बढ़कर फलों को देता है, जैसे बन्धनों से बंधा हुआ चोर पाप से निवृत्त होता है वा जैसे यज्ञ सब जगत् की रक्षा करता है, वैसे यज्ञकर्त्ता युक्त आहार-विहार करने वाला मनुष्य जगत् का उपकारक होता है॥४५॥

स्तोकानामित्यस्याङ्गिरस ऋषिः। स्वाहाकृतयो देवताः। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

स्तोकानामिन्दुं प्रति शूरऽइन्द्रो वृषायमाणो वृषभस्तुराषाट्।
घृतप्रुषा मनसा मोदमानाः स्वाहा देवाऽअमृता मादयन्ताम्॥४६॥

स्तोकानाम्। इन्दुम्। प्रति। शूरः। इन्द्रः। वृषायमाणः। वृषयमाण इति वृषयऽमाणः। वृषभः। तुराषाट्। घृतप्रुषेति घृतऽप्रुषा। मनसा। मोदमानाः। स्वाहा। देवाः। अमृताः। मादयन्ताम्॥४६॥

पदार्थः-(**स्तोकानाम्**) अल्पानाम् (**इन्दुम्**) आर्द्रस्वभाविनं जनम् (**प्रति**) (**शूरः**) शत्रूणां हिंसकः (**इन्द्रः**) ऐश्वर्यवान् (**वृषायमाणः**) बलिष्ठः सन् (**वृषभः**) उत्तमः (**तुराषाट्**) तुरान् हिंसकान् सहते (**घृतप्रुषा**) प्रकाशसेविना (**मनसा**) विज्ञानेन (**मोदमानाः**) आनन्दिताः सन्तः (**स्वाहा**) सत्यया क्रियया (**देवाः**) विद्वांसः (**अमृताः**) आत्मना स्वस्वरूपेण मृत्युरहिताः (**मादयन्ताम्**) तृप्ता भूत्वाऽस्मानानन्दयन्तु॥४६॥

अन्वयः-यथा वृषायमाणो वृषभस्तुराषाट् शूर इन्द्र स्तोकानामिन्दुं प्रत्याऽऽनन्दति तथा घृतप्रुषा मनसा स्वाहा च मोदमाना अमृता देवा मादयन्ताम्॥४६॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये जना अल्पगुणमपि जनं दृष्ट्वार्द्रचित्ता भवन्ति, ते सर्वतः सर्वान् सुखयन्ति॥४६॥

पदार्थः-जैसे (**वृषायमाणः**) बलिष्ठ होता हुआ (**वृषभः**) उत्तम (**तुराषाट्**) हिंसक शत्रुओं को सहनेहारा (**शूरः**) शूरवीर (**इन्द्रः**) ऐश्वर्य वाला (**स्तोकानाम्**) थोड़ों के (**इन्दुम्**) कोमल स्वभाव वाले मनुष्य के (**प्रति**) प्रति आनन्दित होता है, वैसे (**घृतप्रुषा**) प्रकाश के सेवन करने वाले (**मनसा**) विज्ञान से और (**स्वाहा**) सत्य क्रिया से (**मोदमानाः**) आनन्दित होते हुए (**अमृताः**) आत्मस्वरूप से मृत्युधर्मरहित (**देवाः**) विद्वान् लोग (**मादयन्ताम्**) आप तृप्त होकर हम को आनन्दित करें॥४६॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य अल्पगुण वाले भी मनुष्य को देखकर स्नेहयुक्त होते हैं, वे सब ओर से सब को सुखी कर देते हैं॥४६॥

आयात्वित्यस्य वामदेव ऋषिः। इन्द्रो देवता। भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अथ राजधर्मविषयमाह॥

अब राजधर्मविषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आयात्विन्द्रोऽवसऽउप नऽइह स्तुतः सधमादस्तु शूरः।
वावृधानस्तविषीर्यस्य पूर्वीर्द्यौर्न क्षत्रमभिभूति पुष्यात्॥४७॥

आ। यातु। इन्द्रः। अवसे। उप। नः। इह। स्तुतः। सधमादिति सधऽमात्। अस्तु। शूरः। वावृधानः। ववृधानऽइति ववृधानः। तविषीः। यस्य। पूर्वीः। द्यौः। न। क्षत्रम्। अभिभूतीत्यभिऽभूति। पुष्यात्॥४७॥

पदार्थः-**(आ)** **(यातु)** आगच्छतु **(इन्द्रः)** परमैश्वर्यधारकः **(अवसे)** रक्षणाद्याय **(उप)** **(नः)** अस्मान् **(इह)** अस्मिन् काले **(स्तुतः)** प्रशंसितः **(सधमात्)** समानस्थानात् **(अस्तु)** **(शूरः)** **(वावृधानः)** अत्यन्तं वर्द्धयमानो जनः **(तविषीः)** सेनाः **(यस्य)** **(पूर्वीः)** पूर्वैर्विद्वद्भिः सुशिक्षायोत्तमाः कृताः **(द्यौः)** सूर्यप्रकाशः **(न)** इव **(क्षत्रम्)** राज्यम् **(अभिभूति)** शत्रूणामभिभवकर्त्री **(पुष्यात्)** पुष्टङ्कुर्यात्॥४७॥

अन्वयः-य इन्द्र इह स्तुतः शूरः पूर्वीस्तविषीर्वावृधानो यस्याभिभूति क्षत्रं द्यौर्न वर्त्तते, यो नः पुष्यात् सोऽस्माकमवस उपायातु सधमादस्तु॥४७॥

भावार्थः-ये मनुष्याः सूर्यवत् न्यायविद्योभयप्रकाशकाः सत्कृतहृष्टपुष्टसेनाः प्रजापोषका दुष्टविनाशकाः स्युस्ते राज्याधिकारिणः सन्तु॥४७॥

पदार्थः-जो **(इन्द्रः)** परमैश्वर्य का धारण करनेहारा **(इह)** इस वर्त्तमान काल में **(स्तुतः)** प्रशंसा को प्राप्त हुआ **(शूरः)** निर्भय वीर पुरुष **(पूर्वीः)** पूर्व विद्वानों ने अच्छी शिक्षा से उत्तम की हुई **(तविषीः)** सेनाओं को **(वावृधानः)** अत्यन्त बढ़ानेहारा जन **(यस्य)** जिस का **(अभिभूति)** शत्रुओं का तिरस्कार करनेहारा **(क्षत्रम्)** राज्य **(द्यौः)** सूर्य के प्रकाश के **(न)** समान वर्त्तता है जो **(नः)** हम को **(पुष्यात्)** पुष्ट करे वह हमारे **(अवसे)** रक्षा आदि के लिये **(उप, आ, यातु)** समीप प्राप्त होवे और **(सधमात्)** समान स्थान वाला **(अस्तु)** होवे॥४७॥

भावार्थः-जो मनुष्य सूर्य के समान न्याय और विद्या दोनों के प्रकाश करनेहारे, सत्कृत हर्ष और पुष्टि से युक्त सेना वाले, प्रजा की पुष्टि और दुष्टों का नाश करनेहारे हों, वे राज्याधिकारी होवें॥४७॥

आ न इत्यस्य वामदेव ऋषिः। इन्द्रो देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आ नऽइन्द्रो दूरादा नऽआसादभिष्टिकृदवसे यासदुग्रः।
ओजिष्ठेभिर्नृपतिर्वज्रबाहुः सङ्गे समत्सु तुर्वणिः पृतन्यून्॥४८॥

आ। नः। इन्द्रः। दूरात्। आ। नः। आसात्। अभिष्टिकृदित्यभिष्टिऽकृत्। अवसे। यासत्। उग्रः। ओजिष्ठेभिः। नृपतिरिति नृऽपतिः। वज्रबाहुरिति वज्रऽबाहुः। सङ्ग इति सम्ऽगे। समत्स्विति समत्ऽसु। तुर्वणिः। पृतन्यून्॥४८॥

पदार्थः-**(आ)** **(नः)** अस्माकम् **(इन्द्रः)** शत्रुविदारकः **(दूरात्)** विप्रकृष्टाद् देशात् **(आ)** **(नः)** **(आसात्)** समीपात् **(अभिष्टिकृत्)** योऽभिष्टिं सर्वत इष्टं सुखं करोति सः **(अवसे)** रक्षणाद्याय **(यासत्)** यायात् **(उग्रः)** दुष्टानामुपरि क्रोधकृत् **(ओजिष्ठेभिः)** बलिष्ठैर्योद्धृभिः **(नृपतिः)** नृणां पालकः **(वज्रबाहुः)** वज्रमिव दृढौ बाहू यस्य **(सङ्गे)** सह **(समत्सु)** संग्रामेषु **(तुर्वणिः)** शीघ्रशत्रुहन्ता **(पृतन्यून्)** आत्मनः पृतनाः सेना इच्छून्॥४८॥

अन्वय:-योऽभिष्टिकृद्वज्रबाहुर्नृपतिरोजिष्ठेभिरुग्रस्तुर्वणिरिन्द्रो नोऽवसे समत्सु सङ्गे दूरादासादायासन्नोऽस्मान् पृतन्यून् सततमारक्षेन्मानयेच्च सोस्माऽभिरपि सदा माननीय:॥४८॥

भावार्थ:-त एव राज्यं कर्त्तुमर्हन्ति ये दूरस्था: समीपस्था: सर्वा: प्रजा अवेक्षणदूतप्रचाराभ्यां रक्षन्ति, शूरवीराणां सत्कारं च सततं कुर्वन्ति॥४८॥

पदार्थ:-जो **(अभिष्टिकृत्)** सब ओर से इष्ट सुख करे **(वज्रबाहु:)** जिसकी वज्र के समान दृढ़ भुजा **(नृपति:)** नरों का पालन करनेहारा **(ओजिष्ठेभि:)** अति बल वाले योद्धाओं से **(उग्र:)** दुष्टों पर क्रोध करने और **(तुर्वणि:)** शीघ्र शत्रुओं का मारनेहारा **(इन्द्र:)** शत्रुविदारक सेनापति **(न:)** हमारी **(अवसे)** रक्षादि के लिये **(समत्सु)** बहुत संग्रामों में **(सङ्गे)** प्रसंग में **(दूरात्)** दूर से और **(आसात्)** समीप से **(आ, यासत्)** आवे और **(न:)** हमारे **(पृतन्यून्)** सेना और संग्राम की इच्छा करनेहारों की **(आ)** सदा रक्षा और मान्य करे, वह हम लोगों का भी सदा माननीय होवे॥४८॥

भावार्थ:-वे ही पुरुष राज्य करने को योग्य होते हैं जो दूरस्थ और समीपस्थ सब मनुष्यादि प्रजाओं की यथावत् समीक्षण और दूत भेजने से रक्षा करते और शूरवीर का सत्कार भी निरन्तर करते हैं॥४८॥

आ न इत्यस्य वामदेव ऋषि:। इन्द्रो देवता। पङ्क्तिश्छन्द:। पञ्चम: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आ नऽइन्द्रो हरिभिर्यात्वच्छार्वाचीनोऽवसे राधसे च।
तिष्ठाति वज्री मघवा विरप्शीमं यज्ञमनु नो वाजसातौ॥४९॥

आ। न:। इन्द्र:। हरिभिरिति हरिऽभि:। यातु। अच्छ। अर्वाचीन:। अवसे। राधसे। च। तिष्ठाति। वज्री। मघवेति मघऽवा। विरप्शीति विऽरप्शी। इमम्। यज्ञम्। अनु। न:। वाजसाताविति वाजऽसातौ॥४९॥

पदार्थ:-**(आ)** **(न:)** अस्माकम् **(इन्द्र:)** ऐश्वर्यप्रद: सेनाधीश: **(हरिभि:)** सुशिक्षितैरश्वै: **(यातु)** प्राप्नोतु **(अच्छ)** सुष्ठु रीत्या **(अर्वाचीन:)** विद्यादिबलेनाभिगन्ता **(अवसे)** रक्षणाद्याय **(राधसे)** धनाय **(च)** **(तिष्ठाति)** तिष्ठेत् **(वज्री)** प्रशस्तशस्त्रविद्याशिक्षित: **(मघवा)** परमपूजितधनयुक्त: **(विरप्शी)** महान् **(इमम्)** **(यज्ञम्)** सत्यं न्यायाख्यम् **(अनु)** आनुकूल्ये **(न:)** अस्माकम् **(वाजसातौ)** संग्रामे॥४९॥

अन्वय:-यो मघवा विरप्श्यर्वाचीनो वज्रीन्द्रो हरिभिर्नोवसे राधसे च वाजसातौ तिष्ठाति, स न इमं यज्ञमच्छान्वायातु॥४९॥

भावार्थ:-ये युद्धविद्याकुशला महाबलिष्ठा: प्रजाधनवर्द्धकास्सुशिक्षिताऽश्वहस्त्यादियुक्ता मङ्गलकारिणस्स्युस्ते हि राजपुरुषास्सन्तु॥४९॥

पदार्थ:-जो **(मघवा)** परम प्रशंसित धनयुक्त **(विरप्शी)** महान् **(अर्वाचीन:)** विद्यादि बल से सन्मुख जाने वाला **(वज्री)** प्रशंसित शस्त्रविद्या की शिक्षा पाये हुए **(इन्द्र:)** ऐश्वर्य का दाता सेनाधीश **(हरिभि:)** अच्छी शिक्षा किये हुए घोड़ों से **(न:)** हम लोगों की **(अवसे)** रक्षा आदि के लिये **(च)** और **(राधसे)** धन के लिये **(वाजसातौ)** संग्राम में **(अनु, तिष्ठाति)** अनुकूल स्थित हो, वह **(न:)** हमारे **(इमम्)** इस **(यज्ञम्)** सत्यन्याय पालन करने रूप राज्यव्यवहार को **(अच्छ, आ, यातु)** अच्छे प्रकार प्राप्त हो॥४९॥

भावार्थ:-जो युद्धविद्या में कुशल बड़े बलवान्, प्रजा और धन की वृद्धि करनेहारे, उत्तम शिक्षा युक्त, हाथी और घोड़ों से युक्त कल्याण ही के आचरण करनेहारे हों, वे ही राजपुरुष होवें॥४९॥

त्रातारमित्यस्य गर्ग ऋषि:। इन्द्रो देवता। विराट् त्रिष्टुप् छन्द:। धैवत: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रꣳ हवेहवे सुहवꣳ शूरमिन्द्रम्।
ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रꣳ स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्र:॥५०॥

त्रातारम्। इन्द्रम्। अवितारम्। इन्द्रम्। हवेहव इति हवेऽहवे। सुहवमिति सुऽहवम्। शूरम्। इन्द्रम्। ह्वयामि। शक्रम्। पुरुहूतमिति पुरुऽहूतम्। इन्द्रम्। स्वस्ति। न:। मघवेति मघऽवा। धातु। इन्द्र:॥५०॥

पदार्थ:-**(त्रातारम्)** रक्षितारम् **(इन्द्रम्)** दुष्टविदारकम् **(अवितारम्)** प्रीणयितारम् **(इन्द्रम्)** परमैश्वर्यप्रदम् **(हवेहवे)** युद्धे युद्धे **(सुहवम्)** सुष्ठ्वाह्वानम् **(शूरम्)** शत्रुहिंसकम् **(इन्द्रम्)** राज्यधारकम् **(ह्वयामि)** आह्वयामि **(शक्रम्)** आशुकर्त्तारम् **(पुरुहूतम्)** पुरुभिविद्वद्भिराहूतम् **(इन्द्रम्)** शत्रुदलविदारकम् **(स्वस्ति)** सुखम् **(न:)** अस्मभ्यम् **(मघवा)** परमपूज्य: **(धातु)** दधातु **(इन्द्र:)** प्रशस्तसेनाधारक:॥५०॥

अन्वय:-हे सभाध्यक्ष! यं हवेहवे त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं सुहवं शूरमिन्द्रं शक्रं पुरुहूतमिन्द्रं त्वां ह्वयामि स मघवेन्द्रस्त्वं न: स्वस्ति धातु॥५०॥

भावार्थ:-मनुष्यास्तमेव सर्वदा सत्कुर्युर्यो विद्यान्यायधर्मसेवक: सुशीलो जितेन्द्रिय: सन् सर्वेषां सुखवर्द्धनाय प्रयतेत॥५०॥

पदार्थ:-हे सभाध्यक्ष! जिस **(हवेहवे)** प्रत्येक संग्राम में **(त्रातारम्)** रक्षा करने **(इन्द्रम्)** दुष्टों के नाश करने **(अवितारम्)** प्रीति कराने **(इन्द्रम्)** उत्तम ऐश्वर्य के देने **(सुहवम्)** सुन्दरता से बुलाये जाने **(शूरम्)** शत्रुओं का विनाश कराने **(इन्द्रम्)** राज्य का धारण करने और **(शक्रम्)** कार्यों में शीघ्रता करनेहारे **(पुरुहूतम्)** बहुतों से सत्कार पाये हुए तथा **(इन्द्रम्)** शत्रुसेना के विदारण करनेहारे तुझको **(ह्वयामि)**

सत्कारपूर्वक बुलाता हूं सो **(मघवा)** बहुत धनयुक्त **(इन्द्र:)** उत्तम सेना का धारण करनेहारा तू **(न:)** हमारे लिये **(स्वस्ति)** सुख का **(धातु)** धारण कर॥५०॥

भावार्थ:-मनुष्य उसी पुरुष का सदा सत्कार करें जो विद्या न्याय और धर्म्म का सेवक, सुशील और जितेन्द्रिय हुआ सब के सुख को बढ़ाने के लिये निरन्तर यत्न किया करे॥५०॥

इन्द्र इत्यस्य गर्ग ऋषि:। इन्द्रो देवता। भुरिक् पङ्क्तिश्छन्द:। पञ्चम: स्वर:॥

पुना राजविषयमाह॥

फिर राज विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

इन्द्र॑: सु॒त्रामा॒ स्ववाँ॑२ऽअवो॑भिः सुमृडी॒को भ॑वतु वि॒श्ववे॑दा:।

बाध॑तां द्वेषो॒ऽअभ॑यं कृणोतु सु॒वीर्य॑स्य॒ पत॑य: स्याम॥५१॥

इन्द्र॑:। सु॒त्रामेति॑ सु॒ऽत्रामा॑। स्वव॒निति॒ स्वऽवा॑न्। अवो॑भि॒रित्यव॑:ऽभि:। सु॒मृ॒डी॒क इति॑ सुऽमृडी॒क:। भ॒व॒तु॒। वि॒श्ववे॑दा॒ इति॑ वि॒श्वऽवे॑दा:। बाध॑ताम्। द्वेष॑:। अभ॑यम्। कृ॒णो॒तु॒। सु॒वी॒र्य॒स्येति॑ सु॒ऽवीर्य॑स्य। पत॑य:। स्या॒म॒॥५१॥

पदार्थ:-**(इन्द्र:)** ऐश्वर्यवर्द्धक: **(सुत्रामा)** सुष्ठु रक्षक: **(स्ववान्)** बहव: स्वे स्वकीया उत्तमा जना विद्यन्ते यस्य स: **(अवोभि:)** न्यायपुरस्सरै रक्षणादिभि: **(सुमृडीक:)** सुखकर: **(भवतु)** **(विश्ववेदा:)** समग्रधन: **(बाधताम्)** **(द्वेष:)** शत्रून् **(अभयम्)** **(कृणोतु)** **(सुवीर्यस्य)** सुष्ठु पराक्रमस्य **(पतय:)** पालका: **(स्याम)** भवेम॥५१॥

अन्वय:-य: सुत्रामा स्ववान् विश्ववेदा: सुमृडीको भवतु। इन्द्रोऽवोभि: प्रजा रक्षेत्, स द्वेषो बाधतामभयं कृणोतु, स्वयमपि तादृश एव भवतु, यतो वयं सुवीर्यस्य पतय: स्याम॥५१॥

भावार्थ:-यदि राजपुरुषा विद्याविनायाभ्यां युक्ता भूत्वा प्रजारक्षका नाभविष्यँस्तर्हि सुखवृद्धिरपि नाभविष्यत्॥५१॥

पदार्थ:-जो **(सुत्रामा)** अच्छे प्रकार रक्षा करनेहारा **(स्ववान्)** स्वकीय बहुत उत्तम जनों से युक्त **(विश्ववेदा:)** समग्र धनवान् **(सुमृडीक:)** अच्छा सुख करने और **(इन्द्र:)** ऐश्वर्य का बढ़ाने वाला राजा **(अवोभि:)** न्यायपूर्वक रक्षणादि से प्रजा की रक्षा करे, वह **(द्वेष:)** शत्रुओं को **(बाधताम्)** हटावे **(अभयम्)** सब को भयरहित **(कृणोतु)** करे और आप भी वैसा ही **(भवतु)** हो, जिससे हम लोग **(सुवीर्यस्य)** अच्छे पराक्रम के **(पतय:)** पालनेहारे **(स्याम)** हों॥५१॥

भावार्थ:-जो विद्या विनय से युक्त होके राजपुरुष प्रजा की रक्षा करनेहारे न हों तो सुख की वृद्धि भी न होवे॥५१॥

तस्येत्यस्य गर्ग ऋषि:। इन्द्रो देवता। भुरिक् पङ्क्तिश्छन्द:। पञ्चम: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

तस्य॑ व॒यꣳ सु॑म॒तौ य॒ज्ञिय॒स्यापि॑ भ॒द्रे सौ॑मन॒से स्या॑म।

स सु॒त्रामा॒ स्ववाँ॑२ऽइन्द्रो॑ऽअ॒स्मेऽआ॒राच्चि॒द् द्वेषः॑ सनु॒तर्यु॑योतु॥५२॥

तस्य॑। व॒यम्। सु॒म॒तावि॑ति॑ सुऽम॒तौ। य॒ज्ञिय॑स्य। अपि॑। भ॒द्रे। सौ॒म॒न॒से। स्या॒म॒। सः। सु॒त्रामेति॑ सु॒ऽत्रामा॑। स्ववा॒निति॒ स्वऽवा॑न्। इन्द्रः॑। अ॒स्मेऽइत्य॒स्मे। आ॒रात्। चि॒त्। द्वेषः॑। स॒नु॒तः। यु॒यो॒तु॥५२॥

पदार्थः-(**तस्य**) पूर्वोक्तस्य सभेशस्य राज्ञः (**वयम्**) राजप्रजाः (**सुमतौ**) सुष्ठु संमतौ (**यज्ञियस्य**) यज्ञमनुष्ठातुमर्हस्य (**अपि**) (**भद्रे**) कल्याणकरे (**सौमनसे**) शोभने मनसि भवे व्यवहारे (**स्याम**) (**सः**) (**सुत्रामा**) सुष्ठु त्रामा (**स्ववान्**) प्रशस्तं स्वं विद्यते यस्य सः (**इन्द्रः**) पितृवद्वर्तमानः सभेशः (**अस्मे**) अस्माकम् (**आरात्**) दूरात् समीपाद्वा (**चित्**) अपि (**द्वेषः**) शत्रून् (**सनुतः**) सदा (**युयोतु**) दूरीकरोतु॥५२॥

अन्वयः-यस्सुत्रामा स्ववानिन्द्रः सभेशोऽस्मे द्वेष आराच्चित्सनुतर्युयोतु तस्य यज्ञियस्य सुमतौ भद्रे सौमनसेऽप्युकूलाः स्याम, सोऽस्माकं राजा वयं तस्य प्रजाश्च॥५२॥

भावार्थः-मनुष्यैस्तस्यैव सम्मतौ स्थातव्यं यः पक्षपातहीनो धार्मिकः न्यायेन प्रजापालनतत्परः स्यात्॥५२॥

पदार्थः-जो (**सुत्रामा**) अच्छे प्रकार से रक्षा करने और (**स्ववान्**) प्रशंसित अपना कुल रखनेहारा (**इन्द्रः**) पिता के समान वर्त्तमान सभा का अध्यक्ष (**अस्मे**) हमारे (**द्वेषः**) शत्रुओं को (**आरात्**) दूर और समीप से (**चित्**) भी (**सनुतः**) सब काल में (**युयोतु**) दूर करे, (**तस्य**) उस पूर्वोक्त (**यज्ञियस्य**) यज्ञ के अनुष्ठान करने योग्य राजा की (**सुमतौ**) सुन्दर मति में और (**भद्रे**) कल्याण करनेहारे (**सौमनसे**) सुन्दर मन में उत्पन्न हुए व्यवहार में (**अपि**) भी हम लोग राजा के अनुकूल बरतने हारे (**स्याम**) होवें और (**सः**) वह हमारा राजा और (**वयम्**) हम उसकी प्रजा अर्थात् उस के राज्य में रहने वाले हों॥५२॥

भावार्थः-मनुष्यों को उसकी सम्मति में स्थिर रहना उचित है, जो पक्षपातरहित और न्याय से प्रजापालन में तत्पर हो॥५२॥

आ मन्द्रैरित्यस्य विश्वामित्र ऋषिः। इन्द्रो देवता। निचृद्बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आ म॒न्द्रैरि॑न्द्र॒ हरि॑भिर्या॒हि म॒यूर॑रोमभिः।

मा त्वा॒ के चि॒न्नि य॑म॒न् विं न पा॒शिनोऽति॒ धन्वे॑व॒ ताँ२ऽइ॑हि॥५३॥

आ। म॒न्द्रैः। इ॒न्द्र॒। हरि॑भि॒रिति॒ हरि॑ऽभिः। या॒हि। म॒यूर॑रोमभि॒रिति॑ म॒यूर॑रोमऽभिः। मा। त्वा॒। के। चि॒त्। नि। य॒म॒न्। विम्। न। पा॒शिनः॑। अ॒ति॒ध॒न्वे॒वेत्य॑ति॒धन्व॑ऽइव। तान्। इ॒हि॒॥५३॥

पदार्थः-(**आ**) (**मन्द्रैः**) प्रशंसितैः (**इन्द्र**) परमैश्वर्यवर्द्धक (**हरिभिः**) अश्वैः (**याहि**) (**मयूररोमभिः**) मयूरस्य रोमाणीव रोमा येषां ते (**मा**) (**त्वा**) त्वाम् (**केचित्**) (**नि**) विनिग्रहार्थे (**यमन्**) यच्छेयुः (**विम्**) पक्षिणम् (**न**) इव (**पाशिनः**) बहुपाशयुक्ता व्याधाः (**अतिधन्वेव**) महेष्वासा इव (**तान्**) (**इहि**)॥५३॥

अन्वयः-हे इन्द्र सेनेश! त्वं मन्द्रैर्मयूररोमभिर्हरिभिस्तान् शत्रून् विजेतुं याहि, तत्र त्वा त्वां पाशिनो विन्न केचिन्मा नियमंस्त्वमतिधन्वेवैहि॥५३॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यदा शूराः शत्रुविजयाय गच्छेयुस्तदा सर्वतो बलं समीक्ष्याऽलं सामग्र्या शत्रुभिस्सह युध्वा स्वविजयं कुर्युर्यथा शत्रवो वशं न कुर्युस्तथाऽनुतिष्ठन्तु॥५३॥

पदार्थः-हे (**इन्द्र**) उत्तम ऐश्वर्य्य के बढ़ानेहारे सेनापति! (**मन्द्रैः**) प्रशंसायुक्त (**मयूररोमभिः**) मोर के रोमों को सदृश रोमों वाले (**हरिभिः**) घोड़ों से युक्त होके (**तान्**) उन शत्रुओं के जीतने को (**याहि**) जा, वहां (**त्वा**) तुझ को (**पाशिनः**) बहुत पाशों से युक्त व्याध लोग (**विम्**) पक्षी को बांधने के (**न**) समान (**केचित्**) कोई भी (**मा**) मत (**नियमन्**) बांधें, तू (**अतिधन्वेव**) बड़े धनुष्धारी के समान (**आ, इहि**) अच्छे प्रकार आओ॥५३॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जब शत्रुओं के विजय को जावें, तब सब ओर से अपने बल की परीक्षा कर पूर्ण सामग्री से शत्रुओं के साथ युद्ध करके अपना विजय करें, जैसे शत्रु लोग अपने को वश न करें वैसा युद्धारम्भ करें॥५३॥

एवेदित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। इन्द्रो देवता। भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

एवेदिन्द्रं वृषणं वज्रबाहुं वसिष्ठासोऽअभ्यर्चन्त्यर्कैः।

स नः स्तुतो वीरवद्धातु गोमद् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥५४॥

एव। इत्। इन्द्रम्। वृषणम्। वज्रबाहुमिति वज्रऽबाहुम्। वसिष्ठासः। अभि। अर्चन्ति। अर्कैः। सः। नः। स्तुतः। वीरवदिति वीरऽवत्। धातु। गोमदिति गोऽमत्। यूयम्। पात। स्वस्तिभिरिति स्वस्तिऽभिः। सदा। नः॥५४॥

पदार्थः-(**एव**) निश्चये (**इत्**) अपि (**इन्द्रम्**) शत्रुविदारकम् (**वृषणम्**) बलिष्ठम् (**वज्रबाहुम्**) वज्रवद्भुजम् (**वसिष्ठासः**) अतिशयेन वसवः (**अभि**) सर्वतः (**अर्चन्ति**) सत्कुर्वन्ति (**अर्कैः**) पूजितैः कर्मभिः (**सः**) (**नः**) अस्मान् (**स्तुतः**) प्रशंसितः (**वीरवत्**) वीरैर्युक्तम् (**धातु**) दधातु (**गोमत्**) प्रशंसिता गावो गवादयः पशवो यस्मिन् (**यूयम्**) (**पात**) (**स्वस्तिभिः**) कल्याणकरैः कर्मभिः (**सदा**) सर्वस्मिन् काले (**नः**) अस्मान्॥५४॥

अन्वयः-हे वसिष्ठासः! ये वृषणं वज्रबाहुमिन्द्रमर्कैर्विद्वांसोऽभ्यर्चन्ति, तमेव यूयमिदर्चत, स स्तुतो नो गोमत् वीरवद्राज्यं धातु, यूयं स्वस्तिभिर्नः सदा पात॥५४॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा राजपुरुषाः रक्षेयुस्तथैतान् प्रजाजना अपि रक्षन्तु॥५४॥

पदार्थः-हे **(वसिष्ठासः)** अतिशय वास करनेहारे! जिस **(वृषणम्)** बलवान् **(वज्रबाहुम्)** शस्त्रधारी **(इन्द्रम्)** शत्रु के मारनेहारे को **(अर्कैः)** प्रशंसित कर्मों से विद्वान् लोग **(अभ्यर्चन्ति)** यथावत् सत्कार करते हैं **(एव)** उसी का **(यूयम्)** तुम लोग **(इत्)** भी सत्कार करो, **(सः)** सो **(स्तुतः)** स्तुति को प्राप्त होके **(नः)** हमको और **(गोमत्)** उत्तम गाय आदि पशुओं से युक्त **(वीरवत्)** शूरवीरों से युक्त राज्य को **(धातु)** धारण करे और तुम लोग **(स्वस्तिभिः)** सुखों से **(नः)** हमको **(सदा)** सब दिन **(पात)** सुरक्षित रक्खो॥५४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे राजपुरुष प्रजा की रक्षा करें, वैसे राजपुरुषों की प्रजाजन भी रक्षा करें॥५४॥

समिद्धो अग्निरित्यस्य विदर्भिर्ऋषिः। अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथ स्त्रीपुरुषयोर्विषयमाह॥

अब स्त्री-पुरुषों का विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

समि॑द्धोऽअ॒ग्निर॑श्विना त॒प्तो घ॒र्मो वि॒राट् सु॒तः।

दु॒हे धे॒नुः सर॑स्वती॒ सोम॑ꣳ शु॒क्रमि॒हेन्द्रि॒यम्॥५५॥

समि॑द्ध॒ इति॑ सम्ऽइ॑द्धः। अ॒ग्निः। अ॒श्वि॒ना॒। त॒प्तः। घ॒र्मः। वि॒राडिति॑ वि॒ऽराट्। सु॒तः। दु॒हे। धे॒नुः। सर॑स्वती। सोम॑म्। शु॒क्रम्। इ॒ह। इ॒न्द्रि॒यम्॥५५॥

पदार्थः-**(समिद्धः)** सम्यक् प्रदीप्तः **(अग्निः)** पावकः **(अश्विना)** शुभगुणेषु व्याप्तौ **(तप्तः)** **(घर्मः)** यज्ञ इव संगतियुक्तः **(विराट्)** विविधतया राजते **(सुतः)** प्रेरितः **(दुहे)** **(धेनुः)** दुग्धदात्री गौरिव **(सरस्वती)** शास्त्रविज्ञानयुक्ता वाक् **(सोमम्)** ऐश्वर्यम् **(शुक्रम्)** शुद्धम् **(इह)** अस्मिन् संसारे **(इन्द्रियम्)** धनम्॥५५॥

अन्वयः-यथेह धेनुस्सरस्वती शुक्रं सोममिन्द्रियं च दोग्धि, तथैतमहं दुहे, अश्विना तप्तो विराट् सुतः समिद्धो घर्मोऽग्निर्यथा विश्वं पाति, तथाहमेतत्सर्वं रक्षेयम्॥५५॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। अस्मिन् संसारे तुल्यगुणकर्मस्वभावौ स्त्रीपुरुषौ सूर्यवत्सत्कीर्तिप्रकाशमानौ पुरुषार्थिनौ भूत्वा धर्मेणैश्वर्यं सततं सञ्चिनुताम्॥५५॥

पदार्थ:-जैसे **(इह)** इस संसार में **(धेनु:)** दूध वाली गाय के समान **(सरस्वती)** शास्त्र विज्ञानयुक्त वाणी **(शुक्रम्)** शुद्ध **(सोमम्)** ऐश्वर्य और **(इन्द्रियम्)** धन को परिपूर्ण करती है, वैसे उसे मैं **(दुहे)** परिपूर्ण करूं। हे **(अश्विना)** शुभगुणों में व्याप्त स्त्री पुरुषो! **(तप्त:)** तपा और **(विराट्)** विविध प्रकार से प्रकाशमान **(सुत:)** प्रेरणा को प्राप्त **(समिद्ध:)** प्रदीप्त **(घर्म:)** यज्ञ के समान संगतियुक्त **(अग्नि:)** पावक जगत् की रक्षा करता है, वैसे मैं इस सब जगत् की रक्षा करूं॥५५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। इस संसार में तुल्य गुण-कर्म-स्वभाव वाले स्त्री-पुरुष सूर्य के समान कीर्ति से प्रकाशमान पुरुषार्थी होके धर्म से ऐश्वर्य्य को निरन्तर संचित करें॥५५॥

तनूपा इत्यस्य विदर्भिर्ऋषि:। अश्विसरस्वतीन्द्रा देवता:। विराडनुष्टुप् छन्द:। गान्धार: स्वर:॥

अथ प्रकृतविषये वैद्यविद्यासंचरणमाह॥

अब इस प्रकृत विषय में वैद्यविद्या के संचार को अगले मन्त्र में कहा है॥

तनूपा भिषजा सुतेऽश्विनोभा सरस्वती।

मध्वा रजांसीन्द्रियमिन्द्राय पथिभिर्वहान्॥५६॥

तनूपेति तनूऽपा। भिषजा। सुते। अश्विना। उभा। सरस्वती। मध्वा। रजांसि। इन्द्रियम्। इन्द्राय। पथिभिरिति पथिऽभि:। वहान्॥५६॥

पदार्थ:-**(तनूपा)** यौ तनुं पातस्तौ **(भिषजा)** वैद्यकविद्यावेत्तारौ **(सुते)** उत्पन्ने जगति **(अश्विना)** व्याप्तशुभगुणकर्मस्वभावौ **(उभा)** उभौ **(सरस्वती)** सरो बहु विज्ञानं विद्यते ययोस्तौ **(मध्वा)** मधुरेण द्रव्येण **(रजांसि)** लोकान् **(इन्द्रियम्)** धनम् **(इन्द्राय)** राज्ञे **(पथिभि:)** मार्गै: **(वहान्)** वहन्तु प्राप्नुवन्तु॥५६॥

अन्वय:-हे मनुष्या:! यथा भिषजा तनूपोभाश्विना विद्यासुशिक्षितौ स्त्रीपुरुषौ सरस्वती च मध्वा सुतेऽस्मिन् जगति स्थित्वा पथिभिरिन्द्राय रजांसीन्द्रियं च दध्यातां तथैतद् वहान्॥५६॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यदि स्त्रीपुरुषा वैद्यकविद्यां न जानीयुस्तर्हि रोगान्निवृत्तिं स्वास्थ्यसम्पादनं च कर्त्तुं धर्मे व्यवहारे निरन्तरं चरितुं च न शक्नुयु:॥५६॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! आप लोग जैसे **(भिषजा)** वैद्यकविद्या के जाननेहारे **(तनूपा)** शरीर के रक्षक **(उभा)** दोनों **(अश्विना)** शुभ गुण-कर्म-स्वभावों में व्याप्त स्त्री-पुरुष **(सरस्वती)** बहुत विज्ञानयुक्त वाणी **(मध्वा)** मीठे गुण से युक्त **(सुते)** उत्पन्न हुए इस जगत् में स्थित होके **(पथिभि:)** मार्गों से **(इन्द्राय)** राजा के लिये **(रजांसि)** लोकों और **(इन्द्रियम्)** धन को धारण करें, वैसे इनको **(वहान्)** प्राप्त हूजिये॥५६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो स्त्री-पुरुष वैद्यकविद्या को न जानें तो रोगों के निवारण और शरीरादि की स्वस्थता को और धर्म व्यवहार में निरन्तर चलने को समर्थ नहीं होवें॥५६॥

इन्द्रायेत्यस्य विदर्भिर्ऋषिः। अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथ प्राधान्येन भिषजां व्यवहारमाह॥

अब प्रधानता से वैद्यों के व्यवहार को कहते हैं॥

इन्द्रायेन्दुꣳ सरस्वती नराशꣳसेन नग्नहुम्।

अधातामश्विना मधु भेषजं भिषजा सुते॥५७॥

इन्द्राय। इन्दुम्। सरस्वती। नराशꣳसेन। नग्नहुम्। अधाताम्। अश्विना। मधु। भेषजम्। भिषजा। सुते॥५७॥

पदार्थः-(**इन्द्राय**) दुःखविदारणाय (**इन्दुम्**) परमैश्वर्यम् (**सरस्वती**) प्रशस्तविद्यायुक्ता वाणी (**नराशंसेन**) नरैः स्तुतेन (**नग्नहुम्**) यो नन्दयति स नग्नस्तमाददातीति (**अधाताम्**) दध्याताम् (**अश्विना**) वैद्यकविद्याव्यापिनौ (**मधु**) ज्ञानवर्द्धकं मधुरादिगुणयुक्तम् (**भेषजम्**) औषधम् (**भिषजा**) सद्वैद्यौ (**सुते**) उत्पन्नेऽस्मिञ्जगति॥५७॥

अन्वयः-अश्विना भिषजेन्द्राय सुते मधु भेषजमधाताम्। नराशंसेन सरस्वती नग्नहुमिन्दुमादधातु॥५७॥

भावार्थः-वैद्या द्विधा एके ज्वरादिशरीररोगाऽपहारकाश्चिकित्सकाः। अपरे मानसाविद्यादिरोगविनाशका अध्यापकोपदेशकास्सन्ति, यत्रैते वर्तन्ते तत्र रोगाणां विनाशात् सर्वे प्राणिन आधिव्याधिमुक्ता भूत्वा सुखिनो भवन्ति॥५७॥

पदार्थः-(**अश्विना**) वैद्यकविद्या में व्याप्त (**भिषजा**) उत्तम वैद्यजन (**इन्द्राय**) दुःखनाश के लिये (**सुते**) उत्पन्न हुए इस जगत् में (**मधु**) ज्ञानवर्द्धक कोमलतादि गुणयुक्त (**भेषजम्**) औषध को (**अधाताम्**) धारण करें और (**नराशंसेन**) मनुष्यों से स्तुति किये हुए वचन से (**सरस्वती**) प्रशस्तविद्यायुक्त वाणी (**नग्नहुम्**) आनन्द कराने वाले विषय को ग्रहण करने वाले (**इन्दुम्**) ऐश्वर्य को धारण करें॥५७॥

भावार्थः-वैद्य दो प्रकार के होते हैं-एक ज्वरादि शरीररोगों के नाशक चिकित्सा करनेहारे और दूसरे मन के रोग जो कि अविद्यादि मानस क्लेश हैं, उनके निवारण करनेहारे अध्यापक, उपदेशक हैं। जहां ये रहते हैं, वहां रोगों के विनाश से प्राणी लोग शरीर और मन के रोगों से छूटकर सुखी होते हैं॥५७॥

आजुह्वानेत्यस्य विदर्भिर्ऋषिः। अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आजुह्वाना सरस्वतीन्द्रायेन्द्रियाणि वीर्यम्।

इडाभिरश्विनाविषꣳ समूर्जꣳ सꣳ रयिं दधुः॥५८॥

आजुह्वानेत्याऽजुह्वाना। सरस्वती। इन्द्राय। इन्द्रियाणि। वीर्यम्। इडाभिः। अश्विनौ। इषम्। सम्। ऊर्ज्जम्। सम्। रयिम्। दधुः॥५८॥

पदार्थः-(**आजुह्वाना**) समन्तात् शब्दायमाना (**सरस्वती**) प्रशस्तज्ञानवती स्त्री (**इन्द्राय**) परमैश्वर्य्ययुक्ताय पत्ये (**इन्द्रियाणि**) श्रोत्रादीनि, ऐश्वर्यजनकानि सुवर्णादीनि वा (**वीर्यम्**) शरीरबलकरं घृतादि (**इडाभिः**) प्रशंसिताभिरोषधीभिः (**अश्विनौ**) सूर्य्याचन्द्रमसाविव वैद्यकविद्याकार्ये प्रकाशमानौ (**इषम्**) अन्नादिकम् (**सम्**) (**ऊर्जम्**) पराक्रमम् (**सम्**) (**रयिम्**) धर्मश्रियम् (**दधुः**) दध्युः॥५८॥

अन्वयः-आजुह्वाना सरस्वतीन्द्रायेन्द्रियाणि वीर्यं चाश्विनाविडाभिरोषधिभिरिषं समूर्जं रयिं च संदधुः॥५८॥

भावार्थः-त एव विद्यावन्तः सन्ति ये मनुष्याणां रोगान् नाशयित्वा शरीरात्मबलमुन्नयन्ति। सैव पतिव्रता स्त्री ज्ञेया या पत्युः सुखाय धनघृतादि वस्तु स्थापयति॥५८॥

पदार्थः-(**आजुह्वाना**) सब ओर से प्रशंसा की हुई (**सरस्वती**) उत्तम ज्ञानवती स्त्री (**इन्द्राय**) परमैश्वर्य्ययुक्त पति के लिये (**इन्द्रियाणि**) श्रोत्र आदि इन्द्रिय वा ऐश्वर्य्य उत्पन्न करनेहारे सुवर्ण आदि पदार्थों और (**वीर्यम्**) शरीर में बल के करनेहारे घृतादि का तथा (**अश्विनौ**) सूर्य-चन्द्र के सदृश वैद्यकविद्या के कार्य में प्रकाशमान वैद्यजन (**इडाभिः**) अति उत्तम औषधियों के साथ (**इषम्**) अन्न आदि पदार्थ (**समूर्जम्**) उत्तम पराक्रम और (**रयिम्**) उत्तम धर्मश्री को (**संदधुः**) सम्यक् धारण करें॥५८॥

भावार्थः-वे ही उत्तम विद्यावान् हैं, जो मनुष्य के रोगों का नाश करके शरीर और आत्मा के बल को बढ़ाते हैं, वही पतिव्रता स्त्री जाननी चाहिये कि जो पति के सुख के लिये धन और घृत आदि वस्तु धर रखती है॥५८॥

अश्विनेत्यस्य विदर्भिर्ऋषिः। अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अश्विना नमुचेः सुतꣳ सोमꣳ शुक्रं परिस्रुता।
सरस्वती तमाभरद् बर्हिषेन्द्राय पातवे॥५९॥

अश्विना। नमुचेः। सुतम्। सोमम्। शुक्रम्। परिस्रुतेति परिऽस्रुता। सरस्वती। तम्। आ। अभरत्। बर्हिषा। इन्द्राय। पातवे॥५९॥

पदार्थः-(**अश्विना**) सद्गुणकर्मस्वभावव्यापिनौ (**नमुचेः**) यो न मुञ्चति तस्यासाध्यस्यापि रोगस्य (**सुतम्**) सम्यक् निष्पादितम् (**सोमम्**) सोमाद्योषधिगणम् (**शुक्रम्**) वीर्यकरम् (**परिस्रुता**) परितः सर्वतो गच्छन्तावव्याहतगती। स्रु गतौ धातोः क्विप्, तुक्, द्विवचनस्य **सुपाम्०** [अष्टा०७.१.३९] इत्यात्वम्।

(सरस्वती) प्रशंसिता गृहिणी तथा पुरुषः **(तम्)** **(आ)** **(अभरत्)** बिभर्त्ति **(बर्हिषा)** सुखवर्द्धकेन कर्मणा **(इन्द्राय)** परमैश्वर्यसुखाय **(पातवे)** पातुम्। अत्र पा धातोस्तुमर्थे तवेन् प्रत्ययः॥५९॥

अन्वयः-यौ परिस्रुताऽश्विना सरस्वती बर्हिषेन्द्राय नमुचेर्निवारणाय च शुक्रं सुतं सोमं पातवे तमाभरत् समन्ताद् भरतः सदा तावेव सुखिनौ भवतः॥५९॥

भावार्थः-ये साङ्गोपाङ्गान् वेदान् पठित्वा हस्तक्रियां विजानन्ति, तेऽसाध्यानपि रोगान्निवर्त्तयन्ति॥५९॥

पदार्थः-जो **(परिस्रुता)** सब ओर से अच्छे चलन युक्त **(अश्विना)** शुभ गुण-कर्म-स्वभावों में व्याप्त **(सरस्वती)** प्रशंसायुक्त स्त्री तथा पुरुष **(बर्हिषा)** सुख बढ़ाने वाले कर्म्म से **(इन्द्राय)** परमैश्वर्य के सुख के लिये और **(नमुचेः)** जो नहीं छोड़ता, उस असाध्य रोग के दूर होने के लिये **(शुक्रम्)** वीर्यकारी **(सुतम्)** अच्छे सिद्ध किये **(सोमम्)** सोम आदि ओषधियों के समूह की **(पातवे)** रक्षा के लिये **(तम्)** उस रस को **(आ, अभरत्)** धारण करती और करता है, वे ही सर्वदा सुखी रहते हैं॥५९॥

भावार्थः-जो अङ्ग-उपाङ्ग सहित वेदों को पढ़ के हस्तक्रिया जानते हैं, वे असाध्य रोगों को भी दूर करते हैं॥५९॥

कवष्य इत्यस्य विदर्भिर्ऋषिः। अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथ विद्वद्विषयमाह॥

अब विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

कवष्यो न व्यचस्वतीरश्विभ्यां न दुरो दिशः।

इन्द्रो न रोदसीऽउभे दुहे कामान्त्सरस्वती॥६०॥

कवष्यः। न। व्यचस्वतीः। अश्विभ्यामित्यश्विऽभ्याम्। न। दुरः। दिशः। इन्द्रः। न। रोदसीऽइति रोदसी। उभेऽइत्युभे। दुहे। कामान्। सरस्वती॥६०॥

पदार्थः-**(कवष्यः)** प्रशस्ताः। अत्र कु शब्दे धातोर्बाहुलकादौणादिकोऽषट् प्रत्ययः **(न)** इव **(व्यचस्वतीः)** व्याप्तिमत्यः **(अश्विभ्याम्)** सूर्याचन्द्रमोभ्याम् **(न)** इव **(दुरः)** द्वाराणि **(दिशः)** **(इन्द्रः)** विद्युत् **(न)** इव **(रोदसी)** द्यावापृथिव्यौ **(उभे)** **(दुहे)** पिपर्मि **(कामान्)** **(सरस्वती)** प्रशस्तविज्ञानयुक्ता॥६०॥

अन्वयः-सरस्वत्यहमिन्द्र अश्विभ्यां व्यचस्वतीः कवष्यो दिशो न दुरो न उभे रोदसी न वा कामान् दुहे॥६०॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। यथेन्द्रः सूर्याचन्द्रमोभ्यां दिशां द्वाराणां चान्धकारं विनाशयति, यथा वा भूमिप्रकाशौ धरति, तथा विदुषी पुरुषार्थेनेच्छाः प्रपूरयेत्॥६०॥

पदार्थ:-(**सरस्वती**) अतिश्रेष्ठ ज्ञानवती मैं (**इन्द्र:**) बिजुली (**अश्विभ्याम्**) सूर्य और चन्द्रमा से (**व्यचस्वती:**) व्याप्त होने वाली (**कवष्य:**) अत्यन्त प्रशंसित (**दिश:**) दिशाओं को (**न**) जैसे तथा (**दुर:**) द्वारों को (**न**) जैसे वा (**उभे**) दोनों (**रोदसी**) आकाश और पृथिवी को जैसे (**न**) वैसे (**कामान्**) कामनाओं को (**दुहे**) पूर्ण करती हूं॥६०॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे बिजुली सूर्य-चन्द्रमा से दिशाओं के और द्वारों के अन्धकार का नाश करती है वा जैसे पृथिवी और प्रकाश को धारण करती है, वैसे पण्डिता स्त्री पुरुषार्थ से अपनी इच्छा पूर्ण करे॥६०॥

उषासानक्तमित्यस्य विदर्भिर्ऋषि:। अश्विसरस्वतीन्द्रा देवता:। अनुष्टुप् छन्द:। गान्धार: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उषासानक्तमश्विना दिवेन्द्रꣳ सायमिन्द्रियै:।

संजानाने सुपेशसा समञ्जाते सरस्वत्या॥६१॥

उषासा। उषसेत्युषसा। नक्तम्। अश्विना। दिवा। इन्द्रम्। सायम्। इन्द्रियै:। सञ्जानाने इति सम्ऽजानाने। सुपेशसेति सुऽपेशसा। सम्। अञ्जातेऽइत्यञ्जाते। सरस्वत्या॥६१॥

पदार्थ:-(**उषासा**) प्रभाते। अत्र **अन्येषामपि०** [अष्टा०६.३.१३७] इत्युपधादीर्घ: (**नक्तम्**) रात्रौ (**अश्विना**) सूर्याचन्द्रमसौ (**दिवा**) दिने (**इन्द्रम्**) विद्युतम् (**सायम्**) संध्यासमये (**इन्द्रियै:**) इन्द्रस्य जीवस्य लिङ्गै: (**संजानाने**) (**सुपेशसा**) सुरूपौ (**सम्**) (**अञ्जाते**) प्रसिध्यत: (**सरस्वत्या**) प्रशस्तसुशिक्षातया वाचा॥६१॥

अन्वय:-हे विद्वांस: ! यथा सुपेशसाऽश्विना सरस्वत्योषासा नक्तं सायं च दिवेन्द्रियैरिन्द्रं च संजानाने समञ्जाते, तथा यूयमपि प्रसिध्यत॥६१॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यथोषा रात्रिं सायं च दिनं निवर्त्तयति, तथा विद्वद्भिरविद्याकुशिक्षे निवार्य सर्वे विद्यासुशिक्षायुक्ता: सम्पादनीया:॥६१॥

पदार्थ:-हे विद्वान् लोगो! जैसे (**सुपेशसा**) अच्छे रूप वाले (**अश्विना**) सूर्य और चन्द्रमा (**सरस्वत्या**) अच्छी उत्तम शिक्षा पाई हुई वाणी से (**उषासा**) प्रभात (**नक्तम्**) रात्रि (**सायम्**) संध्याकाल और (**दिवा**) दिन में (**इन्द्रियै:**) जीव के लक्षणों से (**इन्द्रम्**) बिजुली को (**संजानाने**) अच्छे प्रकार प्रकट करते हुए (**समञ्जाते**) प्रसिद्ध हैं, वैसे तुम भी प्रसिद्ध होओ॥६१॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे प्रात:समय रात्रि को और संध्याकाल दिन को निवृत्त करता है, वैसे विद्वानों को चाहिये कि अविद्या और दुष्ट शिक्षा का निवारण करके सब लोगों को सब विद्याओं की शिक्षा में नियुक्त करें॥६१॥

पातमित्यस्य विदर्भिर्ऋषिः। अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथ विद्वद्विषये सामयिकं रक्षादिविषयं भैषज्यादिविषयमाह॥

अब विद्वद्विषय में सामयिक रक्षा विषय और भैषज्यादि विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

पातं नोऽअश्विना दिवा पाहि नक्तꣳ सरस्वति।

दैव्या होतारा भिषजा पातमिन्द्रꣳ सचा सुते॥६२॥

पातम्। नः। अश्विना। दिवा। पाहि। नक्तम्। सरस्वति। दैव्या। होतारा। भिषजा। पातम्। इन्द्रम्। सचा। सुते॥६२॥

पदार्थः-(**पातम्**) रक्षतम् (**नः**) अस्मान् (**अश्विना**) अध्यापकोपदेशकौ (**दिवा**) दिवसे (**पाहि**) रक्ष (**नक्तम्**) रात्रौ (**सरस्वति**) बहुविद्यायुक्त मातः (**दैव्या**) दिव्यगुणसम्पन्नौ (**होतारा**) सर्वस्य सुखदातारौ (**भिषजा**) वैद्यौ (**पातम्**) रक्षतम् (**इन्द्रम्**) ऐश्वर्यप्रदं सोमरसम् (**सचा**) समवेतौ (**सुते**) उत्पन्नेऽस्मिञ्जगति॥६२॥

अन्वयः-हे दैव्याऽश्विना युवां दिवा नक्तं नः पातम्। हे सरस्वति नः पाहि। हे होतारा सचा भिषजा सुत इन्द्र पातम्॥६२॥

भावार्थः-यथा सद्वैद्या रोगनिवारकान्यौषधानि जानन्ति तथाऽध्यापकोपदेशकौ मातापितरौ चाऽविद्यारोगनिवारकानुपायाञ्जानन्तु॥६२॥

पदार्थः-हे (**दैव्या**) दिव्य गुणयुक्त (**अश्विना**) पढ़ाने और उपदेश करने वालो! तुम लोग (**दिवा**) दिन में (**नक्तम्**) रात्रि में (**नः**) हमारी (**पातम्**) रक्षा करो। हे (**सरस्वति**) बहुत विद्याओं से युक्त माता! तू हमारी (**पाहि**) रक्षा कर। हे (**होतारा**) सब लोगों को सुख देने वाले (**सचा**) अच्छे मिले हुए (**भिषजा**) वैद्य लोगो! तुम (**सुते**) उत्पन्न हुए इस जगत् में (**इन्द्रम्**) ऐश्वर्य्य देने वाले सोमलता के रस की (**पातम्**) रक्षा करो॥६२॥

भावार्थः-जैसे अच्छे वैद्य रोग मिटाने वाली बहुत ओषधियों को जानते हैं, वैसे अध्यापक और उपदेशक और माता-पिता अविद्यारूप रोगों को दूर करने वाले उपायों को जानें॥६२॥

तिस्र इत्यस्य विदर्भिर्ऋषिः। अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनर्भैषज्यादिविषयमाह॥

फिर भैषज्यादि विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

तिस्रस्त्रेधा सरस्वत्यश्विना भारतीडा।

तीव्रं परिस्रुता सोममिन्द्राय सुषुवुर्मदम्॥६३॥

तिस्रः। त्रेधा। सरस्वती। अश्विना। भारती। इडा। तीव्रम्। परिस्रुतेति परिऽस्रुता। सोमम्। इन्द्राय। सुषुवुः। सुसुवुरिति सुसुवुः। मदम्॥६३॥

पदार्थः-(**तिस्रः**) त्रित्वसंख्याविशिष्टाः (**त्रेधा**) त्रिभिः प्रकारैः (**सरस्वती**) सुशिक्षिता वाणी (**अश्विना**) सद्वैद्यौ (**भारती**) धारिका माता (**इडा**) स्तोतु योग्योपदेशिका (**तीव्रम्**) तीव्रगुणस्वभावम् (**परिस्रुता**) परितः सर्वतः स्रवन्ति येन तेन (**सोमम्**) ओषधिरसं प्रेरणाख्यं व्यवहारं वा (**इन्द्राय**) ऐश्वर्य्याय (**सुषुवुः**) निष्पादयन्तु (**मदम्**) हर्षकम्॥६३॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा सरस्वती भारतीडा च तिस्रोऽश्विना चेन्द्राय परिस्रुता तीव्र मदं सोमं त्रेधा सुषुवुस्तथा यूयमप्येनं सुषुनोत॥६३॥

भावार्थः-मनुष्यैः सोमाद्योषधिरसं निर्माय पीत्वाऽऽरोग्यं कृत्वा वाचं धियं वक्तृत्वं चोन्नेनयम्॥६३॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे (**सरस्वती**) अच्छे प्रकार शिक्षा पाई हुई वाणी (**भारती**) धारण करनेहारी माता और (**इडा**) स्तुति के योग्य उपदेश करनेहारी ये (**तिस्रः**) तीन और (**अश्विना**) अच्छे दो वैद्य (**इन्द्राय**) ऐश्वर्य के लिये (**परिस्रुता**) सब ओर से झरने के साथ (**तीव्रम्**) तीव्रगुणस्वभाव वाले (**मदम्**) हर्षकर्त्ता (**सोमम्**) ओषधि के रस वा प्रेरणा नाम के व्यवहार को (**त्रेधा**) तीन प्रकार से (**सुषुवुः**) उत्पन्न करें, वैसे तुम भी इसकी सिद्धि अच्छे प्रकार करो॥६३॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि सोम आदि ओषधियों के रस को सिद्ध कर उसको पीके शरीर का आरोग्य करके उत्तम वाणी, शुद्ध बुद्धि और यथार्थ वक्तृत्व शक्ति की उन्नति करें॥६३॥

अश्विनेत्यस्य विदर्भिर्ऋषिः। अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अश्विना भेषजं मधु भेषजं नः सरस्वती।

इन्द्रे त्वष्टा यशः श्रियꣳ रूपꣳरूपमधुः सुते॥६४॥

अश्विना। भेषजम्। मधु। भेषजम्। नः। सरस्वती। इन्द्रे। त्वष्टा। यशः। श्रियम्। रूपꣳरूपमिति रूपम्ऽरूपम्। अधुः। सुते॥६४॥

पदार्थ:-(**अश्विना**) विद्याशिक्षकौ (**भेषजम्**) औषधम् (**मधु**) मधुरादिगुणोपेतम् (**भेषजम्**) (**न:**) अस्मभ्यम् (**सरस्वती**) विदुषी शिक्षिता माता (**इन्द्रे**) परमैश्वर्ये (**त्वष्टा**) तनूकर्त्ता (**यश:**) (**श्रियम्**) लक्ष्मीम् (**रूपं रूपम्**) अत्र वीप्सायां द्वित्वम् (**अधु:**) दध्यासु: (**सुते**) निष्पादिते॥६४॥

अन्वय:-नोऽश्विना सरस्वती त्वष्टा च विद्वांस: सुत इन्द्रे भेषजं मधु भेषजं यश: श्रियं रूपंरूपं चाऽधु:॥६४॥

भावार्थ:-यदा मनुष्या ऐश्वर्यं प्राप्नुयुस्तदैतान्युत्तमान्यौषधानि यश: सुशोभां च निष्पादयितुं शक्नुयु:॥६४॥

पदार्थ:-(**न:**) हमारे लिये (**अश्विना**) विद्या सिखाने वाले अध्यापकोपदेशक (**सरस्वती**) विदुषी शिक्षा पाई हुई माता और (**त्वष्टा**) सूक्ष्मता करने वाला ये विद्वान् लोग (**सुते**) उत्पन्न हुए (**इन्द्रे**) परमैश्वर्य्य में (**भेषजम्**) सामान्य और (**मधु, भेषजम्**) मधुरादि गुणयुक्त औषध (**यश:**) कीर्त्ति (**श्रियम्**) लक्ष्मी और (**रूपं रूपम्**) रूप रूप को (**अधु:**) धारण करने को समर्थ होवें॥६४॥

भावार्थ:-जब मनुष्य लोग ऐश्वर्य को प्राप्त होवें, तब इन उत्तम ओषधियों, कीर्त्ति और उत्तम शोभा को सिद्ध करें॥६४॥

ऋतुथेत्यस्य विदर्भिर्ऋषि:। अश्विसरस्वतीन्द्रा देवता:। अनुष्टुप् छन्द:। गान्धार: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ऋ॒तु॒थेन्द्रो॒ व॒न॒स्पति॑: शशमा॒न: प॑रि॒स्रुता॑।

की॒लाल॑म॒श्विभ्यां॒ मधु॑ दु॒हे धे॒नु: सर॑स्वती॥६५॥

ऋ॒तु॒थेत्यृ॑तु॒ऽथा। इन्द्र॑:। व॒न॒स्पति॑:। श॒श॒मा॒न:। प॒रि॒स्रुतेति॑ परि॒ऽस्रुता॑। की॒लाल॑म्। अ॒श्विभ्या॒मित्य॒श्विऽभ्या॑म्। मधु॑। दु॒हे। धे॒नु:। सर॑स्वती॥६५॥

पदार्थ:-(**ऋतुथा**) ऋतुप्रकारै:। अत्र **वा च्छन्दसि** इति ऋतुशब्दादपि थाल् (**इन्द्र:**) ऐश्वर्य्यकर: (**वनस्पति:**) वटादि: (**शशमान:**) (**परिस्रुता**) परित: सर्वत: स्रवति तेन (**कीलालम्**) अन्नम् (**अश्विभ्याम्**) वैद्याभ्याम् (**मधु**) मिष्टादिकं रसम् (**दुहे**) पूर्णं कुर्याम् (**धेनु:**) दुग्धदात्री गौरिव (**सरस्वती**) प्रशस्तशिक्षायुक्ता वाणी॥६५॥

अन्वय:-यथा धेनु: सरस्वती परिस्रुता सहतुर्था शशमान इन्द्रो वनस्पतिर्मघु कीलालमश्विभ्यां च कामान् दोग्धि, तथाऽहं दुहे॥६५॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यथा सद्वैद्या: शुद्धेभ्यो वनस्पतिभ्य: सारग्रहणाय प्रयतन्ते, तथा सर्वै: प्रयतितव्यम्॥६५॥

पदार्थ:-जैसे **(धेनु:)** दूध देने वाली गौ के समान **(सरस्वती)** अच्छी उत्तम शिक्षा से युक्त वाणी **(परिस्रुता)** सब ओर से भरने वाली जलादि पदार्थ के साथ **(ऋतुथा)** ऋतुओं के प्रकारों से और **(शशमान:)** बढ़ता हुआ **(इन्द्र:)** ऐश्वर्य करनेहारा **(वनस्पति:)** वट आदि वृक्ष **(मधु)** मधुर आदि रस और **(कीलालम्)** अन्न को **(अश्विभ्याम्)** वैद्यों से कामनाओं को पूर्ण करता है, वैसे मैं **(दुहे)** पूर्ण करूं॥६५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे अच्छे वैद्यजन उत्तम-उत्तम वनस्पतियों से सारग्रहण के लिये प्रयत्न करते हैं, वैसे सब को प्रयत्न करना चाहिये॥६५॥

गोभिरित्यस्य विदर्भिर्ऋषि:। अश्विसरस्वतीन्द्रा देवता:। निचृदनुष्टुप् छन्द:। गान्धार: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

गोभि॒र्न सोम॑मश्विना॒ मास॑रेण परि॒स्रुता॑।

सम॑धातु॒ꣳ सर॑स्वत्या॒ स्वाहेन्द्रे॑ सु॒तं मधु॑॥६६॥

गोभि॑:। न। सोम॑म्। अ॒श्वि॒ना॒। मास॑रेण। प॒रि॒स्रु॒तेति॑ परि॒ऽस्रुता॑। सम्। अ॒धा॒त॒म्। सर॑स्वत्या। स्वाहा॑। इन्द्रे॑। सु॒तम्। मधु॑॥६६॥

पदार्थ:-**(गोभि:)** धेनुभि: **(न)** इव **(सोमम्)** ओषधिरसम् **(अश्विना)** सुशिक्षितौ वैद्यो **(मासरेण)** प्रमितेन मण्डेन। अत्र माङ् धातोरौणादिक: सरन् प्रत्यय: **(परिस्रुता)** सर्वतो मधुरादिरसयुक्तेन **(सम्)** **(अधातम्)** **(सरस्वत्या)** सुशिक्षाज्ञानयुक्तया वाचा **(स्वाहा)** सत्यया क्रियया **(इन्द्रे)** सति परमैश्वर्ये **(सुतम्)** निष्पादितम् **(मधु)** मधुरादिगुणयुक्तम्॥६६॥

अन्वय:-हे अश्विना! परिस्रुता मासरेण सरस्वत्या स्वाहेन्द्रे गोभिर्दुग्धादि न सुतं मधु सोमं युवां समधातम्॥६६॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। वैद्या: श्रेष्ठया हस्तक्रियया सर्वौषधिरसं संगृह्णीयु:॥६६॥

पदार्थ:-हे **(अश्विना)** अच्छी शिक्षा पाये हुए वैद्यो! **(मासरेण)** प्रमाण युक्त मांड **(परिस्रुता)** सब ओर से मधुर आदि रस से युक्त **(सरस्वत्या)** अच्छी शिक्षा और ज्ञान से युक्त वाणी से और **(स्वाहा)** सत्यक्रिया से तथा **(इन्द्रे)** परमैश्वर्य्य के होते **(गोभि:)** गौओं से दुग्ध आदि पदार्थों को जैसे **(न)** वैसे **(मधु)** मधुर आदि गुणों से युक्त **(सुतम्)** सिद्ध किये **(सोमम्)** ओषधियों के रस को तुम **(समधातम्)** अच्छे प्रकार धारण करो॥६६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। वैद्य लोग उत्तम हस्तक्रिया से सब ओषधियों के रस को ग्रहण करें॥६६॥

अश्विना हविरित्यस्य विदर्भिर्ऋषि:। अश्विसरस्वतीन्द्रा देवता:। भुरिगनुष्टुप् छन्द:। गान्धार: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अश्विना हविरिन्द्रियं नमुचेर्धिया सरस्वती।

आ शुक्रमासुराद्वसु मघमिन्द्राय जभ्रिरे॥६७॥

अश्विना। हविः। इन्द्रियम्। नमुचेः। धिया। सरस्वती। आ। शुक्रम्। आसुरात्। वसु। मघम्। इन्द्राय। जभ्रिरे॥६७॥

पदार्थः-(**अश्विना**) सुवैद्यौ (**हविः**) आदातुमर्हम् (**इन्द्रियम्**) मन आदि (**नमुचेः**) अविनश्वरात् कारणादुत्पन्नात् कार्यात् (**धिया**) प्रज्ञया (**सरस्वती**) (**आ**) (**शुक्रम्**) वीर्यम् (**आसुरात्**) मेघात् (**वसु**) (**मघम्**) पूज्यम् (**इन्द्राय**) ऐश्वर्याय (**जभ्रिरे**) धरेयुः॥६७॥

अन्वयः-अश्विना सरस्वती च धिया नमुचेर्हविरिन्द्रियमासुराच्छुक्रं मघं वस्विन्द्रायाजभ्रिरे॥६७॥

भावार्थः-स्त्रीपुरुषैरैश्वर्यसुखप्राप्तय औषधानि संसेव्यानि॥६७॥

पदार्थः-(**अश्विना**) अच्छे वैद्य और (**सरस्वती**) अच्छी शिक्षायुक्त स्त्री (**धिया**) बुद्धि से (**नमुचेः**) नाशरहित कारण से उत्पन्न हुए कार्य से (**हविः**) ग्रहण करने योग्य (**इन्द्रियम्**) मन को (**आसुरात्**) मेघ से (**शुक्रम्**) पराक्रम और (**मघम्**) पूज्य (**वसु**) धन को (**इन्द्राय**) ऐश्वर्य के लिये (**आजभ्रिरे**) धारण करें॥६७॥

भावार्थः-स्त्री और पुरुषों को चाहिये कि ऐश्वर्य से सुख की प्राप्ति के लिये ओषधियों का सेवन करें॥६७॥

यमित्यस्य विदर्भिर्ऋषिः। अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यमश्विना सरस्वती हविषेन्द्रमवर्द्धयन्।

स बिभेद वलं मघं नमुचावासुरे सचा॥६८॥

यम्। अश्विना। सरस्वती। हविषा। इन्द्रम्। अवर्द्धयन्। सः। बिभेद। बलम्। मघम्। नमुचौ। आसुरे। सचा॥६८॥

पदार्थः-(**यम्**) (**अश्विना**) अध्यापकोपदेशकौ (**सरस्वती**) विदुषी स्त्री (**हविषा**) सुसंस्कृतहोमसामग्र्या (**इन्द्रम्**) ऐश्वर्यम् (**अवर्द्धयन्**) वर्द्धयन्तु (**सः**) (**बिभेद**) भिन्द्यात् (**बलम्**) (**मघम्**) परमपूज्यम् (**नमुचौ**) अविनाशिकारणे (**आसुरे**) असुरे मेघे भवे (**सचा**) संयुक्तौ॥६८॥

अन्वयः-स्रुचाऽश्विना सरस्वती च नमुचावासुरे हविषा यमिन्द्रमवर्द्धयन्, स मघं बलं बिभेद॥६८॥

भावार्थः-यद्योषधिरसं क्रियागुणैरुत्तमं कुर्युस्तर्हि स रोगहन्ता स्यात्॥६८॥

पदार्थः-(**सचा**) संयोग किये हुए (**अश्विना**) अध्यापक और उपदेशक तथा (**सरस्वती**) विदुषी स्त्री (**नमुचौ**) नाशरहित कारण से उत्पन्न (**आसुरे**) मेघ में होने के निमित्त घर में (**हविषा**) अच्छी बनाई हुई होम की सामग्री से (**यम्**) जिस (**इन्द्रम्**) ऐश्वर्य को (**अवर्द्धयन्**) बढ़ाते (**सः**) वह (**मघम्**) परमपूज्य (**बलम्**) बल का (**बिभेद**) भेदन करे॥६८॥

भावार्थः-जो ओषधियों के रस को कर्त्तव्यता के गुणों से उत्तम करे, वह रोग का नाश करनेहारा होवे॥६८॥

तमित्यस्य विदर्भिर्ऋषिः। अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथ विद्वद्विषयमाह॥

अब विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

तमिन्द्रं॑ प॒शव॒: सचा॒श्विनो॒भा सर॑स्वती।

दधा॑ना अ॒भ्य॒नूषत ह॒विषा॑ य॒ज्ञऽइ॑न्द्रि॒यैः॥६९॥

तम्। इन्द्र॑म्। प॒श॑वः। सचा॑। अ॒श्विना॑। उ॒भा। सर॑स्वती। दधा॑नाः। अ॒भि। अ॒नू॒ष॒त॒। ह॒विषा॑। य॒ज्ञे। इ॒न्द्रि॒यैः॥६९॥

पदार्थः-(**तम्**) (**इन्द्रम्**) बलादिगुणधारकं सोमम् (**पशवः**) गवादयः (**सचा**) विद्यासमवेतौ (**अश्विना**) वैद्यकविद्यानिपुणावध्यापकोपदेशकौ (**उभा**) द्वौ (**सरस्वती**) सत्यविज्ञानयुक्ता (**दधानाः**) धरतः (**अभि**) सर्वतः (**अनूषत**) प्रशंसत (**हविषा**) सामग्र्या (**यज्ञे**) (**इन्द्रियैः**) धनैः॥६९॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! सचाश्विनोभा इन्द्रियैर्यमिन्द्रं दध्याताम्, तं सरस्वती दध्यात्, यं च पशवो दध्युस्तं हविषा दधानाः सन्तो यज्ञेऽभ्यनूषत॥६९॥

भावार्थः-ये धर्माचरणाद् धनेन धनं वर्द्धयन्ति, ते प्रशंसां प्राप्नुवन्ति॥६९॥

पदार्थः-हे मनुष्य लोगो! (**सचा**) विद्या से युक्त (**अश्विना**) वैद्यकविद्या में चतुर अध्यापक और उपदेशक (**उभा**) दोनों (**इन्द्रियैः**) धनों से जिस (**इन्द्रम्**) बल आदि गुणों के धारण करनेहारे सोम को धारण करें, (**तम्**) उसको (**सरस्वती**) सत्य विज्ञान से युक्त स्त्री धारण करे और जिसको (**पशवः**) गौ आदि पशु धारण करें, उसको (**हविषा**) सामग्री से (**दधानाः**) धारण करते हुए जन (**यज्ञे**) यज्ञ में (**अभ्यनूषत**) सब ओर से प्रशंसा करें॥६९॥

भावार्थः-जो लोग धर्म्म के आचरण से धन के साथ धन को बढ़ाते हैं, वे प्रशंसा को प्राप्त होते हैं॥६९॥

य इत्यस्य विदर्भिर्ऋषिः। इन्द्रसवितृवरुणा देवताः। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यऽइन्द्रेऽइन्द्रियं दुधुः सविता वरुणो भर्गः।

स सुत्रामा हविष्पतिर्यजमानाय सश्चत॥७०॥

ये। इन्द्रे। इन्द्रियम्। दुधुः। सविता। वरुणः। भगः। सः। सुत्रामेति सुऽत्रामा। हविष्पतिः। हविःपतिरिति हविःऽपतिः। यजमानाय। सश्चत॥७०॥

पदार्थः-(**ये**) (**इन्द्रे**) ऐश्वर्ये (**इन्द्रियम्**) धनम् (**दधुः**) (**सविता**) ऐश्वर्यमिच्छुकः (**वरुणः**) श्रेष्ठः (**भगः**) भजनीयः (**सः**) (**सुत्रामा**) सुष्ठु रक्षकः (**हविष्पतिः**) हविषां पालकः (**यजमानाय**) यज्ञाऽनुष्ठात्रे (**सश्चत**) भजतु। षच सेवने लोडर्थे लङ् सुगागमोऽडभावश्च छान्दसः॥७०॥

अन्वयः-हे विद्वन्! य इन्द्र इन्द्रियं दधुस्ते सुखिनः स्युरतो यो भगो वरुणः सविता सुत्रामा हविष्पतिर्जनो यजमानायेन्द्रियं सश्चत सेवते स प्रतिष्ठां प्राप्नुयात्॥७०॥

भावार्थः-यथा पुरोहितो यजमानस्यैश्वर्यं वर्द्धयति, तथा यजमानोऽपि पुरोहितस्य धनं वर्द्धयेत्॥७०॥

पदार्थः-हे विद्वन्! (**ये**) जो लोग (**इन्द्रे**) ऐश्वर्य्य में (**इन्द्रियम्**) धन को (**दधुः**) धारण करें, वे सुखी होवें। इस कारण जो (**भगः**) सेवा करने के योग्य (**वरुणः**) श्रेष्ठ (**सविता**) ऐश्वर्य की इच्छा से युक्त (**सुत्रामा**) अच्छे प्रकार रक्षक (**हविष्पतिः**) होम करने योग्य पदार्थों की रक्षा करनेहारा मनुष्य (**यजमानाय**) यज्ञ करनेहारे के लिये धन को (**सश्चत**) सेवे, (**सः**) वह प्रतिष्ठा को प्राप्त होवे॥७०॥

भावार्थः-जैसे पुरोहित यजमान के ऐश्वर्य को बढ़ाता है, वैसे यजमान भी पुरोहित के धन को बढ़ावे॥७०॥

सवितेत्यस्य विदर्भिर्ऋषिः। इन्द्रसवितृवरुणा देवताः। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

सविता वरुणो दधद् यजमानाय दाशुषे।

आदत्त नमुचेर्वसु सुत्रामा बलमिन्द्रियम्॥७१॥

सविता। वरुणः। दधत्। यजमानाय। दाशुषे। आ। अदत्त। नमुचेः। वसु। सुत्रामेति सुऽत्रामा। बलम्। इन्द्रियम्॥७१॥

पदार्थः-(**सविता**) प्रेरकः (**वरुणः**) उत्तमः (**दधत्**) धारणं कुर्वन् (**यजमानाय**) संगच्छमानाय (**दाशुषे**) दात्रे (**आ**) (**अदत्त**) आदद्यात् (**नमुचेः**) धर्ममत्यजतः (**वसु**) द्रव्यम् (**सुत्रामा**) सुष्ठु रक्षकः (**बलम्**) (**इन्द्रियम्**) सुशिक्षितं मनः॥७१॥

अन्वयः-वरुणस्सविता सुत्रामा दाशुषे यजमानाय वसु दधत् सन् नमुचेर्बलमिन्द्रियमादत्त॥७१॥

भावार्थः-दातारं संसेव्य ततः पदार्थान् प्राप्य यः सर्वस्य बलं वर्द्धयति, स बलवाञ्जायते॥७१॥

पदार्थः-(**वरुणः**) उत्तम (**सविता**) प्रेरक और (**सुत्रामा**) अच्छे प्रकार रक्षा करनेहारा जन (**दाशुषे**) देने वाले (**यजमानाय**) यजमान के लिये (**वसु**) द्रव्य को (**दधत्**) धारण करता हुआ (**नमुचेः**) धर्म को नहीं छोड़ने वाले के (**बलम्**) बल और (**इन्द्रियम्**) अच्छी शिक्षा से युक्त मन का (**आ, अदत्त**) अच्छे प्रकार ग्रहण करे॥७१॥

भावार्थः-देने वाले पुरुष की अच्छे प्रकार सेवा करके उससे अच्छे पदार्थों को प्राप्त होकर जो सब के बल को बढ़ाता है, वह बलवान् होता है॥७१॥

वरुण इत्यस्य विदर्भिर्ऋषिः। इन्द्रसवितृवरुणा देवताः। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

वरुणः क्षत्रमिन्द्रियं भगेन सविता श्रियम्।

सुत्रामा यशसा बलं दधाना यज्ञमाशत॥७२॥

वरुणः। क्षत्रम्। इन्द्रियम्। भगेन। सविता। श्रियम्। सुत्रामेति सुऽत्रामा। यशसा। बलम्। दधानाः। यज्ञम्। आशत॥७२॥

पदार्थः-(**वरुणः**) उत्तमपुरुषः (**क्षत्रम्**) राज्यम् (**इन्द्रियम्**) मनआदिकम् (**भगेन**) ऐश्वर्येण (**सविता**) ऐश्वर्योत्पादकः (**श्रियम्**) राज्यलक्ष्मीम् (**सुत्रामा**) सुष्ठु त्राता (**यशसा**) कीर्त्या (**बलम्**) (**दधानाः**) (**यज्ञम्**) (**आशत**) व्याप्नुत॥७२॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा वरुणः सविता सुत्रामा सूद्योगी सभेशो भगेन सह वर्त्तमानं क्षत्रमिन्द्रियं श्रियं यज्ञं च प्राप्नोति, तथा यशसा बलं दधानाः सन्तो यूयमाशत॥७२॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ऐश्वर्येण विना राज्यं राज्येन विना श्रीः श्रिया विनोपभोगाश्च न प्राप्यन्ते, तस्मान्नित्यं पुरुषार्थेन वर्त्तितव्यम्॥७२॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे (**वरुणः**) उत्तम पुरुष (**सविता**) ऐश्वर्योत्पादक (**सुत्रामा**) अच्छे प्रकार रक्षा करनेहारा सभा का अध्यक्ष (**भगेन**) ऐश्वर्य्य के साथ वर्त्तमान (**क्षत्रम्**) राज्य और (**इन्द्रियम्**) मन आदि

(श्रियम्) राज्यलक्ष्मी और **(यज्ञम्)** यज्ञ को प्राप्त होता है, वैसे **(यशसा)** कीर्ति के साथ **(बलम्)** बल को **(दधानाः)** धारण करते हुए तुम **(आशत)** प्राप्त होओ॥७२॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। ऐश्वर्य्य के विना राज्य, राज्य के विना राज्यलक्ष्मी और राज्यलक्ष्मी के विना भोग प्राप्त नहीं होते, इसलिये नित्य पुरुषार्थ करना चाहिये॥७२॥

अश्विनेत्यस्य विदर्भिर्ऋषिः। अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अश्विना गोभिरिन्द्रियमश्वेभिर्वीर्युँ बलम्।

हविषेन्द्रꣳ सरस्वती यजमानमवर्द्धयन्॥७३॥

अश्विना। गोभिः। इन्द्रियम्। अश्वेभिः। वीर्य्युम्। बलम्। हविषा। इन्द्रम्। सरस्वती। यजमानम्। अवर्द्धयन्॥७३॥

पदार्थः-**(अश्विना)** अध्यापकोपदेशकौ **(गोभिः)** सुशिक्षिताभिर्वाणीभिः पृथिवीधेनुभिर्वा **(इन्द्रियम्)** धनम् **(अश्वेभिः)** सुशिक्षितैस्तुरङ्गादिभिः **(वीर्यम्)** पराक्रमम् **(बलम्)** **(हविषा)** उपादत्तेन पुरुषार्थेन **(इन्द्रम्)** ऐश्वर्ययुक्तम् **(सरस्वती)** सुशिक्षिता विदुषी स्त्री **(यजमानम्)** सत्यानुष्ठानस्य यज्ञस्य कर्त्तारम् **(अवर्द्धयन्)**॥७३॥

अन्वयः-अश्विना सरस्वती च गोभिरश्वेभिर्हविषेन्द्रियं वीर्यं बलमिन्द्रं यजमानमवर्द्धयन्॥७३॥

भावार्थः-ये येषां समीपे निवसेयुस्तेषां योग्यतास्ति, ते तान् सर्वैः शुभगुणकर्मभिरैश्वर्यादिना च समुन्नयेयुः॥७३॥

पदार्थः-**(अश्विना)** अध्यापक, उपदेशक और **(सरस्वती)** सुशिक्षायुक्त विदुषी स्त्री **(गोभिः)** अच्छे प्रकार शिक्षायुक्त वाणी वा पृथिवी और गौओं तथा **(अश्वेभिः)** अच्छे प्रकार शिक्षा पाये हुए घोड़ों और **(हविषा)** अङ्गीकार किये हुए पुरुषार्थ से **(इन्द्रियम्)** धन **(वीर्यम्)** पराक्रम **(बलम्)** बल और **(इन्द्रम्)** ऐश्वर्ययुक्त **(यजमानम्)** सत्य अनुष्ठानरूप यज्ञ करनेहारे को **(अवर्द्धयन्)** बढ़ावें॥७३॥

भावार्थः-जो लोग जिनके समीप रहें उनको योग्य है कि वे उनको सब अच्छे गुण कर्मों और ऐश्वर्य आदि से उन्नति को प्राप्त करें॥७३॥

ता नासत्येत्यस्य विदर्भिर्ऋषिः। अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ता नासत्या सुपेशसा हिरण्यवर्त्तनी नरा।

सर॑स्वती ह॒विष्म॒तीन्द्र॒ कर्म॑सु नोऽवत॥७४॥

ता। नास॑त्या। सु॒पे॒श॒सेति॑ सु॒ऽपेश॑सा। हिर॑ण्यवर्त्तनी॒ इति॒ हिर॑ण्यऽवर्त्तनी। नरा॑। सर॑स्वती। ह॒विष्म॑ती। इन्द्र॑। कर्म॒स्विति॒ कर्म॑ऽसु। न॒:। अ॒व॒त॒॥७४॥

पदार्थ:-(**ता**) तौ (**नासत्या**) असत्याचरणरहितौ (**सुपेशसा**) सुरूपौ (**हिरण्यवर्त्तनी**) यौ हिरण्यं सुवर्णं वर्तयतस्तौ (**नरा**) सर्वगुणानां नेतारौ (**सरस्वती**) विज्ञानवती (**हविष्मती**) प्रशस्तानि हवींष्यादातुमर्हाणि विद्यन्ते यस्या: सा (**इन्द्र**) ऐश्वर्य्यवन् (**कर्मसु**) (**न:**) अस्मान् (**अवत**) ॥७४॥

अन्वय:-हे इन्द्र! विद्वंस्ता नासत्या सुपेशसा हिरण्यवर्त्तनी नराऽध्यापकोपदेशकौ हविष्मती सरस्वती स्त्री त्वं च कर्मसु नोऽवत॥७४॥

भावार्थ:-यथा विद्वांसोऽध्यापनोपदेशै: सर्वान् दुष्टकर्मभ्यो निवर्त्य श्रेष्ठेषु कर्मसु प्रवर्त्य रक्षन्ति, तथैवैते सर्वै रक्षणीया:॥७४॥

पदार्थ:-हे (**इन्द्र**) ऐश्वर्य वाले विद्वन्! (**ता**) वे (**नासत्या**) असत्य आचरण से रहित (**सुपेशसा**) अच्छे रूप युक्त (**हिरण्यवर्त्तनी**) सुवर्ण का वर्त्ताव करनेहारी (**नरा**) सर्वगुणप्रापक पढ़ाने और उपदेश करने वाली (**हविष्मती**) उत्तम ग्रहण करने योग्य पदार्थ जिसके विद्यमान वह (**सरस्वती**) विदुषी स्त्री और आप (**कर्मसु**) कर्मों में (**न:**) हमारी (**अवत**) रक्षा करो॥७४॥

भावार्थ:-जैसे विद्वान् पुरुष पढ़ाने और उपदेश से सब को दुष्ट कर्मों से दूर करके अच्छे कर्मों में प्रवृत्त कर रक्षा करते हैं, वैसे ही ये सब के रक्षा करने योग्य हैं॥७४॥

ता भिषजेत्यस्य विदर्भिर्ऋषि:। अश्विसरस्वतीन्द्रा देवता:। अनुष्टुप् छन्द:। गान्धार: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ता भि॒षजा॑ सु॒कर्म॑णा॒ सा सु॒दुघा॒ सर॑स्वती।

स वृ॑त्र॒हा श॒तक्र॑तु॒रिन्द्रा॑य दधुरि॒न्द्रि॒यम्॥७५॥

ता। भि॒षजा॑। सु॒कर्म॒णेति॑ सु॒ऽकर्म॑णा। सा। सु॒दु॒घेति॑ सु॒ऽदुघा॑। सर॑स्वती। स:। वृ॒त्र॒हेति॑ वृ॒त्र॒ऽहा। श॒तक्र॑तु:। इन्द्रा॑य। द॒धु॒:। इ॒न्द्रि॒यम्॥७५॥

पदार्थ:-(**ता**) तौ (**भिषजा**) शरीरात्मरोगनिवारकौ (**सुकर्मणा**) सुष्ठु धर्म्यया क्रियया (**सा**) (**सुदुघा**) कामान् या सुष्ठु दोग्धि प्रपूर्त्ति सा (**सरस्वती**) पूर्णविद्यायुक्ता (**स:**) (**वृत्रहा**) यो वृत्रं मेघं हन्ति स सूर्य: (**शतक्रतु:**) अतुलप्रज्ञ: (**इन्द्राय**) ऐश्वर्याय (**दधु:**) दध्यासु: (**इन्द्रियम्**) धनम्॥७५॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यथा ता भिषजा सुकर्मणा सा सुदुघा सरस्वती स वृत्रहेव शतक्रतुश्चेन्द्रायेन्द्रियं दधुस्तथा यूयमप्याचरत॥७५॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। अस्मिञ्जगति यथा विद्वांसः श्रेष्ठाचारिवत् प्रयत्य विद्याधने समुन्नयन्ति, तथा सर्वे मनुष्याः कुर्य्युः॥७५॥

पदार्थः-हे मनुष्य लोगो! जैसे **(ता)** वे **(भिषजा)** शरीर और आत्मा के रोगों के निवारण करनेहारे **(सुकर्मणा)** अच्छी धर्मयुक्त क्रिया से युक्त दो वैद्य **(सा)** वह **(सुदुघा)** अच्छे प्रकार इच्छा को पूरण करनेहारी **(सरस्वती)** पूर्ण विद्या से युक्त स्त्री और **(सः)** वह **(वृत्रहा)** जो मेघ का नाश करता है, उस सूर्य के समान **(शतक्रतुः)** अत्यन्त बुद्धिमान् **(इन्द्राय)** ऐश्वर्य्य के लिये **(इन्द्रियम्)** धन को **(दधुः)** धारण करें, वैसे तुम आचरण करो॥७५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जगत् में जैसे विद्वान् लोग उत्तम आचरण वाले पुरुष के समान प्रयत्न करके विद्या और धन को बढ़ाते हैं, वैसे सब मनुष्य करें॥७५॥

युवमित्यस्य विदर्भिर्ऋषिः। अश्विसरस्वतीन्द्रा देवता। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनः प्रकारान्तरेण विद्वद्विषयमाह॥

फिर प्रकारान्तर से विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

युवꣳ सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा।

विपिपानाः सरस्वतीन्द्रं कर्मस्वावत॥७६॥

युवम्। सुरामम्। अश्विना। नमुचौ। आसुरे। सचा। विपिपाना इति विऽपिपानाः। सरस्वति। इन्द्रम्। कर्मस्विति कर्मऽसु। आवत॥७६॥

पदार्थः-**(युवम्)** युवाम् **(सुरामम्)** सुष्ठु रम्यम् **(अश्विना)** रक्षादिकर्मव्यापिनौ **(नमुचौ)** प्रवाहेण नित्यस्वरूपे **(आसुरे)** असुरो मेघ एव तस्मिन् **(सचा)** समवेताः **(विपिपानाः)** विविधरक्षादिकर्त्तारः। अत्र व्यत्ययेन लुग्विषये श्लुरात्मनेपदं च बहुलं छन्दसीतीत्वम् **(सरस्वति)** या प्रशस्तविज्ञानयुक्ता प्रजा तत्सम्बुद्धौ **(इन्द्रम्)** परमैश्वर्यम् **(कर्मसु)** **(आवत)** पालयत॥७६॥

अन्वयः-हे अश्विना! सचा युवं हे सरस्वती त्वं च यथा नमुचावासुरे कर्मसु सुराममिन्द्रमावत तथा विपिपाना अप्याचरत॥७६॥

भावार्थः-ये पुरुषार्थेन महदैश्वर्यं प्राप्य धनं सुरक्ष्याऽनन्दं भुञ्जते, ते सदैव वर्द्धन्ते॥७६॥

पदार्थः-हे **(अश्विना)** पालन आदि कर्म करनेहारे अध्यापक और उपदेशक! **(सचा)** मिले हुए **(युवम्)** तुम दोनों और हे **(सरस्वति)** अतिश्रेष्ठ विज्ञान वाली प्रजा तू जैसे **(नमुचौ)** प्रवाह से नित्यरूप **(आसुरे)** मेघ में और **(कर्मसु)** कर्मों में **(सुरामम्)** अतिसुन्दर **(इन्द्रम्)** परमैश्वर्य का **(आवत)** पालन करते हो, वैसे **(विपिपानाः)** नाना प्रकार से रक्षा करनेहारे होते हुए आचरण करो॥७६॥

भावार्थ:-जो लोग पुरुषार्थ से बड़े ऐश्वर्य को प्राप्त होकर धन की रक्षा करके आनन्द को भोगते हैं, वे सदा ही बढ़ते हैं॥७६॥

पुत्रमित्यस्य विदर्भिर्ऋषि:। अश्विसरस्वतीन्द्रा देवता:। भुरिक्पङ्क्तिश्छन्द:। पञ्चम: स्वर:॥

पुन: प्रकारान्तरेण विद्वद्विषयमाह॥

फिर प्रकारान्तर से विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

पु॒त्रमि॑व पि॒तरा॑व॒श्विनो॒भेन्द्रा॒वथु॒: काव्यै॑र्द॒ꣳसना॑भि:।

यत्सु॒राम॒ं व्यपि॑ब॒: शची॑भि॒: सर॑स्वती त्वा मघवन्नभिष्णक्॥७७॥

पु॒त्रमि॒वेति॑ पु॒त्रम्ऽइ॑व। पि॒तरौ॑। अ॒श्विना॑। उ॒भा। इन्द्र॑। आ॒वथु॑:। काव्यै॑:। द॒ꣳसना॑भि:। यत्। सु॒राम॑म्। वि। अपि॑ब:। शची॑भि:। सर॑स्वती। त्वा॒। म॒घ॒व॒न्निति॑ मघऽवन्। अ॒भि॒ष्ण॒क्॥७७॥

पदार्थ:-**(पुत्रमिव)** **(पितरौ)** **(अश्विना)** अध्यापकोपदेशकौ **(उभा)** **(इन्द्र)** विद्यैश्वर्ययुक्त विद्वन् **(आवथु:)** रक्षताम्। पुरुषव्यत्यय: **(काव्यै:)** कविभिर्निर्मितै: **(दंसनाभि:)** कर्मभि: **(यत्)** **(सुरामम्)** सुष्ठु रमन्ते यस्मिन् तत् **(वि)** **(अपिब:)** पिबे: **(शचीभि:)** प्रज्ञाभि: **(सरस्वती)** सुशिक्षिता स्त्री **(त्वा)** त्वाम् **(मघवन्)** पूजितधनयुक्त **(अभिष्णक्)** उपसेवेत। अत्र भिष्णज् उपसेवायामित्यस्य कण्ड्वादेर्लङि यको व्यत्ययेन लुक्॥७७॥

अन्वय:-हे मघवन्निन्द्र! त्वं शचीभिर्यत् सुरामं व्यपिबस्तत् सरस्वती त्वाभिष्णगुभाश्विना काव्यैर्दंसनाभि: पितरौ पुत्रमिव त्वामावथु:॥७७॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यथा मातापितरौ स्वसन्तानान् रक्षित्वा नित्यमुन्नयेताम्, तथाऽध्यापकोपदेशका: शिष्यान् सुरक्ष्य विद्यया वर्द्धयेयु:॥७७॥

पदार्थ:-हे **(मघवन्)** उत्तमधन **(इन्द्र)** विद्या और ऐश्वर्य्ययुक्त विद्वन्! तू **(शचीभि:)** बुद्धियों के साथ **(यत्)** जिससे **(सुरामम्)** अति रमणीय महौषधि के रस को **(व्यपिब:)** पीता है, इससे **(सरस्वती)** उत्तम शिक्षावती स्त्री **(त्वा)** तुझ को **(अभिष्णक्)** समीप सेवन करे, **(उभा)** दोनों **(अश्विना)** अध्यापक और उपदेशक **(काव्यै:)** कवियों के किये हुए **(दंसनाभि:)** कर्मों से जैसे **(पितरौ)** माता-पिता **(पुत्रमिव)** पुत्र का पालन करते हैं, वैसे तेरी **(आवथु:)** रक्षा करें॥७७॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे माता-पिता अपने सन्तानों की रक्षा करके सदा बढ़ावें, वैसे अध्यापक और उपदेशक शिष्य की रक्षा करके विद्या से बढ़ावें॥७७॥

यस्मिन्नित्यस्य विदर्भिर्ऋषि:। अग्निर्देवता। जगती छन्द:। निषाद: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यस्मि॒न्नश्वा॑सऽऋष॒भास॑ऽउ॒क्षणो॑ व॒शा मे॒षाऽअ॑वसृ॒ष्टास॒ऽआहु॑ताः।
की॒ला॒ल॒पे सोम॑पृष्ठाय वे॒धसे॑ हृ॒दा म॒तिं ज॑नय॒ चारु॑म॒ग्नये॑॥७८॥

यस्मि॑न्। अश्वा॑सः। ऋ॒ष॒भास॑ः। उ॒क्षण॑ः। व॒शाः। मे॒षाः। अ॒व॒सृ॒ष्टास॒ इत्य॑वऽसृ॒ष्टास॑ः। आहु॑ता॒ इत्याऽहु॑ताः। की॒ला॒ल॒प इति॑ कीलाल॒ऽपे। सोम॑पृष्ठा॒येति॒ सोम॑ऽपृष्ठाय। वे॒धसे॑। हृ॒दा। म॒तिम्। ज॒न॒य॒। चारु॑म्। अ॒ग्नये॑॥७८॥

पदार्थः-(**यस्मिन्**) व्यवहारे (**अश्वासः**) वाजिनः (**ऋषभासः**) वृषभाः (**उक्षणः**) सेक्तारः (**वशाः**) वन्ध्या गावः (**मेषाः**) अवयः (**अवसृष्टासः**) सुशिक्षिताः (**आहुताः**) समन्ताद् गृहीताः (**कीलालपे**) यः कीलालमन्नरसं पिबति तस्मै (**सोमपृष्ठाय**) सोमः पृष्ठो येन तस्मै (**वेधसे**) मेधाविने (**हृदा**) अन्तःकरणेन (**मतिम्**) बुद्धिम् (**जनय**) (**चारुम्**) श्रेष्ठाम् (**अग्नये**) अग्निवत् प्रकाशमानाय जनाय॥७८॥

अन्वयः-हे विद्वन्! अश्वास ऋषभास उक्षणो वशा मेषा अवसृष्टास आहुतास्सन्तो यस्मिन् कार्यकरा स्युस्तस्मिँस्त्वं हृदा सोमपृष्ठाय कीलालपे वेधसेऽग्नये चारु मतिं जनय॥७८॥

भावार्थः-पशवोऽपि सुशिक्षितास्सन्त उत्तमानि कार्य्याणि कुर्वन्ति, किं पुनर्विद्याशिक्षायुक्ता जनाः सर्वाण्युत्तमानि कार्याणि साद्धुं न शक्नुवन्ति?॥७८॥

पदार्थः-हे विद्वन् ! (**अश्वासः**) घोड़े और (**ऋषभासः**) उत्तम बैल तथा (**उक्षणः**) अतिबली वीर्य के सेचन करनेहारे बैल (**वशाः**) वन्ध्या गायें और (**मेषाः**) मेढ़ा (**अवसृष्टासः**) अच्छे प्रकार शिक्षा पाये और (**आहुताः**) सब ओर से ग्रहण किये हुए (**यस्मिन्**) जिस व्यवहार में काम करनेहारे हों। उसमें तू (**हृदा**) अन्तःकरण से (**सोमपृष्ठाय**) सोमविद्या को पूछने और (**कीलालपे**) उत्तम अन्न के रस को पीनेहारे (**वेधसे**) बुद्धिमान् (**अग्नये**) अग्नि के समान प्रकाशमान जन के लिये (**चारुम्**) अति उत्तम (**मतिम्**) बुद्धि को (**जनय**) प्रकट कर॥७८॥

भावार्थः-पशु भी सुशिक्षा पाये हुए उत्तम कार्य सिद्ध करते हैं, क्या फिर विद्या की शिक्षा से युक्त मनुष्य लोग सब उत्तम कार्य सिद्ध नहीं कर सकते?॥७८॥

अहावीत्यस्य विदर्भिर्ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अहा॑व्यग्ने ह॒विरा॒स्ये॒ ते स्रु॒चीव घृ॒तं च॒म्वी॒व॒ सोम॑ः।
वा॒ज॒सनि॑ꣳ र॒यिम॒स्मे सु॒वीर॑ं प्रश॒स्तं धे॑हि य॒शस॑ं बृ॒हन्त॑म्॥७९॥

अहा॑वि। अ॒ग्ने॒। ह॒विः। आ॒स्ये॒। ते॒। स्रु॒चीवेति॑ स्रु॒चिऽइ॑व। घृ॒तम्। च॒म्वी॒वेति॑ च॒म्वी॒ऽइव। सोम॑ः। वा॒ज॒स॒नि॒मिति॑ वाज॒ऽसनि॑म्। र॒यिम्। अ॒स्मे इत्य॒स्मे। सु॒वीर॒मिति॑ सु॒ऽवीर॑म्। प्र॒श॒स्तमिति॑ प्रश॒स्तम्। धे॒हि॒। य॒शस॑म्। बृ॒हन्त॑म्॥७९॥

पदार्थः-(**अहावि**) हूयते (**अग्ने**) विद्वन् (**हविः**) होतुमर्हम् (**आस्ये**) मुखे (**ते**) तव (**स्रुचीव**) यथा स्रुङ्मुखे (**घृतम्**) आज्यम् (**चम्वीव**) यथा चम्वौ यज्ञपात्रे (**सोमः**) ऐश्वर्यसम्पन्नः (**वाजसनिम्**) वाजस्य सनिर्विभागो यस्य तस्मिन् (**रयिम्**) राज्यश्रियम् (**अस्मे**) अस्मासु (**सुवीरम्**) शोभना वीरा यस्मात् तम् (**प्रशस्तम्**) उत्कृष्टम् (**धेहि**) (**यशसम्**) कीर्तिकरम् (**बृहन्तम्**) महान्तम्॥७९॥

अन्वयः-हे अग्ने विद्वन्! येन त्वया सोमो हविस्त आस्ये घृतं स्रुचीव चम्वीव हविरहावि, स त्वमस्मे प्रशस्तं सुवीरं वाजसनिं यशसं बृहन्तं रयिं धेहि॥७९॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। गृहस्थैस्तेषामेव भोजनादिना सत्कारः कर्त्तव्यो येऽध्यापनोदेशसुकर्मानुष्ठानै- र्जगति बलवीर्यकीर्त्तिधनविज्ञानानि वर्द्धयेयुः॥७९॥

पदार्थः-हे (**अग्ने**) उत्तम विद्यायुक्त पुरुष! जिस तूने (**सोमः**) ऐश्वर्ययुक्त (**हविः**) होम करने योग्य वस्तु (**ते**) तेरे (**आस्ये**) मुख में (**घृतम्**) (**स्रुचीव**) जैसे घृत स्रुच् के मुख में और (**चम्वीव**) जैसे यज्ञ के पात्र में होम के योग्य वस्तु वैसे (**अहावि**) होमा है, वह तू (**अस्मे**) हम लोगों में (**प्रशस्तम्**) बहुत उत्तम (**सुवीरम्**) अच्छे वीर पुरुषों के उपयोगी और (**वाजसनिम्**) अन्न, विज्ञान आदि गुणों का विभाग (**यशसम्**) कीर्त्ति करनेहारी (**बृहन्तम्**) बड़ी (**रयिम्**) राज्यलक्ष्मी को (**धेहि**) धारण कर॥७९॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। गृहस्थ पुरुषों को चाहिये कि उन्हीं का भोजन आदि से सत्कार करें, जो लोग पढ़ाना, उपदेश और अच्छे कर्मों के अनुष्ठान से जगत् में बल, पराक्रम, यश, धन और विज्ञान को बढ़ावें॥७९॥

अश्विनेत्यस्य विदर्भिर्ऋषिः। अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अश्विना तेजसा चक्षुः प्राणेन सरस्वती वीर्यम्।
वाचेन्द्रो बलेनेन्द्राय दधुरिन्द्रियम्॥८०॥

अश्विना। तेजसा। चक्षुः। प्राणेन। सरस्वती। वीर्यम्। वाचा। इन्द्रः। बलेन। इन्द्राय। दधुः। इन्द्रियम्॥८०॥

पदार्थः-(**अश्विना**) अध्यापकोदेशकौ (**तेजसा**) प्रकाशेन (**चक्षुः**) प्रत्यक्षं चक्षुः (**प्राणेन**) जीवनेन (**सरस्वती**) विद्यावती (**वीर्यम्**) पराक्रमम् (**वाचा**) वाण्या (**इन्द्रः**) सभेशः (**बलेन**) (**इन्द्राय**) जीवाय (**दधुः**) धरेयुः (**इन्द्रियम्**) इन्द्रस्य जीवस्य लिङ्गम्॥८०॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा सरस्वती अश्विनेन्द्रश्चेन्द्राय प्राणेन वीर्यं तेजसा चक्षुर्वाचा बलेनेन्द्रियं दधुस्तथा धरन्तु॥८०॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्या यथा यथा विद्वत्संगेन विद्यां वर्द्धयेयुस्तथा तथा विज्ञानरुचयः स्युः॥८०॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे **(सरस्वती)** विद्यावती स्त्री **(अश्विना)** अध्यापक और उपदेशक और **(इन्द्रः)** सभा का अधिष्ठाता **(इन्द्राय)** जीव के लिये **(प्राणेन)** जीवन के साथ **(वीर्यम्)** पराक्रम और **(तेजसा)** प्रकाश से **(चक्षुः)** प्रत्यक्ष नेत्र **(वाचा)** वाणी और **(बलेन)** बल से **(इन्द्रियम्)** जीव के चिह्न को **(दधुः)** धारण करें, वैसे तुम भी धारण करो॥८०॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्य लोग जैसे-जैसे विद्वानों के सङ्ग से विद्या को बढ़ावें, वैसे-वैसे विज्ञान में रुचि वाले होवें॥८०॥

गोमदू षु णेत्यस्य गृत्समद ऋषिः। अश्विनौ देवते। आर्च्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

अथ विद्वद्विषये पश्वादिभिः पालनाविषयमाह॥

अब विद्वानों के विषय में पशु आदिकों से पालना विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

गोम॑दू षु णा॑सत्याश्वा॑वद्यातमश्विना। वर्त्ती रु॑द्रा नृपाय्य॑म्॥८१॥

गोम॒दिति॒ गोऽम॑त्। ऊँऽइत्यूँ॑। सु। ना॒स॒त्या॒। अश्वा॑वत्। अश्व॑व॒दिति॒ अश्व॑ऽवत्। या॒त॒म्। अ॒श्वि॒ना॒। व॒र्त्तिः। रु॒द्रा॒। नृ॒पाय्य॒मिति॑ नृ॒ऽपाय्य॑म्॥८१॥

पदार्थः-**(गोमत्)** गावो विद्यन्ते यस्मिंस्तत् (उ) वितर्के **(सु)** **(नासत्या)** सत्यव्यवहारयुक्तौ **(अश्वावत्)** प्रशस्ततुरङ्गयुक्तम्। अत्र **मन्त्रे सोमाश्वेन्द्रिय०** [अष्टा०६.३.१३१] इति दीर्घः **(यातम्)** प्राप्नुतम् **(अश्विना)** विद्यावृद्धौ **(वर्त्तिः)** वर्त्तमानं मार्गम् **(रुद्रा)** दुष्टानां रोदयितारौ **(नृपाय्यम्)** नृणां पाय्यं मानम्॥८१॥

अन्वयः-हे नासत्या रुद्राश्विना यथा युवां गोमद्वर्त्तिरु अश्वावन्नृपाय्यं सुयातम्, तथा वयमपि प्राप्नुयाम॥८१॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। गोऽश्वहस्तिप्रभृतिभिः पालितैः पशुभिः स्वकीयमन्यदीयं च पालनं मनुष्यैः कार्य्यम्॥८१॥

पदार्थः-हे **(नासत्या)** सत्य व्यवहार से युक्त **(रुद्रा)** दुष्टों को रोदन करानेहारे **(अश्विना)** विद्या से बढ़े हुए लोगो तुम जैसे **(गोमत्)** गौ जिसमें विद्यमान उस **(वर्त्तिः)** वर्त्तमान मार्ग (उ) और **(अश्वावत्)** उत्तम घोड़ों से युक्त **(नृपाय्यम्)** मनुष्यों के मान को **(सुयातम्)** अच्छे प्रकार प्राप्त होओ, वैसे हम लोग भी प्राप्त होवें॥८१॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। गाय, घोड़ा, हाथी आदि पालन किये पशुओं से अपनी और दूसरे की मनुष्यों को पालना करनी चाहिये॥८१॥

न यदित्यस्य गृत्समद ऋषि:। अश्विनौ देवते। विराड्गायत्री छन्द:। षड्ज: स्वर:॥

अथ राजधर्मविषयमाह॥

अब राजधर्म विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

न यत्परो नान्तरऽआदुधर्षद् वृषण्वसू। दु:शꣳसो मर्त्यो रिपु:॥८२॥

न। यत्। पर:। न। अन्तर:। आदुधर्षदित्याऽदुधर्षत्। वृषण्वऽसू इति वृषण्ऽवसू। दु:शꣳस इति दु:ऽशꣳस:। मर्त्य:। रिपु:॥८२॥

पदार्थ:-(न) (यत्) यस्मात् **(पर:) (न) (अन्तर:)** मध्यस्थ: **(आदधर्षत्)** आदधर्षीत् समन्ताद् धृष्णुयात् **(वृषण्वसू)** यौ वृष्णौ वासयतस्तौ **(दु:शंस:)** दु:खेन शासितुं योग्य: **(मर्त्य:)** मनुष्य: **(रिपु:)** शत्रु:॥८२॥

अन्वय:-हे वृषण्वसू सभासेनेशौ! युवां यत् यस्माद् दु:शंस: परो मर्त्यो रिपुर्न स्यात्, नान्तरश्च योऽस्मानादधर्षत्, तं प्रयत्नतो वशं नयतम्॥८२॥

भावार्थ:-राजपुरुषैर्य: प्रबलो दुष्टतम: शत्रुर्भवेत् स प्रयत्नेन विजेतव्य:॥८२॥

पदार्थ:-हे **(वृषण्वसू)** श्रेष्ठों को वास करानेहारे सभा और सेना के पति! तुम **(यत्)** जिससे **(दु:शंस:)** दु:ख से स्तुति करने योग्य **(पर:)** अन्य **(मर्त्य:)** मनुष्य **(रिपु:)** शत्रु **(न)** न हो और **(न)** न **(अन्तर:)** मध्यस्थ हो कि जो हम को **(आदधर्षत्)** सब ओर से धर्षण करे, उसको अच्छे यत्न से वश में करो॥८२॥

भावार्थ:-राजपुरुषों को चाहिये कि जो अति बलवान्, अत्यन्त दुष्ट शत्रु होवे, उसको बड़े यत्न से जीतें॥८२॥

ता न इत्यस्य गृत्समद ऋषि:। अश्विनौ देवते। निचृद् गायत्री छन्द:। षड्ज: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ता नऽआ वोढमश्विना रयिं पिशङ्गसन्दृशम्। धिष्ण्या वरिवोविदम्॥८३॥

ता। न:। आ। वोढम्। अश्विना। रयिम्। पिशङ्गसन्दृशमिति पिशङ्गऽसंदृशम्। धिष्ण्या। वरिवोविदमिति वरिव:ऽविदम्॥८३॥

पदार्थ:-(ता) तौ **(न:)** अस्मान् **(आ) (वोढम्)** वहतम् **(अश्विना)** सभासेनेशौ **(रयिम्)** धनम् **(पिशङ्गसंदृशम्)** य: पिशङ्गवत् सुवर्णवत् सम्यग् दृश्यते स: **(धिष्ण्या)** धिषणया धिया **(वरिवोविदम्)** येन वरिव: परिचरणं विन्दन्ति तम्॥८३॥

अन्वय:-हेऽश्विना धिष्ण्या ता युवां नो वारिवोविदं पिशङ्गसंदृशं रयिमावोढम्॥८३॥

भावार्थः-सभासेनेशै राज्यसुखाय सर्वमैश्वर्य्यं सम्पादनीयम्, येन सत्यधर्माचरणं वर्द्धेत॥८३॥

पदार्थः-हे **(अश्विना)** सभा और सेना के पालनेहारो! **(धिष्ण्या)** जो बुद्धि के साथ वर्त्तमान **(ता)** वे तुम **(नः)** हम को **(वरिवोविदम्)** जिससे सेवन को प्राप्त हों और **(पिशङ्गसंदृशम्)** जो सुवर्ण के समान देखने में आता है, उस **(रयिम्)** धन को **(आ, वोढम्)** सब ओर से प्राप्त करो॥८३॥

भावार्थः-सभापति और सेनापतियों को चाहिये कि राज्य के सुख के लिये सब ऐश्वर्य सिद्ध करें, जिससे सत्यधर्म का आचरण बढ़े॥८३॥

पावका न इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। सरस्वती देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनरध्यापकोपदेशकविषयमाह॥

फिर अध्यापक और उपदेशक विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

पा॒व॒का न॒ः सर॑स्वती॒ वाजे॑भिर्वा॒जिनी॑वती। य॒ज्ञं व॑ष्टु धि॒याव॑सुः॥८४॥

पा॒व॒का। न॒ः। सर॑स्वती। वाजे॑भिः। वा॒जिनी॑व॒तीति॑ वा॒जिनी॑ऽवती। य॒ज्ञम्। व॒ष्टु। धि॒याव॑सु॒रिति॑ धि॒याऽव॑सुः॥८४॥

पदार्थः-**(पावका)** पवित्रकारिका **(नः)** अस्माकम् **(सरस्वती)** सुसंस्कृता वाक् **(वाजेभिः)** विज्ञानादिभिर्गुणैः **(वाजिनीवती)** प्रशस्तविद्यायुक्ता **(यज्ञम्)** **(वष्टु)** **(धियावसुः)** धिया वसुर्धनं यस्याः। तृतीयाया अलुक्॥८४॥

अन्वयः-हे अध्यापकोपदेशकौ! यथा वाजेभिर्वाजिनीवती पावका धियावसुः सरस्वती नो यज्ञं वष्टु तथा युवामस्मान् शिक्षेताम्॥८४॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैर्धार्मिकाणामध्यापकोपदेशकानां सकाशात् विद्यासुशिक्षे संगृह्य विज्ञानवृद्धिर्नित्यं कार्या॥८४॥

पदार्थः-हे पढ़ाने वाले और उपदेशक लोगो! जैस **(वाजेभिः)** विज्ञान आदि गुणों से **(वाजिनीवती)** अच्छी उत्तम विद्या से युक्त **(पावका)** पवित्र करनेहारी **(धियावसुः)** बुद्धि के साथ जिससे धन हो वह **(सरस्वती)** अच्छे संस्कार वाली वाणी **(नः)** हमारे **(यज्ञम्)** यज्ञ को **(वष्टु)** शोभित करे, वैसे तुम लोग हम लोगों को शिक्षा करो॥८४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि धर्मात्मा अध्यापक और उपदेशकों से विद्या और सुशिक्षा अच्छे प्रकार ग्रहण करके विज्ञान की वृद्धि सदा किया करें॥८४॥

चोदयित्रीत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। सरस्वती देवता। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अथ स्त्रीशिक्षाविषयमाह॥

अब स्त्रियों की शिक्षा के विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम्। यज्ञं दधे सरस्वती॥८५॥

चोदयित्री। सूनृतानाम्। चेतन्ती। सुमतीनामिति सुऽमतीनाम्। यज्ञम्। दधे। सरस्वती॥८५॥

पदार्थः-(**चोदयित्री**) प्रेरयित्री (**सूनृतानाम्**) सुशिक्षितानां वाणीनाम् (**चेतन्ती**) संज्ञापयन्ती (**सुमतीनाम्**) शोभनानां बुद्धीनाम् (**यज्ञम्**) (**दधे**) धरामि (**सरस्वती**) प्रशस्तविज्ञानयुक्ता॥८५॥

अन्वयः-हे स्त्रियो! यथा सूनृतानां चोदयित्री सुमतीनां चेतन्ती सरस्वती सत्यहं यज्ञं दधे, तथायं युष्माभिरप्यनुष्ठेयः॥८५॥

भावार्थः-या स्त्रीणां मध्ये विदुषी स्त्री स्यात्, सा सर्वाः स्त्रियः सदा सुशिक्षेत, यतः स्त्रीणां मध्ये विद्यावृद्धिस्स्यात्॥८५॥

पदार्थः-हे स्त्री लोगो! जैसे (**सूनृतानाम्**) सुशिक्षा पाई हुई वाणियों को (**चोदयित्री**) प्रेरणा करनेहारी (**सुमतीनाम्**) शुभ बुद्धियों को (**चेतन्ती**) अच्छे प्रकार ज्ञापन करती (**सरस्वती**) उत्तम विज्ञान से युक्त हुई मैं (**यज्ञम्**) यज्ञ को (**दधे**) धारण करती हूं, वैसे यह यज्ञ तुम को भी करना चाहिये॥८५॥

भावार्थः-जो स्त्रियों के बीच में विदुषी स्त्री हो, वह सब स्त्रियों को सदा सुशिक्षा करे, जिससे स्त्रियों में विद्या की वृद्धि हो॥८५॥

महो अर्ण इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। सरस्वती देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

महोऽअर्णः सरस्वती प्र चेतयति केतुना। धियो विश्वा वि राजति॥८६॥

महः। अर्णः। सरस्वती। प्र। चेतयति। केतुना। धियः। विश्वाः। वि। राजति॥८६॥

पदार्थः-(**महः**) महत् (**अर्णः**) अन्तरिक्षस्थं शब्दसमुद्रम् (**सरस्वती**) वाणी (**प्र, चेतयति**) प्रज्ञपयति (**केतुना**) प्रज्ञानेन (**धियः**) बुद्धयः (**विश्वाः**) सर्वाः (**वि**) (**राजति**) प्रकाशयति॥८६॥

अन्वयः-हे स्त्रियो! यथा सरस्वती केतुना महो अर्णः प्रचेतयति, विश्वा धियो विराजति, तथा विद्यासु यूयं प्रवृत्ता भवत॥८६॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। कन्याभिर्ब्रह्मचर्येण विद्यासुशिक्षेपूर्णे संगृह्य बुद्धयो वर्द्धयितव्याः॥८६॥

पदार्थः-हे स्त्री लोगो ! जैसे (**सरस्वती**) वाणी (**केतुना**) उत्तम ज्ञान से (**महः**) बड़े (**अर्णः**) आकाश में स्थित शब्दरूप समुद्र को (**प्रचेतयति**) उत्तम प्रकार से जतलाती है और (**विश्वाः**) सब (**धियः**) बुद्धियों को (**वि, राजति**) नाना प्रकार से प्रकाशित करती है, वैसे विद्याओं में तुम प्रवृत्त होओ॥८६॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। कन्याओं को चाहिये कि ब्रह्मचर्य्य से विद्या और सुशिक्षा को समग्र ग्रहण करके अपनी बुद्धियों को बढ़ावें॥८६॥

इन्द्रायाहीत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। इन्द्रो देवता। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अथ सामान्योपदेशविषयमाह॥

अब सामान्य उपदेश विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

इन्द्रायाहि चित्रभानो सुताऽइमे त्वायवः। अण्वीभिस्तना पूतासः॥८७॥

इन्द्र। आ। याहि। चित्रभानो इति चित्रऽभानो। सुताः। इमे। त्वायव इति त्वाऽयवः। अण्वीभिः। तना। पूतासः॥८७॥

पदार्थः-(**इन्द्र**) सभेश (**आ**) (**याहि**) आगच्छ (**चित्रभानो**) चित्रा भानवो विद्याप्रकाशा यस्य तत्संबुद्धौ (**सुताः**) निष्पादिताः (**इमे**) (**त्वायवः**) ये त्वां युवन्ति मिलन्ति ते (**अण्वीभिः**) अङ्गुलीभिः (**तना**) विस्तृतगुणेन (**पूतासः**) पवित्राः॥८७॥

अन्वयः-हे चित्रभानो इन्द्र! त्वं य इमे अण्वीभिस्सुतास्तना पूतासस्त्वायवः पदार्थाः सन्ति, तानायाहि॥८७॥

भावार्थः-मनुष्याः सत्क्रियया पदार्थान् संशोध्य भुञ्जताम्॥८७॥

पदार्थः-हे (**चित्रभानो**) चित्र-विचित्र विद्याप्रकाशों वाले (**इन्द्र**) सभापति! आप जो (**इमे**) ये (**अण्वीभिः**) अङ्गुलियों से (**सुताः**) सिद्ध किये (**तना**) विस्तारयुक्त गुण से (**पूतासः**) पवित्र (**त्वायवः**) जो तुमको मिलते हैं, उन पदार्थों को (**आ, याहि**) प्राप्त हूजिये॥८७॥

भावार्थः-मनुष्य लोग अच्छी क्रिया से पदार्थों को अच्छे प्रकार शुद्ध करके भोजनादि करें॥८७॥

इन्द्रायाहि धियेत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। इन्द्रो देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनर्विद्वद्विषयमाह॥

फिर विद्वद्विषय अगले मन्त्र में कहते हैं॥

इन्द्रायाहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः। उप ब्रह्माणि वाघतः॥८८॥

इन्द्र। आ। याहि। धिया। इषितः। विप्रजूत इति विप्रऽजूतः। सुतावतः। सुतवत इति सुतऽवतः। उप। ब्रह्माणि। वाघतः॥८८॥

पदार्थः-(**इन्द्र**) विद्यैश्वर्ययुक्त (**आ**) (**याहि**) (**धिया**) प्रज्ञया (**इषितः**) प्रेरितः (**विप्रजूतः**) विप्रैर्मेधाविभिर्जूतः शिक्षितः (**सुतावतः**) निष्पादितवतः (**उप**) (**ब्रह्माणि**) अन्नानि धनानि वा (**वाघतः**) यश्शिक्षया वाचा हन्ति जानाति सः॥८८॥

अन्वयः-हे इन्द्र! इषितो विप्रजूतो वाघतस्त्वं धिया सुतावतो ब्रह्माण्युपायाहि॥८८॥

भावार्थ:-विद्वांसो जिज्ञासून् जनान् संगत्यैतेषु विद्याकोशं स्थापयन्तु॥८८॥

पदार्थ:-हे **(इन्द्र)** विद्या और ऐश्वर्य से युक्त **(इषित:)** प्रेरित और **(विप्रजूत:)** बुद्धिमानों से शिक्षा पाके वेगयुक्त **(वाघत:)** शिक्षा पाई हुई वाणी से जाननेहारा तू **(धिया)** सम्यक् बुद्धि से **(सुतावत:)** सिद्ध किये **(ब्रह्माणि)** अन्न और धनों को **(उप, आ याहि)** सब प्रकार से समीप प्राप्त हो॥८८॥

भावार्थ:-विद्वान् लोग जिज्ञासा वाले पुरुषों से मिलके उन में विद्या के निधि को स्थापित करें॥८८॥

इन्द्रायाहि तूतुजान इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषि:। इन्द्रो देवता। गायत्री छन्द:। षड्ज: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

इन्द्रायाहि तूतुजानऽउप ब्रह्माणि हरिव:। सुते दधिष्व नश्चन:॥८९॥

इन्द्र। आ। याहि। तूतुजान:। उप। ब्रह्माणि। हरिव इति हरिऽव:। सुते। दधिष्व। न:। चन:॥८९॥

पदार्थ:-**(इन्द्र)** विद्यैश्वर्यवर्द्धक **(आ)** **(याहि)** **(तूतुजान:)** क्षिप्रकारी। **तूतुजान इति क्षिप्रकारिनामसु पठितम्॥** (निघं०२.१५) **(उप)** **(ब्रह्माणि)** धर्म्येण प्राप्तव्यानि **(हरिव:)** प्रशस्ता हरयोऽश्वा विद्यन्ते यस्य तत्सम्बुद्धौ **(सुते)** निष्पन्ने व्यवहारे **(दधिष्व)** धर **(न:)** अस्मान् **(चन:)** भोग्यमन्नम्॥८९॥

अन्वय:-हे हरिव इन्द्र! त्वमुपायाहि तूतुजानो न: सुते ब्रह्माणि चनश्च दधिष्व॥८९॥

भावार्थ:-विद्याधर्मवृद्धये केनाप्यालस्यं न कार्यम्॥८९॥

पदार्थ:-हे **(हरिव:)** अच्छे उत्तम घोड़ों वाले **(इन्द्र)** विद्या और ऐश्वर्य के बढ़ानेहारे विद्वन्! आप **(उपायाहि)** निकट आइये **(तूतुजान:)** शीघ्र कार्य्यकारी होके **(न:)** हमारे लिये **(सुते)** उत्पन्न हुए व्यवहार में **(ब्रह्माणि)** धर्मयुक्त कर्म से प्राप्त होने योग्य धन और **(चन:)** भोग के योग्य अन्न को **(दधिष्व)** धारण कीजिये॥८९॥

भावार्थ:-विद्या और धर्म बढ़ाने के लिए किसी को आलस्य न करना चाहिये॥८९॥

अश्विनेत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषि:। अश्विसरस्वतीन्द्रा देवता:। निचृदनुष्टुप् छन्द:। गान्धार: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अश्विना पिबतां मधु सरस्वत्या सजोषसा।
इन्द्र: सुत्रामा वृत्रहा जुषन्ताᳬं सोम्यं मधु॥९०॥

अश्विना। पिबताम्। मधु। सरस्वत्या। सजोषसेति सऽजोषसा। इन्द्र:। सुत्रामेति सुऽत्रामा। वृत्रहेति वृत्रऽहा। जुषन्ताम्। सोम्यम्। मधु॥९०॥

पदार्थ:-(**अश्विना**) अध्यापकोपदेशकौ (**पिबताम्**) (**मधु**) मधुरादिगुणयुक्तमन्नम् (**सरस्वत्या**) सुसंस्कृतया वाचा (**सजोषसा**) समानं जोषः सेवनं ययोस्तौ (**इन्द्रः**) ऐश्वर्यवान् (**सुत्रामा**) सुष्ठु रक्षकः (**वृत्रहा**) यो वृत्रं मेघं हन्ति स सूर्य्यस्तद्वद्वर्त्तमानः (**जुषन्ताम्**) सेवन्ताम् (**सोम्यम्**) सोमे सोमलताद्योषधिगणे भवम् (**मधु**) मधुरविज्ञानम्॥९०॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा सजोषसाऽश्विना सरस्वत्या मधु पिबताम्, यथा चेन्द्रः सुत्रामा वृत्रहा च सोम्यं मधु जुषन्तां तथा युष्माभिरप्यनुष्ठेयम्॥९०॥

भावार्थः-अध्यापकोपदेशकाः स्वात्मवत्सर्वेषां विद्यासुखं वर्द्धयितुमिच्छेयुर्यतः सर्वे सुखिनः स्युः॥९०॥

अत्र राजप्रजाधर्माङ्गाङ्गिगृहाश्रमव्यवहारब्रह्मक्षत्रसत्यव्रतदेवगुणप्रजारक्षकाऽभयपरस्परसंमतिस्त्रीगुण-धनादिवृद्ध्यादिवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वाध्यायोक्तार्थेन सह संगतिरस्तीति बोध्यम्॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! जैसे (**सजोषसा**) समान सेवन करनेहारे (**अश्विना**) अध्यापक और उपदेशक (**सरस्वत्या**) अच्छे प्रकार संस्कार पाई हुई वाणी से (**मधु**) मधुर आदि गुण युक्त विज्ञान को (**पिबताम्**) पान करें और जैसे (**इन्द्रः**) ऐश्वर्यवान् (**सुत्रामा**) अच्छे प्रकार रक्षा करनेहारा (**वृत्रहा**) सूर्य के समान वर्त्ताव वर्त्तने वाला (**सोम्यम्**) सोमलता आदि ओषधिगण में हुए (**मधु**) मधुरादि गुण युक्त अन्न का (**जुषन्ताम्**) सेवन करें, वैसे तुम लोगों को भी करना चाहिये॥९०॥

भावार्थ:-अध्यापक और उपदेशक अपने जैसे सब लोगों के विद्या और सुख बढ़ाने की इच्छा करें, जिससे सब सुखी हों॥९०॥

इस अध्याय में राज-प्रजा, धर्म्म के अङ्ग और अङ्गि, गृहाश्रम का व्यवहार, ब्राह्मण, क्षत्रिय, सत्यव्रत, देवों के गुण, प्रजा के पालक, अभय, परस्पर सम्मति, स्त्रियों के गुण, धन आदि पदार्थों की वृद्ध्यादि का वर्णन होने से इस अध्याय के अर्थ की इससे प्रथम अध्याय में कहे अर्थ के साथ सङ्गति है, ऐसा जानना चाहिये॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां परमविदुषां श्रीयुतविरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण परमहंसपरिव्राजकाचार्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मिते सुप्रमाणयुक्ते संस्कृतार्यभाषाभ्यां विभूषिते यजुर्वेदभाष्ये विंशतितमोऽध्यायः पूर्त्तिमगात्॥२०॥

समाप्ता चेयं पूर्वविंशतिः॥

॥ओ३म्॥

अथैकविंशतितमोऽध्याय आरभ्यते

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव। यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व॥ यजु० ३०.३॥

इममित्यस्य शुनःशेप ऋषिः। वरुणो देवता। निचृद् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अथ विद्वद्विषयमाह॥

अब इक्कीसवें अध्याय का आरम्भ है, इसके प्रथम मन्त्र में विद्वानों के विषय में कहा है॥

इ॒मं मे॑ वरुण श्रुधी हव॑म॒द्या च॑ मृडय। त्वाम॑व॒स्युरा च॑के॥ १॥

इ॒मम्। मे॒। व॒रु॒ण॒। श्रु॒धि। हव॑म्। अ॒द्य। च॒। मृ॒ड॒य॒। त्वाम्। अ॒व॒स्युः। आ। च॒के॒॥ १॥

पदार्थः-(**इमम्**) (**मे**) मम (**वरुण**) उत्तमविद्वन् (**श्रुधि**) शृणु। अत्र **संहितायाम्** [अ०६.३.११४] इति दीर्घः (**हवम्**) स्तवनम् (**अद्य**) अस्मिन्नहनि। अत्र **निपातस्य च** [अ०६.३.१३६] इति दीर्घः (**च**) (**मृडय**) (**त्वाम्**) (**अवस्युः**) आत्मनोऽव इच्छुः (**आ**) (**चके**) कामये। **आचक इति कान्तिकर्मा॥** (निघं०२।६)॥१॥

अन्वयः-हे वरुण! योऽवस्युरहमिमं त्वामाचके स त्वं मे हवं श्रुधि। अद्य मां मृडय च॥१॥

भावार्थः-सर्वैर्विद्याकामैरनूचानो विद्वान् कमनीयः स विद्यार्थिनां स्वाध्यायं श्रुत्वा सुपरीक्ष्य सर्वानानन्दयेत्॥१॥

पदार्थः-हे (**वरुण**) उत्तम विद्यावान् जन! जो (**अवस्युः**) अपनी रक्षा की इच्छा करनेहारा मैं (**इमम्**) इस (**त्वाम्**) तुझ को (**आ, चके**) चाहता हूँ वह तू (**मे**) मेरी (**हवम्**) स्तुति को (**श्रुधि**) सुन (**च**) और (**अद्य**) आज मुझ को (**मृडय**) सुखी कर॥१॥

भावार्थः-सब विद्या की इच्छा वाले पुरुषों को चाहिए कि अनुक्रम से उपदेश करने वाले बड़े विद्वान् की इच्छा करें, वह विद्यार्थियों के स्वाध्याय को सुन और उत्तम परीक्षा करके सब को आनन्दित करे॥१॥

तदित्यस्य शुनःशेप ऋषिः। वरुणो देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

तत्त्वा॑ यामि॒ ब्रह्म॑णा॒ वन्द॑मान॒स्तदाशा॑स्ते॒ यज॑मानो ह॒विर्भिः॑।
अहे॑डमानो वरुणे॒ह बो॒ध्युरु॑शꣳस॒ मा न॒ऽआयुः॒ प्र मो॑षीः॥ २॥

तत्। त्वा। यामि। ब्रह्मणा। वन्दमानः। तत्। आ। शास्ते। यजमानः। हविर्भिरिति हविःऽभिः। अहेडमानः। वरुण। इह। बोधि। उरुशꣳसेत्युरुऽशꣳस। मा। नः। आयुः। प्र। मोषीः॥२॥

पदार्थः-(**तत्**) तम् (**त्वा**) त्वाम् (**यामि**) प्राप्नोमि (**ब्रह्मणा**) वेदविज्ञानेन (**वन्दमानः**) स्तुवन् (**तत्**) (**आ**) (**शास्ते**) इच्छति (**यजमानः**) (**हविर्भिः**) होतुं दातुमर्हैः पदार्थैः (**अहेडमानः**) सत्क्रियमाणः (**वरुण**) अत्युत्तम (**इह**) अस्मिन् संसारे (**बोधि**) बोधय (**उरुशंस**) बहुभिः प्रशंसित (**मा**) (**नः**) अस्माकम् (**आयुः**) जीवनं विज्ञानं वा (**प्र**) (**मोषीः**) चोरयेः॥२॥

अन्वयः-हे वरुण विद्वज्जन! यथा यजमानो हविर्भिस्तदाशास्ते तथा ब्रह्मणा वन्दमानोऽहं तत्त्वा यामि। हे उरुशंस! मयाऽहेडमानस्त्वमिह न आयुर्मा प्रमोषीः शास्त्रं बोधि॥२॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यो यस्माद्विद्यामाप्नुयात् स तं पूर्वमभिवादयेत्। यो यस्याध्यापकः स्यात् स तस्मै विद्यादानाय कपटं न कुर्यात्, कदाचित् केनचिदाचार्य्यो नाऽवमन्तव्यः॥२॥

पदार्थः-हे (**वरुण**) अति उत्तम विद्वान् पुरुष! जैसे (**यजमानः**) यजमान (**हविर्भिः**) देने योग्य पदार्थों से (**तत्**) उस की (**आ, शास्ते**) इच्छा करता है वैसे (**ब्रह्मणा**) वेद के विज्ञान से (**वन्दमानः**) स्तुति करता हुआ मैं (**तत्**) उस (**त्वा**) तुझ को (**यासि**) प्राप्त होता है। हे (**उरुशंस**) बहुत लोगों से प्रशंसा किये हुए जन! मुझ से (**अहेडमानः**) सत्कार को प्राप्त होता हुआ तू (**इह**) इस संसार में (**नः**) हमारे (**आयुः**) जीवन वा विज्ञान को (**मा**) मत (**प्र, मोषीः**) चुरा लेवे और शास्त्र का (**बोधि**) बोध कराया कर॥२॥

भावार्थः-इस में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य जिससे विद्या को प्राप्त हो, वह उसको प्रथम नमस्कार करे। जो जिस का पढ़ाने वाला हो, वह उसको विद्या देने के लिए कपट न करे, कदापि किसी को आचार्य का अपमान न करना चाहिए॥२॥

त्वमित्यस्य वामदेव ऋषिः। अग्निवरुणौ देवते। स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

त्वं नोऽअग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेडोऽअव यासिसीष्ठाः।
यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषाꣳसि प्र मुमुग्ध्यस्मत्॥३॥

त्वम्। नः। अग्ने। वरुणस्य। विद्वान्। देवस्य। हेडः। अव। यासिसीष्ठाः। यजिष्ठः। वह्नितम इति वह्निऽतमः। शोशुचानः। विश्वा। द्वेषाꣳसि। प्र। मुमुग्धि। अस्मत्॥३॥

पदार्थः-(**त्वम्**) (**नः**) अस्माकम् (**अग्ने**) पावकवत्प्रकाशमान (**वरुणस्य**) श्रेष्ठस्य (**विद्वान्**) विद्यायुक्तः (**देवस्य**) विदुषः (**हेडः**) अनादरः (**अव**) निषेधे (**यासिसीष्ठाः**) यायाः प्राप्नुयाः (**यजिष्ठः**)

अतिशयेन यष्टा (**वह्नितमः**) अतिशयेन वोढा (**शोशुचानः**) शुद्धः शोधयन् सन् (**विश्वा**) सर्वाणि (**द्वेषांसि**) द्वेषादियुक्तानि कर्माणि (**प्र**) (**मुमुग्धि**) प्रमोचय (**अस्मत्**) अस्माकं सकाशात्॥३॥

अन्वयः-हे अग्ने यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विद्वांस्त्वं वरुणस्य देवस्य यो हेडस्तमव यासिसीष्ठा मा कुर्या। हे अग्ने! त्वं यो नोऽस्माकं हेडो भवेत्तं मा स्वीकुर्या॥ हे शिक्षक! त्वमस्मद्विश्वा द्वेषांसि प्रमुमुग्धि॥३॥

भावार्थः-कोऽपि मनुष्यो विदुषामनादरं कोऽपि विद्वान् विद्यार्थिनामसत्कारं च न कुर्यात्, सर्वे मिलित्वेर्ष्याक्रोधादिदोषांस्त्यक्त्वा सर्वेषां सखायो भवेयुः॥३॥

पदार्थः-हे (**अग्ने**) के तुल्य प्रकाशमान (**यजिष्ठः**) अतीत यजन करने (**वह्नितमः**) अत्यन्त प्राप्ति कराने और (**शोशुचानः**) शुद्ध करने हारे (**विद्वान्**) विद्यायुक्त जन! (**त्वम्**) तू (**वरुणस्य**) श्रेष्ठ (**देवस्य**) विद्वान् का जो (**हेडः**) अनादर उस को (**अव**) मत (**यासिसीष्ठाः**) करे। हे तेजस्वि! तू जो (**नः**) हमारा अनादर हो उस को अङ्गीकार मत कर। हे शिक्षा करने हारे! तू (**अस्मत्**) हम से (**विश्वा**) सब (**द्वेषांसि**) द्वेष आदि युक्त कर्मों को (**प्र, मुमुग्धि**) छुड़ा दे॥३॥

भावार्थः-कोई भी मनुष्य विद्वानों का अनादर और कोई भी विद्वान् विद्यार्थियों का असत्कार न करे, सब मिल के ईर्ष्या, क्रोध आदि दोषों को छोड़ के सब के मित्र होवें॥३॥

स त्वमित्यस्य वामदेव ऋषिः। अग्निवरुणौ देवते। स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

स त्वं नोऽअग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठोऽअस्याऽउषसो व्युष्टौ।

अव यक्ष्व नो वरुणꣳ रराणो वीहि मृडीकꣳ सुहवो नऽएधि॥४॥

सः। त्वम्। नः। अग्ने। अवमः। भव। ऊती। नेदिष्ठः। अस्याः। उषसः। व्युष्टाविति विऽउष्टौ। अव। यक्ष्व। नः। वरुणम्। रराणः। वीहि। मृडीकम्। सुहव इति सुऽहवः। नः। एधि॥४॥

पदार्थः-(**सः**) (**त्वम्**) (**नः**) अस्माकम् (**अग्ने**) (**अवमः**) रक्षकः (**भव**) (**ऊती**) ऊत्या (**नेदिष्ठः**) अतिशयेनान्तिकः (**अस्याः**) (**उषसः**) प्रत्यूषवेलायाः (**व्युष्टौ**) विविधे दाहे (**अव**) (**यक्ष्व**) संगमय। अत्र **बहुलं छन्दसी**ति विकरणाभावः (**नः**) अस्माकम् (**वरुणम्**) उत्तमम् (**रराणः**) रममाणः (**वीहि**) व्याप्नुहि (**मृडीकम्**) सुखप्रदम् (**सुहवः**) शोभनो हवो दानं यस्य सः (**नः**) अस्मान् (**एधि**) भव॥४॥

अन्वयः-हे अग्ने! यथाऽस्या उषसो व्युष्टौ वह्निर्नेदिष्ठो रक्षकश्च भवति तथा स त्वमूती नोऽवमो भव नो वरुणमवयक्ष्व रराणः सन् मृडीकं वीहि नः सुहव एधि॥४॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा प्रातःसमये सूर्यः सन्निहितः सन् सर्वान् सन्निहितान् मूर्त्तान् पदार्थान् व्याप्नोति तथाऽन्तेवासिनां सन्निधावध्यापको भूत्वैतानात्मनो विद्यया व्याप्नुयात्॥४॥

पदार्थः-हे **(अग्ने)** अग्नि के समान विद्वान्! जैसे **(अस्याः)** इस **(उषसः)** प्रभात समय के **(व्युष्टौ)** नाना प्रकार के दाह में अग्नि **(नेदिष्ठः)** अत्यन्त समीप और रक्षा करने हारा है, वैसे **(सः)** वह **(त्वम्)** तू **(ऊती)** प्रीति से **(नः)** हमारा **(अवमः)** रक्षा करने हारा **(भव)** हो **(नः)** हम को **(वरुणम्)** उत्तम गुण वा उत्तम विद्वान् वा उत्तम गुणीजन का **(अव, यक्ष्व)** मेल कराओ और **(रराणः)** रमण करते हुए तुम **(मृडीकम्)** सुख देने हारे को **(वीहि)** व्याप्त होओ **(नः)** हम को **(सुहवः)** शुभदान देनेहारे **(एधि)** हूजिये॥४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे प्रातः समय में सूर्य समीप स्थित हो के साथ सब समीप के मूर्त्त पदार्थों को व्याप्त होता है, वैसे शिष्यों के समीप अध्यापक हो के इनको अपनी विद्या से व्याप्त करे॥४॥

महीमित्यस्य वामदेव ऋषिः। आदित्या देवताः। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ पृथिव्या विषयमाह॥

अब पृथिवी के विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

म॒हीमू॒ षु मा॒तर॑ꣳ सुव्र॒ताना॑मृ॒तस्य॒ पत्नी॒मव॑से हुवेम।

तु॒वि॒क्ष॒त्राम॒जर॑न्तीमुरू॒चीꣳ सु॒शर्मा॑ण॒मदि॑तिꣳ सु॒प्रणी॑तिम्॥५॥

म॒हीम्। ऊँ॒ऽइत्यूँ॑। सु। मा॒तर॑म्। सु॒व्र॒ताना॑म्। ऋ॒तस्य॑। पत्नी॑म्। अव॑से। हु॒वे॒म॒। तु॒वि॒क्ष॒त्रामिति॑ तुवि॒ऽक्ष॒त्राम्। अ॒जर॑न्तीम्। उ॒रू॒चीम्। सु॒शर्मा॑ण॒मिति॑ सु॒ऽशर्मा॑णम्। अदि॑तिम्। सु॒प्रणी॑तिम्। सु॒प्रनी॑ति॒मिति॑ सु॒ऽप्रनी॑तिम्॥५॥

पदार्थः-**(महीम्)** भूमिम् (उ) उत्तमे **(सु)** शोभने **(मातरम्)** मातरमिव वर्त्तमानाम् **(सुव्रतानाम्)** शोभनानि व्रतानि सत्याचरणानि येषां तेषाम् **(ऋतस्य)** प्राप्तसत्यस्य **(पत्नीम्)** स्त्रीवद्वर्त्तमानाम् **(अवसे)** रक्षणाद्याय **(हुवेम)** आदद्याम **(तुविक्षत्राम्)** तुविर्बहु क्षत्रं धनं यस्यां ताम् **(अजरन्तीम्)** वयोहानिरहिताम् **(उरूचीम्)** या उरूणि बहून्यञ्चति प्राप्नोति ताम् **(सुशर्माणम्)** शोभनानि शर्माणि गृहाणि यस्यास्ताम् **(अदितिम्)** अखण्डिताम् **(सुप्रणीतिम्)** शोभनाः प्रकृष्टा नीतयो यस्यां ताम्॥५॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा वयं मातरमिव सुव्रतानामृतस्य पत्नीं तुविक्षत्रामजरन्तीमुरूचीं सुशर्माणं सुप्रणीतिमु महीमदितिमवसे सुहुवेम तथा यूयमपि गृह्णीत॥५॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा माताऽपत्यानि पतिव्रता पतिं च पालयति तथेयं भूमिः सर्वान् रक्षति॥५॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे हम लोग **(मातरम्)** माता के समान स्थित **(सुव्रतानाम्)** जिन के शुभ सत्याचरण हैं, उन को **(ऋतस्य)** प्राप्त हुए सत्य की **(पत्नीम्)** स्त्री के समान वर्त्तमान **(तुविक्षत्राम्)** बहुत धन वाली **(अजरन्तीम्)** जीर्णपन से रहित **(उरूचीम्)** बहुत पदार्थों को प्राप्त कराने हारी **(सुशर्माणम्)** अच्छे प्रकार के गृह से और **(सुप्रणीतिम्)** उत्तम नीतियों से युक्त **(उ)** उत्तम **(अदितिम्)** अखण्डित **(महीम्)** पृथिवी को **(अवसे)** रक्षा आदि के लिए **(सु, हुवेम)** ग्रहण करते हैं, वैसे तुम भी ग्रहण करो॥५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे माता सन्तानों और पतिव्रता स्त्री पति का पालन करती है, वैसे यह पृथिवी सब का पालन करती है॥५॥

सुत्रामाणमित्यस्य गयप्लात ऋषिः। अदितिर्देवता। भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ जलयानविषयमाह॥

अब जलयान विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसꣳ सुशर्माणमदितिꣳ सुप्रणीतिम्।
दैवीं नावꣳ स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये॥६॥

सुत्रामाणमिति सुऽत्रामाणम्। पृथिवीम्। द्याम्। अनेहसम्। सुशर्म्माणमिति सुऽशर्माणम्। अदितिम्। सुप्रणीतिम्। सुप्रनीतिमिति सुऽप्रनीतिम्। दैवीम्। नावम्। स्वरित्रामिति सुऽअरित्राम्। अनागसम्। अस्रवन्तीम्। आ। रुहेम। स्वस्तये॥६॥

पदार्थः-**(सुत्रामाणम्)** शोभनानि त्रामाणि रक्षणादीनि यस्यास्ताम् **(पृथिवीम्)** विस्तीर्णाम् **(द्याम्)** सुप्रकाशाम् **(अनेहसम्)** अहन्तव्याम्। **नञि हन एह च॥** उणा०४।२२४॥ **(सुशर्माणम्)** सुशोभितगृहाम् **(अदितिम्)** **(सुप्रणीतिम्)** बहुराजप्रजाऽखण्डितनीतियुक्ताम् **(दैवीम्)** देवानामाप्तानां विदुषामियं ताम् **(नावम्)** नोदयन्ति प्रेरयन्ति यया ताम् **(स्वरित्राम्)** शोभनान्यरित्राणि यस्यां ताम् **(अनागसम्)** अविद्यमानाऽपराधाम् **(अस्रवन्तीम्)** अच्छिद्राम् **(आ)** **(रुहेम)** अधितिष्ठेम। अत्र **संहितायाम्** [अ०६.३.११४] इति दीर्घः। **(स्वस्तये)** सुखाय॥६॥

अन्वयः-हे शिल्पिनः! यथा वयं स्वस्तये सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिं स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीं दैवीं नावमारुहेम तथा यूयमिमामारोहत॥६॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्या यस्यां बहूनि गृहाणि बहूनि साधनानि बहूनि रक्षणानि बहुविधः प्रकाशो बहवो विद्वांसश्च स्युस्तस्यामच्छिद्रायां महत्यां नावि स्थित्वा समुद्रादिजलाशयेष्ववारपारौ देशान्तरद्वीपान्तरौ च गत्वाऽऽगत्य भूगोलस्थान् देशान् द्वीपांश्च विज्ञाय श्रीमन्तो भवन्तु॥६॥

पदार्थः-हे शिल्पि जनो! जैसे हम **(स्वस्तये)** सुख के लिए **(सुत्रामाणम्)** अच्छे रक्षण आदि से युक्त **(पृथिवीम्)** विस्तार और **(द्याम्)** शुभ प्रकाश वाली **(अनेहसम्)** अहिंसनीय **(सुशर्माणम्)** जिस में सुशोभित घर विद्यमान उस **(अदितिम्)** अखण्डित **(सुप्रणीतिम्)** बहुत राजा और प्रजाजनों की पूर्ण नीति से युक्त **(स्वरित्राम्)** वा जिस में बल्ली पर बल्ली लगी हैं, उस **(अनागसम्)** अपराधरहित और **(अस्रवन्तीम्)** छिद्ररहित **(दैवीम्)** विद्वान् पुरुषों की **(नावम्)** प्रेरणा करने हारी नाव पर **(आ, रुहेम)** चढ़ते हैं, वैसे तुम लोग भी चढ़ो॥६॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जिस में बहुत घर, बहुत साधन, बहुत रक्षा करने हारे, अनेक प्रकार का प्रकाश और बहुत विद्वान् हों उस छिद्र रहित बड़ी नाव में स्थित होके समुद्र आदि जल के स्थानों में पारावार देशान्तर और द्वीपान्तर में जा आ के भूगोल में स्थित देश और द्वीपों को जान के लक्ष्मीवान् होवें॥६॥

सुनावमित्यस्य गयप्लात ऋषिः। स्वर्ग्या नौर्देवता। यवमध्या गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

सुनावमा रुहेयमस्रवन्तीमनागसम्। शतारित्राᳬं स्वस्तये॥७॥

सुनावमिति सुऽनावम्। आ। रुहेयम्। अस्रवन्तीम्। अनागसम्। शतारित्रामिति शतऽअरित्राम्। स्वस्तये॥७॥

पदार्थः-**(सुनावम्)** शोभनां सुनिर्मितां नावम् **(आ)** **(रुहेयम्)** **(अस्रवन्तीम्)** छिद्रादिदोषरहिताम् **(अनागसम्)** निर्माणदोषरहिताम् **(शतारित्राम्)** शतमरित्राणि यस्यास्ताम् **(स्वस्तये)** सुखाय॥७॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथाऽहं स्वस्तयेऽस्रवन्तीमनागसं शतारित्रां सुनावमारुहेयं तथास्यां यूयमप्यारोहत॥७॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्या महतीर्नावः सुपरीक्ष्य तासु स्थित्वा समुद्रादिपारावारौ गच्छेयुः। यत्र बहून्यरित्रादीनि स्युस्ता नावोऽतीवोत्तमाः स्युः॥७॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे मैं **(स्वस्तये)** सुख के लिए **(अस्रवन्तीम्)** छिद्रादि दोष वा **(अनागसम्)** बनावट के दोषों से रहित **(शतारित्राम्)** अनेकों लङ्गर वाली **(सुनावम्)** अच्छे बनी नाव पर **(आ, रुहेयम्)** चढ़ूं, वैसे इस पर तुम भी चढ़ो॥७॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्य लोग बड़ी नावों की अच्छे प्रकार परीक्षा करके और उनमें स्थिर होके समुद्र आदि के पारावार जायें, जिनमें बहुत लङ्गर आदि होवें, वे नावें अत्यन्त उत्तम हों॥७॥

आ न इत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः। मित्रावरुणौ देवते। निचृद् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आ नो॑ मित्रावरुणा घृ॒तैर्गव्यू॑तिमुक्षतम्। मध्वा॒ रजा॑थ्ंसि सुक्रतू॥८॥

आ। न॒:। मि॒त्रा॒व॒रु॒णा॒। घृ॒तैः। गव्यू॑तिम्। उ॒क्ष॒त॒म्। मध्वा॑। रजा॑ꣳसि। सु॒क्र॒तू॒ इति॑ सुऽक्रतू॥८॥

पदार्थ:-(**आ**) समन्तात् (**न:**) अस्माकम् (**मित्रावरुणा**) प्राणोदानाविव (**घृतै:**) उदकै: (**गव्यूतिम्**) क्रोशद्वयम् (**उक्षतम्**) सिंचतम् (**मध्वा**) मधुना जलेन (**रजांसि**) लोकान् (**सुक्रतू**) शोभना: प्रज्ञा: कर्माणि वा ययोस्तौ॥८॥

अन्वय:-हे मित्रावरुणा प्राणोदानवद्वर्त्तमानौ सुक्रतू शिल्पिनौ! युवां घृतैर्नो गव्यूतिमुक्षतमा मध्वा रजांस्युक्षतम्॥८॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यदि शिल्पिनो यानानि जलादिना चालयेयुस्तर्हि त ऊर्ध्वाऽधोमार्गेषु गन्तुं शक्नुयु:॥८॥

पदार्थ:-हे (**मित्रावरुणा**) प्राण और उदान वायु के समान वर्त्तने हारे (**सुक्रतू**) शुभ बुद्धि वा उत्तम कर्मयुक्त शिल्पी लोगो! तुम (**घृतै:**) जलों से (**न:**) हमारे (**गव्यूतिम्**) दो कोश को (**उक्षतम्**) सेचन करो और (**आ, मध्वा**) सब ओर से मधुर जल से (**रजांसि**) लोकों का सेचन करो॥८॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो शिल्पविद्या वाले लोग नाव आदि को जल आदि मार्ग से चलावें तो वे ऊपर और नीचे मार्गों में जाने को समर्थ हों॥८॥

प्र बाहवेत्यस्य वसिष्ठ ऋषि:। अग्निर्देवता। त्रिष्टुप् छन्द:। धैवत: स्वर:॥

पुनर्विद्वद्विषयमाह॥

फिर विद्वानों के विषय में अगले मन्त्र में कहा है॥

प्र बा॒हवा॑ सिसृतं जी॒वसे॑ न॒ऽआ नो॒ गव्यू॑तिमुक्षतं घृ॒तेन॑।
आ मा॒ जने॑ श्रवयतं युवाना श्रु॒तं मे॑ मित्रावरुणा॒ हवे॒मा॥९॥

प्र। बा॒हवा॑। सि॒सृ॒त॒म्। जी॒वसे॑। न॒:। आ। न॒:। गव्यू॑तिम्। उ॒क्ष॒त॒म्। घृ॒तेन॑। आ। मा। जने॑। श्र॒व॒य॒त॒म्। यु॒वा॒ना॒। श्रु॒तम्। मे॒। मि॒त्रा॒व॒रु॒णा॒। हवा॑। इ॒मा॥९॥

पदार्थ:-(**प्र**) (**बाहवा**) बाहू इव। अत्र **सुपां सुलुग्** [अ०७.१.३९] इत्याकारादेश: (**सिसृतम्**) प्राप्नुतम् (**जीवसे**) जीवितुम् (**न:**) अस्माकम् (**आ**) (**न:**) अस्माकम् (**गव्यूतिम्**) क्रोशयुग्मम् (**उक्षतम्**) सिञ्चेताम् (**घृतेन**) जलेन (**आ**) (**मा**) माम् (**जने**) (**श्रवयतम्**) श्रावयतम्। वृद्ध्याभावश्छान्दस: (**युवाना**) युवानौ मिश्रितामिश्रितयो: कर्त्तारौ (**श्रुतम्**) शृणुतम् (**मे**) मम (**मित्रावरुणा**) मित्रश्च वरुणश्च तौ (**हवा**) हवानि हवनानि (**इमा**) इमानि॥९॥

अन्वयः-हे मित्रावरुणा! बाहवा युवाना युवां नो जीवसे मा प्रसिसृतं घृतेन नो गव्यूतिमोक्षतं नाना कीर्तिमाश्रवयतं मे जन इमा हवा श्रुतम्॥९॥

भावार्थः-अध्यापकोपदेष्टारौ प्राणोदानवत्सर्वेषां जीवनहेतू भवेतां विद्योपदेशाभ्यां सर्वेषामात्मनो जलेन वृक्षानिव सिञ्चेताम्॥९॥

पदार्थः-**(मित्रावरुणा)** मित्र और वरुण उत्तम जन **(बाहवा)** दोनों बाहु के तुल्य **(युवाना)** मिलान और अलग करने हारे तुम **(नः)** हमारे **(जीवसे)** जीने के लिए **(मा)** मुझ को **(प्र, सिसृतम्)** प्राप्त होओ **(घृतेन)** जल से **(नः)** हमारे **(गव्यूतिम्)** दो कोश पर्यन्त **(आ, उक्षतम्)** सब ओर से सेचन करो। नाना प्रकार की कीर्त्ति को **(आ, श्रवयतम्)** अच्छे प्रकार सुनाओ और **(मे)** मेरे **(जने)** मनुष्यगण में **(इमा)** इन **(हवा)** वाद-विवादों को **(श्रुतम्)** सुनो॥९॥

भावार्थः-अध्यापक और उपदेशक प्राण और उदान के समान सब के जीवन के कारण होवें, विद्या और उपदेश से सब के आत्माओं को जल से वृक्षों के समान सेचन करें॥९॥

शमित्यस्यात्रेय ऋषिः। ऋत्विजो देवताः। भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

शन्नो॑ भवन्तु वा॒जिनो॒ हवे॑षु दे॒वता॑ता मि॒तद्र॑वः स्व॒र्काः।

ज॒म्भय॒न्तोऽहिं॒ वृक॒ꣳ रक्षा॑ꣳसि॒ सने॑म्य॒स्मद्यु॑यव॒न्नमी॑वाः॥१०॥

शम्। नः॒। भ॒व॒न्तु॒। वा॒जिनः॑। हवे॑षु। दे॒वता॒तेति॑ दे॒वऽता॑ता। मि॒तद्र॑व॒ इति॑ मि॒तऽद्र॑वः। स्व॒र्का इति॑ सुऽअ॒र्काः। ज॒म्भय॑न्तः। अहि॑म्। वृक॑म्। रक्षा॑ꣳसि। सने॑मि। अ॒स्मत्। यु॒य॒व॒न्। अमी॑वाः॥१०॥

पदार्थः-**(शम्)** सुखकारकाः **(नः)** अस्मभ्यम् **(भवन्तु)** **(वाजिनः)** प्रशस्तविज्ञानयुक्ताः **(हवेषु)** दानाऽदानेषु **(देवताता)** देवता विद्वांस इव वर्त्तमानाः **(मितद्रवः)** ये मितं द्रवन्ति ते **(स्वर्काः)** सुष्ठ्वर्का अन्नानि वज्रो वा येषान्ते **(जम्भयन्तः)** विनाशयन्तः **(अहिम्)** मेघं सूर्य इव **(वृकम्)** स्तेनम् **(रक्षांसि)** दुष्टान् जीवान् **(सनेमि)** सनातनं पुराणम्। **सनेमि इति पुराणनाम॥ निघं०३।२७॥** **(अस्मत्)** **(युयवन्)** पृथक्कुर्वन्तु **(अमीवाः)** रोगान्॥१०॥

अन्वयः-हे स्वर्का! मितद्रवो देवताता वाजिनो हवेषु विद्वांसो भवन्तोऽहिं सूर्य इव वृकं रक्षांसि च जम्भयन्तो नः सनेमि शं भवन्तु। अस्मदमीवा युयवन्॥१०॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा सूर्योऽन्धकारं निवर्त्त्य सर्वान् सुखयति, तथा विद्वांसः प्राणिनां सर्वान् शरीरात्मरोगान् निवार्य्यानन्दयेयुः॥१०॥

पदार्थः-हे **(स्वर्काः)** अच्छे अन्न वा वज्र से युक्त और **(मितद्रवः)** प्रमाणित चलने और **(देवताता)** विद्वानों के समान वर्त्तने हारे **(वाजिनः)** अति उत्तम विज्ञान से युक्त **(हवेषु)** लेने-देने में चतुर आप लोग **(अहिम्)** मेघ को सूर्य के समान **(वृकम्)** चोर और **(रक्षांसि)** दुष्ट जीवों का **(जम्भयन्तः)** नाश करते हुए **(नः)** हमारे लिए **(सनेमि)** सनातन **(शम्)** सुख करने हारे **(भवन्तु)** होओ और **(अस्मत्)** हमारे **(अमीवाः)** रोगों को **(युयवन्)** दूर करो॥१०॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य अन्धकार को हटा के सब को सुखी करता है, वैसे विद्वान् लोग प्राणियों के शरीर और आत्मा के सब रोगों को निवृत्त करके आनन्दयुक्त करें॥१०॥

वाजेवाज इत्यस्य आत्रेय ऋषिः। विद्वांसो देवताः। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

वाजेवाजेऽवत वाजिनो नो धनेषु विप्राऽअमृताऽऋतज्ञाः।

अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देवयानैः॥११॥

वाजेवाजऽइति वाजेऽवाजे। अवत। वाजिनः। नः। धनेषु। विप्राः। अमृताः। ऋतज्ञाऽइत्यृतज्ञाः। अस्य। मध्वः। पिबत। मादयध्वम्। तृप्ताः। यात। पथिभिरिति पथिऽभिः। देवयानैरिति देवऽयानैः॥११॥

पदार्थः-**(वाजेवाजे)** युद्धे युद्धे **(अवत)** रक्षत **(वाजिनः)** विज्ञानवन्तः **(नः)** अस्मान् **(धनेषु)** **(विप्राः)** मेधाविनः **(अमृताः)** आत्मस्वरूपेण नित्याः **(ऋतज्ञाः)** य ऋतं सत्यं जानन्ति ते **(अस्य)** **(मध्वः)** मधुरस्य रसस्य। अत्र कर्मणि षष्ठी **(पिबत)** **(मादयध्वम्)** आनन्दयत **(तृप्ताः)** प्रीताः **(यात)** गच्छत **(पथिभिः)** **(देवयानैः)** देवा विद्वांसो यान्ति येषु तैः॥११॥

अन्वयः-हे अमृता ऋतज्ञा वाजिनो विप्राः! यूयं वाजेवाजे धनेषु नोऽवतास्य मध्वः पिबत, तेन मादयध्वमनेन तृप्ताः सन्तो देवयानैः पथिभिर्यात॥११॥

भावार्थः-यथा विद्वांसो विद्यादानोपदेशाभ्यां सर्वान् सुखयन्ति, तथैव राजपुरुषा रक्षाऽभयदानाभ्यां सर्वान् सुखयन्तु। धर्म्यमार्गेषु गच्छन्तोऽर्थकाममोक्षान् प्राप्नुवन्तु॥११॥

पदार्थः-हे **(अमृताः)** आत्मस्वरूप से अविनाशी **(ऋतज्ञाः)** सत्य के जानने हारे **(वाजिनः)** विज्ञान वाले **(विप्राः)** बुद्धिमान् लोगो! तुम **(वाजेवाजे)** युद्ध-युद्ध में और **(धनेषु)** धनों में **(नः)** हमारी **(अवत)** रक्षा करो और **(अस्य)** इस **(मध्वः)** मधुर रस का **(पिबत)** पान करो और उस से **(मादयध्वम्)** विशेष आनन्द को प्राप्त होओ और इस से **(तृप्ताः)** तृप्त हाके **(देवयानैः)** विद्वानों के जाने योग्य **(पथिभिः)** मार्गों से **(यात)** जाओ॥११॥

भावार्थः-जैसे विद्वान् लोग विद्यादान से और उपदेश से सब को सुखी करते हैं, वैसे ही राजपुरुष रक्षा और अभयदान से सब को सुखी करें तथा धर्मयुक्त मार्गों में चलते हुए अर्थ, काम और मोक्ष इन तीन पुरुषार्थ के फलों को प्राप्त होवें॥११॥

समिद्ध इत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। अग्निर्देवता। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनर्विद्वद्विषयमाह॥

फिर विद्वान् के विषय में अगले मन्त्र में कहा है॥

समिद्धोऽअग्निः समिधा सुसमिद्धो वरेण्यः।

गायत्री छन्दऽइन्द्रियं त्र्यविर्गौर्वयो दधुः॥१२॥

समिद्धऽइति सम्ऽइद्धः। अग्निः। समिधेति सम्ऽइधा। सुसमिद्ध इति सुऽसमिद्धः। वरेण्यः। गायत्री। छन्दः। इन्द्रियम्। त्र्यविरिति त्रिऽअविः। गौः। वयः। दधुः॥१२॥

पदार्थः-(**समिद्धः**) सम्यक् प्रदीप्तः (**अग्निः**) वह्निः (**समिधा**) सम्यक् प्रकाशेन (**सुसमिद्धः**) सुष्ठु प्रकाशितः सूर्यः (**वरेण्यः**) वरणीयो जनः (**गायत्री**) (**छन्दः**) (**इन्द्रियम्**) मनः (**त्र्यविः**) त्रयाणां शरीरेन्द्रियात्मनामवीरक्षणं क्षणं यस्मात् सः (**गौः**) स्तोता (**वयः**) जीवनम् (**दधुः**) दधीरन्॥१२॥

अन्वयः-यथा समिद्धोऽग्निः समिधा सुसमिद्धो वरेण्यो गायत्री छन्दश्चेन्द्रियं प्राप्नोति यथा च त्र्यविर्गौर्वयो दधाति तथा विद्वांसो दधुः॥१२॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। विद्वांसो विद्यया सर्वेषामात्मनः प्रकाश्य सर्वान् जितेन्द्रियान् कृत्वा दीर्घायुषः सम्पादयन्तु॥१२॥

पदार्थः-जैसे (**समिद्धः**) अच्छे प्रकार देदीप्यमान (**अग्निः**) अग्नि (**समिधा**) उत्तम प्रकाश से (**सुसमिद्धः**) बहुत प्रकाशमान सूर्य (**वरेण्यः**) अङ्गीकार करने योग्य जन और (**गायत्री, छन्दः**) गायत्री छन्द (**इन्द्रियम्**) मन को प्राप्त होता है और जैसे (**त्र्यविः**) शरीर, इन्द्रिय, आत्मा इन तीनों की रक्षा करने और (**गौः**) स्तुति प्रशंसा करने हारा जन (**वयः**) जीवन को धारण करता है, वैसे विद्वान् लोग (**दधुः**) धारण करें॥१२॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। विद्वान् लोग विद्या से सब के आत्माओं को प्रकाशित और सब को जितेन्द्रिय करके पुरुषों को दीर्घ आयु वाले करें॥१२॥

तनूनपादित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। विद्वांसो देवताः। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

तनूनपाच्छुचिव्रतस्तनूपाश्च सरस्वती।

उष्णिहा छन्दऽइन्द्रियं दित्यवाड् गौर्वयो दधुः॥ १३॥

तनूनपादिति तनूऽनपात्। शुचिऽव्रतः। तनूपा इति तनूऽपाः। च। सरस्वती। उष्णिहा। छन्दः। इन्द्रियम्। दित्यवाडिति दित्यऽवाट्। गौः। वयः। दधुः॥ १३॥

पदार्थः-(तनूनपात्) यस्तनूं न पातयति सः **(शुचिव्रतः)** पवित्रधर्माचरणशीलः **(तनूपाः)** यस्तनूः पाति **(च)** **(सरस्वती)** वाणी **(उष्णिहा)** **(छन्दः)** **(इन्द्रियम्)** इन्द्रस्य जीवस्य लिङ्गम् **(दित्यवाट्)** दितये हितं वहति **(गौः)** स्तोता **(वयः)** कामनाम् **(दधुः)॥ १३॥**

अन्वयः-यथा शुचिव्रतस्तनूनपात् तनूपाः सरस्वती चोष्णिहा छन्द इन्द्रियं दधाति, यथा च दित्यवाड् गौर्वयो वर्धयति, तथैतस्सर्वं विद्वांसो दधुः॥१३॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये पवित्राचरणा येषां वाणी विद्यासुशिक्षायुक्तास्ति, ते पूर्णं जीवनं धातुर्महन्ति॥१३॥

पदार्थः-जैसे **(शुचिव्रतः)** पवित्र धर्म के आचरण करने **(तनूनपात्)** शरीर को पड़ने न देने **(तनूपाः)** किन्तु शरीर की रक्षा करने हारा **(च)** और **(सरस्वती)** वाणी तथा **(उष्णिहा)** उष्णिह **(छन्दः)** छन्द **(इन्द्रियम्)** जीव के चिह्न को धारण करता है वा जैसे **(दित्यवाट्)** खण्डनीय पदार्थों के लिये हित प्राप्त कराने और **(गौः)** स्तुति करने हारा जन **(वयः)** इच्छा को बढ़ाता है, वैसे इन सब को विद्वान् लोग **(दधुः)** धारण करें॥१३॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो लोग पवित्र आचरण वाले हैं और जिनकी वाणी विद्याओं में सुशिक्षा पाई हुई है, वे पूर्ण जीवन के धारण करने को योग्य हैं॥१३॥

इडाभिरित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। विद्वांसो देवता। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

इडाभिरग्निरीड्यः सोमो देवोऽअमर्त्यः।

अनुष्टुप् छन्दऽइन्द्रियं पञ्चाविर्गौर्वयो दधुः॥ १४॥

इडाभिः। अग्निः। ईड्यः। सोमः। देवः। अमर्त्यः। अनुष्टुप्। अनुस्तुबित्यनुऽस्तुप्। छन्दः। इन्द्रियम्। पञ्चाविरिति पञ्चऽअविः। गौः। वयः। दधुः॥ १४॥

पदार्थः-(इडाभिः) **(अग्निः)** पावक इव **(ईड्यः)** स्तुत्योऽध्यन्वेषणीयः **(सोमः)** ऐश्वर्य्यवान् **(देवः)** दिव्यगुणः **(अमर्त्यः)** स्वस्वरूपेण मृत्युरहितः **(अनुष्टुप्)** **(छन्दः)** **(इन्द्रियम्)** ज्ञानादिव्यवहारसाधकम् **(पञ्चाविः)** यः पञ्चभिरव्यते रक्ष्यते सः **(गौः)** विद्यया स्तोतव्यः **(वयः)** तृप्तिम् **(दधुः)** दध्युः॥१४॥

अन्वयः-यथाऽग्निरमर्त्यः सोम ईड्यो देवः पञ्चाविर्गौर्विद्वानिडाभिरनुष्टुप् छन्द इन्द्रियं वयश्च दध्यात् तथैतत् सर्वे दधुः॥१४॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये धर्मेण विद्यैश्वर्ये प्राप्नुवन्ति, ते सर्वान् मनुष्यानेते प्रापयितुं शक्नुवन्ति॥१४॥

पदार्थः-जैसे **(अग्निः)** अग्नि के समान प्रकाशमान **(अमर्त्यः)** अपने स्वरूप से नाशरहित **(सोमः)** ऐश्वर्यवान् **(ईड्यः)** स्तुति करने वा खोजने के योग्य **(देवः)** दिव्य गुणी **(पञ्चाविः)** पांच से रक्षा को प्राप्त **(गौः)** विद्या से स्तुति के योग्य विद्वान् पुरुष **(इडाभिः)** प्रशंसाओं से **(अनुष्टुप्, छन्दः)** अनुष्टुप् छन्द **(इन्द्रियम्)** ज्ञान आदि व्यवहार को सिद्ध करने हारे मन और **(वयः)** तृप्ति को धारण करे, वैसे इस को सब **(दधुः)** धारण करें॥१४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो लोग धर्म से विद्या और ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं, वे सब मनुष्यों को विद्या और ऐश्वर्य प्राप्त करा सकते हैं॥१४॥

सुबर्हिरित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। विद्वांसो देवताः। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

सुबर्हिरग्निः पूषण्वान्त्स्तीर्णबर्हिरमर्त्यः।

बृहती छन्दऽइन्द्रियं त्रिवत्सो गौर्वयो दधुः॥१५॥

सुबर्हिरिति सुऽबर्हिः। अग्निः। पूषण्वानिति पूषण्ऽवान्। स्तीर्णबर्हिरिति स्तीर्णऽबर्हिः। अमर्त्यः। बृहती। छन्दः। इन्द्रियम्। त्रिवत्स इति त्रिऽवत्सः। गौः। वयः। दधुः॥१५॥

पदार्थः-**(सुबर्हिः)** सुशोभनं बर्हिरन्तरिक्षं यस्मात् सः **(अग्निः)** पावकः **(पूषण्वान्)** पूषाणः पुष्टिकरा गुणा विद्यन्ते यस्मिन् **(स्तीर्णबर्हिः)** स्तीर्णं बर्हिरन्तरिक्षं येन सः **(अमर्त्यः)** स्वस्वरूपेण मृत्युधर्मरहितः **(बृहती)** **(छन्दः)** **(इन्द्रियम्)** **(त्रिवत्सः)** त्रीणि देहेन्द्रियमनांसि वत्सा इवानुचराणि यस्य सः **(गौः)** धेनु **(वयः)** येन व्येति व्याप्नोति तत् **(दधुः)** दध्युः॥१५॥

अन्वयः-यथा पूषण्वान् स्तीर्णबर्हिरमर्त्यः सुबर्हिरग्निरिव जना बृहती छन्दश्चेन्द्रियं दध्यात् त्रिवत्सो गौरिव वयो दध्यात् तथैतद् दधुः॥१४॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथाग्निरन्तरिक्षे चरति तथा विद्वांसः सूक्ष्मनिराकारपदार्थविद्यायां चरन्ति, यथा गोरनुकूलो वत्सो भवति, तथा विद्वदनुकूला अविद्वांसश्चरन्त्विन्द्रियाणि च वशमानयेयुः॥१५॥

पदार्थः-जैसे **(पूषण्वान्)** पुष्टि करने हारे गुणों से युक्त **(स्तीर्णबर्हिः)** आकाश को व्याप्त होने वाला **(अमर्त्यः)** अपने स्वरूप से नाशरहित **(सुबर्हिः)** आकाश को शुद्ध करने हारा **(अग्निः)** अग्नि के समान जन और **(बृहती)** बृहती **(छन्दः)** छन्द **(इन्द्रियम्)** जीव के चिह्न को धारण करें और **(त्रिवत्सः)** त्रिवत्स अर्थात् देह, इन्द्रिय, मन जिस के अनुगामी वह **(गौः)** गौ के समान मनुष्य **(वयः)** तृप्ति को प्राप्त करें, वैसे इस को सब लोग **(दधुः)** धारण करें॥१५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे अग्नि अन्तरिक्ष में चलता है, वैसे विद्वान् लोग सूक्ष्म और निराकार पदार्थों की विद्या में चलते हैं, जैसे गाय के पीछे बछड़ा चलता है, वैसे अविद्वान् जन विद्वानों के पीछे चला करें और अपनी इन्द्रियों को वश में लावें॥१५॥

दुरो देवीरित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। विद्वांसो देवताः। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः। स्वरः॥

अथ वायुप्रभृतिपदार्थप्रयोजनमुपदिश्यते॥

अब वायु आदि पदार्थों के प्रयोजन विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

दुरो॑ दे॒वीर्दिशो॑ म॒हीर्ब्र॒ह्मा दे॒वो बृह॒स्पतिः॑।

प॒ङ्क्तिश्छन्द॑ऽइ॒हेन्द्रि॒यं तु॑र्य्य॒वाड् गौर्वयो॑ दधुः॥ १६॥

दुरः॑। दे॒वीः। दिशः॑। म॒हीः। ब्र॒ह्मा। दे॒वः। बृह॒स्पतिः॑। प॒ङ्क्तिः। छन्दः॑। इ॒ह। इ॒न्द्रि॒यम्। तु॒र्य्य॒वाडिति॑ तर्य्य॒ऽवाद्। गौः। वयः॑। द॒धुः॥१६॥

पदार्थः-**(दुरः)** द्वाराणि **(देवीः)** देदीप्यमानां **(दिशः)** **(महीः)** महत्यः **(ब्रह्मा)** **(देवः)** देदीप्यमानः **(बृहस्पतिः)** बृहतां पालकः सूर्य्यः **(पङ्क्तिः)** **(छन्दः)** **(इह)** **(इन्द्रियम्)** धनम् **(तुर्य्यवाट्)** यस्तुर्य्यं चतुर्थं वहति प्राप्नोति सः **(गौः)** धेनुः **(वयः)** जीवनम् **(दधुः)** दधीरन्॥१६॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथेह देवीर्महीर्दुरोदिशो ब्रह्मा देवो बृहस्पतिः पङ्क्तिश्छन्द इन्द्रियं तुर्य्यवाड् गौर्वयश्च दधुस्तथा यूयमपि धरत॥१६॥

भावार्थः-नहि कश्चिदप्यन्तरिक्षस्थवाय्वादिभिर्विना जीवितुं शक्नोति॥१६॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे **(इह)** यहां **(देवीः)** देदीप्यमान **(महीः)** बड़े **(दुरः)** द्वारे **(दिशः)** दिशाओं को **(ब्रह्मा)** अन्तरिक्षस्थ पवन **(देवः)** प्रकाशमान **(बृहस्पतिः)** बड़ों का पालन करने हारा सूर्य और **(पङ्क्तिश्छन्दः)** पङ्क्ति छन्द **(इन्द्रियम्)** धन तथा **(तुर्य्यवाट्)** चौथे को प्राप्त होने हारी **(गौः)** गाय **(वयः)** जीवन को **(दधुः)** धारण करें, वैसे तुम लोग भी जीवन को धारण करो॥१६॥

भावार्थः-कोई भी प्राणी अन्तरिक्षस्थ पवन आदि के बिना नहीं जी सकता॥१६॥

उष इत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उषे यह्वी सुपेशसा विश्वे देवाऽअमर्त्याः।

त्रिष्टुप् छन्दऽइहेन्द्रियं पष्ठवाड् गौर्वयो दधुः॥१७॥

उषेऽइत्युषे। यह्वीऽइति यह्वी। सुपेशसेति सुऽपेशसा। विश्वे। देवाः। अमर्त्याः। त्रिष्टुप्। त्रिस्तुबिति त्रिऽस्तुप्। छन्दः। इह। इन्द्रियम्। पष्ठवाडिति पष्ठऽवाट्। गौः। वयः। दधुः॥१७॥

पदार्थः-(उषे) दहनकर्त्र्याविव स्त्रियौ **(यह्वी)** महती महत्यौ **(सुपेशसा)** सुष्ठु पेशो रूपं ययोस्तावध्यापिकोपदेशिके। विभक्तेरात्वम् **(विश्वे)** सर्वे **(देवाः)** देदीप्यमानाः पृथिव्यादयः **(अमर्त्याः)** तत्त्वस्वरूपेण नित्याः **(त्रिष्टुप्) (छन्दः) (इह)** अस्मिन् संसारे **(इन्द्रियम्)** धनम् **(पष्ठवाट्)** यः पष्ठेन पृष्ठेन वहति सः। इदं पृषोदरादिना सिद्धम् **(गौः)** वृषभः **(वयः)** प्रजननम् **(दधुः)** दध्युः॥१७॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथेह सुपेशसोषे यह्वी अमर्त्या विश्वे देवास्त्रिष्टुप् छन्दः पष्ठवाड्गौर्वय इन्द्रियं दधुस्तथा यूयमप्याचरत॥१७॥

भावार्थः-यथा पृथिव्यादयः पदार्थाः परोपकारिणः सन्ति, तथाऽत्र मनुष्यैर्भवितव्यम्॥१७॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे **(इह)** इस जगत् में **(सुपेशसा)** सुन्दर रूपयुक्त पढ़ाने और उपदेश करने हारी **(यह्वी)** बड़ी **(उषे)** दहन करने वाली प्रभात वेला के समान दो स्त्री **(अमर्त्याः)** तत्त्वस्वरूप से नित्य **(विश्वे)** सब **(देवाः)** देदीप्यमान पृथ्वी आदि लोक **(त्रिष्टुप् छन्दः)** त्रिष्टुप् छन्द और **(पष्ठवाट्)** पीठ से उठाने वाला **(गौः)** बैल **(वयः)** उत्पत्ति और **(इन्द्रियम्)** धन को धारण करते हैं, वैसे **(दधुः)** तुम लोग भी आचरण करो॥१७॥

भावार्थः-जैसे पृथ्वी आदि पदार्थ परोपकारी हैं, वैसे इस जगत् में मनुष्यों को होना चाहिए॥१७॥

दैव्येत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथ भिषग्वदितरैराचरितव्यमित्युपदिश्यते॥

अब अगले मन्त्र में वैद्य के तुल्य अन्यों को आचरण करना चाहिए, इस विषय को कहा है॥

दैव्या होतारा भिषजेन्द्रेण सयुजा युजा।

जगती छन्दऽइन्द्रियमनड्वान् गौर्वयो दधुः॥१८॥

दैव्या। होतारा। भिषजा। इन्द्रेण सयुजेति सऽयुजा। युजा। जगती। छन्दः। इन्द्रियम्। अनड्वान्। गौः। वयः। दधुः॥१८॥

पदार्थः-(दैव्या) देवेषु विद्वत्सु कुशलौ **(होतारा)** दातारौ **(भिषजा)** सद्वैद्यौ **(इन्द्रेण)** ऐश्वर्य्येण **(सयुजा)** यौ समानं युङ्क्तस्तौ **(युजा)** समाहितौ **(जगती) (छन्दः) (इन्द्रियम्)** धनम् **(अनड्वान्)** वृषभः **(गौः) (वयः)** कमनीयम् **(दधुः)** दध्युः॥१८॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथेन्द्रेण सयुजा युजा दैव्या होतारा भिषजाऽनड्वान् गौर्जगती छन्दश्च वय इन्द्रियं दधुस्तथैतद्धवन्तो दधीरन्॥१८॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा वैद्यैः स्वेषां परेषां च रोगान्निवार्य्य स्वेऽन्ये चैश्वर्य्यवन्तः क्रियन्ते तथा सर्वैर्मनुष्यैर्वर्तितव्यम्॥१८॥

पदार्थः-हे मनुष्य लोगो! जैसे **(इन्द्रेण)** ऐश्वर्य से **(सयुजा)** ओषधि आदि का तुल्य योग करनेहारे **(युजा)** सावधान चित्त हुए **(दैव्या)** विद्वानों में निपुण **(होतारा)** विद्यादि के देने वाले **(भिषजा)** उत्तम दो वैद्य लोग **(अनड्वान्)** बैल **(गौः)** गाय और **(जगती छन्दः)** जगती छन्द **(वयः)** सुन्दर **(इन्द्रियम्)** धन को **(दधुः)** धारण करें, वैसे इस को तुम लोग धारण करो॥१८॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे वैद्यों से अपने और दूसरों के रोग मिटाके अपने आप और दूसरे ऐश्वर्यवान् किये जाते हैं, वैसे सब मनुष्यों को वर्त्तना चाहिए॥१८॥

तिस्र इत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनर्विद्वद्विषयमाह॥

फिर विद्वानों के विषय में अगले मन्त्र में कहा है॥

तिस्रऽइडा सरस्वती भारती मरुतो विशः।

विराट् छन्दऽइहेन्द्रियं धेनुर्गौर्न वयो दधुः॥१९॥

तिस्रः। इडा। सरस्वती। भारती। मरुतः। विशः। विराडिति विऽराट्। छन्दः। इह। इन्द्रियम्। धेनुः। गौः। न। वयः। दधुः॥१९॥

पदार्थः-**(तिस्रः)** त्रित्वसंख्यावत्यः **(इडा)** भूमिः **(सरस्वती)** वाणी **(भारती)** धारणवती प्रज्ञा **(मरुतः)** वायवः **(विशः)** मनुष्याद्याः प्रजाः **(विराट्)** यद्विविधं राजते तत् **(छन्दः)** बलम् **(इह)** अस्मिन् संसारे **(इन्द्रियम्)** धनम् **(धेनुः)** या धापयति सा **(गौः)** **(न)** इव **(वयः)** प्राप्तव्यं वस्तु **(दधुः)** दध्युः॥१९॥

अन्वयः-यथेहेडा सरस्वती भारती च तिस्रो मरुतो विशो विराट् छन्द इन्द्रियं धेनुर्गौर्न वयश्च दधुस्तथा सर्वे मनुष्या एतद्धृत्वा वर्तेरन्॥१९॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। यथा विद्वांसः सुशिक्षितया वाचा विद्यया प्राणैः पशुभिश्चैश्वर्य्यं लभन्ते, तथाऽन्यैर्लब्धव्यम्॥१९॥

पदार्थः-जैसे **(इह)** इस जगत् में **(इडा)** पृथ्वी **(सरस्वती)** वाणी और **(भारती)** धारण वाली बुद्धि ये **(तिस्रः)** तीन **(मरुतः)** पवनगण **(विशः)** मनुष्य आदि प्रजा **(विराट्)** तथा अनेक प्रकार से देदीप्यमान

(छन्दः) बल **(इन्द्रियम्)** धन को और **(धेनुः)** पान कराने हारी **(गौः)** गाय के **(न)** समान **(वयः)** प्राप्त होने योग्य वस्तु को **(दधुः)** धारण करें, वैसे सब मनुष्य लोग इस को धारण करके वर्त्ताव करें॥१९॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे विद्वान् लोग सुशिक्षित वाणी, विद्या, प्राण और पशुओं से ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं, वैसे अन्य सब को प्राप्त होना चाहिए॥१९॥

त्वष्टेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

त्वष्टा॑ तु॒रीपो॒ऽअद्भु॑तऽइन्द्रा॒ग्नी पु॑ष्टि॒वर्ध॑ना।
द्विप॑दा॒ छन्द॑ऽइन्द्रि॒यमु॒क्षा गौर्न वयो॑ दधुः॥२०॥

त्वष्टा॑। तु॒रीपः॑। अद्भु॑तः। इ॒न्द्रा॒ग्नीऽइति इ॒न्द्रा॒ग्नी। पु॒ष्टि॒वर्ध॒नेति॑ पु॒ष्टि॒ऽवर्ध॑ना। द्विप॑देति॒ द्विऽप॑दा। छन्दः॑। इ॒न्द्रि॒यम्। उ॒क्षा। गौः। न। वयः॑। द॒धुः॥२०॥

पदार्थः-**(त्वष्टा)** तनूकर्त्ता **(तुरीपः)** तूर्णमाप्नोति सः **(अद्भुतः)** आश्चर्यगुणकर्मस्वभावः **(इन्द्राग्नी)** इन्द्रश्चाग्निश्च तौ वाय्वग्नी **(पुष्टिवर्धना)** यौ पुष्टिं वर्धयतस्तौ **(द्विपदा)** द्वौ पादौ यस्यां सा **(छन्दः)** **(इन्द्रियम्)** श्रोत्रादिकम् **(उक्षा)** सेचनसमर्थः **(गौः)** **(न)** इव **(वयः)** जीवनम् **(दधुः)** धरेयुः॥२०॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! येऽद्भुतस्तुरीपस्त्वष्टा पुष्टिवर्धनेन्द्राग्नी द्विपदा छन्द इन्द्रियमुक्षा गौर्न वयो दधुस्तान् विजानीत॥२०॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। यथा प्रसिद्धोऽग्निर्विद्युज्जाठरो वडवानल एते चत्वारः प्राण इन्द्रियाणि गवादयः पशवश्च सर्वस्य जगतः पुष्टिं कुर्वन्ति, तथैव मनुष्यैर्ब्रह्मचर्यादिना स्वस्य परेषां च बलं वर्द्धनीयम्॥२०॥

पदार्थः-हे मनुष्य लोगो! जो **(अद्भुतः)** आश्चर्य्य गुण-कर्म-स्वभावयुक्त **(तुरीपः)** शीघ्र प्राप्त होने **(त्वष्टा)** और सूक्ष्म करने हारे तथा **(पुष्टिवर्द्धना)** पुष्टि को बढ़ाने हारे **(इन्द्राग्नी)** पवन और अग्नि दोनों और **(द्विपदा)** दो पाद वाले **(छन्दः)** छन्द **(इन्द्रियम्)** श्रोत्र आदि इन्द्रिय को **(उक्षा)** सेचन करने में समर्थ **(गौः)** बैल के **(न)** समान **(वयः)** जीवन को **(दधुः)** धारण करें, उनको जानो॥२०॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे प्रसिद्ध अग्नि, बिजुली, पेट में का अग्नि, वडवानल ये चार और प्राण, इन्द्रियां तथा गाय आदि पशु सब जगत् की पुष्टि करते हैं, वैसे ही मनुष्यों को ब्रह्मचर्य आदि से अपना और दूसरों का बल बढ़ाना चाहिए॥२०॥

शमितेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनः प्रजाविषयमाह॥

फिर प्रजाविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

शमिता नो वनस्पतिः सविता प्रसुवन् भगम्।

ककुप् छन्दऽइहेन्द्रियं वशा वेहद्वयो दधुः॥२१॥

शमिता। नः। वनस्पतिः। सविता। प्रसुवन्निति प्रऽसुवन्। भगम्। ककुप्। छन्दः। इह। इन्द्रियम्। वशा। वेहत्। वयः। दधुः॥२१॥

पदार्थः-(**शमिता**) शान्तिप्रदः (**नः**) अस्माकम् (**वनस्पतिः**) ओषधिराजो वृक्षाणां पालकश्च (**सविता**) सूर्यः (**प्रसुवन्**) उत्पादयन् (**भगम्**) धनम् (**ककुप्**) (**छन्दः**) (**इह**) संसारे (**इन्द्रियम्**) जीवलिङ्गम् (**वशा**) अप्रसूता (**वेहत्**) या प्रसवं विहन्ति सा (**वयः**) व्याप्तव्यम् (**दधुः**)॥२१॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यः शमिता वनस्पतिः सविता भगं प्रसुवन् ककुप् छन्द इन्द्रियं वशा वेहच्चेह नो वयो दधुस्तान् यूयं विज्ञायोपकुरुत॥२१॥

भावार्थः-येन मनुष्येण सर्वरोगप्रणाशिका औषधय आवरकाण्युत्तमानि वस्त्राणि च सेव्यन्ते, स चिरंजीवी भवति॥२१॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो (**शमिता**) शान्ति देने हारा (**वनस्पतिः**) औषधियों का राजा वा वृक्षों का पालक (**सविता**) सूर्य (**भगम्**) धन को (**प्रसुवन्**) उत्पन्न करता हुआ (**ककुप्**) ककुप् (**छन्दः**) छन्द और (**इन्द्रियम्**) जीव के चिह्न को तथा (**वशा**) जिस के सन्तान नहीं हुआ और (**वेहत्**) जो गर्भ को गिराती है, वह (**इह**) इस जगत् में (**नः**) हमारे (**वयः**) प्राप्त होने योग्य वस्तु को (**दधुः**) धारण करे, उस को तुम लोग जान के उपकार करो॥२१॥

भावार्थः-जिस मनुष्य से सर्वरोग की नाशक औषधियां और ढांकने वाले उत्तम वस्त्र सेवन किये जाते हैं, वह बहुत वर्षों तक जी सकता है॥२१॥

स्वाहेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। विद्वांसो देवताः। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

स्वाहा यज्ञं वरुणः। सुक्षत्रो भेषजं करत्।

अतिच्छन्दाऽइन्द्रियं बृहदृषभो गौर्वयो दधुः॥२२॥

स्वाहा। यज्ञम्। वरुणः। सुक्षत्र इति सुऽक्षत्रः। भेषजम्। करत्। अतिच्छन्दा इत्यतिऽछन्दाः। इन्द्रियम्। बृहत्। ऋषभः। गौः। वयः। दधुः॥२२॥

पदार्थः-(**स्वाहा**) सत्यया क्रियया (**यज्ञम्**) संगतिमयम् (**वरुणः**) श्रेष्ठः (**सुक्षत्रः**) शोभनं क्षत्रं धनं यस्य सः। **क्षत्रमिति धननामसु पठितम्॥** निघं०२।१०॥ (**भेषजम्**) औषधम् (**करत्**) कुर्यात् (**अतिच्छन्दाः**)

(इन्द्रियम्) ऐश्वर्यम् **(बृहत्)** महत् **(ऋषभः)** श्रेष्ठः **(गौः)** **(वयः)** कमनीयं निजव्यवहाराम् **(दधुः)** धरेयुः॥२२॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यूयं यथा वरुणः सुक्षत्रः स्वाहा यज्ञं भेषजं च करद्योऽतिच्छन्दा ऋषभो गौर्बृहदिन्द्रियं वयश्च धत्तस्तथैव सर्वे दधुरेतज्जानीत॥२२॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये सुपथ्यौषधसेवनेन रोगान् हरन्ति, पुरुषार्थेन धनमायुश्च धरन्ति, तेऽतुलं सुखं लभन्ते॥२२॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम जैसे **(वरुणः)** श्रेष्ठ **(सुक्षत्रः)** उत्तम धनवान् जन **(स्वाहा)** सत्य क्रिया से **(यज्ञम्)** संगममय **(भेषजम्)** औषध को **(करत्)** करे और जो **(अतिच्छन्दाः)** अतिच्छन्द और **(ऋषभः)** उत्तम **(गौः)** बैल **(बृहत्)** बड़े **(इन्द्रियम्)** ऐश्वर्य और **(वयः)** सुन्दर अपने व्यवहार को धारण करते हैं, वैसे ही सब **(दधुः)** धारण करें, इसको जानो॥२२॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो लोग अच्छे पथ्य और औषध के सेवन से रोगों का नाश करते हैं और पुरुषार्थ से धन तथा आयु का धारण करते हैं, वे बहुत सुख को प्राप्त होते हैं॥२२॥

वसन्तेनेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। रुद्रा देवताः। भुरिगनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

वसन्तेनऽऋतुना देवा वसवस्त्रिवृता स्तुताः।
रथन्तरेण तेजसा हविरिन्द्रे वयो दधुः॥२३॥

वसन्तेन। ऋतुना। देवाः। वसवः। त्रिवृतेति त्रिऽवृता। स्तुताः। रथन्तरेणेति रथम्ऽतरेण। तेजसा। हविः। इन्द्रे। वयः। दधुः॥२३॥

पदार्थः-**(वसन्तेन)** वसन्ति सुखेन यस्मिंस्तेन **(ऋतुना)** प्राप्तव्येन **(देवाः)** दिव्याः **(वसवः)** पृथिव्यादयोऽष्टौ प्राथमकल्पिका विद्वांसो वा **(त्रिवृता)** यस्त्रिषु कालेषु वर्त्तते तेन **(स्तुताः)** प्राप्तस्तुतयः **(रथन्तरेण)** यत्र रथेन तरति तत् तेन **(तेजसा)** तीक्ष्णस्वरूपेण **(हविः)** दातव्यं वस्तु **(इन्द्रे)** सूर्य्यप्रकाशे **(वयः)** आयुर्वर्धकम् **(दधुः)**॥२३॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! ये वसवो देवा स्तुतास्त्रिवृता वसन्तेनर्तुना सह वर्त्तमाना रथन्तरेण तेजसेन्द्रे हविर्वयो दधुस्तान् स्वरूपतो विज्ञाय संगच्छध्वम्॥२३॥

भावार्थः-ये मनुष्या वासहेतून् दिव्यान् पृथिव्यादीन् विदुषो वा वसन्ते संगच्छेरँस्ते वासन्तिकं सुखं प्राप्नुयुः॥२३॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो **(वसवः)** पृथिवी आदि आठ वसु वा प्रथम कक्षा वाले विद्वान् लोग **(देवाः)** दिव्य गुणों से युक्त **(स्तुताः)** स्तुति को प्राप्त हुए **(त्रिवृता)** तीनों कालों में विद्यमान **(वसन्तेन)** जिस में सुख से रहते हैं, उस प्राप्त होने योग्य वसन्त **(ऋतुना)** ऋतु के साथ वर्त्तमान हुए **(रथन्तरेण)** जहां रथ से तरते हैं, उस **(तेजसा)** तीक्ष्ण स्वरूप से **(इन्द्रे)** सूर्य के प्रकाश में **(हविः)** देने योग्य **(वयः)** आयु बढ़ाने हारे वस्तु को **(दधुः)** धारण करें, उनको स्वरूप से जानकर संगति करो॥२३॥

भावार्थः-जो मनुष्य लोग रहने के हेतु दिव्य पृथिवी आदि लोकों वा विद्वानों की वसन्त में सङ्गति करें, वे वसन्तसम्बन्धी सुख को प्राप्त होवें॥२३।

ग्रीष्मेणेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

मध्यमब्रह्मचर्यविषयमाह॥

मध्यम ब्रह्मचर्य विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ग्रीष्मेणऽऋतुना देवा रुद्राः पञ्चदशे स्तुताः।
बृहता यशसा बलꣳहविरिन्द्रे वयो दधुः॥२४॥

ग्रीष्मेण। ऋतुना। देवाः। रुद्राः। पञ्चदश इति पञ्चऽदशे। स्तुताः। बृहता। यशसा। बलम्। हविः। इन्द्रे। वयः। दधुः॥२४॥

पदार्थः-**(ग्रीष्मेण)** सर्वरसग्रहीत्रा **(ऋतुना)** औष्ण्यं प्रापकेन **(देवाः)** दिव्यगुणाः **(रुद्राः)** दशप्राणा एकादश आत्मा मध्यमविद्वांसो वा **(पञ्चदशे)** **(स्तुताः)** प्रशस्ताः **(बृहता)** महता **(यशसा)** कीर्त्या **(बलम्)** **(हविः)** आदातव्यम् **(इन्द्रे)** जीवे **(वयः)** जीवनम् **(दधुः)** दध्युः॥२४॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! ये स्तुता रुद्रा देवाः पञ्चदशे ग्रीष्मेणर्त्तुना बृहता यशसेन्द्रे हविर्बलं वयश्च दधुस्तान् यूयं विजानीत॥२४॥

भावार्थः-ये चतुश्चत्वारिंशद् वर्षयुक्तेन ब्रह्मचर्येण जातविद्वांसोऽन्येषां शरीरात्मबलमुन्नयन्ति, ते भाग्यशालिनो जायन्ते॥२४॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो **(स्तुताः)** प्रशंसा किये हुए **(रुद्राः)** दश प्राण ग्यारहवां जीवात्मा वा मध्यम कक्षा के **(देवाः)** दिव्यगुणयुक्त विद्वान् **(पञ्चदशे)** पन्द्रहवें व्यवहार में **(ग्रीष्मेण)** सब रसों के खेंचने और **(ऋतुना)** उष्णपन प्राप्त करनेहारे ग्रीष्म ऋतु वा **(बृहता)** बड़े **(यशसा)** यश से **(इन्द्रे)** जीवात्मा में **(हविः)** ग्रहण करने योग्य **(बलम्)** बल और **(वयः)** जीवन को **(दधुः)** धारण करें, उन को तुम लोग जानो॥२४॥

भावार्थः-जो ४४ चवालीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य से विद्वान् हुए अन्य मनुष्यों के शरीर और आत्मा के बल को बढ़ाते हैं, वे भाग्यवान् होते हैं॥२४॥

वर्षाभिरित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। इन्द्रो देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथोत्तमब्रह्मचर्यविषयमाह॥

अब उत्तम ब्रह्मचर्य विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

व॒र्षाभि॑र्ऋ॒तुना॑दि॒त्या स्तोमे॑ सप्तद॒शे स्तु॒ताः।
वै॒रू॒पेण॑ वि॒शौज॑सा ह॒विरिन्द्रे॒ वयो॑ दधुः॥ २५॥

व॒र्षाभिः॑। ऋ॒तुना॑। आ॒दि॒त्याः। स्तोमे॑। स॒प्त॒द॒श इति॑ सप्तऽद॒शे। स्तु॒ताः। वै॒रू॒पेण॑। वि॒शा। ओज॑सा। ह॒विः। इन्द्रे॑। वयः॑। द॒धुः॥ २५॥

पदार्थः-(**वर्षाभिः**) वर्षन्ति मेघा यासु ताभिः (**ऋतुना**) (**आदित्याः**) द्वादश मासा उत्तमा विद्वांसो वा (**स्तोमे**) स्तुतिव्यवहारे (**सप्तदशे**) एतत्संख्याके (**स्तुताः**) प्रशंसिताः (**वैरूपेण**) विविधानां रूपाणां भावेन (**विशा**) प्रजया (**ओजसा**) बलेन (**हविः**) दातव्यम् (**इन्द्रे**) जीवे (**वयः**) कालविज्ञानम् (**दधुः**) दध्युः॥ २५॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! ये वर्षाभिर्ऋतुना वैरूपेणौजसा विशा सह वर्त्तमाना आदित्याः सप्तदशे स्तोमे स्तुता इन्द्रे हविर्वयो दधुस्तान् यूयं विज्ञायोपकुरुत॥ २५॥

भावार्थः-ये मनुष्या विद्वत्सङ्गेन कालस्य स्थूलसूक्ष्मगती विज्ञायैकक्षणमपि व्यर्थे न नयन्ति, ते विचित्रमैश्वर्यमाप्नुवन्ति॥ २५॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो (**वर्षाभिः**) जिसमें मेघ वृष्टि करते हैं, उस वर्षा (**ऋतुना**) प्राप्त होने योग्य ऋतु (**वैरूपेण**) अनेक रूपों के होने से (**ओजसा**) जो बल और उस (**विशा**) प्रजा के साथ रहने वाले (**आदित्याः**) बारह महीने वा उत्तम कल्प के विद्वान् (**सप्तदशे**) सत्रहवें (**स्तोमे**) स्तुति के व्यवहार में (**स्तुताः**) प्रशंसा किये हुए (**इन्द्रे**) जीवात्मा में (**हविः**) देने योग्य (**वयः**) काल के ज्ञान को (**दधुः**) धारण करते हैं, उन को तुम लोग जानकार उपकार करो॥ २५॥

भावार्थः-जो मनुष्य लोग विद्वानों के संग से काल की स्थूल-सूक्ष्म गति को जान के एक क्षण भी व्यर्थ नहीं गमाते हैं, वे नानाविध ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं॥ २५॥

शारदेनेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। विराड् बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

शा॒र॒देन॑ऽऋ॒तुना॑ दे॒वाऽएक॑वि॒ꣳशऽऋ॒भव॑ स्तु॒ताः।
वै॒रा॒जेन॑ श्रि॒या श्रिय॑ꣳ ह॒विरिन्द्रे॒ वयो॑ दधुः॥ २६॥

शारदेन। ऋतुना। देवाः। एकविंश इत्येकऽविंशे। ऋभवः। स्तुताः। वैराजेन। श्रिया। श्रियम्। हविः। इन्द्रे। वयः। दधुः॥२६॥

पदार्थः-(**शारदेन**) शरदि भवेन (**ऋतुना**) (**देवाः**) (**एकविंशे**) एतत्संख्याके (**ऋभवः**) मेधाविनः (**स्तुताः**) (**वैराजेन**) विराजि भवेनार्थेन (**श्रिया**) शोभया लक्ष्म्या वा (**श्रियम्**) लक्ष्मीम् (**हविः**) दातव्यमादातव्यम् (**इन्द्रे**) जीवे (**वयः**) कमनीयं सुखम् (**दधुः**) दध्युः॥२६॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! य एकविंशे स्तुता ऋभवो देवाः शारदेनर्तुना वैराजेन श्रिया सह वर्त्तमाना इन्द्रे श्रियं हविर्वयश्च दधुस्तान् यूयं सेवध्वम्॥२६॥

भावार्थः-ये सुपथ्यकारिणो जनाः शरद्यरोगा भवन्ति, ते श्रियमाप्नुवन्ति॥२६॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो (**एकविंशे**) इक्कीसवें व्यवहार में (**स्तुताः**) स्तुति किये हुए (**ऋभवः**) बुद्धिमान् (**देवाः**) दिव्यगुणयुक्त (**शारदेन**) शरद् (**ऋतुना**) ऋतु वा (**वैराजेन**) विराट् छन्द में प्रकाशमान अर्थ के साथ (**श्रिया**) शोभा और लक्ष्मी के साथ वर्त्ताव वर्त्तने हारे जन (**इन्द्रे**) जीवात्मा में (**श्रियम्**) लक्ष्मी और (**हविः**) देने-लेने योग्य (**वयः**) वाञ्छित सुख को (**दधुः**) धारण करें, उन का तुम लोग सेवन करो॥२६॥

भावार्थः-जो लोग अच्छे पथ्य करने हारे शरद् ऋतु में रोगरहित होते हैं, वे लक्ष्मी को प्राप्त होते हैं॥२६॥

हेमन्तेनेत्यस्य आत्रेय ऋषिः। विद्वांसो देवताः। भुरिगनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

हेमन्तेनऽऋतुना देवास्त्रिणवे मरुत स्तुताः।
बलेन शक्वरीः सहो हविरिन्द्रे वयो दधुः॥२७॥

हेमन्तेन। ऋतुना। देवाः। त्रिणवे। त्रिनव इति त्रिऽनवे। मरुतः। स्तुताः। बलेन। शक्वरीः। सहः। हविः। इन्द्रे। वयः। दधुः॥२७॥

पदार्थः-(**हेमन्तेन**) वर्द्धन्ते देहा यस्मिंस्तेन (**ऋतुना**) (**देवाः**) दिव्यगुणाः (**त्रिणवे**) त्रिगुणा नव यस्मिंस्तस्मिन् सप्तविंशे व्यवहारे (**मरुतः**) मनुष्याः (**स्तुताः**) (**बलेन**) मेघेन (**शक्वरीः**) शक्तिनिमित्ता गाः (**सहः**) बलम् (**हविः**) (**इन्द्रे**) (**वयः**) इष्टसुखम् (**दधुः**)॥२७॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! ये त्रिणवे हेमन्तेनर्तुना सह वर्त्तमाना स्तुता देवा मरुतो बलेन शक्वरीः सहो हविर्वय इन्द्रे दधुस्तान् सेवध्वम्॥२७॥

भावार्थः-ये सर्वरसपरिपाचके हेमन्ते यथायोग्यं व्यवहारं कुर्वन्ति, ते बलिष्ठा जायन्ते॥२७॥

पदार्थः-हे मनुष्य लोगो! जो **(त्रिणावे)** सत्ताईसवें व्यवहार में **(हेमन्तेन)** जिस में जीवों के देह बढ़ते जाते हैं, उस **(ऋतुना)** प्राप्त होने योग्य हेमन्त ऋतु के साथ वर्त्तते हुए **(स्तुताः)** प्रशंसा के योग्य **(देवाः)** दिव्यगुणयुक्त **(मरुतः)** मनुष्य **(बलेन)** मेघ से **(शक्वरीः)** शक्ति के निमित्त गौओं के **(सहः)** बल तथा **(हविः)** देने-लेने योग्य **(वयः)** वाञ्छित सुख को **(इन्द्रे)** जीवात्मा में **(दधुः)** धारण करें, उस का तुम सेवन करो॥२७॥

भावार्थः-जो लोग सब रसों को पकाने हारे हेमन्त ऋतु में यथायोग्य व्यवहार करते हैं, वे अत्यन्त बलवान् होते हैं॥२७॥

शैशिरेणेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। भुरिगनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

शैशिरेणऽऋतुना देवास्त्रयस्त्रिꣳशेऽमृता स्तुताः।
सत्येन रेवतीः क्षत्रꣳ हविरिन्द्रे वयो दधुः॥२८॥

शैशिरेण। ऋतुना। देवाः। त्रयस्त्रिꣳश इति त्रयःऽत्रिꣳशे। अमृताः। स्तुताः। सत्येन। रेवतीः। क्षत्रम्। हविः। इन्द्रे। वयः। दधुः॥२८॥

पदार्थः-**(शैशिरेण)** शिशिरेण **(ऋतुना)** **(देवाः)** दिव्यगुणकर्मस्वभावाः **(त्रयस्त्रिंशे)** वस्वादिसमूहे **(अमृताः)** स्वस्वरूपेण नित्याः **(स्तुताः)** प्रशंसिताः **(सत्येन)** **(रेवतीः)** धनवती शत्रुसेनोल्लङ्घिकाः प्रजाः **(क्षत्रम्)** धनं राज्यं वा **(हविः)** **(इन्द्रे)** **(वयः)** **(दधुः)**॥२८॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! येऽमृताः स्तुताः शैशिरेणर्त्तुना देवाः सत्येन सह त्रयस्त्रिंशे विद्वांसो रेवतीरिन्द्रे हविः क्षत्रं वयश्च दधुस्तेभ्यो भूम्यादिविद्या गृह्णीत॥२८

भावार्थः-ये पूर्वोक्तानष्टौ वसूनेकादश रुद्रान् द्वादशाऽऽदित्यान् विद्युतं यज्ञं चेमान् त्रयस्त्रिंशद् दिव्यान् पदार्थान् जानन्ति, तेऽक्षय्यं सुखमाप्नुवन्ति॥२८॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो **(अमृताः)** अपने स्वरूप से नित्य **(स्तुताः)** प्रशंसा के योग्य **(शैशिरेण, ऋतुना)** प्राप्त होने योग्य शिशिर ऋतु से **(देवाः)** दिव्य गुण-कर्म-स्वभाव वाले **(सत्येन)** सत्य के साथ **(त्रयस्त्रिंशे)** तेंतीस वसु आदि के समुदाय में विद्वान् लोग **(रेवतीः)** धनयुक्त शत्रुओं की सेनाओं को कूद के जाने वाली प्रजाओं और **(इन्द्रे)** जीव में **(हविः)** देने-लेने योग्य **(क्षत्रम्)** धन वा राज्य और **(वयः)** वाञ्छित सुख को **(दधुः)** धारण करें, उन से पृथिवी आदि की विद्याओं का ग्रहण करो॥२८॥

भावार्थः-जो लोग पीछे कहे हुए आठ वसु, एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य, बिजुली और यज्ञ इन तेंतीस दिव्य पदार्थों को जानते हैं, वे अक्षय सुख को प्राप्त होते हैं॥२८॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। अग्न्यश्वीन्द्रसरस्वत्याद्या लिङ्गोक्ता देवताः। निचृदष्टिरश्छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

होता यक्षत्सुमिधाऽग्निमिडस्पदेऽश्विनेन्द्रꣳ सरस्वतीमजो धूम्रो न गोधूमैः कुवलैर्भेषजं मधु शष्पैर्न तेजऽइन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज॥२९॥

होता। यक्षत्। सुमिधेति सुम्ऽइधा। अग्निम्। इडः। पदे। अश्विना। इन्द्रम्। सरस्वतीम्। अजः। धूम्रः। न। गोधूमैः। कुवलैः। भेषजम्। मधु। शष्पैः। न। तेजः। इन्द्रियम्। पयः। सोमः। परिस्रुतेति परिऽस्रुता। घृतम्। मधु। व्यन्तु। आज्यस्य। होतरिति होतः। यज॥२९॥

पदार्थः-(**होता**) दाता (**यक्षत्**) यजेत् संगच्छेत् (**समिधा**) इन्धनादिसाधनैः (**अग्निम्**) पावकम् (**इडस्पदे**) पृथिव्यन्नस्थाने (**अश्विना**) सूर्याचन्द्रमसौ (**इन्द्रम्**) ऐश्वर्य्यं जीवं वा (**सरस्वतीम्**) सुशिक्षितां वाचम् (**अजः**) प्राप्तव्यो मेषः (**धूम्रः**) धूम्रवर्णः (**न**) इव (**गोधूमैः**) (**कुवलैः**) कुत्सितं बलं यैस्तैर्बदरैः। अत्र कुशब्द इत्यस्माद् धातोरौणादिकः कलन् प्रत्ययः (**भेषजम्**) औषधम् (**मधु**) मधुरमुदकम् (**शष्पैः**) हिंसनैः (**न**) इव (**तेजः**) प्रागल्भ्यम् (**इन्द्रियम्**) धनम् (**पयः**) दुग्धमन्नं वा (**सोमः**) ओषधिगणः (**परिस्रुता**) परितः सर्वतः स्रुता प्राप्तेन रसेन (**घृतम्**) आज्यम् (**मधु**) क्षौद्रम् (**व्यन्तु**) प्राप्नुवन्तु (**आज्यस्य**) घृतम्। अत्र कर्मणि षष्ठी (**होतः**) (**यज**)॥२९॥

अन्वयः-हे होतर्यथा होतेडस्पदे समिधाग्निमश्विनेन्द्रं सरस्वतीमजो धूम्रो न कश्चिज्जीवो गोधूमैः कुवलैर्भेषजं यक्षत् तथा शष्पैर्न यानि तेजो मध्विन्द्रियं पयः परिस्रुता स सोमो घृतं मधु व्यन्तु, तैः सह वर्त्तमानमाज्यस्य यज॥२९॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। येऽस्य संसारस्य मध्ये साधनोपसाधनैः पृथिव्यादिविद्यां जानन्ति, ते सर्व उत्तमान् पदार्थान् प्राप्नुवन्ति॥२९॥

पदार्थः-हे (**होतः**) यज्ञ करने हारे जन! जैसे (**होता**) देने वाला (**इडस्पदे**) पृथिवी और अन्न के स्थान में (**समिधा**) इन्धनादि साधनों से (**अग्निम्**) अग्नि को (**अश्विना**) सूर्य और चन्द्रमा (**इन्द्रम्**) ऐश्वर्य वा जीव और (**सरस्वतीम्**) सुशिक्षायुक्त वाणी को (**अजः**) प्राप्त होने योग्य (**धूम्रः**) धुमैले मेढ़े के (**न**) समान कोई जीव (**गोधूमैः**) गेहूं और (**कुवलैः**) जिन से बल नष्ट हो, उन बेरों से (**भेषजम्**) औषध को (**यक्षत्**) संगत करे, वैसे (**शष्पैः**) हिंसाओं के (**न**) समान साधनों से जो (**तेजः**) प्रगल्भपन (**मधु**) मधुर जल (**इन्द्रियम्**) धन (**पयः**) दूध वा अन्न (**परिस्रुता**) सब ओर से प्राप्त हुए रस के साथ (**सोमः**)

औषधियों का समूह **(घृतम्)** घृत **(मधु)** और सहत **(व्यन्तु)** प्राप्त हों, उनके साथ **(आज्यस्य)** घी का **(यज)** होम कर॥२९॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जो लोग इस संसार में साधन और उपसाधनों से पृथिवी आदि की विद्या को जानते हैं, वे सब उत्तम पदार्थों को प्राप्त होते हैं॥२९॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। अश्व्यादयो लिङ्गोक्ता देवताः। भुरिगत्यष्टिश्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

होता॑ यक्ष॒त् तनू॒नपा॒त् सर॑स्वती॒मवि॑र्मे॒षो न भे॑ष॒जं प॒था मधु॑मता॒ भर॑न्न॒श्विनेन्द्रा॑य वी॒र्यं॒ बद॑रैरुप॒वाका॑भिर्भे॒षजं तोक्म॑भिः पय॒: सोम॑ः परि॒स्रुता॑ घृ॒तं मधु॒ व्यन्त्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑॥३०॥

होता॑। य॒क्ष॒त्। तनू॒नपा॒दिति॒ तनू॒ऽनपा॑त्। सर॑स्वतीम्। अवि॑ः। मे॒षः। न। भे॒ष॒जम्। प॒था। मधु॑म॒तेति॒ मधु॑ऽमता। भर॑न्। अ॒श्विना॑। इन्द्रा॑य। वी॒र्य॒म्। बद॑रैः। उ॒प॒वाका॑भि॒रित्यु॑प॒ऽवाका॑भिः। भे॒षजम्। तोक्म॑भि॒रिति॒ तोक्म॑ऽभिः। पय॑ः। सोम॑ः। प॒रि॒स्रु॒तेति॑ परि॒ऽस्रुता॑। घृ॒तम्। मधु॑। व्य॒न्तु॑। आज्य॑स्य। होत॑ः। यज॑॥३०॥

पदार्थः-**(होता)** आदाता **(यक्षत्)** यजेत **(तनूनपात्)** यस्तन्वा ऊनं पाति सः **(सरस्वतीम्)** बहुज्ञानवतीं वाचम् **(अविः)** **(मेषः)** **(न)** इव **(भेषजम्)** औषधम् **(पथा)** मार्गेण **(मधुमता)** बहूदकयुक्तेन **(भरन्)** धरन् **(अश्विना)** **(इन्द्राय)** ऐश्वर्याय **(वीर्यम्)** पराक्रमम् **(बदरैः)** बदर्या फलैः **(उपवाकाभिः)** उपदेशक्रियाभिः **(भेषजम्)** **(तोक्मभिः)** अपत्यैः **(पयः)** जलम् **(सोमः)** औषधिगणः **(परिस्रुता)** परितः स्रुता प्राप्तेन **(घृतम्)** **(मधु)** **(व्यन्तु)** **(आज्यस्य)** **(होतः)** हवनकर्त्तः **(यज)**॥ **३०॥**

अन्वयः-हे होतर्यथा तनूनपाद्धोता सरस्वतीमविर्मेषो न मधुमता पथा भेषजं भरन्निन्द्रायाऽश्विना वीर्यं बदरैरुपवाकाभिर्भेषजं यक्षत् तथा यानि तोक्मभिः पयः परिस्रुता सह सोमो घृतं मधु च व्यन्तु तैस्सह वर्त्तमानस्त्वमाज्यस्य यज॥३०॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। ये संगन्तारो विद्यासुशिक्षासहितां वाचं प्राप्य पथ्याहारविहारैर्वीर्यं वर्द्धयित्वा पदार्थविज्ञानं प्राप्यैश्वर्यं वर्धयन्ति, ते जगद्भूषका भवन्ति॥३०॥

पदार्थः-हे **(होतः)** हवनकर्त्ता जन! जैसे **(तनूनपात्)** देह की ऊनता को पालने अर्थात् उस को किसी प्रकार पूरी करने और **(होता)** ग्रहण करने वाला जन **(सरस्वतीम्)** बहुत ज्ञान वाली वाणी को वा **(अविः)** भेड़ और **(मेषः)** बकरा के **(न)** समान **(मधुमता)** बहुत जलयुक्त **(पथा)** मार्ग से **(भेषजम्)** औषध को **(भरन्)** धारण करता हुआ **(इन्द्राय)** ऐश्वर्य के लिए **(अश्विना)** सूर्य-चन्द्रमा और **(वीर्यम्)** पराक्रम को वा **(बदरैः)** बेर और **(उपवाकाभिः)** उपदेशरूप क्रियाओं से **(भेषजम्)** औषध को **(यक्षत्)** संगत करे, वैसे जो **(तोक्मभिः)** सन्तानों के साथ **(पयः)** जल और **(परिस्रुता)** सब ओर से प्राप्त हुए रस

के साथ **(सोमः)** औषधियों के समूह **(घृतम्)** घृत और **(मधु)** सहत **(व्यन्तु)** प्राप्त हों, उनके साथ वर्त्तमान तू **(आज्यस्य)** घी का **(यज)** हवन कर॥३०॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जो संगति करने हारे जन विद्या और उत्तम शिक्षायुक्त वाणी को प्राप्त हो के पथ्याहार-विहारों से पराक्रम बढ़ा और पदार्थों के ज्ञान को प्राप्त होके ऐश्वर्य को बढ़ाते हैं, वे जगत् के भूषक होते हैं॥३०॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। अश्व्यादयो देवताः। अतिधृतिश्छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

होता यक्षन्नराशꣳसं न नग्नहुं पतिꣳ सुरया भेषजं मेषः सरस्वती भिषग्रथो न चन्द्र्यश्विनोर्वपा इन्द्रस्य वीर्यं बदरैरुपवाकाभिर्भेषजं तोक्मभिः पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज॥३१॥

होता। यक्षत्। नराशꣳसम्। न। नग्नहुम्। पतिम्। सुरया। भेषजम्। मेषः। सरस्वती। भिषक्। रथः। न। चन्द्री। अश्विनोः। वपाः। इन्द्रस्य। वीर्यम्। बदरैः। उपवाकाभिरित्युपऽवाकाभिः। भेषजम्। तोक्मभिरिति तोक्मऽभिः। पयः। सोमः। परिस्रुतेति परिऽस्रुता। घृतम्। मधु। व्यन्तु। आज्यस्य। होतः। यज॥३१॥

पदार्थः-(होता) दाता **(यक्षत्)** यजेत् **(नराशंसम्)** यो नरैराशस्यते स्तूयते तम् **(न)** इव **(नग्नहुम्)** यो नग्नान् दुष्टान् जुहोति कारागृहे प्रक्षिपति तम्। अत्र हुधातोर्बाहुलकादौणादिको डु प्रत्ययः **(पतिम्)** स्वामिनम् **(सुरया)** उदकेन। **सुरेत्युदकनामसु पठितम्॥** निघं०१।१२॥ **(भेषजम्)** औषधम् **(मेषः)** उपदेष्टा **(सरस्वती)** विद्यासम्बन्धिनी वाक् **(भिषक्)** वैद्यः **(रथः) (न)** इव **(चन्द्री)** चन्द्रं बहुविधं सुवर्णं विद्यते यस्य **(अश्विनोः)** द्यावापृथिव्योः **(वपाः)** वपन्ति याभिः क्रियाभिस्ताः **(इन्द्रस्य)** दुष्टजनविदारकस्य सकाशात् **(वीर्यम्)** वीरेषु साधु **(बदरैः)** बदरीफलैरिव **(उपवाकाभिः)** उपगताभिर्वाग्भिः **(भेषजम्)** चिकित्सकम् **(तोक्मभिः)** अपत्यैः **(पयः)** दुग्धम् **(सोमः) (परिस्रुता)** परितः स्रुता प्राप्तेन **(घृतम्) (मधु) (व्यन्तु) (आज्यस्य) (होतः) (यज)॥३१॥**

अन्वयः-हे होतर्यथा होता नराशंसं न नग्नहुं पतिं सुरया सह वर्त्तमानं भेषजमिन्द्रस्य वीर्यं यक्षत् मेषः सरस्वती भिषग्रथो न चन्द्र्यश्विनोर्वपा बदरैरुपवाकाभिः सह भेषजं यक्षत् तथा यानि तोक्मभिः सह पयः परिस्रुता सह सोमो घृतं मधु च व्यन्तु, तैः सह वर्त्तमानस्त्वमाज्यस्य यज॥३१॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। ये निर्लज्जान् दण्डयन्ति, प्रशंसनीयान् स्तुवन्ति, जलेन सहौषधं सेवन्ते, ते बलाऽऽरोग्ये प्राप्यैश्वर्यवन्तो जायन्ते॥३१॥

पदार्थः-हे **(होतः)** हवनकर्त्ता जन! जैसे **(होता)** देने वाला **(नराशंसम्)** जो मनुष्यों से स्तुति किया जाये उसके **(न)** समान **(नग्नहुम्)** नग्न दुष्ट पुरुषों को कारागृह में डालने वाले **(पतिम्)** स्वामी वा **(सुरया)** जल के साथ **(भेषजम्)** औषध को वा **(इन्द्रस्य)** दुष्टगण का विदारण करने हारे जन के **(वीर्यम्)** शूरवीरों में उत्तम बल को **(यक्षत्)** संगत करे तथा **(मेषः)** उपदेश करने वाला **(सरस्वती)** विद्यासंबन्धिनी वाणी **(भिषक्)** वैद्य और **(रथः)** रथ के **(न)** समान **(चन्द्री)** बहुत सुवर्ण वाला जन **(अश्विनोः)** आकाश और पृथिवी के मध्य **(वपाः)** क्रियाओं को वा **(बदरैः)** बेरों के समान **(उपवाकाभिः)** समीप प्राप्त हुई वाणियों के साथ **(भेषजम्)** औषध को संगत करे, वैसे जो **(तोक्मभिः)** सन्तानों के साथ **(पयः)** दूध **(परिस्रुता)** सब ओर से प्राप्त हुए रस के साथ **(सोमः)** ओषधिगण **(घृतम्)** घी और **(मधु)** सहत **(व्यन्तु)** प्राप्त होवें, उनके साथ वर्त्तमान तू **(आज्यस्य)** घी का **(यज)** हवन कर॥३१॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जो लोग लज्जाहीन पुरुषों को दण्ड देते, स्तुति करने योग्यों की स्तुति और जल के साथ औषध का सेवन करते हैं, वे बल और नीरोगता को पाके ऐश्वर्य वाले होते हैं॥३१॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। सरस्वत्यादयो देवताः। विराडतिधृतिश्छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

होता॑ यक्षदि॒डेडि॒तऽआ॒ जु॒ह्वा॒नः सर॑स्वती॒मिन्द्रं॒ बले॑न व॒र्धय॑न्नृष॒भेण॒ गवे॑न्द्रि॒यम॒श्विनेन्द्रा॑य भे॒षजं॒ यवैः॑ क॒र्कन्धु॑भि॒र्मधु॑ ला॒जैर्न मास॑रं॒ पयः॒ सोमः॑ परि॒स्रुता॑ घृ॒तं मधु॒ व्यन्त्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑॥३२॥

होता॑। य॒क्ष॒त्। इ॒डा। ई॒डि॒तः। आ॒जु॒ह्वा॒न इत्या॒ऽजु॒ह्वा॒नः। सर॑स्वतीम्। इन्द्र॑म्। बले॑न। व॒र्धय॑न्। ऋ॒ष॒भेण॑। गवा॑। इ॒न्द्रि॒यम्। अ॒श्विना॑। इन्द्रा॑य। भे॒षजम्। यवैः॑। क॒र्कन्धु॑भि॒रिति॑ क॒र्कन्धु॑ऽभिः। मधु॑। ला॒जैः। न। मास॑रम्। पयः॑। सोमः॑। प॒रि॒स्रुतेति॑ परि॒ऽस्रुता॑। घृ॒तम्। मधु॑। व्य॒न्तु॒। आज्य॑स्य। होतः॑। यज॑॥३२॥

पदार्थः-**(होता)** प्रशंसितुं योग्यः **(यक्षत्)** यजेत् **(इडा)** प्रशंसितया वाचा **(ईडितः)** प्रशंसितः **(आजुह्वानः)** सत्कारेणाहूतः **(सरस्वतीम्)** वाचम् **(इन्द्रम्)** ऐश्वर्यम् **(बलेन)** **(वर्द्धयन्)** **(ऋषभेण)** मन्तुं योग्येन **(गवा)** **(इन्द्रियम्)** धनम् **(अश्विना)** **(इन्द्राय)** ऐश्वर्याय **(भेषजम्)** **(यवैः)** यवादिभिरन्नैः **(कर्कन्धुभिः)** ये कर्कं बदरक्रियां दधति तैः **(मधु)** **(लाजैः)** प्रस्फुलितैरन्नैः **(न)** इव **(मासरम्)** ओदनम् **(पयः)** रसः **(सोमः)** ओषधिगणः **(परिस्रुता)** सर्वतः प्राप्तेन रसेन **(घृतम्)** **(मधु)** **(व्यन्तु)** **(आज्यस्य)** **(होतः)** **(यज)**॥३२॥

अन्वयः-हे होतर्य इडेडित आजुह्वानो होता बलेन सरस्वतीमिन्द्रमृषभेण गवेन्द्रियमश्विना यवैरिन्द्राय भेषजं वर्द्धयन् कर्कन्धुभिर्मधु लाजैर्न मासरं यक्षत् तथा यानि परिस्रुता सह सोमः पयो घृतं मधु व्यन्तु तैस्सह वर्त्तमानस्त्वमाज्यस्य यज॥३२॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलुप्तोमलङ्कारौ। मनुष्या ब्रह्मचर्य्येण शरीरात्मबलं विद्वत्सेवया विद्यापुरुषार्थेनैश्वर्य्यं प्राप्य पथ्यौषधसेवनाभ्यां रोगान् हत्वारोग्यमाप्नुयुः॥३२।

पदार्थः-**(होतः)** हवनकर्त्ता जन! जैसे **(इडा)** स्तुति करने योग्य वाणी से **(ईडितः)** प्रशंसायुक्त **(आजुह्वानः)** सत्कार से आजुह्वान किया गया **(होता)** प्रशंसा करने योग्य मनुष्य **(बलेन)** बल से **(सरस्वतीम्)** वाणी और **(इन्द्रम्)** ऐश्वर्य को **(ऋषभेण)** चलने योग्य उत्तम **(गवा)** बैल से **(इन्द्रियम्)** धन तथा **(अश्विना)** आकाश और पृथिवी को **(यवैः)** यव आदि अन्नों से **(इन्द्राय)** ऐश्वर्य के लिये **(भेषजम्)** औषध को **(वर्द्धयन्)** बढ़ाता हुआ **(कर्कन्धुभिः)** बेर की क्रिया को धारण करने वालों से **(मधु)** मीठे **(लाजैः)** प्रफुल्लित अन्नों के **(न)** समान **(मासरम्)** भात को **(यक्षत्)** संगत करे, वैसे जो **(परिस्रुता)** सब ओर से प्राप्त हुए रस के साथ **(सोमः)** ओषधिसमूह **(पयः)** रस **(घृतम्)** घी **(मधु)** और सहत **(व्यन्तु)** प्राप्त होवें, उनके साथ वर्त्तमान तू **(आज्यस्य)** घी का **(यज)** होम कर॥ **३२॥**

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुतोपमालङ्कार हैं। मनुष्य ब्रह्मचर्य्य से शरीर और आत्मा के बल को तथा विद्वानों की सेवा विद्या और पुरुषार्थ से ऐश्वर्य को प्राप्त हो पथ्य और औषध के सेवन से रोगों का विनाश कर नीरोगता को प्राप्त हों॥३२॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। अश्व्यादयो देवताः। निचृदष्टिश्छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

होता॑ यक्षद् ब॒र्हिरूर्ण॑म्रदा भि॒षङ् नास॑त्या भि॒षजा॒श्विनाश्वा॒ शिशु॑मती भि॒षग्धे॒नुः सर॑स्वती भि॒षग्दु॒हऽइन्द्रा॑य भेष॒जं पय॒ः सोम॑ः परि॒स्रुता घृ॒तं मधु॒ व्यन्त्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑॥३३॥

होता॑। य॒क्ष॒त्। ब॒र्हिः। ऊर्ण॑म्रदा॒ इत्यूर्ण॑ऽम्रदाः। भि॒षक्। ना॑सत्या। भि॒षजा॑। अ॒श्विना॑। अश्वा॑। शिशु॑म॒तीति॒ शिशु॒ऽमती। भि॒षक्। धे॒नुः। सर॑स्वती। भि॒षक्। दु॒हे। इन्द्रा॑य। भे॒ष॒जम्। पय॑ः। सोम॑ः। प॒रि॒स्रु॒तेति॑ परि॒ऽस्रु॒ता॑। घृ॒तम्। मधु॑। व्यन्तु॑। आज्य॑स्य। होत॑ः। यज॑॥३३॥

पदार्थः-**(होता)** दाता **(यक्षत्)** **(बर्हिः)** अन्तरिक्षम् **(ऊर्णम्रदाः)** य ऊर्णानाच्छादकानि मृद्नन्ति ते **(भिषक्)** वैद्यः **(नासत्या)** सत्यकर्त्तारौ **(भिषजा)** सद्वैद्यौ **(अश्विना)** वैद्यकविद्याव्यापिनौ **(अश्वा)** आशुगमनशीला वडवा **(शिशुमती)** प्रशस्ताः शिशवो विद्यन्ते यस्याः सा **(भिषक्)** रोगनिवारका **(धेनुः)** दुग्धदात्री गौः **(सरस्वती)** सरो विज्ञानं विद्यते यस्यां सा **(भिषक्)** वैद्यः **(दुहे)** दोहनाय **(इन्द्राय)** जीवाय

(भेषजम्) उदकम्। **भेषजमित्युदकनामसु पठितम्॥** निघं०१।१२॥ **(पय:)** दुग्धम्। **(सोम:)** ओषधिगण: **(परिस्रुता) (घृतम्) (मधु) (व्यन्तु) (आज्यस्य) (होत:) (यज)॥ ३३॥**

अन्वय:-हे होतर्यथा होतोर्णम्रदा भिषक् शिशुमत्यश्वा च दुहे बर्हिर्यक्षत्। नासत्याऽश्विना भिषजा यजेतां भिषग्धेनु: सरस्वती भिषगिन्द्राय यक्षत् तथा यानि परिस्रुता भेषजं पय: सोमो घृतं मधु व्यन्तु तै: सह वर्त्तमानस्त्वमाज्यस्य यज॥ ३३॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यदि मनुष्या विद्यासंगतिभ्यां सर्वेभ्य: पदार्थेभ्य उपकारान् गृह्णीयुस्तर्हि वाय्वग्निवत् सर्वविद्यासुखानि व्याप्नुयु:॥ ३३॥

पदार्थ:-हे **(होत:)** हवन करनेहारे जन! जैसे **(होता)** देने हारा **(ऊर्णम्रदा:)** ढांपने हारों को मर्दन करने वाले जन **(भिषक्)** वैद्य **(शिशुमती)** और प्रशंसित बालकों वाली **(अश्वा)** शीघ्र चलने वाली घोड़ी **(दुहे)** परिपूर्ण करने के लिए **(बर्हि:)** अन्तरिक्ष को **(यक्षत्)** संगत करें वा जैसे **(नासत्या)** सत्यव्यवहार करने हारे **(अश्विना)** वैद्यविद्या में व्याप्त **(भिषजा)** उत्तम वैद्य मेल करें वा जैसे **(भिषक्)** रोग मिटाने और **(धेनु:)** दुग्ध देने वाली गाय वा **(सरस्वती)** उत्तम विज्ञान वाली वाणी **(भिषक्)** सामान्य वैद्य **(इन्द्राय)** जीव के लिए मेल करें, वैसे जो **(परिस्रुता)** प्राप्त हुए रस के साथ **(भेषजम्)** जल **(पय:)** दूध **(सोम:)** ओषधिगण **(घृतम्)** घी **(मधु)** सहत **(व्यन्तु)** प्राप्त हों, उन के साथ वर्त्तमान तू **(आज्यस्य)** घी का **(यज)** हवन कर॥ ३३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य विद्या और संगति से सब पदार्थों से उपकार ग्रहण करें, तो वायु और अग्नि के समान सब विद्याओं के सुखों को व्याप्त होवें॥ ३३॥

होतेत्यस्त्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषि:। अश्व्यादयो देवता:। निचृदतिधृतिश्छन्द:। षड्ज: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

होता॑ यक्ष॒द् दुरो॒ दिश॑: कव॒ष्यो॒ न व्यच॑स्वतीर॒श्विभ्या॒ं न दुरो॒ दिश॒ऽइन्द्रो॒ न रोद॑सी॒ दुघे॑ दु॒हे धे॒नु: सर॑स्वत्य॒श्विनेन्द्रा॑य भेष॒जꣳ शु॒क्रं न ज्योति॑रिन्द्रि॒यं पय॒: सोम॑: परि॒स्रुता॑ घृ॒तं मधु॒ व्यन्त्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑॥ ३४॥

होता॑। य॒क्ष॒त्। दुर॑:। दिश॑:। क॒व॒ष्य॒:। न। व्यच॑स्वती:। अ॒श्विभ्या॒मित्य॒श्विऽभ्या॑म्। न। दुर॑:। दिश॑:। इन्द्र॑:। न। रोद॑सी॒ऽइति॒ रोद॑सी। दु॒घ॒ऽइति॒ दुघे॑। दु॒हे। धे॒नु:। सर॑स्वती। अ॒श्विना॑। इन्द्रा॑य। भे॒ष॒जम्। शु॒क्रम्। न। ज्योति॑:। इ॒न्द्रि॒यम्। पय॑:। सोम॑:। प॒रि॒स्रु॒तेति॑ परि॒ऽस्रु॒ता॑। घृ॒तम्। मधु॑। व्य॒न्तु॒। आज्य॑स्य। होत॑:। यज॑॥ ३४॥

पदार्थ:-(होता) आदाता **(यक्षत्) (दुर:)** द्वाराणि **(दिश:) (कवष्य:)** सच्छिद्रा: **(न)** इव **(व्यचस्वती:) (अश्विभ्याम्)** इन्द्राग्निभ्याम् **(न)** इव **(दुर:)** द्वाराणि **(दिश:) (इन्द्र:)** विद्युत् **(न)** इव

(रोदसी) द्यावापृथिव्यौ **(दुघे)** अत्र वा छन्दसीति केवलादपि कप् प्रत्ययः **(दुहे)** दोहनाय प्रपूरणाय **(धेनुः)** धेनुरिव **(सरस्वती)** विज्ञानवती वाक् **(अश्विना)** सूर्याचन्द्रमसौ **(इन्द्राय)** जीवाय **(भेषजम्)** औषधम् **(शुक्रम्)** वीर्य्यकरमुदकम्। **शुक्रमित्युदकनामसु पठितम्॥** निघं०१।१२॥ **(न)** इव **(ज्योतिः)** प्रकाशकम् **(इन्द्रियम्)** मन आदि **(पयः)** दुग्धम् **(सोमः)** ओषधिगणः **(परिस्रुता)** **(घृतम्)** **(मधु)** **(व्यन्तु)** **(आज्यस्य)** **(होतः)** दातः **(यज)॥ ३४॥**

अन्वयः-हे होतर्यथा होता कवष्यो न दुरो व्यचस्वतीर्दिशोऽश्विभ्यां न दुरो दिश इन्द्रो न दुघे रोदसी धेनुः सरस्वतीन्द्रायाश्विना शुक्रं न भेषजं ज्योतिरिन्द्रियं दुहे यक्षत् तथा यानि परिस्रुता पयः सोमो घृतं मधु व्यन्तु तैः सह वर्त्तमानस्त्वमाज्यस्य यज॥ ३४॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। ये मनुष्याः सर्वदिग्द्वाराणि सर्वर्तुसुखकराणि गृहाणि निर्मिमीरंस्ते पूर्णसुखं प्राप्नुयुः। नैतेषामाभ्युदयिकसुखन्यूनता कदाचिज्जायेत॥ ३४॥

पदार्थः-हे **(होतः)** देने हारे जन! जैसे **(होता)** लेने हारा **(कवष्यः)** छिद्रसहित वस्तुओं के **(न)** समान **(दुरः)** द्वारों और **(व्यचस्वतीः)** व्याप्त होने वाली **(दिशः)** दिशाओं को वा **(अश्विभ्याम्)** इन्द्र और अग्नि से जैसे **(न)** वैसे **(दुरः)** द्वारों और **(दिशः)** दिशाओं को वा **(इन्द्रः)** बिजुली के **(न)** समान **(दुघे)** परिपूर्णता करने वाले **(रोदसी)** आकाश और पृथिवी के और **(धेनुः)** गाय के समान **(सरस्वती)** विज्ञान वाली वाणी **(इन्द्राय)** जीव के लिए **(अश्विना)** सूर्य और चन्द्रमा **(शुक्रम्)** वीर्य करने वाले जल के **(न)** समान **(भेषजम्)** औषध तथा **(ज्योतिः)** प्रकाश करने हारे **(इन्द्रियम्)** मन आदि को **(दुहे)** परिपूर्णता के लिए **(यक्षत्)** संगत करे, वैसे जो **(परिस्रुता)** सब ओर से प्राप्त हुए रस के साथ **(पयः)** दूध **(सोमः)** औषधियों का समूह **(घृतम्)** घी **(मधु)** और सहत **(व्यन्तु)** प्राप्त होवें, उनके साथ वर्त्तमान तू **(आज्यस्य)** घी का **(यज)** हवन किया कर॥ ३४॥

भावार्थः-इस में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जो मनुष्य सब दिशाओं के द्वारों वाले सब ऋतुओं में सुखकारी घर बनावें, वे पूर्ण सुख को प्राप्त होवें। इनके सब प्रकार के उदय के सुख की न्यूनता कभी नहीं होवे॥ ३४॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। अश्व्यादयो देवताः। भुरिगतिधृतिश्छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

होता॑ यक्षत् सु॒पेश॑सो॒षे नक्तं॒ दिवा॒श्विना॒ सम॑ञ्जाते॒ सर॑स्वत्या॒ त्विषि॒मिन्द्रे॒ न भे॑ष॒जꣳ श्ये॒नो न रज॑सा हृ॒दा श्रि॒या न मास॑रं॒ पय॒: सोम॑: परि॒स्रुता घृ॒तं मधु॒ व्यन्त्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑॥ ३५॥

होता। यक्षत्। सुपेशसेति सुऽपेशसा। उषेऽइत्युषे। नक्तम्। दिवा। अश्विना। सम्। अञ्जातेऽइत्यञ्जाते। सरस्वत्या। त्विषिम्। इन्द्रे। न। भेषजम्। श्येनः। न। रजसा। हृदा। श्रिया। न। मासरम्। पयः। सोमः। परिस्रुतेति परिऽस्रुता। घृतम्। मधु। व्यन्तु। आज्यस्य। होतः। यज॥३५॥

पदार्थः-(**होता**) आदाता (**यक्षत्**) यजेत् (**सुपेशसा**) सुखरूपे स्त्रियौ (**उषे**) कामं दहन्त्यौ (**नक्तम्**) (**दिवा**) (**अश्विना**) व्याप्तिमन्तौ सूर्याचन्द्रमसौ (**समञ्जाते**) सम्यक् प्रकाशयतः (**सरस्वत्या**) विज्ञानयुक्तया वाचा (**त्विषिम्**) प्रदीप्तिम् (**इन्द्रे**) परमैश्वर्यवति प्राणिनि (**न**) इव (**भेषजम्**) जलम् (**श्येनः**) श्यायति विज्ञापयतीति श्येनो विद्वान् (**न**) इव (**रजसा**) लोकैः सह (**हृदा**) हृदयेन (**श्रिया**) लक्ष्म्या शोभया वा (**न**) इव (**मासरम्**) ओदनम्। उपलक्षणमेतत् तेन सुसंस्कृतमन्नमात्रं गृह्यते (**पयः**) सर्वौषधरसः (**सोमः**) सर्वौषधिगणः (**परिस्रुता**) सर्वतः प्राप्तेन रसेन (**घृतम्**) उदकम् (**मधु**) क्षौद्रम् (**व्यन्तु**) (**आज्यस्य**) (**होतः**) (**यज**)॥३५॥

अन्वयः-होतर्यथा सुपेशसोषे नक्तं दिवाऽश्विना सरस्वत्येन्द्रे त्विषिं भेषजं समञ्जाते न च रजसा सह श्येनो न होता श्रिया न हृदा मासरं यक्षत् तथा यानि परिस्रुता पयः सोमो घृतं व्यन्तु तैः सह वर्त्तमानस्त्वमाज्यस्य यज॥३५॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। हे मनुष्याः! यथाहर्निशं सूर्याचन्द्रमसौ सर्वं प्रकाशयतो, रूपयौवनसंपन्नाः पत्न्यः पतिं परिचरन्ति च, यथा वा पाकविद्याविद्विद्वान् पाककर्मोपदिशति, तथा सर्वप्रकाशं सर्वपरिचरणं च कुरुत भोजनपदार्थांश्चोत्तमतया निर्मिमीध्वम्॥३५॥

पदार्थः-हे (**होतः**) देनेहारे जन! जैसे (**सुपेशसा**) सुन्दर स्वरूपवती (**उषे**) काम का दाह करने वाली स्त्रियां (**नक्तम्**) रात्रि और (**दिवा**) दिन में (**अश्विना**) व्याप्त होने वाले सूर्य और चन्द्रमा (**सरस्वत्या**) विज्ञानयुक्त वाणी से (**इन्द्रे**) परमैश्वर्यवान् प्राणी में (**त्विषिम्**) प्रदीप्ति और (**भेषजम्**) जल को (**समञ्जाते**) अच्छे प्रकार प्रकट करते हैं, उन के (**न**) समान और (**रजसा**) लोकों के साथ वर्त्तमान (**श्येनः**) विशेष ज्ञान कराने वाले विद्वान् के (**न**) समान (**होता**) लेने हारा (**श्रिया**) लक्ष्मी वा शोभा के (**न**) समान (**हृदा**) मन से (**मासरम्**) भात वा अच्छे संस्कार किये हुए भोजन के पदार्थों को (**यक्षत्**) संगत करे, वैसे जो (**परिस्रुता**) सब ओर से प्राप्त हुए रस (**पयः**) सब औषधि का रस (**सोमः**) सब ओषधिसमूह (**घृतम्**) जल (**मधु**) सहत (**व्यन्तु**) प्राप्त होवें, उनके साथ वर्त्तमान तू (**आज्यस्य**) घी का (**यज**) हवन कर॥३५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। हे मनुष्यो! जैसे रात-दिन सूर्य और चन्द्रमा सब को प्रकाशित करते और सुन्दर रूप यौवन सम्पन्न स्वधर्मपत्नी अपने पति की सेवा करती वा जैसे पाकविद्या जानने वाला विद्वान् पाककर्म का उपदेश करता है, वैसे सब का प्रकाश और सब कामों का सेवन करो और भोजन के पदार्थों को उत्तमता से बनाओ॥३५॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषि:। अश्व्यादयो देवता:। निचृदष्टिश्छन्द:। मध्यम: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

होता॑ यक्ष॒द् दैव्या॒ होता॑रा भि॒षजा॒श्विनेन्द्रं॒ न जागृ॑वि॒ दिवा॒ नक्तं॒ न भे॑ष॒जैः शूष॒ꣳ सर॑स्वती भि॒षक् सीसे॑न दु॒हऽइन्द्रियं पय॒: सोम॑: परि॒स्रुता॑ घृ॒तं मधु॒ व्यन्त्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑॥३६॥

होता॑। य॒क्षत्। दैव्या॑। होता॑रा। भि॒षजा॑। अ॒श्विना॑। इन्द्र॑म्। न। जागृ॑वि। दिवा॑। नक्त॑म्। न। भे॒ष॒जैः। शूष॑म्। सर॑स्वती। भि॒षक्। सीसे॑न। दु॒हे। इ॒न्द्रि॒यम्। पय॑:। सोम॑:। प॒रि॒स्रुतेति॑ परि॒ऽस्रुता॑। घृ॒तम्। मधु॑। व्यन्तु॑। आज्य॑स्य। होत॑:। यज॑॥३६॥

पदार्थ:-(**होता**) दाता (**यक्षत्**) (**दैव्या**) देवेषु लब्धौ (**होतारा**) आदातारौ (**भिषजा**) वैद्यवद् रोगापहारकौ (**अश्विना**) अग्निवायू (**इन्द्रम्**) विद्युतम् (**न**) इव (**जागृवि**) जागरूका कार्यसाधनेऽप्रमत्ता। अत्र **सुपां सुलुग्** [अ०७.१.३९] इति सोर्लोप:। (**दिवा**) (**नक्तम्**) (**न**) (**भेषजै:**) जलै: (**शूषम्**) बलम्। **शूषमिति बलनामसु पठितम्॥** निघं०२।९॥ (**सरस्वती**) वैद्यकशास्त्रवित् प्रशस्तज्ञानवती स्त्री (**भिषक्**) वैद्य: (**सीसेन**) धनुर्विशेषेण (**दुहे**) दुग्धे। लट्प्रयोग:। **लोपस्त०** [अ०७.१.४२] इति तलोप:। (**इन्द्रियम्**) धनम् (**पय:**) (**सोम:**) (**परिस्रुता**) (**घृतम्**) (**मधु**) (**व्यन्तु**) (**आज्यस्य**) (**होत:**) (**यज**)॥**३६॥**

अन्वय:-हे होतर्यथा होता दैव्या होतारा भिषजाश्विनेन्द्रं न यक्षत् दिवा नक्तं जागृवि सरस्वती भिषग् भेषजै: सीसेन शूषं न इन्द्रियं दुहे तथा यानि परिस्रुता पय: सोमो घृतं मधु व्यन्तु तै: सह वर्त्तमानस्त्वमाज्यस्य यज॥३६॥

भावार्थ:-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। हे विद्वांस:! यथा सद्वैद्या: स्त्रिय: कार्य्याणि साधयितुमहर्निशं प्रयतन्ते तथा वा वैद्या रोगान्निवार्य्य शरीरबलं वर्धयन्ति तथा वर्त्तित्वा सर्वैरानन्दितव्यम्॥३६॥

पदार्थ:-हे (**होत:**) देने हारे जन! जैसे (**होता**) लेनेहारा (**दैव्या**) दिव्य गुण वालों में प्राप्त (**होतारा**) ग्रहण करने और (**भिषजा**) वैद्य के समान रोग मिटाने वाले (**अश्विना**) अग्नि और वायु को (**इन्द्रम्**) बिजुली के (**न**) समान (**यक्षत्**) संगत करे वा (**दिवा**) दिन और (**नक्तम्**) रात्रि में (**जागृवि**) जागती अर्थात् काम के सिद्ध करने में अतिचैतन्य (**सरस्वती**) वैद्यकशास्त्र जानने वाली उत्तम ज्ञानवती स्त्री और (**भिषक्**) वैद्य (**भेषजै:**) जलों और (**सीसेन**) धनुष के विशेष व्यवहार से (**शूषम्**) बल के (**न**) समान (**इन्द्रियम्**) धन को (**दुहे**) परिपूर्ण करते हैं, वैसे जो (**परिस्रुता**) सब ओर से प्राप्त हुए रस के साथ (**पय:**) दुग्ध (**सोम:**) ओषधिगण (**घृतम्**) घी (**मधु**) सहत (**व्यन्तु**) प्राप्त होवें, उनके साथ वर्त्तमान (**आज्यस्य**) घी का (**यज**) हवन कर॥३६॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। हे विद्वान् लोगो! जैसे अच्छी वैद्यक-विद्या पढ़ी हुई स्त्री काम सिद्ध करने को दिन-रात उत्तम यत्न करती हैं वा जैसे वैद्य लोग रोगों को मिटाके शरीर का बल बढ़ाते हैं, वैसे रहके सब को आनन्दयुक्त होना चाहिए॥३६॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। अश्व्यादयो देवताः। धृतिश्छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

होता॑ यक्षत् ति॒स्रो दे॒वीर्न भे॑ष॒जं त्रय॑स्त्रि॒धात॑वो॒ऽपसो॑ रू॒पमिन्द्रे॑ हिर॒ण्यय॑म॒श्विनेडा॒ न भार॑ती वा॒चा सर॑स्वती॒ मह॒ऽइन्द्रा॑य दु॒हऽइ॑न्द्रि॒यं पय॒ः सोम॑ः परि॒स्रुता॑ घृ॒तं मधु॒ व्यन्त्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑॥ ३७॥

होता॑। य॒क्षत्। ति॒स्रः। दे॒वीः। न। भे॒ष॒जम्। त्रय॑ः। त्रि॒धात॑व॒ इति॑ त्रि॒ऽधात॑वः। अ॒पस॑ः। रू॒पम्। इन्द्रे॑। हि॒र॒ण्यय॑म्। अ॒श्विना॑। इडा॑। न। भार॑ती। वा॒चा। सर॑स्वती। मह॑ः। इन्द्रा॑य। दु॒हे। इ॒न्द्रि॒यम्। पय॑ः। सोम॑ः। प॒रि॒स्रुतेति॑ परि॒ऽस्रुता॑। घृ॒तम्। मधु॑। व्यन्तु॑। आज्य॑स्य। होत॑ः। यज॑॥ ३७॥

पदार्थः-(**होता**) विद्यादाता (**यक्षत्**) संगमयेत् (**तिस्रः**) (**देवीः**) देदीप्यमाना नीतीः (**न**) इव (**भेषजम्**) औषधम् (**त्रयः**) तदस्मद्युष्मत्पद्वाच्याः (**त्रिधातवः**) दधति सर्वान् विषयानिति धातवस्त्रयो धातवो येषान्ते जीवाः (**अपसः**) कर्मवन्तः। अत्र विन् प्रत्ययस्य लुक् (**रूपम्**) चक्षुर्विषयम् (**इन्द्रे**) विद्युति (**हिरण्ययम्**) (**अश्विना**) सूर्याचन्द्रमसौ (**इडा**) स्तोतुमर्हा (**न**) इव (**भारती**) धारणावती प्रज्ञा (**वाचा**) विद्यासुशिक्षायुक्तवाण्या (**सरस्वती**) परमविदुषी स्त्री (**महः**) महत् (**इन्द्राय**) ऐश्वर्य्यवते (**दुहे**) प्रपूरयति (**इन्द्रियम्**) धनम् (**पयः**) रसः (**सोमः**) ओषधिगणः (**परिस्रुता**) सर्वतः प्राप्तेन (**घृतम्**) (**मधु**) (**व्यन्तु**) (**आज्यस्य**) (**होतः**) (**यज**)॥ ३७॥

अन्वयः-हे होतर्यथा होता तिस्रो देवीर्न भेषजं यक्षद् यथाऽपसस्त्रिधातवस्त्रयो हिरण्ययं रूपमिन्द्रे यजेरन्। अश्विनेडा भारती न सरस्वती वाचेन्द्राय मह इन्द्रियं दुहे तथा यानि परिस्रुता पयस्सोमो घृतं मधु व्यन्तु तैः सह वर्त्तमानस्त्वमाज्यस्य यज॥३७॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। हे मनुष्याः! यथाऽस्थिमज्जवीर्य्याणि शरीरे कर्मसाधनानि सन्ति, यथा च सूर्यादयो वाणी च सर्वज्ञापकाः सन्ति तथा भूत्वा सृष्टिविद्यां प्राप्त श्रीमन्तो भवत॥३७॥

पदार्थः-हे (**होतः**) विद्या देने वाले विद्वज्जन! जैसे (**होता**) विद्या लेने वाला (**तिस्रः**) तीन (**देवीः**) देदीप्यमान नीतियों के (**न**) समान (**भेषजम्**) औषध को (**यक्षत्**) अच्छे प्रकार प्राप्त करें वा जैसे (**अपसः**) कर्मवान् (**त्रिधातवः, त्रयः**) सब विषयों को धारण करने वाले सत्व, रजस्, तम गुण जिनमें विद्यमान वे

तीन अर्थात् अस्मद्, युष्मद् और तद् पदवाच्य जीव (**हिरण्ययम्**) ज्योतिर्मय (**रूपम्**) नेत्र के विषय रूप को (**इन्द्रे**) बिजुली में प्राप्त करें वा (**अश्विना**) सूर्य और चन्द्रमा तथा (**इडा**) स्तुति करने योग्य (**भारती**) धारणा वाली बुद्धि के (**न**) समान (**सरस्वती**) अत्यन्त विदुषी (**वाचा**) विद्या और सुशिक्षायुक्त वाणी से (**इन्द्राय**) ऐश्वर्य्यवान् के लिए (**महः**) अत्यन्त (**इन्द्रियम्**) धन की (**दुहे**) परिपूर्णता करती वैसे जो (**परिस्रुता**) सब ओर प्राप्त हुए रस के साथ (**पयः**) दूध (**सोमः**) औषधिसमूह (**घृतम्**) घी (**मधु**) सहत (**व्यन्तु**) प्राप्त होवें, उनके साथ वर्त्तमान तू (**आज्यस्य**) घी का (**यज**) हवन कर॥३७॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। हे मनुष्यो! जैसे हाड, मज्जा और वीर्य शरीर में कार्य के साधन हैं वा जैसे सूर्य आदि और वाणी सब को जनाने वाले हैं, वैसे होके और सृष्टि की विद्या को प्राप्त होके लक्ष्मी वाले होओ॥३७॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। अश्व्यादयो देवताः। भुरिक्कृतिश्छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

होता यक्षत्सुरेतसमृषभं नर्यापसं त्वष्टारमिन्द्रमश्विना भिषजं न सरस्वतीमोजो न जूतिरिन्द्रियं वृको न रभसो भिषग्यशः सुरया भेषजꣳ श्रिया न मासरं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज॥३८॥

होता। यक्षत्। सुरेतसमिति सुऽरेतसम्। ऋषभम्। नर्यापसमिति नर्यऽअपसम्। त्वष्टारम्। इन्द्रम्। अश्विना। भिषजम्। न। सरस्वतीम्। ओजः। न। जूतिः। इन्द्रियम्। वृकः। न। रभसः। भिषक्। यशः। सुरया। भेषजम्। श्रिया। न। मासरम्। पयः। सोमः। परिस्रुतेति परिऽस्रुता। घृतम्। मधु। व्यन्तु। आज्यस्य। होतः। यज॥३८॥

पदार्थः-(**होता**) आदाता (**यक्षत्**) प्राप्नुयात् (**सुरेतसम्**) सुष्ठु वीर्यम् (**ऋषभम्**) बलीवर्दम् (**नर्यापसम्**) नृषु साध्वपः कर्म यस्य तम् (**त्वष्टारम्**) दुःखच्छेत्तारम् (**इन्द्रम्**) परमैश्वर्यवन्तम् (**अश्विना**) वायुविद्युतौ (**भिषजम्**) वैद्यवरम् (**न**) इव (**सरस्वतीम्**) बहुविज्ञानयुक्तां वाचम् (**ओजः**) बलम् (**न**) इव (**जूतिः**) वेगः (**इन्द्रियम्**) मनः (**वृकः**) वज्रः। **वृक इति वज्रनामसु पठितम्॥** निघं०२।२०॥ (**न**) (**रभसः**) वेगम्। द्वितीयार्थे प्रथमा। (**भिषक्**) वैद्यः (**यशः**) धनमन्नं वा (**सुरया**) जलेन (**भेषजम्**) औषधम् (**श्रिया**) लक्ष्म्या (**न**) इव (**मासरम्**) संस्कृतभोज्यमन्नम् (**पयः**) पातुं योग्यम् (**सोमः**) ऐश्वर्यम्। (**परिस्रुता**) सर्वतोभिगतेन पुरुषार्थेन (**घृतम्**) (**मधु**) (**व्यन्तु**) (**आज्यस्य**) (**होतः**) (**यज**)॥३८॥

अन्वयः-हे होतस्त्वं यथा होता सुरेतसमृषभं नर्यापसं त्वष्टारमिन्द्रमश्विना भिषजं न सरस्वतीमोजो न यक्षद् भिषग् वृको न जूतिरिन्द्रियं रभसो यशः सुरया भेषजं श्रिया न क्रियया मासरं यक्षत् तया परिस्रुता पयः सोमो घृतं मधु च व्यन्तु तैः सह वर्त्तमानस्त्वमाज्यस्य यज॥३८॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। यथा विद्वांसो ब्रह्मचर्येण धर्माचरणेन विद्यया सत्सङ्गादिना चाऽखिलं सुखं प्राप्नुवन्ति, तथा मनुष्यैः पुरुषार्थेन लक्ष्मी प्राप्तव्या॥३८॥

पदार्थः-हे **(होतः)** लेने हारे जैसे **(होता)** ग्रहण करने वाला **(सुरेतसम्)** अच्छे पराक्रमी **(ऋषभम्)** बैल और **(नर्यापसम्)** मनुष्यों में अच्छे कर्म करने तथा **(त्वष्टारम्)** दु:ख काटने वाले **(इन्द्रम्)** परमैश्वर्ययुक्त जन को **(अश्विना)** वायु और बिजुली वा **(भिषजम्)** उत्तम वैद्य के **(न)** समान **(सरस्वतीम्)** बहुत विज्ञानयुक्त वाणी को **(ओजः)** बल के **(न)** समान **(यक्षत्)** प्राप्त करे **(भिषक्)** वैद्य **(वृकः)** वज्र के **(न)** समान **(जूतिः)** वेग **(इन्द्रियम्)** मन **(रभसः)** वेग **(यशः)** धन वा अन्न को **(सुरया)** जल से **(भेषजम्)** औषध को **(श्रिया)** धन के **(न)** समान क्रिया से **(मासरम्)** अच्छे पके हुए अन्न को प्राप्त करें, वैसे **(परिस्रुता)** सब ओर से प्राप्त पुरुषार्थ से **(पयः)** पीने योग्य रस और **(सोमः)** ऐश्वर्य **(घृतम्)** घी और **(मधु)** सहत **(व्यन्तु)** प्राप्त होवें, उनके साथ वर्त्तमान तू **(आज्यस्य)** घी का **(यज)** हवन कर॥३८॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे विद्वान् लोग ब्रह्मचर्य, धर्म के आचरण, विद्या और सत्संगति आदि से सब सुख को प्राप्त होते हैं, वैसे मनुष्यों को चाहिये कि पुरुषार्थ से लक्ष्मी को प्राप्त होवें॥३८॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। अश्व्यादयो देवताः। निचृदत्यष्टिश्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

होता॑ यक्ष॒द् व॒न॒स्पति॑ꣳ शमि॒तार॑ꣳ श॒तक्र॑तुं भी॒मं न म॒न्युꣳ राजा॑नं व्या॒घ्रं नम॑सा॒श्विना॒ भाम॒ꣳ सर॑स्वती भि॒षगिन्द्रा॑य दुहऽइन्द्रि॒यं पय॒ः सोम॑ः परि॒स्रुता॑ घृ॒तं मधु॒ व्यन्त्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑॥३९॥

होता॑। य॒क्ष॒त्। व॒न॒स्पति॑म्। श॒मि॒तार॑म्। श॒तक्र॑तु॒मिति॑ श॒तऽक्र॑तुम्। भी॒मम्। न। म॒न्युम्। राजा॑नम्। व्या॒घ्रम्। नम॑सा। अ॒श्विना॑। भाम॑म्। सर॑स्वती। भि॒षक्। इन्द्रा॑य। दु॒हे। इ॒न्द्रि॒यम्। पय॑ः। सोम॑ः। प॒रि॒स्रु॒तेति॑ परि॒ऽस्रु॒ता॑। घृ॒तम्। मधु॑। व्यन्तु॑। आज्य॑स्य। होत॑ः। यज॑॥३९॥

पदार्थः-**(होता)** आदाता **(यक्षत्)** **(वनस्पतिम्)** किरणानां पालकम् **(शमितारम्)** शान्तिप्रदम् **(शतक्रतुम्)** असंख्यप्रज्ञं बहुकर्माणं वा **(भीमम्)** भयंकरम् **(न)** इव **(मन्युम्)** क्रोधम् **(राजानम्)** राजमानम् **(व्याघ्रम्)** सिंहम् **(नमसा)** वज्रेण **(अश्विना)** सभासेनेशौ **(भामम्)** क्रोधम् **(सरस्वती)** प्रशस्तविज्ञानवती **(भिषक्)** वैद्यः **(इन्द्राय)** धनाय **(दुहे)** प्रपूरयेत् **(इन्द्रियम्)** धनम् **(पयः)** रसम् **(सोमः)** चन्द्रः **(परिस्रुता)** **(घृतम्)** **(मधु)** मधुरं वस्तु **(व्यन्तु)** **(आज्यस्य)** प्राप्तुमर्हस्य **(होतः)** **(यज)**॥३९॥

अन्वयः-हे होतर्यथा भिषग्घोता इन्द्राय वनस्पतिमिव शमितारं शतक्रतुं भीमं न मन्युं नमसा व्याघ्रं न राजानं यक्षत् सरस्वत्यश्विना भामं दुहे तथा परिस्रुतेन्द्रियं पयः सोमो घृतं मधु व्यन्तु तैः सह वर्त्तमानस्त्वमाज्यस्य यज॥३९॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। ये मनुष्या विद्यया वह्निं शान्त्या विद्वांसं पुरुषार्थेन प्रज्ञां न्यायेन राज्यं च प्राप्यैश्वर्यं वर्द्धयन्ति त ऐहिकपारमार्थिके सुखे प्राप्नुवन्ति॥३९॥

पदार्थः-हे (**होतः**) लेने हारे जैसे (**भिषक्**) वैद्य (**होता**) वा लेने हारा (**इन्द्राय**) धन के लिए (**वनस्पतिम्**) किरणों को पालने और (**शमितारम्**) शान्ति देने हारे (**शतक्रतुम्**) अनन्त बुद्धि वा बहुत कर्मयुक्त जन को (**भीमम्**) भयकारक के (**न**) समान (**मन्युम्**) क्रोध को वा (**नमसा**) वज्र से (**व्याघ्रम्**) सिंह और (**राजानम्**) देदीप्यमान राजा को (**यक्षत्**) प्राप्त करे वा (**सरस्वती**) उत्तम विज्ञान वाली स्त्री और (**अश्विना**) सभा और सेनापति (**भामम्**) क्रोध को (**दुहे**) परिपूर्ण करे, वैसे (**परिस्रुता**) प्राप्त हुए पुरुषार्थ के साथ (**इन्द्रियम्**) धन (**पयः**) रस (**सोमः**) चन्द्र (**घृतम्**) घी (**मधु**) मधुर वस्तु (**व्यन्तु**) प्राप्त होवें, उनके साथ वर्त्तमान तू (**आज्यस्य**) घी का (**यज**) हवन कर॥३९॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जो मनुष्य लोग विद्या से अग्नि, शान्ति से विद्वान्, पुरुषार्थ से बुद्धि और न्याय से राज्य को प्राप्त होके ऐश्वर्य को बढ़ाते हैं, वे इस जन्म और परजन्म के सुख को प्राप्त होते हैं॥३९॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। अश्व्यादयो देवताः। निचृदत्यष्ट्यौ छन्दसी। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

होता॑ यक्षद॒ग्निꣳ स्वाहाज्य॑स्य स्तो॒काना॒ꣳ स्वाहा॒ मेद॑सां॒ पृथ॒क् स्वाहा॒ छाग॑म॒श्विभ्या॒ꣳ स्वाहा॑ मे॒षꣳ सर॑स्वत्यै॒ स्वाहऽऋ॒ष॒भमिन्द्रा॑य सि॒ꣳहाय॒ सह॑सऽइन्द्रि॒यꣳ स्वाहा॒ग्निं न भे॑ष॒जꣳ स्वाहा॒ सोम॑मिन्द्रि॒यꣳ स्वाहेन्द्र॑ꣳ सु॒त्रामा॑णꣳ सवि॒तारं॒ वरु॑णं भि॒षजां॒ पति॒ꣳ स्वाहा॒ वन॒स्पति॑ प्रि॒यं पाथो॒ न भे॑ष॒जꣳ स्वाहा॑ दे॒वाऽआ॑ज्य॒पा जु॑षा॒णोऽअ॒ग्निर्भे॑ष॒जं पय॒ः सोम॑ः परि॒स्रुता॑ घृ॒तं मधु॒ व्यन्त्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑॥४०॥

होता॑। य॒क्षत्। अ॒ग्निम्। स्वाहा॑। आज्य॑स्य। स्तो॒काना॑म्। स्वाहा॑। मेद॑साम्। पृथ॑क्। स्वाहा॑। छाग॑म्। अ॒श्विभ्या॒मित्य॒श्विऽभ्या॑म्। स्वाहा॑। मे॒षम्। सर॑स्वत्यै। स्वाहा॑। ऋ॒ष॒भम्। इन्द्रा॑य। सि॒ꣳहाय॑। सह॑से। इ॒न्द्रि॒यम्। स्वाहा॑। अ॒ग्निम्। न। भे॒ष॒जम्। स्वाहा॑। सोम॑म्। इ॒न्द्रि॒यम्। स्वाहा॑। इन्द्र॑म्। सु॒त्रामा॑ण॒मिति॑ सु॒ऽत्रामा॑णम्। स॒वि॒तार॑म्। वरु॑णम्। भि॒षजा॑म्। पति॑म्। स्वाहा॑। वन॒स्पति॑म्। प्रि॒यम्। पाथ॑ः। न। भे॒ष॒जम्। स्वाहा॑। दे॒वाः। आ॒ज्य॒पा इत्या॑ज्य॒ऽपाः। जु॒षा॒णः। अ॒ग्निः। भे॒ष॒जम्। पय॑ः। सोम॑ः प॒रि॒स्रुतेति॑ परि॒ऽस्रुता॑। घृ॒तम्। मधु॑। व्यन्तु॑। आज्य॑स्य। होत॑ः। यज॑॥४०॥

पदार्थः-(**होता**) आदाता (**यक्षत्**) यजेत् (**अग्निम्**) पावकम् (**स्वाहा**) सुष्ठु क्रियया (**आज्यस्य**) प्राप्तुमर्हस्य (**स्तोकानाम्**) स्वल्पानाम् (**स्वाहा**) सुष्ठु रक्षणक्रियया (**मेदसाम्**) स्निग्धानाम् (**पृथक्**) (**स्वाहा**) उत्तमरीत्या (**छागम्**) दुःखं छेत्तुमर्हम् (**अश्विभ्याम्**) राज्यस्वामिपशुपालाभ्याम् (**स्वाहा**) (**मेषम्**) सेचनकर्त्तारम् (**सरस्वत्यै**) विज्ञानयुक्तायै वाचे (**स्वाहा**) परमोत्तमया क्रियया (**ऋषभम्**) श्रेष्ठं पुरुषार्थम् (**इन्द्राय**) परमैश्वर्याय (**सिंहाय**) यो हिनस्ति तस्मै (**सहसे**) बलाय (**इन्द्रियम्**) धनम् (**स्वाहा**) शोभनया वाचा (**अग्निम्**) पावकम् (**न**) इव (**भेषजम्**) औषधम् (**स्वाहा**) उत्तमया क्रियया (**सोमम्**) सोमलताद्योषधिगणम् (**इन्द्रियम्**) मनः प्रभृतीन्द्रियमात्रम् (**स्वाहा**) सुष्ठु शान्तिक्रियया विद्यया च (**इन्द्रम्**) सेनेशम् (**सुत्रामाणम्**) सुष्ठु रक्षकम् (**सवितारम्**) ऐश्वर्य्यकारकम् (**वरुणम्**) श्रेष्ठम् (**भिषजाम्**) वैद्यानाम् (**पतिम्**) पालकम् (**स्वाहा**) निदानादिविद्यया (**वनस्पतिम्**) वनानां पालकम् (**प्रियम्**) कमनीयम् (**पाथः**) पालकमन्नम् (**न**) इव (**भेषजम्**) औषधम् (**स्वाहा**) सुष्ठु विद्यया (**देवाः**) विद्वांसः (**आज्यपाः**) य आज्यं विज्ञानं पान्ति रक्षन्ति ते (**जुषाणः**) सेवमानः (**अग्निः**) पावक इव प्रदीप्तः (**भेषजम्**) चिकित्सनीयम् (**पयः**) उदकम् (**सोमः**) ओषधिगणः (**परिस्रुता**) (**घृतम्**) (**मधु**) (**व्यन्तु**) (**आज्यस्य**) (**होतः**) दातः (**यज**)॥४०॥

अन्वयः-हे होतर्यथा होताऽऽज्यस्य स्वाहा स्तोकानां मेदसां स्वाहाऽग्निं पृथक्स्वाहाश्विभ्यां छागं सरस्वत्यै स्वाहा मेषमिन्द्राय स्वाहर्षभं सहसे सिंहाय स्वाहेन्द्रियं स्वाहाग्निं न भेषजं सोममिन्द्रियं स्वाहा सुत्रामाणमिन्द्रं भिषजां पतिं सवितारं वरुणं स्वाहा वनस्पतिं स्वाहा प्रियं पाथो न भेषजं यक्षद् यथावाज्यपा देवा भेषजं जुषाणोऽग्निश्च यक्षत् तथा यानि परिस्रुता पयः सोमो घृतं मधु व्यन्तु तैः सह वर्त्तमानस्त्वमाज्यस्य यज॥४०॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। ये मनुष्या विद्याक्रियाकौशलयत्नैरग्न्यादिविद्यां विज्ञाय गवादीन् पशून् संपाल्य सर्वोपकारं कुर्वन्ति, ते वैद्यवत्प्रजादुःखध्वंसका जायन्ते॥४०॥

पदार्थः-हे (**होतः**) देने हारे जन! जैसे (**होता**) ग्रहण करने हारा (**आज्यस्य**) प्राप्त होने योग्य घी की (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया से वा (**स्तोकानाम्**) स्वल्प (**मेदसाम्**) स्निग्ध पदार्थों की (**स्वाहा**) अच्छे प्रकार रक्षण क्रिया से (**अग्निम्**) को (**पृथक्**) भिन्न-भिन्न (**स्वाहा**) उत्तम रीति से (**अश्विभ्याम्**) राज्य के स्वामी और पशु के पालन करने वालों से (**छागम्**) दुःख के छेदन करने को (**सरस्वत्यै**) विज्ञानयुक्त वाणी के लिए (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया से (**मेषम्**) सेचन करने हारे को (**इन्द्राय**) परमैश्वर्य के लिए (**स्वाहा**) परमोत्तम क्रिया से (**ऋषभम्**) श्रेष्ठ पुरुषार्थ को (**सहसे**) बल (**सिंहाय**) और जो शत्रुओं का हननकर्त्ता उस के लिए (**स्वाहा**) उत्तम वाणी से (**इन्द्रियम्**) धन को (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया से (**अग्निम्**) पावक के (**न**) समान (**भेषजम्**) औषध (**सोमम्**) सोमलतादि ओषधिसमूह (**इन्द्रियम्**) वा मन आदि इन्द्रियों को (**स्वाहा**) शान्ति आदि क्रिया और विद्या से (**सुत्रामाणम्**) अच्छे प्रकार रक्षक (**इन्द्रम्**) सेनापति को (**भिषजाम्**) वैद्यों के

(पतिम्) पालन करने हारे **(सवितारम्)** ऐश्वर्य के कर्त्ता **(वरुणम्)** श्रेष्ठ पुरुष को **(स्वाहा)** निदान आदि विद्या से **(वनस्पतिम्)** वनों के पालन करने हारे को **(स्वाहा)** उत्तम विद्या से **(प्रियम्)** प्रीति करने योग्य **(पाथ:)** पालन करने वाले अन्न के **(न)** समान **(भेषजम्)** उत्तम औषध को **(यक्षत्)** संगत करे वा जैसे **(आज्यपा:)** विज्ञान के पालन करनेहारे **(देवा:)** विद्वान् लोग और **(भेषजम्)** चिकित्सा करने योग्य को **(जुषाण:)** सेवन करता हुआ **(अग्नि:)** पावक के समान तेजस्वी जन संगत करे, वैसे जो **(परिस्रुता)** चारों ओर से प्राप्त हुए रस के साथ **(पय:)** दूध **(सोम:)** औषधियों का समूह **(घृतम्)** घी **(मधु)** सहत **(व्यन्तु)** प्राप्त होवें, उन के साथ वर्त्तमान तू **(आज्यस्य)** घी का **(यज)** हवन किया कर॥४०॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जो मनुष्य क्रिया, क्रियाकुशलता और प्रयत्न से अग्न्यादि विद्या को जान के गौ आदि पशुओं का अच्छे प्रकार पालन करके सब के उपकार को करते हैं, वे वैद्य के समान प्रजा के दु:ख के नाशक होते हैं॥४०॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषि:। विद्वांसो देवता:। अतिधृतिश्छन्द:। षड्ज: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

होता॑ यक्षद॒श्विनौ॒ छाग॑स्य व॒पाया॒ मेद॑सो जु॒षेतां॑ᳪ ह॒विर्हो॑त॒र्यज॑।
होता॑ यक्ष॒त्सर॑स्वतीं मे॒षस्य॑ व॒पाया॒ मेद॑सो जु॒षतां॑ᳪ ह॒विर्हो॑त॒र्यज॑।
होता॑ यक्ष॒दिन्द्र॑मृष॒भस्य॑ व॒पाया॒ मेद॑सो जु॒षतां॑ᳪ ह॒विर्हो॑त॒र्यज॑॥४१॥

होता॑। य॒क्ष॒त्। अ॒श्विनौ॑। छाग॑स्य। व॒पाया॑:। मेद॑स:। जु॒षेता॑म्। ह॒वि:। होत॑:। यज॑। होता॑। य॒क्ष॒त्। सर॑स्वतीम्। मे॒षस्य॑। व॒पाया॑:। मेद॑स:। जु॒षता॑म्। ह॒वि:। होत॑:। यज॑। होता॑। य॒क्ष॒त्। इन्द्र॑म्। ऋ॒ष॒भस्य॑। व॒पाया॑:। मेद॑स:। जु॒षता॑म्। ह॒वि:। होत॑:। यज॑॥४१॥

पदार्थ:-(होता) दाता **(यक्षत्)** **(अश्विनौ)** पशुपालकृषीवलौ **(छागस्य)** अजादे: **(वपाया:)** बीजतन्तुसन्तानिकाया: क्रियाया: **(मेदस:)** स्निग्धस्य **(जुषेताम्)** सेवेताम् **(हवि:)** होतव्यम् **(होत:)** दात: **(यज)** **(होता)** आदाता **(यक्षत्)** **(सरस्वतीम्)** विज्ञानवतीं वाचम् **(मेषस्य)** अवे: **(वपाया:)** बीजवर्द्धिकाया: क्रियाया: **(मेदस:)** स्नेहयुक्तस्य पदार्थस्य **(जुषताम्)** सेवताम् **(हवि:)** प्रक्षेप्तव्यं सुसंस्कृतमन्नादिकम् **(होत:)** **(यज)** **(होता)** **(यक्षत्)** **(इन्द्रम्)** परमैश्वर्य्यकारकम् **(ऋषभस्य)** वृषभस्य **(वपाया:)** वर्द्धिकाया रीत्या: **(मेदस:)** स्नेहस्य **(जुषताम्)** सेवताम् **(हवि:)** दातव्यम् **(होत:)** **(यज)**॥४१॥

अन्वयः-हे होतस्त्वं यथा होता यक्षदश्विनौ छागस्य वपाया मेदसो हविर्जुषेताम् तथा यज। हे होतस्त्वं यथा होता मेषस्य वपाया मेदसो हविः सरस्वतीञ्च जुषतां यक्षत् तथा यज। हे होतस्त्वं यथा होतर्षभस्य वपाया मेदसो हविरिन्द्रं च जुषतां यक्षत् तथा यज॥४१॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये मनुष्याः पशुसंख्यां बलं च वर्धयन्ति, ते स्वयमपि बलिष्ठा जायन्ते। ये पशुजं दुग्धं तज्जमाज्यं च स्निग्धं सेवन्ते, ते कोमलप्रकृतयो भवन्ति। ये कृषिकरणाद्यायैतान् वृषभान् युञ्जन्ति, ते धनधान्ययुक्ता जायन्ते॥४१॥

पदार्थः-हे **(होतः)** देने हारे! तू जैसे **(होता)** और देने हारा **(यक्षत्)** अनेक प्रकार के व्यवहारों की संगति करे **(अश्विनौ)** पशु पालने वा खेती करने वाले **(छागस्य)** बकरा, गौ, भैंस आदि पशुसम्बन्धी वा **(वपायाः)** बीज बोने वा सूत के कपड़े आदि बनाने और **(मेदसः)** चिकने पदार्थ के **(हविः)** लेने-देने योग्य व्यवहार का **(जुषेताम्)** सेवन करें, वैसे **(यज)** व्यवहारों की संगति कर। हे **(होतः)** देने हारे जन! तू जैसे **(होता)** लेने हारा **(मेषस्य)** मेढ़ा के **(वपायाः)** बीज को बढ़ाने वाली क्रिया और **(मेदसः)** चिकने पदार्थ सम्बन्धी **(हविः)** अग्नि आदि में छोड़ने योग्य संस्कार किये हुए अन्न आदि पदार्थ और **(सरस्वतीम्)** विशेष ज्ञान वाली वाणी का **(जुषताम्)** सेवन करे **(यक्षत्)** वा उक्त पदार्थों का यथायोग्य मेल करें, वैसे **(यज)** सब पदार्थों का यथायोग्य मेल कर। हे **(होतः)** देने हारे! तू जैसे **(होता)** लेने हारा **(ऋषभस्य)** बैल को **(वपायाः)** बढ़ाने वाली रीति और **(मेदसः)** चिकने पदार्थ सम्बन्धी **(हविः)** देने योग्य पदार्थ और **(इन्द्रम्)** परम ऐश्वर्य करनेवाले का **(जुषताम्)** सेवन करे वा यथायोग्य **(यक्षत्)** उक्त पदार्थों का मेल करे, वैसे **(यज)** यथायोग्य पदार्थों का मेल कर॥४१॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य पशुओं की संख्या और बल को बढ़ाते हैं, वे आप भी बलवान् होते और जो पशुओं से उत्पन्न हुए दूध और उस से उत्पन्न हुए घी का सेवन करते, वे कोमल स्वभाव वाले हाते हैं और जो खेती करने आदि के लिए इन बैलों को युक्त करते हैं, वे धनधान्ययुक्त होते हैं॥४१॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। होत्रादयो देवताः। पूर्वस्य आर्च्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः।
सुरामाण इत्युत्तरस्य विराडाकृतिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

होता यक्षदश्विनौ सरस्वतीमिन्द्रꣳ सुत्रामाणमिमे सोमाः सुरामाणश्छागैर्न मेषैर्ऋषभैः सुताः शष्पैर्न तोक्मभिर्लाजैर्महस्वन्तो मदा मासरेण परिष्कृताः शुक्राः पयस्वन्तोऽमृताः प्रस्थिता वो

मधुश्चुतस्तानश्विना सरस्वतीन्द्रः सुत्रामा वृत्रहा जुषन्ताᳬं सोम्यं मधु पिबन्तु मदन्तु व्यन्तु होतर्यज॥४२॥

होता। यक्षत्। अश्विनौ। सरस्वतीम्। इन्द्रम्। सुत्रामाणमिति सुऽत्रामाणम्। इमे। सोमाः। सुरामाणः। छागैः। न। मेषैः। ऋषभैः। सुताः। शष्पैः। न। तोक्मभिरिति तोक्मऽभिः। लाजैः। महस्वन्तः। मदाः। मासरेण। परिष्कृताः। शुक्राः। पयस्वन्तः। अमृताः। प्रस्थिता इति प्रऽस्थिताः। वः। मधुश्चुत इति मधुऽश्चुतः। तान्। अश्विना। सरस्वती। इन्द्रः। सुत्रामा। वृत्रहा। जुषन्ताम्। सोम्यम्। मधु। पिबन्तु। मदन्तु। व्यन्तु। होतः। यज॥४२॥

पदार्थः-(**होता**) दाता (**यक्षत्**) यजेत् (**अश्विनौ**) अध्यापकोपदेष्टारौ (**सरस्वतीम्**) विज्ञानवतीं वाचम् (**इन्द्रम्**) परमैश्वर्य्ययुक्तराजानम् (**सुत्रामाणम्**) प्रजायाः सुष्ठु रक्षकम् (**इमे**) (**सोमाः**) ऐश्वर्य्यवन्तः सभासदः (**सुरामाणः**) सुष्ठु दातारः (**छागैः**) (**न**) इव (**मेषैः**) (**ऋषभैः**) (**सुताः**) अभिषेकक्रियाजाताः (**शष्पैः**) हिंसकैः। अत्रौणादिको बाहुलकात् कर्त्तरि यत्। (**न**) इव (**तोक्मभिः**) अपत्यैः (**लाजैः**) भर्जितैः (**महस्वन्तः**) महांसि पूजनानि सत्करणानि विद्यन्ते येषान्ते (**मदाः**) आनन्दाः (**मासरेण**) ओदनेन (**परिष्कृताः**) परितः शोभिताः। **संपर्य्युपेभ्यः करोतौ भूषण** इति सुट्। (**शुक्राः**) शुद्धाः (**पयस्वन्तः**) प्रशस्तजलदुग्धादियुक्ताः (**अमृताः**) अमृतात्मैकरसाः (**प्रस्थिताः**) कृतप्रस्थानाः (**वः**) युष्मभ्यम् (**मधुश्चुतः**) मधुरादिगुणा विश्लिष्यन्ते येभ्यः (**तान्**) (**अश्विना**) सुसत्कृतौ पुरुषौ (**सरस्वती**) प्रशस्तविद्यायुक्ता स्त्री (**इन्द्रः**) (**सुत्रामा**) सुष्ठु रक्षकः (**वृत्रहा**) मेघस्य हन्ता सूर्य्य इव (**जुषन्ताम्**) सेवन्ताम् (**सोम्यम्**) सोमार्हम् (**मधु**) मधुररसम् (**पिबन्तु**) (**मदन्तु**) आनन्दन्तु (**व्यन्तु**) व्याप्नुवन्तु (**होतः**) (**यज**)॥४२॥

अन्वयः-हे होतर्यथा होताऽश्विनौ सरस्वतीं सुत्रामाणमिन्द्रं यक्षद्य इमे सुरामाणः सोमाः सुताश्छागैर्न मेषैर्ऋषभैः शष्पैर्न तोक्मभिर्लाजैर्महस्वन्तो मदा मासरेण परिष्कृताः शुक्राः पयस्वन्तोऽमृता मधुश्चुतः प्रस्थिता वो निर्मितास्तान् यक्षद्यथाऽश्विना सरस्वती सुत्रामा वृत्रहेन्द्रश्च सोम्यं मधु जुषन्तां पिबन्तु मदन्तु सकला विद्या व्यन्तु तथा यज॥४२॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये सृष्टिपदार्थविद्यां सत्यां वाचं सुरक्षकं राजानं च प्राप्त पशूनां पयआदिभिः पुष्यन्ति ते सुरसान् सुसंस्कृताादीन् सुपरीक्षितान् भोगान् युक्त्या भुक्त्वा रसान् पीत्वा धर्मार्थकाममोक्षार्थे प्रयतन्ते ते सदा सुखिनो भवन्ति॥४२॥

पदार्थः-हे (**होतः**) लेने हारा जैसे (**होता**) देने वाला (**अश्विनौ**) पढ़ाने और उपदेश करने वाले पुरुषो! (**सरस्वतीम्**) तथा विज्ञान की भरी हुई वाणी और (**सुत्रामाणम्**) प्रजाजनों की अच्छी रक्षा करने हारे (**इन्द्रम्**) परम ऐश्वर्ययुक्त राजा को (**यक्षत्**) प्राप्त हो वा (**इमे**) ये जो (**सुरामाणः**) अच्छे देने हारे (**सोमाः**) ऐश्वर्यवान् सभासद् (**सुताः**) जो कि अभिषेक पाये हुए हों वे (**छागैः**) विनाश करने योग्य पदार्थों वा बकरा आदि पशुओं (**न**) वैसे तथा (**मेषैः**) देखने योग्य पदार्थ वा मेंढ़ों (**ऋषभैः**) श्रेष्ठ पदार्थों वा बैलों

और **(शष्पैः)** हिंसको से जैसे **(न)** वैसे **(तोक्मभिः)** सन्तानों और **(लाजैः)** भुंजे अन्नों से **(महस्वन्तः)** जिन के सत्कार विद्यमान हों वे मनुष्य और **(मदाः)** आनन्द **(मासरेण)** पके हुए चावलों के साथ **(परिष्कृताः)** शोभायमान **(शुक्राः)** शुद्ध **(पयस्वन्तः)** प्रशंसित जल और दूध से युक्त **(अमृताः)** जिन में अमृत एक रस **(मधुश्चुतः)** जिन से मधुरादि गुण टपकते वा **(प्रस्थिताः)** एक स्थान से दूसरे स्थान को जाते हुए **(वः)** तुम्हारे लिए पदार्थ बनाए हैं **(तान्)** उनको प्राप्त होवे वा जैसे **(अश्विना)** सुन्दर सत्कार पाये हुए पुरुष **(सरस्वती)** प्रशंसित विद्यायुक्त स्त्री **(सुत्रामा)** अच्छी रक्षा करने वाले **(वृत्रहा)** मेघ को छिन्न भिन्न करने वाले सूर्य के समान **(इन्द्रः)** परम ऐश्वर्यवान् सज्जन **(सोम्यम्)** शीतलता गुण के योग्य **(मधु)** मीठेपन का **(जुषन्ताम्)** सेवन करें **(पिबन्तु)** पीवें **(मदन्तु)** हरखें और समस्त विद्याओं को **(व्यन्तु)** व्याप्त हो वैसे तू **(यज)** सब पदार्थों की यथायोग्य संगति किया कर॥४२॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो संसार के पदार्थों की विद्या सत्य वाणी और भलीभांति रक्षा करने हारे राजा को पाकर पशुओं के दूध आदि पदार्थों से पुष्ट होते हैं, वे अच्छे रसयुक्त, अच्छे संस्कार किये हुए अन्न आदि पदार्थ जो सुपरीक्षित हों, उन को युक्ति के साथ खा और रसों को पी धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के निमित्त अच्छा यत्न करते हैं, वे सदैव सुखी होते हैं॥४२॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। होत्रादयो देवताः। आद्यस्य याजुषी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। हविष इत्युत्तरस्योत्कृतिश्छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

होता यक्षदश्विनौ छागस्य हविषऽआत्तामद्य मध्यतो मेदऽउद्भृतं पुरा द्वेषोभ्यः पुरा पौरुषेय्या गृभो घस्तां नूनं घासेऽअज्राणां यवसप्रथमानाथं सुमत्क्षराणाथं शतरुद्रियाणामग्निष्वात्तानां पीवोपवसनानां पार्श्वतः श्रोणितः शितामतऽउत्सादतोऽङ्गादङ्गादवत्तानां करतऽएवाश्विना जुषेताथं हविर्होतर्यज॥४३॥

होता। यक्षत्। अश्विनौ। छागस्य। हविषः। आत्ताम्। अद्य। मध्यतः। मेदः। उद्भृतमित्युत्ऽभृतम्। पुरा। द्वेषोभ्य इति द्वेषःऽभ्यः। पुरा। पौरुषेय्याः। गृभः। घस्ताम्। नूनम्। घासेऽअज्राणामिति घासेऽअज्राणाम्। यवसप्रथमानामिति यवसऽप्रथमानाम्। सुमत्क्षराणामिति सुमत्ऽक्षराणाम्। शतरुद्रियाणामिति शतऽरुद्रियाणाम्। अग्निष्वात्तानाम्। अग्निस्वात्तानामित्यग्निऽस्वात्तानाम्। पीवोपवसनानामिति पीवःऽउपवसनानाम्। पार्श्वतः श्रोणितः। शितामतः। उत्सादत इत्युत्ऽसादतः। अङ्गादङ्गादित्यङ्गात्ऽअङ्गात्। अवत्तानाम्। करतः। एव। अश्विना। जुषेताम्। हविः। होतः। यज॥४३॥

पदार्थः-**(होता)** आदाता **(यक्षत्)** **(अश्विनौ)** अध्यापकोपदेशकौ **(छागस्य)** **(हविषः)** आदातुमर्हस्य **(आत्ताम्)** **(अद्य)** **(मध्यतः)** मध्यात् **(मेदः)** स्निग्धम् **(उद्भृतम्)** उत्कृष्टतया धृतम् **(पुरा)** **(द्वेषोभ्यः)**

दुष्टेभ्य: **(पुरा)** **(पौरुषेय्या:)** पुरुषाणां समूहे साध्व्य: **(गृभ:)** ग्रहीतुं योग्याया: **(घस्ताम्)** भक्षयताम् **(नूनम्)** निश्चितम् **(घासेअज्राणम्)** भोजनेऽग्रे प्राप्तव्यानाम् **(यवसप्रथमानाम्)** यवसो यवान्नं प्रथमं येषां तेषाम् **(सुमत्क्षराणाम्)** सुष्ठु मदां क्षर: संचलनं येषां तेषाम् **(शतरुद्रियाणाम्)** शतं रुद्रा: शतरुद्रा: शतरुद्रा देवता येषां तेषाम् **(अग्निष्वात्तानाम्)** अग्नि: सुष्ठ्वात्तो गृहीतो यैस्तेषाम् **(पीवोपवसनानाम्)** पीवांस्युपवसनान्याच्छादनानि येषां तेषाम् **(पार्श्वत:)** उभयत: **(श्रोणित:)** कटिप्रदेशात् **(शितामत:)** शितस्तीक्ष्ण आमोऽपरिपक्वं यस्मिंस्तस्मात् **(उत्सादत:)** उत्सादनं कुर्वत: **(अङ्गादङ्गात्)** प्रत्यङ्गात् **(अवत्तानाम्)** नम्रीभूतानामुत्कृष्टानामङ्गानाम् **(करत:)** कुर्याताम् **(एव)** **(अश्विना)** सद्वैद्यौ **(जुषेताम्)** **(हवि:)** अत्तुमर्हम् **(होत:)** **(यज)**॥४३॥

अन्वय:-हे होतर्यथा होताश्विनौ यक्षत् तौ चाद्य छागस्य मध्यतो हविषो मेद उद्भृतमात्तां यथा वा पुरा द्वेषोभ्यो गृभ: पौरुषेय्या: पुरा नूनं घस्तां यथा वा यवसप्रथमानां घासेअज्राणां सुमत्क्षराणां शतरुद्रियाणां पीवोपवसनानामग्निष्वात्तानां पार्श्वत: श्रोणित: शितामत उत्सादतोऽङ्गादङ्गादवत्तानामेवाश्विना करतो हविर्जुषेतां तथा त्वं यज॥४३॥

भावार्थ:-ये छागादीनां रक्षां विधाय तेषां दुग्धादिकं सुसंस्कृत्य भुक्त्वा द्वेषादियुक्तान् पुरुषन्निवार्य सुवैद्यानां सङ्गं कृत्वा शोभनं भोजनाऽऽच्छादनं कुर्वन्ति, ते प्रत्यङ्गाद् रोगान्निवार्य सुखिनो भवन्ति॥४३॥

पदार्थ:-हे **(होत:)** देने हारे! जैसे **(होता)** लेने वाला **(अश्विनौ)** पाने और उपदेश करने वालों को **(यक्षत्)** संगत करे और वे **(अद्य)** आज **(छागस्य)** बकरा आदि पशुओं के **(मध्यत:)** बीच से **(हविष:)** लेने योग्य पदार्थ का **(मेद:)** चिकना भाग अर्थात् घी दूध आदि **(उद्भृतम्)** उद्धार किया हुआ **(आत्ताम्)** लेवें वा जैसे **(द्वेषोभ्य:)** दुष्टों से **(पुरा)** प्रथम **(गृभ:)** ग्रहण करने योग्य **(पौरुषेय्या:)** पुरुषों के समूह में उत्तम स्त्री के **(पुरा)** पहिले **(नूनम्)** निश्चय करके **(घस्ताम्)** खावें वा जैसे **(यवसप्रथमानाम्)** जो जिन का पहिला अन्न **(घासेअज्राणाम्)** जो खाने में आगे पहुंचाने योग्य **(सुमत्क्षराणाम्)** जिन के उत्तम-उत्तम आनन्दों का कंपन आगमन **(शतरुद्रियाणाम्)** दुष्टों को रुलाने हारे सैकड़ों रुद्र जिन के देवता **(पीवोपवसनानाम्)** वा जिन के मोटे-मोटे कपड़ों के ओढ़ने-पहिरने **(अग्निष्वात्तानाम्)** वा जिन्होंने भलीभांति अग्निविद्या का ग्रहण किया हो, इन सब प्राणियों के **(पार्श्वत:)** पार्श्वभाग **(श्रोणित:)** कटिप्रदेश **(शितामत:)** तीक्ष्ण जिस में कच्चा अन्न उस प्रदेश **(उत्सादत:)** उपाड़ते हुए अंग और **(अङ्गादङ्गात्)** प्रत्येक अंग से व्यवहार वा **(अवत्तानाम्)** नमे हुए उत्तम अंगों **(एव)** ही के व्यवहार को **(अश्विना)** अच्छे वैद्य **(करत:)** करें और **(हवि:)** उक्त पदार्थों से खाने योग्य पदार्थ का **(जुषेताम्)** सेवन करें, जैसे-वैसे **(यज)** सब पदार्थों वा व्यवहारों की संगति किया कर॥४३॥

भावार्थ:-जो छेरी आदि पशुओं की रक्षा कर उनके दूध अदि का अच्छा-अच्छा संस्कार और भोजन कर वैरभावयुक्त पुरुषों को निवारण कर और अच्छे वैद्यों का संग करके उत्तम खाना, पहिरना करते हैं, वे प्रत्येक अंग से रोगों को दूर कर सुखी होते हैं॥४३॥

होतेस्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषि:। विद्वांसो देवता:। पूर्वस्य याजुषी त्रिष्टुप् छन्द:। धैवत: स्वर:। हविष इत्युत्तरस्य स्वराडुत्कृतिश्छन्द:। षड्ज: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

होता यक्षत् सरस्वतीं मेषस्य हविषऽआवयदद्य मध्यतो मेद: उद्भृतं पुरा द्वेषोभ्य: पुरा पौरुषेय्या गृभो घसन्नूनं घासेऽअज्राणां यवसप्रथमानाꣳ सुमत्क्षराणाꣳ शतरुद्रियाणामग्निष्वात्तानां पीवोपवसनानां पार्श्वत: श्रोणित: शितामतऽउत्सादतोऽङ्गादङ्गादवत्तानां करदेवꣳ सरस्वती जुषताꣳ हविर्होतर्यज॥४४॥

होता। यक्षत्। सरस्वतीम्। मेषस्य। हविष:। आ। अवयत्। अद्य। मध्यत:। मेद:। उद्भृतमित्युत्ऽभृतम्। पुरा। द्वेषोभ्य इति द्वेष:ऽभ्य:। पुरा। पौरुषेय्या:। गृभ:। घसत्। नूनम्। घासेऽअज्राणामिति घासेऽअज्राणाम्। यवसप्रथमानामिति यवसऽप्रथमानाम्। सुमत्क्षराणामिति सुमत्ऽक्षराणाम्। शतरुद्रियाणामिति शतऽरुद्रियाणाम्। अग्निष्वात्तानाम्। अग्निस्वात्तानामित्यग्निऽस्वात्तानाम्। पीवोपवसनानामिति पीव:ऽउपवसनानाम्। पार्श्वत:। श्रोणित:। शितामत:। उत्सादत इत्युत्ऽसादत:। अङ्गादङ्गादित्यङ्गात्ऽअङ्गात्। अवत्तानाम्। करत्। एवम्। सरस्वती। जुषताम्। हवि:। होत:। यज॥४४॥

पदार्थ:-(**होता**) दाता (**यक्षत्**) (**सरस्वतीम्**) वाचम् (**मेषस्य**) उपदिष्टस्य (**हविष:**) दातुमर्हस्य (**आ**) (**अवयत्**) वेति प्राप्नोति (**अद्य**) (**मध्यत:**) मध्ये भवात् (**मेद:**) स्निग्धम् (**उद्भृतम्**) उद्धृतम् (**पुरा**) (**द्वेषोभ्य:**) शत्रुभ्य: (**पुरा**) (**पौरुषेय्या:**) पुरुषसम्बन्धिन्या: (**गृभ:**) ग्रहीतुं योग्याया: (**घसत्**) (**नूनम्**) निश्चितम् (**घासेअज्राणाम्**) भोजने कमनीयानाम् (**यवसप्रथमानाम्**) मिश्रितामिश्रिताद्यानाम् (**सुमत्क्षराणाम्**) श्रेष्ठानन्दवर्षकराणाम् (**शतरुद्रियाणाम्**) बहूनां मध्ये विद्वदधिष्ठातॄणाम् (**अग्निष्वात्तानाम्**) सुसंगृहीताग्निविद्यानाम् (**पीवोपवसनानाम्**) स्थूलवस्त्रधारिणाम् (**पार्श्वत:**) समीपात् (**श्रोणित:**) कटिप्रदेशात् (**शितामत:**) तीक्ष्णस्वभावात् (**उत्सादत:**) गात्रोत्सादनात् (**अङ्गादङ्गात्**) (**अवत्तानाम्**) गृहीतानाम् (**करत्**) कुर्यात् (**एवम्**) अमुना प्रकारेण (**सरस्वती**) विदुषी स्त्री (**जुषताम्**) (**हवि:**) आदातव्यम् (**होत:**) आदात: (**यज**)॥४४॥

अन्वय:-हे होतर्यथा होताऽद्य मेषस्य शितामतो हविषो मध्यतो यन्मेद उद्भृतं तत् सरस्वतीं चावयत् यक्षत् द्वेषोभ्य: पुरा गृभ: पौरुषेय्या: पुरा नूनं घसद् घासेअज्राणां यवसप्रथमानां सुमत्क्षराणां

पीवोपवसनानामग्निष्वात्तानां शतरुद्रियाणां पार्श्वतः श्रोणित उत्सादतोऽङ्गादङ्गादवत्तानां सकाशाद् विद्यां करदेवमेतत् सरस्वती जुषतां तथा त्वं च हविर्यज॥४४॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये मनुष्याः सज्जनसंगेन दुष्टान् निवार्य युक्ताहारविहाराभ्यामारोग्यं प्राप्य धर्मं सेवन्ते, ते कृतकृत्या जायन्ते॥४४॥

पदार्थः-हे **(होतः)** लेने हारे! जैसे **(होता)** देने वाला **(अद्य)** आज **(मेषस्य)** उपदेश को पाये हुए मनुष्य के **(शितामतः)** खरे स्वभाव से **(हविषः)** देने योग्य पदार्थ के **(मध्यतः)** बीच में प्रसिद्ध व्यवहार से जो **(मेदः)** चिकना पदार्थ **(उद्भृतम्)** उद्धार किया अर्थात् निकाला उसको **(सरस्वतीम्)** और वाणी को **(आ, अवयत्)** प्राप्त होता तथा **(यक्षत्)** सत्कार करता और **(द्वेषोभ्यः)** शत्रुओं से **(पुरा)** पहिले तथा **(गृभः)** ग्रहण करने योग्य **(पौरुषेय्याः)** पुरुषसम्बन्धिनी स्त्री के **(पुरा)** प्रथम **(नूनम्)** निश्चय से **(घसत्)** खावे वा **(घासेअज्राणाम्)** जो भोजन करने में सुन्दर **(यवसप्रथमानाम्)** मिले न मिले हुए आदि **(सुमत्क्षराणाम्)** श्रेष्ठ आनन्द की वर्षा कराने और **(पीवोपवसनानाम्)** मोटे कपड़े पहरने वाले तथा **(अग्निष्वात्तानाम्)** अग्निविद्या को भलीभांति ग्रहण किये हुए और **(शतरुद्रियाणाम्)** बहुतों के बीच विद्वानों का अभिप्राय रखने हारों के **(पार्श्वतः)** समीप और **(श्रोणितः)** कटिभाग से **(उत्सादतः)** शरीर से जो त्याग उससे वा **(अङ्गादङ्गात्)** अंग-अंग से **(अवत्तानाम्)** ग्रहण किये हुए व्यवहारों की विद्या को **(करत्)** ग्रहण करे **(एवम्)** ऐसे **(सरस्वती)** पण्डिता स्त्री उस का **(जुषताम्)** सेवन करें, वैसे तू भी **(हविः)** ग्रहण करने योग्य व्यवहार की **(यज)** संगति किया कर॥४४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य सज्जनों के सङ्ग से दुष्टों का निवारण कर युक्त आहार-विहारों से आरोग्यपन को पाकर धर्म का सेवन करते, वे कृतकृत्य होते हैं॥४४॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। यजमानर्त्विजो देवताः। पूर्वस्य भुरिक्प्राजापत्योष्णिक् छन्दः। आवयदित्युत्तरस्य भुरिगभिकृतिश्छन्दः। ऋषभः स्वरः।

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

होता यक्षदिन्द्रमृषभस्य हविषऽआवयदद्य मध्यतो मेदऽउद्भृतं पुरा द्वेषोभ्यः पुरा पौरुषेय्या गृभो घसन्नूनं घासेऽअज्राणां यवसप्रथमानाᳬं सुमत्क्षराणाᳬं शतरुद्रियाणामग्निष्वात्तानां पीवोपवसनानां पार्श्वतः श्रोणितः शितामतऽउत्सादतोऽङ्गादङ्गादवत्तानां करदेवमिन्द्रो जुषताᳬं हविर्होतर्यज॥४५॥

होता। यक्षत्। इन्द्रम्। ऋषभस्य। हविषः। आ। अवयत्। अद्य। मध्यतः। मेदः। उद्भृतमित्युत्ऽभृतम्। पुरा। द्वेषोभ्य इति द्वेषःऽभ्यः। पुरा। पौरुषेय्याः। गृभः। घसत्। नूनम्। घासेऽअज्राणामिति घासेऽअज्राणाम्।

यवसप्रथमानामिति यवसऽप्रथमानाम्। सुमत्क्षराणामिति सुमत्ऽक्षराणाम्। शतरुद्रियाणामिति शतऽरुद्रियाणाम्। अग्निष्वात्तानाम्। अग्निस्वात्तानामित्यग्निऽस्वात्तानाम्। पीवोपवसनानामिति पीवःऽउपवसनानाम्। पार्श्वतः श्रोणितः। शितामतः। उत्सादत इत्युत्ऽसादतः। अङ्गादङ्गादित्यङ्गात्ऽअङ्गात्। अवत्तानाम्। करत्। एवम्। इन्द्रः। जुषताम्। हविः। होतः। यज॥४५॥

पदार्थः-(**होता**) आदाता (**यक्षत्**) सत्कुर्यात् (**इन्द्रम्**) परमैश्वर्यम् (**ऋषभस्य**) उत्तमस्य (**हविषः**) आदातुमर्हस्य (**आ**) (**अवयत्**) व्याप्नुयात् (**अद्य**) (**मध्यतः**) मध्ये भवात् (**मेदः**) स्निग्धम् (**उद्भृतम्**) उत्कृष्टतया पोषितम् (**पुरा**) पुरस्तात् (**द्वेषोभ्यः**) विरोधिभ्यः (**पुरा**) (**पौरुषेय्याः**) पुरुषसम्बन्धिन्या विद्यायाः (**गृभः**) ग्रहीतुं योग्यायाः (**घसत्**) अद्यात् (**नूनम्**) (**घासेअज्राणाम्**) (**यवसप्रथमानाम्**) यवसस्य विस्तारकाणाम् (**सुमत्क्षराणाम्**) सुष्ठु प्रमादनाशकानाम् (**शतरुद्रियाणाम्**) शतानां रुद्राणां दुष्टरोदकानाम् (**अग्निष्वात्तानाम्**) अग्निना जाठराग्निना सुष्ठु गृहीतान्नानाम् (**पीवोपवसनानाम्**) स्थूलदृढाऽच्छादनानाम् (**पार्श्वतः**) इतस्ततोऽङ्गात् (**श्रोणितः**) क्रमशः (**शितामतः**) तीक्ष्णत्वेनोच्छिन्नरोगात् (**उत्सादतः**) त्यागमात्रात् (**अङ्गादङ्गात्**) प्रत्यङ्गात् (**अवत्तानाम्**) उदारचेतसाम् (**करत्**) कुर्यात् (**एवम्**) (**इन्द्रः**) परमैश्वर्यवान् राजा (**जुषताम्**) सेवताम् (**हविः**) रोगनाशकं वस्तु (**होतः**) (**यज**)॥४५॥

अन्वयः-हे होतर्यथा होता घासेअज्राणां यवसप्रथमानां सुमत्क्षराणामग्निष्वात्तानां पीवोपवसनानां शतरुद्रियाणामवत्तानां पार्श्वतः श्रोणितः शितामत उत्सादतोऽङ्गादङ्गाद्धविरिन्द्रं च करदिन्द्रो जुषतां यथाऽद्यर्षभस्य हविषो मध्यतो मेद उद्भृतमावयत् द्वेषोभ्यः पुरा गृभः पौरुषेय्याः पुरा नूनं यक्षदेवं घसत् तथा त्वं यज॥४५॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये मनुष्या विदुषां संगेन दुष्टान् निवार्य्य श्रेष्ठान् सत्कृत्य ग्रहीतव्यं गृहीत्वाऽन्यान् ग्राहयित्वा सर्वानुन्नयन्ति, ते पूज्या जायन्ते॥४५॥

पदार्थः-हे (**होतः**) देने हारे! जैसे (**होता**) लेने हारा पुरुष (**घासेअज्राणाम्**) भोजन करने में प्राप्त होने (**यवसप्रथमानाम्**) जौ आदि अन्न वा मिले हुए पदार्थों को विस्तार करने और (**सुमत्क्षराणाम्**) भलीभांति प्रमाद का विनाश करने वाले (**अग्निष्वात्तनाम्**) जाठराग्नि अर्थात् पेट में भीतर रहने वाली आग से अन्न ग्रहण किये हुए (**पीवोपवसनानाम्**) मोटे-पोढ़े उड़ाने-ओढ़ने (**शतरुद्रियाणाम्**) और सैकड़ों दुष्टों को रुलाने हारे (**अवत्तानाम्**) उदारचित्त विद्वानों के (**पार्श्वतः**) और पास के अंग वा (**श्रोणितः**) क्रम से वा (**शितामतः**) तीक्ष्णता के साथ जिससे रोग छिन्न-भिन्न हो गया हो, उस अंग वा (**उत्सादतः**) त्यागमात्र वा (**अङ्गादङ्गात्**) प्रत्येक अंग से (**हविः**) रोगविनाश करने हारी वस्तु और (**इन्द्रम्**) परमैश्वर्य को सिद्ध (**करत्**) करे और (**इन्द्रः**) परम ऐश्वर्य वाला राजा उस का (**जुषताम्**) सेवन करे तथा वह राजा जैसे (**अद्य**) आज (**ऋषभस्य**) उत्तम (**हविषः**) लेने योग्य पदार्थ के (**मध्यतः**) बीच में उत्पन्न हुआ (**मेदः**) चिकना पदार्थ (**उद्भृतम्**) जो कि उत्तमता से पुष्ट किया गया अर्थात् सम्हाला गया हो उस को (**आ, अवयत्**) व्याप्त हो

सब ओर से प्राप्त हो **(द्वेषोभ्यः)** वैरियों से **(पुरा)** प्रथम **(गृभः)** ग्रहण करने योग्य **(पौरुषेय्याः)** पुरुषसम्बन्धिनी विद्या के सम्बन्ध से **(पुरा)** पहिले **(नूनम्)** निश्चय के साथ **(यक्षत्)** सत्कार करे वा **(एवम्)** इस प्रकार **(घसत्)** भोजन करे वैसे तू **(यज)** सब व्यवहारों की संगति किया कर॥४५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य विद्वानों के संग से दुष्टों को निवारण तथा श्रेष्ठ उत्तम जनों का सत्कार कर लेने योग्य पदार्थ को लेकर और दूसरों को ग्रहण करा सब की उन्नति करते हैं, वे सत्कार करने योग्य होते हैं॥४५॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। अश्व्यादयो देवताः। पूर्वस्योत्कृतिश्छन्दः। षड्जः स्वरः। यत्र सवितुरित्युत्तरस्य स्वराट् संकृतिश्छन्दः। गान्धारः स्वरः।

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

होता यक्षद् वनस्पतिमभि हि पिष्टतमया रभिष्ठया रशनयाधित। यत्राश्विनोश्छागस्य हविषः प्रिया धामानि यत्र सरस्वत्या मेषस्य हविषः प्रिया धामानि यत्रेन्द्रस्यऽऋषभस्य हविषः प्रिया धामानि यत्राग्नेः प्रिया धामानि यत्र सोमस्य प्रिया धामानि यत्रेन्द्रस्य सुत्राम्णः प्रिया धामानि यत्र सवितुः प्रिया धामानि यत्र वरुणस्य प्रिया धामानि यत्र वनस्पतेः प्रिया पाथाᳪंसि यत्र देवानामाज्यपानां प्रिया धामानि यत्राग्नेर्होतुः प्रिया धामानि तत्रैतान् प्रस्तुत्येवोपस्तुत्येवोपावस्स्रक्षद् रभीयसऽइव कृत्वी करदेवं देवो वनस्पतिर्जुषताᳪं हविर्होतर्यज॥४६॥

होता। यक्षत्। वनस्पतिम्। अभि। हि। पिष्टतमयेति पिष्टऽतमया। रभिष्ठया। रशनया। अधित। यत्र। अश्विनोः। छागस्य। हविषः। प्रिया। धामानि। यत्र। सरस्वत्याः। मेषस्य। हविषः। प्रिया। धामानि। यत्र। इन्द्रस्य। ऋषभस्य। हविषः। प्रिया। धामानि। यत्र। अग्नेः। प्रिया। धामानि। यत्र। सोमस्य। प्रिया। धामानि। यत्र। इन्द्रस्य। सुत्राम्ण इति सुऽत्राम्णः। प्रिया। धामानि। यत्र। सवितुः। प्रिया। धामानि। यत्र। वरुणस्य। प्रिया। धामानि। यत्र। वनस्पतेः। प्रिया। पाथांꣳसि। यत्र। देवानाम्। आज्यपानामित्याज्यऽपानाम्। प्रिया। धामानि। यत्र। अग्नेः। होतुः। प्रिया। धामानि। तत्र। एतान्। प्रस्तुत्येवेति प्रऽस्तुत्यऽइव। उपस्तुत्येवेत्युपऽस्तुत्यइव। उपावस्स्रक्षदित्युपऽअवस्स्रक्षत्। रभीयसऽइवेति रभीयसःइव। कृत्वी। करत्। एवम्। देवः। वनस्पतिः। जुषताम्। हविः। होतः। यज॥४६॥

पदार्थः-**(होता)** आदाता **(यक्षत्)** **(वनस्पतिम्)** वटादिकम् **(अभि)** **(हि)** किल **(पिष्टतमया)** **(रभिष्ठया)** **(रशनया)** रश्मिना **(अधित)** दध्यात् **(यत्र)** **(अश्विनोः)** सूर्य्याचन्द्रमसोः **(छागस्य)** छेदकस्य **(हविषः)** दातुमर्हस्य **(प्रिया)** कमनीयानि **(धामानि)** जन्मस्थाननामानि **(यत्र)** **(सरस्वत्याः)** नद्याः **सरस्वतीति नदीनामसु पठितम्॥** निघं०१।१३॥ **(मेषस्य)** अवेः **(हविषः)** आदातुमर्हस्य **(प्रिया)** **(धामानि)** **(यत्र)** **(इन्द्रस्य)** ऐश्वर्ययुक्तस्य **(ऋषभस्य)** प्राप्तुं योग्यस्य **(हविषः)** दातुं योग्यस्य **(प्रिया)**

(धामानि) **(यत्र)** **(अग्नेः)** पावकस्य **(प्रिया)** **(धामानि)** **(यत्र)** **(सोमस्य)** ओषधिगणस्य **(प्रिया)** **(धामानि)** **(यत्र)** **(इन्द्रस्य)** ऐश्वर्ययुक्तस्य **(सुत्राम्णः)** सुष्ठु रक्षकस्य **(प्रिया)** **(धामानि)** **(यत्र)** **(सवितुः)** प्रेरकस्य **(प्रिया)** **(धामानि)** **(यत्र)** **(वरुणस्य)** श्रेष्ठस्य **(प्रिया)** **(धामानि)** **(वनस्पतेः)** वटादेः **(प्रिया)** **(पाथांसि)** अन्नानि **(यत्र)** **(देवानाम्)** पृथिव्यादीनां दिव्यानाम् **(आज्यपानाम्)** गत्या पालकानाम् **(प्रिया)** **(धामानि)** **(यत्र)** **(अग्नेः)** विद्यया प्रकाशमानस्य **(होतुः)** दातुः **(प्रिया)** **(धामानि)** **(तत्र)** **(एतान्)** **(प्रस्तुत्येव)** प्रकरणेन संश्लाघ्येव **(उपस्तुत्येव)** समीपेन स्तुत्येव **(उपावस्रक्षत्)** उपावसृजेत् **(रभीयस इव)** अतिशयेनारब्धस्येव **(कृत्वी)** कृत्वा **(करत्)** कुर्यात् **(एवम्)** **(देवः)** दिव्यगुणः **(वनस्पतिः)** रश्मिपालकोऽग्निः **(जुषताम्)** सेवताम् **(हविः)** संस्कृतमन्नादिकम् **(होतः)** **(यज)**॥४६॥

अन्वयः-हे होतर्यथा होता पिष्ठतमया रभिष्ठया रशनया यत्राऽश्विनोश्छागस्य हविषः प्रिया धामानि यत्र सरस्वत्या मेषस्य हविषः प्रिया धामानि यत्रेन्द्रस्यर्षभस्य हविषः प्रिया धामानि यत्राग्नेः प्रिया धामानि यत्र सोमस्य प्रिया धामानि यत्र सुत्राम्ण इन्द्रस्य प्रिया धामानि यत्र सवितुः प्रिया धामानि यत्र वरुणस्य प्रिया धामानि यत्र वनस्पतेः प्रिया पाथांसि यत्राज्यपानां देवानां प्रिया धामानि यत्र होतुरग्नेः प्रियाधामानि सन्ति तत्रैतान् प्रस्तुत्येवोपस्तुत्येवोपावस्रक्षद् रभीयस इव कृत्वी कार्य्येषूपयुञ्जीतैवं करद्यथा वनस्पतिर्देवो हविर्जुषतां हि वनस्पतिमभियक्षदधित तथा त्वं यज॥४६॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। यदि मनुष्या ईश्वरेण सृष्टानां पदार्थानां गुणकर्मस्वभावान् विदित्वैतान् कार्य्यसिद्धये प्रयुञ्जीरँस्तर्हि स्वेष्टानि सुखानि लभेरन्॥४६॥

पदार्थः-हे **(होतः)** देनेहारे! जैसे **(होता)** लेने हारा सत्पुरुष **(पिष्टतमया)** अति पिसी हुई **(रभिष्ठया)** अत्यन्त शीघ्रता से बढ़नेवाली वा जिस का बहुत प्रकार से प्रारम्भ होता है, उस वस्तु और **(रशनया)** रश्मि के साथ **(यत्र)** जहां **(अश्विनोः)** सूर्य्य और चन्द्रमा के सम्बन्ध से पालित **(छागस्य)** घास को छेदने-खाने हारे बकरा आदि पशु और **(हविषः)** देने योग्य पदार्थ सम्बन्धी **(प्रिया)** मनोहर **(धामानि)** उत्पन्न होने-ठहरने की जगह और नाम वा **(यत्र)** जहां **(सरस्वत्याः)** नदी **(मेषस्य)** मेंढ़ा और **(हविषः)** ग्रहण करने पदार्थ-सम्बन्धी **(प्रिया)** मनोहर **(धामानि)** जन्म, स्थान और नाम वा **(यत्र)** जहां **(इन्द्रस्य)** ऐश्वर्ययुक्त जन के **(ऋषभस्य)** प्राप्त होने और **(हविषः)** देने योग्य पदार्थ के **(प्रिया)** प्यारे मन के हरने वाले **(धामानि)** जन्म, स्थान और नाम वा **(यत्र)** जहां **(अग्नेः)** प्रसिद्ध और बिजुलीरूप अग्नि के **(प्रिया)** मनोहर **(धामानि)** जन्म स्थान और नाम वा **(यत्र)** जहां **(सोमस्य)** ओषधियों के **(प्रिया)** मनोहर **(धामानि)** जन्म, स्थान और नाम वा **(यत्र)** जहां **(सुत्राम्णः)** भलीभांति रक्षा करने वाले **(इन्द्रस्य)** ऐश्वर्ययुक्त उत्तम पुरुष के **(प्रिया)** मनोहर **(धामानि)** जन्म, स्थान और नाम वा **(यत्र)** जहां **(सवितुः)** सब को प्रेरणा देने हारे पवन के **(प्रिया)** मनोहर **(धामानि)** उत्पन्न होने-ठहरने की जगह और नाम वा **(यत्र)** जहां **(वरुणस्य)** श्रेष्ठ पदार्थ के **(प्रिया)** मनोहर **(धामानि)** जन्म, स्थान और नाम वा **(यत्र)** जहां

(वनस्पतेः) वट आदि वृक्षों के **(प्रिया)** उत्तम **(पाथांसि)** अन्न अर्थात् उन के पीने के जल वा **(यत्र)** जहां **(आज्यपानाम्)** गति अर्थात् अपनी कक्षा में घूमने से जीवों के पालने वाले **(देवानाम्)** पृथिवी आदि दिव्य लोकों का **(प्रिया)** उत्तम **(धामानि)** उत्पन्न होना उनके ठहरने की जगह और नाम वा **(यत्र)** जहां **(होतुः)** उत्तम सुख देने और **(अग्नेः)** विद्या से प्रकाशमान होने हारे अग्नि के **(प्रिया)** मनोहर **(धामानि)** जन्म स्थान और नाम हैं, **(तत्र)** वहां **(एतान्)** इन उक्त पदार्थों की **(प्रस्तुत्येव)** प्रकरण से अर्थात् समय-समय से चाहना सी कर और **(उपस्तुत्येव)** उनकी समीप प्रशंसा सी करके **(उपावस्रक्षत्)** उनको गुण-कर्म-स्वभाव से यथायोग्य कामों में उपार्जन करे अर्थात् उक्त पदार्थों का संचय करे **(रभीयस इव)** बहुत प्रकार से अतीव आरम्भ के समान **(कृत्वी)** करके कार्य्यों के उपयोग में लावे **(एवम्)** और उस प्रकार **(करत्)** उनका व्यवहार करे वा जैसे **(वनस्पतिः)** सूर्य आदि लोकों की किरणों की पालना करने हारा और **(देवः)** दिव्यगुणयुक्त अग्नि **(हविः)** संस्कार किये अर्थात् उत्तमता से बनाये हुए पदार्थ का **(जुषताम्)** सेवन करे और **(हि)** निश्चय से **(वनस्पतिम्)** वट आदि वृक्षों को **(अभि, यक्षत्)** सब ओर से पहुंचे अर्थात् बिजुली रूप से प्राप्त हो और **(अधित)** उनका धारण करे, वैसे तू **(यज)** सब व्यवहारों की संगति किया कर॥४६॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जो मनुष्य ईश्वर के उत्पन्न किये हुए पदार्थों के गुण, कर्म और स्वभावों को जान कर इन को कार्य की सिद्धि के लिए भलीभांति युक्त करें तो वे अपने चाहे हुए सुखों को प्राप्त होवें॥४६॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। अश्व्यादयो देवताः। पूर्वस्य अयाट्सवितुरित्युत्तरस्य भुरिगाकृती छन्दसी। पञ्चमौ स्वरौ॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

होता॑ यक्षद॒ग्निꣳ स्वि॑ष्ट॒कृत॒मया॑ड॒ग्निर॒श्विनो॒श्छाग॑स्य ह॒विषः॑ प्रि॒या धामा॒न्यया॒ट् सर॑स्वत्या मे॒षस्य॑ ह॒विषः॑ प्रि॒या धामा॒न्यया॒डिन्द्र॑स्यऽऋ॒ष॒भस्य॑ ह॒विषः॑ प्रि॒या धामा॒न्यया॑ड॒ग्नेः प्रि॒या धामा॒न्यया॒ट् सोम॑स्य प्रि॒या धामा॒न्यया॒डिन्द्र॑स्य सु॒त्राम्णः॑ प्रि॒या धामा॒न्यया॑ट् सवि॒तुः प्रि॒या धामा॒न्यया॒ड् वरु॑णस्य प्रि॒या धामा॒न्यया॒ड् व॒न॒स्पतेः॑ प्रि॒या पाथा॒ꣳस्यया॑ड् दे॒वाना॑माज्य॒पाना॑ प्रि॒या धामा॑नि यक्ष॑द॒ग्नेर्होतुः॑ प्रि॒या धामा॑नि यक्ष॒त् स्वं म॑हि॒मान॒माय॑जता॒मेज्या॒ऽइषः॑ कृ॒णोतु॒ सोऽअ॑ध्व॒रा जा॒तवे॑दा जु॒षता॑ꣳ ह॒विर्हो॑त॒र्यज॑॥४७॥

होता॑। य॒क्ष॒त्। अ॒ग्निम्। स्वि॒ष्ट॒कृत॒मिति॑ स्विष्ट॒ऽकृत॑म्। अया॑ट्। अ॒ग्निः। अ॒श्विनोः॑। छाग॑स्य। ह॒विषः॑। प्रि॒या। धामा॑नि। अया॑ट्। सर॑स्वत्याः। मे॒षस्य॑। ह॒विषः॑। प्रि॒या। धामा॑नि। अया॑ट्। इन्द्र॑स्य। ऋ॒ष॒भस्य॑। ह॒विषः॑। प्रि॒या। धामा॑नि।

अयाट्। अग्नेः। प्रिया। धामानि। अयाट्। सोमस्य। प्रिया। धामानि। अयाट्। इन्द्रस्य। सुत्राम्ण इति सुऽत्राम्णः। प्रिया। धामानि। अयाट्। सवितुः प्रिया। धामानि। अयाट्। वरुणस्य। प्रिया। धामानि। अयाट्। वनस्पतेः। प्रिया। पाथांꣳसि। अयाट्। देवानाम्। आज्यपानामित्याज्यऽपानाम्। प्रिया। धामानि। यक्षत्। अग्नेः। होतुः। प्रिया। धामानि। यक्षत्। स्वम्। महिमानम्। आ। यजताम्। एज्या इत्याऽइज्याः। इषः। कृणोतु। सः। अध्वरा। जातवेदा इति जातऽवेदाः। जुषताम्। हविः। होतः। यज॥४७॥

पदार्थः-(**होता**) आदाता (**यक्षत्**) संगच्छेत् (**अग्निम्**) पावकम् (**स्विष्टकृतम्**) स्विष्टेन कृतं स्विष्टकृतम् (**अयाट्**) यजेत् (**अग्निः**) पावकः (**अश्विनोः**) वायुविद्युतोः (**छागस्य**) (**हविषः**) आदातुमर्हस्य (**प्रिया**) (**धामानि**) (**अयाट्**) यजेत् (**सरस्वत्याः**) वाण्याः (**मेषस्य**) (**हविषः**) आदातुमर्हस्य (**प्रिया**) (**धामानि**) (**अयाट्**) यजेत् (**इन्द्रस्य**) परमैश्वर्ययुक्तस्य (**ऋषभस्य**) उत्कृष्टगुणकर्मस्वभावस्य राज्ञः (**हविषः**) ग्रहीतुमर्हस्य (**प्रिया**) (**धामानि**) (**अयाट्**) (**अग्नेः**) विद्युतः (**प्रिया**) (**धामानि**) (**अयाट्**) (**सोमस्य**) ऐश्वर्यस्य (**प्रिया**) (**धामानि**) (**अयाट्**) (**इन्द्रस्य**) सेनेशस्य (**सुत्राम्णः**) सुष्ठु रक्षकस्य (**प्रिया**) (**धामानि**) (**अयाट्**) (**सवितुः**) (**प्रिया**) (**धामानि**) (**अयाट्**) (**वरुणस्य**) सर्वोत्कृष्टस्य जलस्य वा (**प्रिया**) (**धामानि**) (**अयाट्**) (**वनस्पतेः**) वटादे (**प्रिया**) तर्पकाणि (**पाथांसि**) फलादीनि (**अयाट्**) (**देवानाम्**) विदुषाम् (**आज्यपानाम्**) ज्ञातव्यरक्षकाणां रसानां वा (**प्रिया**) (**धामानि**) (**यक्षत्**) यजेत् (**अग्नेः**) प्रकाशकस्य सूर्यस्य (**होतुः**) आदातुः (**प्रिया**) (**धामानि**) (**यक्षत्**) (**स्वम्**) स्वकीयम् (**महिमानम्**) महत्त्वम् (**आ**) समन्तात् (**यजताम्**) गृह्णातु (**एज्याः**) समन्तात् यष्टुं सङ्गन्तुं योग्याः क्रियाः (**इषः**) इच्छाः (**कृणोतु**) करोतु (**सः**) (**अध्वरा**) अहिंसनीयान् यज्ञान् (**जातवेदाः**) प्राप्तप्रज्ञः (**जुषताम्**) सेवताम् (**हविः**) संगन्तव्यं वस्तु (**होतः**) (**यज**)॥४७॥

अन्वयः-हे होतर्यथा होता स्विष्टकृतमग्निं यक्षद् यथाग्निरश्विनोश्छागस्य हविषः प्रिया धामान्ययाट् सरस्वत्या मेषस्य हविषः प्रिया धामान्ययाडिन्द्रस्यर्षभस्य हविषः प्रिया धामान्ययाडग्नेः प्रिया धामान्ययाट् सोमस्य प्रिया धामान्ययाट् सुत्राम्ण इन्द्रस्य प्रिया धामान्ययाट् सवितुः प्रिया धामान्ययाड् वरुणस्य प्रिया धामान्ययाड् वनस्पतेः प्रिया पाथांस्ययाडाज्यपानां देवानां प्रिया धामानि यक्षत् होतुरग्नेः प्रिया धामानि यक्षत् स्वं महिमानमायजतां यथा जातवेदा य एज्या इषः कृणोतु सोध्वरा हविश्च जुषतां तथा त्वं यज॥४७॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये स्वेष्टसाधकानग्न्यादीन् सृष्टिस्थान् पदार्थान् सम्यग्विज्ञाय प्रियाणि सुखान्याप्नुवन्ति, ते स्वं महिमानं प्रथन्ते॥४७॥

पदार्थः-हे (**होतः**) देने हारे! जैसे (**होता**) लेने हारा (**स्विष्टकृतम्**) भलीभांति चाहे हुए पदार्थ से प्रसिद्ध किये (**अग्निम्**) अग्नि को (**यक्षत्**) प्राप्त और (**अयाट्**) उस की प्रशंसा करे वा जैसे (**अग्निः**) प्रसिद्ध आग (**अश्विनोः**) पवन बिजुली (**छागस्य**) बकरा आदि पशु (**हविषः**) और लेने योग्य पदार्थ के (**प्रिया**) मनोहर (**धामानि**) जन्म, स्थान और नाम को (**अयाट्**) प्राप्त हो वा (**सरस्वत्याः**) वाणी (**मेषस्य**)

सींचने वा दूसरे के जीतने की इच्छा करने वाले प्राणी **(हविषः)** और ग्रहण करने योग्य पदार्थ के **(प्रिया)** प्यारे मनोहर **(धामानि)** जन्म, स्थान और नाम की **(अयाट्)** प्रशंसा करे वा **(इन्द्रस्य)** परमैश्वर्य्ययुक्त **(ऋषभस्य)** उत्तम गुण, कर्म और स्वभाव वाले राजा और **(हविषः)** ग्रहण करने योग्य पदार्थ के **(प्रिया)** मनोहर **(धामानि)** जन्म, स्थान और नाम की **(अयाट्)** प्रशंसा करे वा **(अग्नेः)** बिजुली रूप अग्नि के **(प्रिया)** मनोहर **(धामानि)** जन्म, स्थान और नाम की **(अयाट्)** प्रशंसा करे वा **(सोमस्य)** ऐश्वर्य्य के **(प्रिया)** मनोहर **(धामानि)** जन्म, स्थान और नाम की **(अयाट्)** प्रशंसा करे वा **(सुत्राम्णः)** भलीभांति रक्षा करने वाले **(इन्द्रस्य)** सेनापति के **(प्रिया)** मनोहर **(धामानि)** जन्म, स्थान और नाम की **(अयाट्)** प्रशंसा करे वा **(सवितुः)** समस्त ऐश्वर्य्य के उत्पन्न करने हारे उत्तम पदार्थज्ञान के **(प्रिया)** मनोहर **(धामानि)** जन्म स्थान और नाम की **(अयाट्)** प्रशंसा करे वा **(वरुणस्य)** सब से उत्तम जन और जल के **(प्रिया)** मनोहर **(धामानि)** जन्म, स्थान और नाम की **(अयाट्)** प्रशंसा करे वा **(वनस्पतेः)** वट आदि वृक्षों के **(प्रिया)** तृप्ति कराने याले **(पाथांसि)** फलों को **(अयाट्)** प्राप्त हो वा **(आज्यपानाम्)** जानने योग्य पदार्थ की रक्षा करने और रस पीने वाले **(देवानाम्)** विद्वानों के **(प्रिया)** प्यारे मनोहर **(धामानि)** जन्म, स्थान और नाम का **(यक्षत्)** मिलाना व सराहना करे वा **(होतुः)** जलादिक ग्रहण करने और **(अग्नेः)** प्रकाश करने वाले सूर्य्य के **(प्रिया)** मनोहर **(धामानि)** जन्म, स्थान और नाम की **(यक्षत्)** प्रशंसा करे **(स्वम्)** अपने **(महिमानम्)** बड़प्पन का **(आ, यजताम्)** ग्रहण करे वा जैसे **(जातवेदाः)** उत्तम बुद्धि को **(एज्याः)** अच्छे प्रकार संग योग्य उत्तम क्रियाओं और **(इषः)** चाहनाओं को **(कृणोतु)** करे **(सः)** वह **(अध्वरा)** न छोड़ने न विनाश करने योग्य यज्ञों का और **(हविः)** संग करने योग्य पदार्थ का **(जुषताम्)** सेवन करे, वैसे तू **(यज)** सब व्यवहारों की संगति किया कर॥४७॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य अपने चाहे हुए को सिद्ध करने वाले अग्नि आदि संसारस्थ पदार्थों को अच्छे प्रकार जानकर प्यारे मन से चाहे हुए सुखों को प्राप्त होते हैं, वे अपने बड़प्पन का विस्तार करते हैं॥४७॥

देवं बर्हिरित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। सरस्वत्यादयो देवताः। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ विद्वांसः कथं वर्त्तेरन्नित्याह॥

अब विद्वान् कैसे अपना वर्त्ताव वर्त्तें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

देवं बर्हिः सरस्वती सुदेवमिन्द्रेऽअश्विना।

तेजो न चक्षुरक्ष्योर्बर्हिषा दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज॥४८॥

देवम्। बर्हिः। सरस्वती। सुदेवमिति सुऽदेवम्। इन्द्रे। अश्विना। तेजः। न। चक्षुः। अक्ष्योः। बर्हिषा। दधुः। इन्द्रियम्। वसुवन इति वसुऽवने। वसुधेयस्येति वसुऽधेयस्य। व्यन्तु। यज॥४८॥

पदार्थः-(**देवम्**) दिव्यम् (**बर्हिः**) अन्तरिक्षम् (**सरस्वती**) प्रशस्तविज्ञानयुक्ता स्त्री (**सुदेवम्**) शोभनं विद्वांसम् (**इन्द्रे**) परमैश्वर्य्ये (**अश्विना**) अध्यापकोपदेशकौ (**तेजः**) (**न**) इव (**चक्षुः**) नेत्रम् (**अक्ष्योः**) अक्ष्णोः (**बर्हिषा**) अन्तरिक्षेण (**दधुः**) (**इन्द्रियम्**) धनम् (**वसुवने**) धनप्रापणाय (**वसुधेयस्य**) वसुधेयं यस्मिंस्तस्य (**व्यन्तु**) प्राप्नुवन्तु (**यज**) यजते॥४८॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यथा सरस्वतीन्द्रे देवं सुदेवं बर्हिरश्विना चक्षुस्तेजो न यज यथा च विद्वांसो वसुधेयस्य वसुवनेऽक्ष्योर्बर्हिषेन्द्रियं दधुर्व्यन्तु च तथैतत् त्वं धेहि प्राप्नुहि च॥४८॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। हे मनुष्याः! यथा विदुषी ब्रह्मचारिणी कुमारी स्वार्थं हृद्यं पतिं प्राप्यानन्दति तथा विद्यासृष्टिपदार्थबोधं प्राप्य भवद्भिरप्यानन्दितव्यम्॥४८॥

पदार्थः-हे विद्वन्! जैसे (**सरस्वती**) प्रशंसित विज्ञानयुक्त स्त्री (**इन्द्रे**) परमैश्वर्य के निमित्त (**देवम्**) दिव्य (**सुदेवम्**) सुन्दर विद्वान् पति की (**बर्हिः**) अन्तरिक्ष (**अश्विना**) पढ़ाने और उपदेश करने वाले तथा (**चक्षुः**) आंख के (**तेजः**) तेज के (**न**) समान (**यज**) प्रशंसा वा संगति करती है और जैसे विद्वान् जन (**वसुधेयस्य**) जिस में धन धारण करने योग्य हो, उस व्यवहार सम्बन्धी (**वसुवने**) धन की प्राप्ति कराने के लिए (**अक्ष्योः**) आंखों के (**बर्हिषा**) अन्तरिक्ष अवकाश से अर्थात् दृष्टि से देख के (**इन्द्रियम्**) उक्त धन को (**दधुः**) धारण करते और (**व्यन्तु**) प्राप्त होते हैं, वैसे इसको तू धारण कर॥४८॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। हे मनुष्यो! जैसे विदुषी ब्रह्मचारिणी कुमारी कन्या अपने लिए मनोहर पति को पाकर आनन्द करती है, वैसे विद्या और संसार के पदार्थ का बोध पाकर तुम लोगों को भी आनन्दित होना चाहिए॥४८॥

देवीर्द्वार इत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। अश्व्यादयो देवताः। ब्राह्म्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

पुनर्विद्वदुपदेशः कीदृशो भवतीत्याह॥

फिर विद्वानों का उपदेश कैसा होता है, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

दे॒वीर्द्वारो॑ऽअ॒श्विना॑ भि॒षजेन्द्रे॒ सर॑स्वती।

प्रा॒णं न वी॒र्य्यं॑ न॒सि द्वारो॑ दधुरिन्द्रि॒यं व॑सु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑॥४९॥

दे॒वीः। द्वार॑ः। अ॒श्विना॑। भि॒षजा॑। इन्द्रे॑। सर॑स्वती। प्रा॒णम्। न। वी॒र्य्य॑म्। न॒सि। द्वार॑ः। द॒धुः। इ॒न्द्रि॒यम्। व॒सु॒वन॒ इति॑ वसु॒ऽवने॑। व॒सु॒धेय॒स्येति॑ वसु॒ऽधेय॑स्य। व्य॒न्तु॒। यज॑॥४९॥

पदार्थः-(**देवीः**) देदीप्यमानाः (**द्वारः**) प्रवेशनिर्गमार्थानि द्वाराणि (**अश्विना**) वायुसूर्य्यौ (**भिषजा**) वैद्यौ (**इन्द्रे**) ऐश्वर्य्ये (**सरस्वती**) विज्ञानवती स्त्री (**प्राणम्**) जीवनहेतुम् (**न**) इव (**वीर्य्यम्**) (**नसि**) नासिकायाम् (**द्वारः**) (**दधुः**) (**इन्द्रियम्**) धनम् (**वसुवने**) धनसेवनाय (**वसुधेयस्य**) धनकोशस्य (**व्यन्तु**) (**यज**)॥४९॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यथाश्विना सरस्वती भिषजेन्द्रे देवीर्द्वारः प्राप्नुवतो नसि प्राणं न वीर्य्यं द्वारश्च दधुर्वसुवने वसुधेयस्य्द्रन्द्रियं विद्वांसो व्यन्तु तथा त्वं यज॥४९॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। यथा सूर्य्याचन्द्रप्रकाशो द्वारेभ्यो गृहं प्रविश्यान्तः प्रकाशते तथा विद्वदुपदेशः श्रोत्रान् प्रविश्य स्वान्ते प्रकाशते। एवं ये विद्यया प्रयतन्ते ते श्रीमन्तो जायन्ते॥४९॥

पदार्थः-हे विद्वन्! जैसे **(अश्विना)** पवन और सूर्य्य वा **(सरस्वती)** विशेष ज्ञान वाली स्त्री और **(भिषजा)** वैद्य **(इन्द्रे)** ऐश्वर्य के निमित्त **(देवीः)** अतीव दीपते अर्थात् चमकाते हुए **(द्वारः)** पैठने और निकलने के अर्थ बने हुए द्वारों को प्राप्त होते हुए प्राणियों की **(नसि)** नासिका में **(प्राणम्)** जो श्वास आती उस के **(न)** समान **(वीर्य्यम्)** बल और **(द्वारः)** द्वारों अर्थात् शरीर के प्रसिद्ध नव छिद्रों को **(दधुः)** धारण करें **(वसुवने)** वा धन का सेवन करने के लिए **(वसुधेयस्य)** धनकोश के **(इन्द्रियम्)** धन को विद्वान् जन **(व्यन्तु)** प्राप्त हों, वैसे तू **(यज)** सब व्यवहारों की संगति किया कर॥४९॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे सूर्य्य और चन्द्रमा का प्रकाश द्वारों से घर को पैठ घर के भीतर प्रकाश करता है, वैसे विद्वानों का उपदेश कानों में प्रविष्ट होकर भीतर मन में प्रकाश करता है, ऐसे जो विद्या के साथ अच्छा यत्न करते हैं, वे धनवान् होते हैं॥४९॥

देवी उषासावित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। अश्व्यादयो देवताः। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनर्मनुष्याः कथं वर्त्तेरन्नित्याह॥

फिर मनुष्य कैसे वर्त्तें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

दे॒वीऽउ॒षासा॑व॒श्विना॑ सु॒त्रामेन्द्रे॒ सर॑स्वती।

बल॒ं न वाच॑मा॒स्य॒ऽउ॒षाभ्यां॑ दधुरिन्द्रि॒यं व॑सु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑॥५०॥

दे॒वीऽइति॑ दे॒वी। उ॒षासौ॑। उ॒षसा॒वित्यु॒षसौ॑। अ॒श्विना॑। सु॒त्रामेति॑ सु॒ऽत्रामा॑। इन्द्रे॑। सर॑स्वती। बल॑म्। न। वाच॑म्। आ॒स्ये॒। उ॒षाभ्या॑म्। द॒धुः॒। इ॒न्द्रि॒यम्। व॒सु॒व॒न इति॑ वसु॒ऽवने॑। व॒सु॒धे॒य॒स्येति॑ वसु॒ऽधेय॑स्य। व्य॒न्तु॒। यज॑॥५०॥

पदार्थः-**(देवी)** देदीप्यमाने **(उषासौ)** सायंप्रातः सन्धिवेले अत्रान्येषामपीत्युपधादीर्घः **(अश्विना)** सूर्याचन्द्रमसौ **(सुत्रामा)** सुष्ठु रक्षकौ **(इन्द्रे)** परमैश्वर्य्ये **(सरस्वती)** विज्ञाननिमित्ता स्त्री **(बलम्)** **(न)** इव **(वाचम्)** **(आस्ये)** मुखे **(उषाभ्याम्)** उभयवेलाभ्याम्। अत्र छान्दसो वर्णलोपो वेति सलोपः **(दधुः)** दध्युः **(इन्द्रियम्)** धनम् **(वसुवने)** धनसेविने **(वसुधेयस्य)** धनाधारस्य **(व्यन्तु)** **(यज)**॥५०॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यथा देवी उषासौ सुत्रामा सरस्वत्यश्विना वसुवने वसुधेयस्येन्द्रे बलं नास्ये वाचमुषाभ्यमिन्द्रियं च दधुः सर्वान् व्यन्तु च तथा त्वं यज॥५०॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये पुरुषार्थिनो मनुष्याः सूर्यचन्द्रसन्ध्यावन्नियमेन प्रयतन्ते, सन्धिवेलायां शयनाऽऽलस्यादिकं विहायेश्वरस्य ध्यानं कुर्वन्ति ते पुष्कलां श्रियं प्राप्नुवन्ति॥५०॥

पदार्थः-हे विद्वन्! जैसे **(देवी)** निरन्तर प्रकाश को प्राप्त **(उषासौ)** सायंकाल और प्रातःकाल की सन्धिवेला वा **(सुत्रामा)** भलीभांति रक्षा करने वाले **(सरस्वती)** विशेष ज्ञान की हेतु स्त्री **(अश्विना)** सूर्य और चन्द्रमा **(वसुवने)** धन की सेवा करने वाले के लिए **(वसुधेयस्य)** जिस में धन धरा जाय उस व्यवहारसम्बन्धी **(इन्द्रे)** उत्तम ऐश्वर्य में **(न)** जैसे **(बलम्)** बल को वैसे **(आस्ये)** मुख में **(वाचम्)** वाणी को वा **(उषाभ्याम्)** सायंकाल और प्रातःकाल की वेला से **(इन्द्रियम्)** धन को **(दधुः)** धारण करें और सब को **(व्यन्तु)** प्राप्त हों, वैसे तू **(यज)** सब व्यवहारों की संगति किया कर॥५०॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो पुरुषार्थी मनुष्य सूर्य-चन्द्रमा सांयकाल और प्रातःकाल की वेला के समान नियम के साथ उत्तम उत्तम यत्न करते हैं तथा सायंकाल और प्रातःकाल की वेला में सोने और आलस्य आदि को छोड़ ईश्वर का ध्यान करते हैं, वे बहुत धन को पाते हैं॥५०॥

देवी जोष्ट्री इत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। अश्व्यादयो देवताः। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनर्मनुष्याः कीदृशा भवन्तीत्याह॥

फिर मनुष्य कैसे होते हैं, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

दे॒वी जोष्ट्री॒ सर॑स्वत्य॒श्विनेन्द्र॑मवर्धयन्।

श्रोत्रं॒ न कर्णयो॒र्यशो॒ जोष्ट्री॑भ्यां दधुरिन्द्रियं व॑सु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑॥५१॥

दे॒वीऽइति॑ दे॒वी। जोष्ट्री॒ऽइति॑। जोष्ट्री॑। सर॑स्वती। अ॒श्विना॑। इन्द्र॑म्। अ॒व॒र्ध॒य॒न्। श्रोत्र॑म्। न। कर्ण॑योः। यश॑ः। जोष्ट्री॒भ्याम्। द॒धुः। इ॒न्द्रि॒यम्। व॒सु॒व॒न् इति॑ वसु॒ऽवने॑। व॒सु॒धेय॒स्येति॑ वसु॒ऽधेय॑स्य। व्य॒न्तु॒। यज॑॥५१॥

पदार्थः-**(देवी)** प्रकाशदात्री **(जोष्ट्री)** सेवनीया **(सरस्वती)** विज्ञाननिमित्ता **(अश्विना)** वायुविद्युतौ **(इन्द्रम्)** सूर्यम् **(अवर्धयन्)** वर्धयन्ति **(श्रोत्रम्)** येन शृणोति तत् **(न)** इव **(कर्णयोः)** श्रोत्रयोः **(यशः)** कीर्तिम् **(जोष्ट्रीभ्याम्)** सेविकाभ्यां वेलाभ्याम् **(दधुः)** दधति **(इन्द्रियम्)** धनम् **(वसुवने)** धनसेविने **(वसुधेयस्य)** धनकोशस्य **(व्यन्तु)** **(यज)**॥५१॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यथा देवी जोष्ट्री सरस्वत्यश्विनेन्द्रमवर्धयन् मनुष्या वा जोष्ट्रीभ्यां कर्णयोर्यशः श्रोत्रं न दधुर्वसुधेयस्य वसुवन इन्द्रियं व्यन्तु तथा त्वं यज॥५१॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। ये सूर्यकारणानि विदन्ति ते यशस्विनो भूत्वा श्रीमन्तो भवन्ति॥११॥

पदार्थः-हे विद्वन्! जैसे **(देवी)** प्रकाश देने वाली **(जोष्ट्री)** सेवने योग्य **(सरस्वती)** विशेष ज्ञान की निमित्त सायंकाल और प्रातःकाल की वेला तथा **(अश्विना)** पवन और बिजुलीरूप अग्नि **(इन्द्रम्)** सूर्य को

(अवर्धयन्) बढ़ाते अर्थात् उन्नति देते हैं वा मनुष्य **(जोष्ट्रीभ्याम्)** संसार को सेवन करती हुई उक्त प्रात:काल और सायंकाल की वेलाओं से **(कर्णयो:)** कानों में **(यश:)** कीर्ति को **(श्रोत्रम्)** जिस से वचन को सुनता है, उस कान के ही **(न)** समान **(दधु:)** धारण करते हैं वा **(वसुधेयस्य)** जिस में धन धरा जाय उस कोशसम्बन्धी **(वसुवने)** धन को सेवन करने वाले **(इन्द्रियम्)** धन को **(व्यन्तु)** विशेषता से प्राप्त होते हैं, वैसे तू **(यज)** सब व्यवहारों की संगति किया कर॥५१॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जो सूर्य के कारणों को जानते हैं, वे यशस्वी होकर धनवान्, कान्तिमान् शोभायमान होते हैं॥५१॥

देवी इत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषि:। अश्व्यादयो देवता:। त्रिष्टुप् छन्द:। धैवत: स्वर:॥

पुनर्मनुष्यैः कथं वर्त्तितव्यमित्याह॥

फिर मनुष्यों को कैसे अपना वर्त्ताव वर्त्तना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

देवीऽऊर्जाहुती दुघे सुदुघेन्द्रे सरस्वत्यश्विना भिषजावत:।
शुक्रं न ज्योति स्तनयोराहुती धत्तऽइन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज॥५२॥

देवी इति देवी। ऊर्ज्जाहुती इत्यूर्जाऽआहुती। दुघे इति दुघे। सुदुघेति सुऽदुघा। इन्द्रे। सरस्वती। अश्विना। भिषजा। अवत:। शुक्रम्। न। ज्योति:। स्तनयो:। आहुती इत्याऽहुती। धत्त। इन्द्रियम्। वसुवन इति वसुऽवने। वसुधेयस्येति वसुऽधेयस्य। व्यन्तु। यज॥५२॥

पदार्थ:-**(देवी)** कमनीये **(ऊर्जाहुती)** अन्नस्याहुती **(दुघे)** प्रपूरके प्रात: सायंवेले **(सुदुघा)** प्रपूरकौ **(इन्द्रे)** परमैश्वर्य्ये **(सरस्वती)** विशेषज्ञानवती **(अश्विना)** अध्यापकोपदेशकौ **(भिषजा)** सद्वैद्यौ **(अवत:)** रक्षत: **(शुक्रम्)** शुद्धं जलम् **(न)** इव **(ज्योति:)** प्रकाशम् **(स्तनयो:)** **(आहुती)** आदातव्ये **(धत्त)** धरत **(इन्द्रियम्)** धनम् **(वसुवने)** धनसेविने **(वसुधेयस्य)** धनाधारस्य संसारस्य मध्ये **(व्यन्तु)** **(यज)॥५२॥**

अन्वय:-हे विद्वांसो! यूयं यथा देवी दुघे इन्द्र ऊर्जाहुती सरस्वती सुदुघा भिषजाऽश्विना च शुक्रं न ज्योतिरवतस्तया स्तनयोराहुती धत्त वसुधेयस्य वसुवन इन्द्रियं धत्त येनैतानि सर्वे व्यन्तु। हे गुणग्राहिन्! तथा त्वं यज॥५२॥

भावार्थ:-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। यथा सद्वैद्या: स्वानि परेषां च शरीराणि रक्षयित्वा वर्द्धयन्ति तथा सर्वैर्धनं रक्षयित्वा वर्धनीयं येनाऽस्मिन् संसारेऽतुलं सुखं भूयात्॥५२॥

पदार्थ:-हे विद्वानो! तुम लोग जैसे **(देवी)** मनोहर **(दुघे)** उत्तमता पूरण करने वाली प्रात: सायं वेला वा **(इन्द्रे)** परम ऐश्वर्य के निमित्तम **(ऊर्ज्जाहुती)** अन्न की आहुति **(सरस्वती)** विशेष ज्ञान कराने हारी स्त्री वा **(सुदुघा)** सुख पूरण करने हारे **(भिषजा)** अच्छे वैद्य **(अश्विना)** वा पढ़ाने और उपदेश करने हारे विद्वान् **(शुक्रम्)** शुद्ध जल के **(न)** समान **(ज्योति:)** प्रकाश की **(अवत:)** रक्षा करते हैं, वैसे **(स्तनयो:)**

शरीर में स्तनों की जो **(आहुती)** ग्रहण करने योग्य क्रिया है, उनको **(धत्त)** धारण करो और **(वसुधेयस्य)** जिस में धन धरा हुआ उस संसार के बीच **(वसुवने)** धन के सेवन करने वाले के लिए **(इन्द्रियम्)** धन को धारण करो, जिससे उन उक्त पदार्थों को साधारण सब मनुष्य **(व्यन्तु)** प्राप्त हों। हे गुणों के ग्रहण करने हारे जन! वैसे तू सब व्यवहारों की **(यज)** संगति किया कर॥५२॥

भावार्थः- इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे अच्छे वैद्य अपने और दूसरों के शरीरों की रक्षा करके वृद्धि करते कराते हैं, वैसे सब को चाहिए कि धन की रक्षा करके उस की वृद्धि करें, जिससे इस संसार में अतुल सुख हो॥५२॥

देवा देवानामित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। अश्व्यादयो देवताः। भुरिगतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनर्मनुष्यैः कथं वर्त्तितव्यमित्याह॥

फिर मनुष्यो को कैसे वर्त्तना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

दे॒वा दे॒वानां॑ भि॒षजा॒ होता॑रा॒विन्द्र॑म॒श्विना॑। व॒ष॒ट्का॒रैः सर॑स्वती॒ त्विषिं॒ न हृद॑ये म॒तिꣳ होतृ॑भ्यां दधुरिन्द्रि॒यं व॒सु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑॥५३॥

दे॒वा। दे॒वाना॑म्। भि॒षजा॑। होता॑रौ। इन्द्र॑म्। अ॒श्विना॑। व॒ष॒ट्का॒रैरिति॑ वषट्ऽका॒रैः। सर॑स्वती। त्विषि॑म्। न। हृद॑ये। म॒तिम्। होतृ॑भ्या॒मिति॒ होतृ॑ऽभ्याम्। द॒धुः। इ॒न्द्रि॒यम्। व॒सु॒व॒न इति॑ वसु॒ऽवने॑। व॒सु॒धेय॒स्येति॑ वसु॒ऽधेय॑स्य। व्य॒न्तु॒। यज॑॥५३॥

पदार्थः-(देवा) वैद्यविद्यया प्रकाशमानौ **(देवानाम्)** सुखदातॄणां विदुषां **(भिषजा)** चिकित्सकौ **(होतारौ)** सुखस्य दातारौ **(इन्द्रम्)** परमैश्वर्यम् **(अश्विना)** विद्याव्यापिनौ **(वषट्कारैः)** श्रेष्ठैः कर्मभिः **(सरस्वती)** प्रशस्तविद्यासुशिक्षायुक्ता वाङ्मती **(त्विषिम्)** प्रकाशम् **(न)** इव **(हृदये)** अन्तःकरणे **(मतिम्)** **(होतृभ्याम्)** दातृभ्याम् **(दधुः)** **(इन्द्रियम्)** शुद्धं मनः **(वसुवने)** धनसंविभाजकाय **(वसुधेयस्य)** कोशस्य **(व्यन्तु)** **(यज)**॥५३॥

अन्वयः-हे विद्वांसो! भवन्तो यथा देवानां होतारौ देवा भिषजाऽश्विना वषट्कारैरिन्द्रं दध्यातां सरस्वती त्विषिं न हृदये मतिं दध्यात् तथा होतृभ्यां सहैता वसुधेयस्य वसुवन इन्द्रियं दधुर्व्यन्तु च। हे मनुष्य! तथा त्वमपि यज॥५३॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। यथा विद्वत्सु विद्वांसौ सद्वैद्यौ सत्क्रियया सर्वानरोगीकृत्य श्रीमतः सम्पादयतो यथा वा विदुषां वाग्विद्यार्थिनां स्वान्ते प्रज्ञामुन्नयति तथाऽन्यैर्विद्याधने संचयनीये॥५३॥

पदार्थः-हे विद्वानो! आप लोग जैसे **(देवानाम्)** सुख देने हारे विद्वानों के बीच **(होतारौ)** शरीर के सुख देने वाले **(देवा)** वैद्यविद्या से प्रकाशमान **(भिषजा)** वैद्यजन **(अश्विना)** विद्या में रमते हुए

(वषट्कारैः) श्रेष्ठ कामों से **(इन्द्रम्)** परमैश्वर्य्य को धारण करें **(सरस्वती)** प्रशंसित विद्या और अच्छी शिक्षायुक्त वाणी वाली स्त्री **(त्विषिम्)** प्रकाश के **(न)** समान **(हृदये)** अन्तःकरण में **(मतिम्)** बुद्धि को धारण करे, वैसे **(होतृभ्याम्)** देने वालों के साथ उक्त सद्वैद्य और वाणीयुक्त स्त्री को वा **(वसुधेयस्य)** कोश के **(वसुवने)** धन को बांटने वाले के लिए **(इन्द्रियम्)** शुद्ध मन को **(दधुः)** धारण करें और **(व्यन्तु)** प्राप्त हों। हे जन! वैसे तू भी **(यज)** सब व्यवहारों की संगति किया कर॥५३॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे विद्वानों में विद्वान्, अच्छे वैद्य श्रेष्ठ क्रिया से सब को नीरोग कर कान्तिमान् धनवान् करते हैं वा जैसे विद्वानों की वाणी विद्यार्थियों के मन में उत्तम ज्ञान की उन्नति करती है, वैसे साधारण मनुष्यों को विद्या और धन इकट्ठे करने चाहिए॥५३॥

देवीरित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। अश्व्यादयो देवताः। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनर्जननीजनकाः स्वसन्तानान् कीदृशान् कुर्युरित्याह॥

फिर माता पिता अपने सन्तानों को कैसे करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

दे॒वीस्ति॒स्रस्ति॒स्रो दे॒वीर॒श्विनेडा॒ सर॑स्वती।

शूषं॒ न मध्ये॒ नाभ्या॒मिन्द्रा॑य दधुरिन्द्रि॒यं व॑सु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑॥५४॥

दे॒वीः। ति॒स्रः। ति॒स्रः। दे॒वीः। अ॒श्विना॑। इडा॑। सर॑स्वती। शूष॑म्। न। मध्ये॑। नाभ्या॑म्। इन्द्रा॑य। द॒धुः। इ॒न्द्रि॒यम्। व॒सु॒वन॒ इति॑ वसु॒ऽवने॑। व॒सु॒धेय॒स्येति॑ वसु॒ऽधेय॑स्य। व्य॒न्तु॒। यज॑॥५४॥

पदार्थः-**(देवीः)** देदीप्यमानाः **(तिस्रः)** त्रित्वसंख्याकाः **(तिस्रः)** **(देवीः)** विद्यया प्रकाशिताः **(अश्विना)** अध्यापकोपदेशकौ **(इडा)** स्ताविका **(सरस्वती)** प्रशस्तविद्यायुक्ता **(शूषम्)** बलं सुखं वा **(न)** इव **(मध्ये)** **(नाभ्याम्)** तुन्दे **(इन्द्राय)** जीवाय **(दधुः)** दध्युः **(इन्द्रियम्)** अन्तःकरणम् **(वसुवने)** धनेच्छुकाय **(वसुधेयस्य)** धेयानि वसूनि यस्मिंस्तस्य जगतः **(व्यन्तु)** **(यज)**॥५४॥

अन्वयः-हे विद्यार्थिन्! यथा तिस्रो देवीर्वसुधेयस्य मध्ये वसुवन इन्द्राय तिस्रो देवीर्दधुर्ययाश्विनेडा सरस्वती च नाभ्यां शूषन्नेन्द्रियं दध्युर्यथैत एतानि व्यन्तु तथा त्वं यज॥५४॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। यथा जनन्यध्यापिकोपदेष्ट्री च तिस्रो विदुष्यः कुमारीर्विदुषीः कृत्वा सुखयन्ति, तथा जनकाध्यापकोपदेष्टारः कुमारान् विद्यार्थिनो विपश्चितः कृत्वा सुसभ्यान् कुर्य्युः॥५४॥

पदार्थः-हे विद्यार्थी! जैसे **(तिस्रः)** माता, पढ़ाने और उपदेश करने वाली ये तीन **(देवीः)** निरन्तर विद्या से दीपती हुई स्त्री **(वसुधेयस्य)** जिसमें धन धरने योग्य है, उस संसार के **(मध्ये)** बीच **(वसुवने)** उत्तम धन चाहने वाले **(इन्द्राय)** जीव के लिये **(तिस्रः)** उत्तम, मध्यम, निकृष्ट तीन **(देवीः)** विद्या से प्रकाश को प्राप्त हुई कन्याओं को **(दधुः)** धारण करें वा **(अश्विना)** पढ़ाने और उपदेश करने हारे मनुष्य

(इडा) स्तुति करने हारी स्त्री और **(सरस्वती)** प्रशंसित विज्ञानयुक्त स्त्री **(नाभ्याम्)** तोंदी में **(शूषम्)** बल वा सुख के **(न)** समान **(इन्द्रियम्)** मन को धारण करें वा जैसे ये सब उक्त पदार्थों को **(व्यन्तु)** प्राप्त हों, वैसे तू **(यज)** सब व्यवहारों की संगति किया कर॥५४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे माता, पढ़ाने और उपदेश करने हारी ये तीन पण्डिता स्त्री कुमारियों को पण्डिता कर उनको सुखी करती हैं, वैसे पिता, पढ़ाने और उपदेश करने वाले विद्वान् कुमार विद्यार्थियों को विद्वान् कर उन्हें अच्छे सभ्य करें॥५४॥

देव इन्द्र इत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। अश्व्यादयो देवताः। स्वराट् शक्वरी छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

दे॒वऽइन्द्रो॒ नरा॒शꣳस॑स्त्रिवरू॒थः सर॑स्वत्या॒श्विभ्या॑मीयते॒ रथः॑।

रेतो॒ न रू॒पम॒मृतं॑ ज॒नित्र॒मिन्द्रा॑य॒ त्वष्टा॒ दध॑दिन्द्रि॒याणि॑ वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑॥५५॥

दे॒वः। इन्द्रः॑। न॒रा॒शꣳसः॑। त्रि॒व॒रू॒थ इति॑ त्रिऽवरू॒थः। सर॑स्वत्या। अ॒श्विभ्या॒मित्य॒श्विऽभ्या॑म्। ई॒य॒ते॒। रथः॑। रेतः॑। न। रू॒पम्। अ॒मृत॑म्। ज॒नित्र॑म्। इन्द्रा॑य। त्वष्टा॑। दध॑त्। इ॒न्द्रि॒याणि॑। व॒सु॒वन॒ इति॑ वसु॒ऽवने॑। व॒सु॒धेय॒स्येति॑ वसु॒ऽधेय॑स्य। व्य॒न्तु॒। यज॑॥५५॥

पदार्थः-**(देवः)** विद्वान् **(इन्द्रः)** परमैश्वर्यवान् **(नराशंसः)** ये नरानाशंसन्ति तान् **(त्रिवरूथः)** त्रिषु भूम्यधोन्तरिक्षेषु वरूथानि गृहाणि यस्य सः **(सरस्वत्या)** सुशिक्षितया वाचा **(अश्विभ्याम्)** अग्निवायुभ्याम् **(ईयते)** गम्यते **(रथः)** यानम् **(रेतः)** वीर्यम् **(न)** इव **(रूपम्)** आकृतिम् **(अमृतम्)** जलम् **(जनित्रम्)** जनकम् **(इन्द्राय)** जीवाय **(त्वष्टा)** दुःखविच्छेदकः **(दधत्)** दध्यात् **(इन्द्रियाणि)** श्रोत्रादीनि **(वसुवने)** धनसेविने **(वसुधेयस्य)** संसारस्य **(व्यन्तु)** **(यज)**॥५५॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यथा त्रिवरुथ इन्द्रो देवः सरस्वत्या नराशंसोऽश्विभ्यां रथ ईयत इव सन्मार्गे गमयति, यथा वा जनित्रममृतं रेतो न रूपं वसुधेयस्य वसुवन इन्द्रायेन्द्रियाणि त्वष्टा दधद्यथैत एतानि व्यन्तु तथा त्वं यज॥५५॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। हे मनुष्याः! यदि यूयं धर्म्येण व्यवहारेण श्रियं संचिनुयात्, तर्हि जलाग्निभ्यां चालितो रथ इव सद्यः सर्वाणि सुखानि प्राप्नुयात्॥५५॥

पदार्थः-हे विद्वन्! जैसे **(त्रिवरूथः)** तीन अर्थात् भूमि, भूमि के नीचे और अन्तरिक्ष में जिस के घर हैं, वह **(इन्द्रः)** परमैश्वर्य्यवान् **(देवः)** विद्वान् **(सरस्वत्या)** अच्छी शिक्षा की हुई वाणी से **(नराशंसः)** जो मनुष्यों को भलीभांति शिक्षा देते हैं, उनको **(अश्विभ्याम्)** आग और पवन से जैसे **(रथः)** रमणीय रथ **(ईयते)** पहुंचाया जाता, वैसे अच्छे मार्ग में पहुंचाता है वा जैसे **(त्वष्टा)** दुःख का विनाश करने हारा

(जनित्रम्) उत्तम सुख उत्पन्न करने हारे **(अमृतम्)** जल और **(रेत:)** वीर्य्य के **(न)** समान **(रूपम्)** रूप को तथा **(वसुधेयस्य)** संसार के बीच **(वसुवने)** धन की सेवा करने वाले **(इन्द्राय)** जीव के लिए **(इन्द्रियाणि)** कान, आंख आदि इन्द्रियों को **(दधत्)** धारण करे वा जैसे उक्त पदार्थों को ये सब **(व्यन्तु)** प्राप्त हों, वैसे तू **(यज)** सब व्यवहारों की संगति किया कर॥५५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। हे मनुष्यो! यदि तुम लोग धर्मसम्बन्धी व्यवहार से धन को इच्छा करो तो जल और आग से चलाये हुए रथ के समान शीघ्र सब सुखों को प्राप्त होओ॥५५॥

देवो देवैरित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषि:। अश्व्यादयो देवता:। निचृदत्यष्टिश्छन्द:। गान्धार: स्वर:॥

पुनर्मनुष्या: कथं वर्त्तेरन्नित्याह॥

फिर मनुष्य कैसे वर्त्तें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

दे॒वो दे॒वैर्व॒न॒स्पति॒र्हिर॑ण्यपर्णोऽअ॒श्विभ्या॒ꣳ सर॑स्वत्या सुपिप्प॒लऽइन्द्रा॑य पच्यते॒ मधु॑। ओजो॒ न जू॒तिर्ऋ॑ष॒भो न भाम॒ं व॒न॒स्पति॑र्नो॒ दध॑दिन्द्रि॒याणि॑ वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑॥५६॥

दे॒व:। दे॒वै:। व॒न॒स्पति॑:। हिर॑ण्यवर्ण॒ इति॒ हिर॑ण्यऽवर्ण:। अ॒श्विभ्या॒मित्य॒श्विऽभ्या॑म्। सर॑स्वत्या। सु॒पि॒प्प॒ल इति॑ सुऽपिप्प॒ल:। इन्द्रा॑य। प॒च्य॒ते॒। मधु॑। ओज॑:। न। जू॒ति:। ऋ॒ष॒भ:। न। भाम॑म्। व॒न॒स्पति॑:। न॒:। दध॑त्। इ॒न्द्रि॒याणि॑। व॒सु॒व॒न इति॑ वसु॒ऽवने॑। व॒सु॒धे॒य॒स्येति॑ वसु॒ऽधेय॑स्य। व्य॒न्तु॒। यज॑॥५६॥

पदार्थ:-**(देव:)** द्योतमान: **(देवै:)** प्रकाशकै: **(वनस्पति:)** रश्मिपालक: **(हिरण्यवर्ण:)** तेज:स्वरूप: **(अश्विभ्याम्)** जलाग्निभ्याम् **(सरस्वत्या)** गतिमत्या नीत्या **(सुपिप्पल:)** शोभनानि पिप्पलानि फलानि यस्य स: **(इन्द्राय)** जीवाय **(पच्यते)** **(मधु)** मधुरं फलम् **(ओज:)** जलम् **(न)** इव **(जूति:)** वेग: **(ऋषभ:)** बलिष्ठ: **(न)** इव **(भामम्)** क्रोधम् **(वनस्पति:)** वटादि: **(न:)** अस्मभ्यम् **(दधत्)** दधाति **(इन्द्रियाणि)** धनानि **(वसुवने)** धनेच्छुकाय **(वसुधेयस्य)** सर्वपदार्थाधारस्य संसारस्य **(व्यन्तु)** **(यज)**॥५६॥

अन्वय:-हे विद्वन्! यथाश्विभ्यां देवै: सह देवो हिरण्यवर्णो वनस्पति: सरस्वत्या सुपिप्पला इन्द्राय मध्विव पच्यते जूतिरोजो न भाममृषभो न वनस्पतिर्वसुधेयस्य नो वसुवन इन्द्रियाणि दधद्यथैतानेतानि व्यन्तु तथा त्वं यज॥५६॥

भावार्थ:-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। हे मनुष्या:! भवन्तो यथा सूर्यो वृष्ट्या नदी स्वजलेन च वृक्षान् संरक्ष्य मधुराणि फलानि जनयति तथा सर्वार्थं सर्वं वस्तु जनयन्तु यथा च धार्मिको राजा दुष्टाय क्रुध्यति तथा दुष्टान् प्रत्यप्रीतिं कृत्वा श्रेष्ठेषु प्रेम धरन्तु॥५६॥

पदार्थः-हे विद्वन्! जैसे **(अश्विभ्याम्)** जल और बिजुली रूप आग से **(देवैः)** प्रकाश करनेवाले गुणों के साथ **(देवः)** प्रकाशमान **(हिरण्यवर्णः)** तेजःस्वरूप **(वनस्पतिः)** किरणों की रक्षा करने वाला सूर्यलोक वा **(सरस्वत्या)** बढ़ती हुई नीति के साथ **(सुपिप्पलः)** सुन्दर फलों वाला पीपल आदि वृक्ष **(इन्द्राय)** प्राणी के लिए **(मधु)** मीठा फल जैसे **(पच्यते)** पके वैसे पकता और सिद्ध होता वा **(जूतिः)** वेग **(ओजः)** जल को **(न)** जैसे **(भामम्)** तथा क्रोध को **(ऋषभः)** बलवान् प्राणी के **(न)** समान **(वनस्पतिः)** वट वृक्ष आदि **(वसुधेयस्य)** सब के आधार संसार के बीच **(नः)** हम लोगों के लिए **(वसुवने)** वा धन चाहने वाले के लिए **(इन्द्रियाणि)** धनों को **(दधत्)** धारण कर रहा है, जैसे इन सब उक्त पदार्थों को ये सब **(व्यन्तु)** व्याप्त हों, वैसे तू सब व्यवहारों की **(यज)** संगति किया कर॥५६॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। हे मनुष्यो! तुम जैसे सूर्य वर्षा से और नदी अपने जल से वृक्षों की भलीभांति रक्षा कर सब ओर से मीठे-मीठे फलों को उत्पन्न कराती है, वैसे सब के अर्थ सब वस्तु उत्पन्न करो और जैसे धार्मिक राजा दुष्ट पर क्रोध करता, वैसे दुष्टों के प्रति अप्रीति कर अच्छे उत्तम जनों में प्रेम को धारण करो॥५६॥

देवं बर्हिरित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। अश्व्यादयो देवताः। अतिशक्वरी छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

दे॒वं ब॒र्हिर्वारि॑तीनामध्व॒रे स्ती॒र्णम॒श्विभ्या॒मूर्णम्रदा॒ः सर॑स्वत्या स्यो॒नमि॑न्द्र ते॒ सद॑ः।
ई॒शायै॑ म॒न्युꣳ राजा॑नं ब॒र्हिषा॑ दधुरिन्द्रि॒यं व॑सु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑॥५७॥

दे॒वम्। ब॒र्हिः। वारि॑तीना॑म्। अ॒ध्व॒रे। स्ती॒र्णम्। अ॒श्विभ्या॒मित्य॒श्विऽभ्या॑म्। ऊर्ण॑म्रदा॒ऽइत्यूर्ण॑ऽम्रदाः। सर॑स्वत्या। स्यो॒नम्। इ॒न्द्र॒। ते॒। सद॑ः। ई॒शायै॑। म॒न्युम्। राजा॑नम्। ब॒र्हिषा॑। द॒धुः। इ॒न्द्रि॒यम्। व॒सु॒वन इति॑ वसु॒ऽवने॑। व॒सु॒धेय॒स्येति॑ वसु॒ऽधेय॑स्य। व्य॒न्तु॒। यज॑॥५७॥

पदार्थः-**(देवम्)** दिव्यम् **(बर्हिः)** अन्तरिक्षम् **(वारितीनाम्)** वारिणी जले इतिर्गतिर्येषां तेषाम् **(अध्वरे)** अहिंसनीये यज्ञे **(स्तीर्णम्)** आच्छादकम् **(अश्विभ्याम्)** वायुविद्युद्भ्याम् **(ऊर्णम्रदाः)** य ऊर्णैराच्छादकैर्मृदन्ते ते **(सरस्वत्या)** उत्तमवाण्या **(स्योनम्)** सुखम् **(इन्द्र)** इन्द्रियस्वामिन् जीव **(ते)** तव **(सदः)** सीदन्ति यस्मिंस्तत् **(ईशायै)** ययैश्वर्यं प्राप्नोति तस्यै **(मन्युम्)** माननम् **(राजानम्)** राजमानम् **(बर्हिषा)** अन्तरिक्षेण **(दधुः)** **(इन्द्रियम्)** धनम् **(वसुवने)** पृथिव्यादिसेवकाय **(वसुधेयस्य)** पृथिव्याद्याधारस्य **(व्यन्तु)** **(यज)**॥५७॥

अन्वयः-हे इन्द्र! यस्य ते सरस्वत्या सह स्योनं सदोऽस्ति यथोर्णम्रदा अश्विभ्यामध्वरे वारितीनां स्तीर्णं देवं बर्हिरीशायै मत्युं राजानमिव बर्हिषा वसुधेयस्य वसुवन इन्द्रियं दधुरेतानि व्यन्तु तथा त्वं यज॥५७॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। यदि मनुष्या आकाशवदक्षोभा आनन्दप्रदा एकान्तप्रासादा अभङ्गाज्ञाः पुरुषार्थिनोऽभविष्यँस्तर्ह्यस्य संसारस्य मध्ये श्रीमन्तः कुतो नाभविष्यन्॥५७॥

पदार्थः-हे **(इन्द्र)** अपने इन्द्रिय के स्वामी जीव! जिस **(ते)** तेरा **(सरस्वत्या)** उत्तम वाणी के साथ **(स्योनम्)** सुख और **(सदः)** जिस में बैठते वह नाव आदि यान है और जैसे **(ऊर्णम्रदाः)** ढांपने वाले पदार्थों से शिल्प की वस्तुओं को मीजते हुए विद्वान् जन **(अश्विभ्याम्)** पवन और बिजुली से **(अध्वरे)** न विनाश करने योग्य शिल्पयज्ञ में **(वारितीनाम्)** जिन की जल में चाल है, उन पदार्थों के **(स्तीर्णम्)** ढांपने वाले **(देवम्)** दिव्य **(बर्हिः)** अन्तरिक्ष को वा **(ईशायै)** जिस क्रिया से ऐश्वर्य को मनुष्य प्राप्त होता, उस के लिए **(मन्युम्)** विचार अर्थात् सब पदार्थों के गुण-दोष और उन की क्रिया सोचने के **(राजानम्)** प्रकाशमान राजा के समान वा **(बर्हिषा)** अन्तरिक्ष से **(वसुधेयस्य)** पृथिवी आदि आधार के बीच **(वसुवने)** पृथिवी आदि लोकों की सेवा करनेहारे जीव के लिए **(इन्द्रियम्)** धन को **(दधुः)** धारण करें और इन को **(व्यन्तु)** प्राप्त हों, वैसे तू सब पदार्थों की **(यज)** संगति किया कर॥५७॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। यदि मनुष्य आकाश के समान निष्कम्प निडर आनन्द देने हारे एकान्त स्थानयुक्त और जिनकी आज्ञा भंग न हो ऐसे पुरुषार्थी हों, वे इस संसार के बीच धनवान् क्यों न हों?॥५७॥

देवो अग्निरित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। अश्व्यादयो देवताः। आद्यस्याऽत्यष्टिश्छन्दः। गान्धारः स्वरः। स्विष्टोऽअग्निरित्युत्तरस्य निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः॥ धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

देवोऽअग्निः स्विष्टकृद्देवान् यक्षद् यथायथꣳ होताराविन्द्रमश्विना वाचा वाचꣳ सरस्वतीमग्निꣳ सोमꣳ स्विष्टकृत् स्विष्टऽइन्द्रः सुत्रामा सविता वरुणो भिषगिष्टो देवो वनस्पतिः स्विष्टा देवाऽआज्यपाः स्विष्टोऽअग्निरग्निना होता होत्रे स्विष्टकृद् यशो न दधदिन्द्रियमूर्जमपचितिꣳ स्वधां वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज॥५८॥

देवः। अग्निः। स्विष्टकृदिति स्विष्टऽकृत्। देवान् यक्षत्। यथायथमिति यथाऽयथम्। होतारौ। इन्द्रम्। अश्विना। वाचा। वाचम्। सरस्वतीम्। अग्निम्। सोमम्। स्विष्टकृदिति स्विष्टऽकृत्। स्विष्ट इति सुऽइष्टः। इन्द्रः। सुत्रामेति सुऽत्रामा। सविता। वरुणः। भिषक्। इष्टः। देवः। वनस्पतिः। स्विष्टा इति सुऽइष्टाः। देवाः। आज्यपा इत्याज्यऽपाः।

स्विष्ट इति सुऽइष्टः। अग्निः। अग्निना। होता। होत्रे। स्विष्टकृदिति स्विष्टऽकृत्। यशः। न। दधत्। इन्द्रियम्। ऊर्जम्। अपचितिमित्यपऽचितिम्। स्वधाम्। वसुवन इति वसुऽवने। वसुधेयस्येति वसुऽधेयस्य। व्यन्तु। यज॥५८॥

पदार्थः-(**देवः**) दिव्यः (**अग्निः**) पावकः (**स्विष्टकृत्**) यः शोभनमिष्टं करोति सः (**देवान्**) दिव्यगुणकर्मस्वभावान् पृथिव्यादीन् (**यक्षत्**) यजेत् संगच्छेत् (**यथायथम्**) यथायोग्यम् (**होतारौ**) आदातारौ (**इन्द्रम्**) सूर्य्यम् (**अश्विना**) वायुविद्युतौ (**वाचा**) वाण्या (**वाचम्**) वाणीम् (**सरस्वतीम्**) विज्ञानयुक्ताम् (**अग्निम्**) पावकम् (**सोमम्**) चन्द्रम् (**स्विष्टकृत्**) सुष्ठु सुखकारी (**स्विष्टः**) शोभनश्चासाविष्टश्च सः (**इन्द्रः**) परमेश्वर्ययुक्तो राजा (**सुत्रामा**) सुष्ठु पालकः (**सविता**) सूर्य्यः (**वरुणः**) जलसमुदायः (**भिषक्**) रोगविनाशकः (**इष्टः**) संगन्तुमर्हः (**देवः**) दिव्यस्वभावः (**वनस्पतिः**) पिप्पलादिः (**स्विष्टाः**) शोभनमिष्टं येभ्यस्ते (**देवाः**) दिव्यस्वरूपाः (**आज्यपाः**) य आज्यं पातुमर्हं रसं पिबन्ति ते (**स्विष्टः**) शोभनमिष्टं यस्मात्सः (**अग्निः**) वह्निः (**अग्निना**) विद्युता (**होता**) दाता (**होत्रे**) दात्रे (**स्विष्टकृत्**) शोभनेष्टकारी (**यशः**) कीर्तिकरं धनम् (**न**) इव (**दधत्**) धरेत् (**इन्द्रियम्**) इन्द्रस्य लिङ्गं श्रोत्रादि (**ऊर्जम्**) बलम् (**अपचितिम्**) सत्कृतिम् (**स्वधाम्**) अन्नम् (**वसुवने**) ऐश्वर्य्यसेवकाय (**वसुधेयस्य**) संसारस्य (**व्यन्तु**) (**यज**)॥५८॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यथा वसुधेयस्य वसुवने स्विष्टकृद्देवोऽग्निर्देवान् यथायथं यक्षद् यथा होतारावश्विनेन्द्रं वाचा सरस्वतीं वाचमग्निं सोमं च यथायथं गमयतो यथा स्विष्टकृत् स्विष्टः सुत्रामेन्द्रः सविता वरुणो भिषगिष्टो देवो वनस्पतिः स्विष्टा आज्यपा देवा अग्निना स्विष्टो होता स्विष्टकृदग्निर्होत्रे यशो नेन्द्रियमूर्जमपचितिं स्वधां यथायथं दधद् यथैतानेतानि व्यन्तु तथा यथायथं यज॥५८॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। ये मनुष्या ईश्वरनिर्मितानेतन्मन्त्रोक्तयज्ञादीन् पदार्थान् विद्ययोपयोगाय दधति, ते स्विष्टानि सुखानि लभन्ते॥५८॥

पदार्थः-हे विद्वन्! जैसे (**वसुधेयस्य**) संसार के बीच में (**वसुवने**) ऐश्वर्य को सेवने वाले सज्जन मनुष्य के लिए (**स्विष्टकृत्**) सुन्दर चाहे हुए सुख का करने हारा (**देवः**) दिव्य सुन्दर (**अग्निः**) आग (**देवान्**) उत्तम गुण-कर्म-स्वभावों वाले पृथिवी आदि को (**यथायथम्**) यथायोग्य (**यक्षत्**) प्राप्त हो वा जैसे (**होतारा**) पदार्थों के ग्रहण करने हारे (**अश्विना**) पवन और बिजुलीरूप अग्नि (**इन्द्रम्**) सूर्य (**वाचा**) वाणी से (**सरस्वतीम्**) विशेष ज्ञानयुक्त (**वाचम्**) वाणी से (**अग्निम्**) अग्नि (**सोमम्**) और चन्द्रमा को यथायोग्य चलाते हैं वा जैसे (**स्विष्टकृत्**) अच्छे सुख का करने वाला (**स्विष्टः**) सुन्दर और सब का चाहा हुआ (**सुत्रामा**) भलीभांति पालने हारा (**इन्द्रः**) परमैश्वर्ययुक्त राजा (**सविता**) सूर्य (**वरुणः**) जल का समुदाय (**भिषक्**) रोगों का विनाश करने हारा वैद्य (**इष्टः**) संग करने योग्य (**देवः**) दिव्यस्वभाव वाला (**वनस्पतिः**) पीपल आदि (**स्विष्टाः**) सुन्दर चाहा हुआ सुख जिनसे होवे (**आज्यपाः**) पीने योग्य रस को पीने हारे (**देवाः**) दिव्यस्वरूप विद्वान् (**अग्निना**) बिजुली के साथ (**स्विष्टः**) (**होता**) देने वाला कि जिससे सुन्दर चाहा हुआ काम हो (**स्विष्टकृत्**) उत्तम चाहे हुए काम को करने वाला (**अग्निः**) अग्नि (**होत्रे**) देने

वाले के लिए **(यशः)** कीर्ति करने हारे धन के **(न)** समान **(इन्द्रियम्)** जीव के चिह्न कान आदि इन्द्रियां **(ऊर्जम्)** बल **(अपचितिम्)** सत्कार और **(स्वधाम्)** अन्न को **(दधत्)** प्रत्येक को धारण करे वा जैसे उन उक्त पदार्थों को ये सब **(व्यन्तु)** प्राप्त हों, वैसे तू **(यज)** सब व्यवहारों की संगति किया कर॥५८॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जो मनुष्य ईश्वर के बनाये हुए इस मन्त्र में कहे यज्ञ आदि पदार्थों को विद्या से उपयोग के लिए धारण करते हैं, वे सुन्दर चाहे हुए सुखों को पाते हैं॥५८॥

अग्निमद्येत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। अग्न्यादयो देवताः। अष्टिश्छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अ॒ग्निम॒द्य होता॑रमवृणीता॒यं यज॑मानः॒ पच॑न् प॒क्तीः पच॑न् पु॒रो॒डाशा॑न् ब॒ध्नन्न॒श्विभ्यां॒ छाग॒ꣳ सर॑स्वत्यै मे॒षमिन्द्रा॑यऽऋ॒ष॒भꣳ सु॒न्वन्न॒श्विभ्या॒ꣳ सर॑स्वत्या॒ऽइन्द्रा॑य सु॒त्राम्णे॑ सुरासो॒मान्॥५९॥

अ॒ग्निम्। अ॒द्य। होता॑रम्। अ॒वृ॒णी॒त॒। अ॒यम्। यज॑मानः। पच॑न्। प॒क्तीः। पच॑न्। पु॒रो॒डाशा॑न्। ब॒ध्नन्। अ॒श्विभ्या॒मित्य॒श्विऽभ्या॑म्। छाग॑म्। सर॑स्वत्यै। मे॒षम्। इन्द्रा॑य। ऋ॒ष॒भम्। सु॒न्वन्। अ॒श्विभ्या॒मित्य॒श्विऽभ्या॑म्। सर॑स्वत्यै। इन्द्रा॑य। सु॒त्राम्ण॒ इति॑ सु॒ऽत्राम्णे॑। सु॒रा॒सो॒मानिति॑ सुरा॒ऽसो॒मान्॥५९॥

पदार्थः-**(अग्निम्)** पावकम् **(अद्य)** इदानीम् **(होतारम्)** सुखानां दातारम् **(अवृणीत)** वृणोति **(अयम्)** **(यजमानः)** **(पचन्)** **(पक्तीः)** **(पचन्)** **(पुरोडाशान्)** पाकविशेषान् **(बध्नन्)** बध्नन्ति **(अश्विभ्याम्)** प्राणापानाभ्याम् **(छागम्)** **(सरस्वत्यै)** विज्ञानयुक्तायै वाचे **(मेषम्)** अविम् **(इन्द्राय)** परमैश्वर्य्याय **(ऋषभम्)** वृषभम् **(सुन्वन्)** सुनुयुः **(अश्विभ्याम्)** **(सरस्वत्यै)** **(इन्द्राय)** राज्ञे **(सुत्राम्णे)** **(सुरासोमान्)** सुरया रसेन युक्तान् सोमान् पदार्थान्॥५९॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथाऽयं पक्तीः पचन् पुरोडाशान् पचन् यजमानो होतरमग्निमवृणीत यथाऽश्विभ्यां छागं सरस्वत्यै मेषमिन्द्रायर्षभं बध्नन्नश्विभ्यां सरस्वत्यै सुत्राम्ण इन्द्राय सुरासोमानसुन्वँस्तथा यूयमद्य कुरुत॥५९॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे मनुष्याः! यथा संगन्तारो वैद्या अपानार्थं छागदुग्धं वाग्वृद्ध्यर्थमविपय ऐश्वर्य्याय गौः पयो रोगनिवारणायौषधिरसांश्च संपाद्य सुसंस्कृतान्यन्नानि भुक्त्वा बलवन्तो भूत्वा दुष्टान् शत्रून् बध्नन्ति ते परमैश्वर्यं लभन्ते॥५९।

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे **(अयम्)** यह **(पक्तीः)** पचाने के प्रकारों को **(पचन्)** पचाता अर्थात् सिद्ध करता और **(पुरोडाशान्)** यज्ञ आदि कर्म में प्रसिद्ध पाकों को **(पचन्)** पचाता हुआ **(यजमानः)** यज्ञ करने हारा **(होतारम्)** सुखों के देने वाले **(अग्निम्)** आग को **(अवृणीत)** स्वीकार वा जैसे **(अश्विभ्याम्)**

प्राण और अपान के लिए **(छागम्)** छेरी **(सरस्वत्यै)** विशेष ज्ञानयुक्त वाणी के लिए **(मेषम्)** भेड़ और **(इन्द्राय)** परम ऐश्वर्य के लिए **(ऋषभम्)** बैल को **(बध्नन्)** बांधते हुए वा **(अश्विभ्याम्)** प्राण, अपान **(सरस्वत्यै)** विशेष ज्ञानयुक्त वाणी और **(सुत्राम्णे)** भलीभांति रक्षा करने हारे **(इन्द्राय)** राजा के लिए **(सुरासोमान्)** उत्तम रसयुक्त पदार्थों का **(सुन्वन्)** सार निकालते हैं, वैसे तुम **(अद्य)** आज करो॥५९॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जैसे पदार्थों को मिलाने हारे वैद्य अपान के लिए छेरी का दूध, वाणी बढ़ने के लिए भेड़ का दूध, ऐश्वर्य के बढ़ने के लिए बैल, रोग निवारण के लिए औषधियों के रसों को इकट्ठा और अच्छे संस्कार किये हुए अन्नों का भोजन कर उससे बलवान् होकर दुष्ट शत्रुओं को बांधते हैं, वैसे वे परम ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं॥५९॥

सूपस्था इत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। लिङ्गोक्ता देवताः। धृतिश्छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

पुनर्मनुष्यैः किं कृत्वा किं कर्त्तव्यमित्याह॥

फिर मनुष्यों को क्या करके क्या करना चाहिए, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

सूपस्थाऽअद्य देवो वनस्पतिरभवदश्विभ्यां छागेन सरस्वत्यै मेषेणेन्द्रायऽऋषभेणाक्षँस्तान् मेदस्तः प्रति पचतागृभीषतावीवृधन्त पुरोडाशैरपुरश्विना सरस्वतीन्द्रः सुत्रामा सुरासोमान्॥६०॥

सूपस्था इति सुऽउपस्थाः। अद्य। देवः। वनस्पतिः। अभवत्। अश्विभ्यामित्यश्विऽभ्याम्। छागेन। सरस्वत्यै। मेषेण। इन्द्राय। ऋषभेण। अक्षन्। तान्। मेदस्तः। प्रति। पचता। अगृभीषत। अवीवृधन्त। पुरोडाशैः। अपुः। अश्विना। सरस्वती। इन्द्रः। सुत्रामेति सुऽत्रामा। सुरासोमानिति सुराऽसोमान्॥६०॥

पदार्थः-**(सूपस्थाः)** ये सुष्ठूपतिष्ठन्ति ते **(अद्य)** **(देवः)** दिव्यगुणः **(वनस्पतिः)** वटादिः **(अभवत्)** भवेत् **(अश्विभ्याम्)** प्राणापानाभ्याम् **(छागेन)** दुःखछेदकेन **(सरस्वत्यै)** वाचे **(मेषेण)** **(इन्द्राय)** **(ऋषभेण)** **(अक्षन्)** भुञ्जीरन् **(तान्)** **(मेदस्तः)** मेदशः स्निग्धान् **(प्रति)** **(पचता)** पचतानि पक्तव्यानि। अत्रौणादिकोऽतच् **(अगृभीषत)** गृह्णन्तु **(अवीवृधन्त)** वर्धन्ताम् **(पुरोडाशैः)** संस्कृतान्नविशेषैः **(अपुः)** पिबन्तु **(अश्विना)** प्राणाऽपानौ **(सरस्वती)** प्रशस्ता वाक् **(इन्द्रः)** परमैश्वर्य्यो राजा **(सुत्रामा)** सुष्ठु रक्षकः **(सुरासोमान्)** ये सुरयाऽभिषवेन सूयन्ते तान्॥६०॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथाऽद्य सूपस्था देवो वनस्पतिरिव येन येनाश्विभ्यां छागेन सरस्वत्यै मेषेणेन्द्राय ऋषभेणाक्षँस्तान् मेदस्तः प्रतिपचतागृभीषत पुरोडाशैरवीवृधन्ताश्विना सरस्वती सुत्रामेन्द्रः सुरासोमानपुस्तथा भवानभवद्भवेत्॥६०॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये मनुष्याश्छागादिदुग्धादिभिः प्राणाऽपानरक्षणाय स्निग्धान् पक्वान् पदार्थान् भुक्त्वोत्तमान् रसान् पीत्वा वर्धन्ते ते सुसुखं लभन्ते॥६०॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! जैसे **(अद्य)** आज **(सूपस्था:)** भलीभांति समीप स्थिर होने वाले और **(देव:)** दिव्य गुण वाला पुरुष **(वनस्पति:)** वट वृक्ष आदि के समान जिस-जिस **(अश्विभ्याम्)** प्राण और अपान के लिए **(छागेन)** दु:ख विनाश करने वाले छेरी आदि पशु से **(सरस्वत्यै)** वाणी के लिए **(मेषेण)** मेंढ़ा से **(इन्द्राय)** परम ऐश्वर्य्य के लिए **(ऋषभेण)** बैल से **(अक्षन्)** भोग करें - उपयोग लें **(तान्)** उन **(मेदस्त:)** सुन्दर चिकने पशुओं के **(प्रति)** प्रति **(पचता)** पचाने योग्य वस्तुओं का **(अगृभीषत)** ग्रहण करें **(पुरोडाशै:)** प्रथम उत्तम संस्कार किये हुए विशेष अन्नों से **(अवीवृधन्त)** वृद्धि को प्राप्त हों **(अश्विना)** प्राण, अपान **(सरस्वती)** प्रशंसित वाणी **(सुत्रामा)** भलीभांति रक्षा करनेहारा **(इन्द्र:)** परम ऐश्वर्य्यवान् राजा **(सुरासोमान्)** जो अर्क खींचने से उत्पन्न हों, उन औषधिरसों को **(अपु:)** पीवें, वैसे आप **(अभवत्)** होओ॥६०॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य छेरी आदि पशुओं के दूध आदि प्राण-अपान की रक्षा के लिए, चिकने और पके हुए पदार्थों का भोजन कर उत्तम रसों के पीके वृद्धि को पाते हैं, वे अच्छे सुख को प्राप्त होते हैं॥६०॥

त्वामद्येत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषि:। लिङ्गोक्ता देवता:। भुरिग् विकृतिश्छन्द:। मध्यम: स्वर:॥

पुनर्मनुष्या: कथं वर्त्तेरन्नित्याह॥

फिर मनुष्य कैसे अपना वर्त्ताव वर्तें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

त्वाम॒द्यऽऋ॑षऽआर्षेयऽऋषीणां नपादवृणीता॒यं यज॑मानो ब॒हुभ्य॒ऽआ सङ्ग॑तेभ्यऽए॒ष मे॑ दे॒वेषु॒ वसु॒ वार्याय॑क्ष्यत॒ऽइति॒ ता या दे॒वा दे॑व॒ दाना॒न्यदु॒स्तान्य॑स्मा॒ऽआ च॒ शास्स्वा च॑ गुरस्वेषि॒तश्च॑ होत॒रसि॑ भद्रवाच्या॑य॒ प्रेषि॑तो॒ मानु॑ष: सू॒क्तवा॒काय॑ सू॒क्ता ब्रू॑हि॥६१॥

त्वाम्। अ॒द्य। ऋ॒षे। आ॒र्षे॒य॒। ऋ॒षी॒णा॒म्। न॒पा॒त्। अ॒वृ॒णी॒त॒। अ॒य॒म्। यज॑मान:। ब॒हुभ्य॒ इति॑ ब॒हुऽभ्य॑:। आ। सङ्ग॑तेभ्य॒: इति स॒ऽग॑तेभ्य:। ए॒ष:। मे॒। दे॒वेषु॑। वसु॑। वारि॑। आ। य॒क्ष्य॒ते॑। इति॑। ता। या। दे॒वा:। दे॒व॒। दाना॑नि। अदु॑:। तानि॑। अ॒स्मै॒। आ। च॒। शास्व॑। आ। च॒। गु॒र॒स्व॒। इ॒षि॒त:। च॒। होत॑: असि॑। भ॒द्रवाच्यायेति॑ भ॒द्र॒ऽवाच्या॑य। प्रेषि॑त॒ इति प्र॒ऽइ॑षित:। मानु॑ष:। सू॒क्त॒वा॒का॒येति॑ सूक्त॒ऽवा॒काय॑। सू॒क्तेति॑ सु॒ऽउ॒क्ता। ब्रू॒हि॒॥६१॥

पदार्थ:-**(त्वाम्)** **(अद्य)** **(ऋषे)** मन्त्रार्थवित् **(आर्षेय)** ऋषिषु साधुस्तत्संबुद्धौ। अत्र छान्दसो ढक्। **(ऋषीणाम्)** मन्त्रार्थविदाम् **(नपात्)** अपत्यम् **(अवृणीत)** वृणोतु **(अयम्)** **(यजमान:)** यज्ञकर्त्ता **(बहुभ्य:)** **(आ)** **(संगतेभ्य:)** योगेभ्य: **(एष:)** **(मे)** मम **(देवेषु)** विद्वत्सु **(वसु)** धनम् **(वारि)** जलम् **(आ)** **(यक्ष्यते)** **(इति)** **(ता)** तानि **(या)** यानि **(देवा:)** विद्वांस: **(देव)** विद्वन् **(दानानि)** दातव्यानि **(अदु:)** ददति **(तानि)** **(अस्मै)** **(आ)** **(च)** **(शास्स्व)** शिक्ष **(आ)** **(च)** **(गुरस्व)** उद्यमस्व **(इषित:)** इष्ट: **(च)** **(होत:)**

(असि) भव **(भद्रवाच्याय)** भद्रं वाच्यं यस्मै तस्मै **(प्रेषितः)** प्रेरितः **(मानुषः)** मनुष्यः **(सूक्तवाकाय)** सूक्तानि वाकेषु यस्य तस्मै **(सूक्ता)** सुष्ठु वक्तव्यानि **(ब्रूहि)**॥६१॥

अन्वयः-हे ऋषे आर्षेय! ऋषीणां नपाद् यजमानोऽयमद्य बहुभ्यः संगतेभ्यस्त्वामावृणीतैष देवेषु मे वसु वारि चावृणीत। हे देव! य आयक्ष्यते देवा या यानि दानान्यदुस्तानि चास्मै आशास्स्व प्रेषितः सन्नागुरस्व च। हे होतरिषितो मानुषो भद्रवाच्याय सूक्तवाकाय सूक्ता ब्रूहीति ता प्राप्तवांश्चासि॥६१॥

भावार्थः-ये मनुष्या बहूनां विदुषां सकाशाद् विद्वांसं वृत्वा वेदादिविद्या अधीत्य महर्षयो भवेयुस्तेऽन्यानध्यापयितुं शक्नुयुः। ये च दातार उद्यमिनः स्युस्ते विद्यां वृत्वा अविदुषामुपरि दयां कृत्वा विद्याग्रहणाय रोषेण संताड्यैतान् सुसभ्यान् कुर्युस्तेऽत्र सत्कर्त्तव्याः स्युरिति॥६१॥

अत्र वरुणाग्निविद्वद्राजप्रजाशिल्पवाग्गृहाश्व्यृतुहोत्रादिगुणवर्णनादेतदध्यायोक्तार्थस्य पूर्वाध्यायोक्तार्थेन सह संगतिरस्तीति वेद्यम्॥

पदार्थः-हे **(ऋषे)** मन्त्रों के अर्थ जानने वाले वा हे **(आर्षेय)** मन्त्रार्थ जानने वालों में श्रेष्ठ पुरुष! **(ऋषीणाम्)** मन्त्रों के अर्थ जानने वालों के **(नपात्)** सन्तान **(यजमानः)** यज्ञ करने वाला **(अयम्)** यह **(अद्य)** आज **(बहुभ्यः)** बहुत **(संगतेभ्यः)** योग्य पुरुषों से **(त्वाम्)** तुझको **(आ, अवृणीत)** स्वीकार करे **(एषः)** यह **(देवेषु)** विद्वानों में **(मे)** मेरे **(वसु)** धन **(च)** और **(वारि)** जल को स्वीकार करे। हे **(देव)** विद्वन्! जो **(आयक्ष्यते)** सब ओर से संगत किया जाता **(च)** और **(देवाः)** विद्वान् जन **(या)** जिन **(दानानि)** देने योग्य पदार्थों को **(अदुः)** देते हैं **(तानि)** उन सबों को **(अस्मै)** इस यज्ञ करने वाले के लिए **(आ, शास्व)** अच्छे प्रकार कहो और **(प्रेषितः)** पढ़ाया हुआ तू **(आ, गुरस्व)** अच्छे प्रकार उद्यम कर **(च)** और हे **(होतः)** देने हारे! **(इषितः)** सब का चाहा हुआ **(मानुषः)** तू **(भद्रवाच्याय)** जिस के लिए अच्छा कहना होता और **(सूक्तवाकाय)** जिस के वचनों में अच्छे कथन अच्छे व्याख्यान हैं, उस भद्रपुरुष के लिए **(सूक्ता)** अच्छी बोलचाल **(ब्रूहि)** बोलो **(इति)** इस कारण कि उक्त प्रकार से **(ता)** उन उत्तम पदार्थों को पाये हुए **(असि)** होते हो॥६१॥

भावार्थः-जो मनुष्य बहुत विद्वानों से अति उत्तम विद्वान् को स्वीकार कर वेदादि शास्त्रों की विद्या को पढ़कर महर्षि होवें, वे दूसरों को पढ़ा सकें और जो देनेवाले उद्यमी होवें, वे विद्या को स्वीकार कर जो अविद्वान् हैं, उन पर दया कर विद्याग्रहण के लिए रोष से उन मूर्खों को ताड़ना दें और उन्हें अच्छे सभ्य करें, वे इस संसार में सत्कार करने योग्य हैं॥६१॥

इस अध्याय में वरुण, अग्नि, विद्वान्, राजा, प्रजा, शिल्प अर्थात् कारीगरी, वाणी, घर, अश्विन् शब्द के अर्थ, ऋतु और होता आदि पदार्थों के गुणों का वर्णन होने से इस अध्याय में कहे अर्थ का पिछले अध्याय में कहे अर्थ के साथ मेल है, यह जानना चाहिए।

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां श्रीमन्महाविदुषां विरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचिते संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां विभूषिते यजुर्वेदभाष्य एकविंशोऽध्यायः समाप्तिमगात्॥ २१॥

॥ओ३म्॥

अथ द्वाविंशोऽध्याय आरभ्यते

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद्भद्रं तन्नऽआ सुव॥ यजु० ३०.३॥

तेजोऽसीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। सविता देवता। निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

तत्रादावाप्तो विद्वान् कथं वर्त्तेतेत्याह॥

अब बाईसवें अध्याय का आरम्भ किया जाता है, उस के प्रथम मन्त्र में आप्त सकल शास्त्रों का जानने वाला विद्वान् कैसे अपना वर्त्ताव वर्त्ते, इस विषय को कहा है॥

तेजोऽसि शुक्रममृतमायुष्पाऽआयुर्मे पाहि।
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददे॥ १॥

तेजः। असि। शुक्रम्। अमृतम्। आयुष्पाः। आयुःपा इत्यायुःऽपाः। आयुः। मे। पाहि। देवस्य। त्वा। सवितुः। प्रसव इति प्रऽसवे। अश्विनोः। बाहुभ्यामिति बाहुऽभ्याम्। पूष्णः। हस्ताभ्याम्। आ। ददे॥ १॥

पदार्थः-(**तेजः**) प्रकाशः (**असि**) (**शुक्रम्**) वीर्यम् (**अमृतम्**) स्वस्वरूपेण नाशरहितम् (**आयुष्पाः**) यः आयुः पाति सः (**आयुः**) जीवनम् (**मे**) मम (**पाहि**) (**देवस्य**) सर्वप्रकाशकस्य (**त्वा**) त्वाम् (**सवितुः**) सकलजगदुत्पादकस्य (**प्रसवे**) प्रसूयन्ते प्राणिनो यस्मिन् संसारे तस्मिन् (**अश्विनोः**) वायुविद्युतोः (**बाहुभ्याम्**) (**पूष्णः**) पुष्टिकर्त्तुः सूर्यस्य (**हस्ताभ्याम्**) (**आ**) (**ददे**) गृह्णामि॥ १॥

अन्वयः-हे विद्वन्नहं देवस्य सवितुर्जगदीश्वरस्य प्रसवेऽश्विनोर्धारणाकर्षणाभ्यामिव बाहुभ्यां पूष्णः किरणैरिव हस्ताभ्यां यन्त्वाददे यस्त्वममृतं शुक्रं तेज इवायुष्पा असि स त्वं स्वं दीर्घायुः कृत्वा मे ममाऽऽयुः पाहि॥ १॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा शरीरस्था विद्युच्छरीरं रक्षति, यथा बाह्यौ सूर्यवायू जीवनहेतूस्तथेश्वररचितेऽस्मिन् जगति आप्तो विद्वान् भवतीति सर्वैर्वेद्यम्॥ १॥

पदार्थः-हे विद्वन्! मैं (**देवस्य**) सब के प्रकाश करने (**सवितुः**) और समस्त जगत् के उत्पन्न करने हारे जगदीश्वर के (**प्रसवे**) उत्पन्न किये जिसमें कि प्राणी आदि उत्पन्न होते उस संसार में (**अश्विनोः**) पवन और बिजुली रूप आग के धारण और खैंचने आदि गुणों के समान (**बाहुभ्याम्**) भुजाओं और (**पूष्णः**) पुष्टि करनेवाले सूर्य की किरणों के समान (**हस्ताभ्याम्**) हाथों से जिस (**त्वा**) तुझे (**आददे**) ग्रहण करता हूं वा जो तू (**अमृतम्**) स्व-स्वरूप से विनाशरहित (**शुक्रम्**) वीर्य्य और (**तेजः**) प्रकाश के समान जो (**आयुष्पाः**) आयुर्दा की रक्षा करने वाला (**असि**) है, सो तू अपनी दीर्घ आयुर्दा कर के (**मे**) मेरी (**आयुः**) आयु की (**पाहि**) रक्षा कर॥ १॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे शरीर में रहने वाली बिजुली शरीर की रक्षा करती वा जैसे बाहरले सूर्य और पवन जीवन के हेतु हैं, वैसे ईश्वर के बनाये इस जगत् में आप्त अर्थात् सकल शास्त्र का जानने वाला विद्वान् होता है, यह सब को जानना चाहिये॥१॥

इमामित्यस्य यज्ञपुरुष ऋषिः। विद्वांसो देवताः। निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनर्मनुष्यैरायुः कथं वर्त्तितव्यमित्याह॥

फिर मनुष्यों को आयुर्दा कैसे वर्त्तनी चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

इमामगृभ्णन् रशनामृतस्य पूर्वऽआयुषि विदथेषु कव्या।
सा नोऽअस्मिन्त्सुतऽआबभूवऽऋतस्य सामन्त्सरमारपन्ती॥२॥

इमाम्। अगृभ्णन्। रशनाम्। ऋतस्य। पूर्वे। आयुषि। विदथेषु। कव्या। सा। नः। अस्मिन्। सुते। आ। बभूव। ऋतस्य। सामन्। सरम्। आरपन्तीत्याऽरपन्ती॥२॥

पदार्थः-(**इमाम्**) (**अगृभ्णन्**) गृह्णीयुः (**रशनाम्**) व्यापिकां रज्जुमिव (**ऋतस्य**) सत्यस्य कारणस्य (**पूर्वे**) पूर्वस्मिन् (**आयुषि**) प्राणधारणे (**विदथेषु**) यज्ञादिषु (**कव्या**) कवयः। अत्र **सुपां सुलुग्** [अ०७.१.३९] इति विभक्तेड्यादेशः (**सा**) (**नः**) अस्माकम् (**अस्मिन्**) (**सुते**) उत्पन्ने जगति (**आ**) (**बभूव**) भवति (**ऋतस्य**) सत्यस्य कारणस्य (**सामन्**) सामन्यन्ते कर्मणि (**सरम्**) प्राप्तव्यम् (**आरपन्ती**) व्यक्तशब्दं वदन्ति॥२॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! या ऋतस्य सरमारपन्त्याबभूव यामिमामृतस्य रशनां विदथेषु पूर्व आयुषि कव्या अगृभ्णन् साऽस्मिन् सुते नः सामन्नाबभूव॥२॥

भावार्थः-यथा रशनया बद्धाः प्राणिन इतस्ततः पलायितुं न शक्नुवन्ति, तथा युक्त्या धृतमायुरकाले न पलायते॥२॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो (**ऋतस्य**) सत्य कारण के (**सरम्**) पाने योग्य शब्द को (**आरपन्ती**) अच्छे प्रकार प्रगट बोलती हुई (**आ, बभूव**) भलीभांति विख्यात होती वा जिस (**इमाम्**) इस को (**ऋतस्य**) सत्यकारण की (**रशनाम्**) व्याप्त होने वाली डोर के समान (**विदथेषु**) यज्ञादिकों में (**पूर्वे**) पहिली (**आयुषि**) प्राणधारण करनेहारी आयुर्दा के निमित्त (**कव्या**) कवि मेधावी जन (**अगृभ्णन्**) ग्रहण करें (**सा**) वह बुद्धि (**अस्मिन्**) इस (**सुते**) उत्पन्न हुए जगत् में (**नः**) हम लोगों के (**सामन्**) अन्त के काम में प्रसिद्ध होती अर्थात् कार्य की समाप्ति पर्य्यन्त पहुँचाती है॥२॥

भावार्थः-जैसे डोर से बंधे हुए प्राणी इधर-उधर भाग नहीं जा सकते, वैसे युक्ति के साथ धारण की हुई आयु ठीक समय के बिना नहीं भाग जाती॥२॥

अभिधा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनर्विद्वान् कीदृशो भवतीत्याह॥

फिर विद्वान् कैसा हो, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अभिधाऽअसि भुवनमसि यन्तासि धर्त्ता।

स त्वमग्निं वैश्वानरꣳ सप्रथसं गच्छ स्वाहाकृतः॥३॥

अभिधा इत्यभिऽधाः। असि। भुवनम्। असि। यन्ता। असि। धर्त्ता। सः। त्वम्। अग्निम्। वैश्वानरम्। सप्रथसमिति सऽप्रथसम्। गच्छ। स्वाहाकृत इति स्वाहाऽकृतः॥३॥

पदार्थः-(**अभिधाः**) योऽभिदधाति सः (**असि**) (**भुवनम्**) उदकम्। **भुवनमित्युदकनामसु पठितम्॥** निघं०१।१२॥ (**असि**) (**यन्ता**) नियन्ता (**असि**) (**धर्त्ता**) सकलव्यवहारधारकः (**सः**) (**त्वम्**) (**अग्निम्**) पावकम् (**वैश्वानरम्**) विश्वेषु वस्तुषु नायकम् (**सप्रथसम्**) प्रख्यातत्वेन सह वर्त्तमानम् (**गच्छ**) (**स्वाहाकृतः**) सत्क्रियया निष्पन्नः॥३॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यस्त्वं भुवनमिवास्यभिधा असि यन्तासि स स्वाहाकृतो धर्त्ता त्वं सप्रथसं वैश्वानरमग्निं गच्छ जानीहि॥३॥

भावार्थः-यथा सर्वेषां प्राण्यप्राणिनां जीवनमूलं जलमग्निश्चास्ति तथा विद्वांसं सर्वे जानीयुः॥३॥

पदार्थः-हे विद्वन्! जो तू (**भुवनम्**) जल के समान शीतल (**असि**) है (**अभिधाः**) कहने वाला (**असि**) है वा (**यन्ता**) नियम करने हारा (**असि**) है (**सः**) वह (**स्वाहाकृतः**) सत्यक्रिया से सिद्ध हुआ (**धर्त्ता**) सब व्यवहारों का धारण करने हारा (**त्वम्**) तू (**सप्रथसम्**) विख्याति के साथ वर्त्तमान (**वैश्वानरम्**) समस्त पदार्थों में नायक (**अग्निम्**) अग्नि को (**गच्छ**) जान॥३॥

भावार्थः-जैसे सब प्राणी और अप्राणियों के जीने का मूल कारण जल और अग्नि हैं, वैसे विद्वान् को सब लोग जानें॥३॥

स्वगेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

स्वगा त्वा देवेभ्यः प्रजापतये ब्रह्मन्नश्वं भन्त्स्यामि देवेभ्यः प्रजापतये तेन राध्यासम्।

तं बधान देवेभ्यः प्रजापतये तेन राध्नुहि॥४॥

स्वगेति स्वऽगा। त्वा। देवेभ्यः। प्रजापतय इति प्रजाऽपतये। ब्रह्मन्। अश्वम्। भन्त्स्यामि। देवेभ्यः। प्रजापतय इति प्रजाऽपतये। तेन। राध्यासम्। तम्। बधान। देवेभ्यः। प्रजापतय इति प्रजाऽपतये। तेन। राध्नुहि॥४॥

पदार्थः-(**स्वगा**) स्वयं गच्छतीति स्वगास्तं स्वयंगामिनम्। अत्र विभक्तेर्डादेशः (**त्वा**) त्वाम् (**देवेभ्यः**) विद्वद्भ्यः (**प्रजापतये**) प्रजायाः पालकाय (**ब्रह्मन्**) विद्यया वृद्ध (**अश्वम्**) महान्तम् (**भन्त्स्यामि**)

बद्धं करिष्यामि **(देवेभ्यः)** दिव्यगुणेभ्यः **(प्रजापतये)** प्रजापालकाय गृहस्थाय **(तेन)** **(राध्यासम्)** सम्यक् सिद्धो भवेयम् **(तम्)** **(बधान)** **(देवेभ्यः)** दिव्यगुणकर्मस्वभावेभ्यः **(प्रजापतये)** प्रजापालकाय **(तेन)** **(राध्नुहि)** सम्यक् सिद्धो भव॥४॥

अन्वयः-हे ब्रह्मन्नहं त्वा स्वगा करोमि देवेभ्यः प्रजापतयेऽश्वं भन्त्स्यामि, तेन देवेभ्यः प्रजापतये राध्यासं तं त्वं बधान तेन देवेभ्यः प्रजापतये राध्नुहि॥४॥

भावार्थः-सर्वैर्मनुष्यैर्विद्यासुशिक्षाब्रह्मचर्य्यसत्सङ्गैः शरीरात्मनोर्महद्बलं संपाद्य दिव्यान् गुणान् गृहीत्वा विद्वद्भ्यः सुखं दत्त्वा स्वस्य परेषां च वृद्धिः कार्या॥४॥

पदार्थः-हे **(ब्रह्मन्)** विद्या से वृद्धि को प्राप्त! मैं **(त्वा)** तुझे **(स्वगा)** आप जाने वाला करता हूँ **(देवेभ्यः)** विद्वानों और **(प्रजापतये)** सन्तानों की रक्षा करने हारे गृहस्थ के लिये **(अश्वम्)** बड़े सर्वव्यापी उत्तम गुण को **(भन्त्स्यामि)** बांधूंगा **(तेन)** उससे **(देवेभ्यः)** दिव्यगुणों और **(प्रजापतये)** सन्तानों को पालनेहारे गृहस्थ के लिये **(राध्यासम्)** अच्छे प्रकार सिद्ध होऊं **(तम्)** उस को तू **(बधान)** बांध **(तेन)** उससे **(देवेभ्यः)** दिव्य गुण, कर्म और स्वभाव वालों तथा **(प्रजापतये)** प्रजा पालने वाले के लिये **(राध्नुहि)** अच्छे प्रकार सिद्ध होओ॥४॥

भावार्थः-सब मनुष्यों को चाहिये कि विद्या, अच्छी शिक्षा, ब्रह्मचर्य और अच्छे संग से शरीर और आत्मा के अत्यन्त बल को सिद्ध कर दिव्य गुणों को ग्रहण और विद्वानों के लिये सुख देकर अपनी और पराई वृद्धि करें॥४॥

प्रजापतय इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। इन्द्रादयो देवताः। अतिधृतिश्छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनर्मनुष्याः कान् वर्द्धयेयुरित्याह॥

फिर मनुष्य किन को बढ़ावें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प्रजापतये त्वा जुष्टं प्रोक्षामीन्द्राग्निभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि वायवे त्वा जुष्टं प्रोक्षामि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जुष्टं प्रोक्षामि सर्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जुष्टं प्रोक्षामि। योऽअर्वन्तं जिघांꣳसति तमभ्यमीति वरुणः। परो मर्त्तः परः श्वा॥५॥

प्रजापतय इति प्रजाऽपतये। त्वा। जुष्टम्। प्र। उक्षामि। इन्द्राग्निभ्यामितीन्द्राग्निऽभ्याम्। त्वा। जुष्टम्। प्र। उक्षामि। वायवे। त्वा। जुष्टम्। प्र। उक्षामि। विश्वेभ्यः। त्वा। देवेभ्यः। जुष्टम्। प्र। उक्षामि। सर्वेभ्यः। त्वा। देवेभ्यः। जुष्टम्। प्र। उक्षामि। यः। अर्वन्तम्। जिघांꣳसति। तम्। अभि। अमीति। वरुणः। परः। मर्त्तः। परः। श्वा॥५॥

पदार्थः-**(प्रजापतये)** प्रजापालकाय **(त्वा)** त्वाम् **(जुष्टम्)** प्रीतम् **(प्रोक्षामि)** प्रकृष्टतयाऽभिषिञ्चामि **(इन्द्राग्निभ्याम्)** जीवाग्निभ्याम् **(त्वा)** **(जुष्टम्)** **(प्रोक्षामि)** पवनाय **(त्वा)** **(जुष्टम्)** **(प्रोक्षामि)** **(विश्वेभ्यः)** अखिलेभ्यः **(त्वा)** त्वाम् **(देवेभ्यः)** विद्वद्भ्यः **(जुष्टम्)** **(प्रोक्षामि)** **(सर्वेभ्यः)** समग्रेभ्यः **(त्वा)** **(देवेभ्यः)**

दिव्येभ्यः पृथिव्यादिपदार्थेभ्यः **(जुष्टम्)** **(प्रोक्षामि)** **(यः)** **(अर्वन्तम्)** शीघ्रगामिनमश्वम् **(जिघांसति)** हन्तुमिच्छति **(तम्)** **(अभि)** **(अमीति)** प्राप्नोति **(वरुणः)** श्रेष्ठः **(परः)** उत्कृष्टः **(मर्त्तः)** मनुष्य **(परः)** **(श्वा)** कुक्कुरः॥५॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यः परो वरुणो मर्त्तोऽर्वन्तं जिघांसति तमभ्यमीति यः परः श्वेव वर्त्तते यस्तं निवारयति तं प्रजापतये जुष्टं त्वा प्रोक्षामीन्द्राग्निभ्यां जुष्टं त्वा प्रोक्षामि वायवे त्वा जुष्टं प्रोक्षामि विश्वेभ्यो देवेभ्यो जुष्टं त्वा प्रोक्षामि सर्वेभ्यो देवेभ्यो जुष्टं त्वा प्रोक्षामि॥५॥

भावार्थः-ये मनुष्या उत्तमान् पशून् हिंसितुमिच्छेयुस्ते सिंहवद्धन्तव्याः, य एतान् रक्षितुं यतेरंस्ते सर्वरक्षणायाधिकर्त्तव्याः॥५॥

पदार्थः-हे विद्वन्! **(यः)** जो **(परः)** उत्तम और **(वरुणः)** श्रेष्ठ **(मर्त्तः)** मनुष्य **(अर्वन्तम्)** शीघ्र चलने हारे घोड़े को **(जिघांसति)** ताड़ना देने वा चलाने की इच्छा करता है **(तम्)** उसको **(अभि, अमीति)** सब ओर से प्राप्त होता है और जो **(परः)** अन्य मनुष्य **(श्वा)** कुत्ते के समान वर्त्तमान अर्थात् दुष्कर्मी है, उसको जो रोकता है, उस **(प्रजापतये)** प्रजा की पालना करने वाले के लिये **(जुष्टम्)** प्रीति किये गये **(त्वा)** तुझ को **(प्रोक्षामि)** अच्छे प्रकार सींचता हूँ। **(इन्द्राग्निभ्याम्)** जीव और अग्नि के लिये **(जुष्टम्)** प्रीति किये हुए **(त्वा)** तुझ को **(प्रोक्षामि)** अच्छे प्रकार सींचता हूँ। **(वायवे)** पवन के लिये **(जुष्टम्)** प्रीति किये हुए **(त्वा)** तुझको **(प्रोक्षामि)** अच्छे प्रकार सींचता हूँ। **(विश्वेभ्यः)** समस्त **(देवेभ्यः)** विद्वानों के लिये **(जुष्टम्)** प्रीति किये हुए **(त्वा)** तुझ को **(प्रोक्षामि)** अच्छे प्रकार सींचता हूँ। **(सर्वेभ्यः)** समस्त **(देवेभ्यः)** दिव्य पृथिवी आदि पदार्थों के लिये **(जुष्टम्)** प्रीति किये हुए **(त्वा)** तुझ को **(प्रोक्षामि)** अच्छी प्रकार सींचता हूँ॥५॥

भावार्थः-जो मनुष्य उत्तम पशुओं के मारने की इच्छा करते हों, वे सिंह के समान मारने चाहिये और जो इन पशुओं की रक्षा करने को अच्छा यत्न करते हैं, वे सबकी रक्षा करने के लिये अधिकार देने योग्य हैं॥५॥

अग्नय इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। अग्न्यादयो देवताः। भुरिगतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनर्मनुष्याः कथं वर्त्तेरन्नित्याह॥

फिर मनुष्य कैसे अपना वर्त्ताव वर्त्ते, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अ॒ग्नये॒ स्वाहा॒ सोमा॑य॒ स्वाहा॒पां मोदा॑य॒ स्वाहा॑ सवि॒त्रे स्वाहा॑ वा॒यवे॒ स्वाहा॒ विष्ण॑वे॒ स्वाहेन्द्रा॑य॒ स्वाहा॒ बृह॒स्पत॑ये॒ स्वाहा॑ मि॒त्राय॒ स्वाहा॒ वरु॑णाय॒ स्वाहा॑॥६॥

अ॒ग्नये॑। स्वाहा॑। सोमा॑य। स्वाहा॑। अ॒पाम्। मोदा॑य। स्वाहा। स॒वि॒त्रे। स्वाहा॑। वा॒यवे॑। स्वाहा॑। वि॒ष्णवे॑। स्वाहा॑। इन्द्रा॑य। स्वाहा॑। बृह॒स्पत॑ये। स्वाहा॑। वरु॑णाय। स्वाहा॑॥६॥

पदार्थ:-(**अग्नये**) पावकाय (**स्वाहा**) श्रेष्ठया क्रियया (**सोमाय**) ओषधिगणशोधनाय (**स्वाहा**) (**अपाम्**) जलानाम् (**मोदाय**) आनन्दाय (**स्वाहा**) सुखप्रापिका क्रिया (**सवित्रे**) सूर्याय (**स्वाहा**) (**वायवे**) (**स्वाहा**) (**विष्णवे**) व्यापकाय विद्युद्रूपाय (**स्वाहा**) (**इन्द्राय**) जीवाय (**स्वाहा**) (**बृहस्पतये**) बृहतां पालकाय (**स्वाहा**) (**मित्राय**) सख्ये (**स्वाहा**) सत्क्रिया (**वरुणाय**) श्रेष्ठाय (**स्वाहा**) उत्तमक्रिया॥६॥

अन्वय:-यदि मनुष्या अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहाऽपां मोदाय स्वाहा सवित्रे स्वाहा वायवे स्वाहा विष्णवे स्वाहेन्द्राय स्वाहा बृहस्पतये स्वाहा मित्राय स्वाहा वरुणाय स्वाहा क्रियेरंस्तर्हि किं किं सुखं न प्राप्येत॥६॥

भावार्थ:-हे मनुष्या:! यदग्नौ संस्कृतं घृतादिकं हविर्हूयते तदोषधिजलं सूर्यतेजो वायुविद्युतौ च संशोध्यैश्वर्यवर्द्धनप्राणापानप्रजारक्षणश्रेष्ठसत्कारनिमित्तं जायते। किंचिदपि द्रव्यं स्वरूपतो नष्टं न भवति, किन्तु अवस्थान्तरं प्राप्य सर्वत्रैव परिणतं जायते; अत एव सुगन्धमिष्टपुष्टिरोगनाशकगुणैर्युक्तानि द्रव्याण्यग्नौ प्रक्षिप्यौषध्यादिशुद्धिद्वारा जगदारोग्यं सम्पादनीयम्॥६॥

पदार्थ:-यदि मनुष्य (**अग्नये**) अग्नि के लिये (**स्वाहा**) श्रेष्ठ क्रिया वा (**सोमाय**) ओषधियों के शोधने के लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया वा (**अपाम्**) जलों के सम्बन्ध से जो (**मोदाय**) आनन्द होता है, उस के लिये (**स्वाहा**) सुख पहुंचाने वाली क्रिया वा (**सवित्रे**) सूर्यमण्डल के अर्थ (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया वा (**वायवे**) पवन के लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया (**विष्णवे**) बिजुलीरूप आग में (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया (**इन्द्राय**) जीव के लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया (**बृहस्पतये**) बड़ों की पालना करने वाले के लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया (**मित्राय**) मित्र के लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया (**वरुणाय**) श्रेष्ठ के लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया करें तो कौन-कौन सुख न मिले?॥६॥

भावार्थ:-हे मनुष्यो! जो आग में उत्तमता से सिद्ध किया हुआ घी आदि हवि होमा जाता है, वह ओषधि, जल, सूर्य के तेज, वायु और बिजुली को अच्छे प्रकार शुद्ध कर ऐश्वर्य्य को बढ़ाने प्राण, अपान और प्रजा की रक्षारूप श्रेष्ठों के सत्कार का निमित्त होता है। कोई द्रव्य स्वरूप से नष्ट नहीं होता, किन्तु अवस्थान्तर को पाके सर्वत्र ही परिणाम को प्राप्त होता है; इसी से सुगन्ध, मीठापन, पुष्टि देने और रोगविनाश करने हारे गुणों से युक्त पदार्थ आग में छोड़कर ओषाधि आदि पदार्थों की शुद्धि के द्वारा संसार का नीरोगपन सिद्ध करना चाहिये॥६॥

हिंकारायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि:। प्राणादयो देवता:। पूर्वस्य निचृदत्यष्टिश्छन्द:। आसीनायेत्युत्तरस्य स्वराडत्यष्टिश्छन्द:। गान्धारौ स्वरौ॥

पुनर्मनुष्यैर्जगत् कथं शोधनीयमित्याह॥

फिर मनुष्यों को जगत् कैसे शुद्ध करना चहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

हि॒ङ्का॒राय॒ स्वाहा॑ हिङ्कृ॑ताय॒ स्वाहा॒ क्रन्द॑ते॒ स्वाहा॑ऽवक्र॒न्दाय॒ स्वाहा॒ प्रोथ॑ते॒ स्वाहा॑ प्रप्रो॒थाय॒ स्वाहा॑ ग॒न्धाय॒ स्वाहा॑ घ्रा॒ताय॒ स्वाहा॒ निवि॑ष्टाय॒ स्वाहोप॑विष्टाय॒ स्वाहा॒ सन्दि॑ताय॒ स्वाहा॒ वल्ग॑ते॒ स्वाहासी॑नाय॒ स्वाहा॒ शया॑नाय॒ स्वाहा॒ स्वप॑ते॒ स्वाहा॒ जाग्र॑ते॒ स्वाहा॒ कूज॑ते॒ स्वाहा॒ प्रबु॑द्धाय॒ स्वाहा॑ वि॒जृम्भ॑माणाय॒ स्वाहा॒ विचृ॑ताय॒ स्वाहा॒ सꣳहा॑नाय॒ स्वाहोप॑स्थिताय॒ स्वाहाऽय॑नाय॒ स्वाहा॒ प्राय॑णाय॒ स्वाहा॑॥७॥

हिं॒का॒रायेति॑ हिम्ऽका॒राय॑। स्वाहा॑। हिंकृ॑ता॒येति॒ हिम्ऽकृ॑ताय। स्वाहा॑। क्रन्द॑ते। स्वाहा॑। अ॒व॒क॒न्दायेत्य॑वऽक्र॒न्दाय॑। स्वाहा॑। प्रोथ॑ते। स्वाहा॑। प्र॒प्रो॒थायेति॑ प्रऽप्रो॒थाय॑। स्वाहा॑। ग॒न्धाय॑। स्वाहा॑। घ्रा॒ताय॑। स्वाहा॑। निवि॑ष्टाये॒ति॒ निऽवि॑ष्टाय। स्वाहा॑। उप॑विष्टा॒येत्युप॑ऽविष्टाय। स्वाहा॑। सन्दि॑ता॒येति॒ सम्ऽदि॑ताय। स्वाहा॑। वल्ग॑ते। स्वाहा॑। आसी॑नाय। स्वाहा॑। शया॑नाय। स्वाहा॑। स्वप॑ते। स्वाहा॑। जाग्र॑ते। स्वाहा॑। कूज॑ते। स्वाहा॑। प्रबु॑द्धाये॒ति॒ प्रऽबु॑द्धाय। स्वाहा॑। वि॒जृम्भ॑माणा॒येति॑ वि॒ऽजृम्भ॑माणाय। स्वाहा॑। विचृ॑ता॒येति॒ विऽचृ॑ताय। स्वाहा॑। सꣳहा॒ना॒येति॒ सम्ऽहा॑नाय। स्वाहा॑। उप॑स्थिता॒येत्युप॑ऽस्थिताय। स्वाहा॑। आय॑ना॒येत्या॒ऽअय॑नाय। स्वाहा॑। प्राय॑णाय। प्राय॑ना॒येति॑ प्र॒ऽअ॑यनाय। स्वाहा॑॥७॥

पदार्थः-(**हिंकाराय**) यो हिं करोति तस्मै (**स्वाहा**) (**हिंकृताय**) हिं कृतं येन तस्मै (**स्वाहा**) (**क्रन्दते**) आह्वानं रोदनं वा कुर्वते (**स्वाहा**) (**अवक्रन्दाय**) नीचैः कृताह्वानाय (**स्वाहा**) (**प्रोथते**) पर्याप्ताय (**स्वाहा**) (**प्रप्रोथाय**) अत्यन्तं पर्याप्ताय (**स्वाहा**) (**गन्धाय**) (**स्वाहा**) (**घ्राताय**) योऽघ्रायि तस्मै (**स्वाहा**) (**निविष्टाय**) यो निविशते तस्मै (**स्वाहा**) (**उपविष्टाय**) य उपविशति तस्मै (**स्वाहा**) (**संदिताय**) यः सम्यग् दीयते खण्ड्यते तस्मै (**स्वाहा**) (**वल्गते**) गच्छते (**स्वाहा**) (**आसीनाय**) स्थिताय (**स्वाहा**) (**शयानाय**) शेते तस्मै (**स्वाहा**) (**स्वपते**) प्राप्तसुषुप्तये (**स्वाहा**) (**जाग्रते**) (**स्वाहा**) (**कूजते**) अप्रकटशब्दोच्चारकाय (**स्वाहा**) (**प्रबुद्धाय**) प्रकृष्टज्ञानवते (**स्वाहा**) (**विजृम्भमाणाय**) विशेषेणाङ्गविनामकाय (**स्वाहा**) (**विचृताय**) ग्रन्थकाय (**स्वाहा**) (**संहानाय**) संहन्यते यस्मिंस्तस्मै (**स्वाहा**) (**उपस्थिताय**) प्राप्तसमीपत्वाय (**स्वाहा**) (**आयनाय**) समन्ताद् विज्ञानाय (**स्वाहा**) (**प्रायणाय**) (**स्वाहा**)॥७॥

अन्वयः-यैर्मनुष्यैर्हिंकाराय स्वाहा हिंकृताय स्वाहा क्रन्दते स्वाहाऽवक्रन्दाय स्वाहा प्रोथते स्वाहा प्रप्रोथाय स्वाहा गन्धाय स्वाहा घ्राताय स्वाहा निविष्टाय स्वाहोपविष्टाय स्वाहा संदिताय स्वाहा वल्गते स्वाहाऽऽसीनाय स्वाहा शयानाय स्वाहा स्वपते स्वाहा जाग्रते स्वाहा कूजते स्वाहा प्रबुद्धाय स्वाहा विजृम्भमाणाय स्वाहा विचृताय स्वाहा संहानाय स्वाहोपस्थिताय स्वाहाऽयनाय स्वाहा प्रायणाय स्वाहा क्रियन्ते तैर्दुःखानि वियोज्य सुखानि लभ्यन्ते॥७॥

भावार्थः-मनुष्यैरग्निहोत्रादियज्ञे यावद्धूयते तावत्सर्वं प्राणिनां सुखकारकं भवति॥७॥

पदार्थः-जिन मनुष्यों ने (**हिंकाराय**) जो हिं ऐसा शब्द करता है, उसके लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया (**हिंकृताय**) जिसने हिं शब्द किया उसके लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया (**क्रन्दते**) बुलाते वा रोते हुए के लिये

(स्वाहा) उत्तम क्रिया **(अवक्रन्दाय)** नीचे होकर बुलाने वाले के लिये **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया **(प्रोथते)** सब कर्मों में परिपूर्ण के लिये **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया **(प्रप्रोथाय)** अत्यन्त पूर्ण के लिये **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया **(गन्धाय)** सुगन्धित के लिये **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया **(घ्राताय)** जो सूंघा गया उसके लिये **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया **(निविष्टाय)** जो निरन्तर प्रवेश करता बैठता है, उसके लिये **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया **(उपविष्टाय)** जो बैठता उसके लिये **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया **(संदिताय)** जो भलीभांति दिया जाता उसके लिये **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया **(वल्गते)** जाते हुए के लिये **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया **(आसीनाय)** बैठे हुए के लिये **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया **(शयानाय)** सोते हुए के लिए **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया **(स्वपते)** नींद जिस को प्राप्त हुई उसके लिये **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया **(जाग्रते)** जागते हुए के लिये **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया **(कूजते)** कूजते हुए के लिए **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया **(प्रबुद्धाय)** उत्तम ज्ञान वाले के लिये **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया **(विजृम्भमाणाय)** अच्छे प्रकार जंभाई लेने के लिए **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया **(विचृताय)** विशेष रचना करने वाले के लिये **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया **(संहानाय)** जिससे संघात पदार्थों का समूह किया जाता, उसके लिये **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया **(उपस्थिताय)** समीपस्थित हुए के लिये **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया **(आयनाय)** अच्छे प्रकार विशेष ज्ञान के लिये **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया तथा **(प्रायणाय)** पहुंचाने हारे के लिये **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया की, उन मनुष्यों को दु:ख छूट के सुख प्राप्त होते हैं॥७॥

भावार्थः-मनुष्यों से अग्निहोत्र आदि यज्ञ में जितना होम किया जाता है, उतना सब प्राणियों के लिये सुख करने वाला होता है॥७॥

यते स्वाहेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। प्रयत्नवन्तो जीवादयो देवताः। पूर्वस्य भुरिग्धृतिश्छन्दः। ऋषभः स्वरः। विधूतायेत्युत्तरस्य भुरिगतिधृतिश्छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यते स्वाहा धावते स्वाहोद्द्रावाय स्वाहोद्द्रुताय स्वाहा शूकाराय स्वाहा शूकृताय स्वाहा निषण्णाय स्वाहोत्थिताय स्वाहा जवाय स्वाहा बलाय स्वाहा विवर्त्तमानाय स्वाहा विवृत्ताय स्वाहा विधून्वानाय स्वाहा विधूताय स्वाहा शुश्रूषमाणाय स्वाहा शृण्वते स्वाहेक्षमाणाय स्वाहेक्षिताय स्वाहा वीक्षिताय स्वाहा निमेषाय स्वाहा यदत्ति तस्मै स्वाहा यत् पिबति तस्मै स्वाहा यन्मूत्रं करोति तस्मै स्वाहा कुर्वते स्वाहा कृताय स्वाहा॥८॥

यते। स्वाहा। धावते। स्वाहा। उद्द्रावायेत्युत्ऽद्रावाय। स्वाहा। उद्द्रुतायेत्युत्ऽद्रुताय। स्वाहा। शूकाराय। स्वाहा। शूकृताय। स्वाहा। निषण्णाय। निसन्नायेति निऽसन्नाय। स्वाहा। उत्थिताय। स्वाहा। जवाय। स्वाहा। बलाय। स्वाहा। विवर्त्तमानायेति विऽवर्त्तमानाय। स्वाहा। विवृत्तायेति विऽवृत्ताय। स्वाहा। विधून्वानायेति विधून्वानाय। स्वाहा।

विधूतायेति विऽधूताय। स्वाहा। शुश्रूषमाणाय। स्वाहा। शृण्वते। स्वाहा। ईक्षमाणाय। स्वाहा। ईक्षिताय। स्वाहा। वीक्षितायेति विऽईक्षिताय। स्वाहा। निमेषायेति निऽमेषाय। स्वाहा। यत्। अत्ति। तस्मै। स्वाहा। यत्। पिबति। तस्मै। स्वाहा। यत्। मूत्रम्। करोति। तस्मै। स्वाहा। कुर्वते। स्वाहा। कृताय। स्वाहा॥८॥

पदार्थः-(**यते**) प्रयतमानाय (**स्वाहा**) सत्क्रिया (**धावते**) (**स्वाहा**) (**उद्द्रावाय**) ऊर्ध्वं गताय द्रवीभूताय (**स्वाहा**) (**उद्द्रुताय**) उत्कर्षं गताय (**स्वाहा**) (**शूकाराय**) क्षिप्रकारिणे (**स्वाहा**) (**शूकृताय**) क्षिप्रकृताय (**स्वाहा**) (**निषण्णाय**) निश्चयेन स्थिताय (**स्वाहा**) (**उत्थिताय**) कृतोत्थानाय (**स्वाहा**) (**जवाय**) वेगाय (**स्वाहा**) (**बलाय**) (**स्वाहा**) (**विवर्त्तमानाय**) विशेषेण वर्त्तमानाय (**स्वाहा**) (**विवृत्ताय**) विविधतया कृतवर्त्तमानाय (**स्वाहा**) (**विधून्वानाय**) यो विविधं धुनोति तस्मै (**स्वाहा**) (**विधूताय**) येन विविधं धूतं कम्पितं तस्मै (**स्वाहा**) (**शुश्रूषमाणाय**) श्रोतुमिच्छते (**स्वाहा**) (**शृण्वते**) यः शृणोति तस्मै (**स्वाहा**) (**ईक्षमाणाय**) दर्शकाय (**स्वाहा**) (**ईक्षिताय**) अन्येन दृष्टाय (**स्वाहा**) (**वीक्षिताय**) विशेषेण कृतदर्शनाय (**स्वाहा**) (**निमेषाय**) (**स्वाहा**) (**यत्**) (**अत्ति**) भक्षयति (**तस्मै**) (**स्वाहा**) (**यत्**) (**पिबति**) (**तस्मै**) (**स्वाहा**) (**यत्**) (**मूत्रम्**) (**करोति**) (**तस्मै**) (**स्वाहा**) (**कुर्वते**) (**स्वाहा**) (**कृताय**) (**स्वाहा**)॥८॥

अन्वयः-ये मनुष्या यते स्वाहा धावते स्वाहोद्द्रावाय स्वाहोद्द्रुताय स्वाहा शूकाराय स्वाहा शूकृताय स्वाहा निषण्णाय स्वाहोत्थिताय स्वाहा जवाय स्वाहा बलाय स्वाहा विवर्त्तमानाय स्वाहा विवृत्ताय स्वाहा विधून्वानाय स्वाहा विधूताय स्वाहा शुश्रूषमाणाय स्वाहा शृण्वते स्वाहेक्षमाणाय स्वाहेक्षिताय स्वाहा वीक्षिताय स्वाहा निमेषाय स्वाहा यदत्ति तस्मै स्वाहा यत् पिबति तस्मै स्वाहा यन्मूत्रं करोति तस्मै स्वाहा कुर्वते स्वाहा कृताय स्वाहा कुर्वन्ति ते सर्वाणि सुखानि लभन्ते॥८॥

भावार्थः-ये प्रयत्नधावनादीनां साधकानि सुगन्ध्यादिहोमप्रभृतीनि च कर्माणि कुर्वन्ति, ते सर्वाणीष्टानि वस्तूनि प्राप्नुवन्ति॥८॥

पदार्थः-जो मनुष्य (**यते**) अच्छा यत्न करते हुए के लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया (**धावते**) दौड़ते हुए के लिये (**स्वाहा**) श्रेष्ठ क्रिया (**उद्द्रावाय**) ऊपर को गये हुए गीले पदार्थ के लिये (**स्वाहा**) सुन्दर क्रिया (**उद्द्रुताय**) उत्कर्ष को प्राप्त हुए के लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया (**शूकाराय**) शीघ्रता करने वाले के लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया (**शूकृताय**) शीघ्र किये हुए के लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया (**निषण्णाय**) निश्चय से बैठे हुए के लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया (**उत्थिताय**) उठे हुए के लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया (**जवाय**) वेग के लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया (**बलाय**) बल के लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया (**विवर्त्तमानाय**) विशेष रीति से वर्त्तमान होते हुए के लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया (**विवृत्ताय**) विशेष रीति से वर्त्ताव किये हुए के लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया (**विधून्वानाय**) जो पदार्थ विधूनता है, उसके लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया (**विधूताय**) जिसने नाना प्रकार से विधूना उस के लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया (**शुश्रूषमाणाय**) सुना चाहते हुए के लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया (**शृण्वते**) सुनते के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (**ईक्षमाणाय**) देखते हुए

के लिये **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया **(ईक्षिताय)** और से देखे हुए के लिये **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया **(वीक्षिताय)** भलीभांति देखे हुए के लिये **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया **(निमेषाय)** आंखों के पलक उठने-बैठने के लिये **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया **(यत्)** जो **(अत्ति)** खाता है **(तस्मै)** उस के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया **(यत्)** जो **(पिबति)** पीता है **(तस्मै)** उसके लिये **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया **(यत्)** जो **(मूत्रम्)** मूत्र **(करोति)** करता है **(तस्मै)** उस के लिये **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया **(कुर्वते)** करने वाले के लिये **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया तथा **(कृताय)** किये हुए के लिये **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया करते हैं, वे सब सुखों को प्राप्त होते हैं॥८॥

भावार्थ:-जो अच्छे यत्न और दौड़ने आदि क्रियाओं को सिद्ध करने वाले काम तथा सुगन्धि आदि वस्तुओं के होम आदि कामों को करते हैं, वे समस्त सुख और चाहे हुए पदार्थों को प्राप्त होते हैं॥८॥

तत्सवितुरित्यस्य विश्वामित्र ऋषि:। सविता देवता। निचृद्गायत्री छन्द:। षड्ज: स्वर:॥

अथेश्वरविषयमाह॥

अब ईश्वर के विषय में अगले मन्त्र में कहा है॥

तत्स॑वि॒तुर्वरे॑ण्यं॒ भर्गो॑ दे॒वस्य॑ धीमहि।

धियो॒ यो नः॑ प्रचो॒दया॑त्॥९॥

तत्। स॒वि॒तुः। वरे॑ण्यम्। भर्गः॑। दे॒वस्य॑। धी॒म॒हि॒। धियः॑। यः। न॒ः। प्र॒चो॒दया॒दिति॑ प्र॒ऽचो॒दया॑त्॥९॥

पदार्थ:-**(तत्)** **(सवितु:)** सकलजगदुत्पादकस्य **(वरेण्यम्)** वरेण्यं वर्त्तुमर्हमत्युत्तमम् **(भर्ग:)** सर्वदोषप्रदाहकं तेजोमयं शुद्धम् **(देवस्य)** स्वप्रकाशस्वरूपस्य सर्वै: कमनीयस्य सर्वसुखप्रदस्य **(धीमहि)** दधीमहि **(धिय:)** प्रज्ञा: **(य:)** परमात्मा **(न:)** अस्माकम् **(प्रचोदयात्)॥९॥**

अन्वय:-हे मनुष्या:! सवितुर्देवस्य यद्वरेण्यं भर्गो वयं धीमहि तदेव यूयं धरत, यो न: सर्वेषां धिय: प्रचोदयात् सोऽन्तर्यामी सर्वैरुपासनीय:॥९॥

भावार्थ:-सर्वैर्मनुष्यै: सच्चिदानन्दस्वरूपं नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावं सर्वान्तर्यामिणं परमात्मानं विहायैतस्य स्थानेऽन्यस्य कस्यचित् पदार्थस्योपासनास्थापनं कदाचिन्नैव कार्य्यम्। कस्मै प्रयोजनाय? योऽस्माभिरुपासित: सन्नस्माकं बुद्धीरधर्माचरणान् निवर्त्य धर्माचरणे प्रेरयेत्, येन शुद्धा: सन्तो वयं तं परमात्मानं प्राप्यैहिकपारमार्थिके सुखे भुञ्जीमहीत्यस्मै॥९॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! **(सवितु:)** समस्त संसार उत्पन्न करने हारे **(देवस्य)** आप से आप ही प्रकाशरूप सब के चाहने योग्य समस्त सुखों के देने हारे परमेश्वर के जिस **(वरेण्यम्)** स्वीकार करने योग्य अति उत्तम **(भर्ग:)** समस्त दोषों के दाह करने वाले तेजोमय शुद्धस्वरूप को हम लोग **(धीमहि)** धारण करते हैं, **(तत्)** उसको तुम लोग धारण करो **(य:)** जो **(न:)** हम सब लोगों की **(धिय:)** बुद्धियों को

(प्रचोदयात्) प्रेरे अर्थात् उनको अच्छे-अच्छे कामों में लगावे, वह अन्तर्यामी परमात्मा सबके उपासना करने के योग्य है॥९॥

भावार्थः-सब मनुष्यों को चाहिये कि सच्चिदानन्दस्वरूप नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभाव, सब के अन्तर्यामी परमात्मा को छोड़के उसकी जगह में अन्य किसी पदार्थ की उपासना का स्थापन कभी न करें। किस प्रयोजन के लिये कि जो हम लोगों से उपासना किया हुआ परमात्मा हमारी बुद्धियों को अधर्म के आचरण से छुड़ाके धर्म के आचरण में प्रवृत्त करे, जिससे शुद्ध हुए हम लोग उस परमात्मा को प्राप्त होकर इस लोक और परलोक के सुखों को भोगें इस प्रयोजन के लिये॥९॥

हिरण्यपाणीत्यरूपस्य मेधातिथिर्ऋषिः। सविता देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः।

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

हिर॑ण्यपाणिमू॒तये॑ सवि॒तार॒मुप॑ह्वये। स चेत्ता॑ दे॒वता॑ प॒दम्॥ १०॥

हिर॑ण्यपाणि॒मिति॒ हिर॑ण्यऽपाणिम्। ऊ॒तये॑। स॒वि॒तार॑म्। उप॑। ह्व॒ये॒। सः। चेत्ता॑। दे॒वता॑। प॒दम्॥ १०॥

पदार्थः-**(हिरण्यपाणिम्)** हिरण्यानि सूर्य्यादीनि तेजांसि पाणौ स्तवने यस्य तम् **(ऊतये)** रक्षणाद्याय **(सवितारम्)** सकलैश्वर्य्यप्रापकम् **(उप) (ह्वये)** ध्यानयोगेनाह्वये **(सः) (चेत्ता)** सम्यग्ज्ञानस्वरूपत्वेन सत्याऽसत्यज्ञापकः **(देवता)** उपासनीय इष्टदेव एव **(पदम्)** प्राप्तुमर्हम्॥१०॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यमहमूतये हिरण्यपाणिं पदं सवितारमुपह्वये स चेत्ता देवतास्तीति यूयं विजानीत॥१०॥

भावार्थः-मनुष्यैरितः पूर्वमन्त्रार्थस्य विवरणं वेदितव्यम्। चेतनस्वरूपस्य परमात्मन उपासनां विहाय कस्याप्यन्यस्य जडस्योपासना कदापि नैव कार्या, नहि जडमुपासितं सद्धानिलाभकारकं रक्षकं च भवति, तस्माच्चेतनैः सर्वैर्जीवैश्चेतनो जगदीश्वर एवोपासनीयो नेतरो जडत्वादिगुणयुक्तः पदार्थः॥१०॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! मैं जिस **(ऊतये)** रक्षा आदि के लिये **(हिरण्यपाणिम्)** जिसकी स्तुति करने में सूर्य आदि तेज हैं **(पदम्)** उस पाने योग्य **(सवितारम्)** समस्त ऐश्वर्य्य की प्राप्ति कराने वाले जगदीश्वर को **(उपह्वये)** ध्यान के योग से बुलाता हूँ, **(सः)** वह **(चेत्ता)** अच्छे ज्ञानस्वरूप होने से सत्य और मिथ्या का जनाने वाला **(देवता)** उपासना करने योग्य इष्टदेव ही है, यह तुम सब जानो॥१०॥

भावार्थः-मनुष्यों को योग्य है कि इस मन्त्र से लेके पूर्वोक्त मन्त्र गायत्री जो कि गुरुमन्त्र है, उसी के अर्थ का तात्पर्य है, ऐसा जानें। चेतन स्वरूप परमात्मा की उपासना को छोड़ किसी अन्य जड़ की उपासना कभी न करें, क्योंकि उपासना अर्थात् सेवा किया हुआ जड़ पदार्थ हानि-लाभ कारक और रक्षा

करने हारा नहीं होता। इससे चित्तवान् समस्त जीवों का चेतनस्वरूप जगदीश्वर ही की उपासना करनी योग्य है, अन्य जड़ता आदि गुणयुक्त पदार्थ उपास्य नहीं॥१०॥

देवस्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। सविता देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः।

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

दे॒वस्य॒ चेत॑तो म॒हीं प्र स॑वि॒तुर्ह॑वामहे।

सु॒म॒तिꣳ स॒त्यरा॑धसम्॥ ११॥

दे॒वस्य॑। चेत॑तः। म॒हीम्। प्र। स॒वि॒तुः। ह॒वा॒म॒हे॒। सु॒म॒तिमिति॑ सुऽम॒तिम्। स॒त्यरा॑धसमिति॑ स॒त्यऽरा॑धसम्॥ ११॥

पदार्थः-(**देवस्य**) स्तोतुमर्हस्य (**चेततः**) चेतनस्वरूपस्य (**महीम्**) महतीम् (**प्र**) (**सवितुः**) सर्वसंसारोत्पादकस्य (**हवामहे**) आदद्याम (**सुमतिम्**) शोभनां प्रज्ञाम् (**सत्यराधसम्**) सत्यं राध्नोति यया ताम्॥११॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा वयं सवितुश्चेततो देवस्येश्वरस्योपासनां कृत्वा महीं सत्यराधसं सुमतिं प्रहवामहे तथैतमुपास्यैतां यूयं प्राप्नुत॥११॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! येन चेतनस्वरूपेण जगदीश्वरेणाखिलं जगदुत्पादितं तस्यैवाराधनेन सत्यविद्यायुक्तां प्रज्ञां यूयं प्राप्तुं शक्नुथ, नेतरस्य जडस्याराधनेन॥११॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे हम लोग (**सवितुः**) समस्त संसार के उत्पन्न करने हारे (**चेततः**) चेतनस्वरूप (**देवस्य**) स्तुति करने योग्य ईश्वर की उपासना कर (**महीम्**) बड़ी (**सत्यराधसम्**) जिससे जीव सत्य को सिद्ध करता है, उस (**सुमतिम्**) सुन्दर बुद्धि को (**प्र, हवामहे**) ग्रहण करते हैं, वैसे उस परमेश्वर की उपासना कर उस बुद्धि को तुम लोग प्राप्त होओ॥११॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जिस चेतनस्वरूप जगदीश्वर ने समस्त संसार को उत्पन्न किया है, उसकी आराधना, उपासना से सत्यविद्यायुक्त उत्तम बुद्धि को तुम लोग प्राप्त हो सकते हो, किन्तु इतर जड़ पदार्थ की आराधना से कभी नहीं॥११॥

सुष्टुतिमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। सविता देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय की अगले मन्त्र में कहा है॥

सु॒ष्टु॒तिꣳ सु॑म॒ती॒वृधो॑ रा॒तिꣳ स॑वि॒तुरी॑महे।

प्र दे॒वाय॑ मती॒विदे॑॥ १२॥

सुष्टुतिम्। सुस्तुतिमिति सुऽस्तुतिम्। सुमतीवृधः। सुमतिवृध इति सुमतिऽवृधः। रातिम्। सवितुः। ईमहे। प्र। देवाय। मतीविदे। मतिविद इति मतिऽविदे॥ १२॥

पदार्थः-(सुष्टुतिम्) शोभनां स्तुतिम् **(सुमतीवृधः)** यः सुमतिं वर्द्धयति तस्य। अत्र **संहितायाम्** [अ०६.३.११४] इति दीर्घः। **(रातिम्)** दानम् **(सवितुः)** सर्वोत्पादकस्य **(ईमहे)** याचामहे **(प्र)** **(देवाय)** विद्यां कामयमानाय **(मतीविदे)** यो मतिं ज्ञानं विन्दति तस्मै। अत्र **संहितायाम्** [अ०६.३.११४] इति दीर्घः॥ १२॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा वयं सुमतीवृधः सवितुरीश्वरस्य सुष्टुतिं कृत्वैतस्मान्मतीविदे देवाय रातिं प्रेमहे तथैतामस्माद् यूयमपि याचध्वम्॥ १२॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यदा यदा परमेश्वरस्य प्रार्थना कार्य्या तदा तदा स्वार्था परार्था वा सर्वशास्त्रविज्ञानयुक्ता प्रज्ञैव याचनीया, यस्यां प्राप्तायां जीवाः सर्वाणि सुखसाधनानि प्राप्नुवन्ति॥ १२॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे हम लोग **(सुमतीवृधः)** जो उत्तम मति को बढ़ाता **(सवितुः)** सब को उत्पन्न करता, उस ईश्वर की **(सुष्टुतिम्)** सुन्दर स्तुति कर इससे **(मतीविदे)** जो ज्ञान को प्राप्त होता है, उस **(देवाय)** विद्या आदि गुणों की कामना करने वाले मनुष्य के लिये **(रातिम्)** देने को **(प्रेमहे)** भलीभांति मांगते हैं, वैसे इस देने की क्रिया को इस ईश्वर से तुम लोग भी मांगो॥ १२॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जब-जब परमेश्वर की प्रार्थना करनी योग्य हो, तब-तब अपने लिये वा और के लिये समस्त शास्त्र के विज्ञान से युक्त उत्तम बुद्धि ही मांगनी चाहिये, जिसके पाने पर समस्त सुखों के साधनों को जीव प्राप्त होते हैं॥ १२॥

रातिमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। सविता देवता। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

रातिꣳ सत्पतिं महे सवितारमुप ह्वये। आसवं देववीतये॥ १३॥

रातिम्। सत्पतिमिति। सत्ऽपतिम्। महे। सवितारम्। उप। ह्वये। आसवमित्याऽसवम्। देववीतयऽइति देववीतये॥ १३॥

पदार्थः-(रातिम्) दातारम् **(सत्पतिम्)** सतां जीवानां पदार्थानां वा पालकम् **(महे)** महत्यै **(सवितारम्)** सकलजगदुत्पादकम् **(उप)** **(ह्वये)** उपस्तुयाम् **(आसवम्)** समन्तादैश्वर्ययुक्तम् **(देववीतये)** दिव्यानां गुणानां विदुषां वा प्राप्तये॥ १३॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथाऽहं महे देववीतये रातिमासवं सत्पतिं सवितारमुपह्वये तथा यूयमप्येनं प्रशंसत॥१३॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यदि मनुष्या धर्मार्थकामसिद्धिं कामयेरँस्तर्हि परमात्मानमेवोपास्य तदाऽऽज्ञायां वर्त्तेरन्॥१३॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे मैं **(महे)** बड़ी **(देववीतये)** दिव्यगुण और विद्वानों की प्राप्ति के लिये **(रातिम्)** देने हारे **(आसवम्)** सब ओर से ऐश्वर्ययुक्त **(सत्पतिम्)** सत्य वा नित्य विद्यमान जीव वा पदार्थों की पालना करने और **(सवितारम्)** समस्त संसार को उत्पन्न करने हारे जगदीश्वर की **(उपह्वये)** ध्यानयोग से समीप में स्तुति करूं, वैसे तुम भी इसकी प्रशंसा करो॥१३॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। यदि मनुष्य धर्म अर्थ और काम की सिद्धि को चाहें तो परमात्मा की ही उपासना कर उस ईश्वर की आज्ञा में वर्त्तें॥१३॥

देवस्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। सविता देवता। पिपीलिकामध्या निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

दे॒वस्य॑ सवि॒तुर्म॒तिमा॑स॒वं वि॒श्वदे॑व्यम्। धि॒या भग॑ मनामहे॥१४॥

दे॒वस्य॑। स॒वि॒तुः। म॒तिम्। आ॒स॒वमित्या॑ऽस॒वम्। वि॒श्वदे॑व्य॒मिति॑ वि॒श्वऽदे॑व्यम्। धि॒या। भग॑म्। म॒ना॒म॒हे॒॥१४॥

पदार्थः-**(देवस्य)** सकलसुखप्रदातुः **(सवितुः)** सकलैश्वर्य्यप्रदातुः **(मतिम्)** प्रज्ञाम् **(आसवम्)** सकलैश्वर्य्यहेतुम् **(विश्वदेव्यम्)** विश्वेभ्यो देवेभ्यो हितम् **(धिया)** प्रज्ञया **(भगम्)** उत्तमैश्वर्य्यम् **(मनामहे)** याचामहे॥१४॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा वयं सवितुर्देवस्य परमात्मनः सकाशान्मतिमासवं च प्राप्य तया धिया सर्वं विश्वदेव्यं भगं मनामहे तथा यूयमपि कुरुत॥१४॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। सर्वैर्मनुष्यैः परमेश्वरोपासनया प्रज्ञां प्राप्यैतया पूर्णमैश्वर्य्यं विधाय सर्वप्राणिहितं संसाधनीयम्॥१४॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे हम लोग **(सवितुः)** सकल ऐश्वर्य्य और **(देवस्य)** समस्त सुख देनेहारे परमात्मा के निकट से **(मतिम्)** बुद्धि और **(आसवम्)** समस्त ऐश्वर्य्य के हेतु को प्राप्त होकर उस **(धिया)** बुद्धि से समस्त **(विश्वदेव्यम्)** सब विद्वानों के लिये हित देनेहारे **(भगम्)** उत्तम ऐश्वर्य्य को **(मनामहे)** मांगते हैं, वैसे तुम लोग भी मांगो॥१४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। सब मनुष्यों को चाहिये कि परमेश्वर की उपासना से उत्तम बुद्धि को पाके उससे पूर्ण ऐश्वर्य का विधान कर सब प्राणियों के हित को सम्यक् सिद्ध करें॥१४॥

अग्निमित्यस्य सुतम्भर ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अथ यज्ञकर्मविषयमाह॥

अब यज्ञकर्मविषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अ॒ग्निः स्तोमे॑न बोधय समिधा॒नोऽअम॑र्त्यम्।

ह॒व्या दे॒वेषु॑ नो दधत्॥१५॥

अ॒ग्निम्। स्तोमे॑न। बो॒ध॒य॒। स॒मि॒धा॒न इति॑ सम्ऽइ॒धा॒नः। अम॑र्त्यम्। ह॒व्या। दे॒वेषु॑। न॒ः। द॒ध॒त्॥१५॥

पदार्थः-(**अग्निम्**) पावकम् (**स्तोमेन**) इन्धनसमूहेन (**बोधय**) (**समिधानः**) प्रदीप्यमानः (**अमर्त्यम्**) कारणरूपेण मरणधर्मरहितम् (**हव्या**) आदातुं दातुमर्हाणि (**देवेषु**) दिव्येषु वाय्वादिषु (**नः**) अस्मभ्यम् (**दधत्**) दधाति॥१५॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यः समिधानोऽग्निर्देवेषु हव्या नो दधत् तममर्त्यमग्निं स्तोमेन बोधय प्रदीपय॥१५॥

भावार्थः-यद्यग्नौ समिधः प्रक्षिप्य सुगन्ध्यादिद्रव्यं जुहुयुस्तर्ह्ययं तद्वाय्वादिषु विस्तार्य सर्वान् प्राणिनः सुखयति॥१५॥

पदार्थः-हे विद्वन्! जो (**समिधानः**) भलीभांति दीपता हुआ अग्नि (**देवेषु**) दिव्य वायु आदि पदार्थों में (**हव्या**) लेने-देने योग्य पदार्थों को (**नः**) हमारे लिये (**दधत्**) धारण करता है, उस (**अमर्त्यम्**) कारणरूप अर्थात् परमाणुभाव से विनाश होने के धर्म से रहित (**अग्निम्**) आग को (**स्तोमेन**) इन्धनसमूह से (**बोधय**) चिताओ अर्थात् अच्छे प्रकार जलाओ॥१५॥

भावार्थः-यदि अग्नि में समिधा छोड़ दिव्य-दिव्य सुगन्धित पदार्थ को होमें तो यह अग्नि उस पदार्थ को वायु आदि में फैला के सब प्राणियों को सुखी करता है॥१५॥

स हव्यवाडित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनरग्निः कीदृशोऽस्तीत्याह॥

फिर अग्नि कैसा है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

स ह॑व्य॒वाडम॑र्त्यऽउ॒शिग्दू॒तश्चनो॑हितः।

अ॒ग्निर्धि॒या समृ॑ण्वति॥१६॥

सः। हुव्युवाडिति हव्युऽवाट्। अमर्त्यः। उुशिक्। दूुतः। चनोहित इति चनःऽहितः। अुग्निः। धिुया। सम्। ऋुण्वुति॥ १६॥

पदार्थः-(**सः**) (**हव्यवाट्**) यो हव्यं वहति देशान्तरं प्रापयति सः (**अमर्त्यः**) मृत्युधर्मरहितः (**उशिक्**) कान्तिमान् (**दूतः**) दूत इव वर्त्तमानः (**चनोहितः**) यश्चनांसि अन्नानि हिनोति प्रापयति सः (**अग्निः**) पावकः (**धिया**) कर्मणा (**सम्**) (**ऋण्वति**) प्राप्नोति॥ १६॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! योऽमर्त्यो हव्यवाडुशिग्दूतश्चनोहितोऽग्निरस्ति स धिया समृण्वति॥ १६॥

भावार्थः-यथा कार्यार्थं प्रेषितो दूतः कार्यसाधको भवति तथा सम्प्रयोजितोऽग्निः सुखकार्य्यसिद्धिकरो भवति॥ १६॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो (**अमर्त्यः**) मृत्युधर्म से रहित (**हव्यवाट्**) होमे हुए पदार्थ को एक देश से दूसरे देश में पहुंचाता (**उशिक्**) प्रकाशमान (**दूतः**) दूत के समान वर्त्तमान (**चनोहितः**) और जो अन्नों की प्राप्ति कराने वाला (**अग्निः**) अग्नि है, (**सः**) वह (**धिया**) कर्म अर्थात् उस के उपयोगी शिल्प आदि काम से (**सम्, ऋण्वति**) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है॥ १६॥

भावार्थः-जैसे काम के लिये भेजा हुआ दूत करने योग्य काम को सिद्ध करने हारा होता है, वैसे अच्छे प्रकार युक्त किया हुआ अग्नि सुखसम्बन्धी कार्य्य को सिद्ध करने हारा होता है॥ १६॥

अग्निं दूतमित्यस्य विश्वरूप ऋषिः। अग्निर्देवता। गायत्री छन्दः। षड्ज. स्वरः॥

अथाग्निगुणा उच्यन्ते॥

अब अग्नि के गुणों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अुग्निं दूुतं पुुरो दधे हव्युवाहुमुपब्रुवे।

देुवाँ२ऽआ सादयादिुह॥ १७॥

अुग्निम्। दूुतम्। पुुरः। दुधे। हुव्युवाहुमिति हव्युऽवाहम्। उप। ब्रुुवे। देुवान्। आ। साुदुयात्। इुह॥ १७॥

पदार्थः-(**अग्निम्**) वह्निम् (**दूतम्**) दूतवत्कार्यसाधकम् (**पुरः**) अग्रतः (**दधे**) धरामि (**हव्यवाहम्**) यो हव्यानि अत्तुमर्हाणि वहति प्रापयति तम् (**उप**) (**ब्रुवे**) उपदिशामि (**देवान्**) दिव्यान् भोगान् (**आ**) समन्तात् (**सादयात्**) सादयेत् प्रापयेत् (**इह**) अस्मिन् संसारे॥ १७॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! य इह देवानासादयात् तं हव्यवाहं दूतमग्निं पुरो दधे, युष्मान् प्रत्युपब्रुवे यूयमप्येवं कुरुतेति॥ १७॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यथाऽग्निर्दिव्यसुखप्रदोऽस्ति तथा वाय्वादयोऽपि वर्त्तन्त इति वेद्यम्॥ १७॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो (**इह**) इस संसार में (**देवान्**) दिव्य भोगों को (**आ, सादयात्**) प्राप्त करावे, उस (**हव्यवाहम्**) भोजन करने योग्य पदार्थों की प्राप्ति कराने और (**दूतम्**) दूत के समान

कार्य्यसिद्धि करनेहारे **(अग्निम्)** अग्नि को **(पुरः)** आगे **(दधे)** धरता हूँ और तुम लोगों के प्रति **(उप, ब्रुवे)** उपदेश करता हूँ कि तुम लोग भी ऐसे ही किया करो॥१७॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जैसे अग्नि दिव्य सुखों को देने वाला है, वैसे पवन आदि पदार्थ भी सुख देने में प्रवर्त्तमान हैं, यह जानना चाहिये॥१७॥

अजीजन इत्यस्यारुणत्रसदस्यू ऋषी। पवमानो देवता। पिपीलिकामध्या विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनः सूर्यरूपोऽग्निः कीदृश इत्याह॥

फिर सूर्यरूप अग्नि कैसा है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अजीजनो हि पवमान सूर्य्यं विधारे शक्मना पयः।
गोजीरया रꣳहमाणः पुरन्ध्या॥१८॥

अजीजनः। हि। पवमान। सूर्यम्। विऽधार इति विऽधारे। शक्मना। पयः। गोजीरयेति गोऽजीरया। रꣳहमाणः। पुरन्ध्येति पुरम्ऽध्या॥१८॥

पदार्थः-**(अजीजनः)** जनयति **(हि)** खलु **(पवमान)** पवित्रकारक **(सूर्यम्)** सवितृमण्डलम् **(विधारे)** धारयामि **(शक्मना)** कर्मणा। **शक्मेति कर्मनाम॥** (निघं०२।१) **(पयः)** उदकम् **(गोजीरया)** गवां जीरया जीवनक्रियया **(रंहमाणः)** गच्छन् **(पुरन्ध्या)** यया पुरं दधाति तया॥१८॥

अन्वयः-हे पवमानाग्निवत्पवत्र जन! योऽग्निः पुरन्ध्या रंहमाणः सूर्यमजीजनस्तं शक्मना गोजीरया पयश्चाऽहं विधारे हि॥१८॥

भावार्थः-यदि विद्युत्सूर्यस्य कारणं न स्यात् तर्हि सूर्योत्पत्तिः कथं स्याद्? यदि सूर्यो न स्यात् तर्हि भूगोलधृतिर्वृष्ट्या गवादिपशुजीवनं च कथं स्यात्?॥१८॥

पदार्थः-हे **(पवमान)** पवित्र करने हारे अग्नि के समान पवित्र जन! तू अग्नि **(पुरन्ध्या)** जिस क्रिया से नगरी को धारण करता, उससे **(रंहमाणः)** जाता हुआ **(सूर्यम्)** सूर्य को **(अजीजनः)** प्रगट करता, उसको और **(शक्मना)** कर्म वा **(गोजीरया)** गौ आदि पशुओं की जीवनक्रिया से **(पयः)** जल को मैं **(विधारे)** विशेष करके धारण करता **(हि)** ही हूँ॥१८॥

भावार्थः-जो बिजुली सूर्य्य का कारण न होती तो सूर्य की उत्पत्ति कैसे होती? जो सूर्य न हो तो भूगोल का धारण और वर्षा से गो आदि पशुओं का जीवन कैसे हो?॥१८॥

विभूरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। अग्निर्देवता। विकृतिश्छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

विभूर्मात्रा प्रभूः पित्राश्वोऽसि हयोऽस्यत्योऽसि मयोऽस्यर्वासि सप्तिरसि वाज्यसि वृषासि नृमणाऽअसि। ययुर्नामाऽसि शिशुर्नामास्यादित्यानां पत्वान्विहि देवाऽआशापालाऽएतं देवेभ्योऽश्वं मेधाय प्रोक्षितꣳ रक्षतेह रन्तिरिह रमतामिह धृतिरिह स्वधृतिः स्वाहा॥ १९॥

विभूरिति विऽभूः। मात्रा। प्रभूरिति प्रऽभूः। पित्रा। अश्वः। असि। हयः। असि। अत्यः। असि। मयः। असि। अर्वा। असि। सप्तिः। असि। वाजी। असि। वृषा। असि। नृमणाः। नृमना इति नृऽमनाः। असि। ययुः। नाम। असि। शिशुः। नाम। असि। आदित्यानाम्। पत्वा। अनु। इहि। देवाः। आशापाला इत्याशाऽपालाः। एतम्। देवेभ्यः। अश्वम्। मेधाय। प्रोक्षितमिति प्रऽउक्षितम्। रक्षत। इह। रन्तिः। इह। रमताम्। इह। धृतिः। इह। स्वधृतिरिति स्वःऽधृतिः। स्वाहा॥ १९॥

पदार्थः-(**विभूः**) व्यापकः (**मात्रा**) जननीवद् वर्त्तमानया पृथिव्या (**प्रभूः**) समर्थः (**पित्रा**) वायुना (**अश्वः**) योऽश्नुते व्याप्नोति मार्गान् सः (**असि**) अस्ति। अत्र सर्वत्र व्यत्ययः (**हयः**) हय इव शीघ्रगामी (**असि**) (**अत्यः**) योऽतति सततं गच्छति सः (**असि**) (**मयः**) सुखकारी (**असि**) (**अर्वा**) यः सर्वानृच्छति सः (**असि**) (**सप्तिः**) मूर्त्तद्रव्यसम्बन्धी (**असि**) (**वाजी**) वेगवान् (**असि**) (**वृषा**) वृष्टिकर्त्ता (**असि**) (**नृमणाः**) यो नृषु नेतृषु पदार्थेषु मन इव सद्योगामी (**असि**) (**ययुः**) यो याति सः (**नाम**) अभ्यसनीयः (**असि**) (**शिशुः**) यः श्यति तनूकरोति सः (**नाम**) वाग्। **नामेति वाङ्नामसु पठितम्॥** (निघं०१।११) (**असि**) (**आदित्यानाम्**) मासानाम् (**पत्वा**) योऽधः पतति सः (**अनु**) (**इहि**) एति (**देवाः**) विद्वांसः (**आशापालाः**) य आशा दिशः पालयन्ति (**एतम्**) वह्निम् (**देवेभ्यः**) दिव्यभोगेभ्यः (**अश्वम्**) व्याप्तिशीलम् (**मेधाय**) संगमाय बुद्धिप्रापणाय दुष्टहिंसनाय वा (**प्रोक्षितम्**) जलेन सिक्तम् (**रक्षत**) (**इह**) (**रन्तिः**) रमणम् (**इह**) (**रमताम्**) क्रीडतु (**इह**) (**धृतिः**) धैर्य्यम् (**इह**) (**स्वधृतिः**) स्वेषां धारणम् (**स्वाहा**) सत्यया क्रियया॥ १९॥

अन्वयः-हे आशापाला देवाः! युयं यो मात्रा विभूः पित्रा प्रभूरश्वोऽसि हयोऽस्यत्योऽसि मयोऽस्यर्वाऽसि सप्तिरसि वाज्यसि वृषाऽसि नृमणा असि ययुर्नामाऽसि शिशुर्नामस्यादित्यानां पत्वाऽन्विहि एतमश्वं स्वाहा देवेभ्यो मेधाय प्रोक्षितं रक्षत येनेह रन्तिरिह रमतामिह धृतिरिह स्वधृतिः स्यात्॥ १९॥।

भावार्थः-ये मनुष्याः पृथिव्यादिषु व्यापकं सर्वेभ्यो वेगवद्भ्योऽतिशयेन वेगवन्तं वह्निं गुणकर्मस्वभावतो विजानन्ति, ते सुखेनेह क्रीडन्ति॥ १९॥

पदार्थः-हे (**आशापालाः**) दिशाओं के पालने वाले (**देवाः**) विद्वानो! तुम जो लोग (**मात्रा**) माता के समान पृथिवी से (**विभूः**) व्यापक (**पित्रा**) पिता रूप पवन से (**प्रभूः**) समर्थ और (**अश्वः**) मार्गों को व्याप्त होने वाला (**असि**) है, (**हयः**) घोड़े के समान शीघ्र चलने वाला (**असि**) है, (**अत्यः**) जो निरन्तर जाने वाला (**असि**) है, (**मयः**) सुख का करने वाला (**असि**) है, (**अर्वा**) जो सब को प्राप्त होने हारा

(असि) है, **(सप्तिः)** मूर्तिमान् पदार्थों का सम्बन्ध करने वाला **(असि)** है, **(वाजी)** वेगवान् **(असि)** है, **(वृषा)** वर्षा का करने वाला **(असि)** है, **(नृमणाः)** सब प्रकार के व्यवहारों को प्राप्त कराने हारे पदार्थों में मन के समान शीघ्र जाने वाला **(असि)** है, **(ययुः)** जो प्राप्ति कराता वा जाता ऐसे **(नाम)** नाम वाला **(असि)** है, जो **(शिशुः)** व्यवहार के योग्य विषयों को सूक्ष्म करती, ऐसी **(नाम)** उत्तम वाणी **(असि)** है, जो **(आदित्यानाम्)** महीनों के **(पत्वा)** नीचे गिरता **(अन्विहि)** अन्वित अर्थात् मिलता है, **(एतम्)** इस **(अश्वम्)** व्याप्त होने वाले अग्नि को **(स्वाहा)** सत्यक्रिया से **(देवेभ्यः)** दिव्य भोगों के लिये तथा **(मेधाय)** अच्छे गुणों के मिलाने, बुद्धि की प्राप्ति करने वा दुष्टों को मारने के लिये **(प्रोक्षितम्)** जल से सींचा हुआ **(रक्षत)** रक्खो, जिससे **(इह)** इस संसार में **(रन्तिः)** रमण अर्थात् उत्तम सुख में रमना हो **(इह)** यहां **(रमताम्)** क्रीड़ा करें तथा **(इह)** यहां **(धृतिः)** सामान्य धारण और **(इह)** यहां **(स्वधृतिः)** अपने पदार्थों की धारणा हो॥१९॥

भावार्थः-जो मनुष्य पृथिवी आदि लोकों में व्याप्त और समस्त वेग वाले पदार्थों में अतीव वेगवान् अग्नि को गुण, कर्म और स्वभाव से जानते हैं, वे इस संसार में सुख से रमते हैं॥१९॥

कायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। प्रजापत्यादयो देवताः। आद्यस्य भुरिग्धृतिश्छन्दः। ऋषभः स्वरः।
सरस्वत्यै बृहत्या इत्युत्तरस्य अतिधृतिश्छन्दः। षड्जः स्वरः।

अथ कस्मै प्रयोजनाय होमः कर्त्तव्य इत्याह॥

अब किस प्रयोजन के लिये होम करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

काय॒ स्वाहा॒ कस्मै॒ स्वाहा॑ कत॒मस्मै॒ स्वाहा॒ स्वाहा॒धिमाधी॑ताय॒ स्वाहा॒ मनः॑ प्र॒जाप॑तये॒ स्वाहा॑ चि॒त्तं वि॒ज्ञा॑ता॒यादि॑त्यै॒ स्वाहादि॑त्यै म॒ह्यै स्वाहादि॑त्यै सुमृ॒डी॒का॒यै॒ स्वाहा॒ सर॑स्वत्यै॒ स्वाहा॒ सर॑स्वत्यै पाव॒कायै॒ स्वाहा॒ सर॑स्वत्यै बृ॒ह॒त्यै स्वाहा॑ पू॒ष्णे स्वाहा॑ पू॒ष्णे प्र॑प॒थ्या॒य॒ स्वाहा॑ पू॒ष्णे न॒रन्धि॑षाय॒ स्वाहा॒ त्वष्ट्रे॒ स्वाहा॒ त्वष्ट्रे॑ तु॒रीपा॑य॒ स्वाहा॒ त्वष्ट्रे॑ पु॒रु॒रूपा॑य॒ स्वाहा॒ विष्ण॑वे॒ स्वाहा॒ विष्ण॑वे निभू॒य॒पाय॒ स्वाहा॒ विष्ण॑वे शिपिवि॒ष्टाय॒ स्वाहा॑॥२०॥

काय॑। स्वाहा॑। कस्मै॑। स्वाहा॑। क॒त॒मस्मै॑। स्वाहा॑। स्वाहा॑। आ॒धिमित्या॒ऽधिम्। आधी॑ता॒येत्या॒ऽधी॑ताय। स्वाहा॑। मनः॑। प्र॒जाप॑तय॒ इति॑ प्र॒जाऽप॑तये। स्वाहा॑। चि॒त्तम्। वि॒ज्ञा॑ता॒येति॑ वि॒ऽज्ञा॑ताय। अदि॑त्यै। स्वाहा॑। अदि॑त्यै। म॒ह्यै। स्वाहा॑। अदि॑त्यै। सु॒मृ॒डी॒काया॒ इति॑ सु॒ऽमृ॒डी॒कायै॑। स्वाहा॑। सर॑स्वत्यै। स्वाहा॑। सर॑स्वत्यै। पा॒व॒कायै॑। स्वाहा॑। सर॑स्वत्यै। बृ॒ह॒त्यै। स्वाहा॑। पू॒ष्णे। स्वाहा॑। पू॒ष्णे। प्र॒प॒थ्या॒येति॑ प्र॒ऽप॒थ्या॒य। स्वाहा॑। पू॒ष्णे। न॒रन्धि॑षाय। स्वाहा॑। त्वष्ट्रे॑। स्वाहा॒। त्वष्ट्रे॑। तु॒रीपा॑य। स्वाहा॑। त्वष्ट्रे॑। पु॒रु॒रूपा॒येति॑ पु॒रु॒ऽरूपा॑य स्वाहा॑। विष्ण॑वे। स्वाहा॑। विष्ण॑वे। नि॒भू॒य॒पा॒येति॑ नि॒भू॒य॒ऽपाय॑। स्वाहा॑। विष्ण॑वे। शि॒पि॒वि॒ष्टा॒येति॑ शि॒पि॒ऽवि॒ष्टाय॑। स्वाहा॑॥२०॥

पदार्थ:-(**काय**) सुखसाधकाय विदुषे (**स्वाहा**) सत्य क्रिया (**कस्मै**) सुखस्वरूपाय (**स्वाहा**) (**कतस्मै**) बहूनां मध्ये वर्त्तमानाय (**स्वाहा**) (**स्वाहा**) (**आधिम्**) य: समन्ताद् दधाति तम् (**आधीताय**) समन्ताद् विद्यावृद्धये (**स्वाहा**) (**मन:**) (**प्रजापतये**) (**स्वाहा**) सत्या क्रिया (**चित्तम्**) स्मृतिसाधकम् (**विज्ञाताय**) (**अदित्यै**) पृथिव्यै। **अदितिरिति पृथिवीनामसु पठितम्॥** (निघ०१।१) (**स्वाहा**) (**अदित्यै**) नाशरहितायै (**मह्यै**) महत्यै वाचे (**स्वाहा**) (**अदित्यै**) जनन्यै (**सुमृडीकायै**) सुष्ठु सुखकारिकायै (**स्वाहा**) (**सरस्वत्यै**) नद्यै (**स्वाहा**) (**सरस्वत्यै**) विद्यायुक्तायै वाचे (**पावकायै**) पवित्रकर्त्र्यै (**स्वाहा**) (**सरस्वत्यै**) विदुषां वाचे (**बृहत्यै**) महत्यै (**स्वाहा**) (**पूष्णे**) पुष्टिकर्त्रे (**स्वाहा**) (**पूष्णे**) पुष्टाय (**प्रपथ्याय**) प्रकर्षेण पथ्यकरणाय (**स्वाहा**) (**पूष्णे**) पोषकाय (**नरन्धिषाय**) यो नरान् दिधेष्ट्युपदिशति तस्मै (**स्वाहा**) (**त्वष्ट्रे**) प्रकाशाय। **त्विष इतोऽत्त्वम्॥** (उणा०२।९५) अनेनायं सिद्ध: (**स्वाहा**) (**त्वष्ट्रे**) विद्याप्रकाशकाय (**तुरीपाय**) नौकानां पालकाय (**स्वाहा**) (**त्वष्ट्रे**) प्रकाशकाय (**पुरुरूपाय**) बहुरूपाय (**स्वाहा**) (**विष्णवे**) व्यापकाय (**स्वाहा**) (**विष्णवे**) (**निभूयपाय**) यो नितरां रक्षितो भूत्वाऽन्यान् पालयति तस्मै (**स्वाहा**) (**विष्णवे**) (**शिपिविष्टाय**) शिपिष्वाक्रोशत्सु प्राणिषु व्याप्त्या प्रविष्टाय (**स्वाहा**)॥२०॥

अन्वय:-यैर्मनुष्यै: काय स्वाहा कस्मै स्वाहा कतस्मै स्वाहाऽऽधिं प्राप्य स्वाहाऽऽधीताय स्वाहा प्रजापतये मन: स्वाहा विज्ञाताय चित्तमदित्यै स्वाहा मह्याऽअदित्यै स्वाहा सुमृडीकाया अदित्यै स्वाहा सरस्वत्यै स्वाहा पावकायै सरस्वत्यै स्वाहा बृहत्यै सरस्वत्यै स्वाहा पूष्णे स्वाहा प्रपथ्याय पूष्णे स्वाहा नरन्धिषाय पूष्णे स्वाहा त्वष्ट्रे स्वाहा तुरीपाय त्वष्ट्रे स्वाहा पुरुरूपाय त्वष्ट्रे स्वाहा विष्णवे स्वाहा निभूयपाय विष्णवे स्वाहा शिपिविष्टाय विष्णवे स्वाहा कृतास्ते कथं न सुखिन: स्यु:॥२०॥

भावार्थ:-ये विद्वत्सुखाऽध्ययनान्त:करणविज्ञानवाग्वाय्वादिशुद्धये यज्ञक्रिया: कुर्वन्ति, ते सुखिनो भवन्ति॥२०॥

पदार्थ:-जिन मनुष्यों ने (**काय**) सुख साधने वाले के लिये (**स्वाहा**) सत्यक्रिया (**कस्मै**) सुखस्वरूप के लिये (**स्वाहा**) सत्यक्रिया (**कतमस्मै**) बहुतों में जो वर्त्तमान उस के लिये (**स्वाहा**) सत्यक्रिया (**आधिम्**) जो अच्छे प्रकार पदार्थों को धारण करता, उसको प्राप्त होकर (**स्वाहा**) सत्यक्रिया (**आधीताय**) सब ओर से विद्यावृद्धि के लिये (**स्वाहा**) सत्यक्रिया (**प्रजापतये**) प्रजाजनों की पालना करनेहारे के लिये (**मन:**) मन की (**स्वाहा**) सत्यक्रिया (**विज्ञाताय**) विशेष जाने हुए के लिये (**चित्तम्**) स्मृति सिद्ध कराने अर्थात् चेत दिलाने हारा चैतन्य मन (**अदित्यै**) पृथिवी के लिये (**स्वाहा**) सत्यक्रिया (**मह्यै**) बड़ी (**अदित्यै**) विनाशरहित वाणी के लिये (**स्वाहा**) सत्यक्रिया (**सुमृडीकायै**) अच्छा सुख करनेहारी (**अदित्यै**) माता के लिये (**स्वाहा**) सत्यक्रिया (**सरस्वत्यै**) नदी के लिये (**स्वाहा**) सत्यक्रिया (**पावकायै**) पवित्र करने वाली (**सरस्वत्यै**) विद्यायुक्त वाणी के लिये (**स्वाहा**) सत्यक्रिया (**बृहत्यै**) बड़ी (**सरस्वत्यै**) विद्वानों की वाणी के लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया (**पूष्णे**) पुष्टि करने वाले के लिये (**स्वाहा**)

उत्तम क्रिया **(प्रपथ्याय)** उत्तमता से आराम के योग्य भोजन करने तथा **(पूष्णे)** पुष्टि के लिये **(स्वाहा)** सत्यक्रिया **(नरन्धिषाय)** जो मनुष्यों को उपदेश देता है, उस **(पूष्णे)** पुष्टि करनेहारे के लिये **(स्वाहा)** सत्यक्रिया **(त्वष्ट्रे)** और विद्या-प्रकाश करनेहारे के लिये **(स्वाहा)** सत्यक्रिया **(तुरीपाय)** नौकाओं के पालने **(त्वष्ट्रे)** और विद्या-प्रकाश करनेहारे के लिये **(स्वाहा)** सत्यक्रिया **(पुरुरूपाय)** बहुत रूप और **(त्वष्ट्रे)** प्रकाश करने वाले के लिये **(स्वाहा)** सत्यक्रिया **(विष्णवे)** व्याप्त होने वाले के लिये **(स्वाहा)** सत्यक्रिया **(निभूयपाय)** निरन्तर आप रक्षित हो औरों की पालना करनेहारे **(विष्णवे)** सर्वव्यापक के लिये **(स्वाहा)** सत्यक्रिया तथा **(शिपिविष्टाय)** वचन कहते हुए चैतन्य प्राणियों में व्याप्ति से प्रवेश हुए **(विष्णवे)** व्यापक ईश्वर के लिये **(स्वाहा)** सत्यक्रिया की, वे कैसे न सुखी हों॥२०॥

भावार्थः-जो विद्वानों के सुख, पढ़ने, अन्तःकरण के विशेष ज्ञान तथा वाणी और पवन आदि पदार्थों की शुद्धि के लिये यज्ञक्रियाओं को करते हैं, वे सुखी होते हैं॥२०॥

विश्वो देवस्येत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। विद्वान् देवता। आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनर्मनुष्यैः किं कर्त्तव्यमित्याह॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

विश्वो॑ दे॒वस्य॑ ने॒तुर्मर्त्तो॑ वुरीत स॒ख्यम्।

विश्वो॑ रा॒यऽइ॑षुध्यति द्यु॒म्नं वृ॑णीत पु॒ष्यसे॒ स्वाहा॑॥२१॥

विश्वः॑। दे॒वस्य॑। ने॒तुः। मर्त्तः॑। वु॒री॒त॒। स॒ख्यम्। विश्वः॑। रा॒ये। इ॒षु॒ध्य॒ति॒। द्यु॒म्नम्। वृ॒णी॒त॒। पु॒ष्यसे॑। स्वाहा॑॥२१॥

पदार्थः-**(विश्वः)** सर्वः **(देवस्य)** विदुषः **(नेतुः)** नायकस्य **(मर्त्तः)** मनुष्यः **(वुरीत)** वृणुयात्। अत्र व्यत्ययेनात्मनेपदं **बहुलं छन्दसि** [अ०२.४.७३] इति शपो लुक्, लिङ्प्रयोगोऽयम् **(सख्यम्)** मित्रत्वम् **(विश्वः)** **(राये)** धनाय **(इषुध्यति)** याचते शरान् धरति वा **(द्युम्नम्)** धनं यशो वा **(वृणीत)** **(पुष्यसे)** पुष्टये **(स्वाहा)**॥२१॥

अन्वयः-यथा विश्वो मर्तो नेतुर्देवस्य सख्यं वुरीत यथा वा विश्वो मर्त्यो राय इषुध्यति तथा स्वाहा पुष्यसे द्युम्नं वृणीत॥२१॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। सर्वे मनुष्या विद्वद्भिः सह सुहृदो भूत्वा विद्यां यशश्च गृहीत्वा श्रीमन्तो भूत्वा सुपथ्येन पुष्टाः सन्तु॥२१॥

पदार्थः-जैसे **(विश्वः)** समस्त **(मर्त्तः)** मनुष्य **(नेतुः)** नायक अर्थात् सब व्यवहारों की प्राप्ति कराने हारे **(देवस्य)** विद्वान् की **(सख्यम्)** मित्रता को **(वुरीत)** स्वीकार करें वा जैसे **(विश्वः)** समस्त मनुष्य **(राये)** धन के लिये **(इषुध्यति)** याचना करता अर्थात् मंगनी मांगता वा बाणों को अपने-अपने धनुष् पर

धारता है, वैसे **(स्वाहा)** सत्यक्रिया वा सत्यवाणी से **(पुष्यसे)** पुष्टि के लिये **(द्युम्नम्)** धन और यश को **(वृणीत)** स्वीकार करे॥२१॥

भावार्थः- इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। सब मनुष्य विद्वानों के साथ मित्र होकर विद्या और यश का ग्रहण कर धनवान् और कान्तिमान् होकर उत्तम योग्य आहार वा अच्छे मार्ग से पुष्ट हों॥२१॥

आ ब्रह्मन्नित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। लिङ्गोक्ता देवताः। स्वराडुत्कृतिश्छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनर्मनुष्यैः किमेष्टव्यमित्याह॥

फिर मनुष्यों को किस की इच्छा करनी चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूरऽइषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो नऽओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम्॥२२॥

आ। ब्रह्मन्। ब्राह्मणः। ब्रह्मवर्चसीति ब्रह्मऽवर्चसी। जायताम्। आ। राष्ट्रे। राजन्यः। शूरः। इषव्यः। अतिव्याधीत्यतिऽव्याधी। महारथ इति महाऽरथः। जायताम्। दोग्ध्री। धेनुः। वोढा। अनड्वान्। आशुः। सप्तिः। पुरन्धिरिति पुरम्ऽधिः। योषा। जिष्णुः। रथेष्ठाः। रथेस्था इति रथेऽस्थाः। सभेयः। युवा। आ। अस्य। यजमानस्य। वीरः। जायताम्। निकामे-निकाम इति निकामेऽनिकामे। नः। पर्जन्यः। वर्षतु। फलवत्य इति फलऽवत्यः। नः। ओषधयः। पच्यन्ताम्। योगक्षेम इति योगऽक्षेमः। नः। कल्पताम्॥२२॥

पदार्थः-(आ) समन्तात् **(ब्रह्मन्)** विद्यादिना सर्वेभ्यो महान् परमात्मन् **(ब्राह्मणः)** वेदेश्वरवित् **(ब्रह्मवर्चसी)** वेदविद्याप्रदीप्तः **(जायताम्)** उत्पद्यताम् **(आ)** **(राष्ट्रे)** राज्ये **(राजन्यः)** राजपुत्रः **(शूरः)** निर्भयः **(इषव्यः)** इषुषु साधु **(अतिव्याधी)** अतिशयेन व्यद्धुं शत्रूँस्ताडयितुं शीलं यस्य सः **(महारथः)** महान्तो रथा वीरा वा यस्य सः **(जायताम्)** **(दोग्ध्री)** प्रपूरिका **(धेनुः)** गौः **(वोढा)** वाहकः **(अनड्वान्)** वृषभः **(आशुः)** शीघ्रगामी **(सप्तिः)** अश्वः **(पुरन्धिः)** या पुरून् बहून् दधाति सा **(योषा)** **(जिष्णुः)** जयशीलः **(रथेष्ठाः)** यो रथे तिष्ठति सः **(सभेयः)** सभायां साधुः **(युवा)** प्राप्तयौवनः **(आ)** **(अस्य)** **(यजमानस्य)** यो यजते देवान् विदुषः सत्करोति संगच्छते सुखानि ददाति वा तस्य **(वीरः)** विज्ञानवान् शत्रूणां प्रक्षेप्ता **(जायताम्)** **(निकामे निकामे)** निश्चिते प्रत्येककामनायाम् **(नः)** अस्माकम् **(पर्जन्यः)** मेघः **(वर्षतु)** **(फलवत्यः)** बहूत्तमफलाः **(नः)** अस्मभ्यम् **(ओषधयः)** यवादयः **(पच्यन्ताम्)** परिपक्वा भवन्तु **(योगक्षेमः)** अप्राप्तस्य प्राप्तिलक्षणो योगस्तस्य रक्षणं क्षेमः **(नः)** अस्मभ्यम् **(कल्पताम्)** समर्थो भवतु॥२२॥

अन्वयः-हे ब्रह्मन्! यथा नो राष्ट्रे ब्रह्मवर्चसी ब्राह्मण आजायतामिषव्योऽतिव्याधी महारथः शूरो राजन्य आजायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढाऽनड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा रथेष्ठा जिष्णुः सभेयो युवाऽऽजायतामस्य यजमानस्य राष्ट्रे वीरो जायतां नो निकामे निकामे पर्जन्यो वर्षत्वोषधयः फलवत्यो नः पच्यन्तां नो योगक्षेमः कल्पतां तथा विधेहि॥२२॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। विद्वद्भिरीश्वरप्रार्थनया सहैवमनुष्ठेयं यतः पूर्णविद्याः शूरवीरा मनुष्याः स्त्रियश्च सुखप्रदाः पशवः सभ्या मनुष्या इष्टा वृष्टिर्मधुरफलयुक्ता अन्नौषधयो भवन्तु कामश्च पूर्णः स्यादिति॥२२॥

पदार्थः-हे **(ब्रह्मन्)** विद्यादिगुणों करके सब से बड़े परमेश्वर! जैसे हमारे **(राष्ट्रे)** राज्य में **(ब्रह्मवर्चसी)** वेदविद्या से प्रकाश को प्राप्त **(ब्राह्मणः)** वेद और ईश्वर को अच्छा जानने वाला ब्राह्मण **(आ, जायताम्)** सब प्रकार से उत्पन्न हो **(इषव्यः)** बाण चलाने में उत्तम गुणवान् **(अतिव्याधी)** अतीव शत्रुओं को व्यधने अर्थात् ताड़ना देने का स्वभाव रखने वाला **(महारथः)** कि जिसके बड़े-बड़े रथ और अत्यन्त बली वीर हैं, ऐसा **(शूरः)** निर्भय **(राजन्यः)** राजपुत्र **(आ, जायताम्)** सब प्रकार से उत्पन्न हो **(दोग्ध्री)** कामना वा दूध से पूर्ण करने वाली **(धेनुः)** वाणी वा गौ **(वोढा)** भार ले जाने में समर्थ **(अनड्वान्)** बड़ा बलवान् बैल **(आशुः)** शीघ्र चलने हारा **(सप्तिः)** घोड़ा **(पुरन्धिः)** जो बहुत व्यवहारों को धारण करती है, वह **(योषा)** स्त्री **(रथेष्ठाः)** तथा रथ पर स्थिर होने और **(जिष्णुः)** शत्रुओं को जीतने वाला **(सभेयः)** सभा में उत्तम सभ्य **(युवा)** जवान पुरुष **(आ, जायताम्)** उत्पन्न हो **(अस्य, यजमानस्य)** जो यह विद्वानों का सत्कार करता वा सुखों की संगति करता वा सुखों को देता है, इस राजा के राज्य में **(वीरः)** विशेष ज्ञानवान् शत्रुओं को हटाने वाला पुरुष उत्पन्न हो **(नः)** हम लोगों के **(निकामे निकामे)** निश्चययुक्त काम-काम में अर्थात् जिस-जिस काम के लिये प्रयत्न करें, उस-उस काम में **(पर्जन्यः)** मेघ **(वर्षतु)** वर्षे **(ओषधयः)** ओषधि **(फलवत्यः)** बहुत उत्तम फलवाली **(नः)** हमारे लिये **(पच्यन्ताम्)** पकें **(नः)** हमारा **(योगक्षेमः)** अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति कराने वाले योग की रक्षा अर्थात् हमारे निर्वाह के योग्य पदार्थों की प्राप्ति **(कल्पताम्)** समर्थ हो, वैसा विधान करो अर्थात् वैसे व्यवहार को प्रगट कराइये॥२२॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। विद्वानों को ईश्वर की प्रार्थनासहित ऐसा अनुष्ठान करना चाहिये कि जिससे पूर्णविद्या वाले शूरवीर मनुष्य तथा वैसे ही गुणवाली स्त्री, सुख देनेहारे पशु, सभ्य मनुष्य, चाही हुई वर्षा, मीठे फलों से युक्त अन्न और औषधि हों तथा कामना पूर्ण हो॥२२॥

प्राणायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। प्राणादयो देवताः। स्वराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनः किमर्थो होमो विधेय इत्याह॥

फिर किसलिये होम का विधान करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

प्राणाय स्वाहाऽपानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा चक्षुषे स्वाहा श्रोत्राय स्वाहा वाचे स्वाहा मनसे स्वाहा॥ २३॥

प्राणाय। स्वाहा। अपानाय। स्वाहा। व्यानायेति विऽआनाय। स्वाहा। चक्षुषे। स्वाहा। श्रोत्राय। स्वाहा। वाचे। स्वाहा। मनसे। स्वाहा॥ २३॥

पदार्थः-(**प्राणाय**) य आभ्यन्तराद् बहिर्निःसरति तस्मै (**स्वाहा**) योगयुक्ता क्रिया (**अपानाय**) यो बहिर्देशादाभ्यन्तरं गच्छति तस्मै (**स्वाहा**) (**व्यानाय**) यो विविधेष्वङ्गेष्वनिति व्याप्नोति तस्मै (**स्वाहा**) वैद्यकविद्यायुक्ता वाक् (**चक्षुषे**) चष्टे पश्यति येन तस्मै (**स्वाहा**) प्रत्यक्षप्रमाणयुक्ता वाणी (**श्रोत्राय**) शृणोति येन तस्मै (**स्वाहा**) आप्तोपदेशयुक्ता गीः (**वाचे**) वक्ति यया तस्यै (**स्वाहा**) सत्यभाषणादियुक्ता भारती (**मनसे**) मनननिमित्ताय संकल्पविकल्पात्मने (**स्वाहा**) विचारयुक्ता वाणी॥ २३॥

अन्वयः-यैर्मनुष्यैः प्राणाय स्वाहाऽपानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा चक्षुषे स्वाहा श्रोत्राय स्वाहा वाचे स्वाहा मनसे स्वाहा च प्रयुज्यते ते विद्वांसो जायन्ते॥ २३॥

भावार्थः-ये मनुष्या यज्ञेन शोधितानि जलौषधिवाय्वन्नपत्रपुष्पफलरसकंदादीन्यश्नन्ति तेऽरोगा भूत्वा प्रज्ञाबलारोग्यायुष्मन्तो जायन्ते॥ २३॥

पदार्थः-जिन मनुष्यों ने (**प्राणाय**) जो पवन भीतर से बाहर निकलता है, उसके लिये (**स्वाहा**) योगविद्यायुक्त क्रिया (**अपानाय**) जो बाहर से भीतर को जाता है, उस पवन के लिये (**स्वाहा**) वैद्यकविद्यायुक्तक्रिया (**व्यानाय**) जो विविध प्रकार के अङ्गों में व्याप्त होता है, उस पवन के लिये (**स्वाहा**) वैद्यकविद्यायुक्त वाणी (**चक्षुषे**) जिससे प्राणी देखता है, उस नेत्र इन्द्रिय के लिये (**स्वाहा**) प्रत्यक्षप्रमाणयुक्त वाणी (**श्रोत्राय**) जिस से सुनता है, उस कर्णेन्द्रिय के लिये (**स्वाहा**) शास्त्रज्ञ विद्वान् के उपदेशयुक्त वाणी (**वाचे**) जिससे बोलता है, उस वाणी के लिये (**स्वाहा**) सत्यभाषण आदि व्यवहारों से युक्त बोलचाल तथा (**मनसे**) विचार का निमित्त संकल्प और विकल्पवान् मन के लिये (**स्वाहा**) विचार से भरी हुई वाणी प्रयोग की जाती अर्थात् भलीभांति उच्चारण की जाती है, वे विद्वान् होते हैं॥ २३॥

भावार्थः-जो मनुष्य यज्ञ से शुद्ध किये जल, औषधि, पवन, अन्न, पत्र, पुष्प, फल, रस, कन्द अर्थात् अरबी, आलू, कसेरू, रतालू और शकरकन्द आदि पदार्थों का भोजन करते हैं, वे नीरोग होकर बुद्धि, बल, आरोग्यपन और आयुर्दा वाले होते हैं॥ २३॥

प्राच्यै दिश इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। दिशो देवताः। निचृदतिधृतिश्छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनः किमर्थो होमः कर्त्तव्य इत्याह॥

फिर किसलिये होम करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प्राच्यै दि॒शे स्वाहा॒ऽर्वाच्यै॑ दि॒शे स्वाहा॒ दक्षि॑णायै दि॒शे स्वाहा॒ऽर्वाच्यै॑ दि॒शे स्वाहा॑ प्र॒तीच्यै॑ दि॒शे स्वाहा॒ऽर्वाच्यै॑ दि॒शे स्वाहोदी॑च्यै दि॒शे स्वाहा॒ऽर्वाच्यै॑ दि॒शे स्वाहो॒र्ध्वायै॑ दि॒शे स्वाहा॒ऽर्वाच्यै॑ दि॒शे स्वाहाऽवा॑च्यै दि॒शे स्वाहा॒ऽर्वाच्यै॑ दि॒शे स्वाहा॑॥ २४॥

प्राच्यै॑। दि॒शे। स्वाहा॑। अ॒र्वाच्यै॑। दि॒शे। स्वाहा॑। दक्षि॑णायै। दि॒शे। स्वाहा॑। अ॒र्वाच्यै॑। दि॒शे। स्वाहा॑। प्र॒तीच्यै॑। दि॒शे। स्वाहा॑। अ॒र्वाच्यै॑। दि॒शे। स्वाहा॑। उदी॑च्यै। दि॒शे। स्वाहा॑। अ॒र्वाच्यै॑। दि॒शे। स्वाहा॑। ऊ॒र्ध्वायै॑। दि॒शे। स्वाहा॑। अ॒र्वाच्यै॑। दि॒शे। स्वाहा॑। अवा॑च्यै। दि॒शे। स्वाहा॑। अ॒र्वाच्यै॑। दि॒शे। स्वाहा॑॥ २४॥

पदार्थ:-(**प्राच्यै**) या प्राञ्चति प्रथमादित्यसंयोगात् तस्यै (**दिशे**) (**स्वाहा**) ज्योति:शास्त्रविद्यायुक्ता वाक् (**अर्वाच्यै**) यार्वागधोऽञ्चति तस्यै (**दिशे**) (**स्वाहा**) (**दक्षिणायै**) या पूर्वमुखस्य पुरुषस्य दक्षिणबाहुसन्निधौ वर्त्तते तस्यै (**दिशे**) (**स्वाहा**) (**अर्वाच्यै**) अधस्ताद्वर्त्तमानायै (**दिशे**) (**स्वाहा**) (**प्रतीच्यै**) या प्रत्यक् अञ्चति पूर्वमुखस्थितपुरुषस्य पृष्ठभागा तस्यै (**दिशे**) (**स्वाहा**) (**अर्वाच्यै**) (**दिशे**) (**स्वाहा**) (**उदीच्यै**) योदक् पूर्वाभिमुखस्य जनस्य वामभागमञ्चति तस्यै (**दिशे**) (**स्वाहा**) (**अर्वाच्यै**) (**दिशे**) (**स्वाहा**) (**ऊर्ध्वायै**) ऊर्ध्ववर्त्तमानायै (**दिशे**) (**स्वाहा**) (**अर्वाच्यै**) या अवविरुद्धमञ्चति तस्यै उपदिशे (**दिशे**) (**स्वाहा**) (**अवाच्यै**) (**दिशे**) (**स्वाहा**) (**अर्वाच्यै**) (**दिशे**) (**स्वाहा**)॥ २४॥

अन्वय:-यैर्विद्वद्भि: प्राच्यै दिशे स्वाहाऽर्वाच्यै दिशे स्वाहा दक्षिणायै दिशे स्वाहाऽर्वाच्यै दिशे स्वाहा प्रतीच्यै दिशे स्वाहाऽर्वाच्यै दिशे स्वाहोदीच्यै दिशे स्वाहाऽर्वाच्यै दिशे स्वाहोर्ध्वायै दिशे स्वाहाऽर्वाच्यै दिशे स्वाहाऽवाच्यै दिशे स्वाहाऽर्वाच्यै दिशे स्वाहा च विधीयते ते सर्वत: कुशलिनो भवन्ति॥ २४॥

भावार्थ:-हे मनुष्याश्चतस्रो मुख्या दिश: सन्ति तथा चतस्र उपदिशोऽपि वर्त्तन्त एवमूर्ध्वाऽर्वाची च दिशौ वर्त्तेते ता मिलित्वा दश जायन्त इति वेद्यम्। अनवस्थिता इमा विभ्व्यश्च सन्ति, यत्र स्वयं स्थितो भवेत् तद्देशमारभ्य सर्वासां कल्पना भवतीति विजानीत॥ २४॥

पदार्थ:-जिन विद्वानों ने (**प्राच्यै**) जो प्रथम प्राप्त होती है अर्थात् प्रथम सूर्य मण्डल का संयोग करती उस (**दिशे**) दिशा के लिये (**स्वाहा**) ज्योति:शास्त्रविद्यायुक्त वाणी (**अर्वाच्यै**) जो नीचे से सूर्यमण्डल को प्राप्त अर्थात् जब विषुमती रेखा से उत्तर का सूर्य नीचे-नीचे गिरता है, उस नीचे की (**दिशे**) दिशा के लिये (**स्वाहा**) ज्योति:शास्त्रयुक्त वाणी (**दक्षिणायै**) जो पूर्वमुख वाले पुरुष के दाहिनी बांह के निकट है, उस दक्षिण (**दिशे**) दिशा के लिये (**स्वाहा**) उक्त वाणी (**अर्वाच्यै**) निम्न है, उस (**दिशे**) दिशा के लिये (**स्वाहा**) उक्त वाणी (**प्रतीच्यै**) जो सूर्यमण्डल के प्रतिमुख अर्थात् लौटने के समय में प्राप्त और पूर्वमुख वाले पुरुष के पीठ पीछे होती उस पश्चिम (**दिशे**) दिशा के लिये (**स्वाहा**) ज्योति:शास्त्रयुक्त वाणी (**अर्वाच्यै**) पश्चिम के नीचे जो (**दिशे**) दिशा है, उस के लिये (**स्वाहा**) ज्योति: शास्त्रयुक्त वाणी (**उदीच्यै**) जो पूर्वाभिमुख पुरुष के वामभाग को प्राप्त होती, उस उत्तम (**दिशे**) दिशा के लिये (**स्वाहा**)

ज्योतिःशास्त्रयुक्त वाणी **(अर्वाच्यै)** पृथिवी गोल में जो उत्तर दिशा के तले दिशा है, उस **(दिशे)** दिशा के लिये **(स्वाहा)** ज्योतिःशास्त्रयुक्त वाणी **(ऊर्ध्वायै)** जो ऊपर को वर्त्तमान है, उस **(दिशे)** दिशा के लिये **(स्वाहा)** ज्योतिःशास्त्रयुक्त वाणी **(अर्वाच्यै)** जो विरुद्ध प्राप्त होती ऊपर वाली दिशा के नीचे अर्थात् कभी पूर्व गिनी जाती, कभी उत्तर, कभी दक्षिण, कभी पश्चिम मानी जाती है, उस **(दिशे)** दिशा के लिये **(स्वाहा)** ज्योतिःशास्त्रयुक्त वाणी और **(अवाच्यै)** जो सबसे नीचे वर्त्तमान उस **(दिशे)** दिशा के लिये **(स्वाहा)** ज्योतिःशास्त्रविचारयुक्त वाणी तथा **(अर्वाच्यै)** पृथिवी गोल में जो उक्त प्रत्येक कोण दिशाओं के तले की दिशा है, उस **(दिशे)** दिशा के लिये **(स्वाहा)** ज्योतिःशास्त्रविद्यायुक्त वाणी विधान की, वे सब ओर कुशली अर्थात् आनन्दी होते हैं॥ २४॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! चार मुख्य दिशा और चार उपदिशा अर्थात् कोण दिशा भी वर्त्तमान हैं। ऐसे ऊपर और नीचे की दिशा भी वर्त्तमान हैं। वे मिल कर सब दश होती हैं, यह जानना चाहिये और एक क्रम से निश्चय नहीं की हुई तथा अपनी-अपनी कल्पना में समर्थ भी है, उनको उन-उनके अर्थ में समर्थन करने की यह रीति है कि जहां मनुष्य आप स्थित हो, उस देश को लेके सब की कल्पना होती है, इसको जानो॥ २४॥

अद्भ्य इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। जलादयो देवताः। अष्टिश्छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अद्भ्यः स्वाहा वार्भ्यः स्वाहोदकाय स्वाहा तिष्ठन्तीभ्यः स्वाहा स्रवन्तीभ्यः स्वाहा स्यन्दमानाभ्यः स्वाहा कूप्याभ्यः स्वाहा सूद्याभ्यः स्वाहा धार्याभ्यः स्वाहार्णवाय स्वाहा समुद्राय स्वाहा सरिराय स्वाहा॥ २५॥

अद्भ्य इत्यत्ऽभ्यः। स्वाहा। वार्भ्य इति वाःऽभ्यः। स्वाहा। उदकाय। स्वाहा। तिष्ठन्तीभ्यः। स्वाहा। स्रवन्तीभ्यः। स्वाहा। स्यन्दमानाभ्यः। स्वाहा। कूप्याभ्यः। स्वाहा। सूद्याभ्यः। स्वाहा। धार्य्याभ्यः। स्वाहा। अर्णवाय। स्वाहा। समुद्राय। स्वाहा। सरिराय। स्वाहा॥ २५॥

पदार्थः-**(अद्भ्यः)** जलेभ्यः **(स्वाहा)** शुद्धिकारिका क्रिया **(वार्भ्यः)** वरणीयेभ्यः **(स्वाहा)** **(उदकाय)** आर्द्रीकारकाय **(स्वाहा)** **(तिष्ठन्तीभ्यः)** स्थिराभ्यः **(स्वाहा)** **(स्रवन्तीभ्यः)** सद्योगामिनीभ्यः **(स्वाहा)** **(स्यन्दमानाभ्यः)** प्रस्रुताभ्यः **(स्वाहा)** **(कूप्याभ्यः)** कूपेषु भवाभ्यः **(स्वाहा)** **(सूद्याभ्यः)** सुष्ठु क्लेदिकाभ्यः **(स्वाहा)** **(धार्याभ्यः)** धर्त्तुं योग्याभ्यः **(स्वाहा)** **(अर्णवाय)** बहून्यर्णांसि विद्यन्ते यस्मिँस्तस्मै **(स्वाहा)** **(समुद्राय)** समुद्रवन्त्यापो यस्मिंस्तस्मै **(स्वाहा)** **(सरिराय)** कमनीयाय **(स्वाहा)**॥ २५॥

अन्वयः-यैर्मनुष्यैर्यज्ञेषु सुगन्ध्यादिद्रव्यहवनायाऽद्भ्यः स्वाहा वार्भ्यः स्वाहोदकाय स्वाहा तिष्ठन्तीभ्यः स्वाहा स्रवन्तीभ्यः स्वाहा स्यन्दमानाभ्यः स्वाहा कूप्याभ्यः स्वाहा सूद्याभ्यः स्वाहा धार्याभ्यः स्वाहाऽर्णवाय स्वाहा समुद्राय स्वाहा सरिराय स्वाहा च विधीयते ते सर्वेषां सुखप्रदा जायन्ते॥ २५॥

भावार्थः-ये मनुष्या अग्नौ सुगन्ध्यादिद्रव्याणि जुहुयुस्ते जलादिशुद्धिकारका भूत्वा पुण्यात्मानो जायन्ते जलशुद्ध्यैव सर्वेषां शुद्धिर्भवतीति वेद्यम्॥ २५॥

पदार्थः-जिन मनुष्यों ने यज्ञकर्मों में सुगन्धि आदि पदार्थ होमने के लिये **(अद्भ्यः)** सामान्य जलों के लिये **(स्वाहा)** उन को शुद्ध करने की क्रिया **(वार्भ्यः)** स्वीकार करने योग्य अति उत्तम जलों के लिये **(स्वाहा)** उनको शुद्ध करने की क्रिया **(उदकाय)** पदार्थों को गीले करने वा सूर्य की किरणों से ऊपर को जाते हुए जल के लिये **(स्वाहा)** उनको शुद्ध करने वाली क्रिया **(तिष्ठन्तीभ्यः)** बहते हुए जलों के लिये **(स्वाहा)** उक्त क्रिया **(स्रवन्तीभ्यः)** शीघ्र बहते हुए जलों के लिये **(स्वाहा)** उक्त क्रिया **(स्यन्दमानाभ्यः)** धीरे-धीरे चलते जलों के लिये **(स्वाहा)** उक्त क्रिया **(कूप्याभ्यः)** कुएं में हुए जलों के लिये **(स्वाहा)** उक्त क्रिया **(सूद्याभ्यः)** भलीभांति भिगोने हारे अर्थात् वर्षा आदि से जो भिगोते हैं, उन जलों के लिये **(स्वाहा)** उनके शुद्ध करने की क्रिया **(धार्याभ्यः)** धारण करने योग्य जो जल हैं, उनके लिये **(स्वाहा)** उक्त क्रिया **(अर्णवाय)** जिस में बहुल जल है, उस बड़े नद के लिये **(स्वाहा)** उक्त क्रिया **(समुद्राय)** जिस में अच्छे प्रकार नद-महानद, नदी-महानदी, झील, झरना आदि के जल जा मिलते हैं, उस सागर वा महासागर के लिये **(स्वाहा)** शुद्ध करने वाली क्रिया और **(सरिराय)** अति सुन्दर मनोहर जल के लिये **(स्वाहा)** उसकी रक्षा करने वाली क्रिया विधान की है, वे सब को सुख देनेहारे होते हैं॥ २५॥

भावार्थः-जो मनुष्य आग में सुगन्धि आदि पदार्थों को होमें, वे जल आदि पदार्थों की शुद्धि करने हारे हो पुण्यात्मा होते हैं और जल की शुद्धि से ही सब पदार्थों की शुद्धि होती है, यह जानना चाहिये॥ २५॥

वातायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। वातादयो देवताः। स्वराडभिकृतिश्छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

वाताय स्वाहा धूमाय स्वाहाभ्राय स्वाहा मेघाय स्वाहा विद्योतमानाय स्वाहा स्तनयते स्वाहावस्फूर्जते स्वाहा वर्षते स्वाहाववर्षते स्वाहोग्रं वर्षते स्वाहा शीघ्रं वर्षते स्वाहोद्गृह्णते स्वाहोद्गृहीताय स्वाहा प्रुष्णते स्वाहा शीकायते स्वाहा प्रुष्वाभ्यः स्वाहा ह्रादुनीभ्यः स्वाहा नीहाराय स्वाहा॥ २६॥

वाताय। स्वाहा। धूमाय। स्वाहा। अभ्राय। स्वाहा। मेघाय। स्वाहा। विद्योतमानायेति विऽद्योतमानाय। स्वाहा। स्तनयते। स्वाहा। अवस्फूर्जत इत्यवऽस्फूर्जते। स्वाहा। वर्षते। स्वाहा। अववर्षत इत्यवऽवर्षते। स्वाहा। उग्रम्। वर्षते। स्वाहा। शीघ्रम्। वर्षते। स्वाहा। उद्गृह्णत इत्युत्ऽगृह्णते। स्वाहा। उद्गृहीतायेत्युत्ऽगृहीताय। स्वाहा। प्रुष्णते। स्वाहा। शीकायते। स्वाहा। प्रुष्वाभ्य:। स्वाहा। ह्रादुनीभ्य:। स्वाहा। नीहाराय। स्वाहा॥ २६॥

पदार्थ:-(**वाताय**) यो वाति तस्मै (**स्वाहा**) (**धूमाय**) (**स्वाहा**) (**अभ्राय**) मेघनिमित्ताय (**स्वाहा**) (**मेघाय**) यो मेहति सिञ्चति तस्मे (**स्वाहा**) (**विद्योतमानाय**) विद्युत: प्रवर्त्तकाय (**स्वाहा**) (**स्तनयते**) दिव्यं शब्दं कुर्वते (**स्वाहा**) (**अवस्फूर्जते**) अधो वज्रवद् घातं कुर्वते (**स्वाहा**) (**वर्षते**) यो वर्षति तस्मै (**स्वाहा**) (**अववर्षते**) (**स्वाहा**) (**उग्रम्**) तीव्रम् (**वर्षते**) (**स्वाहा**) (**शीघ्रम्**) तूर्णम् (**वर्षते**) (**स्वाहा**) (**उद्गृह्णते**) य ऊर्ध्वं गृह्णाति तस्मै (**स्वाहा**) (**उद्गृहीताय**) ऊर्ध्वं गृहीतं जलं येन तस्मै (**स्वाहा**) (**प्रुष्णते**) पुष्टिं पूरयते (**स्वाहा**) (**शीकायते**) य: शीकं सेचनं करोति तस्मै (**स्वाहा**) (**प्रुष्वाभ्य:**) पूर्णाभ्य: (**स्वाहा**) (**ह्रादुनीभ्य:**) अव्यक्तं शब्दं कुर्वतीभ्य: (**स्वाहा**) (**नीहाराय**) कुहकाय (**स्वाहा**)॥ २६॥

अन्वय:-यैर्मनुष्यैर्वाताय स्वाहा धूमाय स्वाहाऽभ्राय स्वाहा मेघाय स्वाहा विद्योतमानाय स्वाहा स्तनयते स्वाहाऽवस्फूर्जते स्वाहा वर्षते स्वाहाऽववर्षते स्वाहोग्रं वर्षते स्वाहा शीघ्रं वर्षते स्वाहोद्गृह्णते स्वाहोद्गृहीताय स्वाहा प्रुष्णते स्वाहा शीकायते स्वाहा प्रुष्वाभ्य: स्वाहा ह्रादुनीभ्य: स्वाहा नीहाराय स्वाहा च प्रयुज्यते ते प्राणप्रिया जायन्ते॥ २६॥

भावार्थ:-ये यथाविध्यग्निहोत्रादीन् कुर्वन्ति ते वाय्वादिशोधका भूत्वा सर्वेषां हितकरा भवन्ति॥ २६॥

पदार्थ:-जिन मनुष्यों ने (**वाताय**) जो बहता है, उस पवन के लिये (**स्वाहा**) उस को शुद्ध करने वाली यज्ञक्रिया (**धूमाय**) धूम के लिये (**स्वाहा**) यज्ञक्रिया (**अभ्राय**) मेघ के कारण के लिये (**स्वाहा**) यज्ञक्रिया (**मेघाय**) मेघ के लिये (**स्वाहा**) यज्ञक्रिया (**विद्योतमानाय**) बिजुली से प्रवृत्त हुए सघन बद्दल के लिये (**स्वाहा**) यज्ञक्रिया (**स्तनयते**) उत्तम शब्द करती हुई बिजुली के लिये (**स्वाहा**) यज्ञक्रिया (**अवस्फूर्जते**) एक-दूसरे के घिसने से वज्र के समान नीचे को चोट करते हुए विद्युत् के लिये (**स्वाहा**) शुद्ध करने हारी यज्ञक्रिया (**वर्षते**) जो बद्दल वर्षता है, उसके लिये (**स्वाहा**) यज्ञक्रिया (**अववर्षते**) मिलावट से तले ऊपर हुए बद्दलों में जो नीचे वाला है, उस बद्दल के लिये (**स्वाहा**) यज्ञक्रिया (**उग्रम्**) अतितीक्ष्णता से (**वर्षते**) वर्षते हुए बद्दल के लिये (**स्वाहा**) यज्ञक्रिया (**शीघ्रम्**) शीघ्र लपट-झपट से (**वर्षते**) वर्षते हुए बद्दल के लिये (**स्वाहा**) उक्त क्रिया (**उद्गृह्णते**) ऊपर से ऊपर बद्दलों के ग्रहण करने वाले बद्दल के लिये (**स्वाहा**) उक्त क्रिया (**उद्गृहीताय**) जिसने ऊपर से ऊपर जल ग्रहण किया उस बद्दल के लिये (**स्वाहा**) शुद्धि करने वाली यज्ञक्रिया (**प्रुष्णते**) पुष्टि करते हुए मेघ के लिये (**स्वाहा**) यज्ञक्रिया (**शीकायते**) जो सींचता अर्थात् ठहर-ठहर के वर्षता, उस मेघ के लिये (**स्वाहा**) यज्ञक्रिया (**प्रुष्वाभ्य:**) जो

पूर्ण घनघोर वर्षा करते हैं, उन मेघों के अवयवों के लिये **(स्वाहा)** यज्ञक्रिया **(ह्रादुनीभ्यः)** अव्यक्त गड़गड़ शब्द करते हुए बद्दलों के लिये **(स्वाहा)** शुद्धि करने वाली यज्ञक्रिया और **(नीहाराय)** कुहर के लिये **(स्वाहा)** उस की शुद्धि करने वाली यज्ञक्रिया की है, वे संसार के प्राणपियारे होते हैं॥ २६॥

भावार्थः-जो मनुष्य यथाविधि अग्निहोत्र आदि यज्ञों को करते हैं, वे पवन आदि पदार्थों के शोधनेहारे होकर सब का हित करने वाले हाते हैं॥ २६॥

अग्नये स्वाहेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। अग्न्यादयो देवताः। जगतीच्छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अ॒ग्नये॒ स्वाहा॒ सोमा॑य॒ स्वाहेन्द्रा॑य॒ स्वाहा॑ पृथि॒व्यै स्वाहा॒ऽन्तरि॑क्षाय॒ स्वाहा॑ दि॒वे स्वाहा॑ दि॒ग्भ्यः स्वाहाऽऽशा॑भ्य॒ः स्वाहो॒र्व्यै॑ दि॒शे स्वाहा॒र्वाच्यै॑ दि॒शे स्वाहा॑॥ २७॥

अ॒ग्नये॑। स्वाहा॑। सोमा॑य। स्वाहा॑। इन्द्रा॑य। स्वाहा॑। पृ॒थि॒व्यै। स्वाहा॑। अ॒न्तरि॑क्षाय। स्वाहा॑। दि॒वे। स्वाहा॑। दि॒ग्भ्य इति॑ दि॒क्ऽभ्यः। स्वाहा॑। आशा॑भ्यः। स्वाहा॑। उ॒र्व्यै॑। दि॒शे। स्वाहा॑। अ॒र्वाच्यै॑। दि॒शे। स्वाहा॑॥ २७॥

पदार्थः-**(अग्नये)** जाठराग्नये **(स्वाहा)** **(सोमाय)** उत्तमाय रसाय **(स्वाहा)** **(इन्द्राय)** जीवाय विद्युते परमैश्वर्याय वा **(स्वाहा)** **(पृथिव्यै)** **(स्वाहा)** **(अन्तरिक्षाय)** आकाशाय **(स्वाहा)** **(दिवे)** प्रकाशाय **(स्वाहा)** **(दिग्भ्यः)** **(स्वाहा)** **(आशाभ्यः)** व्यापिकाभ्यः **(स्वाहा)** **(उर्व्यै)** बहूरूपायै **(दिशे)** **(स्वाहा)** **(अर्वाच्यै)** निम्नायै **(दिशे)** **(स्वाहा)**॥ २७॥

अन्वयः-मनुष्यैरग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहेन्द्राय स्वाहा पृथिव्यै स्वाहाऽन्तरिक्षाय स्वाहा दिवे स्वाहा दिग्भ्यः स्वाहाऽऽशाभ्यः स्वाहोर्व्यै दिशे स्वाहाऽर्वाच्यै दिशे स्वाहा चाऽवश्यं विधेयाः॥ २७॥

भावार्थः-ये मनुष्या अग्निद्वारा ओषध्यादिषु सुगन्ध्यादिद्रव्यं विस्तारयेयुस्ते जगद्धितकराः स्युः॥ २७॥

पदार्थः-मनुष्यों को **(अग्नये)** जाठराग्नि अर्थात् पेट के भीतर अन्न पचाने वाली आग के लिये **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया **(सोमाय)** उत्तम रस के लिये **(स्वाहा)** सुन्दर क्रिया **(इन्द्राय)** जीव, बिजुली और परम ऐश्वर्य के लिये **(स्वाहा)** उक्त क्रिया **(पृथिव्यै)** पृथिवी के लिये **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया **(अन्तरिक्षाय)** आकाश के लिये **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया **(दिवे)** प्रकाश के लिये **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया **(दिग्भ्यः)** पूर्वादि दिशाओं के लिये **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया **(आशाभ्यः)** एक दूसरी में जो व्याप्त हो रही अर्थात् ईशान आदि कोण दिशाओं के लिये **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया **(उर्व्यै)** समय को पाकर अनेक रूप दिखाने वाली अर्थात् वर्षा, गर्मी, सर्दी के समय के रूप की अलग-अलग प्रतीति कराने वाली **(दिशे)** दिशा के लिये **(स्वाहा)**

उत्तम क्रिया और **(अर्वाच्यै)** नीचे की **(दिशे)** दिशा के लिये **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया अवश्य विधान करनी चाहिये॥२७॥

भावार्थः-जो मनुष्य अग्नि के द्वारा अर्थात् आग में होम कर औषधि आदि पदार्थों में सुगन्धि आदि पदार्थ का विस्तार करें वे जगत् के हित करने वाले होवें॥२७॥

नक्षत्रेभ्य इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। नक्षत्रादयो देवताः। भुरिगष्टी छन्दसी। मध्यमौ स्वरौ॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

नक्षत्रेभ्यः स्वाहा नक्षत्रियेभ्यः स्वाहाहोरात्रेभ्यः स्वाहार्द्धमासेभ्यः स्वाहा मासेभ्यः स्वाहऽऋतुभ्यः स्वाहार्त्तवेभ्यः स्वाहा संवत्सराय स्वाहा द्यावापृथिवीभ्याᳬं स्वाहा चन्द्राय स्वाहा सूर्याय स्वाहा रश्मिभ्यः स्वाहा वसुभ्यः स्वाहा रुद्रेभ्यः स्वाहादित्येभ्यः स्वाहा मरुद्भ्यः स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा मूलेभ्यः स्वाहा शाखाभ्यः स्वाहा वनस्पतिभ्यः स्वाहा पुष्पेभ्यः स्वाहा फलेभ्यः स्वाहौषधीभ्यः स्वाहा॥२८॥

नक्षत्रेभ्यः। स्वाहा। नक्षत्रियेभ्यः। स्वाहा। अहोरात्रेभ्यः। स्वाहा। अर्द्धमासेभ्य इत्यर्द्धऽमासेभ्यः। स्वाहा। मासेभ्यः। स्वाहा। ऋतुभ्य इन्यृतुऽभ्यः। स्वाहा। आर्त्तवेऽभ्यः। स्वाहा। संवत्सराय। स्वाहा। द्यावापृथिवीभ्याम्। स्वाहा। चन्द्राय। स्वाहा। सूर्याय। स्वाहा। रश्मिभ्य इति रश्मिऽभ्यः। स्वाहा। वसुभ्य इति वसुऽभ्यः। स्वाहा। रुद्रेभ्यः। स्वाहा। आदित्येभ्यः। स्वाहा। मरुद्भ्य इति मरुत्ऽभ्यः। स्वाहा। विश्वेभ्यः। देवेभ्यः। स्वाहा। मूलेभ्यः। स्वाहा। शाखाभ्यः। स्वाहा। वनस्पतिभ्य इति वनस्पतिऽभ्यः। स्वाहा। पुष्पेभ्यः। स्वाहा। फलेभ्यः। स्वाहा। ओषधीभ्यः स्वाहा॥२८॥

पदार्थः-**(नक्षत्रेभ्यः)** अक्षीणेभ्यः **(स्वाहा)** **(नक्षत्रियेभ्यः)** नक्षत्राणां समूहेभ्यः **(स्वाहा)** **(अहोरात्रेभ्यः)** अहर्निशेभ्यः **(स्वाहा)** **(अर्द्धमासेभ्यः)** **(स्वाहा)** **(मासेभ्यः)** **(स्वाहा)** **(ऋतुभ्यः)** **(स्वाहा)** **(आर्त्तवेभ्यः)** ऋतुजातेभ्यः **(स्वाहा)** **(संवत्सराय)** **(स्वाहा)** **(द्यावापृथिवीभ्याम्)** भूमिप्रकाशाभ्याम् **(स्वाहा)** **(चन्द्राय)** **(स्वाहा)** **(सूर्याय)** **(स्वाहा)** **(रश्मिभ्यः)** किरणेभ्यः **(स्वाहा)** **(वसुभ्यः)** पृथिव्यादिभ्यः **(स्वाहा)** **(रुद्रेभ्यः)** प्राणजीवेभ्यः **(स्वाहा)** **(आदित्येभ्यः)** अविनाशिभ्यः कालावयवेभ्यः **(स्वाहा)** **(मरुद्भ्यः)** **(स्वाहा)** **(विश्वेभ्यः)** सर्वेभ्यः **(देवेभ्यः)** दिव्यगुणेभ्यः **(स्वाहा)** **(मूलेभ्यः)** **(स्वाहा)** **(शाखाभ्यः)** **(स्वाहा)** **(वनस्पतिभ्यः)** **(स्वाहा)** **(पुष्पेभ्यः)** **(स्वाहा)** **(फलेभ्यः)** **(स्वाहा)** **(ओषधीभ्यः)** **(स्वाहा)**॥२८॥

अन्वयः-मनुष्यैर्नक्षत्रेभ्यः स्वाहा नक्षत्रियेभ्यः स्वाहाऽहोरात्रेभ्यः स्वाहाऽर्द्धमासेभ्यः स्वाहा मासेभ्यः स्वाहार्त्तुभ्यः स्वाहाऽऽर्त्तवेभ्यः स्वाहा संवत्सराय स्वाहा द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा चन्द्राय स्वाहा सूर्याय स्वाहा रश्मिभ्यः स्वाहा वसुभ्यः स्वाहा रुद्रेभ्यः स्वाहाऽऽदित्येभ्यः स्वाहा मरुद्भ्यः स्वाहा विश्वेभ्यो

देवेभ्यः स्वाहा मूलेभ्यः स्वाहा शाखाभ्यः स्वाहा वनस्पतिभ्यः स्वाहा पुष्पेभ्यः स्वाहा फलेभ्यः स्वाहौषधीभ्यः स्वाहा चावश्यमनुष्ठेयाः॥२८॥

भावार्थः-मनुष्या नित्यं सुगन्ध्यादिद्रव्यमग्नौ प्रक्षिप्य तद्वायुरश्मिद्वारा वनस्पत्यौषधिमूलशाखापुष्पफलादिषु प्रवेश्य सर्वेषां पदार्थानां शुद्धिं कृत्वाऽऽरोग्यं सम्पादयन्तु॥२८॥

पदार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि (**नक्षत्रेभ्यः**) जो पदार्थ कभी नष्ट नहीं होते उनके लिये (**स्वाहा**) उत्तम यज्ञक्रिया (**नक्षत्रियेभ्यः**) उक्त पदार्थों के समूहों के लिये (**स्वाहा**) उत्तम यज्ञक्रिया (**अहोरात्रेभ्यः**) दिन-रात्रि के लिये (**स्वाहा**) उत्तम यज्ञक्रिया (**अर्द्धमासेभ्यः**) शुक्ल-कृष्ण पक्ष अर्थात् पखवाड़ों के लिये (**स्वाहा**) उक्त क्रिया (**मासेभ्यः**) महीनों के लिये (**स्वाहा**) उक्त क्रिया (**ऋतुभ्यः**) वसन्त आदि छः ऋतुओं के लिये (**स्वाहा**) उत्तम यज्ञक्रिया (**आर्त्तवेभ्यः**) ऋतुओं में उत्पन्न हुए ऋतु के पदार्थों के लिये (**स्वाहा**) उत्तम यज्ञक्रिया (**संवत्सराय**) वर्षों के लिये (**स्वाहा**) उत्तम यज्ञक्रिया (**द्यावापृथिवीभ्याम्**) प्रकाश और भूमि के लिये (**स्वाहा**) उत्तम यज्ञक्रिया (**चन्द्राय**) चन्द्रलोक के लिये (**स्वाहा**) उत्तम यज्ञक्रिया (**सूर्य्याय**) सूर्य्यलोक के लिये (**स्वाहा**) यज्ञक्रिया (**रश्मिभ्यः**) सूर्य्य आदि की किरणों के लिये (**स्वाहा**) उत्तम यज्ञक्रिया (**वसुभ्यः**) पृथिवी आदि लोकों के लिये (**स्वाहा**) उक्त क्रिया (**रुद्रेभ्यः**) दश प्राणों के लिये (**स्वाहा**) यज्ञक्रिया (**आदित्येभ्यः**) काल के अवयव जो अविनाशी हैं, उनके लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया (**मरुद्भ्यः**) पवनों के लिये (**स्वाहा**) उनके अनुकूल क्रिया (**विश्वेभ्यः**) समस्त (**देवेभ्यः**) दिव्य गुणों के लिये (**स्वाहा**) सुन्दर क्रिया (**मूलेभ्यः**) सभों की जड़ों के लिये (**स्वाहा**) तदनुकूल क्रिया (**शाखाभ्यः**) शाखाओं के लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया (**वनस्पतिभ्यः**) वनस्पतियों के लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया (**पुष्पेभ्यः**) फूलों के लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया (**फलेभ्यः**) फलों के लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया और (**ओषधीभ्यः**) ओषधियों के लिये (**स्वाहा**) नित्य उत्तम क्रिया अवश्य करनी चाहिये॥२८॥

भावार्थः-मनुष्य नित्य सुगन्ध्यादि पदार्थों को अग्नि में छोड़ अर्थात् हवन कर पवन और सूर्य की किरणों द्वारा वनस्पति, ओषधि, मूल, शाखा, पुष्प और फलादिकों में प्रवेश करा के सब पदार्थों की शुद्धि कर आरोग्यता की सिद्धि करें॥२८॥

पृथिव्या इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। लिङ्गोक्ता देवताः। निचृदत्यष्टिश्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

पृथिव्यै स्वाहान्तरिक्षाय स्वाहा दिवे स्वाहा सूर्याय स्वाहा चन्द्राय स्वाहा नक्षत्रेभ्यः स्वाहाद्भ्यः स्वाहौषधीभ्यः स्वाहा वनस्पतिभ्यः स्वाहा परिप्लवेभ्यः स्वाहा चराचरेभ्यः स्वाहा सरीसृपेभ्यः स्वाहा॥२९॥

पृथिव्यै। स्वाहा। अन्तरिक्षाय। स्वाहा। दिवे। स्वाहा। सूर्य्याय। स्वाहा। चन्द्राय। स्वाहा। नक्षत्रेभ्यः। स्वाहा। अद्भ्य इत्यत्ऽभ्यः। स्वाहा। ओषधीभ्यः। स्वाहा। वनस्पतिभ्य इति वनस्पतिऽभ्यः। स्वाहा। परिप्लेवेभ्य इति परिऽप्लवेभ्यः। स्वाहा। चराचरेभ्यः। स्वाहा। सरीसृपेभ्यः। स्वाहा॥२९॥

पदार्थः-(**पृथिव्यै**) विस्तृतायै धरित्र्यै (**स्वाहा**) उत्तमयज्ञक्रिया (**अन्तरिक्षाय**) आकाशाय (**स्वाहा**) उक्ता क्रिया (**दिवे**) विद्युतः शुद्धये (**स्वाहा**) यज्ञक्रिया (**सूर्याय**) आदित्यमण्डलाय (**स्वाहा**) तदनुरूपा क्रिया (**चन्द्राय**) चन्द्रमण्डलाय (**स्वाहा**) उत्तमक्रिया (**नक्षत्रेभ्यः**) तारकेभ्यः (**स्वाहा**) (**अद्भ्यः**) (**स्वाहा**) (**ओषधीभ्यः**) (**स्वाहा**) (**वनस्पतिभ्यः**) (**स्वाहा**) (**परिप्लवेभ्यः**) तारकेभ्यः (**स्वाहा**) (**चराचरेभ्यः**) स्थावरजङ्गमेभ्यः (**स्वाहा**) (**सरीसृपेभ्यः**) सर्प्पादिभ्यः (**स्वाहा**)॥२९॥

अन्वयः-यदि मनुष्याः पृथिव्यै स्वाहाऽन्तरिक्षाय स्वाहा दिवे स्वाहा सूर्य्याय स्वाहा चन्द्राय स्वाहा नक्षत्रेभ्यः स्वाहाऽद्भ्यः स्वाहौषधीभ्यः स्वाहा वनस्पतिभ्यः स्वाहा परिप्लवेभ्यः स्वाहा चराचरेभ्यः स्वाहा सरीसृपेभ्यः स्वाहा प्रयुञ्जीरँस्तर्हि सर्वं शुद्धं कर्त्तुं प्रभवेयुः॥२९॥

भावार्थः-ये सुगन्ध्यादिद्रव्यं पृथिव्यादिष्वग्निद्वारा विस्तार्य्य वायुजलद्वारा औषधीषु प्रवेश्य सर्वं संशोध्याऽऽरोग्यं सम्पादयन्ति, त आयुर्वर्द्धका भवन्ति॥२९॥

पदार्थः-जो मनुष्य (**पृथिव्यै**) विथरी हुई इस पृथिवी के लिये (**स्वाहा**) उत्तम यज्ञक्रिया (**अन्तरिक्षाय**) अवकाश अर्थात् पदार्थों के बीच की पोल के लिये (**स्वाहा**) उक्त क्रिया (**दिवे**) बिजुली की शुद्धि के लिये (**स्वाहा**) यज्ञक्रिया (**सूर्य्याय**) सूर्य्यमण्डल की उत्तमता के लिये (**स्वाहा**) उत्तम यज्ञक्रिया (**चन्द्राय**) चन्द्रमण्डल के लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया (**नक्षत्रेभ्यः**) अश्विनी आदि नक्षत्रलोकों की उत्तमता के लिये (**स्वाहा**) उत्तम यज्ञक्रिया (**अद्भ्यः**) जलों के लिये (**स्वाहा**) उत्तम यज्ञक्रिया (**ओषधीभ्यः**) ओषधियों के लिये (**स्वाहा**) उत्तम यज्ञक्रिया (**वनस्पतिभ्यः**) वट वृक्ष आदि के लिये (**स्वाहा**) उत्तम यज्ञक्रिया (**परिप्लवेम्यः**) जो सब ओर से आते-जाते उन तारागणों के लिये (**स्वाहा**) उत्तम यज्ञक्रिया (**चराचरेभ्यः**) स्थावर-जङ्गम जीवों और जड़ पदार्थों के लिये (**स्वाहा**) उत्तम यज्ञक्रिया तथा (**सरीसृपेभ्यः**) जो रिंगते हैं, उन सर्प्प आदि जीवों के लिये (**स्वाहा**) उत्तम यज्ञक्रिया को अच्छे प्रकार युक्त करें तो वे सब की शुद्धि करने को समर्थ हों॥२९॥

भावार्थः-जो सुगन्धित आदि पदार्थ को पृथिवी आदि पदार्थों में अग्नि के द्वारा विस्तार के अर्थात् फैला के पवन और जल के द्वारा ओषधि आदि पदार्थों में प्रवेश करा सब को अच्छे प्रकार शुद्ध कर आरोग्यपन को सिद्ध कराते हैं, वे आयुर्दा के बढ़ाने वाले होते हैं॥२९॥

असव इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। वस्वादयो देवताः। कृतिश्छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

असवे स्वाहा वसवे स्वाहा विभुवे स्वाहा विवस्वते स्वाहा गणश्रिये स्वाहा गणपतये स्वाहाभिभुवे स्वाहाधिपतये स्वाहा शूषाय स्वाहा सꣳसर्पाय स्वाहा चन्द्राय स्वाहा ज्योतिषे स्वाहा मलिम्लुचाय स्वाहा दिवा पतये स्वाहा॥ ३०॥

असवे। स्वाहा। वसवे। स्वाहा। विभुव इति विऽभुवे। स्वाहा। विवस्वते। स्वाहा। गणश्रिय इति गणऽश्रिये। स्वाहा। गणपतय इति गणऽपतये। स्वाहा। अभिभुव इत्यभिऽभुवे। स्वाहा। अधिपतय इत्यधिऽपतये। स्वाहा। शूषाय। स्वाहा। सꣳसर्पयेति सम्ऽसर्पाय। स्वाहा। चन्द्राय। स्वाहा। ज्योतिषे। स्वाहा। मलिम्लुचाय। स्वाहा। दिवा। पतये। स्वाहा॥ ३०॥

पदार्थः-(**असवे**) प्राणाय (**स्वाहा**) (**वसवे**) योऽस्मिन् शरीरे वसति तस्मै जीवाय (**स्वाहा**) (**विभुवे**) व्यापकाय वायवे (**स्वाहा**) (**विवस्वते**) सूर्याय (**स्वाहा**) (**गणश्रिये**) या गणानां समूहानां श्रीः शोभा तस्यै विद्युते (**स्वाहा**) (**गणपतये**) समूहानां पालकाय वायवे (**स्वाहा**) (**अभिभुवे**) अभिमुखं भावुकाय (**स्वाहा**) (**अधिपतये**) सर्वस्वामिने राज्ञे (**स्वाहा**) (**शूषाय**) बलाय सैन्याय (**स्वाहा**) (**संसर्पाय**) यः सम्यक् सर्पति गच्छति तस्मै (**स्वाहा**) (**चन्द्राय**) सुवर्णाय। **चन्द्रमिति हिरण्यनामसु पठितम्॥** निघं०१।२॥ (**स्वाहा**) (**ज्योतिषे**) प्रदीपनाय (**स्वाहा**) (**मलिम्लुचाय**) स्तेनाय। **मलिम्लुच इति स्तेननामसु पठितम्॥** निघं०३।२४॥ (**स्वाहा**) (**दिवा, पतये**) दिनस्य पालकाय सूर्याय (**स्वाहा**)॥ ३०॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यूयमसवे स्वाहा वसवे स्वाहा विभुवे स्वाहा विवस्वते स्वाहा गणश्रिये स्वाहा गणपतये स्वाहाऽभिभुवे स्वायाऽधिपतये स्वाहा शूषाय स्वाहा संसर्पाय स्वाहा चन्द्राय स्वाहा ज्योतिषे स्वाहा मलिम्लुचाय स्वाहा दिवापतये स्वाहा च प्रयुङ्ध्वम्॥ ३०॥

भावार्थः-मनुष्यैः प्राणादिशुद्धयेऽग्नौ पुष्टिकरादिद्रव्यं होतव्यम्॥ ३०॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम (**असवे**) प्राणों के लिये (**स्वाहा**) उत्तम यज्ञक्रिया (**वसवे**) जो इस शरीर में बसता है, उस जीव के लिये (**स्वाहा**) उत्तम यज्ञक्रिया (**विभुवे**) व्याप्त होने वाले पवन के लिये (**स्वाहा**) उत्तम यज्ञक्रिया (**विवस्वते**) सूर्य के लिये (**स्वाहा**) उत्तम यज्ञक्रिया (**गणश्रिये**) जो पदार्थों के लिये समूहों की शोभा बिजुली है, उसके लिये (**स्वाहा**) उत्तम यज्ञक्रिया (**गणपतये**) पदार्थों के समूहों के पालने हारे पवन के लिये (**स्वाहा**) उत्तम यज्ञक्रिया (**अभिभुवे**) सन्मुख होने वाले के लिये (**स्वाहा**) उत्तम यज्ञक्रिया (**अधिपतये**) सब के स्वामी राजा के लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया (**शूषाय**) बल और तीक्ष्णता के लिये (**स्वाहा**) उत्तम यज्ञक्रिया (**संसर्पाय**) जो भलीभांति करके रिंगे उस जीव के लिये (**स्वाहा**) उत्तम यज्ञक्रिया (**चन्द्राय**) सुवर्ण के लिये (**स्वाहा**) उक्त क्रिया (**ज्योतिषे**) ज्योतिः अर्थात् सूर्य, चन्द्र और तारागणों के प्रकाश के लिये (**स्वाहा**) उत्तम यज्ञक्रिया (**मलिम्लुचाय**) चोर के लिये (**स्वाहा**) उसके प्रबन्ध

करने की क्रिया तथा **(दिवा, पतये)** दिन के पालनेहारे सूर्य के लिये **(स्वाहा)** उत्तम यज्ञक्रिया को अच्छे प्रकार युक्त करो॥३०॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि प्राण आदि की शुद्धि के लिये आग में पुष्टि करने वाले आदि पदार्थ का होम करें॥३०॥

मधवे स्वाहेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। मासा देवताः। भुरिगत्यष्टिश्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

मध॑वे॒ स्वाहा॒ माध॑वाय॒ स्वाहा॑ शु॒क्राय॒ स्वाहा॒ शुच॑ये॒ स्वाहा॒ नभ॑से॒ स्वाहा॑ न॒भ॒स्या॒य॒ स्वाहे॒षाय॒ स्वाहो॒र्जाय॒ स्वाहा॒ सह॑से॒ स्वाहा॑ स॒ह॒स्या॒य॒ स्वाहा॒ तप॑से॒ स्वाहा॑ त॒प॒स्या॒य॒ स्वाहा॑ꣳहसस्प॒तये॒ स्वाहा॑॥३१॥

मध॑वे। स्वाहा॑। माध॑वाय। स्वाहा॑। शु॒क्राय॑। स्वाहा॑। शुच॑ये। स्वाहा॑। नभ॑से। स्वाहा॑। न॒भ॒स्या॒य। स्वाहा॑। इ॒षाय॑। स्वाहा॑। ऊ॒र्जाय॑। स्वाहा॑। सह॑से। स्वाहा॑। स॒ह॒स्या॒य। स्वाहा। तप॑से। स्वाहा॑। त॒प॒स्या॒य। स्वाहा॑। अ॒ꣳह॒स॒ःप॒तये॑। स्वाहा॑॥३१॥

पदार्थः-**(मधवे)** मधुरादिगुणोत्पादकाय चैत्राय **(स्वाहा)** **(माधवाय)** वैशाखाय **(स्वाहा)** **(शुक्राय)** शुद्धिकराय ज्येष्ठाय **(स्वाहा)** **(शुचये)** पवित्रकरायाऽऽषाढाय **(स्वाहा)** **(नभसे)** जलवर्षकाय श्रावणाय **(स्वाहा)** **(नभस्याय)** नभसि भवाय भाद्राय **(स्वाहा)** **(इषाय)** अन्नोत्पादकायाऽऽश्विनाय **(स्वाहा)** **(ऊर्जाय)** बलान्नोत्पादकाय कार्त्तिकाय **(स्वाहा)** **(सहसे)** बलप्रदाय मार्गशीर्षाय **(स्वाहा)** **(सहस्याय)** सहसि साधवे पौषाय **(स्वाहा)** **(तपसे)** तप उत्पादकाय माघाय **(स्वाहा)** **(तपस्याय)** तपसि साधवे फाल्गुनाय **(स्वाहा)** **(अंहसः)** श्लिष्टस्य **(पतये)** पालकाय **(स्वाहा)**॥३१॥

अन्वयः-हे मनुष्याः भवन्तो मधवे स्वाहा माधवाय स्वाहा शुक्राय स्वाहा शुचये स्वाहा नभसे स्वाहा नभस्याय स्वाहेषाय स्वाहोर्जाय स्वाहा सहसे स्वाहा सहस्याय स्वाहा तपसे स्वाहा तपस्याय स्वाहांऽहसस्पतये स्वाहा चानुतिष्ठन्तु॥३१॥

भावार्थः-ये प्रतिदिनमग्निहोत्रादियज्ञं युक्ताहारविहारं च कुर्वन्ति तेऽरोगा भूत्वा दीर्घायुषो भवन्ति॥३१॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! आप लोग **(मधवे)** मीठेपन आदि को उत्पन्न करने हारे चैत्र के लिये **(स्वाहा)** यज्ञक्रिया **(माधवाय)** मधुरपन में उत्तम वैशाख के लिये **(स्वाहा)** यज्ञक्रिया **(शुक्राय)** जल आदि को पवन के वेग से निर्मल करनेहारे ज्येष्ठ के लिये **(स्वाहा)** यज्ञक्रिया **(शुचये)** वर्षा के योग से भूमि आदि को पवित्र करने वाले आषाढ़ के लिये **(स्वाहा)** यज्ञक्रिया **(नभसे)** भलीभांति सघन घन बद्दलों की घनघोर

सुनवाने वाले श्रावण के लिये **(स्वाहा)** यज्ञक्रिया **(नभस्याय)** आकाश में वर्षा से प्रसिद्ध होनेहारे भादों के लिये **(स्वाहा)** यज्ञक्रिया **(इषाय)** अन्न को उत्पन्न कराने वाले क्वार के लिये **(स्वाहा)** यज्ञक्रिया **(ऊर्जाय)** बल और अन्न को उत्पन्न कराने वा बलयुक्त अन्न अर्थात् कुआंर में फूले हुए बाजरा आदि अन्न को पकाने पुष्ट करनेहारे कार्तिक के लिये **(स्वाहा)** यज्ञक्रिया **(सहसे)** बल देने वाले अगहन के लिये **(स्वाहा)** यज्ञक्रिया **(सहस्याय)** बल देने में उत्तम पौष के लिये **(स्वाहा)** यज्ञक्रिया **(तपसे)** ऋतु बदलने से धीरे-धीरे शीत की निवृत्ति और जीवों के शरीरों में गरमी की प्रवृत्ति कराने वाले माघ के लिये **(स्वाहा)** यज्ञक्रिया **(तपस्याय)** जीवों के शरीरों में गरमी की प्रवृत्ति कराने में उत्तम फाल्गुन मास के लिये **(स्वाहा)** यज्ञक्रिया और **(अंहस:)** महीनों में मिले हुए मलमास के लिये **(पतये)** पालने वाले के लिये **(स्वाहा)** यज्ञक्रिया का अनुष्ठान करो॥३१॥

भावार्थ:-जो मनुष्य प्रतिदिन अग्निहोत्र आदि यज्ञ और अपनी प्रकृति के योग्य आहार और विहार आदि को करते हैं, वे नीरोग होकर बहुत जीने वाले होते हैं॥३१॥

वाजायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि:। वाजादयो देवता:। अत्यष्टिश्छन्द:। गान्धार: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

वाजा॑य॒ स्वाहा॑ प्रस॒वाय॒ स्वाहा॑पि॒जाय॒ स्वाहा॑ क्रत॑वे॒ स्वाहा॒ स्व॒: स्वाहा॑ मू॒र्ध्ने स्वाहा॑ व्यश्नु॒विने॒ स्वाहान्त्या॑य॒ स्वाहान्त्या॑य भौव॒नाय॒ स्वाहा॒ भुव॑नस्य॒ पत॑ये॒ स्वाहाधि॑पतये॒ स्वाहा॑ प्र॒जाप॑तये॒ स्वाहा॑॥३२॥

वाजा॑य। स्वाहा॑। प्र॒स॒वायेति॑ प्रऽस॒वाय॑। स्वाहा॑। अ॒पि॒जाय॑। स्वाहा॑। क्रत॑वे। स्वाहा॑। स्व॒रिति॒ स्व॒:। स्वाहा॑। मू॒र्ध्ने। स्वाहा॑। व्य॒श्नु॒वि॒न॒ इति॑ विऽअश्नु॒विने॑। स्वाहा॑। आन्त्या॑य। स्वाहा॑। आन्त्या॑य। भौ॒व॒नाय॑। स्वाहा॑। भुव॑नस्य। पत॑ये। स्वाहा॑। अधि॑पतय॒ इत्यधि॑ऽपतये। स्वाहा॑। प्र॒जाप॑तय॒ इति॑ प्र॒जाऽप॑तये। स्वाहा॑॥३२॥

पदार्थ:-**(वाजाय)** अन्नाय **(स्वाहा)** **(प्रसवाय)** उत्पादकाय **(स्वाहा)** **(अपिजाय)** उत्पन्नाय **(स्वाहा)** **(क्रतवे)** प्रज्ञायै कर्मणे वा **(स्वाहा)** **(स्व:)** सुखाय **(स्वाहा)** **(मूर्ध्ने)** मस्तकशुद्धये **(स्वाहा)** **(व्यश्नुविने)** व्यापिने वीर्य्याय **(स्वाहा)** **(आन्त्याय)** **(स्वाहा)** **(आन्त्याय)** अन्ते भवाय **(भौवनाय)** भुवने भवाय **(स्वाहा)** **(भुवनस्य, पतये)** सर्वजगत्स्वामिने **(स्वाहा)** **(अधिपतये)** सर्वाधिष्ठात्रे **(स्वाहा)** **(प्रजापतये)** सर्वप्रजापालकाय **(स्वाहा)**॥३२॥

अन्वय:-भो मनुष्या:! यूयं वाजाय स्वाहा प्रसवाय स्वाहाऽपिजाय स्वाहा क्रतवे स्वाहा स्व: स्वाहा मूर्ध्ने स्वाहा व्यश्नुविने स्वाहाऽऽन्त्याय स्वाहान्त्याय भौवनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहाऽधिपतये स्वाहा प्रजापतये स्वाहा च सदा प्रयुञ्जीध्वम्॥३२॥

भावार्थः-ये मनुष्या अन्नापत्यगृहप्रज्ञामूर्धादिशोधनेन सुखवर्द्धनाय सत्यां क्रियां कुर्वन्ति, ते परमात्मानमुपास्य प्रजाऽधिपतयो भवन्ति॥३२॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम **(वाजाय)** अन्न के लिये **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया **(प्रसवाय)** पदार्थों की उत्पत्ति करने के लिये **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया **(अपिजाय)** घर के लिये **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया **(क्रतवे)** बुद्धि वा कर्म के लिये **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया **(स्वः)** अत्यन्त सुख के लिये **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया **(मूर्ध्ने)** शिर की शुद्धि होने के लिये **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया **(व्यश्नुविने)** व्याप्त होने वाले वीर्य के लिये **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया **(आन्त्याय)** व्यवहारों के अन्त में होने वाले व्यवहार के लिये **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया **(आन्त्याय)** अन्त में होने वाले **(भौवनाय)** जो संसार में प्रसिद्ध होता उस के लिये **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया **(भुवनस्य)** संसार की **(पतये)** पालना करने वाले स्वामी के लिये **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया **(अधिपतये)** सब के अधिष्ठाता अर्थात् सब पर जो एक शिक्षा देता है, उसके लिये **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया तथा **(प्रजापतये)** सब प्रजाजनों की पालना करने वाले के लिये **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया को सदा भलीभांति युक्त करो॥३२॥

भावार्थः-जो मनुष्य अन्न, सन्तान, नर, बुद्धि और शिर आदि के शोधन से सुख बढ़ाने के लिये सत्यक्रिया को करते हैं, वे परमात्मा की उपासना करके प्रजा के अधिक पालना करने वाले होते हैं॥३२॥

आयुर्यज्ञेनेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। आयुरादयो देवताः। आद्यस्य भुरिक्कृतिश्छन्दः। निषादः स्वरः।
वाग्यज्ञेनेत्युत्तरस्य भुरिगतिधृतिश्छन्दः। षड्जः स्वरः॥

मनुष्यैः स्वकीयं सर्वस्वं कस्यानुष्ठानाय समर्प्पणीयमित्याह॥

मनुष्यों को अपना सर्वस्व अर्थात् सब पदार्थसमूह किसके अनुष्ठान के लिये भलीभांति अर्पण करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आयुर्यज्ञेन कल्पताᳬं स्वाहा प्राणो यज्ञेन कल्पताᳬं स्वाहाऽपानो यज्ञेन कल्पताᳬं स्वाहा व्यानो यज्ञेन कल्पताᳬं स्वाहोदानो यज्ञेन कल्पताᳬं स्वाहा समानो यज्ञेन कल्पताᳬं स्वाहा चक्षुर्यज्ञेन कल्पताᳬं स्वाहा श्रोत्रं यज्ञेन कल्पताᳬं स्वाहा वाग्यज्ञेन कल्पताᳬं स्वाहा मनो यज्ञेन कल्पताᳬं स्वाहाऽऽत्मा यज्ञेन कल्पताᳬं स्वाहा ब्रह्मा यज्ञेन कल्पताᳬं स्वाहा ज्योतिर्यज्ञेन कल्पताᳬं स्वाहा स्वर्यज्ञेन कल्पताᳬं स्वाहा पृष्ठं यज्ञेन कल्पताᳬं स्वाहा यज्ञो यज्ञेन कल्पताᳬं स्वाहा॥३३॥

आयुः। यज्ञेन। कल्पताम्। स्वाहा। प्राणः। यज्ञेन। कल्पताम्। स्वाहा। अपान इत्यपऽआनः। यज्ञेन। कल्पताम्। स्वाहा। व्यान इति विऽआनः। यज्ञेन। कल्पताम्। स्वाहा। उदान इत्युत्ऽआनः। यज्ञेन। कल्पताम्। स्वाहा। समान इति सम्ऽआनः। यज्ञेन। कल्पताम्। स्वाहा। चक्षुः। यज्ञेन। कल्पताम्। स्वाहा। श्रोत्रम्। यज्ञेन। कल्पताम्। स्वाहा। वाग्। यज्ञेन। कल्पताम्। स्वाहा। मनः। यज्ञेन। कल्पताम्। स्वाहा। आत्मा। यज्ञेन। कल्पताम्। स्वाहा। ब्रह्मा। यज्ञेन।

कल्पताम्। स्वाहा। ज्योतिः। यज्ञेन। कल्पताम्। स्वाहा। स्वरिति स्वः। यज्ञेन। कल्पताम्। स्वाहा। पृष्ठम्। यज्ञेन। कल्पताम्। स्वाहा। यज्ञः। यज्ञेन। कल्पताम्। स्वाहा॥३३॥

पदार्थः-(**आयुः**) एति जीवनं येन तत् (**यज्ञेन**) परमेश्वरस्य विदुषां च सत्करणेन संगतेन कर्मणा विद्यादिदानेन सह (**कल्पताम्**) समर्प्पयतु (**स्वाहा**) सत्क्रियया (**प्राणः**) जीवनमूलो वायुः (**यज्ञेन**) योगाभ्यासादिना (**कल्पताम्**) (**स्वाहा**) (**अपानः**) अपानयति दुःखं येन सः (**यज्ञेन**) (**कल्पताम्**) (**स्वाहा**) (**व्यानः**) सर्वसंधिषु व्याप्तश्चेष्टानिमित्तः (**यज्ञेन**) (**कल्पताम्**) (**स्वाहा**) (**उदानः**) उदानिति बलयति येन सः (**यज्ञेन**) (**कल्पताम्**) (**स्वाहा**) (**समानः**) समानयति रसं येन सः (**यज्ञेन**) (**कल्पताम्**) (**स्वाहा**) (**चक्षुः**) नेत्रम् (**यज्ञेन**) (**कल्पताम्**) (**स्वाहा**) (**श्रोत्रम्**) ज्ञानेन्द्रियाणामुपलक्षणम् (**यज्ञेन**) (**कल्पताम्**) (**स्वाहा**) (**वाक्**) कर्मेन्द्रियाणामुपलक्षणम् (**यज्ञेन**) (**कल्पताम्**) (**स्वाहा**) (**मनः**) अन्तःकरणम् (**यज्ञेन**) (**कल्पताम्**) (**स्वाहा**) (**आत्मा**) जीवः (**यज्ञेन**) (**कल्पताम्**) (**स्वाहा**) (**ब्रह्मा**) चतुर्वेदवित् (**यज्ञेन**) (**कल्पताम्**) (**स्वाहा**) (**ज्योतिः**) ज्ञानप्रकाशः (**यज्ञेन**) (**कल्पताम्**) (**स्वाहा**) (**स्वः**) सुखम् (**यज्ञेन**) (**कल्पताम्**) (**स्वाहा**) (**पृष्ठम्**) प्रश्नं शिष्टं च (**यज्ञेन**) (**कल्पताम्**) (**स्वाहा**) (**यज्ञः**) व्यापकः परमेश्वरः। **'यज्ञो वै विष्णुः'** इति शतपथे (**यज्ञेन**) परमात्मना (**कल्पताम्**) (**स्वाहा**)॥३३॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! युष्माभिरेवमेषितव्यमस्माकमायुः स्वाहा यज्ञेन सह कल्पतां प्राणः स्वाहा यज्ञेन सह कल्पतामपानः स्वाहा यज्ञेन सह कल्पतां व्यानः स्वाहा यज्ञेन सह कल्पतामुदानः स्वाहा यज्ञेन सह कल्पतां समानः स्वाहा यज्ञेन सह कल्पतां चक्षुः स्वाहा यज्ञेन सह कल्पतां श्रोत्रं स्वाहा यज्ञेन सह कल्पतां वाक्स्वाहा यज्ञेन सह कल्पतां मनः स्वाहा यज्ञेन साकं कल्पतामात्मा स्वाहा यज्ञेन सह कल्पतां ब्रह्मा स्वाहा यज्ञेन सह कल्पतां ज्योतिः स्वाहा यज्ञेन सह कल्पतां स्वः स्वाहा यज्ञेन सह कल्पतां पृष्ठं स्वाहा यज्ञेन सह कल्पतां यज्ञः स्वाहा सह कल्पतामिति॥३३॥

भावार्थः-मनुष्यैर्यावज्जीवनं शरीरं प्राण अन्तःकरणमिन्द्रियाणि सर्वोत्तमा सामग्री च यज्ञाय विधेया येन निष्पापाः कृतकृत्वा भूत्वा परमात्मानं प्राप्येहाऽमुत्र सुखं प्राप्नुयुः॥३३॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम को ऐसी इच्छा करनी चाहिये कि हमारी (**आयुः**) आयु कि जिससे हम जीते हैं, वह (**स्वाहा**) अच्छी क्रिया से (**यज्ञेन**) परमेश्वर और विद्वानों के सत्कार से मिले हुए कर्म, विद्या देने आदि के साथ (**कल्पताम्**) समर्पित हो (**प्राणः**) जीवाने का मूल मुख्य कारण पवन (**स्वाहा**) अच्छी क्रिया और (**यज्ञेन**) योगाभ्यास आदि के साथ (**कल्पताम्**) समर्पित हो (**अपानः**) जिससे दुःख को दूर करता है, वह पवन (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया से (**यज्ञेन**) श्रेष्ठ काम के साथ (**कल्पताम्**) समर्पित हो (**व्यानः**) सब सन्धियों में व्याप्त अर्थात् शरीर को चलाने कर्म कराने आदि का जो निमित्त है, वह पवन (**स्वाहा**) अच्छी क्रिया से (**यज्ञेन**) उत्तम काम के साथ (**कल्पताम्**) समर्पित हो (**उदानः**) जिससे बली होता है, वह पवन (**स्वाहा**) अच्छी क्रिया से (**यज्ञेन**) उत्तम कर्म के साथ (**कल्पताम्**) समर्पित हो (**समानः**) जिससे

अङ्ग-अङ्ग में अन्न पहुंचाया जाता है, वह पवन **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया से **(यज्ञेन)** यज्ञ के साथ **(कल्पताम्)** समर्पित हो **(चक्षु:)** नेत्र **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया से **(यज्ञेन)** सत्कर्म के साथ **(कल्पताम्)** समर्पित हो **(श्रोत्रम्)** कान आदि इन्द्रियाँ, जो कि पदार्थों का ज्ञान कराती हैं **(स्वाहा)** अच्छी क्रिया से **(यज्ञेन)** सत्कर्म के साथ **(कल्पताम्)** समर्पित हों **(वाक्)** वाणी आदि कर्मेन्द्रियाँ **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया से **(यज्ञेन)** अच्छे काम के साथ **(कल्पताम्)** समर्पित हों **(मन:)** मन अर्थात् अन्त:करण **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया से **(यज्ञेन)** सत्कर्म के साथ **(कल्पताम्)** समर्पित हो **(आत्मा)** जीव **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया से **(यज्ञेन)** सत्कर्म के साथ **(कल्पताम्)** समर्पित हो **(ब्रह्मा)** चार वेदों का जानने वाला **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया से **(यज्ञेन)** यज्ञादि सत्कर्म के साथ **(कल्पताम्)** समर्थ हो **(ज्योति:)** ज्ञान का प्रकाश **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया से **(यज्ञेन)** यज्ञ के साथ **(कल्पताम्)** समर्पित हो **(स्व:)** सुख **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया से **(यज्ञेन)** यज्ञ के साथ **(कल्पताम्)** समर्पित हो **(पृष्ठम्)** पूछना वा जो बचा हुआ पदार्थ हो वह **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया से **(यज्ञेन)** यज्ञ के साथ **(कल्पताम्)** समर्पित हो **(यज्ञ:)** यज्ञ अर्थात् व्यापक परमात्मा **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया से **(यज्ञेन)** अपने साथ **(कल्पताम्)** समर्पित हो॥३३॥

भावार्थ:-मनुष्यों को चाहिये कि जितना अपना जीवन शरीर, प्राण, अन्त:करण, दशों इन्द्रियाँ और सब से उत्तम सामग्री हो, उसको यज्ञ के लिये समर्पित करें, जिससे पापरहित कृतकृत्य होके परमात्मा को प्राप्त होकर इस जन्म और द्वितीय जन्म में सुख को प्राप्त होवें॥३३॥

एकस्मा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि:। यज्ञो देवता। भुरिगुष्णिक् छन्द:। ऋषभ: स्वर:॥

पुन: किमर्थो यज्ञोऽनुष्ठातव्य इत्याह॥

फिर किसके अर्थ यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

एकस्मै स्वाहा द्वाभ्याᳬ स्वाहा शताय स्वाहैकशताय स्वाहा व्युष्ट्यै स्वाहा स्वर्गाय स्वाहा॥ ३४॥

एकस्मै। स्वाहा। द्वाभ्याम्। स्वाहा। शताय। स्वाहा। एकशतायेत्येकऽशताय। स्वाहा। व्युष्ट्या इति विऽउष्ट्यै। स्वाहा। स्वर्गायेति स्व:ऽगाय। स्वाहा॥ ३४॥

पदार्थ:-**(एकस्मै)** अद्वितीयाय परमात्मने **(स्वाहा)** सत्या क्रिया **(द्वाभ्याम्)** कार्यकारणाभ्याम् **(स्वाहा)** **(शताय)** असंख्याताय पदार्थाय **(स्वाहा)** **(एकशताय)** एकाधिकाय शताय **(स्वाहा)** **(व्युष्ट्यै)** प्रदीप्तायै दाहक्रियायै **(स्वाहा)** **(स्वर्गाय)** सुखगमकाय पुरुषार्थाय **(स्वाहा)**॥३४॥

अन्वय:-हे मनुष्या:! युष्माभिरेकस्मै स्वाहा द्वाभ्यां स्वाहा शताय स्वाहैकशताय स्वाहा व्युष्ट्यै स्वाहा स्वर्गाय स्वाहा च संप्रयोज्या॥३४॥

भावार्थः-मनुष्यैर्भक्तिविशेषेणाऽद्वितीय ईश्वरः प्रेमपुरुषार्थाभ्यामसंख्याता जीवाश्च प्रसन्नाः कार्य्या, येनाऽऽभ्युदयिकनैःश्रेयसिके सुखे प्राप्येतामिति॥३४॥

अत्रायुर्वृद्ध्यग्नियज्ञगायत्र्यर्थसर्वपदार्थशोधनविधानादिवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वोध्यायोक्तार्थेन सह सङ्गतिर्वेद्या॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम लोगों को **(एकस्मै)** एक अद्वितीय परमात्मा के लिये **(स्वाहा)** सत्य क्रिया **(द्वाभ्याम्)** दो अर्थात् कार्य और कारण के लिये **(स्वाहा)** सत्यक्रिया **(शताय)** अनेक पदार्थों के लिये **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया **(एकशताय)** एक सौ एक व्यवहार वा पदार्थों के लिये **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया **(व्युष्ट्यै)** प्रकाशित हुई पदार्थों को जलाने की क्रिया के लिये **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया और **(स्वर्गाय)** सुख को प्राप्त होने के लिये **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया भलीभांति युक्त करनी चाहिये॥३४॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि विशेष भक्ति से जिसके समान दूसरा नहीं, वह ईश्वर तथा प्रीति और पुरुषार्थ से असंख्य जीवों को प्रसन्न करें, जिससे संसार का सुख और मोक्ष सुख प्राप्त होवे॥३४॥

इस अध्याय में आयु, वृद्धि, अग्नि के गुण, कर्म, यज्ञ, गायत्री मन्त्र का अर्थ और सब पदार्थों के शोधने के विधान आदि का वर्णन होने से इस अध्याय के अर्थ की पिछले अध्याय के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां श्रीमन्महाविदुषां विरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचिते संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां विभूषिते यजुर्वेदभाष्ये द्वाविंशोऽध्यायः समाप्तः॥२२॥

॥ओ३म्॥

अथ त्रयोविंशोऽध्यायारम्भः

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव। यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व॥ यजु० ३०.३॥

हिरण्यगर्भेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। परमेश्वरो देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथेश्वरः किं करोतीत्याह॥

अब तेईसवें अध्याय का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में ईश्वर क्या करता है, इस विषय को कहा है॥

हि॒र॒ण्य॒ग॒र्भः सम॑वर्त्त॒ताग्रे॑ भू॒तस्य॑ जा॒तः पति॒रेक॑ऽआसीत्।
स दा॑धार पृथि॒वीं द्यामु॒तेमां कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम॥ १॥

हि॒र॒ण्य॒ग॒र्भ इति॑ हिरण्यऽग॒र्भः। सम्। अ॒व॒र्त्त॒त॒। अग्रे॑। भू॒तस्य॑। जा॒तः। पति॑ः। एक॑ः। आ॒सी॒त्। सः। दा॒धा॒र॒। पृ॒थि॒वीम्। द्याम्। उ॒त। इ॒माम्। कस्मै॑। दे॒वाय॑। ह॒विषा॑। वि॒धे॒म॒॥ १॥

पदार्थः-(**हिरण्यगर्भः**) हिरण्यानि सूर्य्यादीनि ज्योतींषि गर्भे यस्य कारणरूपस्य सः (**सम्**) सम्यक् (**अवर्त्तत**) (**अग्रे**) सृष्टेः प्राक् (**भूतस्य**) उत्पन्नस्य कार्य्यरूपस्य (**जातः**) प्रादुर्भूतः (**पतिः**) स्वामी (**एकः**) असहायोऽद्वितीयेश्वरः (**आसीत्**) (**सः**) (**दाधार**) धृतवान् धरति धरिष्यति वा। अत्र **तुजादीनाम्** [अ०६.१.७] इत्यभ्यासदैर्घ्यम् (**पृथिवीम्**) विस्तीर्णां भूमिम् (**द्याम्**) सूर्य्यादिकां सृष्टिम् (**उत**) (**इमाम्**) प्रत्यक्षाम् (**कस्मै**) सुखस्वरूपाय (**देवाय**) सर्वसुखप्रदात्रे परमात्मने (**हविषा**) आत्मादिसर्वस्वदानेन (**विधेम**) परिचरेम सेवेमहि। **विधेमेति परिचरणकर्मा०॥** (निघं ३।४)॥१॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यो भूतस्य जगतोऽग्रे हिरण्यगर्भः समवर्त्तताऽस्य सर्वस्यैको जातः पतिरासीत् स इमां पृथिवीमुत द्यां दाधार तस्मै कस्मै देवाय यथा वयं हविषा विधेम तथा यूयमपि विधत्त॥१॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यदा सृष्टिः प्रलयं गत्वा प्रकृतिस्था भवति, पुनरुत्पद्यते तस्या अग्रे य एकः परमात्मा जाग्रन् सन् भवति, तदानीं सर्वे जीवा मूर्छिता इव भवन्ति। स कल्पान्ते प्रकाशरहितां पृथिव्यादिरूपां प्रकाशसहितां सूर्यादिलोकप्रभृति सृष्टिं विधाय धृत्वा सर्वेषां कर्मानुकूलतया जन्मानि दत्त्वा सर्वेषां निर्वाहाय सर्वान् पदार्थान् विधत्ते, स एव सर्वैरुपासनीयो देवोऽस्तीति वेद्यम्॥१॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो (**भूतस्य**) उत्पन्न कार्यरूप जगत् के (**अग्रे**) पहिले (**हिरण्यगर्भः**) सूर्य, चन्द्र, तारे आदि ज्योति गर्भरूप जिसके भीतर हैं, वह सूर्य आदि कारणरूप पदार्थों में गर्भ के समान व्यापक स्तुति करने योग्य (**समवर्त्तत**) अच्छे प्रकार वर्त्तमान और इस सब जगत् का (**एकः**) एक ही (**जातः**) प्रसिद्ध (**पतिः**) पालना करनेहारा (**आसीत्**) होता है (**सः**) वह (**इमाम्**) इस (**पृथिवीम्**)

विस्तारयुक्त पृथिवी **(उत)** और **(द्याम्)** सूर्य आदि लोकों को रचके इनको **(दाधार)** तीनों काल में धारण करता है, उस **(कस्मै)** सुखस्वरूप **(देवाय)** सुख देनेहारे परमात्मा के लिये जैसे हम लोग **(हविषा)** सर्वस्व दान करके उस की **(विधेम)** परिचर्या सेवा करें, वैसे तुम भी किया करो॥१॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जब सृष्टि प्रलय को प्राप्त होकर प्रकृति में स्थिर होती है और फिर उत्पन्न होती है, उस के आगे जो एक जागता हुआ परमात्मा वर्त्तमान रहता है, तब सब जीव मूर्छा सी पाये हुए होते हैं। वह कल्प के अन्त में प्रकाशरहित पृथिवी आदि सृष्टि तथा प्रकाशसहित सूर्य आदि लोकों की सृष्टि का विधान, धारण और सब जीवों के कर्मों के अनुकूल जन्म देकर सब के निर्वाह के लिये सब पदार्थों का विधान करता है, वही सब को उपासना करने योग्य देव है, यह जानना चाहिये॥१॥

उपयामगृहीत इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। परमेश्वरो देवता। निचृदाकृतिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उपयामगृहीतोऽसि प्रजापतये त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिः सूर्य्यस्ते महिमा। यस्तेऽहन्त्संवत्सरे महिमा सम्बभूव यस्ते वायावन्तरिक्षे महिमा सम्बभूव यस्ते दिवि सूर्ये महिमा सम्बभूव तस्मै। ते महिम्ने प्रजापतये स्वाहा देवेभ्यः॥२॥

उपयामगृहीत इत्युपयामऽगृहीतः। असि। प्रजापतय इति प्रजाऽपतये। त्वा। जुष्टम्। गृह्णामि। एषः। ते। योनिः। सूर्य्यः। ते। महिमा। यः। ते। अहन्। संवत्सरे। महिमा। सम्बभूवेति सम्ऽबभूव। यः। ते। वायौ। अन्तरिक्षे। महिमा। सम्बभूवेति सम्ऽबभूव। यः। ते। दिवि। सूर्य्ये। महिमा। सम्बभूवेति सम्ऽबभूव। तस्मै। ते। महिम्ने। प्रजापतय इति प्रजाऽपतये। स्वाहा। देवेभ्यः॥२॥

पदार्थः-**(उपयामगृहीतः)** यो यामैर्यमसम्बन्धिभिः कर्मभिरुपसमीपे गृहीतः साक्षात्कृतः **(असि)** **(प्रजापतये)** प्रजापालकाय राज्ञे **(त्वा)** त्वाम् **(जुष्टम्)** वीतं सेवितं वा **(गृह्णामि)** **(एषः)** **(ते)** तव **(योनिः)** जगत्कारणं प्रकृतिः **(सूर्यः)** सवितृमण्डलम् **(ते)** तव **(महिमा)** माहात्म्यम् **(यः)** **(ते)** तव **(अहन्)** दिने **(संवत्सरे)** वर्षे **(महिमा)** **(सम्बभूव)** सम्भूतोऽस्ति **(यः)** **(ते)** **(वायौ)** **(अन्तरिक्षे)** **(महिमा)** **(सम्बभूव)** **(यः)** **(ते)** **(दिवि)** विद्युति सूर्यप्रकाशे वा **(सूर्ये)** **(महिमा)** **(सम्बभूव)** **(तस्मै)** **(ते)** तुभ्यम् **(महिम्ने)** महतो भावाय **(प्रजापतये)** प्रजापालकाय **(स्वाहा)** सद्विद्यायुक्ता प्रज्ञा **(देवेभ्यः)** विद्वद्भ्यः॥२॥

अन्वयः-हे भगवन् जगदीश्वर! यस्त्वमुपयामगृहीतोऽसि तं जुष्टं त्वा प्रजापतयेऽहं गृह्णामि यस्य ते एष योनिरस्ति यस्ते सूर्या महिमा यस्तेऽहन् संवत्सरे महिमा सम्बभूव तस्मै महिम्ने प्रजापतये ते देवेभ्यश्च स्वाहा सर्वैः संग्राह्या॥२॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यस्य परमेश्वरस्येदं सर्वं जगन्महिमानं प्रकाशयति तस्योपासनां विहायान्यस्य कस्यचित् तस्य स्थाने चोपासना नैव कार्या। यः कश्चिद् ब्रूयात् परमेश्वरस्य सत्त्वे किं प्रमाणमिति तं प्रति यदिदं जगद्वर्त्तते तत्सर्वं परमेश्वरं प्रमाणयतीत्युत्तरं देयम्॥२॥

पदार्थः-हे भगवन् जगदीश्वर! जो आप (**उपयामगृहीतः**) यम जो योगाभ्यास सम्बन्धी काम है, उन से समीप में साक्षात् किये अर्थात् हृदयाकाश में प्रगट किये हुए (**असि**) हैं, उन (**जुष्टम्**) सेवा किये हुए वा प्रसन्न किये (**त्वा**) आपको (**प्रजापतये**) प्रजापालन करने हारे राजा की रक्षा के लिये मैं (**गृह्णामि**) ग्रहण करता हूँ जिन (**ते**) आपकी (**एषः**) यह (**योनिः**) प्रकृति जगत् का कारण है, जो (**ते**) आपका (**सूर्यः**) सूर्यमण्डल (**महिमा**) बड़ाई रूप तथा (**यः**) जो (**ते**) आपकी (**अहन्**) दिन और (**संवत्सरे**) वर्ष में नियम बन्धन द्वारा (**महिमा**) बड़ाई (**सम्बभूव**) संभावित है (**यः**) जो (**ते**) आपकी (**वायौ**) पवन और (**अन्तरिक्षे**) अन्तरिक्ष में (**महिमा**) बड़ाई (**सम्बभूव**) प्रसिद्ध है तथा (**यः**) जो (**ते**) आपकी (**दिवि**) बिजुली अर्थात् सूर्य आदि के प्रकाश और (**सूर्ये**) सूर्य में (**महिमा**) बड़ाई (**सम्बभूव**) प्रत्यक्ष है (**तस्मै**) उस (**महिम्ने, प्रजापतये**) प्रजापालनरूप बड़ाई वाले (**ते**) आप के लिये और (**देवेभ्यः**) विद्वानों के लिये (**स्वाहा**) उत्तम विद्यायुक्त बुद्धि सब को ग्रहण करनी चाहिये॥२॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जिस परमेश्वर के महिमा को यह सब जगत् प्रकाश करता है, उस परमेश्वर की उपासना को छोड़ और किसी की उपासना उसके स्थान में नहीं करनी चाहिये और जो कोई कहे कि परमेश्वर के होने में क्या प्रमाण है, उसके प्रति जो यह जगत् वर्त्तमान है सो सब परमेश्वर का प्रमाण कराता है, यह उत्तर देना चाहिये॥२॥

यः प्राणत इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। परमेश्वरो देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यः प्रा॑ण॒तो नि॑मिष॒तो म॑हि॒त्वैक॒ऽइद्राजा॒ जग॑तो ब॒भूव॑।

यऽईशे॑ऽअ॒स्य द्वि॒पद॒श्चतु॑ष्पद॒: कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम॥३॥

यः। प्रा॒ण॒तः। नि॒मि॒ष॒त इति॑ निऽमि॒षतः। म॒हि॒त्वेति॑ महिऽत्वा। एकः॑। इत्। राजा॑। जग॑तः। ब॒भूव॑। यः। ईशे॑। अ॒स्य। द्वि॒पद॒ इति॑ द्विऽपदः॑। चतु॑ष्पदः। चतु॑ःपद इति॒ चतु॑ःपदः। कस्मै॑। दे॒वाय॑। ह॒विषा॑। वि॒धे॒म॒॥३॥

पदार्थः-(**यः**) परमात्मा (**प्राणतः**) प्राणिनः (**निमिषतः**) नेत्रादिना चेष्टां कुर्वतः (**महित्वा**) स्वमहिम्ना(**एकः**) अद्वितीयोऽसहायः (**इत्**) एव (**राजा**) अधिष्ठाता (**जगतः**) संसारस्य (**बभूव**) (**यः**) (**ईशे**) ईष्टे (**अस्य**) (**द्विपदः**) मनुष्यादेः (**चतुष्पदः**) गवादेः (**कस्मै**) आनन्दरूपाय (**देवाय**) कमनीयाय (**हविषा**) भक्तिविशेषेण (**विधेम**) परिचरेम॥३॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा वयं य एक इन्महित्वा निमिषतः प्राणतो द्विपदश्चतुष्पदोऽस्य जगतो राजा बभूव, योऽस्येशे तस्मै कस्मै देवाय हविषा विधेम तथाऽस्य भक्तिविशेषो भवद्भिर्विधेयः॥३॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे मनुष्याः! य एक एव सर्वस्य जगतो महाराजाधिराजोऽखिलजगन्निर्माता सकलैश्वर्ययुक्तो महात्मा न्यायाधीशोऽस्ति तस्यैवोपासनेन धर्मार्थकाममोक्षफलानि प्राप्य भवन्तः सन्तुष्यन्तु॥३॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे हम लोग **(यः)** जो **(एकः)** एक **(इत्)** ही **(महित्वा)** अपनी महिमा से **(निमिषतः)** नेत्र आदि से चेष्टा को करते हुए **(प्राणतः)** प्राणी रूप **(द्विपदः)** दो पग वाले मनुष्य आदि वा **(चतुष्पदः)** चाद पग वाले गौ आदि पशुसम्बन्धी इस **(जगतः)** संसार का **(राजा)** अधिष्ठाता **(बभूव)** होता है और **(यः)** जो **(अस्य)** इस संसार का **(ईशे)** सर्वोपरि स्वामी है, उस **(कस्मै)** आनन्दस्वरूप **(देवाय)** अतिमनोहर परमेश्वर की **(हविषा)** विशेष भक्तिभाव से **(विधेम)** सेवा करें, वैसे विशेष भक्तिभाव का आप लोगों को भी विधान करना चाहिये॥३॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जो एक ही सब जगत् का महाराजाधिराज, समस्त जगत् का उत्पन्न करनेहारा सकल ऐश्वर्ययुक्त महात्मा न्यायाधीश है, उसी की उपासना से तुम सब धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के फलों को पाकर सन्तुष्ट होओ॥३॥

उपयामगृहीत इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। परमेश्वरो देवता। विकृतिश्छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उपयामगृहीतोऽसि प्रजापतये त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिश्चन्द्रमास्ते महिमा। यस्ते रात्रौ संवत्सरे महिमा सम्बभूव यस्ते पृथिव्यामग्नौ महिमा सम्बभूव यस्ते नक्षत्रेषु चन्द्रमसि महिमा सम्बभूव तस्मै ते महिम्ने प्रजापतये देवेभ्यः स्वाहा॥४॥

उपयामगृहीत इत्युपयामऽगृहीतः। असि। प्रजापतय इति प्रजाऽपतये। त्वा। जुष्टम्। गृह्णामि। एषः। ते। योनिः। चन्द्रमाः। ते। महिमा। यः। ते। रात्रौ। संवत्सरे। महिमा। सम्बभूवेति सम्ऽबभूव। यः। ते। पृथिव्याम्। अग्नौ। महिमा। सम्बभूवेति सम्ऽबभूव। यः। ते। नक्षत्रेषु। चन्द्रमसि। महिमा। सम्बभूवेति सम्ऽबभूव। तस्मै। ते। महिम्ने। प्रजापतय इति प्रजाऽपतये। देवेभ्यः। स्वाहा॥४॥

पदार्थः-**(उपयामगृहीतः)** उपयामेन सत्कर्मणा योगाभ्यासेन गृहीतः स्वीकृतः **(असि)** **(प्रजापतये)** प्रजापालकाय **(त्वा)** त्वाम् **(जुष्टम्)** सेवितम् **(गृह्णामि)** **(एषः)** **(ते)** तव सृष्टौ **(योनिः)** जलम्। **योनिरित्युदकनामसु पठितम्॥** (निघं०१।१२) **(चन्द्रमाः)** चन्द्रलोकः **(ते)** तव **(महिमा)** **(यः)** **(ते)** तव **(रात्रौ)** **(संवत्सरे)** **(महिमा)** **(सम्बभूव)** **(यः)** **(ते)** तव **(पृथिव्याम्)** अन्तरिक्षे भूमौ वा **(अग्नौ)** विद्युति

(महिमा) (सम्बभूव) (यः) (ते) तव **(नक्षत्रेषु)** कारणरूपेण नाशरहितेषु लोकान्तरेषु **(चन्द्रमसि)** चन्द्रलोके **(महिमा) (सम्बभूव) (तस्मै) (ते)** तव **(महिम्ने) (प्रजापतये) (देवेभ्यः) (स्वाहा)** सत्याचरणयुक्ता क्रिया॥४॥

अन्वयः-हे जगदीश्वर! यस्त्वमुपयामगृहीतोऽसि तं त्वा जुष्टं प्रजापतयेऽहं गृह्णामि, यस्य ते सृष्टावेष योनिर्जलं, यस्य ते सृष्टौ चन्द्रमा महिमा यस्य ते यो रात्रौ संवत्सरे महिमा च सम्बभूव, यस्ते सृष्टौ पृथिव्यामग्नौ महिमा सम्बभूव, यस्य ते सृष्टौ यो नक्षत्रेषु चन्द्रमसि च महिमा सम्बभूव तस्य ते तस्मै महिम्ने प्रजापतये देवेभ्यश्च स्वाहाऽस्माभिरनुष्ठेया॥४॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यस्य महिम्ना सामर्थ्येन सर्वं जगद्विराजते यस्यानन्तो महिमास्ति यस्य सिद्धौ रचनाविशिष्टं सर्वं जगदृष्टान्तमस्ति, तमेव सर्वे मनुष्या उपासीरन्॥४॥

पदार्थः-हे जगदीश्वर! जो आप **(उपयामगृहीतः)** सत्कर्म अर्थात् योगाभ्यास आदि उत्तम काम से स्वीकार किये हुए **(असि)** हो, उन **(त्वा, जुष्टम्)** सेवा किये हुए आपको **(प्रजापतये)** प्रजा की पालना करने वाले राजा की रक्षा के लिये मैं **(गृह्णामि)** ग्रहण करता अर्थात् मन में धरता हूँ, जिन **(ते)** आप के संसार में **(एषः)** यह **(योनिः)** जल वा जिन **(ते)** आपका संसार में **(चन्द्रमाः)** चन्द्रलोक **(महिमा)** बड़प्पन वा जिन **(ते)** आपका **(यः)** जो **(रात्रौ)** रात्रि और **(संवत्सरे)** वर्ष में **(महिमा)** बड़प्पन **(सम्बभूव)** सम्भव हुआ, होता और होगा **(यः)** जो **(ते)** आपकी सृष्टि में **(पृथिव्याम्)** अन्तरिक्ष वा भूमि और **(अग्नौ)** आग में **(महिमा)** बड़प्पन **(सम्बभूव)** सम्भव हुआ, होता और होगा तथा जिन **(ते)** आपकी सृष्टि में **(यः)** जो **(नक्षत्रेषु)** कारण रूप से विनाश को न प्राप्त होने वाले लोक-लोकान्तरों में और **(चन्द्रमसि)** चन्द्रलोक में **(महिमा)** बड़प्पन **(सम्बभूव)** सम्भव हुआ, होता और होगा उन **(ते)** आप के **(तस्मै)** उस **(महिम्ने)** बड़प्पन **(प्रजापतये)** प्रजा पालने हारे राजा **(देवेभ्यः)** और विद्वानों के लिये **(स्वाहा)** सत्याचरणयुक्त क्रिया का हम लोगों को अनुष्ठान करना चाहिये॥४॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जिसके महिमा सामर्थ्य से सब जगत् विराजमान, जिसका अनन्त महिमा और जिसकी सिद्धि करने में रचना से भरा हुआ समस्त जगत् दृष्टान्त है, उसी की सब मनुष्य उपासना करें॥४॥

युञ्जन्तीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। परमेश्वरो देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनरीश्वरः कीदृशोऽस्तीत्याह॥

फिर ईश्वर कैसा है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः। रोचन्ते रोचना दिवि॥५॥

युञ्जन्ति। ब्रध्नम्। अरुषम्। चरन्तरम्। परि। तस्थुषः। रोचन्ते। रोचनाः। दिवि॥५॥

पदार्थः-(**युञ्जन्ति**) युक्तं कुर्वन्ति (**ब्रध्नम्**) महान्तम् (**अरुषम्**) अरुःषु मर्मसु सीदन्तम् (**चरन्तम्**) प्राप्नुवन्तम् (**परि**) सर्वतः (**तस्थुषः**) स्थावरान् (**रोचन्ते**) प्रकाशन्ते (**रोचनाः**) दीप्तयः (**दिवि**)॥५॥

अन्वयः-ये परितस्थुषश्चरन्तं विद्युतमिव वर्त्तमानमरुषं ब्रध्नम्परमात्मानमात्मना सह युञ्जन्ति, ते दिवि सूर्ये रोचनाः किरणा इव रोचन्ते॥५॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यथा प्रतिब्रह्माण्डे सूर्यः प्रकाशते तथा सर्वस्मिन् जगति परमात्मा प्रकाशते। ये योगाभ्यासेनाऽन्तर्यामिणं परमात्मानं स्वमात्मना युञ्जते ते सर्वतः प्रकाशिता जायन्ते॥५॥

पदार्थः-जो पुरुष (**परि**) सब ओर से (**तस्थुषः**) स्थावर जीवों को (**चरन्तम्**) प्राप्त होते हुए बिजुली के समान वर्त्तमान (**अरुषम्**) प्राणियों के मर्मस्थल जिनमें पीड़ा होने से प्राण का वियोग शीघ्र हो जाता है, उन स्थानों की रक्षा करने के लिये स्थिर होते हुए (**ब्रध्नम्**) सबसे बड़े सर्वोपरि विराजमान परमात्मा को अपने आत्मा के साथ (**युञ्जन्ति**) युक्त करते हैं, वे (**दिवि**) सूर्य में (**रोचनाः**) किरणों के समान (**रोचन्ते**) परमात्मा में प्रकाशमान होते हैं॥५॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जैसे प्रत्येक ब्रह्माण्ड में सूर्य प्रकाशमान है, वैसे सर्व जगत् में परमात्मा प्रकाशमान है। जो योगाभ्यास से उस अन्तर्यामी परमेश्वर को अपने आत्मा से युक्त करते हैं, वे सब ओर से प्रकाश को प्राप्त होते हैं॥५॥

युञ्जन्त्यस्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। सूर्यो देवता। विराड्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अथ केनेश्वरः प्राप्तव्य इत्याह॥

अब किससे ईश्वर की प्राप्ति होने योग्य है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे।
शोणा धृष्णू नृवाहसा॥६॥

युञ्जन्ति। अस्य। काम्या। हरीऽइति हरी। विपक्षसेति विऽपक्षसा। रथे। शोणा। धृष्णूऽइति धृष्णू। नृवाहसेति नृऽवाहसा॥६॥

पदार्थः-(**युञ्जन्ति**) (**अस्य**) जीवस्य (**काम्या**) कमनीयौ (**हरी**) हरणशीलौ (**विपक्षसा**) विविधैः परिगृहीतौ (**रथे**) याने (**शोणा**) रक्तगुणविशिष्टौ (**धृष्णू**) दृढौ (**नृवाहसा**) नृणां वाहकौ॥६॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा शिक्षकाः काम्या हरी विपक्षसा शोणा धृष्णू नृवाहसा रथे युञ्जन्ति, तथा योगिनोऽस्य परमेश्वरस्य मध्य इन्द्रियाणि मनः प्राणाँश्च युञ्जन्ति॥६॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा मनुष्याः सुशिक्षितैर्हयैर्युक्तेन यानेन स्थानान्तरं सद्यः प्राप्नुवन्ति, तथैव विद्यासत्सङ्गयोगाभ्यासैः परमात्मानं क्षिप्रं प्राप्नुवन्ति॥६॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे शिक्षा करने वाले सज्जन **(काम्या)** मनोहर **(हरी)** ले जाने हारे **(विपक्षसा)** जो कि विविध प्रकारों से भलीभांति ग्रहण किये हुए **(शोणा)** लाल-लाल रंग से युक्त **(धृष्णू)** अतिपुष्ट **(नृवाहसा)** मनुष्यों को एक देश से दूसरे देश को पहुंचाने हारे दो घोड़ों को **(रथे)** में **(युञ्जन्ति)** जोड़ते हैं, वैसे योगीजन **(अस्य)** इस परमेश्वर के बीच इन्द्रियाँ, अन्तःकरण और प्राणों को युक्त करते हैं॥६॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे मनुष्य अच्छे सिखाये हुए घोड़ों से युक्त रथ से एक स्थान से दूसरे स्थान को शीघ्र प्राप्त होते हैं, वैसे ही विद्या, सज्जनों का संग और योगाभ्यास से परमात्मा को शीघ्र प्राप्त होते हैं॥६॥

यद्वात इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। इन्द्रो देवता। निचृद्बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनर्मनुष्यः कस्य सङ्गं कुर्य्यादित्याह॥

फिर मनुष्य किसका संग करे, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यद्वातोऽअपोऽअगनीगन्प्रियामिन्द्रस्य तन्वम्।

एतꣳस्तोतरनेन पथा पुनरश्वमावर्त्तयासि नः॥७॥

यत्। वातः। अपः। अगनीगन्। प्रियाम्। इन्द्रस्य। तन्वम्। एतम्। स्तोतः। अनेन। पथा। पुनः। अश्वम्। आ। वर्त्तयासि। नः॥७॥

पदार्थः-**(यत्)** यं कलायन्त्राश्वम् **(वातः)** वायुः **(अपः)** जलानि **(अगनीगन्)** प्राप्नुवन्ति **(प्रियाम्)** कमनीयम् **(इन्द्रस्य)** विद्युतः **(तन्वम्)** विस्तृतं शरीरम् **(एतम्)** **(स्तोतः)** स्तावक **(अनेन)** **(पथा)** मार्गेण **(पुनः)** **(अश्वम्)** आशुगामिनम् **(आ)** **(वर्त्तयासि)** वर्त्तयेः **(नः)** अस्मान्॥७॥

अन्वयः-हे स्तोतर्यथा शिल्पिजना इन्द्रस्य प्रियां तन्वं वात इव प्राप्य यद्यमपोऽगनीगँस्तथैतमश्वमनेन पथा त्वं प्राप्नोषि पुनर्नोस्मानावर्त्तयासि तं भवन्तं वयं सत्कुर्याम॥७॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे मनुष्याः! ये युष्मान् सुमार्गेण गमयन्ति, तत्सङ्गेन यूयं वायुविद्युदादिविद्यां प्राप्नुत॥७॥

पदार्थः-हे **(स्तोतः)** स्तुति करनेहारे जन! जैसे शिल्पी लोग **(इन्द्रस्य)** बिजुली के **(प्रियाम्)** अति सुन्दर **(तन्वम्)** विस्तारयुक्त शरीर को **(वातः)** पवन के समान पाकर **(यत्)** जिस कलायन्त्र रूपी घोड़े और **(अपः)** जलों को **(अगनीगन्)** प्राप्त होते हैं, वैसे **(एतम्)** इस **(अश्वम्)** शीघ्र चलने हारे कलायन्त्र रूप घोड़े को **(अनेन)** उक्त बिजुली रूप **(पथा)** मार्ग से आप प्राप्त होते **(पुनः)** फिर **(नः)** हम लोगों को **(आ, वर्त्तयासि)** भलीभांति वर्त्तते अर्थात् इधर-उधर ले जाते हो, उन आपका हम लोग सत्कार करें॥७॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जो तुम को अच्छे मार्ग से चलाते हैं, उनके संग से तुम लोग पवन और बिजुली आदि की विद्या को प्राप्त होओ॥७॥

वसव इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। वाय्वादयो देवताः। निचृदत्यष्टिश्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनर्विद्वांसः किं कुर्वन्तीत्याह॥

फिर विद्वान् लोग क्या करते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

वसवस्त्वाञ्जन्तु गायत्रेण छन्दसा रुद्रास्त्वाञ्जन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसादित्यास्त्वाञ्जन्तु जागतेन छन्दसा। भूर्भुवः स्वर्लाजी३ञ्छाची३न्यव्ये गव्यऽएतदन्नमत्त देवाऽएतदन्नमद्धि प्रजापते॥८॥

वसवः। त्वा। अञ्जन्तु। गायत्रेण। छन्दसा। रुद्राः। त्वा। अञ्जन्तु। त्रैष्टुभेन। त्रैस्तुभेनेति त्रैऽस्तुभेन। छन्दसा। आदित्याः। त्वा। अञ्जन्तु। जागतेन। छन्दसा। भूः। भुवः। स्वः। लाजी३न्। शाची३न्। यव्ये। गव्ये। एतत्। अन्नम्। अत्त। देवाः। एतत्। अन्नम्। अद्धि। प्रजापत इति प्रजाऽपते॥८॥

पदार्थः-(**वसवः**) प्रथमकल्पा विद्वांसः (**त्वा**) त्वाम् (**अञ्जन्तु**) कामयन्ताम् (**गायत्रेण**) गायत्रीछन्दोवाच्येन (**छन्दसा**) अर्थेन (**रुद्राः**) मध्यमकल्पा विद्वांसः (**त्वा**) त्वाम् (**अञ्जन्तु**) (**त्रैष्टुभेन**) त्रिष्टुप्प्रकाशितेनाऽर्थेन (**छन्दसा**) (**आदित्याः**) उत्तमा विद्वांसः (**त्वा**) (**अञ्जन्तु**) (**जागतेन**) जगतीछन्दःप्रकाशितेनाऽर्थेन (**छन्दसा**) स्वच्छन्देन (**भूः**) इमं लोकम् (**भुवः**) अन्तरिक्षस्थान् (**स्वः**) प्रकाशस्थांल्लोकान् (**लाजीन्**) स्वस्वकक्षायां चलितान् (**शाचीन्**) व्यक्तान् (**यव्ये**) यवानां भवने क्षेत्रे जातम् (**गव्ये**) गोर्विकारे (**एतत्**) (**अन्नम्**) (**अत्त**) भक्षयत (**देवाः**) विद्वांसः (**एतत्**) (**अन्नम्**) (**अद्धि**) भुङ्क्ष्व (**प्रजापते**) प्रजारक्षक॥८॥

अन्वयः-हे प्रजापते! वसवो गायत्रेण छन्दसा यं त्वाऽञ्जन्तु रुद्रास्त्रैष्टुभेन छन्दसा यं त्वाऽञ्जन्त्वादित्या जागतेन छन्दसा यं त्वाऽञ्जन्तु स त्वमेतदन्नमद्धि। हे देवाः! यूयं यव्ये गव्य एतदन्नमत्त लाजीन् शाचीन् भूर्भुवः स्वर्लोकान् प्राप्नुत च॥८॥

भावार्थः-ये विद्वांसः साङ्गोपाङ्गान् वेदान् मनुष्यानध्यापयन्ति, ते धन्यवादार्हा भवन्ति॥८॥

पदार्थः-हे (**प्रजापते**) प्रजाजनों को पालने हारे राजन्! (**वसवः**) प्रथम कक्षा के विद्वान् (**गायत्रेण**) गायत्री छन्द से कहने योग्य (**छन्दसा**) स्वच्छन्द अर्थ से जिन (**त्वा**) आपको (**अञ्जन्तु**) चाहें (**रुद्राः**) मध्यम कक्षा के विद्वान् जन (**त्रैष्टुभेन**) त्रिष्टुप् छन्द से प्रकाश किये हुए (**छन्दसा**) स्वच्छन्द अर्थ से जिन (**त्वा**) आपको (**अञ्जन्तु**) चाहें वा (**आदित्याः**) उत्तम कक्षा के विद्वान् जन (**जागतेन**) जगती छन्द से प्रकाशित किये हुए (**छन्दसा**) स्वच्छन्द अर्थ से जिन (**त्वा**) आपको (**अञ्जन्तु**) चाहें सो आप (**एतत्**) इस (**अन्नम्**) अन्न को (**अद्धि**) खाइये। हे (**देवाः**) विद्वानो! तुम (**यव्ये**) यवों के खेत में उत्पन्न (**गव्ये**) गौ के दूध-दही आदि उत्तम पदार्थ में मिले हुए (**एतम्**) इस (**अन्नम्**) अन्न को (**अत्त**) खाओ तथा (**लाजीन्**)

अपनी-अपनी कक्षा में चलते हुए **(शाचीन्)** प्रगट **(भूः)** इस प्रत्यक्ष लोक **(भुवः)** अन्तरिक्षस्थ लोक और **(स्वः)** प्रकाश में स्थिर सूर्य्यादि लोकों को प्राप्त होओ॥८॥

भावार्थः-जो विद्वान् जन अङ्गों और उपाङ्गों से युक्त चारों वेदों को मनुष्यों को पढ़ाते हैं, वे धन्यवाद के योग्य होते हैं॥८॥

कः स्विदित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। जिज्ञासुर्देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथ विद्वांसः किं किं प्रष्टव्या इत्याह॥

अब विद्वान् जनों को क्या-क्या पूछना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

कः स्विदेकाकी चरति कऽउं स्विज्जायते पुनः।

किꣳस्विद्धिमस्य भेषजं किम्वावपनं महत्॥९॥

कः। स्वित्। एकाकी। चरति। कः। ऊँऽइत्यूँ। स्वित्। जायते। पुनरिति पुनः। किम्। स्वित्। हिमस्य। भेषजम्। किम्। ऊँऽइत्यूँ। आवपनमित्याऽवपनम्। महत्॥९॥

पदार्थः-**(कः)** **(स्वित्)** प्रश्ने **(एकाकी)** असहायः **(चरति)** गच्छति **(कः)** (उ) वितर्के **(स्वित्)** **(जायते)** **(पुनः)** **(किम्)** **(स्वित्)** **(हिमस्य)** शीतस्य **(भेषजम्)** औषधम् **(किम्)** (उ) **(आवपनम्)** समन्ताद् वपति यस्मिंस्तत् **(महत्)** विस्तीर्णम्॥९॥

अन्वयः-हे विद्वांसो वयं युष्मान् कः स्विदेकाकी चरति, क उ स्वित् पुनः पुनर्जायते किं स्विद्धिमस्य भेषजं किमु महदावपनमस्तीति पृच्छामः॥९॥

भावार्थः-एतेषां प्रश्नानामुत्तरस्मिन् मन्त्र उत्तराणि कथितानीति वेद्यम्। मनुष्या ईदृशानेव प्रश्नान् कुर्युः॥९॥

पदार्थः-हे विद्वानो! हम लोग तुम को पूछते हैं कि **(कः स्वित्)** कौन **(एकाकी)** एकाएकी अकेला **(चरति)** विचरता है? (उ) और **(कः, स्वित्)** कौन **(पुनः)** बार-बार **(जायते)** प्रगट होता है? **(किम्, स्वित्)** क्या **(हिमस्य)** शीत का **(भेषजम्)** औषध और **(किम्)** क्या (उ) तो **(महत्)** बड़ा **(आवपनम्)** बीज बोने का स्थान है?॥९॥

भावार्थः-इन उक्त प्रश्नों के उत्तर अगले मन्त्र में कहे हुए हैं, यह जानना चाहिये। मनुष्यों को योग्य है कि सदा इसी प्रकार के प्रश्न किया करें॥९॥

सूर्य्य इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। सूर्यो देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथ पूर्वोक्तप्रश्नानामुत्तराण्याह॥

अब पिछले मन्त्र में कहे प्रश्नों के उत्तर को कहते हैं॥

सूर्यऽएकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुनः।

अ॒ग्निर्हि॒मस्य॑ भेष॒जं भूमि॑रा॒वप॑नं म॒हत्॥ १०॥

सूर्य॑ः। ए॒का॒की। च॒र॒ति। च॒न्द्रमा॑ः। जा॒य॒ते। पु॒न॒रिति॒ऽपुन॑ः। अ॒ग्निः। हि॒मस्य॑। भे॒ष॒जम्। भूमि॑ः। आ॒वप॑न॒मित्या॒वप॑नम्। म॒हत्॥ १०॥

पदार्थः-(**सूर्य्यः**) सविता (**एकाकी**) (**चरति**) (**चन्द्रमाः**) चन्द्रलोकः (**जायते**) (**पुनः**) (**अग्निः**) पावकः (**हिमस्य**) (**भेषजम्**) (**भूमिः**) (**आवपनम्**) (**महत्**)॥१०॥

अन्वयः-हे जिज्ञासवो मनुष्याः! सूर्य्य एकाकी चरति पुनश्चन्द्रमाः प्रकाशितो जायते। अग्निर्हिमस्य भेषजं भूमिर्महदावपनमस्तीति यूयं वित्त॥१०॥

भावार्थः-अस्मिन् संसारे सूर्य्यः स्वाकर्षणेन स्वस्यैव कक्षायां वर्त्तते, तस्यैव प्रकाशेन चन्द्रादयो लोकाः प्रकाशिता भवन्ति। अग्निना तुल्यं शीतनिवारकं वस्तु, पृथिव्या तुल्यं महत् क्षेत्रं किमपि नास्तीति मनुष्यैर्वेदितव्यम्॥१०॥

पदार्थः-हे जानने की इच्छा करने वाले मनुष्यो! (**सूर्य्यः**) सूर्य्य (**एकाकी**) बिना सहाय अपनी कक्षा में (**चरति**) चलता है, (**पुनः**) फिर इसी सूर्य के प्रकाश से (**चन्द्रमाः**) चन्द्रलोक (**जायते**) प्रकाशित होता है। (**अग्निः**) आग (**हिमस्य**) शीत का (**भेषजम्**) औषध है। (**भूमिः**) पृथिवी (**महत्**) बड़ा (**आवपनम्**) बोने का स्थान है, इसको तुम लोग जानो॥१०॥

भावार्थः-इस संसार में सूर्यलोक अपनी आकर्षण शक्ति से अपनी ही कक्षा में वर्त्तमान है और उसी के प्रकाश से चन्द्र आदि लोक प्रकाशित होते हैं। अग्नि के समान शीत के हटाने को कोई वस्तु और पृथिवी के तुल्य बड़ा पदार्थों के बोने का स्थान नहीं है, यह मनुष्यों को जानना चाहिये।१०॥

कास्विदित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। जिज्ञासुर्देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनः प्रश्नानाह॥

फिर प्रश्नों को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

का स्वि॑दासीत् पू॒र्वचि॑त्तिः किᳬस्वि॑दासीद् बृ॒हद्वयः॑।

का स्वि॑दासीत् पिलिप्पि॒ला का स्वि॑दासीत् पिशङ्गि॒ला॥ ११॥

का। स्वि॒त्। आ॒सी॒त्। पू॒र्वचि॑त्ति॒रिति॑ पू॒र्वऽचि॑त्तिः। किम्। स्वि॒त्। आ॒सी॒त्। बृ॒हत्। वय॑ः। का। स्वि॒त्। आ॒सी॒त्। पि॒लि॒प्पि॒ला। का। स्वि॒त्। आ॒सी॒त्। पि॒श॒ङ्गि॒ला॥ ११॥

पदार्थः-(**का**) (**स्वित्**) (**आसीत्**) अस्ति (**पूर्वचित्तिः**) पूर्वा चासौ चित्तिः प्रथमा स्मृतिविषया (**किम्**) (**स्वित्**) (**आसीत्**) (**बृहत्**) महत् (**वयः**) यो वेति गच्छति स पक्षी (**का**) (**स्वित्**) (**आसीत्**) (**पिलिप्पिला**) आर्द्रीभूता चिक्कणा शोभना। **श्रीर्वै पिलिप्पिला॥** (शत०१३।२।६।१६) (**का**) (**स्वित्**) (**आसीत्**) (**पिशङ्गिला**) या पिशं प्रकाशरूपं गिलति सा। **पिशमिति रूपनाम**॥११॥

अन्वयः-हे विद्वांसः! वयं युष्मान् प्रति का स्वित् पूर्वचित्तिरासीत्, किंस्विद् बृहद्वय आसीत्, का स्वित् पिलिप्पिलाऽऽसीत्, का स्वित् पिशङ्गिलाऽऽसीदिति पृच्छामः॥११॥

भावार्थः-एतेषामुत्तराण्युत्तरत्र मन्त्रे सन्ति। यदि विदुषः प्रति प्रश्नान्न कुर्युस्तर्हि विद्वांसोऽपि न भवेयुः॥११॥

पदार्थः-हे विद्वानो! हम लोग तुम्हारे प्रति पूछते हैं कि **(का, स्वित्)** कौन **(पूर्वचित्तिः)** स्मरण का प्रथम पहिला विषय **(आसीत्)** हुआ है, **(किम्, स्वित्)** कौन **(बृहत्)** बड़ा **(वयः)** उड़ने हारा पक्षी **(आसीत्)** है **(का, स्वित्)** कौन **(पिलिप्पिला)** पिलपिली चिकनी वस्तु **(आसीत्)** है तथा **(का, स्वित्)** कौन **(पिशङ्गिला)** प्रकाश रूप को निगल जाने वाली वस्तु **(आसीत्)** है॥११॥

भावार्थः-इन प्रश्नों के उत्तर अगले मन्त्र में हैं। जो विद्वानों के प्रति न पूछें तो आप विद्वान् भी न हों॥११॥

द्यौरासीदित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। विद्युदादयो देवताः। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथ प्राक्प्रश्नोत्तराण्याह॥

अब पिछले प्रश्नों के उत्तरों को कहते हैं॥

द्यौरा॑सीत् पू॒र्वचि॑त्ति॒रश्व॑ऽआसीद् बृ॒हद्वय॑ः।

अवि॑रासीत् पिलिप्पि॒ला रात्रि॑रासीत् पिशङ्गि॒ला॥१२॥

द्यौः। आ॒सी॒त्। पू॒र्वचि॑त्ति॒रिति॑ पू॒र्वऽचि॑त्तिः। अश्व॑ः। आ॒सी॒त्। बृ॒हत्। वय॑ः। अवि॑ः। आ॒सी॒त्। पि॒लि॒प्पि॒ला। रात्रि॑ः। आ॒सी॒त्। पि॒श॒ङ्गि॒ला॥१२॥

पदार्थः-**(द्यौः)** दिव्यगुणप्रदा वृष्टिः। **द्यौर्वै वृष्टिः।** (शत०१३।२।६।१६) **(आसीत्)** अस्ति **(पूर्वचित्तिः)** प्रथमस्मृतिविषया **(अश्वः)** योऽश्नुते मार्गान् सोऽग्निः **(आसीत्)** **(बृहत्)** महत् **(वयः)** यो वेति गच्छति सः **(अविः)** रक्षणादिकर्त्री पृथिवी **(आसीत्)** **(पिलिप्पिला)** **(रात्रिः)** **(आसीत्)** **(पिशङ्गिला)॥१२॥**

अन्वयः-हे जिज्ञासवः! पूर्वचित्तिर्द्यौरासीद्, बृहद्वयोऽश्व आसीत्, पिलिप्पिलाऽविरासीत्, पिशङ्गिला रात्रिरासीदिति यूयं बुध्यध्वम्॥१२॥

भावार्थः-हवनसूर्यरूपाद्यग्नितापेन सर्वगुणसंपन्नाऽन्नादिना संसारस्थितिनिमित्ता वृष्टिर्जायते, ततः सर्वरत्नाढ्या भूर्भवति। सूर्याग्निनिमित्तेनैव प्राणिनां शयनाय रात्रिर्जायते॥१२॥

पदार्थः-हे जानने की इच्छा करने वालो! **(पूर्वचित्तिः)** प्रथम स्मृति का विषय **(द्यौः)** दिव्यगुण देने हारी वर्षा **(आसीत्)** है, **(बृहत्)** बड़े **(वयः)** उड़ने हारे **(अश्वः)** मार्गों को व्याप्त होने वाले पक्षी के तुल्य अग्नि **(आसीत्)** है, **(पिलिप्पिला)** वर्षा से पिलिपिली चिकनी शोभायमान **(अविः)** अन्नादि से रक्षा आदि

उत्तम गुण प्रगट करने वाली पृथिवी **(आसीत्)** है और **(पिशङ्गिला)** प्रकाशरूप को निगलने अर्थात् अन्धकार करने हारी **(रात्रिः)** रात **(आसीत्)** है, यह तुम जानो॥१२॥

भावार्थः-हवन और सूर्य रूपादि अग्नि के ताप से सब गुणों से युक्त अन्नादि से संसार की स्थिति करने वाली वर्षा होती है। उस वर्षा से सब ओषधि आदि उत्तम पदार्थ युक्त पृथिवी होती और सूर्य्य रूप अग्नि से ही प्राणियों के विश्राम के लिये रात्रि होती है॥१२॥

वायुरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। ब्रह्मादयो देवताः। भुरिगतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

अथ विद्वद्भिर्मनुष्याः क्व योजनीया इत्याह॥

अब विद्वानों को मनुष्य कहां युक्त करने चाहियें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

वायुष्ट्वा पचतैरवत्वसितग्रीवश्छागैर्न्यग्रोधश्चमसैः शल्मलिर्वृद्ध्या।
एष स्य राथ्यो वृषा पड्भिश्चतुर्भिरेदगन्ब्रह्मा कृष्णश्च नोऽवतु नमोऽग्नये॥१३॥

वायुः। त्वा। पचतैः। अवतु। असितग्रीव इत्यसितऽग्रीवः। छागैः। न्यग्रोधः। चमसैः। शल्मलिः। वृद्ध्या। एषः। स्यः। राथ्यः। वृषा। पड्भिरिति पड्ऽभिः। चतुर्भिरिति चतुःभिः। आ। इत्। अगन्। ब्रह्मा। अकृष्णः। च। नः। अवतु। नमः। अग्नये॥१३॥

पदार्थः-**(वायुः)** आदिमः स्थूलः कार्य्यरूपः **(त्वा)** त्वाम् **(पचतैः)** परिपाकपरिणामैः **(अवतु)** रक्षतु **(असितग्रीवः)** असिता कृष्णा ग्रीवा शिखा यस्य सः **(छागैः)** छेदनैः **(न्यग्रोधः)** वटः **(चमसैः)** मेघैः **(शल्मलिः)** वृक्षविशेषः **(वृद्ध्या)** वर्द्धनेन **(एषः)** **(स्यः)** सः **(राथ्यः)** रथेषु हिता रथ्यास्तासु कुशलः **(वृषा)** वर्षकः **(पड्भिः)** पादैः। अत्र वर्णव्यत्ययेन दस्य डः **(चतुर्भिः)** **(आ)** **(इत्)** एव **(अगन्)** गच्छति **(ब्रह्मा)** चतुर्वेदवित् **(अकृष्णः)** अविद्यान्धकाररहितः **(च)** **(नः)** अस्मान् **(अवतु)** प्रवेशयतु **(नमः)** अन्नम् **(अग्नये)** प्रकाशमानाय विदुषे॥१३॥

अन्वयः-हे विद्यार्थिन्! पचतैर्वायुश्छागैरसितग्रीवश्चमसैर्न्यग्रोधो वृद्ध्या शल्मलिस्त्वावतु। य एष राथ्यो वृषा स्य चतुर्भिः पड्भिरित्त्वाऽगन् योऽकृष्णो ब्रह्मा च नोऽस्मानवतु, तस्मा अग्नये विद्यया प्रकाशमानाय नमो देयम्॥१३॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! वायुः प्राणेनाग्निः पाचनेन सूर्यो वृष्ट्या वृक्षाः फलादिभिरश्वादयो गत्या विद्वांसः शिक्षया युष्मान् रक्षन्ति तान् यूयं विजानीत विदुषस्सत्कुरुत च॥१३॥

पदार्थः-हे विद्यार्थी जन! **(पचतैः)** अच्छे प्रकार पाकों से **(वायुः)** स्थूल कार्यरूप पवन **(छागैः)** काटने की क्रियाओं से **(असितग्रीवः)** काली चोटियों वाला अग्नि और **(चमसैः)** मेघों से **(न्यग्रोधः)** वट वृक्ष **(वृद्ध्या)** उन्नति के साथ **(शल्मलिः)** सेंबर वृक्ष **(त्वा)** तुझ को **(अवतु)** पाले, जो **(एषः)** यह **(राथ्यः)** सड़कों में चलने में कुशल और **(वृषा)** सुखों की वर्षा करने हारा है **(स्यः)** वह **(चतुर्भिः,**

पड्भि:, इत्) जिन से गमन करता है, उन चारों पगों से तुझ को **(आऽगन्)** प्राप्त हो **(च)** तथा जो **(अकृष्ण:)** अविद्यारूप अन्धकार से पृथक् **(ब्रह्मा)** चार वेदों को जानने हारा उत्तम विद्वान् **(न:)** हम लोगों को सब गुणों में **(अवतु)** पहुंचावे। उस **(अग्नये)** विद्या से प्रकाशमान चारों वेदों को पढ़े हुए विद्वान् के लिये **(नम:)** अन्न देना चाहिये॥१३॥

भावार्थ:-हे मनुष्यो! पवन, श्वास आदि के चलाने, आग अन्न आदि के पकाने, सूर्यमण्डल वर्षा, वृक्ष फल आदि, घोड़े आदि गमन और विद्वान् शिक्षा से तुम्हारी रक्षा करते हैं, उनको तुम जानो और विद्वानों का सत्कार करो॥१३॥

सꣳशितो रश्मिनेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि:। ब्रह्मा देवता। निचृदनुष्टुप् छन्द:। गान्धार: स्वर:॥

पुनर्विद्वांस: किं कुर्युरित्याह॥

फिर विद्वान् लोग क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

सꣳशि॑तो र॒श्मिना॒ रथ॒: सꣳशि॑तो र॒श्मिना॒ हय॑:।

सꣳशि॑तो अ॒प्स्व॒प्सु॒जा ब्र॒ह्मा सोम॑पुरोगव:॥१४॥

सꣳशि॑त॒ इति॒ सम्ऽशि॑त:। र॒श्मिना॑। रथ॑:। सꣳशि॑त॒ इति॒ सम्ऽशि॑त:। र॒श्मिना॑। हय॑:। सꣳशि॑त॒ इति॒ सम्ऽशि॑त:। अ॒प्स्वित्य॒प्ऽसु। अ॒प्सु॒जा इत्य॑प्सु॒ऽजा। ब्र॒ह्मा। सोम॑ऽपुरोगव:॥१४॥

पदार्थ:-**(संशित:)** सम्यक् सूक्ष्मीकृत: **(रश्मिना)** किरणसमूहेन **(रथ:)** रमणसाधन: **(संशित:)** **(रश्मिना)** **(हय:)** अश्व: **(संशित:)** स्तुत: **(अप्सु)** प्राणेषु **(अप्सुजा:)** प्राणेषु जायमान: **(ब्रह्मा)** महान् योगी विद्वान् **(सोमपुरोगव:)** सोम ओषधिगणबोध ऐश्वर्ययोगो वा पुरोगामी यस्य स:॥१४॥

अन्वय:-यदि मनुष्यै रश्मिना रथ: संशितो रश्मिना हय: संशितोऽप्स्वप्सुजा: सोमपुरोगवो ब्रह्मा संशित: क्रियेत तर्हि किं किं सुखं न लभ्येत॥१४॥

भावार्थ:-ये मनुष्या: पदार्थविज्ञानेन विद्वांसो भवन्ति, तेऽन्यान् कारयित्वा प्रशंसां प्राप्नुवन्तु॥१४॥

पदार्थ:-जो मनुष्यों से **(रश्मिना)** किरणसमूह से **(रथ:)** आनन्द को सिद्ध करने वाला यान **(संशित:)** अच्छे प्रकार सूक्ष्म कारीगरी से बनाया **(रश्मिना)** लगाम की रस्सी आदि से **(हय:)** घोड़ा **(संशित:)** भलीभांति चलने में तीक्ष्ण अर्थात् उत्तम क्रिया तथा **(अप्सु)** प्राणों में **(अप्सुजा:)** जो प्राणवायु रूप से संचार करने वाला पवन वा वाष्प **(सोमपुरोगव:)** ओषधियों का बोध और ऐश्वर्य्य का योग जिससे पहिले प्राप्त होने वाला है, वह **(ब्रह्मा)** बड़ा योगी विद्वान् **(संशित:)** अतिप्रशंसित किया जाये तो क्या-क्या सुख न मिले॥१४॥

भावार्थ:-जो मनुष्य पदार्थों के विशेष ज्ञान से विद्वान् होते हैं, वे औरों को विद्वान् करके प्रशंसा को पावें॥१४॥

स्वयमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। विद्वान् देवता। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथ जिज्ञासवः कीदृशा भवेयुरित्याह॥

अब पढ़ने वा उत्तम विद्या-बोध चाहने वाले कैसे हों, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

स्वयं वाजिँस्तन्वं कल्पयस्व स्वयं यजस्व स्वयं जुषस्व।

महिमा तेऽन्येन न सन्नशे॥ १५॥

स्वयम्। वाजिन्। तन्वम्। कल्पयस्व। स्वयम्। यजस्व। स्वयम्। जुषस्व। महिमा। ते। अन्येन। न। सन्नश इति सम्ऽनशे॥ १५॥

पदार्थः-(**स्वयम्**) (**वाजिन्**) जिज्ञासो (**तन्वम्**) शरीरम् (**कल्पयस्व**) समर्थयस्व (**स्वयम्**) (**यजस्व**) संगच्छस्व (**स्वयम्**) (**जुषस्व**) सेवस्व (**महिमा**) प्रतापः (**ते**) तव (**अन्येन**) (**न**) (**सन्नशे**) सम्यक् नश्येत्॥॥१५॥

अन्वयः-हे वाजिंस्त्वं तन्वं कल्पयस्व स्वयं विदुषो यजस्व स्वयं जुषस्व च। यतस्ते महिमाऽन्येन सह न संनशे॥१५॥

भावार्थः-यथाग्निः स्वयं प्रकाशः स्वयं सङ्गतः स्वयं सेवमानोऽस्ति, तथा ये जिज्ञासवः स्वयं पुरुषार्थयुक्ता भवन्ति, तेषां महिमा कदाचिन्न नश्यति॥१५॥

पदार्थः-हे (**वाजिन्**) बोध चाहने वाले जन! तू (**स्वयम्**) आप (**तन्वम्**) अपने शरीर को (**कल्पयस्व**) समर्थ कर (**स्वयम्**) आप अच्छे विद्वानों को (**यजस्व**) मिल और (**स्वयम्**) आप उनकी (**जुषस्व**) सेवा कर, जिससे (**ते**) तेरी (**महिमा**) बड़ाई तेरा प्रताप (**अन्येन**) और के साथ (**न**) मत (**सन्नशे**) नष्ट हो॥१५॥

भावार्थः-जैसे अग्नि आप से आप प्रकाशित होता, आप मिलता तथा आप सेवा को प्राप्त है, वैसे जो बोध चाहने वाले जन आप पुरुषार्थयुक्त होते हैं, उनका प्रताप, बड़ाई कभी नहीं नष्ट होती॥१५॥

न वा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। सविता देवता। विराड्जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

अथ मनुष्याः कीदृशा भवेयुरित्याह॥

अब मनुष्य कैसे हों, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

न वाऽउँऽएतन्म्रियसे न रिष्यसि देवाँ२ऽइदेषि पथिभिः सुगेभिः।

यत्रासते सुकृतो यत्र ते ययुस्तत्र त्वा देवः सविता दधातु॥ १६॥

न। वै। ऊँऽइत्यूँ। एतत्। म्रियसे। न। रिष्यसि। देवान्। इत्। एषि। पथिभिरिति पथिऽभिः। सुगेभिरिति सुऽगेभिः। यत्र। आसते। सुकृत इति सुऽकृतः। यत्र। ते। ययुः। तत्र। त्वा। देवः। सविता। दधातु॥ १६॥

पदार्थः-(**न**) निषेधे (**वै**) निश्चयेन (उ) वितर्के (**एतत्**) (**म्रियसे**) (**न**) (**रिष्यसि**) हिन्धि (**देवान्**) दिव्यान् गुणान् विदुषो वा (**इत्**) एव (**एषि**) प्राप्नोषि (**पथिभिः**) मार्गैः (**सुगेभिः**) सुखेन गन्तुं योग्यैः (**यत्र**) (**आसते**) उपविशन्ति (**सुकृतः**) धर्मात्मानः (**यत्र**) (**ते**) योगिनो विद्वांसः (**ययुः**) यान्ति (**तत्र**) (**त्वा**) त्वाम् (**देवः**) स्वप्रकाशः (**सविता**) सकलजगदुत्पादकः परमेश्वरः (**दधातु**) धरतु॥१६॥

अन्वयः-हे विद्यार्थिन्! यत्र ते सुकृत आसते सुखं ययुर्यत्र सुगेभिः पथिभिस्त्वं देवानेषि यत्रैतदु वर्त्तते स्थितस्त्वं न म्रियसे न वै रिष्यसि तत्रेत् त्वा सविता देवो दधातु॥१६॥

भावार्थः-यदि मनुष्या स्वस्वरूपं जानीयुस्तर्हि तेऽविनाशित्वं विद्युः। यदि धर्म्येण मार्गेण गच्छेयुस्तर्हि सुकृतामानन्दं प्राप्नुयुः। यदि परमात्मानं सेवेरँस्तर्हि सत्ये मार्गे जीवान् दध्युः॥१६॥

पदार्थः-हे विद्यार्थी! (**यत्र**) जहां (**ते**) वे (**सुकृतः**) धर्मात्मा योगी विद्वान् (**आसते**) बैठते और सुख को (**ययुः**) प्राप्त होते हैं वा (**यत्र**) जहां (**सुगेभिः**) सुख से जाने योग्य (**पथिभिः**) मार्गों से तू (**देवान्**) दिव्य अच्छे-अच्छे गुण वा विद्वानों को (**एषि**) प्राप्त होता है और जहां (**एतत्**) यह पूर्वोक्त सब वृत्तान्त (उ) तो वर्त्तमान है और स्थिर हुआ तू (**न**) नहीं (**म्रियसे**) नष्ट हो (**न, वै**) नहीं (**रिष्यसि**) दूसरे का नाश करे (**तत्र**) वहां (**इत्**) ही (**त्वा**) तुझे (**सविता**) समस्त जगत् का उत्पन्न करने वाला परमेश्वर (**देवः**) जोकि आप प्रकाशमान है, वह (**दधातु**) स्थापन करे॥१६॥

भावार्थः-जो मनुष्य अपने-अपने रूप को जानें तो अविनाशीभाव को जान सकें, जो धर्मयुक्त मार्ग से चलें तो अच्छे कर्म करनेहारों के आनन्द को पावें, जो परमात्मा की सेवा करें तो जीवों को सत्यमार्ग में स्थापन करें॥१६॥

अग्निरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। अग्न्यादयो देवताः। अतिशक्वर्य्यौ छन्दसी। पञ्चमौ स्वरौ॥

अथ के पशव इत्याह॥

अब पशु कौन हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अग्निः पशुरासीत् तेनायजन्त सऽएतं लोकमजयद् यस्मिन्नग्निः स ते लोको भविष्यति तं जेष्यसि पिबैताऽअपः। वायुः पशुरासीत् तेनायजन्त सऽएतं लोकमजयद् यस्मिन् वायुः स ते लोको भविष्यति तं जेष्यसि पिबैताऽअपः। सूर्यः पशुरासीत् तेनायजन्त सऽएतं लोकमजयद् यस्मिन्त्सूर्य्यः स ते लोको भविष्यति तं जेष्यसि पिबैताऽअपः॥१७॥

अग्निः। पशुः। आसीत्। तेन। अयजन्त। सः। एतम्। लोकम्। अजयत्। यस्मिन्। अग्निः। सः। ते। लोकः। भविष्यति। तम्। जेष्यसि। पिब। एताः। अपः। वायुः। पशुः। आसीत्। तेन। अयजन्त। सः। एतम्। लोकम्। अजयत्। यस्मिन्। वायुः। सः। ते। लोकः। भविष्यति। तम्। जेष्यसि। पिब। एताः। अपः। सूर्यः। पशुः। आसीत्। तेन।

अयजन्त। सः। एतम्। लोकम्। अजयत्। यस्मिन्। सूर्य्यः। सः। ते। लोकः। भविष्यति। तम्। जेष्यसि। पिब। एताः। अपः॥ १७॥

पदार्थः-(**अग्निः**) वह्निः (**पशुः**) दृश्यः (**आसीत्**) अस्ति (**तेन**) (**अयजन्त**) यजन्तु (**सः**) (**एतम्**) (**लोकम्**) द्रष्टव्यम् (**अजयत्**) जयति (**यस्मिन्**) लोके (**अग्निः**) (**सः**) (**ते**) तव (**लोकः**) (**भविष्यति**) (**तम्**) (**जेष्यसि**) (**पिब**) (**एताः**) (**अपः**) जलानि (**वायुः**) (**पशुः**) द्रष्टव्यः (**आसीत्**) (**तेन**) (**अयजन्त**) (**सः**) (**एतम्**) वाय्वधिष्ठातृकम् (**लोकम्**) (**अजयत्**) जयति (**यस्मिन्**) (**वायुः**) (**सः**) (**ते**) (**लोकः**) (**भविष्यति**) (**तम्**) (**जेष्यसि**) उत्कर्षयसि (**पिब**) (**एताः**) (**अपः**) प्राणान् (**सूर्यः**) (**पशुः**) दृश्यः (**आसीत्**) (**तेन**) (**अयजन्त**) (**सः**) (**एतम्**) सूर्याधिष्ठितम् (**लोकम्**) (**अजयत्**) जयति (**यस्मिन्**) (**सूर्यः**) (**सः**) (**ते**) (**लोकः**) (**भविष्यति**) (**तम्**) (**जेष्यसि**) (**पिब**) (**एताः**) (**अपः**) व्याप्तान् प्रकाशान्॥ १७॥

अन्वयः-हे जिज्ञासो! यस्मिन् सोऽग्निः पशुरासीत् तेनाऽयजन्त तेन त्वं यज यथा स विद्वांस्तेनैतं लोकमजयत् तयैतं जय तं चेज्जेष्यसि तर्हि सोऽग्निस्ते लोको भविष्यति, अतस्त्वमेता यज्ञेन शोधिता अपः पिब। यस्मिन् स वायुः पशुरासीद् येन यजमाना अयजन्त तेन त्वं यज यथा स एतं लोकमजयत् तथा त्वं जय, यदि तं जेष्यसि तर्हि स वायुस्ते लोको भविष्यति, अतस्त्वमेता अपः पिब। यस्मिन्स सूर्य्यः पशुरासीत् तेनायजन्त यथा स एतं लोकमजयत् तथा त्वं जय यदि त्वं तं जेष्यसि तर्हि स सूर्यस्ते लोको भविष्यति तस्मात्त्वमेता अपः पिब॥ १७॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! सर्वेषु यज्ञेष्वग्न्यादीनेव पशून् जानन्तु, नैव प्राणिनोऽत्र हिंसनीया होतव्या वा सन्ति, य एवं विदित्वा सुगन्ध्यादिद्रव्याणि सुसंस्कृत्याऽग्नौ जुह्वति, तानि वायुं सूर्य्यं च प्राप्य वृष्टिद्वारा निवर्त्य ओषधीः प्राणान् शरीरं बुद्धिं च क्रमेण प्राप्य सर्वान् प्राणिन आह्लादयन्ति। एतत्कर्त्तारः पुण्यस्य महत्त्वेन परमात्मानं प्राप्य महीयन्ते॥ १७॥

पदार्थः-हे विद्याबोध चाहने वाले पुरुष! (**यस्मिन्**) जिस देखने योग्य लोक में (**सः**) वह (**अग्निः**) अग्नि (**पशुः**) देखने योग्य (**आसीत्**) है, (**तेन**) उससे जिस प्रकार यज्ञ करने वाले (**अयजन्त**) यज्ञ करें, उस प्रकार से तू यज्ञ कर। जैसे (**सः**) वह विद्वान् (**एतम्**) इस (**लोकम्**) देखने योग्य स्थान को (**अजयत्**) जीतता है, वैसे इसको जीत, यदि (**तम्**) उसको (**जेष्यसि**) जीतेगा तो वह (**अग्निः**) अग्नि (**ते**) तेरा (**लोकः**) देखने योग्य (**भविष्यति**) होगा, इससे तू (**एताः**) इन यज्ञ से शुद्ध किये हुए (**अपः**) जलों को (**पिब**) पी। (**यस्मिन्**) जिसमें (**सः**) वह (**वायुः**) पवन (**पशुः**) देखने योग्य (**आसीत्**) है और जिससे यज्ञ करने वाले (**अयजन्त**) यज्ञ करें (**तेन**) उससे तू यज्ञ कर। जैसे (**सः**) वह विद्वान् (**एतम्**) इस वायुमण्डल के रहने के (**लोकम्**) लोक को (**अजयत्**) जीते, वैसे तू जीत, जो (**तम्**) उसको (**जेष्यसि**) जीतेगा तो वह (**वायुः**) पवन (**ते**) तेरा (**लोकः**) देखने योग्य (**भविष्यति**) होगा। इससे तू (**एताः**) इन (**अपः**) यज्ञ से शुद्ध किये हुए प्राण रूपी पवनों को (**पिब**) धारण कर (**यस्मिन्**) जिसमें वह (**सूर्य्यः**) सूर्य्यमण्डल (**पशुः**)

देखने योग्य **(आसीत्)** है, **(तेन)** उससे **(अयजन्त)** यज्ञ करने वाले यज्ञ करें, जैसे **(स:)** वह विद्वान् **(एतम्)** इस सूर्य्यमण्डल के ठहरने के **(लोकम्)** लोक को **(अजयत्)** जीतता है, वैसे तू जीत। जो तू **(तम्)** उसको **(जेष्यसि)** जीतेगा तो **(स:)** वह **(सूर्य:)** सूर्य्यमण्डल **(ते)** तेरा **(लोक:)** देखने योग्य **(भविष्यति)** होगा, इससे तू **(एता:)** यज्ञ से शुद्धि किये हुए **(अप:)** संसार में व्याप्त हो रहे सूर्यप्रकाशों को **(पिब)** ग्रहण कर॥१७॥

भावार्थ:-हे मनुष्यो! सब यज्ञों में अग्नि आदि को ही पशु जानो, किन्तु प्राणी इन यज्ञों में मारने योग्य नहीं, न होमने योग्य हैं। जो ऐसे जानकर सुगन्धि आदि अच्छे-अच्छे पदार्थों को भलीभांति बना, आग में होम करनेहारे होते हैं, वे पवन और सूर्य को प्राप्त होकर वर्षा के द्वारा वहां से छूट कर ओषधि, प्राण, शरीर और बुद्धि को क्रम से प्राप्त होकर सब प्राणियों को आनन्द देते हैं। इस यज्ञकर्म के करने वाले पुण्य की बहुताई से परमात्मा को प्राप्त होकर सत्कारयुक्त होते हैं॥१७॥

अथ प्राणायेत्यस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषि:। प्राणादयो देवता:। विराड्जगती छन्द:। निषाद: स्वर:॥

पुनर्मनुष्यै: किं किं विज्ञेयमित्याह॥

फिर मनुष्यों को क्या-क्या जानना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

प्राणाय स्वाहापानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा।
अम्बेऽअम्बिकेऽम्बालिके न मा नयति कश्चन।
ससस्त्यश्वक: सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम्॥१८॥

प्राणाय। स्वाहा। अपानाय। स्वाहा। व्यानायेति विऽआनाय। स्वाहा। अम्बे। अम्बिके। अम्बालिके। न। मा। नयति। क:। चन। ससस्ति। अश्वक:। सुभद्रिकामिति सुऽभद्रिकाम्। काम्पीलवासिनीमिति काम्पीलऽ वासिनीम्॥१८॥

पदार्थ:-**(प्राणाय)** प्राणपोषणय **(स्वाहा)** सत्या वाक् **(अपानाय)** **(स्वाहा)** **(व्यानाय)** **(स्वाहा)** **(अम्बे)** मात: **(अम्बिके)** पितामहि **(अम्बालिके)** प्रपितामहि **(न)** निषेधे **(मा)** माम् **(नयति)** वशे स्थापयति **(क:)** **(चन)** कोऽपि **(ससस्ति)** स्वपिति **(अश्वक:)** अश्व इव गन्ता जन: **(सुभद्रिकाम्)** सुष्ठु कल्याणकारिकाम् **(काम्पीलवासिनीम्)** कं सुखं पीलति बध्नाति गृह्णातीति कम्पील: स्वार्थेऽण् तं वासयितुं शीलमस्यास्तां लक्ष्मीम्॥१८॥

अन्वय:-हे अम्बेऽम्बिकेऽम्बालिके! कश्चनाश्वको यां काम्पीलवासिनीं सुभद्रिकामादाय ससन्ति, न मा नयति, अतोऽहं प्राणाय स्वाहाऽपानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा च करोमि॥१८॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यथा माता पितामही प्रपितामह्यऽपत्यानि सुशिक्षां नयति, तथा युष्माभिरपि स्वसन्तानाः शिक्षणीयाः। धनस्य स्वभावोऽस्ति यत्रेदं संचीयते तान्निद्रालूनलसान् कर्महीनान् करोति। अतो धनं प्राप्यापि पुरुषार्थ एव कर्त्तव्यः॥१८॥

पदार्थः-हे **(अम्बे)** माता **(अम्बिके)** दादी **(अम्बालिके)** वा परदादी **(कश्चन)** कोई **(अश्वकः)** घोड़े के समान शीघ्रगामी जन जिस **(काम्पीलवासिनीम्)** सुखग्राही मनुष्य को बसाने वाली **(सुभद्रिकाम्)** उत्तम कल्याण करनेहारी लक्ष्मी को ग्रहण कर **(ससस्ति)** सोता है, वह **(मा)** मुझे **(न)** नहीं **(नयति)** अपने वश में लाता, इससे मैं **(प्राणाय)** प्राण के पोषण के लिये **(स्वाहा)** सत्य वाणी **(अपानाय)** दुःख के हटाने के लिए **(स्वाहा)** सुशिक्षित वाणी और **(व्यानाय)** सब शरीर में व्याप्त होने वाले अपने आत्मा के लिये **(स्वाहा)** सत्य वाणी को युक्त करता हूँ॥१८॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जैसे माता, दादी, परदादी अपने-अपने सन्तानों को अच्छी सिखावट पहुँचाती हैं, वैसे तुम लोगों को भी अपने सन्तान शिक्षित करने चाहियें। धन का स्वभाव है कि जहां यह इकट्ठा होता है, उन जनों को निद्रालु, आलसी और कर्महीन कर देता है, इससे धन पाकर भी मनुष्य को पुरुषार्थ ही करना चाहिये॥१८॥

गणानां त्वेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। गणपतिर्देवता। शक्वरी छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनर्मनुष्यै कीदृशः परमात्मोपासनीय इत्याह॥

फिर मनुष्य को कैसे परमात्मा की उपासना करनी चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

गणानां त्वा गणपतिꣳहवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिꣳहवामहे निधीनां त्वा निधिपतिꣳ हवामहे वसो मम। आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम्॥१९॥

गणानाम्। त्वा। गणपतिमिति गणऽपतिम्। हवामहे। प्रियाणाम्। त्वा। प्रियपतिमिति प्रियऽपतिम्। हवामहे। निधीनामिति निऽधीनाम्। त्वा। निधिपतिमिति निधिऽपतिम्। हवामहे। वसोऽइति वसो। मम। आ। अहम्। अजानि। गर्भधमिति गर्भऽधम्। आ। त्वम्। अजासि। गर्भधमिति गर्भऽधम्॥१९॥

पदार्थः-**(गणानाम्)** समूहानाम् **(त्वा)** त्वाम् **(गणपतिम्)** समूहपालकम् **(हवामहे)** स्वीकुर्महे **(प्रियाणाम्)** कमनीयानाम् **(त्वा)** **(प्रियपतिम्)** कमनीयं पालकम् **(हवामहे)** **(निधीनाम्)** विद्यादिपदार्थपोषकाणाम् **(त्वा)** **(निधिपतिम्)** निधीनां पालकम् **(हवामहे)** **(वसो)** वसन्ति भूतानि यस्मिन्त्स वसुस्तत्सम्बुद्धौ **(मम)** **(आ)** **(अहम्)** **(अजानि)** जानीयाम् **(गर्भधम्)** यो गर्भं दधाति तम् **(आ)** **(त्वम्)** **(अजासि)** प्राप्नुयाः **(गर्भधम्)** प्रकृतिम्॥१९॥

अन्वयः-हे जगदीश्वर! वयं गणानां गणपतिं त्वा हवामहे, प्रियाणां प्रियपतिं त्वा हवामहे, निधीनां निधिपतिं त्वा हवामहे। हे वसो! मम न्यायाधीशो भूयाः। यं गर्भधं त्वमाजासि तं गर्भधमहमाजानि॥१९॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यः सर्वस्य जगतो रक्षक इष्टानां विधातैश्वर्य्याणां प्रदाता प्रकृतेः पतिः सर्वेषां बीजानि विदधाति, तमेव जगदीश्वरं सर्व उपासीरन्॥१९॥

पदार्थः-हे जगदीश्वर! हम लोग (**गणानाम्**) गणों के बीच (**गणपतिम्**) गणों के पालनेहारे (**त्वा**) आपको (**हवामहे**) स्वीकार करते (**प्रियाणाम्**) अतिप्रिय सुन्दरों के बीच (**प्रियपतिम्**) अतिप्रिय सुन्दरों के पालनेहारे (**त्वा**) आपकी (**हवामहे**) प्रशंसा करते (**निधीनाम्**) विद्या आदि पदार्थों की पुष्टि करनेहारों के बीच (**निधिपतिम्**) विद्या आदि पदार्थों की रक्षा करनेहारे (**त्वा**) आपको (**हवामहे**) स्वीकार करते हैं। हे (**वसो**) परमात्मन्! जिस आप में सब प्राणी वसते हैं, सो आप (**मम**) मेरे न्यायाधीश हूजिये, जिस (**गर्भधम्**) गर्भ के समान संसार को धारण करने हारी प्रकृति को धारण करने हारे (**त्वम्**) आप (**आ, अजासि**) जन्मादि दोषरहित भलीभंति प्राप्त होते हैं, उस (**गर्भधम्**) प्रकृति के धर्त्ता आपको (**अहम्**) मैं (**आ, अजानि**) अच्छे प्रकार जानूं॥१९॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जो सब जगत् की रक्षा, चाहे हुए सुखों का विधान, ऐश्वर्य्यों का भलीभांति दान, प्रकृति का पालन और सब बीजों का विधान करता है, उसी जगदीश्वर की उपासना सब करो॥१९॥

ता उभावित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। राजप्रजे देवते। स्वराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथ राजप्रजाजनाः परस्परं कथं वर्त्तेरन्नित्याह॥

अब राजा और प्रजाजन परस्पर कैसे वर्त्ते, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ताऽउभौ चतुरः पदः सम्प्रसारयाव स्वर्गे लोके प्रोर्णुवाथां वृषा वाजी रेतोधा रेतो दधातु॥२०॥

तौ। उभौ। चतुरः। पदः। सम्प्रसारयावेति सम्ऽप्रसारयाव। स्वर्ग इति स्वःऽगे। लोके। प्र। ऊर्णुवाथाम्। वृषा। वाजी। रेतोधा इति रेतःऽधाः। रेतः। दधातु॥२०॥

पदार्थः-(**तौ**) प्रजाराजानौ (**उभौ**) (**चतुरः**) धर्मार्थकाममोक्षान् (**पदः**) प्रातव्यान् (**संप्रसारयाव**) विस्तारयावः (**स्वर्गे**) सुखमये (**लोके**) द्रष्टव्ये (**प्र**) (**ऊर्णुवाथाम्**) प्राप्नुयाथाम् (**वृषा**) दुष्टानां शक्तिबन्धकः (**वाजी**) विज्ञानवान् (**रेतोधाः**) यो रेतः श्लेषमालिङ्गनं दधाति सः (**रेतः**) वीर्यं पराक्रमम् (**दधातु**)॥२०॥

अन्वयः-हे राजप्रजे! युवां उभौ तौ यथा स्वर्गे लोके चतुरः पदः प्रोर्णुवाथां तथैतानावामध्यापकोपदेशकौ संप्रसारयाव, यथा रेतोधा वृषा वाजी राजा प्रजासु रेतो वीर्यं दध्यात् तथा प्रजापि दधातु॥२०॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यदि राजप्रजे पितापुत्रवद् वर्त्तेयातां तर्हि धर्मार्थकाममोक्षफल-सिद्धिं यथावत् प्राप्नुयातां, यथा राजा प्रजासुखबले वर्द्धयेत् तथा प्रजा अपि राज्ञः सुखबले उन्नयेत्॥२०॥

पदार्थः-हे राजाप्रजाजनो! तुम **(उभौ)** दोनों **(तौ)** प्रजा राजाजन जैसे **(स्वर्गे)** सुख से भरे हुए **(लोके)** देखने योग्य व्यवहार वा पदार्थ में **(चतुरः)** चारों धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष **(पदः)** जो कि पाने योग्य हैं, उनको **(प्रोर्णुवाथाम्)** प्राप्त होओ, वैसे इन का हम अध्यापक और उपदेशक दोनों **(संप्रसारयाव)** विस्तार करें, जैसे **(रेतोधाः)** आलिङ्गन अर्थात् दूसरे से मिलने को धारण करने और **(वृषा)** दुष्टों के सामर्थ्य को बांधने अर्थात् उन की शक्ति को रोकने हारा **(वाजी)** विशेष ज्ञानवान् राजा प्रजाजनों में **(रेतः)** अपने पराक्रम को स्थापन करे, वैसे प्रजाजन **(दधातु)** स्थापना करें॥२०॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो राजा-प्रजा पिता और पुत्र के समान अपना वर्त्ताव वर्त्ते तो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष फल की सिद्धि को यथावत् प्राप्त हों, जैसे राजा प्रजा के सुख और बल को बढ़ावें, वैसे प्रजा भी राजा के सुख और बल की उन्नति करे॥२०॥

उत्सक्थ्या इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। न्यायाधीशो देवता। भुरिग्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुना राज्ञा दुष्टाचाराः सम्यग्दण्डनीया इत्याह॥

फिर राजा को दुष्टाचारी प्राणी भलीभांति दण्ड देने योग्य हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उत्सक्थ्याऽअव गुदं धेहि समञ्जिं चारया वृषन्।

य स्त्रीणां जीवभोजनः॥२१॥

उत्सक्थ्या इत्युत्ऽसक्थ्याः। अव। गुदम्। धेहि। सम्। अञ्जिम्। चारय। वृषन्। यः। स्त्रीणाम्। जीवभोजन इति जीवऽभोजनः॥२१॥

पदार्थः-**(उत्सक्थ्या)** उर्ध्वं सक्थिनी यस्यास्तस्याः प्रजायाः **(अव)** **(गुदम्)** **(क्रीडाम्)** **(धेहि)** **(सम्)** **(अञ्जिम्)** प्रसिद्धन्यायम् **(चारय)** प्रापय। अत्र **संहितायाम्** [अ०६.३.११४] इति दीर्घः। **(वृषन्)** शक्तिमन् **(यः)** **(स्त्रीणाम्)** **(जीवभोजनः)** जीवा भोजनं भक्षणं यस्य सः॥२१॥

अन्वयः-हे वृषन्! यः स्त्रीणां जीवभोजनो व्यभिचारी व्यभिचारिणी वा स्त्री वर्त्तेत, तं तां च निगृह्योत्सक्थ्यास्ताडय स्वप्रजायां च गुदमव धेह्यञ्जिं संचारय॥२१॥

भावार्थः-हे राजन्! ये विषयसेवायां क्रीडन्तो जनाः क्रीडन्त्यः स्त्रियो वा व्यभिचारं वर्द्धयेयुस्ते ताश्च तीव्रेण दण्डेन शासनीयाः॥२१॥

पदार्थः-हे **(वृषन्)** शक्तिमन्! **(यः)** जो **(स्त्रीणाम्)** स्त्रियों के बीच **(जीवभोजनः)** प्राणियों का मांस खाने वाला व्यभिचारी पुरुष वा पुरुषों के बीच उक्त प्रकार की व्यभिचारिणी स्त्री वर्त्तमान हो, उस पुरुष और स्त्री को बांध कर **(उत्सक्थ्याः)** ऊपर को पग और नीचे को शिर कर ताड़ना करके और अपनी प्रजा के मध्य **(अव, गुदम्)** उत्तम सुख को **(धेहि)** धारण करो और **(अञ्जिम्)** अपने प्रकट न्याय को **(सञ्चारय)** भलीभांति चलाओ॥२१॥

भावार्थः-हे राजन्! जो विषय-सेवा में रमते हुए जन वा वैसी स्त्री व्यभिचार को बढ़ावें, उन-उन को प्रबल दण्ड से शिक्षा देनी चाहिये॥२१॥

यकासकावित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। राजप्रजे देवते। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यकासकौ शकुन्तिकाहलगिति वञ्चति।

आहन्ति गभे पसो निगल्गलीति धारका॥२२॥

यका। असकौ। शकुन्तिका। आहलक्। इति। वञ्चति। आ। हन्ति। गभे। पसः। निगल्गलीति। धारका॥२२॥

पदार्थः-(**यका**) यः (**असकौ**) असौ प्रजा (**शकुन्तिका**) अल्पा पक्षिणीव निर्बला (**आहलक्**) समन्ताद्धलं विलेखनमञ्चति सः (**इति**) अनेन प्रकारेण (**वञ्चति**) प्रलम्भते (**आ**) (**हन्ति**) (**गभे**) प्रजायाम् (**पसः**) राष्ट्रम् (**निगल्गलीति**) भृशं निगलतीव वर्त्तते (**धारका**) सुखस्य धर्त्री॥२२॥

अन्वयः-यस्यां गभे राजा पसो राष्ट्रमाहन्ति सा धारका प्रजा निगल्गलीति, यतो यकाऽसकौ शकुन्तिका शकुन्तिकेव वर्त्तते, तस्मादिमामाहलग्राजा वञ्चतीति॥२२॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यदि राजा न्यायेन प्रजाया रक्षणं न कुर्यादकृत्वा करं गृह्णीयात् तर्हि यथा प्रजाः क्रमशः क्षीणा भवन्ति तथा राजापि नष्टो भवति। यदि विद्याविनयाभ्यां प्रजाः संरक्षेत् तर्हि राजप्रजे सर्वतो वर्द्धेताम्॥२२॥

पदार्थः-जिस (**गभे**) प्रजा में राजा अपने (**पसः**) राज्य को (**आहन्ति**) जाने वा प्राप्त हो, वह (**धारका**) सुख को धारण करने वाली प्रजा (**निगल्गलीति**) निरन्तर सुख को निगलती-सी वर्त्तमान होती है और जिससे (**यका**) जो (**असकौ**) यह प्रजा (**शकुन्तिका**) छोटी चिड़िया के समान निर्बल है, इससे इस प्रजा को (**आहलक्**) अच्छे प्रकार जो हल से भूमि करोदता है, उसको प्राप्त होने वाला अर्थात् हल से जुती हुई भूमि से कर को लेने वाला राजा (**वञ्चतीति**) ऐसे वञ्चता अपना कर धन लेता है कि जैसे प्रजा को सुख प्राप्त हो॥२२॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। यदि राजा न्याय से प्रजा की रक्षा न करे और प्रजा से कर लेवे तो जैसे-जैसे प्रजा नष्ट हो, वैसे राजा भी नष्ट होता है। यदि विद्या और विनय से प्रजा की भलीभांति रक्षा करे तो राजा और प्रजा सब ओर से वृद्धि को पावें॥२२॥

यकोऽसकावित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। राजप्रजे देवते। बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यकोऽसकौ शकुन्तकऽआहलगिति वञ्चति।
विवक्षतऽइव ते मुखमध्वर्यो मा नस्त्वमभि भाषथाः॥ २३॥

यकः। असकौ। शकुन्तकः। आहलक्। इति। वञ्चति। विवक्षतऽइवेति विवक्षतःऽइव। ते। मुखम्। अध्वर्योऽइत्यध्वर्यो। मा। नः। त्वम्। अभि। भाषथाः॥ २३॥

पदार्थः-(**यकः**) यः (**असकौ**) असौ राजा (**शकुन्तकः**) निर्बलः पक्षीव (**आहलक्**) समन्ताद् विलिखितं यथा स्यात् तथा (**इति**) (**वञ्चति**) वञ्चितो भवति (**विवक्षत इव**) वक्तुमिच्छोरिव (**ते**) तव (**मुखम्**) आस्यम् (**अध्वर्यो**) योऽध्वरमिवाचरति तत्सम्बुद्धौ (**मा**) (**नः**) अस्मान् (**त्वम्**) (**अभि**) (**भाषथाः**) वदेः॥ २३॥

अन्वयः-हे अध्वर्यो! त्वं नो माभिभाषथा मिथ्याभाषणं विवक्षत इव ते मुखं मा भवतु। यद्येवं यकोऽसकौ करिष्यसि, तर्हि शकुन्तक इव राजाऽऽहलगिति न वञ्चति॥ २३॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। राजा कदाचिन्मिथ्याप्रतिज्ञः परुषवादी न स्यान्न कंचिद् वञ्चयेत्। यद्ययमन्यायं कुर्यात् तर्हि स्वयमपि प्रजाभिर्वञ्चितः स्यात्॥ २३॥

पदार्थः-हे (**अध्वर्यो**) यज्ञ के समान आचरण करने हारे राजा! (**त्वम्**) तू (**नः**) हम लोगों के प्रति (**मा, अभिभाषथाः**) झूठ मत बोलो और (**विवक्षत इव**) बहुत गप्प-सप्प बकते हुए मनुष्य के मुख के समान (**ते**) तेरा (**मुखम्**) मुख मत हो, यदि इस प्रकार (**यकः**) जो (**असकौ**) यह राजा गप्प-सप्प करेगा तो (**शकुन्तकः**) निर्बल पखेरू के समान (**आहलक्**) भलीभांति उच्छिन्न जैसे हो (**इति**) इस प्रकार (**वञ्चति**) ठगा जायेगा॥ २३॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। राजा कभी झूठी प्रतिज्ञा करने और कटुवचन बोलने वाला न हो तथा न किसी को ठगे, जो यह राजा अन्याय करे तो आप भी प्रजाजनों से ठगा जाये॥ २३॥

माता चेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। भूमिसूर्यौ देवते। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

माता च ते पिता च तेऽग्रं वृक्षस्य रोहतः।
प्रतिलामीति ते पिता गभे मुष्टिमतꣳसयत्॥ २४॥

माता। च। ते। पिता। च। ते। अग्रम्। वृक्षस्य। रोहतः। प्रतिलामि। इति। ते। पिता। गभे। मुष्टिम्। अतꣳसयत्॥ २४॥

पदार्थः-(**माता**) पृथिवीव वर्त्तमाना माता (**च**) (**ते**) तव (**पिता**) सूर्य्य इव वर्त्तमानः पिता (**च**) (**ते**) तव (**अग्रम्**) मुख्यश्रियम् (**वृक्षस्य**) व्रश्चितुं छेत्तुं योग्यस्य संसाराख्यस्य राज्यस्य (**रोहतः**) (**प्रतिलामि**) स्निह्यामि (**इति**) (**ते**) तव (**पिता**) (**गभे**) प्रजायाम् (**मुष्टिम्**) मुष्ट्या धनग्राहकं राज्यम् (**अतंसयत्**) तंसयत्यलङ्करोति॥२४॥

इयं वै माताऽसौ पिताभ्यामेवैनं स्वर्गं लोकं गमयत्यग्रं वृक्षस्य रोहत इति। श्रीर्वैराष्ट्रस्याग्रं श्रियमेवैनं राष्ट्रस्याग्रं गमयति प्रतिलामीति ते पिता गभे मुष्टिमतंसयदिति। विड्वै गभो राष्ट्रं मुष्टी राष्ट्रमेवाविश्याहन्ति, तस्माद् राष्ट्री विशं घातुकः॥ (शत०१२।२।३।७)

अन्वयः-हे राजन्! यदि ते पृथिवीव माता च सूर्य्य इव ते पिता च वृक्षस्याग्रं रोहतः। यदि ते पिता गभे मुष्टिमतंसयत् तर्हि प्रजाजनोऽहम्प्रतिलामीति॥२४॥

भावार्थः-यौ मातापितरौ पृथिवीसूर्य्यवद्धैर्यविद्याप्रकाशितौ न्यायेन राज्यं पालयित्वाग्र्यां श्रियं प्राप्य प्रजा भूषयित्वा स्वस्य पुत्रं राजनीत्या युक्तं कुर्यातां तौ राज्यं कर्तुमर्हेताम्॥२४॥

पदार्थः-हे राजन्! यदि (**ते**) आपकी (**माता**) पृथिवी के तुल्य सहनशील मान करने वाली माता (**च**) और (**ते**) आपका (**पिता**) सूर्य्य के समान तेजस्वी पालन करने वाला पिता (**च**) भी (**वृक्षस्य**) छेदन करने योग्य संसार रूप वृक्ष के राज्य की (**अग्रम्**) मुख्य श्री शोभा वा लक्ष्मी पर (**रोहतः**) आरुढ़ होते हैं, (**ते**) आपका (**पिता**) पिता (**गभे**) प्रजा में (**मुष्टिम्**) मुट्ठी से धन लेने वाले राज्य को, धन लेकर (**अतंसयत्**) प्रकाशित करता है तो मैं (**इति**) इस प्रकार प्रजाजन (**प्रतिलामि**) भलीभांति उस राजा से प्रीति करता हूँ॥२४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो माता-पिता पृथिवी और सूर्य्य के तुल्य धैर्य और विद्या से प्रकाश को प्राप्त न्याय से राज्य को पाल कर, उत्तम लक्ष्मी वा शोभा को पाकर, प्रजा को सुशोभित कर, अपने पुत्र को राजनीति से युक्त करें, वे राज्य करने को योग्य हों॥२४॥

माता चेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। भूमिसूर्य्यौ देवते। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनर्मातापितरौ कीदृशौ भवेतामित्याह॥

फिर माता-पिता कैसे हों, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

माता च ते पिता च तेऽग्रे वृक्षस्य क्रीडतः।

विवक्षतऽइव ते मुखं ब्रह्मन्मा त्वं वदो बहु॥२५॥

माता। च। ते। पिता। च। ते। अग्रे। वृक्षस्य। क्रीडतः। विवक्षतऽइवेति विवक्षतःऽइव। ते। मुखम्। ब्रह्मन्। मा। त्वम्। वदः। बहु॥२५॥

पदार्थ:-(माता) पृथिवीवज्जननी **(च)** **(ते)** **(पिता)** सूर्यवद्वर्त्तमान: **(च)** **(ते)** **(अग्रे)** विद्याराजलक्ष्म्यां **(वृक्षस्य)** राज्यस्य मध्ये **(क्रीडत:)** **(विवक्षत इव)** **(ते)** तव **(मुखम्)** **(ब्रह्मन्)** चतुर्वेदवित् **(मा)** **(त्वम्)** **(वद:)** वदे: **(बहु)॥२५॥**

अन्वय:-हे ब्रह्मन्! यस्य ते माता च यस्य ते पिता च वृक्षस्याग्रे क्रीडतस्तस्य ते विवक्षत इव यन्मुखं तेन त्वं बहु मा वद:॥२५॥

भावार्थ:-यौ मातापितरौ सुशीलौ धर्मात्मानौ कुलीनौ भवेतां ताभ्यां शिक्षित एव पुत्रो मितभाषी भूत्वा कीर्त्तिमाप्नोति॥२५॥

पदार्थ:-हे **(ब्रह्मन्)** चारों वेदों के जानने वाले सज्जन! जिन **(ते)** सूर्य के समान तेजस्वी आपकी **(माता)** पृथिवी के समान माता **(च)** और जिन **(ते)** आपका **(पिता)** पिता **(च)** भी **(वृक्षस्य)** संसाररूप राज्य के बीच **(अग्रे)** विद्या और राज्य की शोभा में **(क्रीडत:)** रमते हैं, उन **(ते)** आपका **(विवक्षत इव)** बहुत कहा चाहते हुए मनुष्य के मुख के समान **(मुखम्)** मुख है, उससे **(त्वम्)** तू **(बहु)** बहुत **(मा)** मत **(वद:)** कहा कर॥२५॥

भावार्थ:-जो माता-पिता, सुशील, धर्मात्मा, लक्ष्मीवान्, कुलीन हों, उन्होंने सिखाया हुआ ही पुत्र प्रमाणयुक्त थोड़ा बोलने वाला होकर कीर्ति को प्राप्त होता है॥२५॥

ऊर्ध्वमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषि:। श्रीर्देवता। अनुष्टुप् छन्द:। गान्धार: स्वर:॥

पुना राजपुरुष: कामुत्कृष्टां कुर्युरित्याह॥

फिर राजपुरुष किसकी उन्नति करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ऊर्ध्वामेनामुच्छ्रापय गिरौ भारꣳ हरन्निव।

अथास्यै मध्यमेधताꣳ शीते वाते पुनन्निव॥२६॥

ऊर्ध्वाम्। एनाम्। उत्। श्रापय। गिरौ। भारम्। हरन्निवेति हरन्ऽइव। अथ। अस्यै। मध्यम्। एधताम्। शीते। वाते। पुनन्निवेति पुनन्ऽइव॥२६॥

पदार्थ:-(ऊर्ध्वाम्) उत्कृष्टाम् **(एनाम्)** राज्यश्रिया युक्तां प्रजाम् **(उत्)** **(श्रापय)** ऊर्ध्वं नय **(गिरौ)** पर्वते **(भारम्)** **(हरन्निव)** **(अथ)** **(अस्यै)** अस्या: **(मध्यम्)** **(एधताम्)** वर्द्धताम् **(शीते)** **(वाते)** वायौ **(पुनन्निव)** पृथक् कुर्वन्निव॥२६॥

ऊर्ध्वामेनामुच्छ्रापयेति। श्रीर्वै राष्ट्रमश्वमेध: श्रियमेवास्मै राष्ट्रमूर्ध्वमुच्छ्रयति गिरौ भारꣳ हरन्निवेति। श्रीर्वै राष्ट्रस्य भार: श्रियमेवास्मै राष्ट्रꣳ संनह्यत्यथो श्रियमेवास्मिन् राष्ट्रमधिनिदधाति। अथास्यै मध्यमेधतामिति श्रीर्वै राष्ट्रस्य मध्यꣳ श्रियमेव राष्ट्रे मध्यतोऽन्नाद्यं दधाति शीते वाते पुनन्निवेति। क्षेमो वै राष्ट्रस्य शीतं क्षेममेवास्मै करोति॥ (शत०३।१।२।३।४)

अन्वयः-हे राजन्! त्वं गिरौ भारं हरन्निवैनामूर्ध्वामुच्छ्रापय। अथास्यै मध्यं प्राप्य शीते वाते पुनन्निव भवानेधताम्॥ २६॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारौ। यथा कश्चिद् भारवाट् शिरसि पृष्ठे वा भारमुत्थाप्य गिरिमारुह्योपरि स्थापयेत् तथा राजा श्रियमुन्नतिभावं नयेत्। यथा वा कृषीवला बुसादिभ्योऽन्नं पृथक्कृत्य भुक्त्वा वर्द्धन्ते, तथा सत्यन्यायेन सत्यासत्ये पृथक्कृत्य न्यायकारी राजा नित्यं वर्द्धते॥ २६॥

पदार्थः-हे राजन्! तू **(गिरौ)** पर्वत पर **(भारम्)** भार **(हरन्निव)** पहुंचाते हुए के समान **(एनाम्)** इस राज्यलक्ष्मीयुक्त **(ऊर्ध्वाम्)** उत्तम कक्षा वाली प्रजा को **(उच्छ्रापय)** सदा अधिक-अधिक उन्नति दिया कर **(अथ)** अब **(अस्यै)** इस प्रजा के **(मध्यम्)** मध्यभाग लक्ष्मी को पाकर **(शीते)** शीतल **(वाते)** पवन में **(पुनन्निव)** खेती करने वालों की क्रिया से जैसे अन्न आदि शुद्ध हो वा पवन के योग से जल स्वच्छ हो, वैसे आप **(एधताम्)** वृद्धि को प्राप्त हूजिये॥ २६॥

भावार्थः-इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं। राजा जैसे कोई बोझा ले जाने वाला, अपने शिर वा पीठ पर बोझा को उठा, पर्वत पर चढ़, उस भार को ऊपर स्थापन करे, वैसे लक्ष्मी को उन्नति होने को पहुँचावे वा जैसे खेती करने वाले भूसा आदि से अन्न को अलग कर उस अन्न को खाके बढ़ते हैं, वैसे सत्य न्याय से सत्य असत्य को अलग कर न्याय करने हारा राजा नित्य बढ़ता है॥ २६॥

ऊर्ध्वमेनमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। श्रीर्देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ऊ॒र्ध्वमे॑नमु॒च्छ्र॑यताद् गि॒रौ भा॒रꣳ हर॑न्निव।
अथा॑स्य॒ मध्य॑मेजतु शी॒ते वाते॑ पु॒नन्नि॑व॥ २७॥

ऊ॒र्ध्वम्। ए॒नम्। उत्। श्र॒य॒ता॒त्। गि॒रौ। भा॒रम्। हर॑न्नि॒वेति॒ हर॑न्ऽइव। अथ॑। अ॒स्य॒। मध्य॑म्। ए॒ज॒तु॒। शी॒ते। वाते॑ पु॒नन्नि॒वेति॑ पु॒नन्ऽइ॑व॥ २७॥

पदार्थः-**(ऊर्ध्वम्)** अग्रगामिनम् **(एनम्)** राजानम् **(उच्छ्रयतात्)** उच्छ्रितं कुर्यात् **(गिरौ)** पर्वते **(भारम्)** **(हरन्निव)** **(अथ)** **(अस्य)** राष्ट्रस्य **(मध्यम्)** **(एजतु)** सत्कर्मसु चेष्टताम् **(शीते)** **(वाते)** **(पुनन्निव)**॥ २७॥

अन्वयः-हे प्रजास्थ विद्वन्! भवान् गिरौ भारं हरन्निवैनं राजानमूर्ध्वमुच्छ्रयतात्। अथास्य मध्यं प्राप्य शीते वाते पुनन्निवैजतु॥ २७॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारौ। यथा सूर्यो मेघमण्डले जलभारं नीत्वा वर्षयित्वा सर्वानुन्नयति, तथैव प्रजा राजपुरुषानुन्नयेदधर्माचरणाद् बिभीयाच्च॥ २७॥

पदार्थ:-हे प्रजास्थ विद्वान्! आप **(गिरौ)** पर्वत पर **(भारम्)** भार को **(हरन्निव)** पहुंचाने के समान **(एनम्)** इस राजा को **(ऊर्ध्वम्)** सब व्यवहारों में अग्रगन्ता **(उच्छ्रयतात्)** उन्नतियुक्त करें, **(अथ)** इस के अनन्तर जैसे **(अस्य)** इस राज्य के **(मध्यम्)** मध्यभाग लक्ष्मी को पाकर **(शीते)** शीतल **(वाते)** पवन में **(पुनन्निव)** शुद्ध होते हुए अन्न आदि के समान **(एजतु)** उत्तम कर्मों में चेष्टा किया कीजिये॥२७॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं। जैसे सूर्य मेघमण्डल में जल के भार को पहुंचा और वहां से बरसा के सब को उन्नति देता है, वैसे ही प्रजाजन राजपुरुषों को उन्नति दें और अधर्म के आचरण से डरें॥२७॥

यदस्या इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि:। प्रजापतिर्देवता। निचृदनुष्टुप् छन्द:। गान्धार: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यद॑स्याऽअꣳहुभेद्या॑: कृधु स्थूलमुपात॑सत्।

मुष्कावि॒द॑स्याऽएजतो गोश॒फे श॑कुलावि॑व॥२८॥

यत्। अ॒स्या॒:। अ॒ꣳहुभेद्या॒ऽइत्य॑ꣳहुऽभेद्या॑:। कृधु। स्थूलम्। उ॒पात॑स॒दित्यु॑प॒ऽअत॑सत्। मु॒ष्कौ। इत्। अ॒स्या॒:। ए॒ज॒त॒:। गो॒श॒फ इति॑ गोऽश॒फे। श॒कु॒लावि॒वेति॑ शकु॒लौऽई॑व॥२८॥

पदार्थ:-**(यत्)** य: **(अस्या:)** प्रजाया: **(अंहुभेद्या)** अंहुमपराधं या भिनत्ति तस्या: **(कृधु)** ह्रस्वम्। **कृध्विति ह्रस्वनामसु पठितम्॥** (निघं०३।२) **(स्थूलम्)** महत् कर्म **(उपातसत्)** उपभूषयेत् **(मुष्कौ)** मूषकौ **(इत्)** एव **(अस्या:)** **(एजत:)** कम्पयत: **(गोशफे)** गोखुरचिह्ने **(शकुलाविव)** ह्रस्वौ मत्स्याविव॥२८॥

अन्वय:-यद्यो राजा राजपुरुषश्चास्या अंहुभेद्या: कृधु स्थूलं कर्मोपातसत् तावस्या एजतो गोशफे शकुलाविव मुष्काविदेजत:॥२८॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यथा प्रीतिमन्तौ मत्स्यावल्पेऽपि जलाशये निवसतस्तथा राजराजपुरुषावल्पेऽपि करलाभे न्यायेन प्रीत्या वर्त्तेयाताम्। यदि दु:खच्छेदिकाया: प्रजाया: स्वल्पमहदुत्तमं कर्म प्रशंसयेतां तर्हि तौ प्रजा उपरक्ता: कृत्वा स्वविषये प्रीतिं कारयेताम्॥२८॥

पदार्थ:-**(यत्)** जो राजा वा राजपुरुष **(अस्या:)** इस **(अंहुभेद्या:)** अपराध का विनाश करने वाली प्रजा के **(कृधु)** थोड़े और **(स्थूलम्)** बहुत कर्म को **(उपातसत्)** सुशोभित करें, वे दोनों **(अस्या:)** इसको **(एजत:)** कर्म कराते हैं और वे आप **(गोशफे)** गौ के खुर से भूमि में हुए गढ़ेले में **(शकुलाविव)** छोटी दो मछलियों के समान **(मुष्कौ, इत्)** प्रजा से पाये हुए कर को चोरते हुए कंपते हैं॥२८॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे एक-दूसरे से प्रीति रखने वाली मछली छोटी ताल तलैया में निरन्तर बसती है, वैसे राजा और राजपुरुष थोड़े भी कर के लाभ में न्यायपूर्वक प्रीति के साथ

वर्त्तें और यदि दु:ख को दूर करने वाली प्रजा के थोड़े बहुत उत्तम काम की प्रंशसा करें तो वे दोनों प्रजाजनों को प्रसन्न कर अपने में उनसे प्रीति करावें॥२८॥

यद्देवास इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। विद्वांसो देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यद्देवासो ललामगुं प्र विष्टीमिनमाविषुः।

सक्थ्ना देदिश्यते नारी सत्यस्याक्षिभुवो यथा॥२९॥

यत्। देवासः। ललामगुमिति ललामऽगुम्। प्र। विष्टीमिनम्। आविषुः। सक्थ्ना। देदिश्यते। नारी। सत्यस्य। अक्षिभुव इत्यक्षिऽभुवः। यथा॥२९॥

पदार्थः-(**यत्**) यम् (**देवासः**) विद्वांसः (**ललामगुम्**) येन न्यायेनेप्सां गच्छन्ति प्राप्नुवन्ति तम् (**प्र**) (**विष्टीमिनम्**) विशिष्टा बहवः ष्टीमा आर्द्रीभूताः पदार्था विद्यन्ते यस्मिँस्तम् (**आविषुः**) व्याप्नुयुः (**सक्थ्ना**) शरीरावयवेन (**देदिश्यते**) भृशमुपदिश्येत (**नारी**) नरस्य स्त्री (**सत्यस्य**) (**अक्षिभुवः**) यदक्षिणि भवति प्रत्यक्षं तस्य (**यथा**)॥२९॥

अन्वयः-हे राजन्! यथा सत्यस्याक्षिभुवो मध्ये वर्त्तमाना देवासः सक्थ्ना नारीव यद्विष्टीमिनं ललामगुं न्यायं प्राविषुर्यथा चाऽऽप्तेन सत्यमेव देदिश्यते तथा त्वमाचर॥२९॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। यथा शरीराङ्गैः स्त्रीपुरुषौ लक्ष्येते तथा प्रत्यक्षादिप्रमाणैः सत्यं लक्ष्यते। तेन सत्येन विद्वांसो यथा प्राप्तव्यमार्द्रीभावं प्राप्नुयुस्तथेतरे राजप्रजास्थाः स्त्रीपुरुषा विद्यया विनयं प्राप्य सुखमन्विच्छन्तु॥२९॥

पदार्थः-हे राजन्! (**यथा**) जैसे (**सत्यस्य**) सत्य (**अक्षिभुवः**) आंख के सामने प्रगट हुए प्रत्यक्ष व्यवहार के मध्य में वर्त्तमान (**देवासः**) विद्वान् लोग (**सक्थ्ना**) जांघ वा और अपने शरीर के अङ्ग से (**नारी**) स्त्री के समान (**यत्**) जिस (**विष्टीमिनम्**) जिस में सुन्दर बहुत गीले पदार्थ विद्यमान हैं (**ललामगुम्**) और जिससे मनोवांछित फल को प्राप्त होते हैं, ऐसे न्याय को (**प्राविषुः**) व्याप्त हों वा जैसे शास्त्रवेत्ता विद्वान् जन सत्य का (**देदिश्यते**) निरन्तर उपदेश करें, वैसे आप आचरण करो॥२९॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे शरीर के अङ्गों से स्त्री-पुरुष लखे जाते हैं, वैसे प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से सत्य लखा जाता है, उस सत्य से विद्वान् लोग जैसे पाने योग्य कोमलता को पावें, वैसे राजा-प्रजा के स्त्री-पुरुष विद्या से नम्रता को पाकर सुख को ढूंढें॥२९॥

यद्धरिण इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। राजा देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनः स राजा कथमाचरेदित्याह॥

फिर वह राजा कैसे आचरण करे, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यद्धरिणो यवमत्ति न पुष्टं पशु मन्यते।

शूद्रा यदर्यजारा न पोषाय धनायति॥३०॥

यत्। हरिणः। यवम्। अत्ति। न। पुष्टम्। पशु। मन्यते। शूद्रा। यत्। अर्य्यजारेत्यर्य्यऽजारा। न। पोषाय। धनायति॥३०॥

पदार्थः-(**यत्**) यः (**हरिणः**) पशु (**यवम्**) (**अत्ति**) (**न**) (**पुष्टम्**) (**पशुः**) पशुम् (**मन्यते**) (**शूद्रा**) शूद्रस्य स्त्री (**यत्**) या (**अर्य्यजारा**) अर्य्यौ स्वामिवैश्यौ जारयति वयसा हन्ति सा (**न**) निषेधे (**पोषाय**) पुष्ट्ये (**धनायति**) आत्मनो धनमिच्छति॥३०॥

अन्वयः-यत् यो राजा हरिणो यवमत्तीव पुष्टं पशु न मन्यते, स यदर्य्यजारा शूद्रेव पोषाय न धनायति॥३०॥

भावार्थः-यो राजा पशुवद् व्यभिचारे वर्त्तमानः प्रजापुष्टिं न करोति, स धनाढ्या शूद्रा जारा दासीव सद्यो रोगी भूत्वा पुष्टिं विनाश्य धनहीनतया दरिद्रः सन् म्रियते तस्माद् राजा कदाचिदीर्ष्यां व्यभिचारं च नाचरेत्॥३०॥

पदार्थः-(**यत्**) जो राजा (**हरिणः**) हरिण जैसे (**यवम्**) खेत में उगे हुए जौ आदि को (**अत्ति**) खाता है, वैसे (**पुष्टम्**) पुष्ट (**पशुः**) देखने योग्य अपने प्रजाजन को (**न**) नहीं (**मन्यते**) मानता अर्थात् प्रजा को हृष्ट-पुष्ट नहीं देख के, खाता है वह (**यत्**) जो (**अर्य्यजारा**) स्वामी वा वैश्य कुल को अवस्था से बुड्ढा करने हारी दासी (**शूद्रा**) शूद्र की स्त्री के समान (**पोषाय**) पुष्टि के लिये (**न**) नहीं (**धनायति**) अपने धन को चाहता है॥३०॥

भावार्थः-जो राजा पशु के समान व्यभिचार में वर्त्तमान प्रजा की पुष्टि को नहीं करता, वह धनाढ्य शूद्रकुल की स्त्री, जो कि जारकर्म करती हुई दासी है, उसके समान शीघ्र रोगी होकर अपनी पुष्टि का विनाश करके धनहीनता से दरिद्र हुआ मरता है। इससे राजा न कभी ईर्ष्या और न व्यभिचार का आचरण करे॥३०॥

यद्धरिण इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। राजप्रजे देवते। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनः स राजा केन हेतुना नश्यतीत्याह॥

फिर वह राजा किस हेतु से नष्ट होता है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यद्धरिणो यवमत्ति न पुष्टं बहु मन्यते।

शूद्रो यदर्यायै जारो न पोषमनु मन्यते॥३१॥

यत्। हरिणः। यवम्। अत्ति। न। पुष्टम्। बहु। मन्यते। शूद्रः। यत्। अर्य्यायै। जारः। न। पोषम्। अनु। मन्यते॥३१॥

पदार्थः-(**यत्**) यः (**हरिणः**) (**यवम्**) (**अत्ति**) भक्षयति (**न**) (**पुष्टम्**) प्रजाजनम् (**बहु**) अधिकम् (**मन्यते**) जानाति (**शूद्रः**) मूर्खकुलोत्पन्नः (**यत्**) यः (**अर्य्यायै**) अर्य्यायाः स्वामिनो वैश्यस्य वा स्त्रियाः (**जारः**) व्यभिचारेण वयोहन्ता (**न**) निषेधे (**पोषम्**) पुष्टिम् (**अनु**) (**मन्यते**)॥**३१॥**

अन्वयः-यद्यः शूद्रोऽर्यायै जारो भवति स यथा पोषं नाऽनुमन्यते यद् यो राजा हरिणो यवमत्तीव पुष्टं प्रजाजनं बहु न मन्यते, स सर्वतः क्षीणो जायते॥३१॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यदि राजा राजपुरुषाश्च परस्त्रीवेश्यागमनाय पशुवद्वर्त्तन्ते, तान् सर्वे विद्वांसः शूद्रानिव जानन्ति यथा शूद्र आर्य्यकुले जारो भूत्वा सर्वान् संकरयति, तथा ब्राह्मणक्षत्रियवैश्याः शूद्रकुले व्यभिचारं कृत्वा वर्णसंकरनिमित्ता भूत्वा नश्यन्ति॥३१॥

पदार्थः-(**यत्**) जो (**शूद्रः**) मूर्खों के कुल में जन्मा हुआ मूढ़जन (**अर्य्यायै**) अपने स्वामी अर्थात् जिसका सेवक उसकी वा वैश्यकुल की स्त्री के अर्थ (**जारः**) जार अर्थात् व्यभिचार से अपनी अवस्था का नाश करने वाला होता है, वह जैसे (**पोषम्**) पुष्टि का (**न**) नहीं (**अनुमन्यते**) अनुमान रखता वा (**यत्**) जो राजा (**हरिणः**) हरिण जैसे (**यवम्**) उगे हुए जौ आदि को (**अत्ति**) खाता है, वैसे (**पुष्टम्**) धन, सन्तान, स्त्री, सुख, ऐश्वर्य्य आदि से पुष्ट अपने प्रजाजन को (**बहु**) अधिक (**न**) नहीं (**मन्यते**) मानता, वह सब ओर से क्षीण नष्ट और भ्रष्ट होता है॥३१॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो राजा और राजपुरुष परस्त्री, वेश्यागमन के लिए पशु के समान अपना वर्त्ताव करते हैं, उनको सब विद्वान् शूद्र के समान जानते हैं। जैसे शूद्र मूर्खजन श्रेष्ठों के कुल में व्यभिचारी होकर सब को वर्णसंकर कर देता है, वैसे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य शूद्रकुल में व्यभिचार करके वर्णसंकर के निमित्त होकर नाश को प्राप्त होते हैं॥३१॥

दधिक्राव्ण इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। राजा देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनः स राजा कस्येव किं वर्द्धयेदित्याह॥

फिर वह राजा किस के समान क्या बढ़ावे, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

दधिक्राव्णोऽअकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः।

सुरभि नो मुखा करत्प्र णऽआयूꣳषि तारिषत्॥३२॥

दधिक्राव्ण इति दधिऽक्राव्णः। अकारिषम्। जिष्णोः। अश्वस्य। वाजिनः। सुरभि। नः। मुखा। करत्। प्र। नः। आयूꣳषि। तारिषत्॥३२॥

पदार्थ:-(**दधिक्राव्ण:**) यो दधीन् पोषकान् धारकान् वा क्राम्यति तस्य (**अकारिषम्**) कुर्य्याम् (**जिष्णो:**) जयशीलस्य (**अश्वस्य**) आशुगामिन: (**वाजिन:**) बहुवेगवत: (**सुरभि**) प्रशस्तसुगन्धियुतानि (**न:**) अस्माकम् (**मुखा**) मुखानि (**करत्**) कुर्य्यात् (**प्र**) (**न:**) अस्माकम् (**आयूंषि**) (**तारिषत्**) सन्तारयेत्॥३२॥

अन्वय:-हे राजन्! यथाऽहं दधिकाव्णो वाजिनो जिष्णोरश्वस्येव वीर्यमकारिषं तथा भवान् न: सुरभि मुखेव वीर्यं प्रकरन्न आयूंषि तारिषत्॥३२॥

भावार्थ:-यथाऽश्वशिक्षका अश्वान् वीर्यरक्षणनियमेन बलिष्ठान् संग्रामे विजयनिमित्तान् कुर्वन्ति, तथैवाध्यापकोपदेशका: कुमारान् कुमारींश्च पूर्णेन ब्रह्मचर्यसेवनेन विद्यायुक्तान् विदुषीश्च कृत्वा शरीरात्मबलाय प्रवर्त्तय्य दीर्घायुषो युद्धशलीनान् सम्पादयेयु:॥३२॥

पदार्थ:-हे राजन्! जैसे मैं (**दधिक्राव्ण:**) जो धारण-पोषण करने वालों को प्राप्त होता (**वाजिन:**) बहुत वेगयुक्त (**जिष्णो:**) जीतने और (**अश्वस्य**) शीघ्र जाने वाला है, उस घोड़े के समान पराक्रम को (**अकारिषम्**) करूं, वैसे आप (**न:**) हम लोगों के (**सुरभि**) सुगन्धियुक्त (**मुखा**) मुखों के तुल्य पराक्रम को (**प्र, करत्**) भलीभांति करो और (**न:**) हमारे (**आयूंषि**) आयुओं को (**तारिषत्**) उनकी अवधि के पार पहुंचाओ॥३२॥

भावार्थ:-जैसे घोड़ों के सिखाने वाले घोड़ों को पराक्रम की रक्षा के नियम से बलिष्ठ और संग्राम में जिताने वाले करते हैं, वैसे पढ़ाने और उपदेश करनेहारे कुमार और कुमारियों को पूरे ब्रह्मचर्य्य के सेवन से पण्डित, पण्डिता कर उनको शरीर और आत्मा के बल के लिए प्रवृत्त करा के बहुत आयु वाले और अति युद्ध करने में कुशल बनावें॥३२॥

गायत्रीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि:। विद्वांसो देवता:। उष्णिक् छन्द:। ऋषभ: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

गायत्री त्रिष्टुब्जगत्यनुष्टुप्पङ्क्त्या सह।
बृहत्युष्णिहा ककुप्सूचीभि: शम्यन्तु त्वा॥३३॥

गायत्री। त्रिष्टुप्। त्रिस्तुबिति त्रिऽस्तुप्। जगती। अनुष्टुप्। अनुस्तुबित्यनुऽस्तुप्। पङ्क्त्या। सह। बृहती। उष्णिहा। ककुप्। सूचीभि:। शम्यन्तु। त्वा॥३३॥

पदार्थ:-(**गायत्री**) गायन्तं त्रायमाणा (**त्रिष्टुप्**) याऽऽध्यात्मिकाधिभौतिकाधिदैविकानि त्रीणि सुखानि स्तोभते स्तभ्नाति सा (**जगति**) जगद्वद्विस्तीर्णा (**अनुष्टुप्**) ययाऽनुष्टोभते सा (**पङ्क्त्या**) विस्तृतया क्रियया

(सह) **(बृहती)** महदर्था **(उष्णिहा)** यया उषः स्निह्यति तया **(ककुप्)** लालित्ययुक्ता **(सूचीभिः)** सीवनसाधिकाभिः **(शम्यन्तु)** **(त्वा)** त्वाम्॥३३॥

अन्वयः-हे विद्वन्! ये विद्वांसः पङ्क्त्या सह गायत्री त्रिष्टुब्जगत्यनुष्टुबुष्णिहा सह बृहती ककुप्सूचीभिरिव त्वा त्वां शम्यन्तु तांस्त्वं सेवस्व॥३३॥

भावार्थः-ये विद्वांसो गायत्र्यादिच्छन्दोऽर्थविज्ञापनेन मनुष्यान् विदुषः कुर्वन्ति, सूच्या छिन्नं वस्त्रमिव भिन्नमतान्यनुसंदधत्यैकमत्ये स्थापयन्ति, ते जगत्कल्याणकारका भवन्ति॥३३॥

पदार्थः-हे विद्वन्! जो विद्वान् जन **(पङ्क्त्या)** विस्तारयुक्त पंक्ति छन्द के **(सह)** साथ जो **(गायत्री)** गाने वाले की रक्षा करती हुई गायत्री **(त्रिष्टुप्)** आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक इन तीनों दुःखों को रोकने वाला त्रिष्टुप् **(जगती)** जगत् के समान विस्तीर्ण अर्थात् फैली हुई जगती **(अनुष्टुप्)** जिससे पीछे से संसार के दुःखों को रोकते हैं, वह अनुष्टुप् तथा **(उष्णिहा)** जिससे प्रातः समय की वेला को प्राप्त करता है, उस उष्णिह् छन्द के साथ **(बृहती)** गम्भीर आशय वाली बृहती **(ककुप्)** ललित पदों के अर्थ से युक्त ककुप् छन्द **(सूचीभिः)** सूइयों से जैसे वस्त्र सिया जाता है, वैसे **(त्वा)** तुझको **(शम्यन्तु)** शान्तियुक्त करें वा सब विद्याओं का बोध करावें, उनका तू सेवन कर॥३३॥

भावार्थः-जो विद्वान् गायत्री आदि छन्दों के अर्थ को बताने से मनुष्यों को विद्वान् करते हैं और सूई से फटे वस्त्र को सीवें त्यों अलग-अलग मत वालों का सत्य में मिलाप कर देते हैं और उनको एक मत में स्थापन करते हैं, वे जगत् के कल्याण करने वाले होते हैं॥३३॥

द्विपदा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। प्रजा देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनर्विद्वांसः किं कुर्युरित्याह॥

फिर विद्वान् लोग क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

द्विप॑दा॒ याश्चतु॑ष्पदा॒स्त्रिप॑दा॒ याश्च॒ षट्प॑दाः।

विच्छ॑न्दा॒ याश्च॒ सच्छ॑न्दाः सू॒चीभि॑: शम्यन्तु त्वा॥३४॥

द्विप॑दा॒ इति॒ द्विऽप॑दाः। याः। चतु॑ष्पदा॒ इति॒ चतु॑:ऽपदाः। त्रिप॑दा॒ इति॒ त्रिऽप॑दाः। याः। च॒। षट्प॑दा॒ इति॒ षट्ऽप॑दाः। विच्छ॑न्दा॒ इति॒ विऽच्छ॑न्दाः। याः। च॒। सच्छ॑न्दा॒ऽइति॒ सच्छ॑न्दाः। सू॒चीभि॑:। श॒म्य॒न्तु॒। त्वा॒॥३४॥

पदार्थः-**(द्विपदाः)** द्वे पदे यासु ताः **(याः)** **(चतुष्पदाः)** चत्वारि पदानि यासु ताः **(त्रिपदाः)** त्रीणि पदानि यासु ताः **(याः)** **(च)** **(षट्पदाः)** षट् पदानि यासु ताः **(विच्छन्दाः)** विविधानि छन्दांस्यूर्जनानि यासु ताः **(याः)** **(च)** **(सच्छन्दाः)** समानानि छन्दांसि यासु ताः **(सूचीभिः)** अनुसंधानसाधिकाभिः क्रियाभिः **(शम्यन्तु)** **(त्वा)**॥३४॥

अन्वयः-ये विद्वांसः सूचीभिर्या द्विपदा याश्चतुष्पदा यास्त्रिपदा याश्च षट्पदा या विच्छन्दा याश्च सच्छन्दास्त्वा ग्राहयित्वा शम्यन्तु शमं प्रापयन्तु तान् नित्यं सेवस्व॥३४॥

भावार्थः-ये विद्वांसो मनुष्यान् ब्रह्मचर्यनियमेन वीर्यवृद्धिं प्रापय्यारोगान् जितेन्द्रियान् विषयासक्तिविरहान् कृत्वा धर्म्ये व्यवहारे चालयन्ति, ते सर्वेषां पूज्या भवन्ति॥३४॥

पदार्थः-जो विद्वान् जन (**सूचीभिः**) सन्धियों को मिला देने वाली क्रियाओं से (**याः**) जो (**द्विपदाः**) दो-दो पद वाली वा जो (**चतुष्पदाः**) चार-चार पद वाली वा (**त्रिपदाः**) तीन पदों वाली (**च**) और (**याः**) जो (**षट्पदाः**) छः पदों वाली जो (**विच्छन्दाः**) अनेकविध पराक्रमों वाली (**च**) और (**याः**) जो (**सच्छन्दाः**) ऐसी हैं कि जिनमें एक से छन्द हैं, वे क्रिया (**त्वा**) तुम को ग्रहण कराके (**शम्यन्तु**) शान्ति सुख को प्राप्त करावें, उन का नित्य सेवन करो॥३४॥

भावार्थः-जो विद्वान् मनुष्यों को ब्रह्मचर्य्य नियम से वीर्य्यवृद्धि को पहुंचा कर नीरोग जितेन्द्रिय और विषयासक्ति से रहित करके धर्मयुक्त व्यवहार में चलाते हैं, वे सब के पूज्य अर्थात् सत्कार करने के योग्य होते हैं॥३४॥

महानाम्न्य इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। प्रजा देवता। भुरिगुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

पुनर्विद्वांसः कीदृशा भवेयुरित्याह॥

फिर विद्वान् कैसे हों, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

म॒हाना॑म्न्यो रे॒वत्यो॒ विश्वा॒ आशा॑: प्र॒भूव॑रीः।

मैघी॑र्वि॒द्युतो॒ वाच॑: सू॒चीभि॑: शम्यन्तु त्वा॥३५॥

म॒हाना॑म्न्य॒ इति॑ म॒हाऽना॑म्न्यः। रे॒वत्य॑:। विश्वा॑:। आशा॑:। प्र॒भूव॒रीरिति॑ प्र॒ऽभूव॑रीः। मैघी॑:। वि॒द्युत॒ इति॑ वि॒द्युऽत॑:। वाच॑:। सू॒चीभि॑:। श॒म्य॒न्तु॒। त्वा॒॥३५॥

पदार्थः-(**महानाम्न्यः**) महन्नाम यासां ताः (**रेवत्यः**) बहुधनयुक्ताः (**विश्वाः**) अखिलाः (**आशाः**) दिशः (**प्रभूवरीः**) प्रभुत्वयुक्ताः (**मैघीः**) मेघानामिमाः (**विद्युतः**) (**वाचः**) (**सूचीभिः**) (**शम्यन्तु**) (**त्वा**) त्वाम्॥३५॥

अन्वयः-हे जिज्ञासो! सूचीभिर्या महानाम्न्यो रेवत्यः प्रभूवरीर्विश्वा आशा इव मैघीर्विद्युत इव च वाचस्त्वा शम्यन्तु तास्त्वं गृहाण॥३५॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। येषां वाचो दिग्वत्सर्वासु विद्यासु व्यापिका मेघस्था विद्युदिव सर्वार्थप्रकाशिकाः सन्ति, ते शान्त्या जितेन्द्रियत्वं प्राप्य महाकीर्त्तयो जायन्ते॥३५॥

पदार्थः-हे ज्ञान चाहने हारे (**सूचीभिः**) सन्धान करने वाली क्रियाओं से जो (**महानाम्न्यः**) बड़े नाम वाली (**रेवत्यः**) बहुत प्रकार के धन और (**प्रभूवरीः**) प्रभुता से युक्त (**विश्वाः**) समस्त (**आशाः**)

दिशाओं के समान **(मैघीः)** वा मेघों की तड़क **(विद्युतः)** जो बिजुली उनके समान **(वाचः)** वाणी **(त्वा)** तुझ को **(शम्यन्तु)** शान्तियुक्त करें, उनका तू ग्रहण कर॥३५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जिनकी वाणी दिशा के तुल्य सब विद्याओं में व्याप्त होने और मेघ में ठहरी हुई बिजुली के समान अर्थ का प्रकाश करने वाली है, वे विद्वान् शान्ति से जितेन्द्रियता को प्राप्त होकर बड़ी कीर्ति वाले होते हैं॥३५॥

नार्य इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। स्त्रियो देवताः। भुरिगुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

अथ कन्याः कियद् ब्रह्मचर्यं कुर्युरित्याह॥

अब कन्या कितना ब्रह्मचर्य करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

नार्य॑स्ते॒ पत्न्यो॒ लोम॒ विचि॑न्वन्तु मनी॒षया॑।

दे॒वाना॒ं पत्न्यो॒ दिश॑ः सू॒चीभि॑ः शम्यन्तु त्वा॥३६॥

नार्य्य॑ः। ते॒। पत्न्य॑ः। लोम॑। वि। चि॒न्व॒न्तु॒। म॒नी॒षया॑। दे॒वाना॑म्। पत्न्य॑ः। दिश॑ः। सू॒चीभि॑ः। श॒म्य॒न्तु॒। त्वा॒॥३६॥

पदार्थः-**(नार्य्यः)** नराणां स्त्रियः **(ते)** तव **(पत्न्यः)** स्त्रियः **(लोम)** अनुकूलं वचनम् **(वि)** **(चिन्वन्तु)** सञ्चितं कुर्वन्तु **(मनीषया)** मनस ईषणकर्त्र्या प्रज्ञया **(देवानाम्)** विदुषाम् **(पत्न्यः)** स्त्रियः **(दिशः)** **(सूचीभिः)** अनुसंधानक्रियाभिः **(शम्यन्तु)** **(त्वा)** त्वाम्॥३६॥

अन्वयः-हे विदुष्यध्यापिके! याः कुमार्य्यो मनीषया ते लोम विचिन्वन्तु ता देवानां नार्य्यः पत्न्यो भवन्तु। हे कुमारि! या देवानां पत्न्यो भूत्वा सूचीभिः दिश इव शुद्धा विदुष्यः सन्ति तास्त्वा त्वां शम्यन्तु॥३६॥

भावार्थः-याः कन्या आद्ये वयसि आषोडशादाचतुर्विंशद्वर्षब्रह्मचर्य्येण विद्यासुशिक्षाः प्राप्य स्वसदृशानां पत्न्यः स्युस्ताः दिश इव सुप्रकाशितकीर्त्तयो भवन्ति॥३६॥

पदार्थः-हे पण्डिता पढ़ाने वाली विदुषी स्त्री! जो कुमारी **(मनीषया)** तीक्ष्ण बुद्धि से **(ते)** तेरी **(लोम)** अनुकूल आज्ञा को **(विचिन्वन्तु)** इकट्ठा करें वे **(देवानाम्)** पण्डितों की **(नार्य्यः, पत्न्यः)** पण्डितानी हों। हे कुमारी! जो पण्डितों की **(पत्न्यः)** पण्डितानी होके **(सूचीभिः)** मिलाप की क्रियाओं से **(दिशः)** दिशाओं के समान शुद्ध पाकविद्या पढ़ी हुई हैं, वे **(त्वा)** तुझे **(शम्यन्तु)** शान्ति और ज्ञान दें॥३६॥

भावार्थः-जो कन्या प्रथम अवस्था में सोलह वर्ष की अवस्था से चौबीस वर्ष की अवस्था तक ब्रह्मचर्य से विद्या उत्तम शिक्षा को पाकर अपने सदृश पुरुषों की पत्नी हों, वे दिशाओं के समान उत्तम प्रकाशयुक्त कीर्ति वाली हों॥३६॥

रजता इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। स्त्रियो देवताः। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्ताः कीदृशो भवेयुरित्याह॥

फिर वे कैसी हों, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

र॒ज॒ता हरि॑णीः सीसा॒ युजो॑ युज्यन्ते॒ कर्म॑भिः।

अश्व॑स्य वा॒जिन॑स्त्व॒चि सिमा॑ः शम्यन्तु॒ शम्य॑न्तीः॥ ३७॥

र॒ज॒ताः। हरि॑णीः। सीसा॑ः। युज॑ः। यु॒ज्य॒न्ते॒। कर्म॑भिरिति॒ कर्म॑ऽभिः। अश्व॑स्य। वा॒जिन॑ः। त्व॒चि। सिमा॑ः। श॒म्य॒न्तु॒। शम्य॑न्तीः॥ ३७॥

पदार्थः-(रजताः) अनुरक्ताः **(हरिणीः)** प्रशस्तो हरणं विद्यते यासां ताः **(सीसाः)** प्रेमबन्धिकाः। अत्र 'षिञ् बन्धने' इत्यस्मादौणादिकः क्सः प्रत्ययोऽन्येषामपीति दीर्घः **(युजः)** समाहिताः **(युज्यन्ते)** **(कर्मभिः)** धर्म्याभिः क्रियाभिः **(अश्वस्य)** व्याप्तुं शीलस्य **(वाजिनः)** प्रशस्तबलवतः **(त्वचि)** संवरणे **(सिमाः)** प्रेम्णा बद्धाः **(शम्यन्तु)** आनन्दन्तु **(शम्यन्तीः)** शमं प्राप्नुवतीः प्रापयन्त्यो वा॥ ३७॥

अन्वयः-यथा स्वयंवरा वाजिनोऽश्वस्य त्वचि संयुज्यन्ते तथा कर्मभी रजता हरिणीः सीसा युजः शम्यन्तीः सिमा हृद्यान् पतीन् प्राप्य शम्यन्तु॥ ३७॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! ये सुशिक्षिताः स्वयंवरा भूत्वा स्त्रीपुरुषाः स्वेच्छया परस्परस्मिन् प्रीता विवाहं कुर्वन्ति, ते भद्रान् लावण्यगुणस्वभावयुक्तान् सन्तानानुत्पाद्य सदानन्दन्ति॥ ३७॥

पदार्थः-जैसे स्वयंवर विवाह से विवाही हुई स्त्री **(वाजिनः)** प्रशंसित बलयुक्त **(अश्वस्य)** उत्तम गुणों में व्याप्त अपने पति के **(त्वचि)** उढ़ाने में **(युज्यन्ते)** संयुक्त की जाती अर्थात् पति को वस्त्र उढ़ाने आदि सेवा में लगाई जाती हैं, वैसे **(कर्मभिः)** धर्मयुक्त क्रियाओं से **(रजताः)** अनुराग अर्थात् प्रीति को प्राप्त हुई **(हरिणीः)** जिनका प्रशंसित स्वीकार करना है, वे **(सीसाः)** प्रेमवाली **(युजः)** सावधानचित्त, उचित काम करने वाली **(शम्यन्तीः)** शान्ति को प्राप्त होती वा प्राप्त कराती हुई वा **(सिमाः)** प्रेम से बंधी स्त्री अपने हृदय से प्रिय पतियों को प्राप्त हो के **(शम्यन्तु)** आनन्द भोगें॥ ३७॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जो विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त आप विवाह को प्राप्त स्त्री-पुरुष अपनी इच्छा से एक-दूसरे से प्रीति किये हुए विवाह को करते हैं, वे लावण्य अर्थात् अतिसुन्दरता गुण और उत्तम स्वभावयुक्त सन्तानों को उत्पन्न कर सदा आनन्दयुक्त होते हैं॥ ३७॥

कुविदङ्गेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। सभासदो देवताः। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथाऽध्यापकाऽध्येतारः कीदृशः स्युरित्याह॥

अब पढ़ने और पढ़ाने हारे कैसे हों, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

कु॒वि॒द॒ङ्ग यव॑मन्तो॒ यव॑ञ्चि॒द्यथा॒ दान्त्य॑नुपू॒र्वं वि॒यूय॑।

इ॒हेहै॑षां कृणुहि॒ भोज॑नानि॒ ये ब॒र्हिषो॒ नम॑ऽउक्तिं॒ यज॑न्ति॥ ३८॥

कु॒वित्। अ॒ङ्ग। यव॑मन्त इति॒ यव॑ऽमन्तः। यव॑म्। चि॒त्। यथा॑। दान्ति॑। अ॒नु॒पू॒र्वमित्य॑नु॒ऽपू॒र्वम्। वि॒यूयेति॑ वि॒ऽयूय॑। इ॒हेहेती॒हऽइ॑ह। ए॒षा॒म्। कृ॒णु॒हि॒। भोज॑नानि। ये। ब॒र्हिष॑ः। नम॑ऽउक्ति॒मिति॒ नम॑ःऽउक्तिम्। यज॑न्ति॥३८॥

पदार्थः-(**कुवित्**) बहुविज्ञानयुक्तः (**अङ्ग**) मित्र (**यवमन्तः**) बहुयवादिधान्ययुक्ताः (**यवम्**) धान्यसमूहम् (**चित्**) अपि (**यथा**) (**दान्ति**) छिन्दन्ति (**अनुपूर्वम्**) आनुकूल्यमनतिक्रम्य (**वियूय**) वियोज्य संमिश्र्य च (**इहेह**) अस्मिन्नस्मिन् व्यवहारे (**एषाम्**) जनानाम् (**कृणुहि**) कुरु (**भोजनानि**) पालनार्थान्यन्नानि (**ये**) (**बर्हिषः**) जलस्य (**नमउक्तिम्**) नमसोऽन्नस्य वचनम् (**यजन्ति**) सङ्गच्छन्ते॥३८॥

अन्वयः-हे अङ्ग। कुवित् त्वमिहेहैषां यथा यवमन्तो कृषीव यवं वियूय चिदप्यनुपूर्वं दान्ति ये च बर्हिषो नम उक्तिं यजन्ति, तेषां भोजनानि कृणुहि॥३८॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। हे अध्यापकाध्येतारः! यूयं यथा कृषीवलाः परस्परस्य क्षेत्राणि पर्यायेण लुनन्ति, बुसादिभ्योऽन्नानि पृथक्कृत्याऽन्यान् भोजयित्वा स्वयं भुञ्जते, तथैवेह विद्याव्यवहारे निष्कपटतया विद्यार्थिभिरध्यापकानां सेवामध्यापकैर्विद्यार्थिनां विद्यावृद्धिं च कृत्वा परस्परान् भोजनादिना सत्कृत्य सर्व आनन्दन्तु॥३८॥

पदार्थः-हे (**अङ्ग**) मित्र! (**कुवित्**) बहुत विज्ञानयुक्त तू (**इहेह**) इस-इस व्यवहार में (**एषाम्**) इन मनुष्यों से (**यथा**) जैसे (**यवमन्तः**) बहुत जौ आदि अन्नयुक्त खेती करने वाले (**यवम्**) जौ आदि अनाज के समूह को बुस आदि से (**वियूय**) पृथक् कर (**चित्**) और (**अनुपूर्वम्**) क्रम से (**दान्ति**) छेदन करते हैं, उनके और (**ये**) जो (**बर्हिषः**) जल वा (**नमउक्तिम्**) अन्नसम्बन्धी वचन को (**यजन्ति**) कहकर सत्कार करते हैं, उनके (**भोजनानि**) भोजनों को (**कृणुहि**) करो॥३८॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे पढ़ाने और पढ़ने वालो! तुम लोग जैसे खेती करनेहारे एक-दूसरे के खेत को पारी से काटते और भूसा से अन्न को अलग कर औरों को भोजन कराके फिर आप भोजन करते हैं, वैसे ही यहां विद्या के व्यवहार में निष्कपट भाव से विद्यार्थियों को पढ़ाने वालों की सेवा और पढ़ाने वालों को विद्यार्थियों की विद्यावृद्धि कर एक-दूसरे को खान-पान से सत्कार कर सब कोई आनन्द भोगें॥३८॥

कस्त्वा छ्यतीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। अध्यापको देवता। भुरिग्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनरध्यापका विद्यार्थिनां कीदृशीं परीक्षां गृह्णीयुरित्याह॥

फिर पढ़ाने वाले विद्यार्थियों की कैसी परीक्षा लेवें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

कस्त्वाछ्य॑ति॒ कस्त्वा॒ विश॑ास्ति॒ कस्ते॒ गात्रा॑णि शम्यति।
कऽउ॑ ते शमि॒ता कु॒विः॥३९॥

कः। त्वा। आच्छ्यति। कः। त्वा। वि। शास्ति। कः। ते। गात्राणि। शम्यति। कः। उँऽइत्यूँ। ते। शमिता। कविः॥ ३९॥

पदार्थः-(**कः**) (**त्वा**) त्वाम् (**आच्छ्यति**) समन्ताच्छिनत्ति (**कः**) (**त्वा**) त्वाम् (**वि**) (**शास्ति**) विशेषेणोपदिशति (**कः**) (**ते**) तव (**गात्राणि**) अङ्गानि (**शम्यति**) शाम्यति शमं प्रापयति अत्र '**वा छन्दसी**'ति दीर्घत्वाभावः। (**कः**) (**उ**) वितर्के (**ते**) तव (**शमिता**) यज्ञस्य कर्त्ता (**कविः**) सर्वशास्त्रवित्॥ ३९॥

अन्वयः-हे अध्येतस्त्वा त्वां क आच्छ्यति कस्त्वा विशास्ति कस्ते गात्राणि शम्यति क उ ते शमिता कविरध्यापकोऽस्ति॥ ३९॥

भावार्थः-अध्यापका अध्येतॄन् प्रत्येवं परीक्षायां पृच्छेयुः के युष्माकमध्ययनं छिन्दन्ति? के युष्मानध्ययनायोपदिशन्ति? केऽङ्गानां शुद्धिं योग्यां चेष्टां च ज्ञापयन्ति? कोऽध्यापकोऽस्ति? किमधीतम्? किमध्येतव्यमस्ति? इत्यादि पृष्ट्वा सुपरीक्ष्योत्तमानुत्साह्याधमान् धिक्कृत्वा विद्यामुन्नयेयुः॥ ३९॥

पदार्थः-हे पढ़ने वाले विद्यार्थिजन! (**त्वा**) तुझे (**कः**) कौन (**आच्छ्यति**) छेदन करता (**कः**) कौन (**त्वा**) तुझे (**विशास्ति**) अच्छा सिखाता (**कः**) कौन (**ते**) तेरे (**गात्राणि**) अङ्गों को (**शम्यति**) शान्ति पहुंचाता और (**कः**) कौन (**उ**) तो (**ते**) तेरा (**शमिता**) यज्ञ करने वाला (**कविः**) समस्त शास्त्र को जानता हुआ पढ़ाने हारा है॥ ३९॥

भावार्थः-अध्यापक लोग पढ़ने वालों के प्रति ऐसे परीक्षा में पूछें कि कौन तुम्हारे पढ़ने को काटते अर्थात् पढ़ने में विघ्न करते? कौन तुम को पढ़ने के लिए उपदेश देते हैं? कौन अङ्गों की शुद्धि और योग्य चेष्टा को जनाते हैं? कौन पढ़ाने वाला है? क्या पढ़ा? क्या पढ़ने योग्य है? ऐसे-ऐसे पूछ उत्तम परीक्षा कर उत्तम विद्यार्थियों को उत्साह देकर दुष्ट स्वभाव वालों को धिक्कार दे के विद्या की उन्नति करावें॥ ३९॥

ऋतव इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। प्रजा देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनः स्त्रीपुरुषाः कथं वर्त्तेरन्नित्याह॥

फिर स्त्री-पुरुष कैसे अपना वर्त्ताव वर्त्तें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ऋतवस्तऽऋतुथा पर्व शमितारो विशासतु।

संवत्सरस्य तेजसा शमीभिः शम्यन्तु त्वा॥ ४०॥

ऋतवः। ते। ऋतुथेत्यृतुऽथा। पर्व। शमितारः। वि। शासतु। संवत्सरस्य। तेजसा। शमीभिः। शम्यन्तु। त्वा॥ ४०॥

पदार्थः-(**ऋतवः**) वसन्ताद्याः (**ते**) तव (**ऋतुथा**) ऋतुभ्यः (**पर्व**) पालनम् (**शमितारः**) अध्ययनाध्यापनाख्ये यज्ञे शमादिगुणानां प्रापकाः (**वि, शासतु**) विशेषेणोपदिशन्तु (**संवत्सरस्य**) (**तेजसा**) जलेन। **तेज इत्युदकनामसु पठितम्॥** (निघं०१।१२) (**शमीभिः**) कर्मभिः (**शम्यन्तु**) (**त्वा**) त्वाम्॥४०॥

अन्वयः-हे विद्यार्थिन्! यथा ते ऋतव ऋतथा पर्वेव शमितारोऽध्येतारं विशासतु संवत्सरस्य तेजसा शमीभिस्त्वा त्वां शम्यन्तु तांस्त्वं सदैव सेवस्व॥४०॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा ऋतवः पर्यायेण स्वानि स्वानि लिङ्गान्यभिपद्यन्ते, तथैव स्त्रीपुरुषाः पर्यायेण ब्रह्मचर्यगृहस्थवानप्रस्थसंन्यासाश्रमान् कृत्वा, ब्राह्मणा ब्राह्मण्यश्चाऽध्यापयेयुः, क्षत्रियाः प्रजा रक्षन्तु, वैश्याः कृष्यादिकमुन्नयन्तु, शूद्राश्चैतान् सेवन्तामिति॥४०॥

पदार्थः-हे विद्यार्थी जन! जैसे (**ते**) तेरे (**ऋतवः**) वसन्त आदि ऋतु (**ऋतुथा**) ऋतु-ऋतु के गुणों से (**पर्व**) पालना कर (**शमितारः**) वैसे पढ़ाने रूप यज्ञ में शम, दम आदि गुणों की प्राप्ति करानेहारे अध्यापक पढ़ने वालों को (**वि, शासतु**) विशेषता से उपदेश करें (**संवत्सरस्य**) और संवत् के (**तेजसा**) जल (**शमीभिः**) और कर्मों से (**त्वा**) तुझे (**शम्यन्तु**) शान्ति दें, उनकी तू सदैव सेवा कर॥४०॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे ऋतु पारी से अपने-अपने चिह्नों को प्राप्त होते हैं, वैसे स्त्री-पुरुष पारी से ब्रह्मचर्य, गृहस्थ का धर्म, वानप्रस्थ वन में रहकर तप करना और संन्यास आश्रम को करके; ब्राह्मण और ब्राह्मणी पढ़ावें, क्षत्रिय और क्षत्रिया प्रजा की रक्षा करें, वैश्य और वैश्या खेती आदि की उन्नति करें और शूद्र-शूद्रा उक्त ब्राह्मण आदि की सेवा किया करें॥४०॥

अर्द्धमासा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। प्रजा देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथ बालकेषु मात्रादयः कथं वर्त्तेरन्नित्याह॥

अब बालकों में माता आदि कैसे वर्त्तें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अर्द्धमासाः परूᳬंषि ते मासाऽआच्छ्यन्तु शम्यन्तः।

अहोरात्राणि मरुतो विलिष्टᳬ सूदयन्तु ते॥४१॥

अर्द्धमासा इत्यर्द्धमासाः। परूᳬंषि। ते। मासाः। आ। छ्यन्तु। शम्यन्तः। अहोरात्राणि। मरुतः। विलिष्टमिति विऽलिष्टम्। सूदयन्तु। ते॥४१॥

पदार्थः-(**अर्द्धमासाः**) कृष्णशुक्लपक्षाः (**परूंषि**) कठोराणि वचनानि (**ते**) तव (**मासाः**) चैत्रादयः (**आ**) समन्तात् (**छ्यन्तु**) छिन्दन्तु (**शम्यन्तः**) शान्ति प्रापयन्तः (**अहोरात्राणि**) (**मरुतः**) मनुष्याः (**विलिष्टम्**) विरुद्धमल्पमपि व्यसनम् (**सूदयन्तु**) दूरीकारयन्तु (**ते**) तव॥४१॥

अन्वयः-हे विद्यार्थिन्! अहोरात्राण्यर्द्धमासा मासाश्चायूंषीव ते तव परूंषि शम्यन्तो मरुतो दुर्व्यसनान्याच्छ्यन्तु ते तव मासा विलिष्टं सूदयन्तु॥४१॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यदि मातापित्रध्यापकोपदेशकातिथयो बालानां दुर्गुणान्न निवर्त्तयेयुस्तर्हि ते शिष्टाः कदाचिन्न भवेयुः॥४१॥

पदार्थः-हे विद्यार्थी लोग! **(अहोरात्राणि)** दिन-रात **(अर्द्धमासाः)** उजेले-अंधियारे पखवाड़े और **(मासाः)** चैत्रादि महीने जैसे आयु अर्थात् उमरों को काटते हैं, वैसे **(ते)** तेरे **(परूंषि)** कठोर वचनों को **(शम्यन्तः)** शान्ति पहुंचाते हुए **(मरुतः)** उत्तम मनुष्य दुष्ट कामों का **(आच्छ्यन्तु)** विनाश करें और **(ते)** तेरे **(विलिष्टम्)** थोड़े भी कुव्यसन को **(सूदयन्तु)** दूर करें॥४१॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जो माता-पिता पढ़ाने और उपदेश करने वाले तथा अतिथि लोग बालकों के दुष्ट गुणों को न निवृत्त करें तो वे शिष्ट अर्थात् उत्तम कभी न हों॥४१॥

दैव्या इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। अध्यापको देवता। भुरिगुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

अथाध्यापकादयः कथं वर्त्तेरन्नित्याह॥

अब पढ़ाने वाले आदि सज्जन कैसे वर्त्तें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

दैव्या॑ऽअध्व॒र्यव॒स्त्वाच्छ्य॑न्तु॒ वि च॑ शासतु।

गात्रा॑णि पर्व॒शस्ते॒ सिमाः॑ कृण्वन्तु शम्य॑न्तीः॥४२॥

दैव्याः॑। अ॒ध्व॒र्यवः॑। त्वा॒। आ। छ्य॒न्तु॒। वि। च॒। शा॒स॒तु॒। गात्रा॑णि। प॒र्व॒श इति॑ पर्व॒ऽशः। ते। सिमाः॑। कृ॒ण्व॒न्तु॒। शम्य॑न्तीः॥४२॥

पदार्थः-**(दैव्याः)** देवेषु विद्वत्सु कुशलाः **(अध्वर्यवः)** आत्मनोऽहिंसाख्ययज्ञमिच्छन्तः **(त्वा)** त्वाम् **(आ)** **(छ्यन्तु)** छिन्दन्तु **(वि)** **(च)** **(शासतु)** उपदिशन्तु **(गात्राणि)** अङ्गानि **(पर्वशः)** सन्धितः **(ते)** तव **(सिमाः)** प्रेमबद्धाः **(कृण्वन्तु)** **(शम्यन्तीः)** दुष्टस्वभावं निवारयन्त्यः॥४२॥

अन्वयः-हे विद्यार्थिन् विद्यार्थिनि वा! दैव्या अध्वर्य्यवस्त्वा विशासतु च ते तव दोषानाच्छ्यन्तु पर्वशो गात्राणि परीक्षन्तां सिमाः शम्यन्तीः सत्यो मातरोऽप्येवं शिक्षां कृण्वन्तु॥४२॥

भावार्थः-अध्यापकोपदेशकाऽतिथयो यदा बालकान् शिक्षयेयुस्तदा दुर्गुणान् विनाश्य विद्यां प्रापयेयुरेवमध्यापिकोपदेशिका विदुष्यः स्त्रियोऽपि कन्याः प्रत्याचरेयुः। वैद्यकशास्त्ररीत्या शरीरावयवान् सम्यक् परीक्ष्यौषधान्यपि प्रदद्युः॥४२॥

पदार्थः-हे विद्यार्थी वा विद्यार्थिनी! **(दैव्याः)** विद्वानों में कुशल **(अध्वर्यवः)** अपनी रक्षारूप यज्ञ को चाहते हुए अध्यापक उपदेशक लोग **(त्वा)** तुझे **(वि, शासतु)** विशेष उपदेश दें **(च)** और **(ते)** तेरे दोषों का **(आ, छ्यन्तु)** विनाश करें **(पर्वशः)** सन्धि-सन्धि से **(गात्राणि)** अङ्गों को परखें **(सिमाः)** प्रेम से बँधी हुई **(शम्यन्तीः)** दुष्ट स्वभाव को दूर करती हुई माता आदि सती स्त्रियां भी ऐसी ही शिक्षा **(कृण्वन्तु)** करें॥४२॥

भावार्थः-अध्यापक, उपदेशक और अतिथि लोग जब बालकों को सिखलावें तब दोषों का विनाश कर उनको विद्या की प्राप्ति करावें, ऐसे पढ़ाने और उपदेश करने वाली स्त्री भी कन्याओं के प्रति आचरण करें और वैद्यक शास्त्र की रीति से शरीर के अङ्गों की अच्छे प्रकार परीक्षा कर औषधि भी देवें॥४२॥

द्यौरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। राजा देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनरध्यापकादयः कीदृशा भवेयुरित्याह॥

फिर अध्यापकादि कैसे हों, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

द्यौस्ते पृथिव्यन्तरिक्षं वायुश्छिद्रं पृणातु ते।
सूर्यस्ते नक्षत्रैः सह लोकं कृणोतु साधुया॥४३॥

द्यौः। ते। पृथिवी। अन्तरिक्षम्। वायुः। छिद्रम्। पृणातु। ते। सूर्यः। ते। नक्षत्रैः। सह। लोकम्। कृणोतु। साधुयेति साधुऽया॥४३॥

पदार्थः-(**द्यौः**) प्रकाशरूपा विद्युत् (**ते**) तव (**पृथिवी**) भूमिः (**अन्तरिक्षम्**) आकाशम् (**वायुः**) पवनः (**छिद्रम्**) इन्द्रियम् (**पृणातु**) सुखयतु (**ते**) तव (**सूर्य्यः**) सविता (**ते**) तव (**नक्षत्रैः**) (**सह**) (**लोकम्**) दर्शनीयम् (**कृणोतु**) (**साधुया**) साधु सत्यम्॥४३॥

अन्वयः-हे शिष्येऽध्यापिके वा! यथा द्यौः पृथिव्यन्तरिक्षं वायुः सूर्य्यो नक्षत्रैः सह चन्द्रश्च ते छिद्रं पृणातु ते तव व्यवहारं साध्नोतु, तथा ते तव साधुया लोकं कृणोतु॥४३॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा पृथिव्यादयः सुखप्रदाः सूर्यादयः प्रकाशकाः पदार्थाः सन्ति, तथैवाऽध्यापका उपदेशकाश्चाऽध्यापिका अप्युपदेशिकाश्च सर्वान् सन्मार्गस्थान् कृत्वा विद्याप्रकाशं जनयन्तु॥४३॥

पदार्थः-हे पढ़ने या पढ़ाने हारी स्त्रियो! जैसे (**द्यौः**) प्रकाशरूप बिजुली (**पृथिवी**) भूमि (**अन्तरिक्षम्**) आकाश (**वायुः**) पवन (**सूर्य्यः**) सूर्यलोक और (**नक्षत्रैः**) तारागणों के (**सह**) साथ चन्द्रलोक (**ते**) तेरे (**छिद्रम्**) प्रत्येक इन्द्रिय को (**पृणातु**) सुख देवें (**ते**) तेरे व्यवहार को सिद्ध करें, वैसे (**ते**) तेरे (**साधुया**) उत्तम सत्य (**लोकम्**) देखने योग्य लोक को (**कृणोतु**) सिद्ध करें॥४३॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे पृथिवी आदि सुख देने और सूर्य आदि पदार्थ प्रकाश करने वाले हैं, वैसे ही पढ़ाने वाले और उपदेश करने वाले वा पढ़ाने और उपदेश करने वाली स्त्री सब को अच्छे मार्ग में स्थापन कर विद्या के प्रकाश को उत्पन्न करें॥४३॥

शन्त इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। राजा देवता। उष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

पुनर्मात्रादिभिः किं कर्त्तव्यमित्याह॥

फिर माता आदि को क्या करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

शं ते परेभ्यो गात्रेभ्यः शमस्त्ववरेभ्यः।

शमस्थभ्यो मज्जभ्यः शम्वस्तु तन्वै तव॥४४॥

शम्। ते। परेभ्यः। गात्रेभ्यः। शम्। अस्तु। अवरेभ्यः। शम्। अस्थभ्य इत्यस्थऽभ्यः। मज्जभ्य इति मज्जऽभ्यः। शम्। ऊँऽइत्यूँ। अस्तु। तन्वै। तव॥४४॥

पदार्थः-(**शम्**) सुखम् (**ते**) तुभ्यम् (**परेभ्यः**) उत्कृष्टेभ्यः (**गात्रेभ्यः**) (**शम्**) (**अस्तु**) (**अवरेभ्यः**) मध्यस्थेभ्यो निकृष्टेभ्यो वा (**शम्**) (**अस्थभ्यः**) **छन्दस्यपि दृश्यते** [अ०६.४.७३] इत्यनेन हलादावप्यनङ्। (**मज्जभ्यः**) (**शम्**) (उ) (**अस्तु**) (**तन्वै**) शरीराय (**तव**)॥४४॥

अन्वयः-हे विद्यामिच्छो! यथा पृथिव्यादितत्त्वं तव तन्वै शमस्तु परेभ्यो गात्रेभ्यः शम्ववरेभ्यो गात्रेभ्यः शमस्तु। अस्थभ्यो मज्जभ्यः शमस्तु तथा स्वकीयैरुत्तमगुणकर्मस्वभावैरध्यापकास्ते शंकरा भवन्तु॥४४॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा मातापित्रध्यापकोपदेशकैः सन्तानानां दृढाङ्गानि दृढा धातवश्च स्युर्यैः कल्याणं कर्त्तुमर्हेयुस्तथाऽध्यापनीयमुपदेष्टव्यं च॥४४॥

पदार्थः-हे विद्या चाहने वाले! जैसे पृथिवी आदि तत्त्व (**तव**) तेरे (**तन्वै**) शरीर के लिये (**शम्**) सुखहेतु (**अस्तु**) हो वा (**परेभ्यः**) अत्यन्त उत्तम (**गात्रेभ्यः**) अङ्गों के लिये (**शम्**) सुख (उ) और (**अवरेभ्यः**) उत्तमों से न्यून मध्य तथा निकृष्ट अङ्गों के लिये (**शम्**) सुखरूप (**अस्तु**) हो और (**अस्थभ्यः**) हड्डी (**मज्जभ्यः**) और शरीर में रहने वाली चरबी के लिये (**शम्**) सुखहेतु हो, वैसे अपने उत्तम गुण-कर्म और स्वभाव से अध्यापक लोग (**ते**) तेरे लिये सुख के करने वाले हों॥४४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे माता, पिता, पढ़ाने और उपदेश करनेवालों को अपने सन्तानों के पुष्ट अङ्ग और पुष्ट धातु हों, जिनसे दूसरों के कल्याण करने के योग्य हों, वैसे पढ़ाना और उपदेश करना चाहिये॥४४॥

कः स्विदित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। जिज्ञासुर्देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथ विदुषः प्रति प्रश्ना एवं कर्त्तव्या इत्याह॥

अब विद्वानों के प्रति प्रश्न ऐसे करने चाहियें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

कः स्विदेकाकी चरति कऽउ स्विज्जायते पुनः।

किꣳस्विद्धिमस्य भेषजं किम्वावपनं महत्॥४५॥

कः। स्वित्। एकाकी। चरति। कः। ऊँऽइत्यूँ। स्वित्। जायते। पुनरिति पुनः। किम्। स्वित्। हिमस्य। भेषजम्। किम्। ऊँऽइत्यूँ। आवपनमित्याऽवपनम्। महत्॥४५॥

पदार्थः-(**कः**) (**स्वित्**) (**एकाकी**) असहायोऽद्वितीयः (**चरति**) प्राप्नोति (**कः**) (**उ**) (**स्वित्**) अपि (**जायते**) (**पुनः**) (**किम्**) (**स्वित्**) (**हिमस्य**) शीतस्य (**भेषजम्**) औषधम् (**किम्**) (**उ**) (**आवपनम्**) समन्तात् सर्वाधारम् (**महत्**)॥४५॥

अन्वयः-हे विद्वन्! अस्मिन् संसारे कः स्विदेकाकी चरति क उ स्वित् पुनर्जायते किं स्विद्धिमस्य भेषजं किमु महदावपनमस्तीति वदस्व॥४५॥

भावार्थः-असहायः को भ्रमति? शीतनिवारकः कः? कः पुनः पुनरुत्पद्यते? महदुत्पत्तिस्थानं किमस्ति? इत्येतेषां प्रश्नानामुत्तरेण मन्त्रेण समाधानानि वेदितव्यानि॥४५॥

पदार्थः-हे विद्वन्! इस संसार में (**कः, स्वित्**) कौन (**एकाकी**) एकाएकी अकेला (**चरति**) चलता वा प्राप्त होता है (**उ**) और (**कः, स्वित्**) कौन (**पुनः**) फिर-फिर (**जायते**) उत्पन्न होता (**किं, स्वित्**) कौन (**हिमस्य**) शीत का (**भेषजम्**) औषध (**किम्, उ**) और क्या (**महत्**) बड़ा (**आवपनम्**) अच्छे प्रकार सब बीज बोने का आधार है, इस सब को आप कहिये॥४५॥

भावार्थः-विना सहाय के कौन भ्रमता? कौन फिर-फिर उत्पन्न होता? शीत की निवृत्ति कर्त्ता कौन? और बड़ा उत्पत्ति का स्थान क्या है? इन सब प्रश्नों के समाधान अगले मन्त्र से जानने चाहियें॥४५॥

सूर्य्य इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। सूर्यादयो देवताः। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनः पूर्वोक्तप्रश्नोत्तराण्याह॥

फिर पूर्वोक्त प्रश्नों के उत्तरों को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

सूर्य्यऽएकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुनः।

अग्निर्हिमस्य भेषजं भूमिरावपनं महत्॥४६॥

सूर्य्यः। एकाकी। चरति। चन्द्रमाः। जायते। पुनरितिऽपुनः। अग्निः। हिमस्य। भेषजम्। भूमिः। आवपनमित्याऽवपनम्। महत्॥४६॥

पदार्थः-(**सूर्य्यः**) सूर्य्यलोकः (**एकाकी**) असहायः (**चरति**) (**चन्द्रमाः**) आह्लादकरश्चन्द्रः (**जायते**) प्रकाशितो भवति (**पुनः**) पश्चात् (**अग्निः**) पावकः (**हिमस्य**) शीतस्य (**भेषजम्**) औषधम् (**भूमिः**) भवन्ति भूतानि यस्यां सा पृथिवी (**आवपनम्**) समन्ताद् वपन्ति यस्मिँस्तत् (**महत्**) विस्तीर्णम्॥४६॥

अन्वयः-हे जिज्ञासो! सूर्य एकाकी चरति, चन्द्रमाः पुनर्जायते, अग्निर्हिमस्य भेषजम्, महदावपनं भूमिरस्तीति॥४६॥

भावार्थः-हे विद्वांसः! सूर्यः स्वस्यैव परिधौ भ्रमति, न कस्यचिल्लोकस्य परितः। चन्द्रादिलोकास्तेनैव प्रकाशिता भवन्ति। अग्निरेव शीतविनाशकस्सर्वबीजवपनार्थं महत् क्षेत्रं भूमिरेवास्तीति यूयं विजानीत॥४६॥

पदार्थः-हे जिज्ञासु जानने की इच्छा करने वाले पुरुष! **(सूर्य्यः)** सूर्यलोक **(एकाकी)** अकेला **(चरति)** स्वपरिधि में घूमता है। **(चन्द्रमाः)** आनन्द देने वाला चन्द्रमा **(पुनः)** फिर-फिर **(जायते)** प्रकाशित होता है। **(अग्निः)** पावक **(हिमस्य)** शीत का **(भेषजम्)** औषध और **(महत्)** बड़ा **(आवपनम्)** अच्छे प्रकार बोने का आधार कि जिस में सब वस्तु बोते हैं, **(भूमिः)** वह भूमि है॥४६॥

भावार्थः-हे विद्वानो! सूर्य अपनी ही परिधि में घूमता है, किसी लोकान्तर के चारों ओर नहीं घूमता। चन्द्रादि लोक उसी सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होते हैं। अग्नि ही शीत का नाशक और सब बीजों के बोने को बड़ा क्षेत्र भूमि ही है, ऐसा तुम लोग जानो॥४६॥

किं स्विदित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। जिज्ञासुर्देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनः प्रश्नानाह॥

फिर प्रश्नों को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

कि॑ꣳस्वि॒त् सूर्य॑सम॒ं ज्योति॒ः किꣳस॑मु॒द्रस॑म॒ꣳसर॑ः।

कि॑ꣳस्वि॑त् पृथि॒व्यै वर्षी॑य॒ः कस्य॒ मात्रा॒ न वि॑द्यते॥४७॥

किम्। स्वि॒त्। सूर्य॑सम॒मिति॒ सूर्य॑ऽसमम्। ज्योति॑ः। किम्। स॒मु॒द्रस॑म॒मिति॑ समु॒द्रऽस॑मम्। सर॑ः। किम्। स्वि॒त्। पृ॒थि॒व्यै। वर्षी॑यः। कस्य॑। मात्रा॑। न। वि॒द्यते॒॥४७॥

पदार्थः-**(किम्)** **(स्वित्)** **(सूर्यसमम्)** सूर्येण तुल्यम् **(ज्योतिः)** प्रकाशस्वरूपम् **(किम्)** **(समुद्रसमम्)** **(सरः)** सरन्ति जलानि यस्मिन् तडागे तत् **(किम्)** **(स्वित्)** **(पृथिव्यै)** पृथिव्याः। अत्र पञ्चम्यर्थे चतुर्थी **(वर्षीयः)** वृद्धम् **(कस्य)** **(मात्रा)** मीयते यया सा **(न)** **(विद्यते)** भवति॥४७॥

अन्वयः-हे विद्वन्! किं स्वित् सूर्यसमं ज्योतिः? किं समुद्रसमं सरः? किं स्वित् पृथिव्यै वर्षीयः? कस्य मात्रा न विद्यत? इति॥४७॥

भावार्थः-आदित्यवत्तेजस्वि समुद्रवदुदधि भूमेरधिकं च किं कस्य च परिमाणं नास्तीत्येतेषां प्रश्नानामुत्तराणि परस्मिन् मन्त्रे वेदितव्यानि॥४७॥

पदार्थः-हे विद्वन्! **(किं, स्वित्)** कौन **(सूर्यसमम्)** सूर्य के समान **(ज्योतिः)** प्रकाशस्वरूप **(किम्)** कौन **(समुद्रसमम्)** समुद्र के समान **(सरः)** जिसमें जल बहते वा गिरते वा आते-जाते हैं, ऐसा तालाब **(किं, स्वित्)** कौन **(पृथिव्यै)** पृथिवी से **(वर्षीयः)** अति बड़ा और **(कस्य)** किस का **(मात्रा)** जिससे तोल हो, वह परिमाण **(न)** नहीं **(विद्यते)** विद्यमान है॥४७॥

भावार्थः-आदित्य के तुल्य तेजस्वी, समुद्र के समान जलाधार और भूमि से बड़ा कौन है? और किस का परिमाण नहीं है? इन चार प्रश्नों का उत्तर अगले मन्त्र में जानना चाहिये॥४७॥

ब्रह्मेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। ब्रह्मादयो देवताः। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथैतेषामुत्तराण्याह॥

अब उक्त प्रश्नों के उत्तरों को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

ब्रह्म सूर्यसमं ज्योतिर्द्यौः समुद्रसमꣳसरः।

इन्द्रः पृथिव्यै वर्षीयान् गोस्तु मात्रा न विद्यते॥४८॥

ब्रह्म। सूर्य्यसममिति सूर्य्यऽसमम्। ज्योतिः। द्यौः। समुद्रसममिति समुद्रऽसमम्। सरः। इन्द्रः। पृथिव्यै। वर्षीयान्। गोः। तु। मात्रा। न। विद्यते॥४८॥

पदार्थः-(**ब्रह्म**) बृहत् सर्वेभ्यो महदनन्तम् (**सूर्य्यसमम्**) (**ज्योतिः**) प्रकाशकम् (**द्यौः**) अन्तरिक्षम् (**समुद्रसमम्**) समुद्रेण समानः (**सरः**) (**इन्द्रः**) सूर्य्यः (**पृथिव्यै**) पृथिव्याः (**वर्षीयान्**) अतिशयेन वृद्धो महान् (**गोः**) वाचः (**तु**) (**मात्रा**) (**न**) (**विद्यते**) भवति॥४८॥

अन्वयः-हे जिज्ञासो! त्वं सूर्य्यसमं ज्योतिर्ब्रह्म समुद्रसमं सरो द्यौ पृथिव्यै वर्षीयानिन्द्रो गोस्तु मात्रा न विद्यत इति विजानीहि॥४८॥

भावार्थः-न किंचित् स्वप्रकाशेन ब्रह्मणा समं ज्योतिर्विद्यते सूर्य्यप्रकाशेन युक्तेन मेघेन तुल्यो जलाशयः सूर्य्येण तुल्यो लोकेशो वाचा तुल्यं व्यवहारसाधकं किंचिदपि वस्तु न भवतीति सर्वे निश्चिन्वन्तु॥४८॥

पदार्थः-हे ज्ञान चाहने वाले जन! तू (**सूर्य्यसमम्**) सूर्य के समान (**ज्योतिः**) स्वप्रकाशस्वरूप (**ब्रह्म**) सब से बड़े अनन्त परमेश्वर (**समुद्रसमम्**) समुद्र के समान (**सरः**) ताल (**द्यौः**) अन्तरिक्ष (**पृथिव्यै**) पृथिवी से (**वर्षीयान्**) बड़ा (**इन्द्रः**) सूर्य और (**गोः**) वाणी का (**तु**) तो (**मात्रा**) मान परिमाण (**न**) नहीं (**विद्यते**) विद्यमान है, इसको जान॥४८॥

भावार्थः-कोई भी, आप प्रकाशमान जो ब्रह्म है उसके समान ज्योति विद्यमान नहीं वा सूर्य के प्रकाश से युक्त मेघ के समान जल के ठहरने का स्थान वा सूर्यमण्डल के तुल्य लोकेश वा वाणी के तुल्य व्यवहार का सिद्ध करनेहारा कोई भी पदार्थ नहीं होता, इसका निश्चय सब करें॥४८॥

पृच्छामीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। प्रष्टृसमाधातारौ देवते। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनः प्रश्नानाह॥

फिर प्रश्नों को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

पृच्छामि त्वा चितये देवसख यदि त्वमत्र मनसा जगन्थ।

येषु विष्णुस्त्रिषु पदेष्वेष्टस्तेषु विश्वं भुवनमाविवेशाँ३ऽ॥४९॥

पृच्छामि। त्वा। चितये। देवसखेति देवऽसख। यदि। त्वम्। अत्र। मनसा। जगन्थ। येषु। विष्णुः। त्रिषु। पदेषु। आइष्ट इत्याऽइष्टः। तेषु। विश्वम्। भुवनम्। आ। विवेश॥४९॥

पदार्थः-(**पृच्छामि**) (**त्वा**) त्वाम् (**चितये**) चेतनाय (**देवसख**) देवानां विदुषां सुहृद् (**यदि**) (**त्वम्**) (**अत्र**) (**मनसा**) अन्तःकरणेन (**जगन्थ**) (**येषु**) (**विष्णुः**) व्यापकेश्वरः (**त्रिषु**) त्रिविधेषु (**पदेषु**) नामस्थानजन्माख्येषु (**एष्टः**) (**तेषु**) (**विश्वम्**) (**भुवनम्**) (**आ**) (**विवेश**) आविष्टो व्याप्तोऽस्ति॥४९॥

अन्वयः-हे देवसख! यदि त्वमत्र मनसा जगन्थ तर्हि त्वा चितये पृच्छामि, यो विष्णुर्येषु त्रिषु पदेष्वेष्टोऽस्ति तेषु व्याप्तः सन् विश्वं भुवनमाविवेश तं च पृच्छामि॥४९॥

भावार्थः-हे विद्वन्! यश्चेतनः सर्वव्यापी पूजितुं योग्यः परमेश्वरोऽस्ति, तं मह्यमुपदिश॥४९॥

पदार्थः-हे (**देवसख**) विद्वानों के मित्र! (**यदि**) जो (**त्वम्**) तू (**अत्र**) यहाँ (**मनसा**) अन्तःकरण से (**जगन्थ**) प्राप्त हो तो (**त्वा**) तुझे (**चितये**) चेतन के लिये (**पृच्छामि**) पूछता हूँ जो (**विष्णुः**) व्यापक ईश्वर (**येषु**) जिन (**त्रिषु**) तीन प्रकार के (**पदेषु**) प्राप्त होने योग्य जन्म, नाम और स्थान में (**एष्टः**) अच्छे प्रकार इष्ट है, (**तेषु**) उनमें व्याप्त हुआ (**विश्वम्**) सम्पूर्ण (**भुवनम्**) पृथिवी आदि लोकों को (**आ, विवेश**) भलीभांति प्रवेश कर रहा है, उस परमात्मा को भी तुझ से पूछता हूँ॥४९॥

भावार्थः-हे विद्वान्! जो चेतनस्वरूप, सर्वव्यापी, पूजा, उपासना, प्रशंसा, स्तुति करने योग्य परमेश्वर है; उसका मेरे लिये उपदेश करो॥४९॥

अपीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। ईश्वरो देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथैतेषामुत्तराण्याह॥

अब उक्त प्रश्नों के उत्तर अगले मन्त्र में कहते हैं॥

अपि तेषु त्रिषु पदेष्वस्मि येषु विश्वं भुवनमा विवेश।
सद्यः पर्येमि पृथिवीमुत द्यामेकेनाङ्गेन दिवोऽअस्य पृष्ठम्॥५०॥

अपि। तेषु। त्रिषु। पदेषु। अस्मि। येषु। विश्वम्। भुवनम्। आविवेशेत्याऽविवेश। सद्यः। परि। एमि। पृथिवीम्। उत। द्याम्। एकेन। अङ्गेन। दिवः। अस्य। पृष्ठम्॥५०॥

पदार्थः-(**अपि**) (**तेषु**) पूर्वोक्तेषु (**त्रिषु**) (**पदेषु**) प्राप्तुं योग्येषु नामस्थानजन्माख्येषु (**अस्मि**) (**येषु**) (**विश्वम्**) अखिलम् (**भुवनम्**) जगत् (**आविवेश**) समन्ताद् विष्टमस्ति (**सद्यः**) (**परि**) सर्वतः (**एमि**) प्राप्तोऽस्मि (**पृथिवीम्**) भूमिमन्तरिक्षं वा (**उत**) (**द्याम्**) सर्वप्रकाशम् (**एकेन**) (**अङ्गेन**) कमनीयेन (**दिवः**) प्रकाशमानस्य सूर्य्यादिलोकस्य (**अस्य**) (**पृष्ठम्**) आधारम्॥५०॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यो जगत्स्रष्टेश्वरोऽहं येषु त्रिषु पदेषु विश्वं भुवनमाविवेश तेष्वप्यहं व्याप्तोऽस्मि। अस्य दिवः पृष्ठं पृथिवीमुत द्याञ्चैकेनाङ्गेन सद्यः पर्य्येमि तं मां सर्वे यूयमुपाध्वम्॥५०॥

भावार्थः-यथा सर्वाञ्जीवान् प्रतीश्वर उपदिशति – अहं कार्य्यकारणात्मके जगति व्याप्तोऽस्मि, मया विनैकः परमाणुरप्यव्याप्तो नास्ति। सोऽहं यत्र जगन्नास्ति तत्राप्यनन्तस्वरूपेण पूर्णोऽस्मि। यदिदं जगदतिविस्तीर्णं भवन्तः पश्यन्ति तदिदं मत्सन्निधावेकाणुमात्रमपि नास्तीति, तथैव विद्वान् विज्ञापयेत्॥५०॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो जगत् का रचनेहारा ईश्वर मैं **(येषु)** जिन **(त्रिषु)** तीन **(पदेषु)** प्राप्त होने योग्य जन्म, नाम, स्थानों में **(विश्वम्)** समस्त **(भुवनम्)** जगत् **(आविवेश)** सब ओर से प्रवेश को प्राप्त हो रहा है, **(तेषु)** उन जन्म, नाम और स्थानों में **(अपि)** भी मैं व्याप्त **(अस्मि)** हूँ। **(अस्य)** इस **(दिवः)** प्रकाशमान सूर्य आदि लोकों के **(पृष्ठम्)** ऊपरले भाग **(पृथिवीम्)** भूमि वा अन्तरिक्ष **(उत)** और **(द्याम्)** समस्त प्रकाश को **(एकेन)** एक **(अङ्गेन)** अति मनोहर प्राप्त होने योग्य व्यवहार वा देश से **(सद्यः)** शीघ्र **(परि, एमि)** सब ओर से प्राप्त हूँ, उस मेरी उपासना तुम सब किया करो॥५०॥

भावार्थः-जैसे सब जीवों के प्रति ईश्वर उपदेश करता है कि मैं कार्य्य-कारणात्मक जगत् में व्याप्त हूँ, मेरे विना एक परमाणु भी अव्याप्त नहीं है। सो मैं जहां जगत् नहीं है, वहां भी अनन्त स्वरूप से परिपूर्ण हूँ। जो इस अतिविस्तारयुक्त जगत् को आप लोग देखते हैं सो यह मेरे आगे अणुमात्र भी नहीं है, इस बात को वैसे ही विद्वान् सब को जनावें॥५०॥

केष्वन्त इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। पुरुषेश्वरो देवता। पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अथेश्वरविषये प्रश्नावाह॥

अब ईश्वर-विषय में दो प्रश्न कहते हैं॥

केष्व॒न्तः पुरु॑ष॒ऽआ वि॑वेश॒ कान्य॒न्तः पुरु॑षे॒ऽअर्पि॑तानि।

ए॒तद् ब्र॑ह्म॒न्नुप॑ वल्हामसि त्वा॒ किथ्स्वि॑न्नः॒ प्रति॑ वोचा॒स्यत्र॑॥५१॥

केषु॑। अ॒न्तरित्य॒न्तः। पुरु॑षः। आ। वि॒वे॒श॒। कानि॑। अ॒न्तरित्य॒न्तः। पुरु॑षे। अर्पि॑तानि। ए॒तत्। ब्र॒ह्म॒न्। उप॑। व॒ल्हा॒म॒सि॒। त्वा॒। किम्। स्वि॒त्। नः॒। प्रति॑। वो॒चा॒सि॒। अत्र॑॥५१॥

पदार्थः-**(केषु)** **(अन्तः)** मध्ये **(पुरुषः)** सर्वत्र पूर्णः **(आ)** **(विवेश)** प्रविष्टोऽस्ति **(कानि)** **(अन्तः)** मध्ये **(पुरुषे)** **(अर्पितानि)** स्थापितानि **(एतत्)** **(ब्रह्मन्)** ब्रह्मविद्विद्वन् **(उप)** **(वल्हामसि)** प्रधाना भवामः **(त्वा)** त्वाम् **(किम्)** **(स्वित्)** **(नः)** अस्मान् **(प्रति)** **(वोचासि)** उच्याः। अत्र लेटि मध्यमैकवचने **'वा छन्दसि सर्वे विधयो भवन्ती'**त्युमागमः **(अत्र)**॥५१॥

अन्वयः-हे ब्रह्मन्! केषु पुरुषोऽन्तराविवेश कानि पुरुषेऽन्तरर्पितानि येन वयमुपवल्हामसि। एतत्त्वा त्वां पृच्छामस्तत् किंस्विदस्त्यत्र नः प्रतिवोचासि॥५१॥

भावार्थः-चतुर्वेदविद्विद्वानितरैर्जनैरेवं प्रष्टव्याः। हे वेदविद्विद्वन्! पूर्णः परमेश्वरः केषु प्रविष्टोऽस्ति? कानि च तदन्तर्गतानि सन्ति? एतत्पृष्टो भवान् याथार्थ्येन ब्रवीतु येन वयं प्रधानपुरुषा भवेम॥५१॥

पदार्थः-हे **(ब्रह्मन्)** वेदज्ञ विद्वन्! **(केषु)** किन में **(पुरुषः)** सर्वत्र पूर्ण परमेश्वर **(अन्तः)** भीतर **(आ, विवेश)** प्रवेश कर रहा है और **(कानि)** कौन **(पुरुषे)** पूर्ण ईश्वर में **(अन्तः)** भीतर **(अर्पितानि)** स्थापन किये हैं, जिस ज्ञान से हम लोग **(उप, वल्हामसि)** प्रधान हों **(एतत्)** यह **(त्वा)** आपको पूछते हैं सो **(किं, स्वित्)** क्या है **(अत्र)** इसमें **(नः)** हमारे **(प्रति)** प्रति **(वोचासि)** कहिये॥५१॥

भावार्थः-इतर मनुष्यों को चाहिये कि चारों वेद के ज्ञाता विद्वान् को ऐसे पूछें कि हे वेदज्ञ विद्वन्! पूर्ण परमेश्वर किन में प्रविष्ट है? और कौन उसके अन्तर्गत हैं? यह बात आप से पूछी है, यथार्थता से कहिये जिसके ज्ञान से हम उत्तम पुरुष हों॥५१॥

पञ्चस्वन्त इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। परमेश्वरो देवता। विराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पूर्वमन्त्रोक्तप्रश्नयोरुत्तरमाह॥

पूर्व मन्त्र में कहे प्रश्नों के उत्तर अगले मन्त्र में कहते हैं॥

पञ्चस्वन्तः पुरुषऽआविवेश तान्यन्तः पुरुषेऽअर्पितानि।
एतत्त्वात्र प्रतिमन्वानोऽअस्मि न मायया भवस्युत्तरो मत्॥५२॥

पञ्चस्विति। पञ्चऽसु। अन्तरित्यन्तः। पुरुषः। आ। विवेश। तानि। अन्तरित्यन्तः। पुरुषे। अर्पितानि। एतत्। त्वा। अत्र। प्रतिमन्वान इति प्रतिऽमन्वानः। अस्मि। न। मायया। भवसि। उत्तर इत्युत्ऽतरः। मत्॥५२॥

पदार्थः-**(पञ्चसु)** भूतेषु तन्मात्रासु या **(अन्तः)** **(पुरुषः)** पूर्णः परमात्मा **(आ)** **(विवेश)** स्वव्याप्त्याऽऽविष्टोऽस्ति **(तानि)** भूतानि तन्मात्राणि वा **(अन्तः)** मध्ये **(पुरुषे)** पूर्णे परमात्मनि **(अर्पितानि)** स्थापितानि **(एतत्)** **(त्वा)** त्वाम् **(अत्र)** **(प्रतिमन्वानः)** प्रत्यक्षेण विजानन् **(अस्मि)** **(न)** **(मायया)** प्रज्ञया। **मायेति प्रज्ञानामसु पठितम्॥** (निघं०३।२) **(भवसि)** **(उत्तरः)** उत्कृष्टं तारयति समादधाति सः **(मत्)** मम सकाशात्॥५२॥

अन्वयः-हे जिज्ञासो! पञ्चस्वन्तः पुरुष आ विवेश तानि पुरुषेऽन्तरर्पितानि। एतदत्र त्वा प्रतिमन्वानोऽहं समाधाताऽस्मि। यदि मायया युक्तस्त्वं भवसि तर्हि मदुत्तरः समाधता कश्चिन्नास्तीति विजानीहि॥५२॥

भावार्थः-परमेश्वर उपदिशति - हे मनुष्याः! मदुत्तरः कोऽपि नास्ति। अहमेव सर्वेषामाधारः सर्वमभिव्याप्य धरामि। मयि व्याप्ते सर्वाणि वस्तूनि स्वस्वनियमे स्थितानि सन्ति। हे सर्वोत्तमा योगिनो विद्वांसो! भवन्तो ममेदं विज्ञानं विज्ञापयत॥५२॥

पदार्थः-हे जानने की इच्छा वाले पुरुष! **(पञ्चसु)** पांच भूतों वा उनकी सूक्ष्म मात्राओं में **(अन्तः)** भीतर **(पुरुषः)** पूर्ण परमात्मा **(आ, विवेश)** अपनी व्याप्ति से अच्छे प्रकार व्याप्त हो रहा है, **(तानि)** वे पञ्चभूत वा तन्मात्रा **(पुरुषे)** पूर्ण परमात्मा पुरुष के **(अन्तः)** भीतर **(अर्पितानि)** स्थापित किये हैं, **(एतत्)** यह **(अत्र)** इस जगत् में **(त्वा)** आपको **(प्रतिमन्वानः)** प्रत्यक्ष जानता हुआ मैं समाधान-कर्त्ता **(अस्मि)** हूँ, जो **(मायया)** उत्तम बुद्धि से युक्त तू **(भवसि)** होता है तो **(मत्)** मुझ से **(उत्तरः)** उत्तम समाधान-कर्त्ता कोई भी **(न)** नहीं है, यह तू जान॥५२॥

भावार्थः-परमेश्वर उपदेश करता है कि हे मनुष्यो! मेरे ऊपर कोई भी नहीं है। मैं ही सब का आधार, सब में व्याप्त होके धारण करता हूँ। मेरे व्याप्त होने से सब पदार्थ अपने-अपने नियम में स्थित हैं। हे सब से उत्तम योगी विद्वान् लोगो! आप लोग इस मेरे विज्ञान को जनाओ॥५२॥

का स्विदित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। प्रष्टा देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः।

पुनः प्रश्नानाह॥

फिर भी अगले मन्त्र में प्रश्नों को कहते हैं॥

का स्विदासीत् पूर्वचित्तिः किंस्विदासीद् बृहद्वयः।

का स्विदासीत् पिलिप्पिला का स्विदासीत् पिशङ्गिला॥५३॥

का। स्वित्। आसीत्। पूर्वचित्तिरिति पूर्वऽचित्तिः। किम्। स्वित्। आसीत्। बृहत्। वयः। का। स्वित्। आसीत्। पिलिप्पिला। का। स्वित्। आसीत्। पिशङ्गिला॥५३॥

पदार्थः-**(का)** **(स्वित्)** **(आसीत्)** **(पूर्वचित्तिः)** पूर्वस्मिन्ननादौ सञ्चयनाख्या **(किम्)** **(स्वित्)** **(आसीत्)** **(बृहत्)** महत् **(वयः)** प्रजननात्मकम् **(का)** **(स्वित्)** **(आसीत्)** **(पिलिप्पिला)** आर्द्रीभूता **(का)** **(स्वित्)** **(आसीत्)** **(पिशङ्गिला)** अवयवान्तःकर्त्री॥५३॥

अन्वयः-हे विद्वन्नत्र जगति का स्वित् पूर्वचित्तिरासीत्? किं स्विद् बृहद्वय आसीत्? का स्वित् पिलिप्पिला आसीत्? कास्वित् पिशाङ्गिला आसीद्? इति भवन्तं पृच्छामि॥५३॥

भावार्थः-अत्र चत्वारः प्रश्नास्तेषां समाधानानि परस्मिन् मन्त्रे द्रष्टव्यानि॥५३॥

पदार्थः-हे विद्वन्! इस जगत् में **(का, स्वित्)** कौन **(पूर्वचित्तिः)** पूर्व अनादि समय में संचित होने वाली **(आसीत्)** है **(किं, स्वित्)** क्या **(बृहत्)** बड़ा **(वयः)** उत्पन्न स्वरूप **(आसीत्)** है, **(का, स्वित्)** कौन **(पिलिप्पिला)** पिलपिली चिकनी **(आसीत्)** है और **(का, स्वित्)** कौन **(पिशङ्गिला)** अवयवों को भीतर करने वाली **(आसीत्)** है, यह आपको पूछता हूँ॥५३॥

भावार्थः-इस मन्त्र में चार प्रश्न हैं, उनके समाधान अगले मन्त्र में देखने चाहियें॥५३॥

द्यौरासीदित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। समाधाता देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पूर्वप्रश्नानामुत्तराण्याह॥

पूर्व मन्त्र के प्रश्नों के उत्तर अगले मन्त्र में कहते हैं॥

द्यौरासीत् पूर्वचित्तिरश्वऽआसीद् बृहद्वयः।

अविरासीत् पिलिप्पिला रात्रिरासीत् पिशङ्गिला॥५४॥

द्यौः। आसीत्। पूर्वचित्तिरिति पूर्वऽचित्तिः। अश्वः। आसीत्। बृहत्। वयः। अविः। आसीत्। पिलिप्पिला। रात्रिः। आसीत्। पिशङ्गिला॥५४॥

पदार्थः-(**द्यौः**) विद्युत् (**आसीत्**) (**पूर्वचित्तिः**) प्रथमं चयनम् (**अश्वः**) महत्तत्त्वम् (**आसीत्**) (**बृहत्**) महत् (**वयः**) प्रजननात्मकम् (**अविः**) रक्षिका प्रकृतिः (**आसीत्**) (**पिलिप्पिला**) (**रात्रिः**) रात्रिवद्वर्त्तमानः प्रलयः (**आसीत्**) (**पिशङ्गिला**) सर्वेषामवयवानां निगलिका॥५४॥

अन्वयः-हे जिज्ञासो! द्यौः पूर्वचित्तिरासीद्, अश्वो बृहद्वय आसीद्, अविः पिलिप्पिलाऽऽसीद्, इति त्वं विजानीहि॥५४॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! याऽतीवसूक्ष्मा विद्युत् सा प्रथमा परिणतिर्महदाख्यं द्वितीया परिणतिः, प्रकृतिर्मूलकारणपरिणतिः, प्रलयः सर्वस्थूलविनाशकोऽस्तीति विजानीत॥५४॥

पदार्थः-हे जिज्ञासु मनुष्य! (**द्यौः**) बिजुली (**पूर्वचित्तिः**) पहिला संचय (**आसीत्**) है, (**अश्वः**) महतत्त्व (**बृहत्**) बड़ा (**वयः**) उत्पत्ति स्वरूप (**आसीत्**) है, (**अविः**) रक्षा करने वाली प्रकृति (**पिलिप्पिला**) पिलपिली (**आसीत्**) है, (**रात्रिः**) रात्रि के समान वर्त्तमान प्रलय (**पिशङ्गिला**) सब अवयवों को निगलने वाला (**आसीत्**) है, यह तू जान॥५४॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जो अतिसूक्ष्म विद्युत् है सो प्रथम परिणाम, महत्तत्वरूप द्वितीय परिणाम और प्रकृति सबका मूल कारण परिणाम से रहित है और प्रलय सब स्थूल जगत् का विनाशरूप है, यह जानना चाहिये॥५४॥

का ईमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। प्रष्टा देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनः प्रश्नानाह॥

फिर अगले मन्त्र में प्रश्न कहते हैं॥

काऽईमरे पिशङ्गिला काऽईं कुरुपिशङ्गिला।

कऽईमास्कन्दमर्षति कऽईं पन्थां विसर्पति॥५५॥

का। ईम्। अरे। पिशङ्गिला। का। ईम्। कुरुपिशङ्गिलेति कुरुऽपिशङ्गिला। कः। ईम्। आस्कन्दमित्याऽस्कन्दम्। अर्षति। कः। ईम्। पन्थाम्। वि। सर्पति॥५५॥

पदार्थः-(**का**) (**ईम्**) समुच्चये (**अरे**) नीचसंबोधने (**पिशङ्गिला**) रूपावरणकारिणी (**का**) (**ईम्**) (**कुरुपिशङ्गिला**) (**कः**) (**ईम्**) (**आस्कन्दम्**) (**अर्षति**) प्राप्नोति (**कः**) (**ईम्**) उदकस्य (**पन्थाम्**) मार्गम् (**वि**) (**सर्पति**)॥५५॥

अन्वयः-अरे स्त्रि! का ईं पिशङ्गिला का ईं कुरुपिशङ्गिला क ईमास्कन्दमर्षति क ईं पन्थां विसर्पतीति समाधेहि॥५५॥

भावार्थः-केन रूपमाव्रियते? केन कृष्यादिर्नश्यते? कः शीघ्रं धावति? कश्च मार्गे प्रसरति? इति चत्वारः प्रश्नास्तेषामुत्तराणि परस्मिन् मन्त्रे वेदितव्यानि॥५५॥

पदार्थः-(**अरे**) हे विदुषि स्त्रि! (**का, ईम्**) कौन वार-वार (**पिशङ्गिला**) रूप का आवरण करने हारी (**का, ईम्**) कौन वार-वार (**कुरुपिशङ्गिला**) यवादि अन्नों के अवयवों को निगलने वाली (**क, ईम्**) कौन वार-वार (**आस्कन्दम्**) न्यारी-न्यारी चाल को (**अर्षति**) प्राप्त होता और (**कः**) कौन (**ईम्**) जल के (**पन्थाम्**) मार्ग को (**वि, सर्पति**) विशेष पसर के चलता है॥५५॥

भावार्थः-किससे रूप का आवरण? और किस से खेती आदि का विनाश होता? कौन शीघ्र भागता? और कौन मार्ग में पसरता है? ये चार प्रश्न हैं, इन के उत्तर अगले मन्त्र में जानो॥५५॥

अजार इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। समाधाता देवता। स्वराडुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

पूर्वप्रश्नानामुत्तराण्याह॥

पूर्व मन्त्र में कहे प्रश्नों के उत्तर अगले मन्त्र में कहते हैं॥

अजारे पिशङ्गिला श्वावित्कुरुपिशङ्गिला।

शशऽआस्कन्दमर्षत्यहिः पन्थां वि सर्पति॥५६॥

अजा। अरे। पिशङ्गिला। श्वावित्। श्वविदिति श्वऽवित्। कुरुपिशङ्गिलेति कुरुऽपिशङ्गिला। शशः। आस्कन्दमित्याऽस्कन्दम्। अर्षति। अहिः। पन्थाम्। वि। सर्पति॥५६॥

पदार्थः-(**अजा**) जन्मरहिता प्रकृतिः (**अरे**) सम्बोधने (**पिशङ्गिला**) (**श्वावित्**) पशुविशेष इव (**कुरुपिशङ्गिला**) कुरोः कृतस्य कृष्यादेः पिशान्यङ्गानि गिलति सा (**शशः**) पशुविशेष इव वायुः (**आस्कन्दम्**) समन्तादुत्प्लुत्य गमनम् (**अर्षति**) प्राप्नोति (**अहिः**) मेघः (**पन्थाम्**) पन्थानम् (**वि, सर्पति**) विविधतया गच्छति॥५६॥

अन्वयः-अरे मनुष्याः! अजा पिशङ्गिला श्वावित् कुरुपिशङ्गिलाऽस्ति, शश आस्कन्दमर्षत्यहिः पन्थां विसर्पतीति विजानीत॥५६॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! याऽजा प्रकृतिः सर्वकार्यप्रलयाधिकारिणी कार्यकारणाख्या स्वकार्य्यं स्वस्मिन् प्रलापयति। या सेधा कृष्यादिकं विनाशयति, यो वायु शश इव गच्छन् सर्वं शोषयति, यो मेघः सर्प इव गच्छति, तान् विजानीत॥५६॥

पदार्थः-**(अरे)** हे मनुष्यो! **(अजा)** जन्मरहित प्रकृति **(पिशङ्गिला)** विश्व के रूप को प्रलय समय में निगलनेवाली **(श्वावित्)** सेही **(कुरुपिशङ्गिला)** किये हुए खेती आदि के अवयवों का नाश करती है, **(शशः)** खरहा के तुल्य वेगयुक्त कृषि आदि में खरखराने वाला वायु **(आस्कन्दम्)** अच्छे प्रकार कूद के चलने अर्थात् एक पदार्थ से दूसरे पदार्थ को शीघ्र **(अर्षति)** प्राप्त होता और **(अहिः)** मेघ **(पन्थाम्)** मार्ग में **(वि, सर्पति)** विविध प्रकार से जाता है, इस को तुम जानो॥५६॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जो प्रकृति सब कार्यरूप जगत् का प्रलय करने हारी, कार्य्यकारणरूप अपने कार्य को अपने में लय करने हारी है, जो सेही खेती आदि का विनाश करती है, जो वायु खरहा के समान चलता हुआ सब को सुखाता है और जो मेघ सांप के समान पृथिवी पर जाता है, उन सब को जानो॥५६॥

कत्यस्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। प्रष्टा देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनः प्रश्नानाह॥

फिर भी अगले मन्त्र में प्रश्न कहते हैं॥

कत्य॑स्य वि॒ष्ठाः कत्य॒क्षरा॑णि॒ कति॒ होमा॑सः कति॒धा समि॑द्धः।

य॒ज्ञस्य॑ त्वा वि॒दथा॑ पृच्छ॒मत्र॒ कति॒ होता॑रऽऋतु॒शो य॑जन्ति॥५७॥

कति॑। अ॒स्य॒। वि॒ष्ठाः। वि॒स्था इति॑ वि॒ऽस्थाः। कति॑। अ॒क्षरा॑णि। कति॑। होमा॑सः। क॒ति॒धा। समि॑द्ध॒ इति॒ सम्ऽइ॑द्धः। य॒ज्ञस्य॑। त्वा॒। वि॒दथा॑। पृ॒च्छ॒म्। अत्र॑। कति॑। होता॑रः। ऋ॒तु॒श इत्यृ॑तु॒ऽशः। य॒ज॒न्ति॒॥५७॥

पदार्थः-**(कति)** **(अस्य)** **(विष्ठाः)** विशेषेण तिष्ठति यज्ञो यासु ताः **(कति)** **(अक्षराणि)** उदकानि। **अक्षरमित्युदकनामसु पठितम्॥** (निघं०१।१२) **(कति)** **(होमासः)** दानाऽऽदानानि **(कतिधा)** कतिप्रकारैः **(समिद्धः)** ज्ञानदिप्रकाशकाः समिद्रूपाः। अत्र छान्दसो वर्णागमस्तेन धस्य द्वित्वं सम्पन्नम्। **(यज्ञस्य)** संयोगादुत्पन्नस्य जगतः **(त्वा)** त्वाम् **(विदथा)** विज्ञानानि **(पृच्छम्)** पृच्छामि **(अत्र)** **(कति)** **(होतारः)** **(ऋतुशः)** ऋतुमृतुं प्रति **(यजन्ति)** संगच्छन्ते॥५७॥

अन्वयः-हे विद्वन्नस्य यज्ञस्य कति विष्ठाः? कत्यक्षराणि? कति होमासः? कतिधा समिद्धः? कति होतार ऋतुशो यजन्तीत्यत्र विषये विदथा त्वाऽहं पृच्छम्॥५७॥

भावार्थः-इदं जगत् क्व तिष्ठति? कत्यस्य निर्माणसाधनानि? कति व्यापारयोग्यानि? कतिविधं ज्ञानादिप्रकाशकम्? कति व्यवहर्त्तार? इति पञ्च प्रश्नास्तेषामुत्तराण्युत्तरत्र वेद्यानि॥५७॥

पदार्थः-हे विद्वन्! **(अस्य)** इस **(यज्ञस्य)** संयोग से उत्पन्न हुए संसाररूप यज्ञ के **(कति)** कितने **(विष्ठाः)** विशेष कर संसाररूप यज्ञ जिनमें स्थित हो वे **(कति)** कितने इस के **(अक्षराणि)** जलादि साधन **(कति)** कितने **(होमासः)** देने-लेने योग्य पदार्थ **(कतिधा)** कितने प्रकारों से **(समिद्धः)** ज्ञानादि के प्रकाशक पदार्थ समिधरूप **(कति)** कितने **(होतारः)** होता अर्थात् देने-लेने आदि व्यवहार के कर्त्ता **(ऋतुशः)** वसन्तादि प्रत्येक ऋतु में **(यजन्ति)** संगम करते हैं, इस प्रकार **(अत्र)** इस विषय में **(विदथा)** विज्ञानों को **(त्वा)** आप से मैं **(पृच्छम्)** पूछता हूँ॥५७॥

भावार्थः-यह जगत् कहां स्थित है? कितने इसकी उत्पत्ति के साधन? कितने व्यापार के योग्य वस्तु? कितने प्रकार का ज्ञानादि प्रकाशक वस्तु? और कितने व्यवहार करने हारे हैं? इन पांच प्रश्नों के उत्तर अगले मन्त्र में जान लेना चाहिये॥५७॥

षडस्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। समिधा देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पूर्वप्रश्नानामुत्तराण्याह॥

पूर्व मन्त्र में कहे प्रश्नों के उत्तर अगले मन्त्र में कहते हैं॥

षडस्य विष्ठाः शतमक्षराण्यशीतिर्होमाः समिधो ह तिस्रः।
यज्ञस्य ते विदथा प्र ब्रवीमि सप्त होतारऽऋतुशो यजन्ति॥५८॥

षट्। अस्य। विष्ठाः। विस्था इति विऽस्थाः। शतम्। अक्षराणि। अशीतिः। होमाः। समिध इति सम्ऽइधः। ह। तिस्रः। यज्ञस्य। ते विदथा। प्र। ब्रवीमि। सप्त। होतारः। ऋतुश इति ऋतुऽशः। यजन्ति॥५८॥

पदार्थः-**(षट्)** ऋतवः **(अस्य)** **(विष्ठाः)** **(शतम्)** **(अक्षराणि)** उदकानि **(अशीतिः)** उपलक्षणमेतदसंख्यस्य **(होमाः)** **(समिधः)** समिध्यते प्रदीप्यते ज्ञानं याभिस्ताः **(ह)** किल **(तिस्रः)** **(यज्ञस्य)** **(ते)** तुभ्यम् **(विदथा)** विज्ञानानि **(प्र)** प्रकर्षेण **(ब्रवीमि)** **(सप्त)** पञ्च प्राणा मन आत्मा च **(होतारः)** दातार आदातारः **(ऋतुशः)** **(यजन्ति)**॥५८॥

अन्वयः-हे जिज्ञासवोऽस्य यज्ञस्य षट् विष्ठाः शतमक्षराण्यशीतिर्होमास्तिस्रो ह समिधः सप्त होतार ऋतुशो यजन्ति तस्य विदथा तेऽहं प्रब्रवीमि॥५८॥

भावार्थः-हे ज्ञानमीप्सवो जनाः! यस्मिन् यज्ञे षड् ऋतवः स्थितिसाधका, असंख्यानि जलादीनि वस्तूनि व्यवहारसाधकानि, बहवो व्यवहारयोग्याः पदार्थाः, सर्वे प्राण्यप्राणिनो होत्रादयः संगच्छन्ते, यत्र च ज्ञानादिप्रकाशिकाः त्रिविधा विद्याः सन्ति, तं यज्ञं यूयं विजानीत॥५८॥

पदार्थः-हे जिज्ञासु लोगो! **(अस्य)** इस **(यज्ञस्य)** संगत जगत् के **(षट्)** छः ऋतु **(विष्ठाः)** विशेष स्थिति के आधार **(शतम्)** असंख्य **(अक्षराणि)** जलादि उत्पत्ति के साधन **(अशीतिः)** असंख्य **(होमाः)** देने-लेने योग्य वस्तु **(तिस्रः)** आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक तीन **(ह)** प्रसिद्ध **(समिधः)** ज्ञानादि

की प्रकाशक विद्या **(सप्त)** पांच प्राण, मन और आत्मा सात **(होतार:)** देने-लेने आदि व्यवहार के कर्त्ता **(ऋतुश:)** प्रति वसन्तादि ऋतु में **(यजन्ति)** संगत होते हैं, उस जगत् के **(विदथा)** विज्ञानों को **(ते)** तेरे लिये मैं **(प्रब्रवीमि)** कहता हूँ॥५८॥

भावार्थ:-हे ज्ञान चाहने वाले लोगो! जिस जगत्रूप यज्ञ में छ: ऋतु स्थिति के साधक, असंख्य जलादि वस्तु, व्यवहारसाधक बहुत व्यवहार योग्य पदार्थ और सब प्राणी-अप्राणी होता आदि संगत होते हैं और जिस में ज्ञान आदि का प्रकाश करने वाली तीन प्रकार की विद्या हैं, उस यज्ञ को तुम लोग जानो॥५८॥

कोऽअस्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि:। प्रष्टा देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्द:। धैवत: स्वर:।

पुन: प्रश्नानाह॥

फिर भी अगले मन्त्र में प्रश्नों को कहते हैं॥

कोऽअ॒स्य वे॑द॒ भुव॑नस्य॒ नाभि॑ङ्को द्यावा॑पृथि॒वीऽअ॒न्तरि॑क्षम्।

क: सूर्य॑स्य वेद बृह॒तो ज॒नित्रं॒ को वे॑द च॒न्द्रम॑सं यतो॒जा:॥५९॥

क:। अ॒स्य। वे॒द॒। भुव॑नस्य। नाभि॑म्। क:। द्यावा॑पृथि॒वी इति॒ द्यावा॑पृथि॒वी। अ॒न्तरि॑क्षम्। क:। सूर्य॑स्य। वे॒द॒। बृ॒ह॒त:। ज॒नित्र॑म्। क:। वे॒द॒। च॒न्द्रम॑सम्। य॒तो॒जा इति॑ य॒त:ऽजा:॥५९॥

पदार्थ:-**(क:)** **(अस्य)** **(वेद)** जानाति **(भुवनस्य)** सर्वाधिकरणस्य संसारस्य **(नाभिम्)** मध्यमाङ्गं बन्धनस्थानम् **(क:)** **(द्यावापृथिवी)** सूर्य्यभूमी **(अन्तरिक्षम्)** आकाशम् **(क:)** **(सूर्यस्य)** सवितृमण्डलस्य **(वेद)** जानाति **(बृहत:)** महत: **(जनित्रम्)** कारणं जनकं वा **(क:)** **(वेद)** **(चन्द्रमसम्)** चन्द्रलोकम् **(यतोजा:)** यस्माज्जात:॥५९॥

अन्वय:-हे विद्वन्नस्य भुवनस्य नाभिं को वेद? को द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं वेद? को बृहत: सूर्य्यस्य जनित्रं वेद? यो यतोजास्तं चन्द्रमसं च को वेद? इति समाधेहि॥५९॥

भावार्थ:-अस्य जगतो धारकं बन्धनं, भूमिसूर्यान्तरिक्षाणि महत: सूर्यस्य कारणं यस्मादुत्पन्नश्चन्द्रस्तं च को वेद? इति चतुर्णां प्रश्नानामुत्तराणि परस्मिन् मन्त्रे सन्तीति वेदितव्यम्॥५९॥

पदार्थ:-हे विद्वन्! **(अस्य)** इस **(भुवनस्य)** सब के आधारभूत संसार के **(नाभिम्)** बन्धन के स्थान मध्यभाग को **(क:)** कौन **(वेद)** जानता **(क:)** कौन **(द्यावापृथिवी)** सूर्य और पृथिवी तथा **(अन्तरिक्षम्)** आकाश को जानता **(क:)** कौन **(बृहत:)** बड़े **(सूर्यस्य)** सूर्यमण्डल के **(जनित्रम्)** उपादान वा निमित्त कारण को **(वेद)** जानता और जो **(यतोजा:)** जिससे उत्पन्न हुआ है, उस चन्द्रमा के उत्पादक को और **(चन्द्रमसम्)** चन्द्रलोक को **(क:)** कौन **(वेद)** जानता है, इनका समाधान कीजिए॥५९॥

भावार्थः-इस जगत् के धारणकर्त्ता, बन्धन, भूमि, सूर्य, अन्तरिक्षों, महान् सूर्य के कारण और चन्द्रमा जिससे उत्पन्न हुआ है, उसको कौन जानता है? इन चार प्रश्नों के उत्तर अगले मन्त्र में हैं, यह जानना चाहिये॥५९॥

वेदाहमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। समाधाता देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पूर्वप्रश्नानामुत्तराण्याह॥

पूर्व मन्त्र में कहे प्रश्नों के उत्तर अगले मन्त्र में कहते हैं॥

वेदाहमस्य भुवनस्य नाभिं वेद द्यावापृथिवीऽअन्तरिक्षम्।

वेद सूर्यस्य बृहतो जनित्रमथो वेद चन्द्रमसं यतोजाः॥६०॥

वेद। अहम्। अस्य। भुवनस्य। नाभिम्। वेद। द्यावापृथिवी इति द्यावापृथिवी। अन्तरिक्षम्। वेद। सूर्यस्य। बृहतः। जनित्रम्। अथो इत्यथो। वेद। चन्द्रमसम्। यतोजा इति यतःऽजाः॥६०॥

पदार्थः-(**वेद**) (**अहम्**) (**अस्य**) (**भुवनस्य**) (**नाभिम्**) बन्धनम्। (**वेद**) (**द्यावापृथिवी**) प्रकाशाप्रकाशौ लोकसमूहौ (**अन्तरिक्षम्**) आकाशम् (**वेद**) (**सूर्यस्य**) (**बृहतः**) महत्परिमाणयुक्तस्य (**जनित्रम्**) (**अथो**) (**वेद**) (**चन्द्रमसम्**) (**यतोजाः**)॥६०॥

अन्वयः-हे जिज्ञासोऽस्य भुवनस्य नाभिमहं वेद, द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं वेद, बृहतः सूर्य्यस्य जनित्रं वेद। अथो यतोजास्तं चन्द्रमसञ्चाहं वेद॥६०॥

भावार्थः-विद्वान् ब्रूयात्-हे जिज्ञासोऽस्य जगतो बन्धनस्थितिकारणं, लोकत्रयस्य कारणं, सूर्य्याचन्द्रमसोश्चोपादाननिमित्ते एतत् सर्वमहं जानामि, ब्रह्मैवास्य सर्वस्य निमित्तं कारणं प्रकृतिश्चोपादानमिति॥६०॥

पदार्थः-हे जिज्ञासो पुरुष! (**अस्य**) इस (**भुवनस्य**) सब के अधिकरण जगत् के (**नाभिम्**) बन्धन के स्थान कारणरूप मध्यभाग परब्रह्म को (**अहम्**) मैं (**वेद**) जानता हूँ तथा (**द्यावापृथिवी**) प्रकाशित और अप्रकाशित लोकसमूहों और (**अन्तरिक्षम्**) आकाश को भी (**वेद**) मैं जानता हूँ (**बृहतः**) बड़े (**सूर्य्यस्य**) सूर्यलोक के (**जनित्रम्**) उपादान तैजस कारण और निमित्तकारण ब्रह्म को (**वेद**) मैं जानता हूँ (**अथो**) इस के अनन्तर (**यतोजाः**) जिस परमात्मा से उत्पन्न हुआ जो चन्द्र उस परमात्मा को तथा (**चन्द्रमसम्**) चन्द्रमा को (**वेद**) मैं जानता हूँ॥६०॥

भावार्थः-विद्वान् उत्तर देवे कि हे जिज्ञासु पुरुष! इस जगत् के बन्धन अर्थात् स्थिति के कारण, प्रकाशित मध्यस्थ आकाश, इन तीनों लोक के कारण और सूर्य्य चन्द्रमा के उपादान और निमित्तकारण इस सब को मैं जानता हूँ, ब्रह्म ही इस सब का निमित्तकारण और प्रकृति उपादानकारण है॥६०॥

पृच्छामीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। प्रष्टा देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनः प्रश्नानाह॥

फिर भी अगले मन्त्र में प्रश्नों को कहते हैं॥

पृच्छामि॑ त्वा॒ पर॒मन्तं॑ पृथि॒व्याः पृच्छा॑मि॒ यत्र॒ भुव॑नस्य॒ नाभिः॑।

पृच्छामि॑ त्वा॒ वृष्णो॒ऽअश्व॑स्य॒ रेतः॑ पृच्छामि॑ वा॒चः प॑र॒मं व्यो॑म॥६१॥

पृच्छामि॑। त्वा॒। पर॑म्। अन्त॑म्। पृथि॒व्याः। पृच्छामि॑। यत्र॑। भुव॑नस्य। नाभिः॑। पृच्छामि॑। त्वा॒। वृष्णः॑। अश्व॑स्य। रेतः॑। पृच्छामि॑। वा॒चः। प॒र॒मम्। व्यो॒मेति॒ विऽओ॑म॥६१॥

पदार्थः-(**पृच्छामि**) (**त्वा**) त्वाम् (**परम्**) परभागस्थम् (**अन्तम्**) सीमानम् (**पृथिव्याः**) (**पृच्छामि**) (**यत्र**) (**भुवनस्य**) (**नाभिः**) मध्याकर्षणेन बन्धकम् (**पृच्छामि**) (**त्वा**) त्वाम् (**वृष्णः**) सेचकस्य (**अश्वस्य**) बलवतः (**रेतः**) वीर्य्यम् (**पृच्छामि**) (**वाचः**) वाण्याः (**परमम्**) प्रकृष्टम् (**व्योम**) आकाशरूपं स्थानम्॥६१॥

अन्वयः-हे विद्वन्नहं त्वा त्वां पृथिव्या अन्तं परं पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभिरस्ति, तं पृच्छामि यद् वृष्णोऽश्वस्य रेतोऽस्ति, तत्पृच्छामि वाचः परमं व्योम, त्वा पृच्छामीति वदोत्तराणि॥६१॥

भावार्थः-पृथिव्याः सीमा लोकस्याकर्षणेन बन्धनं, बलिनो जनस्य पराक्रमो वाक्पारगश्च कोऽस्तीत्येतेषां प्रश्नानामुत्तराणि परस्मिन् मन्त्रे वेदितव्यानि॥६१॥

पदार्थः-हे विद्वान् जन! मैं (**त्वा**) आप को (**पृथिव्याः**) पृथिवी के (**अन्तम्, परम्**) परभाग अवधि को (**पृच्छामि**) पूछता (**यत्र**) जहां इस (**भुवनस्य**) लोक का (**नाभिः**) मध्य से खेंच के बन्धन करता है, उस को (**पृच्छामि**) पूछता हूँ। जो (**वृष्णः**) सेचनकर्त्ता (**अश्वस्य**) बलवान् पुरुष का (**रेतः**) पराक्रम है, उस को (**पृच्छामि**) पूछता हूँ और (**वाचः**) तीन वेदरूप वाणी के (**परमम्**) उत्तम (**व्योम**) आकाशरूप स्थान को (**त्वा**) आप से (**पृच्छामि**) पूछता हूँ, आप उत्तर कहिये॥६१॥

भावार्थः-पृथिवी की सीमा क्या? जगत् का आकर्षण से बन्धन कौन? बली जन का पराक्रम कौन? और वाणी का पारगन्ता कौन है? इन चार प्रश्नों के उत्तर अगले मन्त्र में जानने चाहियें॥६१॥

इयमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। समाधाता देवता। विराडनुष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पूर्वप्रश्नानामुत्तराण्याह॥

पूर्व मन्त्र में कहे प्रश्नों के उत्तर अगले मन्त्र में कहे हैं॥

इ॒यं वेदिः॒ परो॒ऽअन्तः॑ पृथि॒व्याऽअ॒यं य॒ज्ञो भुव॑नस्य॒ नाभिः॑।

अ॒यꣳ सोमो॒ वृष्णो॒ऽअश्व॑स्य॒ रेतो॑ ब्र॒ह्मायं वा॒चः प॑र॒मं व्यो॑म॥६२॥

इ॒यम्। वेदिः॑। परः॑। अन्तः॑। पृ॒थि॒व्याः। अ॒यम्। य॒ज्ञः। भुव॑नस्य। नाभिः॑। अ॒यम्। सोमः॑। वृष्णः॑। अश्व॑स्य। रेतः॑। ब्र॒ह्मा। अ॒यम्। वा॒चः। प॒र॒मम्। व्यो॒मेति॒ विऽओ॑म॥६२॥

पदार्थः-(**इयम्**) (**वेदिः**) मध्यरेखा (**परः**) (**अन्तः**) (**पृथिव्याः**) भूमेः (**अयम्**) (**यज्ञः**) सर्वैः पूजनीयो जगदीश्वरः (**भुवनस्य**) संसारस्य (**नाभिः**) (**अयम्**) (**सोमः**) ओषधिराजः (**वृष्णः**) वीर्यकरस्य (**अश्वस्य**) बलेन युक्तस्य जनस्य (**रेतः**) (**ब्रह्मा**) चतुर्वेदवित् (**अयम्**) (**वाचः**) वाण्याः (**परमम्**) (**व्योम**) स्थानम्॥६२॥

अन्वयः-हे जिज्ञासो! इयं वेदिः पृथिव्याः परोऽन्तोऽयं यज्ञो भुवनस्य नाभिरयं सोमो वृष्णोऽश्वस्य रेतोऽयं ब्रह्मा वाचः परमं व्योमास्तीति विद्धि॥६२॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यद्यस्य भूगोलस्य मध्यस्था रेखा क्रियते तर्हि सा उपरिष्टाद् भूमेरन्तं प्राप्नुवती सती व्याससंज्ञां लभते। अयमेव भूमेरन्तोऽस्ति। सर्वेषां मध्याकर्षणं जगदीश्वरः। सर्वेषां प्राणिनां वीर्यकर ओषधिराजः सोमो, वेदपारगो वाक्पारगोऽस्तीति यूयं विजानीत॥६२॥

पदार्थः-हे जिज्ञासु जन! (**इयम्**) यह (**वेदिः**) मध्यरेखा (**पृथिव्याः**) भूमि के (**परः**) परभाग की (**अन्तः**) सीमा है, (**अयम्**) यह प्रत्यक्ष गुणों वाला (**यज्ञः**) सब को पूजनीय जगदीश्वर (**भुवनस्य**) संसार की (**नाभिः**) नियत स्थिति का बन्धक है, (**अयम्**) यह (**सोमः**) ओषधियों में उत्तम अंशुमान् आदि सोम (**वृष्णः**) पराक्रमकर्त्ता (**अश्वस्य**) बलवान् जन का (**रेतः**) पराक्रम है और (**अयम्**) यह (**ब्रह्मा**) चारों वेद का ज्ञाता (**वाचः**) तीन वेदरूप वाणी का (**परमम्**) उत्तम (**व्योम**) स्थान है, तू इस को जान॥६२॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जो इस भूगोल की मध्यस्थ रेखा की जावे तो वह ऊपर से भूमि के अन्त को प्राप्त होती हुई व्याससंज्ञक होती है। यही भूमि की सीमा है। सब लोकों के मध्य आकर्षणकर्त्ता जगदीश्वर है। सब प्राणियों को पराक्रमकर्त्ता ओषधियों में उत्तम अंशुमान् आदि सोम है और वेदपारग पुरुष वाणी का पारगन्ता है, यह तुम जानो॥६२॥

सुभूरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। समाधाता देवता। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

ईश्वरः कीदृश इत्याह॥

ईश्वर कैसा है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

सुभूः स्वयम्भूः प्रथमोऽन्तर्महत्यर्णवे।

दधे ह गर्भमृत्वियं यतो जातः प्रजापतिः॥६३॥

सुभूरिति सुऽभूः। स्वयम्भूरिति स्वयम्ऽभूः। प्रथमः। अन्तः। महति। अर्णवे। दधे। ह। गर्भम्। ऋत्वियम्। यतः। जातः। प्रजापतिरिति प्रजाऽपतिः॥६३॥

पदार्थः-(**सुभूः**) यः सुष्ठु भवतीति (**स्वयम्भूः**) यः स्वयम्भवत्युत्पत्तिनाशरहितः (**प्रथमः**) आदिमः (**अन्तः**) मध्ये (**महति**) (**अर्णवे**) यत्रार्णांस्युदकानि संबद्धानि सन्ति तस्मिन् संसारे (**दधे**) दधाति (**ह**) किल

(गर्भम्) बीजम् **(ऋत्वियम्)** ऋतु सम्प्राप्तोऽस्य तम् **(यतः)** यस्मात् **(जातः)** **(प्रजापतिः)** प्रजापालकः सूर्यः॥६३॥

अन्वयः-हे जिज्ञासो! यतः प्रजापतिर्जातो यश्च सुभूः स्वयम्भूः प्रथमो जगदीश्वरो महत्यर्णवऽन्तर्ऋत्वियं गर्भं दधे तं ह सर्वे जना उपासीरम्॥६३।

भावार्थः-यदि ये मनुष्याः सूर्य्यादीनां परं कारणं प्रकृतिं तत्र बीजधारकं परमात्मानं च विजानीयुस्तर्हि तेऽस्मिन् संसारे विस्तीर्णसुखा भवेयुः॥६३।

पदार्थः-हे जिज्ञासु जन! **(यतः)** जिस जगदीश्वर से **(प्रजापतिः)** विश्व का रक्षक सूर्य **(जातः)** उत्पन्न हुआ है और जो **(सुभूः)** सुन्दर विद्यमान **(स्वयम्भूः)** जो अपने आप प्रसिद्ध उत्पत्तिनाशरहित **(प्रथमः)** सब से प्रथम जगदीश्वर **(महति)** बड़े विस्तृत **(अर्णवे)** जलों से सम्बद्ध हुए संसार के **(अन्तः)** बीच **(ऋत्वियम्)** समयानुकूल प्राप्त **(गर्भम्)** बीज को **(दधे)** धारण करता है, **(ह)** उसी की सब लोग उपसना करें॥६३॥

भावार्थः-यदि जो मनुष्य लोग सूर्यादि लोकों के उत्तम कारण प्रकृति को और उस प्रकृति में उत्पत्ति की शक्ति को धारण करनेहारे परमात्मा को जानें तो वे जन इस जगत् में विस्तृत सुख वाले होवें॥६३॥

होता यक्षदित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। ईश्वरो देवता। विराडुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

ईश्वरः कथमुपास्य इत्याह॥

ईश्वर की उपासना कैसे करनी चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

होता॑ यक्षत् प्र॒जाप॑ति॒ꣳ सोम॑स्य महि॒म्नः।

जु॒षतां॑ पिब॑तु॒ सोम॒ꣳ होत॒र्यज॑॥६४॥

होता॑। य॒क्ष॒त्। प्र॒जाप॑ति॒मिति॑ प्र॒जाऽप॑तिम्। सोम॑स्य। म॒हि॒म्नः। जु॒षता॑म्। पिब॑तु। सोम॑म्। होत॑रिति॑। यज॑॥६४॥

पदार्थः-**(होता)** आदाता **(यक्षत्)** यजेत् पूजयेत् **(प्रजापतिम्)** विश्वस्य पालकं स्वामिनम् **(सोमस्य)** सकलैश्वर्य्ययुक्तस्य **(महिम्नः)** महतो भावस्य सकाशात् **(जुषताम्)** **(पिबतु)** **(सोमम्)** सर्वौषधिरसम् **(होतः)** दातः **(यज)** पूजय॥६४॥

अन्वयः-हे होतः! यथा होता सोमस्य महिम्नः प्रजापतिं यक्षज्जुषतां च सोमं च पिबतु तथा त्वं यज पिब च॥६४॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे मनुष्याः! यथा विद्वांसोऽस्मिञ्जगति रचनादिविशेषैः परमात्मनो महिमानं विदित्वैनमुपासते, तथैतं यूयमप्युपाध्वं यथेमे युक्त्यौषधानि सेवित्वाऽरोगा जायन्ते, तथा भवन्तोऽपि भवन्तु॥६४॥

पदार्थः-हे **(होतः)** दान देनेहारे जन! जैसे **(होता)** ग्रहीता पुरुष **(सोमस्य)** सब ऐश्वर्य से युक्त **(महिम्नः)** बड़प्पन के होने से **(प्रजापतिम्)** विश्व के पालक स्वामी की **(यक्षत्)** पूजा करे वा उस को **(जुषताम्)** सेवन से प्रसन्न करे और **(सोमम्)** सब उत्तम ओषधियों के रस को **(पिबतु)** पीवे, वैसे तू **(यज)** उस की पूजा कर और उत्तम ओषधि के रस को पिया कर॥६४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जैसे विद्वान् लोग इस जगत् में रचना आदि विशेष चिह्नों से परमात्मा की महिमा को जान के इस की उपासना करते हैं, वैसे ही तुम लोग भी इस की उपासना करो, जैसे ये विद्वान् युक्तिपूर्वक पथ्य पदार्थों का सेवन कर नीरोग होते हैं, वैसे आप लोग भी हों॥६४॥

प्रजापते नेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। ईश्वरो देवता। विराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वर॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प्रजा॑पते॒ न त्वदे॒तान्य॒न्यो विश्वा॑ रू॒पाणि॒ परि॒ ता ब॑भूव।

यत्का॑मास्ते जुहु॒मस्तन्नो॑ऽअस्तु व॒यꣳ स्या॑म॒ पत॑यो रयी॒णाम्॥६५॥

प्रजा॑पत॒ इति॒ प्रजा॑ऽपते। न। त्वत्। ए॒तानि॑। अ॒न्यः। विश्वा॑। रू॒पाणि॑। परि॑। ता। ब॒भू॒व। यत्का॑मा॒ इति॒ यत्ऽका॑माः। ते॒। जु॒हु॒मः। तत्। न॒ः। अ॒स्तु॒। व॒यम्। स्या॒म॒। पत॑यः। र॒यी॒णाम्॥६५॥

पदार्थः-**(प्रजापते)** सर्वस्याः प्रजायाः पालक स्वामिन्नीश्वर! **(न)** **(त्वत्)** तव सकाशात् **(एतानि)** पृथिव्यादीनि भूतानि **(अन्यः)** भिन्नः **(विश्वा)** सर्वाणि **(रूपाणि)** स्वरूपयुक्तानि **(परि)** **(ता)** तानि **(बभूव)** भवति **(यत्कामाः)** यः पदार्थः कामो येषां **(ते)** तव **(जुहुमः)** प्रशंसामः **(तत्)** कमनीयं वस्तु **(नः)** अस्मभ्यम् **(अस्तु)** भवतु **(वयम्)** **(स्याम)** भवेम **(पतयः)** स्वामिनः पालकाः **(रयीणाम्)** विद्यासुवर्णादिधनानाम्॥६५॥

अन्वयः-हे प्रजापते परमात्मन्! कश्चित् त्वदन्यस्ता तान्येतानि विश्वा रूपाणि वस्तूनि न परि बभूव। यत्कामा वयं त्वां जुहुमस्तन्नोऽस्तु ते कृपया वयं रयीणां पतयः स्याम॥६५॥

भावार्थः-यदि परमेश्वरादुत्तमं बृहदैश्वर्य्ययुक्तं सर्वशक्तिमद्वस्तु किंचिदपि नास्ति, तर्हि तुल्यमपि न। यो विश्वात्मा विश्वस्रष्टाऽखिलैश्वर्य्यप्रद ईश्वरोऽस्ति तस्यैव भक्तिविशेषेण पुरुषार्थेनैहिकमैश्वर्य्यं योगाभ्यासेन पारमार्थिकं सामर्थ्यं प्राप्नुयाम॥६५॥

अत्र परमात्ममहिमा सृष्टिगुणवर्णनं योगप्रशंसा प्रश्नोत्तराणि सृष्टिपदार्थप्रशंसनं राजप्रजागुणवर्णनं शास्त्राद्युपदेशाऽध्ययनमध्यापनं स्त्रीपुरुषगुणवर्णनं पुनः प्रश्नोत्तराणि परमेश्वरगुणवर्णनं यज्ञव्याख्या रेखागणितादि चोक्तमत एतदर्थस्य पूर्वाऽध्यायोक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेद्यम्॥

पदार्थः-हे **(प्रजापते)** सब प्रजा के रक्षक स्वामिन् ईश्वर! कोई भी **(त्वत्)** आप से **(अन्यः)** भिन्न **(ता)** उन **(एतानि)** इन पृथिव्यादि भूतों तथा **(विश्वा)** सब **(रूपाणि)** स्वरूपयुक्त वस्तुओं पर **(न)** नहीं **(परि, बभूव)** बलवान् है, **(यत्कामाः)** जिस-जिस पदार्थ की कामना वाले होकर **(वयम्)** हम लोग आप की **(जुहुमः)** प्रशंसा करें **(तत्)** वह-वह कामना के योग्य वस्तु **(नः)** हम को **(अस्तु)** प्राप्त हो, **(ते)** आपकी कृपा से हम लोग **(रयीणम्)** विद्या, सुवर्ण आदि धनों के **(पतयः)** रक्षक स्वामी **(स्याम)** होवें॥६५॥

भावार्थः-जो परमेश्वर से उत्तम, बड़ा, ऐश्वर्ययुक्त, सर्वशक्तिमान् पदार्थ कोई भी नहीं है तो उस के तुल्य भी कोई नहीं। जो सब का आत्मा, सब का रचने वाला, समस्त ऐश्वर्य का दाता ईश्वर है, उसकी भक्तिविशेष और अपने पुरुषार्थ से इस लोक के ऐश्वर्य और योगाभ्यास के सेवन से परलोक के सामर्थ्य को हम लोग प्राप्त हों॥६५॥

इस अध्याय में परमात्मा की महिमा, सृष्टि के गुण, योग-प्रशंसा, प्रश्नोत्तर, सृष्टि के पदार्थों की प्रशंसा, राजा-प्रजा के गुण, शास्त्र आदि का उपदेश, पठन-पाठन, स्त्री-पुरुषों के परस्पर गुण, फिर प्रश्नोत्तर, ईश्वर के गुण, यज्ञ की व्याख्या और रेखागणित आदि का वर्णन किया है, इससे इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां परमविदुषां श्रीमद्विरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचिते संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां विभूषिते सुप्रमाणयुक्ते यजुर्वेदभाष्ये त्रयोविंशोऽध्यायः समाप्तः॥२३॥

॥ओ३म्॥

अथ चतुर्विंशोऽध्यायारम्भः

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव। यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व॥ यजु० ३० . ३॥

अश्व इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। भुरिक्संकृतिश्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथ मनुष्यैः पशुभ्यः कीदृश उपकारो ग्राह्य इत्याह॥

अब चौबीसवें अध्याय का आरम्भ है, इसके प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को पशुओं से कैसा उपकार लेना चाहिये, इस विषय का वर्णन है॥

अश्व॑स्तूप॒रो गोमृ॑गस्ते प्रा॑जाप॒त्याः कृ॒ष्णग्री॑वऽआग्ने॒यो र॒राटे॑ पु॒रस्ता॑त् सारस्व॒ती मे॒ष्यु॒धस्ता॒द्धन्वो॑राश्वि॒नाव॒धोरा॑मौ बा॒ह्वोः सौ॑मापौ॒ष्णः श्या॒मो नाभ्या॑ᳬं सौर्य॒या॒मौ श्वे॒तश्च॑ कृ॒ष्णश्च॑ पा॒र्श्वयो॑स्त्वा॒ष्ट्रौ लो॑म॒शस॑क्थौ स॒क्थ्योर्वा॑य॒व्यः॒ श्वे॒तः पुच्छ॒ऽइन्द्रा॑य स्वप॒स्या॒य वे॒हद्वै॑ष्ण॒वो वा॑म॒नः॥ १॥

अश्वः॑। तू॒प॒रः। गो॒मृ॒ग इति॑ गोऽमृ॒गः। ते। प्रा॒जा॒प॒त्या इति॑ प्राजाऽप॒त्याः। कृ॒ष्णग्री॑व॒ इति॑ कृ॒ष्णऽग्री॑वः। आ॒ग्ने॒यः। र॒राटे॑। पु॒रस्ता॑त्। सा॒र॒स्व॒ती। मे॒षी। अ॒धस्ता॑त्। हन्वोः॑। आ॒श्वि॒नौ। अ॒धोरा॑मावित्य॒धःऽरा॑मौ। बा॒ह्वोः। सौ॒मा॒पौ॒ष्णः। श्या॒मः। नाभ्या॑म्। सौ॒र्य॒या॒मौ। श्वे॒तः। च॒। कृ॒ष्णः। च॒। पा॒र्श्वयोः॑। त्वा॒ष्ट्रौ। लो॒म॒शस॑क्थावि॒ति॑ लोम॒शऽस॑क्थौ। स॒क्थ्योः। वा॒य॒व्यः॒। श्वे॒तः। पुच्छे॑। इन्द्रा॑य। स्व॒प॒स्याय॒येति॑ सुऽअप॒स्या॒य। वे॒हत्। वै॒ष्ण॒वः। वा॒म॒नः॥ १॥

पदार्थः-(**अश्वः**) आशुगामी तुरङ्गः (**तूपरः**) हिंसकः (**गोमृगः**) गौरिव वर्त्तमानो गवयः (**ते**) (**प्राजापत्याः**) प्रजापतिः सूर्य्यो देवता येषान्ते (**कृष्णग्रीवः**) कृष्णा ग्रीवा यस्य सः (**आग्नेयः**) अग्निदेवताकः (**रराटे**) ललाटे (**पुरस्तात्**) आदितः (**सारस्वती**) सरस्वती देवता यस्याः सा (**मेषी**) शब्दकर्त्री मेषस्य स्त्री (**अधस्तात्**) (**हन्वोः**) मुखाऽवयवयोः (**आश्विनौ**) अश्विदेवताकौ (**अधोरामौ**) अधो रमणं ययोस्तौ (**बाह्वोः**) (**सौमापौष्णः**) सोमपूषदेवताकः (**श्यामः**) कृष्णवर्णः (**नाभ्याम्**) मध्ये (**सौर्ययामौ**) सूर्ययमसम्बन्धिनौ (**श्वेतः**) श्वेतवर्णः (**च**) (**कृष्णः**) (**च**) (**पार्श्वयोः**) वामदक्षिणभागयोः (**त्वाष्ट्रौ**) त्वष्टृदेवताकौ (**लोमशसक्थौ**) लोमानि विद्यन्ते यस्य तल्लोमशं सक्थि ययोस्तौ (**सक्थ्योः**) पादावयवयोः (**वायव्यः**) वायुदेवताकः (**श्वेतः**) श्वेतवर्णः (**पुच्छे**) (**इन्द्राय**) ऐश्वर्ययुक्ताय (**स्वपस्याय**) शोभनान्यपांसि कर्माणि यस्य तस्मै (**वेहत्**) अकाले वृषभोपगमनेन गर्भघातिनी (**वैष्णवः**) विष्णुदेवताकः (**वामनः**) वक्राङ्गः॥ १॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यूयमश्वस्तूपरो गोमृगस्ते प्राजापत्याः कृष्णग्रीव आग्नेयः पुरस्ताद् रराटे मेषी सारस्वती अधस्ताद्धन्वोर्बाह्वोरधोरामावाश्विनौ सौमापौष्णः श्यामो नाभ्यां पार्श्वयोः श्वेतश्च कृष्णश्च सौर्ययामौ सक्थ्योर्लोमशसक्थौ त्वाष्ट्रौ पुच्छे श्वेतो वायव्यो वेहद्वैष्णवो वामनश्च स्वपस्यायेन्द्राय संयोजयत॥१॥

भावार्थः-ये मनुष्या अश्वादिभ्यः कार्य्याणि संसाध्यैश्वर्यमुन्नीय धर्म्याणि कर्माणि कुर्युस्ते सौभाग्यवन्तो भवेयुः। अत्र सर्वत्र देवतापदेन तत्तद्गुणयोगात् पशवो वेदितव्याः॥१॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम जो (**अश्वः**) शीघ्र चलने हारा घोड़ा (**तूपरः**) हिंसा करने वाला पशु (**गोमृगः**) और गौ के समान वर्त्तमान नीलगाय है, (**ते**) वे (**प्राजापत्याः**) प्रजापालक सूर्य देवता वाले अर्थात् सूर्यमण्डल के गुणों से युक्त (**कृष्णग्रीवः**) जिसकी काली गर्दन वह पशु (**आग्नेयः**) अग्नि देवता वाला (**पुरस्तात्**) प्रथम से (**रराटे**) ललाट के निमित्त (**मेषी**) मेंढ़ी (**सारस्वती**) सरस्वती देवता वाली (**अधस्तात्**) नीचे से (**हन्वोः**) ठोढ़ी वामदक्षिण भागों के ओर (**बाह्वोः**) भुजाओं के निमित्त (**अधोरामौ**) नीचे रमण करने वाले (**आश्विनौ**) जिनका अश्विदेवता वे पशु (**सौमापौष्णः**) सोम और पूषा देवता वाला (**श्यामः**) काले रंग से युक्त पशु (**नाभ्याम्**) तुन्दी के निमित्त और (**पार्श्वयोः**) बाईं दाहिनी ओर के निमित्त (**श्वेतः**) सुफेद रंग (**च**) और (**कृष्णः**) काला रंग वाला (**च**) और (**सौर्ययामौ**) सूर्य वा यमसम्बन्धी पशु वा (**सक्थ्योः**) पैरों की गांठियों के पास के भागों के निमित्त (**लोमशसक्थौ**) जिसके बहुत रोम विद्यमान ऐसे गांठियों के पास के भाग से युक्त (**त्वाष्ट्रौ**) त्वष्टा देवता वाले पशु वा (**पुच्छे**) पूंछ के निमित्त (**श्वेतः**) सुफेद रंग वाला (**वायव्यः**) वायु जिस का देवता है, वह वा (**वेहत्**) जो कामोद्दीपन समय के विना बैल के समीप जाने से गर्भ नष्ट करने वाली गौ वा (**वैष्णवः**) विष्णु देवता वाला और (**वामनः**) नाटा शरीर से कुछ ढेढ़े अङ्गवाला पशु इन सबों को (**स्वपस्याय**) जिसके सुन्दर-सुन्दर कर्म उस (**इन्द्राय**) ऐश्वर्य्ययुक्त पुरुष के लिये संयुक्त करो अर्थात् उक्त प्रत्येक अङ्ग के आनन्दनिमित्तक उक्त गुण वाले पशुओं को नियत करो॥१॥

भावार्थः-जो मनुष्य अश्व आदि पशुओं से कार्य्यों को सिद्ध कर ऐश्वर्य्य को उन्नति देके धर्म के अनुकूल काम करें, वे उत्तम भाग्य वाले हों। इस प्रकरण में सब स्थानों में देवता पद से उस-उस पद के गुणयोग से पशु जानने चाहियें॥१॥

रोहित इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। सोमादयो देवताः। निचृत्संकृतिश्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनः के पशवः कीदृशगुणा इत्याह॥

फिर कौन पशु कैसे गुण वाले हैं? इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

रोहि॑तो धू॒म्ररो॑हितः क॒र्कन्धु॑रोहित॒स्ते सौ॒म्या ब॒भ्रुर॑रु॒णब॑भ्रुः शुक॑बभ्रु॒स्ते वा॑रु॒णाः शि॑ति॒रन्ध्रो॒ऽन्यत॑:शितिरन्ध्रः सम॒न्तशि॑तिरन्ध्र॒स्ते सा॑वि॒त्राः शि॑तिबा॒हु॒र॒न्यत॑:शितिबाहुः सम॒न्तशि॑तिबाहु॒स्ते बा॑र्हस्प॒त्याः पृष॑ती क्षु॒द्रपृ॑षती स्थू॒लपृ॑षती॒ ता मै॑त्राव॒रु॒ण्यः॥ २॥

रोहि॑तः। धू॒म्ररो॑हित॒ इति॑ धू॒म्ररो॑हितः। क॒र्कन्धु॑रोहित॒ऽइति॑ क॒र्कन्धु॑ऽरोहितः। ते। सौ॒म्याः। ब॒भ्रुः। अ॒रु॒णब॑भ्रु॒रिति॑ अ॒रु॒णऽब॑भ्रुः। शुक॑बभ्रु॒रिति॒ शुक॑ऽबभ्रुः। ते। वा॒रु॒णाः। शि॒ति॒रन्ध्र॒ऽइति॑ शि॒ति॒ऽरन्ध्रः। अ॒न्यत॑:शितिरन्ध्र॒ऽइत्य॒न्यत॑:ऽशितिरन्ध्रः। स॒म॒न्तशि॑तिरन्ध्र॒ऽइति॑ स॒म॒न्तऽशि॑तिरन्ध्रः। ते। सा॒वि॒त्राः। शि॒ति॒बा॒हु॒रिति॑ शि॒ति॒ऽबा॒हुः। अ॒न्यत॑:शि॑तिबाहु॒रित्य॒न्यत॑:ऽशितिबाहुः। स॒म॒न्तशि॑तिबाहु॒रिति॑ स॒म॒न्तऽशि॑तिबाहुः। ते। बा॒र्ह॒स्प॒त्याः। पृष॑ती। क्षु॒द्रपृ॑ष॒तीति॑ क्षु॒द्रऽपृ॑षती। स्थू॒लपृ॑ष॒तीति॑ स्थू॒लऽपृ॑षती। ताः। मै॒त्रा॒व॒रु॒ण्यः॥ २॥

पदार्थः-(**रोहितः**) रक्तवर्णः (**धूम्ररोहितः**) धूम्ररक्तवर्णः (**कर्कन्धुरोहितः**) कर्कन्धुर्बदरीफलमिव रोहितः (**ते**) (**सौम्याः**) सोमदेवताकाः (**बभ्रुः**) नकुलसदृशवर्णः (**अरुणबभ्रुः**) अरुणेन युक्तो बभ्रुवर्णो यस्य सः (**शुकबभ्रुः**) शुकस्येव बभ्रुर्वर्णो यस्य सः (**ते**) (**वारुणाः**) वरुणदेवताकाः (**शितिरन्ध्रः**) शितिः श्वेतता रन्ध्रे यस्य सः (**अन्यतः शितिरन्ध्रः**) अन्यतोऽन्यस्मिन् रन्ध्राणीव शितयो यस्य सः (**समन्तशितिरन्ध्रः**) समन्ततो रन्ध्राणीव शितयः श्वेतचिह्नानि यस्य सः (**ते**) (**सावित्राः**) सवितृदेवताकाः (**शितिबाहुः**) शितयो बाह्वोर्यस्य सः (**अन्यतःशितिबाहुः**) अन्यतः शितयो बाह्वोर्यस्य सः (**समन्तशितिबाहुः**) समन्ताच्छितयो बाह्वोर्भुजस्थानयोर्यस्य सः (**ते**) (**बार्हस्पत्याः**) बृहस्पतिदेवताकाः (**पृषती**) अङ्गैः सुसिक्ता (**क्षुद्रपृषती**) क्षुद्राणि पृषन्ति यस्याः सा (**स्थूलपृषती**) स्थूलानि पृषन्ति यस्याः सा (**ताः**) (**मैत्रावरुण्यः**) प्राणोदानदेवताकाः॥ २॥

अन्वयः-हे मनुष्या युष्माभिर्ये रोहितो धूम्ररोहितः कर्कन्धुरोहितश्च सन्ति ते सौम्याः। ये बभ्रुररुणबभ्रुः शुकबभ्रुश्च सन्ति ते वारुणाः। ये शितिरन्ध्रोऽन्यतश्शितिरन्ध्रः समन्तशितिरन्ध्रश्च सन्ति ते सावित्राः। ये शितिबाहुरन्यतःशितिबाहुः समन्तशितिबाहुश्च सन्ति ते बार्हस्पत्याः। याः पृषती क्षुद्रपृषती स्थूलपृषती च सन्ति ता मैत्रावरुण्यो भवन्तीति बोध्यम्॥ २॥

भावार्थः-ये चन्द्रादिगुणयुक्ताः पशवः सन्ति तैस्तत्तत्कार्य्यं मनुष्यैः साध्यम्॥ २॥

पदार्थः-हे मनुष्यो तुम को जो (**रोहितः**) सामान्य लाल (**धूम्ररोहितः**) धुमेला लाल और (**कर्कन्धुरोहितः**) पके बेर के समान लाल पशु हैं, (**ते**) वे (**सौम्याः**) सोम देवता अर्थात् सोम गुण वाले, जो (**बभ्रुः**) न्योला के समान धुमेला (**अरुणबभ्रुः**) लालामी लिये हुए न्योले के समान रंग वाला और (**शुकबभ्रुः**) सुग्गा की समता को लिये हुए न्योले के समान रंगयुक्त पशु हैं, (**ते**) वे सब (**वारुणाः**) वरुण देवता वाले अर्थात् श्रेष्ठ जो (**शितिरन्ध्रः**) शितिरन्ध्र अर्थात् जिसके मर्मस्थान आदि में सुपेदी (**अन्यतःशितिरन्ध्रः**) जो और अङ्ग से और अङ्ग में छेद से हों, वैसी जिसके जहां-तहां सुपेदी

(समन्तशितिरन्ध्रः) और जिसके सब ओर से छेदों के समान सुपेदी के चिह्न हैं, **(ते)** वे सब **(सावित्राः)** सविता देवता वाले **(शितिबाहुः)** जिसके अगले भुजाओं में सुपेदी के चिह्न **(अन्यतःशितिबाहुः)** जिसके और अङ्ग से और अङ्ग में सुपेदी के चिह्न और **(समन्तशितिबाहुः)** जिसके सब और से अगले गोड़ों में सुपेदी के चिह्न हैं, ऐसे जो पशु हैं, **(ते)** वे **(बार्हस्पत्याः)** बृहस्पति देवता वाले तथा जो **(पृषती)** सब अङ्गों से अच्छी छिटकी हुई सी **(क्षुद्रपृषती)** जिसके छोटे-छोटे रंग-बिरंग छींटे और **(स्थूलपृषती)** जिसके मोटे-मोटे छींटे **(ताः)** वे सब **(मैत्रावरुण्यः)** प्राण और उदान देवता वाले होते हैं, यह जानना चाहिये॥२॥

भावार्थः-जो चन्द्रमा आदि के उत्तम गुणवाले पशु हैं, उनसे उन-उन के गुण के अनुकूल काम मनुष्यों को सिद्ध करने चाहियें॥२॥

शुद्धवाल इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। अश्व्यादयो देवताः। निचृदतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनः कीदृशगुणाः पशव इत्याह॥

फिर कैसे गुण वाले पशु हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

शुद्धवालः सर्वशुद्धवालो मणिवालस्तऽआश्विनाः श्येतः श्येताक्षोऽरुणस्ते रुद्राय पशुपतये कर्णा यामाऽअवलिप्ता रौद्रा नभोरूपाः पार्जन्याः॥ ३॥

शुद्धवाल इति शुद्धऽवालः। सर्वशुद्धवालऽइति सर्वऽशुद्धवालः। मणिवाल इति मणिऽवालः। ते। आश्विनाः। श्येतः। श्येताक्ष इति श्येतऽअक्षः। अरुणः। ते। रुद्राय। पशुपतय इति पशुऽपतये। कर्णाः। यामाः। अवलिप्ता इत्यवऽलिप्ताः। रौद्राः। नभोरूपा इति नभःऽरूपाः। पार्जन्याः॥३॥

पदार्थः-**(शुद्धवालः)** शुद्धा वाला यस्य सः **(सर्वशुद्धवालः)** सर्वे शुद्धा वाला यस्य सः **(मणिवालः)** मणिरिव वाला यस्य सः **(ते)** **(आश्विनाः)** सूर्य्यचन्द्रदेवताकाः **(श्येतः)** श्वेतवर्णः **(श्येताक्षः)** श्येते अक्षिणी यस्य सः **(अरुणः)** रक्तवर्णः **(ते)** **(रुद्राय)** दुष्टानां रोदकाय **(पशुपतये)** पशूनां पालकाय **(कर्णाः)** ये कार्याणि कुर्वन्ति ते **(यामाः)** वायुदेवताकाः **(अवलिप्ताः)** अवलिप्तान्युपचितान्यङ्गानि येषान्ते **(रौद्राः)** प्राणादिदेवताकाः **(नभोरूपाः)** नभ इव रूपं येषान्ते **(पार्जन्याः)** मेघदेवताकाः॥३॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! युष्माभिर्ये शुद्धवालः सर्वशुद्धवालो मणिवालश्च सन्ति, त आश्विनाः। ये श्येतः श्येताक्षोऽरुणश्च सन्ति, ते पशुपतये रुद्राय। ये कर्णाः सन्ति, ते यामाः। येऽवलिप्ताः सन्ति, ते रौद्राः। ये नभोरूपाः सन्ति, ते पार्जन्याश्च वेदितव्याः॥३॥

भावार्थः-यो यस्य पशोर्देवताऽस्ति स तद्गुणोऽस्तीति वेद्यम्॥३॥

पदार्थः-हे मनुष्यो तुमको जो **(शुद्धवालः)** जिसके शुद्ध बाल वा शुद्ध छोटे-छोटे अङ्ग **(सर्वशुद्धवालः)** जिसके समस्त शुद्ध बाल और **(मणिवालः)** जिसके मणि के समान चिलकते हुए बाल

हैं, ऐसे जो पशु **(ते)** वे सब **(आश्विनाः)** सूर्य-चन्द्र देवता वाले अर्थात् सूर्य-चन्द्रमा के समान दिव्य गुण वाले, जो **(श्येतः)** सुपेद रंगयुक्त **(श्येताक्षः)** जिसकी सुपेद आंखें और **(अरुणः)** जो लाल रंग वाला है, **(ते)** वे **(पशुपतये)** पशुओं की रक्षा करने और **(रुद्राय)** दुष्टों को रुलानेहारे के लिये। जो ऐसे हैं कि **(कर्णाः)** जिनसे काम करते हैं, वे **(यामाः)** वायु देवता वाले **(अवलिप्ताः)** जिन के उन्नतियुक्त अङ्ग अर्थात् स्थूल शरीर हैं, वे **(रौद्राः)** प्राणवायु आदि देवता वाले तथा **(नभोरूपाः)** जिनका आकाश के समान नीला रूप है, ऐसे जो पशु हैं, वे सब **(पार्जन्याः)** मेघ देवता वाले जानने चाहियें॥३॥

भावार्थः-जो जिस पशु का देवता है, वह उस का गुण है, यह जानना चाहिये॥३॥

पृश्निरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। मारुतादयो देवताः। विराडतिधृतिश्छन्दः। षड्जः स्वर॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

पृश्नि॑स्तिर॒श्चीन॑पृश्निरू॒र्ध्वपृ॑श्नि॒स्ते मा॑रु॒ताः फ॒ल्गूर्लो॑हि॒तो॒र्णी प॑ल॒क्षी ताः सा॑रस्व॒त्यः᳖ प्लीहा॒कर्णः॑ शुण्ठा॒कर्णो॑ऽध्यालोह॒कर्ण॒स्ते त्वा॒ष्ट्राः कृ॒ष्णग्री॑वः शिति॒कक्षो॑ऽञ्जिस॒क्थस्तऽऐ॑न्द्रा॒ग्नाः कृ॒ष्णाञ्जि॒रल्पा॑ञ्जि॒र्महाञ्जि॒स्तऽउ॑ष॒स्याः᳖॥४॥

पृश्नि॑ः। ति॒रश्चीन॑पृश्नि॒रिति॑ ति॒रश्चीन॑ऽपृश्निः। ऊ॒र्ध्वपृ॑श्नि॒रित्यू॒र्ध्वऽपृ॑श्निः। ते। मा॒रु॒ताः। फ॒ल्गूः। लो॒हि॒तो॒र्णीति॑ लोहितऽऊ॒र्णी। प॒ल॒क्षी। ताः। सा॒र॒स्व॒त्यः᳖। प्ली॒हा॒कर्णः॑। प्ली॒ह॒कर्ण॒ इति॑ प्लीह॒ऽकर्णः॑। शु॒ण्ठा॒कर्णः॑। शु॒ण्ठ॒कर्ण॑ इति॑ शुण्ठ॒ऽकर्णः॑। अ॒ध्या॒लो॒ह॒कर्ण॒ इत्य॑ध्यालोह॒ऽकर्णः॑। ते। त्वा॒ष्ट्राः। कृ॒ष्णग्री॑व॒ इति॑ कृ॒ष्णऽग्री॑वः। शि॒ति॒क॒क्षऽइति॑ शिति॒ऽकक्षः॑। अ॒ञ्जि॒स॒क्थऽइत्य॑ञ्जिऽस॒क्थः। ते। ऐ॒न्द्रा॒ग्नाः। कृ॒ष्णाञ्जि॒रिति॑ कृ॒ष्णऽअ॑ञ्जिः। अल्पा॑ञ्जि॒रित्यल्प॑ऽअञ्जिः। म॒हाञ्जि॒रिति॑ म॒हाऽअ॑ञ्जिः। ते। उ॒ष॒स्याः᳖॥४॥

पदार्थः-**(पृश्निः)** प्रष्टव्यः **(तिरश्चीनपृश्निः)** तिरश्चीनः पृश्निः स्पर्शो यस्य सः **(ऊर्ध्वपृश्निः)** ऊर्ध्व उत्कृष्टः पृश्निः स्पर्शो यस्य सः **(ते)** **(मारुताः)** मरुद्देवताकाः **(फल्गूः)** या फलानि गच्छति प्राप्नोति सा **(लोहितोर्णी)** लोहिता ऊर्णा यस्याः सा **(पलक्षी)** पले चञ्चले अक्षिणी यस्याः सा **(ताः)** **(सारस्वत्यः)** सरस्वतीदेवताकाः **(प्लीहाकर्णः)** प्लीहेव कर्णे यस्य सः **(शुण्ठाकर्णः)** शुण्ठौ शुष्कौ कर्णौ यस्य सः **(अध्यालोहकर्णः)** अधिगतं च तल्लोहं च सुवर्णं तद्वद्कर्णौ यस्य सः। **लोहमिति हिरण्यनामसु पठितम्॥** (निघं०१।२) **(ते)** **(त्वाष्ट्राः)** त्वष्टृदेवताकाः **(कृष्णग्रीवः)** कृष्णा ग्रीवा यस्य सः **(शितिकक्षः)** शिती श्वेतौ कक्षौ पार्श्वौ यस्य सः **(अञ्जिसक्थः)** अञ्जीनि प्रसिद्धानि सक्थीनि यस्य सः **(ते)** **(ऐन्द्राग्नाः)** वायुविद्युद्देवताकाः **(कृष्णाञ्जिः)** कृष्णा विलिखिता अञ्जिर्मतिर्यस्य सः **(अल्पाञ्जिः)** अल्पगतिः **(महाञ्जिः)** महागतिः **(ते)** **(उषस्याः)** उषोदेवताकाः॥४॥

अन्वयः-हे मनुष्या ये पृश्निस्तिरश्चीनपृश्निरूर्ध्वपृश्निश्च सन्ति ते मारुताः। याः फल्गूर्लोहितोर्णी पलक्षी च सन्ति ताः सारस्वत्यः। ये प्लीहाकर्णः शुण्ठाकर्णोऽध्यालोहकर्णश्च सन्ति ते त्वाष्ट्राः। ये कृष्णग्रीवः शितिकक्षोऽञ्जिसक्थश्च सन्ति त ऐन्द्राग्नाः। ये कृष्णाञ्जिरल्पाञ्जिर्महाञ्जिश्च सन्ति त उषस्याश्च भवन्तीति वेद्यम्॥४॥

भावार्थः-ये पशवः पक्षिणश्च वायुगुणा ये नदीगुणा ये सूर्य्यगुणा ये वायुविद्युद्गुणा ये चोषोगुणाः सन्ति, तैस्तदनुकूलानि कार्य्याणि साधनीयानि॥४॥

पदार्थः-हे मनुष्यो जो **(पृश्निः)** पूछने योग्य **(तिरश्चीनपृश्निः)** जिसका तिरछा स्पर्श और **(ऊर्ध्वपृश्निः)** जिसका ऊँचा वा उत्तम स्पर्श है, **(ते)** वे **(मारुताः)** वायु देवता वाले। जो **(फल्गूः)** फलों को प्राप्त हों **(लोहितोर्णी)** जिसकी लाल ऊर्णा अर्थात् देह के बाल और **(पलक्षी)** जिसकी चंचल-चपल आंखें ऐसे पशु हैं, **(ताः)** वे **(सारस्वत्यः)** सरस्वती देवता वाले **(प्लीहाकर्णः)** जिसके कान में प्लीहा रोग के आकार के चिह्न हों **(शुण्ठाकर्णः)** जिसके सूखे कान और जिसके **(अध्यालोहकर्णः)** अच्छे प्रकार प्राप्त हुए सुवर्ण के समान कान ऐसे जो पशु हैं, **(ते)** वे सब **(त्वाष्ट्राः)** त्वष्टा देवता वाले, जो **(कृष्णग्रीवः)** काले गले वाले **(शितिकक्षः)** जिसके पांजर की ओर सुपेद अङ्ग और **(अञ्जिसक्थः)** जिसकी प्रसिद्ध जङ्घा अर्थात् स्थूल होने से अलग विदित हों, ऐसे जो पशु हैं, **(ते)** वे सब **(ऐन्द्राग्नाः)** पवन और बिजुली देवता वाले तथा **(कृष्णाञ्जिः)** जिसकी करोदी हुई चाल **(अल्पाञ्जिः)** जिसकी थोड़ी चाल और **(महाञ्जिः)** जिसकी बड़ी चाल ऐसे जो पशु हैं, **(ते)** वे सब **(उषस्याः)** उषा देवता वाले होते हैं, यह जानना चाहिये॥४॥

भावार्थः-जो पशु और पक्षी पवन गुण वा जो नदी गुण वा जो सूर्य गुण वा जो पवन और बिजुली गुण तथा जो प्रातःसमय की वेला के गुण वाले हैं, उनसे उन्हीं के अनुकूल काम सिद्ध करने चाहियें॥४॥

शिल्पा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। निचृद्बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

शि॒ल्पा वै॑श्वदे॒व्यो॒ रोहि॑ण्य॒स्त्र्यव॑यो वा॒चेऽवि॑ज्ञाता॒ऽअदि॑त्यै॒ सरू॑पा धा॒त्रे व॑त्सत॒र्यो॒ दे॒वानां॒ पत्नी॑भ्यः॥५॥

शि॒ल्पाः। वै॒श्व॒दे॒व्यः॒ इति॑ वैश्वऽदे॒व्यः॑। रोहि॑ण्यः। त्र्यव॑य॒ इति॑ त्रिऽअव॑यः। वा॒चे। अवि॑ज्ञाता॒ इत्यवि॑ऽज्ञाताः। अदि॑त्यै। सरू॑पा॒ इति॑ सऽरू॑पाः। धा॒त्रे। व॒त्स॒त॒र्यः॑। दे॒वाना॑म्। पत्नी॑भ्यः॥५॥

पदार्थः-**(शिल्पाः)** सुरूपाः शिल्पकार्यसाधिकाः **(वैश्वदेव्यः)** विश्वदेवदेवताकाः **(रोहिण्यः)** आरोढुमर्हा **(त्र्यवयः)** त्रिविधाश्च ता अवयश्च ताः **(वाचे)** **(अविज्ञाताः)** विशेषेणाज्ञाताः **(अदित्यै)**

पृथिव्यै **(सरूपा:)** समानं रूपं यासां ता: **(धात्रे)** धारकाय **(वत्सतर्य:)** अतिशयेन वत्सा अल्पवयस: **(देवानाम्)** दिव्यगुणानां विदुषाम् **(पत्नीभ्य:)** भार्य्याभ्य:॥५॥

अन्वय:-हे मनुष्या:! युष्माभिर्या शिल्पा वैश्वदेव्यो वाचे रोहिण्यस्त्र्यवयोऽदित्या अविज्ञाता: धात्रे सरूपा देवानां पत्नीभ्यो वत्सतर्यश्च ता विज्ञेया:॥५॥

भावार्थ:-ये सर्वे विद्वांस: शिल्पविद्ययाऽनेकानि यानादीनि रचयेयु: पशूनां च पालनं कृत्वोपयोगं गृह्णीयुस्ते श्रीमन्त: स्यु:॥५॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! तुमको **(शिल्पा:)** जो सुन्दर रूपवान् और शिल्पकार्यों की सिद्धि करने वाली **(वैश्वदेव्य:)** विश्वेदेव देवता वाले **(वाचे)** वाणी के लिये **(रोहिण्य:)** नीचे से ऊपर को चढ़ने योग्य **(त्र्यवय:)** जो तीन प्रकार की भेड़ें **(अदित्यै)** पृथिवी के लिये **(अविज्ञाता:)** विशेषकर न जानी हुई भेड़ आदि **(धात्रे)** धारण करने के लिये **(सरूपा:)** एक से रूप वाली तथा **(देवानाम्)** दिव्यगुण वाले विद्वानों की **(पत्नीभ्य:)** स्त्रियों के लिये **(वत्सतर्य्य:)** अतीव छोटी-छोटी थोड़ी अवस्था वाली बछिया जाननी चाहिये॥५॥

भावार्थ:-जो सब विद्वान् शिल्पविद्या से अनेकों यान आदि बनावें और पशुओं की पालना कर उनसे उपयोग लेवें, वे धनवान् हों॥५॥

कृष्णग्रीवा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि:। अग्न्यादयो देवता:। विराट्पङ्क्तिश्छन्द:। ऋषभ: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

कृष्णग्रीवा आग्नेया: शितिभ्रवो वसूनाᳬं रोहिता रुद्राणाᳬं श्वेताऽअवरोकिणऽ आदित्यानां नभोरूपा: पार्जन्या:॥६॥

कृष्णग्रीवा इति कृष्णऽग्रीवा:। आग्नेया:। शितिभ्रव इति शितिभ्रव:। वसूनाम्। रोहिता:। रुद्राणाम्। श्वेता:। अवरोकिण इत्यवऽरोकिण:। आदित्यानाम्। नभोरूपा इति नभ:ऽरूपा:। पार्जन्या:॥६॥

पदार्थ:-**(कृष्णग्रीवा:)** कृष्णा कर्षिका ग्रीवा निगरणं येषान्ते **(आग्नेया:)** अग्निदेवताका: **(शितिभ्रव:)** शितिश्श्वेता: भ्रूर्भ्रकुटिर्यासां ता: **(वसूनाम्)** पृथिव्यादीनाम् **(रोहिता:)** रक्तवर्णा: **(रुद्राणाम्)** प्राणादीनाम् **(श्वेता:)** श्वेतवर्णा: **(अवरोकिण:)** अवरोधका: **(आदित्यानाम्)** सूर्यसम्बन्धिकां मासानाम् **(नभोरूपा:)** नभ उदकमिव रूपं येषां ते **(पार्जन्या:)** मेघदेवताका:॥६॥

अन्वय:-हे मनुष्या ये कृष्णग्रीवास्त आग्नेया:। ये शितिभ्रवस्ते वसूनां ये रोहितास्ते रुद्राणां ये श्वेता अवरोकिणस्त आदित्यानां ये नभोरूपास्ते च पार्जन्या: बोध्या:॥६॥

भावार्थः-मनुष्यैरग्नेराकर्षणक्रिया पृथिव्यादीनां धारणक्रिया वायूनां प्ररोहणक्रिया आदित्यानामवरोधिका मेघानां च जलवर्षिकाः क्रिया विदित्वा कार्य्येषूपयोज्याः॥६॥

पदार्थः-हे मनुष्यो जो (**कृष्णग्रीवाः**) ऐसे हैं कि जिनकी खिंची हुई गर्दन वा खिंचा हुआ खाना निगलना वे (**आग्नेयाः**) अग्नि देवता वाले (**शितिभ्रवः**) जिनकी सुपेद भौंहें हैं, वे (**वसूनाम्**) पृथिवी आदि वसुओं के, जो (**रोहिताः**) लाल रंग के हैं, वे (**रुद्राणाम्**) प्राण आदि ग्यारह रुद्रों के, जो (**श्वेताः**) सुपेद रंग के और (**अवरोकिणः**) अवरोध करने अर्थात् रोकने वाले हैं, वे (**आदित्यानाम्**) सूर्यसम्बन्धी महीनों के और जो (**नभोरूपाः**) ऐसे हैं कि जिनका जल के समान रूप है, वे जीव (**पार्जन्याः**) मेघदेवता वाले अर्थात् मेघ के सदृश गुणों वाले जानने चाहियें॥६॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि अग्नि की खींचने की, पृथिवी आदि को धारण करने की, पवनों को अच्छे प्रकार चढ़ने की, सूर्य आदि की रोकने की और मेघों की जल वर्षाने की क्रिया को जान कर सब कामों में सम्यक् निरन्तर उपयुक्त किया करें॥६॥

उन्नत इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। इन्द्रादयो देवताः। अतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उन्नत ऋषभो वामनस्तऽऐन्द्रावैष्णवाऽउन्नतः शितिबाहुः शितिपृष्ठस्तऽऐन्द्राबार्हस्पत्याः शुकरूपा वाजिनाः कल्माषाऽआग्निमारुताः श्यामाः पौष्णाः॥७॥

उन्नत इत्युत्ऽनतः। ऋषभः। वामनः। ते। ऐन्द्रावैष्णवाः। उन्नत इत्युत्ऽनतः। शितिबाहुरिति शितिऽबाहुः। शितिपृष्ठ इति शितिऽपृष्ठः। ते। ऐन्द्राबार्हस्पत्याः। शुकरूपा इति शुकऽरूपाः। वाजिनाः। कल्माषाः। आग्निमारुता इत्याग्निमारुताः। श्यामाः। पौष्णाः॥७॥

पदार्थः-(**उन्नतः**) उच्छ्रितः (**ऋषभः**) श्रेष्ठः (**वामनः**) वक्राङ्गः (**ते**) (**ऐन्द्रावैष्णवाः**) विद्युद्वायुदेवताकाः (**उन्नतः**) (**शितिबाहुः**) शिती तनूकर्त्तारौ बाहू इव बलं यस्य सः (**शितिपृष्ठः**) शितिस्तनूकरणं पृष्ठं यस्य सः (**ते**) (**ऐन्द्राबार्हस्पत्याः**) वायुसूर्यदेवताकाः (**शुकरूपाः**) शुकस्य रूपमिव रूपं येषान्ते (**वाजिनाः**) वेगवन्तः (**कल्माषाः**) श्वेतकृष्णवर्णाः (**आग्निमारुताः**) अग्निवायुदेवताकाः (**श्यामाः**) श्यामवर्णाः (**पौष्णाः**) पुष्टिनिमित्त-मेघदेवताकाः॥७॥

अन्वयः-हे मनुष्या! भवद्भिर्ये उन्नत ऋषभो वामनश्च सन्ति, त ऐन्द्रावैष्णवाः। य उन्नतः शितिबाहुः शितिपृष्ठश्च सन्ति, त ऐन्द्राबार्हस्पत्याः। ये शुकरूपा वाजिनाः कल्माषाः सन्ति, त आग्निमारुताः। ये श्यामाः सन्ति, ते च पौष्णाः विज्ञेयाः॥७॥

भावार्थः-ये मनुष्याः पशूनामुन्नतिं पुष्टिं च कुर्वन्ति ते नानाविधानि सुखानि लभन्ते॥७॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम को जो **(उन्नतः)** ऊंचा **(ऋषभः)** और श्रेष्ठ **(वामनः)** टेढ़े अङ्गों वाले नाटा पशु हैं, **(ते)** वे **(ऐन्द्रावैष्णवाः)** बिजुली और पवन देवता वाले, जो **(उन्नतः)** ऊंचा **(शितिबाहुः)** जिसका दूसरे पदार्थ को काटती-छांटती हुई भुजाओं के समान बल और **(शितिपृष्ठः)** जिसकी सूक्ष्म की हुई पीठ ऐसे जो पशु हैं, **(ते)** वे **(ऐन्द्राबार्हस्पत्याः)** वायु और सूर्य देवता वाले **(शुकरूपाः)** जिनका सुग्गों के समान रूप और **(वाजिनाः)** वेग वाले **(कल्माषाः)** कबरे भी हैं, वे **(आग्निमारुताः)** अग्नि और पवन देवता वाले तथा जो **(श्यामाः)** काले रंग के हैं, वे **(पौष्णाः)** पुष्टिनिमित्तक मेघ देवता वाले जानने चाहियें॥७॥

भावार्थः-जो मनुष्य पशुओं की उन्नति और पुष्टि करते हैं, वे नाना प्रकार के सुखों को पाते हैं॥७॥

एता इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। इन्द्राग्न्यादयो देवताः। स्वराट् बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

एताऽऐन्द्राग्ना द्विरूपाऽअग्नीषोमीया वामनाऽअनड्वाहऽ आग्नावैष्णवा वशा मैत्रावरुण्योऽन्यतऽएन्यो मैत्र्यः॥८॥

एताः। ऐन्द्राग्नाः। द्विरूपा इति द्विऽरूपाः। अग्नीषोमीयाः। वामनाः। अनड्वाहः। आग्नावैष्णवाः। वशाः। मैत्रावरुण्यः। अन्यतएन्य इत्यन्यतःऽएन्यः। मैत्र्यः॥८॥

पदार्थः-**(एताः)** पूर्वोक्ताः **(ऐन्द्राग्नाः)** वायुविद्युत्सङ्गिनः **(द्विरूपाः)** द्वे रूपे यासां ताः **(अग्नीषोमीयाः)** सोमाग्निदेवताकाः **(वामनाः)** वक्रावयवाः **(अनड्वाहः)** वृषभाः **(आग्नावैष्णवाः)** अग्निवायुदेवताकाः **(वशाः)** वन्ध्या गावः **(मैत्रावरुण्यः)** प्राणोदानदेवताकाः **(अन्यतएन्यः)** या अन्यतो यन्ति प्राप्नुवन्ति ताः **(मैत्र्यः)** मित्रस्य प्रिये वर्त्तमानाः॥८॥

अन्वयः-हे मनुष्या युष्माभिर्या एता द्विरूपाः सन्ति ता ऐन्द्राग्नाः। ये वामना अनड्वाहः सन्ति तेऽग्नीषोमीया आग्नावैष्णवाश्च। या वशाः सन्ति ता मैत्रावरुण्यः। या अन्यतएन्यः सन्ति ताश्च मैत्र्यो विज्ञेयाः॥८॥

भावार्थः-ये मनुष्या वाय्वग्न्यादिगुणान् पशून् पालयन्ति, ते सर्वोपकारका भवन्ति॥८॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुमको **(एताः)** ये पूर्वोक्त **(द्विरूपाः)** द्विरूप पशु अर्थात् जिनके दो-दो रूप हैं, वे **(ऐन्द्राग्नाः)** वायु और बिजुली के संगी, जो **(वामनाः)** टेढ़े अङ्गों वाले व नाटे और **(अनड्वाहः)** बैल हैं, वे **(अग्नीषोमीयाः)** सोम और अग्नि देवता वाले तथा **(आग्नावैष्णवाः)** अग्नि और वायु देवता वाले जो **(वशाः)** वन्ध्या गौ हैं, वे **(मैत्रावरुण्यः)** प्राण और उदान देवता वाली और जो **(अन्यतएन्यः)** कहीं से प्राप्त हों, वे **(मैत्र्यः)** मित्र के प्रिय व्यवहार में जानने चाहियें॥८॥

भावार्थः-जो मनुष्य वायु और अग्नि आदि के गुणों वाले गौ आदि पशु हैं, उनकी पालना करते हैं, वे सब का उपकार करने वाले होते हैं॥८॥

कृष्णग्रीवा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। अग्न्यादयो देवताः। निचृत् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

कृष्णग्रीवाऽआग्नेया बभ्रवः सौम्याः श्वेता वायव्याऽअविज्ञाताऽअदित्यै सरूपा धात्रे वत्सतर्यो देवानां पत्नीभ्यः॥९॥

कृष्णग्रीवा इति कृष्णऽग्रीवाः। आग्नेयाः। बभ्रवः। सौम्याः। श्वेताः। वायव्याः। अविज्ञाता इत्यविऽज्ञाताः। अदित्यै। सरूपाऽइति सऽरूपाः। धात्रे। वत्सतर्य्यः। देवानाम्। पत्नीभ्यः॥९॥

पदार्थः-(**कृष्णग्रीवाः**) कृष्णकण्ठाः (**आग्नेयाः**) अग्निदेवताकाः (**बभ्रवः**) नकुलवर्णवद्वर्णयुक्ताः (**सौम्याः**) सोमदेवताकाः (**श्वेताः**) (**वायव्याः**) वायुदेवताकाः (**अविज्ञाताः**) न विशेषेण ज्ञाता विदिताः (**अदित्यै**) अखण्डितायै जनित्वक्रियायै। अदितिर्जनित्वमिति मन्त्रप्रामाण्यादत्रादितिशब्देन गृह्यते (**सरूपाः**) समानं रूपं यासां ताः (**धात्रे**) धारकाय वायवे (**वत्सतर्य्यः**) अतिशयेन वत्साः (**देवानाम्**) सूर्यादीनाम् (**पत्नीभ्यः**) पालिकाभ्यः क्रियाभ्यः॥९॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! युष्माभिर्ये कृष्णग्रीवास्त आग्नेयाः, ये बभ्रवस्ते सौम्याः, ये श्वेतास्ते वायव्याः, येऽविज्ञातास्तेऽदित्यै, ये सरूपास्ते धात्रे, या वत्सतर्यस्ताश्च देवानां पत्नीभ्यो विज्ञेयाः॥९॥

भावार्थः-ये पशवः कर्षका निगलकास्त अग्निवद्वर्त्तमानाः। य ओषधीवद्धारकाः, य आवरकास्ते वायुवद्वर्त्तमानाः। येऽविज्ञातास्ते प्रजननाय, ये धातृगुणास्ते धारणाय, ये सूर्यकिरणवद्वर्त्तमानाः पदार्था सन्ति, ते व्यवहारसाधने प्रयोज्याः॥९॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुमको जो (**कृष्णग्रीवाः**) काले गले के हैं, वे (**आग्नेयाः**) अग्निदेवता वाले, जो (**बभ्रवः**) न्योले के रंग वाले हैं, वे (**सौम्याः**) सोम देवता वाले जो (**श्वेताः**) सुपेद हैं, वे (**वायव्याः**) वायु देवता वाले, जो (**अविज्ञाताः**) विशेष चिह्न से कुछ न जाने गये, वे (**अदित्यै**) जो कभी नाश नहीं होती उस उत्पत्ति रूप क्रिया के लिये, जो (**सरूपाः**) ऐसे हैं कि जिनका एकसा रूप है, वे (**धात्रे**) धारण करने हारे पवन के लिये। और जो (**वत्सतर्यः**) छोटी-छोटी बछियां हैं, वे (**देवानाम्**) सूर्य आदि लोकों की (**पत्नीभ्यः**) पालना करने वाली क्रियाओं के लिये जानने चाहियें॥९॥

भावार्थः-जो पशु जोतने और निगलने वाले हैं, वे अग्नि के समान वर्त्तमान। जो ओषधि के समान गुणों को धारण करने और ढांपने वाले हैं, वे पवन के समान वर्त्तमान। जो नहीं जानने योग्य वे उत्पत्ति के

लिये, जो धारण करते हुए के तुल्य गुणयुक्त हैं, वे धारण करने के लिये तथा जो सूर्य की किरणों के समान वर्त्तमान पदार्थ हैं, वे व्यवहारों की सिद्धि करने में अच्छे प्रकार युक्त करने चाहियें॥९॥

कृष्णा भौमा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। अन्तरिक्षादयो देवताः। स्वराड्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

कृष्णा भौमा धूम्राऽआन्तरिक्षा बृहन्तो दिव्याः शबला वैद्युताः सिध्मास्तारकाः॥१०॥

कृष्णाः। भौमाः। धूम्राः। आन्तरिक्षाः। बृहन्तः। दिव्याः। शबलाः। वैद्युताः। सिध्माः। तारकाः॥१०॥

पदार्थः-(कृष्णाः) कृष्णवर्णाः विलेखननिमित्ता वा **(भौमाः)** भूमिदेवताकाः **(धूम्राः)** धूम्रवर्णाः **(आन्तरिक्षाः)** अन्तरिक्षदेवताकाः **(बृहन्तः)** वर्धकाः **(दिव्याः)** दिव्यगुणकर्मस्वभावाः **(शबलाः)** किंचिच्छ्वेताः **(वैद्युताः)** विद्युद्देवताकाः **(सिध्माः)** मङ्गलकारिणः **(तारकाः)** दुःखस्य पारे कारिणः॥१०॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! युष्माभिर्ये कृष्णास्ते भौमाः। ये धूम्रास्त आन्तरिक्षाः। ये दिव्या बृहन्तः शबलास्ते वैद्युताः। ये सिध्मास्ते च तारका विज्ञेयाः॥१०॥

भावार्थः-यदि मनुष्याः कर्षणादिकार्यसाधकान् पश्वादिपदार्थन् भूम्यादिषु संयोजयेयुस्तर्हि ते मङ्गलमाप्नुयुः॥१०॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम को जो **(कृष्णाः)** काले रंग के वा खेत आदि के जुताई वाले हैं, वे **(भौमाः)** भूमि देवता वाले **(धूम्राः)** धुमेले हैं, वे **(आन्तरिक्षाः)** अन्तरिक्ष देवता वाले, जो **(दिव्याः)** दिव्य गुण कर्म स्वभावयुक्त **(बृहन्तः)** बढ़ते हुए और **(शबलाः)** थोड़े सुपेद हैं, वे **(वैद्युताः)** बिजुली देवता वाले और जो **(सिध्माः)** मंगल कराने हारे हैं, वे **(तारकाः)** दुःख के पार उतारने वाले जानने चाहियें॥१०॥

भावार्थः-यदि मनुष्य जोतने आदि कार्यों के साधक पशु आदि पदार्थों को भूमि आदि में संयुक्त करें तो वे आनन्द मंगल को प्राप्त होवें॥१०॥

धूम्रानित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। वसन्तादयो देवताः। स्वराड्बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

धूम्रान् वसन्तायालभते श्वेतान् ग्रीष्माय कृष्णान् वर्षाभ्योऽरुणाञ्छरदे पृषतो हेमन्ताय पिशङ्गाञ्छिशिराय॥११॥

धूम्रान्। वसन्ताय। आ। लभते। श्वेतान्। ग्रीष्माय। कृष्णान्। वर्षाभ्यः। अरुणान्। शरदे। पृषतः। हेमन्ताय। पिशङ्गान्। शिशिराय॥११॥

पदार्थः-(**धूम्रान्**) धूम्रवर्णान् पदार्थान् (**वसन्ताय**) वसन्तर्त्तौ सुखाय (**आ**) समन्तात् (**लभते**) प्राप्नोति (**श्वेतान्**) श्वेतवर्णान् (**ग्रीष्माय**) ग्रीष्मर्त्तौ सुखाय (**कृष्णान्**) कृष्णवर्णान् कृषिसाधकान् वा (**वर्षाभ्यः**) वर्षर्त्तौ कार्यसाधनाय (**अरुणान्**) आरक्तान् (**शरदे**) शरदृतौ सुखाय (**पृषतः**) स्थूलान् (**हेमन्ताय**) हेमन्तर्त्तौ कार्यसाधनाय (**पिशङ्गान्**) रक्तपीतवर्णान् (**शिशिराय**) शिशिरर्त्तौ व्यवहारसाधनाय॥११॥

अन्वयः-यो मनुष्यो वसन्ताय धूम्रान् ग्रीष्माय श्वेतान् वर्षाभ्यः कृष्णान् शरदेऽरुणान् हेमन्ताय पृषतः शिशिराय पिशङ्गानालभते, स सततं सुखी भवति॥११॥

भावार्थः-मनुष्यैर्यस्मिन्नृतौ ये पदार्थाः संचयनीयाः सेवनीयाश्च स्युस्तान् संचित्य संसेव्याऽरोगा भूत्वा धर्मार्थकाममोक्षसाधनान्यनुष्ठातव्यानि॥११॥

पदार्थः-जो मनुष्य (**वसन्ताय**) वसन्त ऋतु में सुख के लिये (**धूम्रान्**) धुमेले पदार्थों के (**ग्रीष्माय**) ग्रीष्म ऋतु में आनन्द के लिये (**श्वेतान्**) सुपेद रंग के (**वर्षाभ्यः**) वर्षा ऋतु में कार्यसिद्धि के लिये (**कृष्णान्**) काले रंग के वा खेती की सिद्धि कराने वाले (**शरदे**) शरद् ऋतु में सुख के लिये (**अरुणान्**) लाल रंग के (**हेमन्ताय**) हेमन्त ऋतु में कार्य साधने के लिये (**पृषतः**) मोटे और (**शिशिराय**) शिशिर ऋतुसम्बन्धी व्यवहार साधने के लिये (**पिशङ्गान्**) लालामी लिये हुए पीले पदार्थों को (**आ, लभते**) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है, वह निरन्तर सुखी होता है॥११॥

भावार्थः-मनुष्यों को जिस ऋतु में, जो पदार्थ इकट्ठे करने वा सेवने योग्ये हों, उनको इकट्ठे और उनका सेवन कर नीरोग हो के धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के सिद्ध करने के व्यवहारों का आचरण करना चाहिये॥११॥

त्र्यवय इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। अग्न्यादयो देवताः। स्वराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

त्र्यवयो गायत्र्यै पञ्चावयस्त्रिष्टुभे दित्यवाहो जगत्यै त्रिवत्साऽअनुष्टुभे तुर्यवाहऽउष्णिहे॥१२॥

त्र्यवय इति त्रिऽअवयः। गायत्र्यै। पञ्चावय इति पञ्चऽअवयः। त्रिष्टुभे। त्रिस्तुभ इति त्रिस्तुभे। दित्यवाहऽइति दित्यऽवाहः। जगत्यै। त्रिऽवत्साऽइति त्रिऽवत्साः। अनुष्टुभे। अनुस्तुभ इत्यनुऽस्तुभे। तुर्यवाह इति तुर्यऽवाहः। उष्णिहे॥१२॥

पदार्थः-(**त्र्यवयः**) तिस्रोऽवयो येषां ते (**गायत्र्यै**) गायतो रक्षिकायै (**पञ्चावयः**) पञ्च अवयो येषान्ते (**त्रिष्टुभे**) त्रयाणां शारीरवाचिकमानसानां सुखानां स्तम्भनाय स्थिरीकरणाय (**दित्यवाहः**) दितौ खण्डने भवा दित्या न दित्या अदित्यास्तान् ये वहन्ति प्रापयन्ति ते दित्यवाहः (**जगत्यै**) जगद्रक्षणायै क्रियायै

(त्रिवत्साः) त्रयो वत्सास्त्रिषु वा निवासो येषान्ते **(अनुष्टुभे)** अनुस्तम्भाय **(तुर्यवाहः)** ये तुर्यं चतुर्थं वहन्ति ते **(उष्णिहे)** उत्कृष्टतया स्निह्यति यया तस्यै क्रियायै॥१२॥

अन्वयः-ये त्र्यवयो गायत्र्यै पञ्चावयस्त्रिष्टुभे दित्यवाहो जगत्यै त्रिवत्सा अनुष्टुभे तुर्यवाह उष्णिहे च प्रयतेरँस्ते सुखिनः स्युः॥१२॥

भावार्थः-यथा विद्वांसोऽधीतैर्गायत्र्यादिछन्दोऽर्थैः सुखानि वर्धयन्ते, तथा पशुपालका घृतादीनि वर्द्धयेयुः॥१२॥

पदार्थः-जो **(त्र्यवयः)** ऐसे हैं कि जिन की तीन भेड़ें वे **(गायत्र्यै)** गाते हुओं की रक्षा करने वाली के लिये **(पञ्चावयः)** जिन के पाँच भेड़ें हैं, वे **(त्रिष्टुभे)** तीन अर्थात् शरीर, वाणी और मन सम्बन्धी सुखों के स्थिर करने के लिये। जो **(दित्यवाहः)** विनाश में न प्रसिद्ध हों, उन की प्राप्ति कराने वाले **(जगत्यै)** संसार की रक्षा करने की जो क्रिया उस के लिये **(त्रिवत्साः)** जिन के तीन स्थानों में निवास वे **(अनुष्टुभे)** पीछे से रोकने की क्रिया के लिये और **(तुर्यवाहः)** जो अपने पशुओं में चौथे को प्राप्त कराने वाले हैं, वे **(उष्णिहे)** जिस क्रिया से उत्तमता के साथ प्रसन्न हों, उस क्रिया के लिये अच्छा यत्न करें, वे सुखी हों॥१२॥

भावार्थः-जैसे विद्वान् जन पढ़े हुए गायत्री आदि छन्दों के अर्थों से सुखों को बढ़ाते हैं, वैसे पशुओं के पालने वाले घी आदि पदार्थों को बढ़ावें॥१२॥

पष्ठवाडित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। विराजादयो देवताः। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

पष्ठवाहो विराजऽउक्षाणो बृहत्याऽऋषभाः ककुभेऽनडवाहः पङ्क्त्यै धेनवोऽतिछन्दसे॥ १३॥

पष्ठवाह इति पष्ठवाहः। विराज इति विऽराजे। उक्षाणः। बृहत्यै। ऋषभाः। ककुभे। अनड्वाहः। पङ्क्त्यै। धेनवः। अतिछन्दसऽइत्यतिऽछन्दसे॥ १३।

पदार्थः-**(पष्ठवाहः)** ये पष्ठेन पृष्ठेन वहन्ति ते **(विराजे)** विराट्छन्दसे **(उक्षाणः)** वीर्यसेचनसमर्थाः **(बृहत्यै)** बृहतीछन्दोऽर्थाय **(ऋषभाः)** बलिष्ठाः **(ककुभे)** ककुबुष्णिक्छन्दोऽर्थाय **(अनड्वाहः)** शकटवहनसमर्थाः **(पङ्क्त्यै)** पङ्क्तिच्छन्दोऽर्थाय **(धेनवः)** दुग्धदात्र्यः **(अतिछन्दसे)** अतिजगत्यादिच्छन्दोऽर्थाय॥१३॥

अन्वयः-यैर्मनुष्यैर्विराजे पष्ठवाहो बृहत्या उक्षाणः ककुभे ऋषभाः पङ्क्त्या अनड्वाहोऽतिच्छन्दसे धेनवः स्वीक्रियन्ते तेऽतिसुखं लभन्ते॥१३॥

भावार्थः-यथा विद्वांसो विराडादिच्छन्दोभ्यो बहूनि विद्याकार्याणि साध्नुवन्ति तथोष्ट्रादिभ्यः पशुभ्यो गृहस्था अखिलानि कार्य्याणि साध्नुयुः॥१३॥

पदार्थः-जिन मनुष्यों ने (**विराजे**) विराट् छन्द के लिये (**पष्ठवाहः**) जो पीठ से पदार्थों को पहुंचाते (**बृहत्यै**) बृहती छन्द के अर्थ को (**उक्षाणः**) वीर्य सींचने में समर्थ (**ककुभे**) ककुप् उष्णिक् छन्द के अर्थ को (**ऋषभाः**) अतिबलवान् प्राणी (**पङ्क्त्यै**) पंक्ति छन्द के अर्थ को (**अनड्वाहः**) लढ़ा पहुंचाने में समर्थ बैलों को (**अतिछन्दसे**) अतिजगती आदि छन्द के अर्थ को (**धेनवः**) दूध देने वाली गौएं स्वीकार कीं, वे अतीव सुख पाते हैं॥१३॥

भावार्थः-जैसे विद्वान् विराट् आदि छन्दों के लिये बहुत विद्या-विषयक कामों को सिद्ध करते हैं, वैसे ऊँट आदि पशुओं से गृहस्थ लोग समस्त कामों को सिद्ध करें॥१३॥

कृष्णग्रीवा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। अग्न्यादयो देवताः। भुरिगतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

कृष्णग्रीवाऽआग्नेया बभ्रवः सौम्याऽउपध्वस्ताः सावित्रा वत्सतर्यः सारस्वत्यः श्यामाः पौष्णाः पृश्नयो मारुता बहुरूपा वैश्वदेवा वशा द्यावापृथिवीयाः॥१४॥

कृष्णग्रीवा इति कृष्णऽग्रीवाः। आग्नेयाः। बभ्रवः। सौम्याः। उपध्वस्ताऽइत्युपऽध्वस्ताः। सावित्राः। वत्सतर्यः। सारस्वत्यः। श्यामाः। पौष्णाः। पृश्नयः। मारुताः। बहुरूपा इति बहुऽरूपाः। वैश्वदेवा इति वैश्वदेवाः। वशाः। द्यावापृथिवीयाः॥४॥

पदार्थः-(**कृष्णग्रीवाः**) कृष्णकण्ठाः (**आग्नेयाः**) अग्निदेवताकाः (**बभ्रवः**) सर्वस्य धारकाः पोषका वा (**सौम्याः**) सोमदेवताकाः (**उपध्वस्ताः**) उपाधः पतिताः (**सावित्राः**) सवितृदेवताकाः (**वत्सतर्य्यः**) ह्रस्वा वत्सा यासां ताः (**सारस्वत्यः**) वाग्देवताकाः (**श्यामाः**) श्यामवर्णाः (**पौष्णाः**) पुष्टिकरमेघदेवताकाः (**पृश्नयः**) प्रष्टव्याः (**मारुताः**) मनुष्यदेवताकाः (**बहुरूपाः**) बहूनि रूपाणि येषान्ते (**वैश्वदेवाः**) विश्वेदेवदेवताकाः (**वशाः**) देदीप्यमानाः (**द्यावापृथिवीयाः**) द्यावापृथिवीदेवताकाः॥१४॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! युष्माभिर्ये कृष्णग्रीवास्त आग्नेयाः। ये बभ्रवस्ते सौम्याः। य उपध्वस्तास्ते सावित्राः। या वत्सतर्यस्ताः सारस्वत्यः। ये श्यामास्ते पौष्णाः। ये पृश्नयस्ते मारुताः। ये बहुरूपास्ते वैश्वदेवाः। ये वशास्ते च द्यावापृथिवीया विज्ञेयाः॥४॥

भावार्थः-यथा शिल्पिनोऽग्न्यादिभ्यः पदार्थेभ्योऽनेकानि कार्याणि साध्नुवन्ति, तथा कृषीवलाः पशुभिर्बहूनि कार्याणि साध्नुयुः॥१४॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम को जो **(कृष्णग्रीवाः)** काले गले वाले हैं, वे **(आग्नेयाः)** अग्नि देवता वाले। जो **(बभ्रवः)** सब का धारण पोषण करने वाले हैं, वे **(सौम्याः)** सोम देवता वाले। जो **(उपध्वस्ताः)** नीचे के समीप गिरे हुए हैं, वे **(सावित्राः)** सविता देवता वाले। जो **(वत्सतर्य्यः)** छोटी-छोटी बछिया हैं, वे **(सारस्वत्यः)** वाणी देवता वाली। जो **(श्यामाः)** काले वर्ण के हैं, वे **(पौष्णाः)** पुष्टि करने हारे मेघ देवता वाले। जो **(पृश्नयः)** पूछने योग्य हैं, वे **(मारुताः)** मनुष्य देवता वाले जो **(बहुरूपाः)** बहुरूपी अर्थात् जिन के अनेक रूप हैं, वे **(वैश्वदेवाः)** समस्त विद्वान् देवता वाले और जो **(वशाः)** निरन्तर चिलकते हुए हैं, वे **(द्यावापृथिवीयाः)** आकाश-पृथिवी देवता वाले जानने चाहियें॥१४॥

भावार्थः-जैसे शिल्पविद्या जानने वाले विद्वान् जन अग्नि आदि पदार्थों से अनेक कार्य सिद्ध करते हैं, वैसे खेती करने वाले पुरुष पशुओं से बहुत कार्य सिद्ध करें॥१४॥

उक्ता इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। इन्द्रादयो देवताः। विराडुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उक्ताः सञ्चराऽएताऽऐन्द्राग्नाः कृष्णा वारुणाः पृश्नयो मारुताः कायास्तूपराः॥१५॥

उक्ताः। संचरा इति सम्ऽचराः। एताः। ऐन्द्राग्नाः। कृष्णाः। वारुणाः। पृश्नयः। मारुताः। कायाः। तूपराः॥१५॥

पदार्थः-**(उक्ताः)** कथिताः **(सञ्चराः)** ये सम्यक् चरन्ति ते **(एताः)** **(ऐन्द्राग्नाः)** इन्द्राग्निदेवताकाः **(कृष्णाः)** कर्षकाः **(वारुणाः)** वरुणदेवताकाः **(पृश्नयः)** विचित्रचिह्नाः **(मारुताः)** **(कायाः)** प्रजापतिदेवताकाः **(तूपराः)** हिंसकाः॥१५॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! युष्माभिरेता उक्ताः सञ्चरा ऐन्द्राग्नाः कृष्णाः वारुणाः पृश्नयो मारुतास्तूपराः कायाश्च सन्तीति बोध्यम्॥१५॥

भावार्थः-ये नानादेशसंचारिणः प्राणिनस्सन्ति तैर्मनुष्या यथायोग्यानुपकारान् गृह्णीयुः॥१५॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम को **(एताः)** ये **(उक्ताः)** कहे हुए **(सञ्चराः)** जो अच्छे प्रकार चलने हारे पशु आदि हैं, वे **(ऐन्द्राग्नाः)** इन्द्र और अग्नि देवता वाले। जो **(कृष्णाः)** खींचने वा जोतने हारे हैं, वे **(वारुणाः)** वरुण देवता वाले और जो **(पृश्नयः)** चित्र-विचित्र चिह्न युक्त **(मारुताः)** मनुष्य के से स्वभाव वाले **(तूपराः)** हिंसक हैं, वे **(कायाः)** प्रजापति देवता वाले हैं, यह जानना चाहिये॥१५॥

भावार्थः-जो नाना प्रकार के देशों में आने-जाने वाले पशु आदि प्राणी हैं, उनसे मनुष्य यथायोग्य उपकार लेवें॥१५॥

अग्नय इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। अग्न्यादयो देवताः। शक्वरी छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनः कस्मै के रक्षणीय इत्याह॥

फिर किसके लिये कौन रक्षा करने योग्य हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अ॒ग्नयेऽनी॑कवते प्रथम॒जाना॑लभते म॒रुद्भ्यः॑ सान्तप॒नेभ्यः॑ सवा॒त्यान् म॒रुद्भ्यो॑ गृहमे॒धिभ्यो॒ बष्कि॑हान् म॒रुद्भ्यः॑ क्री॒डिभ्यः॑ स॒ꣳसृ॒ष्टान् म॒रुद्भ्यः॒ स्वत॑वद्भ्योऽनुसृ॒ष्टान्॥ १६॥

अ॒ग्नये॑। अनी॑कवत॒ इत्यनी॑कऽवते। प्र॒थ॒म॒जानिति॑ प्रथम॒ऽजान्। आ। ल॒भ॒ते। म॒रुद्भ्य॒ इति॑ म॒रुत्ऽभ्यः॑। सा॒न्त॒प॒नेभ्य॒ इति॑ साम्ऽतप॒नेभ्यः॑। स॒वा॒त्यानिति॑ सऽवा॒त्यान्। म॒रुद्भ्य॒ इति॑ म॒रुत्ऽभ्यः॑। गृ॒ह॒मे॒धिभ्य॒ इति॑ गृहऽमे॒धिभ्यः॑। बष्कि॑हान्। म॒रुद्भ्य॒ इति॑ म॒रुत्ऽभ्यः॑। क्री॒डिभ्य॒ इति॑ क्री॒डिऽभ्यः॑। स॒ꣳसृ॒ष्टानिति॑ सम्ऽमृ॒ष्टान्। म॒रुद्भ्य॒ इति॑ म॒रुत्ऽभ्यः॑। स्वत॑वद्भ्य॒ इति॒ स्वत॑वत्ऽभ्यः। अ॒नु॒सृ॒ष्टानित्य॑नुऽसृ॒ष्टान्॥ १६॥

पदार्थः-(**अग्नये**) पावक इव वर्त्तमानाय सेनापतये (**अनीकवते**) प्रशंसितसेनाय (**प्रथमजान्**) प्रथमाद्विस्तीर्णात् कारणादुत्पन्नान् (**आ**) (**लभते**) (**मरुद्भ्यः**) वायुवद्वर्त्तमानेभ्यो मनुष्येभ्यः (**सान्तपनेभ्यः**) सम्यक् तपनं ब्रह्मचर्य्याद्याचरणं येषान्तेभ्यः (**सवात्यान्**) समानवाते भवान् (**मरुद्भ्यः**) प्राण इव प्रियेभ्यः (**गृहमेधिभ्यः**) गृहस्थेभ्यः (**बष्किहान्**) चिरप्रसूतान् (**मरुद्भ्यः**) (**क्रीडिभ्यः**) प्रशंसितक्रीडेभ्यः (**संसृष्टान्**) सम्यग्गुणयुक्तान् (**मरुद्भ्यः**) मनुष्येभ्यः (**स्वतवद्भ्यः**) स्वतो वासो येषान्तेभ्यः (**अनुसृष्टान्**) अनुषङ्गिणः॥ १६॥

अन्वयः-हे मनुष्या यथा विद्वांसोऽनीकवतेऽग्नये प्रथमजान् सान्तपनेभ्यो मरुद्भ्यः सवात्यान् गृहमेधिभ्यो मरुद्भ्यो बष्किहान् क्रीडिभ्यो मरुद्भ्यः संसृष्टान् स्वतवद्भ्यो मरुद्भ्योऽनुसृष्टानालभते तथैव यूयमेतानालभध्वम्॥ १६॥

भावार्थः-यथा विद्वद्भिर्विद्यार्थिनः पशवश्च पाल्यन्ते, तथैवेतरैर्मनष्यैः पालनीयाः॥ १६॥

पदार्थः-हे मनुष्यो जैसे विद्वान् जन (**अनीकवते**) प्रशंसित सेना रखने वाले (**अग्नये**) अग्नि के समान वर्त्तमान तेजस्वी सेनाधीश के लिये (**प्रथमजान्**) विस्तारयुक्त कारण से उत्पन्न हुए (**सान्तपनेभ्यः**) जिनका अच्छे प्रकार ब्रह्मचर्य्य आदि आचरण है, उन (**मरुद्भ्यः**) प्राण के समान प्रीति उत्पन्न करने वाले मनुष्यों के लिये (**सवात्यान्**) एक से पवन में हुए पदार्थों (**गृहमेधिभ्यः**) घर में जिन की धीर बुद्धि है, उन (**मरुद्भ्यः**) मनुष्यों के लिये (**बष्किहान्**) बहुत काल के उत्पन्न हुओं (**क्रीडिभ्यः**) प्रशंसायुक्त विहार आनन्द करने वाले (**मरुद्भ्यः**) मनष्यों के लिये (**संसृष्टान्**) अच्छे प्रकार गुणयुक्त और (**स्वतवद्भ्यः**) जिनका आप से आप निवास है, उन (**मरुद्भ्यः**) स्वतन्त्र मनुष्यों के लिये (**अनुसृष्टान्**) मिलने वालों को (**आ, लभते**) प्राप्त होता है, तुम लोग इन को प्राप्त होओ॥ १६॥

भावार्थः-जैसे विद्वानों से विद्यार्थी और पशु पाले जाते हैं, वैसे अन्य मनुष्यों को भी पालने चाहियें॥ १६॥

उक्ता इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। इन्द्राग्न्यादयो देवताः। भुरिग्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उक्ताः सञ्चराऽएताऽऐन्द्राग्नाः प्राशृङ्गा माहेन्द्रा बहुरूपा वैश्वकर्मणाः॥ १७॥

उक्ताः। सञ्चरा इति सम्ऽचराः। एताः। ऐन्द्राग्नाः। प्राशृङ्गाः। प्रशृङ्गा इति प्रऽशृङ्गाः। माहेन्द्रा इति महाऽइन्द्राः। बहुरूपा इति बहुऽरूपाः। वैश्वकर्मणा इति वैश्वऽकर्मणाः॥ १७॥

पदार्थः-(**उक्ताः**) निरूपिताः (**सञ्चराः**) सञ्चरन्ति येषु ते मार्गाः (**एताः**) (**ऐन्द्राग्नाः**) वायुविद्युद्देवताकाः (**प्राशृङ्गाः**) प्रकृष्टानि शृङ्गाणि येषान्ते (**माहेन्द्राः**) महेन्द्रदेवताकाः (**बहुरूपाः**) बहुवर्णयुक्ताः (**वैश्वकर्मणाः**) विश्वकर्मदेवताकाः॥ १७॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! युष्माभिर्य एता ऐन्द्राग्नाः प्राशृङ्गा माहेन्द्रा बहुरूपा वैश्वकर्मणाः सञ्चरा उक्तास्तेषु गन्तव्यम्॥ १७॥

भावार्थः-यथा विद्वद्भिः पश्वादिपालनमार्गा उक्तास्तथैव वेदे प्रतिपादिताः सन्ति॥ १७॥

पदार्थः-हे मनुष्यो तुम को जो (**एताः**) ये (**ऐन्द्राग्नाः**) वायु और बिजुली देवता वाले (**प्राशृङ्गाः**) जिन के उत्तम सींग हैं, वे (**माहेन्द्राः**) महेन्द्र देवता वाले वा (**बहुरूपाः**) बहुत रंगयुक्त (**वैश्वकर्मणाः**) विश्वकर्मा देवता वाले (**सञ्चराः**) जिनमें अच्छे प्रकार आते-जाते हैं, वे मार्ग (**उक्ताः**) निरूपण किये, उनमें जाना-आना चाहिये॥ १७॥

भावार्थः-जैसे विद्वानों ने पशुओं की पालना आदि के मार्ग कहे हैं, वैसे ही वेद में प्रतिपादित हैं॥ १७॥

धूम्रा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। पितरो देवताः। भुरिगतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

धूम्रा बभ्रुनीकाशाः पितृणाᳪंसोमवतां बभ्रवो धूम्रनीकाशाः पितृणां बर्हिषदां कृष्णा बभ्रुनीकाशाः पितृणामग्निष्वात्तानां कृष्णाः पृषन्तस्त्रैयम्बकाः॥ १८॥

धूम्राः। बभ्रुनीकाशाः। बभ्रुनिकाशा इति बभ्रुऽनिकाशाः। पितृणाम्। सोमवतामिति सोमऽवताम्। बभ्रवः। धूम्रनीकाशाः। धूम्रनिकाशा इति धूम्रऽनिकाशाः। पितृणाम्। बर्हिषदाम्। बर्हिसदामिति बर्हिऽसदाम्। कृष्णाः। बभ्रुनिकाशा इति बभ्रुऽनिकाशाः। पितृणाम्। अग्निष्वात्तानाम्। अग्निस्वात्तानामित्यग्निऽस्वात्तानाम्। कृष्णाः। पृषन्तः। त्रैयम्बकाः॥ १८॥

पदार्थः-(**धूम्राः**) धूम्रवर्णाः (**बभ्रुनीकाशाः**) नकुलसदृशाः (**पितॄणाम्**) जनकजननीनाम् (**सोमवताम्**) सोमगुणयुक्तानाम् (**बभ्रवः**) पुष्टिकर्त्तारः (**धूम्रनीकाशाः**) (**पितॄणाम्**) (**बर्हिषदाम्**) ये बर्हिषि सभायां सीदन्ति ते (**कृष्णाः**) कृष्णवर्णाः (**बभ्रुनीकाशाः**) पालकसदृशाः (**पितॄणाम्**) (**अग्निष्वात्तानाम्**) गृहीताग्निविद्यानाम् (**कृष्णाः**) कृष्णवर्णाः (**पृषन्तः**) स्थूलाङ्गाः (**त्रैयम्बकाः**) त्रिष्वधिकारेष्वम्बकं लक्षणं येषान्ते॥१८॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! युष्माभिः सोमवतां पितॄणां बभ्रुनीकाशाः धूम्रा बर्हिषदां पितॄणां कृष्णा धूम्रनीकाशाः बभ्रवोऽग्निष्वात्तानां पितॄणां बभ्रुनीकाशाः कृष्णाः पृषन्तस्त्रैयम्बकाश्च सन्तीति विज्ञेयाः॥१८॥

भावार्थः-ये जनका विद्याजन्मदातारश्च सन्ति तेषां घृतादिभिर्गवादिदानैश्च यथायोग्यं सत्कारः कर्त्तव्यः॥१८॥

पदार्थः-हे मनुष्यो तुम को (**सोमवताम्**) सोमशान्ति आदि गुणयुक्त उत्पन्न करने वाले (**पितॄणाम्**) माता- पिताओं के (**बभ्रुनीकाशाः**) न्योले के समान (**धूम्राः**) धुमेले रंगवाले (**बर्हिषदाम्**) जो सभा के बीच बैठते हैं, उन (**पितॄणाम्**) पालना करने हारे विद्वानों के (**कृष्णाः**) काले रंग वाले (**धूम्रनीकाशाः**) धुआं के समान अर्थात् धुमेले और (**बभ्रवः**) पुष्टि करने वाले तथा (**अग्निष्वात्तानाम्**) जिन्होंने अग्निविद्या ग्रहण की है, उन (**पितॄणाम्**) पालना करने हारे विद्वानों के (**बभ्रुनीकाशाः**) पालने हारे के समान (**कृष्णाः**) काले रंग वाले (**पृषन्तः**) मोटे अङ्गों से युक्त (**त्रैयम्बकाः**) जिनका तीन अधिकारों में चिह्न है, वे प्राणी वा पदार्थ हैं, यह जानना चाहिये॥१८॥

भावार्थः-जो उत्पन्न करने और विद्या देने वाले विद्वान् हैं, उनका घी आदि पदार्थ वा गौ आदि के दान से यथायोग्य सत्कार करना चाहिये॥१८॥

उक्ताः सञ्चरा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। वायुर्देवता। त्रिपाद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उक्ताः सञ्चराऽएताः शुनासीरीयाः श्वेता वायव्याः श्वेताः सौर्याः॥१९॥

उक्ताः। सञ्चरा इति सम्ऽचराः। एताः। शुनासीरीयाः। श्वेताः। वायव्याः। श्वेताः। सौर्य्याः॥१९॥

पदार्थः-(**उक्ताः**) (**सञ्चराः**) (**एताः**) (**शुनासीरीयाः**) शुनासीरदेवताकाः कृषिसाधकाः (**श्वेताः**) श्वेतवर्णाः (**वायव्याः**) वायुवद्दिव्यगुणाः (**श्वेताः**) (**सौर्य्याः**) सूर्यवत्प्रकाशमानाः॥१९॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यूयं य एताः शुनासीरीयाः सञ्चरा वायव्याः श्वेताः सौर्य्याः श्वेताश्चोक्तास्तान् कार्येषु सम्प्रयुङ्ध्वम्॥१९॥

भावार्थः-या यस्य पशोर्देवता उक्ताः स तद्गुणो ग्राह्यः॥१९॥

पदार्थः-हे मनुष्यो तुम जो **(एताः)** ये **(शुनासीरीयाः)** शुनासीर देवता वाले अर्थात् खेती की सिद्धि करने वाले **(सञ्चराः)** आने-जाने हारे **(वायव्याः)** पवन के समान दिव्यगुणयुक्त **(श्वेताः)** सुपेद रङ्ग वाले वा **(सौर्याः)** सूर्य के समान प्रकाशमान **(श्वेताः)** सुपेद रङ्ग के पशु **(उक्ताः)** कहे हैं, उनको अपने कार्यों में अच्छे प्रकार निरन्तर नियुक्त करो॥१९॥

भावार्थः-जो जिस पशु का देवता कहा है, वह उस पशु का गुणग्रहण करना चाहिये॥१९॥

वसन्तायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। वसन्तादयो देवताः। विराड्जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनः कस्मै के समाश्रयितव्या इत्याह॥

फिर किस के लिये कौन अच्छे प्रकार आश्रय करने योग्य हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

वसन्ताय कपिञ्जलानालभते ग्रीष्माय कलविङ्कान् वर्षाभ्यस्तित्तिरीञ्छरदे वर्त्तिका हेमन्ताय ककराञ्छिशिराय विककरान्॥२०॥

वसन्ताय। कपिञ्जलान्। आ। लभते। ग्रीष्माय। कलविङ्कान्। वर्षाभ्यः। तित्तिरीन्। शरदे। वर्त्तिकाः। हेमन्ताय। ककरान्। शिशिराय। विककरानिति विऽककरान्॥२०॥

पदार्थः-**(वसन्ताय)** **(कपिञ्जलान्)** पक्षिविशेषान् **(आ)** **(लभते)** **(ग्रीष्माय)** **(कलविङ्कान्)** चटकान् **(वर्षाभ्यः)** **(तित्तिरीन्)** **(शरदे)** **(वर्त्तिकाः)** पक्षिविशेषाः **(हेमन्ताय)** **(ककरान्)** पक्षिविशेषान् **(शिशिराय)** **(विककरान्)** विककरान् पक्षिविशेषान्॥२०॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! पक्षिविज्जनो वसन्ताय यान् कपिञ्जलान् ग्रीष्माय कलविङ्कान् वर्षाभ्यस्तित्तिरीञ्छरदे वर्त्तिका हेमन्ताय ककराञ्छिशिराय विककरानालभते तान् यूयं विजानीत॥२०॥

भावार्थः-यस्मिन् यस्मिन्नृतौ ये पक्षिणः प्रमुदिता भवन्ति, ते ते तद्गुणा विज्ञेयाः॥२०॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! पक्षियों को जानने वाला जन **(वसन्ताय)** वसन्त ऋतु के लिये **(कपिञ्जलान्)** जिन कपिंजल नाम के विशेष पक्षियों **(ग्रीष्माय)** ग्रीष्म ऋतु के लिये **(कलविङ्कान्)** चिरौटा नाम के पक्षियों **(वर्षाभ्यः)** वर्षा ऋतु के लिये **(तित्तिरीन्)** तीतरों **(शरदे)** शरद् ऋतु के लिये **(वर्त्तिकाः)** बतकों **(हेमन्ताय)** हेमन्त ऋतु के लिये **(ककरान्)** ककर नाम के पक्षियों और **(शिशिराय)** शिशिर ऋतु के अर्थ **(विककरान्)** विककर नाम के पक्षियों को **(आ, लभते)** अच्छे प्रकार प्राप्त होता है, उन को तुम जानो॥२०॥

भावार्थः-जिस-जिस ऋतु में जो-जो पक्षी अच्छे आनन्द को पाते हैं, वे-वे उस गुण वाले जानने चाहियें॥२०॥

समुद्रायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। वरुणो देवता। बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनः के किमर्था सेवनीया इत्याह॥

फिर कौन किसके अर्थ सेवन करने चाहियें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा हैं॥

स॒मु॒द्राय॑ शिशु॒मारा॒नाल॑भते प॒र्जन्या॑य म॒ण्डूका॑न॒द्भ्यो मत्स्या॑न् मि॒त्राय॑ कुली॒पया॒न् वरु॑णाय ना॒क्रान्॥ २१॥

स॒मु॒द्राय॑। शि॒शु॒मारा॒निति॑ शिशु॒ऽमारा॑न्। आ। ल॒भ॒ते॒। प॒र्जन्या॑य। म॒ण्डूका॑न्। अ॒द्भ्य इत्य॒प्ऽभ्यः॑। मत्स्या॑न्। मि॒त्राय॑। कु॒ली॒पया॑न्। वरु॑णाय। ना॒क्रान्॥ २१॥

पदार्थः-(**समुद्राय**) महाजलाशयाय (**शिशुमारान्**) ये स्वशिशून् मारयन्ति तान् (**आ**) (**लभते**) (**पर्जन्याय**) मेघाय (**मण्डूकान्**) (**अद्भ्यः**) (**मत्स्यान्**) (**मित्राय**) (**कुलीपयान्**) (**वरुणाय**) (**नाक्रान्**)॥ २१॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा जलजन्तुपालनवित् समुद्राय शिशुमारान् पर्जन्याय मण्डूकानद्भ्यो मत्स्यान् मित्राय कुलीपयान् वरुणाय नाक्रानालभते तथा यूयमप्यालभध्वम्॥ २१॥

भावार्थः-यथा जलचरजन्तुगुणविदस्तान् वर्धयितुं निग्रहीतुं वा शक्नुवन्ति तथाऽन्येऽप्याचरन्तु॥ २१॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे जल के जीवों की पालना करने को जानने वाला जन (**समुद्राय**) महाजलाशय समुद्र के किये (**शिशुमारान्**) जो अपने बालकों को मार डालते हैं, उन शिशुमारों (**पर्जन्याय**) मेघ के लिये (**मण्डूकान्**) मेंडकों (**अद्भ्यः**) जलों के लिये (**मत्स्यान्**) मछलियों (**मित्राय**) मित्र के समान सुख देते हुए सूर्य्य के लिये (**कुलीपयान्**) कुलीपय नाम के जंगली पशुओं और (**वरुणाय**) वरुण के लिये (**नाक्रान्**) नाके मगर जलजन्तुओं को (**आ, लभते**) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है, वैसे तुम भी प्राप्त होओ॥ २१॥

भावार्थः-जैसे जलचर जन्तुओं के गुण जानने वाले पुरुष उन जल के जन्तुओं को बढ़ा वा पकड़ सकते हैं, वैसा आचरण और लोग भी करें।२१॥

सोमायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। सोमादयो देवताः। विराड्बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

सोमा॑य ह॒ꣳसानाल॑भते वा॒यवे॑ ब॒लाका॑ऽइन्द्रा॒ग्निभ्यां॒ क्रुञ्चा॑न् मि॒त्राय॑ म॒द्गून् वरु॑णाय चक्रवा॒कान्॥ २२॥

सोमा॑य। ह॒ꣳसान्। आ। ल॒भ॒ते॒। वा॒यवे॑। ब॒लाकाः॑। इ॒न्द्रा॒ग्निभ्या॒मिती॑न्द्रा॒ग्निऽभ्या॑म्। क्रुञ्चा॑न्। मि॒त्राय॑। म॒द्गून्। वरु॑णाय। च॒क्र॒वा॒कानिति॑ चक्रऽवा॒कान्॥ २२॥

पदार्थ:-(**सोमाय**) चन्द्रायौषधिराजाय वा (**हंसान्**) पक्षिविशेषान् (**आ, लभते**) (**वायवे**) (**बलाका:**) बलाकानां स्त्रिय: (**इन्द्राग्निभ्याम्**) (**क्रुञ्चान्**) सारसान् (**मित्राय**) (**मद्गून्**) जलकाकान् (**वरुणाय**) (**चक्रवाकान्**)॥ २२॥

अन्वय:-हे मनुष्या:! यथा पक्षिगुणविज्ञानी जन: सोमाय हंसान् वायवे बलाका इन्द्राग्निभ्यां क्रुञ्चान् मित्राय मद्गून् वरुणाय चक्रवाकानालभते तथा यूयमप्यालभध्वम्॥ २२॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। मनुष्यैर्य उत्तमा: पक्षिण: सन्ति, ते प्रयत्नेन संपाल्य वर्द्धनीया:॥ २२॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! जैसे पक्षियों के गुण का विशेष ज्ञान रखने वाला पुरुष (**सोमाय**) चन्द्रमा वा औषधियों में उत्तम सोम के लिये (**हंसान्**) हंसों (**वायवे**) पवन के लिये (**बलाका:**) बगुलियों (**इन्द्राग्निभ्याम्**) इन्द्र और अग्नि के लिये (**क्रुञ्चान्**) सारसों (**मित्राय**) मित्र के लिये (**मद्गून्**) जल के कौओं वा सुतरमुर्गों और (**वरुणाय**) वरुण के लिये (**चक्रवाकान्**) चकई-चकवों को (**आ, लभते**) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है, वैसे तुम भी प्राप्त होओ॥ २२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को जो उत्तम पक्षी हैं, वे अच्छे यत्न के साथ पालन कर बढ़ाने चाहियें॥ २२॥

अग्नय इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि:। अग्न्यादयो देवता:। पङ्क्तिश्छन्द:। पञ्चम: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अ॒ग्नये॑ कु॒टरू॑नाल॑भते॒ व॒न॒स्पति॑भ्य॒ऽउलू॑काना॒ग्नीषोमा॑भ्यां॒ चाषा॑न॒श्विभ्यां॑ म॒यूरा॑न् मि॒त्रावरु॑णाभ्यां क॒पोता॑न्॥ २३॥

अ॒ग्नये॑। कु॒टरू॑न्। आ। ल॒भ॒ते॒। व॒न॒स्पति॑भ्य॒ इति॑ व॒न॒स्पति॑ऽभ्य:। उ॒लू॑कान्। अ॒ग्नीषोमा॑भ्याम्। चाषा॑न्। अ॒श्विभ्या॒मित्य॒श्विऽभ्या॑म्। म॒यूरा॑न्। मि॒त्रावरु॑णाभ्याम्। क॒पोता॑न्॥ २३॥

पदार्थ:-(**अग्नये**) पावकाय (**कुटरून्**) कुक्कुटान् (**आ**) (**लभते**) (**वनस्पतिभ्य:**) (**उलूकान्**) (**अग्नीषोमाभ्याम्**) (**चाषान्**) (**अश्विभ्याम्**) (**मयूरान्**) (**मित्रावरुणाभ्याम्**) (**कपोतान्**)॥ २३॥

अन्वय:-हे मनुष्या यथा पक्षिगुणविज्जनोऽग्नये कुटरून् वनस्पतिभ्य उलूकानग्नीषोमाभ्यां चाषानश्विभ्यां मयूरान् मित्रावरुणाभ्यां कपोतानालभते, तथैतान् यूयमप्यालभध्वम्॥ २३॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। ये कुक्कुटादीनां पक्षिणां गुणान् जानन्ति, ते सदैतान् वर्धयन्ति॥ २३॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! जैसे पक्षियों के गुण जानने वाला जन **(अग्नये)** अग्नि के लिये **(कुटरून्)** मुर्गों **(वनस्पतिभ्य:)** वनस्पति अर्थात् विना पुष्प-फल देने वाले वृक्षों के लिये **(उलूकान्)** उल्लू पक्षियों **(अग्नीषोमाभ्याम्)** अग्नि और सोम के लिये **(चाषान्)** नीलकण्ठ पक्षियों **(अश्विभ्याम्)** सूर्य-चन्द्रमा के लिये **(मयूरान्)** मयूरों तथा **(मित्रावरुणाभ्याम्)** मित्र और वरुण के लिये **(कपोतान्)** कबूतरों को **(आ, लभते)** अच्छे प्रकार प्राप्त होता है, वैसे इनको तुम भी प्राप्त होओ॥२३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मुर्गा आदि पक्षियों के गुणों को जानते हैं, वे सदा इनको बढ़ाते हैं॥२३॥

सोमायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि:। सोमादयो देवता:। भुरिक्पङ्क्तिश्छन्द:। पञ्चम: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

सोमा॑य ल॒बाना॑लभते॒ त्वष्ट्रे॑ कौली॒कान् गो॑षा॒दीर्दे॒वानां॒ पत्नी॑भ्य: कु॒लीका॑ देवजा॒मिभ्यो॒ऽग्नये॑ गृ॒हप॑तये पारु॒ष्णान्॥२४॥

सोमा॑य। ल॒बान्। आ। ल॒भ॒ते॒। त्वष्ट्रे॑। कौ॒ली॒कान्। गो॒षा॒दी:। गो॒सा॒दीरिति॒ गोऽसा॒दी:। दे॒वाना॑म्। पत्नी॑भ्य:। कु॒लीका॑:। दे॒व॒जा॒मिभ्य॒ इति॑ देवऽजा॒मिभ्य॑:। अ॒ग्नये॑। गृ॒हप॑तय॒ इति॑ गृ॒हऽप॑तये। पा॒रु॒ष्णान्॥२४॥

पदार्थ:-**(सोमाय)** ऐश्वर्याय **(लबान्)** **(आ)** **(लभते)** **(त्वष्ट्रे)** प्रकाशकाय **(कौलीकान्)** पक्षिविशेषान् **(गोसादी:)** या गा: सादयन्ति हिंसन्ति ता: पक्षिणी: **(देवानाम्)** विदुषाम् **(पत्नीभ्य:)** स्त्रीभ्य: **(कुलीका:)** पक्षिणीविशेषा: **(देवजामिभ्य:)** विदुषां भगिनीभ्य: **(अग्नये)** अग्निरिव वर्त्तमानाय **(गृहपतये)** गृहपालकाय **(पारुष्णान्)** पक्षिविशेषान्॥२४॥

अन्वय:-हे मनुष्या:! यथा पक्षिकर्मविज्जन: सोमाय लबाँस्त्वष्ट्रे कौलीकान् देवानां पत्नीभ्यो गोसादीर्देवजामिभ्य: कुलीका अग्नये गृहपतये पारुष्णानालभते, तथा यूयमप्यालभध्वम्।२४॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। ये मनुष्या: पक्षिणां स्वभावजानि कर्माणि विदित्वा तदनुकरणं कुर्वन्ति, ते बहुश्रुतवद्भवन्ति॥२४॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! जैसे पक्षियों का काम जाननेवाला जन **(सोमाय)** ऐश्वर्य के लिये **(लबान्)** बटेरों **(त्वष्ट्रे)** प्रकाश के लिये **(कौलीकान्)** कौलीक नाम के पक्षियों **(देवानाम्)** विद्वानों की **(पत्नीभ्य:)** स्त्रियों के लिये **(गोसादी:)** जो गौओं को मारती हैं, उन पखेरियों **(देवजामिभ्य:)** विद्वानों की बहिनियों के लिये **(कुलीका:)** कुलीक नामक पखेरियों और **(अग्नये)** जो अग्नि के समान वर्त्तमान **(गृहपतये)** गृहपालन करने वाला उस के लिये **(पारुष्णान्)** पारुष्ण पक्षियों को **(आ, लभते)** प्राप्त होता है, वैसे तुम भी प्राप्त होओ॥२४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य पक्षियों के स्वभावज कामों को जानकर उनकी अनुहारि किया करते हैं, वे बहुश्रुत के समान होते हैं॥२४॥

अह्न इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। कालावयवा देवताः। स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

अह्ने पारावतानालभते रात्र्यै सीचापूरहोरात्रयोः सन्धिभ्यो जतूर्मासेभ्यो दात्यौहान्त्संवत्सराय महतः सुपर्णान्॥२५॥

अह्ने। पारावतान्। आ। लभते। रात्र्यै। सीचापूः। अहोरात्रयोः। सन्धिभ्य इति सन्धिऽभ्यः। जतूः। मासेभ्यः। दात्यौहान्। संवत्सराय। महतः। सुपर्णानिति सुऽपर्णान्॥२५॥

पदार्थः-(**अह्ने**) दिवसाय (**पारावतान्**) कलरवान् (**आ**) (**लभते**) (**रात्र्यै**) (**सीचापूः**) पक्षिविशेषान् (**अहोरात्रयोः**) (**सन्धिभ्यः**) (**जतूः**) पक्षिविशेषान् (**मासेभ्यः**) (**दात्यौहान्**) कृष्णकाकान् (**संवत्सराय**) वर्षाय (**महतः**) (**सुपर्णान्**) शोभनपक्षान् पक्षिणः॥२५॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा कालविज्जनोऽह्ने पारावतान् रात्र्यै सीचापूरहोरात्रयोः सन्धिभ्यो जतूर्मासेभ्यो दात्यौहान्त्संवत्सराय महतः सुपर्णानालभते, तथा यूयमप्येतानालभध्वम्॥२५॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये मनुष्याः स्वस्वसमयानुकूलक्रीडकानां पक्षिणां स्वभावं कुर्य्युस्ते बहुविदस्स्युः॥२५॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे काल का जानने वाला (**अह्ने**) दिवस के लिये (**पारावतान्**) कोमल शब्द करने वाले कबूतरों (**रात्र्यै**) रात्रि के लिये (**सीचापूः**) सीचापू नामक पक्षियों (**अहोरात्रयोः**) दिन-रात्रि के (**सन्धिभ्यः**) सन्धियों अर्थात् प्रातः सायंकाल के लिये (**जतूः**) जतूनात्मक पक्षियों (**मासेभ्यः**) महीनों के लिये (**दात्यौहान्**) काले कौओं और (**संवत्सराय**) वर्ष के लिये (**महतः**) बड़े-बड़े (**सुपर्णान्**) सुन्दर-सुन्दर पंखों वाले पक्षियों को (**आ, लभते**) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है, वैसे तुम भी इन को प्राप्त होओ॥२५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य अपने-अपने समय के अनुकूल क्रीड़ा करने वाले पक्षियों के स्वभाव को जानकर अपने स्वभाव को वैसा करें, वे बहुत जानने वाले हों॥२५॥

भूम्या इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। भूम्यादयो देवताः। भुरिगनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

भूम्याऽआखूनालभतेऽन्तरिक्षाय पाङ्क्तान् दिवे कशान् दिग्भ्यो नकुलान् बभ्रुकानवान्तरदिशाभ्यः॥ २६॥

भूम्यै। आखून्। आ। लभते। अन्तरिक्षाय। पाङ्क्तान्। दिवे। कशान्। दिग्भ्य इति दिक्ऽभ्यः। नकुलान्। बभ्रुकान्। अवान्तरदिशाभ्य इत्यवान्तरऽदिशाभ्यः॥ २६॥

पदार्थः-(**भूम्यै**) (**आखून्**) मूषकान् (**आ**) (**लभते**) (**अन्तरिक्षाय**) (**पाङ्क्तान्**) पङ्क्तिरूपेण गन्तॄन् पक्षिविशेषान् (**दिवे**) प्रकाशाय (**कशान्**) पक्षिविशेषान् (**दिग्भ्यः**) पूर्वादिभ्यः (**नकुलान्**) (**बभ्रुकान्**) नकुलजातिविशेषान् (**अवान्तरदिशाभ्यः**) उपदिशाभ्यः॥ २६॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा भूमिजन्तुगुणविज्जनो भूम्या आखूनन्तरिक्षाय पाङ्क्तान् दिवे कशान् दिग्भ्यो नकुलानवान्तरदिशाभ्यो बभ्रुकानलभते तथा यूयमप्यालभध्वम्॥ २६॥

भावार्थः-ये मनुष्या भूम्यादिवन्मूषकादिगुणान् विदित्वोपकुर्युस्ते बहुविज्ञाना जायेरन्॥ २६॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे भूमि के जन्तुओं के गुण जानने वाला पुरुष (**भूम्यै**) भूमि के लिये (**आखून्**) मूषों (**अन्तरिक्षाय**) अन्तरिक्ष के लिये (**पाङ्क्तान्**) पङ्क्तिरूप से चलने वाले विशेष पक्षियों (**दिवे**) प्रकाश के लिये (**कशान्**) कश नाम के पक्षियों (**दिग्भ्यः**) पूर्व आदि दिशाओं के लिये (**नकुलान्**) नेउलों और (**अवान्तरदिशाभ्यः**) अवान्तर अर्थात् कोण दिशाओं के लिए (**बभ्रुकान्**) भूरे-भूरे विशेष नेउलों को (**आ, लभते**) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है, वैसे तुम भी प्राप्त होओ॥ २६॥

भावार्थः-जो मनुष्य भूमि आदि के समान मूषे आदि के गुणों को जानकर उपकार करें, वे बहुत विज्ञान वाले हों॥ २६॥

वसुभ्य इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। वस्वादयो देवताः। निचृद्बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

वसुभ्यऽऋश्यानालभते रुद्रेभ्यो रुरूनादित्येभ्यो न्यङ्कून् विश्वेभ्यो देवेभ्यः पृषतान्त्साध्येभ्यः कुलुङ्गान्॥ २७॥

वसुभ्य इति वसुऽभ्यः। ऋश्यान्। आ। लभते। रुद्रेभ्यः। रुरून्। आदित्येभ्यः। न्यङ्कून्। विश्वेभ्यः। देवेभ्यः। पृषतान्। साध्येभ्यः। कुलुङ्गान्॥ २७॥

पदार्थः-(**वसुभ्यः**) अग्न्यादिभ्यः (**ऋश्यान्**) मृगजातिविशेषान् पशून् (**आ**) (**लभते**) (**रुद्रेभ्यः**) प्राणादिभ्यः (**रुरून्**) मृगविशेषान् (**आदित्येभ्यः**) मासेभ्यः (**न्यङ्कून्**) पशुविशेषान् (**विश्वेभ्यः**) (**देवेभ्यः**) दिव्येभ्यः पदार्थेभ्यो विद्वद्भ्यो वा (**पृषतान्**) मृगविशेषान् (**साध्येभ्यः**) साधितुं योग्येभ्यः (**कुलुङ्गान्**) पशुविशेषान्॥ २७॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा पशुगुणविज्जनो वसुभ्य ऋश्यान् रुद्रेभ्यो रुरूनादित्येभ्यो न्यङ्कून् विश्वेभ्यो देवेभ्यः पृषतान्त्साध्येभ्यः कुलुङ्गानालभते तथैतान् यूयमप्यालभध्वम्॥ २७॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये मनुष्या मृगादीनां वेगगुणान् विदित्वोपकुर्युस्तेऽत्यन्तं सुखं लभेरन्॥ २७॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे पशुओं के गुणों का जानने वाला जन **(वसुभ्यः)** अग्नि आदि वसुओं के लिये **(ऋश्यान्)** ऋश्य जाति के हरिणों **(रुद्रेभ्यः)** प्राण आदि रुद्रों के लिए **(रुरून्)** रोजनामी जन्तुओं **(आदित्येभ्यः)** बारह महीनों के लिये **(न्यङ्कून्)** न्यङ्कु नामक पशुओं **(विश्वेभ्यः)** समस्त **(देवेभ्यः)** दिव्य पदार्थों वा विद्वानों के लिये **(पृषतान्)** पृषत् जाति के मृगविशेषों और **(साध्येभ्यः)** सिद्ध करने के जो योग्य हैं, उनके लिये **(कुलुङ्गान्)** कुलुङ्ग नाम के पशुविशेषों को **(आ, लभते)** अच्छे प्रकार प्राप्त होता है, वैसे इनको तुम भी प्राप्त होओ॥ २७॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य हरिण आदि के वेगरूप गुणों को जानकर उपकार करें, वे अत्यन्त सुख को प्राप्त हों॥ २७॥

ईशानायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। ईशानादयो देवताः। बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ईशा॑नाय॒ त्वा॒ पर॑स्वत॒ऽआ ल॑भते मि॒त्राय॑ गौ॒रान् वरु॑णाय महि॒षान् बृह॒स्पत॑ये गव॒याँस्त्वष्ट्र॒ उष्ट्रा॑न्॥ २८॥

ईशा॑नाय। त्वा॒। पर॑स्वतः। आ। ल॒भ॒ते॒। मि॒त्राय॑। गौ॒रान्। वरु॑णाय। म॒हि॒षान्। बृह॒स्पत॑ये। ग॒व॒यान्। त्वष्ट्रे॑। उष्ट्रा॑न्॥ २८॥

पदार्थः-**(ईशानाय)** समर्थाय जनाय **(त्वा)** त्वाम् **(परस्वतः)** मृगविशेषान् **(आ, लभते)** **(मित्राय)** **(गौरान्)** **(वरुणाय)** **(महिषान्)** **(बृहस्पतये)** **(गवयान्)** **(त्वष्ट्रे)** **(उष्ट्रान्)**॥ २८॥

अन्वयः-हे राजन्! यो मनुष्य ईशानाय त्वा परस्वतो मित्राय गौरान् वरुणाय महिषान् बृहस्पतये गवयान् त्वष्ट्र उष्ट्रानालभते, स धनधान्ययुक्तो जायते॥ २८॥

भावार्थः-ये पशुभ्यो यथावदुपकारान् गृह्णीयुस्ते समर्थाः स्युः॥ २८॥

पदार्थः-हे राजा जो मनुष्य **(ईशानाय)** समर्थ जन के लिये **(त्वा)** आप और **(परस्वतः)** परस्वत् नामी मृगविशेषों को **(मित्राय)** मित्र के लिये **(गौरान्)** गोरे मृगों को **(वरुणाय)** अति श्रेष्ठ के लिये **(महिषान्)** भैसों को **(बृहस्पतये)** बृहस्पति अर्थात् महात्माओं के रक्षक के लिये **(गवयान्)** नीलगायों को

और **(त्वष्ट्रे)** त्वष्टा अर्थात् पदार्थविद्या से पदार्थों को सूक्ष्म करने वाले के लिये **(उष्ट्रान्)** ऊंटों को **(आ, लभते)** अच्छे प्रकार प्राप्त होता है, वह धनधान्य युक्त होता है॥२८॥

भावार्थः-जो पशुओं से यथावत् उपकार लेवें, वे समर्थ होवें॥२८॥

प्रजापतय इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। प्रजापत्यादयो देवताः। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प्रजापतये पुरुषान् हस्तिनऽआ लभते वाचे प्लुषींश्चक्षुषे मशकाञ्छ्रोत्राय भृङ्गाः॥२९॥

प्रजापतय इति प्रजाऽपतये। पुरुषान्। हस्तिनः। आ। लभते। वाचे। प्लुषीन्। चक्षुषे। मशकान्। श्रोत्राय। भृङ्गाः।२९॥

पदार्थः-**(प्रजापतये)** प्रजास्वामिने **(पुरुषान्)** **(हस्तिनः)** कुञ्जरान् **(आ, लभते)** **(वाचे)** **(प्लुषीन्)** जन्तुविशेषान् **(चक्षुषे)** **(मशकान्)** **(श्रोत्राय)** **(भृङ्गाः)**॥२९॥

अन्वयः-यो मनुष्यः प्रजापतये पुरुषान् हस्तिनो वाचे प्लुषींश्चक्षुषे मशकाञ्छ्रोत्राय भृङ्गा आलभते, स बलिष्ठो दृढेन्द्रियो जायते॥२९॥

भावार्थः-ये प्रजारक्षणाय चतुरङ्गिणीं सेनां जितेन्द्रियतां च समाचरन्ति, ते श्रीमन्तो भवन्ति॥२९॥

पदार्थः-जो मनुष्य **(प्रजापतये)** प्रजा पालने हारे राजा के लिये **(पुरुषान्)** पुरुषों **(हस्तिनः)** और हाथियों **(वाचे)** वाणी के लिये **(प्लुषीन्)** प्लुषि नाम के जीवों **(चक्षुषे)** नेत्र के लिये **(मशकान्)** मशाओं और **(श्रोत्राय)** कान के लिये **(भृङ्गाः)** भौंरों को **(आ, लभते)** प्राप्त होता है, वह बली और पुष्ट इन्द्रियों वाला होता है॥२९॥

भावार्थः-जो प्रजा की रक्षा के लिये चतुरङ्गिणी अर्थात् चारों दिशाओं को रोकने वाली सेना और जितेन्द्रियता का अच्छे प्रकार आचरण करते हैं, वे धनवान् और कान्तिमान् होते हैं॥२९॥

प्रजापतय इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। प्रजापत्यादयो देवताः। निचृदतिधृतिश्छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प्रजापतये च वायवे च गोमृगो वरुणायारण्यो मेषो यमाय कृष्णो मनुष्यराजाय मर्कटः शार्दूलाय रोहिदृषभाय गवयी क्षिप्रश्येनाय वर्त्तिका नीलङ्गोः कृमिः समुद्राय शिशुमारो हिमवते हस्ती॥३०॥

प्रजापतय इति प्रजाऽपतये। च। वायवे। च। गोमृग इति गोऽमृगः। वरुणाय। आरण्यः। मेषः। यमाय। कृष्णः। मनुष्यराजायेति मनुष्यऽराजाय। मर्कटः। शार्दूलाय। रोहित्। ऋषभाय। गवयी। क्षिप्रश्येनायेति क्षिप्रऽश्येनाय। वर्त्तिका। नीलङ्गोः। कृमिः। समुद्राय। शिशुमारऽइति शिशुऽमारः। हिमवतऽइति हिमऽवते। हस्ती॥ ३०॥

पदार्थः-(**प्रजापतये**) प्रजापालकाय (**च**) तत्सम्बन्धिभ्यः (**वायवे**) (**च**) तत्सम्बन्धिभ्यः (**गोमृगः**) यो गां मार्ष्टि शुन्धति सः (**वरुणाय**) (**आरण्यः**) वने भवः (**मेषः**) अविजातिविशेषः (**यमाय**) न्यायाधीशाय (**कृष्णः**) कृष्णगुणविशिष्टः (**मनुष्यराजाय**) नरेशाय (**मर्कटः**) वानरः (**शार्दूलाय**) महासिंहाय (**रोहित्**) रक्तगुणविशिष्टो मृगः (**ऋषभाय**) श्रेष्ठाय सभ्याय (**गवयी**) गवयस्य स्त्री (**क्षिप्रश्येनाय**) क्षिप्रगामिने श्येनायेव वर्त्तमानाय (**वर्त्तिका**) (**नीलङ्गोः**) यो नीलं गच्छति तस्य (**कृमिः**) क्षुद्रजन्तुविशेषः (**समुद्राय**) (**शिशुमारः**) बालहन्ता (**हिमवते**) बहूनि हिमानि विद्यन्ते यस्य तस्मै (**हस्ती**)॥ ३०॥

अन्वयः-हे मनुष्याः युष्माभिः प्रजापतये च वायवे च गोमृगो वरुणायारण्यो मेषो यमाय कृष्णो मनुष्यराजाय मर्कटः शार्दूलाय रोहिदृषभाय गवयी क्षिप्रश्येनाय वर्त्तिका नीलङ्गोः कृमिः समुद्राय शिशुमारो हिमवते हस्ती च सम्प्रयोक्तव्यः॥ ३०॥

भावार्थः-ये मनुष्या मनुष्यसम्बन्ध्युत्तमान् प्राणिनो रक्षन्ति, ते साङ्गोपाङ्गबला जायन्ते॥ ३०॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुमको (**प्रजापतये**) प्रजा पालने वाले (**च**) और उस के सम्बन्धियों तथा (**वायवे**) वायु (**च**) और वायु के सम्बन्धी पदार्थों के लिये (**गोमृगः**) जो पृथिवी को शुद्ध करता वह (**वरुणाय**) अति उत्तम के लिये (**आरण्यः**) वन का (**मेषः**) मेंढा (**यमाय**) न्यायाधीश के लिये (**कृष्णः**) काला हरिण (**मनुष्यराजाय**) मनुष्यों के राजा के लिये (**मर्कटः**) वानर (**शार्दूलाय**) बड़े सिंह अर्थात् केशरी के लिये (**रोहित्**) लाल मृग (**ऋषभाय**) श्रेष्ठ सभ्य पुरुष के लिये (**गवयी**) नीलगाहिनी (**क्षिप्रश्येनाय**) शीघ्र चलने हारे बाज पखेरू के समान जो वर्त्तमान उस के लिये (**वर्त्तिका**) वतक (**नीलङ्गोः**) जो नील को प्राप्त होता उस छोटे कीड़े के हेतु (**कृमिः**) छोटा कीड़ा (**समुद्राय**) समुद्र के लिये (**शिशुमारः**) बालकों को मारने वाला शिशुमार और (**हिमवते**) जिसके अनेकों हिमखण्ड विद्यमान हैं, उस पर्वत के लिये (**हस्ती**) हाथी अच्छे प्रकार युक्त करना चाहिये॥ ३०॥

भावार्थः-जो मनुष्य मनुष्यसम्बन्धी उत्तम प्राणियों की रक्षा करते हैं, वे साङ्गोपाङ्ग बलवान् होते हैं॥ ३०॥

मयुरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। प्रजापत्यादयो देवताः। स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

म॒युः प्रा॑जाप॒त्यऽउ॒लो ह॒लिक्ष्णो॑ वृषद॒ꣳशस्ते धा॒त्रे दि॒शां क॒ङ्को धुङ्क्षा॑ग्ने॒यी क॑ल॒विङ्को॑ लोहिता॒हिः पु॑ष्करसा॒दस्ते त्वा॒ष्ट्रा वा॒चे क्रुञ्चः॑॥३१॥

म॒युः। प्रा॒जा॒प॒त्यऽइति॑ प्राजाऽप॒त्यः। उ॒लः। ह॒लिक्ष्णः॑। वृ॒ष॒द॒ꣳशऽइति॑ वृषऽद॒ꣳशः। ते। धा॒त्रे। दि॒शाम्। क॒ङ्कः धुङ्क्षा॑। आ॒ग्ने॒यी। क॒ल॒विङ्कः॑। लो॒हि॒ता॒हिरिति॑ लोहितऽअ॒हिः। पु॒ष्क॒र॒सा॒दऽइति॑ पुष्करऽसा॒दः। ते। त्वा॒ष्ट्राः। वा॒चे। क्रुञ्चः॑॥३१॥

पदार्थः-(**मयुः**) किन्नरः (**प्राजापत्यः**) प्रजापतिदेवताकः (**उलः**) क्षुद्रकृमिः (**हलिक्ष्णः**) मृगेन्द्रिवशेषः (**वृषदंशः**) मार्जालः (**ते**) (**धात्रे**) धारकाय (**दिशाम्**) (**कङ्कः**) लोहपृष्ठः (**धुङ्क्षा**) पक्षिविशेषः (**आग्नेयी**) (**कलविङ्कः**) चटकः (**लोहिताहिः**) लोहितश्चासावहिश्च (**पुष्करसादः**) यः पुष्करे सीदति (**ते**) (**त्वाष्ट्राः**) त्वष्टृदेवताकाः (**वाचे**) (**क्रुञ्चः**)॥३१॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! युष्माभिः प्राजापत्यो मयुरुलो हलिक्ष्णो वृषदंशश्च ते धात्रे कङ्को दिशां धुङ्क्षा आग्नेयी कलविङ्को लोहिताहिः पुष्करसादस्ते त्वाष्ट्रा वाचे क्रुञ्चश्च वेदितव्याः॥३१॥

भावार्थः-ये शृगालसर्पादीन् वशं नयन्ति ते धुरन्धरास्सन्ति॥३१॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुमको (**प्राजापत्यः**) प्रजापति देवता वाला (**मयुः**) किंनर निन्दित मनुष्य और जो (**उलः**) छोटा कीड़ा (**हलिक्ष्णः**) विशेष सिंह और (**वृषदंशः**) विलार हैं (**ते**) वे (**धात्रे**) धारण करने वाले के लिये (**कङ्कः**) उजली चील्ह (**दिशाम्**) दिशाओं के हेतु (**धुङ्क्षा**) धुङ्क्षा नाम की पक्षिणी (**आग्नेयी**) अग्नि देवता वाली जो (**कलविङ्कः**) चिरौटा (**लोहिताहिः**) लाल सांप और (**पुष्करसादः**) तालाब में रहने वाला है, (**ते**) वे सब (**त्वाष्ट्राः**) त्वष्टा देवता वाले तथा (**वाचे**) वाणी के लिये (**क्रुञ्चः**) सारस जानना चाहिये॥३१॥

भावार्थः-जो सियार और सांप आदि को वश में लाते हैं, वे मनुष्य धुरन्धर होते हैं॥३१॥

सोमायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। सोमादयो देवताः। भुरिग्जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

सोमा॑य कुलु॒ङ्गऽआ॑र॒ण्यो॒ऽजो न॑कु॒लः शका॒ ते पौ॒ष्णाः क्रो॒ष्टा मा॒योरिन्द्र॑स्य गौरमृ॒गः पि॒द्वो न्यङ्कुः॑ कक्क॒टस्तेऽनु॑मत्यै प्रति॒श्रुत्का॑यै चक्रवा॒कः॥३२॥

सोमा॑य। कु॒लु॒ङ्गः। आ॒र॒ण्यः। अ॒जः। न॒कु॒लः। शका॑। ते। पौ॒ष्णाः। क्रो॒ष्टा। मा॒योः। इन्द्र॑स्य। गौ॒र॒मृ॒ग इति॑ गौरऽमृ॒गः। पि॒द्वः। न्यङ्कुः॑। क॒क्क॒टः। ते। अनु॑मत्या॒ इत्यनु॒ऽमत्यै। प्र॒ति॒श्रुत्का॑या॒ इति॑ प्रति॒ऽश्रुत्का॑यै। च॒क्र॒वा॒कऽइति॑ चक्रऽवा॒कः॥३२॥

पदार्थः-(**सोमाय**) (**कुलुङ्गः**) पशुविशेषः (**आरण्यः**) अरण्ये भवः (**अजः**) छागजातिविशेषः (**नकुलः**) (**शका**) शकः शक्तिमान्। अत्र **सुपां सुलुग्०** [अ०७.१.३९] इत्याकारादेशः (**ते**) (**पौष्णाः**) पुष्टिकरसम्बन्धिनः (**क्रोष्टा**) शृगालः (**मायोः**) शृगालविशेषस्य (**इन्द्रस्य**) ऐश्वर्ययुक्तस्य (**गौरमृगः**) (**पिद्वः**) मृगविशेषः (**न्यङ्कुः**) मृगविशेषः (**कक्कटः**) अयमपि मृगविशेषः (**ते**) (**अनुमत्यै**) (**प्रतिश्रुत्कायै**) प्रतिश्राविकायै (**चक्रवाकः**) पक्षिविशेषः॥३२॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यदि युष्माभिः सोमाय कुलुङ्ग आरण्योऽजो नकुलः शका च ते पौष्णा मायोः क्रोष्टेन्द्रस्य गौरमृगो ये पिद्वो न्यङ्कुः कक्कटश्च तेऽनुमत्यै प्रतिश्रुत्कायै चक्रवाकश्च सम्प्रयुज्यते तर्हि बहुकृत्यं कर्त्तुं शक्येत॥३२॥

भावार्थः-य आरण्येभ्यः पीवादिभ्योऽप्युपकारं कर्त्तुं जानीयुस्ते सिद्धकार्या जायन्ते॥३२॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! यदि तुमने (**सोमाय**) सोम के लिये जो (**कुलुङ्गः**) कुलुङ्ग नामक पशु वा (**आरण्यः**) वनेला (**अजः**) बकरा (**नकुलः**) न्योला और (**शका**) सामर्थ्य वाला विशेषु पशु है, (**ते**) वे (**पौष्णाः**) पुष्टि करने वाले के सम्बन्धी वा (**मायोः**) विशेष सियार के हेतु (**क्रोष्टा**) सामान्य सियार वा (**इन्द्रस्य**) ऐश्वर्य्ययुक्त पुरुष के अर्थ (**गौरमृगः**) गोरा हरिण वा जो (**पिद्वः**) विशेष मृग (**न्यङ्कुः**) किसी और जाति का हरिण और (**कक्कटः**) कक्कट नाम का मृग है, (**ते**) वे (**अनुमत्यै**) अनुमति के लिये तथा (**प्रतिश्रुत्कायै**) सुने पीछे सुनाने वाली के लिये (**चक्रवाकः**) चकई-चकवा पक्षी अच्छे प्रकार युक्त किये जावें तो बहुत काम करने को समर्थ हो सकें॥३२॥

भावार्थः-जो वनेले पशुओं से भी उपकार करना जानें, वे सिद्ध कार्यों वाले होते हैं॥३२॥

सौरीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। मित्रादयो देवताः। भुरिगतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

सौरी बलाका शार्गः सृजयः शयाण्डकस्ते मैत्राः सरस्वत्यै शारिः पुरुषवाक् श्वाविद् भौमी शार्दूलो वृकः पृदाकुस्ते मन्यवे सरस्वते शुकः पुरुषवाक्॥३३॥

सौरी। बलाका। शार्गः। सृजयः। शयाण्डक इति शयऽआण्डकः। ते। मैत्राः। सरस्वत्यै। शारिः। पुरुषवागिति पुरुषऽवाक्। श्वावित्। श्वविदिति श्वऽवित्। भौमी। शार्दूलः। वृकः। पृदाकुः। ते। मन्यवे। सरस्वते। शुकः। पुरुषवागिति पुरुषऽवाक्॥३३॥

पदार्थः-(**सौरी**) सूर्यो देवता यस्याः सा (**बलाका**) विशेषपक्षिणी (**शार्गः**) शार्ङ्गश्चातकः। अत्र छान्दसो वर्णलोप इति ङ्लोपः (**सृजयः**) पक्षिविशेषः (**शयाण्डकः**) पक्षिविशेषः (**ते**) (**मैत्राः**) प्राणदेवताकाः (**सरस्वत्यै**) नद्यै (**शारिः**) शुकी (**पुरुषवाक्**) शुकः (**श्वावित्**) सेधा (**भौमी**) पृथिवीदेवताका

(शार्दूल:) व्याघ्रविशेष: **(वृक:)** चित्रक: **(पृदाकु:)** सर्प्प: **(ते)** **(मन्यवे)** क्रोधाय **(सरस्वते)** समुद्राय **(शुक:)** शुद्धिकृत् पक्षिविशेष: **(पुरुषवाक्)** पुरुषस्य वागिव वाग्यस्य स:॥३३॥

अन्वय:-हे मनुष्या: ! युष्माभिर्या सौरी सा बलाका ये शार्ग: सृजय: शयाण्डकश्च ते मैत्रा: शारि: पुरुषवाक् सरस्वत्यै श्वावित् भौमी शार्दूलो वृक: पृदाकुश्च ते मन्यवे शुक: पुरुषवाक् च सरस्वते विज्ञेया:॥३३॥

भावार्थ:-ये बलाकादय: पशुपक्षिणस्तेषां मध्यात् केचित् पालनीया: केचित् ताडनीया: सन्तीति वेद्यम्॥३३॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! तुमको **(सौरी)** जिसका सूर्य देवता है, वह **(बलाका)** बगुलिया तथा जो **(शार्ग:)** पपीहा पक्षी **(सृजय:)** सृजय नाम वाला और **(शयाण्डक:)** शयाण्डक पक्षी हैं, **(ते)** वे **(मैत्रा:)** प्राण देवता वाले **(शारि:)** शुग्गी **(पुरुषवाक्)** पुरुष के समान बोलने हारा शुग्गा **(सरस्वत्यै)** नदी के लिये **(श्वावित्)** सेही **(भौमी)** भूमि देवता वाली जो **(शार्दूल:)** केशरी सिंह **(वृक:)** भेड़िया और **(पृदाकु:)** सांप हैं, **(ते)** वे **(मन्यवे)** क्रोध के लिये तथा **(शुक:)** शुद्धि करने हारा सुवा पक्षी और **(पुरुषवाक्)** जिसकी मनुष्य की बोली के समान बोली है, वह पक्षी **(सरस्वते)** समुद्र के लिये जानना चाहिये॥३३॥

भावार्थ:-जो बलाका आदि पशु पक्षी हैं, उनमें से कोई पालने और कोई ताड़ना देने योग्य हैं, यह जानना चाहिये॥३३॥

सुपर्ण इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि:। अग्न्यादयो देवता:। स्वराट् शक्वरी छन्द:। धैवत: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

सु॒प॒र्णः पा॑र्ज॒न्यऽआ॒तिर्वा॑ह॒सो दर्वि॑दा॒ ते वा॒यवे॒ बृह॒स्पत॑ये वा॒चस्पत॑ये पैङ्ग॒रा॒जो॒ऽल॒जऽआ॑न्तरि॒क्षः प्ल॒वो म॒द्गुर्मत्स्य॒स्ते न॑दीप॒तये॑ द्यावापृथि॒वीय॑: कू॒र्मः॥ ३४॥

सु॒प॒र्ण इति॑ सु॒ऽप॒र्णः। पा॒र्ज॒न्यः। आ॒तिः। वा॒ह॒सः। दर्वि॑दे॒ति॒ दर्वि॑ऽदा। ते। वा॒यवे॑। बृह॒स्पत॑ये। वा॒चः। पत॑ये। पै॒ङ्ग॒रा॒ज इति॑ पैङ्ग॒ऽरा॒जः। अ॒ल॒जः। आ॒न्त॒रि॒क्षः। प्ल॒वः। म॒द्गुः। मत्स्य॑ः। ते। न॒दी॒प॒त॒य॒ऽइति॑ नदी॒ऽप॒तये॑। द्या॒वा॒पृ॒थि॒वीय॑ः। कू॒र्मः॥ ३४॥

पदार्थ:-**(सुपर्ण:)** शोभनपतन: **(पार्जन्य:)** पर्जन्यवद्गुण: **(आति:)** पक्षिविशेष: **(वाहस:)** अजगर: सर्पविशेष: **(दर्विदा)** काष्ठछित् पक्षिविशेष: **(ते)** **(वायवे)** **(बृहस्पतये)** बृहतां पालकाय **(वाच:)** **(पतये)** पालकाय **(पैङ्गराज:)** पक्षिविशेष: **(अलज:)** पक्षिविशेष: **(आन्तरिक्ष:)** अन्तरिक्षदेवताक: **(प्लव:)** वर्त्तिका **(मद्गु:)** जलकाक: **(मत्स्य:)** **(ते)** **(नदीपतये)** समुद्राय **(द्यावापृथिवीय:)** प्रकाशभूमिदेवताक: **(कूर्म:)** कच्छप:॥३४॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! युष्माभिर्यः सुपर्णः स पार्जन्यो य आतिर्वाहसो दर्विदा च ते वायवे पैङ्गराजो बृहस्पतये वाचस्पतयेऽलज आन्तरिक्षो ये प्लवो मद्गुर्मत्स्यश्च ते नदीपतये यः कूर्मः स द्यावापृथिवीयश्च विज्ञेयाः॥३४॥

भावार्थः-ये मेघादितुल्यगुणाः पशुपक्षिविशेषाः सन्ति, ते कार्योपयोगाय नियोजनीयाः॥३४॥

पदार्थः-हे मनुष्यो तुम को जो **(सुपर्णः)** सुन्दर गिरने वा जाने वाला पक्षी वह **(पार्जन्यः)** मेघ के समान गुण वाला जो **(आतिः)** आति नाम वाला पक्षी **(वाहसः)** अजगर सांप **(दर्विदा)** और काठ को छिन्न-भिन्न करने वाला पक्षी है, **(ते)** वे सब **(वायवे)** पवन के लिये **(पैङ्गराजः)** पैङ्गराज नाम का पक्षी **(बृहस्पतये)** बड़े-बड़े पदार्थों और **(वाचः, पतये)** वाणी की पालना करने हारे के लिये **(अलजः)** अलज पक्षी **(आन्तरिक्षः)** अन्तरिक्ष देवता वाला जो **(प्लवः)** जल में तरने वाला बतक पक्षी **(मद्गुः)** जल का कौआ और **(मत्स्यः)** मछली हैं, **(ते)** वे सब **(नदीपतये)** समुद्र के लिये और जो **(कूर्मः)** कछुआ है, वह **(द्यावापृथिवीयः)** प्रकाश भूमि देवता वाला जानना चाहिये॥३४॥

भावार्थः-जो मेघ आदि के समान गुण वाले विशेष विशेष पशु पक्षी हैं, वे काम के उपयोग के लिये युक्त करने चाहियें॥३४॥

पुरुषमृग इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। चन्द्रादयो देवताः। निचृच्छक्वरी छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

पुरुषमृगश्चन्द्रमसो गोधा कालका दार्वाघाटस्ते वनस्पतीनां कृकवाकुः सावित्रो हंसो वातस्य नाक्रो मकरः कुलीपयस्तेऽकूपारस्य ह्रियै शल्यकः॥३५॥

पुरुषमृगऽइति पुरुषऽमृगः। चन्द्रमसः। गोधा। कालका। दार्वाघाटः। दार्वाघात इति दारुऽआघातः। ते। वनस्पतीनाम्। कृकवाकुरिति कृकऽवाकुः। सावित्रः। हंसः। वातस्य। नाक्रः। मकरः। कुलीपयः। ते। अकूपारस्य। ह्रियै। शल्यकः॥३५॥

पदार्थः-**(पुरुषमृगः)** यः पुरुषान् मार्ष्टि स पशुविशेषः **(चन्द्रमसः)** चन्द्रस्य **(गोधा)** **(कालका)** **(दार्वाघाटः)** शतपत्रकः **(ते)** **(वनस्पतीनाम्)** **(कृकवाकुः)** कुक्कुटः **(सावित्रः)** सवितृदेवताकः **(हंसः)** **(वातस्य)** **(नाक्रः)** नक्राज्जातः **(मकरः)** **(कुलीपयः)** जलजन्तुविशेषः **(ते)** **(अकूपारस्य)** समुद्रस्य **(ह्रियै)** लज्जायै **(शल्यकः)** कण्टकपक्षयुक्तः श्वावित्॥३५॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! युष्माभिर्य पुरुषमृगः स चन्द्रमसो ये गोधा कालका दार्वाघाटश्च ते वनस्पतीनां यः कृकवाकुः स सावित्रो यो हंसः स वातस्य ये नाक्रो मकरः कुलीपयश्च तेऽकूपारस्य यः शल्यकः स ह्रियै च विज्ञेयाः॥३५॥

भावार्थः-ये चन्द्रादिगुणाः पशुपक्षिविशेषास्ते मनुष्यैर्विज्ञेयाः॥३५॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम को जो **(पुरुषमृगः)** पुरुषों को शुद्ध करने हारा विशेषः पशु वह **(चन्द्रमसः)** चन्द्रमा के अर्थ जो **(गोधा)** गोह **(कालका)** कालका पक्षी और **(दार्वाघाटः)** कठफोरवा हैं, **(ते)** वे **(वनस्पतीनाम्)** वनस्पतियों के सम्बन्धी जो **(कृकवाकुः)** मुर्गा वह **(सावित्रः)** सविता देवता वाला जो **(हंसः)** हंस है, वह **(वातस्य)** पवन के अर्थ जो **(नाक्रः)** नाके का बच्चा **(मकरः)** मगरमच्छ **(कुलीपयः)** और विशेष जलजन्तु हैं, **(ते)** वे **(अकूपारस्य)** समुद्र के अर्थ और जो **(शल्यकः)** सेही है, वह **(ह्रियै)** लज्जा के लिये जानना चाहिये॥३५॥

भावार्थः-जो चन्द्रमा आदि के गुणों से युक्त विशेष पशु-पक्षी हैं, वे मनुष्यों को जानने चाहियें॥३५॥

एणीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। अश्विन्यादयो देवताः। निचृज्जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

एण्यह्नो मण्डूको मूषिका तित्तिरिस्ते सर्पाणां लोपाशऽआश्विनः कृष्णो रात्र्याऽऋक्षो जतूः सुषिलीका तऽइतरजनानां जहका वैष्णवी॥३६॥

एणी। अह्नः। मण्डूकः। मूषिका। तित्तिरिः। ते। सर्पाणाम्। लोपाशः। आश्विनः॥ कृष्णः। रात्र्यै। ऋक्षः। जतूः। सुषिलीकेति सुषिऽलीका। ते। इतरजनानामितीतरऽजनानाम्। जहका। वैष्णवी॥३६॥

पदार्थः-**(एणी)** मृगी **(अह्नः)** दिनस्य **(मण्डूकः)** **(मूषिका)** **(तित्तिरिः)** **(ते)** **(सर्पाणाम्)** **(लोपाशः)** वनचरपशुविशेषः **(आश्विनः)** अश्विदेवताकः **(कृष्णः)** कृष्णवर्णः **(रात्र्यै)** **(ऋक्षः)** भल्लूकः **(जतूः)** **(सुषिलीका)** एतौ च पक्षिविशेषौ **(ते)** **(इतरजनानाम्)** इतरे च ते जना इतरजनास्तेषाम् **(जहका)** गात्रसंकोचिनी **(वैष्णवी)** विष्णुदेवताका॥३६॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! युष्माभिर्यैणी साऽह्नो ये मण्डूको मूषिका तित्तिरिश्च ते सर्पाणां यो लोपाशः स आश्विनो यः कृष्णः स रात्र्यै य ऋक्षो जतूः सुषिलीका च त इतरजनानां या जहका सा वैष्णवी च विज्ञेयाः॥३६॥

भावार्थः-ये दिनादिगुणाः पशुपक्षिविशेषास्ते तत्तद्गुणतो विज्ञेयाः॥३६॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम को जो **(ऐणी)** हरिणी है, वह **(अह्नः)** दिन के अर्थ जो **(मण्डूकः)** मेंडुका **(मूषिका)** मूषटी और **(तित्तिरिः)** तीतरि पक्षिणी हैं, **(ते)** वे **(सर्पाणाम्)** सर्पों के अर्थ जो **(लोपाशः)** कोई वनचर विशेष पशु वह **(आश्विनः)** अश्वि देवता वाला, जो **(कृष्णः)** काले रंग का हरिण आदि है, वह **(रात्र्यै)** रात्रि के लिये जो **(ऋक्षः)** रीछ **(जतूः)** जतू नाम वाला और **(सुषिलीका)** सुषिलीका

पक्षी है, **(ते)** वे **(इतरजनानाम्)** और मनुष्यों के अर्थ और **(जहका)** अङ्गों का संकोच करनेहारी पक्षिणी **(वैष्णवी)** विष्णु देवता वाली जानना चाहिये॥३६॥

भावार्थः-जो दिन आदि के गुण वाले पशु-पक्षी विशेष हैं, वे उस-उस गुण से जानने चाहियें॥३६॥

अन्यवाप इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। अर्द्धमासादयो देवताः। भुरिग्जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अ॒न्य॒वा॒पो॒ऽर्द्धमा॒सा॒ना॒मृश्यो॒ म॒यूरः॑ सु॒प॒र्णस्ते ग॒न्ध॒र्वाणा॑म॒पामु॒द्रो मा॒सान् क॒श्यपो॑ रो॒हित् कु॒ण्डृ॒णाची॑ गो॒लत्ति॑का॒ ते॒ऽप्स॒रसां॑ मृत्यवे॑ऽसि॒तः॥३७॥

अ॒न्य॒वा॒प इत्य॑न्यऽवा॒पः। अ॒र्द्ध॒मा॒सा॒ना॒मित्य॑र्द्धऽमा॒सा॒नाम्। ऋश्यः॑। म॒यूरः॑। सु॒प॒र्ण इति॑ सुऽप॒र्णः। ते। ग॒न्ध॒र्वाणा॑म्। अ॒पाम्। उ॒द्रः। मा॒सान्। क॒श्यपः॑। रो॒हित्। कु॒ण्डृ॒णाची॑। गो॒लत्ति॑का। ते। अ॒प्स॒रसा॑म्। मृ॒त्यवे॑। अ॒सि॒तः॥३७॥

पदार्थः-**(अन्यवापः)** कोकिलाख्यः पक्षिविशेषः **(अर्द्धमासानाम्)** **(ऋश्यः)** मृगविशेषः **(मयूरः)** **(सुपर्णः)** पक्षिविशेषः **(ते)** **(गन्धर्वाणाम्)** गायकानाम् **(अपाम्)** जलानाम् **(उद्रः)** जलचरः कर्कटाख्यः **(मासान्)** मासानाम्। अत्र विभक्तिव्यत्ययः। **(कश्यपः)** कच्छपः **(रोहित्)** मृगविशेषः **(कुण्डृणाची)** वनचरी **(गोलत्तिका)** वनचरविशेषा **(ते)** **(अप्सरसाम्)** किरणादीनाम् **(मृत्यवे)** **(असितः)** कृष्णगुणः पशुविशेषः॥३७॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! युष्माभिर्योऽन्यवापः सोऽर्द्धमासानां य ऋश्यो मयूरः सुपर्णश्च ते गन्धर्वाणामपां च य उद्रः स मासान् ये कश्यपो रोहित् कुण्डृणाची गोलत्तिका च तेऽप्सरसां योऽसितः स मृत्यवे च विज्ञेयाः॥३७॥

भावार्थः-ये कालादिगुणाः पशुपक्षिणस्त उपकारिणः सन्तीति वेद्यम्॥३७॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम को जो **(अन्यवापः)** कोकिला पक्षी है, वह **(अर्द्धमासानाम्)** पखवाड़ों के अर्थ जो **(ऋश्यः)** ऋश्य जाति का मृग **(मयूरः)** मयूर और **(सुपर्णः)** अच्छे पंखों वाला विशेष पक्षी है, **(ते)** वे **(गन्धर्वाणाम्)** गाने वालों के और **(अपाम्)** जलों के अर्थ जो **(उद्रः)** जलचर गिंगचा है, वह **(मासान्)** महीनों के अर्थ जो **(कश्यपः)** कछुआ **(रोहित्)** विशेष मृग **(कुण्डृणाची)** कुण्डृणाची नाम की वन में रहने वाली और **(गोलत्तिका)** गोलत्तिका नाम वाली विशेष पशुजाति है, **(ते)** वे **(अप्सरसाम्)** किरण आदि पदार्थों के अर्थ और जो **(असितः)** काले गुण वाला विशेष पशु है, वह **(मृत्यवे)** मृत्यु के लिये जानना चाहिये॥३७॥

भावार्थः-जो काल आदि गुण वाले पशु-पक्षी हैं, वे उपकार वाले हैं, यह जानना चाहिये॥३७॥

वर्षाहूरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। वर्षादयो देवताः। स्वराड्जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

वर्षाहूर्ऋतूनामाखुः कशो मान्थालस्ते पितृणां बलायाजगरो वसूनां कपिञ्जलः कपोतऽउलूकः शशस्ते निर्ऋत्यै वरुणायारण्यो मेषः॥३८॥

वर्षाहूरिति वर्षऽआहूः। ऋतूनाम्। आखुः। कशः। मान्थालः। ते। पितृणाम्। बलाय। अजगरः। वसूनाम्। कपिञ्जलः। कपोतः। उलूकः। शशः। ते। निर्ऋत्याऽइति निःऋत्यै। वरुणाय। आरण्यः। मेषः॥३८॥

पदार्थः-(**वर्षाहूः**) या वर्षा आह्वयति सा भेकी (**ऋतूनाम्**) वसन्तादीनाम् (**आखुः**) मूषकः (**कशः**) शासनीयः (**मान्थालः**) जन्तुविशेषः (**ते**) (**पितृणाम्**) पालकानाम् (**बलाय**) (**अजगरः**) महान् सर्पः (**वसूनाम्**) (**कपिञ्जलः**) (**कपोतः**) (**उलूकः**) (**शशः**) पशुविशेषः (**ते**) (**निर्ऋत्यै**) (**वरुणाय**) (**आरण्यः**) अरण्ये भवः (**मेषः**) पशुविशेषः॥३८॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! युष्माभिर्या वर्षाहूः सा ऋतुनामाखुः कशो मान्थालश्च ते पितृणां बलायाजगरो वसूनां कपिञ्जलः कपोत उलूकः शशश्च ते निर्ऋत्यै य आरण्यो मेषः स वरुणाय च विज्ञेयाः॥३८॥

भावार्थः-ये ऋत्वादिगुणाः पशुपक्षिणस्ते तद्गुणा विज्ञेयाः॥३८॥

पदार्थः-हे मनुष्यो तुम को जो (**वर्षाहूः**) वर्षा को बुलाती है, वह मेंडुकी (**ऋतूनाम्**) वसन्त आदि ऋतुओं के अर्थ (**आखुः**) मूषा (**कशः**) सिखाने योग्य कश नाम वाला पशु और (**मान्थालः**) मान्थाल नामी विशेष जन्तु हैं, (**ते**) वे (**पितृणाम्**) पालना करने वालों के अर्थ (**बलाय**) बल के लिये (**अजगरः**) बड़ा सांप (**वसूनाम्**) अग्नि आदि वस्तुओं के अर्थ (**कपिञ्जलः**) कपिञ्जल नामक (**कपोतः**) जो कबूतर (**उलूकः**) उल्लू और (**शशः**) खरहा हैं, (**ते**) वे (**निर्ऋत्यै**) निर्ऋति के लिए (**वरुणाय**) और वरुण के लिये (**आरण्यः**) बनेला (**मेषः**) मेढ़ा जानना चाहिये॥३८॥

भावार्थः-जो ऋतु आदि के गुण वाले पशु-पक्षी विशेष हैं, वे उन गुणों से युक्त जानने चाहियें॥३८॥

श्वित्र इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। आदित्यादयो देवताः। स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

श्वित्रऽआदित्यानामुष्ट्रो घृणीवान् वार्ध्रीनसस्ते मत्याऽअरण्याय सृमरो रुरू रौद्रः क्वयिः कुटरुर्दात्यौहस्ते वाजिनां कामाय पिकः॥३९॥

श्वित्रः। आदित्यानाम्। उष्ट्रः। घृणीवान्। घृणिवानिति घृणिऽवान्। वार्ध्रीनसः। ते। मत्यै। अरण्याय। सृमरः। रुरुः। रौद्रः। क्वयिः। कुटरुः। दात्यौहः। ते। वाजिनाम्। कामाय। पिकः॥३९॥

पदार्थः-(**श्वित्रः**) विचित्रः पशुविशेषः (**आदित्यानाम्**) कालावयवानाम् (**उष्ट्रः**) (**घृणीवान्**) तेजस्विपशुविशेषः (**वार्ध्रीनसः**) कण्ठे स्तनवान् महानजः (**ते**) (**मत्यै**) प्रज्ञायै (**अरण्याय**) (**सृमरः**) गवयः (**रुरुः**) मृगविशेषः (**रौद्रः**) रुद्रदेवताकः (**क्वयिः**) पक्षिविशेषः (**कुटरुः**) कुक्कुटः (**दात्यौहः**) काकः (**ते**) (**वाजिनाम्**) (**कामाय**) (**पिकः**) कोकिलः॥३९॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! युष्माभिर्यः श्वित्रः स आदित्यानाम्। य उष्ट्रो घृणीवान् वार्ध्रीनसश्च ते मत्यै। यः सृमरः सोऽरण्याय। यो रुरुः स रौद्रः। ये क्वयिः कुटरुर्दात्यौहश्च ते वाजिनाम्। यः पिकः स कामाय च विज्ञेयाः॥३९॥

भावार्थः-ये आदित्यादिगुणाः पशुपक्षिणस्ते तत्तत्स्वभावाः सन्तीति वेद्यम्॥३९॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम को जो (**श्वित्रः**) चित्र-विचित्र रंग वाला पशु-विशेष वह (**आदित्यानाम्**) समय के अवयवों के अर्थ, जो (**उष्ट्रः**) ऊंट (**घृणीवान्**) तेजस्वि विशेष पशु और (**वार्ध्रीनसः**) कण्ठ में जिस के थन ऐसा बड़ा बकरा है, (**ते**) वे सब (**मत्यै**) बुद्धि के लिये, जो (**सृमरः**) नीलगाय वह (**अरण्याय**) वन के लिये, जो (**रुरुः**) मृगविशेष है, वह (**रौद्रः**) रुद्र देवता वाला, जो (**क्वयिः**) क्वयिनाम का पक्षी (**कुटरुः**) मुर्गा और (**दात्यौहः**) कौआ हैं, (**ते**) वे (**वाजिनाम्**) घोड़ों के अर्थ और जो (**पिकः**) कोकिला है, वह (**कामाय**) काम के लिये अच्छे प्रकार जानने चाहिये॥३९॥

भावार्थः-जो सूर्य आदि के गुण वाले पशु-पक्षी विशेष हैं, वे उस-उस स्वभाव वाले हैं, यह जानना चाहिये॥३९॥

खड्ग इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। विश्वेदेवादयो देवताः। शक्वरी छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

खड्गो वैश्वदेवः श्वा कृष्णः कर्णो गर्दभस्तरक्षुस्ते रक्षसामिन्द्राय सूकरः सिꣳहो मारुतः कृकलासः पिप्पका शकुनिस्ते शरव्यायै विश्वेषां देवानां पृषतः॥४०॥

खड्गः। वैश्वदेव इति वैश्वदेवः। श्वा। कृष्णः। कर्णः। गर्दभः। तरक्षुः। ते। रक्षसाम्। इन्द्राय। सूकरः। सिꣳहः। मारुतः। कृकलासः। पिप्पका। शकुनिः। ते। शरव्यायै। विश्वेषाम्। देवानाम्। पृषतः॥४०॥

पदार्थः-**(खड्गः)** तुण्डशृङ्गः पशुविशेषः **(वैश्वदेवः)** विश्वेषां देवानामयम् **(श्वा)** कुक्कुरः **(कृष्णः)** कृष्णगुणविशेषः **(कर्णः)** दीर्घकर्णः **(गर्दभः)** पशुविशेषः **(तरक्षुः)** व्याघ्रः **(ते)** **(रक्षसाम्)** **(इन्द्राय)** विदारकाय **(सूकरः)** यः सुष्ठु शुद्धिं करोति स बलिष्ठो वराहः **(सिंहः)** हिंसको व्याघ्रः **(मारुतः)** मरुद्देवताकः **(कृकलासः)** सरटः **(पिप्पका)** पक्षिणी **(शकुनिः)** **(ते)** **(शरव्यायै)** शरवीषु कुशलायै **(विश्वेषाम्)** अखिलानाम् **(देवानाम्)** विदुषाम् **(पृषतः)** मृगविशेषाः॥४०॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! युष्माभिर्य खड्गः स वैश्वदेवो ये कृष्णः श्वा कर्णो गर्दभस्तरक्षुश्च ते रक्षसां यः सूकरः स इन्द्राय यः सिंहः स मारुतो ये कृकलासः पिप्पका शकुनिश्च ते शरव्यायै ये पृषतस्ते विश्वेषां देवानां विज्ञेयाः॥४०॥

भावार्थः-ये सर्वे पशुपक्षिणः सर्वगुणाः सन्ति, तान् विज्ञाय व्यवहारसिद्धये सर्वे मनुष्या नियोजयन्तामिति॥४०॥

अस्मिन्नध्याये पशुपक्षिमृगसरीसृपजलजन्तुकृम्यादीनां गुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वाऽऽध्यायोक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति बोद्धव्यम्॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम को जो **(खड्गः)** ऊंचे और पैने सींगों वाला गैंडा है, वह **(वैश्वदेवः)** सब विद्वानों का, जो **(कृष्णः)** काले रंग वाला **(श्वा)** कुत्ता **(कर्णः)** बड़े कानों वाला **(गर्दभः)** गदहा और **(तरक्षुः)** व्याघ्र हैं, **(ते)** वे सब **(रक्षसाम्)** राक्षस दुष्टहिंसक हवषियों के अर्थ, जो **(सूकरः)** सुअर है, वह **(इन्द्राय)** शत्रुओं को विदारने वाले राजा के लिये, जो **(सिंहः)** सिंह है, वह **(मारुतः)** मरुत देवता वाला, जो **(कृकलासः)** गिरगिटान **(पिप्पका)** पिप्पका नाम की पक्षिणी और **(शकुनिः)** पक्षिमात्र हैं, **(ते)** वे सब **(शरव्यायै)** जो शरवियों में कुशल उत्तम है, उस के लिये और जो **(पृषतः)** पृषज्जाति के हरिण हैं, वे **(विश्वेषाम्)** सब **(देवानाम्)** विद्वानों के अर्थ जानना चाहिये॥४०॥

भावार्थः-जो सब पशु-पक्षी सब गुण भरे हैं, उनको जानकार व्यवहारसिद्धि के लिये सब मनुष्य निरन्तर युक्त करें॥४०॥

इस अध्याय में पशु पक्षी रिंगने वाले सांप आदि, वन के मृग, जल में रहने वाले प्राणी और कीड़े-मकोड़े आदि के गुणों का वर्णन होने से इस अध्याय के अर्थ की पिछले अध्याय में कहे हुए अर्थ के साथ संगति है, यह जानना चाहिये॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां परमविदुषां श्रीविरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचिते संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां विभूषिते सुप्रमाणयुक्ते यजुर्वेदभाष्ये चतुर्विंशोऽध्यायः पूर्तिमगमत्॥२४॥

॥ओ३म्॥

अथ पञ्चविंशोऽध्याय आरभ्यते

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव। यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व॥ यजु० ३०.३॥

शादमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। सरस्वत्यादयो देवताः। पूर्वस्य भुरिक्छक्वरी छन्दः। धैवतः स्वरः।
आदित्यानित्युत्तरस्य निचृदतिशक्वरी छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अथ केन किं कर्त्तव्यमित्याह॥

अब पच्चीसवें अध्याय का आरम्भ है, इसके प्रथम मन्त्र में किसको क्या करना चाहिये, इस विषय को कहा है॥

शाद॑ꣳ द॒द्भिरव॑कां दन्तमू॒लैर्मृदं॒ बस्वैं॑स्ते॒ गां द॒ꣳष्ट्रा॑भ्या॒ꣳ सर॑स्वत्याऽअग्रजि॒ह्वं जि॒ह्वाया॑ऽउत्सा॒दम॑वक्र॒न्देन॒ तालु॒ वाज॒ꣳ हनु॑भ्याम॒पऽआ॒स्ये॒न वृष॑णमा॒ण्डाभ्या॑मादि॒त्याँ श्मश्रु॑भि॒: पन्था॑नं भ्रूभ्यां द्यावा॑पृथि॒वी वर्त्तो॑भ्यां वि॒द्युतं॑ क॒नीन॑काभ्या॒ꣳ शु॒क्राय॒ स्वाहा॑ कृ॒ष्णाय॒ स्वाहा॒ पार्या॑णि॒ पक्ष्मा॑ण्यवा॒र्या॒ऽइ॒क्षवो॑ऽवा॒र्या॒णि पक्ष्मा॑णि॒ पार्या॑ इ॒क्षव॑:॥ १॥

शाद॑म्। द॒द्भिरिति॑ द॒त्ऽभिः। अव॑काम्। द॒न्त॒मू॒लैरिति॑ दन्तऽमू॒लैः। मृद॑म्। बस्वैं॑ः। ते॒। गाम्। द॒ꣳष्ट्रा॑भ्याम्। सर॑स्वत्यै। अ॒ग्र॒जि॒ह्वमित्य॑ग्रऽजि॒ह्वम्। जि॒ह्वाया॑ः। उ॒त्सा॒दमित्यु॑त्ऽसा॒दम्। अ॒व॒क्र॒न्देनेत्य॑वऽक्र॒न्देन॑। तालु॑। वाज॑म्। हनु॑भ्या॒मिति॒ हनु॑ऽभ्याम्। अ॒पः। आ॒स्ये॑न। वृष॑णम्। आ॒ण्डाभ्या॑म्। आ॒दि॒त्यान्। श्मश्रु॑भि॒रिति॒ श्मश्रु॑ऽभिः। पन्था॑नम्। भ्रू॒भ्याम्। द्यावा॑पृथि॒वी इति॒ द्यावा॑पृथि॒वी। वर्त्तो॑भ्या॒मिति॒ वर्त्त॑ःऽभ्याम्। वि॒द्युत॑मिति॒ वि॒ऽद्युत॑म्। क॒नीन॑काभ्याम्। शु॒क्राय॑। स्वाहा॑। कृ॒ष्णाय॑। स्वाहा॑। पार्या॑णि। पक्ष्मा॑णि। अ॒वा॒र्या॑ः। इ॒क्षव॑ः। अ॒वा॒र्या॒णि। पक्ष्मा॑णि। पार्या॑ः। इ॒क्षव॑ः॥ १॥

पदार्थः-(शादम्) शीयते छिनत्ति यस्मिँस्तं शादम् **(दद्भिः)** दन्तैः **(अवकाम्)** रक्षिकाम् **(दन्तमूलैः)** दन्तानां मूलैः **(मृदम्)** मृत्तिकाम् **(बस्वैः)** दन्तपृष्ठैः **(ते)** तव **(गाम्)** वाणीम् **(दंष्ट्राभ्याम्)** मुखहन्ताभ्याम् **(सरस्वत्यै)** प्रशस्तविज्ञानवत्यै वाचे **(अग्रजिह्वम्)** जिह्वाया अग्रम् **(जिह्वायाः)** **(उत्सादम्)** ऊर्ध्वं सीदन्ति यस्मिँस्तम् **(अवक्रन्देन)** विकलतारहितेन **(तालु)** आस्यावयवम् **(वाजम्)** अन्नम् **(हनुभ्याम्)** मुखैकदेशाभ्याम् **(अपः)** जलानि **(आस्येन)** आस्यन्दन्ति क्लेदीभवन्ति यस्मिंस्तेन **(वृषणम्)** वर्षयितारम् **(आण्डाभ्याम्)** वीर्याधाराभ्याम् **(आदित्यान्)** मुख्यान् विदुषः **(श्मश्रुभिः)** मुखाऽभितः केशैः **(पन्थानम्)** मार्गम् **(भ्रूभ्याम्)** नेत्रगोलकोर्ध्वाऽवयवाभ्याम् **(द्यावापृथिवी)** सूर्यभूमी **(वर्त्तोभ्याम्)** गमनागमनाभ्याम् **(विद्युतम्)** तडितम् **(कनीनकाभ्याम्)** तेजोमयाभ्यां कृष्णागोलकतारकाभ्याम् **(शुक्राय)** वीर्याय **(स्वाहा)** ब्रह्मचर्यक्रियया **(कृष्णाय)** विद्याकर्षणाय **(स्वाहा)** सुशीलतायुक्तया क्रियया **(पार्याणि)** परितुं पूरयितुं योग्यानि **(पक्ष्माणि)** परिग्रहीतुं योग्यानि कर्माणि नेत्रोर्ध्वलोमानि वा **(अवार्याः)** अवारे भवाः **(इक्षवः)**

इक्षुदण्डाः **(अवार्याणि)** अवारेषु भवानि **(पक्ष्माणि)** परिग्रहणानि लोमानि वा **(पार्याः)** परितुं पालयितुं योग्याः **(इक्षवः)** गुडादिनिमित्ताः॥१॥

अन्वयः-हे जिज्ञासो विद्यार्थिन्! ते दद्भिः शादं दन्तमूलैर्बर्स्वैश्चावकां मृदं दंष्ट्राभ्यां सरस्वत्यै गां जिह्वाया अग्रजिह्वमवक्रन्देनोत्सादं तालु हनुभ्यां वाजमास्येनाऽप आण्डाभ्यां वृषणं श्मश्रुभिरादित्यान् भ्रूभ्यां पन्थानं वर्त्तोभ्यां द्यावापृथिवी कनीनकाभ्यां विद्युतमहं बोधयामि। त्वया शुक्राय स्वाहा कृष्णाय स्वाहा पार्याणि पक्ष्माण्यवार्या इक्षवोऽवार्याणि पक्ष्माणि पार्या इक्षवश्च संग्राह्याः॥१॥

भावार्थः-अध्यापकाः शिष्याणामङ्गान्युपदेशेन पुष्टानि कृत्वाऽऽहारविहारादिकं संबोध्य सर्वा विद्याः प्रापय्याखण्डितं ब्रह्मचर्यं सेवयित्वैश्वर्यं प्रापय्य सुखिनः सम्पादयेयुः॥१॥

पदार्थः-हे अच्छे ज्ञान की चाहना करते हुए विद्यार्थी जन! **(ते)** तेरे **(दद्भिः)** दांतों से **(शादम्)** जिस में छेदन करता है, उस व्यवहार को **(दन्तमूलैः)** दांतों की जड़ों और **(बर्स्वैः)** दांतों की पछाड़ियों से **(अवकाम्)** रक्षा करने वाली **(मृदम्)** मट्टी को **(दंष्ट्राभ्याम्)** डाढ़ों से **(सरस्वत्यै)** विशेष ज्ञान वाली वाणी के लिये **(गाम्)** वाणी को **(जिह्वायाः)** जीभ से **(अग्रजिह्वम्)** जीभ के अगले भाग को **(अवक्रन्देन)** विकलतारहित व्यवहार से **(उत्सादम्)** जिसमें ऊपर को स्थिर होती है, उस **(तालु)** को **(हनुभ्याम्)** ठोढ़ी के पास के भागों से **(वाजम्)** अन्न को **(आस्येन)** जिससे भोजन आदि पदार्थ को गीला करते उस मुख से **(अपः)** जलों को **(आण्डाभ्याम्)** वीर्य को अच्छे प्रकार धारण करने हारे आण्डों से **(वृषणम्)** वीर्य वर्षाने वाले अङ्ग को **(श्मश्रुभिः)** मुख के चारों ओर जो केश अर्थात् दाढ़ी उससे **(आदित्यान्)** मुख्य विद्वानों को **(भ्रूभ्याम्)** नेत्र-गोलकों के ऊपर जो भौंहे हैं, उन से **(पन्थानम्)** मार्ग को **(वर्त्तोभ्याम्)** जाने-आने से **(द्यावापृथिवी)** सूर्य और भूमि तथा **(कनीनकाभ्याम्)** तेज से भरे हुए काले नेत्रों के तारों के सदृश गोलों से **(विद्युतम्)** बिजुली को मैं समझाता हूँ। तुझ को **(शुक्राय)** वीर्य के लिये **(स्वाहा)** ब्रह्मचर्य क्रिया से और **(कृष्णाय)** विद्या खींचने के लिये **(स्वाहा)** सुन्दरशीलयुक्त क्रिया से **(पार्याणि)** पूरे करने योग्य **(पक्ष्माणि)** जो सब ओर से लेने चाहिये, उन कामों वा पलकों के ऊपर के विन्ने वा **(अवार्याः)** नदी आदि के प्रथम ओर होने वाले **(इक्षवः)** गन्नों के पौंडे वा **(अवार्याणि)** नदी आदि के पहिले किनारे पर होने वाले पदार्थ **(पक्ष्माणि)** सब ओर से जिनका ग्रहण करें वा लोम और **(पार्याः)** पालना करने योग्य **(इक्षवः)** ऊख, जो गुड़ आदि के निमित्त हैं, वे पदार्थ अच्छे प्रकार ग्रहण करने चाहियें॥१॥

भावार्थः-अध्यापक लोग अपने शिष्यों के अङ्गों को उपदेश से अच्छे प्रकार पुष्ट कर तथा आहार वा विहार का अच्छा बोध, समस्त विद्याओं की प्राप्ति, अखण्डित ब्रह्मचर्य का सेवन और ऐश्वर्य की प्राप्ति करा के सुखयुक्त करें॥१॥

वातमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। प्राणादयो देवताः। भुरगतिशक्वर्यौ छन्दसी। पञ्चमौ स्वरौ॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

वातं प्राणेनापानेन नासिकेऽउपयाममधरेणौष्ठेन सदुत्तरेण प्रकाशेनान्तरमनूकाशेन बाह्यं निवेष्यं मूर्ध्ना स्तनयित्नुं निर्बाधेनाशनिं मस्तिष्केण विद्युतं कनीनकाभ्यां कर्णाभ्याᳬं श्रोत्रᳬं श्रोत्राभ्यां कर्णौ तेदनीमधरकण्ठेनापः शुष्ककण्ठेन चित्तं मन्याभिरदितिꣳ शीर्ष्णा निर्ऋतिं निर्जर्जल्पेन शीर्ष्णा संक्रोशैः प्राणान् रेष्माणᳬं स्तुपेन॥ २॥

वातम्। प्राणेन। अपानेनेत्यपऽआनेन। नासिके इति नासिके। उपयाममित्युपऽयामम्। अधरेण। ओष्ठेन। सत्। उत्तरेणेत्युत्ऽतरेण। प्रकाशेनेति प्रऽकाशेन। अन्तरम्। अनूकाशेन। अनुकाशेनेत्यनुऽकाशेन। बाह्यम्। निवेष्यमिति निऽवेष्यम्। मूर्ध्ना। स्तनयित्नुम्। निर्बाधेनेति निःऽबाधेन। अशनिम्। मस्तिष्केण। विद्युतमिति विऽद्युतम्। कनीनकाभ्याम्। कर्णाभ्याम्। श्रोत्रम्। श्रोत्राभ्याम्। कर्णौ। तेदनीम्। अधरकण्ठेनेत्यधरऽकण्ठेन। अपः। शुष्ककण्ठेनेति शुष्कऽकण्ठेन। चित्तम्। मन्याभिः॥ अदितिम्। शीर्ष्णा। निर्ऋतिमिति निःऽऋतिम्। निर्जर्जल्पेनेति निःऽजर्जल्पेन। शीर्ष्णा। सङ्क्रोशैरिति सम्ऽक्रोशैः। प्राणान्। रेष्माणम्। स्तुपेन॥ २॥

पदार्थः-(वातम्) वायुम् **(प्राणेन) (अपानेन) (नासिके)** नासिकाछिद्रे **(उपयामम्)** उपगतं नियमम् **(अधरेण)** मुखादधस्थेन **(ओष्ठेन) (सत्) (उत्तरेण)** उपरिस्थेन **(प्रकाशेन) (अन्तरम्)** मध्यस्थमाभ्यन्तरम् **(अनूकाशेन)** अनुप्रकाशेन **(बाह्यम्)** बहिर्भवम् **(निवेष्यम्)** निश्चयेन व्याप्तुं योग्यम् **(मूर्ध्ना)** मस्तकेन **(स्तनयित्नुम्)** शब्दनिमित्तां विद्युतम् **(निर्बाधेन)** नितरां बाधेन हेतुना **(अशनिम्)** व्यापिकां घोषयुक्ताम् **(मस्तिष्केण)** शिरस्थमज्जातन्तुसमूहेन **(विद्युतम्)** विशेषेण द्योतमानाम् **(कनीनकाभ्याम्)** प्रदीप्ताभ्यां कमनीयाभ्याम् **(कर्णाभ्याम्)** श्रवणसाधकाभ्याम् **(श्रोत्रम्)** शृणोति येन तत् **(श्रोत्राभ्याम्)** शृणोति याभ्यां गोलकाभ्यां ताभ्यां **(कर्णौ)** करोति श्रवणं याभ्यां तौ **(तेदनीम्)** श्रवणक्रियाम् **(अधरकण्ठेन)** अधस्थेन कण्ठेन **(अपः)** जलानि **(शुष्ककण्ठेन) (चित्तम्)** विज्ञानसाधिकामन्तःकरणवृत्तिम् **(मन्याभिः)** विज्ञानक्रियाभिः **(अदितिम्)** अविनाशिकां प्रज्ञाम् **(शीर्ष्णा)** शिरसा **(निर्ऋतिम्)** भूमिम् **(निर्जर्जल्पेन)** नितरां जर्जरीभूतेन **(शीर्ष्णा)** शिरसा **(सङ्क्रौशैः)** सम्यगाह्वानैः **(प्राणान्) (रेष्माणम्)** हिंसकम् **(स्तुपेन)** हिंसनेन॥ २॥

अन्वयः-हे जिज्ञासो! मदुपदेशग्रहणेन त्वं प्राणेनापानेन वातं नासिके उपयाममधरेणौष्ठेनोत्तरेण प्रकाशेन सदन्तरमनूकाशेन बाह्यं मूर्ध्ना निवेष्यं निर्बाधेन सह स्तनयित्नुमशनिं मस्तिष्केण विद्युतं कनीनकाभ्यां कर्णाभ्यां कर्णौ श्रोत्राभ्यां च श्रोत्रं तेदनीमधरकण्ठेनापः शुष्ककण्ठेन चित्तं मन्याभिरदितिं शीर्ष्णा निर्ऋतिं निर्जर्जल्पेन शीर्ष्णा संक्रोशैः प्राणान् प्राप्नुहि स्तुपेन हिंसनेन रेष्माणमविद्यादिरोगं हिन्धि॥ २॥

भावार्थः-सर्वैर्मनुष्यैः प्रथमवयसि सर्वैः शरीरादिभिः साधनैः शरीरात्मबले संसाधनीये अविद्याकुशिक्षा-कुशीलादयो रोगाः सर्वथा हन्तव्याः॥ २॥

पदार्थः-हे जानने को इच्छा करने वाले! मेरे उपदेश के ग्रहण से तू **(प्राणेन)** प्राण और **(अपानेन)** अपान से **(वातम्)** पवन और **(नासिके)** नासिकाछिद्रों और **(उपयामम्)** प्राप्त हुए नियम को **(अधरेण)** नीचे के **(ओष्ठेन)** ओष्ठ के **(उत्तरेण)** ऊपर के **(प्रकाशेन)** प्रकाशरूप ओठ से **(सदन्तरम्)** बीच में विद्यमान मुख आदि स्थान को **(अनूकाशेन)** पीछे से प्रकाश होने वाले अङ्ग से **(बाह्यम्)** बाहर हुए अङ्ग को **(मूर्ध्ना)** शिर से **(निवेष्यम्)** जो निश्चय से व्याप्त होने योग्य उस को **(निर्बाधेन)** निरन्तर ताड़ना के हेतु के साथ **(स्तनयित्नुम्)** शब्द करने हारी **(अशनिम्)** बिजुली को **(मस्तिष्केण)** शिर की चरबी और नसों से **(विद्युतम्)** अति प्रकाशमान बिजुली को **(कनीनकाभ्याम्)** दिपते हुए **(कर्णाभ्याम्)** शब्द को सुनवाने हारे पवनों से **(कर्णौ)** जिनसे श्रवण करता उन कानों को और **(श्रोत्राभ्याम्)** जिन गोल-गोल छेदों से सुनता उन से **(श्रोत्रम्)** श्रवणेन्द्रिय और **(तेदनीम्)** श्रवण करने की क्रिया **(अधरकण्ठेन)** कण्ठ के नीचे के भाग से **(अपः)** जलों **(शुष्ककण्ठेन)** सूखते हुए कण्ठ से **(चित्तम्)** विशेष ज्ञान सिद्ध कराने हारे अन्तःकरण के वर्त्ताव को **(मन्याभिः)** विशेष ज्ञान की क्रियाओं से **(अदितिम्)** न विनाश को प्राप्त होने वाली उत्तम बुद्धि को **(शीर्ष्णा)** शिर से **(निर्ऋतिम्)** भूमि को **(निर्जर्जल्पेन)** निरन्तर जीर्ण सब प्रकार परिपक्व हुए **(शीर्ष्णा)** शिर और **(सङ्क्रोशैः)** अच्छे प्रकार बुलावाओं से **(प्राणान्)** प्राणों को प्राप्त हो तथा **(स्तुपेन)** हिंसा से **(रेष्माणम्)** हिंसक अविद्या आदि रोग का नाश कर॥२॥

भावार्थः-सब मनुष्यों को चाहिये कि पहिली अवस्था में समस्त शरीर आदि साधनों से शारीरिक और आत्मिक बल को अच्छे प्रकार सिद्ध करें और अविद्या, दुष्ट सिखावट, निन्दित स्वभाव आदि रोगों को सब प्रकार हनन करें॥२॥

मशकानित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। इन्द्रादयो देवताः। भुरिक्कृतिश्छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

म॒श॒कान् केशै॒रिन्द्र॑ꣳ स्वप॑सा॒ वहे॑न॒ बृह॒स्पति॑ꣳशकुनिसा॒देन॑ कू॒र्म्माञ्छ॒फैरा॒क्रम॑णꣳ स्थू॒राभ्या॑मृक्षला॑भिः क॒पिञ्ज॑लाञ्ज॒वं जङ्घा॑भ्याम॒ध्वान॑ं बा॒हुभ्या॒ं जाम्बी॑ले॒नार॑ण्यम॒ग्निम॑ति॒रुग्भ्या॑ं पू॒षण॑ं दो॒र्भ्याम॒श्विना॒वꣳसा॑भ्याꣳ रु॒द्रꣳ रोरा॑भ्याम्॥३॥

म॒श॒कान्। केशैः॑। इन्द्र॑म्। स्वप॒सेति॑ सु॒ऽअप॑सा। वहे॑न। बृह॒स्पति॑म्। श॒कु॒नि॒सा॒देनेति॑ शकुनिऽसा॒देन॑। कू॒र्मान्। श॒फैः। आ॒क्रम॑णमित्या॒ऽक्रम॑णम्। स्थू॒राभ्या॑म्। ऋ॒क्षला॑भिः। क॒पिञ्ज॑लान्। ज॒वम्। जङ्घा॑भ्याम्। अध्वा॑नम्। बा॒हुभ्या॒मिति॑ बा॒हुऽभ्या॑म्। जाम्बी॑लेन। अ॒ग्निम्। अ॒ति॒रुग्भ्या॒मित्य॑ति॒रुग्ऽभ्या॑म्। पू॒षण॑म्। दो॒र्भ्यामिति॑ दोः॒ऽभ्याम्। अ॒श्विनौ॑। अꣳसा॑भ्याम्। रु॒द्रम्। रोरा॑भ्याम्॥३॥

पदार्थः-(**मशकान्**) (**केशैः**) शिरस्थैर्बालैः (**इन्द्रम्**) ऐश्वर्यम् (**स्वपसा**) सुष्ठु कर्मणा (**वहेन**) प्रापणेन (**बृहस्पतिम्**) बृहत्या वाचः स्वामिनं विद्वांसम् (**शकुनिसादेन**) येन शकुनीन् सादयति तेन (**कूर्मान्**) कच्छपान् (**शफैः**) खुरैः (**आक्रमणम्**) (**स्थूराभ्याम्**) स्थूलाभ्याम् (**ऋक्षलाभिः**) गत्यादानैः (**कपिञ्जलान्**) पक्षिविशेषान् (**जवम्**) वेगम् (**जङ्घाभ्याम्**) (**अध्वानम्**) मार्गम् (**बाहुभ्याम्**) भुजाभ्याम् (**जाम्बीलेन**) फलविशेषेण (**अरण्यम्**) वनम् (**अग्निम्**) पावकम् (**अतिरुग्भ्याम्**) रुचीच्छाभ्याम् (**पूषणम्**) पुष्टिम् (**दोर्भ्याम्**) भुजदण्डाभ्याम् (**अश्विनौ**) प्रजाराजानौ (**अंसाभ्याम्**) भुजमूलाभ्याम् (**रुद्रम्**) रोदयितारम् (**रोराभ्याम्**) कथनश्रवणाभ्याम्॥३॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यूयं केशैरिन्द्रं शकुनिसादेन कूर्मान् मशकान् स्वपसा वहेन बृहस्पतिं स्थूराभ्यामृक्षलाभिः कपिञ्जलाञ्जङ्घाभ्यामध्वानं जवमंसाभ्यां बाहुभ्यां शफैराक्रमणं जाम्बीलेनारण्यमग्निमतिरुग्भ्यां पूषणं दोर्भ्यामश्विनौ प्राप्नुत रोराभ्यां रुद्रं च॥३॥

भावार्थः-मनुष्यैर्बहुभिरुपायैरुत्तमा गुणाः प्रापणीया विघ्नाश्च निवारणीयाः॥३॥

पदार्थः-हे मनुष्यो (**केशैः**) शिर के बालों से (**इन्द्रम्**) ऐश्वर्य को (**शकुनिसादेन**) जिससे पक्षियों को स्थिर कराता उस व्यवहार से (**कूर्मान्**) कछुओं और (**मशकान्**) मशकों को (**स्वपसा**) उत्तम काम और (**वहेन**) प्राप्ति कराने से (**बृहस्पतिम्**) बड़ी वाणी के स्वामी विद्वान् को (**स्थूराभ्याम्**) स्थूल (**ऋक्षलाभिः**) चाल और ग्रहण करने आदि क्रियाओं से (**कपिञ्जलान्**) कपिञ्जल नामक पक्षियों को (**जङ्घाभ्याम्**) जङ्घाओं से (**अध्वानम्**) मार्ग और (**जवम्**) वेग को (**अंसाभ्याम्**) भुजाओं के मूल अर्थात् बगलों (**बाहुभ्याम्**) भुजाओं और (**शफैः**) खुरों से (**आक्रमणम्**) चाल को (**जाम्बीलेन**) जमुनी आदि के फल से (**अरण्यम्**) वन और (**अग्निम्**) अग्नि को (**अतिरुग्भ्याम्**) अतीव रुचि, प्रीति और इच्छा से (**पूषणम्**) पुष्टि को तथा (**दोर्भ्याम्**) भुजदण्डों से (**अश्विनौ**) प्रजा और राजा को प्राप्त होओ और (**रोराभ्याम्**) कहने-सुनने से (**रुद्रम्**) रुलानेहारे को प्राप्त होओ॥३॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि बहुत उपायों से उत्तम गुणों की प्राप्ति और विघ्नों की निवृति करें॥३॥

अग्नेरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। अग्न्यादयो देवताः। स्वराड्धृतिश्छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

पुनः कस्य का क्रिया कर्त्तव्येत्याह॥

फिर किस को क्या क्रिया करने योग्य है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अ॒ग्नेः प॑क्ष॒तिर्वा॒योर्निप॑क्षतिरि॒न्द्र॑स्य तृ॒तीया॒ सोम॑स्य चतु॒र्थ्यदि॑त्यै पञ्च॒मीन्द्रा॒ण्यै ष॒ष्ठी म॒रुता॑ᳬं सप्त॒मी बृह॒स्पते॑रष्ट॒म्य॒र्य॒म्णो न॑व॒मी धा॒तुर्द॑श॒मीन्द्र॑स्यैकाद॒शी वरु॑णस्य द्वाद॒शी य॒मस्य॑ त्रयोद॒शी॥४॥

अग्नेः। पक्षतिः। वायोः। निपक्षतिरिति निऽपक्षतिः। इन्द्रस्य। तृतीया। सोमस्य। चतुर्थी। अदित्यै। पञ्चमी। इन्द्राण्यै। षष्ठी। मरुताम्। सप्तमी। बृहस्पतेः। अष्टमी। अर्यम्णः। नवमी। धातुः। दशमी। इन्द्रस्य। एकादशी। वरुणस्य। द्वादशी। यमस्य। त्रयोदशीति त्रयःदशी॥४॥

पदार्थः-अग्नेः) पावकस्य **(पक्षतिः)** पक्षस्य परिग्रहस्य मूलम् **(वायोः)** पवनस्य **(निपक्षतिः)** निश्चितस्य मूलम् **(इन्द्रस्य)** **(तृतीया)** त्रयाणां पूरणा क्रिया **(सोमस्य)** चन्द्रस्य **(चतुर्थी)** चतुर्णां पूरणा **(अदित्यै)** अन्तरिक्षस्य **(पञ्चमी)** पञ्चानां पूरणा **(इन्द्राण्यै)** इन्द्रस्य विद्युद्रूपस्य स्त्रीव वर्त्तमानायै दीप्त्यै **(षष्ठी)** षण्णां पूरणा **(मरुताम्)** वायूनाम् **(सप्तमी)** सप्तानां पूरणा **(बृहस्पतेः)** बृहतां पालकस्य महत्तत्त्वस्य **(अष्टमी)** अष्टानां पूरणा **(अर्यम्णः)** अर्याणां स्वामिनां सत्कर्त्तुः **(नवमी)** नवानां पूरणा **(धातुः)** धारकस्य **(दशमी)** दशानां पूरणा **(इन्द्रस्य)** ऐश्वर्यवतः **(एकादशी)** एकादशानां पूरणा **(वरुणस्य)** श्रेष्ठस्य **(द्वादशी)** द्वादशनां पूरणा **(यमस्य)** न्यायाधीशस्य **(त्रयोदशी)** त्रयोदशानां पूरणा॥४॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! युष्माभिरग्ने पक्षतिर्वायोर्निपक्षतिरिन्द्रस्य तृतीया सोमस्य चतुर्थ्यदित्यै पञ्चमीन्द्राण्यै षष्ठी मरुतां सप्तमी बृहस्पतेरष्टम्यर्यम्णो नवमी धातुर्दशमीन्द्रस्यैकादशी वरुणस्य द्वादशी यमस्य त्रयोदशी च क्रियाः कर्त्तव्याः॥४॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! युष्माभिः क्रियाविज्ञानसाधनैरग्न्यादीनां गुणान् विदित्वा सर्वाणि कार्य्याणि साधनीयानि॥४॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम को **(अग्नेः)** अग्नि की **(पक्षतिः)** सब ओर से ग्रहण करने योग्य व्यवहार की मूल **(वायोः)** पवन की **(निपक्षतिः)** निश्चित विषय का मूल **(इन्द्रस्य)** सूर्य की **(तृतीया)** तीन को पूरा करने वाली क्रिया **(सोमस्य)** चन्द्रमा की **(चतुर्थी)** चार को पूरा करने वाली **(अदित्यै)** अन्तरिक्ष की **(पञ्चमी)** पांचवीं **(इन्द्राण्यै)** स्त्री के समान वर्त्तमान जो बिजुलीरूप अग्नि की लपट उसकी **(षष्ठी)** छठी **(मरुताम्)** पवनों की **(सप्तमी)** सातवीं **(बृहस्पतेः)** बड़ों की पालना करने वाले महत्तत्त्व की **(अष्टमी)** आठवीं **(अर्यम्णः)** स्वामी जनों का सत्कार करने वाले की **(नवमी)** नवीं **(धातुः)** धारण करने हारे की **(दशमी)** दशमी **(इन्द्रस्य)** ऐश्वर्यवान् की **(एकादशी)** ग्यारहवीं **(वरुणस्य)** श्रेष्ठ पुरुष की **(द्वादशी)** बारहवीं और **(यमस्य)** न्यायाधीश राजा की **(त्रयोदशी)** तेरहवीं क्रिया करनी चाहिये॥४॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! तुम को क्रिया के विशेष ज्ञान और साधनों से अग्नि आदि पदार्थों के गुणों को जानकर सब कार्यों की सिद्धि करनी चाहिये॥४॥

इन्द्राग्न्योरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। इन्द्रादयो देवताः। स्वराड्विकृतिश्छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनः किमर्था का भवतीत्याह॥

फिर किसके अर्थ कौन होती है? इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

इन्द्राग्न्योः पक्षतिः सरस्वत्यै निपक्षतिर्मित्रस्य तृतीयाऽपां चतुर्थी निर्ऋत्यै पञ्चम्यग्नीषोमयोः षष्ठी सर्पाणाᳬं सप्तमी विष्णोरष्टमी पूष्णो नवमी त्वष्टुर्दशमीन्द्रस्यैकादशी वरुणस्य द्वादशी यम्यै त्रयोदशी द्यावापृथिव्योर्दक्षिणं पार्श्वं विश्वेषां देवानामुत्तरम्॥५॥

इन्द्राग्न्योः। पक्षतिः। सरस्वत्यै। निपक्षतिरिति निऽपक्षतिः। मित्रस्य। तृतीया। अपाम्। चतुर्थी। निर्ऋत्या इति निःऽऋत्यै। पञ्चमी। अग्नीषोमयोः। षष्ठी। सर्पाणाम्। सप्तमी। विष्णोः। अष्टमी। पूष्णः। नवमी। त्वष्टुः। दशमी। इन्द्रस्य। एकादशी। वरुणस्य। द्वादशी। यम्यै। त्रयोदशीति त्रयःऽदशी। द्यावापृथिव्योः। दक्षिणम्। पार्श्वम्। विश्वेषाम्। देवानाम्। उत्तरम्॥५॥

पदार्थः-(**इन्द्राग्न्योः**) वायुपावकयोः (**पक्षतिः**) (**सरस्वत्यै**) (**निपक्षतिः**) (**मित्रस्य**) सख्युः (**तृतीया**) (**अपाम्**) जलानाम् (**चतुर्थी**) (**निर्ऋत्यै**) भूम्यै (**पञ्चमी**) (**अग्नीषोमयोः**) शीतोष्णकारकयोर्जलाग्न्योः (**षष्ठी**) (**सर्पाणाम्**) (**सप्तमी**) (**विष्णोः**) व्यापकस्य (**अष्टमी**) (**पूष्णः**) पोषकस्य (**नवमी**) (**त्वष्टुः**) प्रदीप्तस्य (**दशमी**) (**इन्द्रस्य**) जीवस्य (**एकादशी**) (**वरुणस्य**) श्रेष्ठजनस्य (**द्वादशी**) (**यम्यै**) यमस्य न्यायकर्त्तुः स्त्रियै (**त्रयोदशी**) (**द्यावापृथिव्योः**) प्रकाशभूम्योः (**दक्षिणम्**) (**पार्श्वम्**) (**विश्वेषाम्**) सर्वेषाम् (**देवानाम्**) विदुषाम् (**उत्तरम्**)॥५॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यूयमिन्द्राग्न्योः पक्षतिः सरस्वत्यै निपक्षतिर्मित्रस्य तृतीयाऽपां चतुर्थी निर्ऋत्यै पञ्चम्यग्नीषोमयोः षष्ठी सर्पाणां सप्तमी विष्णोरष्टमी पूष्णो नवमी त्वष्टुर्दशमीन्द्रस्यैकादशी वरुणस्य द्वादशी यम्यै त्रयोदशी च क्रिया द्यावापृथिव्योर्दक्षिणं पार्श्वं विश्वेषां देवानामुत्तरं च विजानीत॥५॥

भावार्थः-मनुष्यैरेतेषां विज्ञानाय विविधाः क्रियाः कृत्वा कार्याणि साधनीयानि॥५॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम लोग जो (**इन्द्राग्न्योः**) पवन और अग्नि की (**पक्षतिः**) सब ओर से ग्रहण करने योग्य व्यवहार की मूल पहिली (**सरस्वत्यै**) वाणी के लिये (**निपक्षतिः**) निश्चित पक्ष का मूल दूसरी (**मित्रस्य**) मित्र की (**तृतीया**) तीसरी (**अपाम्**) जलों की (**चतुर्थी**) चौथी (**निर्ऋत्यै**) भूमि की (**पञ्चमी**) पांचवीं (**अग्नीषोमयोः**) गर्मी-सर्दी को उत्पन्न करने वाले अग्नि तथा जल की (**षष्ठी**) छठी (**सर्पाणाम्**) सांपों की (**सप्तमी**) सातवीं (**विष्णोः**) व्यापक ईश्वर की (**अष्टमी**) आठवीं (**पूष्णः**) पुष्टि करने वाले की (**नवमी**) नवमी (**त्वष्टुः**) उत्तम दिपते हुए की (**दशमी**) दशमी (**इन्द्रस्य**) जीव की (**एकादशी**) ग्यारहवीं (**वरुणस्य**) श्रेष्ठ जन की (**द्वादशी**) बारहवीं और (**यम्यै**) न्याय करने वाले की स्त्री के लिये (**त्रयोदशी**) तेरहवीं क्रिया है, उन सब को तथा (**द्यावापृथिव्योः**) प्रकाश और भूमि के (**दक्षिणम्**) दक्षिण (**पार्श्वम्**) ओर को और (**विश्वेषाम्**) सब (**देवानाम्**) विद्वानों के (**उत्तरम्**) उत्तर ओर को जानो॥५॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि इन उक्त पदार्थों के विशेष ज्ञान के लिये अनेक क्रियाओं को करके अपने-अपने कामों को सिद्ध करें॥५॥

मरुतामित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। मरुतादयो देवताः। निचृदतिधृतिश्छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

मरुताᳬं स्कन्धा विश्वेषां देवानां प्रथमा कीकसा रुद्राणां द्वितीयाऽऽदित्यानां तृतीया वायोः पुच्छमग्नीषोमयोर्भासदौ क्रुञ्चौ श्रोणिभ्यामिन्द्राबृहस्पतीऽऊरुभ्यां मित्रावरुणावल्गाभ्यामाक्रमणᳬं स्थूराभ्यां बलं कुष्ठाभ्याम्॥६॥

मरुताम्। स्कन्धाः। विश्वेषाम्। देवानाम्। प्रथमा। कीकसा। रुद्राणाम्। द्वितीया। आदित्यानाम्। तृतीया। वायोः। पुच्छम्। अग्नीषोमयोः। भासदौ। क्रुञ्चौ। श्रोणिभ्यामिति श्रोणिऽभ्याम्। इन्द्राबृहस्पती इतीन्द्राबृहस्पती। ऊरुभ्यामित्यूरुऽभ्याम्। मित्रावरुणौ। अल्गाभ्याम्। आक्रमणमित्याऽक्रमणम्। स्थूराभ्याम्। बलम्। कुष्ठाभ्याम्॥६॥

पदार्थः-(मरुताम्) मनुष्याणाम् **(स्कन्धाः)** भुजदण्डमूलानि **(विश्वेषाम्) (देवानाम्)** विदुषाम् **(प्रथमा)** आदिमा **(कीकसा)** भृशं शासनानि **(रुद्राणाम्) (द्वितीया)** ताडनक्रिया **(आदित्यानाम्)** अखण्डितन्यायाधीशानाम् **(तृतीया)** न्यायक्रिया **(वायोः) (पुच्छम्)** पशोरवयवम् **(अग्नीषोमयोः) (भासदौ)** यौ भासं प्रकाशं दद्यातां तौ **(क्रुञ्चौ)** पक्षिविशेषौ **(श्रोणिभ्याम्)** कटिप्रदेशाभ्याम् **(इन्द्राबृहस्पती)** वायुसूर्यौ **(ऊरुभ्याम्)** जानुन ऊर्ध्वाभ्यां पादावयवाभ्याम् **(मित्रावरुणौ)** प्राणोदानौ **(अल्गाभ्याम्)** अलं गन्तृभ्याम्। अत्र छान्दसो वर्णलोप इति टिलोपः **(आक्रमणम्) (स्थूराभ्याम्)** स्थूलाभ्याम्। अत्र कपिलकादित्वाल्लत्वविकल्पः **(बलम्) (कुष्ठाभ्याम्)** निष्कर्षाभ्याम्॥६॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! युष्माभिर्मरुतां स्कन्धा विश्वेषां देवानां प्रथमा कीकसा रुद्राणां द्वितीयाऽऽदित्यानां तृतीया वायोः पुच्छमग्नीषोमयोर्भासदौ क्रुञ्चौ श्रोणिभ्यामिन्द्राबृहस्पती ऊरुभ्यां मित्रावरुणावल्गाभ्यामाक्रमणं कुष्ठाभ्यां स्थूराभ्यां बलं च निष्पादनीयम्॥६॥

भावार्थः-मनुष्यैर्भुजबलं स्वाङ्गपुष्टिर्दुष्टताडनं न्यायप्रकाशादीनि च कर्माणि सदा कर्त्तव्यानि॥६॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम को **(मरुताम्)** मनुष्यों के **(स्कन्धाः)** कंधा **(विश्वेषाम्)** सब **(देवानाम्)** विद्वानों की **(प्रथमा)** पहिली क्रिया और **(कीकसा)** निरन्तर शिखावटें **(रुद्राणाम्)** रुलाने हारे विद्वानों की **(द्वितीया)** दूसरी ताड़नरूप क्रिया **(आदित्यानाम्)** अखण्डित न्याय करने वाले विद्वानों की **(तृतीया)** तीसरी न्यायक्रिया **(वायोः)** पवन सम्बन्धी **(पुच्छम्)** पशु की पूंछ अर्थात् जिससे पशु अपने शरीर को पवन देता **(अग्नीषोमयोः)** अग्नि और जल सम्बन्धी **(भासदौ)** जो प्रकाश को देवें वे **(क्रुञ्चौ)** कोई विशेष पक्षी वा सारस **(श्रोणिभ्याम्)** चूतड़ों से **(इन्द्राबृहस्पती)** पवन और सूर्य **(ऊरुभ्याम्)** जांघों से **(मित्रावरुणौ)** प्राण और उदान **(अल्गाभ्याम्)** परिपूर्ण चलने वाले प्राणियों से **(आक्रमणम्)** चाल तथा **(कुष्ठाभ्याम्)** निचोड़ और **(स्थूराभ्याम्)** स्थूल पदार्थों से **(बलम्)** बल को सिद्ध करना चाहिये॥६॥

भावार्थः-मनुष्यों को भुजाओं का बल, अपने अङ्ग की पुष्टि, दुष्टों को ताड़ना और न्याय का प्रकाश आदि काम सदा करने चाहियें॥६॥

पूषणमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। पूषादयो देवताः। निचृदष्टिश्छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनस्तेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

पूषणं वनिष्ठुनान्धाहीन्त्स्थूलगुदया सर्पान् गुदाभिर्विह्रुतऽआन्त्रैरपो वस्तिना वृषणमाण्डाभ्यां वाजिनꣳ शेपेन प्रजाꣳ रेतसा चाषान् पित्तेन प्रदरान् पायुना कूश्माञ्छकपिण्डैः॥७॥

पूषणम्। वनिष्ठुना। अन्धाहीनित्यन्धऽअहीन्। स्थूलगुदयेति स्थूलऽगुदया। सर्पान्। गुदाभिः। विह्रुत इति विऽह्रुतः। आन्त्रैः। अपः। वस्तिना। वृषणम्। आण्डाभ्याम्। वाजिनम्। शेपेन। प्रजामिति प्रऽजाम्। रेतसा। चाषान्। पित्तेन। प्रदरानिति प्रऽदरान्। पायुना। कूश्मान्। शकपिण्डैरिति शकऽपिण्डैः॥७॥

पदार्थः-(**पूषणम्**) पुष्टिकरम् (**वनिष्ठुना**) याचनेन (**अन्धाहीन्**) अन्धान् सर्पान् (**स्थूलगुदया**) स्थूलया गुदया सह (**सर्पान्**) (**गुदाभिः**) (**विह्रुतः**) विशेषेण कुटिलान् (**आन्त्रैः**) उदरस्थैर्नाडीविशेषैः (**अपः**) जलानि (**वस्तिना**) नाभेरधोभागेन (**वृषणम्**) वीर्याधारम् (**आण्डाभ्याम्**) अण्डाकाराभ्यां वृषणावयवाभ्याम् (**वाजिनम्**) अश्वम् (**शेपेन**) लिङ्गेन (**प्रजाम्**) सन्ततिम् (**रेतसा**) वीर्येण (**चाषान्**) भक्षणानि (**पित्तेन**) (**प्रदरान्**) उदरावयवान् (**पायुना**) एतदिन्द्रियेण (**कूश्मान्**) शासनानि। अत्र कशधातोर्मक्प्रत्ययोऽन्येषामपीति दीर्घश्च। (**शकपिण्डैः**) शक्तैः संघातैः॥७॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यूयं वनिष्ठुना पूषणं स्थूलगुदया सह वर्त्तमानानन्धाहीन् गुदाभिः सहितान् विह्रुतः सर्पानान्त्रैरपो वस्तिना वृषणमाण्डाभ्यां वाजिनं शेपेन रेतसा प्रजां पित्तेन चाषान् प्रदरान् पायुना शकपिण्डैः निगृह्णीत॥७॥

भावार्थः-येन येन यद्यत्कार्यं सिध्येत् तेन तेनाङ्गेन पदार्थेन वा तत्तत्साधनीयम्॥७॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम (**वनिष्ठुना**) मांगने से (**पूषणम्**) पुष्टि करने वाले को (**स्थूलगुदया**) स्थूल गुदेन्द्रिय के साथ वर्त्तमान (**अन्धाहीन्**) अन्धे सांपों को (**गुदाभिः**) गुदेन्द्रियों के साथ वर्त्तमान (**विह्रुतः**) विशेष कुटिल (**सर्पान्**) सर्पों को (**आन्त्रैः**) आंतों से (**अपः**) जलों को (**वस्तिना**) नाभि के नीचे के भाग से (**वृषणम्**) अण्डकोष को (**आण्डाभ्याम्**) आंडों से (**वाजिनम्**) घोड़ा को (**शेपेन**) लिङ्ग और (**रेतसा**) वीर्य से (**प्रजाम्**) सन्तान को (**पित्तेन**) पित्त से (**चाषान्**) भोजनों को (**प्रदरान्**) पेट के अङ्गों को (**पायुना**) गुदेन्द्रिय से और (**शकपिण्डैः**) शक्तियों से (**कूश्मान्**) शिखावटों को निरन्तर लेओ॥७॥

भावार्थः-जिस-जिस से जो-जो काम सिद्ध हो, उस-उस अङ्ग वा पदार्थ से वह-वह काम सिद्ध करना चाहिये॥७॥

इन्द्रस्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। इन्द्रादयो देवताः। निचृदभिकृतिश्छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

पुनः कस्य कस्य गुणाः पशुषु सन्तीत्याह॥

फिर किस-किस के गुण पशुओं में हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

इन्द्र॑स्य क्रो॒डोऽदि॑त्यै पाज॒स्यं॑ दि॒शां ज॒त्रवोऽदि॑त्यै भ॒सज्जी॒मूता॑न् हृदयौप॒शेना॒न्तरि॑क्षं पुरी॒तता॒ नभ॑ऽउद॒र्ये॒ण चक्रवा॒कौ मत॑स्नाभ्यां दिवं॑ वृ॒क्काभ्यां॑ गि॒रीन् प्ला॒शिभि॒रुप॑लान् प्ली॒ह्ना व॒ल्मीका॑न् क्लो॒मभि॑र्ग्लौ॒भिर्गुल्मा॑न् हि॒राभिः॒ स्रव॑न्तीर्ह्र॒दान् कु॒क्षिभ्या॑ᳪं समु॒द्रमु॒दरे॑ण वैश्वान॒रं भस्म॑ना॥८॥

इन्द्र॑स्य। क्रो॒डः। अदि॑त्यै। पा॒ज॒स्य॒म्। दि॒शाम्। ज॒त्रव॑ः। अदि॑त्यै। भ॒सत्। जी॒मूता॑न्। हृ॒द॒यौ॒प॒शेने॑। अ॒न्तरि॑क्षम्। पु॒री॒तता॑। पु॒रि॒ततेति॑ पुरि॒ऽतता॑। नभ॑ः। उ॒द॒र्ये॒ण। च॒क्र॒वा॒काविति॑ चक्रऽवा॒कौ। मत॑स्नाभ्याम्। दिव॑म्। वृ॒क्काभ्या॑म्। गि॒रीन्। प्ला॒शिभि॒रिति॑ प्ला॒शिऽभि॑ः। उप॑लान्। प्ली॒ह्ना। व॒ल्मीका॑न्। क्लो॒मभि॒रिति॑ क्लो॒मऽभि॑ः। ग्लौ॒भिः। गु॒ल्मा॑न्। हि॒राभि॑ः। स्रव॑न्तीः। ह्र॒दान्। कु॒क्षिभ्या॒मिति॑ कु॒क्षिऽभ्या॑म्। स॒मु॒द्रम्। उ॒दरे॑ण। वै॒श्वा॒न॒रम्। भस्म॑ना॥८॥

पदार्थः-(**इन्द्रस्य**) विद्युतः (**क्रोडः**) निमज्जनम् (**अदित्यै**) पृथिव्यै (**पाजस्यम्**) पाजस्वन्नेषु साधु (**दिशाम्**) (**जत्रवः**) सन्धयः (**अदित्यै**) दिवे प्रकाशाय। अदितिर्द्यौरिति प्रमाणात् (**भसत्**) दीपनम् (**जीमूतान्**) मेघान् अत्र **जेर्मूट् चोदात्तः** [अ०३.९१] इत्यनेनायं सिद्धः। (**हृदयौपशेन**) यो हृदये आसमन्तादुपशेते स हृदयौपशो जीवस्तेन (**अन्तरिक्षम्**) अवकाशम् (**पुरीतता**) हृदयस्थया नाड्या (**नभः**) उदकम् (**उदर्येण**) उदरे भवेन (**चक्रवाकौ**) पक्षिविशेषाविव (**मतस्नाभ्याम्**) ग्रीवोभयभागाभ्याम् (**दिवम्**) प्रकाशम् (**वृक्काभ्याम्**) याभ्यां वर्जन्ति ताभ्याम् (**गिरीन्**) शैलान् (**प्लाशिभिः**) प्रकर्षेणाशनक्रियाभिः (**उपलान्**) मेघान्। **उपल इति मेघनामसु पठितम्॥** (निघं०१।१०) (**प्लीह्ना**) हृदयस्थावयवेन (**वल्मीकान्**) मार्गान् (**क्लोमभिः**) क्लेदनैः (**ग्लौभिः**) हर्षक्षयैः (**गुल्मान्**) दक्षिणपार्श्वोदरस्थितान् (**हिराभिः**) वृद्धिभिः (**स्रवन्तीः**) नदीः (**ह्रदान्**) जलाशयान् (**कुक्षिभ्याम्**) (**समुद्रम्**) (**उदरेण**) (**वैश्वानरम्**) सर्वेषां प्रकाशकम् (**भस्मना**) दग्धशेषेण निस्सारेण॥८॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! युष्माभिः प्रयत्नेनेन्द्रस्य क्रोडोऽदित्यै पाजस्यं दिशां जत्रवोऽदित्यै भसच्च विज्ञेयाः। जीमूतान् हृदयौपशेन पुरीतताऽन्तरिक्षमुदर्येण नभश्चक्रवाकौ मतस्नाभ्यां दिवं वृक्काभ्यां गिरीन् प्लाशिभिरुपलान् प्लीह्ना वल्मीकान् क्लोमभिर्ग्लौभिश्च गुल्मान् हिराभिः स्रवन्तीर्ह्रदान् कुक्षिभ्यां समुद्रमुदरेण भस्मना च वैश्वानरं यूयं विजानीत॥८॥

भावार्थः-यदि मनुष्या अनेकान् विद्याबोधान् प्राप्य युक्ताहारविहारैः सर्वाण्यङ्गानि संपोष्य रोगान्निवारयेयुस्तर्हि ते धर्मार्थकाममोक्षानाप्नुयुः॥८॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम को उत्तम यत्न के साथ (**इन्द्रस्य**) बिजुली का (**क्रोडः**) डूबना (**अदित्यै**) पृथिवी के लिये (**पाजस्यम्**) अन्नों में जो उत्तम वह (**दिशाम्**) दिशाओं की (**जत्रवः**) सन्धि अर्थात् उनका

एक-दूसरे से मिलना **(अदित्यै)** अखण्डित प्रकाश के लिये **(भसत्)** लपट ये सब पदार्थ जानने चाहियें तथा **(जीमूतान्)** मेघों को **(हृदयौपशेन)** जो हृदय में सोता है, उस जीव से **(पुरीतता)** हृदयस्थ नाड़ी से **(अन्तरिक्षम्)** हृदय के अवकाश को **(उदर्येण)** उदर में होते हुए व्यवहार से **(नभः)** जल और **(चक्रवाकौ)** चकई-चकवा पक्षियों के समान जो पदार्थ उन को **(मतस्नाभ्याम्)** गले के दोनों ओर के भागों से **(दिवम्)** प्रकाश को **(वृक्काभ्याम्)** जिन क्रियाओं से अवगुणों का त्याग होता है, उनसे **(गिरीन्)** पर्वतों को **(प्लाशिभिः)** उत्तम भोजन आदि क्रियाओं से **(उपलान्)** दूसरे प्रकार के मेघों को **(प्लीह्ना)** हृदयस्थ प्लीहा अङ्ग से **(वल्मीकान्)** मार्गों को **(क्लोमभिः)** गीलेपन और **(ग्लौभिः)** हर्ष तथा ग्लानियों से **(गुल्मान्)** दाहिनी ओर उदर में स्थित जो पदार्थ उनको **(हिराभिः)** बढ़तियों से **(स्रवन्तीः)** नदियों को **(ह्रदान्)** छोटे-बड़े जलाशयों को **(कुक्षिभ्याम्)** कोखों से **(समुद्रम्)** अच्छे प्रकार जहां जल जाता उस समुद्र को **(उदरेण)** पेट और **(भस्मना)** जले हुए पदार्थ का जो शेषभाग उस राख से **(वैश्वानरम्)** सब के प्रकाश करने हारे अग्नि को तुम लोग जानो॥८॥

भावार्थः-जो मनुष्य अनेक विद्याबोधों को प्राप्त होकर ठीक-ठीक यथोचित आहार और विहारों से सब अङ्गों को अच्छे प्रकार पुष्ट कर रोगों की निवृत्ति करें तो वे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को अच्छे प्रकार प्राप्त होवें॥८॥

विधृतिमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। पूषादयो देवताः। भुरिगत्यष्टिश्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनः केन किं भवतीत्याह॥

फिर किससे क्या होता है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

विधृ॑तिं नाभ्या॑ घृतꣳरसे॑नापो यू॒ष्णा मरी॑चीर्वि॒प्रुड्भि॑र्नीहा॒रमू॒ष्मणा॑ शी॒नं वस॑या प्रुष्वा॒ऽअश्रु॑भिर्ह्रा॒दुनी॑र्दू॒षीका॑भिर॒स्ना रक्षा॑ꣳसि चि॒त्राण्यङ्गै॒र्नक्ष॑त्राणि रू॒पेण॑ पृथि॒वीं त्व॒चा जु॒म्ब॒काय॒ स्वाहा॑॥९॥

विधृ॑ति॒मिति॒ वि॒ऽधृ॑तिम्। नाभ्या॑। घृ॒तम्। रसे॑न। अ॒पः। यू॒ष्णा। मरी॑चीः। वि॒प्रुड्भि॒रिति॑ वि॒प्रुट्ऽभिः॑। नी॒हा॒रम्। ऊ॒ष्मणा॑। शी॒नम्। वस॑या। प्रु॒ष्वाः॑। अश्रु॑भि॒रित्यश्रु॑ऽभिः। ह्रा॒दुनीः॑। दू॒षीका॑भिः। अ॒स्ना। रक्षा॑ꣳसि। चि॒त्राणि॑। अङ्गैः॑। नक्ष॑त्राणि। रू॒पेण॑। पृ॒थि॒वीम्। त्व॒चा। जु॒म्ब॒काय॑। स्वाहा॑॥९॥

पदार्थः-**(विधृतिम्)** विशेषेण धारणाम् **(नाभ्या)** शरीरस्य मध्यावयवेन **(घृतम्)** आज्यम् **(रसेन)** **(अपः)** जलानि **(यूष्णा)** क्वथितेन रसेन **(मरीचीः)** किरणान् **(विप्रुड्भिः)** विशेषेण पूर्णैः **(नीहारम्)** प्रभातसमये सोमवद्वर्त्तमानम् **(ऊष्मणा)** उष्णतया **(शीनम्)** संकुचितं घृतम् **(वसया)** निवासहेतुना जीवनेन **(प्रुष्वाः)** पुष्णन्ति सिञ्चन्ति याभिस्ताः **(अश्रुभिः)** रोदनैः **(ह्रादुनीः)** शब्दानामव्यक्तोच्चारणक्रियाः **(दूषीकाभिः)** विक्रियाभिः **(अस्ना)** रुधिराणि **(रक्षांसि)** पालयितव्यानि **(चित्राणि)** अद्भुतानि **(अङ्गैः)**

अवयवैः **(नक्षत्राणि)** **(रूपेण)** **(पृथिवीम्)** भूमिम् **(त्वचा)** मांसरुधिरादीनां संवरकेणेन्द्रियेण **(जुम्बकाय)** अतिवेगवते **(स्वाहा)** सत्यां सत्यां वाचम्॥९॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यूयं नाभ्या विधृतिं घृतं रसेनापो यूष्णा मरीचीर्विप्रुड्भिर्नीहारमूष्मणा शीनं वसया प्रुष्वा अश्रुभिर्ह्रादुनीर्दूषीकाभिश्चित्राणि रक्षांस्यनाङ्गैः रूपेण नक्षत्राणि त्वचा पृथिवीं विदित्वा जुम्बकाय स्वाहा प्रयुङ्ग्ध्वम्॥९॥

भावार्थः-मनुष्यैर्धारणादिभिः कर्मभिर्दुर्व्यसनानि रोगाँश्च निवार्य्य सत्यभाषणादिधर्मलक्षणानि विचार्य्य प्रवर्त्तनीयम्॥९॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम लोग **(नाभ्या)** नाभि से **(विधृतिम्)** विशेष करके धारण को **(घृतम्)** घी को **(रसेन)** रस से **(अपः)** जलों को **(यूष्णा)** क्वाथ किये रस से **(मरीचीः)** किरणों को **(विप्रुड्भिः)** विशेषकर पूरण पदार्थों से **(नीहारम्)** कुहर को **(ऊष्मणा)** गरमी से **(शीनम्)** जमे हुए घी को **(वसया)** निवासहेतु जीवन से **(प्रुष्वाः)** जिनसे सींचते हैं, उन क्रियाओं को **(अश्रुभिः)** आंसुओं से **(ह्रादुनीः)** शब्दों की अप्रकट उच्चारण-क्रियाओं को **(दूषीकाभिः)** विकाररूप क्रियाओं से **(चित्राणि)** चित्र-विचित्र **(रक्षांसि)** पालना करने योग्य **(अस्ना)** रुधिरादि पदार्थों को **(अङ्गैः)** अङ्गों और **(रूपेण)** रूप से **(नक्षत्राणि)** तारागणों को और **(त्वचा)** मांस रुधिर आदि को ढांपने वाली खाल आदि से **(पृथिवीम्)** पृथिवी को जानकर **(जुम्बकाय)** अतिवेगवान् के लिये **(स्वाहा)** सत्य वाणी का प्रयोग अर्थात् उच्चारण करो॥९॥

भावार्थः-मनुष्यों को धारणा आदि क्रियाओं से खोटे आचरण और रोगों की निवृत्ति और सत्यभाषण आदि धर्म के लक्षणों का विचार कर प्रवृत्त करना चाहिये॥९॥

हिरण्यगर्भ इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। हिरण्यगर्भो देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ परमात्मा कीदृशोऽस्तीत्याह॥

अब परमात्मा कैसा है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

हि॒र॒ण्य॒ग॒र्भः सम॑वर्त्त॒ताग्रे॑ भू॒तस्य॑ जा॒तः पति॒रेक॑ऽआसीत्।
स दा॑धार पृथि॒वीं द्यामु॒तेमां कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम॥१०॥

हि॒र॒ण्य॒ग॒र्भ इति॑ हिरण्यऽग॒र्भः। सम्। अ॒व॒र्त्त॒त॒। अग्रे॑। भू॒तस्य॑। जा॒तः। पति॑ः। एक॑ः। आ॒सी॒त्। सः। दा॒धा॒र॒। पृ॒थि॒वीम्। द्याम्। उ॒त। इ॒माम्। कस्मै॑। दे॒वाय॑। ह॒विषा॑। वि॒धे॒म॒॥१०॥

पदार्थः-**(हिरण्यगर्भः)** हिरण्यानि सूर्यादितेजांसि गर्भे यस्य स परमात्मा **(सम्)** **(अवर्त्तत)** वर्त्तमान आसीत् **(अग्रे)** भूम्यादिसृष्टेः प्राक् **(भूतस्य)** उत्पन्नस्य **(जातः)** प्रादूर्भूतस्य। अत्र षष्ठ्यर्थे प्रथमा। **(पतिः)** पालकः **(एकः)** असहायः **(आसीत्)** अस्ति **(सः)** **(दाधार)** धरति **(पृथिवीम्)** आकर्षणेन भूमिम् **(द्याम्)**

प्रकाशम् **(उत)** अपि **(इमाम्)** सृष्टिम् **(कस्मै)** सुखकारकाय **(देवाय)** द्योतमानाय **(हविषा)** होतव्येन पदार्थेन **(विधेम)** परिचरेम॥१०॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा वयं यो हिरण्यगर्भो जातो जातस्य भूतस्यैकोऽग्रे पतिरासीत् सर्वप्रकाशेऽवर्त्तत स पृथिवीमुत द्यां संदाधार। य इमां सृष्टिं कृतवाँस्तस्मै कस्मै देवाय परमेश्वराय हविषा विधेम तथा यूयमपि विधत्त॥१०॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे मनुष्याः! येन परमेश्वरेण सूर्यादि सर्वं जगन्निर्मितं स्वसामर्थ्येन धृतं च तस्यैवोपासनां कुरुत॥१०॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे हम लोग जो **(हिरण्यगर्भः)** सूर्यादि तेज वाले पदार्थ जिसके भीतर हैं, वह परमात्मा **(जातः)** प्रादुर्भूत और **(भूतस्य)** उत्पन्न हुए जगत् का **(एकः)** असहाय एक **(अग्रे)** भूमि आदि सृष्टि से पहिले भी **(पतिः)** पालन करने हारा **(आसीत्)** है और सब का प्रकाश करने वाला **(अवर्त्तत)** वर्त्तमान हुआ **(सः)** वह **(पृथिवीम्)** अपनी आकर्षण शक्ति से पृथिवी **(उत)** और **(द्याम्)** प्रकाश को **(सम् दाधार)** अच्छे प्रकार धारण करता है तथा जो **(इमाम्)** इस सृष्टि को बनाता हुआ अर्थात् जिसने सृष्टि की उस **(कस्मै)** सुख करने हारे **(देवाय)** प्रकाशमान परमात्मा के लिये **(हविषा)** होम करने योग्य पदार्थ से **(विधेम)** सेवन का विधान करें, वैसे तुम लोग भी सेवन का विधान करो॥१०॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जिस परमात्मा ने अपने सामर्थ्य से सूर्य आदि समस्त जगत् को बनाया और धारण किया है, उसी की उपासना किया करो॥१०॥

यः प्राणत इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। ईश्वरो देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यः प्रा॑ण॒तो नि॑मिष॒तो म॑हि॒त्वैक॒ऽइद्राजा॒ जग॑तो ब॒भूव॑।

य ईशे॑ऽअ॒स्य द्वि॒पद॒श्चतु॑ष्पद॒: कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम॥११॥

यः। प्रा॒ण॒तः। नि॒मि॒ष॒त इति॑ निऽमिष॒तः। म॒हि॒त्वेति॑ महि॒ऽत्वा। एक॑ः। इत्। राजा॑। जग॑तः। ब॒भूव॑। यः। ईशे॑। अ॒स्य। द्वि॒पद॒ इति॑ द्वि॒ऽपद॑ः। चतु॑ष्पदः। चतु॑ःपद॒ इति॑ चतु॑ःऽपदः। कस्मै॑। दे॒वाय॑। ह॒विषा॑। वि॒धे॒म॒॥११॥

पदार्थः-**(यः)** सूर्यः **(प्राणतः)** प्राणिनः **(निमिषतः)** चेष्टां कुर्वतः **(महित्वा)** महत्त्वेन **(एकः)** असहायः **(इत्)** एव **(राजा)** प्रकाशकः **(जगतः)** संसारस्य **(बभूव)** भवति **(यः)** **(ईशे)** ऐश्वर्यं करोति **(अस्य)** **(द्विपदः)** द्वौ पादौ यस्य तस्य मनुष्यादेः **(चतुष्पदः)** चत्वारः पादा यस्य गवादेस्तस्य **(कस्मै)** सुखकारकाय **(देवाय)** दीपकाय **(हविषा)** आदानेन **(विधेम)** सेवेमहि॥११॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा वयं यः प्राणतो निमिषतो जगतो महित्वैक इद्राजा बभूव। योऽस्य द्विपदश्चतुष्पद ईशे तस्मै कस्मै देवाय हविषा विधेम तथा यूयमप्यनुतिष्ठत॥११॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यदि सूर्यो न स्यात् तर्हि स्थावरं जङ्गमं च जगत्स्वकार्यं कर्त्तुमसमर्थं स्यात्। यः सर्वेभ्यो महान् सर्वेषां प्रकाशक ऐश्वर्यप्राप्तिहेतुरस्ति स सर्वैर्युक्त्या सेवनीयः॥११॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे हम लोग **(यः)** जो सूर्य **(प्राणतः)** श्वास लेते हुए प्राणी और **(निमिषतः)** चेष्टा करते हुए **(जगतः)** संसार का **(महित्वा)** बड़ेपन से **(एकः)** असहाय एक **(इत्)** ही **(राजा)** प्रकाश करने वाला **(बभूव)** होता है **(यः)** तथा जो **(अस्य)** इस **(द्विपदः)** दो-दो पग वाले मनुष्यादि और **(चतुष्पदः)** चार-चार पग वाले गौ आदि पशुरूप जगत् का **(ईशे)** प्रकाश करता है, उस **(कस्मै)** सुख करने हारे **(देवाय)** प्रकाशक जगदीश्वर के लिये **(हविषा)** ग्रहण करने योग्य पदार्थ वा व्यवहार से **(विधेम)** सेवन करें, वैसे तुम लोग भी अनुष्ठान किया करो॥११॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो सूर्य न हो तो स्थावर वृक्ष आदि और जङ्गम मनुष्यादि जगत् अपना-अपना काम देने को समर्थ न हो। जो सब से बड़ा, सब का प्रकाश करने वाला और ऐश्वर्य की प्राप्ति का हेतु है, वह ईश्वर सब को युक्ति के साथ सेवने योग्य है॥११॥

यस्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। ईश्वरो देवता। स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनः सूर्यवर्णनविषयमाह॥

फिर सूर्य के वर्णन विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यस्ये॒मे हि॒मव॑न्तो महि॒त्वा यस्य॑ समु॒द्रꣳ र॒सया॑ स॒हाहुः।

यस्ये॒माः प्र॒दिशो॒ यस्य॑ बा॒हू कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम॥॥१२॥

यस्य॑। इ॒मे। हि॒मव॑न्त॒ इति॑ हि॒मऽव॑न्तः। म॒हि॒त्वेति॑ महि॒ऽत्वा। यस्य॑। स॒मु॒द्रम्। र॒सया॑। स॒ह। आ॒हुः। यस्य॑। इ॒माः। प्र॒दिश॒ इति॑, प्र॒ऽदिशः॑। यस्य॑। बा॒हू इति॑ बा॒हू। कस्मै॑। दे॒वाय॑। ह॒विषा॑। वि॒धे॒म॥१२॥

पदार्थः-**(यस्य)** **(इमे)** **(हिमवन्तः)** हिमालयादयः पर्वताः **(महित्वा)** महत्त्वेन **(यस्य)** **(समुद्रम्)** अन्तरिक्षम् **(रसया)** स्नेहनेन **(सह)** **(आहुः)** कथयन्ति **(यस्य)** **(इमाः)** **(प्रदिशः)** दिशो विदिशश्च **(यस्य)** **(बाहू)** भुजवद्वर्त्तमानाः **(कस्मै)** सुखरूपाय **(देवाय)** कमनीयाय **(हविषा)** हवनयोग्येन पदार्थेन **(विधेम)** परिचरेम॥१२॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यस्य सूर्यस्य महित्वा महत्त्वेनेमे हिमवन्त आकर्षिताः सन्ति, यस्य रसया सह समुद्रमाहुर्यस्येमा दिशो यस्य प्रदिशश्च बाहू इवाहुस्तस्मै कस्मै देवाय हविषा वयं विधेम, एवं यूयमपि विधत्त॥१२॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यः सर्वेभ्यो महान् सर्वप्रकाशकः सर्वेभ्यो रसस्य हर्त्ता यस्य प्रतापेन दिशामुपदिशां च विभागो भवति, स सवितृलोको युक्त्या सेवितव्यः॥१२॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! **(यस्य)** जिस सूर्य के **(महित्वा)** बड़ेपन से **(इमे)** ये **(हिमवन्तः)** हिमालय आदि पर्वत आकर्षित और प्रकाशित हैं, **(यस्य)** जिस के **(रसया)** स्नेह के **(सह)** साथ **(समुद्रम्)** अच्छे प्रकार जिस में जल ठहरते हैं, उस अन्तरिक्ष को **(आहुः)** कहते हैं तथा **(यस्य)** जिस की **(इमाः)** इन दिशा और **(यस्य)** जिसकी **(प्रदिशः)** विदिशाओं को **(बाहू)** भुजाओं के समान वर्त्तमान कहते हैं, उस **(कस्मै)** सुखरूप **(देवाय)** मनोहर सूर्यमण्डल के लिये **(हविषा)** होम करने योग्य पदार्थ से हम लोग **(विधेम)** सेवन का विधान करें, ऐसे ही तुम भी विधान करो॥१२॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जो सब से बड़ा, सब का प्रकाश करने और सब पदार्थों से रस का लेने हारा, जिस के प्रताप से दिशा और विदिशाओं का विभाग होता है, वह सूर्य्यलोक युक्ति के साथ सेवन करने योग्य है॥१२॥

य आत्मदा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। परमात्मा देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनरुपासित ईश्वरः किं ददातीत्याह॥

फिर उपासना किया ईश्वर क्या देता है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यऽआ॑त्म॒दा ब॑ल॒दा यस्य॒ विश्व॑ऽउ॒पास॑ते प्र॒शिषं॒ यस्य॑ दे॒वाः।

यस्य॑ छा॒याऽमृत॒ं यस्य॑ मृ॒त्युः कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम॥ १३॥

यः। आ॒त्म॒दा। इत्या॑त्म॒ऽदाः। ब॒ल॒दा इति॑ बल॒ऽदाः। यस्य॑। विश्वे॑। उ॒पास॑त॒ इत्यु॑प॒ऽआस॑ते। प्र॒शिष॒मिति॑ प्र॒ऽशिष॑म्। यस्य॑। दे॒वाः। यस्य॑। छा॒या। अ॒मृत॑म्। यस्य॑। मृ॒त्युः। कस्मै॑। दे॒वाय॑। ह॒विषा॑। वि॒धे॒म॥ १३॥

पदार्थः-**(यः)** **(आत्मदाः)** य आत्मानं ददाति सः **(बलदाः)** यो बलं ददाति सः **(यस्य)** **(विश्वे)** **(उपासते)** **(प्रशिषम्)** प्रशासनम् **(यस्य)** **(देवाः)** विद्वांसः **(यस्य)** **(छाया)** आश्रयः **(अमृतम्)** **(यस्य)** **(मृत्युः)** **(कस्मै)** **(देवाय)** **(हविषा)** **(विधेम)**॥ **१३॥**

अन्वयः-हे मनुष्याः! य आत्मदा बलदा यस्य प्रशिषं विश्वे देवा उपासते, यस्य सकाशात् सर्वे व्यवहारा जायन्ते, यस्यच्छायाऽमृतं यस्याज्ञाभङ्गो मृत्युस्तस्मै कस्मै देवाय वयं हविषा विधेम॥१३॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यस्य जगदीश्वरस्य प्रशासने कृतायां मर्यादायां सूर्यादयो लोका नियमेन वर्त्तन्ते, सूर्येण विना वर्षा आयुः क्षयश्च न जायते, स येन निर्मितस्तस्यैवोपासनां सर्वे मिलित्वा कुर्वन्तु॥१३॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! **(यः)** जो **(आत्मदाः)** आत्मा को देने और **(बलदाः)** बल देने वाला **(यस्य)** जिस की **(प्रशिषम्)** उत्तम शिक्षा को **(विश्वे)** समस्त **(देवाः)** विद्वान् लोग **(उपासते)** सेवते **(यस्य)**

जिसके समीप से सब व्यवहार उत्पन्न होते **(यस्य)** जिस का **(छाया)** आश्रय **(अमृतम्)** अमृतस्वरूप और **(यस्य)** जिसकी आज्ञा का भंग **(मृत्युः)** मरण के तुल्य है, उस **(कस्मै)** सुखरूप **(देवाय)** स्तुति के योग्य परमात्मा के लिये हम लोग **(हविषा)** होमने के पदार्थ से **(विधेम)** सेवा का विधान करें॥१३॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जिस जगदीश्वर की उत्तम शिक्षा में की हुई मर्यादा में सूर्य आदि लोक नियम के साथ वर्त्तमान हैं, जिस सूर्य के विना जल की वर्षा और अवस्था का नाश नहीं होता, वह सवितृमण्डल जिसने बनाया है, उसी की उपासना सब मिलकर करें॥१३॥

आ न इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। यज्ञो देवता। निचृज्जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनर्मनुष्यैः किमेष्टव्यमित्याह॥

फिर मनुष्यों को किस की इच्छा करनी चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आ नो॑ भ॒द्राः क्रत॑वो यन्तु वि॒श्वतोऽद॑ब्धासो॒ऽअप॑रीतासऽउ॒द्भिद॑ः।

दे॒वा नो॒ यथा॒ सद॒मिद् वृ॒धेऽअस॒न्नप्रा॑युवो रक्षि॒तारो॑ दि॒वेदि॑वे॥१४॥

आ। न॒ः। भ॒द्राः। क्रत॑वः। य॒न्तु। वि॒श्वत॑ः। अद॑ब्धासः। अप॑रीतास॒ इत्यप॑रिऽइतासः। उ॒द्भिद॒ इत्यु॒त्ऽभिद॑ः। दे॒वाः। न॒ः। यथा॑। सद॑म्। इत्। वृ॒धे। अस॑न्। अप्रा॑युव॒ इत्यप्र॑ऽआयुवः। र॒क्षि॒तार॑ः। दि॒वेदि॑व॒ऽइति॑ दि॒वेदि॑वे॥१४॥

पदार्थः-**(आ)** **(नः)** अस्मान् **(भद्राः)** कल्याणकराः **(क्रतवः)** यज्ञाः प्रज्ञा वा **(यन्तु)** प्राप्नुवन्तु **(विश्वतः)** सर्वतः **(अदब्धासः)** अहिंसिताः **(अपरीतासः)** अन्यैरव्याप्ताः **(उद्भिदः)** य उद्भिन्दन्ति **(देवाः)** पृथिव्यादय इव विद्वांसः **(नः)** अस्माकम् **(यथा)** **(सदम्)** सीदन्ति प्राप्नुवन्ति यस्यां ताम् **(इत्)** एव **(वृधे)** वृद्धये **(असन्)** भवन्तु **(अप्रायुवः)** अनष्टायुषः **(रक्षितारः)** रक्षकाः **(दिवेदिवे)** प्रतिदिनम्॥१४॥

अन्वयः-हे विद्वांसो! यथा नोस्माऽन् विश्वतो भद्रा अदब्धासोऽपरीतास उद्भिदः क्रतव आ यन्तु, यथा नः सदं प्राप्ता अप्रायुवो देवा इद् दिवेदिवे वृधे रक्षितारोऽसन् तथाऽनुतिष्ठन्तु॥१४॥

भावार्थः-सर्वैर्मनुष्यैः परमेश्वरस्य विज्ञानाद् विदुषां सङ्गेन पुष्कलाः प्रज्ञाः प्राप्य सर्वतो धर्ममाचर्य नित्यं सर्वेषां रक्षकैर्भवितव्यम्॥१४॥

पदार्थः-हे विद्वानो! जैसे **(नः)** हम लोगों को **(विश्वतः)** सब ओर से **(भद्राः)** कल्याण करने वाले **(अदब्धासः)** जो विनाश को न प्राप्त हुए **(अपरीतासः)** औरों ने जो न व्याप्त किये अर्थात् सब कामों से उत्तम **(उद्भिदः)** जो दुःखों को विनाश करते वे **(क्रतवः)** यज्ञ वा बुद्धि बल **(आ, यन्तु)** अच्छे प्रकार प्राप्त हों **(यथा)** जैसे **(नः)** हम लोगों की **(सदम्)** उस सभा को कि जिसमें स्थित होते हैं, प्राप्त हुए **(अप्रायुवः)** जिन की अवस्था नष्ट नहीं होती, वे **(देवाः)** पृथिवी आदि पदार्थों के समान विद्वान् जन **(इत्)** ही **(दिवेदिवे)** प्रतिदिन **(वृधे)** वृद्धि के लिये **(रक्षितारः)** पालना करने वाले **(असन्)** हों, वैसा आचरण करो॥१४॥

भावार्थः-सब मनुष्यों को परमेश्वर के विज्ञान और विद्वानों के संग से बहुत बुद्धियों को प्राप्त होकर सब ओर से धर्म का आचरण कर नित्य सब की रक्षा करनेवाले होना चाहिये॥१४॥

देवानामित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। विद्वांसो देवताः। जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

दे॒वानां॑ भ॒द्रा सु॑म॒तिर्ऋ॑जूय॒तां दे॒वाना॑ᳫं रा॒तिर॒भि नो॒ निव॑र्त्तताम्।

दे॒वाना॑ᳫं स॒ख्यमुप॑सेदिमा व॒यं दे॒वा न॒ऽआयुः॒ प्रति॑रन्तु जी॒वसे॑॥१५॥

दे॒वाना॑म्। भ॒द्रा। सु॒म॒तिरिति॑ सुऽम॒तिः। ऋ॒जू॒य॒ताम्। ऋ॒जु॒य॒तामित्यृ॑जुऽय॒ताम्। दे॒वाना॑म्। रा॒तिः। अ॒भि। न॒ः। नि। व॒र्त्त॒ता॒म्। दे॒वाना॑म्। स॒ख्यम्। उप॑। से॒दि॒म॒। आ। व॒यम्। दे॒वाः। न॒ः। आयु॑ः। प्र। ति॒र॒न्तु॒। जी॒वसे॑॥१५॥

पदार्थः-(**देवानाम्**) विदुषाम् (**भद्रा**) कल्याणकारी (**सुमतिः**) शोभना प्रज्ञा (**ऋजूयताम्**) सरलीकुर्वताम् (**देवानाम्**) दातॄणाम् (**रातिः**) विद्यादिदानम् (**अभि**) सर्वतः (**नः**) अस्मान् (**नि**) (**वर्त्तताम्**) (**देवानाम्**) विदुषाम् (**सख्यम्**) मित्रत्वम् (**उप**) (**सेदिम**) प्राप्नुयाम (**आ**) (**वयम्**) (**देवाः**) विद्वांसः (**नः**) अस्माकम् (**आयुः**) प्राणधारणम् (**प्र**) (**तिरन्तु**) पूर्णं भोजयन्तु (**जीवसे**) जीवितुम्॥१५॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा देवानां भद्रा सुमतिरस्मानृजूयतां देवानां रातिर्नोऽस्मानभिनिवर्त्ततां वयं देवानां सख्यमुपासेदिम देवा नो जीवस आयुः प्रतिरन्तु तथा युष्मान् प्रतिवर्त्तन्ताम्॥१५॥

भावार्थः-सर्वैर्मनुष्यैराप्तानां विदुषां सकाशात् प्रज्ञाः प्राप्य ब्रह्मचर्येणायुः संवर्ध्य सदैव धार्मिकैः सह मित्रता रक्षणीया॥१५॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे (**देवानाम्**) विद्वानों की (**भद्रा**) कल्याण करने वाली (**सुमतिः**) उत्तम बुद्धि हम लोगों को और (**ऋजूयताम्**) कठिन विषयों को सरल करते हुए (**देवानाम्**) देने वाले विद्वानों का (**रातिः**) विद्या आदि पदार्थों का देना (**नः**) हम लोगों को (**अभि, नि, वर्त्तताम्**) सब ओर से सिद्ध करे, सब गुणों से पूर्ण करे (**वयम्**) हम लोग (**देवानाम्**) विद्वानों की (**सख्यम्**) मित्रता को (**उपा, सेदिम**) अच्छे प्रकार पावें (**देवाः**) विद्वान् (**नः**) हम को (**जीवसे**) जीने के लिये (**आयुः**) जिस से प्राण का धारण होता, उस आयुर्दा को (**प्र, तिरन्तु**) पूरी भुगावें, वैसे तुम्हारे प्रति वर्त्ताव रक्खें॥१५॥

भावार्थः-सब मनुष्यों को चाहिये कि पूर्ण शास्त्रवेत्ता विद्वानों के समीप से उत्तम बुद्धियों को पाकर ब्रह्मचर्य आश्रम से आयु को बढ़ा के सदैव धार्मिक जनों के साथ मित्रता रक्खें॥१५॥

तान्पूर्वयेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

तान् पूर्वया निविदा हूमहे वयं भगं मित्रमदितिं दक्षमस्त्रिधम्।
अर्यमणं वरुणꣳ सोममश्विना सरस्वती नः सुभगा मयस्करत्॥१६॥

तान्। पूर्वया। निविदेति निऽविदा। हूमहे। वयम्। भगम्। मित्रम्। अदितिम्। दक्षम्। अस्त्रिधम्। अर्यमणम्। वरुणम्। सोमम्। अश्विना। सरस्वती। नः। सुभगेति सुऽभगा। मयः। करत्॥१६॥

पदार्थः-(**तान्**) पूर्वोक्तान् (**पूर्वया**) पूर्वैः स्वीकृतया (**निविदा**) वेदवाचा। **निविदिति वाङ्नामसु पठितम्॥** (निघं०१।११) (**हूमहे**) स्पर्द्धेमहि (**वयम्**) (**भगम्**) ऐश्वर्यकारकम् (**मित्रम्**) सर्वस्य सुहृदम् (**अदितिम्**) अखण्डितप्रज्ञम् (**दक्षम्**) चतुरम् (**अस्त्रिधम्**) अहिंसनीयम् (**अर्यमणम्**) प्रजायाः पालकम् (**वरुणम्**) श्रेष्ठम् (**सोमम्**) ऐश्वर्यवन्तम् (**अश्विना**) अध्यापकोपदेशकौ (**सरस्वती**) सर्वविद्यायुक्ता (**नः**) अस्मभ्यम् (**सुभगा**) सुष्ठ्वैश्वर्या (**मयः**) सुखम् (**करत्**) कुर्यात्॥१६॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा वयं पूर्वया निविदा दक्षमर्यमणमस्त्रिधं भगं मित्रमदितिं वरुणं सोममश्विना हूमहे यथा सुभगा सरस्वती नो युष्मभ्यं च मयस्करत् तथा तान् यूयमप्याह्वयत कुरुत च॥१६॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैर्यद्यद्वेदोक्तं कर्म तत्तदेवानुष्ठेयं यथा सद्विद्यार्थिनः स्पर्द्धया विद्यां वर्द्धयन्ति, तथैव सर्वैर्विद्या वर्द्धनीया। यथा पूर्णविद्या माता सन्तानान् सुशिक्षया विद्याः प्रापय्य वर्द्धयति, तथैव सर्वैः सुखं दत्त्वा सर्वे वर्द्धनीयाः॥१६॥

पदार्थः-हे मनुष्यो जैसे (**वयम्**) हम लोग (**पूर्वया**) अगले सज्जनों ने स्वीकार की हुई (**निविदा**) वेदवाणी से (**दक्षम्**) चतुर (**अर्यमणम्**) प्रजापालक (**अस्त्रिधम्**) न विनाश करने योग्य (**भगम्**) ऐश्वर्य कराने वाले (**मित्रम्**) सब के मित्र (**अदितिम्**) जिस की बुद्धि कभी खण्डित नहीं होती, उस (**वरुणम्**) श्रेष्ठ (**सोमम्**) ऐश्वर्यवान् तथा (**अश्विना**) पढ़ाने वाले को (**हूमहे**) परस्पर हिरस करते हुए चाहते हैं। जैसे (**सुभगा**) सुन्दर ऐश्वर्य वाली (**सरस्वती**) समस्त विद्याओं से पूर्ण वेदवाणी (**नः**) हमारे और तुम्हारे लिये (**मयः**) सुख को (**करत्**) करे, वैसे (**तान्**) उन उक्त सज्जनों को तुम भी चाहो और सुख करो॥१६॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि जो-जो वेद में कहा हुआ काम है, उस-उस का ही अनुष्ठान करें। जैसे अच्छे विद्यार्थी दूसरे की हिरस से अपनी विद्या को बढ़ाते हैं, वैसे ही सब को विद्या बढ़ानी चाहिये। जैसे परिपूर्ण विद्यायुक्त माता अपने सन्तानों को अच्छी शिक्षा दे, विद्याओं की प्राप्ति करा, उनकी विद्या बढ़ाती है, वैसे ही सब को सब के लिये सुख देकर सब की वृद्धि करनी चाहिये॥१६॥

तन्न इत्यस्य गोतम ऋषिः। वायुर्देवता। भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनः का किं कुर्यादित्याह॥

फिर कौन क्या करे, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

तन्नो वातो मयोभु वातु भेषजं तन्माता पृथिवी तत्पिता द्यौः।

तद्ग्रावाणः सोमसुतो मयोभुवस्तदश्विना शृणुतं धिष्ण्या युवम्॥१७॥

तत्। नः। वातः। मयोभ्विति। मयःऽभु। वातु। भेषजम्। तत्। माता। पृथिवी। तत्। पिता। द्यौः। तत्। ग्रावाणः। सोमसुत इति सोमऽसुतः। मयोभुव इति मयःऽभुवः। तत्। अश्विना। शृणुतम्। धिष्ण्या। युवम्॥१७॥

पदार्थः-(**तत्**) (**नः**) अस्मभ्यम् (**वातः**) वायुः (**मयोभु**) सुखकारि (**वातु**) प्रापयतु (**भेषजम्**) औषधम् (**तत्**) (**माता**) मान्यप्रदा (**पृथिवी**) विस्तीर्णा भूमिः (**तत्**) (**पिता**) पालनहेतुः (**द्यौः**) सूर्यः (**तत्**) (**ग्रावाणः**) मेघाः (**सोमसुतः**) ओषध्यैश्वर्योत्पादकाः (**मयोभुवः**) सुखं भावुकाः (**तत्**) (**अश्विना**) अध्यापकोपदेशकौ (**शृणुतम्**) (**धिष्ण्या**) भूमिवद्धर्त्तारौ (**युवम्**) युवाम्॥१७॥

अन्वयः-हे अश्विना! धिष्ण्या युवमस्माभिरधीतं शृणुतं यथा नो वातस्तन्मयोभु भेषजं वातु तन्माता पृथिवी तत्पिता द्यौर्वातु तत्सोमसुतो मयोभुवो ग्रावाणो वान्तु तद्युष्मभ्यमप्यस्तु॥१७॥

भावार्थः-यस्य पृथिवीव माता द्यौरिव पिता भवेत्, स सर्वतः कुशलीभूत्वा सर्वानरोगाञ्चतुरान् कुर्यात्॥१७॥

पदार्थः-हे (**अश्विना**) पढ़ाने और पढ़ने हारे सज्जनो! (**धिष्ण्या**) भूमि के समान धारण करने वाले (**युवम्**) तुम दोनों हम लोगों ने जो पढ़ा है, उस को (**शृणुतम्**) सुनो। जैसे (**नः**) हम लोगों के लिये (**वातः**) पवन (**तत्**) उस (**मयोभु**) सुख करने हारी (**भेषजम्**) ओषधि की (**वातु**) प्राप्ति करे (**तत्**) उस ओषधि को (**माता**) मान्य देने वाली (**पृथिवी**) विस्तारयुक्त भूमि तथा (**तत्**) उस को (**पिता**) पालना का हेतु (**द्यौः**) सूर्यमण्डल प्राप्त करे तथा (**तत्**) उस को (**सोमसुतः**) ओषधि और ऐश्वर्य को उत्पन्न करने और (**मयोभुवः**) सुख की भावना कराने हारे (**ग्रावाणः**) मेघ प्राप्त करें (**तत्**) यह सब व्यवहार तुम्हारे लिये भी होवे॥१७॥

भावार्थः-जिसकी पृथिवी के समान माता और सूर्य के समान पिता हो, वह सब ओर से कुशली सुखी होकर सब को नीरोग और चतुर करे॥१७॥

तमीशानमित्यस्य गोतम ऋषिः। ईश्वरो देवता। निचृज्जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनरीश्वरः कीदृशः किमर्थ उपासनीय इत्याह॥

फिर ईश्वर कैसा है, और किसलिये उपासना के योग्य है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम्।

पूषा नो यथा वेदसामसद् वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये॥१८॥

तम्। ईशानम्। जगतः। तस्थुषः। पतिम्। धियंजिन्वमिति धियम्ऽजिन्वम्। अवसे। हूमहे। वयम्। पूषा। नः। यथा। वेदसाम्। असत्। वृधे। रक्षिता। पायुः। अदब्धः। स्वस्तये॥१८॥

पदार्थः-(**तम्**) (**ईशानम्**) ईशनशीलम् (**जगतः**) जङ्गमस्य (**तस्थुषः**) स्थावरस्य (**पतिम्**) पालकम् (**धियञ्जिन्वम्**) यो धियं प्रज्ञां जिन्वति प्रीणाति तम् (**अवसे**) रक्षणाद्याय (**हूमहे**) स्तुमः (**वयम्**) (**पूषा**) पुष्टिकर्त्ता (**नः**) अस्माकम् (**यथा**) (**वेदसाम्**) धनानाम् (**असत्**) भवेत् (**वृधे**) वृद्धये (**रक्षिता**) रक्षणकर्त्ता (**पायुः**) सर्वस्य रक्षकः (**अदब्धः**) अहिंसकः (**स्वस्तये**) सुखाय॥१८॥

अन्वयः-हे मनुष्या! वयमवसे जगतस्तस्थुषस्पतिं धियंजिन्वं तमीशानं हूमहे, स यथा नो वेदसां वृधे पूषा रक्षिता स्वस्तये पायुरदब्धोऽसत् तथा यूयं कुरुत स च युष्मभ्यमप्यस्तु॥१८॥

भावार्थः-सर्वे विद्वांसः सर्वान् प्रत्येवमुपदिशेयुर्यस्य सर्वशक्तिमतो निराकारस्य सर्वत्र व्यापकस्य परमेश्वरस्योपासनं वयं कुर्मस्तमेव सुखैश्वर्यवर्धकं जानीमस्तस्यैवोपासनं यूयमपि कुरुत तमेव सर्वोन्नतिकरं च विजानीत॥१८॥

पदार्थः-हे मनुष्यो (**वयम्**) हम लोग (**अवसे**) रक्षा आदि के लिये (**जगतः**) चर और (**तस्थुषः**) अचर जगत् के (**पतिम्**) रक्षक (**धियञ्जिन्वम्**) बुद्धि को तृप्त प्रसन्न वा शुद्ध करने वाले (**तम्**) उस अखण्ड (**ईशानम्**) सब को वश में रखने वाले सब के स्वामी परमात्मा की (**हूमहे**) स्तुति करते हैं, वह (**यथा**) जैसे (**नः**) हमारे (**वेदसाम्**) धनों की (**वृधे**) वृद्धि के लिये (**पूषा**) पुष्टिकर्त्ता तथा (**रक्षिता**) रक्षा करने हारा (**स्वस्तये**) सुख के लिये (**पायुः**) सब का रक्षक (**अदब्धः**) नहीं मारने वाला (**असत्**) होवे, वैसे तुम लोग भी उस की स्तुति करो और वह तुम्हारे लिये भी रक्षा आदि का करने वाला होवे ॥१८॥

भावार्थः-सब विद्वान् लोग सब मनुष्यों के प्रति ऐसा उपदेश करें कि जिस सर्वशक्तिमान् निराकार सर्वत्र व्यापक परमेश्वर की उपासना हम लोग करें तथा उसी को सुख और ऐश्वर्य का बढ़ाने वाला जानें, उसी की उपासना तुम लोग भी करो और उसी को सब की उन्नति करने वाला जानो॥१८॥

स्वस्ति न इत्यस्य गोतम ऋषिः। ईश्वरो देवता। स्वराड्बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनर्मनुष्यैः किमेष्टव्यमित्याह॥

फिर मनुष्यों को किसकी इच्छा करनी चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

स्वस्ति नऽइन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्योऽअरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥१९॥

स्वस्ति। नः। इन्द्रः। वृद्धश्रवा इति वृद्धऽश्रवाः। स्वस्ति। नः। पूषा। विश्ववेदा इति विश्वऽवेदाः। स्वस्ति। नः। तार्क्ष्यः। अरिष्टनेमिरित्यरिष्टऽनेमिः। स्वस्ति। नः। बृहस्पतिः। दधातु॥१९॥

पदार्थः-(**स्वस्ति**) सुखम् (**नः**) अस्मभ्यम् (**इन्द्रः**) परमैश्वर्यवानीश्वरः (**वृद्धश्रवाः**) वृद्धं श्रवः श्रवणं यस्य सः (**स्वस्ति**) (**नः**) (**पूषा**) सर्वतः पोषकः (**विश्ववेदाः**) विश्वं सर्वं जगद्वेदो धनं यस्य सः (**स्वस्ति**) (**नः**) (**तार्क्ष्यः**) अश्व इव। **तार्क्ष्य इत्यश्वनामसु पठितम्॥** (निघं०१।१४) (**अरिष्टनेमिः**)

योऽरिष्टानि सुखानि प्रापयति सः। अत्रारिष्टोपपदाण्णीञ् प्रापणे धातोरौणादिको मिः प्रत्ययः। **(स्वस्ति)** **(नः)** **(बृहस्पतिः)** बृहतां महत्तत्त्वादीनां स्वामी पालकः **(दधातु)**॥१९॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यो वृद्धश्रवा इन्द्रो नः स्वस्ति, यो विश्ववेदाः पूषा नः स्वस्ति, यस्तार्क्ष्य इवारिष्टनेमिः सन्नः स्वस्ति, यो बृहस्पतिर्नः स्वस्ति दधातु, स युष्मभ्यमपि सुखं दधातु॥१९॥

भावार्थः-मनुष्यैर्यथा स्वार्थे सुखमेष्टव्यं तथाऽन्यार्थमप्येषितव्यं यथा कश्चिदपि स्वार्थे दुःखं नेच्छति तथा परार्थमपि नैषितव्यम्॥१९॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो **(वृद्धश्रवाः)** बहुत सुनने वाला **(इन्द्रः)** परम ऐश्वर्यवान् ईश्वर **(नः)** हमारे लिये **(स्वस्ति)** उत्तम सुख जो **(विश्ववेदाः)** समस्त जगत् में वेद ही जिस का धन है, वह **(पूषा)** सब का पुष्टि करने वाला **(नः)** हम लोगों के लिये **(स्वस्ति)** सुख जो **(तार्क्ष्यः)** घोड़े के समान **(अरिष्टनेमिः)** सुखों की प्राप्ति कराता हुआ **(नः)** हम लोगों के लिये **(स्वस्ति)** उत्तम सुख तथा जो **(बृहस्पतिः)** महत्तत्त्व आदि का स्वामी वा पालना करने वाला परमेश्वर **(नः)** हमारे लिये **(स्वस्ति)** उत्तम सुख को **(दधातु)** धारण करे, वह तुम्हारे लिये भी सुख को धारण करे॥१९॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि जैसे अपने सुख को चाहें, वैसे और के लिये भी चाहें, जैसे कोई भी अपने लिये दुःख नहीं चाहता, वैसे ओर के लिये भी न चाहें॥१९॥

पृषदश्वा इत्यस्य गोतम ऋषिः। विद्वांसो देवताः। जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनः के किं कुर्युरित्याह॥

फिर कौन क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभं यावानो विदथेषु जग्मयः।

अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवाऽअवसागमन्निह॥२०॥

पृषदश्वा इति पृषत्ऽअश्वाः। मरुतः। पृश्निमातर इति पृश्निऽमातरः। शुभंयावान इति शुभम्ऽयावानः। विदथेषु जग्मयः अग्निजिह्वा इत्यग्निऽजिह्वाः। मनवः। सूरचक्षस इति सूरऽचक्षसः। विश्वे। नः। देवाः। अवसा। आ। अगमन्। इह॥२०॥

पदार्थः-**(पृषदश्वाः)** पृषतः पुष्ट्यादिना संसिक्ताङ्गा अश्वा येषान्ते **(मरुतः)** मनुष्याः **(पृश्निमातरः)** पृश्निरन्तरिक्षं माता येषां वायूनां ते इव **(शुभंयावानः)** ये शुभं कल्याणं यान्ति प्राप्नुवन्ति ते। अत्र वाच्छन्दसि सर्वे विधयो भवन्तीति द्वितीयाया अलुक्। **(विदथेषु)** संग्रामेषु **(जग्मयः)** संगन्तारः **(अग्निजिह्वाः)** अग्निरिव सुप्रकाशिता जिह्वा वाणी येषान्ते। **जिह्वेति वाङ्नामसु पठितम्॥** (निघं०१।११) **(मनवः)** मननशीलाः **(सूरचक्षसः)** सूर ऐश्वर्ये प्रेरणे वा चक्षो दर्शनं येषान्ते **(विश्वे)** सर्वे **(नः)** अस्मान्

(देवा:) विद्वांस: **(अवसा)** रक्षणाद्येन सह **(आ)** **(अगमन्)** प्राप्नुवन्तु **(इह)** अस्मिन् संसारे वर्त्तमानसमये वा॥२०॥

अन्वय:-ये पृश्निमातर इव पृषदश्वा मरुतो विदथेषु शुभंयावानो जग्मयोऽग्निजिह्वा: सूरचक्षसो विश्वे देवा मनवोऽवसा सह वर्त्तन्ते, त इह नोऽस्मानागमन्॥२०॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। मनुष्यैर्विदुषां सङ्ग: सदैव प्रार्थनीयो यथाऽस्मिञ्जगति सर्वे वायव: सर्वेषां जीवनहेतव: सन्ति, तथात्र जङ्गमेषु विद्वांस: सन्ति॥२०॥

पदार्थ:-जो **(पृश्निमातर:)** जिनको मान्य देने वाला अन्तरिक्ष माता के तुल्य है, उन वायुओं के समान **(पृषदश्वा:)** जिनके पुष्टि आदि से सींचे अङ्गों वाले घोड़े हैं, वे **(मरुत:)** मनुष्य तथा **(विदथेषु)** संग्रामों में **(शुभंयावान:)** जो उत्तम सुख को प्राप्त होने और **(जग्मय:)** संग करने वाले **(अग्निजिह्वा:)** जिनकी अग्नि के समान प्रकाशित वाणी और **(सूरचक्षस:)** जिन का ऐश्वर्य वा प्रेरणा में दर्शन होवे, ऐसे **(विश्वे)** समस्त **(देवा:)** विद्वान् **(मनव:)** जन **(अवसा)** रक्षा आदि के साथ वर्त्तमान हैं, वे लोग **(इह)** इस संसार वा इस समय में **(न:)** हम लोगों को **(आ, अगमन्)** प्राप्त होवें॥२०॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को विद्वानों का संग सदैव प्रार्थना करने योग्य है। जैसे इस जगत् में सब वायु आदि पदार्थ सब मनुष्यों वा प्राणियों के जीवन के हेतु हैं, वैसे इस जगत् में चेतनों में विद्वान् हैं॥२०॥

भद्रमित्यस्य गोतम ऋषि:। विद्वांसो देवता:। निचृत् त्रिष्टुप् छन्द:। धैवत: स्वर:॥

पुनर्मनुष्यै: किं कर्त्तव्यमित्याह॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

भ॒द्रं कर्णे॑भि: शृणुयाम देवा भ॒द्रं प॑श्येमा॒क्षभि॑र्यजत्रा:।

स्थि॒रैरङ्गै॑स्तुष्टुवाᳫँस॑स्त॒नूभि॒र्व्य॑शेमहि दे॒वहि॑तं॒ यदायु॑:॥२१॥

भ॒द्रम्। कर्णे॑भि:। शृ॒णु॒या॒म॒। दे॒वा॒:। भ॒द्रम्। प॒श्ये॒म॒। अ॒क्षभि॒रित्य॒क्षऽभि॑:। य॒ज॒त्रा॒:। स्थि॒रै:। अङ्गै॑:। तु॒ष्टु॒वाᳫँस॑:। तु॒स्तु॒वाᳫँस॒ इति॑ तुस्तु॒ऽवाᳫँस॑:। त॒नूभि॑:। वि। अ॒शे॒म॒हि॒। दे॒वहि॑त॒मिति॑ दे॒वऽहि॑तम्। यत्। आयु॑:॥२१॥

पदार्थ:-**(भद्रम्)** सत्यलक्षणकरं वच: **(कर्णेभि:)** श्रोत्रै: **(शृणुयाम)** **(देवा:)** विद्वांस: **(भद्रम्)** कल्याणम् **(पश्येम)** **(अक्षभि:)** चक्षुर्भि: **(यजत्रा:)** संगन्तार: **(स्थिरै:)** दृढै: **(अङ्गै:)** अवयवै: **(तुष्टुवांस:)** स्तुवन्त: **(तनूभि:)** शरीरै: **(वि, अशेमहि)** प्राप्नुयाम **(देवहितम्)** देवेभ्यो विद्वद्भ्यो हितम् **(यत्)** **(आयु:)** जीवनम्॥२१॥

अन्वय:-हे यजत्रा देवा विद्वांसो! भवत्सङ्गेन वयं कर्णेभिर्भद्रं शृणुयामाक्षभिभद्रं पश्येम स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांस: सन्तस्तूनभिर्यद्देवहितमायुस्तद् व्यशेमहि॥२१॥

भावार्थः-यदि मनुष्या विद्वत्सङ्गे विद्वांसो भूत्वा सत्यं शृणुयुः सत्यं पश्येयुर्जगदीश्वरं स्तुयुस्तर्हि ते दीर्घायुषो भवेयुः। मनुष्यैरसत्यश्रवणं कुदर्शनं मिथ्यास्तुतिर्व्यभिचारश्च कदापि नैव कर्त्तव्यः॥२१॥

पदार्थः-हे **(यजत्राः)** संग करने वाले **(देवाः)** विद्वानो! आप लोगों के साथ से हम **(कर्णेभिः)** कानों से **(भद्रम्)** जिस से सत्यता जानी जावे, उस वचन को **(शृणुयाम)** सुनें **(अक्षभिः)** आंखों से **(भद्रम्)** कल्याण को **(पश्येम)** देखें **(स्थिरैः)** दृढ़ **(अङ्गैः)** अवयवों से **(तुष्टुवांसः)** स्तुति करते हुए **(तनूभिः)** शरीरों से **(यत्)** जो **(देवहितम्)** विद्वानों के लिये सुख करने हारी **(आयुः)** अवस्था है, उस को **(वि, अशेमहि)** अच्छे प्रकार प्राप्त हों॥२१॥

भावार्थः-जो मनुष्य विद्वानों के साथ से विद्वान् होकर सत्य सुनें, सत्य देखें और जगदीश्वर की स्तुति करें तो वे बहुत अवस्था वाले हों। मनुष्यों को चाहिये कि असत्य का सुनना, खोटा देखना, झूठी स्तुति, प्रार्थना, प्रशंसा और व्यभिचार कभी न करें॥२१॥

शतमित्यस्य गोतम ऋषिः। विद्वांसो देवताः। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनरस्मदर्थं के किं कुर्युरित्याह॥

फिर हमारे लिये कौन क्या करें? इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

शतमिन्नु शरदोऽअन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम्।
पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः॥२२॥

शतम्। इत्। नु। शरदः। अन्ति। देवाः। यत्रं। नः। चक्र। जरसम्। तनूनाम्। पुत्रासः। यत्रं। पितरः। भवन्ति। मा। नः। मध्या। रीरिषत। रिरिषतेति रिरिषत। आयुः। गन्तोः॥२२॥

पदार्थः-**(शतम्)** शतवार्षिकम् **(इत्)** एव **(नु)** सद्यः **(शरदः)** शरदृत्वन्तानि **(अन्ति)** अन्तिके **(देवाः)** विद्वांसः **(यत्र)** यस्मिन्। अत्र **निपातस्य च** [अ०६.३.१३६] इति दीर्घः। **(नः)** अस्माकम् **(चक्र)** कुर्वन्तु। अत्र **द्व्यचोऽतस्तिङः** [अ०६.३.१३५] इति दीर्घः। **(जरसम्)** जराः **(तनूनाम्)** शरीराणाम् **(पुत्रासः)** वृद्धावस्थाजन्यदुःखात् त्रातारः **(यत्र)** **(पितरः)** पितर इव वर्त्तमानाः **(भवन्ति)** **(मा)** **(नः)** अस्माकम् **(मध्या)** पूर्णायुषो भोगस्य मध्ये **(रीरिषत)** घ्नत **(आयुः)** जीवनम् **(गन्तोः)** गमनम्॥२२॥

अन्वयः-हे देवा! भवदन्ति स्थितानां नोऽस्माकं यत्र तनूनां जरसं शतं शरदः स्युस्तन्नु चक्र। यत्र पुत्रास इत्पितरो भवन्ति तन्नो गन्तोरायुर्मध्या मा रीरिषत॥२२॥

भावार्थः-मनुष्यैर्दीर्घमष्टचत्वारिंशद्वर्षपरिमितं ब्रह्मचर्यं सदा सेवनीयम्। येन पितृषु विद्यमानेषु पुत्रा अपि पितरो भवेयुः। यदा शतवार्षिकमायुर्व्यतीयात् तदैव शरीराणां जराऽवस्था भवेत्। यदि ब्रह्मचर्येण सह न्यूनान्न्यूनानि पञ्चविंशतिर्वर्षाणि व्यतीतानि स्युस्ततः पश्चादप्यतिमैथुनेन ये वीर्यक्षयं कुर्वन्ति, तर्हि ते सरोगा निर्बुद्धयो भूत्वा दीर्घायुषः कदापि न भवन्ति॥२२॥

पदार्थः-हे **(देवाः)** विद्वानो! आप के **(अन्ति)** समीप स्थित **(नः)** हम लोगों के **(यत्र)** जिस व्यवहार में **(तनूनाम्)** शरीरों की **(जरसम्)** वृद्धावस्था और **(शतम्)** सौ **(शरदः)** वर्ष पूरे हों, उस व्यवहार को **(नु)** शीघ्र **(चक्र)** करो **(यत्र)** जहां **(पुत्रासः)** बुढ़ापे के दुःखों से रक्षा करने वाले लड़के **(इत्)** ही **(पितरः)** पिता के समान वर्त्तमान **(भवन्ति)** होते हैं, उस **(नः)** हम लोगों की **(गन्तोः)** चाल और **(आयुः)** अवस्था को **(मध्या)** पूरी अवस्था भोगने के बीच **(मा, रीरिषत)** मत नष्ट करो॥२२॥

भावार्थः-मनुष्यों को सदा दीर्घ काल अर्थात् अड़तालीस वर्ष प्रमाणे ब्रह्मचर्य सेवना चाहिये। जिससे पिता आदि के विद्यमान होते ही लड़के भी पिता हो जावें अर्थात् उनके भी लड़के हो जावें और जब सौ वर्ष आयु बीते तभी शरीरों की वृद्धावस्था होवे। जो ब्रह्मचर्य के साथ कम से कम पच्चीस वर्ष व्यतीत होवें, उससे पीछे भी अतिमैथुन करके जो लोग वीर्य का नाश करते हैं तो वे रोगसहित निर्बुद्धि होके अधिक अवस्था वाले कभी नहीं होते॥२२॥

अदितिरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। द्यौरित्यादयो देवताः। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथादितिशब्दस्यानेकाऽर्था सन्तीत्याह॥

अब अदिति शब्द के अनेक अर्थ हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अदि॑ति॒र्द्यौरदि॑तिर॒न्तरि॑क्ष॒मदि॑तिर्मा॒ता स पि॒ता स पु॒त्रः।

विश्वे॑ दे॒वाऽअदि॑तिः॒ पञ्च॒ जना॒ऽअदि॑तिर्जा॒तमदि॑ति॒र्जनि॑त्वम्॥२३॥

अदि॑तिः। द्यौः। अदि॑तिः। अ॒न्तरि॑क्षम्। अदि॑तिः। मा॒ता। सः। पि॒ता। सः। पु॒त्रः। विश्वे॑। दे॒वाः। अदि॑तिः। पञ्च॑। जनाः॑। अदि॑तिः। जा॒तम्। अदि॑तिः। जनि॑त्व॒मिति॒ जनि॑ऽत्वम्॥२३॥

पदार्थः-**(अदितिः)** अखण्डिता **(द्यौः)** कारणरूपेण प्रकाशः **(अदितिः)** अविनाशि **(अन्तरिक्षम्)** आकाशम् **(अदितिः)** विनाशरहिता **(माता)** सर्वस्य जगतो जननी प्रकृतिः **(सः)** परमेश्वरः **(पिता)** नित्यपालकः **(सः)** **(पुत्रः)** ईश्वरस्य पुत्र इवाविनाशी **(विश्वे)** सर्वे **(देवाः)** दिव्यगुणादियुक्ताः पृथिव्यादयः **(अदितिः)** कारणरूपेण नाशरहिता **(पञ्च)** एतत्संख्याकाः **(जनाः)** मनुष्याः प्राणा वा **(अदितिः)** स्वात्मरूपेण नित्यम् **(जातम्)** यत्किंचिदुत्पन्नं कार्यम् **(अदितिः)** कारणरूपेण नित्यम् **(जनित्वम्)** उत्पत्स्यमानम्॥२३॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! युष्माभिर्द्यौदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता सा पुत्रश्चादितिर्विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातञ्जनित्वञ्चादितिरस्तीति वेद्यम्॥२३॥

भावार्थः-हे मनुष्या! भवन्तो यत् किंचित् कार्यं जगत् पश्यन्ति, तददृष्टकारणं विजानन्तु। जगन्निर्मातारं परमात्मानं जीवं पृथिव्यादीनि तत्त्वानि यज्जातं यच्च जनिष्यते या च प्रकृतिस्तत्सर्वं स्वरूपेण नित्यमस्ति, न कदाप्यस्याभावो भवति, न चाऽभावाद् भावोत्पत्तिर्भवतीति विज्ञेयम्॥२३॥

पदार्थः-हे मनुष्यो तुम को **(द्यौः)** कारणरूप से जो प्रकाश वह **(अदितिः)** अखण्डित **(अन्तरिक्षम्)** अन्तरिक्ष **(अदितिः)** अविनाशी **(माता)** सब जगत् की उत्पन्न करने वाली प्रकृति **(सः)** वह परमेश्वर **(पिता)** नित्य पालन करने हारा और **(सः)** वह **(पुत्रः)** ईश्वर के पुत्र के समान वर्त्तमान **(अदितिः)** कारणरूप से अविनाशी संसार **(विश्वे)** समस्त **(देवाः)** दिव्यगुण वाले पृथिवी आदि पदार्थ **(अदितिः)** कारणरूप से विनाशरहित **(पञ्च)** पांच **(जनाः)** मनुष्य वा प्राण **(अदितिः)** कारणरूप से अविनाशी तथा **(जातम्)** जो कुछ उत्पन्न हुआ कार्यरूप जगत् और **(जनित्वम्)** जो उत्पन्न होने वाला वह सब **(अदितिः)** कारणरूप से नित्य है, यह जानना चाहिये॥२३॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! आप लोग जितने कुछ कार्यरूप जगत् को देखते हो, वह अदृष्ट कारण रूप जानो जगत् का बनाने वाला परमात्मा, जीव, पृथिवी आदि तत्त्व जो उत्पन्न हुआ वा जो होगा और जो प्रकृति वह सब स्वरूप से नित्य है, कभी इस का अभाव नहीं होता और यह भी जानना चाहिये कि अभाव से भाव की उत्पत्ति कभी नहीं होती॥२३॥

मा न इत्यस्य गोतम ऋषिः। मित्रादयो देवताः। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनः केऽस्माकं किन्न कुर्युरित्याह॥

फिर कौन हम लोगों के किस काम को न करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

मा नो॑ मि॒त्रो वरु॑णोऽअर्य॒मायुरिन्द्र॑ऽऋभु॒क्षा म॒रुत॒: परि॑ख्यन्।

यद्वा॒जिनो॑ दे॒वजा॑तस्य॒ सप्ते॑: प्रव॒क्ष्यामो॑ वि॒दथे॑ वी॒र्या॒णि॥२४॥

मा। नः॒। मि॒त्रः। वरु॑णः। अ॒र्य॒मा। आ॒युः। इन्द्रः॑। ऋ॒भु॒क्षाः। म॒रुत॑ः। परि॑ऽख्यन्। यत्। वा॒जिनः॑। दे॒वजा॑त॒स्येति॑ दे॒वऽजा॑तस्य। सप्ते॑ः। प्र॒व॒क्ष्याम॒ इति॑ प्रऽव॒क्ष्याम॑ः। वि॒दथे॑। वी॒र्या॒णि॥२४॥

पदार्थः-**(मा)** निषेधे **(नः)** अस्माकम् **(मित्रः)** प्राण इव सखा **(वरुणः)** उदान इव श्रेष्ठः **(अर्यमा)** न्यायाधीश इव नियन्ता **(आयुः)** जीवनम् **(इन्द्रः)** राजा **(ऋभुक्षाः)** महान्तः **(मरुतः)** मनुष्याः **(परिख्यन्)** वर्जयेयुः **(यत्)** यानि **(वाजिनः)** वेगवतः **(देवजातस्य)** देवैर्दिव्यैर्गुणैः प्रसिद्धस्य **(सप्तेः)** अश्वस्य **(प्रवक्ष्यामः)** प्रवदिष्यामः **(विदथे)** युद्धे **(वीर्याणि)** बलानि॥२४॥

अन्वयः-हे विद्वांसोः यथा मित्रो वरुणोऽर्यमेन्द्रश्च ऋभुक्षा मरुतो न आयुर्मा परिख्यन्। येन वयं देवजातस्य वाजिनः सप्तेरिव विदथे यद्वीर्याणि प्रवक्ष्यामस्तानि मा परिख्यन्। तथा यूयमुपदिशत॥२४॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा सर्वे मनुष्याः स्वेषां बलानि वर्द्धयितुमिच्छेयुस्तथैवान्येषामपि वर्द्धयितुमिच्छन्तु॥२४॥

पदार्थः-हे विद्वानो! जैसे **(मित्रः)** प्राण के समान मित्र **(वरुणः)** उदान के समान श्रेष्ठ **(अर्यमा)** और न्यायाधीश के समान नियम करने वाला **(इन्द्रः)** राजा तथा **(ऋभुक्षाः)** महात्मा **(मरुतः)** जन **(नः)**

हम लोगों की **(आयु:)** आयुर्दा को **(मा)** मत **(परिख्यन्)** विनाश करावें, जिस से हम लोग **(देवजातस्य)** दिव्यगुणों से प्रसिद्ध **(वाजिन:)** वेगवान् **(सप्ते:)** घोड़ा के समान उत्तम वीर पुरुष के **(विदथे)** युद्ध में **(यत्)** जिन **(वीर्याणि)** बलों को **(प्रवक्ष्याम:)** कहें, उन का मत विनाश करावें, वैसा आप लोग उपदेश करें॥२४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सब मनुष्य अपने बलों को बढ़ाना चाहें, वैसे औरों के भी बल को बढ़ाने की इच्छा करें॥२४॥

यन्निर्णिजेत्यस्य गोतम ऋषि:। विद्वांसो देवता:। निचृत् त्रिष्टुप् छन्द:। धैवत: स्वर:॥

पुनर्मनुष्या: किं कुर्युरित्याह॥

फिर मनुष्य क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यन्निर्णिजा रेक्णसा प्रावृतस्य रातिं गृभीतां मुखतो नयन्ति।
सुप्राङजो मेम्यद्विश्वरूपऽइन्द्रापूष्णो: प्रियमप्येति पाथ:॥२५॥

यत्। निर्णिजा। निर्निजेति निःऽनिजा। रेक्णसा। प्रावृतस्य। रातिम्। गृभीताम्। मुखत:। नयन्ति। सुप्राङिति। सुऽप्राङ्। अज:। मेम्यत्। विश्वरूप इति विश्वरूप:। इन्द्रापूष्णो:। प्रियम्। अपि। एति। पाथ:॥२५॥

पदार्थ:-**(यत्)** ये **(निर्णिजा)** सुरूपेण **(रेक्णसा)** धनेन। **रेक्ण इति धननामसु पठितम्॥** (निघं०२।१०) **(प्रावृतस्य)** युक्तस्य **(रातिम्)** दानम् **(गृभीताम्)** गृहीताम् **(मुखत:)** अग्रत: **(नयन्ति)** प्रापयन्ति **(सुप्राङ्)** य: सुष्ठु पृच्छति स: **(अज:)** जन्मादिरहित: **(मेम्यत्)** प्राप्नुवन् **(विश्वरूप:)** विश्वं रूपं यस्य स: **(इन्द्रापूष्णो:)** विद्युद्वाय्वो: **(प्रियम्)** कमनीयम् **(अपि)** **(एति)** प्राप्नोति **(पाथ:)** अन्नम्॥२५॥

अन्वय:-यन्मनुष्या निर्णिजा रेक्णसा प्रावृतस्य रातिं गृभीतां सतीं मुखतो नयन्ति, यो मेम्यत् सुप्राङ् विश्वरूपोऽज इन्द्रापूष्णो: प्रियं पाथोऽप्येति ते स च सुखमाप्नुवन्ति॥२५॥

भावार्थ:-ये धनं प्राप्य सत्कर्मसु व्ययं कुर्वन्ति ते सर्वान् कामानाप्नुवन्ति॥२५॥

पदार्थ:-**(यत्)** जो मनुष्य **(निर्णिजा)** सुन्दररूप और **(रेक्णसा)** धन से **(प्रावृतस्य)** युक्त जन की **(रातिम्)** देनी वा **(गृभीताम्)** ली हुई वस्तु को **(मुखत:)** आगे से **(नयन्ति)** प्राप्त कराते तथा जो **(मेम्यत्)** प्राप्त होता हुआ **(सुप्राङ्)** अच्छे प्रकार पूछने वाला **(विश्वरूप:)** संसार जिस का रूप वह **(अज:)** जन्म और मरण आदि दोषों से रहित अविनाशी जीव **(इन्द्रापूष्णो:)** बिजुली और पवन सम्बन्धी **(प्रियम्)** मनोहर **(पाथ:)** अन्न को **(अप्येति)** सब ओर से पाता है, वे मनुष्य और वह जीव सब आनन्द को प्राप्त होते हैं॥२५॥

भावार्थ:-जो मनुष्य धन को पाकर अच्छे कामों में खर्च करते हैं, वे सब कामनाओं को पाते हैं॥२५॥

एष इत्यस्य गोतम ऋषिः। यज्ञो देवता। निचृज्जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनः केन सह के पालनीया इत्याह॥

फिर किस के साथ कौन पालना करने योग्य हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

एष छागः पुरोऽअश्वेन वाजिना पूष्णो भागो नीयते विश्वदेव्यः।
अभिप्रियं यत्पुरोडाशमर्वता त्वष्टेदेनꣳ सौश्रवसाय जिन्वति॥ २६॥

एषः। छागः। पुरः। अश्वेन। वाजिना। पूष्णः। भागः। नीयते। विश्वदेव्य इति विश्वऽदेव्यः। अभिप्रियमित्यभिऽप्रियम्। यत्। पुरोडाशम्। अर्वता। त्वष्टा। इत्। एनम्। सौश्रवसाय। जिन्वति॥ २६॥

पदार्थः-(**एषः**) (**छागः**) छेदकः (**पुरः**) पुरस्तात् (**अश्वेन**) (**वाजिना**) (**पूष्णः**) पोषकस्य (**भागः**) सेवनीयः (**नीयते**) प्राप्यते (**विश्वदेव्यः**) विश्वेषु सर्वेषु देवेषु साधु (**अभिप्रियम्**) सर्वतः कमनीयम् (**यत्**) यम् (**पुरोडाशम्**) (**अर्वता**) गंत्रा (**त्वष्टा**) तनूकर्त्ता (**इत्**) (**एनम्**) पूर्वोक्तम् (**सौश्रवसाय**) शोभनं श्रवः कीर्त्तिर्यस्य स सुश्रवास्तस्य भावाय (**जिन्वति**) प्रीणाति॥ २६॥

अन्वयः-विद्वद्भिर्य एष पुरो विश्वदेव्यः पूष्णो भागश्छागो वाजिनाऽश्वेन सह नीयते, यदभिप्रियं पुरोडाशमर्वता सह त्वष्टैनं सौश्रवसायेज्जिन्वति स सदा पालनीयः॥ २६॥

भावार्थः-यद्यश्वादिभिः सहान्यानजादीन् पशून् वर्धयेयुस्तर्हि ते मनुष्याः सुखमुन्नयेयुः॥ २६॥

पदार्थः-विद्वानों को चाहिये कि जो (**एषः**) यह (**पुरः**) प्रथम (**विश्वदेव्यः**) सब विद्वानों में उत्तम (**पूष्णः**) पुष्टि करने वाले का (**भागः**) सेवने योग्य (**छागः**) पदार्थों को छिन्न-भिन्न करता हुआ प्राणी (**वाजिना**) वेगवान् (**अश्वेन**) घोड़े के साथ (**नीयते**) प्राप्त किया जाता और (**यत्**) जिस (**अभिप्रियम्**) सब ओर से मनोहर (**पुरोडाशम्**) पुरोडाश नामक यज्ञभाग को (**अर्वता**) पहुंचाते हुए घोड़े के साथ (**त्वष्टा**) पदार्थों को सूक्ष्म करने वाला (**एनम्**) उक्त भाग को (**सौश्रवसाय**) उत्तम कीर्तिमान् होने के लिये (**इत्**) ही (**जिन्वति**) पाकर प्रसन्न होता है, वह सदैव पालने योग्य है॥ २६॥

भावार्थः-यदि अश्वादिकों के साथ अन्य बकरी आदि पशुओं को बढ़ावें तो वे मनुष्य सुख की उन्नति करें॥ २६॥

यद्धविष्यमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। यज्ञो देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनः केन के किं कुर्वन्तीत्याह॥

फिर किससे कौन क्या करते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यद्धविष्यमृतुशो देवयानं त्रिर्मानुषाः पर्यश्वं नयन्ति।
अत्रा पूष्णः प्रथमो भागऽएति यज्ञं देवेभ्यः प्रतिवेदयन्नजः॥ २७॥

यत्। हुविष्यम्। ऋतुश इत्यृतुऽशः। देवयानमिति देवऽयानम्। त्रिः। मानुषाः। परि। अश्वम्। नयन्ति। अत्र। पूष्णः। प्रथमः। भागः। एति। यज्ञम्। देवेभ्यः। प्रतिवेदयन्निति प्रतिऽवेदयन्। अजः॥२७॥

पदार्थः-(**यत्**) ये (**हविष्यम्**) हविर्भ्यो हितम् (**ऋतुशः**) ऋत्वर्हम् (**देवयानम्**) देवानां प्रापणसाधनम् (**त्रिः**) त्रिवारम् (**मानुषाः**) (**परि**) सर्वतः (**अश्वम्**) आशुगामिनम् (**नयन्ति**) प्राप्नुवन्ति (**अत्र**) अस्मिन्। अत्र **ऋचि तुनुघ०** [अ०६.३.१३३] इति दीर्घत्वम्। (**पूष्णः**) पुष्टेः (**प्रथमः**) आदिमः (**भागः**) सेवनीयः (**एति**) प्राप्नोति (**यज्ञम्**) (**देवेभ्यः**) विद्वद्भ्यः (**प्रतिवेदयन्**) विज्ञापयन् (**अजः**) पशुविशेषः॥२७॥

अन्वयः-यद्ये मानुषा ऋतुशो हविष्यं देवयानमश्वं त्रिः परिनयन्ति योऽत्र पूष्णः प्रथमो भागो देवेभ्यो यज्ञं प्रतिवेदयन्नज एति स सदा रक्षणीयः॥२७॥

भावार्थः-ये प्रत्यृत्वाहारविहारान् कुर्वन्त्यश्वाजादिपशुभ्यः संगतानि कार्याणि कुर्वन्ति, तेऽत्यन्तं सुखं लभन्ते॥२७॥

पदार्थः-(**यत्**) जो (**मानुषाः**) मनुष्य (**ऋतुशः**) ऋतु-ऋतु के योग्य (**हविष्यम्**) होम में चढ़ाने के पदार्थों के लिये हितकारी (**देवयानम्**) दिव्य गुण वाले विद्वानों की प्राप्ति कराने हारे (**अश्वम्**) शीघ्रगामी प्राणी की (**त्रिः**) तीन वार (**परि, नयन्ति**) सब ओर पहुंचाते हैं वा जो (**अत्र**) इस संसार में (**पूष्णः**) पुष्टिसम्बन्धी (**प्रथमः**) प्रथम (**भागः**) सेवने योग्य (**देवेभ्यः**) विद्वानों के लिये (**यज्ञम्**) सत्कार को (**प्रतिवेदयन्**) जनाता हुआ (**अजः**) विशेष पशु बकरा (**एति**) प्राप्त होता है, वह सदा रक्षा करने योग्य है॥२६॥

भावार्थः-जो मनुष्य ऋतु-ऋतु के प्रति उनके गुणों के अनुकूल आहार विहारों को करते तथा घोड़ा और बकरा आदि पशुओं से संगत हुए कामों को करते हैं, वे अत्यन्त सुख को पाते हैं॥२७॥

होतेत्यस्य गोतम ऋषिः। यज्ञो देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनर्मनुष्याः किं कुर्युरित्याह॥

फिर मनुष्य क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

होताध्वर्युरावयाऽअग्निमिन्धो ग्रावग्राभऽउत शꣳस्ता सुविप्रः।
तेन यज्ञेन स्वरङ्कृतेन स्विष्टेन वक्षणाऽआ पृणध्वम्॥२८॥

होता। अध्वर्युः। आवया इत्याऽवयाः। अग्निमिन्ध इत्यग्निम्ऽइन्धः। ग्रावग्राभ इति ग्रावऽग्राभः। उत। शꣳस्ता। सुविप्र इति सुऽविप्रः। तेन। यज्ञेन। स्वरङ्कृतेनेति सुऽअरङ्कृतेन। स्विष्टेनेति सुऽइष्टेन। वक्षणाः। आ। पृणध्वम्॥२८॥

पदार्थ:-**(होता)** आदाता **(अध्वर्यु:)** अहिंसायज्ञमिच्छु: **(आवया:)** येनावयजन्ति स: **(अग्निमिन्ध:)** अग्निप्रदीपक: **(ग्रावग्राभ:)** यो ग्रावाणं मेघं गृह्णाति स: **(उत)** **(शंस्ता)** प्रशंसक: **(सुविप्र:)** शोभना विप्रा मेधाविनो यस्मिन् स: **(तेन)** **(यज्ञेन)** संगतेन **(स्वरङ्कृतेन)** सुष्ठ्वलंकृतेन। अत्र कपिलकादित्वाद् रेफ:। **(स्विष्टेन)** शोभनेनेष्टेन **(वक्षणा:)** नदी:। **वक्षणा इति नदीनामसु पठितम्।।** (निघं०१।१३) **(आ)** **(पृणध्वम्)** समान्तात् सुखयत॥२८॥

अन्वय:-हे मनुष्या:! यथा होताऽऽवया अग्निमिन्धो ग्रावग्राभ: शंस्तोत सुविप्रोऽध्वर्युर्येन स्वरंकृतेन स्विष्टेन यज्ञेन वक्षणा अलङ्करोति, तथा तेन यूयमप्यापृणध्वम्॥२८॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। ये मनुष्या: सुगन्ध्यादिसुसंस्कृतानां हविषां वह्नौ प्रक्षेपेण वायुवर्षाजलादीनि शोधयित्वा नद्यादिजलानि शोधयन्ति, ते सदा सुखयन्ति॥२८॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! जैसे **(होता)** ग्रहण करने हारा वा **(आवया:)** जिससे अच्छे प्रकार यज्ञ, संग और दान करते वह वा **(अग्निमिन्ध:)** अग्नि को प्रदीप्त करने हारा वा **(ग्रावग्राभ:)** मेघ को ग्रहण करने हारा वा **(शंस्ता)** प्रशंसा करने हारा **(उत)** और **(सुविप्र:)** जिसके समीप अच्छे-अच्छे बुद्धिमान् हैं, वह **(अध्वर्यु:)** अहिंसा यज्ञ का चाहने वाला उत्तम जन जिस **(स्वरङ्कृतेन)** सुन्दर सुशोभित किये **(स्विष्टेन)** सुन्दर भाव से चाहे और **(यज्ञेन)** मिले हुए यज्ञ आदि उत्तम काम से **(वक्षणा:)** नदियों को पूर्ण करता अर्थात् यज्ञ करने से पानी वर्षा, उस वर्षे हुए जल से नदियों को भरता, वैसे **(तेन)** उस काम से तुम लोग भी **(आ, पृणध्वम्)** अच्छे प्रकार सुख भोगो॥२८॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य सुगन्धि आदि से उत्तम बनाये हुए होम करने योग्य पदार्थों को अग्नि में छोड़ने से पवन और वर्षा जल आदि पदार्थों को शोध कर नदी-नद आदि के जलों की शुद्धि करते हैं, वे सदैव सुख भोगते हैं॥२८॥

यूपव्रस्का इत्यस्य गोतम ऋषि:। यज्ञो देवता। भुरिक् त्रिष्टुप् छन्द:। धैवत: स्वर:॥

पुनस्ते किं कुर्युरित्याह॥

फिर वे क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यू॒प॒व्र॒स्काऽउ॒त ये यू॑पवा॒हाश्च॒षालं॒ येऽअ॑श्वयू॒पाय॒ तक्ष॑ति।
ये चार्व॑ते॒ पच॑नꣳ स॒म्भर॑न्त्यु॒तो तेषा॑म॒भिगू॑र्त्तिर्नऽइन्वतु॥२९॥

यू॒प॒व्र॒स्का इति॑ यूप॒ऽव्र॒स्का:। उ॒त। ये। यू॒प॒वा॒हा इति॑ यूप॒ऽवा॒हा:। च॒षाल॑म्। ये। अ॒श्व॒यू॒पायेति॑ अश्व॒ऽयू॒पाय॑। तक्ष॑ति। ये। च॒। अर्व॑ते। पच॑नम्। स॒म्भर॒न्तीति॑ स॒म्ऽभर॑न्ति। उ॒तोऽइत्यु॒तो। तेषा॑म्। अ॒भिगू॑र्त्ति॒रित्य॒भिऽगू॑र्त्ति:। न॒:। इ॒न्व॒तु॒॥२९॥

पदार्थः-(यूपव्रस्काः) यूपस्य स्तम्भस्य छेदकाः **(उत)** अपि **(ये)** **(यूपवाहाः)** ये यूपं वहन्ति ते **(चषालम्)** यूपावयवम् **(ये)** **(अश्वयूपाय)** अश्वस्य बन्धनार्थाय स्तम्भाय **(तक्षति)** तक्षन्ति तनूकुर्वन्ति। अत्र वचनव्यत्ययेनैकवचनम् **(ये)** **(च)** **(अर्वते)** अश्वाय **(पचनम्)** पाकसाधनम् **(सम्भरन्ति)** सम्यग्धरन्ति पुष्णन्ति वा **(उतो)** अपि **(तेषाम्)** **(अभिगूर्त्तिः)** अभ्युद्यमः **(नः)** अस्मान् **(इन्वतु)** व्याप्नोतु प्राप्नोतु॥२९॥

अन्वयः-ये यूपव्रस्का उतापि ये यूपवाहा अश्वयूपाय चषालं तक्षति, ये चार्वते पचनं सम्भरन्ति, उतो ये प्रयतन्ते तेषामभिगूर्त्तिर्न इन्वतु॥२९॥

भावार्थः-ये शिल्पिनोऽश्वबन्धनादीनि काष्ठविशेषजानि वस्तूनि निर्मिमते, ये च वैद्या अश्वादीनामौषधानि सम्भारांश्च संगृह्णन्ति, ते सदोद्यमिनः सन्तोऽस्मान् प्राप्नुवन्तु॥२६॥

पदार्थः-(ये) जो **(यूपव्रस्काः)** यज्ञखंभा के छेदने-बनाने **(उत)** और **(ये)** जो **(यूपवाहाः)** यज्ञस्तम्भ को पहुंचाने वाले **(अश्वयूपाय)** घोड़ा के बांधने के लिये **(चषालम्)** खंभा के खण्ड को **(तक्षति)** काटते-छांटते **(ये, च)** और जो **(अर्वते)** घोड़ा के लिए **(पचनम्)** जिस में पाक किया जाये, उस काम को **(सम्भरन्ति)** अच्छे प्रकार धारण करते वा पुष्ट करते **(उतो)** और जो उत्तम यत्न करते हैं **(तेषाम्)** उनका **(अभिगूर्त्तिः)** सब प्रकार से उद्यम **(नः)** हम लोगों को **(इन्वतु)** व्याप्त और प्राप्त होवे॥२९॥

भावार्थः-जो कारुक शिल्पीजन घोड़ा के बांधने आदि काम के काठों से विशेष काम बनाते और जो वैद्य घोड़े आदि पशुओं की ओषधि और उन की सजावट की सामग्रियों को इकट्ठा करते हैं, वे सदा उद्यम करते हुए हम लोगों को प्राप्त होवें॥२९॥

उप प्रागादित्यस्य गोतम ऋषिः। विद्वांसो देवताः। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनः के केषां सकाशात् किं गृह्णीयुरित्याह॥

फिर कौन किनसे क्या लेवें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उप प्रागात् सुमन्मेऽधायि मन्म देवानामाशाऽउप वीतपृष्ठः।

अन्वेनं विप्राऽऋषयो मदन्ति देवानां पुष्टे चकृमा सुबन्धुम्॥३०॥

उप। प्र। अगात्। सुमदिति सुऽमत्। मे। अधायि। मन्म। देवानाम्। आशाः। उप। वीतपृष्ठ इति वीतऽपृष्ठः। अनु। एनम्। विप्राः। ऋषयः। मदन्ति। देवानाम्। पुष्टे। चकृम। सुबन्धुमिति सुऽबन्धुम्॥३०॥

पदार्थः-(उप) सामीप्ये **(प्र)** **(अगात्)** प्राप्नुयात् **(सुमत्)** स्वयम् **(मे)** मम **(अधायि)** ध्रियते **(मन्म)** विज्ञानम् **(देवानाम्)** विदुषाम् **(आशाः)** दिशः **(उप)** **(वीतपृष्ठः)** वीतं व्याप्तं पृष्ठं यस्य सः **(अनु)** **(एनम्)** **(विप्राः)** मेधाविनः **(ऋषयः)** मन्त्रार्थविदः **(मदन्ति)** कामयन्ते **(देवानाम्)** विदुषाम् **(पुष्टे)** पुष्टे जने **(चकृम)** कुर्याम। अत्र **संहितायाम्** [अ०६.३.११४] इति दीर्घः। **(सुबन्धुम्)** शोभना बन्धवो भ्रातरो यस्य तम्॥३०॥

अन्वय:-येन सुमत्स्वयं देवानां वीतपृष्ठो यज्ञोऽधायि येनैतेषां मे च मन्माशाश्चोपप्रागाद्, यमेनमनुदेवानां पुष्टे ऋषयो विप्रा उपमदन्ति, तं सुबन्धुं वयं चकृम॥३०॥

भावार्थ:-ये विदुषां सकाशाद् विज्ञानं प्राप्यर्षयो भवन्ति, ते सर्वान् विज्ञानदानेन पोषयन्ति, येऽन्योन्यस्योन्नतिं विधाय सिद्धकामा भवन्ति, ते जगद्धितैषिणो जायन्ते॥३०॥

पदार्थ:-जिसने **(सुमत्)** आप ही **(देवानाम्)** विद्वानों का **(वीतपृष्ठ:)** जिस का पिछला भाग व्याप्त वह उत्तम व्यवहार **(अधायि)** धारण किया वा जिससे इनके और **(मे)** मेरे **(मन्म)** विज्ञान को तथा **(आशा:)** दिशा-दिशान्तरों को **(उप, प्र, अगात्)** प्राप्त हो वा जिस **(एनम्)** इस प्रत्यक्ष व्यवहार के **(अनु)** अनुकूल **(देवानाम्)** विद्वानों के बीच **(पुष्टे)** पुष्ट बलवान् जन के निमित्त **(ऋषय:)** मन्त्रों का अर्थ जानने वाले **(विप्रा:)** धीरबुद्धि पुरुष **(उप, मदन्ति)** समीप होकर आनन्द को प्राप्त होते हैं, उस **(सुबन्धुम्)** सुन्दर भाइयों वाले जन को हम लोग **(चकृम)** उत्पन्न करें॥३०॥

भावार्थ:-जो विद्वानों के समीप से उत्तम ज्ञान को पाके ऋषि होते हैं, वे सब को विज्ञान देने से पुष्ट करते हैं, जो परस्पर एक-दूसरे की उन्नति कर परिपूर्ण काम वाले होते हैं, वे जगत् के हितैषी होते हैं॥३०॥

यद्वाजिन इत्यस्य गोतम ऋषि:। यज्ञो देवता। त्रिष्टुप् छन्द:। धैवत: स्वर:॥

पुन: के कै: किं कुर्युरित्याह॥

फिर कौन किनसे क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यद्वाजिनो दाम सन्दानमर्वतो या शीर्षण्या रशना रज्जुरस्य।
यद्वा घास्य प्रभृतमास्ये तृणꣳ सर्वा ता तेऽअपि देवेष्वस्तु॥३१॥

यत्। वाजिन:। दाम। सन्दानमिति सम्ऽदानम्। अर्वत:। या। शीर्षण्या। रशना। रज्जु:। अस्य। यत्। वा। घ। अस्य। प्रभृतमिति प्रऽभृतम्। आस्ये। तृणम्। सर्वा। ता। ते। अपि। देवेषु। अस्तु॥३१॥

पदार्थ:-**(यत्)** **(वाजिन:)** प्रशस्तवेगवत: **(दाम)** उदरबन्धनम् **(सन्दानम्)** पादादिबन्धनादीनि **(अर्वत:)** बलिष्ठस्याश्वस्य **(या)** **(शीर्षण्या)** शिरसि भवा **(रशना)** व्याप्नुवती **(रज्जु:)** **(अस्य)** **(यत्)** **(वा)** **(घ)** एव **(अस्य)** **(प्रभृतम्)** प्रकर्षेण धृतम् **(आस्ये)** मुखे **(तृणम्)** घासविशेषम् **(सर्वा)** सर्वाणि **(ता)** तानि **(ते)** तव **(अपि)** **(देवेषु)** विद्वत्सु **(अस्तु)**॥३१॥

अन्वय:-हे विद्वन्! वाजिनोऽस्यार्वतो यद्दाम सन्दानं या शीर्षण्या रशना रज्जुर्यद्वाऽस्यास्ये तृणं प्रभृतं ता सर्वा ते सन्तु। एतत्सर्वं घ देवेष्वप्यस्तु॥३१॥

भावार्थ:-येऽश्वान् सुशिक्ष्य सर्वावयवबन्धनानि सुन्दराणि भक्ष्यं भोज्यं पेयं च श्रेष्ठमौषधमुत्तमं च कुर्वन्ति, ते विजयादीनि कार्याणि साद्धुं शक्नुवन्ति॥३१॥

पदार्थः-हे विद्वन्! **(वाजिनः)** प्रशस्त वेग वाले **(अस्य)** इस **(अर्वतः)** बलवान् घोड़े का **(यत्)** जो **(दाम)** उदरबन्धन अर्थात् तंगी और **(सन्दानम्)** अगाड़ी-पछाड़ी पैर आदि में बाँधने की रस्सी वा **(या)** जो **(शीर्षण्या)** शिर में होने वाली **(रशना)** मुंह में व्याप्त **(रज्जुः)** रस्सी मुहेरा आदि **(यत्, वा)** अथवा जो **(अस्य)** इस घोड़े के **(आस्ये)** मुख में **(तृणम्)** घास दूब आदि विशेष तृण **(प्रभृतम्)** उत्तमता से धरी हो **(ता)** वे **(सर्वा)** सब पदार्थ **(ते)** तेरे हों और यह उक्त समस्त वस्तु **(घ)** ही **(देवेषु)** विद्वानों में **(अपि)** भी **(अस्तु)** हो॥३१॥

भावार्थः-जो मनुष्य घोड़ों को अच्छी शिक्षा कर उनके सब अङ्गों के बन्धन सुन्दर-सुन्दर तथा खाने-पीने के श्रेष्ठ पदार्थ और उत्तम-उत्तम औषध करते हैं, वे शत्रुओं को जीतना आदि काम सिद्ध कर सकते हैं॥३१॥

यदश्वस्येत्यस्य गोतम ऋषिः। यज्ञो देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनः कथं के रक्ष्या इत्याह॥

फिर कैसे कौन रक्षा करने योग्य हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यदश्व॑स्य क्र॒विषो॒ मक्षि॒काश॒ यद्वा॒ स्वरौ॒ स्वधि॑तौ रि॒प्तमस्ति॑।

यद्धस्त॑योः शमि॒तुर्यन्न॒खेषु॒ सर्वा॒ ता ते॒ऽअपि॑ दे॒वेष्व॑स्तु॥ ३२॥

यत्। अश्व॑स्य। क्र॒विष॑ः। मक्षि॑का। आश॑। यत्। वा॒। स्वरौ॑। स्वधि॑ता॒विति॒ स्वऽधि॑तौ। रि॒प्तम्। अस्ति॑। यत्। हस्त॑योः। श॒मि॒तुः। यत्। न॒खेषु॑। सर्वा॑। ता। ते॒। अपि॑। दे॒वेषु॑। अ॒स्तु॒॥ ३२॥

पदार्थः-**(यत्)** या **(अश्वस्य)** आशुगामिनः **(क्रविषः)** गन्तुः **(मक्षिका)** **(आश)** अश्नाति **(यत्)** यौ **(वा)** **(स्वरौ)** **(स्वधितौ)** वज्रवद्वर्त्तमानौ **(रिप्तम्)** प्राप्तम् **(अस्ति)** **(यत्)** **(हस्तयोः)** **(शमितुः)** यज्ञस्य कर्त्तुः **(यत्)** **(नखेषु)** **(सर्वा)** सर्वाणि **(ता)** तानि **(ते)** तव **(अपि)** **(देवेषु)** विद्वत्सु **(अस्तु)॥ ३२॥**

अन्वयः-हे मनुष्याः! यद्या मक्षिका क्रविषोऽश्वस्याऽऽश वा यत्स्वरौ स्वधितौ स्तः, शमितुर्हस्तयोयद्रिप्तं यच्च नखेषु रिप्तमस्ति ता सर्वा ते सन्तु। एतत्सर्वं देवेष्वप्यस्तु॥३२॥

भावार्थः-मनुष्यैरीदृशायां शालायामश्वा बन्धनीया, यत्रैषां रुधिरादिकं मक्षिकादयो न पिबेयुः। यथा यज्ञकर्त्तुर्हस्तयोलिप्तं हविः प्रक्षालनादिना निवारयन्ति, तथैवाश्वादीनां शरीरे लिप्तानि धूल्यादीनि नित्यं निवारयन्तु॥३२॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! **(यत्)** जो **(मक्षिका)** मक्खी **(क्रविषः)** चलते हुए **(अश्वस्य)** शीघ्र जाने वाले घोड़े का **(आश)** भोजन करती अर्थात् कुछ मल-रुधिर आदि खाती **(वा)** अथवा **(यत्)** जो **(स्वरौ)** स्वर **(स्वधितौ)** वज्र के समान वर्त्तमान हैं वा **(शमितुः)** यज्ञ करने हारे के **(हस्तयोः)** हाथों में **(यत्)** जो वस्तु

(रिप्तम्) प्राप्त और **(यत्)** जो **(नखेषु)** नखों में प्राप्त **(अस्ति)** है **(ता)** वे **(सर्वा)** सब पदार्थ **(ते)** तुम्हारे हों तथा यह समस्त व्यवहार **(देवेषु)** विद्वानों में **(अपि)** भी **(अस्तु)** होवे॥३२॥

भावार्थ:-मनुष्यों को ऐसी घुड़शाल में घोड़े बांधने चाहियें, जहां इनका रुधिर आदि मांछि आदि न पीवें। जैसे यज्ञ करने हारे के हाथ में लिपटे हुए हवि को धोने आदि से छुड़ाते हैं, वैसे ही घोड़े आदि पशुओं के शरीर में लिपटी धूलि आदि को नित्य छुड़ावें॥३२॥

यदूवध्यमित्यस्य गोतम ऋषि:। यज्ञो देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्द:। धैवत: स्वर:॥

पुन: के किमर्थं किं न कुर्युरित्याह॥

फिर कौन किसलिये क्या न करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यदूवध्यमुदरस्यापवाति यऽआमस्य क्रविषो गन्धोऽअस्ति।
सुकृता तच्छमितार: कृण्वन्तूत मेधं शृतपाकं पचन्तु॥३३॥

यत्। ऊवध्यम्। उदरस्य। अपवातीत्यपऽवाति। य:। आमस्य। क्रविष:। गन्ध:। अस्ति। सुकृतेति सुऽकृता। तत्। शमितार:। कृण्वन्तु। उत। मेधम्। शृतपाकमिति शृतऽपाकम्। पचन्तु॥३३॥

पदार्थ:-**(यत्)** **(ऊवध्यम्)** मलीनम् **(उदरस्य)** उदरस्य सकाशात् **(अपवाति)** अपगच्छति **(य:)** **(आमस्य)** अपरिपक्वस्य **(क्रविष:)** भक्षितस्य **(गन्ध:)** **(अस्ति)** **(सुकृता)** सुकृतं सुष्ठु संस्कृतम्। अत्राकारादेश: **(तत्)** **(शमितार:)** शान्तिकरा: **(कृण्वन्तु)** कुर्वन्तु **(उत)** अपि **(मेधम्)** पवित्रम् **(शृतपाकम्)** शृत: पक्व: पाको यस्य तत् **(पचन्तु)**॥३३॥

अन्वय:-हे मनुष्या! उदरस्य यदवूध्यमपवाति, य आमस्य क्रविषो गन्धोऽस्ति, तच्छमितार: सुकृता कृण्वन्तूतापि मेधं शृतपाकं पचन्तु॥३३॥

भावार्थ:-ये जना यज्ञं कर्त्तुमिच्छेयुस्ते दुर्गन्धयुक्तं द्रव्यं विहाय सुगन्धादियुक्तं सुसंस्कृतं पाकं कृत्वाऽग्नौ जुहुयुस्ते जगद्धितैषिणो भवन्ति॥३३॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! **(उदरस्य)** पेट के कोष्ठ से **(यत्)** जो **(ऊवध्यम्)** मलीन मल **(अपवाति)** निकलता और **(य:)** जो **(आमस्य)** न पके कच्चे **(क्रविष:)** खाये हुए पदार्थ का **(गन्ध:)** गन्ध **(अस्ति)** है **(तत्)** उस को **(शमितार:)** शान्ति करने अर्थात् आराम देने वाले **(सुकृता)** अच्छा सिद्ध **(कृण्वन्तु)** करें **(उत)** और **(मेधम्)** पवित्र **(शृतपाकम्)** जिसका सुन्दर पाक बने उस को **(पचन्तु)** पकावें॥३३॥

भावार्थ:-जो लोग यज्ञ करना चाहें वे दुर्गन्धयुक्त पदार्थ को छोड़ सुगन्धि आदि युक्त सुन्दरता से बना पाक कर अग्नि में होम करें, वे जगत् का हित चाहने वाले होते हैं॥३३॥

यत्ते गात्रादित्यस्य गोतम ऋषि:। यज्ञो देवता। भुरिक् त्रिष्टुप् छन्द:। धैवत: स्वर:॥

पुनर्मनुष्यै: केन किं निस्सारणीयमित्याह॥

फिर मनुष्य को किस से क्या निकालना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यत्ते गात्रा॑दु॒ग्निना॑ प॒च्यमा॑नादु॒भि शूलं॒ निह॑तस्याव॒धाव॑ति।

मा तद्भूम्या॒माश्रि॑ष॒न्मा तृणे॑षु दे॒वेभ्य॒स्तदु॒शद्भ्यो॑ रा॒तम॑स्तु॥ ३४॥

यत्। ते॒। गात्रा॑त्। अ॒ग्निना॑। प॒च्यमा॑नात्। अ॒भि। शूल॑म्। निह॑त॒स्येति॒ निऽह॑तस्य। अ॒व॒धाव॒तीत्य॑व॒ऽधाव॑ति। मा। तत्। भूम्या॑म्। आ। श्रि॒ष॒त्। मा। तृणे॑षु। दे॒वेभ्य॑ः। तत्। उ॒शद्भ्य॒ऽइत्यु॒शत्ऽभ्य॑ः। रा॒तम्। अ॒स्तु॥ ३४॥

पदार्थः-(**यत्**) यदा (**ते**) तव (**गात्रात्**) अङ्गात् (**अग्निना**) अन्तःकरणरूपेण तेजसा (**पच्यमानात्**) (**अभि**) (**शूलम्**) शु शीघ्रं लाति बोधं गृह्णाति येन तद्वचः। पृषोदरादित्वात् सिद्धम् (**निहतस्य**) निश्चयेन कृतश्रमस्य (**अवधावति**) गच्छति (**मा**) (**तत्**) (**भूम्याम्**) (**आ, श्रिषत्**) आश्रयति (**मा**) (**तृणेषु**) (**देवेभ्यः**) विद्वद्भ्यः (**तत्**) (**उशद्भ्यः**) सत्पुरुषेभ्यः (**रातम्**) दत्तम् (**अस्तु**)॥ ३४॥

अन्वयः-हे मनुष्य! निहतस्य ते तवाग्निना पच्यमानाद् गात्राद्यच्छूलमभ्यवधावति तद्भूम्यां माऽऽश्रिषत्। तत्तृणेषु माऽऽश्रिषत्, किन्तु तच्चोशद्भ्यो देवेभ्यो रातमस्तु॥ ३४॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यानि ज्वरादिपीडितान्यङ्गानि भवेयुस्तानि वैद्येभ्यो नीरोगाणि कार्य्याणि, तैर्यदौषधं दीयेत तद्रोगिभ्यो हितकरं भवति॥ ३४॥

पदार्थः-हे मनुष्य! (**निहतस्य**) निश्चय से श्रम किये हुए (**ते**) तेरे (**अग्निना**) अन्तःकरणरूप तेज से (**पच्यमानात्**) पकाये जाते (**गात्रात्**) अङ्ग से (**यत्**) जो (**शूलम्**) शीघ्र बोध का हेतु वचन (**अभि, अवधावति**) चारों ओर से निकलता है (**तत्**) वह (**भूम्याम्**) भूमि पर (**मा, आ, श्रिषत्**) नहीं आता है तथा (**तत्**) वह (**तृणेषु**) तृणों पर (**मा**) नहीं आता, किन्तु वह तो (**उशद्भ्यः**) सत्पुरुष (**देवेभ्यः**) विद्वानों के लिये (**रातम्**) दिया (**अस्तु**) होवे॥ ३४॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जो ज्वर आदि से पीड़ित अङ्ग हों, उन को वैद्यजनों से नीरोग कराना चाहिये, क्योंकि उन वैद्यजनों से जो औषध दिया जाता है, वह रोगी जन के लिये हितकारी होता है॥ ३४॥

ये वाजिनमित्यस्य गोतम ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनः के निरोद्धव्या इत्याह॥

फिर कौन रोकने योग्य है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ये वा॒जिन॑ं परि॒पश्य॑न्ति प॒क्वं य ऽईमा॒हुः सु॑र॒भिर्निर्ह॒रेति॑।

ये चार्व॑तो मा॒ꣳसभि॒क्षामु॒पास॑तऽउ॒तो तेषा॑मु॒भिगू॑र्त्तिर्नऽइन्वतु॥ ३५॥

ये। वा॒जिन॑म्। प॒रि॒पश्य॒न्तीति॑ परि॒ऽपश्य॑न्ति। प॒क्वम्। ये। ई॒म्। आ॒हुः। सु॒र॒भिः। निः। ह॒र॒। इति॑। ये। च॒। अर्व॑तः। मा॒ꣳस॒ऽभि॒क्षामिति॑ मांꣳसऽभिक्षाम्। उ॒पास॑त॒ इत्यु॑प॒ऽआस॑ते। उ॒तो इत्यु॒तो। तेषा॑म्। अ॒भिगू॑र्त्ति॒रित्य॒भिऽगू॑र्त्तिः। न॒ः। इ॒न्व॒तु॒॥ ३५॥

पदार्थः-(**ये**) (**वाजिनम्**) वेगवन्तमश्वम् (**परिपश्यन्ति**) सर्वोऽन्वीक्षन्ते (**पक्वम्**) परिपक्वस्वभावम् (**ये**) (**ईम्**) प्राप्तम् (**आहुः**) (**सुरभिः**) सुगन्धः (**निः**) नितराम् (**हर**) निस्सारय (**इति**) (**ये**) (**च**) (**अर्वतः**) अश्वस्य (**मांसभिक्षाम्**) मांसयाचनाम् (**उपासते**) (**उतो**) अपि (**तेषाम्**) (**अभिगूर्त्तिः**) अभ्युद्यमः (**नः**) अस्मान् (**इन्वतु**) प्राप्नोतु॥३५॥

अन्वयः-येऽर्वतो मांसभिक्षामुपासते च येऽश्वमीं हन्तव्याहुस्तान्निर्हर दूरे प्रक्षिप। ये वाजिनं पक्वं परिपश्यन्ति उतो अपि तेषां सुरभिरभिगूर्त्तिर्न इन्वत्विति॥३५॥

भावार्थः-येऽश्वादिश्रेष्ठानां पशूनां मांसमत्तुमिच्छेयुस्ते राजादिभिः श्रेष्ठैर्निरोद्धव्या यतो मनुष्याणामुद्यमसिद्धिः स्यात्॥३५॥

पदार्थः-(**ये**) जो (**अर्वतः**) घोड़े के (**मांसभिक्षाम्**) मांस के मांगने की (**उपासते**) उपासना करते (**च**) और (**ये**) जो घोड़ा को (**ईम्**) पाया हुआ मारने योग्य (**आहुः**) कहते हैं, उन को (**निः, हर**) निरन्तर हरो, दूर पहुंचाओ (**ये**) जो (**वाजिनम्**) वेगवान् घोड़ों को (**पक्वम्**) पक्का सिखा के (**परिपश्यन्ति**) सब ओर से देखते हैं (**उतो**) और (**तेषाम्**) उन का (**सुरभिः**) अच्छा सुगन्ध और (**अभिगूर्त्तिः**) सब ओर से उद्यम (**नः**) हम लोगों को (**इन्वतु**) प्राप्त हो, उन के अच्छे काम हमको प्राप्त हों, (**इति**) इस प्रकार दूर पहुंचाओ॥३५॥

भावार्थः-जो घोड़े आदि उत्तम पशुओं का मांस खाना चाहें, वे राजा आदि श्रेष्ठ पुरुषों को रोकने चाहियें, जिस से मनुष्यों का उद्यम सिद्ध हो॥३५॥

यन्नीक्षणमित्यस्य गोतम ऋषिः। यज्ञो देवता। भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनः केन किं निरीक्षणीयमित्याह॥

फिर किस को क्या देखना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यन्नीक्ष॑णं माँ॒स्पच॑न्याऽउ॒खाया॒ या पात्रा॑णि यू॒ष्णऽआ॒सेच॑नानि।

ऊ॒ष्म॒ण्या॒ऽपि॒धाना॑ च॒रू॒णाम॒ङ्काः सू॒नाः परि॑ भूष॒न्त्यश्व॑म्॥३६॥

यत्। नीक्ष॑ण॒मिति॒ नि॒ऽईक्ष॑णम्। मा॒ꣳस्पच॑न्या॒ इति॑ मा॒ꣳस्पच॑न्याः। उ॒खायाः॑। या। पात्रा॑णि। यू॒ष्णः। आ॒सेच॑ना॒नीत्या॒ऽसेच॑नानि। ऊ॒ष्म॒ण्या॒। अ॒पि॒धानेत्य॑पि॒ऽधाना॑। च॒रू॒णाम्। अ॒ङ्काः॑। सू॒नाः। परि॑। भू॒षन्ति॒। अश्व॑म्॥३६॥

पदार्थः-(**यत्**) (**नीक्षणम्**) निकृष्टं तदीक्षणं दर्शनं च तत् (**मांस्पचन्याः**) मांसं पचन्ति यस्यां तस्याः (**उखायाः**) स्थाल्याः (**या**) यानि (**पात्राणि**) (**यूष्णः**) वर्द्धकस्य (**आसेचनानि**) समन्तात् सिंचन्ति यैस्तानि (**ऊष्मण्या**) ऊष्मसु साधूनि (**अपिधाना**) आच्छादनानि (**चरूणाम्**) पात्राणाम् (**अङ्काः**) लक्षिताः (**सूनाः**) प्रसूताः (**परि**) सर्वतः (**भूषन्ति**) अलङ्कुर्वन्ति (**अश्वम्**)॥३६॥

अन्वयः-या ऊष्मण्याऽपिधानाऽऽसेचनानि पात्राणि यन्मांस्पचन्या उखाया नीक्षणं चरूणामङ्काः सूना यूष्णोऽश्वं परिभूषन्ति तानि स्वीकर्त्तव्यानि॥३६॥

भावार्थः-यदि केचिदश्वादीनामुपकारिणां पशूनां शुभानां पक्षिणां मांसाहारं कुर्युस्तर्हि तेभ्यो दण्डो यथापऽराधं दातव्य एव॥३६॥

पदार्थः-**(या)** जो **(ऊष्मण्या)** गरमियों में उत्तम **(अपिधाना)** ढांपने **(आसेचनानि)** और सिचाने हारे **(पात्राणि)** पात्र वा **(यत्)** जो **(मांस्पचन्याः)** मांस जिस में पकाया जाए उस **(उखायाः)** बटलोई का **(नीक्षणम्)** निकृष्ट देखना वा **(चरूणाम्)** पात्रों के **(अङ्काः)** लक्षणा किये हुए **(सूनाः)** प्रसिद्ध पदार्थ तथा **(यूष्णः)** बढ़ाने वाले के **(अश्वम्)** घोड़े को **(परि, भूषन्ति)** सब ओर से सुशोभित करते हैं, वे सब स्वीकार करने योग्य हैं॥३६॥

भावार्थः-यदि कोई घोड़े आदि उपकारी पशुओं और उत्तम पक्षियों का मांस खावें तो उन को यथापराध अवश्य दण्ड देना चाहिये॥३६॥

मा त्वेत्यस्य गोतम ऋषिः। विद्वांसो देवताः। स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनर्मनुष्यैर्मांसभक्षणं न कर्त्तव्यमित्याह॥

फिर मनुष्यों को मांस न खाना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

मा त्वाग्निर्ध्वनयीद् धूमगन्धिर्मोखा भ्राजन्त्यभि विक्त जघ्रिः।

इष्टं वीतमभिगूर्त्तं वषट्कृतं तं देवासः प्रति गृभ्णन्त्यश्वम्॥३७॥

मा। त्वा। अग्निः। ध्वनयीत्। धूमगन्धिरिति धूमऽगन्धिः। मा। उखा। भ्राजन्ती। अभि। विक्त। जघ्रिः। इष्टम्। वीतम्। अभिगूर्त्तमित्यभिऽगूर्त्तम्। वषट्कृतमिति वषट्ऽकृतम्। तम्। देवासः। प्रति। गृभ्णन्ति। अश्वम्॥३७॥

पदार्थः-**(मा)** **(त्वा)** तम् **(अग्निः)** पावकः **(ध्वनयीत्)** शब्दयेत् **(धूमगन्धिः)** धूमे गन्धो यस्य सः **(मा)** **(उखा)** स्थाली **(भ्राजन्ती)** प्रकाशमाना **(अभि)** सर्वतः **(विक्त)** विजानीत **(जघ्रिः)** जिघ्रति यस्याः सा **(इष्टम्)** अभीप्सितम् **(वीतम्)** प्राप्तम् **(अभिगूर्त्तम्)** अभितः कृतोद्यमम् **(वषट्कृतम्)** क्रियासिद्धम् **(तम्)** **(देवासः)** विद्वांसः **(प्रति)** **(गृभ्णन्ति)** गृह्णन्ति **(अश्वम्)** वेगवन्तम्॥३७॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा देवासो यमिष्टं वीतमभिगूर्त्तं वषट्कृतमश्वं प्रतिगृभ्णन्ति, तं यूयमभि विक्त त्वा तं धूमगन्धिरग्निर्मा ध्वनयीत् तं जघ्रिर्भ्राजन्त्युखा मा ध्वनयीत्॥३७॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यथा विद्वांसो मांसाहारिणो निवार्याऽश्वादीनां वृद्धिं रक्षां च कुर्वन्ति, तथा यूयमपि कुरुत। अग्न्यादिविघ्नेभ्यः पृथग् रक्षत॥३७॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे **(देवासः)** विद्वान् जन जिस **(इष्टम्)** चाहे हुए **(वीतम्)** प्राप्त **(अभिगूर्त्तम्)** चारों ओर से जिस में उद्यम किया गया **(वषट्कृतम्)** ऐसी क्रिया से सिद्ध हुए **(अश्वम्)**

वेगवान् घोड़े को **(प्रति गृभ्णन्ति)** प्रतीति से ग्रहण करते उस को तुम **(अभि)** सब ओर से **(विक्त)** जानो **(त्वा)** उस को **(धूमगन्धि:)** धुआं में गन्ध जिस का वह **(अग्नि:)** अग्नि **(मा)** मत **(ध्वनयीत्)** शब्द करे वा **(तम्)** उस को **(जघ्रि:)** जिससे किसी वस्तु को सूंघते हैं, वह **(भ्राजन्ती)** चकमती हुई **(उखा)** बटलोई **(मा)** मत हिंसवावे॥३७॥

भावार्थ:-हे मनुष्यो! जैसे विद्वान् जन मांसाहारियों को निवृत्त कर घोड़ा आदि पशुओं की वृद्धि और रक्षा करते हैं, वैसे तुम भी करो और अग्नि आदि के विघ्नों से अलग रक्खो॥३७॥

निक्रमणमित्यस्य गोतम ऋषि:। यज्ञो देवता। विराट् पङ्क्तिश्छन्द:। पञ्चम: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

निक्रमणं निषदनं विवर्त्तनं यच्च पड्वीशमर्वत:।

यच्च पपौ यच्च घासिं जघास सर्वा ता तेऽअपि देवेष्वस्तु॥३८॥

निक्रमणमिति निऽक्रमणम्। निषदनम्। निसदनमिति निऽसदनम्। विवर्त्तनमिति विऽवर्त्तनम्। यत्। च। पड्वीशम्। अर्वत:। यत्। च। पपौ। यत्। च। घासिम्। जघास। सर्वा। ता। ते। अपि। देवेषु। अस्तु॥३८॥

पदार्थ:-(निक्रमणम्) निरन्तरं क्रमते यस्मिँस्तत् **(निषदनम्)** नितरां सीदन्ति यस्मिँस्तत् **(विवर्त्तनम्)** विशेषेण वर्त्तन्ते यस्मिँस्तत् **(यत्)** **(च)** **(पड्वीशम्)** यत्पादेषु विशति तत् **(अर्वत:)** अश्वस्य **(यत्)** **(च)** **(पपौ)** पिबति **(यत्)** **(च)** **(घासिम्)** अदनम् **(जघास)** अत्ति **(सर्वा)** सर्वाणि **(ता)** तानि **(ते)** तव **(अपि)** **(देवेषु)** दिव्येषु गुणेषु **(अस्तु)**॥३८॥

अन्वय:-हे विद्वन्! यत्तेऽर्वतो निक्रमणं निषदनं विवर्त्तनं यच्च पड्वीशं यच्चायं पपौ यच्च घासिं जघास, ता: सर्वा युक्त्या सन्तु तद्देवेष्वप्यस्तु॥३८॥

भावार्थ:-हे मनुष्या! भवन्तोऽश्वादीनां सुशिक्षणेन भक्ष्यपेयदानेन सर्वाणि कार्याणि साध्नुवन्तु॥३८॥

पदार्थ:-हे विद्वान्! जो **(ते)** तेरे **(अर्वत:)** घोड़े का **(निक्रमणम्)** निकलना **(निषदनम्)** बैठना **(विवर्त्तनम्)** विशेष कर वर्त्ताव वर्त्तना **(च)** और **(यत्)** जो **(पड्वीशम्)** पछाड़ी **(यत्,च)** और जो यह **(पपौ)** पीता **(यत्,च)** और जो **(घासिम्)** घास **(जघास)** खाता **(ता)** वे **(सर्वा)** सब काम युक्ति के साथ हों और यह सब **(देवेषु)** दिव्य उत्तम गुण वालों में **(अपि)** भी **(अस्तु)** होवे॥३८॥

भावार्थ:-हे मनुष्यो! आप घोड़े आदि पशुओं को अच्छी शिक्षा तथा खान-पान के देने से अपने सब कामों को सिद्ध किया करो॥३८॥

यदश्वायेत्यस्य गोतम ऋषि:। विद्वांसो देवता:। विराट् पङ्क्तिश्छन्द:। पञ्चम: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यदश्वा॑य॒ वास॑ऽउपस्तृ॒णन्त्य॑धीवा॒सं या हिर॑ण्यान्यस्मै।

स॒न्दान॒मर्व॑न्तं॒ पड्वी॑शं प्रि॒या दे॒वेष्वा या॑मयन्ति॥ ३९॥

यत्। अश्वा॑य। वास॑ः। उ॒प॒स्तृ॒णन्तीत्यु॑पऽस्तृ॒णन्ति॑। अ॒धी॒वा॒सम्। अ॒धि॒वा॒समित्य॑धिऽवा॒सम्। या। हिर॑ण्यानि। अ॒स्मै॒। स॒न्दान॒मिति॑ स॒म्ऽदान॑म्। अर्व॑न्तम्। पड्वी॑शम्। प्रि॒या। दे॒वेषु॑। आ। या॒म॒य॒न्ति॒। य॒म॒य॒न्तीति॑ यमयन्ति॥ ३९॥

पदार्थः-(**यत्**) (**अश्वाय**) (**वासः**) वत्रम् (**उपस्तृणन्ति**) आच्छादयन्ति (**अधीवासम्**) उपरि स्थापनीयम् (**या**) यानि (**हिरण्यानि**) हिरण्यैर्निर्मितानि आभूषणादीनि (**अस्मै**) (**सन्दानम्**) शिरोबन्धनादि (**अर्वन्तम्**) गच्छन्तम् (**पड्वीशम्**) पद्भिर्विशन्तम् (**प्रिया**) प्रियाणि (**देवेषु**) विद्वत्सु (**आ**) समन्तात् (**यामयन्ति**) नियमयन्ति॥ ३९॥

अन्वयः-हे मनुष्या! भवन्तोऽस्मा अश्वाय यद्वासोऽधीवासं सन्दानं या हिरण्यान्युपस्तृणन्ति यं पड्वीशमर्वन्तमायामयन्ति, तानि सर्वाणि देवेषु प्रिया सन्तु॥ ३९॥

भावार्थः-यदि मनुष्या अश्वादीन् पशून् यथावद् रक्षयित्वोपकारं गृह्णीयुस्तर्हि बहुकार्यसिद्ध्युपकृताः स्युः॥ ३९॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! आप (**अस्मै**) इस (**अश्वाय**) घोड़े के लिए (**यत्**) जो (**वासः**) वस्त्र (**अधीवासम्**) चारजामा (**सन्दानम्**) मुहेरा आदि और (**या**) जिन (**हिरण्यानि**) सुवर्ण के बनाये हुए आभूषणों को (**उपस्तृणन्ति**) ढ़ापते वा जिस (**पड्वीशम्**) पैरों से प्रवेश करते और (**अर्वन्तम्**) जाते हुए घोड़े को (**आ, यामयन्ति**) अच्छे प्रकार नियम में रखते हैं, वे सब पदार्थ और काम (**देवेषु**) विद्वानों में (**प्रिया**) प्रीति देने वाले हों॥ ३९॥

भावार्थः-जो मनुष्य घोड़े आदि पशुओं की यथावत् रक्षा करके उपकार लेवें तो बहुत कार्यों की सिद्धि से उपकारयुक्त हों॥ ३९॥

यत्त इत्यस्य गोतम ऋषिः। यज्ञो देवता। भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यत्ते॑ सा॒दे मह॑सा॒ शूकृ॑तस्य॒ पार्ष्ण्या॑ वा॒ कश॑या वा तु॒तोद॑।

स्रु॒चेव॒ ता ह॒विषो॑ऽअध्व॒रेषु॒ सर्वा॒ ता ते॒ ब्रह्म॑णा सूदयामि॥ ४०॥

यत्। ते॒। सा॒दे। मह॑सा। शूकृ॑तस्य। पार्ष्ण्या॑। वा॒। कश॑या। वा॒। तु॒तोद॑। स्रु॒चेवेति॑ स्रु॒चाऽइ॑व। ता। ह॒वि॒षः। अ॒ध्व॒रेषु॑। सर्वा॑। ता। ते॒। ब्रह्म॑णा। सू॒द॒या॒मि॒॥ ४०॥

पदार्थः-(**यत्**) यतः (**ते**) तव (**सादे**) स्थित्यधिकरणे (**महसा**) महत्त्वेन (**शूकृतस्य**) शीघ्रं शिक्षितस्य। **श्विति क्षिप्रनामसु पठितम्।।** (निघं०२।१५) (**पाष्ण्या**) पाष्णिषु कक्षासु साधूनि (**वा**) (**कशया**) ताडनसाधनेन (**वा**) (**तुतोद**) तुद्यात् (**स्रुचेव**) यथा स्रुचा प्रेरयन्ति तथा (**ता**) तानि (**हविषः**) होतमुमर्हस्य (**अध्वरेषु**) अहिंसनीयेषु यज्ञेषु (**सर्वा**) सर्वाणि (**ता**) तानि (**ते**) तुभ्यम् (**ब्रह्मणा**) धनेन (**सूदयामि**) प्रापयामि।।४०।।

अन्वयः-हे विद्वँस्ते सादे महसा शूकृतस्य कशया वा यत्पाष्ण्या वा तुतोद ता तान्यध्वरेषु हविषः स्रुचेव करोषि ता सर्वा ते ब्रह्मणाऽहं सूदयामि।।४०।।

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। यथा यज्ञसाधनैर्हवींष्यग्नौ प्रेरयन्ति तथैवाश्वादीनि सुशिक्षारीत्या प्रेरयेयुः।।४०।।

पदार्थः-हे विद्वन्! (**ते**) आप के (**सादे**) बैठने के स्थान में (**महसा**) बड़प्पन से (**वा**) अथवा (**शूकृतस्य**) जल्दी सिखाये हुए घोड़े के (**कशया**) कोड़े से (**यत्**) जिस कारण (**पाष्ण्या**) पसुली आदि स्थान (**वा**) वा कक्षाओं में जो उत्तम ताड़ना आदि काम वा (**तुतोद**) साधारण ताड़ना देना (**ता**) उन सब को (**अध्वरेषु**) यज्ञों में (**हविषः**) होमने योग्य पदार्थ सम्बन्धी (**स्रुचेव**) जैसे स्रुचा प्रेरणा देती वैसे करते हो (**ता**) वे (**सर्वा**) सब काम (**ते**) तेरे लिये (**ब्रह्मणा**) धन से (**सूदयामि**) प्राप्त करता हूँ।।४०।।

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे यज्ञ के साधनों से होमने योग्य पदार्थों को अग्नि में प्रेरणा देते हैं, वैसे ही घोड़े आदि पशुओं को अच्छी सिखावट की रीति से प्रेरणा देवें।।४०।।

चतुस्त्रिंशदित्यस्य गोतम ऋषिः। यज्ञो देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः।।

पुनस्तमेव विषयमाह।।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

चतु॑स्त्रिꣳशद्वा॒जिनो॑ दे॒वब॑न्धो॒र्वङ्क्री॒रश्व॑स्य॒ स्वधि॑तिः॒ समे॑ति।

अच्छि॑द्रा॒ गात्रा॑ व॒युना॑ कृणोतु॒ परु॑ष्परुरनु॒घुष्या॒ वि श॑स्त।।४१।।

चतु॑स्त्रिꣳशदि॒ति॒ चतुः॑ऽत्रिꣳशत्। वा॒जिनः॑। दे॒वब॑न्धो॒रिति॑ दे॒वऽब॑न्धोः। वङ्क्रीः॑। अश्व॑स्य। स्वधि॑ति॒रिति॒ स्वऽधि॑तिः। सम्। ए॒ति॒। अच्छि॑द्रा। गात्रा॑। व॒युना॑। कृ॒णो॒तु॒। परु॑ष्परुः। परुः॑परु॒रिति॒ परुः॑ऽपरुः। अ॒नु॒घुष्येत्य॑नु॒ऽघुष्य॑। वि। श॒स्त॒।।४१।।

पदार्थः-(**चतुस्त्रिंशत्**) शिक्षणानि (**वाजिनः**) वेगवतः (**देवबन्धोः**) देवा विद्वांसो बन्धुवद्यस्य तस्य (**वङ्क्रीः**) कुटिला गतीः (**अश्वस्य**) (**स्वधितिः**) वज्र इव वर्त्तमानः (**सम्**) सम्यक् (**एति**) गच्छति (**अच्छिद्रा**) छिद्ररहितानि (**गात्रा**) गात्राणि (**वयुना**) वयुनानि प्रज्ञानानि (**कृणोतु**) (**परुष्परुः**) मर्ममर्म

(अनुघुष्य) आनुकूल्येन घोषयित्वा। अत्र **संहितायाम्** [अ०६.३.११४] इति दीर्घः। **(वि)** विशेषेण **(शस्त)** छिन्त॥४१॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथाऽश्वशिक्षको देवबन्धोर्वाजिनोऽश्वस्य चतुस्त्रिंशद्वङ्क्रीः समेत्यच्छिद्रा गात्रा वयुना कृणोतु, तस्य परुष्परुरनुघुष्य स्वधितिरिव रोगान् यूयं विशस्त॥४१॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यथा चतुरोऽश्वशिकक्षश्चतुस्त्रिंशद् विचित्रा गतीरश्वं नयति, वैद्यश्चारोगिणं करोति, तथैवान्येषां पशूनां रक्षणेनोन्नतिः कार्या॥४१॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे घुड़चढ़ा चाबुकी जन **(देवबन्धोः)** जिसके विद्वान् बन्धु के समान उस **(वाजिनः)** वेगवान् **(अश्वस्य)** घोड़े की **(चतुस्त्रिंशत्)** चौंतीस **(वङ्क्रीः)** टेढ़ी-मेंढ़ी चालों को **(सम्, एति)** अच्छे प्रकार प्राप्त होता और **(अच्छिद्रा)** छेद-भेद रहित **(गात्रा)** अङ्ग और **(वयुना)** उत्तम ज्ञानों को **(कृणोतु)** करे, वैसे उस के **(परुष्परुः)** प्रत्येक मर्मस्थान को **(अनुघुष्य)** अनुकूलता से बजाकर **(स्वधितिः)** वज्र के समान वर्त्तमान तुम लोग रोगों को **(वि, शस्त)** विशेषता से छिन्न-भिन्न करो॥४१॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जैसे घोड़ों को सिखाने वाला चतुर जन चौंतीस चित्र-विचित्र गतियों को घोड़े को पहुंचाता और वैद्यजन प्राणियों को नीरोग करता है, वैसे ही और पशुओं की रक्षा से उन्नति करनी चाहिये॥४१॥

एकस्त्वष्टुरित्यस्य गोतम ऋषिः। यजमानो देवता। स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनः कथं पशवः शिक्षणीया इत्याह॥

फिर किस प्रकार पशु सिखाने चाहियें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

एक॒स्त्वष्टु॒रश्व॑स्या विश॒स्ता द्वा य॒न्तारा॑ भवत॒स्तथ॑ऽऋ॒तुः।

या ते॒ गात्रा॑णामृतु॒था कृ॒णोमि॒ ताता॒ पिण्डा॑नां॒ प्र जु॑होम्य॒ग्नौ॥४२॥

एक॑ः। त्वष्टु॑ः। अश्व॑स्य। वि॒श॒स्तेति॑ विऽश॒स्ता। द्वा। य॒न्तारा॑। भ॒व॒तः। तथा॑। ऋ॒तुः। या। ते॒। गात्रा॑णाम्। ऋ॒तु॒थेत्यृ॑तु॒ऽथा। कृ॒णोमि॑। ताते॒ति॒ ताता॑। पिण्डा॑नाम्। प्र। जु॒हो॒मि॒। अ॒ग्नौ॥४२॥

पदार्थः-**(एकः)** असहायः **(त्वष्टुः)** प्रदीप्तस्य **(अश्वस्य)** तुरङ्गस्य। अत्र **संहितायाम्** [अ०६.३.११४] इति दीर्घः। **(विशस्ता)** विच्छेदकः **(द्वा)** द्वौ **(यन्तारा)** नियामकौ **(भवतः)** **(तथा)** तेन प्रकारेण **(ऋतुः)** वसन्तादिः **(या)** यानि **(ते)** तव **(गात्राणाम्)** अङ्गानाम् **(ऋतुथा)** ऋतोः **(कृणोमि)** **(ताता)** तानि तानि **(पिण्डानाम्)** **(प्र)** **(जुहोमि)** **(अग्नौ)** पावके॥४२॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथैक ऋतुस्त्वष्टुरश्वस्य विशस्ता भवति, यौ द्वा यन्तारा भवतस्तथा या ते गात्राणां पिण्डानामृतुथा वस्तून्यहं कृणोमि ताताऽग्नौ प्रजुहोमि॥४२॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथाऽश्वशिक्षकाः प्रत्यृत्वश्वान् सुशिक्षयन्ति, तथा गुरवो विद्यार्थिनां चेष्टाकरणानि शिक्षयन्ति। यथाग्नौ पिण्डान् हुत्वा वायुं शोधयन्ति, तथा विद्याग्नावविद्याभ्रमान् हुत्वाऽऽत्मनः शोधयन्ति॥४२॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे **(एकः)** अकेला **(ऋतुः)** वसन्त आदि ऋतु **(त्वष्टुः)** शोभायमान **(अश्वस्य)** घोड़े का **(विशस्ता)** विशेष करके रूपादि का भेद करने वाला होता है वा जो **(द्वा)** दो **(यन्तारा)** नियम करने वाले **(भवतः)** होते हैं **(तथा)** वैसे **(या)** जिन **(ते)** तुम्हारे **(गात्राणाम्)** अङ्गों वा **(पिण्डानाम्)** पिण्डों के **(ऋतुथा)** ऋतु सम्बन्धी पदार्थों को मैं **(कृणोमि)** करता हूँ **(ताता)** उन-उन को **(अग्नौ)** आग में **(प्र, जुहोमि)** होमता हूँ॥४२॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे घोड़ों के सिखाने वाले ऋतु-ऋतु के प्रति घोड़ों को अच्छा सिखलाते हैं, वैसे गुरुजन विद्यार्थियों को क्रिया करना सिखलाते हैं वा जैसे अग्नि में पिण्डों का होम कर पवन की शुद्धि करते हैं, वैसे विद्यारूपी अग्नि में अविद्यारूप भ्रमों को होम के आत्माओं की शुद्धि करते हैं॥४२॥

मा त्वेत्यस्य गोतम ऋषिः। आत्मा देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः।

पुनर्मनुष्यैरात्मादयः कथं शोधनीया इत्याह॥

फिर मनुष्यों को आत्मादि पदार्थ कैसे शुद्ध करने चाहियें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

मा त्वा॑ तपत् प्रि॒यऽआ॒त्माऽपि॒यन्तं॒ मा स्वधि॑तिस्त॒न्व॒ऽआ ति॑ष्ठिपत्ते।

मा ते॑ गृध्नुर॑विश॒स्ताति॒हाय॑ छि॒द्रा गात्रा॑ण्य॒सिना॒ मिथू॑ कः॥४३॥

मा। त्वा॒। त॒प॒त्। प्रि॒यः। आ॒त्मा। अ॒पि॒यन्त॒मित्य॑पि॒ऽयन्त॑म्। मा। स्वधि॑ति॒रिति॒ स्वऽधि॑तिः। त॒न्वः॒। आ। ति॒ष्ठि॒प॒त्। ति॒स्थि॒प॒दिति॑ तिस्थिपत्। ते॒। मा। ते॒। गृ॒ध्नुः। अ॒वि॒श॒स्तेत्य॑विऽश॒स्ता। अ॒ति॒हायेत्य॑ति॒हाय॑। छि॒द्रा। गात्रा॑णि। अ॒सिना॑। मिथू॑। क॒रिति॑ कः॥४३॥

पदार्थः-**(मा)** निषेधे **(त्वा)** त्वाम् **(तपत्)** तपेत् **(प्रियः)** यः प्रीणाति कामयत आनन्दयति वा **(आत्मा)** स्वस्वरूपम् **(अपियन्तम्)** योऽप्येति तम् **(मा)** **(स्वधितिः)** वज्रः **(तन्वः)** शरीरस्य मध्ये **(आ)** **(तिष्ठिपत्)** समन्तात् स्थापयेत् **(ते)** तव **(मा)** **(ते)** तव **(गृध्नुः)** अभिकांक्षकः **(अविशस्ता)** अविच्छेदकः **(अतिहाय)** अत्यन्तं त्यक्त्वा **(छिद्रा)** छिद्राणि **(गात्राणि)** अङ्गानि **(असिना)** खड्गेन **(मिथू)** मिथः **(कः)** कुर्यात्॥४३॥

अन्वयः-हे विद्वँस्ते प्रिय आत्माऽपियन्तं त्वा त्वामतिहाय मा तपत्, स्वधितिस्ते तन्वो मा तिष्ठिपत्, ते छिद्रा गात्राण्यविशस्ता गृध्नुर्मा तिष्ठिपदसिना मिथू मा कः॥४३॥

भावार्थः-सर्वैर्मनुष्यैः स्व स्व आत्मा शोके न निपातनीयः, कस्याप्युपरि वज्रो न निपातनीयः, कस्याप्युपकारो न विच्छेदनीयश्च॥४३॥

पदार्थः-हे विद्वान् **(ते)** आप का जो **(प्रियः)** प्रीति वा आनन्द देने वाला वह **(आत्मा)** अपना निज रूप आत्मतत्त्व भी **(अपियन्तम्)** निश्चय से प्राप्त होते हुए **(त्वा)** आप को **(अतिहाय)** अतीव छोड़ के **(मा, तपत्)** मत संताप को प्राप्त हो **(स्वधितिः)** वज्र **(ते)** आप के **(तन्वः)** शरीर के बीच **(मा, आतिष्ठिपत्)** मत स्थित करावे, आप के **(छिद्रा)** छिन्न-भिन्न **(गात्राणि)** अङ्गों को **(अविशस्ता)** विशेष न काटने और **(गृध्नुः)** चाहने वाला जन **(मा)** मत स्थित करावे तथा **(असिना)** तलवार से **(मिथू)** परस्पर मत **(कः)** चेष्टा करे॥४३॥

भावार्थः-सब मनुष्यों को चाहिये कि अपने-अपने आत्मा को शोक में न डालें, किसी के ऊपर वज्र न छोड़ें और किसी का उपकार किया हुआ न नष्ट किया करें॥४३॥

न वा इत्यस्य गोतम ऋषिः। आत्मा देवता। स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनर्मनुष्यैः कीदृशानि यानानि कर्त्तव्यानीत्याह॥

फिर मनुष्यों को कैसे रथ-निर्माण करने चाहियें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

न वाऽउऽएतान्म्रियसे न रिष्यसि देवाँ२ऽइदेषि पथिभिः सुगेभिः।
हरी ते युञ्जा पृषतीऽअभूतामुपास्थाद् वाजी धुरि रासभस्य॥४४॥

न। वै। ऊँ इत्यूँ। एतत्। म्रियसे। न। रिष्यसि। देवान्। इत्। एषि। पथिऽभिः। सुगेभिः। हरी इति हरी। ते। युञ्जा। पृषती इति पृषती। अभूताम्। उप। अस्थात्। वाजी। धुरि। रासभस्य॥४४॥

पदार्थः-**(न)** निषेधे **(वै)** निश्चयेन **(उ)** इति वितर्के **(एतत्)** विज्ञानं प्राप्य **(म्रियसे)** **(न)** **(रिष्यसि)** हन्सि **(देवान्)** विदुषः **(इत्)** एव **(एषि)** **(पथिभिः)** मार्गैः **(सुगेभिः)** सुष्ठु गच्छन्ति येषु तैः **(हरी)** हरणशीलौ **(ते)** तव **(युञ्जा)** योजकौ **(पृषती)** स्थूलौ **(अभूताम्)** भवेताम् **(उप)** **(अस्थात्)** उपतिष्ठेत् **(वाजी)** वेगवान् **(धुरि)** धारणे **(रासभस्य)** अश्वसम्बन्धस्य॥४४॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यद्येतद्विज्ञानं प्राप्नोषि तर्हि न त्वं म्रियसे न वै रिष्यसि सुगेभिः पथिभिर्देवानिदेषि यदि ते पृषती युञ्जा हरी अभूतामु तर्हि वाजी रासभस्य धुर्य्युपास्थात्॥४४॥

भावार्थः-यथा विद्यया संयुक्तैर्वायुजलाग्निभिर्युक्ते रथे स्थित्वा मार्गान् सुखेन गच्छन्ति, तथैवात्मज्ञानेन स्वस्वरूपं नित्यं बुध्वा मरणहिंसात्रासं विहाय दिव्यानि सुखानि प्राप्नुयुः॥४४॥

पदार्थः-हे विद्वान्! यदि **(एतत्)** इस पूर्वोक्त विज्ञान को पाते हो तो **(न)** न तुम **(म्रियसे)** मरते **(न)** न **(वै)** ही **(रिष्यसि)** मारते हो, किन्तु **(सुगेभिः)** सुगम **(पथिभिः)** मार्गों से **(देवान्)** विद्वानों **(इत्)** ही को **(एषि)** प्राप्त होते हो, यदि **(ते)** आप के **(पृषती)** स्थूल शरीरयुक्त **(युञ्जा)** योग करने हारे घोड़े

(हरी) पहुंचाने वाले **(अभूताम्)** हों (उ) तो **(वाजी)** वेगवान् एक घोड़ा **(रासभस्य)** अश्वजाति से सम्बन्ध रखने वाले खिच्चर की **(धुरि)** धारणा के निमित्त **(उप, अस्थात्)** उपस्थित हो॥४४॥

भावार्थः-जैसे विद्या से अच्छे प्रकार जिनका प्रयोग किया, उन पवन जल और अग्नि से युक्त रथ में स्थिर होके मार्गों को सुख से जाते हैं, वैसे ही आत्मज्ञान से अपने स्वरूप को नित्य जान के मरण और हिंसा के डर को छोड़ दिव्य सुखों को प्राप्त हों॥४४॥

सुगव्यमित्यस्य गोतम ऋषिः। प्रजा देवता। स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

कै राज्योन्नतिः स्यादित्याह॥

किन से राज्य की उन्नति होवे, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

सुगव्यं नो वाजी स्वश्व्यं पुꣳसः पुत्राँ२ऽउत विश्वापुषꣳ रयिम्।
अनागास्त्वं नोऽअदितिः कृणोतु क्षत्रं नोऽअश्वो वनताꣳ हविष्मान्॥४५॥

सुगव्यमिति सुऽगव्यम्। नः। वाजी। स्वश्व्यमिति सुऽअश्व्यम्। पुंसः। पुत्रान्। उत। विश्वापुषम्। विश्वपुषमिति विश्वऽपुषम्। रयिम्। अनागास्त्वमित्यनागःऽत्वम्। नः। अदितिः। कृणोतु। क्षत्रम्। नः। अश्वः। वनताम्। हविष्मान्॥४५॥

पदार्थः-**(सुगव्यम्)** सुष्ठु गोभ्यो हितम् **(नः)** अस्माकम् **(वाजी)** अश्वः **(स्वश्व्यम्)** शोभनेष्वश्वेषु भवम् **(पुंसः)** पुंस्त्वयुक्तान् पुरुषार्थिनः **(पुत्रान्)** **(उत)** अपि **(विश्वापुषम्)** समग्रपुष्टिकरम् **(रयिम्)** धनम् **(अनागास्त्वम्)** अनपराधत्वम् **(नः)** अस्मान् **(अदितिः)** कारणरूपेणाविनाशिनी भूमिः **(कृणोतु)** **(क्षत्रम्)** राज्यम् **(नः)** अस्माकम् **(अश्वः)** व्याप्तिशीलः **(वनताम्)** संभजताम् **(हविष्मान्)** प्रशस्तानि हवींषि सुखदानानि यस्मिन् सः॥४५॥

अन्वयः-यो नो वाजी सुगव्यं स्वश्व्यङ्करोति, यो विद्वान् पुंसः पुत्रानुत विश्वापुषं रयिञ्च प्राप्नोति, यथाऽदितिर्नोऽनागास्त्वङ्करोति, तथा भवान् कृणोतु। यथा हविष्मानश्वो नः क्षत्रं वनतान्तथा त्वं सेवस्व॥४५॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये जितेन्द्रिया ब्रह्मचर्येण वीर्यवन्तोऽश्व इवाऽमोघवीर्याः पुरुषार्थेन धनं प्राप्नुवन्तो न्यायेन राज्यमुन्नयेयुस्ते सुखिनः स्युः॥४५॥

पदार्थः-जो **(नः)** हमारा **(वाजी)** घोड़ा **(सुगव्यम्)** सुन्दर गौओं के लिये सुखस्वरूप **(स्वश्व्यम्)** अच्छे घोड़ों में प्रसिद्ध हुए काम को करता है वा जो विद्वान् **(पुंसः)** पुरुषपन से युक्त पुरुषार्थी **(पुत्रान्)** पुत्रों **(उत)** और **(विश्वापुषम्)** समग्र पुष्टि करने वाले **(रयिम्)** धन को प्राप्त होता वा जैसे **(अदितिः)** कारणरूप से अविनाशी भूमि **(नः)** हमारे लिये **(अनागास्त्वम्)** अपराधरहित होने को करती है, वैसे आप

(कृणोतु) करें वा जैसे **(हविष्मान्)** प्रशंसित सुख देने जिस में हैं, वह **(अश्वः)** व्याप्तिशील प्राणी **(नः)** हम लोगों के **(क्षत्रम्)** राज्य को **(वनताम्)** सेवे, वैसे आप सेवा किया करो॥४५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो जितेन्द्रिय और ब्रह्मचर्य से वीर्यवान् घोड़े के समान अमोघवीर्य्य पुरुषार्थ से धन पाये हुए न्याय से राज्य को उन्नति देवें, वे सुखी होवें॥४५॥

इमा नु कमित्यस्य गोतम ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। भुरिक्शक्वरी छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनः के श्रीमन्तो भवन्तीत्याह॥

फिर कौन धनवान् होते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

इमा नु कं भुवना सीषधामेन्द्रश्च विश्वे च देवाः।
आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्मभ्यं भेषजा करत्।
यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह सीषधाति॥४६॥

इमा। नु। कम्। भुवना। सीषधाम। सीसधामेति सीसधाम। इन्द्रः। च। विश्वे। च। देवाः। आदित्यैः। इन्द्रः। सगण इति सऽगणः। मरुद्भिरिति मरुत्ऽभिः। अस्मभ्यम्। भेषजा। करत्। यज्ञम्। च। नः। तन्वम्। च। प्रजामिति प्रऽजाम्। च। आदित्यैः। इन्द्रः। सह। सीषधाति। सिसधातीति सिसधाति॥४६॥

पदार्थः-**(इमा)** इमानि **(नु)** सद्यः **(कम्)** सुखम् **(भुवना)** भुवनानि **(सीषधाम)** साधयेम **(इन्द्रः)** परमैश्वर्यवान् राजा **(च)** **(विश्वे)** सर्वे **(च)** **(देवाः)** विद्वांसः सभासदः **(आदित्यैः)** मासैः **(इन्द्रः)** सूर्यः **(सगणः)** गणैः सह वर्त्तमानः **(मरुद्भिः)** मनुष्यैः सह **(अस्मभ्यम्)** **(भेषजा)** भेषजानि **(करत्)** कुर्यात् **(यज्ञम्)** विद्वत्सत्कारादिकम् **(च)** **(नः)** अस्माकम् **(तन्वम्)** शरीरम् **(च)** **(प्रजाम्)** सन्तानादिकम् **(च)** **(आदित्यैः)** उत्तमैर्विद्वद्भिः सह **(इन्द्रः)** ऐश्वर्यकारी सभेशः **(सह)** **(सीषधाति)** साधयेत्॥४६॥

अन्वयः-हे मनुष्या यथेन्द्रश्च विश्वे देवाश्चेमा विश्वा भुवना धरन्ति, तथा वयं कं नु सीषधाम। यथा सगण इन्द्र आदित्यैः सह सर्वाल्लोकान् प्रकाशयति, तथा मरुद्भिः सह वैद्योऽस्मभ्यं भेषजा करत्। यथाऽऽदित्यैः सहेन्द्रो नो यज्ञं च तन्वं च प्रजां च सीषधाति, तथा वयं साध्नुयाम॥४६॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये मनुष्याः सूर्यवन्नियमेन वर्तित्वा शरीरमरोगमात्मानं विद्वांसं संसाध्य पूर्णं ब्रह्मचर्यं कृत्वा स्वयं वृतां हृद्यां स्त्रियं स्वीकृत्य तत्र प्रजा उत्पाद्य सुशिक्ष्य विदुषी कुर्वन्ति, ते श्रियः पतयो जायन्ते॥४६॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे **(इन्द्रः)** परमैश्वर्य्यवान् राजा **(च)** और **(विश्वे)** सब **(देवाः)** विद्वान् लोग **(च)** भी **(इमा)** इन समस्त **(भुवना)** लोकों को धारण करते, वैसे हम लोग **(कम्)** सुख को **(नु)** शीघ्र **(सीषधाम)** सिद्ध करें वा जैसे **(सगणः)** अपने सहचारी आदि गणों के साथ वर्त्तमान **(इन्द्रः)** सूर्य **(आदित्यैः)** महीनों के साथ वर्त्तमान समस्त लोकों को प्रकाशित करता, वैसे **(मरुद्भिः)** मनुष्यों के साथ

वैद्यजन **(अस्मभ्यम्)** हम लोगों के लिये **(भेषजा)** ओषधियां **(करत्)** करे, जैसे **(आदित्यैः)** उत्तम विद्वानों के **(सह)** साथ **(इन्द्रः)** परमैश्वर्यवान् सभापति **(नः)** हम लोगों के **(यज्ञम्)** विद्वानों के सत्कार आदि उत्तम काम **(च)** और **(तन्वम्)** शरीर **(च)** और **(प्रजाम्)** सन्तान आदि को **(च)** भी **(सीषधाति)** सिद्ध करे, वैसे हम लोग सिद्ध करें॥४६॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य सूर्य के तुल्य नियम से वर्त्ताव रखके शरीर को नीरोग और आत्मा को विद्वान् बना तथा पूर्ण ब्रह्मचर्य कर स्वयंवरविधि से हृदय को प्यारी स्त्री को स्वीकार कर, उस में सन्तानों को उत्पन्न कर और अच्छी शिक्षा देके विद्वान् करते हैं, वे धनपति होते हैं॥४६॥

अग्ने त्वमित्यस्य गोतम ऋषिः। अग्निर्देवता। शक्वरी छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनः के सत्कर्त्तव्याः सन्तीत्याह॥

फिर कौन सत्कार करने योग्य हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अग्ने त्वं नोऽ अन्तमऽउत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः।
वसुरग्निर्वसुश्रवाऽअच्छा नक्षि द्युमत्तमꣳ रयिं दाः॥४७॥

अग्ने। त्वम्। नः। अन्तमः। उत। त्राता। शिवः। भव। वरूथ्यः। वसुः। अग्निः। वसुश्रवा इति वसुऽश्रवाः। अच्छ। नक्षि। द्युमत्तममिति द्युमत्ऽतमम्। रयिम्। दाः॥४७॥

पदार्थः-**(अग्ने)** वेदविदध्यापकोपदेशक **(त्वम्)** **(नः)** अस्माकम् **(अन्तमः)** निकटस्थः **(उत)** अपि **(त्राता)** पालकः **(शिवः)** कल्याणकारी **(भव)** अत्र **द्व्यचोऽतस्तिङः** [अ०६.३.१३५] इति दीर्घः। **(वरूथ्यः)** वरूथेषु गृहेषु साधुः **(वसुः)** विद्यासु वासयिता **(अग्निः)** पावक इव **(वसुश्रवाः)** वसूनि धनानि श्रवणे यस्य सः **(अच्छ)** अत्र **निपातस्य च** [अ०६.३.१३६] इति दीर्घः। **(नक्षि)** प्राप्नोषि। णक्षधातोरयं प्रयोगः। **(द्युमत्तमम्)** अतिशयेन प्रकाशवन्तम् **(रयिम्)** धनम् **(दाः)** दद्याः॥४७॥

अन्वयः-हे अग्ने! त्वमग्निरिव नोऽन्तमस्त्राता शिव उत वरूथ्यो वसुश्रवा वसुर्भव। यो द्युमत्तमं रयिमस्मभ्यमच्छ दाः। अस्मान्नक्षि स त्वमस्माभिः सत्कर्त्तव्योऽसि॥४७॥

भावार्थः-मनुष्यैः सर्वोपकारिणो वेदादिशास्त्रवेत्तारोऽध्यापकोपदेशका विद्वांसः सदैव सत्कर्त्तव्याः। ते च सत्कृताः सन्तः सर्वेभ्यः सदुपदेशाद्युत्तमगुणान् धनादिकं च सदा प्रयच्छेयुः। येन परस्परस्य प्रीत्युपकारेण महान् सुखलाभः स्यादिति॥४७॥

पदार्थः-हे **(अग्ने)** वेदवेत्ता पढ़ाने और उपदेश करने हारे विद्वान्! आप **(अग्निः)** अग्नि के समान **(नः)** हम लोगों के **(अन्तमः)** समीपस्थ **(त्राता)** रक्षा करने वाले **(शिवः)** कल्याणकारी **(उत)** और **(वरूथ्यः)** घरों में उत्तम **(वसुश्रवाः)** जिन के श्रवण में बहुत धन और **(वसुः)** विद्याओं में वसाने हारे हो,

ऐसे **(भव)** हूजिये जो **(द्युमत्तमम्)** अतीव प्रकाशवान् **(रयिम्)** धन हम लोगों के लिये **(अच्छ, दाः)** भलीभांति देओ तथा हम को **(नक्षि)** प्राप्त होते हो सो **(त्वम्)** आप हम लोगों से सत्कार पाने योग्य हो॥४७॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि सब के उपकारी वेदादि शास्त्रों के ज्ञाता, अध्यापक, उपदेशक, विद्वानों का सदैव सत्कार करें और वे सत्कार को प्राप्त हुए विद्वान् लोग भी सब के लिये उत्तम उपदेशादि अच्छे गुणों और धनादि पदार्थों को सदा देवें, जिससे परस्पर प्रीति और उपकार से बड़े-बड़े सुखों का लाभ होवे॥४७॥

तन्त्वेत्यस्य गोतम ऋषिः। विद्वान् देवता। भुरिग्बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनर्मनुष्यैरिह कथं वर्त्तितव्यमित्याह॥

फिर मनुष्यों को इस जगत् में कैसे वर्त्तना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

तं त्वा॑ शोचिष्ठ दीदिवः सु॒म्नाय॑ नू॒नमी॑महे सखि॑भ्यः।

स नो॑ बोधि श्रु॒धी हव॑मुरु॒ष्या णो॑ अघाय॒तः सम॑स्मात्॥४८॥

तम्। त्वा॒। शो॒चि॒ष्ठ॒। दी॒दि॒व॒ इति॑ दीदिऽवः। सु॒म्नाय॑। नू॒नम्। ई॒म॒हे॒। सखि॑भ्य इति॒ सखिऽभ्यः। सः। नः॒। बो॒धि॒। श्रु॒धी। हव॑म्। उ॒रु॒ष्य। नः॒। अ॒घा॒य॒तः। अ॒घ॒य॒त इत्य॑घऽय॒तः। सम॑स्मात्॥४८॥

पदार्थः-**(तम्)** **(त्वा)** त्वाम् **(शोचिष्ठ)** सद्गुणैः प्रकाशमान **(दीदिवः)** विद्यादिगुणैः शोभावन् **(सुम्नाय)** सुखाय **(नूनम्)** निश्चितम् **(ईमहे)** याचामहे **(सखिभ्यः)** मित्रेभ्यः **(सः)** **(नः)** अस्मान् **(बोधि)** बोधय **(श्रुधी)** शृणु **(हवम्)** आह्वानम् **(उरुष्य)** रक्ष **(नः)** अस्माकम् **(अघायतः)** आत्मनोऽघमाचरतः **(समस्मात्)** अधर्मेण तुल्यगुणकर्मस्वभावात्॥४८॥

अन्वयः-हे शोचिष्ठ! दीदिवो विद्वन् यस्त्वं नो बोधि तन्त्वा सुम्नाय सखिभ्यो नूनं वयमीमहे। स त्वन्नो हवं श्रुधि समस्मादघायत उरुष्य च॥४८॥

भावार्थः-विद्यार्थिनोऽध्यापकान् प्रत्येवं वदेयुर्भवन्तो यदस्माभिरधीतं तत्परीक्षन्ताम्। अस्मान् दुष्टाचारात् पृथग् रक्षन्तु यतो वयं सर्वैः सह मित्रवद्वर्त्तेमहि॥४८॥

अस्मिन्नध्याये सृष्टिस्थपदार्थगुणवर्णनं पश्वादिप्राणिनां शिक्षारक्षणं स्वाङ्गरक्षणं परमेश्वरप्रार्थनं यज्ञप्रशंसा प्रज्ञाप्रापणं धर्मेच्छाऽश्वगुणकथनं तच्छिक्षणमात्मज्ञानधनप्रापणयोर्विधानं चोक्तमत एतदध्यायोक्तार्थस्य पूर्वाध्यायोक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेद्यम्॥४८॥

पदार्थः-हे **(शोचिष्ठ)** उत्तम गुणों से प्रकाशमान **(दीदिवः)** विद्यादि गुणों से शोभायुक्त विद्वन्! जो आप **(नः)** हम लोगों को **(बोधि)** बोध कराते **(तम्)** उन **(त्वा)** आप को **(सुम्नाय)** सुख और **(सखिभ्यः)** मित्रों के लिये **(नूनम्)** निश्चय से हम लोग **(ईमहे)** याचते हैं **(सः)** सो आप **(नः)** हम लोगों के **(हवम्)**

पुकारने को **(श्रुधी)** सुनिये और **(समस्मात्)** अधर्म के तुल्य गुण-कर्म-स्वभाव वाले **(अघायतः)** आत्मा के अपराध का आचरण करते हुए दुष्ट, डाकू, चोर, लम्पट से हमारी **(उरुष्य)** रक्षा कीजिये॥४८॥

भावार्थः-विद्यार्थी लोग पढ़ाने वालों के प्रति ऐसे कहें कि आप से जो हम लोगों ने पढ़ा है, उसकी परीक्षा लीजिये और हम को दुष्ट आचरण से पृथक् रखिये, जिससे हम लोग सब के साथ मित्र के समान वर्त्ताव रक्खें॥४८॥

इस अध्याय में संसार के पदार्थों के गुणों का वर्णन, पशु आदि प्राणियों को सिखलाना, पालना, अपने अङ्गों की रक्षा, परमेश्वर की प्रार्थना, यज्ञ की प्रशंसा, बुद्धि का देना, धर्म में इच्छा, घोड़े के गुण कहना, उस की चाल आदि सिखलाना, आत्मा का ज्ञान और धन की प्राप्ति होने का विधान कहा है, इससे इस अध्याय में कहे अर्थ की पिछले अध्याय में कहे हुए अर्थ के साथ एकता जाननी चाहिये॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां श्रीयुतपरमविदुषां श्रीविरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण परमहंसपरिव्राजकाचार्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचिते संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां समन्विते सुप्रमाणयुक्ते यजुर्वेदभाष्ये पञ्चविंशोऽध्यायः समाप्तः॥२५॥

॥ओ३म्॥

अथ षड्विंशोऽध्याय आरभ्यते

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव। यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व॥ यजु० ३०.३॥

अग्निरित्यस्य याज्ञवल्क्य ऋषिः। अग्न्यादयो देवताः। अभिकृतिश्छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

अथ मनुष्यैस्तत्त्वेभ्य उपकारा यथावत्संग्राह्या इत्याह॥

अब छब्बीसवें अध्याय का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को तत्त्वों से यथावत् उपकार लेने चाहियें, इस विषय का वर्णन किया है॥

अ॒ग्निश्च॑ पृथि॒वी च॒ सन्न॑ते॒ ते मे॒ सं न॑मताम॒दो वा॒युश्चा॒न्तरि॑क्षं च॒ सन्न॑ते॒ ते मे॒ सं न॑मताम॒दऽ आ॑दि॒त्यश्च॒ द्यौश्च॒ सन्न॑ते॒ ते मे॒ सं न॑मताम॒दऽआपश्च॒ वरु॑णश्च॒ सन्न॑ते॒ ते मे॒ सं न॑मताम॒दः। स॒प्त स॒ꣳस॒दो॑ऽ अष्ट॒मी भू॑त॒साध॑नी। सका॑माँ२॥ऽअध्व॑नस्कुरु सं॒ज्ञान॑मस्तु मे॒ऽमुना॑॥१॥

अ॒ग्निः। च॒। पृ॒थि॒वी। च॒। सन्न॑ते॒ऽइति॒ सम्ऽनते। ते इति॒ ते। मे॒। सम्। न॒म॒ता॒म्। अ॒दः। वा॒युः। च॒। अ॒न्तरि॑क्षम्। च॒। सन्न॑ते॒ इति॒ सम्ऽन॑ते। ते इति॒ ते। मे॒। सम्। न॒म॒ता॒म्। अ॒दः। आ॒दि॒त्यः। च॒। द्यौः। च॒। सन्न॒ते इति॒ सम्ऽन॑ते। ते इति॒ ते। मे॒। सम्। न॒म॒ता॒म्। अ॒दः। आप॑ः। च॒। वरु॑णः। च॒। सन्न॑ते॒ इति॒ सम्ऽन॑ते। ते इति॒ ते। मे॒। सम्। न॒म॒ता॒म्। अ॒दः। स॒प्त। स॒ꣳस॒द॒ इति स॒म्ऽसदः। अ॒ष्ट॒मी। भू॒त॒साध॒नीति॑ भृ॒त॒ऽसाध॑नी। सका॑मा॒निति॒ स॒ऽका॑मान्। अध्व॑नः। कु॒रु॒। सं॒ज्ञा॒नमिति॑ स॒म्ऽज्ञान॑म्। अ॒स्तु॒। मे॒। अ॒मुना॑॥ १॥

पदार्थः-(अग्निः) पावकः **(च) (पृथिवी) (च) (सन्नते) (ते) (मे)** मह्यम् **(सम्)** सम्यक् **(नमताम्)** अनुकूलं कुर्वाताम् **(अदः) (वायुः) (च) (अन्तरिक्षम्) (च) (सन्नते)** अनुकूले **(ते) (मे)** मह्यम् **(सम्) (नमताम्) (अदः) (आदित्यः)** सूर्यः **(च) (द्यौः)** तत्प्रकाशः **(च) (सन्नते) (ते) (मे)** मह्यम् **(सम्) (नमताम्) (अदः) (आपः)** जलानि **(च) (वरुणः)** तदवयवी **(च) (सन्नते) (ते) (मे)** मह्यम् **(सम्) (नमताम्) (अदः) (सप्त) (संसदः)** सम्यक् सीदन्ति यासु ताः **(अष्टमी)** अष्टानां पूरणा **(भूतसाधनी)** भूतानां साधिका **(सकामान्)** समानस्तुल्यः कामो येषां तान् **(अध्वनः)** मार्गान् **(कुरु) (संज्ञानम्)** सम्यग्ज्ञानम् **(अस्तु) (मे) मह्यम् (अमुना)** एवं प्रकारेण॥ १॥

अन्वयः-हे मनुष्या यथा ये मेऽग्निश्च पृथिवी च सन्नते ते अदः सन्नमतां ये मे वायुश्चान्तरिक्षं च सन्नते स्तस्ते अदः सन्नमताम्। ये मे आदित्यश्च द्यौश्च सन्नते ते अदः सन्नमतां ये म आपश्च वरुणश्च सन्नते स्तस्ते अदः सन्नमताम्। या अष्टमी भूतसाधनी सप्त संसदः सकामानध्वनः कुर्य्यात् तथा कुरु। अमुना मे संज्ञानमस्तु तथैतत्सर्वं युष्माकमप्यस्तु॥ १॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यद्यग्न्यादिपञ्चभूतानि यथावद्विज्ञाय कश्चित्प्रयुञ्जीत तर्हि तानि वर्त्तमानमदः सुखं प्रापयन्ति॥१॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो जैसे **(मे)** मेरे लिए **(अग्निः)** अग्नि **(च)** और **(पृथिवी)** भूमि **(च)** भी **(सन्नते)** अनुकूल हैं **(ते)** वे **(अदः)** इस को **(सन्नमताम्)** अनुकूल करें, जो **(मे)** मेरे लिये **(वायुः)** पवन **(च)** और **(अन्तरिक्षम्)** आकाश **(च)** भी **(सन्नते)** अनूकूल हैं **(ते)** वे **(अदः)** इस को **(सन्नमताम्)** अनुकूल करें, जो **(मे)** मेरे लिये **(आदित्यः)** सूर्य **(च)** और **(द्यौः)** उसका प्रकाश **(च)** भी **(सन्नते)** अनुकूल हैं **(ते)** वे **(अदः)** इस को **(सन्नमताम्)** अनुकूल करें, जो **(मे)** मेरे अर्थ **(आपः)** जल **(च)** और **(वरुणः)** जल जिस का अवयव है, वह **(च)** भी **(सन्नते)** अनुकूल हैं **(ते)** वे दोनों **(अदः)** इस को **(सन्नमताम्)** अनुकूल करें, जो **(अष्टमी)** आठमी **(भूतसाधनी)** प्राणियों के कार्यों को सिद्ध करने हारी वा **(सप्त)** सात **(संसदः)** वे सभी जिन में अच्छे प्रकार स्थिर होते **(सकामान्)** समान कामना वाले **(अध्वनः)** मार्गों को करें, वैसे तुम **(कुरु)** करो **(अमुना)** इस प्रकार से **(मे)** मेरे लिये **(संज्ञानम्)** उत्तम ज्ञान **(अस्तु)** प्राप्त होवे, वैसे ही यह सब तुम लोगों के लिये भी प्राप्त होवे॥१॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। यदि अग्नि आदि पंचतत्त्वों को यथावत् जान के कोई उन का प्रयोग करे तो वे वर्त्तमान उस अत्युत्तम सुख की प्राप्ति कराते हैं॥१॥

यथेमामित्यस्य लौगाक्षिर्ऋषिः। ईश्वरो देवता। स्वराडत्यष्टिश्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथेश्वरः सर्वेभ्यो मनुष्येभ्यो वेदपठनश्रवणाधिकारं ददातीत्याह॥

अब ईश्वर सब मनुष्यों के लिये वेद के पढ़ने और सुनने का अधिकार देता है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्याꣳ शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च। प्रियो देवानां दक्षिणायै दातुरिह भूयासमयं मे कामः समृध्यतामुप मादो नमतु॥२॥

यथा। इमाम्। वाचम्। कल्याणीम्। आवदानीत्याऽवदानि। जनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्याम्। शूद्राय। च। अर्याय। च। स्वाय। च। अरणाय। प्रियः। देवानाम्। दक्षिणायै। दातुः। इह। भूयासम्। अयम्। मे। कामः। सम्। ऋध्यताम्। उप। मा। अदः। नमतु॥२॥

पदार्थः-**(यथा)** येन प्रकारेण **(इमाम्)** प्रत्यक्षीकृताम् **(वाचम्)** वेदचतुष्टयीं वाणीम् **(कल्याणीम्)** कल्याणनिमित्ताम् **(आवदानि)** समन्तादुपदिशेयम् **(जनेभ्यः)** मनुष्येभ्यः **(ब्रह्मराजन्याभ्याम्)** ब्रह्म ब्राह्मणश्च राजन्यः क्षत्रियश्च ताभ्याम् **(शूद्राय)** चतुर्थवर्णाय **(च)** **(अर्याय)** वैश्याय। **अर्यः स्वामिवैश्ययोः** [अ०३.१.१०३] इति पाणिनिसूत्रम् **(च)** **(स्वाय)** स्वकीयाय **(च)** **(अरणाय)** सल्लक्षणाय प्राप्तायान्त्यजाय **(प्रियः)** कमनीयः **(देवानाम्)** विदुषाम् **(दक्षिणायै)** दानाय **(दातुः)** दानकर्त्तुः

(इह) अस्मिन् संसारे **(भूयासम्)** **(अयम्)** **(मे)** मम **(कामः)** **(सम्)** **(ऋध्यताम्)** वर्द्धताम् **(उप)** **(मा)** माम् **(अदः)** परोक्षसुखम् **(नमतु)** प्राप्नोतु॥२॥

अन्वयः-हे मनुष्या यथाऽहमीश्वरो ब्रह्मराजन्याभ्यामर्याय शूद्राय च स्वाय चारणाय च जनेभ्य इहेमां कल्याणीं वाचमावदानि तथा भवन्तोऽप्यावदन्तु। यथाऽहं दातुर्देवानां दक्षिणायै प्रियो भूयासं मेऽयं कामः समृध्यतां माऽद उपनमतु तथा भवन्तोऽपि भवन्तु तद्भवतामप्यस्तु॥२॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। परमात्मा सर्वान् मनुष्यान् प्रतीदमुपदिशतीयं वेदचतुष्टयी वाक् सर्वमनुष्याणां हिताय मयोपदिष्टा नाऽत्र कस्याप्यनधिकारोऽस्तीति। यथाऽहं पक्षपातं विहाय सर्वेषु मनुष्येषु वर्त्तमानः सन् प्रियोऽस्मि तथा भवन्तोऽपि भवन्तु। एवङ्कृते युष्माकं सर्वे कामाः सिद्धा भविष्यन्तीति॥२॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! मैं ईश्वर **(यथा)** जैसे **(ब्रह्मराजन्याभ्याम्)** ब्राह्मण, क्षत्रिय **(अर्याय)** वैश्य **(शूद्राय)** शूद्र **(च)** और **(स्वाय)** अपने स्त्री, सेवक आदि **(च)** और **(अरणाय)** उत्तम लक्षणयुक्त प्राप्त हुए अन्त्यज के लिए **(च)** भी **(जनेभ्यः)** इन उक्त सब मनुष्यों के लिए **(इह)** इस संसार में **(इमाम्)** इस प्रगट की हुई **(कल्याणीम्)** सुख देने वाली **(वाचम्)** चारों वेदरूप वाणी का **(आवदानि)** उपदेश करता हूँ, वैसे आप लोग भी अच्छे प्रकार उपदेश करें। जैसे मैं **(दातुः)** दान देने वाले के संसर्गी **(देवानाम्)** विद्वानों की **(दक्षिणायै)** दक्षिणा अर्थात् दान आदि के लिये **(प्रियः)** मनोहर पियारा **(भूयासम्)** होऊं और **(मे)** मेरी **(अयम्)** यह **(कामः)** कामना **(समृध्यताम्)** उत्तमता से बढ़े तथा **(मा)** मुझे **(अदः)** वह परोक्षसुख **(उप, नमतु)** प्राप्त हो, वैसे आप लोग भी होवें और वह कामना तथा सुख आप को भी प्राप्त होवे॥२॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। परमात्मा सब मनुष्यों के प्रति इस उपदेश को करता है कि यह चारों वेदरूप कल्याणकारिणी वाणी सब मनुष्यों के हित के लिए मैंने उपदेश की है, इस में किसी को अनधिकार नहीं है, जैसे मैं पक्षपात को छोड़ के सब मनुष्यों में वर्तमान हुआ पियारा हूँ, वैसे आप भी होओ। ऐसे करने से तुम्हारे सब काम सिद्ध होंगे॥२॥

बृहस्पत इत्यस्य गृत्समद ऋषिः। ईश्वरो देवता। भुरिगत्यष्टिश्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनः स ईश्वरः किं करोतीत्याह॥

फिर वह ईश्वर क्या करता है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

बृह॑स्पते॒ऽअति॒ यद॒र्योऽअर्हा॑द् द्यु॒मद्वि॒भाति॒ क्रतु॑म॒ज्जने॑षु।
यद्दी॒दय॒च्छव॑सऽ ऋतप्रजात॒ तद॒स्मासु॒ द्रवि॑णं धेहि चि॒त्रम्।
उ॒प॒या॒मगृ॑हीतोऽसि॒ बृह॒स्पत॑ये त्वै॒ष ते॒ योनि॒र्बृह॒स्पत॑ये त्वा॥३॥

बृह॑स्पते। अति॑। यत्। अ॒र्यः। अर्हा॑त्। द्यु॒मदिति॑ द्यु॒ऽमत्। वि॒भातीति॑ वि॒ऽभाति॑। क्रतु॑म॒दिति॒ क्रतु॑ऽमत्। जने॑षु। यत्। दी॒दय॑त्। शव॑सा। ऋ॒तप्र॒जा॒तेत्यृ॑तऽप्रजात। तत्। अ॒स्मासु॑। द्रवि॑णम्। धे॒हि॒। चि॒त्रम्। उ॒प॒या॒मगृ॑हीत॒ इत्यु॑पया॒मऽगृ॑हीतः। अ॒सि॒। बृह॒स्पत॑ये। त्वा॒। ए॒षः। ते॒। योनिः॑। बृह॒स्पत॑ये। त्वा॒॥ ३॥

पदार्थः-(**बृहस्पते**) बृहतां प्रकृत्यादीनां जीवानां च पालकेश्वर (**अति**) (**यत्**) (**अर्यः**) स्वामीश्वरः। **अर्यः स्वामिवैश्ययोः [अ० ३.१.१०३]** (**अर्य इतीश्वरना०** (निघं०२।२२॥) (**अर्हात्**) योग्यात् (**द्युमत्**) प्रशस्तप्रकाशयुक्तं मनः (**विभाति**) विशेषतया प्रकाशते (**क्रतुमत्**) प्रशस्तप्रज्ञाकर्मयुक्तम् (**जनेषु**) मनुष्येषु (**यत्**) (**दीदयत्**) प्रकाशयत्सत् (**शवसा**) बलेन (**ऋतप्रजात**) ऋतं सत्यं प्रजातं यस्मात्तत्संबुद्धौ (**तत्**) (**अस्मासु**) (**द्रविणम्**) धनं यशश्च (**धेहि**) (**चित्रम्**) आश्चर्यम् (**उपयामगृहीतः**) उपगतयमैर्विदितः (**असि**) (**बृहस्पतये**) बृहत्या वाचः पालनाय (**त्वा**) त्वाम् (**एषः**) (**ते**) तव (**योनिः**) प्रमाणम् (**बृहस्पतये**) बृहतामाप्तानां पालकाय (**त्वा**) त्वाम्॥ ३॥

अन्वयः-हे बृहस्पते! यस्त्वमुपयामगृहीतोऽसि तं त्वा बृहस्पतये यस्यैष ते योनिरस्ति तस्मै बृहस्पतये त्वा वयं स्वीकुर्मः। हे ऋतप्रजातार्यस्त्वं जनेष्वर्हाद्यद् द्युमत् क्रतुमदतिविभाति यच्छवसा दीदयदस्ति तच्चित्रं विज्ञानं द्रविणं चास्मासु धेहि॥ ३॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यस्मान्महान् दयालुर्न्यायकार्यणीयान् कश्चिदपि पदार्थो नास्ति येन वेदाविर्भावद्वारा सर्वे मनुष्या भूषिता येनाद्भुतं विज्ञानं धनं च विस्तारितं यो योगाभ्यासगम्योऽस्ति स एवेश्वरोऽस्माभिः सर्वैरुपासनीयतमोऽस्तीति विजानीत॥ ३॥

पदार्थः-हे (**बृहस्पते**) बड़े बड़े प्रकृति आदि पदार्थों और जीवों के पालने हारे ईश्वर! जो आप (**उपयामगृहीतः**) प्राप्त हुए यम-नियमादि योगसाधनों से जाने गये (**असि**) हैं, उन (**त्वा**) आप को (**बृहस्पतये**) बड़ी वेदवाणी की पालना के लिये तथा जिन (**ते**) आप का (**एषः**) यह (**योनिः**) प्रमाण है, उन (**बृहस्पतये**) बड़े-बड़े आप्त विद्वानों की पालना करने वाले के लिए (**त्वा**) आप को हम लोग स्वीकार करते हैं। हे भगवन्! (**ऋतप्रजात**) जिन से सत्य उत्तमता से उत्पन्न हुआ वे (**अर्यः**) परमात्मा आप (**जनेषु**) मनुष्यों में (**अर्हात्**) योग्य काम से (**यत्**) जो (**द्युमत्**) प्रशंसित प्रकाशयुक्त मन (**क्रतुमत्**) वा प्रशंसित बुद्धि और कर्मयुक्त मन (**अति विभाति**) विशेष कर प्रकाशमान है वा (**यत्**) जो (**शवसा**) बल से (**दीदयत्**) प्रकाशित होता हुआ वर्त्तमान है (**तत्**) उस (**चित्रम्**) आश्चर्यरूप ज्ञान (**द्रविणम्**) धन और यश को (**अस्मासु**) हम लोगों में (**धेहि**) धारण-स्थापन कीजिए॥ ३॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जिससे बड़ा दयावान् न्यायकारी और अत्यन्त सूक्ष्म कोई भी पदार्थ नहीं वा जिसने वेद प्रकट करने द्वारा सब मनुष्य सुशोभित किये वा जिसने अद्भुत ज्ञान और धन जगत् में विस्तृत किया और जो योगाभ्यास से प्राप्त होने योग्य है, वही ईश्वर हम सब लोगों को अति उपासना करने योग्य है, यह तुम जानो॥ ३॥

इन्द्रेत्यस्य रम्याक्षी ऋषिः। इन्द्रो देवता। स्वराड्जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनर्मनुष्याः किं कुर्युरित्याह॥

फिर मनुष्य क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

इन्द्र॒ गोम॑न्नि॒हा या॑हि॒ पिबा॒ सोम॑ꣳ शतक्रतो। वि॒द्यद्भि॒र्ग्राव॑भिः सु॒तम्।

उ॒प॒या॒मगृ॑हीतो॒ऽसीन्द्रा॑य त्वा॒ गोम॑तऽए॒ष ते॒ योनि॒रिन्द्रा॑य त्वा॒ गोम॑ते॥ ४॥

इन्द्र॑। गो॒म॒न्निति॒ गोऽम॑न्। इ॒ह। आ। या॒हि॒। पिब॑। सोम॑म्। श॒त॒क्र॒तो॒ इति॑ श॒त॒ऽक्र॒तो॒। वि॒द्यद्भि॒रिति॑ वि॒द्यत्ऽभि॑ः। ग्राव॑भि॒रिति॒ ग्राव॑ऽभिः। सु॒तम्। उ॒प॒या॒मगृ॑हीत॒ इत्यु॑पया॒मऽगृ॑हीतः। अ॒सि॒। इन्द्रा॑य। त्वा॒। गोम॑त॒ इति॒ गोऽम॑ते। ए॒षः। ते॒। योनि॑ः। इन्द्रा॑य। त्वा॒। गोम॑त॒ इति॒ गोऽम॑ते॥४॥

पदार्थः-(**इन्द्र**) विद्वन् मनुष्य! (**गोमन्**) प्रशस्ता गौर्वाणी विद्यते यस्य तत्संबुद्धौ (**इह**) अस्मिन् संसारे (**आ**) (**याहि**) प्राप्नुहि (**पिब**) अत्र '**द्व्यचोऽतस्तिङः**' [अ०६.३.१३५] इति दीर्घः (**सोमम्**) रसम् (**शतक्रतो**) शतमसंख्यः क्रतुः प्रज्ञा यस्य तत्सम्बुद्धौ (**विद्यद्भिः**) विद्यमानैः। अत्र व्यत्ययेन परमैपदम् (**ग्रावभिः**) मेघैः (**सुतम्**) निष्पन्नम् (**उपयामगृहीतः**) उपयामैर्गृहीतानि जितानि इन्द्रियाणि येन सः (**असि**) (**इन्द्राय**) ऐश्वर्याय (**त्वा**) त्वाम् (**गोमते**) प्रशस्तपृथिवीराज्ययुक्ताय (**एषः**) (**ते**) (**योनिः**) निमित्तम् (**इन्द्राय**) प्रशस्तैश्वर्यवते (**त्वा**) त्वाम् (**गोमते**) प्रशस्तवाग्वते॥४॥

अन्वयः-हे शतक्रतो गोमन्निन्द्र त्वमिहा याहि विद्यद्भिर्ग्रावभिः सुतं सोमं पिब यतस्त्वमुपयामगृहीतोऽसि तस्माद् गोमत इन्द्राय त्वा यस्यैष ते योनिरस्ति तस्मै गोमत इन्द्राय त्वां च वयं सत्कुर्मः॥४॥

भावार्थः-ये वैद्यकशास्त्रविद्यासिद्धानि मेघेनोत्पन्नान्यौषधानि सेवन्ते योगं चाभ्यस्यन्ति ते सुखैश्वर्ययुक्ता जायन्ते॥४॥

पदार्थः-**हे** (**शतक्रतो**) जिस की सैकड़ों प्रकार की बुद्धि और (**गोमन्**) प्रशंसित वाणी है सो ऐसे हे (**इन्द्र**) विद्वन् पुरुष! आप (**आ, याहि**) आइये (**इह**) इस संसार में (**विद्यद्भिः**) विद्यमान (**ग्रावभिः**) मेघों से (**सुतम्**) उत्पन्न हुए (**सोमम्**) सोमवल्ली आदि ओषधियों के रस को (**पिब**) पियो, जिससे आप (**उपयामगृहीतः**) यम-नियमों से इन्द्रियों को ग्रहण किये अर्थात् इन्द्रियों को जीते हुए (**असि**) हो, इसलिए (**गोमते**) प्रशस्त पृथिवी के राज्य से युक्त पुरुष के लिये और (**इन्द्राय**) उत्तम ऐश्वर्य के लिये (**त्वा**) आप को और जिन (**ते**) आप का (**एषः**) यह (**योनिः**) निमित्त है उस (**गोमते**) प्रशंसित वाणी और (**इन्द्राय**) प्रशंसित ऐश्वर्य से युक्त पुरुष के लिये (**त्वा**) आप का हम लोग सत्कार करते हैं॥४॥

भावार्थः-जो वैद्यकशास्त्र विद्या से सिद्ध और मेघों से उत्पन्न हुई औषधियों का सेवन और योगाभ्यास करते हैं, वे सुख तथा ऐश्वर्य्ययुक्त होते हैं॥४॥

इन्द्रेत्यस्य रम्याक्षी ऋषिः। सूर्यो देवता। भुरिग्जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनर्मनुष्यैः किं क्रियेत इत्याह॥

फिर मनुष्य क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

इन्द्रा याहि वृत्रहन् पिबा सोमꣳ शतक्रतो। गोमद्भिर्ग्रावभिः सुतम्।
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा गोमतऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा गोमते॥५॥

इन्द्र। आ। याहि। वृत्रहन्निति वृत्रऽहन्। पिब। सोमम्। शतक्रतो इति शतऽक्रतो। गोमद्भिरिति गोमत्ऽभिः। ग्रावभिरिति ग्रावऽभिः। सुतम्। उपयामगृहीत इत्युपयामऽगृहीतः। असि। इन्द्राय। त्वा। गोमत इति गोऽमते। एषः। ते। योनिः। इन्द्राय। त्वा। गोमत इति गोऽमते॥५॥

पदार्थः-(**इन्द्र**) परमैश्वर्ययुक्त (**आ**) समन्तात् (**याहि**) गच्छ (**वृत्रहन्**) यो वृत्रं मेघं हन्ति स सूर्यस्तद्वत् (**पिब**) अत्र '**द्व्यचोऽतस्तिङः**' [अ०६.३.१३५] इति दीर्घः। (**सोमम्**) ऐश्वर्यकारकं रसम् (**शतक्रतो**) बहुप्रज्ञाकर्मयुक्त (**गोमद्भिः**) बहवो गावः किरणा विद्यन्ते येषु तैः (**ग्रावभिः**) गर्जनायुक्तैर्मेघैः (**सुतम्**) निष्पादितम् (**उपयामगृहीतः**) सुनियमै-र्निगृहीतात्मा (**असि**) (**इन्द्राय**) ऐश्वर्याय (**त्वा**) त्वाम् (**गोमते**) बहुधेन्वादियुक्ताय (**एषः**) (**ते**) तव (**योनिः**) गृहम् (**इन्द्राय**) ऐश्वर्यमिच्छुकाय (**त्वा**) त्वाम् (**गोमते**) प्रशस्तभूमिराज्ययुक्ताय॥५॥

अन्वयः-हे शतकतो वृत्रहन्निन्द्र त्वं गोमद्भिर्ग्रावभिः सहायाहि सुतं सोमं पिब। यतस्त्वं गोमत इन्द्रायोपयामगृहीतोऽसि तं त्वा यस्यैष ते गोमत इन्द्राय योनिरस्ति तं त्वा च वयं सत्कुर्याम॥५॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे मनुष्याः! यथा मेघहन्ता सूर्यः सर्वस्य जगतो रसं पीत्वा वर्षयित्वा सर्वं जगत् प्रीणाति तथैव त्वं महौषधिरसान् पिब ऐश्वर्योन्नतये प्रयतस्व च॥५॥

पदार्थः-हे (**शतक्रतो**) बहुत बुद्धि और कर्मयुक्त (**वृत्रहन्**) मेघहन्ता सूर्य के समान शत्रुओं के हनने वाले (**इन्द्र**) परमैश्वर्ययुक्त विद्वान् आप (**गोमद्भिः**) जिन में बहुत चकमती हुई किरणें विद्यमान उन पदार्थों और (**ग्रावभिः**) गर्जनाओं से गर्जते हुए मेघों के साथ (**आ, याहि**) आइये और (**सुतम्**) उत्पन्न हुए (**सोमम्**) ऐश्वर्य करने हारे रस को (**पिब**) पीओ जिस कारण आप (**गोमते**) बहुत दूध देती हुई गौओं से युक्त (**इन्द्राय**) ऐश्वर्य के लिए (**उपयामगृहीतः**) अच्छे नियमों से आत्मा को ग्रहण किये हुए (**असि**) हैं, उन (**त्वा**) आप को तथा जिन (**ते**) आप का (**एषः**) यह (**गोमते**) प्रशंसित भूमि के राज्य से युक्त (**इन्द्राय**) ऐश्वर्य चाहने वाले के लिए (**योनिः**) घर है, उन (**त्वा**) आप का हम लोग सत्कार करें॥५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्य! जैसे मेघहन्ता सूर्य सब जगत् से रस पी के और वर्षा के सब जगत् को प्रसन्न करता है वैसे ही तू बड़ी बड़ी ओषधियों के रस को पी तथा ऐश्वर्य की उन्नति के लिये अच्छे प्रकार यत्न किया कर॥५॥

ऋतावानमित्यस्य प्रादुराक्षिर्ऋषिः। वैश्वानरो देवता। जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनर्मनुष्यैः किं कर्त्तव्यमित्याह॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ऋतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम्। अजस्रं घर्ममीमहे। उपयामगृहीतोऽसि वैश्वानराय त्वैष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा॥६॥

ऋतावानम्। ऋतवानामित्यृतऽवानम्। वैश्वानरम्। ऋतस्य। ज्योतिषः। पतिम्। अजस्रम्। घर्मम्। ईमहे। उपयामगृहीत इत्युपयामऽगृहीतः। असि। वैश्वानराय। त्वा। एषः। ते। योनिः। वैश्वानराय। त्वा॥६॥

पदार्थः-(ऋतावानम्) य ऋतं जलं वनति संभजति तम् **(वैश्वानरम्)** विश्वेषां नराणां मध्ये राजमानम् **(ऋतस्य)** जलस्य **(ज्योतिषः)** प्रकाशस्य **(पतिम्)** पालकम् **(अजस्रम्)** निरन्तरम् **(घर्मम्)** प्रतापम् **(ईमहे)** याचामहे **(उपयामगृहीतः)** सुनियमैर्निगृहीतान्तःकरणः **(असि)** **(वैश्वानराय)** विश्वस्य नायकाय **(त्वा)** **(एषः)** **(ते)** **(योनिः)** गृहम् **(वैश्वानराय)** **(त्वा)** त्वाम्॥६॥

अन्वयः-हे मनुष्या यथा वयमृतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिर्घर्ममजस्रमीमहे तथा यूयमप्येनं याचत। यस्त्वं वैश्वानरायोपयामगृहीतोऽसि तं त्वा यस्यैष ते योनिरस्ति तं त्वा च वैश्वानराय सत्कुर्मस्तथा यूयमपि कुरुत॥६॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। योऽग्निर्जलादीनि मूर्त्तानि द्रव्याणि स्वतेजसा भिनत्ति निरन्तरं जलमाकर्षति च तं विदित्वा मनुष्याः सर्वर्त्तुसुखकारकं गृहमलंकुर्युः॥६॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे हम लोग **(ऋतावानम्)** जो जल का सेवन करता उस **(वैश्वानरम्)** समस्त मनुष्यों में प्रकाशमान **(ऋतस्य)** जल और **(ज्योतिषः)** प्रकाश की **(पतिम्)** पालना करने हारे **(घर्मम्)** प्रताप को **(अजस्रम्)** निरन्तर **(ईमहे)** मांगते हैं, वैसे तुम इस को मांगो जो आप **(वैश्वानराय)** संसार के नायक के लिये **(उपयामगृहीतः)** अच्छे नियमों से मन को जीते हुए **(असि)** हैं, उन **(त्वा)** आपको तथा जिन **(ते)** आपका **(एषः)** यह **(योनिः)** घर है, उन **(त्वा)** आप को **(वैश्वानराय)** समस्त संसार के हित के लिये सत्कार युक्त करते हैं, वैसे तुम भी करो॥६॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो अग्नि जल आदि मूर्तिमान् पदार्थों को अपने तेज से छिन्न-भिन्न करता और निरन्तर जल सींचता है, उस को जान के मनुष्य सब ऋतुओं में सुख करने हारे घर को पूर्ण करें बनावें॥६॥

वैश्वानरस्येत्यस्य कुत्स ऋषिः। वैश्वानरोऽग्निर्देवता। विराडत्यष्टिश्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनर्मनुष्याः किं कुर्युरित्याह॥

फिर मनुष्य क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः।
इतो जातो विश्वमिदं वि चष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण।
उपयामगृहीतोऽसि वैश्वानराय त्वैष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा॥७॥

वैश्वानरस्य। सुमताविति सुऽमतौ। स्याम। राजा। हि। कम्। भुवनानाम्। अभिश्रीरित्यभिऽश्रीः। इतः। जातः। विश्वम्। इदम्। वि। चष्टे। वैश्वानरः। यतते। सूर्येण। उपयामगृहीत इत्युपयामऽगृहीतः। असि। वैश्वानराय। त्वा। एषः। ते। योनिः। वैश्वानराय। त्वा॥७॥

पदार्थः-(**वैश्वानरस्य**) विश्वस्य नायकस्य (**सुमतौ**) शोभनायां बुद्धौ (**स्याम**) भवेम (**राजा**) प्रकाशमानः (**हि**) खलु (**कम्**) सुखम् (**भुवनानाम्**) (**अभिश्रीः**) अभितः सर्वतः श्रियो यस्य सः (**इतः**) अस्मात् कारणात् (**जातः**) प्रकटः सन् (**विश्वम्**) सर्वं जगत् (**इदम्**) (**वि, चष्टे**) प्रकाशयति (**वैश्वानरः**) विद्युदग्निः (**यतते**) (**सूर्येण**) सूर्यमण्डलेन (**उपयामगृहीतः**) सुनियमै स्वीकृतः (**असि**) (**वैश्वानराय**) अग्नये (**त्वा**) त्वाम् (**एषः**) (**ते**) तव (**योनिः**) गृहम् (**वैश्वानराय**) अग्निकार्यसाधनाय (**त्वा**) त्वाम्॥७॥

अन्वयः-वयं यथा राजा भुवनानामभिश्रीः कं हि साध्नोति इतो जातः सन् विश्वमिदं विचष्टे यथा सूर्येण सह वैश्वानरो यतते तथा वयं वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम। हे विद्वन्! यतस्त्वमुपयामगृहीतोऽसि तस्माद्वैश्वानराय त्वा यस्यैष ते योनिरस्ति तं त्वा च वैश्वानराय सत्करोमि॥७॥

भावार्थः-यथा सूर्येण सह चन्द्रमा रात्रिं सुभूषयति तथा सुराज्ञा प्रजा प्रकाशिता भवति विद्वान् शिल्पिजनश्च वह्निना सर्वोपयोगीनि कार्याणि साध्नोति॥७॥

पदार्थः-हम लोग जैसे (**राजा**) प्रकाशमान (**भुवनानाम्**) लोकों के बीच (**अभिश्रीः**) सब ओर से ऐश्वर्य की शोभा से युक्त सूर्य (**कम्**) सुख को (**हि**) ही सिद्ध करता है और (**इतः**) इस कारण (**जातः**) प्रसिद्ध हुआ (**इदम्**) इस (**विश्वम्**) विश्व को (**वि, चष्टे**) प्रकाशित करता है वा जैसे (**सूर्येण**) सूर्य के साथ (**वैश्वानरः**) बिजुली रूप अग्नि (**यतते**) यत्नवान् है, वैसे हम लोग (**वैश्वानरस्य**) संसार के नायक परमेश्वर वा उत्तम सभापति की (**सुमतौ**) अति उत्तम देश काल को जानने हारी कपट-छलादि दोष रहित बुद्धि में (**स्याम**) होवें। हे विद्वान्! जिससे आप (**उपयामगृहीतः**) सुन्दर नियमों से स्वीकृत (**असि**) हैं, इससे (**वैश्वानराय**) अग्नि के लिये (**त्वा**) आपको तथा जिस (**ते**) आप का (**एषः**) यह (**योनिः**) घर है उन (**त्वा**) आप को भी (**वैश्वानराय**) अग्निसाध्य कार्य साधने के लिये सत्कार करता हूँ॥७॥

भावार्थः-जैसे सूर्य के साथ चन्द्रमा रात्रि को सुशोभित करता है, वैसे उत्तम राजा से प्रजा प्रकाशित होती है और विद्वान् शिल्पी जन अग्नि से सर्वोपयोगी कार्यों को सिद्ध करता है॥७॥

वैश्वानर इत्यस्य कुत्स ऋषिः। वैश्वानरो देवता। जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनर्मनुष्याः किंवत् किं कुर्युरित्याह॥

फिर मनुष्य किसके समान क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

वैश्वानरो न ऊतयऽआ प्र यातु परावतः। अग्निरुक्थेन वाहसा।
उपयामगृहीतोऽसि वैश्वानराय त्वैष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा॥८॥

वैश्वानरः। नः। ऊतये। आ। प्र। यातु। परावतः। अग्निः। उक्थेन। वाहसा। उपयामगृहीत इत्युपयामऽगृहीतः। असि। वैश्वानराय। त्वा। एषः। ते। योनिः। वैश्वानराय। त्वा॥८॥

पदार्थः-(**वैश्वानरः**) विश्वेषु नायकेषु विद्वत्सु राजमानः (**नः**) अस्माकम् (**ऊतये**) रक्षणाद्याय (**आ**) (**प्र, यातु**) गच्छतु (**परावतः**) दूरदेशात् (**अग्निः**) पावकवद्वर्त्तमानः (**उक्थेन**) प्रशंसनीयेन (**वाहसा**) प्रापणेन (**उपयामगृहीतः**) विद्याविचारसंयुक्तः (**असि**) (**वैश्वानराय**) प्रकाशमानाय (**त्वा**) त्वाम् (**एषः**) (**ते**) तव (**योनिः**) गृहम् (**वैश्वानराय**) (**त्वा**) त्वाम्॥८॥

अन्वयः-यथा वैश्वानरः परावतो न ऊतय आ प्रयातु तथाऽग्निरुक्थेन वाहसा सहाप्नोतु यस्त्वं वैश्वानरायोपयामगृहीतोऽसि तं त्वा यस्यैष ते वैश्वानराय योनिरस्ति तं त्वा च स्वीकुर्मः॥८॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोमालङ्कारः। यथा सूर्यो दूरदेशात् स्वप्रकाशेन दूरस्थान् पदार्थन् प्रकाशयति तथा विद्वांसः स्वसूपदेशेन दूरस्थान् जिज्ञासून् प्रकाशयन्ति॥८॥

पदार्थः-जैसे (**वैश्वानरः**) समस्त नायक जनों में प्रकाशमान विद्वान् (**परावतः**) दूर से (**नः**) हमारी (**ऊतये**) रक्षा के लिये (**आ, प्र, यातु**) अच्छे प्रकार आवे, वैसे (**अग्निः**) अग्नि के समान तेजस्वी मनुष्य (**उक्थेन**) प्रशंसा करने योग्य (**वाहसा**) व्यवहार के साथ प्राप्त हो। जो आप (**वैश्वानराय**) प्रकाशमान के लिये (**उपयामगृहीतः**) विद्या के विचार से युक्त (**असि**) हैं, उन (**त्वा**) आप को तथा जिन (**ते**) आप का (**एषः**) यह घर (**वैश्वानराय**) समस्त नायकों में उत्तम नायकों में उत्तम के लिये (**योनिः**) घर है, उन (**त्वा**) आप को भी हम लोग स्वीकार करें॥८॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य दूर देश से अपने प्रकाश से दूरस्थ पदार्थों को प्रकाशित करता है, वैसे ही विद्वान् जन अपने सुन्दर उपदेश से दूरस्थ जिज्ञासुओं को प्रकाशित करते हैं॥८॥

अग्निरित्यस्य कुत्स ऋषिः। वैश्वानरो देवता। स्वराड् जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनः कैः कस्मात् किं याचनीयमित्याह॥

फिर किन को किस से क्या मांगना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः। तमीमहे महागयम्।

उपयामगृहीतोऽस्यग्नये त्वा वर्चसऽएष ते योनिरग्नये त्वा वर्चसे॥९॥

अग्निः। ऋषिः। पवमानः। पाञ्चजन्य इति पाञ्चऽजन्यः। पुरोहित इति पुरःऽहितः। तम्। ईमहे। महागयमिति महाऽगयम्। उपयामगृहीत इत्युपयामऽगृहीतः। असि। अग्नये। त्वा। वर्चसे। एषः। ते। योनिः। अग्नये। त्वा। वर्चसे॥९॥

पदार्थः-(**अग्निः**) पावकवद्विद्यया प्रकाशितः (**ऋषिः**) मन्त्रार्थवेत्ता (**पवमानः**) पवित्रः (**पाञ्चजन्यः**) पञ्चानां पञ्चसु वा जनेषु साधु (**पुरोहितः**) पुरस्ताद्धितकारी (**तम्**) (**ईमहे**) याचामहे (**महागयम्**) महान्तो गया गृहाणि प्रजा धनं वा यस्य तम्। **गयमिति गृहनामसु पठितम्॥** (निघं० २।२। धनना० च। निघं० २।१०।) (**उपयामगृहीतः**) (**असि**) (**अग्नये**) विदुषे (**त्वा**) त्वाम् (**वर्चसे**) अध्यापनाय (**एषः**) (**ते**) (**योनिः**) निमित्तम् (**अग्नये**) (**त्वा**) त्वाम् (**वर्चसे**) विद्याप्रकाशाय॥९॥

अन्वयः-हे मनुष्या यः पाञ्चजन्यः पुरोहितः पवमान ऋषिरग्निरस्ति तं महागयं यथा वयमीमहे तथा त्वं वर्चसेऽग्नय उपयामगृहीतोऽसि तस्मात् त्वा यस्यैष ते योनिर्वर्चसेऽग्नयेऽस्ति तं त्वा च वयमीमहे तथैतं यूयमपीहध्वम्॥९।

भावार्थः-सर्वैर्मनुष्यैर्वेदशास्त्रविद्भ्यो विद्वद्भ्यः सदा विद्याप्राप्तिर्याचनीया येन महत्त्वं प्राप्नुयुः॥९॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! (**पाञ्चजन्यः**) पाँच जनों वा प्राणों की क्रिया में उत्तम (**पुरोहितः**) पहिले हित करने हारा (**पवमानः**) पवित्र (**ऋषिः**) मन्त्रार्थवेत्ता और (**अग्निः**) अग्नि के समान विद्या से प्रकाशित है (**तम्**) उस (**महागयम्**) बड़े-बड़े घर सन्तान वा धन वाले की जैसे हम लोग (**ईमहे**) याचना करें, वैसे आप (**वर्चसे**) पढ़ाने हारे और (**अग्नये**) विद्वान् के लिये (**उपयामगृहीतः**) समीप के नियमों से ग्रहण किये हुए (**असि**) हैं, इस से (**त्वा**) आप को तथा जिन (**ते**) आप को (**एषः**) यह (**योनिः**) निमित्त (**वर्चसे**) विद्याप्रकाश और (**अग्नये**) विद्वान् के लिये है, उन (**त्वा**) आप की हम लोग प्रार्थना करते हैं, वैसे तुम भी चेष्टा करो॥९॥

भावार्थः-सब मनुष्यों को चाहिये कि वेदवेत्ता विद्वानों से सदा विद्याप्राप्ति की प्रार्थना किया करें, जिससे वे सब मनुष्य महत्त्व को प्राप्त होवें॥९॥

महानित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। इन्द्रो देवता। निचृज्जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

अथ राजसत्कारमाह॥

अब राजा के सत्कार इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

महाँ२॥ऽइन्द्रो वज्रहस्तः षोडशी शर्म यच्छतु। हन्तु पाप्मानं योऽस्मान् द्वेष्टि।
उपयामगृहीतोऽसि महेन्द्राय त्वैष ते योनिर्महेन्द्राय त्वा॥१०॥

म॒हान्। इन्द्रः॑। वज्र॑ह॒स्त इति॒ वज्र॑ऽहस्तः। षो॒ड॒शी। शर्म॑। य॒च्छ॒तु॒। हन्तु॑। पा॒प्मान॑म्। यः। अ॒स्मान्। द्वेष्टि॑। उ॒प॒या॒मगृ॑हीत॒ इत्यु॑पया॒मऽगृ॑हीतः। अ॒सि॒। म॒हे॒न्द्रायेति॑ महाऽइ॒न्द्राय॑। त्वा॒। ए॒षः। ते॒। योनिः॑। म॒हे॒न्द्रायेति॑ महाऽइ॒न्द्राय॑। त्वा॒॥ १०॥

पदार्थः-(महान्) बृहत्तमः **(इन्द्रः)** परमैश्वर्ययुक्तो राजा **(वज्रहस्तः)** वज्रो हस्तयोर्यस्य सः **(षोडशी)** षोडशकलायुक्तः **(शर्म)** शृण्वन्ति दुःखानि यस्मिन् तद्गृहम्। **शर्मेति गृहनामसु पठितम्॥** (निघं० ३।१४।) **(यच्छतु)** ददातु **(हन्तु)** **(पाप्मानम्)** दुष्टकर्मकारिणम् **(यः)** **(अस्मान्)** **(द्वेष्टि)** अप्रीतयति **(उपयामगृहीतः)** **(असि)** **(महेन्द्राय)** महद्गुणविशिष्टाय **(त्वा)** त्वाम् **(एषः)** **(ते)** **(योनिः)** निमित्तम् **(महेन्द्राय)** **(त्वा)** त्वाम्॥ १०॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! वज्रहस्तः षोडशी महानिन्द्रः शर्म यच्छतु योऽस्मान् द्वेष्टि तं पाप्मानं हन्तु यस्त्वं महेन्द्रायोपयामगृहीतोऽसि तं त्वा यस्यैष ते महेन्द्राय योनिरस्ति तं त्वा च वयं सत्कुर्याम॥ १०॥

भावार्थः-हे प्रजाजन! यो युष्मभ्यं सुखं दद्याद् दुष्टान् हन्यान्महैश्वर्यं वर्द्धयेत् स युष्माभिः सदा सत्कर्त्तव्यः॥ १०॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! **(वज्रहस्तः)** जिस के हाथों में वज्र **(षोडशी)** सोलह कला युक्त **(महान्)** बड़ा **(इन्द्रः)** और परम ऐश्वर्यवान् राजा **(शर्म)** जिस में दुःख विनाश को प्राप्त होते हैं, उस घर को **(यच्छतु)** देवे **(यः)** जो **(अस्मान्)** हम लोगों को **(द्वेष्टि)** वैरभाव से चाहता उस **(पाप्मानम्)** खोटे कर्म करने वाले को **(हन्तु)** मारे। जो आप **(महेन्द्राय)** बड़े-बड़े गुणों से युक्त के लिये **(उपयामगृहीतः)** प्राप्त हुए नियमों से ग्रहण किये हुए **(असि)** हैं, उन **(त्वा)** आप को तथा जिन **(ते)** आप का **(एषः)** यह **(महेन्द्राय)** उत्तम गुण वाले के लिये **(योनिः)** निमित्त है, उन **(त्वा)** आप का भी हम लोग सत्कार करें॥ १०॥

भावार्थः-हे प्रजाजनो! जो तुम्हारे लिये सुख देवे, दुष्टों को मारे और महान् ऐश्वर्य को बढ़ावे, वह तुम लोगों को सदा सत्कार करने योग्य है।१०॥

तं व इत्यस्य नोधा गोतम ऋषिः। अग्निर्देवता। बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुना राजा किं कुर्यादित्याह॥

फिर राजा क्या करे, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

तं वो॑ द॒स्मम॑ृती॒षहं॒ वसो॑र्मन्दा॒नमन्ध॑सः।

अ॒भि व॒त्सं न स्वस॑रेषु धे॒नव॒ऽइन्द्रं॑ गी॒र्भिर्न॑वामहे॥ ११॥

तम्। व॒ः। द॒स्मम्। ऋ॒ती॒षह॑म्। ऋ॒ति॒सह॒मित्यृ॒ति॒ऽसह॑म्। वसोः॑। म॒न्दा॒नम्। अन्ध॑सः। अ॒भि। व॒त्सम्। न। स्वस॑रेषु। धे॒नवः॑। इन्द्र॑म्। गी॒र्भिरिति॑ गीःऽभिः। न॒वा॒म॒हे॒॥ ११॥

पदार्थ:-**(तम्)** **(व:)** युष्मभ्यम् **(दस्मम्)** दु:खोपक्षयितारम् **(ऋतीषहम्)** गतिसहम्। अत्र **संहितायाम्**। [अ०६.३.११४] इति दीर्घ: **(वसो:)** धनस्य **(मन्दानम्)** आनन्दन्तम् **(अन्धस:)** अन्नस्य **(अभि)** सर्वत: **(वत्सम्)** **(न)** इव **(स्वसरेषु)** दिनेषु **(धेनव:)** गाव: **(इन्द्रम्)** परमैश्वर्यवन्तम् **(गीर्भि:)** वाग्भि: **(नवामहे)** स्तुवीमहे॥११॥

अन्वय:-हे मनुष्या:! वयं स्वसरेषु धेनवो वत्सं न यं दस्ममृतीषहं वसोरन्धसो मन्दानिमिन्द्रं वो गीभिरभि नवामहे तथा तं भवन्तोऽपि सदा प्रीतिभावेन स्तुवन्तु॥११॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यथा गाव: प्रतिदिनं स्वं स्वं वत्सं पालयन्ति तथैव प्रजारक्षक: पुरुष: प्रजा नित्यं रक्षेत् प्रजायै धनधान्यै: सुखानि वर्धयेत्॥११॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! हम लोग **(स्वसरेषु)** दिनों में **(धेनव:)** गौएं **(वत्सम्)** जैसे बछड़े को **(न)** वैसे जिस **(दस्मम्)** दु:खविनाशक **(ऋतीषहम्)** चाल को सहने वाले **(वसो:)** धन और **(अन्धस:)** अन्न के **(मन्दानम्)** आनन्द को पाए हुए **(इन्द्रम्)** परमैश्वर्यवान् सभापति की **(व:)** तुम्हारे लिये **(गीर्भि:)** वाणियों से **(अभि, नवामहे)** सब ओर से स्तुति करते हैं, वैसे ही **(तम्)** उस सभापति की आप लोग सदा प्रीतिभाव से स्तुति कीजिये॥११॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे गौएं प्रतिदिन अपने-अपने बछड़ों को पालती हैं, वैसे ही प्रजाजनों की रक्षा करने वाला पुरुष प्रजा की नित्य रक्षा करे और प्रजा के लिये धन और अन्न आदि पदार्थों से सुखों को नित्य बढ़ाया करे॥११॥

यद्वाहिष्ठमित्यस्य नोधा गोतम ऋषि:। अग्निर्देवता। विराड्गायत्री छन्द:। षड्ज: स्वर:॥

पुन: सा राज्ञी किं कुर्यादित्याह॥

फिर वह रानी क्या करे, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यद्वाहिष्ठं तदग्नये बृहदर्च विभावसो।

महिषीव त्वद्रयिस्त्वद्वाजाऽउदीरते॥१२॥

यत्। वाहिष्ठम्। तत्। अग्नये। बृहत्। अर्च। विभावसो इति विभऽवसो। महिषीवेति महिषीऽइव। त्वत्। रयि: त्वत्। वाजा:। उत्। ईरते॥१२॥

पदार्थ:-**(यत्)** **(वाहिष्ठम्)** अतिशयेन वाहयितारम् **(तत्)** **(अग्नये)** पावकाय **(बृहत्)** महत् **(अर्च)** सत्कुरु **(विभावसो)** प्रकाशितधन **(महिषीव)** यथा राज्ञि तथा **(त्वत्)** तव सकाशात् **(रयि:)** धनम् **(त्वत्)** **(वाजा:)** अन्नादीनि **(उत्)** अपि **(ईरते)** प्राप्नुवन्ति॥१२॥

अन्वय:-हे विभावसो अग्नये यद् बृहद्वाहिष्ठमस्ति तदर्च तद्वयमप्यर्चेम महिषीव त्वद्रयिस्त्वद्वाजाश्चोदीरते तं वयं सत्कुर्याम॥१२॥

भावार्थः-यथा राज्ञी सुखप्रापिका महाधनप्रदा भवति तथैव राज्ञः सकाशात् सर्वे धनमन्यान्युत्तमानि वस्तूनि च प्राप्नुयुः॥१२॥

पदार्थः-हे **(विभावसो)** प्रकाशित धन वाले विद्वन्! **(अग्नये)** अग्नि के लिये **(यत्)** जो **(बृहत्)** बड़ा और **(वाहिष्ठम्)** अत्यन्त पहुंचाने हारा है, उस का **(अर्च)** सत्कार करो **(तत्)** उस का हम भी सत्कार करें **(महिषीव)** और रानी के समान **(त्वत्)** तुम से **(रयिः)** धन और **(त्वत्)** तुम से **(वाजाः)** अन्न आदि पदार्थ **(उत्, ईरते)** भी प्राप्त होते हैं, उन आप का हम लोग सत्कार करें॥१२॥

भावार्थः-जैसे रानी सुख पहुंचाती और बहुत धन देने वाली होती है, वैसे ही राजा के समीप से सब लोग धन और अन्य उत्तम-उत्तम वस्तुओं को पावें॥१२॥

एहीत्यस्य भारद्वाज ऋषिः। अग्निर्देवता। विराड्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

विद्वद्भिः किं कार्यमित्याह॥

विद्वानों को क्या करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

एह्यू षु ब्रवाणि तेऽग्नऽ इत्थेतरा गिरः।

एभिर्वर्द्धासऽइन्दुभिः॥ १३॥

आ। इहि। ऊँ इत्यूँ। सु। ब्रवाणि। ते। अग्ने। इत्था। इतराः। गिरः। एभिः। वर्द्धासे। इन्दुभिरितीन्दुऽभिः॥ १३॥

पदार्थः-**(आ)** समन्तात् **(इहि)** प्राप्नुहि **(उ)** वितर्के **(सु)** शोभने **(ब्रवाणि)** उपदिशेयम् **(ते)** तुभ्यम् **(अग्ने)** प्रकाशितप्रज्ञ **(इत्था)** अस्माद्धेतोः **(इतराः)** त्वयाऽज्ञाताः **(गिरः)** वाचः **(एभिः)** **(वर्द्धासे)** वृद्धो भव **(इन्दुभिः)** जलादिभिः॥१३॥

अन्वयः-हे अग्नेऽहमित्था त इतरा गिरः सु ब्रवाणि यतस्त्वमेता एहि उ एभिरिन्दुभिर्वर्द्धासे॥१३।

भावार्थः-यया शिक्षया विद्यार्थिनो विज्ञानेन वर्द्धेरँस्तामेव विद्वांस उपदिशेयुः॥१३॥

पदार्थः-हे **(अग्ने)** प्रकाशित बुद्धि वाले विद्वन्! मैं **(इत्था)** इस हेतु से **(ते)** आप के लिये **(इतराः)** जिन को तुम ने नहीं जाना है, उन **(गिरः)** वाणियों का **(सु, ब्रवाणि)** सुन्दर प्रकार से उपदेश करूं कि जिस से आप इन वाणियों को **(आ, इहि)** अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये **(उ)** और **(एभिः)** इन **(इन्दुभिः)** जलादि पदार्थों से **(वर्द्धासे)** वृद्धि को प्राप्त हूजिये॥१३॥

भावार्थः-जिस शिक्षा से विद्यार्थी लोग विज्ञान से बढ़ें, उसी शिक्षा का विद्वान् लोग उपदेश किया करें॥१३॥

ऋतव इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः। संवत्सरो देवता। भुरिग्बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ऋतवस्ते यज्ञं वितन्वन्तु मासा रक्षन्तु ते हविः।

संवत्सरस्ते यज्ञं दधातु नः प्रजां च परि पातु नः॥१४॥

ऋतवः। ते। यज्ञम्। वि। तन्वन्तु। मासाः। रक्षन्तु। ते। हविः। संवत्सरः। ते। यज्ञम्। दधातु। नः। प्रजामिति प्रऽजाम्। च। परि। पातु। नः॥१४॥

पदार्थः-(**ऋतवः**) वसन्ताद्याः (**ते**) तव (**यज्ञम्**) सत्कारादिव्यवहारम्। (**वि**) (**तन्वन्तु**) विस्तृणन्तु (**मासाः**) कार्त्तिकादयः (**रक्षन्तु**) (**ते**) तव (**हविः**) होतव्यं वस्तु (**संवत्सरः**) (**ते**) तव (**यज्ञम्**) (**दधातु**) (**नः**) अस्माकम् (**प्रजाम्**) (**च**) (**परि**) (**पातु**) रक्षतु (**नः**) अस्माकम्॥१४॥

अन्वयः-हे विद्वँस्ते यज्ञमृतवो वितन्वन्तु ते हविर्मासा रक्षन्तु ते यज्ञं नः संवत्सरो दधातु नः प्रजां च परिपातु॥१४॥

भावार्थः-विद्वद्भिर्मनुष्यैः सर्वाभिः सामग्रीभिर्विद्यावर्द्धको व्यवहारः सदा वर्द्धनीयो न्यायेन प्रजाश्च पालनीयाः॥१४॥

पदार्थः-हे विद्वन्! (**ते**) आप के (**यज्ञम्**) सत्कार आदि व्यवहार को (**ऋतवः**) वसन्तादि ऋतु (**वि, तन्वन्तु**) विस्तृत करें (**ते**) आप के (**हविः**) होमने योग्य वस्तु की (**मासाः**) कार्तिक आदि महीने (**रक्षन्तु**) रक्षा करें (**ते**) आप के (**यज्ञम्**) यज्ञ को (**नः**) हमारा (**संवत्सरः**) वर्ष (**दधातु**) पुष्ट करे (**च**) और (**नः**) हमारी (**प्रजाम्**) प्रजा की (**परि, पातु**) सब ओर से आप रक्षा करो॥१४॥

भावार्थः-विद्वान् मनुष्यों को योग्य है कि सब सामग्री से विद्यावर्द्धक व्यवहार को सदा बढ़ावें और न्याय से प्रजा की रक्षा किया करें॥१४॥

उपह्वर इत्यस्य वत्स ऋषिः। विद्वान् देवता। विराड्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उपह्वरे गिरीणाᳬं सङ्गमे च नदीनाम्।

धिया विप्रो अजायत॥१५॥

उपह्वर इत्युपऽह्वरे। गिरीणाम्। सङ्गम इति सम्ऽगमे। च। नदीनाम्। धिया। विप्रः। अजायत॥१५॥

पदार्थः-(**उपह्वरे**) निकटे (**गिरीणाम्**) शैलानाम् (**सङ्गमे**) मेलने (**च**) (**नदीनाम्**) (**धिया**) प्रज्ञया कर्मणा वा (**विप्रः**) मेधावी। **विप्र इति मेधाविनाम॥** (निघं० ३।१५॥) (**अजायत**) जायते॥१५॥

अन्वयः-यो मनुष्यो गिरीणामुपह्वरे नदीनां च सङ्गमे योगेनेश्वरं विचारेण विद्यां चोपासीत स धिया विप्रो अजायत॥१५॥

भावार्थः-ये विद्वांसः पठित्वैकान्ते विचारयन्ति ते योगिन इव प्राज्ञा भवन्ति॥१५॥

पदार्थः-जो मनुष्य **(गिरीणाम्)** पर्वतों के **(उपह्वरे)** निकट **(च)** और **(नदीनाम्)** नदियों के **(सङ्गमे)** मेल में योगाभ्यास से ईश्वर की और विचार से विद्या की उपासना करे, वह **(धिया)** उत्तम बुद्धि वा कर्म से युक्त **(विप्रः)** विचारशील बुद्धिमान् **(अजायत)** होता है॥१५॥

भावार्थः-जो विद्वान् लोग पढ़ के एकान्त में विचार करते हैं, वे योगियों के तुल्य उत्तम बुद्धिमान् होते हैं॥१५॥

उच्चेत्यस्य महीयव ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उच्चा ते जातमन्धसो दिवि सद्भूम्याददे।

उग्रꣳशर्म महि श्रवः॥१६॥

उच्चा। ते। जातम्। अन्धसः। दिवि। सत्। भूमि। आ। ददे। उग्रम्। शर्म। महि। श्रवः॥१६॥

पदार्थः-**(उच्चा)** उच्चम् **(ते)** तव **(जातम्)** निष्पन्नम् **(अन्धसः)** अन्नात् **(दिवि)** प्रकाशे **(सत्)** वर्त्तमानम् **(भूमि)** अत्र **'सुपां सुलुक्'** [अ०७.१.३९] इति विभक्तेर्लुक्। **(आ, ददे)** गृह्णामि **(उग्रम्)** उत्कृष्टम् **(शर्म)** गृहम् **(महि)** महत् **(श्रवः)** प्रशंसनीयम्॥१६॥

अन्वयः-हे विद्वन्नहं ते यदुच्चाऽन्धसो जातं दिवि सदुग्रं महि श्रवः शर्माददे तद्भूमीव भवतु॥१६॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। विद्वद्भिर्मनुष्यैः सूर्यकिरणवायुमन्त्यन्नादियुक्तानि महान्त्युच्चानि गृहाणि रचयित्वा तत्र निवासेन सुखं भोक्तव्यम्॥१६।

पदार्थः-हे विद्वन्! मैं **(ते)** आप के जिस **(उच्चा)** ऊंचे **(अन्धसः)** अन्न से **(जातम्)** प्रसिद्ध हुए **(दिवि)** प्रकाश में **(सत्)** वर्त्तमान **(उग्रम्)** उत्तम **(महि)** बड़े **(श्रवः)** प्रशंसा के योग्य **(शर्म)** घर को **(आ, ददे)** अच्छे प्रकार ग्रहण करता हूँ, वह **(भूमि)** पृथिवी के तुल्य दृढ़ हो॥१६॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। विद्वान् मनुष्यों को चाहिये कि सूर्य का प्रकाश और वायु जिस में पहुंचा करे, ऐसे अन्नादि से युक्त बड़े ऊंचे घरों को बना के उन में बसने से सुख भोगें॥१६॥

स न इत्यस्य महीयव ऋषिः। इन्द्रो देवता। निचृद् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

स नऽइन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः।

व॒रि॒वो॒वित्परि॑ स्रव॥ १७॥

सः। नः॒। इन्द्रा॑य। यज्य॑वे। वरु॑णाय। म॒रुद्भ्य॒ इति॑ म॒रुत्ऽभ्यः॑। व॒रि॒वो॒विदिति॑ वरि॒वः॒ऽवित्। परि॑। स्र॒व॒॥ १७॥

पदार्थः-(**सः**) (**नः**) अस्माकम् (**इन्द्राय**) परमैश्वर्याय (**यज्यवे**) संगताय (**वरुणाय**) श्रेष्ठाय (**मरुद्भ्यः**) मनुष्येभ्यः (**वरिवोवित्**) परिचरणवेत्ता (**परि**) (**स्रव**) प्राप्नुहि॥ १७॥

अन्वयः-हे विद्वन्त्स मरुद्भ्यो न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय वरिवोवित् संस्त्वं परिस्रव॥ १७॥

भावार्थः-येन विदुषा यावत्सामर्थ्यं प्राप्येत तेन तावता सर्वेषां सुखं वर्द्धनीयम्॥ १७॥

पदार्थः-हे विद्वन्! (**सः**) सो (**मरुद्भ्यः**) मनुष्यों के लिये (**नः**) हमारे (**इन्द्राय**) परमैश्वर्य को (**यज्यवे**) संगति और (**वरुणाय**) श्रेष्ठ जन के लिए (**वरिवोवित्**) सेवाकर्म को जानते हुए आप (**परि, स्रव**) सब ओर से प्राप्त हुआ करो॥ १७॥

भावार्थः-जिस विद्वान् ने जितना सामर्थ्य प्राप्त किया है, उसको चाहिये कि उस सामर्थ्य से सब का सुख बढ़ाया करे॥ १७॥

एनेत्यस्य महीयव ऋषिः। विद्वान् देवता। विराड्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

ईश्वरः कथमुपास्य इत्याह॥

ईश्वर की उपासना कैसी करनी चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ए॒ना विश्वा॑न्य॒र्यऽआ द्यु॒म्नानि॒ मानु॑षाणाम्।

सिषा॑सन्तो वनामहे॥ १८॥

ए॒ना। विश्वा॑नि। अ॒र्यः। आ। द्यु॒म्नानि॑। मानु॑षाणाम्। सिषा॑सन्तः। सिसा॑सन्त॒ऽइति॒ सिसा॑ऽसन्तः। व॒ना॒म॒हे॒॥ १८॥

पदार्थः-(**एना**) एनानि (**विश्वानि**) सर्वाणि (**अर्यः**) ईश्वरः (**आ**) (**द्युम्नानि**) प्रदीप्तानि यशांसि (**मानुषाणाम्**) मनुष्याणाम् (**सिषासन्तः**) सेवितुमिच्छन्तः (**वनामहे**) याचामहे॥ १८॥

अन्वयः-योऽर्यो मानुषाणमेना विश्वानि द्युम्नानि शास्ति तं सिषासन्तो वयं सुखान्यावनामहे॥ १८॥

भावार्थः-येनेश्वरेण मनुष्याणां सुखाय धनानि वेदा भोज्यादीनि वस्तूनि चोत्पादितानि तस्यैवोपासना सर्वैर्मनुष्यैः सदा कर्त्तव्या॥ १८॥

पदार्थः-जो (**अर्यः**) ईश्वर (**मानुषाणाम्**) मनुष्यों की (**एना**) इन (**विश्वानि**) सब (**द्युम्नानि**) शोभायमान कीर्त्तियों की शिक्षा करता है, उस की (**सिषासन्तः**) सेवा करने की इच्छा करते हुए हम लोग (**आ, वनामहे**) सुखों को मांगते हैं॥ १८॥

भावार्थः-जिस ईश्वर ने मनुष्यों के सुख के लिये धनों, वेदों और खाने-पीने योग्य वस्तुओं को उत्पन्न किया है, उसी की उपासना सब मनुष्यों को सदा करनी चाहिये॥१८॥

अनुवीरैरित्यस्य मुद्गल ऋषिः। विद्वांसो देवताः। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनर्मनुष्यैः किं कर्त्तव्यमित्याह॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अनु॑ वी॒रैरनु॑ पुष्यास्म॒ गोभि॒रन्वश्वै॒रनु॒ सर्वे॑ण पु॒ष्टैः।

अनु॒ द्विप॒दाऽनु॒ चतु॑ष्पदा व॒यं दे॒वा नो॑ य॒ज्ञमृ॑तु॒था न॑यन्तु॥ १९॥

अनु॑। वी॒रैः। अनु॑। पु॒ष्या॒स्म॒। गोभिः॑। अनु॑। अश्वैः॑। अनु॑। सर्वे॑ण। पु॒ष्टैः। अनु॑। द्वि॒प॒देति॒ द्विऽप॑दा। अनु॑। चतु॑ष्पदा। चतु॑ः॒प॒देति॒ चतु॑ःपदा। व॒यम्। दे॒वाः। न॒ः। य॒ज्ञम्। ऋ॒तु॒थेत्यृ॑तु॒ऽथा। न॒य॒न्तु॒॥ १९॥

पदार्थः-(**अनु**) (**वीरैः**) प्रशस्तबलैः (**अनु**) (**पुष्यास्म**) पुष्टा भवेम (**गोभिः**) धेनुभिः (**अनु**) (**अश्वैः**) (**अनु**) (**सर्वेण**) (**पुष्टैः**) (**अनु**) (**द्विपदा**) मनुष्यादिना (**अनु**) (**चतुष्पदा**) गवादिना (**वयम्**) (**देवाः**) विद्वांसः (**नः**) अस्माकम् (**यज्ञम्**) धर्म्यं व्यवहारम् (**ऋतुथा**) ऋतुभिः (**नयन्तु**) प्रापयन्तु॥१९॥

अन्वयः-हे विद्वांसो यथा वयं पुष्टैर्वीरैरनु पुष्यास्म पुष्टैर्गोभिरनुपुष्याम पुष्टैरश्वैरनुपुष्याम सर्वेणानुपुष्याम द्विपदाऽनुपुष्याम चतुष्पदानुपुष्याम तथा देवा नो यज्ञमृतुथा नयन्तु॥१९॥

भावार्थः-मनुष्यैर्वीरपुरुषान् पशूंश्च सम्पोष्यानुपोषणीयम्। सदा ऋत्वनुकूलो व्यवहारः कर्त्तव्यश्च॥१९॥

पदार्थः-हे विद्वान् लोगो! जैसे (**वयम्**) हम लोग (**पुष्टैः**) पुष्ट (**वीरैः**) प्रशस्त बल वाले वीरपुरुषों की (**अनु, पुष्यास्म**) पुष्टि से पुष्ट हों, बलवती (**गोभिः**) गौओं की पुष्टि से (**अनु**) पुष्ट हों, बलवान् (**अश्वैः**) घोड़े आदि की पुष्टि से (**अनु**) पुष्ट हों, (**सर्वेण**) सब की पुष्टि से (**अनु**) पुष्ट हों, (**द्विपदा**) दो पग वाले मनुष्य आदि प्राणियों की पुष्टि से (**अनु**) पुष्ट हों और (**चतुष्पदा**) चार पग वाले गौ आदि की (**अनु**) पुष्टि से पुष्ट हों, वैसे (**देवाः**) विद्वान् लोग (**नः**) हमारे (**यज्ञम्**) धर्मयुक्त व्यवहार को (**ऋतुथा**) ऋतुओं से (**नयन्तु**) प्राप्त करें॥१९॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि वीर पुरुषों और पशुओं को अच्छे प्रकार पुष्ट करके पश्चात् आप पुष्ट हों। और सदा वसन्तादि ऋतुओं के अनुकूल व्यवहार किया करें॥१९॥

अग्न इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। विद्वान् देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

कथमपत्यानि प्रशस्तानि स्युरित्याह॥

सन्तान कैसे उत्तम हों, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अग्ने॒ पत्नी॑रि॒हा व॑ह दे॒वाना॑मुश॒तीरुप॑।

त्वष्टा॑र॒ꣳ सोम॑पीतये॥२०॥

अग्ने॑। पत्नीः॑। इ॒ह। आ। व॒ह॒। दे॒वाना॑म्। उ॒श॒तीः। उप॑। त्वष्टा॑रम्। सोम॑पीतय॒ इति॒ सोम॑ऽपीतये॥२०॥

पदार्थः-(**अग्ने**) अध्यापकाऽध्यापिके वा (**पत्नीः**) (**इह**) (**आ**) (**वह**) प्रापय (**देवानाम्**) विदुषाम् (**उशतीः**) कामयमानाः (**उप**) (**त्वष्टारम्**) देदीप्यमानम् (**सोमपीतये**) सोमस्य पानाय॥२०॥

अन्वयः-हे अग्ने त्वमिह स्वसदृशान् पतीरुशतीर्देवानां पत्नीः सोमपीतये त्वष्टारमुपा वह॥२०॥

भावार्थः-यदि मनुष्याः कन्याः सुशिक्ष्य विदुषीः कृत्वा स्वयंवृतान् हृद्यान् पतीन् प्रापय्य प्रेम्णा सन्तानानुत्पादयेयुस्तर्हि तान्यपत्यान्यतीव प्रशंसितानि भवन्ति॥२०॥

पदार्थः-हे (**अग्ने**) अध्यापक वा अध्यापिके! तू (**इह**) इस गृहाश्रम में अपने तुल्य गुणवाले पतियों वा (**उशतीः**) कामनायुक्त (**देवानाम्**) विद्वानों की (**पत्नीः**) स्त्रियों को और (**सोमपीतये**) उत्तम ओषधियों के रस को पीने के लिये (**त्वष्टारम्**) तेजस्वी पुरुष को (**उप, आ, वह**) अच्छे प्रकार समीप प्राप्त कर वा करें॥२०॥

भावार्थः-जो मनुष्य कन्याओं को अच्छी शिक्षा दे, विदुषी बना और स्वयंवर से प्रिय पतियों को प्राप्त करा के प्रेम से सन्तानों को उत्पन्न करावें तो वे सन्तान अत्यन्त प्रशंसित होते हैं॥२०॥

अभीत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। विद्वान् देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

के विद्वांसो भवेयुरित्याह॥

कौन विद्वान् हों, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अ॒भि य॒ज्ञं गृ॑णीहि नो॒ ग्नावो॒ नेष्टः॒ पिब॑ऽऋ॒तुना॑।

त्वꣳहि रत्न॒धा ऽअसि॑॥२१॥

अ॒भि। य॒ज्ञम्। गृ॒णी॒हि॒। नः॒। ग्नावः॑। नेष्ट॒रिति॒ नेष्टः॑। पिब॑। ऋ॒तुना॑। त्वम्। हि। र॒त्न॒धा इति॑ रत्न॒ऽधाः। असि॑॥२१॥

पदार्थः-(**अभि**) आभिमुख्ये (**यज्ञम्**) प्रशस्तव्यवहारम् (**गृणीहि**) स्तुहि (**नः**) अस्माकम् (**ग्नावः**) प्रशस्तवाग्मिन्। **ग्नेति वाङ्नामसु पठितम्॥** (निघं० १।११॥) (**नेष्टः**) नेतः (**पिब**) (**ऋतुना**) वसन्ताद्येन सह (**त्वम्**) (**हि**) (**रत्नधाः**) रमणीयवस्तुधर्त्ता (**असि**)॥२१॥

अन्वयः-हे ग्नावो नेष्टस्त्वमृतुना सह नो यज्ञमभि गृणीहि यतस्त्वं हि रत्नधा असि तस्मात् सदोषधिरसान् पिब॥२१॥

भावार्थः-ये सुशिक्षिताया वाचः सङ्गतं व्यवहारं ज्ञातुमिच्छेयुस्ते विद्वांसो भवेयुः॥२१॥

पदार्थः-हे (**ग्नावः**) प्रशस्त वाणी वाले (**नेष्टः**) नायक जन आप (**ऋतुना**) वसन्त आदि ऋतु के साथ (**नः**) हमारे (**यज्ञम्**) उत्तम व्यवहार की (**अभि, गृणीहि**) सन्मुख स्तुति कीजिये, जिस कारण (**त्वं,**

हि) तुम ही **(रत्नधाः)** प्रसन्नता के हेतु वस्तु के धारणकर्त्ता **(असि)** हो इससे उत्तम ओषधियों के रसों को **(पिब)** पी॥२१॥

भावार्थः-जो अच्छी शिक्षा को प्राप्त वाणी के संगत व्यवहार को जानने की इच्छा करें, वे विद्वान् होवें॥२१॥

द्रविणोदा इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। सोमो देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनर्विद्वद्भिर्मनुष्यैः किं कार्यमित्याह॥

फिर विद्वान् मनुष्यों को क्या करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

द्रविणोदाः पिपीषति जुहोत प्र च तिष्ठत।

नेष्ट्रादृतुभिरिष्यत॥२२॥

द्रविणोदा इति द्रविणःऽदाः। पिपीषति। जुहोत। प्र। च। तिष्ठत। नेष्ट्रात्। ऋतुभिरित्यृतुऽभिः। इष्यत॥२२॥

पदार्थः-**(द्रविणोदाः)** यो द्रविणो धनं यशो वा ददाति सः **(पिपीषति)** पातुमिच्छति **(जुहोत)** **(प्र,च)** **(तिष्ठत)** प्रतिष्ठां लभध्वम् **(नेष्ट्रात्)** विनयात् **(ऋतुभिः)** वसन्तादिभिः सह **(इष्यत)** प्राप्नुत॥२२॥

अन्वयः-हे मनुष्या यथा द्रविणोदा ऋतुभिः सह नेष्ट्राद् रसं पिपीषति तथा यूयं रसमिष्यत जुहोत प्रतिष्ठत च॥२२॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे विद्वांसो मनुष्याः! यथा सद्वैद्याः पथ्येनोत्तमविद्यया स्वयमरोगाः सन्तोऽन्यान् रोगात् पृथक्कृत्य प्रशंसां लभन्ते तथैव युष्माभिरप्याचरणीयम्॥२२॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे **(द्रविणोदाः)** धन वा यश का देने वाला जन **(ऋतुभिः)** वसन्तादि ऋतुओं के साथ **(नेष्ट्रात्)** विनय से रस को **(पिपीषति)** पिया चाहता है, वैसे तुम लोग रस को **(इष्यत)** प्राप्त होओ **(जुहोत)** ग्रहण वा हवन करो **(च)** और **(प्र, तिष्ठत)** प्रतिष्ठा को प्राप्त होओ॥२२॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे विद्वान्! जैसे उत्तम वैद्य सुन्दर पथ्य भोजन और उत्तम विद्या से आप रोगरहित हुए दूसरों को रोगों से पृथक् करके प्रशंसा को प्राप्त होते हैं, वैसे ही तुम लोगों को भी आचरण करना अवश्य चाहिये॥२२॥

तवायमित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। विद्वान् देवता। भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

तवायꣳ सोमस्त्वमेह्यर्वाङ् शश्वत्तमꣳ सुमनाऽअस्य पाहि।

अस्मिन् यज्ञे बर्हिष्या निषद्या दधिष्वेमं जठरऽइन्दुमिन्द्र॥२३॥

तव॑। अ॒यम्। सोमः॑। त्वम्। आ। इ॒हि। अ॒र्वाङ्। श॒श्व॒त्त॒ममिति॑ शश्वत्ऽत॒मम्। सु॒मना॒ इति॑ सु॒ऽमनाः॑। अ॒स्य। पा॒हि। अ॒स्मिन्। य॒ज्ञे। ब॒र्हिषि॑। आ। नि॒षद्य॑। नि॒सद्येति॑ नि॒ऽसद्य॑। द॒धि॒ष्व। इ॒मम्। ज॒ठरे॑। इन्दु॑म्। इ॒न्द्र॒॥२३॥

पदार्थः-(**तव**) (**अयम्**) (**सोमः**) ऐश्वर्ययोगः (**त्वम्**) (**आ, इहि**) समन्तात् प्राप्नुहि (**अर्वाङ्**) आभिमुख्यं प्राप्तः (**शश्वत्तमम्**) अतिशयेन शश्वदनादिभूतम् (**सुमनाः**) धर्मकार्ये प्रसन्नमनाः (**अस्य**) (**पाहि**) (**अस्मिन्**) (**यज्ञे**) संगन्तव्ये (**बर्हिषि**) उत्तमे साधुनि (**आ**) (**निषद्य**) नितरां स्थित्वा। अत्र '**संहितायाम्**' [अ०६.३.११४] इति दीर्घः। (**दधिष्व**) धर (**इमम्**) (**जठरे**) उदराग्नौ (**इन्दुम्**) रोगहरौषधिरसम् (**इन्द्र**) परमैश्वर्यमिच्छो॥२३॥

अन्वयः-हे इन्द्र विद्वन्! यस्तवायं सोमोऽस्ति तं त्वमेहि सुमना अर्वाङ् सन्नस्य शश्वत्तमं पाहि। अस्मिन् बर्हिषि यज्ञे निषद्य जठर इममिन्दुं चादधिष्व॥२३॥

भावार्थः-विद्वांसः सर्वैः सहाभिमुख्यं प्राप्य प्रसन्नमनसः सन्तः सनातनं धर्मं विज्ञानञ्चोपदिशेयुः पथ्यमन्नादि सेवेरन् सदैव पुरुषार्थे प्रयतेरँश्च॥२३।

पदार्थः-हे (**इन्द्र**) परम ऐश्वर्य की इच्छा वाले विद्वन्! जो (**तव**) आप का (**अयम्**) यह (**सोमः**) ऐश्वर्य का योग है, उस को (**त्वम्**) आप (**आ, इहि**) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये (**सुमनाः**) धर्म कार्य्यों में प्रसन्नचित्त (**अर्वाङ्**) सन्मुख प्राप्त हुए (**अस्य**) इस अपने आत्मा के (**शश्वत्तमम्**) अधिकतर अनादि धर्म की (**पाहि**) रक्षा कीजिये (**अस्मिन्**) इस (**बर्हिषि**) उत्तम (**यज्ञे**) प्राप्त होने योग्य व्यवहार में (**निषद्य**) निरन्तर स्थित हो के (**जठरे**) जाठराग्नि में (**इमम्**) इस प्रत्यक्ष (**इन्दुम्**) रोगनाशक ओषधियों के रस को (**आ, दधिष्व**) अच्छे प्रकार धारण कीजिये॥२३॥

भावार्थः-विद्वान् लोग सब के साथ सदा सन्मुखता को प्राप्त होके प्रसन्नचित्त हुए सनातन धर्म तथा विज्ञान का उपदेश किया करें, पथ्य अन्न आदि का भोजन करें और सदा पुरुषार्थ में प्रवृत्त रहें॥२३॥

अमेवेत्यस्य गृत्समद ऋषिः। विद्वान् देवता। जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अ॒मेव॑ नः सुहवा॒ऽआ हि गन्त॑न॒ नि ब॒र्हिषि॑ सदतना॒ रणि॑ष्टन।
अथा॑ मदस्व जुजुषा॒णो ऽअन्ध॑स॒स्त्वष्ट॑र्दे॒वेभि॒र्जनि॑भिः सु॒मद्ग॑णः॥२४॥

अ॒मेवेत्य॒माऽइ॑व। न॒ः। सु॒ह॒वा॒ऽइति॑ सु॒ऽहवाः॑। आ। हि। गन्त॑न। नि। ब॒र्हिषि॑। स॒द॒त॒न॒। रणि॑ष्टन। अथ॑। म॒द॒स्व॒। जु॒जु॒षा॒णः। अन्ध॑सः। त्वष्टः॑। दे॒वेभिः॑। जनि॑भि॒रिति॒ जनि॑ऽभिः। सु॒मद्ग॑ण॒ इति॑ सु॒मत्ऽग॑णः॥२४॥

पदार्थः-(**अमेव**) उत्तमं गृहमिव (**नः**) अस्मान् (**सुहवाः**) शोभनाह्वानाः (**आ**) (**हि**) किल (**गन्तन**) गच्छत (**नि**) नितराम् (**बर्हिषि**) उत्तमे व्यवहारे (**सदतन**) सीदत (**रणिष्टन**) वदत (**अथ**) अनन्तरम्। अत्र

निपातस्य च [अ०६.३.१३६] इति दीर्घः। (**मदस्व**) आनन्द (**जुजुषाणः**) प्रसन्नः सेवमानः (**अन्धसः**) अन्नादेर्मध्ये (**त्वष्टः**) देदीप्यमानः (**देवेभिः**) दिव्यगुणैः (**जनिभिः**) जन्मभिः (**सुमद्गणः**) सुहर्षगणः॥२४॥

अन्वयः-हे त्वष्टो! जुजुषाणः सुमद्गणाः संस्त्वं देवेभिर्जनिभिः सहाऽन्धसो मदस्वाथाऽमेवान्यानानन्दय। हे विद्वांसः! सुहवा यूयममेव बर्हिषि न आ गन्तन। अत्र हि निषदतन रणिष्टन च॥२४॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। ये स्वयमुत्तमे व्यवहारे स्थित्वाऽन्यान् स्थापयेयुस्ते सदाऽऽनन्देयुः। स्त्रीपुरुषाः प्रीत्या संयुज्य यान्यपत्यानि जनयेयुस्तानि दिव्यगुणानि जायन्ते॥२४॥

पदार्थः-हे (**त्वष्टः**) तेजस्वि विद्वन्! (**जुजुषाणः**) प्रसन्नचित्त गुरु आदि की सेवा करते हुए (**सुमद्गणः**) सुन्दर प्रसन्न मण्डली वाले आप (**देवेभिः**) उत्तम गुण वाले (**जनिभिः**) जन्मों के साथ (**अन्धसः**) अन्नादि उत्तम पदार्थों की प्राप्ति में (**मदस्व**) आनन्दित हूजिये (**अथ**) इस के अनन्तर (**अमेव**) उत्तम घर के तुल्य औरों को आनन्दित कीजिये। हे विद्वान् लोगो! (**सुहवाः**) सुन्दर प्रकार बुलाने हारे तुम लोग उत्तम घर के समान (**बर्हिषि**) उत्तम व्यवहार में (**नः**) हमको (**आ, गन्तन**) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये। इस स्थान में (**हि**) निश्चित होकर (**नि, सदतन**) निरन्तर बैठिये और (**रणिष्टन**) अच्छा उपदेश कीजिए॥२४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो आप उत्तम व्यवहार में स्थित हो के औरों को स्थित करें, वे सदा आनन्दित हों। स्त्री-पुरुष उत्कण्ठा पूर्वक संयोग करके जिन सन्तानों को उत्पन्न करें, वे उत्तम गुण वाले होते हैं॥२४॥

स्वादिष्ठयेत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। सोमो देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया।

इन्द्राय पातवे सुतः॥२५॥

स्वादिष्ठया। मदिष्ठया। पवस्व। सोम। धारया। इन्द्राय। पातवे। सुतः॥२५॥

पदार्थः-(**स्वादिष्ठया**) अतिशयेन स्वादुयुक्तया (**मदिष्ठया**) अतिशयेनानन्दप्रदया (**पवस्व**) पवित्रो भव (**सोम**) ऐश्वर्ययुक्त (**धारया**) धारणकर्त्र्या (**इन्द्राय**) ऐश्वर्याय (**पातवे**) पातुं रक्षितुम् (**सुतः**) निष्पादितः॥२५॥

अन्वयः-हे सोम विद्वँस्त्वं य इन्द्राय पातवे सुतोऽस्ति तस्य स्वादिष्ठया मदिष्ठया धारया पवस्व॥२५॥

भावार्थ:-ये विद्वांसो मनुष्या: सर्वरोगप्रणाशकमानन्दप्रदमोषधिरसं पीत्वा शरीरात्मानौ पवित्रयन्ति ते धनाढ्या जायन्ते॥ २५॥

पदार्थ:-हे **(सोम)** ऐश्वर्ययुक्त विद्वन्! आप जो **(इन्द्राय)** संपत्ति की **(पातवे)** रक्षा करने के लिए **(सुत:)** निकाला हुआ उत्तम रस है, उस की **(स्वादिष्ठया)** अति स्वादयुक्त **(मदिष्ठया)** अति आनन्द देने वाली **(धारया)** धारण करने हारी क्रिया से **(पवस्व)** पवित्र हूजिये॥ २५॥

भावार्थ:-जो विद्वान् मनुष्य सब रोगों के नाशक आनन्द देने वाले ओषधियों के रस को पी के अपने शरीर और आत्मा को पवित्र करते हैं, वे धनाढ्य होते हैं॥ २५॥

रक्षोहेत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषि:। अग्निर्देवता। गायत्री छन्द:। षड्ज: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

रक्षोहा विश्वचर्षणिरभि योनिमयोहते। द्रोणेसधस्थमासदत्॥ २६॥

रक्षोहेति रक्ष:ऽहा। विश्वचर्षणिरिति विश्वऽचर्षणि:। अभि। योनिम्। अय:ऽहते। द्रोणे। सधस्थमिति सधऽस्थम्। आ। असदत्॥ २६॥

पदार्थ:-**(रक्षोहा)** यो रक्षांसि दुष्टान् प्राणिनो हन्ति स: **(विश्वचर्षणि:)** विश्वस्याऽखिलस्य प्रकाशक: **(अभि)** अभित: **(योनिम्)** गृहम् **(अयोहते)** अयसा सुवर्णेन प्राप्ते। अय इति हिरण्यनामसु पठितम्॥ (निघ० १।२॥) **(द्रोणे)** पात्रविशेषे **(सधस्थम्)** समानस्थानम् **(आ)** **(असदत्)** तिष्ठेत्॥ २६॥

अन्वय:-यो रक्षोहा विश्वचर्षणिर्विद्वानयोहते द्रोणे सधस्थं योनिमभ्यासदत् स सर्वं सुखमाप्नुयात्॥ २६॥

भावार्थ:-येऽविद्याहन्तारो विद्याप्रकाशका: सर्वर्त्तुसुखकरेषु सुवर्णादियुक्तेषु गृहेषु स्थित्वा विचारं कुर्युस्ते सुखिनो जायन्त इति॥ २६॥

अस्मिन्नध्याये पुरुषार्थफलवर्णनम्, सर्वेषां मनुष्याणां वेदपठनश्रवणाधिकार:, परमेश्वरविद्वत्सत्यनिरूपणम् अग्न्यादि-पदार्थकथनम्, यज्ञवर्णनम्, सुन्दरगृहनिर्माणम्, उत्तमस्थाने स्थितिश्चोक्ताऽत एतदर्थस्य पूर्वाध्यायोक्तार्थेन सह संगतिरस्तीति वेद्यम्॥

पदार्थ:-जो **(रक्षोहा)** दुष्ट प्राणियों को मारने हारा **(विश्वचर्षणि:)** सब संसार का प्रकाशक विद्वान् **(अयोहते)** सुवर्ण से प्राप्त हुए **(द्रोणे)** बीस सेर अन्न रखने के पात्र में **(सधस्थम्)** समान स्थिति वाले **(योनिम्)** घर में **(अभि, आ, असदत्)** अच्छे प्रकार स्थित होवे, वह सम्पूर्ण सुख को प्राप्त होवे॥ २६॥

भावार्थ:-जो अविद्या अज्ञान के नाशक, विज्ञान के प्रकाशक, सब ऋतुओं में सुखकारी, सुवर्ण आदि से युक्त घरों में बैठ के विचार करें वे सुखी होते हैं॥ २६॥

इस अध्याय में पुरुषार्थ के फल, सब मनुष्यों को वेद पढ़ने सुनने का अधिकार, परमेश्वर, विद्वान् और सत्य का निरूपण, अग्न्यादि पदार्थ, यज्ञ, सुन्दर घरों को बनाना और उत्तम स्थान में स्थिति आदि कही है, इससे इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय में कहे अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां श्रीपरमविदुषां विरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचिते संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां समन्विते सुप्रमाणयुक्ते यजुर्वेदभाष्ये षड्विंशोऽध्यायः पूर्तिमगात्॥ २६॥

॥ओ३म्॥

यजुर्वेदभाष्यम्

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितं संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां समलङ्कृतम्

सम्पादनम्

श्रद्धानन्द वैदिक शोधसंस्थान
गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

तृतीयो भागः

प्रकाशकः
श्रद्धानन्द अनुसन्धान प्रकाशन केन्द्र
गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार.
वर्ष २००८

॥ ओ३म् ॥

अथ सप्तविंशोऽध्याय आरभ्यते

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव। यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व॥ यजु० ३०.३॥

समा इत्यस्याग्निर्ऋषिः। अग्निर्देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथाप्तैः कथमाचरणीयमित्याह॥

अब सत्ताईसवें अध्याय का आरम्भ है, इसके प्रथम मन्त्र में आप्तों को कैसा आचरण करना चाहिये, इस विषय को कहा है॥

समा॑स्त्वाऽग्न ऋ॒तवो॑ वर्द्धयन्तु संवत्स॒राऽऋष॑यो॒ यानि॑ स॒त्या।
सं दि॒व्येन॑ दीदिहि रोच॒नेन॒ विश्वा॒ऽ आ भा॑हि प्र॒दिश॒श्चत॑स्रः॥ १॥

समा॑ः। त्वा॒। अ॒ग्ने॒। ऋ॒तव॑ः। व॒र्द्धय॒न्तु॒। सं॒व॒त्स॒राः। ऋष॑यः। यानि॑। स॒त्या। सम्। दि॒व्येन॑। दी॒दि॒हि॒। रो॒च॒नेन॑। विश्वा॑ः। आ। भा॒हि॒। प्र॒दिश॒ इति॑ प्र॒ऽदिश॑ः। चत॑स्रः॥ १॥

पदार्थः-(समाः) वर्षाणि **(त्वा)** त्वाम् **(अग्ने)** विद्वन् **(ऋतवः)** शरदादयः **(वर्द्धयन्तु) (संवत्सराः) (ऋषयः)** मन्त्रार्थविदः **(यानि) (सत्या)** सत्सु साधूनि त्रैकाल्याबाध्यानि कर्माणि **(सम्) (दिव्येन)** अतिशुद्धेन **(दीदिहि)** कामय **(रोचनेन)** प्रदीपनेन **(विश्वाः)** अखिलाः **(आ)** समन्तात् **(भाहि)** प्रकाशय **(प्रदिशः)** प्रकृष्टगुणयुक्ता दिशः **(चतस्रः)** एतत्संख्याप्रमिताः॥ १॥

अन्वयः-हे अग्ने! समा ऋतवः संवत्सरा ऋषयो यानि सत्या सन्ति, ते त्वा वर्द्धयन्तु। यथाऽग्निर्दिव्येन रोचनेन विश्वाश्चतस्रः प्रदिशः प्रकाशयति तथा विद्यां संदीदिहि। न्याय्यं धर्ममा भाहि॥ १॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। आप्तैः सर्वदा सत्या विद्याः कर्माणि चोपदिश्य सर्वेषां शरीरिणामारोग्यपुष्टी विद्यासुशीले च वर्द्धनीये। यथा सूर्यः स्वसंनिहितान् प्रकाशयति तथा सर्वे मनुष्याः सुशिक्षया सदैवानन्दयितव्याः॥ १॥

पदार्थः-हे **(अग्ने)** विद्वन्! **(समाः)** वर्ष **(ऋतवः)** शरद् आदि ऋतु **(संवत्सराः)** प्रभवादि संवत्सर **(ऋषयः)** मन्त्रों के अर्थ जानने वाले विद्वान् और **(यानि)** जो **(सत्या)** कर्म हैं, वे **(त्वा)** आप को **(वर्द्धयन्तु)** बढ़ावें, जैसे अग्नि **(दिव्येन)** शुद्ध **(रोचनेन)** प्रकाश से **(विश्वाः)** सब **(प्रदिशः)** उत्तम गुणयुक्त **(चतस्रः)** चार दिशाओं को प्रकाशित करता है, वैसे विद्या की **(सं, दीदिहि)** सुन्दर प्रकार कामना कीजिये और न्याययुक्त धर्म का **(आ, भाहि)** अच्छे प्रकार प्रकाश कीजिये॥ १॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। आप्तपुरुषों को चाहिये कि सब काल में सत्य विद्या और उत्तम कामों का उपेदश करके सब शरीरधारियों के आरोग्य, पुष्टि, विद्या और सुशीलता को बढ़ावें, जैसे सूर्य अपने सन्मुख के पदार्थों को प्रकाशित करता है, वैसे सब मनुष्यों को शिक्षा से सदैव आनन्दित किया करें॥१॥

सं चेत्यस्याग्निर्ऋषिः। सामिधेन्यो देवताः। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

विद्वांस एवोत्तमाधिकारे योजनीया इत्याह॥

विद्वानों को ही उत्तम अधिकार पर नियुक्त करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

सं चेध्यस्वाग्ने प्र च बोधयैनमुच्च तिष्ठ महते सौभगाय।
मा च रिषदुपसत्ता तेऽ अग्ने ब्रह्माणस्ते यशसः सन्तु माऽन्ये॥२॥

सम्। च। इध्यस्व। अग्ने। प्र। च। बोधय। एनम्। उत्। च। तिष्ठ। महते। सौभगाय॥ मा। च। रिषत्। उपसत्तेत्युपऽसत्ता। ते। अग्ने। ब्रह्माणः। ते। यशसः। सन्तु। मा। अन्ये॥२॥

पदार्थः-(**सम्**) सम्यक् (**च**) (**इध्यस्व**) प्रदीप्तो भव (**अग्ने**) अग्निवद्वर्त्तमान (**प्र**) (**च**) (**बोधय**) (**एनम्**) जिज्ञासुम् (**उत्**) (**च**) (**तिष्ठ**) (**महते**) (**सौभगाय**) शोभनस्य भगस्यैश्वर्यस्य भावाय (**मा**) (**च**) (**रिषत्**) हिंस्यात् (**उपसत्ता**) य उपसीदति सः (**ते**) तव (**अग्ने**) (**ब्रह्माणः**) चतुर्वेदविदः (**ते**) (**यशसः**) कीर्त्तेः (**सन्तु**) (**मा**) निषेधे (**अन्ये**)॥२॥

अन्वयः-हे अग्ने त्वं समिध्यस्वैनं प्रबोधय च महते सौभगाय चोत्तिष्ठ। उपसत्ता भवान् सौभगं मा रिषत्। हे अग्ने! ते ब्रह्माणोऽन्ये च मा सन्तु ते यशस उन्नतिं च मा रिषत्॥२॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये विद्वद्भ्यो भिन्नाञ्जनानुत्तमाऽधिकारे न योजयन्ति सदोन्नतये प्रयतन्ते, अन्यायेन कञ्चिन्न हिंसन्ति च, ते कीर्त्यैश्वर्ययुक्ता भवन्ति॥२॥

पदार्थः-हे (**अग्ने**) अग्नि के तुल्य तेजस्वी विद्वन्! आप (**सम्, इध्यस्व**) अच्छे प्रकार प्रकाशित हूजिये (**च**) और (**एनम्**) इस जिज्ञासु जन को (**प्रबोधय**) अच्छा बोध कराइये (**च**) और (**महते**) बड़े (**सौभगाय**) सौभाग्य होने के लिए (**उत्, तिष्ठ**) उद्यत हूजिये तथा (**उपसत्ता**) समीप बैठने वाले आप सौभाग्य को (**मा, रिषत्**) मत बिगाड़िये। हे (**अग्ने**) तेजस्विजन! (**ते**) आप के (**ब्रह्माणः**) चारों वेद के जानने वाले (**अन्ये**) भिन्न बुद्धि वाले (**च**) भी (**मा, सन्तु**) न हो जावें (**च**) और (**ते**) आप अपने (**यशसः**) यश कीर्ति की उन्नति को न बिगाड़िये॥२॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो विद्वानों से भिन्न इतर जनों को उत्तम अधिकार में नहीं युक्त करते, सदा उन्नति के लिए प्रयत्न करते और अन्याय से किसी को नहीं मारते हैं, वे कीर्त्ति और ऐश्वर्य से युक्त हो जाते हैं॥२॥

त्वामित्यस्याग्निर्ऋषिः। अग्निर्देवता। विराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

जिज्ञासुभिः किं कर्त्तव्यमित्याह॥

जिज्ञासु लोगों को क्या करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

त्वाम॑ग्ने वृणते ब्राह्मणाऽ इमे शिवोऽ अ॑ग्ने सं॒वर॑णे भवा नः।

स॒प॒त्न॒हा नो॑ अभिमाति॒जिच्च॒ स्वे गये॑ जागृह्यप्र॑युच्छन्॥३॥

त्वाम्। अ॒ग्ने॒। वृ॒ण॒ते॒। ब्रा॒ह्म॒णाः। इ॒मे। शि॒वः। अ॒ग्ने॒। सं॒वर॑ण॒ इति॑ स॒म्ऽवर॑णे। भ॒व॒। न॒ः॥ स॒प॒त्न॒हेति॑ सपत्न॒ऽहा। न॒ः। अ॒भि॒मा॒ति॒जिदित्य॑भिमाति॒ऽजित्। च॒। स्वे। गये॑। जा॒गृ॒हि॒। अप्र॑युच्छ॒न्नित्यप्र॑ऽयुच्छन्॥३॥

पदार्थः-(**त्वाम्**) (**अग्ने**) विद्वन् (**वृणते**) स्वीकुर्वन्ति (**ब्राह्मणाः**) ब्रह्मविदः (**इमे**) (**शिवः**) मङ्गलकारी (**अग्ने**) पावकवत् प्रकाशमान (**संवरणे**) सम्यक् स्वीकरणे (**भव**) अत्र **द्व्यचोऽतस्तिङः** [अ०६.३.१३५] इति दीर्घः। (**नः**) अस्माकम् (**सपत्नहा**) शत्रुदोषहन्ता (**नः**) अस्मान् (**अभिमातिजित्**) अभिमानजित् (**च**) (**स्वे**) स्वकीये (**गये**) गृहे (**जागृहि**) (**अप्रयुच्छन्**) प्रमादमकुर्वन्॥३॥

अन्वयः-अग्ने पावकवद्वर्त्तमान य इमे ब्राह्मणास्त्वां वृणते तान् प्रति त्वं संवरणे शिवो भव नोऽस्माकं सपत्नहा भव। हे अग्ने! अप्रयुच्छन्नभिमातिजिच्च त्वं स्वे गये जागृहि, नोऽस्मांश्च जागृतान् कुरु॥३॥

भावार्थः-यथा विद्वांसो ब्रह्म स्वीकृत्य मङ्गलमाप्नुवन्ति दोषान् घ्नन्ति तथा जिज्ञासवो ब्रह्मविदः प्राप्य मङ्गलाचरणाः सन्तः कुशीलतां घ्नन्त्वालस्यं विहाय विद्यामुन्नयन्तु च॥३॥

पदार्थः-हे (**अग्ने**) तेजस्वी विद्वन्! अग्नि के समान वर्तमान जो (**इमे**) ये (**ब्राह्मणाः**) ब्रह्मवेत्ता जन (**त्वाम्**) आप को (**वृणते**) स्वीकार करते हैं, उन के प्रति आप (**संवरणे**) सम्यक् स्वीकार करने में (**शिवः**) मङ्गलकारी (**भव**) हूजिये (**नः**) हमारे (**सपत्नहा**) शत्रुओं के दोषों के हननकर्त्ता हूजिये। हे (**अग्ने**) अग्निवत् प्रकाशमान! (**अप्रयुच्छन्**) प्रमाद नहीं करते हुए (**च**) और (**अभिमातिजित्**) अभिमान को जीतने वाले आप (**स्वे**) अपने (**गये**) घर में (**जागृहि**) जागो अर्थात् गृहकार्य करने में निद्रा आलस्यादि को छोड़ो (**नः**) हम को शीघ्र चेतन करो॥३।

भावार्थः-जैसे विद्वान् लोग ब्रह्म को स्वीकार करके आनन्द मङ्गल को प्राप्त होते और दोषों को निर्मूल नष्ट कर देते हैं, वैसे जिज्ञासु लोग ब्रह्मवेत्ता विद्वानों को प्राप्त हो के आनन्द मङ्गल का

आचरण करते हुए बुरे स्वभावों के मूल को नष्ट करें और आलस्य को छोड़ के विद्या की उन्नति किया करें॥३॥

इहैवेत्यस्याग्निर्ऋषिः। अग्निर्देवता। स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ राजधर्मविषयमाह॥

अब राजधर्म विषय अगले मन्त्र में कहते हैं॥

इहैवाग्नेऽ अधि धारया रयिं मा त्वा निक्रन् पूर्वचितो निकारिणः।
क्षत्रमग्ने सुयममस्तु तुभ्यमुपसत्ता वर्द्धतां तेऽअनिष्टृतः॥४॥

इह। एव। अग्ने। अधि। धारय। रयिम्। मा। त्वा। नि। क्रन्। पूर्वचित इति पूर्वऽचितः। निकारिण इति निऽकारिणः॥ क्षत्रम्। अग्ने। सुयममिति सुऽयमम्। अस्तु। तुभ्यम्। उपसत्तेत्युपऽसत्ता। वर्द्धताम्। ते। अनिष्टृतः। अनिस्तृत इत्यनिऽस्तृतः॥४॥

पदार्थः-(**इह**) अस्मिन् संसारे (**एव**) (**अग्ने**) विद्युद्वद्वर्त्तमान (**अधि**) उपरिभावे (**धारय**) अत्र **संहितायाम्** [अ०६.३.११४] इति दीर्घः। (**रयिम्**) श्रियम् (**मा**) (**त्वा**) त्वाम् (**नि**) नीचैः (**क्रन्**) कुर्युः (**पूर्वचितः**) पूर्वैः प्राप्तविज्ञानादिभिर्वृद्धाः (**निकारिणः**) नितरां कर्तुं स्वभावाः (**क्षत्रम्**) धनं राज्यं वा (**अग्ने**) विनयप्रकाशित (**सुयमम्**) सुष्ठु यमा यस्मात् तत् (**अस्तु**) (**तुभ्यम्**) (**उपसत्ता**) उपसीदन् (**वर्द्धताम्**) (**ते**) तव (**अनिष्टृतः**) अनुपहिंसितः॥४॥

अन्वयः-हे अग्ने त्वमिह रयिं धारय पूर्वचितो निकारिणस्त्वा मा नि क्रन्। हे अग्ने! ते सुयमं क्षत्रमस्तु येनोपसत्ता सन्ननिष्टृतो भूत्वैव भवान्नधिवर्धताम्। तुभ्यं क्षत्रं सुखदातृ भवतु॥४॥

भावार्थः-हे राजन्नेवं विनयं धरेर्येन पूर्ववृद्धा जनास्त्वां बहु मन्येरन्। राज्ये सुनियमान् प्रवर्त्तय येन स्वयं स्वराज्यं च विघ्नविरहं भूत्वा सर्वतो वर्द्धेत भवन्तं सर्वोपरि प्रजा मन्येत च॥४॥

पदार्थः-हे (**अग्ने**) बिजुली के समान वर्त्तमान विद्वन्! आप (**इह**) इस संसार में (**रयिम्**) लक्ष्मी को (**धारय**) धारण कीजिये (**पूर्वचितः**) प्रथम प्राप्त किये विज्ञानादि से श्रेष्ठ (**निकारिणः**) निरन्तर कर्म करने के स्वभाव वाले जन (**त्वा**) आप को (**मा, नि, क्रन्**) नीच गति को प्राप्त न करें। हे (**अग्ने**) विनय से शोभायमान सभापते! (**ते**) आप का (**सुयमम्**) सुन्दर नियम जिस से चले, वह (**क्षत्रम्**) धन वा राज्य (**अस्तु**) होवे, जिससे (**उपसत्ता**) समीप बैठते हुए (**अनिष्टृतः**) हिंसा वा विघ्न को नहीं प्राप्त हो के (**एव**) ही आप (**अधि, वर्द्धताम्**) अधिकता से वृद्धि को प्राप्त हूजिये (**तुभ्यम्**) आप के लिए राज्य वा धन सुखदायी होवे॥४॥

भावार्थ:-हे राजन्! आप ऐसे उत्तम विनय को धारण कीजिये जिस से प्राचीन वृद्ध जन आप को बड़ा माना करें। राज्य में अच्छे नियमों को प्रवृत्त कीजिये, जिससे आप और आपका राज्य विघ्न से रहित होकर सब ओर से बढ़े और प्रजाजन आप को सर्वोपरि माना करें॥४॥

क्षत्रेणेत्यस्याग्निर्ऋषि:। अग्निर्देवता। स्वराट्पङ्क्तिश्छन्द:। पञ्चम: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

क्षत्रेणाग्ने स्वायु: सꣳरभस्व मित्रेणाग्ने मित्रधेये यतस्व।

सजातानां मध्यमस्थाऽ एधि राज्ञामग्ने विहव्यो दीदिहीह॥५॥

क्षत्रेण। अग्ने। स्वायुरिति सुऽआयु:। सम्। रभस्व। मित्रेण। अग्ने। मित्रधेय इति मित्रऽधेये। यतस्व॥ सजातानामिति सऽजातानाम्। मध्यमस्था इति मध्यमऽस्था:। एधि। राज्ञाम्। अग्ने। विहव्य इति विऽहव्य:। दीदिहि। इह॥५॥

पदार्थ:-(**क्षत्रेण**) राज्येन धनेन वा (**अग्ने**) पावकवत् तेजस्विन् (**स्वायु:**) शोभनं च तदायुश्च (**सम्**) सम्यक् (**रभस्व**) आरम्भं कुरु (**मित्रेण**) धार्मिकैर्विद्वद्भिर्मित्रै: सह (**अग्ने**) विद्याविनयप्रकाशक (**मित्रधेये**) मित्रैर्धर्त्तव्ये व्यवहारे (**यतस्व**) (**सजातानाम्**) समानजन्मनाम् (**मध्यमस्था:**) मध्ये भवा मध्यमा पक्षपातरहितास्तेषु तिष्ठतीति (**एधि**) भव (**राज्ञाम्**) धार्मिकाणां राजाधिराजानां मध्ये (**अग्ने**) न्यायप्रकाशक (**विहव्य:**) विशेषेण स्तोतुं योग्य: (**दीदिहि**) प्रकाशितो भव (**इह**) अस्मिन् संसारे राज्याधिकारे वा॥५॥

अन्वय:-हे अग्ने! त्वमिह क्षत्रेण सह स्वायु: संरभस्व। हे अग्ने! मित्रेण सह मित्रधेये यतस्व। हे अग्ने! सजातानां राज्ञां मध्ये मध्यमस्था एधि। विहव्य: सन् दीदिहि च॥५॥

भावार्थ:-राजा सदा ब्रह्मचर्येण दीर्घायु: सत्यधर्मप्रियैरमात्यै: सह मन्त्रयिताऽन्यै: राजभि: सह सुसन्धि: पक्षपातं विहाय न्यायाधीश: सर्वै: सुलक्षणैर्युक्त: सन् दुष्टव्यसनविरहो भूत्वा धर्मार्थकाममोक्षान् धैर्येण शान्त्याऽप्रमादेन च शनैश्शनै: साधयेत्॥५॥

पदार्थ:-हे (**अग्ने**) अग्नि के तुल्य तेजस्वि विद्वन्! आप (**इह**) इस जगत् में वा राज्याधिकार में (**क्षत्रेण**) राज्य व धन के साथ (**स्वायु:**) सुन्दर युवाऽवस्था का (**सम्, रभस्व**) अच्छे प्रकार आरम्भ कीजिये। हे (**अग्ने**) विद्या और विनय से शोभायमान राजन्! (**मित्रेण**) धर्मात्मा विद्वान् मित्रों के साथ (**मित्रधेये**) मित्रों से धारण करने योग्य व्यवहार में (**यतस्व**) प्रयत्न कीजिये। हे (**अग्ने**) न्याय का प्रकाश करने हारे सभापति! (**सजातानाम्**) एक साथ उत्पन्न हुए बराबर की अवस्था वाले (**राज्ञाम्**) धर्मात्मा राजाधिराजों के बीच (**मध्यमस्था:**) मध्यस्थ-वादिप्रतिवादि के

साक्षि **(एधि)** हूजिये और **(विहव्यः)** विशेष कर स्तुति के योग्य हुए **(दीदिहि)** प्रकाशित हूजिये॥५॥

भावार्थः-सभापति राजा सदा ब्रह्मचर्य से दीर्घायु, सत्य धर्म में प्रीति रखने वाले मन्त्रियों के साथ विचारकर्त्ता, अन्य राजाओं के साथ अच्छी सन्धि रखने वाला, पक्षपात को छोड़ न्यायाधीश सब शुभ लक्षणों से युक्त हुआ दुष्ट व्यसनों से पृथक् हो के धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को धीरज, शान्ति, अप्रमाद से धीरे-धीरे सिद्ध करे॥५॥

अति निह इत्यस्याग्निर्ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिग्बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अति निहोऽ अति स्रिधोऽत्यचित्तिमत्यरातिमग्ने।

विश्वा ह्यग्ने दुरिता सहस्वाथाऽस्मभ्यꣳ सहवीराꣳ रयिं दाः॥६॥

अति। निहः। अति। स्रिधः। अति। अचित्तिम्। अति। अरातिम्। अग्ने॥ विश्वा। हि। अग्ने। दुरितेति दुःऽइता। सहस्व। अथ। अस्मभ्यम्। सहवीरामिति सहऽवीराम्। रयिम्। दाः॥६॥

पदार्थः-**(अति)** अतिशयेन **(निहः)** योऽसत्यं नितरां जहाति सः **(अति)** **(स्रिधः)** दुष्टाचारान् **(अति)** अतिक्रम्य **(अचित्तिम्)** अज्ञानम् **(अति)** **(अरातिम्)** अदानम् **(अग्ने)** तेजस्विन् सभापते! **(विश्वा)** सर्वाणि **(हि)** खलु **(अग्ने)** दृढविद्य **(दुरिता)** दुष्टाचरणानि **(सहस्व)** **(अथ)** **(अस्मभ्यम्)** **(सहवीराम्)** वीरैः सह वर्त्तमानां सेनाम् **(रयिम्)** धनम् **(दाः)** दद्याः॥६॥

अन्वयः-हे अग्ने! त्वमति निहः सन् स्रिधोऽति सहस्व, अचित्तिमत्यरातिं सहस्व। हे अग्ने! त्वं हि विश्वा दुरिताऽतिसहस्व, अथाऽस्मभ्यं सहवीरां रयिं च दाः॥६॥

भावार्थः-ये दुष्टाचारत्यागिनः कुत्सितानां निरोधका अज्ञानमदानं च पृथक् कुर्वाणा दुर्व्यसनेभ्यः पृथग्भूताः सुखदुःखयो सोढारो वीरसेनाप्रिया यथागुणानां जनानां योग्यं सत्कारं कुर्वन्तः सन्तो न्यायेन राज्यं पालयेयुस्ते सदा सुखिनो भवेयुरिति॥६॥

पदार्थः-हे **(अग्ने)** तेजस्वि सभापते! आप **(अति, निहः)** निश्चय करके असत्य को छोड़ने वाले होते हुए **(स्रिधः)** दुष्टाचारियों को **(अति, सहस्व)** अधिक सहन कीजिये **(अचित्तिम्)** अज्ञान का **(अति)** अतिक्रमण कर **(अरातिम्)** दान के निषेध को सहन कीजिये। हे **(अग्ने)** दृढ़ विद्या वाले तेजस्वि विद्वन्! आप **(हि)** ही **(विश्वा)** सब **(दुरिता)** दुष्ट आचरणों को **(अति)** अधिक सहन कीजिये **(अथ)** इस के पश्चात् **(अस्मभ्यम्)** हमारे लिये **(सहवीराम्)** वीरपुरुषों से युक्त सेना और **(रयिम्)** धन को **(दाः)** दीजिये॥६॥

भावार्थः-जो दुष्ट आचारों के त्यागी कुत्सित जनों के रोकने वाले अज्ञान तथा अदान को पृथक् करते और दुर्व्यसनों से पृथक् हुए, सुख-दुःख के सहने और वीरपुरुषों की सेना से प्रीति करने वाले गुणों के अनुकूल जनों का ठीक सत्कार करते हुए न्याय से राज्य पालें वे सदा सुखी होवें॥६॥

अनाधृष्य इत्यस्याग्निर्ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृज्जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अनाधृष्यो जातवेदाऽ अनिष्टृतो विराडग्ने क्षत्रभृद् दीदिहीह।
विश्वाऽ आशाः प्रमुञ्चन् मानुषीर्भियः शिवेभिरद्य परि पाहि नो वृधे॥७॥

अनाधृष्यः। जातवेदा इति जातऽवेदाः। अनिष्टृतः। अनिस्तृत इत्यनिःऽस्तृतः। विराडिति विऽराट्। अग्ने। क्षत्रभृदिति क्षत्रऽभृत्। दीदिहि। इह॥ विश्वाः। आशाः। प्रमुञ्चन्निति प्रऽमुञ्चन्। मानुषीः। भियः। शिवेभिः। अद्य। परि। पाहि। नः। वृधे॥७॥

पदार्थः-(**अनाधृष्यः**) अन्यैर्धर्षितुमयोग्यः (**जातवेदाः**) जातविद्यः (**अनिष्टृतः**) दुःखात् पृथग्भूतः (**विराट्**) विशेषेण राजमानः (**अग्ने**) सुसंगृहीतराजनीते (**क्षत्रभृत्**) यः क्षत्रं राज्यं बिभर्ति सः (**दीदिहि**) कामय (**इह**) अस्मिन् राज्यव्यवहारे (**विश्वाः**) सकलाः (**आशाः**) दिशः (**प्रमुञ्चन्**) प्रकर्षेण मुक्ताः कुर्वन् (**मानुषीः**) मनुष्यसम्बन्धिनी (**भियः**) रोगदोषादिकाः (**शिवेभिः**) कल्याणकारिभिः सभ्यैः (**अद्य**) इदानीम् (**परि**) सर्वतः (**पाहि**) रक्ष (**नः**) अस्मान् (**वृधे**) वर्धनाय॥७॥

अन्वयः-हे अग्ने! योऽद्येह मानुषीर्भियो नाशय, शिवेभिश्च सहानिष्टृतोऽनाधृष्यो जातवेदा विराट् क्षत्रभृदस्ति, स त्वं नो दीदिहि, विश्वा आशाः प्रमुञ्चँस्त्वं नो वृधे परि पाहि॥७॥

भावार्थः-ये राजराजपुरुषाः प्रजाः सन्तोष्य मङ्गलाचरणाः सर्वविद्यान्यायप्रियाः सन्तः प्रजाः पालयेयुस्ते सर्वदिक्प्रवृत्तकीर्त्तयः स्युः॥७॥

पदार्थः-हे (**अग्ने**) अच्छे प्रकार राजनीति का संग्रह करने वाले राजन्! जो आप (**अद्य**) इस समय (**इह**) इस राजा के व्यवहार में (**मानुषीः**) मनुष्यसम्बन्धी (**भियः**) रोगशोकादि भयों को नष्ट कीजिये (**शिवेभिः**) कल्याणकारी सभ्य सज्जनों के साथ (**अनिष्टृतः**) दुःख से पृथक् हुए (**अनाधृष्यः**) अन्यों से नहीं धमकाने योग्य (**जातवेदाः**) विद्या को प्राप्त (**विराट्**) विशेषकर प्रकाशमान (**क्षत्रभृत्**) राज्य के पोषक हैं, सो आप (**नः**) हमारी (**दीदिहि**) कामना कीजिये

(विश्वाः) सब **(आशाः)** दिशाओं को **(प्रमुञ्चन्)** अच्छे प्रकार मुक्त करते हुए हमारी **(वृधे)** वृद्धि के लिए **(परि, पाहि)** सब ओर से रक्षा कीजिये॥७॥

भावार्थः-जो राजा वा राजपुरुष प्रजाओं को सन्तुष्ट कर मङ्गलरूप आचरण करने और विद्याओं से युक्त न्याय में प्रसन्न रहते हुए प्रजाओं की रक्षा करें, वे सब दिशाओं में प्रवृत्त कीर्त्ति वाले होवें॥७॥

बृहस्पत इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

बृह॑स्पते सवितर्बो॒धयै॑नꣳ सꣳशि॑तं चित्सन्त॒राꣳ सꣳशि॑शाधि।

व॒र्धयै॑नं मह॒ते सौभ॑गाय॒ विश्व॑ऽए॒नमनु॑ मदन्तु दे॒वाः॥८॥

बृह॑स्पते। स॒वि॒त॒रिति॑ सवितः। बो॒धय॑। ए॒नम्। सꣳशि॑त॒मिति॒ सम्ऽशि॑तम्। चि॒त्। स॒न्त॒रामिति॑ समऽत॒राम्। सम्। शि॒शा॒धि॒। व॒र्धय॑। ए॒नम्। म॒ह॒ते। सौभ॑गाय। विश्वे॑। ए॒नम्। अनु॑। म॒द॒न्तु॒। दे॒वाः॥८॥

पदार्थः-**(बृहस्पते)** बृहतां पालक **(सवितः)** विद्यैश्वर्ययुक्त **(बोधय)** सचेतनं कुरु **(एनम्)** राजानम् **(संशितम्)** तीक्ष्णबुद्धिस्वभावम् **(चित्)** **(सन्तराम्)** अतितराम् **(सं, शिशाधि)** सम्यक् शिक्षस्व **(वर्धय)** **(एनम्)** **(महते)** **(सौभगाय)** उत्तमैश्वर्यभावाय **(विश्वे)** सर्वे **(एनम्)** **(अनु)** पश्चात् **(मदन्तु)** आनन्दन्तु **(देवाः)** सुसभ्या विद्वांसः॥८॥

अन्वयः-हे बृहस्पते! सवितः पूर्णविद्योपदेशक त्वमेनं संशितं कुर्वन् बोधय संशिशाधि चिदपि प्रजाः सन्तरां शिशाध्येनं महते सौभगाय वर्धय विश्वे देवा एनमनु मदन्तु॥८॥

भावार्थः-यो राजसभोपदेशकः स एतान् दुर्व्यसनेभ्यो निवर्त्य सुशीलान् संपाद्य महैश्वर्यवृद्धये प्रवर्त्तयेत्॥८॥

पदार्थः- हे **(बृहस्पते)** बड़े सज्जनों के रक्षक **(सवितः)** विद्या और ऐश्वर्य से युक्त संपूर्ण विद्या के उपदेशक आप **(एनम्)** इस राजा को **(संशितम्)** तीक्ष्ण बुद्धि के स्वभाव वाला करते हुए **(बोधय)** चेतनतायुक्त कीजिये और **(सम्, शिशाधि)** सम्यक् शिक्षा कीजिये **(चित्)** और **(सन्तराम्)** अतिशय करके प्रजा को शिक्षा कीजिये **(एनम्)** इस राजा को **(महते)** बड़े **(सौभगाय)** उत्तम ऐश्वर्य होने के लिए **(वर्धय)** बढ़ाइये और **(विश्वे)** सब **(देवाः)** सुन्दर सभ्य विद्वान् **(एनम्)** इस राजा के **(अनु, मदन्तु)** अनुकूल प्रसन्न हों॥८॥

भावार्थः-जो राजसभा का उपदेशक है, वह इन राजादि को दुर्व्यसनों से पृथक् कर और सुशीलता को प्राप्त कराके बड़े ऐश्वर्य की वृद्धि के लिए प्रवृत्त करे॥८॥

अमुत्रेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। अश्व्यादयो देवताः। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथाध्यापकोपदेशकैः किं कार्यमित्याह॥

अब अध्यापक और उपदेशकों को क्या करना चाहिये, इस विषय को कहा है।

अमुत्रभूयादध यद्यमस्य बृहस्पतेऽ अभिशस्तेरमुञ्चः।

प्रत्यौहतामश्विना मृत्युमस्माद् देवानामग्ने भिषजा शचीभिः॥ ९॥

अमुत्रभूयादित्यमुत्रऽभूयात्। अध। यत्। यमस्य। बृहस्पते। अभिशस्तेरित्यभिऽशस्तेः। अमुञ्चः। प्रति। औहताम्। अश्विना। मृत्युम्। अस्मात्। देवानाम्। अग्ने। भिषजा। शचीभिः॥ ९॥

पदार्थः- **(अमुत्रभूयात्)** परजन्मनि भाविनः। अत्रामुत्रोपपदाद् भूधातो क्यप्। **(अध)** अथ **(यत्)** **(यमस्य)** नियन्तुः **(बृहस्पते)** महतां पालक **(अभिशस्तेः)** सर्वतोऽपराधात् **(अमुञ्चः)** मुच्याः **(प्रति)** **(औहताम्)** वितर्केण साध्नुताम् **(अश्विना)** अध्यापकोपदेशकौ **(मृत्युम्)** **(अस्मात्)** **(देवानाम्)** **(अग्ने)** सद्वैद्य **(भिषजा)** औषधानि **(शचीभिः)** कर्मभिः प्रज्ञाभिर्वा॥ ९॥

अन्वयः-हे बृहस्पते! त्वममुत्रभूयादभिशस्तेरेनममुञ्चः। अध यद्यो यमस्य शासने तिष्ठेत् तस्य मृत्युममुञ्चः। हे अग्ने! त्वं यथाऽश्विना शचीभिर्भिषजा प्रत्यौहतां तथाऽस्माद् देवानामारोग्यं सम्पादय॥ ९॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। त एव श्रेष्ठा अध्यापकोपदेशका येऽत्र परत्र च सुखाय सर्वान् सुशिक्षयेयुः, येन ब्रह्मचर्यादीनि कर्माणि सेवयित्वा मनुष्या अल्पमृत्युमानन्दहानिं च नाप्नुयुः॥ ९॥

पदार्थः-हे **(बृहस्पते)** बड़ों के रक्षक विद्वन्! आप **(अमुत्रभूयात्)** परजन्म में होने वाले **(अभिशस्तेः)** सब प्रकार के अपराध से **(अमुञ्चः)** छूटिये। **(अध)** इस के अनन्तर **(यत्)** जो **(यमस्य)** धर्मात्मा नियमकर्त्ता जन की शिक्षा में रहे, उस के **(मृत्युम्)** मृत्यु को छुड़ाइये। हे **(अग्ने)** उत्तम वैद्य! आप जैसे **(अश्विना)** अध्यापक और उपदेशक **(शचीभिः)** कर्म वा बुद्धियों से **(भिषजा)** रोगनिवारक पदार्थों को **(प्रति, औहताम्)** विशेष तर्क से सिद्ध करें, वैसे **(अस्मात्)** इससे **(देवानाम्)** विद्वानों के आरोग्य को सिद्ध कीजिये॥ ९॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। वे ही श्रेष्ठ अध्यापक और उपदेशक हैं, जो इस लोक और परलोक में सुख होने के लिये सब को अच्छी शिक्षा करें, जिससे ब्रह्मचर्यादि कर्मों का सेवन कर मनुष्य अल्पावस्था में मृत्यु और आनन्द की हानि को न प्राप्त होवें॥ ९॥

उद्वयमित्यस्याग्निर्ऋषिः। सूर्यो देवता। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथेश्वरोपासनाविषयमाह॥

अब ईश्वर की उपासना का विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उद्वयन्तम॑स॒स्परि॒ स्वः॒ पश्य॑न्त॒ऽ उत्त॑रम्।

दे॒वं दे॑व॒त्रा सूर्य॒मग॑न्म॒ ज्योति॑रुत्त॒मम्॥ १०॥

उत्। व॒यम्। तम॑सः। परि॑। स्व॒रिति॒ स्वः॒। पश्य॑न्तः। उत्त॑र॒मित्यु॑त्ऽत॑रम्। दे॒वम्। दे॒व॒त्रेति॑ दे॒वऽत्रा। सूर्य॑म्। अग॑न्म। ज्योति॑ः। उ॒त्त॒ममित्यु॑त्ऽत॒मम्॥ १०॥

पदार्थः-(उत्) उत्कर्षे **(वयम्) (तमसः)** अन्धकारात् पृथग् वर्त्तमानम् **(परि)** सर्वतः **(स्वः)** सुखसाधकम् **(पश्यन्तः)** प्रेक्षमाणाः **(उत्तरम्)** सर्वेषां लोकानामुत्तारकम् **(देवम्)** द्योतमानम् **(देवत्रा)** देवेषु वर्त्तमानम् **(सूर्यम्)** चराऽचरात्मानम् **(अगन्म)** प्राप्नुयाम **(ज्योतिः)** प्रकाशमानम् **(उत्तमम्)** अतिश्रेष्ठम्॥ १०॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा वयं तमसः पृथग्भूतं ज्योतिः सवितृमण्डलं पश्यन्तः स्वरुत्तरं देवत्रोत्तमं सूर्यं जगदीश्वरं देवं पर्युदगन्म तथा यूयमपि प्राप्नुत॥ १०॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये मनुष्याः सूर्यमिवाऽविद्यान्धकारात् पृथग्भूतं स्वप्रकाशं महादेवं सर्वोत्कृष्टं सर्वान्तर्यामिणं परमात्मानमेवोपासते ते मुक्तिसुखमपि लभन्ते॥ १०॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे **(वयम्)** हम लोग **(तमसः)** अन्धकार से पृथक् वर्तमान **(ज्योतिः)** प्रकाशमान सूर्यमण्डल को **(पश्यन्तः)** देखते हुए **(स्वः)** सुख के साधक **(उत्तरम्)** सब लोगों को दुःख से पार उतारने वाले **(देवत्रा)** दिव्य पदार्थों वा विद्वानों में वर्त्तमान **(उत्तमम्)** अतिश्रेष्ठ **(सूर्यम्)** चराचर के आत्मा **(देवम्)** प्रकाशमान जगदीश्वर को **(परि, उत्, अगन्म)** सब ओर से उत्कर्षपूर्वक प्राप्त हों, वैसे उस ईश्वर को तुम लोग भी प्राप्त होओ॥ १०॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य सूर्य के समान अविद्यारूप अन्धकार से पृथक् हुए स्वयं प्रकाशित, बड़े देवता, सबसे उत्तम, सब के अन्तर्यामी परमात्मा की ही उपासना करते हैं, वे मुक्ति के सुख को भी अवश्य निर्विघ्न प्रीतिपूर्वक प्राप्त होते हैं।१०॥

ऊर्ध्वा इत्यस्याग्निर्ऋषिः। अग्निर्देवता। उष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

अथाऽग्निः कीदृश इत्याह॥

अब अग्नि कैसा है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ऊ॒र्ध्वाऽ अ॑स्य स॒मिधो॑ भवन्त्यू॒र्ध्वा शु॒क्रा शो॒चीᳬष्य॒ग्नेः।

द्यु॒मत्त॑मा सु॒प्रती॑कस्य सू॒नोः॥ ११॥

ऊ॒र्ध्वाः। अ॒स्य॒। स॒मिध॒ इति॑ स॒म्ऽइध॑ः। भ॒व॒न्ति॒। ऊ॒र्ध्वा। शु॒क्रा। शो॒चीᳬषि॑। अ॒ग्नेः। द्यु॒मत्त॒मेति॑ द्यु॒मत्ऽत॑मा। सु॒प्रती॑क॒स्येति॑ सु॒ऽप्रती॑कस्य। सू॒नोः॥ ११॥

पदार्थः-(**ऊर्ध्वाः**) उत्तमाः (**अस्य**) (**समिधः**) सम्यक् प्रदीपिकाः (**भवन्ति**) (**ऊर्ध्वाः**) ऊर्ध्वानि (**शुक्रा**) शुद्धानि (**शोचींषि**) तेजांसि (**अग्नेः**) पावकस्य (**द्युमत्तमा**) अतिशयेन प्रशस्तप्रकाशयुक्तानि (**सुप्रतीकस्य**) शोभनानि प्रतीकानि प्रतीतिकराणि कर्माणि यस्य तस्य (**सूनोः**) प्राणिगर्भविमोचकस्य॥११॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यस्याऽस्य सुप्रतीकस्य सूनोरग्नेरूर्ध्वाः समिध ऊर्ध्वा द्युमत्तमा शुक्रा शोचींषि भवन्ति तं विजानीत॥११॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! योऽयमूर्ध्वगन्ता सर्वदर्शनहेतुः सर्वेषां पालननिमित्तोऽग्निरस्ति, तं विज्ञाय कार्याणि सततं साध्नुत॥११॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जिस (**अस्य**) इस (**सुप्रतीकस्य**) सुन्दर प्रतीतिकारक कर्मों से युक्त (**सूनोः**) प्राणियों के गर्भों को छुड़ाने हारे (**अग्नेः**) अग्नि की (**ऊर्ध्वा**) उत्तम (**समिधः**) सम्यक् प्रकाश करने वाली समिधा तथा (**ऊर्ध्वा**) ऊपर को जाने वाले (**द्युमत्तमा**) अति उत्तम प्रकाशयुक्त (**शुक्रा**) शुद्ध (**शोचींषि**) तेज (**भवन्ति**) होते हैं, उस को तुम जानो॥११॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जो यह ऊपर को उठने वाला, सब के देखने का हेतु, सब की रक्षा का निमित्त अग्नि है, उस को जान के कार्यों को निरन्तर सिद्ध किया करो॥११॥

तनूनपादित्यस्याऽग्निर्ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। उष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

अथ वायुः किंवत् कार्यसाधकोऽस्तीत्याह॥

अब वायु किस के समान कार्यसाधक है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

तनूनपादसुरो विश्ववेदा देवो देवेषु देवः।

पथो अनक्तु मध्वा घृतेन॥१२॥

तनूनपादिति तनूऽनपात्। असुरः। विश्ववेदा इति विश्वऽवेदाः। देवः। देवेषु। देवः। पथः। अनक्तु। मध्वा। घृतेन॥१२॥

पदार्थः-(**तनूनपात्**) यस्तनूषु शरीरेषु न पतति सः (**असुरः**) प्रकाशरहितो वायुः (**विश्ववेदाः**) यो विश्वं विन्दति सः (**देवः**) दिव्यगुणः (**देवेषु**) दिव्यगुणेषु वस्तुषु (**देवः**) कमनीयः (**पथः**) मार्गान् (**अनक्तु**) (**मध्वा**) मधुरेण (**घृतेन**) उदकेन सह॥१२॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यो देवेषु देवोऽसुरो विश्ववेदास्तनूनपाद्देवो मध्वा घृतेन सह पथोऽनक्तु, तं यूयं विजानीत॥१२॥

भावार्थः-यथा परमेश्वरो महादेवो विश्वव्यापी सर्वेषां सुखकरोऽस्ति तथा वायुरप्यस्ति, नह्यनेन विना कश्चिदपि कुत्रचिद् गन्तुं शक्नोति॥१२॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो **(देवेषु)** उत्तम गुण वाले पदार्थों में **(देवः)** उत्तम गुण वाला **(असुरः)** प्रकाशरहित वायु **(विश्ववेदाः)** सब को प्राप्त होने वाला **(तनूनपात्)** जो शरीर में नहीं गिरता **(देवः)** कामना करने योग्य **(मध्वा)** मधुर **(घृतेन)** जल के साथ **(पथः)** श्रोत्रादि के मार्गों को **(अनक्तु)** प्रकट करे, उस को तुम जानो॥१२॥

भावार्थः-जैसे परमेश्वर बड़ा देव सब में व्यापक और सब को सुख करने हारा है, वैसा वायु भी है, क्योंकि इस वायु के बिना कोई कहीं भी नहीं जा सकता॥१२॥

मध्वेत्यस्याग्निर्ऋषिः। यज्ञो देवता। निचृदुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

पुनः कीदृशा जनाः सुखिनः स्युरित्याह॥

फिर कैसे मनुष्य सुखी होवें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

मध्वा॑ य॒ज्ञं न॑क्षसे प्री॒णा॒नो न॒रा॒शꣳसो॑ऽ अग्ने।

सु॒कृ॒द्दे॒वः स॑वि॒ता वि॒श्ववा॑रः॥१३॥

मध्वा॑। य॒ज्ञम्। न॒क्ष॒से॒। प्री॒णा॒नः। न॒रा॒शꣳसः॑। अ॒ग्ने॒। सु॒कृदिति॑ सु॒ऽकृत्। दे॒वः। स॒वि॒ता। वि॒श्ववा॑र॒ इति॑ वि॒श्वऽवा॑रः॥१३॥

पदार्थः-**(मध्वा)** मधुरेण वचनेन **(यज्ञम्)** सङ्गतं व्यवहारम् **(नक्षसे)** प्राप्नोषि **(प्रीणानः)** कामयमानः **(नराशंसः)** यो नरान् शंसति सः **(अग्ने)** विद्वन् **(सुकृत्)** यः सुष्ठु करोति सः **(देवः)** व्यवहर्ता **(सविता)** ऐश्वर्यमिच्छुकः **(विश्ववारः)** यो विश्वं वृणोति सः॥१३॥

अन्वयः-हे अग्ने! यो नराशंसः सुकृद्विश्ववारः प्रीणानः सविता देवस्त्वं मध्वा यज्ञं नक्षसे, तं वयं प्रसादयेम॥१३॥

भावार्थः-ये मनुष्या यज्ञे सुगन्धादिहोमेन वायुजले शोधयित्वा सर्वान् सुखयन्ति, ते सर्वाणि सुखानि प्राप्नुवन्ति॥१३॥

पदार्थः-हे **(अग्ने)** विद्वन्! जो **(नराशंसः)** मनुष्यों की प्रशंसा करने **(सुकृत्)** उत्तम काम करने और **(विश्ववारः)** प्रशंसा को स्वीकार करने वाले **(प्रीणानः)** चाहना करते हुए **(सविता)** ऐश्वर्य को चाहने वाले **(देवः)** व्यवहार में चतुर आप **(मध्वा)** मधुर वचन से **(यज्ञम्)** सङ्गत व्यवहार को **(नक्षसे)** प्राप्त होते हो, उन आप को हम लोग प्रसन्न करें॥१३॥

भावार्थः-जो मनुष्य यज्ञ में सुगन्धादि पदार्थों के होम से वायु जल को शुद्ध कर सब को सुखी करते हैं, वे सब सुखों को प्राप्त होते हैं॥१३॥

अच्छेत्यस्याग्निर्ऋषिः। वह्निर्देवता। भुरिगुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

अथाऽग्निनोपकारो ग्राह्य इत्याह॥

अब अग्नि से उपकार लेना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अच्छायमेति शवसा घृतेनेडानो वह्निर्नमसा।

अग्निꣳ स्रुचोऽ अध्वरेषु प्रयत्सु॥१४॥

अच्छ। अयम्। एति। शवसा। घृतेन। ईडानः। वह्निः। नमसा। अग्निम्। स्रुचः। अध्वरेषु। प्रयत्स्विति प्रयत्ऽसु॥१४॥

पदार्थः-(**अच्छ**) (**अयम्**) (**एति**) गच्छति (**शवसा**) बलेन (**घृतेन**) जलेन सह (**ईडानः**) स्तुवन् (**वह्निः**) विद्याया वोढा (**नमसा**) पृथिव्याद्यन्नेन (**अग्निम्**) पावकम् (**स्रुचः**) होमसाधनानि (**अध्वरेषु**) अहिंसनीयेषु (**प्रयत्सु**) प्रयत्नसाध्येषु वर्त्तमानेषु॥१४॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! योऽयमीडानो वह्निः प्रयत्स्वध्वरेषु शवसा घृतेन नमसा सह वर्त्तमानमग्निं स्रुचश्चाच्छैति तं यूयं सत्कुरुत॥१४॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे मनुष्याः! योऽग्निरिन्धनैर्जलेन युक्तो यानेषु प्रयुक्तः सन् बलेन सद्यो गमयति तं विज्ञायोपकुरुत॥१४॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो (**अयम्**) यह (**ईडानः**) स्तुति करता हुआ **वह्निः**) विद्या का पहुंचाने वाला विद्वान् जन (**प्रयत्सु**) प्रयत्न से सिद्ध करने योग्य (**अध्वरेषु**) विघ्नों से पृथक् वर्तमान यज्ञों में (**शवसा**) बल (**घृतेन**) जल और (**नमसा**) पृथिवी आदि अन्न के साथ वर्तमान (**अग्निम्**) अग्नि तथा (**स्रुचः**) होम के साधन स्रुवा आदि को (**अच्छ, एति**) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है, उस का तुम लोग सत्कार करो॥१४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जो अग्नि इन्धनों और जल से युक्त यानों में प्रयुक्त किया हुआ बल से शीघ्र चलता है, उस को जानके उपकार में लाओ॥१४॥

स यक्षदित्यस्याग्निर्ऋषिः। वायुर्देवता। स्वराडुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

स यक्षदस्य महिमानमग्नेः सऽईं मन्द्रा सुप्रयसः।

वसुश्चेतिष्ठो वसुधातमश्च॥१५॥

सः। यक्षत्। अस्य। महिमानम्। अग्नेः। सः। ईम्। मन्द्रा। सुप्रयस इति सुऽप्रयसः। वसुः। चेतिष्ठः। वसुधातम इति वसुऽधातमः। च॥१५॥

पदार्थः-(**सः**) (**यक्षत्**) यजेत् सङ्गच्छेत (**अस्य**) (**महिमानम्**) महत्त्वम् (**अग्नेः**) पावकस्य (**सः**) (**ईम्**) जलम् (**मन्द्रा**) आनन्दप्रदानि हवींषि (**सुप्रयसः**) शोभनानि प्रयांसि प्रीतान्यन्नादीनि

यस्मात् तस्य **(वसुः)** वासयिता **(चेतिष्ठः)** अतिशयेन चेता संज्ञाता **(वसुधातमः)** योऽतिशयेन वसूनि दधाति सः **(च)** समुच्चये॥१५॥

अन्वयः-स मनुष्यः सुप्रयसोऽस्याग्नेर्महिमानं यक्षत्, स वसुश्चेतिष्ठो वसुधातमश्च सन्नीं मन्द्रा यक्षत्॥१५॥

भावार्थः-य इत्थमग्नेर्महत्त्वं विजानीयात्, सोऽतिधनी स्यात्॥१५॥

पदार्थः-**(सः)** वह पूर्वोक्त विद्वान् मनुष्य **(सुप्रयसः)** प्रीतिकारक सुन्दर अन्नादि के हेतु **(अस्य)** इस **(अग्नेः)** अग्नि के **(महिमानम्)** बड़प्पन को **(यक्षत्)** सम्यक् प्राप्त हो तथा **(सः)** वह **(वसुः)** निवास का हेतु **(चेतिष्ठः)** अतिशय कर जानने वाला **(च)** और **(वसुधातमः)** अत्यन्त धनों को धारण करने वाला हुआ **(ईम्)** जल तथा **(मन्द्रा)** आनन्ददायक होमने योग्य पदार्थों को प्राप्त होवे॥१५॥

भावार्थः-जो पुरुष इस प्रकार अग्नि के बड़प्पन को जाने, सो अतिधनी होवे॥१५॥

द्वारो देवीरित्यस्याऽग्निर्ऋषिः। देव्यो देवताः। निचृदुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

द्वारो॑ दे॒वीरन्व॑स्य॒ विश्वे॑ व्र॒ता द॑दन्ते॒ऽ अ॒ग्नेः।

उ॒रु॒व्यच॑सो॒ धाम्ना॒ पत्य॑मानाः॥ १६॥

द्वार॑ः। दे॒वीः। अनु॑। अ॒स्य॒। विश्वे॑। व्र॒ता। द॒द॒न्ते॒। अ॒ग्नेः। उ॒रु॒व्यच॑स॒ इत्यु॑रु॒ऽव्यच॑सः। धाम्ना॑। पत्य॑मानाः॥ १६॥

पदार्थः-**(द्वारः)** द्वाराणि **(देवीः)** देदीप्यमानानि **(अनु)** **(अस्य)** **(विश्वे)** सर्वे **(व्रता)** सत्यभाषणादीनि **(ददन्ते)** **(अग्नेः)** पावकस्य **(उरुव्यचसः)** बहुव्यापकस्य **(धाम्ना)** स्थानेन **(पत्यमानाः)** स्वामित्वं कुर्वाणाः॥१६॥

अन्वयः-ये विश्वे पत्यमाना उरुव्यचसोऽस्याग्नेर्धाम्ना देवीर्द्वारो व्रताऽनु ददन्ते, ते स्वैश्वर्या जायन्ते॥१६॥

भावार्थः-येऽग्निविद्याया द्वाराणि जानन्ति ते सत्याचाराः सन्तोऽनुमोदन्ते॥१६॥

पदार्थः-जो **(विश्वे)** सब **(पत्यमानाः)** मालिकपन करते हुए विद्वान् **(उरुव्यचसः)** बहुतों में व्यापक **(अस्य)** इस **(अग्नेः)** अग्नि के **(धाम्ना)** स्थान से **(देवी)** प्रकाशित **(द्वारः)** द्वारों तथा **(व्रता)** सत्यभाषणादि व्रतों का **(अनु, ददन्ते)** अनुकूल उपदेश देते हैं, वे सुन्दर ऐश्वर्य वाले होते हैं॥१६॥

भावार्थः-जो लोग अग्नि की विद्या के द्वारों को जानते हैं, वे सत्य आचरण करते हुए अति आनन्दित होते हैं॥१६॥

ते अस्येत्यस्याग्निर्ऋषिः। यज्ञो देवता। विराडुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

तेऽअ॒स्य॒ योष॑णे दि॒व्ये न योना॑ऽ उ॒षासा॒नक्ता॑।

इ॒मं य॒ज्ञम॑वतामध्व॒रं न॑ः॥१७॥

ते इति॒ ते। अ॒स्य॒। योष॑णे॒ इति॒ योष॑णे। दि॒व्ये इति॑ दि॒व्ये। न। योनौ॑। उ॒षासा॒नक्ता॑। उ॒षसा॒नक्तेत्यु॒षसा॒नक्ता॑। इ॒मम्। य॒ज्ञम्। अ॒व॒ताम्। अ॒ध्व॒रम्। न॒ः॥१७॥

पदार्थः-(**ते**) (**अस्य**) (**योषणे**) भार्य्ये वर्त्तमाने (**दिव्ये**) दिव्यस्वरूपे (**न**) इव (**योनौ**) गृहे (**उषासानक्ता**) रात्रिन्दिवौ (**इमम्**) (**यज्ञम्**) (**अवताम्**) रक्षेताम् (**अध्वरम्**) अहिंसनीयम् (**नः**) अस्माकम्॥१७॥

अन्वयः-हे मनुष्यास्ते उषासानक्ताऽस्य योनौ दिव्ये योषणे न नो यमिममध्वरं यज्ञमवतां तं यूयं विजानीत॥१७॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। यथा विदुषी पत्नी गृहकृत्यानि साध्नोति, तथा वह्निना जाते रात्र्यह्नी सर्वं व्यवहारं साध्नुतः॥१७॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! (**ते**) वे (**उषासानक्ता**) रात्रि और दिन (**अस्य**) इस पुरुष के (**योनौ**) घर में (**दिव्ये**) उत्तम रूपवाली (**योषणे**) दो स्त्रियों के (**न**) समान वर्त्तमान (**नः**) हमारे जिस (**इमम्**) इस (**अध्वरम्**) विनाश न करने योग्य (**यज्ञम्**) यज्ञ की (**अवताम्**) रक्षा करें, उस को तुम लोग जानो॥१७॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे विदुषी स्त्री घर के कार्यों को सिद्ध करती है, वैसे अग्नि से उत्पन्न हुए रात्रि दिन सब व्यवहार को सिद्ध करते हैं॥१७॥

दैव्येत्यस्याग्निर्ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिग्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

दैव्या॑ होताराऽ ऊ॒र्ध्वम॑ध्व॒रं नो॒ऽग्नेर्जि॒ह्वाम॒भि गृ॑णीतम्।

कृ॒णु॒तं न॒ः स्वि॑ष्टिम्॥१८॥

दैव्या॑। होता॑रा। ऊ॒र्ध्वम्। अ॒ध्व॒रम्। नः॒। अ॒ग्नेः। जि॒ह्वाम्। अ॒भि। गृ॒णी॒तम् कृ॒णु॒तम्। नः॒ स्वि॒ष्टि॒मिति॑ सुऽइ॑ष्टिम्॥ १८॥

पदार्थः-(**दैव्या**) देवेषु विद्वत्सु भवौ विद्वांसौ (**होतारा**) सुखस्य दातारौ (**ऊर्ध्वम्**) प्राप्तोन्नतिम् (**अध्वरम्**) अहिंसनीयं व्यवहारम् (**नः**) अस्माकम् (**अग्नेः**) पावकस्य (**जिह्वाम्**) ज्वालाम् (**अभि**) (**गृणीतम्**) प्रशंसेताम् (**कृणुतम्**) कुरुतम् (**नः**) (**स्विष्टिम्**) शोभना इष्टिर्यस्यास्ताम्॥ १८॥

अन्वयः-यो दैव्या होतारा न ऊर्ध्वमध्वरमभिगृणीतं तौ नः स्विष्टिमग्नेर्जिह्वां कृणुतम्॥ १८॥

भावार्थः-यदि जिज्ञास्वध्यापकावग्निविद्यां जानीयातां तर्हि विश्वस्योन्नतिं कुर्याताम्॥ १८॥

पदार्थः-जो (**दैव्या**) विद्वानो में प्रसिद्ध हुए दो विद्वान् (**होतारा**) सुख के देने वाले (**नः**) हमारे (**ऊर्ध्वम्**) उन्नति को प्राप्त (**अध्वरम्**) नहीं बिगाड़ने योग्य व्यवहार की (**अभि, गृणीतम्**) सब ओर से प्रशंसा करें वे दोनों (**नः**) हमारी (**स्विष्टिम्**) सुन्दर यज्ञ के निमित्त (**अग्नेः**) अग्नि की (**जिह्वाम्**) ज्वाला को (**कृणुतम्**) सिद्ध करें॥ १८॥

भावार्थः-जो जिज्ञासु और अध्यापक लोग अग्नि की विद्या को जानें तो विश्व की उन्नति करें॥ १८॥

तिस्रो देवीरित्यस्याऽग्निर्ऋषिः। इडादयो लिङ्गोक्ता देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनर्मनुष्यैः कीदृशी वाणी सेवनीया इत्याह॥

फिर मनुष्यों को कैसी वाणी का सेवन करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ति॒स्रो दे॒वीर्ब॒र्हिरे॒दꣳ सद॑न्त्विडा॒ सर॑स्वती॒ भार॑ती। म॒ही गृ॒णा॒ना॥ १९॥

ति॒स्रः। दे॒वीः। ब॒र्हिः। आ। इ॒दम्। स॒द॒न्तु॒। इडा॑। सर॑स्वती। भार॑ती। म॒ही। गृ॒णा॒ना॥ १९॥

पदार्थः-(**तिस्रः**) त्रित्वसंख्याकाः (**देवीः**) कमनीयाः (**बर्हिः**) अन्तरिक्षम्। (**आ**) समन्तात् (**इदम्**) (**सदन्तु**) प्राप्नुवन्तु (**इडा**) स्तोतुमर्हा (**सरस्वती**) प्रशस्तविज्ञानवती (**भारती**) सर्वशास्त्रधारिणी (**मही**) महती (**गृणाना**) स्तुवन्ती॥ १९॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यूयं या मही गृणानेडा सरस्वती भारती च तिस्रो देवीरिदं बर्हिरासदन्तु ताः सम्यग्विजानीत॥ १९॥

भावार्थः-ये मनुष्या व्यवहारकुशलां सर्वशास्त्रविद्यान्वितां सत्यादिव्यवहारधर्त्रीं वाणीं प्राप्नुयुस्ते स्तुत्याः सन्तो महान्तो भवेयुः॥ १९॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम लोग जो **(मही)** बड़ी **(गृणाना)** स्तुति करती हुई **(इडा)** स्तुति करने योग्य **(सरस्वती)** प्रशस्त विज्ञान वाली और **(भारती)** सब शास्त्रों को धारण करने हारी जो **(तिस्रः)** तीन **(देवीः)** चाहने योग्य वाणी **(इदम्)** इस **(बर्हिः)** अन्तरिक्ष को **(आ, सदन्तु)** अच्छे प्रकार प्राप्त हों, उन तीनों प्रकार की वाणियों को सम्यक् जानो॥१९॥

भावार्थः-जो मनुष्य व्यवहार में चतुर सब शास्त्र की विद्याओं से युक्त सत्यादि व्यवहारों को धारण करने हारी वाणी को प्राप्त हों, वे स्तुति के योग्य हुए महान् होवें॥१९॥

तन्न इत्यस्याग्निर्ऋषिः। त्वष्टा देवता। निचृदुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

ईश्वरात् किं प्रार्थनीयमित्याह॥

ईश्वर से क्या प्रार्थना करनी चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

तन्न॑स्तुरीप॒मद्भु॑तं पुरु॒क्षु त्वष्टा॑ सु॒वीर्य॑म्। रा॒यस्पोषं॒ विष्य॑तु नाभि॑म॒स्मे॥२०॥

तम्। नः॒। तु॒रीप॑म्। अद्भु॑तम्। पु॒रु॒क्षु। त्वष्टा॑। सु॒वी॒र्य॒मिति॑ सु॒ऽवीर्य॑म्। रा॒यः। पोष॑म्। वि। स्य॒तु॒। नाभि॑म्। अ॒स्मे इत्य॒स्मे॥२०॥

पदार्थः-**(तम्)** प्रसिद्धम् **(नः)** अस्मान् **(तुरीपम्)** यत्तुरः सद्य आप्नोति तम् **(अद्भुतम्)** आश्चर्यगुणकर्मस्वभावम् **(पुरुक्षु)** यत् पुरुषु बहुषु क्षियति वसति तत् **(त्वष्टा)** विद्यया प्रकाशित ईश्वरः **(सुवीर्यम्)** सुष्ठु बलम् **(रायः)** धनस्य **(पोषम्)** पुष्टिम् **(वि, स्यतु)** विमुञ्चतु **(नाभिम्)** मध्यप्रदेशम् **(अस्मे)** अस्माकम्॥२०॥

अन्वयः-त्वष्टाऽस्मे नाभिं प्रति तुरीपमद्भुतं पुरुक्षु सुवीर्यं तं रायस्पोषं ददातु नो दुःखाद् विष्यतु च॥२०॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यच्छीघ्रकार्याश्चर्यभूतं बहुव्यापकं धनं बलं वास्ति तद्यूयमीश्वरप्रार्थनया प्राप्यानन्दिता भवत॥२०॥

पदार्थः-**(त्वष्टा)** विद्या से प्रकाशित ईश्वर **(अस्मे)** हमारे **(नाभिम्)** मध्यप्रदेश के प्रति **(तुरीपम्)** शीघ्रता को प्राप्त होने वाले **(अद्भुतम्)** आश्चर्यरूप गुण, कर्म और स्वभावों से युक्त **(पुरुक्षु)** बहुत पदार्थों में बसने वाले **(सुवीर्यम्)** सुन्दर बलयुक्त **(तम्)** उस प्रसिद्ध **(रायः)** धन की **(पोषम्)** पुष्टि को देवे और **(नः)** हम लोगों को दुःख से **(वि, स्यतु)** छुड़ावे॥२०॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जो शीघ्रकारी आश्चर्यरूप बहुतों में व्यापक धन वा बल है, उस को तुम लोग ईश्वर की प्रार्थना से प्राप्त होके आनन्दित होओ॥२०॥

वनस्पत इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। विद्वांसो देवताः। विराडुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

जिज्ञासुः कीदृशो भवेदित्याह॥

जिज्ञासु कैसा हो, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

वन॑स्पतेऽव॑ सृजा ररा॑णस्त्मना॑ देवेषु॑।

अग्निर्हव्यꣳ शमि॑ता सू॑दयाति॥ २१॥

वन॑स्पते। अव॑। सृज। ररा॑णः। त्मना॑। देवेषु॑। अग्निः। हव्यम्। शमिता। सूदयाति॥ २१॥

पदार्थः-(वनस्पते) वनस्य सम्भजनीयस्य शास्त्रस्य पालक **(अव) (सृजा)।** अत्र **द्व्यचोऽतस्तिङः** [अ०६.३.१३५] इति दीर्घः। **(रराणः)** रममाणः **(त्मना)** आत्मना **(देवेषु)** दिव्यगुणेष्विव विद्वत्सु **(अग्निः)** पावकः **(हव्यम्)** आदातुमर्हम् **(शमिता)** यज्ञसम्बन्धी **(सूदयाति)** सूक्ष्मीकृत्य वायौ प्रसारयति॥ २१॥

अन्वयः-हे वनस्पते! यथा शमिताऽग्निर्हव्यं सूदयाति, तथा त्मना देवेषु रराणः सन् हव्यमवसृज॥ २१॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा दिव्येष्वन्तरिक्षादिषु वह्नी राजते, तथा विद्वत्सु स्थितो जिज्ञासुः सुप्रकाशितात्मा भवति॥ २१॥

पदार्थः-हे **(वनस्पते)** सेवन योग्य शास्त्र के रक्षक जिज्ञासु पुरुष! जैसे **(शमिता)** यज्ञसम्बन्धी **(अग्निः)** अग्नि **(हव्यम्)** ग्रहण करने योग्य होम के द्रव्यों को **(सूदयाति)** सूक्ष्म कर वायु में पसारता है, वैसे **(त्मना)** अपने आत्मा से **(देवेषु)** दिव्य गुणों के समान विद्वानों में **(रराणः)** रमण करते हुए ग्रहण करने योग्य पदार्थों को **(अव, सृजा)** उत्तम प्रकार से बनाओ॥ २१॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे शुद्ध आकाशादि में अग्नि शोभायमान होता है, वैसे विद्वानों में स्थित जिज्ञासु पुरुष सुन्दर प्रकाशित स्वरूप वाला होता है॥ २१॥

अग्ने स्वाहेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। इन्द्रो देवता। निचृदुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

पुनर्मनुष्यैः किं कार्यमित्याह॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अग्ने स्वाहा॑ कृणुहि जातवेदऽ इन्द्रा॑य हव्यम्।

विश्वे॑ देवा हविरिदं जु॑षन्ताम्॥ २२॥

अग्ने॑। स्वाहा॑। कृणुहि। जातवेद इति॑ जातऽवेदः। इन्द्रा॑य। हव्यम्। विश्वे॑। देवाः। हविः। इदम्। जुषन्ताम्॥ २२॥

पदार्थः-(अग्ने) विद्वन् **(स्वाहा)** सत्यां वाचम् **(कृणुहि)** कुरु **(जातवेदः)** प्रकटविद्य **(इन्द्राय)** परमैश्वर्याय **(हव्यम्)** आदातुमर्हम् **(विश्वे)** सर्वे **(देवाः)** विद्वांसः **(हविः)** ग्राह्यं वस्तु **(इदम्) (जुषन्ताम्)** सेवन्ताम्॥ २२॥

अन्वयः-हे जातवेदोऽग्ने! त्वमिन्द्राय स्वाहा हव्यं कृणुहि, विश्वे देवा इदं हविर्जुषन्ताम्॥२२॥

भावार्थः-यदि मनुष्या ऐश्वर्यवर्द्धनाय प्रयतेरंस्तर्हि सत्यं परमात्मानं विदुषश्च सेवेरन्॥२२॥

पदार्थः-हे **(जातवेदः)** विद्या में प्रसिद्ध **(अग्ने)** विद्वन् पुरुष! आप **(इन्द्राय)** उक्त ऐश्वर्य के लिये **(स्वाहा)** सत्य वाणी और **(हव्यम्)** ग्रहण करने योग्य पदार्थ को **(कृणुहि)** प्रसिद्ध कीजिये **(विश्वे)** सब **(देवाः)** विद्वान् लोग **(इदम्)** इस **(हविः)** ग्रहण करने योग्य उत्तम वस्तु को **(जुषन्ताम्)** सेवन करें॥२२॥

भावार्थः-जो मनुष्य ऐश्वर्य बढ़ाने के लिये प्रयत्न करें तो सत्य परमात्मा और विद्वानों का सेवन किया करें॥२२॥

पीवो अन्नेत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। वायुर्देवता। निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

कीदृशं सन्तानं सुखयतीत्याह॥

कैसा सन्तान सुखी करता है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

पीवो॑ऽअन्ना रयि॒वृध॑ः सु॒मेधाः श्वे॒तः सि॑षक्ति नि॒युता॑मभि॒श्रीः।

ते वा॒यवे॒ सम॑नसो॒ वित॑स्थु॒र्विश्वेन्नर॑ः स्वप॒त्यानि॑ चक्रुः॥२३॥

पीवो॑अ॒न्नेति॒ पीव॑ःऽअन्ना। र॒यि॒वृध॒ इति॑ रयिऽवृध॑ः। सु॒मे॒धा इति॑ सुऽमे॒धाः। श्वे॒तः। सि॒ष॒क्ति॒। सि॒स॒क्तीति॑ सिसक्ति। नि॒युता॒मिति॑ नि॒ऽयुता॑म्। अ॒भि॒श्रीरित्य॑भि॒ऽश्रीः। ते। वा॒यवे॑। सम॑नस॒ इति सऽम॑नसः। वि। त॒स्थुः। विश्वा॑। इत्। नर॑ः। स्व॒प॒त्यानीति॑ सुऽअप॒त्यानि॑। च॒क्रुः॥२३॥

पदार्थः-**(पीवोअन्ना)** पीवांसि पुष्टिकराण्यन्नानि येषु **(रयिवृधः)** ये रयि वर्धयन्ति ते **(सुमेधाः)** शोभना मेधा प्रज्ञा येषान्ते **(श्वेतः)** गन्ता वर्द्धको वा **(सिषक्ति)** सिञ्चति **(नियुताम्)** निश्चितगतीनाम् **(अभिश्रीः)** अभितः शोभा यस्य सः **(ते)** **(वायवे)** वायुविद्यायै **(समनसः)** समानविज्ञानाः **(वि, तस्थुः)** तिष्ठेयुः **(विश्वा)** अखिलानि **(इत्)** एव **(नरः)** नायकाः **(स्वपत्यानि)** शोभनानि च तान्यपत्यानि **(चक्रुः)** कुर्युः॥२३॥

अन्वयः-ये समनसो रयिवृधः सुमेधा नरः पीवोअन्ना विश्वा स्वपत्यानि चक्रुः। त इद्वायवे वितस्थुर्यदा नियुतामभिश्रीः श्वेतो वायुः सर्वान् सिषक्ति तदा स श्रीमान् जायते॥२३।

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा वायुः सर्वेषां जीवनमूलमस्ति तथोत्तमान्यपत्यानि सर्वेषां सुखनिमित्तानि जायन्ते॥२३॥

पदार्थः-जो **(समनसः)** तुल्य ज्ञान वाले **(रयिवृधः)** धन को बढ़ानेवाले **(सुमेधाः)** सुन्दर बुद्धिमान् **(नरः)** नायक पुरुष **(पीवोअन्ना)** पुष्टिकारक अन्न वाले **(विश्वा)** सब **(स्वपत्यानि)** सुन्दर

सन्तानों को (**चक्रुः**) करें, (**ते**) वे (**इत्**) ही (**वायवे**) वायु की विद्या के लिए (**वि, तस्थुः**) विशेष कर स्थित हों, जब (**नियुताम्**) निश्चित चलने हारे जनों का (**अभिश्रीः**) सब ओर से शोभायुक्त (**श्वेतः**) गमनशील वा उन्नति करनेहारा वायु सब को (**सिषक्ति**) सींचता है, तब वह शोभायुक्त होता है॥२३॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे वायु सब के जीवन का मूल है, वैसे उत्तम सन्तान सब के सुख के निमित्त होते हैं॥२३॥

राय इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। वायुर्देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनर्मनुष्यैः किं कार्यमित्याह॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

रा॒ये नु यं ज॒ज्ञतू॒ रोद॑सी॒मे रा॒ये दे॒वी धि॒षणा॑ धाति दे॒वम्।

अध॑ वा॒युं नि॒युत॑: सश्चत॒ स्वाऽ उ॒त श्वे॒तं वसु॑धितिं निरे॒के॥२४॥

रा॒ये। नु। यम्। ज॒ज्ञतु॑ः। रोद॑सी॒ इति॒ रोद॑सी। इ॒मे इती॒मे। रा॒ये। दे॒वी। धि॒षणा॑। धा॒ति॒। दे॒वम्। अध॑। वा॒युम्। नि॒यु॒त इति॑ नि॒ऽयुत॑ः। स॒श्च॒त॒। स्वाः। उ॒त। श्वे॒तम्। वसु॑धिति॒मिति॒ वसु॑ऽधितिम्। नि॒रे॒के॥२४॥

पदार्थः-(**राये**) धनाय (**नु**) सद्यः (**यम्**) (**जज्ञतुः**) जनयतः (**रोदसी**) द्यावापृथिव्यौ (**इमे**) प्रत्यक्षे। अत्र **वाच्छन्दसि सर्वे विधयो भवन्तीति** प्रकृतिभावाऽभावः (**राये**) धनाय (**देवी**) दिव्यगुणा (**धिषणा**) प्रज्ञेव वर्त्तमाना (**धाति**) दधाति (**देवम्**) दिव्यं पतिम् (**अध**) अथ (**वायुम्**) (**नियुतः**) निश्चयेन मिश्रणाऽमिश्रणकर्त्तारः (**सश्चत**) प्राप्नुवन्ति। अत्र व्यत्ययः (**स्वाः**) सम्बन्धिनः (**उत**) (**श्वेतम्**) वृद्धम् (**वसुधितिम्**) पृथिव्यादिवसूनां धितिर्यस्मात् तम् (**निरेके**) निर्गतशङ्के स्थाने॥२४॥

अन्वयः-हे मनुष्या! इमे रोदसी राये यं जज्ञतुर्देवी धिषणा यं देवं राये नु धाति। अध निरेके स्वा नियुतः श्वेतमुत वसुधितिं वायुं सश्चत, तं यूयं विजानीत॥२४॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे मनुष्या! भवन्तो बलादिगुणयुक्तं सर्वस्य धर्त्तारं वायुं विज्ञाय धनप्रज्ञे वर्धयन्तु, यद्येकान्ते स्थित्वाऽस्य प्राणस्य द्वारा स्वात्मानं परमात्मानं च ज्ञातुमिच्छेयुस्तर्ह्यनयोः साक्षात्कारो भवति॥२४॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! (**इमे**) ये (**रोदसी**) आकाश, भूमि (**राये**) धन के अर्थ (**यम्**) जिसको (**जज्ञतुः**) उत्पन्न करें (**देवी**) उत्तम गुण वाली (**धिषणा**) बुद्धि के समान वर्त्तमान स्त्री जिस (**देवम्**) उत्तम पति को (**राये**) धन के लिये (**नु**) शीघ्र (**धाति**) धारण करती है। (**अध**) इस के अनन्तर (**निरेके**) निश्शङ्क स्थान में (**स्वाः**) अपने सम्बन्धी (**नियुतः**) निश्चय कर मिलाने वा पृथक् करने

वाले जन **(श्वेतम्)** वृद्ध **(उत)** और **(वसुधितिम्)** पृथिव्यादि वसुओं के धारण के हेतु **(वायुम्)** वायु को **(सश्चत)** प्राप्त होते हैं, उस को तुम लोग जानो॥२४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! आप लोग बल आदि गुणों से युक्त सब के धारण करने वाले वायु को जान के धन और बुद्धि को बढ़ावें। जो एकान्त में स्थित हो के इस प्राण के द्वारा अपने स्वरूप और परमात्मा को जानना चाहें तो इन दोनों आत्माओं का साक्षात्कार होता है॥२४॥

आप इत्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आपो॑ ह॒ यद् बृ॑ह॒तीर्विश्व॒माय॒न् गर्भ॒ं दधा॑ना ज॒नय॑न्तीर॒ग्निम्।

ततो॑ दे॒वाना॒ꣳ सम॑वर्त्त॒तासु॒रेक॒ः कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम॥२५॥

आप॑ः। ह॒। यत्। बृ॒ह॒तीः। विश्व॑म्। आय॑न्। गर्भ॑म्। दधा॑नाः। ज॒नय॑न्तीः। अ॒ग्निम्। तत॑ः। दे॒वाना॑म्। सम्। अ॒व॒र्त्त॒त। असु॑ः। एक॑ः। कस्मै॑। दे॒वाय॑। ह॒विषा॑। वि॒धे॒म॥२५॥

पदार्थः-**(आपः)** व्यापिकास्तन्मात्राः **(ह)** खलु **(यत्)** यम् **(बृहतीः)** बृहत्यः **(विश्वम्)** कृतप्रवेशम् **(आयन्)** गच्छन्ति **(गर्भम्)** मूलं प्रधानम् **(दधानाः)** धरन्त्यः सत्यः **(जनयन्तीः)** प्रकटयन्त्यः **(अग्निम्)** सूर्याद्याख्यम् **(ततः)** तस्मात् **(देवानाम्)** दिव्यानां पृथिव्यादीनाम् **(सम्)** सम्यक् **(अवर्तत)** वर्तये **(असुः)** प्राणः **(एकः)** असहायः **(कस्मै)** सुखनिमित्ताय **(देवाय)** दिव्यगुणाय **(हविषा)** धारणेन **(विधेम)** परिचरेम॥२५॥

अन्वयः-बृहतीर्जनयन्तीर्यद्विश्वं गर्भं दधानाः सत्य आप आयंस्ततोऽग्निं देवानामेकोऽसुः समवर्त्तत, तस्मै ह कस्मै देवाय वयं हविषा विधेम॥२५॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यानि स्थूलानि पञ्चतत्त्वानि दृश्यन्ते, तानि सूक्ष्मात् प्रकृतिकार्यात् पञ्चतन्मात्राख्यादुत्पन्नानि विजानीत। येषां मध्ये य एकः सूत्रात्मा वायुरस्ति स सर्वेषां धर्त्तेति बुध्यध्वम्। यदि तद्द्वारा योगाभ्यासेन परमात्मानं ज्ञातुमिच्छेत तर्हि तं साक्षाद् विजानीत॥२५॥

पदार्थः-**(बृहतीः)** महत् परिमाण वाली **(जनयन्तीः)** पृथिव्यादि को प्रकट करने हारी **(यत्)** जिस **(विश्वम्)** सब में प्रवेश किये हुए **(गर्भम्)** सब के मूल प्रधान को **(दधानाः)** धारण करती हुई **(आपः)** व्यापकजलों की सूक्ष्ममात्रा **(आयन्)** प्राप्त हों, **(ततः)** उससे **(अग्निम्)** सूर्यादि रूप अग्नि को **(देवानाम्)** उत्तम पृथिव्यादि पदार्थों का सम्बन्धी **(एकः)** एक असहाय **(असुः)** प्राण

(सम्, अवर्त्तत) सम्यक् प्रवृत्त करे, उस **(ह)** ही **(कस्मै)** सुख के निमित्त **(देवाय)** उत्तम गुण युक्त ईश्वर के लिये हम लोग **(हविषा)** धारण करने से **(विधेम)** सेवा करने वाले हों॥ २५॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जो स्थूल पञ्चतत्त्व दीख पड़ते हैं, उनको सूक्ष्म प्रकृति के कार्य पञ्चतन्मात्र नामक से उत्पन्न हुए जानो, जिनके बीच जो एक सूत्रात्मा वायु है, वह सब धारण करता है यह जानो, जो उस वायु के द्वारा योगाभ्यास से परमात्मा को जानना चाहो तो उसको साक्षात् जान सको॥ २५॥

यश्चिदित्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

के जना मोदन्त इत्याह॥

कौन मनुष्य आनन्दित होते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यश्चिदापो॑ महि॒ना प॒र्यप॑श्य॒द् दक्षं॒ दधा॑ना ज॒नय॑न्तीर्य॒ज्ञम्।

यो दे॒वेष्वधि॑ दे॒वऽ एक॒ऽ आसी॑त् कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम॥ २६॥

यः। चि॒त्। आप॑ः। म॒हि॒ना। प॒र्यप॑श्य॒दिति॑ परि॒ऽअप॑श्यत्। दक्ष॑म्। दधा॑नाः। ज॒नय॑न्तीः। य॒ज्ञम्। यः। दे॒वेषु॑। अधि॑। दे॒वः। एक॑ः। आसी॑त्। कस्मै॑। दे॒वाय॑। ह॒विषा॑। वि॒धे॒म॥ २६॥

पदार्थः-**(यः)** परमेश्वरः **(चित्)** **(आपः)** व्याप्तिशीलाः सूक्ष्मास्तन्मात्राः **(महिना)** स्वस्य महिम्ना व्यापकत्वेन **(पर्यपश्यत्)** सर्वतः पश्यति **(दक्षम्)** बलम् **(दधानाः)** धरन्त्यः **(जनयन्तीः)** उत्पादयन्त्यः **(यज्ञम्)** सङ्गतं संसारम् **(यः)** **(देवेषु)** प्रकृत्यादिजीवेषु **(अधि)** उपरिभावे **(देवः)** दिव्यगुणकर्मस्वभावः **(एकः)** अद्वितीयः **(आसीत्)** अस्ति **(कस्मै)** सुखस्वरूपाय **(देवाय)** सर्वसुखप्रदाय **(हविषा)** तदाज्ञायोगाभ्यासधारणेन **(विधेम)** सेवेमहि॥ २६॥

अन्वयः-यो महिना दक्षं दधाना यज्ञं जनयन्तीरापः सन्ति ताः पर्यपश्यद् यो देवेष्वेकोऽधि देव आसीत् तस्मै चित् कस्मै देवाय वयं हविषा विधेम॥ २६॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! ये भवन्तः सर्वस्य द्रष्टारं धर्त्तारमद्वितीयमधिष्ठातारं परमात्मानं ज्ञातुं योगं नित्यमभ्यस्यन्ति त आनन्दिता भवन्ति॥ २६॥

पदार्थः-**(यः)** जो परमेश्वर **(महिना)** अपने व्यापकपन के महिमा से **(दक्षम्)** बल को **(दधानाः)** धारण करती **(यज्ञम्)** सङ्गत संसार को **(जनयन्तीः)** उत्पन्न करती हुई **(आपः)** व्याप्तिशील सूक्ष्म जल की मात्रा हैं, उनको **(पर्यपश्यत्)** सब ओर से देखता है, **(यः)** जो ईश्वर **(देवेषु)** उत्तम गुण वाले प्रकृति आदि और जीवों में **(एकः)** एक **(अधि, देवः)** उत्तम गुण, कर्म, स्वभाव वाला **(आसीत्)** है, उस **(चित्)** ही **(कस्मै)** सुखस्वरूप **(देवाय)** सब सुखों के दाता ईश्वर की हम लोग **(हविषा)** आज्ञापालन और योगाभ्यास के धारण से **(विधेम)** सेवा करें॥ २६॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जो आप लोग सब के द्रष्टा, धर्त्ता, कर्त्ता, अद्वितीय अधिष्ठाता परमात्मा के जानने को नित्य योगाभ्यास करते हैं, वे आनन्दित होते हैं॥२६॥

प्रजाभिरित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। वायुर्देवता। स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

विदुषा कथं भवितव्यमित्याह॥

विद्वान् को कैसा होना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प्र याभि॒र्यासि॑ दा॒श्वाᳬंस॒मच्छा॑ नि॒युद्भि॑र्वायवि॒ष्टये॑ दुरो॒णे।
नि नो॑ र॒यिᳬ सु॒भोज॑सं युवस्व॒ नि वी॒रं गव्य॒मश्व्यं॑ च॒ राधः॑॥२७॥

प्र। याभिः॑। यासि॑। दा॒श्वाᳬंस॑म्। अच्छ॑। नि॒युद्भि॒रिति॑ नि॒युत्ऽभिः॑। वा॒यो॒ इति॑ वायो। इ॒ष्टये॑। दु॒रो॒णे। नि। नः॒। र॒यिम्। सु॒भोज॑स॒मिति॑ सु॒ऽभोज॑सम्। यु॒व॒स्व॒। नि। वी॒रम्। गव्य॑म्। अश्व्य॑म्। च॒। राधः॑॥२७॥

पदार्थः-(**प्र**) (**याभिः**) कमनीयाभिः (**यासि**) प्राप्नोषि (**दाश्वांसम्**) सुखस्य दातारम् (**अच्छ**) अत्र **निपातस्य च** [अ०६.३.१३६] इति दीर्घः। (**नियुद्भिः**) नियतैर्गुणैः (**वायो**) वायुरिव वर्त्तमान (**इष्टये**) अभीष्टसुखाय (**दुरोणे**) गृहे (**नि**) नितराम् (**नः**) अस्माकम् (**रयिम्**) धनम् (**सुभोजसम्**) सुष्ठु भोजनानि यस्मात् तम् (**युवस्व**) मिश्रयस्व (**नि**) (**वीरम्**) प्राप्तविज्ञानादिगुणम् (**गव्यम्**) गोभ्यो हितम् (**अश्व्यम्**) अश्वेभ्यो हितम् (**च**) (**राधः**) धनम्॥२७॥

अन्वयः-हे विद्वन्! वायो वायुरिव त्वं प्रयाभिर्नियुद्भिरिष्टयेऽच्छ यासि, दुरोणे नः सुभोजसं दाश्वांसं रयिं नियुवस्व, वीरं गव्यमश्व्यं च राधो नि युवस्व।२७॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा वायुः सर्वाणि जीवनादीनीष्टानि कर्माणि साध्नोति तथा विद्वानस्मिन् संसारे वर्त्तेत॥२७॥

पदार्थः-हे (**वायो**) विद्वन्! वायु के समान वर्त्तमान आप (**प्र, याभिः**) अच्छे प्रकार चाहने योग्य (**नियुद्भिः**) नियत गुणों से (**इष्टये**) अभीष्ट सुख के अर्थ (**अच्छ, यासि**) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हो। (**दुरोणे**) घर में (**नः**) हमारे (**सुभोजसम्**) सुन्दर भोगने के हेतु (**दाश्वांसम्**) सुख के दाता (**रयिम्**) धन को (**नि, युवस्व**) निरन्तर मिश्रित कीजिये। (**वीरम्**) विज्ञानादि गुणों को प्राप्त (**गव्यम्**) गौ के हितकारी (**च**) तथा (**अश्व्यम्**) घोड़े के लिये हितैषी (**राधः**) धन को (**नि**) निरन्तर प्राप्त कीजिये॥२७॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे वायु सब जीवन आदि इष्ट कर्मों को सिद्ध करता है, वैसे विद्वान् पुरुष इस संसार में वर्त्ते॥२७॥

आ न इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। वायुर्देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरꣳ सहस्रिणीभिरुप याहि यज्ञम्।

वायोऽ अस्मिन्त्सवने मादयस्व यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥२८॥

आ। नः। नियुद्भिरिति नियुत्ऽभिः। शतिनीभिः। अध्वरम्। सहस्रिणीभिः। उप। याहि। यज्ञम्। वायो इति वायो। अस्मिन्। सवने। मादयस्व। यूयम्। पात। स्वस्तिभिरिति स्वस्तिऽभिः। सदा। नः॥२८॥

पदार्थः-(**आ**) (**नः**) अस्माकम् (**नियुद्भिः**) निश्चितैर्मिश्रणामिश्रणैर्गमनागमनैः (**शतिनीभिः**) शतं बहूनि कर्माणि विद्यन्ते यासु ताभिः (**अध्वरम्**) अहिंसनीयम् (**सहस्रिणीभिः**) सहस्राण्यसंख्या वेगा विद्यन्ते यासु गतिषु ताभिः (**उप**) (**याहि**) प्राप्नुहि (**यज्ञम्**) सङ्गन्तव्यं व्यवहारम् (**वायो**) वायुरिव बलवन् विद्वन्! (**अस्मिन्**) (**सवने**) उत्पत्त्यधिकरणे जगति (**मादयस्व**) आनन्दयस्व (**यूयम्**) (**पात**) रक्षत (**स्वस्तिभिः**) सुखैः सह (**सदा**) सर्वस्मिन् काले (**नः**) अस्मान्॥२८॥

अन्वयः-हे वायो! यथा वायुर्नियुद्भिश्शतिनीभिः सहस्रिणीभिर्गतिभिरस्मिन् सवने नोऽध्वरं यज्ञमुपगच्छति तथा त्वमेतमायाहि मादयस्व। हे विद्वांसो! यूयमेतद्विद्यया स्वस्तिभिर्नः सदा पात॥२८॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। विद्वांसो यथा वायवो विविधाभिर्गतिभिः सर्वान् पुष्णन्ति तथैव सुशिक्षया सर्वान् पोषयन्तु॥२८॥

पदार्थः-हे (**वायो**) वायु के तुल्य बलवान् विद्वन्! जैसे वायु (**नियुद्भिः**) निश्चित मिली वा पृथक् जाने-आने रूप (**शतिनीभिः**) बहुत कर्मों वाली (**सहस्रिणीभिः**) बहुत वेगों वाली गतियों से (**अस्मिन्**) इस (**सवने**) उत्पत्ति के आधार जगत् में (**नः**) हमारे (**अध्वरम्**) न बिगाड़ने योग्य (**यज्ञम्**) सङ्गति के योग्य व्यवहार को (**उप**) निकट प्राप्त होता है, वैसे आप (**आयाहि**) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये (**मादयस्व**) और आनन्दित कीजिये। हे विद्वानो! (**यूयम्**) आप लोग इस विद्या से (**स्वस्तिभिः**) सुखों के साथ (**नः**) हम लोगों की (**सदा**) सब काल में (**पात**) रक्षा कीजिये॥२८॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। विद्वान् लोग, जैसे वायु विविध प्रकार की चालों से सब पदार्थों को पुष्ट करते हैं, वैसे ही अच्छी शिक्षा से सब को पुष्ट करें॥२८॥

नियुत्वानित्यस्य गृत्समद ऋषिः। वायुर्देवता। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अथेश्वरः कीदृश इत्याह॥

अब ईश्वर कैसा है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

नियुत्वान् वायवा गह्ययꣳ शुक्रोऽ अयामि ते।

गन्तासि सुन्वतो गृहम्॥२९॥

नियुत्वान्। वायो इति वायो। आ। गहि। अयम्। शुक्रः। अयामि। ते। गन्ता। असि। सुन्वतः। गृहम्॥२९॥

पदार्थः-(**नियुत्वान्**) नियन्ता (**वायो**) पवन इव (**आ**) (**गहि**) समन्तात् प्राप्नुहि (**अयम्**) (**शुक्रः**) पवित्रकर्त्ता (**अयामि**) प्राप्नोमि (**ते**) तव (**गन्ता**) (**असि**) (**सुन्वतः**) अभिषवं कुर्वतः (**गृहम्**)॥२९॥

अन्वयः-हे वायो! नियुत्वानीश्वरस्त्वं यथाऽयं शुक्रो गन्ता वायुः सुन्वतो गृहं गच्छति, तथा मामागहि। यतस्त्वमीश्वरोऽसि तस्मात् ते स्वरूपमहमयामि॥२९॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा वायुः सर्वशोधकः सर्वत्र गन्ता सर्वप्रियोऽस्ति, तथेश्वरोऽपि वर्त्तते॥२९॥

पदार्थः-हे (**वायो**) वायु के तुल्य शीघ्रगन्ता (**नियुत्वान्**) नियमकर्त्ता ईश्वर आप, जैसे (**अयम्**) यह (**शुक्रः**) पवित्रकर्ता (**गन्ता**) गमनशील वायु (**सुन्वतः**) रस खींचने वाले के (**गृहम्**) घर को प्राप्त होता है, वैसे मुझ को (**आ, गहि**) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये, जिससे आप ईश्वर (**असि**) हैं, इससे (**ते**) आप के स्वरूप को मैं (**अयामि**) प्राप्त होता हूँ॥२९॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे वायु सब को शोधने और सर्वत्र पहुंचने वाला तथा सब को प्राण से भी प्यारा है, वैसे ईश्वर भी है॥२९॥

वायो शुक्र इत्यस्य पुरुमीढ ऋषिः। वायुर्देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनर्मनुष्येण किं कार्य्यमित्याह॥

फिर मनुष्य को क्या करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

वायो शुक्रोऽ अयामि ते मध्वोऽअग्रं दिविष्टिषु।

आ याहि सोमपीतये स्पार्हो देव नियुत्वता॥३०॥

वायोऽइति वायो। शुक्रः। अयामि। ते। मध्वः। अग्रम्। दिविष्टिषु। आ। याहि। सोमऽपीतय इति सोमपीतये। स्पार्हः। देव। नियुत्वता॥३०॥

पदार्थः-(**वायो**) वर्त्तमान वायुरिव (**शुक्रः**) शुद्धिकरः (**अयामि**) प्राप्नोमि (**ते**) तव (**मध्वः**) मधुरस्य (**अग्रम्**) उत्तमं भागम् (**दिविष्टिषु**) दिव्यासु सङ्गतिषु (**आ, याहि**) (**सोमपीतये**) सदोषधिरसपानाय (**स्पार्हः**) यः स्पृहयति तस्याऽयम् (**देव**) दिव्यगुणसम्पन्न (**नियुत्वता**) वायुना सह॥३०॥

अन्वयः-हे वायो! यो वायुरिव शुक्रस्त्वमसि ते मध्वोग्रं दिविष्टिष्वहमयामि। हे देव! स्पार्हस्त्वं नियुत्वता सह सोमपीतय आयाहि॥३०॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे मनुष्याः! यथा वायुः सर्वान् रसगन्धादीन् पीत्वा सर्वान् पोषयति तथा त्वं सर्वान् पुषाण॥३०॥

पदार्थः-हे **(वायो)** जो वायु के समान वर्त्तमान विद्वन्! **(शुक्रः)** शुद्धिकारक आप हैं, **(ते)** आप के **(मध्वः)** मधुर वचन के **(अग्रम्)** उत्तम भाग को **(दिविष्टिषु)** उत्तम सङ्गतियों में मैं **(अयामि)** प्राप्त होता हूँ। हे **(देव)** उत्तम गुणयुक्त विद्वान् पुरुष! **(स्पार्हः)** उत्तम गुणों की अभिलाषा से युक्त के पुत्र आप **(नियुत्वता)** वायु के साथ **(सोमपीतये)** उत्तम ओषधियों का रस पीने के लिये **(आ, याहि)** अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये॥३०॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जैसे वायु सब रस और गन्ध आदि को पीके सब को पुष्ट करता है, वैसे तू भी सब को पुष्ट किया कर॥३०॥

वायुरित्यस्याजमीढ ऋषिः। वायुर्देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः।

अथ विद्वद्भिः किं कार्यमित्याह॥

अब विद्वानों को क्या करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

वायुरग्रेगा यज्ञप्रीः साकं गन्मनसा यज्ञम्।
शिवो नियुद्भिः शिवाभिः॥३१॥

वायुः। अग्रेगाऽइत्यग्रेऽगाः। यज्ञप्रीरिति यज्ञऽप्रीः। साकम्। गन्। मनसा। यज्ञम्। शिवः। नियुद्भिरिति नियुत्ऽभिः। शिवाभिः॥३१॥

पदार्थः-**(वायुः)** पवनः **(अग्रेगाः)** योऽग्रे गच्छति सः **(यज्ञप्रीः)** यो यज्ञं प्राति पूरयति सः **(साकम्)** सह **(गन्)** गच्छति **(मनसा)** **(यज्ञम्)** **(शिवः)** मङ्गलमयः **(नियुद्भिः)** निश्चिताभिः क्रियाभिः **(शिवाभिः)** मङ्गलकारिणीभिः॥३१॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यथा वायुर्नियुद्भिः शिवाभिर्यज्ञं गन् तथा शिवोऽग्रेगा यज्ञप्रीः संस्त्वं मनसा साकं यज्ञमायाहि॥३१॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। अत्रायाहीति पदं पूर्वमन्त्रादनुवर्त्तते। यथा वायुरनेकैः पदार्थैस्सह गच्छत्यागच्छति तथा विद्वांसो धर्म्याणि कर्माणि विज्ञानेन प्राप्नुवन्तु॥३१॥

पदार्थः-हे विद्वन्! जैसे **(वायुः)** पवन **(नियुद्भिः)** निश्चित **(शिवाभिः)** मङ्गलकारक क्रियाओं से **(यज्ञम्)** यज्ञ को **(गन्)** प्राप्त होता है, वैसे **(शिवः)** मङ्गलस्वरूप **(अग्रेगाः)** अग्रगामी

(यज्ञप्रीः) यज्ञ को पूर्ण करने हारे हुए आप **(मनसा)** मन की वृत्ति के **(साकम्)** साथ यज्ञ को प्राप्त हूजिये॥३१॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। इस मन्त्र में **(आ, याहि)** इस पद की अनुवृत्ति पूर्व मन्त्र से आती है। जैसे वायु अनेक पदार्थों के साथ जाता-आता है, वैसे विद्वान् लोग धर्मयुक्त कर्मों को विज्ञान से प्राप्त होवें॥३१॥

वाय इत्यस्य गृत्समद ऋषिः। वायुर्देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

वायो ये ते सहस्रिणो रथासस्तेभिरा गहि।

नियुत्वान्त्सोमपीतये॥३२॥

वायो इति वायो। ये। ते। सहस्रिणः। रथासः। तेभिः। आ। गहि। नियुत्वान्। सोमपीतय इति सोमऽपीतये॥३२॥

पदार्थः-**(वायो)** पवनवद्वर्त्तमान **(ये)** **(ते)** तव **(सहस्रिणः)** प्रशस्ताः सहस्रं जना विद्यन्ते येषु ते **(रथासः)** रमणीयानि यानानि **(तेभिः)** तैः **(आ)** **(गहि)** प्राप्नुहि **(नियुत्वान्)** समर्थः सन् **(सोमपीतये)** सोमस्य पानाय॥३२॥

अन्वयः-हे वायो वायुरिव वर्त्तमान विद्वन्! ये ते सहस्रिणो रथासः सन्ति, तेभिः सह नियुत्वान्त्संस्त्वं सोमपीतय आ गहि॥३२॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे मनुष्याः! यथा वायोरसंख्या रमणीया गतयः सन्ति, तथा विविधाभिर्गतिभिः समर्था भूत्वैश्वर्यं भुङ्ग्ध्वम्॥३२॥

पदार्थः-हे **(वायो)** पवन के तुल्य वर्त्तमान विद्वन्! **(ये)** जो **(ते)** आप के **(सहस्रिणः)** प्रशस्त सहस्रों मनुष्यों से युक्त **(रथासः)** सुन्दर आराम देने वाले यान हैं, **(तेभिः)** उन के सहित **(नियुत्वान्)** समर्थ हुए आप **(सोमपीतये)** सोम ओषधि का रस पीने के लिये **(आ, गहि)** आइये॥३२॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जैसे वायु की असंख्य रमण करने योग्य गति हैं, वैसे अनेक प्रकार की गतियों से समर्थ होके ऐश्वर्य को भोगो॥३२॥

एकयेत्यस्य गृत्समद ऋषिः। वायुर्देवता। विराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

एक॑या च द॒शभि॑श्च स्वभूते॒ द्वाभ्या॑मि॒ष्टये॑ वि॒ꣳश॒ती च॑।

ति॒सृभि॑श्च॒ वह॑से त्रि॒ꣳशता॑ च नि॒युद्भि॑र्वायवि॒ह ता वि मु॑ञ्च॥३३॥

एक॑या। च॒। द॒शभि॒रिति॑ द॒शऽभिः॑। च॒। स्व॒भू॒त॒ऽइति॑ स्वऽभूते। द्वाभ्या॑म्। इ॒ष्टये॑। वि॒ꣳश॒ती। च॒। ति॒सृभि॒रिति॑ ति॒सृऽभिः॑। च॒। वह॑से। त्रि॒ꣳशता॑। च॒। नि॒युद्भि॒रिति॑ नि॒युत्ऽभिः॑। वा॒यो॒ इति॑ वायो। इ॒ह। ता। वि। मु॒ञ्च॒॥३३॥

पदार्थः-(**एकया**) गत्या (**च**) (**दशभिः**) दशविधाभिर्गतिभिः (**च**) (**स्वभूते**) स्वकीयैश्वर्ये (**द्वाभ्याम्**) विद्यापुरुषार्थाभ्याम् (**इष्टये**) विद्यासङ्गतये (**विंशती**) चत्वारिंशत् (**च**) (**तिसृभिः**) (**च**) (**वहसे**) प्राप्नोषि (**त्रिंशता**) एतत्संख्याकै (**च**) (**नियुद्भिः**) (**वायो**) (**इह**) (**ता**) तानि (**वि, मुञ्च**) विशेषेण त्यज॥३३॥

अन्वयः-हे स्वभूते वायो! यथा पवन इहेष्टये एकया च दशभिश्च द्वाभ्यामिष्टये विंशती च तिसृभिश्च त्रिंशता च नियुद्भिः सह यज्ञं वहति, तथा वहसे स त्वं ता वि मुञ्च॥३३॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा वायुरिन्द्रियैः प्राणैरनेकाभिर्गतिभिः पृथिव्यादिलोकैश्च सह सर्वस्येष्टं साध्नोति तथा विद्वांसोऽपि साध्नुयुः॥३३॥

पदार्थः-हे (**स्वभूते**) अपने ऐश्वर्य से शोभायमान (**वायो**) वायु के तुल्य अर्थात् जैसे पवन (**इह**) इस जगत् में सङ्गति के लिए (**एकया**) एक प्रकार की गति (**च**) और (**दशभिः**) दशविध गतियों (**च**) और (**द्वाभ्याम्**) विद्या और पुरुषार्थ से (**इष्टये**) विद्या की सङ्गति के लिए (**विंशती**) दो बीसी (**च**) और (**तिसृभिः**) तीन प्रकार की गतियों से (**च**) और (**त्रिंशता**) तीस (**च**) और (**नियुद्भिः**) निश्चित नियमों के साथ यज्ञ को प्राप्त होता, वैसे (**वहसे**) प्राप्त होते सो आप (**ता**) उन सब को (**वि, मुञ्च**) विशेष कर छोड़िये अर्थात् उन का उपदेश कीजिये॥३३।

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे वायु इन्द्रिय प्राण और अनेक गतियों और पृथिव्यादि लोकों के साथ सब के इष्ट को सिद्ध करता है, वैसे विद्वान् भी सिद्ध करें॥३३॥

तव वाय इत्यस्याऽङ्गिरस ऋषिः। वायुर्देवता। निचृद् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अथ किंवद्वायुः स्वीकर्तव्य इत्याह॥

अब किसके तुल्य वायु को स्वीकार करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

तव॑ वायवृतस्पते॒ त्वष्टु॑र्जामातरद्भुत।

अवा॒ꣳस्या वृ॑णीमहे॥३४॥

त॑व। वा॒यो॒ऽइति॑ वायो। ऋ॒त॒स्प॒ते॒। ऋ॒त॒प॒त॒ऽइत्यृ॑तऽपते। त्वष्टुः॑। जा॒मा॒त॒रिः। अ॒द्भु॒त॒। अवा॑ꣳसि। आ। वृ॒णी॒म॒हे॒॥३४॥

पदार्थः-(**तव**) (**वायो**) बहुबल (**ऋतस्पते**) सत्यपालक (**त्वष्टुः**) विद्यया प्रदीप्तस्य (**जामातः**) कन्यापतिवद् वर्त्तमान (**अद्भुत**) आश्चर्यकर्मन् (**अवांसि**) रक्षणादीनि (**आ**) (**वृणीमहे**) स्वीकुर्महे॥३४॥

अन्वयः-हे ऋतस्पते! जामातरद्भुत वायो वयं यानि त्वष्टुस्तवाऽवांस्या वृणीमहे, तानि त्वमपि स्वीकुरु॥३४॥

भावार्थः-यथा जामाताऽऽश्चर्यगुणः सत्यसेवकः स्वीकर्त्तव्योऽस्ति, तथा वायुरपि वरणीयोऽस्ति॥३४॥

पदार्थः-हे (**ऋतस्पते**) सत्य के रक्षक (**जामातः**) जमाई के तुल्य वर्त्तमान (**अद्भुत**) आश्चर्यरूप कर्म करने वाले (**वायो**) बहुत बलयुक्त विद्वन्! हम लोग जो (**त्वष्टुः**) विद्या से प्रकाशित (**तव**) आप के (**अवांसि**) रक्षा आदि कर्मों का (**आ, वृणीमहे**) स्वीकार करते हैं, उन का आप भी स्वीकार करो॥३४॥

भावार्थः-**जैसे** जमाई उत्तम आश्चर्य गुणों वाला, सत्य ईश्वर का सेवक हुआ स्वीकार के योग्य होता है, वैसे वायु भी स्वीकार करने योग्य है॥३४॥

अभि त्वेत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। वायुर्देवता। स्वराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथ राजधर्ममाह॥

अब राजधर्म विषय अगले मन्त्र में कहते हैं॥

अ॒भि त्वा॑ शूर नोनु॒मोऽदु॑ग्धाऽ इव धे॒नवः॑।

ईशा॑नम॒स्य जग॑तः स्व॒र्दृश॒मीशा॑नमिन्द्र त॒स्थुषः॑॥ ३५॥

अ॒भि। त्वा॒। शू॒र॒। नो॒नु॒मः॒। अदु॑ग्धा इ॒वेत्यदु॑ग्धाःऽइव। धे॒नवः॑। ईशा॑नम्। अ॒स्य। जग॑तः। स्व॒र्दृश॒मिति॑ स्व॒ःदृऽश॑म्। ईशा॑नम्। इ॒न्द्र॒। त॒स्थुषः॑॥३५॥

पदार्थः-(**अभि**) (**त्वा**) त्वाम् (**शूर**) निर्भय (**नोनुमः**) भृशं सत्कुर्य्याम प्रशंसेम (**अदुग्धा इव**) अविद्यमानपयस इव (**धेनवः**) गावः (**ईशानम्**) ईशनशीलम् (**अस्य**) (**जगतः**) जङ्गमस्य (**स्वर्दृशम्**) सुखेन द्रष्टुं योग्यम् (**ईशानम्**) (**इन्द्र**) सभेश (**तस्थुषः**) स्थावरस्य॥३५॥

अन्वयः-हे शूरेन्द्र! धेनवोऽदुग्धा इव वयमस्य जगतस्तस्थुष ईशानं स्वर्दृशमिवेशानं त्वाऽभिनोनुमः॥३५॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। हे राजन्! यदि भवान् पक्षपातं विहायेश्वरवन्न्यायाधीशो भवेद् यदि कदाचिद्वयं करमपि न दद्याम तथाऽप्यस्मान् रक्षेत् तर्हि त्वदनुकूला वयं सदा भवेम॥५॥

पदार्थः-हे **(शूर)** निर्भय **(इन्द्र)** सभापते **(अदुग्धा इव)** बिना दूध की **(धेनवः)** गौओं के समान हम लोग **(अस्य)** इस **(जगतः)** चर तथा **(तस्थुषः)** अचर संसार के **(ईशानम्)** नियन्ता **(स्वर्दृशम्)** सुखपूर्वक देखने योग्य ईश्वर के तुल्य **(ईशानम्)** समर्थ **(त्वा)** आप को **(अभि, नोनुमः)** सन्मुख से सत्कार वा प्रशंसा करें॥३५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे राजन्! जो आप पक्षपात छोड़ के ईश्वर के तुल्य न्यायाधीश होवें, जो कदाचित् हम लोग कर भी न देवें तो भी हमारी रक्षा करें तो आप के अनुकूल हम सदा रहें॥३५॥

न त्वावानित्यस्य शंयुर्बार्हस्पत्य ऋषिः। परमेश्वरो देवता। निचृत् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

ईश्वर एवोपासनीय इत्याह॥

ईश्वर ही उपासना करने योग्य है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

न त्वावाँ २॥ऽ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे॥३६॥

न। त्वावानिति त्वाऽवान्। अन्यः। दिव्यः। न। पार्थिवः। न। जातः। न। जनिष्यते। अश्वायन्तः। अश्वयन्त इत्यश्वऽयन्तः। मघवन्निति मघऽवन्। इन्द्र। वाजिनः। गव्यन्तः। त्वा। हवामहे॥३६॥

पदार्थः-**(न)** **(त्वावान्)** त्वत्सदृशः **(अन्यः)** भिन्नः **(दिव्यः)** शुद्धः **(न)** **(पार्थिवः)** पृथिव्यां विदितः **(न)** **(जातः)** उत्पन्नः **(न)** **(जनिष्यते)** उत्पत्स्यते **(अश्वायन्तः)** आत्मनोऽश्वमिच्छन्तः **(मघवन्)** परमपूजितैश्वर्य **(इन्द्र)** सर्वदुःखविदारक **(वाजिनः)** वेगवन्तः **(गव्यन्तः)** गां वाणीं चक्षाणाः **(त्वा)** **(हवामहे)** स्तुवीमः॥३६॥

अन्वयः-हे मघवन्निन्द्रेश्वर! वाजिनो गव्यन्तोऽश्वायन्तो वयं त्वा हवामहे, यतः कश्चिदन्यः पदार्थो न त्वावान् दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते तस्माद् भवानेवाऽस्माकमुपास्यो देवोऽस्ति॥३६॥

भावार्थः-न कोपि परमेश्वरेण सदृशः शुद्धो जातो वा जनिष्यमाणो वर्त्तमानो वाऽस्ति। अत एव सर्वैर्मनुष्यैरेतं विहायान्यस्य कस्याप्युपासनाऽस्य स्थाने नैव कार्या। इदमेव कर्मेहामुत्र चानन्दप्रदं विज्ञेयम्॥३६॥

पदार्थः-हे **(मघवन्)** पूजित उत्तम ऐश्वर्य से युक्त **(इन्द्र)** सब दुःखों के विनाशक परमेश्वर! **(वाजिनः)** वेगवाले **(गव्यन्तः)** उत्तम वाणी बोलते हुए **(अश्वायन्तः)** अपने को शीघ्रता चाहते हुए हम लोग **(त्वा)** आप की **(हवामहे)** स्तुति करते हैं, क्योंकि जिस कारण कोई **(अन्यः)**

अन्य पदार्थ **(न)** न कोई **(त्वावान्)** आप के **(दिव्य:)** शुद्ध **(न)** न कोई **(पार्थिव:)** पृथिवी पर प्रसिद्ध **(न)** न कोई **(जात:)** उत्पन्न हुआ और **(न)** न **(जनिष्यते)** होगा, इससे आप ही हमारे उपास्यदेव हैं॥३६॥

भावार्थ:-न कोई परमेश्वर के तुल्य शुद्ध हुआ, न होगा और न है। इसी से सब मनुष्यों को चाहिये कि इस को छोड़ अन्य किसी की उपासना इस के स्थान में कदापि न करें, यही कर्म इस लोक, परलोक में आनन्ददायक जानें॥३६॥

त्वामिदित्यस्य शंयुर्बार्हस्पत्य ऋषि:। इन्द्रो देवता। निचृदनुष्टुप् छन्द:। गान्धार: स्वर:॥

पुना राजधर्मविषयमाह॥

फिर राजधर्म विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

त्वामिद्धि हवा॑महे सा॒तौ वाज॑स्य का॒रव॑:।

त्वां वृ॒त्रेष्वि॑न्द्र॒ सत्प॑तिं॒ नर॒स्त्वां काष्ठा॒स्वर्व॑त:॥३७॥

त्वाम्। इत्। हि। हवा॑महे। सा॒तौ। वाज॑स्य। का॒रव॑:। त्वाम्। वृ॒त्रेषु॑। इ॒न्द्र॒। सत्प॑ति॒मिति॒ सत्ऽप॑तिम्। नर॑:। त्वाम्। काष्ठा॑सु। अर्व॑त:॥३७॥

पदार्थ:-**(त्वाम्)** **(इत्)** एव **(हि)** **(हवामहे)** गृह्णीम: **(सातौ)** स-ामे **(वाजस्य)** विद्याविज्ञानजन्यस्य कार्यस्य **(कारव:)** कर्त्तार: **(त्वाम्)** **(वृत्रेषु)** घनेषु **(इन्द्र)** सूर्य इव जगत्पालक **(सत्पतिम्)** सत्यस्य प्रचारेण पालकम् **(नर:)** नेतार: **(त्वाम्)** **(काष्ठासु)** दिक्षु **(अर्वत:)** आशुगामिनोऽश्वस्येव॥३७॥

अन्वय:-हे इन्द्र! वाजस्य हि कारवो नरो वये सातौ त्वां वृत्रेषु सूर्यमिव सत्पतिं त्वामर्वत इव सेनायां पश्येम काष्ठासु त्वामिद्धवामहे॥३७॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। हे सेनासभेशौ! युवां सूर्यवन्न्यायाभयप्रकाशकौ शिल्पिनां सङ्ग्रहीतारौ सत्यस्य प्रचारकौ भवेतम्॥३७॥

पदार्थ:-हे **(इन्द्र)** सूर्य के तुल्य जगत् के रक्षक राजन्! **(वाजस्य)** विद्या वा विज्ञान से हुए कार्य के **(हि)** ही **(कारव:)** करने वाले **(नर:)** नायक हम लोग **(सातौ)** रण में **(त्वाम्)** आप को, जैसे **(वृत्रेषु)** मेघों में सूर्य को, वैसे **(सत्पतिम्)** सत्य के प्रचार से रक्षक **(त्वाम्)** आप को **(अर्वत:)** शीघ्रगामी घोड़े के तुल्य सेना में देखें, **(काष्ठासु)** दिशाओं में **(त्वाम्)** आप को **(इत्)** ही **(हवामहे)** ग्रहण करें॥३७॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे सेना और सभा के पति! तुम दोनों सूर्य के तुल्य न्याय और अभय के प्रकाशक, शिल्पियों का संग्रह करने और सत्य के प्रचार करने वाले होओ॥३७॥

स त्वमित्यस्य शंयुर्बार्हस्पत्य ऋषिः। इन्द्रो देवता। स्वराड्बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

विद्वान् किं करोतीत्याह॥

विद्वान् क्या करता है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

स त्वं न॑श्चित्र वज्रहस्त धृष्णु॒या म॒ह स्त॑वा॒नोऽअ॑द्रिवः।

गामश्व॑ꣳ र॒थ्य॒मिन्द्र॒ संकि॑र स॒त्रा वाजं॒ न जि॒ग्युषे॑॥३८॥

सः। त्वम्। नः॒। चि॒त्र। व॒ज्र॒ह॒स्तेति॑ वज्रऽहस्त। धृ॒ष्णु॒येति॑ धृष्णु॒ऽया। म॒हः। स्त॒वा॒नः। अ॒द्रि॒व॒ इत्य॑द्रिऽवः। गाम्। अश्व॑म्। र॒थ्य॒म्। इ॒न्द्र॒। सम्। कि॒र॒। स॒त्रा। वाज॑म्। न। जि॒ग्यु॒षे॑॥३८॥

पदार्थः-(**सः**) पूर्वोक्तः (**त्वम्**) (**नः**) अस्मभ्यम् (**चित्र**) आश्चर्यस्वरूप (**वज्रहस्त**) (**धृष्णुया**) प्रगल्भतया (**महः**) महत् (**स्तवानः**) स्तुवन् (**अद्रिवः**) प्रशस्ताश्ममयवस्तुयुक्त (**गाम्**) वृषभम् (**अश्वम्**) (**रथ्यम्**) रथस्य वोढारम् (**इन्द्र**) (**सम्**) (**किर**) प्रापय (**सत्रा**) सत्यम् (**वाजम्**) विज्ञानम् (**न**) इव (**जिग्युषे**) जयशीलाय॥३८॥

अन्वयः-हे चित्र वज्रहस्ताद्रवि इन्द्र! धृष्णुया महः स्तवानः स त्वं जिग्युषे नः सत्रा वाजं न गां रथ्यमश्वं संकिर॥३८॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। यथा मेघसम्बन्धी सूर्यो वृष्ट्या सर्वान् सम्बध्नाति तथा विद्वान् सत्यविज्ञानेन सर्वैश्वर्यं प्रकाशयति॥३८॥

पदार्थः-हे (**चित्र**) आश्चर्यस्वरूप (**वज्रहस्त**) वज्र हाथ में लिये (**अद्रिवः**) प्रशस्त पत्थर के बने हुए वस्तुओं वाले (**इन्द्र**) शत्रुनाशक विद्वन्! (**धृष्णुया**) ढीठता से (**महः**) बहुत (**स्तवानः**) स्तुति करते हुए (**सः**) सो पूर्वोक्त (**त्वम्**) आप (**जिग्युषे**) जय करने वाले पुरुष के लिए तथा (**नः**) हमारे लिये (**सत्रा**) सत्य (**वाजम्**) विज्ञान के (**न**) तुल्य (**गाम्**) बैल तथा (**रथ्यम्**) रथ के योग्य (**अश्वम्**) घोड़े को (**सं किर**) सम्यक् प्राप्त कीजिये॥३८॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे मेघसम्बन्धी सूर्य वर्षा से सब को सम्बद्ध करता है, वैसे विद्वान् सत्य के विज्ञान से सब के ऐश्वर्य को प्रकाशित करता है॥३८॥

कया न इत्यस्य वामदेव ऋषिः। अग्निर्देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

कया॑ नश्चि॒त्रऽ आ भु॑वदू॒ती स॒दावृ॑धः सखा॑।

कया॒ शचि॑ष्ठया वृ॒ता॥३९॥

कया॑। नः॒। चि॒त्रः। आ। भु॒व॒त्। ऊ॒ती। स॒दावृ॑ध॒ इति॑ स॒दाऽवृ॑धः। सखा॑। कया॑। शचि॑ष्ठया। वृ॒ता॥३९॥

पदार्थः-(**कया**) (**नः**) अस्मान् (**चित्रः**) अद्भुतः (**आ, भुवत्**) भवेत् (**ऊती**) रक्षणादिक्रियया। अत्र **सुपाम्** [अ०७.१.३९] इति पूर्वसवर्णादेशः (**सदावृधः**) यः सदा वर्धते तस्य (**सखा**) (**कया**) (**शचिष्ठया**) अतिशयितया क्रियया (**वृता**) या वर्त्तते तया॥३९॥

अन्वयः-हे विद्वन्! चित्रः सदावृधः सखाऽऽभुवत् कयोती नो रक्षेः, कया शचिष्ठया वृताऽऽस्मान्नियोजयेः॥३९॥

भावार्थः-योऽद्भुतगुणकर्मस्वभावो विद्वान् सर्वस्य मित्रं भूत्वा कुकर्माणि निवर्त्य सुकर्मभिरस्मान् योजयेत् सोऽस्माभिः सत्कर्त्तव्यः॥३९॥

पदार्थः-हे विद्वन् पुरुष! (**चित्रः**) आश्चर्य कर्म करने हारे (**सदावृधः**) जो सदा बढ़ता है, उस के (**सखा**) मित्र (**आ, भुवत्**) हूजिये (**कया**) किसी (**ऊती**) रक्षणादिक्रिया से (**नः**) हमारी रक्षा कीजिये, (**कया**) किसी (**शचिष्ठया**) अत्यन्त निकट सम्बन्धिनी (**वृता**) वर्त्तमान क्रिया से हम को युक्त कीजिये॥३९॥

भावार्थः-जो आश्चर्य गुण, कर्म, स्वभाव वाला विद्वान् सब का मित्र हो और कुकर्मों की निवृत्ति करके उत्तम कर्मों से हम को युक्त करे, उस का हमको सत्कार करना चाहिये॥३९॥

कस्त्वेत्यस्य वामदेव ऋषिः। इन्द्रो देवता। निचृद् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

कस्त्वा॑ स॒त्यो मदा॑ना॒ꣳ मꣳहि॑ष्ठो मत्स॒दन्ध॑सः।

दृ॒ढा चि॑दा॒रुजे॒ वसु॑॥४०॥

कः। त्वा॒। स॒त्यः। मदा॑नाम्। मꣳहि॑ष्ठः। म॒त्स॒त्। अन्ध॑सः। दृ॒ढा। चि॒त्। आ॒रुज॒ऽइत्या॒ऽरुजे॑। वसु॑॥४०॥

पदार्थः-(**कः**) सुखप्रदः (**त्वा**) त्वाम् (**सत्यः**) सत्सु साधु (**मदानाम्**) हर्षाणाम् (**मंहिष्ठः**) अतिशयेन महत्त्वयुक्तः (**मत्सत्**) आनन्दयेत् (**अन्धसः**) अन्नात् (**दृढा**) दृढानि (**चित्**) इव (**आरुजे**) समन्ताद् रोगाय (**वसु**) वसूनि द्रव्याणि। अत्र **सुपां सुलुग्** [अ०७.१.३९] इति जसो लुक्॥४०॥

अन्वय:-हे विद्वन्! य: क: सत्यो मंहिष्ठो विद्वांस्त्वान्धसो मदानां मध्ये मत्सदारुजे। औषधानि चिदिव दृढा वसु संचिनुयात् सोऽस्माभि: पूजनीय:॥४०॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। य: सत्यप्रिय आनन्दप्रदो विद्वान् परोपकाराय रोगनिवारणायौषधमिव वस्तूनि संचिनुयात् स एव सत्कारमर्हेत्॥४०॥

पदार्थ:-हे विद्वन्! जो **(क:)** सुखदाता **(सत्य:)** श्रेष्ठों में उत्तम **(मंहिष्ठ:)** अति महत्त्व युक्त विद्वान् **(त्वा)** आप को **(अन्धस:)** अन्न से हुए **(मदानाम्)** आनन्दों में **(मत्सत्)** प्रसन्न करे **(आरुजे)** अतिरोग के अर्थ ओषधियों को जैसे इकट्ठा करे **(चित्)** वैसे **(दृढा)** दृढ़ **(वसु)** द्रव्यों का सञ्चय करे, सो हम को सत्कार के योग्य होवे॥४०॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो सत्य में प्रीति रखने और आनन्द देने वाला विद्वान् परोपकार के लिये रोगनिवारणार्थ ओषधियों के तुल्य वस्तुओं का सञ्चय करे, वही सत्कार के योग्य होवे॥४०॥

अभीषुण इत्यस्य वामदेव ऋषि:। इन्द्रो देवता। पादनिचृद् गायत्री छन्द:। षड्ज: स्वर:॥

कीदृशा जना धनं लभन्त इत्याह॥

कैसे जन धन को प्राप्त होते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

अभी षु ण: सखीनामविता जरितृणाम्।

शतं भवास्यूतये॥४१॥

अभि। सु। न:। सखीनाम्। अविता। जरितृणाम्। शतम्। भवासि। ऊतये॥४१॥

पदार्थ:-**(अभि)** सर्वत:। अत्र **निपातस्य च** [अ०६.३.१३६] इति दीर्घ:। **(सु)** शोभने **(न:)** अस्माकम् **(सखीनाम्)** मित्राणाम् **(अविता)** रक्षक: **(जरितृणाम्)** स्तोतृणाम् **(शतम्)** **(भवासि)** भवे: **(ऊतये)** प्रीत्याद्याय॥४१॥

अन्वय:-हे विद्वन्! यस्त्वं न: सखीनां जरितृणां चावितोतये शतं सु भवासि सोऽभिपूज्य: स्या:॥४१॥

भावार्थ:-ये मनुष्या: सुहृदां रक्षका असंख्यसुखप्रदा अनाथानां रक्षणे प्रवर्त्तन्ते, तेऽसंख्यं धनं लभन्ते॥४१॥

पदार्थ:-हे विद्वन्! जो आप **(न:)** हमारे **(सखीनाम्)** मित्रों तथा **(जरितृणाम्)** स्तुति करने वाले जनों के **(अविता)** रक्षक **(ऊतये)** प्रीति आदि के अर्थ **(शतम्)** सैकड़ों प्रकार से **(सु, भवासि)** सुन्दर रीति कर के हूजिये सो आप **(अभि)** सब ओर से सत्कार के योग्य हों॥४१॥

भावार्थः-जो मनुष्य अपने मित्रों के रक्षक, असंख्य प्रकार का सुख देने हारे, अनाथों की रक्षा में प्रयत्न करते हैं, वे असंख्य धन को प्राप्त होते हैं॥४१॥

यज्ञायज्ञेत्यस्य शंयुर्ऋषिः। यज्ञो देवता। बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यज्ञायज्ञा वोऽअग्नये गिरागिरा च दक्षसे।

प्रप्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शꣳसिषम्॥४२॥

यज्ञायज्ञेति यज्ञाऽयज्ञा। वः। अग्नये। गिरागिरेति गिराऽगिरा। च। दक्षसे। प्रप्रेति प्रऽप्र। वयम्। अमृतम्। जातवेदसमिति जातऽवेदसम्। प्रियम्। मित्रम्। न। शꣳसिषम्॥४२॥

पदार्थः-**(यज्ञायज्ञा)** यज्ञे यज्ञे। अत्र **सुपां सुलुग्** [अ०७.१.३९] इत्याकारादेशः। **(वः)** युष्मान् **(अग्नये)** पावकाय **(गिरागिरा)** वाण्या वाण्या **(च)** **(दक्षसे)** बलाय **(प्रप्र)** प्रकर्षेण **(वयम्)** **(अमृतम्)** नाशरहितम् **(जातवेदसम्)** जातविज्ञानम् **(प्रियम्)** प्रीतिविषयम् **(मित्रम्)** सखायम् **(न)** इव **(शंसिषम्)** प्रशंसेयम्॥४२॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथाऽहमग्नये गिरागिरा दक्षसे च यज्ञायज्ञा वो युष्मान् प्रप्र शंसिषम्। वयं जातवेदसममृतं प्रियं मित्रं न वो युष्मान् प्रशंसेम तथा यूयमप्याचरत॥४२॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। ये मनुष्याः सुशिक्षितया वाण्या यज्ञाननुष्ठाय बलं वर्द्धयित्वा मित्रवद्विदुषः सत्कृत्य संगच्छन्ते ते बहुज्ञा धन्याश्च जायन्ते॥४२॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे मैं **(अग्नये)** अग्नि के लिए **(च)** और **(गिरागिरा)** वाणी-वाणी से **(दक्षसे)** बल के अर्थ **(यज्ञायज्ञा)** यज्ञ-यज्ञ में **(वः)** तुम लोगों की **(प्रप्र, शंसिषम्)** प्रशंसा करूँ, **(वयम्)** हम लोग **(जातवेदसम्)** ज्ञानी **(अमृतम्)** आत्मरूप से अविनाशी **(प्रियम्)** प्रीति के विषय **(मित्रम्)** मित्र के **(न)** तुल्य तुम्हारी प्रशंसा करें, वैसे तुम भी आचरण किया करो॥४२॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य उत्तम शिक्षित वाणी से यज्ञों का अनुष्ठान कर बल बढ़ा और मित्रों के समान विद्वानों का सत्कार करके समागम करते हैं, वे बहुत ज्ञान वाले धनी होते हैं॥४२॥

पाहि न इत्यस्य भार्गव ऋषिः। अग्निर्देवता। स्वराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

आप्ताः किं कुर्युरित्याह॥

आप्त धर्मात्मा जन क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

पाहि नोऽ अग्नऽ एकया पाह्युत द्वितीयया।

पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जां पते पाहि चतसृभिर्वसो॥४३॥

पाहि। नः। अग्ने। एकया। पाहि। उत। द्वितीयया। पाहि। गीर्भिरिति गीःऽभिः। तिसृभिरिति तिसृऽभिः। ऊर्जाम्। पते। पाहि। चतसृभिरिति चतसृऽभिः। वसो इति वसो॥४३॥

पदार्थः-(**पाहि**) रक्ष (**नः**) अस्मान् (**अग्ने**) पावकवद्विद्वन् (**एकया**) सुशिक्षया (**पाहि**) (**उत**) अपि (**द्वितीयया**) अध्यापनक्रियया (**पाहि**) (**गीर्भिः**) वाग्भिः (**तिसृभिः**) कर्मोपासनाज्ञानज्ञापिकाभिः (**ऊर्जाम्**) बलानाम् (**पते**) पालक (**पाहि**) (**चतसृभिः**) धर्मार्थकाममोक्षविज्ञापिकाभिः (**वसो**) सुवासप्रद॥४३॥

अन्वयः-हे वसो अग्ने! त्वमेकया नोऽस्मान् पाहि, द्वितीयया पाहि, तिसृभिर्गीर्भिः पाहि। हे ऊर्जां पते! त्वं नोऽस्मान् चतसृभिरुत पाहि॥४३॥

भावार्थः-आप्ता नान्यदुपदेशादध्यापनाद्वा मनुष्यकल्याणकरं विजानन्ति। अतोऽहर्निशमज्ञानिनामनुकम्प्य सदोपदिशन्त्यध्यापयन्ति च॥४३॥

पदार्थः-हे (**वसो**) सुन्दर वास देने हारे (**अग्ने**) अग्नि के तुल्य तेजस्वी विद्वन्! आप (**एकया**) उत्तम शिक्षा से (**नः**) हमारी (**पाहि**) रक्षा कीजिये, (**द्वितीयया**) दूसरी अध्यापन क्रिया से (**पाहि**) रक्षा कीजिये, (**तिसृभिः**) कर्म, उपासना, ज्ञान की जताने वाली तीन (**गीर्भिः**) वाणियों से (**पाहि**) रक्षा कीजिये। हे (**ऊर्जाम्**) बलों के (**पते**) रक्षक! आप हमारी (**चतसृभिः**) धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इनका विज्ञान कराने वाली चार प्रकार की वाणी से (**उत**) भी (**पाहि**) रक्षा कीजिये॥४३॥

भावार्थः-सत्यवादी, धर्मात्मा, आप्तजन उपदेश करने और पढ़ाने से भिन्न किसी साधन को मनुष्य का कल्याणकारक नहीं जानते। इससे नित्यप्रति अज्ञानियों पर कृपा कर सदा उपदेश करते और पढ़ाते हैं॥४३॥

ऊर्जो नपातमित्यस्य शंयुर्ऋषिः। वायुर्देवता। स्वराड्बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ऊर्जो नपातꣳस हिनायमस्मयुर्दाशेम हव्यदातये।
भुवद्वाजेष्वविता भुवद् वृधऽउत त्राता तनूनाम्॥४४॥

ऊर्जः। नपातम्। सः। हिन। अयम्। अस्मयुरित्यस्मऽयुः। दाशेम। हव्यदातय इति हव्यऽदातये। भुवत्। वाजेषु। अविता। भुवत्। वृधे। उत। त्राता। तनूनाम्॥४४॥

पदार्थः-(**ऊर्जः**) पराक्रमस्य (**नपातम्**) अपातितारं विद्याबोधनम् (**सः**) (**हिन**) हिनु वर्द्धय। अत्र **हि गतौ वृद्धौ च'** इत्यस्माल्लोण्मध्यमैकवचने वर्णव्यत्ययेन उकारस्य अकारः। (**अयम्**) (**अस्मयुः**) योऽस्मान् कामयते (**दाशेम**) स्वीकुर्याम (**हव्यदातये**) दातव्यानां दानाय (**भुवत्**) भवेत् (**वाजेषु**) सङ्ग्रामेषु (**अविता**) रक्षिता (**भुवत्**) भवेत् (**वृधे**) वर्धनाय (**उत**) अपि (**त्राता**) (**तनूनाम्**) शरीराणाम्॥४४॥

अन्वयः-हे विद्यार्थिन्! स त्वमूर्जो नपातं हिन यतोऽयं भवानस्मयुर्वाजेष्वविता भुवदुतापि तनूनां वृधे त्राता भुवत्। ततस्त्वां हव्यदातये वयं दाशेम॥४४॥

भावार्थः-यः पराक्रमं वीर्यं च न हन्याच्छरीरात्मनोर्वर्धकः सन् रक्षकः स्यादाप्तास्तस्मै विद्यां दद्युः। योऽस्माद् विपरीतोऽजितेन्द्रियो दुष्टाचारी निन्दको भवेत्, स विद्याग्रहणेऽधिकारी न भवतीति वेद्यम्॥४४॥

पदार्थः-हे विद्यार्थिन्! (**सः**) सो आप (**ऊर्जः**) पराक्रम को (**नपातम्**) न नष्ट करने हारे विद्याबोध को (**हिन**) बढ़ाइये, जिससे (**अयम्**) यह प्रत्यक्ष आप (**अस्मयुः**) हम को चाहने और (**वाजेषु**) संग्रामों में (**अविता**) रक्षा करने वाले (**भुवत्**) होवें (**उत**) और (**तनूनाम्**) शरीरों के (**वृधे**) बढ़ने के अर्थ (**त्राता**) पालन करने वाले (**भुवत्**) होवें, इससे आपको (**हव्यदातये**) देने योग्य पदार्थों के देने के लिये हम लोग (**दाशेम**) स्वीकार करें॥४४॥

भावार्थः-जो पराक्रम और बल को न नष्ट करे, शरीर और आत्मा की उन्नति करता हुआ रक्षक हो, उसके लिये आप्त जन विद्या देवें। जो इस से विपरीत लम्पट, दुष्टाचारी, निन्दक हो, वह विद्याग्रहण में अधिकारी नहीं होता यह जानो॥४४॥

संवत्सर इत्यस्य शंयुर्ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदभिकृतिश्छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

सं॒व॒त्स॒रो॒ऽसि परिवत्स॒रो॒ऽसीदावत्स॒रो॒ऽसीद्वत्स॒रो॒ऽसि वत्स॒रो॒ऽसि। उ॒षस॑स्ते कल्पन्तामहोरा॒त्रास्ते॑ कल्पन्तामर्द्धमा॒सास्ते॑ कल्पन्ता॒ं मासा॑स्ते कल्पन्तामृतव॑स्ते कल्पन्ताᳪं संवत्स॑रस्ते॑ कल्पताम्। प्रेत्या॒ऽएत्यै॒ सं चाञ्च॒ प्र च॑ सारय। सु॒प॒र्ण॒चिद॑सि॒ तया॑ दे॒वत॑याऽङ्गि॒र॒स्वद् ध्रु॒वः सी॑द॥४५॥

सं॒व॒त्स॒रः। अ॒सि॒। प॒रि॒व॒त्स॒र इति॑ परिऽवत्स॒रः। अ॒सि॒। इ॒दा॒व॒त्स॒र। इती॑दाऽवत्स॒रः। अ॒सि॒। इ॒द्व॒त्स॒र इती॑त्ऽवत्स॒रः। अ॒सि॒। व॒त्स॒रः। अ॒सि॒। उ॒षस॑ः। ते॒। क॒ल्प॒न्ता॒म्। अ॒हो॒रा॒त्राः। ते॒ क॒ल्प॒न्ता॒म्। अ॒र्द्ध॒मा॒साऽइत्य॑र्द्धऽमा॒साः। ते॒। क॒ल्प॒न्ता॒म्। मासा॑ः। ते॒। क॒ल्प॒न्ता॒म्। ऋ॒तव॑ः। ते॒। क॒ल्प॒न्ता॒म्। सं॒व॒त्स॒रः। ते॒।

कल्पताम्। प्रेत्या इति प्रऽइंत्यै। एत्याऽ इत्याऽइंत्यै। सम्। च। अञ्च। प्र। च। सारय। सुपर्णचिदिति सुपर्णऽचित्। असि। तयां। देवतंयाः। अङ्गिरस्वदित्यङ्गिरःऽवत्। ध्रुवः। सीद॥४५॥

पदार्थः-(संवत्सरः) संवत्सर इव नियमेन वर्त्तमानः **(असि) (परिवत्सरः)** वर्जितव्यो वत्सर इव दुष्टाचारत्यागी **(असि) (इदावत्सरः)** निश्चयेन समन्ताद् वर्त्तमानः संवत्सर इव **(असि) (इद्वत्सरः)** निश्चितसंवत्सर इव **(असि) (वत्सरः)** वर्ष इव **(असि) (उषसः)** प्रभाताः **(ते)** तुभ्यम् **(कल्पन्ताम्)** समर्था भवन्तु। **(अहोरात्राः)** रात्रिदिनानि **(ते) (कल्पन्ताम्) (अर्द्धमासाः) सितासिताः** पक्षाः **(ते) (कल्पन्ताम्) (मासाः)** चैत्रादयः **(ते) (कल्पन्ताम्) (ऋतवः)** वसन्ताद्याः **(ते) (कल्पन्ताम्) (संवत्सरः) (ते) (कल्पताम्) (प्रेत्यै)** प्रकृष्टेन प्राप्त्यै **(एत्यै)** समन्ताद् गत्यै **(सम्)** सम्यक् **(च) (अञ्च)** प्राप्नुहि **(प्र) (च) (सारय) (सुपर्णचित्)** यः शोभनानि पर्णानि पालनानि चिनोति सः **(असि) (तया) (देवतया)** दिव्यगुणयुक्तया समयरूपया **(अङ्गिरस्वत्)** सूत्रात्मप्राणवत् **(ध्रुवः)** दृढः **(सीद)** स्थिरो भव॥४५॥

अन्वयः-हे विद्वन् जिज्ञासो! वा यतस्त्वं संवत्सरोऽसि परिवत्सरोऽसीदावत्सरोऽसीद्वत्सरोऽसि वत्सरोऽसि तत्मात् ते कल्याणकर्य्य उषसः कल्पन्तां ते मङ्गलप्रदा अहोरात्राः कल्पन्तां तेऽर्द्धमासाः कल्पन्तां ते मासाः कल्पन्तां त ऋतवः कल्पन्तां ते संवत्सरः कल्पतां त्वं च प्रेत्यै समञ्च त्वमेत्यै स्वप्रभावं प्रसारय च यतस्त्वं सुपर्णचिदसि तस्मात् तया देवतया सहाङ्गिरस्वद् ध्रुवः सीद॥४५॥

भावार्थः-य आप्ता मनुष्या व्यर्थं कालं न नयन्ति सुनियमैर्वर्त्तमानाः कर्त्तव्यानि कुर्वन्ति, त्यक्तव्यानि त्यजन्ति, तेषां सुप्रभातः शोभना अहोरात्रा अर्द्धमासा मासा ऋतवश्च गच्छन्ति। तस्मात् प्रकर्षगतये प्रयत्य सुमार्गेण गत्वा शुभान् गुणान् सुखानि च प्रसारयेयुः। सुलक्षणया वाचा पत्न्या च सहिता धर्मग्रहणेऽधर्मत्यागे च दृढोत्साहाः सदा भवेयुरिति॥४५॥

अस्मिन्नध्याये सत्यप्रशंसाविज्ञापनं, सद्गुणस्वीकारो, राज्यवर्धनम्, अनिष्टनिवारणं, जीवनवृद्धिः, मित्रविश्वासः, सर्वत्रकीर्त्तिकरणम्, ऐश्वर्यवर्द्धनम्, अल्पमृत्युनिवारणं, शुद्धिकरणं, सुकृतानुष्ठानं, यज्ञकरणं बहुधनधारणं, स्वामित्वप्रतिपादनं, सुवाग्ग्रहणं, सद्गुणेच्छा, अग्निप्रशंसा, विद्याधनवर्धनं, कारणवर्णनं, धनोपयोगः, परस्परेषां रक्षणं, वायुगुणवर्णनम्, आधाराऽऽधेयकथनम्, ईश्वरगुणवर्णनं, शूरवीरकृत्यकथनं, प्रसन्नतासम्पादनं, मित्ररक्षणं, विद्वदाश्रयः, स्वात्मपालनं, वीर्यरक्षणं, युक्ताहारविहारश्चोक्तमत एतदध्यायोक्तार्थस्य पूर्वाध्यायोक्तार्थेन सह संगतिरस्तीति वेद्यम्॥

पदार्थः-हे विद्वन् वा जिज्ञासु पुरुष! जिससे तू **(संवत्सरः)** संवत्सर के तुल्य नियम से वर्त्तमान **(असि)** है, **(परिवत्सरः)** त्याज्य वर्ष के समान दुराचरण का त्यागी **(असि)** है, **(इदावत्सरः)** निश्चय से अच्छे प्रकार वर्त्तमान वर्ष के तुल्य **(असि)** है, **(इद्वत्सरः)** निश्चित संवत्सर के सदृश **(असि)** है, **(वत्सरः)** वर्ष के समान **(असि)** है। इससे **(ते)** तेरे लिये **(उषसः)** कल्याणकारिणी उषा प्रभातवेला **(कल्पन्ताम्)** समर्थ हों, **(ते)** तेरे लिये **(अहोरात्राः)** दिन-रातें मङ्गलदायक **(कल्पन्ताम्)** समर्थ हों, **(ते)** तेरे अर्थ **(अर्द्धमासाः)** शुक्ल-कृष्णपक्ष **(कल्पन्ताम्)** समर्थ हों, **(ते)** तेरे लिये **(मासाः)** चैत्र आदि महीने **(कल्पन्ताम्)** समर्थ हों, **(ते)** तेरे लिये **(ऋतवः)** वसन्तादि ऋतु **(कल्पन्ताम्)** समर्थ हों, **(ते)** तेरे अर्थ **(संवत्सरः)** वर्ष **(कल्पताम्)** समर्थ हो। **(च)** और तू **(प्रेत्यै)** उत्तम प्राप्ति के लिये **(सम्, अञ्च)** सम्यक् प्राप्त हो **(च)** और तू **(एत्यै)** अच्छे प्रकार जाने के लिये **(प्र, सारय)** अपने प्रभाव का विस्तार कर, जिस कारण तू **(सुपर्णचित्)** सुन्दर रक्षा के साधनों का संचयकर्त्ता **(असि)** है, इससे **(तया)** उस **(देवतया)** उत्तम गुणयुक्त समय रूप देवता के साथ **(अङ्गिरस्वत्)** सूत्रात्मा प्राणवायु के समान **(ध्रुवः)** दृढ़ निश्चल **(सीद)** स्थिर हो॥४५॥

भावार्थः-जो आप्त मनुष्य व्यर्थ काल नहीं खोते, सुन्दर नियमों से वर्त्तते हुए कर्त्तव्य कर्मों को करते, छोड़ने योग्यों को छोड़ते हैं, उनके प्रभात काल, दिन-रात, पक्ष, महीने, ऋतु सब सुन्दर प्रकार व्यतीत होते हैं, इसलिये उत्तम गति के अर्थ प्रयत्न कर अच्छे मार्ग से चल शुभ गुणों और सुखों का विस्तार करें। सुन्दर लक्षणों वाली वाणी वा स्त्री के सहित धर्म ग्रहण और अधर्म के त्याग में दृढ़ उत्साही सदा होवें॥४५॥

इस अध्याय में सत्य की प्रशंसा का जानना, उत्तम गुणों का स्वीकार, राज्य का बढ़ाना, अनिष्ट की निवृत्ति, जीवन को बढ़ाना, मित्र का विश्वास, सर्वत्र कीर्त्ति करना, ऐश्वर्य को बढ़ाना, अल्पमृत्यु का निवारण, शुद्धि करना, सुकर्म का अनुष्ठान, यज्ञ करना, बहुत धन का धारण, मालिकपन का प्रतिपादन, सुन्दर वाणी का ग्रहण, सद्गुणों की इच्छा, अग्नि की प्रशंसा, विद्या और धन का बढ़ाना, कारण का वर्णन, धन का उपयोग, परस्पर की रक्षा, वायु के गुणों का वर्णन, आधार-आधेय का कथन, ईश्वर के गुणों का वर्णन, शूरवीर के कृत्यों का कहना, प्रसन्नता करना, मित्र की रक्षा, विद्वानों का आश्रय अपने आत्मा की रक्षा, वीर्य की रक्षा और युक्त आहार-विहार कहे हैं, इससे इस अध्याय में कहे अर्थ की पूर्व अध्याय में कहे अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां परमविदुषां श्रीयुतविरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण श्रीपरमहंसपरिव्राजकाचार्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचिते

संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां समन्विते सुप्रमाणयुक्ते यजुर्वेदभाष्ये सप्तविंशतितमोऽध्यायः पूर्तिमगमत्॥ २७॥

॥ओ३म्॥

अथाष्टाविंशोऽध्याय आरभ्यते

ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव। यद्भ॒द्रं तन्न॒ ऽ आ सु॑व॥ यजु०३०.३

होतेत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव ऋषिः। इन्द्रो देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ मनुष्यैर्यज्ञेन कथं बलं वर्द्धनीयमित्याह॥

अब अट्ठाईसवें अध्याय का आरम्भ है, उसके पहिले मन्त्र में मनुष्यों को यज्ञ से कैसे बल बढ़ाना चाहिये, इस विषय का वर्णन किया है॥

होता॑ यक्षत्स॒मिधेन्द्र॑मि॒डस्प॒दे नाभा॑ पृथि॒व्याऽ अधि॑।

दि॒वो वर्ष्म॒न्त्समि॑ध्यत॒ऽओजि॑ष्ठश्चर्षणी॒सहां॒ वेत्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑॥ १॥

होता॑। य॒क्ष॒त्। स॒मिधेति॑ स॒म्ऽइधा॑। इन्द्र॑म्। इ॒डः। प॒दे। नाभा॑। पृ॒थि॒व्याः। अधि॑। दि॒वः। वर्ष्म॑न्। सम्। इ॒ध्य॒ते॒। ओजि॑ष्ठः। च॒र्ष॒णी॒सहा॑म्। च॒र्ष॒णी॒सहा॒मिति॑ चर्षणि॒ऽसहा॑म्। वेतु॑। आज्य॑स्य। होत॑ः। यज॑॥ १॥

पदार्थः-(**होता**) आदाता (**यक्षत्**) यजेत् (**समिधा**) ज्ञानप्रकाशेन (**इन्द्रम्**) विद्युदाख्यमग्निम् (**इडः**) वाण्याः। अत्र **जसादिषु छन्दसि वा वचनम्** [अ०वा०८.३.१०९] इति याडभावः। (**पदे**) प्राप्तव्ये (**नाभा**) नाभौ मध्ये (**पृथिव्याः**) भूमेः (**अधि**) उपरि (**दिवः**) प्रकाशस्य (**वर्ष्मन्**) वर्षके मेघमण्डले (**सम्**) (**इध्यते**) प्रदीप्यते (**ओजिष्ठः**) अतिशयेन बली (**चर्षणीसहाम्**) ये चर्षणीन् मनुष्यसमूहान् सहन्ते तेषाम् (**वेतु**) प्राप्नोतु (**आज्यस्य**) घृतादिकम्। अत्र कर्मणि षष्ठी। (**होतः**) यजमान (**यज**) संगच्छस्व॥१॥

अन्वयः-हे होतस्त्वं यथा होता समिधेडस्पदे पृथिव्या नाभा दिवोऽधि वर्ष्मन्निन्द्रं यक्षत् तेनौजिष्ठः सन् चर्षणीसहां मध्ये समिध्यत आज्यस्य वेतु तथा यज॥१॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैर्वेदमन्त्रैस्सुगन्ध्यादिद्रव्यमग्नौ प्रक्षिप्य मेघमण्डलं प्रापय्य जलं शोधयित्वा सर्वार्थं बलं वर्द्धनीयम्॥१॥

पदार्थः-हे (**होतः**) यजमान! तू जैसे (**होता**) शुभ गुणों का ग्रहणकर्त्ता जन (**समिधा**) ज्ञान के प्रकाश से (**इडः**) वाणी सम्बन्धी (**पदे**) प्राप्त होने योग्य व्यवहार में (**पृथिव्याः**) भूमि के (**नाभा**) मध्य और (**दिवः**) प्रकाश के (**अधि**) ऊपर (**वर्ष्मन्**) वर्षने हारे मेघमण्डल में (**इन्द्रम्**) बिजुली रूप अग्नि को (**यक्षत्**) सङ्गत करे, उससे (**ओजिष्ठः**) अतिशय कर बली हुआ (**चर्षणीसहाम्**) मनुष्यों के झुण्डों को सहने वाले योद्धाओं में (**सम्, इध्यते**) सम्यक् प्रकाशित होता है और (**आज्यस्य**) घृत आदि को (**वेतु**) प्राप्त होवे, (**यज**) वैसे समागम किया कर॥१॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि वेदमन्त्रों से सुगन्धित आदि द्रव्य अग्नि में छोड़ मेघमण्डल को पहुंचा और जल को शुद्ध करके सब के लिये बल बढ़ावें॥१॥

होतेत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव ऋषि:। इन्द्रो देवता। निचृदतिजगती छन्द:। निषाद: स्वर:॥

राजपुरुषा: कीदृशा: स्युरित्याह॥

राजपुरुष कैसे हों, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

होता यक्षत् तनूनपातमूतिभिर्जेतारमपराजितम्।

इन्द्रं देवꣳस्वर्विदं पथिभिर्मधुमत्तमैर्नराशꣳसेन तेजसा वेत्वाज्यस्य होतर्यज॥२॥

होता। यक्षत्। तनूनपातमिति तनूऽनपातम्। ऊतिभिरित्यूतिऽभि:। जेतारम्। अपराजितमित्यपराऽजितम्। इन्द्रम्। देवम्। स्वर्विदमिति स्व:ऽविदम्। पथिभिरिति पथिऽभि:। मधुमत्तमैरिति मधुमत्ऽतमै:। नराशꣳसेन। तेजसा। वेतु। आज्यस्य। होत:। यज॥२॥

पदार्थ:-(**होता**) सुखस्य प्रदाता (**यक्षत्**) संगच्छेत् (**तनूनपातम्**) य: शरीराणि पाति तम् (**ऊतिभि:**) रक्षादिभि: (**जेतारम्**) जयशीलम् (**अपराजितम्**) अन्यै: पराजेतुमशक्यम् (**इन्द्रम्**) परमैश्वर्यकारकं राजानम् (**देवम्**) विद्याविनयाभ्यां सुशोभितम् (**स्वर्विदम्**) प्राप्तसुखम् (**पथिभि:**) धर्म्यैर्मार्गै: (**मधुमत्तमै:**) अतिशयेन मधुरजलादियुक्तै: (**नराशंसेन**) नरैराशंसितेन (**तेजसा**) प्रागल्भ्येन (**वेतु**) प्राप्नोतु (**आज्यस्य**) विज्ञेयम्। अत्र कर्मणि षष्ठी। (**होत:**) (**यज**) ॥२॥

अन्वय:-हे होतर्भवान् यथा होतोतिभिर्मधुमत्तमै: पथिभिस्तनूनपातं जेतारमपराजितं स्वर्विदं देवमिन्द्रं यक्षत् नराशंसेन तेजसाऽऽज्यस्य वेतु तथा यज॥२॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यदि राजान: स्वयं न्यायमार्गेषु गच्छन्त: प्रजानां रक्षा विदध्युस्तेऽपराजितार: सन्त: शत्रूणां विजेतार: स्यु:॥२॥

पदार्थ:-हे (**होत:**) ग्रहण करने वाले पुरुष! आप जैसे (**होता**) सुख का दाता (**ऊतिभि:**) रक्षाओं तथा (**मधुमत्तमै:**) अतिमीठे जल आदि से युक्त (**पथिभि:**) धर्मयुक्त मार्गों से (**तनूनपातम्**) शरीरों के रक्षक (**जेतारम्**) जयशील (**अपराजितम्**) शत्रुओं से न जीतने योग्य (**स्वर्विदम्**) सुख को प्राप्त (**देवम्**) विद्या और विनय से सुशोभित (**इन्द्रम्**) परम ऐश्वर्यकारक राजा का (**यक्षत्**) सङ्ग करे (**नराशंसेन**) मनुष्यों से प्रशंसा की गई (**तेजसा**) प्रगल्भता से (**आज्यस्य**) जानने योग्य विषय को (**वेतु**) प्राप्त हो, वैसे (**यज**) सङ्ग कीजिये॥२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो राजा लोग स्वयं राज्य के न्याय मार्ग में चलते हुए प्रजाओं की रक्षा करें, वे पराजय को न प्राप्त होते हुए शत्रुओं के जीतने वाले हों॥२॥

होतेत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव ऋषिः। इन्द्रो देवता। स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

होता यक्षदिडाभिरिन्द्रमीडितमाजुह्वानममर्त्यम्।

देवो देवैः सवीर्यो वज्रहस्तः पुरन्दरो वेत्वाज्यस्य होतर्यज॥ ३॥

होता। यक्षत्। इडाभिः। इन्द्रम्। ईडितम्। आजुह्वानमित्याऽजुह्वानम्। अमर्त्यम्। देवः। देवैः। सवीर्य इति सऽवीर्यः। वज्रहस्त इति वज्रऽहस्तः। पुरन्दर इति पुरम्ऽदरः। वेतु। आज्यस्य। होतः। यज॥ ३॥

पदार्थः-(होता) (यक्षत्) (इडाभिः) सुशिक्षिताभिर्वाग्भिः **(इन्द्रम्)** परमविद्यैश्वर्यसम्पन्नम् **(ईडितम्)** प्रशस्तम् **(आजुह्वानम्)** स्पर्द्धमानम् **(अमर्त्यम्)** साधारणैर्मनुष्यैरसदृशम् **(देवः)** विद्वान् **(देवैः)** विद्वद्भिः सह **(सवीर्यः)** बलोपेतः **(वज्रहस्तः)** वज्राणि शस्त्रास्त्राणि हस्ते यस्य सः **(पुरन्दरः)** योऽरिपुराणि दृणाति सः **(वेतु)** प्राप्नोतु **(आज्यस्य)** विज्ञानेन रक्षितुं योग्यस्य राज्यस्य **(होतः) (यज)**॥ ३॥

अन्वयः-हे होतस्त्वं यथा होतेडाभिरमर्त्यमाजुह्वानमीडितमिन्द्रं यक्षद् यथाऽयं वज्रहस्तः पुरन्दरः सवीर्यो देवो देवैः सहाज्यस्यावयवान् वेतु तथा यज॥ ३॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा राजराजपुरुषाः पितृवत् प्रजाः पालयेयुस्तथैव प्रजा एतान् पितृवत् सेवेरन्, य आप्तविद्वदनुमत्या सर्वाणि कार्याणि कुर्युस्ते भ्रमं नाप्नुयुः॥ ३॥

पदार्थः-हे **(होतः)** ग्रहीता पुरुष! आप जैसे **(होता)** सुखदाता जन **(इडाभिः)** अच्छी शिक्षित वाणियों से **(अमर्त्यम्)** साधारण मनुष्यों से विलक्षण **(आजुह्वानम्)** स्पर्द्धा करते हुए **(ईडितम्)** प्रशंसित **(इन्द्रम्)** उत्तम विद्या और ऐश्वर्य से युक्त राजपुरुष को **(यक्षत्)** प्राप्त होवे, जैसे यह **(वज्रहस्तः)** हाथों में शस्त्र-अस्त्र धारण किये **(पुरन्दरः)** शत्रुओं के नगरों को तोड़ने वाला **(सवीर्यः)** बलयुक्त **(देवः)** विद्वान् जन **(देवैः)** विद्वानों के साथ **(आज्यस्य)** विज्ञान से रक्षा करने योग्य राज्य के अवयवों को **(वेतु)** प्राप्त होवे, वैसे **(यज)** समागम कीजिये॥ ३॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे राजा और राजपुरुष पिता के समान प्रजाओं की पालना करें, वैसे ही प्रजा इन को पिता के तुल्य सेवें। जो आप्त विद्वानों की अनुमति से सब काम करें, वे भ्रम को नहीं पावें॥ ३॥

होतेत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव ऋषिः। रुद्रो देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

होता॑ यक्षद् ब॒र्हिषीन्द्रं॑ निष॒द्वरं॑ वृ॑ष॒भं नर्या॑पसम्।
वसु॑भी रु॒द्रैरा॑दि॒त्यैः स॒युग्भि॑र्ब॒र्हिरास॑दद् वेत्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑॥४॥

होता॑। य॒क्षत्। ब॒र्हिषि॑। इन्द्र॑म्। नि॒ष॒द्वर॑म्। नि॒स॒द्वर॒मिति॑ नि॒सत्ऽव॒र॑म्। वृ॒ष॒भम्। नर्या॑प॒स॒मिति॒ नर्य॑ऽअपसम्। वसु॑भि॒रिति॒ वसु॑ऽभिः। रु॒द्रैः। आ॒दि॒त्यैः। स॒युग्भि॒रिति॑ स॒युक्ऽभिः॑। ब॒र्हिः। आ। अ॒स॒द॒त्। वे॒तु॑। आज्य॑स्य। होत॑रिति॒ होतः॑। यज॑॥४॥

पदार्थः-(**होता**) (**यक्षत्**) (**बर्हिषि**) उत्तमायां विद्वत्सभायाम् (**इन्द्रम्**) नीत्या सुशोभमानम् (**निषद्वरम्**) निषीदन्ति वराः श्रेष्ठा मनुष्या यस्य समीपे तम् (**वृषभम्**) सर्वोत्कृष्टं बलिष्ठम् (**नर्यापसम्**) नृषु साधून्यपांसि कर्माणि यस्य तम् (**वसुभिः**) प्रथमकल्पैः (**रुद्रैः**) मध्यकक्षास्थैः (**आदित्यैः**) उत्तमकल्पैश्च विद्वद्भिः (**सयुग्भिः**) ये युञ्जन्ते तैः (**बर्हिः**) उत्तमां सभाम् (**आसदत्**) आसीदति (**वेतु**) प्राप्नोतु (**आज्यस्य**) कर्त्तव्यस्य न्यायस्य (**होतः**) (**यज**)॥४॥

अन्वयः-हे होतर्होता यथा सयुग्भिर्वसुभी रुद्रैरादित्यै सह बर्हिषि निषद्वरं वृषभं नर्यापसमिन्द्रं यक्षदाज्यस्य बर्हिरासदत् सुखं वेतु तथा यज॥४॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा पृथिव्यादयो लोकाः, प्राणादयो वायवः, कालावयवाः मासाः सह वर्त्तन्ते, तथा ये राजप्रजाजनाः परम्परानुकूल्ये वर्त्तित्वा सभया प्रजापालनं कुर्युस्ते श्रेष्ठां प्रशंसां प्राप्नुवन्ति॥४॥

पदार्थः-हे (**होतः**) उत्तम दान के दाता पुरुष! (**होता**) सुख चाहने वाला पुरुष जैसे (**सयुग्भिः**) एक साथ योग करने वाले (**वसुभिः**) प्रथम कक्षा के (**रुद्रैः**) मध्यम कक्षा के और (**आदित्यैः**) उत्तम कक्षा के विद्वानों के साथ (**बर्हिषि**) उत्तम विद्वानों की सभा में (**निषद्वरम्**) जिस के निकट श्रेष्ठ जन बैठें, उस (**वृषभम्**) सब से उत्तम बली (**नर्यापसम्**) मनुष्यों के उत्तम कामों का सेवन करने हारे (**इन्द्रम्**) नीति से शोभित राजा को (**यक्षत्**) प्राप्त होवे, (**आज्यस्य**) करने योग्य न्याय की (**बर्हिः**) उत्तम सभा में (**आ, असदत्**) स्थित होवे और (**वेतु**) सुख को प्राप्त होवे, वैसे (**यज**) प्राप्त हूजिये॥४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे पृथिवी आदि लोक, प्राण आदि वायु तथा काल के अवयव महीने सब साथ वर्त्तमान हैं, वैसे जो राजा और प्रजा के जन आपस में अनुकूल वर्त्त के सभा से प्रजा का पालन करें, वे उत्तम प्रशंसा को पाते हैं॥४॥

होतेत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव ऋषिः। इन्द्रो देवता। निचृदतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनः कीदृशो जनाः सुखिनो भवन्तीत्याह॥

फिर कैसे मनुष्य सुखी होते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

होता यक्षदोजो न वीर्यꣳ सहो द्वारऽ इन्द्रमवर्द्धयन्।

सुप्रायणाऽ अस्मिन् यज्ञे वि श्रयन्तामृतावृधो द्वार इन्द्राय मीढुषे व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज॥५॥

होता। यक्षत्। ओजः। न। वीर्यम्। सहः। द्वारः। इन्द्रम्। अवर्द्धयन्। सुप्रायणाः। सुप्रायना इति सुऽप्रायनाः। अस्मिन्। यज्ञे। वि। श्रयन्ताम्। ऋतावृधः। ऋतवृध इत्यृतऽवृधः। द्वारः। इन्द्राय। मीढुषे। व्यन्तु। आज्यस्य। होतः। यज॥५॥

पदार्थः-(होता) (यक्षत्) (ओजः) जलवेगः। **ओज इत्युदकना०** (निघं०१।१२) **(न)** इव **(वीर्यम्)** बलम् **(सहः)** सहनम् **(द्वारः)** द्वाराणि **(इन्द्रम्)** ऐश्वर्यम् **(अवर्द्धयन्)** वर्धयन्तु **(सुप्रायणाः)** शोभनानि प्रकृष्टान्ययनानि यासु ताः **(अस्मिन्)** वर्त्तमाने **(यज्ञे)** संगन्तव्ये संसारे **(वि) (श्रयन्ताम्)** सेवन्ताम् **(ऋतावृधः)** या ऋतं सत्यं वर्द्धयन्ति ताः **(द्वारः)** विद्याविनयद्वाराणि **(इन्द्राय)** परमैश्वर्ययुक्ताय **(मीढुषे)** स्निग्धाय सेचनसमर्थाय **(व्यन्तु)** प्राप्नुवन्तु **(आज्यस्य)** विज्ञेयस्य राज्यविषयस्य **(होतः) (यज)**॥५॥

अन्वयः-हे होतर्यथा याः सुप्रायणा द्वार ओजो न वीर्यं सह इन्द्रं चावर्द्धयन्, ता ऋतावृधो द्वारो मीढुष इन्द्रायास्मिन् यज्ञे विद्वांसो विश्रयन्तामाज्यस्य व्यन्तु होता च यक्षत् तथा यज॥५॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। ये मनुष्या अस्मिन् संसारे विद्याधर्मद्वाराण्युद्घाट्य पदार्थविद्यां संसेव्यैश्वर्यं वर्द्धयन्ति तेऽतुलानि सुखानि प्राप्नुवन्ति॥५॥

पदार्थः-हे **(होतः)** यज्ञ करनेहारे जन! जैसे जो **(सुप्रायणाः)** सुन्दर अवकाश वाले **(द्वारः)** द्वार **(ओजः)** जलवेग के **(न)** समान **(वीर्यम्)** बल **(सहः)** सहन और **(इन्द्रम्)** ऐश्वर्य को **(अवर्द्धयन्)** बढ़ावें, उन **(ऋतावृधः)** सत्य को बढ़ाने वाले **(द्वारः)** विद्या और विनय के द्वारों को **(मीढुषे)** स्निग्ध वीर्यवान् **(इन्द्राय)** उत्तम ऐश्वर्ययुक्त राजा के लिये **(अस्मिन्)** इस **(यज्ञे)** संगति के योग्य संसार में विद्वान् लोग **(वि, श्रयन्ताम्)** विशेष सेवन करें **(आज्यस्य)** जानने योग्य राज्य के विषय को **(व्यन्तु)** प्राप्त हों और **(होता)** ग्रहीता जन **(यक्षत्)** यज्ञ करे, वैसे **(यज)** यज्ञ कीजिये॥५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जो मनुष्य इस संसार में विद्या और धर्म के द्वारों को प्रसिद्ध कर पदार्थविद्या को सम्यक् सेवन करके ऐश्वर्य को बढ़ाते हैं, वे अतुल सुखों को पाते हैं॥५॥

होतेत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव ऋषिः। इन्द्रो देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनर्मनुष्यैः किं कर्त्तव्यमित्याह॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

होता यक्षदुषेऽ इन्द्रस्य धेनू सुदुघे मातरा मही।
सवातरौ न तेजसा वत्समिन्द्रमवर्द्धतां वीतामाज्यस्य होतर्यज॥६॥

होता। यक्षत्। उषेऽइत्युषे। इन्द्रस्य। धेनूऽइति धेनू। सुदुघेऽइति सुऽदुघे। मातरा। महीऽइति मही। सवातराविति सऽवातरौ। न। तेजसा। वत्सम्। इन्द्रम्। अवर्द्धताम्। वीताम्। आज्यस्य। होतः। यज॥६॥

पदार्थः-(**होता**) (**यक्षत्**) (**उषे**) प्रतापयुक्त (**इन्द्रस्य**) विद्युतः (**धेनू**) दुग्धदात्र्यौ गावौ (**सुदुघे**) सुष्ठु कामप्रपूरिके (**मातरा**) मातृवद्वर्त्तमाने (**मही**) महत्यौ (**सवातरौ**) वायुना सह वर्त्तमानौ (**न**) इव (**तेजसा**) तीक्ष्णप्रतापेन (**वत्सम्**) (**इन्द्रम्**) परमैश्वर्यम् (**अवर्द्धताम्**) वर्द्धेत (**वीताम्**) प्राप्नुताम् (**आज्यस्य**) प्रक्षेप्तुं योग्यस्य (**होतः**) (**यज**)॥६॥

अन्वयः-हे होतस्त्वं यथेन्द्रस्य सुदुघे मातरा मही धेनू सवातरौ नोषे भौतिकसूर्य्याऽग्न्योस्तेजसेन्द्रं वत्सं वीतां होताऽऽज्यस्य यक्षदवर्द्धतां तथा यज॥६॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। हे मनुष्याः! यूयं यथा वायुना प्रेरितौ भौमविद्युतावग्नी सूर्यलोकतेजो वर्द्धयतो यथा धेनुवद्वर्त्तमाने उषे सर्वेषां व्यवहाराणामारम्भनिवर्त्तिके भवतस्तथा प्रयतध्वम्॥६॥

पदार्थः-हे (**होतः**) सुखदाता जन! आप जैसे (**इन्द्रस्य**) बिजुली की (**सुदुघे**) सुन्दर कामनाओं की पूरक (**मातरा**) माता के तुल्य वर्त्तमान (**मही**) बड़ी (**धेनू, सवातरौ**) वायु के साथ वर्त्तमान दुग्ध देने वाली दो गौ के (**न**) समान (**उषे**) प्रतापयुक्त भौतिक और सूर्यरूप अग्नि के (**तेजसा**) तीक्ष्ण प्रताप से (**इन्द्रम्**) परम ऐश्वर्ययुक्त (**वत्सम्**) बालक को (**वीताम्**) प्राप्त हों तथा (**होता**) दाता (**आज्यस्य**) फेंकने योग्य वस्तु का (**यक्षत्**) संग करे और (**अवर्द्धताम्**) बढ़े, वैसे (**यज**) यज्ञ कीजिये॥६॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। हे मनुष्यो! तुम जैसे वायु से प्रेरणा किये भौतिक और विद्युत् अग्नि सूर्यलोक के तेज को बढ़ाते हैं और जैसे दुग्धदात्री गौ के तुल्य वर्त्तमान प्रतापयुक्त दिन-रात सब व्यवहारों के आरम्भ और निवृत्ति करानेहारे होते हैं, वैसे यत्न किया करो॥६॥

होतेत्यस्य बृहदुक्थो गोतम ऋषिः। अश्विनौ देवते। जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

होता यक्षद् दैव्या होतारा भिषजा सखाया हविषेन्द्रं भिषज्यतः।

कुवी देवौ प्रचेतसाविन्द्राय धत्तऽ इन्द्रियं वीतामाज्यस्य होतर्यज॥७॥

होता। यक्षत्। दैव्या। होतारा। भिषजा। सखाया। हुविषा। इन्द्रम्। भिषज्यतः। कुवीऽइति कुवी। देवौ। प्रचेतसाविति प्रऽचेतसौ। इन्द्राय। धत्तः। इन्द्रियम्। वीताम्। आज्यस्य। होतः। यज॥७॥

पदार्थः-(**होता**) सुखप्रदाता (**यक्षत्**) (**दैव्या**) देवेषु विद्वत्सु साधू (**होतारा**) रोगं निवर्त्य सुखस्य प्रदातारौ (**भिषजा**) चिकित्सकौ (**सखाया**) सुहृदौ (**हविषा**) यथायोग्येन गृहीतव्यवहारेण (**इन्द्रम्**) परमैश्वर्यमिच्छुकं जीवम् (**भिषज्यतः**) चिकित्सां कुरुतः (**कवी**) प्राज्ञौ (**देवौ**) वैद्यकविद्यया प्रकाशमानौ (**प्रचेतसौ**) प्रकृष्टविज्ञानयुक्तौ (**इन्द्राय**) परमैश्वर्याय (**धत्तः**) दध्याताम् (**इन्द्रियम्**) धनम् (**वीताम्**) प्राप्नुताम् (**आज्यस्य**) निदानादेः (**होतः**) युक्ताहारविहारकृत् (**यज**) प्राप्नुहि॥७॥

अन्वयः-हे होतस्त्वं यथा होताऽऽज्यस्य यक्षद्दैव्या होतारा सखाया कवी प्रचेतसौ देवौ भिषजा हविषेन्द्रं भिषज्यत इन्द्रायेन्द्रियं धत्त आयुर्वीतां तथा यज॥७॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे मनुष्याः! यथा सद्वैद्या रोगिणोऽनुकम्प्यौषधादिना रोगान् निवार्यैश्वर्यायुषी वर्द्धयन्ति, तथा यूयं सर्वेषु मैत्रीं भावयित्वा सर्वेषां सुखायुषी वर्द्धयत॥७॥

पदार्थः-हे (**होतः**) युक्त आहार-विहार के करने हारे वैद्यजन! जैसे (**होता**) सुख देनेहारे आप (**आज्यस्य**) जानने योग्य निदान आदि विषय को (**यक्षत्**) सङ्गत करते हैं, (**दैव्या**) विद्वानों में उत्तम (**होतारा**) रोग को निवृत्त कर सुख देने वाले (**सखाया**) परस्पर मित्र (**कवी**) बुद्धिमान् (**प्रचेतसौ**) उत्तम विज्ञान से युक्त (**देवौ**) वैद्यक विद्या से प्रकाशमान (**भिषजा**) चिकित्सा करने वाले दो वैद्य (**हविषा**) यथायोग्य ग्रहण करने योग्य व्यवहार से (**इन्द्रम्**) परम ऐश्वर्य के चाहने वाले जीव की (**भिषज्यतः**) चिकित्सा करते (**इन्द्राय**) उत्तम ऐश्वर्य के लिये (**इन्द्रियम्**) धन को (**धत्तः**) धारण करते और अवस्था को (**वीताम्**) प्राप्त होते हैं, वैसे (**यज**) प्राप्त हूजिये॥७॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जैसे श्रेष्ठ वैद्य रोगियों पर कृपा कर ओषधि आदि के उपाय से रोगों को निवृत्त कर ऐश्वर्य और आयुर्दा को बढ़ाते हैं, वैसे तुम लोग सब प्राणियों में मित्रता की वृत्ति कर सब के सुख और अवस्था को बढ़ाओ॥७॥

होतेत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः। इन्द्रो देवता। निचृज्जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

होता यक्षत् तिस्रो देवीर्न भेषजं त्रयस्त्रिधातवोऽपसऽ इडा सरस्वती भारती मुहीः।
इन्द्रपत्नीर्हविष्मतीर्व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज॥८॥

होता। यक्षत्। तिस्रः। देवीः। न। भेषजम्। त्रयः। त्रिधातव इति त्रिऽधातवः। अपसः। इडा। सरस्वती। भारती। महीः। इन्द्रपत्नीरितीन्द्रऽपत्नीः। हविष्मतीः। व्यन्तु। आज्यस्य। होतः। यज॥८॥

पदार्थः-(**होता**) विद्याया दाताऽऽदाता वा (**यक्षत्**) (**तिस्रः**) त्रित्वसङ्ख्याकाः (**देवीः**) सकलविद्याप्रकाशिकाः (**न**) इव (**भेषजम्**) औषधम् (**त्रयः**) अध्यापकोपदेशकवैद्याः (**त्रिधातवः**) त्रयोऽस्थिमज्जवीर्याणि धातवो येभ्यस्ते (**अपसः**) कर्मठाः (**इडा**) प्रशंसितुमर्हा (**सरस्वती**) बहुविज्ञानयुक्ता (**भारती**) सुष्ठु विद्याया धारिका पोषिका वा वाणी (**महीः**) महती पूज्याः (**इन्द्रपत्नीः**) इन्द्रस्य जीवस्य पत्नीः स्त्रीवद् वर्त्तमानाः (**हविष्मतीः**) विविधविज्ञानसहिताः (**व्यन्तु**) प्राप्नुवन्तु (**आज्यस्य**) प्राप्तुं योग्यस्याऽध्यापनाऽध्ययनव्यवहारस्य (**होतः**) (**यज**)॥८॥

अन्वयः-हे होतर्यथा होताऽऽज्यस्य यक्षत्। यथा त्रिधातवोऽपसस्त्रयस्तिस्रो देवीर्न भेषजं मही इडा सरस्वती भारती च हविष्मतीरिन्द्रपत्नीर्व्यन्तु तथा यज॥८॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा प्रशस्ता विज्ञानवती सुमेधा च स्त्रियः स्वसदृशान् पतीन् प्राप्य मोदन्ते तथाऽध्यापकोपदेशकवैद्या मनुष्याः स्तुतिविज्ञानयोगधारणायुक्तास्त्रिविधा वाचः प्राप्याऽऽनन्दन्ति॥८॥

पदार्थः-हे (**होतः**) सुख चाहने वाले जन! जैसे (**होता**) विद्या का देने लेने वाला अध्यापक (**आज्यस्य**) प्राप्त होने योग्य पढ़ने-पढ़ाने रूप व्यवहार को (**यक्षत्**) प्राप्त होवे, जैसे (**त्रिधातवः**) हाड़, चरबी और वीर्य इन तीन धातुओं के वर्धक (**अपसः**) कर्मों में चेष्टा करते हुए (**त्रयः**) अध्यापक, उपदेशक और वैद्य (**तिस्रः**) तीन (**देवीः**) सब विद्याओं की प्रकाशिका वाणियों के (**न**) समान (**भेषजम्**) औषध को (**महीः**) बड़ी पूज्य (**इडा**) प्रशंसा के योग्य (**सरस्वती**) बहुत विज्ञान वाली और (**भारती**) सुन्दर विद्या का धारण वा पोषण करने वाली (**हविष्मतीः**) विविध विज्ञानों के सहित (**इन्द्रपत्नीः**) जीवात्मा की स्त्रियों के तुल्य वर्त्तमान वाणी (**व्यन्तु**) प्राप्त हों, वैसे (**यज**) उन को संगत कीजिए॥८॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे प्रशंसित विज्ञानवती और उत्तम बुद्धिमती स्त्रियाँ अपने योग्य पतियों को प्राप्त होकर प्रसन्न होती हैं, वैसे अध्यापक, उपदेशक और वैद्य लोग स्तुति, ज्ञान और योगधारणायुक्त तीन प्रकार की वाणियों को प्राप्त होकर आनन्दित होते हैं॥८॥

होतेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। इन्द्रो देवता। निचृदतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

होता यक्षत् त्वष्टारमिन्द्रं देवं भिषजंꣳसुयजं घृतश्रियम्।

पुरुरूपꣳ सुरेतसं मघोनमिन्द्राय त्वष्टा दधदिन्द्रियाणि वेत्वाज्यस्य होतर्यज॥९॥

होता। यक्षत्। त्वष्टारम्। इन्द्रम्। देवम्। भिषजम्। सुयजमिति सुऽयजम्। घृतश्रियमिति घृतऽश्रियम्। पुरुरूपमिति पुरुऽरूपम्। सुरेतसमिति सुऽरेतसम्। मघोनम्। इन्द्राय। त्वष्टा। दधत्। इन्द्रियाणि। वेतु। आज्यस्य। होतः। यज॥९॥

पदार्थः-(होता) (यक्षत्) (त्वष्टारम्) दोषविच्छेदकम् **(इन्द्रम्)** ऐश्वर्यवन्तम् **(देवम्)** देदीप्यमानम् **(भिषजम्)** वैद्यम् **(सुयजम्)** सुष्ठु सङ्गन्तारम् **(घृतश्रियम्)** घृतेनोदकेन शोभमानम् **(पुरुरूपम्)** बहुरूपम् **(सुरेतसम्)** सुष्ठु वीर्यम् **(मघोनम्)** परमपूजितधनम् **(इन्द्राय)** जीवाय **(त्वष्टा)** प्रकाशकः **(दधत्)** धरन् सन् **(इन्द्रियाणि)** श्रोत्रादीनि धनानि वा **(वेतु)** प्राप्नोतु **(आज्यस्य)** ज्ञातुं योग्यस्य **(होतः) (यज)**॥९॥

अन्वयः-हे होतर्यथा होता त्वष्टारं सुरेतसं मघोनं पुरुरूपं घृतश्रियं सुयजं भिषजं देवमिन्द्रं यक्षदाज्यस्येन्द्रायेन्द्रियाणि दधत् सन् त्वष्टा वेतु तथा यज॥९॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे मनुष्याः! यूयमाप्तं रोगनिवारकं श्रेष्ठौषधदायकं धनैश्वर्यवर्द्धकं वैद्यं सेवित्वा शरीरात्माऽन्तःकरणेन्द्रियाणां बलं वर्द्धयित्वा परमैश्वर्यं प्राप्नुत॥९॥

पदार्थः-हे **(होतः)** शुभगुणों के दाता! जैसे **(होता)** पथ्य आहार-विहार कर्त्ता जन **(त्वष्टारम्)** धातुवैषम्य से हुए दोषों को नष्ट करने वाले **(सुरेतसम्)** सुन्दर पराक्रमयुक्त **(मघोनम्)** परम प्रशस्त धनवान् **(पुरुरूपम्)** बहुरूप **(घृतश्रियम्)** जल से शोभायमान **(सुयजम्)** सुन्दर संग करने वाले **(भिषजम्)** वैद्य **(देवम्)** तेजस्वी **(इन्द्रम्)** ऐश्वर्यवान् पुरुष का **(यक्षत्)** संग करता है और **(आज्यस्य)** जानने योग्य वचन के **(इन्द्राय)** प्रेरक जीव के लिए **(इन्द्रियाणि)** कान आदि इन्द्रियों वा धनों को **(दधत्)** धारण करता हुआ **(त्वष्टा)** तेजस्वी हुआ **(वेतु)** प्राप्त होता है, वैसे तू **(यज)** संग कर॥९॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! तुम लोग आप्त, सत्यवादी, रोगनिवारक, सुन्दर ओषधि देने, धन ऐश्वर्य के बढ़ाने वाले वैद्यजन का सेवन कर शरीर, आत्मा, अन्तःकरण और इन्द्रियों के बल को बढ़ा के परम ऐश्वर्य का प्राप्त होओ॥९॥

होतेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। बृहस्पतिर्देवता। स्वराडतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः।

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

होता यक्षद् वनस्पतिꣳशमितारꣳ शतक्रतुं धियो जोष्टारमिन्द्रियम्।

मध्वा समञ्जन् पथिभिः सुगेभिः स्वदाति यज्ञं मधुना घृतेन वेत्वाज्यस्य होतर्यज॥ १०॥

होता। यक्षत्। वनस्पतिम्। शमितारम्। शतक्रतुमिति शतऽक्रतुम्। धियः। जोष्टारम्। इन्द्रियम्। मध्वा। समञ्जन्निति सम्ऽअञ्जन्। पथिभिरिति पथिऽभिः। सुगेभिरिति सुऽगेभिः। स्वदाति। यज्ञम्। मधुना। घृतेन। वेतु। आज्यस्य। होतः। यज॥ १०॥

पदार्थः-(**होता**) (**यक्षत्**) (**वनस्पतिम्**) वनानां किरणानां स्वामिनं सूर्यम् (**शमितारम्**) यजमानम् (**शतक्रतुम्**) असंख्यातप्रज्ञम् (**धियः**) प्रज्ञायाः कर्मणो वा (**जोष्टारम्**) प्रीतं सेवमानम् (**इन्द्रियम्**) धनम् (**मध्वा**) मधुरेण विज्ञानेन (**समञ्जन्**) सम्यक् प्रकटयन् (**पथिभिः**) मार्गैः (**सुगेभिः**) सुखेन गमनाधिकरणैः (**स्वदाति**) आस्वदेत। अत्र व्यत्ययेन परस्मैपदम्। (**यज्ञम्**) संगतं व्यवहारम् (**मधुना**) मधुरेण (**घृतेन**) आज्येनोदकेन वा (**वेतु**) व्याप्नोतु (**आज्यस्य**) विज्ञेयस्य संसारस्य (**होतः**) दातर्जन (**यज**) प्राप्नुहि॥ १०॥

अन्वयः-हे होतर्यथा होता वनस्पतिमिव शमितारं शतक्रतुं धियो जोष्टारं यक्षन्मध्वा सुगेभिः पथिभिराज्यस्येन्द्रियं समञ्जन् स्वदाति मधुना घृतेन यक्षं वेतु तथा यज॥ १०॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये मनुष्याः सूर्यवद्विद्याप्रज्ञाधर्मैश्वर्यप्रापका धर्म्ममार्गैर्गच्छन्तः सुखानि भुञ्जीरंस्तेऽन्येषामपि सुखप्रदा भवन्ति॥ १०॥

पदार्थः-हे (**होतः**) दान देने हारे जन! जैसे (**होता**) यज्ञकर्त्ता पुरुष (**वनस्पतिम्**) किरणों के स्वामी सूर्य के तुल्य (**शमितारम्**) यजमान (**शतक्रतुम्**) अनेक प्रकार की बुद्धि से युक्त (**धियः**) बुद्धि वा कर्म को (**जोष्टारम्**) प्रसन्न वा सेवन करते हुए पुरुष का (**यक्षत्**) सङ्ग करे (**मध्वा**) मधुर विज्ञान से (**सुगेभिः**) सुखपूर्वक गमन करने के आधार (**पथिभिः**) मार्गों करके (**आज्यस्य**) जानने योग्य संसार के (**इन्द्रियम्**) धन को (**समञ्जन्**) सम्यक् प्रकट करता हुआ (**स्वदाति**) स्वाद लेवे और (**मधुना**) मधुर (**घृतेन**) घी वा जल से (**यज्ञम्**) संगति के योग्य व्यवहार को (**वेतु**) प्राप्त होवे, वैसे (**यज**) तुम भी प्राप्त होओ॥ १०॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य सूर्य के तुल्य विद्या, बुद्धि, धर्म और ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाले धर्मयुक्त मार्गों से चलते हुए सुखों को भोगें, वे औरों को भी सुख देनेवाले होते हैं॥ १०॥

होतेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। इन्द्रो देवता। निचृच्छक्वरी छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

होता यक्षदिन्द्रꣳ स्वाहाज्यस्य स्वाहा मेदसः स्वाहा स्तोकानाꣳ स्वाहा स्वाहाकृतीनाꣳ स्वाहा हव्यसूक्तीनाम्। स्वाहा देवाऽ आज्यपा जुषाणाऽ इन्द्रऽ आज्यस्य व्यन्तु होतर्यज॥ ११॥

होता। यक्षत्। इन्द्रम्। स्वाहा। आज्यस्य। स्वाहा। मेदसः। स्वाहा। स्तोकानाम्। स्वाहा। स्वाहाकृतीनामिति स्वाहाऽकृतीनाम्। स्वाहा। हव्यसूक्तीनामिति हव्यऽसूक्तीनाम्। स्वाहा। देवाः। आज्यपा इत्याज्यऽपाः। जुषाणाः। इन्द्रः। आज्यस्य। व्यन्तु। होतः। यज॥ ११॥

पदार्थः-(**होता**) (**यक्षत्**) (**इन्द्रम्**) परमैश्वर्यम् (**स्वाहा**) सत्यां वाचम् (**आज्यस्य**) ज्ञातुमर्हस्य (**स्वाहा**) सत्यक्रियया (**मेदसः**) स्निग्धस्य (**स्वाहा**) (**स्तोकानाम्**) अपत्यानाम् (**स्वाहा**) (**स्वाहाकृतीनाम्**) सत्यवाक्क्रियाऽनुष्ठानानाम् (**स्वाहा**) (**हव्यसूक्तीनाम्**) बहूनि हव्यानां सूक्तानि यासु तासाम् (**स्वाहा**) (**देवाः**) विद्वांसः (**आज्यपाः**) य आज्यं पिबन्ति वाऽऽज्येन रक्षन्ति ते (**जुषाणाः**) प्रीताः (**इन्द्रः**) परमैश्वर्यप्रदः (**आज्यस्य**) (**व्यन्तु**) (**होतः**) (**यज**)॥ ११॥

अन्वयः-हे होतर्यथेन्द्रो होताऽऽज्यस्य स्वाहा मेदसः स्वाहा स्तोकानां स्वाहा स्वाहाकृतीनां स्वाहा हव्यसूक्तीनां स्वाहेन्द्रं यक्षद् यथा स्वाहाऽऽज्यस्य जुषाणा आज्यपा देवा इन्द्रं व्यन्तु तथा यज॥ ११॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये पुरुषा शरीरात्माऽपत्यसत्क्रियाविद्यानां वृद्धिं चिकीर्षन्ति ते सर्वतः सुखापन्ना भवन्ति॥ ११॥

पदार्थः-हे (**होतः**) विद्यादाता पुरुष! जैसे (**इन्द्रः**) परम ऐश्वर्य का दाता (**होता**) विद्योन्नति को ग्रहण करने हारा जन (**आज्यस्य**) जानने योग्य शास्त्र की (**स्वाहा**) सत्य वाणी को (**मेदसः**) चिकने धातु की (**स्वाहा**) यथार्थ क्रिया को (**स्तोकानाम्**) छोटे बालकों की (**स्वाहा**) उत्तम प्रिय वाणी को (**स्वाहाकृतीनाम्**) सत्य वाणी तथा क्रिया के अनुष्ठानों की (**स्वाहा**) होमक्रिया को और (**हव्यसूक्तीनाम्**) बहुत ग्रहण करने योग्य शास्त्रों के सुन्दर वचनों से युक्त बुद्धियों की (**स्वाहा**) उत्तम क्रियायुक्त (**इन्द्रम्**) परम ऐश्वर्य को (**यक्षत्**) प्राप्त होता है, जैसे (**स्वाहा**) सत्यवाणी करके (**आज्यस्य**) स्निग्ध वचन को (**जुषाणाः**) प्रसन्न किये हुए (**आज्यपाः**) घी आदि को पीने वा उससे रक्षा करने वाले (**देवाः**) विद्वान् लोग ऐश्वर्य को (**व्यन्तु**) प्राप्त हों, वैसे (**यज**) यज्ञ कीजिये॥ ११॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो पुरुष शरीर, आत्मा, सन्तान, सत्कार और विद्या वृद्धि करना चाहते हैं, वे सब ओर से सुखयुक्त होते हैं॥ ११॥

देवमित्यस्याश्विनावृषी। इन्द्रो देवता। निचृदतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

दे॒वं ब॒र्हिरिन्द्र॑ꣳ सुदे॒वं दे॒वैर्वी॒रव॑त् स्ती॒र्णं वेद्या॒मव॑र्द्धयत्।
वस्तो॑र्वृ॒तं प्राक्तो॑र्भृ॒तꣳ रा॒या ब॒र्हिष्म॑तो॒ऽत्य॑गाद् व॑सु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वेतु॒ यज॑॥ १२॥

दे॒वम्। ब॒र्हिः। इन्द्र॑म्। सु॒दे॒वमिति॑ सु॒ऽदे॒वम्। दे॒वैः। वी॒रव॒दिति॑ वी॒रऽव॑त्। स्ती॒र्णम्। वेद्या॑म्। अ॒व॒र्द्ध॒य॒त्। वस्तोः॑। वृ॒तम्। प्र। अ॒क्तोः। भृ॒तम्। रा॒या। ब॒र्हिष्म॑तः। अति॑। अ॒गा॒त्। व॒सु॒वन॒ इति॑ वसु॒ऽवने॑। व॒सु॒धेय॒स्येति॑ वसु॒ऽधेय॑स्य। वे॒तु॒। यज॑॥ १२॥

पदार्थः-**(देवम्)** दिव्यगुणम् **(बर्हिः)** अन्तरिक्षमिव। **बर्हिरित्यन्तरिक्षना॰** (निघं॰१।३) **(इन्द्रम्)** परमैश्वर्यकारकम् **(सुदेवम्)** शोभनं विद्वांसम् **(देवैः)** विद्वद्भिः **(वीरवत्)** वीरैस्तुल्यम् **(स्तीर्णम्)** काष्ठैर्हविषा चाऽऽच्छादनीयम् **(वेद्याम्)** हवनाधारे कुण्डे **(अवर्द्धयत्)** वर्द्धयेत् **(वस्तोः)** दिने **(वृतम्)** स्वीकृतम् **(प्र)** **(अक्तोः)** रात्रौ **(भृतम्)** धृतम् **(राया)** धनेन **(बर्हिष्मतः)** अन्तरिक्षस्य सम्बन्धो विद्यते येषां तान् **(अति)** उल्लङ्घने **(अगात्)** गच्छति **(वसुवने)** धनानां संविभागे **(वसुधेयस्य)** वसूनि धेयानि यस्मिँस्तस्य जगतः **(वेतु)** **(यज)**॥१२॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यथा बर्हिष्मतोऽत्यगाद् वसुधेयस्य वसुवने वेद्यां स्तीर्णं वस्तोर्वृतमक्तोर्भृतं हुतं द्रव्यं नैरोग्यं प्रावर्द्धयत् सुखं वेतु तथा बर्हिरिव राया सह देवं देवैः सह वीरवद्वर्त्तमानं सुदेवमिन्द्रं यज॥१२॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा यजमानो वेद्यां समित्सु चितं हुतघृतमग्निं वर्द्धयित्वाऽन्तरिक्षस्थानि वायुजलादीनि शोधयित्वा रोगनिवारणेन सर्वान् प्राणिनः प्रीणयति, तथैव सज्जना जना धनादिना सर्वान् सुखयन्ति॥१२॥

पदार्थः-हे विद्वन्! जैसे **(बर्हिष्मतः)** अन्तरिक्ष के साथ सम्बन्ध रखने वाले वायु जलों को **(अति, अगात्)** उलङ्घ कर जाता **(वसुधेयस्य)** जिस में धनों का धारण होता है, उस जगत् के **(वसुवने)** धनों के सेवने तथा **(वेद्याम्)** हवन के कुण्ड में **(स्तीर्णम्)** समिधा और घृतादि से रक्षा करने योग्य **(वस्तोः)** दिन में **(वृतम्)** स्वीकार किया **(अक्तोः)** रात्रि में **(भृतम्)** धारण किया, हवन किया हुआ द्रव्य नीरोगता को **(प्र, अवर्द्धयत्)** अच्छे प्रकार बढ़ावे तथा सुख को **(वेतु)** प्राप्त करे, वैसे **(बर्हिः)** अन्तरिक्ष के तुल्य **(राया)** धन के साथ **(देवम्)** उत्तम गुण वाले **(देवैः)** विद्वानों के साथ **(वीरवत्)** वीरजनों के तुल्य वर्त्तमान **(इन्द्रम्)** उत्तम ऐश्वर्य करने वाले **(सुदेवम्)** सुन्दर विद्वान् का **(यज)** संग कीजिये॥१२॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे यजमान वेदि में समिधाओं में सुन्दर प्रकार चयन किये और घृत चढ़ाये हुए अग्नि को बढ़ा, अन्तरिक्षस्थ वायु जल आदि को शुद्ध कर,

रोग के निवारण से सब प्राणियों को तृप्त करता है, वैसे ही सज्जन जन धनादि से सब को सुखी करते हैं॥१२॥

देवीरित्यस्याश्विनावृषी। इन्द्रो देवता। भुरिक् शक्वरी छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

देवीर्द्वारऽ इन्द्रꣳसङ्घाते वीड्वीर्यामन्नवर्द्धयन्। आ वत्सेन तरुणेन कुमारेण च मीवतापार्वाणꣳ रेणुककाटं नुदन्तां वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज॥१३॥

देवीः। द्वारः। इन्द्रम्। सङ्घात इति सम्ऽघाते। वीड्वीः। यामन्। अवर्द्धयन्। आ। वत्सेन। तरुणेन। कुमारेण। च। मीवता। अप। अर्वाणम्। रेणुककाटमिति रेणुऽककाटम्। नुदन्ताम्। वसुवन इति वसुऽवने। वसुधेयस्येति वसुऽधेयस्य। व्यन्तु। यज॥१३॥

पदार्थः-(**देवीः**) देदीप्यमानाः (**द्वारः**) द्वाराणि (**इन्द्रम्**) ऐश्वर्यम् (**सङ्घाते**) सम्बन्धे (**वीड्वीः**) विशेषेण स्तोतुं योग्याः (**यामन्**) यामनि मार्गे (**अवर्द्धयन्**) वर्द्धयन्ति (**आ**) (**वत्सेन**) वत्सवद् वर्त्तमानेन (**तरुणेन**) युवाऽवस्थेन (**कुमारेण**) अकृतविवाहेन (**च**) (**मीवता**) हिंसता (**अप**) (**अर्वाणम्**) गच्छन्तमश्वम् (**रेणुककाटम्**) रेणुकैर्युक्तं कूपम् (**नुदन्ताम्**) प्रेरयन्तु (**वसुवने**) (**वसुधेयस्य**) (**व्यन्तु**) प्राप्नुवन्तु (**यज**)॥१३॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यथा वीड्वीर्देवीर्द्वारो रेणुककाटं यामन् वर्जयित्वा तरुणेन मीवता कुमारेण वत्सेन च सह वर्त्तमानमर्वाणमिन्द्रमावर्द्धयन् वसुवने सङ्घाते वसुधेयस्य विघ्नमप नुदन्तां वयन्तु तथा यज॥१३॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे मनुष्याः! यथा पथिका मार्गे वर्त्तमानं कूपं निवार्य शुद्धं मार्गं कृत्वा प्राणिनः सुखेन गमयन्ति, तथा बाल्यावस्थायां विवाहादीन् विघ्नान् निवार्य विद्यां प्रापय्य स्वसन्तानान् सुखमार्गे गमयन्तु॥१३॥

पदार्थः-हे विद्वन्! जैसे (**वीड्वीः**) विशेषकर स्तुति के योग्य (**देवीः**) प्रकाशमान (**द्वारः**) द्वार (**रेणुककाटम्**) धूलि से युक्त कूप अर्थात् अन्धकुआ को (**यामन्**) मार्ग में छोड़ के (**तरुणेन**) ज्वान (**मीवता**) शूर दुष्ट हिंसा करते हुए (**च**) और (**कुमारेण**) ब्रह्मचारी (**वत्सेन**) बछरे के तुल्य जन के साथ वर्त्तमान (**अर्वाणम्**) चलते हुए घोड़े यथा (**इन्द्रम्**) ऐश्वर्य को (**आ, अवर्धयन्**) बढ़ाते हैं, (**वसुवने**) धन के सेवने योग्य (**सङ्घाते**) सम्बन्ध में (**वसुधेयस्य**) धनधारक संसार के विघ्न को (**अप, नुदन्ताम्**) प्रेरित करो और (**व्यन्तु**) प्राप्त होओ, वैसे (**यज**) प्राप्त हूजिये॥१३॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जैसे बटोही जन मार्ग में वर्त्तमान कूप को छोड़, शुद्ध मार्ग कर प्राणियों को सुख से पहुंचाते हैं, वैसे बाल्यावस्था में विवाहादि विघ्नों को हटा विद्या प्राप्त करा के अपने सन्तानों को सुख के मार्ग में चलावें।१३॥

देवीत्यस्याश्विनावृषी। अहोरात्रे देवते। स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

दे॒वीऽ उ॒षासा॒नक्तेन्द्रं॑ य॒ज्ञे प्र॑य॒त्य॒ह्वेताम्।
दैवी॒र्विश॒: प्राया॑सिष्टा॒ᳬ सुप्री॑ते॒ सुधि॑ते वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वीतां॒ यज॑॥ १४॥

दे॒वी इति॑ दे॒वी। उ॒षासा॒नक्ता॑। उ॒षसा॒नक्तेन्यु॒षसा॒ऽनक्ता॑। इन्द्र॑म्। य॒ज्ञे। प्र॒य॒तीति॑। प्र॒ऽय॒ति। अ॒ह्वेता॒म्। दैवी॑:। विश॑:। प्र। अ॒या॒सि॒ष्टा॒म्। सु॒प्री॑ते॒ इति॒ सु॒ऽप्री॑ते। सु॒धि॑ते॒ इति॒ सु॒ऽधि॑ते॒। व॒सु॒व॒न॒ इति॑ व॒सु॒ऽव॒ने॑। व॒सु॒धे॒य॒स्येति॑ व॒सु॒ऽधेय॑स्य। वी॒ता॒म्। यज॑॥ १४॥

पदार्थः-(**देवी**) देदीप्यमाने (**उषासानक्ता**) रात्रिदिने (**इन्द्रम्**) परमैश्वर्यवन्तं यजमानम् (**यज्ञे**) संगन्तव्ये यज्ञादिव्यवहारे (**प्रयति**) प्रयतन्ते यस्मिंस्तत्र (**अह्वेताम्**) आह्वयतः (**दैवीः**) देवानां न्यायकारिणां विदुषामिमाः (**विशः**) प्रजाः (**प्र**) (**अयासिष्टाम्**) प्राप्नुतः (**सुप्रीते**) सुष्ठु प्रीतिर्याभ्यां ते (**सुधिते**) सुष्ठु हितकरे (**वसुवने**) धनविभागे (**वसुधेयस्य**) कोषस्य (**वीताम्**) व्याप्नुताम् (**यज**)॥ १४॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यथा सुप्रीते सुधिते देवी उषासानक्ता प्रयति यज्ञ इन्द्रमह्वेतां वसुधेयस्य वसुवने दैवीर्विशः प्रायासिष्टां सर्वं जगद्वीतां व्याप्नुतां तथा यज॥ १४॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे मनुष्याः! यथाऽहर्निशं नियमेन वर्त्तित्वा प्राणिनो व्यवहारयति तथा यूयं नियमेन वर्त्तित्वा प्रजा आनन्द्य सुखयत॥ १४॥

पदार्थः-हे विद्वन्! जैसे (**सुप्रीते**) सुन्दर प्रीति के हेतु (**सुधिते**) अच्छे हितकारी (**देवी**) प्रकाशमान (**उषासानक्ता**) रात-दिन (**प्रयति**) प्रयत्न के निमित्त (**यज्ञे**) सङ्गति के योग्य यज्ञ आदि व्यवहार में (**इन्द्रम्**) परमैश्वर्ययुक्त यजमान को (**अह्वेताम्**) शब्द व्यवहार कराते (**वसुधेयस्य**) जिसमें धन धारण हो, उस खजाने के (**वसुवने**) धन विभाग में (**दैवीः**) न्यायकारी विद्वानों की इन (**विशः**) प्रजाओं को (**प्र, अयासिष्टाम्**) प्राप्त होते हैं और सब जगत् को (**वीताम्**) प्राप्त हो, वैसे आप (**यज**) यज्ञ कीजिये॥ १४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जैसे दिन-रात नियम से वर्त्तकर प्राणियों को शब्दादि व्यवहार कराते हैं, वैसे तुम लोग नियम से वर्त्तकर प्रजाओं को आनन्द दे सुखी करो॥१४॥

देवी इत्यस्याश्विनावृषी। इन्द्रो देवता। भुरिगतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

दे॒वी जोष्ट्री॒ वसु॑धिती दे॒वमिन्द्र॑मवर्धताम्। अया॑व्य॒न्याघा द्वेषा॑छंस्यान्या व॑क्ष॒द्वसु॒ वार्या॑णि॒ यज॑मानाय शिक्षि॒ते व॑सु॒वने॑ व॑सु॒धेय॑स्य वीता॒ं यज॑॥१५॥

दे॒वी इति॑ दे॒वी। जोष्ट्री॒ इति॒ जोष्ट्री॑। वसु॑धिती॒ इति॒ वसु॑ऽधिती। दे॒वम्। इन्द्र॑म्। अ॒व॒र्ध॒ता॒म्। अया॑वि। अ॒न्या। अ॒घा। द्वेषा॑छंसि। आ। अ॒न्या। व॒क्ष॒त्। वसु॑। वार्या॑णि। यज॑मानाय। शि॒क्षि॒त इति॑ शिक्षि॒ते। व॒सु॒व॒न इति॑ वसु॒ऽवने॑। व॒सु॒धे॒य॒स्येति॑ वसु॒ऽधेय॑स्य। वी॒ता॒म्। यज॑॥१५॥

पदार्थः-(**देवी**) देदीप्यमाने (**जोष्ट्री**) सेवमाने (**वसुधिती**) द्रव्यधारिके (**देवम्**) प्रकाशस्वरूपम् (**इन्द्रम्**) सूर्यम् (**अवर्द्धताम्**) वर्धयतः (**अयावि**) पृथक्कुरुतः (**अन्या**) भिन्ना (**अघा**) अन्धकाररूपा (**द्वेषांसि**) द्वेषयुक्तानि जन्तुजातानि (**आ**) (**अन्या**) भिन्ना प्रकाशरूपोषाः (**वक्षत्**) वहेत् (**वसु**) धनम् (**वार्याणि**) वारिषूदकेषु साधूनि (**यजमानाय**) पुरुषार्थिने (**शिक्षिते**) कृतशिक्षे सत्यौ (**वसुवने**) पृथिव्यादीनां संविभागे जगति (**वसुधेयस्य**) अन्तरिक्षस्य मध्ये (**वीताम्**) व्याप्नुताम् (**यज**) यज्ञं कुरु॥१५॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यथा वसुधिती जोष्ट्री देवी उषासानक्तेन्द्रं देवमवर्द्धतान्तयोरन्याऽघा द्वेषांस्यायाव्यन्या च वसु वार्याणि च वक्षत्। यजमानाय वसुधेयस्य वसुवने शिक्षिते वीतां तथा यज॥१५॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे मनुष्याः! यूयं यथा रात्रिदिने विभक्ते सती मनुष्यादीनां सर्वे व्यवहारं वर्द्धयतस्तयो रात्रिः प्राणिनः स्वापयित्वा द्वेषादीन् निवर्त्तयति। अन्यद्दिनञ्च तान् द्वेषादीन् प्रापयति सर्वान् व्यवहारान् प्रद्योतयति च तथा योगाभ्यासेन रागादीन् निवार्य शान्त्यादीन् गुणान् प्राप्य सुखानि प्राप्नुत॥१५॥

पदार्थः-हे विद्वन्! जैसे (**वसुधिती**) द्रव्य को धारण करने वाले (**जोष्ट्री**) सब पदार्थों को सेवन करते हुए (**देवी**) प्रकाशमान दिन-रात (**देवम्**) प्रकाशस्वरूप (**इन्द्रम्**) सूर्य को (**अवर्द्धताम्**) बढ़ाते हैं, उन दिन-रात के बीच (**अन्या**) एक (**अघा**) अन्धकाररूप रात्रि (**द्वेषांसि**) द्वेषयुक्त जन्तुओं को (**आ, अयावि**) अच्छे प्रकार पृथक् करती और (**अन्या**) उन दोनों में से एक प्रात:काल

उषा **(वसु)** धन तथा **(वार्याणि)** उत्तम जलों को **(वक्षत्)** प्राप्त करे **(यजमानाय)** पुरुषार्थी मनुष्य के लिए **(वसुधेयस्य)** आकाश के बीच **(वसुवने)** जिस में पृथिवी आदि का विभाग हो, ऐसे जगत् में **(शिक्षिते)** जिन में मनुष्यों ने शिक्षा की ऐसे हुए दिन रात **(वीताम्)** व्याप्त होवें **(यज)** यज्ञ कीजिए॥१५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! तुम लोग जैसे रात-दिन विभाग को प्राप्त हुए मनुष्यादि प्राणियों के सब व्यवहार को बढ़ाते हैं, उन में से रात्रि प्राणियों को सुलाकर द्वेष आदि को निवृत्त करती और दिन उन द्वेषादि को प्राप्त और सब व्यवहारों को प्रकट करता है, वैसे प्रातःकाल में योगाभ्यास से रागादि दोषों को निवृत्त और शान्ति आदि गुणों को प्राप्त होकर सुखों को प्राप्त होओ॥१५॥

देवी इत्यस्याश्विनावृषी। इन्द्रो देवता। भुरिगाकृतिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

देवीऽऊर्जाहुती दुघे सुदुघे पयसेन्द्रमवर्द्धताम्। इषमूर्जमन्या वक्षत्सग्धिꣳ सपीतिमन्या नवेन पूर्वं दयमाने पुराणेन नवमधातामूर्जमूर्जाहुतीऽ ऊर्जयमाने वसु वार्याणि यजमानाय शिक्षिते वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज॥१६॥

देवीऽइति देवी। ऊर्जाहुती इत्यूर्जाऽआहुती। दुघे। सुदुघे इति सुऽदुघे। पयसा। इन्द्रम्। अवर्द्धताम्। इषम्। ऊर्जम्। अन्या। वक्षत्। सग्धिम्। सपीतिमिति सऽपीतिम्। अन्या। नवेन। पूर्वम्। दयमाने इति दयमाने। पुराणेन। नवम्। अधाताम्। ऊर्जम्। ऊर्जाहुती इत्यूर्जाऽआहुती। ऊर्जयमानेऽइत्यूर्जयमाने। वसु। वार्याणि। यजमानाय। शिक्षितेऽइति शिक्षिते। वसुवन इति वसुऽवने। वसुधेयस्येति वसुऽधेयस्य। वीताम्। यज॥१६॥

पदार्थः-**(देवी)** दिव्यगुणप्रापिके **(ऊर्जाहुती)** बलप्राणधारिके **(दुघे)** सुखानां प्रपूरिके **(सुदुघे)** सुष्ठु कामवर्द्धिके **(पयसा)** जलेन **(इन्द्रम्)** ऐश्वर्यम् **(अवर्द्धताम्)** वर्द्धयतः **(इषम्)** अन्नम् **(ऊर्जम्)** बलम् **(अन्या)** रात्रिः **(वक्षत्)** प्रापयति **(सग्धिम्)** समानं भोजनम् **(सपीतिम्)** पानेन सह वर्त्तमानम् **(अन्या)** दिनाख्या **(नवेन)** नवीनेन **(पूर्वम्)** **(दयमाने)** रात्र्यौ **(पुराणेन)** प्राचीनेन स्वरूपेण **(नवम्)** नवीनं स्वरूपम् **(अधाताम्)** दध्याताम् **(ऊर्जम्)** प्राणनम् **(ऊर्जाहुती)** बलस्यादात्र्यौ **(ऊर्जयमाने)** बलं कुर्वाणे **(वसु)** धनम् **(वार्याणि)** वरितुमर्हाणि कर्माणि **(यजमानाय)** सङ्गत्यै प्रवर्त्तमानाय जीवाय **(शिक्षिते)** विद्वद्भिरुपदिष्टे **(वसुवने)** धनदानाधिकरणे **(वसुधेयस्य)** वस्वैश्वर्यं धेयं यत्र तस्येश्वरस्य **(वीताम्)** व्याप्नुताम् **(यज)** संगच्छस्व॥१६॥

अन्वयः-हे विद्वन् यथा वसुधेयस्य वसुवने वर्त्तमाने विद्वद्भिर्वसु वार्याणि शिक्षिते रात्रिदिने यजमानाय व्यवहारं वीतां तथोर्जाहुती देवी पयसा दुघे सुदुघे सत्याविन्द्रमवर्द्धतां तयोरन्या इषमूर्जं वक्षदन्या सपीतिं सग्धिं वक्षद् दयमाने सत्यौ नवेन पूर्वं पुराणेन नवमधातामूर्जयमाने ऊर्जाहुती ऊर्जमधातां तथा यज॥१६॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे मनुष्याः! यथा रात्रिदिने वर्त्तमानस्वरूपेण पूर्वापरस्वरूपज्ञापिके आहारविहारप्रापिके वर्त्तेते तथाऽग्नौ हुता आहुतयः सर्वसुखप्रपूरिका जायन्ते। यदि मनुष्याः कालस्य सूक्ष्मामपि वेलां व्यर्थां नयेयुर्वाय्वादिपदार्थान्न शोधयेयुरदृष्टमनुमानेन न विद्युस्तर्हि सुखमपि नाप्नुयुः॥१६॥

पदार्थः-हे विद्वन्! जैसे **(वसुधेयस्य)** ऐश्वर्य धारण करने योग्य ईश्वर के **(वसुवने)** धन दान के स्थान जगत् में वर्त्तमान विद्वानों ने **(वार्याणि)** ग्रहण करने योग्य **(वसु)** धन की **(शिक्षिते)** जिन में शिक्षा की जावे, वे रात-दिन **(यजमानाय)** संगति के लिए प्रवृत्त हुए जीव के लिए व्यवहार को **(वीताम्)** व्याप्त हों, वैसे **(ऊर्जाहुती)** बल तथा प्राण को धारण करने और **(देवी)** उत्तम गुणों को प्राप्त करने वाले दिन रात **(पयसा)** जल से **(दुघे)** सुखों को पूर्ण और **(सुदुघे)** सुन्दर कामनाओं के बढ़ाने वाले होते हुए **(इन्द्रम्)** ऐश्वर्य को **(अवर्धताम्)** बढ़ाते हैं उन में से **(अन्या)** एक **(इषम्)** अन्न और **(ऊर्जम्)** बल को **(वक्षत्)** पहुँचाती और **(अन्या)** दिनरूप वेला **(सपीतिम्)** पीने के सहित **(सग्धिम्)** ठीक समान भोजन को पहुँचाती है, **(दयमाने)** आवागमन गुण वाली अगली पिछली दो रात्रि प्रवृत्त हुई **(नवेन)** नये पदार्थ के साथ **(पूर्वम्)** प्राचीन और **(पुराणेन)** पुराणे के साथ **(नवम्)** नवीन स्वरूप वस्तु को **(अधाताम्)** धारण करे, **(ऊर्जयमाने)** बल करते हुए **(ऊर्जाहुती)** अवस्था घटाने से बल को लेने हारे दिन-रात **(ऊर्जम्)** जीवन को धारण करें, वैसे आप **(यज)** यज्ञ कीजिए॥१६॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जैसे रात-दिन अपने वर्त्तमान रूप से पूर्वापररूप को जताने तथा आहार-विहार को प्राप्त करने वाले होते हैं, वैसे अग्नि में होमी हुई आहुतीं सब सुखों को पूर्ण करने वाली होती हैं। जो मनुष्य काल की सूक्ष्म वेला को भी व्यर्थ गमायें, वायु आदि पदार्थों को शुद्ध न करें, अदृष्ट पदार्थ को अनुमान से न जानें तो सुख को भी न प्राप्त हों॥१६॥

देवा इत्यस्याश्विनावृषी। अश्विनौ देवते। भुरिग्जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

देवा दैव्या होतारा देवमिन्द्रमवर्द्धताम्। हताघशंसावाभार्ष्टां वसु वार्याणि यजमानाय शिक्षितौ वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज॥१७॥

देवा। दैव्या। होतारा। देवम्। इन्द्रम्। अवर्द्धताम्। हताघशंसाविति हतऽअघशंसौ। आ। अभार्ष्टाम्। वसु। वार्याणि। यजमानाय। शिक्षितौ। वसुवन इति वसुऽवने। वसुधेयस्येति वसुऽधेयस्य। वीताम्। यज॥१७॥

पदार्थः-(**देवा**) सुखप्रदातारौ (**दैव्या**) देवेषु दिव्येषु गुणेषु भवौ (**होतारा**) धर्त्तारौ वायुपावकौ (**देवम्**) दिव्यगुणम् (**इन्द्रम्**) सूर्यम् (**अवर्द्धताम्**) वर्धयताम् (**हताघशंसौ**) हता अघशंसाः स्तेना याभ्यान्तौ (**आ**) (**अभार्ष्टाम्**) दहताम् (**वसु**) धनम् (**वार्याणि**) वर्त्तुमर्हाण्युदकानि (**यजमानाय**) (**शिक्षितौ**) विज्ञापितौ (**वसुवने**) (**वसुधेयस्य**) (**वीताम्**) व्याप्नुताम् (**यज**)॥१७॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यथा दैव्या होतारा देवा वायुवह्नी इन्द्रं देवमवर्द्धतां हताघशंसौ रोगानाभार्ष्टां यजमानाय शिक्षितौ सन्तौ वसुधेयस्य वसुवने वसु वार्याणि च वीतां तथा यज॥१७॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यदि मनुष्या वायुविद्युतौ सूर्यनिमित्ते विज्ञायोपयुज्य धनानि सञ्चिनुयुस्तर्हि स्तेननाशकाः स्युः॥१७॥

पदार्थः-हे विद्वन्! जैसे (**दैव्या**) उत्तम गुणों में प्रसिद्ध (**होतारा**) जगत् के धर्त्ता (**देवा**) सुख देने हारे वायु और अग्नि (**देवम्**) दिव्यगुणयुक्त (**इन्द्रम्**) सूर्य को (**अवर्द्धताम्**) बढ़ावें, (**हताघशंसौ**) चोरों को मारने के हेतु हुए रोगों को (**आ, अभार्ष्टाम्**) अच्छे प्रकार नष्ट करें, (**यजमानाय**) कर्म में प्रवृत्त हुए जीव के लिये (**शिक्षितौ**) जताये हुए (**वसुधेयस्य**) सब ऐश्वर्य के आधार ईश्वर के (**वसुवने**) धनदान के स्थान जगत् में (**वसु**) धन और (**वार्यणि**) ग्रहण करने योग्य जलों को (**वीताम्**) व्याप्त होवें, वैसे आप (**यज**) यज्ञ कीजिए॥१७॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य सूर्यलोक के निमित्त वायु और बिजुली को जान और उपयोग में लाके धनों का संचय करें तो चोरों को मारने वाले होवें॥१७॥

देवी इत्यस्याश्विनावृषी। इन्द्रो देवता। अतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

देवीस्तिस्रस्तिस्रो देवीः पतिमिन्द्रमवर्धयन्। अस्पृक्षद् भारती दिवं रुद्रैर्यज्ञं सरस्वतीडा वसुमती गृहान् वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज॥१८॥

देवीः। तिस्रः। तिस्रः। देवीः। पतिम्। इन्द्रम्। अवर्धयन्। अस्पृक्षत्। भारती। दिवम्। रुद्रैः। यज्ञम्। सरस्वती। इडा। वसुमतीति वसुऽमती। गृहान्। वसुवन इति वसुऽवने। वसुधेयस्येति वसुऽधेयस्य। व्यन्तु। यज॥१८॥

पदार्थः-(**देवीः**) देव्यः (**तिस्रः**) त्रित्वसंख्याकाः (**तिस्रः**) पुनरुक्तमतिशयबोधनार्थम् (**देवीः**) दिव्याः क्रियाः (**पतिम्**) पालकम् (**इन्द्रम्**) सूर्यमिव जीवम् (**अवर्द्धयन्**) वर्द्धयन्ति (**अस्पृक्षत्**) स्पृहेत् (**भारती**) धारिका (**दिवम्**) प्रकाशम् (**रुद्रैः**) प्राणैः (**यज्ञम्**) सङ्गन्तव्यं व्यवहारम् (**सरस्वती**) विज्ञानयुक्ता वाक् (**इडा**) प्रशंसनीया वाणी (**वसुमती**) बहूनि वसूनि द्रव्याणि विद्यन्ते यस्यां सा (**गृहान्**) गृहस्थान् गृहाणि वा (**वसुवने**) (**वसुधेयस्य**) (**व्यन्तु**) (**यज**)॥१८॥

अन्वयः-हे विद्वन्! या रुद्रैर्भारती दिवं सरस्वती यज्ञं वसुमतीडा गृहान् धरन्त्यो देवीस्तिस्रस्तिस्रो देवीः पतिमिन्द्रञ्चावर्द्धयन् वसुधेयस्य वसुवने गृहान् व्यन्तु तास्त्वं यज भवानस्पृक्षत्॥१८॥

भावार्थः-यथा जलाग्निवायुगतयो दिव्याः क्रियाः सूर्यप्रकाशं च वर्द्धयन्ति, तथा ये मनुष्याः सकलविद्याधारिकामखिलक्रियाहेतुं सर्वदोषगुणविज्ञापिकां त्रिविधां वाचं विजानन्ति, तेऽस्मिन् सर्वद्रव्याकरे संसारे श्रियमाप्नुवन्ति॥१८॥

पदार्थः-हे विद्वन्! जो (**रुद्रैः**) प्राणों से (**भारती**) धारण करने हारी (**दिवम्**) प्रकाश को (**सरस्वती**) विज्ञानयुक्त वाणी (**यज्ञम्**) सङ्गति के योग्य व्यवहार को (**वसुमती**) बहुत द्रव्यों वाली (**इडा**) प्रशंसा के योग्य वाणी (**गृहान्**) घरों वा गृहस्थों को धारण करती हुई (**देवीः, तिस्रः**) (**तिस्रः, देवीः**) तीन दिव्य क्रिया (**यहां पुनरुक्ति आवश्यकता जताने के लिए है**) (**पतिम्**) पालन करने हारे (**इन्द्रम्**) सूर्य के तुल्य तेजस्वी जीव को (**अवर्धयन्**) बढ़ाती हैं, (**वसुधेयस्य**) धन कोष के (**वसुवने**) धन दान में घरों को (**व्यन्तु**) प्राप्त हों, उनको आप (**यज**) प्राप्त हूजिये और आप (**अस्पृक्षत्**) अभिलाषा कीजिए॥१८॥

भावार्थः-जैसे जल अग्नि और वायु की गति उत्तम क्रियाओं और सूर्य के प्रकाश को बढ़ाती हैं, वैसे जो मनुष्य सब विद्याओं का धारण करने सब क्रिया का हेतु और सब दोष गुणों को जताने वाली तीन प्रकार की वाणी को जानते हैं, वे इस सब द्रव्यों के आधार संसार में लक्ष्मी को प्राप्त हो जाते हैं॥१८॥

देव इत्यस्याश्विनावृषी। इन्द्रो देवता। कृतिश्छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

देवऽइन्द्रो नराशꣳसस्त्रिवरूथस्त्रिबन्धुरो देवमिन्द्रमवर्धयत्। शतेन शितिपृष्ठानामाहितः सहस्रेण प्र वर्त्तते मित्रावरुणेदस्य होत्रमर्हतो बृहस्पति स्तोत्रमश्विनाऽध्वर्यवं वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज॥१९॥

दे॒वः। इन्द्रः॑। न॒रा॒शꣳसः॑। त्रि॒व॒रू॒थ इति॑ त्रि॒ऽव॒रू॒थः। त्रि॒व॒न्धु॒र इति॑ त्रि॒ऽब॒न्धु॒रः। दे॒वम्। इन्द्र॑म्। अ॒व॒र्ध॒य॒त्। श॒तेन॑। शि॒ति॒पृ॒ष्ठाना॒मिति॑ शि॒ति॒ऽपृ॒ष्ठाना॑म्। आहि॑त॒ इत्याहि॑तः। स॒हस्रे॑ण। प्र। व॒र्त्त॒ते। मि॒त्रावरु॑णा। इत्। अ॒स्य॒। हो॒त्रम्। अर्ह॑तः। बृह॒स्पतिः॑। स्तो॒त्रम्। अ॒श्विना॑। अध्व॑र्यवम्। व॒सु॒व॒न इति॑ वसु॒ऽवने॑। व॒सु॒धे॒य॒स्येति॑ वसु॒ऽधेय॑स्य। वे॒तु॒। यज॑॥१९॥

पदार्थः-(**देवः**) जीवः (**इन्द्रः**) ऐश्वर्यमिच्छुकः (**नराशंसः**) यो नराञ्छंसति स्तौति सः (**त्रिवरूथः**) त्रीणि त्रिविधसुखप्रदानि वरूथानि गृहाणि यस्य सः (**त्रिबन्धुरः**) त्रयो बन्धुरा बन्धनानि यस्य सः (**देवम्**) देदीप्यमानम् (**इन्द्रम्**) विद्युतम् (**अवर्द्धयत्**) वर्धयेत् (**शतेन**) एतत्सङ्ख्याकेन कर्मणा (**शितिपृष्ठानाम्**) शितयस्तीक्ष्णा गतयः पृष्ठे येषान्तेषाम् (**आहितः**) समन्ताद् धृतः (**सहस्रेण**) असङ्ख्येन पुरुषार्थेन (**प्र, वर्त्तते**) (**मित्रावरुणा**) प्राणोदानौ (**इत्**) एव (**अस्य**) जीवस्य (**होत्रम्**) अदनम् (**अर्हतः**) (**बृहस्पतिः**) बृहतां पालको विद्युद् रूपोऽग्निः (**स्तोत्रम्**) स्तुवन्ति येन तत् (**अश्विना**) सूर्याचन्द्रमसौ (**अध्वर्यवम्**) य आत्मनोऽध्वरमिच्छति तम्। अत्र वाच्छन्दसीत्यस्यपि गुणावादेशौ (**वसुवने**) यो वसूनि वनुते याचते तस्मै (**वसुधेयस्य**) संसारस्य (**वेतु**) (**यज**)॥१९॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यथा त्रिबन्धुरस्त्रिवरूथो नराशंसो देव इन्द्रः शतेनेन्द्रं देवमवर्धयद्, यः शितिपृष्ठानां मध्य आहितः सहस्रेण प्रवर्त्तते, मित्रावरुणास्येद्धोत्रमर्हतो वसुधेयस्य बृहस्पतिः स्तोत्रमश्विनाऽध्वर्यवं वसुवने वेतु तथा यज॥१९॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये मनुष्यास्त्रिविधसुखकराणि त्रैकाल्यप्रबन्धानि गृहाणि रचयित्वाऽसङ्ख्यं सुखमवाप्य पथ्यं भोजनं कृत्वा याचमानाय यथायोग्यं वस्तु ददति ते कीर्त्तिं लभन्ते॥१९॥

पदार्थः-हे विद्वन्! जैसे (**त्रिबन्धुरः**) ऋषि आदि रूप तीन बन्धनों वाला (**त्रिवरूथः**) तीन सुखदायक घरों का स्वामी (**नराशंसः**) मनुष्यों की स्तुति करने और (**इन्द्रः**) ऐश्वर्य को चाहने वाला (**देवः**) जीव (**शतेन**) सैकड़ों प्रकार के कर्म से (**देवम्**) प्रकाशमान (**इन्द्रम्**) विद्युद् रूप अग्नि को (**अवर्धयत्**) बढ़ावे। जो (**शितिपृष्ठानाम्**) जिन की पीठ पर बैठने से शीघ्र गमन होते हैं, उन पशुओं के बीच (**आहितः**) अच्छे प्रकार स्थिर हुआ (**सहस्रेण**) असङ्ख्य प्रकार के पुरुषार्थ से (**प्र, वर्त्तते**) प्रवृत्त होता है। (**मित्रावरुणा**) प्राण और उदान (**अस्य**) (**इत्**) ही (**होत्रम्**) भोजन की (**अर्हतः**) योग्यता रखने वाले जीव के सम्बन्धी (**वसुधेयस्य**) संसार के (**बृहस्पतिः**) बड़े-बड़े पदार्थों का रक्षक बिजुली रूप अग्नि (**स्तोत्रम्**) स्तुति के साधन (**अश्विना**) सूर्य-चन्द्रमा और (**अध्वर्यवम्**) अपने को यज्ञ की इच्छा करने वाले जन को (**वसुवने**) धन मांगने वाले के लिए (**वेतु**) कमनीय करे, वैसे (**यज**) सङ्ग कीजिए॥१९॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य विविध प्रकार के सुख करने वाले तीनों अर्थात् भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान काल का प्रबन्ध जिन में हो सके, ऐसे घरों को बना, उन में असंख्य सुख पा और पथ्य भोजन करके मांगने वाले के लिए यथायोग्य पदार्थ देते हैं, वे कीर्त्ति को प्राप्त होते हैं॥१९॥

देव इत्यस्याश्विनावृषी। इन्द्रो देवता। निचृदतिशक्वरी छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनर्विद्वांसः किं कुर्वन्तीत्याह॥

फिर विद्वान् लोग क्या करते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

देवो देवैर्वनस्पतिर्हिरण्यपर्णो मधुशाखः सुपिप्पलो देवमिन्द्रमवर्धयत्।
दिवमग्रेणास्पृक्षदान्तरिक्षं पृथिवीमदृꣳहीद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज॥२०॥

देवः। देवैः। वनस्पतिः। हिरण्यपर्ण इति हिरण्यऽपर्णः। मधुशाख इति मधुऽशाखः। सुपिप्पल इति सुऽपिप्पलः। देवम्। इन्द्रम्। अवर्धयत्। दिवम्। अग्रेण। अस्पृक्षत्। आ। अन्तरिक्षम्। पृथिवीम्। अदृꣳहीत्। वसुवन इति वसुऽवने। वसुऽधेयस्येति वसुऽधेयस्य। वेतु। यज॥२०॥

पदार्थः-(**देवः**) दिव्यगुणप्रदः (**देवैः**) देदीप्यमानैः (**वनस्पतिः**) किरणानां पालकः (**हिरण्यपर्णः**) हिरण्यानि तेजांसि पर्णानि यस्य सः (**मधुशाखः**) मधुराः शाखा यस्य (**सुपिप्पलः**) सुन्दरफलः (**देवम्**) दिव्यगुणम् (**इन्द्रम्**) दारिद्र्यविदारकम् (**अवर्धयत्**) वर्धयति (**दिवम्**) प्रकाशम् (**अग्रेण**) पुरस्सरेण (**अस्पृक्षत्**) स्पृहेत् (**आ**) समन्तात् (**अन्तरिक्षम्**) अवकाशम् (**पृथिवीम्**) भूमिम् (**अदृंहीत्**) धरेत् (**वसुवने**) वसुप्रदाय जीवाय (**वसुधेयस्य**) जगतः (**वेतु**) (**यज**)॥२०॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यथा देवैः सह वर्त्तमानो हिरण्यपर्णो मधुशाखः सुपिप्पलो देवो वनस्पतिर्देवमिन्द्रमवर्द्धयदग्रेण दिवमस्पृक्षदन्तरिक्षं तत्स्थांल्लोकान् पृथिवीञ्चादृंहीद् वसुवने वसुधेयस्य वेतु तथा यज॥२०॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा वनस्पतयो मेघं वर्द्धयन्ति सूर्यश्च लोकान् धरति तथा विद्वांसो विद्यायाचिनं विद्यार्थिनं वर्धयन्ति॥२०॥

पदार्थः-हे विद्वन्! जैसे (**देवैः**) दिव्य प्रकाशमान गुणों के साथ वर्त्तमान (**हिरण्यपर्णः**) सुवर्ण के तुल्य चिलकते हुए पत्तों वाला (**मधुशाखः**) मीठी डालियों से युक्त (**सुपिप्पलः**) सुन्दर फलों वाला (**देवः**) उत्तम गुणों का दाता (**वनस्पतिः**) सूर्य की किरणों में जल पहुंचा कर उष्णता की शान्ति से किरणों का रक्षक वनस्पति (**देवम्**) उत्तम गुणों वाले (**इन्द्रम्**) दरिद्रता के नाशक मेघ को (**अवर्धयत्**) बढ़ावे, (**अग्रेण**) अग्रगामी होने से (**दिवम्**) प्रकाश को (**अस्पृक्षत्**) चाहे, (**अन्तरिक्षम्**) अवकाश, उसमें स्थित लोकों और (**पृथिवीम्**) भूमि को (**आ, अदृंहीत्**) अच्छे प्रकार

धारण करे **(वसुधेयस्य)** संसार के **(वसुवने)** धनदाता जीव के लिए **(वेतु)** उत्पन्न होवे, वैसे आप **(यज)** यज्ञ कीजिए॥२०॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे वनस्पति ऊपर जल चढ़ाकर मेघ को बढ़ाते और सूर्य अन्य लोकों को धारण करता है, वैसे विद्वान् लोग विद्या को चाहने वाले विद्यार्थी को बढ़ाते हैं॥२०॥

देवमित्यस्याश्विनावृषी। इन्द्रो देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

देवं बर्हिर्वारितीनां देवमिन्द्रमवर्धयत्।

स्वासस्थमिन्द्रेणासन्नमन्या बर्हींष्यभ्यभूद् वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज॥२१॥

देवम्। बर्हिः। वारितीनाम्। देवम्। इन्द्रम्। अवर्द्धयत्। स्वासस्थमिति सुऽआसस्थम्। इन्द्रेण। आसन्नमित्याऽसन्नम्। अन्या। बर्हींषि। अभि। अभूत्। वसुवन इति वसुऽवने। वसुधेयस्येति वसुऽधेयस्य। वेतु। यज॥२१॥

पदार्थः-(देवम्) दिव्यम् **(बर्हिः)** अन्तरिक्षम् **(वारितीनाम्)** वरणीयानां पदार्थानां मध्ये **(देवम्)** दिव्यगुणम् **(इन्द्रम्)** विद्युतम् **(अवर्धयत्)** वर्धयति **(स्वासस्थम्)** सुष्ठ्वासते यस्मिँस्तम् **(इन्द्रेण)** ईश्वरेण **(आसन्नम्)** समीपस्थम् **(अन्या)** अन्यानि **(बर्हींषि)** अन्तरिक्षावयवाः **(अभि)** अभितः **(अभूत्)** भवेत् **(वसुवने)** पदार्थविद्यायाचिने **(वसुधेयस्य)** सर्वद्रव्याधारस्य जगतो मध्ये **(वेतु) (यज)**॥२१॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यथा देवं वारितीनां मध्ये वर्त्तमानं स्वासस्थमिन्द्रेण सहासन्नमिन्द्रं बर्हिर्देवमवर्धयदन्या बर्हींष्यभूद् वसुवने वसुधेयस्य वेतु तथा यज॥२१॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे विद्वांसो! मनुष्या यूयं यथाऽभिव्याप्तमाकाशं सर्वान् पदार्थानभिव्याप्नोति, सर्वेषां समीपमस्ति, तथेश्वरस्य समीपवर्त्तिनं जीवं विज्ञायाऽस्मिन् संसारे सुपात्राय याचमानाय दानं ददत॥२१॥

पदार्थः-हे विद्वन्! जैसे **(देवम्)** दिव्य **(वारितीनाम्)** ग्रहण करने योग्य पदार्थों के बीच वर्त्तमान **(स्वासस्थम्)** सुन्दर प्रकार स्थिति के आधार **(इन्द्रेण)** परमेश्वर के साथ **(आसन्नम्)** निकटवर्ती **(बर्हिः)** आकाश **(देवम्)** उत्तम गुण वाले **(इन्द्रम्)** बिजुली को **(अवर्धयत्)** बढ़ाता है, **(अन्या)** और **(बर्हींषि)** अन्तरिक्ष के अवयवों को **(अभि, अभूत्)** सब ओर से व्याप्त होवे,

(वसुधेयस्य) सब द्रव्यों के आधार जगत् के बीच **(वसुवने)** पदार्थविद्या को चाहनेवाले जन के लिए **(वेतु)** प्राप्त होवे, वैसे आप **(यज)** प्राप्त हूजिये॥२१॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे विद्वान् मनुष्यो! तुम लोग जैसे सब ओर से व्याप्त आकाश सब पदार्थों को व्याप्त होता और सब के समीप है, वैसे ईश्वर के निकटवर्ती जीव को जान के इस संसार में मांगने वाले सुपात्र के लिए धनादि का दान देवो॥२१॥

देव इत्यस्याश्विनावृषी। अग्निर्देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

दे॒वोऽअ॒ग्निः स्वि॑ष्ट॒कृद्दे॒वमिन्द्र॑मवर्धयत्।

स्वि॑ष्टं कु॒र्वन्त्स्वि॑ष्ट॒कृत् स्वि॑ष्टम॒द्य क॑रोतु नो वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वेतु॒ यज॑॥२२॥

दे॒वः। अ॒ग्निः। स्वि॒ष्ट॒कृदिति॑ स्विष्ट॒ऽकृत्। दे॒वम्। इन्द्र॑म्। अ॒व॒र्ध॒य॒त्। स्वि॑ष्ट॒मिति॒ सु॒ऽइ॑ष्टम्। कु॒र्वन्। स्वि॒ष्ट॒कृदिति॑ स्विष्ट॒ऽकृत्। स्वि॑ष्ट॒मिति॒ सु॒ऽइ॑ष्टम्। अ॒द्य। क॒रो॒तु॒। न॒ः। व॒सु॒व॒न॒ इति॑ वसु॒ऽवने॑। व॒सु॒धेय॒स्येति॑ वसु॒ऽधेय॑स्य। वे॒तु॒। यज॑॥२२॥

पदार्थः-**(देवः)** दिव्यगुणः **(अग्निः)** पावकः **(स्विष्टकृत्)** यः शोभनमिष्टं करोति सः **(देवम्)** दिव्यगुणम् **(इन्द्रम्)** जीवम् **(अवर्धयत्)** वर्धयेत् **(स्विष्टम्)** शोभनञ्च तदिष्टम् **(कुर्वन्)** सम्पादयन् **(स्विष्टकृत्)** उत्तमेष्टकारी **(स्विष्टम्)** अतिशयेनाभीप्सितम् **(अद्य)** **(करोतु)** **(नः)** अस्मभ्यम् **(वसुवने)** **(वसुधेयस्य)** **(वेतु)** **(यज)**॥२२॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यथा स्विष्टकृद् देवोऽग्निरिन्द्रं देवमवर्धयद्, यथा च स्विष्टं कुर्वन् स्विष्टकृत् सन्नग्निः स्विष्टं करोति, तथाऽद्य नः सुखं करोतु, धनं वेतु वसुधेयस्य वसुवने यज च॥२२॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा गुणकर्मस्वभावैर्विज्ञातः कर्मसु संप्रयुक्तोऽग्निरभीष्टानि कार्याणि साध्नोति तथा विद्वद्भिर्वर्तितव्यम्॥२२॥

पदार्थः-हे विद्वन् जैसे **(स्विष्टकृत्)** सुन्दर प्रकार इष्ट का साधक **(देवः)** उत्तम गुणों वाला **(अग्निः)** अग्नि **(इन्द्रम्, देवम्)** उत्तम गुणों वाले जीव को **(अवर्धयत्)** बढ़ावे, यथा जैसे **(स्विष्टम्)** सुन्दर इष्ट को **(कुर्वन्)** सिद्ध करता और **(स्विष्टकृत्)** उत्तम इष्टकारी हुआ अग्नि **(स्विष्टम्)** अत्यन्त चाहे हुए कार्य को करता है, वैसे **(अद्य)** आज **(नः)** हमारे लिए सुख को **(करोतु)** कीजिए, **(वेतु)** धन को प्राप्त हूजिए और **(वसुधेयस्य)** सब द्रव्यों के आधार जगत् के बीच **(वसुवने)** पदार्थविद्या को चाहते हुए मनुष्य के लिए **(यज)** दान कीजिए॥२२॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे गुण, कर्म, स्वभावों करके जाना गया, कर्मों में नियुक्त किया अग्नि, अभीष्ट कार्यों को सिद्ध करता है, वैसे विद्वानों को वर्त्तना चाहिए॥२२॥

अग्निमित्यस्याश्विनावृषी। अग्निर्देवता। कृतिश्छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमानः पचन् पक्तीः पचन् पुरोडाशं बध्नन्निन्द्राय च्छागम्।

सूपस्थाऽ अद्य देवो वनस्पतिरभवदिन्द्राय च्छागेन।

अद्यत्तं मेदस्तः प्रति पचताग्रभीदवीवृधत् पुरोडाशेन त्वामद्य ऋषे॥२३॥

अग्निम्। अद्य। होतारम्। अवृणीत। अयम्। यजमानः। पचन्। पक्तीः। पचन्। पुरोडाशम्। बध्नन्। इन्द्राय। छागम्। सूपस्था इति सुऽउपस्थाः। अद्य। देवः। वनस्पतिः। अभवत्। इन्द्राय। छागेन। अद्यत्। तम्। मेदस्तः। प्रति। पचता। अग्रभीत्। अवीवृधत्। पुरोडाशेन। त्वाम्। अद्य। ऋषे॥२३॥

पदार्थः-**(अग्निम्)** विद्वांसम् **(अद्य)** इदानीम् **(होतारम्)** **(अवृणीत)** वृणुयात् **(अयम्)** **(यजमानः)** **(पचन्)** **(पक्तीः)** पाकान् **(पचन्)** **(पुरोडाशम्)** पाकविशेषम् **(बध्नन्)** बद्धं कुर्वन् **(इन्द्राय)** ऐश्वर्याय **(छागम्)** छ्यति छिनत्ति रोगान् येन तम् **(सूपस्थाः)** ये सूपतिष्ठन्ति ते **(अद्य)** **(देवः)** **(वनस्पतिः)** वनस्य किरणसमूहस्य पालकः सूर्यः **(अभवत्)** भवेत् **(इन्द्राय)** ऐश्वर्याय **(छागेन)** छेदनेन **(अद्यत्)** अत्ति **(तम्)** **(मेदस्तः)** मेदसः स्निग्धात् **(प्रति)** **(पचता)** **(अग्रभीत्)** गृह्णाति **(अवीवृधत्)** **(पुरोडाशेन)** **(त्वाम्)** **(अद्य)** **(ऋषे)** मन्त्रार्थवित्॥२३॥

अन्वयः-हे ऋषे विद्वन्! यथाऽयं यजमानोऽद्येन्द्राय पक्तीः पचन् पुरोडाशं पचञ्छागं बध्नन्नग्निं होतारमवृणीत। यथा वनस्पतिर्देव इन्द्राय छागेनाद्याभवन्मेदस्तस्तमद्यत् पचता सूपस्थाः स्युस्तथा प्रत्यग्रभीत् पुरोडाशेनावीवृधत् तथा त्वामद्याऽहं वर्द्धयेयं त्वं च तथा वर्त्तस्व॥२३॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा पाककर्त्तारश्शाकादीनि छित्त्वा भित्त्वाऽन्नव्यञ्जनानि पचन्ति तथा सूर्यः सर्वान् पचति। यथा सूर्यो वृष्टिद्वारा सर्वान् वर्द्धयति तथा सेवादिद्वारा मन्त्रार्थद्रष्टारो विद्वांसः सर्वैर्वर्द्धनीयाः॥२३॥

पदार्थः-हे **(ऋषे)** मन्त्रार्थ जानने हारे विद्वन्! जैसे **(अयम्)** यह **(यजमानः)** यज्ञ करने हारा पुरुष **(अद्य)** आज **(इन्द्राय)** ऐश्वर्य प्राप्ति के अर्थ **(पक्तीः)** पाकों को **(पचन्)** पकाता **(पुरोडाशम्)** होम के लिए पाक विशेष को **(पचन्)** पकाता और **(छागम्)** रोगों को नष्ट करने हारी

बकरी को **(बध्नन्)** बांधता हुआ **(होतारम्)** यज्ञ करने में कुशल **(अग्निम्)** तेजस्वी विद्वान् को **(अवृणीत)** स्वीकार करे। जैसे **(वनस्पतिः)** किरणसमूह का रक्षक **(देवः)** प्रकाशयुक्त सूर्यमण्डल **(इन्द्राय)** ऐश्वर्य के लिए **(छागेन)** छेदन करने के साथ **(अद्य)** इस समय **(अभवत्)** प्रसिद्ध होवे **(मेदस्तः)** चिकनाई वा गीलेपन से **(तम्)** उस हुत पदार्थ को **(अद्यत्)** खाता **(पचता)** सब पदार्थों को पकाते हुए सूर्य से **(सूपस्थाः)** सुन्दर उपस्थान करने वाले हों, वैसे **(प्रति, अग्रभीत्)** ग्रहण करता है, **(पुरोडाशेन)** होम के लिए पकाये पदार्थ विशेष से **(अवीवृधत्)** अधिक वृद्धि को प्राप्त होता है, वैसे **(त्वाम्)** आप को **(अद्य)** मैं बढ़ाऊं और आप भी वैसे ही वर्त्ताव कीजिए॥२३॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे रसोइये लोग साग आदि को काट-कूट के अन्न और कढ़ी आदि पकाते हैं, वैसे सूर्य सब पदार्थों को पकाता है। जैसे सूर्य वर्षा के द्वारा सब पदार्थों को बढ़ाता है, वैसे सब मनुष्यों को चाहिए कि सेवादि के द्वारा मन्त्रार्थ देखने वाले विद्वानों को बढ़ावें॥२३॥

होतेत्यस्य सरस्वत्यृषिः। अग्निर्देवता। स्वराड् जगतीछन्दः। निषादः स्वरः।

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

होता यक्षत्समिधानं महद्यशः सुसमिद्धं वरेण्यमग्निमिन्द्रं वयोधसम्।

गायत्रीं छन्दऽइन्द्रियं त्र्यविं गां वयो दधद् वेत्वाज्यस्य होतर्यज॥२४॥

होता। यक्षत्। समिधानमिति समऽइधानम्। महत्। यशः। सुसमिद्धमिति सुऽसमिद्धम्। वरेण्यम्। अग्निम्। इन्द्रम्। वयोधसमिति वयःऽधसम्। गायत्रीम्। छन्दः। इन्द्रियम्। त्र्यविमिति त्रिऽअविम्। गाम्। वयः। दधत्। वेतु। आज्यस्य। होतः। यज॥२४॥

पदार्थः-(होता) दाता **(यक्षत्)** सङ्गच्छेत् **(समिधानम्)** सम्यक् प्रकाशमानम् **(महत्)** **(यशः)** कीर्त्तिम् **(सुसमिद्धम्)** सुष्ठु प्रदीप्यमानम् **(वरेण्यम्)** वर्त्तुमर्हम् **(अग्निम्)** पावकम् **(इन्द्रम्)** परमैश्वर्यकारकम् **(वयोधसम्)** कमनीयायुर्धारकम् **(गायत्रीम्)** सदर्थान् प्रकाशयन्तीम् **(छन्दः)** स्वातन्त्र्यम् **(इन्द्रियम्)** धनं श्रोत्रादि वा **(त्र्यविम्)** या त्रिधाऽवति ताम् **(गाम्)** पृथिवीम् **(वयः)** जीवनम् **(दधत्)** धरन् **(वेतु)** **(आज्यस्य)** **(होतः)** **(यज)**॥२४॥

अन्वयः-हे होतस्त्वं यथा होताग्निमिव समिधानं सुसमिद्धं वरेण्यं महद्यशो वयोधसमिन्द्रं गायत्रीं छन्द इन्द्रियं त्र्यविं गां वयश्च दधत् सन् यक्षदाज्यस्य वेतु तथा यज॥२४॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये सद्विद्यादिपदार्थानां दानं कुर्वन्ति, तेऽतुलां कीर्त्तिं प्राप्य सुखयन्ति॥२४॥

पदार्थः-हे **(होतः)** विद्यादि का ग्रहण करने हारे जन! आप जैसे **(होता)** दाता पुरुष **(अग्निम्)** अग्नि के तुल्य **(समिधानम्)** सम्यक् प्रकाशमान **(सुसमिद्धम्)** सुन्दर शोभायमान **(वरेण्यम्)** ग्रहण करने योग्य **(महत्)** बड़ा **(यशः)** कीर्त्ति **(वयोधसम्)** अभीष्ट अवस्था के धारक **(इन्द्रम्)** उत्तम ऐश्वर्य करने वाले योग **(गायत्रीम्)** सत्य अर्थों का प्रकाश करने वाली गायत्री **(छन्दः)** स्वतन्त्रता **(इन्द्रियम्)** धन वा श्रोत्रादि इन्द्रियों **(त्र्यविम्)** तीन प्रकार से रक्षा करने वाली **(गाम्)** पृथिवी और **(वयः)** जीवन को **(दधत्)** धारण करता हुआ **(यक्षत्)** सङ्ग करे और **(आज्यस्य)** विज्ञान के रस को **(वेतु)** प्राप्त होवे, वैसे आप भी **(यज)** समागम कीजिये॥२४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो पुरुष सत् विद्या आदि पदार्थों का दान करते हैं, वे अतुल कीर्ति को पाकर आप सुखी होते और दूसरों को सुखी करते हैं॥२४॥

होतेत्यस्य सरस्वत्यृषिः। इन्द्रो देवता। भुरिगतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

होता॑ यक्ष॒त्तनू॒नपा॑तमु॒द्भिदं॒ यं गर्भ॒मदि॑तिर्द॒धे शुचि॒मिन्द्रं॑ वयो॒धस॑म्।
उ॒ष्णिहं॒ छन्द॑ऽ इन्द्रि॒यं दि॑त्य॒वाहं॒ गां वयो॒ दध॒द्वेत्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑॥२५॥

होता॑। य॒क्ष॒त्। त॒नू॒नपा॑त॒मिति॑ तनू॒ऽनपा॑तम्। उ॒द्भिद॒मित्यु॑त्ऽभिद॑म्। यम्। गर्भ॑म्। अदि॑तिः। द॒धे। शुचि॑म्। इन्द्र॑म्। व॒यो॒धस॒मिति॑ व॒यः॒ऽधस॑म्। उ॒ष्णिह॑म्। छन्दः॑। इ॒न्द्रि॒यम्। दि॒त्य॒वाह॒मिति॑ दि॒त्य॒ऽवाह॑म्। गाम्। वयः॑। दध॑त्। वेतु॑। आज्य॑स्य। होतः॑। यज॑॥२५॥

पदार्थः-**(होता)** आदाता **(यक्षत्)** **(तनूनपातम्)** शरीरादिरक्षकम् **(उद्भिदम्)** य उद्भिद्य जायते तम् **(यम्)** **(गर्भम्)** गर्भ इव स्थितम् **(अदितिः)** माता **(दधे)** दधाति **(शुचिम्)** पवित्रम् **(इन्द्रम्)** सूर्यम् **(वयोधसम्)** वयोवर्धकम् **(उष्णिहम्)** उष्णिहा प्रतिपादितम् **(छन्दः)** बलकरम् **(इन्द्रियम्)** इन्द्रस्य जीवस्य लिङ्गम् **(दित्यवाहम्)** यो दित्यान् खण्डितान् वहति गमयति तम् **(गाम्)** वाचम् **(वयः)** कमनीयान् **(दधत्)** **(वेतु)** **(आज्यस्य)** **(होतः)** **(यज)**॥२५॥

अन्वयः-हे होतर्यथा होता तनूनपातमुद्भिदमदितिर्गर्भमिव यं दधे वयोधसं शुचिमिन्द्रं यक्षदाज्यस्योष्णिहं छन्द इन्द्रियं दित्यवाहं गां वयश्च दधत् सन् वेतु तथैतान् यज॥२५॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे मनुष्याः! भवन्तो यथा माता गर्भं जातं बालं च रक्षति, तथा शरीरमिन्द्रियाणि च रक्षयित्वा विद्यायुषी वर्धयन्तु॥२५॥

पदार्थः-हे **(होतः)** ज्ञान के यज्ञ के कर्त्तः! जैसे **(होता)** शुभ गुणों का ग्रहण करने वाला जन **(तनूनपातम्)** शरीरादि के रक्षक **(उद्भिदम्)** शरीर का भेदन कर निकलने वाले **(गर्भम्)** गर्भ को

जैसे **(अदितिः)** माता धारण करती, वैसे **(यम्)** जिस को **(दधे)** धारण करता है, **(वयोधसम्)** अवस्था के वर्धक **(शुचिम्)** पवित्र **(इन्द्रम्)** सूर्य्य को **(यक्षत्)** हवन का पदार्थ पहुंचाता है, **(आज्यस्य)** विज्ञानसम्बन्धी **(उष्णिहम्)** उष्णिक् छन्द से कहे हुए **(छन्दः)** बलकारी **(इन्द्रियम्)** जीव के श्रोत्रादि चिह्नों और **(दित्यवाहम्)** खण्डितों को पहुंचाने वाले **(गाम्)** वाणी और **(वयः)** सुन्दर-सुन्दर पक्षियों को **(दधत्)** धारण करता हुआ **(वेतु)** प्राप्त होवे, वैसे इन सब को आप **(यज)** संगत कीजिये॥२५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! आप लोग जैसे माता गर्भ और उत्पन्न हुए बालक की रक्षा करती है, वैसे शरीर और इन्द्रियों की रक्षा करके विद्या और आयुर्दा को बढ़ाओ॥२५॥

होतेत्यस्य सरस्वत्यृषिः। इन्द्रो देवता। निचृच्छक्वरी छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

होता यक्षदीडेन्यमीडितं वृत्रहन्तममिडाभिरीड्यꣳ सहः सोममिन्द्रं वयोधसम्। अनुष्टुभं छन्दऽइन्द्रियं पञ्चाविं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज॥२६॥

होता। यक्षत्। ईडेन्यम्। ईडितम्। वृत्रहन्तममिति वृत्रहन्ऽतमम्। इडाभिः। ईड्यम्। सहः। सोमम्। इन्द्रम्। वयोधसमिति वयःऽधसम्। अनुष्टुभम्। अनुस्तुभमित्यनुऽस्तुभम्। छन्दः। इन्द्रियम्। पञ्चाविमिति पञ्चऽअविम्। गाम्। वयः। दधत्। वेतु। आज्यस्य। होतः। यज॥२६॥

पदार्थः-**(होता)** आदाता **(यक्षत्)** संगच्छेत् **(ईडेन्यम्)** स्तोतुमर्हम् **(ईडितम्)** प्रशस्तम् **(वृत्रहन्तमम्)** अतिशयेन वृत्रस्य मेघस्य हन्तारं सूर्यमिव **(इडाभिः)** सुशिक्षिताभिर्वाग्भिः **(ईड्यम्)** प्रशंसितुमर्हम् **(सहः)** बलम् **(सोमम्)** सोमाद्योषधिगणम् **(इन्द्रं)** जीवम् **(वयोधसम्)** कमनीयानां प्राणानां धारकम् **(अनुष्टुभम्)** अनुस्तुम्भकम् **(छन्दः)** स्वातन्त्र्यम् **(इन्द्रियम्)** श्रोत्रादि **(पञ्चाविम्)** या पञ्च प्राणान् रक्षति ताम् **(गाम्)** पृथिवीम् **(वयः)** कमनीयं वस्तु **(दधत्)** धरत् सन् **(वेतु)** **(आज्यस्य)** विज्ञातुमर्हस्य **(होतः)** **(यज)**॥२६॥

अन्वयः-हे होतर्यथा होता वृत्रहन्तममिवेडाभिरीडेन्यमीडितं सह ईड्यं सोमं वयोधसमिन्द्रं यक्षदिन्द्रियमनुष्टुभं छन्दः पञ्चाविं गां वयश्चाऽऽज्यस्य मध्ये दधद् वेतु तथैतान् यज॥२६॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये मनुष्या न्यायेन प्रशस्तगुणेन सूर्येणोपमिताः प्रशस्ता भूत्वा विज्ञेयानि वस्तूनि विदित्वा स्तुतिर्बलं जीवनं धनं जितेन्द्रियतां राज्यं च धरन्ति, ते प्रशंसार्हा भवन्ति॥२६॥

पदार्थः-हे **(होतः)** यज्ञ करने हारे जन! जैसे **(होता)** शुभगुणों का ग्रहीता पुरुष **(वृत्रहन्तमम्)** मेघ को अत्यन्त काटने वाले सूर्य को जैसे वैसे **(इडाभिः)** अच्छी शिक्षित वाणियों से **(ईडेन्यम्)** स्तुति करने योग्य **(ईडितम्)** प्रशंसित **(सहः)** बल **(ईड्यम्)** प्रशंसा के योग्य **(सोमम्)** सोम आदि ओषधिगण और **(वयोधसम्)** मनोहर प्राणों के धारक **(इन्द्रम्)** जीवात्मा को **(यक्षत्)** सङ्गत करे और **(इन्द्रियम्)** श्रोत्र आदि **(अनुष्टुभम्)** अनुकूल थांभने वाली **(छन्दः)** स्वतन्त्रता से **(पञ्चाविम्)** पांच प्राणों की रक्षा करने वाली **(गाम्)** पृथिवी और **(आज्यस्य)** जानने योग्य जगत् के बीच **(वयः)** अभीष्ट वस्तु को **(दधत्)** धारण करता हुआ **(वेतु)** प्राप्त होवे, वैसे आप इन सब को **(यज)** सङ्गत कीजिए॥ २६॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य न्याय के साथ प्रशंसित गुण वाले सूर्य के तुल्य प्रशंसित हो के, विज्ञान के योग्य वस्तुओं को जान के स्तुति, बल, जीवन, धन, जितेन्द्रियपन और राज्य को धारण करते हैं, वे प्रशंसा के योग्य होते हैं॥ २६॥

होतेत्यस्य सरस्वत्यृषिः। इन्द्रो देवता। स्वराडतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

होता॑ यक्षत्सुब॒र्हिषं॑ पू॒षण्व॑न्तु॒मम॑र्त्यं॒ सीद॑न्तं ब॒र्हिषि॑ प्रि॒येऽमृतेन्द्रं॑ वयो॒धस॑म्।

बृ॒ह॒तीं छन्द॑ऽइन्द्रि॒यं त्रि॒व॒त्सं गां वयो॒ दध॒द्वेत्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑॥ २७॥

होता॑। य॒क्षत्। सु॒ब॒र्हि॒षमिति॑ सुऽब॒र्हिष॑म्। पू॒षण्व॑न्त॒मिति॑ पू॒षण्ऽव॑न्तम्। अम॑र्त्यम्। सीद॑न्तम्। ब॒र्हिषि॑। प्रि॒ये। अ॒मृता॑। इन्द्र॑म्। व॒यो॒ध॒स॒मिति॑ व॒यः॒ऽधस॑म्। बृ॒ह॒तीम्। छन्दः॑। इ॒न्द्रि॒यम्। त्रि॒व॒त्समिति॑ त्रि॒ऽव॒त्सम्। गाम्। वयः॑। दध॑त्। वेतु॑। आज्य॑स्य। होत॑रिति॑। यज॑॥ २७॥

पदार्थः-**(होता)** आदाता **(यक्षत्)** **(सुबर्हिषम्)** शोभनं बर्हिरन्तरिक्षमुदकं वा यस्य तम् **(पूषण्वन्तम्)** बहुपुष्टियुक्तम् **(अमर्त्यम्)** मृत्युधर्मरहितम् **(सीदन्तम्)** तिष्ठन्तम् **(बर्हिषि)** आकाशमिव व्याप्ते **(प्रिये)** कमनीये परमात्मस्वरूपे **(अमृता)** नाशधर्मरहिते। अत्र विभक्तेराकारादेशः। **(इन्द्रम्)** स्वकीयं जीवस्वरूपम् **(वयोधसम्)** व्याप्तिधरम् **(बृहतीम्)** **(छन्दः)** **(इन्द्रियम्)** **(त्रिवत्सम्)** त्रयः कर्मोपासनाज्ञानानि वत्सा इव यस्य तम् **(गाम्)** प्राप्तव्यं बोधम् **(वयः)** कमनीयं सुखम् **(दधत्)** **(वेतु)** प्राप्नोति **(आज्यस्य)** **(होतः)** **(यज)**॥ २७॥

अन्वयः-हे होतस्त्वं यथा स होताऽमृता बर्हिषि प्रिये सीदन्तममर्त्यं पूषण्वन्तं सुबर्हिषं वयोधसमिन्द्रं यक्षत् स आज्यस्य बृहतीं छन्द इन्द्रियं त्रिवत्सं गां वयश्च दधत् सन् कल्याणं वेतु तथैतानि यज॥ २७॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये मनुष्या श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं योगिनं सेवन्ते, ते सर्वाण्यभीष्टानि सुखानि लभन्ते॥२७॥

पदार्थः-हे **(होतः)** दान देने वाले पुरुष! तू जैसे वह **(होता)** शुभ गुणों का ग्रहीता पुरुष **(अमृता)** नाशरहित **(बर्हिषि)** आकाश के तुल्य प्राप्त **(प्रिये)** चाहने योग्य परमेश्वर के स्वरूप में **(सीदन्तम्)** स्थिर हुए **(अमर्त्यम्)** शुद्ध स्वरूप से मृत्युरहित **(पूषण्वन्तम्)** बहुत पोढ़ा **(सुबर्हिषम्)** सुन्दर अवकाश वा जलों वाला **(वयोधसम्)** व्याप्ति को धारण करने हारे **(इन्द्रम्)** अपने जीवस्वरूप का **(यक्षत्)** सङ्ग करे, वह **(आज्यस्य)** जानने योग्य विज्ञान का सम्बन्धी **(बृहतीम्)** बृहती **(छन्दः)** छन्द **(इन्द्रियम्)** श्रोत्र आदि इन्द्रिय **(त्रिवत्सम्)** कर्म, उपासना, ज्ञान, जिसको पुत्रवत् हैं, उस वेदसम्बन्धी **(गाम्)** प्राप्त होने योग्य बोध तथा **(वयः)** मनोहर सुख को **(दधत्)** धारण करता हुआ कल्याण को **(वेतु)** प्राप्त होवे, वैसे इनको **(यज)** संगत करे॥२७॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य वेदपाठी ब्रह्मनिष्ठ योगी पुरुष का सेवन करते हैं, वे सब अभीष्ट सुखों को प्राप्त होते हैं॥२७॥

होतेत्यस्य सरस्वत्यृषिः। इन्द्रो देवता। स्वराट् शक्वरी छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

होता॑ यक्षद् व्यच॑स्वतीः सुप्रा॒य॒णाऽऋ॑ता॒वृधो॒ द्वारो॑ दे॒वीर्हि॑र॒ण्ययी॒र्ब्र॒ह्माण॒मिन्द्रं॑ वयो॒धस॑म्।

प॒ङ्क्तिं छन्द॑ऽइ॒हेन्द्रि॒यं तु॒र्य॒वाहं॒ गां वयो॒ दध॒द् व्य॒न्त्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑॥२८॥

होता॑। य॒क्षत्। व्यच॑स्वतीः। सु॒प्रा॒य॒णाः। सु॒प्रा॒य॒ना इति॑ सुऽप्रा॒य॒नाः। ऋ॒ता॒वृध॑ः। ऋ॒त॒वृ॒ध इति॑ ऋ॒त॒ऽवृध॑ः। द्वार॑ः। दे॒वीः। हि॒र॒ण्ययी॑ः। ब्र॒ह्माण॑म्। इन्द्र॑म्। व॒यो॒ध॒स॒मिति॑ वयः॒ऽधस॑म्। प॒ङ्क्तिम्। छन्द॑ः। इ॒ह। इ॒न्द्रि॒यम्। तु॒र्य॒वा॒ह॒मिति॑ तु॒र्य॒ऽवाह॑म्। गाम्। वय॑ः। दध॑त्। व्य॒न्तु॑। आज्य॑स्य। होत॑ः। यज॑॥२८॥

पदार्थः-**(होता)** **(यक्षत्)** **(व्यचस्वतीः)** गमनाऽवकाशयुक्ताः **(सुप्रायणाः)** सुष्ठु प्रायणं प्रकर्षेण गमनं यासु ताः **(ऋतावृधः)** या ऋतं यथायोग्यं सत्यं वर्द्धयन्ति ताः **(द्वारः)** द्वाराणि **(देवीः)** दिव्यगुणाः **(हिरण्ययीः)** सुवर्णादिभिरनुलिप्ताः **(ब्रह्माणम्)** चतुर्वेदविदम् **(इन्द्रम्)** विद्यैश्वर्यम् **(वयोधसम्)** कमनीयानां विद्याबोधादीनां धातारम् **(पङ्क्तिम्)** **(छन्दः)** **(इह)** अस्मिन् संसारे **(इन्द्रियम्)** धनम् **(तुर्यवाहम्)** यस्तुर्यं चतुर्गुणं भारं वहति तम् **(गाम्)** **(वयः)** गमनम् **(दधत्)** **(व्यन्तु)** प्राप्नुवन्तु **(आज्यस्य)** प्राप्तव्यस्य घृतादिसम्बन्धिपदार्थस्य **(होतः)** **(यज)**॥२८॥

अन्वयः-हे होतस्त्वं यथेह होता व्यचस्वतीः सुप्रायणा ऋतावृधो हिरण्ययीर्देवीर्द्वारो वयोधसं ब्रह्माणमिन्द्रं पङ्क्तिं छन्द इन्द्रियं तुर्यवाहं गां वयश्च दधदाज्यस्यैतानि यक्षत् यथा च जना व्यन्तु तथैतानि यज॥२८॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्या अत्युत्तमानि सुन्दरद्वाराणि सुवर्णादियुक्तानि गृहाणि रचयित्वा तत्र निवासं विद्याभ्यासं च कुर्युस्तेऽरोगा जायन्ते॥२८॥

पदार्थः-हे **(होतः)** यज्ञ करने वाले पुरुष! तू जैसे **(इह)** इस संसार में **(होता)** ग्रहीता जन **(व्यचस्वतीः)** निकलने के अवकाश वाले **(सुप्रायणाः)** सुन्दर निकलना जिन में हो **(ऋतावृधः)** सत्य को बढ़ाने हारे **(हिरण्ययीः)** सुनहरी चित्रों वाले **(देवीः)** उत्तम गुणयुक्त **(द्वारः)** द्वारों को **(वयोधसम्)** कामना के योग्य विद्या तथा बोध आदि के धारण करने हारे **(ब्रह्माणम्)** चारों वेद के ज्ञाता **(इन्द्रम्)** विद्यारूप ऐश्वर्य वाले विद्वान् को **(पङ्क्तिम्)** पंक्ति **(छन्दः)** छन्द **(इन्द्रियम्)** धन **(तुर्यवाहम्)** चौगुणा बोझ ले चलने हारे **(गाम्)** बैल और **(वयः)** गमन को **(दधत्)** धारण करता हुआ **(आज्यस्य)** प्राप्त होने योग्य घृतादि के सम्बन्धी इन उक्त पदार्थों को **(यक्षत्)** संगत करें और जैसे मनुष्य को **(व्यन्तु)** प्राप्त होवें, इन सब को **(यज)** प्राप्त हो॥२८॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्य लोग अत्युत्तम सुन्दर द्वारों वाले सुवर्णादि पदार्थों से युक्त घरों को बना के वहां निवास और विद्या का अभ्यास करें, वे रोगरहित होते हैं॥२८॥

होतेत्यस्य सरस्वत्यृषिः। अहोरात्रे देवते। निचृदतिशक्वरी छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

होता॑ यक्षत्सु॒पेश॑सा सु॒शि॒ल्पे बृ॑ह॒तीऽउ॒भे नक्तो॒षासा॒ न द॑र्श॒ते विश्व॒मिन्द्रं॑ वयो॒धस॑म्।
त्रि॒ष्टुभं॒ छन्द॑ऽइ॒हेन्द्रि॒यं प॑ष्ठ॒वाहं॒ गां वयो॒ दध॑द् वी॒तामाज्य॑स्य होत॒र्यज॑॥२९॥

होता॑। य॒क्षत्। सु॒पेश॒सेति॑ सु॒ऽपेश॑सा। सु॒शि॒ल्पे इति॑ सु॒ऽशि॒ल्पे। बृ॒ह॒तीऽइति॑ बृ॒ह॒ती। उ॒भेऽइत्यु॒भे। नक्तो॒षासा॑। नक्तो॒षसेति॒ नक्तो॒षसा॑। न। द॒र्श॒तेऽइति॑ द॒र्श॒ते। विश्व॑म्। इन्द्र॑म्। व॒यो॒धस॒मिति॑ व॒यः॒ऽधस॑म्। त्रि॒ष्टुभ॑म्। त्रि॒स्तु॒भ॒मिति॑ त्रि॒ऽस्तुभ॑म्। छन्द॑ः। इ॒ह। इ॒न्द्रि॒यम्। प॒ष्ठ॒वा॒ह॒मिति॑ प॒ष्ठ॒ऽवाह॑म्। गाम्। वय॑ः। दध॑त्। वी॒ताम्। आज्य॑स्य। होत॑ः। यज॑॥२९॥

पदार्थः-**(होता)** आदाता **(यक्षत्)** **(सुपेशसा)** सुन्दरस्वरूपवन्तौ विद्वांसावध्यापकौ **(सुशिल्पे)** सुन्दराणि शिल्पानि ययोस्ते **(बृहती)** महत्यौ **(उभे)** द्वे **(नक्तोषासा)** रात्रिदिने **(न)** इव **(दर्शते)** द्रष्टव्ये **(विश्वम्)** सर्वम् **(इन्द्रम्)** परमैश्वर्यम् **(वयोधसम्)** कामनाधारकम् **(त्रिष्टुभम्)**

एतच्छन्दोऽर्थम् **(छन्दः)** बलम् **(इह)** अस्मिञ्जगति **(इन्द्रियम्)** **(पष्ठवाहम्)** यः पष्ठेन पृष्ठेन वहति तम् **(गाम्)** वृषम् **(वयः)** **(दधत्)** **(वीताम्)** प्राप्नुताम् **(आज्यस्य)** प्राप्तुं योग्यस्य घृतादिपदार्थस्य सम्बन्धिनम् **(होतः)** **(यज)**॥२९॥

अन्वयः-हे होतस्त्वं यथेह बृहत्युभे सुशिल्पे दर्शते नक्तोषासा न सुपेशसा विश्वं वयोधयमिन्द्रं त्रिष्टुभं छन्दो वय इन्द्रियं पष्ठवाहं गां न वीतां यथाऽऽज्यस्यैतानि दधत् सन् होता यक्षत् तथा यज॥२९॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। ये सकलैश्वर्यकराणि शिल्पकर्माणीह साध्नुवन्ति ते सुखिनो जायन्ते॥२९॥

पदार्थः-हे **(होतः)** यज्ञ करनेहारे पुरुष! तू जैसे **(इह)** इस जगत् में **(बृहती)** बढ़े **(उभे)** दोनों **(सुशिल्पे)** सुन्दर शिल्पकार्य जिन में हों वे **(दर्शते)** देखने योग्य **(नक्तोषासा)** रात्रि, दिन के **(न)** समान **(सुपेशसा)** सुन्दर रूप वाले अध्यापक, उपदेशक दो विद्वान् **(विश्वम्)** सब **(वयोधसम्)** कामना के आधार **(इन्द्रम्)** उत्तम ऐश्वर्य **(त्रिष्टुभम्)** त्रिष्टुप् छन्द का अर्थ **(छन्दः)** बल **(वयः)** अवस्था **(इन्द्रियम्)** श्रोत्रादि इन्द्रिय और **(पष्ठवाहम्)** पीठ पर भार ले चलने वाले **(गाम्)** बैल को **(वीताम्)** प्राप्त हों, जैसे **(आज्यस्य)** प्राप्त होने योग्य घृतादि पदार्थ के सम्बन्धी इन को **(दधत्)** धारण करता हुआ **(होता)** ग्रहणकर्ता पुरुष **(यक्षत्)** प्राप्त होवे, वैसे **(यज)** यज्ञ कीजिए॥२९॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो सम्पूर्ण ऐश्वर्य करनेहारे शिल्पकार्यों को इस जगत् में सिद्ध करते हैं, वे सुखी होते हैं॥२९॥

होतेत्यस्य सरस्वत्यृषिः। अश्विनौ देवते। भुरिक्छक्वरी छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

होता यक्षत्प्रचेतसा देवानामुत्तमं यशो होतारा दैव्या कवी सयुजेन्द्रं वयोधसम्। जगतीं छन्दऽ इन्द्रियमनड्वाहं गां वयो दधद् वीतामाज्यस्य होतर्यज॥३०॥

होता। यक्षत्। प्रचेतसेति प्रऽचेतसा। देवानाम्। उत्तममित्युत्ऽतमम्। यशः। होतारा। दैव्या। कवीऽइति कवी। सयुजेति सऽयुजा। इन्द्रम्। वयोधसमिति वयःऽधसम्। जगतीम्। छन्दः। इन्द्रियम्। अनड्वाहम्। गाम्। वयः। दधत्। वीताम्। आज्यस्य। होतः। यज॥३०॥

पदार्थः-**(होता)** **(यक्षत्)** **(प्रचेतसा)** प्रकृष्टं चेतो विज्ञानं ययोस्तौ **(देवानाम्)** विदुषाम् **(उत्तमम्)** **(यशः)** कीर्त्तिम् **(होतारा)** दातारौ **(दैव्या)** देवेषु दिव्येषु कर्मसु साधू **(कवी)** मेधाविनौ **(सयुजा)** यौ सहैव युङ्क्तस्तौ **(इन्द्रम्)** परमैश्वर्यम् **(वयोधसम्)** कमनीयसुखधारकम् **(जगतीम्)**

(छन्दः) **(इन्द्रियम्)** धनम् **(अनड्वाहम्)** शकटवाहकम् **(गाम्)** वृषभम् **(वयः)** विज्ञानम् **(दधत्)** **(वीताम्)** प्राप्नुताम् **(आज्यस्य)** विज्ञेयस्य **(होतः)** **(यज)**॥३०॥

अन्वयः-हे होतस्त्वं यथा देवानां प्रचेतसा सयुजा दैव्या होतारा कवी अध्यापकाऽध्येतारौ श्रोताश्रावयितारौ वोत्तमं यशो वयोधसमिन्द्रं जगतीं छन्दो वय इन्द्रियमनड्वाहं गां च वीतां यथाऽऽज्यस्य मध्य एतानि दधत् सन् होता यक्षत् तथा यज॥३०॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यदि मनुष्याः पुरुषार्थं कुर्युस्तर्हि विद्यां कीर्त्तिं धनं च प्राप्य माननीया भवेयुः॥३०॥

पदार्थः-हे **(होतः)** दान देनेहारे पुरुष! तू जैसे **(देवानाम्)** विद्वानों के सम्बन्धी **(प्रचेतसा)** उत्कृष्ट विज्ञान वाले **(सयुजा)** साथ योग रखने वाले **(दैव्या)** उत्तम कर्मों में साधु **(होतारा)** दाता **(कवी)** बुद्धिमान् पढ़ने-पढ़ाने वा सुनने-सुनाने हारे **(उत्तमम्)** उत्तम **(यशः)** कीर्त्ति **(वयोधसम्)** अभीष्ट सुख के धारक **(इन्द्रम्)** उत्तम ऐश्वर्य **(जगतीम्, छन्दः)** जगती छन्द **(वयः)** विज्ञान **(इन्द्रियम्)** धन और **(अनड्वाहम्)** गाड़ी चलानेहारे **(गाम्)** बैल को **(वीताम्)** प्राप्त हों, जैसे **(आज्यस्य)** जानने योग्य पदार्थ के बीच इन उक्त सब का **(दधत्)** धारण करता हुआ **(होता)** ग्रहणकर्ता जन **(यक्षत्)** प्राप्त होवे, वैसे **(यज)** प्राप्त हूजिये॥३०॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। यदि मनुष्य पुरुषार्थ करें तो विद्या कीर्ति और धन को प्राप्त हो के माननीय होवें॥३०॥

होतेत्यस्य सरस्वत्यृषिः। वाण्यो देवताः। भुरिक्छक्वरी छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

होता॑ यक्ष॒त् पेश॑स्वतीस्ति॒स्रो दे॒वीर्हि॑र॒ण्ययी॒र्भार॑तीर्बृह॒तीर्म॒हीः पति॒मिन्द्रं॑ वयो॒धस॑म्।
वि॒राजं॒ छन्द॑ऽइ॒हेन्द्रि॒यं धे॒नुं गां न वयो॒ दध॒द् व्यन्त्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑॥३१॥

होता॑। य॒क्ष॒त्। पेश॑स्वतीः। ति॒स्रः। दे॒वीः। हि॒र॒ण्ययीः॑। भार॑तीः। बृ॒ह॒तीः। म॒हीः। पति॑म्। इन्द्र॑म्। व॒यो॒ध॒समिति॑ वयः॒ऽधस॑म्। वि॒राज॒मिति॑ वि॒ऽराज॑म्। छन्दः॑। इ॒ह। इ॒न्द्रि॒यम्। धे॒नुम्। गाम्। न। वयः॑। दध॑त्। व्यन्तु॑। आज्य॑स्य। होतः॑। यज॑॥३१॥

पदार्थः-**(होता)** **(यक्षत्)** **(पेशस्वतीः)** प्रशस्तसुरूपवतीः **(तिस्रः)** त्रित्वसंख्याः **(देवीः)** दात्र्यः **(हिरण्ययीः)** हिरण्यप्रकाराः **(भारतीः)** धारिकाः **(बृहतीः)** **(महीः)** महत्संयुक्ताः **(पतिम्)** पालकम् **(इन्द्रम्)** राजानम् **(वयोधसम्)** चिरायुर्धारकम् **(विराजम्)** विविधानां पदार्थानां प्रकाशकम्

(छन्दः) बलकरम् **(इह)** **(इन्द्रियम्)** इन्द्रैर्जीवैर्जुष्टं सुखम् **(धेनुम्)** दुग्धदात्रीम् **(गाम्)** **(न)** इव **(वयः)** कमनीयम् **(दधत्)** **(व्यन्तु)** प्राप्नुवन्तु **(आज्यस्य)** **(होतः)** **(यज)**॥३१॥

अन्वयः-हे होतर्यथेह यो होता तिस्रो हिरण्ययीः पेशस्वतीर्भारतीर्बृहतीर्महीर्देवीस्त्रिविधा वाचो वयोधसं पतिमिन्द्रं विराजं छन्द वय इन्द्रियं च यक्षत्, स धेनुं गां न व्यन्तु, तथैतानि दधत् सन्नाज्यस्य फलं यज॥३१॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। ये मनुष्याः कर्मोपासनाज्ञानविज्ञापिकां वाणीं विजानन्ति, ते महतीं कीर्त्तिं प्राप्नुवन्ति, यथा धेनुर्वत्सान् तर्पयति तथेह विद्वांसोऽज्ञान् बालकान् तर्पयन्ति॥३१॥

पदार्थः-हे **(होतः)** यज्ञ करनेहारे जन! जैसे **(इह)** इस जगत में जो **(होता)** शुभ गुणों का ग्रहीता जन **(तिस्रः)** तीन **(हिरण्ययीः)** सुवर्ण के तुल्य प्रिय **(पेशस्वतीः)** सुन्दर रूपों वाली **(भारतीः)** धारण करने हारी **(बृहतीः)** बड़ी, गम्भीर **(महीः)** महान् पुरुषों ने ग्रहण की **(देवीः)** दानशील स्त्रियों, तीन प्रकार की वाणियों, **(वयोधसम्)** बहुत अवस्था वाले **(पतिम्)** रक्षक **(इन्द्रम्)** राजा, **(विराजम्)** विविध पदार्थों के प्रकाशक **(छन्दः)** विराट् छन्द, **(वयः)** कामना के योग्य वस्तु और **(इन्द्रियम्)** जीवों ने सेवन किये सुख को **(यक्षत्)** प्राप्त होता है, वह **(धेनुम्)** दूध देनेहारी **(गाम्)** गौ के **(न)** समान हम को **(व्यन्तु)** प्राप्त हो, वैसे इन सब को **(दधत्)** धारण करता हुआ **(आज्यस्य)** प्राप्त होने योग्य विज्ञान के फल को **(यज)** प्राप्त हूजिये॥३१॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जो मनुष्य कर्म, उपासना और विज्ञान को जानने वाली वाणी को जानते हैं, वे बड़ी कीर्त्ति को प्राप्त होते हैं। जैसे धेनु बछड़ों को तृप्त करती है, वैसे विद्वान् लोग मूर्ख बालबुद्धि लोगों को तृप्त करते हैं॥३१॥

होतेत्यस्य सरस्वत्यृषिः। इन्द्रो देवता। भुरिक् छक्वरी छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

होता॑ यक्षत् सु॒रेत॑सं॒ त्वष्टा॑रं पुष्टि॒वर्द्ध॑नꣳ रू॒पाणि॒ बिभ्र॑तं॒ पृथ॒क् पुष्टि॒मिन्द्रं॑ वयो॒धस॑म्।
द्वि॒पदं॒ छन्द॑ऽइन्द्रि॒यमु॒क्षाणं॒ गां न वयो॒ दध॒द् वेत्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑॥३२॥

होता॑। य॒क्ष॒त्। सु॒रेत॑स॒मिति॑ सु॒ऽरेत॑सम्। त्वष्टा॑रम्। पु॒ष्टि॒वर्ध॑न॒मिति॑ पु॒ष्टि॒ऽवर्ध॑नम्। रू॒पाणि॑। बिभ्र॑तम्। पृथ॑क्। पुष्टि॑म्। इन्द्र॑म्। व॒यो॒ध॒स॒मिति॑ व॒यः॒ऽधस॑म्। द्वि॒पद॒मिति॑ द्वि॒ऽपद॑म्। छन्दः॑। इ॒न्द्रि॒यम्। उ॒क्षाण॑म्। गाम्। न। वयः॑। दध॑त्। वेतु॑। आज्य॑स्य। होत॑रिति॒ होतः॑। यज॑॥३२॥

पदार्थः-(**होता**) (**यक्षत्**) (**सुरेतसम्**) शोभनं रेतो वीर्यं यस्य तम् (**त्वष्टारम्**) देदीप्यमानम् (**पुष्टिवर्धनम्**) यः पुष्ट्या वर्धयति तम् (**रूपाणि**) (**बिभ्रतम्**) धरन्तम् (**पृथक्**) (**पुष्टिम्**) (**इन्द्रम्**) परमैश्वर्यम् (**वयोधसम्**) (**द्विपदम्**) द्वौ पादौ यस्मिन् तत् (**छन्दः**) (**इन्द्रियम्**) (**उक्षाणम्**) वीर्यसेचनसमर्थम् (**गाम्**) युवावस्थास्थं वृषभम् (**न**) इव (**वयः**) (**दधत्**) (**वेतु**) (**आज्यस्य**) (**होतः**) (**यज**)॥३२॥

अन्वयः-हे होतस्त्वं यथा होता सुरेतसं त्वष्टारं पुष्टिवर्धनं रूपाणि पृथक् बिभ्रतं वयोधसं पुष्टिमिन्द्रं द्विपदं छन्द इन्द्रियमुक्षाणं गां न वयो दधत् सन्नाज्यस्य यक्षद् वेतु तथा यज॥३२॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। हे मनुष्याः! यथा वृषभो गां गर्भिणीः कृत्वा पशून् वर्धयति, तथा गृहस्थाः स्त्रीर्गर्भवतीः कृत्वा प्रजा वर्द्धयेयुः। यदि सन्तानेच्छा स्यात् तर्हि पुष्टिः सम्पादनीया। यथा सूर्यो रूपज्ञापकोऽस्ति तथा विद्वान् विद्यासुशिक्षे प्रकाशयति॥३२॥

पदार्थः-हे (**होतः**) दान देनेहारे पुरुष! जैसे (**होता**) शुभ गुणों का ग्रहीता पुरुष (**सुरेतसम्**) सुन्दर पराक्रम वाले (**त्वष्टारम्**) प्रकाशमान (**पुष्टिवर्धनम्**) जो पुष्टि से बढ़ाता उस (**रूपाणि**) सुन्दर रूपों को (**पृथक्**) अलग-अलग (**बिभ्रतम्**) धारण करनेहारे (**वयोधसम्**) बड़ी अवस्था वाले (**पुष्टिम्**) पुष्टियुक्त (**इन्द्रम्**) उत्तम ऐश्वर्य को (**द्विपदम्**) दो पगवाले मनुष्यादि (**छन्दः**) स्वतन्त्रता (**इन्द्रियम्**) श्रोत्रादि इन्द्रिय (**उक्षाणम्**) वीर्य सींचने में समर्थ (**गाम्**) जवान बैल के (**न**) समान (**वयः**) अवस्था को (**दधत्**) धारण करता हुआ (**आज्यस्य**) विज्ञान के सम्बन्धी पदार्थ का (**यक्षत्**) होम करे तथा (**वेतु**) प्राप्त होवे, वैसे (**यज**) होम कीजिये॥३२॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। हे मनुष्यो! जैसे बैल गौओं को गाभिन करके पशुओं को बढ़ाता है, वैसे गृहस्थ लोग स्त्रियों को गर्भवती कर प्रजा को बढ़ावें। जो सन्तानों की चाहना करें तो शरीरादि की पुष्टि अवश्य करनी चाहिए। जैसे सूर्य रूप को जताने वाला है, वैसे विद्वान् पुरुष विद्या और अच्छी शिक्षा का प्रकाश करने वाला होता है॥३२॥

होतेत्यस्य सरस्वत्यृषिः। इन्द्रो देवता। निचृदत्यष्टिश्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

होता॑ यक्षद् व॒न॒स्पति॑ꣳ शमि॒तार॑ꣳ श॒तक्र॑तु॒ꣳ हिर॑ण्यपर्णमु॒क्थिन॑ꣳ रश॒नां बिभ्र॑तं व॒शिं भग॒मिन्द्रं॑ वयो॒धस॑म्। क॒कु॒भं॒ छन्द॑ऽइ॒हेन्द्रि॒यं व॒शां वे॒ह॒तं॒ गां वयो॒ दध॒द् वे॒त्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑॥३३॥

होता। यक्षत्। वनस्पतिम्। शमितारम्। शतक्रतुमिति शतऽक्रतुम्। हिरण्यपर्णमिति हिरण्यऽपर्णम्। उक्थिनम्। रशनाम्। बिभ्रतम्। वशिम्। भगम्। इन्द्रम्। वयोधसमिति वयःऽधसम्। ककुभम्। छन्दः। इह। इन्द्रियम्। वशाम्। वेहतम्। गाम्। वयः। दधत्। वेतु। आज्यस्य। होतः। यज॥३३॥

पदार्थः-(**होता**) (**यक्षत्**) (**वनस्पतिम्**) किरणपालकं सूर्यम् (**शमितारम्**) शान्तिकरम् (**शतक्रतुम्**) बहुप्रज्ञम् (**हिरण्यपर्णम्**) हिरण्यानि तेजांसि पर्णानि पालकानि यस्य तम् (**उक्थिनम्**) उक्थानि वक्तुं योग्यानि प्रशस्तानि वचनानि यस्य तम् (**रशनाम्**) अङ्गुलिम्। **रशनेत्यस्यङ्गुलिना०॥** (निघं०३।५) (**बिभ्रतम्**) धरन्तम् (**वशिम्**) वशकर्त्तारम् (**भगम्**) सेवनीयमैश्वर्यम् (**इन्द्रम्**) जीवम् (**वयोधसम्**) आयुर्धारकम् (**ककुभम्**) स्तम्भकम् (**छन्दः**) आह्लादकरम् (**इह**) (**इन्द्रियम्**) धनम् (**वशाम्**) वन्ध्याम् (**वेहतम्**) गर्भस्राविकाम् (**गाम्**) (**वयः**) कमनीयं वस्तु (**दधत्**) (**वेतु**) (**आज्यस्य**) (**होतः**) (**यज**)॥३३॥

अन्वयः-हे होतस्त्वं यथेहाज्यस्य होता शमितारं हिरण्यपर्णं वनस्पतिमिव शतक्रतुमुक्थिनं रशनां बिभ्रतं वशिं भगं वयोधसमिन्द्रं ककुभं छन्द इन्द्रियं वशां वेहतं गां वयश्च दधत् सन् यक्षद् वेतु तथा यज॥३३॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये मनुष्याः सूर्यवद्विद्याधर्मसुशिक्षाप्रकाशका धीमन्तः स्वाङ्गानि धरन्तो विद्यैश्वर्यं प्राप्याऽन्येभ्यो ददति, ते प्रशंसामाप्नुवन्ति॥३३॥

पदार्थः-हे (**होतः**) दान देनेहारे जन! जैसे (**इह**) इस संसार में (**आज्यस्य**) घी आदि उत्तम पदार्थ का (**होता**) होम करने वाला (**शमितारम्**) शान्तिकारक (**हिरण्यपर्णम्**) तेजरूप रक्षाओं वाले (**वनस्पतिम्**) किरणापालक सूर्य के तुल्य (**शतक्रतुम्**) बहुत बुद्धि वाले (**उक्थिनम्**) प्रशस्त कहने योग्य वचनों से युक्त (**रशनाम्**) अङ्गुलि को (**बिभ्रतम्**) धारण करते हुए (**वशिम्**) वश में करने हारे (**भगम्**) सेवने योग्य ऐश्वर्य (**वयोधसम्**) अवस्था के धारक (**इन्द्रम्**) जीव (**ककुभम्**) अर्थ के निरोधक (**छन्दः**) प्रसन्नताकारक (**इन्द्रियम्**) धन (**वशाम्**) वन्ध्या तथा (**वेहतम्**) गर्भ गिराने हारी (**गाम्**) गौ और (**वयः**) अभीष्ट वस्तु को (**दधत्**) धारण करता हुआ (**यक्षत्**) यज्ञ करे तथा (**वेतु**) चाहना करे, वैसे (**यज**) यज्ञ कीजिए॥३३॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य सूर्य के तुल्य विद्या, धर्म और उत्तम शिक्षा के प्रकाश करनेहारे बुद्धिमान् अपने अङ्गों को धारण करते हुए विद्या और ऐश्वर्य को प्राप्त होके औरों को देते, वे प्रशंसा पाते हैं॥३३॥

होतेत्यस्य सरस्वत्यृषिः। अग्निर्देवता। अतिशक्वरी छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

होता यक्षत् स्वाहाकृतीरग्निं गृहपतिं पृथग्वरुणं भेषजं कविं क्षत्रमिन्द्रं वयोधसम्।
अतिच्छन्दसं छन्दऽइन्द्रियं बृहदृषभं गां वयो दधद् व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज॥३४॥

होता। यक्षत्। स्वाहाकृतीरिति स्वाहाऽकृतीः। अग्निम्। गृहपतिमिति गृहऽपतिम्। पृथक्। वरुणम्। भेषजम्। कविम्। क्षत्रम्। इन्द्रम्। वयोधसमिति वयःऽधसम्। अतिछन्दसमित्यतिऽछन्दसम्। छन्दः। इन्द्रियम्। बृहत्। ऋषभम्। गाम्। वयः। दधत्। व्यन्तु। आज्यस्य। होतः। यज॥३४॥

पदार्थः-(**होता**) (**यक्षत्**) (**स्वाहाकृतीः**) वाण्यादिभिः क्रियाः (**अग्निम्**) पावकमिव वर्त्तमानम् (**गृहपतिम्**) गृहस्य पालकम् (**पृथक्**) (**वरुणम्**) श्रेष्ठम् (**भेषजम्**) औषधम् (**कविम्**) मेधाविनम् (**क्षत्रम्**) राज्यम् (**इन्द्रम्**) राजानम् (**वयोधसम्**) कमनीयं जीवनधारकम् (**अतिछन्दसम्**) अतिजगत्यादिप्रतिपादितम् (**छन्दः**) (**इन्द्रियम्**) श्रोत्रादिकम् (**बृहत्**) (**ऋषभम्**) अतिश्रेष्ठम् (**गाम्**) (**वयः**) (**दधत्**) (**व्यन्तु**) (**आज्यस्य**) (**होतः**) (**यज**)॥३४॥

अन्वयः-हे होतस्त्वं यथा होता स्वाहाकृतीरग्निमिव गृहपतिं वरुणं पृथग्भेषजं कविं वयोधसमिन्द्रं क्षत्रमतिछन्दसं छन्दो बृहदिन्द्रियमृषभं गां वयश्च दधत् सन्नाज्यस्याहुतिं यक्षद् यथा जना एतानि व्यन्तु तथा यज॥३४॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये मनुष्या वेदस्थानि छन्दांस्यतिछन्दांसि चाधीत्यार्थविदो भवन्ति, ते सर्वा विद्याः प्राप्नुवन्ति॥३४॥

पदार्थः-हे (**होतः**) यज्ञ करनेहारे जन! तू जैसे (**होता**) ग्रहणकर्त्ता पुरुष (**स्वाहाकृतीः**) वाणी आदि से सिद्ध किया (**अग्निम्**) अग्नि के तुल्य वर्त्तमान तेजस्वी (**गृहपतिम्**) घर के रक्षक (**वरुणम्**) श्रेष्ठ (**पृथक्**) अलग (**भेषजम्**) औषध (**कविम्**) बुद्धिमान् (**वयोधसम्**) मनोहर अवस्था को धारण करने हारे (**इन्द्रम्**) राजा (**क्षत्रम्**) राज्य (**अतिछन्दसम्**) अतिजगती आदि छन्द से कहे हुए अर्थ (**छन्दः**) गायत्री आदि छन्द (**बृहत्**) बड़े (**इन्द्रियम्**) कान आदि इन्द्रिय (**ऋषभम्**) अति उत्तम (**गाम्**) बैल और (**वयः**) अवस्था को (**दधत्**) धारण करता हुआ (**आज्यस्य**) घी की आहुति का (**यक्षत्**) होम करे और जैसे लोग इन सब को (**व्यन्तु**) चाहें, वैसे (**यज**) होम यज्ञ कीजिए॥३४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य वेदस्थ गायत्री आदि छन्द तथा अतिजगती आदि अतिछन्दों को पढ़ के अर्थ जानने वाले होते हैं, वे सब विद्याओं को प्राप्त हो जाते हैं॥३४॥

देवमित्यस्य सरस्वत्यृषिः। इन्द्रो देवता। भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

कीदृशा जना वर्धन्त इत्याह॥

कैसे मनुष्य बढ़ते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

देवं बर्हिर्वयोधसं देवमिन्द्रमवर्धयत्।

गायत्र्या छन्दसेन्द्रियं चक्षुरिन्द्रे वयो दधद् वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज॥३५॥

देवम्। बर्हिः। वयोधसमिति वयःऽधसम्। देवम्। इन्द्रम्। अवर्धयत्। गायत्र्या। छन्दसा। इन्द्रियम्। चक्षुः। इन्द्रे। वयः। दधत्। वसुवन इति वसुऽवने। वसुधेयस्येति वसुऽधेयस्य। वेतु। यज॥३५॥

पदार्थः-(**देवम्**) दिव्यगुणम् (**बर्हिः**) अन्तरिक्षम् (**वयोधसम्**) वयोवर्धकम् (**देवम्**) दिव्यस्वरूपम् (**इन्द्रम्**) सूर्यम् (**अवर्धयत्**) वर्धयति (**गायत्र्या**) (**छन्दसा**) (**इन्द्रियम्**) इन्द्रस्य जीवस्य लिङ्गम् (**चक्षुः**) नेत्रम् (**इन्द्रे**) जीवे (**वयः**) जीवनम् (**दधत्**) धरत् (**वसुवने**) धनविभाजकाय (**वसुधेयस्य**) द्रव्याऽऽधारस्य संसारस्य (**वेतु**) प्राप्नोतु (**यज**) संगच्छस्व॥३५॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यथा देवं बर्हिर्वयोधसं देवमिन्द्रमवर्धयद् यथा च गायत्र्या छन्दसा चक्षुरिन्द्रियं वयश्चेन्द्रे दधत् सद् वसुधेयस्य वसुवने वेतु तथा यज॥३५॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथाऽऽकाशे सूर्यप्रकाशो वर्धते, तथा वेदेषु प्रज्ञा वर्धते। येऽस्मिन् संसारे वेदद्वारा सर्वाः सत्यविद्या जानीयुस्ते सर्वतो वर्धेरन्॥३५॥

पदार्थः-हे विद्वन् पुरुष! जैसे (**देवम्**) उत्तम गुणों वाला (**बर्हिः**) अन्तरिक्ष (**वयोधसम्**) अवस्थावर्धक (**देवम्**) उत्तम रूप वाले (**इन्द्रम्**) सूर्य को (**अवर्धयत्**) बढ़ाता है अर्थात् चलने का अवकाश देता है और जैसे (**गायत्र्या, छन्दसा**) गायत्री छन्द से (**इन्द्रियम्**) जीव के चिह्न (**चक्षुः**) नेत्र इन्द्रिय को और (**वयः**) जीवन को (**इन्द्रे**) जीव में (**दधत्**) धारण करता हुआ (**वसुधेयस्य**) द्रव्य के आधार संसार के (**वसुवने**) धन का विभाग करने हारे मनुष्य के लिए (**वेतु**) प्राप्त होवे, वैसे (**यज**) समागम कीजिए॥३५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे आकाश में सूर्य का प्रकाश बढ़ता है, वैसे वेदों का अभ्यास करने में बुद्धि बढ़ती है। जो इस जगत् में वेद के द्वारा सब सत्य विद्याओं को जानें, वे सब ओर से बढ़ें॥३५॥

देवीरित्यस्य सरस्वत्यृषिः। इन्द्रो देवता। भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

मनुष्यैः कीदृशानि गृहाणि निर्मातव्यानीत्याह॥

मनुष्यों को कैसे घर बनाने चाहिए, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

देवीर्द्वारो वयोधसꣳ शुचिमिन्द्रमवर्धयन्।

उष्णिहा छन्दसेन्द्रियं प्राणमिन्द्रे वयो दधद् वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज॥३६॥

दे॒वीः। द्वारः॑। व॒यो॒ध॒स॒मिति॑ वयः॒ऽधस॑म्। शुचि॑म्। इन्द्र॑म्। अ॒व॒र्ध॒य॒न्। उ॒ष्णिहा॑। छन्द॑सा। इ॒न्द्रि॒यम्। प्रा॒णम्। इन्द्रे॑। वयः॑। दध॑त्। व॒सु॒व॒न इति॑ वसु॒ऽवने॑। व॒सु॒धे॒य॒स्येति॑ वसु॒ऽधेय॑स्य। व्य॒न्तु॒। यज॑॥३६॥

पदार्थः-(**देवीः**) देदीप्यमानानि (**द्वारः**) गमनागमनार्थानि द्वाराणि (**वयोधसम्**) जीवनाधारकम् (**शुचिम्**) पवित्रम् (**इन्द्रम्**) शुद्धं वायुम् (**अवर्धयन्**) वर्धयन्ति (**उष्णिहा**) (**छन्दसा**) (**इन्द्रियम्**) इन्द्रेण जीवेन जुष्टम् (**प्राणम्**) (**इन्द्रे**) जीवे (**वयः**) कमनीयं प्रियम् (**दधत्**) धरन्त्सन् (**वसुवने**) द्रव्ययाचिने (**वसुधेयस्य**) धनाऽऽधारस्य कोषस्य (**व्यन्तु**) (**यज**)॥३६॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यथा देवीर्द्वारो वयोधसं शुचिमिन्द्रमिन्द्रियं प्राणमिन्द्रे वसुधेयस्य वसुवनेऽवर्धयन् व्यन्तु तथोष्णिहा छन्दसैतान् वयश्च दधत् सन् यज॥३६॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यानि गृहाणि सन्मुखद्वाराणि सर्वतो वायुसञ्चारीणि सन्ति, तत्र निवासेन जीवनं पवित्रता बलमारोग्यं च वर्धते, तस्माद् बहुद्वाराणि बृहन्ति गृहाणि निर्मातव्यानि॥३६॥

पदार्थः-हे विद्वन्! जैसे (**देवीः**) प्रकाशमान हुए (**द्वारः**) जाने-आने के लिए द्वार (**वयोधसम्**) जीवन के आधार (**शुचिम्**) पवित्र (**इन्द्रम्**) शुद्ध वायु (**इन्द्रियम्**) जीव से सेवे हुए (**प्राणम्**) प्राण को (**इन्द्रे**) जीव के निमित्त (**वसुधेयस्य**) धन के आधार कोष के (**वसुवने**) धन को मांगने वाले के लिए (**अवर्धयन्**) बढ़ाते हैं और (**व्यन्तु**) शोभायमान होवें, वैसे (**उष्णिहा, छन्दसा**) उष्णिक् छन्द से इन पूर्वोक्त पदार्थों और (**वयः**) कामना के योग्य प्रिय पदार्थों को (**दधत्**) धारण करते हुए (**यज**) हवन कीजिए॥३६॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो घर सन्मुख द्वार वाले जिन में सब ओर से वायु आवे ऐसे हैं, उनमें निवास करने से अवस्था, पवित्रता, बल और नीरोगता बढ़ती है। इसलिए बहुत द्वारों वाले बड़े-बड़े घर बनाने चाहियें॥३६॥

देवीत्यस्य सरस्वत्यृषिः। इन्द्रो देवता। भुरिगतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनर्मनुष्याः कथं वर्धेरन्नित्याह॥

फिर मनुष्य कैसे बढ़ें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

दे॒वीऽउ॒षासा॒नक्ता॑ दे॒वमिन्द्रं॑ वयो॒धसं॑ दे॒वी दे॒वम॑वर्धताम्।

अ॒नु॒ष्टुभा॒ छन्द॑सेन्द्रि॒यं बल॒मिन्द्रे॒ वयो॒ दध॑द् वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वीता॒ं यज॑॥३७॥

दे॒वीऽइति॑ दे॒वी। उ॒षासा॒नक्ता॑। उ॒ष॒सा॒नक्तेत्यु॒षसा॒नक्ता॑। दे॒वम्। इन्द्र॑म्। व॒यो॒ध॒स॒मिति॑ वयः॒ऽधस॑म्। दे॒वी। दे॒वम्। अ॒व॒र्ध॒ता॒म्। अ॒नु॒ष्टुभा॑। अ॒नु॒स्तु॒भेत्य॑नु॒ऽस्तुभा॑। छन्द॑सा। इ॒न्द्रि॒यम्। बल॑म्। इन्द्रे॑। वयः॑। दध॑त्। व॒सु॒व॒न इति॑ वसु॒ऽवने॑। व॒सु॒धे॒य॒स्येति॑ वसु॒ऽधेय॑स्य। वी॒ता॒म्। यज॑॥३७॥

पदार्थः-(**देवी**) देदीप्यमाने (**उषासानक्ता**) रात्रिदिने इवाध्यापिकाध्येत्र्यौ स्त्रियौ (**देवम्**) दिव्यगुणम् (**इन्द्रम्**) जीवम् (**वयोधसम्**) (**देवी**) दिव्या पतिव्रता स्त्री (**देवम्**) दिव्यं स्त्रीव्रतं पतिम् (**अवर्धताम्**) (**अनुष्टुभा**) (**छन्दसा**) (**इन्द्रियम्**) इन्द्रेण जीवेन सेवितम् (**बलम्**) (**इन्द्रे**) जीवे (**वयः**) प्राणधारणम् (**दधत्**) (**वसुवने**) (**वसुधेयस्य**) (**वीताम्**) (**यज**)॥३७॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यथोषासानक्तेव देवी वयोधसं देवमिन्द्रं देवी देवमिवावर्धतां यथा च वसुधेयस्य वसुवने वीतां तथा वयो दधत्सन्ननुष्टुभा छन्दसेन्द्र इन्द्रियं बलं यज॥३७॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे मनुष्याः! यथा प्रीत्या स्त्रीपुरुषौ व्यवस्थयाऽहोरात्रौ च वर्धेते, तथा प्रीत्या धर्मव्यवस्थया च भवन्तो वर्धन्ताम्॥३७॥

पदार्थः-हे विद्वन् जन! जैसे (**उषासानक्ता**) दिन-रात्रि के समान (**देवी**) सुन्दर शोभायमान पढ़ाने पढ़ने वाली दो स्त्रियां (**वयोधसम्**) जीवन को धारण करने वाले (**देवम्**) उत्तम गुणयुक्त (**इन्द्रम्**) जीव को जैसे (**देवी**) उत्तम पतिव्रता स्त्री (**देवम्**) उत्तम स्त्रीव्रत लम्पटादि दोषरहित पति को बढ़ावे वैसे (**अवर्धताम्**) बढ़ावें और जैसे (**वसुधेयस्य**) धनाऽऽधार कोष के (**वसुवने**) धन को चाहने वाले के अर्थ (**वीताम्**) उत्पत्ति करें, वैसे (**वयः**) प्राणों के धारण को (**दधत्**) पुष्ट करते हुए (**अनुष्टुभा, छन्दसा**) अनुष्टुप् छन्द से (**इन्द्रे**) जीवात्मा में (**इन्द्रियम्**) जीव से सेवन किये (**बलम्**) बल को (**यज**) सङ्गत कीजिए॥३७॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जैसे प्रीति से स्त्री-पुरुष और व्यवस्था से दिन-रात बढ़ते हैं, वैसे प्रीति और धर्म की व्यवस्था से आप लोग बढ़ा करें॥३७॥

देवीत्यस्य सरस्वत्यृषिः। इन्द्रो देवता। भुरिगतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

अथ स्त्रीपुरुषौ किं कुर्यातामित्याह॥

अब स्त्रीपुरुष क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

दे॒वी जोष्ट्री॑ वसु॑धिती दे॒वमिन्द्रं॑ वयो॒धसं॑ दे॒वी दे॒वम॑वर्धताम्।

बृ॒ह॒त्या छन्द॑सेन्द्रि॒यꣳ श्रोत्र॒मिन्द्रे॒ वयो॒ दध॑द् वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वीतां॒ यज॑॥३८॥

दे॒वीऽइति॑ दे॒वी। जोष्ट्रीऽइति॑ जोष्ट्री॑। वसु॑धिती॒ इति॒ वसु॑ऽधिती। दे॒वम्। इन्द्र॑म्। व॒यो॒ध॒स॒मिति॑ व॒यः॒ऽधस॑म्। दे॒वीऽइति॑ दे॒वी। दे॒वम्। अ॒व॒र्ध॒ता॒म्। बृ॒ह॒त्या। छन्द॑सा। इ॒न्द्रि॒यम्। श्रोत्र॑म्। इन्द्रे॑। वय॑ः। दध॑त्। व॒सु॒व॒न॒ इति॑ वसु॒ऽवने॑। व॒सु॒धे॒य॒स्येति॑ वसु॒ऽधेय॑स्य। वी॒ता॒म्। यज॑॥३८॥

पदार्थः-(**देवी**) देदीप्यमाने (**जोष्ट्री**) प्रीतिमत्यौ (**वसुधिती**) विद्याधारिके (**देवम्**) दिव्यगुणम् सन्तानम् (**इन्द्रम्**) अन्नदातारम् (**वयोधसम्**) जीवनधारकम् (**देवी**) धर्मात्मा स्त्री (**देवम्**) धर्मात्मानं पतिम् (**अवर्धताम्**) (**बृहत्या**) (**छन्दसा**) (**इन्द्रियम्**) इन्द्रेणेश्वरेण सृष्टम् (**श्रोत्रम्**)

शब्दश्रावकम् **(इन्द्रे)** जीवे **(वयः)** कमनीयं सुखम् **(दधत्)** **(वसुवने)** **(वसुधेयस्य)** **(वीताम्)** व्याप्नुतः **(यज)**॥ ३८॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यथा देवी जोष्ट्री वसुधिती स्त्रियौ वयोधसमिन्द्रं देवं देवी देवमिव प्राप्यावर्धतां बृहत्या छन्दसेन्द्रे श्रोत्रमिन्द्रियं वीतां तथा वसुधेयस्य वसुवने वयो दधत् सन् यज॥ ३८॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे मनुष्य! यथाऽध्यापिकोपदेशिके स्त्रियौ स्वसन्तानानन्याः कन्याः स्त्रियश्च विद्याशिक्षाभ्यां वर्धयतस्तथा स्त्रीपुरुषौ परमप्रीत्या विद्याविचारेण स्वसन्तानान् वर्द्धयेतां स्वयं च वर्धेताम्॥ ३८॥

पदार्थः-हे विद्वन् जन! जैसे **(देवी)** तेजस्विनी **(जोष्ट्री)** प्रीति वाली **(वसुधिति)** विद्या को धारण करने हारी पढ़ने पढ़ाने वाली दो स्त्रियां **(वयोधसम्)** अवस्था वाले **(देवम्)** दिव्य गुण युक्त **(इन्द्रम्)** अन्नदाता अपने सन्तान को जैसे **(देवी)** धर्मात्मा स्त्री **(देवम्)** अपने धर्मनिष्ठ पति को वैसे प्राप्त हो के **(अवर्धताम्)** उन्नति को प्राप्त हो **(बृहत्या छन्दसा)** बृहती छन्द से **(इन्द्रे)** जीवात्मा में **(इन्द्रियम्)** ईश्वर ने रचे हुए **(श्रोत्रम्)** शब्द सुनने के हेतु कान को **(वीताम्)** व्याप्त हों, वैसे **(वसुधेयस्य)** धन के आधार कोष के **(वसुवने)** धन की चाहना के अर्थ **(वयः)** उत्तम मनोहर सुख को **(दधत्)** धारण करते हुए **(यज)** यज्ञादि कीजिए॥ ३८॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जैसे पढ़ाने और उपदेश करने वाली स्त्रियां अपने सन्तानों, अन्य कन्याओं वा स्त्रियों को विद्या तथा शिक्षा से बढ़ाती हैं, वैसे ही स्त्री-पुरुष परम प्रीति से विद्या के विचार के साथ अपने सन्तानों को बढ़ावें और आप बढ़ें॥ ३८॥

देवी इत्यस्य सरस्वत्यृषिः। इन्द्रो देवता। निचृच्छक्वरी छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनर्मनुष्यैः किं कर्त्तव्यमित्याह॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

दे॒वीऽऊ॒र्जाहु॑ती॒ दुघे॑ सु॒दुघे॒ पय॒सेन्द्रं॑ वयो॒धसं॑ दे॒वी दे॒वम॑वर्धताम्।
प॒ङ्क्त्या छन्द॑सेन्द्रि॒यꣳ शु॒क्रमिन्द्रे॒ वयो॒ दध॑द् वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वीतां॒ यज॑॥ ३९॥

दे॒वीऽइति॑ दे॒वी। ऊ॒र्जाहु॑ती॒ इत्यू॒र्जाऽआ॑हुती। दु॒घेऽइति॒ दुघे॑। सु॒दुघे॒ इति॑ सु॒ऽदुघे॑। पय॑सा। इन्द्र॑म्। व॒यो॒धस॒मिति॑ वय॒ःऽधस॑म्। दे॒वीऽइति॑ दे॒वी। दे॒वम्। अ॒व॒र्ध॒ता॒म्। प॒ङ्क्त्या। छन्द॑सा। इ॒न्द्रि॒यम्। शु॒क्रम्। इन्द्रे॑। वय॑ः। दध॑त्। व॒सु॒वन॒ इति॑ वसु॒ऽवने॑। व॒सु॒धे॒य॒स्येति॑ वसु॒ऽधेय॑स्य। वी॒ता॒म्। यज॑॥ ३९॥

पदार्थः-**(देवी)** दात्र्यौ **(ऊर्जाहुती)** सुसंस्कृतान्नाहुती **(दुघे)** पूरिके **(सुदुघे)** सुष्ठुकामप्रपूरिके **(पयसा)** जलवर्षणेन **(इन्द्रम्)** जीवम् **(वयोधसम्)** प्राणधारिणम् **(देवी)** पतिव्रता विदुषी स्त्री

(देवम्) स्त्रीव्रतं विद्वांसम् **(अवर्धताम्)** **(पङ्क्त्या)** **(छन्दसा)** **(इन्द्रियम्)** धनम् **(शुक्रम्)** वीर्यम् **(इन्द्रे)** जीवे **(वयः)** कमनीयं सुखम् **(दधत्)** **(वसुवने)** धनसेविने **(वसुधेयस्य)** **(वीताम्)** **(यज)**॥३९॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यथा दुघे सुदुघे देवी ऊर्जाहुती पयसा वयोधसमिन्द्रं देवी देवमिवावर्धतां पङ्क्त्या छन्दसा इन्द्रे शुक्रमिन्द्रियं वीतां तथा वसुधेयस्य वसुवने वयो दधत् सन् यज॥३९॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे मनुष्याः! यथाऽग्नौ प्रास्ताऽऽहुतिर्मेघमण्डलं प्राप्य पुनरागत्य च शुद्धेन जलेन सर्वं जगत् पुष्णाति, तथा विद्याग्रहणदानाभ्यां सर्वं पोषयत॥३९॥

पदार्थः-हे विद्वन पुरुष! जैसे **(दुघे)** पदार्थों को पूर्ण करने और **(सुदुघे)** सुन्दर प्रकार कामनाओं को पूर्ण करने हारी **(देवी)** सुगन्धि को देने वाली **(ऊर्जाहुती)** अच्छे संस्कार किये हुए अन्न की दो आहुती **(पयसा)** जल की वर्षा से **(वयोधसम्)** प्राणधारी **(इन्द्रम्)** जीव को जैसे **(देवी)** पतिव्रता विदुषी स्त्री **(देवम्)** व्यभिचारादि दोषरहित पति को बढ़ाती है, वैसे **(अवर्धताम्)** बढ़ावें **(पङ्क्त्या, छन्दसा)** पङ्क्ति छन्द से **(इन्द्रे)** जीवात्मा के निमित्त **(शुक्रम्)** पराक्रम और **(इन्द्रियम्)** धन को **(वीताम्)** प्राप्त करें, वैसे **(वसुधेयस्य)** धन के कोष के **(वसुवने)** धन का सेवन करने हारे के लिए **(वयः)** सुन्दर ग्राह्य सुख को **(दधत्)** धारण करते हुए **(यज)** यज्ञ कीजिए॥३९॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जैसे अग्नि में छोड़ी हुई आहुति मेघमण्डल को प्राप्त हो फिर आकर शुद्ध किये हुए जल से सब जगत् को पुष्ट करती है, वैसे विद्या के ग्रहण और दान से सब को पुष्ट किया करो॥३९॥

देवा इत्यस्य सरस्वत्यृषिः। इन्द्रो देवता। अतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनः स्त्रीपुंसाभ्यां किं कर्त्तव्यमित्याह॥

फिर स्त्री पुरुषों को क्या करना चाहिए, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

दे॒वा दैव्या॒ होता॑रा दे॒वमिन्द्रं॑ वयो॒धसं॑ दे॒वौ दे॒वम॑वर्धताम्।

त्रि॒ष्टुभा॒ छन्द॑सेन्द्रि॒यं त्विषि॒मिन्द्रे॒ वयो॒ दध॑द् वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वीतां॒ यज॑॥४०॥

दे॒वा। दैव्या॑। होता॑रा। दे॒वम्। इन्द्र॑म्। व॒यो॒धस॒मिति॑ वयः॒ऽधस॑म्। दे॒वौ। दे॒वम्। अ॒व॒र्ध॒ता॒म्। त्रि॒ष्टुभा॑। त्रि॒ऽस्तुभेति॑ त्रि॒ऽस्तुभा॑। छन्द॑सा। इ॒न्द्रि॒यम्। त्विषि॑म्। इन्द्रे॑। वय॑ः। दध॑त्। व॒सु॒व॒न इति॑ वसु॒ऽवने॑। व॒सु॒धे॒य॒स्येति॑ वसु॒ऽधेय॑स्य। वी॒ता॒म्। यज॑॥४०॥

पदार्थः-**(देवा)** कमनीयौ विद्वांसौ **(दैव्या)** कमनीयेषु कुशलौ **(होतारा)** दातारावध्यापकोपदेशकौ **(देवम्)** कामयमानम् **(इन्द्रम्)** जीवम् **(वयोधसम्)** आयुर्धारकम् **(देवौ)** शुभगुणान् कामयमानौ मातापितरौ **(देवम्)** कमनीयं पुत्रम् **(अवर्धताम्)** वर्धयतः **(त्रिष्टुभा)**

(छन्दसा) (इन्द्रियम्) श्रोत्रादि **(त्विषिम्)** प्रकाशयुक्तम् **(इन्द्रे)** स्वात्मनि **(वयः) (दधत्) (वसुवने) (वसुधेयस्य) (वीताम्) (यज)**॥४०॥

अन्वयः-हे होतारा! यथा दैव्या देवा वयोधसं देवमिन्द्रं देवौ देवमिवाऽवर्द्धतां तथा वसुधेयस्य वसुवने वीताम्। हे विद्वन्! त्रिष्टुभा छन्दसेन्द्रे त्विषिमिन्द्रियं वयो दधत् सन् त्वं यज॥४०॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथाऽध्यापकोपदेशकौ विद्यार्थिशिष्यौ मातापितरावपत्यानि वर्धयतस्तथा विद्वांसौ स्त्रीपुरुषौ वेदविद्यया सर्वान् वर्द्धयेताम्॥४०॥

पदार्थः-हे **(होतारा)** दानशील अध्यापक उपदेशक लोगो! जैसे **(दैव्या)** कामना के योग्य पदार्थ बनाने में कुशल **(देवा)** चाहने योग्य दो विद्वान् **(वयोधसम्)** अवस्था के धारक **(देवम्)** कामना करते हुए **(इन्द्रम्)** जीवात्मा को जैसे **(देवौ)** शुभगुणों की चाहना करते हुए माता-पिता **(देवम्)** अभीष्ट पुत्र को बढ़ावें, वैसे **(अवर्धताम्)** बढ़ावें, **(वसुधेयस्य)** धनकोष के **(वसुवने)** धन सेवने वाले जन के लिए **(वीताम्)** प्राप्त हूजिए तथा हे विद्वन् पुरुष! **(त्रिष्टुभा, छन्दसा)** छन्द से **(इन्द्रे)** आत्मा में **(त्विषिम्)** प्रकाशयुक्त **(इन्द्रियम्)** कान आदि इन्द्रिय और **(वयः)** सुख को **(दधत्)** धारण करता हुआ तू **(यज)** यज्ञादि उत्तम कर्म कर॥४०॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे पढ़ने और उपदेश करने हारे विद्यार्थी और शिष्यों को तथा माता-पिता सन्तानों को बढ़ाते हैं, वैसे विद्वान् स्त्री-पुरुष वेदविद्या से सब को बढ़ावें॥४०॥

देवीरित्यस्य सरस्वत्यृषिः। इन्द्रो देवता। भुरिग् जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

अथ राजप्रजाधर्मविषयमाह॥

अब राज प्रजा का धर्म विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

देवीस्तिस्रस्तिस्रो देवीर्वयोधसं पतिमिन्द्रमवर्धयन्।

जगत्या छन्दसेन्द्रियꣳ शूषमिन्द्रे वयो दधद् वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज॥४१॥

देवीः। तिस्रः। तिस्रः। देवीः। वयोधसमिति वयःऽधसम्। पतिम्। इन्द्रम्। अवर्धयन्। जगत्या। छन्दसा। इन्द्रियम्। शूषम्। इन्द्रे। वयः। दधत्। वसुवन इति वसुऽवने। वसुधेयस्येति वसुऽधेयस्य। व्यन्तु। यज॥४१॥

पदार्थः-**(देवीः)** देदीप्यमाना विदुष्यः **(तिस्रः)** त्रित्वसंख्याकाः **(तिस्रः)** अध्यापकोपदेशकपरीक्षित्र्यः **(देवीः)** अत्रादरार्थं द्विरुक्तिः **(वयोधसम्)** जीवनधारकम् **(पतिम्)** पालकं स्वामिनम् **(इन्द्रम्)** परमैश्वर्यवन्तं सम्राजम् **(अवर्द्धयन्)** वर्धयेयुः **(जगत्या) (छन्दसा)**

(इन्द्रियम्) **(शूषम्)** बलम् **(इन्द्रे)** स्वात्मनि **(वयः)** शत्रुबलव्यापकम् **(दधत्)** **(वसुवने)** **(वसुधेयस्य)** **(व्यन्तु)** व्याप्नुवन्तु **(यज)**॥४१॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यथा तिस्रो देवीस्तिस्रो देवीर्वयोधसं पतिमिन्द्रमवर्द्धयन् व्यन्तु तथा जगत्या छन्दसेन्द्रे शूषमिन्द्रियं वयो दधत् सन् वसुधेयस्य वसुवने यज॥४१॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथाऽध्यापकोपदेशकपरीक्षकाः स्त्रीपुरुषाः प्रजासु विद्यासदुपदेशान् प्रचारयेयुस्तथा राजैतेषां यथावद् रक्षां कुर्यादेवं राजप्रजाजनाः परस्परं प्रीताः सन्तः सर्वतो वृद्धिं प्राप्नुवन्तु॥४१॥

पदार्थः-हे विद्वन्! जैसे **(तिस्रः)** तीन **(देवीः)** तेजस्विनी विदुषी **(तिस्रः)** तीन पढ़ाने, उपदेश करने और परीक्षा लेने वाली **(देवीः)** विदुषी स्त्री **(वयोधसम्)** जीवन धारण करने हारे **(पतिम्)** रक्षक स्वामी **(इन्द्रम्)** उत्तम ऐश्वर्य वाले चक्रवर्त्ती राजा को **(अवर्धयन्)** बढ़ावें तथा **(व्यन्तु)** व्याप्त होवें, वैसे **(जगत्या, छन्दसा)** जगती छन्द से **(इन्द्रे)** अपने आत्मा में **(शूषम्, वयः)** शत्रुसेना में व्यापक होने वाले अपने बल तथा **(इन्द्रियम्)** कान आदि इन्द्रिय को **(दधत्)** धारण करते हुए **(वसुधेयस्य)** धनकोष के **(वसुवने)** धनदाता के अर्थ **(यज)** अग्निहोत्रादि यज्ञ कीजिए॥४१॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे पढ़ने, उपदेश करने और परीक्षा लेने वाले स्त्री-पुरुष प्रजाओं में विद्या और श्रेष्ठ उपदेशों का प्रचार करें, वैसे राजा इनकी यथावत् रक्षा करे। इस प्रकार राजपुरुष और प्रजापुरुष आपस में प्रसन्न हुए सब ओर से वृद्धि को प्राप्त हुआ करें॥४१॥

देव इत्यस्य सरस्वत्यृषिः। इन्द्रो देवता। निचृदतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

अथ विद्वद्भिः किं कर्त्तव्यमित्याह॥

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

देवो नराशꣳसो देवमिन्द्रं वयोधसं देवो देवमवर्द्धयत्।

विराजा छन्दसेन्द्रियꣳ रूपमिन्द्रे वयो दधद् वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज॥४२॥

देवः। नराशꣳसः। देवम्। इन्द्रम्। वयोधसमिति वयःऽधसम्। देवः। देवम्। अवर्धयत्। विराजेति विऽराजा। छन्दसा। इन्द्रियम्। रूपम्। इन्द्रे। वयः। दधत्। वसुवन इति वसुऽवने। वसुधेयस्येति वसुऽधेयस्य। वेतु। यज॥४२॥

पदार्थः-**(देवः)** विद्वान् **(नराशंसः)** यो नरैराशंस्यते सः **(देवम्)** दिव्यगुणकर्मस्वभावम् **(इन्द्रम्)** राजानम् **(वयोधसम्)** चिरंजीविनम् **(देवः)** विद्वान् **(देवम्)** विद्वांसम् **(अवर्धयत्)** वर्धयेत्

(विराजा) (छन्दसा) (इन्द्रियम्) (रूपम्) (इन्द्रे) (वयः) (दधत्) (वसुवने) (वसुधेयस्य) (वेतु) (यज)॥४२॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यथा नराशंसो देवो वयोधसं देवमिन्द्रं देवो देवमिवावर्धयद् विराजा छन्दसेन्द्रे रूपमिन्द्रियं वेतु तथा वसुधेयस्य वसुवने वयो दधत् सन् यज॥४२॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। विद्वद्भिः कदाचित् परस्परस्मिन्नीर्ष्ययाऽन्योऽन्यस्य हानिर्नैव कार्या, किन्तु सदैव प्रीत्या वृद्धिः सम्पादनीयाः॥४२॥

पदार्थः-हे विद्वन् जन! जैसे **(नराशंसः)** मनुष्यों से प्रशंसा करने योग्य **(देवः)** विद्वान् **(वयोधसम्)** बहुत अवस्था वाले **(देवम्)** उत्तम गुण, कर्म, स्वभावयुक्त **(इन्द्रम्)** राजा को जैसे **(देवः)** विद्वान् **(देवम्)** विद्वान् को वैसे **(अवर्धयत्)** बढ़ावे **(विराजा, छन्दसा)** विराट् छन्द से **(इन्द्रे)** आत्मा में **(रूपम्)** सुन्दर रूप वाले **(इन्द्रियम्)** श्रोत्रादि इन्द्रिय को **(वेतु)** प्राप्त करे, वैसे **(वसुधेयस्य)** धनकोष के **(वसुवने)** धन को सेवने वाले जन के लिए **(वयः)** अभीष्ट सुख को **(दधत्)** धारण करता हुआ तू **(यज)** सङ्गम वा दान कीजिए॥४२॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। विद्वानों को चाहिए कि कभी आपस में ईर्ष्या करके एक दूसरे की हानि नही करें, किन्तु सदैव प्रीति से उन्नति किया करें॥४२॥

देव इत्यस्य सरस्वत्यृषिः। इन्द्रो देवता। निचृदतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

देवो वनस्पतिर्देवमिन्द्रं वयोधसं देवो देवमवर्धयत्।

द्विपदा छन्दसेन्द्रियं भगमिन्द्रे वयो दधद् वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज॥४३॥

देवः। वनस्पतिः। देवम्। इन्द्रम्। वयोधसमिति वयःऽधसम्। देवः। देवम्। अवर्धयत्। द्विपदेति द्विऽपदा। छन्दसा। इन्द्रियम्। भगम्। इन्द्रे। वयः। दधत्। वसुवन इति वसुऽवने। वसुधेयस्येति वसुऽधेयस्य। वेतु। यज॥४३॥

पदार्थः-**(देवः)** दिव्यगुणः **(वनस्पतिः)** वनानां पालको वटादिः **(देवम्)** दिव्यगुणम् **(इन्द्रम्)** ऐश्वर्यम् **(वयोधसम्)** आयुर्धारकम् **(देवः)** दिव्यः सभ्यः **(देवम्)** दिव्यस्वभावं विद्वांसम् **(अवर्धयत्) (द्विपदा) (छन्दसा) (इन्द्रियम्)** धनम् **(भगम्)** ऐश्वर्यम् **(इन्द्रे) (वयः)** कमनीयं सुखम् **(दधत्) (वसुवने) (वसुधेयस्य) (वेतु) (यज)**॥४३॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यथा वनस्पतिर्देवो वयोधसं देवमिन्द्रं देवो देवमिवावर्द्धयत्। द्विपदा छन्दसेन्द्रे भगमिन्द्रियं वेतु तथा वसुधेयस्य वसुवने वयो दधत् सन् यज॥४३॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। विद्वांसो मनुष्या युष्माभिर्यथा वनस्पतयः पुष्कलं जलमधस्तादाकृष्य वायौ मेघमण्डले च प्रसार्य सर्वानुद्भिज्जो रक्षन्ति, यथा च राजपुरुषा राजपुरुषानवन्ति, तथा वर्त्तित्वैश्वर्यमुन्नेयम्॥४३॥

पदार्थः-हे विद्वन्! जैसे **(वनस्पतिः)** वनों का रक्षक वट आदि **(देवः)** उत्तम गुणों वाला **(वयोधसम्)** अधिक उमर वाले **(देवम्)** उत्तम गुणयुक्त **(इन्द्रम्)** ऐश्वर्य को जैसे **(देवः)** उत्तम सभ्यजन **(देवम्)** उत्तम स्वभाव वाले विद्वान् को वैसे **(अवर्धयत्)** बढ़ावे **(द्विपदा)** दो पाद वाले **(छन्दसा)** छन्द से **(इन्द्रे)** आत्मा में **(भगम्)** ऐश्वर्य तथा **(इन्द्रियम्)** धन को **(वेतु)** प्राप्त हो, वैसे **(वसुधेयस्य)** धनकोष के **(वसुवने)** धन को देनेहारे के लिए **(वयः)** अभीष्ट सुख को **(दधत्)** धारण करता हुआ तू **(यज)** यज्ञ कर॥४३॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे विद्वान् मनुष्यो! तुम को जैसे वनस्पति पुष्कल जल को नीचे पृथिवी से आकर्षण करके वायु और मेघमण्डल में फैला के सब घास आदि की रक्षा करते और जैसे राजपुरुष राजपुरुषों की रक्षा करते हैं, वैसे वर्त्त के ऐश्वर्य की उन्नति करनी चाहिए॥४३॥

देवमित्यस्य सरस्वत्यृषिः। इन्द्रो देवता। भुरिगतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

दे॒वं ब॒र्हिर्वारि॑तीनां दे॒वमिन्द्रं॑ वयो॒धसं॑ दे॒वं दे॒वम॑वर्धयत्।

क॒कुभा॒ छन्द॑सेन्द्रियं यश॒ऽइन्द्रे॒ वयो॒ दध॑द् वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वेतु॒ यज॑॥४४॥

दे॒वम्। ब॒र्हिः। वारि॑तीनाम्। दे॒वम्। इन्द्र॑म्। व॒यो॒धस॒मिति॑ वयः॒ऽधस॑म्। दे॒वम्। दे॒वम्। अ॒व॒र्द्ध॒य॒त्। क॒कुभा॑। छन्द॑सा। इ॒न्द्रि॒यम्। यश॑ः। इन्द्रे॑। वय॑ः। दध॑त्। व॒सु॒व॒न इति॑ वसु॒ऽवने॑। व॒सु॒धे॒य॒स्येति॑ वसु॒ऽधेय॑स्य। वे॒तु॒। यज॑॥४४॥

पदार्थः-**(देवम्)** दिव्यम् **(बर्हिः)** उदकम्। **बर्हिरित्युदकना०** (निघं०१।१२) **(वारितीनाम्)** अन्तरिक्षस्थसमुद्राणाम् **(देवम्)** दिव्यम् **(इन्द्रम्)** राजानम् **(वयोधसम्)** बहुवयोधारकम् **(देवम्)** दिव्यगुणम् **(देवम्)** प्रकाशमानम् **(अवर्धयत्)** वर्धयेत् **(ककुभा, छन्दसा)** **(इन्द्रियम्)** इन्द्रस्य जीवस्य लिङ्गम् **(यशः)** कीर्त्तिम् **(इन्द्रे)** परमेश्वर्ये **(वयः)** **(दधत्)** **(वसुवने)** **(वसुधेयस्य)** **(वेतु)** **(यज)**॥४४॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यथा वारितीनां देवं बर्हिर्वयोधसं देवमिन्द्रं देवं देवं चावर्धयत् ककुभा छन्दसेन्द्रं यश इन्द्रियं वेतु तथा वसुधेयस्य वसुवने वयो दधद् यज॥४४॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे विद्वांसो मनुष्याः! यथोदकं समुद्रान् प्रपूर्य जन्तून् संरक्ष्य मुक्तादीनि रत्नानि जनयति, तथा धर्मेण धनकोषं प्रपूर्याऽन्यान् दरिद्रान् संरक्ष्य कीर्त्तिं वर्धयत॥४४॥

पदार्थः-हे विद्वन् जन! जैसे **(वारितीनाम्)** अन्तरिक्ष के समुद्र का **(देवम्)** उत्तम **(बर्हिः)** जल **(वयोधसम्)** बहुत अवस्था वाले **(देवम्)** उत्तम **(इन्द्रम्)** राजा को और **(देवम्)** उत्तम गुणवान् **(देवम्)** प्रकाशमान प्रत्येक जीव को **(अवर्धयत्)** बढ़ाता है **(ककुभा, छन्दसा)** ककुप् छन्द से **(इन्द्रे)** उत्तम ऐश्वर्य के निमित्त **(यशः)** कीर्त्ति तथा **(इन्द्रियम्)** जीव के चिह्नरूप श्रोत्रादि इन्द्रिय को **(वेतु)** प्राप्त होवे, वैसे **(वसुधेयस्य)** धनकोष के **(वसुवने)** धन को सेवने हारे के लिए **(वयः)** अभीष्ट सुख को **(दधत्)** धारण करते हुए **(यज)** यज्ञ कीजिए॥४४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे विद्वान् मनुष्यो! जैसे जल समुद्रों को भर और जीवों की रक्षा करके मोती आदि रत्नों को उत्पन्न करता है, वैसे धर्म से धन के कोष को पूर्ण कर और अन्य दरिद्रियों की सम्यक् रक्षा करके कीर्त्ति को बढ़ाओ॥४४॥

देव इत्यस्य सरस्वत्यृषिः। इन्द्रो देवता। स्वराडतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

देवोऽअग्निः स्विष्टकृद् देवमिन्द्रं वयोधसं देवो देवमवर्धयत्।
अतिछन्दसा छन्दसेन्द्रियं क्षत्रमिन्द्रे वयो दधद् वसुधेयस्य वसुवने वेतु यज॥४५॥

देवः। अग्निः। स्विष्टकृदिति स्विष्टऽकृत्। देवम्। इन्द्रम्। वयोधसमिति वयःऽधसम्। देवः। देवम्। अवर्धयत्। अतिछन्दसेत्यतिऽछन्दसा। छन्दसा। इन्द्रियम्। क्षत्रम्। इन्द्रे। वयः। दधत्। वसुधेयस्येति वसुऽधेयस्य। वसुवन इति वसुऽवने। वेतु। यज॥४५॥

पदार्थः-**(देवः)** सर्वज्ञः **(अग्निः)** स्वप्रकाशस्वरूप ईश्वरः **(स्विष्टकृत्)** यः शोभनमिष्टं करोति सः **(देवम्)** धार्मिकम् **(इन्द्रम्)** जीवम् **(वयोधसम्)** आयुषो धर्त्तारम् **(देवः)** विद्वान् **(देवम्)** विद्यार्थिनम् **(अवर्धयत्)** वर्धयति **(अतिछन्दसा)** अतिजगत्यादिना **(छन्दसा)** आह्लादकरेण **(इन्द्रियम्)** जीवेन सेवितम् **(क्षत्रम्)** राज्यम् **(इन्द्रे)** विद्याविनयान्विते **(वयः)** कमनीयं वस्तु **(दधत्)** **(वसुधेयस्य)** **(वसुवने)** **(वेतु)** व्याप्नोतु **(यज)**॥४५॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यथा स्विष्टकृद्देवोऽग्निर्वयोधसं देवमिन्द्रं देवो देवमिवावर्धयदतिछन्दसा छन्दसेन्द्रे वसुधेयस्य वसुवने वयः क्षत्रमिन्द्रियं दधत् सन् वेतु तथा यज॥४५॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। हे विद्वांसो मनुष्या:! यथा परमेश्वरेण दयया सर्वान् पदार्थानुत्पाद्य जीवेभ्य: समर्प्य जगद् वृद्धि: कृता, तथा विद्याविनयसत्सङ्गपुरुषार्थधर्मानुष्ठानै राज्यं वर्धयत॥४५॥

पदार्थ:-हे विद्वन्! जैसे **(स्विष्टकृत्)** सुन्दर अभीष्ट को सिद्ध करनेहारा **(देव:)** सर्वज्ञ **(अग्नि:)** स्वयं प्रकाशस्वरूप ईश्वर **(वयोधसम्)** अवस्था के धारक **(देवम्)** धार्मिक **(इन्द्रम्)** जीव को जैसे **(देव:)** विद्वान् **(देवम्)** विद्यार्थी को वैसे **(अवर्धयत्)** बढ़ाता है **(अतिछन्दसा, छन्दसा)** अतिजगती आदि आनन्दकारक छन्द से **(इन्द्रे)** विद्या, विनय से युक्त राजा के निमित्त **(वसुधेयस्य)** धनकोष के **(वसुवने)** धन के दाता के लिए **(वय:)** मनोहर वस्तु **(क्षत्रम्)** राज्य और **(इन्द्रियम्)** जीवन से सेवन किए हुए इन्द्रिय को **(दधत्)** धारण करता हुआ **(वेतु)** व्याप्त होवे, वैसे **(यज)** यज्ञादि उत्तम कर्म कीजिए॥४५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे विद्वान् मनुष्यो! जैसे परमेश्वर ने अपनी दया से सब पदार्थों को उत्पन्न कर और जीवों के लिए समर्पण करके जगत् की वृद्धि की है, वैसे विद्या, विनय, सत्सङ्ग, पुरुषार्थ और धर्म के अनुष्ठानों से राज्य को बढ़ाओ॥४५॥

अग्निमित्यस्य सरस्वत्यृषि:। इन्द्रो देवता। आकृतिश्छन्द:। पञ्चम: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमान: पचन् पक्ती: पचन् पुरोडाशं बध्नन्निन्द्राय वयोधसे छागम्। सूपस्थाऽअद्य देवो वनस्पतिरभवदिन्द्राय वयोधसे छागेन। अघत्तं मेदस्त: प्रतिपचताऽग्रभीदवीवृधत् पुरोडशेन। त्वामद्यऽऋषे॥ ४६॥

अग्निम्। अद्य। होतारम्। अवृणीत। अयम्। यजमान:। पचन्। पक्ती:। पचन्। पुरोडाशम्। बध्नन्। इन्द्राय। वयोधस इति वय:ऽधसे। छागम्। सूपस्था इति सुऽउपस्था। अद्य। देव:। वनस्पति:। अभवत्। इन्द्राय। वयोधस इति वय:ऽधसे। छागेन। अघत्तम्। मेदस्त:। प्रति। पचता। अग्रभीत्। अवीवृधत्। पुरोडाशेन। त्वाम्। अद्य। ऋषे॥४६॥

पदार्थ:-**(अग्निम्)** तेजस्विनम् **(अद्य)** इदानीम् **(होतारम्)** **(अवृणीत)** वृणुयात् **(अयम्)** **(यजमान:)** यज्ञकर्त्ता **(पचन्)** **(पक्ती:)** नानाविधान् पाकान् **(पचन्)** **(पुरोडाशम्)** **(बध्नन्)** **(इन्द्राय)** परमैश्वर्याय **(वयोधसे)** सर्वेषां जीवनवर्धकाय **(छागम्)** छेदकम् **(सूपस्था:)** ये सूपतिष्ठन्ति ते **(अद्य)** **(देव:)** विद्वान् **(वनस्पति:)** वनानां पालक: **(अभवत्)** भवेत् **(इन्द्राय)** शत्रुविनाशकाय **(वयोधसे)**

(छागेन) छेदनेन **(अघत्तम्)** भुञ्जीयाताम् **(मेदस्तः)** स्निग्धात् **(प्रति)** **(पचता)** परिपक्वभावं प्राप्तेन **(अग्रभीत्)** गृह्णीयात् **(अवीवृधत्)** वर्धेत **(पुरोडाशेन)** **(त्वाम्)** **(अद्य)** **(ऋषे)** मन्त्रार्थवित्॥४६॥

अन्वयः-हे ऋषे यथाऽयं यजमानोऽद्य पक्तीः पचन् पुरोडाशं पचन्नग्निं होतारमद्यावृणीत् तथा वयोधस इन्द्राय छागं बध्नन् वृणुहि। यथाऽद्य वनस्पतिर्देवो वयोधस इन्द्राय छागेनोद्यतोऽभवत्, तथा सूपस्था भवन्तु। यथा पचता पुरोडाशेन मेदस्तस्त्वां प्रत्यग्रभीदवीवृधत् तथा हे यजमानहोतारौ! युवां पुरोडाशमघत्तम्॥४६॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा सूदा उत्तमान्यन्नानि व्यञ्जनानि च पक्त्वा भोजयेयुस्तथैतान् भोक्तारो विद्वांसो मानयेयुः। यथाऽजादयः पशवो घासादिकं भुक्त्वा सम्यक् पचन्ति, तथैव भुक्तमन्नं पाचयेयुरिति॥४६॥

अत्र होतृगुणवर्णनं, वागश्विगुणप्रतिपादनं, पुनर्होतृकृत्यप्रतिपादनं, यज्ञवर्णनं, विद्वत्प्रशंसा चोक्ताऽत एतदर्थस्य पूर्वाऽध्यायार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति बोध्यम्॥

पदार्थः-हे **(ऋषे)** मन्त्रार्थ जानने वाले विद्वान् पुरुष! जैसे **(अयम्)** यह **(यजमानः)** यज्ञ करने हारा **(अद्य)** इस समय **(पक्तीः)** नाना प्रकार के पाकों को **(पचन्)** पकाता और **(पुरोडाशम्)** यज्ञ में होमने के पदार्थ को **(पचन्)** पकाता हुआ **(अग्निम्)** तेजस्वी **(होतारम्)** होता को **(अद्य)** आज **(अवृणीत)** स्वीकार करे, वैसे **(वयोधसे)** सब के जीवन को बढ़ाने हारे **(इन्द्राय)** उत्तम ऐश्वर्य के लिए **(छागम्)** छेदन करने वाले बकरी आदि पशु को **(बध्नन्)** बांधते हुए स्वीकार कीजिए, जैसे **(अद्य)** आज **(वनस्पतिः)** वनों का रक्षक **(देवः)** विद्वान् **(वयोधसे)** अवस्थावर्धक **(इन्द्राय)** शत्रुविनाशक राजा के लिए **(छागेन)** छेदन के साथ उद्यत **(अभवत्)** होवे, वैसे सब लोग **(सूपस्थाः)** सुन्दर प्रकार समीप रहने वाले हों, वैसे **(पचता)** पकाये हुए **(पुरोडाशेन)** यज्ञपाक से **(मेदस्तः)** चिकनाई से **(त्वाम्)** आपको **(प्रति, अग्रभीत्)** ग्रहण करे और **(अवीवृधत्)** बढ़े, वैसे हे यजमान और होता लोगो! तुम दोनों यज्ञ के शेष भाग को **(अघत्तम्)** खाओ॥४६॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे रसोइये लोग उत्तम अन्न व्यञ्जनों को बना के भोजन करावें, वैसे ही भोक्ता लोग उनका मान्य करें। जैसे बकरी आदि पशु घास आदि को खाके सम्यक् पचा लेते हैं, वैसे ही भोजन किए हुए अन्नादि आदि को पचाया करें॥४६॥

इस अध्याय में होता के गुणों, वाणी और अश्वियों के गुणों, फिर भी होता के कर्त्तव्य, यज्ञ की व्याख्या और विद्वानों की प्रशंसा को कहा है, इससे इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ सङ्गति है, ऐसा जानना चाहिए॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां श्रीयुतपरमविदुषां विरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण श्रीपरमहंसपरिव्राजकाचार्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचिते

संस्कृतार्यभाषाभ्यां समन्विते सुप्रमाणयुक्ते यजुर्वेदभाष्येऽष्टाविंशोऽध्यायः पूर्तिं प्रापत्॥ २८॥

॥ओ३म्॥

अथैकोनत्रिंशोऽध्याय आरभ्यते

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव। यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व॥ यजु० ३० . ३॥

समिद्ध इत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः। अग्निर्देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ मनुष्यैरग्निजलादिना किं साध्यमित्याह॥

अब उनतीसवें अध्याय का आरम्भ है, इसके पहिले मन्त्र में मनुष्यों को अग्नि जलादि से क्या सिद्ध करना चाहिए, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

समि॑द्धोऽअ॒ञ्जन् कृद॑रं मती॒नां घृ॒तम॑ग्ने॒ मधु॑म॒त् पिन्व॑मानः।

वा॒जी वह॑न् वा॒जिनं॑ जातवेदो दे॒वानां॑ वक्षि प्रि॒यमा स॒धस्थ॑म्॥ १॥

समि॑द्ध इति॒ सम्ऽइ॑द्धः। अ॒ञ्जन्। कृद॑रम्। म॒ती॒नाम्। घृ॒तम्। अ॒ग्ने॒। मधु॑म॒दिति॒ मधु॑ऽमत्। पिन्व॑मानः। वा॒जी। वह॑न्। वा॒जिन॑म्। जा॒त॒वे॒द॒ इति॑ जातऽवेदः। दे॒वाना॑म्। व॒क्षि॒। प्रि॒यम्। आ। स॒ध॒स्थ॒मिति॑ स॒धऽस्थ॑म्॥ १॥

पदार्थः-(**समिद्धः**) सम्यक् प्रदीप्तः (**अञ्जन्**) व्यक्तीभवन् (**कृदरम्**) उदरम् (**मतीनाम्**) मनुष्याणाम् (**घृतम्**) उदकमाज्यं वा (**अग्ने**) अग्निवद्वर्त्तमान (**मधुमत्**) मधुरा बहवो गुणा विद्यन्ते यस्मिन् तत् (**पिन्वमानः**) सेवमानः (**वाजी**) वेगवान् जनः (**वहन्**) (**वाजिनम्**) वेगवन्तमश्वम् (**जातवेदः**) जातप्रज्ञ (**देवानाम्**) विदुषाम् (**वक्षि**) वहसि प्रापयसि (**प्रियम्**) प्रीणन्ति यस्मिंस्तत् (**आ**) समन्तात् (**सधस्थम्**) सहस्थानम्॥ १॥

अन्वयः-हे जातवेदोऽग्ने विद्वन्! यथा समिद्धाऽञ्जन्नग्निर्मतीनां कृदरं मधुमद् घृतं पिन्वमानो वाजिनं वाजी वहन्निव देवानां सधस्थामावहति, तथा प्रियं वक्षि प्रापय॥ १॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यदि मनुष्या जाठराग्निं प्रदीप्तं रक्षेयुर्बाह्यमग्निं सम्प्रयुञ्जीरंस्तर्ह्ययमश्ववद् यानानि देशान्तरं सद्यः प्रापयेत्॥ १॥

पदार्थः-हे (**जातवेदः**) प्रसिद्ध बुद्धिमान् (**अग्ने**) अग्नि के तुल्य तेजस्वी विद्वन् जन! जैसे (**समिद्धः**) सम्यक् जलाया (**अञ्जन्**) प्रकट होता हुआ अग्नि (**मतीनाम्**) मनुष्यों के (**कृदरम्**) पेट और (**मधुमत्**) बहुत उत्तम गुणों वाले (**घृतम्**) जल वा घी को (**पिन्वमानः**) सेवन करता हुआ जैसे (**वाजी**) वेगवान् मनुष्य (**वाजिनम्**) शीघ्रगामी घोड़े को (**वहन्**) चलाता वैसे (**देवानाम्**) विद्वानों के (**सधस्थम्**) साथ स्थिति को (**आ**) प्राप्त करता है, वैसे (**प्रियम्**) प्रीति के निमित्तस्थान को (**वक्षि**) प्राप्त कीजिए॥ १॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य जाठराग्नि को तेज रक्खें और बाहर के अग्नि को कलाकौशलादि में युक्त किया करें तो यह अग्नि घोड़े के तुल्य सवारियों को देशान्तर में शीघ्र पहुंचावे॥१॥

घृतेनेत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषि:। अग्निर्देवता। विराट् त्रिष्टुप् छन्द:। धैवत: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

घृतेनाञ्जन्त्सं पथो देवयानान् प्रजानन् वाज्यप्येतु देवान्।
अनु त्वा सप्ते प्रदिश: सचन्ताꣳ स्वधामस्मै यजमानाय धेहि॥२॥

घृतेन। अञ्जन्। सम्। पथ:। देवयानानिति देवऽयानान्। प्रजानन्निति प्रऽजानन्। वाजी। अपि। एतु। देवान्। अनु। त्वा। सप्ते। प्रदिश इति प्रऽदिश:। सचन्ताम्। स्वधाम्। अस्मै। यजमानाय। धेहि॥२॥

पदार्थ:-(**घृतेन**) उदकेनान्नेन वा (**अञ्जन्**) प्रकटीभवन् (**सम्**) सम्यक् (**पथ:**) मार्गान् (**देवयानान्**) देवा विद्वांसो यान्ति गच्छन्ति येषु तान् (**प्रजानन्**) प्रकर्षेण बुध्यमान: (**वाजी**) वेगवान् (**अपि**) (**एतु**) प्राप्नोतु (**देवान्**) विदुष: (**अनु**) (**त्वा**) त्वाम् (**सप्ते**) अश्व इव वेगकारक (**प्रदिश:**) सर्वा दिश: (**सचन्ताम्**) समवयन्तु (**स्वधाम्**) अन्नम् (**अस्मै**) (**यजमानाय**) (**धेहि**)॥२॥

अन्वय:-हे सप्तेऽश्व इव वर्त्तमान विद्वन्! यथा वाज्यप्यग्निर्घृतेनाञ्जन् देवयानान् पथ: समेतु तं प्रजानन् संस्त्वं देवानेहि, येन त्वाऽनुप्रदिश: सचन्तां त्वमस्मै यजमानाय स्वधां धेहि॥२॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। येऽग्निजलादिप्रयुक्तैर्वाष्पयानै: सद्यो मार्गान् गत्वाऽऽगत्य सर्वासु दिक्षु भ्रमेयुस्ते तत्र पुष्कलान्यन्नादीनि संप्राप्य प्रज्ञया कार्याणि साद्धुं शक्नुवन्ति॥२॥

पदार्थ:-हे (**सप्ते**) घोड़े के समान वेग से वर्त्तमान विद्वान् जन! जैसे (**वाजी, अपि**) वेगवान् भी अग्नि (**घृतेन**) घी वा जल से (**अञ्जन्**) प्रगट हुआ (**देवयानान्**) विद्वान् लोग जिन में चलते हैं, उन (**पथ:**) मार्गों को (**सम, एतु**) सम्यक् प्राप्त होवे, उसको (**प्रजानन्**) अच्छे प्रकार जानते हुए आप (**देवान्**) विद्वानों को (**एहि**) प्राप्त हूजिये, जिससे (**त्वा**) आपके (**अनु**) अनुकूल (**प्रदिश:**) सब दिशा-विदिशाओं को (**सचन्ताम्**) सम्बन्ध करें। आप (**अस्मै**) इस (**यजमानाय**) यज्ञ करने वाले पुरुष के लिए (**स्वधाम्**) अन्न को (**धेहि**) धारण कीजिए॥२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो पुरुष अग्नि और जलादि से युक्त किये भाप से चलने वाले यानों से शीघ्र मार्गों में जा आ के सब दिशाओं में भ्रमण करें, वे वहां-वहां सर्वत्र पुष्कल अन्नादि को प्राप्त कर बुद्धि से कार्यों को सिद्ध कर सकते हैं॥२॥

ईड्य इत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः। अग्निर्देवता। पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ईड्यश्चासि वन्द्यश्च वाजिन्नाशुश्चासि मेध्यश्च सप्ते।

अग्निष्ट्वा देवैर्वसुभिः सजोषाः प्रीतं वह्निं वहतु जातवेदाः॥ ३॥

ईड्यः। च। असि। वन्द्यः। च। वाजिन्। आशुः। च। असि। मेध्यः। च। सप्ते। अग्निः। त्वा। देवैः। वसुभिरिति वसुऽभिः। सजोषा इति सऽजोषाः। प्रीतम्। वह्निम्। वहतु। जातवेदा इति जातऽवेदाः॥ ३॥

पदार्थः-**(ईड्यः)** स्तोतुमर्हः **(च)** **(असि)** **(वन्द्यः)** वन्दितुं नमस्कर्त्तुं योग्यः **(च)** **(वाजिन्)** प्रशस्तवेगवान् **(आशुः)** शीघ्रगामी **(च)** **(असि)** **(मेध्यः)** संगमनीयः **(च)** **(सप्ते)** अश्व इव पुरुषार्थिन् **(अग्निः)** पावकः **(त्वा)** त्वाम् **(देवैः)** दिव्यगुणैः **(वसुभिः)** पृथिव्यादिभिः सह **(सजोषाः)** समानप्रीतिः **(प्रीतम्)** प्रशस्तम् **(वह्निम्)** वोढारम् **(वहतु)** **(जातवेदाः)** जातवित्तः॥ ३॥

अन्वयः-हे वाजिन् सप्ते शिल्पिन् विद्वन्! यतो जातवेदाः सजोषाः सन् भवान् वसुभिर्देवैः सह प्रीतं वह्निं वहतु, यं च त्वा त्वामग्निर्वहतु तस्मात् त्वमीड्यश्चासि आशुश्चासि मेध्यश्चासि॥ ३॥

भावार्थः-ये मनुष्याः पृथिव्यादिविकारैर्यानादीनि रचयित्वा तत्र वेगवन्तं वोढारमग्निं संप्रयुञ्जीरंस्ते प्रशंसनीया मान्याः स्युः॥ ३॥

पदार्थः-हे **(वाजिन्)** प्रशंसित वेग वाले **(सप्ते)** घोड़े के तुल्य पुरुषार्थी उत्साही कारीगर विद्वन्! जिस कारण **(जातवेदाः)** प्रसिद्ध भोगों वाले **(सजोषाः)** समान प्रीतियुक्त हुए आप **(वसुभिः)** पृथिवी आदि **(देवैः)** दिव्य गुणों वाले पदार्थों के साथ **(प्रीतम्)** प्रशंसा को प्राप्त **(वह्निम्)** यज्ञ में होमे हुए पदार्थों को मेघमण्डल में पहुंचाने वाले अग्नि को **(वहतु)** प्राप्त कीजिये और जिस **(त्वा)** आप को **(अग्निः)** अग्नि पहुंचावे। इसलिए आप **(ईड्यः)** स्तुति के योग्य **(च)** भी **(असि)** हैं, **(वन्द्यः)** नमस्कार करने योग्य **(च)** भी हैं **(च)** और **(आशुः)** शीघ्रगामी **(च)** तथा **(मेध्यः)** समागम करने योग्य **(असि)** हैं॥ ३॥

भावार्थः-जो मनुष्य पृथिवी आदि विकारों से सवारी आदि को रच के उस में वेगवान् पहुंचाने वाले अग्नि को संप्रयुक्त करें, वे प्रशंसा के योग्य मान्य होवें॥ ३॥

स्तीर्णमित्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

स्तीर्णं बर्हिः सुष्टरीमा जुषाणोरु पृथु प्रथमानं पृथिव्याम्।
देवेभिर्युक्तमदितिः सजोषाः स्योनं कृण्वाना सुविते दधातु॥४॥

स्तीर्णम्। बर्हिः। सुष्टरीम। सुस्तरीमेति सुऽस्तरीम। जुषाणा। उरु। पृथु। प्रथमानम्। पृथिव्याम्। देवेभिः। युक्तम्। अदितिः। सजोषा इति सऽजोषाः। स्योनम्। कृण्वाना। सुविते। दधातु॥४॥

पदार्थः-(**स्तीर्णम्**) सर्वतोऽङ्गोपाङ्गैराच्छादितं यानम् (**बर्हिः**) अन्तरिक्षमुदकं वा (**सुष्टरीम**) सुष्ठु स्तृणीम। अत्र **संहितायाम्** [अ०६.३.११४] इति दीर्घः। (**जुषाणा**) सेवमाना (**उरु**) बहु (**पृथु**) विस्तीर्णम् (**प्रथमानम्**) प्रख्यातम् (**पृथिव्याम्**) भूमौ (**देवेभिः**) दिव्यैः पदार्थैः (**युक्तम्**) (**अदितिः**) नाशरहिता (**सजोषाः**) समानैः सेविता (**स्योनम्**) सुखम् (**कृण्वाना**) कुर्वती (**सुविते**) प्रेरिते (**दधातु**)॥४॥

अन्वयः-हे विद्वन्! वयं यथा पृथिव्यामुरु पृथु प्रथमानं स्तीर्णं बर्हिर्जुषाणा सजोषा देवेभिर्युक्तं स्योनं कृण्वानाऽदितिर्विद्युत् सर्वं सुविते दधातु तां सुष्टरीम तथा त्वं प्रयतस्व॥४॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे मनुष्याः! या पृथिव्यादिषु व्याप्ताऽखण्डिता विद्युद्विस्तीर्णानि कार्याणि संसाध्य सुखं जनयति, तां कार्येषु प्रयुज्य प्रयोजनसिद्धिं सम्पादयत॥४॥

पदार्थः-हे विद्वन्! हम लोग जैसे (**पृथिव्याम्**) भूमि में (**उरु**) बहुत (**पृथु**) विस्तीर्ण (**प्रथमानम्**) प्रख्यात (**स्तीर्णम्**) सब ओर से अङ्ग उपाङ्गों से पूर्ण यान और (**बर्हिः**) जल वा अन्तरिक्ष को (**जुषाणा**) सेवन करती हुई (**सजोषाः**) समान गुण वालों ने सेवन की (**देवेभिः**) दिव्य पदार्थों से (**युक्तम्**) युक्त (**स्योनम्**) सुख को (**कृण्वाना**) करती हुई (**अदितिः**) नाशरहित बिजुली सब को (**सुविते**) प्रेरणा किये यन्त्र में (**दधातु**) धारण करे, उस को (**सुष्टरीम**) सुन्दर रीति से विस्तार करे, वैसे आप भी प्रयत्न कीजिए॥४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जो पृथिवी आदि में व्याप्त अखण्डित बिजुली विस्तृत बड़े-बड़े कार्य्यों को सिद्ध कर सुख को उत्पन्न करती है, उसको कार्यों में प्रयुक्त कर प्रयोजनों की सिद्धि करो॥४॥

एता इत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः। अग्निर्देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

कीदृग्द्वारवन्ति गृहाणि स्युरित्याह॥

कैसे द्वारों वाले घर हों, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

एताऽउ वः सुभगा विश्वरूपा वि पक्षोभिः श्रयमाणाऽउदातैः।
ऋष्वाः सतीः कवषः शुम्भमाना द्वारो देवीः सुप्रायणा भवन्तु॥५॥

एताः। उँऽइत्यूँ। वः। सुभगा इति सुऽभगाः। विश्वरूपा इति विश्वऽरूपाः। वि। पक्षोभिरिति पक्षःऽभिः। श्रयमाणाः। उत्। आतैः। ऋष्वाः। सतीः। कवषाः। शुम्भमानाः। द्वारः। देवीः। सुप्रायणाः। सुप्रायना इति सुऽप्रायनाः। भवन्तु॥५॥

पदार्थः-(**एताः**) दीप्तयः (उ) वितर्के (**वः**) युष्मभ्यम् (**सुभगाः**) सुष्ठ्वैश्वर्यप्रदाः (**विश्वरूपाः**) विविधरूपगुणाः (**वि**) (**पक्षोभिः**) पक्षैः (**श्रयमाणाः**) सेवमानाः (**उत्**) उत्कृष्टतया (**आतैः**) सततं गमकैः (**ऋष्वाः**) महत्यः। **ऋष्व इति महान्नामसु पठितम्॥** (निघ०३।३) (**सती**) विद्यमानाः (**कवषाः**) शब्दं कुर्वाणाः (**शुम्भमानाः**) सुशोभिताः (**द्वारः**) (**देवीः**) देदीप्यमानाः (**सुप्रायणाः**) सुखेन गमनाधिकरणाः (**भवन्तु**)॥५॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा व एताः सुभगा विश्वरूपा ऋष्वाः कवषाः शुम्भमानाः सतीर्देवीर्द्वार उदातैः पक्षोभिः श्रयमाणाः पक्षिपङ्क्तय इव सुप्रायणा विभवन्तु तादृशीरु भवन्तो रचयन्तु॥५॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैरीदृशानि गृहद्वाराणि निर्मातव्यानि येभ्यो वायुनिरोधो न स्याद् यथाऽन्तरिक्षेऽनिरुद्धाः पक्षिणः सुखेन गच्छन्त्यागच्छन्ति तथा तेषु गन्तव्यमागन्तव्यं च॥५॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे (**वः**) तुम्हारी (**एताः**) ये दीप्ति (**सुभगाः**) सुन्दर ऐश्वर्यदायक (**विश्वरूपाः**) विविध प्रकार के रूपों वाले (**ऋष्वाः**) बड़े ऊंचे चौड़े (**कवषाः**) जिन में बोलने से शब्द की प्रतिध्वनि हो (**शुम्भमानाः**) सुन्दर शोभायुक्त (**सती**) हुए (**देवीः**) रङ्गों से चिलचिलाते हुए (**उत्, आतैः**) उत्तम रीति से निरन्तर जाने के हेतु (**पक्षोभिः**) बायें दाहिने भागों से (**श्रयमाणाः**) सेवित पक्षियों की पङ्क्तियों के तुल्य (**सुप्रायणाः**) सुख से जाने के आधार (**द्वारः**) द्वार (**वि, भवन्तु**) सर्वत्र घरों में हों, वैसे (**उ**) ही आप लोग भी बनावें॥५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिए कि ऐसे द्वारों वाले घर बनावें कि जिनसे वायु न रुके। जैसे आकाश में बिना रुकावट के पक्षी सुखपूर्वक उड़ते हैं, वैसे उन द्वारों में जावें-आवें॥५॥

अन्तरेत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः। मनुष्या देवताः। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अन्तरा मित्रावरुणा चरन्ती मुखं यज्ञानामभि संविदाने।
उषासा वाꣳसुहिरण्ये सुशिल्पेऽऋतस्य योनाविह सादयामि॥६॥

अन्तरा। मित्रावरुणा। चरन्तीऽइति चरन्ती। मुखम्। यज्ञानाम्। अभि। संविदाने इति सम्ऽविदाने उषासा। उषसेत्युषसा। वाम्। सुहिरण्ये इति सुऽहिरण्ये। सुशिल्पे इति सुऽशिल्पे। ऋतस्य। योनौ। इह। सादयामि॥ ६॥

पदार्थः-(**अन्तरा**) अन्तरौ (**मित्रावरुणा**) प्राणोदानौ (**चरन्ती**) प्राप्नुवत्यौ (**मुखम्**) (**यज्ञानाम्**) सङ्गन्तव्यानाम् (**अभि**) पदार्थानाम् (**संविदाने**) सम्यग्विज्ञापिके (**उषासा**) प्रातःसायंवेले (**वाम्**) युवाम् (**सुहिरण्ये**) सुष्ठु तेजोयुक्ते (**सुशिल्पे**) सुष्ठु शिल्पक्रिया ययोस्ते (**ऋतस्य**) सत्यस्य (**योनौ**) निमित्ते (**इह**) अस्मिन् गृहे (**सादयामि**) स्थापयामि॥ ६॥

अन्वयः-हे शिल्पविद्याप्रचारकौ विद्वांसौ! यथाहमन्तरा मित्रावरुणा चरन्ती यज्ञानां मुखमभि संविदाने सुहिरण्ये सुशिल्पे उषासा ऋतस्य योनाविह सादयामि, तथा वां मह्यं स्थापयेतम्॥ ६॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा प्रातः सायं वेले शुद्धस्थानसेविते मनुष्याणां प्राणोदानवत्सुखकारिके भवतस्तथा शुद्धदेशे निर्मितं बहुविस्तीर्णद्वारं गृहं सर्वथा सुखयति॥ ६॥

पदार्थः-हे शिल्पविद्या के प्रचारक दो विद्वानो! जैसे मैं (**अन्तरा**) भीतर शरीर में (**मित्रावरुणा**) प्राण तथा उदान (**चरन्ती**) प्राप्त होते हुए (**यज्ञानाम्**) संगति के योग्य पदार्थों के (**मुखम्**) मुख्य भाग को (**अभि, संविदाने**) सब ओर से सम्यक् ज्ञान के हेतु (**सुहिरण्ये**) सुन्दर तेजयुक्त (**सुशिल्पे**) सुन्दर कारीगरी जिस में हो (**उषासा**) प्रातः तथा सायंकाल की वेलाओं को (**ऋतस्य**) सत्य के (**यौनौ**) निमित्त (**इह**) इस घर में (**सादयामि**) स्थापन करता हूँ, वैसे (**वाम्**) तुम दोनों मेरे लिए स्थापना करो॥ ६॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सेवेरे तथा सायंकाल की वेला शुद्ध स्थान में सेवी हुई मनुष्यों को प्राण-उदान के समान सुखकारिणी होती हैं, वैसे शुद्ध देश में बनाया बड़े-बड़े द्वारों वाला घर सब प्रकार सुखी करता है।॥ ६॥

प्रथमेत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः। अश्विनौ देवते। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथाऽध्ययनाऽध्यापने कथं स्यातामित्याह॥

अब पढ़ना-पढ़ाना कैसे हो, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प्रथमा वांꣳसरथिना सुवर्णा देवौ पश्यन्तौ भुवनानि विश्वा।

अपिप्रयं चोदना वां मिमाना होतारा ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता॥ ७॥

प्रथमा। वाम्। सरथिनेति सऽरथिना। सुवर्णेति सुऽवर्णा। देवौ। पश्यन्तौ। भुवनानि। विश्वा। अपिऽप्रयम्। चोदना। वाम्। मिमाना। होतारा। ज्योतिः। प्रदिशेति प्रऽदिशा। दिशन्ता॥ ७॥

पदार्थः-(**प्रथमा**) आदिमौ (**वाम्**) युवयोः (**सरथिना**) रथिभिः सह वर्त्तमानौ (**सुवर्णा**) शोभनो वर्णो ययोस्तौ (**देवौ**) देदीप्यमानौ (**पश्यन्तौ**) समीक्षमाणौ (**भुवनानि**) निवासाऽधिकरणानि (**विश्वा**) सर्वाणि (**अपिप्रयम्**) प्रीणामि। ण्यन्ताल्लुङ्प्रयोगोऽयम् (**चोदना**) प्रेरणानि कर्माणि (**वाम्**) युवाम् (**मिमाना**) निश्चेतारौ (**होतारा**) दातारौ (**ज्योतिः**) प्रदीप्तिः (**प्रदिशा**) प्रकर्षेण बोधयन्तौ (**दिशन्ता**) उच्चारयन्तौ॥७॥

अन्वयः-हे विद्यार्थिनौ! यौ प्रथमा सरथिना सुवर्णा विश्वा भुवनानि पश्यन्तौ वां चोदना मिमाना ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता होतारा देवौ विद्वांसौ कुर्यातां यथा त्वमहमपि प्रयन्तथा वां युवां तौ प्राप्नुतम्॥७॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये विद्यार्थिनो निष्कापट्येन विदुषः सेवन्ते, ते विद्याप्रकाशं लभन्ते। यदि विद्वांसः कपटालस्ये विहाय सर्वान् सत्यमुपदिशेयुस्तर्हि ते सुखिनः कथं न जायेरन्॥७॥

पदार्थः-हे दो विद्यार्थियो! जो (**प्रथमा**) पहिले (**सरथिना**) रथ वालों के साथ वर्त्तमान (**सुवर्णा**) सुन्दर गोरे वर्ण वाले दो विद्वान् (**विश्वा**) सब (**भुवनानि**) बसने के आधार लोकों को (**पश्यन्तौ**) देखते हुए (**वाम्**) तुम दोनों के (**चोदना**) प्रेरणारूप कर्मों को (**मिमाना**) जांचते हुए (**ज्योतिः**) प्रकाश को (**प्रदिशा**) अच्छे प्रकार जानते तथा (**दिशन्ता**) उच्चारण करते हुए तुम को (**होतारा**) दानशील (**देवौ**) तेजस्वी विद्वान् करें, जैसे उनको मैं (**अपिप्रयम्**) तृप्त करता हूँ, वैसे (**वाम्**) तुम दोनों उन विद्वानों को प्राप्त होओ॥७॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो विद्यार्थी लोग निष्कपटता से विद्वानों का सेवन करते हैं, वे विद्या के प्रकाश को प्राप्त होते हैं। जो विद्वान् लोग कपट और आलस्य को छोड़ें, सब को सत्य का उपदेश करें तो वे सुखी कैसे न होवें॥७॥

आदित्यैरित्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः। सरस्वती देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आ॒दि॒त्यैर्नो॒ भार॑ती वष्टु य॒ज्ञꣳ सर॑स्वती स॒ह रु॒द्रैर्न॑ऽआवीत्।

इडोप॑हूता॒ वसु॑भिः स॒जोषा॑ य॒ज्ञं नो॑ देवीर॒मृते॑षु धत्त॥८॥

आ॒दि॒त्यैः। न॒ः। भार॑ती। व॒ष्टु। य॒ज्ञम्। सर॑स्वती। स॒ह। रु॒द्रैः। न॒ः। आ॒वी॒त्। इडा॑। उप॑हू॒तेत्युप॑ऽहूता। वसु॑भि॒रिति॒ वसु॑ऽभिः। स॒जोषा॒ इति॑ स॒ऽजोषाः। य॒ज्ञम्। न॒ः। दे॒वी॒ः। अ॒मृते॑षु। ध॒त्त॥८॥

पदार्थः-(**आदित्यैः**) पूर्णविद्याविद्भिः (**नः**) अस्मभ्यम् (**भारती**) सर्वविद्याधर्त्री सर्वथा पोषिका (**वष्टु**) कामयताम् (**यज्ञम्**) सङ्गतं योग्यं बोधम् (**सरस्वती**) प्रशस्तविज्ञानवती वाक् (**सह**) (**रुद्रैः**) मध्यमैर्विद्वद्भिः (**नः**) अस्मान् (**आवीत्**) प्राप्नुयात् (**इडा**) स्ताविका वाक् (**उपहूता**) यथावत् स्पर्द्धिता (**वसुभिः**) प्रथमकल्पैर्विद्वद्भिः (**सजोषाः**) समानैः सेविताः (**यज्ञम्**) प्राप्तव्यमानन्दम् (**नः**) अस्मान् (**देवीः**) त्रिविधा वाणी (**अमृतेषु**) नाशरहितेषु जीवादिपदार्थेषु (**धत्त**) धरत धत्त वा॥८॥

अन्वयः-हे विद्वन्! भवान् या आदित्यैरुपदिष्टोपहूता भारती नो यज्ञं सम्पादयति तया सह नोऽस्मान् वष्टु या रुद्रैरुपदिष्टा सरस्वती नोऽस्मानावीत् या सजोषा इडा वसुभिरुपदिष्टा सती यज्ञं साध्नोति। हे जना! ता देवीरस्मानमृतेषु दध्युस्ता यूयमस्मभ्यं धत्त॥८॥

भावार्थः-मनुष्यैरुत्तममध्यमनिकृष्टानां विदुषां सकाशाच्छ्रुता पठिता वा विद्यावाणी स्वीकार्य्या, न मूर्खाणां सकाशात्, सा वाणी मनुष्याणां सर्वदा सुखसाधिका भवति॥८॥

पदार्थः-हे विद्वन्। आप जो (**आदित्यैः**) पूर्ण विद्या वाले उत्तम विद्वानों ने उपदेश की (**उपहूता**) यथावत् स्पर्द्धा से ग्रहण की (**भारती**) सब विद्याओं को धारण और सब प्रकार की पुष्टि करने हारी वाणी (**नः**) हमारे लिए (**यज्ञम्**) सङ्गत हमारे योग्य बोध को सिद्ध करती है, उस के (**सह**) साथ (**नः**) हम को (**वष्टु**) कामना वाले कीजिए जो (**रुद्रैः**) मध्य कक्षा के विद्वानों ने उपदेश की (**सरस्वती**) उत्तम प्रशस्त विज्ञानयुक्त वाणी (**नः**) हम को (**आवीत्**) प्राप्त होवे, जो (**सजोषाः**) एक से विद्वानों ने सेवी (**इडा**) स्तुति की हेतु वाणी (**वसुभिः**) प्रथम कक्षा के विद्वानों ने उपदेश की हुई (**यज्ञम्**) प्राप्त होने योग्य आनन्द को सिद्ध करती है। हे मनुष्यो! ये (**देवीः**) दिव्यरूप तीन प्रकार की वाणी हम को (**अमृतेषु**) नाशरहित जीवादि नित्य पदार्थों में धारण करें, उनको तुम लोग भी हमारे अर्थ (**धत्त**) धारण करो॥८॥

भावार्थः-मनुष्यों को उचित है कि उत्तम, मध्यम, निकृष्ट विद्वानों से सुनी वा पढ़ी विद्या तथा वाणी को स्वीकार करें, किन्तु मूर्खों से नहीं, वह वाणी मनुष्यों को सब काल में सुख सिद्ध करने वाली होती है॥८॥

त्वष्टेत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः। त्वष्टा देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

त्वष्टा वीरं देवकामं जजान त्वष्टुरर्वा जायतऽआशुरश्वः।
त्वष्टेदं विश्वं भुवनं जजान बहोः कर्त्तारमिह यक्षि होतः॥९॥

त्वष्टा। वीरम्। देवकाममिति देवऽकामम्। जजान। त्वष्टुः। अर्वा। जायते। आशुः। अश्वः। त्वष्टा। इदम्। विश्वम्। भुवनम्। जजान। बहोः। कर्त्तारम्। इह। यक्षि। होतरिति होतः॥९॥

पदार्थः-**(त्वष्टा)** विद्यादिसद्गुणैः प्रकाशमानः **(वीरम्)** **(देवकामम्)** यो देवान् विदुषः कामयते तम् **(जजान)** जनयति **(त्वष्टुः)** प्रदीप्ताच्छिक्षणात् **(अर्वा)** शीघ्रं गन्ता **(जायते)** **(आशुः)** तीव्रवेगः **(अश्वः)** तुरङ्गः **(त्वष्टा)** स्वात्मप्रकाशितः **(इदम्)** **(विश्वम्)** सर्वम् **(भुवनम्)** लोकजातम् **(जजान)** जनयति **(बहोः)** बहुविधस्य संसारस्य **(कर्त्तारम्)** **(इह)** अस्मिन् संसारे **(यक्षि)** यजसि सङ्गच्छसे **(होतः)** आदातः॥९॥

अन्वयः-हे होतस्त्वं यथा त्वष्टा विद्वान् देवकामं वीरं जजान यथा त्वष्टुराशुरर्वाश्वो जायते, यथा त्वष्टेदं विश्वं भुवनं जजान, तं बहोः कर्त्तारमिह यक्षि तथा वयमपि कुर्याम॥९॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये विद्याकामान् मनुष्यान् विदुषः कुर्य्युर्ये सद्योजातशिक्षोऽश्व इव तीव्रवेगेन विद्याः प्राप्नोति, यथा बहुविधस्य संसारस्य स्रष्टेश्वरः सर्वान् व्यवस्थापयति, तथाऽध्यापकाऽध्येतारो भवन्तु॥९॥

पदार्थः-हे **(होतः)** ग्रहण करनेहारे जन! तू जैसे **(त्वष्टा)** विद्या आदि उत्तम गुणों से शोभित विद्वान् **(देवकामम्)** विद्वानों की कामना करनेहारे **(वीरम्)** वीर पुरुष को **(जजान)** उत्पन्न करता है, जैसे **(त्वष्टुः)** प्रकाशरूप शिक्षा से **(आशुः)** शीघ्रगामी **(अर्वा)** वेगवान् **(अश्वः)** घोड़ा **(जायते)** होता है। जैसे **(त्वष्टा)** अपने स्वरूप से प्रकाशित ईश्वर **(इदम्)** इस **(विश्वम्)** सब **(भुवनम्)** लोकमात्र को **(जजान)** उत्पन्न करता है, उस **(बहोः)** बहुविध संसार के **(कर्त्तारम्)** रचनेवाले परमात्मा का **(इह)** इस जगत् में **(यक्षि)** पूजन कीजिए, वैसे हम लोग भी करें॥९॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो विद्वान् लोग विद्या चाहने वाले मनुष्यों को विद्वान् करें, शीघ्र जिसको शिक्षा हुई हो उस घोड़े के समान तीक्ष्णता से विद्या को प्राप्त होता है, जैसे बहुत प्रकार के संसार का स्रष्टा ईश्वर सब की व्यवस्था करता है, वैसे अध्यापक और अध्येता होवें॥९॥

अश्व इत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः। सूर्य्यो देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अश्वो घृतेन त्मन्या समक्तऽउप देवाँ२ऽऋतुशः पाथऽएतु।
वनस्पतिर्देवलोकं प्रजानन्नग्निना हव्या स्वदितानि वक्षत्॥१०॥

अश्वः। घृतेन। त्मन्या। समक्त इति सम्ऽअक्तः। उप। देवान्। ऋतुश इत्यृतुऽशः। पाथः। एतु। वनस्पतिः। देवलोकमिति देवऽलोकम्। प्रजानन्निति प्रऽजानन्। अग्निना। हव्या। स्वदितानि। वक्षत्॥ १०॥

पदार्थः-(**अश्वः**) आशुगामी वह्निः (**घृतेन**) उदकेन (**त्मन्या**) आत्मना। अत्राकारलोपो विभक्तेर्यादेशश्च। (**समक्तः**) सम्यक् प्रकटयन् (**उप**) (**देवान्**) दिव्यान् व्यवहारान् (**ऋतुशः**) ऋतावृतौ (**पाथः**) अन्नम् (**एतु**) प्राप्नोतु (**वनस्पतिः**) वनानां किरणानां पालकः सूर्यः (**देवलोकम्**) देवानां विदुषां लोकं दर्शकं व्यवहारम् (**प्रजानन्**) प्रकर्षेण विदन्त्सन् (**अग्निना**) पावकेन (**हव्या**) अत्तुमर्हाणि (**स्वदितानि**) आस्वादितानि (**वक्षत्**) वहेत् प्रापयेत्॥ १०॥

अन्वयः-हे विद्वन्! देवलोकं प्रजानन्त्सन् यथा घृतेन संयोजितोऽश्वस्त्मन्या ऋतुशो देवान्त्समक्तः सन् पाथ उपैतु अग्निना सह वनस्पतिः स्वदितानि हव्या यक्षत् तथा त्मन्या वर्त्तस्व॥ १०॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे विद्वांसो मनुष्याः! यथा सूर्य ऋतून् विभज्योत्तमानि सेवितव्यानि वस्तूनि जनयति, तथोत्तमानधमान् विद्यार्थिनो विद्याञ्चाऽविद्याञ्च पृथक् परीक्ष्य सुशिक्षितान् सम्पादयन्तु, अविद्याञ्च निवर्त्तयन्तु॥ १०॥

पदार्थः-हे विद्वन् (**देवलोकम्**) सब को मार्ग दिखाने वाले विद्वानों के मार्ग को (**प्रजानन्**) अच्छे प्रकार जानते हुए जैसे (**घृतेन**) जल संयुक्त किया (**अश्वः**) शीघ्रगामी अग्नि (**त्मन्या**) आत्मा से (**ऋतुशः**) ऋतु-ऋतु में (**देवान्**) उत्तम व्यवहारों को (**समक्तः**) सम्यक् प्रकट करता हुआ (**पाथः**) अन्न को (**उप, एतु**) निकट से प्राप्त हूजिए (**अग्निना**) अग्नि के साथ (**वनस्पतिः**) किरणों का रक्षक सूर्य (**स्वदितानि**) स्वादिष्ठ (**हव्या**) भोजन के योग्य अन्नों को (**वक्षत्**) प्राप्त करे, वैसे आत्मा से वर्ताव कीजिए॥ १०॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे विद्वान् मनुष्यो! जैसे सूर्य ऋतुओं का विभाग कर उत्तम सेवने योग्य वस्तुओं को उत्पन्न करता है, वैसे उत्तम, अधम विद्यार्थी और विद्या-अविद्या की अलग-अलग परीक्षा कर अच्छे शिक्षित करें और अविद्या की निवृत्ति करें॥ १०॥

प्रजापतेरित्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः। अग्निर्देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनर्मनुष्यैः किं कर्त्तव्यमित्याह॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प्रजापतेस्तपसा वावृधानः सद्यो जातो दधिषे यज्ञमग्ने।
स्वाहाकृतेन हविषा पुरोगा याहि साध्या हविरदन्तु देवाः॥ ११॥

प्रजापतेरिति प्रजाऽपतेः। तपसा। वावृधानः। ववृधानऽइति ववृधानः। सद्यः। जातः। दधिषे। यज्ञम्। अग्ने। स्वाहाकृतेनेति स्वाहाऽकृतेन। हविषा। पुरोगा इति पुरःऽगाः। याहि। साध्या। हविः। अदन्तु। देवाः॥ ११॥

पदार्थः-(**प्रजापतेः**) प्रजायाः पालकस्य (**तपसा**) प्रतापेन (**वावृधानः**) वर्द्धमानः (**सद्यः, जातः**) शीघ्रं प्रसिद्धः सन् (**दधिषे**) धरसि (**यज्ञम्**) (**अग्ने**) पावकवद्वर्त्तमान विद्वन्! (**स्वाहाकृतेन**) सुष्ठु संस्कारक्रियया निष्पादितेन (**हविषा**) दातुमर्हेण (**पुरोगाः**) अग्रगण्या अग्रगामिनो वा (**याहि**) प्राप्नुहि (**साध्या**) साधनसाध्याः (**हविः**) अत्तव्यमन्नम् (**अदन्तु**) भुञ्जताम् (**देवाः**) विद्वांसः॥ ११॥

अन्वयः-हे अग्ने! त्वं सद्यो जातः प्रजापतेस्तपसा वावृधानः स्वाहाकृतेन हविषा यज्ञं दधिषे, ये पुरोगाः साध्या देवा हविरदन्तु तान् याहि प्राप्नुहि॥ ११॥

भावार्थः-ये मनुष्याः सूर्यवत् प्रजापालका धर्मेण प्राप्तस्य पदार्थस्य भोक्तारो भवन्ति, ते सर्वोत्तमा गण्यन्ते॥ ११॥

पदार्थः-हे विद्वन् (**अग्ने**) अग्नि के तुल्य तेजस्वी! आप (**सद्यः**) शीघ्र (**जातः**) प्रसिद्ध हुए (**प्रजापतेः**) प्रजारक्षक ईश्वर के (**तपसा**) प्रताप से (**वावृधानः**) बढ़ते हुए (**स्वाहाकृतेन**) सुन्दर संस्काररूप क्रिया से सिद्ध हुए (**हविषा**) होम में देने योग्य पदार्थ से (**यज्ञम्**) यज्ञ को (**दधिषे**) धारते हो, जो (**पुरोगाः**) मुखिया वा अगुआ (**साध्या**) साधनों से सिद्ध करने योग्य (**देवाः**) विद्वान् लोग (**हविः**) ग्राह्य अन्न का (**अदन्तु**) भोजन करें, उन को (**याहि**) प्राप्त हूजिये॥ ११॥

भावार्थः-जो मनुष्य सूर्य के समान प्रजा के रक्षक धर्म से प्राप्त हुए पदार्थ के भोगने वाले होते हैं, वे सर्वोत्तम गिने जाते हैं॥ ११॥

यदक्रन्द इत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः। यजमानो देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

यदक्रन्दः प्रथमं जायमानऽउद्यन्त्समुद्रादुत वा पुरीषात्।
श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहूऽउपस्तुत्यं महि जातं तेऽअर्वन्॥ १२॥

यत्। अक्रन्दः। प्रथमम्। जायमानः। उद्यन्नित्युत्ऽयन्। समुद्रात्। उत। वा। पुरीषात्। श्येनस्य। पक्षा। हरिणस्य। बाहूऽइति बाहू। उपस्तुत्यमित्युपऽस्तुत्यम्। महि। जातम्। ते अर्वन्॥ १२॥

पदार्थः-(**यत्**) यदा (**अक्रन्दः**) शब्दं कुरुषे (**प्रथमम्**) (**जायमानः**) (**उद्यन्**) उदयं प्राप्नुवन् (**समुद्रात्**) अन्तरिक्षात्। **समुद्र इत्यन्तरिक्षनामसु पठितम्॥** (निघ०१।३) (**उत**) अपि (**वा**) (**पुरीषात्**) पालकात् परमात्मनः (**श्येनस्य**) पक्षिणः (**पक्षा**) पक्षौ (**हरिणस्य**) हर्त्तुं शीलस्य वीरस्य (**बाहू**) भुजौ

(उपस्तुत्यम्) उपगतस्तुतिविषयम् **(महि)** महत् कर्म **(जातम्)** **(ते)** तव **(अर्वन्)** अश्व इव वेगवद्विद्वन्॥१२॥

अन्वयः-हे अर्वन् विद्वन्! यत्समुद्रादुत वा पुरीषात् प्रथमं जायमानो वायुरिवोद्यंस्त्वमक्रन्दस्तदा ते हरिणस्य बाहू श्येनस्य पक्षेव एतत् महि जातमुपस्तुत्यं भवति॥१२॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे मनुष्याः! यथाऽन्तरिक्षात् प्रकटो वायुः कर्माणि कारयति, तथा शुभान् नृगुणान् यूयं स्वीकुरुत। यथा पशूनां मध्येऽश्वो वेगवानस्ति तथा शत्रूणां निग्रहे वेगवन्तः श्येन इव वीरसेना प्रगल्भा भवत यद्येवं कुरुत तर्हि सर्वं युष्माकं प्रशंसितं स्यात्॥१२॥

पदार्थः-हे **(अर्वन्)** घोड़े के तुल्य वेग वाले विद्वान् पुरुष! **(यत्)** जब **(समुद्रात्)** अन्तरिक्ष **(उत, वा)** अथवा **(पुरीषात्)** रक्षक परमात्मा से **(प्रथमम्)** पहिले **(जायमानः)** उत्पन्न हुए वायु के समान **(उद्यन्)** उदय को प्राप्त हुए **(अक्रन्दः)** शब्द करते हो तब **(हरिणस्य)** हरणशील वीरजन **(ते)** आप के **(बाहू)** भुजा **(श्येनस्य)** श्येनपक्षी के **(पक्षा)** पंखों के तुल्य बलकारी हैं, यह **(महि)** महत् कर्म **(जातम्)** प्रसिद्ध **(उपस्तुत्यम्)** समीपस्थ स्तुति का विषय होता है॥१२॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जैसे अन्तरिक्ष से उत्पन्न हुआ वायु कर्मों को कराता, वैसे मनुष्यों के शुभगुणों को तुम लोग ग्रहण करो। जैसे पशुओं में घोड़ा वेगवान् है, वैसे शत्रुओं को रोकने में वेगवान् श्येन पक्षी के तुल्य वीर पुरुषों की सेना वाले दृढ़ ढीठ होओ, यदि ऐसे करो तो सब कर्म तुम्हारा प्रशंसित होवे॥१२॥

यमेनेत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यमेन॑ दु॒त्तं त्रि॒तऽए॑नमायुन॒गिन्द्र॑ऽएणं प्र॒थ॒मोऽअध्य॑तिष्ठत्।

ग॒न्ध॒र्वोऽअ॑स्य रश॒नाम॑गृभ्णा॒त् सू॒रा॒दश्वं॑ वस॒वो निर॑तष्ट॥१३॥

य॒मेन॑। दु॒त्तम्। त्रि॒तः। ए॒नम्। आ॒यु॒न॒क्। अ॒यु॒न॒गत्य॑युनक्। इन्द्र॑ः। ए॒नम्। प्र॒थ॒मः। अधि॑। अ॒ति॒ष्ठ॒त्। ग॒न्ध॒र्वः। अ॒स्य॒। र॒श॒नाम्। अ॒गृ॒भ्णा॒त्। सूरा॑त्। अश्व॑म्। व॒स॒वः। निः। अ॒त॒ष्ट॥१३॥

पदार्थः-**(यमेन)** नियन्त्रा वायुना **(दत्तम्)** **(त्रितः)** त्रिभ्यः पृथिवीजलान्तरिक्षेभ्यः **(एनम्)** वह्निम् **(आयुनक्)** युनक्ति **(इन्द्रः)** विद्युत् **(एनम्)** अत्र छान्दसं णत्वम्। **(प्रथमः)** विस्तीर्णः प्रख्यातः **(अधि)** **(अतिष्ठत्)** उपरि तिष्ठति **(गन्धर्वः)** गो पृथिव्या धर्त्ता **(अस्य)** सूर्यस्य **(रशनाम्)** रशनावत् किरणगतिम् **(अगृभ्णात्)** गृह्णाति **(सूरात्)** सूर्य्यात् **(अश्वम्)** आशुगामिनं वायुम् **(वसवः)** विद्वांसः **(निः)** **(अतष्ट)** तक्ष्णोति तनूकरोति॥१३॥

अन्वयः-हे वसवो! य इन्द्रस्त्रितो यमेन दत्तमेनमायुनगेनं प्राप्य प्रथमोऽध्यतिष्ठद्, गन्धर्वः अस्य रशनामगृभ्णादस्मात् सूरादश्वं निरतष्ट, तं यूयं विस्तारयत॥१३॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! ईश्वरेणेह यस्मिन् पदार्थे यादृशी पदार्थरचना कृता, तां यूयं विद्यया संवित्तैतां सृष्टिविद्यां गृहीत्वाऽनेकानि सुखानि साध्नुत च॥१३॥

पदार्थः-हे **(वसवः)** विद्वान्! जो **(इन्द्रः)** बिजुली **(त्रितः)** पृथिवी, जल और आकाश से **(यमेन)** नियमकर्त्ता वायु ने **(दत्तम्)** दिये अर्थात् उत्पन्न किये **(एनम्)** इस अग्नि को **(आयुनक्)** युक्त करती है **(एनम्)** इस को प्राप्त हो के **(प्रथमः)** विस्तीर्ण प्रख्यात विद्युत् **(अध्यतिष्ठत्)** सर्वोपरि स्थित होती है **(गन्धर्वः)** पृथिवी को धारण करता हुआ **(अस्य)** इस सूर्य की **(रशनाम्)** रस्सी के तुल्य किरणों की गति को **(अगृभ्णात्)** ग्रहण करता है, इस **(सूरात्)** सूर्यरूप से **(अश्वम्)** शीघ्रगामी वायु को **(निरतष्ट)** सूक्ष्म करता है, उस को तुम लोग विस्तृत करो॥१३॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! ईश्वर ने इस संसार में जिस पदार्थ में जैसी रचना की है, उस को तुम लोग विद्या से जानो और इस सृष्टिविद्या को ग्रहण कर अनेक सुखों को सिद्ध करो॥१३॥

असीत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः। अग्निर्देवता। विराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

असि॑ य॒मोऽअस्या॑दि॒त्योऽअ॑र्व॒न्नसि॑ त्रि॒तो गुह्ये॑न व्र॒तेन॑।

असि॒ सोमे॑न स॒मया॒ विपृ॑क्तऽआ॒हुस्ते॒ त्रीणि॑ दि॒वि बन्ध॑नानि॥१४॥

असि॑। य॒मः। असि॑। आ॒दि॒त्यः। अ॒र्व॒न्। असि॑। त्रि॒तः। गुह्ये॑न। व्र॒तेन॑। असि॑। सोमे॑न। स॒मया॑। विपृ॑क्त॒ इति॒ विऽपृ॑क्तः। आ॒हुः। ते॒। त्रीणि॑। दि॒वि। बन्ध॑नानि॥१४॥

पदार्थः-**(असि)** **(यमः)** नियन्ता न्यायाधीश इव **(असि)** **(आदित्यः)** सूर्य्यवद्विद्यया प्रकाशितः **(अर्वन्)** वेगवान् वह्निरिव वर्त्तमानजन **(असि)** **(त्रितः)** त्रिभ्यः **(गुह्येन)** गुप्तेन **(व्रतेन)** शीलेन **(असि)** **(सोमेन)** ऐश्वर्येण **(समया)** समीपे **(विपृक्तः)** विशेषेण सम्बद्धः **(आहुः)** कथयन्ति **(ते)** तव **(त्रीणि)** **(दिवि)** प्रकाशे **(बन्धनानि)**॥**१४॥**

अन्वयः-हे अर्वन्। यतस्त्वं गुह्येन व्रतेन त्रितो यम इवास्यादित्य इवासि, विद्वन्निवासि, सोमेन समया विपृक्तोऽसि, तस्य ते दिवि त्रीणि बन्धनान्याहुः॥१४॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे मनुष्याः! युष्माभिर्न्यायाधीशादित्यसोमादिगुणैर्भवितव्यम्। यथाऽस्य संसारस्य मध्ये वायुसूर्य्याकर्षणैर्बन्धनानि सन्ति, तथैव परस्परस्य शरीरवाङ्मनआकर्षणैः प्रेमबन्धनानि कर्त्तव्यानि॥१४॥

पदार्थः-हे **(अर्वन्)** वेगवान् अग्नि के समान जन! जिससे तू **(गुह्येन)** गुप्त **(व्रतेन)** स्वभाव तथा **(त्रितः)** कर्म, उपासना, ज्ञान से युक्त **(यमः)** नियमकर्त्ता न्यायाधीश के तुल्य **(असि)** है, **(आदित्यः)** सूर्य के तुल्य विद्या से प्रकाशित जैसा **(असि)** है, विद्वान् के सदृश **(असि)** है, **(सोमेन)** ऐश्वर्य के **(समया)** निकट **(विपृक्तः)** विशेषकर संबद्ध **(असि)** है। उस **(ते)** तेरे **(दिवि)** प्रकाश में **(त्रीणि)** तीन **(बन्धनानि)** बन्धनों को अर्थात् ऋषि, देव, पितृ ऋणों के बन्धनों को **(आहुः)** कहते हैं॥१४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! तुम को योग्य है कि न्यायाधीश, सूर्य और चन्द्रमा आदि के गुणों से युक्त होवें, जैसे इस संसार के बीच वायु और सूर्य के आकर्षणों से बन्धन हैं, वैसे ही परस्पर शरीर, वाणी, मन के आकर्षणों से प्रेम के बन्धन करें॥१४॥

त्रीणीत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

त्रीणि॑ त॑ऽआहुर्दि॒वि बन्ध॑नानि॒ त्रीण्य॒प्सु त्रीण्य॒न्तः स॑मु॒द्रे।

उ॒तेव॑ मे॒ वरु॑णश्छन्त्स्यर्व॒न् यत्रा॑ त॑ऽआ॒हुः प॑र॒मं ज॒नित्र॑म्॥१५॥

त्रीणि॑। ते॒। आ॒हुः॒। दि॒वि। बन्ध॑नानि। त्रीणि॑। अ॒प्स्वित्य॒प्ऽसु। त्रीणि॑। अ॒न्तरित्य॒न्तः। स॒मु॒द्रे। उ॒तेवेत्यु॒तऽइ॑व। मे॒। वरु॑णः। छ॒न्त्सि॒। अ॒र्व॒न्। यत्र॑। ते॒। आ॒हुः॒। प॒र॒मम्। ज॒नित्र॑म्॥१५॥

पदार्थः-**(त्रीणि)** **(ते)** तव **(आहुः)** कथयन्ति **(दिवि)** विद्याप्रकाशे **(बन्धनानि)** **(त्रीणि)** **(अप्सु)** प्राणेषु **(त्रीणि)** **(अन्तः)** मध्ये **(समुद्रे)** अन्तरिक्षे **(उतेव)** यथोत्प्रेक्षणम् **(मे)** मम **(वरुणः)** श्रेष्ठः **(छन्त्सि)** अर्चसि। **छन्दतीत्यर्चतिकर्मा०॥** (निघ०३।१४) **(अर्वन्)** विज्ञानयुक्त **(यत्र)** यस्मिन् जन्मनि **(ते)** तव। अत्र **ऋचि तुनुघ०** [अ०६.३.१३३] इति दीर्घः। **(आहुः)** **(परमम्)** प्रकृष्टम् **(जनित्रम्)**॥१५॥

अन्वयः-हे अर्वन् विद्वन्! यत्र दिवि ते त्रीणि बन्धनानि विद्वांस आहुर्यत्राप्सु त्रीणि यत्रान्तर्मध्ये समुद्रे च त्रीणि बन्धनान्याहुस्ते च परमं जनित्रमाहुः। येन वरुणः सन् विदुषः छन्त्स्युतेव तानि मे सन्तु॥१५॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे मनुष्याः! आत्ममनःशरीरैर्ब्रह्मचर्येण विद्यासु नियता भूत्वा विद्यासुशिक्षे सञ्चिनुत। द्वितीयं विद्याजन्म प्राप्यार्चिता भवत, येन येन सह यावान् स्वस्य सम्बन्धोऽस्ति तं विजानीत॥१५॥

पदार्थः-हे **(अर्वन्)** विज्ञानयुक्त विद्वान् जन! **(यत्र)** जिस **(दिवि)** विद्या के प्रकाश में **(ते)** आप के **(त्रीणि)** तीन **(बन्धनानि)** बन्धनों को विद्वान् लोग **(आहुः)** कहते हैं, जहां **(अप्सु)** प्राणों में **(त्रीणि)** तीन जहां **(अन्तः)** बीच में और **(समुद्रे)** अन्तरिक्ष में **(त्रीणि)** तीन बन्धनों को **(आहुः)** कहते हैं और **(ते)** आप के **(परमम्)** उत्तम **(जनित्रम्)** जन्म को कहते हैं, जिससे **(वरुणः)** श्रेष्ठ हुए विद्वानों का **(छन्त्सि)** सत्कार करते हो **(उतेव)** उत्प्रेक्षा के तुल्य वे सब **(मे)** मेरे होवें॥१५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! आत्मा, मन और शरीर में ब्रह्मचर्य के साथ विद्याओं में नियत होके विद्या और सुशिक्षा का संचय करो। द्वितीय विद्याजन्म को पाकर पूजित होवो, जिस जिस के साथ अपना सम्बन्ध है, उस को जानो॥१५॥

इमेत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

मनुष्यैरश्वरक्षणेन किं साध्यमित्याह॥

मनुष्यों को घोड़ों के रखने से क्या सिद्ध करना चाहिए, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

इ॒मा ते॑ वाजिन्नव॒मार्ज॑नानी॒मा श॒फाना॑ᳬं स॒नि॒तुर्नि॒धाना॑।

अत्रा॑ ते भ॒द्रा र॑श॒नाऽअ॑पश्यमृ॒तस्य॒ याऽअ॑भि॒रक्ष॑न्ति गो॒पाः॥ १६॥

इ॒मा। ते॒ वा॒जि॒न्। अ॒व॒मार्ज॑ना॒नीत्य॑व॒ऽमार्ज॑नानि। इ॒मा। श॒फाना॑म्। स॒नि॒तुः। नि॒धानेति॑ नि॒ऽधाना॑। अत्र॑। ते॒। भ॒द्राः। र॒श॒नाः। अ॒प॒श्य॒म्। ऋ॒तस्य॑। याः। अ॒भि॒रक्ष॒न्तीत्य॑भि॒ऽरक्ष॑न्ति। गो॒पाः॥ १६॥

पदार्थः-**(इमा)** इमानि प्रत्यक्षाणि **(ते)** तव **(वाजिन्)** अश्व इव वेगादिगुण सेनाधीश! **(अवमार्जनानि)** शुद्धिकरणानि **(इमा)** इमानि **(शफानाम्)** खुराणाम् **(सनितुः)** रक्षणानि यमस्य **(निधाना)** निधानानि स्थानानि **(अत्र)** अस्मिन् सैन्ये। अत्र **संहितायाम्** [अ०६.३.११४] इति दीर्घः। **(ते)** तव **(भद्राः)** शुभकरीः **(रशनाः)** रज्जवः **(अपश्यम्)** पश्यामि **(ऋतस्य)** यथार्थम्। अत्र कर्मणि षष्ठी **(याः)** **(अभिरक्षन्ति)** सर्वतः पान्ति **(गोपाः)** पालिकाः॥१६॥

अन्वयः-हे वाजिन्! यथाऽहं ते तवेमाश्वस्यावमार्जनानीमा शफानां सनितुर्निधानाऽपश्यमत्र तेऽश्वस्य या भद्रा गोपा रशना ऋतस्याभिरक्षन्ति ता अपश्यं तथा त्वं पश्य॥१६॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये स्नानेनाश्वादीनां शुद्धिं तच्छफानां रक्षणायायसो निर्मितस्य योजनमन्यानि रशनादीनि च संयोज्य सुशिक्ष्य रक्षन्ति, ते युद्धादिषु कार्येषु कृतसिद्धयो भवन्ति॥१६॥

पदार्थः-हे **(वाजिन्)** घोड़े के तुल्य वेगादि गुणों से युक्त सेनाधीश! जैसे मैं **(ते)** आप के **(इमा)** इन प्रत्यक्ष घोड़ों की **(अवमार्जनानि)** शुद्धि क्रियाओं और **(इमा)** इन **(शफानाम्)** खुरों के

(सनितुः) रखने के नियम के **(निधाना)** स्थानों की **(अपश्यम्)** देखता हूँ **(अत्र)** इस सेना में **(ते)** आप के घोड़े की **(याः)** जो **(भद्राः)** सुन्दर शुभकारिणी **(गोपाः)** उपद्रव से रक्षा करनेहारी **(रशनाः)** लगाम की रस्सी **(ऋतस्य)** सत्य की **(अभिरक्षन्ति)** सब ओर से रक्षा करती हैं, उनको मैं देखूँ वैसे आप भी देखें॥१६॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो लोग स्नान से घोड़े आदि को शुद्धि तथा उनके शुम्मों की रक्षा के लिए लोहे के बनाये नालों को संयुक्त और लगाम की रस्सी आदि सामग्री को संयुक्त कर कर अच्छी शिक्षा दे रक्षा करते हैं, वे युद्धादि कार्यों में सिद्धि करनेवाले होते हैं॥१६॥

आत्मानमित्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः। अग्निर्देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

यानरचनेन किं कार्यमित्याह॥

यानरचना से क्या करना चाहिए, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आत्मानं ते मनसारादजानामवो दिवा पतयन्तं पतङ्गम्।

शिरोऽअपश्यं पथिभिः सुगेभिररेणुभिर्जेहमानं पतत्रि॥१७॥

आत्मानम्। ते। मनसा। आरात्। अजानाम्। अवः। दिवा। पतयन्तम्। पतङ्गम्। शिरः। अपश्यम्। पथिभिरिति पथिऽभिः। सुगेभिरिति सुऽगेभिः। अरेणुभिरित्यरेणुऽभिः। जेहमानम्। पतत्रि॥१७॥

पदार्थः-**(आत्मानम्)** **(ते)** तव **(मनसा)** विज्ञानेन **(आरात्)** निकटे **(अजानाम्)** जानामि **(अवः)** अधस्तात् **(दिवा)** अन्तरिक्षेण सह **(पतयन्तम्)** पतन्तं गच्छन्तं सूर्यं प्रति **(पतङ्गम्)** **(शिरः)** दूराच्छिर इव लक्ष्यमाणम् **(अपश्यम्)** **(पथिभिः)** मार्गैः **(सुगेभिः)** सुखेन गमनाधिकरणैः **(अरेणुभिः)** अविद्यमाना रेणवो येषु तैः **(जेहमानम्)** प्रयत्नेन गच्छन्तम् **(पतत्रि)** पतनशीलम्॥१७॥

अन्वयः-हे विद्वन्नहं यथा मनसारादवो दिवा पतङ्गं प्रति पतयन्तं ते पतत्रि शिर आत्मानमजानाम्। अरेणुभिः सुगेभिः पथिभिर्जेहमानं पतत्रि शिरोऽपश्यं तथा त्वं पश्य॥१७॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे मनुष्याः! यूयं सर्वेभ्यो वेगवत्तमं सद्यो गमयितारं वह्निमिव चात्मानं पश्यत, सम्प्रयुक्तैरग्न्यादिभिस्सहितेषु यानेषु स्थित्वा जलस्थलान्तरिक्षेषु प्रयत्नेन गच्छताऽऽगच्छत, यथा शिर उत्तमाङ्गमस्ति, तथैव विमानयानमुत्तमं मन्तव्यम्॥१७॥

पदार्थः-हे विद्वन्! मैं जैसे **(मनसा)** विज्ञान से **(आरात्)** निकट में **(अवः)** नीचे से **(दिवा)** आकाश के साथ **(पतङ्गम्)** सूर्य के प्रति **(पतयन्तम्)** चलते हुए **(ते)** आप के **(आत्मानम्)** आत्मास्वरूप को **(अजानाम्)** जानता हूँ और **(अरेणुभिः)** धूलिरहित निर्मल **(सुगेभिः)** सुखपूर्वक जिन में चलना हो, उन **(पथिभिः)** मार्गों से **(जेहमानम्)** प्रयत्न के साथ जाते हुए **(पतत्रि)** पक्षीवत्

उड़ने वाले **(शिरः)** दूर से शिर के तुल्य गोलाकार लक्षित होते विमानादि यान को **(अपश्यम्)** देखता हूँ, वैसे आप भी देखिए॥१७॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! तुम लोग सब से अतिवेग वाले शीघ्र चलाने हारे अग्नि के तुल्य अपने आत्मा को देखो, सम्प्रयुक्त किये अग्नि आदि के सहित यानों में बैठ के जल, स्थल और आकाश में प्रयत्न से जाओ आओ, जैसे शिर उत्तम है, वैसे विमान यान को उत्तम मानना चाहिए॥१७॥

अत्रेत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः। अग्निर्देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ शूरवीराः किं कुर्वन्त्वित्याह॥

अब शूरवीर लोग क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अत्रा ते रूपमुत्तममपश्यं जिगीषमाणमिषऽआऽपदे गोः।
यदा ते मर्त्तोऽअनु भोगमानडादिद् ग्रसिष्ठऽओषधीरजीगः॥१८॥

अत्र। ते। रूपम्। उत्तममित्युत्ऽतमम्। अपश्यम्। जिगीषमाणम्। इषः। आ। पदे। गोः। यदा। ते। मर्त्तः। अनु। भोगम्। आनट्। आत्। इत्। ग्रसिष्ठः। ओषधीः। अजीगरित्यजीगः॥१८॥

पदार्थः-**(अत्र)** अस्मिन् व्यवहारे। अत्र **संहितायाम्** [अ०६.३.११४] इति दीर्घः। **(ते)** तव **(रूपम्)** **(उत्तमम्)** **(अपश्यम्)** पश्येयम् **(जिगीषमाणम्)** शत्रून् विजयमानम् **(इषः)** अन्नानि **(आ)** समन्तात् **(पदे)** प्रापणीये **(गोः)** पृथिव्याः **(यदा)** **(ते)** तव **(मर्त्तः)** मनुष्यः **(अनु)** आनुकूल्ये **(भोगम्)** **(आनट्)** व्याप्नोति। **आनडिति व्याप्तिकर्मा॥** (निघ०२।१८) **(आत्)** अनन्तरम् **(इत्)** एव **(ग्रसिष्ठः)** अतिशयेन ग्रसिता **(ओषधीः)** **(अजीगः)** निगलसि॥१८॥

अन्वयः-हे वीर! ते जिगीषमाणमुत्तमं रूपं गोः पदेऽत्र इषश्चाऽऽपश्यं ते मर्त्तो यदा भोगमानट् तदाऽऽदिद् ग्रसिष्ठः संस्त्वमोषधीरन्वजीगः॥१८॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यथोत्तमानि पश्वादीनि सेनाङ्गानि विजयकराणि स्युस्तथा शूरवीरा विजयहेतवो भूत्वा भूमिराज्ये भोगान् प्राप्नुवन्तु॥१८॥

पदार्थः-हे वीर पुरुष! **(ते)** आप के **(जिगीषमाणम्)** शत्रुओं को जीतते हुए **(उत्तमम्)** उत्तम **(रूपम्)** रूप और **(गोः)** पृथिवी के **(पदे)** प्राप्त होने योग्य **(अत्र)** इस व्यवहार में **(इषः)** अन्नों के दानों को **(आ, अपश्यम्)** अच्छे प्रकार देखूं **(ते)** आपका **(मर्त्तः)** मनुष्य **(यदा)** जब **(भोगम्)** भोग्य वस्तु को **(आनट्)** व्याप्त होता है, तब **(आत्)** **(इत्)** इसके अनन्तर ही **(ग्रसिष्ठः)** अति खाने वाले हुए आप **(औषधीः)** औषधियों को **(अनु, अजीगः)** अनुकूलता से भोगते हो॥१८॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जैसे उत्तम घोड़े आदि सेना के अङ्ग विजय करने वाले हों, वैसे शूरवीर विजय के हेतु होकर भूमि के राज्य में भोगों को प्राप्त हों॥१८॥

अनु त्वेत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः। मनुष्यो देवता। विराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

मनुष्यैः कथं राजप्रजाकार्याणि साधनीयानीत्याह॥

मनुष्यों को कैसे राजप्रजा के कार्य सिद्ध करने चाहिए, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अनु॑ त्वा॒ रथो॒ऽअनु॒ मर्यो॑ऽअर्व॒न्ननु॒ गावो॒ऽनु॒ भग॑: क॒नीना॑म्।
अनु॒ व्राता॑स॒स्तव॑ स॒ख्यमी॑यु॒रनु॑ दे॒वा म॑मिरे वी॒र्यं॑ ते॥ १९॥

अनु॑। त्वा॒। रथ॑ः। अनु॑। मर्य॑ः। अ॒र्व॒न्। अनु॑। गाव॑ः। अनु॑। भग॑ः। क॒नीना॑म्। अनु॑। व्राता॑सः। तव॑। स॒ख्यम्। ई॒यु॒ः। अनु॑। दे॒वाः। म॒मि॒रे॒। वी॒र्य॒म्। ते॒॥ १९॥

पदार्थः-(**अनु**) पश्चादानुकूल्ये वा (**त्वा**) त्वाम् (**रथः**) यानानि (**अनु**) (**मर्यः**) मनुष्याः (**अर्वन्**) अश्व इव वर्त्तमान (**अनु**) (**गावः**) (**अनु**) (**भगः**) ऐश्वर्यम् (**कनीनाम्**) कमनीयानां जनानाम् (**अनु**) (**व्रातासः**) मनुष्याः। **व्राता इति मनुष्यनामसु पठितम्॥** (निघं०२।३) (**तव**) (**सख्यम्**) मित्रस्य भावं वा (**ईयुः**) प्राप्नुयुः (**अनु**) (**देवाः**) विद्वांसः (**ममिरे**) मिनुयुः (**वीर्यम्**) पराक्रमं बलम् (**ते**) तव॥१९॥

अन्वयः-हे अर्वन् विद्वन्! ते कनीनां मध्ये वर्त्तमाना देवा व्रातासोऽनुवीर्यमनुममिरे तव सख्यं चान्वीयुस्त्वानु रथो त्वानु मर्यो त्वाऽनु गावो त्वाऽनु भगश्च भवतु॥१९॥

भावार्थः-यदि मनुष्याः सुशिक्षिता भूत्वाऽन्यान् सुशिक्षितान् कुर्युस्तेषां मध्यादुत्तमान् सभासदः सम्पाद्य सभासदां मध्यादत्युत्तमं सभेशं स्थापयित्वा राजप्रजाप्रधानपुरुषाणमेकानुमत्या राजकार्याणि साधयेयुस्तर्हि सर्वेषामनुकूला भूत्वा सर्वाणि कार्याण्यलं कुर्य्युः॥१९॥

पदार्थः-हे (**अर्वन्**) घोड़े के तुल्य वर्त्तमान विद्वन्! (**ते**) आप के (**कनीनाम्**) शोभायमान मनुष्यों के बीच वर्त्तमान (**देवाः**) विद्वान् (**व्रातासः**) मनुष्य (**अनु, वीर्यम्**) बल-पराक्रम के अनुकूल (**अनु, ममिरे**) अनुमान करें और (**तव**) आप की (**सख्यम्**) मित्रता को (**अनु, ईयुः**) अनुकूल प्राप्त हों (**त्वा**) आप के (**अनु**) अनुकूल (**रथः**) विमानादि यान (**त्वा**) आपके (**अनु**) अनुकूल वा पीछे आश्रित (**मर्यः**) साधारण मनुष्य (**त्वा**) आपके (**अनु**) अनुकूल वा पीछे (**गावः**) गौ और (**त्वा**) आप के (**अनु**) अनुकूल (**भगः**) ऐश्वर्य होवे॥१९॥

भावार्थः-यदि मनुष्य अच्छे शिक्षित होकर औरों को सुशिक्षित करें, उन में से उत्तमों को सभासद् और सभासदों में से अत्युत्तम सभापति को स्थापन कर राज प्रजा के प्रधान पुरुषों की एक

अनुमति से राजकार्यों को सिद्ध करें, तो सब आपस में अनुकूल हो के सब कार्यों को पूर्ण करें॥१९॥

हिरण्यशृङ्ग इत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

मनुष्यैरग्न्यादिपदार्थगुणविज्ञानेन किं साध्यमित्याह॥

मनुष्यों को अग्न्यादि पदार्थों के गुण ज्ञान से क्या सिद्ध करना चाहिए, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

हिर॑ण्यशृ॒ङ्गोऽयो॑ऽअस्य॒ पादा॒ मनो॑जवा॒ऽअव॑र॒ऽइन्द्र॑ऽआसीत्।
दे॒वाऽइद॑स्य हवि॒रद्य॑माय॒न्योऽअर्व॑न्तं प्रथ॒मोऽअ॒ध्यति॑ष्ठत्॥२०॥

हिर॑ण्यशृ॒ङ्ग इति॒ हिर॑ण्यऽशृ॒ङ्गः। अयः॑। अ॒स्य॒। पादाः॑। मनो॑जवा॒ इति॒ मनः॑ऽजवाः। अव॑रः। इन्द्रः॑। आ॒सी॒त्। दे॒वाः। इत्। अ॒स्य॒। ह॒वि॒रद्य॒मिति॑ हविः॒ऽअद्य॑म्। आ॒य॒न्। यः। अर्व॑न्तम्। प्र॒थ॒मः। अ॒ध्यति॑ष्ठदित्यधि॒ऽअति॑ष्ठत्॥२०॥

पदार्थः-(**हिरण्यशृङ्गः**) हिरण्यानि तेजांसि शृङ्गाणीव यस्य स (**अयः**) सुवर्णम्। **अय इति हिरण्यनामसु पठितम्॥** (निघ०१।२) (**अस्य**) (**पादाः**) पद्यन्ते गच्छन्ति यैस्ते (**मनोजवाः**) मनसो जवो वेग इव जवो वेगो येषान्ते (**अवरः**) नवीनः (**इन्द्रः**) परमैश्वर्यहेतुविद्युदिव सभेशः (**आसीत्**) भवेत् (**देवाः**) विद्वांसः सभासदः (**इत्**) एव (**अस्य**) (**हविरद्यम्**) दातुमर्हमत्तुं योग्यं च (**आयन्**) प्राप्नुयुः (**यः**) (**अर्वन्तम्**) अश्ववत् प्राप्नुवन्तं वह्निम् (**प्रथमः**) आदिमः (**अध्यतिष्ठत्**) उपरि तिष्ठेत्॥२०॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! योऽवरो हिरण्यशृङ्ग इन्द्र आसीद् यः प्रथमोऽर्वन्तमयश्चाभ्यतिष्ठदस्य पादा मनोजवाः स्युर्देवा अस्य हविरद्यमिदायन् तं यूयमाश्रयत॥२०॥

भावार्थः-ये मनुष्या अग्न्यादिपदार्थानां गुणकर्मस्वभावान् यथावज्जानीयुस्ते बहून्यद्भुतानि कार्य्याणि साद्धुं शक्नुयुः। ये प्रीत्या राजकार्य्याणि प्राप्नुयुस्ते सत्कारं ये नाशयेयुस्ते दण्डं चावश्यं प्राप्नुयुः॥२०॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! (**यः**) जो (**अवरः**) नवीन (**हिरण्यशृङ्गः**) शृङ्ग के तुल्य जिस के तेज हैं, वह (**इन्द्रः**) उत्तम ऐश्वर्य वाला बिजुली के समान सभापति (**आसीत्**) होवे जो (**प्रथमः**) पहिला (**अर्वन्तम्**) घोड़े के तुल्य मार्ग को प्राप्त होते हुए अग्नि तथा (**अयः**) सुवर्ण का (**अध्यतिछत्**) अधिष्ठाता अर्थात् अग्निप्रयुक्त यान पर बैठ के चलाने वाली होवे राजा (**अस्य**) इसके (**पादाः**) पग (**मनोजवाः**) मन के तुल्य वेग वाले हों अर्थात् पग का चलना काम विमानादि से लेवे (**देवाः**)

विद्वान् सभासद् लोग **(अस्य)** इस राजा के **(हविरद्यम्)** देने और भोजन करने योग्य अन्न को **(इत्, आयन्)** ही प्राप्त होवें, उसको तुम लोग जानो॥२०॥

भावार्थः-जो मनुष्य अग्न्यादि पदार्थों के गुण कर्म स्वभावों को यथावत् जानें वे बहुत अद्भुत कार्य्यों को सिद्ध कर सकें, जो प्रीति से राजकार्य्यों को सिद्ध करें, वे सत्कार को और जो नष्ट करें, वे दण्ड को अवश्य प्राप्त होवें॥२०॥

ईर्मान्तास इत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः। मनुष्या देवताः। भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

कीदृशा राजपुरुषा विजयमाप्नुवन्तीत्याह॥

कैसे राजपुरुष विजय पाते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ईर्मान्तासः सिलिकमध्यमासः सꣳशूरणासो दिव्यासोऽअत्याः।
हꣳसाऽइव श्रेणिशो यतन्ते यदाक्षिषुर्दिव्यमज्ममश्वाः॥२१॥

ईर्मान्तास इतीर्मऽअन्तासः। सिलिकमध्यमास इति सिलिकऽमध्यमासः। सम्। शूरणासः। दिव्यासः। अत्याः। हꣳसाऽइवेति हꣳसाःऽइव। श्रेणिश इति श्रेणिऽशः। यतन्ते। यत्। आक्षिषुः। दिव्यम्। अज्मम्। अश्वाः॥२१॥

पदार्थः-**(ईर्मान्तासः)** ईर्मः प्रेरितः स्थितिप्रान्तो येषान्ते **(सिलिकमध्यमासः)** सिलिकः संलग्नो मध्यदेशो येषान्ते **(सम्)** **(शूरणासः)** सद्यो रणो युद्धविजयो येभ्यस्ते **(दिव्यासः)** प्राप्तदिव्यशिक्षाः **(अत्याः)** सततगामिनः **(हंसा इव)** हंसवद् गन्तारः **(श्रेणिशः)** बद्धपङ्क्तयः **(यतन्ते)** **(यत्)** ये **(आक्षिषुः)** प्राप्नुयुः **(दिव्यम्)** शुद्धम् **(अज्मम्)** अजन्ति गछन्ति यस्मिंस्तं मार्गम् **(अश्वाः)** आशुगामिनः॥२१॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यद्येऽग्न्यादय इवेर्मान्तासः सिलिकमध्यमासः शूरणासो दिव्यासोऽत्या अश्वाः श्रेणिशो हंसा इव यतन्ते दिव्यमज्मं समाक्षिषुस्तान् यूयं प्राप्नुत॥२१॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। येषां राजपुरुषाणां सुशिक्षिता दिव्यगतयो विजयहेतवस्सद्यो गामिनः प्रेरणामनुगन्तारो हंसवद्गतयोऽश्वा अग्न्यादयः पदार्था इव कार्यसाधकाः सन्ति, ते सर्वत्र विजयमाप्नुवन्ति॥२१॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! **(यत्)** जो अग्नि आदि पदार्थों के तुल्य **(ईर्मान्तासः)** जिनका बैठने का स्थान प्रेरणा किया गया **(सिलिकमध्यमासः)** गदा आदि से लगा हुआ है मध्यप्रदेश जिनका ऐसे **(शूरणासः)** शीघ्र युद्ध में विजय के हेतु **(दिव्यासः)** उत्तम शिक्षित **(अत्याः)** निरन्तर चलने वाले **(अश्वाः)** शीघ्रगामी घोड़े **(श्रेणिशः)** पङ्क्ति बांधे हुए **(हंसा इव)** हंस पक्षियों के तुल्य **(यतन्ते)**

प्रयत्न करते हैं और **(दिव्यम्)** शुद्ध **(अज्मम्)** मार्ग को **(सम्, आक्षिषुः)** व्याप्त होवें, उनको तुम लोग प्राप्त होओ॥२१॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जिन राजपुरुषों के सुशिक्षित उत्तम गति वाले घोड़े अग्न्यादि पदार्थों के समान कार्यसाधक होते हैं, वे सर्वत्र विजय पाते हैं॥२१॥

तवेत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः। वायवो देवताः। विराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

मनुष्यैरनित्यं शरीरं प्राप्य किं कार्यमित्याह॥

मनुष्यों को अनित्य शरीर पाके क्या करना चाहिए, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

तव॒ शरी॑रं पतयि॒ष्ण्व॒र्व॒न्तव॑ चि॒त्तं वात॑ऽइव॒ ध्रजी॑मान्।

तव॒ शृङ्गा॑णि॒ विष्ठि॑ता पुरु॒त्रार॑ण्येषु॒ जर्भु॑राणा चरन्ति॥२२॥

तव॑। शरी॑रम्। प॒त॒यि॒ष्णु। अ॒र्व॒न्। तव॑। चि॒त्तम्। वात॑ इ॒वेति॒ वात॑ःऽइव। ध्रजी॑मान्। तव॑। शृङ्गा॑णि। विष्ठि॑ता। विस्थि॒तेति॒ विऽस्थि॑ता। पु॒रु॒त्रेति॑ पु॒रु॒ऽत्रा। अर॑ण्येषु। जर्भु॑राणा। च॒र॒न्ति॒॥२२॥

पदार्थः-**(तव)** **(शरीरम्)** **(पतयिष्णु)** पतनशीलम् **(अर्वन्)** अश्व इव वर्त्तमान **(तव)** **(चित्तम्)** अन्तःकरणम् **(वात इव)** वायुवत् **(ध्रजीमान्)** वेगवान् **(तव)** **(शृङ्गाणि)** शृङ्गाणीवोच्छ्रतानि सेनाङ्गानि **(विष्ठिता)** विशेषेण स्थितानि **(पुरुत्रा)** पुरुषु बहुषु **(अरण्येषु)** जङ्गलेषु **(जर्भुराणा)** भृशं पोषकानि धारकाणि **(चरन्ति)** गच्छन्ति॥२२॥

अन्वयः-हे अर्वन् वीर! यस्य तव पतयिष्णु शरीरं तव चित्तं वात इव ध्रजीमान् तव पुरुत्रारण्येषु जर्भुराणा विष्ठिता शृङ्गाणि चरन्ति, स त्वं धर्ममाचर॥२२॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। ये मनुष्या अनित्येषु शरीरेषु स्थित्वा नित्यानि कार्याणि साध्नुवन्ति, तेऽतुलसुखमाप्नुवन्ति। ये वनस्थाः पशव इव भृत्याः सेनाश्च वर्त्तन्ते, तेऽश्ववत् सद्योगामिनो भूत्वा शत्रून् विजेतुं शक्नुवन्ति॥२२॥

पदार्थः-हे **(अर्वन्)** घोड़े के तुल्य वर्त्तमान वीर पुरुष! जिस **(तव)** तेरा **(पतयिष्णु)** नाशवान् **(शरीरम्)** शरीर **(तव)** तेरे **(चित्तम्)** अन्तःकरण की वृत्ति **(वात इव)** वायु के सदृश **(ध्रजीमान्)** वेगवाली अर्थात् शीघ्र दूरस्थ विषयों के तत्त्व जानने वाली **(तव)** तेरे **(पुरुत्रा)** बहुत **(अरण्येषु)** जंगलों में **(जर्भुराण)** शीघ्र धारण-पोषण करने वाले **(विष्ठिता)** विशेषकर स्थित **(शृङ्गाणि)** शृङ्गों के तुल्य ऊँचे सेना के अवयव **(चरन्ति)** विचरते हैं सो तू धर्म का आचरण कर॥२२॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो मनुष्य अनित्य शरीरों में स्थित हो नित्य कार्य्यों को सिद्ध करते हैं, वे अतुल सुख पाते हैं और जो वन के पशुओं के तुल्य भृत्य और सेना हैं, वे घोड़े के तुल्य शीघ्रगामी होके शत्रुओं को जीतने को समर्थ होते हैं॥२२॥

उप प्रेत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः। मनुष्या देवताः। भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

कीदृशा विद्वांसो हितैषिण इत्याह॥

कैसे विद्वान् हितैषी होते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उप प्रागाच्छसनं वाज्यर्वा देवद्रीचा मनसा दीध्यानः।

अजः पुरो नीयते नाभिरस्यानु पश्चात् कवयो यन्ति रेभाः॥२३॥

उप। प्र। अगात्। शसनम्। वाजी। अर्वा। देवद्रीचा। मनसा। दीध्यानः। अजः। पुरः। नीयते। नाभिः। अस्य। अनु। पश्चात्। कवयः। यन्ति। रेभाः॥२३॥

पदार्थः-(**उप**) सामीप्ये (**प्र**) (**अगात्**) गच्छन्ति (**शसनम्**) शंसन्ति हिंसन्ति यस्मिँस्तद्युद्धम् (**वाजी**) वेगवान् (**अर्वा**) गन्ताऽश्वः (**देवद्रीचाः**) देवानञ्चता प्राप्नुवता (**मनसा**) (**दीध्यानः**) दीप्यमानः सन् (**अजः**) क्षेपणशीलः (**पुरः**) (**नीयते**) (**नाभिः**) मध्यभागः (**अस्य**) (**अनु**) आनुकूल्ये (**पश्चात्**) (**कवयः**) मेधाविनः (**यन्ति**) प्राप्नुवन्ति (**रेभाः**) सर्वविद्यास्तोतारः। **रेभ इति स्तोतृनामसु पठितम्॥** (निघ०३।१६)॥२३॥

अन्वयः-यो दीध्यानोऽजो वाज्यर्वा देवद्रीचा मनसा शसनमुप प्रागात् विद्वद्भिरस्य नाभिः पुरो नीयते, तं पश्चात् रेभाः कवयः अनुयन्ति॥२३॥

भावार्थः-ये विद्वांसो दिव्येन विचारेण तुरङ्गान् सुशिक्ष्याग्न्यादीन् संसाध्यैश्वर्यं प्राप्नुवन्ति, ते जगद्धितैषिणो भवन्ति॥२३॥

पदार्थः-जो (**दीध्यानः**) सुन्दर प्रकाशमान हुआ (**अजः**) फेंकने वाला (**वाजी**) वेगवान् (**अर्वा**) चालाक घोड़ा (**देवद्रीचा**) विद्वानों को प्राप्त होते हुए (**मनसा**) मन से (**शसनम्**) जिसमें हिंसा होती है, उस युद्ध को (**उप, प्र, अगात्**) अच्छे प्रकार समीप प्राप्त होता है। विद्वानों से (**अस्य**) इसका (**नाभिः**) मध्यभाग अर्थात् पीठ (**पुरः**) आगे (**नीयते**) प्राप्त की जाती अर्थात् उस पर बैठते हैं, उसको (**पश्चात्**) पीछे (**रेभाः**) सब विद्याओं की स्तुति करने वाले (**कवयः**) बुद्धिमान् जन (**अनु, यन्ति**) अनुकूलता से प्राप्त होते हैं॥२३॥

भावार्थः-जो विद्वान् लोग उत्तम विचार से घोड़ों को अच्छी शिक्षा दे और अग्नि आदि पदार्थों को सिद्ध कर ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं, वे जगत् के हितैषी होते हैं॥२३॥

उप प्रेत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः। मनुष्यो देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

के जना राज्यं शासितुमर्हन्तीत्याह॥

कौन जन राज्यशासन करने योग्य होते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उप प्रागात् परमं यत्सधस्थमर्वाँ२ऽअच्छा पितरं मातरं च।

अद्या देवाञ्जुष्टतमो हि गम्याऽअथाशास्ते दाशुषे वार्याणि॥ २४॥

उप। प्र। अगात्। परमम्। यत्। सधस्थमिति सधऽस्थम्। अर्वान्। अच्छ। पितरम्। मातरम्। च। अद्य। देवान्। जुष्टतम इति जुष्टऽतमः। हि। गम्याः। अथ। आ। शास्ते। दाशुषे। वार्याणि॥ २४॥

पदार्थः-**(उप)** **(प्र)** **(अगात्)** प्राप्नोति **(परमम्)** **(यत्)** यः **(सधस्थम्)** सहस्थानम् **(अर्वान्)** ज्ञानी जनः। अत्र नलोपाभावश्छान्दसः। **(अच्छ)** सम्यक्। अत्र **निपातस्य च** [अ०६.३.१३६] दीर्घः। **(पितरम्)** जनकम् **(मातरम्)** जननीम् **(च)** **(अद्य)** इदानीम्। अत्र **निपातस्य च** [अ०६.३.१३६] इति दीर्घः। **(देवान्)** विदुषः **(जुष्टतमः)** अतिशयेन सेवितः **(हि)** खलु **(गम्याः)** प्राप्नुहि **(अथ)** **(आ)** समन्तात् **(शास्ते)** इच्छति **(दाशुषे)** दात्रे **(वार्याणि)** स्वीकार्याणि भोग्यवस्तूनि॥ २४॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यद्योऽर्वान् जुष्टतमस्सन् परमं सधस्थं पितरं मातरं देवांश्चाद्याशास्तेऽथ दाशुषे वार्याण्युपप्रागात् तं हि त्वमच्छ गम्याः॥ २४॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये न्यायविनयाभ्यां परोपकारान् कुर्वन्ति, ते उत्तममुत्तमं जन्म श्रेष्ठान् पदार्थान् विद्वांसं पितरं विदुषीः मातॄश्च प्राप्य विद्वद्भक्ता भूत्वा महत्सुखं प्राप्नुयुस्ते राज्यमनुशासितुं शक्नुयुः॥ २४॥

पदार्थः-हे विद्वन्! **(यत्)** जो **(अर्वान्)** ज्ञानी जन **(जुष्टतमः)** अतिशय कर सेवन किया हुआ **(परमम्)** उत्तम **(सधस्थम्)** साथियों के स्थान **(पितरम्)** पिता **(मातरम्)** माता **(च)** और **(देवान्)** विद्वानों की **(अद्य)** इस समय **(आ, शास्ते)** अधिक इच्छा करता है। **(अथ)** इसके अनन्तर **(दाशुषे)** दाता जन के लिए **(वार्याणि)** स्वीकार करने और भोजन के योग्य वस्तुओं को **(उप, प्र, अगात्)** प्रकर्ष करके समीप प्राप्त होता है, उसको **(हि)** ही आप **(अच्छ)** सम्यक् **(गम्याः)** प्राप्त हूजिये॥ २४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो लोग न्याय और विनय से परोपकारों को करते हैं, वे उत्तम-उत्तम जन्म, श्रेष्ठ पदार्थों, विद्वान् पिता और विदुषी माता को प्राप्त हो और विद्वानों के सेवक होके महान् सुख को प्राप्त हों, वे राज्यशासन करने को समर्थ होवें॥ २४॥

समिद्ध इत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः। विद्वान् देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

धार्मिकाः किं कुर्वन्त्वित्याह॥

धर्मात्मा लोग क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

समिद्धोऽअद्य मनुषो दुरोणे देवो देवान् यजसि जातवेदः।

आ च वह मित्रमहश्चिकित्वान् त्वं दूतः कविरसि प्रचेताः॥२५॥

समिद्ध इति सम्ऽइद्धः। अद्य। मनुषः। दुरोणे। देवः। देवान्। यजसि। जातवेद इति जातऽवेदः। आ। च। वह। मित्रमह इति मित्रऽमहः। चिकित्वान्। त्वम्। दूतः। कविः। असि। प्रचेता इति प्रऽचेताः॥२५॥

पदार्थः-(**समिद्धः**) सम्यक् प्रकाशितः (**अद्य**) इदानीम् (**मनुषः**) मननशीलः (**दुरोणे**) गृहे (**देवः**) विद्वान् (**देवान्**) विदुषो दिव्यगुणान् वा (**यजसि**) सङ्गच्छसे (**जातवेदः**) प्राप्तप्रज्ञ (**आ**) (**च**) (**वह**) प्राप्नुहि (**मित्रमहः**) मित्राणि महयति पूजयति तत्सम्बुद्धौ (**चिकित्वान्**) विज्ञानवान् (**त्वम्**) (**दूतः**) यो दुनोति तापयति दुष्टान् सः (**कविः**) कान्तप्रज्ञो मेधावी (**असि**) (**प्रचेताः**) प्रकृष्टञ्चेतः संज्ञानमस्य सः॥२५॥

अन्वयः-हे जातवेदो मित्रमहो विद्वंस्त्वमद्य समिद्धोऽग्निरिव मनुषो देवः सन् यजसि, चिकित्वान् दूतः प्रचेताः कविर्दुरोणेऽसि, स त्वं देवांश्चावह॥२५॥

भावार्थः-यथाऽग्निर्दीपादिरूपेण गृहाणि प्रकाशयति, तथा धार्मिका विद्वांसः स्वानि कुलानि प्रदीपयन्ति, ये सर्वैः सह मित्रवद्वर्तन्ते त एव धार्मिकाः सन्ति॥२५॥

पदार्थः-हे (**जातवेदः**) उत्तम बुद्धि को प्राप्त हुए (**मित्रमहः**) मित्रों का सत्कार करने वाले विद्वन्! जो (**त्वम्**) आप (**अद्य**) इस समय (**समिद्धः**) सम्यक् प्रकाशित अग्नि के तुल्य (**मनुषः**) मननशील (**देवः**) विद्वान् हुए (**यजसि**) सङ्ग करते हो (**च**) और (**चिकित्वान्**) विज्ञानवान् (**दूतः**) दुष्टों को दुःखदाई (**प्रचेताः**) उत्तम चेतनता वाला (**कविः**) सब विषयों में अव्याहतबुद्धि (**असि**) हो सो आप (**दुरोणे**) घर में (**देवान्**) विद्वानों वा उत्तम गुणों को (**आ, वह**) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये॥२५॥

भावार्थः-जैसे अग्नि दीपक आदि के रूप में घरों को प्रकाशित करता है, वैसे धार्मिक विद्वान् लोग अपने कुलों को प्रकाशित करते हैं। जो सब के साथ मित्रवत् वर्त्तते हैं, वे ही धर्मात्मा हैं॥२५॥

तनूनपादित्यस्य जमदग्निर्ऋषिः। विद्वान् देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

तनूनपात् पथऽऋतस्य यानान् मध्वा समञ्जन्त्स्वदया सुजिह्व।

मन्मानि धीभिरुत यज्ञमृन्धन् देवत्रा च कृणुह्यध्वरं नः॥२६॥

तनूनपादिति तनूऽनपात्। पथः। ऋतस्य। यानान्। मध्वा। समञ्जन्निति सम्ऽअञ्जन्। स्वदय। सुजिह्वेति सुऽजिह्व। मन्मानि। धीभिः। उत। यज्ञम्। ऋन्धन्। देवत्रेति देवऽत्रा। च। कृणुहि। अध्वरम्। नः॥२६॥

पदार्थः-(**तनूनपात्**) यस्तनूर्विस्तृतान् पदार्थान् न पातयति तत्सम्बुद्धौ (**पथः**) (**ऋतस्य**) सत्यस्य जलस्य वा (**यानान्**) याति येषु तान् (**मध्वा**) माधुर्येण (**समञ्जन्**) सम्यक् प्रकटीकुर्वन् (**स्वदय**) आस्वादय। अत्र **संहितायाम्** [अ०६.३.११४] इति दीर्घः। (**सुजिह्व**) शोभना जिह्वा वाग्वा यस्य तत्सम्बुद्धौ (**मन्मानि**) यानानि (**धीभिः**) प्रज्ञाभिः कर्मभिर्वा (**उत**) अपि (**यज्ञम्**) सङ्गमनीयं व्यवहारम् (**ऋन्धन्**) संसाधयन् (**देवत्रा**) देवेषु विद्वत्सु स्थित्वा (**च**) (**कृणुहि**) कुरु (**अध्वरम्**) अहिंसनीयम् (**नः**) अस्माकम्॥२६॥

अन्वयः-हे सुजिह्व तनूनपात्! त्वमृतस्य यानान् पथोऽग्निरिव मध्वा समञ्जन् स्वदय, धीभिर्मन्मान्युत नोध्वरं यज्ञमृन्धन् देवत्रा च कृणुहि॥२६॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। धार्मिकैर्मनुष्यैः पथ्यौषधसेवनेन सुप्रकाशितैर्भवितव्यम्। आप्तेषु विद्वत्सु स्थित्वा प्रज्ञाः प्राप्याहिंसाख्यो धर्मः सेवितव्यः॥२६॥

पदार्थः-हे (**सुजिह्व**) सुन्दर जीभ वा वाणी से युक्त (**तनूनपात्**) विस्तृत पदार्थों को न गिराने वाले विद्वान् जन! आप (**ऋतस्य**) सत्य वा जल के (**यानान्**) जिनमें चलें उन (**पथः**) मार्गों को अग्नि के तुल्य (**मध्वा**) मधुरता अर्थात् कोमल भाव से (**समञ्जन्**) सम्यक् प्रकार करते हुए (**स्वदय**) स्वाद लीजिए अर्थात् प्रसन्न कीजिए (**धीभिः**) बुद्धियों वा कर्मों से (**मन्मानि**) यानों को (**उत**) और (**नः**) हमारे (**अध्वरम्**) नष्ट न करने और (**यज्ञम्**) संगत करने योग्य व्यवहार को (**ऋन्धन्**) सम्यक् सिद्ध करता हुआ (**च**) भी (**देवत्रा**) विद्वानों में स्थित होकर (**कृणुहि**) कीजिए॥२६॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। धार्मिक मनुष्यों को चाहिए कि पथ्य, औषध पदार्थों का सेवन करके सुन्दर प्रकार प्रकाशित होवें, आप्त विद्वानों की सेवा में स्थित हो तथा बुद्धियों को प्राप्त हो के अहिंसारूप धर्म को सेवें॥२६॥

नराशꣳसस्येत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः। विद्वान् देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

नराशꣳसस्य महिमानमेषामुप स्तोषाम यजतस्य यज्ञैः।
ये सुक्रतवः शुचयो धियन्धाः स्वदन्ति देवाऽउभयानि हव्या॥२७॥

नराशंसस्य। महिमानम्। एषाम्। उप। स्तोषाम। यजतस्य। यज्ञैः। ये। सुक्रतव इति सुऽक्रतवः। शुचयः। धियन्धा इति धियम्ऽधाः। स्वदन्ति। देवाः। उभयानि। हव्या॥२७॥

पदार्थः-(**नराशंसस्य**) नरैः प्रशंसितस्य (**महिमानम्**) महत्त्वम् (**एषाम्**) (**उप**) (**स्तोषाम**) प्रशंसेम। लेट् उत्तमबहुवचने रूपम्। (**यजतस्य**) सङ्गन्तुं योग्यस्य (**यज्ञैः**) सङ्गादिलक्षणैः (**ये**) (**सुक्रतवः**) शोभनप्रज्ञाकर्माणः (**शुचयः**) पवित्राः (**धियन्धाः**) ये श्रेष्ठां प्रज्ञामुत्तमं कर्म दधति ते (**स्वदन्ति**) भुञ्जते (**देवाः**) विद्वांसः (**उभयानि**) शरीरात्मसुखकराणि (**हव्या**) हव्यानि अत्तुमर्हाणि॥२७॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा वयं ये सुक्रतवः शुचयो धियन्धा देवा उभयानि हव्या स्वदन्त्येषां यज्ञैर्नराशंसस्य यजतस्य व्यवहारस्य महिमानमुप स्तोषाम, तथा यूयमपि कुरुत॥२७॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये स्वयं शुद्धाः प्राज्ञा वेदशास्त्रविदो न भवन्ति, तेऽन्यानपि विदुषः पवित्रान् कर्त्तुं न शक्नुवन्ति। येषां यादृशानि कर्माणि स्युस्तानि धर्मात्मभिर्यथावत् प्रशंसितव्यानि॥२७॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे हम लोग (**ये**) जो (**सुक्रतवः**) सुन्दर बुद्धियों और कर्मों वाले (**शुचयः**) पवित्र (**धियन्धाः**) श्रेष्ठ धारणावती बुद्धि और कर्म को धारण करनेहारे (**देवाः**) विद्वान् लोग (**उभयानि**) दोनों शरीर और आत्मा को सुखकारी (**हव्या**) भोजन के योग्य पदार्थों को (**स्वदन्ति**) भोगते हैं। (**एषाम्**) इन विद्वानों के (**यज्ञैः**) सत्संगादि रूप यज्ञों से (**नराशंसस्य**) मनुष्यों से प्रशंसित (**यजतस्य**) संग करने योग्य व्यवहार के (**महिमानम्**) बड़प्पन को (**उप, स्तोषाम**) समीप प्रशंसा करें, वैसे तुम लोग भी करो॥२७॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो लोग स्वयं पवित्र बुद्धिमान् वेद शास्त्र के वेत्ता नहीं होते, वे दूसरों को भी विद्वान् पवित्र नहीं कर सकते। जिनके जैसे गुण, जैसे कर्म हों, उनकी धर्मात्मा लोगों को यथार्थ प्रशंसा करनी चाहिए॥२७॥

आजुह्वान इत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः। अग्निर्देवता। स्वराड्बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आजुह्वानऽईड्यो वन्द्यश्चायाह्यग्ने वसुभिः सजोषाः।
त्वं देवानामसि यह्व होता सऽएनान् यक्षीषितो यजीयान्॥२८॥

आजुह्वान इत्याऽजुह्वानः। ईड्यः। वन्द्यः। च। आ। याहि। अग्ने। वसुभिरिति वसुऽभिः। सजोषा इति सऽजोषाः। त्वम्। देवानाम्। असि। यह्व। होता। सः। एनान्। यक्षि। इषितः। यजीयान्॥२८॥

पदार्थः-**(आजुह्वानः)** समन्तात् स्पर्द्धमानः **(ईड्यः)** प्रशंसितुं योग्यः **(वन्द्यः)** नमस्करणीयः **(च)** **(आ)** **(याहि)** आगच्छ **(अग्ने)** पावकवत्पवित्र विद्वन्! **(वसुभिः)** वासहेतुभूतैर्विद्वद्भिस्सह **(सजोषाः)** समानप्रीतिसेविनः **(त्वम्)** **(देवानाम्)** विदुषाम् **(असि)** **(यह्व)** महागुणविशिष्ट। **यह्व इति महन्नामसु पठितम्॥** (निघ०३।३) **(होता)** दाता **(सः)** **(एनान्)** **(यक्षि)** सङ्गच्छ **(इषितः)** प्रेरितः **(यजीयान्)** अतिशयेन यया सङ्गन्ता॥२८॥

अन्वयः-हे यह्वाग्ने! यस्त्वं देवानां होता यजीयानसि। इषितः सन्नेनान् यक्षि, स त्वं वसुभिः सह सजोषा आजुह्वान ईड्यो वन्द्यश्चैतानायाहि॥२८॥

भावार्थः-यदि मनुष्याः पवित्रात्मनां प्रशसितानां विदुषां सङ्गेन स्वयं पवित्रात्मानो भवेयुस्ते धर्मात्मानः सन्तः सर्वत्र सत्कृताः स्युः॥२८॥

पदार्थः-हे **(यह्व)** बड़े उत्तम गुणों से युक्त **(अग्ने)** अग्नि के तुल्य पवित्र विद्वन्! जो **(त्वम्)** आप **(देवानाम्)** विद्वानों के बीच **(होता)** दानशील **(यजीयान्)** अति समागम करने हारे **(असि)** हैं, **(इषितः)** प्रेरणा किये हुए **(एनान्)** इन विद्वानों का **(यक्षि)** सङ्ग कीजिए **(सः)** सो आप **(वसुभिः)** निवास के हेतु विद्वानों के साथ **(सजोषाः)** समान प्रीति निबाहने वाले **(आजुह्वानः)** अच्छे प्रकार स्पर्द्धा ईर्ष्या करते हुए **(ईड्यः)** प्रशंसा **(च)** तथा **(वन्द्यः)** नमस्कार के योग्य इन विद्वानों के निकट **(आ)** **(याहि)** आया कीजिए॥२८॥

भावार्थः-जो मनुष्य पवित्रात्मा प्रशंसित विद्वानों के संग से आप पवित्रात्मा होवें, तो वे धर्मात्मा हुए सर्वत्र सत्कार को प्राप्त होवें॥२८॥

प्राचीनमित्यस्य जमदग्निर्ऋषिः। अन्तरिक्षं देवता। भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प्राचीनं बर्हिः प्रदिशा पृथिव्या वस्तोरस्या वृज्यतेऽअग्रेऽअह्नाम्।

व्युं प्रथते वितरं वरीयो देवेभ्योऽअदितये स्योनम्॥२९॥

प्राचीनम्। बर्हिः। प्रदिशेति प्रऽदिशा। पृथिव्याः। वस्तोः। अस्याः। वृज्यते। अग्रे। अह्नाम्। वि। ऊँ इत्यूँ। प्रथते। वितरमिति विऽतरम्। वरीयः। देवेभ्यः। अदितये। स्योनम्॥२९॥

पदार्थः-**(प्राचीनम्)** प्राक्तनम् **(बर्हिः)** अन्तरिक्षवद् व्यापकं ब्रह्म **(प्रदिशा)** प्रकृष्टया दिशा निर्देशेन **(पृथिव्याः)** भूमेः **(वस्तोः)** दिनात् **(अस्याः)** **(वृज्यते)** त्यज्यते **(अग्रे)** प्रातः समये **(अह्नाम्)** दिनानाम् **(वि)** **(उ)** **(प्रथते)** प्रकटयति **(वितरम्)** विशेषेण सन्तारकम् **(वरीयः)** अतिशयेन वरणीयं वरम् **(देवेभ्यः)** विद्वद्भ्यः **(अदितये)** अविनाशिने **(स्योनम्)** सुखम्॥२९॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यदस्याः पृथिव्या मध्ये प्राचीनं बर्हिर्वस्तोर्वृज्यते अह्नामग्रे देवेभ्य उ अदितये वितरं वरीयः स्योनं विप्रथते तद्यूयं प्रदिशा विजानीत प्राप्नुत च॥२९॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये विद्वद्भ्यः सुखं दद्युस्ते सर्वोत्तमं सुखं लभेरन्। यथाऽऽकाशं सर्वासु दिक्षु पृथिव्यादिषु च व्याप्तमस्ति, तथा जगदीश्वरः सर्वत्र व्याप्तोऽस्ति। ये तमीदृशं परमात्मानं प्रातरुपासते, ते धर्मात्मानः सन्तो विस्तीर्णसुखा जायन्ते॥२९॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो **(अस्याः)** इस **(पृथिव्याः)** भूमि के बीच **(प्राचीनम्)** सनातन **(बर्हिः)** अन्तरिक्ष के तुल्य व्यापक ब्रह्म **(वस्तोः)** दिन के प्रकाश से **(वृज्यते)** अलग होता **(अह्नाम्)** दिनों के **(अग्रे)** आरम्भ प्रातःकाल में **(देवेभ्यः)** विद्वानों **(उ)** और **(अदितये)** अविनाशी आत्मा के लिए **(वितरम्)** विशेषकर दुःखों से पार करनेहारे **(वरीयः)** अतिश्रेष्ठ **(स्योनम्)** सुख को **(वि, प्रथते)** विशेषकर प्रकट करता उसको तुम लोग **(प्रदिशा)** वेद शास्त्र के निर्देश से जानो और प्राप्त होओ॥२९॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो विद्वानों के लिए सुख देवें, वे सर्वोत्तम सुख को प्राप्त हों, जैसे आकाश सब दिशाओं और पृथिव्यादि में व्याप्त है, वैसे जगदीश्वर सर्वत्र व्याप्त है। जो लोग ऐसे ईश्वर की प्रातःकाल उपासना करते वे धर्मात्मा हुए विस्तीर्ण सुखों वाले होते हैं॥२९॥

व्यचस्वतीरित्यस्य जमदग्निर्ऋषिः। स्त्रियो देवताः। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनः स्त्रीपुरुषौ किं कुर्यातामित्याह।

फिर स्त्री-पुरुष क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

व्यच॑स्वतीरुर्वि॒या वि श्र॑यन्तां॒ पति॑भ्यो॒ न जन॑यः॒ शुम्भ॑मानाः।

देवी॑र्द्वारो बृहतीर्विश्वमिन्वा दे॒वेभ्यो॑ भवत सुप्राय॒णाः॥३०॥

व्यच॑स्वतीः। उ॒र्वि॒या। वि। श्र॒य॒न्ता॒म्। पति॑भ्य॒ इति॒ पति॑ऽभ्यः। न। जन॑यः। शुम्भ॑मानाः। देवीः॑। द्वारः॒। बृ॒ह॒तीः॒। वि॒श्व॒मि॒न्वा॒ इति॑ विश्वम्ऽइन्वाः। दे॒वेभ्यः॑। भ॒व॒त॒। सु॒प्रा॒य॒णाः। सु॒प्रा॒य॒ना इति॑ सुऽप्रा॒य॒नाः॥३०॥

पदार्थः-**(व्यचस्वतीः)** शुभगुणेषु व्याप्तिमतीः **(उर्विया)** बहुत्वेन **(वि)** **(श्रयन्ताम्)** सेवन्ताम् **(पतिभ्यः)** गृहीतपाणिभ्यः **(न)** इव **(जनयः)** जायाः **(शुम्भमानाः)** सुशोभायुक्ताः **(देवीः)** देदीप्यमानाः **(द्वारः)** द्वारोऽवकाशरूपाः **(बृहतीः)** महतीः **(विश्वमिन्वाः)** विश्वव्यवहारव्यापिन्यः **(देवेभ्यः)** दिव्यगुणेभ्यः **(भवत)** **(सुप्रायणाः)** सुष्ठु प्रकृष्टमयनं गृहं यासु ताः॥३०॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा उर्विया व्यचस्वतीर्बृहतीर्विश्वमिन्वाः सुप्रायणा देवीर्द्वारो नेव पतिभ्यो देवेभ्यः शुम्भमाना जनयः सर्वान् स्वस्वपतीन् विश्रयन्तां तथा यूयं सर्वविद्यासु व्यापका भवत॥३०॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा व्यापिका दिशोऽवकाशप्रदानेन सर्वेषां व्यवहारसाधकत्वेनानन्दप्रदाः सन्ति, तथैव परस्परस्मिन् प्रीताः स्त्रीपुरुषा दिव्यानि सुखानि लब्ध्वाऽन्येषां हितकराः स्युः॥३०॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे **(उर्विया)** अधिकता से शुभ गुणों में **(व्यचस्वतीः)** व्याप्ति वाली **(बृहतीः)** महती **(विश्वमिन्वाः)** सब व्यवहारों में व्याप्त **(सुप्रायणाः)** जिनके होने में उत्तम घर हों **(देवीः)** आभूषणादि से प्रकाशमान **(द्वारः)** दरवाजों के **(न)** समान अवकाश वाली **(पतिभ्यः)** पाणिग्रहण विवाह करने वाले **(देवेभ्यः)** उत्तम गुणयुक्त पतियों के लिए **(शुम्भमानाः)** उत्तम शोभायमान हुई **(जनयः)** सब स्त्रियां अपने व पतियों को **(वि, श्रयन्ताम्)** विशेष कर सेवन करें, वैसे तुम लोग सब विद्याओं में व्यापक **(भवत)** होओ॥३०॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे व्यापक हुई दिशा अवकाश देने और सब के व्यवहारों की साधक होने से आनन्द देने वाली होती है, वैसे ही आपस में प्रसन्न हुए स्त्रीपुरुष उत्तम सुखों को प्राप्त हो के अन्यों के हितकारी होवें॥३०॥

आ सुष्वयन्तीत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः। स्त्रियो देवताः। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ राजप्रजाधर्ममाह॥

अब राजप्रजा धर्म अगले मन्त्र में कहते हैं॥

आ सुष्वयन्ती यजतेऽउपाकेऽउषासानक्ता सदतां नि योनौ।
दिव्ये योषणे बृहती सुरुक्मेऽअधि श्रियꣳ शुक्रपिशं दधाने॥३१॥

आ। सुष्वयन्ती। सुस्वयन्ती इति सुऽस्वयन्ती। यजतेऽइति यजते। उपाकेऽइत्युपाके। उषासानक्ता। उषसानक्तेत्युषसानक्ता। सदताम्। नि। योनौ। दिव्येऽइति दिव्ये। योषणेऽइति योषणे। बृहतीऽइति बृहती। सुरुक्मे इति सुऽरुक्मे। अधि। श्रियम्। शुक्रपिशमिति शुक्रऽपिशम्। दधानेऽइति दधाने॥३१॥

पदार्थः-**(आ)** समन्तात् **(सुष्वयन्ती)** सुष्ठु शयाने इव। अत्र वर्णव्यत्ययेन पस्य स्थाने यः। **(यजते)** सङ्गच्छते **(उपाके)** सन्निहिते **(उषासानक्ता)** रात्रिदिने **(सदताम्)** गच्छतः **(नि)** नितराम् **(योनौ)** कालाख्ये कारणे **(दिव्ये)** दिव्यगुणकर्मस्वभावे **(योषणे)** स्त्रियाविव **(बृहती)** महान्त्यौ **(सुरुक्मे)** सुशोभमाने **(अधि)** उपरि **(श्रियम्)** शोभां लक्ष्मीं वा **(शुक्रपिशम्)** शुक्रं भास्वरं पिशं तद्विपरीतं कृष्णं च **(दधाने)** धारयन्त्यौ॥३१॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यदि दिव्ये योषणे इव सुरुक्मे बृहती अधिश्रियं शुक्रपिशं च दधाने सुष्वयन्ती उपाके उषासानक्ता योनौ न्या सदतां ते भवान् यजते तर्ह्यतुलां श्रियं प्राप्नुयात्॥३१॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे मनुष्याः! यथा कालेन सह वर्त्तमाने रात्रिदिने परस्परेण सम्बद्धे विलक्षणस्वरूपेण वर्त्तेते, तथा राजप्रजे परस्परं प्रीत्या वर्त्तेयाताम्॥३१॥

पदार्थः-हे विद्वन्! यदि **(दिव्ये)** उत्तम गुण-कर्म-स्वभाव वाली **(योषणे)** दो स्त्रियों के समान **(सुरुक्मे)** सुन्दर शोभायुक्त **(बृहतीः)** बड़ी **(अधि)** अधिक **(श्रियम्)** शोभ व लक्ष्मी को तथा **(शुक्रपिशम्)** प्रकाश और अन्धकाररूपों को **(दधाने)** धारण करती हुई **(सुष्वयन्ती)** सोती हुइयों के समान **(उपाके)** निकटवर्त्तिनी **(उषासानक्ता)** दिन-रात **(योनौ)** कालरूप कारण में **(नि, आ, सदताम्)** निरन्तर अच्छे प्रकार चलते हैं, उनको **(यजते)** सङ्गत करते तो अतोल शोभा को प्राप्त होओ॥३१॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जैसे काल के साथ वर्त्तमान रात-दिन एक दूसरे से सम्बद्ध विलक्षण स्वरूप से वर्त्तते हैं, वैसे राजा-प्रजा परस्पर प्रीति के साथ वर्त्ता करें॥३१॥

दैव्येत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः। विद्वांसो देवताः। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ शिल्पिभिः किं कर्त्तव्यमित्याह॥

अब कारीगर लोगों को क्या करना चाहिए, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

दैव्या॒ होता॑रा प्र॒थ॒मा सु॒वाचा॒ मिमा॑ना य॒ज्ञं मनु॑षो॒ यज॑ध्यै।

प्र॒चो॒दय॑न्ता वि॒दथे॑षु का॒रू प्रा॒चीनं॒ ज्योतिः॑ प्र॒दिशा॑ दि॒शन्ता॑॥३२॥

दैव्या॑। होता॑रा। प्र॒थ॒मा। सु॒वाचेति॑ सु॒ऽवाचा॑। मिमा॑ना। य॒ज्ञम्। मनु॑षः। यज॑ध्यै। प्र॒चो॒द॒य॒न्तेति॑ प्र॒ऽचो॒दय॑न्ता। वि॒दथे॑षु। का॒रू॒ऽइति॑ का॒रू। प्रा॒चीन॑म्। ज्योतिः॑। प्र॒दिशेति॑ प्र॒ऽदिशा॑। दि॒शन्ता॑॥३२॥

पदार्थः-**(दैव्या)** देवेषु कुशलौ **(होतारा)** दातारौ **(प्रथमा)** प्रख्यातौ **(सुवाचा)** प्रशस्तवाचौ **(मिमाना)** विदधतौ **(यज्ञम्)** सङ्गतिमयम् **(मनुषः)** मनुष्यान् **(यजध्यै)** यष्टुम् **(प्रचोदयन्ता)** प्रेरयन्तौ **(विदथेषु)** विज्ञानेषु **(कारू)** शिल्पिनौ **(प्राचीनम्)** प्राक्तनम् **(ज्योतिः)** शिल्पविद्याप्रकाशम् **(प्रदिशा)** वेदादिशास्त्रप्रदेशेन निर्देशेन प्रमाणेन **(दिशन्ता)** उपदिशन्तौ॥३२॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यो दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा मिमाना यज्ञं यजध्यै मनुषो विदथेषु प्रचोदयन्ता प्रदिशा प्राचीनं ज्योतिर्दिशन्ता कारू भवेतां ताभ्यां शिल्पविज्ञानशास्त्रमध्येयम्॥३२॥

भावार्थः-अत्र कारुशब्दे द्विवचनमध्यापकहस्तक्रियाशिक्षकाभिप्रायम्। ये शिल्पिनः स्युस्ते यावद् विजानीयुस्तावत् सर्वमन्येभ्यः शिक्षयेयुः। यत उत्तरोत्तरं विद्यासन्ततिर्वर्धेत॥३२॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो **(दैव्या)** विद्वानों में कुशल **(होतारा)** दानशील **(प्रथमा)** प्रसिद्ध **(सुवाचा)** प्रशंसित वाणी वाले **(मिमाना)** विधान करते हुए **(यज्ञम्)** संगतिरूप यज्ञ के **(यजध्यै)** करने को **(मनुषः)** मनुष्यों को **(विदथेषु)** विज्ञानों में **(प्रचोदयन्ता)** प्रेरणा करते हुए **(प्रदिशा)** वेदशास्त्र के प्रमाण से **(प्राचीनम्)** सनातन **(ज्योतिः)** शिल्पविद्या के प्रकाश का **(दिशन्ता)** उपदेश करते हुए **(कारू)** दो कारीगर लोग होवें, उनसे शिल्प विज्ञान शास्त्र पढ़ना चाहिए॥३२॥

भावार्थः-इस मन्त्र में **(कारू)** शब्द में द्विवचन अध्यापपक और हस्तक्रियाशिक्षक इन दो शिल्पियों के अभिप्राय से है। जो कारीगर होवें, वे जितनी शिल्पविद्या जानें, उतनी सब दूसरों के लिए शिक्षा करें, जिससे उत्तर-उत्तर विद्या की सन्तति बढ़े॥३२॥

आ न इत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः। वाग्देवता। भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आ नो॑ य॒ज्ञं भार॑ती॒ तूय॑मे॒त्विडा॑ मनु॒ष्वदि॒ह चे॒तय॑न्ती।

ति॒स्रो दे॒वीर्ब॒र्हिरेदꣳ स्यो॒नꣳ सर॑स्वती॒ स्वप॑सः सदन्तु॥३३॥

आ। नः॒। य॒ज्ञम्। भार॑ती। तूय॑म्। ए॒तु। इडा॑। म॒नु॒ष्वत्। इ॒ह। चे॒तय॑न्ती। ति॒स्रः। दे॒वीः। ब॒र्हिः। आ। इ॒दम्। स्यो॒नम्। सर॑स्वती। स्वप॑स॒ इति॑ सु॒ऽअप॑सः। स॒द॒न्तु॥३३।

पदार्थः-**(आ)** समन्तात् **(नः)** अस्मभ्यम् **(यज्ञम्)** शिल्पविद्याप्रकाशमयम्। **(भारती)** एतद्विद्याधारिका क्रिया **(तूयम्)** वर्द्धकम् **(एतु)** प्राप्नोतु **(इडा)** सुशिक्षिता मधुरा वाक् **(मनुष्वत्)** मानववत् **(इह)** अस्मिन् शिल्पविद्याग्रहणव्यवहारे **(चेतयन्ती)** प्रज्ञापयन्ती **(तिस्रः)** **(देवी)** देदीप्यमानाः **(बर्हिः)** प्रवृद्धम् **(आ)** **(इदम्)** **(स्योनम्)** सुखकारकम् **(सरस्वती)** विज्ञानवती प्रज्ञा **(स्वपसः)** सुष्ठ्वपांसि कर्माणि येषान्तान् **(सदन्तु)** प्रापयन्तु॥३३॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! या भारती इडा सरस्वतीह नस्तूयं यज्ञं मनुष्वच्चेतयन्त्यस्मानैतु इमास्तिस्रो देवीरिदं बर्हिः स्योनं स्वपसोऽस्मा ना सदन्तु॥३३॥

भावार्थः-अत्र शिल्पव्यवहारे सुष्ठूपदेशक्रियाविधिज्ञापनं विद्याधारणं चेष्यते यदीमाः तिस्रो रीतीर्मनुष्या गृह्णीयुस्तर्हि महत्सुखमश्नुवीरन्॥३३॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो **(भारती)** शिल्पविद्या को धारण करनेहारी क्रिया **(इडा)** सुन्दर शिक्षित मीठी वाणी **(सरस्वती)** विज्ञान वाली बुद्धि **(इह)** इस शिल्पविद्या के ग्रहणारूप व्यवहार में **(नः)** हमको **(तूयम्)** वर्धक **(यज्ञम्)** शिल्पविद्या के प्रकाशरूप यज्ञ को **(मनुष्वत्)** मनुष्य के तुल्य **(चेतयन्ती)** जनाती हुई हम को **(आ, एतु)** सब ओर से प्राप्त होवे, ये पूर्वोक्त **(तिस्रः)** तीन **(देवी)**

प्रकाशमान **(इदम्)** इस **(बर्हिः)** बढ़े हुए **(स्योनम्)** सुखकारी काम को **(स्वपसः)** सुन्दर कर्मों वाले हमको **(आ, सदन्तु)** अच्छे प्रकार प्राप्त करें॥३३॥

भावार्थः-इस शिल्प व्यवहार में सुन्दर उपदेश और क्रियाविधि को जताना और विद्या का धारण इष्ट है। यदि इन रीतियों को मनुष्य ग्रहण करें तो बड़ा सुख भोगें॥३३॥

य इम इत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः। विद्वान् देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यऽइमे द्यावापृथिवी जनित्री रूपैरपिंशद् भुवनानि विश्वा।
तमद्य होतरिषितो यजीयान् देवं त्वष्टारमिह यक्षि विद्वान्॥३४॥

यः। इमेऽइतीमे। द्यावापृथिवीऽइति द्यावापृथिवी। जनित्रीऽइति जनित्री। रूपैः। अपिंशत्। भुवनानि। विश्वा। तम्। अद्य। होतः। इषितः। यजीयान्। देवम्। त्वष्टारम्। इह। यक्षि। विद्वान्॥३४॥

पदार्थः-**(यः)** विद्वान् **(इमे)** प्रत्यक्षे **(द्यावापृथिवी)** विद्युद्भूमी **(जनित्री)** अनेककार्योत्पादिके **(रूपैः)** विचित्राभिराहुतिभिः **(अपिंशत्)** अवयवयति **(भुवनानि)** लोकान् **(विश्वा)** विश्वानि सर्वान् **(तम्)** **(अद्य)** इदानीम् **(होतः)** आदातः **(इषितः)** प्रेरितः **(यजीयान्)** अतिशयेन यष्टा सङ्गन्ता **(देवम्)** **(त्वष्टारम्)** वियोगसंयोगादिकर्त्तारम् **(इह)** अस्मिन् व्यवहारे **(यक्षि)** यङ्गच्छसे **(विद्वान्)** सर्वतो विद्याप्तः॥३४॥

अन्वयः-हे होतर्यो यज्ञीयानिषितो विद्वान् यथेश्वर इह रूपैरिमे जनित्री द्यावापृथिवी विश्वा भुवनान्यपिंशत् तथा तं त्वष्टारं देवमद्य त्वं यक्षि, तस्मात् सत्कर्त्तव्योऽसि॥३४॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैरस्यां सृष्टौ परमात्मनो रचनाविशेषान् विज्ञाय तथैव शिल्पविद्या संप्रयोज्या॥३४॥

पदार्थः-हे **(होतः)** ग्रहण करनेवाले जन! **(यः)** जो **(यजीयान्)** अतिसमागम करने वाला **(इषितः)** प्रेरणा किया हुआ **(विद्वान्)** सब ओर से विद्या को प्राप्त विद्वान् जैसे ईश्वर **(इह)** इस व्यवहार में **(रूपैः)** चित्र-विचित्र आकारों से **(इमे)** इन **(जनित्री)** अनेक कार्यों को उत्पन्न करने वाली **(द्यावापृथिवी)** बिजुली और पृथिवी आदि **(विश्वा)** सब **(भुवनानि)** लोकों को **(अपिंशत्)** अवयवरूप करता है, वैसे **(तम्)** उस **(त्वष्टारम्)** वियोग-संयोग अर्थात् प्रलय उत्पत्ति करनेहारे **(देवम्)** ईश्वर का **(अद्य)** आज तू **(यक्षि)** संग करता है, इससे सत्कार करने योग्य है॥३४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को इस सृष्टि में परमात्मा की रचनाओं की विशेषताओं को जान के वैसे ही शिल्पविद्या का प्रयोग करना चाहिए॥३४॥

उपावसृजेत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः।

प्रत्यृतुर्होतव्यमित्याह॥

ऋतु-ऋतु में होम करना चाहिए, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उपावसृज त्मन्या समञ्जन् देवानां पाथऽऋतुथा हवीꣳषि।

वनस्पतिः शमिता देवोऽअग्निः स्वदन्तु हव्यं मधुना घृतेन॥ ३५॥

उपावसृजेत्युपऽअवसृज। त्मन्या। समञ्जन्निति सम्ऽअञ्जन्। देवानाम्। पाथः। ऋतुथेत्यृतुऽथा। हवींषि। वनस्पतिः। शमिता। देवः। अग्निः। स्वदन्तु। हव्यम्। मधुना। घृतेन॥ ३५॥

पदार्थः-(उपावसृज) यथावद्देहि **(त्मन्या)** आत्मना **(समञ्जन्)** सम्यक् मिश्रीकुर्वन् **(देवानाम्)** विदुषाम् **(पाथः)** भोग्यमन्नादिकम् **(ऋतुथा)** ऋतौ **(हवींषि)** आदातव्यानि **(वनस्पतिः)** किरणानां स्वामी **(शमिता)** शान्तिकरः **(देवः)** दिव्यगुणो मेघः **(अग्निः)** पावकः **(स्वदन्तु)** प्राप्नुवन्तु **(हव्यम्)** अत्तव्यम् **(मधुना)** मधुरादिरसेन **(घृतेन)** घृतादिना॥ ३५॥

अन्वयः-हे विद्वंस्त्वं देवानां पाथो मधुना घृतेन समञ्जन् त्मन्या हवींषि ऋतुथोपावसृज तेन त्वया दत्तं हव्यं वनस्पतिः शमिता देवोऽग्निश्च स्वदन्तु॥ ३५॥

भावार्थः-मनुष्यैः शुद्धानां पदार्थनामृतावृतौ होमः कर्त्तव्यो येन तद्धुतं द्रव्यं सूक्ष्मं भूत्वा क्रमेणाग्निसूर्यमेघान् प्राप्य वृष्टिद्वारा सर्वोपकारि स्यात्॥ ३५॥

पदार्थः-हे विद्वन् पुरुष! तू **(देवानाम्)** विद्वानों के **(पाथः)** भोगने योग्य अन्न आदि को **(मधुना)** मीठे कोमल आदि रसयुक्त **(घृतेन)** घी आदि से **(समञ्जन्)** सम्यक् मिलाते हुए **(त्मन्या)** अपने आत्मा से **(हवींषि)** लेने भोजन करने योग्य पदार्थों को **(ऋतुथा)** ऋतु-ऋतु में **(उपावसृज)** यथावत् दिया कर अर्थात् होम किया कर। उस तैने दिये **(हव्यम्)** भोजन के योग्य पदार्थ को **(वनस्पतिः)** किरणों का स्वामी सूर्य्य **(शमिता)** शान्तिकर्त्ता **(देवः)** उत्तम गुणों वाला मेघ और **(अग्निः)** अग्नि **(स्वदन्तु)** प्राप्त होवें अर्थात् हवन किया पदार्थ उनको पहुंचे॥ ३५॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिए कि शुद्ध पदार्थों का ऋतु-ऋतु में होम किया करें, जिससे वह द्रव्य सूक्ष्म हो और क्रम से अग्नि, सूर्य तथा मेघ को प्राप्त होके वर्षा के द्वारा सब का उपकारी होवे॥ ३५॥

सद्य इत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

कीदृग्जनः सर्वानन्दयतीत्याह॥

कैसा मनुष्य सब को आनन्द कराता है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

सद्यो जातो व्यमिमीत यज्ञमग्निर्देवानामभवत् पुरोगाः।

अस्य होतुः प्रदिश्यृतस्य वाचि स्वाहाकृतꣳ हविरदन्तु देवाः॥३६॥

सद्यः। जातः। वि। अमिमीत। यज्ञम्। अग्निः। देवानाम्। अभवत्। पुरोगा इति पुरःऽगाः। अस्य। होतुः। प्रदिशीति प्रऽदिशि। ऋतस्य। वाचि। स्वाहाकृतमिति स्वाहाऽकृतम्। हविः। अदन्तु। देवाः॥३६॥

पदार्थः-(सद्यः) शीघ्रम् **(जातः)** प्रकटीभूतः सन् **(वि)** विशेषेण **(अमिमीत)** मिमीते **(यज्ञम्)** अनेकविधव्यवहारम् **(अग्निः)** विद्याप्रकाशितो विद्वान् **(देवानाम्)** विदुषाम् **(अभवत्)** भवति **(पुरोगाः)** अग्रगामी **(अस्य) (होतुः)** आदातुः **(प्रदिशि)** प्रदिशन्ति यया तस्याम् **(ऋतस्य)** सत्यस्य **(वाचि)** वाण्याम् **(स्वाहाकृतम्)** सत्येन निष्पादितं कृतहोमं वा **(हविः)** अत्तव्यमन्नादिकम् **(अदन्तु)** भुञ्जताम् **(देवाः)** विद्वांसः॥३६॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यस्सद्योजातोऽग्निर्होतुर्ऋतस्य प्रदिशि वाचि यज्ञं व्यमिमीत, देवानां पुरोगा अभवदस्य स्वाहाकृतं हविर्देवा अदन्तु, तं सर्वोपरि विराजमानं मन्यध्वम्॥३६॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा सूर्यः सर्वेषां प्रकाशकानां मध्ये प्रकाशकोऽस्ति, तथा यो विद्वत्सु विद्वान् सर्वोपकारी जनो भवति, स एव सर्वेषामानन्दस्य भोजयिता भवति॥३६॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो **(सद्यः)** शीघ्र **(जातः)** प्रसिद्ध हुआ **(अग्निः)** विद्या से प्रकाशित विद्वान् **(होतुः)** ग्रहण करनेहारे पुरुष के **(ऋतस्य)** सत्य का **(प्रदिशि)** जिससे निर्देश किया जाता है, उस **(वाचि)** वाणी में **(यज्ञम्)** अनेक प्रकार के व्यवहार को **(वि, अमिमीत)** विशेष कर निर्माण करता और **(देवानाम्)** विद्वानों में **(पुरोगाः)** अग्रगामी **(अभवत्)** होता है **(अस्य)** इसके **(स्वाहाकृतम्)** सत्य व्यवहार से सिद्ध किये वा होम किये से बचे **(हविः)** भोजन के योग्य अन्नादि को **(देवाः)** विद्वान् लोग **(अदन्तु)** खायें, उसको सर्वोपरि विराजमान मानो॥३६॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य्य सब प्रकाशक पदार्थों के बीच प्रकाशक है, वैसे जो विद्वानों में विद्वान् सब का उपकारी जन होता है, वही सब को आनन्द का भुगवाने वाला होता है॥३६॥

केतुमित्यस्य मधुच्छन्छा ऋषिः। विद्वांसो देवताः। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

आप्ताः कीदृशा इत्याह॥

आप्त लोग कैसे होते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्याऽअपेशसे। समुषद्भिरजायथाः॥३७॥

केतुम्। कृण्वन्। अकेतवे। पेशः। मर्याः। अपेशसे। सम्। उषद्भिरित्युषत्ऽभिः। अजायथाः॥३७॥

पदार्थः-(**केतुम्**) प्रज्ञाम्। **केतुरिति प्रज्ञानामसु पठितम्॥** (निघं०३।९) (**कृण्वन्**) कुर्वन् (**अकेतवे**) अविद्यमानप्रज्ञाय जनाय (**पेशः**) हिरण्यम्। पेश इति हिरण्यनामसु पठितम्॥ (निघं०१।२) (**मर्याः**) मनुष्याः (**अपेशसे**) अविद्यमानं पेशः सुवर्णं यस्य तस्मै नराय (**सम्**) सम्यक्। (**उषद्भिः**) य उषन्ति हविर्दहन्ति तैर्यजमानैः (**अजायथाः**)॥३७॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यथा मर्या अपेशसे पेशोऽकेतवे केतुं कुर्वन्ति, तैरुषद्भिः सह प्रज्ञां श्रियं च कृण्वन् सँस्त्वं समजायथाः॥३७॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। त एव आप्ता ये स्वात्मवदन्येषामपि सुखमिच्छन्ति, तेषामेव संगेन विद्याप्राप्तिरविद्याहानिः, श्रियो लाभो, दरिद्रताया विनाशश्च भवति॥३७॥

पदार्थः-हे विद्वान् पुरुष! जैसे (**मर्याः**) मनुष्य (**अपेशसे**) जिसके सुवर्ण नहीं है, उसके लिए (**पेशः**) सुवर्ण को और (**अकेतवे**) जिस को बुद्धि नहीं है, उसके लिए (**केतुम्**) बुद्धि को करते हैं, उन (**उषद्भिः**) होम करने वाले यजमान पुरुषों के साथ बुद्धि और धन को (**कृण्वन्**) करते हुए आप (**सम्, अजायथाः**) सम्यक् प्रसिद्ध हूजिये॥३७॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। वे ही आप्तजन हैं जो अपने आत्मा के तुल्य अन्यों का भी सुख चाहते हैं, उन्हीं के सङ्ग से विद्या की प्राप्ति अविद्या की हानि, धन का लाभ और दरिद्रता का विनाश होता है॥३७॥

जीमूतस्येवेत्यस्य भारद्वाज ऋषिः। विद्वान् देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

वीरा राजपुरुषा किं कुर्युरित्याह॥

वीर राजपुरुष क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

जी॒मूत॑स्येव भवति॒ प्रती॑कं॒ यद्व॒र्मी याति॑ स॒मदा॑मु॒पस्थे॑।

अना॑विद्धया त॒न्वा॒ जय॒ त्वꣳ स त्वा॒ वर्म॑णो महि॒मा पि॑पर्त्तु॥३८॥

जी॒मूत॑स्ये॒वेति॑ जी॒मूत॑स्यऽइव। भ॒व॒ति॒। प्रती॑कम्। यत्। व॒र्मी। याति॑। स॒मदा॒मिति॑ स॒ऽमदा॑म्। उ॒पस्थ॒ इत्यु॒पऽस्थे॑। अना॑विद्धया। त॒न्वा॒। ज॒य॒। त्वम्। सः। त्वा॒। वर्म॑णः। म॒हि॒मा। पि॒प॒र्त्तु॒॥३८॥

पदार्थः-(**जीमूतस्येव**) यथा मेघस्य (**भवति**) (**प्रतीकम्**) येन प्रत्येति तल्लिङ्गम् (**यत्**) (**वर्मी**) कवचवान् (**याति**) प्राप्नोति (**समदाम्**) सह मदेन हर्षेण वर्त्तन्ते यत्र युद्धेषु तेषाम् (**उपस्थे**) समीपे (**अनाविद्धया**) अप्राप्तक्षतया (**तन्वा**) शरीरेण (**जय**) (**त्वम्**) (**सः**) (**त्वा**) त्वाम् (**वर्मणः**) रक्षणस्य (**महिमा**) महत्त्वम् (**पिपर्त्तु**) पालयतु॥३८॥

अन्वयः-यद्यो वर्म्यनाविद्धया तन्वा समदामुपस्थे प्रतीकं याति स जीमूतस्येव विद्युद्भवति। हे विद्वन्! यत्त्वा वर्मणो महिमा पिपर्त्तु स त्वं शत्रून् जय॥३८॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। यथा मेघस्य सेना सूर्यप्रकाशमावृणोति, तथा कवचादिना शरीरमावृणुयात्। यथा समीपस्थयोः सूर्यमेघयोः संग्रामो भवति, तथैव वीरै राजपुरुषैर्योद्धव्यम्। सर्वतो रक्षापि विधेया॥३८॥

पदार्थः-**(यत्)** जो **(वर्मी)** कवच वाला योद्धा **(अनाविद्धया)** जिसमें कुछ भी घाव न लगा हो, उस **(तन्वा)** शरीर से **(समदाम्)** आनन्द के साथ जहां वर्त्ते, उन युद्धों के **(उपस्थे)** समीप में **(प्रतीकम्)** जिससे निश्चय करे, उस चिह्न को **(याति)** प्राप्त होता है, **(सः)** वह **(जीमूतस्येव)** मेघ के निकट जैसे बिजुली वैसे **(भवति)** होता है। हे विद्वन्! जिस **(त्वा)** आप को **(वर्मणः)** रक्षा का **(महिमा)** महत्त्व **(पिपर्त्तु)** पाले सो **(त्वम्)** आप शत्रुओं को **(जय)** जीतिए॥३८॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे मेघ की सेना सूर्य प्रकाश को रोकती है, वैसे कवच आदि से शरीर का आच्छादन करे, जैसे समीपस्थ सूर्य और मेघ का संग्राम होता है, वैसे ही वीर राजपुरुषों को युद्ध और रक्षा भी करनी चाहिए॥३८॥

धन्वनेत्यस्य भारद्वाज ऋषिः। वीरा देवताः। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

धन्व॑ना॒ गा धन्व॑ना॒जिं ज॑येम॒ धन्व॑ना ती॒व्राः स॒मदो॑ जयेम।

धनुः॑ शत्रो॑रपका॒मं कृ॑णोति॒ धन्व॑ना॒ सर्वाः॑ प्र॒दिशो॑ जयेम॥३९॥

धन्व॑ना। गाः। धन्व॑ना। आ॒जिम्। ज॒ये॒म॒। धन्व॑ना। ती॒व्राः। स॒मद॒ इति॑ स॒ऽमदः॑। ज॒ये॒म॒। धनुः॑। शत्रोः॑। अ॒प॒का॒ममित्य॑पऽका॒मम्। कृ॒णो॒ति॒। धन्व॑ना। सर्वाः॑। प्र॒दिश॒ इति॑ प्र॒ऽदिशः॑। ज॒ये॒म॒॥३९॥

पदार्थः-**(धन्वना)** धनुरादिशस्त्रास्त्रविशेषेण **(गाः)** पृथिवी **(धन्वना)** **(आजिम्)** सङ्ग्रामम्। **आजाविति सङ्ग्रामनामसु पठितम्॥** (निघ०२।१७) **(जयेम)** **(धन्वना)** शतघ्न्यादिभिः शस्त्रास्त्रैः **(तीव्राः)** तीव्रवेगवतीः शत्रूणां सेनाः **(समदः)** मदेन सह वर्त्तमानाः **(जयेम)** **(धनुः)** शस्त्रास्त्रम् **(शत्रोः)** अरेः **(अपकामम्)** अपगतश्चासौ कामश्च तम् **(कृणोति)** करोति **(धन्वना)** **(सर्वाः)** **(प्रदिशः)** दिशोपदिशः **(जयेम)**॥३९॥

अन्वयः-हे वीराः! यथा वयं यद्धनुः शत्रोरपकामं कृणोति, तेन धन्वना गा धन्वनाऽऽजिं च जयेम, धन्वना समदो जयेम, धन्वना तीव्राः समदो जयेम, धन्वना सर्वा प्रदिशो जयेम, तथा यूयमप्येतेन जयत॥३९॥

भावार्थः-यदि मनुष्या धनुर्वेदविज्ञानक्रियाकुशला भवेयुस्तर्हि सर्वत्रैव तेषां विजयः प्रकाशेत, यदि विद्याविनयशौर्यादिगुणैर्भूगोलैकराज्यमिच्छेयुस्तर्हि किमप्यशक्यं न स्यात्॥३९॥

पदार्थ:-हे वीर पुरुषो! जैसे हम लोग जो **(धनु:)** शस्त्र-अस्त्र **(शत्रो:)** वैरी की **(अपकामम्)** कामनाओं को नष्ट **(कृणोति)** करता है, उस **(धन्वना)** धनुष् आदि शस्त्र-अस्त्र विशेष से **(गा:)** पृथिवियों को और **(धन्वना)** उक्त शस्त्र विशेष से **(आजिम्)** संग्राम को **(जयेम)** जीते **(धन्वना)** तोप आदि शस्त्र-अस्त्रों से **(तीव्रा:)** तीव्र वेग वाली **(समद:)** आनन्द के साथ वर्त्तमान शत्रुओं की सेनाओं को **(जयेम)** जीतें **(धन्वना)** धनुष से **(सर्वा:)** सब **(प्रदिश:)** दिशा प्रदिशाओं को **(जयेम)** जीतें, वैसे तुम लोग भी इस धनुष् आदि से जीतो॥३९॥

भावार्थ:-जो मनुष्य धनुर्वेद के विज्ञान की क्रियाओं में कुशल हों तो सब जगह ही उन का विजय प्रकाशित होवे। जो विद्या विजय और शूरता आदि गुणों से भूगोल के एक राज्य को चाहें तो कुछ भी अशक्य न हो॥३९॥

वक्ष्यन्तीवेत्यस्य भारद्वाज ऋषि:। वीरा देवता:। निचृत् त्रिष्टुप् छन्द:। धैवत: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

वक्ष्यन्तीवेदा गनीगन्ति कर्णं प्रियꣳ सखायं परिषस्वजाना।

योषेव शिङ्क्ते वितताधि धन्वञ्ज्या इयꣳ समने पारयन्ती॥४०॥

वक्ष्यन्तीवेति वक्ष्यन्तीऽइव। इत्। आगनीगन्ति। कर्णम्। प्रियम्। सखायम्। परिषस्वजाना। परिषस्वजानेति परिऽसस्वजाना। योषेवेति योषाऽइव। शिङ्क्ते। वितताति विऽतता। अधि। धन्वन्। ज्या। इयम्। समने। पारयन्ती॥४०॥

पदार्थ:-**(वक्ष्यन्तीव)** यथा वदिष्यन्ती विदुषी स्त्री तथा **(इत्)** एव **(आगनीगन्ति)** भृशं बोधं प्रापयन्ति **(कर्णम्)** श्रुतस्तुतिम् **(प्रियम्)** कमनीयम् **(सखायम्)** सुहृद्वद्वर्त्तमानम् **(परिषस्वजाना)** परित: सर्वत: सङ्गं कुर्वाणा **(योषेव)** स्त्री **(शिङ्क्ते)** शब्दयति **(वितता)** विस्तृता **(अधि)** उपरि **(धन्वन्)** धन्वनि **(ज्या)** प्रत्यञ्चा **(इयम्)** **(समने)** समे **(पारयन्ती)** विजयं प्रापयन्ती॥४०॥

अन्वय:-हे वीरा:! येयं वितता धन्वन्नधि ज्या वक्ष्यन्तीवेदागनीगन्ति कर्णं प्रियं सखायं पतिं परिषस्वजाना योषेव शिङ्क्ते समने पारयन्ती वर्त्तते तान्निर्मातुं बद्धुं चालयितुं च विजानीत॥४०॥

भावार्थ:-अत्र द्व्युपमालङ्कारौ। यदि मनुष्या धनुर्ज्यादिशस्त्रास्त्ररचनसम्बन्धचालनक्रिया विज्ञायेरन्, तर्हीमामुपदेशिकां मातरमिव सुखप्रदां पत्नीं विजयसुखं च प्राप्नुयु:॥४०॥

पदार्थ:-हे वीर पुरुषो! जो **(इयम्)** यह **(वितता)** विस्तारयुक्त **(धन्वन्)** धनुष में **(अधि)** ऊपर लगी **(ज्या)** प्रत्यञ्चा तांत **(वक्ष्यन्तीव)** कहने को उद्यत हुई विदुषी स्त्री के तुल्य **(इत्)** ही **(आगनीगन्ति)** शीघ्र बोध को प्राप्त कराती हुई जैसे **(कर्णम्)** जिस की स्तुति सुनी जाती **(प्रियम्)**

प्यारे **(सखायम्)** मित्र के तुल्य वर्त्तमान पति को **(परिषस्वजाना)** सब ओर से सङ्ग करती हुई **(योषेव)** स्त्री बोलती वैसे **(शिङ्क्ते)** शब्द करती है, **(समने)** संग्राम में **(पारयन्ती)** विजय को प्राप्त कराती हुई वर्त्तमान है, उसके बनाने बांधने और चलाने को जानो॥४०॥

भावार्थः-इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं। जो मनुष्य धनुष् की प्रत्यञ्चा आदि शस्त्र-अस्त्रों की रचना, सम्बन्ध और चलाना आदि क्रियाओं को जाने तो उपदेश करने और माता के तुल्य सुख देने वाली पत्नी और विजय सुख को प्राप्त हों॥४०॥

त आचरन्ती इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः। वीरा देवताः। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

तेऽआचरन्ती समनेव योषा मातेव पुत्रं बिभृतामुपस्थे।

अप शत्रून् विध्यताᳬं संविदानेऽआर्त्नीऽइमे विष्फुरन्तीऽअमित्रान्॥४१॥

तेऽइति ते। आचरन्ती इत्याऽचरन्ती। समनेवेति समनाऽइव। योषा। मातेवेति माताऽइव। पुत्रम्। बिभृताम्। उपस्थ इत्युपऽस्थे। अप। शत्रून्। विध्यताम्। संविदाने इति सम्ऽविदाने। आर्त्नीऽइत्यार्त्नी। इमेऽइतीमे। विष्फुरन्ती। विस्फुरन्ती इति विऽस्फुरन्ती। अमित्रान्॥४१॥

पदार्थः-**(ते)** धनुर्ज्ये **(आचरन्ती)** समन्तात् प्राप्नुवत्यौ **(समनेव)** सम्यक् प्राण इव प्रिया **(योषा)** विदुषी स्त्री **(मातेव)** जननीव **(पुत्रम्)** सन्तानम् **(बिभृताम्)** धरेताम् **(उपस्थे)** समीपे **(अप)** दूरीकरणे **(शत्रून्)** अरीन् **(विध्यताम्)** ताडयेताम् **(संविदाने)** सम्यग्विज्ञाननिमित्ते **(आर्त्नी)** प्राप्यमाणे **(इमे)** **(विष्फुरन्ती)** विशेषेण चालयन्त्यौ **(अमित्रान्)** मित्रभावरहितान्॥४१॥

अन्वयः-हे वीराः! ये योषा समनेव पतिं मातेव पुत्रं बिभृतामुपस्थे आचरन्ती शत्रूनप विध्यतामिमे संविदाने आर्त्नी अमित्रान् विष्फुरन्ती वर्त्तेते, ते यथावत् संप्रयुङ्ग्ध्वम्॥४१॥

भावार्थः-अत्र द्वावुपमालङ्कारौ। यथा हृद्या स्त्री पतिं विदुषी च माता पुत्रं सम्पोषयतस्तथा धनुर्ज्ये संविदितक्रिये शत्रून् पराजित्य वीरान् प्रसादयतः॥४१॥

पदार्थः-हे वीर पुरुषो! दो धनुष् की प्रत्यञ्चा **(योषा)** विदुषी **(समनेव)** प्राण के समान सम्यक् पति को प्यारी स्त्री स्वपति को और **(मातेव)** जैसे माता **(पुत्रम्)** अपने सन्तान को **(बिभृताम्)** धारण करें, वैसे **(उपस्थे)** समीप में **(आचरन्ती)** अच्छे प्रकार प्राप्त हुई **(शत्रून्)** शत्रुओं को **(अप)** **(विध्यताम्)** दूर तक ताड़ना करें **(इमे)** ये **(संविदाने)** अच्छे प्रकार विज्ञान की निमित्त **(आर्त्नी)** प्राप्त हुईं **(अमित्रान्)** शत्रुओं को **(विष्फुरन्ती)** विशेष कर चलायमान करती वर्त्तमान हैं, **(ते)** उन दोनों का यथावत् सम्यक् प्रयोग करो अर्थात् उन को काम में लाओ॥४१॥

भावार्थः-इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं। जैसे हृदय को प्यारी स्त्री पति को और विदुषी माता अपने पुत्र को अच्छे प्रकार पुष्ट करती है, वैसे सम्यक् प्रसिद्ध काम देने वाली धनुष् की दो प्रत्यञ्चा शत्रुओं को पराजित कर वीरों को प्रसन्न करती हैं॥४१॥

बह्वीनामित्यस्य भारद्वाज ऋषिः। वीरा देवताः। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

बह्वीनां पिता बहुरस्य पुत्रश्चिश्चा कृणोति समनावगत्य।

इषुधिः सङ्काः पृतनाश्च सर्वाः पृष्ठे निनद्धो जयति प्रसूतः॥४२॥

बह्वीनाम्। पिता। बहुः। अस्य। पुत्रः। चिश्चा। कृणोति। समना। अवगत्येत्यवऽगत्य। इषुधिरितीषुऽधिः। सङ्काः। पृतनाः। च। सर्वाः। पृष्ठे। निनद्ध इति निऽनद्धः। जयति। प्रसूत इति प्रऽसूतः॥४२॥

पदार्थः-(**बह्वीनाम्**) ज्यानाम् (**पिता**) पितृवद्रक्षकः (**बहुः**) बहुगुणः (**अस्य**) (**पुत्रः**) सन्तान इव सम्बन्धी (**चिश्चा**) चिश्चेश्चेति शब्दं (**कृणोति**) करोति (**समना**) संग्रामान्। अत्राकारादेशः (**अवगत्य**) (**इषुधिः**) इषवो धीयन्ते यस्मिन् सः (**सङ्काः**) समवेता विकीर्णा वा (**पृतनाः**) सेनाः (**च**) (**सर्वाः**) (**पृष्ठे**) पश्चाद्भागे (**निनद्धः**) निश्चयेन नद्धो बद्धः (**जयति**) (**प्रसूतः**) उत्पन्नः॥४२॥

अन्वयः-हे वीराः! यो बह्वीनां पितेवास्य बहुः पुत्र इव पृष्ठे निनद्ध इषुधिः प्रसूतः सन् समनावगत्य चिश्चा कृणोति, येन वीरः सर्वा सङ्काः पृतानश्च जयति, तं यथावद् रक्षत॥४२॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथाऽनेकासां कन्यानां बहूनां पुत्राणां च पिताऽपत्यशब्दैः संकीर्णो भवति, तथैव धनुर्ज्येषुधयः संमिलिता अनेकविधशब्दान् जनयन्ति, यस्य वामहस्ते धनुः पृष्ठे इषुधिर्यो दक्षिणेन हस्तेनेषुं निःसार्य्य धनुर्ज्यया संयोज्य विमुच्याऽभ्यासेन शीघ्रकारित्वं करोति, स एव विजयी भवति॥४२॥

पदार्थः-हे वीर पुरुषो! जो (**बह्वीनाम्**) बहुत प्रत्यञ्चाओं का (**पिता**) पिता के तुल्य रखने वाला (**अस्य**) इस पिता का (**बहुः**) बहुत गुण वाले (**पुत्रः**) पुत्र के समान सम्बन्धी (**पृष्ठे**) पिछले भाग में (**निनद्धः**) निश्चित बंधा हुआ (**इषुधिः**) बाण जिस में धारण किये जाते वह धनुष् (**प्रसूतः**) उत्पन्न हुआ (**समना**) संग्रामों को (**अवगत्य**) प्राप्त होके (**चिश्चा**) चिं चिं, चिं ऐसा शब्द (**कृणोति**) करता है (**च**) और जिससे वीर पुरुष (**सर्वाः**) सब (**सङ्काः**) इकट्ठी वा फैली हुई (**पृतनाः**) सेनाओं को (**जयति**) जीतता है, उसकी यथावत् रक्षा करो॥४२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे अनेक कन्याओं और बहुत पुत्रों का पिता अपत्य शब्द से संयुक्त होता है, वैसे ही धनुष्, प्रत्यंचा और बाण मिलकर अनेक प्रकार के शब्दों को उत्पन्न करते हैं। जिसके वाम हाथ में धनुष्, पीठ पर बाण, दाहिने हाथ से बाण को निकाल के धनुष् की प्रत्यञ्चा से संयुक्त कर छोड़ के अभ्यास से शीघ्रता करने की शक्ति को करता है, वही विजयी होता है॥४२॥

रथ इत्यस्य भारद्वाज ऋषि:। वीरा देवता:। जगती छन्द:। निषाद: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

रथे तिष्ठन्नयति वाजिन: पुरो यत्रयत्र कामयते सुषारथि:।

अभीशूनां महिमानं पनायत मन: पश्चादनु यच्छन्ति रश्मय:॥४३॥

रथे। तिष्ठन्। नयति। वाजिन:। पुर:। यत्रयत्रेति यत्रऽयत्र। कामयते। सुषारथि:। सुसारथिरिति सुऽसारथि:। अभीशूनाम्। महिमानम्। पनायत। मन:। पश्चात्। अनु। यच्छन्ति। रश्मय:॥४३॥

पदार्थ:-(**रथे**) रमणीये भूजलान्तरिक्षगमके याने (**तिष्ठन्**) (**नयति**) गमयति (**वाजिन:**) अश्वानग्न्यादीन् वा (**पुर:**) अग्रे (**यत्रयत्र**) यस्मिन् यस्मिन् सङ्ग्रामे देशे वा (**कामयते**) (**सुषारथि:**) शोभनश्चासौ सारथिश्चाऽश्वानामग्न्यादीनां वा नियन्ता (**अभीशूनाम्**) अभित: सद्यो गन्तृणाम् (**महिमानम्**) महत्त्वम् (**पनायत**) प्रशंसत (**मन:**) (**पश्चात्**) (**अनु**) (**यच्छन्ति**) निगृह्णन्ति (**रश्मय:**) रज्जव: किरणा वा॥४३॥

अन्वय:-हे विद्वांस:! सुषारथी रथे तिष्ठन् यत्रयत्र कामयते, तत्र तत्र वाजिन: पुरो नयति। येषां मन: सुशिक्षितं हस्तगता रश्मय: पश्चादश्वाननुयच्छन्ति तेषामभीशूनां महिमानं यूयं पनायत॥४३॥

भावार्थ:-यदि राजराजपुरुषा: साम्राज्यं ध्रुवं विजयं चेच्छेयुस्तर्हि सुशिक्षितानमात्यानश्वाद्यन्या चालयित्री अलंसामग्र्यध्यक्षाञ्छस्त्राऽस्त्राणि शरीरात्मबलं चावश्यं सम्पादयेयु:॥४३॥

पदार्थ:-हे विद्वानो! (**सुषारथि:**) सुन्दर सारथि घोड़ों वा अग्न्यादि को नियम में रखनेवाला (**रथे**) रमण करने योग्य पृथिवी जल वा आकाश में चलाने वाले यान में (**तिष्ठन्**) बैठा हुआ (**यत्रयत्र**) जिस-जिस संग्राम वा देश में (**कामयते**) चाहता है, वहां-वहां (**वाजिन:**) घोड़ों वा वेग वाले अग्न्यादि पदार्थों को (**पुर:**) आगे (**नयति**) चलाता है, जिन का (**मन:**) मन अच्छा शिक्षित (**रश्मय:**) लगाम की रस्सी वा किरण हस्तगत हैं (**पश्चात्**) पीछे से घोड़ों वा अग्न्यादि का (**अनु**,

यच्छन्ति) अनुकूल निग्रह करते हैं, उन **(अभीशूनाम्)** सब ओर से शीघ्र चलनेहारों के **(महिमानम्)** महत्त्व की तुम लोग **(पनायत)** प्रशंसा करो॥४३।

भावार्थः-जो राजा और राजपुरुष चक्रवर्ती राज्य और निश्चल विजय चाहें तो अच्छे शिक्षित मन्त्री, अश्व आदि तथा अन्य चलाने वाली सामग्री अध्यक्षों शस्त्र-अस्त्रों और शरीर आत्मा के बल को अवश्य सिद्ध करें॥४३॥

तीव्रानित्यस्य भारद्वाज ऋषिः। वीरा देवताः। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवत स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

तीव्रान् घोषान् कृण्वते वृषपाणयोऽश्वा रथेभिः सह वाजयन्तः।
अवक्रामन्तः प्रपदैरमित्रान् क्षिणन्ति शत्रूँ१॥ऽरनपव्ययन्तः॥४४॥

तीव्रान्। घोषान्। कृण्वते। वृषपाणय इति वृषऽपाणयः। अश्वाः। रथेभिः। सह। वाजयन्तः। अवक्रामन्त इत्यवऽक्रामन्तः। प्रपदैरिति प्रऽपदैः। अमित्रान्। क्षिणन्ति। शत्रून्। अनपव्ययन्त इत्यनपऽव्ययन्तः॥४४॥

पदार्थः-(तीव्रान्) तीक्ष्णान् **(घोषान्)** शब्दान् **(कृण्वते)** कुर्वन्ति **(वृषपाणयः)** रक्षका वृषा बलिष्ठा वृषभादय उत्तमाः प्राणिनः पाणिवद् येषां ते **(अश्वाः)** आशुगमयितारः **(रथेभिः)** रमणीयैर्यानैः **(सह)** **(वाजयन्तः)** वीरादीन् सद्यो गमयन्तः **(अवक्रामन्तः)** धर्षयन्तः **(प्रपदैः)** प्रकृष्टैः पारगमनैः **(अमित्रान्)** मित्रभावरहितान् **(क्षिणन्ति)** क्षयं प्रापयन्ति **(शत्रून्)** अरीन् **(अनपव्ययन्तः)** अपव्ययमप्रापयन्तः॥४४॥

अन्वयः-हे वीराः! ये वृषपाणयो रथेभिः सह वाजयन्तः प्रपदैरमित्रानवक्रामन्तोऽश्वास्तीव्रान् घोषान् कृण्वतेऽनपव्ययन्तः सन्तः शत्रून् क्षिणन्ति, तान् यूयं प्राणवत् पालयत॥४४॥

भावार्थः-यदि राजपुरुषा हस्त्यश्ववृषभादीन् भृत्यानध्यक्षांश्च सुशिक्ष्यानेकविधानि यानानि निर्माय शत्रून् विजेतुमभिलषन्ति, तर्हि तेषां ध्रुवो विजयो भवति॥४४॥

पदार्थः-हे वीर पुरुष! जो **(वृषपाणयः)** जिनके बलवान् बैल आदि उत्तम प्राणी हाथों के समान रक्षा करने वाले हैं **(रथेभिः)** रमण के योग्य यानों के **(सह)** साथ **(वाजयन्तः)** वीर आदि को शीघ्र चलाने हारे **(प्रपदैः)** उत्तम पगों की चालों से **(अमित्रान्)** मित्रता रहित दुष्टों को **(अवक्रामन्तः)** धमकाते हुए **(अश्वाः)** शीघ्र चलाने हारे घोड़े **(तीव्रान्)** तीखे **(घोषान्)** शब्दों को **(कृण्वते)** करते हैं और जो **(अनपव्ययन्तः)** व्यर्थ खर्च न कराते हुए योद्धा **(शत्रून्)** वैरियों को **(क्षिणन्ति)** क्षीण करते हैं, उन को तुम लोग प्राण के तुल्य पालो॥४४॥

भावार्थः-जो राजपुरुष हाथी, घोड़ा, बैल आदि भृत्यों और अध्यक्षों को अच्छी शिक्षा दे तथा अनेक प्रकार के यानों को बना के शत्रुओं के जीतने की अभिलाषा करते हैं तो उनका निश्चल दृढ़ विजय होता है॥४४॥

रथवाहनमित्यस्य भारद्वाज ऋषिः। वीरा देवताः। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

रथवाहनꣳ हविरस्य नाम यत्रायुधं निहितमस्य वर्म।

तत्रा रथमुप शग्मꣳ सदेम विश्वाहा वयꣳ सुमनस्यमानाः॥४५॥

रथवाहनम्। रथवाहनमिति रथऽवाहनम्। हविः। अस्य। नाम। यत्र। आयुधम्। निहितमिति निऽहितम्। अस्य। वर्म। तत्र। रथम्। उप। शग्मम्। सदेम। विश्वाहा। वयम्। सुमनस्यमाना इति सुऽमनस्यमानाः॥४५॥

पदार्थः-**(रथवाहनम्)** रथान् वहन्ति गमयन्ति येन तत् **(हविः)** आदातव्याग्नीन्धनजलकाष्ठधात्वादि **(अस्य)** योद्धुः **(नाम)** **(यत्र)** याने **(आयुधम्)** भुशुण्डिशतघ्न्यसिधनुर्बाणशक्तिपद्मपाशादि **(निहितम्)** धृतम् **(अस्य)** योद्धुः **(वर्म)** कवचम् **(तत्र)** तस्मिन्। अत्र **ऋचि तुनुघ०** [अ०६.३.१३३] इति दीर्घः। **(रथम्)** रमणसाधनं यानम् **(उप)** **(शग्मम्)** सुखम्। **शग्ममिति सुखनामसु पठितम्॥** (निघ०३।६) **(सदेम)** प्राप्नुयाम **(विश्वाहा)** सर्वेष्वहस्सु **(वयम्)** **(सुमनस्यमानाः)** सुष्ठु विचारयन्तः॥४५॥

अन्वयः-हे वीराः! अस्य यत्र रथवाहनं हविरायुधमस्य वर्म च नाम च निहितं तत्र सुमनस्यमाना वयं शग्मं रथं विश्वाहोप सदेम॥४५॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यस्मिन् यानेऽग्न्यादिरश्वादिश्च युज्यते, तत्र युद्धसामग्री संस्थाप्य नित्यमन्वीक्ष्य स्थित्वा सुविचारेण शत्रुभिः सह संयुद्ध्य नित्यं सुखं प्राप्नुत॥४५॥

पदार्थः-हे वीर पुरुषो! **(अस्य)** इस योद्धा जन के **(यत्र)** जिस यान में **(रथवाहनम्)** जिस से विमानादि यान चलते वह **(हविः)** ग्रहण करने योग्य अग्नि, इन्धन, जल, काठ और धातु आदि सामग्री तथा **(आयुधम्)** बन्दूक, तोप, खड्ग, धनुष्, बाण, शक्ति और पद्म फांसी आदि शस्त्र और **(अस्य)** इस योद्धा के **(वर्म)** कवच और **(नाम)** नाम **(निहितम्)** स्थित हैं **(तत्र)** उस यान में **(सुमनस्यमानाः)** सुन्दर विचार करते हुए **(वयम्)** हम लोग **(शग्मम्)** सुख तथा उस **(रथम्)** रमण योग्य यान को **(विश्वाहा)** सब दिन **(उप, सदेम)** निकट प्राप्त होवें॥४५॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जिस यान में अग्नि आदि तथा घोड़े आदि संयुक्त किये जाते, उसमें युद्ध की सामग्री धर नित्य उस की देखभाल कर उस में बैठ और सुन्दर विचार से शत्रुओं के साथ सम्यक् युद्ध करके नित्य सुख को प्राप्त होओ॥४५॥

स्वादुषःसद इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः। वीरा देवताः। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

स्वादुषꣳ सदः पितरो वयोधाः कृच्छ्रेश्रितः शक्तीवन्तो गभीराः।
चित्रसेनाऽइषुबलाऽअमृध्राः सतोवीराऽउरवो व्रातसाहाः॥४६॥

स्वादुषꣳसदः। स्वादुसꣳसद इति स्वादुऽसꣳसदः। पितरः। वयोधा इति वयःऽधाः। कृच्छ्रेश्रित इति कृच्छ्रेऽश्रितः। शक्तीवन्तः। शक्तिवन्त इति शक्तिऽवन्तः। गभीराः। चित्रसेना इति चित्रऽसेनाः। इषुबला इतीषुऽबलाः। अमृध्राः। सतोवीरा इति सतःऽवीराः। उरवः। व्रातसाहाः। व्रातसहा इति व्रातऽसहाः॥४६॥

पदार्थः-(**स्वादुषꣳसदः**) ये स्वादुषु भोज्याद्यन्नेषु सम्यक् सीदन्ति ते (**पितरः**) पालनक्षमाः (**वयोधाः**) ये दीर्घं वयो जीवनं दधति ते (**कृच्छ्रेश्रितः**) ये कृच्छ्रे कष्टे श्रितः कष्टं सेवमानाः (**शक्तीवन्तः**) सामर्थ्ययुक्ताः। अत्र **छन्दसीरः** [अ०८.२.१५] इति वत्वम्। (**गभीराः**) अगाधाशयाः (**चित्रसेनाः**) अद्भुतसैन्याः (**इषुबलाः**) इषुभिः शस्त्रास्त्रैस्सह बलं सैन्यं येषान्ते (**अमृध्राः**) अकोमलाङ्गा दृढाङ्गाः (**सतोवीराः**) सतो विद्यमानस्य सैन्यस्य मध्ये वीराः प्राप्तयुद्धविद्याशिक्षाः (**उरवः**) विशालजघनोरस्काः (**व्रातसाहाः**) ये व्रातान् वीराणां समूहान् सहन्ते ते॥४६॥

अन्वयः-हे योद्धारो वीरा! यूयं ये स्वादुषंसदो वयोधाः कृच्छ्रेश्रितः शक्तीवन्तो गभीराश्चित्रसेना इषुबला अमृध्रा उरवो व्रातसाहाः सतोवीराः पितरः स्युस्तानाश्रित्य युद्धं कुरुत॥४६॥

भावार्थः-तेषामेव सदा विजयो राज्यश्रीः प्रतिष्ठा दीर्घमायुर्बलं विद्याश्च भवन्ति, ये स्वाधिष्ठातॄणामाप्तानां शासने तिष्ठन्ति॥४६॥

पदार्थः-हे युद्ध करने हारे वीर पुरुषो! तुम लोग जो (**स्वादुषंसदः**) भोजन के योग्य अन्नादि पदार्थों को सम्यक् सेवने वाले (**वयोधाः**) अधिक अवस्था युक्त (**कृच्छ्रेश्रितः**) उत्तम कार्यों की सिद्धि के लिए कष्ट सेवते हुए (**शक्तीवन्तः**) सामर्थ्य वाले (**गभीराः**) महाशय (**चित्रसेनाः**) आश्चर्य गुण युक्त सेना वाले (**इषुबलाः**) शस्त्र-अस्त्रों के सहित जिनकी सेना (**अमृध्राः**) दृढ़ शरीर वाले (**उरवः**) बड़े-बड़े जिन के जंघा और छाती (**व्रातसाहाः**) वीरों के समूहों को सहने वाले

(सतोवीराः) विद्यमान सेना के बीच युद्धविद्या की शिक्षा को प्राप्त और **(पितरः)** पालन करनेहारे राजपुरुष हों, उन का आश्रय ले युद्ध करो॥४६॥

भावार्थः-उन्हीं का सदा विजय, राज्य, श्री, प्रतिष्ठा, बड़ी अवस्था, बल और विद्या होती है, जो अपने अधिष्ठाता, आप्त, सत्यवादी सज्जनों की शिक्षा में स्थित होते हैं॥४६॥

ब्राह्मणास इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः। धनुर्वेदाऽध्यापका देवताः। विराट् जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

के सत्कर्त्तव्या इत्याह॥

किनका सत्कार करना चाहिए, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ब्राह्मणासः पितरः। सोम्यासः शिवे नो द्यावापृथिवीऽअनेहसा।
पूषा नः पातु दुरितादृतावृधो रक्षा माकिर्नोऽअघशꣳसऽईशत॥४७॥

ब्राह्मणासः। पितरः। सोम्यासः। शिवेऽइति शिवे। नः। द्यावापृथिवीऽइति द्यावापृथिवी। अनेहसा। पूषा। नः। पातु। दुरितादिति दुःऽइतात्। ऋतावृधः। ऋतवृध इत्यृतऽवृधः। रक्ष। माकिः। नः। अघशꣳस इत्यघऽशꣳसः। ईशत॥४७॥

पदार्थः-**(ब्राह्मणासः)** वेदेश्वरविदः **(पितरः)** पालकाः **(सोम्यासः)** ये सोमगुणानर्हन्ति ते **(शिवे)** कल्याणकरे **(नः)** अस्मभ्यम् **(द्यावापृथिवी)** प्रकाशभूमी **(अनेहसा)** अविनाशिनौ **(पूषा)** पुष्टिकरः **(नः)** अस्मान् **(पातु)** **(दुरितात्)** दुष्टान्यायाचरणात् **(ऋतावृधः)** य ऋतं सत्यं वर्द्धयन्ति ते **(रक्ष)**। अत्र **द्व्यचोऽतस्तिङः** [अ०६.३.१३५] इति दीर्घः। **(माकिः)** निषेधे **(नः)** अस्मान् **(अघशंसः)** पापप्रशंसी स्तेनः **(ईशत)** समर्थो भवेत्॥४७॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! ये सोम्यास ऋतावृधः पितरो ब्राह्मणासो विद्वांसो नः कल्याणकरा अनेहसा द्यावापृथिवी च शिवे भवतः। पूषा परमात्मा नो दुरितात् पातु यतो नो हिंसितुमघशंसो माकिरीशत तान् रक्ष स्तेनाञ्जहि॥४७॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! ये विद्वांसो युष्मान् धर्म्ये कृत्ये प्रवर्त्य दुष्टाचारात् पृथक् रक्षन्ति, दुष्टाचारिणां बलं निरुन्धन्त्यस्माकं पुष्टिञ्च जनयन्ति, ते सदा सत्कर्त्तव्याः॥४७॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो **(सोम्यासः)** उत्तम आनन्दकारक गुणों के योग्य **(ऋतावृधः)** सत्य को बढ़ाने वाले **(पितरः)** रक्षक **(ब्राह्मणासः)** वेद और ईश्वर के जानने हारे विद्वान् जन **(नः)** हमारे लिए कल्याण करने हारे और **(अनेहसा)** कारणरूप से अविनाशी **(द्यावापृथिवी)** प्रकाश-पृथिवी **(शिवे)** कल्याणकारी हों, **(पूषा)** पुष्टि करने हारा परमात्मा **(नः)** हम को **(दुरितात्)** दुष्ट अन्याय के

आचरण से **(पातु)** बचावे, जिससे **(नः)** हम को मारने को **(अघशंस)** पाप की प्रशंसा करने हारा चोर **(माकिः)** न **(ईशत)** समर्थ हो, उन विद्वानों की तू **(रक्ष)** रक्षा कर और चोरों को मार॥४७॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जो विद्वान् जन तुम को धर्मयुक्त कर्त्तव्य में प्रवृत्त कर, दुष्ट आचरण से पृथक् रखते, दुष्टाचारियों के बल को नष्ट और हमारी पुष्टि करते, वे सदैव सत्कार करने योग्य हैं॥४७॥

सुपर्णमित्यस्य भारद्वाज ऋषिः। वीरा देवताः। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुना राजधर्ममाह॥

फिर राजधर्म अगले मन्त्र में कहते हैं।

सुपर्णं वस्ते मृगोऽअस्या दन्तो गोभिः सन्नद्धा पतति प्रसूता।
यत्रा नरः सं च वि च द्रवन्ति तत्रास्माभ्यमिषवः शर्म यꣳसन्॥४८॥

सुपर्णमिति सुऽपर्णम्। वस्ते। मृगः। अस्याः। दन्तः। गोभिः। सन्नद्धेति सम्ऽनद्धा। पतति। प्रसूतेति प्रऽसूता। यत्र। नरः। सम्। च। वि। च। द्रवन्ति। तत्र। अस्मभ्यम्। इषवः। शर्म। यꣳसन्॥४८॥

पदार्थः-**(सुपर्णम्)** शोभनानि पर्णानि पालनानि पूरणानि यस्य तं रथादिकम् **(वस्ते)** धरति **(मृगः)** यो मार्ष्टि कस्तूर्या सः **(अस्याः)** **(दन्तः)** दाम्यते जनै सः **(गोभिः)** धेनुभिस्सह **(सन्नद्धा)** सम्यग्बद्धा **(पतति)** **(प्रसूता)** प्रेरिता सती **(यत्र)** यस्याम्। अत्र **ऋचि तुनु०** [अ०६.३.१३३] इति दीर्घः। **(नरः)** नायकाः **(सम्)** सम्यक् **(च)** **(वि)** विशेषेण **(च)** **(द्रवन्ति)** गच्छन्ति **(तत्र)** **(अस्मभ्यम्)** **(इषवः)** बाणाद्याः शस्त्रविशेषाः **(शर्म)** सुखम् **(यंसन्)** यच्छन्तु ददतु॥४८॥

अन्वयः-हे वीरा! यत्र सेनायां नरो नायकाः स्युर्या सुपर्णं वस्ते यत्र गोभिस्सह दन्तो मृग इव इषवो धावन्ति, या सन्नद्धा प्रसूता पतति इतस्ततश्चास्य वीराः संद्रवन्ति वि द्रवन्ति च तत्रास्मभ्यं भवन्तः शर्म यंसन्॥४८॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे राजपुरुषाः! युष्माभिः शत्रुभिरप्रधर्षिणी हृष्टा पुष्टा सेना संपादनीया तस्यां सुपरीक्षिता योद्धारोऽध्यक्षाश्च रक्षणीयास्तैः शस्त्रास्त्रप्रक्षेपणेषु कुशलैर्जनैर्विजयः प्राप्तव्यः॥४८॥

पदार्थः-हे वीर पुरुषो! **(यत्र)** जिस सेना में **(नरः)** नायक लोग हों जो **(सुपर्णम्)** सुन्दर पूर्ण रक्षा के साधन उस रथादि को **(वस्ते)** धारण करती और जहां **(गोभिः)** गौओं के सहित **(दन्तः)** जिस का दमन किया जाता, उस **(मृगः)** कस्तूरी से शुद्ध करने वाले मृग के तुल्य **(इषवः)** बाण आदि शस्त्र विशेष चलते हैं, जो **(सन्नद्धा)** सम्यक् गोष्ठी बंधी **(प्रसूता)** प्रेरणा की हुई शत्रुओं में **(पतति)** गिरती **(च)** और इधर-उधर **(अस्याः)** इस सेना के वीर पुरुष **(सम्, द्रवन्ति)** सम्यक्

चलते **(च)** और **(वि)** विशेषकर दौड़ते हैं **(तत्र)** उस सेवा में **(अस्मभ्यम्)** हमारे लिए आप लोग **(शर्म)** सुख **(यंसन्)** देओ॥४८॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे राजपुरुषो! तुम लोगों को चाहिए कि शत्रुओं से न धमकने वाली हृष्ट-पुष्ट सेना सिद्ध करो, उसमें सुन्दर परीक्षित योद्धा और अध्यक्ष रक्खो, उन शस्त्र-अस्त्रों के चलाने में कुशल जनों से विजय को प्राप्त होओ॥४८॥

ऋजीत इत्यस्य भारद्वाज ऋषि:। वीरा देवता:। विराडनुष्टुप् छन्द:। गान्धार: स्वर:॥

पुनर्मनुष्यै: किं कर्त्तव्यमित्याह॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ऋजीते परि वृङ्धि नोऽश्मा भवतु नस्तनू:।

सोमोऽअधि ब्रवीतु नोऽदिति: शर्म यच्छतु॥४९॥

ऋजीते। परि। वृङ्धि। न:। अश्मा। भवतु। न:। तनू। सोम:। अधि। ब्रवीतु। न:। अदिति:। शर्म। यच्छतु॥४९॥

पदार्थ:-**(ऋजीते)** सरले व्यवहारे **(परि)** सर्वत: **(वृङ्धि)** वर्त्तय **(न:)** अस्माकम् **(अश्मा)** यथा पाषाण: **(भवतु)** **(न:)** अस्माकम् **(तनू:)** शरीरम् **(सोम:)** ओषधिराज: **(अधि)** **(ब्रवीतु)** **(न:)** अस्मभ्यम् **(अदिति:)** पृथिवी **(शर्म)** गृहं सुखं वा **(यच्छतु)** ददातु॥४९॥

अन्वय:-हे विद्वंस्त्वमृजीते नोऽस्माकं शरीराद् रोगान् परिवृङ्ग्धि यतो नस्तनूरश्मा भवतु, य: सोमोऽस्ति तं या चादितिरस्ति ते भवान्नोऽधि ब्रवीतु न: शर्म च यच्छतु॥४९॥

भावार्थ:-यदि मनुष्या ब्रह्मचर्यौषधपथ्यसुनियमसेवनेन शरीराणि रक्षेयुस्तर्हि तेषां शरीराणि दृढानि भवेयुर्यथा शरीराणां पार्थिवादि गृहमस्ति तथा जीवस्येदं गृहम्॥४९॥

पदार्थ:-हे विद्वन् पुरुष! आप **(ऋजीते)** सरल व्यवहार में **(न:)** हमारे शरीर से रोगों को **(परि, वृङ्धि)** सब ओर से पृथक् कीजिए, जिससे **(न:)** हमारा **(तनू:)** शरीर **(अश्मा)** पत्थर के तुल्य दृढ़ **(भवतु)** हो, जो **(सोम:)** उत्तम औषधि है, उस और जो **(अदिति:)** पृथिवी है, उन दोनों का आप **(अधि, ब्रवीतु)** अधिकार उपदेश कीजिए और **(न:)** हमारे लिए **(शर्म)** सुख वा घर **(यच्छतु)** दीजिए॥४९॥

भावार्थ:-जो मनुष्य ब्रह्मचर्य, औषध, पथ्य और सुन्दर नियमों के सेवन से शरीरों की रक्षा करें तो उन के शरीर दृढ़ होवें, जैसे शरीरों का पृथिवी आदि का बना घर है, वैसे जीव का यह शरीर घर है॥४९॥

आजङ्घन्तीत्यस्य भारद्वाज ऋषि:। वीरा देवता:। विराडनुष्टुप् छन्द:। गान्धार: स्वर:॥

पुना राजधर्ममाह॥

फिर राजधर्म को कहते हैं॥

आ जंङ्घन्ति सान्वेषां जघनाँ२ऽउप जिघ्नते।

अश्वाजनि प्रचेतसोऽश्वान्त्समत्सु चोदय॥५०॥

आ। जङ्घन्ति। सानु। एषाम्। जघनान्। उप। जिघ्नते। अश्वाजनीत्यश्वऽजनि। प्रचेतस इति प्रऽचेतसः। अश्वान्। समत्स्विति समत्ऽसु। चोदय॥५०॥

पदार्थः-(आ) समन्तात् **(जङ्घन्ति)** भृशं घ्नन्ति ताडयन्ति **(सानु)** अवयवम् **(एषाम्)** अश्वादीनाम् **(जघनान्)** यूनः **(उप) (जिघ्नते)** घ्नन्ति गमयन्ति **(अश्वाजनि)** या अश्वान् जनयति सुशिक्षितान् करोति तत्सम्बुद्धौ **(प्रचेतसः)** शिक्षया प्रकर्षेण विज्ञापितान् **(अश्वान्)** तुरङ्गान् **(समत्सु)** सङ्ग्रामेषु **(चोदय)** प्रेरय॥५०॥

अन्वयः-अश्वाजनि विदुषि राज्ञि! यथा वीरा एषां सानु आजङ्घन्ति जघनानुप जिघ्नते तथा त्वं समत्सु प्रचेतसोऽश्वाञ्चोदय॥५०॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा राजा राजपुरुषाश्च यानाश्वचालनयुद्धव्यवहारान् जानीयुस्तथा तत्स्त्रियोऽपि विजानन्तु॥५०॥

पदार्थः-हे **(अश्वाजनि)** घोड़ों को शिक्षा देने वाली विदुषि राणी! जैसे वीर पुरुष **(एषाम्)** इन घोड़े आदि के **(सानु)** अवयव को **(आ, जङ्घन्ति)** अच्छे प्रकार शीघ्र ताड़ना करते हैं **(जघनान्)** ज्वानों को **(उप जिघ्नते)** समीप से चलाते हैं, वैसे तू **(समत्सु)** संग्रामों में **(प्रचेतसः)** शिक्षा से विशेष कर चेतन किये **(अश्वान्)** घोड़ों को **(चोदय)** प्रेरणा कर॥५०॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे राजा और राजपुरुष विमानादि रथ और घोड़ों के चलाने तथा युद्ध के व्यवहारों को जानें, वैसे उनकी स्त्रियां भी जानें॥५०॥

अहिरिवेत्यस्य भारद्वाज ऋषिः। महावीरः सेनापतिर्देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुं ज्याया हेतिं परिबाधमानः।

हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान् पुमान् पुमांᳬसं परि पातु विश्वतः॥५१॥

अहिरिवेत्यहिःऽइव। भोगैः। परि। एति। बाहुम्। ज्यायाः। हेतिम्। परिबाधमान इति परिऽबाधमानः। हस्तघ्न इति हस्तऽघ्नः। विश्वा। वयुनानि। विद्वान्। पुमान्। पुमांसम्। परि। पातु। विश्वतः॥५१॥

पदार्थः-(**अहिरिव**) मेघ इव गर्जन्। **अहिरित मेघनामसु पठितम्॥** (निघ०१।१०) (**भोगैः**) (**परि**) सर्वतः (**एति**) प्राप्नोति (**बाहुम्**) बाधकं शत्रुम् (**ज्यायाः**) प्रत्यञ्चायाः (**हेतिम्**) बाणम् (**परिबाधमानः**) सर्वतो निवारयन् (**हस्तघ्नः**) यो हस्ताभ्यां हन्ति सः (**विश्वा**) सर्वाणि (**वयुनानि**) विज्ञानानि (**विद्वान्**) (**पुमान्**) पुरुषार्थी (**पुमांसम्**) पुरुषार्थिनम् (**परि**) सर्वथा (**पातु**) रक्षतु (**विश्वतः**) संसारे भवाद्विघ्नात्॥५१॥

अन्वयः-हे मनुष्य! यो हस्तघ्नो विद्वान् पुमान् भवान् ज्याया हेतिं प्रक्षिप्य बाहुं परिबाधमानः पुमांसं विश्वतः परि पातु, सोऽहिरिव भोगैर्विश्वा वयुनानि पर्येति॥५१॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। यो विद्वान् बाहुबलः शस्त्रास्त्रप्रक्षेपणविच्छत्रून् निवारयन् पुरुषार्थेन सर्वान् सर्वस्माद् रक्षन् मेघवत्सुखभोगवर्द्धकः स्यात्, स सर्वान् मनुष्यान् विद्याः प्रापयितुं समर्थो भवेत्॥५१॥

पदार्थः-हे मनुष्य! जो (**हस्तघ्नः**) हाथों से मारने वाले (**विद्वान्**) विद्वान् (**पुमान्**) पुरुषार्थी आप (**ज्यायाः**) प्रत्यञ्चा से (**हेतिम्**) बाण को चला के (**बाहुम्**) बाधा देनेवाले शत्रु को (**परिबाधमानः**) सब ओर से निवृत्त करते हुए (**पुमांसम्**) पुरुषार्थी जन की (**विश्वतः**) सब प्रकार से (**परि, पातु**) चारों ओर से रक्षा कीजिए सो (**अहिरिव**) मेघ के तुल्य गर्जते हुए आप (**भोगैः**) उत्तम भोगों के सहित (**विश्वा**) सब (**वयुनानि**) विज्ञानों को (**परि, एति**) सब ओर से प्राप्त होते हो॥५१॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो विद्वान् भुजबल वाला शस्त्र-अस्त्र के चलाने का ज्ञाता, शत्रुओं को निवृत्त करता, पुरुषार्थ से सब की रक्षा करता हुआ, मेघ के तुल्य सुख और भोगों को बढ़ाने वाला हो, वह सब मनुष्यों को विद्या प्राप्त कराने को समर्थ होवे॥५१॥

वनस्पत इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः। सुवीरो देवता। भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुना राजप्रजाधर्मविषयमाह॥

फिर राजप्रजा धर्म इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

वन॑स्पते वी॒ड्व॒ङ्गो॒ हि भू॒याऽअ॒स्मत्स॑खा प्र॒तर॑णः सु॒वीर॑ः।

गोभि॒ः सन्न॑द्धोऽअसि वी॒डय॑स्वास्था॒ता ते॑ जयतु॒ जेत्वा॑नि॥५२॥

वन॑स्पते। वी॒ड्व॒ङ्ग॒ इति॑ वी॒डुऽअ॑ङ्गः। हि। भू॒याः। अ॒स्मत्स॒खेत्य॒स्मत्ऽस॑खा। प्र॒तर॑ण॒ इति॑ प्र॒ऽतर॑णः। सु॒वीर॒ इति॑ सु॒ऽवीर॑ः। गोभि॑ः। सन्न॑द्ध॒ इति॒ सम्ऽन॑द्धः अ॒सि॒। वी॒डय॑स्व। आ॒स्था॒तेत्या॑ऽस्था॒ता। ते॒। ज॒य॒तु॒। जेत्वा॑नि॥५२॥

पदार्थः-(**वनस्पते**) किरणानां रक्षकः सूर्य इव वनादीनां पालक विद्वन् राजन्! (**वीड्वङ्गः**) प्रशंसिताङ्गः (**हि**) (**भूयाः**) भवेः (**अस्मत्सखा**) अस्माकं मित्रम् (**प्रतरणः**) शत्रुबलस्योल्लङ्घकः (**सुवीरः**) शोभना वीरा यस्य सः (**गोभिः**) पृथिव्यादिभिः (**सन्नद्धः**) तत्परः सम्बद्धः (**असि**) (**वीडयस्व**) दृढान् कुरु (**आस्थाता**) समन्तात् स्थिरः सेनापतिः (**ते**) तव (**जयतु**) (**जेत्वानि**) जेतुं योग्यानि शत्रुसैन्यानि॥५२॥

अन्वयः-हे वनस्पते! त्वमस्मत्सस्वा प्रतरणः सुवीरो वीड्वङ्गो हि भूयाः। यतो गोभिः सन्नद्धोऽस्यतोऽस्मान् वीडयस्व त आस्थाता वीरो जेत्वानि जयतु॥५२॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा सूर्येण किरणानां किरणैः सूर्यस्य नित्यः सम्बन्धोऽस्ति, तथा राजसेनाप्रजानां सम्बन्धो भवितुं योग्यः। यदि सेनेशादयो जितेन्द्रियाः शूरवीराः स्युस्तर्हि सेनाः प्रजा अपि तादृश्यो भवेयुः॥५२॥

पदार्थः-हे (**वनस्पते**) किरणों के रक्षक सूर्य के समान वन आदि के रक्षक विद्वन् राजन्! आप (**अस्मत्सखा**) हमारे रक्षक मित्र (**प्रतरणः**) शत्रुओं के बल का उल्लंघन करने हारे (**सुवीरः**) सुन्दर वीर पुरुषों से युक्त (**वीड्वङ्गः**) प्रशंसित अवयव वाले (**हि**) निश्चय कर (**भूयाः**) हूजिये, जिस कारण आप (**गोभिः**) पृथिवी आदि के साथ (**सन्नद्धः**) सम्बन्ध रखने को तत्पर (**असि**) हैं, इसलिए हम को (**वीडयस्व**) दृढ़ कीजिए (**ते**) आप का (**आस्थाता**) युद्ध में अच्छे-अच्छे प्रकार स्थिर रहने वाला वीर सेनापति (**जेत्वानि**) जीतने योग्य शत्रुओं को (**जयतु**) जीते॥५२॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य के साथ किरणों और किरणों के साथ सूर्य का नित्य सम्बन्ध है, वैसे राजा, सेना तथा प्रजाओं का सम्बन्ध होने योग्य है। जो सेनापति आदि जितेन्द्रिय शूरवीर हों तो सेना और प्रजा भी वैसी ही जितेन्द्रिय होवे॥५२॥

दिव इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः। वीरो देवता। विराट् जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनर्मनुष्यैः किं कर्त्तव्यमित्याह॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

दि॒वः पृ॑थि॒व्याः पर्योज॒ऽउद्भृ॑तं॒ वन॒स्पति॑भ्य॒ः पर्य्याभृ॑त॒ꣳ सह॑ः।

अ॒पामो॒ज्मान॒ं परि॒ गोभि॒रावृ॑त॒मिन्द्र॑स्य॒ वज्र॑ꣳ ह॒विषा॒ रथ॑ं यज॥५३॥

दि॒वः। पृ॒थि॒व्याः। परि॑। ओज॑ः। उद्भृ॑त॒मित्युत्ऽभृ॑तम्। व॒न॒स्पति॑भ्य॒ इति॒ व॒न॒स्पति॑ऽभ्यः। परि॑। आभृ॑त॒मित्याऽभृ॑तम्। सह॑ः। अ॒पाम्। ओ॒ज्मान॑म्। परि॑। गोभि॑ः। आवृ॑त॒मित्याऽवृ॑तम्। इन्द्र॑स्यः। वज्र॑म्। ह॒विषा॑। रथ॑म्। य॒ज॒॥५३॥

पदार्थः-(**दिवः**) सूर्यात् (**पृथिव्याः**) भूमेः (**परि**) (**ओजः**) पराक्रमम् (**उद्भृतम्**) उत्कृष्टतया धृतम् (**वनस्पतिभ्यः**) वटादिभ्यः (**परि**) (**आभृतम्**) समन्तात् पोषितम् (**सहः**) बलम् (**अपाम्**) जलानां सकाशात् (**ओज्मानम्**) पराक्रमयुक्तं रसम् (**परि**) (**गोभिः**) किरणैः (**आवृतम्**) आच्छादितम् (**इन्द्रस्य**) सूर्यस्य (**वज्रम्**) कुलिशमिव (**हविषा**) आदानेन (**रथम्**) यानम् (**यज**)॥५३॥

अन्वयः-हे विद्वंस्त्वं दिवः पृथिव्या उद्भृतमोजः परि यज वनस्पतिभ्य आभृतं सहः परि यज। अपां सकाशादोज्मानं परि यज। इन्द्रस्य गोभिरावृतं वज्रं रथं हविषा यज॥५३॥

भावार्थः-मनुष्यैः पृथिव्यादिभ्यो भूतेभ्यस्तज्जायाः सृष्टेश्च सकाशाद् बलपराक्रमौ वर्द्धनीयौ तद्योगेन च विमानादीनि यानानि निर्मातव्यानि॥५३॥

पदार्थः-हे विद्वन्! आप (**दिवः**) सूर्य और (**पृथिव्याः**) पृथिवी से (**उद्भृतम्**) उत्कृष्टता से धारण किये (**ओजः**) पराक्रम को (**परि, यज**) सब ओर से दीजिए (**वनस्पतिभ्यः**) वट आदि वनस्पतियों से (**आभृतम्**) अच्छे प्रकार पुष्ट किये (**सहः**) बल को (**परि**) सब ओर से दीजिए (**अपाम्**) जलों के सम्बन्ध से (**ओज्मानम्**) पराक्रम वाले रस को (**परि**) चारों ओर से दीजिए तथा (**इन्द्रस्य**) सूर्य को (**गोभिः**) किरणों से (**आवृतम्**) युक्त चिलकते हुए (**वज्रम्**) वज्र के तुल्य (**रथम्**) यान को (**हविषा**) ग्रहण से सङ्गत कीजिए॥५३॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिए कि पृथिवी आदि भूतों और उनसे उत्पन्न हुई सृष्टि के सम्बन्ध से बल और पराक्रमों को बढ़ावें और उनके योग से विमान आदि यानों को बनाया करें॥५३॥

इन्द्रस्येत्यस्य भारद्वाज ऋषिः। वीरो देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

इन्द्र॑स्य॒ वज्रो॑ म॒रुता॒मनी॑कं मि॒त्रस्य॒ गर्भो॒ वरु॑णस्य॒ नाभिः॑।

सेमां नो॑ ह॒व्यदा॑तिं जुषा॒णो देव॑ रथ॒ प्रति॑ ह॒व्या गृ॑भाय॥५४॥

इन्द्रस्य। वज्रः॑। म॒रुता॑म्। अनी॑कम्। मि॒त्रस्य॑। गर्भः॑। वरु॑णस्य। नाभिः॑। सः। इ॒माम्। न॒ः। ह॒व्यदा॑ति॒मिति॑ ह॒व्यऽदा॑तिम्। जु॒षा॒णः। देव॑। र॒थ॒। प्रति॑। ह॒व्या। गृ॒भा॒य॒॥५४॥

पदार्थः-(**इन्द्रस्य**) विद्युतः (**वज्रः**) निपातः (**मरुताम्**) मनुष्याणाम् (**अनीकम्**) सैन्यम् (**मित्रस्य**) सख्युः (**गर्भः**) अन्तस्थ आशयः (**वरुणस्य**) श्रेष्ठस्य (**नाभिः**) आत्मनो मध्यवर्त्ती विचारः (**सः**) (**इमाम्**) प्रत्यक्षाम् (**नः**) अस्मान् (**हव्यदातिम्**) दातव्यानां दानम् (**जुषाणः**) सेवमानः (**देव**) दिव्यविद्य (**रथ**) रमणीयस्वरूप (**प्रति**) (**हव्या**) आदातुमर्हाणि वस्तूनि (**गृभाय**) गृहाण॥५४॥

अन्वयः-हे देव! यथेमां हव्यदातिं जुषाणस्स त्वं य इन्द्रस्य वज्रो मरुतामनीकं मित्रस्य गर्भो वरुणस्य नाभिरस्य तं नोऽस्मान् हव्या च प्रति गृभाय॥५४॥

भावार्थः-येषां मनुष्याणां सेनाऽतिश्रेष्ठा विद्युद्विद्या मित्राशय आप्तविचारो विद्यादिदानञ्च स्वीकृतानि सन्त्यन्येभ्यो देयानि च ते सर्वतो मङ्गलावृताः स्युः॥५४॥

पदार्थः-हे **(देव)** उत्तम विद्या वाले **(रथ)** रमणीयस्वरूप विद्वन्! **(इमाम्)** इस **(हव्यदातिम्)** देने योग्य पदार्थों के दान को **(जुषाणः)** सेवते हुए **(सः)** पूर्वोक्त आप जो **(इन्द्रस्य)** बिजुली का **(वज्रः)** गिरना **(मरुताम्)** मनुष्यों की **(अनीकम्)** सेना **(मित्रस्य)** मित्र के **(गर्भः)** अन्तःकरण का आशय और **(वरुणस्य)** श्रेष्ठ जन के **(नाभिः)** आत्मा का मध्यवर्त्ती विचार है, उसको **(नः)** और हमको **(हव्या)** ग्रहण करने योग्य वस्तुओं को **(प्रति गृभाय)** प्रतिग्रह अर्थात् स्वीकार कीजिए॥५४॥

भावार्थः-जिन मनुष्यों की सेना अतिश्रेष्ठ, बिजुली की विद्या, मित्र का आशय, आप्त सत्यवक्ताओं का विचार और विद्यादि का दान स्वीकार किये तथा दूसरों को दिये हैं, वे सब ओर से मंगलयुक्त होवें॥५४॥

उपश्वासयेत्यस्य भारद्वाज ऋषिः। वीरा देवताः। भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उप॑ श्वासय पृथि॒वीमु॒त द्यां पु॑रु॒त्रा ते॑ मनुतां॒ विष्ठि॑तं॒ जग॑त्।
स दु॑न्दुभे स॒जूरिन्द्रे॑ण दे॒वैर्दू॒राद् दवी॑यो॒ऽअप॑ सेध॒ शत्रू॑न्॥५५॥

उप॑। श्वा॒स॒य॒। पृ॒थि॒वीम्। उ॒त। द्याम्। पु॒रु॒त्रेति॑ पु॒रु॒ऽत्रा। ते॒। म॒नु॒ता॒म्। विष्ठि॑तम्। विस्थि॑त॒मिति॒ वि॒ऽस्थि॑तम्। जग॑त्। सः। दु॒न्दु॒भे॒। स॒जूरिति॑ स॒जूः। इन्द्रे॑ण। दे॒वैः। दू॒रात्। दवी॑यः। अप॑। से॒ध॒। शत्रू॑न्॥५५॥

पदार्थः-**(उप)** **(श्वासय)** प्राणय **(पृथिवीम्)** अन्तरिक्षम् **(उत)** अपि **(द्याम्)** विद्युत्प्रकाशम् **(पुरुत्रा)** बहुविधम् **(ते)** तव **(मनुताम्)** विजानातु **(विष्ठितम्)** व्याप्तम् **(जगत्)** **(सः)** **(दुन्दुभे)** दुन्दुभिरिव गम्भीरगर्जन! **(सजूः)** संयुक्तः **(इन्द्रेण)** ऐश्वर्येण युक्तैः **(देवैः)** दिव्यैर्विद्वद्भिर्गुणैर्वा **(दूरात्)** **(दवीयः)** अतिदूरम् **(अप)** **(सेध)** दूरीकुरु **(शत्रून्)**॥५५॥

अन्वयः-हे दुन्दुभे! स त्वमिन्द्रेण देवैः सजूर्दूराच्छत्रून् दवीयोपसेध पुरुत्रा पृथिवीमुत द्यामुपश्वासय भवान् ताभ्यां विष्ठितं जगन्मनुतां तस्य ते राज्यमानन्दितं स्यात्॥५५॥

भावार्थः-ये मनुष्या विद्युद्विद्याजैरस्त्रैः शत्रून् दूरे प्रक्षिप्यैश्वर्येण विदुषो दूरादाहूय सत्कुर्युरन्तरिक्षविद्युद्भ्यां व्याप्तं सर्वं जगद्विज्ञाय विविधा विद्याः क्रियाः साधयेयुस्ते जगदानन्दयितारः स्युः॥५५॥

पदार्थः-हे **(दुन्दुभे)** नगाड़े के तुल्य गरजने हारे! **(सः)** सो आप **(इन्द्रेण)** ऐश्वर्य से युक्त **(देवैः)** उत्तम विद्वान् वा गुणों के साथ **(सजूः)** संयुक्त **(दूरात्)** दूर से भी **(दवीयः)** अतिदूर **(शत्रून्)** शत्रुओं को **(अपसेध)** पृथक् कीजिए **(पुरुत्रा)** बहुत विध **(पृथिवीम्)** आकाश **(उत)** और **(द्याम्)** बिजुली के प्रकाश को **(उप, श्वासय)** निकट जीवन धारण कराइये, आप उन अन्तरिक्ष और बिजुली से **(विष्ठितम्)** व्याप्त **(जगत्)** संसार को **(मनुताम्)** मानो उस **(ते)** आपका राज्य आनन्दित होवे॥५५॥

भावार्थः-जो मनुष्य विद्युत् विद्या से हुए अस्त्रों से शत्रुओं को दूर फेंक, ऐश्वर्य से विद्वानों को दूर से बुला के सत्कार करें, अन्तरिक्ष और बिजुली से व्याप्त सब जगत् को जान विविध प्रकार की विद्या और क्रियाओं को सिद्ध करें, वे जगत् को आनन्द करानेवाले होते हैं॥५५॥

आ क्रन्दयेत्यस्य भारद्वाज ऋषिः। वादयितारो वीरा देवताः। भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

राजपुरुषैः किं कर्त्तव्यमित्याह॥

राजपुरुषों को क्या करना चाहिए, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आ क्रन्दय बलमोजो नऽआधा निष्टनिहि दुरिता बाधमानः।
अप प्रोथ दुन्दुभे दुच्छुनाऽइतऽइन्द्रस्य मुष्टिरसि वीडयस्व॥५६॥

आ। क्रन्दय। बलम्। ओजः। नः। आ। धाः। निः। स्तनिहि। दुरितेति दुःऽइता। बाधमानः। अप। प्रोथ। दुन्दुभे। दुच्छुना। इतः। इन्द्रस्य। मुष्टिः। असि। वीडयस्व॥५६॥

पदार्थः-**(आ)** **(क्रन्दय)** समन्तादाह्वय रोदय वा **(बलम्)** **(ओजः)** पराक्रमम् **(नः)** अस्मभ्यम् **(आ)** **(धाः)** धेहि **(निः)** नितराम् **(स्तनिहि)** विस्तृणीहि **(दुरिता)** दुष्टानि व्यसनानि **(बाधमानः)** निवारयन् **(अप)** **(प्रोथ)** परि प्राप्नुहि **(दुन्दुभे)** दुन्दुभिरिव गर्जितसेन! **(दुच्छुनाः)** दुष्टाः श्वान इव वर्त्तमानाः **(इतः)** सेनायाः **(इन्द्रस्य)** विद्युतः **(मुष्टिः)** मुष्टिरव **(असि)** **(वीडयस्व)** दृढय॥५६॥

अन्वयः-हे दुन्दुभे! दुरिता बाधमानस्त्वं नो बलमाक्रन्दयौज आधाः सैन्यं निष्टनिहि ये दुच्छुनास्तानपाक्रन्दय यतस्त्वं मुष्टिरसि तस्मादित इन्द्रस्य वीडयस्व सुखानि प्रोथ॥५६॥

भावार्थः-राजपुरुषैः श्रेष्ठाः सत्कर्त्तव्या दुष्टा रोदनीयाः सर्वेषां दुर्व्यसनानि दूरीकारयित्वा सुखानि प्राप्तव्यानि॥५६॥

पदार्थः-हे **(दुन्दुभे)** नगाड़ों के तुल्य जिनकी सेना गर्जती ऐसे सेनापते! **(दुरिता)** दुष्ट व्यसनों को **(बाधमानः)** निवृत्त करते हुए आप **(नः)** हमारे लिए **(बलम्)** बल को **(आ, क्रन्दय)** पहुंचाइये **(ओजः)** पराक्रम को **(आ, धाः)** अच्छे प्रकार धारण कीजिए, सेना को **(निष्टनिहि)** विस्तृत कीजिए, जो **(दुच्छुनाः)** दुष्ट कुत्तों के तुल्य वर्त्तमान हैं, उनको **(अप)** बुरे प्रकार रुलाइये जिस कारण आप **(मुष्टिः)** मूठों के तुल्य प्रबन्धकर्त्ता **(असि)** हैं, इससे **(इतः)** इस सेना से **(इन्द्रस्य)** बिजुली के अवयवों को **(वीडयस्व)** दृढ़ कीजिए और सुखों को **(प्रोथ)** पूरण कीजिए॥५६॥

भावार्थः-राजपुरुषों को चाहिए कि श्रेष्ठों का सत्कार करें, दुष्टों को रुलावें, सब मनुष्यों के दुर्व्यसनों को दूर करके सुखों को प्राप्त करें॥५६॥

आमूरित्यस्य भारद्वाज ऋषिः। वादयितारो वीरा देवताः। भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आमूरज प्रत्यावर्त्तयेमाः केतुमद् दुन्दुभिर्वावदीति।
समश्वपर्णाश्चरन्ति नो नरोऽस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु॥५७॥

आ। अमूः। अज। प्रत्यावर्त्तयेति प्रतिऽआवर्त्तय। इमाः। केतुमदिति केतुमत्। दुन्दुभिः। वावदीति। सम्। अश्वपर्णा इत्यश्वऽपर्णाः। चरन्ति। नः। नरः। अस्माकम्। इन्द्र। रथिनः। जयन्तु॥५७॥

पदार्थः-**(आ)** समन्तात् **(अमूः)** शत्रुसेनाः **(अज)** प्रक्षिप **(प्रत्यावर्त्तय)** **(इमाः)** स्वसेनाः **(केतुमत्)** केतुः प्रशस्ता ध्वजा यासु ताः। अत्र स्त्रीप्रत्ययस्य लुक्। **(दुन्दुभिः)** **(वावदीति)** **(सम्)** **(अश्वपर्णाः)** अश्वानां पर्णानि पालनानि यासु सेनासु ताः **(चरन्ति)** गच्छन्ति **(नः)** अस्मान् **(नरः)** नायकाः **(अस्माकम्)** **(इन्द्र)** परमैश्वर्य्ययुक्त **(रथिनः)** प्रशस्तरथयुक्ता वीराः **(जयन्तु)**॥५७॥

अन्वयः-हे इन्द्र! त्वममूरज इमाः केतुमत् प्रत्यावर्त्तय यथा दुन्दुभिर्वावदीति तथा नोऽश्वपर्णाः सञ्चरन्ति, येऽस्माकं रथिनो नरः शत्रूञ्जयन्तु, ते सत्कृताः स्युः॥५७॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये राजपुरुषाः शत्रुसेना निवर्त्तयितुं स्वसेना योधयितुं समर्थाः स्युस्ते सर्वत्र शत्रूञ्जेतुं शक्नुयुः॥५७॥

पदार्थः-हे **(इन्द्र)** परम ऐश्वर्ययुक्त राजपुरुष! आप **(अमूः)** उन शत्रुसेनाओं को **(आ अज)** अच्छे प्रकार दूर फेंकिये **(केतुमत्)** ध्वजा वाली **(इमाः)** इन अपनी सेनाओं को **(प्रति, आवर्त्तय)** लौटा लावो, जैसे **(दुन्दुभिः)** नगाड़ा **(वावदीति)** अत्यन्त बजता है, वैसे **(नः)** हमको **(अश्वपर्णाः)** घोड़ों का जिनमें पालन हो, वे सेना **(सम्, चरन्ति)** सम्यक् विचरती हैं, जो **(अस्माकम्)** हमारे **(रथिनः)** प्रशंसित रथों पर चढ़े हुए वीर **(नरः)** नायक जन शत्रुओं को **(जयन्तु)** जीतें, वे सत्कार को प्राप्त हों॥५७॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो राजपुरुष शत्रुओं की सेनाओं को निवृत्त करने और अपनी सेनाओं को युद्ध कराने को समर्थ हों, वे सर्वत्र शत्रुओं को जीत सकें॥५७॥

आग्नेय इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः। विद्वांसो देवताः। भुरिगत्यष्टिश्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथ कीदृशाः पशवः किंगुणा इत्याह॥

अब कैसे पशु कैसे गुणों वाले होते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आग्नेयः कृष्णग्रीवः सारस्वती मेषी बभ्रुः सौम्यः पौष्णः श्यामः शितिपृष्ठो बार्हस्पत्यः शिल्पो वैश्वदेवऽऐन्द्रोऽरुणो मारुतः कल्माषऽऐन्द्राग्नः सꣳहितोऽधोरामः सावित्रो वारुणः कृष्णऽएकशितिपात्पेत्वः॥५८॥

आग्नेयः। कृष्णग्रीव इति कृष्णऽग्रीवः। सारस्वती। मेषी। बभ्रुः। सौम्यः। पौष्णः। श्यामः। शितिपृष्ठ इति शितिऽपृष्ठः॥ बार्हस्पत्यः। शिल्पः। वैश्वदेव इति वैश्वऽदेवः। ऐन्द्रः। अरुणः। मारुतः। कल्माषः। ऐन्द्राग्नः। सꣳहित इति सम्ऽहितः। अधोराम इत्यधःऽरामः। सावित्रः। वारुणः। कृष्णः। एकशितिपादित्येकऽशितिपात्। पेत्वः॥५८॥

पदार्थः-**(आग्नेयः)** अग्निदेवताकः **(कृष्णग्रीवः)** कृष्णा ग्रीवा यस्य सः **(सारस्वती)** सरस्वतीदेवताका **(मेषी)** **(बभ्रुः)** धूम्रवर्णः **(सौम्यः)** सोमदेवताकः **(पौष्णः)** पूषदेवताकाः **(श्यामः)** श्यामवर्णः **(शितिपृष्ठः)** कृष्णपृष्ठः **(बार्हस्पत्यः)** बृहस्पतिदेवताकः **(शिल्पः)** नानावर्णः **(वैश्वदेवः)** विश्वदेवदेवताकः **(ऐन्द्रः)** इन्द्रदेवताकः **(अरुणः)** रक्तवर्णः **(मारुतः)** मरुद्देवताकः **(कल्माषः)** श्वेतकृष्णवर्णः **(ऐन्द्राग्नः)** इन्द्राग्निदैवत्यः **(संहितः)** दृढाङ्गः **(अधोरामः)** अधःक्रीडी **(सावित्रः)** सवितृदेवताकः **(वारुणः)** वरुणदैवत्यः **(कृष्णः)** **(एकशितिपात्)** एकः शितिः पादोऽस्य **(पेत्वः)** पतनशीलः॥५८।

अन्वयः-हे मनुष्याः! यूयं य आग्नेयः स कृष्णग्रीवो, या सारस्वती सा मेषी, यः सौम्यः स बभ्रुः, य पौष्णः स श्यामो, यो बार्हस्पत्यः स शितिपृष्ठो, यो वैश्वदेवः स शिल्पो, य ऐन्द्रः सोऽरुणो,

यो मारुतः स कल्माषः, य ऐन्द्राग्नः स संहितो, यः सावित्रः सोऽधोरामो, य एकशितिपात्पेत्वः कृष्णः स वारुणश्चेत्येतान् विजानीत॥५८॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! युष्माभिर्यद्यद्दैवत्या ये ये पशवो विख्यातास्ते तत्तद्गुणा उपदिष्टाः सन्तीति वेद्यम्॥५८॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम लोग जो **(आग्नेयः)** अग्नि देवता वाला अर्थात् अग्नि के उत्तम गुणों से युक्त है, वह **(कृष्णग्रीवः)** काले गले वाला पशु, जो **(सारस्वती)** सरस्वती वाणी के गुणों वाली, वह **(मेषी)** भेड़, जो **(सौम्यः)** चन्द्रमा के गुणों वाला, वह **(बभ्रुः)** धुमेला पशु, जो **(पौष्णः)** पुष्टि आदि गुणों वाला वह **(श्यामः)** श्याम रङ्ग से युक्त पशु, जो **(बार्हस्पत्यः)** बड़े आकाशादि के पालन आदि गुणयुक्त, वह **(शितिपृष्ठः)** काली पीठ वाला पशु, जो **(वैश्वदेवः)** सब विद्वानों के गुणों वाला, वह **(शिल्पः)** अनेक वर्णयुक्त, जो **(ऐन्द्रः)** सूर्य्य के गुणों वाला, वह **(अरुणः)** लाल रङ्गयुक्त, जो **(मारुतः)** वायु के गुणों वाला, वह **(कल्माषः)** खाखी रङ्ग युक्त, जो **(ऐन्द्राग्नः)** सूर्य्य-अग्नि के गुणों वाला, वह **(संहितः)** मोटे दृढ़ अङ्गयुक्त, जो **(सावित्रः)** सूर्य के गुणों से युक्त, वह **(अधोरामः)** नीचे विचरने वाला पक्षी, जो **(एकशितिपात्)** जिसका एक पग काला **(पेत्वः)** उड़ने वाला और **(कृष्णः)** काले रङ्ग से युक्त, वह **(वारुणः)** जल के शान्त्यादि गुणों वाला है, इस प्रकार इन सब को जानो॥५८॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! तुम लोगों को चाहिए कि जिस-जिस देवता वाले जो-जो पशु विख्यात हैं, वे-वे उन-उन गुणों वाले उपदेश किये हैं, ऐसा जानो॥५८॥

अग्नय इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः। अग्न्यादयो देवताः। भुरिगतिशक्वरी छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

अ॒ग्नयेऽनी॑कवते॒ रोहि॑ताञ्जिरन॒ड्वान॒धोरा॑मौ सावि॒त्रौ पौ॒ष्णौ र॑ज॒तना॑भी वैश्वदे॒वौ पि॒शङ्गौ॑ तूप॒रौ मा॑रु॒तः क॒ल्माष॑ऽआग्ने॒यः कृ॒ष्णो॒ऽजः सार॑स्व॒ती मे॒षी वा॑रु॒णः पेत्व॑ः॥५९॥

अ॒ग्नये॑। अनी॑कवत॒ इत्यनी॑कऽवते। रोहि॑ताञ्जि॒रिति॒ रोहि॑तऽअञ्जिः। अ॒न॒ड्वान्। अ॒धोरा॑मा॒वित्य॒धःरा॑मौ। सा॒वि॒त्रौ। पौ॒ष्णौ। र॒ज॒तना॑भी॒ इति॑ र॒ज॒तऽना॑भी। वै॒श्व॒दे॒वावि॒ति॑ वैश्वऽदे॒वौ। पि॒शङ्गौ॑। तू॒प॒रौ। मा॒रु॒तः। क॒ल्माष॑ः। आ॒ग्ने॒यः। कृ॒ष्णः। अ॒जः। सा॒र॒स्व॒ती। मे॒षी। वा॒रु॒णः। पेत्व॑ः॥५९॥

पदार्थः-**(अग्नये)** विज्ञानादिगुणप्रकाशाय **(अनीकवते)** प्रशस्तसेनायुक्ताय **(रोहिताञ्जिः)** रोहिताः रक्ता अञ्जयो लक्षणानि यस्य सः **(अनड्वान्)** वृषभः **(अधोरामौ)** अधोभागे श्वेतवर्णौ

(सावित्रौ) सवितृगुणौ **(पौष्णौ)** पूषदैवत्यौ **(रजतनाभी)** रजतवर्णनाभियुक्तौ **(वैश्वदेवौ)** **(पिशङ्गौ)** पीतवर्णौ **(तूपरौ)** अविद्यमानशृङ्गौ **(मारुतः)** मरुद्दैवत्यः **(कल्माषः)** **(आग्नेयः)** अग्निदैवत्यः **(कृष्णः)** **(अजः)** **(सारस्वती)** वाक्गुणः **(मेषी)** **(वारुणः)** जलगुणः **(पेत्वः)** शीघ्रगामी॥५९॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यूयं येऽनीकवतेऽग्नये रोहिताञ्जिरनड्वान् सावित्रावधोरामौ पौष्णौ रजतनाभी वैश्वदेवौ तूपरौ पिशङ्गौ मारुतः कल्माषः आग्नेयः कृष्णोऽजः सारस्वती मेषी वारुणः पेत्वश्चास्ति तान् यथा गुणं संप्रयोजय॥५९॥

भावार्थः-अत्र पशूनां यावन्तो गुणा उक्तास्ते सर्वे गुणा एकस्मिन्नग्नौ संहिताः सन्तीति वेद्यम्॥५९॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम लोग **(अनीकवते)** प्रशंसित सेना वाले **(अग्नये)** विज्ञान आदि गुणों के प्रकाशक सेनापति के लिए **(रोहिताञ्जिः)** लाल चिह्नों वाला **(अनड्वान्)** बैल **(सावित्रौ)** सूर्य के गुण वाले **(अधोरामौ)** नीचे भाग में श्वेतवर्ण वाले **(पौष्णौ)** पुष्टि आदि गुणयुक्त **(रजतनाभी)** चांदी के वर्ण के तुल्य जिनकी नाभि **(वैश्वदेवौ)** सब विद्वानों के सम्बन्धी **(तूपरौ)** मुण्डे **(पिशङ्गौ)** पीले दो प्शु **(मारुतः)** वायु देवता वाला **(कल्माषः)** खाखी रङ्गयुक्त **(आग्नेयः)** अग्नि देवता वाला **(कृष्णः, अजः)** काला बकरा **(सारस्वती)** वाणी के गुणों वाली **(मेषी)** भेड़ और **(वारुणः)** जल के गुणों वाला **(पेत्वः)** शीघ्रगामी पशु है, उन सब को गुणों के अनुकूल काम में लाओ॥५९॥

भावार्थः-इस मन्त्र में पशुओं के जितने गुण कहे हैं, वे सब एक अग्नि में इकट्ठे हैं, यह जानना चाहिए॥५९॥

अग्नय इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः। अग्न्यादयो देवताः। पूर्वस्य विराट् प्रकृतिः, वैराजाभ्यामित्युत्तरस्य प्रकृतिश्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

कीदृशा जनाः कार्य्याणि साद्धुं शक्नुवन्तीत्याह॥

कैसे मनुष्य कार्यसिद्धि कर सकते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अ॒ग्नये॑ गाय॒त्राय॑ त्रि॒वृते॒ राथ॑न्तराया॒ष्टाक॑पाल॒ऽइन्द्रा॑य॒ त्रैष्टु॑भाय पञ्चद॒शाय॒ बार्ह॑ता॒यैका॑दशकपालो॒ विश्वे॑भ्यो दे॒वेभ्यो॒ जाग॑तेभ्यः सप्तद॒शेभ्यो॑ वैरू॒पेभ्यो॒ द्वाद॑शकपालो मि॒त्रावरु॑णाभ्या॒मानु॑ष्टुभाभ्यामेकवि॒ꣳशाभ्यां॑ वैरा॒जाभ्यां॑ पय॒स्या॒ बृह॒स्पत॑ये॒ पाङ्क्ता॑य त्रिण॒वाय॑ शाक्व॒राय॑ च॒रुः स॑वि॒त्रऽऔष्णि॑हाय त्रयस्त्रि॒ꣳशाय॑ रैव॒ताय॒ द्वाद॑शकपालः प्राजाप॒त्यश्च॒रुरदि॑त्यै॒ विष्णु॑पत्न्यै च॒रुर॒ग्नये॑ वैश्वान॒राय॒ द्वाद॑शकपा॒लोऽनु॑मत्याऽअ॒ष्टाक॑पालः॥६०॥

अ॒ग्नये॑। गा॒य॒त्राय॑। त्रि॒वृत॒ इति॑ त्रि॒ऽवृते॑। राथ॑न्तरा॒येति॒ राथ॑म्ऽतराय। अ॒ष्टाक॑पाल॒ इत्य॒ष्टाऽक॑पालः। इन्द्रा॑य। त्रैष्टु॑भाय। त्रैऽस्तु॑भा॒येति॒ त्रैऽस्तु॑भाय। प॒ञ्च॒द॒शायेति॑ पञ्चऽद॒शाय॑। बार्ह॑ताय। एका॑दशकपाल॒

इत्येकादशऽकपालः। विश्वेभ्यः। देवेभ्यः। जागतेभ्यः। सप्तदशेभ्य इति सप्तऽदशेभ्यः। वैरूपेभ्यः। द्वादशकपाल इति द्वादशऽकपालः। मित्रावरुणाभ्याम्। आनुष्टुभाभ्याम्। आनुस्तुभाभ्यामित्यानुऽस्तुभाभ्याम्। एकविꣳशाभ्यामित्येकविꣳशाभ्याम्। वैराजाभ्याम्। पयस्या। बृहस्पतये। पाङ्क्ताय। त्रिणवाय। त्रिनवायेति त्रिऽनवाय। शाक्वराय। चरुः। सवित्रे। औष्णिहाय। त्रयस्त्रिंशायेति त्रयःऽत्रिꣳशाय। रैवताय। द्वादशकपाल इति द्वादशऽकपालः। प्राजापत्य इति प्राजाऽपत्यः। चरुः। अदित्यै। विष्णुपत्न्या इति विष्णुऽपत्न्यै। चरुः। अग्नये। वैश्वानराय। द्वादशकपाल इति द्वादशऽकपालः। अनुमत्या इत्यनुऽमत्यै। अष्टाकपाल इत्यष्टाऽकपालः॥६०॥

पदार्थः-(अग्नये) पावकाय **(गायत्राय)** गायत्रादिछन्दोविज्ञापिताय **(त्रिवृते)** यस्त्रिभिः सत्त्वरजस्तमोगुणैर्युक्तस्तस्मै **(राथन्तराय)** यो रथैः समुद्रादींस्तरति तस्मै **(अष्टाकपालः)** अष्टसु कपालेषु संस्कृतः **(इन्द्राय)** ऐश्वर्याय **(त्रैष्टुभाय)** त्रिष्टुप् छन्दसा प्रख्याताय **(पञ्चदशाय)** पञ्च दश च यस्मिन् सन्ति तस्मै **(बार्हताय)** बृहतां सम्बन्धिने **(एकादशकपालः)** एकादशसु कपालेषु संस्कृतः पाकः **(विश्वेभ्यः)** समस्तेभ्यः **(देवेभ्यः)** दिव्यगुणेभ्यो जनेभ्यः **(जागतेभ्यः)** जगतीबोधितेभ्यः **(सप्तदशेभ्यः)** एतत्सङ्ख्यया सङ्ख्यातेभ्यः **(वैरूपेभ्यः)** विविधस्वरूपेभ्यः **(द्वादशकपालः)** द्वादशसु कपालेषु संस्कृतः **(मित्रावरुणाभ्याम्)** प्राणोदानाभ्याम् **(आनुष्टुभाभ्याम्) (एकविंशाभ्याम्)** एतत्सङ्ख्यायुक्ताभ्याम् **(वैराजाभ्याम्)** विराट्छन्दोज्ञापिताभ्याम् **(पयस्या)** पयसि जले कुशलौ **(बृहस्पतये)** बृहतां पालकाय **(पाङ्क्ताय)** पङ्क्तिषु साधवे **(त्रिणवाय)** त्रिभिः कर्मोपासनाज्ञानैः स्तुताय **(शाक्वराय)** शक्तिजाय **(चरुः)** पाकः **(सवित्रे)** ऐश्वर्योत्पादकाय **(औष्णिहाय)** उष्णिग्बोधिताय **(त्रयस्त्रिंशाय)** एतत्सङ्ख्याताय **(रैवताय)** धनसम्बन्धिने **(द्वादशकपालः)** द्वादशसु कपालेषु संस्कृतः **(प्राजापत्यः)** प्रजापतिदेवताकः **(चरुः)** स्थालीपाकः **(अदित्यै)** अखण्डिताया अन्तरक्षिरूपायै **(विष्णुपत्न्यै)** विष्णुना व्यापकेन पालितायै **(चरुः)** पाकः **(अग्नये)** विद्युद्रूपाय **(वैश्वानराय)** विश्वेषु सर्वेषु नरेषु राजमानाय **(द्वादशकपालः) (अनुमत्यै)** यानुमन्यते तस्यै **(अष्टाकपालः)** अष्टसु कपालेषु संसाधितः॥६०॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! युष्माभिस्त्रिवृते राथन्तराय गायत्रायाग्नयेऽष्टाकपालः पञ्चदशाय त्रैष्टुभाय बार्हतायेन्द्रायैकादशकपालो विश्वेभ्यो जागतेभ्यो सप्तदशेभ्यो वैरूपेभ्यो देवेभ्यो द्वादशकपाल आनुष्टुभाभ्यामेकविंशाभ्यां वैराजाभ्यां मित्रावरुणाभ्यां पयस्या बृहस्पतये पाङ्क्ताय त्रिणवाय शाक्वराय चरुरौष्णिहाय त्रयस्त्रिंशाय रैवताय सवित्रे द्वादशकपालः प्राजापत्यश्चरुरदित्यै विष्णुपत्न्यै चरुर्वैश्वानरायाग्नये द्वादशकपालोनुमत्या अष्टाकपालश्च निर्मातव्यः॥६०॥

भावार्थः-येऽग्न्यादिप्रयोगायाष्टविधादीनि यन्त्राणि निर्मिमीरंस्ते सृष्टैर्व्यक्तैः पदार्थैरनेकानि कार्याणि साद्धुं शक्नुयुरिति॥६०॥

अस्मिन्नध्याये अग्निविद्वद्गृहप्राणापानाऽध्यापकोपदेशकवागश्वाग्नि विद्वत्प्रशंसनीय-पदार्थ-गृह-द्वार-रात्रि-दिन-शिल्पि-श्री-शस्त्रास्त्रसेनाज्ञानिरक्षासृष्ट्युपकारग्रहणविघ्ननिवारणशत्रुसेनापराजयस्वसेना-संगरक्षण-पशुगुण-यज्ञानां निरूपणादेतदर्थस्य पूर्वाऽध्यायोक्तोर्थेन सह संगतिरस्तीति बोध्यम्॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! तुम लोगों को चाहिए कि **(त्रिवृते)** सत्त्व, रज और तमोगुण इन तीन गुणों से युक्त **(राथन्तराय)** रथों अर्थात् जलयानों से समुद्रादि को तरने वाले **(गायत्राय)** गायत्री छन्द से जताये हुए **(अग्नये)** अग्नि के अर्थ **(अष्टाकपाल:)** आठ खपरों में संस्कार किया **(पञ्चदशाय)** पन्द्रहवें प्रकार के **(त्रैष्टुभाय)** त्रिष्टुप् छन्द से प्रख्यात **(बार्हताय)** बड़ों के साथ सम्बन्ध रखने वाले **(इन्द्राय)** ऐश्वर्य के लिए **(एकादशकपाल:)** ग्यारह खपरों में संस्कार किया पाक **(विश्वेभ्य:)** सब **(जागतेभ्य:)** जगती छन्द से जताये हुए **(सप्तदशेभ्य:)** सत्रहवें **(वैरूपेभ्य:)** विविध रूपों वाले **(देवेभ्य:)** दिव्य गुणयुक्त मनुष्यों के लिए **(द्वादशकपाल:)** बारह खपरों में संस्कार किया पाक **(आनुष्टुभाभ्याम्)** अनुष्टुप् छन्द से प्रकाशित हुए **(एकविंशाभ्याम्)** इक्कीसवें **(वैराजाभ्याम्)** विराट् छन्द से जताये हुए **(मित्रावरुणाभ्याम्)** प्राण और उदान के अर्थ **(पयस्या)** जलक्रिया में कुशल विद्वान् **(बृहस्पतये)** बड़ों के रक्षक **(पाङ्क्ताय)** पान्तों में श्रेष्ठ **(त्रिणवाय)** कर्म, उपासना और ज्ञानों से स्तुति किये **(शाक्वराय)** शक्ति से प्रगट हुए के लिए **(चरु:)** पाकविशेष **(औष्णिहाय)** उष्णिक् छन्द से जताये हुए **(त्रयस्त्रिंशाय)** तेंतीसवें **(रैवताय)** धन के सम्बन्धि **(सवित्रे)** ऐश्वर्य उत्पन्न करने हारे के लिए **(द्वादशकपाल:)** बारह खपरों में संस्कार किया **(प्राजापत्य:)** प्रजापति देवता वाला **(चरु:)** बटलोई में पका अन्न **(अदित्यै)** अखिण्डत **(विष्णुपत्न्यै)** विष्णु व्यापक ईश्वर से रक्षित अन्तरिक्ष रूप के लिए **(चरु:)** पाक **(वैश्वानराय)** सब मनुष्यों में प्रकाशमान **(अग्नये)** बिजुलीरूप अग्नि के लिए **(द्वादशकपाल:)** बारह खपरों में पका हुआ और **(अनुमत्यै)** पीछे मानने वाले के लिए **(अष्टाकपाल:)** आठ खपरों में सिद्ध किया पाक बनाना चाहिए॥६०॥

भावार्थ:-जो मनुष्य अग्नि आदि के प्रयुक्त करने के लिए आठ प्रकार आदि के यन्त्रों को बनावें, वे रचे हुए प्रसिद्ध पदार्थों से अनेक कार्यों को सिद्ध कर सकें॥६०॥

इस अध्याय में अग्नि, विद्वान्, घर, प्राण, अपान, अध्यापक, उपदेशक, वाणी, घोड़ा, अग्नि, विद्वान्, प्रशस्त पदार्थ, घर, द्वार, रात्रि, दिन, शिल्पी, शोभा, शस्त्र, अस्त्र, सेना, ज्ञानियों की रक्षा, सृष्टि से उपकार ग्रहण, विघ्ननिवारण, शत्रुसेना का पराजय, अपनी सेना का सङ्ग और रक्षा, पशुओं के गुण और यज्ञों का निरूपण होने से इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय में कहे अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए॥

इति श्रीमत्पदमहंसपरिव्राजकाचार्याणां परमविदुषां श्रीविरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण परमहंसपरिव्राजकाचार्य्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचिते संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां विभूषिते सुप्रमाणयुक्ते यजुर्वेदभाष्ये एकोनत्रिंशोऽध्यायः सम्पूर्णः॥ २९॥

॥ ओ३म् ॥

अथ त्रिंशोऽध्याय आरभ्यते

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव। यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व॥ यजु० ३०.३॥

देवेत्यस्य नारायण ऋषिः। सविता देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

तत्रादावीश्वरात् किं प्रार्थनीयमित्याह॥

अब तीसवें अध्याय का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में ईश्वर से क्या प्रार्थना करनी चाहिए, इस विषय को कहा है॥

देव॑ सवितः॒ प्र सु॑व य॒ज्ञं प्र सु॑व य॒ज्ञप॑तिं॒ भगा॑य।

दि॒व्यो ग॑न्ध॒र्वः के॑त॒पू केतं॑ नः पुनातु वा॒चस्पति॒र्वाचं॑ नः स्वदतु॥ १॥

देव॑। स॒वि॒त॒रिति॑ सवितः। प्र। सु॒व॒। य॒ज्ञम्। प्र। सु॒व॒। य॒ज्ञप॑तिमिति॑ य॒ज्ञऽप॑तिम्। भगा॑य। दि॒व्यः। ग॒न्ध॒र्वः। के॒त॒पूरिति॑ केत॒ऽपूः। केत॑म्। न॒ः। पु॒ना॒तु॒। वा॒चः। पतिः॑। वाच॑म्। न॒ः। स्व॒द॒तु॒॥ १॥

पदार्थः-(**देव**) दिव्यस्वरूप (**सवितः**) सकलैश्वर्ययुक्त जगदुत्पादक (**प्र**) प्रकर्षेण (**सुव**) संपादय (**यज्ञम्**) राजधर्माख्यम् (**प्र**) (**सुव**) उत्पादय (**यज्ञपतिम्**) यज्ञस्य राज्यस्य पालकम् (**भगाय**) ऐश्वर्ययुक्ताय धनाय। **भग इति धननामसु पठितम्॥** (निघ०२।१०) (**दिव्यः**) दिवि शुद्धस्वरूपे भवः (**गन्धर्वः**) यो गां पृथिवीं धरति सः (**केतपूः**) य केतं विज्ञानं पुनाति सः (**केतम्**) प्रज्ञानम्। **केत इति प्रज्ञानामसु पठितम्॥** (निघ०३।९) (**नः**) अस्माकम् (**पुनातु**) पवित्रयतु (**वाचस्पतिः**) वाण्याः पालकः (**वाचम्**) वाणीम् (**नः**) अस्माकम् (**स्वदतु**) आस्वादयतु॥१॥

अन्वयः-हे देव सवितर्जगदीश्वर! त्वं यो दिव्यो गन्धर्वः केतपू राजा नः केतं पुनातु यो वाचस्पतिर्नो वाचं स्वदतु, तं यज्ञपतिं भगाय प्रसुव यज्ञञ्च प्रसुव॥१॥

भावार्थः-यो विद्याशिक्षावर्द्धकः शुद्धगुणकर्मस्वभावो राज्यं पातुं यथायोग्यैश्वर्यवर्द्धको धार्मिकाणां पालकः परमेश्वरोपासकः सकलशुभगुणाढ्यो भवेत्, स एव राजा भवितुं योग्यो भवति॥१॥

पदार्थः-हे (**देव**) दिव्यस्वरूप (**सवितः**) समस्त ऐश्वर्य से युक्त और जगत् को उत्पन्न करने हारे जगदीश्वर! जो आप (**दिव्यः**) शुद्ध स्वरूप में हुआ (**गन्धर्वः**) पृथिवी को धारण करनेहारा (**केतपूः**) विज्ञान को पवित्र करने वाला राजा (**नः**) हमारी (**केतम्**) बुद्धि को (**पुनातु**) पवित्र करे और जो (**वाचः**) वाणी का (**पतिः**) रक्षक (**नः**) हमारी (**वाचम्**) वाणी को (**स्वदतु**) मीठी चिकनी

कोमल प्रिय करे, उस **(यज्ञपतिम्)** राज्य के रक्षक राजा को **(भगाय)** ऐश्वर्ययुक्त धन के लिए **(प्र, सुव)** उत्पन्न कीजिए और **(यज्ञम्)** राजधर्मरूप यज्ञ को भी **(प्र, सुव)** सिद्ध कीजिए॥१॥

भावार्थः-जो विद्या की शिक्षा को बढ़ाने वाला, शुद्ध-गुण-कर्म-स्वभावयुक्त, राज्य की रक्षा करने को यथायोग्य ऐश्वर्य को बढ़ाने हारा, धर्मात्माओं का रक्षक, परमेश्वर का उपासक और समस्त शुभ गुणों से युक्त हो, वही राजा होने के योग्य होता है॥१॥

तत्सवितुरित्यस्य नारायण ऋषिः। सविता देवता। निचृद् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

तत्स॑वि॒तुर्वरे॑ण्यं॒ भर्गो॑ दे॒वस्य॑ धीमहि।

धियो॒ यो नः॑ प्रचो॒दया॑त्॥२॥

तत्। स॒वि॒तुः। वरे॑ण्यम्। भर्गः॑। दे॒वस्य॑। धी॒म॒हि॒। धियः॑। यः। नः॒। प्र॒चो॒दया॒दिति॑ प्रऽचो॒दया॑त्॥२॥

पदार्थः-**(तत्)** **(सवितुः)** समग्रस्य जगदुत्पादकस्य सर्वैश्वर्यप्रदस्य **(वरेण्यम्)** वर्त्तुमर्हमत्युत्तमम् **(भर्गः)** भृज्जन्ति दुःखानि यस्मात् तत् **(देवस्य)** सुखप्रदातुः **(धीमहि)** धरेम **(धियः)** प्रज्ञाः कर्माणि वा **(यः)** **(नः)** अस्माकम् **(प्रचोदयात्)** प्रेरयेत्॥२॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यो नो धियः प्रचोदयात् तस्य सवितुर्देवस्य यद्वरेण्यं भर्गो यथा वयं धीमहि तथा तद्यूयमपि दधेध्वम्॥२॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा परमेश्वरो जीवानशुभाचरणान् निवर्त्य शुभाचरणे प्रवर्त्तयति, तथा राजापि कुर्यात्। यथा परमेश्वरे पितृभावं कुर्वन्ति, तथा राजन्यपि कुर्य्युर्यथा परमेश्वरो जीवेषु पुत्रभावमाचरति, तथा राजापि प्रजासु पुत्रभावमाचरेत्। यथा परमेश्वरः सर्वदोषक्लेशाऽन्यायेभ्यो निवृत्तोऽस्ति, तथैव राजापि भवेत्॥२॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! **(यः)** जो **(नः)** हमारी **(धियः)** बुद्धि वा कर्मों को **(प्रचोदयात्)** प्रेरणा करे, उस **(सवितुः)** समग्र जगत् के उत्पादक सब ऐश्वर्य तथा **(देवस्य)** सुख के देनेहारे ईश्वर के जो **(वरेण्यम्)** ग्रहण करने योग्य अत्युत्तम **(भर्गः)** जिस से दुःखों का नाश हो, उस शुद्ध स्वरूप को जैसे हम लोग **(धीमहि)** धारण करें, वैसे **(तत्)** उस ईश्वर के शुद्ध स्वरूप को तुम लोग भी धारण करो॥२॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपामलङ्कार है। जैसे परमेश्वर जीवों को अशुभाचरण से अलग कर शुभ आचरण में प्रवृत्त करता है, वैसे राजा भी करे। जैसे परमेश्वर में पितृभाव करते अर्थात् उस को पिता मानते हैं, वैसे राजा को भी मानें। जैसे परमेश्वर जीवों में पुत्रभाव का आचरण

करता है, वैसे राजा भी प्रजाओं में पुत्रवत् वर्त्ते। जैसे परमेश्वर सब दोष, क्लेश और अन्यायों से निवृत्त है, वैसे राजा भी होवे॥२॥

विश्वानीत्यस्य नारायण ऋषिः। सविता देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद्भद्रं तन्नऽआ सुव॥३॥

विश्वानि। देव। सवितः। दुरितानीति दुःऽइतानि। परा। सुव। यत्। भद्रम्। तत्। नः। आ। सुव॥३॥

पदार्थः-(**विश्वानि**) समग्राणि (**देव**) दिव्यगुणकर्मस्वभाव (**सवितः**) उत्तमगुणकर्मस्वभावेषु प्रेरक परमेश्वर! (**दुरितानि**) दुष्टाचरणानि दुःखानि वा (**परा**) दूरार्थे (**सुव**) गमय (**यत्**) (**भद्रम्**) भन्दनीयं धर्म्याचरणं सुखं वा (**तत्**) (**नः**) अस्मभ्यम् (**आ**) समन्तात् (**सुव**) जनय॥३॥

अन्वयः-हे देव सवितस्त्वमस्मद्विश्वानि दुरितानि परा सुव यद्भद्रं तन्न आ सुव॥३॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथोपासितो जगदीश्वरस्स्वभक्तान् दुष्टाचारान्निवर्त्य श्रेष्ठाचारे प्रवर्त्तयति, तथा राजाऽपि प्रजा अधर्मान्निवर्त्य धर्मे प्रवर्त्तयेत्, स्वयमपि तथा स्यात्॥३॥

पदार्थः-हे (**देव**) उत्तम गुणकर्मस्वभावयुक्त (**सवितः**) उत्तम गुण-कर्म-स्वभावों में प्रेरणा देने वाले परमेश्वर! आप हमारे (**विश्वानि**) सब (**दुरितानि**) दुष्ट आचरण वा दुःखों को (**परा, सुव**) दूर कीजिए और (**यत्**) जो (**भद्रम्**) कल्याणकारी धर्मयुक्त आचरण वा सुख है, (**तत्**) उस को (**नः**) हमारे लिए (**आ, सुव**) अच्छे प्रकार उत्पन्न कीजिए॥३॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे उपासना किया हुआ जगदीश्वर अपने भक्तों को दुष्ट आचरण से निवृत्त कर श्रेष्ठ आचरण में प्रवृत्त करता है, वैसे राजा भी अधर्म से प्रजाओं को निवृत्त कर धर्म में प्रवृत्त करे और आप भी वैसा होवे॥३॥

विभक्तारमित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। सविता देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

विभक्तारꣳ हवामहे वसोश्चित्रस्य राधसः। सवितारं नृचक्षसम्॥४॥

विभक्तारमिति विऽभक्तारम्। हवामहे। वसोः। चित्रस्य। राधसः। सवितारम्। नृचक्षसमिति नृऽचक्षसम्॥४॥

पदार्थः-(विभक्तारम्) विभाजयितारम् **(हवामहे)** प्रशंसेम **(वसोः)** सुखानां वासहेतोः **(चित्रस्य)** अद्भुतस्य **(राधसः)** धनस्य **(सवितारम्)** जनयितारम् **(नृचक्षसम्)** नृणां द्रष्टारं परमात्मानम्॥४॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यं वसोश्चित्रस्य राधसो विभक्तारं सवितारं नृचक्षसं वयं हवामहे, तं यूयमप्याह्वयत॥४॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे राजन्! यथा परमेश्वरः स्वस्वकर्मानुकूलं सर्वजीवेभ्यः फलं ददाति, तथा भवानपि ददातु। यथा जगदीश्वरो यादृशं यस्य कर्म पापं पुण्यं यावच्चाऽस्ति, तावदेव तादृशं तस्मै ददाति, तथा त्वमपि। यस्य यावद्वस्तु यादृशं कर्म च तावत्तादृशं च तस्मै देहि। यथा परमेश्वरः पक्षपातं विहाय सर्वेषु जीवेषु वर्त्तते, तथा त्वमपि भव॥४॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जिस **(वसोः)** सुखों के निवास के हेतु **(चित्रस्य)** आश्चर्यस्वरूप **(राधसः)** धन का **(विभक्तारम्)** विभाग करने हारे **(सवितारम्)** सब के उत्पादक **(नृचक्षसम्)** सब मनुष्यों के अन्तर्यामि स्वरूप से सब कामों के देखनेहारे परमात्मा की हम लोग **(हवामहे)** प्रशंसा करें, उसकी तुम लोग भी प्रशंसा करो॥४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे राजन्! जैसे परमेश्वर अपने-अपने कर्मों के अनुकूल सब जीवों को फल देता है, वैसे आप भी देओ। जैसे जगदीश्वर जैसा जिस का पाप व पुण्यरूप जितना कर्म है, उतना वैसा फल उस के लिए देता, वैसे आप भी। जिसका जैसा वस्तु वा जितना कर्म है, उस को वैसा वा उतना फल दीजिए। जैसे परमेश्वर पक्षपात को छोड़ के सब जीवों में वर्त्तता है, वैसे आप भी हूजिए॥४॥

ब्रह्मण इत्यस्य नारायण ऋषिः। परमेश्वरो देवता। स्वराडतिशक्वरी छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

ईश्वरवद्राज्ञापि कर्त्तव्यमित्याह॥

ईश्वर के तुल्य राजा को भी करना चाहिए, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ब्रह्म॑णे ब्राह्म॒णं क्ष॒त्राय॑ राज॒न्यं᳖ म॒रुद्भ्यो॒ वैश्यं॒ तप॑से॒ शू॒द्रं तम॑से॒ तस्क॑रं नार॒काय॑ वीर॒हणं॑ पा॒प्मने॑ क्ली॒बमा॑क्र॒याया॑ऽअयो॒गूं कामा॑य पुँश्च॒लूमति॑क्रुष्टाय माग॒धम्॥५॥

ब्रह्म॑णे। ब्रा॒ह्म॒णम्। क्ष॒त्राय॑। रा॒ज॒न्य᳖म्। म॒रुद्भ्य॒ इति॑ म॒रुद्ऽभ्यः॑। वैश्य॑म्। तप॑से। शू॒द्रम्। तम॑से। तस्क॑रम्। ना॒र॒काय॑। वी॒र॒हणा॑म्। वी॒र॒ह॒नमिति॑ वीर॒ऽहन॑म्। पा॒प्मने॑। क्ली॒बम्। आ॒क्र॒याया॒ इत्या॑ऽऽक्र॒यायै॑। अ॒यो॒गूम्। कामा॑य। पुं॒श्च॒लूम्। अति॑क्रुष्टा॒येत्यति॑ऽक्रुष्टाय। मा॒ग॒धम्॥५॥

पदार्थः-(ब्रह्मणे) वेदेश्वरविज्ञानप्रचाराय **(ब्राह्मणम्)** वेदेश्वरविदम् **(क्षत्राय)** राज्याय पालनाय वा **(राजन्यम्)** राजपुत्रम् **(मरुद्भ्यः)** पश्वादिभ्यः **(वैश्यम्)** विक्षु प्रजासु भवम् **(तपसे)**

सन्तापजन्याय सेवनाय **(शूद्रम्)** प्रीत्या सेवकं शुद्धिकरम् **(तमसे)** अन्धकाराय प्रवृत्तम् **(तस्करम्)** चोरम् **(नारकाय)** नरके दु:खबन्धने भवाय कारागाराय **(वीरहणम्)** यो वीरान् हन्ति तम् **(पाप्मने)** पापाचरणाय प्रवृत्तम् **(क्लीबम्)** नपुंसकम् **(आक्रयायै)** आक्रमन्ति प्राणिनो यस्यां तस्यै हिंसायै प्रवर्त्तमानम् **(अयोगूम्)** अयसा शस्त्रविशेषेण सह गन्तारम् **(कामाय)** विषयसेवनाय प्रवृत्ताम् **(पुंश्चलूम्)** पुंभि: सह चलितचित्तां व्यभिचारिणीम् **(अतिक्रुष्टाय)** अत्यन्तनिन्दनाय प्रवर्त्तकम् **(मागधम्)** नृशंसम्॥५॥

अन्वय:-हे परमेश्वर राजन्! वा त्वमत्र ब्रह्मणे ब्राह्मणं क्षत्राय राजन्यं मरुद्भ्यो वैश्यं तपसे शूद्रं सर्वतो जनय, तमसे तस्करं नारकाय वीरहणं पाप्मने क्लीबमाक्रयाया अयोगूं कामाय पुंश्चलूमतिक्रुष्टाय मागधञ्च दूरे यमय॥५॥

भावार्थ:-हे राजन्! यथा जगदीश्वरो जगति परोपकाराय पदार्थान् जनयति, दोषान् निवारयति, तथा त्वमिह राज्ये सज्जनानुत्कर्षय दुष्टान् नि:सारय दण्डय ताडय च, यत: शुभगुणानां प्रवृत्तिर्दुर्व्यसनानाञ्च निवृत्ति: स्यात्॥५॥

पदार्थ:-हे परमेश्वर वा राजन्! आप इस जगत् में **(ब्रह्मणे)** वेद और ईश्वर के ज्ञान के प्रचार के अर्थ **(ब्राह्मणम्)** वेद ईश्वर के जानने वाले को **(क्षत्राय)** राज्य की रक्षा के लिए **(राजन्यम्)** राजपूत को **(मरुद्भ्य:)** पशु आदि प्रजा के लिए **(वैश्यम्)** प्रजाओं में प्रसिद्ध जन को **(तपसे)** दु:ख से उत्पन्न होने वाले सेवन के अर्थ **(शूद्रम्)** प्रीति से सेवा करने तथा शुद्धि करनेहारे शूद्र को सब ओर से उत्पन्न कीजिए **(तमसे)** अन्धकार के लिए प्रवृत्त हुए **(तस्करम्)** चोर को **(नारकाय)** दु:ख बन्धन में हुए कारागार के लिए **(वीरहणम्)** वीरों को मारनेहारे जन को **(पाप्मने)** पापाचरण के लिए प्रवृत्त हुए **(क्लीबम्)** नपुंसक को **(आक्रयायै)** प्राणियों की जिसमें भागाभूगी होती, उस हिंसा के अर्थ प्रवृत्त **(अयोगूम्)** लोहे के हथियार विशेष के साथ चलनेहारे जन को **(कामाय)** विषय सेवन के लिए प्रवृत्त हुई **(पुंश्चलूम्)** पुरुषों के साथ जिसका चित्त चलायमान उस व्यभिचारिणी स्त्री को और **(अतिक्रुष्टाय)** अत्यन्त निन्दा करने के लिए प्रवृत्त हुए **(मागधम्)** भाट को दूर पहुंचाइये॥५॥

भावार्थ:-हे राजन्! जैसे जगदीश्वर जगत् में परोपकार के लिए पदार्थों को उत्पन्न करता और दोषों को निवृत्त करता है, वैसे आप राज्य में सज्जनों की उन्नति कीजिए, दुष्टों को निकालिए, दण्ड और ताड़ना भी दीजिए, जिससे शुभ गुणों की प्रवृत्ति और दुष्ट व्यसनों की निवृत्ति होवे॥५॥

नृत्तायेत्यस्य नारायण ऋषि:। परमेश्वरो देवता। निचृदष्टिश्छन्द:। मध्यम: स्वर:॥

पुना राजपुरुषै: किं कर्त्तव्यमित्याह॥

फिर राजपुरुषों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

नृत्ताय सूतं गीताय शैलूषं धर्माय सभाचरं नरिष्ठायै भीमलं नर्माय रेभꣳ हसाय कारिमानन्दाय स्त्रीषखं प्रमदे कुमारीपुत्रं मेधायै रथकारं धैर्य्याय तक्षाणम्॥६॥

नृत्ताय। सूतम्। गीताय। शैलूषम्। धर्माय। सभाचरमिति सभाऽचरम्। नरिष्ठायै। भीमलम्। नर्माय। रेभम्। हसाय। कारिम्। आनन्दायेत्यानन्दाय। स्त्रीषखम्। स्त्रीसखमिति स्त्रीऽसखम्। प्रमद इति प्रऽमदे। कुमारीपुत्रमिति कुमारीऽपुत्रम्। मेधायै। रथकारमिति रथऽकारम्। धैर्य्याय। तक्षाणम्॥६॥

पदार्थः-(नृत्ताय) नृत्याय **(सूतम्)** क्षत्रियाद् ब्राह्मण्यां जातम् **(गीताय)** गानाय **(शैलूषम्)** गायनम् **(धर्माय)** धर्मरक्षणाय **(सभाचरम्)** यः सभायां चरति तम् **(नरिष्ठायै)** अतिशयिता दुष्टा नराः सन्ति यस्यां तस्यै प्रवृत्तम् **(भीमलम्)** यो भीमान् भयङ्करान् लात्याददाति तम् **(नर्माय)** कोमलत्वाय **(रेभम्)** स्तोतारम्। **रेभ इति स्तोतृनामसु पठितम्॥** (निघ०३।१६) **(हसाय)** हसनाय प्रवृत्तम् **(कारिम्)** उपहासकर्त्तारम् **(आनन्दाय)** **(स्त्रीषखम्)** स्त्रियां मित्रं पतिम् **(प्रमदे)** प्रमादाय प्रवृत्तम् **(कुमारीपुत्रम्)** विवाहात् पूर्वं व्यभिचारेणोत्पन्नम् **(मेधायै)** प्रज्ञायै **(रथकारम्)** विमानदिरचकं शिल्पिनम् **(धैर्याय)** **(तक्षाणम्)** तनूकर्त्तारम्॥६॥

अन्वयः-हे जगदीश्वर राजन् वा! त्वं नृत्ताय सूतं गीताय शैलूषं धर्माय सभाचरं नर्माय रेभमानन्दाय स्त्रीषखं मेधायै रथकारं धैर्याय तक्षाणमासुव, नरिष्ठायै भीमलं हसाय कारिं प्रमदे कुमारीपुत्रं परासुव॥६॥

भावार्थः-राजपुरुषैः परमेश्वरोपदेशेन राजाज्ञया च सर्वे श्रेष्ठा धार्मिका जना उत्साहनीया हास्यभयप्रदा निवारणीया अनेकाः सभाः निर्माय सर्वा व्यवस्थाः शिल्पविद्योन्नतिश्च कार्य्या॥६॥

पदार्थः-हे जगदीश्वर! वा राजन्! आप **(नृत्ताय)** नाचने के लिए **(सूतम्)** क्षत्रिय से ब्राह्मणी में उत्पन्न हुए सूत को **(गीताय)** गाने के अर्थ **(शैलूषम्)** गाने हारे नट को **(धर्माय)** धर्म की रक्षा के लिए **(सभाचरम्)** सभा में विचरने हारे सभापति को **(नर्माय)** कोमलता के अर्थ **(रेभम्)** स्तुति करनेहारे को **(आनन्दाय)** आनन्द भोगने के अर्थ **(स्त्रीषखम्)** स्त्री से मित्रता रखनेवाले पति को **(मेधायै)** बुद्धि के लिए **(रथकारम्)** विमानादि को रचनेहारे कारीगर को **(धैर्याय)** धीरज के लिए **(तक्षाणम्)** महीन काम करनेवाले बढ़ई को उत्पन्न कीजिए **(नरिष्ठायै)** अति दुष्ट नरों की गोष्ठी के लिए प्रवृत्त हुए **(भीमलम्)** भयंकर विषयों को ग्रहण करने वाले को **(हसाय)** हंसने के अर्थ प्रवृत्त हुए **(कारिम्)** उपहासकर्त्ता को और **(प्रमदे)** प्रमाद के लिए प्रवृत्त हुए **(कुमारीपुत्रम्)** विवाह से पहिले व्यभिचार से उत्पन्न हुए को दूर कर दीजिए॥६॥

भावार्थः-राजपुरुषों को चाहिए कि परमेश्वर के उपदेश और राजा की आज्ञा से सब श्रेष्ठ धर्मात्मा जनों को उत्साह दें, हंसी करने और भय देने वालों को निवृत्त करें, अनेक सभाओं को बना के सब व्यवस्था और शिल्पविद्या की उन्नति किया करें॥६॥

तपस इत्यस्य नारायण ऋषिः। विद्वांसो देवताः। निचृदष्टिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

तप॑से कौला॒लं मा॒यायै॑ क॒र्मार॑ᳬ रू॒पाय॑ मणिका॒रᳬ शु॒भे व॒पᳬ श॑र॒व्या॒याऽइषुका॒रᳬ हे॒त्यै ध॑नुष्का॒रं कर्म॑णे ज्याका॒रं दि॒ष्टाय॑ रज्जुस॒र्जं मृ॒त्यवे॑ मृगयु॒मन्त॑काय श्व॒निन॑म्॥७॥

तप॑से। कौ॒ला॒लम्। मा॒यायै॑। क॒र्मार॑म्। रू॒पाय॑। म॒णि॒का॒रमिति॑ मणिऽका॒रम्। शु॒भे। व॒पम्। श॒र॒व्या॒यै। इ॒षु॒का॒रमिती॑षुऽका॒रम्। हे॒त्यै। ध॒नु॒ष्का॒रम्। ध॒नुः॒का॒रमिति॑ धनुःऽका॒रम्। कर्म॑णे। ज्या॒का॒रमिति॑ ज्याऽका॒रम्। दि॒ष्टाय॑। र॒ज्जु॒स॒र्जमिति॑ रज्जुऽस॒र्जम्। मृ॒त्यवे॑। मृ॒ग॒युमिति॑ मृग॒ऽयुम्। अन्त॑काय। श्व॒नि॒नमिति॑ श्व॒ऽनिन॑म्॥७॥

पदार्थः-**(तपसे)** तपनाय **(कौलालम्)** कुलालपुत्रम् **(मायायै)** प्रज्ञावृद्धये। **मायेति प्रज्ञानामसु पठितम्॥** (निघ०३।९) **(कर्मारम्)** यः कर्माण्यलंकरोति तम् **(रूपाय)** सुरूपनिर्मापकाय **(मणिकारम्)** यो मणीन् करोति तम् **(शुभे)** शुभाचरणाय **(वपम्)** यो वपति क्षेत्राणि कृषीवल इव विद्यादिशुभान् गुणाँस्तम् **(शरव्यायै)** शराणां निर्माणाय **(इषुकारम्)** य इषून् बाणान् करोति तम् **(हेत्यै)** वज्रादिशस्त्रनिर्माणाय **(धनुष्कारम्)** यो धनुरादीनि करोति तम् **(कर्मणे)** क्रियासिद्धये **(ज्याकारम्)** यो ज्यां प्रत्यञ्चां करोति तम् **(दिष्टाय)** दिशत्यतिसृजति येन तस्मै **(रज्जुसर्जम्)** यो रज्जूः सृजति तम् **(मृत्यवे)** मृत्युकरणाय प्रवृत्तम् **(मृगयुम्)** य आत्मानो मृगान् हन्तुमिच्छति तं व्याधम् **(अन्तकाय)** यो अन्तं करोति तस्मै हितकरम् **(श्वनिनम्)** बहुश्वपालम्॥७॥

अन्वयः-हे जगदीश्वर नरेश वा! त्वं तपसे कौलालं, मायायै कर्मारं, रूपाय मणिकारं, शुभे वपं, शरव्यायै इषुकारं, हेत्यै धनुष्कारं, कर्मणे ज्याकारं, दुष्टाय रज्जुसर्जमासुव। मृत्यवे मृगयुमन्तकाय श्वनिनं परासुव॥७॥

भावार्थः-राजपुरुषैर्यथा परमेश्वरेण सृष्टौ रचनाविशेषा दर्शितास्तथा शिल्पविद्यया सृष्टिदृष्टान्तेन च रचनाविशेषाः कर्त्तव्याः। हिंसकाः श्वपालिनश्चाण्डालादयो दूरे निवासनीयाः॥७॥

पदार्थः-हे जगदीश्वर वा राजन्! आप **(तपसे)** वर्त्तन पकाने के ताप को झेलने के अर्थ **(कौलालम्)** कुम्हार के पुत्र को **(मायायै)** बुद्धि बढ़ाने के लिए **(कर्मारम्)** उत्तम शोभित काम करनेहारे को **(रूपाय)** सुन्दर स्वरूप बनाने के लिए **(मणिकारम्)** मणि बनाने वाले को **(शुभे)** शुभ आचरण के अर्थ **(वपम्)** जैसे किसान खेत को वैसे विद्यादि शुभ गुणों के बोने वाले को

(शरव्यायै) बाणों के बनाने के लिए **(इषुकारम्)** बाणकर्त्ता को **(हेत्यै)** वज्र आदि हथियार बनाने के अर्थ **(धनुष्कारम्)** धनुष् आदि के कर्त्ता को **(कर्मणे)** क्रियासिद्धि के लिए **(ज्याकारम्)** प्रत्यञ्चा के कर्त्ता को **(दिष्टाय)** और जिस से अतिरचना हो उस के लिए **(रज्जुसर्जम्)** रज्जु बनाने वाले को उत्पन्न कीजिए और **(मृत्यवे)** मृत्यु करने को प्रवृत्त हुए **(मृगयुम्)** व्याध को तथा **(अन्तकाय)** अन्त करनेवाले के हितकारी **(श्वनिनम्)** बहुत कुत्ते पालने वाले को अलग बसाइये॥७॥

भावार्थः-राजपुरुषों को चाहिए कि जैसे परमेश्वर ने सृष्टि में रचनाविशेष दिखाये हैं, वैसे शिल्पविद्या से और सृष्टि के दृष्टान्त से विशेष रचना किया करें और हिंसक तथा कुत्तों के पालने वाले चण्डालादि को दूर बसावें॥७॥

नदीभ्य इत्यस्य नारायण ऋषिः। विद्वांसो देवताः। कृतिश्छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

नदीभ्यः पौञ्जिष्ठमृक्षीकाभ्यो नैषादं पुरुषव्याघ्राय दुर्मदं गन्धर्वाप्सरोभ्यो व्रात्यं प्रयुग्भ्यऽ उन्मत्तꣳ सर्पदेवजनेभ्योऽप्रतिपदमयेभ्यः कितवमीर्यतायाऽअकितवं पिशाचेभ्यो विदलकारीं यातुधानेभ्यः कण्टकीकारीम्॥८॥

नदीभ्यः। पौञ्जिष्ठम्। ऋक्षीकाभ्यः। नैषादम्। नैसादमिति नैऽसादम्। पुरुषव्याघ्रायेति पुरुषऽव्याघ्राय। दुर्मदमिति दुःऽमदम्। गन्धर्वाप्सरोभ्य इति गन्धर्वाप्सरःऽसरःऽभ्यः। व्रात्यम्। प्रयुग्भ्य इति प्रयुक्ऽभ्यः। उन्मत्तमित्युत्ऽमत्तम्। सर्पदेवजनेभ्य इति सर्पऽदेवजनेभ्यः। अप्रतिपदमित्यप्रतिऽपदम्। अयेभ्यः। कितवम्। ईर्य्यतायै। अकितवम्। पिशाचेभ्यः। विदलकारीमिति विदलऽकारीम्। यातुधानेभ्य इति यातुऽधानेभ्यः। कण्टकीकारीमिति कण्टकीऽकारीम्॥८॥

पदार्थः-**(नदीभ्यः)** सरिद्विनाशाय प्रवृत्तम् **(पौञ्जिष्ठम्)** पुक्कसम् **(ऋक्षीकाभ्यः)** या ऋक्षा गतीः कुर्वन्ति ताभ्यः प्रवृत्तम् **(नैषादम्)** निषादस्य पुत्रम् **(पुरुषव्याघ्राय)** व्याघ्र इव पुरुषस्तस्मै हितम् **(दुर्मदम्)** दुर्गतो दुष्टो मदोऽभिमानं यस्य तम् **(गन्धर्वाप्सरोभ्यः)** गन्धर्वाश्चाप्सरसश्च ताभ्यः प्रवृत्तम् **(व्रात्यम्)** असंस्कृतम् **(प्रयुग्भ्यः)** ये प्रयुञ्जते तेभ्यः प्रवृत्तम् **(उन्मत्तम्)** उन्मादरोगिणम् **(सर्पदेवजनेभ्यः)** सर्पाश्च देवजनाश्च तेभ्यो **(अप्रतिपदम्)** अनिश्चितबुद्धिम् **(अयेभ्यः)** य अय्यन्ते प्राप्यन्ते पदार्थास्तेभ्यः प्रवृत्तम् **(कितवम्)** द्यूतकारिणम् **(ईर्य्यतायै)** कम्पनाय प्रवृत्तम् **(अकितवम्)** अद्यूतकारिणम् **(पिशाचेभ्यः)** पिशिता नष्टाऽऽशा येषां ते पिशाचाः अथवा पिशितमवयवीभूतं सरक्तं वा मांसमाचामन्ति भक्षयन्तीति पिशाचाः। उभयथा **पृषोदरादित्वात्** [अ०६.३.१०९] सिद्धिः।

(विदलकारीम्) या विगतान् दलान् करोति ताम् **(यातुधानेभ्यः)** यान्ति येषु ते यातवो मार्गास्तेभ्यो धनं येषान्तेभ्यः प्रवृत्तम् **(कण्टकीकारीम्)** या कण्टकीं करोति ताम्॥८॥

अन्वयः-हे जगदीश्वर नृप वा! त्वं नदीभ्यः पौञ्जिष्ठमृक्षीकाभ्यो नैषादं पुरुषव्याघ्राय दुर्मदं गन्धर्वाप्सरोभ्यो व्रात्यं प्रयुग्भ्य उन्मत्तं सर्पदेवजनेभ्योऽप्रतिपदमयेभ्यः कितवमीर्य्यताया अकितवं पिशाचेभ्यो विदलकारीं यातुधानेभ्यः कण्टकीकारीं परासुव॥८॥

भावार्थः-हे राजन्! यथा परमेश्वरो दुष्टेभ्यो महात्मनो दूरे वासयति, दुष्टाः परमेश्वराद् दूरे वसन्ति, तथा त्वं दुष्टेभ्यो दूरे वस, दुष्टांश्च स्वतो दूरे वासय, सुशिक्षया साधून् सम्पादय वा॥८॥

पदार्थः-हे जगदीश्वर वा राजन्! आप **(नदीभ्यः)** नदियों को बिगाड़ने के लिए प्रवृत्त हुए **(पौञ्जिष्ठम्)** धानुक को **(ऋक्षीकाभ्यः)** गमन करने वाली स्त्रियों के अर्थ प्रवृत्त हुए **(नैषादम्)** निषाद के पुत्र को **(पुरुषव्याघ्राय)** व्याघ्र के तुल्य हिंसक पुरुष के हितकारी **(दुर्मदम्)** दुष्ट अभिमानी को **(गन्धर्वाप्सरोभ्यः)** गाने-नाचने वाली स्त्रियों के लिए प्रवृत्त हुए **(व्रात्यम्)** संस्काररहित मनुष्य को **(प्रयुग्भ्यः)** प्रयोग करने वालों के अर्थ प्रवृत्त हुए **(उन्मत्तम्)** उन्माद रोग वाले को **(सर्पदेवजनेभ्यः)** सांप तथा मूर्खों के लिए हितकारी **(अप्रतिपदम्)** संशयात्मा को **(अयेभ्यः)** जो पदार्थ प्राप्त किये जाते उन के लिए प्रवृत्त **(कितवम्)** ज्वारी को **(ईर्य्यतायै)** कम्पन के लिए प्रवृत्त हुए **(अकितवम्)** जुआ न करनेहारे को **(पिशाचेभ्यः)** दुष्टाचार करने से जिन की आशा नष्ट हो गई वा रुधिरसहित कच्चा मांस खाने के लिए प्रवृत्त **(विदलकारीम्)** पृथक्-पृथक् टुकड़ों को करनेहारी को और **(यातुधानेभ्यः)** मार्गों से जिनके धन आता उस के लिए प्रवृत्त हुई **(कण्टकीकारीम्)** कांटें बोने वाली को पृथक् कीजिए॥८॥

भावार्थः-हे राजन्! जैसे परमेश्वर दुष्टों से महात्माओं को दूर बसाता और दुष्ट परमेश्वर से दूर बसते हैं, वैसे आप दुष्टों से दूर बसो और अपने से दुष्टों को दूर बसाइये वा सुशिक्षा से श्रेष्ठ कीजिए॥८॥

सन्धय इत्यस्य नारायण ऋषिः। विद्वान् देवता। भुरिगत्यष्टिश्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

सन्धये जारं गेहायोपपतिमार्त्यै परिवित्तं निर्ऋत्यै परिविविदानमराद्ध्याऽ एदिधिषुः पतिं निष्कृत्यै पेशस्कारीꣳ संज्ञानाय स्मरकारीं प्रकामोद्यायोपसदं वर्णायानुरुधं बलायोपदाम्॥ ९॥

सन्धय इति सम्ऽधये। जारम्। गेहाय। उपपतिमित्युपऽपतिम्। आर्त्याऽऽइत्याऽर्ऋत्यै। परिवित्तमिति परिऽवित्तम्। निर्ऋत्या इति निःऽर्ऋत्यै। परिविविदानमिति परिऽविविदानम्। अराध्यै। एदिधिषुःपतिमित्येदिधिषुःऽ पतिम्। निष्कृत्यै। निःकृत्या इति निःकृत्यै। पेशस्कारीम्। पेशःकारीमिति पेशःकारीम्। संज्ञानायेति सम्ऽज्ञानाय। स्मरकारीमिति स्मरऽकारीम्। प्रकामोद्यायेति प्रकामऽउद्याय। उपसदमित्युपऽसदम्। वर्णाय। अनुरुधमित्यनुऽरुधम्। बलाय। उपदामित्युपऽदाम्॥९॥

पदार्थः-(**सन्धये**) परस्त्रीसमागमनाय प्रवर्त्तमानम् (**जारम्**) व्यभिचारिणम् (**गेहाय**) गृहपत्नीसङ्गमाय प्रवृत्तम् (**उपपतिम्**) यः पत्युः समीपे वर्त्तते तम् (**आर्त्यै**) कामपीडायै प्रवृत्तम् (**परिवित्तम्**) कृतविवाहे कनिष्ठे बन्धावविवाहितं ज्येष्ठम् (**निर्ऋत्यै**) पृथिव्यै प्रवृत्तम्। **निर्ऋतिरिति पृथिवीनामसु पठितम्॥** (निघ०।१।१) (**परिविविदानम्**) अप्राप्तदाये ज्येष्ठे प्राप्तदायं कनिष्ठम् (**अराध्यै**) अविद्यमानसंसिद्धये प्रवृत्तम् (**एदिधिषुःपतिम्**) अकृतविवाहायां ज्येष्ठायां पुत्र्यामूढा कनिष्ठा तस्याः पतिम्। (**निष्कृत्यै**) प्रायश्चित्ताय प्रवर्त्तमानम् (**पेशस्कारीम्**) रूपकर्त्रीम् (**सञ्ज्ञानाय**) सम्यक् ज्ञानं कामप्रबोधं तस्मै प्रवृत्ताम् (**स्मरकारीम्**) या स्मरं कामं करोति तां दूतिकाम् (**प्रकामोद्याय**) यः प्रकृष्टैः कामैरुद्यतस्तस्मै (**उपसदम्**) यः समीपे सीदति तम् (**वर्णाय**) स्वीकरणाय प्रवृत्तम् (**अनुरुधम्**) योऽनुरुणद्धि तम् (**बलाय**) बलवृद्धये (**उपदाम्**) उप समीपे दीयते ताम्॥९॥

अन्वयः-हे जगदीश्वर सभेश राजन् वा! त्वं सन्धये जारं गेहायोपपतिमार्त्यै परिवित्तं निर्ऋत्यै परिविविदानमराध्यै एदिधिषुःपतिं निष्कृत्यै पेशस्कारीं सञ्ज्ञानाय स्मरकारीं प्रकामोद्यायोपसदं वर्णायानुरुधं बलायोपदां परासुव॥९॥

भावार्थः-हे राजन्! यथा परमेश्वरो जारादीन् दुष्टान् दण्डयति, तथा त्वमेतान् दण्डय। यथेश्वरः पापत्यागिनोऽनुगृह्णाति तथा त्वं धार्मिकाननुगृहाण॥९॥

पदार्थः-हे जगदीश्वर वा सभापति राजन्! आप (**सन्धये**) परस्त्रीगमन के लिए प्रवृत्त (**जारम्**) व्यभिचारी को (**गेहाय**) गृहपत्नी के संग के लिए प्रवृत्त हुए (**उपपतिम्**) पति की विद्यमानता में दूसरे व्यभिचारी पति को (**आर्त्यै**) कामपीड़ा के लिए प्रवृत्त हुए (**परिवित्तम्**) छोटे भाई का विवाह होने में बिना विवाहे ज्येष्ठ भाई को (**निर्ऋत्यै**) पृथिवी के लिए प्रवृत्त हुए (**परिविविदानम्**) ज्येष्ठ भाई के दाय को न प्राप्त होने में दाय को प्राप्त हुए हुए छोटे भाई को (**अराध्यै**) अविद्यमान पदार्थ को सिद्ध करने के लिए प्रवृत्त हुए (**एदिधिषुःपतिम्**) ज्येष्ठ पुत्री के विवाह के पहिले विवाहित हुई छोटी पुत्री के पति को (**निष्कृत्यै**) प्रायश्चित के लिए प्रवृत्त हुई (**पेशस्कारीम्**) शृङ्गार विशेष से रूप करनेहारी व्यभिचारिणी को (**सम्, ज्ञानाय**) उत्तम कामदेव को जगाने के अर्थ प्रवृत्त हुई (**स्मरकारीम्**) कामदेव को चेतन कराने वाली दूती को (**प्रकामोद्याय**) उत्कृष्ट कामों से उद्यत हुए के लिए (**उपसदम्**) साथी को (**वर्णाय**) स्वीकार के लिए प्रवृत्त हुए

(अनुरुधम्) पीछे से रोकने वाले को **(बलाय)** बल बढ़ाने के अर्थ **(उपदाम्)** नजर भेंट वा घूंस को पृथक् कीजिए॥९॥

भावार्थः-हे राजन्! जैसे परमेश्वर जार आदि दुष्टजनों को दण्ड देता, वैसे आप भी इन को दण्ड दीजिए और ईश्वर पाप छोड़ने वालों पर कृपा करता है, वैसे आप धार्मिक जनों पर अनुग्रह किया कीजिए॥९॥

उत्सादेभ्य इत्यस्य नारायण ऋषिः। विद्वान् देवता। भुरिगत्यष्टिश्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उत्सादेभ्यः कुब्जं प्रमुदे वामनं द्वार्भ्यः स्रामꣳ स्वप्नायान्धमधर्माय बधिरं पवित्राय भिषजं प्रज्ञानाय नक्षत्रदर्शमाशिक्षायै प्रश्निनमुपशिक्षायाऽअभिप्रश्निनं मर्यादायै प्रश्नविवाकम्॥ १०॥

उत्सादेभ्य इत्युत्ऽसादेभ्यः। कुब्जम्। प्रमुद इति प्रऽमुदे। वामनम्। द्वार्भ्य इति द्वाःऽभ्यः। स्रामम्। स्वप्नाय। अन्धम्। अधर्माय। बधिरम्। पवित्राय। भिषजम्। प्रज्ञानायेति प्रऽज्ञानाय। नक्षत्रदर्शमिति नक्षत्रऽदर्शम्। आशिक्षाया इत्याऽशिक्षायै। प्रश्निनम्। उपशिक्षाया इत्युपऽशिक्षायै। अभिप्रश्निनमित्यभिऽप्रश्निनम्। मर्यादायै। प्रश्नविवाकमिति प्रश्नऽविवाकम्॥ १०॥

पदार्थः-**(उत्सादेभ्यः)** नाशेभ्यः प्रवृत्तम् **(कुब्जम्)** वक्राङ्गम् **(प्रमुदे)** प्रकृष्टानन्दाय **(वामनम्)** ह्रस्वाङ्गम् **(द्वार्भ्यः)** सवर्णेभ्य आच्छादनेभ्यः प्रवृत्तम् **(स्रामम्)** सततं प्रस्रवितजलनेत्रम् **(स्वप्नाय)** निद्रायै **(अन्धम्)** **(अधर्माय)** धर्माचरणरहिताय **(बधिरम्)** श्रोत्रविकलम् **(पवित्राय)** रोगनिवारणेन शुद्धिकरणाय **(भिषजम्)** वैद्यम् **(प्रज्ञानाय)** प्रकृष्टज्ञानवर्धनाय **(नक्षत्रदर्शम्)** यो नक्षत्राणि पश्यत्येतैर्दर्शयति वा तम् **(आशिक्षायै)** समन्ताद् विद्योपादानाय **(प्रश्निनम्)** प्रशस्ताः प्रश्ना विद्यन्ते यस्य **(उपशिक्षायै)** उपवेदादिविद्योपादानाय **(अभिप्रश्निनम्)** अभितः बहवः प्रश्ना विद्यन्ते यस्य तम् **(मर्यादायै)** न्यायाऽन्यायव्यवस्थायै **(प्रश्नविवाकम्)** यः प्रश्नान् विवेचयति तम्॥१०॥

अन्वयः-हे परमेश्वर राजन् वा! त्वमुत्सादेभ्यः कुब्जं प्रमुदे वामनं द्वार्भ्यः स्रामं स्वप्नायाऽन्धमधर्माय बधिरं परासुव। पवित्राय भिषजं प्रज्ञानाय नक्षत्रदर्शमाशिक्षायै प्रश्निनमुपशिक्षाया अभिप्रश्निनं मर्यादायै प्रश्नविवाकमासुव॥१०॥

भावार्थः-हे राजन्! यथेश्वरः पापाचरणफलप्रदानेन कुब्जवामनस्रवितजलनेत्रान्धबधिरान् मनुष्यादीन् करोति, भिषग्ज्योतिर्विदध्यापकपरीक्षकप्रश्नोत्तरविवेचकेभ्यः श्रेष्ठकर्मफलदानेन पवित्रता

प्रज्ञाविद्याग्रहणध्यापन-परीक्षाप्रश्नोत्तरकरणसामर्थ्यञ्च ददाति, तथैव त्वं येन येनाङ्गेन नरा विचेष्टन्ते, तस्य तस्याङ्गस्योपरि दण्डनिपातनेन वैद्यादीनां प्रतिष्ठाकरणेन च राजधर्मं सततमुन्नय॥१०॥

पदार्थः-हे परमेश्वर वा राजन्! आप **(उत्सादेभ्यः)** नाश करने को प्रवृत्त हुए **(कुब्जम्)** कुबड़े को **(प्रमुदे)** प्रबल कामादि के आनन्द के लिए **(वामनम्)** छोटे मनुष्य को **(द्वार्भ्यः)** आच्छादन के अर्थ **(स्रामम्)** जिस के नेत्रों से निरन्तर जल निकले उस को **(स्वप्नाय)** सोने के लिए **(अन्धम्)** अन्धे को और **(अधर्माय)** धर्माचरण से रहित के लिए **(बधिरम्)** बहिरे को पृथक् कीजिए और **(पवित्राय)** रोग की निवृत्ति करने के अर्थ **(भिषजम्)** वैद्य को **(प्रज्ञानाय)** उत्तम ज्ञान बढ़ाने के अर्थ **(नक्षत्रदर्शम्)** नक्षत्रों को देखने वा इनसे उत्तम विषयों को दिखानेहारे गणितज्ञ ज्योतिषी को **(आशिक्षायै)** अच्छे प्रकार विद्या ग्रहण के लिए **(प्रश्निनम्)** प्रशंसित प्रश्नकर्त्ता को **(उपशिक्षायै)** उपवेदादि विद्या के ग्रहण के लिए **(अभि, प्रश्निनम्)** सब ओर से बहुत प्रश्न करने वाले को और **(मर्यादायै)** न्याय-अन्याय की व्यवस्था के लिए **(प्रश्नविवाकम्)** प्रश्नों के विवेचन कर उत्तर देने वाले को उत्पन्न कीजिए॥१०॥

भावार्थः-हे राजन्! जैसे ईश्वर पापाचरण के फल देने से लूले, लंगड़े, बौने, चिपड़े, अंधे, बहिरे मनुष्यादि को करता और वैद्य, ज्योतिषी, अध्यापक, परीक्षक तथा प्रश्नोत्तरों के विवेचकों के अर्थ श्रेष्ठ कर्मों के फल देने से पवित्रता, बुद्धि, विद्या के ग्रहण, पढ़ने, परीक्षा लेने और प्रश्नोत्तर करने का सामर्थ्य देता है, वैसे ही आप भी जिस-जिस अंग से मनुष्य विरुद्ध करते हैं, उस-उस अंग पर दण्ड मारने और वैद्यादि की प्रतिष्ठा करने से राजधर्म की निरन्तर उन्नति कीजिए॥१०॥

अर्मेभ्य इत्यस्य नारायण ऋषिः। विद्वान् देवता। स्वराडतिशक्वरी छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अर्मेभ्यो ह॒स्ति॒पं ज॒वाया॑श्व॒पं पुष्ट्यै॒ गो॒पा॒लं वी॒र्या॒याविपा॒लं तेज॑सेऽजपा॒लमिरा॑यै की॒नाशं॑ की॒लाला॑य सुराका॒रं भ॒द्राय॑ गृहप॒ꣳ श्रेय॑से वित्त॒धमाध्य॑क्ष्यायानुक्ष॒त्तार॑म्॥ ११॥

अर्मे॑भ्यः। ह॒स्ति॒पमिति॑ ह॒स्ति॒ऽप॒म्। ज॒वाय॑। अ॒श्व॒पमित्य॑श्व॒ऽप॒म्। पुष्ट्यै॑। गो॒पा॒लमिति॑ गो॒ऽपा॒लम्। वी॒र्या॒य। अ॒वि॒पा॒लमित्य॑वि॒ऽपा॒लम्। तेज॑से। अ॒ज॒पा॒लमित्य॑ज॒ऽपा॒लम्। इरा॑यै। की॒नाश॑म्। की॒लाला॑य। सु॒रा॒का॒रमिति॑ सु॒रा॒ऽका॒रम्। भ॒द्राय॑। गृ॒ह॒पमिति॑ गृ॒ह॒ऽप॒म्। श्रेय॑से। वि॒त्त॒धमिति॑ वि॒त्त॒ऽध॒म्। आध्य॑क्ष्याये॒त्या॒धि॒ऽअ॒क्ष्याय। अ॒नु॒क्ष॒त्तार॒मित्य॑नु॒ऽक्ष॒त्तार॑म्॥ ११॥

पदार्थः-**(अर्मेभ्यः)** प्रापकेभ्यः **(हस्तिपम्)** हस्तीनां पालकम् **(जवाय)** वेगाय **(अश्वपम्)** अश्वानां रक्षकं शिक्षकम् **(पुष्ट्यै)** रक्षणय **(गोपालम्)** गवां पालकम् **(वीर्य्याय)** वीर्य्यवृद्धये

(अविपालम्) अवीनां रक्षकम् **(तेजसे)** तेजोवर्द्धनाय **(अजपालम्)** अजानां रक्षकम् **(इरायै)** अन्नादिवृद्धये। **इरेत्यन्ननामसु पठितम्॥** (निघ०२।७) **(कीनाशम्)** कृषीबलम् **(कीलालाय)** अन्नाय। **कीलाल इत्यन्ननामसु पठितम्॥** (निघ०२।७) **(सुराकारम्)** सोमनिष्पादकम् **(भद्राय)** कल्याणाय **(गृहपम्)** गृहाणां रक्षकम् **(श्रेयसे)** धर्म्मार्थकामप्राप्तये **(वित्तधम्)** यो वित्तं धनं दधाति तम् **(आध्यक्ष्याय)** अध्यक्षाणां भावाय **(अनुक्षत्तारम्)** सारथ्यनुकूलम्॥११॥

अन्वयः-हे ईश्वर राजन् वा! त्वमर्मेभ्यो हस्तिपं जवायाऽश्वपं पुष्ट्यै गोपालं वीर्य्यायाऽविपालं तेजसेऽजपालमिरायै कीनाशं कीलालाय सुराकारं भद्राय गृहपं श्रेयसे वित्तधमाध्यक्ष्यायाऽनुक्षत्तारमासुव॥११॥

भावार्थः-राजपुरुषैः सुशिक्षितान् हस्तिरक्षकादीन् सङ्गृह्यैतैर्बहवो व्यवहाराः साधनीयाः॥११॥

पदार्थः-हे ईश्वर वा राजन्! आप **(अर्मेभ्यः)** प्राप्ति कराने वालों के लिए **(हस्तिपम्)** हाथियों के रक्षक को **(जवाय)** वेग के अर्थ **(अश्वपम्)** घोड़ों के रक्षक शिक्षक को **(पुष्ट्यै)** पुष्टि रखने के लिए **(गोपालम्)** गौओं के पालनेहारे को **(वीर्य्याय)** वीर्य्य बढ़ाने के अर्थ **(अविपालम्)** गडरिये को **(तेजसे)** तेजवृद्धि के लिए **(अजपालम्)** बकरे-बकरियों को **(इरायै)** अन्नादि के बढ़ाने के अर्थ **(कीनाशम्)** खेतिहर को **(कीलालाय)** अन्न के लिए **(सुराकारम्)** सोम औषधियों से रस को निकालने वाले को और **(भद्राय)** कल्याण के अर्थ **(गृहपम्)** घरों के रक्षक को **(श्रेयसे)** धर्म, अर्थ और कामना की प्राप्ति के अर्थ **(वित्तधम्)** धन धारण करनेवालों को और **(आध्यक्ष्याय)** अध्यक्षों के स्वत्व के लिए **(अनुक्षत्तारम्)** अनुकूल सारथि को उत्पन्न कीजिए॥११॥

भावार्थः-राजपुरुषों को चाहिए कि अच्छे शिक्षित हाथी आदि को रखने वाले पुरुषों को ग्रहण कर हम से बहुत से व्यवहार सिद्ध करें॥११॥

भाया इत्यस्य नारायण ऋषिः। विद्वान् देवता। विराट् संकृतिश्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

भायै दार्वाहारं प्रभायाऽअग्न्येधं ब्रध्नस्य विष्टपायाभिषेक्तारं वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारं देवलोकाय पेशितारं मनुष्यलोकाय प्रकरितारꣳ सर्वेभ्यो लोकेभ्यऽउपसेक्तारमवऽऋत्यै वधायोपमन्थितारं मेधाय वासः पल्पूलीं प्रकामाय रजयित्रीम्॥१२॥

भायै। दार्वाहारमिति दारुऽआहारम्। प्रभाया इति प्रऽभायै। अग्न्येधमित्यग्निऽएधम्। ब्रध्नस्य। विष्टपाय। अभिषेक्तारम्। अभिसेक्तारमित्यभिऽसेक्तारम्। वर्षिष्ठाय। नाकाय। परिवेष्टारमिति परिऽवेष्टारम्। देवलोकायेति देवऽलोकाय। पेशितारम्। मनुष्यलोकायेति मनुष्यऽलोकाय। प्रकरितारमिति प्रऽकरितारम्। सर्वेभ्यः। लोकेभ्यः। उपसेक्तारमित्युपऽसेक्तारम्। अवऽऋत्या इत्यवऽऋत्यै। वधाय। उपमन्थितारमित्युपऽमन्थितारम्। मेधाय। वासःपल्पूलीमिति वासःऽपल्पूलीम्। प्रकामायेति प्रऽकामाय। रजयित्रीम्॥ १२॥

पदार्थः-(**भायै**) दीप्त्यै (**दार्वाहारम्**) यो दारूणि काष्ठान्याहरति तम् (**प्रभायै**) (**अग्न्येधम्**) अग्निश्चैधश्च तत् (**ब्रध्नस्य**) अश्वस्य। ब्रध्न इत्यश्वनामसु पठितम्॥ (**निघ० १।१४**) (**विष्टपाय**) विशन्ति यत्र तस्मै मार्गाय (**अभिषेक्तारम्**) अभिषेककर्त्तारम् (**वर्षिष्ठाय**) अतिवृद्धाय श्रेष्ठाय (**नाकाय**) अविद्यमानदुःखाय (**परिवेष्टारम्**) परिवेषणकर्त्तारम् (**देवलोकाय**) देवानां दर्शनाय (**पेशतारम्**) विद्यावयववेत्तारम् (**मनुष्यलोकाय**) मनुष्यत्वदर्शनाय (**प्रकरितारम्**) विक्षेप्तारम् (**सर्वेभ्यः**) (**लोकेभ्यः**) संहतेभ्यः (**उपसेक्तारम्**) उपसेचनकर्त्तारम् (**अवऋत्यै**) विरुद्धप्राप्तये (**वधाय**) हननाय प्रवृत्तम् (**उपमन्थितारम्**) समीपे विलोडितारम् (**मेधाय**) सङ्गमाय (**वासःपल्पूलीम्**) वाससां शुद्धिकरीम् (**प्रकामाय**) प्रकृष्टकामनासिद्धये (**रजयित्रीम्**) विविधरागकारिणीम्॥ १२॥

अन्वयः-हे जगदीश्वर राजन् वा! त्वं भायै दार्वाहारं प्रभाया अग्न्येधं ब्रध्नस्य विष्टपायाभिषेक्तारं वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारं देवलोकाय पेशितारं मनुष्यलोकाय प्रकरितारं सर्वेभ्यो लोकेभ्य उपसेक्तारं मेधाय वासःपल्पूलीं प्रकामाय रजयित्रीमासुव। अवऋत्यै वधायोपमन्थितारं परासुव॥ १२॥

भावार्थः-राजपुरुषादिमनुष्यैरीश्वरसृष्टेः सकाशात् सर्वाः सामग्रीर्ग्राह्यास्ताभिः शरीरबलं विद्यान्यायप्रकाशो महत्सुखं राज्याभिषेको दुःखविनाशो विद्वत्सङ्गो मनुष्यस्वभावो वस्त्रादिपवित्रता निष्पादनीया विरोधश्च त्यक्तव्यः॥ १२॥

पदार्थः-हे जगदीश्वर वा राजन्! आप (**भायै**) दीप्ति के लिए (**दार्वाहारम्**) काष्ठों को पहुँचाने वाले को (**प्रभायै**) कान्ति शोभा के लिए (**अग्न्येधम्**) अग्नि और इन्धन को (**ब्रध्नस्य**) घोड़े के (**विष्टपाय**) मार्ग के अर्थ (**अभिषेक्तारम्**) राजतिलक करने वाले को (**वर्षिष्ठाय**) अतिश्रेष्ठ (**नाकाय**) सब दुःखों से रहित सुखविशेष के लिए (**परिवेष्टारम्**) परोसने वाले को (**देवलोकाय**) विद्वानों के दर्शन के लिए (**पेशितारम्**) विद्या के अवयवों को जानने वाले को (**मनुष्यलोकाय**) मनुष्यपन के देखने को (**प्रकरितारम्**) विक्षेप करने वाले को (**सर्वेभ्यः**) सब (**लोकेभ्यः**) लोकों के लिए (**उपसेक्तारम्**) उपसेचन करनेवाले को (**मेधाय**) सङ्गम के अर्थ (**वासःपूल्पूलीम्**) वस्त्रों को शुद्ध करनेवाली औषधि को और (**प्रकामाय**) उत्तम कामना की सिद्धि के लिए (**रजयित्रीम्**) उत्तम

रङ्ग करने वाली औषधि को उत्पन्न प्रकट कीजिए और **(अवऋत्यै)** विरुद्ध प्राप्ति जिस में हो उस **(वधाय)** मारने के लिए प्रवृत्त हुए **(उपमन्थितारम्)** ताड़नादि से पीड़ा देने वाले दुष्ट को दूर कीजिए॥१२॥

भावार्थः-राजपुरुषादि मनुष्यों को चाहिए कि ईश्वररचित सृष्टि से सब सामग्रियों को ग्रहण करें, उन से शरीर का बल, विद्या और न्याय का प्रकाश, बड़ा सुख, राज्य का अभिषेक, दुःखों को विनाश, विद्वानों का संग, मनुष्यों का स्वभाव, वस्त्रादि की पवित्रता अच्छी सिद्ध करें और विरोध को छोड़ें॥१२॥

ऋतय इत्यस्य नारायण ऋषिः। ईश्वरो देवता। कृतिश्छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ऋतये स्तेनहृदयं वैरहत्याय पिशुनं विविक्त्यै क्षत्तारमौपद्रष्ट्र्यायानुक्षत्तारं बलायानुचरं भूम्ने परिष्कन्दं प्रियाय प्रियवादिनमरिष्ट्याऽअश्वसादꣳ स्वर्गाय लोकाय भागदुघं वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारम्॥ १३॥

ऋतये। स्तेनहृदयमिति स्तेनऽहृदयम्। वैरहत्यायेति वैरऽहत्याय। पिशुनम्। विविक्त्या इति विऽविक्त्यै। क्षत्तारम्। औपद्रष्ट्र्यायेत्यौपऽद्रष्ट्र्याय। अनुक्षत्तारमित्यनुऽक्षत्तारम्। बलाय। अनुचरमित्यनुऽचरम्। भूम्ने। परिष्कन्दम्। परिस्कन्दमिति परिऽस्कन्दम्। प्रियाय। प्रियवादिनमिति प्रियऽवादिनम्। अरिष्ट्यै। अश्वसादमित्यश्वऽसादम्। स्वर्गायेति स्वःऽगाय। लोकाय। भागदुघमिति भागऽदुघम् वर्षिष्ठाय। नाकाय। परिवेष्टारमिति परिऽवेष्टारम्॥१३॥

पदार्थः-**(ऋतये)** हिंसायै प्रवृत्तम् **(स्तेनहृदयम्)** चोरस्य हृदयमिव हृदयमस्य तम् **(वैरहत्याय)** वैरं हत्या च यस्मिन् कर्मणि प्रवर्त्तमानम् **(पिशुनम्)** विरुद्धसूचकम् **(विविक्त्यै)** विवेकाय **(क्षत्तारम्)** क्षतात्तारकं धर्मात्मानम् **(औपद्रष्ट्र्याय)** उपद्रष्टृत्वाय **(अनुक्षत्तारम्)** **(बलाय)** **(अनुचरम्)** **(भूम्ने)** बहुत्वाय **(परिष्कन्दम्)** सर्वतो रेतसः सेक्तारम् **(प्रियाय)** प्रीत्यै **(प्रियवादिनम्)** **(अरिष्ट्यै)** कुशलप्राप्तये **(अश्वसादम्)** योऽश्वान् सादयति तम् **(स्वर्गाय)** सुखविशेषाय **(लोकाय)** दर्शनाय सञ्ज्ञाताय वा **(भागदुघम्)** यो भागान् दोग्धि प्रपिपर्त्ति तम् **(वर्षिष्ठाय)** अतिशयेन वृद्धाय **(नाकाय)** अविद्यमानदुःखायाऽऽनन्दाय **(परिवेष्टारम्)** परितः सर्वतो व्याप्तविद्यं विद्वांसम्॥१३॥

अन्वयः-हे परमात्मन् हे राजन् वा! त्वमृतये स्तेनहृदयं वैरहत्याय पिशुनं परासुव। विविक्त्यै क्षतारमौपद्रष्ट्र्यायानुक्षत्तरं बलायाऽनुचरं भूम्ने परिष्कन्दं प्रियाय प्रियवादिनमरिष्ट्या अश्वसादं स्वर्गाय लोकाय भागदुघं वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारमासुव॥१३॥

भावार्थः-राजादिमनुष्यैर्दुष्टसङ्गं विहाय श्रेष्ठसङ्गं विधाय विवेकादीन्युत्पाद्य सुखयितव्यम्॥१३॥

पदार्थः-हे परमात्मा वा राजन्! आप **(ऋतये)** हिंसा करने के लिए प्रवृत्त हुए **(स्तेनहृदयम्)** चोर के तुल्य छली-कपटी को और **(वैरहत्याय)** वैर तथा हत्या जिस कर्म में हो उस के लिए प्रवृत्त हुए **(पिशुनम्)** निन्दक को पृथक् कीजिए। **(विविक्त्यै)** विवेक करने के लिए **(क्षत्तारम्)** ताड़ना से रक्षा करने हारे धर्मात्मा को **(औपद्रष्ट्र्याय)** उपद्रष्टा होने के लिए **(अनुक्षत्तारम्)** धर्मात्मा के अनुकूलवर्त्ती को **(बलाय)** बल के अर्थ **(अनुचरम्)** सेवक को **(भूम्ने)** सृष्टि की अधिकता के लिए **(परिष्कन्दम्)** सब ओर से वीर्य्य सींचने वाले को **(प्रियाय)** प्रीति के अर्थ **(प्रियवादिनम्)** प्रियवादी को **(अरिष्ट्यै)** कुशलप्राप्ति के लिए **(अश्वसादम्)** घोड़ों के चलाने वाले को **(स्वर्गाय)** सुखविशेष के **(लोकाय)** देखने वा संचित करने के लिए **(भागदुघम्)** अंशों को पूर्ण करने वाले को **(वर्षिष्ठाय)** अतिश्रेष्ठ **(नाकाय)** सब दुःखों से रहित आनन्द के लिए **(परिवेष्टारम्)** सब ओर से व्याप्त विद्या वाले विद्वान् को प्रकट कीजिए॥१३॥

भावार्थः-राजा आदि उत्तम मनुष्यों को चाहिए कि दुष्टों के सङ्ग को छोड़ श्रेष्ठों का सङ्ग कर विवेक आदि को उत्पन्न कर सुखी होवें॥१३॥

मन्यव इत्यस्य नारायण ऋषिः। राजेश्वरौ देवते। निचृदत्यष्टिश्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

म॒न्यवे॑ऽयस्ता॒पं क्रोधा॑य निस॒रं योगा॑य यो॒क्तार॒ꣳ शोका॑याऽभिस॒र्त्तारं॒ क्षेमा॑य विमो॒क्तार॑मुत्कूलनिकू॒लेभ्य॑स्त्रि॒ष्ठिनं॒ वपु॑षे मानस्कृ॒तꣳ शीला॑याञ्जनीका॒रीं निर्ऋ॑त्यै कोशका॒रीं य॒माया॒सूम्॥ १४॥

म॒न्यवे॑। अ॒य॒स्ता॒पमित्य॑यःऽता॒पम्। क्रोधा॑य। नि॒स॒रमिति॑ निऽस॒रम्। योगा॑य। यो॒क्ता॑रम्। शोका॑य। अ॒भि॒स॒र्त्ता॒रमित्य॑भिऽस॒र्त्तार॑म्। क्षेमा॑य। वि॒मोक्ता॒रमिति॑ विऽमोक्तार॑म्। उ॒त्कू॒ल॒नि॑कू॒लेभ्य इत्यु॑त्कूलऽनिकू॒लेभ्यः॑। त्रि॒ष्ठिन॑म्। त्रि॒स्थि॒न॒मिति॑ त्रि॒ऽस्थिन॑म्। वपु॑षे। मा॒न॒स्कृ॒तम्। मा॒न॒ःऽकृ॒तमिति॑। मानःऽकृतम्। शीला॑य। आ॒ञ्ज॒नी॒का॒रीमित्या॑ञ्जनीऽका॒रीम्। निर्ऋ॑त्या॒ इ॒ति॒ निःऽऋ॑त्यै। को॒श॒का॒रीमिति॑ कोशऽका॒रीम्। य॒माय॑। अ॒सूम्॥ १४॥

पदार्थः-**(मन्यवे)** आन्तर्यक्रोधाय प्रवृत्तम् **(अयस्तापम्)** लोहसुवर्णतापकम् **(क्रोधाय)** बाह्यकोपाय प्रवृत्तम् **(निसरम्)** यो निश्चितं सरति गच्छति तम् **(योगाय)** युञ्जन्ति यस्मिँस्तस्मै **(योक्तारम्)** योजकम् **(शोकाय)** **(अभिसर्त्तारम्)** अभिमुख्ये गन्तारम् **(क्षेमाय)** रक्षणाय

(विमोक्तारम्) दु:खाद्विमोचकम् **(उत्कूलनिकूलेभ्य:)** ऊद्ध्र्वनीचतटेभ्य: **(त्रिष्ठिनम्)** ये त्रिषु जलस्थलान्तरिक्षेषु तिष्ठन्ति ते त्रिष्ठा बहवस्त्रिष्ठा विद्यन्ते यस्य तम् **(वपुषे)** शरीरहिताय **(मानस्कृतम्)** मनस्कृतेषु विचारेषु कुशलम् **(शीलाय)** जितेन्द्रियत्वादिशीलिने **(आञ्जनीकारीम्)** आञ्जनी: प्रसिद्धा: क्रिया: कर्त्तुं शीलं यस्यास्ताम् **(निर्ऋत्यै)** भूम्यै **(कोशकारीम्)** या कोशं करोति ताम् **(यमाय)** दण्डदानाय प्रवृत्तम् **(असूम्)** याऽस्यति प्रक्षिपति ताम्॥१४॥

अन्वय:-हे जगदीश्वर! राजन् वा त्वं मन्यवेऽयस्तापं क्रोधाय निसरं शोकायाभिसर्त्तारं यमायासूं परासुव। योगाय योक्तारं क्षेमाय विमोक्तारमुत्कूलनिकूलेभ्यस्त्रिष्ठिनं वपुषे मानस्कृतं शीलायाऽऽञ्जनीकारीं निर्ऋत्यै कोशकारीमासुव॥१४॥

भावार्थ:-हे राजादयो मनुष्या:! ये तप्तं लोहमिव क्रुद्धा अन्येषां परितापका धर्मनियमानां विनाशका: स्युस्तान् दण्डयित्वा योगाभ्यासकर्त्रादीन् सत्कृत्य सर्वत्र यानगमकान् सङ्गृह्य यथावत् सुखं युष्माभिर्वर्द्धनीयम्॥१४॥

पदार्थ:-हे जगदीश्वर वा सभापते राजन्! आप **(मन्यवे)** आन्तर्य क्रोध के अर्थ प्रवृत्त हुए **(अयस्तापम्)** लोह वा सुवर्ण को तपाने वाले को **(क्रोधाय)** बाह्य क्रोध के लिए प्रवृत्त हुए **(निसरम्)** निश्चित चलने वाले को **(शोकाय)** शोच के लिए प्रवृत्त हुए **(अभिसर्त्तारम्)** सन्मुख चलने वाले को और **(यमाय)** दण्ड देने के लिए प्रवृत्त हुई **(असूम्)** क्रोध के इधर-उधर हाथ आदि फेंकने वाली को दूर कीजिये और **(योगाय)** योगाभ्यास के लिए **(योक्तारम्)** योग करने वाले को **(क्षेमाय)** रक्षा के लिए **(विमोक्तारम्)** दु:ख से छुड़ाने वाले को **(उत्कूलनिकूलेभ्य:)** ऊपर-नीचे किनारों पर चढ़ाने-उतारने के लिए **(त्रिष्ठिनम्)** जल स्थल और आकाश में रहने वाले विमानादि यानों से युक्त पुरुष को **(वपुषे)** शरीरहित के लिए **(मानस्कृतम्)** मन से किए विचारों में प्रवीण को **(शीलाय)** जितेन्द्रियता आदि उत्तम स्वभाव वाले के लिए **(आञ्जनीकारीम्)** प्रसिद्ध क्रियाओं के करने हारे स्वभाववाली स्त्री को और **(निर्ऋत्यै)** भूमि के लिए **(कोशकारीम्)** कोश का संचय करने वाली स्त्री को उत्पन्न वा प्रगट कीजिये॥१४॥

भावार्थ:-हे राजा आदि मनुष्यो! जो तपे लोहे के तुल्य क्रोध को प्राप्त हुए औरों को दु:ख देने और धर्म नियमों को नष्ट करने वाले हों, उनको दण्ड देकर, योगाभ्यास करने वाले आदि का सत्कार कर, सब जगह सवारी चलाने वालों को इकट्ठा कर, तुम को यथावत् सुख बढ़ाना चाहिए॥१४॥

यमायेत्यस्य नारायण ऋषि:। राजेश्वरौ देवते। विराट् कृतिश्छन्द:। निषाद: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यमाय यमसूमथर्वभ्योऽवतोकाᳬं संवत्सराय पर्य्यायिणीं परिवत्सरायाविजाता-मिदावत्सरायातीत्वरीमिद्वत्सरायातिष्कद्वरीं वत्सराय विजर्जराᳬं संवत्सराय पलिक्नीमृभुभ्योऽजिनसन्धꣳ साध्येभ्यश्चर्मम्नम्॥ १५॥

यमाय। यमसूमिति यमऽसूम्। अथर्वभ्य इत्यथर्वऽभ्यः। अवतोकामित्यवऽतोकाम्। संवत्सराय। पर्य्यायिणीम्। पर्य्यायिनीमिति परिऽआयिनीम्। परिवत्सरायेति परिऽवत्सराय। अविजातामित्यविऽजाताम्। इदावत्सराय। अतीत्वरीमित्यतिऽइत्वरीम्। इद्वत्सरायेतीत्ऽवत्सराय। अतिष्कद्वरीम्। अतिस्कद्वरीमित्यतिऽस्कद्वरीम्। वत्सराय। विजर्जरामिति विऽजर्जराम्। संवत्सराय। पलिक्नीम्। ऋभुभ्य इत्यृभुऽभ्यः। अजिनसन्धमित्यजिनऽसन्धम्। साध्येभ्यः। चर्मम्नमिति चर्मऽम्नम्॥ १५॥

पदार्थः-(यमाय) नियन्त्रे **(यमसूम्)** या यमान् नियन्तॄन् सूते ताम् **(अथर्वभ्यः)** अहिंसकेभ्यः **(अवतोकाम्)** निरपत्याम् **(संवत्सराय)** **(पर्यायिणीम्)** परितः कालक्रमज्ञाम् **(परिवत्सराय)** द्वितीयवर्षनिर्णयाय **(अविजाताम्)** अप्रसूतां ब्रह्मचारिणीम् **(इदावत्सराय)** इदावत्सरस्तृतीयस्तत्र कार्य्यसम्पादनाय। अत्र वर्णव्यत्ययः। **(अतीत्वरीम्)** अतिगमनशीलाम् **(इद्वत्सराय)** पञ्चमाय वर्षाय **(अतिष्कद्वरीम्)** अतिशयेन या स्कन्दति जानाति ताम् **(वत्सराय)** सामान्याय **(विजर्जराम्)** विशेषेण जर्जरीभूताम् **(संवत्सराय)** चतुर्थायानुवत्सराय। अत्रानोः पूर्वपदस्य लोपः। **(पलिक्नीम्)** श्वेतकेशाम् **(ऋभुभ्यः)** मेधाविभ्यः **(अजिनसन्धम्)** जेतुमयोग्यान् संदधाति तम्। अत्र जि धातो **कर्मणि नक्॥** (उणा०३।२) **(साध्येभ्यः)** ये साद्धुं योग्यास्तेभ्यः **(चर्मम्नम्)** यश्चर्म विज्ञानं म्नात्यभ्यस्यति तम्॥१५॥

अन्वयः-हे जगदीश्वर राजन् वा! त्वं यमाय यमसूमथर्वभ्योऽवतोकां संवत्सराय पर्य्यायिणीं परिवत्सराया-विजातामिदावत्सरायातीत्वरीमिद्वत्सरायातिष्कद्वरीं वत्सराय विजर्जरां संवत्सराय पलिक्नीमृभुभ्योऽजिनसन्धं साध्येभ्यञ्चर्मम्नमासुव॥१५॥

भावार्थः-प्रभवादिषष्टिसंवत्सरेषु पञ्च पञ्च कृत्वा द्वादश युगानि भवन्ति, प्रत्येकयुगे क्रमेण संवत्सरपरिवत्सरानुवत्सरेद्वत्सराः पञ्च सञ्ज्ञा भवन्ति, तान् सर्वकालावयवमूलान् विशेषतया याः स्त्रियो यथावद्विज्ञाय व्यर्थन्न नयन्ति, ताः सर्वार्थसिद्धिमाप्नुवन्ति॥१५॥

पदार्थः-हे जगदीश्वर वा राजन्! आप **(यमाय)** नियमकर्त्ता के लिए **(यमसूम्)** नियन्ताओं को उत्पन्न करने वाली को **(अथर्वभ्यः)** अहिंसकों के लिए **(अवतोकाम्)** जिसकी सन्तान बाहर निकल गई हो, उस स्त्री को **(संवत्सराय)** प्रथम संवत्सर के अर्थ **(पर्यायिणीम्)** सब ओर से काल के क्रम को जानने वाली को **(परिवत्सराय)** दूसरे वर्ष के निर्णय के लिए **(अविजाताम्)** ब्रह्मचारिणी कुमारी को **(इदावत्सराय)** तीसरे इदावत्सर में कार्य साधने के अर्थ **(अतीत्वरीम्)**

अत्यन्त चलने वाली को **(इद्वत्सराय)** पांचवें इद्वत्सर के ज्ञान के अर्थ **(अतिष्कद्वरीम्)** अतिशय कर जानने वाली को **(वत्सराय)** सामान्य संवत्सर के लिये **(विजर्जराम्)** वृद्धा स्त्री को **(संवत्सराय)** चौथे अनुवत्सर के लिए **(पलिक्नीम्)** श्वेत केशों वाली को **(ऋभुभ्यः)** बुद्धिमानों के अर्थ **(अजिनसन्धम्)** नहीं जीतने योग्य पुरुषों से मेल रखने वाले को **(साध्येभ्यः)** और साधने योग्य कार्यों के लिए **(चर्मम्नम्)** विज्ञान शास्त्र का अभ्यास करनेवाले पुरुष को उत्पन्न कीजिए॥१५॥

भावार्थः-प्रभव आदि ६० संवत्सरों में पांच-पांच कर १२ बारह युग होते हैं, उन प्रत्येक युग में क्रम से संवत्सर, परिवत्सर, इदावत्सर, अनुवत्सर और इद्वत्सर। ये पांच संज्ञा हैं, उन सब काल के अवयवों के मूल संवत्सरों को विशेष कर जो स्त्री लोग यथावत् जान के व्यर्थ नहीं गंवाती, वे सब प्रयोजनों की सिद्धि को प्राप्त होती हैं॥१४॥

सरोभ्य इत्यस्य नारायण ऋषिः। राजेश्वरौ देवते। विराट् कृतिश्छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

सरोभ्यो धैवरमुपस्थावराभ्यो दाशं वैशन्ताभ्यो बैन्दं नड्वलाभ्यः शौष्कलं पाराय मार्गारमवाराय कैवर्त्तं तीर्थेभ्यऽआन्दं विषमेभ्यो मैनालꣳ स्वनेभ्यः पर्णकं गुहाभ्यः किरातꣳ सानुभ्यो जम्भकं पर्वतेभ्यः किम्पूरुषम्॥१६॥

सरोभ्य इति सरःऽभ्यः। धैवरम्। उपस्थावराभ्य इत्युपऽस्थावराभ्यः। दाशम्। वैशन्ताभ्यः। बैन्दम्। नड्वलाभ्यः। शौष्कलम्। पाराय। मार्गारम्। अवाराय। कैवर्त्तम्। तीर्थेभ्यः। आन्दम्। विषमेभ्य इति विऽसमेभ्यः। मैनालम्। स्वनेभ्यः। पर्णकम्। गुहाभ्यः। किरातम्। सानुभ्य इति सानुऽभ्यः। जम्भकम्। पर्वतेभ्यः। किम्पूरुषम्। किम्पुरुषमिति किम्ऽपुरुषम्॥१६॥

पदार्थः-(सरोभ्यः) तडागेभ्यस्तारणाय **(धैवरम्)** धीवरस्यापत्यम् **(उपस्थावराभ्यः)** उपस्थिताभ्योऽवराभ्यो निकृष्टक्रियाभ्यः **(दाशम्)** दाशत्यस्मै तम् **(वैशन्ताभ्यः)** वेशन्ता अल्पजलाशयास्ता एव ताभ्यः **(बैन्दम्)** निषादस्यापत्यम् **(नड्वलाभ्यः)** नडा विद्यन्ते यासु भूमिषु ताभ्यः **(शौष्कलम्)** यश्शुष्कलैर्मत्स्यैर्जीवति तम् **(पाराय)** मृगकर्मसमाप्त्यर्थं प्रवृत्तम् **(मार्गारम्)** यो मृगाणामरिर्व्याधस्तस्यापत्यम् **(अवाराय)** अर्वाचीनमागमनाय **(कैवर्त्तम्)** जले नौकायाः परावरयोर्गमकम् **(तीर्थेभ्यः)** तरन्ति यैस्तीर्यन्ते वा तेभ्यः **(आन्दम्)** बन्धितारम् **(विषमेभ्यः)** विकटदेशेभ्यः **(मैनालम्)** यो मैनं कामदेवमलति वारयति तं जितेन्द्रियम् **(स्वनेभ्यः)** शब्देभ्यः **(पर्णकम्)** यः पर्णेषु पालनेषु कुत्सितस्तम् **(गुहाभ्यः)** कन्दराभ्यः **(किरातम्)** जनविशेषम्

(सानुभ्यः) शैलशिखरेभ्यः **(जम्भकम्)** यो जम्भयति नाशयति तम् **(पर्वतेभ्यः)** गिरिभ्यः **(किम्पूरुषम्)** जाङ्गलं कुत्सितं मनुष्यम्॥१६॥

अन्वयः-हे जगदीश्वर राजन् वा! त्वं सरोभ्यो धैवरमुपस्थावराभ्यो दाशं वैशन्ताभ्यो बैन्दं नड्वलाभ्यः शौष्कलं विषमेभ्यो मैनालमवाराय कैवर्त्तं तीर्थेभ्य आन्दमासुव। पाराय मार्गारं स्वनेभ्यः पर्णकं गुहाभ्यः किरातं सानुभ्यो जम्भकं पर्वतेभ्यः किम्पूरुषं परासुव॥१६॥

भावार्थः-मनुष्या ईश्वरगुणकर्मस्वभावानुकूलैः कर्मभिर्धीवरादीन् संरक्ष्य व्याधादीन् परित्यज्योत्तमं सुखं प्राप्नुवन्तु॥१६॥

पदार्थः-हे जगदीश्वर वा राजन्! आप **(सरोभ्यः)** बड़े तालाबों के लिए **(धैवरम्)** धीवर के लड़के को **(उपस्थावराभ्यः)** समीपस्थ निकृष्ट क्रियाओं के अर्थ **(दाशम्)** जिसको दिया जावे उस सेवक को **(वैशन्ताभ्यः)** छोटे-छोटे जलाशयों के प्रबन्ध के लिए **(बैन्दम्)** निषाद के अपत्य को **(नड्वलाभ्यः)** नरसल वाली भूमि के लिए **(शौष्कलम्)** मच्छियों से जीवने वाले को और **(विषमेभ्यः)** विकट देशों के लिए **(मैनालम्)** कामदेव को रोकने वाले को **(अवाराय)** अपनी ओर आने के लिए **(कैवर्त्तम्)** जल में नौका को इस पार उस पार पहुंचाने वाले को **(तीर्थेभ्यः)** तरने के साधनों के लिए **(आन्दम्)** बांधने वाले को उत्पन्न कीजिए **(पाराय)** हरिण आदि की चेष्टा को समाप्त करने को प्रवृत्त हुए **(मार्गारम्)** व्याध के पुत्र को **(स्वनेभ्यः)** शब्दों के लिए **(पर्णकम्)** रक्षा करने में निन्दित भील को **(गुहाभ्यः)** गुहाओं के अर्थ **(किरातम्)** बहेलिये को **(सानुभ्यः)** शिखरों पर रहने के लिए प्रवृत्त हुए **(जम्भकम्)** नाश करने वाले को और **(पर्वतेभ्यः)** पहाड़ों से **(किम्पूरुषम्)** खोटे जङ्गली मनुष्य को दूर कीजिए॥१६॥

भावार्थः-मनुष्य लोग ईश्वर के गुण-कर्म-स्वभावों के अनुकूल कर्मों से कहार आदि की रक्षा कर और बहेलिये आदि हिंसकों को छोड़ के उत्तम सुख पावें॥१६॥

बीभत्साया इत्यस्य नारायण ऋषिः। राजेश्वरौ देवते। विराट् धृतिश्छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

बीभत्सायै पौल्कसं वर्णाय हिरण्यकारं तुलायै वाणिजं पश्चादोषाय ग्लाविनं विश्वेभ्यो भूतेभ्यः सिध्मलं भूत्यै जागरणमभूत्यै स्वपनमार्त्यै जनवादिनं व्यृद्ध्याऽअपगल्भꣳ सꣳशराय प्रच्छिदम्॥ १७॥

बीभत्सायै। पौल्कसम्। वर्णाय। हिरण्यकारमिति हिरण्यऽकारम्। तुलायै। वाणिजम्। पश्चादोषायेति पश्चाऽदोषाय। ग्लाविनम्। विश्वेभ्यः। भूतेभ्यः। सिध्मलम्। भूत्यै। जागरणम्। अभूत्यै। स्वपनम्। आर्त्यै

इत्याऽर्त्त्यै। जनवादिनमिति जनऽवादिनम्। व्यृद्ध्या इति विऽऋध्यै। अपगल्भमित्यपऽगल्भम्। संशरायेति सम्ऽशराय। प्रच्छिदमिति प्रऽच्छिदम्॥ १७॥

पदार्थः-(बीभत्सायै) भर्त्सनाय प्रवृत्तम् **(पौल्कसम्)** पुक्कसस्यान्त्यजस्याऽपत्यम्। अत्र पृषोदरादित्वादभीष्टसिद्धिः **(वर्णाय)** सुरूपसंपादनाय **(हिरण्यकारम्)** सुवर्णकारं सूर्यं वा **(तुलायै)** तोलनाय **(वाणिजम्)** वणिगपत्यम् **(पश्चादोषाय)** पश्चाद्दोषदानाय प्रवृत्तम् **(ग्लाविनम्)** अहर्षितारम् **(विश्वेभ्यः)** सर्वेभ्यः **(भूतेभ्यः)** **(सिध्मलम्)** सिध्माः सुखसाधका विद्यन्ते यस्य तम् **(भूत्यै)** ऐश्वर्याय **(जागरणम्)** जागृतम् **(अभूत्यै)** अनैश्वर्याय **(स्वपनम्)** निद्राम् **(आर्त्यै)** पीडानिवृत्तये **(जनवादिनम्)** प्रशस्ता जनवादा विद्यन्ते यस्य तम् **(व्यृद्ध्यै)** विगता चासौ ऋद्धिश्च व्यृद्धिस्तस्यै **(अपगल्भम्)** प्रगल्भतारहितम् **(संशराय)** सम्यग्घिंसनाय प्रवृत्तम् **(प्रच्छिदम्)** यः प्रच्छिनत्ति तम्॥ १७॥

अन्वयः-हे ईश्वर वा राजन्! त्वं बीभत्सायै पौल्कसं पश्चादोषाय ग्लाविनमभूत्यै स्वपनं व्यृद्ध्या अपगल्भं संशराय प्रच्छिदं परासुव। वर्णाय हिरण्यकारं तुलायै वाणिजं विश्वेभ्यो भूतेभ्यः सिध्मलं भूत्यै जागरणमार्त्यै जनवादिनमासुव॥ १७॥

भावार्थः-ये मनुष्या नीचसङ्गं त्यक्त्वोत्तमसङ्गतिं कुर्वन्ति, ते सर्वव्यवहारसिद्ध्यैश्वर्यवन्तो जायन्ते। येऽनलसाः सन्तः सिद्धये यतन्ते, ते सुखं ये चाऽलसास्ते च दारिद्र्यमाप्नुवन्ति॥ १७॥

पदार्थः-हे जगदीश्वर वा राजन्! आप **(बीभत्सायै)** धमकाये के लिए प्रवृत्त हुए **(पौल्कसम्)** भंगी के पुत्र को **(पश्चादोषाय)** पीछे दोष को प्रवृत्त हुए **(ग्लाविनम्)** हर्ष को नष्ट करने वाले को **(अभूत्यै)** दरिद्रता के अर्थ समर्थ **(स्वपनम्)** सोने को **(व्यृद्ध्यै)** संपत् के बिगाड़ने के अर्थ प्रवृत्त हुए **(अपगल्भम्)** प्रगल्भतारहित पुरुष को तथा **(संशराय)** सम्यक् मारने के लिए प्रवृत्त हुए **(प्रच्छिदम्)** अधिक छेदन करनेवाले को पृथक् कीजिए और **(वर्णाय)** सुन्दर रूप बनाने के लिए **(हिरण्यकारम्)** सुनार वा सूर्य्य को **(तुलायै)** तोलने के अर्थ **(वाणिजम्)** बणिये के पुत्र को **(विश्वेभ्यः)** सब **(भूतेभ्यः)** प्राणियों के लिए **(सिध्मलम्)** सुख सिद्ध करने वाले जिस के सहायी हों, उस जन को **(भूत्यै)** ऐश्वर्य होने के अर्थ **(जागरणम्)** प्रबोध को और **(आर्त्यै)** पीड़ा की निवृत्ति के लिए **(जनवादिनम्)** मनुष्यों को प्रशंसा के योग्य वाद-विवाद करने वाले उत्तम मनुष्य को उत्पन्न वा प्रकट कीजिए॥ १७॥

भावार्थः-जो मनुष्य नीचों का संग छोड़ के उत्तम पुरुषों की सङ्गति करते हैं, वे सब व्यवहारों की सिद्धि से ऐश्वर्य वाले हाते हैं। जो अनालसी होके सिद्धि के लिए यत्न करते, वे सुखी और जो आलसी होते वे दरिद्रता को प्राप्त होते हैं॥ १७॥

अक्षराजायेत्यस्य नारायण ऋषिः। राजेश्वरौ देवते। निचृत्प्रकृतिश्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अक्षराजाय कितवं कृतायादिनवदर्शं त्रेतायै कल्पिनं द्वापरायाधिकल्पिनमास्कन्दाय सभास्थाणुं मृत्यवे गोव्यच्छमन्तकाय गोघातं क्षुधे यो गां विकृन्तन्तं भिक्षमाणऽउप तिष्ठति दुष्कृताय चरकाचार्यं पाप्मने सैलगम्॥ १८॥

अक्षराजायेत्यक्षऽराजाय। कितवम्। कृताय। आदिनवदर्शमित्यादिनवऽदर्शम्। त्रेतायै। कल्पिनम्। द्वापराय। अधिकपिल्पनमित्यधिऽकल्पिनम्। आस्कन्दायेत्याऽस्कन्दाय। सभास्थाणुमिति सभाऽस्थाणुम्। मृत्यवे। गोव्यच्छमिति गोऽव्यच्छम्। अन्तकाय। गोघातमिति गोऽघातम्। क्षुधे। यः। गाम्। विकृन्तन्तमिति विऽकृन्तन्तम्। भिक्षमाणः। उपतिष्ठतीत्युपऽतिष्ठति। दुष्कृताय। दुःकृतायेति दुःऽकृताय। चरकाचार्य्यमिति चरकऽआचार्य्यम्। पाप्मने। सैलगम्॥ १८॥

पदार्थः-(अक्षराजाय) येऽक्षैः क्रीडन्ति तेषां राजा तस्मै हितम् **(कितवम्)** द्यूतकारिणम् **(कृताय) (आदिनवदर्शम्)** य आदौ नवान् पश्यति तम् **(त्रेतायै)** त्रयाणां भवाय **(कल्पिनम्)** कल्पः प्रशस्तं सामर्थ्यं विद्यते यस्य तम् **(द्वापराय)** द्वावपरौ यस्मिन् तस्मै **(अधिकल्पिनम्)** अधिगतसामर्थ्ययुक्तम् **(आस्कन्दाय)** समन्ताच्छोषणाय **(सभास्थाणुम्)** सभायां स्थितम् **(मृत्यवे)** मारणाय **(गोव्यच्छम्)** गोषु विचेष्टितारम् **(अन्तकाय)** नाशाय **(गोघातम्)** गवां घातकम् **(क्षुधे) (यः) (गाम्)** धेनुम् **(विकृन्तन्तम्)** विच्छेदयन्तम् **(भिक्षमाणः) (उपतिष्ठति) (दुष्कृताय)** दुष्टाचाराय प्रवृत्तम् **(चरकाचार्यम्)** चरकाणां भक्षकाणामाचार्य्यम् **(पाप्मने)** पापात्मने हितम् **(सैलगम्)** सीलाङ्गस्य दुष्टस्यापत्यं सैलगम्॥ १८॥

अन्वयः-हे जगदीश्वर वा राजन्! त्वमक्षराजाय कितवं मृत्यवे गोव्यच्छमन्तकाय गोघातं क्षुधे यो गां छिनत्ति तं विकृन्तन्तं यो भिक्षमाण उपतिष्ठति दुष्कृताय तं चरकाचार्य्यं पाप्मने सैलगं परासुव। कृतायाऽऽदिनवदर्शं त्रैतायै कल्पिनं द्वापरायाऽधिकल्पिनमास्कन्दाय सभास्थाणुमासुव॥ १८॥

भावार्थः-ये ज्योतिर्विदादिसत्याचरणान् सत्कुर्वन्ति, दुष्टाचारान् गोघ्नादीन् ताडयन्ति, ते राज्यं कर्त्तुं शक्नुवन्ति॥ १८॥

पदार्थः-हे जगदीश्वर वा राजन्! आप **(अक्षराजाय)** पासों से खेलने वालों के प्रधान के हितकारी **(कितवम्)** जुआ करने वाले को **(मृत्यवे)** मारने के अर्थ **(गोव्यच्छम्)** गौओं में बुरी चेष्टा करने वाले को **(अन्तकाय)** नाश के अर्थ **(गोघातम्)** गौओं के मारने वाले को **(क्षुधे)** क्षुधा के लिए **(यः)** जो **(गाम्)** गौ को मारता उस **(विकृन्तन्तम्)** काटते हुए को जो **(भिक्षमाणाः)** भीख मांगता हुआ **(उपतिष्ठति)** उपस्थित होता है **(दुष्कृताय)** दुष्ट आचरण के लिए प्रवृत्त हुए उस **(चरकाचार्य्यम्)** भक्षण करने वालों के गुरु को **(पाप्मने)** पापी के हितकारी **(सैलगम्)** दुष्ट के पुत्र

को दूर कीजिए **(कृताय)** किये हुए के अर्थ **(आदिनवदर्शम्)** आदि में नवीनों को देखने वाले को **(त्रेतायै)** तीन के होने के अर्थ **(कल्पिनम्)** प्रशंसित सामर्थ्य वाले को **(द्वापराय)** दो जिस के इधर सम्बन्धी हों, उस के अर्थ **(अधिकल्पिनम्)** अधिकतर सामर्थ्ययुक्त को और **(आस्कन्दाय)** अच्छे प्रकार सुखाने के अर्थ **(सभास्थाणुम्)** सभा में स्थिर होने वाले को प्रकट वा उत्पन्न कीजिए॥१८॥

भावार्थ:-जो मनुष्य ज्योतिषी आदि सत्याचारियों का सत्कार करते और दुष्टाचारी गोहत्यारे आदि को ताड़ना देते हैं, वे राज्य करने को समर्थ होते हैं॥१८॥

प्रतिश्रुत्काया इत्यस्य नारायण ऋषि:। राजेश्वरौ देवते। भुरिग्धृतिश्छन्द:। ऋषभ: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प्रतिश्रुत्कायाऽअर्त्तनं घोषाय भषमन्ताय बहुवादिनमनन्ताय मूकꣳ शब्दायाडम्बराघातं महसे वीणावादं क्रोशाय तूणवध्ममवरस्पराय शङ्खध्मं वनाय वनपमन्यतोऽरण्याय दावपम्॥ १९॥

प्रतिश्रुत्काया इति प्रतिऽश्रुत्कायै। अर्त्तनम्। घोषाय। भषम्। अन्ताय। बहुवादिनमिति बहुऽवादिनम्। अनन्ताय। मूकम्। शब्दाय। आडम्बराघातमित्याडम्बरऽआघातम्। महसे। वीणावादमिति वीणाऽवादम्। क्रोशाय। तूणवध्ममिति तूणवऽध्मम्। अवरस्पराय। अवरपरायेति अवरऽपराय। शङ्खध्ममिति शङ्खऽध्मम्। वनाय। वनपमिति वनऽपम्। अन्यतोरण्यायेत्यन्यत:ऽअरण्याय। दावपमिति दावऽपम्॥ १९॥

पदार्थ:-(**प्रतिश्रुत्कायै**) प्रतिज्ञात्र्यै **(अर्त्तनम्)** प्रापकम् **(घोषाय)** **(भषम्)** पारिभाषकम् **(अन्ताय)** समीपाय ससीमाय वा **(बहुवादिनम्)** **(अनन्ताय)** नि:सीमाय **(मूकम्)** अवाचम् **(शब्दाय)** प्रवृत्तम् **(आडम्बराघातम्)** आडम्बरस्याघातकं कोलाहलकर्त्तारम् **(महसे)** महते **(वीणावादम्)** वाद्यविशेषम् **(क्रोशाय)** रोदनाय प्रवृत्तम् **(तूणवध्मम्)** यस्तूणवं धमति तम् **(अवरस्पराय)** योऽवरेषां परस्तस्मै **(शङ्खध्मम्)** य: शङ्खान् धमति तम् **(वनाय)** **(वनपम्)** जङ्गलरक्षकम् **(अन्यतोऽरण्याय)** अन्यतोऽरण्यानि यस्मिन् देशे तद्विनाशाय प्रवृत्तम् **(दावपम्)** वनदाहकम्॥१९॥

अन्वय:-हे परमेश्वर राजन् वा! त्वं प्रतिश्रुत्काया अर्त्तनं घोषाय भषमन्ताय बहुवादिनमनन्ताय मूकं महसे वीणावादमवरस्पराय शङ्खध्मं वनाय वनपमासुव। शब्दायाडम्बराघातं क्रोशाय तूणवध्ममन्यतोरण्याय दावपं परासुव॥१९॥

भावार्थ:-मनुष्यै: स्वकीयैस्स्त्रीपुरुषादिभिरध्यापनसंवादादिव्यवहारा: साधनीया:॥१९॥

पदार्थ:-हे परमेश्वर वा राजन्! आप **(प्रतिश्रुत्कायै)** प्रतिज्ञा करने वाली के अर्थ **(अर्त्तनम्)** प्राप्ति कराने वाले को **(घोषाय)** घोषणे के लिए **(भषम्)** सब ओर से बोलने वाले को **(अन्ताय)**

समीप वा मर्य्यादा वाले के लिए **(बहुवादिनम्)** बहुत बोलने वाले को **(अनन्ताय)** मर्यादा रहित के लिए **(मूकम्)** गूंगे को **(महसे)** बड़े के लिए **(वीणावादम्)** वीणा बजाने वाले को **(अवरस्पराय)** नीचे के शत्रुओं के अर्थ **(शङ्खध्मम्)** शङ्ख बजाने वाले को और **(वनाय)** वन के लिए **(वनपम्)** जङ्गल की रक्षा करने वाले को उत्पन्न वा प्रकट कीजिए **(शब्दाय)** शब्द करने को प्रवृत्त हुए **(आडम्बराघातम्)** हल्ला-गुल्ला करने वाले को **(क्रोशाय)** कोशने को प्रवृत्त हुए **(तूणवध्मम्)** बाजे विशेष को बजाने वाले को **(अन्यतोऽरण्याय)** अन्य अर्थात् ईश्वरीय सृष्टि से जहां वन हों, उस देश की हानि के लिए **(दावपम्)** वन को जलाने वाले को दूर कीजिये॥१९॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिए कि अपने स्त्री-पुरुष आदि के साथ पढ़ाने और संवाद करने आदि व्यवहारों को सिद्ध करें॥१९॥

नर्मायेत्यस्य नारायण ऋषिः। राजेश्वरौ देवते। भुरिगतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

नर्माय पुँश्चलूꣳ हसाय कारिं यादसे शाबल्यां ग्रामण्यं गणकमभिक्रोशकं तान्महसे वीणावादं पाणिघ्नं तूणवध्मं तान्नृत्तायानन्दाय तलवम्॥२०॥

नर्माय। पुंश्चलूम्। हसाय। कारिम्। यादसे। शाबल्याम्। ग्रामण्यम्। ग्रामन्यमिति ग्रामऽन्यम्। गणकम्। अभिक्रोशकमित्यभिऽक्रोशकम्। तान्। महसे। वीणावादमिति वीणाऽवादम्। पाणिघ्नमिति पाणिऽघ्नम्। तूणवध्ममिति तूणवऽध्मम्। तान्। नृत्ताय। आनन्दायेत्याऽनन्दाय। तलवम्॥२०॥

पदार्थः-**(नर्माय)** क्रीडायै प्रवृत्ताम् **(पुंश्चलूम्)** व्यभिचारिणीं स्त्रियम् **(हसाय)** हसनाय प्रवृत्तम् **(कारिम्)** विक्षेपकम् **(यादसे)** जलजन्तवे प्रवृत्ताम् **(शाबल्याम्)** शबलस्य कर्बुरवर्णस्य सुताम् **(ग्रामण्यम्)** ग्रामस्य नायकम् **(गणकम्)** गणितविदम् **(अभिक्रोशकम्)** योऽभितः क्रोशति आह्वयति तम् **(तान्)** **(महसे)** पूजनाय **(वीणावादम्)** **(पाणिघ्नम्)** यः पाणिभ्यां हन्ति तम् **(तूणवध्मम्)** यस्तूणवं धमति तम् **(तान्)** **(नृत्ताय)** नर्त्तनाय **(आनन्दाय)** **(तलवम्)** यो हस्तादि तलानि वाति हिनस्ति तम्॥२०॥

अन्वयः-हे परमेश्वर राजन् वा! त्वं नर्माय पुंश्चलूं हसाय कारीं यादसे शाबल्यां परासुव। ग्रामण्यं गणकमभिक्रोशकं तान् महसे वीणावादं पाणिघ्नं तूणवध्मं तान्नृत्तायाऽनन्दाय तलवमासुव॥२०॥

भावार्थः-मनुष्यैर्हास्यव्यभिचारादिदोषांस्त्यक्त्वा गानवादित्रनृत्यादिकर्मणां शिक्षां प्राप्यानन्दितव्यम्॥२०॥

पदार्थः-हे परमेश्वर वा राजन्! आप **(नर्माय)** क्रीड़ा के लिए प्रवृत्त हुई **(पुंश्चलूम्)** व्यभिचारिणी स्त्री को **(हसाय)** हंसने को प्रवृत्त हुए **(कारिम्)** विक्षिप्त पागल को और **(यादसे)** जलजन्तुओं के मारने को प्रवृत्त हुई **(शाबल्याम्)** कबरे मनुष्य की कन्या को दूर कीजिए **(ग्रामण्यम्)** ग्रामाधीश **(गणकम्)** ज्योतिषी और **(अभिक्रोशकम्)** सब ओर से बुलाने वाले जन **(तान्)** इन सब को **(महसे)** सत्कार के अर्थ **(वीणावादम्)** वीणा बजाने **(पाणिघ्नम्)** हाथों से वादित्र बजाने और **(तूणवध्मम्)** तूणवनामक बाजे को बजाने वाले **(तान्)** उन सब को **(नृत्ताय)** नाचने के लिए और **(आनन्दाय)** आनन्द के अर्थ **(तलवम्)** ताली आदि बजाने वाले को उत्पन्न वा प्रसिद्ध कीजिए॥ २०॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिए कि हंसी और व्यभिचारादि दोषों को छोड़ और गाने-बजाने-नाचने आदि की शिक्षा को प्राप्त होके आनन्दित होवें॥ २०॥

अग्नय इत्यस्य नारायण ऋषिः। राजेश्वरौ देवते। भुरिगत्यष्टिश्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अ॒ग्नये॒ पीवा॑नं पृथि॒व्यै पी॑ठस॒र्पिणं॑ वा॒यवे॑ चाण्डा॒लम॒न्तरि॑क्षाय वꣳश॒नर्ति॑नं दि॒वे खल॒तिꣳ सूर्या॑य हर्य॒क्षं नक्ष॑त्रेभ्यः किर्मि॒रं च॒न्द्रम॑से कि॒लास॒मह्ने॑ शु॒क्लं पि॑ङ्गा॒क्षꣳ रात्र्यै॑ कृ॒ष्णं पि॑ङ्गा॒क्षम्॥ २१॥

अ॒ग्नये॑। पीवा॑नम्। पृ॒थि॒व्यै। पी॒ठ॒स॒र्पिण॒मिति॑ पीठऽस॒र्पिण॑म्। वा॒यवे॑। चा॒ण्डा॒लम्। अ॒न्तरि॑क्षाय। व॒ꣳश॒ऽन॒र्त्तिन॒मिति॑ वꣳशऽन॒र्त्तिन॑म्। दि॒वे। ख॒ल॒तिम्। सूर्य्या॑य। ह॒र्य॒क्षमिति॑ हरिऽअ॒क्षम्। नक्ष॑त्रेभ्यः। कि॒र्मि॒रम्। च॒न्द्रम॑से। कि॒लास॑म्। अह्ने॑। शु॒क्लम्। पि॒ङ्गा॒क्षमिति॑ पिङ्गऽअ॒क्षम्। रात्र्यै॑। कृ॒ष्णम्। पि॒ङ्गा॒क्षमिति॑ पिङ्गऽअ॒क्षम्॥ २१॥

पदार्थः-**(अग्नये)** पावकाय **(पीवानम्)** स्थूलम् **(पृथिव्यै)** **(पीठसर्पिणम्)** पीठेन सर्पितुं शीलं यस्य तम् **(वायवे)** वायुस्पर्शाय **(चाण्डालम्)** **(अन्तरिक्षाय)** सूर्य्यपृथिव्योर्मध्यस्थायाऽऽकाशाय **(वंशनर्त्तिनम्)** वंशे नर्त्तितुं शीलं यस्य तम् **(दिवे)** क्रीडायै प्रवृत्तम् **(खलतिम्)** निर्बालशिरस्कम् **(सूर्य्याय)** **(हर्य्यक्षम्)** हरीणां वानाराणामक्षिणी इवाक्षिणी यस्य तम् **(नक्षत्रेभ्यः)** क्षत्राणां विरोधाय प्रवृत्तेभ्यः **(किर्मिरम्)** कर्बुरवर्णम् **(चन्द्रमसे)** **(किलासम्)** ईषच्छ्वेतवर्णम् **(अह्ने)** **(शुक्लम्)** शुद्धम् **(पिङ्गाक्षम्)** पिङ्गे पीतवर्णेऽक्षिणी यस्य तम् **(रात्र्यै)** **(कृष्णाम्)** कृष्णवर्णम् **(पिङ्गाक्षम्)** पीताक्षम्॥ २१॥

अन्वयः-हे परमेश्वर राजन् वा! त्वमग्नये पीवानं पृथिव्यै पीठसर्पिणमन्तरिक्षाय वंशनर्त्तिनं सूर्याय हर्य्यक्षं चन्द्रमसे किलासमह्ने शुक्लं पिङ्गाक्षमासुव। वायवे चाण्डालं दिवे खलतिं नक्षत्रेभ्यः किर्मिरं रात्र्यै कृष्णं पिङ्गाक्षं परासुव॥२१॥

भावार्थः-अग्निर्हि स्थूलं दग्धुं शक्नोति न सूक्ष्मं पृथिव्यां पीठसर्पिणः सततं विचरन्ति, नेतरे विहंगमाश्चाण्डालस्य शरीरागतो वायुर्दुर्गन्धित्वान्न सेवनीय इत्यादि॥२१॥

पदार्थः-हे परमेश्वर वा राजन्! आप **(अग्नये)** अग्नि के लिए **(पीवानम्)** मोटे पदार्थ को **(पृथिव्यै)** पृथिवी के लिए **(पीठसर्पिणम्)** बिना पगों के कढ़िरि के चलनेवाले सांप आदि को **(अन्तरिक्षाय)** आकाश और पृथिवी के बीच में खेलने को **(वंशनर्त्तिनम्)** बांस से नाचने वाले नट आदि को **(सूर्याय)** सूर्य के ताप प्रकाश मिलने के लिए **(हर्यक्षम्)** बांदर की सी छोटी आंखों वाले शीतप्राय देशी मनुष्यों को **(चन्द्रमसे)** चन्द्रमा के तुल्य आनन्द देने के लिए **(किलासम्)** थोड़े श्वेतवर्ण वाले को और **(अह्ने)** दिन के लिए **(शुक्लम्)** शुद्ध **(पिङ्गाक्षम्)** पीली आंखों वाले को उत्पन्न कीजिए **(वायवे)** वायु के स्पर्श के अर्थ **(चाण्डालम्)** भंगी को **(दिवे)** क्रीड़ा के अर्थ प्रवृत्त हुए **(खलतिम्)** गंजे को **(नक्षत्रेभ्यः)** राज्य विरोध के लिए प्रवृत्त हुओं के लिए **(किर्मिरम्)** कबरों को और **(रात्र्यै)** अन्धकार के लिए प्रवृत्त हुए **(कृष्णम्)** काले रंग वाले **(पिङ्गाक्षम्)** पीले नेत्रों से युक्त पुरुष को दूर कीजिए॥२१॥

भावार्थः-अग्नि स्थूल पदार्थों के जलाने को समर्थ होता है, सूक्ष्म को नहीं। पृथिवी पर निरन्तर सर्पादि फिरते हैं, किन्तु पक्षी आदि नहीं। भङ्गी के शरीर में आया वायु दुर्गन्धयुक्त होने से सेवने योग्य नहीं होता, इत्यादि तात्पर्य्य जानना चाहिए॥२१॥

अथैतानित्यस्य नारायण ऋषिः। राजेश्वरौ देवते। निचृत्कृतिश्छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अथैतानष्टौ विरूपाना लभतेऽतिदीर्घं चातिह्रस्वं चातिस्थूलं चातिकृशं चातिशुक्लं चातिकृष्णं चातिकुल्वं चातिलोमशं च। अशूद्राऽअब्राह्मणास्ते प्राजापत्याः। मागधः पुँश्चली कितवः क्लीबोऽशूद्राऽअब्राह्मणास्ते प्राजापत्याः॥२२॥

अथ। एतान्। अष्टौ। विरूपानिति विऽरूपान्। आ। लभते। अतिदीर्घमित्यतिऽदीर्घम्। च। अतिह्रस्वमित्यतिऽह्रस्वम्। च। अतिस्थूलमित्यतिऽस्थूलम्। च। अतिकृशमित्यतिऽकृशम्। च। अतिशुक्लमित्यतिऽशुक्लम्। च। अतिकृष्णमित्यतिऽकृष्णम्। च। अतिकुल्वमित्यतिऽकुल्वम्। च।

अतिलोमशमित्यतिऽलोमशम्। च। अशूद्राः। अब्राह्मणाः। ते। प्राजापत्या इति प्राजाऽपत्याः। मागधः। पुँश्चली। कितवः। क्लीबः। अशूद्राः। अब्राह्मणाः। ते। प्राजापत्या इति प्राजाऽपत्याः॥२२॥

पदार्थः-(**अथ**) आनन्तर्य्ये (**एतान्**) पूर्वोक्तान् (**अष्टौ**) (**विरूपान्**) विविधस्वरूपान् (**आ**) समन्तात् (**लभते**) प्राप्नोति (**अतिदीर्घम्**) अतिशयेन दीर्घम् (**च**) (**अतिह्रस्वम्**) अतिशयेन ह्रस्वम् (**च**) (**अतिस्थूलम्**) (**च**) (**अतिकृशम्**) (**च**) (**अतिशुक्लम्**) (**च**) (**अतिकृष्णम्**) (**च**) (**अतिकुल्वम्**) लोमरहितम् (**च**) (**अतिलोमशम्**) अतिशयेन लोमयुक्तम् (**च**) (**अशूद्राः**) न शूद्रा अशूद्राः (**अब्राह्मणाः**) न ब्राह्मणाः अब्राह्मणाः (**ते**) (**प्राजापत्याः**) प्रजापतिदेवताकाः (**मागधः**) नृशंसः (**पुँश्चली**) या पुँभिश्चलितचित्ता व्यभिचारिणी (**कितवः**) द्यूतशीलः (**क्लीबः**) नपुंसकः (**अशूद्राः**) अविद्यामानः शूद्रो येषान्ते (**अब्राह्मणाः**) अविद्यमानो ब्राह्मणो येषान्ते (**ते**) (**प्राजापत्याः**) प्रजापतेरिमे ते॥२२॥

अन्वयः-हे राजानो! यथा विद्वानतिदीर्घं चातिह्रस्वं चातिस्थूलं चातिकृशं चातिशुक्लं चातिकृष्णं चातिकुल्वं चातिलोमशं चैतान् विरूपानष्टावालभते, तथा यूयमप्यालभध्वम्। अथ येऽशूद्रा अब्राह्मणः प्राजापत्याः सन्ति, तेऽप्यालभेरन्। यो मागधो या पुंश्चली कितवः क्लीबोऽशूद्रा अब्राह्मणास्ते दूरे वासनीयाः। ये प्राजापत्यास्ते समीपे निवासनीयाः॥२२॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे मनुष्याः! यथा विद्वांसः सूक्ष्ममहत्पदार्थान् विज्ञाय यथायोग्यं व्यवहारं साध्नुवन्ति, तथाऽन्येऽपि साध्नुवन्तु। सर्वैः प्रजापतेरीश्वरस्योपासना नित्यं कर्त्तव्या इति॥२२॥

अस्मिन्नध्याये परमेश्वरस्वरूपराजकृत्ययोर्वर्णनादेतदर्थस्य पूर्वाध्यायेन सह सङ्गतिरस्तीति वेद्यम्॥

पदार्थः-हे राजा लोगो! जैसे विद्वान् (**अतिदीर्घम्**) बहुत बड़े (**च**) और (**अतिह्रस्वम्**) बहुत छोटे (**च**) और (**अतिस्थूलम्**) बहुत मोटे (**च**) और (**अतिकृशम्**) बहुत पतले (**च**) और (**अतिशुक्लम्**) अतिश्वेत (**च**) और (**अतिकृष्णम्**) बहुत काले (**च**) और (**अतिकुल्वम्**) लोमरहित (**च**) और (**अतिलोमशम्**) बहुत लोमों वाले की (**च**) भी (**एतान्**) इन (**विरूपान्**) अनेक प्रकार के रूपों वाले (**अष्टौ**) आठों को (**आ, लभते**) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है, वैसे तुम लोग भी प्राप्त होओ। (**अथ**) इस के अनन्तर जो (**अशूद्राः**) शूद्रभिन्न (**अब्राह्मणाः**) तथा ब्राह्मणभिन्न (**प्राजापत्याः**) प्रजापति देवता वाले हैं (**ते**) वे भी प्राप्त हों। जो (**मागधः**) मनुष्यों में निन्दित, जो (**पुंश्चली**) व्यभिचारिणी (**कितवः**) जुआरी (**क्लीबः**) नपुंसक (**अशूद्राः**) जिनमें शूद्र और (**अब्राह्मणाः**) ब्राह्मण नहीं, उनको दूर वसाना चाहिए और जो (**प्राजापत्याः**) राजा वा ईश्वर के सम्बन्धी हैं, (**ते**) वे समीप में वसाने चाहियें॥२२॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जैसे विद्वान् लोग छोटे-बड़े पदार्थों को जान के यथायोग्य व्यवहार को सिद्ध करते हैं, वैसे और लोग भी करें। सब लोगों को चाहिये कि प्रजा के रक्षक ईश्वर और राजा की आज्ञा सेवन तथा उपासना नित्य किया करें॥२२॥

इस अध्याय में परमेश्वर के स्वरूप और राजा के कृत्य का वर्णन होने से इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये॥

यह तीसवां अध्याय समाप्त हुआ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां श्रीयुतविरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्येण दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मिते संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां विभूषिते सुप्रमाणयुक्ते यजुर्वेदभाष्ये त्रिंशोऽध्यायः पूर्त्तिमगमत्॥३०॥

ओ३म्

अथैकत्रिंशत्तमाऽध्यायारम्भः

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव। यद्भ॒द्रं तन्न॒ ऽआ सु॑व॥यजु०३०.३

सहस्रशीर्षेत्यस्य नारायण ऋषिः। पुरुषो देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथ परमात्मन उपासनास्तुतिपूर्वकं सृष्टिविद्याविषयमाह॥

अब इकतीसवें अध्याय का आरम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में परमात्मा की उपासना, स्तुतिपूर्वक सृष्टिविद्या के विषय को कहते हैं॥

स॒हस्र॑शीर्षा॒ पुरु॑षः सहस्रा॒क्षः स॒हस्र॑पात्।

स भूमि॑ꣳ स॒र्वत॑ स्पृ॒त्वाऽत्य॑तिष्ठद्दशाङ्गु॒लम्॥ १॥

स॒हस्र॑शी॒र्षेति॑ स॒हस्र॑ऽशीर्षा। पुरु॑षः। स॒ह॒स्रा॒क्ष इति॑ सहस्रऽअ॒क्षः। सहस्र॑पा॒दिति॑ स॒हस्र॑ऽपात्॥ सः। भूमि॑म्। स॒र्वत॑ः स्पृ॒त्वा। अति॑। अ॒ति॒ष्ठ॒त्। द॒शा॒ङ्गु॒लमिति॑ दशऽअ॒ङ्गु॒लम्॥ १॥

पदार्थः-(**सहस्रशीर्षा**) सहस्राण्यसङ्ख्यातानि शिरांसि यस्मिन् सः (**पुरुषः**) सर्वत्र पूर्णो जगदीश्वरः, 'पुरुषः पुरिषादः पुरिशयः पूरयतेर्वा पूरयत्यन्तरित्यन्तरपुरुषमभिप्रेत्य। यस्मात्परं नापरमस्ति किञ्चिद् यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति किञ्चित्। वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वमित्यपि निगमो भवति॥' (**निरु० २.३**) (**सहस्राक्षः**) सहस्राण्यसंख्यातान्यक्षीणि यस्मिन् सः (**सहस्रपात्**) सहस्राण्यसंख्याताः पादा यस्मिन् सः (**सः**) (**भूमिम्**) भूगोलम् (**सर्वतः**) सर्वस्माद्देशात् (**स्पृत्वा**) अभिव्याप्य (**अति**) उल्लङ्घने (**अतिष्ठत्**) (**दशाङ्गुलम्**) पञ्चस्थूलसूक्ष्मभूतानि दशाङ्गुलान्यङ्गानि यस्य तज्जगत्॥ १॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यः सहस्रशीर्षा सहस्राक्षः सहस्रपात् पुरुषोऽस्ति, स सर्वतो भूमिं स्पृत्वा दशाङ्गुलमत्यतिष्ठत् तमेवोपासीध्वम्॥ १॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यस्मिन् पूर्णे परमात्मन्यस्मदादीनामसंख्यातानि शिरांस्यक्षीणि पादादीन्यङ्गानि च सन्ति यो भूम्याद्युपलक्षितं पञ्चभिः स्थूलैर्भूतैः सूक्ष्मैश्च युक्तं जगत् स्वसत्तया प्रपूर्य्य यत्र जगन्नास्ति तत्राऽपि पूर्णोऽस्ति तं सर्वनिर्मातारं परिपूर्णं सच्चिदानन्दस्वरूपं नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावं परमेश्वरं विहायाऽन्यस्योपासनां यूयं कदाचिन्नैव कुरुत किन्त्वस्योपासनेन धर्मार्थकाममोक्षानलं कुर्यात्॥ १॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो (**सहस्रशीर्षा**) सब प्राणियों के हजारों शिर (**सहस्राक्षः**) हजारों नेत्र और (**सहस्रपात्**) असङ्ख्य पाद जिसके बीच में हैं, ऐसा (**पुरुषः**) सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक जगदीश्वर

है **(सः)** वह **(सर्वतः)** सब देशों से **(भूमिम्)** भूगोल में **(स्पृत्वा)** सब ओर से व्याप्त हो के **(दशाङ्गुलम्)** पांच स्थूलभूत, पांच सूक्ष्मभूत ये दश जिसके अवयव हैं, उस सब जगत् को **(अति, अतिष्ठत्)** उल्लंघकर स्थित होता अर्थात् सब से पृथक् भी स्थिर होता है॥१॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जिस पूर्ण परमात्मा में हम मनुष्य आदि के असंख्य शिर आंखें और पग आदि अवयव हैं, जो भूमि आदि से उपलक्षित हुए पांच स्थूल और पांच सूक्ष्म भूतों से युक्त जगत् को अपनी सत्ता से पूर्ण कर जहां जगत् नहीं वहां भी पूर्ण हो रहा है, उस सब जगत् के बनाने वाले परिपूर्ण सच्चिदानन्दस्वरूप नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्तस्वभाव परमेश्वर को छोड़ के अन्य की उपासना तुम कभी न करो, किन्तु उस ईश्वर की उपासना से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त करो॥१॥

पुरुष इत्यस्य नारायण ऋषिः। ईशानो देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

पुरु॑षऽए॒वेदꣳ सर्वं॒ यद्भू॒तं यच्च॒ भाव्य॒म्।
उ॒ताम॑ृत॒त्वस्येशा॑नो॒ यदन्ने॑नाति॒रोह॑ति॥२॥

पुरु॑षः। ए॒व। इ॒दम। सर्व॑म्। यत्। भू॒तम्। यत्। च॒। भा॒व्य॒म्॥ उ॒त। अ॒मृ॒तत्वस्येत्य॑मृ॒त॒ऽत्वस्य॑। ईशा॑नः। यत्। अन्ने॑न। अ॒ति॒रोहतीत्य॑ति॒ऽरोह॑ति॥२॥

पदार्थः-**(पुरुषः)** सत्यैर्गुणकर्मस्वभावैः परिपूर्णः **(एव)** **(इदम्)** प्रत्यक्षाऽप्रत्याक्षात्मकं जगत् **(सर्वम्)** सम्पूर्णम् **(यत्)** **(भूतम्)** उत्पन्नम् **(यत्)** **(च)** **(भाव्यम्)** उत्पत्स्यमानम् **(उत्)** अपि **(अमृतत्वस्य)** अविनाशिनो मोक्षसुखस्य कारणस्य वा **(ईशानः)** अधिष्ठाता **(यत्)** **(अन्नेन)** पृथिव्यादिना **(अतिरोहति)** अत्यन्तं वर्द्धते॥२॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यद्भूतं यच्च भाव्यमुतापि यदन्नेनाऽतिरोहति तदिदं सर्वममृतत्वस्येशानः पुरुष एव रचयति॥२॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! येनेश्वरेण यदा यदा सृष्टिरभूत् तदा तदा निर्मिता, इदानीं धरति पुनर्विनाश्य रचिष्यति यदाधारेण सर्वं वर्त्तते वर्द्धते च तमेव परेशं परमात्मानमुपासीध्वं नाऽस्मादितरम्॥२॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! **(यत्)** जो **(भूतम्)** उत्पन्न हुआ **(च)** और **(यत्)** जो **(भाव्यम्)** उत्पन्न होनेवाला **(उत)** और **(यत्)** जो **(अन्नेन)** पृथिवी आदि के सम्बन्ध से **(अतिरोहति)** अत्यन्त बढ़ता है, उस **(इदम्)** इस प्रत्यक्ष परोक्ष रूप **(सर्वम्)** समस्त जगत् को **(अमृतत्वस्य)** अविनाशी मोक्षसुख

वा कारण का **(ईशानः)** अधिष्ठाता **(पुरुषः)** सत्य गुण, कर्म, स्वभावों से परिपूर्ण परमात्मा **(एव)** ही रचता है॥२॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जिस ईश्वर ने जब-जब सृष्टि हुई तब-तब रची, इस समय धारण करता फिर विनाश करके रचेगा। जिसके आधार से सब वर्त्तमान है और बढ़ता है, उसी सबके स्वामी परमात्मा की उपासना करो, इससे भिन्न की नहीं॥२॥

एतावानित्यस्य नारायण ऋषिः। पुरुषो देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि॥३॥

एतावान्। अस्य। महिमा। अतः। ज्यायान्। च। पूरुषः। पुरुषऽइति पुरुषः॥ पादः। अस्य। विश्वा। भूतानि। त्रिपादिति। त्रिऽपात्। अस्य। अमृतम्। दिवि॥३॥

पदार्थः-**(एतावान्)** दृश्यादृश्यं ब्रह्माण्डरूपम् **(अस्य)** जगदीश्वरस्य **(महिमा)** माहात्म्यम् **(अतः)** अस्मात् **(ज्यायान्)** अतिशयेन प्रशस्तो महान् **(च)** **(पूरुषः)** परिपूर्णः **(पादः)** एकोंशः **(अस्य)** **(विश्वा)** विश्वानि सर्वाणि **(भूतानि)** पृथिव्यादीनि **(त्रिपात्)** त्रयः पादा यस्मिन् **(अस्य)** जगत्स्रष्टुः **(अमृतम्)** नाशरहितम् **(दिवि)** द्योतनात्मके स्वस्वरूपे॥३॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! अस्य परमेश्वरस्यैतावान् महिमाऽतोऽयं पूरुषो ज्यायानस्य च विश्वा भूतान्येकः पादोऽस्य त्रिपादमृतं दिवि वर्त्तते॥३॥

भावार्थः-इदं सर्वं सूर्यचन्द्रादिलोकलोकान्तरं चराचरं यावज्जगदस्ति तच्चित्रविचित्ररचनानुमानेनेश्वरस्य महत्त्वं सम्पाद्योत्पत्तिस्थितिप्रलयरूपेण कालत्रये ह्रासवृद्ध्यादिनाऽपि परमेश्वरस्य चतुर्थांशे तिष्ठति नैवास्य तुरीयांशस्याप्यवधिं प्राप्नोति। अस्य सामर्थ्यस्यांशत्रयं स्वेऽविनाशिनि मोक्षस्वरूपे सदैव वर्त्तते नानेन कथनेन तस्याऽनन्तत्वं विहन्यते, किन्तु जगदपेक्षया तस्य महत्त्वं जगतो न्यूनत्वञ्च ज्ञाप्यते॥३॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! **(अस्य)** इस जगदीश्वर का **(एतावान्)** यह दृश्य-अदृश्य ब्रह्माण्ड **(महिमा)** महत्त्वसूचक है **(अतः)** इस ब्रह्माण्ड से यह **(पूरुषः)** परिपूर्ण परमात्मा **(ज्यायान्)** अति प्रशंसित और बड़ा है **(च)** और **(अस्य)** इस ईश्वर के **(विश्वा)** सब **(भूतानि)** पृथिव्यादि चराचर जगत् एक **(पादः)** अंश है और **(अस्य)** इस जगत्स्रष्टा का **(त्रिपाद्)** तीन अंश **(अमृतम्)** नाशरहित महिमा **(दिवि)** द्योतनात्मक अपने स्वरूप में है॥३॥

भावार्थः-यह सब सूर्य्य-चन्द्रादि लोकलोकान्तर चराचर जितना जगत् है, वह सब चित्र-विचित्र रचना के अनुमान से परमेश्वर के महत्त्व को सिद्ध कर उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय रूप से तीनों काल में घटने-बढ़ने से भी परमेश्वर के चतुर्थांश में ही रहता, किन्तु इस ईश्वर के चौथे अंश की भी अवधि को नहीं पाता और इस ईश्वर के सामर्थ्य के तीन अंश अपने अविनाशि मोक्षस्वरूप में सदैव रहते हैं। इस कथन से उस ईश्वर का अनन्तपन नहीं बिगड़ता, किन्तु जगत् की अपेक्षा उसका महत्व और जगत् का न्यूनत्व जाना जाता है॥३॥

त्रिपादित्यस्य नारायण ऋषिः। पुरुषो देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः।

ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशनेऽअभि॥४॥

त्रिपादिति त्रिऽपात्। ऊर्ध्वः। उत्। ऐत्। पुरुषः। पादः। अस्य। इह। अभवत्। पुनरिति पुनः॥ ततः। विष्वङ्। वि। अक्रामत्। साशनानशनेऽइति साशनानशने। अभि॥४॥

पदार्थः-(**त्रिपात्**) त्रयः पादा अंशा यस्य सः (**ऊर्ध्वः**) सर्वेभ्य उत्कृष्टः संसारात् पृथक् मुक्तिरूपः (**उत्**) (**ऐत्**) उदेति (**पुरुषः**) पालकः (**पादः**) एको भागः (**अस्य**) (**इह**) जगति (**अभवत्**) भवति (**पुनः**) पुनः पुनः (**ततः**) ततोऽनन्तरम् (**विष्वङ्**) यो विषु सर्वत्राञ्चति प्राप्नोति (**वि**) विशेषेण (**अक्रामत्**) व्याप्नोति (**साशनानशने**) अशनेन भोजनेन सह वर्त्तमानं साशनं न विद्यतेऽशनं यस्य तदनशनं साशनञ्चानशनञ्च ते प्राण्यप्राणिनौ (**अभि**) अभिलक्ष्य॥४॥

अन्वयः-पूर्वोक्तस्त्रिपात्पुरुष ऊर्ध्व उदैत्। अस्य पाद इह पुनरभवत्। ततः साशनानशने अभि विष्वङ् सन् व्यक्रामत्॥४॥

भावार्थः-अयं परमेश्वरः कार्यजगतः पृथगंशत्रयेण प्रकाशितः सन् एकांशस्वसामर्थ्येन सर्वं जगत्पुनः पुनरुत्पादयति पश्चात् तस्मिन् चराऽचरे जगति व्याप्य तिष्ठति॥४॥

पदार्थः-पूर्वोक्त (**त्रिपात्**) तीन अंशों वाला (**पुरुषः**) पालक परमेश्वर (**ऊर्ध्वः**) सब से उत्तम मुक्तिस्वरूप संसार से पृथक् (**उत् , ऐत्**) उदय को प्राप्त होता है। (**अस्य**) इस पुरुष का (**पादः**) एक भाग (**इह**) इस जगत् में (**पुनः**) वार-वार उत्पत्ति-प्रलय के चक्र से (**अभवत्**) होता है (**ततः**) इसके अनन्तर (**साशनानशने**) खाने वाले चेतन और न खाने वाले जड़ इन दोनों के (**अभि**) प्रति (**विष्वङ्**) सर्वत्र प्राप्त होता हुआ (**वि, अक्रामत्**) विशेष कर व्याप्त होता है॥४॥

भावार्थः-यह पूर्वोक्त परमेश्वर कार्य जगत् से पृथक् तीन अंश से प्रकाशित हुआ एक अंश अपने सामर्थ्य से सब जगत् को वार-वार उत्पन्न करता है, पीछे उस चराचर जगत् में व्याप्त होकर स्थित है॥४॥

ततो विराडित्यस्य नारायण ऋषिः। स्रष्टा देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ततो॑ वि॒राड॑जायत वि॒राजो॒ऽअधि॒ पूरु॑षः।

स जा॒तोऽअत्य॑रिच्यत प॒श्चाद् भूमि॒मथो॑ पु॒रः॥५॥

तत॑ः। वि॒राडिति॑ वि॒ऽराट्। अ॒जा॒य॒त॒। वि॒राज॒ इति॑ वि॒ऽराज॑ः। अधि॑। पूरु॑षः। पुरु॑ष॒ऽइति॑ पुरु॑षः॥ सः। जा॒तः। अति॑। अ॒रि॒च्य॒त॒। प॒श्चात्। भूमि॑म्। अथो॒ऽइत्यथो॑। पु॒रः॥५॥

पदार्थः-(**ततः**) तस्मात् पूर्णादादिपुरुषात् (**विराट्**) विविधैः पदार्थै राजते प्रकाशते स विराट् ब्रह्माण्डरूपः (**अजायत**) जायते (**विराजः**) (**अधि**) उपरि अधिष्ठाता (**पूरुषः**) परिपूर्णः परमात्मा (**सः**) (**जातः**) प्रादुर्भूतः (**अति**) (**अरिच्यत**) अतिरिक्तो भवति (**पश्चात्**) (**भूमिम्**) (**अथो**) (**पुरः**) पुरस्ताद्वर्त्तमानः॥५॥

अन्वयः-हे मनुष्यास्ततो विराडजायत विराजो अधि पूरुष अथो स पुरो जातोऽत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिं जनयति तं विजानीत॥५॥

भावार्थः-परमेश्वरादेव सर्वं समष्टिरूपं जगज्जायते स च तस्मात् पृथग्भूतो व्याप्तोऽपि तत्कल्मषालिप्तोऽस्य सर्वस्याधिष्ठाता भवति। एवं सामान्येन जगन्निर्माणमुक्त्वा विशेषतया भूम्यादिनिर्माणं क्रमेणोच्यते॥५।।

पदार्थः-हे मनुष्यो! (**ततः**) उस सनातन पूर्ण परमात्मा से (**विराट्**) विविध प्रकार के पदार्थों से प्रकाशमान विराट् ब्रह्माण्डरूप संसार (**अजायत**) उत्पन्न होता (**विराजः**) विराट् संसार के (**अधि**) ऊपर अधिष्ठाता (**पूरुषः**) परिपूर्ण परमात्मा होता है, (**अथो**) इसके अनन्तर (**सः**) वह पुरुष (**पुरः**) पहिले से (**जातः**) प्रसिद्ध हुआ (**अति, अरिच्यत**) जगत् से अतिरिक्त होता है (**पश्चात्**) पीछे (**भूमिम्**) पृथिवी को उत्पन्न करता है, उसको जानो।।५॥

भावार्थः-परमेश्वर ही से सब समष्टिरूप जगत् उत्पन्न होता है, वह उस जगत् से पृथक् उसमें व्याप्त भी हुआ उसके दोषों से लिप्त न होके इस सबका अधिष्ठाता है। इस प्रकार सामान्य कर जगत् की रचना कह के विशेष कर भूमि आदि की रचना को क्रम से कहते हैं॥५॥

तस्मादित्यस्य नारायण ऋषिः। पुरुषो देवता। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम्।

पशूँस्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये॥६॥

तस्मात्। यज्ञात्। सर्वहुत इति सर्वऽहुतः। सम्भृतमिति सम्ऽभृतम्। पृषदाज्यमिति पृषत्ऽआज्यम्। पशून्। तान्। चक्रे। वायव्यान्। आरण्याः। ग्राम्याः। च। ये॥६॥

पदार्थः-(**तस्मात्**) पूर्वोक्तात् (**यज्ञात्**) पूजनीयात् पुरुषात् (**सर्वहुतः**) सर्वैर्हूयत आदीयते तस्मात् (**सम्भृतम्**) सम्यक् सिद्धं जातम् (**पृषदाज्यम्**) दध्याज्यादि भोज्यं वस्तु (**पशून्**) (**तान्**) (**चक्रे**) करोति (**वायव्यान्**) वायुवद्गुणान् (**आरण्याः**) अरण्ये भवाः सिंहादयः (**ग्राम्याः**) ग्रामे भवा गवादयः (**च**) (**ये**)॥६॥

अन्वयः-हे मनुष्यास्तस्मात् सर्वहुतो यज्ञात् सर्वं पृषदाज्यं सम्भृतं य आरण्या ग्राम्याश्च तान् वायव्यान् पशून् यश्चक्रे तं विजानीत॥६॥

भावार्थः-येन सर्वैर्ग्रहीतव्येन पूज्येन जगदीश्वरेण सर्वजगद्धिताय दध्यादि भोग्यं वस्तु ग्रामस्था वनस्थाश्च पशवो निर्मितास्तं सर्व उपासीरन्॥६॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! (**तस्मात्**) उस पूर्वोक्त (**सर्वहुतः**) जो सबसे ग्रहण किया जाता उस (**यज्ञात्**) पूजनीय पुरुष परमात्मा से सब (**पृषदाज्यम्**) दध्यादि भोगने योग्य वस्तु (**सम्भृतम्**) सम्यक् सिद्ध उत्पन्न हुआ (**ये**) जो (**आरण्याः**) वन के सिंह आदि (**च**) और (**ग्राम्याः**) ग्राम में हुए गौ आदि हैं (**तान्**) उन (**वायव्यान्**) वायु के तुल्य गुणों वाले (**पशून्**) पशुओं को जो (**चक्रे**) उत्पन्न करता है, उसको तुम लोग जानो।॥६॥

भावार्थः-जिस सबको ग्रहण करने योग्य, पूजनीय परमेश्वर ने सब जगत् के हित के लिये दही आदि भोगने योग्य पदार्थ और ग्राम के तथा वन के पशु बनाये हैं, उसकी सब लोग उपासना करो॥६॥

तस्मादित्यस्य नारायण ऋषिः। स्रष्टेश्वरो देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतऽऋचः सामानि जज्ञिरे।

छन्दाᳬसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत॥७॥

तस्मा॑त्। य॒ज्ञात्। स॒र्व॒हु॒त इति॑ सर्व॒ऽहु॒तः॑। ऋचः॑। सामा॑नि। ज॒ज्ञि॒रे॒॥ छन्दा॑ꣳसि। ज॒ज्ञि॒रे॒। तस्मा॑त्। यजुः॑। तस्मा॑त्। अ॒जा॒य॒त॒॥७॥

पदार्थः-(**तस्मात्**) पूर्णात् (**यज्ञात्**) पूजनीयतमात् (**सर्वहुतः**) सर्वे जुह्वति सर्वं समर्पयन्ति वा यस्मै (**ऋचः**) ऋग्वेदः (**सामानि**) सामवेदः (**जज्ञिरे**) जायन्ते (**छन्दांसि**) अथर्ववेदः (**जज्ञिरे**) (**तस्मात्**) परमात्मनः (**यजुः**) यजुर्वेदः (**तस्मात्**) (**अजायत**) जायते॥७॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! युष्माभिस्तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः परमात्मनः ऋचः सामानि जज्ञिरे तस्माच्छन्दाꣳसि जज्ञिरे तस्माद्यजुरजायत स विज्ञातव्यः॥७॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! भवन्तो यस्मात् सर्वे वेदा जायन्ते तं परमात्मानमुपासीरन् वेदाँश्चाधीयीरन् तदाज्ञानुकूलं च वर्त्तित्वा सुखिनो भवन्तु॥७॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुमको चाहिये कि (**तस्मात्**) उस पूर्ण (**यज्ञात्**) अत्यन्त पूजनीय (**सर्वहुतः**) जिसके अर्थ सब लोग समस्त पदार्थों को देते वा समर्पण करते उस परमात्मा से (**ऋचः**) ऋग्वेद (**सामानि**) सामवेद (**जज्ञिरे**) उत्पन्न होते (**तस्मात्**) उस परमात्मा से (**छन्दांसि**) अथर्ववेद (**जज्ञिरे**) उत्पन्न होता और (**तस्मात्**) उस पुरुष से (**यजुः**) यजुर्वेद (**अजायत**) उत्पन्न होता है, उसको जानो॥७॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! आप लोग जिससे सब वेद उत्पन्न हुए हैं, उस परमात्मा की उपासना करो, वेदों को पढ़ो और उसकी आज्ञा के अनुकूल वर्त्त के सुखी होओ॥७॥

तस्मादित्यस्य नारायण ऋषिः। पुरुषो देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

तस्मा॒दश्वा॑ऽअजायन्त॒ ये के चो॑भ॒याद॑तः।

गावो॑ ह जज्ञिरे॒ तस्मा॒त् तस्मा॑ज्जा॒ताऽअ॑जा॒वयः॑॥८॥

तस्मा॑त्। अश्वाः॑। अ॒जा॒य॒न्त॒। ये। के। च॒। उ॒भ॒याद॑तः। उ॒भ॒याद॑त॒ इत्यु॑भ॒यऽद॑तः॥ गावः॑। ह॒। ज॒ज्ञि॒रे॒। तस्मा॑त्। तस्मा॑त्। जा॒ताः। अ॒जा॒वयः॑॥८॥

पदार्थः-(**तस्मात्**) परमेश्वरात् (**अश्वाः**) तुरङ्गाः (**अजायन्त**) उत्पन्नाः (**ये**) (**के**) (**च**) गर्द्दभादयः (**उभयादतः**) उभयोरध ऊर्ध्वभागयोर्दन्ता येषान्ते (**गावः**) धेनवः। गाव इत्युपलक्षणमेकदताम्। (**ह**) किल (**जज्ञिरे**) उत्पन्नाः (**तस्मात्**) (**तस्मात्**) (**जाताः**) उत्पन्नाः (**अजावयः**) अजाश्चावयश्च ते॥८॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! युष्माकमश्वा ये के चोभयादतः सन्ति ते तस्मादजायन्त। तस्माद् गावो ह जज्ञिरे तस्मादजावयो जाता इति वेद्यम्॥८॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यूयं गवाश्वादयो ग्राम्याः सर्वे पशवो यस्मात् सनातनात् पूर्णात् पुरुषादेवोत्पन्नास्तस्याज्ञोल्लङ्घनं कदापि मा कुरुत॥८॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुमको **(अश्वाः)** घोड़े तथा **(ये)** जो **(के)** कोई **(च)** गदहा आदि **(उभयादतः)** दोनों ओर ऊपर-नीचे दांतों वाले हैं, वे **(तस्मात्)** उस परमेश्वर से **(अजायन्त)** उत्पन्न हुए **(तस्मात्)** उसी से **(गावः)** गौएं **(यह एक ओर दांतवालों का उपलक्षण है, इससे अन्य भी एक ओर दांतवाले लिये जाते हैं)** **(ह)** निश्चय कर **(जज्ञिरे)** उत्पन्न हुए और **(तस्मात्)** उससे **(अजावयः)** बकरी, भेड़ **(जाताः)** उत्पन्न हुए हैं, इस प्रकार जानना चाहिये॥८॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! तुम लोग गौ, घोड़े आदि ग्राम के सब पशु जिस सनातन पूर्ण पुरुष परमेश्वर से ही उत्पन्न हुए हैं, उसकी आज्ञा का उल्लङ्घन कभी मत करो॥८॥

तं यज्ञमित्यस्य नारायण ऋषिः। पुरुषो देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः।

तेन देवाऽअयजन्त साध्याऽऋषयश्च ये॥९॥

तम्। यज्ञम्। बर्हिषि। प्र। औक्षन्। पुरुषम्। जातम्। अग्रतः॥ तेन। देवाः। अयजन्त। साध्याः। ऋषयः। च। ये॥९॥

पदार्थः-**(तम्)** उक्तम् **(यज्ञम्)** संपूजनीयम् **(बर्हिषि)** मानसे ज्ञानयज्ञे **(प्र)** प्रकर्षेण **(औक्षन्)** सिञ्चन्ति **(पुरुषम्)** पूर्णम् **(जातम्)** प्रादुर्भूतञ्जगत्कर्त्तारम् **(अग्रतः)** सृष्टेः प्राक् **(तेन)** तदुपदिष्टेन वेदेन **(देवाः)** विद्वांसः **(अयजन्त)** पूजयन्ति **(साध्याः)** साधनं योगाभ्यासादिकं कुर्वन्तो ज्ञानिनः **(ऋषयः)** मन्त्रार्थविदः **(च)** **(ये)**॥९॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! ये देवाः साध्या ऋषयश्च यमग्रतो जातं यज्ञं पुरुषं बर्हिषि प्रोक्षन् त एव तेनायजन्त च तं यूयं विजानीत॥९॥

भावार्थः-विद्वद्भिर्मनुष्यैः सृष्टिकर्त्तेश्वरो योगाभ्यासादिना सदा हृदयान्तरिक्षे ध्यातव्यः पूजनीयश्च॥९॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! **(ये)** जो **(देवाः)** विद्वान् **(च)** और **(साध्याः)** योगाभ्यास आदि साधन करते हुए **(ऋषयः)** मन्त्रार्थ जानने वाले ज्ञानी लोग जिस **(अग्रतः)** सृष्टि से पूर्व **(जातम्)** प्रसिद्ध हुए

(यज्ञम्) सम्यक् पूजने योग्य **(पुरुषम्)** पूर्ण परमात्मा को **(बर्हिषि)** मानस ज्ञान यज्ञ में **(प्र, औक्षन्)** सींचते अर्थात् धारण करते हैं, वे ही **(तेन)** उसके उपदेश किये हुए वेद से और **(अयजन्त)** उसका पूजन करते हैं, **(तम्)** उसको तुम लोग भी जानो॥९॥

भावार्थ:-विद्वान् मनुष्यों को चाहिये कि सृष्टिकर्त्ता ईश्वर का योगाभ्यासादि से सदा हृदयरूप अवकाश में ध्यान और पूजन किया करें॥९॥

यत्पुरुषमित्यस्य नारायण ऋषि:। पुरुषो देवता। निचृदनुष्टुप् छन्द:। गान्धार: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यत्पुरु॑षं॒ व्यद॑धुः कति॒धा व्य॑कल्पयन्।

मुखं॒ किम॑स्यासी॒त् किं बा॒हू किमू॒रू पादा॑ऽउच्येते॥ १०॥

यत्। पुरु॑षम्। वि। अद॑धुः। क॒ति॒धा। वि। अ॒क॒ल्प॒य॒न्॥ मुख॑म्। किम्। अ॒स्य॒। आ॒सी॒त्। किम्। बा॒हूऽइति॑ बा॒हू। किम्। ऊ॒रूऽइत्यू॒रू। पादौ॑। उ॒च्ये॒ते॒ऽइत्यु॑च्येते॥ १०॥

पदार्थ:-**(यत्)** यम् **(पुरुषम्)** पूर्णम् **(वि)** विविधप्रकारेण **(अदधु:)** धरन्ति **(कतिधा)** कतिप्रकारै: **(वि)** विशेषेण **(अकल्पयन्)** कथयन्ति **(मुखम्)** मुखस्थानीयं श्रेष्ठम् **(किम्)** **(अस्य)** पुरुषस्य **(आसीत्)** अस्ति **(किम्)** **(बाहू)** भुजबलभृत् **(किम्)** **(ऊरू)** जानुन ऊद्ध्र्वावयवस्थानीयम् **(पादौ)** नीचस्थानीयम् **(उच्येते)**॥१०॥

अन्वय:-हे विद्वांसो! भवन्तो यद्यं पुरुषं व्यदधुस्तं कतिधा व्यकल्पयन्नस्य सृष्टौ मुखं किमासीद् बाहू किमुच्येते। ऊरू पादौ च किमुच्येते॥१०॥

भावार्थ:-हे विद्वांसोऽत्र संसारेऽसंख्यं सामर्थ्यमीश्वरस्यास्ति तत्र समुदाये मुखमुत्तमाङ्गं बाह्वादीनि चाङ्गानि कानि सन्ति इति ब्रूत॥१०॥

पदार्थ:-हे विद्वान् लोगो! आप **(यत्)** जिस **(पुरुषम्)** पूर्ण परमेश्वर को **(वि, अदधु:)** विविध प्रकार से धारण करते हो, उसको **(कतिधा)** कितने प्रकार से **(वि, अकल्पयन्)** विशेषकर करते हैं और **(अस्य)** इस ईश्वर की सृष्टि में **(मुखम्)** मुख के समान श्रेष्ठ **(किम्)** कौन **(आसीत्)** है **(बाहू)** भुजबल का धारण करने वाला **(किम्)** कौन **(ऊरू)** घोंटू के कार्य्य करने हारे और **(पादौ)** पांव के समान नीच **(किम्)** कौन **(उच्येते)** कहे जाते हैं॥१०॥

भावार्थ:-हे विद्वानो! इस संसार में असंख्य सामर्थ्य ईश्वर का है, उस समुदाय में उत्तम अङ्ग मुख और बाहू आदि अङ्ग कौन हैं? यह कहिये॥१०॥

ब्राह्मण इत्यस्य नारायण ऋषि:। पुरुषो देवता। निचृदनुष्टुप छन्द:। गान्धार: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ब्राह्मणोऽस्य मुख॑मासीद् बाहू रा॑जन्यः कृतः।

ऊरू तद॑स्य यद्वैश्यः॑ पद्भ्याᳬं शूद्रोऽअ॑जायत॥ ११॥

ब्राह्मणः। अस्य। मुख॑म्। आसीत्। बाहूऽइति॑ बाहू। राजन्यः। कृतः॥ ऊरूऽइत्यूरू। तत्। अस्य। यत्। वैश्यः॑। पद्भ्यामिति॑ पत्ऽभ्याम्। शूद्रः।अजायत॥ ११॥

पदार्थः-(**ब्राह्मणः**) वेदेश्वरविदनयोः सेवक उपासको वा (**अस्य**) ईश्वरस्य (**मुखम्**) मुखमिवोत्तमः (**आसीत्**) अस्ति (**बाहू**) भुजाविव बलवीर्य्ययुक्तः (**राजन्यः**) राजपुत्रः (**कृतः**) निष्पन्नः (**ऊरू**) ऊरू इव वेगादिकर्मकारी (**तत्**) (**अस्य**) (**यत्**) (**वैश्यः**) यो यत्र तत्र विशति प्रविशति तदपत्यम् (**पद्भ्याम्**) सेवानिरभिमानाभ्याम् (**शूद्रः**) मूर्खत्वादिगुणविशिष्टो मनुष्यः (**अजायत**) जायते॥ ११॥

अन्वयः-हे जिज्ञासवो! यूयमस्य सृष्टौ ब्राह्मणो मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतो यदूरू तदस्य वैश्य आसीत् पद्भ्यां शूद्रोऽजायतेत्युत्तराणि यथाक्रमं विजानीत॥ ११॥

भावार्थः-ये विद्याशमदमादिषूत्तमेषु गुणेषु मुखमिवोत्तमास्ते ब्राह्मणाः। येऽधिकवीर्य्या बाहुवत्कार्य्यसाधकास्ते क्षत्रियाः। ये व्यवहारविद्याकुशलास्ते वैश्या ये च सेवायां साधवो विद्याहीनाः पादाविव मूर्खत्वादिनीचगुणयुक्तास्ते शूद्राः कार्य्या मन्तव्याश्च॥ ११॥

पदार्थः-हे जिज्ञासु लोगो! (**अस्य**) इस ईश्वर की सृष्टि में (**ब्राह्मणः**) वेद ईश्वर का ज्ञाता इनका सेवक वा उपासक (**मुखम्**) मुख के तुल्य उत्तम ब्राह्मण (**आसीत्**) है (**बाहू**) भुजाओं के तुल्य बल पराक्रमयुक्त (**राजन्यः**) राजपूत (**कृतः**) किया (**यत्**) जो (**ऊरू**) जांघों के तुल्य वेगादि काम करनेवाला (**तत्**) वह (**अस्य**) इसका (वैश्यः) सर्वत्र प्रवेश करनेहारा वैश्य है (**पद्भ्याम्**) सेवा और अभिमान रहित होने से (**शूद्रः**) मूर्खपन आदि गुणों से युक्त शूद्र (**अजायत**) उत्पन्न हुआ, ये उत्तर क्रम से जानो॥ ११॥

भावार्थः-जो मनुष्य विद्या और शमदमादि उत्तम गुणों में मुख के तुल्य उत्तम हों, वे ब्राह्मण, जो अधिक पराक्रम वाले भुजा के तुल्य कार्य्यों को सिद्ध करने हारे हों वे क्षत्रिय, जो व्यवहारविद्या में प्रवीण हों, वे वैश्य और जो सेवा में प्रवीण, विद्याहीन, पगों के समान मूर्खपन आदि नीच गुणयुक्त हैं, वे शूद्र करने और मानने चाहियें॥ ११॥

चन्द्रमा इत्यस्य नारायण ऋषिः। पुरुषो देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्योऽअजायत।

श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत॥ १२॥

चन्द्रमाः। मनसः। जातः। चक्षोः। सूर्यः। अजायत॥ श्रोत्रात्। वायुः। च। प्राणः। च। मुखात्। अग्निः। अजायत॥ १२॥

पदार्थः-(चन्द्रमाः) चन्द्रलोकः **(मनसः)** मननशीलात् सामर्थ्यात् **(जातः)** **(चक्षोः)** ज्योतिःस्वरूपात् **(सूर्यः)** सूर्यलोकः **(अजायत)** जातः **(श्रोत्राद्)** श्रोत्रावकाशरूपसामर्थ्यात् **(वायुः)** **(च)** आकाशप्रदेशाः **(प्राणः)** जीवननिमित्तः **(च)** **(मुखात्)** मुख्यज्योतिर्मयाद्भक्षणरूपात् **(अग्निः)** पावकः **(अजायत)**॥ १२॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! अस्य ब्रह्मणः पुरुषस्य मनसश्चन्द्रमा जातश्चक्षोः सूर्य्योऽजायत श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायतेति बुध्यध्वम्॥ १२॥

भावार्थः-यदिदं सर्वं जगत् कारणादीश्वरेणोत्पादितं वर्त्तते तत्र चन्द्रलोको मनःस्वरुपः सूर्य्यश्चक्षुःस्थानी वायुः प्राणश्च श्रोत्रवन्मुखमिवाग्निर्लोमवदोषधिवनस्पतयो नाडीवन्नद्योऽस्थिवत् पर्वतादिर्वर्त्तत इति वेदितव्यम्॥ १२॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! इस पूर्ण ब्रह्म के **(मनसः)** ज्ञानस्वरूप सामर्थ्य से **(चन्द्रमाः)** चन्द्रलोक **(जातः)** उत्पन्न हुआ **(चक्षोः)** ज्योतिस्वरूप सामर्थ्य से **(सूर्य्यः)** सूर्य्यमण्डल **(अजायत)** उत्पन्न हुआ **(श्रोत्रात्)** श्रोत्र नामक अवकाश रूप सामर्थ्य से **(वायुः)** वायु **(च)** तथा आकाश प्रदेश **(च)** और **(प्राणः)** जीवन के निमित्त दश प्राण और **(मुखात्)** मुख्य ज्योतिर्मय भक्षणस्वरूप सामर्थ्य से **(अग्निः)** अग्नि **(अजायत)** उत्पन्न हुआ है, ऐसा तुमको जानना चाहिये॥ १२॥

भावार्थः-जो यह सब जगत् कारण से ईश्वर ने उत्पन्न किया है, उसमें चन्द्रलोक मनरूप, सूर्य्यलोक नेत्ररूप, वायु और प्राण श्रोत्र के तुल्य, मुख के तुल्य अग्नि, ओषधि और वनस्पति रोमों के तुल्य, नदी नाड़ियों के तुल्य और पर्वतादि हड्डी के तुल्य हैं, ऐसा जानना चाहिये॥ १२॥

नाभ्या इत्यस्य नारायण ऋषिः। पुरुषो देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

नाभ्याऽआसीदन्तरिक्षꣳ शीर्ष्णो द्यौः समवर्त्तत।

पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ२॥ऽअकल्पयन्॥ १३॥

नाभ्याः। आसीत्। अन्तरिक्षम्। शीर्ष्णः। द्यौः। सम्। अवर्त्तत॥ पद्भ्यामिति पत्ऽभ्याम्। भूमिः। दिशः। श्रोत्रात्। तथा। लोकान्॥ अकल्पयन्॥ १३॥

पदार्थः-(**नाभ्याः**) अवकाशमयान्मध्यवर्त्तिसामर्थ्यात् (**आसीत्**) अस्ति (**अन्तरिक्षम्**) मध्यवर्त्याकाशम् (**शीर्ष्णः**) शिर इवोत्तमसामर्थ्यात् (**द्यौः**) प्रकाशयुक्तलोकः (**सम्**) (**अवर्त्तत**) (**पद्भ्याम्**) पृथिवीकारणरूपसामर्थ्यात् (**भूमिः**) (**दिशः**) पूर्वाद्याः (**श्रोत्रात्**) अवकाशमयात् (**तथा**) तेनैव प्रकारेण (**लोकान्**) (**अकल्पयन्**) कथयन्ति॥ १३॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथाऽस्य नाभ्या अन्तरिक्षमासीच्छीर्ष्णो द्यौः पद्भ्यां भूमिः समवर्त्तत श्रोत्राद्दिशोऽकल्पयँस्तथाऽन्यांल्लोकानुत्पन्नान् विजानीत॥ १३॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यद्यदत्र सृष्टौ कार्य्यभूतं वस्तु वर्त्तते तत्तत्सर्वं विराडाख्यस्य कार्यकारणस्याऽवयवरूपं वर्त्तत इति वेद्यम्॥ १३॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे इस पुरुष परमेश्वर के (**नाभ्याः**) अवकाशरूप मध्यम सामर्थ्य से (**अन्तरिक्षम्**) लोकों के बीच का आकाश (**आसीत्**) हुआ (**शीर्ष्णः**) शिर के तुल्य उत्तम सामर्थ्य से (**द्यौः**) प्रकाशयुक्त लोक (**पद्भ्याम्**) पृथिवी के कारणरूप सामर्थ्य से (**भूमिः**) पृथिवी (**सम्, अवर्त्तत**) सम्यक् वर्त्तमान हुई और (**श्रोत्रात्**) अवकाशरूप सामर्थ्य से (**दिशः**) पूर्व आदि दिशाओं की (**अकल्पयन्**) कल्पना करते हैं, (**तथा**) वैसे ही ईश्वर के सामर्थ्य से अन्य (**लोकान्**) लोकों को उत्पन्न हुए जानो॥ १३॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जो-जो इस सृष्टि में कार्यरूप वस्तु है, वह-वह सब विराट्रूप कार्यकारण का अवयवरूप है, ऐसा जानना चाहिये॥ १३॥

यत्पुरुषेणेत्यस्य नारायण ऋषिः। पुरुषो देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।

वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्मऽइध्मः शरद्धविः॥ १४॥

यत्। पुरुषेण। हविषा। देवाः। यज्ञम्। अतन्वत॥ वसन्तः। अस्य। आसीत्। आज्यम्। ग्रीष्मः। इध्मः। शरत्। हविः॥ १४॥

पदार्थः-(**यत्**) यदा (**पुरुषेण**) पूर्णेन परमात्मना (**हविषा**) होतुमादातुमर्हेण (**देवाः**) विद्वांसः (**यज्ञम्**) मानसं ज्ञानमयम् (**अतन्वत**) तन्वते विस्तृणन्ति (**वसन्तः**) पूर्वाह्णः (**अस्य**) यज्ञस्य (**आसीत्**)

अस्ति **(आज्यम्)** **(ग्रीष्मः)** मध्याह्नः **(इध्मः)** प्रदीपकः **(शरत्)** अर्द्धरात्रः **(हविः)** होतव्यं द्रव्यम्॥१४॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यद्धविषा पुरुषेण सह देवा यज्ञमतन्वत तदाऽस्य वसन्त आज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविरासीदिति यूयमपि विजानीत॥१४॥

भावार्थः-यदा बाह्यसामग्र्यभावे विद्वांसो सृष्टिकर्त्तुरीश्वरस्योपासनाख्यं मानसं ज्ञानयज्ञं विस्तारयेयुस्तदा पूर्वाह्णादिकाल एव साधनरूपेण कल्पनीयः॥१४॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! **(यत्)** जब **(हविषा)** ग्रहण करने योग्य **(पुरुषेण)** पूर्ण परमात्मा के साथ **(देवाः)** विद्वान् लोग **(यज्ञम्)** मानसज्ञान यज्ञ को **(अतन्वत)** विस्तृत करते हैं, **(अस्य)** इस यज्ञ के **(वसन्तः)** पूर्वाह्ण काल ही **(आज्यम्)** घी **(ग्रीष्मः)** मध्याह्न काल **(इध्मः)** इन्धन प्रकाशक और **(शरत्)** आधी रात **(हविः)** होमने योग्य पदार्थ **(आसीत्)** है, ऐसा जानो॥१४॥

भावार्थः-जब बाह्य सामग्री के अभाव में विद्वान् लोग सृष्टिकर्त्ता ईश्वर की उपासनारूप मानसज्ञान यज्ञ को विस्तृत करें, तब पूर्वाह्ण आदि काल ही साधनरूप से कल्पना करना चाहिये।।१४॥

सप्तास्येत्यस्य नारायण ऋषिः। पुरुषो देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः।

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

स॒प्तास्या॑सन् परि॒धय॒स्त्रिः स॒प्त स॒मिधः॑ कृ॒ताः।

दे॒वा यद्य॒ज्ञं त॑न्वा॒नाऽअब॑ध्न॒न् पुरु॑षं प॒शुम्॥ १५॥

स॒प्त। अ॒स्य॒। आ॒स॒न्। प॒रि॒धय॑। इति॑ परि॒ऽधयः॑। त्रिः। स॒प्त। स॒मिध॒ इति॑ स॒म्ऽइधः॑। कृ॒ताः॥ दे॒वाः। यत्। य॒ज्ञम्। त॒न्वा॒नाः। अब॑ध्नन्। पुरु॑षम्। प॒शुम्॥१५॥

पदार्थः-**(सप्त)** गायत्र्यादीनि छन्दांसि **(अस्य)** यज्ञस्य **(आसन्)** सन्ति **(परिधयः)** परितः सर्वतः सूत्रवद्धीयन्ते ये ते **(त्रिः)** त्रिवारम् **(सप्त)** एकविंशतिः प्रकृतिः महत्तत्त्वं, अहंकारः, पञ्च स्थूलानि, पञ्च सूक्ष्मभूतानि, पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि, सत्त्वरजस्तमांसि त्रयो गुणाश्चेत्येकविंशतिः **(समिधः)** सामग्रीभूताः **(कृताः)** निष्पादिताः **(देवाः)** विद्वांसः **(यत्)** यम् **(यज्ञम्)** मानसं ज्ञानमयम् **(तन्वानाः)** विस्तृण्वन्तः **(अबध्नन्)** बध्नन्ति **(पुरुषम्)** परमात्मानम् **(पशुम्)** द्रष्टव्यम्॥१५॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यद्यं यज्ञं तन्वाना देवाः पशुं पुरुषं हृद्यबध्नन् तस्याऽस्य सप्त परिधय आसंस्त्रिः सप्त समिधः कृतास्तं यथावद् विजानीत॥१५॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यूयमिममनेकविधकल्पितपरिध्यादिसामग्रीयुक्तं यज्ञं कृत्वा पूर्णमीश्वरं विज्ञाय सर्वाणि प्रयोजनानि साध्नुत॥१५॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! **(यत्)** जिस **(यज्ञम्)** मानसज्ञान यज्ञ को **(तन्वानाः)** विस्तृत करते हुए **(देवाः)** विद्वान् लोग **(पशुम्)** जानने योग्य **(पुरुषम्)** परमात्मा को हृदय में **(अबध्नन्)** बांधते **(अस्य)** इस यज्ञ के **(सप्त)** सात गायत्री आदि छन्द (परिधयः) चारों और से सूत के सात लपेटों के समान **(आसन्)** हैं **(त्रिः, सप्त)** इक्कीस अर्थात् प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार, पांच सूक्ष्मभूत, पांच स्थूलभूत, पांच ज्ञानेन्द्रिय और सत्त्व, रजस्, तमस्, तीन गुण ये **(समिधः)** सामग्रीरूप **(कृताः)** किये उस यज्ञ को यथावत् जानो॥१५॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! तुम लोग इस अनेक प्रकार से कल्पित परिधि आदि सामग्री से युक्त मानसयज्ञ को कर उससे पूर्ण ईश्वर को जान के सब प्रयोजनों को सिद्ध करो॥१५॥

यज्ञेनेत्यस्य नारायण ऋषिः। पुरुषो देवता। विराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

य॒ज्ञेन॑ य॒ज्ञम॑यजन्त दे॒वास्तानि॒ धर्मा॑णि प्रथ॒मान्या॑सन्।
ते ह॒ नाकं॑ महि॒मान॑: सचन्त॒ यत्र॒ पूर्वे॑ सा॒ध्याः सन्ति॑ दे॒वाः॥ १६॥

य॒ज्ञेन॑। य॒ज्ञम्। अ॒य॒ज॒न्त॒। दे॒वाः। तानि॑। धर्मा॑णि। प्र॒थ॒मानि॑। आ॒स॒न्॥ ते। ह॒। नाक॑म्। म॒हि॒मान॑:। स॒च॒न्त॒। यत्र॑। पूर्वे॑। सा॒ध्याः। सन्ति॑। दे॒वाः॥ १६॥

पदार्थः-**(यज्ञेन)** उक्तेन ज्ञानेन **(यज्ञम्)** पूजनीयं सर्वरक्षकमग्निवत्तपनम् **(अयजन्त)** पूजयन्ति **(देवाः)** विद्वांसः **(तानि)** ईश्वरपूजनादीनि **(धर्माणि)** धारणात्मकानि **(प्रथमानि)** अनादिभूतानि मुख्यानि **(आसन्)** सन्ति **(ते)** **(ह)** एव **(नाकम्)** अविद्यमानदुःखं मुक्तिसुखम् **(महिमानः)** महत्त्वयुक्ताः **(सचन्त)** समवयन्ति प्राप्नुवन्ति **(यत्र)** यस्मिन् सुखे **(पूर्वे)** इतः पूर्वसम्भवाः **(साध्याः)** कृतसाधनाः **(सन्ति)** **(देवाः)** देदीप्यमाना विद्वांसः॥१६॥

निरुक्तकार इमं मन्त्रमेवं व्याचष्टे-यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवा अग्निनाग्निमयजन्त देवा अग्निः पशुरासीत्तमालभन्त तेनायजन्तेति च ब्राह्मणम्। तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ते ह नाकं महिमानः समसेवन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः साधना द्युस्थाने देवगणा इति नैरुक्ताः॥ नि० अ० १२। खं० ४१॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! ये देवा यज्ञेन यज्ञमयजन्त तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ते महिमानः सन्तो यत्र पूर्वे साध्या देवाः सन्ति तन्नाकं ह सचन्त तद्यूयमप्याप्नुत॥१६॥

भावार्थः-मनुष्यैर्योगाभ्यासादिना सदा परमेश्वर उपासनीयः। अनेनानादिकालीनधर्मेण मुक्तिसुखं प्राप्य पूर्वविद्वद्वदानन्दितव्यम्॥१६॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो **(देवाः)** विद्वान् लोग **(यज्ञेन)** पूर्वोक्त ज्ञानयज्ञ से **(यज्ञम्)** पूजनीय सर्वरक्षक अग्निवत् तेजस्वि ईश्वर की **(अयजन्त)** पूजा करते हैं **(तानि)** वे ईश्वर की पूजा आदि **(धर्माणि)** धारणरूप धर्म **(प्रथमानि)** अनादि रूप से मुख्य **(आसन्)** हैं **(ते)** वे विद्वान् **(महिमानः)** महत्त्व से युक्त हुए **(यत्र)** जिस सुख में **(पूर्वे)** इस समय से पूर्व हुए **(साध्याः)** साधनों को किये हुए **(देवाः)** प्रकाशमान विद्वान् **(सन्ति)** हैं, उस **(नाकम्)** सब दुःखरहित मुक्तिसुख को **(ह)** ही **(सचन्त)** प्राप्त होते हैं, उसको तुम लोग भी प्राप्त होओ॥१६॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि योगाभ्यास आदि से सदा ईश्वर की उपासना कर इस अनादिकाल से प्रवृत्त धर्म से मुक्तिसुख को पाके पहिले मुक्त हुए विद्वानों के समान आनन्द भोगें॥१६॥

अद्भ्य इत्यस्योत्तरनारायण ऋषिः। आदित्यो देवता। भुरिक्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अद्भ्यः सम्भृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मणः समवर्त्तताग्रे।

तस्य त्वष्टा विदधद् रूपमेति तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे॥१७॥

अद्भ्य इत्यत्ऽभ्यः। सम्भृत इति सम्ऽभृतः। पृथिव्यै। रसात्। च। विश्वकर्मण इति विश्वऽकर्मणः। सम्। अवर्त्तत। अग्रे॥ तस्य। त्वष्टा। विदधदिति विऽदधत्। रूपम्। एति। तत्। मर्त्यस्य। देवत्वमिति देवऽत्वम्। आजानमित्याऽजानम्। अग्रे॥१७॥

पदार्थः-**(अद्भ्यः)** जलेभ्यः **(सम्भृतः)** सम्यक् पुष्टः **(पृथिव्यै)** पृथिव्याः। अत्र पञ्चम्यर्थे चतुर्थी **(रसात्)** जिह्वाविषयात् **(च)** **(विश्वकर्मणः)** विश्वानि सर्वाणि सत्यानि कर्माणि यस्याश्रयेण तस्मात् सूर्य्यात् **(सम्)** **(अवर्त्तत)** **(अग्रे)** प्राक् **(तस्य)** **(त्वष्टा)** तनूकर्त्ता **(विदधत्)** विधानं कुर्वन् **(रूपम्)** स्वरूपम् **(एति)** **(तत्)** **(मर्त्यस्य)** मनुष्यस्य **(देवत्वम्)** विद्वत्त्वम् **(आजानम्)** समन्ताज्जनानां मनुष्याणामिदं कर्त्तव्यं कर्म **(अग्रे)** आदितः॥१७॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! योऽद्भ्यः पृथिव्यै विश्वकर्मणश्च सम्भृतस्तस्माद् रसादग्र इदं सर्वं समवर्त्तत तस्याऽस्य जगतो तद् रूपं त्वष्टा विदधदग्रे मर्त्यस्याजानं देवत्वमेति॥१७॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! योऽखिलकार्यकर्त्ता परमात्मा कारणात् कार्याणि निर्मिमीते सकलस्य जगतः शरीराणां रूपाणि विदधाति तज्ज्ञानं तदाज्ञापालनमेव देवत्वमस्तीति जानीत॥१७॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो **(अद्भ्यः)** जलों **(पृथिव्यै)** पृथिवी **(च)** और **(विश्वकर्मणः)** सब कर्म जिसके आश्रय से होते उस सूर्य से **(सम्भृतः)** सम्यक् पुष्ट हुआ उस **(रसात्)** रस से **(अग्रे)** पहिले यह सब जगत् **(सम्, अवर्त्तत)** वर्त्तमान होता है **(तस्य)** उस इस जगत् के **(तत्)** उस **(रूपम्)** स्वरूप को **(त्वष्टा)** सूक्ष्म करने वाला ईश्वर **(विदधत्)**विधान करता हुआ **(अग्रे)** आदि में **(मर्त्यस्य)** मनुष्य के **(आजानम्)** अच्छे प्रकार कर्त्तव्य कर्म और **(देवत्वम्)**विद्वत्ता को **(एति)** प्राप्त होता है॥१७॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जो सम्पूर्ण कार्य करने हारा परमेश्वर कारण से कार्य बनाता है, सब जगत् के शरीरों के रूपों को बनाता है, उसका ज्ञान और उसकी आज्ञा का पालन ही देवत्व है, ऐसा जानो॥१७॥

वेदाहमित्यस्योत्तरनारायण ऋषिः। आदित्यो देवता। निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ विज्ञानं जिज्ञासवे कथमुपदिशेदित्याह॥

अब विद्वान् जिज्ञासु के लिये कैसा उपदेश करे, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।

तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥१८॥

वेद। अहम्। एतम्। पुरुषम्। महान्तम्। आदित्यवर्णमित्यादित्यऽवर्णम्। तमसः। परस्तात्॥ तम्। एव। विदित्वा। अति। मृत्युम्। एति। न। अन्यः। पन्थाः। विद्यते। अयनाय॥१८॥

पदार्थः-**(वेद)** जानामि **(अहम्)** **(एतम्)** पूर्वोक्तं परमात्मानम् **(पुरुषम्)** स्वस्वरूपेण पूर्णम् **(महान्तम्)** महागुणविशिष्टम् **(आदित्यवर्णम्)** आदित्यस्य वर्णः स्वरूपमिव स्वरूपं यस्य तं स्वप्रकाशम् **(तमसः)** अज्ञानादन्धकाराद्वा **(परस्तात्)** परस्मिन् वर्त्तमानम् **(तम्)** **(एव)** **(विदित्वा)** विज्ञाय **(अति)** उल्लङ्घने **(मृत्युम्)** दुःखप्रदं मरणम् **(एति)** गच्छति **(न)** **(अन्यः)** भिन्नः **(पन्थाः)** मार्गः **(विद्यते)** भवति **(अयनाय)** अभीष्टस्थानाय मोक्षाय॥१८॥

अन्वयः-हे जिज्ञासोऽहं यमेतं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्ताद्वर्त्तमानं पुरुषं वेद तमेव विदित्वा भवान् मृत्युमत्येति। अन्यः पन्था अयनाय न विद्यते॥१८॥

भावार्थः-यदि मनुष्या ऐहिकपारमार्थिके सुखे इच्छेयुस्तर्हि सर्वेभ्यो बृहत्तमं स्वप्रकाशानन्दस्वरूपमज्ञानलेशाद् दूरे वर्त्तमानं परमात्मानं ज्ञात्वैव मरणाद्यगाधदुःखसागरात् पृथग्भवितुं शक्नुवन्त्ययमेव सुखप्रदो मार्गोऽस्ति। अस्मादन्यः कश्चिदपि मनुष्याणां मुक्तिमार्गो न भवति॥१८॥

पदार्थः-हे जिज्ञासु पुरुष! **(अहम्)** मैं जिस **(एतम्)** इस पूर्वोक्त **(महान्तम्)** बड़े-बड़े गुणों से युक्त **(आदित्यवर्णम्)** सूर्य के तुल्य प्रकाशस्वरूप **(तमसः)** अन्धकार वा अज्ञान से **(परस्तात्)** पृथक् वर्त्तमान **(पुरुषम्)** स्वस्वरूप से सर्वत्र पूर्ण परमात्मा को **(वेद)** जानता हूं **(तम्, एव)** उसी को **(विदित्वा)** जान के आप **(मृत्युम्)** दुःखदायी मरण को **(अति, एति)** उल्लङ्घन कर जाते हो, किन्तु **(अन्यः)** इससे भिन्न **(पन्थाः)** मार्ग **(अयनाय)** अभीष्ट स्थान मोक्ष के लिये **(न, विद्यते)** नहीं विद्यमान है॥१८॥

भावार्थः-यदि मनुष्य इस लोक-परलोक के सुखों की इच्छा करें तो सबसे अति बड़े स्वयंप्रकाश और आनन्दस्वरूप अज्ञान के लेश से पृथक् वर्त्तमान परमात्मा को जान के ही मरणादि अथाह दुःखसागर से पृथक् हो सकते हैं, यही सुखदायी मार्ग है, इससे भिन्न कोई भी मनुष्यों की मुक्ति का मार्ग नहीं है॥१८॥

प्रजापतिरित्यस्योत्तरनारायण ऋषिः। आदित्यो देवता। भुरिक्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनरीश्वरः कीदृश इत्याह॥

फिर ईश्वर कैसा है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प्रजापतिश्चरति गर्भेऽअन्तरजायमानो बहुधा वि जायते।
तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीरास्तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा॥१९॥

प्रजापतिरिति प्रजाऽपतिः। चरति। गर्भे। अन्तः। अजायमानः। बहुधा। वि। जायते॥ तस्य। योनिम्। परि। पश्यन्ति। धीराः। तस्मिन्। ह। तस्थुः। भुवनानि। विश्वा॥१९॥

पदार्थः-**(प्रजापतिः)** प्रजापालको जगदीश्वरः **(चरति)** **(गर्भे)** गर्भस्थे जीवात्मनि **(अन्तः)** हृदि **(अजायमानः)** स्वस्वरूपेणानुत्पन्नः सन् **(बहुधा)** बहुप्रकारैः **(वि)** विशेषेण **(जायते)** प्रकटो भवति **(तस्य)** प्रजापतेः **(योनिम्)** स्वरूपम् **(परि)** सर्वतः **(पश्यन्ति)** प्रेक्षन्ते **(धीराः)** ध्यानवन्तः **(तस्मिन्)** जगदीश्वरे **(ह)** प्रसिद्धम् **(तस्थुः)** तिष्ठन्ति **(भुवनानि)** भवन्ति येषु तानि लोकजातानि **(विश्वा)** सर्वाणि॥१९॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! योऽजायमानः प्रजापतिर्गर्भेऽन्तश्चरति बहुधा विजायते तस्य यं योनिं धीराः परिपश्यन्ति तस्मिन् ह विश्वा भुवनानि तस्थुः॥१९॥

भावार्थः-योऽयं सर्वरक्षक ईश्वरः स्वयमनुत्पन्नः सन् स्वसामर्थ्याज्जगदुत्पाद्य तत्रान्तः प्रविश्य सर्वत्र विचरति यमनेकप्रकारेण प्रसिद्धं विद्वांस एव जानन्ति तं जगदधिकरणं सर्वव्यापकं परमात्मानं विज्ञाय मनुष्यैरानन्दितव्यम्॥१९॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो **(अजायमानः)** अपने स्वरूप से उत्पन्न नहीं होनेवाला **(प्रजापतिः)** प्रजा का रक्षक जगदीश्वर **(गर्भे)** गर्भस्थ जीवात्मा और **(अन्तः)** सबके हृदय में **(चरति)** विचरता है और **(बहुधा)** बहुत प्रकारों से **(वि, जायते)** विशेषकर प्रकट होता **(तस्य)** उस प्रजापति के जिस **(योनिम्)** स्वरूप को **(धीराः)** ध्यानशील विद्वान् जन **(परि, पश्यन्ति)** सब ओर से देखते हैं **(तस्मिन्)** उसमें **(ह)** प्रसिद्ध **(विश्वा)** सब **(भुवनानि)** लोक-लोकान्तर **(तस्थुः)** स्थित हैं॥१९॥

भावार्थः-जो यह सर्वरक्षक ईश्वर आप उत्पन्न न होता हुआ अपने सामर्थ्य से जगत् को उत्पन्न कर और उसमें प्रविष्ट होके सर्वत्र विचरता है, जिस अनेक प्रकार से प्रसिद्ध ईश्वर को विद्वान् लोग ही जानते हैं, उस जगत् के आधाररूप सर्वव्यापक परमात्मा को जान के मनुष्यों को आनन्द भोगना चाहिये॥१९॥

यो देवेभ्य इत्यस्योत्तरनारायण ऋषिः। सूर्य्यो देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथ सूर्यः कीदृश इत्याह॥

अब सूर्य्य कैसा है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यो देवेभ्यऽआतपति यो देवानां पुरोहितः।

पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये॥२०॥

यः। देवेभ्यः। आतपतीत्याऽतपति। यः। देवानाम्। पुरोहित इति पुरःऽहितः॥ पूर्वः। यः। देवेभ्यः। जातः। नमः। रुचाय। ब्राह्मये॥२०॥

पदार्थः-**(यः)** सूर्यः **(देवेभ्यः)** दिव्यगुणेभ्यः पृथिव्यादिभ्यः **(आतपति)** समन्तात् तपति **(यः)** **(देवानाम्)** पृथिव्यादिलोकानाम् **(पुरोहितः)** पुरस्ताद्धिताय मध्ये धृतः **(पूर्वः)** **(यः)** **(देवेभ्यः)** पृथिव्यादिभ्यः **(जातः)** उत्पन्नः **(नमः)** अन्नम् **(रुचाय)** रुचिकरात् **(ब्राह्मये)** यो ब्रह्मणः परमेश्वरस्यापत्यमिव तस्मात्। अत्रोभयत्र पञ्चम्यर्थे चतुर्थी॥२०॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यो देवेभ्य आतपति यो देवानां पुरोहितो यो देवेभ्यः पूर्वो जातस्तस्माद् रुचाय ब्राह्मये नमो जायते॥२०॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! येन जगदीश्वरेण सर्वेषां हितायान्नाद्युत्पादननिमित्तः सूर्य्यो निर्मितस्तमेव सततमुपासीध्वम्॥२०॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! **(यः)** जो सूर्यलोक **(देवेभ्यः)** उत्तम गुणों वाले पृथिवी आदि के अर्थ **(आतपति)** अच्छे प्रकार तपता है **(यः)** जो **(देवानाम्)** पृथिवी आदि लोकों के **(पुरोहितः)** प्रथम से हितार्थ बीच में स्थित किया **(यः)** जो **(देवेभ्यः)** पृथिवी आदि से **(पूर्वः)** प्रथम **(जातः)** उत्पन्न

हुआ उस **(रुचाय)** रुचि करानेवाले **(ब्राह्मये)** परमेश्वर के सन्तान के तुल्य सूर्य्य से **(नमः)** अन्न उत्पन्न होता है॥२०॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जिस जगदीश्वर ने सबके हित के लिये अन्न आदि की उत्पत्ति के निमित्त सूर्य्य को बनाया है, उसी परमेश्वर की उपासना करो॥२०॥

रुचिमित्यस्योत्तरनारायण ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथ विद्वत्कृत्यमाह॥

अब विद्वानों का कृत्य कहते हैं॥

रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवाऽअग्रे तदब्रुवन्।
यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात् तस्य देवाऽअसन् वशे॥२१॥

रुचम्। ब्राह्मम्। जनयन्तः। देवाः। अग्रे। तत्। अब्रुवन्॥ यः। त्वा। एवम्। ब्राह्मणः। विद्यात्। तस्य। देवाः। असन्। वशे॥२१॥

पदार्थः-**(रुचम्)** रुचिकरम् **(ब्राह्मम्)** ब्राह्मोपासकम् **(जनयन्तः)** निष्पादयन्तः **(देवाः)** विद्वांसः **(अग्रे)** **(तत्)** ब्रह्मजीवप्रकृतिस्वरूपम् **(अब्रुवन्)** ब्रुवन्तु **(यः)** **(त्वा)** **(एवम्)** अमुना प्रकारेण **(ब्राह्मणः)** **(विद्यात्)** विजानीयात् **(तस्य)** **(देवाः)** विद्वांसः **(असन्)** स्युः **(वशे)** तदधीनाः॥२१॥

अन्वयः-हे ब्रह्मनिष्ठ! ये रुचं ब्राह्मं त्वा जनयन्तो देवा अग्रे तदब्रुवन् यो ब्राह्मण एवं विद्यात् तस्य ते देवा वशे असन्॥२१॥

भावार्थः-इदमेवाऽऽद्यं विद्वत्कृत्यमस्ति यद्वेदेश्वरधर्मादिषु रुचिरुपदेशेनाध्यापनधार्मिकत्वजितेन्द्रियत्व-शरीरात्मबलवर्द्धनमेवं कृते सति सर्वे दिव्या गुणा भोगाश्च प्राप्तुं शक्याः॥२१॥

पदार्थः-हे ब्रह्मनिष्ठ पुरुष! जो **(रुचम्)** रुचिकारक **(ब्राह्मम्)** ब्रह्म के उपासक **(त्वा)** आपको **(जनयन्तः)** सम्पन्न करते हुए **(देवाः)** विद्वान् लोग **(अग्रे)** पहिले **(तत्)** ब्रह्म, जीव और प्रकृति के स्वरूप को **(अब्रुवन्)** कहें **(यः)** जो **(ब्राह्मणः)** ब्राह्मण **(एवम्)** ऐसे **(विद्यात्)** जाने **(तस्य)** उसके वे **(देवाः)** विद्वान् **(वशे)** वश में **(असन्)** हों॥२१॥

भावार्थः-यही विद्वानों का पहिला कर्त्तव्य है कि जो वेद, ईश्वर और धर्मादि में रुचि, उपदेश, अध्यापन, धर्मात्मता, जितेन्द्रियता, शरीर और आत्मा के बल को बढ़ाना, ऐसा करने से ही सब उत्तम गुण और भोग प्राप्त हो सकते हैं॥२१॥

श्रीश्च त इत्यस्योत्तरनारायण ऋषि:। आदित्यो देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्द:। धैवत: स्वर:॥

अथेश्वर: कीदृश इत्याह॥

अब ईश्वर कैसा है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

श्रीश्च॑ ते ल॒क्ष्मीश्च॒ पत्न्या॑वहोरा॒त्रे पा॒र्श्वे नक्ष॑त्राणि रू॒पम॒श्विनौ॒ व्यात्त॑म्।
इ॒ष्णन्नि॑षाणा॒मुं म॑ऽइषाण सर्वलो॒कं म॑ऽइषाण॥ २२॥

श्री:। च॒। ते॒। ल॒क्ष्मी:। च॒। पत्न्यौ॑। अ॒हो॒रा॒त्रेऽइत्य॑होरा॒त्रे। पार्श्वेऽइति॑ पा॒र्श्वे। नक्ष॑त्राणि। रू॒पम्। अ॒श्विनौ॑। व्यात्त॒मिति॑ वि॒ऽआत्त॑म्। इ॒ष्णन्॥ इ॒षा॒ण॒। अ॒मुम्। मे॒। इ॒षा॒ण॒। स॒र्व॒लो॒कमिति॑ सर्वऽलो॒कम्। मे॒। इ॒षा॒ण॒॥ २२॥

पदार्थ:-**(श्री:)** सकला शोभा **(च)** **(ते)** तव **(लक्ष्मी:)** सर्वमैश्वर्य्यम् **(च)** **(पत्न्यौ)** स्त्रीवद्वर्त्तमाने **(अहोरात्रे)** **(पार्श्वे)** **(नक्षत्राणि)** **(रूपम्)** **(अश्विनौ)** सूर्याचन्द्रमसौ **(व्यात्तम्)** विकसितं मुखमिव। अत्र वि, आङ् पूर्वाड् डुदाञ् धातो: क्त:। **(इष्णन्)** इच्छन् **(इषाण)** कामय **(अमुम्)** इत: परं परोक्षं सुखम् **(मे)** मह्यम् **(इषाण)** प्रापय **(सर्वलोकम्)** सर्वेषां दर्शनम् **(मे)** मह्यम् **(इषाण)**।।२२॥

अन्वय:-हे जगदीश्वर! यस्य ते श्रीश्च लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे यस्य ते सृष्टावश्विनौ व्यात्तं नक्षत्राणि रूपं स त्वं मेऽमुमिष्णन्निषाण मे सर्वलोकमिषाण मे सर्वाणि सुखानीषाण।।२२॥

भावार्थ:-हे राजादयो मनुष्या:! यथेश्वरस्य न्यायादयो गुणा व्याप्ति: कृपा पुरुषार्थ: सत्यं रचनं सत्या नियमाश्च सन्ति तथैव युष्माकमपि सन्तु यतो युष्माकमुत्तरोत्तरं सुख वर्द्धेतेति॥ २२॥

अत्रेश्वरसृष्टिराजगुणवर्णनादेतदध्यायोक्तार्थस्य पूर्वाऽध्यायोक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेद्यम्॥

पदार्थ:-हे जगदीश्वर! जिस **(ते)** आपकी **(श्री:)** समग्र शोभा **(च)** और **(लक्ष्मी:)** सब ऐश्वर्य **(च)** भी **(पत्न्यौ)** दो स्त्रियों के तुल्य वर्त्तमान **(अहोरात्रे)** दिन-रात **(पार्श्वे)** आगे-पीछे जिस आपकी सृष्टि में **(अश्विनौ)** सूर्य-चन्द्रमा **(व्यात्तम्)** फैले मुख के समान **(नक्षत्राणि)** नक्षत्र **(रूपम्)** रूप वाले हैं, सो आप **(मे)** मेरे **(अमुम्)** परोक्ष सुख को **(इष्णन्)** चाहते हुए **(इषाण)** चाहना कीजिये **(मे)** मेरे लिये **(सर्वलोकम्)** सबके दर्शन को **(इषाण)** प्राप्त कीजिये, मेरे लिये सब सुखों को **(इषाण)** पहुँचाइये॥ २२॥

भावार्थ:-हे राजा आदि मनुष्यो! जैसे ईश्वर के न्याय आदि गुण, व्याप्ति, कृपा, पुरुषार्थ, सत्य रचना और सत्य नियम हैं, वैसे ही तुम लोगों के भी हों, जिससे तुम्हारा उत्तरोत्तर सुख बढ़े॥ २२॥

इस अध्याय में ईश्वर, सृष्टि और राजा के गुणों का वर्णन होने से इस अध्याय में कहे अर्थ की पूर्वाध्याय में कहे अर्थ के साथ सङ्गति है, यह जानना चाहिये॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां श्रीयुतपरमविदुषां श्रीविरजानंदसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण श्रीपरमहंसपरिव्राजकाचार्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचिते संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां समन्विते सुप्रमाणयुक्ते यजुर्वेदभाष्ये एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः समाप्तः॥ ३१॥

॥ओ३म्॥

अथ द्वात्रिंशत्तमाऽध्यायारम्भः

ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव। यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽ आ सु॑व॥यजु०३०.३

तदेवेत्यस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः। परमात्मा देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथ परमेश्वरः कीदृश इत्याह॥

अब परमेश्वर कैसा है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

तदे॒वाग्निस्तदा॑दि॒त्यस्तद्वा॒युस्तदु॑ च॒न्द्रमाः॑।

तदे॒व शु॒क्रं तद् ब्रह्म॒ ताऽआप॒ः स प्र॒जाप॑तिः॥ १॥

तत्। ए॒व। अ॒ग्निः। तत्। आ॒दि॒त्यः। तत्। वा॒युः। तत्। ऊँ॒ इत्यूँ॑। च॒न्द्रमाः॑॥ तत्। ए॒व। शु॒क्रम्। तत्। ब्रह्म॑। ताः। आप॑ः। सः। प्र॒जाप॑ति॒रिति॑ प्र॒जाऽप॑तिः॥ १॥

पदार्थः-**(तत्)** सर्वज्ञं सर्वव्यापि-सनातनमनादिसच्चिदानन्दस्वरूपं नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावं न्यायकारि-दयालु-जगत्स्रष्टृ-जगद्धर्त्तृ-सर्वान्तर्यामि **(एव)** निश्चये **(अग्निः)** ज्ञानस्वरूपत्वात् स्वप्रकाशत्वाच्च **(तत्)** **(आदित्यः)** प्रलये सर्वस्यादातृत्वात् **(तत्)** **(वायुः)** अनन्तबलत्वसर्वधर्तृत्वाभ्याम् **(तत्)** (उ) **(चन्द्रमाः)** आनन्दस्वरूपत्वादाह्लादकत्वाच्च **(तत्)** **(एव)** **(शुक्रम्)** आशुकारित्वाच्छुद्धभावाच्च **(तत्)** **(ब्रह्म)** सर्वेभ्यो महत्त्वात् **(ताः)** **(आपः)** सर्वत्र व्यापकत्वात् **(सः)** **(प्रजापतिः)** सर्वस्याः प्रजायाः स्वामित्वात्॥ १॥

अन्वयः-हे मनुष्यास्तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तच्चन्द्रमास्तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स उ प्रजापतिरस्त्येवं यूयं विजानीत॥ १॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यथेश्वरस्येमान्यग्न्यादीनि गौणिकानि नामानि सन्ति तथान्यानीन्द्रादीन्यपि वर्त्तन्ते। अस्यैवोपासना फलवती भवतीति वेद्यम्॥ १॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! **(तत्)** वह सर्वज्ञ, सर्वव्यापि, सनातन, अनादि, सच्चिदानन्दस्वरूप, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभाव, न्यायकारी, दयालु, जगत् का स्रष्टा, धारणकर्त्ता और सबका अन्तर्यामी **(एव)** ही **(अग्निः)** ज्ञानस्वरूप और स्वयं प्रकाशित होने से अग्नि **(तत्)** वह **(आदित्यः)** प्रलय समय सबको ग्रहण करने से आदित्य **(तत्)** वह **(वायुः)** अनन्त बलवान् और सबका धर्ता होने से वायु **(तत्)** वह **(चन्द्रमाः)** आनन्द स्वरूप और आनन्दकारक होने से चन्द्रमा **(तत्, एव)** वही **(शुक्रम्)** शीघ्रकारी वा शुद्ध भाव से शुक्र **(तत्)** वह **(ब्रह्म)** महान् होने से ब्रह्म **(ताः)** वह

(आपः) सर्वत्र व्यापक होने से आप **(उ)** और **(सः)** वह **(प्रजापतिः)** सब प्रजा का स्वामी होने से प्रजापति है, ऐसा तुम लोग जानो॥१॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जैसे ईश्वर के ये अग्नि आदि गौण नाम हैं, वैसे और भी इन्द्रादि नाम हैं, उसी की उपासना फलवाली है, ऐसा जानो॥१॥

सर्व इत्यस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः। परमात्मा देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि।

नैनमूर्द्ध्वं न तिर्य्यञ्चं न मध्ये परि जग्रभत्॥२॥

सर्वे। निमेषा इति निऽमेषाः। जज्ञिरे। विद्युत इति विऽद्युतः। पुरुषात्। अधि। न। एनम्। ऊर्द्ध्वम्। न। तिर्य्यञ्चम्। न। मध्ये। परि। जग्रभत्॥२॥

पदार्थः-**(सर्वे)** **(निमेषाः)** नेत्रोन्मीलनादिलक्षणाः कलाकाष्ठादिकालाऽवयवाः **(जज्ञिरे)** जायन्ते **(विद्युतः)** विशेषेण द्योतमानात् **(पुरुषात्)** पूर्णाद्विभोः **(अधि)** **(न)** निषेधे **(एनम्)** परमात्मानम् (ऊर्द्ध्वम्) उपरिस्थम् **(न)** **(तिर्य्यञ्चम्)** तिर्य्यक् स्थितमधस्थं वा **(न)** **(मध्ये)** **(परि)** सर्वतः **(जग्रभत्)** गृह्णाति॥२॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यस्माद् विद्युतः पुरुषात् सर्वे निमेषा अधि जज्ञिरे तमेनं कोऽपि नोर्ध्वं न तिर्य्यञ्चं न मध्ये परि जग्रभत् तं यूयं सेवध्वम्॥२॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यस्य निर्माणेन सर्वे कालावयवा जाता यच्चोर्ध्वमधो मध्ये पार्श्वतो दूरे निकटे वा कथयितुमशक्यं यत् सर्वत्र पूर्णं ब्रह्माऽस्ति तद्योगाभ्यासेन विज्ञाय सर्वे भवन्त उपासीरन्॥२॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जिस **(विद्युतः)** विशेषकर प्रकाशमान **(पुरुषात्)** पूर्ण परमात्मा से **(सर्वे)** सब **(निमेषाः)** कला, काष्ठा आदि काल के अवयव **(अधि, जज्ञिरे)** अधिकतर उत्पन्न होते हैं, उस **(एनम्)** इस परमात्मा को कोई भी **(न)** न **(ऊर्ध्वम्)** ऊपर **(न)** न **(तिर्य्यञ्चम्)** तिरछा सब दिशाओं में वा नीचे और **(न)** न **(मध्ये)** बीच में **(परि, जग्रभत्)** सब ओर से ग्रहण कर सकता है, उसको तुम सेवो॥२॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जिसके रचने से सब काल के अवयव उत्पन्न हुए और जो ऊपर, नीचे, बीच में, पीछे, दूर, समीप कहा नहीं जा सकता, जो सर्वत्र पूर्ण ब्रह्म है, उसको योगाभ्यास से जान के सब आप लोग उपासना करो॥२॥

न तस्येत्यस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः। हिरण्यगर्भः परमात्मा देवता। निचृत् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

न तस्य॑ प्रति॒माऽअस्ति॒ यस्य॒ नाम॑ म॒हद्यश॑ः।

हि॒र॒ण्य॒ग॒र्भऽइत्ये॒ष मा मा॑ हि॑ꣳसी॒दित्ये॒षा यस्मा॒न्न जा॒तऽइत्ये॒षः॥ ३॥

न। तस्य॑। प्र॒ति॒मेति॑ प्रति॒ऽमा। अ॒स्ति॒। यस्य॑। नाम॑। म॒हत्। यश॑ः॥ हि॒र॒ण्य॒ग॒र्भ इति॑ हिरण्यऽग॒र्भः। इति॑। ए॒षः। मा। मा॑। हि॒ꣳसी॒त्। इति॑। ए॒षा। यस्मा॑त्। न। जा॒तः। इति॑। ए॒षः॥३॥

पदार्थः-(**न**) निषेधे (**तस्य**) परमेश्वरस्य (**प्रतिमा**) प्रतिमीयते यया तत्परिमापकं सदृशं तोलनसाधनं प्रतिकृतिराकृतिर्वा (**अस्ति**) वर्त्तते (**यस्य**) (**नाम**) नामस्मरणम् (**महत्**) पूज्यं बृहत् (**यशः**) कीर्त्तिकरं धर्म्यकर्म्माचरणम् (**हिरण्यगर्भः**) सूर्यविद्युदादिपदाधिकरणः (**इति**) (**एषः**) अन्तर्यामितया प्रत्यक्षः (**मा**) निषेधे (**मा**) मां जीवात्मानम् (**हिंसीत्**) हन्यात् ताडयेद् विमुखं कुर्यात् (**इति**) (**एषा**) प्रार्थना प्रज्ञा वा (**यस्मात्**) कारणात् (**न**) निषेधे (**जातः**) उत्पन्नः (**इति**) (**एषः**) परमात्मा॥ ३॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यस्य महद्यशो नामास्ति यो हिरण्यगर्भ इत्येषो यस्य मा मा हिंसीदित्येषा यस्मान्न जात इत्येष उपासनीयोऽस्ति तस्य प्रतिमा नास्ति। **यद्वा पक्षान्तरम्**-हिरण्यगर्भ इत्येष (२५.१०-१३) उक्तोऽनुवाको मा मा हिंसीदित्येषोक्ता (१२.१०२) ऋग् यस्मान्न जात इत्येष (८.३६-३७) उक्तोऽनुवाकश्च। यस्य भगवतो नाम महद्यशोऽस्ति तस्य प्रतिमा नास्ति॥ ३॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यः कदाचिद्देहधारी न भवति यस्य किञ्चिदपि परिमाणं नास्ति, यस्याज्ञापालनमेव नामस्मरणमस्ति, य उपासितः सन्नुपासकाननुह्लाति वेदानामनेकस्थलेषु यस्य महत्त्वं प्रतिपाद्यते यो न म्रियते न विक्रियते न क्षीयते तस्यैवोपासानां सततं कुरुत, यद्यस्माद्भिन्नस्योपासनां करिष्यन्ति तर्ह्यनेन महता पापेन युक्ताः सन्तो भवन्तो दुःखक्लेशैर्हता भविष्यन्ति॥ ३॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! (**यस्य**) जिसका (**महत्**) पूज्य बड़ा (**यशः**)कीर्त्ति करनेहारा धर्मयुक्त कर्म का आचरण ही (**नाम**) नामस्मरण है, जो (**हिरण्यगर्भः**) सूर्य बिजुली आदि पदार्थों का आधार (**इति**) इस प्रकार (**एषः**) अन्तर्यामी होने से प्रत्यक्ष जिसकी (**मा**) मुझको (**मा, हिंसीत्**) मत ताड़ना दे वा वह अपने से मुझ को विमुख मत करे, (**इति**) इस प्रकार (**एषा**) यह प्रार्थना वा बुद्धि और (**यस्मात्**) जिस कारण (**न**) नहीं (**जातः**) उत्पन्न हुआ (**इति**) इस प्रकार (**एषः**) यह परमात्मा

उपासना के योग्य है। **(तस्य)** उस परमेश्वर की **(प्रतिमा)** प्रतिमा-परिमाण उसके तुल्य अवधि का साधन प्रतिकृति, मूर्ति वा आकृति **(न, अस्ति)** नहीं है।

अथवा द्वितीय पक्ष यह है कि **(हिरण्यगर्भः०)** इस पच्चीसवें अध्याय में १० मन्त्र से १३ मन्त्र तक का **(इति, एषः)** यह कहा हुआ अनुवाक **(मा, मा, हिंसीत्)** **(इति)** इसी प्रकार **(एषा)** यह ऋचा बारहवें अध्याय की १०२ **(वां)** मन्त्र है और **(यस्मान्न जातः-इत्येषः०)** यह आठवें अध्याय के ३६, ३७ दो मन्त्र का अनुवाक **(यस्य)** जिस परमेश्वर की **(नाम)** प्रसिद्ध **(महत्)** महती **(यशः)** कीर्ति है, **(तस्य)** उसका **(प्रतिमा)** प्रतिबिम्ब **(तस्वीर)** **(न, अस्ति)** नहीं है॥३॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जो कभी देहधारी नहीं होता, जिसका कुछ भी परिमाण सीमा का कारण नहीं है, जिसकी आज्ञा का पालन ही नामस्मरण है, जो उपासना किया हुआ अपने उपासकों पर अनुग्रह करता है, वेदों के अनेक स्थलों में जिसका महत्त्व कहा गया है, जो नहीं मरता, न विकृत होता, न नष्ट होता उसी की उपासना निरन्तर करो। जो इससे भिन्न की उपासना करोगे तो इस महान् पाप से युक्त हुए आप लोग दुःख-क्लेशों से नष्ट होओगे॥३॥

एष इत्यस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः। आत्मा देवता। भुरिक्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतःस्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

एषो ह देवः प्रदिशोऽ नु सर्वाः पूर्वो ह जातः सऽ उ गर्भेऽ अन्तः।

सऽ एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ् जनास्तिष्ठति सर्वतोमुखः॥४॥

एषः। ह। देवः। प्रदिश इति प्रऽदिशः। अनु। सर्वाः। पूर्वः। ह। जातः। सः। उँऽइत्यूँ। गर्भे। अन्तरित्यन्तः॥ सः। एव। जातः। सः। जनिष्यमाणः। प्रत्यङ् । जनाः। तिष्ठति। सर्वतोमुख इति सर्वतःऽमुखः॥४॥

पदार्थः-**(एषः)** परमात्मा। अत्र विभक्तेरलुक्। **(ह)** प्रसिद्धम् **(देवः)** दिव्यस्वरूपः **(प्रदिशः)** **(अनु)** आनुकूल्ये **(सर्वाः)** दिशश्च **(पूर्वः)** प्रथमः **(ह)** प्रसिद्धम् **(जातः)** प्राकट्यं प्राप्तः **(सः)** (उ) एव **(गर्भे)** अन्तःकरणे **(अन्तः)** मध्ये **(सः)** **(एव)** **(जातः)** प्रसिद्धः **(सः)** **(जनिष्यमाणः)** प्रसिद्धिः प्राप्स्यमानः **(प्रत्यङ्)** प्रतिपदार्थमञ्चति प्राप्नोति **(जनाः)** विद्वांसः **(तिष्ठति)** वर्त्तते **(सर्वतोमुखः)** सर्वतो मुखाद्यवयवा यस्य सः॥४॥

अन्वयः-हे जनाः! एषो ह देवः सर्वाः प्रदिशोऽनुव्याप्य स उ गर्भेऽन्तः पूर्वो ह जातः स एव जातः स जनिष्यमाणः सर्वतोमुखः प्रत्यङ् तिष्ठति स युष्माभिरुपासनीयो वेदितव्यश्च॥४॥

भावार्थः-अयं पूर्वोक्त ईश्वरो जगदुत्पाद्य प्रकाशितः सन् सर्वासु दिक्षु व्याप्येन्द्रियाण्यन्तरेण सर्वेन्द्रियकर्माणि सर्वगतत्वेन कुर्वन् सर्वप्राणिनां हृदये तिष्ठति सोऽतीतानागतेषु कल्पेषु जगदुत्पादनाय पूर्वं प्रकटो भवति स ध्यानशीलेन मनुष्येण ज्ञातव्यो नान्येनेति भावः॥४॥

पदार्थः-हे **(जनाः)** विद्वानो! **(एषः)** यह **(ह)** प्रसिद्ध परमात्मा **(देवः)** उत्तम स्वरूप **(सर्वाः)** सब दिशा और **(प्रदिशः)** विदिशाओं को **(अनु)** अनुकूलता से व्याप्त होके **(सः)** **(उ)** वही **(गर्भे)** अन्तःकरण के **(अन्तः)** बीच **(पूर्वः)** प्रथम कल्प के आदि में **(ह)** प्रसिद्ध **(जातः)** प्रकटता को प्राप्त हुआ, **(सः, एव)** वही **(जातः)** प्रसिद्ध हुआ **(सः)** वह **(जनिष्यमाणः)** आगामी कल्पों में प्रथम प्रसिद्धि को प्राप्त होगा। **(सर्वतोमुखः)** सब ओर से मुखादि अवयवों वाला अर्थात् मुखादि इन्द्रियों के काम सर्वत्र करता **(प्रत्यङ्)** प्रत्येक पदार्थ को प्राप्त हुआ **(तिष्ठति)** अचल सर्वत्र स्थिर है, वही तुम लोगों को उपासना करने और जानने योग्य है॥४॥

भावार्थः-यह पूर्वोक्त ईश्वर जगत् को उत्पन्न कर प्रकाशित हुआ सब दिशाओं में व्याप्त हो के इन्द्रियों के बिना सब इन्द्रियों के काम सर्वत्र व्याप्त होने से करता हुआ, सब प्राणियों के हृदय में स्थिर है, वह भूत, भविष्यत् कल्पों में जगत् की उत्पत्ति के लिये पहिले प्रकट होता है, वह ध्यानशील मनुष्य के जानने योग्य है, अन्य के जानने योग्य नहीं है॥४॥

यस्मादित्यस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः। परमेश्वरो देवता। भुरिक्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतःस्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यस्माज्जातं न पुरा किं चनैव य आबभूव भुवनानि विश्वा।

प्रजापतिः प्रजया सꣳरराणस्त्रीणि ज्योतीꣳषि सचते सः। षोडशी॥५॥

यस्मात्। जातम्। न। पुरा। किम्। चन। एव। यः। आबभूवेत्याऽऽ बभूव। भुवनानि। विश्वा॥ प्रजाऽपतिरिति प्रजाऽपतिः। प्रजया सꣳरराण इति सम्ऽरराणः। त्रीणि। ज्योतीꣳषि। सचते। सः। षोडशी॥५॥

पदार्थः-**(यस्मात्)** परमेश्वरात् **(जातम्)** उत्पन्नम् **(न)** निषेधे **(पुरा)** पुरस्तात् **(किम्)** **(चन)** किञ्चिदपि **(एव)** **(यः)** **(आबभूव)** समन्ताद्भवति **(भुवनानि)** लोकजातानि सर्वाऽधिकरणानि **(विश्वा)** सर्वाणि **(प्रजापतिः)** प्रजायाः पालकोऽधिष्ठाता **(प्रजया)** प्रजातया **(सम्)** **(रराणः)** सम्यक् रममाणः **(त्रीणि)** विद्युत्सूर्यचन्द्ररूपाणि **(ज्योतींषि)** तेजोमयानि प्रकाशकानि **(सचते)** समवैति **(सः)** **(षोडशी)** षोडश कला यस्मिन् सन्ति सः॥५॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यस्मात् पुरा किञ्चन न जातं, यस्सर्वत आबभूव यस्मिन् विश्वा भुवनानि वर्त्तन्ते, स एव षोडशी प्रजया सह संरराणः प्रजापतिस्त्रीणि ज्योतींषि सचते॥५॥

भावार्थः-यस्मादीश्वरोऽनादिर्वर्त्तते ततस्तस्मात् पूर्वं किमपि भवितुन्न शक्यम्। स एव सर्वासु प्रजासु व्याप्तो जीवानां कर्माणि पश्यन् संस्तदनुकूलफलं ददन्न्यायं करोति येन प्राणादीनि षोडश वस्तूनि सृष्टान्यतः स षोडशीत्युच्यते। प्राणः, श्रद्धाऽऽकाशं, वायुरग्निर्जलं, पृथिवीन्द्रियं, मनोऽन्नं, वीर्य्यं, तपो, मन्त्रः, कर्म, लोकाः, नाम च षोडश कलाः। प्रश्नोपनिषदि षष्ठे प्रश्ने वर्णिताः। एतत्सर्वं षोडशात्मकं जगत् परमात्मनि वर्त्तते तेनैव निर्मितं पाल्यते च॥५॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! **(यस्मात्)** जिस परमेश्वर से (पुरा) पहिले **(किम्, चन)** कुछ भी **(न जातम्)** नहीं उत्पन्न हुआ, **(यः)** जो सब ओर **(आबभूव)** अच्छे प्रकार से वर्त्तमान है, जिसमें **(विश्वा)** सब **(भुवनानि)** वस्तुओं के आधार सब लोक वर्त्तमान हैं, **(सः एव)** वही **(षोडशी)** सोलह कला वाला **(प्रजया)** प्रजा के साथ **(सम्, रराणः)** सम्यक् रमण करता हुआ **(प्रजापतिः)** प्रजा का रक्षक अधिष्ठाता **(त्रीणि)** तीन **(ज्योतींषि)** तेजोमय बिजुली, सूर्य्य, चन्द्रमा रूप प्रकाश ज्योतियों को **(सचते)** संयुक्त करता है॥५॥

भावार्थः-जिससे ईश्वर अनादि है, इस कारण उससे पहिले कुछ भी हो नहीं सकता, वही सब प्रजाओं में व्याप्त जीवों के कर्मों को देखता और उनके अनुकूल फल देता हुआ न्याय करता है, जिसने प्राण आदि सोलह वस्तुओं को बनाया है, इससे वह षोडशी कहाता है **(प्राण, श्रद्धा, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, इन्द्रिय, मन, अन्न, वीर्य, तप, मन्त्र, कर्म, लोक और नाम)** ये षोडश कला प्रश्नोपनिषद् में हैं। यह सब षोडश वस्तुरूप जगत् परमात्मा में है, उसी ने बनाया और वही पालन करता है॥५॥

येनेत्यस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः। परमात्मा देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

येन॒ द्यौरु॒ग्रा पृ॑थि॒वी च॑ दृ॒ढा येन॒ स्व॒ स्तभि॒तं येन॒ नाक॑ः।

योऽ अ॒न्तरि॑क्षे॒ रज॑सो वि॒मान॒ः कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम॥६॥

येन॑। द्यौः। उ॒ग्रा। पृ॒थि॒वी। च॒। दृ॒ढा। येन॑। स्व॒रिति॒ स्व॒ः। स्त॒भि॒तम्। येन॑। नाक॑ः॥ यः। अ॒न्तरि॑क्षे। रज॑सः। वि॒मान॒ इति॑ वि॒ऽ मान॑ः। कस्मै॑। दे॒वाय॑। ह॒विषा॑। वि॒धे॒म॒॥६॥

पदार्थः-**(येन)** जगदीश्वरेण **(द्यौः)** सूर्यादिप्रकाशवान् पदार्थः **(उग्रा)** तीव्रतेजस्का **(पृथिवी)** भूमिः **(च)** **(दृढा)** दृढीकृता **(येन)** **(स्वः)** सुखम् **(स्तभितम्)** धृतम् **(येन)** **(नाकः)**

अविद्यमानदुःखो मोक्षः **(यः)** **(अन्तरिक्षे)** मध्यवर्त्तिन्याकाशे **(रजसः)** लोकसमूहस्य। **लोका रजांस्युच्यन्त** इति निरुक्तम्। **(विमानः)** विविधं मानं यस्मिन् सः **(कस्मै)** सुखस्वरूपाय **(देवाय)** स्वप्रकाशाय सकलसुखदात्रे **(हविषा)** प्रेमभक्तिभावेन **(विधेम)** परिचरेम प्राप्नुयाम वा॥६॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! येनोग्रा द्यौः पृथिवी च दृढा येन स्वः स्तभितं येन नाकः स्तभितो योऽन्तरिक्षे वर्त्तमानस्य रजसो विमानोऽस्ति, तस्मै कस्मै देवाय वयं हविषा विधेमैवं यूयमप्येनं सेवध्वम्॥६॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यः सकलस्य जगतो धर्त्ता सर्वसुखप्रदाता मोक्षसाधक आकाश इव व्याप्तः परमेश्वरोऽस्ति तस्यैव भक्तिं कुरुत॥६॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! **(येन)** जिस जगदीश्वर ने **(उग्रा)** तीव्र तेजवाले **(द्यौः)** प्रकाशयुक्त सूर्य्यादि पदार्थ **(च)** और **(पृथिवी)** भूमि **(दृढा)** दृढ़ की है, **(येन)** जिसने **(स्वः)** सुख को **(स्तभितम्)** धारण किया, **(येन)** जिसने **(नाकः)** सब दुःखों से रहित मोक्ष को धारण किया, **(यः)** जो **(अन्तरिक्षे)** मध्यवर्ती आकाश में वर्त्तमान **(रजसः)** लोकसमूह का **(विमानः)** विविध मान करने वाला है, उस **(कस्मै)** सुखस्वरूप **(देवाय)** स्वयं प्रकाशमान, सकल सुखदाता ईश्वर के लिये हम लोग **(हविषा)** प्रेम भक्ति से **(विधेम)** सेवाकारी वा प्राप्त होवें॥६॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जो समस्त जगत् का धर्त्ता, सब सुखों का दाता, मुक्ति का साधक, आकाश के तुल्य व्यापक परमेश्वर है, उसी की भक्ति करो॥६॥

यं क्रन्दसीत्यस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः। परमात्मा देवता। निचृच्छक्वरी छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यं क्रन्दसीऽ अवसा तस्तभानेऽ अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने।
यत्राधि सूरऽ उदितो विभाति कस्मै देवाय हविषा विधेम।
आपो ह यद् बृहतीर्यश्चिदापः॥७॥

यम्। क्रन्दसीऽइति क्रन्दसी। अवसा। तस्तभाने इति तस्तऽभाने। अभि। ऐक्षेताम्। मनसा। रेजमानेऽइति रेजमाने॥ यत्र। अधि। सूरः। उदित इत्युत्ऽइतः। विभातीति विऽभाति। कस्मै। देवाय। हविषा। विधेम। आपः। ह। यत्। बृहतीः। यः। चित्। आपः॥७॥

पदार्थः-**(यम्)** **(क्रन्दसी)** गुणैः प्रशंसनीये **(अवसा)** रक्षणादिना **(तस्तभाने)** धारिके **(अभि)** आभिमुख्ये **(ऐक्षेताम्)** ईक्षेतां पश्यतः **(मनसा)** विज्ञानेन **(रेजमाने)** चलन्त्यौ भ्रमन्त्यौ **(यत्र)** यस्मिन्

(अधि) उपरि **(सूर:)** सूर्य: **(उदित:)** उदयं प्राप्त: **(विभाति)** विशेषेण प्रकाशयन् प्रकाशयिता भवति **(कस्मै)** सुखसाधकाय **(देवाय)** शुद्धस्वरूपाय **(हविषा)** आदातव्येन योगाभ्यासेन **(विधेम)** **(आप:)** व्याप्ता: **(ह)** किल **(यत्)** या: **(बृहती:)** महत्य: **(य:)** **(चित्)** अपि **(आप:)** आकाश:॥७॥

अन्वय:-हे मनुष्या:! यं परमात्मानं प्राप्ते तस्तभाने रेजमाने क्रन्दसी द्यावापृथिव्याववसा सर्वं धरतो यत्र सूरोध्युदितो यद् या बृहतीरापो ह यश्चिदाप: सन्ति तश्चिदपि विभाति तं तौ चाऽध्यापकोपदेशकौ मनसा अभ्यैक्षेतां तस्मै कस्मै देवाय हविषा वयं विधेमैनं यूयमपि भजत॥७॥

भावार्थ:-हे मनुष्या:! यत्र सर्वाभिव्यापकेश्वरे सूर्य्यपृथिव्यादयो लोका भ्रमन्त: सन्तो दृश्यन्ते येन प्राण आकाशोऽपि व्याप्तस्तं स्वात्मस्थं यूयमुपासीध्वम्॥७॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! **(यम्)** जिस परमात्मा को प्राप्त अर्थात् उसके अधिकार में रहनेवाले **(तस्तभाने)** सबको धारण करनेहारे **(रेजमाने)** चलायमान **(क्रन्दसी)** स्वगुणों से प्रशंसा करने योग्य सूर्य्य और पृथिवी लोक **(अवसा)** रक्षा आदि से सबको धारण करते हैं, **(यत्र)** जिस ईश्वर में **(सूर:)** सूर्य्य लोक **(अधि, उदित:)** अधिकतर उदय को प्राप्त हुआ **(यत्)** जो **(बृहती:)** महत् **(आप:)** व्याप्त जल है ही **(य:)** और जो कुछ **(चित्)** भी **(आप:)** आकाश है, उसको भी **(विभाति)** विशेष कर प्रकाशित करता हुआ प्रकाशक होता है, उस ईश्वर को अध्यापक और उपदेशक **(मनसा)** विज्ञान से **(अभि, ऐक्षेताम्)** आभिमुख्य कर देखते, उस **(कस्मै)** सुखसाधक **(देवाय)** शुद्धस्वरूप परमात्मा के लिये **(हविषा)** ग्रहण करने योग्य योगाभ्यास से हम **(विधेम)** सेवा करने वाले हों, उसको तुम लोग भी भजो॥७॥

भावार्थ:-हे मनुष्यो! जिस सब ओर से व्यापक परमेश्वर में सूर्य्य, पृथिवी आदि लोक भ्रमते हुए दीखते हैं, जिसने प्राण और आकाश को भी व्याप्त किया, उस अपने आत्मा में स्थित ईश्वर की तुम लोग उपासना करो॥७॥

वेन इत्यस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषि:। परमात्मा देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्द:। धैवत: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

वे॒नस्तत्प॑श्य॒न्निहि॑तं॒ गुहा॒ सद्यत्र॒ विश्वं॒ भव॒त्येक॑नीडम्।

तस्मि॑न्नि॒दꣳ सं च॒ वि चै॑ति॒ सर्व॒ꣳ सऽ ओत॒: प्रोत॑श्च वि॒भूः प्र॒जासु॑॥८॥

वे॒न:। तत्। प॒श्य॒त्। निहि॑त॒मिति॒ निऽहि॑तम्। गुहा॑। सत्। यत्र॑। विश्व॑म्। भव॑ति। एक॑नीड॒मित्येक॑ऽनीडम्॥ तस्मि॑न्। इ॒दम। सम्। च॒। वि। च॒। ए॒ति॒। सर्व॑म्। स:। ओत॒ इत्याऽउ॑त:। प्रोत॒ इति॒ प्रऽउ॑त:। च॒। वि॒भूरिति॑ वि॒ऽभू:। प्र॒जास्विति॑ प्र॒ऽजासु॑॥८॥

पदार्थः-(**वेनः**) पण्डितो विद्वान् (**तत्**) चेतनं ब्रह्म (**पश्यत्**) पश्यति (**निहितम्**) स्थितम् (**गुहा**) गुहायां बुद्धौ गुप्ते कारणे वा (**सत्**) नित्यम् (**यत्र**) यस्मिन् (**विश्वम्**) सर्वम् जगत् (**भवति**) (**एकनीडम्**) एकस्थानम् (**तस्मिन्**) (**इदम्**) जगत् (**सम्**) (**च**) (**वि**) (**च**) (**एति**) (**सर्वम्**) (**सः**) (**ओतः**) ऊर्ध्वतन्तुः पट इव (**प्रोतः**) तिर्य्यक् तन्तुषु पट इव (**च**) (**विभूः**) व्यापकः (**प्रजासु**) प्रकृतिजीवादिषु॥८॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यत्र विश्वमेकनीडं भवति तद्गुहा निहितं सद्वेनः पश्यत्। तस्मिन्निदं सर्वं समेति च व्येति च स विभूः प्रजास्वोतः प्रोतश्च स एव सर्वैरुपासनीयोऽस्ति॥८॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! विद्वानेव यं बुद्धिबलेन जानाति, यः सर्वेषामाकाशादीनां पदार्थानामधिकरणमस्ति, यत्र संहारकाले सर्वं जगल्लीयते सर्गकाले च यतो निस्सरति येन व्याप्तेन विना किञ्चिदपि वस्तु न वर्त्तते तं विहायाऽस्यां कञ्चिदप्युपास्यमीश्वरं मा विजानन्तु॥८॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! (**यत्र**) जिसमें (**विश्वम्**) सब जगत् (**एकनीडम्**) एक आश्रयवाला (भवति) होता (**तत्**) उस (**गुहा**) बुद्धि वा गुप्त कारण में (**निहितम्**) स्थित (**सत्**) नित्य चेतन ब्रह्म को (**वेनः**) पण्डित विद्वान् जन (**पश्यत्**) ज्ञानदृष्टि से देखता है, (**तस्मिन्**) उसमें (**इदम्**) यह (**सर्वम्**) सब जगत् (**सम्, एति**) प्रलय समय में संगत होता (**च**) और उत्पत्ति समय में (**वि**) पृथक् स्थूलरूप (**च**) भी होता है, (**सः**) वह (**विभूः**) विविध प्रकार व्याप्त हुआ (**प्रजासु**) प्रजाओं में (**ओतः**) ठाढ़े सूतों में जैसे वस्त्र (**च**) तथा (**प्रोतः**) आड़े सूतों में जैसे वस्त्र वैसे ओत-प्रोत हो रहा है, वही सबको उपासना करने योग्य है॥८॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! विद्वान् ही जिसको बुद्धि बल से जानता, जो सब आकाशादि पदार्थों का आधार, प्रलय समय सब जगत् जिसमें लीन होता और उत्पत्ति समय में जिससे निकलता है और जिस व्याप्त ईश्वर के बिना कुछ भी वस्तु खाली नहीं है, उसको छोड़ किसी अन्य को उपास्य ईश्वर मत जानो॥८॥

प्र तदित्यस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः। विद्वान् देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प्र तद्वो॑चेद॒मृतं॒ नु वि॒द्वान् ग॑न्ध॒र्वो धाम॒ विभृ॑तं॒ गुहा॒ सत्।

त्रीणि॑ प॒दानि॒ निहि॑ता॒ गुहा॑स्य॒ यस्तानि॒ वेद॒ स पि॒तुः पि॒ताऽस॑त्॥९॥

प्र। तत्। वो॒चे॒त्। अ॒मृत॑म्। नु। वि॒द्वान्। ग॒न्ध॒र्वः। धाम॑। विभृ॑त॒मिति॒ विऽभृ॑तम्। गुहा॑। सत्॥ त्रीणि॑। प॒दानि॑। निहि॒तेति॒ निऽहि॑ता। गुहा॑। अ॒स्य॒। यः। तानि॑। वेद॑। सः। पि॒तुः। पि॒ता। अ॒स॒त्॥९॥

पदार्थ:-**(प्र)** **(तत्)** चेतनं ब्रह्म **(वोचेत्)** गुणकर्मस्वभावत उपदिशेत् **(अमृतम्)** नाशरहितम् **(नु)** सद्य: **(विद्वान्)** पण्डित: **(गन्धर्व:)** यो गां वेदवाचं धरति स: **(धाम)** मुक्तिसुखस्य स्थानम् **(बिभृतम्)** विशेषेण धृतम् **(गुहा)** बुद्धौ **(सत्)** नित्यम् **(त्रीणि)** उत्पत्तिस्थितिप्रलया: काला वा **(पदानि)** ज्ञातुमर्हाणि **(निहिता)** निहितानि **(गुहा)** बुद्धौ **(अस्य)** अविनाशिन: **(य:)** **(तानि)** **(वेद)** जानाति **(स:)** **(पितु:)** जनकस्येश्वरस्य वा **(पिता)** ज्ञानप्रदानेनास्तिकत्वेन वा रक्षक: **(असत्)** भवेत्॥९॥

अन्वय:-हे मनुष्या:! यो गन्धर्वो विद्वान् गुहा विभृतममृतं धाम तत् सन्न प्रवोचेत् यान्यस्य गुहा निहिता पदानि त्रीणि सन्ति तानि च वेद स पितु: पिताऽसत्॥९॥

भावार्थ:-हे मनुष्या:! य ईश्वरस्य मुक्तिसाधकं बुद्धिस्थं स्वरूपमुपदिशेयुर्यथार्थतया पदार्थानां परमात्मनश्च गुणकर्मस्वभावान् विजानीयुस्ते वयोवृद्धानां पितॄणामपि पितरो भवितुं योग्या: सन्तीति विजानीत॥९॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! **(य:)** जो **(गन्धर्व:)** वेदवाणी को धारण करनेवाला **(विद्वान्)** पण्डित **(गुहा)** बुद्धि में **(बिभृतम्)** विशेष धारण किये **(अमृतम्)** नाशरहित **(धाम)** मुक्ति के स्थान **(तत्)** उस **(सत्)** नित्य चेतन ब्रह्म का **(नु)** शीघ्र **(प्र, वोचेत्)** गुण-कर्म-स्वभावों के सहित उपदेश करे और जो **(अस्य)** इस अविनाशी ब्रह्म के **(गुहा)** ज्ञान में **(निहिता)** स्थित **(पदानि)** जानने योग्य **(त्रीणि)** तीन उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय वा भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान काल हैं, **(तानि)** उनको **(वेद)** जानता है, **(स:)** वह **(पितु:)** अपने पिता वा सर्वरक्षक ईश्वर का **(पिता)** ज्ञान देने वा आस्तिकत्व से रक्षक **(असत्)** होवे॥९॥

भावार्थ:-हे मनुष्यो! जो विद्वान् लोग ईश्वर के मुक्तिसाधक बुद्धिस्थ स्वरूप का उपदेश करें, ठीक-ठीक पदार्थों के और ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव को जानें वे अवस्था में बड़े पितादिकों के भी रक्षा के योग्य होते हैं, ऐसा जानो॥९॥

स न इत्यस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषि:। परमात्मा देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्द:। धैवत: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा।

यत्र देवाऽ अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त॥ १०॥

स:। न:। बन्धु:। जनिता। स:। विधातेति विऽधाता। धामानि। वेद। भुवनानि। विश्वा॥ यत्र। देवा:। अमृतम्। आनशाना:। तृतीये। धामन्। अध्यैरयन्तेत्यधिऽऐरयन्त॥ १०॥

पदार्थः-**(सः)** **(नः)** अस्माकम् **(बन्धुः)** भ्रातेव मान्यः सहायः **(जनिता)** जनयिता। अत्र **जनिता मन्त्र** इति॥ (अष्टा०६।४।५३) णिलोपः। **(सः)** **(विधाता)** सर्वेषां पदार्थानां कर्मफलानां च विधानकर्त्ता **(धामानि)** जन्मस्थाननामानि **(वेद)** जानाति **(भुवनानि)** लोकलोकान्तराणि **(विश्वा)** सर्वाणि **(यत्र)** यस्मिन् जगदीश्वरे **(देवाः)** विद्वांसः **(अमृतम्)** मोक्षसुखम् **(आनशानाः)** प्राप्नुवन्तः **(तृतीये)** जीवप्रकृतिभ्यां विलक्षणे **(धामन्)** धामन्याधारभूते **(अध्यैरयन्त)** सर्वत्र स्वेच्छया विचरन्ति॥१०॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यत्र तृतीये धामन्नमृतमानशाना देवा अध्यैरयन्त, यो विश्वा भुवनानि धामानि च वेद, स नो बन्धुर्जनिता स विधाताऽस्तीति निश्चिनुत॥१०॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यस्मिञ्छुद्धस्वरूपे परमात्मनि योगिनो विद्वांसो मुक्तिसुखं प्राप्य मोदन्ते स एव सर्वज्ञः सर्वोत्पादकः सर्वदा सहायकारी च मन्तव्यो नेतर इति॥१०॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! **(यत्र)** जिस **(तृतीये)** जीव और प्रकृति से विलक्षण **(धामन्)** आधाररूप जगदीश्वर में **(अमृतम्)** मोक्ष सुख को **(आनशानाः)** प्राप्त होते हुए **(देवाः)** विद्वान् लोग **(अध्यैरयन्त)** सर्वत्र अपनी इच्छापूर्वक विचरते हैं, जो **(विश्वा)** सब **(भुवनानि)** लोक-लोकान्तरों और **(धामानि)** जन्म, स्थान, नामों को **(वेद)** जानता है, **(सः)** वह परमात्मा **(नः)** हमारा **(बन्धुः)** भाई के तुल्य मान्य सहायक **(जनिता)** उत्पन्न करनेहारा, **(सः)** वही **(विधाता)** सब पदार्थों और कर्मफलों का विधान करनेवाला है, यह निश्चय करो॥१०॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जिस शुद्धस्वरूप परमात्मा में योगिराज, विद्वान् लोग मुक्तिसुख को प्राप्त हो आनन्द करते हैं, उसी को सर्वज्ञ, सर्वोत्पादक और सर्वदा सहायकार मानना चाहिये, अन्य को नहीं॥१०॥

परीत्येत्यस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः। परमात्मा देवता। निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतःस्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प॒रीत्य॑ भू॒तानि॑ प॒रीत्य॑ लो॒कान् प॒रीत्य॒ सर्वाः॑ प्र॒दिशो॒ दिश॑श्च।

उ॒प॒स्थाय॑ प्रथम॒जामृ॒तस्या॒त्मना॒ऽऽत्मान॑म॒भि सं वि॑वेश॥११॥

प॒रीत्येति॑ प॒रि॒ऽइत्य॑। भू॒तानि॑। प॒रीत्येति॑ प॒रि॒ऽइत्य॑। लो॒कान्। प॒रीत्येति॑ प॒रि॒ऽइत्य॑। सर्वाः॑। प्र॒दिश॒ इति॑ प्र॒ऽदिशः॑। दिशः॑। च॒॥ उ॒प॒स्थायेत्यु॑प॒ऽस्थाय॑। प्र॒थ॒म॒जामिति॑ प्रथम॒ऽजाम्। ऋ॒तस्य॑। आ॒त्मना॑। आ॒त्मान॑म्। अ॒भि। सम्। वि॒वे॒श॥११॥

पदार्थः-(**परीत्य**) परितः सर्वतोऽभिव्याप्य (**भूतानि**) (**परीत्य**) (**लोकान्**) द्रष्टव्यान् पृथिवीसूर्यादीन् (**परीत्य**) (**सर्वाः**) (**प्रदिशः**) आग्नेयाद्या उपदिशः (**दिशः**) पूर्वाद्याः (**च**) अधः उपरि च (**उपस्थाय**) पठित्वा संसेव्य वा (**प्रथमजाम्**) प्रथमोत्पन्नां वेदचतुष्टयीम् (**ऋतस्य**) सत्यस्य (**आत्मना**) स्वस्वरूपेणान्तःकरणेन च (**आत्मानम्**) स्वरूपमधिष्ठानं वा (**अभि**) आभिमुख्ये (**सम्**) सम्यक् (**विवेश**) प्रविशति॥११॥

अन्वयः-हे विद्वन्! त्वं यो भूतानि परीत्य लोकान् परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च परीत्य ऋतस्यात्मानमभिसंविवेश प्रथमजामुपस्थायात्मना तं प्राप्नुहि॥११॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यूयं धर्माचरणवेदयोगाभ्याससत्सङ्गादिभिः कर्मभिः शरीरपुष्टिमात्मान्तःकरणशुद्धिं च संपाद्य सर्वत्राभिव्याप्तं परमात्मानं लब्ध्वा सुखिनो भवत॥११॥

पदार्थः-हे विद्वन्! आप जो (**भूतानि**) प्राणियों को (**परीत्य**) सब ओर से व्याप्त हो के (**लोकान्**) पृथिवी सूर्यादि लोकों को (**परीत्य**) सब ओर से व्याप्त हो के (**च**) और ऊपर नीचे (**सर्वाः**) सब (**प्रदिशः**) आग्नेयादि उपदिशा तथा (**दिशः**) पूर्वादि दिशाओं को (**परीत्य**) सब ओर से व्याप्त हो के (**ऋतस्य**) सत्य के (**आत्मानम्**) स्वरूप वा अधिष्ठान को (**अभि, सम्, विवेश**) सम्मुखता से सम्यक् प्रवेश करता है (**प्रथमजाम्**) प्रथम कल्पादि में उत्पन्न चार वेदरूप वाणी को (**उपस्थाय**) पढ़ वा सम्यक् सेवन करके (**आत्मना**) अपने शुद्धस्वरूप वा अन्तःकरण से उसको प्राप्त हूजिये॥११॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! तुम लोग धर्म के आचरण, वेद और योग के अभ्यास तथा सत्सङ्ग आदि कर्मों से शरीर की पुष्टि और आत्मा तथा अन्तःकरण की शुद्धि को संपादन कर सर्वत्र अभिव्याप्त परमात्मा को प्राप्त हो के सुखी होओ॥११॥

परीत्यस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः। परमात्मा देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

परि॒ द्यावा॑पृथि॒वी स॒द्यऽ इ॒त्वा परि॑ लो॒कान् परि॒ दिशः॒ परि॒ स्वः॒।

ऋ॒तस्य॒ तन्तुं॒ वित॑तं वि॒चृत्य॒ तद॑पश्य॒त् तद॑भव॒त् तदा॑सीत्॥१२॥

परि॑। द्यावा॑पृथि॒वी इति॒ द्यावा॑ऽपृथि॒वी। स॒द्यः। इ॒त्वा। परि॑। लो॒कान्। परि॑। दिशः॑। परि॑। स्व॒रिति॒ स्वः॒। ऋ॒तस्य॑। तन्तु॑म्। वित॑त॒मिति॒ वि॒ऽत॑तम्। वि॒चृत्येति॑ वि॒ऽचृत्य॑। तत्। अ॒प॒श्य॒त्। तत्। अ॒भ॒व॒त्। तत्। आ॒सी॒त्॥१२॥

पदार्थः-(**परि**) सर्वतः (**द्यावापृथिवी**) सूर्यभूमी (**सद्यः**) शीघ्रम् (**इत्वा**) प्राप्य (**परि**) सर्वतः (**लोकान्**) द्रष्टव्यान् सृष्टिस्थान् भूगोलान् (**परि**) (**दिशः**) पूर्वाद्याः (**परि**) (**स्वः**) सुखम् (**ऋतस्य**) सत्यस्य (**तन्तुम्**) कारणम् (**विततम्**) विस्तृतम् (**विचृत्य**) विविधतया ग्रन्थित्वा बद्ध्वा (**तत्**) (**अपश्यत्**) पश्यति (**तत्**) (**अभवत्**) भवति (**तत्**) (**आसीत्**) अस्ति॥१२॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यः परमेश्वरो द्यावापृथिवी सद्य इत्वा पर्य्यपश्यत् यो लोकान् सद्य इत्वा पर्य्यभवत्। यो दिशः सद्य इत्वा पर्य्यासीद् यः स्वः सद्य इत्वा पर्य्यपश्यद् य ऋतस्य विततं तन्तुं विचृत्य तत्सुखमपश्यद् येन तत्सुखमभवद् यतस्तद्विज्ञानमासीत् तं यथावद्विज्ञायोपासीरन्॥१२॥

भावार्थः-ये मनुष्याः परमेश्वरमेव भजन्ति तन्निर्मितां सृष्टिं सुखायोपयुञ्जते त ऐहिकं पारमार्थिकं विद्याजन्यं सुखं च सद्यः प्राप्य सततमानन्दन्ति॥१२॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो परमेश्वर (**द्यावापृथिवी**) सूर्य्य और भूमि को (**सद्यः**) शीघ्र (**इत्वा**) प्राप्त होके (**परि, अपश्यत्**) सब ओर से देखता है, जो (**लोकान्**) देखने योग्य सृष्टिस्थ भूगोलों को शीघ प्राप्त हो के (**परि, अभवत्**) सब ओर से प्रकट होता, जो (**दिशः**) पूर्वादि दिशाओं को शीघ्र प्राप्त हो के (**परि, आसीत्**) सब ओर से विद्यमान है, जो (**स्वः**) सुख को शीघ्र प्राप्त हो के (**परि**) सब ओर से देखता है, जो (**ऋतस्य**) सत्य के (**विततम्**) विस्तृत (**तन्तुम्**) कारण को (**विचृत्य**) विविध प्रकार से बांध के (**तत्**) उस सुख को देखता, जिससे (**तत्**) वह सुख हुआ और जिससे (तत्) वह विज्ञान हुआ है, उसको यथावत् जान के उपासना करो॥१२॥

भावार्थः-जो मनुष्य परमेश्वर ही का भजन करते और उसकी रची सृष्टि को सुख के लिये उपयोग में लाते हैं, वे इस लोक, परलोक और विद्या से हुए सुख को शीघ्र प्राप्त हो के निरन्तर आनन्दित होते हैं॥१२॥

सदसस्पतिमित्यस्य मेधाकाम ऋषिः। इन्द्रो देवता। भुरिग्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

सद॑सुस्पति॒मद्भु॑तं प्रि॒यमिन्द्र॑स्य॒ काम्य॑म्।

स॒निं मे॒धाम॑यासिषु॒ꣳ स्वाहा॑॥१३॥

सद॑सः। पति॑म्। अद्भु॑तम्। प्रि॒यम्। इन्द्र॑स्य। काम्य॑म्। स॒निम्। मे॒धाम्। अ॒या॒सि॒षम्। स्वाहा॑॥१३॥

पदार्थः-(**सदसः**) सभाया ज्ञानस्य न्यायस्य दण्डस्य वा (**पतिम्**) पालकं स्वामिनम् (**अद्भुतम्**) आश्चर्य्यगुणकर्मस्वभावम् (**प्रियम्**) प्रीतिविषयं प्रसन्नकरं प्रसन्नं वा (**इन्द्रस्य**) इन्द्रियाणां

स्वामिनो जीवस्य **(काम्यम्)** कमनीयम् **(सनिम्)** सनन्ति संविभजन्ति सत्याऽसत्ये यया ताम् **(मेधाम्)** संगतां प्रज्ञाम् **(अयासिषम्)** प्राप्नुयाम् **(स्वाहा)** सत्यया क्रियया वाचा वा॥१३॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! अहं स्वाहा यं सदसस्पतिमद्भुतमिन्द्रस्य काम्यं प्रियं परमात्मानमुपास्य संसेव्य च सनिं मेधामयासिषं तं परिचर्यैतां यूयमपि प्राप्नुत॥१३॥

भावार्थः-ये मनुष्याः सर्वशक्तिमन्तं परमात्मानं सेवन्ते ते सर्वाः विद्याः प्राप्य शुद्धया प्रज्ञया सर्वाणि सुखानि लभन्ते॥१३॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! मैं **(स्वाहा)** सत्य क्रिया वा वाणी से जिस **(सदसः)** सभा, ज्ञान, न्याय वा दण्ड के **(पतिम्)** रक्षक **(अद्भुतम्)** आश्चर्य्य गुण, कर्म, स्वभाववाले **(इन्द्रस्य)** इन्द्रियों के मालिक जीव के **(काम्यम्)** कमनीय **(प्रियम्)** प्रीति के विषय प्रसन्न करनेहारे वा प्रसन्नरूप परमात्मा की उपासना और सेवा करके **(सनिम्)** सत्य-असत्य का जिससे सम्यक् विभाग किया जाय, उस **(मेधाम्)** उत्तम बुद्धि को **(अयासिषम्)** प्राप्त होऊं, उस ईश्वर की सेवा करके इस बुद्धि को तुम लोग भी प्राप्त होओ॥१३॥

भावार्थः-जो मनुष्य सर्वशक्तिमान् परमात्मा का सेवन करते हैं, वे सब विद्याओं को पाकर शुद्ध बुद्धि से सब सुखों को प्राप्त होते हैं॥१३॥

यामित्यस्य मेधाकाम ऋषिः। परमात्मा देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

मनुष्यैरीश्वराद् बुद्धिर्याचनीयेत्याह॥

मनुष्यों को ईश्वर से बुद्धि की याचना करनी चाहिये, इस विषय को कहते हैं॥

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते।

तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा॥१४॥

याम्। मेधाम्। देवगणा इति देवऽगणाः। पितरः। च। उपासते इत्युपऽआसते॥ तया। माम्। अद्य। मेधया। अग्ने मेधाविनम्। कुरु। स्वाहा॥१४॥

पदार्थः-**(याम्) (मेधाम्)** प्रज्ञां धनं वा। **मेधेति धनना०॥** (निघं०२।१०) **(देवगणाः)** देवानां विदुषां समूहाः **(पितरः)** पालयितारो विज्ञानिनः **(च) (उपासते)** प्राप्य सेवन्ते **(तया) (माम्) (अद्य) (मेधया) (अग्ने)** स्वप्रकाशत्वेन विद्याविज्ञापक! **(मेधाविनम्)** प्रशस्ता मेधा विद्यते यस्य तम् **(कुरु) (स्वाहा)** सत्यया वाचा॥१४॥

अन्वयः-हे अग्ने विद्वन्नध्यापक! जगदीश्वर वा! देवगणाः पितरश्च यां मेधामुपासते तया मेधया मामद्य स्वाहा मेधाविनं कुरु॥१४॥

भावार्थः-मनुष्याः परमेश्वरमुपास्याप्तं विद्वांसं संसेव्य शुद्धं विज्ञानं धर्मजं धनञ्च प्राप्तुमिच्छेयुरन्यांश्चैवं प्रापयेयुः॥१४॥

पदार्थः-हे **(अग्ने)** स्वयं प्रकाशरूप होने से विद्या के जतानेहारे ईश्वर! वा अध्यापक विद्वन्! **(देवगणाः)** अनेक विद्वान् **(च)** और **(पितरः)** रक्षा करनेहारे ज्ञानी लोग **(याम्)** जिस **(मेधाम्)** बुद्धि वा धन को **(उपासते)** प्राप्त होके सेवन करते हैं, **(तया)** उस **(मेधया)** बुद्धि वा धन से **(माम्)** मुझको **(अद्य)** आज **(स्वाहा)** सत्य वाणी से **(मेधाविनम्)** प्रशंसित बुद्धि वा धनवाला **(कुरु)** कीजिये॥१४॥

भावार्थः-मनुष्य लोग परमेश्वर की उपासना और आप्त विद्वान् की सम्यक् सेवा करके शुद्ध विज्ञान और धर्म से हुए धन को प्राप्त होने की इच्छा करें और दूसरों को भी ऐसे ही प्राप्त करावें॥१४॥

मेधामित्यस्य मेधाकाम ऋषिः। परमेश्वरविद्वांसौ देवते। निचृद् बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

मेधां मे वरुणो ददातु मेधामग्निः प्रजापतिः।
मेधामिन्द्रश्च वायुश्च मेधां धाता ददातु मे स्वाहा॥१५॥

मेधाम्। मे। वरुणः। ददातु। मेधाम्। अग्निः। प्रजापतिरिति प्रजाऽपतिः॥ मेधाम्। इन्द्रः। च। वायुः। च। मेधाम्। धाता। ददातु। मे। स्वाहा॥१५॥

पदार्थः-**(मेधाम्)** शुद्धां धियं धनं वा **(मे)** मह्यम् **(वरुणः)** श्रेष्ठः **(ददातु)** **(मेधाम्)** **(अग्निः)** विद्याप्रकाशितः **(प्रजापतिः)** प्रजायाः पालकः **(मेधाम्)** **(इन्द्रः)** परमैश्वर्य्यवान् **(च)** **(वायुः)** बलिष्ठो बलप्रदः **(च)** **(मेधाम्)** **(धाता)** सर्वस्य संसारस्य राज्यस्य **(ददातु)** **(मे)** मह्यम् **(स्वाहा)** धर्म्यया क्रियया॥१५॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा वरुणः परमेश्वरो विद्वान् वा स्वाहा मे मेधां ददातु, अग्निः प्रजापतिर्मेधां ददातु, इन्द्रो मेधां ददातु, वायुश्च मेधां ददातु, धाता च मे मेधां ददातु तथा युष्मभ्यमपि ददातु॥१५॥

भावार्थः-मनुष्या यथाऽऽत्मार्थं गुणकर्मस्वभावं सुखञ्चेच्छेयुस्तादृशमेवाऽन्यार्थम्। यथा स्वस्योन्नतये प्रार्थयेयुस्तथा परमेश्वरस्य विदुषाञ्च सकाशादन्येषामपि प्रार्थयेयुर्न केवलं प्रार्थनामेव

कुर्य्युः, किं तर्हि सत्याचरणमपि। यदा यदा विदुषां समीपं गच्छेयुस्तदा तदा सर्वेषां कल्याणाय प्रश्नोत्तराणि कुर्य्युः॥१५॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे **(वरुणः)** अति श्रेष्ठ परमेश्वर वा विद्वान् **(स्वाहा)** धर्मयुक्त क्रिया से **(मे)** मेरे लिये **(मेधाम्)** शुद्ध बुद्धि वा धन को **(ददातु)** देवे, **(अग्निः)** विद्या से प्रकाशित **(प्रजापतिः)** प्रजा का रक्षक **(मेधाम्)** बुद्धि को देवे, **(इन्द्रः)** परम ऐश्वर्य्यवान् **(मेधाम्)** बुद्धि को देवे **(च)** और **(वायुः)** बलदाता बलवान् **(मेधाम्)** बुद्धि को देवे **(च)** और **(धाता)** सब संसार वा राज्य का धारण करनेहारा ईश्वर वा विद्वान् **(मे)** मेरे लिये बुद्धि धन को **(ददातु)** देवे, वैसे तुम लोगों को भी देवे॥१५॥

भावार्थः-मनुष्य जैसे अपने लिये गुण, कर्म, स्वभाव और सुख को चाहे वैसे औरों के लिये भी चाहें, जैसे अपनी उन्नति की चाहना करें, वैसे परमेश्वर और विद्वानों के निकट से अन्यों की उन्नति की प्रार्थना करें। केवल प्रार्थना ही न करें, किन्तु सत्य आचरण भी करें। जब-जब विद्वानों के निकट जावें तब-तब सबके कल्याण के लिये प्रश्न और उत्तर किया करें॥१५॥

इदं म इत्यस्य श्रीकाम ऋषिः। विद्वद्राजानौ देवते। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

इदं मे ब्रह्म च क्षत्रं चोभे श्रियमश्नुताम्।

मयि देवा दधतु श्रियमुत्तमां तस्यै ते स्वाहा॥१६॥

इदम्। मे। ब्रह्म। च। क्षत्रम्। च। उभेऽइत्युभे। श्रियम्। अश्नुताम्। मयि। देवाः। दधतु। श्रियम्। उत्तमामित्युत्ऽतमाम्। तस्यै। ते। स्वाहा॥१६॥

पदार्थः-**(इदम्)** **(मे)** मम **(ब्रह्म)** वेदेश्वरविज्ञानं तद्वत्कुलम् **(च)** **(क्षत्रम्)** राज्यं धनुर्वेदविद्या क्षत्रियकुलम् **(च)** **(उभे)** **(श्रियम्)** राजलक्ष्मीम् **(अश्नुताम्)** प्राप्नुताम् **(मयि)** **(देवाः)** विद्वांसः **(दधतु)** धरन्तु **(प्रियम्)** शोभां लक्ष्मीं च **(उत्तमाम्)** अतिश्रेष्ठाम् **(तस्यै)** श्रियै **(ते)** तुभ्यम् **(स्वाहा)** सत्याचरणया क्रियया॥१६॥

अन्वयः-हे परमेश्वर! भवत्कृपया; हे विद्वन्! तव पुरुषार्थेन च स्वाहा मे ममेदं ब्रह्म च क्षत्रं चोभे श्रियमश्नुतां यथा देवा मय्युत्तमां श्रियं दधतु तथाऽन्येष्वपि। हे जिज्ञासो! ते तुभ्यं तस्यै वयं प्रयतेमहि॥१६॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये मनुष्याः परमेश्वराज्ञापालनेन विदुषां सेवया सत्कारेण सर्वेषां मनुष्याणां मध्याद् ब्राह्मणक्षत्रियौ सुशिक्ष्य विद्यादिसद्गुणैः संयोज्य सर्वेषामुन्नतिं विधाय स्वात्मवत् सर्वेषु वर्त्तेरन् ते सर्वपूज्याः स्युरिति॥१६॥

अत्र परमेश्वरविद्वत्प्रज्ञाधनप्राप्त्युपायगुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वाध्यायोक्तार्थेन सह सङ्गतिर्वेद्या॥

पदार्थः-हे परमेश्वर! आपकी कृपा और हे विद्वन्! तेरे पुरुषार्थ से **(स्वाहा)** सत्याचरणरूप क्रिया से **(मे)** मेरे **(इदम्)** ये **(ब्रह्म)** वेद, ईश्वर का विज्ञान वा इनका ज्ञाता पुरुष **(च)** और **(क्षत्रम्)** राज्य, धनुर्वेदविद्या और क्षत्रिय कुल **(च)** भी ये **(उभे)** दोनों **(श्रियम्)** राज्य की लक्ष्मी को **(अश्नुताम्)** प्राप्त हों, जैसे **(देवाः)** विद्वान् लोग **(मयि)** मेरे निमित्त **(उत्तमाम्)** अतिश्रेष्ठ **(श्रियम्)** शोभा वा लक्ष्मी को **(दधतु)** धारण करें, हे जिज्ञासु जन! **(ते)** तेरे लिये भी **(तस्यै)** उस श्री के अर्थ हम लोग प्रयत्न करें॥१६॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य परमेश्वर की आज्ञापालन और विद्वानों की सेवा-सत्कार से सब मनुष्यों के बीच से ब्राह्मण, क्षत्रिय को सुन्दर शिक्षा, विद्यादि सद्गुणों से संयुक्त और सबकी उन्नति का विधान कर अपने आत्मा के तुल्य सबमें वर्त्तें, वे सब को पूजने योग्य होवें॥१६॥

इस अध्याय में परमेश्वर, विद्वान् और बुद्धि तथा धन की प्राप्ति के उपायों का वर्णन होने से इस अध्याय में कहे अर्थ की पूर्व अध्याय में कहे अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये॥१६॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य्याणां श्रीयुतपरमविदुषां विरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण श्रीपरमहंसपरिव्राजकाचार्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचिते संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां समन्विते सुप्रमाणयुक्ते यजुर्वेदभाष्ये द्वात्रिंशोऽध्यायः पूर्तिमगात्॥३२॥

॥ओ३म्॥

अथ त्रयस्त्रिंशत्तमाऽध्यायारम्भः

ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव। यद्भ॒द्रं तन्न॒ ऽ आ सु॑व॥ यजु०३०.३

अस्येत्यस्य वत्सप्रीर्ऋषिः। अग्नयो देवताः। स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अथाग्न्यादिपदार्थान् विज्ञाय कार्यं साध्यमित्याह॥

अब तेंतीसवें अध्याय का आरम्भ है। इसके प्रथम मन्त्र में अग्न्यादि पदार्थों को जान कार्य साधना चाहिये, इस विषय को कहा है॥

अ॒स्याजरा॑सो द॒माम॒रित्रा॑ऽअ॒र्चद्धू॑मासोऽअ॒ग्नय॑ः पाव॒काः।
श्वि॒ती॒चय॑ः श्वा॒त्रासो॑ भु॒रण्यवो॑ वन॒र्षदो॑ वा॒यवो॒ न सोमा॑ः॥१॥

अ॒स्य। अ॒जरा॑सः। द॒माम्। अ॒रित्रा॑ः। अ॒र्चद्धू॑मा॒स॒ इत्य॒र्चत्ऽधू॑मासः। अ॒ग्नय॑ः। पा॒व॒काः॥ श्वि॒ती॒चय॑ः। श्वा॒त्रास॑ः। भु॒रण्यव॑ः। व॒न॒र्षद॑ः। व॒न॒सद॒ इति॑ वन॒ऽसद॑ः। वा॒यव॑ः। न। सोमा॑ः॥१॥

पदार्थः-(**अस्य**) परमेश्वरस्य (**अजरासः**) वयोहानिरहिताः (**दमाम्**) गृहाणाम्। अत्र नुडभावे पूर्वसवर्णदीर्घः। (**अरित्राः**) येऽरिभ्यस्त्रायन्ते ते (**अर्चद्धूमासः**) अर्चन्तः सुगन्धियुक्ता धूमा येषान्ते (**अग्नयः**) विद्युदादयः (**पावकाः**) पवित्रीकराः (**श्वितीचयः**) ये श्वितिं श्वेतवर्णं चिन्वन्ति ते (**श्वात्रासः**) श्वात्रं प्रवृद्धं धनं येभ्यस्ते। **श्वात्रमिति धननामसु पठितम्॥** (निघं०२।१०) (**भुरण्यवः**) धर्त्तारो गतिमन्तश्च (**वनर्षदः**) ये वनेषु रश्मिषु सीदन्ति ते। अत्र वा छन्दसीति रुडागमः। (**वायवः**) पवनाः (**न**) इव (**सोमाः**) ऐश्वर्यप्रापकाः॥१॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! येऽस्य जगदीश्वरस्य सृष्टावजरासोऽरित्रा अर्चद्धूमासः पावकाः श्वितीचयः श्वात्रासो भुरण्यवः सोमा अग्नयो वनर्षदो वायवो न दमां धारकाः सन्ति, तान् यूयं विजानीत॥१॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। यदि मनुष्या अग्निवाय्वादीन् सृष्टिस्थान् पदार्थान् विजानीयुस्तर्ह्येतेभ्यो बहूनुपकारन् ग्रहीतुं शक्नुयुः॥१॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो (**अस्य**) इस पूर्वाध्यायोक्त ईश्वर की सृष्टि में (**अजरासः**) एक-सी अवस्थावाले (**अरित्राः**) शत्रुओं से बचानेहारे (**अर्चद्धूमासः**) सुगन्धित धूमों से युक्त (**पावकाः**) पवित्रकारक (**श्वितीचयः**) श्वेतवर्ण को सञ्चित करनेहारे (**श्वात्रासः**) धन को बढ़ाने के हेतु (**भुरण्यवः**) धारण करनेहारे वा गमनशील (**सोमाः**) ऐश्वर्य को प्राप्त करनेहारे (**अग्नयः**) विद्युत्

आदि अग्नि **(वनर्षदः)** वनों वा किरणों में रहनेहारे **(वायवः)** पवनों के **(न)** समान **(दमाम्)** घरों के धारण करनेहारे उनको तुम लोग जानो॥१॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो मनुष्य अग्नि, वायु आदि सृष्टिस्थ पदार्थों को जानें तो इनसे बहुत उपकारों को ग्रहण कर सकते हैं॥१॥

हरय इत्यस्य विश्वरूप ऋषिः। अग्नयो देवताः। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

हर॑यो धू॒मके॑तवो॒ वात॑जूता॒ऽउप॒ द्यवि॑।

यत॑न्ते॒ वृथ॑ग॒ग्नय॑ः॥२॥

हर॑यः। धू॒मके॑तव॒ इति॑ धू॒मऽके॑तवः। वात॑जूता॒ इति॑ वात॑ऽजूताः। उप॑। द्यवि॑॥ यत॑न्ते। वृथ॑क्। अ॒ग्नय॑ः॥२॥

पदार्थः-**(हरयः)** हरणशीलाः **(धूमकेतवः)** केतुरिव धूमो ज्ञापको येषान्ते **(वातजूताः)** वायुना प्राप्ततेजस्काः **(उप)** **(द्यवि)** प्रकाशे **(यतन्ते)** **(वृथक्)** पृथक्। वर्णव्यत्ययः **(अग्नयः)** पावकाः॥२॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! ये धूमकेतवो वातजूता हरयोऽग्नयो वृथक् द्यवि उप यतन्ते, तान् कार्य्यसिद्धये संप्रयुङ्ग्ध्वम्॥२॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! येषां धूमो विज्ञापको वायुः प्रदीपको हरणशीलता च येषु वर्त्तते, तेऽग्नयः सन्तीति विजानीत॥२॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो **(धूमकेतवः)** जिनका जतानेवाला धूम ही पताका के तुल्य है **(वाताजूताः)** वायु से तेज को प्राप्त हुए (**(हरयः)** हरणशील **(अग्नयः)** पावक **(वृथक्)** नाना प्रकार से **(द्यवि)** प्रकाश के निमित्त **(उप, यतन्ते)** यत्न करते हैं, उनको कार्य्यसिद्धि के अर्थ उपयोग में लाओ॥२॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जिनका धूम ज्ञान कराने और वायु जलानेवाला है और जिनमें हरणशीलता वर्त्तमान है, वे अग्नि हैं, ऐसा जानो॥२॥

यजा न इत्यस्य गोतम ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

विद्वद्भिर्मनुष्यैः किं कार्य्यमित्याह॥

विद्वान् मनुष्यों को क्या करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यजा॑ नो मि॒त्रावरु॑णा॒ यजा॑ दे॒वाँ२ऽऋ॒तं बृ॒हत्।

अग्ने यक्षि स्वं दमम्॥ ३॥

यज। नः। मित्रावरुणा। यज। देवान्। ऋतम्। बृहत्॥ अग्ने। यक्षि। स्वम्। दमम्॥ ३॥

पदार्थः-(**यज**) सत्कुरु (**नः**) अस्माकम् (**मित्रावरुणा**) सुहृच्छ्रेष्ठौ (**यज**) देह्युपदिश। अत्रोभयत्र **द्व्यचोऽतस्तिङः** [अ०६.३.१३५] इति दीर्घः। (**देवान्**) विदुषश्च (**ऋतम्**) सत्यम् (**बृहत्**) महत् (**अग्ने**) विद्वन् (**यक्षि**) संगमय (**स्वम्**) स्वकीयम् (**दमम्**) गृहम्॥ ३॥

अन्वयः-हे अग्ने! त्वं नो मित्रावरुणा देवांश्च यज, बृहदृतं यज, येन स्वं दमं यक्षि॥ ३॥

भावार्थः-हे विद्वांसो जनाः! अस्माकं मित्रश्रेष्ठविदुषां सत्कर्त्तारः सत्योपदेशकाः स्वगृहकार्य्यसाधका यूयं भवत॥ ३॥

पदार्थः-हे (**अग्ने**) विद्वन्! आप (**नः**) हमारे (**मित्रावरुणा**) मित्र और श्रेष्ठ जनों तथा (**देवान्**) विद्वानों का (**यज**) सत्कार कीजिये, (**बृहत्**) बड़े (**ऋतम्**) सत्य का (**यज**) उपदेश कीजिये, जिससे (**स्वम्**) अपने (**दमम्**) घर को (**यक्षि**) संगत कीजिये॥ ३॥

भावार्थः-हे विद्वान् मनुष्यो! हमारे मित्र, श्रेष्ठ और विद्वानों का सत्कार करनेहारे सत्य के उपदेशक और अपने घर के कार्यों को सिद्ध करनेहारे तुम लोग होओ॥ ३॥

युक्ष्वेत्यस्य विश्वरूप ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

युक्ष्वा हि देवहूतमाँ२ऽअश्वाँ२ऽअग्ने रथीरिव।

नि होता पूर्व्यः सदः॥ ४॥

युक्ष्व। हि। देवहूतमानिति देवऽहूतमान्। अश्वान्। अग्ने। रथीरिवेति रथीःऽइव॥ नि। होता। पूर्व्यः। सदः॥ ४॥

पदार्थः-(**युक्ष्व**) योजय। अत्र **द्व्यचोऽतस्तिङः** [अ०६.३.१३५] इति दीर्घः। (**हि**) खलु (**देवहूतमान्**) ये देवैर्विद्वद्भिर्हूयन्ते स्तूयन्ते तेऽतिशयितास्तान् (**अश्वान्**) आशुगामिनोऽग्न्यादीन् तुरङ्गान् वा (**अग्ने**) विद्वन्! (**रथीरिव**) यथा सारथिस्तथा। अत्र मत्वर्थे ईर् प्रत्ययः। (**नि**) नितराम् (**होता**) आदाता (**पूर्व्यः**) पूर्वैः कृतविद्यः (**सदः**) अत्राडभावः॥ ४॥

अन्वयः-हेअग्ने! त्वं रथीरिव देवहूतमानश्वान् युक्ष्व, होता पूर्व्यः सन् हि नि सदः॥ ४॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। यथा सुशिक्षितः सारथिरश्वैरनेकानि कार्य्याणि साध्नोति, तथा कृतविद्यो जनोऽग्न्यादिभिरनेकानि कार्याणि साध्नुयात्॥ ४॥

पदार्थः-हे **(अग्ने)** विद्वन्! आप **(रथीरिव)** सारथि के समान **(देवहूतमान्)** विद्वानों से अत्यन्त स्तुति किये हुए **(अश्वान्)** शीघ्रगामी अग्नि आदि वा घोड़ों को **(युक्ष्व)** युक्त कीजिये **(पूर्व्यः)** पूर्वज विद्वानों से विद्या को प्राप्त **(होता)** ग्रहण करते हुए **(हि)** निश्चय कर **(नि, सदः)** स्थिर हूजिये॥४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे उत्तम शिक्षित सारथि घोड़ों से अनेक कार्य्यों को सिद्ध करता है, वैसे विद्वान् जन अग्नि आदि से अनेक कार्यों को सिद्ध करें॥४॥

द्वे इत्यस्य कुत्स ऋषिः। अग्निर्देवता। स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

रात्रिदिवसौ जगत्पालकावित्याह॥

रात्रि दिन जगत् की रक्षा करनेवाले हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

द्वे विरू॑पे चरतः स्वर्थे॒ऽअ॒न्यान्या॑ व॒त्समुप॑ धापयेते।
हरि॑र॒न्यस्यां॒ भव॑ति स्व॒धावा॑ञ्छु॒क्रोऽअ॒न्यस्यां॑ ददृशे सु॒वर्चाः॑॥५॥

द्वेऽइति॒ द्वे। विरू॑पे॒ इति॒ विऽरू॑पे। च॒र॒तः। स्वर्थे॒ इति॑ सु॒ऽअर्थे॑। अ॒न्यान्येत्यन्याऽअ॑न्या। व॒त्सम्। उप॑। धा॒प॒ये॒ते॒ऽइति॑ धापयेते॥ हरिः॑। अ॒न्यस्या॑म्। भव॑ति। स्व॒धावा॒निति॑ स्व॒धाऽवा॑न्। शु॒क्रः। अ॒न्यस्या॑म्। द॒दृ॒शे। सु॒व॒र्चा॒ इति॑ सु॒ऽवर्चाः॑॥५॥

पदार्थः-**(द्वे)** **(विरूपे)** विरुद्धस्वरूपे **(चरतः)** **(स्वर्थे)** सुष्ठु अर्थः प्रयोजनं ययोस्ते **(अन्यान्या)** भिन्ना भिन्ना एकैका कालभेदेन **(वत्सम्)** वसन्ति भूतान्यस्मिंस्तं संसारं वदति सततमिति वत्सो बालस्तं वा **(उप)** **(धापयेते)** पाययतः **(हरिः)** मनोहारी चन्द्रो बालो वा **(अन्यस्याम्)** रात्रौ योषिति वा **(भवति)** **(स्वधावान्)** प्रशस्तस्वधा अमृतरूपा गुणा विद्यन्ते यस्मिन् सः **(शुक्रः)** पावकः सूर्य्य आशुकारी बालश्च **(अन्यस्याम्)** प्रकाशरूपायां दिवसवेलायां जायायां वा **(ददृशे)** दृश्यते **(सुवर्चाः)** सुष्ठु तेजाः॥५॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा स्वर्थे द्वे विरूपे स्त्रियौ चरतोऽन्यान्या च वत्समुपधापयेते तयोरन्यस्यां स्वधावान् हरिर्भवति शुक्रः सुवर्चा अन्यस्यां ददृशे तथा द्वे रात्र्यहनी वर्त्तत इति जानीत॥५॥

भावार्थः-अत्रानुभयाभेदरूपकोलङ्कारः। यथा द्वे स्त्रियौ वा गावावपत्यप्रयोजने पृथक् पृथक् वर्त्तमाने कालभेदेनैकं बालं पालयेतां तयोरेकस्या हृद्यो महागुणी शान्तिशीलो बालो जायेत। एकस्याञ्च शीघ्रकारी तेजस्वी शत्रुतापको बालो जायेत तथा द्वे रात्र्यहनी भिन्नस्वरूपे कालभेदेनैकं संसारं पालयतः। कथं रात्रिरमृतवर्षकं चित्तप्रसादकं चन्द्रमसमुत्पाद्य दिवसरूपा च पावकरूपं शोभनप्रकाशं सूर्यमुत्पाद्येति पूर्वान्वयः॥५॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे **(स्वर्थे)** सुन्दर प्रयोजनवाली **(द्वे)** दो **(विरूपे)** भिन्न-भिन्न रूप की स्त्रियां **(चरतः)** भोजनादि आचरण करती हैं और **(अन्यान्या)** एक-एक अलग-अलग समय में **(वत्सम्)** निरन्तर बोलनेवाले एक बालक को **(उप, धापयेते)** निकट कर दूध पिलाती हैं, उन दोनों में से **(अन्यस्याम्)** एक में **(स्वधावान्)** प्रशस्त शान्ति आदि अमृत तुल्य गुणयुक्त **(हरिः)** मन को हरनेवाला पुत्र **(भवति)** होता और **(शुक्रः)** शीघ्रकारी **(सुवर्चाः)** सुन्दर तेजस्वी **(अन्यस्याम्)** दूसरी में हुआ **(ददृशे)** दीख पड़ता है, वैसे ही सुन्दर प्रयोजनवाले दो काले-श्वेत भिन्न रूपवाले रात्रि-दिन वर्त्तमान हैं और एक-एक भिन्न-भिन्न समय में एक संसाररूप बालक को दुग्धादि पिलाते हैं, उन दोनों में से एक रात्रि में अमृतरूप गुणोंवाला मन का प्रसादक चन्द्रमा उत्पन्न होता और द्वितीय दिनरूप वेला में पवित्रकर्त्ता सुन्दर तेजवाला सूर्यरूप पुत्र दीख पड़ता है, ऐसा तुम लोग जानो॥५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में अनुभयाभेदरूपकालङ्कार है। जैसे दो स्त्रियां वा गायें सन्तान प्रयोजनवाली पृथक्-पृथक् वर्त्तमान भिन्न-भिन्न समय में एक बालक की रक्षा करें, उन दोनों में से एक में हृदय को प्यारा, महागुणी, शान्तिशील बालक हो और दूसरी में शीघ्रकारी, तेजस्वी, शुत्रुओं कों दुःखदायी बालक होवे; वैसे भिन्न स्वरूपवाले दो रात्रि-दिन अलग-अलग समय में एक संसारस्वरूप बालक की पालना करते हैं। किस प्रकारः-रात्रि अमृतवर्षक, चित्त को करनेहारे चन्द्रमारूप बालक को उत्पन्न करके और दिनरूप-स्त्री तेजोमय सुन्दर प्रकाशवाले सूर्य्यरूप पुत्र को उत्पन्न करके॥५॥

अयमित्यस्य कुत्स ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

विद्वद्भिः किं कर्त्तव्यमित्याह॥

विद्वानों को क्या करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठोऽअध्वरेष्वीड्यः।

यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशेविशे॥६॥

अयम्। इह। प्रथमः। धायि। धातृभिरिति धातृऽभिः। होता। यजिष्ठः। अध्वरेषु। ईड्यः॥ यम्। अप्नवानः। भृगवः। विरुरुचुरिति विऽरुरुचुः। वनेषु। चित्रम्। विभ्वमिति विभ्वम्। विशविशे इति विशेऽविशे॥६॥

पदार्थः-**(अयम्)** विद्युदादिस्वरूपः **(इह)** अस्मिन् संसारे **(प्रथमः)** विस्तीर्णः **(धायि)** ध्रियते **(धातृभिः)** धर्तृभिः **(होता)** सुखदाता **(यजिष्ठः)** अतिशयेन यष्टा सङ्गमयिता **(अध्वरेषु)** अहिंसनीयेषु व्यवहारेषु **(ईड्यः)** अध्येषणीयः **(यम्)** **(अप्नवानः)** सुसन्तानयुक्ताः सुशिष्याः

(भृगवः) परिपक्वज्ञानाः **(विरुरुचुः)** विशेषेण दीपयेयुः **(वनेषु)** किरणेषु वा **(चित्रम्)** अद्भुतगुणकर्मस्वभावम् **(विभ्वम्)** विभुं विद्युदाख्यमग्निम् **(विशे, विशे)** प्रजायै, प्रजायै॥६॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा धातृभिरिह विशे विशेऽयं प्रथमो होता यजिष्ठोऽध्वरेष्वीड्यो धायि यथा भृगवश्चाप्नवानो यं वनेषु चित्रं विभ्वं विरुरुचुस्तं यूयं धरत प्रकाशयत च॥६॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये विद्वांस इह विद्युद्विद्यां जानन्ति, ते सर्वाः प्रजाः सर्वसुखयुक्ताः कर्त्तुं शक्नुवन्ति॥६॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे **(धातृभिः)** धारण करनेवालों से **(इह)** इस संसार में **(विशे विशे)** प्रजा-प्रजा के लिये **(अयम्)** यह **(प्रथमः)** विस्तारवाला **(होता)** सुखदाता **(यजिष्ठः)** अतिशय कर संगत करनेवाला **(अध्वरेषु)** रक्षणीय व्यवहारों में **(ईड्यः)** खोजने योग्य विद्युत् आदि स्वरूप अग्नि **(धायि)** धारण किया जाता और जैसे **(भृगवः)** दृढ़ ज्ञान वाले **(अप्नवानः)** सुसन्तानों के सहित उत्तम शिष्य लोग **(यम्)** जिस **(वनेषु)** वनों वा किरणों में **(चित्रम्)** आश्चर्यरूप गुण, कर्म, स्वभाव **(विभ्वम्)** व्यापक विद्युत् रूप अग्नि को **(विरुरुचुः)** विशेष कर प्रदीप्त करें, वैसे उसको तुम लोग भी धारण और प्रकाशित करो॥६॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो विद्वान् लोग इस संसार में बिजुली की विद्या को जानते हैं, वे सब प्रजाओं को सब सुखों से युक्त करने को समर्थ होते हैं॥६॥

त्रीणि शतेत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः। विद्वांसो देवताः। स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

शिल्पिनो विद्वांसः किं कुर्युरित्याह॥

कारीगर विद्वान् क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

त्रीणि॑ श॒ता त्री स॒हस्रा॑ण्य॒ग्निं त्रि॒ꣳशच्च॑ दे॒वा नव॑ चासपर्यन्।
औक्ष॑न् घृ॒तैरस्तृ॑णन् ब॒र्हिर॑स्मा॒ऽआदिद्धोता॑रं॒ न्य॒सादयन्त॥७॥

त्रीणि॑। श॒ता। त्री। स॒हस्रा॑णि। अ॒ग्निम्। त्रि॒ꣳशत्। च॒। दे॒वाः। नव॑। च॒। अ॒स॒प॒र्य॒न्॥ औक्ष॑न्। घृ॒तैः। अस्तृ॑णन्। ब॒र्हिः। अ॒स्मै॒। आत्। इत्। होता॑रम्। नि। अ॒सा॒द॒य॒न्त॒॥७॥

पदार्थः-**(त्रीणि)** **(शता)** शतानि **(त्री)** त्रीणि **(सहस्राणि)** सहस्रक्रोशमार्गम् **(अग्निम्)** **(त्रिंशत्)** पृथिव्यादीन् **(च)** **(देवाः)** विद्वांसः **(नव)** **(च)** **(असपर्यन्)** सेवेरन् **(औक्षन्)** सिञ्चेरन् **(घृतैः)** घृतादिभिरुदकेन वा **(अस्तृणन्)** आच्छादयन्तु **(बर्हिः)** अन्तरिक्षम् **(अस्मै)** अग्नये **(आत्)** अभितः **(इत्)** एव **(होतारम्)** हवनकर्त्तारम् **(नि)** नितराम् **(असादयन्त)** स्थापयन्तु॥७॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा त्रिंशच्च नव च देवास्त्रीणि शता त्री सहस्राण्यग्निमसपर्यन्, घृतैरौक्षन् बर्हिरस्तृणन्नस्मै होतारमादिन्न्यसादयन्त तथा यूयमपि कुरुत॥७॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये शिल्पिनो विद्वांसोऽग्निजलादिपदार्थान् यानेषु संप्रयोज्योत्तममध्यमनिकृष्टवेगैरनेकानि शतानि सहस्राणि क्रोशान्मार्गं गन्तुं शक्नुयुस्तेऽन्तरिक्षेऽपि यातुं समर्था जायन्ते॥७॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे **(त्रिंशत्)** पृथिवी आदि तीस **(च)** और **(नव)** नव प्रकार के **(च)** ये सब और **(देवाः)** विद्वान् लोग **(त्रीणि)** तीन **(शता)** सौ **(त्री)** तीन **(सहस्राणि)** हजार कोश मार्ग में **(अग्निम्)** अग्नि को **(असपर्य्यन्)** सेवन करें, **(घृतैः)** घी वा जलों से **(औक्षन्)** सीचें, **(बर्हिः)** अन्तरिक्ष को **(अस्तृणन्)** आच्छादित करें, **(अस्मै)** इस अग्नि के अर्थ **(होतारम्)** हवन करनेवाले को **(आत्, इत्)** सब ओर से ही **(नि, असादयन्त)** निरन्तर स्थापित करें, वैसे तुम लोग भी करो॥७॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो शिल्पी विद्वान् लोग अग्नि, जलादि पदार्थों को यानों में संयुक्त कर उत्तम, मध्यम, निकृष्ट वेगों से अनेक सैकड़ो, हजारों कोस मार्ग को जा सकें, वे आकाश में भी जा-आ सकते हैं॥७॥

मूर्द्धानमित्यस्य विश्वामित्र ऋषिः। विद्वांसो देवताः। भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवत स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

मूर्द्धानं दिवोऽअरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृतऽआ जातमग्निम्।
कविꣳ सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः॥८॥

मूर्द्धानम्। दिवः। अरतिम्। पृथिव्याः। वैश्वानरम्। ऋते। आ। जातम्। अग्निम्॥ कविम्। सम्राजमिति सम्ऽराजम्। अतिथिम्। जनानाम्। आसन्। आ। पात्रम्। जनयन्त। देवाः॥८॥

पदार्थः-**(मूर्द्धानम्)** शिरोवदुन्नतप्रदेशे सूर्यरूपेण वर्त्तमानम् **(दिवः)** आकाशस्य **(अरतिम्)** प्राप्तम् **(पृथिव्याः)** **(वैश्वानरम्)** विश्वेभ्यो नरेभ्यो हितम् **(ऋते)** यज्ञनिमित्तम् **(आ)** समन्तात् **(जातम्)** प्रादुर्भूतम् **(अग्निम्)** पावकम् **(कविम्)** क्रान्तदर्शकम् **(सम्राजम्)** यः सम्यग्राजते तम् **(अतिथिम्)** अतिथिवद्वर्त्तमानम् **(जनानाम्)** मनुष्याणाम् **(आसन्)** मुखे उत्पन्नम् **(आ)** समन्तात् **(पात्रम्)** पान्ति रक्षन्ति येन तम् **(जनयन्त)** प्रादुर्भावयेयुः **(देवाः)** विद्वांसः॥८॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा देवा दिवो मूर्द्धानं पृथिव्या अरतिं वैश्वानरमृत आजातं कविं सम्राजं जनानामतिथिं पात्रमासन्नग्निमाजनयन्त तथा यूयमप्येनं प्रादुर्भावयत॥८॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये पृथिव्यप्वाय्वाकाशेषु व्याप्तं विद्युदाख्यमग्निं प्रादुर्भाव्य यन्त्रादिभिर्युक्त्या चालयेयुस्ते किं किं कार्यं न साधयेयुः॥८॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे **(देवाः)** विद्वान् लोग **(दिवः)** आकाश के **(मूर्द्धानम्)** उपरिभाग में सूर्यरूप से वर्त्तमान **(पृथिव्याः)** पृथिवी को **(अरतिम्)** प्राप्त होनेवाले **(वैश्वानरम्)** सब मनुष्यों के हितकारी **(ऋते)** यज्ञ के निमित्त **(आ, जातम्)** अच्छे प्रकार प्रकट हुए **(कविम्)** सर्वत्र दिखानेवाले **(सम्राजम्)** सम्यक् प्रकाशमान **(जनानाम्)** मनुष्यों के **(अतिथिम्)** अतिथि के तुल्य प्रथम भोजन का भाग लेनेवाले **(पात्रम्)** रक्षा के हेतु **(आसन्)** ईश्वर के मुखरूप सामर्थ्य में उत्पन्न हुए जो **(अग्निम्)** अग्नि को **(आ, जनयन्त)** अच्छे प्रकार प्रकट करें, वैसे तुम लोग भी इसको प्रकट करो॥८॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो लोग पृथिवी, जल, वायु और आकाश में व्याप्त विद्युत्रूप अग्नि को प्रकट कर यन्त्र कलादि द्वारा युक्ति से चलावें, वे किस किस कार्य को न सिद्ध करें॥८॥

अग्निरित्यस्य भरद्वाज ऋषिः। अग्निर्देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

मनुष्यः सूर्यवद्दोषान् हन्यादित्याह॥

मनुष्य सूर्य के तुल्य दोषों को विनाशे, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अ॒ग्निर्वृ॒त्राणि॑ जङ्घनद् द्र॒विण॒स्युर्वि॑प॒न्यया॑।

समि॑द्धः शु॒क्रऽआहु॑तः॥ ९॥

अ॒ग्निः। वृ॒त्राणि॑। ज॒ङ्घ॒न॒त्। द्र॒वि॒ण॒स्युः। वि॒प॒न्यया॑। समि॑द्ध॒ इति॒ सम्ऽइ॑द्धः। शु॒क्रः। आहु॑त॒ इत्याऽहु॑तः॥ ९॥

पदार्थः-**(अग्निः)** सूर्यादिरूपः **(वृत्राणि)** मेघावयवान् **(जङ्घनत्)** भृशं हन्ति **(द्रविणस्युः)** आत्मनो द्रविणमिच्छुः **(विपन्यया)** विशेषव्यवहारयुक्त्या **(समिद्धः)** सम्यक् प्रदीप्तः **(शुक्रः)** शीघ्रकर्त्ता **(आहुतः)** कृताह्वानः॥९॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यथा समिद्धः शुक्रोऽग्निर्वृत्राणि जङ्घनत्, तथा द्रविणस्युराहुतो भवान् विपन्यया दुष्टान् भृशं हन्यात्॥९॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा व्यवहारवित् पुरुषो धनं प्राप्य सत्कृतो भूत्वा दोषान् हन्ति, तथा सूर्यो मेघं ताडयति॥९॥

पदार्थः-हे विद्वन्! जैसे **(समिद्धः)** सम्यक् प्रदीप्त **(शुक्रः)** शीघ्रकारी **(अग्निः)** सूर्य्यादिरूप अग्नि **(वृत्राणि)** मेघ के अवयवों को **(जङ्घनत्)** शीघ्र काटता है, वैसे **(द्रविणस्युः)** अपने धन को

चाहनेवाले **(आहुतः)** बुलाये हुए आप **(विपन्यया)** विशेष व्यवहार की युक्ति से दुष्टों को शीघ्र मारिये॥९॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे व्यवहार का जाननेवाला पुरुष धन को पाके सत्कार को प्राप्त होकर दोषों को नष्ट करता है, वैसे सूर्य मेघ को ताड़ना देता है॥९॥

विश्वेभिरित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। अग्निर्देवता। विराड् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

विश्वेभिः सोम्यं मध्वग्नऽइन्द्रेण वायुना।

पिबा मित्रस्य धामभिः॥१०॥

विश्वेभिः। सोम्यम्। मधु। अग्ने। इन्द्रेण। वायुना॥ पिब। मित्रस्य। धामभिरिति धामऽभिः॥१०॥

पदार्थः-**(विश्वेभिः)** अखिलैः **(सोम्यम्)** सोमेष्वोषधीषु भवम् **(मधु)** मधुरादिगुणयुक्तं रसम् **(अग्ने)** अग्निरिव वर्त्तमान विद्वन्! **(इन्द्रेण)** सर्वेषां धारकेण **(वायुना)** बलवता पवनेन **(पिब)**। अत्र **द्व्यचोऽतस्तिङः** [अ०६.३.१३५] इति दीर्घः **(मित्रस्य)** सुहृदः **(धामभिः)** स्थानैः॥१०॥

अन्वयः-हे अग्ने! त्वं यथा सूर्य्यो विश्वेभिर्धामभिरिन्द्रेण वायुना सह सोम्यं मधु पिबति, तथा मित्रस्य विश्वेभिर्धामभिः सोम्यं मधु रसं त्वं पिब॥१०॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे मनुष्याः! यूयं यथा सूर्य्यः सर्वस्माद्रसमाकृष्य वर्षित्वा सर्वान् पदार्थान् पुष्णाति तथा विद्याविनयाभ्यां सर्वान् पुष्णीत॥१०॥

पदार्थः-हे **(अग्ने)** अग्नि के तुल्य वर्त्तमान तेजस्वी विद्वन्! आप जैसे सूर्य **(विश्वेभिः)** सब **(धामभिः)** धामों से **(इन्द्रेण)** धन के धारक **(वायुना)** बलवान् पवन के साथ **(सोम्यम्)** उत्तम ओषधियों में हुए **(मधु)** मीठे आदि गुण वाले रस को पीता है, वैसे **(मित्रस्य)** मित्र के सब स्थानों से सुन्दर ओषधियों के रस को **(पिब)** पीजिये॥१०॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! तुम लोग जैसे सूर्य सब पदार्थों से रस को खींच के वर्षा करके सब पदार्थों को पुष्ट करता है, वैसे विद्या और विनय से सब को पुष्ट करो॥१०॥

आ यदित्यस्य पराशर ऋषिः। अग्निर्देवता। विराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आ यदिषे नृपतिं तेजऽआनट् शुचि रेतो निषिक्तं द्यौरभीके।

अ॒ग्निः शर्द्ध॑मनव॒द्यं युवा॑नᳬस्वा॒ध्यं᳖ जनयत्सू॒दय॑च्च॥ ११॥

आ। यत्। इ॒षे। नृ॒पति॒मिति॑ नृ॒ऽपति॑म्। तेजः॑। आन॑ट्। शुचि॑। रेतः॑। निषि॑क्तम्। निषि॑क्त॒मिति॒ निऽसि॑क्तम्। द्यौः। अ॒भीके॑॥ अ॒ग्निः। शर्द्ध॑म्। अ॒न॒व॒द्यम्। युवा॑नम्। स्वा॒ध्य᳖मिति॑। सुऽआ॒ध्य᳖म्। ज॒न॒य॒त्। सू॒दय॑त्। च॒॥ ११॥

पदार्थः-**(आ)** **(यत्)** यदा **(इषे)** वृष्ट्यै **(नृपतिम्)** सूर्यं राजानमिव **(तेजः)** यज्ञोत्थम् **(आनट्)** समन्तात् व्याप्नोति। **आनडिति व्याप्तिकर्मा०॥** (निघं०२।१८) **(शुचि)** पवित्रम् **(रेतः)** वीर्यकरं जलम् **(निषिक्तम्)** अग्नावाज्यादिप्रक्षेपणेन नितरां सिक्तं विस्तृतम् **(द्यौः)** आकाशस्य। षष्ठ्यर्थेऽत्र प्रथमा। **(अभीके)** समीपे **(अग्निः)** सूर्य्यरूपः **(शर्द्धम्)** बलहेतुम् **(अनवद्यम्)** सर्वदोषरहितम् **(युवानम्)** युवत्वसम्पादकम् **(स्वाध्यम्)** यः सुष्ठु ध्यायते तम् **(जनयत्)** जनयति **(सूदयत्)** क्षरति वर्षयति **(च)**॥ ११॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यदिषे निषिक्तं शुचि तेजो नृपतिमाऽऽनट् तदाग्निः शर्द्धमनवद्यं युवानं स्वाध्यं रेतो द्यौरभीके जनयत् सूदयच्च॥ ११॥

भावार्थः-यथाऽग्नौ हुतं द्रव्यं तेजसा सहैव सूर्य्यं प्राप्नोति, सूर्य्यो जलाद्याकृष्य वर्षित्वा सर्वान् पालयति, तथा राजा प्रजाभ्यः करानाकृष्य दुर्भिक्षे पुनर्दत्वा श्रेष्ठान् सम्पाल्य दुष्टान् सन्ताड्य प्रागल्भ्यं बलञ्च प्राप्नोति॥ ११॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! **(यत्)** जब **(इषे)** वर्षा के लिये **(निषिक्तम्)** अग्नि में घृतादि के पड़ने से निरन्तर बढ़ा हुआ **(शुचि)** पवित्र **(तेजः)** यज्ञ से उठा तेज **(नृपतिम्)** जैसे राजा का तेज व्याप्त हो वैसे सूर्य को **(आ, आनट्)** अच्छे प्रकार व्याप्त होता है, तब **(अग्निः)** सूर्यरूप अग्नि **(शर्द्धम्)** बलहेतु **(अनवद्यम्)** निर्दोष **(युवानम्)** ज्वानी को करनेहारे **(स्वाध्यम्)** जिनका सब चिन्तन करते **(रेतः)** ऐसे पराक्रमकारी वृष्टि जल को **(द्यौः)** आकाश के **(अभीके)** निकट **(जनयत्)** उत्पन्न करता **(च)** और **(सूदयत्)** वर्षा करता है॥ ११॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे अग्नि में होम किया द्रव्य तेज के साथ ही सूर्य को प्राप्त होता और सूर्य जलादि को आकर्षण कर वर्षा करके सबकी रक्षा करता है, वैसे राजा प्रजाओं से करों को ले, दुर्भिक्षकाल में फिर दे, श्रेष्ठों को सम्यक् पालन और दुष्टों को सम्यक् ताड़ना देके प्रगल्भता और बल को प्राप्त होता है॥ ११॥

अग्न इत्यस्य विश्ववारा ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनर्विद्वद्भिः किं कार्यमित्याह॥

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अग्ने शर्द्ध महते सौभगाय तव द्युम्नान्युत्तमानि सन्तु।
सं जास्पत्यꣳ सुयममा कृणुष्व शत्रूयतामभि तिष्ठा महाꣳसि॥ १२॥

अग्ने। शर्द्ध। महते। सौभगाय। तव। द्युम्नानि। उत्तमानीत्युत्ऽतमानि। सन्तु॥ सम्। जास्पत्यम्। जास्पत्यमिति जाःऽपत्यम्। सुयममिति सुऽयमम्। आ। कृणुष्व। शत्रूयतामिति शत्रूऽयताम्। अभि। तिष्ठ। महाꣳसि॥ १२॥

पदार्थः-(अग्ने) विद्वन्! राजन् वा! **(शर्द्ध)** दुष्टगुणशत्रुनाशकं बलम्। अत्र **सुपां सुलुग्** [अ०७.१.३९] इति सोर्लुक्। **शर्द्ध इति बलनामसु पठितम्॥** (निघं०२।९) **(महते) (सौभगाय)** शोभनैश्वर्यस्य भावाय **(तव) (द्युम्नानि)** धनानि यशांसि वा **(उत्तमानि)** श्रेष्ठानि **(सन्तु) (सम्) (जास्पत्यम्)** जायापतेर्भावं जास्पत्यम्। अत्र छान्दसो वर्णलोप इति यालोपः सुडागमश्च। **(सुयमम्)** सुष्ठु यमो नियमो यस्मिंस्तम् **(आ) कृणुष्व)** कुरुष्व **(शत्रूयताम्)** शत्रुत्वमिच्छताम् **(अभि) (तिष्ठ)** अत्र **द्व्यचोऽतस्तिङः** [अ०६.३.१३५] इति दीर्घः। **(महांसि)** तेजांसि॥१२॥

अन्वयः-हे अग्ने! त्वं महते सौभगाय शर्द्धाकृणुष्व यतस्तव द्युम्नान्युत्तमानि सन्तु, त्वं जास्पत्यं सुयमं समाकृणुष्व शत्रूयतां महांस्यभितिष्ठ॥१२॥

भावार्थः-ये सुसंयमिनो मनुष्याः सन्ति तेषां महदैश्वर्यं बलं कीर्तिः सुशीला भार्या शत्रुपराजयश्च भवति॥१२॥

पदार्थः-हे **(अग्ने)** विद्वान् वा राजन्! आप **(महते)** बड़े **(सौभगाय)** सौभाग्य के अर्थ **(शर्द्ध)** दुष्ट गुणों और शत्रुओं के नाशक बल को **(आकृणुष्व)** अच्छे प्रकार उन्नत कीजिये, जिससे **(तव)** आपके **(द्युम्नानि)** धन वा यश **(उत्तमानि)** श्रेष्ठ **(सन्तु)** हों, आप **(जास्पत्यम्)** स्त्री-पुरुष के भाव को **(सुयमम्)** सुन्दर नियमयुक्त शास्त्रानुकूल ब्रह्मचर्ययुक्त **(सम्, आ)** सम्यक् अच्छे प्रकार कीजिये और आप **(शत्रूयताम्)** शत्रु बनने की इच्छा करते हुए मनुष्यों के **(महांसि)** तेजों को **(अभि, तिष्ठ)** तिरस्कृत कीजिये॥१२॥

भावार्थः-जो अच्छे संयम में रहनेवाले मनुष्य हैं, उनके बड़ा ऐश्वर्य, बल, कीर्ति, उत्तम स्वभाववाली स्त्री और शत्रुओं का पराजय होता है॥१२॥

त्वामित्यस्य भरद्वाज ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

त्वाꣳ हि मन्द्रतममर्कशोकैर्ववृमहे महि नः श्रोष्यग्ने।
इन्द्रं न त्वा शवसा देवता वायुं पृणन्ति राधसा नृतमाः॥ १३॥

त्वाम्। हि। मन्द्रतममिति मन्द्रऽतमम्। अर्कशोकैरित्यर्कऽशोकैः। ववृमहे। महि। नः। श्रोषि। अग्ने॥ इन्द्रम्। न। त्वा। शवसा। देवता। वायुम्। पृणन्ति। राधसा। नृतमा इति नृऽतमाः॥ १३॥

पदार्थः-(**त्वाम्**) (**हि**) यतः (**मन्द्रतमम्**) अतिशयेन प्रशंसादिसत्कृतम् (**अर्कशोकैः**) अर्कः सूर्य्य इव शोकाः प्रकाशा येषान्तैः (**ववृमहे**) स्वीकुर्महे (**महि**) महद्वचः (**नः**) अस्माकं ब्रह्मचर्य्यादिसत्कर्मसु प्रवृत्तानाम् (**श्रोषि**) शृणोषि। अत्र विकरणस्य लुक्। (**अग्ने**) अग्निरिव वर्त्तमान विद्वन्! (**इन्द्रम्**) सूर्य्यम् (**न**) इव (**त्वा**) त्वाम् (**शवसा**) बलेन (**देवता**) दिव्यगुणयुक्तम्। अत्र सुपो लुक्। (**वायुम्**) वातमिव (**पृणन्ति**) पिपुरति (**राधसा**) धनेन (**नृतमाः**) येऽतिशयेन नेतारः श्रेष्ठा जनाः॥ १३॥

अन्वयः-हे अग्ने! हि यतो नो महि श्रोषि तस्मान्मन्द्रतमं त्वामर्कशोकैर्वयं ववृमहे, नृतमाः शवसा इन्द्रं न वायुमिव च देवता त्वा राधसा पृणन्ति॥ १३॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। ये दुःखानि सोढ्वा सूर्यवत्तेजस्विनो वायुवद् बलिष्ठा विद्यासुशिक्षे गृह्णन्ति, ते मेघेन सूर्य इव सर्वेषामानन्दकराः पुरुषोत्तमा जायन्ते॥ १३॥

पदार्थः-हे (**अग्ने**) अग्नि के तुल्य वर्त्तमान राजन्! वा विद्वज्जन! (**हि**) जिससे आप (**नः**) हम ब्रह्मचर्यादि सत्कर्मों में प्रवृत जनों के (**महि**) महत् गम्भीर वचन को (**श्रोषि**) सुनते हो, इससे (**मन्द्रतमम्**) अतिशय कर प्रशंसादि से सत्कार को प्राप्त (**त्वाम्**) आपको (**अर्कशौकैः**) सूर्य के समान प्रकाश से युक्त जनों के साथ हम लोग (**ववृमहे**) स्वीकार करते हैं और (**नृतमाः**) अतिशय कर नायक श्रेष्ठजन (**शवसा**) बल से युक्त (**इन्द्रम्**) सूर्य के (**न**) समान तेजस्वी और (**वायुम्**) वायु के तुल्य वर्त्तमान बलवान् (**देवता**) दिव्यगुणयुक्त (**त्वा**) आपको (**राधसा**) धन से (**पृणन्ति**) पालन वा पूर्ण करते हैं॥ १३॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो दुःखों को सहन कर सूर्य के समान तेजस्वी और वायु के तुल्य बलवान् विद्वान् मनुष्य विद्या सुशिक्षा का ग्रहण करते हैं, वे मेघ सूर्य जैसे वैसे सबको आनन्द देनेवाले उत्तम पुरुष होते हैं॥ १३॥

त्व इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। विद्वांसो देवताः। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

विद्वद्वदितरजनैर्वर्त्तितव्यमित्याह॥

विद्वानों के तुल्य अन्य जनों को वर्त्तना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

त्वेऽअग्ने स्वाहुत प्रियासः सन्तु सूरयः।

यन्तारो ये मघवानो जनानामूर्वान् दयन्त गोनाम्॥ १४॥

त्वेऽइति त्वे। अग्ने। स्वाहुतेति सुऽआहुत। प्रियासः। सन्तुः। सूरयः॥ यन्तारः ये। मघवान इति मघऽवानः। जनानाम्। ऊर्वान्। दयन्त। गोनाम्॥ १४॥

पदार्थः-(**त्वे**) तव (**अग्ने**) विद्वन्! (**स्वाहुत**) सुष्ठ्वादत्तविद्य! (**प्रियासः**) प्रीतिकराः (**सन्तु**) (**सूरयः**) विद्वांसः (**यन्तारः**) निगृहीतेन्द्रियाः (**ये**) (**मघवानः**) बहुधनयुक्ताः (**जनानाम्**) मनुष्याणां मध्ये (**ऊर्वान्**) हिंसकान् (**दयन्त**) दयन्ते घ्नन्ति (**गोनाम्**) पृथिवीधेन्वादीनाम्। अत्र **गोः पादान्ते** (अष्टा०७।१।५०) इति नुडागमः॥ १४॥

अन्वयः-हे स्वाहुताऽग्ने! ये जनानां मध्ये वीरा यन्तारो मघवानो गोनामूर्वान् दयन्त ते सूरयस्त्वे प्रियासः सन्तु॥ १४॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यथा विद्वांसोऽग्न्यादिपदार्थविद्यां गृहीत्वा विद्वत्प्रिया भूत्वा दुष्टान् हत्वा गवादीन् रक्षित्वा मनुष्यप्रिया भवन्ति, तथा यूयमपि भवत॥ १४॥

पदार्थः-हे (**स्वाहुत**) सुन्दर प्रकार से विद्या को ग्रहण किये हुए (**अग्ने**) विद्वन्! (**ये**) जो (**जनानाम्**) मनुष्यों के बीच वीर पुरुष (**यन्तारः**) जितेन्द्रिय (**मघवानः**) बहुत धन से युक्त जन (**गोनाम्**) पृथिवी वा गौ आदि के (**ऊर्वान्**) हिसकों को (**दयन्त**) मारते हैं, वे (**सूरयः**) विद्वान् लोग (**त्वे**) आपके (**प्रियासः**) पियारे (**सन्तु**) हों॥ १४॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जैसे विद्वान् लोग अग्नि आदि पदार्थों की विद्या को ग्रहण कर विद्वानों के पियारे हो, दुष्टों को मार और गौ आदि की रक्षा कर मनुष्यों के पियारे होते हैं, वैसे तुम भी करो॥ १४॥

श्रुधीत्यस्य प्रस्कण्व ऋषिः। अग्निर्देवता। बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

अथ राजधर्मविषयमाह॥

अब राजधर्म विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिर्देवैरग्ने सयावभिः।
आ सीदन्तु बर्हिषि मित्रोऽअर्य्यमा प्रातर्यावाणोऽअध्वरम्॥ १५॥

श्रुधि। श्रुत्कर्णेति श्रुत्ऽकर्ण। वह्निभिरिति वह्निऽभिः। देवैः। अग्ने। सयावभिरिति सयावऽभिः॥ आ। सीदन्तु। बर्हिषि। मित्रः। अर्य्यमा। प्रातर्यावाणः। प्रातर्यावान इति प्रातःऽयावानः। अध्वरम्॥ १५॥

पदार्थः-(**श्रुधि**) शृणु (**श्रुत्कर्ण!**) अर्थिवचः श्रोतारौ कर्णौ यस्य तत्सम्बुद्धौ (**वह्निभिः**) कार्यनिर्वाहकैः (**देवैः**) विद्वद्भिः सह (**अग्ने**) पावकवद्वर्त्तमान विद्वन् राजन् वा (**सयावभिः**) ये सह यान्ति तैः (**आ**) (**सीदन्तु**) (**बर्हिषि**) अन्तरिक्ष इव सभायाम् (**मित्रः**) पक्षपातरहितः सर्वेषां सुहृत्

(अर्यमा) योऽर्यान् वैश्यान् स्वामिनो वा मन्यते सः **(प्रातर्यावाणः)** ये प्रातर्यान्ति राजकार्याणि प्रापयन्ति **(अध्वरम्)** अहिंसनीयराज्यव्यवहारम्॥१५॥

अन्वयः-हे श्रुत्कर्णाग्ने! सयावभिर्वह्निभिर्देवैः सहाध्वरं श्रुधि। प्रातर्यावाणो मित्रोऽर्यमा च बर्हिष्यासीदन्तु॥१५॥

भावार्थः-सभापतिना राज्ञा सुपरीक्षितानमात्यान् स्वीकृत्य तैः सह सदसि स्थित्वा विवदमानवचांसि श्रुत्वा समीक्ष्य यथार्थो न्यायः कर्त्तव्यः॥१५॥

पदार्थः-हे **(श्रुत्कर्ण)** अर्थियों के वचनों को सुननेहारे **(अग्ने)** अग्नि के तुल्य वर्त्तमान तेजस्वी विद्वन्! वा राजन्! आप **(सयावभिः)** जो साथ चलते उन **(वह्निभिः)** कार्यों का निर्वाह करनेहारे **(देवैः)** विद्वानों के साथ **(अध्वरम्)** रक्षा के योग्य राज्य के व्यवहार को **(श्रुधि)** सुनिये तथा **(प्रातर्यावाणः)** प्रातःकाल राजकार्यों को प्राप्त करनेहारे **(मित्रः)** पक्षपातरहित सबका मित्र और **(अर्यमा)** वैश्य या अपने अधिष्ठाताओं को यथार्थ माननेवाला ये सब **(बर्हिषि)** अन्तरिक्ष के तुल्य सभा में **(आ, सीदन्तु)** अच्छे प्रकार बैठें॥१५॥

भावार्थः-सभापति राजा को चाहिये कि अच्छे परीक्षित मन्त्रियों को स्वीकार कर उनके साथ सभा में बैठ विवाद करनेवालों के वचन सुन के उन पर विचार कर यथार्थ न्याय करे॥१५॥

विश्वेषामित्यस्य गोतम ऋषिः। अग्निर्देवता। स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

विश्वे॑षा॒मदि॑ति॒र्य॒ज्ञिया॑नां॒ विश्वे॑षा॒मति॑थि॒र्मानु॑षाणाम्।

अ॒ग्निर्दे॒वाना॒मव॑ऽआवृणा॒नः सु॑मृडी॒को भ॑वतु जा॒तवे॑दाः॥ १६॥

विश्वे॑षाम्। अदि॑तिः। य॒ज्ञिया॑नाम्। विश्वे॑षाम्। अति॑थिः। मानु॑षाणाम्॥ अ॒ग्निः। दे॒वाना॑म्। अवः॑। आ॒वृ॒णा॒न इत्या॑ऽवृ॒णा॒नः। सु॒मृ॒डी॒क इति॑ सुऽमृ॒डी॒कः। भ॒व॒तु॒। जा॒तवे॑दा॒ इति॑ जा॒तऽवे॑दाः॥ १६॥

पदार्थः-**(विश्वेषाम्)** सर्वेषाम् **(अदितिः)** अखण्डितबुद्धिः **(यज्ञियानाम्)** ये यज्ञं पूजनमर्हन्ति ते **(विश्वेषाम्)** सर्वेषाम् **(अतिथिः)** पूजनीयः **(मानुषाणाम्)** मनुष्याणाम् **(अग्निः)** तेजस्वी राजा **(देवानाम्)** विदुषाम् **(अवः)** रक्षणादिकम् **(आवृणानः)** समन्तात् स्वीकुर्वन् **(सुमृडीकः)** सुष्ठु सुखप्रदः **(भवतु)** **(जातवेदाः)** आविर्भूतविद्यायोगप्रज्ञः॥१६॥

अन्वयः-हे सभापते! भवान् विश्वेषां यज्ञियानां देवानां मध्येऽदितिर्विश्वेषां मानुषाणामतिथिरव आवृणानः सुमृडीको जातवेदा अग्निर्भवतु॥१६॥

भावार्थः-मनुष्यैर्यः सर्वेषु विद्वत्सु गम्भीरबुद्धिः, सर्वमनुष्येषु मान्यः, प्रजारक्षादिराजकार्यं स्वीकुर्वाणः, सर्वसुखदाता, वेदादिशास्त्रवेत्ता शूरो भवेत्, स राजा कर्तव्यः॥१६॥

पदार्थः-हे सभापते! आप **(विश्वेषाम्)** सब **(यज्ञियानाम्)** पूजा सत्कार के योग्य **(देवानाम्)** विद्वानों के बीच **(अदितिः)** अखण्डित बुद्धिवाले **(विश्वेषाम्)** सब **(मानुषाणाम्)** मनुष्यों में **(अतिथिः)** पूजनीय **(अवः)** रक्षा आदि को **(आवृणानः)** अच्छे प्रकार स्वीकार करते हुए **(सुमृडीकः)** सुन्दर सुख देनेवाले **(जातवेदाः)** विद्या और योग के अभ्यास से प्रसिद्ध बुद्धिवाले **(अग्निः)** तेजस्वी राजा **(भवतु)** हूजिये॥१६॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि जो सब विद्वानों में गम्भीर बुद्धिवाला, सब मनुष्यों में माननीय प्रजा की रक्षा आदि राजकार्य को स्वीकार करता, सब सुखों का दाता और वेदादि शास्त्रों का जाननेवाला शूरवीर हो, उसी को राजा करें॥१६॥

मह इत्यस्य लुशो धानाक ऋषिः। सविता देवता। भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

महोऽअग्नेः समिधानस्य शर्मण्यनागा मित्रे वरुणे स्वस्तये।
श्रेष्ठे स्याम सवितुः सवीमनि तद्देवानामवोऽअद्या वृणीमहे॥१७॥

महः। अग्नेः। समिधानस्येति सम्ऽइधानस्य। शर्मणि। अनागाः। मित्रे। वरुणे। स्वस्तये॥ श्रेष्ठे। स्याम। सवितुः। सवीमनि। तत्। देवानाम्। अवः। अद्य। वृणीमहे॥१७॥

पदार्थः-**(महः)** महतः **(अग्नेः)** विज्ञानवतः सभापतेः **(समिधानस्य)** प्रकाशमानस्य **(शर्मणि)** आश्रये **(अनागाः)** अनपराधिनः। अत्र **सुपां सुलुग्** [अ०७.१.३९] इति जसः स्थाने सुः। **(मित्रे)** सुहृदि **(वरुणे)** स्वीकर्त्तव्ये जने **(स्वस्तये)** सुखाय **(श्रेष्ठे)** उत्तमे **(स्याम)** भवेम **(सवितुः)** सकलजगदुत्पादकस्य परमेश्वरस्य **(सवीमनि)** आज्ञायाम् **(तत्)** वेदोक्तम् **(देवानाम्)** विदुषाम् **(अवः)** रक्षणादिकम् **(अद्य)** अस्मिन् दिवसे। अत्र **निपातस्य च** [अ०६.३.१३६] इति दीर्घः। **(वृणीमहे)** स्वीकुर्महे॥१७॥

अन्वयः-वयं राजपुरुषा महः समिधानस्याग्नेः शर्मणि श्रेष्ठे मित्रे वरुणे चानागाः स्याम। अद्य सवितुः सवीमनि वर्त्तमानाः स्वस्तये देवानां तदवो वृणीमहे॥१७॥

भावार्थः-धार्मिकविद्वद्भी राजपुरुषैरधर्मं विहाय धर्मे प्रवर्त्तित्वा परमेश्वरस्य सृष्टौ विविधा रचना दृष्ट्वा स्वेषामन्येषां च रक्षणं विधायेश्वरस्य धन्यवादा वाच्याः॥१७॥

पदार्थः-हम राजपुरुष **(महः)** बड़े **(समिधानस्य)** प्रकाशमान **(अग्नेः)** विज्ञानवान् सभापति के **(शर्मणि)** आश्रय में **(श्रेष्ठे)** श्रेष्ठ **(मित्रे)** मित्र और **(वरुणे)** स्वीकार के योग्य मनुष्यों के निमित्त **(अनागाः)** अपराधरहित **(स्याम)** हों, **(अद्य)** आज **(सवितुः)** सब जगत् के उत्पादक परमेश्वर की **(सवीमनि)** आज्ञा में वर्त्तमान **(स्वस्तये)** सुख के लिये **(देवानाम्)** विद्वानों के **(तत्)** उस वेदोक्त **(अवः)** रक्षा आदि कर्म को **(वृणीमहे)** स्वीकार करते हैं॥१७॥

भावार्थः-धार्मिक विद्वान् राजपुरुषों को चाहिये कि अधर्म को छोड़ धर्म में प्रवृत्त हों, परमेश्वर की सृष्टि में विविध प्रकार की रचना देख अपनी और दूसरों की रक्षा कर ईश्वर का धन्यवाद किया करें॥१७॥

आप इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। इन्द्रो देवता। स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अध्यापकोपदेशकौ किं कुर्यातामित्याह॥

अध्यापक और उपदेशक क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आपश्चित्पिप्यु स्तर्यो न गावो नक्षन्नृतं जरितारस्तऽइन्द्र।

याहि वायुर्न नियुतो नोऽअच्छा त्वꣳहि धीभिर्दयसे वि वाजान्॥१८॥

आपः। चित्। पिप्युः। स्तर्य्यः। न। गावः। नक्षन्। ऋतम्। जरितारः। ते। इन्द्र॥ याहि। वायुः। न। नियुत इति निऽयुतः। नः। अच्छ। त्वम्। हि। धीभिः। दयसे। वि। वाजान्॥१८॥

पदार्थः-**(आपः)** जलानि **(चित्)** अपि **(पिप्युः)** वर्द्धन्ते **(स्तर्यः)** स्तृणन्ति याभिस्ताः **(न)** इव **(गावः)** किरणाः **(नक्षन्)** व्याप्नुवन्ति **(ऋतम्)** सत्यम् **(जरितारः)** स्तावकाः **(ते)** **(इन्द्र)** परमेश्वर्य्ययुक्त विद्वन्! **(याहि)** **(वायुः)** पवनः **(न)** इव **(नियुतः)** वायोर्वेगादयो गुणाः **(नः)** अस्मान् **(अच्छ)** अत्र **निपातस्य च** [अ०६.३.१३६] इति दीर्घः। **(त्वम्)** **(हि)** **(धीभिः)** प्रज्ञाभिः कर्मभिर्वा **(दयसे)** कृपां करोषि **(वि)** **(वाजान्)** विज्ञानवतः॥१८॥

अन्वयः-हे इन्द्र! ते तव जरितार आप इव पिप्यु स्तर्य्यो गावो न ऋतं नक्षन् तथा वाजान्नो नियुतश्च वायुर्न त्वमच्छ याहि हि यतो धीभिर्विदयसे तस्माच्चिदपि सत्कर्त्तव्योऽसि॥१८॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। यदि पदार्थानां गुणकर्मस्वभावस्तावका उपदेशकाऽध्यापकाः स्युस्तर्हि सर्वे मनुष्या विद्याव्यापिनः सन्तो दयावन्तो भवेयुः॥१८॥

पदार्थः-हे **(इन्द्र)** परमैश्वर्ययुक्त विद्वन्! **(ते)** आपके **(जरितारः)** स्तुति करनेहारे **(आपः)** जलों के तुल्य **(पिप्युः)** बढ़ते हैं और **(स्तर्यः)** विस्तार के हेतु **(गावः)** किरणें **(न)** जैसे **(ऋतम्)** सत्य को **(नक्षन्)** व्याप्त होते हैं, वैसे **(वायुः)** पवन के **(न)** तुल्य **(वाजान्)** विज्ञानवाले **(नः)** हम लोगों को और **(नियुतः)** वायु के वेग आदि गुणों को **(त्वम्)** आप **(अच्छ)** अच्छे प्रकार **(याहि)**

प्राप्त हूजिये **(हि)** जिस कारण **(धीभि:)** बुद्धि वा कर्मों से **(वि, दयसे)** विशेष कर कृपा करते हो, इससे **(चित्)** भी सत्कार के योग्य हो॥१८॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो पदार्थों के गुण, कर्म, स्वभावों की स्तुति करनेवाले उपदेशक और अध्यापक हों तो सब मनुष्य विद्या में व्याप्त हुए दयावाले हों॥१८॥

गाव इत्यस्य पुरुमीढाजमीढावृषी। इन्द्रवायू देवते। गायत्री छन्द:। षड्ज: स्वर:॥

मनुष्यैराभूषणादि रक्षणीयमित्याह॥

मनुष्यों को आभूषण आदि की रक्षा करनी चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

गाव॒ऽउपा॑वताव॒तं म॒ही य॒ज्ञस्य॑ र॒प्सुदा॑।

उ॒भा कर्णा॑ हिर॒ण्यया॑॥ १९॥

गाव॑:। उप॑। अ॒व॒त॒। अ॒व॒तम्। म॒हीऽइति॑ म॒ही। य॒ज्ञस्य॑। र॒प्सुदा॑॥ उ॒भा। कर्णा॑। हि॒र॒ण्यया॑॥ १९॥

पदार्थ:-**(गाव:)** किरणा धेनवो वा **(उप)** समीपे **(अवत)** रक्षत **(अवतम्)** रक्षणीयं वेद्यादिगर्त्तम् **(मही)** महत्यौ द्यावापृथिव्यौ **(यज्ञस्य)** **(रप्सुदा)** ये रप्सुं रूपं दत्तस्ते **(उभा)** द्वे **(कर्णा)** कर्णौ श्रोत्रे **(हिरण्यया)** हिरण्यप्रचुरे॥१९॥

अन्वय:-हे मनुष्या:! यथा गाव उभा रप्सुदा मही रक्षन्ति, तथा यूयं हिरण्यया कर्णा यज्ञस्यावतमुपावत॥१९॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यथा सूर्य्यकिरणा गवादिपशवश्च सर्वं वस्तुजातं रक्षन्ति, तथैव मनुष्यै रुक्मादिनिर्मितं कुण्डलाद्याभूषणं सदा रक्षणीयम्॥१९॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! जैसे **(गाव:)** गौवें वा किरणें **(उभा)** दोनों **(रप्सुदा)** रूप देनेवाली **(मही)** बड़ी आकाश-पृथिवी की रक्षा करती हैं, वैसे तुम लोग **(हिरण्यया)** सुवर्ण के आभूषण से युक्त **(कर्णा)** दोनों कानों और **(यज्ञस्य)** संगत यज्ञ के **(अवतम्)** वेदी आदि अवयवों की **(उप, अवत)** निकट रक्षा करो॥१९॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्यकिरण और गौ आदि पशु सब वस्तुमात्र की रक्षा करते हैं, वैसे ही मनुष्यों को चाहिये कि सुवर्ण आदि के बने कुण्डल आदि आभूषणों की सदा रक्षा करें॥१९॥

यदद्येत्यस्य वसिष्ठ ऋषि:। सविता देवता। निचृद्गायत्री छन्द:। षड्ज: स्वर:॥

राजा कीदृशो भवेदित्याह॥

राजा कैसा हो, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यद॒द्य सूर॒ऽउदि॒तेऽना॑गा मि॒त्रोऽअ॒र्य्य॒मा।

सुवाति सविता भर्गः॥ २०॥

यत्। अद्य। सूरे। उदितऽइत्युत्ऽइते। अनागाः। मित्रः। अर्य्यमा॥ सुवाति। सविता। भर्गः॥ २०॥

पदार्थः-(**यत्**) यः (**अद्य**) (**सूरे**) सूर्य्ये (**उदिते**) (**अनागाः**) अधर्माचरणरहितः (**मित्रः**) सर्वेषां सुहृत् (**अर्य्यमा**) न्यायकारी (**सुवाति**) उत्पादयेत् (**सविता**) राजनियमैः प्रेरकः (**भगः**) ऐश्वर्य्यवान्॥ २०॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यद्योऽद्य उदिते सूरऽनागा मित्रः सविता भगोऽर्यमा स्वास्थ्यं सुवाति, स राज्यं कर्त्तुमर्हेत्॥ २०॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यथोदितेऽर्के तमो निवृत्य प्रकाशे सति सर्व आनन्दिता भवन्ति, तथैव धार्मिके राजनि सति प्रजासु सर्वथा स्वास्थ्यं भवति॥ २०॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! (**यत्**) जो (**अद्य**) आज (**सूरे**) सूर्य के (**उदिते**) उदय होते अर्थात् प्रातःकाल (**अनागाः**) अधर्म के आचरण से रहित (**मित्रः**) सुहृद् (**सविता**) राज्य के नियमों से प्रेरणा करनेहारा (**भगः**) ऐश्वर्यवान् (**अर्य्यमा**) न्यायकारी राजा स्वस्थता को (**सुवाति**) उत्पन्न करे, वह राज्य करने के योग्य होवे॥ २०॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जैसे सूर्य के उदय होते अन्धकार निवृत्त होके प्रकाश के होने में सब लोग आनन्दित होते हैं, वैसे ही धर्मात्मा राजा के होते प्रजाओं में सब प्रकार से स्वस्थता होती है॥ २०॥

आ सुत इत्यस्य सुनीतिर्ऋषिः। वेनो देवता। निचृद् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आ सुते सिञ्चत श्रियꣳ रोदस्योरभिश्रियम्।
रसा दधीत वृषभम्। तं प्रत्नथा। अयं वेनः॥ २१॥

आ। सुते। सिञ्चत। श्रियम्। रोदस्योः। अभिश्रियमित्यभिऽश्रियम्॥ रसा। दधीत। वृषभम्॥ २१॥

पदार्थः-(**आ**) समन्तात् (**सुते**) उत्पन्ने जगति (**सिञ्चत**) (**श्रियम्**) शोभायुक्तम् (**रोदस्योः**) द्यावापृथिव्योः (**अभिश्रियम्**) अभितः शोभकम् (**रसा**) रसानन्दप्रदा जनाः। अत्र सुपामिति डादेशः। (**दधीत**) (**वृषभम्**) बलिष्ठम्॥ २१॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! रसा यूयं सुते वृषभं रोदस्योरभिश्रियं श्रियं सभापतिमासिञ्चत, स च युष्मान् दधीत॥ २१॥

भावार्थः-मनुष्यै राज्योन्नत्या जगतः प्रकाशः सौन्दर्यादिगुणवान् बलिष्ठो विद्वान् शूरः पूर्णाङ्गो जनो राज्येऽभिषेक्तव्यः, स च प्रजासु सुखं दध्यात्॥२१॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! **(रसा)** आनन्द देनेवाले तुम लोग **(सुते)** उत्पन्न हुए जगत् में **(वृषभम्)** अति बली **(रोदस्योः)** आकाश-पृथिवी को **(अभिश्रियम्)** सब ओर से शोभित करनेहारे **(श्रियम्)** शोभायुक्त सभापति राजा का **(आ, सिञ्चत)** अच्छे प्रकार अभिषेक करो और वह सभापति तुम लोगों को **(दधीत)** धारण करे॥२१॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि राज्य की उन्नति से जगत् का प्रकाशक, सुन्दरता आदि गुणों से युक्त, अति बलवान्, विद्वान्, शूर, पूर्ण अवयवों वाले मनुष्य को राज्य में अभिषेक करें और वह राजा प्रजाओं में सुख धारण करे॥२१॥

आतिष्ठन्तमित्यस्य विश्वामित्र ऋषिः। इन्द्रो देवता। भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ विद्युदग्निः कीदृश इत्याह॥

अब विद्युत् अग्नि कैसा है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आतिष्ठ॑न्तं॒ परि॒ विश्वे॑ऽअभूष॒ञ्छ्रियो॒ वसा॑नश्चरति॒ स्वरो॑चिः।

म॒हत्तद् वृष्णो॒ऽअसु॑रस्य॒ नामा वि॒श्वरू॑पोऽअ॒मृता॑नि तस्थौ॥२२॥

आ॒तिष्ठ॑न्त॒मित्या॒ऽतिष्ठ॑न्तम्। परि॑। विश्वे॑। अ॒भू॒ष॒न्। श्रियः॑। वसा॑नः। च॒र॒ति॒। स्वरो॑चि॒रिति॒ स्वऽरो॑चिः॥ म॒हत्। तत्। वृष्णः॑। असु॑रस्य। नाम॑। आ। वि॒श्वऽरू॑प॒ इति॒ वि॒श्वऽरू॑पः। अ॒मृता॑नि। त॒स्थौ॒॥२२॥

पदार्थः-**(आतिष्ठन्तम्)** समन्तात् स्थिरम् **(परि)** सर्वतः **(विश्वे)** सर्वे **(अभूषन्)** भूषयेयुः **(श्रियः)** धनानि शोभा वा **(वसानः)** स्वीकुर्वाणः **(चरति)** **(स्वरोचिः)** स्वकीया रोचिर्दीप्तिर्यस्य सः **(महत्)** **(तत्)** **(वृष्णः)** वर्षकस्य **(असुरस्य)** हिंसकस्य विद्युदाख्यस्याग्नेः **(नाम)** संज्ञा **(आ)** **(विश्वरूपः)** विश्वं समग्रं रूपं यस्य सः **(अमृतानि)** नाशरहितानि वस्तूनि। अत्र सप्तम्यर्थे षष्ठी। **(तस्थौ)** तिष्ठति॥२२॥

अन्वयः-हे विद्वांसो! विश्वे भवन्तो यथा श्रियो वसानः स्वरोचिर्विश्वरूपोऽग्निश्चरत्यमृतान्यातस्थौ तथैतमातिष्ठन्तं पर्यभूषन्। यद्वृष्णोऽसुरस्यास्य महत्तन्नामास्ति तेन सर्वाणि कार्य्याण्यलङ् कुरुत॥२२॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यतोऽयं विद्युदाख्योऽग्निः सर्वपदार्थस्थोऽपि न किञ्चित् प्रकाशयति, तस्मादस्यासुरेति नाम। य एतद्विद्यां जानन्ति ते सर्वतः सुभूषिता भवन्ति॥२२॥

पदार्थः-हे विद्वान् लोगो! **(विश्वे)** सब आप जैसे **(श्रियः)** धनों वा शोभाओं को **(वसानः)** धारण करता हुआ **(स्वरोचिः)** स्वयमेव दीप्तिवाला **(विश्वरूपः)** सब पदार्थों में उन-उन के रूप से

व्याप्त अग्नि **(चरति)** विचरता और **(अमृतानि)** नाशरहित वस्तुओं में **(आ, तस्थौ)** स्थित है, वैसे इस **(आतिष्ठन्तम्)** अच्छे प्रकार स्थिर अग्नि को **(परि, अभूषन्)** सब ओर से शोभित कीजिये। जो **(वृष्णः)** वर्षा करनेहारे **(असुरस्य)** हिंसक इस बिजुलीरूप अग्नि का **(महत्)** बड़ा **(तत्)** परोक्ष **(नाम)** नाम है, उससे सब कार्य्यों को शोभित करो॥२२॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जिस कारण यह विद्युत्‌रूप अग्नि सब पदार्थों में स्थित हुआ भी किसी को प्रकाशित नहीं करता, इससे इसकी असुर संज्ञा है। जो इस विद्युत् विद्या को जानते हैं, वे सब ओर से सुभूषित होते हैं॥२२॥

प्र व इत्यस्य सुचीक ऋषिः। इन्द्रो देवता। भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

मनुष्यैरीश्वर एव पूज्य इत्याह॥

मनुष्य को ईश्वर ही की पूजा करनी चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प्र वो॑ म॒हे मन्द॑मानाया॒न्धसो॒ऽर्चा॑ वि॒श्वान॑राय विश्वा॒भुवे॑।
इन्द्र॑स्य॒ यस्य॒ सुम॑ख॒ꣳ सहो॒ महि॒ श्रवो॑ नृ॒म्णं च॒ रोद॑सी सप॒र्य्यतः॑॥२३॥

प्र। व॒ः। म॒हे। मन्द॑मानाय। अन्ध॑सः। अर्च॑। वि॒श्वान॑राय। वि॒श्वा॒भुवे॑। वि॒श्वा॒भुव॒ इति॑ विश्व॒ऽभुवे॑॥ इन्द्र॑स्य। यस्य॑। सुम॑ख॒मिति॒ सुऽम॑खम्। सह॑ः। महि॑। श्रव॑ः। नृ॒म्णम्। च॒। रोद॑सी॒ऽइति॒ रोद॑सी। स॒प॒र्य्यत॑ः॥२३॥

पदार्थः-**(प्र)** **(वः)** युष्मभ्यम् **(महे)** महते **(मन्दमानाय)** आनन्दस्वरूपाय **(अन्धसः)** अन्नादेः। अत्र विभक्तिव्यत्ययः। **(अर्च)** सत्कुरुत। अत्र वचनव्यत्ययो: **द्व्यचोऽतस्तिङः** [अ०६.३.१३५] इति दीर्घश्च। **(विश्वानराय)** विश्वे नरा नायका यस्मात् तस्मै **(विश्वाभुवे)** यो विश्वे भवति प्राप्नोति विश्वाभूर्यस्य वा विश्वं भवति यस्मादिति वा तस्मै। अत्रोभयत्र **संहितायाम्** [अ०६.३.११४] इति दीर्घः। **(इन्द्रस्य)** परमेश्वरस्य **(यस्य)** **(सुमखम्)** शोभना मखा यज्ञा यस्मात् तम् **(सहः)** बलम् **(महि)** महत् **(श्रवः)** यशः **(नृम्णम्)** धनम् **(च)** **(रोदसी)** द्यावापृथिव्यौ **(सपर्य्यतः)** सेवेते॥२३॥

अन्वयः-हे मनुष्य! त्वं रोदसी यस्येन्द्रस्य सुमखं नृम्णं सहो महि श्रवश्च सपर्य्यतस्तस्मै विश्वानराय महे मन्दमानाय विश्वाभुवे प्रार्च स वोऽन्धसः सुखं ददातु॥२३॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! येनोत्पादितं धनं बलं च सर्वैः सेव्यते, स एव सर्वाध्यक्ष आनन्दमयः सर्वव्याप्त ईश्वरो युष्माभिः पूज्यः प्रार्थनीयश्च, स युष्मभ्यं धनादिजन्यं सुखं दास्यति॥२३॥

पदार्थः-हे मनुष्य! तुम **(रोदसी)** आकाश-भूमि **(यस्य)** जिस **(इन्द्रस्य)** परमेश्वर के **(सुमखम्)** सुन्दर यज्ञ जिसमें हो, ऐसे **(नृम्णम्)** धन **(सहः)** बल **(च)** और **(महि)** बड़े **(श्रवः)** यश को **(सपर्यतः)** सेवते हैं, उस **(विश्वानराय)** सब मनुष्य जिसमें हों **(महे)** महान् **(मन्दमानाय)**

आनन्दस्वरूप **(विश्वाभुवे)** सबको प्राप्त वा सब पृथिवी के स्वामी वा संसार जिससे हो, ऐसे ईश्वर के अर्थ **(प्र, अर्च)** पूजन करो अर्थात् उसको मानो वह **(वः)** तुम्हारे लिये **(अन्धसः)** अन्नादि के सुख को देवे॥२३॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जिसके उत्पन्न किये धन और बलादि को सब सेवते, उसी महाकीर्तिवाले, सबके स्वामी, आनन्दस्वरूप, सर्वव्याप्त ईश्वर की तुमको पूजा और प्रार्थना करनी चाहिये, वह तुम्हारे लिये धनादि से होनेवाले सुख को देगा॥२३॥

बृहन्निदित्यस्य त्रिशोक ऋषिः। इन्द्रो देवता। निचृद् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वर॥

मनुष्यः परमेश्वरमेव मित्रं कुर्यादित्याह॥

मनुष्य परमेश्वर को ही मित्र करे, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

बृहन्निदिध्मऽएषां भूरि शस्तं पृथुः स्वरुः।

येषामिन्द्रो युवा सखा॥२४॥

बृहन्। इत्। इध्मः। एषाम्। भूरि। शस्तम्। पृथुः। स्वरुः॥ येषाम्। इन्द्रः। युवा। सखा॥२४॥

पदार्थः-**(बृहन्)** महान् **(इत्)** एव **(इध्मः)** प्रदीप्तः **(एषाम्)** मनुष्याणाम् **(भूरि)** बहु **(शस्तम्)** स्तुत्यं कर्म **(पृथुः)** विस्तीर्णः **(स्वरुः)** प्रतापकः **(येषाम्)** **(इन्द्रः)** परमैश्वर्य्यवान् परमात्मा **(युवा)** प्राप्तयौवनः **(सखा)** मित्रम्॥२४॥

अन्वयः- येषामिध्मः पृथुः स्वरुर्युवा बृहन्निन्द्रः सखाऽस्त्येषामिद् भूरि शस्तं भवति॥२४॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यस्योत्तमः परमेश्वरः सखा भवेत्, स यथाऽस्मिन् ब्रह्माण्डे सूर्य्यः प्रतापयुक्तोऽस्ति, तथा प्रतापयुक्तः स्यात्॥२४॥

पदार्थः-**(येषाम्)** जिनका **(इध्मः)** तेजस्वी **(पृथुः)** विस्तारयुक्त **(स्वरुः)** प्रतापी **(युवा)** ज्वान **(बृहन्)** महान् **(इन्द्रः)** उत्तम ऐश्वर्यवाला परमात्मा **(सखा)** मित्र है, **(एषाम्)** उन **(इत्)** ही का **(भूरि)** बहुत **(शस्तम्)** स्तुति के योग्य कर्म होता है॥२४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जिसका उत्तम परमेश्वर मित्र होवे, वह जैसे इस ब्रह्माण्ड में सूर्य्य प्रतापवाला है, वैसे प्रतापयुक्त हो॥२४॥

इन्द्र इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। इन्द्रो देवता। निचृद् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनर्मनुष्याः किं कुर्य्युरित्याह॥

फिर मनुष्य क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः।

महाँ२ऽअभिष्टिरोजसा॥२५॥

इन्द्र॑। आ। इ॒हि॒। मत्सि॑। अन्ध॑सः। विश्वे॑भिः। सो॒म॒पर्व॑भि॒रिति॑ सोम॒पर्व॑ऽभिः॥ म॒हान्। अ॒भि॒ष्टिः। ओज॑सा॥ २५॥

पदार्थः-(**इन्द्र**) ऐश्वर्य्यप्रद विद्वन्! (**आ**) (**इहि**) प्राप्नुहि (**मत्सि**) तृप्तो भव। **मद तृप्तौ।** शपो लुक्। (**अन्धसः**) अन्नात् (**विश्वेभिः**) अखिलैः (**सोमपर्वभिः**) सोमाद्योषधीनामवयवैः (**महान्**) (**अभिष्टिः**) अभियष्टव्यः सर्वतः पूज्यः। पृषोदरादित्वादिष्टसिद्धिः। (**ओजसा**) पराक्रमेण सह॥ २५॥

अन्वयः-हे इन्द्र! यतस्त्वमोजसा सह महानभिष्टिर्विश्वेभिः सोमपर्वभिरन्धसो मत्सि तस्मादस्मानेहि॥ २५॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यस्मादन्नादेर्मनुष्यादीनां शरीरादेर्निर्वाहो भवति, तस्मादेषां वृद्धिसेवनाहारविहारा यथावद्विजानीयुः॥ २५॥

पदार्थः-हे (**इन्द्र**) ऐश्वर्य देनेवाले विद्वन्! जिस कारण आप (**ओजसा**) पराक्रम के साथ (**महान्**) बड़े (**अभिष्टिः**) सब ओर से सत्कार के योग्य (**विश्वेभिः**) सब (**सोमपर्वभिः**) सोमादि ओषधियों के अवयवों और (**अन्धसः**) अन्न से (**मत्सि**) तृप्त होते हो, इससे हमको (**आ, इहि**) प्राप्त हूजिये॥ २५॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जिस कारण अन्न आदि से मनुष्यादि प्राणियों के शरीरादि का निर्वाह होता है, इससे इनके वृद्धि, सेवन, आहार और विहार यथावत् जानो॥ २५॥

इन्द्र इत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः। इन्द्रो देवता। भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

राजपुरुषाः कीदृशाः स्युरित्याह॥

राजपुरुष कैसे हों, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

इन्द्रो॑ वृ॒त्रम॑वृणो॒च्छर्द्ध॑नीतिः॒ प्र मा॒यिना॑ममिना॒द्वर्प॑णीतिः।
अह॒न् व्यꣳ॑समु॒शध॒ग्वने॑ष्वा॒विर्धेना॑ऽअकृणोद्रा॒म्याणा॑म्॥ २६॥

इन्द्रः॑। वृ॒त्रम्। अ॒वृ॒णो॒त्। शर्द्ध॑नीति॒रिति॒ शर्द्ध॑ऽनीतिः। प्र। मा॒यिना॑म्। अ॒मि॒ना॒त्। वर्प॑णीतिः। वर्प॑नीति॒रिति॒ वर्प॑ऽनीतिः॥ अह॑न्। व्यꣳ॑स॒मिति॒ विऽअꣳ॑सम्। उ॒शध॑क्। वने॑षु। आ॒विः। धेना॑ः अ॒कृ॒णो॒त्। रा॒म्याणा॑म्॥ २६॥

पदार्थः-(**इन्द्रः**) सूर्य इव प्रतापी सभेशः (**वृत्रम्**) दुष्टं शत्रुं प्रकाशावरकं मेघमिव धर्मावरकम् (**अवृणोत्**) युद्धाय वृणुयात् (**शर्द्धनीतिः**) शर्द्धस्य बलस्य नीतिर्नयनं प्रापणं यस्य (**प्र**) (**मायिनाम्**) माया कुत्सिता प्रज्ञा विद्यते येषान्तान्। अत्र कर्मणि षष्ठी (**अमिनात्**) हिंस्यात् (**वर्पणीतिः**) वर्पाणां नानाविधानां रूपाणां नीतिः प्राप्तिर्यस्य सः (**अहन्**) हन्यात् (**व्यंसम्**) विगता अंसा भुजमूलानि यस्य तम् (**उशधक्**) य उशन्ति परस्वं कामयन्ति तान् दहति सः (**वनेषु**) स्थितं

तस्करम् **(आविः)** प्रादुर्भूते **(धेनाः)** वाणीः **(अकृणोत्)** कुर्यात् **(राम्याणाम्)** रमयन्ति आनन्दयन्ति तेषाम्॥ २६॥

अन्वयः-शर्द्धनीतिर्वर्पनीतिरुशधगिन्द्रो वृत्रमवृणोत् मायिनां प्रामिणात् वनेषु व्यंसमहन् राम्याणां धेना आविरकृणोत्, स एव राजा भवितुं योग्यः॥ २६॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये सूर्य्यवत्सुशिक्षिता वाचः प्रकटयन्ति, अग्निर्वनानीव दुष्टान् शत्रून् दहन्ति, दिनं रात्रिमिव छलकापट्याविद्यान्धकारादीन् निवर्त्तयन्ति, बलमाविष्कुर्वन्ति, ते सुप्रतिष्ठिता राजजना भवन्ति॥ २६॥

पदार्थः-**(शर्द्धनीतिः)** बल को प्राप्त **(वर्पणीतिः)** नाना प्रकार के रूपोंवाला **(उशधक्)** पर पदार्थों को चाहनेवाला चोरादि को नष्ट करनेहारा **(इन्द्रः)** सूर्य्य के तुल्य प्रतापी सभापति **(वृत्रम्)** प्रकाश को रोकनेहारे मेघ के तुल्य धर्म के निरोधक दुष्ट शत्रु को **(अवृणोत्)** युद्ध के लिये स्वीकार करे, **(मायिनाम्)** दुष्ट बुद्धिवाले छली-कपटी आदि को **(प्र, अमिनात्)** मारे, जो **(वनेषु)** वनों में रहनेवाले **(व्यंसम्)** कपटी हैं भुजा जिसकी, ऐसे चोर को **(अहन्)** मारे और **(राम्याणाम्)** आनन्द देनेवाले उपदेशकों की **(धेनाः)** वाणियों को **(आविः, अकृणोत्)** प्रकट करे, वही राजा होने को योग्य है॥ २६॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो सूर्य के तुल्य सुशिक्षित वाणियों को प्रकट करते, जैसे अग्नि वनों को वैसे दुष्ट शत्रुओं को मारते, दिन जैसे रात्रि को निवृत्त करे वैसे छल, कपटता और अविद्यारूप अन्धकारादि को निवृत्त करते और बल को प्रकट करते हैं, वे अच्छे प्रतिष्ठित राजपुरुष होते हैं॥ २६॥

कुत इत्यस्यागस्त्य ऋषिः। इन्द्रो देवता। विराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

कुतस्त्वमिन्द्र माहिनः सन्नेको यासि सत्पते किं तऽइत्था।
सं पृच्छसे समराणः शुभानैर्वोचेस्तन्नो हरिवो यत्तेऽअस्मे।
महाँ२ऽ इन्द्रो यऽओजसा।
कदा चन स्तरीरसि। कदा चन प्रयुच्छसि॥ २७॥

कुतः। त्वम्। इन्द्र। माहिनः। सन्। एकः। यासि। सत्पत इति सत्ऽपते। किम्। ते। इत्था॥ सम्। पृच्छसे। समराण इति सम्ऽअराणः। शुभानैः। वोचेः। तत्। नः। हरिव इति हरिऽवः। यत्। ते। अस्मेऽइत्यस्मे॥ २७॥

पदार्थः-(**कुतः**) कस्मात् (**त्वम्**) (**इन्द्र**) सभेश! (**माहिनः**) पूज्यमानो महत्त्वेन युक्तः (**सन्**) (**एकः**) असहायः (**यासि**) गच्छसि (**सत्पते**) सतः सत्यस्य व्यवहारस्य सतां पुरुषाणां वा पालक! (**किम्**) (**ते**) तव (**इत्था**) अस्माद्धेतोः (**सम्**) (**पृच्छसे**) पृच्छ। लेट्। (**समराणः**) सम्यग् गच्छन् (**शुभानैः**) मङ्गलमयैर्वचनैस्सह (**वोचे**) वदेः (**तत्**) एकाकिकारणम् (**नः**) अस्मान् (**हरिवः**) प्रशस्ता हरयो हरणशीला अश्वा विद्यन्ते यस्य तत्सम्बुद्धौ (**यत्**) यतः (**ते**) तव (**अस्मे**) वयम्॥२७॥

अन्वयः-हे सत्पते इन्द्र! माहिनस्त्वमेकः सन् कुतो यासि? किन्त इत्था? हे हरिवो! यदस्मे ते तस्मात् समराणस्त्वन्नः सम्पृच्छसे शुभानैस्तद्वोचेश्च॥२७॥

भावार्थः-राजप्रजापुरुषैः सभाध्यक्ष एवं वक्तव्यः-हे सभापते! भवताऽसहायेन किमपि राजकार्य्यं न कर्त्तव्यम्। किन्तु सज्जनरक्षणे, दुष्टताडने, चास्मदादिसहाययुक्तेन सदैव स्थातव्यम्। शुभाचरण-युक्तेनास्मदादिशिष्टसम्मत्या मृदुवचनैश्च सर्वाः प्रजाः शासनीयाः॥२७॥

पदार्थः-हे (**सत्पते**) श्रेष्ठ सत्य व्यवहार वा श्रेष्ठ पुरुषों के रक्षक (**इन्द्र**) सभापते! (**माहिनः**) महत्त्वयुक्त सत्कार को प्राप्त (**त्वम्**) आप (**एकः**) असहायी (**सन्**) होते हुए (**कुतः**) किस कारण (**यासि**) प्राप्त होते वा विचरते हो? (**किम् ते**) (**इत्था**) इस प्रकार करने में आपका क्या प्रयोजन है? हे (**हरिवः**) प्रशंसित मनोहारी घोड़ोंवाले राजन्! (**यत्**) जिस कारण (**अस्मे**) हम लोग (**ते**) आपके हैं, इनसे (**समराणः**) सम्यक् चलते हुए आप (**नः**) हमको (**सम्, पृच्छसे**) पूछिये और (**शुभानैः**) मङ्गलमय वचनों के साथ (**तत्**) उस एकाकी रहने के कारण को (**वोचेः**) कहिये॥२७॥

भावार्थः-राज-प्रजा पुरुषों को चाहिये कि सभाध्यक्ष राजा से ऐसा कहें कि हे सभापते! आपको विना सहाय के कुछ राजकार्य न करना चाहिये, किन्तु आप को उचित है कि सज्जनों की रक्षा और दुष्टों के ताड़न में अस्मदादि के सहाययुक्त सदैव रहें, शुभाचरण से युक्त, अस्मदादि शिष्टों की सम्मतिपूर्वक कोमल वचनों से सब प्रजाओं को शिक्षा करें॥२७॥

आ तदित्यस्य गौरिवीतिर्ऋषिः। इन्द्रो देवता। भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आ तत्तऽइन्द्रायवः पनन्ताभि यऽऊर्वं गोमन्तं तितृत्सान्।

सकृत्स्वं ये पुरुपुत्रां महीꣳ सहस्रधारां बृहतीं दुदुक्षन्॥२८॥

आ। तत्। ते। इन्द्र। आयवः। पनन्त। अभि। ये। ऊर्वम्। गोमन्तमिति गोऽमन्तम्। तितृत्सान्॥ सकृत्स्वमिति सकृत्ऽस्वम्। ये। पुरुपुत्रामिति पुरुपुत्राम्। महीम्। सहस्रधारामिति सहस्रऽधाराम्। बृहतीम्। दुदुक्षन्। दुधुक्षन्निति दुधुक्षन्॥२८॥

पदार्थः-(**आ**) (**तत्**) राजकर्म (**ते**) तव (**इन्द्र**) राजन्! (**आयवः**) ये सत्यं यन्ति ते मनुष्याः प्रजाः। **आयव इति मनुष्यनामसु पठितम्॥** (निघं०२।३) (**पनन्त**) प्रशंसेयुः (**अभि**) आभिमुख्ये (**ते**) (**ऊर्वम्**) हिंसकम् (**गोमन्तम्**) दुष्टा गाव इन्द्रियाणि यस्य तम् (**तितृत्सान्**) तर्दितुं हिंसितुमिच्छेयुः। लेट्। (**सकृत्स्वम्**) या सकृदेकवारं सूते ताम् (**ये**) (**पुरुपुत्राम्**) बहवोऽन्नादिव्यक्तिमन्तः पुत्रा यस्यास्ताम् (**महीम्**) महतीं भूमिम् (**सहस्रधाराम्**) सहस्रं धारा हिरण्यादयो यस्यान्तां यद्वा या सहस्रमसङ्ख्यातं प्राणिजातं धरति (**बृहतीम्**) विस्तीर्णाम् (**दुदुक्षन्**) दोग्धुमिच्छेयुः। अत्र वर्णव्यत्ययेन धस्य दः॥२८॥

अन्वयः-हे इन्द्र! य आयवः सकृत्स्वं पुरुपुत्रां सहस्रधारां बृहतीं महीं दुदुक्षन्, ये गोमन्तमूर्वमभितितृत्सान् ये च ते तदापनन्त तान् त्वं सततमुन्नय॥२८॥

भावार्थः-ये राजभक्ता दुष्टहिंसका एकवारे बहुफलपुष्पप्रदां सर्वधारिकां भूमिं दोग्धुं समर्थास्स्युस्ते राजकार्य्याणि कर्त्तुमर्हेयुः॥२८॥

पदार्थः-हे (**इन्द्र**) राजन्! (**ये**) जो (**आयवः**) सत्य को प्राप्त होनेवाले प्रजा जन (**सकृत्स्वम्**) एक बार उत्पन्न करनेवाली (**पुरुपुत्राम्**) बहुत अन्नादि व्यक्तिवाले पुत्रों से युक्त (**सहस्रधाराम्**) असंख्य सुवर्णादि धातु जिसमें धारारूप हों वा असंख्य प्राणिमात्र को धारण करनेहारी (**बृहतीम्**) विस्तारयुक्त (**महीम्**) बड़ी भूमि को (**दुदुक्षन्**) दोहना चाहें अर्थात् उससे इच्छापूर्ति किया चाहें (**ये**) जो मनुष्य (**गोमन्तम्**) खोटे इन्द्रियोंवाले लम्पट (**ऊर्वम्**) हिंसक जन को (**अभि, तितृत्सान्**) सम्मुख होकर मारने की इच्छा करें और जो (**ते**) आपके (**तत्**) उस राजकर्म की (**आ, पनन्त**) प्रशंसा करें, उनकी आप उन्नति किया कीजिये॥२८॥

भावार्थः-जो लोग राजभक्त दुष्टहिंसक एक बार में बहुत फल-फूल देने और सबको धारणकरने वाली भूमि के दुहने को समर्थ हों, वे राजकार्य करने के योग्य होवें॥२८॥

इमामित्यस्य कुत्स ऋषिः। इन्द्रो देवता। जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

इमां ते धियं प्र भरे महो महीमस्य स्तोत्रे धिषणा यत्तऽआनजे।
तमुत्सवे च प्रसवे च सासहिमिन्द्रं देवासः शवसामदन्ननु॥२९॥

इमाम्। ते। धियम्। प्र। भरे। महः। महीम्। अस्य। स्तोत्रे। धिषणा। यत्। ते। आनजे॥ तम्। उत्सव इत्युत्ऽसवे। च। प्रसव इति प्रऽसवे। च। सासहिम्। ससहिमिति ससहिम्। इन्द्रम्। देवासः। शवसा। अमदन्। अनु॥२९॥

पदार्थः-(**इमाम्**) (**ते**) तव (**धियम्**) प्रज्ञां कर्म वा (**प्र**) (**भरे**) धरे (**महः**) महतः (**महीम्**) सुपूज्याम्। **महीति वाङ्नामसु पठितम्॥** (निघं०१।११) (**अस्य**) मम (**स्तोत्रे**) स्तवने (**धिषणा**) प्रज्ञा (**यत्**) यम् (**ते**) तान्। अत्र कर्मणि षष्ठी। (**आनजे**) व्यनक्ति (**तम्**) (**उत्सवे**) कर्त्तव्यानन्दसमये (**च**) (**प्रसवे**) उत्पत्तौ (**च**) (**सासहिम्**) भृशं सोढारम् (**इन्द्रम्**) परमबलयोगेन शत्रूणां विदारकम् (**देवासः**) विद्वांसः (**शवसा**) बलेन (**अमदन्**) आनन्देयुः (**अनु**) आनुकूल्येन॥२९॥

अन्वयः-हे इन्द्राहं महीमिमान्ते धियं प्रभरे स्तोत्रेऽस्य धिषणा यत्त आनजे तं शवसा सासहिमिन्द्रं मह उत्सवे च प्रसवे च देवासोऽन्वमदन्॥२९॥

भावार्थः-ये राजादयो मनुष्या विद्वद्भ्य उत्तमां प्रज्ञां वाचं गृह्णन्ति ते सत्यानुकूलाः सन्तः स्वयमानन्दिता भूत्वाऽन्यानानन्दयन्ति॥२९॥

पदार्थः-हे सभाध्यक्ष! मैं (**महीम्**) सुन्दर पूज्य (**इमाम्**) इस (**ते**) आपकी (**धियम्**) बुद्धि वा कर्म को (**प्र, भरे**) धारण करता हूं (**स्तोत्रे**) स्तुति होने में (**अस्य**) इस मेरी (**धिषणा**) बुद्धि (**यत्**) जिस (**ते**) आपको (**आनजे**) प्रकट करती है (**तम्**) उस (**शवसा**) बल के साथ (**सासहिम्**) शीघ्र सहनेवाले (**इन्द्रम्**) उत्तम बल के योग से शत्रुओं को विदीर्ण करनेहारे सभापति को (**महः**) महान् कार्य के (**उत्सवे**) करने योग्य आनन्द समय (**च**) और (**प्रसवे**) उत्पत्ति में (**च**) भी (**देवासः**) विद्वान् लोग (**अनु, अमदन्**) अनुकूलता से आनन्दित करें॥२९॥

भावार्थः-जो राजादि मनुष्य विद्वानों से उत्तम बुद्धि वा वाणी को ग्रहण करते हैं, वे सत्य के अनुकूल हुए आप आनन्दित होके औरों को प्रसन्न करते हैं॥२९॥

विभ्राडित्यस्य विभ्राड् ऋषिः। सूर्यो देवता। विराट् जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

विभ्राड् बृहत् पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद् यज्ञपतावविह्रुतम्।
वातजूतो योऽअभिरक्षति त्मना प्रजाः पुपोष पुरुधा वि राजति॥३०॥

विभ्राडिति विऽभ्राट्। बृहत्। पिबतु। सोम्यम्। मधु। आयुः। दधत्। यज्ञपताविति यज्ञऽपतौ। अविह्रुतमित्यविऽह्रुतम्॥ वातजूत इति वातऽजूतः। यः। अभिरक्षतीत्यभिऽरक्षति। त्मना। प्रजा इति प्रऽजाः। पुपोष। पुरुधा। वि। राजति॥३०॥

पदार्थः-(**विभ्राट्**) यो विशेषण भ्राजते सः (**बृहत्**) महत् (**पिबतु**) (**सोम्यम्**) सोमेष्वोषधीषु भवं रसम् (**मधु**) मधुरादिना गुणेन युक्तम् (**आयुः**) जीवनम् (**दधत्**) धरन् (**यज्ञपतौ**) यज्ञस्य युक्तस्य व्यवहारस्य पालके स्वामिनि (**अविह्रुतम्**) अखण्डितम् (**वातजूतः**) वायुना प्राप्तवेगः (**यः**)

(अभिरक्षति) **(त्मना)** आत्मना **(प्रजाः)** **(पुपोष)** पुष्णाति **(पुरुधा)** बहुधा **(वि)** **(राजति)** विशेषेण प्रकाशते॥३०॥

अन्वयः-यो वातजूतः सूर्य इव विभ्राडविह्रुतमायुर्यज्ञपतौ दधत् त्मना प्रजा अभिरक्षति पुपोष पुरुधा विराजति च स भवान् बृहत् सोम्यं मधु पिबतु॥३०॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे राजादयो मनुष्याः! यथा सूर्य्यो वृष्टिद्वारा सर्वेषां जीवनं पालनं करोति तद्वत् सद्गुणैर्महान्तो भूत्वा न्यायविनयाभ्यां प्रजाः सततं रक्षन्तु॥३०॥

पदार्थः-**(यः)** जो **(वातजूतः)** वायु से वेग को प्राप्त सूर्य के तुल्य **(विभ्राड्)** विशेष कर प्रकाशवाला राजपुरुष **(अविह्रुतम्)** अखण्ड संपूर्ण **(आयुः)** जीवन **(यज्ञपतौ)** युक्तव्यवहारपालक अधिष्ठाता मैं **(दधत्)** धारण करता हुआ **(त्मना)** आत्मा से **(प्रजाः)** प्रजाओं को **(अभिरक्षति)** सब ओर से रक्षा करता हुआ **(पुपोष)** पुष्ट करता और **(पुरुधा)** बहुत प्रकारों से **(वि, राजति)** विशेषकर प्रकाशमान होता है, सो आप **(बृहत्)** बड़े **(सोम्यम्)** सोमादि ओषधियों के **(मधु)** मिष्टादि गुणयुक्त रस को **(पिबतु)** पीजिये॥३०॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे राजादि मनुष्यो! जैसे सूर्य्य वृष्टि द्वारा सब जीवों के जीवन-पालन को करता है, उसके तुल्य उत्तम गुणों से महान् हो के न्याय और विनय से प्रजाओं की निरन्तर रक्षा करो॥३०॥

उदुत्यमित्यस्य प्रस्कण्व ऋषिः। सूर्य्यो देवता। निचृद् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अथ सूर्य्यमण्डलं कीदृशमित्याह॥

अब सूर्यमण्डल कैसा है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः।

दृशे विश्वाय सूर्य्यम्॥३१॥

उँऽइत्युँत्। उ। त्यम्। जातवेदसमिति जातऽवेदसम्। देवम्। वहन्ति। केतवः॥ दृशे। विश्वाय। सूर्य्यम्॥३१॥

पदार्थः-**(उत्)** आश्चर्ये (उ) **(त्यम्)** तम् **(जातवेदसम्)** जातेषु पदार्थेषु विद्यमानम् **(देवम्)** देदीप्यमानम् **(वहन्ति)** **(केतवः)** किरणाः **(दृशे)** दर्शनाय **(विश्वाय)** विश्वस्य। अत्र षष्ठ्यर्थे चतुर्थी। **(सूर्यम्)** सवितृमण्डलम्॥३१॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यं जातवेदसं देवं सूर्य्यं विश्वाय दृशे केतव उद्वहन्ति त्यमु यूयं विजानीत॥३१॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा किरणैः सूर्य्यः संसारं दर्शयति, स्वयं सुशोभते तथा विद्वांसोऽखिला विद्याः शिक्षा दर्शयित्वा सुशोभेरन्॥३१॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जिस **(जातवेदसम्)** उत्पन्न हुए पदार्थों में विद्यमान **(देवम्)** चिलचिलाते हुए **(सूर्य्यम्)** सूर्य्यमण्डल को **(विश्वाय)** संसार को **(दृशे)** देखने के लिये **(केतवः)** किरणें **(उत्, वहन्ति)** ऊपर को आश्चर्यरूप प्राप्त करती हैं **(त्यम्)** उस **(उ)** ही को तुम लोग जानो॥३१॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य्य किरणों से संसार को दिखाता और आप सुशोभित होता, वैसे विद्वान् लोग सब विद्या और शिक्षाओं को दिखाकर सुन्दर शोभायमान हों॥३१॥

येनेत्यस्य प्रस्कण्व ऋषिः। सूर्य्यो देवता। निचृद् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुना राजधर्मविषयमाह॥

फिर राजधर्मविषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

येना॑ पावक॒ चक्ष॑सा भु॒रणयन्तं॒ जनाँ॒२ऽअनु॑।

त्वं व॑रुण॒ पश्य॑सि॥३२॥

येन॑। पा॒व॒क॒। चक्ष॑सा। भु॒र॒ण्यन्त॑म्। जना॑न्। अनु॑॥ त्वम्। व॒रु॒ण॒। पश्य॑सि॥३२॥

पदार्थः-**(येन)** अत्र **संहितायाम्** [अ०६.३.११४] इति दीर्घः। **(पावक)** पवित्रकारक! **(चक्षसा)** व्यक्तेन दर्शनेनोपदेशेन वा **(भुरण्यन्तम्)** पालयन्तम् **(जनान्)** अस्मदादिमनुष्यान् **(अनु)** **(त्वम्)** **(वरुण)** राजन्! **(पश्यसि)**॥३२॥

अन्वयः-हे पावक वरुण! विद्वंस्त्वं येन चक्षसा भुरण्यन्तमनुपश्यसि, तेन जनान् पश्य, तवानुकूलाश्च वयं वर्तेमहि॥३२॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा राजराजपुरुषा यादृशेन व्यवहारेण प्रजासु वर्त्तेरन्, तथैव भावेनैतेषु प्रजा अपि वर्त्तेरन्॥३२॥

पदार्थः-हे **(पावक)** पवित्रकर्त्ता **(वरुण)** श्रेष्ठ विद्वन् वा राजन्! **(त्वम्)** आप **(येन)** जिस **(चक्षसा)** प्रकट दृष्टि वा उपदेश से **(भुरण्यन्तम्)** रक्षा करते हुए **(अनु, पश्यसि)** अनुकूल देखते हो, उससे **(जनान्)** हम आदि मनुष्यों को देखिये और आपके अनुकूल हम वर्त्तें॥३२॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। राजा और राजपुरुष जिस प्रकार के व्यवहार से प्रजाओं में वर्त्तें, वैसे ही भाव से इनमें प्रजा लोग भी वर्त्तें॥३२॥

दैव्यावित्यस्य प्रस्कण्व ऋषिः। विद्वान् देवता। निचृद् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

दैव्यावध्वर्यूऽआ गतꣳ रथेन सूर्यत्वचा।

मध्वा यज्ञꣳ समञ्जाथे।

तं प्रत्नथा। अयं वेनः। चित्रं देवानाम्॥ ३३॥

दैव्यौ। अध्वर्यूऽइत्यध्वर्यू। आ। गतम्। रथेन। सूर्यत्वचेति सूर्यत्वचा॥ मध्वा। यज्ञम्। सम्। अञ्जाथेऽ इत्यञ्जाथे॥ ३३॥

पदार्थः-(**दैव्यौ**) देवेषु दिव्येषु विद्वत्सु गुणेषु वा कुशलौ (**अध्वर्यू**) यावात्मनोऽध्वरमहिंसायज्ञमिच्छन्तौ (**आ**) (**गतम्**) गच्छतम् (**रथेन**) गमकेन यानेन (**सूर्यत्वचा**) सूर्य इव देदीप्यमाना त्वग्बाह्यमावरणं यस्य तेन (**मध्वा**) कोमलसामग्र्या (**यज्ञम्**) यात्राख्यं सङ्ग्रामाख्यं हवनाख्यं वा (**सम्**) (**अञ्जाथे**)॥३३॥

अन्वयः-हे दैव्यावध्वर्यू! सूर्यत्वचा रथेनागतं मध्वा यज्ञं च समञ्जाथे॥३३॥

भावार्थः-राजादिमनुष्यैः सूर्यप्रकाश इव विमानादीनि यानानि संग्रामं हवनादिकं रचयित्वा यात्रादिव्यवहाराः साधनीयाः॥३३॥

पदार्थः-हे (**दैव्यौ**) अच्छे उत्तम विद्वानों वा गुणों में प्रवीण (**अध्वर्यू**) अपने अहिंसारूप यज्ञ को चाहते हुए दो पुरुषो! आप (**सूर्यत्वचा**) जिसका बाहरी आवरण सूर्य के तुल्य प्रकाशमान ऐसे (**रथेन**) चलनेवाले विमानादि यान से (**आ, गतम्**) आइये और (**मध्वा**) कोमल सामग्री से (**यज्ञम्**) यात्रा संग्राम वा हवनरूप यज्ञ को (**सम्, अञ्जाथे**) सम्यक् प्रकट करो॥३३॥

भावार्थः-राजादि मनुष्यों को चाहिये कि सूर्य के प्रकाश के तुल्य विमानादि यान, संग्राम वाहनादि को उत्पन्न कर यात्रादि अनेक व्यवहारों को सिद्ध किया करें॥३३॥

आ न इत्यस्यागस्त्य ऋषिः। सविता देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथोपदेशकाः किं कुर्युरित्याह॥

अब उपदेशक लोग क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

आ नऽइडाभिर्विदथे सुशस्ति विश्वानरः सविता देवऽएतु।

अपि यथा युवानो मत्सथा नो विश्वं जगदभिपित्वे मनीषा॥ ३४॥

आ। नः। इडाभिः। विदथे। सुशस्तीति सुऽशस्ति। विश्वानरः। सविता। देवः। एतु॥ अपि। यथा। युवानः। मत्सथ। नः। विश्वम्। जगत्। अभिपित्व इत्यभिऽपित्वे। मनीषा॥ ३४॥

पदार्थः-(**आ**) समन्तात् (**नः**) अस्माकम् (**इडाभिः**) सुशिक्षिताभिर्वाग्भिः (**विदथे**) विज्ञापनीये व्यवहारे (**सुशस्ति**) शोभना शस्तिः प्रशंसा यस्मिंस्तत् (**विश्वानरः**) विश्वेषां नायकः (**सविता**) सूर्य इव भासमानः (**देवः**) दिव्यगुणः (**एतु**) प्राप्नोतु (**अपि**) (**यथा**) (**युवानः**) प्राप्तयौवना ब्रह्मचर्येणाधीतविद्याः (**मत्सथ**) आनन्दत। अत्र **संहितायाम्** [अ०६.३.११४] इति दीर्घः। (**नः**) अस्माकम् (**विश्वम्**) समग्रम् (**जगत्**) जङ्गमं पुत्रगवादिकम् (**अभिपित्वे**) आभिमुख्यगमने (**मनीषा**) मेधा॥३४॥

अन्वयः-हे युवानो! यथा विश्वानरो देवः सवितेडाभिर्विदथे सुशस्ति नो विश्वं जगदैतु, तथाऽभिपित्वे यूयं मत्सथ या नो मनीषा तामपि शोधयत॥३४॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। ये सूर्यवद्विद्यया प्रकाशात्मानः शरीरात्मभ्यां प्राप्तयौवनाः सुशिक्षिता जितेन्द्रियाः सुशीला भवन्ति, ते सर्वानुपदेशेन विज्ञापयितुं शक्नुवन्ति॥३४॥

पदार्थः-हे (**युवानः**) ज्वान ब्रह्मचर्य के साथ विद्या पढ़े हुए उपदेष्टा लोगो! (**यथा**) जैसे (**विश्वानरः**) सबका नायक (**देवः**) उत्तम गुणोंवाला (**सविता**) सूर्य्य के तुल्य प्रकाशमान विद्वान् (**इडाभिः**) वाणियों से (**विदथे**) जताने योग्य व्यवहार में (**सुशस्ति**) सुन्दर प्रशंसायुक्त (**नः**) हमारे (**विश्वम्**) सब (**जगत्**) चेतन पुत्र गौ आदि को (**आ, एतु**) अच्छे प्रकार होवे, वैसे (**अभिपित्वे**) सम्मुख जाने में तुम लोग (**मत्सथ**) आनन्दित हूजिये जो (**नः**) हमारी (**मनीषा**) बुद्धि है, उसको (**अपि**) भी शुद्ध कीजिये॥३४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जो सूर्य के तुल्य विद्या से प्रकाशस्वरूप, शरीर और आत्मा से युवावस्था को प्राप्त, सुशिक्षित, जितेन्द्रिय, सुशील होते हैं, वे सबको उपदेश से ज्ञान कराने को समर्थ होते हैं॥३४॥

यदद्येत्यस्य श्रुतकक्षसुकक्षावृषी। सूर्य्यो देवता। पिपीलिकामध्या निचृद् गायत्री छन्दः।
षड्जः स्वरः॥

पुनर्मनुष्यः किं कुर्यादित्याह॥

फिर मनुष्य क्या करे, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यद॒द्य कच्च॑ वृत्रहन्नु॒दगा॑ऽअ॒भि सू॑र्य्य।
सर्वं॒ तदि॑न्द्र ते॒ वशे॑॥३५॥

यत्। अ॒द्य। कत्। च॒। वृ॒त्र॒ह॒न्निति॑ वृत्रऽहन्। उ॒दगा॒ इत्यु॒त्ऽअगाः॑। अ॒भि। सू॒र्य्य॒॥ सर्व॑म्। तत्। इ॒न्द्र॒। ते॒ वशे॑॥३५॥

पदार्थः-(**यत्**) (**अद्य**) अस्मिन् दिने (**कत्**) कदा (**च**) (**वृत्रहन्**) मेघहन्ता सूर्य्य इव (**उत् अगाः**) उदयं प्रापय (**अभि**) (**सूर्य्य**) विद्यैश्वर्योत्पादक! (**सर्वम्**) (**तत्**) (**इन्द्र**) (**ते**) (**वशे**)॥३५॥

अन्वयः-हे वृत्रहन् सूर्य्येन्द्र! ते यदद्य सर्वं वशेऽस्ति तत् कच्चाभ्युदगाः॥३५॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये पुरुषाः सूर्यवदविद्यान्धकारं दुष्टतां च निवार्य्य सर्वं वशीभूतं कुर्वन्ति तेऽभ्युदयं प्राप्नुवन्ति॥३५॥

पदार्थः-हे (**वृत्रहन्**) मेघहन्ता सूर्य्य के तुल्य शत्रुहन्ता (**सूर्य्य**) विद्यारूप ऐश्वर्य के उत्पादक (**इन्द्र**) अन्नदाता सज्जन पुरुष! (**ते**) आपके (**यत्**) जो (**अद्य**) आज दिन (**सर्वम्**) सब कुछ (**वशे**) वश में है (**तत्**) उसको (**कत्, च**) कब (**अभि**) (**अगाः**) सब ओर से उदित प्रकट सन्नद्ध कीजिये॥३५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो पुरुष सूर्य के तुल्य अविद्यारूप अन्धकार और दुष्टता को निवृत्त कर सबको वशीभूत करते हैं, वे अभ्युदय को प्राप्त होते हैं॥३५॥

तरणिरित्यस्य प्रस्कण्व ऋषिः। सूर्यो देवता। निचृद् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अथ राजपुरुषाः कीदृशाः स्युरित्याह॥

अब राजपुरुष कैसे हों, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य्य।

विश्वमा भासि रोचनम्॥३६॥

तरणिः। विश्वदर्शत इति विश्वऽदर्शतः। ज्योतिष्कृत्। ज्योतिःकृदिति ज्योतिःऽकृत्। असि। सूर्य्य॥ विश्वम्। आ। भासि। रोचनम्॥३६॥

पदार्थः-(**तरणिः**) तारकः (**विश्वदर्शतः**) विश्वेन द्रष्टव्यः (**ज्योतिष्कृत्**) यो ज्योतींषि करोति सः (**असि**) (**सूर्य्य**) सूर्य्यवद्वर्तमान राजन! (**विश्वम्**) समग्रं राज्यम् (**आ**) (**भासि**) प्रकाशयसि (**रोचनम्**) रुचिकरम्॥३६॥

अन्वयः-हे सूर्य! त्वं यथा तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृत् सविता रोचनं विश्वं प्रकाशयति तथा त्वमसि यतो न्यायविनयेन राज्यमाभासि तस्मात् सत्कर्त्तव्योऽसि॥३६॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यदि राजपुरुषा विद्याप्रकाशकाः स्युस्तर्हि सर्वानानन्दयितुं शक्नुयुः॥३६॥

पदार्थः-हे (**सूर्य**) सूर्य के तुल्य वर्त्तमान तेजस्विन्! जैसे (**तरणिः**) अन्धकार से पार करनेवाला (**विश्वदर्शतः**) सबको देखने योग्य (**ज्योतिष्कृत्**) अग्नि, विद्युत्, चन्द्रमा, नक्षत्र, ग्रह, तारे आदि को प्रकाशित करनेवाले सूर्यलोक (**रोचनम्**) रुचिकारक (**विश्वम्**) समग्र राज्य को प्रकाशित

करता है, वैसे आप **(असि)** हैं, जिस कारण न्याय और विनय से राज्य को **(आ, भासि)** अच्छे प्रकार प्रकाशित करते हो, इसलिये सत्कार पाने योग्य हो॥३६॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो राजपुरुष विद्या के प्रकाशक होवें तो सबको आनन्द देने को समर्थ होवें॥३६॥

तत्सूर्यस्येत्यस्य कुत्स ऋषिः। सूर्य्यो देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथेश्वरविषयमाह॥

अब ईश्वर के विषय में कहते हैं॥

तत्सूर्य्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्त्तोर्विततꣳ सं जभार।
यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै॥३७॥

तत्। सूर्य्यस्य। देवत्वमिति देवऽत्वम्। तत्। महित्वमिति महिऽत्वम्। मध्या। कर्त्तोः। विततमिति विऽततम्। सम्। जभार॥यदा। इत्। अयुक्त। हरितः। सधस्थादिति सधऽस्थात। आत्। रात्री। वासः। तनुते। सिमस्मै॥३७॥

पदार्थः-**(तत्)** **(सूर्यस्य)** चराचरात्मनः परमेश्वरस्य **(देवत्वम्)** देवस्य भावम् **(तत्)** **(महित्वम्)** महिमानम् **(मध्या)** मध्ये। अत्र विभक्तेराकारादेशः। **(कर्त्तोः)** कर्तुं समर्थस्य **(विततम्)** विस्तृतं कार्यं जगत् **(सम्)** **(जभार)** जहार हरति। अत्र हस्य भः। **(यदा)** **(इत्)** **(अयुक्त)** समाहितो भवति **(हरितः)** ह्रियन्ते पदार्था यासु ता दिशः **(सधस्थात्)** समानस्थानात् **(आत्)** अनन्तरम् **(रात्री)** रात्रीवत् **(वासः)** आच्छादनम् **(तनुते)** विस्तृणाति **(सिमस्मै)** सर्वस्मै॥३७॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! जगदीश्वरोऽन्तरिक्षस्य मध्या हरितो यदा विततं च सं जभार सिमस्मै रात्री वासस्तनुते। आत्सधस्थादिदयुक्त तत्कर्त्तोः सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं यूयं विजानीत॥३७॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! भवन्तो येनेश्वरेण सर्वं जगद्रच्यते ध्रियते पाल्यते विनाश्यते च तमेवास्य महिमानं विदित्वा सततमेतमुपासीरन्॥३७॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जगदीश्वर अन्तरिक्ष के **(मध्या)** बीच **(यदा)** जब **(हरितः)** जिन में पदार्थ हरे जाते उन दिशाओं और **(विततम्)** विस्तृत कार्यजगत् को **(सम्, जभार)** संहार कर अपने में लीन करता **(सिमस्मै)** सबके लिये **(रात्री)** रात्री के तुल्य **(वासः)** अन्धकाररूप आच्छादन को **(तनुते)** फैलाता और **(आत्)** इसके अनन्तर **(सधस्थात्)** एक स्थान से अर्थात् सर्व साक्षित्वादि से निवृत्त हो के एकाग्र **(इत्)** ही **(अयुक्त)** समाधिस्थ होता है, **(तत्)** वह **(कर्त्तोः)** करने को समर्थ **(सूर्यस्य)** चराचर के आत्मा परमेश्वर का **(देवत्वम्)** देवतापन **(तत्)** वही उसका **(महित्वम्)** बड़प्पन तुम लोग जानो॥३७॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! आप लोग जिस ईश्वर से सब जगत् रचा, धारण, पालन और विनाश किया जाता है, उसी को और उसकी महिमा को जान के निरन्तर उसकी उपसाना किया करो॥३७॥

तन्मित्रस्येत्यस्य कुत्स ऋषिः। सूर्य्यो देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्य्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे।
अनन्तमन्यद्रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सं भरन्ति॥३८॥

तत्। मित्रस्य। वरुणस्य। अभिचक्षऽइत्यभिचक्षे। सूर्य्यः। रूपम्। कृणुते। द्योः। उपस्थऽइत्युपस्थे॥ अनन्तम्। अन्यत्। रुशत्। अस्य। पाजः। कृष्णम्। अन्यत्। हरितः। सम्। भरन्ति॥३८॥

पदार्थः-(**तत्**) (**मित्रस्य**) प्राणस्य (**वरुणस्य**) उदानस्य (**अभिचक्षे**) अभिपश्यति (**सूर्य्यः**) चराचरात्मा (**रूपम्**) (**कृणुते**) करोति निर्मिमीते (**द्योः**) प्रकाशस्य (**उपस्थे**) समीपे (**अनन्तम्**) अविद्यमानो अन्तो यस्य तत् (**अन्यत्**) अस्मद्भिन्नम् (**रुशत्**) शुक्लं शुद्धस्वरूपम् (**अस्य**) (**पाजः**) बलम् (**कृष्णम्**) निकृष्टवर्णम् (**अन्यत्**) (**हरितः**) हरणशीला दिशः (**सम्**) (**भरन्ति**) हरन्ति॥३८॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! द्योरुपस्थे वर्त्तमानः सूर्य्यो मित्रस्य वरुणस्य च तद्रूपं कृणुते येन जनोऽभिचक्षे। अस्य रुशत्पाजोऽनन्तमन्यदस्ति अन्यत्कृष्णं हरितः संभरन्तीति विजानीत॥३८॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यदनन्तं ब्रह्म तत्प्रकृतेर्जीवेभ्यश्चान्यदस्ति। एवं प्रकृत्याख्यं कारणं विभु वर्त्तते तस्माद्यज्जायते तत्तत्समयं प्राप्येश्वरनियमेन विनश्यति, यथा जीवाः प्राणोदानाभ्यां सर्वान् व्यवहारान् साध्नुवन्ति तथैवेश्वरः स्वेनानन्तसामर्थ्येनास्योत्पत्तिस्थितिप्रलयान् करोति॥३८॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! (**द्योः**) प्रकाश के (**उपस्थे**) निकट वर्त्तमान अर्थात् अन्धकार से पृथक् (**सूर्यः**) चराचर का आत्मा (**मित्रस्य**) प्राण और (**वरुणस्य**) उदान के (**तत्**) उस (**रूपम्**) रूप को (**कृणुते**) रचता है जिससे मनुष्य (**अभिचक्षे**) देखता जानता है (**अस्य**) इस परमात्मा का (**रुशत्**) शुद्धस्वरूप और (**पाजः**) बल (**अनन्तम्**) अपरिमित (**अन्यत्**) भिन्न है और (**अन्यत्**) (**कृष्णम्**) अविद्यादि मलीन गुणवाले भिन्न जगत् को (**हरितः**) दिशा (**सम्, भरन्ति**) धारण करती हैं॥३८॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जो अनन्त ब्रह्म वह प्रकृति और जीवों से भिन्न है। ऐसे ही प्रकृतिरूप कारण विभु है, उससे जो-जो उत्पन्न होता, वह वह समय पाकर ईश्वर के नियम से नष्ट हो जाता है, जैसे जीव प्राण, उदान से सब व्यवहारों को सिद्ध करते, वैसे ईश्वर अपने अनन्त सामर्थ्य से इस जगत् के उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयों को करता है॥३८॥

बण्महानित्यस्य जमदग्निर्ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। विराड् बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

बण्म॒हाँ२ऽअ॑सि सूर्य्य॒ बडा॑दित्य म॒हाँ२अ॑सि।

म॒हस्ते॑ स॒तो म॑हि॒मा प॑नस्यते॒ऽद्धा दे॑व म॒हाँ२ऽअ॑सि॥ ३९॥

बट्। म॒हान्। अ॒सि॒। सू॒र्य्य। बट्। आ॒दि॒त्य॒। म॒हान्। अ॒सि॒॥ म॒हः। ते। स॒तः। म॒हि॒मा। प॒न॒स्य॒ते॒। अ॒द्धा। दे॒व॒। म॒हान्। अ॒सि॒॥ ३९॥

पदार्थः-(**बट्**) सत्यम् (**महान्**) महत्त्वादिगुणविशिष्टः (**असि**) भवसि (**सूर्य**) चराचरात्मन्! (**बट्**) अनन्तज्ञान (**आदित्य**) अविनाशिस्वरूप (**महान्**) (**असि**) (**महः**) महतः (**ते**) तव (**सतः**) सत्यस्वरूपस्य (**महिमा**) (**पनस्यते**) स्तूयते (**श्रद्धा**) प्रसिद्धम् (**देव**) दिव्यगुणकर्मस्वभावयुक्त! (**महान्**) (**असि**)॥ ३९॥

अन्वयः-हे सूर्य्य! बण्महानसि, हे आदित्य! यतस्त्वं बण्महानसि सतो महस्ते महिमा पनस्यते। हे देव! यतस्त्वमद्धा महानसि, तस्मादस्माभिरुपास्योऽसि॥ ३९॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यस्येश्वरस्य महिमानं पृथिवीसूर्यादिपदार्था ज्ञापयन्ति, यः सर्वेभ्यो महानस्ति तं विहाय कस्याप्यन्यस्योपासना नैव कार्य्या॥ ३९॥

पदार्थः-हे (**सूर्य**) चराचर के अन्तर्यामिन् ईश्वर! जिस कारण आप (**बट्**) सत्य (**महान्**) महत्त्वादि गुणयुक्त (**असि**) हैं। हे (**आदित्य**) अविनाशीस्वरूप! जिससे आप (**बट्**) अनन्त ज्ञानवान् (**महान्**) बड़े (**असि**) हो (**सतः**) सत्यस्वरूप (**महः**) महान् (**ते**) आपका (**महिमा**) महत्त्व (**पनस्यते**) लोगों से स्तुति किया जाता। हे (**देव**) दिव्य गुणकर्मस्वभावयुक्त ईश्वर! जिससे आप (**श्रद्धा**) प्रसिद्ध (**महान्**) महान् (**असि**) हैं, इसलिये हमको उपासना करने के योग्य हैं॥ ३९॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जिस ईश्वर के महिमा को पृथिवी, सूर्यादि पदार्थ जानते हैं, जो सबसे बड़ा है, उसको छोड़ के किसी अन्य की उपासना नहीं करनी चाहिये॥ ३९॥

बट् सूर्येत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः। सूर्यो देवता। भुरिक् बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

बट् सू॑र्य्य॒ श्रव॑सा म॒हाँ२ऽअ॑सि स॒त्रा दे॑व म॒हाँ२ऽअ॑सि।

म॒ह्ना दे॒वाना॑मसु॒र्य्यः॑ पु॒रोहि॑तो वि॒भु ज्योति॒रदा॑भ्यम्॥ ४०॥

बट्। सू॒र्य्य॒। श्रव॑सा। म॒हान्। अ॒सि॒। स॒त्रा। दे॒व॒। म॒हान्। अ॒सि॒॥ म॒ह्ना। दे॒वाना॑म्। अ॒सु॒र्य्यः॑। पु॒रोहि॑त॒ इति॑ पु॒रःऽहि॑तः। विभ्विति॑ विऽभु। ज्योति॑ः। अदा॑भ्यम्॥ ४०॥

पदार्थः-(**बट्**) सत्यम् (**सूर्य**) सवितृवत्सर्वप्रकाशक! (**श्रवसा**) यशसा धनेन वा (**महान्**) (**असि**) (**सत्रा**) सत्येन (**देव**) दिव्यसुखप्रद! (**महान्**) (**असि**) (**मह्ना**) महत्त्वेन (**देवानाम्**) पृथिव्यादीनां विदुषां वा (**असुर्य्यः**) असुभ्यः प्राणेभ्यो हितः (**पुरोहितः**) पुरस्ताद्धितकारी (**विभु**) व्यापकम् (**ज्योतिः**) प्रकाशकं स्वरूपम् (**अदाभ्यम्**) अहिंसनीयम्॥४०॥

अन्वयः-हे बट् सूर्य्य! यतस्त्वं श्रवसा महानसि। हे देव सत्रा महानसि यतस्त्वं देवानां पुरोहितो मह्नाऽसुर्य्यः सन्नदाभ्यं विभु ज्योतिः स्वरूपोऽसि तस्मात् सत्कर्त्तव्योऽसि॥४०॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! येनेश्वरेण सर्वेषां पालनायान्नाद्युत्पादिका भूमिर्मेघप्रकाशकारी सूर्य्यो निर्मितः, स एव परमेश्वर उपासितुं योग्योऽस्ति॥४०॥

पदार्थः-हे (**बट्**) सत्य (**सूर्य**) **सूर्य** के तुल्य सब के प्रकाशक जिससे आप (**श्रवसा**) यश वा धन से (**महान्**) बड़े (**असि**) हो। हे (**देव**) उत्तम सुख के दाता! (**सत्रा**) सत्य के साथ (**महान्**) बड़े (**असि**) हो। जिससे आप (**देवानाम्**) पृथिवी आदि वा विद्वानों के (**पुरोहितः**) प्रथम से हितकारी (**मह्ना**) महत्त्व से (**असुर्य्यः**) प्राणों के लिये हितैषी हुए (**अदाभ्यम्**) आस्तिकता से रक्षा करने योग्य (**विभु**) व्यापक (**ज्योतिः**) प्रकाशस्वरूप हैं, इससे सत्कार के योग्य हैं॥४०॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जिस ईश्वर ने सबकी पालना के लिये अन्नादि को उत्पन्न करनेवाली भूमि, मेघ और प्रकाश करनेवाला सूर्य रचा है, वही परमेश्वर उपासना करने योग्य है॥४०॥

श्रायन्तइवेत्यस्य नृमेध ऋषिः। सूर्यो देवता। निचृद् बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

श्रायन्तऽइव सूर्य्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत।

वसूनि जाते जनमानऽओजसा प्रति भागं न दीधिम॥४१॥

श्रायन्तऽइवेति श्रायन्तःऽइव। सूर्यम्। विश्वा। इत्। इन्द्रस्य। भक्षत॥ वसूनि। जाते। जनमाने। ओजसा। प्रति। भागम्। न। दीधिम॥४१॥

पदार्थः-(**श्रायन्तइव**) समाश्रयन्तइव। अत्र गुणे प्राप्ते व्यत्ययेन वृद्धिः। (**सूर्य्यम्**) स्वप्रकाशं सर्वात्मानं जगदीश्वरम् (**विश्वा**) सर्वाणि (**इत्**) एव (**इन्द्रस्य**) परमैश्वर्यस्य (**भक्षत**) सेवध्वम् (**वसूनि**) वस्तूनि (**जाते**) उत्पन्ने (**जनमाने**) उत्पद्यमाने। अत्र विकरणव्यत्ययः। (**ओजसा**) सामर्थ्येन (**प्रति**) (**भागम्**) सेवनीयमंशम् (**न**) इव (**दीधिम**) प्रकाशयेम॥४१॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा वयमोजसा जाते जनमाने च जगति सूर्यं श्रायन्तइव विश्वा वसूनि प्रति दीधिम भागं न सेवेमहि तथेदिन्द्रस्येमं यूयं भक्षत॥४१॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। यदि वयं परमेश्वरं सेवमाना विद्वांस इव भवेम तर्हीह सर्वमैश्वर्यं लभेमहि॥४१॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे हम लोग (**ओजसा**) सामर्थ्य से (**जाते**) उत्पन्न हुए और (**जनमाने**) उत्पन्न होनेवाले जगत् में (**सूर्यम्**) स्वयं प्रकाशस्वरूप सबके अन्तर्यामी परमेश्वर का (**श्रायन्तइव**) आश्रय करते हुए के समान (**विश्वा**) सब (**वसूनि**) वस्तुओं को (**प्रति, दीधिम**) प्रकाशित करें और (**भागम्, न**) सेवने योग्य अपने अंश के तुल्य सेवन करें, वैसे (**इत्**) ही (**इन्द्रस्य**) उत्तम ऐश्वर्य के भाग को तुम लोग (**भक्षत**) सेवन करो॥४१॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो हम लोग परमेश्वर को सेवन करते हुए विद्वानों के तुल्य हों तो यहां सब ऐश्वर्य को प्राप्त होवें॥४१॥

अद्या देवा इत्यस्य कुत्स ऋषिः। सूर्यो देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

विद्वांसः कीदृशाः स्युरित्याह॥

विद्वान् लोग कैसे हों, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अ॒द्या दे॑वा॒ऽउदि॑ता॒ सूर्य्य॑स्य॒ निरꣳह॑सः पिपृ॒ता निर॑व॒द्यात्।

तन्नो॑ मि॒त्रो वरु॑णो मामहन्ता॒मदि॑तिः॒ सिन्धुः॑ पृथि॒वीऽउ॒त द्यौः॥४२॥

अ॒द्य। दे॒वाः॒। उदि॒तेत्यु॒त्ऽइ॑ता। सूर्य्य॑स्य। निः। अꣳह॑सः। पि॒पृ॒त। निः। अ॒व॒द्यात्॥ तत्। नः॒। मि॒त्रः। वरु॑णः। मा॒म॒ह॒न्ता॒म्। म॒म॒ह॒न्ता॒मिति॑ ममहन्ताम्। अदि॑तिः। सिन्धुः॑। पृ॒थि॒वी। उ॒त। द्यौः॥४२॥

पदार्थः-(**अद्य**) अत्र **निपातस्य च** [अ०६.३.१३६] इति दीर्घः। (**देवाः**) विद्वांसः (**उदिता**) उदिते। अत्राऽऽकारादेशः। (**सूर्य्यस्य**) सवितुः (**निः**) नितराम् (**अंहसः**) अपराधात् (**पिपृत**) व्याप्नुत। अत्र **संहितायाम्** [अ०६.३.११४] इति दीर्घः। (**निः**) नितराम् (**अवद्यात्**) निन्द्यात् दुःखात् (**तत्**) तस्मात् (**नः**) अस्मान् (**मित्रः**) सुहृत् (**वरुणः**) श्रेष्ठः (**मामहन्ताम्**) सत्कुर्वन्तु (**अदितिः**) अन्तरिक्षम् (**सिन्धुः**) सागरः (**पृथिवी**) भूमिः (**उत**) अपि (**द्यौः**) प्रकाशः॥४२॥

अन्वयः-हे देवा विद्वांसो! यूयं यतः सूर्यस्योदिताऽद्यांहसो नो निष्पिपृतावद्याच्च निष्पिपृत तन्मित्रो वरुणोऽदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौरस्मान् मामहन्ताम्॥४२॥

भावार्थः-ये विद्वांसो मनुष्याः प्राणादिवत् सर्वान् सुखयन्ति, अपराधाद् दूरे रक्षन्ति, ते जगद्भूषकाः सन्ति॥४२॥

पदार्थः-हे (**देवा**) विद्वान् लोगो! जिस कारण (**सूर्य्यस्य**) सूर्य्य के (**उदिता**) उदय होते (**अद्य**) आज (**अंहसः**) अपराध से (**नः**) हमको (**निः**) निरन्तर बचाओ और (**अवद्यात्**) निन्दित दुःख से (**निः, पिपृत**) निरन्तर रक्षा करो (**तत्**) इससे (**मित्रः**) मित्र (**वरुणः**) श्रेष्ठ (**अदितिः**)

अन्तरिक्ष (**सिन्धुः**) समुद्र (**पृथिवी**) भूमि (**उत**) और (**द्यौः**) प्रकाश ये सब हमारा (**मामहन्ताम्**) सत्कार करें॥४२॥

भावार्थः-जो विद्वान् मनुष्य प्राणादि के तुल्य सबको सुखी करते और अपराध से दूर रखते हैं, वे जगत् को शोभित करनेवाले हैं॥४२॥

आ कृष्णेनेत्यस्य हिरण्यस्तूप ऋषिः। सूर्य्यो देवता। विराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ सूर्य्यमण्डलं कीदृशमित्याह॥

अब सूर्य्य मण्डल कैसा है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आ कृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।

हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्॥४३॥

आ। कृष्णेन। रजसा। वर्त्तमानः। निवेशयन्निति निऽवेशयन्। अमृतम्। मर्त्यम्। च॥ हिरण्ययेन। सविता। रथेन। आ। देवः। याति। भुवनानि। पश्यन्॥४३॥

पदार्थः-(**आ**) समन्तात् (**कृष्णेन**) कर्षणेन (**रजसा**) लोकसमूहेन सह (**वर्त्तमानः**) (**निवेशयन्**) स्वस्वप्रदेशेषु स्थापयन् (**अमृतम्**) उदकममरणधर्मकमाकाशादिकं वा। **अमृतमित्युदकनामसु पठितम्॥** (निघं०१।१२) (**मर्त्यम्**) मनुष्यादिप्राणिजातम् (**च**) (**हिरण्ययेन**) ज्योतिर्मयेन (**सविता**) सूर्य्यः (**रथेन**) रमणीयेन स्वरूपेण (**आ**) (**देवः**) प्रकाशमानः (**याति**) गच्छति (**भुवनानि**) (**पश्यन्**) दर्शयन्। अत्रान्तर्गतो ण्यर्थः॥४३॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यो हिरण्यमयेन रथेन कृष्णेन रजसा सहाऽऽवर्त्तमानो भुवनानि पश्यन् देवः सविताऽमृतं मर्त्यं च निवेशयन्नायाति स ईश्वरनिर्मितः सूर्य्यो लोकोऽस्ति॥४३॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यथा एतद्भूगोलाद्यैर्लोकैः सह तस्य सूर्य्यस्याकर्षणं यो वृष्टिद्वारा अमृतात्मकमुदकं वर्षयति यश्च सर्वेषां मूर्तद्रव्याणां दर्शयितास्ति तथा सूर्य्यादयोपीश्वराकर्षणेन ध्रियन्त इति वेद्यम्॥४३॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो (**हिरण्ययेन रथेन**) ज्योतिःस्वरूप रमणीय स्वरूप से (**कृष्णेन**) आकर्षण से परस्पर सम्बद्ध (**रजसा**) लोकमात्र के साथ (**आ, वर्त्तमानः**) अपने भ्रमण की आवृत्ति करता हुआ (**भुवनानि**) सब लोकों को (**पश्यन्**) दिखाता हुआ (**देवः**) प्रकाशमान (**सविता**) सूर्य्यदेव (**अमृतम्**) जल वा अविनाशी आकाशादि (**च**) और (**मर्त्यम्**) मरणधर्मा प्राणिमात्र को (**निवेशयन्**) अपने-अपने प्रदेश में स्थापित करता हुआ (**आ, याति**) उदयास्त समय में आता-जाता है, सो ईश्वर का बनाया सूर्य्यलोक है॥४३॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जैसे इन भूगोलादि लोकों के साथ सूर्य्य का आकर्षण है, जो वृष्टिद्वारा अमृतरूप जल को बरसाता और जो मूर्त्त द्रव्यों को दिखानेवाला है, वैसे ही सूर्य्य आदि लोक भी ईश्वर के आकर्षण से धारण किये हुए हैं, ऐसा जानना चाहिये॥४३॥

प्र वावृज इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। वायुर्देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ वायुसूर्य्यौ कीदृशावित्याह॥

अब वायु सूर्य्य कैसे हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प्र वावृजे सुप्रया बर्हिरेषामा विश्पतीव बीरिटऽइयाते।

विशामक्तोरुषसः पूर्वहूतौ वायुः पूषा स्वस्तये नियुत्वान्॥४४॥

प्र। वावृजे। ववृजेऽइति ववृजे। सुऽप्रया इति सुप्रयाः। बर्हिः। एषाम्। आ। विश्पतीव। विश्पतीवेति विश्पतीऽइव। बीरिटे। इयाते॥ विशाम्। अक्तोः। उषसः। पूर्वहूताविति पूर्वऽहूतौ। वायुः। पूषा। स्वस्तये। नियुत्वान्॥४४॥

पदार्थः-(**प्र**) (**वावृजे**) व्रजति गच्छति (**सुप्रयाः**) सुष्ठु प्रयः प्रगमनमस्य सः (**बर्हिः**) उदकम् (**एषाम्**) मनुष्याणाम् (**आ**) (**विश्पतीव**) प्रजापालकाविव (**बीरिटे**) अन्तरिक्षे (**इयाते**) गच्छतः (**विशाम्**) प्रजानां मध्ये (**अक्तोः**) रात्रेः (**उषसः**) दिवसस्य (**पूर्वहूतौ**) पूर्वैः शब्दितौ (**वायुः**) पवनः (**पूषा**) सूर्यः (**स्वस्तये**) सुखाय (**नियुत्वान्**) नियुतोऽश्वा आशुकारिणो वेगादिगुणा यस्य सः॥४४॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा पूर्वहूतौ सुप्रया नियुत्वान् वायुः पूषा चैषां स्वस्तये प्रवावृजे विशां विश्पतीव बीरिटे बर्हिरा इयाते तथाक्तोरुषसश्च बर्हिः प्राप्नुतः॥४४॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। हे मनुष्याः! यौ वायुसूर्यौ न्यायकारी राजेव पालकौ स्तस्तावीश्वरनिर्मितौ वर्त्तेते इति बोध्यम्॥४४॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे (**पूर्वहूतौ**) पूर्वजों ने प्रशंसा किये हुए (**सुप्रयाः**) सुन्दर प्रकार चलनेवाला (**नियुत्वान्**) शीघ्रकारी वेगादि गुणोंवाला (**वायुः**) पवन और (**पूषा**) सूर्य (**एषाम्**) इन मनुष्यों के (**स्वस्तये**) सुख के लिये (**प्र, वावृजे**) प्रकर्षता से चलता है (**विशाम्**) प्रजाओं के बीच (**विश्पतीव**) प्रजारक्षक दो राजाओं के तुल्य (**बीरिटे**) अन्तरिक्ष में (**आ, इयाते**) आते-जाते हैं, वैसे (**अक्तोः**) रात्रि और (**उषसः**) दिन के (**बर्हिः**) जल को प्राप्त होते हैं॥४४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। हे मनुष्यो! जो वायु (**और सूर्य**) न्यायकारी राजा के समान पालक हैं, वे ईश्वर के बनाये हैं, यह जानना चाहिये॥४४॥

इन्द्रवाय्वित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। इन्द्रवायू देवते। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

मनुष्या विद्युदादिपदार्थान् विज्ञाय किं कुर्युरित्याह॥

मनुष्य विद्युत् आदि पदार्थों को जान के क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

इन्द्रवायू बृहस्पतिं मित्राग्निं पूषणं भगम्।

आदित्यान् मारुतं गणम्॥४५॥

इन्द्रवायूऽइतीन्द्रवायू। बृहस्पतिम्। मित्रा। अग्निम्। पूषणम्। भगम्॥ आदित्यान्। मारुतम्। गणम्॥४५॥

पदार्थ:-(**इन्द्रवायू**) विद्युत्पवनौ (**बृहस्पतिम्**) बृहतां पालकं सूर्य्यम् (**मित्रा**) मित्रं प्राणम्। अत्र विभक्तेराकारादेश:। (**अग्निम्**) पावकम् (**पूषणम्**) पुष्टिकरम् (**भगम्**) ऐश्वर्यम् (**आदित्यान्**) द्वादशमासान् (**मारुतम्**) मरुत्सम्बन्धिनम् (**गणम्**) समूहम्॥४५॥

अन्वय:-हे मनुष्या:! यथा वयमिन्द्रवायू बृहस्पतिं मित्राग्निं पूषणं भगमादित्यान् मारुतं गणं विज्ञायोपयुञ्जीमहि तथा यूयमपि प्रयुङ्ग्ध्वम्॥४५॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। मनुष्यै: सृष्टिस्थान् विद्युदादीन् पदार्थान् विज्ञाय संयुज्य कार्याणि साधनीयानि॥४५॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! जैसे हम लोग (**इन्द्रवायू**) बिजुली पवन (**बृहस्पतिम्**) बड़े लोकों के रक्षक सूर्य्य (**मित्रा**) प्राण (**अग्निम्**) अग्नि (**पूषणम्**) पुष्टिकारक (**भगम्**) ऐश्वर्य (**आदित्यान्**) बारह महीनों और (**मारुतम्**) वायुसम्बन्धि (**गणम्**) समूह को जान के उपयोग में लावें, वैसे तुम लोग भी उसका प्रयोग करो॥४५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि सृष्टिस्थ विद्युत् आदि पदार्थों को जान और सम्यक् प्रयोग कर कार्य्यों को सिद्ध करें॥४५॥

वरुण इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषि:। वरुणो देवता। गायत्री छन्द:। षड्ज: स्वर:॥

पुनरध्यापकोपदेशकौ कीदृशावित्याह॥

फिर अध्यापक और उपदेशक कैसे हों, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

वरुण: प्राविता भुवन्मित्रो विश्वाभिरूतिभि:।

करतां न: सुराधस:॥४६॥

वरुण:। प्रावितेति प्रऽअविता। भुवत्। मित्र:। विश्वाभि:॥ ऊतिभिरित्यूतिऽभि:। करताम्। न:। सुराधस इति सुऽराधस:॥४६॥

पदार्थः-(**वरुणः**) उदान इवोत्तमो विद्वान् (**प्राविता**) रक्षकः (**भुवत्**) भवेत् (**मित्रः**) शरण इव प्रियः सखा (**विश्वाभिः**) समग्राभिः (**ऊतिभिः**) रक्षादिक्रियाभिः (**करताम्**) कुर्याताम् (**नः**) अस्मान् (**सुराधसः**) सुष्ठु धनयुक्तान्॥४६॥

अन्वयः-हे अध्यापकोपदेशकौ विद्वांसौ! यथा वरुणो मित्रश्च विश्वाभिरूतिभिः प्राविता भुवत् तथा भवन्तौ नः सुराधसः करताम्॥४६॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। येऽध्यापकोपदेशकाः प्राणवत्सर्वेषु प्रीता उदानवच्छरीरात्मबलप्रदाः स्युस्त एव सर्वेषां रक्षकाः सर्वानाढ्यान् कर्त्तुं शक्नुयुः॥४६॥

पदार्थः-हे अध्यापक और उपदेशक विद्वान् लोगो! जैसे (**वरुणः**) उदान वायु के तुल्य उत्तम विद्वान् और (**मित्रः**) प्राण के तुल्य प्रिय मित्र (**विश्वाभिः**) समग्र (**ऊतिभिः**) रक्षा आदि क्रियाओं से (**प्राविता**) रक्षक (**भुवत्**) होवे, वैसे आप दोनों (**नः**) हमको (**सुराधसः**) सुन्दर धन से युक्त (**करताम्**) कीजिये॥४६॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो अध्यापक और उपदेशक लोग प्राणों के तुल्य सबमें प्रीति रखनेवाले और उदान के समान शरीर और आत्मा के बल को देनेवाले हों, वे ही सबके रक्षक, सबको धनाढ्य करने को समर्थ होवें॥४६॥

अधीत्यस्य कुत्सीदिर्ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। स्वराडार्ची गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनर्मनुष्यैः किं कर्त्तव्यमित्याह॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अधि नऽ इन्द्रैषां विष्णो सजात्यानाम्। इता मरुतोऽ अश्विना।

तं प्रत्नथा। अयं वेनः। ये देवासः। आ नऽइडाभिः।

विश्वेभिः सोम्यं मधु। ओमासश्चर्षणीधृतः॥४७॥

अधि। नः। इन्द्र। एषाम्। विष्णोऽइति विष्णो। सजात्यानामिति सऽजात्यानाम्। इत। मरुतः। अश्विना॥४७॥

पदार्थः-(**अधि**) उपरिभावे (**नः**) अस्माकम् (**इन्द्र**) परमैश्वर्यप्रद विद्वन्! (**एषाम्**) वर्त्तमानानाम् (**विष्णो**) व्यापक परमात्मन्! (**सजात्यानाम्**) अस्मद्विधानाम् (**इत्**) प्राप्नुत। अत्र **द्व्यचोऽतस्तिङः** [अ०६.३.१३५] इति दीर्घः। (**मरुतः**) मनुष्याः (**अश्विना**) अध्यापकोपदेशकौ॥४७॥

अन्वयः-हे इन्द्र! हे विष्णो! हे मरुतः! हे अश्विना! यूयं सजात्यानामेषां नो मध्येऽधिस्वामित्वमित॥४७॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये विद्वांस ईश्वरवदस्मासु वर्तेरंस्तेषु वयं तथैव वर्तेमहि॥४७॥

पदार्थः-हे **(इन्द्र)** परमैश्वर्यदातः विद्वन्! हे **(विष्णो)** व्यापक ईश्वर! हे **(मरुतः)** मनुष्यो! तथा हे **(अश्विना)** अध्यापक, उपदेशक लोगो! तुम सब **(सजात्यानाम्)** हमारे सहयोगी **(एषाम्)** इन **(नः)** हमारे बीच **(अधि)** स्वामीपन को **(इत)** प्राप्त होओ॥४७॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो विद्वान् ईश्वर के समान पक्षपात छोड़ समदृष्टि से हमारे विषय में वर्त्तें, उनके विषय में हम भी वैसे ही वर्त्ता करें॥४७॥

अग्न इत्यस्य प्रतिक्षत्र ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अग्नऽइन्द्र वरुण मित्र देवाः शर्द्धः प्र यन्त मारुतोत विष्णो।

उभा नासत्या रुद्रोऽअध ग्नाः पूषा भगः सरस्वती जुषन्त॥४८॥

अग्ने। इन्द्र। वरुण। मित्र। देवाः। शर्द्धः। प्र। यन्त। मारुत। उत। विष्णोऽइति विष्णो॥ उभा। नासत्या। रुद्रः। अध। ग्नाः। पूषा। भगः। सरस्वती। जुषन्त॥४८॥

पदार्थः-**(अग्ने)** विद्याप्रकाशक **(इन्द्र)** महैश्वर्ययुक्त **(वरुण)** अतिश्रेष्ठ **(मित्र)** सुहृत् **(देवाः)** विद्वांसः **(शर्द्धः)** शरीरात्मबलम् **(प्र)** **(यन्त)** प्रयच्छत। अत्र शपो लुक्। **(मारुत)** मनुष्याणां मध्ये वर्त्तमान **(उत)** अपि **(विष्णो)** व्यापनशील **(उभा)** द्वौ **(नासत्या)** अविद्यमानासत्यस्वरूपावध्यापकोपदेशकौ **(रुद्रः)** दुष्टानां रोदयिता **(अध)** अथ **(ग्नाः)** सुशिक्षिता वाचः **(पूषा)** पोषकः **(भगः)** ऐश्वर्यवान् **(सरस्वती)** प्रशस्तज्ञानयुक्ता स्त्री **(जुषन्त)** सेवन्ताम्। अत्राडभावः॥४८॥

अन्वयः-हे अग्ने इन्द्र वरुण मित्र मारुतोत विष्णो! देवा यूयमस्मभ्यं शर्द्धः प्रयन्त। उभा नासत्या रुद्रो ग्नाः पूषा भगोऽध सरस्वती चाऽस्माञ्जुषन्त॥४८॥

भावार्थः-मनुष्यैर्विदुषां सेवनेन विद्यासुशिक्षे गृहीत्वाऽन्येऽपि विद्वांसः कार्य्याः॥४८॥

पदार्थः-हे **(अग्ने)** विद्याप्रकाशक **(इन्द्र)** महान् ऐश्वर्यवाले **(वरुण)** अति श्रेष्ठ **(मित्र)** मित्र **(मारुत)** मनुष्यों में वर्त्तमान जन **(उत)** और **(विष्णो)** व्यापनशील **(देवाः)** विद्वान् तुम लोगो! हमारे लिये **(शर्द्धः)** शरीर और आत्मा के बल को **(प्र, यन्त)** देओ **(उभा)** दोनों **(नासत्या)** सत्यस्वरूप अध्यापक और उपदेशक **(रुद्रः)** दुष्टों को रुलानेहारा **(ग्नाः)** अच्छी शिक्षित वाणी **(पूषा)** पोषक

(भगः) ऐश्वर्यवान् **(अध)** और इसके अनन्तर **(सरस्वती)** प्रशस्त ज्ञानवाली स्त्री, ये सब हमारा **(जुषन्त)** सेवन करें॥४८॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों के सेवन से विद्या और उत्तम शिक्षा को ग्रहण कर दूसरों को भी विद्वान् करें॥४८॥

इन्द्राग्नी इत्यस्य वत्सार ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। निचृज्जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

अध्यापकाऽध्येतारः किं कुर्युरित्याह॥

अध्यापक और अध्येता लोग क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

इन्द्राग्नी मित्रावरुणादितिꣳ स्वः पृथिवीं द्यां मरुतः पर्वताँ२ऽअपः।

हुवे विष्णुं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं भगं नु शꣳसꣳ सवितारमूतये॥४९॥

इन्द्राग्नीऽइतीन्द्राग्नी। मित्रावरुणा। अदितिम्। स्वरिति स्वः। पृथिवीम्। द्याम्। मरुतः। पर्वतान्। अपः॥ हुवे। विष्णुम्। पूषणम्। ब्रह्मणः। पतिम्। भगम्। नु। शꣳसम्। सवितारम्। ऊतये॥४९॥

पदार्थः-**(इन्द्राग्नी)** संयुक्तौ विद्युदग्नी **(मित्रावरुणा)** मिलितौ प्राणोदानौ **(अदितिम्)** अन्तरिक्षम् **(स्वः)** सुखम् **(पृथिवीम्)** भूमिम् **(द्याम्)** सूर्यम् **(मरुतः)** मननशीलान् मनुष्यान् **(पर्वतान्)** मेघान् शैलान् वा **(अपः)** जलानि **(हुवे)** स्तुयाम् **(विष्णुम्)** व्यापकम् **(पूषणम्)** पुष्टिकर्त्तारम् **(ब्रह्मणस्पतिम्)** ब्रह्माण्डस्य वेदस्य वा पालकम् **(भगम्)** ऐश्वर्यम् **(नु)** सद्यः **(शंसम्)** प्रशंसनीयम् **(सवितारम्)** ऐश्वर्यकारकं राजानम् **(ऊतये)** रक्षणाद्याय॥४९॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथाहमूतय इन्द्राग्नी मित्रावरुणादितिं पृथिवीं द्यां मरुतः पर्वतानपो विष्णुं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं भगं शंसं सवितारं स्वर्नु हुवे तथैतान् यूयमपि प्रशंसत॥४९॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। अध्यापकाऽध्येतृभिः प्रकृतिमारभ्य भूमिपर्यन्ताः पदार्था रक्षणाद्याय विज्ञेयाः॥४९॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे मैं **(ऊतये)** रक्षा आदि के लिये **(इन्द्राग्नी)** संयुक्त बिजुली और अग्नि **(मित्रावरुणा)** मिले हुए प्राण उदान **(अदितिम्)** अन्तरिक्ष **(पृथिवीम्)** भूमि **(द्याम्)** सूर्य **(मरुतः)** विचारशील मनुष्यों **(पर्वतान्)** मेघों वा पहाड़ों **(अपः)** जलों **(विष्णुम्)** व्यापक ईश्वर **(पूषणम्)** पुष्टिकर्त्ता **(ब्रह्मणस्पतिम्)** ब्रह्माण्ड वा वेद के पालक ईश्वर **(भगम्)** ऐश्वर्य **(शंसम्)** प्रशंसा के योग्य **(सवितारम्)** ऐश्वर्यकारक राजा और **(स्वः)** सुख की **(नु)** शीघ्र **(हुवे)** स्तुति करूं, वैसे उनकी तुम भी प्रशंसा करो॥४९॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। अध्यापक और अध्येता को चाहिये कि प्रकृति से लेकर पृथिवी पर्य्यन्त पदार्थों को रक्षा आदि के लिये जानें॥४९॥

अस्मे इत्यस्य प्रगाथ ऋषिः। महेन्द्रो देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ राजपुरुषाः कीदृशाः स्युरित्याह॥

अब राजपुरुष कैसे हों, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अस्मे रुद्रा मेहना पर्वतासो वृत्रहत्ये भरहूतौ सजोषाः।

यः शꣳसते स्तुवते धायि पज्रऽइन्द्रज्येष्ठाऽअस्माँ२ऽअवन्तु देवाः॥५०॥

अस्मेऽइत्यस्मे। रुद्राः। मेहना। पर्वतासः। वृत्रहत्य इति वृत्रऽहत्ये। भरहूताविति भरऽहूतौ। सजोषा इति सऽजोषाः॥ यः। शꣳसते। स्तुवते। धायि। पज्रः। इन्द्रज्येष्ठा इतीन्द्रऽज्येष्ठाः। अस्मान्। अवन्तु। देवाः॥५०॥

पदार्थः-(**अस्मे**) अस्मासु (**रुद्राः**) शत्रून् रोदयन्ति ते (**मेहना**) धनादिसेचकाः। अत्राकारादेशः। (**पर्वतासः**) पर्वाण्युत्सवा विद्यन्ते येषान्ते। अत्र पर्वमरुद्भ्यां तबिति वार्त्तिकेन तप् प्रत्ययः। (**वृत्रहत्ये**) वृत्रस्य दुष्टस्य हत्ये हननाय (**भरहूतौ**) भरे सङ्ग्रामे हूतिराह्वानं तत्र (**सजोषाः**) समानप्रीतिसेवनाः (**यः**) नरः (**शंसते**) (**स्तुवते**) स्तौति। अत्र शब्विकरणः। (**धायि**) ध्रियते। अत्र लुङ्यडभावः। (**पज्रः**) प्राजितैश्वर्य्यः। पृषोदरादित्वादिष्टसिद्धिः। (**इन्द्रज्येष्ठाः**) इन्द्रः सभापतिर्ज्येष्ठो येषु ते (**अस्मान्**) (**अवन्तु**) रक्षन्तु (**देवाः**)॥५०॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यः पज्रः याञ्छंसते स्तुवते येन च धनं धायि तमस्माँश्च येऽस्मे मेहना रुद्राः पर्वतासो वृत्रहत्ये भरहूतौ सजोषा इन्द्रज्येष्ठा देवा अवन्तु। ते युष्मानप्यवन्तु॥५०॥

भावार्थः-ये राजजनाः पदार्थस्तावकाः श्रेष्ठरक्षका दुष्टताडकाः सङ्ग्रामीया मेघवत्पालकाः प्रशंसनीयाः सन्ति ते सर्वैः सेवनीयाः॥५०॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! (**यः**) जो (**पज्रः**) संचित धनवाला जन जिनकी (**शंसते**) प्रशंसा और (**स्तुवते**) स्तुति करता और जिसने धन को (**धायि**) धारण किया है, उस और (**अस्मान्**) हमारी जो (**अस्मे**) हमारे बीच में (**मेहना**) धनादि को छोड़ने (**रुद्राः**) शत्रुओं को रुलाने और (**पर्वतासः**) उत्सवोंवाले (**वृत्रहत्ये**) दुष्ट को मारने के लिये (**भरहूतौ**) संग्राम में बुलाने के विषय में (**सजोषा**) एकसी प्रीतिवाले (**इन्द्रज्येष्ठाः**) सभापति राजा जिनमें बड़ा है, ऐसे (**देवाः**) विद्वान् लोग (**अवन्तु**) रक्षा करें, वे तुम्हारी भी रक्षा करें॥५०॥

भावार्थः-जो राजपुरुष पदार्थों की स्तुति करनेवाले, श्रेष्ठों के रक्षक, दुष्टों के ताड़क, युद्ध में प्रीति रखनेवाले, मेघ के तुल्य पालक, प्रशंसा के योग्य हैं, वे सबको सेवन योग्य होते हैं॥५०॥

अर्वाञ्च इत्यस्य कूर्म ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अर्वाञ्चोऽअद्या भवता यजत्राऽआ वो हार्दि भयमानो व्ययेयम्।
त्राध्वं नो देवा निजुरो वृकस्य त्राध्वं कर्त्तादवपदो यजत्राः॥५१॥

अर्वाञ्चः। अद्य। भवत। यजत्राः। आ। वः। हार्दि। भयमानः। व्ययेयम्॥ त्राध्वम्। नः। देवाः। निजुरऽइति निजुरः। वृकस्य। त्राध्वम्। कर्त्तात्। अवपद इत्यवऽपदः। यजत्राः॥५१॥

पदार्थः-(**अर्वाञ्चः**) अस्मदभिमुखाः (**अद्य**) अत्र **निपातस्य च** [अ०६.३.१३६] इति दीर्घः। (**भवत**) अत्र **संहितायाम्** [अ०६.३.११४] इति दीर्घः। (**यजत्राः**) सङ्गतिकर्त्तारः (**आ**) (**वः**) युष्माकम् (**हार्दि**) हृदि भवं मनः (**भयमानः**) भयं प्राप्नुवन्। अत्र व्यत्ययेन शप्। (**व्ययेयम्**) प्राप्नुयाम् (**त्राध्वम्**) रक्षत (**नः**) अस्मान् (**देवाः**) विद्वांसः (**निजुरः**) हिंसकस्य (**वृकस्य**) स्तेनस्य व्याघ्रस्य वा सकाशात् (**त्राध्वम्**) (**कर्त्तात्**) कूपात् (**अवपदः**) यत्राऽवपद्यन्ते ततः (**यजत्राः**) विदुषां सत्कर्त्तारः॥५१॥

अन्वयः-हे यजत्रा देवा! यूयमद्यार्वाञ्चो भवत भयमानोऽहं वो हार्दि आव्ययेयं नो निजुरो वृकस्य सकाशात् त्राध्वम्। हे यजत्राः! यूयमवपदः कर्त्तादस्मान् त्राध्वम्॥५१॥

भावार्थः-प्रजापुरुषै राजजना एवं प्रार्थनीयाः। हे पूज्या राजपुरुषा विद्वांसो! यूयं सदैवास्मदविरोधिनः कपटादिरहिता भयनिवारका भवत। चोरव्याघ्रादिभ्यो मार्गादिशोधनेन गर्त्तादिभ्यश्चास्मान् रक्षत॥५१॥

पदार्थः-हे (**यजत्राः**) सङ्गति करनेहारे (**देवाः**) विद्वानो! तुम लोग (**अद्य**) आज (**अर्वाञ्चः**) हमारे सम्मुख (**भवत**) हूजिये अर्थात् हमसे विरुद्ध विमुख मत रहिये (**भयमानः**) डरता हुआ मैं (**वः**) तुम्हारे (**हार्दि**) मनोगत को (**आ, व्ययेयम्**) अच्छे प्रकार होऊं (**नः**) हमको (**निजुरः**) हिंसक (**वृकस्य**) चोर वा व्याघ्र के सम्बन्ध से (**त्राध्वम्**) बचाओ। हे (**यजत्राः**) विद्वानों का सत्कार करनेवाले लोगो! तुम (**अवपदः**) जिसमें गिर पड़ते उस (**कर्त्तात्**) कूप वा गढ़े से हमारी (**त्राध्वम्**) रक्षा करो॥५१॥

भावार्थः-प्रजापुरुषों को राजपुरुषों से ऐसे प्रार्थना करनी चाहिये कि-हे पूज्य राजपुरुष विद्वानो! तुम सदैव हमारे अविरोधी कपटादिरहित और भय के निवारक होओ। चोर, व्याघ्रादि और मार्ग शोधने से गढ़े आदि से हमारी रक्षा करो॥५१॥

विश्व इत्यस्य लुश ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

विश्वे॑ऽअ॒द्य म॒रुतो॒ विश्व॑ऽऊ॒ती विश्वे॑ भवन्त्व॒ग्नयः॒ समि॑द्धाः।
विश्वे॑ नो दे॒वाऽअव॒सा ग॑मन्तु॒ विश्व॑मस्तु॒ द्रवि॑ण॒ं वाजो॑ऽअ॒स्मै॥५२॥

विश्वे॑। अ॒द्य। म॒रुतः॑। विश्वे॑। ऊ॒ती। विश्वे॑। भ॒व॒न्तु॒। अ॒ग्नयः॑। समि॑द्धा॒ इति॒ सम्ऽइ॑द्धाः॥ विश्वे॑। नः॒। दे॒वाः। अव॑सा। आ। ग॒म॒न्तु॒। विश्व॑म्। अ॒स्तु॒। द्रवि॑णम्। वाजः॑। अ॒स्माऽइत्य॒स्मै॥५२॥

पदार्थः-(**विश्वे**) सर्वे (**अद्य**) (**मरुतः**) मरणधर्माणो मनुष्याः (**विश्वे**) सर्वे (**ऊती**) रक्षणादिक्रियया (**विश्वे**) (**भवन्तु**) (**अग्नयः**) पावकाः (**समिद्धाः**) प्रदीप्ताः (**विश्वे**) (**नः**) अस्मानस्माकं वा (**देवाः**) विद्वांसः (**अवसा**) रक्षणाद्येन सह (**आ**) समन्तात् (**गमन्तु**) प्राप्नुवन्तु (**विश्वम्**) सर्वम् (**अस्तु**) (**द्रविणम्**) धनम् (**वाजः**) अन्नम् (**अस्मै**) मनुष्याय॥५२॥

अन्वयः-हे राजादयो मनुष्या! अद्य यथा विश्वे भवन्तो विश्वे मरुतो विश्वे समिद्धा अग्नय ऊती रक्षका नो भवन्तु, विश्वे देवा अवसा सह नोऽस्मानागमन्तु, तथा विश्वं द्रविणं वाजश्चास्मा अस्तु॥५२॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैर्यादृशं सुखं स्वार्थमेष्टव्यं तादृशमन्यार्थं चात्र ये विद्वांसो भवेयुस्ते स्वयमधर्माचरणात् पृथग् भूत्वाऽन्यानपि तादृशान् कुर्युः॥५२॥

पदार्थः-हे राजा आदि मनुष्यो! (**अद्य**) आज जैसे (**विश्वे**) सब आप लोग (**विश्वे**) सब (**मरुतः**) मरणधर्मा मनुष्य और (**विश्वे**) सब (**समिद्धाः**) प्रदीप्त (**अग्नयः**) अग्नि (**ऊती**) रक्षण क्रिया से (**नः**) हमारे रक्षक (**भवन्तु**) होवें (**विश्वे**) सब (**देवाः**) विद्वान् लोग (**अवसा**) रक्षा आदि के साथ (**नः**) हमको (**आ, गमन्तु**) प्राप्त हों, वैसे (**विश्वम्**) सब (**द्रविणम्**) धन और (**वाजः**) अन्न (**अस्मै**) इस मनुष्य के लिये (**अस्तु**) प्राप्त होवे॥५२॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि जैसा सुख अपने लिये चाहें, वैसा ही औरों के लिये भी। इस जगत् में जो विद्वान् हों, वे आप अधर्माचरण से पृथक हो के औरों को भी वैसे करें॥५२॥

विश्वे देवा इत्यस्य सुहोत्र ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनर्मनुष्यैः किं कर्त्तव्यमित्याह॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

विश्वे॑ देवाः शृणु॒तेम॒ꣳ हवं॑ मे॒ येऽअ॒न्तरि॑क्षे॒ यऽउप॒ द्यवि॒ ष्ठ।
येऽअ॑ग्निजि॒ह्वाऽउ॒त वा॒ यज॑त्राऽआ॒सद्या॒स्मिन् ब॒र्हिषि॑ मादयध्वम्॥५३॥

विश्वे॑। दे॒वाः॒। शृ॒णु॒त॒। इ॒मम्। हव॑म्। मे॒। ये। अ॒न्तरि॑क्षे। ये। उप॑। द्यवि॑। स्थ। ये। अ॒ग्नि॒जि॒ह्वा इत्य॑ग्निऽजि॒ह्वाः। उ॒त। वा। यज॑त्राः। आ॒स॒द्येत्या॑ऽस॒द्य। अ॒स्मिन्। ब॒र्हिषि॑। मा॒द॒य॒ध्व॒म्॥५३॥

पदार्थः-(**विश्वे**) (**देवाः**) विद्वांसः (**शृणुत**) (**इमम्**) (**हवम्**) अध्ययनाध्यापनव्यवहारम् (**मे**) मम (**ये**) (**अन्तरिक्षे**) (**ये**) (**उप**) (**द्यवि**) प्रकाशे (**स्थ**) वेदितारो भवत (**ये**) (**अग्निजिह्वाः**) अग्निर्जिह्वावद् येषान्ते (**उत**) अपि (**वा**) (**यजत्राः**) सङ्गन्तारः पूजनीयाः (**आसद्य**) स्थित्वा (**अस्मिन्**) (**बर्हिषि**) सभायामासने वा (**मादयध्वम्**) हर्षयत॥५३॥

अन्वयः-हे विश्वे देवा! यूयं येऽन्तरिक्षे ये द्यविष्ठ येऽग्निजिह्वा उत वा यजत्राः पदार्थाः सन्ति, तेषां वेदितारः स्थ, म इमं हवमुपशृणुत। अस्मिन् बर्हिष्यासद्य मादयध्वम्॥५३॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यूयं यावन्तो भूमावन्तरिक्षे प्रकाशे च पदार्थाः सन्ति, तान् बुद्ध्वा विदुषां सभां विधाय विद्यार्थिनां परीक्षा कृत्वा विद्यासुशिक्षे वर्द्धयित्वा स्वयमानन्दिता भूत्वाऽन्यान् सततमानन्दयत॥५३॥

पदार्थः-हे (**विश्वे**) सब (**देवाः**) विद्वान् लोगो! तुम (**ये**) जो (**अन्तरिक्षे**) आकाश में (**ये**) जो (**द्यवि**) प्रकाश में (**ये**) जो (**अग्निजिह्वाः**) जिह्वा के तुल्य जिनके अग्नि हैं, वे (**उत**) और (**वा**) अथवा (**यजत्राः**) सङ्गति करनेवाले पूजनीय पदार्थ हैं, उनके जाननेवाले (**स्थ**) हूजिये (**मे**) मेरे (**इमम्**) इस (**हवम्**) पढ़ने-पढ़ाने रूप व्यवहार को (**उप, शृणुत**) निकट से सुनो (**अस्मिन्**) इस (**बर्हिषि**) सभा वा आसन पर (**आसद्य**) बैठ कर (**मादयध्वम्**) आनन्दित होओ॥५३॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! तुम जितने भूमि, अन्तरिक्ष और प्रकाश में पदार्थ हैं, उनको जान विद्वानों की सभा कर विद्यार्थियों की परीक्षा कर विद्या सुशिक्षा को बढ़ा और आप आनन्दित होके दूसरों को निरन्तर आनन्दित करो॥५३॥

देवेभ्य इत्यस्य वामदेव ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

देवेभ्यो हि प्रथमं यज्ञियेभ्योऽमृतत्वꣳ सुवसि भागमुत्तमम्।
आदिद् दामानꣳ सवितर्व्यूर्णुषेऽनूचीना जीविता मानुषेभ्यः॥५४॥

देवेभ्यः। हि। प्रथमम्। यज्ञियेभ्यः। अमृतत्वमित्यमृतऽत्वम्। सुवसि। भागम्। उत्तममित्युत्ऽतमम्॥ आत्। इत्। दामानम्। सवितरिति सवितः। वि। ऊर्णुषे। अनूचीना। जीविता। मानुषेभ्यः॥५४॥

पदार्थः-(**देवेभ्यः**) विद्वद्भ्यः (**हि**) यतः (**प्रथमम्**) (**यज्ञियेभ्यः**) यज्ञसिद्धिकरेभ्यः (**अमृतत्वम्**) मोक्षस्य भावम् (**सुवसि**) प्रेरयसि (**भागम्**) भजनीयम् (**उत्तमम्**) श्रेष्ठम् (**आत्**) अनन्तरम् (**इत्**) एव (**दामानम्**) यो ददाति तम् (**सवितः**) सकलजगदुत्पादक (**वि**) (**ऊर्णुषे**)

विस्तारयसि **(अनूचीना)** यैरन्वञ्चन्ति जानन्ति तानि **(जीविता)** जीवनहेतूनि कर्माणि **(मानुषेभ्यः)**॥५४॥

अन्वयः-हे सवितर्जगदीश्वर! हि यज्ञियेभ्यो देवेभ्य उत्तमं प्रथमममृतत्वं भागं सुवसि मानुषेभ्यो आदिद्दामानमनूचीना जीविता च व्यूर्णुषे तस्मादस्माभिरुपासनीयोऽसि॥५४॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! परमेश्वरस्यैव योगेन विद्वत्सङ्गेन च सर्वोत्तमसुखं मोक्षं प्राप्नुत॥५४॥

पदार्थः-हे **(सवितः)** समस्त जगत् के उत्पादक जगदीश्वर! **(हि)** जिससे आप **(यज्ञियेभ्यः)** यज्ञसिद्धि करनेहारे **(देवेभ्यः)** विद्वानों के लिये **(उत्तमम्)** श्रेष्ठ **(प्रथमम्)** मुख्य **(अमृतत्वम्)** मोक्षभाव **(भागम्)** सेवने योग्य सुख को **(सुवसि)** प्रेरित करते हो **(आत्, इत्)** इसके अनन्तर ही **(दामानम्)** सुख देनेवाले प्रकाश और **(अनूचीना)** जानने के साधन **(जीविता)** जीवन के हेतु कर्मों को **(मानुषेभ्यः)** मनुष्यों के लिये **(वि, ऊर्णुषे)** विस्तृत करते हो, इसलिये उपासना के योग्य हो॥५४॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! परमेश्वर ही के योग और विद्वानों के सङ्ग से सर्वोत्तम सुखवाले मोक्ष को प्राप्त होओ॥५४॥

प्रवायुमित्यस्य ऋजिश्व ऋषिः। वायुर्देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प्र वायुमच्छा बृहती मनीषा बृहद्रयिं विश्ववारꣳ रथप्राम्।

द्युतद्यामा नियुतः पत्यमानः कविः कविमियक्षसि प्रयज्यो॥५५॥

प्र। वायुम्। अच्छ। बृहती। मनीषा। बृहद्रयिमिति बृहत्ऽरयिम्। विश्ववारमिति विश्वऽवारम्। रथप्रामिति रथऽप्राम्। द्युतद्यामेति द्युतत्ऽयामा। नियुत इति निऽयुतः। पत्यमानः। कविः। कविम्। इयक्षसि। प्रयज्यो इति प्रऽयज्यो॥५५॥

पदार्थः-**(प्र)** **(वायुम्)** प्राणादिलक्षणम् **(अच्छ)** शोभने। अत्र **निपातस्य च** [अ०६.३.१३६] इति दीर्घः। **(बृहती)** महती **(मनीषा)** प्रज्ञा **(बृहद्रयिम्)** बृहन्तो रययो यस्मिंस्तम् **(विश्ववारम्)** यो विश्वं वृणोति तम् **(रथप्राम्)** यो रथान् यानानि प्राति व्याप्नोति तम् **(द्युतद्यामा)** द्युतद्दीप्यमानमग्निं याति तम्। अत्र विभक्तेर्लुक् **संहितायाम्** [अ०६.३.११४] इति दीर्घः। **(नियुतः)** निश्चितान् **(पत्यमानः)** प्राप्नुवन् **(कविः)** मेधावी विद्वान् **(कविम्)** मेधाविनम् **(इयक्षसि)** यष्टुं सङ्गन्तुमिच्छसि **(प्रयज्यो)** प्रकृष्टतया यज्ञकर्त्तुः॥५५॥

अन्वयः-हे प्रयज्यो विद्वन्! नियुतः पत्यमानः कविः संस्त्वं या ते बृहती मनीषा तया बृहद्रयिं विश्ववारं रथप्रां द्युतद्यामा वायुं कविं चाच्छ प्रेयक्षसि तस्मात् सर्वैः सत्कर्त्तव्योऽसि॥५५॥

भावार्थः-ये विद्वांसं प्राप्य पूर्णां विद्याप्रज्ञामखिलं धनं प्राप्नुयुस्ते सत्कर्त्तव्याः स्युः॥५५॥

पदार्थः-हे **(प्रयज्यो)** अच्छे प्रकार यज्ञ करनेहारे विद्वन्! **(नियुतः)** निश्चयात्मक पुरुषों को **(पत्यमानः)** प्राप्त होते हुए **(कविः)** बुद्धिमान् विद्वान् आप जो तुम्हारी **(बृहती)** बड़ी तेज **(मनीषा)** बुद्धि है, उससे **(बृहद्रयिम्)** बहुत धनों के निमित्त **(विश्ववारम्)** सबको ग्रहण करनेहारे **(रथप्राम्)** विमानादि यानों को व्याप्त होनेवाले **(द्युतद्यामा)** अग्नि को प्रदीप्त करनेवाले **(वायुम्)** प्राणादिस्वरूप वायु और **(कविम्)** बुद्धिमान् जन का **(अच्छ, प्र, इयक्षसि)** अच्छे प्रकार संग करना चाहते हो, इससे सबके सत्कार के योग्य हो॥५५॥

भावार्थः-जो विद्वान् को प्राप्त हो पूर्ण विद्या, बुद्धि और समग्र धन को प्राप्त होवें, वे सत्कार के योग्य हों॥५५॥

इन्द्रवायू इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। इन्द्रवायू देवते। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अथ विद्वांसः किं कुर्युरित्याह।

अब विद्वान् लोग क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

इन्द्र॑वायूऽइ॒मे सु॒ताऽउप॒ प्रयो॑भि॒रा ग॑तम्।

इन्द॑वो वामु॒शन्ति॒ हि॥५६॥

इन्द्र॑वायू॒ऽइ॒तीन्द्र॑वायू। इ॒मे। सु॒ताः। उप॑। प्रयो॑भि॒रिति॒ प्रयः॑ऽभिः। आ। ग॒त॒म्। इन्द॑वः। वा॒म्। उ॒शन्ति॑। हि॥५६॥

पदार्थः-**(इन्द्रवायू)** विद्युत्पवनविद्याविदौ **(इमे)** **(सुताः)** निष्पादिताः **(उप)** **(प्रयोभिः)** कमनीयैर्गुणकर्मस्वभावैः **(आ)** **(गतम्)** समन्तात् प्राप्नुतम् **(इन्दवः)** सोमाद्योषधिरसाः **(वाम्)** युवाम् **(उशन्ति)** कामयन्ते **(हि)** यतः॥५६॥

अन्वयः-इन्द्रवायू युष्मदर्थमिमे सुता पदार्थाः सन्ति हीन्दवो वामुशन्ति, तस्मात् प्रयोभिस्तानुपाऽऽगतम्॥५६॥

भावार्थः-हे विद्वांसो! यतो यूयमस्माकमुपरि कृपां विधत्थ, तस्माद् युष्मान् सर्वे प्राप्तुमिच्छन्ति॥५६॥

पदार्थः-हे **(इन्द्रवायू)** बिजुली और पवन की विद्या को जाननेवाले विद्वानो! तुम्हारे लिये **(इमे)** ये **(सुताः)** सिद्ध किये हुए पदार्थ हैं **(हि)** जिस कारण **(इन्दवः)** सोमादि ओषधियों के रस **(वाम्)** तुमको **(उशन्ति)** चाहते अर्थात् वे तुम्हारे योग्य हैं, इससे **(प्रयोभिः)** उत्तम गुण, कर्म, स्वभावों के सहित उनको **(उप, आ, गतम्)** निकट से अच्छे प्रकार प्राप्त होओ॥५६॥

भावार्थः-हे विद्वानो! जिस कारण तुम लोग हमारे ऊपर कृपा करते हो, इसलिये सब लोग तुमको मिलना चाहते हैं॥५६॥

मित्रमित्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। मित्रावरुणौ देवते। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र मे कहा है॥

मित्रꣳ हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम्।

धियं घृताचीꣳ साधन्ता॥५७॥

मित्रम्। हुवे। पूतदक्षमिति पूतऽदक्षम्। वरुणम्। च। रिशादसम्॥ धियम्। घृताचीम्। साधन्ता॥५७॥

पदार्थः-(**मित्रम्**) सुहृदम् (**हुवे**) स्वीकरोमि (**पूतदक्षम्**) पवित्रबलम् (**वरुणम्**) धार्मिकम् (**च**) (**रिशादसम्**) हिंसकानां हिंसकम् (**धियम्**) प्रज्ञाम् (**घृताचीम्**) या घृतमुदकमञ्चति तां रात्रिम्। **घृताचीति रात्रिनामसु पठितम्॥** (निघं१।७) (**साधन्ता**) साधन्तौ॥५७॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथाऽहं धियं घृताचीञ्च साधन्ता पूतदक्षं मित्रं रिशादसं वरुणञ्च हुवे तथैतौ यूयमपि स्वीकुरुत॥५७॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा प्राणोदानौ प्रज्ञां रात्रिञ्च साध्नुतस्तथा विद्वांसः सर्वाण्युत्तमानि साधनानि गृहीत्वा कार्यसिद्धिं कुर्वन्तु॥५७॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे मैं (**धियम्**) बुद्धि तथा (**घृताचीम्**) शीतलतारूप जल को प्राप्त होनेवाली रात्रि को (**साधन्ता**) सिद्ध करते हुए (**पूतदक्षम्**) शुद्ध बलयुक्त (**मित्रम्**) मित्र (**च**) और (**रिशादसम्**) दुष्ट हिंसक को मारनेहारे (**वरुणम्**) धर्मात्मा जन को (**हुवे**) स्वीकार करता हूं, वैसे इनको तुम लोग भी स्वीकार करो॥५७॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे प्राण और उदान बुद्धि और रात्रि को सिद्ध करते वैसे विद्वान् लोग सब उत्तम साधनों का ग्रहण कर कार्य्यों को सिद्ध करें॥५७॥

दस्रेत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। अश्विनौ देवते। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

दस्रा युवाकवः सुता नासत्या वृक्तबर्हिषः।

आ यातꣳ रुद्रवर्त्तनी॥ तं प्रत्नथा। अयं वेनः॥५८॥

दस्रा। युवाकवः। सुताः। नासत्या। वृक्तबर्हिष इति वृक्तऽबर्हिषः। आ। यातम्। रुद्रवर्त्तनीऽइति रुद्रवर्त्तनी॥५८॥

पदार्थः-(**दस्रा**) दुष्टानां निवारकौ (**युवाकवः**) ये युवां कामयन्ते ते (**सुताः**) निष्पन्नाः (**नासत्या**) अविद्यमानासत्याचरणौ (**वृक्तबर्हिषः**) वृक्तं वर्जितं बर्हिर्यैस्ते (**आ**) (**यातम्**) समन्तात् प्राप्नुतम् (**रुद्रवर्त्तनी**) रुद्रस्य वर्त्तनिरिव वर्त्तनिर्ययोस्तौ॥५८॥

अन्वयः-हे नासत्या! रुद्रवर्त्तनी दस्रा ये वृक्तबर्हिषो युवाकवः सुताः सन्ति तान् युवामायातम्॥५८॥

भावार्थः-विदुषां योग्यतास्ति ये विद्याः कामयन्ते तेभ्यो विद्या दद्युः॥५८॥

पदार्थः-हे (**नासत्या**) असत्य आचरण से पृथक् (**रुद्रवर्त्तनी**) दुष्टरोदक न्यायाधीश के तुल्य आचरणवाले (**दस्रा**) दुष्टों के निवारक विद्वानो! जो (**वृक्तबर्हिषः**) यज्ञ से पृथक् अर्थात् भोजनार्थ (**युवाकवः**) तुमको चाहनेवाले (**सुताः**) सिद्ध किये पदार्थ हैं, उनको तुम लोग (**आ, यातम्**) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ॥५८॥

भावार्थः-विद्वानों को योग्य है कि जो विद्याओं की कामना करते हैं, उनको विद्या देवें॥५८॥

विदद्यदीत्यस्य कुशिक ऋषिः। इन्द्रो देवता। भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अथ स्त्री किं कुर्यादित्याह॥

अब स्त्री क्या करे, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

विदद्यदी सरमा रुग्णमद्रेर्महि पाथः पूर्व्यꣳ सध्र्यक्कः।
अग्रं नयत्सुपद्यक्षराणामच्छा रवं प्रथमा जानती गात्॥५९॥

विदत्। यदि। सरमा। रुग्णम्। अद्रेः। महि। पाथः। पूर्व्यम्। सध्र्यक्। करिति कः॥ अग्रम्। नयत्। सुपदीति सुऽपदी। अक्षराणाम्। अच्छ। रवम्। प्रथमा। जानती। गात्॥५९॥

पदार्थः-(**विदत्**) जानीयात्। अडभावः। (**यदि**) अत्र **निपातस्य च** [अ०६.३.१३६] इति दीर्घः। (**सरमा**) समानं रमा रमणमस्याः सा (**रुग्णम्**) रोगिणम् (**अद्रेः**) मेघात् (**महि**) महत् (**पाथः**) अन्नम् (**पूर्व्यम्**) पूर्वं लब्धम् (**सध्र्यक्**) यः सहाञ्चतीति सः (**कः**) कुर्यात् (**अग्रम्**) पुरः (**नयत्**) प्राप्नुवत् (**सुपदी**) शोभना पादा यस्याः सा (**अक्षराणाम्**) (**अच्छ**) सम्यक्। अत्र **निपातस्य च** [अ०६.३.१३६] इति दीर्घः। (**रवम्**) शब्दम् (**प्रथमा**) प्रख्याता (**जानती**) विज्ञानवती (**गात्**) प्राप्नोतु॥५९॥

अन्वयः-यदि सरमा प्रथमा सुपद्यक्षराणां रवं जानती रुग्णं विददग्रन्नयत् सध्र्यक् पूर्व्यं मह्यद्रेरुत्पन्नं पाथः कः कुर्यात् पतिमच्छ गात्तर्हि सा सर्वं सुखमाप्नुयात्॥५९॥

भावार्थः-या स्त्री वैद्यवत् सर्वेषां हितकारिण्यौषधवदन्नं साद्धुं शक्नुयाद् यथायोग्यं भाषणं विजानीयात् सोत्तमं सुखं सततमाप्नुयात्॥५९॥

पदार्थः-(**यदि**) जो (**सरमा**) पति के अनुकूल रमण करनेहारी (**प्रथमा**) प्रख्यात (**सुपदी**) सुन्दर पगोंवाली (**अक्षराणाम्**) अकारादि वर्णों में (**रवम्**) बोलने को (**जानती**) जानती हुई (**रुग्णम्**) रोगी प्राणी को (**विदत्**) जाने (**अग्रम्**) आगे (**नयत्**) पहुंचानेवाला (**सध्र्यक्**) साथ प्राप्त होता (**पूर्व्यम्**) प्रथम के लोगों ने प्राप्त किये (**महि**) महागुणयुक्त (**अद्रेः**) मेघ से उत्पन्न हुए (**पाथः**) अन्न को (**कः**) करे अर्थात् भोजनार्थ सिद्ध करे और पति को (**अच्छ**) अच्छे प्रकार (**गात्**) प्राप्त होवे तो वह सुख को पावे॥५९॥

भावार्थः-जो स्त्री वैद्य के तुल्य सबकी हितकारिणी, ओषधि के तुल्य अन्न बनाने को समर्थ हो और यथायोग्य बोलना भी जाने, वह उत्तम सुख को निरन्तर पावे॥५९॥

नहीत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः। वैश्वानरो देवता। भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ मनुष्याः कथं मोक्षमाप्नुवन्तीत्याह॥

अब मनुष्य कैसे मोक्ष को प्राप्त होते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

नहि स्पशमविदन्नन्यमस्माद् वैश्वानरात् पुरऽएतारमग्नेः।

एमेनमवृधन्नमृताऽअमर्त्यं वैश्वानरं क्षैत्रजित्याय देवाः॥६०॥

नहि। स्पशम्। अविदन्। अन्यम्। अस्मात्। वैश्वानरात्। पुरऽएतारमिति पुरःऽएतारम्। अग्नेः॥ आ। ईम्। एनम्। अवृधन्। अमृताः। अमर्त्यम्। वैश्वानरम्। क्षैत्रजित्याय। देवाः॥६०॥

पदार्थः-(**नहि**) (**स्पशम्**) दूतम् (**अविदन्**) विजानन्ति (**अन्यम्**) (**अस्मात्**) (**वैश्वानरात्**) सर्वनरहितकरात् (**पुर एतारम्**) अग्रे गन्तारं शीघ्रकारिणम् (**अग्नेः**) पावकात् (**आ**) (**ईम्**) सर्वतः (**एनम्**) (**अवृधन्**) वर्द्धयन्ति (**अमृताः**) मृत्युधर्मरहिताः (**अमर्त्यम्**) मृत्युधर्मरहितम् (**वैश्वानरम्**) विश्वस्य नायकम् (**क्षैत्रजित्याय**) यया क्रियया क्षेत्राणि जयन्ति तस्या भावाय (**देवाः**) विद्वांसः॥६०॥

अन्वयः-येऽमृता देवा अमृर्त्यं वैश्वानरं क्षैत्रजित्यायैनमावृधन् त ईमस्माद् वैश्वानरादग्नेः पुर एतारमन्यं स्पशं नह्यविदन्॥६०॥

भावार्थः-ये नाशोत्पत्तिरहिता मनुष्यदेहधरा जीवा विजयायोत्पत्तिनाशरहितं जगत् स्वामिनं परमात्मानमुपास्यातो भिन्नं तद्वन्नोपासन्ते ते बन्धं विहाय मोक्षमभिगच्छेयुः॥६०॥

पदार्थः-जो (**अमृताः**) आत्मस्वरूप से मरणधर्मरहित (**देवाः**) विद्वान् लोग (**अमर्त्यम्**) नित्य व्यापकरूप (**वैश्वानरम्**) सबके चलानेवाले (**एनम्**) इस अग्नि को (**क्षैत्रजित्याय**) जिस क्रिया से खेतों को जोतते उस भूमि राज्य के होने के लिये (**आ, अवृधन्**) अच्छे प्रकार बढ़ाते हैं, वे (**ईम्**)

सब ओर से **(अस्मात्)** इस **(वैश्वानरात्)** सब मनुष्यों के हितकारी **(अग्नेः)** अग्नि से **(पुर एतारम्)** पहिले पहुंचानेवाले **(अन्यम्)** भिन्न किसी को **(स्पशम्)** दूत **(नहि)** नहीं **(अविदन्)** जानते हैं॥६०॥

भावार्थः-जो उत्पत्ति-नाशरहित मनुष्य देहधारी जीव विजय के लिये उत्पत्ति-नाशरहित जगत् के स्वामी परमात्मा की उपासना कर उससे भिन्न की उसके तुल्य उपासना नहीं करते, वे बन्ध को छोड़ मोक्ष को प्राप्त होवें॥६०॥

उग्रेत्यस्य भरद्वाज ऋषिः। इन्द्राग्नी देवते। निचृद् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

सभासेनेशौ किं कुर्य्यातामित्याह॥

अब सभा-सेनापति क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उ॒ग्रा वि॑घ॒निना॒ मृध॑ऽइन्द्रा॒ग्नी ह॑वामहे।

ता नो॑ मृडातऽई॒दृशे॑॥६१॥

उ॒ग्रा। वि॒घ॒निनेति॑ विऽघ॒निना॑। मृध॑ः। इ॒न्द्रा॒ग्नीऽइती॑न्द्रा॒ग्नी। ह॒वा॒म॒हे॒॥ ता। न॒ः। मृ॒डा॒त॒ः। ई॒दृशे॑॥६१॥

पदार्थः-**(उग्रा)** उग्रबलौ तेजस्विस्वभावौ। अत्र विभक्तेर्लुक् **संहितायाम्** [अ०६.३.११४] इति दीर्घः। **(विघनिना)** विशेषेण हन्तारौ **(मृधः)** हिंसकान् **(इन्द्राग्नी)** सभासेनाधीशौ **(हवामहे)** आह्वयामः **(ता)** तौ **(नः)** अस्मान् **(मृडातः)** सुखयतः **(ईदृशे)** ईदृग्लक्षणे सङ्ग्रामादिव्यवहारे॥६१॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! वयं यावुग्रा मृधो विघनिनेन्द्राग्नी हवामहे ता ईदृशे नोऽस्मान् मृडातः॥६१॥

भावार्थः-यौ सभासेनाध्यक्षौ पक्षपातं विहाय बलं वर्द्धयित्वा शत्रून् विजयेते, तौ सर्वेषां सुखप्रदौ भवतः॥६१॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! हम जिन **(उग्रा)** अधिक बली तेजस्वी स्वभाववाले **(मृधः)** और हिंसकों को **(विघनिना)** विशेष कर मारनेहारे **(इन्द्राग्नी)** सभा-सेनापति को **(हवामहे)** बुलाते हैं **(ता)** वे **(ईदृशे)** इस प्रकार के संग्रामादि व्यवहार में **(नः)** हम लोगों को **(मृडातः)** सुखी करते हैं॥६१॥

भावार्थः-जो सभा और सेना के अध्यक्ष पक्षपात को छोड़ बल को बढ़ा के शत्रुओं को जीतते हैं, वे सबको सुख देनेवाले होते हैं॥६१॥

उपास्मायित्यस्य देवल ऋषिः। सोमो देवता। निचृद् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अथाध्यापकाध्येतारः कथं वर्त्तेरन्नित्याह॥

अब पढ़ने-पढ़ाने वाले कैसे वर्त्तें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे।

अभि देवाँ२ऽइयक्षते॥६२॥

उप। अस्मै। गायत। नरः। पवमानाय। इन्दवे। अभि। देवान्। इयक्षते॥६२॥

पदार्थः-(**उप**) (**अस्मै**) (**गायत**) शास्त्राणि पाठयत। अत्र **संहितायाम्** [अ०६.३.११४] इति दीर्घः। (**नरः**) नायकाः (**पवमानाय**) पवित्रकर्त्रे (**इन्दवे**) ऋजवे विद्यार्थिने (**अभि**) (**देवान्**) विदुषः (**इयक्षते**) यष्टुं सत्कर्त्तुमिच्छते। अत्र छान्दसो वर्णलोप इत्यभ्यासयकारलोपः॥६२॥

अन्वयः-हे नरो! यूयं देवानभीयक्षतेऽस्मै पवमानायेन्दव उपगायत॥६२॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा जिज्ञासवोऽध्यापकान् सन्तुष्टान् कर्त्तुमिच्छन्ति, तथाऽध्यापका अपि तानध्यापयितुमिच्छेयुः॥६२॥

पदार्थः-हे (**नरः**) नायक अध्यापकादि लोगो! तुम लोग (**देवान्**) विद्वानों को (**अभि**) सब ओर से (**इयक्षते**) सत्कार करना चाहते हुए (**अस्मै**) इस (**पवमानाय**) पवित्र करनेहारे (**इन्दवे**) कोमल विद्यार्थी के लिये (**उपगायत**) निकटस्थ हो के शास्त्रों को पढ़ाया करो॥६२॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे जिज्ञासु लोग अध्यापकों को सन्तुष्ट करना चाहते हैं, वैसे अध्यापक लोग भी उनको पढ़ाने की इच्छा रक्खा करें॥६२॥

ये त्वेत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः। इन्द्रो देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ राजधर्मविषयमाह॥

अब राजधर्म विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ये त्वाहिहत्ये मघवन्नवर्द्धन्ये शाम्बरे हरिवो ये गविष्टौ।

ये त्वा नूनमनुमदन्ति विप्राः पिबेन्द्र सोमꣳ सगणो मरुद्भिः॥६३॥

ये। त्वा। अहिहत्य इत्यहिऽहत्ये। मघवन्निति मघऽवन्। अवर्द्धन्। ये। शाम्बरे। हरिव इति हरिऽवः। ये। गविष्टाविति गोऽइष्टौ॥ ये। त्वा। नूनम्। अनुमदन्तीत्यनुमदन्ति। विप्राः। पिब। इन्द्र। सोमम्। सगण इति सऽगणः। मरुद्भिरिति मरुत्ऽभिः॥६३॥

पदार्थः-(**ये**) (**त्वा**) त्वाम् (**अहिहत्ये**) अहेर्मेघस्य हत्या हननं यस्मिँस्तस्मिन् (**मघवन्**) परमपूजितधनयुक्त सेनापते (**अवर्द्धन्**) वर्द्धयेयुः (**ये**) (**शाम्बरे**) शम्बरस्य मेघस्याऽयं सङ्ग्रामस्तस्मिन् (**हरिवः**) प्रशस्ता हरयः किरणा इवाऽश्वा विद्यन्ते यस्य तत्सम्बुद्धौ (**ये**) (**गविष्टौ**) गवां किरणानां सङ्गत्याम् (**ये**) (**त्वा**) त्वाम् (**नूनम्**) निश्चितम् (**अनुमदन्ति**) आनकूल्येन हृष्यन्ति (**विप्राः**) मेधाविनः (**पिब**) (**इन्द्र**) परमैश्वर्य्ययुक्त विद्वन् (**सोमम्**) सदौषधिरसम् (**सगणः**) गणैः सह वर्त्तमानः (**मरुद्भिः**) वायुभिरिव मनुष्यैः॥६३॥

अन्वयः-हे मघवन्! ये विप्रा अहिहत्ये गविष्ठौ सूर्यमिव त्वावर्द्धन्। हे हरिवो ये शाम्बरे विद्युतमिव त्वावर्धन्, ये नूनं त्वामनुमदन्ति, ये त्वां रक्षन्ति। हे इन्द्र! तैर्मरुद्भिः सह सगणः सूर्यो रसमिव मनुष्यैः सह सोमं पिब॥६३॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा मेघसूर्यसङ्ग्रामे सूर्यस्यैव विजयो जायते तथा मूर्खाणां विदुषाञ्च संग्रामे विदुषामेव विजयो भवति॥६३॥

पदार्थः-हे **(मघवन्)** उत्तम पूजित धनवाले सेनापति! **(ये)** जो **(विप्राः)** बुद्धिमान् लोग **(अहिहत्ये)** जहां मेघ का काटना और **(गविष्ठौ)** किरणों की संगति हो, उस संग्राम में जैसे किरणें सूर्य के तेज को वैसे **(त्वा)** आपको **(अवर्द्धन्)** उत्साहित करें। हे **(हरिवः)** प्रशंसित किरणों के तुल्य चिलकते घोड़ोंवाले शूरवीर जन! **(ये)** जो लोग **(शाम्बरे)** मेघ-सूर्य के संग्राम में बिजुली के तुल्य **(त्वा)** आपको बढ़ावें **(ये)** जो **(नूनम्)** निश्चय कर आपकी **(अनुमदन्ति)** अनूकूलता से आनन्दित होते हैं और **(ये)** जो आपकी रक्षा करते हैं। हे **(इन्द्र)** उत्तम ऐश्वर्यवाले जन! **(मरुद्भिः)** जैसे वायु के **(सगणः)** गण के साथ सूर्य रस को ग्रहण करे, वैसे रस को ग्रहण करे, वैसे मनुष्यों के साथ **(सोमम्)** श्रेष्ठ ओषधि रस को **(पिब)** पीजिये॥६३॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे मेघ और सूर्य के संग्राम में सूर्य का ही विजय होता है, वैसे मूर्ख और विद्वानों के संग्राम में विद्वानों का ही विजय होता है॥६३॥

जनिष्ठा इत्यस्य गौरीवितिर्ऋषिः। इन्द्रो देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः। स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

जनिष्ठाऽउग्रः सहसे तुराय मन्द्रऽओजिष्ठो बहुलाभिमानः।
अवर्द्धन्निन्द्रं मरुतश्चिदत्र माता यद्वीरं दधनद्धनिष्ठा॥६४॥

जनिष्ठाः। उग्रः। सहसे। तुराय। मन्द्रः। ओजिष्ठः। बहुलाभिमान इति बहुलऽअभिमानः॥ अवर्द्धन्। इन्द्रम्। मरुतः। चित्। अत्र। माता। यत्। वीरम्। दधनत्। धनिष्ठा॥६४॥

पदार्थः-**(जनिष्ठाः)** जनयेः। अत्र लुङ्यडभावः। **(उग्रः)** तेजस्विस्वभावः **(सहसे)** बलाय **(तुराय)** शीघ्रत्वाय **(मन्द्रः)** स्तुत आनन्दप्रदः **(ओजिष्ठः)** अतिशयेन ओजस्वी **(बहुलाभिमानः)** बहुलो बहुविधोऽभिमानो यस्य सः **(अवर्द्धन्)** **(इन्द्रम्)** सूर्य्यम् **(मरुतः)** वायवः **(चित्)** इव **(अत्र)** अस्मिन् राज्यपालनव्यवहारे **(माता)** जननी **(यत्)** यम् **(वीरम्)** शौर्यादिगुणयुक्तं पुत्रम् **(दधनत्)** अपोषयत्। अनकारागमश्छान्दसः। **(धनिष्ठा)** अतिशयेन धनिनी॥६४॥

अन्वयः-हे राजन्! धनिष्ठा माता यद्वीरं दधनदिन्द्रं मरुतश्चिदिव सभ्या यं त्वामवर्धयन्त्स त्वमत्र सहसे तुराय उग्रो मन्द्र ओजिष्ठो बहुलाभिमानः सन् सुखं जनिष्ठाः॥६४॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। यः स्वयं ब्रह्मचर्य्येण शरीरात्मबलयुक्तो विद्वान् स दुष्टान् प्रत्युग्रः कठिनस्वभावः श्रेष्ठे सोऽन्यस्वभावः सन् बहुसुसभ्यावृतो धर्मात्मा भूत्वा न्यायविनयाभ्यां राज्य पालयेत्, स सर्वतोऽभिवर्द्धेत॥६४॥

पदार्थः-हे राजन्! **(धनिष्ठा)** अत्यन्त धनवती **(माता)** **(यत्)** जिस **(वीरम्)** शूरतादि गुणयुक्त आप पुत्र को **(दधनत्)** पुष्ट करती रही और **(चित्)** जैसे **(इन्द्रम्)** सूर्य्य को **(मरुतः)** वायु बढ़ावे, वैसे सभासद् लोग जिस आपको **(अवर्द्धन्)** योग्यतादि से बढ़ावें सो आप **(अत्र)** इस राज्यपालनरूप व्यवहार में **(सहसे)** बल और **(तुराय)** शीघ्रता के लिये **(उग्रः)** तेजस्वि स्वभाववाले **(मन्द्रः)** स्तुति प्रशंसा को प्राप्त आनन्ददाता **(ओजिष्ठः)** अतिशय पराक्रमी और **(बहुलाभिमानः)** अनेक प्रकार के पदार्थों के अभिमानवाले हुए सुख को **(जनिष्ठाः)** उत्पन्न कीजिये॥६४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो स्वयं ब्रह्मचर्य से शरीरात्मबलयुक्त विद्वान् हुआ दुष्टों के प्रति कठिन स्वभाववाला, श्रेष्ठ के विषय **(में)** भिन्न स्वभाववाला होता हुआ बहुत उत्तम सभ्यों से युक्त धर्मात्मा हुआ न्याय और विनय से राज्य की रक्षा करे, वह सब ओर से बढ़े॥६४॥

आ तू न इत्यस्य वामदेव ऋषिः। इन्द्रो देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आ तू न॑ऽइन्द्र वृत्रहन्न॒स्माक॑म॒र्द्धमा ग॑हि।

म॒हान् म॒हीभि॑रू॒तिभिः॑॥६५॥

आ। तु। न॒ः। इ॒न्द्र॒। वृ॒त्र॒ह॒न्निति॑ वृत्रऽहन्। अ॒स्माक॑म्। अ॒र्द्धम्। आ। ग॒हि॒। म॒हान्। म॒हीभिः॑। ऊ॒तिभि॒रित्यू॒तिऽभिः॑॥६५॥

पदार्थः-**(आ)** समन्तात् **(तु)** क्षिप्रम्। अत्र **ऋचि तुनु०** [अ०६.३.१३३] इति दीर्घः। **(नः)** अस्मान् **(इन्द्र)** परमैश्वर्यवन् **(वृत्रहन्)** शत्रूणां विनाशक **(अस्माकम्)** **(अर्द्धम्)** वर्धनम् **(आ)** **(गहि)** प्राप्नुहि **(महान्)** पूजनीयतमः **(महीभिः)** महतीभिः **(ऊतिभिः)** रक्षादिभिः॥६५॥

अन्वयः-हे वृत्रहन्निन्द्र! त्वमस्माकमर्द्धमागहि महान् सन्महीभिरूतिभिर्नोऽस्मान् त्वाऽऽदधनत्॥६५॥

भावार्थः-अत्र पूर्वस्मान्मन्त्राद् दधनदिति पदमनुवर्तते। हे राजन्! यथा भवानस्माकं रक्षकोऽस्ति, तथा वयमपि भवन्तं वर्द्धयेम्। सर्वे वयं प्रीत्या मिलित्वा दुष्टान् निवार्य्य श्रेष्ठान् धनाढ्यान् कुर्य्याम॥६५॥

पदार्थः-हे **(वृत्रहन्)** शत्रुओं के विनाशक **(इन्द्र)** उत्तम ऐश्वर्यवाले राजन्! आप **(अस्माकम्)** हम लोगों की **(अर्द्धम्)** वृद्धि उन्नति को **(आ, गहि)** अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये और **(महान्)** अत्यन्त पूजनीय हुए **(महीभिः)** बड़ी **(ऊतिभिः)** रक्षादि क्रियाओं से **(नः)** हमको **(तु, आ, दधनत्)** शीघ्र अच्छे प्रकार पुष्ट कीजिये॥६५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र से **(दधनत्)** इस पद की अनुवृति आती है। हे राजन्! जैसे आप हमारे रक्षक और वर्द्धक हैं, वैसे हम लोग भी आपको बढ़ावें, सब हम लोग प्रीति से मिल के दुष्टों को निवृत्त करके श्रेष्ठों को धनाढ्य करें॥६५॥

त्वमिन्द्रेत्यस्य नृमेध ऋषिः। इन्द्रो देवता। भुरिगनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

त्वमि॑न्द्र प्र॒तूर्त्ति॑ष्व॒भि विश्वा॑ऽअसि॒ स्पृध॑ः।

अ॒श॒स्ति॒हा ज॑नि॒ता वि॑श्व॒तूर॑सि॒ त्वं तू॑र्य्य तरु॒ष्य॒तः॥६६॥

त्वम्। इ॒न्द्र॒। प्र॒तूर्त्ति॒ष्विति॑ प्र॒ऽतूर्त्ति॑षु। अ॒भि। विश्वा॑ः। अ॒सि॒। स्पृध॑ः॥ अ॒श॒स्ति॒हेत्य॑ऽशस्ति॒हा। ज॒नि॒ता। वि॒श्व॒तूरिति॑ विश्व॒ऽतूः। अ॒सि॒। त्वम्। तू॒र्य॒। त॒रु॒ष्य॒तः॥६६॥

पदार्थः-**(त्वम्)** **(इन्द्र)** परमैश्वर्य्यप्रद **(प्रतूर्त्तिषु)** हननकर्मसु सङ्ग्रामेषु **(अभि)** **(विश्वा)** सर्वाः **(असि)** भवसि **(स्पृधः)** स्पर्द्धमाना ईर्ष्यायुक्ताः शत्रुसेनाः **(अशस्तिहा)** अप्रशंसानां दुष्टानां हन्ता **(जनिता)** सुखानि प्रादुर्भावुकः **(विश्वतूः)** विश्वान् शत्रून् तूर्यति हिनस्ति सः **(असि)** **(त्वम्)** **(तूर्य)** हिन्धि **(तरुष्यतः)** हनिष्यतः शत्रून्॥६६॥

अन्वयः-हे इन्द्र! यतस्त्वं प्रतूर्त्तिषु विश्वा स्पृधोऽभ्यसि। अशस्तिहा जनिता विश्वतूस्सँस्त्वं विजयवानसि। तस्मात् तरुष्यतस्तूर्य्य॥६६॥

भावार्थः-ये पुरुषा अधर्म्यकर्मनिवर्त्तकाः सुखानां जनका युद्धविद्यासु कुशलाः स्युस्ते शत्रून् विजेतुं शक्नुयुः॥६६॥

पदार्थः-हे **(इन्द्र)** उत्तम ऐश्वर्य देनेवाले राजन्! जिस कारण **(त्वम्)** आप **(प्रतूर्तिषु)** जिसमें मारना होता उन संग्रामों में **(विश्वाः)** शुत्रुओं की सब **(स्पृधः)** ईर्ष्यायुक्त सेनाओं को **(अभि, असि)** तिरस्कार करते हो तथा **(अशस्तिहा)** जिनकी कोई प्रशंसा न करे, उन दुष्टों के हन्ता **(जनिता)** सुखों

के उत्पन्न करनेहारे **(विश्वतूः)** सब शत्रुओं को मारनेवाले हुए **(त्वम्)** आप विजयवाले **(असि)** हो, इससे **(तरुष्यतः)** हनन करनेवाले शत्रुओं को **(तूर्य्य)** मारिये॥६६॥

भावार्थः-जो राजपुरुष अधर्म्मयुक्त कर्मों के निवर्त्तक, सुखों के उत्पादक और युद्धविद्या में कुशल हों, वे शत्रुओं को जीतने को समर्थ हों॥६६॥

अनु ते शुष्ममित्यस्य नृमेध ऋषिः। इन्द्रो देवता। पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अनु॑ ते॒ शुष्मं॑ तु॒रय॑न्तमीयतुः क्षो॒णी शिशुं॒ न मा॒तरा॑।
विश्वा॑स्ते॒ स्पृधः॑ श्नथयन्त म॒न्यवे॑ वृ॒त्रं यदि॑न्द्र॒ तूर्व॑सि ॥६७॥

अनु॑। ते॒। शुष्म॑म्। तु॒रय॑न्तम्। ई॒य॒तुः॒। क्षो॒णीऽइति॑ क्षो॒णी। शिशु॑म्। न। मा॒तरा॑॥ विश्वाः॑। ते॒। स्पृधः॑। श्न॒थ॒य॒न्त॒। म॒न्यवे॑। वृ॒त्रम्। यत्। इ॒न्द्र॒। तूर्व॑सि॥६७॥

पदार्थः-**(अनु)** **(ते)** तव **(शुष्मम्)** शत्रूणां शोषकं बलम् **(तुरयन्तम्)** हिंसन्तम् **(ईयतुः)** गच्छतः **(क्षोणी)** स्वपरभूमी। **क्षोणीति पृथिवीनामसु पठितम्॥** (निघं०१।१) **(शिशुम्)** बालकम् **(न)** इव **(मातरा)** मातापितरौ **(विश्वाः)** अखिलाः **(ते)** तव **(स्पृधः)** अरिसेनाः **(श्नथयन्तः)** श्नथयन्ति हता भवन्ति। अत्राडभावः। **(मन्यवे)** क्रोधात्। पञ्चम्यर्थे चतुर्थी। **(वृत्रम्)** न्यायावरकं शत्रुम् **(यत्)** यम् **(इन्द्र)** शत्रुविदारक **(तूर्वसि)** हिनस्ति॥६७॥

अन्वयः-हे इन्द्र! यस्य ते तुरयन्तं शुष्मं शिशुं मातरा न क्षोणी अन्वीयतुस्तस्य ते मन्यवे विश्वाः स्पृधः श्नथयन्त यद्यं वृत्रं शत्रुं त्वं तूर्वसि स पराजितो भवति॥६७॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। येषां राजपुरुषाणां हृष्टाः पुष्टा युद्धं प्रतिजानानाः सेनाः स्युस्ते सर्वत्र विजयमाप्नुयुः॥६७॥

पदार्थः-हे **(इन्द्र)** शत्रुओं के नाशक राजन्! जिस **(ते)** आपके **(तुरयन्तम्)** शत्रुओं को मारते हुए **(शुष्मम्)** शत्रुओं को सुखानेहारे बल को **(शिशुम्)** बालक को **(मातरा)** माता-पिता **(न)** के समान **(क्षोणी)** अपनी पराई भूमि **(अनु, ईयतुः,)** अनुकूल प्राप्त होती उस **(ते)** आपके **(मन्यवे)** क्रोध से **(विश्वाः, स्पृधः)** सब शत्रुओं की ईर्ष्या करनेहारी सेना **(श्नथयन्त)** नष्ट-भ्रष्ट मारी जाती हैं **(यत्)** जिस **(वृत्रम्)** न्याय के निरोधक शत्रु को आप **(तूर्वसि)** मारते हो, वह पराजित हो जाता है॥६७॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जिन राजपुरुषों की हृष्ट-पुष्ट युद्ध की प्रतिज्ञा करती हुई सेना हो, वे सर्वत्र विजय को प्राप्त होवें॥६७॥

यज्ञ इत्यस्य कुत्स ऋषिः। आदित्या देवताः। स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

य॒ज्ञो दे॒वाना॒ं प्रत्ये॑ति सु॒म्नमादि॑त्यासो॒ भव॑ता मृडय॒न्त॑ः।

आ वो॒ऽर्वाची॑ सुम॒तिर्व॑वृत्याद॒ꣳहोश्चि॒द्या व॑रिवो॒वित्त॒रास॑त्॥६८॥

य॒ज्ञः। दे॒वाना॑म्। प्रति॑। ए॒ति॒। सु॒म्नम्। आदि॑त्यासः। भव॑त। मृ॒डय॒न्त॑ः॥ आ। व॒ः। अ॒र्वाची॑। सु॒म॒तिरिति॑ सुऽम॒तिः। व॒वृ॒त्या॒त्। अ॒ꣳहोः। चि॒त्। या। व॒रि॒वो॒वित्त॒रेति॑ वरिवो॒वित्ऽतरा॑। अस॑त्॥६८॥

पदार्थः-(**यज्ञः**) सङ्गन्तव्यः सङ्ग्रामादिव्यवहारः (**देवानाम्**) विदुषाम् (**प्रति**) (**एति**) प्राप्नोति (**सुम्नम्**) सुखं कर्त्तुम् (**आदित्यासः**) सूर्यवत्तेजस्विनः (**भवत**) अत्र **संहितायाम्** [अ०६.३.११४] इति दीर्घः। (**मृडयन्तः**) सुखयन्तः (**आ**) (**वः**) युष्माकम् (**अर्वाची**) अस्मदभिमुखी (**सुमतिः**) शोभना प्रज्ञा (**ववृत्यात्**) आवर्त्तताम्। वृतु धातोर्लिङि विकरणात्मनेपदं व्यत्ययेन श्लुर्द्वित्वं च। (**अंहोः**) अपराधिनः (**चित्**) अपि (**या**) (**वरिवोवित्तरा**) यातिशयेन परिचरणलब्ध्री (**असत्**) स्यात्॥६८॥

अन्वयः-हे आदित्यासः पूर्णविद्या यूयं यथा देवानां यज्ञो सुम्नं प्रत्येति तथा मृडयन्तो भवत। यथा वो वरिवोवित्तराऽर्वाची सुमतिराववृत्यादंहोश्चित् तथा सुखकारी असत्॥६८॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यस्य देशस्य मध्ये पूर्णविद्या राजकर्मकराः स्युस्तत्र सर्वेषामेका मतिर्भूत्वा सुखमत्यन्तं वर्धेत॥६८॥

पदार्थः-हे (**आदित्यासः**) सूर्यवत् तेजस्वी पूर्णविद्यावाले लोगो! जैसे (**देवानाम्**) विद्वानों का (**यज्ञः**) संगति के योग्य संग्रामादि व्यवहार (**सुम्नम्**) सुख करने को (**प्रत्येति**) उलटा प्राप्त होता है, वैसे (**मृडयन्तः**) सुखी करनेवाले (**भवत**) होवो। जैसे (**वः**) तुम्हारी (**वरिवोवित्तरा**) अत्यन्त सेवा को प्राप्त (**अर्वाची**) हमारे अनुकूल (**सुमतिः**) उत्तम बुद्धि (**आ, ववृत्यात्**) अच्छे प्रकार वर्त्ते (**अंहोः**) अपराधी की (**चित्**) भी वैसे सुख करनेवाली हमारे अनुकूल बुद्धि (**असत्**) होवे॥६८॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जिस देश में पूर्ण विद्यावाले राजकर्मचारी हों, वहां सबकी एकमति होकर अत्यन्त सुख बढ़े॥६८॥

अदब्धेभिरित्यस्य भरद्वाज ऋषिः। सविता देवता। निचृज्जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अद॑ब्धेभिः सवितः पा॒युभि॒ष्ट्वꣳ शि॒वेभि॑र॒द्य परि॑ पाहि नो॒ गय॑म्।

हिरण्यजिह्वः सुविताय नव्यसे रक्षा माकिर्नोऽअघशꣳसऽ ईशत॥६९॥

अदब्धेभिः। सवितरिति सवितः। पायुभिरिति पायुभिः। त्वम्। शिवेभिः। अद्य। परि। पाहि। नः। गयम्॥ हिरण्यजिह्व इति हिरण्यऽजिह्वः। सुविताय। नव्यसे। रक्ष। माकिः नः। अघशंसः। ईशत॥६९॥

पदार्थः-(**अदब्धेभिः**) अहिंसितैः (**सवितः**) अनेकपदार्थोत्पादक तेजस्विन् विद्वन् राजन्! (**पायुभिः**) रक्षणैः (**त्वम्**) (**शिवेभिः**) कल्याणकारकैः (**अद्य**) (**परि**) (**पाहि**) रक्ष (**नः**) अस्माकम् (**गयम्**) प्रशंसनीयमपत्यं धनं गृहं वा। **गय इत्यपत्यनाम॥** (निघं०२।२) **धननाम॥** (निघं०२।१०) **गृहनाम च॥** (निघं०३।४) (**हिरण्यजिह्वः**) हिरण्यं हितरमणीया जिह्वा वाग् यस्य सः। **हितरमणम्भवतीति वा हृदयरमणम्भवतीति वा॥** (निरु०२।१०) **जिह्वेतिवाङ्नामसु पठितम्॥** (निघं०१।११) (**सुविताय**) ऐश्वर्याय (**नव्यसे**) अतिशयेन नवीनाय (**रक्ष**) अत्र **द्व्यचोऽतस्तिङः** [अ०६.३.१३५] इति दीर्घः। (**माकिः**) निषेधे (**नः**) अस्मान् (**अघशंसः**) अघस्य पापस्य स्तोता चोरः (**ईशत**) समर्थो भवेत्॥६९॥

अन्वयः-हे सवितस्त्वमदब्धेभिः शिवेभिः पायुभिरद्य नो गयं परिपाहि, हिरण्यजिह्वः सन् नव्यसे सुविताय नो रक्ष, यतोऽघशंसो नो माकिरीशत॥६९॥

भावार्थः-प्रजाजनै राजपुरुषा एवं सम्बोधनीया यूयमस्माकमपत्यधनगृहादीनां पदार्थानां रक्षणेन नवीनं नवीनमैश्वर्यं प्रापय्यास्मभ्यं पीडाप्रदान् दूरे रक्षत॥६९॥

पदार्थः-हे (**सवितः**) अनेक पदार्थों के उत्पादक तेजस्वि विद्वन् राजन्! (**त्वम्**) आप (**अदब्धेभिः**) अहिंसित (**शिवेभिः**) कल्याणकारी (**पायुभिः**) रक्षाओं से (**अद्य**) आज (**नः**) हमारे (**गयम्**) प्रशंसा के योग्य सन्तान, धन और घर की (**परि, पाहि**) सब ओर से रक्षा कीजिये (**हिरण्यजिह्वः**) सबके हित में रमण करने योग्य वाणीवाले हुए आप (**नव्यसे**) अत्यन्त नवीन (**सुविताय**) ऐश्वर्य के लिये (**नः**) हमारी (**रक्ष**) रक्षा कीजिये, जिससे (**अघशंसः**) पाप की प्रशंसा करनेवाला दुष्ट चोर हम पर (**माकिः**) न (**ईशत्**) समर्थ होवे॥६९॥

भावार्थः-प्रजाजनों को राजपुरुषों से ऐसा सम्बोधन करना चाहिये कि तुम लोग हमारे सन्तान, धन, घर और पदार्थों की रक्षा से नवीन ऐश्वर्य को प्राप्त करा के हमको पीड़ा देने हारे दुष्टों से दूर रक्खो॥६९॥

प्र वीरयेत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। वायुर्देवता। विराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प्र वीरया शुचयो दद्रिरे वामध्वर्युभिर्मधुमन्तः सुतासः।

वह॑ वायो नि॒युतो॑ या॒ह्यच्छा॒ पिबा॑ सु॒तस्यान्ध॑सो॒ मदा॑य॥७०॥

प्र। वी॒र॒येति॑ वीर॒ऽया। शुच॑यः। द॒द्रि॒रे॒। वा॒म्। अ॒ध्व॒र्युभि॒रित्य॑ध्व॒र्युऽभिः॑। मधु॑मन्त॒ इति॒ मधु॑मन्तः। सु॒तास॑ः। वह॑। वा॒योऽइति॑ वायो। नि॒युत॒ इति॑ नि॒ऽयुत॑ः। या॒हि॒। अच्छ॑। पिब॑। सु॒तस्य॑। अन्ध॑सः। मदा॑य॥७०॥

पदार्थः-(**प्र**) (**वीरया**) वीरयुक्तया (**शुचयः**) पवित्राः (**दद्रिरे**) विदीर्णान् कुर्वन्ति। व्यत्ययेनात्रात्मनेपदम्। (**वाम्**) युवयोः राजप्रजाजनयोः (**अध्वर्युभिः**) हिंसाऽन्यायवर्जितैः सह (**मधुमन्तः**) प्रशस्तविज्ञानयुक्ताः (**सुतासः**) विद्यासुशिक्षाभ्यां निष्पन्नाः (**वह**) प्रापय (**वायो**) वायुवद्वर्त्तमान बलिष्ठ राजन्! (**नियुतः**) नितरां मिश्रितामिश्रितान् वाय्वादिगुणान् (**याहि**) प्राप्नुहि (**अच्छ**) सम्यक्। अत्र **निपातस्य च** [अ०६.३.१३६] इति दीर्घः। (**पिब**) अत्र **द्व्यचोऽतस्तिङः** [अ०६.३.१३५] इति दीर्घः। (**सुतस्य**) निष्पन्नस्य (**अन्धसः**) अन्नस्य (**मदाय**) आनन्दाय॥७०॥

अन्वयः-हे राजप्रजाजनौ! ये वां मधुमन्तः सुतासः शुचयो जना अध्वर्युभिः वीरया सेनया शत्रून् प्र दद्रिरे तैः सह हे वायो! त्वं नियुतः वह अच्छ याहि मदाय सुतस्यान्धसो रसं च पिब॥७०॥

भावार्थः-ये पवित्राचरणा राजप्रजाभक्ता विज्ञानवन्तो वीरसेनया शत्रून् विदृणन्ति तान् प्राप्य राजाऽऽनन्दितो भवेत्। यथा स्वस्मा आनन्दमिच्छेत् तथा राजप्रजाजनेभ्योऽपि काङ्क्षेत॥७०॥

पदार्थः-हे राजा प्रजा जनो! जो (**वाम्**) तुम दोनों के (**मधुमन्तः**) प्रशंसित ज्ञानयुक्त (**सुतासः**) विद्या और उत्तम शिक्षा से सिद्ध किये गये (**शुचयः**) पवित्र मनुष्य (**अध्वर्युभिः**) हिंसा और अन्याय से पृथक् रहने वाले के साथ (**वीरया**) वीर पुरुषों से युक्त सेना में शत्रुओं को (**प्र, दद्रिरे**) अच्छे प्रकार विदीर्ण करते हैं, उनके साथ हे (**वायो**) वायु के सदृश वर्त्तमान बलिष्ठ राजन्! आप (**नियुतः**) निरन्तर संयुक्त-वियुक्त होनेवाले वायु आदि गुणों को (**वह**) प्राप्त कीजिये। और (**अच्छा, याहि**) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये तथा (**मदाय**) आनन्द के लिये (**सुतस्य**) सिद्ध किये हुए (**अन्धसः**) अन्न के रस को (**पिब**) पीजिये॥७०॥

भावार्थः-जो पवित्र आचरण करनेवाले राजप्रजा के हितैषी विज्ञानयुक्त पुरुष वीरों की सेना से शत्रुओं को विदीर्ण करते हैं, उनको प्राप्त होके राजा आनन्दित होवे। राजा जैसा अपने लिये आनन्द चाहे, वैसे राजप्रजाजनों के लिये भी चाहे॥७०॥

गाव इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। मित्रावरुणौ देवते। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अथ पृथिवीसूर्यौ कीदृशावित्याह॥

अब पृथिवी सूर्य कैसे हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

गाव॒ऽउपा॑वतताव॒तं म॒ही य॒ज्ञस्य॑ र॒प्सुदा॑।

उभा कर्णा हिरण्यया॥७१॥

गावः। उप। अवत। अवतम्। महीऽइति मही। यज्ञस्य। रप्सुदा॥ उभा। कर्णा। हिरण्यया॥७१॥

पदार्थः-(**गावः**) किरणाः (**उप**) (**अवत**) रक्षत (**अवतम्**) कूपम् (**मही**) द्यावापृथिव्यौ (**यज्ञस्य**) सङ्गतस्य संसारस्य (**रप्सुदा**) सुरूपप्रदे (**उभा**) उभे (**कर्णा**) कर्त्र्यौ। (**हिरण्यया**) ज्योतिष्प्रचुरे॥७१॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा रप्सुदा उभा कर्णा हिरण्यया मही यज्ञस्यावतमिव रक्षिके भवतो गावश्च रक्षकाः स्युस्तथैतान् यूयमुपावत॥७१॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा कृषीवलाः कूपोदकेन क्षेत्राण्यारामांश्च संरक्ष्य श्रीमन्तो भवन्ति तथा पृथिवीसूर्यौ सर्वेषां श्रीकारके भवतः॥७१॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे (**रप्सुदा**) सुन्दर रूप देनेवाले (**उभा**) दोनों (**कर्णा**) कार्यसाधक (**हिरण्यया**) ज्योतिःस्वरूप (**मही**) महत्परिमाणवाले सूर्य-पृथिवी (**यज्ञस्य**) संगत संसार के (**अवतम्**) कूप के तुल्य रक्षा करनेवाले होते और (**गावः**) किरण भी रक्षक होवें, वैसे इनकी तुम लोग (**उप, अवत**) रक्षा करो॥७१॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे किसान लोग कूप के जल से खेतों और वाटिकाओं की सम्यक् रक्षा कर धनवान् होते, वैसे पृथिवी-सूर्य सबके धनकारक होते हैं॥७१॥

काव्ययोरित्यस्य दक्ष ऋषिः। विद्वान् देवता। निचृद् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अथाऽध्यापकोपदेशकविषयमाह॥

अब अध्यापक और उपदेशक के विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

काव्ययोराजानेषु क्रत्वा दक्षस्य दुरोणे।

रिशादसा सधस्थऽआ॥७२॥

काव्ययोः। आजानेष्वित्याऽजानेषु। क्रत्वा। दक्षस्य। दुरोणे। रिशादसा। सधस्थ इति सधऽस्थे। आ॥७२॥

पदार्थः-(**काव्ययोः**) कविभिर्विद्वद्भिर्निर्मितयोर्व्यवहारपरमार्थप्रतिपादकयोर्ग्रन्थयोः (**आजानेषु**) समन्ताज्जायन्ते विद्वांसो यैस्तेषु पठनपाठनादिव्यवहारेषु (**क्रत्वा**) प्रज्ञया कर्मणा वा (**दक्षस्य**) कुशलस्य जनस्य (**दुरोणे**) गृहे (**रिशादसा**) अविद्यादिदोषनाशकावध्यापकोपदेशकौ (**सधस्थे**) सह तिष्ठन्ति यत्र (**आ**) समन्तात्॥७२॥

अन्वयः-हे रिशादसा! काव्ययोराजानेषु क्रत्वा दक्षस्य सधस्थे दुरोणे युवामागच्छतम्॥७२॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यावध्यापकोपदेशकौ राजप्रजाजनान् प्राज्ञान् बलयुक्तानरोगान् परस्परस्मिन् प्रीतिमतो धर्मात्मनः पुरुषार्थिनः संपादयेतां तौ पितृवत् सत्कर्तव्यौ स्तः॥७२॥

पदार्थः-हे **(रिशादसा)** अविद्यादि दोषों के नाशक अध्यापक उपदेशक लोगो! **(काव्ययोः)** कवि विद्वानों ने बनाये व्यवहार परमार्थ के प्रतिपादक ग्रन्थों के **(आजानेषु)** जिनसे विद्वान् होते उन पठन-पाठनादि व्यवहारों में **(क्रत्वा)** बुद्धि से वा कर्म करके **(दक्षस्य)** कुशल पुरुष के **(सधस्थे)** जिसमें साथ मिल कर बैठें, उस **(दुरोणे)** घर में तुम लोग **(आ)** आया करो॥७२॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जो अध्यापक तथा उपदेशक लोग राजा-प्रजा जनों को बुद्धिमान्, बलयुक्त, नीरोग, आपस में प्रीतिवाले, धर्मात्मा और पुरुषार्थी करें, वे पिता के तुल्य सत्कार करने योग्य हैं॥७२॥

दैव्यावित्यस्य दक्ष ऋषिः। अध्वर्यू देवते। निचृद् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अथ याननिर्माणविषयमाह॥

अब यान बनाने का विषय अगले मन्त्र में कहा है।

दैव्या॑वध्वर्यू॒ आ ग॑त॒ꣳ रथे॑न॒ सूर्य॑त्वचा।

मध्वा॑ य॒ज्ञꣳ सम॑ञ्जाथे। तं प्र॒त्नथा॑। अ॒यं वे॒नः॥७३॥

दैव्यौ॑। अ॒ध्व॒र्यू॒ऽइत्य॑ध्वर्यू। आ। ग॒त॒म्। रथे॑न। सूर्य॑त्व॒चेति॒ सूर्य॑ऽत्वचा॥ मध्वा॑। य॒ज्ञम्। सम्। अ॒ञ्जा॒थ॒ऽ इत्य॑ञ्जाथे॥७३॥

पदार्थः-**(दैव्यौ)** देवेषु विद्वत्सु कुशलौ **(अध्वर्यू)** आत्मनोऽध्वरमहिंसामिच्छन्तौ **(आ)** **(गतम्)** आगच्छतम् **(रथेन)** रमणहेतुना यानेन **(सूर्यत्वचा)** सूर्य इव प्रदीप्ता त्वग् यस्य तेन **(मध्वा)** मधुरभाषणेन **(यज्ञम्)** गमनाख्यं व्यवहारम् **(सम्)** **(अञ्जाथे)** प्रकटयतम्॥७३॥

अन्वयः-हे दैव्यावध्वर्यू! युवां सूर्यत्वचा रथेनागतमागत्य मध्वा यज्ञं समञ्जाथे॥७३॥

भावार्थः-मनुष्यैर्यानि भूजलान्तरिक्षगमकानि सुशोभितानि सूर्यवत् प्रकाशितानि यानानि निर्मातव्यानि तैरभीष्टाः कामाः साधनीयाः॥७३॥

पदार्थः-हे **(दैव्यौ)** विद्वानों में कुशल प्रवीण **(अध्वर्यू)** अपने आत्मा को अहिंसा धर्म चाहते हुए विद्वानो! तुम दोनों **(सूर्यत्वचा)** सूर्य के तुल्य कान्तिवाले **(रथेन)** आनन्द के हेतु यान से **(आ, गतम्)** आया करो और आकर **(मध्वा)** मधुर भाषण से **(यज्ञम्)** चलने रूप व्यवहार को **(सम्, अञ्जाथे)** सम्यक् प्रकट करो॥७३॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि पृथिवी, जल और अन्तरिक्ष में चलनेवाले उत्तम शोभायमान सूर्य के तुल्य प्रकाशित यानों को बनावें और उनसे अभीष्ट कामनाओं को सिद्ध करें॥७३॥

तिरश्चीन इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। सूर्यो देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ विद्युद्विषयमाह॥

अब बिजुली के विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

तिरश्चीनो वितंतो रश्मिरेषामधः स्विदासी३दुपरि स्विदासी३त्।
रेतोधाऽआसन् महिमानऽआसन्त्स्वधाऽअवस्तात् प्रयंतिः परस्तात्॥७४॥

तिरश्चीनः। वितंतऽइति विऽतंतः। रश्मिः। एषाम्। अधः। स्वित्। आसीत्। उपरि। स्वित्। आसीत्॥ रेतोधा इति रेतःऽधाः। आसन्। महिमानः। आसन्। स्वधा। अवस्तात्। प्रयंतिरिति प्रऽयंतिः। परस्तात्॥७४॥

पदार्थः-(**तिरश्चीनः**) तिर्यग्गमनः (**विततः**) विस्तृतः (**रश्मिः**) किरणो दीप्तिः (**एषाम्**) विद्युत्सूर्यादीनाम् (**अधः**) अर्वाक् (**स्वित्**) अपि (**आसीत्**) अस्ति (**उपरि**) (**स्वित्**) (**आसीत्**) अस्ति (**रेतोधाः**) ये रेतो वीर्यं दधति ते (**आसन्**) सन्तु (**महिमानः**) पूज्यमानाः (**आसन्**) स्युः (**स्वधा**) ये स्वं दधति ते। अत्र विभक्तिलोपः। (**अवस्तात्**) अवरस्मात् (**प्रयतिः**) प्रयतनशीलं (**परस्तात्**) परस्मात्॥७४॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! एषां तिरश्चीनो विततो रश्मिरधः स्विदासीदुपरि स्विदासीदवस्तात् परस्ताच्च प्रयतिरस्ति तद्विज्ञानेन रेतोधा आसन् महिमानः स्वधा सन्तो भवन्त उपकारका आसन्॥७४॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यस्या विद्युतो दीप्तिरन्तस्था सती सर्वासु दिक्षु व्याप्ताऽस्ति, सैव दधातीति यूयं विजानीत॥७४॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! (**एषाम्**) इन विद्युत् और सूर्य आदि की (**तिरश्चीनः**) तिरछे गमनवाली (**विततः**) विस्तारयुक्त (**रश्मिः**) किरण वा दीप्ति (**अधः**) नीचे (**स्वित्**) भी (**आसीत्**) है (**उपरि**) ऊपर (**स्वित्**) भी (**आसीत्**) है तथा (**अवस्तात्**) इधर से और (**परस्तात्**) उधर से (**प्रयतिः**) प्रयतन वाली है, उसके विज्ञान से (**रेतोधाः**) पराक्रम को धारण करनेवाले (**आसन्**) हों तथा (**महिमानः**) पूज्य और (**स्वधा**) अपने धनादि पदार्थ के धारक होते हुए आप लोग उपकारी (**आसन्**) हूजिये॥७४॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जिस बिजुली की दीप्ति सबके भीतर रहती हुई सब दिशाओं में व्याप्त है, वही सबको धारण करती है, ऐसा तुम लोग जानो॥७४॥

आ रोदसीत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः। विद्वान् देवता। निचृज्जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आ रोद॑सीऽअपृणदा स्व॑र्महज्जातं यदे॑नमपसोऽअधा॑रयन्।
सोऽअ॑ध्वराय परि॑ णीयते कविरत्यो न वाज॑सातये चनो॑हितः॥७५॥

आ। रोद॑सीऽइति रोद॑सी। अपृणत्। आ। स्वः॑। महत्। जातम्। यत्। एनम्। अपसः॑। अधा॑रयन्॥ सः। अध्वराय॑। परि॑। नीयते। कविः। अत्यः॑। न। वाज॑सातयेऽइति वाज॑ऽसातये। चनो॑हितऽइति चनः॑ऽहितः॥७५॥

पदार्थः-(**आ**) समन्तात् (**रोदसी**) द्यावापृथिव्यौ (**अपृणत्**) पृणाति व्याप्नोति (**आ**) (**स्वः**) अन्तरिक्षम् (**महत्**) (**जातम्**) (**यत्**) (**एनम्**) (**अपसः**) कर्माणि (**अधारयन्**) धारयन्ति (**सः**) (**अध्वराय**) अहिंसाख्याय शिल्पमयाय यज्ञाय (**परि**) सर्वतः (**नीयते**) प्राप्यते (**कविः**) शब्दहेतुः (**अत्यः**) योऽतति व्याप्नोत्यध्वानं सोऽश्वः (**न**) इव (**वाजसातये**) वाजस्य वेगस्य संभजनाय (**चनोहितः**) चनसे पृथिव्याद्यन्नाय हितकारी। **चन इत्यन्ननाम।** (निरु०६।१६)॥७५॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यद्यो विद्युद्रूपोऽग्नी रोदसी महज्जातं स्वश्चाऽऽपृणदेनमपस आधारयन् यश्च कविरध्वराय वाजसातये चात्यो न विद्वद्भिः परिणीयते स चनोहितोऽस्तीति यूयं विजानीत॥७५॥

भावार्थः-मनुष्यैरनेकविधैर्विज्ञानकर्मभिर्विद्युद्विद्यां लब्ध्वा भूम्यादिषु व्याप्तो विभाजकश्च साधितः सन् यानादीनां सद्यो गमयिताऽग्निः कार्येषूपयोक्तव्यः॥७५॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! (**यत्**) जो विद्युत् रूप अग्नि (**रोदसी**) सूर्य-पृथिवी और (**महत्**) महान् (**जातम्**) प्रसिद्ध (**स्वः**) अन्तरिक्ष को (**आ, अपृणत्**) अच्छे प्रकार व्याप्त होता (**एनम्**) इस अग्नि को (**अपसः**) कर्म (**आ, अधारयन्**) अच्छे प्रकार धारण करते तथा जो (**कविः**) शब्द होने का हेतु अग्नि (**अध्वराय**) अहिंसा नामक शिल्पविद्या रूप यज्ञ के तथा (**वाजसातये**) वेग के सम्यक् सेवन के लिये (**अत्यः**) मार्ग को व्याप्त होनेवाले घोड़े के (**नः**) समान विद्वानों ने (**परि, नीयते**) प्राप्त किया है, (**सः**) वह (**चनोहितः**) पृथिवी आदि अन्न के लिये हितकारी है, ऐसा तुम लोग जानो॥७५॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि अनेक प्रकार के विज्ञान और कर्मों से बिजुली रूप अग्नि की विद्या को प्राप्त हो, भूमि आदि में व्याप्त विभागकर्ता साधन किया हुआ यान आदि को शीघ्र पहुँचानेवाले अग्नि को कार्यों में उपयुक्त करें॥७५॥

उक्थेभिरित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। इन्द्राग्नी देवते। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

कीदृशा जनाः सत्कारार्हाः स्युरित्याह॥

कैसे मनुष्य सत्कार के योग्य हों, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उक्थेभिर्वृत्रहन्तमा या मन्दाना चिदा गिरा।

आङ्गूषैराविवासतः॥७६॥

उक्थेभिः। वृत्रहन्तमेति वृत्रहन्ऽतमा। या। मन्दाना। चित्। आ। गिरा॥ आङ्गूषैः। आविवासत इत्याविवासतः॥७६॥

पदार्थः-(**उक्थेभिः**) प्रशंसनीयैः स्तुतिसाधकैर्वेदविभागैर्मन्त्रैः (**वृत्रहन्तमा**) अतिशयेन वृत्राणामावरकाणां पापिनां हन्तारौ (**या**) यौ (**मन्दाना**) आनन्दप्रदौ। अत्र सर्वत्र विभक्तेर्डादेशः। (**चित्**) इव (**आ**) समन्तात् (**गिरा**) वाण्या (**आङ्गूषैः**) समन्ताद् घोषैः (**आविवासतः**) समन्तात् परिचरतः॥७६॥

अन्वयः-या मन्दाना वृत्रहन्तमा सभासेनाध्यक्षौ चिदिव गिरा आङ्गूषैरुक्थेभिश्च शिल्पविज्ञानमाविवासत-स्तावध्यापकोपदेशकौ मनुष्यैरासेवनीयौ॥७६॥

भावार्थः-ये मनुष्याः सभासेनाध्यक्षवद्विद्यादिकार्यसाधकाः सूपदेशैः सर्वान् विदुषः संपादयन्तः प्रवृत्ताः स्युस्त एव सर्वैः सत्कर्त्तव्या भवेयुः॥७६॥

पदार्थः-(**या**) जो (**मन्दाना**) आनन्द देनेवाले (**वृत्रहन्तमा**) धर्म का निरोध करनेहारे पापियों के नाशक सभा सेनापति के (**चित्**) समान (**गिरा**) वाणी (**आङ्गूषैः**) अच्छे घोष और (**उक्थेभिः**) प्रशंसा योग्य स्तुतियों के साधक वेद के भागरूप मन्त्रों से शिल्प विज्ञान का (**आविवासतः**) अच्छे प्रकार सेवन करते हैं, उन अध्यापक उपदेशकों की मनुष्यों को (**आ**) अच्छे प्रकार सेवा करनी चाहिये॥७६॥

भावार्थः-जो मनुष्य सभा सेनाध्यक्ष के तुल्य विद्यादि कार्य्यों के साधक सुन्दर उपदेशों से सबको विद्वान् करते हुए प्रवृत्त हों, वे ही सबको सत्कार करने योग्य हों॥७६॥

उप न इत्यस्य सुहोत्रऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। निचृद् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अथ पितरौ स्वसन्तानान् प्रति किं कुर्यातामित्याह॥

अब माता-पिता अपने सन्तानों के प्रति क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उप नः सूनवो गिरः शृण्वन्त्वमृतस्य ये।

सुमृडीका भवन्तु नः॥७७॥

उप। नः। सूनवः। गिरः। शृण्वन्तु। अमृतस्य। ये॥ सुमृडीका इति सुऽमृडीका भवन्तु। नः॥७७॥

पदार्थः-(**उप**) (**नः**) अस्माकम् (**सूनवः**) अपत्यानि (**गिरः**) (**शृण्वन्तु**) (**अमृतस्य**) नाशरहितस्य परमेश्वरस्य नित्यस्य वेदस्य वा (**ये**) (**सुमृडीकाः**) सुष्ठु सुखकराः (**भवन्तु**) (**नः**) अस्मभ्यम्॥७७॥

अन्वयः-ये नः सूनवोऽमृतस्य गिर उपशृण्वन्तु ते नस्सुमृडीका भवन्तु॥७७॥

भावार्थः-यदि मातापितरौ स्वपुत्रान् कन्याश्च ब्रह्मचर्येण वेदविद्यया सुशिक्षया च युक्तान् कृत्वा शरीरात्मबलवतः कुर्यातां तर्हि तेभ्योऽत्यन्तसुखकरौ स्याताम्॥७७॥

पदार्थः-(**ये**) जो (**नः**) हमारे (**सूनवः**) सन्तान (**अमृतस्य**) नाशरहित परमेश्वर के सम्बन्ध की वा नित्य वेद की (**गिरः**) वाणियों को (**उप, शृण्वन्तु**) अध्यापकादि के निकट सुनें वे (**नः**) हमारे लिये (**सुमृडीकाः**) उत्तम सुख करनेहारे (**भवन्तु**) होवें॥७७॥

भावार्थः-जो माता-पिता अपने पुत्रों और कन्याओं को ब्रह्मचर्य के साथ वेदविद्या और उत्तम शिक्षा से युक्त कर शरीर और आत्मा के बलवाले करें तो उन सन्तानों के लिये अत्यन्त हितकारी हों॥७७॥

ब्रह्माणीत्यस्य अगस्त्य ऋषिः। इन्द्रामरुतौ देवते। विराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनर्विद्वांसः किं कुर्युरित्याह॥

फिर विद्वान् लोग क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ब्रह्मा॑णि मे म॒तय॒: शꣳसु॒तास॒: शुष्म॑ऽइयर्त्ति॒ प्रभृ॑तो मे॒ऽअद्रि॑:।

आ शा॑सते॒ प्रति॑ हर्य्यन्त्यु॒क्थेमा हरी॑ वहत॒स्ता नो॒ऽअच्छ॑॥७८॥

ब्रह्मा॑णि। मे॒। म॒तय॑:। शम्। सु॒तास॑:। शुष्म॑:। इ॒य॒र्त्ति॒। प्रभृ॑त॒ इति॒ प्रऽभृ॑तः। मे॒। अद्रि॑:॥ आ। शा॒स॒ते॒। प्रति॑। ह॒र्य्य॒न्ति॒। उ॒क्था। इ॒मा। हरी॒ऽइति॒ हरी॑। व॒ह॒त॒:। ता। न॒:। अच्छ॑॥७८॥

पदार्थः-(**ब्रह्माणि**) धनानि (**मे**) मह्यम् (**मतयः**) मेधाविनः। **मतय इति मेधाविनाम॥** (निघं०३।१५) (**शम्**) सुखम् (**सुतासः**) विद्यासुशिक्षाभ्यां निष्पन्ना ऐश्वर्यवन्तः (**शुष्मः**) बलकरः (**इयर्त्ति**) अर्पयति। अत्रान्तर्गतो णिच्। (**प्रभृतः**) प्रकर्षेण हवनादिना पोषितः (**मे**) मह्यम् (**अद्रिः**) मेघः (**आ**) (**शासते**) आशां कुर्वन्ति। (**प्रति**) (**हर्यन्ति**) कामयन्ते (**उक्था**) प्रशंसनीयानि वेदवचांसि (**इमा**) इमानि (**हरी**) हरणशीलावध्यापकाऽध्येतारौ (**वहतः**) प्रापयतः (**ता**) तानि (**नः**) अस्मभ्यम् (**अच्छ**)॥७८॥

अन्वयः-सुतासो मतयो मे यानि ब्रह्माणि प्रति हर्य्यन्ति इमोक्थाऽऽशासते शुष्मः प्रभृतोऽद्रिर्मे यत् शमियर्त्ति ता तानि नोऽस्मभ्यं हर्य्यच्छ वहतः॥७८॥

भावार्थः-हे विद्वांसो! येन कर्मणा विद्यामेधोन्नतिः स्यात् तत्कुरुत ये युष्मद्विद्यासुशिक्षे कामयन्ते तान् प्रीत्या प्रयच्छत ये भवद्भ्योऽधिकास्तेभ्यो यूयं विद्यां गृह्णीत॥७८॥

पदार्थः-(**सुतासः**) विद्या और सुन्दर शिक्षा से युक्त ऐश्वर्यवाले (**मतयः**) बुद्धिमान् लोग (**मे**) मेरे लिये जिन (**ब्रह्माणि**) धनों की (**प्रति, हर्यन्ति**) प्रतीति से कामना करते और (**इमा**) इन (**उक्था**) प्रशंसा के योग्य वेदवचनों की (**आ, शासते**) अभिलाषा करते हैं और (**शुष्मः**) बलकारी (**प्रभृतः**) अच्छे प्रकार हवनादि से पुष्ट किया (**अद्रिः**) मेघ (**मे**) मेरे लिये जिस (**शम्**) सुख को (**इयर्त्ति**) पहुंचाता (**ता**) उनको (**नः**) हमारे लिये (**हरी**) हरणशील अध्यापक और अध्येता (**अच्छा, वहतः**) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हैं॥७८॥

भावार्थः-हे विद्वानों! जिस कर्म से विद्या और मेघ की उन्नति हो उसकी क्रिया करो। जो लोग तुमसे विद्या और सुशिक्षा चाहते हैं, उनको प्रीति से देओ और जो आपसे अधिक विद्यावाले हों, उनसे तुम विद्या ग्रहण करो॥७८॥

अनुत्तमित्यस्य अगस्त्य ऋषिः। इन्द्रो देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथेश्वरविषयमाह॥

अब ईश्वर विषय को अगले मन्त्र मे कहा है॥

अनुत्तमा ते मघवन्नकिर्नु न त्वावाँ२ऽअस्ति देवता विदानः।

न जायमानो नशते न जातो यानि करिष्या कृणुहि प्रवृद्ध॥७९॥

अनुत्तम्। आ। ते। मघवन्निति मघऽवन्। नकिः। नु। न। त्वावानिति त्वाऽवान्। अस्ति। देवता विदानः॥ न। जायमानः। नशते। न। जातः। यानि। करिष्या। कृणुहि। प्रवृद्धेति प्रऽवृद्ध॥७९॥

पदार्थः-(**अनुत्तम्**) अप्रेरितम्। **नसत्तनिषत्तानुत्त०॥** (अष्टा०८।२।६१) इति निपातनम्। (**आ**) स्मरणे (**ते**) (**मघवन्**) बहुधनयुक्त! (**नकिः**) आकाङ्क्षायाम् (**नु**) सद्यः (**न**) (**त्वावान्**) त्वया सदृशः (**अस्ति**) (**देवता**) देव एव देवता। स्वार्थे तल्। (**विदानः**) विद्वान् (**न**) (**जायमानः**) उत्पद्यमानः (**नशते**) व्याप्नोति। **नशदिति व्याप्तिकर्मा॥** (निघं०२।१९) (**न**) (**जातः**) उत्पन्नः (**यानि**) जगदुत्पत्त्यादिकर्माणि (**करिष्या**) करिष्यसि। सिज्लोपो दीर्घश्चात्र छान्दसः। (**कृणुहि**) करोषि। लडर्थे लोट्। (**प्रवृद्ध**)॥७९॥

अन्वयः-हे प्रवृद्ध मघवन्नीश्वर! यस्य तेऽनुत्तं स्वरूपमस्ति न कोपि त्वावान् देवता विदानो न्वस्ति भवान् न जायमानोऽस्ति न जातोऽस्ति यानि करिष्या कृणुहि च तानि कश्चिन्नकिरानशते स त्वं सर्वोपास्योऽसि॥७९॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यः परमेश्वरोऽखिलैश्वर्योऽसदृशोऽनन्तविद्यो नोत्पद्यते नोत्पन्नो नोत्पत्स्यते सर्वेभ्यो महानस्ति तमेव यूयं सततमुपासीत॥७९॥

पदार्थः-हे **(प्रवृद्ध)** सबसे श्रेष्ठ सर्वपूज्य **(मघवन्)** बहुत धनवाले ईश्वर जिस **(ते)** आपका **(अनुत्तम्)** अप्रेरित स्वरूप है **(त्वावान्)** आपके सदृश **(देवता)** पूज्य इष्टदेव **(विदानः)** विद्वान् **(नु)** निश्चय से कोई **(न)** नहीं **(अस्ति)** है, आप **(जायमानः)** उत्पन्न होनेवाले **(न)** नहीं और **(जातः)** उत्पन्न हुए भी **(न)** नहीं हैं, **(यानि)** जिन जगत् की उत्पत्ति आदि कर्मों को **(करिष्या)** करोगे तथा **(कृणहि)** करते हो, उनको कोई भी **(नकिः)** नहीं **(आ, नशते)** स्मरणशक्ति से व्याप्त होता, सो आप सबके उपास्य देव हो॥७९॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जो परमेश्वर समस्त ऐश्वर्यवाला किसी के सदृश नहीं, अनन्त विद्यायुक्त, न उत्पन्न होता, न हुआ, न होगा और सबसे बड़ा, उसी की तुम लोग निरन्तर उपासना करो॥७९॥

तदित्यस्य बृहद्दिव ऋषिः। महेन्द्रो देवता। पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

तदिदा॑स॒ भुव॑नेषु॒ ज्येष्ठं॒ यतो॑ ज॒ज्ञऽ उ॒ग्रस्त्वे॒षनृ॑म्णः।

स॒द्यो ज॑ज्ञा॒नो निरि॑णाति॒ शत्रू॒ननु॒ यं विश्वे॒ मद॒न्त्यूमाः॑॥८०॥

तत्। इत्। आ॒स॒। भुव॑नेषु। ज्येष्ठ॑म्। यतः॑। ज॒ज्ञे। उ॒ग्रः। त्वे॒षनृ॑म्ण॒ इति॑ त्वे॒षऽनृ॑म्णः॥ स॒द्यः। ज॒ज्ञा॒नः। निरि॑णाति। शत्रू॑न्। अनु॑। यम्। विश्वे॑। मद॑न्ति। ऊमाः॑॥८०॥

पदार्थः-**(तत्)** **(इत्)** **(आस)** अस्ति। अत्र **छन्दस्युभयथा** [अ०३.४.११७] इति लिट आर्द्धधातुकसंज्ञाभावः। **(भुवनेषु)** लोकलोकान्तरेषु **(ज्येष्ठम्)** वृद्धं श्रेष्ठम् **(यतः)** यस्मात् **(जज्ञे)** **(उग्रः)** तीक्ष्णस्वभावः **(त्वेषनृम्णः)** त्वेषं सुप्रकाशितं नृम्णं धनं यस्य सः **(सद्यः)** **(जज्ञानः)** जायमानः **(निरिणाति)** हिनस्ति **(शत्रून्)** **(अनु)** **(यम्)** **(विश्वे)** सर्वे **(मदन्ति)** हृष्यन्ति **(ऊमाः)** रक्षादिकर्मकर्त्तारः॥८०॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यत उग्रस्त्वेषनृम्णो वीरो जज्ञे यो जज्ञानः शत्रून् सद्यो निरिणाति विश्वा ऊमा यमनुमदन्ति तदिदेव ब्रह्म भुवनेषु ज्येष्ठमासेति विजानीत॥८०॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यस्योपासनाच्छूरा वीरत्वमुपलभ्य शत्रून् हन्तुं शक्नुवन्ति, यमुपास्य विद्वांस आनन्दिता भूत्वा सर्वानानन्दयन्ति, तमेव सर्वोत्कृष्टं सर्वोपास्यं परमेश्वरं सर्वे निश्चिन्वन्तु॥८०॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! **(यतः)** जिससे **(उग्रः)** तेज स्वभाववाला **(त्वेषनृम्णः)** सुन्दर प्रकाशित धन से युक्त वीर पुरुष **(जज्ञे)** उत्पन्न हुआ, जो **(जज्ञानः)** उत्पन्न हुआ **(शत्रून्)** शत्रुओं को **(सद्यः)** शीघ्र **(निरिणाति)** निरन्तर मारता है, **(विश्वे)** सब **(ऊमाः)** रक्षादि कर्म करनेवाले लोग **(यम्)** जिसके **(अनु)** पीछे **(मदन्ति)** आनन्द करते हैं, **(तत्, इत्)** वही ब्रह्म परमात्मा **(भुवनेषु)** लोक-लोकान्तरों में **(ज्येष्ठम्)** सबसे बड़ा, मान्य और श्रेष्ठ **(आस)** है, ऐसा तुम जानो॥८०॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जिसकी उपासना से शूरवीरता को प्राप्त हो शत्रुओं को मार सकते हैं, जिसकी उपासना कर विद्वान् लोग आनन्दित होके सबको आनन्दित करते हैं, उसी सबसे उत्कृष्ट सबके उपास्य परमेश्वर का सब लोग निश्चय करें॥८०॥

इमा इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। निचृद् बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

इमाऽउ त्वा पुरूवसो गिरो वर्द्धन्तु या मम।

पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत॥८१॥

इमाः। ऊँऽइत्यूँ। त्वा। पुरूवसो। पुरुवसो इति पुरुऽवसो। गिरः। वर्द्धन्तु। याः। मम॥ पावकवर्णा इति पावकऽवर्णाः। शुचयः। विपश्चित इति विपःऽचितः। अभि। स्तोमैः। अनूषत॥८१॥

पदार्थः-**(इमाः)** वक्ष्यमाणाः (उ) निश्चयार्थे **(त्वा)** त्वाम् **(पुरूवसो)** पुरुष बहुषु वासकर्त्तः **(गिरः)** वाचः **(वर्द्धन्तु)** वर्धयन्तु **(याः)** **(मम)** **(पावकवर्णाः)** पावकवत् पवित्रो गौरो वर्णो येषान्ते ब्रह्मवर्चस्विनः **(शुचयः)** पवित्रीभूताः **(विपश्चितः)** विद्वांसः **(अभि)** **(स्तोमैः)** पदार्थविद्याप्रशंसनैः **(अनूषत)** प्रशंसन्तु॥८१॥

अन्वयः-हे पुरूवसो परमात्मन्! या इमा मम गिरस्त्वा उ वर्द्धन्तु ताः प्राप्य पावकवर्णाः शुचयो विपश्चित स्तोमैरभ्यनूषत॥८१॥

भावार्थः-मनुष्यैः सदैवेश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनाभिस्तदस्तित्वप्रतिपादनेनाऽभ्याससत्यभाषणाभ्याञ्च स्ववाचः शुद्धाः संपाद्य विद्वांसो भूत्वा सर्वाः पदार्थविद्याः प्राप्तव्याः॥८१॥

पदार्थः-हे **(पुरूवसो)** बहुत पदार्थों में वास करनेहारे परमात्मन्! **(याः)** जो **(इमाः)** ये **(मम)** मेरी **(गिरः)** वाणी **(त्वा)** आपको (उ) निश्चय कर **(वर्द्धन्तु)** बढ़ावें, उनको प्राप्त होके **(पावकवर्णाः)** अग्नि के तुल्य वर्णवाले तेजस्वी **(शुचयः)** पवित्र हुए **(विपश्चितः)** विद्वान् लोग **(स्तोमैः)** पदार्थविद्याओं की प्रशंसाओं से **(अभि, अनूषत)** सब ओर से प्रशंसा करें॥८१॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि सदैव ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना, उस ईश्वर की सत्ता के प्रतिपादन तथा अभ्यास और सत्यभाषण से अपनी वाणियों को शुद्ध कर विद्वान् होके सब पदार्थविद्याओं को प्राप्त होवें॥८१॥

यस्येत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। निचृद् बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

अथ राजधर्म्मविषयमाह॥

अब राजधर्म विषय को कहते हैं॥

यस्यायं विश्वऽआर्यो दासः शेवधिपाऽअरिः।

तिरश्चिदर्य्ये रुशमे पवीरवि तुभ्येत्सोऽअज्यते रयिः॥८२॥

यस्य। अयम्। विश्वः। आर्य्यः। दासः। शेवधिपा इति शेवधिऽपाः। अरिः॥ तिरः। चित्। अर्य्ये। रुशमे। पवीरवि। तुभ्य। इत्। सः। अज्यते। रयिः॥८२॥

पदार्थः-(**यस्य**) (**अयम्**) (**विश्वः**) सर्वः (**आर्य्यः**) धर्म्यगुणकर्मस्वभावः (**दासः**) सेवकः (**शेवधिपाः**) यः शेवधिं निधिं पाति रक्षति धर्मादिकार्य्ये करे च न व्येति स शेवधिपा। **निधिः शेवधिरिति यास्कः॥** (निरु०२।४) (**अरिः**) शत्रुः (**तिरः**) अन्तर्धानं गतः (**चित्**) अपि (**अर्य्ये**) धनस्वामिनि वैश्यादौ (**रुशमे**) हिंसके (**पवीरवि**) यो धनादिरक्षायै पवीरं शस्त्रं वाति प्राप्नोति तस्मिन् (**तुभ्य**) तुभ्यम्। अत्र वा छान्दसो वर्णलोपः (**इत्**) एव (**सः**) (**अज्यते**) प्राप्यते (**रयिः**) धनमिव॥८२॥

अन्वयः-हे राजन्! यस्य तवायं विश्व आर्य्यो दासः शेवधिपा अरिः पवीरवि रुशमेऽर्य्ये तिरश्चित् तुभ्येत्स त्वं रयिरज्यते॥८२॥

भावार्थः-यस्य राज्ञः सर्व आर्य्या राज्यरक्षकाः सेवकाः सन्ति, धनादिकरस्यादाता च शत्रुस्तस्मादपि येन भवता धनादिकरो गृह्यते स सर्वोत्तमश्रीः स्यात्॥८२॥

पदार्थः-हे राजन्! (**यस्य**) जिस आपको (**अयम्**) यह (**विश्वः**) सब (**आर्य्यः**) धर्मयुक्त गुण, कर्म स्वभाववाला पुरुष (**दासः**) सेवकवत् आज्ञाकारी (**शेवधिपाः**) धरोहर धन का रक्षक अर्थात् धर्मादि कार्य वा राजकर देने में व्यय करनेहारा जन (**अरिः**) और शत्रु (**पवीरवि**) धनादि की रक्षा के लिये शस्त्र को प्राप्त होनेवाला (**रुशमे**) हिंसक व्यवहार वा (**अर्य्ये**) धनस्वामी वैश्य आदि के निमित्त (**तिरः**) छिपनेवाला (**चित्**) भी (**तुभ्य**) आपके लिये (**इत्**) निश्चय से है (**सः**) वह आप (**रयिः**) धन के समान (**अज्यते**) प्राप्त होते हैं॥८२॥

भावार्थः-जिस राजा के सब आर्य राज्यरक्षक और आज्ञापालक हैं, जो धनादि कर का अदाता शत्रु उससे भी जिन आपने धनादि कर ग्रहण किया, वे आप सबसे उत्तम शोभावाले हों॥८२॥

अयमित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। निचृत्सतः पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अयꣳ सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्रऽइव पप्रथे।

सत्यः सोऽअस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये॥८३॥

अयम्। सहस्रम्। ऋषिभिरित्यृषिऽभिः। सहस्कृतः। सहःकृत इति सहःऽकृतः। समुद्रःऽइवेति समुद्रःऽइव। पप्रथे॥ सत्यः। सः। अस्य। महिमा। गृणे। शवः। यज्ञेषु। विप्रराज्य इति विप्रऽराज्ये॥८३॥

पदार्थः-(**अयम्**) राजा (**सहस्रम्**) (**ऋषिभिः**) वेदार्थविद्भिः (**सहस्कृतः**) सहसा बलेन निष्पन्नः (**समुद्र इव**) सागर इवाऽन्तरिक्षमिव वा (**पप्रथे**) भवति (**सत्यः**) सत्सु व्यवहारेषु विद्वत्सु वा साधुः (**सः**) (**अस्य**) (**महिमा**) माहात्म्यम् (**गृणे**) स्तौमि (**शवः**) बलम् (**यज्ञेषु**) सङ्गतेषु राजकर्मसु (**विप्रराज्ये**) विप्राणां मेधाविनां राज्ये राष्ट्रे॥८३॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यद्ययं सभेशो राजा राजर्षिभिः सह सहस्रमसङ्ख्यं ज्ञानं प्राप्तः सहस्कृतः सत्योऽस्त्यस्य महिमा समुद्र इव पप्रथे, तर्हि स प्रजाजनोऽहमस्य यज्ञेष विप्रराज्ये च शवो गृणे॥८३॥

भावार्थः-ये राजादयो राजजना विद्वत्सङ्गप्रियाः साहसिनः सत्यगुणकर्मस्वभावा मेधाविराज्येऽधिकृताः सङ्गतानि न्यायविनययुक्तानि कर्माणि कुर्युस्तेषामाकाशमिव कीर्तिर्विस्तीर्णा भवति॥८३॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो (**अयम्**) यह सभापति राजा (**ऋषिभिः**) वेदार्थवेत्ता राजर्षियों के साथ (**सहस्रम्**) असंख्य प्रकार के ज्ञान को प्राप्त (**सहस्कृतः**) बल से संयुक्त (**सत्यः**) और श्रेष्ठ व्यवहारों वा विद्वानों में उत्तम चतुर है (**अस्य**) इसका (**महिमा**) महत्त्व (**समुद्रइव**) समुद्र वा अन्तरिक्ष के तुल्य (**पप्रथे**) प्रसिद्ध होता है तो (**सः**) वह पूर्वोक्त मैं प्रजाजन इस राजा के (**यज्ञेषु**) संगत राजकार्यों और (**विप्रराज्ये**) बुद्धिमानों के राज्य में (**शवः**) बल की (**गृणे**) स्तुति करता हूं॥८३॥

भावार्थः-जो राजादि राजपुरुष विद्वानों के सङ्ग में प्रीति करनेवाले, साहसी, सत्यगुण-कर्म-स्वभावों से युक्त बुद्धिमान् के राज्य में अधिकार को पाये हुए संगत, न्याय और विनय से युक्त कामों को करें, उनकी आकाश के सदृश कीर्ति विस्तार को प्राप्त होती है॥८३॥

अदब्धेभिरित्यस्य भरद्वाज ऋषिः। सविता देवता। निचृज्जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अदब्धेभिः सवितः पायुभिष्ट्वꣳ शिवेभिरद्य परि पाहि नो गयम्।
हिरण्यजिह्वः सुविताय नव्यसे रक्षा माकिर्नोऽअघशꣳसऽईशत॥८४॥

अदब्धेभिः। सवितरिति सवितः। पायुभिरिति पायुऽभिः। त्वम्। शिवेभिः। अद्य। परि। पाहि। नः। गयम्॥ हिरण्यजिह्व इति हिरण्यजिह्वः। सुविताय। नव्यसे। रक्ष। माकिः। नः। अघशंसः। ईशत॥८४॥

पदार्थः-(**अदब्धेभिः**) अहिंसनीयैः (**सवितः**) सकलैश्वर्ययुक्त (**पायुभिः**) विविधै रक्षणोपायैः (**त्वम्**) (**शिवेभिः**) मङ्गलकारकैः (**अद्य**) (**परि**) सर्वतः (**पाहि**) रक्ष (**नः**) अस्माकम् (**गयम्**) प्रजाम् (**हिरण्यजिह्वः**) हिरण्या हितरमणीया जिह्वा वाग्यस्य (**सुविताय**) ऐश्वर्याय (**नव्यसे**) अतिशयेन नवीनाय (**रक्ष**) पालय। अत्र **द्व्यचोऽतस्तिङः** [अ०६.३.१३५] इति दीर्घः। (**माकिः**) निषेधे (**नः**) अस्मान् (**अघशंसः**) दुष्टः स्तेनः (**ईशत**) समर्थो भवेत्॥८४॥

अन्वयः-हे सविता राजंस्त्वमद्याऽदब्धेभिः शिवेभिः पायुभिर्नो गयं परिपाहि हिरण्यजिह्वः स नव्यसे सुविताय नोऽस्मान् रक्ष यतोऽघशंसोऽस्मदुपरि माकिरीशत॥८४॥

भावार्थः-राज्ञां योग्यताऽस्ति सर्वस्याः प्रजायाः सन्तानान् ब्रह्मचर्य्यविद्यादानस्वयंवरविवाहैर्दस्युभ्यो रक्षणेन चोन्नयेयुरिति॥८४॥

पदार्थः-हे (**सवितः**) समग्र ऐश्वर्य से युक्त राजन्! (**त्वम्**) आप (**अद्य**) आज (**अदब्धेभिः**) न बिगाड़ने योग्य (**शिवेभिः**) मङ्गलकारी (**पायुभिः**) अनेक प्रकार के रक्षा के उपायों से (**नः**) हमारी (**गयम्**) प्रजा की (**परि, पाहि**) सब ओर से रक्षा कीजिये (**हिरण्यजिह्वः**) सबके हित में रमण करने योग्य वाणी से युक्त हुए (**नव्यसे**) अतिशय कर नवीन (**सुविताय**) ऐश्वर्य के अर्थ (**नः**) हमारी (**रक्ष**) रक्षा कीजिये, जिससे (**अघशंसः**) दुष्ट चोर हम पर (**माकिः**) न (**ईशत**) समर्थ वा शासक हो॥८४॥

भावार्थः-राजाओं की योग्यता यह है कि सब प्रजा के सन्तानों की ब्रह्मचर्य, विद्यादान और स्वयंवर विवाह करा के और डाकुओं से रक्षा कर के उन्नति करें॥८४॥

आ नो इत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः। वायुर्देवता। विराड् बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आ नो यज्ञं दिविस्पृशं वायो याहि सुमन्मभिः।
अन्तः पवित्रऽउपरि श्रीणानोऽयꣳ शुक्रोऽअयामि ते॥८५॥

आ। नः। यज्ञम्। दिविस्पृशमिति दिविऽस्पृशम्। वायोऽइति वायो। याहि। सुमन्मभिरिति सुमन्मऽभिः॥ अन्तरित्यन्तः। पवित्रे। उपरि। श्रीणानः। अयम्। शुक्रः। अयामि। ते॥८५॥

पदार्थः-(**आ**) समन्तात् (**नः**) अस्माकम् (**यज्ञम्**) सङ्गतं व्यवहारम् (**दिविस्पृशम्**) विद्याप्रकाशयुक्तम् (**वायो**) वायुवद्वर्त्तमान (**याहि**) प्राप्नुहि (**सुमन्मभिः**) शोभनैर्विज्ञानैः (**अन्तः**) आभ्यन्तरे (**पवित्रः**) शुद्धात्मा (**उपरि**) उत्कर्षे (**श्रीणानः**) आश्रयं कुर्वाणः (**अयम्**) (**शुक्रः**) आशुकर्त्ता वीर्य्यवान् (**अयामि**) प्राप्नोमि (**ते**) तव॥८५॥

अन्वयः-हे वायो राजन्! यथाऽहमन्तः पवित्र उपरि श्रीणानोऽयं शुक्रः सन् सुमन्मभिस्ते दिविस्पृश यज्ञमयामि तथा त्वं नो दिविस्पृशं यज्ञमायाहि॥८५॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यादृशेन वर्त्तमानेन वृत्तेन राजा प्रजासु चेष्टेत तादृशेनैव भावेन प्रजा राजनि वर्त्तेत। एवमुभौ मिलित्वा सर्वं न्यायव्यवहारमलं कुर्याताम्॥८५॥

पदार्थः-हे (**वायो**) वायु के तुल्य वर्त्तमान राजन्! जैसे मैं (**अन्तः**) अन्तःकरण में (**पवित्रः**) शुद्धात्मा (**उपरि**) उन्नति में (**श्रीणानः**) आश्रय करता हुआ (**अयम्**) यह (**शुक्रः**) शीघ्रकारी पराक्रमी हुआ (**सुमन्मभिः**) सुन्दर विज्ञानों से (**ते**) आपके (**दिविस्पृशम्**) विद्याप्रकाशयुक्त (**यज्ञम्**) संगत व्यवहार को (**अयामि**) प्राप्त होता हूं, वैसे आप (**नः**) हमारे विद्याप्रकाशयुक्त उत्तम व्यवहार को (**आ, याहि**) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये॥८५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे वर्त्तमान वर्त्ताव से राजा प्रजाओं में चेष्टा करता है, वैसे ही भाव से प्रजा राजा के विषय में वर्त्ते। ऐसे दोनों मिल के सब न्याय के व्यवहार को पूर्ण करें॥८५॥

इन्द्रवायू इत्यस्य तापस ऋषिः। इन्द्रवायू देवते। निचृद्बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

इन्द्रवायू सुसन्दृशा सुहवेह हवामहे।
यथा नः सर्वऽइज्जनोऽनमीवः सङ्गमे सुमनाऽअसत्॥८६॥

इन्द्र॒वा॒यू इतीन्द्र॑ऽवा॒यू। सु॒स॒न्दृशेति॑ सु॒ऽस॒न्दृशा॑। सु॒हवेति॑ सु॒ऽहवा॑। इ॒ह। ह॒वा॒म॒हे॒॥ यथा॑। न॒:। सर्व॑:। इत्। जन॑:। अ॒न॒मी॒व:। स॒ङ्गम॒ इति॑ स॒म्ऽगमे॑। सु॒मना॒ इति॑ सु॒ऽमना॑:। अस॑त्॥८६॥

पदार्थ:-(**इन्द्रवायू**) राजप्रजाजनौ (**सुसन्दृशा**) सुष्ठु सम्यक् द्रष्टारौ (**सुहवा**) सुष्ठ्वाहवनीयौ (**इह**) (**हवामहे**) स्वीकुर्महे (**यथा**) (**न:**) अस्माकम् (**सर्व:**) (**इत्**) एव (**जन:**) (**अनमीव:**) अरोग: (**सङ्गमे**) सङ्ग्रामे समागमे वा। **सङ्गम इति संग्रामनामसु पठितम्॥** (निघं०२।१७) (**सुमना:**) प्रसन्नचित्त: (**असत्**) भवेत्॥८६॥

अन्वय:-वयं यौ सुसन्दृशा सुहवा इन्द्रवायू इह हवामहे यथा सङ्गमे नोऽनमीव: सुमना: सर्व इज्जनो असत् तथा तौ कुर्याताम्॥८६॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। तथैव राजप्रजाजना: प्रयतेरन् यथा सर्वे मनुष्यादय: प्राणिनोऽरोगा: प्रसन्नमनसो भूत्वा पुरुषार्थिन: स्यु:॥८६॥

पदार्थ:-हम लोग जिन (**सुसन्दृशा**) सुन्दर प्रकार से सम्यक् देखनेवाले (**सुहवा**) सुन्दर बुलाने योग्य (**इन्द्रवायू**) राजप्रजाजनों को (**इह**) इस जगत् में (**हवामहे**) स्वीकार करते हैं (**यथा**) जैसे (**सङ्गमे**) संग्राम वा समागम में (**न:**) हमारे (**सर्व:, इत्**) सभी (**जन:**) मनुष्य (**अनमीव:**) नीरोग (**सुमना:**) प्रसन्न चित्तवाले (**असत्**) होवें, वैसे किया करें॥८६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। वैसे ही राजप्रजा-पुरुष प्रयत्न करें, जैसे सब मनुष्य आदि प्राणी नीरोग प्रसन्न मनवाले होकर पुरुषार्थी हों॥८६॥

ऋधगित्यस्य जमदग्निर्ऋषि:। मित्रावरुणौ देवते। निचृद् बृहती छन्द:। मध्यम: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ऋध॑गि॒त्था स मर्त्य॑: शश॒मे दे॒वता॑तये।

यो नू॒नं मि॒त्रावरु॑णाव॒भिष्ट॑यऽआच॒क्रे ह॒व्यदा॑तये॥८७॥

ऋध॑क्। इ॒त्था। स:। मर्त्य॑:। श॒श॒मे। दे॒वता॑तय॒ इति॑ दे॒वऽता॑तये॥ य:। नू॒नम्। मि॒त्रावरु॑णौ। अ॒भिष्ट॑ये। आ॒च॒क्रे इत्या॑ऽच॒क्रे। ह॒व्यदा॑तय॒ इति॑ ह॒व्यऽदा॑तये॥८७॥

पदार्थ:-(**ऋधक्**) य: समृध्नोति स: (**इत्था**) अस्माद्धेतो: (**स:**) (**मर्त्य:**) मनुष्य: (**शशमे**) शाम्यति निरुपद्रवो भवति। अत्र एत्वाभ्यासलोपाभावश्छान्दस:। (**देवतातये**) देवेभ्यो विद्वद्भ्यो दिव्यगुणेभ्यो वा (**य:**) (**नूनम्**) निश्चितम्। (**मित्रावरुणौ**) प्राणोदानाविव राजप्रजाजनौ (**अभिष्टये**) अभीष्टसुखप्राप्तये (**आचक्रे**) सेवते। अत्र **गन्धनावक्षेपण॥** (अष्टा०१।३।३२) इति करोते: सेवनार्थ आत्मनेपदम्। (**हव्यदातये**) हव्यानामादातुमर्हाणामा-दानाय॥८७॥

अन्वय:-यो देवतातय ऋधग्मर्त्योऽभिष्टये हव्यदातये च मित्रावरुणौ नूनमाचक्रे स नर इत्था शशमे॥८७॥

भावार्थ:-ये शमदमादिगुणान्विता: राजप्रजाजना इष्टसुखसिद्धये प्रयतेरँस्तेऽवश्यं समृद्धिमन्तो भवेयु:॥८७॥

पदार्थ:-**(य:)** जो **(देवतातये)** विद्वानों वा दिव्यगुणों के लिये **(ऋधक्)** समृद्धिमान् **(मर्त्य:)** मनुष्य **(अभिष्टये)** अभीष्ट सुख की प्राप्ति के अर्थ तथा **(हव्यदातये)** ग्रहण करने योग्य पदार्थों की प्राप्ति के लिये **(मित्रावरुणौ)** प्राण और उदान के तुल्य राजा प्रजाजनों का **(नूनम्)** निश्चय **(आचक्रे)** सेवन करता **(स:)** वह जन **(इत्था)** इस उक्त हेतु से **(शशमे)** शान्त उपद्रवरहित होता है॥८७॥

भावार्थ:-जो शम-दम आदि गुणों से युक्त राजपुरुष और प्रजाजन इष्ट सुख को सिद्धि हेतु के लिये प्रयत्न करें, वे अवश्य समृद्धिमान् होवें॥८७॥

आ यातमित्यस्य वसिष्ठ ऋषि:। अश्विनौ देवते। निचृद् बृहती छन्द:। मध्यम: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आ यातमुप भूषतं मध्व: पिबतमश्विना।

दुग्धं पयो वृषणा जेन्यावसू मा नो मर्धिष्टमा गतम्॥८८॥

आ। यातम्। उप। भूषतम्। मध्व:। पिबतम्। अश्विना॥ दुग्धम्। पय:। वृषणा। जेन्यावसू इति जेन्याऽवसू। मा। न:। मर्धिष्टम्। आ। गतम्॥८८॥

पदार्थ:-**(आ) (यातम्)** प्राप्नुतम् **(उप) (भूषतम्)** अलं कुरुतम् **(मध्व:)** मधुरं वैद्यकशास्त्रसिद्धं रसम्। अत्र कर्मणि षष्ठी। **(पिबतम्) (अश्विना)** विद्यादिशुभगुणव्यापिनौ राजप्रजाजनौ **(दुग्धम्)** पूर्णं कुरुतम् **(पय:)** उदकम्। **पय इत्युदकनामसु पठितम्॥** (निघं०१।१२) **(वृषणा)** वीर्य्यवन्तौ **(जेन्यावसू)** यौ जेन्यान् जयशीलान् वासयतो यद्वा जेन्यं जेतव्यं जितं वा वसु धनं याभ्यां तौ **(मा) (न:)** अस्मान् **(मर्धिष्टम्)** हिंस्तम् **(आ) (गतम्)** समन्तात् प्राप्नुतम्॥८८॥

अन्वय:-हे वृषणा जेन्यावसू अश्विना! युवां सुखमायातं प्रजा उपभूषतं मध्व: पिबतं पयो दुग्धं नोऽस्मान् मा मर्धिष्टं धर्मेण विजयमागतम्॥८८॥

भावार्थ:-ये राजप्रजाजना: सर्वान् विद्यासुशिक्षाभ्यामलं कुर्य्यु:, सर्वत्र कुल्यादिद्वारा जलं गमयेयु:, श्रेष्ठान्न हिंसित्वा दुष्टान् हिंस्युस्ते विजेतार: सन्तोऽतुलां श्रियं प्राप्य सततं सुखं लभेरन्॥८८॥

पदार्थः-हे **(वृषणा)** पराक्रमवाले **(जेन्यावसू)** जयशीलजनों को बसानेवाले वा जीतने योग्य अथवा जीता है धन जिन्होंने ऐसे (अश्विना) विद्यादि शुभ गुणों में व्याप्त राजप्रजाजन तुम दोनों सुख को **(आ, यातम्)** अच्छे प्रकार प्राप्त होओ, प्रजाओं को **(उप, भूषतम्)** सुशोभित करो, **(मध्वः)** वैद्यकशास्त्र की रीति से सिद्ध किये मधुर रस को **(पिबतम्)** पीओ, **(पयः)** जल को **(दुग्धम्)** पूर्ण करो अर्थात् कोई जल विना दुःखी न रहे। **(नः)** हमको **(मा)** मत **(मर्धिष्टम्)** मारो और धर्म से विजय को **(आ, गतम्)** अच्छे प्रकार प्राप्त होओ॥८८॥

भावार्थः-जो राजप्रजाजन सबको विद्या और उत्तम शिक्षा से सुशोभित करें, सर्वत्र नहर आदि के द्वारा जल पहुंचावें, श्रेष्ठों को न मार के दुष्टों को मारें, वे जीतनेवाले हुए अतोल लक्ष्मी को पाकर निरन्तर सुख को प्राप्त होवें॥८८॥

प्रैत्वित्यस्य कण्व ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। भुरिगनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनर्मनुष्याः किं कुर्युरित्याह॥

फिर मनुष्य क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता।
अच्छा वीरं नर्य्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः॥८९॥

प्र। एतु। ब्रह्मणः। पतिः। प्र। देवी। एतु। सूनृता॥ अच्छ। वीरम्। नर्य्यम्। पङ्क्तिराधसमिति पङ्क्तिऽराधसम्। देवाः। यज्ञम्। नयन्तु। नः॥८९॥

पदार्थः-**(प्र) (एतु)** प्राप्नोतु **(ब्रह्मणस्पतिः)** धनस्य वेदस्य वा पालकः स्वामी **(प्र) (देवी)** शुभगुणैर्देदीप्यमाना **(एतु)** प्राप्नोतु **(सूनृता)** सत्यलक्षणोज्ज्वलिता वाक् **(अच्छ)** अत्र **निपातस्य च** [अ०६.३.१३६] इति दीर्घः। **(वीरम्) (नर्यम्)** नृषु साधुम् **(पङ्क्तिराधसम्)** पङ्क्तेः समूहस्य राधः संसिद्धिर्यस्मात् तम् **(देवाः)** विद्वांसः **(यज्ञम्)** सङ्गतधर्म्यं व्यवहारकर्त्तारम् **(नयन्तु)** प्रापयन्तु वा **(नः)** अस्मान्॥८९॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यूयं यथा नोऽस्मान् ब्रह्मणस्पतिः प्रैतु, सूनृता देवो प्रैतु, नर्य्यं पङ्क्तिराधसं यज्ञं वीरं देवा अच्छ नयन्तु तथा अस्मान् प्राप्नुत॥८९॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये विदुषः सत्यां वाचं सर्वोपकारान् वीरांश्च प्राप्नुयुस्ते सम्यक् सुखोन्नतिं कुर्य्युः॥८९॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम लोग जैसे **(नः)** हमको **(ब्रह्मणस्पतिः)** धन वा वेद का रक्षक अधिष्ठाता विद्वान् **(प्र, एतु)** प्राप्त होवे **(सूनृता)** सत्य लक्षणों से उज्ज्वल **(देवी)** शुभ गुणों से प्रकाशमान वाणी **(प्र, एतु)** प्राप्त हो **(नर्य्यम्)** मनुष्यों में उत्तम **(पङ्क्तिराधसम्)** समूह की सिद्धि

करनेहारे **(यज्ञम्)** सङ्गत धर्मयुक्त व्यवहारकर्त्ता **(वीरम्)** शूरवीर पुरुष को **(देवाः)** विद्वान् लोग **(अच्छ, नयन्तु)** अच्छे प्रकार प्राप्त करें, वैसे हमको प्राप्त होओ॥८९॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो लोग विद्वानों, सत्यवाणी और सर्वोपकारी वीर पुरुषों को प्राप्त हों, वे सम्यक् सुख की उन्नति करें॥८९॥

चन्द्रमा इत्यस्य त्रित ऋषिः। इन्द्रो देवता। निचृद् बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

चन्द्रमाऽअप्स्वन्तरा सुपर्णो धावते दिवि।
रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहꣳ हरिरेति कनिक्रदत्॥९०॥

चन्द्रमाः। अप्स्वित्यप्ऽसु। अन्तः। आ। सुपर्णःऽइति सुऽपर्णः। धावते। दिवि॥ रयिम्। पिशङ्गम्। बहुलम्। पुरुस्पृहमिति पुरुऽस्पृहम्। हरिः। एति। कनिक्रदत्॥९०॥

पदार्थः-**(चन्द्रमाः)** शैत्यकरः **(अप्सु)** व्याप्तेऽन्तरिक्षे **(अन्तः)** मध्ये **(आ)** **(सुपर्णः)** शोभनानि पर्णानि पतनानि यस्य सः **(धावते)** सद्यो गच्छति **(दिवि)** सूर्यप्रकाशे **(रयिम्)** श्रियम् **(पिशङ्गम्)** सुवर्णादिवद्वर्णयुतम् **(बहुलम्)** पुष्कलम् **(पुरुस्पृहम्)** बहुभिः स्पृहणीयम् **(हरिः)** अश्व इव **(एति)** गच्छति **(कनिक्रदत्)** भृशं शब्दयन्॥९०॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यूयं यथा सुपर्णश्चन्द्रमा कनिक्रदद्धरिरिव दिव्यप्स्वन्तराधावते पुरुस्पृहं बहुलं पिशङ्गं रयिं चैति तथा पुरुषार्थिनः सन्तोः वेगेन श्रियं प्राप्नुत॥९०॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे मनुष्याः! यथा सूर्य्येण प्रकाशिताश्चन्द्रलोका अन्तरिक्षे गच्छन्त्यागच्छन्ति यथोत्तमोऽश्व उच्चैः शब्दयन् सद्यो धावति तथाभूताः सन्तो यूयमतीवोत्तमामतुलां श्रियं प्राप्य सर्वान् सुखयत॥९०॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम लोग जैसे **(सुपर्णः)** सुन्दर चालों से युक्त **(चन्द्रमाः)** शीतकारी चन्द्रमा **(कनिक्रदत्)** शीघ्र शब्द करते हींसते हुए **(हरिः)** घोड़ों के तुल्य **(दिवि)** सूर्य के प्रकाश में **(अप्सु)** अन्तरिक्ष के **(अन्तः)** बीच **(आ, धावते)** अच्छे प्रकार शीघ्र चलता है और **(पुरुस्पृहम्)** बहुतों से चाहने योग्य **(बहुलम्)** बहुत **(पिशङ्गम्)** सुवर्णादि के तुल्य वर्णयुक्त **(रयिम्)** शोभा कान्ति को **(एति)** प्राप्त होता है, वैसे पुरुषार्थी हुए वेग से लक्ष्मी को प्राप्त होओ॥९०॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जैसे सूर्य से प्रकाशित चन्द्र आदि लोक अन्तरिक्ष में जाते-आते है, जैसे उत्तम घोड़ा ऊंचा शब्द करता हुआ शीघ्र भगता है, वैसे हुए तुम लोग अत्युत्तम अपूर्व शोभा को प्राप्त होके सबको सुखी करो॥९०॥

देवन्देवमित्यस्य मनुर्ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। विराट् बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुना राजर्धमविषयमाह॥

फिर राजधर्म विषय को कहा है॥

दे॒वन्दे॑वं॒ वोऽव॑से दे॒वन्दे॑वम॒भिष्ट॑ये।

दे॒वन्दे॑वꣳ हुवेम॒ वाज॑सातये गृ॒णन्तो॑ दे॒व्या धि॒या॥९१॥

दे॒वन्दे॑वमिति॑ दे॒व॒म्ऽदे॑वम्। व॒ः। अव॑से। दे॒वन्दे॑व॒मिति॑ दे॒वम्ऽदे॑वम्। अ॒भिष्ट॑ये॥ दे॒वन्दे॑वमिति॑ दे॒वम्ऽदे॑वम्। हु॒वे॒म॒। वाज॑सातय॒ इति॒ वाज॑ऽसातये। गृ॒णन्त॑ः। दे॒व्या। धि॒या॥९१॥

पदार्थः-(**देवन्देवम्**) विद्वांसं विद्वांसं दिव्यं दिव्यं पदार्थं वा (**वः**) युष्माकम् (**अवसे**) रक्षणाद्याय (**देवन्देवम्**) (**अभिष्टये**) इष्टसुखाय (**देवन्देवम्**) (**हुवेम**) आह्वयामः स्वीकुर्याम वा (**वाजसातये**) वाजानां वेगादीनां सम्भागाय (**गृणन्तः**) स्तुवन्तः (**देव्या**) देदीप्यमानया (**धिया**) प्रज्ञया कर्मणा वा॥९१॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! देव्या धिया गृणन्तो वयं यथा वोऽवसे देवन्देवं हुवेम वोऽभिष्टये देवन्देवं हुवेम वो वाजसातये च देवन्देवं हुवेम तथा यूयमप्येवमस्मभ्यं कुरुत॥९१॥

भावार्थः-ये राजपुरुषाः सर्वेषां प्राणिनां हिताय विदुषः सत्कृत्यैतैः सत्योपदेशान् प्रचार्य सृष्टिपदार्थान् विज्ञाय सर्वाभीष्टं संसाध्य सङ्ग्रामान् जयन्ति, ते दिव्यां कीर्तिं प्रज्ञाञ्च लभन्ते॥९१॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! (**देव्या**) प्रकाशमान (**धिया**) बुद्धि वा कर्म से (**गृणन्तः**) स्तुति करते हुए हम लोग जैसे (**वः**) तुम्हारे (**अवसे**) रक्षादि के लिये (**देवन्देवम्**) विद्वान्-विद्वान् वा उत्तम पदार्थ को (**हुवेम**) बुलावें वा ग्रहण करें तुम्हारे (**अभिष्टये**) अभीष्ट सुख के लिये (**देवन्देवम्**) विद्वान्-विद्वान् वा उत्तम प्रत्येक पदार्थ को तथा तुम्हारे (**वाजसातये**) वेगादि के सम्यक् सेवन के लिये (**देवन्देवम्**) विद्वान्-विद्वान् वा उत्तम प्रत्येक पदार्थ को बुलावें वा स्वीकार करें, वैसे तुम लोग भी ऐसा हमारे लिये करो॥९१॥

भावार्थः-जो राजपुरुष सब प्राणियों के हित के लिये विद्वानों का सत्कार कर इनसे सत्योपदेश का प्रचार करा सृष्टि के पदार्थों को जान और सब अभीष्ट सिद्ध कर संग्रामों को जीतते हैं, वे उत्तम कीर्ति और बुद्धि को प्राप्त होते हैं॥९१॥

दिवीत्यस्य मेध ऋषिः। वैश्वानरो देवता। निचृद् बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनर्विद्वांसः किं कुर्युरित्याह॥

फिर विद्वान् लोग क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

दि॒वि पृ॒ष्टोऽअ॑रोचता॒ग्निर्वै॑श्वा॒न॒रो बृ॒हन्।

क्षमया॑ वृधा॒नऽओज॑सा॒ चनो॑हितो॒ ज्योति॑षा बाधते॒ तम॑ः॥९२॥

दि॒वि। पृ॒ष्टः। अ॒रो॒च॒त॒। अ॒ग्निः। वै॒श्वा॒न॒रः। बृ॒हन्॥ क्षम॑या। वृ॒धा॒नः। ओज॑सा। चनो॑हित॒ इति॒ चन॑ःऽहितः। ज्योति॑षा। बा॒ध॒ते॒। तम॑ः॥९२॥

पदार्थः-(**दिवि**) प्रकाशे (**पृष्टः**) सिक्तः स्थितः (**अरोचत**) रोचते प्रकाशते (**अग्निः**) सूर्याख्यः (**वैश्वानरः**) विश्वेषां नराणां हितः (**बृहन्**) महान् (**क्षमया**) पृथिव्या सह। **क्ष्मेति पृथिवीनामसु पठितम्॥** (निघं०१।१) (**वृधानः**) वर्द्धमानः (**ओजसा**) बलेन (**चनोहितः**) ओषधिपाकसामर्थ्येन अन्नादीनां हितः (**ज्योतिषा**) स्वप्रकाशेन (**बाधते**) निवर्त्तयति (**तमः**) रात्र्यन्धकारम्। **तम इति रात्रिनामसु पठितम्॥** (निघं०१।७)॥९२॥

अन्वयः-हे विद्वांसो मनुष्याः! यथा दिवि पृष्टो वैश्वानरो क्ष्मया वृधान ओजसा बृहन् चनोहितोऽग्निर्ज्योतिषा तमो बाधतेऽरोचत च यथा श्रेष्ठैर्गुणैरविद्यान्धकारं निवर्त्य यूयमपि प्रकाशितकीर्त्तयो भवत॥९२॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये विद्वांसः सूर्यः तम इव दुष्टाचारमविद्यान्धकारं च निवर्त्य विद्यां प्रकाशयेयुस्ते सूर्य इव सर्वत्र प्रकाशितप्रशंसा भवेयुः॥९२॥

पदार्थः-हे विद्वान् मनुष्यो! जैसे (**दिवि**) आकाश में (**पृष्टः**) स्थित (**वैश्वानरः**) सब मनुष्यों का हितकारी (**क्ष्मया**) पृथिवी के साथ (**वृधानः**) बढ़ा हुआ (**ओजसा**) बल से (**बृहन्**) महान् (**चनोहितः**) ओषधियों को पकाने रूप सामर्थ्य से अन्नादि का धारण (**अग्निः**) सूर्यरूप अग्नि (**ज्योतिषा**) अपने प्रकाश से (**तमः**) रात्रिरूप अन्धकार को (**बाधते**) निवृत्त करता और (**अरोचत**) प्रकाशित होता है, वैसे उत्तम गुणों से अविद्यारूप अन्धकार को निवृत्त करके तुम लोग भी प्रकाशित कीर्तिवाले होओ॥९२॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो विद्वान् लोग सूर्य अन्धकार को जैसे, वैसे दुष्टाचार और अविद्यान्धकार को निवृत्त कर विद्या प्रकाशित करें, वे सूर्य के तुल्य सर्वत्र प्रकाशित प्रशंसा वाले हों॥९२॥

इन्द्राग्नीत्यस्य सुहोत्र ऋषिः। इन्द्राग्नी देवते। भुरिगनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथोषर्विषयमाह॥

अब उषा के विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

इन्द्रा॑ग्नीऽअ॒पादि॒यं पूर्वागा॑त् प॒द्वती॑भ्यः।
हि॒त्वी शिरो॑ जि॒ह्वया॒ वाव॑दु॒च्चर॑त् त्रि॒ꣳशत् प॒दा न्य॑क्रमीत्॥९३॥

इन्द्राग्नीऽइतीन्द्राग्नी। अपात्। इयम्। पूर्वा। आ। अगात्। पद्वतीभ्यःऽइति पत्ऽवतीभ्यः॥ हित्वी। शिरः। जिह्वया। वावदत्। चरत्। त्रिꣳशत्। पदा। नि। अक्रमीत्॥९३॥

पदार्थः-(**इन्द्राग्नी**) अध्यापकोपदेशकौ (**अपात्**) अविद्यमानौ पादौ यस्याः सा (**इयम्**) (**पूर्वा**) प्रथमा (**आ**) (**अगात्**) आगच्छति (**पद्वतीभ्यः**) बहवः पादा यासु प्रजासु ताभ्यः सुप्ताभ्यः प्रजाभ्यः (**हित्वी**) हित्वा त्यक्त्वा (**शिरः**) उत्तमाङ्गम् (**जिह्वया**) वाचा (**वावदत्**) भृशं वदति (**चरत्**) चरति (**त्रिंशत्**) एतत्सङ्ख्याकान् (**पदा**) प्राप्तिसाधकान् मुहूर्त्तान् (**नि**) (**अक्रमीत्**) क्रमते॥९३॥

अन्वयः-हे इन्द्राग्नी! येयमपात् पद्वतीभ्यः पूर्वा आऽगाच्छिरो हित्वी प्राणिनां जिह्वया वावदच्चरत् त्रिंशत् पदान्यक्रमीत् सोषा युवाभ्यां विज्ञेया॥९३॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! या वेगवती पादशिर आद्यवयवरहिता प्राणिप्रबोधात् पूर्वभावनी जागरणहेतुः प्राणिमुखैर्भृशं वदतीव त्रिंशन्मुहूर्त्तानन्तरं प्रतिप्रदेशमाक्रमीत् सोषा युष्माभिर्निद्रालस्ये विहाय सुखाय सेवनीया॥९३॥

पदार्थः-हे (**इन्द्राग्नी**) अध्यापक उपदेशक लोगो! जो (**इयम्**) यह (**अपात्**) विना पग की (**पद्वतीभ्यः**) बहुत पगोंवाली प्रजाओं से (**पूर्वा**) प्रथम उत्पन्न होनेवाली (**आ, अगात्**) आती है (**शिरः**) शिर को (**हित्वी**) छोड़ के अर्थात् विना शिर की हुई प्राणियों की (**जिह्वया**) वाणी से (**वावदत्**) शीघ्र बोलती अर्थात् कुक्कुट आदि के बोल से उषःकाल की प्रतीति होती है, इससे बोलना धर्म उषा में आरोपण किया जाता है (**चरत्**) विचरती है और (**त्रिंशत्**) तीस (**पदा**) प्राप्ति के साधन मुहूर्तों को (**नि, अक्रमीत्**) निरन्तर आक्रमण करती है, वह उषा प्रातः की वेला तुम लोगों को जाननी चाहिये॥९३॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जो वेगवाली, पाद, शिर आदि अवयवों से रहित, प्राणियों के जगने से पहिले होनेवाली, जागने का हेतु, प्राणियो के सुखों से शीघ्र बोलती हुई सी तीस मुहूर्त्त (**साठ घड़ी**) के अन्तर प्रत्येक स्थान को आक्रमण करती है, वह उषा निद्रा, आलस्य को छोड़ तुमको सुख के लिये सेवन करना चाहिये॥९३॥

देवास इत्यस्य मनुर्ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

के मनुष्या विद्वांसो भवितुमर्हन्तीत्याह॥

कौन मनुष्य विद्वान् हो सकते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

देवासो हि ष्मा मनवे समन्यवो विश्वे साकꣳसरातयः।
ते नोऽअद्य ते अपरं तुचे तु नो भवन्तु वरिवोविदः॥९४॥

देवासः। हि। स्म। मनवे। समन्यव इति सऽमन्यवः। विश्वे। साकम्। सरातय इति सऽरातयः॥ ते। नः। अद्य। ते। अपरम्। तुचे। तु। नः। भवन्तु। वरिवोविद इति वरिवःऽविदः॥९४॥

पदार्थः-(**देवासः**) विद्वांसः (**हि**) (**स्म**) प्रसिद्धौ। अत्र **निपातस्य च** [अ०६.३.१३६] इति दीर्घः षत्वं च छान्दसम्। (**मनवे**) मनुष्याय (**समन्यवः**) समानो मन्युः क्रोधो येषान्ते (**विश्वे**) सर्वे (**साकम्**) सह (**सरातयः**) समाना रातयो दानानि येषान्ते (**ते**) (**नः**) अस्माकम् (**अद्य**) (**ते**) (**अपरम्**) भविष्यति काले (**तुचे**) पुत्रपौत्राद्यायाऽपत्याय। **तुगित्यपत्यनामसु पठितम्॥** (निघं०२।२) (**तु**) (**नः**) अस्माकम् (**भवन्तु**) (**वरिवोविदः**) ये वरिवः परिचरणं विदन्ति जानन्ति यद्वा वरिवो धनं वेदयन्ति प्रापयन्ति ते॥९४॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! ये सरातयः समन्यवो विश्वे देवासः साकमद्य नो मनवे स्म वरिवोविदो भवन्तु, ते त्वपरं नस्तुचेऽस्मभ्यञ्च वरिवोविदो भवन्तु, ते हि युष्मभ्यं वरिवोविदः स्युः॥९४॥

भावार्थः-ये मनुष्याः परस्परेभ्यः सुखानि दद्युर्ये साकं दुष्टानामुपरि क्रोधं कुर्युस्ते पुत्रपौत्रवन्तो भूत्वा मनुष्यसुखोन्नतये समर्था विद्वांसो भवितुमर्हन्ति॥९४॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो (**सरातयः**) बराबर दाता (**समन्यवः**) तुल्य क्रोधवाले (**विश्वे**) सब (**देवासः**) विद्वान् लोग (**साकम्**) साथ मिल के (**अद्य**) आज (**नः**) हमारे (**मनवे**) मनुष्य के लिये (**स्म**) प्रसिद्ध (**वरिवोविदः**) सत्कार के जानने वा धन के प्राप्त करानेवाले (**भवन्तु**) हों (**तु**) और (**ते**) वे (**अपरम्**) भविष्यत् काल में (**नः**) हमारे (**तुचे**) पुत्र-पौत्रादि सन्तान के अर्थ हमारे लिये सत्कार के जानने वा धन के प्राप्त करानेवाले हों (**ते, हि**) वे ही तुम लोगों के लिये भी सत्कार के जानने वा धन के प्राप्त करानेवाले हों॥९४॥

भावार्थः-जो मनुष्य एक दूसरे के लिये सुख देवें, जो मिल कर दुष्टों पर क्रोध करें, वे पुत्र-पौत्रवाले हो के मनुष्यों के सुख की उन्नति के लिये समर्थ विद्वान् होने योग्य होते हैं॥९४॥

अपाधमदित्यस्य नृमेध ऋषिः। इन्द्रो देवता। भुरिग् बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

अथ के जना दुःखनिवारणसमर्थाः सन्तीत्याह॥

अब कौन मनुष्य: दु:खनिवारण में समर्थ हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अपाधमदभिशस्तीरशस्तिहाथेन्द्रो द्युम्न्याभवत्।

देवास्तऽइन्द्र सख्याय येमिरे बृहद्भानो मरुद्गण॥९५॥

अप। अधमत्। अभिशस्तीरित्यभिऽशस्तीः। अशस्तिहेत्यशस्तिऽहा। अथ। इन्द्रः। द्युम्नी। आ। अभवत्॥ देवाः। ते। इन्द्र। सख्याय। येमिरे। बृहद्भानो इति बृहत्ऽभानो। मरुद्गणेति मरुत्ऽगण॥९५॥

पदार्थः-(**अप**) दूरीकरणे (**अधमत्**) धमति (**अभिशस्तीः**) अभितो हिंसाः (**अशस्तिहा**) अप्रशस्तानां दुष्टानां हन्ता (**अथ**) (**इन्द्रः**) परमैश्वर्यवान् सभापती राजा (**द्युम्नी**) बहुप्रशंसाधनयुक्तः (**आ**) (**अभवत्**) भवतु (**देवाः**) विद्वांसः (**ते**) तव (**इन्द्र**) परमैश्वर्यप्रद सभापते राजन्! (**सख्याय**) मित्रत्वाय (**येमिरे**) संयमं कुर्वन्ति (**बृहद्भानो**) बृहन्तो भानवः किरणा इव कीर्त्तयो यस्य तत्सम्बुद्धौ (**मरुद्गण**) मरुतां मनुष्याणां वायूनां वा गणः समूहो यस्य तत्सबुद्धौ॥९५॥

अन्वयः-ये बृहद्भानो मरुद्गण इन्द्र! देवास्ते सख्याय येमिरेऽथ द्युम्नीन्द्रो भवानभिशस्तीरपाऽऽधमद-शस्तिहाऽभवद् भवतु॥९५॥

भावार्थः-ये मनुष्या धार्मिकाणां न्यायधीशानां धनाढ्यानां वा मित्रतां कुर्वन्ति, ते यशस्विनो भूत्वा सर्वेषां दुःखनिवारणाय सूर्यवद्भवन्ति॥९५॥

पदार्थः-हे (**बृहद्भानो**) महान् किरणों के तुल्य प्रकाशित कीर्तिवाले (**मरुद्गण**) मनुष्यों वा पवनों के समूह से कार्य्यसाधक (**इन्द्र**) परमैश्वर्य्य के देने वाले सभापति राजा (**देवाः**) विद्वान् लोग (**ते**) आपकी (**सख्याय**) मित्रता के अर्थ (**येमिरे**) संयम करते हैं। (**अथ**) और (**द्युम्नी**) बहुत प्रशंसारूप धन से युक्त (**इन्द्रः**) परमैश्वर्यवाले आप (**अभिशस्तीः**) सबसे हिंसाओ को (**अप, आ, अधमत्**) दूर धमकाते हो (**अशस्तिहा**) दुष्टों के नाशक (**अभवत्**) हूजिये॥९५॥

भावार्थः-जो मनुष्य धार्मिक न्यायधीशों वा धनाढ्यों से मित्रता करते हैं, वे यशस्वी होकर सब दुःखनिवारण के लिये सूर्य के तुल्य होते हैं॥९५॥

प्र व इत्यस्य नृमेध ऋषिः। इन्द्रो देवता। निचृद् बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनर्मनुष्यैः किं कर्त्तव्यमित्याह॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प्र वऽइन्द्राय बृहते मरुतो ब्रह्मार्चत।

वृत्रꣳ हनति वृत्रहा शतक्रतुर्वज्रेण शतपर्वणा॥९६॥

प्र। वः। इन्द्राय। बृहते। मरुतः। ब्रह्म। अर्चत॥ वृत्रम्। हनति। वृत्रहेति वृत्रऽहा। शतक्रतुरिति शतऽक्रतुः। वज्रेण। शतपर्वणेति शतऽपर्वणा॥९६॥

पदार्थः-(**प्र**) (**वः**) युष्मभ्यम् (**इन्द्राय**) परमैश्वर्याय (**बृहते**) (**मरुतः**) मनुष्याः (**ब्रह्म**) धनमन्नं वा (**अर्चत**) सत्कुरुत (**वृत्रम्**) मेघम् (**हनति**) हन्ति। अत्र **बहुलं छन्दसि** [अ०२.४.७३] इति शपो लुक् न। (**वृत्रहा**) यो वृत्रं हन्ति (**शतक्रतुः**) शतमसङ्ख्याताः क्रतवः प्रज्ञाः कर्माणि वा यस्य सः (**वज्रेण**) शस्त्रास्त्रविशेषेण (**शतपर्वणा**) शतस्यासङ्ख्यातस्य जीवजातस्य पर्वणा पालनं यस्मात् तेन॥९६॥

अन्वयः-हे मरुतो मनुष्याः! यः शतक्रतुः सेनापतिः शतपर्वणा वज्रेण वृत्रहा सूर्यो वृत्रमिव बृहत इन्द्राय शत्रून् हनति वो ब्रह्म प्रापयति तं यूय प्रार्चत॥९६॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे मनुष्याः! ये सूर्य्यो मेघमिव शत्रून् हत्वा युष्मदर्थमैश्वर्यमुन्नयन्ति तेषां सत्कारं यूयं कुरुत, सदा कृतज्ञा भूत्वा कृतघ्नतां त्यक्त्वा प्राज्ञाः सन्तो महदैश्वर्यं प्राप्नुत॥९६॥

पदार्थः-हे **(मरुतः)** मनुष्यो! जो **(शतक्रतुः)** असंख्य प्रकार की बुद्धि वा कर्मों वाला सेनापति **(शतपर्वणा)** जिससे असंख्य जीवों का पालन हो ऐसे **(वज्रेण)** शस्त्र-अस्त्र से **(वृत्रहा)** जैसे मेघहन्ता सूर्य **(वृत्रम्)** मेघ को वैसे **(बृहते)** बड़े **(इन्द्राय)** परमैश्वर्य के लिये शत्रुओं को **(हनति)** मारता और **(वः)** तुम्हारे लिये **(ब्रह्म)** धन वा अन्न को प्राप्त करता है, उसका तुम लोग **(प्र, अर्चत)** सत्कार करो॥९६॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जो लोग मेघ को सूर्य के तुल्य शत्रुओं को मार के तुम्हारे लिये ऐश्वर्य की उन्नति करते हैं, उनका सत्कार तुम करो। सदा कृतज्ञ हो के कृतघ्नता को छोड़ के प्राज्ञ हुए महान् ऐश्वर्य को प्राप्त होओ॥९६॥

अस्येत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। महेन्द्रो देवता। स्वराट् सतो बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

अथ मनुष्यैः परमात्मा स्तोतव्य इत्युपदिश्यते॥

अब मनुष्यों को परमात्मा की स्तुति करना योग्य है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यꣳ शवो मदे सुतस्य विष्णवि।

अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा।

इमा उ त्वा। यस्यायम्। अयꣳ सहस्रम्। ऊर्ध्वऽऊ षु णः॥९७॥

अस्य। इत्। इन्द्रः। वावृधे। ववृधऽइति ववृधे। वृष्ण्यम्। शवः। मदे। सुतस्य। विष्णवि॥ अद्य। तम्। अस्य महिमानम्। आयवः। अनु। स्तुवन्ति। पूर्वथेति पूर्वऽथा॥९७॥

पदार्थः-**(अस्य)** संसारस्य **(इत्)** एव **(इन्द्रः)** परमश्वैर्य्ययुक्तो राजा **(वावृधे)** वर्द्धयति **(वृष्ण्यम्)** वृषा समर्थस्तस्येमम् **(शवः)** बलमुदकं वा। **शव इति उदकनामसु पठितम्॥** (निघं०१।१२) **(मदे)** आनन्दाय **(सुतस्य)** उत्पन्नस्य **(विष्णवि)** व्यापके परमेश्वरे। अत्र वाच्छन्दसीति घिसंज्ञाकार्य्याभावे गुणादेशेऽवादेशः। **(अद्य)** अत्र **निपातस्य च** [अ०६.३.१३६] इति दीर्घः। **(तम्)** **(अस्य)** परमात्मनः **(महिमानम्)** महत्त्वम् **(आयवः)** ये स्वकर्मफलानि यान्ति ते मनुष्याः। **आयव इति मनुष्यनामसु पठितम्॥** (निघं०२।३) **(अनु)** **(स्तुवन्ति)** प्रशंसन्ति **(पूर्वथा)** पूर्वे इव॥९७॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! य इन्द्रो जीवो विष्णवि सुतस्याऽस्य मदे वृष्ण्यं शवोऽद्य वावृधेऽस्य परमात्मन इन्महिमानं पूर्वथायवोनुष्टुवन्ति तं यूयमपि स्तुवत॥९७॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यदि यूयं सर्वत्र व्यापकस्य सर्वत्र व्यापकस्य सर्वजगदुत्पाकस्याखिलाधारकस्य परमैश्वर्यप्रापकस्याज्ञां महिमानं च विज्ञाय सर्वस्य संसारस्योपकारं कुरुत, तर्हि यूयं सततमानन्दं प्राप्नुतेति॥९७॥

अत्राग्निप्राणोदानाऽहर्निशसूर्य्याग्निराजैश्वर्योत्तमयानविद्वच्छ्रीवैश्वानरे(श्वरे)न्द्रप्रज्ञावरुणाऽश्व्यन्न सूर्य्यराजप्रजा-परीक्षकेन्द्रवाय्वादिगुणवर्णनादेतदध्यायोक्तार्थस्य पूर्वाध्यायेन सह सङ्गतिर्वेद्या॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो **(इन्द्रः)** परम ऐश्वर्य्ययुक्त राजा **(विष्णवि)** व्यापक परमात्मा में **(सुतस्य)** उत्पन्न हुए **(अस्य)** इस संसार के **(मदे)** आनन्द के लिये **(वृष्ण्यम्)** पराक्रम **(शवः)** बल तथा जल को **(अद्य)** इस वर्त्तमान समय में **(वावृधे)** बढ़ाता है **(अस्य)** इस परमात्मा के **(इत्)** ही **(महिमानम्)** महिमा को **(पूर्वथा)** पूर्वज लोगों के तुल्य **(आयवः)** अपने कर्मफलों को प्राप्त होनेवाले मनुष्य लोग **(अनु, स्तुवन्ति)** अनुकूल स्तुति करते हैं, **(तम्)** उसकी तुम लोग भी स्तुति करो॥९७॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जो तुम लोग सर्वत्र व्यापक, सब जगत् के उत्पादक, सबके आधार और उत्तम ऐश्वर्य के प्रापक ईश्वर की आज्ञा और महिमा को जान के सब संसार का उपकार करो तो तुमको निरन्तर आनन्द प्राप्त होवे॥९७॥

इस अध्याय में अग्नि, प्राण, उदान, दिन, रात, सूर्य्य, अग्नि, राजा, ऐश्वर्य, उत्तम यान, विद्वान्, लक्ष्मी, वैश्वानर, ईश्वर, इन्द्र, बुद्धि, वरुण, अश्वि, अन्न, सूर्य्य, राजप्रजा, परीक्षक, इन्द्र और वायु आदि पदार्थों के गुणों का वर्णन है, इससे इस अध्याय में कहे अर्थ की पूर्व अध्याय में कहे अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य्याणां श्रीयुतपरमविदुषां विरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण श्रीपरमहंसपरिव्राजकाचार्य्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचिते संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां समन्विते सुप्रमाणयुक्ते यजुर्वेदभाष्ये त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः समाप्तिमगमत्॥३३॥

॥ओ३म्॥

अथ चतुस्त्रिंशाऽध्यायारम्भः॥

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव। यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व॥ यजु० ३०.३॥

यज्जाग्रत इत्यस्य शिवसङ्कल्प ऋषिः। मनो देवता। विराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ मनसो वशीकरणविषयमाह॥

अब मन को वश करने का विषय कहते हैं॥

यज्जाग्र॑तो दू॒रमु॒दैति॒ दैवं॒ तदु॑ सु॒प्तस्य॒ तथै॒वैति॑।

दू॒र॒ङ्ग॒मं ज्योति॑षां॒ ज्योति॒रेकं॒ तन्मे॒ मनः॑ शि॒वस॑ङ्कल्पमस्तु॥ १॥

यत्। जाग्र॑तः। दू॒रम्। उ॒दैतीत्यु॒त्ऽऐति॑। दैव॑म्। तत्। ऊँ॒ इत्यूँ॑। सु॒प्तस्य॑। तथा॑। ए॒व। एति॑॥ दू॒र॒ङ्ग॒ममिति॑ दू॒रम्ऽग॒मम्। ज्योति॑षाम्। ज्योतिः॑। एक॑म्। तत्। मे॒। मनः॑। शि॒वस॑ङ्कल्प॒मिति॑ शि॒वऽस॑ङ्कल्पम्। अ॒स्तु॒॥ १॥

पदार्थः-(**यत्**) (**जाग्रतः**) (**दूरम्**) (**उदैति**) उद्गच्छति (**दैवम्**) देव आत्मनि भवं देवस्य जीवात्मनः साधनमिति वा (**तत्**) यत्। व्यत्ययः। (**उ**) (**सुप्तस्य**) शयानस्य (**तथा**) तेनैव प्रकारेण (**एव**) (**एति**) अन्तर्गच्छति (**दूरङ्गमम्**) यद्दूरं गच्छति गमयति वाऽनेकपदार्थान् गृह्णाति तत् (**ज्योतिषाम्**) शब्दादिविषयप्रकाशकानामिन्द्रियाणाम् (**ज्योतिः**) प्रकाशकं प्रवर्त्तकमात्मा मनसा संयुज्यते मन इन्द्रियेणेन्द्रियमर्थेनेति महर्षिवात्स्यायनोक्तेः। (**एकम्**) असहायम् (**तत्**) (**मे**) मम (**मनः**) सङ्कल्पविकल्पात्मकम् (**शिवसङ्कल्पम्**) शिवः कल्याणकारी धर्मविषयः सङ्कल्प इच्छा यस्य तत् (**अस्तु**) भवतु॥ १॥

अन्वयः-हे जगदीश्वर विद्वन् वा! भवदनुग्रहेण यद्दैवं दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं जाग्रतो दूरमुदैति। तदु सुप्तस्य तथैवान्तरेति तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥ १॥

भावार्थः-ये मनुष्याः परमेश्वराज्ञासेवनं विद्वत्सङ्गं कृत्वा अनेकविधसामर्थ्ययुक्तं मनः शुद्धं सम्पादयन्ति, यज्जागृतावस्थायां विस्तृतव्यवहारं तत्सुषुप्तौ शान्तं भवति यद्वेगवतां वेगवत्तरं साधकत्वादिन्द्रियाणामपि प्रवर्त्तकं निगृह्णन्ति, तेऽशुभव्यवहारं विहाय शुभाचरेण प्रेरयितुं शक्नुवन्ति॥ १॥

पदार्थः-हे जगदीश्वर वा राजन्! आपकी कृपा से (**यत्**) जो (**दैवम्**) आत्मा में रहने वा जीवात्मा का साधन (**दूरङ्गमम्**) दूर जाने, मनुष्य को दूर तक ले जाने वा अनेक पदार्थों का ग्रहण करनेवाला (**ज्योतिषाम्**) शब्द आदि विषयों के प्रकाशन श्रोत्र आदि इन्द्रियों को (**ज्योतिः**) प्रवृत्त करनेहारा (**एकम्**) एक (**जाग्रतः**) जागृत अवस्था में (**दूरम्**) दूर-दूर (**उत्, ऐति**) भागता है (**उ**)

और **(तत्)** जो **(सुप्तस्य)** सोते हुए का **(तथा, एव)** उसी प्रकार **(एति)** भीतर अन्त:करण में जाता है **(तत्)** वह **(मे)** मेरा **(मनः)** सङ्कल्प-विकल्पात्मक मन **(शिवसङ्कल्पम्)** कल्याणकारी धर्म विषयक इच्छावाला **(अस्तु)** हो॥१॥

भावार्थः-जो मनुष्य परमेश्वर की आज्ञा का सेवन और विद्वानों का सङ्ग करके अनेकविध सामर्थ्ययुक्त मन को शुद्ध करते हैं, जो जागृतावस्था में विस्मृत व्यवहारवाला, वही मन सुषुप्ति अवस्था में शान्त होता है। जो वेगवाले पदार्थों में अतिवेगवान् ज्ञान के साधन होने से इन्द्रियों के प्रवर्त्तक मन को वश में करते हैं, वे अशुभ व्यवहार को छोड़ शुभ व्यवहार में मन को प्रवृत्त कर सकते हैं॥१॥

येन कर्माणीत्यस्य शिवसङ्कल्प ऋषिः। मनो देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

येन॒ कर्मा॑ण्य॒पसो॑ मनी॒षिणो॑ य॒ज्ञे कृ॒ण्वन्ति॑ वि॒दथे॑षु॒ धीराः॑।
यद॑पू॒र्वं य॒क्षम॒न्तः प्र॒जानां॒ तन्मे॒ मनः॑ शि॒वस॑ङ्कल्पमस्तु॥२॥

येन॑। कर्मा॑णि। अ॒पस॑ः। म॒नी॒षिण॑ः। य॒ज्ञे। कृ॒ण्वन्ति॑। वि॒दथे॑षु। धीरा॑ः॥ यत्। अ॒पू॒र्वम्। य॒क्षम्। अ॒न्तरित्य॒न्तः। प्र॒जाना॒मिति॑ प्र॒ऽजाना॑म्। तत्। मे॒। मन॑ः। शि॒वस॑ङ्कल्प॒मिति॑ शि॒वऽस॑ङ्कल्पम्। अ॒स्तु॥२॥

पदार्थः-**(येन)** मनसा **(कर्माणि)** कर्त्तुरीप्सिततमानि क्रियमाणानि **(अपसः)** अपः कर्म तद्वन्तः सदा कर्मनिष्ठाः **(मनीषिणः)** मनस ईषिणो दमनकर्त्तारः **(यज्ञे)** अग्निहोत्रादौ धर्मेण सङ्गतव्यवहारे योगाभ्यासे वा **(कृण्वन्ति)** कुर्वन्ति **(विदथेषु)** विज्ञानयुद्धादिव्यवहारेषु **(धीराः)** ध्यानवन्तो मेधाविनः। **धीर इति मेधाविनामसु पठितम्॥** (निघं०३।१५) **(यत्)** **(अपूर्वम्)** अनुत्तमगुणकर्मस्वभावम् **(यक्षम्)** पूजनीयं सङ्गतं वा। अत्रौणादिकः सन् प्रत्ययः। **(अन्तः)** मध्ये **(प्रजानाम्)** प्राणिमात्राणाम् **(तत्)** **(मे)** मम **(मनः)** मननविचारात्मकम् **(शिवसङ्कल्पम्)** धर्मेष्टम् **(अस्तु)**॥२॥

अन्वयः-हे परमेश्वर वा विद्वन्! भवत्सङ्गेन येनापसो मनीषिणो धीरा यज्ञे विदथेषु च कर्माणि कृण्वन्ति यदपूर्वं प्रजानामन्तर्यक्षं वर्त्तते, तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥२॥

भावार्थः-मनुष्यैः परमेश्वरस्योपासनेन सुविचारविद्यासत्सङ्गैरन्तःकरणधर्माचारान्निवर्त्य धर्माचारे प्रवर्त्तनीयम्॥२॥

पदार्थः-हे परमेश्वर वा विद्वन्! जब आपके सङ्ग से **(येन)** जिस **(अपसः)** सदा कर्म धर्मनिष्ठ **(मनीषिणः)** मन का दमन करनेवाले **(धीराः)** ध्यान करनेवाले बुद्धिमान् लोग **(यज्ञे)**

अग्निहोत्रादि वा धर्मसंयुक्त व्यवहार वा योगयज्ञ में और **(विदथेषु)** विज्ञानसम्बन्धी और युद्धादि व्यवहारों में **(कर्माणि)** अत्यन्त इष्ट कर्मों को **(कृण्वन्ति)** करते हैं, **(यत्)** जो **(अपूर्वम्)** सर्वोत्तम गुण, कर्म, स्वभाववाला **(प्रजानाम्)** प्राणिमात्र के **(अन्तः)** हृदय में **(यक्षम्)** पूजनीय वा सङ्गत हो के एकीभूत हो रहा है, **(तत्)** वह **(मे)** मेरा **(मनः)** मनन-विचार करना रूप मन **(शिवसङ्कल्पम्)** धर्मेष्ट **(अस्तु)** होवे॥२॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि परमेश्वर की उपासना, सुन्दर विचार, विद्या और सत्सङ्ग से अपने अन्तःकरण को अधर्माचरण से निवृत्त कर धर्म के आचरण में प्रवृत्त करें॥२॥

यत् प्रज्ञानमित्यस्य शिवसङ्कल्प ऋषिः। मनो देवता। स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।

यस्मान्नऽऋते किं चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥३॥

यत्। प्रज्ञानमिति प्रऽज्ञानम्। उत। चेतः। धृतिः। च। यत्। ज्योतिः। अन्तः। अमृतम्। प्रजास्विति प्रऽजासु॥ यस्मात्। न। ऋते। किम्। चन। कर्म। क्रियते। तत्। मे। मनः। शिवसङ्कल्पमिति शिवऽसङ्कल्पम्। अस्तु॥३॥

पदार्थः-**(यत्)** **(प्रज्ञानम्)** प्रजानाति येन तद्बुद्धिस्वरूपम् **(उत)** अपि **(चेतः)** चेतति स्मरति येन तत् **(धृतिः)** धैर्यरूपम् **(च)** चकारल्लज्जादीन्यपि कर्माणि येन क्रियन्ते **(यत्)** **(ज्योतिः)** द्योतमानम् **(अन्तः)** अभ्यन्तरे **(अमृतम्)** नाशरहितम् **(प्रजासु)** जनेषु **(यस्मात्)** मनसः **(नः)** **(ऋते)** विना **(किम्, चन)** किञ्चिदपि **(कर्म)** **(क्रियते)** **(तत्)** **(मे)** जीवात्मनो मम **(मनः)** सर्वकर्मसाधनम् **(शिवसङ्कल्पम्)** शिवे कल्याणकरे परमात्मनि कल्प इच्छाऽस्य तत् **(अस्तु)** भवतु॥३॥

अन्वयः-हे जगदीश्वर परमयोगिन् विद्वन् वा! भवज्ज्ञापनेन यत्प्रज्ञानं च ते उत चेतो धृतिर्यच्च प्रजास्वन्तरमृतं ज्योतिर्यस्मादृते किञ्चन कर्म न क्रियते, तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥३॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यदन्तःकरणबुद्धिचित्तमनोऽहङ्कारवृत्तित्वाच्चतुर्विधमन्तःप्रकाशं प्रजानां सर्वकर्मसाधकं नाशरहितं मनोऽस्ति, तन्न्याये सत्याचरणे च प्रवर्त्य पक्षपाताऽन्यायाऽधर्माचरणाद् यूयं निवर्त्तयत॥३॥

पदार्थः-हे जगदीश्वर वा परमयोगिन् विद्वन्! आपके जताने से **(यत्)** जो **(प्रज्ञानम्)** विशेष कर ज्ञान का उत्पादक बुद्धिरूप **(उत)** और भी **(चेतः)** स्मृति का साधन **(धृतिः)** धैर्यस्वरूप **(यत् च)** और जो लज्जादि कर्मों का हेतु **(प्रजासु)** मनुष्यों के **(अन्तः)** अन्तःकरण में आत्मा का साथी

होने से **(अमृतम्)** नाशरहित **(ज्योतिः)** प्रकाशकरूप **(यस्मात्)** जिससे **(ऋते)** विना **(किम्, चन)** कोई भी **(कर्म)** काम **(न)** नहीं **(क्रियते)** किया जाता, **(तत्)** वह **(मे)** मुझ जीवात्मा का **(मनः)** सब कर्मों का साधनरूप मन **(शिवसङ्कल्पम्)** कल्याणकारी परमात्मा में इच्छा रखनेवाला **(अस्तु)** हो॥३॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जो अन्तःकरण, बुद्धि, चित्त और अहंकाररूप वृत्तिवाला होने से चार प्रकार से भीतर प्रकाश करनेवाला, प्राणियों के सब कर्मों का साधक, अविनाशी मन है, उसको न्याय और सत्य आचरण में प्रवृत्त कर पक्षपात, अन्याय और अधर्माचरण से तुम लोग निवृत्त करो॥३॥

येनेदमित्यस्य शिवसङ्कल्प ऋषिः। मनो देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परिगृहीतममृतेन सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥४॥

येन। इदम्। भूतम्। भुवनम्। भविष्यत्। परिगृहीतमिति परिऽगृहीतम्। अमृतेन। सर्वम्॥ येन। यज्ञः। तायते। सप्तहोतेति सप्तऽहोता। तत्। मे। मनः। शिवसङ्कल्पमिति शिवऽसङ्कल्पम्। अस्तु॥४॥

पदार्थः-**(येन)** मनसा **(इदम्)** वस्तुजातम् **(भूतम्)** अतीतम् **(भुवनम्)** भवतीति भुवनम्। वर्त्तमानकालस्य सम्बन्धि। औणादिकः क्युः। **(भविष्यत्)** यदुत्पत्स्यमानं भावि **(परिगृहीतम्)** परितः सर्वतो गृहीतं ज्ञातम् **(अमृतेन)** नाशरहितेन परमात्मना सह युक्तेन **(सर्वम्)** समग्रम् **(येन)** **(यज्ञः)** अग्निष्टोमादिविज्ञानमयो व्यवहारो वा **(तायते)** तन्यते विस्तीर्य्यते **(सप्तहोता)** अग्निष्टोमेऽपि सप्तहोतारो भवन्ति **(तत्)** **(मे)** मम **(मनः)** योगयुक्तं चित्तम् **(शिवसङ्कल्पम्)** शिवो मोक्षरूपसङ्कल्पो यस्य तत् **(अस्तु)** भवतु॥४॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! येनामृतेन भूतं भुवनं भविष्यत् सर्वमिदं परिगृहीतं भवति, येन सप्तहोता यज्ञस्तायते, तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥४॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यच्चित्तं योगाभ्याससाधनोपसाधनसिद्धं भूतभविष्यद्वर्त्तमानज्ञं सर्वसृष्टिविज्ञातृ-कर्मोपासनाज्ञानसाधकं वर्त्तते, तत्सदैव कल्याणप्रियं कुरुत॥४॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! **(येन)** जिस **(अमृतेन)** नाशरहित परमात्मा के साथ युक्त होनेवाले मन से **(भूतम्)** व्यतीत हुआ **(भुवनम्)** वर्त्तमान काल सम्बन्धी और **(भविष्यत्)** होनेवाला **(सर्वम्, इदम्)** यह सब त्रिकालस्थ वस्तुमात्र **(परिगृहीतम्)** सब ओर से गृहीत होता अर्थात् जाना जाता है,

(येन) जिससे **(सप्तहोता)** सात मनुष्य होता वा पांच प्राण, छठा जीवात्मा और अव्यक्त सातवां ये सात लेने-देनेवाले जिसमें हों, वह **(यज्ञः)** अग्निष्टोमादि वा विज्ञानरूप व्यवहार **(तायते)** विस्तृत किया जाता है, **(तत्)** वह **(मे)** मेरा **(मनः)** योगयुक्त चित **(शिवसङ्कल्पम्)** मोक्षरूप सङ्कल्पवाला **(अस्तु)** होवे॥४॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जो चित्त योगाभ्यास के साधन और उपसाधनों से सिद्ध हुआ भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान तीनों काल का ज्ञाता, सब सृष्टि का जाननेवाला, कर्म, उपासना और ज्ञान का साधक है, उसको सदा ही कल्याण में प्रिय करो॥४॥

यस्मिन्नित्यस्य शिवसङ्कल्प ऋषिः। मनो देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवत स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यस्मि॒न्नृच॒ः साम॒ यजू॑ꣳषि॒ यस्मि॒न् प्रति॑ष्ठिता रथना॒भावि॑वा॒राः।

यस्मिँ॑श्चि॒त्तꣳ सर्व॒मोतं॑ प्र॒जानां॑ तन्मे॒ मन॑ः शि॒वस॑ङ्कल्पमस्तु॥५॥

यस्मि॑न्। ऋच॑ः। साम॑। यजू॑ꣳषि। यस्मि॑न्। प्रति॑ष्ठि॑ता। प्रति॑स्थ॒तेति॒ प्रति॑ऽस्थिता। र॒थ॒ना॒भावि॒वेति॑ रथना॒भौऽइ॑व। अ॒राः॥ यस्मि॑न्। चि॒त्तम्। सर्व॑म्। ओत॒मित्याऽउ॑तम्। प्र॒जाना॒मिति॑ प्र॒ऽजाना॑म्। तत्। मे॒। मन॑ः। शि॒वस॑ङ्कल्प॒मिति॑ शि॒वऽस॑ङ्कल्पम्। अ॒स्तु॥५॥

पदार्थः-**(यस्मिन्)** मनसि **(ऋचः)** ऋग्वेदः **(साम)** सामवेदः **(यजूंषि)** यजुर्वेदः **(यस्मिन्)** **(प्रतिष्ठिता)** प्रतिष्ठितानि **(रथनाभाविव)** यथा रथस्य रथचक्रस्य मध्यमे काष्ठे सर्वेऽवयवा लग्ना भवन्ति तथा **(अराः)** रथचक्रावयवाः **(यस्मिन्)** **(चित्तम्)** सर्वपदार्थविषयिज्ञानम् **(सर्वम्)** समग्रम् **(ओतम्)** सूत्रे मणिगणा इव प्रोतम् **(प्रजानाम्)** **(तत्)** **(मे)** मम **(मनः)** **(शिवसङ्कल्पम्)** शिवः कल्याणकरो वेदादिसत्यशास्त्रप्रचारसङ्कल्पो यस्मिँस्तत् **(अस्तु)** भवतु॥५॥

अन्वयः-रथनाभाविवारा यस्मिन् मनसि ऋचः साम यजूंषि प्रतिष्ठिता, यस्मिन्नथर्वाणः प्रतिष्ठिता भवन्ति, यस्मिन् प्रजानां सर्व चित्तमोतमस्ति, तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥५॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। हे मनुष्याः! युष्माभिर्यस्य स्वास्थ्य एव वेदादिपठनपाठनव्यवहारो घटते तत् मन एव वेदादिविद्याधारं यत्र सर्वेषां व्यवहारणां ज्ञानं सञ्चितं भवति, तदन्तःकरणं विद्याधर्माचरणेन पवित्रं संपादनीयम्॥५॥

पदार्थः-**(यस्मिन्)** जिस मन में **(रथनाभाविव, अराः)** जैसे रथ के पहिये के बीच के काष्ठ में अरा लगे होते हैं, वैसे **(ऋचः)** ऋग्वेद **(साम)** सामवेद **(यजूंषि)** यजुर्वेद **(प्रतिष्ठिता)** सब ओर से स्थित और **(यस्मिन्)** जिसमें अथर्ववेद स्थित है, **(यस्मिन्)** जिसमें **(प्रजानाम्)** प्राणियों का

(सर्वम्) समग्र **(चित्तम्)** सर्व पदार्थसम्बन्धी ज्ञान **(ओतम्)** सूत में मणियों के समान संयुक्त है, **(तत्)** वह **(मे)** मेरा **(मनः)** मन **(शिवसङ्कल्पम्)** कल्याणकारी वेदादि सत्यशास्त्रों का प्रचाररूप सङ्कल्प वाला **(अस्तु)** हो॥५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। हे मनुष्यो! तुम लोगों को चाहिये कि जिस मन के स्वस्थ रहने में ही वेदादि विद्याओं का आधार और जिसमें सब व्यवहारों का ज्ञान एकत्र होता है, उस अन्तःकरण को विद्या और धर्म के आचरण से पवित्र करो॥५॥

सुषारथिरित्यस्य शिवसङ्कल्प ऋषिः। मनो देवता। स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिनऽइव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥६॥

सुषारथिः। सुसारथिरिति सुऽसारथिः। अश्वानिवेत्यश्वान्ऽइव। यत्। मनुष्यान्। नेनीयते। अभीशुभिरित्यभीशुऽभिः। वाजिनऽइवेति वाजिनःऽइव॥ हृत्प्रतिष्ठम्। हृत्प्रतिस्थमिति हृत्ऽप्रतिस्थम्। यत्। अजिरम्। जविष्ठम्। तत्। मे। मनः। शिवसङ्कल्पमिति शिवऽसङ्कल्पम्। अस्तु॥६॥

पदार्थः-**(सुषारथिः)** शोभनश्चासौ सारथिर्यानचालयिता **(अश्वानिव)** यथाश्वान् कशया सर्वतश्चालयति तथा **(यत्)** **(मनुष्यान्)** मनुष्यग्रहणमुभयलक्षकं प्राणिमात्रस्य **(नेनीयते)** भृशमितस्ततो नयति गमयति **(अभीशुभिः)** रश्मिभिः। **अभीशव इति रश्मिनामसु पठितम्॥** (निघं०१।५) **(वाजिन इव)** सुशिक्षितानश्वानिव **(हृत्प्रतिष्ठम्)** हृदि प्रतिष्ठा स्थितिर्यस्य तत् **(यत्)** **(अजिरम्)** विषयादिषु प्रक्षेपकं जराद्यवस्थारहितं वा **(जविष्ठम्)** अतिशयेन वेगवत्तरम् **(तत्)** **(मे)** मम **(मनः)** **(शिवसङ्कल्पम्)** **(अस्तु)** भवति॥६॥

अन्वयः-यत् सुषारथिरश्वानिव मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव नियच्छति च बलात् सारथिरश्वानिव प्राणिनो नयति, यद्धृत्प्रतिष्ठमजिरं जविष्ठमस्ति, तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥६॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारौ। यत्रासक्तं तत्रैव प्रग्रहैः सारथिः तुरङ्गानिव वशे स्थापयति, सर्वेऽविद्वांसो यदनुवर्त्तन्ते विद्वांसश्च यत्स्ववशं कुर्वन्ति, यच्छुद्धं सत्सुखकार्य्यशुद्धं सद् दुःखकारि यज्जितं सिद्धिं यदजितमसिद्धिं प्रयच्छति, तन्मनो मनुष्यैः स्ववशं सदा रक्षणीयम्॥६॥

पदार्थः-**(यत्)** जो मन **(सुषारथिः)** जैसे सुन्दर चतुर सारथि गाड़ीवान् **(अश्वानिव)** लगाम से घोड़ों को सब ओर से चलाता है, वैसे **(मनुष्यान्)** मनुष्यादि प्राणियों को **(नेनीयते)** शीघ्र-शीघ्र इधर-उधर घुमाता है और **(अभीशुभिः)** जैसे रस्सियों से **(वाजिन इव)** वेग वाले घोड़ों को सारथि

वश में करता, वैसे नियम में रखता **(यत्)** जो **(हृत्प्रतिष्ठम्)** हृदय में स्थित **(अजिरम्)** विषयादि में प्रेरक वा वृद्धादि अवस्थारहित और **(जविष्ठम्)** अत्यन्त वेगवान् है, **(तत्)** वह **(मे)** मेरा **(मनः)** मन **(शिवसङ्कल्पम्)** मङ्गलमय नियम में इष्ट **(अस्तु)** होवे॥६॥

भावार्थः-इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं। जो मनुष्य जिस पदार्थ में आसक्त है, वहीं बल से सारथि घोड़ों को जैसे वैसे प्राणियों को ले जाता और लगाम से सारथि घोड़ों को जैसे वैसे वश में रखता, सब मूर्खजन जिसके अनुकूल वर्त्तते और विद्वान् अपने वश में करते हैं, जो शुद्ध हुआ सुखकारी और अशुद्ध हुआ दुःखदायी, जो जीता हुआ सिद्धि को और न जीता हुआ असिद्धि को देता है, वह मन मनुष्यों को अपने वश में रखना चाहिये॥६॥

पितुमित्यस्यागस्त्य ऋषिः। अन्नं देवता। उष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

अथ कः शत्रून् विजेतुं शक्नोतीत्याह॥

अब कौन मनुष्य शत्रुओं को जीत सकता है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

पितुं नु स्तोषं महो धर्माणं तविषीम्।

यस्य त्रितो व्योजसा वृत्रं विपर्वमर्दयत्॥७॥

पितुम्। नु। स्तोषम्। महः। धर्माणम्। तविषीम्॥ यस्य। त्रितः। वि। ओजसा। वृत्रम्। विपर्वमिति विऽपर्वम्। अर्दयत्॥७॥

पदार्थः-**(पितुम्)** अन्नम् **(नु)** सद्यः **(स्तोषम्)** स्तुवे **(महः)** महान्तम् **(धर्माणम्)** पक्षपातरहितं न्यायाचरणं धर्मम् **(तविषीम्)** बलयुक्तां सेनाम्। **तविषीति बलनामसु पठितम्॥** (निघं०२।९) **(यस्य)** **(त्रितः)** त्रिषु कालेषु। सप्तम्यर्थे तसिः। **(वि)** **(ओजसा)** उदकेन सह। ओजस इत्युदकनामसु पठितम्॥ (निघं०१।१२) **(वृत्रम्)** मेघम् **(विपर्वम्)** विगतानि पर्वाणि ग्रन्थयो यस्य तम् **(अर्दयत्)** अर्दयति नाशयति॥७॥

अन्वयः-अहं यस्य पितुं महो धर्माणं तविषीं नु स्तोषं स राजपुरुषः त्रितः सूर्य ओजसा सह वर्त्तमानं विपर्वं वृत्रं व्यर्दयदिव शत्रूञ्जेतुं शक्नोति॥७॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। येन सत्यो धर्मो बलवती सेना पुष्कलान्नादिसामग्री च ध्रियते स सूर्यो मेघमिव शत्रून् विजेतुं शक्नुयात्॥७॥

पदार्थः-मैं **(यस्य)** जिसके **(पितुम्)** अन्न **(महः)** महान् **(धर्माणम्)** पक्षपातरहित न्यायाचरणरूप धर्म और **(तविषीम्)** बलयुक्त सेना की **(नु)** शीघ्र **(स्तोषम्)** स्तुति करता हूं, वह राजपुरुष **(त्रितः)** तीनों काल में जैसे सूर्य्य **(ओजसा)** जल के साथ वर्त्तमान **(विपर्वम्)** जिसकी

बादल रूप गाँठ भिन्न-भिन्न हों, उस **(वृत्रम्)** मेघ को **(वि, अर्दयत्)** विशेष कर नष्ट करता है, वैसे शत्रुओं के जीतने को समर्थ होता है॥७॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जिसने सत्य-धर्म, बलवती सेना और पुष्कल अन्नादि सामग्री धारण की है, वह जैसे सूर्य्य मेघ को, वैसे शत्रुओं को जीत सकता है॥७॥

अन्विदित्यस्यागस्त्य ऋषिः। अनुमतिर्देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनर्मनुष्यैः किं कर्त्तव्यमित्याह॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अन्विदनुमते त्वं मन्यासै शं च नस्कृधि।

क्रत्वे दक्षाय नो हिनु प्र णऽआयूꣳषि तारिषः॥८॥

अनु। इत्। अनुमत इत्यनुऽमते। त्वम्। मन्यासै। शम्। च। नः। कृधि॥ क्रत्वे। दक्षाय। नः। हिनु। प्र। नः। आयूꣳषि। तारिषः॥८॥

पदार्थः-**(अनु)** **(इत्)** एव **(अनुमते)** अनुकूला मतिर्यस्य तत्सम्बुद्धौ **(त्वम्)** **(मन्यासै)** मन्यस्व **(शम्)** सुखम् **(च)** **(नः)** अस्मान् **(कृधि)** कुरु **(क्रत्वे)** प्रज्ञायै **(दक्षाय)** बलाय चतुरत्वाय वा **(नः)** अस्मान् **(हिनु)** वर्द्धय **(प्र)** **(नः)** अस्माकम् **(आयूंषि)** जीवनादीनि **(तारिषः)** सन्तारयसि॥८॥

अन्वयः-हे अनुमते सभापते विद्वंस्त्वं! यच्छमनुमन्यासै तेन युक्तान्नस्कृधि, क्रत्वे दक्षाय नो हिनु च न आयूंषि चेत्प्रतारिषः॥८॥

भावार्थः-मनुष्यैर्यथा स्वार्थसिद्धये प्रयत्यते, तथैवान्यार्थेऽपि प्रयत्नो विधेयो यथा स्वस्य कल्याणवृद्धी अन्वेष्टव्ये, तथाऽन्येषामपि। एवं सर्वेषां पूर्णमायुः सम्पादनीयम्॥८॥

पदार्थः-हे **(अनुमते)** अनुकूल बुद्धिवाले सभापति विद्वन्! **(त्वम्)** आप जिसको **(शम्)** सुखकारी **(अनु, मन्यासै)** अनुकूल मानो, उससे युक्त **(नः)** हमको **(कृधि)** करो **(क्रत्वे)** बुद्धि **(दक्षाय)** बल वा चतुराई के लिये **(नः)** हमको **(हिनु)** बढ़ाओ **(च)** और **(नः)** हमारी **(आयूंषि)** अवस्थाओं को **(इत्)** निश्चय कर **(प्र, तारिषः)** अच्छे प्रकार पूर्ण कीजिये॥८॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि जैसे स्वार्थसिद्धि के अर्थ प्रयत्न किया जाता, वैसे अन्यार्थ में भी प्रयत्न करें, जैसे आप अपने कल्याण और वृद्धि चाहते हैं, वैसे औरों की भी चाहें। इस प्रकार सबकी पूर्ण अवस्था सिद्ध करें॥८॥

अनु न इत्यस्यागस्य ऋषिः। अनुमतिर्देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अनु नोऽद्यानुमतिर्यज्ञं देवेषु मन्यताम्।

अग्निश्च हव्यवाहनो भवतं दाशुषे मयः॥ ९॥

अनु। नः। अद्य। अनुमतिरित्यनुऽमतिः। यज्ञम्। देवेषु। मन्यताम्॥ अग्निः। च। हव्यवाहन इति हव्यऽवाहनः। भवतम्। दाशुषे मयः॥ ९॥

पदार्थः-(**अनु**) (**नः**) अस्माकम् (**अद्य**) इदानीम् (**अनुमतिः**) अनुकूलं विज्ञानम् (**यज्ञम्**) सुखदानसाधनं व्यवहारम् (**देवेषु**) विद्वत्सु (**मन्यताम्**) (**अग्निः**) पावकवत् तेजस्वी तज्ज्ञो वा (**च**) समुच्चये (**हव्यवाहनः**) यो हव्यानि ग्रहीतुं योग्यानि वस्तूनि वहति प्रापयति (**भवतम्**) (**दाशुषे**) दात्रे (**मयः**) सुखकारिणौ। **मय इति सुखनामसु पठितम्॥** (निघं० ३।६)॥ ९॥

अन्वयः-योऽनुमतिरद्य देवेषु नो यज्ञमनुमन्यतां स हव्यवाहनोऽग्निश्च युवां दाशुषे मयः सुखकारिणौ भवतम्॥ ९॥

भावार्थः-ये मनुष्याः सत्कर्मानुष्ठानेऽनुमतिदातारो दुष्टकर्मानुष्ठानस्य निषेधकास्तेऽग्न्यादिविद्यया सुखं सर्वेभ्यः प्रयच्छन्ति॥ ९॥

पदार्थः-जो (**अनुमतिः**) अनूकूल विज्ञानवाला जन (**अद्य**) आज (**देवेषु**) विद्वानों में (**नः**) हमारे (**यज्ञम्**) सुख देने के साधनरूप व्यवहार को (**अनु, मन्यताम्**) अनुकूल माने, वह (**च**) और (**हव्यवाहनः**) ग्रहण करने योग्य पदार्थों को प्राप्त करानेवाले (**अग्निः**) अग्नि के तुल्य तेजस्वी वा अग्निविद्या का विद्वान् तुम दोनों (**दाशुषे**) दानशील मनुष्य के लिये (**मयः**) सुखकारी (**भवतम्**) होओ॥ ९॥

भावार्थः-जो मनुष्य सत्कर्मों के अनुष्ठान में अनुमति देने और दुष्टकर्मों के अनुष्ठान को निषेध करनेवाले हैं, वे अग्नि आदि की विद्या से सबके लिये सुख देवें॥ ९॥

सिनीवालीत्यस्य गृत्समद ऋषिः। सिनीवाली देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथ विदुष्यः कुमार्यः किं कुर्युरित्याह॥

अब विदुषी कुमारी क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा।

जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि दिदिड्ढि नः॥ १०॥

सिनीवालि। पृथुष्टुके। पृथुस्तुक इति पृथुऽस्तुके। या। देवानाम्। असि। स्वसा॥ जुषस्व। हव्यम्। आहुतमित्याऽहुतम्। प्रजामिति प्रऽजाम्। देवि। दिदिड्ढि। नः॥ १०॥

पदार्थः-(**सिनीवालि**) सिनी प्रेमबद्धा चासौ बलकारिणी च तत्सम्बुद्धौ (**पृथुष्टुके**) पृथुर्विस्तीर्णा ष्टुका स्तुतिः केशभारः कामो वा यस्य तत्सम्बुद्धौ महास्तुते पृथुकेशभारे पृथुकामे वा (**या**) (**देवानाम्**) विदुषाम् (**असि**) (**स्वसा**) भगिनी (**जुषस्व**) (**हव्यम्**) आदातुमर्हम् (**आहुतम्**) समन्तात् वरदीक्षादिकर्मभिः स्वीकृतं पतिम् (**प्रजाम्**) सुसन्तानरूपाम् (**देवि**) विदुषि (**दिदिड्ढि**) दिश देहि। अत्र दिश धातोर्बहुलं छन्दसीति शपः श्लुः। (**नः**) अस्मभ्यम्॥१०॥

अन्वयः-हे सिनीवालि पृथुष्टुके देवि विदुषि कुमारि! या त्वं देवानां स्वसाऽसि, सा हव्यमाहुतं पतिं जुषस्व नः प्रजां दिदिड्ढि॥१०॥

भावार्थः-हे कुमार्यो! यूयं ब्रह्मचर्य्येण समग्रा विद्याः प्राप्य युवतयो भूत्वा स्वेष्टान् स्वपरीक्षितान् वर्त्तुमर्हान् पतीन् स्वयं वृणुत, तैः सहानन्द्य प्रजा उत्पादयत॥१०॥

पदार्थः-हे (**सिनीवालि**) प्रेमयुक्त बल करनेहारी (**पृथुष्टुके**) जिसकी विस्तृत स्तुति शिर के बाल वा कामना हो, ऐसी (**देवि**) विदुषि कुमारी (**या**) जो तू (**देवानाम्**) विद्वानों की (**स्वसा**) बहिन (**असि**) है, सो (**हव्यम्**) ग्रहण करने योग्य (**आहुतम्**) अच्छे प्रकार वर दीक्षादि कर्म्मों से स्वीकार किये पति का (**जुषस्व**) सेवन कर और (**नः**) हमारे लिये (**प्रजाम्**) सुन्दर सन्तानरूप प्रजा को (**दिदिड्ढि**) दे॥१०॥

भावार्थः-हे कुमारियो! तुम ब्रह्मचर्य्य आश्रम के साथ समस्त विद्याओं को प्राप्त हो, युवति हो के अपने को अभीष्ट स्वयं परीक्षा किये वरने योग्य पतियों को आप वरो, उन पतियों के साथ आनन्द कर प्रजा, पुत्रादि को उत्पन्न किया करो॥१०॥

पञ्चेत्यस्य गृत्समद ऋषिः। सरस्वती देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः।

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

पञ्च॑ न॒द्यः॒ सर॑स्वती॒मपि॑ यन्ति॒ सस्रो॑तसः।

सर॑स्वती॒ तु प॑ञ्च॒धा सो दे॒शेऽभ॑वत् स॒रित्॥११॥

पञ्च॑। न॒द्यः॒। सर॑स्वतीम्। अपि॑। य॒न्ति॒। सस्रो॑तस॒ इति॒ सऽस्रो॑तसः॥ सर॑स्वती। तु। प॒ञ्च॒धा। सा। उ॒ँ इत्यूँ॑। दे॒शे। अ॒भ॒व॒त्। स॒रित्॥११॥

पदार्थः-(**पञ्च**) पञ्चज्ञानेन्द्रियवृत्तयः (**नद्यः**) नदीवत्प्रवाहरूपाः (**सरस्वतीम्**) प्रशस्तविज्ञानवतीं वाचम् (**अपि**) (**यन्ति**) प्राप्नुवन्ति (**सस्रोतसः**) समानं मनो रूपं स्रोतः प्रवाहो यासान्ताः (**सरस्वती**) (**तु**) अवधारणे (**पञ्चधा**) पञ्चज्ञानेन्द्रियशब्दादिविषयप्रतिपादनेन पञ्चप्रकारः (**सा**) (उ) (**देशे**) स्वनिवासे स्थाने (**अभवत्**) भवति (**सरित्**) या सरति गच्छसि सा॥११॥

अन्वयः-मनुष्यैः सस्रोतसः पञ्च नद्यः यां सरस्वतीमपि यन्ति, सा उ सरित् सरस्वती देशे पञ्चधा त्वभवदिति विज्ञेया॥११॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैर्या वाणी पञ्चशब्दादिविषयाश्रिता सरिद्वर्त्तते, तां विज्ञाय यथावत् प्रसार्य मधुरा श्लक्ष्णा प्रयोक्तव्या॥

पदार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि **(सस्रोतसः)** एक मन रूप प्रवाहों वाली **(पञ्च)** पांच **(नद्यः)** नदी के तुल्य प्रवाहरूप ज्ञानेन्द्रियों की वृत्ति, जिस **(सरस्वतीम्)** प्रशस्त विज्ञानयुक्त वाणी को **(अपि, यन्ति)** प्राप्त होती हैं **(सा, उ)** वह भी **(सरित्)** चलनेवाली **(सरस्वती)** वाणी **(देशे)** अपने निवासस्थान में **(पञ्चधा)** पांच ज्ञानेन्द्रियों के शब्दादि पांच विषयों का प्रतिपादन करने से पांच प्रकार की **(तु)** ही **(अभवत्)** होती है, ऐसा जानें॥११॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि जो वाणी पांच शब्दादि विषयों के आश्रित हुई नदी के तुल्य प्रवाहयुक्त वर्त्तमान है, उसको जानके यथावत् प्रचार कर मधुर और श्लक्ष्ण प्रयुक्त करें॥११॥

त्वमग्न इत्यस्य हिरण्यस्तूप आङ्गिरस ऋषिः। अग्निर्देवता। विराड् जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

अथ जनैरीश्वराज्ञा पाल्येत्याह॥

अब मनुष्यों को ईश्वराज्ञा पालनी चाहिए, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

त्वम॑ग्ने प्रथ॒मोऽअङ्गि॑रा॒ऽऋषि॑र्दे॒वो दे॒वाना॑मभवः शि॒वः सखा॑।
तव॑ व्र॒ते क॒वयो॑ विद्म॒नाप॑सो॒ऽजा॑यन्त म॒रुतो॒ भ्राज॑दृष्टयः॥१२॥

त्वम्। अ॒ग्ने॒। प्र॒थ॒मः। अङ्गि॑राः। ऋषि॑ः। दे॒वः। दे॒वाना॑म्। अ॒भ॒वः॒। शि॒वः। सखा॑॥ तव॑। व्र॒ते। क॒वय॑ः। वि॒द्म॒नाप॑स॒ इति॑ वि॒द्म॒नाऽअ॑पसः। अजा॑यन्त। म॒रुत॑ः। भ्राज॑दृष्टय॒ इति॒ भ्राज॑त्ऽऋष्टयः॥१२॥

पदार्थः-**(त्वम्)** **(अग्ने)** परमेश्वर विद्वन् वा **(प्रथमः)** प्रख्यातः **(अङ्गिराः)** अङ्गानां रस इव वर्त्तमानो यद्वाऽङ्गिभ्यो जीवात्मभ्यो सुखं राति ददाति सः **(ऋषिः)** ज्ञाता **(देवः)** दिव्यगुणकर्मस्वभावः **(देवानाम्)** विदुषाम् **(अभवः)** भवेः **(शिवः)** कल्याणकारी **(सखा)** मित्रः **(तव)** **(व्रते)** शीले नियमे वा **(कवयः)** मेधाविनः **(विद्मनापसः)** विद्मनानि विदितान्यपांसि कर्माणि येषान्ते **(अजायन्त)** जायन्ते **(मरुतः)** मनुष्याः **(भ्राजदृष्टयः)** भ्राजन्त्यः शोभमाना ऋष्टय आयुधानि येषान्ते॥१२॥

अन्वयः-हे अग्ने! यतस्त्वं प्रथमोऽङ्गिरा देवानां देवः शिवः सखा ऋषिरभवस्तस्मात् तव व्रते विद्मनापसो भ्राजदृष्टयः कवयो मरुतोऽजायन्त॥१२॥

भावार्थः-यदि मनुष्याः सर्वसुहृदं विद्वांसं सर्वमित्रं परमात्मानञ्च सखायं मत्वा विज्ञाननिमित्तानि कर्माणि कृत्वा प्रकाशितात्मनो भवेयुस्तर्हि ते विद्वांसो भूत्वा परमेश्वरस्याज्ञायां वर्त्तितुं शक्नुयुः॥१२॥

पदार्थः-हे **(अग्ने)** परमेश्वर वा विद्वान्! जिस कारण **(त्वम्)** आप **(प्रथमः)** प्रख्यात **(अङ्गिराः)** अवयवों के सारभूत रस के तुल्य वा जीवात्माओं को सुख देनेवाले **(देवानाम्)** विद्वानों के बीच **(देवः)** उत्तम गुण, कर्म, स्वभावयुक्त **(शिवः)** कल्याणकारी **(सखा)** मित्र **(ऋषिः)** ज्ञानी **(अभवः)** होवें, इससे **(तव)** आपके **(व्रते)** स्वभाव वा नियम में **(विद्मनापसः)** प्रसिद्ध कर्मों वालें **(भ्राजदृष्टयः)** सुन्दर हथियारों से युक्त **(कवयः)** बुद्धिमान् **(मरुतः)** मनुष्य **(अजायन्त)** प्रकट होते हैं॥१२॥

भावार्थः-यदि मनुष्य सबके मित्र विद्वान् जन और सबके हितैषी परमात्मा को मित्र मान, विज्ञान के निमित्त कर्मों को कर प्रकाशित आत्मावाले हों तो वे विद्वान् होकर परमेश्वर की आज्ञा में वर्त्त सकें॥१२॥

त्वन्न इत्यस्य हिरण्यस्तूप आङ्गिरस ऋषिः। अग्निर्देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

राजेश्वरौ कथं सेवनीयावित्याह॥

राजा और ईश्वर की कैसी सेवा करनी चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

त्वं नोऽअग्ने तव देव पायुभिर्मघोनो रक्ष तन्वश्च वन्द्य।
त्राता तोकस्य तनये गवामस्यनिमेषꣳ रक्षमाणस्तव व्रते॥१३॥

त्वम्। नः। अग्ने। तव। देव। पायुभिरिति पायुऽभिः। मघोनः। रक्ष। तन्वः। च। वन्द्य॥ त्राता। तोकस्य। तनये। गवाम्। असि। अनिमेषमित्यनिमेषम्। रक्षमाणः। तव। व्रते॥१३॥

पदार्थः-**(त्वम्)** **(नः)** अस्माकम् **(अग्ने)** राजन्नीश्वर वा **(तव)** **(देव)** दिव्यगुणकर्मस्वभाव **(पायुभिः)** रक्षादिभिः **(मघोनः)** बहुधनयुक्तान् **(रक्ष)** **(तन्वः)** शरीराणि **(च)** **(वन्द्य)** वन्दितुं स्तोतुं योग्य **(त्राता)** रक्षिता **(तोकस्य)** अपत्यस्य **(तनये)** पौत्रस्य। अत्र विभक्तिव्यत्ययः। **(गवाम्)** धेन्वादीनाम् **(असि)** **(अनिमेषम्)** निरन्तरम् **(रक्षमाणः)** **(तव)** **(व्रते)** सुनियमे॥१३॥

अन्वयः-हे अग्ने! देव तव व्रते वर्त्तमानान् मघोनोऽस्मान् तव पायुभिस्त्वं रक्ष, नस्तन्वश्च रक्ष। हे वन्द्य! यतस्त्वमनिमेषं रक्षमाणस्तोकस्य तनये गवाञ्च त्रातासि, तस्मादस्माभिर्नित्यं सत्कर्त्तव्य उपासनीयश्चासि॥१३॥

भावार्थः-अत्र श्लेषालङ्कारः। य ईश्वरगुणकर्मस्वभावाज्ञानुकूलत्वे वर्त्तन्ते, येषामीश्वरो विद्वांसश्च सततं रक्षकाः सन्ति, ते श्रिया दीर्घायुषा प्रजाभिश्च रहिता कदाचिन्न भवन्ति॥१३॥

पदार्थः-हे **(देव)** उत्तम गुणकर्मस्वभावयुक्त **(अग्ने)** राजन् वा ईश्वर **(तव)** आप के **(व्रते)** उत्तम नियम में वर्त्तमान **(मघोनः)** बहुत धनयुक्त हम लोगों की **(तव)** आपके **(पायुभिः)** रक्षादि के हेतु कर्म्मों से **(त्वम्)** आप **(रक्ष)** रक्षा कीजिये **(च)** और **(नः)** हमारे **(तन्वः)** शरीरों की रक्षा कीजिये। हे **(वन्द्य)** स्तुति के योग्य भगवन्! जिस कारण आप **(अनिमेषम्)** निरन्तर **(रक्षमाणः)** रक्षा करते हुए **(तोकस्य)** सन्तान पुत्र **(तनये)** पौत्र और **(गवाम्)** गौ आदि के **(त्राता)** रक्षक **(असि)** हैं, इसलिये हम लोगों के सर्वदा सत्कार और उपासना के योग्य हैं॥१३॥

भावार्थः-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जो मनुष्य ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभावों और आज्ञा की अनुकूलता से वर्तमान हैं, जिनकी ईश्वर और विद्वान् लोग निरन्तर रक्षा करनेवाले हैं, वे लक्ष्मी, दीर्घावस्था और सन्तानों से रहित कभी नहीं होते॥१३॥

उत्तानायामित्यस्य देवश्रवदेववातौ भारतावृषी। अग्निर्देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनर्विद्वान् किं कुर्य्यादित्याह॥

फिर विद्वान् लोग क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उत्तानायामव भरा चिकित्वान्त्सद्यः प्रवीता वृषणं जजान।

अरुषस्तूपो रुशदस्य पाजऽइडायास्पुत्रो वयुनेऽजनिष्ट॥१४॥

उत्तानायाम्। अव। भर। चिकित्वान्। सद्यः। प्रवीतेति प्रऽवीता। वृषणम्। जजान॥ अरुषस्तूप इत्यरुषऽस्तूपः। रुशत्। अस्य। पाजः। इडायाः। पुत्रः। वयुने। अजनिष्ट॥१४॥

पदार्थः-**(उत्तानायाम्)** उत्कृष्टतया विस्तीर्णायां भूमावन्तरिक्षे वा **(अव)** अर्वाचीने **(भर)**। अत्र **द्व्यचोऽतस्तिङः** [अ०६.३.१३५] इति दीर्घः। **(चिकित्वान्)** ज्ञानवान् **(सद्यः)** **(प्रवीता)** कमिता **(वृषणम्)** वृष्टिकरं यज्ञम् **(जजान)** जनयते। अत्रान्तर्गतो णिच् प्रत्ययः। **(अरुषस्तूपः)** योऽरुषानहिंसकान् उच्छाययति सः **(रुशत्)** सुरूपम् **(अस्य)** **(पाजः)** बलम् **(इडायाः)** प्रशंसितायाः **(पुत्रः)** **वयुने)** विज्ञाने **(अजनिष्ट)** जायते॥१४॥

अन्वयः-हे विद्वँस्त्वं यथा चिकित्वान् प्रवीता विद्वानुत्तानायां वृषणं जजानाऽरुषस्तूप इडायाः पुत्रो वयुनेऽजनिष्टाऽस्य रुशत्पाजश्चाऽजनिष्ट तथा सद्योऽवभर॥१४॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यदि मनुष्याः अस्यां सृष्टौ ब्रह्मचर्यादिना कुमारान् कुमारींश्च द्विजान् सम्पादयेयुस्तर्ह्येते सद्यो विद्वांसः स्युः॥१४॥

पदार्थः-हे विद्वन् पुरुष! आप जैसे **(चिकित्वान्)** ज्ञानवान् **(प्रवीता)** कामना करनेहारा विद्वान् जन **(उत्तानायाम्)** उत्कर्षता के साथ विस्तीर्ण भूमि वा अन्तरिक्ष में **(वृषणम्)** वर्षा के हेतु यज्ञ को **(जजान)** प्रकट करता और **(अरुषस्तूपः)** रक्षक लोगों की उन्नति करनेवाला **(इडायाः)**

प्रशंसित स्त्री का **(पुत्रः)** **पुत्र** **(वयुने)** विज्ञान में **(अजनिष्ट)** प्रसिद्ध होता **(अस्य)** इसका **(रुशत्)** सुन्दर रूपयुक्त **(पाजः)** बल प्रसिद्ध होता है, वैसे **(सद्यः)** शीघ्र **(अव, भर)** अपनी ओर पुष्ट कर॥१४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। यदि मनुष्य इस सृष्टि में ब्रह्मचर्य आदि के सेवन से कन्या-पुत्रों को द्विज करें, तो ये सब शीघ्र विद्वान् हो जावें॥१४॥

इडाया इत्यस्य देवश्रवदेववातौ भारतावृषी। अग्निर्देवता। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

किंभूतो जनो राज्याधिकारे स्थापनीय इत्याह॥

कैसा मनुष्य राज्य के अधिकार पर स्थापित करने योग्य है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

इडा॑यास्त्वा प॒दे व॒यं नाभा॑ पृथि॒व्याऽअधि॑।

जात॑वेदो॒ नि धी॑मह्यग्ने॑ ह॒व्याय॒ वोढ॑वे॥१५॥

इडा॑याः। त्वा॒। प॒दे। व॒यम्। नाभा॑। पृ॒थि॒व्याः। अधि॑॥ जात॑वेद॒ इति॒ जात॑ऽवेदः। नि। धी॒म॒हि॒। अग्ने॑। ह॒व्याय॑। वोढ॑वे॥१५॥

पदार्थः-**(इडायाः)** प्रशंसितायाः वाचः **(त्वा)** त्वाम् **(पदे)** प्रतिष्ठायाम् **(वयम्)** अध्यापकोपदेशकाः **(नाभा)** नाभौ मध्ये **(पृथिव्याः)** विस्तीर्णाया भूमेः **(अधि)** उपरि **(जातवेदः)** जातप्रज्ञान **(नि)** नितराम् **(धीमहि)** स्थापयेम **(अग्ने)** अग्निरिव तेजस्विन् विद्वन् राजन्! **(हव्याय)** होतुं दातुमर्हम्। अत्र विभक्तिव्यत्ययः। **(वोढवे)** वोढुं प्राप्तुं प्रापयितुं वा॥१५॥

अन्वयः-हे जातवेदोऽग्ने! वयमिडायाः पदे पृथिव्या अधि नाभा त्वा हव्याय वोढवे नि धीमहि॥१५॥

भावार्थः-हे विद्वन् राजन्! यस्मिन्नधिकारे त्वां वयं स्थापयेम, तमधिकारं धर्मपुरुषार्थाभ्यां यथावत् साध्नुहि॥१५॥

पदार्थः-हे **(जातवेदः)** उत्पन्न बुद्धिवाले **(अग्ने)** अग्नि के तुल्य तेजस्वी विद्वन् राजन्! **(वयम्)** अध्यापक तथा उपदेशक हम लोग **(इडायाः)** प्रशंसित वाणी की **(पदे)** व्यवस्था तथा **(पृथिव्याः)** विस्तृत भूमि के **(अधि)** ऊपर **(नाभा)** मध्यभाग में **(त्वा)** आपको **(हव्याय)** देने योग्य पदार्थों को **(वोढवे)** प्राप्त करने वा कराने के लिये **(नि, धीमहि)** निरन्तर स्थापित करते हैं॥१५॥

भावार्थः-हे विद्वान् राजन्! जिस अधिकार में आपको हम लोग स्थापित करें, उस अधिकार को धर्म और पुरुषार्थ से यथावत् सिद्ध कीजिये॥१५॥

प्र मन्मह इत्यस्य नोधा ऋषिः। इन्द्रो देवता। विराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

मनुष्यैर्विद्याधर्मौ वर्द्धनीयावित्याह॥

मनुष्यों को विद्या और धर्म बढ़ाने चाहियें, इस विषय को कहते हैं॥

प्र मन्महे शवसानाय शूषमाङ्गूषं गिर्वणसेऽअङ्गिरस्वत्।
सुवृक्तिभिः स्तुवतऽऋग्मियायार्चामार्कं नरे विश्रुताय॥ १६॥

प्र। मन्महे। शवसानाय। शूषम्। आङ्गूषम्। गिर्वणसे। अङ्गिरस्वत्॥ सुवृक्तिभिरिति सुवृक्तिऽभिः स्तुवते। ऋग्मियाय। अर्चाम। अर्कम्। नरे। विश्रुतायेति विऽश्रुताय॥ १६॥

पदार्थः-(**प्र**) (**मन्महे**) याचामहे। **मन्मह इति याञ्चाकर्मा॥** (निघं०३।१९) (**शवसानाय**) विज्ञानाय (**शूषम्**) बलम् (**आङ्गूषम्**) विद्याशास्त्रबोधम्। **आङ्गूष इति पदनामसु पठितम्॥** (निघं०४।२) (**गिर्वणसे**) गिरः सुशिक्षिता वाचो वनन्ति संभजन्ति वा तस्मै (**अङ्गिरस्वत्**) प्राणवत् (**सुवृक्तिभिः**) सुष्ठु वृजते दोषान् यासु क्रियासु ताभिः (**स्तुवते**) यः शास्त्रार्थान् स्तौति (**ऋग्मियाय**) यो ऋचो मिनोत्यधीते तस्मै (**अर्चाम**) सत्कुर्याम (**अर्कम्**) अर्चनीयम् (**नरे**) नायकाय (**विश्रुताय**) विशेषेण श्रुता गुणा यस्मिंस्तस्मै॥ १६॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा वयं सुवृक्तिभिः शवसानाय गिर्वणस ऋग्मियाय विश्रुताय स्तुवते नरेऽङ्गिरस्वदाङ् गूषं शूषं प्रमन्मह एवमर्कमर्चाम। तथैतं प्रति यूयमपि वर्त्तध्वम्॥ १६॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। मनुष्यैः सत्करणीयस्य सत्कारं निरादराणीस्य निरादरं कृत्वा विद्याधर्मौ सततं वर्द्धनीयौ॥ १६॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे हम लोग (**सुवृक्तिभिः**) निर्दोष क्रियाओं से (**शवसानाय**) विज्ञान के अर्थ (**गिर्वणसे**) सुशिक्षित वाणियों से युक्त (**ऋग्मियाय**) ऋचाओं को पढ़नेवाले (**विश्रुताय**) विशेष कर जिसमें गुण सुने जावें (**स्तुवते**) शास्त्र के अभिप्रायों को कहने (**नरे**) नायक मनुष्य के लिये (**अङ्गिरस्वत्**) प्राण के तुल्य (**आङ्गूषम्**) विद्याशास्त्र के बोधरूप (**शूषम्**) बल को (**प्र, मन्महे**) चाहते हैं और इस (**अर्कम्**) पूजनीय पुरुष का (**अर्चाम**) सत्कार करें, वैसे इस विद्वान् के प्रति तुम लोग भी वर्त्तो॥ १६॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। मनुष्यों को चाहिये कि सत्कार के योग्य का सत्कार और निरादर के योग्य का निरादर करके विद्या और धर्म को निरन्तर बढ़ाया करें॥ १६॥

प्र व इत्यस्य नोधा ऋषिः। इन्द्रो देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ के पितरः सन्तीत्याह॥

अब कौन पितर लोग हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प्र वो॑ म॒हे महि॒ नमो॑ भरध्वमाङ्गू॒ष्य॒ꣳ शवसा॒नाय॒ साम॑।

येना॑ नः॒ पूर्वे॑ पि॒तरः॑ पद॒ज्ञाऽअर्च॑न्तो॒ऽअङ्गि॑रसो॒ गाऽअवि॑न्दन्॥ १७॥

प्र। वः॒। म॒हे। महि॑। नमः॑। भ॒रध्व॒म्। आ॒ङ्गू॒ष्य॒म्। श॒व॒सा॒नाय॑। साम॑॥ येन॑। नः॒। पूर्वे॑। पि॒तरः॑। प॒द॒ज्ञा इति॑ पद॒ऽज्ञाः। अर्च॑न्तः। अङ्गि॑रसः। गाः। अवि॑न्दन्॥ १७॥

पदार्थः-(**प्र**) (**वः**) युष्मभ्यम् (**महे**) महते (**महि**) महत्सकारार्थम् (**नमः**) सत्कर्मान्नं वा (**भरध्वम्**) धरत (**आङ्गूष्यम्**) आङ्गूषाय सत्काराय बलाय वा हितम् (**शवसानाय**) ब्रह्मचर्य्यसुशिक्षाभ्यां शरीरात्मबलयुक्ताय (**साम**) सामवेदम् (**येन**) अत्र **संहितायाम्** [अ०६.३.११४] इति दीर्घः। (**नः**) अस्माकमस्मान् वा (**पूर्वे**) पूर्वजाः (**पितरः**) पालका ज्ञानिनः (**पदज्ञाः**) ये पदं ज्ञातव्यं प्रापणीयमात्मस्वरूपं जानन्ति ते (**अर्चन्तः**) सत्क्रियां कुर्वन्तः (**अङ्गिरसः**) सर्वस्याः सृष्टेर्विद्याङ्गविदः (**गाः**) सुशिक्षिता वाचः (**अविन्दन्**) लम्भयेरन्॥ १७॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा पदज्ञा नोऽस्मानर्चन्तोऽङ्गिरस पूर्वे नः पितरो येन महे शवसानाय वश्चाऽऽङ्गूष्यं साम गाश्चाविन्दन् तेन तेभ्यो यूयं महि नमः प्रभरध्वम्॥ १७॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे मनुष्याः! ये विद्वांसो युष्मान् विद्यासुशिक्षाभ्यां विपश्चितो धार्मिकान् कुर्युस्तानेव पूर्वाऽधीतविद्यान् पितॄन् विजानीत॥ १७॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे (**पदज्ञाः**) जानने वा प्राप्त होने योग्य आत्मस्वरूप को जाननेवाला (**नः**) हमारा (**अर्चन्तः**) सत्कार करते हुए (**अङ्गिरसः**) सब सृष्टि की विद्या के अवयवों को जाननेवाले (**पूर्वे**) पूर्वज (**पितरः**) रक्षक ज्ञानी लोग (**येन**) जिससे (**महे**) बड़े (**शवसानाय**) ब्रह्मचर्य और उत्तम शिक्षा से शरीर और आत्मा के बल युक्त जन और (**वः**) तुम लोगों के अर्थ (**आङ्गूष्यम्**) सत्कार वा बल के लिये उपयोगी (**साम**) सामवेद और (**गाः**) सुशिक्षित वाणियों को (**अविन्दन्**) प्राप्त करावें, उसी से उनके लिये तुम लोग (**महि**) महत्सकार के लिये (**नमः**) उत्तम कर्म वा अन्न को (**प्र, भरध्वम्**) धारण करो॥ १७॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जो विद्वान् लोग तुमको विद्या और उत्तम शिक्षा से पण्डित धर्मात्मा करें, उन्हीं प्रथम पठित लोगों को तुम पितर जानो॥ १७॥

इच्छन्तीत्यस्य देवश्रवा देववातश्च भारतावृषी। इन्द्रो देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथाप्तलक्षणमाह॥

अब आप्त का लक्षण कहते हैं॥

इ॒च्छन्ति॑ त्वा सो॒म्यासः॒ सखा॑यः सु॒न्वन्ति॒ सोमं॒ दध॑ति॒ प्रया॑ꣳसि।
तिति॑क्षन्तेऽअ॒भिश॑स्तिं॒ जना॑ना॒मिन्द्र॒ त्वदा कश्च॒न हि प्र॒के॒तः॥ १८॥

इ॒च्छन्ति॑। त्वा॒। सो॒म्यासः॑। सखा॑यः। सु॒न्वन्ति॑। सोम॑म्। दध॑ति। प्रया॑ꣳसि॥ तिति॑क्षन्ते॑। अ॒भिश॑स्ति॒मित्य॒भिऽश॑स्तिम्। जना॑नाम्। इन्द्र॑। त्वत्। आ। कः। च॒न। हि। प्र॒के॒त इति॑ प्रऽके॒तः॥ १८॥

पदार्थः-(**इच्छन्ति**) (**त्वा**) त्वाम् (**सोम्यासः**) सोमेष्वैश्वर्यादिषु साधवः (**सखायः**) सुहृदः सन्तः (**सुन्वन्ति**) निष्पादयन्ति (**सोमम्**) ऐश्वर्यादिकम् (**दधति**) धरन्ति (**प्रयांसि**) कमनीयानि विज्ञानादीनि (**तितिक्षन्ते**) सहन्ते (**अभिशस्तिम्**) दुर्वचनवादम् (**जनानाम्**) मनुष्याणाम् (**इन्द्र**) राजन्! (**त्वत्**) तव सकाशात् (**आ**) समन्तात् (**कः**) (**चन**) अपि (**हि**) यतः (**प्रकेतः**) प्रकृष्टा केता प्रज्ञा यस्य सः॥ १८॥

अन्वयः-हे इन्द्र! ये सोम्यासः सखायः सोमं सुन्वन्ति प्रयांसि दधति जनानामभिशस्तिमा तितिक्षन्ते च। तांस्त्वं सततं सत्कुरु, हि यतस्त्वत् प्रकेतः कश्चन नास्ति, तस्मात् सर्वे त्वा त्वामिच्छन्ति॥ १८॥

भावार्थः-ये मनुष्या इह निन्दास्तुतिहानिलाभादीन् तितिक्षवः पुरुषार्थिनः सर्वैः सह मैत्रीमाचरन्त आप्ताः स्युस्ते सर्वैः सेवनीयाः सत्कर्त्तव्याश्च, त एव सर्वेषामध्यापका उपदेष्टारश्च स्युः॥ १८॥

पदार्थः-हे (**इन्द्र**) सभाध्यक्ष राजन्! जो (**सोम्यासः**) ऐश्वर्य होने में उत्तम स्वभाववाले (**सखायः**) मित्र हुए (**सोमम्**) ऐश्वर्यादि को (**सुन्वन्ति**) सिद्ध करते (**प्रयांसि**) चाहने योग्य विज्ञानादि गुणों को (**दधति**) धारण करते और (**जनानाम्**) मनुष्यों के (**अभिशस्तिम्**) दुर्वचन, वाद-विवाद को (**आ, तितिक्षन्ते**) अच्छे प्रकार सहते हैं, उनका आप निरन्तर सत्कार कीजिये। (**हि**) जिस कारण (**त्वत्**) आपसे (**प्रकेतः**) उत्तम बुद्धिमान् (**कः,चन**) कोई भी नहीं, इससे (**त्वा**) आपको सब लोग (**इच्छन्ति**) चाहते हैं॥ १८॥

भावार्थः-जो मनुष्य इस संसार में निन्दा-स्तुति और हानि-लाभादि को सहने वाले पुरुषार्थी सबके साथ मित्रता का आचरण करते हुए आप्त हों, वे सबको सेवने और सत्कार करने योग्य हैं तथा वे ही सबके अध्यापक और उपदेशक होवें॥ १८॥

न त इत्यस्य देवश्रवा देववातश्च भारतावृषी। इन्द्रो देवता। निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनः सभाध्यक्षः किं कुर्य्यादित्याह॥

फिर सभाध्यक्ष राजा क्या करे, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

न ते दूरे पर॒मा चि॒द् रजा॒ꣳस्या तु प्र या॑हि हरिवो॒ हरि॑भ्याम्।
स्थि॒राय॒ वृष्णे॒ सव॑ना कृ॒तेमा यु॒क्ता ग्रावा॑णः समिधा॒नेऽअ॒ग्नौ॥ १९॥

न। ते॒। दू॒रे। प॒र॒मा। चि॒त्। रजा॑ꣳसि। आ। तु। प्र। या॒हि॒। ह॒रि॒व॒ इति॑ हरि॒ऽवः। हरि॑भ्या॒मिति॒ हरि॑ऽभ्याम्॥ स्थि॒राय॑। वृष्णे॑। सव॑ना। कृ॒ता। इ॒मा। यु॒क्ता। ग्रावा॑णः स॒मि॒धा॒न इति॑ सम्॒ऽइ॒धा॒ने। अ॒ग्नौ॥ १९॥

पदार्थः-(**न**) निषेधे (**ते**) तव सकाशात् (**दूरे**) विप्रकृष्टे (**परमा**) परमाणि दूरस्थानि (**चित्**) अपि (**रजांसि**) स्थानानि (**आ**) (**तु**) हेतौ (**प्र**) (**याहि**) गच्छ (**हरिवः**) प्रशस्तौ हरी विद्येते यस्य तत्सम्बुद्धौ (**हरिभ्याम्**) धारणाकर्षणवेगगुणैर्युक्ताभ्यां तुरङ्गाभ्यां जलाऽग्निभ्यां वा (**स्थिराय**) (**वृष्णे**) सुखसेचकाय पदार्थाय (**सवना**) प्रातःसवनादीनि कर्माणि (**कृता**) कृतानि (**इमा**) इमानि (**युक्ताः**) एकीभूताः (**ग्रावाणः**) गर्जनाकर्त्तारौ मेघाः। **ग्रावेति मेघनामसु पठितम्॥** (निघं०१।१०) (**समिधाने**) समिध्यमाने। अत्र यको लुक्। (**अग्नौ**)॥ १९॥

अन्वयः-हे हरिवो राजन्! यथा समिधानेऽग्नौ इमा सवना कृता तु ग्रावाणो युक्ता भूत्वाऽऽगच्छन्ति तथा स्थिराय वृष्णे हरिभ्यामाप्रयाहि। एवं कृते परमा चिद् रजांसि ते दूरे न भवन्ति॥ १९॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे विद्वांसो! यथा पावकेनोत्पादिता वर्षिता मेघाः पृथिव्याः समीपे भवन्त्याकर्षणेन दूरमपि गच्छन्ति तथाऽग्न्यादियानैर्गमने कृते कोऽपि देशो दूरे न भवति। एवं पुरुषार्थं कृत्वाऽलमैश्वर्याणि जनयत॥ १९॥

पदार्थः-हे (**हरिवः**) प्रशस्त घोड़ों वाले राजन्! जैसे (**समिधाने**) प्रदीप्त किये हुए (**अग्नौ**) अग्नि में (**इमा**) ये (**सवना**) प्रातःसवनादि यज्ञकर्म (**कृता**) किये जाते हैं, (**तु**) इसी हेतु से (**ग्रावाणः**) गर्जना करनेवाले मेघ (**युक्ताः**) इकट्ठे होके आते हैं, वैसे (**स्थिराय**) दृढ़ (**वृष्णे**) सुखदायी विद्यादि पदार्थ के लिये (**हरिभ्याम्**) धारण और आकर्षण के वेगरूप गुणों से युक्त घोड़ों वा जल और अग्नि से (**आ, प्र, याहि**) अच्छे प्रकार आइये। इस प्रकार करने से (**परमा**) दूरस्थ (**चित्**) भी (**रजांसि**) स्थान (**ते**) आपके (**दूरे**) दूर (**न**) नहीं होते हैं॥ १९॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे विद्वान् लोगो! जैसे अग्नि से उत्पन्न किये वर्षा के मेघ पृथिवी के समीप होते आकर्षण से दूर भी जाते हैं, वैसे अग्नि के यानों से गमन करने में कोई देश दूर नहीं होता। इस प्रकार पुरुषार्थ करके सम्पूर्ण ऐश्वर्यों को उत्पन्न करो॥ १९॥

अषाढमित्यस्य गोतम ऋषिः। सोमो देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ राजधर्मविषयमाह॥

अब राजधर्म विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अषा॑ढं यु॒त्सु पृत॑नासु॒ पप्रि॑ꣳ स्व॒र्षाम॒प्सां वृ॒जन॑स्य गो॒पाम्।
भ॒रे॒षु॒जाꣳ सु॑क्षि॒तिꣳ सु॒श्रव॑सं॒ जय॑न्तं॒ त्वामनु॑ मदेम सोम॥२०॥

अषा॑ढम्। यु॒त्स्विति॑ यु॒त्ऽसु। पृत॑नासु। पप्रि॑म्। स्व॒र्षाम्। स्व:सामिति॑ स्व॒:ऽसाम्। अ॒प्साम्। वृ॒जन॑स्य। गो॒पाम्॥ भ॒रे॒षु॒जामिति॑ भरेषु॒ऽजाम्। सु॒क्षि॒तिमिति॑ सु॒ऽक्षि॒तिम्। सु॒श्रव॑स॒मिति॑ सु॒ऽश्रव॑सम्। जय॒न्तम्। त्वाम्। अनु॑ म॒दे॒म॒। सो॒म॒॥२०॥

पदार्थः-(**अषाढम्**) सोढुमनर्हम् (**युत्सु**) युद्धेषु (**पृतनासु**) मनुष्यसेनासु (**पप्रिम्**) पूर्णबलविद्यं पालकं वा (**स्वर्षाम्**) यः स्वः सुखं सनति सम्भजति तम् (**अप्साम्**) योऽपो जलानि प्राणान् सनोति ददाति तम् (**वृजनस्य**) बलस्य (**गोपाम्**) रक्षकम् (**भरेषुजाम्**) भरेषु भरणीयेषु सङ्ग्रामेषु जेतारम् (**सुक्षितिम्**) शोभना क्षितिः पृथिवीराज्यं यस्य तम्। **क्षितिरिति पृथिवीनामसु पठितम्॥** (निघं०१।१) (**सुश्रवसम्**) शोभनानि श्रवांस्यन्नानि यशांसि वा यस्य तम्। (**जयन्तम्**) शत्रूणां विजेतारम् (**त्वाम्**) (**अनु**) पश्चात् (**मदेम**) (**सोम**) सकलैश्वर्यसम्पन्न!॥२०॥

अन्वयः-हे सोम राजन् सेनापते वा! वयं यं युत्स्वषाढं पृतनासु पप्रिं स्वर्षामप्सां वृजनस्य गोपां भरेषुजां सुक्षितिं सुश्रवसं जयन्तं त्वामनु मदेम॥२०॥

भावार्थः-यस्य राज्ञः सेनापतेर्वोत्तमस्वभावेन राजसेनाः प्रजाजनाः प्रीताः स्युर्येषु प्रीतेषु राजा प्रीतः स्यात्, तत्र ध्रुवो विजयो निश्चलं परमैश्वर्य्यं पुष्कला प्रतिष्ठा च भवति॥२०॥

पदार्थः-हे (**सोम**) समस्त ऐश्वर्य से युक्त राजन् वा सेनापते! हम लोग जिन (**युत्सु**) युद्धों में (**अषाढम्**) असह्य (**पृतनासु**) मनुष्य की सेनाओं में (**पप्रिम्**) पूर्ण बल विद्यायुक्त वा रक्षक (**स्वर्षाम्**) सुख का सेवन करने वा (**अप्साम्**) जलों वा प्राणों को देनेवाले (**वृजनस्य**) बल के (**गोपाम्**) रक्षक (**भरेषुजाम्**) धारण करने योग्य संग्रामों में जीतनेवाले (**सुक्षितिम्**) पृथिवी के सुन्दर राज्यवाले (**सुश्रवसम्**) सुन्दर अन्न वा कीर्त्तियों से युक्त (**जयन्तम्**) शत्रुओं को जीतनेवाले (**त्वाम्**) आपको (**अनु, मदेम**) अनुमोदित करें॥२०॥

भावार्थः-जिस राजा वा सेनापति के उत्तम स्वभाव से राजपुरुष सेनाजन और प्रजापुरुष प्रसन्न रहें और जिनकी प्रसन्नता में राजा प्रसन्न हो, वहां दृढ़ विजय, उत्तम निश्चल ऐश्वर्य और अच्छी प्रतिष्ठा होती है॥२०॥

सोम इत्यस्य गोतम ऋषिः। सोमो देवता। भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

सोमो॑ धे॒नुꣳ सोमो॒ऽअर्व॑न्तमा॒शुꣳ सोमो॑ वी॒रं क॑र्म॒ण्यं॒ ददाति।

सा॒द॒न्यं॑ वि॒द॒थ्य॑ꣳ स॒भेयं॑ पितृ॒श्रव॑णं॒ यो ददा॑शदस्मै॥२१॥

सोम॑:। धे॒नुम्। सोम॑:। अर्व॑न्तम्। आ॒शुम्। सोम॑:। वी॒रम्। क॒र्म॒ण्य॑म्। ददा॑ति॥ सा॒द॒न्य॑म्। स॒द॒न्य॒मिति॑ सद॒न्य॑म्। वि॒द॒थ्य॑म्। स॒भेय॑म्। पि॒तृ॒श्रव॑ण॒मिति॑ पि॒तृऽश्रव॑णम्। यः। ददा॑शत्। अ॒स्मै॥२१॥

पदार्थः-(**सोमः**) ऐश्वर्यवान् (**धेनुम्**) विद्याधारां वाचम् (**सोमः**) सत्याचारे प्रेरकः (**अर्वन्तम्**) वेगेन गच्छन्तमश्वम् (**आशुम्**) मार्गान् सद्योऽश्नुवन्तम् (**सोमः**) शरीरात्मबलम् (**वीरम्**) शत्रुबलानि व्याप्नुवन्तम् (**कर्मण्यम्**) कर्मणा सम्पन्नम् (**ददाति**) (**सादन्यम्**) सादनेषु स्थापनेषु साधुं (**विदथ्यम्**) विदथे यज्ञे साधुम् (**सभेयम्**) सभायां साधुम् (**पितृश्रवणम्**) पितुः सकाशाच्छ्रवणं यस्य तम् (**यः**) (**ददाशत्**) ददाति (**अस्मै**) सोमाय राज्ञेऽध्यापकायोपदेशकाय वा॥२१॥

अन्वयः-यो मनुष्योऽस्मै सोमायोचितं ददाशत् तस्मै सोमो धेनुं ददाति, सोमोऽर्वन्तमाशुं ददाति, सोमः कर्मण्यं सादन्यं विदथ्यं पितृश्रवणं सभेयं वीरं च ददाति॥२१

भावार्थः-येऽध्यापकोपदेशका राजपुरुषा वा सुशिक्षिता वाचमग्न्यादितत्त्वविद्यां पुरुषज्ञानं सभ्यताञ्च सर्वेभ्यः प्रदद्युस्ते सर्वेः सत्कर्त्तव्याः स्युः॥२१॥

पदार्थः-(**यः**) जो प्रजास्थ मनुष्य (**अस्मै**) इस धर्मिष्ठ राजा वा अध्यापक वा उपदेशक के लिये उचित पदार्थ (**ददाशत्**) देता है, उसके लिये (**सोमः**) ऐश्वर्य्ययुक्त उक्त पुरुष (**धेनुम्**) विद्या की आधाररूप वाणी को (**ददाति**) देता (**सोमः**) सत्याचरण में प्रेरणा करनेहारा राजादि जन (**अर्वन्तम्**) वेग से चलनेवाले तथा (**आशुम्**) मार्ग को शीघ्र व्याप्त होनेवाले घोड़े को देता और (**सोमः**) शरीर तथा आत्मा के बल से युक्त राजादि (**कर्मण्यम्**) कर्मों से युक्त पुरुषार्थी (**सादन्यम्**) बैठाने आदि में प्रवीण (**विदथ्यम्**) यज्ञ करने में कुशल (**पितृश्रवणम्**) आचार्य पिता से विद्या पढ़नेवाले (**सभेयम्**) सभा में बैठने योग्य (**वीरम्**) शत्रुओं के बलों को व्याप्त होनेवाले शूरवीर पुरुष को देता है॥२१॥

भावार्थः-जो अध्यापक, उपदेशक वा राजपुरुष सुशिक्षित वाणी, अग्नि आदि की तत्त्वविद्या, पुरुष का ज्ञान और सभ्यता सबके लिये देवें, वे सबको सत्कार करने योग्य हों॥२१॥

त्वमित्यस्य गोतम ऋषिः। सोमो देवता। विराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

त्वमि॒माऽओष॑धीः सोम॒ विश्वा॒स्त्वम॒पोऽअ॑जनय॒स्त्वं गाः।
त्वमा त॑तन्थो॒र्व॒न्तरि॑क्षं॒ त्वं ज्योति॑षा॒ वि तमो॑ ववर्थ॥२२॥

त्वम्। इमाः। ओषधीः। सोम। विश्वाः। त्वम्। अपः। अजनयः। त्वम्। गाः॥ त्वम्। आ। ततन्थ। उरु। अन्तरिक्षम्। त्वम्। ज्योतिषा। वि। तमः। ववर्थ॥२२॥

पदार्थः-(**त्वम्**) (**इमाः**) (**ओषधीः**) सोमाद्याः (**सोम**) सोमवल्लीव सर्वरोगविनाशक! (**विश्वाः**) सर्वाः (**त्वम्**) (**अपः**) जलानि कर्म वा (**अजनयः**) जनयेः (**त्वम्**) (**गाः**) पृथिवीर्धेनूर्वा (**त्वम्**) (**आ**) (**ततन्थ**) तनोषि (**उरु**) बहु (**अन्तरिक्षम्**) जलमाकाशं वा (**त्वम्**) (**ज्योतिषा**) प्रकाशेन (**वि**) (**तमः**) अन्धकारं रात्रिम् (**ववर्थ**) वृणोषि॥२२॥

अन्वयः-हे सोम राजन्! यस्त्वं विश्वा इमा ओषधीस्त्वं सूर्य इवाऽपस्त्वं गाश्चाऽजनयस्त्वं सूर्य्य उर्वन्तरिक्षमा ततन्थ, सविता ज्योतिषा तम इव न्यायेनाऽन्यायं विववर्थ, स त्वस्माभिर्माननीयोऽसि॥२२॥

भावार्थः-ये जना ओषध्यो रोगानिव दुःखानि हरन्ति, प्राणा इव बलं जनयन्ति, ये राजजनाः सूर्य्यो रात्रिमिवाऽधर्माऽविद्याऽन्धकारं निवर्त्तयन्ति, ते जगत्पूज्याः कुतो न स्युः॥२२॥

पदार्थः-हे (**सोम**) उत्तम सोमवल्ली ओषधियों के तुल्य रोगनाशक राजन्! (**त्वम्**) आप (**इमाः**) इन (**विश्वाः**) सब (**ओषधीः**) सोम आदि ओषधियों को (**त्वम्**) आप सूर्य्य के तुल्य (**अपः**) जलों वा कर्म को और (**त्वम्**) आप (**गाः**) पृथिवी वा गौओं को (**अजनयः**) उत्पन्न वा प्रकट कीजिये। (**त्वम्**) आप सूर्य्य के समान (**उरु**) बहुत (**अन्तरिक्षम्**) अवकाश को (**आ, ततन्थ**) विस्तृत करते तथा (**त्वम्**) आप सूर्य्य जैसे (**ज्योतिषा**) प्रकाश से (**तमः**) अन्धकार को दबाता। वैसे न्याय से अन्याय को (**वि, ववर्थ**) आच्छादित वा निवृत्त कीजिये, सो आप हमको माननीय हैं॥२२॥

भावार्थः-जो मनुष्य जैसे ओषधि रोगों को वैसे दुःखों को हर लेते हैं, प्राणों के तुल्य बलों को प्रकट करते तथा जो राजपुरुष सूर्य्य रात्रि को जैसे वैसे अधर्म और अविद्या के अन्धकार को निवृत्त करते हैं, वे जगत् को पूज्य क्यों नहीं हों?॥२२॥

देवेनेत्यस्य गोतम ऋषिः। सोमो देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

देवेन नो मनसा देव सोम रायो भागꣳ सहसावन्नभि युध्य।
मा त्वा तनदीशिषे वीर्य्यस्योभयेभ्यः प्र चिकित्सा गविष्टौ॥२३॥

देवेन। नः। मनसा। देव। सोम। रायः। भागम्। सहसावन्निति सहसाऽवन्। अभि। युध्य॥ मा। त्वा। आ। तनत्। ईशिषे। वीर्य्यस्य। उभयेभ्यः। प्र। चिकित्स। गविष्टाविति गोऽइष्टौ॥२३॥

पदार्थः-(**देवेन**) दिव्यगुणकर्मस्वभावयुक्तेन (**नः**) अस्मभ्यम् (**मनसा**) (**देव**) दिव्यगुणसम्पन्न (**सोम**) अखिलैश्वर्यप्रापक! (**रायः**) धनस्य (**भागम्**) सेवनीयमंशम् (**सहसावन्**) समोऽधिकं बलं विद्यते यस्य तत्सम्बुद्धौ। अत्र प्रथमार्थे तृतीयाया अलुक्। (**अभि**) आभिमुख्ये (**युध्य**) योधय गमय। अत्र अन्तर्भावितण्यर्थः। **युध्यतिर्गतिकर्मा॥** (निघं०२।१४) (**मा**) निषेधे (**त्वा**) त्वाम् (**आ**) (**तनत्**) सङ्कुचेत्। अत्रोपसर्गाच्चादैर्घ्य इत्याधृषीयपाठात् तनुधातोः स्वगणे लेट् प्रयोगः। (**ईशिषे**) समर्थो भवति (**वीर्य्यस्य**) वीरकर्मणः। अत्र **अधीगर्थदयेशां कर्मणि** (अष्टा०२।३।५२) इति कर्मणि षष्ठी। (**उभयेभ्यः**) ऐहिकपारमार्थिकसुखेभ्यः (**प्र**) (**चिकित्स**) रोगनिवारणायेव विघ्ननिवारणोपायं कुरु। अत्र **संहितायाम्** [अ०६.३.११४] इति दीर्घः। (**गविष्टौ**) गोः स्वर्गस्य सुखविशेषस्येष्टाविच्छायां सत्याम्॥२३॥

अन्वयः-हे सहसावन्त्सोम देव राजन्! यस्त्वं देवेन मनसा रायो भागं नोऽभियुध्य, यतस्त्वं वीर्य्यस्येशिषे त्वा कश्चिन्मा आतनत्, स त्वं गविष्टावुभयेभ्यः प्रचिकित्स॥२३॥

भावार्थः-राजादिविद्वद्भिः कपटादिदोषान् विहाय शुद्धेन भावेन सर्वेभ्यः सुखमभिलष्य वीर्य्यं वर्द्धनीयम्, येन दुःखनिवृत्तिः सुखवृद्धिरिहामुत्र च स्यात्, तत्र सततं प्रयतितव्यम्॥२३॥

पदार्थः-हे (**सहसावन्**) अधिकतर सेनादि बलवाले (**सोम**) संपूर्ण ऐश्वर्य् के प्रापक (**देव**) दिव्य गुणों से युक्त राजन्! जो आप (**देवेन**) उत्तम गुण, कर्म, स्वभावयुक्त (**मनसा**) मन से (**रायः**) धन के (**भागम्**) अंश को (**नः**) हमारे लिये (**अभि, युध्य**) सब ओर से प्राप्त कीजिये, जिससे आप (**वीर्य्यस्य**) वीरकर्म करने को (**ईशिषे**) समर्थ होते हो, इससे (**त्वा**) आपको कोई (**मा**) न (**आ, तनत्**) दबावे सो आप (**गविष्टौ**) सुख विशेष की इच्छा के होते (**उभयेभ्यः**) दोनों इस लोक, परलोक के सुखों के लिये (**प्र, चिकित्स**) रोग निवारण के तुल्य विघ्न निवृत्ति के उपाय को किया कीजिये॥२३॥

भावार्थः-राजादि विद्वानों को चाहिये कि कपटादि दोषों को छोड़ शुद्धभाव से सबके लिये सुख की चाहना करके पराक्रम बढ़ावें और जिस कर्म से दुःख की निवृत्ति तथा सुख की वृद्धि इस लोक, परलोक में हो, उसके करने में निरन्तर प्रयत्न करें॥२३॥

अष्टावित्यस्याऽऽङ्गिरसो हिरण्यस्तूप ऋषिः। सविता देवता। भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अथ सूर्यः किं करोतीत्याह॥

अब सूर्य क्या करता है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अ॒ष्टौ व्य॑ख्यत् क॒कुभ॑: पृथि॒व्यास्त्री धन्व॒ योज॑ना स॒प्त सिन्धू॑न्।

हि॒र॒ण्या॒क्षः स॑वि॒ता दे॒वऽआगा॒द् दध॒द् रत्ना॑ दा॒शुषे॒ वार्य्या॑णि॥२४॥

अ॒ष्टौ। वि। अ॒ख्य॒त्। क॒कुभः॑। पृ॒थि॒व्याः। त्री। धन्व॑। योज॑ना। स॒प्त। सिन्धू॑न्॥ हि॒र॒ण्या॒क्ष इति॑ हिरण्यऽअ॒क्षः। स॒वि॒ता। दे॒वः। आ। अ॒गा॒त्। दध॑त्। रत्ना॑। दा॒शुषे॑। वार्य्या॑णि॥२४॥

पदार्थः-(**अष्टौ**) (**वि**) (**अख्यत्**) विख्यापयति (**ककुभः**) सर्वा दिशः। ककुभ इति दिङ्नामसु पठितम्॥ (निघं०१।६) (**पृथिव्याः**) भूमेः सम्बन्धिनी (**त्री**) त्रीणि (**धन्व**) **धन्वेत्यन्तरिक्षनामसु पठितम्॥** (निघं०१।३) (**योजना**) योजनानि (**सप्त, सिन्धून्**) भौमसमुद्रमारभ्य मेघादूर्ध्वाऽवयवपर्यन्तान् सागरान् (**हिरण्याक्षः**) हिरण्यानि ज्योतींषि अक्षीणीव यस्य सः (**सविता**) सूर्यः (**देव**) द्योतकः (**आ**) (**अगात्**) आगच्छति (**दधत्**) दधानः सन् (**रत्ना**) रमणीयानि पृथिवीस्थानि (**दाशुषे**) दानशीलाय जीवाय (**वार्याणि**) वर्तुं स्वीकर्त्तुं योग्यानि॥२४॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा हिरण्याक्षो देवः सविता दाशुषे वार्य्याणि रत्ना दधत्, त्री धन्व योजना सप्त सिन्धून् पृथिव्या अष्टौ ककुभो व्यख्यदागाच्च, तथैव यूयं भवत॥२४॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यथा सूर्येण पृथिवीमारभ्य द्वादशक्रोशपर्यन्तगुरुत्वलघुत्वयुतानां सप्तविधानामपामवयवाः सर्वा दिशश्च विभज्यन्ते, वर्षादिना सर्वेभ्यः सुखं दीयते, तथा शुभगुणकर्मस्वभावैर्दिगन्तां कीर्त्तिं सम्पाद्य विविधैश्वर्यदानेन मनुष्यादीन् प्राणिनः सततं सुखयत॥२४॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे (**हिरण्याक्षः**) नेत्र के समान रूप दर्शानेवाली ज्योतियों वाला (**देवः**) प्रेरक (**सविता**) सूर्य (**दाशुषे**) दानशील प्राणियों के लिये (**वार्याणि**) स्वीकार करने योग्य (**रत्ना**) पृथिवी के उत्तम पदार्थों को (**दधत्**) धारण करता हुआ (**त्री**) तीन (**धन्व**) अवकाशरूप (**योजना**) अर्थात् बारह कोस और (**सप्त**) सात (**सिन्धून्**) पृथिवी के समुद्र से ले के मेघ के ऊपरले अवयवों पर्यन्त समुद्रों की तथा (**पृथिव्याः**) पृथिवी सम्बन्धिनी (**अष्टौ**) आठ (**ककुभः**) दिशाओं की (**वि, अख्यत्**) प्रसिद्ध प्रकाशित करता है, वैसे ही तुम लोग होओ॥२४॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जैसे सूर्य्य से पृथिवी तक १२ कोस पर्यन्त हलके भारीपन से युक्त सात प्रकार के जल के अवयव और दिशा विभक्त होती तथा वर्षादि से सबको सुख दिया जाता, वैसे शुभ गुण, कर्म और स्वभावों से दिशाओं में कीर्ति फैला के अनेक प्रकार के ऐश्वर्य को देने से मनुष्यादि प्राणियों को निरन्तर सुखी करो॥२४॥

हिरण्यपाणिरित्यस्याङ्गिरसो हिरण्यस्तूप ऋषिः। सविता देवता। निचृज्जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

हिर॑ण्यपाणिः सवि॒ता विच॑र्षणिरु॒भे द्यावा॑पृथि॒वीऽअ॒न्तरी॑यते।

अपामी॑वां॒ बाध॑ते॒ वेति॒ सूर्य्य॑म॒भि कृ॒ष्णेन॒ रज॑सा॒ द्याम॑ृणोति॥ २५॥

हिर॑ण्यपाणि॒रिति॒ हिर॑ण्यऽपाणिः। स॒वि॒ता। विच॑र्षणि॒रिति॒ विऽच॑र्षणिः। उ॒भेऽइत्यु॒भे। द्यावा॑पृथि॒वी इति॒ द्यावा॑पृथि॒वी। अ॒न्तः। ई॒य॒ते॒॥ अप॑। अमी॑वाम्। बाध॑ते। वेति॑। सूर्य्य॑म्। अ॒भि। कृ॒ष्णेन॑। रज॑सा। द्याम्। ऋ॒णो॒ति॒॥ २५॥

पदार्थः-(**हिरण्यपाणिः**) हिरण्यं ज्योतिः पाणिरिव यस्य सः (**सविता**) ऐश्वर्यप्रदः (**विचर्षणिः**) विशेषेण दर्शकः (**उभे**) (**द्यावापृथिवी**) प्रकाशभूमी (**अन्तः**) मध्ये (**ईयते**) प्राप्य गच्छति (**अप**) दूरीकरणे (**अमीवाम्**) व्याधिरूपमन्धकारम् (**बाधते**) दूरीकरोति (**वेति**) अस्तमेति (**सूर्य्यम्**) सवितृलोकः। अत्र विभक्तिव्यत्ययः। (**अभि**) सर्वतः (**कृष्णेन**) कृष्णवर्णेन (**रजसा**) अन्धकारलक्षणेन (**द्याम्**) (**ऋणोति**) गच्छति प्राप्नोति। **ऋणोतीति गतिकर्मा॥** (निघं०२।१४)॥२५॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यो हिरण्यपाणिर्विचर्षणिः सविता सूर्य्यं यदोभे द्यावापृथिवी अन्तरीयते, तदाऽमीवामपबाधते, यदा च वेति तदा कृष्णेन रजसा द्यामाभि ऋणोति तं यूयं विजानीत॥२५॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यथा सूर्य्यः सन्निहिताँल्लोकानाकृष्य धरति, तथैवाऽनेकलोकाऽलंकृतं सूर्य्यादिकं सर्वं जगदभिव्याप्याऽऽकृष्येश्वरो दधातीति यूयं विजानीत। नहीश्वरमन्तरेण सर्वस्य विधाता धर्ता अन्यः कश्चित् सम्भवितुमर्हति॥२५॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो (**हिरण्यपाणिः**) हाथों के तुल्य जलादि के ग्राहक प्रकाशरूप किरणों से युक्त (**विचर्षणिः**) विशेष कर सबको दिखानेवाली (**सविता**) सब पदार्थों की उत्पत्ति का हेतु (**सूर्य्यम्**) सूर्य्यलोक जब (**उभे**) दोनों (**द्यावापृथिवी**) आकाश भूमि के (**अन्तः**) बीच (**ईयते**) उदय होकर घूमता है, तब (**अमीवाम्**) व्याधिरूप अन्धकार को (**अप, बाधते**) दूर करता और जब (**वेति**) अस्त समय को प्राप्त होता तब (**कृष्णेन**) (**रजसा**) काले अन्धकाररूप से (**द्याम्**) आकाश को (**अभि, ऋणोति**) सब ओर से व्याप्त होता है, उस सूर्य्य को तुम लोग जानो॥२५॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जैसे सूर्य्य अपने समीपवर्त्ती लोकों का आकर्षण कर धारण करता है, वैसे ही अनेक लोकों से शोभायमान सूर्यादि सब जगत् को सब ओर से व्याप्त हो और आकर्षण करके ईश्वर धारण करता है, ऐसा जानो। क्योंकि ईश्वर के बिना सबका स्रष्टा तथा धर्त्ता अन्य कोई भी नहीं हो सकता॥२५॥

हिरण्यहस्त इत्यस्य आङ्गिरसो हिरण्यस्तूप ऋषि:। सविता देवता। विराट्त्रिष्टुप् छन्द:।
धैवत: स्वर:॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

हिरण्यहस्तोऽअसुर: सुनीथ: सुमृडीक: स्ववाँ यात्वर्वाङ्।
अपसेधन् रक्षसो यातुधानानस्थाद् देव: प्रतिदोषं गृणान:॥ २६॥

हिरण्यहस्त इति हिरण्यऽहस्त:। असुर:। सुनीथ इति सुऽनीथ:। सुमृडीक इति सुमृडीक:। स्ववानिति स्वऽवान्। यातु। अर्वाङ्। अपसेधन्नित्यपऽसेधन्। रक्षस:। यातुधानानिति यातुऽधानान्। अस्थात्। देव:। प्रतिदोषमिति प्रतिऽदोषम्। गृणान:॥ २६॥

पदार्थ:-(**हिरण्यहस्त:**) हिरण्यानि ज्योतींषि हस्तवद् यस्य स: (**असुर:**) प्रक्षेप्ता (**सुनीथ:**) य: सुष्ठु नयति स: (**सुमृडीक:**) सुष्ठु सुखकर: (**स्ववान्**) स्वे स्वकीया: प्रकाशादयो गुणा विद्यन्ते यस्मिन् स:। अत्र **दीर्घादटि समानपादे॥** (अष्टा०८।३।९) रुत्वे **भोभगो०** [अ०८.३.१७] इत्यनेन रोर्यादेशे च **हलि सर्वेषाम्** [अ०८.३.२२] इति लोप:। (**यातु**) प्राप्नोतु (**अर्वाङ्**) योऽर्वाचीनान् अञ्चति प्राप्नोति स: (**अपसेधन्**) दूरीकुर्वन् (**रक्षस:**) दस्युचोरादीन् (**यातुधानान्**) अन्यायेन परपदार्थधारकान् (**अस्थात्**) उत्तिष्ठति उदेति (**देव:**) प्रकाशक: (**प्रतिदोषम्**) प्रतिजनं यो दोषस्तम्। अत्रोत्तरपदलोप:। (**गृणान:**) उच्चरयन् प्रकटयन्॥ २६॥

अन्वय:-हे मनुष्या:! यो हिरण्यहस्त: सुनीथोऽसुर: सुमृडीक: स्ववान् देवो रक्षसो यातुधानानपसेधन् प्रतिदोषं गृणानश्चास्थात्, सोऽर्वाङस्मत् सुखाय यातु, तद्वद्यूयं भवत॥ २६॥

भावार्थ:-हे मनुष्या:! सदैवौदार्येण याचमानेभ्यो हिरण्यादिकं दत्त्वा दुष्टाचारान् तिरस्कृत्य धार्मिकेभ्य: सुखं प्रदायाऽहर्निशं सूर्यवत् प्रशंसिता भवत॥ २६॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! जो (**हिरण्यहस्त:**) हाथों के तुल्य प्रकाशोंवाला (**सुनीथ:**) सुन्दर प्रकार प्राप्ति कराने (**असुर:**) जलादि को फेंकनेवाला (**सुमृडीक:**) सुन्दर सुखकारी (**स्ववान्**) अपने प्रकाशादि गुणों से युक्त (**देव:**) प्रकाशक सूर्य्यलोक (**यातुधानान्**) अन्याय से दूसरों के पदार्थों को धारण करनेवाले (**रक्षस:**) डाकू, चोर आदि को (**अपसेधन्**) निवृत्त करता अर्थात् डाकू, चोर आदि सूर्योदय होने पर अपना काम नहीं बना सकते, किन्तु प्राय: रात्रि को ही अपना काम बनाते हैं ओर (**प्रतिदोषम्**) मनुष्यों के प्रति जो दोष उसको (**गृणान:**) प्रकट करता हुआ (**अस्थात्**) उदित होता है, वह (**अर्वाङ्**) समीपवर्ती पदार्थों को प्राप्त होनेवाला हमारे सुख के अर्थ (**यातु**) प्राप्त होवे, वैसे तुम होओ॥ २६॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! मांगनेवालों के लिये उदारता से सुवर्णादि तथा दुष्टाचारियों का तिरस्कार कर और धार्मिक जनों को सुख देके प्रतिदिन सूर्य्य के तुल्य प्रशंसित होओ॥२६॥

ये त इत्यस्याङ्गिरसो हिरण्यस्तूप ऋषिः। सविता देवता। विराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथाध्यापकोपदेशकविषयमाह॥

अब अध्यापक और उपदेशक विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ये ते पन्थाः सवितः पूर्व्यासोऽरेणवः सुकृताऽअन्तरिक्षे।
तेभिर्नोऽअद्य पथिभिः सुगेभी रक्षा च नोऽअधि च ब्रूहि देव॥२७॥

ये। ते। पन्थाः। सवितरिति सवितः। पूर्व्यासः। अरेणवः। सुकृता इति सुऽकृताः। अन्तरिक्षे॥ तेभिः। नः। अद्य। पथिभिरिति पथिऽभिः। सुगेभिरिति सुऽगेभिः। रक्षा। च। नः। अधि। च। ब्रूहि। देव॥२७॥

पदार्थः-(**ये**) (**ते**) तव (**पन्थाः**) मार्गाः। अत्र वचनव्यत्ययेनैकवचनम्। (**सवितः**) सवितृवदैश्वर्यप्रद (**पूर्व्यासः**) पूर्वैराप्तैः सेविताः (**अरेणवः**) अविद्यमाना रेणवो येषु ते (**सुकृताः**) सुष्ठु निष्पादिताः (**अन्तरिक्षे**) आकाशे (**तेभिः**) तैः (**नः**) अस्मान् (**अद्य**) इदानीम् (**पथिभिः**) मार्गैः (**सुगेभिः**) सुखेन गमनाऽधिकरणैः (**रक्ष**) अत्र **द्व्यचोऽतस्तिङः** [अ०६.३.१३५] इति दीर्घः। (**च**) (**नः**) अस्मान् (**अधि**) उपरिभावे (**च**) (**ब्रूहि**) उपदिश (**देव**) सुखविद्ययोर्दातः॥२७॥

अन्वयः-हे सवितर्देवाऽऽप्तविद्वन्! यस्य ते सूर्यस्यान्तरिक्षे इव ये पूर्व्यासोऽरेणवः सुकृताः पन्थाः सन्ति, तेभिस्सुगेभिः पथिभिरद्य नो नय, तत्र गच्छतो नो रक्ष च नोऽस्मांश्चाधि ब्रूहि। एवं सर्वान् प्रति बोधय॥२७॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे विद्वांसो! युष्माभिर्यथा सूर्यास्याऽन्तरिक्षे निर्मलाः मार्गाः सन्ति, तथैवोपदेशाध्यापनाभ्यां विद्याधर्मसुशीलप्रदाः पन्थानः प्रचारणीयाः॥२७॥

पदार्थः-हे (**सवितः**) सूर्य के तुल्य ऐश्वर्य देनेवाले (**देव**) विद्या और सुख के दाता आप्त विद्वान् पुरुष! जिस (**ते**) आपके जैसे सूर्य के (**अन्तरिक्षे**) आकाश में गमन के शुद्ध मार्ग हैं, वैसे (**ये**) जो (**पूर्व्यासः**) पूर्वज आप्तजनों ने सेवन किये (**अरेणवः**) धूलि आदि रहित (**सुकृताः**) सुन्दर सिद्ध किये (**पन्था**) मार्ग हैं, (**तेभिः**) उन (**सुगेभिः**) सुखपूर्वक जिनमें चलें ऐसे (**पथिभिः**) मार्गों से (**अद्य**) आज (**नः**) हम लोगों को चलाइये, इन मार्गों से चलते हुए हमारी (**रक्ष**) रक्षा (**च**) भी कीजिये (**च**) तथा (**नः**) हमको (**अधि, ब्रूहि**) अधिकतर उपदेश कीजिये, इसी प्रकार सबको चेतन कीजिये॥२७॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे विद्वानो! तुमको चाहिये कि जैसे सूर्य के आकाश में निर्मल मार्ग हैं, वैसे ही उपदेश और अध्यापन से विद्या, धर्म और सुशीलता के दाता मार्गों का प्रचार करें॥२७॥

उभेत्यस्य प्रस्कण्व ऋषिः। अश्विनौ देवते। निचृद् गायत्री छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उभा पिबतमश्विनोभा नः शर्म यच्छतम्।

अविद्रियाभिरूतिभिः॥२८॥

उभा। पिबतम्। अश्विना। उभा। नः। शर्म। यच्छतम्॥ अविद्रियाभिः। ऊतिभिरित्यूतिऽभिः॥२८॥

पदार्थः-(**उभा**) द्वौ (**पिबतम्**) (**अश्विना**) सूर्य्याचन्द्रमसाविवाऽध्यापकोपदेशकौ! (**उभा**) द्वौ (**नः**) अस्मभ्यम् (**शर्म**) श्रेष्ठं शरणं सुखं वा (**यच्छतम्**) दद्यातम् (**अविद्रियाभिः**) अच्छिद्राभिः (**ऊतिभिः**) रक्षणादिभिः॥२८॥

अन्वयः-हे अश्विना! उभा युवां यत्रोत्तमं रसं पिबतं तच्छर्मोभा युवामविद्रियाभिरूतिभी रक्षितं गृहं नो यच्छतम्॥२८॥

भावार्थः-अध्यापकोपदेशकैः सदोत्तमगृहरचननिवासोपदेशान् कृत्वा यत्र पूर्णा रक्षा स्यात्, तत्र सर्वे प्रेरणीयाः॥२८॥

पदार्थः-हे (**अश्विना**) सूर्य चन्द्रमा के तुल्य अध्यापक उपदेशको! (**उभा**) दोनों तुम लोग जिस जगह पर उत्तम रस को (**पिबतम्**) पिओ उस (**शर्म**) उत्तम आश्रय स्थान वा सुख को (**उभा**) दोनों तुम (**अविद्रियाभिः**) छिद्ररहित (**ऊतिभिः**) रक्षादि क्रियाओं से रक्षित घर को (**नः**) हमारे लिये (**यच्छतम्**) देओ॥२८॥

भावार्थः-अध्यापक और उपदेशक लोगों को चाहिये कि सदा उत्तम घर बनाने के और निवास के उपदेशों को कर जहां पूर्ण रक्षा हो, उस विषय में सबको प्रेरणा करें॥२८॥

अप्नस्वतीमित्यस्य कुत्स ऋषिः। अश्विनौ देवते। विराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अप्नस्वतीमश्विना वाचमस्मे कृतं नो दस्रा वृषणा मनीषाम्।

अद्यूत्येऽवसे नि ह्वये वां वृधे च नो भवतं वाजसातौ॥२९॥

अप्नस्वतीम्। अश्विना। वाचम्। अस्मेऽइत्यस्मे। कृतम्। नः। दस्रा। वृषणा। मनीषाम्॥अद्यूत्ये। अवसे। नि। ह्वये। वाम्। वृधे। च। नः। भवतम्। वाजसाताविति वाजऽसातौ॥२९॥

पदार्थः-(**अप्नस्वतीम्**) प्रशस्तान्यप्नांसि कर्माणि विद्यन्ते यस्यास्ताम् (**अश्विना**) सकलविद्याव्यापिना-वध्यापकोपदेशकौ! (**वाचम्**) वाणीम् (**अस्मे**) अस्माकम् (**कृतम्**) कुरुतम् (**नः**) अस्माकम् (**दस्रा**) दुःखोपक्षयितारौ (**वृषणा**) सुखस्य वर्षयितारौ (**मनीषाम्**) उत्तमां प्रज्ञाम् (**अद्यूत्ये**) अविद्यमानानि द्यूतानि यस्मिंस्तस्मिन् भवे (**अवसे**) रक्षणाय (**नि, ह्वये**) नितरां स्तौमि (**वाम्**) युवाम् (**वृधे**) वर्द्धनाय (**च**) (**नः**) अस्माकम् (**भवतम्**) (**वाजसातौ**) वाजस्य धनस्य विभाजके सङ्ग्रामे॥२९॥

अन्वयः-हे दस्रा वृषणाऽश्विना! युवामस्मे वाचं मनीषां चाप्नस्वतीं कृतं नोऽद्यूत्येऽवसे स्थापयतम्। वाजसातौ नो वृधे च भवतं यौ वामहन्निह्वये तौ मामुन्नयतम्॥२९॥

भावार्थः-ये मनुष्या निष्कपटानाप्तान् दयालून् विदुषः सततं सेवन्ते, ते प्रगल्भा धार्मिका विद्वांसो भूत्वा सर्वतो वर्द्धमाना विजयिनः सन्तः सर्वेभ्यः सुखदा भवन्ति॥२९॥

पदार्थः-हे (**दस्रा**) दुःख के नाशक (**वृषणा**) सुख के वर्षानेवाले (**अश्विना**) सब विद्याओं में व्याप्त अध्यापक और उपदेशक लोगो! तुम दोनों (**अस्मे**) हमारी (**वाचम्**) वाणी (**च**) और (**मनीषाम्**) बुद्धि को (**अप्नस्वतीम्**) प्रशस्त कर्मों वाली (**कृतम्**) करो (**नः**) हमारे (**अद्यूत्ये**) द्यूतरहित स्थान में हुए कर्म में (**अवसे**) रक्षा के लिये स्थित करो (**वाजसातौ**) धन का विभाग करनेहारे सङ्ग्राम में (**न**) हमारी (**वृधे**) वृद्धि के लिये (**भवतम्**) उद्यत होओ, जिन (**वाम्**) तुम्हारी (**नि, ह्वये**) निरन्तर स्तुति करता हूं, वे दोनों आप मेरी उन्नति करो॥२९॥

भावार्थः-जो मनुष्य निष्कपट आप्त विद्वानों का निरन्तर सेवन करते हैं, वे प्रगल्भ धार्मिक विद्वान् होके सब ओर बढ़ते और विजयी होते हुए सबके लिये सुखदायी होते हैं॥२९॥

द्युभिरित्यस्य कुत्स ऋषिः। अश्विनौ देवते। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ सभासेनाधिपौ किं कुर्यातामित्याह॥

अब सभासेनाधीश क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

द्युभिर्क्तुभिः परि पातमस्मानरिष्टेभिरश्विना सौभगेभिः।

तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवीऽउत द्यौः॥३०॥

द्युभिरिति द्युऽभिः। अक्तुभिरित्यक्तुऽभिः। परि। पातम्। अस्मान्। अरिष्टेभिः। अश्विना। सौभगेभिः॥ तत्। नः। मित्रः। वरुणः। मामहन्ताम्। अदितिः। सिन्धुः। पृथिवी। उत। द्यौः॥३०॥

पदार्थः-(**द्युभिः**) दिवसैः (**अक्तुभिः**) रात्रिभिः (**परि**) सर्वतः (**पातम्**) रक्षतम् (**अस्मान्**) (**अरिष्टेभिः**) अहिंसितैः (**अश्विना**) सभासेनेशौ! (**सौभगेभिः**) श्रेष्ठानां धनानां भावैः (**तत्**) तान् (**नः**) अस्मान् (**मित्रः**) सखा (**वरुणः**) दुष्टानां बन्धकः (**मामहन्ताम्**) सत्कुर्वन्तु (**अदितिः**) पृथिवी (**सिन्धुः**) सप्तविधः समुद्रः (**पृथिवी**) अन्तरिक्षम् (**उत**) अपि (**द्यौः**) प्रकाशः॥३०॥

अन्वयः-हे अश्विना! यथाऽदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौस्तन्नो मामहन्ताम्, तथा मित्रो वरुणश्च युवां द्युभिरक्तुभिररिष्टेभिः सौभगेभिरस्मान् परिपातम्॥३०॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे सभाधीशादिविद्वांसो! यथा पृथिव्यादीनि तत्त्वानि प्राणिनो रक्षन्ति, तथैव वर्द्धमानैरैश्वर्यैरहर्निशं सर्वान् मनुष्यान् वर्द्धयन्तु॥३०॥

पदार्थः-हे (**अश्विना**) सभासेनाधीशो! जैसे (**अदितिः**) पृथिवी (**सिन्धुः**) सात प्रकार का समुद्र (**पृथिवी**) आकाश (**उत**) और (**द्यौः**) प्रकाश (**तत्**) वे (**नः**) हमारा (**मामहन्ताम्**) सत्कार करें, वैसे (**मित्रः**) मित्र तथा (**वरुणः**) दुष्टों को बांधने वा रोकनेवाले तुम दोनों (**द्युभिः**) दिन (**अक्तुभिः**) रात्रि (**अरिष्टेभिः**) अहिंसित (**सौभगेभिः**) श्रेष्ठ धनों के होने से (**अस्मान्**) हमारी (**परि, पातम्**) सब ओर से रक्षा करो॥३०॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। सभाधीश आदि विद्वान् लोग जैसे पृथिवी आदि तत्त्व सब प्राणियों की रक्षा करते हैं, वैसे ही बढ़े हुए ऐश्वर्यों से दिन-रात सब मनुष्यों को बढ़ावें॥३०॥

आ कृष्णेनेत्यस्य हिरण्यस्तूप ऋषिः। सूर्य्यो देवता। विराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ विद्युता किं साध्यमित्याह॥

अब विद्युत् से क्या सिद्ध करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आ कृष्णेन् रज॑सा वर्त्त॑मानो निवे॒शय॑न्नमृतं॒ मर्त्यं॑ च।

हि॒र॒ण्यये॑न सवि॒ता रथे॒ना दे॒वो या॑ति॒ भुव॑नानि॒ पश्य॑न्॥३१॥

आ। कृ॒ष्णेन॑। रज॑सा। वर्त्त॑मानः। नि॒वे॒शय॒न्निति॑ निऽवे॒शय॑न्। अ॒मृत॑म्। मर्त्य॑म्। च॒॥ हि॒र॒ण्यये॑न। स॒वि॒ता। रथे॑न। आ। दे॒वः। या॒ति॒। भुव॑नानि। पश्य॑न्॥३१॥

पदार्थः-(**आ**) समन्तात् (**कृष्णेन**) कर्षितेन (**रजसा**) लोकसमूहेन सह (**वर्त्तमानः**) (**निवेशयन्**) नित्यं प्रवेशयन् (**अमृतम्**) नाशरहितं कारणम् (**मर्त्यम्**) नाशसहितं कार्य्यम् (**च**) (**हिरण्ययेन**) तेजोमयेन (**सविता**) ऐश्वर्यप्रदः (**रथेन**) रमणीयेन स्वरूपेण (**आ**) (**देवः**) देदीप्यमानः (**याति**) प्राप्नोति (**भुवनानि**) भवनाधिकरणानि वस्तूनि (**पश्यन्**) संप्रेक्षमाणः॥३१॥

अन्वयः-हे विद्वँस्त्वं य आकृष्णेन रजसा सह वर्त्तमानः सततममृतं मर्त्यञ्च निवेशयन् हिरण्ययेन रथेन सविता देवो विद्युद् भुवनानि याति, तं पश्यन् सन् संप्रयुङ्ग्धि॥३१॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! या विद्युत्कार्य्यं कारणं सम्प्रकाश्य सर्वत्राऽभिव्याप्ता तेजोमयी सद्योगामिनी सर्वाकर्षिका वर्त्तते, तां प्रेक्षमाणाः सन्तः संप्रयुज्याऽभीष्टानि सद्यो यात॥३१॥

पदार्थः-हे विद्वन्! आप जो **(आ, कृष्णेन)** आकर्षित हुए **(रजसा)** लोकसमूह के साथ **(वर्त्तमानः)** निरन्तर **(अमृतम्)** नाशरहित कारण **(च)** और **(मर्त्यम्)** नाशसहित कार्य्य को **(निवेशयन्)** अपनी-अपनी कक्षा में स्थित करता हुआ **(हिरण्ययेन)** तेजःस्वरूप **(रथेन)** रमणीयस्वरूप के सहित **(सविता)** ऐश्वर्य का दाता **(देवः)** देदीप्यमान विद्युत्रूप अग्नि **(भुवनानि)** संसारस्थ वस्तुओं को **(याति)** प्राप्त होता है, उसको **(पश्यन्)** देखते हुए सम्यक् प्रयुक्त कीजिये॥३१॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जो बिजली कार्य और कारण को सम्यक् प्रकाशित कर सर्वत्र अभिव्याप्त तेजस्वरूप शीघ्रगामिनी सबका आकर्षण करनेवाली है, उसको देखते हुए सम्प्रयोग में अभीष्ट स्थानों को शीघ्र जाया करो॥३१॥

आ रात्रीत्यस्य कुत्स ऋषिः। रात्रिर्देवता। पथ्या बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

अथ रात्रिवर्णनमाह॥

अब रात्रि का वर्णन अगले मन्त्र में करते हैं॥

आ रा॑त्रि पार्थि॑वꣳ रजः॑ पि॒तुर॑प्रायि॒ धाम॑भिः।

दि॒वः सदा॑ꣳसि बृ॒हती वि ति॑ष्ठस॒ऽआ त्वे॒षं व॑र्त्तते॒ तमः॑॥३२॥

आ। रा॒त्रि॒। पार्थि॑वम्। रजः॑। पि॒तुः। अ॒प्रा॒यि॒। धाम॑भि॒रिति॒ धाम॑ऽभिः॥ दि॒वः। सदा॑ꣳसि। बृ॒ह॒ती। वि। ति॒ष्ठ॒से॒। आ। त्वे॒षम्। व॒र्त्त॒ते॒। तमः॑॥३२॥

पदार्थः-**(आ)** समन्तात् **(रात्रि)** रात्रिः। अत्र लिङ्गव्यत्ययः। **(पार्थिवम्)** पृथिव्याः सम्बन्धि **(रजः)** लोकः **(पितुः)** मध्यलोकस्य **(अप्रायि)** पूर्य्यन्ते **(धामभिः)** सर्वैः स्थानैः **(दिवः)** प्रकाशस्य **(सदांसि)** सीदन्ति येषु तान्यधिकरणानि **(बृहती)** महती **(वि)** **(तिष्ठसे)** तिष्ठते, आक्रमते, व्याप्नोति **(आ)** **(त्वेषम्)** स्वकान्त्या प्रकृष्टम् **(वर्त्तते)** **(तमः)** अन्धकारः॥३२॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! या बृहती रात्रि दिवः सदांसि वितिष्ठसे, यया पितुर्धामभिः पार्थिवं रज आ अप्रायि, यस्याश्च त्वेषं तम आ वर्त्तते, तां युक्त्या सेवध्वम्॥३२॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! या पृथिव्यादेश्छाया रात्रौ प्रकाशं निरोधयति, सर्वमावृणोति तां यथावत् सेवन्ताम्॥३२॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो **(बृहती)** बड़ी **(रात्रि)** रात **(दिवः)** प्रकाश के **(सदांसि)** स्थानों को **(वि, तिष्ठसे)** व्याप्त होती है, जिस रात्रि ने **(पितुः)** अपने तथा सूर्य के मध्यस्थ लोक के **(धामभिः)**सब स्थानों के साथ **(पार्थिवम्)** पृथिवी सम्बन्धी **(रजः)** लोक को **(आ, अप्रायि)** अच्छे प्रकार पूर्ण किया है, जिसका **(त्वेषम्)** अपनी कान्ति से बढ़ा हुआ **(तमः)** अन्धकार **(आ) (वर्त्तते)** आता-जाता है, उसका युक्ति के साथ सेवन करो॥३२॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जो पृथिव्यादि की छाया रात्रि में प्रकाश को रोकती अर्थात् सबका आवरण करती है, उसका आप लोग यथावत् सेवन करें॥३२॥

उष इत्यस्य गोतम ऋषिः। उषर्देवता। निचृत् परोष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

पुनरुषो वर्णनमुपदिश्यते॥

फिर उषकाल का वर्णन अगले मन्त्र में करते हैं॥

उषस्तच्चित्रमा भरास्मभ्यं वाजिनीवति।

येन तोकं च तनयं च धामहे॥३३॥

उषः। तत्। चित्रम्। आ। भर। अस्मभ्यम्। वाजिनीवतीति वाजिनीऽवति॥ येन। तोकम्। च। तनयम्। च। धामहे॥३३॥

पदार्थः-**(उषः)** उषोवद्वर्त्तमाने **(तत्) (चित्रम्)** अद्भुतस्वरूपम् **(आ) (भर)** पोषय **(अस्मभ्यम्) (वाजिनीवति)** बह्वन्नाद्यैश्वर्य्ययुक्ते **(येन) (तोकम्)** सद्यो जातमपत्यम् **(च) (तनयम्)** प्राप्तकुमारावस्थम् **(च) (धामहे)** धरेम॥३३॥

अन्वयः-हे वाजिनीवत्युषर्वद्वर्त्तमाने स्त्रि! यथा वाजिनीवत्युषा यादृशं चित्रं स्वरूपं धरति, तत् तादृशमस्मभ्यं त्वामाभर, येन वयं तोकं च तनयं च धामहे॥३३॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा सर्वशोभायुक्ता मङ्गलप्रदा प्रभातवेला सर्वव्यवहारधारिका वर्त्तते, तथाभूताः स्त्रियो यदि स्युस्तर्हि ताः सदा स्वं पतिं प्रसाद्य पुत्रपौत्रादिना आनन्दं लभेरन्॥३३॥

पदार्थः-हे **(वाजिनीवति)** बहुत अन्नादि ऐश्वर्यों से युक्त **(उषः)** प्रातःसमय की वेला के तुल्य कान्तिसहित वर्त्तमान स्त्रि! जैसे अधिकार अन्नादि ऐश्वर्य की हेतु प्रातःकाल की वेला जिस प्रकार के **(चित्रम्)** आश्चर्यस्वरूप को धारण करती **(तत्)** वैसे रूप को तू **(अस्मभ्यम्)** हमारे लिये **(आ, भर)** अच्छे प्रकार पुष्ट कर **(येन)** जिससे हम लोग **(तोकम्)** शीघ्र उत्पन्न हुए बालक **(च)** और **(तनयम्)** कुमारावस्था के लड़के को **(च)** भी **(धामहे)** धारण करें॥३३॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सब शोभा से युक्त मङ्गल देनेवाली प्रभात समय की वेला सब व्यवहारों को धारण करनेवाली है, यदि वैसी स्त्रियां हों तो सदा अपने अपने पति को प्रसन्न कर पुत्र-पौत्रादि के साथ आनन्द को प्राप्त होवें॥३३॥

प्रातरित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। अग्न्यादयो लिङ्गोक्ता देवताः। निचृदज्जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनर्मनुष्याः किं कुर्युरित्याह॥

फिर मनुष्य क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रꣳ हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रꣳ हुवेम॥३४॥

प्रातः। अग्निम्। प्रातः। इन्द्रम्। हवामहे। प्रातः। मित्रावरुणा। प्रातः। अश्विना॥ प्रातः। भगम्। पूषणम्। ब्रह्मणः। पतिम्। प्रातरिति प्रातः। सोमम्। उत। रुद्रम्। हुवेम॥३४॥

पदार्थः-(**प्रातः**) प्रभाते (**अग्निम्**) पवित्रं स्वप्रकाशं परमात्मानं पावकमग्निं वा (**प्रातः**) (**इन्द्रम्**) परमैश्वर्यम् (**हवामहे**) आदद्यामाह्वयेम वा (**प्रातः**) (**मित्रावरुणा**) प्राणोदानौ (**प्रातः**) (**अश्विना**) अध्यापकोपदेशकौ (**प्रातः**) (**भगम्**) भजनीयं भागम् (**पूषणम्**) पुष्टिकरं भोगम् (**ब्रह्मणः**) धनस्य वेदस्य (**पतिम्**) स्वामिनं पालकम् (**प्रातः**) (**सोमम्**) ओषधिगणम् (**उत**) अपि (**रुद्रम्**) जीवम् (**हुवेम**) गृह्णीयाम॥३४॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा वयं प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना हवामहे, प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रञ्च हुवेम, तथा यूयमप्याचरत॥३४॥

भावार्थः-ये मनुष्याः प्रातः परमेश्वरोपासनमग्निहोत्रमैश्वर्योन्नत्युपायं प्राणापानपुष्टिकरणमध्यापको- पदेशकान् विदुष ओषधिसेवनं जीवं च प्राप्तुं ज्ञातुं च प्रयतन्ते, ते सर्वैः सुखैरलङ्कृताः स्युः॥३४॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे हम लोग (**प्रातः**) प्रातःकाल (**अग्निम्**) पवित्र वा स्वयं प्रकाशस्वरूप परमात्मा वा अग्नि को (**प्रातः**) प्रातःसमय (**इन्द्रम्**) उत्तम ऐश्वर्य को (**प्रातः**) प्रभात समय (**मित्रावरुणा**) प्राण उदान को और (**प्रातः**) प्रभात समय (**अश्विना**) अध्यापक तथा उपदेशक को (**हवामहे**) ग्रहण करें वा बुलावें (**प्रातः**) प्रातःसमय (**भगम्**) सेवन करने योग्य भाग (**पूषणम्**) पुष्टिकारक भोग (**ब्रह्मणस्पतिम्**) धन को वा वेद के रक्षक को (**प्रातः**) प्रभात समय (**सोमम्**) सोमादि ओषधिगण (**उत**) और (**रुद्रम्**) जीव को (**हुवेम**) ग्रहण वा स्वीकृत करें, वैसे तुम लोग भी आचरण करो॥३४॥

भावार्थः-जो मनुष्य प्रातःकाल परमेश्वर की उपासना, अग्निहोत्र, ऐश्वर्य की उन्नति का उपाय, प्राण और अपान की पुष्टि करना, अध्यापक, उपदेशक, विद्वानों तथा ओषधि का सेवन और जीवात्मा को प्राप्त होने वा जानने को प्रयत्न करते हैं, वे सब सुखों से सुशोभित होते हैं॥३४॥

प्रातर्जितमित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। भगो देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

मनुष्या ऐश्वर्य्यं सम्पादयेयुरित्याह॥

मनुष्य लोग ऐश्वर्य्य का सम्पादन करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प्रातर्जितं भगमुग्रꣳ हुवेम वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्त्ता।

आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुरश्चिद् राजा चिद्यं भगं भक्षीत्याह॥३५॥

प्रातर्जितमिति प्रातःऽजितम्। भगम्। उग्रम्। हुवेम। वयम्। पुत्रम्। अदितेः। यः। विधर्त्तेति विऽधर्त्ता॥ आध्रः। चित्। यम्। मन्यमानः। तुरः। चित्। राजा। चित्। यम्। भगम्। भक्षि। इति। आह॥३५॥

पदार्थः-(**प्रातः**) प्रभाते (**जितम्**) स्वपुरुषार्थेन लब्धम् (**भगम्**) ऐश्वर्य्यम् (**उग्रम्**) अत्युत्कृष्टम् (**हुवेम**) गृह्णीयाम (**वयम्**) (**पुत्रम्**) (**अदितेः**) अविनाशिनः कारणस्येव मातुः (**यः**) (**विधर्त्ता**) यो विविधान् पदार्थान् धरति सः (**आध्रः**) अपुत्रस्य पुत्रः (**चित्**) अपि (**यम्**) (**मन्यमानः**) विजानन् (**तुरः**) त्वरमाणः (**चित्**) अपि (**राजा**) राजमानः (**चित्**) (**यम्**) (**भगम्**) ऐश्वर्यम् (**भक्षि**) सेवस्व (**इति**) अनेन प्रकारेण (**आह**) परमेश्वर उपदिशति॥३५॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा वयं प्रातर्यो विधर्त्ता आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुरश्चिद् राजाऽस्ति, यं भगं चिद्भक्षीत्याह, तमदितेः पुत्रं जितमुग्रं भगं हुवेम, तथा यूयमपि स्वीकुरुत॥३५॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे मनुष्याः! युष्माभिः सदा प्रातरारभ्य शयनपर्यन्तं यथाशक्ति सामर्थ्येन विद्यया पुरुषार्थेनैश्वर्योन्नतिं विधायाऽऽनन्दो भोक्तव्यो दरिद्रेभ्यः सुखं देयमित्याहेश्वरः॥३५॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे (**वयम्**) हम लोग (**प्रातः**) प्रभात समय (**यः**) जो (**विधर्त्ता**) विविध पदार्थों को धारण करनेहारा (**आध्रः**) न्यायादि में तृप्ति न करनेवाले का पुत्र (**चित्**) भी (**यम्**) जिस ऐश्वर्य को (**मन्यमानः**) विशेष कर जानता हुआ (**तुरः**) शीघ्रकारी (**चित्**) भी (**राजा**) शोभायुक्त राजा है (**यम्**) जिस (**भगम्**) ऐश्वर्य को (**चित्**) भी (**भक्षि, इति, आह**) तू सेवन कर, इस प्रकार ईश्वर उपदेश करता है, उस (**अदितेः**) अविनाशी कारण के समान माता के (**पुत्रम्**) पुत्र रक्षक (**जितम्**) अपने पुरुषार्थ से प्राप्त (**उग्रम्**) उत्कृष्ट (**भगम्**) ऐश्वर्य को (**हुवेम**) ग्रहण करें, वैसे तुम लोग स्वीकार करो॥३५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! तुम लोगों को सदा प्रातःकाल से लेकर सोते समय तक यथाशक्ति सामर्थ्य से विद्या और पुरुषार्थ से ऐश्वर्य की उन्नति कर आनन्द भोगना और दरिद्रों के लिये सुख देना चाहिये, यह ईश्वर ने कहा है॥३५॥

भग इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। भगवान् देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथेश्वरप्रार्थनादिकविषयमाह॥

अब ईश्वर की प्रार्थना आदि विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

भग॒ प्रणे॑तु॒र्भग॒ सत्य॑राधो॒ भगे॒मां धिय॒मुद॑वा॒ दद॑न्नः।

भग॒ प्र नो॑ जनय॒ गोभि॒रश्वै॒र्भग॒ प्र नृभि॑र्नृ॒वन्त॑ः स्याम॥३६॥

भग॑। प्रणे॑तः। प्रने॑तरिति॑ प्रऽने॑तः। भग॑। सत्य॑राध॒ इति॒ सत्य॑ऽराधः। भग॑। इ॒माम्। धिय॑म्। उत्। अ॒व। दद॑त्। न॒ः॥ भग॑। प्र। न॒ः। ज॒न॒य॒। गोभि॑ः। अश्वै॑ः। भग॑। प्र। नृभि॒रिति॒ नृऽभि॑ः। नृ॒वन्त॒ इति॑ नृ॒ऽवन्त॑ः। स्या॒म॒॥३६॥

पदार्थः-(**भग**) ऐश्वर्ययुक्त! (**प्रणेतः**) पुरुषार्थं प्रति प्रेरक (**भग**) ऐश्वर्यप्रद! (**सत्यराधः**) सत्सु साधूनि राधांसि धनानि यस्य तत्सम्बुद्धौ (**भग**) भजनीय! (**इमाम्**) वर्त्तमानाम् (**धियम्**) प्रज्ञाम् (**उत्**) (**अव**) रक्ष। अत्र **द्व्यचोऽतस्तिङः** [अ०६.३.१३५] इति दीर्घः। (**ददत्**) ददानः (**नः**) अस्माकम् (**भग**) विद्यैश्वर्यप्रद! (**प्र**) (**नः**) अस्मान् (**जनय**) प्रकटय (**गोभिः**) धेन्वादिभिः (**अश्वैः**) अश्वादिभिः (**भग**) भजमान! (**प्र**) (**नृभिः**) नायकैः (**नृवन्तः**) (**स्याम**) भवेम॥३६॥

अन्वयः-हे भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भग! त्वं नोऽस्माकमिमां धियं ददत् सदुदव। हे भग! त्वं गोभिरश्वैर्नृभिस्सह नोऽस्मान् प्रजनय। हे भग! येन वयं नृवन्तः प्रस्याम तथा विधेहि॥३६॥

भावार्थः-मनुष्यैर्यदा यदेश्वरस्य प्रार्थना विदुषां सङ्गः क्रियेत, तदा प्रज्ञैव याचनीयोतापि सन्तः पुरुषाः॥३६॥

पदार्थः-हे (**भग**) ऐश्वर्ययुक्त! (**प्रणेतः**) पुरुषार्थ के प्रति प्रेरक ईश्वर वा हे (**भग**) ऐश्वर्य के दाता! (**सत्यराधः**) विद्यमान पदार्थों में उत्तम धनोंवाले (**भग**) सेवने योग्य विद्वान् आप (**नः**) हमारी (**इमाम्**) इस वर्त्तमान (**धियम्**) बुद्धि को (**ददत्**) देते हुए (**उत्, अव**) उत्कृष्टता से रक्षा कीजिये। हे (**भग**) विद्यारूप ऐश्वर्य के दाता ईश्वर वा विद्वान्! आप (**गोभिः**) गौ आदि पशुओं (**अश्वैः**) घोड़े आदि सवारियों और (**नृभिः**) नायक कुलनिर्वाहक मनुष्यों के साथ (**नः**) हमको (**प्र, जनय**) प्रकट कीजिये। हे (**भग**) सेवा करते हुए विद्वन्! जिससे हम लोग (**नृवन्तः**) प्रशस्त मनुष्योंवाले (**प्रस्याम**) अच्छे प्रकार हों, वैसे कीजिये॥३६॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि जब-जब ईश्वर की प्रार्थना तथा विद्वानों का सङ्ग करें, तब-तब बुद्धि की ही प्रार्थना वा श्रेष्ठ पुरुषों की चाहना किया करें॥३६॥

उतेदानीमित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। भगो देवता। पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अथैश्वर्योन्नतिविषयमाह॥

अब ऐश्वर्य की उन्नति का विषय कहते हैं॥

उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्वऽउत मध्येऽअह्नाम्।
उतोदिता मघवन्त्सूर्य्यस्य वयं देवानाᳬं सुमतौ स्याम॥३७॥

उत। इदानीम्। भगवन्त इति भगऽवन्तः। स्याम। उत। प्रपित्व इति प्रऽपित्वे। उत। मध्ये। अह्नाम्॥ उत। उदितेत्युत्ऽइता। मघवन्निति मघऽवन्। सूर्य्यस्य। वयम्। देवानाम्। सुमताविति सुऽमतौ। स्याम॥३७॥

पदार्थः-(**उत**) अपि (**इदानीम्**) वर्त्तमानसमये (**भगवन्तः**) सकलैश्वर्ययुक्ताः (**स्याम**) (**उत**) अपि (**प्रपित्वे**) पदार्थानां प्रापणे (**उत**) (**मध्ये**) (**अह्नाम्**) दिवसानाम् (**उत**) (**उदिता**) उदयसमये (**मघवन्**) परमपूजितधनयुक्त! (**सूर्यस्य**) (**वयम्**) (**देवानाम्**) (**सुमतौ**) (**स्याम**)॥३७॥

अन्वयः-हे मघवन! वयमिदानीमुत प्रपित्वे उत भविष्यति उताह्नां मध्ये भगवन्तः स्याम। उत सूर्यस्योदिता देवानां सुमतौ भगवन्तः स्याम॥३७॥

भावार्थः-मनुष्यैर्वर्त्तमाने भविष्यति च योगैश्वर्यस्योन्नतेर्लौकिकस्य व्यवहारस्य वर्द्धने प्रशंसायाञ्च सततं प्रयतितव्यम्॥३७॥

पदार्थः-हे (**मघवन्**) उत्तम धनयुक्त ईश्वर वा विद्वन्! (**वयम्**) हम लोग (**इदानीम्**) वर्त्तमान समय में (**उत**) और (**प्रपित्वे**) पदार्थों की प्राप्ति में (**उत**) और भविष्यकाल में (**उत**) और (**अह्नाम्**) दिनों में (**मध्ये**) बीच (**भगवन्तः**) (**स्याम**) समस्त ऐश्वर्य से युक्त हों। (**उत**) और (**सूर्यस्य**) सूर्य के (**उदिता**) उदय समय तथा (**देवानाम्**) विद्वानों की (**सुमतौ**) उत्तम बुद्धि में समस्त ऐश्वर्ययुक्त (**स्याम**) हों॥३७॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि वर्त्तमान और भविष्यत् काल में योग के ऐश्वर्यों की उन्नति से लौकिक व्यवहार के बढ़ाने और प्रशंसा में निरन्तर प्रयत्न करें॥३७॥

भग इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। भगवान् देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

भगऽएव भगवाँ२ऽअस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम।
तं त्वा भग सर्वऽइज्जोहवीति स नो भग पुरऽएता भवेह॥३८॥

भगः। एव। भगवानिति भगऽवान्। अस्तु। देवाः। तेन। वयम्। भगवन्त इति भगऽवन्तः। स्याम॥ तम्। त्वा। भग। सर्वः। इत्। जोहवीति। सः। नः। भग। पुरऽएतेति पुरःऽएता। भव। इह॥३८॥

पदार्थः-(**भगः**) भजनीयः सेवनीयः (**एव**) (**भगवान्**) प्रशस्तैश्वर्ययुक्तः (**अस्तु**) भवतु (**देवाः**) विद्वांसः (**तेन**) भगस्वरूपेण भगवता परमेश्वरेण सह (**वयम्**) (**भगवन्तः**) सकलशोभायुक्तः (**स्याम**) भवेम (**तम्**) (**त्वा**) त्वाम् (**भग**) अखिलशोभायुक्त! (**सर्वः**) अखिलो जनः (**इत्**) एव (**जोहवीति**) भृशमाह्वयति (**सः**) (**नः**) अस्माकम् (**भग**) सकलैश्वर्यप्रद! (**पुरएता**) यः पुरस्तातेति सः (**भव**) (**इह**)॥३८॥

अन्वयः-हे देवाः! यो भग एव भगवानस्तु तेन वयं भगवन्तः स्याम। हे भग! तं त्वा सर्व इज्जोहवीति। भग! स त्वमिह नः पुरएता भव॥३८॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यूयं यः सकलैश्वर्यसम्पन्नः परमेश्वरस्तेन ये चास्योपासका विद्वांसस्तैस्सह सिद्धाः श्रीमन्तश्च भवत। यो जगदीश्वरो मातापितृवदस्मासु कृपयति तद्भक्तिपुरःसरेणेह मनुष्यानैश्वर्यवतः सततं कुरुत॥३८॥

पदार्थः-हे (**देवाः**) विद्वान् लोगो! जो (**भगः, एव**) सेवनीय ही (**भगवान्**) प्रशस्त ऐश्वर्ययुक्त (**अस्तु**) होवे (**तेन**) उस ऐश्वर्ययुक्त ऐश्वर्यवाले परमेश्वर के साथ (**वयम्**) हम लोग (**भगवन्तः**) समग्र शोभायुक्त (**स्याम**) होवें। हे (**भग**) सम्पूर्ण शोभायुक्त ईश्वर! (**तम्, त्वा**) उन आपको (**सर्वः, इत्**) समस्त ही जन (**जोहवीति**) शीघ्र पुकारता है। हे (**भग**) सकल ऐश्वर्य के दाता! (**सः**) सो आप (**इह**) इस जगत् में (**नः**) हमारे (**पुरएता**) अग्रगामी (**भव**) हूजिये॥३८॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! तुम लोग जो समस्त ऐश्वर्य से युक्त परमेश्वर है, उनके और जो उसके उपासक विद्वान् हैं, उनके साथ सिद्ध तथा श्रीमान् होओ। जो जगदीश्वर माता-पिता के समान हम पर कृपा करता है, उसकी भक्तिपूर्वक इस संसार में मनुष्यों को ऐश्वर्यवाले निरन्तर किया करो॥३८॥

समध्वराय इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। भगो देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

समध्वरायोषसो नमन्त दधिक्रावेव शुचये पदाय।

अर्वाचीनं वसुविदं भगं नो रथमिवाश्वा वाजिनऽआ वहन्तु॥३९॥

सम्। अध्वराय। उषसः। नमन्त। दधिक्रावेवेति दधिऽक्रावाऽइव। शुचये। पदाय॥ अर्वाचीनम्। वसुविदमिति वसुऽविदम्। भगम्। नः। रथमिवेति रथम्ऽइव। अश्वाः। वाजिनः। आ। वहन्तु॥३९॥

पदार्थः-(**सम्**) (**अध्वराय**) अहिंसामयाय व्यवहाराय (**उषसः**) प्रभाताः (**नमन्त**) नमन्ति (**दधिक्रावेव**) यथा धारकः क्रमितोऽश्वस्तथा (**शुचये**) पवित्राय (**पदाय**) प्रापणीयाय (**अर्वाचीनम्**) इदानीन्तनम् (**वसुविदम्**) येन वसूनि विविधानि धनानि विन्दति तम् (**भगम्**) ऐश्वर्ययुक्तम् (**नः**) अस्मान् (**रथमिव**) रमणीयं यानमिव (**अश्वाः**) आशुगामिनः (**वाजिनः**) तुरङ्गाः (**आ**) (**वहन्तु**) गमयन्तु॥३९॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! उषसो दधिक्रावेव शुचये पदायाऽध्वराय सन्नमन्त वाजिनोऽश्वा रथमिव नोऽर्वाचीनं वसुविदं भगं प्रापयन्ति तथैतो भवन्त आ वहन्तु॥३९॥

भावार्थः-अत्र द्वावुपमालङ्कारौ। ये मनुष्या उषर्वद् विद्याधर्मौ प्रकाशयन्ति, अश्वयानानीव सद्यः समग्रमैश्वर्य्यं सर्वान् प्रापयन्ति, ते शुचयो विद्वांसो विज्ञेयाः॥३९॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! (**उषसः**) प्रभात समय (**दधिक्रावेव**) अच्छे चलाये धारण करनेवाले घोड़े के तुल्य (**शुचये**) पवित्र (**पदाय**) प्राप्त होने योग्य (**अध्वराय**) हिंसारूप अधर्मरहित व्यवहार के लिये (**सम्, नमन्त**) सम्यक् नमते अर्थात् प्रातःसमय सत्त्व गुण की अधिकता से सब प्राणियों के चित्त शुद्ध नम्र होते हैं (**अश्वाः**) शीघ्रगामी (**वाजिनः**) घोड़े जैसे (**रथमिव**) रमणीय यान को वैसे (**नः**) हमको (**अर्वाचीनम्**) इस समय के (**वसुविदम्**) अनेक प्रकार के धनप्राप्ति के हेतु (**भगम्**) ऐश्वर्ययुक्त जन को प्राप्त करे, वैसे इनको आप लोग (**आ, वहन्तु**) अच्छे प्रकार चलावें॥३९॥

भावार्थः-इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं। जो मनुष्य प्रभात वेला के तुल्य विद्या और धर्म का प्रकाश करते और जैसे घोड़े यानों को वैसे शीघ्र समस्त ऐश्वर्य को पहुंचाते हैं, वे पवित्र विद्वान् जानने योग्य हैं॥३९॥

अश्वावतीरित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। उषा देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

विदुष्यः किं कुर्युरित्याह॥

अब विदुषी स्त्रियां क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अश्वा॑वती॒र्गोम॑तीर्नऽउ॒षासो॑ वी॒रव॑तीः॒ सद॑मुच्छन्तु भ॒द्राः।

घृ॒तं दुहा॑ना वि॒श्वतः॒ प्रपी॑ता यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः॥४०॥

अश्वा॑वतीः। अश्व॑वती॒रित्यश्व॑ऽवतीः। गोम॑ती॒रिति॒ गोऽम॑तीः। नः॒। उ॒षासः॑। उ॒षस॒ऽइत्यु॒षसः॑। वी॒रवती॒रिति॑ वी॒रऽव॑तीः। सद॑म्। उ॒च्छ॒न्तु॒। भ॒द्राः॥ घृ॒तम्। दुहा॑नाः। वि॒श्वतः॑। प्रपी॑ता॒ इति॒ प्रऽपी॑ताः। यू॒यम्। पा॒त॒। स्व॒स्तिभिः॑। सदा॑। न॒ः॥४०॥

पदार्थः-(**अश्वावतीः**) प्रशस्तान्यश्वानि व्याप्तिशीलान्युदकानि विद्यन्ते यासु ताः (**गोमतीः**) बहवो गावः किरणा विद्यन्ते यासु ताः (**नः**) अस्माकम् (**उषासः**) प्रभाताः (**वीरवतीः**) बहवो वीराः

सन्ति यासु ताः **(सदम्)** सीदन्ति यस्मिँस्तत् **(उच्छन्तु)** विवसन्तु **(भद्राः)** भन्दनीयाः कल्याणकर्य्यः **(घृतम्)** शुद्धं प्रदीप्तमुदकम्। **घृतमित्युदकनामसु पठितम्॥** (निघं०१।१२) **(दुहानाः)** प्रपूर्य्यन्त्यः **(विश्वतः)** सर्वतः **(प्रपीताः)** प्रकर्षेण पीता वृद्धाः **(यूयम्)** **(पात)** रक्षत **(स्वस्तिभिः)** स्वास्थ्यप्रदैः सुखैः **(सदा)** **(नः)** अस्मान्॥४०॥

अन्वयः-हे विदुष्यः स्त्रियो! यथाऽश्वावतीर्गोमतीर्वीरवतीर्भद्रा घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता उषासो नोऽस्माकं सदं प्राप्नुवन्ति, तथाऽस्माकं सदं भवन्त्य उच्छन्तु नोऽस्मान् यूयं स्वस्तिभिः सदा पात॥४०॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा प्रभातवेला जाग्रतां मनुष्याणां सौख्यप्रदा भवन्ति, तथा विदुष्यः स्त्रियः कुमारीणां विद्यार्थिनीनां कन्यानां विद्यासुशिक्षासौभाग्यं वर्द्धयित्वा सदैता आनन्दयन्तु॥४०॥

पदार्थः-हे विदुषी स्त्रियो! जैसे **(अश्वावतीः)** प्रशस्त व्याप्तिशील जलोंवाली **(गोमतीः)** बहुत किरणों से युक्त **(वीरवतीः)** बहुत वीर पुरुषों से संयुक्त **(भद्राः)** कल्याणकारिणी **(घृतम्)** शुद्ध जल को **(दुहानाः)** पूर्ण करती हुई **(विश्वतः)** सब ओर से **(प्रपीताः)** प्रकर्षता से बढ़ी हुई **(उषासः)** प्रभातवेला **(नः)** हमारी **(सदम्)** सभा को प्राप्त होती अर्थात् प्रकाशित वा प्रवृत्त करती हैं, वैसे हमारी सभा को आप लोग **(उच्छन्तु)** समाप्त करो और **(नः)** हमारी **(यूयम्)** तुम लोग **(स्वस्तिभिः)** स्वस्थता देनेवाले सुखों से **(सदा)** सदा **(पात)** रक्षा करो॥४०॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे प्रभातवेला जागते हुए मनुष्यों को सुख देनेवाली होती है, वैसे विदुषी स्त्रियां कुमारी विद्यार्थिनी कन्याओं के विद्या, सुशिक्षा और सौभाग्य को बढ़ा के सदैव इन कन्याओं को आनन्दित किया करें॥४०॥

पूषन्नित्यस्य सुहोत्र ऋषिः। पूषा देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अथेश्वराप्तसेविनः कीदृशा भवन्तीत्याह॥

अब ईश्वर और आप्तजन के सेवक कैसे होते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

पूषन्तव॑ व्र॒ते व॒यं न रि॑ष्येम॒ कदा॑ च॒न।

स्तो॒तार॑स्तऽइ॒ह स्म॑सि॥४१॥

पूष॑न्। तव॑। व्र॒ते व॒यम्। न। रि॒ष्ये॒म॒। कदा॑। च॒न॥ स्तो॒तार॑ः। ते॒। इ॒ह। स्म॒सि॒॥४१॥

पदार्थः-**(पूषन्)** पुष्टिकारक! **(तव)** **(व्रते)** शीले नियमे वा **(वयम्)** **(न)** निषेधे **(रिष्येम)** **(कदा)** **(चन)** कदाचिदपि **(स्तोतारः)** स्तुतिकर्त्तारः **(ते)** तव **(इह)** **(स्मसि)** स्मः॥४१॥

अन्वयः-हे पूषन् परमेश्वर आप्तविद्वन् वा! वयं तव व्रते तस्माद् वर्त्तेमहि, यतो न कदा चन रिष्येम। इह ते स्तोतारः सन्तो वयं सुखिनः स्मसि॥४१॥

भावार्थः-ये मनुष्याः परमेश्वरस्याप्तस्य वा गुणकर्मस्वभावानूकूला वर्त्तन्ते, कदाचिन्नष्टसुखा न जायन्ते॥४१॥

पदार्थः-हे (**पूषन्**) पुष्टिकारक परमेश्वर वा आप्तविद्वन्! (**वयम्**) हम लोग (**तव**) आपके (**व्रते**) स्वभाव वा नियम में इससे वर्तें कि जिससे (**कदा, चन**) कभी भी (**न**) न (**रिष्येम**) चित्त बिगाड़ें (**इह**) इस जगत् में (**ते**) आपके (**स्तोतारः**) स्तुति करनेवाले हुए हम सुखी (**स्मसि**) होते हैं॥४१॥

भावार्थः-जो मनुष्य परमेश्वर के वा आप्त विद्वान् के गुणकर्मस्वभाव के अनुकूल वर्त्तते हैं, वे कभी नष्ट सुखवाले नहीं होते॥४१॥

पथस्पथ इत्यस्य ऋजिष्व ऋषिः। पूषा देवता। विराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प॒थस्प॑थ॒: परि॑पतिं वच॒स्या कामे॑न कृ॒तोऽअ॒भ्या॒नड॒र्कम्।

स नो॑ रासच्छु॒रुध॑श्च॒न्द्राग्रा॒ धियं॑ धियꣳ सीषधाति॒ प्र पू॒षा॥४२॥

प॒थस्प॑थः। प॒थःऽप॑थ॒ः इति॑ प॒थःऽप॑थः। परि॑पति॒मिति॒ परि॑ऽपति॒म्। व॒च॒स्या। कामे॑न। कृ॒तः। अ॒भि। आ॒न॒ट्। अ॒र्कम्॥ सः। न॒ः। रा॒स॒त्। शु॒रुध॑ः। च॒न्द्राग्रा॒ इति॑ च॒न्द्रऽअ॑ग्राः॥ धियं॑धिय॒मिति॒ धियं॑म्ऽधियम्। सी॒ष॒धा॒ति॒। सी॒स॒धी॒तीति॑ सीसधाति। प्र॒। पू॒षा॥४२॥

पदार्थः-(**पथस्पथः**) मार्गस्य (**परिपतिम्**) स्वामिनम् (**वचस्या**) वचसा वचनेन। अत्र **सुपां सुलुग्०** [अ०७.१.३९] इति सूत्रेण विभक्तेर्यादेशः। (**कामेन**) (**कृतः**) निष्पन्नः (**अभि**) अभितः (**आनट्**) व्याप्नोति (**अर्कम्**) अर्चनीयम् (**सः**) (**नः**) अस्मभ्यम् (**रासत्**) ददातु (**शुरुधः**) याः शुरुधो दुःखानि रुन्धन्ति ताः (**चन्द्राग्राः**) चन्द्रमा ह्लादनमग्रं मुख्यं यासान्ताः (**धियं धियम्**) प्रज्ञां प्रज्ञां कर्म कर्म वा (**सीषधाति**) साध्नुयात् (**प्र**) (**पूषा**) पुष्टिकर्त्ता॥४२॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यो वचस्या कामेन कृतः पूषाः जगदीश्वर आप्तो वा शुरुधः चन्द्राग्राः साधनानि नो रासद्धियं धियं प्रसीषधाति स शुभगुणकर्मस्वभावानभ्यानट् तमर्कं पथस्पथः परिपतिं वयं स्तुयाम॥४२॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यो जगदीश्वरः सर्वेषां सुखाय वेदप्रकाशं कामयत आप्तोऽध्यापयितुमिच्छति, यौ सर्वेभ्यः श्रेष्ठां सत्कर्मशिक्षां च प्रदत्तस्तौ सर्वसन्मार्गस्वामिनौ सदा सत्कर्त्तव्यौ॥४२॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो **(वचस्या)** वचन और **(कामेन)** कामना करके **(कृतः)** सिद्ध **(पूषा)** पुष्टिकर्त्ता जगदीश्वर वा आप्तजन **(शुरुधः)** शीघ्र दुःखों को रोकनेवाले **(चन्द्राग्राः)** प्रथम से ही आनन्दकारी साधनों को **(नः)** हमारे लिये **(रासत्)** देवे। **(धियं धियम्)** प्रत्येक बुद्धि वा कर्म को **(प्रसीषधाति)** प्रकर्षता से सिद्ध करे, **(सः)** वह शुभ गुण, कर्म, स्वभावों को **(अभि, आनट्)** सब ओर से व्याप्त होता, उस **(अर्कम्)** पूजनीय **(पथस्पथः)** प्रत्येक मार्ग के **(परिपतिम्)** स्वामी की हम लोग स्तुति करें॥४२॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जो जगदीश्वर सबके सुख के लिये वेद के प्रकाश की और आप्त पुरुष पढ़ाने की इच्छा करता, जो सबके लिये श्रेष्ठ बुद्धि, उत्तम कर्म और शिक्षा को देते हैं, उन सब श्रेष्ठ मार्गों के स्वामियों का सदा सत्कार करना चाहिये॥४२॥

त्रीणीत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। विष्णुर्देवता। निचृद् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अथेश्वरविषयमाह॥

अब ईश्वर के विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

त्रीणि॑ प॒दा वि च॑क्रमे॒ विष्णु॑र्गो॒पाऽअदा॑भ्यः।

अतो॒ धर्मा॑णि धा॒रय॑न्॥४३॥

त्रीणि॑। प॒दा। वि। च॒क्र॒मे॒। विष्णुः॑। गो॒पाः। अदा॑भ्यः॥ अतः॑। धर्मा॑णि। धा॒रय॑न॥४३॥

पदार्थः-**(त्रीणि)** **(पदा)** पदानि ज्ञातुं प्रापयितुं वा योग्यानि कारणसूक्ष्मस्थूलरूपाणि **(वि)** **(चक्रमे)** विक्रमति **(विष्णुः)** वेवेष्टि व्याप्नोति चराऽचरं जगत् स परमेश्वरः **(गोपाः)** रक्षकः **(अदाभ्यः)** अहिंसकत्वाद् दयालुः **(अतः)** अस्मात् **(धर्माणि)** धर्मान् धारकाणि पृथिव्यादीनि वा **(धारयन्)**॥४३॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! योऽदाभ्यो गोपा विष्णुर्धर्माणि धारयन्नतस्त्रीणि पदा विचक्रमे, स एवाऽस्माकं पूजनीयोऽस्ति॥४३॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! येन परमेश्वरेण भूम्यन्तरिक्षसूर्य्यरूपेण त्रिविधं जगन्निर्मितम्, सर्वं ध्रियते रक्ष्यते च, स एवोपासनीय इष्टदेवोऽस्ति॥४३॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो **(अदाभ्यः)** अहिंसा धर्मवाला होने से दयालु **(गोपाः)** रक्षक **(विष्णुः)** चराचर जगत् में व्याप्त परमेश्वर **(धर्माणि)** पुण्यरूप कर्मों का धारक पृथिव्यादि को

(धारयन्) धारण करता हुआ **(अतः)** इस कारण से **(त्रीणि)** तीन **(पदा)** जानने वा प्राप्त होने योग्य कारण, सूक्ष्म और स्थूलरूप जगत् का **(वि, चक्रमे)** आक्रमण करता है, वही हम लोगों का पूजनीय है॥४३॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जिस परमेश्वर ने भूमि, अन्तरिक्ष और सूर्य्यरूप करके तीन प्रकार के जगत् को बनाया, सबको धारण किया और रक्षित किया है, वही उपासना के योग्य इष्टदेव है॥४३॥

तद्विप्रास इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। विष्णुर्देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

तद्विप्रा॑सो विप॒न्यवो॑ जागृ॒वाᳬसः॒ समि॑न्धते।

विष्णो॒र्यत्प॑र॒मं प॒दम्॥४४॥

तत्। विप्रा॑सः। वि॒प॒न्यवः॑। जा॒गृ॒वाᳬस॒ इति॑ जागृ॒वाᳬसः॑। सम्। इ॒न्ध॒ते॥ विष्णोः॑। यत्। प॒र॒मम्। प॒दम्॥४४॥

पदार्थः-**(तत्)** **(विप्रासः)** मेधाविनो योगिनः **(विपन्यवः)** विशेषेण स्तोतुमर्हा ईश्वरस्य वा स्तावकाः **(जागृवांसः)** अविद्यानिद्रात उत्थाय जागरूकाः **(सम्)** **(इन्धते)** प्रकाशयन्ति **(विष्णोः)** सर्वत्राऽभिव्यापकस्य **(यत्)** **(परमम्)** प्रकृष्टम् **(पदम्)** प्रापणीयं मोक्षप्रदं स्वरूपम्॥४४॥

अन्वयः-हे मनुष्या ये जागृवांसो विपन्यवो विप्रासो विष्णोर्यत्परमं पदमस्ति, तत्समिन्धते तत्सङ्गेन यूयमपि तादृशा भवत॥४४॥

भावार्थः-ये योगाभ्यासादिना शुद्धन्तःकरणात्मानो धार्मिकाः पुरुषार्थिनो जनाः सन्ति, त एव व्यापकस्य परमेश्वरस्य स्वरूपं ज्ञातुं लब्धुं चार्हन्ति नेतरे॥४४॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो **(जागृवांसः)** अविद्यारूप निद्रा से उठ के चेतन हुए **(विपन्यवः)** विशेषकर स्तुति करने योग्य वा ईश्वर की स्तुति करनेहारे **(विप्रासः)** बुद्धिमान् योगी लोग **(विष्णोः)** सर्वत्र अभिव्यापक परमात्मा का **(यत्)** जो **(परमम्)** उत्तम **(पदम्)** प्राप्त होने योग्य मोक्षदायी स्वरूप है, **(तत्)** उसको **(सम्, इन्धते)** सम्यक् प्रकाशित करते हैं, उनके सत्सङ्ग से तुम लोग भी वैसे होओ॥४४॥

भावार्थः-जो योगाभ्यासादि सत्कर्मों को करके शुद्ध मन और आत्मावाले धार्मिक पुरुषार्थी जन हैं, वे ही व्यापक परमेश्वर के स्वरूप को जानने और उसको प्राप्त होने योग्य होते हैं, अन्य नहीं॥४४॥

घृतवतीत्यस्य भरद्वाज ऋषिः। द्यावापृथिव्यौ देवते। निचृज्जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

घृतव॑ती॒ भुव॑नानामभि॒श्रियो॒र्वी पृ॒थ्वी म॑धु॒दुघे॑ सु॒पेश॑सा।
द्यावा॑पृथि॒वी वरु॑णस्य॒ धर्म॑णा॒ विष्क॑भिते॒ऽअ॒जरे॒ भूरि॑रेतसा॥४५॥

घृ॒तव॑ती॒ इति॑ घृ॒तऽव॑ती। भुव॑नानाम्। अ॒भि॒श्रियेत्य॑भि॒ऽश्रिया॑। उ॒र्वीऽइत्यु॒र्वी। पृ॒थ्वीऽइति॑ पृ॒थ्वी। म॒धु॒दुघे॒ इति॑ मधु॒ऽदुघे॑। सु॒पेश॒सेति॑ सु॒ऽपेश॑सा॥ द्यावा॑पृथिवीऽइति॒ द्यावा॑पृथि॒वी। वरु॑णस्य। धर्म॑णा। विस्क॑भिते॒ इति॒ विऽस्क॑भिते। अ॒जरे॒ऽइत्य॒जरे॑। भूरि॑रेत॒सेति॒ भूरि॑ऽरेतसा॥४५॥

पदार्थः-(**घृतवती**) घृतमुदकं बहु विद्यते ययोस्ते (**भुवनानाम्**) लोकलोकान्तराणाम् (**अभिश्रिया**) अभितः सर्वतः श्रीः शोभा लक्ष्मीर्याभ्यान्ते (**उर्वी**) बहुपदार्थयुक्ते (**पृथ्वी**) विस्तीर्णे (**मधुदुघे**) ये मधूदकं प्रपूरयतस्ते (**सुपेशसा**) शोभनं पेशो रूपं ययोस्ते (**द्यावापृथिवी**) सूर्यभूमी (**वरुणस्य**) सर्वेभ्यो वरस्य श्रेष्ठस्य जगदीश्वरस्य (**धर्मणा**) धारणसामर्थ्येन (**विष्कभिते**) विशेषेण धृते दृढीकृते (**अजरे**) स्वस्वरूपेण जरानाशरहिते (**भूरिरेतसा**) भूरि बहु रेत उदकं ययोर्वा भूरीणि बहूनि रेतांसि वीर्याणि याभ्यान्ते॥४५॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यस्य वरुणस्य परमेश्वरस्य धर्मणा मधुदुघे सुपेशसा पृथ्वी उर्वी घृतवती अजरे भूरिरेतसा भुवनानामभिश्रिया द्यावापृथिवी विष्कभिते, तमेवोपास्यं यूयं विजानीत॥४५॥

भावार्थः-मनुष्यैर्येन परमेश्वरेण प्रकाशाऽप्रकाशात्मकं द्विविधं जगन्निर्माय धृत्वा पाल्यते, स एव सर्वदोपासनीयोऽस्ति॥४५॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जिस (**वरुणस्य**) सबसे श्रेष्ठ जगदीश्वर के (**धर्मणा**) धारण करने रूप सामर्थ्य से (**मधुदुघे**) जल की पूर्ण करनेवाली (**सुपेशसा**) सुन्दर रूपयुक्त (**पृथ्वी**) विस्तारयुक्त (**उर्वी**) बहुत पदार्थोंवाली (**घृतवती**) बहुत जल के परिवर्त्तन से युक्त (**अजरे**) अपने स्वरूप से नाशरहित (**भूरिरेतसा**) बहुत जलों से युक्त वा अनेक वीर्य वा पराक्रमों की हेतु (**भुवनानाम्**) लोक-लोकान्तरों की (**अभिश्रिया**) सब ओर से शोभा करनेवाली (**द्यावापृथिवी**) सूर्य और भूमि (**विष्कभिते**) विशेष कर धारण वा दृढ़ किये हैं, उसी को उपासना के योग्य तुम लोग जानो॥४५॥

भावार्थः-मनुष्यों को जिस परमेश्वर ने प्रकाशरूप और अप्रकाशरूप दो प्रकार के जगत् को बना और धारण करके पालित किया है, वही सर्वदा उपासना के योग्य है॥४५॥

ये न इत्यस्य विहव्य ऋषिः। लिङ्गोक्ता देवताः। भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ राजधर्मविषयमाह॥

अब राजधर्म विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ये नः सपत्नाऽअप ते भवन्त्विन्द्राग्निभ्यामव बाधामहे तान्।

वसवो रुद्राऽआदित्याऽउपरिस्पृशं मोग्रं चेत्तारमधिराजमक्रन्॥४६॥

ये। नः। सपत्ना इति सऽपत्नाः। अप। ते। भवन्तु। इन्द्राग्निभ्यामितीन्द्राग्निऽभ्याम्। अव। बाधामहे। तान्॥ वसवः। रुद्राः। आदित्याः। उपरिस्पृशमित्युपरिऽस्पृशम्। मा। उग्रम्। चेत्तारम्। अधिराजमित्यधिऽराजम्। अक्रन्॥४६॥

पदार्थः-(**ये**) (**नः**) अस्माकम् (**सपत्नाः**) शत्रवः (**अप**) दूरीकरणे (**ते**) (**भवन्तु**) (**इन्द्राग्निभ्याम्**) वायुविद्युदस्त्राभ्याम् (**अव**) (**बाधामहे**) (**तान्**) (**वसवः**) पृथिव्यादयः (**रुद्राः**) दश प्राणा एकादश आत्मा च (**आदित्याः**) संवत्सरस्य मासाः (**उपरिस्पृशम्**) य उपरि स्पृशति तम् (**मा**) माम् (**उग्रम्**) तीव्रस्वभावम् (**चेत्तारम्**) सत्याऽसत्ययोर्यथावद्विज्ञातारम् (**अधिराजम्**) सर्वेषामुपरि राजानम् (**अक्रन्**) कुर्वन्तु॥४६॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! ये नः सपत्नाः स्युस्तेऽपभवन्तु यथा तान् वयमिन्द्राग्निभ्यामव बाधामहे, यथा च वसवो रुद्रा आदित्या उपरिस्पृशमुग्रं चेत्तारं मा मामधिराजमक्रन्, तथा तान् यूयं निवारयत मां च सत्कुरुत॥४६॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यस्याऽधिकारे पृथिव्यादयः पदार्थाः स्युस्स एव सर्वेषामुपरि राजा स्यात्। यो राजा भवेत् स शस्त्रास्त्रैः शत्रून् निवार्य निष्कण्टकं राज्यं कुर्य्यात्॥४६॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! (**ये**) जो (**नः**) हमारे (**सपत्नाः**) शत्रु लोग हों (**ते**) वे (**अप, भवन्तु**) दूर हों अर्थात् पराजय को प्राप्त हों, जैसे (**तान्**) उन शत्रुओं को हम (**इन्द्राग्निभ्याम्**) वायु और विद्युत् के शस्त्रों से (**अव, बाधामहे**) पीड़ित करें और जैसे (**वसवः**) पृथिवी आदि वसु (**रुद्राः**) दश प्राण, ग्यारहवां आत्मा और (**आदित्याः**) बारह महीने (**उपरिस्पृशम्**) उच्च स्थान पर बैठने (**उग्रम्**) तेजस्वभाव और (**चेत्तारम्**) सत्यासत्य को यथावत् जाननेवाले (**मा**) मुझको (**अधिराजम्**) अधिपति स्वामी समर्थ (**अक्रन्**) करें, वैसे उन शत्रुओं का तुम लोग निवारण और मेरा सत्कार करो॥४६॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जिसके अधिकार में पृथिवी आदि पदार्थ हों, वही सबके ऊपर राजा होवे। राजा होवे वह शस्त्र-अस्त्रों से शत्रुओं का निवारण कर निष्कण्टक राज्य करे॥४६॥

आ नासत्येत्यस्य हिरण्यस्तूप ऋषिः। अश्विनौ देवते। जगती छन्दः। निषादः स्वर॥

अथ के जगद्धितैषिण इत्याह॥

अब कौन जगत् के हितैषी हों, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आ नासत्या त्रिभिरेकादशैरिह देवेभिर्यातं मधुपेयमश्विना।

प्रायुस्तारिष्टं नी रपांसि मृक्षतं सेधतं द्वेषो भवतं सचाभुवा॥४७॥

आ। नासत्या। त्रिभिरिति त्रिऽभिः। एकादशैः। इह। देवेभिः। यातम्। मधुपेयमिति मधुपेऽयम्। अश्विना॥ प्र। आयुः। तारिष्टम्। निः। रपांसि। मृक्षतम्। सेधतम्। द्वेषः। भवतम्। सचाभुवेति सचाऽभुवा॥४७॥

पदार्थः-(**आ**) समन्तात् (**नासत्या**) अविद्यमानाऽसत्याचरणौ (**त्रिभिः**) (**एकादशैः**) त्रयस्त्रिंशता (**इह**) (**देवेभिः**) दिव्यैः पृथिव्यादिभिः सह (**यातम्**) प्राप्नुतम् (**मधुपेयम्**) मधुरैर्गुणैर्युक्तं पातुं योग्यम् (**अश्विना**) विद्वांसौ राजप्रजाजनौ (**प्र**) (**आयुः**) जीवनम् (**तारिष्टम्**) वर्धयतम् (**निः**) नितराम् (**रपांसि**) पापानि (**मृक्षतम्**) मार्जयतम् (**सेधतम्**) गमयतम् (**द्वेषः**) द्वेषादिदोषयुक्तान् प्राणिनः (**भवतम्**) (**सचाभुवा**) यौ सत्येन पुरुषार्थेन सह भवतस्तौ॥४७॥

अन्वयः-हे नासत्याऽश्विना! यथा युवामिह त्रिभिरेकादशैर्देवेभिः सह मधुपेयमायातम्, रपांसि मृक्षतं द्वेषो निःषेधतं सचाभुवा भवतमायुः प्रतारिष्टम्, तथा वयमपि भवेम॥४७॥

भावार्थः-त एव जगद्धितैषिणो ये पृथिव्यादिसृष्टिविद्यां विज्ञायाऽन्यान् ग्राहयेयुर्दोषान् दूरीकुर्युश्चिरंजीवनस्य विधानं च प्रचारयेयुः॥४७॥

पदार्थः-हे (**नासत्या**) असत्य आचरण से रहित (**अश्विना**) राज्य और प्रजा के विद्वानो! जैसे तुम (**इह**) इस जगत् में (**त्रिभिः**) **एकादशैः**) तेंतीस (**देवेभिः**) उत्तम पृथिवी आदि (**आठ वसु, प्राणादि ग्यारह रुद्र, बारह महीनों तथा बिजुली और यज्ञ**) तेंतीस देवताओं के साथ (**मधुपेयम्**) मधुर गुणों से युक्त पीने योग्य ओषधियों के रस को (**आ, यातम्**) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ वा उसके लिये आया करो। (**रपांसि**) पापों को (**मृक्षतम्**) शुद्ध किया करो। (**द्वेषः**) द्वेषादि दोषयुक्त प्राणियों का (**निः, सेधतम्**) खण्डन वा निवारण किया करो। (**सचाभुवा**) सत्य पुरुषार्थ के साथ कार्यों में संयुक्त (**भवतम्**) होओ और (**आयुः**) जीवन को (**प्र, तारिष्टम्**) अच्छे प्रकार बढ़ाओ, वैसे हम लोग होवें॥४७॥

भावार्थः-वे ही लोग जगत् के हितैषी हैं, जो पृथिवी आदि सृष्टि की विद्या को जान के दूसरों को ग्रहण करावें, दोषों को दूर करें और अधिक काल जीवन के विधान का प्रचार किया करें॥४७॥

एष व इत्यस्यागस्त्य ऋषिः। मरुतो देवताः। पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनर्मनुष्याः किं कुर्युरित्याह॥

फिर मनुष्य लोग क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

एष व स्तोमो मरुतऽइयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः।

एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम्॥४८॥

एषः। वः। स्तोमः। मरुतः। इयम्। गीः। मान्दार्यस्य। मान्यस्य। कारोः॥ आ। इषा। यासीष्ट। तन्वे। वयाम्। विद्याम। इषम्। वृजनम्। जीरदानुमिति जीरऽदानुम्॥४८॥

पदार्थः-(**एषः**) (**वः**) युष्मभ्यम् (**स्तोमः**) प्रशंसा (**मरुतः**) मरणधर्माणो मनुष्याः (**इयम्**) (**गीः**) सुशिक्षिता वाक् (**मान्दार्यस्य**) प्रशस्तकर्मसेवकस्योदारचित्तस्य (**मान्यस्य**) मन्तुं सत्कर्तुं योग्यस्य (**कारोः**) कारुकस्य शिल्पिनः (**आ**) (**इषा**) इच्छयाऽन्नेन वा निमित्तेन (**यासीष्ट**) प्राप्नुयात् (**तन्वे**) शरीरादिरक्षणार्थम् (**वयाम्**) वयसामवस्थावतां प्राणिनाम्। अत्राऽऽमि टिलोपश्छान्दसः। (**विद्याम**) लभेमहि (**इषम्**) विज्ञानमन्नं वा (**वृजनम्**) वर्जन्ति दुःखानि येन तद्बलम् (**जीरदानुम्**) जीवयतीति जीरदानुस्तम्॥४८॥

अन्वयः-हे मरुतो मनुष्याः! मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोरेष स्तोम इयं च गीर्वोऽस्तु, यूयमिषा वयां तन्वे आ यासीष्ट, जीरदानुमिषं वृजनं च विद्याम॥४८॥

भावार्थः-मनुष्यैस्सदैव प्रशंसनीयानि कर्माणि सेवित्वा शिल्पविद्याविदः सत्कृत्य जीवनं बलमैश्वर्यं च प्राप्तव्यम्॥४८॥

पदार्थः-हे (**मरुतः**) मरण धर्मवाले मनुष्यो! (**मान्दार्यस्य**) प्रशस्तकर्मों के सेवक उदार चित्तवाले (**मान्यस्य**) सत्कार के योग्य (**कारोः**) पुरुषार्थी कारीगर का (**एषः**) यह (**स्तोमः**) प्रशंसा और (**इयम्**) यह (**गीः**) वाणी (**वः**) तुम्हारे लिये उपयोगी होवे, तुम लोग (**इषा**) इच्छा वा अन्न के निमित्त से (**वयाम्**) अवस्थावाले प्राणियों के (**तन्वे**) शरीरादि की रक्षा के लिये (**आ, यासीष्ट**) अच्छे प्रकार प्राप्त हुआ करो और हम लोग (**जीरदानुम्**) जीवन के हेतु (**इषम्**) विज्ञान वा अन्न तथा (**वृजनम्**) दुःखों के वर्जनवाले बल को (**विद्याम**) प्राप्त हों॥४८॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि सदैव प्रशंसनीय कर्मों का सेवन और शिल्पविद्या के विद्वानों का सत्कार करके जीवन, बल और ऐश्वर्य को प्राप्त होवें॥४८॥

सहस्तोमा इत्यस्य प्राजापत्यो यज्ञ ऋषिः। ऋषयो देवताः। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ के ऋषयो भवन्तीत्याह॥

अब ऋषि कौन होते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

सहस्तोमाः सहच्छन्दसऽआवृतः सहप्रमाऽऋषयः सप्त दैव्याः।

पूर्वेषां पन्थामनुदृश्य धीराऽअन्वालेभिरे रथ्यो न रश्मीन्॥४९॥

स॒हस्तो॑मा॒ इति॑ स॒हऽस्तो॑माः। स॒हछ॑न्दस॒ इति॑ स॒हऽछ॑न्दसः। आ॒वृत॒ इत्या॒ऽवृतः॑। स॒हप्र॑मा॒ इति॑ स॒हऽप्र॑माः। ऋष॑यः। स॒प्त। दैव्याः॑। पूर्वे॑षाम्। पन्थाम्। अ॒नु॒दृश्येत्य॑नु॒ऽदृश्य॑। धीराः॑। अ॒न्वाले॑भिर॒ इत्य॑नु॒ऽआले॑भि॒रे। र॒थ्यः॑। न। र॒श्मीन्॥४९॥

पदार्थः-(**सहस्तोमाः**) स्तोमैः श्लाघाभिस्सह वर्त्तमाना यद्वा सहस्तोमाः शास्त्रस्तुतयो येषान्ते (**सहछन्दसः**) सह छन्दांसि वेदाऽध्ययनं स्वातन्त्र्यं सुखभोगो वा येषान्ते (**आवृतः**) ब्रह्मचर्य्येण सकला विद्या अधीत्य गुरुकुलान्निवृत्य गृहमागताः (**सहप्रमाः**) सहैव प्रमा यथार्थं प्रज्ञानं येषान्ते (**ऋषयः**) वेदादिशास्त्रार्थविदः (**सप्त**) पञ्च ज्ञानेन्द्रियाण्यन्तःकरणमात्मा च (**दैव्याः**) देवेषु गुणकर्मस्वभावेषु कुशलाः (**पूर्वेषाम्**) अतीतानां विदुषाम् (**पन्थाम्**) पन्थानं मार्गम् (**अनुदृश्य**) आनुकूल्येन दृष्ट्वा (**धीराः**) ध्यानवन्तो योगिनः (**अन्वालेभिरे**) अनुलभन्ते (**रथ्यः**) रथे साधू रथ्यः सारथिः (**न**) इव (**रश्मीन्**) रज्जून्॥४९॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा सहस्तोमाः सहछन्दस आवृतः सहप्रमाः सप्त दैव्या धीरा ऋषयो रथ्यो रश्मीन्निव पूर्वेषां पन्थामनुदृश्यान्वालेभिरे, तथा भूत्वा यूयमप्याप्तमार्गमण्वालभध्वम्॥४९॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। ये रागद्वेषादिदोषान् दूरतस्त्यक्त्वा परस्परस्मिन् प्रीतिमन्तो भूत्वा ब्रह्मचर्येण धर्माऽनुष्ठानपुरःसरमखिलान् वेदान् विज्ञाय सत्याऽसत्ये विविच्य सत्यं लब्ध्वाऽसत्यं विहायाप्तभावेन वर्त्तन्ते, ते सुशिक्षिताः सारथय इवाऽभीष्टं धर्म्यं मार्गं गन्तुमर्हन्ति, त एवर्षिसंज्ञां लभन्ते॥४९॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे (**सहस्तोमाः**) प्रशंसाओं के साथ वर्त्तमान वा जिनकी शास्त्रस्तुति एक साथ हो (**सहछन्दसः**) वेदादि का अध्ययन वा स्वतन्त्र सुख भोग जिनका साथ हो (**आवृतः**) ब्रह्मचर्य्य के साथ समस्त विद्या पढ़ और गुरुकुल से निवृत्त होके घर आये (**सहप्रमाः**) साथ ही जिनका प्रमाणादि यथार्थ ज्ञान हो (**सप्त**) पांच ज्ञानेन्द्रिय, अन्तःकरण और आत्मा ये सात (**दैव्याः**) उत्तम गुणकर्मस्वभावों में प्रवीण (**धीराः**) ध्यानवाले योगी (**ऋषयः**) वेदादि शास्त्रों के ज्ञाता लोग (**रथ्यः**) सारथि (**न**) जैसे (**रश्मीन्**) लगाम की रस्सी को ग्रहण करता, वैसे (**पूर्वेषाम्**) पूर्वज विद्वानों के (**पन्थाम्**) मार्ग को (**अनुदृश्य**) अनुकूलता से देख के (**अन्वालेभिरे**) पश्चात् प्राप्त होते हैं, वैसे होकर तुम लोग भी आप्तों के मार्ग को प्राप्त होओ॥४९॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो रागद्वेषादि दोषों को दूर से छोड़ आपस में प्रीति रखनेवाले हों, ब्रह्मचर्य्य से धर्म के अनुष्ठानपूर्वक समस्त वेदों को जान के सत्य-असत्य का निश्चय कर सत्य को प्राप्त हो और असत्य को छोड़ के आप्तों के भाव से वर्त्तते हैं, वे

सुशिक्षित सारथियों के समान अभीष्ट धर्मयुक्त मार्ग में जाने को समर्थ होते और वे ही ऋषिसञ्ज्ञक होते हैं॥४९॥

आयुष्यमित्यस्य दक्ष ऋषिः। हिरण्यन्तेजो देवता। भुरिगुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

अथैश्वर्यजयादिसंपादनविषयमाह॥

अब ऐश्वर्य और जय आदि सम्पादन विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आयुष्यं वर्च्चस्यꣳ रायस्पोषमौद्भिदम्।

इदꣳ हिरण्यं वर्च्चस्वज्जैत्रायाविशतादु माम्॥५०॥

आयुष्यम्। वर्चस्यम्। रायः। पोषम्। औद्भिदम्॥ इदम्। हिरण्यम्। वर्चस्वत्। जैत्राय। आ। विशतात्। ऊँऽइत्यूँ। माम्॥५०॥

पदार्थः-(**आयुष्यम्**) आयुषे जीवनाय हितम् (**वर्चस्यम्**) वर्चसेऽध्ययनाय हितम् (**रायः**) (**पोषम्**) धनस्य पोषकम् (**औद्भिदम्**) उद्भिनत्ति दुःखानि येन तदेव (**इदम्**) (**हिरण्यम्**) तेजोमयं सुवर्णादिकम् (**वर्चस्वत्**) प्रशस्तानि वर्चांस्यन्नानि यस्मात् तत् (**जैत्राय**) जयाय (**आ**) (**विशतात्**) समन्तात् विशतु (**उ**) एव (**माम्**)॥५०॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यदौद्भिदमायुष्यं वर्चस्यं रायस्पोषं वर्चस्वद्धिरण्यं जैत्राय मामाविशतात् तदु युष्मानप्याविशत्॥५०॥

भावार्थः-ये मनुष्याः स्वात्मवत् सर्वान् जानन्ति, विद्वद्भिः सह परामृश्य सत्याऽसत्ये निर्णयन्ति, ते दीर्घमायुः पूर्णविद्याः समग्रमैश्वर्यविजयं च प्राप्नुवन्ति॥५०॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो (**औद्भिदम्**) दुःखों के नाशक (**आयुष्यम्**) जीवन के लिये हितकारी (**वर्चस्यम्**) अध्ययन के लिये उपयोगी (**रायः, पोषम्**) धन की पुष्टि करने हारे (**वर्चस्वत्**) प्रशस्त अन्नों के हेतु (**हिरण्यम्**) तेजःस्वरूप सुवर्णादि ऐश्वर्य (**जैत्राय**) जय होने के लिये (**माम्**) मुझको (**आ, विशतात्**) आवेश करे अर्थात् मेरे निकट स्थिर रहे, वह (**उ**) तुम लोगों के निकट भी स्थिर होवे॥५०॥

भावार्थः-जो मनुष्य अपने तुल्य सबको जानते और विद्वानों के साथ विचार कर सत्यासत्य का निर्णय करते हैं, वे दीर्घ अवस्था, पूर्ण विद्याओं, समग्र ऐश्वर्य और विजय को प्राप्त होते हैं॥५०॥

न तदित्यस्य दक्ष ऋषिः। हिरण्यन्तेजो देवता। भुरिक्छक्वरी छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ ब्रह्मचर्यप्रशंसाविषयमाह॥

अब ब्रह्मचर्य की प्रशंसा का विषय अगले मन्त्र में कहते हैं॥

न तद्रक्षांꣳसि न पिशाचास्तरन्ति देवानामोजः प्रथमजꣳ ह्येतत्। यो बिभर्ति दाक्षायणꣳ हिरण्यꣳ स देवेषु कृणुते दीर्घमायुः स मनुष्येषु कृणुते दीर्घमायुः॥५१॥

न। तत्। रक्षांꣳसि। न। पिशाचाः। तरन्तिः। देवानाम्। ओजः। प्रथमजमिति प्रथमऽजम्। हि। एतत्॥ यः। बिभर्ति। दाक्षायणम्। हिरण्यम्। सः। देवेषु। कृणुते। दीर्घम्। आयुः। सः। मनुष्येषु। कृणुते। दीर्घम्। आयुः॥५१॥

पदार्थः-(**न**) (**तत्**) अध्ययनं विद्याप्रापणम् (**रक्षांसि**) अन्यान् प्रपीड्य स्वात्मानमेव ये रक्षन्ति ते (**न**) (**पिशाचाः**) ये प्राणिनां पेशितं रुधिरादिकमाचामन्ति भक्षयन्ति ते हिंसका म्लेच्छाचारिणो दुष्टाः (**तरन्ति**) उल्लंघन्ते (**देवानाम्**) विदुषाम् (**ओजः**) बलपराक्रमः (**प्रथमजम्**) प्रथमे वयसि ब्रह्मचर्य्याश्रमे वा जातम् (**हि**) खलु (**एतत्**) (**यः**) (**बिभर्त्ति**) (**दाक्षायणम्**) दक्षेण चतुरेणाऽयनं प्रापणीयं तदेव स्वार्थेऽण् (**हिरण्यम्**) ज्योतिर्मयम् (**सः**) (**देवेषु**) विद्वत्सु (**कृणुते**) (**दीर्घम्**) लम्बमानम् (**आयुः**) जीवनम् (**सः**) (**मनुष्येषु**) मननशीलेषु (**कृणुते**) करोति (**दीर्घम्**) (**आयुः**)॥५१॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यद्देवानां प्रथमजमोजोऽस्ति, न तद्रक्षांसि न पिशाचास्तरन्ति, यो ह्येतद् दाक्षायणं हिरण्यं बिभर्त्ति, स देवेषु दीर्घमायुः कृणुते, स मनुष्येषु दीर्घमायुः कृणुते॥५१॥

भावार्थः-ये प्रथमे वयसि दीर्घेण धर्म्येण ब्रह्मचर्येण पूर्णां विद्यामधीयते, न तेषां केचिच्चोरा न दायभागिनो न तेषां भारो भवति। य एवं विद्वांसो धर्म्येण वर्त्तन्ते ते विद्वत्सु मनुष्येषु च दीर्घमायुर्लब्ध्वा सततमानन्दन्त्यन्यानानन्दयन्ति च॥५१॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो (**देवानाम्**) विद्वानों का (**प्रथमजम्**) प्रथम अवस्था वा ब्रह्मचर्य्य आश्रम में उत्पन्न हुआ (**ओजः**) बल पराक्रम है, (**तत्**) उसको (**न, रक्षांसि**) न अन्यों को पीड़ा विशेष देकर अपनी ही रक्षा करनेहारे और (**न, पिशाचाः**) न प्राणियों के रुधिरादि को खानेवाले हिंसक म्लेच्छाचारी दुष्टजन (**तरन्ति**) उल्लङ्घन करते। (**यः**) जो मनुष्य (**हि, एतत्**) इस (**दाक्षायणम्**) चतुर को प्राप्त होने योग्य (**हिरण्यम्**) तेजःस्वरूप ब्रह्मचर्य्य को (**बिभर्त्ति**) धारण वा पोषण करता है, (**सः**) वह (**देवेषु**) विद्वानों में (**दीर्घम्, आयुः**) अधिक अवस्था को (**कृणुते**) प्राप्त होता और (**सः**) वह (**मनुष्येषु**) मननशील जनों में (**दीर्घम्, आयुः**) बड़ी अवस्था को (**कृणुते**) प्राप्त करता है॥५१॥

भावार्थः-जो प्रथम अवस्था में बड़े धर्मयुक्त ब्रह्मचर्य्य से पूर्ण विद्या पढ़ते हैं, उनको न कोई चोर न दायभागी और न उनको भार होता है। जो विद्वान् इस प्रकार धर्मयुक्त कर्म के साथ

वर्त्तते हैं, वे विद्वानों और मनुष्यों में बड़ी अवस्था को प्राप्त होके निरन्तर आनन्दित होते और दूसरों को आनन्दित करते हैं॥५१॥

यदेत्यस्य दक्ष ऋषिः। हिरण्यन्तेजो देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यदाबध्नन् दाक्षायणा हिरण्यꣳ शतानीकाय सुमनस्यमानाः।

तन्मऽआ बध्नामि शतशारदायायुष्माञ्जरदष्टिर्यथासम्॥५२॥

यत्। आ। अबध्नन्। दाक्षायणाः। हिरण्यम्। शतानीकायेति शतऽअनीकाय। सुमनस्यमाना इति सुऽमनस्यमानाः॥ तत्। मे। आ। बध्नामि। शतशारदायेति शतऽशारदाय। आयुष्मान्। जरदष्टिरिति जरत्ऽअष्टिः। यथा। असम्॥५२॥

पदार्थः-(**यत्**) (**आ**) (**अबध्नन्**) बध्नीयुः (**दाक्षायणाः**) चातुर्य्यविज्ञानयुक्ताः (**हिरण्यम्**) सत्यासत्यप्रकाशं विज्ञानम् (**शतानीकाय**) शतान्यनीकानि सैनिकानि यस्य तस्मै (**सुमनस्यमानाः**) सुष्ठु विचारयन्तः सज्जनाः (**तत्**) (**मे**) मह्यम् (**आ**) (**बध्नामि**) (**शतशारदाय**) शतं शरदो जीवनाय (**युष्मान्**) (**जरदष्टिः**) जरं पूर्णमायुर्व्याप्तो यः सः (**यथा**) (**असम्**) भवेयम्॥५२॥

अन्वयः-ये दाक्षायणाः सुमनस्यमानाः शतानीकाय मे यद्धिरण्यमाऽऽबध्नन्, तदहं शतशारदायाऽऽबध्नामि। हे विद्वांसो! यथाऽहं युष्मान् प्राप्य जरदष्टिरसं तथा यूयं मां प्रत्युपदिशत॥५२॥

भावार्थः-एकत्र शतशः सेना एकत्रैका विद्या विजयप्रदा भवति, ये दीर्घेण ब्रह्मचर्येण विद्वद्भ्यो विद्यां सुशिक्षां च गृहीत्वा तदनुकूला वर्त्तन्ते, तेऽल्पाऽऽयुषः कदाचिन्न जायन्ते॥४२॥

पदार्थः-जो (**दाक्षायणाः**) चतुराई और विज्ञान से युक्त (**सुमनस्यमानाः**) सुन्दर विचार करते हुए सज्जन लोग (**शतानीकाय**) सैकड़ों सेनावाले (**मे**) मेरे लिये (**यत्**) जिस (**हिरण्यम्**) सत्याऽसत्यप्रकाशक विज्ञान का (**आ, अबध्नन्**) निबन्धन करें (**तत्**) उसको मैं (**शतशारदाय**) सौ वर्ष तक जीवन के लिये (**आ, बध्नामि**) नियत करता हूं। हे विद्वान् लोगो! (**यथा**) जैसे मैं (**युष्मान्**) तुम लोगों को प्राप्त होके (**जरदष्टिः**) पूर्ण अवस्था को व्याप्त होनेवाला (**असम्**) होऊं, वैसे तुम लोग मेरे प्रति उपदेश करो॥५२॥

भावार्थः-एक ओर सैकड़ों सेना और दूसरी ओर एक विद्या ही विजय देनेवाली होती है। जो लोग बहुत काल तक ब्रह्मचर्य्य धारण करके विद्वानों से विद्या और सुशिक्षा ग्रहण कर उसके अनुकूल वर्त्तते हैं, वे थोड़ी अवस्था वाले कभी नहीं होते॥५२॥

उत न इत्यस्य ऋजिष्व ऋषिः। लिङ्गोक्ता देवताः। भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अथ के सर्वरक्षकाः सन्तीत्याह॥

अब कौन सबके रक्षक होते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उत नोऽहिर्बुध्न्यः शृणोत्वजऽएकपात् पृथिवी समुद्रः।
विश्वे देवाऽऋतावृधो हुवानाः स्तुता मन्त्राः कविशस्ताऽअवन्तु॥५३॥

उत। नः। अहिः। बुध्न्यः। शृणोतु। अजः। एकपादित्येकऽपात्। पृथिवी। समुद्रः॥ विश्वे। देवाः। ऋतावृधः। ऋतवृध इत्यृतऽवृधः। हुवानाः। स्तुताः। मन्त्राः। कविशस्ता इति कविऽशस्ताः। अवन्तु॥५३॥

पदार्थः-(**उत**) अपि (**नः**) अस्माकं वचांसि (**अहिः**) मेघः (**बुध्न्यः**) बुध्नेऽन्तरिक्षे भवः (**शृणोतु**) (**अजः**) यो न जायते सः (**एकपात्**) एकः पादो बोधो यस्य सः (**पृथिवी**) (**समुद्रः**) अन्तरिक्षम् (**विश्वे**) सर्वे (**देवाः**) विद्वांसः (**ऋतावृधः**) सत्यस्य वर्द्धकाः (**हुवानाः**) स्पर्द्धमानाः (**स्तुताः**) स्तुतिप्रकाशकाः (**मन्त्राः**) विचारसाधकाः (**कविशस्ताः**) कविभिर्मेधाविभिः शस्ताः प्रशंसिताः (**अवन्तु**)॥५३॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! बुध्न्योऽहिरिव पृथिवी समुद्रश्चेवैकपादजो नः शृणोतु। ऋतावृधो हुवाना विश्वे देवा उतापि कविशस्ताः स्तुता मन्त्रा नोऽस्मानवन्तु॥५३॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे मनुष्याः! यथा पृथिव्यादयः पदार्था मेघः परमेश्वरश्च सर्वान् रक्षन्ति, तथैव विद्या विद्वांसश्च सर्वान् पालयन्ति॥५३॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! (**बुध्न्यः**) अन्तरिक्ष में होनेवाला (**अहिः**) मेघ के तुल्य और (**पृथिवी**) पृथिवी तथा (**समुद्रः**) अन्तरिक्ष के तुल्य (**एकपात्**) एक प्रकार के निश्चल अव्यभिचारी बोधवाला (**अजः**) जो कभी उत्पन्न नहीं होता, वह परमेश्वर (**नः**) हमारे वचनों को (**शृणोतु**) सुने तथा (**ऋतावृधः**) सत्य के बढ़ानेवाले (**हुवानाः**) स्पर्द्धा करते हुए (**विश्वे**) सब (**देवाः**) विद्वान् लोग (**उत**) और (**कविशस्ताः**) बुद्धिमानों से प्रशंसा किये हुए (**स्तुताः**) स्तुति के प्रकाशक (**मन्त्राः**) विचार के साधक मन्त्र हमारी (**अवन्तु**) रक्षा करें॥५३॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जैसे पृथिवी आदि पदार्थ, मेघ और परमेश्वर सबकी रक्षा करते हैं, वैसे ही विद्या और विद्वान् लोग सबको पालते हैं॥५३॥

इमेत्यस्य कूर्म गार्त्समद ऋषिः। आदित्या देवताः। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ वाग्विषयमाह॥

अब वाणी का विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

इमा गिरऽआदित्येभ्यो घृतस्नूः सनाद्राजभ्यो जुह्वा जुहोमि।

शृणोतु मित्रोऽअर्यमा भगो नस्तुविजातो वरुणो दक्षोऽअꣳशः॥५४॥

इमाः। गिरः। आदित्येभ्यः। घृतस्नूरिति घृतऽस्नूः। सनात्। राजभ्य इति राजऽभ्यः। जुह्वा। जुहोमि॥ शृणोतु। मित्रः। अर्य्यमा। भगः। नः। तुविजात इति तुविऽजातः। वरुणः। दक्षः। अꣳशः॥५४॥

पदार्थः-(**इमाः**) सत्याः (**गिरः**) वाचः (**आदित्येभ्यः**) तेजस्विभ्यः (**घृतस्नूः**) घृतमुदकमिव प्रदीप्तं व्यवहारं स्नान्ति शोधयन्ति ताः (**सनात्**) नित्यम् (**राजभ्यः**) नृपेभ्यः (**जुह्वा**) ग्रहणसाधनेन (**जुहोमि**) आददामि (**शृणोतु**) (**मित्रः**) सखा (**अर्य्यमा**) न्यायकारी (**भगः**) ऐश्वर्य्यवान् (**नः**) अस्माकम् (**तुविजातः**) बहुषु प्रसिद्धः (**वरुणः**) श्रेष्ठः (**दक्षः**) चतुरः (**अंशः**) विभाजकः॥५४॥

अन्वयः-अहमादित्येभ्यो राजभ्यो या इमा गिरो जुह्वा सनाज्जुहोमि, ता घृतस्नूर्गो गिरो मित्रोऽर्य्यमा भगस्तुविजातो दक्षोंऽशो वरुणश्च शृणोतु॥५४॥

भावार्थः-विद्यार्थिभिर्या आचार्येभ्यः सुशिक्षिता वाचो गृहीतास्ता अन्य आप्ताः श्रुत्वा सुपरीक्ष्य शिक्षयन्तु॥५४॥

पदार्थः-मैं (**आदित्येभ्यः**) तेजस्वी (**राजभ्यः**) राजाओं से जिन (**इमाः**) इन सत्य (**गिरः**) वाणियों को (**जुह्वा**) ग्रहण के साधन से (**सनात्**) नित्य (**जुहोमि**) ग्रहण स्वीकार करता हूं, उन (**घृतस्नूः**) जल के तुल्य अच्छे व्यवहार को शोधनेवाली (**नः**) हम लोगों की वाणियों को (**मित्रः**) मित्र (**अर्य्यमा**) न्यायकारी (**भगः**) ऐश्वर्यवान् (**तुविजातः**) बहुतों में प्रसिद्ध (**दक्षः**) चतुर (**अंशः**) विभागकर्त्ता और (**वरुणः**) श्रेष्ठ पुरुष (**शृणोतु**) सुने॥५४॥

भावार्थः-विद्यार्थी लोगों ने आचार्य्यों से जिन सुशिक्षित वाणियों को ग्रहण किया, उनको अन्य आप्त लोग सुन और अच्छे प्रकार परीक्षा करके शिक्षा करें॥५४॥

सप्तेत्यस्य कण्व ऋषिः। अध्यात्मं प्राणा देवताः। भुरिग् जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

अथ शरीरेन्द्रियविषयमाह॥

अब शरीर और इन्द्रियों का विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

सप्तऽऋषयः प्रतिहिताः शरीरे सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम्।
सप्तापः स्वपतो लोकमीयुस्तत्र जागृतोऽअस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ॥५५॥

सप्त। ऋषयः। प्रतिहिता इति प्रतिऽहिताः। शरीरे। सप्त। रक्षन्ति। सदम्। अप्रमादमित्यप्रऽमादम्॥ सप्त। आपः। स्वपतः। लोकम्। ईयुः। तत्र। जागृतः। अस्वप्नजावित्यस्वप्नऽजौ। सत्रसदाविति सत्रऽसदौ। च। देवौ॥५५॥

पदार्थः-(**सप्त**) पञ्चज्ञानेन्द्रियाणि मनो बुद्धिश्च (**ऋषयः**) विषयप्रापकाः (**प्रतिहिताः**) प्रतीत्या धृताः (**शरीरे**) (**सप्त**) (**रक्षन्ति**) (**सदम्**) सीदन्ति यस्मिंस्तत् (**अप्रमादम्**) (**सप्त**) (**आपः**)

आप्नुवन्ति व्याप्नुवन्ति शरीरमित्याप: **(स्वपत:)** शयनं प्राप्तस्य **(लोकम्)** जीवात्मानम् **(ईयु:)** यन्ति **(तत्र)** लोकगमनकाले **(जागृत:)** **(अस्वप्नजौ)** स्वप्नो न जायते ययोस्तौ **(सत्रसदौ)** सतां जीवात्मनां त्राणं सत्रं तत्र सीदतस्तौ **(च)** **(देवौ)** दिव्यस्वरूपौ प्राणापानौ॥५५॥

अन्वय:-ये सप्तर्षय: शरीरे प्रतिहितास्त एव सप्ताप्रमादं यथा स्यात्, तथा सदं रक्षन्ति। ते स्वपत: सप्ताऽप: लोकमीयुस्तत्राऽस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ जागृत:॥५५॥

भावार्थ:-अस्मिञ्छरीरे स्थिराणि व्यापकानि विषयबोधकानि सान्त:करणानि ज्ञानेन्द्रियाण्येव सातत्येन शरीरं रक्षन्ति। यदा च जीव: स्वपिति तदा तमेवाश्रित्य तमोबलेनान्तर्मुखानि तिष्ठन्ति, बाह्यविषयं न बोधयन्ति, स्वप्नावस्थायां च जीवात्मरक्षणतत्परौ तमोगुणानभिभूतौ प्राणापानौ जागरणं कुर्वाते, अन्यथा यद्यनयोरपि स्वप्न: स्यात् तदा तु मरणमेव सम्भाव्यमिति॥५५॥

पदार्थ:-जो **(सप्त, ऋषय:)** विषयों अर्थात् शब्दादि को प्राप्त करानेवाले पांच ज्ञानेन्द्रिय मन और बुद्धि ये सात ऋषि इस **(शरीरे)** शरीर में **(प्रतिहिता:)** प्रतीति के साथ स्थिर हुए हैं, वे ही **(सप्त)** सात **(अप्रमादम्)** जैसे प्रमाद अर्थात् भूल न हो, वैसे **(सदम्)** ठहरने के आधार शरीर की **(रक्षन्ति)** रक्षा करते। वे **(स्वपत:)** सोते हुए जन के **(आप:)** शरीर को व्याप्त होनेवाला उक्त **(सप्त)** सात **(लोकम्)** जीवात्मा को **(ईयु:)** प्राप्त होते हैं, **(तत्र)** उस लोक प्राप्ति समय में **(अस्वप्नजौ)** जिनको स्वप्न कभी नहीं होता **(सत्रसदौ)** जीवात्माओं की रक्षा करनेवाले **(च)** और **(देवौ)** स्थिर उत्तम गुणों वाले प्राण और अपान **(जागृत:)** जागते हैं॥५५॥

भावार्थ:-इस शरीर में स्थिर व्यापक विषयों के जानने वाले अन्त:करण के सहित पांच ज्ञानेन्द्रिय ही निरन्तर शरीर की रक्षा करते और जब जीव सोता है, तब उसी को आश्रय कर तमोगुण के बल से भीतर को स्थिर होते, किन्तु बाह्य विषय का बोध नहीं कराते और स्वप्नावस्था में जीवात्मा की रक्षा में तत्पर तमोगुण से न दबे हुए प्राण और अपान जागते हैं, अन्यथा यदि प्राण अपान भी सो जावें तो मरण का ही सम्भव करना चाहिये॥५५॥

उत्तिष्ठेत्यस्य कण्व ऋषि:। ब्रह्मणस्पतिर्देवता। निचृद्बृहती छन्द:। मध्यम: स्वर:॥

विद्वान् किं कुर्यादित्याह॥

विद्वान् पुरुष क्या करे, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे।

उप प्र यन्तु मरुत: सुदानवऽइन्द्र प्राशूर्भवा सचा॥५६॥

उत्। तिष्ठ। ब्रह्मण:। पते। देवयन्त इति देवऽयन्त:। त्वा। ईमहे॥ उप। प्र। यन्तु। मरुत:। सुदानव इति सुऽदानव:। इन्द्र। प्राशू:। भव। सचा॥५६॥

पदार्थः-(**उत्**) (**तिष्ठ**) (**ब्रह्मणः**) धनस्य (**पते**) पालक! (**देवयन्तः**) कामयमानाः (**त्वा**) त्वाम् (**ईमहे**) याचामहे (**उप**) (**प्र**) (**यन्तु**) प्राप्नुवन्तु (**मरुतः**) मनुष्याः (**सुदानवः**) शोभनदानाः) (**इन्द्र**) ऐश्वर्यकारक! (**प्राशूः**) यः प्राश्नाति सः (**भव**) अत्र **द्व्यचोऽतस्तिङः** [अ०६.३.१३५] इति दीर्घः (**सचा**) सत्यसमवायेन॥५६॥

अन्वयः-हे ब्रह्मणस्पते इन्द्र! देवयन्तो वयं यन्त्वेमहे यन्त्वा सुदानवो मरुत उप प्रयन्तु। स त्वमुत्तिष्ठ सचा प्राशूर्भव॥५६॥

भावार्थः-हे विद्वन्! ये विद्यां कामयमानास्त्वामुपतिष्ठेयुस्तेभ्यो विद्यादानाय भवानुत्तिष्ठतूद्युक्तो भवतु॥५६॥

पदार्थः-हे (**ब्रह्मणः**) धन के (**पते**) रक्षक (**इन्द्र**) ऐश्वर्यकारक विद्वन्! (**देवयन्तः**) दिव्य विद्वानों की कामना करते हुए हम लोग जिस (**त्वा**) आपकी (**ईमहे**) याचना करते हैं, जिस आपको (**सुदानवः**) सुन्दर दान देनेवाले (**मरुतः**) मनुष्य (**उप, प्र, यन्तु**) समीप से प्रयत्न के साथ प्राप्त हों सो आप (**उत्, तिष्ठ**) उठिये और (**सचा**) सत्य के सम्बन्ध से (**प्राशूः**) उत्तम भोग करनेहारे (**भव**) हूजिये॥५६॥

भावार्थः-हे विद्वन्! जो लोग विद्या की कामना करते हुए आपका आश्रय लेवें, उनके अर्थ विद्या देने के लिये आप उद्यत हूजिये॥५६॥

प्र नूनमित्यस्य कण्व ऋषिः। ब्रह्मणस्पतिर्देवता। विराट् बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

अथेश्वरविषयमाह॥

अब ईश्वर के विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्थ्यम्।

यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रोऽअर्यमा देवाऽओकांसि चक्रिरे॥५७॥

प्र। नूनम्। ब्रह्मणः। पतिः। मन्त्रम्। वदति। उक्थ्यम्॥ यस्मिन्। इन्द्रः। वरुणः। मित्रः। अर्य्यमा। देवाः। ओकांसि। चक्रिरे॥५७॥

पदार्थः-(**प्र**) (**नूनम्**) निश्चितम् (**ब्रह्मणः**) वेदविद्यायाः (**पतिः**) पालकः (**मन्त्रम्**) (**वदति**) (**उक्थ्यम्**) उक्थ्येषु प्रशंसनीयेषु साधुम् (**यस्मिन्**) (**इन्द्रः**) विद्युत् सूर्य्यो वा (**वरुणः**) जलं चन्द्रो वा (**मित्रः**) प्राणोऽन्ये वायवश्च (**अर्य्यमा**) सूत्रात्मा (**देवाः**) दिव्यगुणाः (**ओकांसि**) निवासान् (**चक्रिरे**) कृतवन्तः सन्ति॥५७॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रोऽर्यमा देवा ओकांसि चक्रिरे, स ब्रह्मणस्पतिः परमात्मोक्थ्यं मन्त्रं वेदाख्यं नूनं प्रवदतीति विजानीत॥५७॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यस्मिन् परमात्मनि सर्वं जगत्कारणं कार्यं जीवाश्च वसन्ति, यश्च सर्वेषां जीवानां हितसाधकं वेदोपदेशं कृतवानस्ति, तमेव यूयं भजत॥५७॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! **(यस्मिन्)** जिस परमात्मा में **(इन्द्रः)** बिजुली वा सूर्य्य **(वरुणः)** जल वा चन्द्रमा **(मित्रः)** प्राण वा अन्य अपानादि वायु **(अर्य्यमा)** सूत्रात्मा वायु **(देवाः)** ये सब उत्तम गुणवाले **(ओकांसि)** निवासों को **(चक्रिरे)** किये हुए हैं, वह **(ब्रह्मणः)** वेदविद्या का **(पतिः)** रक्षक जगदीश्वर **(उक्थ्यम्)** प्रशंसनीय पदार्थों में श्रेष्ठ **(मन्त्रम्)** वेदरूप मन्त्रभाग को **(नूनम्)** निश्चय कर **(प्र, वदति)** अच्छे प्रकार कहता है, ऐसा तुम जानो॥५७॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जिस परमात्मा में कार्यकारणरूप सब जगत् और जीव वसते हैं तथा जिसने सब जीवों के हितसाधक वेद का उपदेश किया है, उसी की तुम लोग भक्ति, सेवा, उपासना करो॥५७॥

ब्रह्मणस्पत इत्यस्य गृत्समद ऋषिः। ब्रह्मणस्पतिर्देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्व।
विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः।
य इमा विश्वा। विश्वकर्म्मा। यो नः पिता।
अन्नपतेऽन्नस्य नो देहि॥५८॥

ब्रह्मणः। पते। त्वम्। अस्य। यन्ता। सूक्तस्येति सुऽउक्तस्य। बोधि। तनयम्। च। जिन्व॥ विश्वम्। तत्। भद्रम्। यत्। अवन्ति। देवाः। बृहत्। वदेम। विदथे। सुवीरा इति सुऽवीराः॥५८॥

पदार्थः-**(ब्रह्मणः)** ब्रह्माण्डस्य **(पते)** रक्षक! **(त्वम्)** **(अस्य)** **(यन्ता)** नियन्ता **(सूक्तस्य)** सुष्ठु वक्तुमर्हस्य **(बोधि)** बोधय **(तनयम्)** विद्यापुत्रम् **(च)** **(जिन्व)** प्रीणीहि **(विश्वम्)** सर्वम् **(तत्)** **(भद्रम्)** कल्याणकरम् **(यत्)** **(अवन्ति)** रक्षन्त्युपदिशन्ति **(देवाः)** विद्वांसः **(बृहत्)** महत् **(वदेम)** उपदिशेम **(विदथे)** विज्ञापनीये व्यवहारे **(सुवीराः)** शोभनाश्च ते वीराः॥५८॥

अन्वयः-हे ब्रह्मणस्पते! देवा विदथे यदवन्ति, यत् सुवीरा वयं बृहद्वदेम, तस्यास्य सूक्तस्य त्वं यन्ता भव, तनयं च बोधि, तद्भद्रं विश्वं जिन्व॥५८॥

भावार्थः-हे जगदीश्वर! भवानस्माकं विद्यायाः सत्यस्य व्यवहारस्य च नियन्ता भवत्वस्माकमपत्यानि विद्यावन्ति करोतु। सर्वं जगद् यथावद् रक्षतु सर्वत्र न्याय्यं धर्मं सुशिक्षां परस्परप्रीतिं च जनयत्विति॥५८॥

अस्मिन्नध्याये मनसो लक्षणम्, शिक्षा, विद्येच्छा, विद्वत्सङ्गः, कन्याप्रबोधो, विद्वल्लक्षणम्, रक्षायाचनम्, बलैश्वर्य्येच्छा, सोमौषधिलक्षणम्, शुभेच्छा, परमेश्वरसूर्य्यवर्णनम्, स्वरक्षा, प्रातरुत्थानम्, पुरुषार्थेनर्द्धिसिद्धिप्रापणम्, ईश्वरस्य जगन्निर्माणम्, महाराजवर्णनम्, अश्विगुणकथनम्, आयुर्वर्द्धनम्, विद्वत्प्राणलक्षणम्, ईश्वरकृत्यं चोक्तमतोऽस्याऽध्यायार्थस्य पूर्वाऽध्यायोक्तार्थेन सह सङ्गतिर्वेद्या॥५८॥

पदार्थः-हे **(ब्रह्मणः)** ब्रह्माण्ड के **(पते)** रक्षक ईश्वर! **(देवाः)** विद्वान् लोग **(विदथे)** प्रकट करने योग्य व्यवहार में **(यत्)** जिसकी **(अवन्ति)** रक्षा वा उपदेश करते हैं और जिसको **(सुवीराः)** सुन्दर उत्तम वीर पुरुष हम लोग **(बृहत्)** बड़ा श्रेष्ठ **(वदेम)** कहें, उस **(अस्य)** इस **(सूक्तस्य)** अच्छे प्रकार कहने योग्य वचन के **(त्वम्)** आप **(यन्ता)** नियमकर्त्ता हूजिये **(च)** और **(तनयम्)** विद्या का शुद्ध विचार करनेहारे पुत्रवत् प्रियपुरुष को **(बोधि)** बोध कराइये तथा **(तत्)** उस **(भद्रम्)** कल्याणकारी **(विश्वम्)** सब जीवमात्र को **(जिन्व)** तृप्त कीजिए॥५८॥

भावार्थः-हे जगदीश्वर! आप हमारी विद्या और सत्य व्यवहार के नियम करनेवाले हूजिये, हमारे सन्तानों को विद्यायुक्त कीजिये, सब जगत् की यथावत् रक्षा, न्याययुक्त धर्म, उत्तम शिक्षा और परस्पर प्रीति उत्पन्न कीजिये॥५८॥

इस अध्याय में मन का लक्षण, शिक्षा, विद्या की इच्छा, विद्वानों का सङ्ग, कन्याओं का प्रबोध, चेतनता, विद्वानों का लक्षण, रक्षा की प्रार्थना, बल ऐश्वर्य की इच्छा, सोम ओषधि का लक्षण, शुभ कर्म की इच्छा, परमेश्वर और सूर्य का वर्णन, अपनी रक्षा, प्रातःकाल का उठना, पुरुषार्थ से ऋद्धि आौर सिद्धि पाना, ईश्वर के जगत् का रचना, महाराजाओं का वर्णन, अश्वि के गुणों का कथन, अवस्था का बढ़ाना, विद्वान् और प्राणों का लक्षण और ईश्वर का कर्त्तव्य कहा है। इससे इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय में कहे अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये॥५८॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य्याणां श्रीयुतपरमविदुषां विरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां विभूषिते सुप्रमाणयुक्ते यजुर्वेदभाष्ये चतुस्त्रिंशोऽध्यायः समाप्तिमगमत्॥३४॥

॥ओ३म्॥

अथ पञ्चत्रिंशाऽध्यायारम्भः

ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव। यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व॥ यजु० ३०.३॥

अपेत्यस्य आदित्या देवा ऋषयः। पितरो देवताः। पूर्वस्य पिपीलिकामध्या निचृद् गायत्री।
द्युभिरित्युत्तरस्य प्राजापत्या बृहती छन्दसी। षड्जमध्यमौ स्वरौ॥

अथ व्यवहारजीवयोर्गतिमाह॥

अब व्यवहार और जीव की गति विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अपे॒तो य॑न्तु प॒णयो॒ऽसु॑म्ना देवपी॒ययव॑ः।
अ॒स्य लो॒कः सु॒ताव॑तः।द्युभि॒रहो॑भिर॒क्तुभि॒र्व्य॒क्तं य॒मो द॑दात्वव॒साननमस्मै॥ १॥

अप॑। इ॒तः। य॒न्तु॒। प॒णय॑ः। असु॑म्ना। दे॒व॒पी॒यव॒ इति॑ दे॑वऽपी॒यव॑ः। अ॒स्य। लो॒कः। सु॒ताव॑तः। सु॒तव॑त इति॑ सु॒तऽव॑तः॥ द्युभि॒रिति॒ द्युभि॑ः। अहो॑भि॒रित्यह॑ःऽभिः। अ॒क्तुभि॒रित्य॒क्तुऽभि॑ः। व्य॒क्त॒मिति॒ विऽअ॑क्तम्। य॒मः। द॒दा॒तु॒। अ॒व॒सान॒मित्य॑व॒ऽसान॑म्। अ॒स्मै॥ १॥

पदार्थः-(**अप**) दूरीकरणे (**इतः**) अस्मात् (**यन्तु**) गच्छतु (**पणयः**) व्यवहारिणः (**असुम्नाः**) असुखानि दुःखानि। **सुम्नमिति सुखनामसु पठितम्॥** (निघं०३।६) (**देवपीयवः**) ये देवानां द्वेष्टारः (**अस्य**) (**लोकः**) दर्शनीयः (**सुतावतः**) प्रशस्तानि सुतानि वेदविद्वत्प्रेरितानि कर्माणि यस्य तस्य (**द्युभिः**) प्रकाशमानैः (**अहोभिः**) दिनैः (**अक्तुभिः**) रात्रिभिः (**व्यक्तम्**) प्रसिद्धम् (**यमः**) यन्ता (**ददातु**) (**अवसानम्**) अवकाशम् (**अस्मै**)॥१॥

अन्वयः-ये देवपीयवः पणयोऽसुम्नाऽन्येभ्यो ददति, त इतोऽपयन्तु लोको यमो द्युभिरहोभिरक्तुभिरस्य सुतावतो जनस्य सम्बन्धिनेऽस्मै व्यक्तमवसानं ददातु॥१॥

भावार्थः-य आप्तान् विदुषो द्विषन्ति, ते सद्यो दुःखमाप्नुवन्ति। ये जीवाः शरीरं त्यक्त्वा गच्छन्ति तेभ्यो यथायोग्यमवकाशं दत्त्वा परमेश्वरस्तेषां कर्मानुसारेण सुखदुःखानि ददति॥१॥

पदार्थः-जो (**देवपीयवः**) विद्वानों के द्वेषी (**पणयः**) व्यवहारी लोग दूसरों के लिये (**असुम्नाः**) दुःखों को देते हैं, वे (**इतः**) यहां से (**अप, यन्तु**) दूर जावें (**लोकः**) देखने योग्य (**यमः**) सबका नियन्ता परमात्मा (**द्युभिः**) प्रकाशमान (**अहोभिः**) दिन (**अक्तुभिः**) और रात्रियों के साथ (**अस्य**) इस (**सुतावतः**) वेद वा विद्वानों से प्रेरित प्रशस्त कर्मों वाले जनों के सम्बन्धी (**अस्मै**) इस मनुष्य के लिये (**व्यक्तम्**) प्रसिद्ध (**अवसानम्**) अवकाश को (**ददातु**) देवे॥१॥

भावार्थः-जो लोग आप्त सत्यवादी धर्मात्मा विद्वानों से द्वेष करते, वे शीघ्र ही दुःख को प्राप्त होते हैं। जो जीव शरीर छोड़ के जाते हैं, उनके लिये यथायोग्य अवकाश देकर उनके कर्मानुसार परमेश्वर सुख-दुःख फल देता है॥१॥

सविता तयित्यस्य आदित्या देवा ऋषयः। सविता देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनरीश्वरकर्त्तव्यविषयमाह॥

फिर ईश्वर के कर्त्तव्य विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

स॒वि॒ता ते॒ शरी॑रेभ्यः पृथि॒व्यां लो॒कमि॑च्छतु।

तस्मै॑ युज्यन्तामु॒स्रिया॑ः॥२॥

स॒वि॒ता। ते॒ शरी॑रेभ्यः। पृथि॒व्याम्। लो॒कम्। इ॒च्छ॒तु॒॥ तस्मै॑। यु॒ज्य॒न्ता॒म्। उ॒स्रिया॑ः॥२॥

पदार्थः-(**सविता**) परमात्मा (**ते**) तव (**शरीरेभ्यः**) देहेभ्यः (**पृथिव्याम्**) अन्तरिक्षे भूमौ वा (**लोकम्**) कर्मानुकूलं सुखदुःखप्रापकम् (**इच्छतु**) (**तस्मै**) (**युज्यन्ताम्**) (**उस्रियाः**) किरणाः। **उस्रा इति रश्मिनामसु पठितम्॥** (निघं०१।५)॥२॥

अन्वयः-हे जीव! सविता यस्य ते शरीरेभ्यः पृथिव्यां लोकमिच्छतु, तस्मै तुभ्यमुस्रिया युज्यन्ताम्॥२॥

भावार्थः-हे जीवा! यो जगदीश्वरो युष्मभ्यं सुखमिच्छति, किरणद्वारा लोकलोकान्तरं प्रापयति, स एव युष्माभिर्न्यायकारी मन्तव्यः॥२॥

पदार्थः-हे जीव! (**सविता**) परमात्मा जिस (**ते**) तेरे (**शरीरेभ्यः**) जन्म-जन्मान्तरों के शरीरों के लिये (**पृथिव्याम्**) अन्तरिक्ष वा भूमि में (**लोकम्**) कर्मों के अनुकूल सुख-दुःख के साधन प्रापक स्थान को (**इच्छतु**) चाहे (**तस्मै**) उस तेरे लिये (**उस्रियाः**) प्रकाशरूप किरण (**युज्यन्ताम्**) अर्थात् उपयोगी हों॥२॥

भावार्थः-हे जीवो! जो जगदीश्वर तुम्हारे लिये सुख चाहता है और किरणों के द्वारा लोक-लोकान्तर को पहुंचाता है, वही तुम लोगों को न्यायकारी मानना चाहिये॥२॥

वायुरित्यस्य आदित्या देवा वा ऋषयः। सविता देवता। उष्णिक् छन्दः। ऋषभः। स्वरः॥

जीवानां कर्मगतिविषयमाह॥

जीवों की कर्मगति का विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

वा॒युः पु॑नातु सवि॒ता पु॑नात्व॒ग्नेर्भ्राज॑सा॒ सूर्य॑स्य॒ वर्च॑सा।

वि मु॑च्यन्तामु॒स्रिया॑ः॥३॥

वा॒युः। पु॒ना॒तु॒। स॒वि॒ता। पु॒ना॒तु॒। अ॒ग्नेः। भ्राज॑सा। सूर्य॑स्य॒ वर्च॑सा॥ वि। मु॒च्य॒न्ता॒म्। उ॒स्रिया॑ः॥३॥

पदार्थः-(**वायुः**) (**पुनातु**) पवित्रयतु (**सविता**) सूर्यः (**पुनातु**) (**अग्नेः**) विद्युतः (**भ्राजसा**) दीप्त्या (**सूर्यस्य**) (**वर्चसा**) प्रकाशेन (**वि**) (**मुच्यन्ताम्**) त्यज्यन्ताम् (**उस्रियाः**) किरणाः॥३॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! वायुरग्नेर्भ्राजसा सूर्यस्य वर्चसा यानस्मान् पुनातु सविता पुनातु उस्रिया विमुच्यन्ताम्॥३॥

भावार्थः-यदा जीवाः शरीराणि त्यक्त्वा विद्युतं सूर्यप्रकाशं वाय्वादीनि च प्राप्य गच्छन्ति, गर्भं प्रविशन्ति, तदा किरणास्तान् त्यजन्ति॥३॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम (**वायुः**) पवन (**अग्नेः**) बिजुली की (**भ्राजसा**) दीप्ति से (**सूर्यस्य**) सूर्य के (**वर्चसा**) तेज से जिन हम लोगों को (**पुनातु**) पवित्र करे (**सविता**) सूर्य (**पुनातु**) पवित्र करे (**उस्रियाः**) किरण (**विमुच्यन्ताम्**) छोड़ें॥३॥

भावार्थः-जब जीव शरीरों को छोड़ के विद्युत्, सूर्य के प्रकाश और वायु आदि को प्राप्त होकर जाते हैं और गर्भ में प्रवेश करते हैं, तब किरण उनको छोड़ देती हैं॥३॥

अश्वत्थ इत्यस्य आदित्या देवा ऋषयः। वायुः सविता च देवते। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनर्मनुष्यैः किं कर्त्तव्यमित्याह॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता।

गोभाजऽइत्किलासथ यत्सनवथ पूरुषम्॥४॥

अश्वत्थे। वः। निषदनम्। निसदनमिति निऽसदनम्। पर्णे। वः। वसतिः। कृता॥ गोभाज इति गोऽभाजः। इत्। किल। असथ। यत्। सनवथ। पूरुषम्। पुरुषमिति पुरुषम्॥४॥

पदार्थः-(**अश्वत्थे**) श्वः स्थास्यति न स्थास्यति वा तस्मिन्ननित्ये संसारे (**वः**) युष्माकम् (**निषदनम्**) स्थापनम् (**पर्णे**) पर्णवच्चञ्चले जीवने (**वः**) युष्माकम् (**वसतिः**) निवसतिः (**कृता**) (**गोभाजः**) ये गाः पृथिवीं वाचमिन्द्रियाणि किरणान् वा भजन्ति ते (**इत्**) एव (**किल**) (**असथ**) भवथ (**यत्**) (**सनवथ**) सेवध्वम् (**पूरुषम्**) सर्वत्र पूर्णं परमात्मानम्॥४॥

अन्वयः-हे जीवा! येन जगदीश्वरेणाश्वत्थे वो निषदनं कृतं पर्णे वो वसतिः कृता। यत्पूरुषं किल सनवथ तेन सह गोभाज इद्यूयं प्रयत्नेन धर्मेऽसथ॥४॥

भावार्थः-मनुष्यैरनित्ये संसारेऽनित्यानि शरीराणि पदार्थांश्च प्राप्य क्षणभङ्गुरे जीवने धर्माचरणेन नित्यं परमात्मानमुपास्याऽऽत्मपरमात्मसंयोगजं नित्यं सुखं प्रापणीयम्॥४॥

पदार्थ:-हे जीवो! जिस जगदीश्वर ने **(अश्वत्थे)** कल ठहेरगा वा नहीं ऐसे अनित्य संसार में **(व:)** तुम लोगों की **(निषदनम्)** स्थिति की **(पर्णे)** पत्ते के तुल्य चञ्चल जीवन में **(व:)** तुम्हारा **(वसति:)** निवास **(कृता)** किया। **(यत्)** जिस **(पूरुषम्)** सर्वत्र परिपूर्ण परमात्मा को **(किल)** ही **(सनवथ)** सेवन करो, उसके साथ **(गोभाज:)** पृथिवी, वाणी, इन्द्रिय वा किरणों का सेवन करनेवाले **(इत्)** ही तुम लोग प्रयत्न के साथ धर्म में स्थिर **(असथ)** होओ॥४॥

भावार्थ:-मनुष्यों को चाहिये कि अनित्य संसार में अनित्य शरीरों और पदार्थों को प्राप्त हो के क्षणभङ्गुर जीवन में धर्माचरण के साथ नित्य परमात्मा की उपासना कर आत्मा और परमात्मा के संयोग से उत्पन्न हुए नित्य सुख को प्राप्त हों॥४॥

सवितेत्यस्यादित्या देवा वा ऋषय:। वायुसवितारौ देवते। अनुष्टुप् छन्द:। गान्धार: स्वर:॥

कन्या किं कुर्यादित्याह॥

कन्या क्या करे, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

स॒वि॒ता ते॒ शरी॑राणि मा॒तुरु॒पस्थ॒ऽआ व॑पतु।

तस्मै॑ पृथिवि॒ शं भ॑व॥५॥

स॒वि॒ता। ते॒। शरी॑राणि। मा॒तु:। उ॒पस्थ॒ इत्यु॒प॑ऽस्थे॑। आ। व॒प॒तु॒॥ तस्मै॑। पृ॒थि॒वि॒। शम्। भ॒व॒॥५॥

पदार्थ:-**(सविता)** उत्पत्तिकर्त्ता पिता **(ते)** तव **(शरीराणि)** आश्रयान् **(मातु:)** जननीवन्मान्यप्रदाया: पृथिव्या: **(उपस्थे)** समीपे **(आ)** **(वपतु)** स्थापयतु **(तस्मै)** **(पृथिवि)** भूमिवद्वर्त्तमाने कन्ये **(शम्)** सुखकारिणी **(भव)**॥५॥

अन्वय:-हे पृथिवि! त्वं यस्यास्ते शरीराणि मातुरुपस्थे सविता आ वपतु, सा त्वं तस्मै पित्रे शम्भव॥५॥

भावार्थ:-हे कन्ये! युष्माभिर्विवाहानन्तरमपि जनकस्य जनन्याश्च मध्ये प्रीतिर्नैव त्याज्या, कुतस्ताभ्यामेव युष्माकं शरीराणि निर्मितानि पालितानि च सन्त्यत:॥५॥

पदार्थ:-हे **(पृथिवि)** भूमि के तुल्य सहनशील कन्या! तू जिस **(ते)** तेरे **(शरीराणि)** आश्रयों को **(मातु:)** माता के तुल्य मान्य देनेवाली पृथिवी के **(उपस्थे)** समीप में **(सविता)** उत्पत्ति करनेवाला पिता **(आ, वपतु)** स्थापित करे, सो तू **(तस्मै)** उस पिता के लिये **(शम्)** सुखकारिणी **(भव)** हो॥५॥

भावार्थ:-हे कन्याओ! तुमको उचित है कि विवाह के पश्चात् भी माता और पिता में प्रीति न छोड़ो, क्योंकि उन्हीं दोनों से तुम्हारे शरीर उत्पन्न हुए और पाले गये हैं इससे॥५॥

प्रजापतावित्यस्यादित्या देवा ऋषय:। प्रजापतिर्देवता। उष्णिक् छन्द:। ऋषभ: स्वर:॥

ईश्वरोपासनाविषयमाह॥

ईश्वर की उपासना का विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

प्रजापतौ त्वा देवतायामुपोदके लोके नि दधाम्यसौ।

अप नः शोशुचदघम्॥६॥

प्रजापताविति प्रजाऽपतौ। त्वा। देवतायाम्। उपोदक इत्युपऽउदके। लोके। नि। दधामि। असौ॥ अप। नः। शोशुचत्। अघम्॥६॥

पदार्थः-(**प्रजापतौ**) प्रजायाः पालके परमेश्वरे (**त्वा**) त्वाम् (**देवतायाम्**) पूजनीयायाम् (**उपोदके**) उपगतान्युदकानि यस्मिंस्तस्मिन् (**लोके**) दर्शनीये (**नि**) (**दधामि**) (**असौ**) (**अप**) (**नः**) अस्माकम् (**शोशुचत्**) भृशं शोषयतु (**अघम्**) पापम्॥६॥

अन्वयः-हे जीव! योऽसौ नोऽघमपशोशुचत् तस्यां प्रजापतौ देवतायामुपोदके लोके च त्वा नि दधामि॥६॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यो जगदीश्वर उपासितः सन् पापाचरणात् पृथक् कारयति, तस्मिन्नेव भक्तिकरणाय युष्मानहं स्थिरीकरोमि, येन सदैव यूयं श्रेष्ठं सुखदर्शनं प्राप्नुयात॥६॥

पदार्थः-हे जीव! जो (**असौ**) यह लोक (**नः**) हमारे (**अघम्**) पाप को (**अप, शोशुचत्**) शीघ्र सुखा देवे, उस (**प्रजापतौ**) प्रजा के रक्षक (**देवतायाम्**) पूजनीय परमेश्वर में तथा (**उपोदके**) उपगत समीपस्थ उदक जिसमें हों (**लोके**) दर्शनीय स्थान में (**त्वा**) आप को (**नि दधामि**) निरन्तर धारण करता हूं॥६॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जो जगदीश्वर उपासना किया हुआ पापाचरण से पृथक् कराता है, उसी में भक्ति करने के लिये तुमको मैं स्थिर करता हूं, जिससे सदैव तुम लोग श्रेष्ठ सुख के देखने को प्राप्त होओ॥६॥

परमित्यस्य सङ्कसुक ऋषिः। यमो देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनर्मनुष्यैः किं कर्त्तव्यमित्याह॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

परं मृत्योऽ अनु परेहि पन्थां यस्तेऽ अन्यऽ इतरो देवयानात्।

चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजाᳬं रीरिषो मोत वीरान्॥७॥

परम्। मृत्योऽइति मृत्यो। अनु। परा। इहि। पन्थाम्। यः। ते। अन्यः। इतरः। देवयानादिति देवऽयानात्॥ चक्षुष्मते। शृण्वते। ते। ब्रवीमि। मा। नः। प्रजामिति प्रऽजाम्। रीरिषः। रीरिषऽइति रिरिषः। मा। उत। वीरान्॥७॥

पदार्थः-(**परम्**) प्रकृष्टम् (**मृत्यो**) मृत्युः। अत्र व्यत्ययः। (**अनु**) (**परा**) (**इहि**) दूरं गच्छतु (**पन्थाम्**) मार्गम् (**यः**) (**ते**) तव (**अन्यः**) (**इतरः**) भिन्नः (**देवयानात्**) देवा विद्वांसो यान्ति यस्मिंस्तस्मात् (**चक्षुष्मते**) प्रशस्तं चक्षुर्विद्यते यस्य तस्मै (**शृण्वते**) यः शृणोति तस्मै (**ते**) तुभ्यम् (**ब्रवीमि**) उपदिशामि (**मा**) (**नः**) अस्माकम् (**प्रजाम्**) (**रीरिषः**) हिंस्याः (**मा**) (**उत**) अपि (**वीरान्**) प्राप्तविद्यान् शरीरबलयुक्तान्॥७॥

अन्वयः-हे मनुष्य! यस्ते देवयानादितरोऽन्यो मार्गोऽस्ति, तं पन्थां मृत्यो परेहि मृत्युः परैतु, यतस्त्वं परं देवयानमन्विहि। अत एव चक्षुष्मते शृण्वतेऽहं ते ब्रवीमि, यथा मृत्युर्नः प्रजां न हिंस्यादुतापि वीरान्न हन्यात्, तथा त्वं प्रजां मा रीरिष उतापि वीरान् मा रीरिषः॥७॥

भावार्थः-मनुष्यैर्यावज्जीवनं तावद्विद्वन्मार्गेण गत्वा परमायुर्लब्धव्यम्। कदाचिद् विना ब्रह्मचर्येण स्वयंवरं कृत्वाऽल्पायुषीः प्रजा नोत्पादनीया, न चैतासां ब्रह्मचर्यानुष्ठानेन वियोगः कर्त्तव्यः॥७॥

पदार्थः-हे मनुष्य! (**या**) जो (**ते**) तेरा (**देवयानात्**) जिस मार्ग से विद्वान् लोग चलते उससे (**इतरः**) भिन्न (**अन्यः**) और मार्ग है, उस (**पन्थाम्**) मार्ग को (**मृत्यो**) मृत्यु (**परा, इहि**) दूर जावे, जिस कारण तू (**परम्**) उत्तम देवमार्ग को (**अनु**) अनुकूलता से प्राप्त हो, उसी से (**चक्षुष्मते**) उत्तम नेत्रवाले (**शृण्वते**) सुनते हुए (**ते**) तेरे लिये (**ब्रवीमि**) उपदेश करता हूं, जैसे मृत्यु (**नः**) हमारी प्रजा को न मारे और वीर पुरुषों को भी न मारे, वैसे तू (**प्रजाम्**) सन्तानादि को (**मा, रीरिषः**) मत मार वा विषयादि से नष्ट मत कर (**उत**) और (**वीरान्**) विद्या और शरीर के बल से युक्त वीर पुरुषों को (**मा**) मत नष्ट कर॥७॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि जीवन पर्यन्त विद्वानों के मार्ग से चल के उत्तम अवस्था को प्राप्त हों और ब्रह्मचर्य के विना स्वयंवर विवाह करके कभी न्यून अवस्था की प्रजा सन्तानों को न उत्पन्न करें और न इन सन्तानों को ब्रह्मचर्य के अनुष्ठान से अलग रक्खें॥७॥

शं वात इत्यस्य आदित्या देवा वा ऋषयः। विश्वेदेवा देवताः। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

सृष्टिस्थाः पदार्थाः कथं मनुष्याणां सुखकारिणः स्युरित्याह॥

सृष्टि के पदार्थ मनुष्यों को कैसे सुखकारी हों, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

शं वा॒तः शꣳ हि ते॒ घृणिः॒ शं ते॑ भव॒न्त्विष्ट॑काः।

शं ते॑ भवन्त्व॒ग्नयः॒ पार्थि॑वासो॒ मा त्वा॒भि शू॑शुचन्॥८॥

शम्। वातः। शम्। हि। ते। घृणिः। शम्। ते। भवन्तु। इष्टकाः॥ शम्। ते। भवन्तु। अग्नयः। पार्थिवासः। मा। त्वा। अभि। शूशुचन्॥८॥

पदार्थः-(**शम्**) सुखकरः (**वातः**) वायुः (**शम्**) (**हि**) यतः (**ते**) (**घृणिः**) रश्मिवान् सूर्य्यः (**शम्**) (**ते**) (**भवन्तु**) (**इष्टकाः**) वेद्यां चिताः (**शम्**) (**ते**) (**भवन्तु**) (**अग्नयः**) पावकाः (**पार्थिवासः**) विदिताः (**मा**) (**त्वा**) (**अभि**) (**शूशुचन्**) भृशं शोकं कुर्य्युः॥८॥

अन्वयः-हे जीव! ते वातः शं भवतु, घृणिः शं हि भवतु, इष्टकास्ते शं भवन्तु, पार्थिवासोऽग्नयस्ते शं भवन्त्वेते त्वा माभि शूशुचन्॥८॥

भावार्थः-हे जीवास्तथैव युष्माभिर्धर्म्ये व्यवहारे वर्त्तितव्यं यथा जीवतां मृतानां च युष्माकं सृष्टिस्था वाय्वादयः पदार्थाः सुखकराः स्युः॥८॥

पदार्थः-हे जीव! (**ते**) तेरे लिये (**वातः**) वायु (**शम्**) सुखकारी हो, (**घृणिः**) किरणयुक्त सूर्य्य (**शम्, हि**) सुखकारी हो, (**इष्टकाः**) वेदी में चयन की हुई ईंटें (**ते**) तेरे लिये (**शम्**) सुखदायिनी (**भवन्तु**) हों, (**पार्थिवासः**) पृथिवी पर प्रसिद्ध (**अग्नयः**) विद्युत् आदि अग्नि (**ते**) तेरे लिये (**शम्**) कल्याणकारी (**भवन्तु**) होवें, ये सब (**त्वा**) तुझको (**मा, अभि, शूशुचन्**) सब ओर से शीघ्र शोककारी न हों॥८॥

भावार्थः-हे जीवो! वैसे ही तुमको धर्मयुक्त व्यवहार मे वर्त्तना चाहिये, जैसे जीने वा मरने के बाद भी तुमको सृष्टि के वायु आदि पदार्थ सुखकारी हों॥८॥

कल्पन्तामित्यस्यादित्या देवा ऋषयः। विश्वेदेवा देवताः। विराड् बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

कल्पन्तां ते दिशस्तुभ्यमापः शिवतमास्तुभ्यं भवन्तु सिन्धवः।
अन्तरिक्षꣳ शिवं तुभ्यं कल्पन्तां ते दिशः सर्वाः॥९॥

कल्पन्ताम्। ते। दिशः। तुभ्यम्। आपः। शिवतमा इति शिवऽतमाः। तुभ्यम्। भवन्तु। सिन्धवः॥ अन्तरिक्षम्। शिवम्। तुभ्यम्। कल्पन्ताम्। ते। दिशः सर्वाः॥९॥

पदार्थः-(**कल्पन्ताम्**) समर्था भवन्तु (**ते**) तुभ्यम् (**दिशः**) पूर्वाद्याः (**तुभ्यम्**) (**आपः**) प्राणा जलानि वा (**शिवतमाः**) अतिशयेन सुखकराः (**तुभ्यम्**) (**भवन्तु**) (**सिन्धवः**) नद्यः समुद्रा वा (**अन्तरिक्षम्**) आकाशम् (**शिवम्**) सुखकरम्। **शिवमिति सुखनामसु पठितम्॥** (निघं०३।६) (**तुभ्यम्**) (**कल्पन्ताम्**) (**ते**) तुभ्यम् (**दिशः**) ऐशान्याद्याः (**सर्वाः**) समग्राः॥९॥

अन्वयः-हे जीव! ते दिशश्शिवतमाः कल्पन्ताम्, तुभ्यमापः शिवतमा भवन्तु, तुभ्यं सिन्धवः शिवतमा भवन्तु, तुभ्यं शिवमन्तरिक्षं भवतु, ते सर्वा दिशः शिवतमाः कल्पन्ताम्॥९॥

भावार्थः-येऽधर्मं विहाय सर्वथा धर्माचरन्ति, तेभ्यः पृथिव्यादयः सर्वे सृष्टिस्थाः पदार्था मङ्गलकारिणो भवन्ति॥९॥

पदार्थः-हे जीव **(ते)** तेरे लिये **(दिशः)** पूर्व आदि दिशा **(शिवतमाः)** अत्यन्त सुखकारिणी **(कल्पन्ताम्)** समर्थ हों, **(तुभ्यम्)** तेरे लिये **(आपः)** प्राण वा जल अति सुखकारी हों, **(तुभ्यम्)** तेरे लिये **(सिन्धवः)** नदियां वा समुद्र अति सुखकारी **(भवन्तु)** होवें, **(तुभ्यम्)** तेरे लिये **(अन्तरिक्षम्)** आकाश **(शिवम्)** कल्याणकारी हो, और **(ते)** तेरे लिये **(सर्वाः)** सब **(दिशः)** ईशानादि विदिशा अत्यन्त कल्याणकारी **(कल्पन्ताम्)** समर्थ होवें॥९॥

भावार्थः-जो लोग अधर्म को छोड़कर सब प्रकार से धर्म का आचरण करते हैं, उनके लिये पृथिवी आदि सृष्टि के सब पदार्थ अत्यन्त मङ्गलकारी होते हैं॥९॥

अश्मन्वतीत्यस्य सुचीक ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

के दुःखात् तरन्तीत्याह॥

कौन लोग दुःख के पार होते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अश्मन्वती रीयते सꣳरभध्वमुत्तिष्ठत प्र तरता सखायः।

अत्रा जहीमोऽशिवा येऽअसञ्छिवान्वयमुत्तरेमाभि वाजान्॥१०॥

अश्मन्वतीत्यश्मन्ऽवती। रीयते। सम्। रभध्वम्। उत्। तिष्ठत। प्र। तरत। सखायः॥अत्र। जहीमः। अशिवाः। ये। असन्। शिवान्। वयम्। उत्। तरेम। अभि। वाजान्॥१०॥

पदार्थः-**(अश्मन्वती)** बहवोऽश्मानो मेघाः पाषाणा वा विद्यन्ते यस्यां सृष्टौ नद्यां वा सा **(रीयते)** गच्छति **(सम्)** सम्यक् **(रभध्वम्)** प्रारम्भं कुरुत **(उत्)** **(तिष्ठत)** उद्यता भवत **(प्र)** **(तरत)** दुःखान्युल्लङ्घयत। अत्र **संहितायाम्** [अ०६.३.११४] इति दीर्घः। **(सखायः)** सुहृदः सन्तः **(अत्र)** अस्मिन् संसारे समये वा। अत्र **निपातस्य च** [अ०६.३.१३६] इति दीर्घः। **(जहीमः)** त्यजामः **(अशिवाः)** अकल्याणकराः **(ये)** **(असन्)** सन्ति **(शिवान्)** सुखकरान् **(वयम्)** **(उत्)** **(तरेम)** उल्लङ्घयेम **(अभि)** **(वाजान्)** अत्युत्तमानन्नादिभोगान्॥१०॥

अन्वयः-हे सखायो! याऽश्मन्वती रीयते तया वयं येऽत्राशिवा असँस्तान् जहीमः, शिवान् वाजानभ्युत्तरेम तथा यूयं सरंभध्वमुत्तिष्ठत प्रतरत च॥१०॥

भावार्थः-ये मनुष्या बृहत्या नौकया समुद्रमिवाऽशुभाचरणानि दुष्टांश्च तीर्त्वा प्रयत्नेनोद्यमिनो भूत्वा मङ्गलान्याचरेयुस्ते दुःखसागरं सहजतः सन्तरेयुः॥१०॥

पदार्थः-हे **(सखायः)** मित्रो! जो **(अश्मन्वती)** बहुत मेघों वा पत्थरोंवाली सृष्टि वा नदी प्रवाह से **(रीयते)** चलती है उसके साथ जैसे **(वयम्)** हम लोग **(ये)** जो **(अत्र)** इस जगत् में वा समय में **(अशिवाः)** अकल्याणकारी **(असन्)** हैं, उनको **(जहीमः)** छोड़ते हैं तथा **(शिवान्)** सुखकारी **(वाजान्)** अत्युत्तम अन्नादि के भागों को **(अभि, उत्, तरेम)** सब ओर से पार करें अर्थात् भोग चुकें वैसे तुम लोग **(संरभध्वम्)** सम्यक् आरम्भ करो **(उत्तिष्ठत)** उद्यत होओ और **(प्रतरत)** दुःखों का उल्लङ्घन करो॥१०॥

भावार्थः-जो मनुष्य बड़ी नौका से समुद्र के जैसे पार हों, वैसे अशुभ आचरणों और दुष्ट जनों के पार हो प्रयत्न के साथ उद्यमी होके मङ्गलकारी आचरण करें, वे सहज से दुःखसागर के पार होवें॥१०॥

अपाघमित्यस्य शुनःशेप ऋषिः। आपो देवताः। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथ के पवित्रकारका इत्याह॥

अब कौन मनुष्य पवित्र करनेवाले हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अपाघमप किल्विषमप कृत्यामपो रपः।

अपामार्ग त्वमस्मदप दुःष्वप्न्यꣳ सुव॥११॥

अप। अघम्। अप। किल्विषम्। अप। कृत्याम्। अपो इत्यपोः। रपः॥ अपामार्ग। अपमार्गेत्यपऽमार्ग। त्वम्। अस्मत्। अप। दुःष्वप्न्यम्। दुःष्वप्न्यमिति दुःऽस्वप्न्यम्। सुव॥११॥

पदार्थः-**(अप)** दूरीकरणे **(अघम्)** पापम् **(अप)** **(किल्विषम्)** स्वान्तःस्थं मलम् **(अप)** **(कृत्याम्)** दुष्क्रियाम् **(अपो)** दूरीकरणे **(रपः)** बाह्येन्द्रियचाञ्चल्यजन्यमपराधम् **(अपामार्ग)** रोगनिवारकोऽपामार्ग ओषधिरिव पापदूरीकर्त्तः **(त्वम्)** **(अस्मत्)** अस्माकं सकाशात् **(अप)** **(दुःष्वप्न्यम्)** दुष्टश्चासौ स्वप्नो निद्रा च तस्मिन् भवम् **(सुव)** प्रेरय॥११॥

अन्वयः-हे अपामार्ग! त्वमस्मदघमपसुव, किल्विषमपसुव, कृत्यामपसुव, रपोऽपो सुव, दुःष्वप्न्यमपसुव॥११॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथाऽपामार्गाद्योषधयो रोगान्निवार्य्य प्राणिनः सुखयन्ति, तथा स्वयं सर्वेभ्यो दोषेभ्यः पृथग्भूत्वाऽन्यानशुभाचरणात् पृथक् कृत्वा ये शुद्धा भवन्त्यन्यान् भावयन्ति च त एव मनुष्यादीनां पवित्रकराः सन्ति॥११॥

पदार्थः-हे **(अपामार्ग)** अपामार्ग ओषधि जैसे रोगों को दूर करती, वैसे पापों को दूर करनेवाले सज्जन पुरुष! **(त्वम्)** आप **(अस्मत्)** हमारे निकट से **(अघम्)** पाप को **(अप, सुव)** दूर कीजिये **(किल्विषम्)** मन की मलिनता को आप **(अप)** दूर कीजिये **(कृत्याम्)** दुष्टक्रिया को **(अप)**

दूर कीजिये **(रपः)** बाह्य इन्द्रियों के चञ्चलता रूप अपराध को **(अपो)** दूर कीजिये और **(दुःष्वप्न्यम्)** बुरे प्रकार की निद्रा में होनेवाले बुरे विचार को **(अप)** दूर कीजिये॥११॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो मनुष्य जैसे अपामार्ग आदि ओषधियां रोगों को निवृत्त कर प्राणियों को सुखी करती हैं, वैसे आप सब दोषों से पृथक् होके अन्य मनुष्यों को अशुभ आचरण से अलग कर शुद्ध होते और दूसरों को करते हैं, वे ही मनुष्यादि को पवित्र करनेवाले हैं॥११॥

सुमित्रिया न इत्यस्यादित्या देवा ऋषयः। आपो देवताः। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनर्मनुष्याः किं कुर्य्युरित्याह॥

फिर मनुष्य क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

सुमित्रिया नऽआपऽओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु।
योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः॥१२॥

सुमित्रिया इति सुऽमित्रियाः। नः। आपः। ओषधयः। सन्तु। दुर्मित्रिया इति दुःऽमित्रियाः। तस्मै। सन्तु॥ यः। अस्मान्। द्वेष्टि। यम्। च। वयम्। द्विष्मः॥१२॥

पदार्थः-**(सुमित्रियाः)** शोभना मित्रा इव **(नः)** अस्मभ्यम् **(आपः)** प्राणा जलानि वा **(ओषधयः)** सोमाद्याः **(सन्तु)** **(दुर्मित्रियाः)** दुर्मित्राः शत्रव इव दुःखप्रदाः **(तस्मै)** **(सन्तु)** **(यः)** **(अस्मान्)** धर्मात्मनः **(द्वेष्टि)** अप्रसन्नयति **(यम्)** दुष्टाचारिणम् **(च)** **(वयम्)** **(द्विष्मः)** अप्रीतयामः॥१२॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! या आप ओषधयो नोस्मभ्यं सुमित्रियाः सन्तु, ता युष्मभ्यमपि तादृशो भवन्तु, योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तस्मा एता दुर्मित्रियाः सन्तु॥१२॥

भावार्थः-ये रागद्वेषादिदोषान् विहाय सर्वेषु स्वात्मवद्वर्त्तन्ते तेभ्यो धर्मात्मभ्यः सर्वे जलौषध्यादयः पदार्थाः सुखकरा भवन्ति। ये च स्वात्मपोषकाः परद्वेषिणस्तेभ्योऽधर्मात्मभ्यः सर्व एते दुःखकरा भवन्ति, मनुष्यैर्धर्मात्मभिः सह प्रीतिर्दुष्टात्मभिः सहाऽप्रीतिश्च सततं कार्या, परन्तु तेषामप्यन्तःकरणेन कल्याणमेषणीयम्॥१२॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो **(आपः)** प्राण वा जल तथा **(ओषधयः)** सोमादि ओषधियां **(नः)** हमारे लिये **(सुमित्रियाः)** सुन्दर मित्रों के तुल्य हितकारिणी **(सन्तु)** होवें, तुम्हारे लिये भी वैसी हों। **(यः)** जो **(अस्मान्)** हम धर्मात्माओं से **(द्वेष्टि)** द्वेष करता **(च)** और **(यम्)** जिस दुष्टाचारी से

(वयम्) हम लोग **(द्विष्म:)** अप्रीति करें, **(तस्मै)** उसके लिये वे पदार्थ **(दुर्मित्रिया:)** शत्रुओं के तुल्य दु:खदायी **(सन्तु)** होवें॥१२॥

भावार्थ:-जो राग-द्वेष आदि दोषों को छोड़ कर सबमें अपने आत्मा के तुल्य वर्त्ताव करते हैं, उन धर्मात्माओं के लिये सब जल, ओषधि आदि पदार्थ सुखकारी होते और जो स्वार्थ में प्रीति तथा दूसरों से द्वेष करनेवाले हैं, उन अधर्मियों के लिये ये सब उक्त पदार्थ दु:खदायी होते हैं। मनुष्यों को चाहिये कि धर्मात्माओं के साथ प्रीति और दुष्टों का भी चित्त से सदा कल्याण ही चाहें॥१२॥

अनड्वानित्यस्यादित्या देवा ऋषय:। कृषीबला देवता:। स्वराडनुष्टुप् छन्द:। गान्धार: स्वर:॥

के मनुष्या: कार्यं साद्धुं शक्नुवन्तीत्याह॥

कौन मनुष्य कार्यों को सिद्ध कर सकते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अनड्वाहमन्वारभामहे सौरभेयꣳ स्वस्तये।

स नऽइन्द्रऽइव देवेभ्यो वह्निः सन्तरणो भव॥१३॥

अनड्वाहम्। अन्वारभामहऽइत्यनुऽआरभामहे। सौरभेयम्। स्वस्तये॥ स:। न:। इन्द्रऽइवेतीन्द्र इव। देवेभ्य:। वह्नि:। सन्तरण इति सम्ऽतरण:। भव॥१३॥

पदार्थ:-**(अनड्वाहम्)** योऽनांसि शकटानि वहति तद्वद्वर्त्तमानम् **(अन्वारभामहे)** यानानि रचयित्वा तत्र स्थापयेम **(सौरभेयम्)** सुरभ्या अपत्यम् **(स्वस्तये)** सुखाय **(स:)** **(न:)** अस्मभ्यम् **(इन्द्र इव)** विद्युदिव **(देवेभ्य:)** विद्वद्भ्य: **(वह्नि:)** सद्यो वोढाग्नि: **(सन्तरण:)** य: सम्यगध्वनस्तारयति पारं करोति स: **(भव)** भवतु॥१३॥

अन्वय:-हे विद्वन्! यो वह्निर्नो देवेभ्य: सन्तरणो भवति, तं सौरभेयमनड्वाहमिव वर्त्तमानमग्निं वयं स्वस्तयेऽन्वारभामहे। स तुभ्यमिन्द्र इव भव भवत॥१॥

भावार्थ:-ये मनुष्या विद्युदाद्यग्निविद्यया यानादीनि कार्याणि कर्त्तुमारभन्ते, ते बलिष्ठैर्वृषभै: कृषीबला इव स्वकार्य्याणि साद्धुं शक्नुवन्ति, विद्युदिवेतस्ततो गन्तुञ्च॥१३॥

पदार्थ:-हे विद्वन्! जो **(वह्नि:)** शीघ्र पहुंचानेवाला अग्नि **(न:, देवेभ्य:)** हम विद्वानों के लिये **(सन्तरण:)** सम्यक् मार्गों से पार करनेवाला होता है, उस **(सौरभेयम्)** सुरभि गौ के सन्तान **(अनड्वाहम्)** गाड़ी आदि को खींचनेवाले बैल के तुल्य वर्त्तमान अग्नि के हम लोग **(स्वस्तये)** सुख के लिये **(अन्वारभामहे)** यान बना के उनमें प्राणियों को स्थिर करें, **(स:)** वह आपके लिये **(इन्द्र इव)** बिजुली के तुल्य **(भव)** होवे॥१३॥

भावार्थः-जो मनुष्य बिजुली आदि अग्नि की विद्या से यान बनाने आदि कार्य्यों के करने का अभ्यास करते हैं, वे अतिबली बैलों से खेती करनेवालों के समान कार्य्यों को सिद्ध कर सकते और विद्युत अग्नि के तुल्य इधर-उधर जा सकते हैं॥१३॥

उद्वयन्तमेत्यस्यादित्या देवा ऋषयः। सूर्य्यो देवता। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

के मोक्षमधिगच्छन्तीत्याह॥

कौन मोक्ष को पाते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उद्व॒यन्तम॑स॒स्परि॒ स्वः॒ पश्य॑न्त॒ऽउत्त॑रम्।

दे॒वं दे॑व॒त्रा सूर्य्य॒मग॑न्म॒ ज्योति॑रुत्त॒मम्॥१४॥

उत्। व॒यम्। तम॑सः। परि॑। स्वः॒रिति॒ स्वः॒। पश्य॑न्तः। उत्त॑र॒मित्यु॒त्ऽत॑रम्॥ दे॒वम्। दे॒वत्रेति॑ देव॒ऽत्रा। सूर्य्य॑म्। अग॑न्म। ज्योतिः॑। उ॒त्त॒ममित्यु॑त्ऽत॒मम्॥१४॥

पदार्थः-**(उत्)** **(वयम्)** **(तमसः)** अन्धकारात् **(परि)** वर्जने **(स्वः)** स्वप्रकाशमादित्यम् **(पश्यन्तः)** प्रेक्षमाणाः **(उत्तरम्)** दुःखेभ्य उत्तारकं परत्र वर्त्तमानम् **(देवम्)** विजयादिलाभप्रदम् **(देवत्रा)** देवेषु विद्वत्सु प्रकाशमयेषु सूर्य्यादिषु वा **(सूर्य्यम्)** अन्तर्यामिरूपेण स्वव्याप्त्या चराऽचरात्मानं परमात्मानं **(अगन्म)** विजानीयाम **(ज्योतिः)** स्वप्रकाशम् **(उत्तमम्)** सर्वोत्कृष्टम्॥१४॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! वयं यं तमसस्परि स्वरिव वर्त्तमानं देवत्रा देवं ज्योतिरुत्तममुत्तरं सूर्य्यं पश्यन्तः सन्तः पर्य्युदगन्म, तमेव यूयमपि सर्वतो विजानीत॥१४॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे मनुष्याः! यथा सूर्य्यं पश्यन्तो दीर्घायुषो धर्मात्मानो जनाः सुखं लभन्ते, तथैव धार्मिका योगिनो महादेवं सर्वप्रकाशकं जन्ममृत्युक्लेशादिभ्यः पृथग् वर्त्तमानं सच्चिदानन्दस्वरूपं परमात्मानं साक्षाद् विज्ञाय मोक्षमवाप्य सततमानन्दन्ति॥१४॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! **(वयम्)** हम लोग जिस **(तमसः)** अन्धकार से परे **(स्वः)** स्वयं प्रकाशरूप सूर्य्य के तुल्य वर्त्तमान **(देवत्रा)** विद्वानों वा प्रकाशमय सूर्य्यादि पदार्थों में **(देवम्)** विजयादि लाभ के देनेवाले **(ज्योतिः)** स्वयं प्रकाशमयस्वरूप **(उत्तमम्)** सबसे बड़े **(उत्तरम्)** दुःखों से पार करनेवाले **(सूर्य्यम्)** अन्तर्यामी रूप से अपनी व्याप्ति कर सब चराचर के स्वामी परमात्मा को **(पश्यन्तः)** ज्ञान दृष्टि से देखते हुए **(परि, उत्, अगन्म)** सब ओर से उत्कृष्टता के साथ जानें, उसी को तुम लोग भी जानो॥१४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जैसे सूर्य्य को देखते हुए दीर्घावस्थावाले धर्मात्मा जन सुख को प्राप्त होते, वैसे ही धर्मात्मा योगीजन महादेव, सबका

प्रकाशक, जन्म-मृत्यु के क्लेश आदि से पृथक् वर्त्तमान, सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा को साक्षात् जान मोक्ष को पाकर निरन्तर आनन्दित होते हैं॥१४॥

इममित्यस्य सङ्कुसुक ऋषिः। ईश्वरो देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते है॥

इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरोऽअर्थमेतम्।
शतं जीवन्तु शरदः पुरूचीरन्तर्मृत्युं दधतां पर्वतेन॥१५॥

इमम्। जीवेभ्यः। परिधिमिति परिऽधिम्। दधामि। मा। एषाम्। नु। गात्। अपरः। अर्थम्। एतम्॥ शतम्। जीवन्तु। शरदः। पुरूचीः। अन्तः। मृत्युम्। दधताम्। पर्वतेन॥१५॥

पदार्थः-(**इमम्**) प्रत्यक्षम् (**जीवेभ्यः**) प्राणधारकेभ्यः स्थावरशरीरेभ्यश्च (**परिधिम्**) मर्यादाम् (**दधामि**) व्यवस्थापयामि (**मा**) (**एषाम्**) जीवानाम् (**नु**) सद्यः (**गात्**) प्राप्नुयात् (**अपरः**) अन्यः (**अर्थम्**) द्रव्यम् (**एतम्**) प्राप्तम् (**शतम्**) (**जीवन्तु**) (**शरदः**) (**पुरूचीः**) या पुरूणि बहूनि वर्षाण्यञ्चन्ति ताः (**अन्तः**) मध्ये (**मृत्युम्**) (**दधताम्**) धारयन्तु (**पर्वतेन**) ज्ञानेन ब्रह्मचर्यादिना वा॥१५॥

अन्वयः-अहं परमेश्वर एषां जीवानामेतमर्थमपरो मा नु गादितीमं जीवेभ्यः परिधिं दधाम्येवमाचरन्तो भवन्तः पुरूचीः शतं शरदो जीवन्तु पर्वतेन मृत्युमन्तर्दधताम्॥१५॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! ये परमेश्वरेण व्यवस्थापितां धर्माचरणं कार्य्यमधर्माचरणं त्याज्यमिति मर्यादां नोल्लङ्घन्तेऽन्यायेन परपदार्थान्न स्वीकुर्वन्ति, तेऽरोगाः सन्तश्शतं वर्षाणि जीवितुं शक्नुवन्ति, नेतर ईश्वराज्ञाभङ्क्तारः। ये पूर्णेन ब्रह्मचर्येण विद्या अधीत्य धर्ममाचरन्ति तान् मृत्युर्मध्ये नाप्नोतीति॥१५॥

पदार्थः-मैं परमेश्वर (**एषाम्**) इन जीवों के (**एतम्**) परिश्रम से प्राप्त किये (**अर्थम्**) द्रव्य को (**अपरः**) अन्य कोई (**मा**) नहीं (**नु**) शीघ्र (**गात्**) प्राप्त कर लेवे, इस प्रकार (**इमम्**) इस (**जीवेभ्यः**) जीवों के लिये (**परिधिम्**) मर्यादा को (**दधामि**) व्यवस्थित करता हूं, इस प्रकार आचरण करते हुए आप लोग (**पुरूचीः**) बहुत वर्षों के सम्बन्धी (**शतम्**) सौ (**शरदः**) शरद् ऋतुओं भर (**जीवन्तु**) जीवो (**पर्वतेन**) ज्ञान वा ब्रह्मचर्यादि से (**मृत्युम्**) मृत्यु को (**अन्तः**) मध्य में (**दधताम्**) दबाओ अर्थात् दूर करो॥१५॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जो लोग, परमेश्वर ने नियत किया कि धर्म का आचरण करना और अधर्म का आचरण छोड़ना चाहिये, इस मर्यादा को उल्लङ्घन नहीं करते, अन्याय से दूसरे के पदार्थों

को नहीं लेते, वे नीरोग होकर सौ वर्ष तक जी सकते हैं और ईश्वराज्ञाविरोधी नहीं। जो पूर्ण ब्रह्मचर्य से विद्या पढ़ कर धर्म का आचरण करते हैं, उनको मृत्यु मध्य में नहीं दबाता॥१५॥

अग्न इत्यस्यादित्या देवा ऋषयः। अग्निर्देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

के जना दीर्घायुषो भवन्तीत्याह॥

कौन मनुष्य दीर्घ अवस्था वाले होते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अग्नऽआयूंᳪषि पवसऽ आ सुवोर्जमिषं च नः।

आरे बाधस्व दुच्छुनाम्॥ १६॥

अग्ने। आयूंᳪषि। पवसे। आ। सुव। ऊर्जम्। इषम्। च। नः॥ आरे। बाधस्व। दुच्छुनाम्॥ १६॥

पदार्थः-(**अग्ने**) परमेश्वर विद्वन् वा (**आयूंषि**) अन्नादीनि जीवनानि वा। **आयुरित्यन्ननामसु पठितम्॥** (निघं०२।१) (**पवसे**) पवित्रीकरोषि (**आ**) (**सुव**) जनय (**ऊर्जम्**) बलम् (**इषम्**) विज्ञानम् (**च**) (**नः**) अस्मभ्यम् (**आरे**) दूरे निकटे वा (**बाधस्व**) (**दुच्छुनाम्**) दूषाः श्वान इव वर्त्तमानास्तान् हिंस्यान् प्राणिनः। अत्र कर्मणि षष्ठी॥१६॥

अन्वयः-हे अग्ने! त्वमायूंषि पवसे न ऊर्जमिषं चासुव दुच्छनामारे बाधस्व॥१६॥

भावार्थः-ये मनुष्या दुष्टाचरणदुष्टसङ्गौ विहाय परमेश्वराप्तयोः सेवां कुर्वन्ति, ते धनधान्ययुक्ता सन्तो दीर्घायुषो भवन्ति॥१६॥

पदार्थः-हे (**अग्ने**) परमेश्वर वा विद्वन्! आप (**आयूंषि**) अन्नादि पदार्थों वा अवस्थाओं को (**पवसे**) पवित्र करते (**नः**) हमारे लिये (**ऊर्जम्**) बल (**च**) और (**इषम्**) विज्ञान को (**आ, सुव**) अच्छे प्रकार उत्पन्न कीजिये तथा (**दुच्छुनाम्**) कुत्तों के तुल्य दुष्ट हिंसक प्राणियों को (**आरे**) दूर वा समीप में (**बाधस्व**) ताड़ना विशेष दीजिये॥१६॥

भावार्थः-जो मनुष्य दुष्टों का आचरण और सङ्ग छोड़ के परमेश्वर और आप्त सत्यवादी विद्वान् की सेवा करते हैं, वे धन-धान्य से युक्त हुए दीर्घ अवस्था वाले होते हैं॥१६॥

आयुष्मानित्यस्य वैखानस ऋषिः। अग्निर्देवता। स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ राजधर्मविषयमाह॥

अब राजधर्म विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आयुष्मानग्ने हविषा वृधानो घृतप्रतीको घृतयोनिरेधि।

घृतं पीत्वा मधु चारु गव्यं पितेव पुत्रमभि रक्षतादिमान्त्स्वाहा॥ १७॥

आयुष्मान्। अग्ने। हविषा। वृधानः। घृतप्रतीक इति घृतऽप्रतीकः। घृतयोनिरिति घृतऽयोनिः। एधि॥ घृतम्। पीत्वा। मधु। चारु। गव्यम्। पितेवेति पिताऽइव। पुत्रम्। अभि। रक्षतात्। इमान्। स्वाहा॥ १७॥

पदार्थः-**(आयुष्मान्)** बह्वायुर्विद्यते यस्य सः **(अग्ने)** अग्निरिव वर्त्तमान राजन् **(हविषा)** घृतादिना **(वृधानः)** वर्द्धमानः। अत्र बहुलं छन्दसीति शानचि शपो लुक्। **(घृतप्रतीकः)** यो घृतमुदकं प्रत्याययति सः **(घृतयोनिः)** घृतं प्रदीप्तं तेजो योनिः कारणं गृहं वा यस्य सः **(एधि)** भव **(घृतम्)** **(पीत्वा)** **(मधु)** मधुरम् **(चारु)** सुन्दरम् **(गव्यम्)** गोर्विकारम् **(पितेव)** **(पुत्रम्)** **(अभि)** आभिमुख्ये **(रक्षतात्)** रक्ष **(इमान्)** **(स्वाहा)** सत्यया क्रियया॥१७॥

अन्वयः-हे अग्ने! यथा हविषा वृधानो घृतप्रतीको घृतयोनिरग्निर्वर्द्धते तथाऽऽयुष्माँस्त्वमेधि। मधु चारु गव्यं घृतं पीत्वा पितेव स्वाहेमानभि रक्षतात्॥१७॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोमालङ्कारः। यथा सूर्यादिरूपेणाग्निर्बाह्याभ्यन्तरः सन् सर्वान् रक्षति, तथैव राजा पितृवद्वर्त्तमानः सन् पुत्रमिवेमाः प्रजाः सततं रक्षेत॥१७॥

पदार्थः-हे **(अग्ने)** अग्नि के तुल्य वर्त्तमान तेजस्वी राजन्! जैसे **(हविषा)** घृतादि से **(वृधानः)** बढ़ा हुआ **(घृतप्रतीकः)** जल को प्रसिद्ध करनेवाला **(घृतयोनिः)** प्रदीप्त तेज जिसका कारण वा घर है, वह अग्नि बढ़ता है, वैसे **(आयुष्मान्)** बहुत अवस्थावाले आप **(एधि)** हूजिये **(मधु)** मधुर **(चारु)** सुन्दर **(गव्यम्)** गौ के **(घृतम्)** घी को **(पीत्वा)** पी के **(पुत्रम्)** पुत्र की **(पितेव)** पिता जैसे वैसे **(स्वाहा)** सत्य क्रिया से **(इमान्)** इन प्रजास्थ मनुष्यों की **(अभि)** प्रत्यक्ष **(रक्षतात्)** रक्षा कीजिये॥१७॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य्यादि रूप से अग्नि बाहर भीतर रह कर सबकी रक्षा करता है, वैसे ही राजा पिता के तुल्य वर्त्ताव करता हुआ पुत्र के समान इन प्रजाओं की निरन्तर रक्षा करे॥१७॥

परीम इत्यस्य भरद्वाजः शिरम्बिठ ऋषिः। इन्द्रो देवता। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

परी॒मे गाम॑नेषत॒ पर्य॒ग्निम॑हृषत।

दे॒वेष्व॑क्रत॒ श्रव॒: कऽ इ॒माँ२ऽ आ द॑धर्षति॥१८॥

परि॑। इ॒मे। गाम्। अ॒ने॒ष॒त॒। परि॑। अ॒ग्निम्। अ॒हृ॒ष॒त॒॥ दे॒वेषु॑। अ॒क्र॒त॒। श्रव॑ः। कः। इ॒मान्। आ। द॒ध॒र्ष॒ति॒॥१८॥

पदार्थः-(**परि**) सर्वतः (**इमे**) (**गाम्**) वाणीं पृथिवीं वा (**अनेषत**) (**परि**) सर्वतः (**अग्निम्**) **अहृषत**) हरत (**देवेषु**) विद्वत्सु (**अक्रत**) कुरुत। अत्र मन्त्रे घस० [अ०२.४.८०] इति च्लेर्लुक्। (**श्रवः**) अन्नम्। (**कः**) (**इमान्**) (**आ**) (**दधर्षति**) धर्षयितुं शक्नोति। अत्र लेटि व्यत्ययेन श्लुः॥१८॥

अन्वयः-हे राजजना! य इमे यूयं गां पर्य्यनेषताऽग्निं पर्य्यहृषत। एषु देवेषु श्रवोऽक्रतैवंभूतानिमान् भवतः क आ दधर्षति॥१८॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये राजजनाः पृथिवीवद्धीरा अग्निवत् तेजस्विनोऽन्नवदायुष्कराः सन्तो धर्मेण प्रजां रक्षन्ति, तेऽतुलां राजश्रियमाप्नुवन्ति॥१८॥

पदार्थः-हे राजपुरुषो! जो (**इमे**) ये तुम लोग (**गाम्**) वाणी वा पृथिवी को (**परि, अनेषत**) स्वीकार करो (**अग्निम्**) अग्नि को (**परि, अहृषत**) सब ओर से हरो अर्थात् कार्य में लाओ। इन (**देवेषु**) विद्वानों में (**श्रवः**) अन्न को (**अक्रत**) करो, इस प्रकार के (**इमान्**) आप लोगों को (**कः**) कौन (**आ, दधर्षति**) धमका सकता है॥१८॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो राजपुरुष पृथिवी के समान धीर, अग्नि के तुल्य तेजस्वी, अन्न के समान अवस्थावर्द्धक होते हुए धर्म से प्रजा की रक्षा करते हैं, वे अतुल राजलक्ष्मी को पाते हैं॥१८॥

क्रव्यादमित्यस्य दमन ऋषिः। अग्निर्देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

क्रव्यादमग्निं प्र हिणोमि दूरं यमराज्यं गच्छतु रिप्रवाहः।

इहैवायमितरो जातवेदा देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन्॥१९॥

क्रव्यादमिति क्रव्याऽअदम्। अग्निम्। प्र। हिनोमि। दूरम्। यमराज्यमिति यमऽराज्यम्। गच्छतु। रिप्रवाह इति रिप्रऽवाहः॥ इह। एव। अयम्। इतरः। जातवेदा इति जातऽवेदाः। देवेभ्यः। हव्यम्। वहतु। प्रजानन्निति प्रऽजानन्॥१९॥

पदार्थः-(**क्रव्यादम्**) यः क्रव्यं मांसमत्ति तम् (**अग्निम्**) अग्निमिवाऽन्यान् परितापकम् (**प्र**) (**हिनोमि**) गमयामि (**दूरम्**) (**यमराज्यम्**) यमस्य न्यायाधीशस्य स्थानम् (**गच्छतु**) (**रिप्रवाहः**) ये रिप्रं पापं वहन्ति तान् (**इह**) अस्मिन् संसारे (**एव**) (**अयम्**) (**इतरः**) भिन्नः (**जातवेदाः**) जातप्रज्ञानः (**देवेभ्यः**) धार्मिकेभ्यो विद्वद्भ्यः (**हव्यम्**) आदातुमर्हं विज्ञानम् (**वहतु**) प्राप्नोतु (**प्रजानन्**) प्रकर्षेण जानन् सन्॥१९॥

अन्वयः-प्रजानन्नहं क्रव्यादमग्निमिव वर्त्तमानं यं दूरं प्रहिणोमि, यांश्च रिप्रवाहश्च दूरं प्रहिणोमि, स यमराज्यं गच्छतु। ते च इहेतरोऽयं जातवेदा देवेभ्यो हव्यमेव वहतु॥१९॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे न्यायाधीशाः! यूयं दुष्टाचारिणः संताड्य प्राणादपि वियोज्य श्रेष्ठान् सत्कृत्येह सृष्टौ साम्राज्यं कुरुत॥१९॥

पदार्थः-(**प्रजानन्**) अच्छे प्रकार जानता हुआ मैं (**क्रव्यादम्**) कच्चे मांस को खाने और (**अग्निम्**) अग्नि के तुल्य दूसरों को दुःख से तपानेवाले जिस दुष्ट को (**दूरम्**) दूर (**प्रहिणोमि**) पहुंचाता और जिन (**रिप्रवाहः**) पाप उठानेवाले दुष्टों को दूर पहुंचाता हूं, वह और वे सब पापी (**यमराज्यम्**) न्यायाधीश राजा के न्यायालय में (**गच्छतु**) जावें और (**इह**) इस जगत् में (**इतरः**) दूसरा (**अयम्**) यह (**जातवेदाः**) धर्म्मात्मा विद्वान् जन (**देवेभ्यः**) धार्मिक विद्वानों से (**हव्यम्**) ग्रहण करने योग्य विज्ञान को (**एव**) ही (**वहतु**) प्राप्त होवे॥१९॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। न्यायाधीश राजपुरुषो! तुम लोग दुष्टाचारी जनों को सम्यक् ताड़ना देकर प्राणों से भी छुड़ा के और श्रेष्ठ का सत्कार करके इस सृष्टि में साम्राज्य अर्थात् चक्रवर्ती राज्य करो॥१९॥

वह वपामित्यस्यादित्या देवा ऋषयः। जातवेदा देवताः। स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ पितृसेवनविषयमाह॥

अब पितृ लोगों का सेवन विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

वह॑ व॒पां जा॑तवेदः पि॒तृभ्यो॒ यत्रै॑ना॒न् वेत्थ॒ निहि॑तान् परा॒के।

मेद॑सः कु॒ल्याऽ उप॒ तान्त्स्र॑वन्तु स॒त्याऽ ए॑षामा॒शिष॒ः सं न॑मन्ता॒थ्ठं स्वाहा॑॥२०॥

वह॑। व॒पाम्। जा॒त॒वे॒द॒ इति॑ जातऽवेदः। पि॒तृभ्य॒ इति॑ पि॒तृऽभ्यः॑। यत्र॑। ए॒ना॒न्। वेत्थ॑। निहि॑ता॒निति॒ निऽहि॑तान्। प॒रा॒के॥ मेद॑सः। कु॒ल्याः। उप॑। तान्। स्र॒व॒न्तु॒। स॒त्याः। ए॒षा॒म्। आ॒शिष॒ इत्या॒ऽऽशिषः॑। सम्। न॒म॒न्ता॒म्। स्वाहा॑॥२०॥

पदार्थः-(**वह**) प्राप्नुहि (**वपाम्**) वपन्ति यस्यां भूमौ ताम् (**जातवेदः**) जातप्रज्ञानः (**पितृभ्यः**) जनकेभ्यो विद्याशिक्षादातृभ्यो वा (**यत्र**) (**एनान्**) (**वेत्थ**) जानासि (**निहितान्**) (**पराके**) दूरे (**मेदसः**) स्निग्धाः (**कुल्याः**) जलप्रवाहाधाराः (**उप**) (**तान्**) जनान् (**स्रवन्तु**) प्राप्नुवन्तु (**सत्याः**) सत्सु साध्व्यः (**एषाम्**) (**आशिषः**) इच्छा (**सम्**) सम्यक् (**नमन्ताम्**) प्राप्नुवन्तु (**स्वाहा**) सत्यया क्रियया॥२०॥

अन्वयः-हे जातवेदस्त्वं यत्रैतान् पराके निहितान् वेत्थ, तत्र पितृभ्यो वपां वह, यथा मेदसः कुल्यास्तानुपस्रवन्तु, तथा स्वाहैषामाशिषः सत्याः सन्नमन्ताम्॥२०॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये दूरे स्थितान् पितॄन् विदुषश्चाहूय सत्कुर्वन्ति, यथाऽऽरामवृक्षादीन् जलवायू वर्द्धयतस्तथैतेषामिच्छाः सत्याः सत्यः सर्वतो वर्द्धन्ते॥२०॥

पदार्थः-हे (**जातवेदः**) उत्तम ज्ञान को प्राप्त हुए जन आप (**यत्र**) जहां (**एनान्**) इन (**पराके**) दूर (**निहितान्**) स्थित पितृजनों को (**वेत्थ**) जानते हो, वहां (**पितृभ्यः**) जनक वा विद्या शिक्षा देनेवाले सज्जन पितरों से (**वपाम्**) खेती होने के योग्य भूमि को (**वह**) प्राप्त हूजिये, जैसे (**मेदसः**) उत्तम (**कुल्याः**) जल के प्रवाह से युक्त नदी वा नहरें (**तान्**) उन सज्जनों को (**उप, स्रवन्तु**) निकट प्राप्त हों, वैसे (**स्वाहा**) सत्यक्रिया से (**एषाम्**) इन लोगों की (**आशिषः**) इच्छा (**सत्याः**) यथार्थ (**सम्, नमन्ताम्**) सम्यक् प्राप्त होवें॥२०॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो दूर रहनेवाले पितृ और विद्वानों को बुलाकर सत्कार करते हैं, जैसे बाग-बगीचों के वृक्षादि को जल, वायु बढ़ाते, वैसे उनकी इच्छा सत्य हुई सब ओर से बढ़ती हैं॥२०॥

स्योनेत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। पृथिवी देवता। पूर्वस्य निचृद् गायत्री, अप न इत्युत्तरस्य प्राजापत्या गायत्री छन्दसी। षड्जः स्वरः॥

गृहिणी कीदृशी स्यादित्याह॥

कुलीन स्त्री कैसी होवे, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी।

यच्छा नः शर्म सप्रथाः। अप नः शोशुचदघम्॥२१॥

स्योना। पृथिवि। नः। भव। अनृक्षरा। निवेशनीति निऽवेशनी॥ यच्छ। नः। शर्म्म। सप्रथा इति सप्रथाः। अप। नः। शोशुचत्। अघम्॥२१॥

पदार्थः-(**स्योना**) सुखकारी (**पृथिवि**) भूमिरिव वर्त्तमाने (**नः**) अस्मभ्यम् (**भव**) (**अनृक्षरा**) निष्कण्टका (**निवेशनी**) निविशन्ते यस्यां सा (**यच्छ**) देहि। अत्र **द्व्यचोऽतस्तिङः** [अ०६.३.१३५] इति दीर्घः। (**नः**) अस्मभ्यम् (**शर्म**) सुखम् (**सप्रथाः**) विस्तीर्णेन प्रशंसनेन सह वर्त्तमानाः (**अप**) दूरीकरणे (**नः**) अस्माकम् (**शोशुचत्**) भृशं शोधयतु (**अघम्**) पापम्॥२१॥

अन्वयः-हे पृथिवि भूमिरिव वर्त्तमाने स्त्रि! त्वं यथाऽनृक्षरा निवेशनी भूमिः स्योना भवति, तथा नो भव। सप्रथाः सती नश्शर्म्म यच्छ, यथा न्यायेशो नोऽघमपशोशुचत् तथाऽपराधं दूरं गमय॥२१॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। या स्त्री पृथिवीवत् क्षमाशीला क्रूरतादोषरहिता बहुप्रशंसिता अन्येषामपि दोषनिवारिका भवति, सैव गृहकृत्ये योग्या भवति॥२१॥

पदार्थः-हे **(पृथिवि)** भूमि के तुल्य वर्त्तमान क्षमाशील स्त्री! तू जैसे **(अनृक्षरा)** कण्टक आदि से रहित **(निवेशनी)** बैठने का आधार भूमि **(स्योना)** सुख करनेवाली होती, वैसे **(नः)** हमारे लिये **(भव)** हो तू **(सप्रथाः)** अत्यन्त प्रशंसा के साथ वर्त्तमान हुई **(नः)** हमारे लिये **(शर्म)** सुख को **(यच्छ)** दे, जैसे न्यायाधीश **(नः)** हमारे **(अघम्)** पाप को **(अप, शोशुचत्)** शीघ्र दूर करे वा शुद्ध करे, वैसे तू अपराध को दूर कर॥२१॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो स्त्री पृथिवी के तुल्य क्षमा करने वाली क्रूरता आदि दोषों से अलग बहुत प्रशंसित दूसरों के दोषों का निवारण करनेहारी है, वही घर के कार्यों में योग्य होती है॥२१॥

अस्मादित्यादित्या देवा ऋषयः। अग्निर्देवता। स्वराड् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनर्मनुष्यैः किं कर्त्तव्यमित्याह॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अस्मात्त्वमधि जातोऽसि त्वदयं जायतां पुनः।

असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा॥२२॥

अस्मात्। त्वम्। अधि। जातः। असि। त्वत्। अयम्। जायताम्। पुनरिति पुनः॥ असौ। स्वर्गायेति स्वःऽगाय। लोकाय। स्वाहा॥२२॥

पदार्थः-**(अस्मात्)** लोकात् **(त्वम्)** **(अधि)** उपरिभावे **(जातः)** **(असि)** भवति **(त्वत्)** तव सकाशादुत्पन्नः **(अयम्)** पुत्रः **(जायताम्)** उत्पद्यताम् **(पुनः)** पश्चात् **(असौ)** विशेषनामा **(स्वर्गाय)** विशेषसुखभोगाय **(लोकाय)** द्रष्टव्याय **(स्वाहा)** सत्यया क्रियया॥२२॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यतस्त्वमस्माल्लोकादधिजातोऽसि, तस्मादयं त्वत्पुनरसौ स्वाहा स्वर्गाय लोकाय जायताम्॥२२॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! युष्मभिरिह मनुष्यशरीरं धृत्वा विद्यासुशिक्षासुशीलधर्मयोगविज्ञानानि सङ्गृह्य मुक्तिसुखाय प्रयतितव्यमिदमेव मनुष्यजन्मसाफल्यं वेद्यमिति॥२२॥

अस्मिन्नध्याये व्यवहारजीवगतिजन्ममृत्युसत्याऽऽशीरग्निसत्येच्छानां व्याख्यानादेतदध्यायोक्तार्थस्य पूर्वाध्यायोक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेद्यम्॥

पदार्थः-हे विद्वान् पुरुष **(त्वम्)** आप **(अस्मात्)** इस लोक से अर्थात् वर्त्तमान मनुष्यों से **(अधि)** सर्वोपरि **(जातः)** प्रसिद्ध विराजमान **(असि)** हैं, इससे **(अयम्)** यह पुत्र **(त्वत्)** आपसे

(पुनः) पीछे **(असौ)** विशेष नामवाला **(स्वाहा)** सत्य क्रिया से **(लोकाय)** देखने योग्य **(स्वर्गाय)** विशेष सुख भोगने के लिये **(जायताम्)** प्रकट समर्थ होवे॥२२॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! तुम लोगों को चाहिये कि इस जगत् में मनुष्यों का शरीर धारण कर विद्या, उत्तम शिक्षा, अच्छा स्वभाव, धर्म, योगाभ्यास और विज्ञान का सम्यक् ग्रहण करके मुक्ति सुख के लिये प्रयत्न करो और यही मनुष्यजन्म की सफलता है, ऐसा जानो॥२२॥

इस अध्याय में व्यवहार, जीव की गति, जन्म, मरण, सत्य, आशीर्वाद, अग्नि और सत्य इच्छा आदि का व्याख्यान होने से इस अध्याय में कहे अर्थ की पूर्व अध्याय में कहे अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य्याणां श्रीमन्महाविदुषां विरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचिते संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां समन्विते सुप्रमाणयुक्ते यजुर्वेदभाष्ये पञ्चत्रिंशोऽध्यायोऽलमगमत्॥३५॥

॥ओ३म् ॥

अथ षट्त्रिंशाऽध्यायारम्भः

ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव। यद्भ॒द्रं तन्न॒ ऽ आ सु॑व॥ यजु०३०.३॥

ऋचमित्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः। अग्निर्देवता। पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वर॥

अथ विद्वत्सङ्गेन किञ्जायत इत्याह॥

अब छत्तीसवें अध्याय का आरम्भ किया जाता है, इसके प्रथम मन्त्र में विद्वानों के संग से क्या होता है, इस विषय को कहते हैं॥

ऋचं॒ वाचं॒ प्र प॑द्ये मनो॒ यजु॒ः प्र प॑द्ये
साम॑ प्रा॒णं प्र प॑द्ये चक्षु॒ः श्रोत्रं॒ प्र प॑द्ये।
वागोज॑ः स॒हौजो॒ मयि॑ प्राणापा॒नौ॥ १॥

ऋच॑म्। वाच॑म्। प्र। प॒द्ये॒। मन॑ः। यजु॑ः। प्र। प॒द्ये॒। साम॑। प्रा॒णम्। प्र। प॒द्ये॒। चक्षु॑ः। श्रोत्र॑म्। प्र। प॒द्ये॒॥ वाक्। ओज॑ः। स॒ह। ओज॑ः। मयि॑। प्रा॒णा॒पा॒नौ॥ १॥

पदार्थः-(**ऋचम्**) प्रशंसनीयमृग्वेदम् (**वाचम्**) वाणीम् (**प्र**) (**पद्ये**) प्राप्नुयाम् (**मनः**) मननात्मकं चित्तम् (**यजुः**) यजुर्वेदम् (**प्र**) (**पद्ये**) (**साम**) सामवेदम् (**प्राणम्**) (**प्र**) (**पद्ये**) (**चक्षुः**) चष्टे पश्यति येन तत् (**श्रोत्रम्**) शृणोति येन तत् (**प्र**) (**पद्ये**) (**वाक्**) वाणी (**ओजः**) मानसं बलम् (**सह**) (**ओजः**) शारीरं बलम् (**मयि**) आत्मनि (**प्राणापानौ**) प्राणश्चाऽपानश्च तावुच्छ्वासनिःश्वासौ॥ १॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा मयि प्राणपानौ दृढौ भवेतां मम वागोजः प्राप्नुयात् तया ताभ्यां च सहाऽहमोजः प्राप्नुयामृचं वाचं प्रपद्ये मनो यजुः प्रपद्ये साम प्राणं प्रपद्ये चक्षुः श्रोत्रं प्रपद्ये तथा यूयमेतानि प्राप्नुत॥ १॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे विद्वांसो! युष्मत्सङ्गेन मम ऋगिव प्रशंसनीया वाग्यजुरिव मनः साम इव प्राणः सप्तदशतत्त्वात्मकं लिङ्गं शरीरञ्च स्वस्थं निरुपद्रवं समर्थं भवतु॥ १॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे (**मयि**) मेरे आत्मा में (**प्राणापानौ**) प्राण और अपान ऊपर-नीचे के श्वास दृढ़ हों मेरी (**वाक्**) वाणी (**ओजः**) मानस बल को प्राप्त हो, उस वाणी और उन श्वासों के (**सह**) साथ मैं (**ओजः**) शरीर बल को प्राप्त होऊं (**ऋचम्**) ऋग्वेद रूप (**वाचम्**) वाणी को (**प्र, पद्ये**) प्राप्त होऊं (**मनः**) मनन करनेवाले के तुल्य (**यजुः**) यजुर्वेद को (**प्र, पद्ये**) प्राप्त होऊं (**प्राणम्**)

प्राण की क्रिया अर्थात् योगाभ्यासादिक उपासना के साधक **(साम)** सामवेद को **(प्र, पद्ये)** प्राप्त होऊं **(चक्षुः)** उत्तम नेत्र और **(श्रोत्रम्)** श्रेष्ठ कान को **(प्र, पद्ये)** प्राप्त होऊं, वैसे तुम लोग इन सबको प्राप्त होओ॥१॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे विद्वानो! तुम लोगों के संग से मेरी ऋग्वेद के तुल्य प्रशंसनीय वाणी, यजुर्वेद के समान मन, सामवेद के सदृश प्राण और सत्रह तत्त्वों से युक्त लिङ्ग शरीर स्वस्थ, सब उपद्रवों से रहित और समर्थ होवे॥१॥

यन्मे छिद्रमित्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः। बृहस्पतिर्देवता। निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अथेश्वरप्रार्थनाविषयमाह॥

अब ईश्वर प्रार्थना विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यन्मे॑ छि॒द्रं चक्षु॑षो॒ हृद॑यस्य॒ मन॑सो॒ वाति॑तृण्णं॒ बृह॒स्पति॑र्मे॒ तद्द॑धातु।
शं नो॑ भवतु॒ भुव॑नस्य॒ यस्पतिः॑॥२॥

यत्। मे॒। छि॒द्रम्। चक्षु॑षः। हृद॑यस्य। मन॑सः। वा॒। अति॑तृण्ण॒मित्यति॑तृण्णम्। बृह॒स्पतिः॑। मे॒। तत्। द॒धा॒तु॒॥ शम्। न॒ः। भ॒व॒तु॒। भुव॑नस्य। यः। पतिः॑॥२॥

पदार्थः-**(यत्)** **(मे)** मम **(छिद्रम्)** न्यूनत्वम् **(चक्षुषः)** नेत्रस्य **(हृदयस्य)** **(मनसः)** अन्तःकरणस्य **(वा)** **(अतितृण्णम्)** अतिहिंसितं व्याकुलत्वम् **(बृहस्पतिः)** बृहतामाकाशादीनां पालक ईश्वरः **(मे)** मह्यम् **(तत्)** **(दधातु)** पुष्णातु **(शम्)** **(नः)** अस्मभ्यम् **(भवतु)** **(भुवनस्य)** भवन्ति भूतानि यस्मिँस्तस्य **(यः)** **(पतिः)** पालकः स्वामीश्वरः॥३॥

अन्वयः-यन्मे चक्षुषो हृदयस्य छिद्रं मनसो वातितृण्णमस्ति तद्बृहस्पतिर्मे दधातु, यो भुवनस्य पतिरस्ति स नः शम्भवतु॥२॥

भावार्थः-सर्वैर्मनुष्यैः परमेश्वरस्योपासनयाऽऽज्ञापालने चाऽहिंसाधर्मं स्वीकृत्य जितेन्द्रियत्वं सम्पादनीयम्॥२॥

पदार्थः-**(यत्)** जो **(मे)** मेरे **(चक्षुषः)** नेत्र की वा **(हृदयस्य)** अन्तःकरण की **(छिद्रम्)** न्यूनता **(वा)** वा **(मनसः)** मन की **(अतितृण्णम्)** व्याकुलता है **(तत्)** उसको **(बृहस्पतिः)** बड़े आकाशादि का पालक परमेश्वर **(मे)** मेरे लिये **(दधातु)** पुष्ट वा पूर्ण करे **(यः)** जो **(भुवनस्य)** सब संसार का **(पतिः)** रक्षक है वह **(नः)** हमारे लिये **(शम्)** कल्याणकारी **(भवतु)** होवे॥२॥

भावार्थः-सब मनुष्यों को चाहिये कि परमेश्वर की उपासना और आज्ञापालन से अहिंसा धर्म्म को स्वीकार कर जितेन्द्रियता को सिद्ध करें॥२॥

भूर्भुवः स्वरित्यस्य विश्वामित्र ऋषिः। सविता देवता। पूर्वस्य दैवी बृहती छन्दः, तत्सवितुरित्युत्तरस्य निचृद्गायत्री छन्दः। मध्यमषड्जौ स्वरौ॥

अथेश्वरोपासनाविषयमाह॥

अब ईश्वर की उपासना का विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्॥ ३॥

भूः। भुवः। स्वः। तत्। सवितुः। वरेण्यम्। भर्गः। देवस्य। धीमहि॥ धियः। यः। नः। प्रचोदयादिति प्रऽचोदयात्॥ ३॥

पदार्थः-(**भूः**) कर्मविद्याम् (**भुवः**) उपासनाविद्याम् (**स्वः**) ज्ञानविद्याम् (**तत्**) इन्द्रियैरग्राह्यं परोक्षम् (**सवितुः**) सकलैश्वर्यप्रदस्येश्वरस्य (**वरेण्यम्**) स्वीकर्त्तव्यम् (**भर्गः**) सर्वदुःखप्रणाशकं तेजःस्वरूपम् (**देवस्य**) कमनीयस्य (**धीमहि**) ध्यायेम (**धियः**) प्रज्ञाः (**यः**) (**नः**) अस्माकम् (**प्रचोदयात्**) प्रेरयेत्॥ ३॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा वयं भूर्भुवः स्वरधीत्य यो नो धियः प्रचोदयात्, तस्य देवस्य सवितुस्तद्वरेण्यं भर्गो धीमहि, तथा यूयमप्येतद् ध्यायत॥ ३॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये मनुष्या कर्मोपासनाज्ञानविद्याः संगृह्याखिलैश्वर्ययुक्तेन परमात्मना सह स्वात्मनो युञ्जतेऽधर्माऽनैश्वर्यदुःखानि विधूय धर्मैश्वर्यसुखानि प्राप्नुवन्ति, तानन्तर्यामी जगदीश्वरः स्वयं धर्माऽनुष्ठानमधर्मत्यागं च कारयितुं सदैवेच्छति॥ ३॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे हम लोग (**भूः**) कर्मकाण्ड की विद्या (**भुवः**) उपासना काण्ड की विद्या और (**स्वः**) ज्ञानकाण्ड की विद्या को संग्रहपूर्वक पढ़के (**यः**) जो (**नः**) हमारी (**धियः**) धारणावती बुद्धियों को (**प्रचोदयात्**) प्रेरणा करे, उस (**देवस्य**) कामना के योग्य (**सवितुः**) समस्त ऐश्वर्य के देनेवाले परमेश्वर के (**तत्**) उस इन्द्रियों से न ग्रहण करने योग्य परोक्ष (**वरेण्यम्**) स्वीकार करने योग्य (**भर्गः**) सब दुःखों के नाशक तेजःस्वरूप का (**धीमहि**) ध्यान करें, वैसे तुम लोग भी इसका ध्यान करो॥ ३॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य कर्म, उपासना और ज्ञान सम्बन्धिनी विद्याओं का सम्यक् ग्रहण कर सम्पूर्ण ऐश्वर्य से युक्त परमात्मा के साथ अपने आत्मा को युक्त करते हैं तथा अधर्म, अनैश्वर्य और दुःखरूप मलों को छुड़ा के धर्म, ऐश्वर्य और सुखों को प्राप्त होते हैं, उनको अन्तर्यामी जगदीश्वर आप ही धर्म के अनुष्ठान और अधर्म का त्याग कराने को सदैव चाहता है॥ ३॥

कया न इत्यस्य वामदेव ऋषिः। इन्द्रो देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

कया॑ नश्चि॒त्रऽ आ भु॑वदू॒ती स॒दावृ॑धः॒ सखा॑।

कया॒ शचि॑ष्ठया वृ॒ता॥४॥

कया॑। न॒ः। चि॒त्रः। आ। भु॒व॒त्। ऊ॒ती। स॒दावृ॑ध॒ इति॑ स॒दाऽवृ॑धः। सखा॑॥ कया॑। शचि॑ष्ठया। वृ॒ता॥४॥

पदार्थः-(**कया**) (**नः**) अस्माकम् (**चित्रः**) अद्भुतगुणकर्मस्वभावः परमेश्वरः (**आ**) समन्तात् (**भुवत्**) भवेत् (**ऊती**) रक्षणादिक्रियया। तृतीयैकवचनस्य **सुपां सुलुग्** [अ०७.१.३९] इति पूर्वसवर्णः। (**सदावृधः**) वर्द्धमानः (**सखा**) सुहृत् (**कया**) (**शचिष्ठया**) अतिशयेन शची प्रज्ञा तया (**वृता**) वर्त्तमानया॥४॥

अन्वयः-स सदावृधश्चित्रो नः कयोती सखा आभुवत्, कया वृता शचिष्ठयाऽस्मान् शुभेषु गुणकर्मस्वभावेषु प्रेरयेत्॥४॥

भावार्थः-वयमिदं यथार्थतया न विजानीमः स ईश्वरः कया युक्तयाऽस्मान् प्रेरयति, यस्य सहायेनैव वयं धर्मार्थकाममोक्षान् साद्धुं शक्नुमः॥४॥

पदार्थः-वह (**सदावृधः**) सदा बढ़नेवाला अर्थात् कभी न्यूनता को नहीं प्राप्त हो (**चित्रः**) आश्चर्य्यरूप गुणकर्मस्वभावों से युक्त परमेश्वर (**नः**) हम लोगों का (**कया**) किस (**ऊती**) रक्षण आदि क्रिया से (**सखा**) मित्र (**आ, भुवत्**) होवे तथा (**कया**) किस (**वृता**) वर्त्तमान (**शचिष्ठया**) अत्यन्त उत्तम बुद्धि से हमको शुभ गुणकर्मस्वभावों में प्रेरणा करे॥४॥

भावार्थः-हम लोग इस बात को यथार्थ प्रकार से नहीं जानते कि वह ईश्वर किस युक्ति से हमको प्रेरणा करता है कि जिसके सहाय से ही हम लोग धर्म, अर्थ, काम और मोक्षों के सिद्ध करने को समर्थ हो सकते हैं॥४॥

कस्त्वेत्यस्य वामदेव ऋषिः। इन्द्रो देवता। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

कस्त्वा॑ स॒त्यो मदा॑नां॒ मꣳहि॑ष्ठो मत्स॒दन्ध॑सः।

दृ॒ढा चि॑दा॒रुजे॒ वसु॑॥५॥

कः। त्वा॒। स॒त्यः। मदा॑नाम्। मꣳहि॑ष्ठः। म॒त्स॒त्। अन्ध॑सः॥ दृ॒ढा। चि॒त्। आ॒रु॒ज॒ऽइत्या॒रुजे॑। वसु॑॥५॥

पदार्थः-(**कः**) सुखस्वरूपः (**त्वा**) त्वाम् (**सत्यः**) सत्सु पदार्थेषु साधुरीश्वरः (**मदानाम्**) आनन्दानां मध्ये (**मंहिष्ठः**) अतिशयेन मंहिता वृद्धः (**मत्सत्**) आनन्दयति (**अन्धसः**) अन्नादेः सकाशात् (**दृढा**) दृढानि (**चित्**) अपि (**आरुजे**) दुःखभञ्जकाय जीवाय (**वसु**) वसूनि धनानि। अत्र **सुपां सुलुग्०** [अ०७.१.३९] इति जसो लुक्॥५॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! मदानां मंहिष्ठः कः सत्यः प्रजापतिरन्धसस्त्वा मत्सदारुजे तुभ्यं चित् दृढा वसु प्रयच्छति॥५॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! योऽन्नादिना सत्यविज्ञापनेन च धनानि प्रदाय सर्वानानन्दयति, तं सुखस्वरूपं परमात्मानमेव यूयं नित्यमुपाध्वम्॥५॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! (**मदानाम्**) आनन्दों के बीच (**मंहिष्ठः**) अत्यन्त बढ़ा हुआ (**कः**) सुखस्वरूप (**सत्यः**) विद्यमान पदार्थों में श्रेष्ठतम प्रजा का रक्षक परमेश्वर (**अन्धसः**) अन्नादि पदार्थ से (**त्वा**) तुझको (**मत्सत्**) आनन्दित करता और (**आरुजे**) दुःखनाशक तेरे लिये (**चित्**) भी (**दृढा**) दृढ़ (**वसु**) धनों को देता है॥५॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जो अन्नादि और सत्य के जताने से धनादि पदार्थ देके सबको आनन्दित करता है, उस सुखस्वरूप परमात्मा की ही तुम लोग नित्य उपासना करो॥५॥

अभी षु ण इत्यस्य वामदेव ऋषिः। इन्द्रो देवता। पादनिचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम्।

शतं भवास्यूतिभिः॥६॥

अभी। सु। नः। सखीनाम्। अविता। जरितॄणाम्॥ शतम्। भवासि। ऊतिभिः॥६॥

पदार्थः-(**अभि**) सर्वतः। अत्र **निपातस्य च** [अ०६.३.१३६] इति दीर्घः। (**सु**) शोभने (**नः**) अस्माकम् (**सखीनाम्**) मित्राणाम् (**अविता**) रक्षिता (**जरितॄणाम्**) सत्यस्तावकानाम् (**शतम्**) असंख्यम् (**भवासि**) भवेः (**ऊतिभिः**) रक्षणादिभिः॥६॥

अन्वयः-हे जगदीश्वर! यतस्त्वं शतं दददभ्यूतिभिर्नः सखीनां जरितॄणामविता सुभवासि, तस्मादस्माभिः सत्कर्त्तव्योऽसि॥६॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यो रागद्वेषरहितानामजातशत्रूणां सर्वेषां सुहृदां मनुष्याणामसंख्यमैश्वर्यमतुलं विज्ञानं च प्रदाय सर्वतोऽभिरक्षति, तमेव परमेश्वरं नित्यं सेवध्वम्॥६॥

पदार्थः-हे जगदीश्वर! आप **(शतम्)** असंख्य ऐश्वर्य देते हुए **(अभि, ऊतिभिः)** सब ओर से प्रवृत्त रक्षादि क्रियाओं से **(नः)** हमारे **(सखीनाम्)** मित्रों और **(जरितॄणाम्)** सत्य स्तुति करनेवालों के **(अविता)** रक्षा करनेवाले **(सु, भवासि)** सुन्दर प्रकार हूजिये, इससे आप हमको सत्कार करने योग्य हैं॥६॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जो रागद्वेष रहित, किन्हीं से वैरभाव न रखने अर्थात् सबसे मित्रता रखनेवाला, सब मित्र मनुष्यों को असंख्य ऐश्वर्य और अधिकतर विज्ञान देके सब ओर से रक्षा करता है, उसी परमेश्वर की नित्य सेवा किया करो॥६॥

कया त्वमित्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः। इन्द्रो देवता। वर्द्धमाना गायत्री छन्दः। षड्ज स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

कया त्वं नऽ ऊत्याभि प्र मन्दसे वृषन्।

कया स्तोतृभ्यऽ आ भर॥७॥

कया। त्वम्। नः। ऊत्या। अभि। प्र। मन्दसे। वृषन्॥ कया। स्तोतृभ्य इति स्तोतृऽभ्यः। आ। भर॥७॥

पदार्थः-**(कया)** **(त्वम्)** **(नः)** अस्मान् **(ऊत्या)** रक्षणाद्यया क्रियया **(अभि)** **(प्र)** **(मन्दसे)** सर्वत्र आनन्दयसि **(वृषन्)** सुखाभिवर्षक **(कया)** रीत्या **(स्तोतृभ्यः)** प्रशंसकेभ्यो मनुष्येभ्यः **(आ)** **(भर)**॥७॥

अन्वयः-हे वृषन्नीश्वर! त्वं कयोत्या नोऽभिप्रमन्दसे, कया स्तोतृभ्यः सुखमाभर॥७॥

भावार्थः-हे भगवन् परमात्मन्! यया युक्त्या त्वं धार्मिकानानन्दयसि, तान् सर्वतः पालयसि, तां युक्तिमस्मान् बोधय॥७॥

पदार्थः-हे **(वृषन्)** सब ओर से सुखों को वर्षानेवाले ईश्वर **(त्वम्)** आप **(कया)** किस **(ऊत्या)** रक्षण आदि क्रिया से **(नः)** हमको **(अभि, प्र, मन्दसे)** सब ओर से आनन्दित करते और **(कया)** किस रीति से **(स्तोतृभ्यः)** आपकी प्रशंसा करनेवाले मनुष्यों के लिये सुख को **(आ, भर)** अच्छे प्रकार धारण कीजिये॥७॥

भावार्थः-हे भगवन् परमात्मन्! जिस युक्ति से आप धर्मात्माओं को आनन्दित करते, उनकी सब ओर से रक्षा करते हैं, उस युक्ति को हमको जताइये॥७॥

इन्द्र इत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः। इन्द्रो देवता। द्विपाद्विराड् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

इन्द्रो विश्वस्य राजति।

शन्नोऽअस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे॥८॥

इन्द्रः। विश्वस्य। राजति॥ शम्। नः। अस्तु। द्विपद इति द्विऽपदे। शम्। चतुष्पदे। चतुःपद इति चतुःऽपदे॥८॥

पदार्थः-(**इन्द्रः**) विद्युदिवेश्वरः (**विश्वस्य**) संसारस्य मध्ये (**राजति**) प्रकाशते (**शम्**) सुखम् (**नः**) अस्माकम् (**अस्तु**) (**द्विपदे**) पुत्राद्याय (**शम्**) (**चतुष्पदे**) गवाद्याय॥८॥

अन्वयः-हे जगदीश्वर! यो भवानिन्द्र इव विश्वस्य राजति, तस्य भवतः कृपया नो द्विपदे शमस्तु नश्चतुष्पदे शमस्तु॥८॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे जगदीश्वर! यतो भवान् सर्वत्राऽभिव्यापकः मनुष्यपश्वादीनां सुखमिच्छुरसि, तस्मात् सर्वैरुपासनीयोऽसि॥८॥

पदार्थः-हे जगदीश्वर! जो आप (**इन्द्रः**) बिजुली के तुल्य (**विश्वस्य**) संसार के बीच (**राजति**) प्रकाशमान हैं, उन आपकी कृपा से (**नः**) हमारे (**द्विपदे**) पुत्रादि के लिये (**शम्**) सुख (**अस्तु**) होवे और हमारे (**चतुष्पदे**) गौ आदि के लिये (**शम्**) सुख होवे॥८॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे जगदीश्वर! जिससे आप सर्वत्र सब ओर से अभिव्याप्त मनुष्य, पश्वादि को सुख चाहनेवाले हैं, इससे सबको उपासना करने योग्य हैं॥८॥

शन्न इत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः। मित्रादयो लिङ्गोक्ता देवताः। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

मनुष्यैः स्वार्थपरार्थसुखमिषितव्यमित्याह॥

मनुष्यों को अपने और दूसरों के लिये सुख की चाहना करनी चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

शन्नो मित्रः शं वरुणः शन्नो भवत्वर्य्यमा।

शन्नऽ इन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णुरुरुक्रमः॥९॥

शम्। नः। मित्रः। शम्। वरुणः। शम्। नः। भवतु। अर्य्यमा॥ शम्। नः। इन्द्रः। बृहस्पतिः। शम्। नः। विष्णुः। उरुक्रम इत्युरुऽक्रमः॥९॥

पदार्थः-(**शम्**) सुखकारि (**नः**) अस्मभ्यम् (**मित्रः**) प्राण इव प्रियः सखा (**शम्**) (**वरुणः**) जलमिव शान्तिप्रदः (**शम्**) (**नः**) अस्मभ्यम् (**भवतु**) (**अर्य्यमा**) योऽर्यान् मन्यते स न्यायाधीशः

(शम्) **(नः)** अस्मभ्यम् **(इन्द्रः)** परमैश्वर्यवान् **(बृहस्पतिः)** बृहत्या वाचः पालको विद्वान् **(शम्)** **(नः)** अस्मभ्यम् **(विष्णुः)** व्यापकेश्वरः **(उरुक्रमः)** उरु बहुक्रमः संसाररचने यस्य सः॥९॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा नो मित्रः शं भवतु वरुणः शम्भवत्वर्य्यमा नः शं भवतु इन्द्रो बृहस्पतिर्नः शम्भवतु उरुक्रमो विष्णुर्नः शम्भवतु तथा युष्मभ्यमपि भवेत्॥९॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैर्यथा स्वार्थं सुखमेष्टव्यं तथा परार्थमपि तथा च ते स्वयं सत्सङ्गमिच्छेयुस्तथा तत्रान्यानपि प्रेरयेयुः॥९॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे **(नः)** हमारे लिये **(मित्रः)** प्राण के तुल्य प्रिय मित्र **(शम्)** सुखकारी **(भवतु)** हो **(वरुणः)** जल के तुल्य शान्ति देनेवाला जन **(शम्)** सुखकारी हो **(अर्य्यमा)** पदार्थों के स्वामी वा वैश्यों को माननेवाला न्यायाधीश **(नः)** हमारे लिये **(शम्)** सुखकारी हो **(इन्द्रः)** परम ऐश्वर्यवान् **(बृहस्पतिः)** महती वेदरूप वाणी का रक्षक विद्वान् **(नः)** हमारे लिये **(शम्)** कल्याणकारी हो और **(उरुक्रमः)** संसार की रचना में बहुत शीघ्रता करनेवाला **(विष्णुः)** व्यापक ईश्वर **(नः)** हमारे लिये **(शम्)** कल्याणकारी होवे, वैसे हम लोगों के लिये भी होवे॥९॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि जैसे अपने लिये सुख चाहें, वैसे दूसरों के लिये भी और जैसे आप सत्सङ्ग करना चाहें, वैसे इसमें अन्य लोगों को भी प्रेरणा किया करें॥९॥

शन्नो वात इत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः। वातादयो देवताः। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनर्मनुष्यैः किं कर्त्तव्यमित्याह॥

फिर मनुष्य क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

शन्नो वातः पवताᳫं शन्नस्तपतु सूर्यः।
शन्नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्योऽअभि वर्षतु॥१०॥

शम्। नः। वातः। पवताम्। शम्। नः। तपतु। सूर्य्यः॥ शम्। नः। कनिक्रदत्। देवः। पर्जन्यः। अभि। वर्षतु॥१०॥

पदार्थः-**(शम्)** सुखकारकः **(नः)** अस्मभ्यम् **(वातः)** पवनः **(पवताम्)** चलतु **(शम्)** **(नः)** **(तपतु)** **(सूर्य्यः)** **(शम्)** **(नः)** **(कनिक्रदत्)** भृशं शब्दं कुर्वन् **(देवः)** दिव्यगुणयुक्तो विद्युदाख्यः **(पर्जन्यः)** मेघः **(अभि)** आभिमुख्ये **(वर्षतु)**॥१०॥

अन्वयः-हे परमेश्वर विद्वन् वा! यथा वातो नः शं पवतां सूर्य्यो नः शं तपतु, कनिक्रदद्देवो नः शं भवतु, पर्जन्यो नोऽभिवर्षतु, तथाऽस्मान् शिक्षय॥१०॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे मनुष्याः! येन प्रकारेण वायुसूर्य्यविद्युन्मेघाः सर्वेषां सुखकराः स्युस्तथाऽनुतिष्ठत॥१०॥

पदार्थः-हे परमेश्वर वा विद्वान् पुरुष! जैसे **(वातः)** पवन **(नः)** हमारे लिये **(शम्)** सुखकारी **(पवताम्)** चले **(सूर्य्यः)** सूर्य्य **(नः)** हमारे लिये **(शम्)** सुखकारी **(तपतु)** तपे **(कनिक्रदत्)** अत्यन्त शब्द करता हुआ **(देवः)** उत्तम गुणयुक्त विद्युतूरूप अग्नि **(नः)** हमारे लिये **(शम्)** कल्याणकारी हो और **(पर्जन्यः)** मेघ हमारे लिये **(अभि, वर्षतु)** सब ओर से वर्षा करे, वैसे हमको शिक्षा कीजिये॥१०॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जिस प्रकार से वायु, सूर्य्य, बिजुली और मेघ सबको सुखकारी हों, वैसा अनुष्ठान किया करो॥१०॥

अहानि शमित्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः। लिङ्गोक्ता देवताः। अतिशक्वरी छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अहा॑नि॒ शं भव॑न्तु नः॒ शꣳ रात्री॒ः प्रति॑ धीयताम्।
शन्न॑ऽ इन्द्रा॒ग्नी भ॑वता॒मवो॑भि॒ः शन्न॒ऽ इन्द्रा॒वरु॑णा रा॒तह॑व्या।
शन्न॑ऽ इन्द्रापू॒षणा॒ वाज॑सातौ॒ शमिन्द्रा॒सोमा॑ सुवि॒ताय॒ शंयोः॥११॥

अहा॑नि। शम्। भव॑न्तु। नः॒। शम्। रात्री॑ः। प्रति॑। धी॒य॒ता॒म्। शम्। नः॒ इ॒न्द्रा॒ग्नी इतीन्द्रा॒ग्नी। भ॒व॒ता॒म्। अवो॑भि॒रित्यव॑ःऽभिः। शम्। नः॒। इ॒न्द्रा॒वरु॑णा। रा॒तह॒व्येति॑ रा॒तऽह॑व्या। शम्। नः॒। इ॒न्द्रा॒पू॒षणा॑। वाज॑साता॒विति॒ वाज॑ऽसातौ। शम्। इ॒न्द्रा॒सोमा॑। सु॒वि॒ताय॑। शंयोः॥११॥

पदार्थः-**(अहानि)** दिनानि **(शम्)** सुखकारकाणि **(भवन्तु)** **(नः)** अस्मभ्यम् **(शम्)** **(रात्रीः)** रात्रयः **(प्रति)** **(धीयताम्)** धीयन्ताम्। अत्र वचनव्यत्ययेनैकवचनम्। **(शम्)** **(नः)** अस्मभ्यम् **(इन्द्राग्नी)** विद्युत्पावकौ **(भवताम्)** **(अवोभिः)** रक्षणादिभिः सह **(शम्)** **(नः)** **(इन्द्रावरुणा)** विद्युज्जले **(रातहव्या)** रातं दत्तं हव्यमादातव्यं सुखं याभ्यान्ते **(शम्)** **(नः)** **(इन्द्रापूषणा)** विद्युत्पृथिव्यौ **(वाजसातौ)** वाजान्यन्नानि संभजन्ति यया तस्यां युधि **(शम्)** **(इन्द्रासोमा)** विद्युदोषधिगणौ **(सुविताय)** प्रेरणाय **(शंयोः)** सुखस्य॥११॥

अन्वयः-हे परमेश्वर विद्वन् वा! यथाऽवोभिः सह शंयोः सुविताय नोऽहानि शं भवन्तु, रात्रीश्शं प्रतिधीयतामिन्द्राग्नी नः शं भवतां, रातहव्या इन्द्रावरुणा नः शं भवतां, वाजसाताविन्द्रापूषणा नः शं भवतमिन्द्रासोमा च शं भवतां, तथाऽस्माननुशिक्षेताम्॥११॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे मनुष्याः! यदीश्वराप्तविदुषां शिक्षायां भवन्तः प्रवर्त्तेरंस्तर्ह्यहर्निशं भूम्यादयः सर्वे पदार्था युष्माकं सुखकराः स्युः॥११॥

पदार्थः-हे परमेश्वर वा विद्वान् जन! जैसे **(अवोभिः)** रक्षा आदि के साथ **(शंयोः)** सुख की **(सुविताय)** प्रेरणा के लिये **(नः)** हमारे अर्थ **(अहानि)** दिन **(शम्)** सुखकारी **(भवन्तु)** हों **(रात्रीः)** रातें **(शम्)** कल्याण के **(प्रति)** प्रति **(धीयताम्)** हमको धारण करें **(इन्द्राग्नी)** बिजुली और प्रत्यक्ष अग्नि **(नः)** हमारे लिये **(शम्)** सुखकारी **(भवताम्)** होवें **(रातहव्या)** ग्रहण करने योग्य सुख जिनसे प्राप्त हुआ, वे **(इन्द्रावरुणा)** विद्युत् और जल **(नः)** हमारे लिये **(शम्)** सुखकारी हों **(वाजसातौ)** अन्नों के सेवन के हेतु संग्राम में **(इन्द्रापूषणा)** विद्युत् और पृथिवी **(नः)** हमारे लिये **(शम्)** सुखकारी होवें और **(इन्द्रासोमा)** बिजुली और ओषधियां **(शम्)** सुखकारिणी हों, वैसे हमको आप अनुकूल शिक्षा करें॥११॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जो ईश्वर और आप्त सत्यवादी विद्वान् लोगों की शिक्षा में आप लोग प्रवृत्त रहो तो दिन-रात तुम्हारे भूमि आदि सब पदार्थ सुखकारी होवें॥११॥

शन्नो देवीरित्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः। आपो देवताः। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

कीदृशा जनाः सुखसम्पन्ना भवन्तीत्याह॥

कैसे मनुष्य सुखों से युक्त होते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

शन्नो॑ दे॒वीर॒भिष्ट॑य॒ऽआपो॑ भवन्तु पी॒तये॑।

शंयोर॒भि स्र॑वन्तु नः॥१२॥

शम्। नः॒। दे॒वीः। अ॒भिष्ट॑ये। आप॑ः। भ॒व॒न्तु॒। पी॒तये॑॥ शंयोः। अ॒भि। स्र॒व॒न्तु॒। नः॒॥१२॥

पदार्थः-**(शम्)** **(नः)** अस्मभ्यम् **(देवीः)** दिव्याः **(अभिष्टये)** इष्टसुखसिद्धये **(आपः)** जलानि **(भवन्तु)** **(पीतये)** पानाय **(शंयोः)** सुखस्य **(अभि)** सर्वतः **(स्रवन्तु)** वर्षन्तु **(नः)** अस्मभ्यम्॥१२॥

अन्वयः-हे जगदीश्वर विद्वन्वा! यथाऽभिष्टये पीतये देवीरापो नः शं भवन्तु, नः शंयोर्वृष्टिमभिस्रवन्तु, तथोपदिशतम्॥१२॥

भावार्थः-ये यज्ञादिना शुद्धान् जलादिपदार्थान् सेवन्ते, तेषामुपरि सुखामृतस्य वृष्टिः सततं भवति॥१२॥

पदार्थः-हे जगदीश्वर वा विद्वन्! जैसे **(अभिष्टये)** इष्ट सुख की सिद्धि के लिये **(पीतये)** पीने के अर्थ **(देवीः)** दिव्य उत्तम **(आपः)** जल **(नः)** हमको **(शम्)** सुखकारी **(भवन्तु)** होवें **(नः)** हमारे लिये **(शंयोः)** सुख की वृष्टि **(अभि, स्रवन्तु)** सब ओर से करें, वैसे उपदेश करो॥१२॥

भावार्थः-जो मनुष्य यज्ञादि से शुद्ध जलादि पदार्थों का सेवन करते हैं, उन पर सुखरूप अमृत की वर्षा निरन्तर होती है॥१२॥

स्योनेत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। पृथिवी देवता। पिपीलिका मध्या निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पतिव्रता कीदृशी स्यादित्याह॥

पतिव्रता स्त्री कैसी हो, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी।

यच्छा नः शर्म सप्रथाः॥१३॥

स्योना। पृथिवि। नः। भव। अनृक्षरा। निवेशनीति निऽवेशनी॥ यच्छ। नः। शर्म्म। सप्रथा इति सऽप्रथाः॥१३॥

पदार्थः-**(स्योना)** सुखकारी **(पृथिवि)** भूमिः **(नः)** अस्मभ्यम् **(भव)** भवतु। अत्र पुरुषव्यत्ययः। **(अनृक्षरा)** कण्टकगर्त्तादिरहिता **(निवेशनी)** या नित्यान् निवेशयति सा **(यच्छ)** ददातु **(नः)** अस्मभ्यम् **(शर्म)** गृहम् **(सप्रथाः)** विस्तारेण सह वर्त्तमाना॥१३॥

अन्वयः-हे पृथिवीव वर्त्तमाने स्त्रि! यथाऽनृक्षरा पृथिवि नो भवति, तथा त्वं भव, सा सप्रथा नः शर्म यच्छेत्, तथा स्योना त्वं नः शर्म्म यच्छ॥१३॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा सर्वेषां भूतानां सुखैश्वर्य्यप्रदा पृथिवी वर्त्तते, तथैव विदुषी स्त्री पत्यादीनामानन्दप्रदा भवति॥१३॥

पदार्थः-हे पृथिवी के तुल्य वर्त्तमान क्षमाशील स्त्रि! जैसे **(अनृक्षरा)** काँटे, गड्ढे आदि से रहित **(निवेशनी)** नित्य स्थिर पदार्थों की स्थापना करनेहारी **(पृथिवि)** भूमि **(नः)** हमारे लिये होती है, वैसे तू **(भव)** हो, वह पृथिवी **(सप्रथाः)** विस्तार के साथ वर्त्तमान **(नः)** हमारे लिये **(शर्म)** स्थान देवे, वैसे **(स्योना)** सुख करनेहारी तू **(नः)** हमारे लिये घर के सुख को **(यच्छ)** दे॥१३॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोमालङ्कार है। जैसे सब प्राणियों को सुख ऐश्वर्य देनेवाली पृथिवी वर्त्तमान है, वैसे ही विदुषी पतिव्रता स्त्री पति आदि को आनन्द देनेवाली होती है॥१३॥

आप इत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः। आपो देवताः। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता नऽ ऊर्जे दधातन।

महे रणाय चक्षसे॥ १४॥

आपः। हि। स्थ। मयोभुव इति मयःऽभुवः। ताः। नः। ऊर्जे। दधातन॥ महे। रणाय। चक्षसे॥ १४॥

पदार्थः-(**आपः**) जलानीव शान्तिशीला विदुष्यः सत्स्त्रियः (**हि**) यतः (**स्थ**) भवत। **संहितायाम्** [अ०६.३.११४] इति दीर्घः। (**मयोभुवः**) या मयः सुखं भावयन्ति ताः। **मय इति सुखनामसु पठितम्॥** (निघं०३।६) (**ताः**) (**नः**) अस्मान् (**ऊर्जे**) पराक्रमाय बलाय वा (**दधातन**) धरत (**महे**) महते (**रणाय**) सङ्ग्रामाय। **रण इति सङ्ग्रामनामसु पठितम्॥** (निघं०२।१७) (**चक्षसे**) प्रसिद्धाय॥ १४॥

अन्वयः-हे आपः! स्त्रियो यथा मयोभुव आपो हि नो महे रणाय चक्षस ऊर्जे दधतु तथैता यूयं दधातन प्रियाः स्थः॥ १४॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा सत्यः पतिव्रताः स्त्रियः सर्वान् सुखयन्ति, तथैव जलादयः पदार्थाः सुखकराः सन्तीति वेद्यम्॥ १४॥

पदार्थः-हे (**आपः**) जलों के तुल्य शान्तिशील विदुषी श्रेष्ठ स्त्रियो! जैसे (**मयोभुवः**) सुख उत्पन्न करनेहारे जल (**हि**) जिस कारण (**नः**) हमको (**महे**) बड़े (**रणाय, चक्षसे**) प्रसिद्ध संग्राम के लिये वा (**ऊर्जे**) बल-पराक्रम के अर्थ धारण वा पोषण करें, वैसे इनको तुम लोग (**दधातन**) धारण करो और प्यारी (**स्थ**) होओ॥ १४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे श्रेष्ठ पतिव्रता स्त्रियां सब ओर से सबको सुखी करतीं, वैसे जलादि पदार्थ सबको सुखकारी होते हैं, ऐसा जानो॥ १४॥

यो व इत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः। आपो देवताः। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः।

उशतीरिव मातरः॥ १५॥

यः। वः। शिवतम इति शिवऽतमः। रसः। तस्य। भाजयत। इह। नः। उशतीरिवेत्युशतीःऽइव। मातरः॥ १५॥

पदार्थः-(**यः**) (**वः**) युष्माकम् (**शिवतमः**) अतिशयेन कल्याणकरः (**रसः**) आनन्दवर्द्धकः स्नेहरूपः (**तस्य**) रसम्। अत्र कर्मणि षष्ठी। (**भाजयत**) सेवयत (**इह**) अस्मिञ्जगति (**नः**) अस्मान्

(उशतीरिव) कामयमाना इव। अत्र **वाच्छन्दसि॥** (अष्टा०६।१।१०२) इति पूर्वसवर्णादेशः। **(मातरः)**॥१५॥

अन्वयः-हे सत्स्त्रियो! यो वः शिवतमो रसोऽस्ति तस्येह नो मातरः पुत्रानुशतीरिव भाजयत॥१५॥

भावार्थः-यदि होमादिनाऽऽपः शुद्धाः क्रियेरँस्तर्ह्येता मातरोऽपत्यानीव पतिव्रता पतीनिव सर्वान् प्राणिनस्सुखयन्ति॥१५॥

पदार्थः-हे श्रेष्ठ स्त्रियो! **(यः)** जो **(वः)** तुम्हारा **(शिवतमः)** अतिशय कल्याणकारी **(रसः)** आनन्दवर्द्धक स्नेहरूप रस है **(तस्य)** उसका **(इह)** इस जगत् में **(नः)** हमको **(उशतीरिव, मातरः)** पुत्रों की कामना करनेवाली माताओं के तुल्य **(भाजयत)** सेवा कराओ॥१५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो होम आदि से जल शुद्ध किये जावें तो ये माता जैसे सन्तानों वा पतिव्रता स्त्रियां अपने पतियों को सुखी करती हैं, वैसे सब प्राणियों को सुखी करते हैं॥१५॥

तस्मा इत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः। आपो देवताः। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

तस्माऽ अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ।

आपो जनयथा च नः॥ १६॥

तस्मै। अरम्। गमाम। वः। यस्य। क्षयाय। जिन्वथ॥ आपः। जनयथ। च। नः॥ १६॥

पदार्थः-**(तस्मै)** **(अरम्)** अलम् **(गमाम)** प्राप्नुयाम **(वः)** युष्मान् **(यस्य)** **(क्षयाय)** निवासाय **(जिन्वथ)** प्रीणयथ **(आपः)** जलानीव **(जनयथ)** अत्र **संहितायाम्** [अ०६.३.११४] इति दीर्घः। **(च)** **(नः)** अस्मान्॥१६॥

अन्वयः-हे स्त्रियो! यथा यूयं नोऽस्मानाप इव शान्ताञ्जनयथ, तथा वो युष्मान् च शान्ता वयं जनयेम यूयं यस्य क्षयाय जिन्वथ तस्मै वयमरंगमाम॥१६॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। स्त्रीपुरुषैः परस्परस्याऽऽनन्दाय जलवत्सरलतया वर्त्तितव्यं शुभाचरणैः परस्परमलंकृतैरेव भवितव्यम्॥१६॥

पदार्थः-हे स्त्रियो! जैसे तुम लोग **(नः)** हमको **(आपः)** जलों के तुल्य शान्त **(जनयथ)** प्रकट करो, वैसे **(वः)** तुमको हम लोग शान्त प्रकट करें **(च)** और तुम लोग **(यस्य)** जिस पति के

(क्षयाय) निवास के लिये **(जिन्वथ)** उसको तृप्त करो **(तस्मै)** उस के लिये हम लोग **(अरम्)** पूर्ण सामर्थ्ययुक्त **(गमाम)** प्राप्त होवें॥१६॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। स्त्री-पुरुषों को योग्य है कि परस्पर आनन्द के लिये जल के तुल्य सरलता से वर्तें और शुभ आचरणों के साथ परस्पर सुशोभित ही रहें॥१६॥

द्यौरित्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः। ईश्वरो देवता। भुरिक्छक्वरी छन्दः। धैवतः स्वरः॥

मनुष्यैः कथं प्रयतितव्यमित्याह॥

मनुष्यों को कैसे प्रयत्न करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वꣳ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि॥ १७॥

द्यौः। शान्तिः। अन्तरिक्षम्। शान्तिः। पृथिवी। शान्तिः। आपः। शान्तिः। ओषधयः। शान्तिः॥ वनस्पतयः। शान्तिः। विश्वे। देवाः। शान्तिः। ब्रह्म। शान्तिः। सर्वम्। शान्तिः। शान्तिः। एव। शान्तिः। सा। मा। शान्तिः। एधि॥ १७॥

पदार्थः-**(द्यौः)** प्रकाशयुक्तः पदार्थः **(शान्तिः)** शान्तिकरः **(अन्तरिक्षम्)** उभयलोकयोर्मध्यस्थमाकाशम् **(शान्तिः)** **(पृथिवी)** भूमिः **(शान्तिः)** **(आपः)** जलानि प्राणा वा **(शान्तिः)** **(ओषधयः)** सोमाद्याः **(शान्तिः)** **(वनस्पतयः)** वटादयः **(शान्तिः)** **(विश्वे)** सर्वे **(देवाः)** विद्वांसः **(शान्तिः)** **(ब्रह्म)** परमेश्वरो वेदो वा **(शान्तिः)** **(सर्वम्)** अखिलं वस्तु **(शान्तिः)** **(शान्तिः)** **(एव)** **(शान्तिः)** **(सा)** **(मा)** माम् **(शान्तिः)** **(एधि)** भवतु॥१७॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! या द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिर्वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वं शान्तिः शान्तिरेव शान्तिर्मैधि सा शान्तिर्युष्माकमपि प्राप्नोतु॥१७॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यथा प्रकाशादयः पदार्थाः शान्तिकराः स्युस्तथा यूयं प्रयतध्वम्॥१७॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो **(द्यौः, शान्तिः)** प्रकाशयुक्त पदार्थ शान्तिकारक **(अन्तरिक्षम्)** दोनों लोक के बीच का आकाश **(शान्तिः)** शान्तिकारी **(पृथिवी)** भूमि **(शान्तिः)** सुखकारी निरुपद्रव **(आपः)** जल वा प्राण **(शान्तिः)** शान्तिदायी **(ओषधयः)** सोमलता आदि ओषधियां **(शान्तिः)** सुखदायी **(वनस्पतयः)** वट आदि वनस्पति **(शान्तिः)** शान्तिकारक **(विश्वे, देवाः)** सब विद्वान् लोग **(शान्तिः)** उपद्रवनिवारक **(ब्रह्म)** परमेश्वर वा वेद **(शान्तिः)** सुखदायी **(सर्वम्)** सम्पूर्ण वस्तु

(शान्तिः) शान्तिकारक **(शान्तिरेव)** शान्ति ही **(शान्तिः)** शान्ति **(मा)** मुझको **(एधि)** प्राप्त होवे **(सा)** वह **(शान्तिः)** शान्ति तुम लोगों के लिये भी प्राप्त होवे॥१७॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जैसे प्रकाश आदि पदार्थ शान्ति करनेवाले होवें, वैसे तुम लोग प्रयत्न करो॥१७॥

दृत इत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः। ईश्वरो देवता। भुरिग् जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

अथ के धर्मात्मान इत्याह॥

अब कौन मनुष्य धर्मात्मा हो सकता है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

दृते दृꣳह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।

मित्रस्याऽहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।

मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे॥ १८॥

दृते। दृꣳह। मा। मित्रस्य। मा। चक्षुषा। सर्वाणि। भूतानि। सम्। ईक्षन्ताम्॥ मित्रस्य। अहम्। चक्षुषा। सर्वाणि। भूतानि। सम्। ईक्षे। मित्रस्य। चक्षुषा। सम्। ईक्षामहे॥ १८॥

पदार्थः-(दृते) अविद्यान्धकारनिवारक जगदीश्वर विद्वन् वा **(दृꣳह)** दृढीकुरु **(मा)** माम् **(मित्रस्य)** सुहृदः **(चक्षुषा)** दृष्ट्या **(सर्वाणि)** **(भूतानि)** प्राणिनः **(सम्)** सम्यक् **(ईक्षन्ताम्)** प्रेक्षन्तां पश्यन्तु **(मित्रस्य)** **(अहम्)** **(चक्षुषा)** **(सर्वाणि)** **(भूतानि)** **(सम्)** **(ईक्षे)** पश्येयम् **(मित्रस्य)** **(चक्षुषा)** **(सम्)** **(ईक्षामहे)** पश्येम॥१८॥

अन्वयः-हे दृते! येन सर्वाणि भूतानि मित्रस्य चक्षुषा मा समीक्षन्तामहं मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे एवं वयं सर्वे परस्परान् मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे तत्रास्मान् दृंह॥१८॥

भावार्थः-त एव धर्मात्मानो मनुष्या ये स्वात्मवत् सर्वान् प्राणिनो मन्येरन्, कञ्चिदपि न द्विषेयुर्मित्रवत् सर्वान् सदोपकुर्य्युरिति॥१८॥

पदार्थः-हे **(दृते)** अविद्यारूपी अन्धकार के निवारक जगदीश्वर वा विद्वन्! जिससे **(सर्वाणि)** सब **(भूतानि)** प्राणी **(मित्रस्य)** मित्र की **(चक्षुषा)** दृष्टि से **(मा)** मुझको **(सम्, ईक्षन्ताम्)** सम्यक् देखें **(अहम्)** मैं **(मित्रस्य)** मित्र की **(चक्षुषा)** दृष्टि से **(सर्वाणि, भूतानि)** सब प्राणियों को **(समीक्षे)** सम्यक् देखूं, इस प्रकार सब हम लोग परस्पर **(मित्रस्य)** मित्र की **(चक्षुषा)** दृष्टि से **(समीक्षामहे)** देखें इस विषय में हमको **(दृंह)** दृढ़ कीजिये॥१८॥

भावार्थः-वे ही धर्मात्मा जन हैं जो अपने आत्मा के सदृश सम्पूर्ण प्राणियों को मानें, किसी से भी द्वेष न करें और मित्र के सदृश सबका सदा सत्कार करें॥१८॥

दृते दृꣳह मेत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः। ईश्वरो देवता। पादनिचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनर्मनुष्याः किं कुर्युरित्याह॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

दृते दृꣳह मा। ज्योक्ते संदृशि जीव्यासं ज्योक्ते संदृशि जीव्यासम्॥ १९॥

दृते। दृꣳह। मा॥ ज्योक्। ते। संदृशीति सम्ऽदृशि। जीव्यासम्। ज्योक्। ते। संदृशीति सम्ऽदृशि। जीव्यासम्॥ १९॥

पदार्थः-(**दृते**) सकलमोहाऽऽवरणविच्छेदकोपदेशक वा परमात्मन्! (**दृंह**) (**मा**) माम् (**ज्योक्**) निरन्तरम् (**ते**) तव (**संदृशि**) सम्यग् दर्शने (**जीव्यासम्**) (**ज्योक्**) निरन्तरम् (**ते**) तव (**संदृशि**) समानदर्शने विषये (**जीव्यासम्**)॥१९॥

अन्वयः-हे दृते! येनाऽहन्ते संदृशि ज्योक् जीव्यासं ते संदृशि ज्योग्जीव्यासं तत्र मा दृंह॥१९॥

भावार्थः-मनुष्यैरीश्वराज्ञापालनेन युक्ताहारविहारैश्च शतं वर्षाणि जीवनीयम्॥१९॥

पदार्थः-हे (**दृते**) समग्र मोह के आवरण का नाश करनेहारे उपदेशक विद्वन् वा परमेश्वर! जिसमें (**ते**) आपके (**संदृशि**) सम्यक् देखने वा ज्ञान में (**ज्योक्**) निरन्तर (**जीव्यासम्**) जीवें (**ते**) आपके (**संदृशि**) समान दृष्टि विषय में (**ज्योक्**) निरन्तर (**जीव्यासम्**) जीवन व्यतीत करें, उस जीवन विषय में (**मा**) मुझको (**दृंह**) दृढ़ कीजिये॥१९॥

भावार्थः-मनुष्यों को योग्य है कि ईश्वर की आज्ञा पालने और युक्त आहार-विहार से सौ वर्ष तक जीवन का उपाय करें॥१९॥

नमस्ते हरस इत्यस्य लोपामुद्रा ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिग् बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

अथेश्वरोपासनाविषयमाह॥

अब ईश्वर की उपासना का विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्तेऽअस्त्वर्चिषे।
अन्याँस्तेऽअस्मत्तपन्तु हेतयः पावकोऽअस्मभ्यꣳशिवो भव॥ २०॥

नमः। ते। हरसे। शोचिषे। नमः। ते। अस्तु। अर्चिषे॥ अन्यान्। ते। अस्मत्। तपन्तु। हेतयः। पावकः। अस्मभ्यम्। शिवः। भव॥ २०॥

पदार्थः-(**नमः**) (**ते**) तुभ्यम् (**हरसे**) हरति पापानि तस्मै (**शोचिषे**) प्रकाशाय (**नमः**) (**ते**) तुभ्यम् (**अस्तु**) (**अर्चिषे**) स्तुतिविषयाय (**अन्यान्**) (**ते**) (**अस्मत्**) (**तपन्तु**) (**हेतयः**) वज्र इव व्यवस्थाः (**पावकः**) पवित्रकर्त्ता (**अस्मभ्यम्**) (**शिवः**) कल्याणकारकः (**भव**)॥२०॥

अन्वयः-हे भगवन्! हरसे शोचिषे ते नमो अर्चिषे ते नमोऽस्तु हेतयस्तेऽस्मदन्यांस्तपन्तु त्वमस्मभ्यं पावकः शिवो भव॥२०॥

भावार्थः-हे परमेश्वर! वयं भवच्छुभगुणकर्मस्वभावतुल्यानस्मद्गुणकर्मस्वभावान् कर्त्तुं ते नमस्कुर्मो निश्चितमिदं जानीमोऽधार्मिकाँस्ते शासनाः पीडयन्ति धार्मिकाँश्चानन्दयन्ति तस्मान्मङ्गलस्वरूपं भवन्तमेव वयमुपास्महे॥२०॥

पदार्थः-हे भगवन् ईश्वर! (**हरसे**) पाप हरनेवाले (**शोचिषे**) प्रकाशक (**ते**) आपके लिये (**नमः**) नमस्कार तथा (**अर्चिषे**) स्तुति के योग्य (**ते**) आपके लिये (**नमः**) नमस्कार (**अस्तु**) प्राप्त होवे (**ते**) आपकी (**हेतयः**) वज्र के तुल्य अमिट व्यवस्था (**अस्मत्**) हमसे (**अन्यान्**) भिन्न अन्यायी शत्रुओं को (**तपन्तु**) दुःख देवें, आप (**अस्मभ्यम्**) हमारे लिये (**पावकः**) पवित्रकर्त्ता (**शिवः**) कल्याणकारी (**भव**) हूजिये॥२०॥

भावार्थः-हे परमेश्वर! हम लोग आपके शुभ गुण, कर्म, स्वभावों के तुल्य अपने गुण, कर्म, स्वभाव करने के लिये आपको नमस्कार करते हैं और यह निश्चित जानते हैं कि अधर्मियों को आपकी शिक्षा पीड़ा और धर्मात्माओं को आनन्दित करती है, इसलिये मङ्गलस्वरुप आपकी ही हम लोग उपासना करते हैं॥२०॥

नमस्त इत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः। ईश्वरो देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

नम॑स्तेऽअस्तु वि॒द्युते॑ नम॑स्ते स्तनयि॒त्नवे॑।

नम॑स्ते भगवन्नस्तु॒ यत॒ः स्व॒ः स॒मीह॑से॥२१॥

नम॑ः ते। अ॒स्तु॒। वि॒द्युत॒ इति॑ वि॒ऽद्युते॑। नम॑ः। ते॒। स्त॒न॒यि॒त्नवे॑॥ नम॑ः। ते॒। भ॒ग॒व॒न्निति॑ भग॒ऽवन्। अ॒स्तु॒। यत॑ः। स्व॒रिति॒ स्व॒ः। स॒मीह॑स॒ इति॑ स॒म्ऽईह॑से। ॥२१॥

पदार्थः-(**नमः**) (**ते**) तुभ्यं परमेश्वराय (**अस्तु**) (**विद्युते**) विद्युदिवाऽभिव्याप्ताय (**नमः**) (**ते**) (**स्तनयित्नवे**) स्तनयित्नुरिव दुष्टानां भयङ्कराय (**नमः**) (**ते**) (**भगवन्**) अत्यन्तैश्वर्य्यसम्पन्न (**अस्तु**) (**यतः**) (**स्वः**) सुखदानाय (**समीहसे**) सम्यक् चेष्टसे॥२१॥

अन्वयः-हे भगवन्! यतस्त्वमस्मभ्यं स्वः समीहसे तस्माद्विद्युते ते नमोऽस्तु, स्तनयित्नवे ते नमोऽस्तु, सर्वाभिरक्षकाय ते नमश्च सततं कुर्य्याम॥२१॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे मनुष्याः! यस्मादीश्वरोऽस्मभ्यं सदाऽऽनन्दाय सर्वाणि साधनोपसाधनानि प्रयच्छति, तस्मादयमस्माभिः सेव्योऽस्ति॥२१॥

पदार्थः-हे **(भगवन्)** अनन्त ऐश्वर्ययुक्त परमेश्वर! **(यतः)** जिस कारण आप हमारे लिये **(स्वः)** सुख देने के अर्थ **(समीहसे)** सम्यक् चेष्टा करते हैं, इससे **(विद्युते)** बिजुली के समान अभिव्याप्त **(ते)** आपके लिये **(नमः)** नमस्कार **(अस्तु)** हो, **(स्तनयित्नवे)** अधिकतर गर्जनेवाले विद्युत् के तुल्य दुष्टों को भय देनेवाले **(ते)** आपके लिये **(नमः)** नमस्कार **(अस्तु)** हो और सबकी सब प्रकार रक्षा करनेहारे **(ते)** तेरे लिये **(नमः)** निरन्तर नमस्कार करें॥२१॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यो! जिस कारण ईश्वर हमारे लिये सदा आनन्द के अर्थ सब साधन-उपसाधनों को देता है, इससे हमको सेवा करने योग्य है॥२१॥

यतोयत इत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः। ईश्वरो देवता। भुरिगुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यतो॑यतः स॒मीह॑से॒ ततो॑ नो॒ऽअभ॑यं कुरु।

शं नः॑ कुरु प्र॒जाभ्यो॒ऽभ॑यं नः प॒शुभ्यः॑॥२२॥

यतो॑यत॒ इति॒ यतः॑ऽयतः। स॒मीह॑स॒ इति॑ स॒म्ऽईह॑से। ततः॑। न॒ः। अभ॑यम्। कु॒रु॥ शम्। न॒ः। कु॒रु। प्र॒जाभ्य॒ इति॑ प्र॒ऽजाभ्यः॑। अभ॑यम्। न॒ः। प॒शुभ्य॒ इति॑ प॒शुऽभ्यः॑॥२२॥

पदार्थः-**(यतोयतः)** यस्माद् यस्मात् स्थानात् **(समीहसे)** सम्यक् चेष्टसे **(ततः)** तस्मात् तस्मात् **(नः)** अस्मान् **(अभयम्)** निर्भयम् **(कुरु)** **(शम्)** सुखम् **(नः)** अस्माकम् **(कुरु)** **(प्रजाभ्यः)** **(अभयम्)** **(नः)** अस्माकम् **(पशुभ्यः)** गवादिभ्यः॥२२॥

अन्वयः-हे भगवन्नीश्वर! त्वं कृपाकटाक्षेण यतोयतः समीहसे ततो नोऽभयं कुरु। नः प्रजाभ्यो नः पशुभ्यश्च शमभयं च कुरु॥२२॥

भावार्थः-हे परमेश्वर! भवान् यतः सर्वाभिव्याप्तोऽस्ति तस्मादस्मानन्यांश्च सर्वेषु कालेषु सर्वेषु देशेषु सर्वेभ्यः प्राणिभ्यो निर्भयान् करोतु॥२२॥

पदार्थः-हे भगवन् ईश्वर! आप अपने कृपाकटाक्ष से **(यतोयतः)** जिस-जिस स्थान से **(समीहसे)** सम्यक् चेष्टा करते हो **(ततः)** उस उससे **(नः)** हमको **(अभयम्)** भयरहित **(कुरु)**

कीजिये **(नः)** हमारी **(प्रजाभ्यः)** प्रजाओं से और **(नः)** हमारे **(पशुभ्यः)** गौ आदि पशुओं से **(शम्)** सुख और **(अभयम्)** निर्भय **(कुरु)** कीजिये॥२२॥

भावार्थः-हे परमेश्वर! आप जिस कारण सब में अभिव्याप्त हैं, इससे हमको और दूसरों को सब कालों और सब देशों में सब प्राणियों से निर्भय कीजिये॥२२॥

सुमित्रियेत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः। सोमो देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

कथं पदार्था हितकारिणो भवन्तीत्याह॥

कैसे पदार्थ हितकारी होते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

सुमित्रिया नऽआपऽओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु।
योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः॥२३॥

सुमित्रिया इति सुऽमित्रियाः। नः। आपः। ओषधयः। सन्तु। दुर्मित्रिया इति दुःऽमित्रियाः। तस्मै। सन्तु॥ यः। अस्मान्। द्वेष्टि। यम्। च। वयम्। द्विष्मः॥२३॥

पदार्थः-**(सुमित्रियाः)** शोभनं मित्रमिव वर्त्तमानाः **(नः)** अस्मभ्यम् **(आपः)** प्राणा जलानि वा **(ओषधयः)** यवाद्याः **(सन्तु)** **(दुर्मित्रियाः)** शत्रुरिव विरुद्धाः **(तस्मै)** **(सन्तु)** **(यः)** अधर्मी **(अस्मान्)** धार्मिकान् **(द्वेष्टि)** अप्रीतयति **(यम्)** **(च)** **(वयम्)** **(द्विष्मः)**॥२३॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! या इमा आप ओषधयो नः सुमित्रियाः सन्तु, ता योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तस्मै दुर्मित्रियाः सन्तु॥२३॥

भावार्थः-यथा जितान्यनुकूलानीन्द्रियाणि मित्रवद्धितकारीणि भवन्ति, तथा जलादयोऽपि पदार्था देशकालानुकूल्येन यथोचितं सेविता हितकरा विरुद्धं सेविताश्च शत्रुवद् दुःखदा भवन्ति॥२३॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो ये **(आपः)** प्राण वा जल **(ओषधयः)** जौ आदि ओषधियां **(नः)** हमारे लिये **(सुमित्रियाः)** सुन्दर मित्र के समान वर्त्तमान **(सन्तु)** होवें, वे ही **(यः)** जो अधर्मी **(अस्मान्)** हम धर्मात्माओं से **(द्वेष्टि)** द्वेष करें **(च)** और **(यम्)** जिससे **(वयम्)** हम लोग **(द्विष्मः)** द्वेष करें **(तस्मै)** उसके लिये **(दुर्मित्रियाः)** शत्रु के तुल्य विरुद्ध **(सन्तु)** होवें॥२३॥

भावार्थः-जैसे अनुकूलता से जीते हुए इन्द्रिय मित्र के तुल्य हितकारी होते, वैसे जलादि पदार्थ भी देश-काल के अनुकूल यथोचित सेवन किये हितकारी और विरुद्ध सेवन किये शत्रु के तुल्य दुःखदायी होते हैं॥२३॥

तच्चक्षुरित्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः। सूर्यो देवता। भुरिग् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथेश्वरप्रार्थनाविषयमाह॥

अब ईश्वर की प्रार्थना का विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्॥ २४॥

तत्। चक्षुः। देवहितमिति देवऽहितम्। पुरस्तात्। शुक्रम्। उत्। चरत्। पश्येम। शरदः। शतम्। जीवेम। शरदः। शतम्। शृणुयाम। शरदः। शतम्। प्र। ब्रवाम। शरदः। शतम्। अदीनाः। स्याम। शरदः। शतम्। भूयः। च। शरदः। शतात्॥ २४॥

पदार्थः-(**तत्**) चेतनं ब्रह्म (**चक्षुः**) चक्षुरिव सर्वदर्शकम् (**देवहितम्**) देवेभ्यो विद्वद्भ्यो हितकारि (**पुरस्तात्**) पूर्वकालात् (**शुक्रम्**) शुद्धम् (**उत्**) (**चरत्**) चरति सर्वं जानाति (**पश्येम**) (**शरदः**) (**शतम्**) (**जीवेम**) प्राणान् धारयेम (**शरदः**) (**शतम्**) (**शृणुयाम**) शास्त्राणि मङ्गलवचनानि चेति शेषः (**शरदः**) शतम् (**प्र, ब्रवाम**) अध्यापयेमोपदिशेम वा (**शरदः**) (**शतम्**) (**अदीनाः**) दीनतारहिताः (**स्याम**) भवेम (**शरदः**) (**शतम्**) (**भूयः**) अधिकम् (**च**) पुनः (**शरदः**) (**शतात्**)॥ २४॥

अन्वयः-हे परमात्मन्! भवान् यद्देवहितं शुक्रं चक्षुरिव वर्त्तमानं ब्रह्म पुरस्तादुच्चरत् तत् त्वां शतं शरदः पश्येम, शतं शरदो जीवेम, शतं शरदः शृणुयाम, शतं शरदः प्रब्रवाम, शतं शरदोऽदीनाः स्याम। शताच्छरदो भूयश्च पश्येम, जीवेम, शृणुयाम, प्रब्रवामोऽदीनाः स्याम च॥ २४॥

भावार्थः-हे परमेश्वर! भवत्कृपया भवद्विज्ञातेन भवत्सृष्टिं पश्यन्त उपयुञ्जानाऽरोगाः समाहिताः सन्तो वयं सकलेन्द्रियैर्युक्ताः शताद्वर्षेभ्योऽप्यधिकं जीवेम, सत्यशास्त्राणि भवद्गुणांश्च शृणुयाम, वेदादीनध्यापयेम, सत्यमुपदिशेम, कदाचित् केनापि वस्तुना विना पराधीना न भवेम, सदैवमात्मवशाः सन्तः सततमानन्देमाऽन्यांश्चानन्दयेमेति॥ २४॥

अत्र परमेश्वरप्रार्थनं सद्गुणप्रापणं सर्वेषां सुखभानं परस्परमित्रत्वावश्यककरणं दिनचर्याशोधनं धर्मलक्षणमायुर्वर्धनं परमेश्वरविज्ञानं चोक्तमत एतदर्थस्य पूर्वाध्यायोक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेद्यम्॥

पदार्थः-हे परमेश्वर! आप जो (**देवहितम्**) विद्वानों के लिये हितकारी (**शुक्रम्**) शुद्ध (**चक्षुः**) नेत्र के तुल्य सबके दिखानेवाले (**पुरस्तात्**) पूर्वकाल अर्थात् अनादि काल से (**उत्, चरत्**) उत्कृष्टता के साथ सबके ज्ञाता हैं, (**तत्**) उस चेतन ब्रह्म आपको (**शतम्, शरदः**) सौ वर्ष तक (**पश्येम**) देखें (**शतम्, शरदः**) सौ वर्ष तक (**जीवेम**) प्राणों को धारण करें, जीवें (**शतम्, शरदः**) सौ वर्ष पर्य्यन्त (**शृणुयाम**) शास्त्रों वा मङ्गल वचनों को सुनें (**शतम्, शरदः**) सौ वर्ष पर्य्यन्त

(प्रब्रवाम) पढ़ावें वा उपदेश करें **(शतम्, शरदः)** सौ वर्ष पर्य्यन्त **(अदीनाः)** दीनतारहित **(स्याम)** हों **(च)** और **(शतात्, शरदः)** सौ वर्ष से **(भूयः)** अधिक भी देखें, जीवें, सुनें, पढ़ें, उपदेश करें और अदीन रहें॥ २४॥

भावार्थः-हे परमेश्वर! आपकी कृपा और आपके विज्ञान से आपकी रचना को देखते हुए आपके साथ युक्त नीरोग और सावधान हुए हम लोग समस्त इन्द्रियों से युक्त सौ वर्ष से भी अधिक जीवें, सत्य शास्त्रों और गुणों को सुनें, वेदादि को पढ़ावें, सत्य का उपदेश करें, कभी किसी वस्तु के विना पराधीन न हों, सदैव स्वतन्त्र हुए निरन्तर आनन्द भोगें और दूसरों को आनन्दित करें॥ २४॥

इस अध्याय में परमेश्वर की प्रार्थना, [सद्गुणावाप्ति] सबके सुख का भान, आपस में मित्रता करने की आवश्यकता, दिनचर्य्या का शोधन, धर्म का लक्षण, अवस्था का बढ़ना और परमेश्वर का जानना कहा है, इससे इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय में कहे अर्थ के साथ संगति है, ऐसा जानना चाहिये॥

इति श्रीमत्परमहंपरिव्राजकाचार्याणां श्रीमत्परमविदुषां श्रीविरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण श्रीपरमहंसपरिव्राजकाचार्य्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचिते संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां समन्विते यजुर्वेदभाष्ये षट्त्रिंशोऽध्यायः पूर्त्तिमगात्॥ ३६॥

॥ओ३म् ॥

अथ सप्तत्रिंशाऽध्यायारम्भः

ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दु॑रि॒तानि॒ परा॑ सुव। यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व॥ यजु० ३०.३॥

देवस्येत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः। सविता देवता। निचृदुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

अथ मनुष्यैः किं कर्त्तव्यमित्याह॥

अब सैंतीसवें अध्याय का आरम्भ किया जाता है। इसके पहिले मन्त्र में मनुष्यों को क्या करना चाहिये, इस विषय को कहा है॥

दे॒वस्य॑ त्वा सवि॒तुः प्र॑स॒वे॒ऽश्विनो॑र्बा॒हुभ्या॑ पू॒ष्णो हस्ता॑भ्याम्।
आ द॑दे॒ नारि॑रसि॥ १॥

दे॒वस्य॑। त्वा॒। स॒वि॒तुः। प्र॒स॒व इति॑ प्रऽस॒वे। अ॒श्विनोः॑। बा॒हुभ्या॒मिति॑ बा॒हुभ्या॑म्। पू॒ष्णः॑। हस्ता॑भ्याम्। आ। द॒दे॒। नारिः॑। अ॒सि॒॥ १॥

पदार्थः-(**देवस्य**) सकलसुखप्रदातुः (**त्वा**) त्वाम् (**सवितुः**) जगदुत्पादकस्य (**प्रसवे**) उत्पन्ने जगति (**अश्विनोः**) अध्यापकोपदेशकयोः (**बाहुभ्याम्**) बलवीर्य्याभ्याम् (**पूष्णः**) पोषकस्य (**हस्ताभ्याम्**) कराभ्याम् (**आ**) (**ददे**) समन्ताद् गृह्णामि (**नारिः**) नायकः (**असि**)॥ १॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यतस्त्वं नारिरसि तस्मात् सवितुर्देवस्य प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां त्वाऽऽददे॥ १॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यूयं विद्वद्वरान् प्राप्य संसेव्यैतेभ्यो विद्याशिक्षे गृहीत्वाऽत्र सृष्टौ नायका भवत॥ १॥

पदार्थः-हे विद्वन्! जिस कारण आप (**नारिः**) नायक (**असि**) हैं, इससे (**सवितुः**) जगत् के उत्पादक (**देवस्य**) समस्त सुख के दाता (**प्रसवे**) उत्पन्न हुए जगत् में (**अश्विनोः**) अध्यापक और उपदेशक के (**बाहुभ्याम्**) बल पराक्रम से (**पूष्णः**) पुष्टिकर्त्ता जन के (**हस्ताभ्याम्**) हाथों से (**त्वा**) आपको (**आ, ददे**) अच्छे प्रकार ग्रहण करता हूं॥ १॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! तुम लोग उत्तम विद्वानों को प्राप्त होके उनसे विद्या, शिक्षा ग्रहण कर इस सृष्टि में नायक होओ॥ १॥

युञ्जत इत्यस्य श्यावाश्व ऋषिः। सविता देवता। जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

अथ योगाभ्यासविषयमाह॥

अब योगाभ्यास का विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

युञ्जते मनऽउत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः।
वि होत्रा दधे वयुनाविदेकऽइन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः॥ २॥

युञ्जते। मनः। उत। युञ्जते। धियः। विप्राः। विप्रस्य। बृहतः। विपश्चित इति विपःऽचितः॥ वि। होत्राः। दधे। वयुनावित्। वयुनविदिति वयुनऽवित्। एकः। इत्। मही। देवस्य। सवितुः। परिष्टुतिः। परिस्तुतिरिति परिऽस्तुतिः॥ २॥

पदार्थः-(**युञ्जते**) समादधति (**मनः**) संकल्पविकल्पात्मकम् (**उत**) अपि (**युञ्जते**) (**धियः**) प्रज्ञाः कर्माणि वा (**विप्राः**) विविधमेधाव्यापिनो मेधाविनः (**विप्रस्य**) विशेषेण सर्वत्र व्याप्तस्य (**बृहतः**) सर्वेभ्यो महतः (**विपश्चितः**) अनन्तविद्यस्य (**वि**) (**होत्राः**) ये जुह्वत्याददति ते (**दधे**) दधाति (**वयुनावित्**) यो वयुनानि प्रज्ञानानि वेत्ति सः (**एकः**) अद्वितीयः (**इत्**) एव (**मही**) महती (**देवस्य**) सकलजगत्प्रकाशकस्य (**सवितुः**) सर्वान्तर्यामिणः (**परिष्टुतिः**) परितः सर्वतः स्तुतिः प्रशंसा॥ २॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! य एको वयुनाविज्जगदीश्वरो सर्वं विदधे यस्य सवितुर्देवस्य मही परिष्टुतिरस्ति होत्रा विप्रा योगिनो यस्य बृहतो विपश्चितो विप्रस्य मध्ये मनो युञ्जत उत धियो युञ्जते तमिदेव यूयमुपाध्वम्॥ २॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यो योगिभिर्ध्येयो यस्य प्रशंसादृष्टान्ताः सूर्यादयो वर्त्तन्ते, यः सर्वज्ञोऽसहायः सच्चिदानन्दस्वरूपोऽस्ति, तस्मै सर्वे धन्यवादा दातुमर्हा वर्त्तन्ते तमेवेष्टदेवं यूयं मन्यध्वम्॥ २॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो (**वयुनावित्**) उत्कृष्ट ज्ञानों में प्रवीण (**एकः**) अद्वितीय जगदीश्वर सबको (**वि, दधे**) रचता (**सवितुः**) सर्वान्तर्यामी (**देवस्य**) समग्र जगत् के प्रकाशक ईश्वर की यह (**मही**) बड़ी (**परिष्टुतिः**) सब ओर से स्तुति प्रशंसा है (**होत्राः**) शुभगुणग्रहीता (**विप्राः**) अनेक प्रकार की बुद्धियों में व्याप्त बुद्धिमान् योगीजन जिस (**बृहतः**) सबसे बड़े (**विपश्चितः**) अनन्त विद्यावाले (**विप्रस्य**) विशेष कर सर्वत्र व्याप्त परमेश्वर के बीच (**मनः**) संकल्प-विकल्प रूप मन को (**युञ्जते**) समाहित करते (**उत**) और (**धियः**) बुद्धि वा कर्मों को (**युञ्जते**) युक्त करते हैं, (**इत्**) उसी की तुम लोग उपासना किया करो॥ २॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जो योगीजनों को ध्यान करने योग्य, जिसकी प्रशंसा के हेतु सूर्य्य आदि दृष्टान्त वर्त्तमान हैं, जो सर्वज्ञ असहायी सच्चिदानन्दस्वरूप है, जिसके लिये सब धन्यवाद देने योग्य हैं, उसी को इष्टदेव तुम लोग मानो॥ २॥

देवीत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः। द्यावापृथिव्यौ देवते। ब्राह्मी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अथ यज्ञविषयमाह॥

अब यज्ञ विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

देवी॑ द्यावापृथिवी म॒खस्य॑ वाम॒द्य शिरो॑ राध्यासं देव॒यज॑ने पृथिव्याः।
म॒खाय॑ त्वा म॒खस्य॑ त्वा शी॒र्ष्णे॥ ३॥

देवी॒ऽइति॒ देवी॑। द्या॒वा॒पृ॒थि॒वी॒ऽइति॑ द्यावापृथिवी। मखस्य॑। वा॒म्। अ॒द्य। शिर॑ः। रा॒ध्या॒स॒म्। दे॒व॒यज॑न॒ इति॑ देव॒ऽयज॑ने। पृ॒थि॒व्याः॥ मखाय॑। त्वा॒। म॒खस्य॑। त्वा॒। शी॒र्ष्णे॥ ३॥

पदार्थः-(**देवी**) दिव्यगुणसम्पन्ने (**द्यावापृथिवी**) प्रकाशभूमिवद्वर्त्तमाने (**मखस्य**) यज्ञस्य (**वाम्**) युवयोः (**अद्य**) इदानीम् (**शिरः**) उत्तमाङ्गम् (**राध्यासम्**) संसाधयेयम् (**देवयजने**) देवा विद्वांसो यजन्ति यस्मिँस्तस्मिन् (**पृथिव्याः**) भूमेर्मध्ये (**मखाय**) यज्ञाय (**त्वा**) त्वाम् (**मखस्य**) यज्ञस्य (**त्वा**) (**शीर्ष्णे**) उत्तमाङ्गाय॥ ३॥

अन्वयः-देवी द्यावापृथिव्यध्यापिकोपदेशिके स्त्रियावद्य पृथिव्या देवयजने वां मखस्य शिरो राध्यासम्। मखस्य शीर्ष्णे त्वा मखाय त्वा राध्यासम्॥ ३॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे मनुष्याः! अत्र जगति यथा सूर्यभूमी उत्तमाङ्गवद्वर्त्तेते, तथैव भवन्तः सर्वोत्तमा वर्त्तन्तां येन सर्वसङ्गत्यधिष्ठानो यज्ञः पूर्णः स्यात्॥ ३॥

पदार्थः-(**देवी**) उत्तम गुणों से युक्त (**द्यावापृथिवी**) प्रकाश और भूमि के तुल्य वर्त्तमान अध्यापिका और उपदेशिका स्त्रियो! (**अद्य**) इस समय (**पृथिव्याः**) पृथिवी के बीच (**देवयजने**) विद्वानों के यज्ञस्थल में (**वाम्**) तुम दोनों के (**मखस्य**) यज्ञ के (**शिरः**) उत्तम अवयव को मैं (**राध्यासम्**) सम्यक् सिद्ध करूं (**मखस्य**) यज्ञ के (**शीर्ष्णे**) उत्तम अवयव की सिद्धि के लिये (**त्वा**) तुझको और (**मखाय**) यज्ञ के लिये (**त्वा**) तुझको सम्यक् सिद्ध करूं॥ ३॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! इस जगत् में जैसे सूर्य और भूमि उत्तम अवयव के तुल्य वर्त्तमान हैं, वैसे आप लोग सबसे उत्तम वर्त्तो, जिससे सब सङ्गतियों का आश्रय यज्ञ पूर्ण होवे॥ ३॥

देव्य इत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः। यज्ञो देवता। निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अथ विदुष्यः स्त्रियः कीदृश्यः स्युरित्याह॥

अब विदुषी स्त्रियाँ कैसी होवें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

देव्यो॑ वम्र्यो भू॒तस्य॑ प्रथम॒जा म॒खस्य॑ वो॒ऽद्य शिरो॑ राध्यासं दे॒वयज॑ने पृथि॒व्याः। म॒खाय॑ त्वा म॒खस्य॑ त्वा शी॒र्ष्णे॥४॥

देव्यः॑। व॒म्र्यः। भू॒तस्य॑। प्र॒थ॒म॒जा इति॑ प्रथम॒ऽजाः। म॒खस्य॑। व॒ः। अ॒द्य। शिरः॑। रा॒ध्या॒स॒म्। दे॒व॒यज॑न॒ इति॑ दे॒व॒ऽयज॑ने। पृ॒थि॒व्याः॥ म॒खाय॑। त्वा॒। म॒खस्य॑। त्वा॒। शी॒र्ष्णे॥४॥

पदार्थः-(देव्यः) देदीप्यमानाः **(वम्र्यः)** अल्पवयस्यः **(भूतस्य)** उत्पन्नस्य **(प्रथमजाः)** प्रथमाज्जाताः **(मखस्य)** यज्ञस्य **(वः)** युष्मान् **(अद्य)** **(शिरः)** शिरोवत् **(राध्यासम्)** **(देवयजने)** विदुषां सङ्गतिकरणे **(पृथिव्याः)** **(मखाय)** यज्ञाय **(त्वा)** त्वाम् **(मखस्य)** यज्ञस्य निर्मापिकाम् **(त्वा)** त्वाम् **(शीर्ष्णे)** शिरोवद्वर्त्तमानाय॥४॥

अन्वयः-हे प्रथमजा वम्र्यो देव्यो विदुष्यो! भूतस्य मखस्य पृथिव्या देवयजनेऽद्य वः शिरोवदहं राध्यासं मखस्य त्वा मखाय शीर्ष्णे त्वा राध्यासम्॥४॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यावत् स्त्रियो विदुष्यो न भवन्ति, तावदुत्तमा शिक्षा न वर्द्धते॥४॥

पदार्थः-हे **(प्रथमजाः)** पहिले से हुई **(वम्र्यः)** थोड़ी अवस्थावाली **(देव्यः)** तेजस्विनी विदुषी स्त्रियो! **(भूतस्य)** उत्पन्न हुए **(मखस्य)** यज्ञ की सम्बन्धिनी **(पृथिव्याः)** पृथिवी के **(देवयजने)** उस स्थान में जहां विद्वान् लोग सङ्गति करते हैं, **(अद्य)** आज **(वः)** तुम लोगों को **(शिरः)** शिर के तुल्य मैं **(राध्यासम्)** सम्यक् सिद्ध किया करूं **(मखस्य)** यज्ञ का निर्माण करनेवाली **(त्वा)** तुझको **(मखाय, शीर्ष्णे)** शिर के तुल्य वर्त्तमान यज्ञ के लिये **(त्वा)** तुझको सम्यक् उद्यत वा सिद्ध करूं॥४॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जब तक स्त्रियां विदुषी नहीं होती तब तक उत्तम शिक्षा भी नहीं बढ़ती है॥४॥

इयतीत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः। यज्ञो देवता। विराड् ब्राह्मी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अथाध्यापकविषयमाह॥

अब अध्यापक विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

इ॒यत्यग्र॑ऽआसीन्म॒खस्य॑ ते॒ऽद्य शिरो॑ राध्यासं दे॒वयज॑ने पृथि॒व्याः। म॒खाय॑ त्वा म॒खस्य॑ त्वा शी॒र्ष्णे॥५॥

इ॒य॑ति। अग्रे॑। आ॒सी॒त्। म॒खस्य॑। ते॒। अ॒द्य। शिरः॑। रा॒ध्या॒स॒म्। दे॒व॒यज॑न॒ इति॑ दे॒व॒ऽयज॑ने। पृ॒थि॒व्याः॥ म॒खाय॑। त्वा॒। म॒खस्य॑। त्वा॒। शी॒र्ष्णे॥५॥

पदार्थः-(**इयति**) एतावति (**अग्रे**) (**आसीत्**) अस्ति (**मखस्य**) यज्ञस्य (**ते**) तव (**अद्य**) (**शिरः**) उत्तमगुणम् (**राध्यासम्**) (**देवयजने**) विदुषां पूजने (**पृथिव्याः**) भूमेः (**मखाय**) सत्काराख्याय (**त्वा**) त्वाम् (**मखस्य**) सङ्गतिकरणस्य (**त्वा**) (**शीर्ष्णे**) उत्तमत्वाय॥५॥

अन्वयः-हे विद्वन्नहमग्रे मखाय त्वा मखस्य शीर्ष्णे त्वा राध्यासम्, यस्य ते मखस्य शिर आसीत्, तं त्वामद्य पृथिव्या इयति देवयजने राध्यासम्॥५॥

भावार्थः-त एवाध्यापकाः श्रेष्ठाः सन्ति ये पृथिव्या मध्ये सर्वान् सुशिक्षाविद्यायुक्तान् कर्त्तुं शक्नुवन्ति॥५॥

पदार्थः-हे विद्वन्! मैं (**अग्रे**) पहिले (**मखाय**) सत्काररूप यज्ञ के लिये (**त्वा**) तुझको (**मखस्य**) संगतिकरण की (**शीर्ष्णे**) उत्तमता के लिये (**त्वा**) तुझको (**राध्यासम्**) सिद्ध करूं, जिस (**ते**) आपके (**मखस्य**) यज्ञ का (**शिरः**) उत्तम गुण (**आसीत्**) है, उस आपको (**अद्य**) आज (**पृथिव्याः**) भूमि के बीच (**इयति**) इतने (**देवयजने**) विद्वानों के पूजने में सम्यक् सिद्ध होऊं॥५॥

भावार्थः-वे ही अध्यापक श्रेष्ठ हैं जो पृथिवी के बीच सबको उत्तम शिक्षा और विद्या से युक्त करने को समर्थ हैं॥५॥

इन्द्रस्येत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः। यज्ञो देवता। भुरिगतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनर्मनुष्याः किं कुर्युरित्याह॥

फिर मनुष्य क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

इन्द्रस्यौजं स्थ मुखस्यं वोऽद्य शिरों राध्यासं देवयजंने पृथिव्याः।
मुखायं त्वा मुखस्यं त्वा शीर्ष्णे। मुखायं त्वा मुखस्यं त्वा शीर्ष्णे।
मुखायं त्वा मुखस्यं त्वा शीर्ष्णे॥६॥

इन्द्रंस्य। ओजंः। स्थ। मुखस्यं। वः। अद्य। शिरंः। राध्यासम्। देवयजन इति देवऽयजंने। पृथिव्याः॥ मुखायं। त्वा। मुखस्यं। त्वा। शीर्ष्णे। मुखायं। त्वा। मुखस्यं। त्वा। शीर्ष्णे। मुखायं। त्वा। मुखस्यं। त्वा। शीर्ष्णे॥६॥

पदार्थः-(**इन्द्रस्य**) परमैश्वर्ययुक्तस्य (**ओजः**) पराक्रमम् (**स्थ**) भवत (**मखस्य**) यज्ञस्य (**वः**) युष्मान् (**अद्य**) (**शिरः**) (**राध्यासम्**) (**देवयजने**) (**पृथिव्याः**) भूमेः (**मखाय**) धार्मिकाणां सत्कारनिमित्ताय (**त्वा**) त्वां सत्कारम् (**मखस्य**) प्रियाचरणाख्यस्य व्यवहारस्य (**त्वा**) त्वाम् (**शीर्ष्णे**) शिरः सम्बन्धिने वचसे (**मखाय**) शिल्पयज्ञविधानाय (**त्वा**) त्वाम् (**मखस्य**) (**त्वा**) (**शीर्ष्णे**)

उत्तमगुणप्रचारकाय (**मखाय**) विज्ञानोद्भावनाय (**त्वा**) (**मखस्य**) विद्यावृद्धिकरस्य व्यवहारस्य (**त्वा**) (**शीर्ष्णे**)॥६॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथाहमिन्द्रस्यौजो राध्यासं तथाऽद्य पृथिव्या देवयजने शिरोवद् वो राध्यासम्। शीर्ष्णे मखाय त्वा मखस्य त्वा राध्यासं शीर्ष्णे मखाय त्वा मखस्य त्वा राध्यासं शीर्ष्णे मखाय त्वा मखस्य त्वा राध्यासं तथा यूयमोजस्विनः स्थ॥६॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये मनुष्या धर्म्याणि कर्मणि कुर्वन्ति, ते सर्वेषु शिरोवद्भवन्ति॥६॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे मैं (**इन्द्रस्य**) परमैश्वर्य्ययुक्त पुरुष के (**ओजः**) पराक्रम को (**राध्यासम्**) सिद्ध करूं वैसे (**अद्य**) आज (**पृथिव्याः**) भूमि के (**देवयजने**) उस स्थान में जहां विद्वानों का पूजन होता हो (**शिरः**) उत्तम अवयव के समान (**वः**) तुम लोगों को सिद्ध करूं (**शीर्ष्णे**) शिर सम्बन्धी (**मखाय**) धर्मात्माओं के सत्कार के निमित्त वचन के लिये (**त्वा**) तुझको (**मखस्य**) प्रिय आचरणरूप व्यवहार के सम्बन्धी (**त्वा**) आपको सिद्ध करूं (**शीर्ष्णे**) उत्तम गुणों के प्रचारक (**मखाय**) शिल्पयज्ञ के विधान के लिये (**त्वा**) आपको (**मखस्य**) सत्याचरण रूप व्यवहार के सम्बन्धी (**त्वा**) आपको सिद्ध करूं (**शीर्ष्णे**) उत्तम (**मखाय**) विज्ञान की प्रकटता के लिये (**त्वा**) आपको और (**मखस्य**) विद्या को बढ़ानेहारे व्यवहार के सम्बन्धी (**त्वा**) आपको सिद्ध करूं। वैसे तुम लोग भी पराक्रमी (**स्थ**) होओ॥६॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य धर्मयुक्त कार्यों को करते हैं, वे सबके शिरोमणि होते हैं॥६॥

प्रैत्वित्यस्य कण्व ऋषिः। ईश्वरो देवता। निचृदष्टिश्छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

स्त्रीपुरुषाः कीदृशाः स्युरित्याह॥

स्त्री-पुरुष कैसे हों, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प्रैतु॒ ब्रह्म॑ण॒स्पतिः॒ प्र दे॒व्ये᳖तु सू॒नृता॑।
अच्छा॑ वी॒रं नर्यं॑ प॒ङ्क्तिरा॑धसं दे॒वा य॒ज्ञं न॑यन्तु नः।
म॒खाय॑ त्वा म॒खस्य॑ त्वा शी॒र्ष्णे। म॒खाय॑ त्वा म॒खस्य॑ त्वा शी॒र्ष्णे।
म॒खाय॑ त्वा म॒खस्य॑ त्वा शी॒र्ष्णे॥७॥

प्र। ए॒तु॒। ब्रह्म॑णः। पतिः॑। प्र। दे॒वी। ए॒तु॒। सू॒नृता॑। अच्छ॑। वी॒रम्। नर्य्य॑म्। प॒ङ्क्तिरा॑धस॒मिति॑ प॒ङ्क्तिऽरा॑धसम्। दे॒वाः। य॒ज्ञम्। न॒य॒न्तु॒। नः॒॥ म॒खाय॑। त्वा॒। म॒खस्य॑। त्वा॒। शी॒र्ष्णे। म॒खाय॑। त्वा॒। म॒खस्य॑। त्वा॒ शी॒र्ष्णे। म॒खाय॑। त्वा॒। म॒खस्य॑। त्वा॒ शी॒र्ष्णे॥७॥

पदार्थः-(**प्र**) (**एतु**) प्राप्नोतु (**ब्रह्मणः**) धनस्य (**पतिः**) पालकः (**प्र**) (**देवी**) विदुषी (**एतु**) (**सूनृता**) सत्यभाषणादिसुशीलतायुक्ता (**अच्छ**) अत्र **निपातस्य च** [अ०६.३.१३६] इति दीर्घः। (**वीरम्**) सर्वदुःखप्रक्षेप्तारम् (**नर्यम्**) नृषु साधुम् (**पङ्क्तिराधसम्**) यः पङ्क्तीः समुदायान् राध्नोति तम् (**देवाः**) विद्वांसः (**यज्ञम्**) सुखसङ्गमकम् (**नयन्तु**) प्रापयन्तु (**नः**) अस्मान् (**मखाय**) विद्यावृद्धये (**त्वा**) त्वाम् (**मखस्य**) सुखरक्षणस्य (**त्वा**) (**शीर्ष्णे**) शिरोवद्वर्त्तमानाय (**मखाय**) धर्माचरणनिमित्ताय (**त्वा**) (**मखस्य**) धर्मरक्षणस्य (**त्वा**) (**शीर्ष्णे**) (**मखाय**) सर्वसुखकराय (**त्वा**) (**मखस्य**) सुखवर्द्धकस्य (**त्वा**) (**शीर्ष्णे**) उत्तमसुखप्रदाय॥७॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यं वीरं नर्य्यं पङ्क्तिराधसं यज्ञं देवा नोऽस्मान्नयन्तु ब्रह्मणस्पतिः प्रैतु सूनृता देव्यच्छ प्रैतु तं मखाय त्वा मखस्य शीर्ष्णे त्वा मखाय त्वा मखस्य शीर्ष्णे त्वा मखाय त्वा मखस्य शीर्ष्णे त्वा वयमाश्रयेम॥७॥

भावार्थः-ये मनुष्या याः स्त्रियश्च स्वयं विद्यादिगुणान् प्राप्यान्यान् प्रापय्य विद्यासुखधर्मवृद्धयेऽधिकान् सुशिक्षितान् विदुषः कुर्वन्ति, ते तांश्च सततमानन्दन्ति॥७॥

पदार्थः-हे विद्वन्! जिस (**वीरम्**) सब दुःखों को हटाने वाले (**नर्य्यम्**) मनुष्यों में उत्तम (**पङ्क्तिराधसम्**) समुदायों को सिद्ध करनेवाले (**यज्ञम्**) सुखप्राप्ति के हेतु जन को (**देवाः**) विद्वान् लोग (**नः**) हमको (**नयन्तु**) प्राप्त करें (**ब्रह्मणः, पतिः**) धन का रक्षक जन (**प्र, एतु**) प्रकर्षता से प्राप्त हो (**सूनृता**) सत्य बोलना आदि सुशीलता वाली (**देवी**) विदुषी स्त्री (**अच्छ**) (**प्र, एतु**) अच्छे प्रकार प्राप्त होवे उस (**त्वा**) तुझको (**मखाय**) विद्यावृद्धि के लिये (**मखस्य**) सुख रक्षा के (**शीर्ष्णे**) उत्तम अवयव के लिये (**त्वा**) आपको (**मखाय**) धर्माचरण निमित्त के लिये (**त्वा**) आपके (**मखस्य**) धर्मरक्षा के (**शीर्ष्णे**) उत्तम अवयव के लिये (**त्वा**) आपको (**मखाय**) सब सुख करनेवाले के लिये (**त्वा**) आपको (**मखस्य**) सब सुख बढ़ानेवाले के सम्बन्धी (**शीर्ष्णे**) उत्तम सुखदायी जन के लिये (**त्वा**) आपका आश्रय करें॥७॥

भावार्थः-जो मनुष्य और जो स्त्रियां स्वयं विद्यादि गुणों को पाकर अन्यों को प्राप्त कराके विद्या, सुख और धर्म की वृद्धि के लिये अधिक सुशिक्षित जनों को विद्वान् करते हैं, वे पुरुष और स्त्रियां निरन्तर आनन्दित होते हैं॥७॥

मखस्येत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः। यज्ञो देवता। स्वराडतिधृतिश्छन्दः। षड्जः स्वरः॥

मनुष्या विदुषा सह कथं वर्तेरन्नित्याह॥

मनुष्य लोग विद्वान् के साथ कैसे वर्तें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

मखस्य शिरोऽसि। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे।

मखस्य शिरोऽसि। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे।

मखस्य शिरोऽसि। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे।

मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे।

मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे॥८॥

मखस्य। शिरः। असि। मखाय। त्वा। मखस्य। त्वा। शीर्ष्णे। मखस्य। शिरः। असि। मखाय। त्वा। मखस्य। त्वा। शीर्ष्णे। मखस्य। शिरः। असि। मखाय। त्वा। मखस्य। त्वा। शीर्ष्णे। मखाय। त्वा। मखस्य। त्वा। शीर्ष्णे। मखाय। त्वा। मखस्य। त्वा। शीर्ष्णे। मखाय। त्वा। मखस्य। त्वा। शीर्ष्णे॥८॥

पदार्थः-(**मखस्य**) ब्रह्मचर्याख्यस्य (**शिरः**) मूर्द्धेव (**असि**) (**मखाय**) विद्याग्रहणानुष्ठानाय (**त्वा**) (**मखस्य**) ज्ञानस्य (**त्वा**) (**शीर्ष्णे**) उत्तमव्यवहाराय (**मखस्य**) मननाख्यस्य (**शिरः**) उत्तमाङ्गवत् (**असि**) (**मखाय**) गार्हस्थ्यव्यवहाराय (**त्वा**) (**मखस्य**) (**त्वा**) (**शीर्ष्णे**) (**मखस्य**) गृहस्य (**शिरः**) शिरोवत् (**असि**) (**मखाय**) गृहस्थकार्यसङ्गतिकरणाय (**त्वा**) (**मखस्य**) (**त्वा**) (**शीर्ष्णे**) (**मखाय**) (**त्वा**) (**मखस्य**) सद्व्यवहारसिद्धेः (**त्वा**) (**शीर्ष्णे**) शिरोवद्वर्त्तमानाय (**मखाय**) योगाभ्यासाय (**त्वा**) (**मखस्य**) साङ्गोपाङ्गस्य योगस्य (**त्वा**) (**शीर्ष्णे**) शिरोवत् सर्वोपरि वर्त्तमानाय (**मखाय**) ऐश्वर्य्यप्रदाय (**त्वा**) त्वाम् (**मखस्य**) ऐश्वर्य्यप्रदस्य (**त्वा**) (**शीर्ष्णे**) सर्वोत्कर्षाय॥८॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यतस्त्वं मखस्य शिरोऽसि तस्मान्मखाय त्वा मखस्य शीर्ष्णे त्वा। यतस्त्वं मखस्य शिरोऽसि तस्मान्मखाय त्वा मखस्य शीर्ष्णे त्वा। यतस्त्वं मखस्य शिरोऽसि तस्मान्मखाय त्वा मखस्य शीर्ष्णे त्वा। तस्मान्मखाय त्वा मखस्य शीर्ष्णे त्वा मखाय त्वा मखस्य शीर्ष्णे त्वा मखाय त्वा मखस्य शीर्ष्णे त्वा वयं सेवेमहि॥८॥

भावार्थः-ये सत्क्रियायामुत्तमाः सन्ति तेऽन्यानपि सत्कारिणो निर्माय मस्तकवदुत्तमाङ्गा भवेयुः॥१८॥

पदार्थः-हे विद्वन्! जिस कारण आप (**मखस्य**) ब्रह्मचर्य्य आश्रमरूप यज्ञ के (**शिरः**) शिर के तुल्य (**असि**) हैं, इससे (**मखाय**) विद्या ग्रहण के अनुष्ठान के लिये (**त्वा**) आपको (**मखस्य**) ज्ञान सम्बन्धी (**शीर्ष्णे**) उत्तम व्यवहार के लिये (**त्वा**) आपको जिस कारण आप (**मखस्य**) विचाररूप यज्ञ के (**शिरः**) उत्तम अवयव के समान (**असि**) हैं, इससे (**मखाय**) गृहस्थों के व्यवहार के लिये (**त्वा**) आपको (**मखस्य**) यज्ञ के (**शीर्ष्णे**) उत्तम अवयव के लिये (**त्वा**) आपको जिस कारण आप (**मखस्य**) गृहाश्रम के (**शिरः**) उत्तम अवयव के समान (**असि**) हैं, इससे (**मखाय**) गृहस्थों के कार्यों को संगत करने के लिये (**त्वा**) आपको (**मखस्य**) यज्ञ के (**शीर्ष्णे**) उत्तम शिर के समान

अवयव के लिये **(त्वा)** आपको सेवन करें। इससे **(मखाय)** उत्तम व्यवहार की सिद्धि के लिये **(त्वा)** आपको **(मखस्य)** सत् व्यवहार की सिद्धि सम्बन्धी **(शीर्ष्णे)** उत्तम अवयव के तुल्य वर्त्तमान होने के लिये **(त्वा)** आपको **(मखाय)** योगाभ्यास के लिये **(त्वा)** आपको **(मखस्य)** साङ्गोपाङ्ग योग के **(शीर्ष्णे)** सर्वोपरि वर्त्तमान विषय के लिये **(त्वा)** आपको **(मखाय)** ऐश्वर्य देनेवाले के लिये **(त्वा)** आपको **(मखस्य)** ऐश्वर्य देनेवाले के **(शीर्ष्णे)** सर्वोत्तम कार्य के लिये **(त्वा)** आपको हम लोग सेवन करें॥८॥

भावार्थः-जो लोग सत्कार करने में उत्तम हैं, वे दूसरों को भी सत्कारी बना के मस्तक के तुल्य उत्तम अवयवों वाले हों॥८॥

अश्वस्येत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः। विद्वान् देवता। पूर्वस्योत्तरस्य च अतिशक्वरी छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

के मनुष्याः सुखिनो भवन्तीत्याह॥

कौन मनुष्य सुखी होते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अश्वस्य त्वा वृष्णः शक्ना धूपयामि देवयजने पृथिव्याः।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे।
अश्वस्य त्वा वृष्णः शक्ना धूपयामि देवयजने पृथिव्याः।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे।
अश्वस्य त्वा वृष्णः शक्ना धूपयामि देवयजने पृथिव्याः।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे॥९॥

अश्वस्य। त्वा। वृष्णः। शक्ना। धूपयामि। देवयजन इति देवऽयजने। पृथिव्याः। मखाय। त्वा। मखस्य। त्वा। शीर्ष्णे। अश्वस्य। त्वा। वृष्णः। शक्ना। धूपयामि। देवयजन इति देवऽयजने। पृथिव्याः। मखाय। त्वा। मखस्य। त्वा। शीर्ष्णे। अश्वस्य। त्वा। वृष्णः। शक्ना। धूपयामि। देवयजन इति देवऽयजने। पृथिव्याः। मखाय। त्वा। मखस्य। त्वा। शीर्ष्णे। मखाय। त्वा। मखस्य। त्वा। शीर्ष्णे। मखाय। त्वा। मखस्य। त्वा। शीर्ष्णे। मखाय। त्वा। मखस्य। त्वा। शीर्ष्णे॥९॥

पदार्थः-**(अश्वस्य)** वह्न्यादेः **(त्वा)** त्वाम् **(वृष्णः)** बलवतः **(शक्ना)** शकृता दुर्गन्धादिनिवारणसामर्थ्येन धूमादिना **(धूपयामि)** सन्तापयामि **(देवयजने)** विद्वद्यजनाधिकरणे **(पृथिव्याः)** अन्तरिक्षस्य **(मखाय)** वायुशुद्धिकरणाय **(त्वा)** **(मखस्य)** शोधकस्य **(त्वा)** **(शीर्ष्णे)** **(अश्वस्य)** तुरङ्गस्य **(त्वा)** **(वृष्णः)** वेगवतः **(शक्ना)** शकृता **(धूपयामि)** **(देवयजने)** देवा यजन्ति

यस्मिंस्तस्मिन् **(पृथिव्याः)** भूमेः **(मखाय)** पृथिव्यादिविज्ञानाय **(त्वा)** **(मखस्य)** तत्त्वबोधस्य **(त्वा)** **(शीर्ष्णे)** **(अश्वस्य)** आशुगामिनः **(त्वा)** **(वृष्णः)** बलवतः **(शक्ना)** शकृता **(धूपयामि)** **(देवयजने)** विदुषां पूजने **(पृथिव्याः)** भूमेः **(मखाय)** उपयोगाय **(त्वा)** **(मखस्य)** **(त्वा)** **(शीर्ष्णे)** शिरसे **(मखाय)** **(त्वा)** **(मखस्य)** **(त्वा)** **(शीर्ष्णे)** **(मखाय)** **(त्वा)** **(मखस्य)** **(त्वा)** **(शीर्ष्णे)** **(मखाय)** **(त्वा)** **(मखस्य)** **(त्वा)** **(शीर्ष्णे)**॥९॥

अन्वयः-हे मनुष्य! यथाऽहं पृथिव्या देवयजने वृष्णोऽश्वस्य शक्ना त्वा मखाय त्वा मखस्य शीर्ष्णे त्वा धूपयामि। पृथिव्या देवयजने वृष्णोऽश्वस्य शक्ना त्वा मखाय त्वा मखस्य शीर्ष्णे त्वा मखाय त्वा मखस्य शीर्ष्णे त्वा धूपयामि। पृथिव्या देवयजने वृष्णोऽश्वस्य शक्ना त्वा मखाय त्वा मखस्य शीर्ष्णे त्वा मखाय त्वा मखस्य शीर्ष्णे त्वा मखाय त्वा मखस्य शीर्ष्णे त्वा धूपयामि॥९॥

भावार्थः-अत्र पुनर्वचनमतिशयित्वद्योतनार्थम्। ये मनुष्या रोगादिक्लेशनिवृत्तये वह्न्यादीन् पदार्थान् संप्रयुञ्जते, ते सुखिनो जायन्ते॥९॥

पदार्थः-हे मनुष्य! जैसे मैं **(पृथिव्याः)** अन्तरिक्ष के **(देवयजने)** विद्वानों के यज्ञस्थल में **(वृष्णः)** बलवान् **(अश्वस्य)** अग्नि आदि के **(शक्ना)** दुर्गन्ध के निवारण में समर्थ धूम आदि से **(त्वा)** तुझको **(मखाय)** वायु की शुद्धि करने के लिये **(त्वा)** तुझको **(मखस्य)** शोधक पुरुष के **(शीर्ष्णे)** शिर रोग की निवृत्ति के अर्थ **(त्वा)** तुझको **(धूपयामि)** सम्यक् तपाता हूं। **(पृथिव्याः)** पृथिवी के बीच विद्वानों के **(देवयजने)** यज्ञस्थल में **(वृष्णः)** वेगवान् **(अश्वस्य)** घोड़े की **(शक्ना)** लेंडी लीद से **(त्वा)** तुझको **(मखाय)** पृथिव्यादि के ज्ञान के लिये **(त्वा)** तुझको **(मखस्य)** तत्त्वबोध के **(शीर्ष्णे)** उत्तम अवयव के लिये **(त्वा)** तुझको **(मखाय)** यज्ञसिद्धि के लिये **(त्वा)** तुझको **(मखस्य)** यज्ञ के **(शीर्ष्णे)** उत्तम अवयव की सिद्धि के लिये **(त्वा)** तुझको **(धूपयामि)** सम्यक् तपाता हूं। **(पृथिव्याः)** भूमि के बीच **(देवयजने)** विद्वानों की पूजा के स्थल में **(वृष्णः)** बलवान् **(अश्वस्य)** शीघ्रगामी अग्नि के **(शक्ना)** तेज आदि से **(त्वा)** आपको **(मखाय)** उपयोग के लिये **(त्वा)** तुझको **(मखस्य)** उपयुक्त कार्य के **(शीर्ष्णे)** उत्तम अवयव के लिये **(त्वा)** तुझको **(मखाय)** यश के लिये **(त्वा)** तुझको **(मखस्य)** यज्ञ के **(शीर्ष्णे)** उत्तम अवयव के लिये **(त्वा)** तुझको **(मखाय)** यज्ञ के लिये **(त्वा)** आपको और **(मखस्य)** यज्ञ के **(शीर्ष्णे)** उत्तम अवयव के लिये **(त्वा)** तुझको **(धूपयामि)** सम्यक् तपाता हूं॥९॥

भावार्थः-इस मन्त्र मे पुनरुक्ति अधिकता जताने के अर्थ है। जो मनुष्य रोगादि क्लेश की निवृत्ति के लिये अग्नि आदि पदार्थों का सम्प्रयोग करते हैं, वे सुखी होते हैं॥९॥

ऋजव इत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः। विद्वांसो देवताः। स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

के महद्राज्यं प्राप्नुवन्तीत्याह॥

कौन बड़े राज्य को प्राप्त होते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ऋजवे॑ त्वा सा॒धवे॑ त्वा सुक्षि॒त्यै त्वा॑।

म॒खाय॑ त्वा म॒खस्य॑ त्वा शी॒र्ष्णे।

म॒खाय॑ त्वा म॒खस्य॑ त्वा शी॒र्ष्णे।

म॒खाय॑ त्वा म॒खस्य॑ त्वा शी॒र्ष्णे॥ १०॥

ऋजवे॑ त्वा॒। सा॒धवे॑। त्वा॒। सु॒क्षि॒त्याऽइति॑ सुक्षि॒त्यै। त्वा॒। म॒खाय॑। त्वा॒। म॒खस्य॑। त्वा॒। शी॒र्ष्णे। म॒खाय॑। त्वा॒। म॒खस्य॑। त्वा॒। शी॒र्ष्णे। म॒खाय॑। त्वा॒। म॒खस्य॑। त्वा॒। शी॒र्ष्णे॥ १०॥

पदार्थः-(**ऋजवे**) सरलाय (**त्वा**) त्वाम् (**साधवे**) परोपकारसाधकाय (**त्वा**) (**सुक्षित्यै**) उत्तमायै भूम्यै (**त्वा**) (**मखाय**) विदुषां सत्काराय (**त्वा**) (**मखस्य**) यज्ञस्य (**त्वा**) (**शीर्ष्णे**) (**मखाय**) (**त्वा**) (**मखस्य**) (**त्वा**) (**शीर्ष्णे**) (**मखाय**) (**त्वा**) (**मखस्य**) (**त्वा**) (**शीर्ष्णे**)॥१०॥

अन्वयः-हे विद्वन्! ऋजवे त्वा मखाय त्वा मखस्य शीर्ष्णे त्वा साधवे त्वा मखाय त्वा मखस्य शीर्ष्णे त्वा सुक्षित्यै त्वा मखाय त्वा मखस्य शीर्ष्णे त्वा वयं स्थापयामः॥१०॥

भावार्थः-ये विनयसाधुत्वाभ्यां युक्ताः प्रयत्नेन सर्वोपकारख्यं यज्ञं साध्नुवन्ति, ते महद्राज्यमाप्नुवन्ति॥१०॥

पदार्थः-हे विद्वन्! (**ऋजवे**) सरल स्वभाववाले (**त्वा**) आपको (**मखाय**) विद्वानों के सत्कार के लिये (**त्वा**) आपको (**मखस्य**) यज्ञ के (**शीर्ष्णे**) उत्तम अवयव के लिये (**त्वा**) आपको (**साधवे**) परोपकार को सिद्ध करनेवाले के लिये (**त्वा**) आपको (**मखाय**) यज्ञ के लिये (**त्वा**) आपको (**मखस्य**) यज्ञ के (**शीर्ष्णे**) शिर के लिये (**त्वा**) आपको (**सुक्षित्यै**) उत्तम भूमि के लिये (**त्वा**) आपको (**मखाय**) यज्ञ के लिये (**त्वा**) आपको (**मखस्य**) यज्ञ के (**शीर्ष्णे**) उत्तम अवयव के लिये (**त्वा**) आपको हम लोग स्थापित करते हैं॥१०॥

भावार्थः-जो लोग विनय ओर सीधेपन से युक्त प्रयत्न के साथ सर्वोपकाररूप यज्ञ को सिद्ध करते हैं, वे बड़े राज्य को प्राप्त होते हैं॥१०॥

यमायेत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः। सविता देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ सज्जनाः कीदृशा भवन्तीत्याह॥

अब सज्जन कैसे होते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

य॒माय॑ त्वा म॒खाय॑ त्वा॒ सूर्य॑स्य त्वा॒ तप॑से।

दे॒वस्त्वा॑ सवि॒ता मध्वा॑नक्तु पृथि॒व्याः सꣳस्पृश॑स्पाहि।

अर्चिरसि शोचिरसि तपोऽसि॥ ११॥

यमाय। त्वा। मखाय। त्वा। सूर्य्यस्य। त्वा। तपसे। देवः। त्वा। सविता। मध्वा। अनक्तु। पृथिव्याः। सःस्पृश इति सम्ऽस्पृशः। पाहि। अर्चिः। असि। शोचिः। असि। तपः। असि॥ ११॥

पदार्थः-(**यमाय**) (**त्वा**) त्वाम् (**मखाय**) न्यायानुष्ठानाय (**त्वा**) (**सूर्यस्य**) प्रेरकस्येश्वरस्य (**त्वा**) (**तपसे**) धर्मानुष्ठानाय (**देवः**) दाता (**त्वा**) (**सविता**) ऐश्वर्यकर्त्ता (**मध्वा**) मधुरेण (**अनक्तु**) संयुनक्तु (**पृथिव्याः**) भूमेः (**संस्पृशः**) सम्यक् स्पर्शात् (**पाहि**) (**अर्चिः**) प्रदीप्तिः (**असि**) (**शोचिः**) शोचिरिव पवित्रः (**असि**) (**तपः**) धर्मे श्रमकर्त्ता (**असि**)॥ ११॥

अन्वयः-हे विद्वन्! सविता देवो मखाय यमाय त्वा सूर्यस्य तपसे त्वा गृह्णातु, पृथिव्यास्त्वा मध्वाऽनक्तु, स त्वं संस्पृशः पाहि, यतस्त्वमर्चिरसि शोचिरसि तपोऽसि तस्मात् त्वा सत्कुर्य्याम॥ ११॥

भावार्थः-ये न्यायव्यवहारेण प्रदीप्तयशसो भवन्ति, ते दुःखस्पर्शत् पृथग् भूत्वा तेजस्विनो भवन्ति, दुष्टान् परिताप्य श्रेष्ठान् सुखयन्ति च॥ ११॥

पदार्थः-हे विद्वन्! (**सविता**) ऐश्वर्य्यकर्त्ता (**देवः**) दानशील पुरुष (**मखाय**) न्याय के अनुष्ठान के लिये (**यमाय**) नियम के अर्थ (**त्वा**) आपको (**सूर्यस्य**) प्रेरक ईश्वरसम्बन्धी (**तपसे**) धर्म के अनुष्ठान के लिये (**त्वा**) आपको ग्रहण करे। (**पृथिव्याः**) भूमिसम्बन्धी (**त्वा**) आपको (**मध्वा**) मधुरता से (**अनक्तु**) संयुक्त करे सो आप (**संस्पृशः**) सम्यक् स्पर्श से (**पाहि**) रक्षा कीजिये, जिस कारण आप (**अर्चिः**) तेजस्वी (**असि**) हैं, (**शोचिः**) अग्नि की लपट के तुल्य पवित्र (**असि**) हैं और (**तपः**) धर्म में श्रम करनेहारे (**असि**) हैं, इससे (**त्वा**) आपका सत्कार करें॥ ११॥

भावार्थः-जो लोग यथार्थ व्यवहार से प्रकाशित कीर्तिवाले होते हैं, वे दुःख के स्पर्श से अलग होकर तेजस्वी होते हैं और दुष्टों को दुःख देकर श्रेष्ठों को सुखी करते हैं॥ ११॥

अनाधृष्टेत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः। पृथिवी देवता। स्वराडुत्कृतिश्छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनर्मनुष्याः किं कुर्युरित्याह॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अनाधृष्टा पुरस्तादग्नेराधिपत्यऽआयुर्मे दाः।
पुत्रवती दक्षिणतऽइन्द्रस्याऽधिपत्ये प्रजां मे दाः।
सुषदा पश्चाद्देवस्य सवितुराधिपत्ये चक्षुर्मे दाः।
आश्रुतिरुत्तरतो धातुराधिपत्ये रायस्पोषं मे दाः।

विधृतिरुपरिष्टाद् बृहस्पतेराधिपत्यऽओजो मे दाः।

विश्वाभ्यो मा नाष्ट्राभ्यस्पाहि मनोरश्वासि॥ १२॥

अनाधृष्टा। पुरस्तात्। अग्नेः। आधिपत्य इत्याधिऽपत्ये। आयुः। मे। दाः। पुत्रवतीति पुत्रऽवती। दक्षिणतः। इन्द्रस्य। आधिपत्य इत्याधिऽपत्ये। प्रजामिति प्रऽजाम्। मे। दाः। सुषदा। सुसदेति सुऽसदा। पश्चात्। देवस्य। सवितुः। आधिपत्य इत्याधिऽपत्ये। चक्षुः। मे। दाः। आश्रुतिरित्याश्रुतिः। उत्तरतः। धातुः। आधिपत्य इत्याधिऽपत्ये। रायः। पोषम्। मे। दाः। विधृतिरिति विऽधृतिः। उपरिष्टात्। बृहस्पतेः। आधिपत्य इत्याधिऽपत्ये। ओजः। मे। दाः। विश्वाभ्यः। मा। नाष्ट्राभ्यः। पाहि। मनोः। अश्वा। असि॥ १२॥

पदार्थः-(**अनाधृष्टा**) परैर्धर्षणरहिता (**पुरस्तात्**) पूर्वदेशात् (**अग्नेः**) पावकस्य (**आधिपत्ये**) अधिपतेर्भावे (**आयुः**) जीवनप्रदमन्नम्। **आयुरित्यन्ननामसु पठितम्॥** (निघं० २।७) (**मे**) मह्यम् (**दाः**) दद्याः (**पुत्रवती**) प्रशस्ताः पुत्रा विद्यन्ते यस्याः सा (**दक्षिणतः**) दक्षिणाद्देशात् (**इन्द्रस्य**) विद्युत ऐश्वर्यस्य वा (**आधिपत्ये**) अधिष्ठातृत्वे (**प्रजाम्**) (**मे**) मह्यम् (**दाः**) दद्याः (**सुषदा**) सुष्ठु सीदन्ति यस्यां सा (**पश्चात्**) पश्चिमतः (**देवस्य**) देदीप्यमानस्य (**सवितुः**) सवितृमण्डलस्य (**आधिपत्ये**) (**चक्षुः**) (**मे**) मह्यम् (**दाः**) (**आश्रुतिः**) समन्ताच्छ्रवणं यस्याः सा (**उत्तरतः**) (**धातुः**) धर्त्तुर्वायोः (**आधिपत्ये**) (**रायः**) धनस्य (**पोषम्**) पुष्टिम् (**मे**) (**दाः**) (**विधृतिः**) विविधा धारणा यस्याः सा (**उपरिष्टात्**) ऊर्ध्वात् (**बृहस्पतेः**) बृहतां पालकस्य सूत्रात्मनः (**आधिपत्ये**) (**ओजः**) बलम् (**मे**) (**दाः**) (**विश्वाभ्यः**) सर्वाभ्यः (**मा**) माम् (**नाष्ट्राभ्यः**) नष्टभ्रष्टस्वभावाभ्यो व्यभिचारिणीभ्यः (**पाहि**) (**मनोः**) अन्तःकरणस्य (**अश्वा**) व्यापिका (**असि**) भवसि॥ १२॥

अन्वयः-हे स्त्रि! त्वमनाधृष्टा सती पुरस्तादग्नेराधिपत्ये म आयुर्दाः, पुत्रवती सती दक्षिणत इन्द्रस्याधिपत्ये मे प्रजां दाः, सुषदा सती पश्चात् सवितुर्देवस्याधिपत्ये मे चक्षुर्दा, आश्रुतिः सत्युत्तरतो धातुराधिपत्ये मे रायस्पोषं दाः, विधृतिः सत्युपरिष्टाद् बृहस्पतेराधिपत्ये म ओजो दाः। यतो मनोरश्वाऽसि तस्माद्विश्वाभ्यो नाष्ट्राभ्यो मा पाहि॥ १२॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यथाऽग्निर्जीवनं यथा विद्युत् प्रजां यथा सविता दर्शनं धाता श्रियं महाशयो बलञ्च ददाति, तथैव सुलक्षणा पत्नी सर्वाणि सुखानि प्रयच्छति, तां यथावद् रक्षत॥ १२॥

पदार्थः-हे स्त्रि! तू (**अनाधृष्टा**) दूसरों से नहीं धमकायी हुई (**पुरस्तात्**) पूर्वदेश से (**अग्नेः**) अग्नि के (**आधिपत्ये**) स्वामीपन में (**मे**) मेरे लिये (**आयुः**) जीवन के हेतु अन्न को (**दाः**) दे (**पुत्रवती**) प्रशंसित पुत्रों वाली हुई (**दक्षिणतः**) दक्षिण देश से (**इन्द्रस्य**) बिजुली वा सूर्य्य के (**आधिपत्ये**) स्वामीपन में (**मे**) मेरे लिये (**प्रजाम्**) प्रजा सन्तान (**दाः**) दीजिये (**सुषदा**) जिसके सम्बन्ध में सुन्दर प्रकार स्थित हो, ऐसी हुई (**पश्चात्**) पश्चिम से (**देवस्य**) प्रकाशमान (**सवितुः**)

सूर्य्यमण्डल के **(आधिपत्ये)** स्वामीपन में **(मे)** मेरे लिये **(चक्षुः)** नेत्र **(दाः)** दीजिये **(आश्रुतिः)** अच्छे प्रकार जिसका सुनना हो, ऐसी हुई तू **(उत्तरतः)** उत्तर से **(धातुः)** धारणकर्त्ता वायु के **(आधिपत्ये)** मालिकपन में **(मे)** मेरे लिये **(रायः** धन की **(पोषम्)** पुष्टि को **(दाः)** दे **(विधृतिः)** अनेक प्रकार की धारणाओं वाली हुई **(उपरिष्टात्)** ऊपर से **(बृहस्पतेः)** बड़े-बड़े पदार्थों के रक्षक सूत्रात्मा वायु के **(आधिपत्ये)** स्वामीपन में **(मे)** मेरे लिये **(ओजः)** बल **(दाः)** दे। जिस कारण **(मनोः)** मननशील अन्तःकरण की **(अश्वा)** व्यापिका **(असि)** है, इससे **(विश्वाभ्यः)** सब **(नाष्ट्राभ्यः)** नष्ट-भ्रष्ट स्वभाववाली व्यभिचारिणियों से **(मा)** मुझको **(पाहि)** रक्षित कर॥१२॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जैसे अग्नि जीवन को, जैसे बिजुली प्रजा को, जैसे सूर्य देखने को, धारणकर्त्ता ईश्वर लक्ष्मी और शोभा को और महाशयजन बल को देता है, वैसे ही सुलक्षणा पत्नी सब सुखों को देती है, उसकी तुम रक्षा किया करो॥१२॥

स्वाहेत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः। विद्वान् देवता। निचृद् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

स्वाहा॑ म॒रुद्भिः॒ परि॑ श्रीयस्व दि॒वः स॒ꣳस्पृश॒स्पाहि।

मधु॒ मधु॒ मधु॑॥१३॥

स्वाहा॑। म॒रुद्भि॒रिति॑ म॒रुत्ऽभिः॑। परि॑। श्री॒य॒स्व॒। दि॒वः। स॒ꣳस्पृश॒ इति॑ स॒म्ऽस्पृशः॑। पा॒हि॒॥ मधु॑। मधु॑। मधु॑॥१३॥

पदार्थः-**(स्वाहा)** सत्यां क्रियाम् **(मरुद्भिः)** मनुष्यैः सह **(परि)** सर्वतः **(श्रीयस्व)** सेवस्व। अत्र विकरणव्यत्ययेन श्यन्। **(दिवः)** प्रकाशाद् विद्युतः **(संस्पृशः)** यः संस्पृशति तस्मात् **(पाहि)** **(मधु)** कर्म **(मधु)** उपासनम् **(मधु)** विज्ञानम्॥१३॥

अन्वयः-हे विद्वँस्त्वं मरुद्भिः स्वाहा मधु मधु मधु श्रीयस्व, संस्पृशो दिवोऽस्मान् परि पाहि॥१३॥

भावार्थः-ये पूर्णैर्विद्वद्भिः सह कर्मोपासनाज्ञानविद्यां सत्क्रियां च गृहीत्वा सेवन्ते, ते सर्वतो रक्षिताः सन्तो महदैश्वर्यं प्राप्नुवन्ति॥१३॥

पदार्थः-हे विद्वन्! आप **(मरुद्भिः)** मनुष्यों के साथ **(स्वाहा)** सत्क्रिया **(मधु)** कर्म **(मधु)** उपासना और **(मधु)** विज्ञान का **(श्रीयस्व)** सेवन कीजिये तथा **(संस्पृशः)** सम्यक् स्पर्श करनेवाली **(दिवः)** प्रकाशरूप बिजुली से हमारी **(परि, पाहि)** सब ओर से रक्षा कीजिये॥१३॥

भावार्थः-जो लोग पूर्ण विद्वानों के साथ कर्म, उपासना और ज्ञान की विद्या तथा उत्तम क्रिया को ग्रहण कर सेवन करते हैं, वे सब ओर से रक्षा को प्राप्त हुए बड़े ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं॥१३॥

गर्भ इत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः। ईश्वरो देवता। भुरिगनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथेश्वरोपासनाविषयमाह॥

अब ईश्वर की उपासना का विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

गर्भो देवानां पिता मतीनां पतिः प्रजानाम्।

सं देवो देवेन सवित्रा गत सꣳसूर्य्येण रोचते॥१४॥

गर्भः। देवानाम्। पिता। मतीनाम्। पतिः। प्रजानामिति प्रऽजानाम्॥ सम्। देवः। देवेन। सवित्रा। गत। सम्। सूर्य्येण। रोचते॥१४॥

पदार्थः-(**गर्भः**) गर्भ इवान्तःस्थितः (**देवानाम्**) विदुषां पृथिव्यादीनां वा (**पिता**) जनक इव (**मतीनाम्**) मननशीलानां मेधाविनां मनुष्याणाम् (**पतिः**) पालकः (**प्रजानाम्**) उत्पन्नानां पदार्थानाम् (**सम्**) एकीभावे (**देवः**) स्वप्रकाशस्वरूपः (**देवेन**) विदुषा (**सवित्रा**) प्रसवहेतुना (**गत**) प्राप्नुत। अत्र लोटि शपो लुक्। (**सम्**) (**सूर्य्येण**) प्रकाशकेन सह (**रोचते**) प्रकाशते॥१४॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यो देवानां गर्भो मतीनां पिता प्रजानां पतिर्देवः परमात्मा सवित्रा देवेन सूर्य्येण सह रोचते तं यूयं सङ्गत॥१४॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यः सर्वेषा जनकः पितृवत्पालकः सूर्यादीनामपि प्रकाशकः सर्वत्राऽभिव्याप्तो जगदीश्वरोऽस्ति, तमेव पूर्णं परमात्मानं सदैवोपासताम्॥१४॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो (**देवानाम्**) विद्वानों वा पृथिवी आदि तेंतीस देवों के (**गर्भः**) बीच स्थित व्याप्य (**मतीनाम्**) मननशील बुद्धिमान् मनुष्यों के (**पिता**) पिता के तुल्य (**प्रजानाम्**) उत्पन्न हुए पदार्थों का (**पतिः**) रक्षक स्वामी (**देवः**) स्वयं प्रकाशस्वरूप परमात्मा (**सवित्रा**) उत्पत्ति के हेतु (**देवेन**) (**सूर्येण**) प्रकाशक विद्वान् के साथ (**सम्, रोचते**) सम्यक् प्रकाशित होता है, उसको तुम लोग (**सम्, गत**) सम्यक् प्राप्त होओ॥१४॥

भावार्थः-मनुष्य लोग जो सबका उत्पन्न करनेहारा, पिता के तुल्य रक्षक, प्रकाशक, सूर्यादि पदार्थों का भी प्रकाशक, सर्वत्र अभिव्याप्त जगदीश्वर है, उसी पूर्ण परमात्मा की सदैव उपासना किया करें॥१४॥

समग्नीत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद् ब्राह्म्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

सम॒ग्निर॒ग्निना॑ गत॒ सं दैवे॑न सवि॒त्रा सꣳ सूर्य्ये॑णारोचिष्ट।

स्वाहा॒ सम॒ग्निस्तप॑सा गत॒ सं दैव्ये॑न सवि॒त्रा सꣳसूर्य्ये॑णारूरुचत॥ १५॥

सम्। अ॒ग्निः। अ॒ग्निना॑। ग॒त॒। सम्। दैवे॑न। स॒वि॒त्रा। सम्। सूर्य्ये॑ण। अ॒रो॒चि॒ष्ट॒॥ स्वाहा॑। सम्। अ॒ग्निः। तप॑सा। ग॒त॒। सम्। दैव्ये॑न। स॒वि॒त्रा। सम्। सूर्य्ये॑ण। अ॒रू॒रु॒च॒त॒॥ १५॥

पदार्थः-(**सम्**) सम्यक् (**अग्निः**) प्रकाशकः (**अग्निना**) स्वयंप्रकाशेन जगदीश्वरेण (**गत**) विजानीत (**सम्**) (**दैवेन**) देवेन निर्मितेन (**सवित्रा**) प्रेरकेण (**सम्**) (**सूर्येण**) (**अरोचिष्ट**) प्रकाशते (**स्वाहा**) सत्यया क्रियाया (**सम्**) (**अग्निः**) (**तपसा**) धर्मानुष्ठानेन (**गत**) (**सम्**) (**दैव्येन**) देवेषु पृथिव्यादिषु भवेन (**सवित्रा**) ऐश्वर्यकारकेण (**सम्**) (**सूर्येण**) प्रेरकेण (**अरूरुचत**) सम्यक् प्रकाशते॥ १५॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! योऽग्निनाऽग्निर्दैवेन सवित्रा सूर्येण सह समरोचिष्ट, तं परमात्मानं यूयं स्वाहा सङ्गत। योऽग्निर्दैव्येन सवित्रा सूर्य्येण तपसा समरूरुचत तं यूयं सङ्गत॥ १५॥

भावार्थः-ये मनुष्या अग्नेरग्निं सवितुः सवितारं सूर्य्यस्य सूर्य्यं परमात्मानं विजानीयुस्तेभ्योऽभ्युदयनिःश्रेयसे सुखे सम्यक् प्राप्नुतः॥ १५॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो (**अग्निना**) स्वयंप्रकाशक जगदीश्वर से (**अग्निः**) प्रकाशक अग्नि (**दैवेन**) ईश्वर ने बनाये (**सवित्रा**) प्रेरक (**सूर्येण**) सूर्य्य के साथ (**सम्**) (**अरोचिष्ट**) सम्यक् प्रकाशित होता है, उस परमात्मा को तुम लोग (**स्वाहा**) सत्य क्रिया से (**सम्, गत**) सम्यक् जानो और जो (**अग्निः**) प्रकाशक ईश्वर (**दैव्येन**) पृथिवी आदि में हुए (**सवित्रा**) ऐश्वर्य का कारक (**सूर्य्येण**) प्रेरक (**तपसा**) धर्मानुष्ठान से (**सम्, अरूरुचत**) सम्यक् प्रकाशित होता है, उसको तुम लोग (**सम्, गत**) सम्यक् प्राप्त होओ॥ १५॥

भावार्थः-जो मनुष्य अग्नि, उत्पादक के उत्पादक, सूर्य्य के सूर्य्य परमात्मा को विशेष कर जानें, उनके लिये इस लोक और परलोक के सुख सम्यक् प्राप्त होते हैं॥ १५॥

धर्त्तेत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः। ईश्वरो देवता। भुरिग्बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

धर्त्ता दिवो वि भाति तपसस्पृथिव्यां धर्त्ता देवो देवानाममर्त्यस्तपोजा:।

वाचमस्मे नि यच्छ देवायुवम्॥ १६॥

धर्त्ता। दिव:। वि। भाति। तपस:। पृथिव्याम्। धर्त्ता। देव:। देवानाम्। अमर्त्य:। तपोजा इति तप:ऽजा:॥ वाचम्। अस्मे इत्यस्मे। नि। यच्छ। देवायुवम्। देवयुवमिति देवऽयुवम्॥ १६॥

पदार्थ:-(**धर्त्ता**) (**दिव:**) प्रकाशमयस्य सूर्य्यादे: (**वि, भाति**) विशेषेण प्रकाशते (**तपस:**) प्रतापकस्य (**पृथिव्याम्**) अन्तरिक्षे (**धर्ता**) (**देव:**) प्रकाशस्वरूप: (**देवानाम्**) पृथिव्यादीनाम् (**अमर्त्य:**) मृत्युधर्मरहित: (**तपोजा:**) यस्तपसो जायते प्रकट्यते स: (**वाचम्**) सुशिक्षितां वाणीम् (**अस्मे**) अस्मभ्यम् (**नि**) नितराम् (**यच्छ**) देहि (**देवायुवम्**) या देवान् पृथिव्यादीन् दिव्यगुणान् विदुषो वा यावयति ताम्॥ १६॥

अन्वय:-हे विद्वन्! य: पृथिव्यां तपसो दिवो धर्त्ता यस्तपोजा अमर्त्यो देवो देवानां धर्त्ता जगदीश्वरो विभाति, तद्विज्ञानेनाऽस्मे देवायुवं वाचं नियच्छ॥ १६॥

भावार्थ:-हे विद्वांसो! य: परमेश्वर: सर्वेषां धर्त्ता प्रकाशकस्तपसा विज्ञातव्योऽस्ति, तज्ज्ञापिकां विद्यामस्मभ्यं दत्त॥ १६॥

पदार्थ:-हे विद्वन्! जो (**पृथिव्याम्**) आकाश में (**तपस:**) सबको तपानेवाले (**दिव:**) प्रकाशमय सूर्य्य आदि का (**धर्त्ता**) धारणकर्त्ता जो (**तपोजा:**) तप से प्रकट होनेवाला (**अमर्त्य:**) मरणधर्मरहित (**देव:**) प्रकाशस्वरूप (**देवानाम्**) पृथिव्यादि तेंतीस देवों का (**धर्त्ता**) धारणकर्त्ता जगदीश्वर (**वि, भाति**) विशेषकर प्रकाशित होता है, उसके विज्ञान से (**अस्मे**) हमारे लिये (**देवायुवम्**) दिव्यगुणवाले पृथिव्यादि वा विद्वानों को सङ्गत करनेवाली (**वाचम्**) वाणी को (**नि, यच्छ**) निरन्तर दीजिये॥ १६॥

भावार्थ:-हे विद्वान् लोगो! जो परमेश्वर सबका धर्त्ता, प्रकाशक, तप से विशेषकर जानने योग्य है, उसको जाननेवाली विद्या को हमारे लिये देओ॥ १६॥

अपश्यमित्यस्य दीर्घतमा ऋषि:। ईश्वरो देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्द:। धैवत: स्वर:॥

ईश्वरोपासका: कीदृशा भवन्तीत्याह॥

ईश्वर के उपासक कैसे होते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम्।

स सध्रीची: स विषूचीर्वसानऽआ वरीवर्त्ति भुवनेष्वन्त:॥ १७॥

अपश्यम्। गोपाम्। अनिपद्यमानमित्यनिऽपद्यमानम्। आ। च। परा। च। पथिभिरिति पथिऽभि:। चरन्तम्॥ स:। सध्रीची:। स:। विषूची:। वसान:। आ। वरीवर्त्ति। भुवनेषु। अन्तरित्यन्त:॥ १७॥

पदार्थः-(**अपश्यम्**) पश्येयम् (**गोपाम्**) रक्षकम् (**अनिपद्यमानम्**) अपदनशीलमचलम् (**आ**) (**च**) (**परा**) (**च**) (**पथिभिः**) ज्ञानमार्गैः (**चरन्तम्**) प्राप्नुवन्तम् (**सः**) (**सध्रीचीः**) सह वर्त्तमानाः (**सः**) (**विषूचीः**) व्याप्ताः (**वसानः**) आच्छादकः (**आ**) (**वरीवर्त्ति**) समन्ताद् भृशमावृणोति समन्ताद् वर्त्तते वा (**भुवनेषु**) लोकलोकान्तरेषु (**अन्तः**) मध्ये॥१७॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! अहं यं पथिभिराचरन्तं पराचरन्तमनिपद्यमानं गोपां जगदीश्वरमपश्यम्, स च सध्रीचीः स च विषूचीर्वसानः सन् भुवनेष्वन्तरावरीवर्ति, तं यूयमपि पश्यत॥१७॥

भावार्थः-ये मनुष्याः सर्वलोकाभिव्यापिनमन्तर्यामिरूपेण प्राप्तमधार्मिकैरविद्वद्भिरयोगिभिरविज्ञेयं परमात्मानं विज्ञायात्मना युञ्जते, ते सर्वान् धर्म्यान् मार्गान् प्राप्य विशुध्यन्ति॥१७॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! मैं जिस (**पथिभिः**) शुद्ध ज्ञान के मार्गों से (**आ, चरन्तम्**) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हुए (**परा**) परभाग में भी प्राप्त होते हुए (**अनिपद्यमानम्**) अचल (**गोपाम्**) रक्षक जगदीश्वर को (**अपश्यम्**) देखूं (**स, च**) वह भी (**सध्रीचीः**) साथ वर्त्तमान दिशाओं (**च**) और (**सः**) वह (**विषूचीः**) व्याप्त उपदिशाओं को (**वसानः**) आच्छादित करनेवाला हुआ (**भुवनेषु**) लोक-लोकान्तरों के (**अन्तः**) बीच (**आ, वरीवर्त्ति**) अच्छे प्रकार सबका आवरण करता वा वर्त्तमान है, उसको आप लोग भी देखो॥१७॥

भावार्थः-जो मनुष्य सब लोकों में अभिव्यापी अन्तर्यामी रूप से प्राप्त अधर्मी अविद्वान् और अयोगी लोगों के न जानने योग्य परमात्मा को जानकर अपने आत्मा के साथ युक्त करते हैं, वे सब धर्मयुक्त मार्गों को प्राप्त होकर शुद्ध होते हैं॥१७॥

विश्वासामित्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः। ईश्वरो देवता। निचृदत्यष्टिश्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

विश्वा॑सां भुवां पते॒ विश्व॑स्य मनसस्पते॒ विश्व॑स्य वचसस्पते॒ सर्व॑स्य वचसस्पते।

दे॒व॒श्रुत्त्वं दे॑व घर्म दे॒वो दे॒वान् पा॒ह्यत्र॒ प्रावी॒रनु॑ वां दे॒ववी॑तये।

मधु॑ माध्वी॑भ्यां॒ मधु॑ माधू॑चीभ्याम्॥१८॥

विश्वा॑साम्। भु॒वाम्। प॒ते। विश्व॑स्य। म॒न॒सः॒। प॒ते। विश्व॑स्य। व॒च॒सः॒। प॒ते। सर्व॑स्य। व॒च॒सः॒। प॒ते। दे॒व॒श्रुदिति॑ देवऽश्रुत्। त्वम्। दे॒व। घ॒र्म॒। दे॒वः। दे॒वान्। पा॒हि॒। अत्र॑। प्र। अ॒वीः॒। अनु॑। वाम्। दे॒ववी॑त॒य इति॑ दे॒वऽवी॑तये। मधु॑। माध्वी॑भ्याम्। मधु॒। माधू॑चीभ्याम्॥१८॥

पदार्थः-(**विश्वासाम्**) समग्राणाम् (**भुवाम्**) पृथिवीनाम् (**पते**) स्वामिन् (**विश्वस्य**) समग्रस्य (**मनसः**) सङ्कल्पविकल्पादिवृत्तियुक्तस्यान्तःकरणस्य (**पते**) रक्षक (**विश्वस्य**) (**वचसः**) वेदवाचः (**पते**) पालक (**सर्वस्य**) अखिलस्य (**वचसः**) वचनस्य (**पते**) रक्षक (**देवश्रुत्**) यो देवान् विदुषः शृणोति सः (**त्वम्**) (**देव**) सर्वसुखदातः (**घर्म**) प्रदीपक (**देवः**) रक्षकः सन् (**देवान्**) धार्मिकान् विदुषः (**पाहि**) (**अत्र**) अस्मिन् जगाति (**प्र**) (**अवीः**) देहि। अत्र लोडर्थे लुङडभावश्च। (**अनु**) (**वाम्**) युवाभ्याम् (**देववीतये**) दिव्यानां गुणानां व्याप्तये (**मधु**) मधु विज्ञानम् (**माध्वीभ्याम्**) मधुरादिगुणयुक्तं धर्मम् (**माधूचीभ्याम्**) यौ मधुविद्यामञ्चतस्ताभ्याम्॥१८॥

अन्वयः-हे विश्वासां भुवां पते विश्वस्य मनसस्पते विश्वस्य वचसस्पते सर्वस्य वचसस्पते घर्म देव जगदीश्वर! देवश्रुद्देवस्त्वमत्र देवान् पाहि। माध्वीभ्यां सह मधु प्रावीर्माधूचीभ्यां देववीतये देवाननुपाहीति। हे अध्यापकोपदेशकौ! वां युवाभ्यामहमिदमुपदिशेयम्॥१८॥

भावार्थः-हे विद्वांसो! यूयं विश्वेदेवात्ममनसां स्वामिनं सर्वश्रोतारं सर्वस्य रक्षितारं परमात्मानं विज्ञाय दिव्यं सुखं प्राप्यान्यान् प्रापयत॥१८॥

पदार्थः-हे (**विश्वासाम्**) सब (**भुवाम्**) पृथिवियों के (**पते**) स्वामिन् (**विश्वस्य**) सब (**मनसः**) सकंल्प-विकल्प आदि वृत्तियुक्त अन्तःकरण के (**पते**) रक्षक (**विश्वस्य**) समस्त (**वचसः**) वेदवाणी के (**पते**) पालक (**सर्वस्य**) संपूर्ण (**वचसः**) वचनमात्र के (**पते**) रक्षक (**घर्म**) प्रकाशक (**देव**) सब सुखों के दाता जगदीश्वर! (**देवश्रुत्**) विद्वानों को सुननेहारे (**देवः**) रक्षक हुए (**त्वम्**) आप (**अत्र**) इस जगत् में (**देवान्**) धार्मिक विद्वानों की (**पाहि**) रक्षा कीजिये। (**माध्वीभ्याम्**) मधुरादि गुणयुक्त विद्या और उत्तम शिक्षा के (**मधु**) मधुर विज्ञान को (**प्र, अवीः**) प्रकर्ष के साथ दीजिये (**माधूचीभ्याम्**) विष को विनाशनेवाली मधुविद्या को प्राप्त होनेवाली अध्यापक उपदेशकों के साथ (**देववीतये**) दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिये विद्वानों की (**अनु**) अनुकूल रक्षा कीजिये। इस प्रकार हे अध्यापक उपदेशको! (**वाम्**) तुम्हारे लिये मैं उपदेश को करूं॥१८॥

भावार्थः-हे विद्वानो! तुम लोग सब देव, आत्मा और मनों के स्वामी, सब सुननेवाले, सबके रक्षक परमात्मा को जान और उत्तम सुख को प्राप्त होकर दूसरों को सुख प्राप्त कराओ॥१८॥

हृदे त्वेत्यस्याथर्वण ऋषिः। ईश्वरो देवता। विराडुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

हृदे त्वा मन॑से त्वा दि॒वे त्वा॒ सूर्य्या॑य त्वा।

ऊर्ध्वोऽअध्वरं दिवि देवेषु धेहि॥ १९॥

हृदे। त्वा। मनसे। त्वा। दिवे। त्वा। सूर्य्याय। त्वा। ऊर्ध्वः। अध्वरम्। दिवि। देवेषु। धेहि॥ १९॥

पदार्थः-(**हृदे**) हृदयस्य चेतनत्वाय (**त्वा**) त्वाम् (**मनसे**) विज्ञानवतेऽन्तःकरणाय (**त्वा**) (**दिवे**) विद्याप्रकाशाय विद्युद्विद्यायै वा (**त्वा**) (**सूर्य्याय**) सूर्य्यादिलोकविज्ञानाय (**त्वा**) (**ऊर्ध्वः**) सर्वेभ्य उत्कृष्टः (**अध्वरम्**) अहिंसामयं यज्ञम् (**दिवि**) दिव्ये व्यवहारे (**देवेषु**) विद्वत्सु (**धेहि**) प्रचारय॥ १९॥

अन्वयः-हे जगदीश्वर! यं हृदे त्वा मनसे त्वा दिवे त्वा सूर्य्याय त्वा ध्यायेम, स ऊर्ध्वस्त्वं दिवि देवेषु चाध्वरं धेहि॥ १९॥

भावार्थः-ये मनुष्याः सत्यभावेनात्मान्तःकरणशुद्धये सृष्टिविद्यायै चेश्वरमुपासते, तान् स कृपालुरीश्वरो विद्याधर्मदानेन सर्वेभ्यो दुःखेभ्य उद्धरति॥ १९॥

पदार्थः-हे जगदीश्वर! जिस (**हृदे**) हृदय की चेतनता के लिये (**त्वा**) आपको (**मनसे**) विज्ञानवान् अन्तःकरण होने के अर्थ (**त्वा**) आपको (**दिवे**) विद्या के प्रकाश वा विद्युत् विद्या की प्राप्ति के लिये (**त्वा**) आपको (**सूर्य्याय**) सूर्यादि लोकों के ज्ञानार्थ (**त्वा**) आपका हम लोग ध्यान करें सो (**ऊर्ध्वः**) सबके उत्कृष्ट आप (**दिवि**) उत्तम व्यवहार और (**देवेषु**) विद्वानों में (**अध्वरम्**) अहिंसामय यज्ञ का (**धेहि**) प्रचार कीजिये॥ १९॥

भावार्थः-जो मनुष्य सत्यभाव से आत्मा और अन्तःकरण की शुद्धि के लिये और सृष्टिविद्या के अर्थ ईश्वर की उपासना करते हैं, उनका वह कृपालु ईश्वर विद्या और धर्म के दान से सब दुःखों से उद्धार करता है॥ १९॥

पिता न इत्यस्याथर्वण ऋषिः। ईश्वरो देवता। निचृदतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

पिता नोऽसि पिता नो बोधि नमस्तेऽअस्तु मा मा हिꣳसीः। त्वष्टृमन्तस्त्वा सपेम पुत्रान् पशून् मयि धेहि प्रजामस्मासु धेह्यरिष्टाहꣳ सह पत्या भूयासम्॥ २०॥

पिता। नः। असि। पिता। नः। बोधि। नमः। ते। अस्तु। मा। मा। हिंसीः॥ त्वष्टृमन्त इति त्वष्टृऽमन्तः। त्वा। सपेम। पुत्रान्। पशून्। मयि। धेहि। प्रजामिति प्रऽजाम्। अस्मासु। धेहि। अरिष्टा। अहम्। सहपत्येति सहऽपत्या। भूयासम्॥ २०॥

पदार्थः-(**पिता**) जनक इव (**नः**) अस्माकम् (**असि**) (**पिता**) राजेव पालकः (**नः**) अस्मान् (**बोधि**) बोधय (**नमः**) (**ते**) तुभ्यम् (**अस्तु**) (**मा**) निषेधे (**मा**) माम् (**हिंसीः**) हिंसया युक्तं कुर्य्याः

(त्वष्टृमन्तः) बहवस्त्वष्टारः प्रकाशात्मानः पदार्था विद्यन्ते येषु ते **(त्वा)** त्वाम् **(सपेम)** सम्बन्धं कुर्य्याम **(पुत्रान्)** पवित्रगुणकर्मस्वभावान् **(पशून्)** गवादीन् **(मयि)** **(धेहि)** **(प्रजाम्)** राष्ट्रम् **(अस्मासु)** **(धेहि)** **(अरिष्टा)** अहिंसिता **(अहम्)** **(सहपत्या)** स्वामिना सह **(भूयासम्)**॥२०॥

अन्वयः-हे जगदीश्वर! त्वं नः पिताऽसि पिता सन्नोऽस्मान् बोधि ते नमस्तु त्वं मा मा हिंसीस्त्वष्टृमन्तो वयं त्वा सपेम। त्वं पुत्रान् पशून् मयि धेहि, अस्मासु प्रजां धेहि, यतोहमरिष्टा सती सहपत्या भूयासम्॥२०॥

भावार्थः-हे जगदीश्वर! भवान् नोऽस्माकं पिता स्वामी बन्धुर्मित्रो रक्षकोऽसि, तस्मात् त्वां वयं सततमुपास्महे। हे स्त्रियो! यूयं परमात्मन एवोपासनां नित्यं कुरुत, यतः सर्वाणि सुखानि प्राप्नुत॥२०॥

पदार्थः-हे जगदीश्वर! आप **(नः)** हमारे **(पिता)** पिता के समान **(असि)** हैं, **(पिता)** राजा के तुल्य रक्षक हुए **(नः)** हमको **(बोधि)** बोध कराइये **(ते)** आपके लिये **(नमः)** नमस्कार **(अस्तु)** होवे, आप **(मा)** मुझको **(मा, हिंसीः)** मत हिंसायुक्त कीजिये **(त्वष्टृमन्तः)** बहुत स्वच्छ प्रकाशरूप पदार्थों वाले हम **(त्वा)** आप से **(सपेम)** सम्बन्ध करें। आप **(पुत्रान्)** पवित्र गुण-कर्म-स्वभाव वाले सन्तानों को तथा **(पशून्)** गौ आदि पशुओं को **(मयि)** मुझमें **(धेहि)** धारण कीजिये तथा **(अस्मासु)** हममें **(प्रजाम्)** प्रजा को **(धेहि)** धारण कीजिये, जिससे **(अहम्)** मैं **(अरिष्टा)** अहिंसित हुई **(सहपत्या)** पति के साथ **(भूयासम्)** होऊं॥२०॥

भावार्थः-हे जगदीश्वर! आप हमारे पिता, स्वामी, बन्धु, मित्र और रक्षक हैं, इससे आपकी हम निरन्तर उपासना करते हैं। हे स्त्रियो! तुम परमेश्वर ही की उपासना नित्य किया करो, जिससे सब सुखों को प्राप्त होओ॥२०॥

अहः केतुनेत्यस्याथर्वण ऋषिः। ईश्वरो देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अहः केतुना जुषताᳬं सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा।
रात्रिः केतुना जुषताᳬं सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा॥२१॥

अहरित्यहः। केतुना। जुषताम्। सुज्योतिरिति सुऽज्योतिः। ज्योतिषा। स्वाहा॥ रात्रिः। केतुना। जुषताम्। सुज्योतिरिति सुऽज्योतिः। ज्योतिषा। स्वाहा॥२१॥

पदार्थः-**(अहः)** दिनम् **(केतुना)** जागरूकेण ज्ञानेन जागृतावस्थया **(जुषताम्)** सेवताम् **(सुज्योतिः)** विद्याप्रकाशम् **(ज्योतिषा)** सूर्यादिप्रकाशेन वा धर्मादिप्रकाशेन **(स्वाहा)** सत्यया क्रियया

(रात्रिः) **(केतुना)** प्रज्ञया सुकर्मणा वा **(जुषताम्)** **(सुज्योतिः)** **(ज्योतिषा)** प्रकाशेन सह **(स्वाहा)** सत्यया वाचा॥ २१॥

अन्वयः-हे विद्वन् विदुषि स्त्रि वा! भवती स्वाहा केतुना ज्योतिषा चाहः सुज्योतिर्जुषतां स्वाहा केतुना ज्योतिषा सह सुज्योती रात्रिरस्मान् जुषताम्॥ २१॥

भावार्थः-ये स्त्रीपुरुषा दिवास्वापं रात्रावतिजागरणं विहाय युक्ताहारविहारा ईश्वरोपासनतत्परा भवेयुस्तानहर्निशं सुखकरं वस्तु प्राप्नोति। अतो यथा प्रज्ञा वर्द्धेत तथानुष्ठातव्यमिति॥ २१॥

अत्रेश्वरस्य योगिनः सूर्य्यपृथिव्योर्यज्ञस्य सन्मार्गस्य स्त्रीपत्योः पितृवद्वर्त्तमानस्य परमेश्वरस्य च वर्णनं युक्ताहारविहारस्य चानुष्ठानमुक्तमत एतदर्थस्य पूर्वाध्यायेन सह संगतिरस्तीति वेद्यम्॥

पदार्थः-हे विद्वन् वा विदुषी स्त्रि! आप **(स्वाहा)** सत्य क्रिया से **(केतुना)** उत्कट ज्ञान वा जागृत अवस्था से और **(ज्योतिषा)** सूर्य्यादि वा धर्मादि के प्रकाश से **(अहः, सुज्योतिः)** दिन और विद्या को **(जुषताम्)** सेवन कीजिये **(स्वाहा)** सत्य वाणी **(केतुना)** बुद्धि वा सुन्दर कर्म और **(ज्योतिषा)** प्रकाश के साथ **(सुज्योतिः)** सुन्दर ज्योतियुक्त **(रात्रिः)** रात्रि हमको **(जुषताम्)** सेवन करे॥ २१॥

भावार्थः-जो स्त्री-पुरुष दिन के सोने और रात्रि के अति जागने को छोड़ युक्त आहार-विहार करनेहारे ईश्वर की उपासना में तत्पर होवें, उनको दिन-रात सुखकर वस्तु प्राप्त होती है। इससे जैसे बुद्धि बढ़े, वैसा अनुष्ठान करना चाहिये॥ २१॥

इस अध्याय में ईश्वर, योगी, सूर्य्य, पृथिवी, यज्ञ, सन्मार्ग, स्त्री, पति और पिता के तुल्य वर्त्तमान परमेश्वर का वर्णन तथा युक्त आहार-विहार का अनुष्ठान कहा है, इससे इस अध्याय में कहे अर्थ की पूर्व अध्याय में कहे अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये॥

इति श्रीमत्परमहसंपरिव्राजकाचार्य्याणां श्रीमन्महाविदुषां श्रीविरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण श्रीमत्परमहसंपरिव्राजकाचार्य्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचिते संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां विभूषिते सुप्रमाणयुक्ते यजुर्वेदभाष्ये सप्तत्रिंशोऽध्यायः पूर्त्तिमगात्॥ ३७॥

॥ओ३म्॥

अथ अथाष्टात्रिंशोऽध्याय आरभ्यते

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव। यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व॥ यजु० ३०.३॥

देवस्येत्यस्याथर्वण ऋषिः। सविता देवता। उष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

अथ पत्न्या किंभूतया भवितव्यमित्याह॥

अब अड़तीसवें अध्याय का आरम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में स्त्री को कैसी होना चाहिये, इस विषय को कहा है॥

दे॒वस्य॑ त्वा सवि॒तुः प्र॑स॒वे॒ऽश्विनो॑र्बा॒हुभ्यां॑ पू॒ष्णो हस्ता॑भ्याम्।
आ द॒देऽदि॑त्यै॒ रास्ना॑ऽसि॥ १॥

दे॒वस्य॑। त्वा॒। स॒वि॒तुः। प्र॒स॒व इति॑ प्रस॒वे। अ॒श्विनोः॑। बा॒हुभ्या॒मिति॑ बा॒हुऽभ्या॑म्। पू॒ष्णः। हस्ता॑भ्याम्॥ आ। द॒दे॒। अदि॑त्यै। रास्ना॑। अ॒सि॒॥ १॥

पदार्थः-(**देवस्य**) कमनीयस्य (**त्वा**) त्वाम् (**सवितुः**) सकलजगदुत्पादकस्य (**प्रसवे**) उत्पत्तिधर्मके (**अश्विनोः**) सूर्याचन्द्रमसोः (**बाहुभ्याम्**) बलवीर्य्याभ्यामिव भुजाभ्याम् (**पूष्णः**) पोषकस्य (**हस्ताभ्याम्**) गतिधारणाभ्यामिव कराभ्याम् (**आ**) (**ददे**) गृह्णीयाम् (**अदित्यै**) नाशरहितायै नीत्यै (**रास्ना**) दात्री (**असि**) भवसि॥ १॥

अन्वयः-हे विदुषि! यतस्त्वमदित्यै रास्नासि तस्मात् सवितुर्देवस्य प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां त्वाऽऽददे॥ १॥

भावार्थः-हे स्त्रि! यथा सूर्यो भूगोलान् प्राणः शरीरमध्यापकोपदेशकौ सत्यं गृह्णन्ति, तथैव त्वामहं गृह्णामि। त्वं सततमनुकूला सुखप्रदा च भव॥ १॥

पदार्थः-हे विदुषि स्त्री! जिस कारण तू (**अदित्यै**) नाशरहित नीति के लिये (**रास्ना**) दानशील (**असि**) है, इससे (**सवितुः**) समस्त जगत् के उत्पादक (**देवस्य**) कामना के योग्य परमेश्वर के (**प्रसवे**) उत्पन्न होनेवाले जगत् में (**अश्विनोः**) सूर्य और चन्द्रमा के (**बाहुभ्याम्**) बल-पराक्रम के तुल्य बाहुओं से (**पूष्णः**) पोषक वायु के (**हस्ताभ्याम्**) गमन और धारण के समान हाथों से (**त्वा**) तुझको (**आ, ददे**) ग्रहण करूं॥ १॥

भावार्थः-हे स्त्री! जैसे सूर्य्य भूगोलों का, प्राण शरीर का और अध्यापक-उपदेशक सत्य का ग्रहण करते हैं, वैसे ही तुमको मैं ग्रहण करता हूं, तू निरन्तर अनुकूल सुख देनेवाली हो॥ १॥

इड इत्यस्याथर्वण ऋषिः। सरस्वती देवता। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

स्त्रीपुरुषौ कथं विवहेतामित्याह॥

स्त्री-पुरुष कैसे विवाह करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

इडऽएह्यदितऽएहि सरस्वत्येहि।

असावेह्यसावेह्यसावेहि॥ २॥

इडे। एहि। अदिते। एहि। सरस्वति। एहि॥ असौ। एहि। असौ। एहि। असौ। एहि॥ २॥

पदार्थः-(**इडे**) सुशिक्षिता वागिव (**एहि**) प्राप्नुहि (**अदिते**) अखण्डितानन्ददे (**एहि**) (**सरस्वती**) प्रशस्तविज्ञानयुक्ते (**एहि**) (**असौ**) (**एहि**) (**असौ**) (**एहि**) (**असौ**) (**एहि**)॥ २॥

अन्वयः-हे इडे! त्वं मामेहि योऽसौ त्वां प्राप्नुयात् तमेहि। हे अदिते! त्वमखण्डितानन्दमेहि, योऽसौ त्वामखण्डितानन्दं दद्यात् तमेहि। हे सरस्वती! त्वं विद्वांसमेहि योऽसौ सुशिक्षकः स्यात् तमेहि॥ २॥

भावार्थः-यदा स्त्रीपुरुषौ विवाहं कर्तुमिच्छेतां तदा ब्रह्मचर्येण विद्यया स्त्रीपुरुषधर्माचरणे विदित्वैव कुर्याताम्॥ २॥

पदार्थः-हे (**इडे**) सुशिक्षित वाणी के तुल्य स्त्रि! तू मुझको (**एहि**) प्राप्त हो जो (**असौ**) वह तुझको प्राप्त हो उसको तू (**एहि**) प्राप्त हो। हे (**अदिते**) अखण्डित आनन्द देनेवाली! तू अखण्डित आनन्द को (**एहि**) प्राप्त हो, जो (**असौ**) वह तुमको अखण्डित आनन्द देवे उसको (**एहि**) प्राप्त हो। हे (**सरस्वति**) प्रशस्त विज्ञानयुक्त स्त्रि! तू विद्वान् को (**एहि**) प्राप्त हो, जो (**असौ**) वह सुशिक्षित हो, उसको (**एहि**) प्राप्त हो॥ २॥

भावार्थः-जब स्त्री-पुरुष विवाह करने की इच्छा करें, तब ब्रह्मचर्य और विद्या से स्त्री और पुरुष के धर्म और आचरण को जानकर ही करें॥ २॥

अदित्या इत्यस्याथर्वण ऋषिः। पूषा देवता। भुरिक् साम्नी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

स्त्रिया किं कार्य्यमित्याह॥

स्त्री को क्या करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अदित्यै रास्नासीन्द्राण्याऽउष्णीषः।

पूषासि घर्माय दीष्व॥ ३॥

अदित्यै। रास्ना। असि। इन्द्राण्यै। उष्णीषः॥ पूषा। असि। घर्माय। दीष्व॥ ३॥

पदार्थः-(**अदित्यै**) नित्यविज्ञानम्। अत्र कर्मणि चतुर्थी। (**रास्ना**) दात्री (**असि**) (**इन्द्राण्यै**) परमैश्वर्य्यकारिण्यै राजनीत्यै (**उष्णीषः**) शिरोवेष्टनमिव (**पूषा**) भूमिरिव पोषिका (**असि**) (**घर्माय**)

प्रसिद्धाऽप्रसिद्धसुखप्रदाय यज्ञाय **(दीष्व)** देहि। अत्र शपो लुक् **छन्दस्युभयथा** [अ०३.४.११७] इत्यार्द्धधातुकत्वम्॥३॥

अन्वयः-कन्ये! मा त्वमदित्यै रास्नासि उष्णीष इवेन्द्राण्यै पूषासि सा त्वं घर्माय दीष्व॥३॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे स्त्रि! यथोष्णीषादीनि वस्त्राणि सुखप्रदानि सन्ति, तथा पत्ये सुखानि प्रयच्छ॥३॥

पदार्थः-हे कन्ये! जो तू **(अदित्यै)** नित्य विज्ञान के **(रास्ना)** देनेवाली **(असि)** है, **(इन्द्राण्यै)** परमैश्वर्य करनेवाली नीति के लिये **(उष्णीषः)** शिरोवेष्टन पगड़ी के तुल्य **(पूषा)** भूमि के सदृश पोषण करनेहारी **(असि)** है, सो तू **(घर्माय)** प्रसिद्ध-अप्रसिद्ध सुख देनेवाले यज्ञ के लिये **(दीष्व)** दान कर॥३॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे स्त्रि! जैसे पगड़ी आदि वस्त्र सुख देनेवाले होते हैं, वैसे तू पति के लिये सुख देनेवाली हो॥३॥

अश्विभ्यामित्यस्याथर्वण ऋषिः। सरस्वती देवता। आर्ची पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अश्विभ्यां पिन्वस्व सरस्वत्यै पिन्वस्वेन्द्राय पिन्वस्व।

स्वाहेन्द्रवत् स्वाहेन्द्रवत् स्वाहेन्द्रवत्॥४॥

अश्विभ्याम्। पिन्वस्व। सरस्वत्यै। पिन्वस्व। इन्द्राय। पिन्वस्व॥ स्वाहा। इन्द्रवदितीन्द्रऽवत्। स्वाहा। इन्द्रवदितीन्द्रऽवत्। स्वाहा। इन्द्रवदितीन्द्रऽवत्॥४॥

पदार्थः-**(अश्विभ्याम्)** चन्द्रसूर्य्याभ्याम् **(पिन्वस्व)** तृप्नुहि **(सरस्वत्यै)** सुशिक्षितायै वाचे **(पिन्वस्व)** **(इन्द्राय)** परमैश्वर्याय **(पिन्वस्व)** **(स्वाहा)** सत्यया क्रियया **(इन्द्रवत्)** इन्द्रं परमैश्वर्यं विद्यते यस्मिंस्तत् गृहीत्वा **(स्वाहा)** सत्यया वाचा **(इन्द्रवत्)** चेतनात्मगुणसंयुक्तं शरीरं प्राप्य **(स्वाहा)** **(इन्द्रवत्)** विद्युद्वत्॥४॥

अन्वयः-हे विदुषि स्त्रि! त्वमिन्द्रवत् स्वाहाऽश्विभ्यां पिन्वस्वेन्द्रवत् स्वाहा सरस्वत्यै पिन्वस्वेन्द्रवत् स्वाहेन्द्राय पिन्वस्व॥४॥

भावार्थः-ये स्त्रीपुरुषा विद्युदादिविद्ययैश्वर्यमुन्नयेयुस्ते सुखमपि लभेरन्॥४॥

पदार्थः-हे विदुषि स्त्रि! तू **(इन्द्रवत्)** परम ऐश्वर्ययुक्त वस्तु को ग्रहण कर **(स्वाहा)** सत्यक्रिया से **(अश्विभ्याम्)** सूर्य्य-चन्द्रमा के लिये **(पिन्वस्व)** तृप्त हो, **(इन्द्रवत्)** चेतनता के गुणों से संयुक्त शरीर को पाकर **(स्वाहा)** सत्यवाणी से **(सरस्वत्यै)** सुशिक्षित वाणी के लिये **(पिन्वस्व)**

संतुष्ट हो, **(इन्द्रवत्)** विद्युत् विद्या को जानकर **(स्वाहा)** सत्यता से **(इन्द्राय)** परमोत्तम ऐश्वर्य के लिये **(पिन्वस्व)** संतुष्ट हो॥४॥

भावार्थः-जो स्त्री-पुरुष विद्युत् आदि विद्या से ऐश्वर्य की उन्नति करें, वे सुख को भी प्राप्त होवें॥४॥

यस्त इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। वाग् देवता। निचृदतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनः स्त्रीपुरुषौ किं कुर्य्यातामित्याह॥

फिर स्त्री-पुरुष क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूर्यो रत्नधा वसुविद्यः सुदत्रः।
येन विश्वा पुष्यसि वार्य्याणि सरस्वति तमिह धातवेऽकः।
उर्वन्तरिक्षमन्वेमि॥५॥

यः। ते। स्तनः। शशयः। यः। मयोभूरिति मयःऽभूः। यः। रत्नधा इति रत्नऽधाः। वसुविदिति वसुऽवित्। यः। सुदत्र इति सुऽदत्रः॥ येन। विश्वा। पुष्यसि। वार्य्याणि। सरस्वति। तम्। इह। धातवे। अकरित्यकः। उरु। अन्तरिक्षम्। अनु। एमि॥५॥

पदार्थः-**(यः)** **(ते)** तव **(स्तनः)** दुग्धाधारमङ्गम् **(शशयः)** शेते यस्मिन् सः **(यः)** **(मयोभूः)** यो मयः सुखं भावयति सः **(यः)** **(रत्नधाः)** यो रत्नानि दधाति सः **(वसुवित्)** यो वसूनि धनानि विन्दति प्राप्नोति सः **(यः)** **(सुदत्रः)** शोभनं दत्रं दानं यस्य सः **(येन)** **(विश्वा)** समग्राणि **(पुष्यसि)** **(वार्याणि)** वरितुमर्हाणि **(सरस्वति)** बहुविज्ञानयुक्ते **(तम्)** **(इह)** अस्मिन् संसारे **(धातवे)** धातुम् **(अकः)** कुर्य्याः **(उरु)** बहु **(अन्तरिक्षम्)** आकाशम् **(अनु)** **(एमि)** प्राप्नोमि॥५॥

अन्वयः-हे सरस्वति स्त्रि! यस्ते शशयः स्तनो यो मयोभूर्यो रत्नधा वसुविद्यः सुदत्रो येन विश्वा वार्य्याणि पुष्यसि, तमिह धातवेऽकः। तेनाहमुर्वन्तरिक्षमन्वेमि॥५॥

भावार्थः-यदि स्त्री न स्यात् तर्हि बालकानां पालनमप्यशक्यं भवेत्। यया पुरुषो बहुसुखं येन स्त्री च पुष्कलं सुखमाप्नुयात् तौ द्वावितरेतरं विवहेताम्॥५॥

पदार्थः-हे **(सरस्वति)** बहुत विज्ञानवाली स्त्रि! **(यः)** जो **(ते)** तेरा **(शशयः)** जिसके आश्रय से बालक सोवे वह **(स्तनः)** दूध का आधार थन तथा **(यः)** जो **(मयोभूः)** सुख सिद्ध करनेहारा **(यः)** जो **(रत्नधाः)** उत्तम-उत्तम गुणों का धारणकर्त्ता **(वसुवित्)** धनों को प्राप्त होनेवाला और **(यः)** जो **(सुदत्रः)** सुन्दर दान देनेवाला पति **(येन)** जिसके आश्रय से **(विश्वा)** सब **(वार्य्याणि)** ग्रहण करनेयोग्य वस्तुओं को **(पुष्यसि)** पुष्ट करती है, **(तम्)** उसकी **(इह)** इस संसार

में वा घर में **(धातवे)** धारण करने वा दूध पिलाने को नियत **(अकः)** कर, उससे मैं **(उरु)** अधिकतर **(अन्तरिक्षम्)** आकाश का **(अन्वेमि)** अनुगामी होऊं॥५॥

भावार्थः-जो स्त्री न होवे तो बालकों की रक्षा होना भी कठिन होवे। जिस स्त्री से पुरुष बहुत सुख और पुरुष से स्त्री भी अधिकतर आनन्द पावे, वे ही दोनों आपस में विवाह करें॥५॥

गायत्रमित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। अश्विनौ देवते। निचृदत्यष्टिश्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनः स्त्रीपुरुषयोः कीदृशः सम्बन्धः स्यादित्याह॥

फिर भी स्त्री-पुरुष का कैसा सम्बन्ध हो, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

गायत्रं छन्दोऽसि त्रैष्टुभं छन्दोऽसि द्यावापृथिवीभ्यां त्वा परि गृह्णाम्यन्तरिक्षेणोप यच्छामि। इन्द्राश्विना मधुनः सारघस्य घर्मं पात वसवो यजत वाट्। स्वाहा सूर्य्यस्य रश्मये वृष्टिवनये॥६॥

गायत्रम्। छन्दः। असि। त्रैष्टुभम्। त्रैस्तुभमिति त्रैस्तुभम्। छन्दः। असि। द्यावापृथिवीभ्याम्। त्वा। परि। गृह्णामि। अन्तरिक्षेण। उप। यच्छामि॥ इन्द्र। अश्विना। मधुनः। सारघस्य। घर्मम्। पात। वसवः। यजत। वाट्॥ स्वाहा। सूर्यस्य। रश्मये। वृष्टिवनय इति वृष्टिऽवनये॥६॥

पदार्थः-**(गायत्रम्)** गायत्रीछन्दसा प्रकाशितम् **(छन्दः)** स्वतन्त्राह्लादकरमिव **(असि)** **(त्रैष्टुभम्)** त्रिष्टुभा व्याख्यातमर्थजातम् **(छन्दः)** स्वतन्त्रमिव **(असि)** **(द्यावापृथिवीभ्याम्)** सूर्य्यभूमीभ्याम् **(त्वा)** त्वाम् **(परि)** सर्वतः **(गृह्णामि)** स्वीकरोमि **(अन्तरिक्षेण)** उदकेन सह प्रतिज्ञाताम् **(उप, यच्छामि)** गृह्णामि **(इन्द्र)** परमैश्वर्य्ययुक्त **(अश्विना)** प्राणाऽपानाविव कार्यसाधकौ **(मधुनः)** मधुरादिगुणयुक्तस्य **(सारघस्य)** सरघाभिर्मधुमक्षिकाभिर्निर्मितस्य **(घर्मम्)** सुखवर्षकं यज्ञम् **(पात)** रक्षत **(वसवः)** पृथिव्यादय इव प्रथमविद्याकल्पाः **(यजत)** सङ्गच्छध्वम् **(वाट्)** सुष्ठु **(स्वाहा)** सत्यया क्रियया **(सूर्य्यस्य)** **(रश्मये)** शोधनाय **(वृष्टिवनये)** वृष्टेः संविभाजकाय॥६॥

अन्वयः-हे इन्द्र! यथा त्वं गायत्रं छन्द इव हृद्यां स्त्रियं प्राप्तवानसि, त्रैष्टुभं छन्दः इव प्रशंसितां लब्धवानसि, तथाऽहं त्वा दृष्ट्वा द्यावापृथिवीभ्यां प्रियां स्त्रियं परिगृह्णाम्यन्तरिक्षेणोपयच्छामि। हे अश्विना! स्त्रीपुरुषौ युवां तथैव वर्त्तेयाथाम्। हे वसवो विद्वांसो! यूयं स्वाहा मधुनः सारघस्य घर्मं पात सूर्य्यस्य वृष्टिवनये रश्मये वाट् यजत॥६॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा शब्दानामर्थैः सह वाच्यवाचकसम्बन्धः सूर्य्येण सह पृथिव्या रश्मिभिस्सह वृष्टेर्यज्ञेन सह यजमानस्यर्त्विजा चास्ति, तथैव विवाहितयोः स्त्रीपुरुषयोः सम्बन्धो भवतु॥६॥

पदार्थः-हे **(इन्द्र)** परम ऐश्वर्ययुक्त पुरुष! जैसे आप **(गायत्रम्)** गायत्री छन्द से प्रकाशित **(छन्दः)** स्वतन्त्र आनन्दकारक अर्थ के समान हृदय को प्रिय स्त्री को प्राप्त **(असि)** हैं, **(त्रैष्टुभम्)** त्रिष्टुप् छन्द से व्याख्यात हुए **(छन्दः)** स्वतन्त्र अर्थमात्र के समान प्रशंसित पत्नी को प्राप्त हुए **(असि)** हैं, वैसे मैं **(त्वा)** तुमको देखकर **(द्यावापृथिवीभ्याम्)** सूर्य-भूमि से अति शोभायमान प्रिया स्त्री को **(परि, गृह्णामि)** सब ओर से स्वीकार करता हूं और **(अन्तरिक्षेण)** हाथ में जल लेकर प्रतिज्ञा कराई हुई को **(उप, यच्छामि)** स्त्रीत्व के साथ ग्रहण करता हूं। हे **(अश्विना)** प्राण-अपान के तुल्य कार्यसाधक स्त्री-पुरुषो! तुम दोनों भी वैसे ही वर्त्ता करो। हे **(वसवः)** पृथिवी आदि वसुवों के तुल्य प्रथम कक्षा के विद्वानो! तुम लोग **(स्वाहा)** सत्या क्रिया से **(मधुनः, सारघस्य)** मक्खियों ने बनाये मधुरादि गुणयुक्त शहद और **(घर्मम्)** सुख पहुंचानेवाले यज्ञ की **(पात)** रक्षा करो। **(सूर्य्यस्य)** सूर्य्य के **(वृष्टिवनये)** वर्षा का विभाग करनेवाले **(रश्मये)** संशोधक किरण के लिये **(वाट्)** अच्छे प्रकार **(यजत)** संगत होओ॥६॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे शब्दों का अर्थों के साथ वाच्य-वाचक सम्बन्ध, सूर्य के साथ पृथिवी का, किरणों के साथ वर्षा का, यज्ञ के साथ यजमान और ऋत्विजों का सम्बन्ध है, वैसे ही विवाहित स्त्री-पुरुषों का सम्बन्ध होवे॥६॥

समुद्रायेत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। वातो देवता। अष्टिश्छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनः कृतविवाहौ स्त्रीपुंसौ किं कुर्यातामित्याह॥

फिर विवाह किये स्त्रीपुरुष क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

समुद्राय त्वा वाताय स्वाहा। सरिराय त्वा वाताय स्वाहा।
अनाधृष्याय त्वा वाताय स्वाहा। अप्रतिधृष्याय त्वा वाताय स्वाहा।
अवस्यवे त्वा वाताय स्वाहा। अशिमिदाय त्वा वाताय स्वाहा॥७॥

समुद्राय। त्वा। वाताय। स्वाहा। सरिराय। त्वा। वाताय। स्वाहा। अनाधृष्याय। त्वा। वाताय। स्वाहा। अप्रतिधृष्यायेत्यप्रतिऽधृष्याय। त्वा। वाताय। स्वाहा। अवस्यवे त्वा। वाताय। स्वाहा। अशिमिदायेत्यशिमिऽदाय। त्वा। वाताय। स्वाहा॥७॥

पदार्थः-**(समुद्राय)** अन्तरिक्षे गमनाय **(त्वा)** त्वाम् **(वाताय)** वायुविद्यायै वायोः शोधनाय वा **(स्वाहा)** सत्यया वाचा क्रियया वा **(सरिराय)** उदकशोधनाय **(त्वा)** **(वाताय)** गृहस्थाय वायवे **(स्वाहा)** **(अनाधृष्याय)** भयधर्षणराहित्याय **(त्वा)** **(वाताय)** ओषधिस्थवायुविज्ञानाय **(स्वाहा)** **(अप्रतिधृष्याय)** अधर्षितुं योग्यान् प्रति वर्त्तमानाय **(त्वा)** **(वाताय)** वायुवेगगतिविज्ञानाय **(स्वाहा)**

(अवस्यवे) आत्मनोऽवमिच्छवे **(त्वा)** **(वाताय)** प्राणशक्तिविज्ञानाय **(स्वाहा)** **(वाताय)** उदानाय **(स्वाहा)**॥७॥

अन्वयः-हे स्त्रि पुरुष वाऽहं स्वाहा समुद्राय वाताय त्वा स्वाहा सरिराय वाताय त्वा स्वाहाऽनाधृष्याय वाताय त्वा स्वाहाऽप्रतिधृष्याय वाताय त्वा स्वाहाऽवस्यवे वाताय त्वा स्वाहाऽशिमिदाय वाताय त्वोपयच्छामि॥७॥

भावार्थः-अत्र पूर्वस्मान्मन्त्रादुपयच्छामिति पदे अनुवर्त्तेते। कृतविवाहौ स्त्री-पुरुषौ सृष्टिविद्योन्नतये प्रयतेयाताम्॥७॥

पदार्थः-हे स्त्रि वा पुरुष! मैं **(स्वाहा)** सत्य से **(समुद्राय)** आकाश में चलने के अर्थ **(वाताय)** वायुविद्या वा वायु के शोधन के लिये **(त्वा)** तुझको **(स्वाहा)** सत्यक्रिया से **(सरिराय)** जल के तथा **(वाताय)** घर के वायु के शोधने के लिये **(त्वा)** तुझको **(स्वाहा)** सत्यवाणी से **(अनाधृष्याय)** भय और धमकाने से रहित होने के लिये **(वाताय)** ओषधिस्थ वायु के जानने को **(त्वा)** तुझको **(स्वाहा)** सत्यवाणी वा क्रिया से **(अप्रतिधृष्याय)** नहीं धमकाने योग्यों के प्रति वर्त्तमान के अर्थ **(वाताय)** वायु के वेग की गति जानने के लिये **(त्वा)** तुझको **(स्वाहा)** सत्यक्रिया से **(अवस्यवे)** अपनी रक्षा चाहनेवाले के अर्थ तथा **(वाताय)** प्राणशक्ति को विशेष जानने के लिये **(त्वा)** तुझको और **(स्वाहा)** सत्यक्रिया से **(अशिमिदाय)** भोग्य अन्न जिसमें स्नेह करनेवाला है, उस रस और **(वाताय)** उदान वायु के लिये **(त्वा)** तुझको समीप स्वीकार करता हूं॥७॥

भावार्थः-इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र में से **(उप, यच्छामि)** इन पदों की अनुवृति आती है। विवाह किये हुए स्त्री-पुरुष सृष्टिविद्या की उन्नति के लिये प्रयत्न किया करें॥७॥

इन्द्रायेत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। इन्द्रो देवता। अष्टिश्छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनः स्त्रीपुरुषैः किं कर्त्तव्यमित्याह॥

फिर स्त्री-पुरुषों को क्या करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

इन्द्राय त्वा वसुमते रुद्रवते स्वाहेन्द्राय त्वादित्यवते स्वाहेन्द्राय त्वाभिमातिघ्ने स्वाहा। सवित्रे त्वऽऋभुमते विभुमते वाजवते स्वाहा बृहस्पतये त्वा विश्वदेव्यावते स्वाहा॥८॥

इन्द्राय। त्वा। वसुमत इति वसुऽमते। रुद्रवत इति रुद्रऽवते। स्वाहा। इन्द्राय। त्वा। आदित्यवत इत्यादित्यऽवते। स्वाहा। इन्द्राय। त्वा। अभिमातिघ्न इत्यभिऽमातिघ्ने। स्वाहा॥ सवित्रे। त्वा। ऋभुमत इत्यृभुऽमते। विभुमत इति विभुऽमते। वाजवत इति वाजऽवते। स्वाहा। बृहस्पतये। त्वा। विश्वदेव्यावते। विश्वेदेव्यवत इति विश्वऽदेव्यऽवते। स्वाहा॥८॥

पदार्थः-**(इन्द्राय)** परमैश्वर्याय **(त्वा)** त्वां स्त्रियं पुरुषं वा **(वसुमते)** बहुधनयुक्ताय **(रुद्रवते)** बहवो रुद्राः प्राणा विद्यन्ते यस्मिँस्तस्मै **(स्वाहा)** सत्यया वाचा क्रियया वा **(इन्द्राय)** दुःखविदारकाय **(त्वा)** **(आदित्यवते)** पूर्णविद्यायुक्तपाण्डित्यवते **(स्वाहा)** **(इन्द्राय)** परमैश्वर्यप्रदाय **(त्वा)** **(अभिमातिघ्ने)** योऽभिमातीन् शत्रून् हन्ति तस्मै **(स्वाहा)** **(सवित्रे)** सवितृविद्याविदे **(त्वा)** **(ऋभुमते)** बहव ऋभवो मेधाविनो विद्यन्ते यस्मिँस्तस्मै **(विभुमते)** विभवः पदार्था विदिता येन तस्मै **(वाजवते)** पुष्कलान्नयुक्ताय **(स्वाहा)** **(बृहस्पतये)** बृहत्या वाचः पत्ये **(त्वा)** **(विश्वदेव्यावते)** विश्वानि देव्यानि विद्यन्ते यस्मिँस्तस्मै **(स्वाहा)**॥८॥

अन्वयः-हे स्त्रि पुरुष! वाऽहं स्वाहा वसुमत इन्द्राय त्वा स्वाहाऽऽदित्यवते रुद्रवत इन्द्राय त्वा स्वाहाऽभिमातिघ्न इन्द्राय त्वा स्वाहा सवित्र ऋभुमते विभुमते वाजवते त्वा स्वाहा बृहस्पतये विश्वदेव्यावते त्वोपयच्छमि॥८॥

भावार्थः-अत्राप्युपयच्छामीति पदे अनुवर्त्तेते। ये स्त्रीपुरुषा वसुभिरादित्यैरैश्वर्यमुन्नयन्ति ते विघ्नान् हत्वा बुद्धिमतः सन्तानान् प्राप्य सर्वस्य रक्षां विधातुं शक्नुवन्ति॥८॥

पदार्थः-हे स्त्री वा पुरुष! मैं **(स्वाहा)** सत्यवाणी से **(वसुमते)** बहुत धनयुक्त **(इन्द्राय)** उत्तम ऐश्वर्यवाले सन्तान के अर्थ **(त्वा)** तुझको **(स्वाहा)** उत्तम क्रिया से **(आदित्यवते)** समस्त विद्याओं की पण्डिताई से युक्त **(रुद्रवते)** बहुत प्राणों के बलवाले **(इन्द्राय)** दुःखनाशक सन्तान के लिये **(त्वा)** तुझको **(स्वाहा)** सत्यवाणी से **(अभिमातिघ्ने)** शत्रुओं को मारनेवाले **(इन्द्राय)** उत्तम ऐश्वर्य देनेवाले सन्तान के लिये **(त्वा)** तुझको **(स्वाहा)** सत्यक्रिया से **(सवित्रे)** सूर्यविद्या के ज्ञाता **(ऋभुमते)** अनेक बुद्धिमानों के साथी **(विभुमते)** विभु आकाशदि पदार्थों को जिसने जाना है, **(वाजवते)** पुष्कल अन्नवाले सन्तान के अर्थ **(त्वा)** तुझको और **(स्वाहा)** सत्यवाणी से **(बृहस्पतये)** बड़ी वेदरूपवाणी के रक्षक **(विश्वदेव्यावते)** समस्त विद्वानों के हितकारी पदार्थोंवाले सन्तान के लिये **(त्वा)** तुझको ग्रहण करता वा करती हूं॥८॥

भावार्थः-इस मन्त्र में भी **(उप, यच्छामि)** इन पदों की अनुवृत्ति आती है। जो स्त्री-पुरुष पृथिवी आदि वसुओं और चैत्रादि महीनों से अपने ऐश्वर्य को बढ़ाते हैं, वे विघ्नों को नष्ट कर बुद्धिमान् सन्तानों को प्राप्त होकर सबकी रक्षा करने को समर्थ होते हैं॥८॥

यमायेत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। वायुर्देवता। भुरिग्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यमाय त्वाङ्गिरस्वते पितृमते स्वाहा।

स्वाहा॑ घ॒र्माय॒ स्वाहा॑ घ॒र्मः पि॒त्रे॥९॥

य॒माय॑। त्वा॒। अङ्गि॑रस्वते। पि॒तृ॒मत॒ इति॑ पितृ॒मते। स्वाहा॑॥ स्वाहा॑। घ॒र्माय॑। स्वाहा॑। घ॒र्मः। पि॒त्रे॥९॥

पदार्थ:-(**यमाय**) न्यायाधीशाय (**त्वा**) त्वाम् (**अङ्गिरस्वते**) विद्युदादिविद्या यस्मिन् विद्यन्ते तस्मै (**पितृमते**) पितर: पालका विज्ञानिनो विद्यन्ते यस्मिंस्तस्मै (**स्वाहा**) (**स्वाहा**) (**घर्माय**) यज्ञाय (**स्वाहा**) (**घर्म:**) यज्ञ: (**पित्रे**) पालकाय॥९॥

अन्वय:-हे स्त्रि पुरुष वा! घर्मोऽहं स्वाहाऽङ्गिरस्वते यमाय पितृमते स्वाहा घर्माय स्वाहा पित्रे त्वोपयच्छामि॥९॥

भावार्थ:-अत्रोपयच्छामीति पदे अनुवर्त्तेते। यौ स्त्रीपुरुषौ प्राणवन्न्यायं जनकान् विदुषश्च सेवेतां तौ यज्ञवत् सर्वेषां सुखकरौ स्याताम्॥९॥

पदार्थ:-हे स्त्रि वा पुरुष! (**घर्म:**) यज्ञ के तुल्य प्रकाशमान मैं (**स्वाहा**) सत्यवाणी से (**अङ्गिरस्वते**) विद्युत् आदि विद्या जानने वाले (**यमाय**) न्यायाधीश के अर्थ (**पितृमते**) रक्षक ज्ञानी जनों से युक्त सन्तान के लिये (**स्वाहा**) सत्यक्रिया से (**घर्माय**) यज्ञ के लिये और (**स्वाहा**) सत्यक्रिया से (**पित्रे**) रक्षक के लिये (**त्वा**) तुझको स्वीकार करती वा करता हूं॥९॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में भी (**उप, यच्छामि**) पदों की अनुवृत्ति आती है। जो स्त्री-पुरुष प्राण के तुल्य, न्याय, पितरों और विद्वानों का सेवन करें, वे यज्ञ के तुल्य सबको सुखकारी होवें॥९॥

अश्वा इत्यस्य दीर्घतमा ऋषि: अश्विनौ देवते। अनुष्टुप् छन्द:। गान्धार: स्वर:॥

पुनरध्यापकोपदेशकौ किं कुर्यातामित्याह॥

फिर अध्यापक-उपदेशक क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

विश्वा॒ऽआशा॑ दक्षिण॒सद् विश्वा॑न् दे॒वानया॑डि॒ह।

स्वाहा॑कृतस्य घ॒र्मस्य॒ मधो॑: पिबतमश्विना॥१०॥

विश्वा॑:। आशा॑:। द॒क्षि॒ण॒सदिति दक्षिण॒ऽसत्। विश्वा॑न्। दे॒वान्। अया॑ट्। इ॒ह॥ स्वाहा॑कृ॒त॒स्येति॒ स्वाहा॑ऽकृतस्य। घ॒र्मस्य॑। मधो:। पि॒ब॒त॒म्। अ॒श्वि॒ना॒॥१०॥

पदार्थ:-(**विश्वा:**) सर्वा: (**आशा:**) दिश: (**दक्षिणसत्**) यो दक्षिणे देशे सीदति (**विश्वान्**) समग्रान् (**देवान्**) शुभान् गुणान् विदुषो वा (**अयाट्**) यजेत् सङ्गच्छेत् (**इह**) अस्मिन् संसारे (**स्वाहाकृतस्य**) सत्यक्रियानिष्पन्नस्य (**घर्मस्य**) यज्ञस्य (**मधो:**) मधुरादिगुणयुक्तस्य (**पिबतम्**) (**अश्विना**) अध्यापकोपदेशकौ॥१०॥

अन्वय:-हे अश्विना! यथा युवामिह स्वाहाकृतस्य घर्मस्य मधोरवशिष्टं भागं पिबतं तथाऽयं दक्षिणसज्जनो विश्वा आशा विश्वान् देवानयाट् सङ्गच्छेत्॥१०॥

भावार्थः-यथोपदेशकाध्यापकाः शिक्षेरन्नध्यापयेयुश्च तथैव सर्वे सङ्गृह्णीयुः॥१०॥

पदार्थः-हे **(अश्विना)** अध्यापक उपदेशक लोगो! तुम **(इह)** इस जगत् में **(स्वाहाकृतस्य)** सत्यक्रिया से सिद्ध हुए **(घर्मस्य, मधोः)** मधुरादि गुणयुक्त यज्ञ के अवशिष्ट भाग को **(पिबतम्)** पिओ, वैसे यह **(दक्षिणसत्)** वेदी से दक्षिण दिशा में बैठनेवाला आचार्य्य **(विश्वाः)** सब **(आशाः)** दिशाओं तथा **(विश्वान्)** समस्त **(देवान्)** उत्तम गुणों वा विद्वानों का **(अयाट्)** संग वा सेवन पूजन करे॥१०॥

भावार्थः-जैसे उपदेशक शिक्षा करें और अध्यापक पढ़ावें, वैसे ही सब लोग ग्रहण करें॥१०॥

दिवि धा इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। यज्ञो देवता। विराडुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

पुनः स्त्रीपुरुषाः किं कुर्य्युरित्याह॥

फिर स्त्री-पुरुष क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

दिवि धाऽइमं यज्ञमिमं यज्ञं दिवि धाः।

स्वाहाऽग्नये यज्ञियाय शं यजुर्भ्यः॥ ११॥

दिवि। धाः। इमम्। यज्ञम्। इमम्। यज्ञम्। दिवि। धाः॥ स्वाहा। अग्नये। यज्ञियाय। शम्। यजुर्भ्य इति यजुःऽभ्यः॥ ११॥

पदार्थः-**(दिवि)** सूर्य्यादिप्रकाशे **(धाः)** धेहि **(इमम्)** गृहाश्रमव्यवहारोपयोगिनम् **(यज्ञम्)** सङ्गन्तुमर्हम् **(इमम्)** परमार्थसिद्धिकरं संन्यासाश्रमोपयोगिनम् **(यज्ञम्)** विद्वत्सङ्गयुक्तम् **(दिवि)** विज्ञानप्रकाशे **(धाः)** धेहि **(स्वाहा)** सत्यया क्रियया **(अग्नये)** पावकाय **(यज्ञियाय)** यज्ञार्हाय **(शम्)** सुखम् **(यजुर्भ्यः)** याजकेभ्यो यजुर्वेदविभागेभ्यो वा॥११॥

अन्वयः-हे स्त्रि पुरुष वा! त्वं यजुर्भ्यः स्वाहाऽग्नये यज्ञियाय दिवीमं यज्ञं शं धाः। दिवीमं यज्ञं शं धाः॥११॥

भावार्थः-ये स्त्रीपुरुषा ब्रह्मचर्य्येणाऽखिलां विद्यासुशिक्षां प्राप्य वेदरीत्या कर्माण्यनुतिष्ठेयुस्तेऽतुलं सुखं लभेरन्॥११॥

पदार्थः-हे स्त्री वा पुरुष! तू **(यजुर्भ्यः)** यज्ञ करानेहारे वा यजुर्वेद के विभागों से **(स्वाहा)** सत्यक्रिया के साथ **(अग्नये)** **(यज्ञियाय)** यज्ञकर्म के योग्य अग्नि के लिये **(दिवि)** सूर्य्यादि के प्रकाश में **(इमम्)** इस **(यज्ञम्)** सङ्ग करने योग्य गृहाश्रम व्यवहार के उपयोगी यज्ञ को **(शम्)** सुखपूर्वक **(धाः)** धारण कर **(दिवि)** विज्ञान के प्रकाश में **(इमम्)** इस परमार्थ के साधक संन्यास आश्रम के उपयोगी **(यज्ञम्)** विद्वानों के संगरूप यज्ञ को सुखपूर्वक **(धाः)** धारण कर॥११॥

भावार्थः-जो स्त्री-पुरुष ब्रह्मचर्य के साथ विद्यायुक्त उत्तम शिक्षा को प्राप्त होकर वेदरीति से कर्मों का अनुष्ठान करें, वे अतुल सुख को प्राप्त होवें॥११॥

अश्विनेत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। अश्विनौ देवते। आर्ची पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अश्विना घर्मं पातꣳ हार्द्वानमहर्दिवाभिरूतिभिः।

तन्त्रायिणे नमो द्यावापृथिवीभ्याम्॥१२॥

अश्विना। घर्मम्। पातम्। हार्द्वानम्। अहः। दिवाभिः। ऊतिभिरित्यूतिऽभिः॥ तन्त्रायिणे। नमः। द्यावापृथिवीभ्याम्॥१२॥

पदार्थः-(**अश्विना**) सुशिक्षितौ स्त्रीपुरुषौ (**घर्मम्**) (**पातम्**) रक्षतम् (**हार्द्वानम्**) हृदं वनति सम्भजति येन तदेव (**अहः**) प्रतिदिनम् (**दिवाभिः**) अहर्निशवर्त्तमानाभिः (**ऊतिभिः**) रक्षादिभिः (**तन्त्रायिणे**) तन्त्राणि कलाशास्त्राणि अयितुं ज्ञातुं प्राप्तुं वा शीलं यस्य तस्मै (**नमः**) अन्नम् (**द्यावापृथिवीभ्याम्**) सूर्यान्तरिक्षाभ्याम्॥१२॥

अन्वयः-हे अश्विना स्त्रीपुरुषौ! युवामहर्दिवाभिरूतिभिस्तन्त्रायिणे हार्द्वानं घर्मं पातं द्यावापृथिवीभ्यां तन्त्रायिणे नमो दत्तम्॥१२॥

भावार्थः-यथा भूमिसूर्य्यौ सदा परस्परोपकारिणौ सह वर्त्तेते, तथा सौहार्देन सहितौ सततं स्त्रीपुरुषौ वर्त्तेयाताम्॥१२॥

पदार्थः-हे (**अश्विना**) सुशिक्षित स्त्री-पुरुष! तुम (**अहः**) प्रतिदिन (**दिवाभिः**) दिन-रात वर्त्तमान (**ऊतिभिः**) रक्षादि क्रियाओं से (**तन्त्रायिणे**) शिल्पविद्या के शास्त्रों को जानने वा प्राप्त होने के लिये (**हार्द्वानम्**) हृदय को प्राप्त हुए ज्ञानसम्बन्धी (**घर्मम्**) यज्ञ की (**पातम्**) रक्षा करो और (**द्यावापृथिवीभ्याम्**) सूर्य और आकाश के सम्बन्ध से शिल्पशास्त्रज्ञ पुरुष के लिये (**नमः**) अन्न को देओ॥१२॥

भावार्थः-जैसे भूमि और सूर्य परस्पर उपकारी हुए साथ वर्त्तमान हैं, वैसे मित्रभाव से युक्त स्त्री-पुरुष निरन्तर वर्त्ता करें॥१२॥

अपातामित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। अश्विनौ देवते। निचृदुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अपातामश्विना घर्ममनु द्यावापृथिवी अमꣳसाताम्।

इ॒हैव रा॒तयः॑ सन्तु॥१३॥

अपा॑ताम्। अ॒श्विना॑। घ॒र्मम्। अनु॑। द्यावा॑पृथि॒वी इति॒ द्यावा॑पृथि॒वी। अ॒म॒ꣳसा॒ता॒म्॥ इ॒ह। ए॒व। रा॒तयः॑। स॑न्तु॒॥१३॥

पदार्थः-(**अपाताम्**) रक्षेतम् (**अश्विना**) सुरीत्या वर्त्तमानौ स्त्रीपुरुषौ (**घर्मम्**) गृहाश्रमव्यवहाराऽनुष्ठानम् (**अनु**) आनुकूल्ये (**द्यावापृथिवी**) सूर्य्यभूमी इव (**अमंसाताम्**) मन्येताम् (**इह**) अस्मिन्नाश्रमे (**एव**) (**रातयः**) विद्यादिसुखदानानि (**सन्तु**)॥१३॥

अन्वयः-हे अश्विना! युवां वायुविद्युताविव घर्ममपातां द्यावापृथिवी इव घर्ममन्वमंसातां यत इह रातय एव सन्तु॥१३॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा वायुविद्युतौ भूमिसूर्यौ सह वर्त्तित्वा सुखानि दत्तस्तथैव स्त्रीपुरुषौ प्रीत्या सह वर्त्तमानौ सर्वेभ्योऽतुलं सुखं दद्याताम्॥१३॥

पदार्थः-हे (**अश्विना**) सुन्दर रीति से वर्त्तमान स्त्री-पुरुष! तुम वायु और बिजुली के तुल्य (**घर्मम्**) गृहाश्रम व्यवहार के अनुष्ठान की (**अपाताम्**) रक्षा करो (**द्यावापृथिवी**) सूर्य्य-भूमि के समान गृहाश्रम व्यवहार के अनुष्ठान का (**अनु, अमंसाताम्**) अनुमान किया करो, जिससे कि (**इह**) गृहाश्रम में (**रातयः**) विद्यादिजन्य सुखों के दान (**एव**) ही (**सन्तु**) होवें॥१३॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे वायु और बिजुली तथा सूर्य और भूमि साथ वर्त्तकर सुख देते हैं, वैसे स्त्री-पुरुष प्रीति के साथ वर्त्तमान हुए सबके लिये अतुल सुख देवें॥१३॥

इषे पिन्वस्वेत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। द्यावापृथिवी देवते। अतिशक्वरी छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

इ॒षे पि॑न्वस्वो॒र्जे पि॑न्वस्व॒ ब्रह्म॑णे पिन्वस्व क्ष॒त्राय॑ पिन्वस्व॒ द्यावा॑पृथि॒वीभ्यां॑ पिन्वस्व। धर्मा॑सि सु॒धर्मामे॑न्य॒स्मे नृ॒म्णानि॑ धारय॒ ब्रह्म॑ धारय क्ष॒त्रं धा॑रय॒ विशं॑ धारय॥१४॥

इ॒षे। पि॒न्व॒स्व॒। ऊ॒र्जे। पि॒न्व॒स्व॒। ब्रह्म॑णे। पि॒न्व॒स्व॒। क्ष॒त्राय॑। पि॒न्व॒स्व॒। द्यावा॑पृथि॒वीभ्या॑म्। पि॒न्व॒स्व॒॥ धर्म॑। अ॒सि॒। सु॒धर्मेति॑ सु॒ऽधर्म॑। अमे॑नि। अ॒स्मेऽइत्य॒स्मे। नृ॒म्णानि॑। धा॒र॒य॒। ब्रह्म॑। धा॒र॒य॒। क्ष॒त्रम्। धा॒र॒य॒। विश॑म्। धा॒र॒य॒॥१४॥

पदार्थः-(**इषे**) अन्नाद्याय (**पिन्वस्व**) सेवस्व (**ऊर्जे**) बलाद्याय (**पिन्वस्व**) (**ब्रह्मणे**) वेदविज्ञानाय परमेश्वराय वेदविदे ब्राह्मणाय वा (**पिन्वस्व**) (**क्षत्राय**) राज्याय (**पिन्वस्व**)

(द्यावापृथिवीभ्याम्) भूमिसूर्य्याभ्याम् **(पिन्वस्व)** **(धर्म)** सत्यधारक **(असि)** **(सुधर्म)** शोभनो धर्मो यस्य तत्सम्बुद्धौ **(अमेनि)** अहिंसकः सन्। अत्र **सुपां सुलुग्** [अ०७.१.३९] इति सुलोपः। **(अस्मे)** अस्मभ्यम् **(नृम्णानि)** धनानि **(धारय)** **(ब्रह्म)** वेदं ब्राह्मणं वा **(धारय)** **(क्षत्रम्)** राज्यं वा **(धारय)** **(विशम्)** प्रजाम् **(धारय)**॥१४॥

अन्वयः-हे धर्म सुधर्म पुरुष वा स्त्रि वा! त्वममेन्यसि येनाऽस्मे नृम्णानि धारय, ब्रह्म धारय, क्षत्रं धारय, विशं धारय, तेनेषेपिन्वस्वोर्जे पिन्वस्व, ब्रह्मणे पिन्वस्व, क्षत्राय पिन्वस्व, द्यावापृथिवीभ्यां पिन्वस्व॥१४॥

भावार्थः-ये स्त्रीपुरुषा अहिंसका धार्मिकाः सन्तः स्वयं धनानि विद्यां राज्यं प्रजां च धृत्वाऽन्यान् धारयेयुस्तेऽन्नबलविद्याराज्यानि प्राप्य भूमिसूर्य्यवद् दृष्टसुखा जायेरन्॥१४॥

पदार्थः-हे **(धर्म)** सत्य के धारक **(सुधर्म)** सुन्दर धर्मयुक्त पुरुष वा स्त्री! तू **(अमेनि)** हिंसा धर्म से रहित **(असि)** है, जिससे **(अस्मे)** हमारे लिये **(नृम्णानि)** धनों को **(धारय)** धारण कर **(ब्रह्म)** वेद वा ब्राह्मण को **(धारय)** धारण कर **(क्षत्रम्)** वा राज्य को **(धारय)** धारण कर **(विशम्)** प्रजा को **(धारय)** धारण कर, उससे **(इषे)** अन्नादि के लिये **(पिन्वस्व)** सेवन कर **(ऊर्जे)** बल आदि के लिये **(पिन्वस्व)** सेवन कर **(ब्रह्मणे)** वेद विज्ञान परमेश्वर वा वेदज्ञ ब्राह्मण के लिये **(पिन्वस्व)** सेवन कर **(क्षत्राय)** राज्य के लिये **(पिन्वस्व)** सेवन कर और **(द्यावापृथिवीभ्याम्)** भूमि और सूर्य के लिये **(पिन्वस्व)** सेवन कर॥१४॥

भावार्थः-जो स्त्री-पुरुष अहिंसक धर्मात्मा हुए आप ही धन, विद्या, राज्य और प्रजा को धारण करें, वे अन्न, बल, विद्या और राज्य को पाकर भूमि और सूर्य के तुल्य प्रत्यक्ष सुखवाले होवें॥१४॥

स्वाहा पूष्ण इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। पूषादयो लिङ्गोक्ता देवताः। स्वराड् जगती छन्दः।
निषादः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

स्वाहा॑ पू॒ष्णे शर॑से॒ स्वाहा॒ ग्राव॑भ्यः॒ स्वाहा॑ प्रतिर॒वेभ्यः॑। स्वाहा॑ पि॒तृभ्यः॑ ऊ॒र्ध्वब॑र्हिभ्यो घर्म॒पाव॑भ्यः॒ स्वाहा॒ द्यावा॑पृथि॒वीभ्या॒ᳬ स्वाहा॒ विश्वे॑भ्यो दे॒वेभ्यः॑॥१५॥

स्वाहा॑। पू॒ष्णे। शर॑से। स्वाहा॑। ग्राव॑भ्य॒ इति॒ ग्राव॑ऽभ्यः। स्वाहा॑। प्र॒ति॒र॒वेभ्य॒ इति॑ प्रति॒ऽर॒वेभ्यः॑॥ स्वाहा॑। पि॒तृभ्य॒ इति॒ पि॒तृऽभ्यः॑। ऊ॒र्ध्वब॑र्हिभ्य॒ इत्यू॒र्ध्वऽब॑र्हिःऽभ्यः। घ॒र्म॒पाव॑भ्य॒ इति॑ घ॒र्म॒ऽपाव॑भ्यः। स्वाहा॑। द्यावा॑पृथि॒वीभ्या॑म्। स्वाहा॑। विश्वे॑भ्यः। दे॒वेभ्यः॑॥१५॥

पदार्थः-(**स्वाहा**) सत्या क्रिया (**पूष्णे**) पुष्टिकारकाय (**शरसे**) हिंसकाय (**स्वाहा**) सत्या वाक् (**ग्रावभ्यः**) गर्जकेभ्यो मेघेभ्यः। **ग्रावेति मेघनामसु पठितम्॥** (निघं०१।१०) (**स्वाहा**) (**प्रतिरवेभ्यः**) ये रवान् प्रतिरुवन्ति शब्दायन्ते तेभ्यः (**स्वाहा**) (**पितृभ्यः**) पालकेभ्य ऋतव इव वर्त्तमानेभ्यः (**ऊर्द्ध्वबर्हिर्भ्यः**) ऊर्द्ध्वमुत्कृष्टं बर्हिर्वर्द्धनं येभ्यस्तेभ्यः (**घर्मपावभ्यः**) घर्मेण यज्ञेन पवित्रीकर्त्तृभ्यः (**द्यावापृथिवीभ्याम्**) सूर्य्यान्तरिक्षाभ्याम् (**स्वाहा**) (**विश्वेभ्यः**) समग्रेभ्यः (**देवेभ्यः**) दिव्येभ्यो पृथिव्यादिभ्यो विद्वद्भ्यो वा॥१५॥

अन्वयः-स्त्रीपुरुषैः पूष्णे शरसे स्वाहा प्रतिरवेभ्यः स्वाहा ग्रावभ्यः स्वाहोर्द्ध्वबर्हिर्भ्यो घर्मपावभ्यः पितृभ्यः स्वाहा द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यश्च स्वाहा सदा प्रयोज्या॥१५॥

भावार्थः-स्त्रीपुरुषैः सत्येन विज्ञानेन सत्यया क्रिययेदृशः पुरुषार्थः कर्त्तव्यो येन विश्वं पुष्टमानन्दितं स्यात्॥१५॥

पदार्थः-स्त्री-पुरुष को योग्य है कि (**पूष्णे**) पुष्टिकारक (**शरसे**) हिंसक के लिये (**स्वाहा**) सत्यक्रिया अर्थात् अधर्म से बचाने का उपाय (**प्रतिरवेभ्यः**) शब्द के प्रति शब्द करनेहारों के लिये (**स्वाहा**) सत्यवाणी (**ग्रावभ्यः**) गर्जनेवाले मेघों के लिये (**स्वाहा**) सत्यक्रिया (**ऊर्द्ध्वबर्हिभ्यः**) उत्तम कक्षा तक बढ़े हुए (**घर्मपावभ्यः**) यज्ञ से संसार को पवित्र करनेहारे (**पितृभ्यः**) रक्षक ऋतुओं के तुल्य वर्त्तमान सज्जनों के लिये (**स्वाहा**) सत्यवाणी (**द्यावापृथिवीभ्याम्**) सूर्य्य और आकाश के लिये (**स्वाहा**) सत्यक्रिया और (**विश्वेभ्यः**) समग्र (**देवेभ्यः**) पृथिव्यादि वा विद्वानों के लिये (**स्वाहा**) सत्यक्रिया वा सत्यवाणी का सदा प्रयोग किया करें॥१५॥

भावार्थः-स्त्री-पुरुषों को चाहिये कि सत्यविज्ञान और सत्यक्रिया से ऐसा पुरुषार्थ करें, जिससे सबको पुष्टि और आनन्द होवे॥१५॥

स्वाहा रुद्रायेत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। रुद्रादयो देवताः। भुरिगतिधृतिश्छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनर्मनुष्यैः किं कर्त्तव्यमित्याह॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

स्वाहा॑ रु॒द्राय॑ रु॒द्रहू॑तये॒ स्वाहा॒ सं ज्योति॑षा॒ ज्योतिः॑।
अह॑ः के॒तुना॑ जुषताꣳ सु॒ज्योति॒र्ज्योति॑षा॒ स्वाहा॑।
रात्रिः॑ के॒तुना जुषताꣳ सु॒ज्योति॒र्ज्योति॑षा॒ स्वाहा॑।
मधु॑ हु॒तमिन्द्र॑तमेऽअ॒ग्नाव॒श्याम॑ ते देव घर्म॒ नम॑स्तेऽअस्तु॒ मा मा॑ हिꣳसीः॥१६॥

स्वाहा॑। रु॒द्राय॑। रु॒दाय॑। रु॒द्रहू॑तय॒ इति॑ रु॒द्रऽहू॑तये। स्वाहा॑। सम्। ज्योति॑षा। ज्योतिः॑। अह॒रित्यह॑ः। के॒तुना॑। जु॒ष॒ता॒म्। सु॒ज्योति॒रिति॑ सु॒ऽज्योतिः॑। ज्योति॑षा। स्वाहा॑। रात्रिः॑। के॒तुना॑। जु॒ष॒ता॒म्। सु॒ज्योति॒रिति॑

सुऽज्योतिः। ज्योतिषा। स्वाहा। रात्रिः। केतुना। जुषताम्। सुज्योतिरिति। सुऽज्योतिः। ज्योतिषा। स्वाहा॥ मधु। हुतम्। इन्द्रतम इतीन्द्रऽतमे। अग्नौ। अश्याम। ते। देव। घर्म। नमः। ते। अस्तु। मा। मा। हिंसीः॥ १६॥

पदार्थः-(**स्वाहा**) (**रुद्राय**) जीवाय (**रुद्रहूतये**) रुद्राः प्राणा जीवा वा हूयन्ते स्तूयन्ते येन तस्मै (**स्वाहा**) (**सम्**) (**ज्योतिषा**) प्रकाशेन (**ज्योतिः**) प्रकाशम् (**अहः**) दिनम् (**केतुना**) प्रज्ञया। **केतुरिति प्रज्ञानामसु पठितम्॥** (निघं० ३।९) (**जुषताम्**) सेवताम् (**सुज्योतिः**) शोभनं विद्यादिसद्गुणप्रकाशम् (**ज्योतिषा**) सत्यविद्योपदेशरूपप्रकाशेन (**स्वाहा**) (**रात्रिः**) रात्रिम्। अत्र विभक्तिव्यत्ययः। (**केतुना**) संकेतरूपचिह्नेन (**जुषताम्**) (**सुज्योतिः**) धर्मादिसद्गुणप्रकाशम् (**ज्योतिषा**) मननादिरूपप्रकाशेन (**स्वाहा**) (**मधु**) मधुरादिगुणयुक्तं घृतादि (**हुतम्**) वह्नौ प्रक्षिप्तम् (**इन्द्रतमे**) अतिशयेनैश्वर्य्यकारके विद्युद्रूपे (**अग्नौ**) पावके (**अश्याम**) प्राप्नुयाम (**ते**) तुभ्यम् (**देव**) विद्वन् (**घर्म**) प्रकाशमान (**नमः**) (**ते**) (**अस्तु**) (**मा**) निषेधे (**मा**) माम् (**हिंसीः**) हिंस्याः॥ १६॥

अन्वयः-हे स्त्रि पुरुष वा! भवति भवन्वा केतुना रुद्राय रुद्रहूतये स्वाहा ज्योतिषा ज्योतिः स्वाहा ज्योतिषा सुज्योतिरहः स्वाहा संजुषताम्। केतुना ज्योतिषा सुज्योतिः रात्री रात्रिं स्वाहा जुषताम्। हे देव घर्म! येन त इन्द्रतमेऽग्नौ मधु हुतमश्याम ते नमोऽस्तु, त्वं मा मा हिंसीः॥ १६॥

भावार्थः-मनुष्यैः प्राणानां जीवनस्य समाजस्य च रक्षणाय विज्ञानेन कर्माण्यहोरात्रश्च युक्त्या सेवनीयः, प्रतिदिनं प्रातः सायं कस्तूर्यादिसुगन्धियुक्तं घृतं वह्नौ हुत्वा वाय्वादिशुद्धिद्वारा नित्यं मोदनीयम्॥ १६॥

पदार्थः-हे स्त्रि वा पुरुष! आप (**केतुना**) बुद्धि से (**रुद्रहूतये**) प्राण वा जीवों की स्तुति करनेवाले (**रुद्राय**) जीव के लिये (**स्वाहा**) सत्यवाणी से (**ज्योतिषा**) प्रकाश के साथ (**ज्योतिः**) प्रकाश को (**स्वाहा**) सत्यक्रिया से युक्त (**ज्योतिषा**) सत्य विद्या के उपदेशरूप प्रकाश के साथ (**सुज्योतिः**) सुन्दर विद्यादि सद्गुणों के प्रकाश तथा (**अहः**) दिन को (**स्वाहा**) सत्यक्रिया से (**सम्, जुषताम्**) सम्यक् सेवन करो (**केतुना**) संकेतरूप चिह्न और (**ज्योतिषा**) मननादि रूप प्रकाश के साथ (**ज्योतिः**) धर्मादिरूप सद्गुणों के प्रकाश और (**रात्रिः**) रात्रि को (**स्वाहा**) सत्यक्रिया) से (**जुषताम्**) सेवन करो। हे (**घर्म**) प्रकाशमान (**देव**) विद्वान् जन जिससे (**ते**) आपके लिये (**इन्द्रतमे**) अतिशय ऐश्वर्य्य के हेतु विद्युत्रूप (**अग्नौ**) अग्नि में (**हुतम्**) होम किये (**मधु**) मधुरादि गुणयुक्त घृतादि पदार्थ को घ्राण द्वारा (**अश्याम**) प्राप्त होवें (**ते**) आपके लिये (**नमः**) नमस्कार (**अस्तु**) प्राप्त हो आप (**मा**) मुझको (**मा**) मत (**हिंसीः**) मारिये॥ १६॥

भावार्थः-मनुष्यों को योग्य है कि प्राण, जीवन और समाज की रक्षा के लिये विज्ञान के साथ कर्म और दिन-रात्रि का युक्ति से सेवन करें और प्रतिदिन प्रातः-सायंकाल में कस्तूरी आदि

सुगन्धित द्रव्ययुक्त घृत को अग्नि में होम कर वायु आदि की शुद्धि द्वारा नित्य आनन्दित होवें॥१६॥

अभीममित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदतिशक्वरी छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अभीमं महिमा दिवं विप्रो बभूव सप्रथाः।

उत श्रवसा पृथिवीꣳ सꣳ सीदस्व महाँ२ऽ असि रोचस्व देववीतमः।

वि धूममग्नेऽअरुषं मियेद्ध्य सृज प्रशस्त दर्शतम्॥१७॥

अभि। इमम्। महिमा। दिवम्। विप्रः। बभूव। सप्रथा इति सऽप्रथाः। उत। श्रवसा। पृथिवीम्। सम्। सीदस्व। महान्। असि। रोचस्व। देववीतम इति देवऽवीतमः। वि। धूमम्। अग्ने। अरुषम्। मियेध्य। सृज। प्रशस्त। दर्शतम्॥१७॥

पदार्थः-(**अभि**) आभिमुख्ये (**इमम्**) (**महिमा**) (**दिवम्**) अविद्यागुणप्रकाशम् (**विप्रः**) मेधावी (**बभूव**) भवति (**सप्रथाः**) सुकीर्त्तिप्रख्यातियुक्तः (**उत**) अपि (**श्रवसा**) श्रवणेनाऽन्नेन वा (**पृथिवीम्**) भूमिम् (**सम्**) (**सीदस्व**) सम्यगास्व (**महान्**) (**असि**) (**रोचस्व**) अभितः प्रीतो भव (**देववीतमः**) यो देवान् दिव्यान् गुणान् विदुषो वेति व्याप्नोति प्राप्नोति सोऽतिशयितः (**वि**) (**धूमम्**) (**अग्ने**) अग्निरिव प्रकाशमान विद्वन्! (**अरुषम्**) आरक्तरूपविशिष्टम् (**मियेध्य**) दुष्टानां प्रक्षेपणशील! (**सृज**) सर्जय (**प्रशस्त**) (**दर्शतम्**) दर्शनीयम्॥१७॥

अन्वयः-हे प्रशस्त मियेध्याग्ने! महिमा सप्रथा विप्रस्त्वमिमं दिवमभि बभूव। उतापि श्रवसा पृथिवीं सं सीदस्व यतो देववीतमो महानसि तस्माद्रोचस्वारुषं दर्शतं धूमं विसृज॥१७॥

भावार्थः-अयमेव मनुष्याणां महिमा यद् ब्रह्मचर्य्येण विद्यां प्राप्य सर्वत्र विस्तार्य्य शुभानां गुणानां प्रचारं कृत्वा सृष्टिविद्यामुन्नयन्ति॥१७॥

पदार्थः-हे (**प्रशस्त**) प्रशंसा को प्राप्त (**मियेध्य**) दुष्टों को दूर करनेहारे (**अग्ने**) अग्नि के तुल्य प्रकाशमान तेजस्वी विद्वन्! (**महिमा**) महागुणविशिष्ट (**सप्रथाः**) प्रसिद्ध उत्तम कीर्तिवाले (**विप्रः**) बुद्धिमान् आप (**इमम्**) इस (**दिवम्**) अविद्यादि गुणों के प्रकाश को (**अभि, बभूव**) तिरस्कृत करते हैं (**उत**) और (**श्रवसा**) सुनने वा अन्न के साथ (**पृथिवीम्**) भूमि पर (**सम्, सीदस्व**) सम्यक् बैठिये, जिस कारण (**देववीतमः**) दिव्य गुणों वा विद्वानों के अतिशय कर प्राप्त होनेवाले (**महान्**) महात्मा (**असि**) हैं, जिससे (**रोचस्व**) सब ओर से प्रसन्न हूजिये और (**अरुषम्**) थोड़े लाल

रङ्ग से युक्त इसी से **(दर्शतम्)** देखने योग्य **(धूमम्)** धुएं को होम द्वारा **(वि, सृज)** विशेष कर उत्पन्न कीजिये॥१७॥

भावार्थः-यही मनुष्यों की महिमा है जो ब्रह्मचर्य के साथ विद्या को प्राप्त हो सर्वत्र फैलाकर शुभ गुणों का प्रचार करके सृष्टिविद्या की उन्नति करते हैं॥१७॥

या त इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। यज्ञो देवता। भुरिगाकृतिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनः स्त्रीपुरुषाः किं कुर्युरित्याह॥

फिर स्त्री-पुरुष क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

या ते घर्म दिव्या शुग्या गायत्र्याᳬं हविर्धाने।
सा तऽ आ प्यायतान्निष्ट्यायतां तस्यै ते स्वाहा।
या ते घर्मान्तरिक्षे शुग्या त्रिष्टुभ्याग्नीध्रे।
सा तऽ आ प्यायतान्निष्ट्यायतां तस्यै ते स्वाहा।
या ते घर्म पृथिव्याᳬं शुग्या जगत्याᳬं सदस्या।
सा तऽ आ प्यायतान्निष्ट्यायतां तस्यै ते स्वाहा॥१८॥

या। ते। घर्म। दिव्या। शुक्। या। गायत्र्याम्। हविर्धान इति हविःऽधाने। सा। ते। आ। प्यायताम्। निः। स्त्यायताम्। तस्यै। ते। स्वाहा। या। ते। घर्म। अन्तरिक्षे। शुक्। या। त्रिष्टुभि। त्रिस्तुभीति त्रिऽस्तुभि। आग्नीध्रे॥ सा। ते। आ। प्यायताम्। निः। स्त्यायताम्। तस्यै। ते। स्वाहा। या। ते। घर्म। पृथिव्याम्। शुक्। या। जगत्याम्। सदस्या। सा। ते। आ। प्यायताम्। निः। स्त्यायताम्। तस्यै। ते। स्वाहा॥१८॥

पदार्थः-**(या) (ते) (घर्म)** प्रकाशात्मन् **(दिव्या)** दिव्येषु गुणेषु भवा **(शुक्)** शोचन्ति विचारयन्ति यया सा **(या) (गायत्र्याम्)** गायतो रक्षिकायां विद्यायाम् **(हविर्धाने)** हविषां धारणे **(सा) (ते)** तव **(आ) (प्यायताम्)** सर्वतो वर्द्धताम् **(निः)** नितराम् **(स्त्यायताम्)** संहता भवन्तु। अत्र व्यत्ययेनात्मनेपदम्। **(तस्यै) (ते)** तुभ्यम् **(स्वाहा)** प्रशंसिता वाक् **(या) (ते)** तव **(घर्म)** दिनमिव विशालविद्या **(अन्तरिक्षे)**आकाशे **(शुक्)** सूर्य्यस्येव प्रदीप्तिः **(या) (त्रिष्टुभि)** त्रिष्टुब् निर्मितेऽर्थे **(आग्नीध्रे)** अग्नीधः शरणे **(सा) (ते)** तव **(आ) (प्यायताम्) (निः) (स्त्यायताम्) (तस्यै) (ते) (स्वाहा) (या) (ते)** तव **(घर्म)** विद्युतः प्रकाश इव वर्त्तमान **(पृथिव्याम्)** भूमौ **(शुक्)** प्रदीप्तिः **(या) (जगत्याम्)** जगदन्वितायां सृष्टौ **(सदस्या)** सदसि सभायां भवा **(सा) (ते)** तव **(आ) (प्यायताम्) (निः) (स्त्यायताम्) (तस्यै) (ते) (स्वाहा)** सत्यविद्या॥१८॥

अन्वयः-हे घर्म विद्वन्! विदुषि वा! या ते गायत्र्यां हविर्धाने शुग्या च दिव्या वर्त्तते, सा त आप्यायतां निष्ट्यायतां तस्यै ते स्वाहा स्यात्। हे घर्म! या तेऽन्तरिक्षे शुग्या आग्नीध्रे त्रिष्टुभि शुगस्ति,

सा त आप्यायतां निष्ट्यायतां तस्यै ते स्वाहा। हे घर्म! या ते पृथिव्यां या सदस्या जगत्यां शुगस्ति, सा त आप्यायतां निष्ट्यायतां तस्यै ते स्वाहा भवतु॥१८॥

भावार्थः-ये स्त्रीपुरुषा दिव्यां क्रियां शुद्धामुपासनां पवित्रं विज्ञानं च प्राप्य प्रकाशन्ते, त एव मनुष्यजन्मफलापन्ना भवन्ति, अन्यानपि तथैव कुर्युः॥१८॥

पदार्थः-हे (**घर्म**) प्रकाशस्वरूप विद्वन्! वा विदुषी स्त्रि! (**या**) जो (**ते**) तेरी (**गायत्र्याम्**) पढ़नेवालों की रक्षक विद्या और (**हविर्धाने**) होमने योग्य पदार्थों के धारण में (**शुक्**) विचार की साधनरूप क्रिया और (**या**) जो (**दिव्या**) दिव्य गुणों में हुई क्रिया है (**सा**) वह (**ते**) तेरी (**आ, प्यायताम्**) सब ओर से बढ़े और (**निः, स्त्यायताम्**) निरन्तर संयुक्त होवे (**तस्यै**) उस क्रिया और (**ते**) तेरे लिये (**स्वाहा**) प्रशस्त वाणी होवे। हे (**घर्म**) दिन के तुल्य प्रकाशित विद्यावाले जन वा स्त्रि! (**या**) जो (**ते**) तेरी (**अन्तरिक्षे**) आकाश विषय में (**शुक्**) सूर्य्य की दीप्ति के समान विमानादि की गमन क्रिया और (**या**) जो (**आग्नीध्रे**) अग्नि के आश्रय में तथा (**त्रिष्टुभि**) त्रिष्टुप् छन्द से निकले अर्थ में विचाररूप क्रिया है (**सा**) वह (**ते**) तेरी (**आ, प्यायताम्**) बढ़े और (**निः, स्त्यायताम्**) निरन्तर संयुक्त होवे (**तस्यै**) उस क्रिया और (**ते**) तेरे लिये (**स्वाहा**) सत्यवाणी होवे। हे (**घर्म**) बिजुली के प्रकाश के तुल्य वर्त्तमान स्त्रि वा पुरुष! (**या**) जो (**ते**) तेरी (**पृथिव्याम्**) भूमि पर और (**या**) जो (**सदस्या**) सभा में हुई (**जगत्याम्**) चेतन प्रजायुक्त सृष्टि में (**शुक्**) प्रकाशयुक्त क्रिया है, (**सा**) वह (**ते**) तेरी (**आ, प्यायताम्**) बढ़े और (**निः, स्त्यायताम्**) निरन्तर सम्बद्ध होवे (**तस्यै**) उस क्रिया तथा (**ते**) तेरे लिये (**स्वाहा**) सत्यवाणी होवे॥१८॥

भावार्थः-जो स्त्री-पुरुष दिव्य क्रिया, शुद्ध उपासना और पवित्र विज्ञान को पाकर प्रकाशित हाते हैं, वे ही मनुष्यजन्म के फल से युक्त होते हैं, औरों को भी वैसा ही करें॥१८॥

क्षत्रस्येत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। यज्ञो देवता। निचृदुपरिष्टाद् बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

अथ राजप्रजे किं कुर्य्यातामित्याह॥

अब राजा और प्रजा क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

क्षत्रस्य॑ त्वा प॒रस्पा॑य॒ ब्रह्म॑णस्त॒न्वं॑ पाहि।

विश॑स्त्वा॒ धर्म॑णा व॒यमनु॑ क्रामाम सुवि॒ताय॒ नव्य॑से॥१९॥

क्षत्रस्य॑ त्वा॒। प॒रस्पा॑य। प॒रःपा॒येति॑ प॒रःऽपा॑य। ब्रह्म॑णः। त॒न्व॒म्। पा॒हि॥ विश॑ः। त्वा॒। धर्म॑णा। व॒यम्। अनु॑। क्रा॒मा॒म। सु॒वि॒ता॑य। नव्य॑से॥१९॥

पदार्थः-(**क्षत्रस्य**) राजन्यकुलस्य राष्ट्रस्य वा (**त्वा**) त्वाम् (**परस्पाय**) येन परानन्यान् पाति तस्मै (**ब्रह्मणः**) ब्रह्मविदः (**तन्वम्**) शरीरम् (**पाहि**) (**विशः**) मनुष्यादिप्रजाः। **विश इति**

मनुष्यानामसु पठितम्॥ (निघं०२।३) **(त्वा)** त्वाम् **(धर्मणा)** धर्मेण **(वयम्)** **(अनु)** **(क्रामाम)** अनुक्रमेण गच्छेम **(सुविताय)** ऐश्वर्य्यप्राप्तये **(नव्यसे)** अतिशयेन नवीनाय॥१९॥

अन्वयः-हे राजन्! राज्ञि वा! त्वं परस्पाय क्षत्रस्य ब्रह्मणस्त्वा तन्वं पाहि। यथा वयं नव्यसे सुविताय धर्मणाऽनुक्रमाम, तथैव धर्मेण वर्त्तमानं त्वा विशोऽनुगच्छन्तु॥१९॥

भावार्थः-राजा राजपुरुषैश्च धर्मेण विदुषः प्रजाश्च संरक्षणीयाः। एवं प्रजाभी राजपुरुषैश्च राजा सदा संरक्षणीय एवं न्यायविनयाभ्यां वर्त्तित्वा राजप्रजे नूतनमैश्वर्य्यमुन्नयेताम्॥१९॥

पदार्थः-हे राजन्! वा राणी! आप **(परस्पाय)** जिस कर्म से दूसरों की रक्षा हो, उस के लिये **(क्षत्रस्य)** क्षत्रिय कुल वा राज्य के तथा **(ब्रह्मणः)** वेदवित् ब्राह्मणकुल के सम्बन्धी **(त्वा)** आपके **(तन्वम्)** शरीर की **(पाहि)** रक्षा कीजिये, जैसे **(वयम्)** हम लोग **(नव्यसे)** नवीन **(सुविताय)** ऐश्वर्य्य की प्राप्ति के लिये **(धर्मणा)** धर्म के साथ **(अनुक्रामाम)** अनुकूल चलें, वैसे ही धर्म के साथ वर्त्तमान **(त्वा)** आपके अनुकूल **(विशः)** प्रजाजन चलें॥१९॥

भावार्थः-राजा और राजपुरुषों को योग्य है कि धर्म के साथ विद्वानों और प्रजाजनों की रक्षा करें। वैसे ही प्रजा और राजपुरुषों को चाहिये कि राजा की सदैव रक्षा करें। इस प्रकार न्याय तथा विनय के साथ वर्त्तकर राजा और प्रजा नवीन ऐश्वर्य की उन्नति किया करें॥१९॥

चतुःस्रक्तिरित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। यज्ञो देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनर्मनुष्या किं कुर्युरित्याह॥

फिर मनुष्य क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

चतुःस्रक्तिर्नाभिर्ऋतस्य सुप्रथाः स नो विश्वायुः सुप्रथाः स नः सर्वायुः सुप्रथाः।
अप द्वेषोऽअप ह्वरोऽन्यव्रतस्य सश्चिम॥२०॥

चतुःस्रक्तिरिति चतुःऽस्रक्तिः। नाभिः। ऋतस्य। सुप्रथा इति सुऽप्रथाः। सः। नः। विश्वायुरिति विश्वऽआयुः। सुप्रथा इति सुऽप्रथाः। सः। नः। सर्वायुरिति सर्वऽआयुः। सुप्रथा इति सुऽप्रथाः॥ अप। द्वेषः। अप। ह्वरः। अन्यव्रतस्येत्यन्यऽव्रतस्य। सश्चिम॥२०॥

पदार्थः-**(चतुःस्रक्तिः)** चतुरस्रा **(नाभिः)** नाभिरिव **(ऋतस्य)** सत्यस्वरूपस्य **(सप्रथा)** विस्तारेण सह वर्त्तमानः **(सः)** **(नः)** अस्मान् **(विश्वायुः)** सर्वमायुर्यस्य **(सप्रथाः)** विस्तारेण सह वर्त्तमानः **(सः)** **(नः)** अस्मान् **(सर्वायुः)** सम्पूर्णजीवनम् **(सप्रथाः)** विस्तीर्णसुखः **(अप)** दूरीकरणे **(द्वेषः)** ये द्विषन्ति तान् **(अप)** **(ह्वरः)** ये ह्वरन्ति कुटिलं गच्छन्ति तान् **(अन्यव्रतस्य)** अन्येषां पालने व्रतं शीलं यस्य तस्य **(सश्चिम)** दूरे प्राप्नुयाम गमयेम वा॥२०॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा चतुःस्रक्तिर्नाभिरिव सप्रथा अन्यव्रतस्यर्त्तस्य परमात्मनः सेवां करोति, स सप्रथा विश्वायुर्नोऽस्मान् बोधयतु, स सप्रथाः सर्वायुर्नः परमेश्वरविद्यां ग्राहयतु, येन वयं द्वेषोऽपसश्चिम, ह्वरोऽप सश्चिम, तथा यूयमपि कुरुत॥ २०॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे मनुष्याः! यथा प्राप्तरसा नाभी रसमुत्पाद्य सर्वान् शरीरावयवान् पुष्णाति, तथा सेविता विद्वांस उपासितः परमेश्वरश्च द्वेषं कुटिलतादिदोषांश्च निवार्य्य सर्वान् जीवान् संरक्षतीति मत्वा तेषां तस्य च सततं सेवा कार्य्या॥ २०॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे **(चतुःस्रक्तिः)** चार कोनेवाली **(नाभिः)** नाभि मध्य मार्ग के तुल्य निष्पक्ष **(सप्रथाः)** विस्तार के साथ वर्त्तमान सत्यपुरुष **(अन्यव्रतस्य)** दूसरे सब जगत् की रक्षा करने के स्वभाववाले **(ऋतस्य)** सत्यस्वरूप परमात्मा की सेवा करता **(सः)** वह **(सप्रथाः)** विस्तृत कार्य्योंवाला **(विश्वायुः)** सम्पूर्ण आयु से युक्त पुरुष **(नः)** हम लोगों को बोधित करे। **(सः)** वह **(सप्रथाः)** अधिक सुखी **(सर्वायुः)** समग्र अवस्थावाला पुरुष **(नः)** हमको ईश्वरसम्बन्धी विद्या का ग्रहण करावे, जिससे हम लोग **(द्वेषः)** द्वेषी शत्रुओं को **(अप, सश्चिम)** दूर पहुंचावें और **(ह्वरः)** कुटिल जनों को **(अप)** पृथक करें। वैसे तुम लोग भी करो॥ २०॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जैसे रस को प्राप्त हुई नाभि रस को उत्पन्न कर शरीर के अवयवों को पुष्ट करती, वैसे सेवन किये विद्वान् वा उपासना किया परमेश्वर द्वेष और कुटिलतादि दोषों को निवृत्त करा कर सब जीवों की रक्षा करते वा करता है, उन विद्वानों और उस परमेश्वर की निरन्तर सेवा करनी चाहिये॥ २०॥

घर्मैतदित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। यज्ञो देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

घर्मैतत्ते पुरीषं तेन वर्द्धस्व चा च प्यायस्व।

वर्द्धिषीमहि च वयमा च प्यासिषीमहि॥ २१॥

घर्म। एतत्। ते। पुरीषम्। तेन। वर्द्धस्व। च। आ। च। प्यायस्व॥ वर्द्धिषीमहि। च। वयम्। आ। च। प्यासिषीमहि॥ २१॥

पदार्थः-**(घर्म)** पूजनीयतम! **(एतत्)** **(ते)** तव **(पुरीषम्)** व्यापनं पालनं वा **(तेन)** **(वर्द्धस्व)** **(च)** **(आ)** **(च)** **(प्यायस्व)** पुषाण **(वर्द्धिषीमहि)** पूर्णां वृद्धिं प्राप्नुयाम **(च)** **(वयम्)** **(आ)** **(च)** **(प्यासिषीमहि)** सर्वतो वर्द्धेम॥ २१॥

अन्वयः-हे घर्म! सर्वतः प्रकाशमय जगदीश्वर विद्वन्! वा यदेतत्ते पुरीषमस्ति, तेन त्वं वर्द्धस्व चाऽन्यान् वर्द्धय, स्वयमाप्यायस्वाऽन्यांश्च पोषय। तव कृपया शिक्षया वा यथा वयं वर्द्धिषीमहि, तथा चाऽन्यान् वयं वर्द्धयेम। यथा च वयमाप्यासिषीमहि तथाऽन्यान् समन्ततः पोषयेम तथा यूयमपि कुरुत॥२१॥

भावार्थः-अत्र श्लेषवाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। हे मनुष्याः! यथेश्वरेण सर्वत्राभिव्याप्तेन सर्वं रक्ष्यते पोष्यते च, तथैव वर्द्धमानैः पुष्टैरस्माभिः सर्वे जीवा वर्द्धनीयाः पोषणीयाश्च॥२१॥

पदार्थः-हे **(घर्म)** अत्यन्त पूजनीय सब ओर से प्रकाशमय जगदीश्वर वा विद्वन्! जो **(एतत्)** यह **(ते)** आपका **(पुरीषम्)** व्याप्ति वा पालन है **(तेन)** उससे आप **(वर्द्धस्व)** बुद्धि को प्राप्त हूजिये **(च)** और दूसरों को बढ़ाइये। आप स्वयं **(आ, प्यायस्व)** पुष्ट हूजिये **(च)** और दूसरों को पुष्ट कीजिये, आपकी कृपा वा शिक्षा से जैसे **(वयम्)** हम लोग **(वर्द्धिषीमहि)** पूर्ण वृद्धि को पावें **(च)** और वैसे ही दूसरों को बढ़ावें **(च)** और जैसे हम लोग **(आ, प्यासिषीमहि)** सब ओर से बढ़ें, वैसे दूसरों को निरन्तर पुष्ट करें, वैसे तुम लोग भी करो॥२१॥

भावार्थः-इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। हे मनुष्यो! जैसे सर्वत्र अभिव्याप्त ईश्वर ने सबकी रक्षा वा पुष्टि की है, वैसे ही बढ़े हुए पुष्ट हम लोगों को चाहिये कि सब जीवों को बढ़ावें और पुष्ट करें॥२१॥

अचिक्रददित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। यज्ञो देवता। परोष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अचि॑क्रदद् वृषा॒ हरि॑र्म॒हान् मि॒त्रो न द॑र्श॒तः।

सꣳ सूर्य्ये॑ण दिद्युतदुद॒धिर्नि॒धिः॥२२॥

अचि॑क्रदत्। वृषा॑। हरिः॑। म॒हान्। मि॒त्रः। न। द॒र्श॒तः॥ सम्। सूर्य्ये॑ण। दि॒द्यु॒त॒त्। उ॒द॒धिरित्यु॑द॒ऽधिः। नि॒धिरिति॑ नि॒ऽधिः॥२२॥

पदार्थः-**(अचिक्रदत्)** शब्दं कुर्वन् **(वृषा)** वर्षकः **(हरिः)** आशुगन्ता **(महान्)** सर्वेभ्यो ज्येष्ठः **(मित्रः)** सखा **(न)** इव **(दर्शतः)** द्रष्टव्यः **(सम्)** **(सूर्य्येण)** सवित्रा **(दिद्युतत्)** विद्योतते **(उदधिः)** उदकानि धीयन्ते यस्मिँस्तत् समुद्रोऽन्तरिक्षं वा **(निधिः)** निधीयन्ते पदार्थो यस्मिन् सः॥२२॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यो वृषा हरिर्महानचिक्रदन्मित्रो न दर्शतः सूर्येण सह उदधिर्निधिरिव संदिद्युतत् स एव विद्युद्रूपोऽग्निः सर्वैः संप्रयोज्यः॥२२॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। हे मनुष्याः! यथा वृषभास्तुरङ्गाश्च शब्दायन्ते यथा सखा सखीन् प्रीतयति, तथैव सर्वैर्लोकैः सह वर्त्तमाना विद्युत् सर्वान् प्रकाशयति तां विजानीत॥२२॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो **(वृषा)** वर्षा का निमित्त **(हरिः)** शीघ्र चलनेवाला **(महान्)** सबसे बड़ा **(अचिक्रदत्)** शब्द करता हुआ **(मित्रः, न)** मित्र के तुल्य **(दर्शतः)** देखने योग्य **(सूर्येण)** सूर्य के साथ **(उदधिः, निधिः)** जिसमें पदार्थ रक्खे जाते तथा जिसमें जल इकट्ठे होते उस समुद्र वा आकाश में **(सम्, दिद्युतत्)** सम्यक् प्रकाशित होता है, वही बिजुली रूप अग्नि सबको कार्य में लाने योग्य है॥२२॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। हे मनुष्यो! जैसे बैल वा घोड़े शब्द करते और जैसे मित्र मित्रों को तृप्त करता है, वैसे ही सब लोकों के साथ वर्त्तमान विद्युत्‌रूप अग्नि सबको प्रकाशित करता है, उसको जानो॥२२॥

सुमित्रिया इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। आपो देवताः। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः

अथ सज्जनदुर्जनकृत्यमाह॥

अब सज्जन और दुर्जनों का कर्त्तव्य विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

सुमित्रिया नऽ आपऽ ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु।

योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः॥२३॥

सुमित्रिया इति सुऽमित्रियाः। नः। आपः। ओषधयः। सन्तु। दुर्मित्रिया इति दुःमित्रियाः। तस्मै। सन्तु॥ यः। अस्मान्। द्वेष्टि। यम्। च। वयम्। द्विष्मः॥२३॥

पदार्थः-**(सुमित्रियाः)** सुष्ठु सखाय इव **(नः)** अस्मभ्यम् **(आपः)** प्राणा **(ओषधयः)** सोमाद्याः **(सन्तु)** **(दुर्मित्रियाः)** दुष्टानि मित्राणीव **(तस्मै)** **(सन्तु)** **(यः)** पक्षपातेनाऽधर्मी **(अस्मान्)** **(द्वेष्टि)** **(यम्)** **(च)** **(वयम्)** **(द्विष्मः)** न प्रीणीमः॥२३॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! आप ओषधयो नोऽस्मभ्यं सुमित्रिया इव सन्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यञ्च वयं द्विष्मस्तस्मै आप ओषधयश्च दुर्मित्रिया इव सन्तु॥२३॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये मनुष्या अन्येषां सुपथ्यौषधिप्राणवद्रोगदुःखनिवारकास्ते धन्याः। ये च कुपथ्यदुष्टौषधमृत्युवदन्येषां दुःखप्रदास्तान् धिग्धिक्॥२३॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! **(आपः)** प्राण वा जल तथा **(ओषधयः)** सोमलता आदि ओषधियां **(नः)** हमारे लिये **(सुमित्रियाः)** सुन्दर मित्रों के तुल्य सुखदायी **(सन्तु)** होवें **(यः)** जो पक्षपाती

अधर्मी **(अस्मान्)** हम धर्मात्माओं से **(द्वेष्टि)** द्वेष करे **(च)** और **(यम्)** जिस दुष्ट से **(वयम्)** हम धर्मात्मा लोग **(द्विष्मः)** द्वेष करें, **(तस्मै)** उसके लिये प्राण, जल वा ओषधियां **(दुर्मित्रियाः)** दुष्ट मित्रों के समान दुःखदायी **(सन्तु)** होवें॥२३॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य दूसरों के सुपथ्य, ओषधि और प्राण के तुल्य रोग दूर करते हैं, वे धन्यवाद के योग्य हैं और जो कुपथ्य, दुष्ट ओषधि और मृत्यु के समान औरों को दुःख देते हैं, उनको वार-वार धिक्कार है॥२३॥

उद्वयमित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। सविता देवता। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

कीदृशो जनः सुखमाप्नुयादित्याह॥

कैसा पुरुष सुख को प्राप्त होवे, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उद्वयन्तमसस्परि स्वः पश्यन्तऽ उत्तरम्।

देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्॥२४॥

उत्। वयम्। तमसः। परि। स्वरिति स्वः। पश्यन्तः। उत्तरमित्युत्ऽतरम्॥ देवम्। देवत्रेति देवऽत्रा। सूर्य्यम्। अगन्म। ज्योतिः। उत्तममित्युत्ऽतमम्॥२४॥

पदार्थः-**(उत्)** **(वयम्)** **(तमसः)** अन्धकारात् **(परि)** वर्जने **(स्वः)** सुखम् **(पश्यन्तः)** **(उत्तरम्)** सर्वेभ्यः: पदार्थेभ्य उत्तरस्मिन् वर्त्तमानम् **(देवम्)** दिव्यगुणकर्मस्वभावम् **(देवत्रा)** देवेषु दिव्येषु पदार्थेषु **(सूर्य्यम्)** सवितृवत् प्रकाशमयम् **(अगन्म)** **(ज्योतिः)** सर्वस्य प्रकाशकम् **(उत्तमम्)** सर्वोत्कृष्टम्॥२४॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा वयं यं तमसः पृथक् वर्त्तमानमुत्तरं देवत्रा देवमुत्तमं ज्योतिः सूर्यं पश्यन्तः सन्तः स्वः सुखं पर्युदगन्म, तथैव यूयमपि प्राप्नुत॥२४॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये मनुष्या विद्युदादिविद्यां प्राप्य परमात्मानं साक्षात् पश्येयुस्ते प्रकाशिताः सन्तः सुखमवाप्नुयुः॥२४॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे **(वयम्)** हम लोग **(तमसः)** अन्धकार से पृथक् वर्त्तमान **(उत्तरम्)** सब पदार्थों से उत्तर भाग में वर्त्तमान **(देवत्रा)** दिव्य उत्तम पदार्थों में **(देवम्)** उत्तम गुण-कर्म-स्वभाववाले **(उत्तमम्)** सबसे श्रेष्ठ **(ज्योतिः)** सबके प्रकाशक **(सूर्य्यम्)** सूर्य के तुल्य प्रकाशस्वरूप ईश्वर को **(पश्यन्तः)** ज्ञानदृष्टि से देखते हुए **(स्वः)** सुख को **(परि, उत् अगन्म)** सब ओर से उत्कृष्टता के साथ होवें, वैसे ही तुम लोग भी प्राप्त होओ॥२४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य विद्युत् आदि विद्या को प्राप्त हो परमात्मा को साक्षात् देखें, वे प्रकाशित हुए निरन्तर सुख को प्राप्त होवें॥२४॥

एध इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। ईश्वरो देवता। साम्नी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अथाऽग्निमिषेण योगिकृत्यमाह॥

अब अग्नि के मिष से योगियों के कर्त्तव्य विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

एधो॑ऽस्येधिषी॒महि॑ स॒मिद॑सि॒ तेजो॑ऽसि॒ तेजो॒ मयि॑ धेहि॥२५॥

एधः॑। अ॒सि॒। ए॒धि॒षी॒महि॑। स॒मिदिति॑ स॒म्ऽइत्। अ॒सि॒। तेजः॑। अ॒सि॒। तेजः॑। मयि॑। धे॒हि॒॥२५॥

पदार्थः-(**एधः**) इन्धते प्रदीपयन्ति येन तद्वत् (**असि**) (**एधिषीमहि**) सर्वतो वर्द्धयेम (**समित्**) सम्यक् प्रदीप्तेव (**असि**) (**तेजः**) प्रकाशमयः (**असि**) (**तेजः**) (**मयि**) (**धेहि**)॥२५॥

अन्वयः-हे परमेश्वर! यस्त्वमस्मदात्मस्वेध इव प्रकाशकोऽसि, समिदिवाऽसि तेजोवत् सर्वविद्यादर्शकोऽसि, स त्वं मयि तेजो धेहि, भवन्तं प्राप्य वयमेधिषीमहि॥२५॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यथेन्धनेन घृतेन चाग्नेर्ज्वाला वर्द्धते, तथैवोपासितेन जगदीश्वरेण योगिनामात्मानः प्रकाशिता भवन्ति॥२५॥

पदार्थः-हे परमेश्वर! जो आप हमारे आत्माओं में (**एधः**) प्रकाश करनेवाले इन्धन के तुल्य प्रकाशक (**असि**) हैं, (**समित्**) सम्यक् प्रदीप्त समिधा के समान (**असि**) हैं, (**तेजः**) प्रकाशमय बिजुली के तुल्य सब विद्या के दिखानेवाले (**असि**) हैं, सो आप (**मयि**) मुझ में (**तेजः**) तेज को (**धेहि**) धारण कीजिये, आपको प्राप्त होकर हम लोग (**एधिषीमहि**) सब ओर से वृद्धि को प्राप्त होवें॥२५॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जैसे ईंधन से और घी से अग्नि की ज्वाला बढ़ती है, वैसे उपासना किये जगदीश्वर से योगियों के आत्मा प्रकाशित होते हैं॥२५॥

यावतीत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। इन्द्रो देवता। स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनर्विद्वांसः किं कुर्य्युरित्याह॥

फिर विद्वान् लोग क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

याव॑ती॒ द्यावा॑पृथि॒वी याव॑च्च स॒प्त सिन्ध॑वो वितस्थि॒रे।
ताव॑न्तमिन्द्र ते॒ ग्रह॑मू॒र्जा गृ॑ह्णा॒म्यक्षि॑तं॒ मयि॑ गृह्णा॒म्यक्षि॑तम्॥२६॥

याव॑ती॒ऽइति॒ याव॑ती। द्यावा॑पृथि॒वीऽइति॒ द्यावा॑पृथि॒वी। याव॑त्। च॒। स॒प्त। सिन्ध॑वः। वि॒त॒स्थि॒रे इति॑ विऽतस्थि॒रे॥ ताव॑न्तम्। इ॒न्द्र॒। ते॒। ग्रह॑म्। ऊ॒र्जा। गृ॒ह्णा॒मि॒। अक्षि॑तम्। मयि॑। गृ॒ह्णा॒मि॒। अक्षि॑तम्॥२६॥

पदार्थः-(**यावती**) यावत्परिमाणे (**द्यावापृथिवी**) भूमिसूर्यौ (**यावत्**) यावत्परिमाणाः (**च**) (**सप्त**) सप्त (**सिन्धवः**) समुद्राः (**वितस्थिरे**) विशेषेण तिष्ठन्ति (**तावन्तम्**) (**इन्द्र**) विद्युदिव वर्त्तमान

(ते) तव **(ग्रहम्)** गृह्णाति तेन तम् **(ऊर्जा)** बलेन **(गृह्णामि)** **(अक्षितम्)** क्षयरहितम् **(मयि)** **(गृह्णामि)** **(अक्षितम्)** नाशरहितम्॥ २६॥

अन्वयः-हे इन्द्र! ते यावती द्यावापृथिवी यावच्च सप्त सिन्धवो वितस्थिरे, तावन्तमक्षितं ग्रहमूर्जाऽहं गृह्णामि तावन्तमक्षितमहं मयि गृह्णामि॥ २६॥

भावार्थः-विद्वद्भिर्यावच्छक्यं तावत्पृथिवीविद्युदादिगुणान् गृहीत्वाऽक्षयं सुखमाप्तव्यम्॥ २६॥

पदार्थः-हे **(इन्द्र)** विद्युत् के समान वर्त्तमान परमेश्वर! **(ते)** आपकी **(यावती)** जितनी **(द्यावापृथिवी)** सूर्य-भूमि **(च)** और **(यावत्)** जितने बड़े **(सप्त)** **(सिन्धवः)** सात समुद्र **(वितस्थिरे)** विशेषकर स्थित हैं, **(तावन्तम्)** उतने **(अक्षितम्)** नाशरहित **(ग्रहम्)** ग्रहण के साधनरूप सामर्थ्य को **(ऊर्जा)** बल के साथ मैं **(गृह्णामि)** स्वीकार करता तथा उतने **(अक्षितम्)** नाशरहित सामर्थ्य को मैं **(मयि)** अपने में **(गृह्णामि)** ग्रहण करता हूं॥ २६॥

भावार्थः-विद्वानों को योग्य है कि जहाँ तक हो सके, वहां तक पृथिवी और बिजुली आदि के गुणों को ग्रहण कर अक्षय सुख को प्राप्त होवें॥ २६॥

मयि त्यदित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। यज्ञो देवता। पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अथ मनुष्यान् किं सुखयतीत्याह॥

अब मनुष्यों को क्या वस्तु सुख देता है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

मयि॒ त्यदि॑न्द्रि॒यं बृ॒हन्मयि॒ दक्षो॒ मयि॒ क्रतु॑ः।

घ॒र्मस्त्रि॒शुग्वि रा॑जति वि॒राजा॒ ज्योति॑षा स॒ह ब्रह्म॑णा॒ तेज॑सा स॒ह॥ २७॥

मयि॑। त्यत्। इ॒न्द्रि॒यम्। बृ॒हत्। मयि॑। दक्ष॑ः। मयि॑। क्रतु॑ः॥ घ॒र्मः। त्रि॒शुगिति॑ त्रि॒ऽशुक्। वि। रा॒ज॒ति॒। वि॒राजेति॑ वि॒ऽराजा॑। ज्योति॑षा। स॒ह। ब्रह्म॑णा। तेज॑सा। स॒ह॥ २७॥

पदार्थः-**(मयि)** इन्द्रे जीवत्मानि **(त्यत्)** तत् **(इन्द्रियम्)** मन आदि **(बृहत्)** महत् **(मयि)** **(दक्षः)** बलम् **(मयि)** **(क्रतुः)** प्रज्ञा कर्म वा **(घर्मः)** प्रतापो यज्ञो वा **(त्रिशुक्)** तिस्रो मृदुमध्यतीव्रा दीप्तयो यस्य सः **(वि राजति)** विशेषेण प्रकाशते **(विराजा)** विशेषेण प्रकाशेन **(ज्योतिषा)** द्योतमानेन **(सह)** **(ब्रह्मणा)** धनेन **(तेजसा)** तीक्ष्णेन **(सह)**॥ २७॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा विराजा ज्योतिषा सह ब्रह्मणा तेजसा सह च त्रिशुक् घर्मो विराजति, तथा मयि बृहत् त्यदिन्दियं मयि दक्षो मयि क्रतुर्विराजति तथा युष्मासु स्वयं विराजताम्॥ २७॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे मनुष्याः! यथाऽग्निविद्युत्सूर्य्यरूपेण त्रिविधः प्रकाशो जगत् प्रकाशयति, तथोत्तमं बलं कर्म प्रज्ञा धर्मसञ्चितं धनं जितमिन्द्रयं बृहत्सुखं प्रयच्छति॥ २७॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे **(विराजा)** विशेषकर प्रकाशक **(ज्योतिषा)** प्रदीप्त ज्योति के **(सह)** साथ और **(ब्रह्मणा, तेजसा)** तीक्ष्ण कार्यसाधक धन के **(सह)** साथ **(त्रिशुक्)** कोमल, मध्यम और तीव्र दीप्तियोंवाला **(घर्मः)** प्रताप **(विराजति)** विशेष प्रकाशित होता है, वैसे **(मयि)** मुझ जीवात्मा में **(बृहत्)** बड़े **(त्यत्)** उस **(इन्द्रियम्)** मन आदि इन्द्रिय **(मयि)** मुझ में **(दक्षः)** बल और **(मयि)** मुझ में **(क्रतुः)** बुद्धि वा कर्म विशेषकर प्रकाशित होता है, वैसे तुम लोगों के बीच भी यह विशेषकर प्रकाशित होवे॥ २७॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जैसे अग्नि, विद्युत् और सूर्यरूप से तीन प्रकार का प्रकाश जगत् को प्रकाशित करता है, वैसे उत्तम बल, कर्म, बुद्धि, धर्म से संचित धन, जीता गया इन्द्रिय महान् सुख को देता है॥ २७॥

पयस इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। यज्ञो देवता। स्वराड्धृतिश्छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

पुनर्मनुष्याः किं किं कुर्य्युरित्याह॥

फिर मनुष्य क्या क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

पय॑सो रेत॒ऽआभृ॑तं तस्य॒ दोह॑मशीम॒ह्युत्त॑रामुत्तरा॒ᳬं समा॑म्।

त्विषः॑ सं॒वृक् क्रत्वे॒ दक्ष॑स्य ते सुषु॒म्णस्य॑ ते सुषुम्णाग्निहु॒तः।

इन्द्र॑पीतस्य प्र॒जाप॑तिभक्षितस्य॒ मधु॑मत॒ऽ उप॑हूत॒ऽ उप॑हूतस्य भक्षयामि॥ २८॥

पय॑सः। रेत॑ः। आभृ॑त॒मित्याऽभृ॑तम्। तस्य॑। दोह॑म्। अ॒शी॒म॒हि॒। उत्त॑रामुत्तरा॒मित्युत्त॑राम्ऽउत्त॑राम्। समा॑म्। त्विष॑ः। सं॒वृगिति॑ स॒म्ऽवृक्। क्रत्वे॑। दक्ष॑स्य। ते॒। सु॒षु॒म्णस्य॑। सु॒सु॒म्नस्येति॑ सु॒ऽसु॒म्नस्य॑। ते॒। सु॒षु॒म्ण॒। सु॒सु॒म्नेति॑ सु॒ऽसु॒म्न। अ॒ग्नि॒हु॒त इत्य॑ग्नि॒ऽहु॒तः॥ इन्द्र॑पीत॒स्येतीन्द्र॒ऽपीतस्य। प्र॒जाप॑तिभक्षि॒तस्येति॑ प्र॒जाप॑ति॒ऽभक्षितस्य। मधु॑मत॒ इति॒ मधु॑ऽमतः। उप॑हूत॒ इत्युप॑ऽहूतः। उप॑हूत॒स्येत्युप॑ऽहूतस्य। भ॒क्ष॒या॒मि॒॥ २८॥

पदार्थः-**(पयसः)** उदकस्य दुग्धस्य वा **(रेतः)** वीर्य्यम् **(आभृतम्)** समन्तात् पुष्टं धृतं वा **(तस्य)** **(दोहम्)** प्रपूर्त्तिम् **(अशीमहि)** प्राप्नुयाम **(उत्तरामुत्तराम्)** आगमिनीमागामिनीम् **(समाम्)** वेलाम् **(त्विषः)** प्रदीप्तस्य **(संवृक्)** यः संवृक्ते सः **(क्रत्वे)** प्रज्ञायै **(दक्षस्य)** बलस्य **(ते)** तव **(सुषुम्णस्य)** शोभनं सुम्नं सुखं यस्य **(ते)** तव **(सुषुम्ण)** शोभनसुखयुक्त! **(अग्निहुतः)** अग्नौ हुतं प्रक्षिप्तं येन **(इन्द्रपीतस्य)** सूर्य्येण जीवेन वा पीतस्य **(प्रजापतिभक्षितस्य)** प्रजास्वामिनेश्वरेण सेवितस्य भक्षितस्य वा **(मधुमतः)** मधुरादिगुणस्य **(उपहूतः)** उप समीपे कृताऽऽह्वानः **(उपहूतस्य)** समीपमाहूतस्य **(भक्षयामि)**॥ २८॥

अन्वयः-हे सुषुम्ण! यथा त्वया यस्य पयसो रेत आभृतं तस्य दोहमुत्तरामुत्तरां समां वयमशीमहि, तस्य ते क्रत्वे त्विषो दक्षस्य त आभृतमशीमहि, सुषुम्णस्येन्द्रपीतस्य प्रजापतिभक्षितस्योपहूतस्य मधुमतः पयसो दोषान् संवृक् सन्नुपहूतोऽग्निहुतोऽहं भक्षयामि॥२८॥

भावार्थः-मनुष्यैः सदा वीर्य्यं वर्द्धनीयं विद्यादिगुणा धर्त्तव्याः प्रतिदिनः सुखं वर्द्धनीयं यथा स्वस्य सुख-मिच्छेयुस्तथाऽन्येषामप्याकाङ्क्षेरन्निति॥२८॥

अस्मिन्नध्यायेऽस्यां सृष्टौ शुभगुणग्रहणं स्वस्य परस्य च पोषणं यज्ञेन जगत्पदार्थशोधनं सर्वत्र सुखप्राप्तिसाधनं धर्मानुष्ठानं पुष्टिवर्द्धनमीश्वरगुणव्याख्या सर्वतो बलवर्द्धनं सुखभोगश्चोक्ताऽत एतदध्यायोक्तार्थस्य पूर्वाऽध्यायेन सह सङ्गतिरस्तीति वेद्यम्॥२८॥

पदार्थः-हे **(सुषुम्ण)** शोभन सुखयुक्त जन! जैसे आपने जिस **(पयसः)** जल वा दूध के **(रेतः)** पराक्रम को **(आभृतम्)** पुष्ट वा धारण किया **(तस्य)** उसकी **(दोहम्)** पूर्णता तथा **(उत्तरामुत्तराम्)** उत्तर-उत्तर **(समाम्)** समय को **(अशीमहि)** प्राप्त होवें। उस **(ते)** आपकी **(क्रत्वे)** बुद्धि के लिये **(त्विषः)** प्रकाशित **(दक्षस्य)** बल के और **(ते)** आपकी पुष्टि वा धारण को प्राप्त होवें **(सुषुम्णस्य)** सुन्दर सुख देनेवाले **(इन्द्रपीतस्य)** सूर्य्य वा जीव ने ग्रहण किये **(प्रजापतिभक्षितस्य)** प्रजारक्षक ईश्वर ने सेवन वा जीव ने भोजन किये **(उपहूतस्य)** समीप लाये हुए **(मधुमतः)** दूध वा जल के दोषों को **(संवृक्)** सम्यक् अलग करनेवाला **(उपहूतः)** समीप बुलाया गया और **(अग्निहुतः)** अग्नि में होम करनेवाला मैं **(भक्षयामि)** भोजन वा सेवन करूं॥२८॥

भावार्थः-मनुष्यों को योग्य है कि सदा वीर्य बढ़ावें, विद्यादि शुभगुणों का धारण करें, प्रतिदिन सुख बढ़ावें। जैसे अपना सुख चाहें, वैसे औरों के लिये भी सुख की आकाङ्क्षा किया करें॥२८॥

इस अध्याय में इस सृष्टि में शुभगुणों का ग्रहण, अपना और दूसरों का पोषण, यज्ञ से जगत् के पदार्थों का शोधन, सर्वत्र सुखप्राप्ति का साधन, धर्म का अनुष्ठान, पुष्टि का बढ़ाना, ईश्वर के गुणों की व्याख्या, सब ओर से बल बढ़ाना और सुखभोग कहा है, इससे इस अध्याय में कहे अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां श्रीमत्परमविदुषां श्रीविरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मिते संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां समन्विते सुप्रमाणयुक्ते यजुर्वेदभाष्येऽष्टात्रिंशोऽध्यायः समापनमगमत्॥३८॥

॥ओ३म्॥

अथैकोनचत्वारिंशोऽध्याय आरभ्यते

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव। यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व॥ यजु॰ ३०.३॥

स्वाहा प्राणेभ्य इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। प्राणादयो लिङ्गोक्ता देवताः। पङ्क्तिश्छन्दः।

पञ्चमः स्वरः॥

अथान्त्येष्टिकर्मविषयमाह॥

अब उनतालीसवें अध्याय का आरम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में अन्त्येष्टि कर्म का विषय कहते हैं॥

स्वाहा॑ प्रा॒णेभ्य॒: साधि॑पतिकेभ्य॒:। पृ॒थि॒व्यै स्वाहा॒ऽग्नये॒ स्वाहा॒ऽन्तरि॑क्षाय॒ स्वाहा॑ वा॒यवे॒ स्वाहा॑। दि॒वे स्वाहा॒। सूर्या॑य॒ स्वाहा॑॥ १॥

स्वाहा॑। प्रा॒णेभ्य॑:। साधि॑पतिकेभ्य॒ इति॒ साधि॑ऽपतिकेभ्यः॥ पृ॒थि॒व्यै। स्वाहा॑। अग्नये॑। स्वाहा॑। अ॒न्तरि॑क्षाय। स्वाहा॑। वायवे॑। स्वाहा॑। दि॒वे। स्वाहा॑। सूर्य्या॑य। स्वाहा॑॥ १॥

पदार्थः-(**स्वाहा**) सत्या क्रिया (**प्राणेभ्यः**) जीवनहेतुभ्यः (**साधिपतिकेभ्यः**) अधिपतिना जीवेन सह वर्त्तमानेभ्यः (**पृथिव्यै**) भूम्यै (**स्वाहा**) सत्या वाक् (**अग्नये**) पावकाय (**स्वाहा**) (**अन्तरिक्षाय**) आकाशे गमनाय (**स्वाहा**) (**वायवे**) वायुप्राप्तये (**स्वाहा**) (**दिवे**) विद्युत् प्राप्तये (**स्वाहा**) (**सूर्याय**) सवितृप्रापणाय (**स्वाहा**)॥ १॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! युष्माभिः साधिपतिकेभ्यः प्राणेभ्यः स्वाहा पृथिव्यै स्वाहाऽग्नये स्वाहाऽन्तरिक्षाय स्वाहा वायवे स्वाहा दिवे स्वाहा सूर्याय स्वाहा च यथावत् संप्रयोज्या॥ १॥

भावार्थः-अस्मिन्नध्यायेऽन्त्येष्टिर्यस्या नृमेधः पुरुषमेधो दाहकर्मेत्यनर्थान्तरं नामोच्यते। यदा कश्चिन्म्रियेत तदा शरीरभारेण तुल्यं घृतं गृहीत्वा तत्र प्रतिप्रस्थमेकरक्तिकामात्रां कस्तूरीं माषकमात्रं केसरं चन्दनादीनि काष्ठानि च यथायोग्यं संभृत्य यावानूर्ध्वबाहुकः पुरुषस्तावदायामप्रमितां सार्द्धत्रिहस्तमात्रामुपरिष्टाद्विस्तीर्णां तावद् गभीरां वितस्तिमात्रामर्वाग्वेदीं निर्मायाऽधस्तादर्धमात्रां समिद्भिः प्रपूर्य्य तदुपरि शवं निधाय पुनः पार्श्वयोरुपरिष्टाच्च सम्यक् समिधः सञ्चित्य वक्षःस्थलादिषु कर्पूरं संस्थाप्य कर्पूरेण प्रदीप्तमग्निं चितायां प्रवेश्य यदा प्रदीप्तोऽग्निर्भवेत् तदैतैः स्वाहान्तैरेतदध्यायस्थैर्मन्त्रैः पुनः पुनरनुवृत्त्या घृतं हुत्वा शवं सम्यक् प्रदहेयुरेवं कृते दाहकानां यज्ञफलं प्राप्नुयान्न कदाचिच्छवं भूमौ निदध्युर्नारण्ये त्यजेयुर्न जले निमज्जयेयुर्विना दाहेन सम्बन्धिनो

महत्पापं प्राप्नुयुः। कुतः? प्रेतस्य विकृतस्य शरीरस्य सकाशादधिकदुर्गन्धोन्नतेः प्राण्यप्राणिष्वसंख्यरोगप्रादुर्भावात् तस्मात् पूर्वोक्तविधिना शवस्य दाह एव कृते भद्रम्, नान्यथा॥१॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुमको योग्य है कि **(साधिपतिकेभ्यः)** इन्द्रियादि के अधिपति जीव के साथ वर्त्तमान **(प्राणेभ्यः)** जीवन के तुल्य प्राणों के लिये **(स्वाहा)** सत्यक्रिया **(पृथिव्यै)** भूमि के लिये **(स्वाहा)** सत्यवाणी **(अग्नये)** अग्नि के अर्थ **(स्वाहा)** सत्यक्रिया **(अन्तरिक्षाय)** आकाश में चलने के लिये **(स्वाहा)** सत्यवाणी **(वायवे)** वायु की प्राप्ति के अर्थ **(स्वाहा)** सत्यक्रिया **(दिवे)** विद्युत् की प्राप्ति के अर्थ **(स्वाहा)** सत्यवाणी और **(सूर्य्याय)** सूर्य्यमण्डल की प्राप्ति के लिये **(स्वाहा)** सत्यक्रिया को यथावत् संयुक्त करो॥१॥

भावार्थः-इस अध्याय में अन्त्येष्टिकर्म जिसको नरमेध, पुरुषमेध और दाहकर्म भी कहते हैं। जब कोई मनुष्य मरे तब शरीर की बराबर तोल घी लेकर उस में प्रत्येक सेर में एक रत्ती कस्तूरी, एक मासा केसर और चन्दन आदि काष्ठों को यथायोग्य सम्हाल के जितना ऊर्ध्वबाहु पुरुष होवे, उतनी लम्बी, साढ़े तीन हाथ चौड़ी और इतनी ही गहरी, एक बिलस्त नीचे तले में वेदी बनाकर, उसमें नीचे से अधवर तक समिधा भरकर, उस पर मुर्दे को धर कर, फिर मुर्दे के इधर-उधर और ऊपर से अच्छे प्रकार समिधा चुन कर, वक्षःस्थल आदि में कपूर धर, कपूर से अग्नि को जलाकर, चिता में प्रवेश कर जब अग्नि जलने लगे, तब इस अध्याय के इन स्वाहान्त मन्त्रों की बार-बार आवृत्ति से घी का होम कर मुर्दे को सम्यक् जलावें। इस प्रकार करने में दाह करनेवालों को यज्ञकर्म के फल की प्राप्ति होवे। और मुर्दे को न कभी भूमि में गाड़ें, न वन में छोड़ें, न जल में डुबावें, बिना दाह किये सम्बन्धी लोग महापाप को प्राप्त होवें, क्योंकि मुर्दे के बिगड़े शरीर से अधिक दुर्गन्ध बढ़ने के कारण चराचर जगत् में असंख्य रोगों की उत्पत्ति होती है, इससे पूर्वोक्त विधि के साथ मुर्दे के दाह करने में ही कल्याण है, अन्यथा नहीं॥१॥

दिग्भ्य इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। दिगादयो लिङ्गोक्ता देवताः। भुरिगनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

दिग्भ्यः स्वाहा चन्द्राय स्वाहा नक्षत्रेभ्यः स्वाहाऽद्भ्यः स्वाहा वरुणाय स्वाहा। नाभ्यै स्वाहा पूताय स्वाहा॥ २॥

दिग्भ्य इति दिक्ऽभ्यः। स्वाहा। चन्द्राय। स्वाहा। नक्षत्रेभ्यः। स्वाहा। अद्भ्य इत्यत्ऽभ्यः। स्वाहा। वरुणाय। स्वाहा॥ नाभ्यै। स्वाहा। पूताय। स्वाहा॥२॥

पदार्थः-(**दिग्भ्यः**) दिक्षु हुतद्रव्यस्य गमनाय (**स्वाहा**) (**चन्द्राय**) चन्द्रलोकस्य प्राप्तये (**स्वाहा**) (**नक्षत्रेभ्यः**) नक्षत्रप्रकाशप्राप्तये (**स्वाहा**) (**अद्भ्यः**) अप्सु गमनाय (**स्वाहा**) (**वरुणाय**) समुद्रादिषु गमनाय (**स्वाहा**) (**नाभ्यै**) नाभेर्दहनाय (**स्वाहा**) (**पूताय**) पवित्रकरणाय (**स्वाहा**)॥२॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यूयं शरीरस्य दाहे दिग्भ्यः स्वाहा चन्द्राय स्वाहा नक्षत्रेभ्यः स्वाहाऽद्भ्यः स्वाहा वरुणाय स्वाहा नाभ्यै स्वाहा पूताय स्वाहा सत्यां क्रियां सम्प्रयुङ्ध्वम्॥२॥

भावार्थः-मनुष्याः पूर्वोक्तविधिना शरीरं दग्ध्वा सर्वासु दिक्षु शरीरावयवानग्निद्वारा गमयेयुः॥२॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम लोग शरीर के जलाने में (**दिग्भ्यः**) दिशाओं में हुतद्रव्य के पहुंचाने को (**स्वाहा**) सत्यक्रिया (**चन्द्राय**) चन्द्रलोक की प्राप्ति के लिये (**स्वाहा**) सत्यक्रिया (**नक्षत्रेभ्यः**) नक्षत्रलोकों के प्रकाश की प्राप्ति के लिये (**स्वाहा**) सत्यक्रिया (**अद्भ्यः**) जलों में चलाने के लिये (**स्वाहा**) सत्यक्रिया (**वरुणाय**) समुद्रादि में जाने के लिये (**स्वाहा**) सत्यक्रिया (**नाभ्यै**) नाभि के जलने के लिये (**स्वाहा**) सत्यक्रिया और (**पूताय**) पवित्र करने के लिये (**स्वाहा**) सत्यक्रिया को सम्यक् प्रयुक्त करो॥२॥

भावार्थः-मनुष्य लोग पूर्वोक्त विधि से शरीर जलाकर सब दिशाओं में शरीर के अवयवों को अग्निद्वारा पहुंचावें॥२॥

वाच इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। वागादयो लिङ्गोक्ता देवताः। स्वराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

वाचे स्वाहा॑ प्राणाय स्वाहा॑ प्राणाय स्वाहा॑।
चक्षु॑षे स्वाहा चक्षु॑षे स्वाहा श्रोत्रा॑य स्वाहा श्रोत्रा॑य स्वाहा॑॥३॥

वाचे। स्वाहा॑। प्राणाय॑। स्वाहा॑। प्राणाय॑। स्वाहा॑॥ चक्षु॑षे। स्वाहा॑। चक्षु॑षे। स्वाहा॑। श्रोत्रा॑य। स्वाहा॑। श्रोत्रा॑य। स्वाहा॑॥३॥

पदार्थः-(**वाचे**) वागिन्द्रियहोमाय (**स्वाहा**) (**प्राणाय**) शरीरस्याऽवयवान् जगत्प्राणे गमनाय (**स्वाहा**) (**प्राणाय**) धनञ्जयगमनाय (**स्वाहा**) (**चक्षुषे**) एकस्य चक्षुर्गोलकस्य दहनाय (**स्वाहा**) (**चक्षुषे**) इतरस्य नेत्रगोलकस्य दहनाय (**स्वाहा**) (**श्रोत्राय**) एकस्य श्रोत्रगोलकस्य विभागाय (**स्वाहा**) (**श्रोत्राय**) द्वितीयस्य श्रोत्रगोलकस्य विभागाय (**स्वाहा**)॥३॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यूयं मृतशरीरस्य वाचे स्वाहा प्राणाय स्वाहा प्राणाय स्वाहा चक्षुषे स्वाहा चक्षुषे स्वाहा श्रोत्राय स्वाहा स्वाहोक्ता घृताहुतीश्चितायां प्रक्षिपत॥३॥

भावार्थः-ये सुगन्धियुक्तेन घृतादिसम्भारेण मृतं शरीरं दाहयेयुस्ते पुण्यभाजो जायन्ते॥३॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम लोग मरे हुए शरीर के **(वाचे)** वाणी इन्द्रिय सम्बन्धी होम के लिये **(स्वाहा)** सुन्दरक्रिया **(प्राणाय)** शरीर के अवयवों को जगत् के प्राणवायु में पहुंचाने को **(स्वाहा)** सत्यक्रिया **(प्राणाय)** धनञ्जय वायु को प्राप्त होने के लिये **(स्वाहा)** सत्यक्रिया **(चक्षुषे)** एक नेत्रगोलक के जलाने के लिये **(स्वाहा)** सुन्दर आहुति **(चक्षुषे)** दूसरे नेत्रगोलक के जलाने को **(स्वाहा)** अच्छी आहुति **(श्रोत्राय)** एक कान के विभाग के लिये **(स्वाहा)** सुन्दर आहुति **(श्रोत्राय)** दूसरे कान के विभाग के लिये **(स्वाहा)** यह शब्द कर घी की आहुति चिता में छोड़ो॥३॥

भावार्थः-जो लोग सुगन्धियुक्त घृतादि सामग्री से मरे शरीर को जलावें, वे पुण्यसेवी होते हैं॥३॥

मनस इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। श्रीर्देवता। निचृद्बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीय।

पशूनाᳬं रूपमन्नस्य रसो यशः श्रीः श्रयतां मयि स्वाहा॥४॥

मनसः। कामम्। आकूतिमित्याऽकूतिम्। वाचः। सत्यम्। अशीय॥ पशूनाम्। रूपम्। अन्नस्य। रसः। यशः। श्रीः। श्रयताम्। मयि। स्वाहा॥४॥

पदार्थः-**(मनसः)** अन्तःकरणस्य **(कामम्)** इच्छापूर्तिम् **(आकूतिम्)** उत्साहम् **(वाचः)** वाण्याः **(सत्यम्)** सत्सु साधु वचः **(अशीय)** प्राप्नुयाम् **(पशूनाम्)** गवादीनाम् **(रूपम्)** सुन्दरं स्वरूपम् **(अन्नस्य)** अत्तुमर्हस्यौदनादेः **(रसः)** मधुरादिः **(यशः)** कीर्तिः **(श्रीः)** शोभनैश्वर्यं च **(श्रयताम्)** सेवताम् **(मयि)** जीवात्मनि **(स्वाहा)** सत्यया क्रियया॥४॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथाहं स्वाहैवं पूर्वपरोक्तप्रकारेण मृतानि शरीराणि दग्ध्वा मनसो वाचश्च सत्यं काममाकूतिं पशूनां रूपमशीय। यथा मय्यन्नस्य रसो यशः श्रीः श्रयतां तथैवं कृत्वा यूयमेनं प्राप्नुत, एता युष्मासु श्रयन्ताम्॥४॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये मनुष्याः सुविज्ञानोत्साहसत्यवचनैर्मृतानि शरीराणि विधिना दाहयन्ति, ते पशून् प्रजाधनधान्यादीनि पुरुषार्थेन लभन्ते॥४॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे मैं **(स्वाहा)** सत्यक्रिया से ऐसे आगे-पीछे कहे प्रकार से मरे हुए शरीरों को जला के **(मनसः)** अन्तःकरण और **(वाचः)** वाणी के **(सत्यम्)** विद्यमानों में उत्तम **(कामम्)** इच्छापूर्त्ति **(आकूतिम्)** उत्साह **(पशूनाम्)** गौ आदि के **(रूपम्)** सुन्दर स्वरूप को **(अशीय)** प्राप्त होऊं, जैसे **(मयि)** मुझ जीवात्मा में **(अन्नस्य)** खाने योग्य अन्नादि के **(रसः)** मधुरादि रस **(यशः)** कीर्ति **(श्रीः)** शोभा वा ऐश्वर्य्य **(श्रयताम्)** आश्रय करें, वैसे ही तुम इसको प्राप्त होओ और ये तुम में आश्रय करें॥४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य सुन्दर विज्ञान, उत्साह और सत्यवचनों से मरे शरीरों को विधिपूर्वक जलाते हैं, वे पशु, प्रजा, धनधान्य आदि को पुरुषार्थ से पाते हैं॥४॥

प्रजापतिरित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। कृतिश्छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प्रजाप॑तिः सम्भ्रि॒यमा॑णः स॒म्राट् सम्भृ॑तो वैश्वदे॒वः सꣳस॒न्नो घ॒र्मः प्रवृ॑क्त॒स्तेज॒ऽउद्य॑तऽआश्वि॒नः पय॑स्यानी॒यमा॑ने पौ॒ष्णो वि॑ष्य॒न्दमा॑ने मारु॒तः क्लथ॑न्। मै॒त्रः शर॑सि सन्ता॒य्यमा॑ने वाय॒व्यो॒ ह्रि॒यमा॑णऽआग्ने॒यो हू॒यमा॑नो॒ वाग्घु॒तः॥५॥

प्र॒जाप॑ति॒रिति॑ प्र॒जाऽप॑तिः। स॒म्भ्रि॒यमा॑ण॒ इति॑ सम्ऽभ्रि॒यमा॑णः। स॒म्राडिति॑ स॒म्ऽराट्। सम्भृ॑त॒ इति॒ सम्ऽभृ॑तः। वै॒श्व॒दे॒व इति॑ वैश्वऽदे॒वः। स॒ꣳस॒न्न इति॑ सम्ऽस॒न्नः। घ॒र्मः। प्रवृ॑क्त॒ इति॒ प्रऽवृ॑क्तः। तेजः॑। उद्य॑त॒ इत्यु॒त्ऽय॑तः। आ॒श्वि॒नः। पय॑सि। आ॒नी॒यमा॑न॒ इत्या॑ऽनी॒यमा॑ने। पौ॒ष्णः। वि॒ष्य॒न्दमा॑ने। वि॒स्य॒न्दमा॑न॒ इति॑ विऽस्य॒न्दमा॑ने। मा॒रु॒तः। क्लथ॑न्॥ मै॒त्रः। शर॑सि। स॒न्ता॒य्यमा॑न॒ इति॑ सम्ऽता॒य्यमा॑ने। वा॒य॒व्यः॒। ह्रि॒यमा॑णः। आ॒ग्ने॒यः। हू॒यमा॑नः। वाक्। हु॒तः॥५॥

पदार्थः-**(प्रजापतिः)** प्रजायाः पालको जीवः **(सम्भ्रियमाणः)** सम्यक् पोष्यमाणो ध्रियमाणो वा **(सम्राट्)** यः सम्यग्राजते सः **(संभृतः)** सम्यक् पोषितो धृतो वा **(वैश्वदेवः)** विश्वेषां देवानां दिव्यानां जीवानां पदार्थानां वा यः सम्बन्धी **(संसन्नः)** सम्यक् गच्छन् **(घर्मः)** **(प्रवृक्तः)** शरीरात् पृथक् भूतः **(तेजः)** **(उद्यतः)** ऊर्ध्वं गच्छन् **(आश्विनः)** आश्विनोः प्राणापानगत्योरयं सम्बन्धी **(पयसि)** उदके **(आनीयमाने)** समन्तात् प्राप्ते **(पोष्णः)** पूष्णः पृथिव्या अयं सम्बन्धी **(विस्यन्दमाने)** विशेषेण गम्यमाने **(मारुतः)** मनुष्यदेहानामयम् **(क्लथन्)** हिंसां कुर्वन् **(मैत्रः)** मित्रास्यायं सम्बन्धी **(शरसि)** तडागे **(सन्ताय्यमाने)** विस्तार्यमाणे पाल्यमाने वा **(वायव्यः)** वायौ भवः **(ह्रियमाणः)** यो

ह्रियते सः **(आग्नेयः)** अग्निदेवताकः **(हूयमानः)** शब्द्यमानः **(वाक्)** यो वदति सः **(हुतः)** शब्दितः॥५॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! येनेश्वरेण सम्भ्रियमाणः सम्राड् वैश्वदेवः संसन्नो घर्मस्तेजः प्रवृक्त उद्यत आश्विना आनीयमाने पयसि पौष्णो विस्यन्दमाने मारुतः क्लथन् मैत्रः सन्ताय्यमाने शरसि वायव्यो ह्रियमाण आग्नेयो हूयमानो वाग्घुतः प्रजापतिः सम्भृतोऽस्ति, तमेव परमात्मानं यूयमुपाध्वम्॥५॥

भावार्थः-यदायं जीवो देहं त्यक्त्वा सर्वेषु पृथिव्यादिपदार्थेषु भ्रमन् यत्र कुत्र प्रविशन् यतस्ततो गच्छन् कर्मानुसारेणेश्वरव्यवस्थया जन्म प्राप्नोति, तदैव सुप्रसिद्धो भवति॥५॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जिस ईश्वर ने **(सम्भ्रियमाणः)** सम्यक् पोषण वा धारण किया हुआ **(सम्राट्)** सम्यक् प्रकाशमान **(वैश्वदेवः)** सब उत्तम जीव वा पदार्थों के सम्बन्धी **(संसन्नः)** सम्यक् प्राप्त होता हुआ **(घर्मः)** घाम रूप **(तेजः)** प्रकाश तथा **(प्रवृक्तः)** शरीर से पृथक् हुआ **(उद्यतः)** ऊपर चलता हुआ **(आश्विनः)** प्राण-अपान सम्बन्धी तेज **(आनीयमाने)** अच्छे प्रकार प्राप्त हुए **(पयसि)** जल में **(पौष्णः)** पृथिवी सम्बन्धी तेज **(विस्यन्दमाने)** विशेषकर प्राप्त हुए समय में **(मारुतः)** मनुष्यदेहसम्बन्धी तेज **(क्लथन्)** हिंसा करता हुआ **(मैत्रः)** मित्र प्राणसम्बन्धी तेज **(सन्ताय्यमाने)** विस्तार किये वा पालन किये **(शरसि)** तालाब में **(वायव्यः)** प्राणसम्बन्धी तेज **(ह्रियमाणः)** हरण किया हुआ **(आग्नेयः)** अग्निदेवतासम्बन्धी तेज **(हूयमानः)** बुलाया हुआ **(वाक्)** बोलनेवाला **(हुतः)** शब्द किया तेज और **(प्रजापतिः)** प्रजा का रक्षक जीव **(सम्भृतः)** सम्यक् पोषण वा धारण किया है, उसी परमात्मा की तुम लोग उपासना करो॥५॥

भावार्थः-जब यह जीव शरीर छोड़ कर सब पृथिव्यादि पदार्थों में भ्रमण करता जहां-तहां प्रवेश करता और इधर-उधर जाता हुआ कर्मानुसार ईश्वर की व्यवस्था से जन्म पाता है, तब ही सुप्रसिद्ध होता है॥५॥

सवितेत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। सवितादयो देवताः। विराड् धृतिश्छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

सविता प्रथमेऽहन्नग्निर्द्वितीये वायुस्तृतीयऽआदित्यश्चतुर्थे। चन्द्रमाः पञ्चमऽऋतुः षष्ठे मरुतः सप्तमे बृहस्पतिरष्टमे मित्रो नवमे वरुणो दशमऽइन्द्रऽएकादशे विश्वे देवा द्वादशे॥६॥

स॒वि॒ता। प्र॒थ॒मे। अह॑न्। अ॒ग्निः। द्वि॒तीये॑। वा॒युः। तृ॒तीये॑। आ॒दि॒त्यः। च॒तु॒र्थे॥ च॒न्द्रमाः॑। प॒ञ्च॒मे। ऋ॒तुः। ष॒ष्ठे। म॒रुत॑ः। स॒प्त॒मे। बृ॒ह॒स्पति॑ः। अ॒ष्ट॒मे। मि॒त्रः। न॒व॒मे। वरु॑णः। द॒श॒मे। इन्द्र॑ः। ए॒का॒द॒शे। विश्वे॑। दे॒वाः। द्वा॒द॒शे॥ ६॥

पदार्थः-(सविता) सूर्यः **(प्रथमे)** आदिमे **(अहन्)** दिने **(अग्निः)** वह्निः **(द्वितीये)** द्वयोः पूर्णे **(वायुः)** **(तृतीये)** **(आदित्यः)** **(चतुर्थे)** **(चन्द्रमाः)** **(पञ्चमे)** **(ऋतुः)** **(षष्ठे)** **(मरुतः)** मनुष्यादयाः **(सप्तमे)** **(बृहस्पतिः)** बृहतां पालकः सूत्रात्मा **(अष्टमे)** **(मित्रः)** **प्राणः** **(नवमे)** **(वरुणः)** उदानः **(दशमे)** **(इन्द्रः)** विद्युत् **(एकादशे)** **(विश्वे)** सर्वे **(देवाः)** दिव्यगुणाः **(द्वादशे)**॥ ६॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! अनेन जीवेन प्रथमेऽहन् सविता द्वितीयेऽग्निस्तृतीये वायुश्चतुर्थ आदित्यः पञ्चमे चन्द्रमाः षष्ठ ऋतुः सप्तमे मरुतोऽष्टमे बृहस्पतिर्नवमे मित्रो दशमे वरुण एकादश इन्द्रो द्वादशेऽहनि विश्वे देवाश्च प्राप्यन्ते॥ ६॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यदेमे जीवाः शरीरं त्यजन्ति, तदा सूर्यप्रकाशादीन् पदार्थान् प्राप्य किञ्चित्कालं भ्रमणं कृत्वा स्वकर्मानुयोगेन गर्भाशयं गत्वा शरीरं धृत्वा जायन्ते, तदैव पुण्यपापकर्मणा सुखदुःखानि फलानि भुञ्जते॥ ६॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! इस जीव को **(प्रथमे)** शरीर छोड़ने के पहिले **(अहन्)** दिन **(सविता)** सूर्य **(द्वितीये)** दूसरे दिन **(अग्निः)** अग्नि **(तृतीये)** तीसरे **(वायुः)** वायु **(चतुर्थे)** चौथे **(आदित्यः)** महीना **(पञ्चमे)** पांचवें **(चन्द्रमाः)** चन्द्रमा **(षष्ठे)** छठे **(ऋतुः)** वसन्तादि ऋतु **(सप्तमे)** सातवें **(मरुतः)** मनुष्यादि प्राणी **(अष्टमे)** आठवें **(बृहस्पतिः)** बड़ों का रक्षक सूत्रात्मा वायु **(नवमे)** नवमे में **(मित्रः)** प्राण **(दशमे)** दशवें में **(वरुणः)** उदान **(एकादशे)** ग्यारहवें में **(इन्द्रः)** बिजुली और **(द्वादशे)** बारहवें दिन **(विश्वे)** सब **(देवाः)** दिव्य उत्तम गुण प्राप्त होते हैं॥ ६॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जब ये जीव शरीर को छोड़ते हैं, तब सूर्यप्रकाश आदि पदार्थों को प्राप्त होकर कुछ काल भ्रमण कर अपने कर्मों के अनुकूल गर्भाशय को प्राप्त हो, शरीर धारण कर उत्पन्न होते हैं, तभी पुण्य-पाप कर्म से सुख-दुःखरूप फलों को भोगते हैं॥ ६॥

उग्रश्चेत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। मरुतो देवताः। भुरिग्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनः के जीवाः किं गुणाः सन्तीत्याह॥

फिर कौन जीव किस गुण वाले हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उ॒ग्रश्च॑ भी॒मश्च॒ ध्वा॒न्तश्च॒ धुनि॑श्च।
सा॒स॒ह्वाँश्चा॑भियु॒ग्वा च॑ वि॒क्षि॒पः॒ स्वाहा॑॥ ७॥

उग्रः। च। भीमः। च। ध्वान्त इति ध्वुऽआन्तः। च। धुनिः। च॥ सासह्वान्। ससह्वानिति ससह्वान्। च। अभियुग्वेत्यभिऽयुग्वा। च। विक्षिप इति विक्षिपः। स्वाहा॥७॥

पदार्थः-(**उग्रः**) तीव्रस्वभावः (**च**) शान्तः (**भीमः**) बिभेति यस्मात् स भयंकरः (**च**) निर्भयः (**ध्वान्तः**) ध्वान्तमन्धकारं प्राप्तः (**च**) प्रकाशं गतः (**धुनिः**) कम्पमानः (**च**) निष्कम्पः (**सासह्वान्**) भृशं सहमानः (**च**) असहमानो वा (**अभियुग्वा**) योऽभितो युङ्क्ते सः (**च**) वियुक्त (**विक्षिपः**) यो विक्षिपति विक्षेपं प्राप्नोति सः (**स्वाहा**) स्वकीयया क्रियया॥७॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! मरणं प्राप्तो जीवः स्वाहोग्रश्च ध्वान्तश्चधुनिश्च सासह्वांश्चाभियुग्वा च विक्षिपो जायते॥७॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! ये जीवाः पापाचरणास्त उग्रा, ये धर्माचरणास्ते शान्ता, ये भयप्रदास्ते भीमा, ये भयं प्राप्तास्ते भीता, येऽजितेन्द्रियास्ते चञ्चला, ये जितेन्द्रियास्तेऽचञ्चलाः स्वस्वकर्मफलानि सहमानाः संयुक्ता विक्षेपं प्राप्ताः सन्तोऽत्र जगति नित्यं भ्रमन्तीति विजानीत॥७॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! मरण को प्राप्त हुआ जीव (**स्वाहा**) अपने कर्म से (**उग्रः**) तीव्र स्वभाववाला (**च**) शान्त (**भीमः**) भयकारी (**च**) निर्भय (**ध्वान्तः**) अन्धकार को प्राप्त (**च**) प्रकाश को प्राप्त (**धुनिः**) कांपता (**च**) निष्कम्प (**सासह्वान्**) शीघ्र सहनशील (**च**) न सहनेवाला (**अभियुग्वा**) सब ओर से नियमधारी (**च**) सबसे अलग और (**विक्षिपः**) विक्षेप को प्राप्त होता है॥७॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जो जीव पापाचरणी हैं वे कठोर, जो धर्मात्मा हैं वे शान्त, जो भय देनेवाले वे भीम शब्द वाच्य, जो भय को प्राप्त हैं वे भीत शब्द वाच्य, जो अभय देनेवाले हैं वे निर्भय, जो अविद्यायुक्त हैं वे अन्धकार से झंपे, जो विद्वान् योगी हैं वे प्रकाशयुक्त, जो जितेन्द्रिय नहीं हैं वे चञ्चल, जो जितेन्द्रिय हैं वे चञ्चलतारहित अपने-अपने कर्मफलों को सहते-भोगते संयुक्त विक्षेप को प्राप्त हुए इस जगत् में नित्य भ्रमण करते हैं, ऐसा जानो॥७॥

अग्निमित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। अग्न्यादयो लिङ्गोक्ता देवताः। निचृदत्यष्टिश्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

के जना उभयजन्मनोः सुखमाप्नुवन्तीत्याह॥

कौन मनुष्य दोनों जन्म में सुख पाते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अग्निꣳ हृदयेनाशनिꣳहृदयाग्रेण पशुपतिं कृत्स्नहृदयेन भवं यक्ना। शर्वं मतस्नाभ्यामीशानं मन्युना महादेवमन्तः पर्शव्येनोग्रं देवं वनिष्ठुना वसिष्ठहनुःशिङ्गीनि कोश्याभ्याम्॥८॥

अग्निम्। हृदयेन। अशनिम्। हृदयाग्रेणेति हृदयऽअग्रेण। पशुपतिमिति पशुऽपतिम्। कृत्स्नहृदयेनेति कृत्स्नऽहृदयेन। भवम्। यक्ना॥ शर्वम्। मतस्नाभ्याम्। ईशानम्। मन्युना। महादेवमिति महाऽदेवम्। अन्तःऽपर्शव्येन। उग्रम्। देवम्। वनिष्ठुना। वसिष्ठहनुरिति वसिष्ठऽहनुः। शिङ्गीनि। कोश्याभ्याम्॥८॥

पदार्थः-(**अग्निम्**) पावकम् (**हृदयेन**) हृदयावयवेन (**अशनिम्**) विद्युतम् (**हृदयाग्रेण**) हृदयस्य पुरोभागेन (**पशुपतिम्**) पशूनां पालकं जगद्धर्त्तारं रुद्रं सर्वप्राणम् (**कृत्स्नहृदयेन**) संपूर्णहृदयावयवेन (**भवम्**) यस्सर्वत्र भवति तम् (**यक्ना**) यकृता शरीराऽवयवेन (**शर्वम्**) विज्ञातारम् (**मतस्नाभ्याम्**) हृदयपार्श्वाऽवयवाभ्याम् (**ईशानम्**) सर्वस्य जगतः स्वामिनम् (**मन्युना**) दुष्टाचारिणः पापं च प्रति वर्त्तमानेन क्रोधेन (**महादेवम्**) महांश्चासौ देवश्च तं परमात्मानं (**अन्तःपर्शव्येन**) अन्तःपार्श्वावयवभावेन (**उग्रम्**) तीक्ष्णस्वभावम् (**देवम्**) देदीप्यमानम् (**वनिष्ठुना**) आन्त्रविशेषेण (**वसिष्ठहनुः**) वसिष्ठस्यातिशयेन वासहेतोर्हनुरिव हनुर्यस्य तम्। अत्र **सुपां सुलुग्** [अ०७.१.३९] इत्यमः स्थाने सुः (**शिङ्गीनि**) ज्ञातुं प्राप्तुं योग्यानि। अत्र स्रगिधातोः पृषोदरादिनाभीष्टरूपसिद्धिः। (**कोश्याभ्याम्**) कोश उदरे भवाभ्यां मांसपिण्डाभ्याम्॥८॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! ये ते मृत जीवा हृदेयनाग्निं हृदयाग्रेणाशनिं कृत्स्नहृदयेन पशुपतिं यक्ना भवं मतस्नाभ्यां शर्वं मन्युनेशानमन्तःपर्शव्येन महादेवमुग्रं देवं वनिष्ठुना वसिष्ठहनुः कोश्याभ्यां शिङ्गीनि प्राप्नुवन्तीति यूयं विजानीत॥८॥

भावार्थः-ये मनुष्याः सर्वाङ्गैर्धर्माचरणं विद्याग्रहणं सत्सङ्गं जगदीश्वरोपासनं च कुर्वन्ति, ते वर्त्तमानभविष्यतोर्जन्मनोः सर्वाणि सुखानि प्राप्नुवन्ति॥८॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो वे मरे हुए जीव (**हृदयेन**) हृदयरूप अवयव से (**अग्निम्**) अग्नि को (**हृदयाग्रेण**) हृदय के ऊपरले भाग से (**अशनिम्**) बिजुली को (**कृत्स्नहृदयेन**) संपूर्ण हृदय के अवयवों से (**पशुपतिम्**) पशुओं के रक्षक जगत् धारणकर्त्ता सबके जीवनहेतु परमेश्वर को (**यक्ना**) यकृतरूप शरीर के अवयवों से (**भवम्**) सर्वत्र होनेवाले ईश्वर को (**मतस्नाभ्याम्**) हृदय के इधर-उधर के अवयवों से (**शर्वम्**) विज्ञानयुक्त ईश्वर को (**मन्युना**) दुष्टाचारी और पाप के प्रति वर्त्तमान क्रोध से (**ईशानम्**) सब जगत् के स्वामी ईश्वर को (**अन्तःपर्शव्येन**) भीतरली पसुरियों के अवयवों में हुए विज्ञान से (**महादेवम्**) महादेव (**उग्रम् देवम्**) तीक्ष्ण स्वभाववाले प्रकाशमान ईश्वर को (**वनिष्ठुना**) आँत विशेष से (**वसिष्ठहनुः**) अत्यन्त वास के हेतु राजा के तुल्य ठोडीवाले जन को (**कोश्याभ्याम्**) पेट में हुए दो मांसपिण्डों से (**शिङ्गीनि**) जानने वा प्राप्त होने योग्य वस्तुओं को प्राप्त होते हैं, ऐसा तुम लोग जानो॥८॥

भावार्थः-जो मनुष्य शरीर के सब अङ्गों से धर्माचरण, विद्याग्रहण, सत्सङ्ग और जगदीश्वर की उपासना करते हैं, वे वर्त्तमान और भविष्यत् जन्मों में सुखों को प्राप्त होते हैं॥८॥

उग्रमित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। उग्रादयो लिङ्गोक्ता देवताः। भुरिगष्टिश्छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

मनुष्याः कथमुग्रस्वभावादीन् प्राप्नुवन्तीत्याह॥

मनुष्य लोग कैसे उग्र स्वभाव आदि को प्राप्त होते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उ॒ग्रं लोहि॑तेन मि॒त्रꣳ सौव्र॑त्येन रु॒द्रं दौर्व्र॑त्ये॒नेन्द्रं॑ प्रक्री॒डेन॑ म॒रुतो॒ बले॑न सा॒ध्यान् प्र॒मुदा॑। भ॒वस्य॒ कण्ठ्य॑ꣳ रु॒द्रस्या॑न्तः पा॒श्व्यं᳖ म॑हादे॒वस्य॒ यकृ॑च्छ॒र्वस्य॑ वनि॒ष्ठुः प॑शुप॒तेः पु॒री॒तत्॥ ९॥

उ॒ग्रम्। लोहि॑तेन। मि॒त्रम्। सौव्र॑त्येन। रु॒द्रम्। दौर्व्र॑त्ये॒नेति॒ दौःऽव्र॑त्येन। इन्द्र॑म्। प्र॒क्री॒डेनेति॑ प्रऽक्री॒डेन॑। म॒रुतः॑। बले॑न। सा॒ध्यान्। प्र॒मुदेति॑ प्र॒ऽमुदा॑॥ भ॒वस्य॑। कण्ठ्य॑म्। रु॒द्रस्य॑। अ॒न्तःऽपा॒र्श्व्यमित्य॑न्तःऽपा॒र्श्व्यम्। म॒हा॒दे॒वस्येति॑ महाऽदे॒वस्य॑। यकृ॑त्। श॒र्वस्य॑। व॒नि॒ष्ठुः। प॒शु॒प॒तेरिति॑ पशु॒ऽपतेः॑। पु॒री॒तत्। पु॒रि॒तदिति॑ पु॒रि॒ऽतत्॥ ९॥

पदार्थः-(**उग्रम्**) तीव्रं गुणम् (**लोहितेन**) शुद्धेन रक्तेन (**मित्रम्**) प्राणमिव सखायम् (**सौव्रत्येन**) श्रेष्ठेन कर्मणा (**रुद्रम्**) रोदयितारम् (**दौर्व्रत्येन**) दुष्टाचारेण (**इन्द्रम्**) परमैश्वर्य्यं विद्युतं वा (**प्रक्रीडेन**) (**मरुतः**) उत्तमान् मनुष्यान् (**बलेन**) (**साध्यान्**) साद्धुं योग्यान् (**प्रमुदा**) प्रकृष्टेन हर्षेण (**भवस्य**) यः प्रशंसितो भवति तस्य (**कण्ठ्यम्**) कण्ठे भवं स्वरम् (**रुद्रस्य**) दुष्टानां रोदयितुः (**अन्तःपार्श्व्यम्**) अन्तःपार्श्वे भवम् (**महादेवस्य**) महतो विदुषः (**यकृत्**) हृदयस्थो रोहितः पिण्डः (**शर्वस्य**) सुखप्रापकस्य (**वनिष्ठुः**) आन्त्रविशेषः। अत्र **सुपां सुलुग्** [अ०७.१.३९] इत्यमः स्थाने सुरादेशः। (**पशुपतेः**) (**पुरीतत्**) हृदयस्य नाडी॥ ९॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! गर्भाशयस्था जीवा बाह्या वा लोहितेनोग्रं सौव्रत्येन मित्रं दौर्व्रत्येन रुद्रं प्रक्रीडेनेन्द्रं बलेन मरुतः प्रमुदा साध्यान् भवस्य कण्ठ्यं रुद्रस्यान्तःपार्श्व्यं महादेवस्य यकृच्छर्वस्य वनिष्ठुः पशुपतेः पुरीतत् प्राप्नुवन्ति॥ ९॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यथा देहिनो रुधिराद्यैरुग्रादिस्वभावादीन् प्राप्नुवन्ति, तथा गर्भाशयेऽपि लभन्ते॥ ९॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! गर्भाशय में स्थित वा बाहर रहनेवाले जीव (**लोहितेन**) शुद्ध रुधिर से (**उग्रम्**) तीव्र गुण (**सौव्रत्येन**) श्रेष्ठ कर्म से (**मित्रम्**) प्राण के तुल्य प्रिय (**द्रौर्वत्येन**) दुष्टाचरण से (**रुद्रम्**) रुलानेहारे (**प्रक्रीडेन**) उत्तम क्रीड़ा से (**इन्द्रम्**) परम ऐश्वर्य्य वा बिजुली (**बलेन**) बल से (**मरुतः**) उत्तम मनुष्यों को (**प्रमुदा**) उत्तम आनन्द से (**साध्यान्**) साधने योग्य पदार्थों को (**भवस्य**) प्रशंसा को प्राप्त होनेवाले के (**कण्ठ्यम्**) कण्ठ में हुए स्वर (**रुद्रस्य**) दुष्टों को रुलानेहारे जन के (**अन्तःपार्श्व्यम्**) भीतर पसुरी में हुए (**महादेवस्य**) महादेव विद्वान् के (**यकृत्**) हृदय में स्थित

लालपिण्ड **(शर्वस्य)** सुखप्रापक मनुष्य का **(वनिष्ठुः)** आँतविशेष **(पशुपतेः)** पशुओं के रक्षक पुरुष के **(पुरीतत्)** हृदय की नाड़ी को प्राप्त होते हैं॥९॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जैसे देहधारी रुधिर आदि से तेजस्वी स्वभाव आदि को प्राप्त होते हैं, वैसे ही गर्भाशय में भी प्राप्त होते हैं॥९॥

लोमभ्य इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। अग्निर्देवता। आकृतिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

मनुष्यैर्भस्मान्तं शरीरं मन्त्रैर्दाह्यमित्याह॥

मनुष्यों को भस्म होने तक शरीर का मन्त्रों से दाह करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

लोमभ्यः स्वाहा लोमभ्यः स्वाहा त्वचे स्वाहा त्वचे स्वाहा लोहिताय स्वाहा लोहिताय स्वाहा मेदोभ्यः स्वाहा मेदोभ्यः स्वाहा। माꣳसेभ्यः स्वाहा माꣳसेभ्यः स्वाहा स्नावभ्यः स्वाहा स्नावभ्यः स्वाहाऽस्थभ्यः स्वाहाऽस्थभ्यः स्वाहा मज्जभ्यः स्वाहा मज्जभ्यः स्वाहा। रेतसे स्वाहा पायवे स्वाहा॥ १०॥

लोमभ्य इति लोमऽभ्यः। स्वाहा। लोमभ्य इति लोमऽभ्यः। स्वाहा। त्वचे। स्वाहा। त्वचे। स्वाहा। लोहिताय। स्वाहा। लोहिताय। स्वाहा। मेदोभ्य इति मेदःऽभ्यः। स्वाहा। मेदोभ्य इति मेदःऽभ्यः। स्वाहा। माꣳसेभ्यः। स्वाहा। माꣳसेभ्यः। स्वाहा। स्नावभ्य इति स्नावऽभ्यः। स्वाहा। स्नावभ्य इति स्नावऽभ्यः। स्वाहा। अस्थभ्य इत्यस्थऽभ्यः। स्वाहा। अस्थभ्य इत्यस्थऽभ्यः। स्वाहा। मज्जभ्य इति मज्जऽभ्यः। स्वाहा। मज्जभ्य इति मज्जऽभ्यः। स्वाहा। रेतसे। स्वाहा। पायवे। स्वाहा॥ १०॥

पदार्थः-**(लोमभ्यः)** त्वगुपरिस्थेभ्यो बालेभ्यः **(स्वाहा)** **(लोमभ्यः)** नखादिभ्यः **(स्वाहा)** **(त्वचे)** शरीरावरणदाहाय **(स्वाहा)** **(त्वचे)** तदन्तरावरणदाहाय **(स्वाहा)** **(लोहिताय)** रक्ताय **(स्वाहा)** **(लोहिताय)** हृदयस्थाय लोहितपिण्डाय **(स्वाहा)** **(मेदोभ्यः)** स्निग्धेभ्यो धातुविशेषेभ्यः **(स्वाहा)** **(मेदोभ्यः)** सर्वशरीरावयवार्द्रीकरेभ्यः **(स्वाहा)** **(मांसेभ्यः)** बहिःस्थेभ्यः **(स्वाहा)** **(मांसेभ्यः)** शरीरान्तर्गतेभ्यः **(स्वाहा)** **(स्नावभ्यः)** स्थूलनाडीभ्यः **(स्वाहा)** **(स्नावभ्यः)** सूक्ष्माभ्यः सिराभ्यः **(स्वाहा)** **(अस्थभ्यः)** शरीरस्थकठिनावयवेभ्यः **(स्वाहा)** **(अस्थभ्यः)** सूक्ष्मावयवाऽस्थिरूपेभ्यः **(स्वाहा)** **(मज्जभ्यः)** अस्थ्यन्तर्गतेभ्यो धातुभ्यः **(स्वाहा)** **(मज्जभ्यः)** तदन्तर्गतेभ्यः **(स्वाहा)** **(रेतसे)** वीर्य्याय **(स्वाहा)** **(पायवे)** गुह्यावयवदाहाय **(स्वाहा)**॥१०॥

अन्वयः-मनुष्यैः प्रेतक्रियायां घृतादेर्लोमभ्यः स्वाहा लोमभ्यः स्वाहा त्वचे स्वाहा त्वचे स्वाहा लोहिताय स्वाहा लोहिताय स्वाहा मेदोभ्यः स्वाहा मेदोभ्यः स्वाहा मांसेभ्यः स्वाहा मांसेभ्यः

स्वाहा स्नावभ्यः स्वाहा स्नावभ्यः स्वाहाऽस्थभ्यः स्वाहाऽस्थभ्यः स्वाहा मज्जभ्यः स्वाहा मज्जभ्यः स्वाहा रेतसे स्वाहा पायवे स्वाहा सततं प्रयोज्या॥१०॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यावल्लोमान्यारभ्य वीर्यपर्यन्तस्य तच्छरीरस्य भस्म न स्यात् तावद् घृतेन्धनानि प्रक्षिपत॥१०॥

पदार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि दाहकर्म में घी आदि से **(लोमभ्यः)** त्वचा के ऊपरले वालों के लिये **(स्वाहा)** इस शब्द का **(लोमभ्यः)** नख आदि के लिये **(स्वाहा) (त्वचे)** शरीर की त्वचा जलाने को **(स्वाहा) (त्वचे)** भीतरली त्वचा जलाने के लिये **(स्वाहा) (लोहिताय)** रुधिर जलाने को **(स्वाहा) (लोहिताय)** हृदयस्थ रुधिर पिण्ड जलाने को **(स्वाहा) (मेदोभ्यः)** चिकने धातुओं के जलाने को **(स्वाहा) (मेदोभ्यः)** सब शरीर के अवयवों को आर्द्र करनेवाले भागों के जलाने को **(स्वाहा) (मांसेभ्यः)** बाहरले मांसों के जलाने को **(स्वाहा) (मांसेभ्यः)** भीतरले मांसों के जलाने के लिये **(स्वाहा) (स्नावभ्यः)** स्थूल नाड़ियो के जलाने को **(स्वाहा) (स्नावभ्यः)** सूक्ष्म नाड़ियों के जलाने को **(स्वाहा) (अस्थभ्यः)** शरीरस्थ कठिन अवयवों के जलाने के लिये **(स्वाहा) (अस्थभ्यः)** सूक्ष्म अस्थिरूप अवयवों के जलाने को **(स्वाहा) (मज्जभ्यः)** हाड़ों के भीतर के धातुओं के लिये **(स्वाहा) (मज्जभ्यः)** उसके अन्तर्गत भाग के जलाने को **(स्वाहा) (रेतसे)** वीर्य के जलाने को **(स्वाहा)** और **(पायवे)** गुदारूप अवयव के दाह के लिये **(स्वाहा)** इस शब्द का निरन्तर प्रयोग करें॥१०॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जब तक लोम से लेकर वीर्य्य पर्यन्त उस मृत शरीर का भस्म न हो, तब तक घी और ईंधन डाला करो॥१०॥

आयासायेत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। अग्निर्देवता। स्वराड् जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनर्मनुष्यैर्जन्मान्तरे सुखार्थं किं कर्त्तव्यमित्याह॥

फिर मनुष्यों को जन्मान्तर में सुख के लिये क्या कर्त्तव्य है, उस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आयासाय स्वाहा प्रायासाय स्वाहा संयासाय स्वाहा वियासाय स्वाहोद्यासाय स्वाहा। शुचे स्वाहा शोचते स्वाहा शोचमानाय स्वाहा शोकाय स्वाहा॥११॥

आयासायेत्याऽयासाय। स्वाहा। प्रायासाय। प्रयासायेति प्रऽयासाय। स्वाहा। संयासायेति सम्ऽयासाय। स्वाहा। वियासायेति विऽयासाय। स्वाहा। उद्यासायेत्युत्ऽयासाय। स्वाहा॥ शुचे। स्वाहा। शोचते। स्वाहा। शोचमानाय। स्वाहा। शोकाय। स्वाहा॥११॥

पदार्थः-(आयासाय) समन्तात् प्रापणाय **(स्वाहा) (प्रायासाय)** प्रयाणाय **(स्वाहा) (संयासाय)** सम्यग्गमनाय **(स्वाहा) (वियासाय)** विविधप्राप्तये **(स्वाहा) (उद्यासाय)** ऊर्ध्वं गमनाय **(स्वाहा) (शुचे)** पवित्राय **(स्वाहा) (शोचते)** शुद्धिकर्त्रे **(स्वाहा) (शोचमानाय)** विचारप्रकाशाय **(स्वाहा) (शोकाय)** शोचन्ति यस्मिँस्तस्मै **(स्वाहा)**॥११॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यूयमायासाय स्वाहा प्रायासाय स्वाहा संयासाय स्वाहा वियासाय स्वाहोद्यासाय स्वाहा शुचे स्वाहा शोचते स्वाहा शोचमानाय स्वाहा शोकाय स्वाहा प्रयुङ्ग्ध्वम्॥११॥

भावार्थः-मनुष्यैः पुरुषार्थादिसिद्धये सत्या वाग् मतिः क्रिया चानुष्ठेया, येन देहान्तरे जन्मान्तरे च मङ्गलं स्यात्॥११॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम लोग **(आयासाय)** अच्छे प्रकार प्राप्त होने को **(स्वाहा)** इस शब्द का **(प्रायासाय)** जाने के लिये **(स्वाहा) (संयासाय)** सम्यक् चलने के लिये **(स्वाहा) (वियासाय)** विविध प्रकार वस्तुओं की प्राप्ति को **(स्वाहा) (उद्यासाय)** ऊपर को जाने के लिये **(स्वाहा) (शुचे)** पवित्र के लिये **(स्वाहा) (शोचते)** शुद्धि करनेवाले के लिये **(स्वाहा) (शोचमानाय)** विचार के प्रकाश के लिये **(स्वाहा)** और **(शोकाय)** जिस में शोक करते हैं, उसके लिये **(स्वाहा)** इस शब्द का प्रयोग करो॥११॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि पुरुषार्थ-सिद्धि के लिये सत्य वाणी, बुद्धि और क्रिया का अनुष्ठान करें, जिससे देहान्तर और जन्मान्तर में मङ्गल हो॥११॥

तपस इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। अग्निर्देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनर्मनुष्यैः कैः साधनैः सुखं प्राप्तव्यमित्याह॥

फिर मनुष्यों को किन साधनों से सुख प्राप्त करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

तप॑से॒ स्वाहा॒ तप्य॑ते॒ स्वाहा॒ तप्य॑मानाय॒ स्वाहा॑ त॒प्ताय॒ स्वाहा॑ घ॒र्माय॒ स्वाहा॑। निष्कृ॑त्यै॒ स्वाहा॒ प्राय॑श्चित्यै॒ स्वाहा॑ भेष॒जाय॒ स्वाहा॑॥१२॥

तप॑से। स्वाहा॑। तप्य॑ते। स्वाहा॑। तप्य॑मानाय। स्वाहा॑। त॒प्ताय॑। स्वाहा॑। घ॒र्माय॑। स्वाहा॑॥ निष्कृ॑त्यै। निः॒ऽकृ॑त्या॒ इति॒ नि॒ःऽकृ॑त्यै। स्वाहा॑। प्राय॑श्चित्यै। स्वाहा॑। भे॒ष॒जाय॑। स्वाहा॑॥१२॥

पदार्थः-(तपसे) प्रतापाय **(स्वाहा) (तप्यते)** यस्तापं प्राप्नोति तस्मै **(स्वाहा) (तप्यमानाय)** प्राप्ततापाय **(स्वाहा) (तप्ताय) (स्वाहा) (घर्माय)** दिनाय **(स्वाहा) (निष्कृत्यै)** निवारणाय **(स्वाहा)**

(प्रायश्चित्यै) पापनिवारणाय **(स्वाहा)** **(भेषजाय)** सुखाय। **भेषजमिति सुखनामसु पठितम्॥** (निघं०३।६) **(स्वाहा)**॥१२॥

अन्वयः-मनुष्यैस्तपसे स्वाहा तप्यते स्वाहा तप्यमानाय स्वाहा तप्ताय स्वाहा घर्माय स्वाहा निष्कृत्यै स्वाहा प्रायश्चित्यै स्वाहा भेषजाय स्वाहा च निरन्तरं प्रयोक्तव्या॥१२॥

भावार्थः-मनुष्यैः प्राणायामादिसाधनैः सर्वं किल्विषं निवार्य्य सुखं प्राप्तव्यं प्रापयितव्यं च॥१२॥

पदार्थः-मनुष्यों को चाहिये **(तपसे)** प्रताप के लिये **(स्वाहा)** **(तप्यते)** सन्ताप को प्राप्त होनेवाले के लिये **(स्वाहा)** **(तप्यमानाय)** ताप गर्मी को प्राप्त होनेवाले के लिये **(स्वाहा)** **(तप्ताय)** तपे हुए के लिये **(स्वाहा)** **(घर्माय)** दिन के होने को **(स्वाहा)** **(निष्कृत्यै)** निवारण के लिये **(स्वाहा)** **(प्रायश्चित्यै)** पापनिवृत्ति के लिये **(स्वाहा)** और **(भेषजाय)** सुख के लिये **(स्वाहा)** इस शब्द का निरन्तर प्रयोग करें॥१२॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि प्राणायाम आदि साधनों से सब किल्विष का निवारण करके सुख को स्वयं प्राप्त हों, दूसरों को प्राप्त करावें॥१२॥

यमायेत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनर्मनुष्यैः किं कर्त्तव्यमित्याह॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

य॒माय॒ स्वाहाऽन्त॑काय॒ स्वाहा॑ मृ॒त्यवे॒ स्वाहा॒ ब्रह्म॑णे॒ स्वाहा॑ ब्रह्मह॒त्यायै॒ स्वाहा॑ विश्वे॑भ्यो दे॒वेभ्य॒ः स्वाहा॒ द्यावा॑पृथि॒वीभ्या॒ᳬं स्वाहा॑॥१३॥

य॒माय॑। स्वाहा॑। अन्त॑काय। स्वाहा॑। मृ॒त्यवे॑। स्वाहा॑। ब्रह्म॑णे। स्वाहा॑। ब्र॒ह्म॒ह॒त्याया॒ इति॑ ब्रह्मऽह॒त्यायै॑। स्वाहा॑। विश्वे॑भ्यः। दे॒वेभ्यः॑। स्वाहा॑। द्यावा॑पृथि॒वीभ्या॑म्। स्वाहा॑॥१३॥

पदार्थः-**(यमाय)** नियन्त्रे न्यायाधीशाय वायवे वा **(स्वाहा)** **(अन्तकाय)** नाशकाय कालाय **(स्वाहा)** **(मृत्यवे)** प्राणत्यागकारिणे समयाय **(स्वाहा)** **(ब्रह्मणे)** बृहत्तमाय परमात्मने ब्रह्मविदुषे वा **(स्वाहा)** **(ब्रह्महत्यायै)** ब्रह्मणो वेदस्येश्वरस्य विदुषो वा हनननिवारणाय **(स्वाहा)** **(विश्वेभ्यः)** अखिलेभ्यः **(देवेभ्यः)** विद्वद्भ्यो जलादिभ्यो वा **(स्वाहा)** **(द्यावापृथिवीभ्याम्)** सूर्य्यभूमिशोधनाय **(स्वाहा)**॥१३॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यूयं यमाय स्वाहाऽन्तकाय स्वाहा मृत्यवे स्वाहा ब्रह्मणे स्वाहा ब्रह्मत्यायै स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा च प्रयुङ्ध्वम्॥१३॥

भावार्थः-ये मनुष्या न्यायव्यवस्थां पालयित्वाऽल्पमृत्युं विनिवार्येश्वरविदुषः संसेव्य ब्रह्महत्यादिदोषान्निवार्य्य सृष्टिविद्यां विदित्वाऽन्त्येष्टिं विदधति, ते सर्वेषां मङ्गलप्रदा भवन्ति, सर्वदैवं मृतशरीरं दग्ध्वा सर्वेषां सुखमुन्नेयमिति॥१३॥

अत्राऽन्त्येष्टिकर्मवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वाध्यायोक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेदितव्यम्॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! तुम लोग **(यमाय)** नियन्ता न्यायाधीश वा वायु के लिये **(स्वाहा)** इस शब्द का **(अन्तकाय)** नाशकर्त्ता काल के लिये **(स्वाहा)** **(मृत्यवे)** प्राणत्याग करानेवाले समय के लिये **(स्वाहा)** **(ब्रह्मणे)** बृहत्तम अति बड़े परमात्मा के लिये वा ब्राह्मण विद्वान् के लिये **(स्वाहा)** **(ब्रह्महत्यायै)** ब्रह्म वेद वा ईश्वर वा विद्वान् की हत्या के निवारण के लिये **(स्वाहा)** **(विश्वेभ्यः)** सब **(देवेभ्यः)** दिव्य गुणों से युक्त विद्वानों वा जलादि के लिये **(स्वाहा)** और **(द्यावापृथिवीभ्याम्)** सूर्य्यभूमि के शोधने के लिये **(स्वाहा)** इस शब्द का प्रयोग करो॥१३॥

भावार्थः-जो मनुष्य न्यायव्यवस्था का पालन कर अल्पमृत्यु को निवारण कर ईश्वर और विद्वानों का सेवन कर ब्रह्महत्यादि दोषों को छुड़ा के सृष्टिविद्या को जान के अन्त्येष्टिकर्म विधि करते हैं, वे सब के मङ्गल देनेवाले होते हैं। सब काल में इस प्रकार मृतशरीर को जला के सब के सुख की उन्नति करनी चाहिये॥१३॥

इस अध्याय में अन्त्येष्टि कर्म का वर्णन होने से इस अध्याय में कहे अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ संगति है, ऐसा जानना चाहिये॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य्यश्रीविरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचिते यजुर्वेदभाष्ये संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां समन्विते सुप्रमाणयुक्ते एकोनचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः पूर्त्तिमगमत्॥३९॥

॥ओ३म्॥

अथ चत्वारिंशाऽध्यायारम्भः

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव। यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व॥ यजु० ३०.३॥

ईशावास्यमित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। आत्मा देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथ मनुष्याः परमात्मानं विज्ञाय किङ्कुर्युरित्याह॥

अब चालीसवें अध्याय का आरम्भ है। इसके प्रथम मन्त्र में मनुष्य ईश्वर को जानके क्या करें, इस विषय को कहा है॥

ई॒शा वा॒स्य॒मि॒दंᳬ सर्वं॒ यत्किञ्च॒ जग॑त्यां॒ जग॑त्।

तेन॑ त्य॒क्तेन॑ भुञ्जीथा॒ मा गृ॑ध॒ः कस्य॑ स्वि॒द्धन॑म्॥ १॥

ई॒शा। वा॒स्य॒म्। इ॒दम्। स॒र्व॑म्। यत्। किम्। च॒। जग॑त्याम्। जग॑त्॥ तेन॑। त्य॒क्तेन॑। भु॒ञ्जी॒था॒ः। मा। गृ॒ध॒ः। कस्य॑। स्वि॒त्। धन॑म्॥ १॥

पदार्थः-(**ईशा**) ईश्वरेण सकलैश्वर्य्यसम्पन्नेन सर्वशक्तिमता परमात्मना (**वास्यम्**) आच्छादयितुं योग्यं सर्वतोऽभिव्याप्यम् (**इदम्**) प्रकृत्यादिपृथिव्यन्तम् (**सर्वम्**) अखिलम् (**यत्**) (**किम्**) (**च**) (**जगत्याम्**) गम्यमानायां सृष्टौ (**जगत्**) यद्गच्छति तत् (**तेन**) (**त्यक्तेन**) वर्जितेन तच्चित्तरहितेन (**भुञ्जीथाः**) भोगमनुभवेः (**मा**) निषेधे (**गृधः**) अभिकांक्षीः (**कस्य**) (**स्वित्**) कस्यापि स्विदिति प्रश्ने वा (**धनम्**) वस्तुमात्रम्॥ १॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! त्वं यदिदं सर्व जगत्यां जगदीशा वास्यमस्ति, तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः, किञ्च कस्य स्विद्धनं मा गृधः॥ १॥

भावार्थः-ये मनुष्या ईश्वराद् बिभ्यत्ययमस्मान् सर्वदा सर्वतः पश्यति, जगदिदमीश्वरेण व्याप्तं सर्वत्रेश्वरोऽस्तीति व्यापकमन्तर्यामिणं निश्चित्य कदाचिदप्यन्यायाचरणेन कस्यापि किञ्चिदपि द्रव्यं ग्रहीतुं नेच्छेयुस्ते धार्मिका भूत्वाऽत्र परत्राभ्युदयनिःश्रेयसे फले प्राप्य सदाऽऽनन्देयुः॥ १॥

पदार्थः-हे मनुष्य! तू (**यत्**) जो (**इदम्**) प्रकृति से लेकर पृथिवीपर्य्यन्त (**सर्वम्**) सब (**जगत्याम्**) प्राप्त होने योग्य सृष्टि में (**जगत्**) चरप्राणीमात्र (**ईशा**) संपूर्ण ऐश्वर्य से युक्त सर्वशक्तिमान् परमात्मा से (**वास्यम्**) आच्छादन करने योग्य अर्थात् सब ओर से व्याप्त होने योग्य है (**तेन**) उस (**त्यक्तेन**) त्याग किये हुए जगत् से (**भुञ्जीथाः**) पदार्थों के भोगने का अनुभव कर (**किंच**) किन्तु (**कस्य, स्वित्**) किसी के भी (**धनम्**) वस्तुमात्र की (**मा**) मत (**गृधः**) अभिलाषा कर॥ १॥

भावार्थः-जो मनुष्य ईश्वर से डरते हैं कि यह हमको सदा सब ओर से देखता है, यह जगत् ईश्वर से व्याप्त और सर्वत्र ईश्वर विद्यमान है। इस प्रकार व्यापक अन्तर्यामी परमात्मा का निश्चय करके भी अन्याय के आचरण से किसी का कुछ भी द्रव्य ग्रहण नहीं किया चाहते, वे धर्मात्मा होकर इस लोक के सुख और परलोक में मुक्तिरूप सुख को प्राप्त करके सदा आनन्द में रहें॥१॥

कुर्वन्नित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। आत्मा देवता। भुरिगनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथ वैदिककर्मणः प्राधान्यमुच्यते

अब वेदोक्त कर्म की उत्तमता अगले मन्त्र में कहते हैं॥

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः।

एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥२॥

कुर्वन्। एव। इह। कर्माणि। जिजीविषेत्। शतम्। समाः॥ एवम्। त्वयि। न। अन्यथा। इतः। अस्ति। न। कर्म। लिप्यते। नरे॥२॥

पदार्थः-(**कुर्वन्**) (**एव**) (**इह**) अस्मिन् संसारे (**कर्माणि**) धर्म्याणि वेदोक्तानि निष्कामकृत्यानि (**जिजीविषेत्**) जीवितुमिच्छेत् (**शतम्**) (**समाः**) संवत्सरान् (**एवम्**) अमुना प्रकारेण (**त्वयि**) (**न**) निषेधे (**अन्यथा**) (**इतः**) अस्मात् प्रकारात् (**अस्ति**) भवति (**न**) निषेधे (**कर्म**) अधर्म्यमवैदिकं मनोर्थसम्बन्धिकर्म (**लिप्यते**) (**नरे**) नयनकर्त्तरि॥२॥

अन्वयः-मनुष्य इह कर्माणि कुर्वन्नेव शतं समा जिजीविषेदेवं धर्म्ये कर्मणि प्रवर्त्तमाने त्वयि नरे न कर्म लिप्यते इतोऽन्यथा नास्ति लोपाभावः॥२॥

भावार्थः-मनुष्या आलस्यं विहाय सर्वस्य द्रष्टारं न्यायाधीशं परमात्मानं कर्त्तुमर्हां तदाज्ञां च मत्वा शुभानि कर्माणि कुर्वन्तोऽशुभानि त्यजन्तो ब्रह्मचर्य्येण विद्यासुशिक्षे प्राप्योपस्थेन्द्रियनिग्रहेण वीर्य्यमुन्नीयाल्पमृत्युं घ्नन्तु युक्ताहारविहारेण शतवार्षिकमायुः प्राप्नुवन्तु। यथा यथा मनुष्याः सुकर्मसु चेष्टन्ते तथा तथैव पापकर्मतो बुद्धिर्निवर्त्तते विद्यायुः सुशीलता च वर्द्धन्ते॥२॥

पदार्थः-मनुष्य (**इह**) इस संसारे में (**कर्माणि**) धर्मयुक्त वेदोक्त निष्काम कर्मों को (**कुर्वन्**) करता हुआ (**एव**) ही (**शतम्**) सौ (**समाः**) वर्ष (**जिजीविषेत्**) जीवन की इच्छा करे (**एवम्**) इस प्रकार धर्मयुक्त कर्म में प्रवर्त्तमान (**त्वयि**) तुझ (**नरे**) व्यवहारों को चलानेहारे जीवन के इच्छुक होते हुए (**कर्म**) अधर्मयुक्त अवैदिक काम्य कर्म (**न**) नहीं (**लिप्यते**) लिप्त होता (**इतः**) इस से जो (**अन्यथा**) और प्रकार से (**न, अस्ति**) कर्म लगाने का अभाव नहीं होता है॥२॥

भावार्थः-मनुष्य आलस्य को छोड़ कर सब देखने हारे न्यायाधीश परमात्मा और करने योग्य उसकी आज्ञा को मानकर शुभ कर्मों को करते हुए अशुभ कर्मों को छोड़ते हुए ब्रह्मचर्य के

सेवन से विद्या और अच्छी शिक्षा को पाकर उपस्थ इन्द्रिय के रोकने से पराक्रम को बढ़ा कर अल्पमृत्यु को हटावे, युक्त आहार-विहार से सौ वर्ष की आयु को प्राप्त होवें। जैसे-जैसे मनुष्य सुकर्मों में चेष्टा करते हैं, वैसे-वैसे ही पापकर्म से बुद्धि की निवृत्ति होती और विद्या, अवस्था और सुशीलता बढ़ती है॥२॥

असुर्य्या इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। आत्मा देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथात्महन्तारो जनाः कीदृशा इत्याह॥

अब आत्मा के हननकर्त्ता अर्थात् आत्मा को भूले हुए जन कैसे होते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

असुर्य्या नाम लोकाऽअन्धेन तमसावृताः।
ताँस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥३॥

असुर्य्याः। नाम। ते। लोकाः। अन्धेन। तमसा। आवृता इत्याऽवृताः॥ तान्। ते। प्रेत्येति प्रऽइत्य। अपि। गच्छन्ति। ये। के। च। आत्महन इत्यात्मऽहनः। जनाः॥३॥

पदार्थः-(**असुर्य्याः**) असुराणां प्राणपोषणतत्पराणामविद्यादियुक्तानामिमे सम्बन्धिनस्तत्सदृशः पापकर्माणः (**नाम**) प्रसिद्धौ (**ते**) (**लोकाः**) लोकन्ते पश्यन्ति ते जनाः (**अन्धेन**) अन्धकाररूपेण (**तमसा**) अत्यावरकेण (**आवृताः**) समन्ताद्युक्ता आच्छादिताः (**तान्**) दुःखान्धकारावृतान् भोगान् (**ते**) (**प्रेत्य**) मरणं प्राप्य (**अपि**) जीवन्तोऽपि (**गच्छन्ति**) प्राप्नुवन्ति (**ये**) (**के**) (**च**) (**आत्महनः**) य आत्मानं घ्नन्ति तद्विरुद्धमाचरन्ति ते (**जनाः**) मनुष्याः॥३॥

अन्वयः-ये लोका अन्धेन तमसाऽऽवृता ये के चात्महनो जनाः सन्ति, तेऽसुर्य्या नाम ते प्रेत्यापि तान् गच्छन्ति॥३॥

भावार्थः-त एव असुरा दैत्या राक्षसाः पिशाचा दुष्टा मनुष्या य आत्मन्यन्यद् वाच्यन्यत् कर्मण्यन्यदाचरन्ति, ते न कदाचिदविद्यादुःखसागरादुत्तीर्याऽऽनन्दं प्राप्तुं शक्नुवन्ति। ये च यदात्मना तन्मनसा यन्मनसा तद्वाचा यद्वाचा तत्कर्मणाऽनुतिष्ठन्ति, त एव देवा आर्य्या सौभाग्यवन्तोऽखिलं जगत् पवित्रयन्त इमामुत्रातुलं सुखमश्नुवते॥३॥

पदार्थः-जो (**लोकाः**) देखने वाले लोग (**अन्धेन**) अन्धकाररूप (**तमसा**) ज्ञान का आवरण करनेहारे अज्ञान से (**आवृताः**) सब ओर से ढंपे हुए (**च**) और (**ये**) जो (**के**) कोई (**आत्महनः**) आत्मा के विरुद्ध आचरण करनेहारे (**जनाः**) मनुष्य हैं (**ते**) वे (**असुर्य्याः**) अपने प्राणपोषण में तत्पर अविद्यादि दोषयुक्त लोगों के सम्बन्धी उनके पापकर्म करनेवाले (**नाम**) प्रसिद्ध में होते हैं (**ते**) वे

(प्रेत्य) मरने के पीछे **(अपि)** और जीते हुए भी **(तान्)** उन दु:ख और अज्ञानरूप अन्धकार से युक्त भोगों को **(गच्छन्ति)** प्राप्त होते हैं॥३॥

भावार्थ:-वे ही मनुष्य असुर, दैत्य, राक्षस तथा पिशाच आदि हैं, जो आत्मा में और जानते वाणी से और बोलते और करते कुछ ही हैं, वे कभी अविद्यारूप दु:खसागर से पार हो आनन्द को नहीं प्राप्त हो सकते, और जो आत्मा, मन, वाणी और कर्म से निष्कपट एकसा आचरण करते हैं, वे ही देव, आर्य्य, सौभाग्यवान् सब जगत् को पवित्र करते हुए इस लोक और परलोक में अतुल सुख भोगते हैं॥३॥

अनेजदित्यस्य दीर्घतमा ऋषि:। ब्रह्म देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्द:। धैवत: स्वर:॥

कीदृशो जन ईश्वरं साक्षात्करोतीत्याह॥

कैसा जन ईश्वर को साक्षात् करता है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवाऽआप्नुवन् पूर्वमर्षत्।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति॥४॥

अनेजत्। एकम्। मनस:। जवीय:। न। एनत्। देवा:। आप्नुवन्। पूर्वम्। अर्षत्॥ तत्। धावत:। अन्यान्। अति। एति। तिष्ठत्। तस्मिन्। अप:। मातरिश्वा। दधाति॥४॥

पदार्थ:-**(अनेजत्)** न एजते कम्पते तदचलत् स्वावस्थायाश्च्युति: कम्पनं तद्रहितम् **(एकम्)** अद्वितीयं ब्रह्म **(मनस:)** मनोवेगात् **(जवीय:)** अतिशयेन वेगवत् **(न)** **(एनत्)** **(देवा:)** चक्षुरादीनीन्द्रियाणि वा **(आप्नुवन्)** प्राप्नुवन्ति **(पूर्वम्)** पुर:सरं पूर्णं **(अर्षत्)** गच्छत् **(तत्)** **(धावत:)** विषयान् प्रति पतत: **(अन्यान्)** स्वस्वरूपाद् विलक्षणान्मनोवागिन्द्रियादीन् **(अति)** उल्लङ्घने **(एति)** प्राप्नोति **(तिष्ठत्)** स्वस्वरूपेण स्थिरं सत् **(तस्मिन्)** सर्वत्राऽभिव्याप्ते **(अप:)** कर्म क्रियां वा **(मातरिश्वा)** मातर्य्यन्तरिक्षे श्वसिति प्राणान् धरति वायुस्तद्वद्वर्त्तमानो जीव: **(दधाति)**॥४॥

अन्वय:-हे विद्वांसो मनुष्या:! यदेकमनेजन्मनसो जवीय: पूर्वमर्षद्ब्रह्माऽस्त्येनद्देवा नाप्नुवँस्तत्स्वयं तिष्ठत् सत्स स्वानन्तव्याप्त्या धावतोऽन्यानत्येति, तस्मिन् स्थिरे सर्वत्राभिव्याप्ते मातरिश्वा वायुरिव जीवोऽपो दधातीति विजानीत॥४॥

भावार्थ:-ब्रह्मणोऽनन्तत्वाद्यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र पुरस्तादेवाऽभिव्याप्तमग्रस्थं ब्रह्म वर्त्तते, तद्विज्ञानं शुद्धेन मनसैव जायते, चक्षुरादिभिरविद्वद्भिश्च द्रष्टुमशक्यमस्ति, स्वयं निश्चलं सत्सर्वान् जीवान् नियमेन चालयति धरति च। तस्यातिसूक्ष्मत्वादतीन्द्रियत्वाद् धार्मिकस्य विदुषो योगिन एव साक्षात्कारो भवति नेतरस्य॥४॥

पदार्थः-हे विद्वान् मनुष्यो! जो **(एकम्)** अद्वितीय **(अनेजत्)** नहीं कंपनेवाला अर्थात् अचल अपनी अवस्था से हटना कंपन कहाता है, उससे रहित **(मनसः)** मन के वेग से भी **(जवीयः)** अति वेगवान् **(पूर्वम्)** सबसे आगे **(अर्षत्)** चलता हुआ अर्थात् जहां कोई चलकर जावे, वहां प्रथम ही सर्वत्र व्याप्ति से पहुंचता हुआ ब्रह्म है **(एनत्)** इस पूर्वोक्त ईश्वर को **(देवाः)** चक्षु आदि इन्द्रिय **(न)** नहीं **(आप्नुवन्)** प्राप्त होते **(तत्)** वह परब्रह्म अपने-आप **(तिष्ठत्)** स्थिर हुआ अपनी अनन्त व्याप्ति से **(धावतः)** विषयों की ओर गिरते हुए **(अन्यान्)** आत्मा के स्वरूप से विलक्षण मन, वाणी आदि इन्द्रियों का **(अति, एति)** उल्लङ्घन कर जाता है, **(तस्मिन्)** उस सर्वत्र अभिव्याप्त ईश्वर की स्थिरता में **(मातरिश्वा)** अन्तरिक्ष में प्राणों को धारण करनेहारे वायु के तुल्य जीव **(अपः)** कर्म वा क्रिया को **(दधाति)** धारण करता है, यह जानो॥४॥

भावार्थः-ब्रह्म के अनन्त होने से जहां-जहां मन जाता है, वहां-वहां प्रथम से ही अभिव्याप्त पहिले से ही स्थिर ब्रह्म वर्त्तमान है, उसका विज्ञान शुद्ध मन से होता है, चक्षु आदि इन्द्रियों और अविद्वानों से देखने योग्य नहीं है। वह आप निश्चल हुआ सब जीवों को नियम से चलाता और धारण करता है। उसके अतिसूक्ष्म इन्द्रियगम्य न होने के कारण धर्मात्मा, विद्वान्, योगी को ही उसका साक्षात् ज्ञान होता है, अन्य को नहीं॥४॥

तदेजतीत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। आत्मा देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

विदुषां निकटेऽविदुषां च ब्रह्म दूरेऽस्तीत्याह॥

विद्वानों के निकट और अविद्वानों के ब्रह्म दूर है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

तदे॑जति॒ तन्नैज॑ति॒ तद् दू॒रे तद्व॑न्ति॒के।

तद॒न्तर॑स्य॒ सर्व॑स्य॒ तदु॒ सर्व॑स्यास्य बाह्य॒तः॥५॥

तत्। ए॒ज॒ति॒। तत्। न। ए॒ज॒ति॒। तत्। दू॒रे। तत्। ऊँऽइत्यूँ॑। अ॒न्ति॒के॥ तत्। अ॒न्तः। अ॒स्य॒। सर्व॑स्य। तत्। ऊँऽइत्यूँ॑। सर्व॑स्य। अ॒स्य॒। बा॒ह्य॒तः॥५॥

पदार्थः-**(तत्)** **(एजति)** कम्पते चलति मूढदृष्ट्या **(तत्)** **(न)** **(एजति)** कम्पते कम्प्यते वा **(तत्)** **(दूरे)** अधर्मात्मभ्योऽविद्वद्भ्योऽयोगिभ्यः **(तत्)** (उ) **(अन्तिके)** धर्मात्मनां विदुषां योगिनां समीपे **(तत्)** **(अन्तः)** आभ्यन्तरे **(अस्य)** **(सर्वस्य)** अखिलस्य जगतो जीवसमूहस्य वा **(तत्)** (उ) **(सर्वस्य)** समग्रस्य **(अस्य)** प्रत्यक्षाऽप्रत्यक्षात्मकस्य **(बाह्यतः)** बहिरपि वर्त्तमानः॥५॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! तद् ब्रह्मैजति तन्नैजति तद् दूरे तद्वन्तिके सर्वस्यान्तस्तदु सर्वस्याऽस्य बाह्यतो वर्त्तत इति निश्चिनुत॥५॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! तद्ब्रह्म मूढदृष्टौ कम्पत इव तत्स्वतो व्यापकत्वात् कदाचिन्न चलति, ये तदाज्ञाविरुद्धास्ते इतस्ततो धावन्तोऽपि तन्न विजानन्ति। ये चेश्वराज्ञानुष्ठातारस्ते स्वात्मस्थमतिनिकटं ब्रह्म प्राप्नुवन्ति, यद्ब्रह्म सर्वस्य प्रकृत्यादेर्बाह्याऽभ्यन्तरावयवानभिव्याप्य सर्वेषां जीवानामन्तर्यामिरूपतया सर्वाणि पापपुण्यात्मककर्माणि विजानन् याथातथ्यं फलं प्रयच्छत्येतदेव सर्वैर्ध्येयमस्मादेव सर्वैर्भेतव्यमिति॥५॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! (**तत्**) वह ब्रह्म (**एजति**) मूर्खों की दृष्टि से चलायमान होता (**तत्**) (**न, एजति**) अपने स्वरूप से न चलायमान और न चलाया जाता (**तत्**) वह (**दूरे**) अधर्मात्मा अविद्वान् अयोगियों से दूर अर्थात् क्रोड़ों वर्ष में भी नहीं प्राप्त होता (**तत्**) वह (उ) ही (**अन्तिके**) धर्मात्मा विद्वान् योगियों के समीप (**तत्**) वह (**अस्य**) इस (**सर्वस्य**) सब जगत् वा जीवों के (**अन्तः**) भीतर (उ) और (**तत्**) वह (**अस्य, सर्वस्य**) इस प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्षरूप के (**बाह्यतः**) बाहर भी वर्त्तमान है॥५॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! वह ब्रह्म मूढ़ की दृष्टि में कम्पता जैसा है, वह आप व्यापक होने से कभी नहीं चलायमान होता, जो जन उसकी आज्ञा से विरुद्ध हैं, वे इधर-उधर भागते हुए भी उसको नहीं जानते और जो ईश्वर की आज्ञा का अनुष्ठानवाले वे अपने आत्मा में स्थित अति निकट ब्रह्म को प्राप्त होते हैं, जो ब्रह्म सब प्रकृति आदि के बाहर-भीतर अवयवों में अभिव्याप्त हो के अन्तर्यामिरूप से सब जीवों के सब पाप पुण्यरूप कर्मों को जानता हुआ यथार्थ फल देता है, वही सबको ध्यान में रखना चाहिये और इसी से सबको डरना चाहिये॥५॥

यस्त्वित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। आत्मा देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथेश्वरविषयमाह॥

अब ईश्वर विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति।

सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न वि चिकित्सति॥६॥

यः। तु। सर्वाणि। भूतानि। आत्मन्। एव। अनुपश्यतीत्यनुऽपश्यति॥ सर्वभूतेष्विति सर्वऽभूतेषु। च। आत्मानम्। ततः। न। वि। चिकित्सति॥६॥

पदार्थः-(**यः**) विद्वान् जनः (**तु**) पुनरर्थे (**सर्वाणि**) अखिलानि (**भूतानि**) प्राण्यप्राणिरूपाणि (**आत्मन्**) परमात्मनि (**एव**) (**अनुपश्यति**) विद्याधर्मयोगाभ्यासानन्तरं समीक्षते (**सर्वभूतेषु**) सर्वेषु प्रकृत्यादिषु (**च**) (**आत्मानम्**) अतति सर्वत्र व्याप्नोति तम् (**ततः**) तदनन्तरम् (**न**) (**वि**) (**चिकित्सति**) संशयं प्राप्नोति॥६॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! य आत्मन्नेव सर्वाणि भूतान्यनुपश्यति, यस्तु सर्वभूतेष्वात्मानं च समीक्षते, स ततो न विचिकित्सतीति यूयं विजानीत॥६॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! ये सर्वव्यापिनं न्यायकारिणं सर्वज्ञं सनातनं सर्वात्मानं सकलस्य द्रष्टारं परमात्मानं विदित्वा सुखदुःखहानिलाभेषु स्वात्मवत् सर्वाणि भूतानि विज्ञाय धार्मिका जायन्ते, त एव मोक्षमश्नुवते॥६॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! **(यः)** जो विद्वान् जन **(आत्मन्)** परमात्मा के भीतर **(एव)** ही **(सर्वाणि)** सब **(भूतानि)** प्राणी-अप्राणियों को **(अनुपश्यति)** विद्या, धर्म और योगाभ्यास करने के पश्चात् ध्यानदृष्टि से देखता है **(तु)** और जो **(सर्वभूतेषु)** सब प्रकृत्यादि पदार्थों में **(आत्मानम्)** आत्मा को **(च)** भी देखता है, वह विद्वान् **(ततः)** तिस पीछे **(न)** नहीं **(वि चिकित्सति)** संशय को प्राप्त होता, ऐसा तुम जानो॥६॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जो लोग सर्वव्यापी, न्यायकारी, सर्वज्ञ, सनातन, सबके आत्मा, अन्तर्यामी, सबके द्रष्टा परमात्मा को जान कर सुख-दुःख हानि-लाभों में अपने आत्मा के तुल्य सब प्राणियों को जानकर धार्मिक होते हैं, वे ही मोक्ष को प्राप्त होते हैं॥६॥

यस्मिन्नित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। आत्मा देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथ केऽविद्यादिदोषान् जहतीत्याह॥

अब कौन अविद्यादि दोषों को त्यागते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यस्मि॒न्त्सर्वा॑णि भू॒तान्या॒त्मैवाभू॑द्विजान॒तः।

तत्र॒ को मोह॒ः कः शोक॑ऽएकत्वम॑नुपश्य॑तः॥७॥

यस्मि॑न्। सर्वा॑णि। भू॒तानि॑। आ॒त्मा। ए॒व। अभू॑त्। वि॒जा॒न॒त इति॑ विऽजान॒तः॥ तत्र॑। कः। मोह॑ः। कः। शोक॑ः। ए॒क॒त्वमित्यै॑क॒ऽत्वम्। अ॒नु॒पश्य॑त॒ऽइत्य॑नु॒पश्य॑तः॥७॥

पदार्थः-**(यस्मिन्)** परमात्मनि ज्ञाने विज्ञाने धर्मे वा **(सर्वाणि)** **(भूतानि)** **(आत्मा)** आत्मवत् **(एव)** **(अभूत्)** भवन्ति। अत्र वचनव्यत्ययेनैकवचनम्। **(विजानतः)** विशेषेण समीक्षमाणस्य **(तत्र)** तस्मिन् परमात्मनि स्थितस्य **(कः)** **(मोहः)** मूढावस्था **(कः)** **(शोकः)** परितापः **(एकत्वम्)** परमात्मनोऽद्वितीयत्वम् **(अनुपश्यतः)** अनुकूलेन योगाभ्यासेन साक्षाद् द्रष्टुः॥७॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यस्मिन् परमात्मनि विजानतः सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूत्, तत्रैकत्वमनुपश्यतो योगिनः को मोहोऽभूत् कः शोकश्च॥७॥

भावार्थः-ये विद्वांसः संन्यासिनः परमात्मना सहचरितानि प्राणिजातानि स्वात्मवद् विजानन्ति, यथा स्वात्मनो हितमिच्छन्ति तथैव तेषु वर्त्तन्त एकमेवाऽद्वितीयं परमात्मनः

शरणमुपागताः सन्ति, तान् मोहशोकलोभादयो दोषाः कदाचिन्नाप्नुवन्ति, ये च स्वात्मानं यथावद् विज्ञाय परमात्मानं विदन्ति, ते सदा सुखिनो भवन्ति॥७॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! **(यस्मिन्)** जिस परमात्मा, ज्ञान, विज्ञान वा धर्म में **(विजानतः)** विशेषकर ध्यानदृष्टि से देखते हुए को **(सर्वाणि)** सब **(भूतानि)** प्राणीमात्र **(आत्मा, एव)** अपने तुल्य ही सुख-दुःखवाले **(अभूत्)** होते हैं, **(तत्र)** उस परमात्मा आदि में **(एकत्वम्)** अद्वितीय भाव को **(अनुपश्यतः)** अनुकूल योगाभ्यास से साक्षात् देखते हुए योगिजन को **(कः)** कौन **(मोहः)** मूढावस्था और **(कः)** कौन **(शोकः)** शोक वा क्लेश होता है अर्थात् कुछ भी नहीं॥७॥

भावार्थः-जो विद्वान् संन्यासी लोग परमात्मा के सहचारी प्राणीमात्र को अपने आत्मा के तुल्य जानते हैं अर्थात् जैसे अपना हित चाहते वैसे ही अन्यों में भी वर्त्तते हैं, एक अद्वितीय परमेश्वर के शरण को प्राप्त होते हैं, उनको मोह, शोक और लोभादि कदाचित् प्राप्त नहीं होते। और जो लोग अपने आत्मा को यथावत् जान कर परमात्मा को जानते हैं, वे सदा सुखी होते हैं॥७॥

स पर्य्यगादित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। आत्मा देवता। स्वराड्जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनः परमेश्वरः कीदृश इत्याह॥

फिर परमेश्वर कैसा है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम्।

कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥८॥

सः। परि। अगात्। शुक्रम्। अकायम्। अव्रणम्। अस्नाविरम्। शुद्धम्। अपापविद्धमित्यपापऽविद्धम्॥ कविः। मनीषी। परिभूरिति परिऽभूः। स्वयम्भूरिति स्वयम्ऽभूः। याथातथ्यत इति याथाऽतथ्यतः। अर्थान्। वि। अदधात्। शाश्वतीभ्यः। समाभ्यः॥८॥

पदार्थः-**(सः)** परमात्मा **(परि)** सर्वतः **(अगात्)** व्याप्तोऽस्ति **(शुक्रम्)** आशुकरं सर्वशक्तिमत् **(अकायम्)** स्थूलसूक्ष्मकारणशरीररहितम् **(अव्रणम्)** अच्छिद्रमच्छेद्यम् **(अस्नाविरम्)** नाड्यादिसम्बन्धरहितम् **(शुद्धम्)** अविद्यादिदोषरहितत्वात् सदा पवित्रम् **(अपापविद्धम्)** यत् पापयुक्तं पापकारि पापेप्रियं कदाचिन्न भवति तत् **(कविः)** सर्वज्ञः **(मनीषी)** सर्वेषां जीवानां मनोवृत्तीनां वेत्ता **(परिभूः)** यो दुष्टान् पापिनः परिभवति तिरस्करोति सः **(स्वयम्भूः)** अनादिस्वरूपो यस्य संयोगेनोत्पत्तिर्वियोगेन विनाशो मातापितरौ गर्भवासो जन्मवृद्धिक्षयौ च न विद्यन्ते **(याथातथ्यतः)** यथार्थतया **(अर्थान्)** वेदद्वारा सर्वान् पदार्थान् **(वि)** विशेषेण **(अदधात्)** विधत्ते **(शाश्वतीभ्यः)** सनातनीभ्योऽनादिस्वरूपाभ्यः स्वस्वरूपेणोत्पत्तिविनाशरहिताभ्यः **(समाभ्यः)** प्रजाभ्यः॥८॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यद् ब्रह्म शुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धं पर्यगाद्यः कविर्मनीषीः परिभूः स्वयम्भूः परमात्मा शाश्वतीभ्यः समाभ्यो याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधात् स एव युष्माभिरुपासनीयः॥८॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यद्यनन्तशक्तिमदजं निरन्तरं सदा मुक्तं न्यायकारि निर्मलं सर्वज्ञं साक्षि-नियन्तृ-अनादिस्वरूपं ब्रह्म कल्पादौ जीवेभ्यः स्वोक्तैर्वेदैः शब्दार्थसम्बन्धविज्ञापिकां विद्यां नोपदिशेत् तर्हि कोऽपि विद्वान्न भवेत्, न च धर्मार्थकाममोक्षफलं प्राप्तुं शक्नुयात्, तस्मादिदमेव सदैवोपाध्वम्॥८॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो ब्रह्म **(शुक्रम्)** शीघ्रकारी सर्वशक्तिमान् **(अकायम्)** स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीररहित **(अव्रणम्)** छिद्ररहित और नहीं छेद करने योग्य **(अस्नाविरम्)** नाड़ी आदि के साथ सम्बन्धरूप बन्धन से रहित **(शुद्धम्)** अविद्यादि दोषों से रहित होने से सदा पवित्र और **(अपापविद्धम्)** जो पापयुक्त, पापकारी और पाप में प्रीति करनेवाला कभी नहीं होता **(परि, अगात्)** सब ओर से व्याप्त जो **(कविः)** सर्वत्र **(मनीषी)** सब जीवों के मनों की वृत्तियों को जाननेवाला **(परिभूः)** दुष्ट पापियों का तिरस्कार करनेवाला और **(स्वयम्भूः)** अनादि स्वरूप जिसकी संयोग से उत्पत्ति, वियोग से विनाश, माता, पिता, गर्भवास, जन्म, वृद्धि और मरण नहीं होते, वह परमात्मा **(शाश्वतीभ्यः)** सनातन अनादिस्वरूप अपने-अपने स्वरूप से उत्पत्ति और विनाशरहित **(समाभ्यः)** प्रजाओं के लिये **(याथातथ्यतः)** यथार्थ भाव से **(अर्थान्)** वेद द्वारा सब पदार्थों को **(व्यदधात्)** विशेष कर बनाता है, **(सः)** वही परमेश्वर तुम लोगों को उपासना करने के योग्य है॥८॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जो अनन्त शक्तियुक्त, अजन्मा, निरन्तर, सदा मुक्त, न्यायकारी, निर्मल, सर्वज्ञ, सबका साक्षी, नियन्ता, अनादिस्वरूप ब्रह्म कल्प के आरम्भ में जीवों को अपने कहे वेदों से शब्द, अर्थ और उनके सम्बन्ध को जनानेवाली विद्या का उपदेश न करे तो कोई विद्वान् न होवे और न धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के फलों के भोगने को समर्थ हो, इसलिये इसी ब्रह्म की सदैव उपासना करो॥८॥

अन्धन्तम इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। आत्मा देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

के जना अन्धन्तमः प्राप्नुवन्तीत्याह॥

कौन मनुष्य अन्धकार को प्राप्त होते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अ॒न्धन्त॑मः॒ प्र वि॑शन्ति॒ येऽस॑म्भूतिमु॒पास॑ते।

ततो॒ भूय॑ऽइव॒ ते तमो॒ यऽउ॒ सम्भू॑त्याᳬं र॒ताः॥९॥

अ॒न्धम्। तमः॑। प्र। वि॒श॒न्ति॒। ये। अस॑म्भूति॒मित्यस॑म्ऽभूतिम्। उ॒पास॑त॒ इत्यु॑प॒ऽआस॑ते॥ ततः॑। भूय॑ऽइ॒वेति॒ भूयः॑ऽइव। ते। तमः॑। ये। ऊँ॒ऽइत्यूँ॑। सम्भू॑त्या॒मिति॒ सम्ऽभू॑त्याम्। र॒ताः॥९॥

पदार्थः-(**अन्धम्**) आवरकम् (**तमः**) अन्धकारम् (**प्र**) प्रकर्षेण (**विशन्ति**) (**ये**) (**असम्भूतिम्**) अनाद्यनुत्पन्नं प्रकृत्याख्यं सत्वरजस्तमोगुणमयं जडं वस्तु (**उपासते**) उपास्यतया जानन्ति (**ततः**) तस्मात् (**भूय इव**) अधिकमिव (**ते**) (**तमः**) अविद्यामयमन्धकारम् (**ये**) (**उ**) वितर्केण सह (**संभूत्याम्**) महदादिस्वरूपेण परिणतायां सृष्टौ (**रताः**) ये रमन्ते ते॥९॥

अन्वयः-ये परमेश्वरं विहायाऽसम्भूतिमुपासते तेऽन्धन्तमः प्रविशन्ति, ये सम्भूत्यां रतास्त उ ततो भूय इव तमः प्रविशन्ति॥९॥

भावार्थः-ये जनाः सकलजडजगतोऽनादि नित्यं कारणमुपास्यतया स्वीकुर्वन्ति, तेऽविद्यां प्राप्य सदा क्लिश्यन्ति। ये च तस्मात् कारणादुत्पन्नं पृथिव्यादिस्थूलसूक्ष्मं कार्य्यकारणाख्यमनित्यं संयोगजन्यं कार्य्यं जगदिष्टमुपास्यं मन्यन्ते, ते गाढामविद्यां प्राप्याधिकतरं क्लिश्यन्ति तस्मात् सच्चिदानन्दस्वरूपं परमात्मानमेव सर्वे सदोपासीरन्॥९॥

पदार्थः-(**ये**) जो लोग परमेश्वर को छोड़कर (**असम्भूतिम्**) अनादि अनुत्पन्न सत्व, रज और तमोगुणमय प्रकृतिरूप जड़ वस्तु को (**उपासते**) उपास्यभाव से जानते हैं, वे (**अन्धम्, तमः**) आवरण करनेवाले अन्धकार को (**प्रविशन्ति**) अच्छे प्रकार प्राप्त होते और (**ये**) जो (**सम्भूत्याम्**) महत्तत्त्वादि स्वरूप से परिणाम को प्राप्त हुई सृष्टि में (**रताः**) रमण करते हैं (**ते**) वे (**उ**) वितर्क के साथ (**ततः**) उससे (**भूय इव**) अधिक जैसे वैसे (**तमः**) अविद्यारूप अन्धकार को प्राप्त होते हैं॥९॥

भावार्थः-जो मनुष्य समस्त जड़जगत् के अनादि नित्य कारण को उपासना भाव से स्वीकार करते हैं, वे अविद्या को प्राप्त होकर क्लेश को प्राप्त होते और जो उस कारण से उत्पन्न स्थूल-सूक्ष्म कार्य्यकारणाख्य अनित्य संयोगजन्य कार्य्यजगत् को इष्ट उपास्य मानते हैं, वे गाढ़ अविद्या को पाकर अधिकतर क्लेश को प्राप्त होते हैं, इसलिये सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा की ही सब सदा उपासना करें॥९॥

अन्यदित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। आत्मा देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनर्मनुष्याः किं कुर्य्युरित्याह॥

फिर मनुष्य क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अ॒न्यदे॒वाहुः स॑म्भ॒वाद॒न्यदा॑हु॒रस॑म्भवात्।

इति॑ शुश्रु॒म धीरा॑णां॒ ये न॒स्तद्वि॑चचक्षि॒रे॥ १०॥

अ॒न्यत्। ए॒व। आ॒हुः। स॒म्भ॒वादिति॑ सम्ऽभ॒वात्। अ॒न्यत्। आ॒हुः। अस॑म्भवा॒दित्यस॑म्ऽभवात्॥ इति॑। शु॒श्रु॒म॒। धीरा॑णाम्। ये। न॒ः। तत्। वि॒च॒च॒क्षि॒र इति॑ विऽचचक्षि॒रे॥ १०॥

पदार्थः-(**अन्यत्**) कार्य्यं फलं वा (**एव**) (**आहुः**) कथयन्ति (**सम्भवात्**) संयोगजन्यात् कार्य्यात् (**अन्यत्**) भिन्नम् (**आहुः**) कथयन्ति (**असम्भवात्**) अनुत्पन्नात् कारणात् (**इति**) अनेन प्रकारेण (**शुश्रुम**) शृणुमः (**धीराणाम्**) मेधाविनां विदुषां योगिनाम् (**ये**) (**नः**) अस्मान् प्रति (**तत्**) तयोर्विवेचनम् (**विचचक्षिरे**) व्याचक्षते॥ १०॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा वयं धीरणां सकाशाद् यद् वचः शुश्रुम ये नस्तद्विचचक्षिरे ते सम्भवादन्यदेवाहुर- सम्भवादन्यदाहुरिति यूयमपि शृणुत॥ १०॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! यथा विद्वांसः कार्य्यात् कारणाद् वस्तुनो भिन्नम्भिन्नं वक्ष्यमाणमुपकारं गृह्णन्ति ग्राहयन्ति तद्गुणान् विज्ञायाधिज्ञापयन्त्येवमेव यूयमपि निश्चिनुत॥ १०॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जैसे हम लोग (**धीराणाम्**) मेधावी योगी विद्वानों से जो वचन (**शुश्रुम**) सुनते हैं (**ये**) जो वे लोग (**नः**) हमारे प्रति (**तत्**) (**विचचक्षिरे**) व्याख्यान पूर्वक कहते हैं, वे लोग (**सम्भवात्**) संयोगजन्य कार्य्य से (**अन्यत्, एव**) और ही कार्य्य वा फल (**आहुः**) कहते (**असम्भवात्**) उत्पन्न नहीं होनेवाले कारण से (**अन्यत्**) और (**आहुः**) कहते हैं, (**इति**) इस बात को तुम भी सुनो॥ १०॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जैसे विद्वान् लोग कार्य्यकारणरूप वस्तु से भिन्न-भिन्न वक्ष्यमाण उपकार लेते और लिवाते हैं तथा उन कार्य्यकारण के गुणों को जानकर जनाते हैं, ऐसे ही तुम लोग भी निश्चय करो॥ १०॥

सम्भूतिमित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। आत्मा देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनर्मनुष्यैः कार्य्यकारणाभ्यां किं किं साधनीयमित्याह॥

फिर मनुष्यों को कार्य्यकारण से क्या क्या सिद्ध करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

सम्भू॑तिं च विना॒शं च॒ यस्तद्वेदो॒भय॑ꣳ स॒ह।

वि॒ना॒शेन॑ मृ॒त्युं ती॒र्त्वा सम्भू॑त्या॒मृत॑मश्नुते॥ ११॥

सम्भू॑ति॒मिति॒ सम्ऽभू॑तिम्। च॒। वि॒ना॒शमिति॑ विऽना॒शम्। च॒। यः। तत्। वेद॑। उ॒भय॑म्। स॒ह॥ वि॒ना॒शेनेति॑ विना॒शेन॑। मृ॒त्युम्। ती॒र्त्वा। सम्भू॒त्येति॒ सम्ऽभू॑त्या। अ॒मृत॑म्। अ॒श्नु॒ते॥ ११॥

पदार्थः-(**सम्भूतिम्**) सम्भवन्ति यस्यां ता कार्य्याख्यां सृष्टिम् (**च**) तस्या गुणकर्मस्वभावान् (**विनाशम्**) विनश्यन्त्यदृश्याः पदार्था भवन्ति यस्मिन् (**च**) तद्गुणकर्म्मस्वभावान् (**यः**) (**तत्**)

(वेद) जानाति **(उभयम्)** कार्य्यकारणस्वरूपं जगत् **(सह)** **(विनाशेन)** नित्यस्वरूपेण विज्ञातेन कारणेन सह **(मृत्युम्)** शरीरवियोगजन्यं दु:खम् **(तीर्त्वा)** उल्लङ्घ्य **(सम्भूत्या)** शरीरेन्द्रियान्त:करणरूपयोत्पन्नया कार्य्यरूपया धर्म्ये प्रवर्त्तयित्र्या सृष्ट्या **(अमृतम्)** मोक्षम् **(अश्नुते)** प्राप्नोति॥११॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यो विद्वान् सम्भूतिं च विनाशं च सहोभयं तद्वेद, स विनाशेन सह मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्या सहामृतमश्नुते॥११॥

भावार्थः-हे मनुष्याः! कार्य्यकारणाख्ये वस्तुनी निरर्थक न स्तः, किन्तु कार्य्यकारणयोर्गुणकर्मस्वभावान् विदित्वा धर्मादिमोक्षसाधनेषु संप्रयोज्य स्वात्मकार्यकारणयोर्विज्ञातेन नित्यत्वेन मृत्युभयं त्यक्त्वा मोक्षसिद्धिं सम्पादयतेति कार्यकारणाभ्यामन्यदेव फलं निष्पादनीयमिति। अनयोर्निषेधो हि परमेश्वरस्थान उपासनाप्रकरणे वेदितव्यः॥११॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! **(यः)** जो विद्वान् **(सम्भूतिम्)** जिसमें सब पदार्थ उत्पन्न होते उस कार्य्यरूप सृष्टि **(च)** और उसके गुण, कर्म, स्वभावों को तथा **(विनाशम्)** जिसमें पदार्थ नष्ट होते उस कारणरूप जगत् **(च)** और उसके गुण, कर्म, स्वभावों को **(सह)** एक साथ **(उभयम्)** दोनों **(तत्)** उन कार्य्य और कारण स्वरूपों को **(वेद)** जानता है, वह विद्वान् **(विनाशेन)** नित्यस्वरूप जाने हुए कारण के साथ **(मृत्युम्)** शरीर छूटने के दु:ख से **(तीर्त्वा)** पार होकर **(सम्भूत्या)** शरीर, इन्द्रियाँ और अन्त:करणरूप उत्पन्न हुई कार्यरूप धर्म में प्रवृत्त करानेवाली सृष्टि के साथ **(अमृतम्)** मोक्षसुख को **(अश्नुते)** प्राप्त होता है॥११॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! कार्य्यकारणरूप वस्तु निरर्थक नहीं हैं, किन्तु कार्यकारण के गुण, कर्म और स्वभावों को जानकर धर्म आदि मोक्ष के साधनों में संयुक्त करके अपने शरीरादि कार्यकारण को नित्यत्व से जान के मरण का भय छोड़ कर मोक्ष की सिद्धि करो। इस प्रकार कार्य्यकारण से अन्य ही बल सिद्ध करना चाहिये। इन कार्य्यकारण का निषेध परमेश्वर के स्थान में जो उपासना उस प्रकरण में जानना चाहिये॥११॥

अन्धन्तम इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। आत्मा देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथ विद्याऽविद्योपासनाफलमाह॥

अब विद्या-अविद्या की उपासना का फल कहते हैं॥

अ॒न्धन्त॒मः प्र वि॑शन्ति॒ येऽवि॑द्यामु॒पास॑ते।
ततो॒ भूय॑ऽइव॒ ते तमो॒ यऽउ॑ वि॒द्याया॑ᳬ र॒ताः॥१२॥

अन्धम्। तमः। प्र। विशन्ति। ये। अविद्याम्। उपासत इत्युपऽआसते॥ ततः। भूयऽइवेति भूयःऽइव। ते। तमः। ये। ऊँऽइत्यूँ। विद्यायाम्। रताः॥ १२॥

पदार्थः-(**अन्धम्**) दृष्ट्यावरकम् (**तमः**) गाढमज्ञानम् (**प्र**) (**विशन्ति**) (**ये**) (**अविद्याम्**) अनित्याशुचि-दुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्येति ज्ञानादिगुणरहितं वस्तु कार्य्यकारणात्मकं जडं परमेश्वराद्भिन्नम् (**उपासते**) अभ्यस्यन्ति (**ततः**) (**भूय इव**) अधिकमिव (**ते**) (**तमः**) अज्ञानम् (**ये**) पण्डितंमन्यमानाः (**उ**) (**विद्यायाम्**) शब्दार्थसम्बन्धविज्ञानमात्रेऽवैदिक आचरणे (**रताः**) रममाणाः॥ १२॥

अन्वयः-ये मनुष्या अविद्यामुपासते तेऽन्धन्तमः प्रविशन्ति, ये विद्यायां रतास्त उ ततो भूय इव तमः प्रविशन्ति॥ १२॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। ज्ञानादिगुणयुक्तं वस्तु तज्ज्ञातृ यदविद्यारूपं तज्ज्ञेयं यच्च चेतनं ब्रह्मविद्वदात्म-स्वरूपं वा तदुपासनीयं सेवनीयं च यदतो भिन्नं तन्नोपासनीयं किन्तूपकर्त्तव्यम्। ये मनुष्या अविद्याऽस्मितााराग-द्वेषाभिनिवेशैः क्लेशैर्युक्तास्ते परमेश्वरं विहायातो भिन्नं जडं वस्तूपास्य महति दुःखसागरे मज्जन्ति, ये च शब्दार्थान्वयमात्रं संस्कृतमधीत्य सत्यभाषणपक्षपातरहितन्यायाचरणाख्यं धर्मं नाचरन्त्यभिमानारूढाः सन्तो विद्यां तिरस्कृत्याविद्यामेव मन्यन्ते, ते चाऽधिकतमसि दुःखार्णवे सततं पीडिता जायन्ते॥ १२॥

पदार्थः-(**ये**) जो मनुष्य (**अविद्याम्**) अनित्य में नित्य, अशुद्ध में शुद्ध, दुःख में सुख और अनात्मा शरीरादि में आत्मबुद्धिरूप अविद्या उसकी अर्थात् ज्ञानादि गुणरहित कारणरूप परमेश्वर से भिन्न जड़ वस्तु की (**उपासते**) उपासना करते हैं, वे (**अन्धम्, तमः**) दृष्टि के रोकनेवाले अन्धकार और अत्यन्त अज्ञान को (**प्र, विशन्ति**) प्राप्त होते हैं और (**ये**) जो अपने आत्मा को पण्डित माननेवाले (**विद्यायाम्**) शब्द, अर्थ और इनके सम्बन्ध के जानने मात्र अवैदिक आचरण में (**रताः**) रमण करते (**ते**) वे (**उ**) भी (**ततः**) उससे (**भूय इव**) अधिकतर (**तमः**) अज्ञानरूपी अन्धकार में प्रवेश करते हैं॥ १२॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो-जो चेतन, ज्ञानादिगुणयुक्त वस्तु है वह जाननेवाला, जो अविद्यारूप है वह जानने योग्य है और जो चेतन ब्रह्म तथा विद्वान् का आत्मा है वह उपासना के योग्य है, जो इससे भिन्न है, वह उपास्य नहीं है, किन्तु उपकार लेने योग्य है। जो मनुष्य अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश नामक क्लेशों से युक्त हैं, परमेश्वर को छोड़ इससे भिन्न जड़वस्तु की उपासना कर महान् दुःखसागर से डूबते हैं और जो शब्द अर्थ का अन्वयमात्र संस्कृत पढ़कर सत्यभाषण पक्षपातरहित न्याय का आचरणरूप धर्म नहीं करते अभिमान

में आरूढ़ हुए विद्या का तिरस्कार कर अविद्या को ही मानते हैं, अत्यन्त तमोगुणरूप दुःखसागर में निरन्तर पीड़ित होते हैं॥१२॥

अन्यदित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। आत्मा देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथ जडचेतनयोर्विभागमाह॥

अब जड़-चेतन का भेद कहते हैं॥

अन्यदेवाहुर्विद्यायाऽअन्यदाहुरविद्यायाः।

इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे॥१३॥

अन्यत्। एव। आहुः। विद्यायाः। अन्यत्। आहुः। अविद्यायाः॥ इति। शुश्रुम। धीराणाम्। ये। नः। तत्। विचचक्षिरे इति विऽचचक्षिरे॥१३॥

पदार्थः-(**अन्यत्**) अन्यदेव कार्यं फलं वा (**एव**) (**आहुः**) कथयन्ति (**विद्यायाः**) पूर्वोक्तायाः (**अन्यत्**) (**आहुः**) (**अविद्यायाः**) पूर्वमन्त्रेण प्रतिपादितायाः (**इति**) (**शुश्रुम**) श्रुतवन्तः (**धीराणाम्**) आत्मज्ञानां विदुषां सकाशात् (**ये**) (**नः**) अस्मभ्यम् (**तत्**) विद्याऽविद्याजं फलं द्वयोः स्वरूपं (**विचचक्षिरे**) व्याख्यातवन्तः॥१३॥

अन्वयः-हे मनुष्या ये विद्वांसो नो विचचक्षिरे विद्याया अन्यदाहुरविद्याया अन्यदेवाहुरिति तेषां धीराणां तद्वचो वयं विजानीत॥१३॥

भावार्थः-ज्ञानादिगुणयुक्तस्य चेतनस्य सकाशाद्य उपयोगो भवितुं योग्यो न स अज्ञानयुक्तस्य जडस्य सकाशात् यच्च जडात् प्रयोजनं सिध्यति न तच्चेतनादिति सर्वैर्मनुष्यैर्विद्वत्सङ्गेन विज्ञानेन योगेन धर्माचरणेन चानयोर्विवेकं कृत्वोभयोरुपयोगः कर्त्तव्यः॥१३॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! (**ये**) जो विद्वान् लोग (**नः**) हमारे लिये (**विचचक्षिरे**) व्याख्यापूर्वक कहते थे (**विद्यायाः**) पूर्वोक्त विद्या का (**अन्यत्**) अन्य ही कार्य वा फल (**आहुः**) कहते थे (**अविद्यायाः**) पूर्व मन्त्र से प्रतिपादन की अविद्या का (**अन्यत्, एव**) अन्य फल (**आहुः**) कहते हैं (**इति**) इस प्रकार उन (**धीराणाम्**) आत्मज्ञानी विद्वानों से (**तत्**) उस वचन को हम लोग (**शुश्रुम**) सुनते थे, ऐसा जानो॥१३॥

भावार्थः-ज्ञानादि गुणयुक्त चेतन से जो उपयोग होने योग्य है, वह अज्ञानयुक्त जड़ से कदापि नहीं और जो जड़ से प्रयोजन सिद्ध होता है, वह चेतन से नहीं। सब मनुष्यों को विद्वानों के संग, योग, विज्ञान और धर्माचरण से इन दोनों का विवेक करके दोनों से उपयोग लेना चाहिये॥१३॥

विद्यामित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। आत्मा देवता। स्वराडुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

वि॒द्यां चावि॑द्यां च॒ यस्तद्वेदो॒भय॑ꣳ स॒ह।

अवि॑द्यया मृ॒त्युं ती॒र्त्वा वि॒द्यया॒मृत॑मश्नुते॥१४॥

वि॒द्याम्। च॒। अवि॑द्याम्। च॒। यः। तत्। वेद॑। उ॒भय॑म्। स॒ह॥ अवि॑द्यया। मृ॒त्युम्। ती॒र्त्वा। वि॒द्यया॑। अ॒मृत॑म्। अ॒श्नु॒ते॥१४॥

पदार्थः-(**विद्याम्**) पूर्वोक्ताम् (**च**) तत्सम्बन्धिसाधनोपसाधनम् (**अविद्याम्**) प्रतिपादितपूर्वाम् (**च**) एतदुपयोगिसाधनकलापम् (**यः**) (**तत्**) (**वेद**) विजानीत (**उभयम्**) (**सह**) (**अविद्यया**) शरीरादिजडेन पदार्थसमूहेन कृतेन पुरुषार्थेन (**मृत्युम्**) मरणदुःखभयम् (**तीर्त्वा**) उल्लङ्घ्य (**विद्यया**) आत्मशुद्धान्तःकरणसंयोगधर्मजनितेन यथार्थदर्शनेन (**अमृतम्**) नाशरहितं स्वस्वरूपं परमात्मानं वा (**अश्नुते**)॥१४॥

अन्वयः-यो विद्वान् विद्यां चाऽविद्यां च तदुभयं सह वेद सोऽविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते॥१४॥

भावार्थः-ये मनुष्या विद्याऽविद्ये स्वरूपतो विज्ञायऽनयोर्जडचेतनौ साधकौ वर्त्तेते इति निश्चित्य सर्वं शरीरादिजडं चेतनमात्मानं च धर्मार्थकाममोक्षसिद्धये सहैव संप्रयुञ्जते, ते लौकिकं दुःखं विहाय पारमार्थिकं सुखं प्राप्नुवन्ति। यदि जडं प्रकृत्यादिकारणं शरीरादिकार्यं वा न स्यात्, तर्हि परमेश्वरो जगदुत्पत्तिं जीवः कर्मोपासने ज्ञानं च कर्त्तुं कथं शक्नुयात्, तस्मान्न केवलेन जडेन न च केवलेन चेतनेनाथवा न केवलेन कर्मणा न केवलेन ज्ञानेन च कश्चिदपि धर्मादिसिद्धिं कर्त्तुं समर्थो भवति॥१४॥

पदार्थः-(**यः**) जो विद्वान् (**विद्याम्**) पूर्वोक्त विद्या (**च**) और उसके सम्बन्धी साधन-उपसाधनों (**अविद्याम्**) पूर्व कही अविद्या (**च**) और इसके उपयोगी साधनसमूह को और (**तत्**) उस ध्यानगम्य मर्म (**उभयम्**) इन दोनों को (**सह**) साथ ही (**वेद**) जानता है, वह (**अविद्यया**) शरीरादि जड़ पदार्थ समूह से किये पुरुषार्थ से (**मृत्युम्**) मरणदुःख के भय को (**तीर्त्वा**) उल्लङ्घ कर (**विद्यया**) आत्मा और शुद्ध अन्तःकरण के संयोग में जो धर्म उससे उत्पन्न हुए यथार्थ दर्शनरूप विद्या से (**अमृतम्**) नाशरहित अपने स्वरूप वा परमात्मा को (**अश्नुते**) प्राप्त होता है॥१४॥

भावार्थः-जो मनुष्य विद्या और अविद्या को उनके स्वरूप से जानकर इनके जड़-चेतन साधक हैं, ऐसा निश्चय कर सब शरीरादि जड़पदार्थ और चेतन आत्मा को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि के लिये साथ ही प्रयोग करते हैं, वे लौकिक दुःख को छोड़ परमार्थ के सुख को

प्राप्त होते हैं। जो जड़प्रकृति आदि कारण वा शरीरादि कार्य्य न हो तो परमेश्वर जगत् की उत्पत्ति और जीव कर्म, उपासना और ज्ञान के करने को कैसे समर्थ हों? इससे न केवल जड़, न केवल चेतन से अथवा न केवल कर्म से तथा न केवल ज्ञान से कोई धर्मादि पदार्थों की सिद्धि करने में समर्थ होता है॥१४॥

वायुरित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। आत्मा देवता। स्वराडुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

अथ देहान्तसमये किं कार्य्यमित्याह॥

अब देहान्त के समय क्या करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तꣳ शरीरम्।

ओ३म् क्रतो स्मर। क्लिबे स्मर। कृतꣳ स्मर॥१५॥

वायुः। अनिलम्। अमृतम्। अथ। इदम्। भस्मान्तमिति भस्मऽअन्तम्। शरीरम्॥ ओ३म्। क्रतो इति क्रतो। स्मर। क्लिबे। स्मर। कृतम्। स्मर॥१५॥

पदार्थः-(**वायुः**) धनञ्जयादिरूपः (**अनिलम्**) कारणरूपं वायुम् (**अमृतम्**) नाशरहितं कारणम् (**अथ**) (**इदम्**) (**भस्मान्तम्**) भस्म अन्ते यस्य तत् (**शरीरम्**) यच्छीर्य्यते हिंस्यते तदाश्रयम् (**ओ३म्**) एतन्नामवाच्यमीश्वरम् (**क्रतो**) यः करोति जीवस्तत्सम्बुद्धौ (**स्मर**) पर्य्यालोचय (**क्लिबे**) स्वसामर्थ्याय (**स्मर**) (**कृतम्**) यदनुष्ठितम् (**स्मर**) तत्॥१५॥

अन्वयः-हे क्रतो! त्वं शरीरत्यागसमये (**ओ३म्**) स्मर क्लिबे परमात्मानं स्वस्वरूपं च स्मर कृतं स्मर। अत्रस्थो वायुरनिलमनिलोऽमृतं धरति। अथेदं शरीरं भस्मान्तं भवतीति विजानीत॥१५॥

भावार्थः-मनुष्यैर्यथा मृत्युसमये चित्तवृत्तिर्जायते शरीरादात्मनः पृथग्भावश्च भवति, तथैवेदानीमपि विज्ञेयम्। एतच्छरीरस्य भस्मान्ता क्रिया कार्य्या नातो दहनात् परः कश्चित् संस्कारः कर्त्तव्यो वर्त्तमानसमय एकस्य परमेश्वरस्यैवाज्ञापालनमुपासनं स्वसामर्थ्यवर्द्धनञ्चैव कार्य्यम्। कृतं कर्म विफलं न भवतीति मत्वा धर्मे रुचिरधर्मेऽप्रीतिश्च कर्त्तव्या॥१५॥

पदार्थः-हे (**क्रतो**) कर्म करनेवाले जीव! तू शरीर छूटते समय (**ओ३म्**) इस नामवाच्य ईश्वर को (**स्मर**) स्मरण कर (**क्लिबे**) अपने सामर्थ्य के लिये परमात्मा और अपने स्वरूप का (**स्मर**) स्मरण कर (**कृतम्**) अपने किये का (**स्मर**) स्मरण कर। इस संस्कार का (**वायुः**) धनञ्जयादिरूप वायु (**अनिलम्**) कारणरूप वायु को, कारणरूप वायु (**अमृतम्**) अविनाशी कारण को धारण करता (**अथ**) इसके अनन्तर (**इदम्**) यह (**शरीरम्**) नष्ट होनेवाला सुखादि का आश्रय शरीर (**भस्मान्तम्**) अन्त में भस्म होनेवाला होता है, ऐसा जानो॥१५॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि जैसी मृत्यु समय में चित्त की वृत्ति होती है और शरीर से आत्मा का पृथक् होना होता है, वैसे ही इस समय भी जानें। इस शरीर की जलाने पर्य्यन्त क्रिया करें। जलाने के पश्चात् शरीर का कोई संस्कार न करें। वर्त्तमान समय में एक परमेश्वर की ही आज्ञा का पालन, उपासना और सामर्थ्य को बढ़ाया करें। किया हुआ कर्म निष्फल नहीं होता, ऐसा मान कर धर्म में रुचि और अधर्म में अप्रीति किया करें॥१५॥

अग्ने नयेत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। आत्मा देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

ईश्वरः काननुगृह्णातीत्याह॥

ईश्वर किन मनुष्यों पर कृपा करता है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अग्ने॒ नय॑ सु॒पथा॑ रा॒येऽअ॒स्मान् विश्वा॑नि देव व॒युना॑नि वि॒द्वान्।

यु॒यो॒ध्य॒स्मज्जु॑हुरा॒णमेनो॒ भूयि॑ष्ठां ते॒ नम॑ऽउक्तिं विधेम॥ १६॥

अग्ने॑। नय॑। सु॒पथेति॑ सु॒ऽपथा॑। रा॒ये। अ॒स्मान्। विश्वा॑नि। दे॒व॒। व॒युना॑नि। वि॒द्वान्॥ यु॒यो॒धि। अ॒स्मत्। जु॒हु॒रा॒णम्। एनः॑। भूयि॑ष्ठाम्। ते॒। नम॑ऽउक्ति॒मिति॒ नमः॑ऽउक्तिम्। वि॒धे॒म॥ १६॥

पदार्थः-(**अग्ने**) स्वप्रकाशस्वरुप-करुणामय-जगदीश्वर! (**नय**) गमय (**सुपथा**) धर्म्येण मार्गेण (**राये**) विज्ञानाय धनाय वसुसुखाय (**अस्मान्**) जीवान् (**विश्वानि**) अखिलानि (**देव**) दिव्यस्वरूप (**वयुनानि**) प्रशस्यानि प्रज्ञानानि। **वयुनमिति प्रशस्यनामसु पठितम्॥** (निघं०३।८) **प्रज्ञानामसु** (निघं०३।९) (**विद्वान्**) यः सर्वं वेत्ति सः (**युयोधि**) पृथक्कुरु (**अस्मत्**) अस्माकं सकाशात् (**जुहुराणम्**) कौटिल्यम् (**एनः**) पापाचरणम् (**भूयिष्ठाम्**) बहुतमाम् (**ते**) तुभ्यम् (**नमउक्तिम्**) सत्कारपुरःसरां प्रशंसाम् (**विधेम**) परिचरेम॥१६॥

अन्वयः-हे देवाग्ने परमेश्वर! यतो वयं ते भूयिष्ठां नमउक्तिं विधेम तस्माद् विद्वांस्त्वमस्मज्जुहुराणमेनो युयोध्यस्मान् राये सुपथा विश्वानि वयुनानि नय प्रापय॥१६॥

भावार्थः-ये सत्यभावेन परमेश्वरमुपासते यथासामर्थ्यं तदाज्ञां पालयन्ति, सर्वोपरि सत्कर्त्तव्यं परमात्मानं मन्यन्ते, तान् दयालुरीश्वरः पापाचरणमार्गात् पृथक्कृत्य धर्म्यमार्गे चालयित्वा विज्ञानं दत्वा धर्मार्थकाममोक्षान् साद्धुं समर्थान् करोति, तस्मात् सर्वं एकमद्वितीयमीश्वरं विहाय कस्याप्युपासनं कदाचिन्नैव कुर्य्युः॥१६॥

पदार्थः-हे (**देव**) दिव्यरूप (**अग्ने**) प्रकाशस्वरूप करुणामय जगदीश्वर! जिस से हम लोग (**ते**) आपके लिये (**भूयिष्ठाम्**) अधिकतर (**नमउक्तिम्**) सत्कारपूर्वक प्रशंसा का (**विधेम**) सेवन करें, इससे (**विद्वान्**) सबको जाननेवाले आप (**अस्मत्**) हम लोगों से (**जुहुराणम्**) कुटिलतारूप (**एनः**) पापाचरण को (**युयोधि**) पृथक् कीजिये, (**अस्मान्**) हम जीवों को (**राये**) विज्ञान, धन वा धन से

हुए सुख के लिये **(सुपथा)** धर्मानुकूल मार्ग से **(विश्वानि)** समस्त **(वयुनानि)** प्रशस्त ज्ञानों को **(नय)** प्राप्त कीजिये॥१६॥

भावार्थः-जो सत्यभाव से परमेश्वर की उपासना करते, यथाशक्ति उसकी आज्ञा का पालन करते और सर्वोपरि सत्कार के योग्य परमात्मा को मानते हैं, उनको दयालु ईश्वर पापाचरण मार्ग से पृथक् कर धर्मयुक्त मार्ग में चला के विज्ञान देकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को सिद्ध करने के लिये समर्थ करता है, इससे एक अद्वितीय ईश्वर को छोड़ किसी की उपासना कदापि न करें॥१६॥

हिरण्मयेनेत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। आत्मा देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथान्ते मनुष्यानीश्वर उपदिशति॥

अब अन्त में मनुष्यों को ईश्वर उपदेश करता है॥

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।

योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्। ओ३म् खं ब्रह्म॥१७॥

हिरण्मयेन। पात्रेण। सत्यस्य। अपिहितमित्यपिऽहितम्। मुखम्॥ यः। असौ। आदित्ये। पुरुषः। सः। असौ। अहम्। ओ३म्। खम्। ब्रह्म॥१७॥

पदार्थः-**(हिरण्मयेन)** ज्योतिर्मयेन **(पात्रेण)** रक्षकेण **(सत्यस्य)** अविनाशिनः यथार्थस्य कारणस्य **(अपिहितम्)** आच्छादितम् **(मुखम्)** मुखवदुत्तमाङ्गम् **(यः)** **(असौ)** **(आदित्ये)** प्राणं सूर्यमण्डले वा **(पुरुषः)** पूर्णः परमात्मा **(सः)** **(असौ)** **(अहम्)** **(ओ३म्)** योऽवति सकलं जगत् तदाख्या **(खम्)** आकाशवद् व्यापकम् **(ब्रह्म)** सर्वेभ्यो गुणकर्मस्वरूपतो बृहत्॥१७॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! येन हिरण्मयेन पात्रेण मया सत्यस्यापिहितं मुखं विकाश्यते योऽसावादित्ये पुरुषोऽस्ति, सऽसावहं खम्ब्रह्मास्म्यो३मिति विजानीत॥१७॥

भावार्थः-सर्वान् मनुष्यान् प्रतीश्वर उपदिशति। हे मनुष्याः! योऽहमत्रास्मि स एवान्यत्र सूर्यादौ योऽन्यत्र सूर्य्यादावस्मि स एवाऽत्राऽस्मि सर्वत्र परिपूर्णः खवद् व्यापको न मत्तः किञ्चिदन्यद् बृहदहमेव सर्वेभ्यो महानस्मि मदीयं सुलक्षणपुत्रवत् प्राणप्रियं निजस्य नामौ३मिति वर्त्तते। यो मम प्रेमसत्याचरणभावाभ्यां शरणं गच्छति तस्यान्तर्यामि-रूपेणाहमविद्यां विनाश्य तदात्मानं प्रकाश्य शुभगुणकर्मस्वभावं कृत्वा सत्यस्वरूपावरणं स्थापयित्वा शुद्धं योगजं विज्ञानं दत्वा सर्वेभ्यो दुःखेभ्यः पृथक्कृत्य मोक्षसुखं प्रापयामीत्यो३म्॥१७॥

अत्रेश्वरगुणवर्णनमधर्मत्यागोपदेशः सर्वदा सत्कर्मानुष्ठानावश्यकत्वमधर्माचरणनिन्दा परमेश्वरस्यातिसूक्ष्मस्वरूप-वर्णनं विदुषा ज्ञेयत्वमविदुषामविज्ञेयत्वं सर्वत्रात्मभावेनाहिंसाधर्मपालनं तेन मोहशोकादित्याग ईश्वरस्य जन्मादिदोषराहित्यं वेदविद्योपदेशनं कार्य्यकारणात्मकस्य जडस्योपासननिषेधस्ताभ्यां कार्य्यकारणाभ्यां मृत्युं निवार्य्य मोक्षसिद्धिकरणं जडवस्तुन

उपासननिषेधश्चेतनोपासनविधिस्तदुभय-स्वरूपविज्ञानाऽऽवश्यकत्वं शरीरस्वभाववर्णनं समाधिना परमेश्वरमात्मनि निधाय शरीरत्यागकरणं शरीरदाहादूर्ध्वमन्यक्रियानुष्ठाननिषेधोऽधर्मत्यागाय धर्मवर्द्धनाय परमेश्वरप्रार्थनमीश्वरस्वरूपवर्णनं सर्वेभ्यो नामभ्य ओ३मित्यस्य प्राधान्यप्रतिपादनं च कृतमत एतदर्थस्य पूर्वाऽध्यायोक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेद्यम्॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जिस **(हिरणमयेन)** ज्योतिःस्वरूप **(पात्रेण)** रक्षक मुझसे **(सत्यस्य)** अविनाशी यथार्थ कारण के **(अपिहितम्)** आच्छादित **(मुखम्)** मुख के तुल्य उत्तम अङ्ग का प्रकाश किया जाता **(यः)** जो **(असौ)** वह **(आदित्ये)** प्राण वा सूर्य्यमण्डल में **(पुरुषः)** पूर्ण परमात्मा है **(सः)** वह **(असौ)** परोक्षरूप **(अहम्)** मैं **(खम्)** आकाश के तुल्य व्यापक **(ब्रह्म)** सबसे गुण, कर्म और स्वरूप करके अधिक हूं **(ओ३म्)** सबका रक्षक जो मैं उसका 'ओ३म्' ऐसा नाम जानो॥१७॥

भावार्थः-सब मनुष्यों के प्रति ईश्वर उपदेश करता है कि हे मनुष्यो! जो मैं यहां हूं, वही अन्यत्र सूर्य्यादि लोक में, जो अन्यस्थान सूर्य्यादि लोक में हूं वही यहां हूं, सर्वत्र परिपूर्ण आकाश के तुल्य व्यापक मुझसे भिन्न कोई बड़ा नहीं, मैं ही सबसे बड़ा हूं। मेरे सुलक्षणों के युक्त पुत्र के तुल्य प्राणों से प्यारा मेरा निज नाम 'ओ३म्' यह है। जो मेरा प्रेम और सत्याचरण भाव से शरण लेता, उसकी अन्तर्यामीरूप से मैं अविद्या का विनाश, उसके आत्मा को प्रकाशित करके शुभ, गुण, कर्म, स्वभाववाला कर सत्यस्वरूप का आवरण स्थिर कर योग से हुए शुद्ध विज्ञान को दे और सब दुःखों से अलग करके मोक्षसुख को प्राप्त कराता हूं। इति॥१७॥

इस अध्याय में ईश्वर के गुणों का वर्णन, अधर्म त्याग का उपदेश, सब काल में सत्कर्म के अनुष्ठान की आवश्यकता, अधर्माचरण की निन्दा, परमेश्वर के अतिसूक्ष्म स्वरूप का वर्णन, विद्वान् को जानने योग्य का होना, अविद्वान् को अज्ञेयपन का होना, सर्वत्र आत्मा जान के अहिंसा धर्म की रक्षा, उससे मोह-शोकादि का त्याग, ईश्वर का जन्मादि दोषरहित होना, वेदविद्या का उपदेश, कार्य्य कारणरूप जड़ जगत् की उपासना का निषेध, उन कार्य्य-कारणों से मृत्यु का निवारण करके मोक्षादि सिद्धि करना, जड़ वस्तु की उपासना का निषेध, चेतन की उपासना की विधि, उन जड़-चेतन दोनों के स्वरूप के जानने की आवश्यकता, शरीर के स्वभाव का वर्णन, समाधि से परमेश्वर को अपने आत्मा में धर के शरीर त्यागना, दाह के पश्चात् अन्य क्रिया के अनुष्ठान का निषेध, अधर्म के त्याग और धर्म के बढ़ाने के लिये परमेश्वर की प्रार्थना, ईश्वर के स्वरूप का वर्णन और सब नामों से ओ३म् इस नाम की उत्तमता का प्रतिपादन किया है। इससे इस अध्याय में कहे अर्थ की पूर्वाध्याय में कहे अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य्याणां श्रीपरमविदुषां विरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण
श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मिते संस्कृतार्यभाषाभ्यां समन्विते सुप्रमाणयुक्ते
यजुर्वेदभाष्ये चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः समाप्तः॥४०॥

समाप्तश्चायं ग्रन्थ इति॥

मार्गशीर्ष कृष्ण १ शनौ संवत् १९३९ में समाप्त किया।

वैशाख शुक्ल ११ शनौ संवत् १९४६ में छपकर समाप्त हुआ॥

देवता-सूची

अग्नयो देवता:।	वत्सप्रीर्ऋषि:।	३३.१
अग्नयो देवता:।	विश्वरूप ऋषि:।	३३.२
अग्नि: सर्वस्य।	परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषि:।	२.१४
अग्नि: सर्वस्य।	परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषि:।	२.३
अग्निर्देवता।	गोतम ऋषि:।	२५.४७
अग्निर्देवता	मधुच्छन्दा ऋषि:।	५.३४
अग्निर्देवता ।	गृत्समद ऋषि:।	११.३६
अग्निर्देवता	वामदेव ऋषि:।	३.३६
अग्निर्देवता।	परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषि:।	१.२३
अग्निर्देवता।	परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषि:।	२.७
अग्निर्देवता।	परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषि:।	२.९
अग्निर्देवता।	देवल ऋषि:।	२.१७
अग्निर्देवता।	परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषि:।	१.८
अग्निर्देवता।	वामदेव ऋषि:।	२.२८
अग्निर्देवता।	वामदेव ऋषि:।	२.२९
अग्निर्देवता।	वामदेव ऋषि:।	२.३०
अग्निर्देवता।	परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषि:।	१.१७
अग्निर्देवता।	परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषि:।	१.१९
अग्निर्देवता।	भार्गवो जमदग्निर्ऋषि:।	२९.२०
अग्निर्देवता।	हिरण्यस्तूप आङ्गिरस ऋषि:।	३४.१२
अग्निर्देवता।	हिरण्यस्तूप आङ्गिरस ऋषि:।	३४.१३
अग्निर्देवता।	देवश्रवदेववातौ भारतावृषी।	३४.१४
अग्निर्देवता।	देवश्रवदेववातौ भारतावृषी।	३४.१५
अग्निर्देवता।	आगस्त्य ऋषि:।	५.४२
अग्निर्देवता।	परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषि:।	१.५
अग्निर्देवता।	भारद्वाज ऋषि:।	११.३२
अग्निर्देवता।	भारद्वाज ऋषि:।	११.३३

अग्निर्देवता।	भारद्वाज ऋषिः।	११.३४
अग्निर्देवता।	प्रस्कण्व ऋषिः।	११.३७
अग्निर्देवता।	सिन्धुद्वीप ऋषिः।	११.४०
अग्निर्देवता।	विश्वमना ऋषिः।	११.४१
अग्निर्देवता।	कण्व ऋषिः।	११.४२
अग्निर्देवता।	त्रित ऋषिः।	११.४३
अग्निर्देवता।	त्रित ऋषिः।	११.४४
अग्निर्देवता।	त्रित ऋषिः।	११.४५
अग्निर्देवता।	त्रित ऋषिः।	११.४६
अग्निर्देवता।	त्रित ऋषिः।	११.४७
अग्निर्देवता।	त्रित ऋषिः।	११.४८
अग्निर्देवता।	उत्कील ऋषिः।	११.४९
अग्निर्देवता।	हिरण्यगर्भ ऋषिः।	१२.१०३
अग्निर्देवता।	हिरण्यगर्भ ऋषिः।	१२.१०४
अग्निर्देवता।	गोतम ऋषिः।	५.६
अग्निर्देवता।	गोतम ऋषिः।	५.८
अग्निर्देवता।	गोतम ऋषिः।	५.९
अग्निर्देवता।	गोतम ऋषिः।	३३.३
अग्निर्देवता।	विश्वरूप ऋषिः।	३३.४
अग्निर्देवता।	कुत्स ऋषिः।	३३.५
अग्निर्देवता।	कुत्स ऋषिः।	३३.६
अग्निर्देवता।	मेधातिथिर्ऋषिः।	१७.२
अग्निर्देवता।	मेधातिथिर्ऋषिः।	१७.३
अग्निर्देवता।	मेधातिथिर्ऋषिः।	१७.४
अग्निर्देवता।	मेधातिथिर्ऋषिः।	१७.५
अग्निर्देवता।	मेधातिथिर्ऋषिः।	१७.६
अग्निर्देवता।	मेधातिथिर्ऋषिः।	१७.७
अग्निर्देवता।	वसुयुर्ऋषिः।	१७.८

अग्निर्देवता।	मेधातिथिर्ऋषिः।	१७.९
अग्निर्देवता।	भारद्वाज ऋषिः।	१७.१०
अग्निर्देवता।	लोपामुद्रा ऋषिः।	१७.११
अग्निर्देवता।	लोपामुद्रा ऋषिः।	१७.१२
अग्निर्देवता।	लोपामुद्रा ऋषिः।	१७.१५
अग्निर्देवता।	भारद्वाज ऋषिः।	१७.१६
अग्निर्देवता।	वत्सप्रीर्ऋषिः।	१२.६
अग्निर्देवता।	वत्सप्रीर्ऋषिः।	१२.७
अग्निर्देवता।	वत्सप्रीर्ऋषिः।	१२.८
अग्निर्देवता।	वत्सप्रीर्ऋषिः।	१२.९
अग्निर्देवता।	वत्सप्रीर्ऋषिः।	१२.१०
अग्निर्देवता।	ध्रुव ऋषिः।	१२.११
अग्निर्देवता।	त्रित ऋषिः।	१२.१३
अग्निर्देवता।	आङ्गिरस ऋषिः।	३.१
अग्निर्देवता।	सुश्रुत ऋषिः।	३.२
अग्निर्देवता।	भारद्वाज ऋषिः।	३.३
अग्निर्देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	३.४
अग्निर्देवता।	परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः।	१.१८
अग्निर्देवता।	अग्निर्ऋषिः।	२७.१८
अग्निर्देवता।	मधुच्छन्दा ऋषिः।	१२.५७
अग्निर्देवता।	मधुच्छन्दा ऋषिः।	१२.५८
अग्निर्देवता।	मधुच्छन्दा ऋषिः।	१२.५९
अग्निर्देवता।	विश्वावसुर्ऋषिः।	१२.६६
अग्निर्देवता।	वामदेव ऋषिः।	२७.३९
अग्निर्देवता।	भार्गव ऋषिः।	२७.४३
अग्निर्देवता।	शंयुर्ऋषिः।	२७.४५
अग्निर्देवता।	अश्विनावृषी।	२८.२२
अग्निर्देवता।	अश्विनावृषी।	२८.२३

अग्निर्देवता।	सरस्वती ऋषिः।	२८.२४
अग्निर्देवता।	सरस्वत्यृषिः।	२८.३४
अग्निर्देवता।	बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः।	२९.१
अग्निर्देवता।	बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः।	२९.२
अग्निर्देवता।	बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः।	२९.३
अग्निर्देवता।	बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः।	२९.४
अग्निर्देवता।	बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः।	२९.५
अग्निर्देवता।	बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः।	२९.११
अग्निर्देवता।	भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः।	२९.१३
अग्निर्देवता।	भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः।	२९.१४
अग्निर्देवता।	भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः।	२९.१५
अग्निर्देवता।	भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः।	२९.१६
अग्निर्देवता।	भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः।	२९.१७
अग्निर्देवता।	भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः।	२९.१८
अग्निर्देवता।	नोधा गोतम ऋषिः।	२६.११
अग्निर्देवता।	नोधा गोतम ऋषिः।	२६.१२
अग्निर्देवता।	भारद्वाज ऋषिः।	२६.१३
अग्निर्देवता।	वामदेव ऋषिः।	१३.९
अग्निर्देवता।	वामदेव ऋषिः।	१३.१०
अग्निर्देवता।	वामदेव ऋषिः।	१३.११
अग्निर्देवता।	वामदेव ऋषिः।	१३.१२
अग्निर्देवता।	वामदेव ऋषिः।	१३.१३
अग्निर्देवता।	वामदेव ऋषिः।	१३.१४
अग्निर्देवता।	त्रिशिरा ऋषिः।	१३.१५
अग्निर्देवता।	त्रिशिरा ऋषिः।	१३.१६
अग्निर्देवता।	विश्वामित्र ऋषिः।	१८.७२
अग्निर्देवता।	कुत्स ऋषिः।	१८.७३
अग्निर्देवता।	भरद्वाज ऋषिः।	१८.७४

अग्निर्देवता।	उत्कील ऋषिः।	१८.७५
अग्निर्देवता।	परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः।	१.११
अग्निर्देवता।	भरद्वाज ऋषिः।	१३.३६
अग्निर्देवता।	विरूप ऋषिः।	१३.३७
अग्निर्देवता।	विरूप ऋषिः।	१३.३८
अग्निर्देवता।	विरूप ऋषिः।	१३.३९
अग्निर्देवता।	विरूप ऋषिः।	१३.४०
अग्निर्देवता।	विरूप ऋषिः।	१३.४१
अग्निर्देवता।	विरूप ऋषिः।	१३.४२
अग्निर्देवता।	विरूप ऋषिः।	१३.४३
अग्निर्देवता।	विरूप ऋषिः।	१३.४४
अग्निर्देवता।	विरूप ऋषिः।	१३.४५
अग्निर्देवता।	विरूप ऋषिः।	१३.४७
अग्निर्देवता।	विरूप ऋषिः।	१३.४८
अग्निर्देवता।	विरूप ऋषिः।	१३.४९
अग्निर्देवता।	विरूप ऋषिः।	१३.५०
अग्निर्देवता।	विरूप ऋषिः।	१३.५१
अग्निर्देवता।	उशना ऋषिः।	१३.५२
अग्निर्देवता।	वसिष्ठ ऋषिः।	१५.६२
अग्निर्देवता।	आदित्या देवा ऋषयः।	३५.१६
अग्निर्देवता।	वैखानस ऋषिः।	३५.१७
अग्निर्देवता।	दमन ऋषिः।	३५.१९
अग्निर्देवता।	आदित्या देवा ऋषयः।	३५.२२
अग्निर्देवता।	दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः।	३६.१
अग्निर्देवता।	हैमवर्चिर्ऋषिः।	१९.११
अग्निर्देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	४.७
अग्निर्देवता।	आसुरिर्ऋषिः।	३.३८
अग्निर्देवता।	आसुरिर्ऋषिः।	३.३९

अग्निर्देवता।	आसुरिर्ऋषिः।	३.४०
अग्निर्देवता।	अप्रतिरथ ऋषिः।	१७.५२
अग्निर्देवता।	अप्रतिरथ ऋषिः।	१७.५३
अग्निर्देवता।	अप्रतिरथ ऋषिः।	१७.५५
अग्निर्देवता।	अप्रतिरथ ऋषिः।	१७.५६
अग्निर्देवता।	अप्रतिरथ ऋषिः।	१७.५८
अग्निर्देवता।	वैखानस ऋषिः।	१९.४८
अग्निर्देवता।	शङ्ख ऋषिः।	१९.६४
अग्निर्देवता।	शङ्ख ऋषिः।	१९.६५
अग्निर्देवता।	शङ्ख ऋषिः।	१९.६६
अग्निर्देवता।	लोपामुद्रा ऋषिः।	३६.२०
अग्निर्देवता।	देवावत ऋषिः।	९.३७
अग्निर्देवता।	मधुच्छन्दा ऋषिः।	६.२९
अग्निर्देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२०.२२
अग्निर्देवता।	अश्वतराश्विर्ऋषिः।	२०.२४
अग्निर्देवता।	अश्वतराश्विर्ऋषिः।	२०.२५
अग्निर्देवता।	अश्वतराश्विर्ऋषिः।	२०.२६
अग्निर्देवता।	अग्निर्ऋषिः।	२७.३
अग्निर्देवता।	अग्निर्ऋषिः।	२७.४
अग्निर्देवता।	अग्निर्ऋषिः।	२७.५
अग्निर्देवता।	अग्निर्ऋषिः।	२७.६
अग्निर्देवता।	अग्निर्ऋषिः।	२७.७
अग्निर्देवता।	अग्निर्ऋषिः।	२७.११
अग्निर्देवता।	सोमाहुतिर्ऋषिः।	११.७०
अग्निर्देवता।	विरूप ऋषिः।	११.७१
अग्निर्देवता।	वारुणिर्ऋषिः।	११.७२
अग्निर्देवता।	जमदग्निर्ऋषिः।	११.७३
अग्निर्देवता।	जमदग्निर्ऋषिः।	११.७४

अग्निर्देवता।	नाभानेदिष्ठ ऋषिः।	११.७५
अग्निर्देवता।	नाभानेदिष्ठ ऋषिः।	११.७६
अग्निर्देवता।	नाभानेदिष्ठ ऋषिः।	११.७७
अग्निर्देवता।	नाभानेदिष्ठ ऋषिः।	११.७८
अग्निर्देवता।	सप्तऋषय ऋषयः।	१७.८७
अग्निर्देवता।	गृत्समद ऋषिः।	१७.८८
अग्निर्देवता।	वामदेव ऋषिः।	१७.८९
अग्निर्देवता।	वामदेव ऋषिः।	१७.९०
अग्निर्देवता।	मधुच्छन्दा ऋषिः।	५.३१
अग्निर्देवता।	मधुच्छन्दा ऋषिः।	५.३२
अग्निर्देवता।	मधुच्छन्दा ऋषिः।	५.३३
अग्निर्देवता।	मधुच्छन्दा ऋषिः।	५.३५
अग्निर्देवता।	आगस्त्य ऋषिः।	५.३६
अग्निर्देवता।	आगस्त्य ऋषिः।	५.३७
अग्निर्देवता।	विदर्भिर्ऋषिः।	२०.७८
अग्निर्देवता।	विदर्भिर्ऋषिः।	२०.७९
अग्निर्देवता।	परमेष्ठी ऋषिः।	१५.२०
अग्निर्देवता।	परमेष्ठी ऋषिः।	१५.२१
अग्निर्देवता।	परमेष्ठी ऋषिः।	१५.२२
अग्निर्देवता।	परमेष्ठी ऋषिः।	१५.२३
अग्निर्देवता।	परमेष्ठी ऋषिः।	१५.२४
अग्निर्देवता।	परमेष्ठी ऋषिः।	१५.२५
अग्निर्देवता।	परमेष्ठी ऋषिः।	१५.२६
अग्निर्देवता।	परमेष्ठी ऋषिः।	१५.२७
अग्निर्देवता।	परमेष्ठी ऋषिः।	१५.२८
अग्निर्देवता।	परमेष्ठी ऋषिः।	१५.२९
अग्निर्देवता।	परमेष्ठी ऋषिः।	१५.३०
अग्निर्देवता।	परमेष्ठी ऋषिः।	१५.३१

अग्निर्देवता।	परमेष्ठी ऋषिः।	१५.३२
अग्निर्देवता।	परमेष्ठी ऋषिः।	१५.३३
अग्निर्देवता।	परमेष्ठी ऋषिः।	१५.३४
अग्निर्देवता।	परमेष्ठी ऋषिः।	१५.३५
अग्निर्देवता।	परमेष्ठी ऋषिः।	१५.३६
अग्निर्देवता।	परमेष्ठी ऋषिः।	१५.३७
अग्निर्देवता।	परमेष्ठी ऋषिः।	१५.३८
अग्निर्देवता।	परमेष्ठी ऋषिः।	१५.३९
अग्निर्देवता।	परमेष्ठी ऋषिः।	१५.४०
अग्निर्देवता।	परमेष्ठी ऋषिः।	१५.४१
अग्निर्देवता।	परमेष्ठी ऋषिः।	१५.४२
अग्निर्देवता।	परमेष्ठी ऋषिः।	१५.४३
अग्निर्देवता।	परमेष्ठी ऋषिः।	१५.४४
अग्निर्देवता।	परमेष्ठी ऋषिः।	१५.४५
अग्निर्देवता।	परमेष्ठी ऋषिः।	१५.४६
अग्निर्देवता।	परमेष्ठी ऋषिः।	१५.४७
अग्निर्देवता।	परमेष्ठी ऋषिः।	१५.४८
अग्निर्देवता।	परमेष्ठी ऋषिः।	१५.४९
अग्निर्देवता।	परमेष्ठी ऋषिः।	१५.५०
अग्निर्देवता।	परमेष्ठी ऋषिः।	१५.५१
अग्निर्देवता।	परमेष्ठी ऋषिः।	१५.५२
अग्निर्देवता।	परमेष्ठी ऋषिः।	१५.५३
अग्निर्देवता।	परमेष्ठी ऋषिः।	१५.५४
अग्निर्देवता।	परमेष्ठी ऋषिः।	१५.५५
अग्निर्देवता।	परमेष्ठी ऋषिः।	१५.५६
अग्निर्देवता।	गोतम ऋषिः।	५.४
अग्निर्देवता।	वत्सप्रीर्ऋषिः।	१२.१
अग्निर्देवता।	कुत्स ऋषिः।	१२.२

अग्निर्देवता।	देवश्रवदेववातावृषी।	१८.६६
अग्निर्देवता।	देवश्रवदेववातावृषी।	१८.६७
अग्निर्देवता।	मधुच्छन्दा ऋषि:।	२६.२६
अग्निर्देवता।	अग्निर्ऋषि:।	२७.१
अग्निर्देवता।	त्रित ऋषि:।	१२.१५
अग्निर्देवता।	त्रित ऋषि:।	१२.१६
अग्निर्देवता।	त्रित ऋषि:।	१२.१७
अग्निर्देवता।	वत्सप्रीर्ऋषि:।	१२.१८
अग्निर्देवता।	वत्सप्रीर्ऋषि:।	१२.१९
अग्निर्देवता।	वत्सप्रीर्ऋषि:।	१२.२०
अग्निर्देवता।	वत्सप्रीर्ऋषि:।	१२.२१
अग्निर्देवता।	वत्सप्रीर्ऋषि:।	१२.२२
अग्निर्देवता।	वत्सप्रीर्ऋषि:।	१२.२३
अग्निर्देवता।	वत्सप्रीर्ऋषि:।	१२.२४
अग्निर्देवता।	वत्सप्रीर्ऋषि:।	१२.२५
अग्निर्देवता।	वत्सप्रीर्ऋषि:।	१२.२६
अग्निर्देवता।	वत्सप्रीर्ऋषि:।	१२.२७
अग्निर्देवता।	वत्सप्रीर्ऋषि:।	१२.२८
अग्निर्देवता।	वत्सप्रीर्ऋषि:।	१२.२९
अग्निर्देवता।	विरूपाक्ष ऋषि:।	१२.३०
अग्निर्देवता।	तापस ऋषि:।	१२.३१
अग्निर्देवता।	तापस ऋषि:।	१२.३२
अग्निर्देवता।	वत्सप्रीर्ऋषि:।	१२.३३
अग्निर्देवता।	वसिष्ठ ऋषि:।	१२.३४
अग्निर्देवता।	विरूप ऋषि:।	१२.३६
अग्निर्देवता।	विरूप ऋषि:।	१२.३७
अग्निर्देवता।	विरूप ऋषि:।	१२.३८
अग्निर्देवता।	विरूप ऋषि:।	१२.३९

अग्निर्देवता।	विरूप ऋषि:।	१२.४०
अग्निर्देवता।	विरूप ऋषि:।	१२.४१
अग्निर्देवता।	दीर्घतमा ऋषि:।	१२.४२
अग्निर्देवता।	सोमाहुतिर्ऋषि:।	१२.४३
अग्निर्देवता।	सोमाहुतिर्ऋषि:।	१२.४४
अग्निर्देवता।	सोमाहुतिर्ऋषि:।	१२.४६
अग्निर्देवता।	विश्वामित्र ऋषि:।	१२.४७
अग्निर्देवता।	विश्वामित्र ऋषि:।	१२.४८
अग्निर्देवता।	विश्वामित्र ऋषि:।	१२.४९
अग्निर्देवता।	विश्वामित्र ऋषि:।	१२.५०
अग्निर्देवता।	विश्वामित्र ऋषि:।	१२.५१
अग्निर्देवता।	विश्वामित्र ऋषि:।	१२.५२
अग्निर्देवता।	विश्वामित्र ऋषि:।	१२.५३
अग्निर्देवता।	विश्वामित्र ऋषि:।	१२.५४
अग्निर्देवता।	भार्गवो जमदग्निर्ऋषि:।	२९.३५
अग्निर्देवता।	भार्गवो जमदग्निर्ऋषि:।	२९.३६
अग्निर्देवता।	गृत्समद ऋषि:।	११.२४
अग्निर्देवता।	सोमक ऋषि:।	११.२५
अग्निर्देवता।	पायुर्ऋषि:।	११.२६
अग्निर्देवता।	गृत्समद ऋषि:।	११.२७
अग्निर्देवता।	गृत्समद ऋषि:।	११.२८
अग्निर्देवता।	गृत्समद ऋषि:।	११.२९
अग्निर्देवता।	शुन:शेप ऋषि:।	१८.४६
अग्निर्देवता।	शुन:शेप ऋषि:।	१८.५१
अग्निर्देवता।	शुन:शेप ऋषि:।	१८.५२
अग्निर्देवता।	गालव ऋषि:।	१८.५७
अग्निर्देवता।	विश्वकर्मा ऋषि:।	१८.५८
अग्निर्देवता।	दध्यङ्ङाथर्वण ऋषि:।	३७.१५

अग्निर्देवता।	परमेष्ठी ऋषिः।	१५.१
अग्निर्देवता।	परमेष्ठी ऋषिः।	१५.२
अग्निर्देवता।	स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	२१.१२
अग्निर्देवता।	आङ्गिरस ऋषयः	४.११
अग्निर्देवता।	आङ्गिरस ऋषयः	४.१४
अग्निर्देवता।	आङ्गिरस ऋषयः	४.१५
अग्निर्देवता।	वत्स ऋषिः।	४.१६
अग्निर्देवता।	वत्स ऋषिः।	४.१७
अग्निर्देवता।	भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः।	२९.२८
अग्निर्देवता।	महीयव ऋषिः।	२६.१६
अग्निर्देवता।	वत्स ऋषिः।	४.२८
अग्निर्देवता।	वत्स ऋषिः।	४.२९
अग्निर्देवता।	वत्स ऋषिः।	४.३२
अग्निर्देवता।	पावकाग्निर्ऋषिः।	१२.१०६
अग्निर्देवता।	पावकाग्निर्ऋषिः।	१२.१०८
अग्निर्देवता।	पाकाग्निर्ऋषिः।	१२.१०९
अग्निर्देवता।	पावकाग्निर्ऋषिः।	१२.१११
अग्निर्देवता।	वत्सार ऋषिः।	१२.११५
अग्निर्देवता।	विरूप ऋषिः।	१२.११६
अग्निर्देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	१२.११७
अग्निर्देवता।	वत्सार ऋषिः।	१३.१
अग्निर्देवता।	वत्सार ऋषिः।	१३.२
अग्निर्देवता।	त्रिशिरा ऋषिः।	१३.१८
अग्निर्देवता।	त्रिशिरा ऋषिः।	१३.१९
अग्निर्देवता।	इन्द्राग्नी ऋषी।	१३.२२
अग्निर्देवता।	परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः।	२.४
अग्निर्देवता।	सर्प्पराज्ञी कद्रूर्ऋषिः।	३.६
अग्निर्देवता।	सर्पराज्ञी कद्रूर्ऋषिः।	३.७

अग्निर्देवता।	सर्पराज्ञी कद्रूर्ऋषिः।	३.८
अग्निर्देवता।	अप्रतिरथ ऋषिः।	१७.५०
अग्निर्देवता।	सुतम्भर ऋषिः।	२२.१५
अग्निर्देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२२.१६
अग्निर्देवता।	विश्वरूप ऋषिः।	२२.१७
अग्निर्देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२२.१९
अग्निर्देवता।	शुनःशेप ऋषिः।	१०.२८
अग्निर्देवता।	दीर्घतमा ऋषिः।	६.१८
अग्निर्देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२०.१४
अग्निर्देवता।	विधृतिर्ऋषिः।	१७.६५
अग्निर्देवता।	विधृतिर्ऋषिः।	१७.६६
अग्निर्देवता।	विधृतिर्ऋषिः।	१७.६७
अग्निर्देवता।	विधृतिर्ऋषिः।	१७.६८
अग्निर्देवता।	विधृतिर्ऋषिः।	१७.६९
अग्निर्देवता।	कुत्स ऋषिः।	१७.७०
अग्निर्देवता।	कुत्स ऋषिः।	१७.७१
अग्निर्देवता।	कुत्स ऋषिः।	१७.७२
अग्निर्देवता।	कुत्स ऋषिः।	१७.७३
अग्निर्देवता।	गृत्समद ऋषिः।	१७.७५
अग्निर्देवता।	वसिष्ठ ऋषिः।	१७.७६
अग्निर्देवता।	वसिष्ठ ऋषिः।	१७.७७
अग्निर्देवता।	वसिष्ठ ऋषिः।	२१.९
अग्निर्देवता।	देववातभरतावृषी	३.१४
अग्निर्देवता।	वामदेव ऋषिः।	३.१५
अग्निर्देवता।	अवत्सार ऋषिः।	३.१६
अग्निर्देवता।	अवत्सार ऋषिः।	३.१७
अग्निर्देवता।	अवत्सार ऋषिः।	३.१८
अग्निर्देवता।	अवत्सार ऋषिः।	३.१९

अग्निर्देवता।	आगस्त्य ऋषि:।	३.४७
अग्निर्देवता।	दीर्घतमा ऋषि:।	३९.१०
अग्निर्देवता।	दीर्घतमा ऋषि:।	३९.११
अग्निर्देवता।	दीर्घतमा ऋषि:।	३९.१२
अग्निर्देवता।	दीर्घतमा ऋषि:।	३९.१३
अग्निर्देवता।	तापस ऋषि:।	९.२८
अग्निर्देवता।	गोतम ऋषि:।	३.११
अग्निर्देवता।	विरूप ऋषि:।	३.१२
अग्निर्देवता।	आगस्त्य ऋषि:।	५.४०
अग्निर्देवता।	सप्तऋषय ऋषय:।	१७.७९
अग्निर्देवता।	प्रजापतिर्ऋषि:।	२२.३
अग्निर्देवता।	प्रस्कण्व ऋषि:।	३३.१५
अग्निर्देवता।	गोतम ऋषि:।	३३.१६
अग्निर्देवता।	वैश्वामित्रो मधुच्छन्दा ऋषि:।	३.२२
अग्निर्देवता।	वैश्वामित्रो मधुच्छन्दा ऋषि:।	३.२३
अग्निर्देवता।	वैश्वामित्रो मधुच्छन्दा ऋषि:।	३.२४
अग्निर्देवता।	सुबन्धुर्ऋषि:।	३.२५
अग्निर्देवता।	सुबन्धुर्ऋषि:।	३.२६
अग्निर्देवता।	श्रुतबन्धुर्ऋषि:।	३.२७
अग्निर्देवता।	भरद्वाज ऋषि:।	३३.९
अग्निर्देवता।	मेधातिथिर्ऋषि:।	३३.१०
अग्निर्देवता।	पराशर ऋषि:।	३३.११
अग्निर्देवता।	विश्ववारा ऋषि:।	३३.१२
अग्निर्देवता।	वैखानस ऋषि:।	१९.४०
अग्निर्देवता।	वैखानस ऋषि:।	१९.४१
अग्निर्देवता।	देवा ऋषय:।	१८.१
अग्निर्देवता।	दीर्घतमा ऋषि:।	३८.१७
अग्निर्देवता।	शुन:शेप ऋषि:।	११.१६
अग्निर्देवता।	पुरोधा ऋषि:।	११.१७

अग्निर्देवता।	मयोभूर्ऋषिः।	११.१८
अग्निर्देवता।	मयोभूर्ऋषिः।	११.१९
अग्निवरुणौ देवते।	वामदेव ऋषिः।	२१.३
अग्निवरुणौ देवते।	वामदेव ऋषिः।	२१.४
अग्निवायुसूर्य्या देवता।ः	प्रजापतिर्ऋषिः।	३.५
अग्निवायू देवते।	परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः।	२.१९
अग्निसरस्वत्यौ देवते।	परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः।	२.२०
अग्निसूर्यौ देवते।	प्रजापतिर्ऋषिः।	३.९
अग्नीषोमौ देवते।	परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः।	२.१५
अग्न्यश्वीन्द्रसरस्वत्याद्या लिङ्गोक्ता देवताः।	स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	२१.२९
अग्न्यादयो देवताः।	विश्वदेव ऋषिः।	१४.२०
अग्न्यादयो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२३.१७
अग्न्यादयो देवताः।	स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	२१.५९
अग्न्यादयो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२२.६
अग्न्यादयो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२५.४
अग्न्यादयो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२२.२७
अग्न्यादयो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२४.१२
अग्न्यादयो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२४.१४
अग्न्यादयो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२४.१६
अग्न्यादयो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२४.३४
अग्न्यादयो देवताः।	याज्ञवल्क्य ऋषिः।	२६.१
अग्न्यादयो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२४.९
अग्न्यादयो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२४.२३
अग्न्यादयो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२४.६
अग्न्यादयो देवताः।	भारद्वाज ऋषिः।	२९.५९
अग्न्यादयो देवताः।	भारद्वाज ऋषिः।	२९.६०
अग्न्यादयो मन्त्रोक्ता देवताः।	विश्वामित्र ऋषिः।	११.६६
अग्न्यादयो मन्त्रोक्ता देवताः।	वरुण ऋषिः।	१०.५

अग्न्यादयो मन्त्रोक्ता देवताः।	देववात ऋषिः।	१०.२२
अग्न्यादयो मन्त्रोक्ता देवताः।	तापस ऋषिः।	९.३१
अग्न्यादयो लिङ्गोक्ता देवताः।	वसिष्ठ ऋषिः।	३४.३४
अग्न्यादयो लिङ्गोक्ता देवताः।	दीर्घतमा ऋषिः।	३९.८
अग्न्यादियुक्ता आत्मा देवता।	देवा ऋषयः।	१८.१४
अग्न्यादिविद्याविदात्मा देवता।	देवा ऋषयः।	१८.१६
अघ्न्या देवताः।	कुमारहारित ऋषिः।	१२.७३
अङ्गिरसो देवताः।	शङ्ख ऋषिः।	१९.७३
अदितिर्देवता।	सिन्धुद्वीप ऋषिः।	११.५६
अदितिर्देवता।	सिन्धुद्वीप ऋषिः।	११.५७
अदितिर्देवता।	गयप्लात ऋषिः।	२१.६
अदितिर्देवता।	सिन्धुद्वीप ऋषिः।	११.५९
अदित्यादयो लिङ्गोक्ता देवताः।	सिन्धुद्वीप ऋषिः।	११.६१
अध्यात्मं प्राणा देवताः।	कण्व ऋषिः।	३४.५५
अध्यापको देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२३.३९
अध्यापको देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२३.४२
अध्यापकोपदेशकौ देवते।	नाभानेदिष्ठ ऋषिः।	११.८०
अध्यापकोपदेशकौ देवते।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२०.१३
अध्वर्यू देवते।	दक्ष ऋषिः।	३३.७३
अनुमतिर्देवता।	अगस्त्य ऋषिः।	३४.८
अनुमतिर्देवता।	अगस्त्य ऋषिः।	३४.९
अन्तरिक्षं देवता।	भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः।	२९.२९
अन्तरिक्षादयो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२४.१०
अन्तर्यामी जगदीश्वरो देवता।	आङ्गिरस ऋषिः।	७.४३
अन्नं देवता।	शिवसङ्कल्प ऋषिः।	३४.७
अन्नपतिर्देवता।	देवा ऋषयः।	१८.३३
अन्नपतिर्देवता।	देवा ऋषयः।	१८.३४
अन्नवान् विद्वान् देवता।	देवा ऋषयः।	१८.३२

अपां पतिर्देवता।	वरुण ऋषिः।	१०.३
अप्सवितारौ देवते।	परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः।	१.१२
अबोषध्यौ देवते।	प्रजापतिर्ऋषिः।	४.१
अब्यज्ञसूर्या देवताः।	दीर्घतमा ऋषिः।	६.२३
अम्बा देवता।	आत्रेय ऋषिः।	११.६८
अम्बा देवता।	आत्रेय ऋषिः।	११.६९
अर्द्धमासादयो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२४.३७
अर्य्यमादिमन्त्रोक्ता देवताः।	तापस ऋषिः।	९.२७
अर्य्यमादिमन्त्रोक्ता देवताः।	तापस ऋषिः।	९.२९
अश्विनौ देवते।	दीर्घतमा ऋषिः।	३८.१०
अश्विनौ देवते।	दीर्घतमा ऋषिः।	३८.१२
अश्विनौ देवते।	दीर्घतमा ऋषिः।	३८.१३
अश्विनौ देवते।	शङ्ख ऋषिः।	१९.९३
अश्विनौ देवते।	शङ्ख ऋषिः।	१९.९५
अश्विनौ देवते।	बृहदुक्थो गोतम ऋषिः।	२८.७
अश्विनौ देवते।	अश्विनावृषी।	२८.१७
अश्विनौ देवते।	बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः।	२९.७
अश्विनौ देवते।	प्रस्कण्व ऋषिः।	३४.२८
अश्विनौ देवते।	कुत्स ऋषिः।	३४.२९
अश्विनौ देवते।	कुत्स ऋषिः।	३४.३०
अश्विनौ देवते।	कुमारहारित ऋषिः।	१२.७४
अश्विनौ देवते।	दीर्घतमा ऋषिः।	३८.६
अश्विनौ देवते।	शङ्ख ऋषिः।	१९.८२
अश्विनौ देवते।	शङ्ख ऋषिः।	१९.८९
अश्विनौ देवते।	सरस्वत्यृषिः।	२८.३०
अश्विनौ देवते।	उशना ऋषिः।	१४.१
अश्विनौ देवते।	उशना ऋषिः।	१४.२
अश्विनौ देवते।	उशना ऋषिः।	१४.३
अश्विनौ देवते।	उशना ऋषिः।	१४.४

अश्विनौ देवते।	उशना ऋषिः।	१४.५
अश्विनौ देवते।	शुनःशेप ऋषिः।	१०.३२
अश्विनौ देवते।	शुनःशेप ऋषिः।	१०.३३
अश्विनौ देवते।	शुनःशेप ऋषिः।	१०.३४
अश्विनौ देवते।	गृत्समद ऋषिः।	२०.८१
अश्विनौ देवते।	गृत्समद ऋषिः।	२०.८२
अश्विनौ देवते।	गृत्समद ऋषिः।	२०.८३
अश्विनौ देवते।	मधुच्छन्दा ऋषिः।	३३.५८
अश्विनौ देवते।	वसिष्ठ ऋषिः।	३३.८८
अश्विनौ देवते।	मेधातिथिर्ऋषिः।	७.११
अश्विनौ देवते।	हिरण्यस्तूप ऋषिः।	३४.४७
अश्विन्यादयो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२४.३६
अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः।	विदर्भिर्ऋषिः।	२०.५५
अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः।	विदर्भिर्ऋषिः।	२०.५६
अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः।	विदर्भिर्ऋषिः।	२०.५७
अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः।	विदर्भिर्ऋषिः।	२०.५८
अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः।	विदर्भिर्ऋषिः।	२०.५९
अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः।	विदर्भिर्ऋषिः।	२०.६०
अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः।	विदर्भिर्ऋषिः।	२०.६१
अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः।	विदर्भिर्ऋषिः।	२०.६२
अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः।	विदर्भिर्ऋषिः।	२०.६३
अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः।	विदर्भिर्ऋषिः।	२०.६४
अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः।	विदर्भिर्ऋषिः।	२०.६५
अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः।	विदर्भिर्ऋषिः।	२०.६६
अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः।	विदर्भिर्ऋषिः।	२०.६७
अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः।	विदर्भिर्ऋषिः।	२०.६८
अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः।	विदर्भिर्ऋषिः।	२०.६९
अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः।	विदर्भिर्ऋषिः।	२०.७३

अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः।	विदर्भिर्ऋषिः।	२०.७४
अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः।	विदर्भिर्ऋषिः।	२०.७५
अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः।	विदर्भिर्ऋषिः।	२०.७७
अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः।	विदर्भिर्ऋषिः।	२०.८०
अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः।	मधुच्छन्दा ऋषिः।	२०.९०
अश्विसरस्वतीन्द्रा देवता।	विदर्भिर्ऋषिः।	२०.७६
अश्वो देवता।	बृहस्पतिर्ऋषिः।	९.६
अश्व्यादयो देवताः।	स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	२१.३१
अश्व्यादयो देवताः।	स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	२१.४९
अश्व्यादयो देवताः।	स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	२१.५०
अश्व्यादयो देवताः।	स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	२१.५१
अश्व्यादयो देवताः।	स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	२१.५२
अश्व्यादयो देवताः।	स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	२१.५३
अश्व्यादयो देवताः।	स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	२१.५४
अश्व्यादयो देवताः।	स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	२१.५५
अश्व्यादयो देवताः।	स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	२१.५६
अश्व्यादयो देवताः।	स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	२१.५७
अश्व्यादयो देवताः।	स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	२१.५८
अश्व्यादयो देवताः।	स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	२१.३३
अश्व्यादयो देवताः।	स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	२१.३४
अश्व्यादयो देवताः।	स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	२१.३५
अश्व्यादयो देवताः।	स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	२१.३६
अश्व्यादयो देवताः।	स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	२१.३७
अश्व्यादयो देवताः।	स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	२१.३८
अश्व्यादयो देवताः।	स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	२१.३९
अश्व्यादयो देवताः।	स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	२१.४०
अश्व्यादयो देवताः।	स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	२१.४६
अश्व्यादयो देवताः।	स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	२१.४७

अश्व्यादयो देवता:।	प्रजापतिर्ऋषि:।	२७.९
अश्व्यादयो देवता:।	प्रजापतिर्ऋषि:।	२४.३
अश्व्यादयो लिङ्गोक्ता देवता:।	स्वस्त्यात्रेय ऋषि:।	२१.३०
अहोरात्रे देवते।	अश्विनावृषी।	२८.१४
अहोरात्रे देवते।	सरस्वत्यृषि:।	२८.२९
आतिथ्यादयो लिङ्गोक्ता देवता:।	हैमवर्चिर्ऋषि:।	१९.१४
आत्मा देवता।	दीर्घतमा ऋषि:।	४०.१
आत्मा देवता।	दीर्घतमा ऋषि:।	४०.२
आत्मा देवता।	दीर्घतमा ऋषि:।	४०.३
आत्मा देवता।	दीर्घतमा ऋषि:।	४०.५
आत्मा देवता।	दीर्घतमा ऋषि:।	४०.६
आत्मा देवता।	दीर्घतमा ऋषि:।	४०.७
आत्मा देवता।	दीर्घतमा ऋषि:।	४०.८
आत्मा देवता।	दीर्घतमा ऋषि:।	४०.९
आत्मा देवता।	दीर्घतमा ऋषि:।	४०.१०
आत्मा देवता।	दीर्घतमा ऋषि:।	४०.११
आत्मा देवता।	दीर्घतमा ऋषि:।	४०.१२
आत्मा देवता।	दीर्घतमा ऋषि:।	४०.१३
आत्मा देवता।	दीर्घतमा ऋषि:।	४०.१४
आत्मा देवता।	दीर्घतमा ऋषि:।	४०.१५
आत्मा देवता।	दीर्घतमा ऋषि:।	४०.१६
आत्मा देवता।	दीर्घतमा ऋषि:।	४०.१७
आत्मा देवता।	गोतम ऋषि:।	२५.४३
आत्मा देवता।	गोतम ऋषि:।	२५.४४
आत्मा देवता।	आङ्गिरस ऋषि:।	७.४८
आत्मा देवता।	शङ्ख ऋषि:।	१९.९२
आत्मा देवता।	स्वयम्भु ब्रह्म ऋषि:।	३२.४
आत्मा देवता।	देवा ऋषय:।	१८.८
आत्मा देवता।	देवा ऋषय:।	१८.९

आत्मा देवता।	देवा ऋषयः।	१८.१०
आदित्या देवताः।	परमेष्ठी ऋषिः।	१५.१२
आदित्या देवताः।	वामदेव ऋषिः।	२१.५
आदित्या देवताः।	कुत्स ऋषिः।	३३.६८
आदित्या देवताः।	कूर्म गार्त्समद ऋषिः।	३४.५४
आदित्यादयो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२४.३९
आदित्यो गृहपतिर्देवता।	आङ्गिरस ऋषिः।	८.३
आदित्यो गृहपतिर्देवता।	कुत्स ऋषिः।	८.४
आदित्यो देवता।	विश्वावसुर्ऋषिः।	१७.५९
आदित्यो देवता।	अप्रतिरथ ऋषिः।	१७.६०
आदित्यो देवता।	वत्सार ऋषिः।	१३.३
आदित्यो देवता।	सप्तधृतिर्वारुणिर्ऋषिः।	३.३१
आदित्यो देवता।	सप्तधृतिर्वारुणिर्ऋषिः।	३.३२
आदित्यो देवता।	वारुणिः सप्तधृतिः	३.३३
आदित्यो देवता।	उत्तरनारायण ऋषिः।	३१.१७
आदित्यो देवता।	उत्तरनारायण ऋषिः।	३१.१८
आदित्यो देवता।	उत्तरनारायण ऋषिः।	३१.१९
आदित्यो देवता।	उत्तरनारायण ऋषिः।	३१.२२
आपो देवताः।	सिन्धुद्वीप ऋषिः।	११.३८
आपो देवताः।	सिन्धुद्वीप ऋषिः।	११.५०
आपो देवताः।	सिन्धुद्वीप ऋषिः।	११.५१
आपो देवताः।	सिन्धुद्वीप ऋषिः।	११.५२
आपो देवताः।	उशना ऋषिः।	१३.५३
आपो देवताः।	सिन्धुद्वीप ऋषिः।	३६.१४
आपो देवताः।	सिन्धुद्वीप ऋषिः।	३६.१५
आपो देवताः।	सिन्धुद्वीप ऋषिः।	३६.१६
आपो देवताः।	वसिष्ठ ऋषिः।	१२.३५
आपो देवताः।	प्रियमेधा ऋषिः।	१२.५५

आपो देवताः।	वरुण ऋषिः।	१०.१
आपो देवताः।	दीर्घतमा ऋषिः।	३८.२३
आपो देवताः।	मेधातिथिर्ऋषिः।	६.१३
आपो देवताः।	प्रियमेधा ऋषिः।	१५.६०
आपो देवताः।	दीर्घतमा ऋषिः।	६.१७
आपो देवताः।	शुनःशेप ऋषिः।	३५.११
आपो देवताः।	आदित्या देवा ऋषयः।	३५.१२
आपो देवताः।	दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः।	३६.१२
आपो देवताः।	मेधातिथिर्ऋषिः।	६.२७
आपो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२०.१९
आपो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२०.२०
आपो देवताः।	वरुण ऋषिः।	१०.६
आपो देवता।ः	आङ्गिरस ऋषयः	४.१२
आपो देवता।	वामदेव ऋषिः।	२.३४
आपो देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	४.७
आपो देवता।	आङ्गिरस ऋषयः	४.१३
आपो देवता।	याज्ञवल्क्यः	३.२०
आपो देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	४.२
आपो देवता।	मेधातिथिर्ऋषिः।	६.१०
आयुरादयो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२२.३३
आसन्दी राजपत्नी देवता।	वामदेव ऋषिः।	१०.२५
इडा देवता।	हैमवर्चिर्ऋषिः।	१९.२९
इडादयो लिङ्गोक्ता देवताः।	अग्निर्ऋषिः।	२७.१९
इन्दुर्देवता।	शुनःशेप ऋषिः।	१८.५३
इन्दुर्देवता।	गालव ऋषिः।	१८.५४
इन्दुर्देवता।	गालव ऋषिः।	१८.५५
इन्दो देवता।	जय ऋषिः।	१८.७१
इन्द्रबृहस्पत्यादयो देवताः।	अप्रतिरथ ऋषिः।	१७.४८

इन्द्रमारुतौदेवते।	आगस्त्य ऋषिः।	३.४६
इन्द्रवायू देवते।	मधुच्छन्दा ऋषिः।	३३.५६
इन्द्रवायू देवते।	तापस ऋषिः।	३३.८६
इन्द्रवायू देवते।	पुरुमीढाजमीढावृषी।	३३.१९
इन्द्रवायू देवते।	मेधातिथिर्ऋषिः।	३३.४५
इन्द्रवायू देवते।	मधुच्छन्दा ऋषिः।	७.८
इन्द्रसवितृवरुणा देवताः।	विदर्भिर्ऋषिः।	२०.७०
इन्द्रसवितृवरुणा देवताः।	विदर्भिर्ऋषिः।	२०.७१
इन्द्रसवितृवरुणा देवताः।	विदर्भिर्ऋषिः।	२०.७२
इन्द्रो देवता। अग्निः यज्ञो देवता।	परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः।	१.१३
इन्द्रो देवता।	वामदेव ऋषिः।	२.२२
इन्द्रो देवता।	परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः।	२.१०
इन्द्रो देवता।	सुतजेतृमधुच्छन्दा ऋषिः।	१२.५६
इन्द्रो देवता।	दीर्घतमा ऋषिः।	३८.८
इन्द्रो देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२३.७
इन्द्रो देवता।	शङ्ख ऋषिः।	१९.७६
इन्द्रो देवता।	शङ्ख ऋषिः।	१९.९१
इन्द्रो देवता।	वामदेव ऋषिः।	३६.४
इन्द्रो देवता।	वामदेव ऋषिः।	३६.५
इन्द्रो देवता।	वामदेव ऋषिः।	३६.६
इन्द्रो देवता।	दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः।	३६.७
इन्द्रो देवता।	दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः।	३६.८
इन्द्रो देवता।	हैमवर्चिर्ऋषिः।	१९.३२
इन्द्रो देवता।	हैमवर्चिर्ऋषिः।	१९.३३
इन्द्रो देवता।	वैखानस ऋषिः।	१९.३८
इन्द्रो देवता।	शंयुर्बार्हस्पत्य ऋषिः।	२७.३७
इन्द्रो देवता।	शंयुर्बार्हस्पत्य ऋषिः।	२७.३८
इन्द्रो देवता।	वामदेव ऋषिः।	२७.४०
इन्द्रो देवता।	वामदेव ऋषिः।	२७.४१

इन्द्रो देवता।	बृहदुक्थो वामदेव ऋषिः।	२८.१
इन्द्रो देवता।	बृहदुक्थो वामदेव ऋषिः।	२८.२
इन्द्रो देवता।	बृहदुक्थो वामदेव ऋषिः।	२८.३
इन्द्रो देवता।	बृहदुक्थो वामदेव ऋषिः।	२८.५
इन्द्रो देवता।	बृहदुक्थो वामदेव ऋषिः।	२८.६
इन्द्रो देवता।	बृहदुक्थो गोतम ऋषिः।	२८.८
इन्द्रो देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२८.९
इन्द्रो देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२८.११
इन्द्रो देवता।	अश्विनावृषी।	२८.१२
इन्द्रो देवता।	अश्विनावृषी।	२८.१३
इन्द्रो देवता।	अश्विनावृषी।	२८.१५
इन्द्रो देवता।	अश्विनावृषी।	२८.१६
इन्द्रो देवता।	अश्विनावृषी।	२८.१८
इन्द्रो देवता।	अश्विनावृषी।	२८.१९
इन्द्रो देवता।	अश्विनावृषी।	२८.२०
इन्द्रो देवता।	अश्विनावृषी।	२८.२१
इन्द्रो देवता।	सरस्वत्यृषिः।	२८.२५
इन्द्रो देवता।	सरस्वत्यृषिः।	२८.२६
इन्द्रो देवता।	सरस्वत्यृषिः।	२८.२७
इन्द्रो देवता।	सरस्वत्यृषिः।	२८.२८
इन्द्रो देवता।	सरस्वत्यृषिः।	२८.३२
इन्द्रो देवता।	सरस्वत्यृषिः।	२८.३३
इन्द्रो देवता।	सरस्वत्यृषिः।	२८.३५
इन्द्रो देवता।	सरस्वत्यृषिः।	२८.३६
इन्द्रो देवता।	सरस्वत्यृषिः।	२८.३७
इन्द्रो देवता।	सरस्वत्यृषिः।	२८.३८
इन्द्रो देवता।	सरस्वत्यृषिः।	२८.३९
इन्द्रो देवता।	सरस्वत्यृषिः।	२८.४०

इन्द्रो देवता।	सरस्वत्यृषिः।	२८.४१
इन्द्रो देवता।	सरस्वत्यृषिः।	२८.४२
इन्द्रो देवता।	सरस्वत्यृषिः।	२८.४३
इन्द्रो देवता।	सरस्वत्यृषिः।	२८.४४
इन्द्रो देवता।	सरस्वत्यृषिः।	२८.४५
इन्द्रो देवता।	सरस्वत्यृषिः।	२८.४६
इन्द्रो देवता।	वसिष्ठ ऋषिः।	२६.१०
इन्द्रो देवता।	महीयव ऋषिः।	२६.१७
इन्द्रो देवता।	मेधाकाम ऋषिः।	३२.१३
इन्द्रो देवता।	मधुच्छन्दा ऋषिः।	२०.८७
इन्द्रो देवता।	मधुच्छन्दा ऋषिः।	२०.८८
इन्द्रो देवता।	मधुच्छन्दा ऋषिः।	२०.८९
इन्द्रो देवता।	इन्द्र ऋषिः।	१८.६८
इन्द्रो देवता।	इन्द्रविश्वामित्रावृषी।	१८.६९
इन्द्रो देवता।	शास ऋषिः।	१८.७०
इन्द्रो देवता।	अप्रतिरथ ऋषिः।	१७.३३
इन्द्रो देवता।	अप्रतिरथ ऋषिः।	१७.३४
इन्द्रो देवता।	अप्रतिरथ ऋषिः।	१७.३५
इन्द्रो देवता।	अप्रतिरथ ऋषिः।	१७.३६
इन्द्रो देवता।	अप्रतिरथ ऋषिः।	१७.३७
इन्द्रो देवता।	अप्रतिरथ ऋषिः।	१७.३८
इन्द्रो देवता।	अप्रतिरथ ऋषिः।	१७.३९
इन्द्रो देवता।	अप्रतिरथ ऋषिः।	१७.४०
इन्द्रो देवता।	अप्रतिरथ ऋषिः।	१७.४१
इन्द्रो देवता।	अप्रतिरथ ऋषिः।	१७.४२
इन्द्रो देवता।	अप्रतिरथ ऋषिः।	१७.४३
इन्द्रो देवता।	अप्रतिरथ ऋषिः।	१७.४४
इन्द्रो देवता।	नोधा ऋषिः।	३४.१६

इन्द्रो देवता।	नोधा ऋषिः।	३४.१७
इन्द्रो देवता।	देवश्रवा देववातश्च भारतावृषी।	३४.१८
इन्द्रो देवता।	देवश्रवा देववातश्च भारतावृषी।	३४.१९
इन्द्रो देवता।	वसिष्ठ ऋषिः।	३३.१८
इन्द्रो देवता।	विश्वामित्र ऋषिः।	३३.२२
इन्द्रो देवता।	सुचीक ऋषिः।	३३.२३
इन्द्रो देवता।	त्रिशोक ऋषिः।	३३.२४
इन्द्रो देवता।	मधुच्छन्दा ऋषिः।	३३.२५
इन्द्रो देवता।	विश्वामित्र ऋषिः।	३३.२६
इन्द्रो देवता।	अगस्त्य ऋषिः।	३३.२७
इन्द्रो देवता।	गौरिवीतिर्ऋषिः।	३३.२८
इन्द्रो देवता।	कुत्स ऋषिः।	३३.२९
इन्द्रो देवता।	देववात ऋषिः।	१०.२१
इन्द्रो देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२७.२२
इन्द्रो देवता।	दीर्घतमा ऋषिः।	३८.२६
इन्द्रो देवता।	गोतम ऋषिः।	६.३७
इन्द्रो देवता।	शास ऋषिः।	८.४४
इन्द्रो देवता।	मधुच्छन्दा ऋषिः।	१५.६१
इन्द्रो देवता।	कुशिक ऋषिः।	३३.५९
इन्द्रो देवता।	विश्वामित्र ऋषिः।	३३.६३
इन्द्रो देवता।	गौरीवितिर्ऋषिः।	३३.६४
इन्द्रो देवता।	वामदेव ऋषिः।	३३.६५
इन्द्रो देवता।	नृमेध ऋषिः।	३३.६६
इन्द्रो देवता।	नृमेध ऋषिः।	३३.६७
इन्द्रो देवता।	त्रित ऋषिः।	३३.९०
इन्द्रो देवता।	नृमेध ऋषिः।	३३.९५
इन्द्रो देवता।	नृमेध ऋषिः।	३३.९६
इन्द्रो देवता।	शङ्ख ऋषिः।	१९.७१
इन्द्रो देवता।	स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	२१.२५

इन्द्रो देवता।	भरद्वाजः शिरम्बिठ ऋषिः।	३५.१८
इन्द्रो देवता।	बृहस्पतिर्ऋषिः।	९.२
इन्द्रो देवता।	बृहस्पतिर्ऋषिः।	९.३
इन्द्रो देवता।	आभूतिर्ऋषिः।	१९.६
इन्द्रो देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२०.२८
इन्द्रो देवता।	विश्वामित्र ऋषिः।	२०.२९
इन्द्रो देवता।	नृमेधपुरुषमेधावृषी।	२०.३०
इन्द्रो देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२०.३१
इन्द्रो देवता।	आङ्गिरस ऋषिः।	२०.३६
इन्द्रो देवता।	आङ्गिरस ऋषिः।	२०.३८
इन्द्रो देवता।	आङ्गिरस ऋषिः।	२०.३९
इन्द्रो देवता।	आङ्गिरस ऋषिः।	२०.४०
इन्द्रो देवता।	रम्याक्षी ऋषिः।	२६.४
इन्द्रो देवता।	और्णवाभ ऋषिः।	३.५०
इन्द्रो देवता।	गोतम ऋषिः।	३.५१
इन्द्रो देवता।	गोतम ऋषिः।	३.५२
इन्द्रो देवता।	मधुच्छन्दा ऋषिः।	३.३४
इन्द्रो देवता।	अगस्त्य ऋषिः।	३३.७९
इन्द्रो देवता।	वामदेव ऋषिः।	२०.४७
इन्द्रो देवता।	वामदेव ऋषिः।	२०.४८
इन्द्रो देवता।	वामदेव ऋषिः।	२०.४९
इन्द्रो देवता।	गर्ग ऋषिः।	२०.५०
इन्द्रो देवता।	गर्ग ऋषिः।	२०.५१
इन्द्रो देवता।	गर्ग ऋषिः।	२०.५२
इन्द्रो देवता।	विश्वामित्र ऋषिः।	२०.५३
इन्द्रो देवता।	वसिष्ठ ऋषिः।	२०.५४
इन्द्रो देवता।	अप्रतिरथ ऋषिः।	१७.५१
इन्द्रो देवता।	मधुच्छन्दा ऋषिः। सुतजेता ऋषिः।	१७.६१

इन्द्रो देवता।	विधृतिर्ऋषिः।	१७.६३
इन्द्राग्नी देवते।	परमेष्ठी ऋषिः।	१५.५९
इन्द्राग्नी देवते।	भरद्वाज ऋषिः।	३३.६१
इन्द्राग्नी देवते।	वसिष्ठ ऋषिः।	३३.७६
इन्द्राग्नी देवते।	सुहोत्र ऋषिः।	३३.९३
इन्द्राग्नी देवते।	विश्वामित्र ऋषिः।	७.३१
इन्द्राग्नी देवते।	विधृतिर्ऋषिः।	१७.६४
इन्द्राग्नी देवते।	भरद्वाज ऋषिः।	३.१३
इन्द्राग्नी देवते।	विश्वेदेवा ऋषयः।	१४.११
इन्द्राग्न्यादयो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२४.८
इन्द्राग्न्यादयो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२४.१७
इन्द्रादयो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२२.५
इन्द्रादयो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२५.३
इन्द्रादयो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२५.५
इन्द्रादयो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२५.८
इन्द्रादयो देवताः।	वसिष्ठ ऋषिः।	८.५५
इन्द्रादयो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२४.१५
इन्द्रादयो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२४.७
इन्द्राबृहस्पती देवते।	बृहस्पतिर्ऋषिः।	९.१०
इन्द्राबृहस्पती देवते।	बृहस्पतिर्ऋषिः।	९.११
इन्द्राबृहस्पती देवते।	बृहस्पतिर्ऋषिः।	९.१२
इन्द्रामरुतौ देवते।	अगस्त्य ऋषिः।	३३.७८
इषुर्देवता।	अप्रतिरथ ऋषिः।	१७.४५
ईशानादयो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२४.२८
ईशानो देवता।	नारायण ऋषिः।	३१.२
ईश्वरसभाध्यक्षौ देवते।	औतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः।	५.२९
ईश्वरसभाध्यक्षौ देवते।	मधुच्छन्दा ऋषिः।	५.३०
ईश्वरसभेशौ राजानौ देवते।	शास ऋषिः।	८.४५

ईश्वरो देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२३.६४
ईश्वरो देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२३.६५
ईश्वरो देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२३.५०
ईश्वरो देवता।	सङ्कसुक ऋषिः।	३५.१५
ईश्वरो देवता।	गोतम ऋषिः।	२५.१८
ईश्वरो देवता।	गोतम ऋषिः।	२५.१९
ईश्वरो देवता।	दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः।	३६.१७
ईश्वरो देवता।	दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः।	३६.१८
ईश्वरो देवता।	दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः।	३६.१९
ईश्वरो देवता।	दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः।	३६.२१
ईश्वरो देवता।	दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः।	३६.२२
ईश्वरो देवता।	लौगाक्षिर्ऋषिः।	२६.२
ईश्वरो देवता।	गृत्समद ऋषिः।	२६.३
ईश्वरो देवता।	वामदेव ऋषिः।	२.२६
ईश्वरो देवता।	नारायण ऋषिः।	३०.१३
ईश्वरो देवता।	दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः।	३७.१४
ईश्वरो देवता।	दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः।	३७.१६
ईश्वरो देवता।	दीर्घतमा ऋषिः।	३७.१७
ईश्वरो देवता।	दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः।	३७.१८
ईश्वरो देवता।	आथर्वण ऋषिः।	३७.१९
ईश्वरो देवता।	आथर्वण ऋषिः।	३७.२०
ईश्वरो देवता।	आथर्वण ऋषिः।	३७.२१
ईश्वरो देवता।	आत्रेय ऋषिः।	४.८
ईश्वरो देवता।	हिरण्यगर्भ ऋषिः।	१३.५
ईश्वरो देवता।	हिरण्यगर्भ ऋषिः।	१३.६
ईश्वरो देवता।	हिरण्यगर्भ ऋषिः।	१३.७
ईश्वरो देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२५.११
ईश्वरो देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२५.१२
ईश्वरो देवता।	कण्व ऋषिः।	३७.७

ईश्वरो देवता।	विश्वदेव ऋषिः।	१४.२८
ईश्वरो देवता।	विश्वदेव ऋषिः।	१४.२९
ईश्वरो देवता।	दीर्घतमा ऋषिः।	३८.२५
ईश्वरो देवता।	गोतम ऋषिः।	७.५
उग्रादयो लिङ्गोक्ता देवताः।	दीर्घतमा ऋषिः।	३९.९
उपदेशका देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२०.११
उषर्देवता।	गोतम ऋषिः।	३४.३३
उषा देवता।	वसिष्ठ ऋषिः।	३४.४०
उषासानक्ता देवते।	आङ्गिरस ऋषिः।	२०.४१
ऋतवो देवताः।	विश्वदेव ऋषिः।	१४.२७
ऋतवो देवताः।	विश्वदेव ऋषिः।	१४.१५
ऋतवो देवताः।	विश्वेदेवा ऋषयः।	१४.१६
ऋतवो देवताः।	विश्वदेव ऋषिः।	१४.१७
ऋतवो देवताः।	इन्द्राग्नी ऋषी।	१३.२५
ऋतुविद्याविद्विद्वान् देवता।	देवा ऋषयः।	१८.३८
ऋत्विजो देवताः।	आत्रेय ऋषिः।	२१.१०
ऋभवो देवताः।	विश्वदेव ऋषिः।	१४.२६
ऋषयो देवताः।	प्राजापत्यो यज्ञ ऋषिः।	३४.४९
एकरुद्रो देवता।	बृहस्पतिर्ऋषिः।	१६.५
ओषधयो देवताः।	वरुण ऋषिः।	१२.९३
ओषधयो देवताः।	भिषगृषिः।	१२.८०
ओषधयो देवताः।	भिषगृषिः।	१२.८२
ओषधिर्देवता।	वरुण ऋषिः।	१२.९९
कालविद्याविदात्मा देवता।	देवा ऋषयः।	१८.२३
कालावयवा देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२४.२५
कृषीबला देवताः।	आदित्या देवा ऋषयः।	३५.१३
कृषीवला देवताः।	कुमारहारित ऋषिः।	१२.६९
कृषीवला देवताः।	कुमारहारित ऋषिः।	१२.७०

कृषीवला देवताः।	कुमारहारित ऋषिः।	१२.७१
कृषीवलाः कवयो वा देवताः।	विश्वावसुर्ऋषिः।	१२.६७
कृषीवलाः कवयो वा देवताः।	विश्वावसुर्ऋषिः।	१२.६८
को देवता।	हिरण्यगर्भ ऋषिः।	१२.१०२
क्षत्रपतिर्देवता।	वरुण ऋषिः।	१०.१६
क्षत्रपतिर्देवता।	देववात ऋषिः।	१०.२०
क्षत्रपतिर्देवता।	सविता ऋषिः।	१३.२६
क्षत्रपतिर्देवता।	शुनःशेप ऋषिः।	१०.३०
क्षत्रपतिर्देवता।	शुनःशेप ऋषिः।	१०.३१
क्षत्रपतिर्देवता।	शुनःशेप ऋषिः।	११.१४
क्षत्रपतिर्देवता।	मयोभूर्ऋषिः।	११.२०
गणपतिर्देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२३.१९
गणपतिर्देवता।	शुनःशेप ऋषिः।	११.१५
गरुत्मान् देवता।	श्यावाश्व ऋषिः।	१२.४
गृहपतयो देवताः।	देवा ऋषयः।	८.५३
गृहपतयो देवताः।	भरद्वाज ऋषिः।	८.१०
गृहपतयो देवताः।	भरद्वाज ऋषिः।	८.११
गृहपतयो देवताः।	भरद्वाज ऋषिः।	८.१२
गृहपतयो देवताः।	भरद्वाज ऋषिः।	८.१४
गृहपतयो देवताः।	अत्रिर्ऋषिः।	८.१८
गृहपतयो देवताः।	अत्रिर्ऋषिः।	८.२०
गृहपतयो देवताः।	अत्रिर्ऋषिः।	८.२१
गृहपतयो देवताः।	अत्रिर्ऋषिः।	८.२२
गृहपतयो देवताः।	अत्रिर्ऋषिः। ऊरुमित्यस्य शुनःशेप ऋषिः।	८.२३
गृहपतयो देवताः।	अत्रिर्ऋषिः।	८.२६
गृहपतयो देवताः।	गोतम ऋषिः।	८.३३
गृहपतयो देवताः।	कुत्स ऋषिः।	८.५
गृहपतयो देवताः।	भरद्वाज ऋषिः।	८.६

गृहपतयो राजादयो देवताः।	प्रस्कण्व ऋषिः।	८.४०
गृहपतयो विश्वेदेवा देवताः।	भरद्वाज ऋषिः।	८.९
गृहपतयो विश्वेदेवा देवताः।	भरद्वाज ऋषिः।	८.१३
गृहपतिर्देवता।	अत्रिर्ऋषिः।	८.१५
गृहपतिर्देवता।	अत्रिर्ऋषिः।	८.१६
गृहपतिर्देवता।	अत्रिर्ऋषिः।	८.२४
गृहपतिर्देवता।	अत्रिर्ऋषिः।	८.२५
गृहपतिर्देवता।	मधुच्छन्दा ऋषिः।	८.३४
गृहपतिर्देवता।	मधुच्छन्दा ऋषिः।	८.३५
गृहपतिर्देवता।	हैमवर्चिर्ऋषिः।	१९.१८
गृहपतिर्मघवा देवता।	आङ्गिरस ऋषिः।	८.२
ग्रीष्मर्तुर्देवता।	उशना ऋषिः।	१४.६
ग्रीष्मर्तुर्देवता।	परमेष्ठी ऋषिः।	१५.१६
चन्द्रमा देवता।	देवा ऋषयः।	१८.४०
चन्द्रादयो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२४.३५
चातुर्मास्या मरुतो देवताः।	सप्तऋषय ऋषयः।	१७.८५
चिकित्सुर्देवता।	भिषगृषिः।	१२.७८
छन्दांसि देवताः।	विश्वदेव ऋषिः।	१४.१८
जगदीश्वरो देवता।	विश्वदेव ऋषिः।	१४.३०
जलादयो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२२.२५
जातवेदा देवताः।	गोतम ऋषिः।	१३.३४
जातवेदा देवताः।	गोतम ऋषिः।	१३.३५
जातवेदा देवताः।	आदित्या देवा ऋषयः।	३५.२०
जायापती देवते।	गृत्समद ऋषिः।	११.३१
जिज्ञासुर्देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२३.९
जिज्ञासुर्देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२३.११
जिज्ञासुर्देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२३.४५
जिज्ञासुर्देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२३.४७

जीवेश्वरौ देवते।	त्रित ऋषिः।	१२.१४
तनूनपाद्देवता।	आङ्गिरस ऋषिः।	२०.३७
तिस्रा देव्यो देवताः।	आङ्गिरस ऋषिः।	२०.४३
त्वष्टा देवता।	वामदेव ऋषिः।	२.२४
त्वष्टा देवता।	बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः।	२९.९
त्वष्टा देवता।	अग्निर्ऋषिः।	२७.२०
त्वष्टा देवता।	आङ्गिरस ऋषिः।	२०.४४
त्वष्टा देवता।	मेधातिथिर्ऋषिः।	६.७
त्वष्टा देवता।	दीर्घतमा ऋषिः।	६.२०
दम्पती देवते।	मधुच्छन्दा ऋषिः।	१२.६०
दम्पती देवते।	अत्रिर्ऋषिः।	८.२७
दम्पती देवते।	अत्रिर्ऋषिः।	८.२८
दम्पती देवते।	अत्रिर्ऋषिः।	८.२९
दम्पती देवते।	अत्रिर्ऋषिः।	८.३०
दम्पती देवते।	गोतम ऋषिः।	८.३१
दम्पती देवते।	मेधातिथिर्ऋषिः।	८.३२
दम्पती देवते।	विश्वदेव ऋषिः।	१४.८
दम्पती देवते।	गृत्समद ऋषिः।	११.३०
दम्पती देवते।	परमेष्ठी ऋषिः।	१५.३
दिगादयो लिङ्गोक्ता देवताः।	दीर्घतमा ऋषिः।	३९.२
दिग् देवता।	अप्रतिरथ ऋषिः।	१७.५४
दिशो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२२.२४
दिशो देवताः।	विश्वदेव ऋषिः।	१४.१३
दिशो देवताः।	वसिष्ठ ऋषिः।	९.२२
देव्यो देवताः।	अग्निर्ऋषिः।	२७.१६
दैव्याध्यापकोपदेशकौ देवते।	आङ्गिरस ऋषिः।	२०.४२
द्यावापृथिवी देवते।	परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः।	२.११
द्यावापृथिवी देवते।	दीर्घतमा ऋषिः।	३८.१४

द्यावापृथिव्यौ देवते।	मधुच्छन्दा ऋषिः।	६.३५
द्यावापृथिव्यौ देवते।	गोतम ऋषिः।	१३.३२
द्यावापृथिव्यौ देवते।	दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः।	३७.३
द्यावापृथिव्यौ देवते।	मेधातिथिर्ऋषिः।	६.१६
द्यावापृथिव्यौ देवते।	भरद्वाज ऋषिः।	३४.४५
द्योविद्युतौ देवते।	परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः।	१.२४
द्यौरित्यादयो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२५.२३
द्रविणोदा देवता।	मयोभूर्ऋषिः।	११.२१
द्रविणोदा देवता।	मयोभूर्ऋषिः।	११.२२
धनादियुक्ता आत्मा देवता।	देवा ऋषयः।	१८.१५
धनुर्वेदाऽध्यापका देवताः।	भारद्वाज ऋषिः।	२९.४७
धान्यदा आत्मा देवता।	देवा ऋषयः।	१८.१२
नक्षत्रादयो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२२.२८
निर्ऋतिर्देवता।	मधुच्छन्दा ऋषिः।	१२.६२
निर्ऋतिर्देवता।	मधुच्छन्दा ऋषिः।	१२.६३
निर्ऋतिर्देवता।	मधुच्छन्दा ऋषिः।	१२.६४
न्यायाधीशो देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२३.२१
पत्नी देवता।	मधुच्छन्दा ऋषिः।	१२.६१
पत्नी देवता।	अग्निर्ऋषिः।	१३.२०
पत्नी देवता।	अग्निर्ऋषिः।	१३.२१
पत्नी देवता।	कुसुरुविन्दुर्ऋषिः।	८.४२
पत्नी देवता।	कुसुरुविन्दुर्ऋषिः।	८.४३
पदार्थविदात्मा देवता।	देवा ऋषयः।	१८.१९
परमात्मा देवता।	वरुण ऋषिः।	१०.१४
परमात्मा देवता।	स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः।	३२.६
परमात्मा देवता।	स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः।	३२.७
परमात्मा देवता।	स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः।	३२.८
परमात्मा देवता।	स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः।	३२.१०
परमात्मा देवता।	स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः।	३२.११

परमात्मा देवता।	स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः।	३२.१२
परमात्मा देवता।	मेधाकाम ऋषिः।	३२.१४
परमात्मा देवता।	वसिष्ठ ऋषिः।	१५.६४
परमात्मा देवता।	स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः।	३२.१
परमात्मा देवता।	स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः।	३२.२
परमात्मा देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२५.१३
परमात्मा देवता।	कौण्डिन्य ऋषिः।	२०.३२
परमात्मा देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	४.४
परमेश्वरविद्वांसौ देवते।	मेधाकाम ऋषिः।	३२.१५
परमेश्वरो देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२३.१
परमेश्वरो देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२३.२
परमेश्वरो देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२३.३
परमेश्वरो देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२३.४
परमेश्वरो देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२३.५
परमेश्वरो देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२३.५२
परमेश्वरो देवता।	नारायण ऋषिः।	३०.५
परमेश्वरो देवता।	नारायण ऋषिः।	३०.६
परमेश्वरो देवता।	विवस्वान् ऋषिः।	८.३६
परमेश्वरो देवता।	शंयुर्बार्हस्पत्य ऋषिः।	२७.३६
परमेश्वरो देवता।	स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः।	३२.५
परमेष्ठी प्रजापतिर्देवता।	वसिष्ठ ऋषिः।	८.५४
पवमानो देवता।	अरुणत्रसदस्यू ऋषी।	२२.१८
पशुपालनविद्याविदात्मा देवता।	देवा ऋषयः।	१८.२७
पशुविद्याविदात्मा देवता।	देवा ऋषयः।	१८.२६
पितरो देवताः।	शङ्ख ऋषिः।	१९.८७
पितरो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२४.१८
पितरो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	१९.३६
पितरो देवताः।	वैखानस ऋषिः।	१९.४५
पितरो देवताः।	वैखानस ऋषिः।	१९.४७

पितरो देवताः।	शङ्ख ऋषिः।	१९.४९
पितरो देवताः।	शङ्ख ऋषिः।	१९.५०
पितरो देवताः।	शङ्ख ऋषिः।	१९.५१
पितरो देवताः।	शङ्ख ऋषिः।	१९.५२
पितरो देवताः।	शङ्ख ऋषिः।	१९.५३
पितरो देवताः।	शङ्ख ऋषिः।	१९.५५
पितरो देवताः।	शङ्ख ऋषिः।	१९.५६
पितरो देवताः।	शङ्ख ऋषिः।	१९.५८
पितरो देवताः।	शङ्ख ऋषिः।	१९.५९
पितरो देवताः।	शङ्ख ऋषिः।	१९.६०
पितरो देवताः।	शङ्ख ऋषिः।	१९.६३
पितरो देवताः।	शङ्ख ऋषिः।	१९.६८
पितरो देवताः।	शङ्ख ऋषिः।	१९.६९
पितरो देवताः।	शङ्ख ऋषिः।	१९.७०
पितरो देवताः।	आदित्या देवा ऋषयः।	३५.१
पितरो देवताः।	सोमाहुतिर्ऋषिः।	१२.४५
पितरो देवता।:	वामदेव ऋषिः।	२.३१
पितरो देवता।:	वामदेव ऋषिः।	२.३२
पितरो देवता।:	वामदेव ऋषिः।	२.३३
पितरो देवता।	शङ्ख ऋषिः।	१९.५७
पितरो देवता।	शङ्ख ऋषिः।	१९.६१
पितरो देवता।	शङ्ख ऋषिः।	१९.६२
पितरो देवता।	शङ्ख ऋषिः।	१९.६७
पुरुषेश्वरो देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२३.५१
पुरुषो देवता।	नारायण ऋषिः।	३१.६
पुरुषो देवता।	नारायण ऋषिः।	३१.८
पुरुषो देवता।	नारायण ऋषिः।	३१.९
पुरुषो देवता।	नारायण ऋषिः।	३१.१०

पुरुषो देवता।	नारायण ऋषिः।	३१.११
पुरुषो देवता।	नारायण ऋषिः।	३१.१२
पुरुषो देवता।	नारायण ऋषिः।	३१.१३
पुरुषो देवता।	नारायण ऋषिः।	३१.१४
पुरुषो देवता।	नारायण ऋषिः।	३१.१५
पुरुषो देवता।	नारायण ऋषिः।	३१.१६
पुरुषो देवता।	नारायण ऋषिः।	३१.१
पुरुषो देवता।	नारायण ऋषिः।	३१.३
पुरुषो देवता।	नारायण ऋषिः।	३१.४
पुरोहितयजमानौ देवते।	नाभानेदिष्ठ ऋषिः।	११.८१
पूजा देवता।	सुहोत्र ऋषिः।	३४.४१
पूर्वार्द्धस्याग्निरुत्तरार्द्धस्य सूर्यश्च देवते।	प्रजापतिर्ऋषिः।	३.१०
पूर्वार्द्धे द्यावापृथिवी मित्रावरुणौ च देवता।:	परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः।	२.१६
पूषा देवता।	आथर्वण ऋषिः।	३८.३
पूषा देवता।	ऋजिष्व ऋषिः।	३४.४२
पूषादयो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२५.७
पूषादयो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२५.९
पूषादयो मन्त्रोक्ता देवताः।	तापस ऋषिः।	९.३२
पूषादयो लिङ्गोक्ता देवताः।	दीर्घतमा ऋषिः।	३८.१५
पृथिवी देवता।	मेधातिथिर्ऋषिः।	३५.२१
पृथिवी देवता।	मेधातिथिर्ऋषिः।	३६.१३
पृथिवी देवता।	दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः।	३७.१२
पृथिव्यादयो देवताः।	विश्वदेव ऋषिः।	१४.१९
प्रजा देवताः।	मेधातिथिर्ऋषिः।	६.२८
प्रजा देवता।	गोतम ऋषिः।	२५.४५
प्रजा देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२३.३४
प्रजा देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२३.३५
प्रजा देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२३.४०

प्रजा देवता।	प्रजापतिर्ऋषि:।	२३.४१
प्रजापतयो गृहस्था देवता:।	देवा ऋषय:।	८.५१
प्रजापतयो देवता:।	देवा ऋषय:।	८.५०
प्रजापतयो देवता:।	देवा ऋषय:।	८.४८
प्रजापतिर्ऋषि:।	वामदेव ऋषि:।	३.३७
प्रजापतिर्देवता स्वराट्।	हिरण्यगर्भ ऋषि:।	२७.२५
प्रजापतिर्देवता।	परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषि:।	१.६
प्रजापतिर्देवता।	वामदेव ऋषि:।	२.२३
प्रजापतिर्देवता।	देववात ऋषि:।	१०.१९
प्रजापतिर्देवता।	परमेष्ठी ऋषि:।	१५.८
प्रजापतिर्देवता।	परमेष्ठी ऋषि:।	१५.९
प्रजापतिर्देवता।	देवा ऋषय:।	१८.२
प्रजापतिर्देवता।	देवा ऋषय:।	१८.३
प्रजापतिर्देवता।	देवा ऋषय:।	१८.४
प्रजापतिर्देवता।	देवा ऋषय:।	१८.५
प्रजापतिर्देवता।	देवा ऋषय:।	१८.६
प्रजापतिर्देवता।	देवा ऋषय:।	१८.७
प्रजापतिर्देवता।	गृत्समद ऋषि:।	११.२३
प्रजापतिर्देवता।	देवा ऋषय:।	१८.४४
प्रजापतिर्देवता।	शुन:शेप ऋषि:।	१८.४५
प्रजापतिर्देवता।	विश्वकर्मा ऋषि:।	१८.५९
प्रजापतिर्देवता।	विश्वकर्मर्षि:।	१८.६०
प्रजापतिर्देवता।	गालव ऋषि:।	१८.६१
प्रजापतिर्देवता।	विश्वदेव ऋषि:।	१४.३१
प्रजापतिर्देवता।	देवश्रवा ऋषि:।	७.२९
प्रजापतिर्देवता।	देवश्रवा ऋषि:।	७.३०
प्रजापतिर्देवता।	विश्वामित्र ऋषि:।	७.३५
प्रजापतिर्देवता।	विश्वामित्र ऋषि:।	७.३६

प्रजापतिर्देवता।	विश्वामित्र ऋषिः।	७.३७
प्रजापतिर्देवता।	विश्वामित्र ऋषिः।	७.३८
प्रजापतिर्देवता।	भरद्वाज ऋषिः।	७.३९
प्रजापतिर्देवता।	वत्स ऋषिः।	७.४०
प्रजापतिर्देवता।	शङ्ख ऋषिः।	१९.७५
प्रजापतिर्देवता।	शङ्ख ऋषिः।	१९.७७
प्रजापतिर्देवता।	शङ्ख ऋषिः।	१९.७८
प्रजापतिर्देवता।	शङ्ख ऋषिः।	१९.७९
प्रजापतिर्देवता।	आदित्या देवा ऋषयः।	३५.६
प्रजापतिर्देवता।	गोतम ऋषिः।	१३.३०
प्रजापतिर्देवता।	वत्सारः काश्यप ऋषिः।	७.१८
प्रजापतिर्देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२४.१
प्रजापतिर्देवता।	वसिष्ठ ऋषिः।	९.१९
प्रजापतिर्देवता।	वसिष्ठ ऋषिः।	९.२०
प्रजापतिर्देवता।	वसिष्ठ ऋषिः।	९.२३
प्रजापतिर्देवता।	वसिष्ठ ऋषिः।	९.२४
प्रजापतिर्देवता।	वसिष्ठ ऋषिः।	९.२५
प्रजापतिर्देवता।	दीर्घतमा ऋषिः।	३९.५
प्रजापतिर्देवता।	हिरण्यगर्भ ऋषिः।	२७.२६
प्रजापतिर्देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२३.२८
प्रजापतिर्देवता।	हिरण्यगर्भ ऋषिः।	१३.४
प्रजापतिर्देवता।	त्रिशिरा ऋषिः।	१३.१७
प्रजापतिर्देवता।	इन्द्राग्नी ऋषी।	१३.२४
प्रजापतिर्देवता।	वरुण ऋषिः।	१०.९
प्रजापतिर्देवता।	बृहस्पतिर्ऋषिः।	९.८
प्रजापतिर्देवता।	देवा ऋषयः।	८.५२
प्रजापतिर्देवता।	वामदेव ऋषिः।	२.२१
प्रजापतिर्देवता।	उशना ऋषिः।	१३.५५

प्रजापतिर्देवता।	उशना ऋषिः।	१३.५६
प्रजापतिर्देवता।	उशना ऋषिः।	१३.५७
प्रजापतिर्देवता।	उशना ऋषिः।	१३.५८
प्रजापतिर्देवता।	आङ्गिरस ऋषिः।	७.४४
प्रजापतिर्देवता।	आङ्गिरस ऋषिः।	७.४५
प्रजापत्यादयो देवताः।	विश्वेदेवा ऋषयः।	१४.९
प्रजापत्यादयो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२२.२०
प्रजापत्यादयो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२४.२९
प्रजापत्यादयो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२४.३०
प्रजापत्यादयो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२४.३१
प्रजासभ्यराजानो देवताः।	मधुच्छन्दा ऋषिः।	६.३१
प्रथतामितिपर्य्यन्तस्य यज्ञो देवता। अन्त्यस्याग्निसवितारौ देवते।	परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः।	१.२२
प्रयत्नवन्तो जीवादयो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२२.८
प्रष्टा देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२३.५३
प्रष्टा देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२३.५५
प्रष्टा देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२३.५७
प्रष्टा देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२३.५९
प्रष्टा देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२३.६१
प्रष्टृसमाधातारौ देवते।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२३.४९
प्राणा देवताः।	उशना ऋषिः।	१३.५४
प्राणादयो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२३.१८
प्राणादयो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२२.७
प्राणादयो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२२.२३
प्राणादयो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२५.२
प्राणादयो लिङ्गोक्ता देवताः।	दीर्घतमा ऋषिः।	३९.१
प्राणो देवता।	लोपामुद्रा ऋषिः।	१७.१३
प्राणो देवता।	लोपामुद्रा ऋषिः।	१७.१४

प्राणो देवता।	गोतम ऋषिः।	७.१
बहुरुद्रा देवताः।	परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः।	१६.५६
बृहस्पतिर्देवता।	प्रबन्धु ऋषिः।	३.२८
बृहस्पतिर्देवता।	मेधातिथिर्ऋषिः।	३.२९
बृहस्पतिर्देवता।	दीर्घतमा ऋषिः।	६.८
बृहस्पतिर्देवता।	शुनःशेप ऋषिः।	१८.४७
बृहस्पतिर्देवता।	शुनःशेप ऋषिः।	१८.४८
बृहस्पतिर्देवता।	शुनःशेप ऋषिः।	१८.४९
बृहस्पतिर्देवता।	परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः।	२.१३
बृहस्पतिर्देवता।	दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः।	३६.२
बृहस्पतिर्देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	४.७
बृहस्पतिर्देवता।	दधिक्रावा ऋषिः।	९.१४
बृहस्पतिर्देवता।	दधिक्रावा ऋषिः।	९.१५
बृहस्पतिर्देवता।	वसिष्ठ ऋषिः।	९.१६
बृहस्पतिर्देवता।	नाभानेदिष्ठ ऋषिः।	९.१७
बृहस्पतिर्देवता।	वसिष्ठ ऋषिः।	९.१८
बृहस्पतिर्देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२८.१०
बृहस्पतिर्देवता।	इन्द्राग्नी ऋषी।	१३.२३
बृहस्पतिस्सोमो देवता।	आङ्गिरस ऋषिः।	८.१
ब्रह्म देवता।	दीर्घतमा ऋषिः।	४०.४
ब्रह्मणस्पतिर्देवता।	सप्तधृतिर्वारुणिर्ऋषिः।	३.३०
ब्रह्मणस्पतिर्देवता।	कण्व ऋषिः।	३४.५६
ब्रह्मणस्पतिर्देवता।	कण्व ऋषिः।	३४.५७
ब्रह्मणस्पतिर्देवता।	गृत्समद ऋषिः।	३४.५८
ब्रह्मा देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२३.१४
ब्रह्मादयो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२३.१३
ब्रह्मादयो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२३.४८
भगवान् देवता।	वसिष्ठ ऋषिः।	३४.३६

भगवान् देवता।	वसिष्ठ ऋषिः।	३४.३८
भगो देवता।	वसिष्ठ ऋषिः।	३४.३७
भगो देवता।	वसिष्ठ ऋषिः।	३४.३९
भगो देवता।	वसिष्ठ ऋषिः।	३४.३५
भिषग्वरा देवताः।	वरुण ऋषिः।	१२.९७
भिषजो देवताः।	वरुण ऋषिः।	१२.९४
भिषजो देवताः।	वरुण ऋषिः।	१२.१०१
भूमिसूर्यौ देवते।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२३.२४
भूमिसूर्य्यौ देवते।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२३.२५
भूम्यादयो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२४.२६
मघवा देवता।	गोतम ऋषिः।	७.४
मनुष्या देवताः।	बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः।	२९.६
मनुष्या देवताः।	भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः।	२९.२१
मनुष्या देवताः।	भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः।	२९.२३
मनुष्यो देवता।	भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः।	२९.१९
मनुष्यो देवता।	भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः।	२९.२४
मनो देवता।	बन्धुर्ऋषिः।	३.५३
मनो देवता।	बन्धुर्ऋषिः।	३.५४
मनो देवता।	बन्धुर्ऋषिः।	३.५५
मनो देवता।	शिवसङ्कल्प ऋषिः।	३४.१
मनो देवता।	शिवसङ्कल्प ऋषिः।	३४.२
मनो देवता।	शिवसङ्कल्प ऋषिः।	३४.३
मनो देवता।	शिवसङ्कल्प ऋषिः।	३४.४
मनो देवता।	शिवसङ्कल्प ऋषिः।	३४.५
मनो देवता।	शिवसङ्कल्प ऋषिः।	३४.६
मरुतादयो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२५.६
मरुतो देवताः।	मेधातिथिर्ऋषिः।	१७.१
मरुतो देवताः।	अगस्त्य ऋषिः।	३४.४८

मरुतो देवताः।	परमेष्ठी ऋषिः।	१५.१३
मरुतो देवताः।	अप्रतिरथ ऋषिः।	१७.४७
मरुतो देवताः।	सप्तऋषय ऋषयः।	१७.८६
मरुतो देवताः।	दीर्घतमा ऋषिः।	३९.७
मरुतो देवताः।	सप्तऋषय ऋषयः।	१७.८०
मरुतो देवताः।	सप्तऋषय ऋषयः।	१७.८१
मरुतो देवताः।	सप्तऋषय ऋषयः।	१७.८२
मरुतो देवताः।	सप्तऋषय ऋषयः।	१७.८३
मरुतो देवताः।	सप्तऋषय ऋषयः।	१७.८४
मरुतो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	३.४४
मरुतो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	३.४५
महावीरः सेनापतिर्देवता।	भारद्वाज ऋषिः।	२९.५१
महेन्द्रो देवता।	मेधातिथिर्ऋषिः।	३३.९७
महेन्द्रो देवता।	प्रगाथ ऋषिः।	३३.५०
महेन्द्रो देवता।	बृहद्दिव ऋषिः।	३३.८०
मारुतादयो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२४.४
मासा देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२२.३१
मित्रादयो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२४.३३
मित्रादयो देवताः।	गोतम ऋषिः।	२५.२४
मित्रादयो मन्त्रोक्ता देवताः।	तापस ऋषिः।	९.३३
मित्रादयो लिङ्गोक्ता देवताः।	कुमारहारित ऋषिः।	१२.७२
मित्रादयो लिङ्गोक्ता देवताः।	दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः।	३६.९
मित्रावरुणौ देवते।	मधुच्छन्दा ऋषिः।	३३.५७
मित्रावरुणौ देवते।	वसिष्ठ ऋषिः।	३३.७१
मित्रावरुणौ देवते।	जमदग्निर्ऋषिः।	३३.८७
मित्रावरुणौ देवते।	विश्वामित्र ऋषिः।	२१.८
मित्रावरुणौ देवते।	वरुण ऋषिः।	१०.१५
मित्रावरुणौ देवते।	गृत्समद ऋषिः।	७.९
मित्रावरुणौ देवते।	त्रिसदस्युर्ऋषिः।	७.१०

मित्रैश्वर्य्यसहित आत्मा देवता।	देवा ऋषयः।	१८.१७
मित्रो देवता।	सिन्धुद्वीप ऋषिः।	११.५३
मित्रो देवता।	विश्वामित्र ऋषिः।	११.६२
मित्रो देवता।	विश्वामित्र ऋषिः।	११.६४
मेघो देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	४.३
मेधाविनो देवताः।	विश्वदेव ऋषिः।	१४.२४
यजमानपुरोहितौ देवते।	नाभानेदिष्ठ ऋषिः।	११.८३
यजमानर्त्विजो देवताः।	स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	२१.४५
यजमानो देवता।	हैमवर्चिर्ऋषिः।	१९.२०
यजमानो देवता।	वत्स ऋषिः।	४.३४
यजमानो देवता।	मधुच्छन्दा ऋषिः।	१२.६५
यजमानो देवता।	भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः।	२९.१२
यजमानो देवता।	वरुण ऋषिः।	१०.८
यजमानो देवता।	देवावत ऋषिः।	९.४०
यजमानो देवता।	वरुण ऋषिः।	१०.१०
यजमानो देवता।	वरुण ऋषिः।	१०.११
यजमानो देवता।	वरुण ऋषिः।	१०.१२
यजमानो देवता।	वरुण ऋषिः।	१०.१३
यजमानो देवता।	देववात ऋषिः।	१०.१८
यजमानो देवता।	शुनःशेप ऋषिः।	१०.२७
यजमानो देवता।	देववात ऋषिः।	१०.१७
यजमानो देवता।	गोतम ऋषिः।	२५.४२
यज्ञपतिर्देवता।	देवश्रवा ऋषिः।	७.२७
यज्ञपतिर्देवता।	देवश्रवा ऋषिः।	७.२८
यज्ञपुरुषो देवता।	वामदेव ऋषिः।	१७.९१
यज्ञपुरुषो देवता।	वामदेव ऋषिः।	१७.९२
यज्ञपुरुषो देवता।	वामदेव ऋषिः।	१७.९३
यज्ञपुरुषो देवता।	वामदेव ऋषिः।	१७.९४

यज्ञपुरुषो देवता।	वामदेव ऋषिः।	१७.९५
यज्ञपुरुषो देवता।	वामदेव ऋषिः।	१७.९६
यज्ञपुरुषो देवता।	वामदेव ऋषिः।	१७.९७
यज्ञपुरुषो देवता।	वामदेव ऋषिः।	१७.९८
यज्ञपुरुषो देवता।	वामदेव ऋषिः।	१७.९९
यज्ञवानात्मा देवता।	देवा ऋषयः।	१८.२२
यज्ञाङ्गवानात्मा देवता।	देवा ऋषयः।	१८.२१
यज्ञानुष्ठातात्मा देवता।	देवा ऋषयः।	१८.२९
यज्ञानुष्ठानात्मा देवता।	देवा ऋषयः।	१८.२०
यज्ञो देवता सर्वस्य।	परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः।	१.२१
यज्ञो देवता सर्वस्य।	परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः।	१.२९
यज्ञो देवता सर्वस्य।	परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः।	१.३१
यज्ञो देवता।	परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः।	१.१४
यज्ञो देवता।	परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः।	१.२७
यज्ञो देवता।	परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः।	१.३०
यज्ञो देवता।	परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः।	२.१
यज्ञो देवता।	परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः।	२.२
यज्ञो देवता।	परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः।	२.५
यज्ञो देवता।	औतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः।	५.२८
यज्ञो देवता।	आगस्त्य ऋषिः।	५.४३
यज्ञो देवता।	हैमवर्चिर्ऋषिः।	१९.२२
यज्ञो देवता।	गोतम ऋषिः।	५.१३
यज्ञो देवता।	अप्रतिरथ ऋषिः।	१७.५७
यज्ञो देवता।	विश्वदेव ऋषिः।	१४.२३
यज्ञो देवता।	परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः।	१.१५
यज्ञो देवता।	परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः।	१.२८
यज्ञो देवता।	गालव ऋषिः।	१८.५६
यज्ञो देवता।	दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः।	३७.८
यज्ञो देवता।	और्णवाभ ऋषिः।	३.४८

यज्ञो देवता।	और्णवाभ ऋषिः।	३.४९
यज्ञो देवता।	दीर्घतमा ऋषिः।	३८.१८
यज्ञो देवता।	दीर्घतमा ऋषिः।	३८.१९
यज्ञो देवता।	दीर्घतमा ऋषिः।	३८.२०
यज्ञो देवता।	दीर्घतमा ऋषिः।	३८.२१
यज्ञो देवता।	दीर्घतमा ऋषिः।	३८.२२
यज्ञो देवता।	परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः।	१.२
यज्ञो देवता।	दीर्घतमा ऋषिः।	३८.११
यज्ञो देवता।	हैमवर्चिर्ऋषिः।	१९.१९
यज्ञो देवता।	औतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः।	५.२२
यज्ञो देवता।	औतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः।	५.२३
यज्ञो देवता।	अग्निर्ऋषिः।	२७.१७
यज्ञो देवता।	हैमवर्चिर्ऋषिः।	१९.१३
यज्ञो देवता।	गोतम ऋषिः।	२५.३८
यज्ञो देवता।	गोतम ऋषिः।	२५.४०
यज्ञो देवता।	गोतम ऋषिः।	२५.४१
यज्ञो देवता।	गोतम ऋषिः।	२५.२६
यज्ञो देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२५.२७
यज्ञो देवता।	गोतम ऋषिः।	२५.२८
यज्ञो देवता।	गोतम ऋषिः।	२५.२९
यज्ञो देवता।	गोतम ऋषिः।	२५.३१
यज्ञो देवता।	गोतम ऋषिः।	२५.३२
यज्ञो देवता।	गोतम ऋषिः।	२५.३३
यज्ञो देवता।	गोतम ऋषिः।	२५.३४
यज्ञो देवता।	हैमवर्चिर्ऋषिः।	१९.१६
यज्ञो देवता।	हैमवर्चिर्ऋषिः।	१९.१७
यज्ञो देवता।	मधुच्छन्दा ऋषिः।	६.३४
यज्ञो देवता।	औतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः।	५.२५
यज्ञो देवता।	औतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः।	५.२६

यज्ञो देवता।	औतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः।	५.२७
यज्ञो देवता।	दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः।	३७.४
यज्ञो देवता।	दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः।	३७.५
यज्ञो देवता।	दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः।	३७.६
यज्ञो देवता।	वत्स ऋषिः।	४.२४
यज्ञो देवता।	वत्स ऋषिः।	४.२६
यज्ञो देवता।	शंयुर्ऋषिः।	२७.४२
यज्ञो देवता।	दीर्घतमा ऋषिः।	३८.२७
यज्ञो देवता।	दीर्घतमा ऋषिः।	३८.२८
यज्ञो देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२५.१४
यज्ञो देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	४.५
यज्ञो देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	४.६
यज्ञो देवता।	देवा ऋषयः।	१८.४२
यज्ञो देवता।	गोतम ऋषिः।	४.३७
यज्ञो देवता।	विधृतिर्ऋषिः।	१७.६२
यज्ञो देवता।	वसिष्ठ ऋषिः।	८.६२
यज्ञो देवता।	कश्यप ऋषिः।	८.६३
यज्ञो देवता।	वत्सारः काश्यप ऋषिः।	७.२०
यज्ञो देवता।	गोतम ऋषिः।	२५.३६
यज्ञो देवता।	अग्निर्ऋषिः।	२७.१३
यज्ञो देवता।	गोतम ऋषिः।	५.३
यज्ञो देवता।	विश्वामित्र ऋषिः।	१८.६३
यज्ञो देवता।	विश्वकर्मर्षिः।	१८.६४
यज्ञो देवता।	विश्वकर्मर्षिः।	१८.६५
यज्ञो देवता।	परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः।	१.७
यज्ञो देवता।	देवश्रवा ऋषिः।	७.२६
यज्ञो देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२२.३४
यज्ञो देवता।	आङ्गिरस ऋषयः	४.१०
यज्ञो देवता।	हैमवर्चिर्ऋषिः।	१९.२६

यज्ञो देवता।	हैमवर्चिर्ऋषिः।	१९.२७
यज्ञो देवता।	हैमवर्चिर्ऋषिः।	१९.२८
यज्ञो देवता।	हैमवर्चिर्ऋषिः।	१९.३०
यज्ञो देवता।	हैमवर्चिर्ऋषिः।	१९.३१
यज्ञो देवता।	वसिष्ठ ऋषिः।	९.२१
यमो देवता।	सङ्कुसुक ऋषिः।	३५.७
योगी देवता।	गोतम ऋषिः।	७.६
योद्धा देवता।	अप्रतिरथ ऋषिः।	१७.४६
रक्षोघ्नो देवता।	देवावत ऋषिः।	९.३८
रक्षोघ्नो देवता।	देवावत ऋषिः।	९.३९
रत्नवान् धनवानात्मा देवता।	देवा ऋषयः।	१८.१३
रसविद्याविद्विद्वान् देवता।	देवा ऋषयः।	१८.३५
रसविद्विद्वान् देवता।	देवा ऋषयः।	१८.३६
राजधर्मराजादयो देवताः।	बृहस्पतिर्ऋषिः।	९.४
राजप्रजे देवते।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२३.३१
राजप्रजे देवते।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२३.२०
राजप्रजे देवते।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२३.२२
राजप्रजे देवते।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२३.२३
राजा देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२०.७
राजा देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२३.३२
राजा देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२३.४३
राजा देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२३.४४
राजा देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२३.३०
राजादयो गृहपतयो देवताः।	वैखानस ऋषिः।	८.३८
राजादयो गृहस्था देवताः।	वैखानस ऋषिः।	८.३९
राजेश्वरौ देवते।	नारायण ऋषिः।	३०.१४
राजेश्वरौ देवते।	नारायण ऋषिः।	३०.१५
राजेश्वरौ देवते।	नारायण ऋषिः।	३०.१६

राजेश्वरौ देवते।	नारायण ऋषिः।	३०.१७
राजेश्वरौ देवते।	नारायण ऋषिः।	३०.१८
राजेश्वरौ देवते।	नारायण ऋषिः।	३०.१९
राजेश्वरौ देवते।	नारायण ऋषिः।	३०.२०
राजेश्वरौ देवते।	नारायण ऋषिः।	३०.२१
राजेश्वरौ देवते।	नारायण ऋषिः।	३०.२२
राज्यवानात्मा देवता।	देवा ऋषयः।	१८.३०
राज्यैश्वर्यादियुक्तात्मा देवता।	देवा ऋषयः।	१८.१८
रात्रिर्देवता।	कुत्स ऋषिः।	३४.३२
रुद्रा देवताः।	कुत्स ऋषिः।	१६.१८
रुद्रा देवताः।	कुत्स ऋषिः।	१६.२१
रुद्रा देवताः।	कुत्स ऋषिः।	१६.२२
रुद्रा देवताः।	कुत्स ऋषिः।	१६.२३
रुद्रा देवताः।	कुत्स ऋषिः।	१६.२४
रुद्रा देवताः।	कुत्स ऋषिः।	१६.२५
रुद्रा देवताः।	कुत्स ऋषिः।	१६.२६
रुद्रा देवताः।	कुत्स ऋषिः।	१६.२७
रुद्रा देवताः।	कुत्स ऋषिः।	१६.२८
रुद्रा देवताः।	कुत्स ऋषिः।	१६.३०
रुद्रा देवताः।	कुत्स ऋषिः।	१६.३१
रुद्रा देवताः।	कुत्स ऋषिः।	१६.३२
रुद्रा देवताः।	कुत्स ऋषिः।	१६.३३
रुद्रा देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	१६.३४
रुद्रा देवताः।	कुत्स ऋषिः।	१६.३५
रुद्रा देवताः।	कुत्स ऋषिः।	१६.३६
रुद्रा देवताः।	कुत्स ऋषिः।	१६.३७
रुद्रा देवताः।	कुत्स ऋषिः।	१६.३८
रुद्रा देवताः।	कुत्स ऋषिः।	१६.३९

रुद्रा देवता:।	परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषय:।	१६.४०
रुद्रा देवता:।	परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषय:।	१६.४१
रुद्रा देवता:।	परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषय:।	१६.४२
रुद्रा देवता:।	परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषय:।	१६.४३
रुद्रा देवता:।	परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषय:।	१६.४४
रुद्रा देवता:।	परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषय:।	१६.४५
रुद्रा देवता:।	परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषय:।	१६.४६
रुद्रा देवता:।	परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषय:।	१६.४७
रुद्रा देवता:।	परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषय:।	१६.४८
रुद्रा देवता:।	परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषय:।	१६.४९
रुद्रा देवता:।	परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषय:।	१६.५०
रुद्रा देवता:।	परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषय:।	१६.५१
रुद्रा देवता:।	परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषय:।	१६.५२
रुद्रा देवता:।	परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषय:।	१६.५३
रुद्रा देवता:।	परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषय:।	१६.५४
रुद्रा देवता:।	परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषय:।	१६.५५
रुद्रा देवता:।	परमेष्ठी ऋषि:।	१५.११
रुद्रा देवता:।	सिन्धुद्वीप ऋषि:।	११.५४
रुद्रा देवता:।	परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषय:।	१६.५७
रुद्रा देवता:।	परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषय:।	१६.५८
रुद्रा देवता:।	परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषय:।	१६.५९
रुद्रा देवता:।	परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषय:।	१६.६०
रुद्रा देवता:।	परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषय:।	१६.६१
रुद्रा देवता:।	परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषय:।	१६.६२
रुद्रा देवता:।	परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषय:।	१६.६३
रुद्रा देवता:।	परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषय:।	१६.६४
रुद्रा देवता:।	परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषय:।	१६.६५
रुद्रा देवता:।	परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषय:।	१६.६६

रुद्रा देवता:।	स्वस्त्यात्रेय ऋषि:।	२१.२३
रुद्रादयो देवता:।	दीर्घतमा ऋषि:।	३८.१६
रुद्रो देवता।	कुत्स ऋषि:।	१६.१९
रुद्रो देवता।	कुत्स ऋषि:।	१६.२०
रुद्रो देवता।	कुत्स ऋषि:।	१६.२९
रुद्रो देवता।	प्रजापतिर्ऋषि:।	१६.६
रुद्रो देवता।	प्रजापतिर्ऋषि:।	१६.७
रुद्रो देवता।	प्रजापतिर्ऋषि:।	१६.८
रुद्रो देवता।	प्रजापतिर्ऋषि:।	१६.९
रुद्रो देवता।	प्रजापतिर्ऋषि:।	१६.१०
रुद्रो देवता।	प्रजापतिर्ऋषि:।	१६.११
रुद्रो देवता।	प्रजापतिर्ऋषि:।	१६.१२
रुद्रो देवता।	प्रजापतिर्ऋषि:।	१६.१३
रुद्रो देवता।	प्रजापतिर्ऋषि:।	१६.१४
रुद्रो देवता।	कुत्स ऋषि:।	१६.१५
रुद्रो देवता।	कुत्स ऋषि:।	१६.१६
रुद्रो देवता।	कुत्स ऋषि:।	१६.१७
रुद्रो देवता।	बृहदुक्थो वामदेव ऋषि:।	२८.४
रुद्रो देवता।	बन्धुर्ऋषि:।	३.५७
रुद्रो देवता।	बन्धुर्ऋषि:।	३.५८
रुद्रो देवता।	बन्धुर्ऋषि:।	३.५९
रुद्रो देवता।	वसिष्ठ ऋषि:।	३.६०
रुद्रो देवता।	वसिष्ठ ऋषि:।	३.६१
रुद्रो देवता।	नारायण ऋषि:।	३.६२
रुद्रो देवता।	नारायण ऋषि:।	३.६३
रुद्रो देवता।	परमेष्ठी वा कुत्स ऋषि:।	१६.१
रुद्रो देवता।	परमेष्ठी वा कुत्स ऋषि:।	१६.२
रुद्रो देवता।	परमेष्ठी वा कुत्स ऋषि:।	१६.३

रुद्रो देवता।	परमेष्ठी ऋषिः।	१६.४
लिङ्गोक्ता देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२२.२९
लिङ्गोक्ता देवताः।	ऋजिष्व ऋषिः।	३४.५३
लिङ्गोक्ता देवताः।	स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	२१.६०
लिङ्गोक्ता देवताः।	स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	२१.६१
लिङ्गोक्ता देवताः।	दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः।	३६.११
लिङ्गोक्ता देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२२.२२
लिङ्गोक्ता देवताः।	मेधातिथिर्ऋषिः।	६.२४
लिङ्गोक्ता देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२०.१७
लिङ्गोक्ता देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२०.३४
लिङ्गोक्ता देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२०.३५
लिङ्गोक्ता देवताः।	विहव्य ऋषिः।	३४.४६
वनस्पतिर्देवता।	आङ्गिरस ऋषिः।	२०.४५
वरुणो देवता।	शुनःशेप ऋषिः।	१२.१२
वरुणो देवता।	वत्स ऋषिः।	४.३०
वरुणो देवता।	वत्स ऋषिः।	४.३१
वरुणो देवता।	आङ्गिरस ऋषिः।	७.४७
वरुणो देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२४.२१
वरुणो देवता।	शुनःशेप ऋषिः।	१०.२६
वरुणो देवता।	दीर्घतमा ऋषिः।	६.२२
वरुणो देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२०.१८
वरुणो देवता।	मेधातिथिर्ऋषिः।	३३.४६
वरुणो देवता।	वरुण ऋषिः।	१०.७
वरुणो देवता।	शुनःशेप ऋषिः।	२१.१
वरुणो देवता।	शुनःशेप ऋषिः।	२१.२
वरुणो देवता।	शङ्ख ऋषिः।	१९.८१
वरुणो देवता।	गोतम ऋषिः।	१३.३१
वर्षर्तुर्देवता।	परमेष्ठी ऋषिः।	१५.१७

वर्षादयो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२४.३८
वसन्तर्तुर्देवता।	परमेष्ठी ऋषिः।	१५.१५
वसन्तादयो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२४.२०
वसन्तादयो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२४.११
वसवो देवताः।	परमेष्ठी ऋषिः।	१५.१०
वसुरुद्रादित्यविश्वेदेवा देवताः।	सिन्धुद्वीप ऋषिः।	११.५८
वस्वादयो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२४.२७
वस्वादयो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२२.३०
वस्वादयो मन्त्रोक्ता देवताः।	तापस ऋषिः।	९.३४
वस्वादयो मन्त्रोक्ता देवताः।	विश्वेदेवा ऋषयः।	१४.७
वस्वादयो मन्त्रोक्ता देवताः।	सिन्धुद्वीप ऋषिः।	११.६०
वस्वादयो लिङ्गोक्ता देवताः।	विश्वदेव ऋषिः।	१४.२५
वस्वादयो लिङ्गोक्ता देवताः।	विश्वामित्र ऋषिः।	११.६५
वह्निर्देवता।	अग्निर्ऋषिः।	२७.१४
वागादयो लिङ्गोक्ता देवताः।	दीर्घतमा ऋषिः।	३९.३
वाग्देवता।	गोतम ऋषिः।	५.१०
वाग्देवता।	गोतम ऋषिः।	५.११
वाग्देवता।	गोतम ऋषिः।	५.१२
वाग्देवता।	दीर्घतमा ऋषिः।	३८.५
वाग्देवता।	भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः।	२९.३३
वाग्विद्युतौ देवते।	वत्स ऋषिः।	४.१८
वाग्विद्युतौ देवते।	वत्स ऋषिः।	४.१९
वाग्विद्युतौ देवते।	वत्स ऋषिः।	४.२०
वाग्विद्युतौ देवते।	वत्स ऋषिः।	४.२१
वाग्विद्युतौ देवते।	वत्स ऋषिः।	४.२२
वाग्विद्युतौ देवते।	वत्स ऋषिः।	४.२३
वाजादयो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२२.३२
वाजी देवता।	नाभानेदिष्ठ ऋषिः।	११.१२

वाजी देवता।	कुश्रिर्ऋषिः।	११.१३
वाण्यो देवताः।	सरस्वत्यृषिः।	२८.३१
वातादयो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२२.२६
वातादयो देवताः।	दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः।	३६.१०
वातो देवता।	दीर्घतमा ऋषिः।	३८.७
वातो देवता।	देवा ऋषयः।	१८.४१
वातो देवता।	मेधातिथिर्ऋषिः।	६.११
वादयितारो वीरा देवताः।	भारद्वाज ऋषिः।	२९.५६
वादयितारो वीरा देवताः।	भारद्वाज ऋषिः।	२९.५७
वायवो देवताः।	भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः।	२९.२२
वायुः सविता च देवते।	आदित्या देवा ऋषयः।	३५.४
वायुः सविता देवता।	परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः।	१.१६
वायुर्देवता।	सिन्धुद्वीप ऋषिः।	११.३९
वायुर्देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२४.१९
वायुर्देवता।	शंयुर्ऋषिः।	२७.४४
वायुर्देवता।	वसिष्ठ ऋषिः।	३३.४४
वायुर्देवता।	अग्निर्ऋषिः।	२७.१५
वायुर्देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२०.१५
वायुर्देवता।	वसिष्ठ ऋषिः।	७.७
वायुर्देवता।	विश्वकर्मर्षिः।	१४.१२
वायुर्देवता।	विश्वेदेवा ऋषयः।	१४.१४
वायुर्देवता।	दीर्घतमा ऋषिः।	३८.९
वायुर्देवता।	वसिष्ठ ऋषिः।	२७.२३
वायुर्देवता।	वसिष्ठ ऋषिः।	२७.२४
वायुर्देवता।	वसिष्ठ ऋषिः।	३३.७०
वायुर्देवता।	ऋजिश्व ऋषिः।	३३.५५
वायुर्देवता।	जमदग्निर्ऋषिः।	३३.८५
वायुर्देवता।	गोतम ऋषिः।	२५.१७
वायुर्देवता।	वसिष्ठ ऋषिः।	२७.२७

वायुर्देवता।	वसिष्ठ ऋषिः।	२७.२८
वायुर्देवता।	गृत्समद ऋषिः।	२७.२९
वायुर्देवता।	पुरुमीढ ऋषिः।	२७.३०
वायुर्देवता।	अजमीढ ऋषिः।	२७.३१
वायुर्देवता।	गृत्समद ऋषिः।	२७.३२
वायुर्देवता।	गृत्समद ऋषिः।	२७.३३
वायुर्देवता।	आङ्गिरस ऋषिः।	२७.३४
वायुर्देवता।	वसिष्ठ ऋषिः।	२७.३५
वायुसवितारौ देवते।	आदित्या देवा वा ऋषयः।	३५.५
वाय्वादयो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२३.८
वास्तुपतिरग्निर्देवता।	शंयुर्ऋषिः।	३.४२
वास्तुपतिर्देवता।	शंयुर्बार्हस्पत्य ऋषिः।	३.४३
वास्तुरग्निः	आसुरिर्ऋषिः।	३.४१
विदुषी देवता।	वसिष्ठ ऋषिः।	१५.६३
विदुषी देवता।	विश्वदेव ऋषिः।	१४.२१
विदुषी देवता।	विश्वदेव ऋषिः।	१४.२२
विदुषी देवता।	परमेष्ठी ऋषिः।	१५.५८
विद्युदादयो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२३.१२
विद्युद्देवता।	गोतम ऋषिः।	५.५
विद्वद्राजानौ देवते।	श्रीकाम ऋषिः।	३२.१६
विद्वांसो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२२.२
विद्वांसो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२५.१५
विद्वांसो देवताः।	गोतम ऋषिः।	२५.२०
विद्वांसो देवताः।	गोतम ऋषिः।	२५.२१
विद्वांसो देवताः।	गोतम ऋषिः।	२५.२२
विद्वांसो देवताः।	स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	२१.१३
विद्वांसो देवताः।	स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	२१.१४
विद्वांसो देवताः।	स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	२१.१५

विद्वांसो देवताः।	स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	२१.१६
विद्वांसो देवताः।	स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	२१.२२
विद्वांसो देवताः।	आत्रेय ऋषिः।	२१.२७
विद्वांसो देवताः।	स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	२१.४१
विद्वांसो देवताः।	स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	२१.४४
विद्वांसो देवताः।	वसिष्ठ ऋषिः।	३३.१४
विद्वांसो देवताः।	हैमवर्चिर्ऋषिः।	१९.१२
विद्वांसो देवताः।	गोतम ऋषिः।	२५.३७
विद्वांसो देवताः।	गोतम ऋषिः।	२५.३९
विद्वांसो देवताः।	दीर्घतमा ऋषिः।	६.६
विद्वांसो देवताः।	नारायण ऋषिः।	३०.७
विद्वांसो देवताः।	नारायण ऋषिः।	३०.८
विद्वांसो देवताः।	मेधातिथिर्ऋषिः।	६.१२
विद्वांसो देवताः।	मेधातिथिर्ऋषिः।	६.१४
विद्वांसो देवताः।	मेधातिथिर्ऋषिः।	६.१५
विद्वांसो देवताः।	आङ्गिरस ऋषिः।	७.४६
विद्वांसो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२३.३३
विद्वांसो देवताः।	भारद्वाज ऋषिः।	२९.५८
विद्वांसो देवताः।	मुद्गल ऋषिः।	२६.१९
विद्वांसो देवताः।	परमेष्ठी ऋषिः।	१५.४
विद्वांसो देवताः।	परमेष्ठी ऋषिः।	१५.५
विद्वांसो देवताः।	परमेष्ठी ऋषिः।	१५.६
विद्वांसो देवताः।	परमेष्ठी ऋषिः।	१५.७
विद्वांसो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२७.२१
विद्वांसो देवताः।	विश्वामित्र ऋषिः।	३३.७
विद्वांसो देवताः।	विश्वामित्र ऋषिः।	३३.८
विद्वांसो देवताः।	वैखानस ऋषिः।	१९.३९
विद्वांसो देवताः।	भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः।	२९.३२

विद्वांसो देवताः।	मधुच्छन्छा ऋषिः।	२९.३७
विद्वांसो देवताः।	गोतम ऋषिः।	७.३
विद्वांसो देवताः।	विश्वदेव ऋषिः।	१४.१०
विद्वांसो देवताः।	दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः।	३७.१०
विद्वांसो देवताः।	गोतम ऋषिः।	२५.२५
विद्वांसो देवताः।	गोतम ऋषिः।	२५.३०
विद्वांसो देवता।	आत्रेय ऋषिः।	२१.११
विद्वांसो देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२३.२९
विद्वान् देवता।	प्रस्कण्व ऋषिः।	३३.३३
विद्वान् देवता।	नारायण ऋषिः।	३०.९
विद्वान् देवता।	नारायण ऋषिः।	३०.१०
विद्वान् देवता।	नारायण ऋषिः।	३०.११
विद्वान् देवता।	नारायण ऋषिः।	३०.१२
विद्वान् देवता।	मेधातिथिर्ऋषिः।	२६.२०
विद्वान् देवता।	मेधातिथिर्ऋषिः।	२६.२१
विद्वान् देवता।	मेधातिथिर्ऋषिः।	२६.२३
विद्वान् देवता।	गृत्समद ऋषिः।	२६.२४
विद्वान् देवता।	भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः।	२९.३४
विद्वान् देवता।	भारद्वाज ऋषिः।	२९.३८
विद्वान् देवता।	दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः।	३७.१३
विद्वान् देवता।	मधुच्छन्दा ऋषिः।	१५.६५
विद्वान् देवता।	दक्ष ऋषिः।	३३.७२
विद्वान् देवता।	विश्वामित्र ऋषिः।	३३.७५
विद्वान् देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२३.१५
विद्वान् देवता।	गोतम ऋषिः।	२५.४८
विद्वान् देवता।	आङ्गिरस ऋषयः	४.९
विद्वान् देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२२.२१
विद्वान् देवता।	हैमवर्चिर्ऋषिः।	१९.२४
विद्वान् देवता।	भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः।	२९.२५

विद्वान् देवता।	भार्गवो जमदग्निर्ऋषि:।	२९.२६
विद्वान् देवता।	भार्गवो जमदग्निर्ऋषि:।	२९.२७
विद्वान् देवता।	वत्स ऋषि:।	२६.१५
विद्वान् देवता।	महीयव ऋषि:।	२६.१८
विद्वान् देवता।	वत्स ऋषि:।	४.२७
विद्वान् देवता।	हिरण्यगर्भ ऋषि:।	१२.१०५
विद्वान् देवता।	पावकाग्निर्ऋषि:।	१२.१०७
विद्वान् देवता।	पावकाग्निर्ऋषि:।	१२.११०
विद्वान् देवता।	स्वयम्भु ब्रह्म ऋषि:।	३२.९
विद्वान् देवता।	दध्यङ्ङाथर्वण ऋषि:।	३७.९
विराजादयो देवता:।	प्रजापतिर्ऋषि:।	२४.१३
विश्वकर्मा देवता।	भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषि:।	१७.१७
विश्वकर्मा देवता।	भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषि:।	१७.१८
विश्वकर्मा देवता।	भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषि:।	१७.१९
विश्वकर्मा देवता।	भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषि:।	१७.२०
विश्वकर्मा देवता।	भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषि:।	१७.२१
विश्वकर्मा देवता।	भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषि:।	१७.२२
विश्वकर्मा देवता।	भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषि:।	१७.२३
विश्वकर्मा देवता।	भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषि:।	१७.२४
विश्वकर्मा देवता।	भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषि:।	१७.२५
विश्वकर्मा देवता।	भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषि:।	१७.२६
विश्वकर्मा देवता।	भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषि:।	१७.२७
विश्वकर्मा देवता।	भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषि:।	१७.२८
विश्वकर्मा देवता।	भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषि:।	१७.२९
विश्वकर्मा देवता।	भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषि:।	१७.३०
विश्वकर्मा देवता।	भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषि:।	१७.३१
विश्वकर्मा देवता।	भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषि:।	१७.३२
विश्वकर्मा देवता।	वसिष्ठ ऋषि:।	१७.७८

विश्वकर्मा देवता।	देवा ऋषयः।	१८.४३
विश्वकर्माग्निर्वा देवता।	देवश्रवदेववातावृषी।	१८.६२
विश्वकर्मेन्द्रो देवता।	शास ऋषिः।	८.४६
विश्वकर्म्मेन्द्रो देवता।	शास ऋषिः।	८.४७
विश्वेदेवा देवताः।	लुश ऋषिः।	३३.५२
विश्वेदेवा देवताः।	मेधातिथिर्ऋषिः।	३३.८१
विश्वेदेवा देवताः।	वत्सारः काश्यप ऋषिः।	७.२३
विश्वेदेवा गृहपतयो देवताः।	भरद्वाज ऋषिः।	८.८
विश्वेदेवा गृहपतयो देवताः।	अत्रिर्ऋषिः।	८.१७
विश्वेदेवा गृहपतयो देवताः।	अत्रिर्ऋषिः।	८.१९
विश्वेदेवा गृहस्था देवताः।	वसिष्ठ ऋषिः।	८.५६
विश्वेदेवा देवताः।	सुहोत्र ऋषिः।	३३.५३
विश्वेदेवा देवताः।	वामदेव ऋषिः।	३३.५४
विश्वेदेवा देवताः।	सुहोत्रऋषिः।	३३.७७
विश्वेदेवा देवताः।	मेधातिथिर्ऋषिः।	३३.८२
विश्वेदेवा देवताः।	मेधातिथिर्ऋषिः।	३३.८३
विश्वेदेवा देवताः।	कण्व ऋषिः।	३३.८९
विश्वेदेवा देवताः।	मनुर्ऋषिः।	३३.९१
विश्वेदेवा देवताः।	मनुर्ऋषिः।	३३.९४
विश्वेदेवा देवताः।	भरद्वाज ऋषिः।	७.२४
विश्वेदेवा देवताः।	त्रिशोक ऋषिः।	७.३२
विश्वेदेवा देवताः।	मधुच्छन्दा ऋषिः।	७.३३
विश्वेदेवा देवताः।	गृत्समद ऋषिः।	७.३४
विश्वेदेवा देवताः।	उत्तरनारायण ऋषिः।	३१.२१
विश्वेदेवा देवताः।	वैखानस ऋषिः।	१९.४४
विश्वेदेवा देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२०.१२
विश्वेदेवा देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२२.४
विश्वेदेवा देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२५.१६
विश्वेदेवा देवताः।	स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	२१.१७

विश्वेदेवा देवता:।	स्वस्त्यात्रेय ऋषि:।	२१.१८
विश्वेदेवा देवता:।	स्वस्त्यात्रेय ऋषि:।	२१.१९
विश्वेदेवा देवता:।	स्वस्त्यात्रेय ऋषि:।	२१.२०
विश्वेदेवा देवता:।	स्वस्त्यात्रेय ऋषि:।	२१.२१
विश्वेदेवा देवता:।	स्वस्त्यात्रेय ऋषि:।	२१.२४
विश्वेदेवा देवता:।	स्वस्त्यात्रेय ऋषि:।	२१.२६
विश्वेदेवा देवता:।	स्वस्त्यात्रेय ऋषि:।	२१.२८
विश्वेदेवा देवता:।	आदित्या देवा वा ऋषय:।	३५.८
विश्वेदेवा देवता:।	आदित्या देवा ऋषय:।	३५.९
विश्वेदेवा देवता:।	सुचीक ऋषि:।	३५.१०
विश्वेदेवा देवता:।	भरद्वाज ऋषि:।	३३.१३
विश्वेदेवा देवता:।	जमदग्निर्ऋषि:।	३३.३९
विश्वेदेवा देवता:।	कुत्सीदिर्ऋषि:।	३३.४७
विश्वेदेवा देवता:।	प्रतिक्षत्र ऋषि:।	३३.४८
विश्वेदेवा देवता:।	वत्सार ऋषि:।	३३.४९
विश्वेदेवा देवता:।	कूर्म ऋषि:।	३३.५१
विश्वेदेवा देवता:।	देवा ऋषय:।	१८.३१
विश्वेदेवा देवता:।	गोतम ऋषि:।	१३.२७
विश्वेदेवा देवता:।	गोतम ऋषि:।	१३.२८
विश्वेदेवा देवता:।	गोतम ऋषि:।	१३.२९
विश्वेदेवा देवता:।	वरुण ऋषि:।	९.३५
विश्वेदेवा देवता:।	वरुण ऋषि:।	९.३६
विश्वेदेवा देवता:।	वसिष्ठ ऋषि:।	८.५७
विश्वेदेवा देवता:।	वसिष्ठ ऋषि:।	८.५८
विश्वेदेवा देवता:।	वसिष्ठ ऋषि:।	८.५९
विश्वेदेवा देवता:।	वसिष्ठ ऋषि:।	८.६०
विश्वेदेवा देवता:।	वसिष्ठ ऋषि:।	८.६१
विश्वेदेवा देवता:।	उत्कील ऋषि:।	१८.७६
विश्वेदेवा देवता:।	उशना ऋषि:।	१८.७७

विश्वेदेवा देवता:।	काश्यप ऋषि:।	७.१२
विश्वेदेवा देवता:।	वत्सार: काश्यप ऋषि:।	७.१३
विश्वेदेवा देवता:।	वत्सार: काश्यप ऋषि:।	७.१४
विश्वेदेवा देवता:।	वत्सार: काश्यप ऋषि:।	७.१५
विश्वेदेवा देवता:।	वत्सार: काश्यप ऋषि:।	७.१६
विश्वेदेवा देवता:।	वत्सार: काश्यप ऋषि:।	७.१७
विश्वेदेवा देवता:।	वत्सार: काश्यप ऋषि:।	७.१९
विश्वेदेवा देवता:।	वत्सार: काश्यप ऋषि:।	७.२२
विश्वेदेवा देवता:।	दीर्घतमा ऋषि:।	६.१९
विश्वेदेवा देवता:।	गोतम ऋषि:।	२५.३५
विश्वेदेवा देवता:।	गोतम ऋषि:।	२५.४६
विश्वेदेवा देवता:।	प्रजापतिर्ऋषि:।	२७.८
विश्वेदेवा देवता:।	अग्निर्ऋषि:।	२७.१२
विश्वेदेवा देवता:।	परमेष्ठी ऋषि:।	१५.१४
विश्वेदेवा देवता:।	प्रजापतिर्ऋषि:।	२४.५
विश्वेदेवा देवता।:	परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषि:।	२.१८
विश्वेदेवा देवता।	याज्ञवल्क्य:	३.२१
विश्वेदेवा प्रजापतयो देवता:।	देवा ऋषय:।	८.४९
विश्वेदेवादयो देवता:।	प्रजापतिर्ऋषि:।	२४.४०
विषमाङ्कगणितविद्याविदात्मा देवता।	देवा ऋषय:।	१८.२४
विष्णु: सर्वस्य	परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषि:।	२.६
विष्णुर्देवता।	परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषि:।	१.९
विष्णुर्देवता।	गोतम ऋषि:।	५.१
विष्णुर्देवता।	आगस्त्य ऋषि:।	५.४१
विष्णुर्देवता।	दीर्घतमा ऋषि:।	६.३
विष्णुर्देवता।	मेधातिथिर्ऋषि:।	६.४
विष्णुर्देवता।	मेधातिथिर्ऋषि:।	६.५
विष्णुर्देवता।	परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषि:।	१.४

विष्णुर्देवता।	परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः।	२.८
विष्णुर्देवता।	मेधातिथिर्ऋषिः।	३४.४३
विष्णुर्देवता।	मेधातिथिर्ऋषिः।	३४.४४
विष्णुर्देवता।	मेधातिथिर्ऋषिः।	५.१५
विष्णुर्देवता।	वसिष्ठ ऋषिः।	५.१६
विष्णुर्देवता।	वसिष्ठ ऋषिः।	५.१७
विष्णुर्देवता।	औतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः।	५.१८
विष्णुर्देवता।	औतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः।	५.१९
विष्णुर्देवता।	औतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः।	५.२०
विष्णुर्देवता।	औतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः।	५.२१
विष्णुर्देवता।	गोतम ऋषिः।	१३.३३
विष्णुर्देवता।	श्यावाश्व ऋषिः।	१२.५
विष्णुर्देवता।	आगस्त्य ऋषिः।	५.३८
विष्णुर्यज्ञो देवता।	गोतम ऋषिः।	५.२
वीरा देवताः।	भारद्वाज ऋषिः।	२९.५५
वीरा देवताः।	भारद्वाज ऋषिः।	२९.४८
वीरा देवताः।	भारद्वाज ऋषिः।	२९.४९
वीरा देवताः।	भारद्वाज ऋषिः।	२९.५०
वीरा देवताः।	भारद्वाज ऋषिः।	२९.३९
वीरा देवताः।	भारद्वाज ऋषिः।	२९.४०
वीरा देवताः।	भारद्वाज ऋषिः।	२९.४१
वीरा देवताः।	भारद्वाज ऋषिः।	२९.४२
वीरा देवताः।	भारद्वाज ऋषिः।	२९.४३
वीरा देवताः।	भारद्वाज ऋषिः।	२९.४४
वीरा देवताः।	भारद्वाज ऋषिः।	२९.४५
वीरा देवताः।	भारद्वाज ऋषिः।	२९.४६
वीरो देवता।	भारद्वाज ऋषिः।	२९.५३
वीरो देवता।	भारद्वाज ऋषिः।	२९.५४

वीरो देवता।	बृहस्पतिर्ऋषिः।	९.९
वृषा देवता।	वरुण ऋषिः।	१०.२
वेनो देवता।	सुनीतिर्ऋषिः।	३३.२१
वैद्या देवताः।	भिषगृषिः।	१२.८३
वैद्या देवताः।	भिषगृषिः।	१२.८४
वैद्या देवताः।	भिषगृषिः।	१२.८८
वैद्या देवताः।	भिषगृषिः।	१२.८९
वैद्या देवताः।	भिषगृषिः।	१२.९०
वैद्या देवताः।	वरुण ऋषिः।	१२.९१
वैद्या देवताः।	वरुण ऋषिः।	१२.९२
वैद्या देवताः।	वरुण ऋषिः।	१२.९५
वैद्या देवताः।	वरुण ऋषिः।	१२.९६
वैद्या देवताः।	वरुण ऋषिः।	१२.९८
वैद्या देवताः।	वरुण ऋषिः।	१२.१००
वैद्यो देवता।	भिषगृषिः।	१२.७५
वैद्यो देवता।	भिषगृषिः।	१२.७६
वैद्यो देवता।	भिषगृषिः।	१२.७७
वैद्यो देवता।	भिषगृषिः।	१२.८५
वैद्यो देवता।	भिषगृषिः।	१२.८६
वैद्यो देवता।	भिषगृषिः।	१२.८७
वैद्यो देवता।	भिषगृषिः।	१२.७९
वैद्यो देवता।	भिषगृषिः।	१२.८१
वैश्वानरो देवता।	विश्वामित्र ऋषिः।	३३.६०
वैश्वानरो देवता।	मेध ऋषिः।	३३.९२
वैश्वानरो देवता।	भरद्वाज ऋषिः।	७.२५
वैश्वानरो देवता।	प्रादुराक्षिर्ऋषिः।	२६.६
वैश्वानरो देवता।	कुत्स ऋषिः।	२६.८
वैश्वानरो देवता।	कुत्स ऋषिः।	२६.९

वैश्वानरोऽग्निर्देवता।	कुत्स ऋषिः।	२६.७
शरदृतुर्देवता।	परमेष्ठी ऋषिः।	१५.१८
शिशिरर्त्तुर्देवता।	परमेष्ठी ऋषिः।	१५.५७
श्रीमदात्मा देवता।	देवा ऋषयः।	१८.११
श्रीर्देवता।	वैखानस ऋषिः।	१९.४६
श्रीर्देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२३.२६
श्रीर्देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२३.२७
श्रीर्देवता।	दीर्घतमा ऋषिः।	३९.४
संवत्सरो देवता।	भारद्वाज ऋषिः।	२६.१४
सङ्ग्रामादिविदात्मा देवता।	देवा ऋषयः।	१८.२८
सत्रस्य विष्णुर्देवता	वामदेव ऋषिः।	२.२५
सभापतिर्देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२०.४
सभापतिर्देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२०.५
सभापतिर्देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२०.६
सभापतिर्देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२०.८
सभापतिर्यजमानो देवता।	नाभानेदिष्ठ ऋषिः।	११.८२
सभापती राजा देवता।	मधुच्छन्दा ऋषिः।	६.३२
सभासदो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२३.३८
सभेशो देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२०.१
सभेशो देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२०.२
सभेशो देवता।	अश्विनावृषी।	२०.३
सभेशो देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२०.९
सभेशो देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२०.१०
समाङ्कगणितविद्याविदात्मा देवता।	पूर्वदेवा ऋषयः।	१८.२५
समाधाता देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२३.५४
समाधाता देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२३.५६
समाधाता देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२३.६०
समाधाता देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२३.६२

समाधाता देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२३.६३
समिद्देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२०.२३
समिधा देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२३.५८
सम्राड् देवता।	तापस ऋषिः।	९.३०
सम्राड् राजा देवता।	देवा ऋषयः।	१८.३७
सम्राड्माण्डलिकौ राजानौ देवते।	विवस्वानृषिः।	८.३७
सरस्वती देवता।	शङ्ख ऋषिः।	१९.९४
सरस्वती देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	१९.३७
सरस्वती देवता।	बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः।	२९.८
सरस्वती देवता।	गृत्समद ऋषिः।	३४.११
सरस्वती देवता।	आथर्वण ऋषिः।	३८.२
सरस्वती देवता।	आथर्वण ऋषिः।	३८.४
सरस्वती देवता।	शङ्ख ऋषिः।	१९.८३
सरस्वती देवता।	शङ्ख ऋषिः।	१९.८८
सरस्वती देवता।	शङ्ख ऋषिः।	१९.९०
सरस्वती देवता।	मधुच्छन्दा ऋषिः।	२०.८४
सरस्वती देवता।	मधुच्छन्दा ऋषिः।	२०.८५
सरस्वती देवता।	मधुच्छन्दा ऋषिः।	२०.८६
सरस्वत्यादयो देवताः।	स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	२१.४८
सरस्वत्यादयो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२५.१
सरस्वत्यादयो देवताः।	स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	२१.३२
सर्वस्याग्निः	वामदेव ऋषिः।	२.२७
सविता आश्विनौ पूषा च देवताः।	दीर्घतमा ऋषिः।	६.९
सविता गृहपतिर्देवता।	भरद्वाज ऋषिः।	८.७
सविता देवता।	परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः।	१.३
सविता देवता।	परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः।	१.१०
सविता देवता।	परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः।	१.२५
सविता देवता।	परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः।	१.२६
सविता देवता।	परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः।	२.१२

सविता देवता।	आगस्त्य ऋषि:।	६.१
सविता देवता।	शाकल्य ऋषि:।	६.२
सविता देवता।	गोतम ऋषि:।	५.१४
सविता देवता।	दध्यङ्ङाथर्वण ऋषि:।	३७.१
सविता देवता।	दध्यङ्ङाथर्वण ऋषि:।	३७.२
सविता देवता।	मधुच्छन्दा ऋषि:।	६.३०
सविता देवता।	आदित्या देवा ऋषय:।	३५.२
सविता देवता।	आदित्या देवा वा ऋषय:।	३५.३
सविता देवता।	श्यावाश्व ऋषि:।	१२.३
सविता देवता।	आथर्वण ऋषि:।	३८.१
सविता देवता।	कण्व ऋषि:।	१७.७४
सविता देवता।	विश्वामित्र ऋषि:।	११.६३
सविता देवता।	लुशो धानाक ऋषि:।	३३.१७
सविता देवता।	वैखानस ऋषि:।	१९.४३
सविता देवता।	दीर्घतमा ऋषि:।	३८.२४
सविता देवता।	बृहस्पतिर्ऋषि:।	९.१३
सविता देवता।	परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषि:।	१.१
सविता देवता।	शङ्ख ऋषि:।	१९.८५
सविता देवता।	शङ्ख ऋषि:।	१९.८६
सविता देवता।	प्रजापतिर्ऋषि:।	११.१
सविता देवता।	प्रजापतिर्ऋषि:।	११.२
सविता देवता।	प्रजापतिर्ऋषि:।	११.३
सविता देवता।	प्रजापतिर्ऋषि:।	११.४
सविता देवता।	प्रजापतिर्ऋषि:।	११.५
सविता देवता।	प्रजापतिर्ऋषि:।	११.६
सविता देवता।	प्रजापतिर्ऋषि:।	११.७
सविता देवता।	प्रजापतिर्ऋषि:।	११.८
सविता देवता।	प्रजापतिर्ऋषि:।	११.९
सविता देवता।	प्रजापतिर्ऋषि:।	११.१०

सविता देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	११.११
सविता देवता।	परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः।	१.२०
सविता देवता।	दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः।	३७.११
सविता देवता।	बृहस्पतिर्ऋषिः।	९.५
सविता देवता।	वत्स ऋषिः।	४.२५
सविता देवता।	विश्वामित्र ऋषिः।	२२.९
सविता देवता।	मेधातिथिर्ऋषिः।	२२.१०
सविता देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२२.११
सविता देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२२.१२
सविता देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२२.१३
सविता देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२२.१४
सविता देवता।	आङ्गिरसो हिरण्यस्तूप ऋषिः।	३४.२४
सविता देवता।	आङ्गिरसो हिरण्यस्तूप ऋषिः।	३४.२५
सविता देवता।	आङ्गिरसो हिरण्यस्तूप ऋषिः।	३४.२६
सविता देवता।	आङ्गिरसो हिरण्यस्तूप ऋषिः।	३४.२७
सविता देवता।	भरद्वाज ऋषिः।	३३.६९
सविता देवता।	विश्वामित्र ऋषिः।	३.३५
सविता देवता।	भरद्वाज ऋषिः।	३३.८४
सविता देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२२.१
सविता देवता।	इन्द्राबृहस्पती ऋषी।	९.१
सविता देवता।	नारायण ऋषिः।	३०.१
सविता देवता।	नारायण ऋषिः।	३०.२
सविता देवता।	नारायण ऋषिः।	३०.३
सविता देवता।	मेधातिथिर्ऋषिः।	३०.४
सविता देवता।	वसिष्ठ ऋषिः।	३३.२०
सविता देवता।	आत्रेय ऋषिः।	११.६७
सविता देवता।	अगस्त्य ऋषिः।	३३.३४
सविता देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२३.१६
सविता देवता।	शङ्ख ऋषिः।	१९.८०

सविता देवता।	विश्वामित्र ऋषिः।	३६.३
सवितादयो देवताः।	दीर्घतमा ऋषिः।	३९.६
सवित्रादिमन्त्रोक्ता देवताः।	शुनःशेप ऋषिः।	१०.२९
सामिधेन्यो देवताः।	अग्निर्ऋषिः।	२७.२
सिनीवाली देवता।	सिन्धुद्वीप ऋषिः।	११.५५
सिनीवाली देवता।	गृत्समद ऋषिः।	३४.१०
सुवीरो देवता।	भारद्वाज ऋषिः।	२९.५२
सूर्यविद्वांसौ देवते।	औतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः।	५.२४
सूर्यादयो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२३.४६
सूर्यो देवता।	शुनःशेप ऋषिः।	१८.५०
सूर्यो देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	३३.७४
सूर्यो देवता।	विभ्राड् ऋषिः।	३३.३०
सूर्यो देवता।	प्रस्कण्व ऋषिः।	३३.३१
सूर्यो देवता।	प्रस्कण्व ऋषिः।	३३.३२
सूर्यो देवता।	वामदेव ऋषिः।	१०.२४
सूर्यो देवता।	विरूप ऋषिः।	१३.४६
सूर्यो देवता।	रम्याक्षी ऋषिः।	२६.५
सूर्यो देवता।	जमदग्निर्ऋषिः।	३३.४०
सूर्यो देवता।	नृमेध ऋषिः।	३३.४१
सूर्यो देवता।	कुत्स ऋषिः।	३३.४२
सूर्यो देवता।	हिरण्यस्तूप ऋषिः।	३३.४३
सूर्यो देवता।	दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः।	३६.२४
सूर्यो देवता।	प्रस्कण्व ऋषिः।	२०.२१
सूर्यो देवता।	अग्निर्ऋषिः।	२७.१०
सूर्यो देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२३.१०
सूर्यो देवता।	श्रुतकक्षसुकक्षावृषी।	३३.३५
सूर्यो देवता।	प्रस्कण्व ऋषिः।	३३.३६
सूर्यो देवता।	कुत्स ऋषिः।	३३.३७
सूर्यो देवता।	कुत्स ऋषिः।	३३.३८

सूर्यो देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२३.६
सूर्यो देवता।	देवा ऋषयः।	१८.३९
सूर्य्यविद्वांसौ देवते।	वत्स ऋषिः।	४.३३
सूर्य्यादयो मन्त्रोक्ता देवताः।	वरुण ऋषिः।	१०.४
सूर्य्यो देवता।	प्रस्कण्व ऋषिः।	७.४१
सूर्य्यो देवता।	कुत्स ऋषिः।	७.४२
सूर्य्यो देवता।	बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः।	२९.१०
सूर्य्यो देवता।	हिरण्यगर्भ ऋषिः।	१३.८
सूर्य्यो देवता।	हिरण्यस्तूप ऋषिः।	३४.३१
सूर्य्यो देवता।	वामदेव ऋषिः।	१०.२३
सूर्य्यो देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२०.१६
सूर्य्यो देवता।	प्रस्कण्व ऋषिः।	८.४१
सूर्य्यो देवता।	आदित्या देवा ऋषयः।	३५.१४
सूर्य्यो देवता।	वत्स ऋषिः।	४.३५
सूर्य्यो देवता।	वत्स ऋषिः।	४.३६
सूर्य्यो देवता।	उत्तरनारायण ऋषिः।	३१.२०
सेनापतिर्देवता।	नाभानेदिष्ठ ऋषिः।	११.७९
सेनापतिर्देवता।	बृहस्पतिर्ऋषिः।	९.७
सेनापतिर्देवता।	दीर्घतमा ऋषिः।	६.२१
सोमवरुणदेवा देवताः।	अप्रतिरथ ऋषिः।	१७.४९
सोमसवितारौ देवते।	आगस्त्य ऋषिः।	५.३९
सोमाग्न्यादित्यविष्णुसूर्य्यबृहस्पतयो देवताः।	तापस ऋषिः।	९.२६
सोमादयो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२४.२
सोमादयो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२४.२२
सोमादयो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२४.२४
सोमादयो देवताः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२४.३२
सोमो देवता।	हैमवर्चिर्ऋषिः।	१९.२१

सोमो देवता।	हैमवर्चिर्ऋषिः।	१९.२३
सोमो देवता।	गोतम ऋषिः।	५.७
सोमो देवता।	गोतम ऋषिः।	७.२
सोमो देवता।	शङ्ख ऋषिः।	१९.५४
सोमो देवता।	दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः।	३६.२३
सोमो देवता।	प्रजापतिर्ऋषिः।	२०.२७
सोमो देवता।	गोतम ऋषिः।	१२.११२
सोमो देवता।	गोतम ऋषिः।	१२.११३
सोमो देवता।	गोतम ऋषिः।	१२.११४
सोमो देवता।	वैखानस ऋषिः।	१९.४२
सोमो देवता।	शङ्ख ऋषिः।	१९.८४
सोमो देवता।	हैमवर्चिर्ऋषिः।	१९.१५
सोमो देवता।	मधुच्छन्दा ऋषिः।	६.३३
सोमो देवता।	देवल ऋषिः।	३३.६२
सोमो देवता।	मधुच्छन्दा ऋषिः।	६.३६
सोमो देवता।	हैमवर्चिर्ऋषिः।	१९.३४
सोमो देवता।	हैमवर्चिर्ऋषिः।	१९.३५
सोमो देवता।	गोतम ऋषिः।	३४.२०
सोमो देवता।	गोतम ऋषिः।	३४.२१
सोमो देवता।	गोतम ऋषिः।	३४.२२
सोमो देवता।	गोतम ऋषिः।	३४.२३
सोमो देवता।	शङ्ख ऋषिः।	१९.७२
सोमो देवता।	आभूतिर्ऋषिः।	१९.७
सोमो देवता।	आभूतिर्ऋषिः।	१९.८
सोमो देवता।	आभूतिर्ऋषिः।	१९.९
सोमो देवता।	हैमवर्चिर्ऋषिः।	१९.१०
सोमो देवता।	काक्षीवतसुकीर्त्तिर्ऋषिः।	२०.३३
सोमो देवता।	बन्धुर्ऋषिः।	३.५६

सोमो देवता।	प्रजापतिर्ऋषि:।	१९.१
सोमो देवता।	भारद्वाज ऋषि:।	१९.२
सोमो देवता।	आभूतिर्ऋषि:।	१९.३
सोमो देवता।	आभूतिर्ऋषि:।	१९.४
सोमो देवता।	आभूतिर्ऋषि:।	१९.५
सोमो देवता।	वत्सार: काश्यप ऋषि:।	७.२१
सोमो देवता।	मेधातिथिर्ऋषि:।	६.२५
सोमो देवता।	मेधातिथिर्ऋषि:।	६.२६
सोमो देवता।	मेधातिथिर्ऋषि:।	२६.२२
सोमो देवता।	मधुच्छन्दा ऋषि:।	२६.२५
सोमो देवता।	शङ्ख ऋषि:।	१९.७४
सोमो देवता।	हैमवर्चिर्ऋषि:।	१९.२५
स्त्रियो देवता:।	प्रजापतिर्ऋषि:।	२३.३६
स्त्रियो देवता:।	प्रजापतिर्ऋषि:।	२३.३७
स्त्रियो देवता:।	भार्गवो जमदग्निर्ऋषि:।	२९.३०
स्त्रियो देवता:।	भार्गवो जमदग्निर्ऋषि:।	२९.३१
स्रष्टा देवता।	नारायण ऋषि:।	३१.५
स्रष्टेश्वरो देवता।	नारायण ऋषि:।	३१.७
स्वर्ग्या नौर्देवता।	गयप्लात ऋषि:।	२१.७
स्वाहाकृतयो देवता:।	आङ्गिरस ऋषि:।	२०.४६
हिरण्यगर्भ: परमात्मा देवता।	स्वयम्भु ब्रह्म ऋषि:।	३२.३
हिरण्यगर्भो देवता।	प्रजापतिर्ऋषि:।	२५.१०
हिरण्यन्तेजो देवता।	दक्ष ऋषि:।	३४.५०
हिरण्यन्तेजो देवता।	दक्ष ऋषि:।	३४.५१
हिरण्यन्तेजो देवता।	दक्ष ऋषि:।	३४.५२
हेमन्तर्त्तुर्देवता।	परमेष्ठी ऋषि:।	१५.१९
होता देवता।	देवश्रवदेववातावृषी।	११.३५
होत्रादयो देवता:।	स्वस्त्यात्रेय ऋषि:।	२१.४२

होत्रादयो देवताः।	स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	२१.४३

ऋषि सूची

अगस्त्य ऋषिः।	सविता देवता।	३३.३४
अगस्त्य ऋषिः।	अनुमतिर्देवता।	३४.८
अगस्त्य ऋषिः।	अनुमतिर्देवता।	३४.९
अगस्त्य ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	३३.२७
अगस्त्य ऋषिः।	मरुतो देवताः।	३४.४८
अगस्त्य ऋषिः।	इन्द्रामरुतौ देवते।	३३.७८
अगस्त्य ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	३३.७९
अग्निर्ऋषिः।	पत्नी देवता।	१३.२०
अग्निर्ऋषिः।	पत्नी देवता।	१३.२१
अग्निर्ऋषिः।	सूर्यो देवता।	२७.१०
अग्निर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	२७.११
अग्निर्ऋषिः।	विश्वेदेवा देवताः।	२७.१२
अग्निर्ऋषिः।	यज्ञो देवता।	२७.१३
अग्निर्ऋषिः।	वह्निर्देवता।	२७.१४
अग्निर्ऋषिः।	वायुर्देवता।	२७.१५
अग्निर्ऋषिः।	देव्यो देवताः।	२७.१६
अग्निर्ऋषिः।	यज्ञो देवता।	२७.१७
अग्निर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	२७.१८
अग्निर्ऋषिः।	इडादयो लिङ्गोक्ता देवताः।	२७.१९
अग्निर्ऋषिः।	त्वष्टा देवता।	२७.२०
अग्निर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	२७.१
अग्निर्ऋषिः।	सामिधेन्यो देवताः।	२७.२
अग्निर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	२७.३
अग्निर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	२७.४
अग्निर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	२७.५

अग्निर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	२७.६
अग्निर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	२७.७
अजमीढ ऋषिः।	वायुर्देवता।	२७.३१
अत्रिर्ऋषिः। ऊरुमित्यस्य शुनःशेप ऋषिः।	गृहपतयो देवताः।	८.२३
अत्रिर्ऋषिः।	गृहपतिर्देवता।	८.१५
अत्रिर्ऋषिः।	गृहपतिर्देवता।	८.१६
अत्रिर्ऋषिः।	विश्वेदेवा गृहपतयो देवताः।	८.१७
अत्रिर्ऋषिः।	गृहपतयो देवताः।	८.१८
अत्रिर्ऋषिः।	विश्वेदेवा गृहपतयो देवताः।	८.१९
अत्रिर्ऋषिः।	गृहपतयो देवताः।	८.२०
अत्रिर्ऋषिः।	गृहपतयो देवताः।	८.२१
अत्रिर्ऋषिः।	गृहपतयो देवताः।	८.२२
अत्रिर्ऋषिः।	गृहपतिर्देवता।	८.२४
अत्रिर्ऋषिः।	गृहपतिर्देवता।	८.२५
अत्रिर्ऋषिः।	गृहपतयो देवताः।	८.२६
अत्रिर्ऋषिः।	दम्पती देवते।	८.२७
अत्रिर्ऋषिः।	दम्पती देवते।	८.२८
अत्रिर्ऋषिः।	दम्पती देवते।	८.२९
अत्रिर्ऋषिः।	दम्पती देवते।	८.३०
अप्रतिरथ ऋषिः।	आदित्यो देवता।	१७.६०
अप्रतिरथ ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	१७.३३
अप्रतिरथ ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	१७.३४
अप्रतिरथ ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	१७.३५
अप्रतिरथ ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	१७.३६
अप्रतिरथ ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	१७.३७
अप्रतिरथ ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	१७.३८

अप्रतिरथ ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	१७.३९
अप्रतिरथ ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	१७.४०
अप्रतिरथ ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	१७.४१
अप्रतिरथ ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	१७.४२
अप्रतिरथ ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	१७.४३
अप्रतिरथ ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	१७.४४
अप्रतिरथ ऋषिः।	इषुर्देवता।	१७.४५
अप्रतिरथ ऋषिः।	योद्धा देवता।	१७.४६
अप्रतिरथ ऋषिः।	मरुतो देवताः।	१७.४७
अप्रतिरथ ऋषिः।	इन्द्रबृहस्पत्यादयो देवताः।	१७.४८
अप्रतिरथ ऋषिः।	सोमवरुणदेवा देवताः।	१७.४९
अप्रतिरथ ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१७.५०
अप्रतिरथ ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	१७.५१
अप्रतिरथ ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१७.५२
अप्रतिरथ ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१७.५३
अप्रतिरथ ऋषिः।	दिग् देवता।	१७.५४
अप्रतिरथ ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१७.५५
अप्रतिरथ ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१७.५६
अप्रतिरथ ऋषिः।	यज्ञो देवता।	१७.५७
अप्रतिरथ ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१७.५८
अरुणत्रसदस्यू ऋषी।	पवमानो देवता।	२२.१८
अवत्सार ऋषिः।	अग्निर्देवता।	३.१६
अवत्सार ऋषिः।	अग्निर्देवता।	३.१७
अवत्सार ऋषिः।	अग्निर्देवता।	३.१८
अवत्सार ऋषिः।	अग्निर्देवता।	३.१९
अश्वतराश्विर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	२०.२४

अश्वतराश्विर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	२०.२५
अश्वतराश्विर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	२०.२६
अश्विनावृषी।	सभेशो देवता।	२०.३
अश्विनावृषी।	इन्द्रो देवता।	२८.१२
अश्विनावृषी।	इन्द्रो देवता।	२८.१३
अश्विनावृषी।	अहोरात्रे देवते।	२८.१४
अश्विनावृषी।	इन्द्रो देवता।	२८.१५
अश्विनावृषी।	इन्द्रो देवता।	२८.१६
अश्विनावृषी।	अश्विनौ देवते।	२८.१७
अश्विनावृषी।	इन्द्रो देवता।	२८.१८
अश्विनावृषी।	इन्द्रो देवता।	२८.१९
अश्विनावृषी।	इन्द्रो देवता।	२८.२०
अश्विनावृषी।	इन्द्रो देवता।	२८.२१
अश्विनावृषी।	अग्निर्देवता।	२८.२२
अश्विनावृषी।	अग्निर्देवता।	२८.२३
आगस्त्य ऋषिः।	इन्द्रमारुतौदेवते।	३.४६
आगस्त्य ऋषिः।	अग्निर्देवता।	३.४७
आगस्त्य ऋषिः।	अग्निर्देवता।	५.३६
आगस्त्य ऋषिः।	अग्निर्देवता।	५.३७
आगस्त्य ऋषिः।	विष्णुर्देवता।	५.३८
आगस्त्य ऋषिः।	सोमसवितारौ देवते।	५.३९
आगस्त्य ऋषिः।	अग्निर्देवता।	५.४०
आगस्त्य ऋषिः।	विष्णुर्देवता।	५.४१
आगस्त्य ऋषिः।	अग्निर्देवता।	५.४२
आगस्त्य ऋषिः।	यज्ञो देवता।	५.४३
आगस्त्य ऋषिः।	सविता देवता।	६.१

आङ्गिरस ऋषयः	विद्वान् देवता।	४.९
आङ्गिरस ऋषयः	यज्ञो देवता।	४.१०
आङ्गिरस ऋषयः	अग्निर्देवता।	४.११
आङ्गिरस ऋषयः	आपो देवता।ः	४.१२
आङ्गिरस ऋषयः	आपो देवता।	४.१३
आङ्गिरस ऋषयः	अग्निर्देवता।	४.१४
आङ्गिरस ऋषयः	अग्निर्देवता।	४.१५
आङ्गिरस ऋषिः।	अन्तर्यामी जगदीश्वरो देवता।	७.४३
आङ्गिरस ऋषिः।	प्रजापतिर्देवता।	७.४४
आङ्गिरस ऋषिः।	प्रजापतिर्देवता।	७.४५
आङ्गिरस ऋषिः।	विद्वांसो देवताः।	७.४६
आङ्गिरस ऋषिः।	वरुणो देवता।	७.४७
आङ्गिरस ऋषिः।	आत्मा देवता।	७.४८
आङ्गिरस ऋषिः।	बृहस्पतिस्सोमो देवता।	८.१
आङ्गिरस ऋषिः।	गृहपतिर्मघवा देवता।	८.२
आङ्गिरस ऋषिः।	आदित्यो गृहपतिर्देवता।	८.३
आङ्गिरस ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	२०.३६
आङ्गिरस ऋषिः।	तनूनपाद्देवता।	२०.३७
आङ्गिरस ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	२०.३८
आङ्गिरस ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	२०.३९
आङ्गिरस ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	२०.४०
आङ्गिरस ऋषिः।	उषासानक्ता देवते।	२०.४१
आङ्गिरस ऋषिः।	दैव्याध्यापकोपदेशकौ देवते।	२०.४२
आङ्गिरस ऋषिः।	तिस्रा देव्यो देवताः।	२०.४३
आङ्गिरस ऋषिः।	त्वष्टा देवता।	२०.४४
आङ्गिरस ऋषिः।	वनस्पतिर्देवता।	२०.४५

आङ्गिरस ऋषिः।	स्वाहाकृतयो देवताः।	२०.४६
आङ्गिरस ऋषिः।	वायुर्देवता।	२७.३४
आङ्गिरस ऋषिः।	अग्निर्देवता।	३.१
आङ्गिरसो हिरण्यस्तूप ऋषिः।	सविता देवता।	३४.२४
आङ्गिरसो हिरण्यस्तूप ऋषिः।	सविता देवता।	३४.२५
आङ्गिरसो हिरण्यस्तूप ऋषिः।	सविता देवता।	३४.२६
आङ्गिरसो हिरण्यस्तूप ऋषिः।	सविता देवता।	३४.२७
आत्रेय ऋषिः।	ऋत्विजो देवताः।	२१.१०
आत्रेय ऋषिः।	विद्वांसो देवता।	२१.११
आत्रेय ऋषिः।	सविता देवता।	११.६७
आत्रेय ऋषिः।	अम्बा देवता।	११.६८
आत्रेय ऋषिः।	अम्बा देवता।	११.६९
आत्रेय ऋषिः।	विद्वांसो देवताः।	२१.२७
आत्रेय ऋषिः।	ईश्वरो देवता।	४.८
आथर्वण ऋषिः।	ईश्वरो देवता।	३७.१९
आथर्वण ऋषिः।	ईश्वरो देवता।	३७.२०
आथर्वण ऋषिः।	ईश्वरो देवता।	३७.२१
आथर्वण ऋषिः।	सविता देवता।	३८.१
आथर्वण ऋषिः।	सरस्वती देवता।	३८.२
आथर्वण ऋषिः।	पूषा देवता।	३८.३
आथर्वण ऋषिः।	सरस्वती देवता।	३८.४
आदित्या देवा ऋषयः।	जातवेदा देवताः।	३५.२०
आदित्या देवा ऋषयः।	अग्निर्देवता।	३५.२२
आदित्या देवा ऋषयः।	पितरो देवताः।	३५.१
आदित्या देवा ऋषयः।	सविता देवता।	३५.२
आदित्या देवा ऋषयः।	वायुः सविता च देवते।	३५.४
आदित्या देवा ऋषयः।	प्रजापतिर्देवता।	३५.६

आदित्या देवा ऋषयः।	विश्वेदेवा देवताः।	३५.९
आदित्या देवा ऋषयः।	आपो देवताः।	३५.१२
आदित्या देवा ऋषयः।	कृषीबला देवताः।	३५.१३
आदित्या देवा ऋषयः।	सूर्य्यो देवता।	३५.१४
आदित्या देवा ऋषयः।	अग्निर्देवता।	३५.१६
आदित्या देवा वा ऋषयः।	सविता देवता।	३५.३
आदित्या देवा वा ऋषयः।	वायुसवितारौ देवते।	३५.५
आदित्या देवा वा ऋषयः।	विश्वेदेवा देवताः।	३५.८
आभूतिर्ऋषिः।	सोमो देवता।	१९.३
आभूतिर्ऋषिः।	सोमो देवता।	१९.४
आभूतिर्ऋषिः।	सोमो देवता।	१९.५
आभूतिर्ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	१९.६
आभूतिर्ऋषिः।	सोमो देवता।	१९.७
आभूतिर्ऋषिः।	सोमो देवता।	१९.८
आभूतिर्ऋषिः।	सोमो देवता।	१९.९
आसुरिर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	३.३८
आसुरिर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	३.३९
आसुरिर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	३.४०
आसुरिर्ऋषिः।	वास्तुरग्निः	३.४१
इन्द्र ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	१८.६८
इन्द्रविश्वामित्रावृषी।	इन्द्रो देवता।	१८.६९
इन्द्राग्नी ऋषी।	अग्निर्देवता।	१३.२२
इन्द्राग्नी ऋषी।	बृहस्पतिर्देवता।	१३.२३
इन्द्राग्नी ऋषी।	प्रजापतिर्देवता।	१३.२४
इन्द्राग्नी ऋषी।	ऋतवो देवताः।	१३.२५
इन्द्राबृहस्पती ऋषी।	सविता देवता।	९.१

उत्कील ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१८.७५
उत्कील ऋषिः।	विश्वेदेवा देवताः।	१८.७६
उत्कील ऋषिः।	अग्निर्देवता।	११.४९
उत्तरनारायण ऋषिः।	आदित्यो देवता।	३१.१७
उत्तरनारायण ऋषिः।	आदित्यो देवता।	३१.१८
उत्तरनारायण ऋषिः।	आदित्यो देवता।	३१.१९
उत्तरनारायण ऋषिः।	सूर्य्यो देवता।	३१.२०
उत्तरनारायण ऋषिः।	विश्वेदेवा देवताः।	३१.२१
उत्तरनारायण ऋषिः।	आदित्यो देवता।	३१.२२
उशना ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१३.५२
उशना ऋषिः।	आपो देवताः।	१३.५३
उशना ऋषिः।	प्राणा देवताः।	१३.५४
उशना ऋषिः।	प्रजापतिर्देवता।	१३.५५
उशना ऋषिः।	प्रजापतिर्देवता।	१३.५६
उशना ऋषिः।	प्रजापतिर्देवता।	१३.५७
उशना ऋषिः।	प्रजापतिर्देवता।	१३.५८
उशना ऋषिः।	अश्विनौ देवते।	१४.१
उशना ऋषिः।	अश्विनौ देवते।	१४.२
उशना ऋषिः।	अश्विनौ देवते।	१४.३
उशना ऋषिः।	अश्विनौ देवते।	१४.४
उशना ऋषिः।	अश्विनौ देवते।	१४.५
उशना ऋषिः।	ग्रीष्मर्तुर्देवता।	१४.६
उशना ऋषिः।	विश्वेदेवा देवताः।	१८.७७
ऋजिश्व ऋषिः।	वायुर्देवता।	३३.५५
ऋजिष्व ऋषिः।	पूषा देवता।	३४.४२
ऋजिष्व ऋषिः।	लिङ्गोक्ता देवताः।	३४.५३

औतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः।	विष्णुर्देवता।	५.१८
औतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः।	विष्णुर्देवता।	५.१९
औतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः।	विष्णुर्देवता।	५.२०
औतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः।	विष्णुर्देवता।	५.२१
औतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः।	यज्ञो देवता।	५.२२
औतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः।	यज्ञो देवता।	५.२३
औतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः।	सूर्यविद्वांसौ देवते।	५.२४
औतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः।	यज्ञो देवता।	५.२५
औतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः।	यज्ञो देवता।	५.२६
औतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः।	यज्ञो देवता।	५.२७
औतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः।	यज्ञो देवता।	५.२८
औतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः।	ईश्वरसभाध्यक्षौ देवते।	५.२९
और्णवाभ ऋषिः।	यज्ञो देवता।	३.४८
और्णवाभ ऋषिः।	यज्ञो देवता।	३.४९
और्णवाभ ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	३.५०
कण्व ऋषिः।	सविता देवता।	१७.७४
कण्व ऋषिः।	अध्यात्मं प्राणा देवताः।	३४.५५
कण्व ऋषिः।	ब्रह्मणस्पतिर्देवता।	३४.५६
कण्व ऋषिः।	ब्रह्मणस्पतिर्देवता।	३४.५७
कण्व ऋषिः।	विश्वेदेवा देवताः।	३३.८९
कण्व ऋषिः।	अग्निर्देवता।	११.४२
कण्व ऋषिः।	ईश्वरो देवता।	३७.७
कश्यप ऋषिः।	यज्ञो देवता।	८.६३
काक्षीवतसुकीर्त्तिर्ऋषिः।	सोमो देवता।	२०.३३
काश्यप ऋषिः।	विश्वेदेवा देवताः।	७.१२
कुत्स ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१७.७०

कुत्स ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१७.७१
कुत्स ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१७.७२
कुत्स ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१७.७३
कुत्स ऋषिः।	आदित्यो गृहपतिर्देवता।	८.४
कुत्स ऋषिः।	गृहपतयो देवताः।	८.५
कुत्स ऋषिः।	सूर्यो देवता।	३३.४२
कुत्स ऋषिः।	अग्निर्देवता।	३३.५
कुत्स ऋषिः।	अग्निर्देवता।	३३.६
कुत्स ऋषिः।	रात्रिर्देवता।	३४.३२
कुत्स ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१८.७३
कुत्स ऋषिः।	वैश्वानरोऽग्निर्देवता।	२६.७
कुत्स ऋषिः।	वैश्वानरो देवता।	२६.८
कुत्स ऋषिः।	वैश्वानरो देवता।	२६.९
कुत्स ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	३३.२९
कुत्स ऋषिः।	सूर्य्यो देवता।	७.४२
कुत्स ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१२.२
कुत्स ऋषिः।	आदित्या देवताः।	३३.६८
कुत्स ऋषिः।	रुद्रो देवता।	१६.१५
कुत्स ऋषिः।	रुद्रो देवता।	१६.१६
कुत्स ऋषिः।	रुद्रो देवता।	१६.१७
कुत्स ऋषिः।	रुद्रा देवताः।	१६.१८
कुत्स ऋषिः।	रुद्रो देवता।	१६.१९
कुत्स ऋषिः।	रुद्रो देवता।	१६.२०
कुत्स ऋषिः।	रुद्रा देवताः।	१६.२१
कुत्स ऋषिः।	रुद्रा देवताः।	१६.२२
कुत्स ऋषिः।	रुद्रा देवताः।	१६.२३
कुत्स ऋषिः।	रुद्रा देवताः।	१६.२४

कुत्स ऋषिः।	रुद्रा देवताः।	१६.२५
कुत्स ऋषिः।	रुद्रा देवताः।	१६.२६
कुत्स ऋषिः।	रुद्रा देवताः।	१६.२७
कुत्स ऋषिः।	रुद्रा देवताः।	१६.२८
कुत्स ऋषिः।	रुद्रो देवता।	१६.२९
कुत्स ऋषिः।	रुद्रा देवताः।	१६.३०
कुत्स ऋषिः।	रुद्रा देवताः।	१६.३१
कुत्स ऋषिः।	रुद्रा देवताः।	१६.३२
कुत्स ऋषिः।	रुद्रा देवताः।	१६.३३
कुत्स ऋषिः।	रुद्रा देवताः।	१६.३५
कुत्स ऋषिः।	रुद्रा देवताः।	१६.३६
कुत्स ऋषिः।	रुद्रा देवताः।	१६.३७
कुत्स ऋषिः।	रुद्रा देवताः।	१६.३८
कुत्स ऋषिः।	रुद्रा देवताः।	१६.३९
कुत्स ऋषिः।	सूर्यो देवता।	३३.३७
कुत्स ऋषिः।	सूर्यो देवता।	३३.३८
कुत्स ऋषिः।	अश्विनौ देवते।	३४.२९
कुत्स ऋषिः।	अश्विनौ देवते।	३४.३०
कुत्सीदिर्ऋषिः।	विश्वेदेवा देवताः।	३३.४७
कुमारहारित ऋषिः।	कृषीवला देवताः।	१२.६९
कुमारहारित ऋषिः।	कृषीवला देवताः।	१२.७०
कुमारहारित ऋषिः।	कृषीवला देवताः।	१२.७१
कुमारहारित ऋषिः।	मित्रादयो लिङ्गोक्ता देवताः।	१२.७२
कुमारहारित ऋषिः।	अघ्न्या देवताः।	१२.७३
कुमारहारित ऋषिः।	अश्विनौ देवते।	१२.७४
कुशिक ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	३३.५९
कुश्रिर्ऋषिः।	वाजी देवता।	११.१३

कुसुरुविन्दुर्ऋषिः।	पत्नी देवता।	८.४२
कुसुरुविन्दुर्ऋषिः।	पत्नी देवता।	८.४३
कूर्म ऋषिः।	विश्वेदेवा देवताः।	३३.५१
कूर्म गार्त्समद ऋषिः।	आदित्या देवताः।	३४.५४
कौण्डिन्य ऋषिः।	परमात्मा देवता।	२०.३२
गयप्लात ऋषिः।	अदितिर्देवता।	२१.६
गयप्लात ऋषिः।	स्वर्ग्या नौर्देवता।	२१.७
गर्ग ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	२०.५०
गर्ग ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	२०.५१
गर्ग ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	२०.५२
गालव ऋषिः।	इन्दुर्देवता।	१८.५४
गालव ऋषिः।	इन्दुर्देवता।	१८.५५
गालव ऋषिः।	यज्ञो देवता।	१८.५६
गालव ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१८.५७
गालव ऋषिः।	प्रजापतिर्देवता।	१८.६१
गृत्समद ऋषिः।	अश्विनौ देवते।	२०.८१
गृत्समद ऋषिः।	अश्विनौ देवते।	२०.८२
गृत्समद ऋषिः।	अश्विनौ देवते।	२०.८३
गृत्समद ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१७.७५
गृत्समद ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१७.८८
गृत्समद ऋषिः।	ईश्वरो देवता।	२६.३
गृत्समद ऋषिः।	विद्वान् देवता।	२६.२४
गृत्समद ऋषिः।	ब्रह्मणस्पतिर्देवता।	३४.५८
गृत्समद ऋषिः।	अग्निर्देवता ।	११.३६
गृत्समद ऋषिः।	विश्वेदेवा देवताः।	७.३४
गृत्समद ऋषिः।	सिनीवाली देवता।	३४.१०

गृत्समद ऋषिः।	सरस्वती देवता।	३४.११
गृत्समद ऋषिः।	मित्रावरुणौ देवते।	७.९
गृत्समद ऋषिः।	वायुर्देवता।	२७.२९
गृत्समद ऋषिः।	वायुर्देवता।	२७.३२
गृत्समद ऋषिः।	वायुर्देवता।	२७.३३
गृत्समद ऋषिः।	प्रजापतिर्देवता।	११.२३
गृत्समद ऋषिः।	अग्निर्देवता।	११.२४
गृत्समद ऋषिः।	अग्निर्देवता।	११.२७
गृत्समद ऋषिः।	अग्निर्देवता।	११.२८
गृत्समद ऋषिः।	अग्निर्देवता।	११.२९
गृत्समद ऋषिः।	दम्पती देवते।	११.३०
गृत्समद ऋषिः।	जायापती देवते।	११.३१
गोतम ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	३.५१
गोतम ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	३.५२
गोतम ऋषिः।	अग्निर्देवता।	३३.३
गोतम ऋषिः।	उषर्देवता।	३४.३३
गोतम ऋषिः।	सोमो देवता।	३४.२०
गोतम ऋषिः।	सोमो देवता।	३४.२१
गोतम ऋषिः।	सोमो देवता।	३४.२२
गोतम ऋषिः।	सोमो देवता।	३४.२३
गोतम ऋषिः।	अग्निर्देवता।	३३.१६
गोतम ऋषिः।	अग्निर्देवता।	३.११
गोतम ऋषिः।	यज्ञो देवता।	४.३७
गोतम ऋषिः।	विष्णुर्देवता।	५.१
गोतम ऋषिः।	विष्णुर्यज्ञो देवता।	५.२
गोतम ऋषिः।	यज्ञो देवता।	५.३

गोतम ऋषिः।	अग्निर्देवता।	५.४
गोतम ऋषिः।	विद्युद्देवता।	५.५
गोतम ऋषिः।	अग्निर्देवता।	५.६
गोतम ऋषिः।	सोमो देवता।	५.७
गोतम ऋषिः।	अग्निर्देवता।	५.८
गोतम ऋषिः।	अग्निर्देवता।	५.९
गोतम ऋषिः।	वाग्देवता।	५.१०
गोतम ऋषिः।	वाग्देवता।	५.११
गोतम ऋषिः।	वाग्देवता।	५.१२
गोतम ऋषिः।	यज्ञो देवता।	५.१३
गोतम ऋषिः।	सविता देवता।	५.१४
गोतम ऋषिः।	गृहपतयो देवताः।	८.३३
गोतम ऋषिः।	वायुर्देवता।	२५.१७
गोतम ऋषिः।	ईश्वरो देवता।	२५.१८
गोतम ऋषिः।	ईश्वरो देवता।	२५.१९
गोतम ऋषिः।	विद्वांसो देवताः।	२५.२०
गोतम ऋषिः।	विद्वांसो देवताः।	२५.२१
गोतम ऋषिः।	विद्वांसो देवताः।	२५.२२
गोतम ऋषिः।	मित्रादयो देवताः।	२५.२४
गोतम ऋषिः।	विद्वांसो देवताः।	२५.२५
गोतम ऋषिः।	यज्ञो देवता।	२५.२६
गोतम ऋषिः।	यज्ञो देवता।	२५.२८
गोतम ऋषिः।	यज्ञो देवता।	२५.२९
गोतम ऋषिः।	विद्वांसो देवताः।	२५.३०
गोतम ऋषिः।	यज्ञो देवता।	२५.३१
गोतम ऋषिः।	यज्ञो देवता।	२५.३२

गोतम ऋषिः।	यज्ञो देवता।	२५.३३
गोतम ऋषिः।	यज्ञो देवता।	२५.३४
गोतम ऋषिः।	विश्वेदेवा देवताः।	२५.३५
गोतम ऋषिः।	यज्ञो देवता।	२५.३६
गोतम ऋषिः।	विद्वांसो देवताः।	२५.३७
गोतम ऋषिः।	यज्ञो देवता।	२५.३८
गोतम ऋषिः।	विद्वांसो देवताः।	२५.३९
गोतम ऋषिः।	यज्ञो देवता।	२५.४०
गोतम ऋषिः।	यज्ञो देवता।	२५.४१
गोतम ऋषिः।	यजमानो देवता।	२५.४२
गोतम ऋषिः।	आत्मा देवता।	२५.४३
गोतम ऋषिः।	आत्मा देवता।	२५.४४
गोतम ऋषिः।	प्रजा देवता।	२५.४५
गोतम ऋषिः।	विश्वेदेवा देवताः।	२५.४६
गोतम ऋषिः।	अग्निर्देवता।	२५.४७
गोतम ऋषिः।	विद्वान् देवता।	२५.४८
गोतम ऋषिः।	दम्पती देवते।	८.३१
गोतम ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	६.३७
गोतम ऋषिः।	प्राणो देवता।	७.१
गोतम ऋषिः।	सोमो देवता।	७.२
गोतम ऋषिः।	विद्वांसो देवताः।	७.३
गोतम ऋषिः।	मघवा देवता।	७.४
गोतम ऋषिः।	ईश्वरो देवता।	७.५
गोतम ऋषिः।	योगी देवता।	७.६
गोतम ऋषिः।	सोमो देवता।	१२.११२
गोतम ऋषिः।	सोमो देवता।	१२.११३

गोतम ऋषिः।	सोमो देवता।	१२.११४
गोतम ऋषिः।	विश्वेदेवा देवताः।	१३.२७
गोतम ऋषिः।	विश्वेदेवा देवताः।	१३.२८
गोतम ऋषिः।	विश्वेदेवा देवताः।	१३.२९
गोतम ऋषिः।	प्रजापतिर्देवता।	१३.३०
गोतम ऋषिः।	वरुणो देवता।	१३.३१
गोतम ऋषिः।	द्यावापृथिव्यौ देवते।	१३.३२
गोतम ऋषिः।	विष्णुर्देवता।	१३.३३
गोतम ऋषिः।	जातवेदा देवताः।	१३.३४
गोतम ऋषिः।	जातवेदा देवताः।	१३.३५
गौरिवीतिर्ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	३३.२८
गौरीवितिर्ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	३३.६४
जमदग्निर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	११.७३
जमदग्निर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	११.७४
जमदग्निर्ऋषिः।	वायुर्देवता।	३३.८५
जमदग्निर्ऋषिः।	मित्रावरुणौ देवते।	३३.८७
जमदग्निर्ऋषिः।	विश्वेदेवा देवताः।	३३.३९
जमदग्निर्ऋषिः।	सूर्यो देवता।	३३.४०
जय ऋषिः।	इन्दो देवता।	१८.७१
तापस ऋषिः।	इन्द्रवायू देवते।	३३.८६
तापस ऋषिः।	सोमाग्न्यादित्यविष्णुसूर्य्यबृहस्पतयो देवताः।	९.२६
तापस ऋषिः।	अर्य्यमादिमन्त्रोक्ता देवताः।	९.२७
तापस ऋषिः।	अग्निर्देवता।	९.२८
तापस ऋषिः।	अर्य्यमादिमन्त्रोक्ता देवताः।	९.२९
तापस ऋषिः।	सम्राड् देवता।	९.३०
तापस ऋषिः।	अग्न्यादयो मन्त्रोक्ता देवताः।	९.३१

तापस ऋषिः।	पूषादयो मन्त्रोक्ता देवताः।	९.३२
तापस ऋषिः।	मित्रादयो मन्त्रोक्ता देवताः।	९.३३
तापस ऋषिः।	वस्वादयो मन्त्रोक्ता देवताः।	९.३४
तापस ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१२.३१
तापस ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१२.३२
त्रित ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१२.१३
त्रित ऋषिः।	जीवेश्वरौ देवते।	१२.१४
त्रित ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१२.१५
त्रित ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१२.१६
त्रित ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१२.१७
त्रित ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	३३.९०
त्रित ऋषिः।	अग्निर्देवता।	११.४३
त्रित ऋषिः।	अग्निर्देवता।	११.४४
त्रित ऋषिः।	अग्निर्देवता।	११.४५
त्रित ऋषिः।	अग्निर्देवता।	११.४६
त्रित ऋषिः।	अग्निर्देवता।	११.४७
त्रित ऋषिः।	अग्निर्देवता।	११.४८
त्रिशिरा ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१३.१५
त्रिशिरा ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१३.१६
त्रिशिरा ऋषिः।	प्रजापतिर्देवता।	१३.१७
त्रिशिरा ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१३.१८
त्रिशिरा ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१३.१९
त्रिशोक ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	३३.२४
त्रिशोक ऋषिः।	विश्वेदेवा देवताः।	७.३२
त्रिसदस्युर्ऋषिः।	मित्रावरुणौ देवते।	७.१०
दक्ष ऋषिः।	विद्वान् देवता।	३३.७२
दक्ष ऋषिः।	अध्वर्यू देवते।	३३.७३

दक्ष ऋषिः।	हिरण्यन्तेजो देवता।	३४.५०
दक्ष ऋषिः।	हिरण्यन्तेजो देवता।	३४.५१
दक्ष ऋषिः।	हिरण्यन्तेजो देवता।	३४.५२
दधिक्रावा ऋषिः।	बृहस्पतिर्देवता।	९.१४
दधिक्रावा ऋषिः।	बृहस्पतिर्देवता।	९.१५
दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः।	अग्निर्देवता।	३६.१
दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः।	बृहस्पतिर्देवता।	३६.२
दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	३६.७
दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	३६.८
दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः।	मित्रादयो लिङ्गोक्ता देवताः।	३६.९
दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः।	वातादयो देवताः।	३६.१०
दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः।	लिङ्गोक्ता देवताः।	३६.११
दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः।	आपो देवताः।	३६.१२
दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः।	ईश्वरो देवता।	३६.१७
दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः।	ईश्वरो देवता।	३६.१८
दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः।	ईश्वरो देवता।	३६.१९
दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः।	ईश्वरो देवता।	३६.२१
दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः।	ईश्वरो देवता।	३६.२२
दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः।	सोमो देवता।	३६.२३
दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः।	सूर्यो देवता।	३६.२४
दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः।	सविता देवता।	३७.१
दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः।	सविता देवता।	३७.२
दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः।	द्यावापृथिव्यौ देवते।	३७.३
दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः।	यज्ञो देवता।	३७.४
दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः।	यज्ञो देवता।	३७.५
दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः।	यज्ञो देवता।	३७.६
दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः।	यज्ञो देवता।	३७.८

दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः।	विद्वान् देवता।	३७.९
दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः।	विद्वांसो देवताः।	३७.१०
दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः।	सविता देवता।	३७.११
दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः।	पृथिवी देवता।	३७.१२
दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः।	विद्वान् देवता।	३७.१३
दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः।	ईश्वरो देवता।	३७.१४
दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः।	अग्निर्देवता।	३७.१५
दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः।	ईश्वरो देवता।	३७.१६
दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः।	ईश्वरो देवता।	३७.१८
दमन ऋषिः।	अग्निर्देवता।	३५.१९
दीर्घतमा ऋषिः।	विद्वांसो देवताः।	६.६
दीर्घतमा ऋषिः।	बृहस्पतिर्देवता।	६.८
दीर्घतमा ऋषिः।	सविता आश्विनौ पूषा च देवताः।	६.९
दीर्घतमा ऋषिः।	आपो देवताः।	६.१७
दीर्घतमा ऋषिः।	अग्निर्देवता।	६.१८
दीर्घतमा ऋषिः।	विश्वेदेवा देवताः।	६.१९
दीर्घतमा ऋषिः।	त्वष्टा देवता।	६.२०
दीर्घतमा ऋषिः।	सेनापतिर्देवता।	६.२१
दीर्घतमा ऋषिः।	वरुणो देवता।	६.२२
दीर्घतमा ऋषिः।	अब्यज्ञसूर्या देवताः।	६.२३
दीर्घतमा ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१२.४२
दीर्घतमा ऋषिः।	विष्णुर्देवता।	६.३
दीर्घतमा ऋषिः।	ईश्वरो देवता।	३७.१७
दीर्घतमा ऋषिः।	वाग्देवता।	३८.५
दीर्घतमा ऋषिः।	अश्विनौ देवते।	३८.६
दीर्घतमा ऋषिः।	वातो देवता।	३८.७
दीर्घतमा ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	३८.८
दीर्घतमा ऋषिः।	वायुर्देवता।	३८.९

दीर्घतमा ऋषिः।	अश्विनौ देवते।	३८.१०
दीर्घतमा ऋषिः।	यज्ञो देवता।	३८.११
दीर्घतमा ऋषिः।	अश्विनौ देवते।	३८.१२
दीर्घतमा ऋषिः।	अश्विनौ देवते।	३८.१३
दीर्घतमा ऋषिः।	द्यावापृथिवी देवते।	३८.१४
दीर्घतमा ऋषिः।	पूषादयो लिङ्गोक्ता देवताः।	३८.१५
दीर्घतमा ऋषिः।	रुद्रादयो देवताः।	३८.१६
दीर्घतमा ऋषिः।	अग्निर्देवता।	३८.१७
दीर्घतमा ऋषिः।	यज्ञो देवता।	३८.१८
दीर्घतमा ऋषिः।	यज्ञो देवता।	३८.१९
दीर्घतमा ऋषिः।	यज्ञो देवता।	३८.२०
दीर्घतमा ऋषिः।	यज्ञो देवता।	३८.२१
दीर्घतमा ऋषिः।	यज्ञो देवता।	३८.२२
दीर्घतमा ऋषिः।	आपो देवताः।	३८.२३
दीर्घतमा ऋषिः।	सविता देवता।	३८.२४
दीर्घतमा ऋषिः।	ईश्वरो देवता।	३८.२५
दीर्घतमा ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	३८.२६
दीर्घतमा ऋषिः।	यज्ञो देवता।	३८.२७
दीर्घतमा ऋषिः।	यज्ञो देवता।	३८.२८
दीर्घतमा ऋषिः।	प्राणादयो लिङ्गोक्ता देवताः।	३९.१
दीर्घतमा ऋषिः।	दिगादयो लिङ्गोक्ता देवताः।	३९.२
दीर्घतमा ऋषिः।	वागादयो लिङ्गोक्ता देवताः।	३९.३
दीर्घतमा ऋषिः।	श्रीर्देवता।	३९.४
दीर्घतमा ऋषिः।	प्रजापतिर्देवता।	३९.५
दीर्घतमा ऋषिः।	सवितादयो देवताः।	३९.६
दीर्घतमा ऋषिः।	मरुतो देवताः।	३९.७
दीर्घतमा ऋषिः।	अग्न्यादयो लिङ्गोक्ता देवताः।	३९.८
दीर्घतमा ऋषिः।	उग्रादयो लिङ्गोक्ता देवताः।	३९.९
दीर्घतमा ऋषिः।	अग्निर्देवता।	३९.१०
दीर्घतमा ऋषिः।	अग्निर्देवता।	३९.११

दीर्घतमा ऋषिः।	अग्निर्देवता।	३९.१२
दीर्घतमा ऋषिः।	अग्निर्देवता।	३९.१३
दीर्घतमा ऋषिः।	आत्मा देवता।	४०.१
दीर्घतमा ऋषिः।	आत्मा देवता।	४०.२
दीर्घतमा ऋषिः।	आत्मा देवता।	४०.३
दीर्घतमा ऋषिः।	ब्रह्म देवता।	४०.४
दीर्घतमा ऋषिः।	आत्मा देवता।	४०.५
दीर्घतमा ऋषिः।	आत्मा देवता।	४०.६
दीर्घतमा ऋषिः।	आत्मा देवता।	४०.७
दीर्घतमा ऋषिः।	आत्मा देवता।	४०.८
दीर्घतमा ऋषिः।	आत्मा देवता।	४०.९
दीर्घतमा ऋषिः।	आत्मा देवता।	४०.१०
दीर्घतमा ऋषिः।	आत्मा देवता।	४०.११
दीर्घतमा ऋषिः।	आत्मा देवता।	४०.१२
दीर्घतमा ऋषिः।	आत्मा देवता।	४०.१३
दीर्घतमा ऋषिः।	आत्मा देवता।	४०.१४
दीर्घतमा ऋषिः।	आत्मा देवता।	४०.१५
दीर्घतमा ऋषिः।	आत्मा देवता।	४०.१६
दीर्घतमा ऋषिः।	आत्मा देवता।	४०.१७
देवल ऋषिः।	सोमो देवता।	३३.६२
देवल ऋषिः।	अग्निर्देवता।	२.१७
देववात ऋषिः।	यजमानो देवता।	१०.१७
देववात ऋषिः।	यजमानो देवता।	१०.१८
देववात ऋषिः।	प्रजापतिर्देवता।	१०.१९
देववात ऋषिः।	क्षत्रपतिर्देवता।	१०.२०
देववात ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	१०.२१
देववात ऋषिः।	अग्न्यादयो मन्त्रोक्ता देवताः।	१०.२२
देववातभरतावृषी	अग्निर्देवता।	३.१४

देवश्रवदेववातावृषी।	होता देवता।	११.३५
देवश्रवदेववातावृषी।	विश्वकर्माग्निर्वा देवता।	१८.६२
देवश्रवदेववातावृषी।	अग्निर्देवता।	१८.६६
देवश्रवदेववातावृषी।	अग्निर्देवता।	१८.६७
देवश्रवदेववातौ भारतावृषी।	अग्निर्देवता।	३४.१४
देवश्रवदेववातौ भारतावृषी।	अग्निर्देवता।	३४.१५
देवश्रवा ऋषिः।	यज्ञो देवता।	७.२६
देवश्रवा ऋषिः।	यज्ञपतिर्देवता।	७.२७
देवश्रवा ऋषिः।	यज्ञपतिर्देवता।	७.२८
देवश्रवा ऋषिः।	प्रजापतिर्देवता।	७.२९
देवश्रवा ऋषिः।	प्रजापतिर्देवता।	७.३०
देवश्रवा देववातश्च भारतावृषी।	इन्द्रो देवता।	३४.१८
देवश्रवा देववातश्च भारतावृषी।	इन्द्रो देवता।	३४.१९
देवा ऋषयः।	अग्निर्देवता।	१८.१
देवा ऋषयः।	प्रजापतिर्देवता।	१८.२
देवा ऋषयः।	प्रजापतिर्देवता।	१८.३
देवा ऋषयः।	प्रजापतिर्देवता।	१८.४
देवा ऋषयः।	प्रजापतिर्देवता।	१८.५
देवा ऋषयः।	प्रजापतिर्देवता।	१८.६
देवा ऋषयः।	प्रजापतिर्देवता।	१८.७
देवा ऋषयः।	आत्मा देवता।	१८.८
देवा ऋषयः।	आत्मा देवता।	१८.९
देवा ऋषयः।	आत्मा देवता।	१८.१०
देवा ऋषयः।	श्रीमदात्मा देवता।	१८.११
देवा ऋषयः।	धान्यदा आत्मा देवता।	१८.१२
देवा ऋषयः।	रत्नवान् धनवानात्मा देवता।	१८.१३

देवा ऋषयः।	अग्न्यादियुक्ता आत्मा देवता।	१८.१४
देवा ऋषयः।	धनादियुक्ता आत्मा देवता।	१८.१५
देवा ऋषयः।	अग्न्यादिविद्याविदात्मा देवता।	१८.१६
देवा ऋषयः।	मित्रैश्वर्य्यसहित आत्मा देवता।	१८.१७
देवा ऋषयः।	राज्यैश्वर्यादियुक्तात्मा देवता।	१८.१८
देवा ऋषयः।	पदार्थविदात्मा देवता।	१८.१९
देवा ऋषयः।	यज्ञानुष्ठानात्मा देवता।	१८.२०
देवा ऋषयः।	यज्ञाङ्गवानात्मा देवता।	१८.२१
देवा ऋषयः।	यज्ञवानात्मा देवता।	१८.२२
देवा ऋषयः।	कालविद्याविदात्मा देवता।	१८.२३
देवा ऋषयः।	विषमाङ्कगणितविद्याविदात्मा देवता।	१८.२४
देवा ऋषयः।	प्रजापतयो देवताः।	८.४८
देवा ऋषयः।	विश्वेदेवा प्रजापतयो देवताः।	८.४९
देवा ऋषयः।	प्रजापतयो देवताः।	८.५०
देवा ऋषयः।	प्रजापतयो गृहस्था देवताः।	८.५१
देवा ऋषयः।	प्रजापतिर्देवता।	८.५२
देवा ऋषयः।	गृहपतयो देवताः।	८.५३
देवा ऋषयः।	पशुविद्याविदात्मा देवता।	१८.२६
देवा ऋषयः।	पशुपालनविद्याविदात्मा देवता।	१८.२७
देवा ऋषयः।	सङ्ग्रामादिविदात्मा देवता।	१८.२८
देवा ऋषयः।	यज्ञानुष्ठातात्मा देवता।	१८.२९
देवा ऋषयः।	राज्यवानात्मा देवता।	१८.३०
देवा ऋषयः।	विश्वेदेवा देवताः।	१८.३१
देवा ऋषयः।	अन्नवान् विद्वान् देवता।	१८.३२
देवा ऋषयः।	अन्नपतिर्देवता।	१८.३३
देवा ऋषयः।	अन्नपतिर्देवता।	१८.३४

देवा ऋषयः।	रसविद्याविद्विद्वान् देवता।	१८.३५
देवा ऋषयः।	रसविद्विद्वान् देवता।	१८.३६
देवा ऋषयः।	सम्राड् राजा देवता।	१८.३७
देवा ऋषयः।	ऋतुविद्याविद्विद्वान् देवता।	१८.३८
देवा ऋषयः।	सूर्यो देवता।	१८.३९
देवा ऋषयः।	चन्द्रमा देवता।	१८.४०
देवा ऋषयः।	वातो देवता।	१८.४१
देवा ऋषयः।	यज्ञो देवता।	१८.४२
देवा ऋषयः।	विश्वकर्मा देवता।	१८.४३
देवा ऋषयः।	प्रजापतिर्देवता।	१८.४४
देवावत ऋषिः।	अग्निर्देवता।	९.३७
देवावत ऋषिः।	रक्षोघ्नो देवता।	९.३८
देवावत ऋषिः।	रक्षोघ्नो देवता।	९.३९
देवावत ऋषिः।	यजमानो देवता।	९.४०
ध्रुव ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१२.११
नाभानेदिष्ठ ऋषिः।	बृहस्पतिर्देवता।	९.१७
नाभानेदिष्ठ ऋषिः।	वाजी देवता।	११.१२
नाभानेदिष्ठ ऋषिः।	अग्निर्देवता।	११.७५
नाभानेदिष्ठ ऋषिः।	अग्निर्देवता।	११.७६
नाभानेदिष्ठ ऋषिः।	अग्निर्देवता।	११.७७
नाभानेदिष्ठ ऋषिः।	अग्निर्देवता।	११.७८
नाभानेदिष्ठ ऋषिः।	सेनापतिर्देवता।	११.७९
नाभानेदिष्ठ ऋषिः।	अध्यापकोपदेशकौ देवते।	११.८०
नाभानेदिष्ठ ऋषिः।	पुरोहितयजमानौ देवते।	११.८१
नाभानेदिष्ठ ऋषिः।	सभापतिर्यजमानो देवता।	११.८२
नाभानेदिष्ठ ऋषिः।	यजमानपुरोहितौ देवते।	११.८३

नारायण ऋषिः।	रुद्रो देवता।	३.६२
नारायण ऋषिः।	रुद्रो देवता।	३.६३
नारायण ऋषिः।	सविता देवता।	३०.१
नारायण ऋषिः।	सविता देवता।	३०.२
नारायण ऋषिः।	सविता देवता।	३०.३
नारायण ऋषिः।	परमेश्वरो देवता।	३०.५
नारायण ऋषिः।	परमेश्वरो देवता।	३०.६
नारायण ऋषिः।	विद्वांसो देवताः।	३०.७
नारायण ऋषिः।	विद्वांसो देवताः।	३०.८
नारायण ऋषिः।	विद्वान् देवता।	३०.९
नारायण ऋषिः।	विद्वान् देवता।	३०.१०
नारायण ऋषिः।	विद्वान् देवता।	३०.११
नारायण ऋषिः।	विद्वान् देवता।	३०.१२
नारायण ऋषिः।	ईश्वरो देवता।	३०.१३
नारायण ऋषिः।	राजेश्वरौ देवते।	३०.१४
नारायण ऋषिः।	राजेश्वरौ देवते।	३०.१५
नारायण ऋषिः।	राजेश्वरौ देवते।	३०.१६
नारायण ऋषिः।	राजेश्वरौ देवते।	३०.१७
नारायण ऋषिः।	राजेश्वरौ देवते।	३०.१८
नारायण ऋषिः।	राजेश्वरौ देवते।	३०.१९
नारायण ऋषिः।	राजेश्वरौ देवते।	३०.२०
नारायण ऋषिः।	राजेश्वरौ देवते।	३०.२१
नारायण ऋषिः।	राजेश्वरौ देवते।	३०.२२
नारायण ऋषिः।	पुरुषो देवता।	३१.१
नारायण ऋषिः।	ईशानो देवता।	३१.२
नारायण ऋषिः।	पुरुषो देवता।	३१.३

नारायण ऋषिः।	पुरुषो देवता।	३१.४
नारायण ऋषिः।	स्रष्टा देवता।	३१.५
नारायण ऋषिः।	पुरुषो देवता।	३१.६
नारायण ऋषिः।	स्रष्टेश्वरो देवता।	३१.७
नारायण ऋषिः।	पुरुषो देवता।	३१.८
नारायण ऋषिः।	पुरुषो देवता।	३१.९
नारायण ऋषिः।	पुरुषो देवता।	३१.१०
नारायण ऋषिः।	पुरुषो देवता।	३१.११
नारायण ऋषिः।	पुरुषो देवता।	३१.१२
नारायण ऋषिः।	पुरुषो देवता।	३१.१३
नारायण ऋषिः।	पुरुषो देवता।	३१.१४
नारायण ऋषिः।	पुरुषो देवता।	३१.१५
नारायण ऋषिः।	पुरुषो देवता।	३१.१६
नृमेध ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	३३.९५
नृमेध ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	३३.९६
नृमेध ऋषिः।	सूर्यो देवता।	३३.४१
नृमेध ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	३३.६६
नृमेध ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	३३.६७
नृमेधपुरुषमेधावृषी।	इन्द्रो देवता।	२०.३०
नोधा ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	३४.१६
नोधा ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	३४.१७
नोधा गोतम ऋषिः।	अग्निर्देवता।	२६.११
नोधा गोतम ऋषिः।	अग्निर्देवता।	२६.१२
परमेष्ठी ऋषिः।	रुद्रो देवता।	१६.४
परमेष्ठी ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१५.१
परमेष्ठी ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१५.२
परमेष्ठी ऋषिः।	दम्पती देवते।	१५.३

परमेष्ठी ऋषिः।	विद्वांसो देवताः।	१५.४
परमेष्ठी ऋषिः।	विद्वांसो देवताः।	१५.५
परमेष्ठी ऋषिः।	विद्वांसो देवताः।	१५.६
परमेष्ठी ऋषिः।	विद्वांसो देवताः।	१५.७
परमेष्ठी ऋषिः।	प्रजापतिर्देवता।	१५.८
परमेष्ठी ऋषिः।	प्रजापतिर्देवता।	१५.९
परमेष्ठी ऋषिः।	वसवो देवताः।	१५.१०
परमेष्ठी ऋषिः।	रुद्रा देवताः।	१५.११
परमेष्ठी ऋषिः।	आदित्या देवताः।	१५.१२
परमेष्ठी ऋषिः।	मरुतो देवताः।	१५.१३
परमेष्ठी ऋषिः।	विश्वेदेवा देवताः।	१५.१४
परमेष्ठी ऋषिः।	वसन्तर्तुर्देवता।	१५.१५
परमेष्ठी ऋषिः।	ग्रीष्मर्तुर्देवता।	१५.१६
परमेष्ठी ऋषिः।	वर्षर्त्तुर्देवता।	१५.१७
परमेष्ठी ऋषिः।	शरदृतुर्देवता।	१५.१८
परमेष्ठी ऋषिः।	हेमन्तर्त्तुर्देवता।	१५.१९
परमेष्ठी ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१५.२०
परमेष्ठी ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१५.२१
परमेष्ठी ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१५.२२
परमेष्ठी ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१५.२३
परमेष्ठी ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१५.२४
परमेष्ठी ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१५.२५
परमेष्ठी ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१५.२६
परमेष्ठी ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१५.२७
परमेष्ठी ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१५.२८
परमेष्ठी ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१५.२९

परमेष्ठी ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१५.३०
परमेष्ठी ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१५.३१
परमेष्ठी ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१५.३२
परमेष्ठी ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१५.३३
परमेष्ठी ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१५.३४
परमेष्ठी ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१५.३५
परमेष्ठी ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१५.३६
परमेष्ठी ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१५.३७
परमेष्ठी ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१५.३८
परमेष्ठी ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१५.३९
परमेष्ठी ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१५.४०
परमेष्ठी ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१५.४१
परमेष्ठी ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१५.४२
परमेष्ठी ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१५.४३
परमेष्ठी ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१५.४४
परमेष्ठी ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१५.४५
परमेष्ठी ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१५.४६
परमेष्ठी ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१५.४७
परमेष्ठी ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१५.४८
परमेष्ठी ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१५.४९
परमेष्ठी ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१५.५०
परमेष्ठी ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१५.५१
परमेष्ठी ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१५.५२
परमेष्ठी ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१५.५३
परमेष्ठी ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१५.५४
परमेष्ठी ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१५.५५

परमेष्ठी ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१५.५६
परमेष्ठी ऋषिः।	शिशिरर्त्तुर्देवता।	१५.५७
परमेष्ठी ऋषिः।	विदुषी देवता।	१५.५८
परमेष्ठी ऋषिः।	इन्द्राग्नी देवते।	१५.५९
परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः।	सविता देवता।	१.१
परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः।	यज्ञो देवता।	१.२
परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः।	सविता देवता।	१.३
परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः।	विष्णुर्देवता।	१.४
परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१.५
परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः।	प्रजापतिर्देवता।	१.६
परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः।	यज्ञो देवता।	१.७
परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१.८
परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः।	विष्णुर्देवता।	१.९
परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः।	सविता देवता।	१.१०
परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१.११
परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः।	अप्सवितारौ देवते।	१.१२
परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः।	इन्द्रो देवता। अग्निः यज्ञो देवता।	१.१३
परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः।	यज्ञो देवता।	१.१४
परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः।	यज्ञो देवता।	१.१५
परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः।	वायुः सविता देवता।	१.१६
परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१.१७
परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१.१८
परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१.१९
परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः।	सविता देवता।	१.२०
परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः।	यज्ञो देवता सर्वस्य।	१.२१
परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः।	प्रथतामितिपर्य्यन्तस्य यज्ञो देवता। अन्त्यस्याग्निसवितारौ देवते।	१.२२
परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१.२३
परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः।	द्योविद्युतौ देवते।	१.२४

परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषि:।	सविता देवता।	१.२५
परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषि:।	सविता देवता।	१.२६
परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषि:।	यज्ञो देवता।	१.२७
परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषि:।	यज्ञो देवता।	१.२८
परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषि:।	यज्ञो देवता सर्वस्य।	१.२९
परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषि:।	यज्ञो देवता।	१.३०
परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषि:।	यज्ञो देवता सर्वस्य।	१.३१
परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषि:।	यज्ञो देवता।	२.१
परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषि:।	यज्ञो देवता।	२.२
परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषि:।	अग्नि: सर्वस्य।	२.३
परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषि:।	अग्निर्देवता।	२.४
परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषि:।	यज्ञो देवता।	२.५
परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषि:।	विष्णुः सर्वस्य	२.६
परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषि:।	अग्निर्देवता।	२.७
परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषि:।	विष्णुर्देवता।	२.८
परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषि:।	अग्निर्देवता।	२.९
परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषि:।	इन्द्रो देवता।	२.१०
परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषि:।	द्यावापृथिवी देवते।	२.११
परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषि:।	सविता देवता।	२.१२
परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषि:।	बृहस्पतिर्देवता।	२.१३
परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषि:।	अग्नि: सर्वस्य।	२.१४
परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषि:।	अग्नीषोमौ देवते।	२.१५
परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषि:।	पूर्वार्द्धे द्यावापृथिवी मित्रावरुणौ च देवता।:	२.१६
परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषि:।	विश्वेदेवा देवता।:	२.१८
परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषि:।	अग्निवायू देवते।	२.१९
परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषि:।	अग्निसरस्वत्यौ देवते।	२.२०
परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषय:।	रुद्रा देवता:।	१६.४०

परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः।	रुद्रा देवताः।	१६.४१
परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः।	रुद्रा देवताः।	१६.४२
परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः।	रुद्रा देवताः।	१६.४३
परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः।	रुद्रा देवताः।	१६.४४
परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः।	रुद्रा देवताः।	१६.४५
परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः।	रुद्रा देवताः।	१६.४६
परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः।	रुद्रा देवताः।	१६.४७
परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः।	रुद्रा देवताः।	१६.४८
परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः।	रुद्रा देवताः।	१६.४९
परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः।	रुद्रा देवताः।	१६.५०
परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः।	रुद्रा देवताः।	१६.५१
परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः।	रुद्रा देवताः।	१६.५२
परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः।	रुद्रा देवताः।	१६.५३
परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः।	रुद्रा देवताः।	१६.५४
परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः।	रुद्रा देवताः।	१६.५५
परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः।	बहुरुद्रा देवताः।	१६.५६
परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः।	रुद्रा देवताः।	१६.५७
परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः।	रुद्रा देवताः।	१६.५८
परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः।	रुद्रा देवताः।	१६.५९
परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः।	रुद्रा देवताः।	१६.६०
परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः।	रुद्रा देवताः।	१६.६१
परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः।	रुद्रा देवताः।	१६.६२
परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः।	रुद्रा देवताः।	१६.६३
परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः।	रुद्रा देवताः।	१६.६४
परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः।	रुद्रा देवताः।	१६.६५
परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः।	रुद्रा देवताः।	१६.६६

परमेष्ठी वा कुत्स ऋषिः।	रुद्रो देवता।	१६.१
परमेष्ठी वा कुत्स ऋषिः।	रुद्रो देवता।	१६.२
परमेष्ठी वा कुत्स ऋषिः।	रुद्रो देवता।	१६.३
पराशर ऋषिः।	अग्निर्देवता।	३३.११
पाकाग्निर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१२.१०९
पायुर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	११.२६
पावकाग्निर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१२.१०६
पावकाग्निर्ऋषिः।	विद्वान् देवता।	१२.१०७
पावकाग्निर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१२.१०८
पावकाग्निर्ऋषिः।	विद्वान् देवता।	१२.११०
पावकाग्निर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१२.१११
पुरुमीढ ऋषिः।	वायुर्देवता।	२७.३०
पुरुमीढाजमीढावृषी।	इन्द्रवायू देवते।	३३.१९
पुरोधा ऋषिः।	अग्निर्देवता।	११.१७
पूर्वदेवा ऋषयः।	समाङ्कगणितविद्याविदात्मा देवता।	१८.२५
प्रगाथ ऋषिः।	महेन्द्रो देवता।	३३.५०
प्रजापतिर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१२.११७
प्रजापतिर्ऋषिः।	विश्वेदेवा देवताः।	२७.८
प्रजापतिर्ऋषिः।	अश्व्यादयो देवताः।	२७.९
प्रजापतिर्ऋषिः।	विद्वांसो देवताः।	२७.२१
प्रजापतिर्ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	२७.२२
प्रजापतिर्ऋषिः।	सोमो देवता।	१९.१
प्रजापतिर्ऋषिः।	पितरो देवताः।	१९.३६
प्रजापतिर्ऋषिः।	सरस्वती देवता।	१९.३७
प्रजापतिर्ऋषिः।	सभेशो देवता।	२०.१
प्रजापतिर्ऋषिः।	सभेशो देवता।	२०.२
प्रजापतिर्ऋषिः।	सभापतिर्देवता।	२०.४

प्रजापतिर्ऋषिः।	सभापतिर्देवता।	२०.५
प्रजापतिर्ऋषिः।	सभापतिर्देवता।	२०.६
प्रजापतिर्ऋषिः।	राजा देवता।	२०.७
प्रजापतिर्ऋषिः।	सभापतिर्देवता।	२०.८
प्रजापतिर्ऋषिः।	सभेशो देवता।	२०.९
प्रजापतिर्ऋषिः।	सभेशो देवता।	२०.१०
प्रजापतिर्ऋषिः।	उपदेशका देवताः।	२०.११
प्रजापतिर्ऋषिः।	विश्वेदेवा देवताः।	२०.१२
प्रजापतिर्ऋषिः।	अध्यापकोपदेशकौ देवते।	२०.१३
प्रजापतिर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	२०.१४
प्रजापतिर्ऋषिः।	वायुर्देवता।	२०.१५
प्रजापतिर्ऋषिः।	सूर्य्यो देवता।	२०.१६
प्रजापतिर्ऋषिः।	लिङ्गोक्ता देवताः।	२०.१७
प्रजापतिर्ऋषिः।	वरुणो देवता।	२०.१८
प्रजापतिर्ऋषिः।	आपो देवताः।	२०.१९
प्रजापतिर्ऋषिः।	आपो देवताः।	२०.२०
प्रजापतिर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	२०.२२
प्रजापतिर्ऋषिः।	समिद्देवता।	२०.२३
प्रजापतिर्ऋषिः।	सविता देवता।	२२.११
प्रजापतिर्ऋषिः।	सविता देवता।	२२.१२
प्रजापतिर्ऋषिः।	सविता देवता।	२२.१३
प्रजापतिर्ऋषिः।	सविता देवता।	२२.१४
प्रजापतिर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	२२.१६
प्रजापतिर्ऋषिः।	सविता देवता।	११.१
प्रजापतिर्ऋषिः।	सविता देवता।	११.२
प्रजापतिर्ऋषिः।	सविता देवता।	११.३

प्रजापतिर्ऋषिः।	सविता देवता।	११.४
प्रजापतिर्ऋषिः।	सविता देवता।	११.५
प्रजापतिर्ऋषिः।	सविता देवता।	११.६
प्रजापतिर्ऋषिः।	सविता देवता।	११.७
प्रजापतिर्ऋषिः।	सविता देवता।	११.८
प्रजापतिर्ऋषिः।	सविता देवता।	११.९
प्रजापतिर्ऋषिः।	सविता देवता।	११.१०
प्रजापतिर्ऋषिः।	सविता देवता।	११.११
प्रजापतिर्ऋषिः।	सूर्यो देवता।	३३.७४
प्रजापतिर्ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	२८.९
प्रजापतिर्ऋषिः।	बृहस्पतिर्देवता।	२८.१०
प्रजापतिर्ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	२८.११
प्रजापतिर्ऋषिः।	सविता देवता।	२२.१
प्रजापतिर्ऋषिः।	विद्वांसो देवताः।	२२.२
प्रजापतिर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	२२.३
प्रजापतिर्ऋषिः।	विश्वेदेवा देवताः।	२२.४
प्रजापतिर्ऋषिः।	इन्द्रादयो देवताः।	२२.५
प्रजापतिर्ऋषिः।	अग्न्यादयो देवताः।	२२.६
प्रजापतिर्ऋषिः।	प्राणादयो देवताः।	२२.७
प्रजापतिर्ऋषिः।	प्रयत्नवन्तो जीवादयो देवताः।	२२.८
प्रजापतिर्ऋषिः।	अग्निसूर्यौ देवते।	३.९
प्रजापतिर्ऋषिः।	पूर्वार्द्धस्याग्निरुत्तरार्द्धस्य सूर्यश्च देवते।	३.१०
प्रजापतिर्ऋषिः।	मरुतो देवताः।	३.४४
प्रजापतिर्ऋषिः।	मरुतो देवताः।	३.४५
प्रजापतिर्ऋषिः।	अबोषध्यौ देवते।	४.१
प्रजापतिर्ऋषिः।	आपो देवता।	४.२

प्रजापतिर्ऋषिः।	मेघो देवता।	४.३
प्रजापतिर्ऋषिः।	परमात्मा देवता।	४.४
प्रजापतिर्ऋषिः।	यज्ञो देवता।	४.५
प्रजापतिर्ऋषिः।	यज्ञो देवता।	४.६
प्रजापतिर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	४.७
प्रजापतिर्ऋषिः।	आपो देवता।	४.७
प्रजापतिर्ऋषिः।	बृहस्पतिर्देवता।	४.७
प्रजापतिर्ऋषिः।	रुद्रो देवता।	१६.६
प्रजापतिर्ऋषिः।	रुद्रो देवता।	१६.७
प्रजापतिर्ऋषिः।	रुद्रो देवता।	१६.८
प्रजापतिर्ऋषिः।	रुद्रो देवता।	१६.९
प्रजापतिर्ऋषिः।	रुद्रो देवता।	१६.१०
प्रजापतिर्ऋषिः।	रुद्रो देवता।	१६.११
प्रजापतिर्ऋषिः।	रुद्रो देवता।	१६.१२
प्रजापतिर्ऋषिः।	रुद्रो देवता।	१६.१३
प्रजापतिर्ऋषिः।	रुद्रो देवता।	१६.१४
प्रजापतिर्ऋषिः।	रुद्रा देवताः।	१६.३४
प्रजापतिर्ऋषिः।	लिङ्गोक्ता देवताः।	२०.३४
प्रजापतिर्ऋषिः।	लिङ्गोक्ता देवताः।	२०.३५
प्रजापतिर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	२२.१९
प्रजापतिर्ऋषिः।	प्रजापत्यादयो देवताः।	२२.२०
प्रजापतिर्ऋषिः।	विद्वान् देवता।	२२.२१
प्रजापतिर्ऋषिः।	लिङ्गोक्ता देवताः।	२२.२२
प्रजापतिर्ऋषिः।	प्राणादयो देवताः।	२२.२३
प्रजापतिर्ऋषिः।	दिशो देवताः।	२२.२४
प्रजापतिर्ऋषिः।	जलादयो देवताः।	२२.२५

प्रजापतिर्ऋषिः।	वातादयो देवताः।	२२.२६
प्रजापतिर्ऋषिः।	अग्न्यादयो देवताः।	२२.२७
प्रजापतिर्ऋषिः।	नक्षत्रादयो देवताः।	२२.२८
प्रजापतिर्ऋषिः।	लिङ्गोक्ता देवताः।	२२.२९
प्रजापतिर्ऋषिः।	वस्वादयो देवताः।	२२.३०
प्रजापतिर्ऋषिः।	मासा देवताः।	२२.३१
प्रजापतिर्ऋषिः।	वाजादयो देवताः।	२२.३२
प्रजापतिर्ऋषिः।	आयुरादयो देवताः।	२२.३३
प्रजापतिर्ऋषिः।	यज्ञो देवता।	२२.३४
प्रजापतिर्ऋषिः।	परमेश्वरो देवता।	२३.१
प्रजापतिर्ऋषिः।	परमेश्वरो देवता।	२३.२
प्रजापतिर्ऋषिः।	परमेश्वरो देवता।	२३.३
प्रजापतिर्ऋषिः।	परमेश्वरो देवता।	२३.४
प्रजापतिर्ऋषिः।	परमेश्वरो देवता।	२३.५
प्रजापतिर्ऋषिः।	सूर्यो देवता।	२३.६
प्रजापतिर्ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	२३.७
प्रजापतिर्ऋषिः।	वाय्वादयो देवताः।	२३.८
प्रजापतिर्ऋषिः।	जिज्ञासुर्देवता।	२३.९
प्रजापतिर्ऋषिः।	सूर्यो देवता।	२३.१०
प्रजापतिर्ऋषिः।	जिज्ञासुर्देवता।	२३.११
प्रजापतिर्ऋषिः।	विद्युदादयो देवताः।	२३.१२
प्रजापतिर्ऋषिः।	ब्रह्मादयो देवताः।	२३.१३
प्रजापतिर्ऋषिः।	ब्रह्मा देवता।	२३.१४
प्रजापतिर्ऋषिः।	विद्वान् देवता।	२३.१५
प्रजापतिर्ऋषिः।	सविता देवता।	२३.१६
प्रजापतिर्ऋषिः।	अग्न्यादयो देवताः।	२३.१७

प्रजापतिर्ऋषिः।	प्राणादयो देवताः।	२३.१८
प्रजापतिर्ऋषिः।	गणपतिर्देवता।	२३.१९
प्रजापतिर्ऋषिः।	राजप्रजे देवते।	२३.२०
प्रजापतिर्ऋषिः।	न्यायाधीशो देवता।	२३.२१
प्रजापतिर्ऋषिः।	राजप्रजे देवते।	२३.२२
प्रजापतिर्ऋषिः।	राजप्रजे देवते।	२३.२३
प्रजापतिर्ऋषिः।	भूमिसूर्यौ देवते।	२३.२४
प्रजापतिर्ऋषिः।	भूमिसूर्य्यौ देवते।	२३.२५
प्रजापतिर्ऋषिः।	श्रीर्देवता।	२३.२६
प्रजापतिर्ऋषिः।	श्रीर्देवता।	२३.२७
प्रजापतिर्ऋषिः।	प्रजापतिर्देवता।	२३.२८
प्रजापतिर्ऋषिः।	विद्वांसो देवता।	२३.२९
प्रजापतिर्ऋषिः।	राजा देवता।	२३.३०
प्रजापतिर्ऋषिः।	राजप्रजे देवते।	२३.३१
प्रजापतिर्ऋषिः।	राजा देवता।	२३.३२
प्रजापतिर्ऋषिः।	विद्वांसो देवताः।	२३.३३
प्रजापतिर्ऋषिः।	प्रजा देवता।	२३.३४
प्रजापतिर्ऋषिः।	प्रजा देवता।	२३.३५
प्रजापतिर्ऋषिः।	स्त्रियो देवताः।	२३.३६
प्रजापतिर्ऋषिः।	स्त्रियो देवताः।	२३.३७
प्रजापतिर्ऋषिः।	सभासदो देवताः।	२३.३८
प्रजापतिर्ऋषिः।	अध्यापको देवता।	२३.३९
प्रजापतिर्ऋषिः।	प्रजा देवता।	२३.४०
प्रजापतिर्ऋषिः।	प्रजा देवता।	२३.४१
प्रजापतिर्ऋषिः।	अध्यापको देवता।	२३.४२
प्रजापतिर्ऋषिः।	राजा देवता।	२३.४३

प्रजापतिर्ऋषिः।	राजा देवता।	२३.४४
प्रजापतिर्ऋषिः।	जिज्ञासुर्देवता।	२३.४५
प्रजापतिर्ऋषिः।	सूर्यादयो देवताः।	२३.४६
प्रजापतिर्ऋषिः।	जिज्ञासुर्देवता।	२३.४७
प्रजापतिर्ऋषिः।	ब्रह्मादयो देवताः।	२३.४८
प्रजापतिर्ऋषिः।	प्रष्टृसमाधातारौ देवते।	२३.४९
प्रजापतिर्ऋषिः।	ईश्वरो देवता।	२३.५०
प्रजापतिर्ऋषिः।	पुरुषेश्वरो देवता।	२३.५१
प्रजापतिर्ऋषिः।	परमेश्वरो देवता।	२३.५२
प्रजापतिर्ऋषिः।	प्रष्टा देवता।	२३.५३
प्रजापतिर्ऋषिः।	समाधाता देवता।	२३.५४
प्रजापतिर्ऋषिः।	प्रष्टा देवता।	२३.५५
प्रजापतिर्ऋषिः।	समाधाता देवता।	२३.५६
प्रजापतिर्ऋषिः।	प्रष्टा देवता।	२३.५७
प्रजापतिर्ऋषिः।	समिधा देवता।	२३.५८
प्रजापतिर्ऋषिः।	प्रष्टा देवता।	२३.५९
प्रजापतिर्ऋषिः।	समाधाता देवता।	२३.६०
प्रजापतिर्ऋषिः।	प्रष्टा देवता।	२३.६१
प्रजापतिर्ऋषिः।	समाधाता देवता।	२३.६२
प्रजापतिर्ऋषिः।	समाधाता देवता।	२३.६३
प्रजापतिर्ऋषिः।	ईश्वरो देवता।	२३.६४
प्रजापतिर्ऋषिः।	ईश्वरो देवता।	२३.६५
प्रजापतिर्ऋषिः।	प्रजापतिर्देवता।	२४.१
प्रजापतिर्ऋषिः।	सोमादयो देवताः।	२४.२
प्रजापतिर्ऋषिः।	अश्व्यादयो देवताः।	२४.३
प्रजापतिर्ऋषिः।	मारुतादयो देवताः।	२४.४

प्रजापतिर्ऋषिः।	विश्वेदेवा देवताः।	२४.५
प्रजापतिर्ऋषिः।	अग्न्यादयो देवताः।	२४.६
प्रजापतिर्ऋषिः।	इन्द्रादयो देवताः।	२४.७
प्रजापतिर्ऋषिः।	इन्द्राग्न्यादयो देवताः।	२४.८
प्रजापतिर्ऋषिः।	अग्न्यादयो देवताः।	२४.९
प्रजापतिर्ऋषिः।	अन्तरिक्षादयो देवताः।	२४.१०
प्रजापतिर्ऋषिः।	वसन्तादयो देवताः।	२४.११
प्रजापतिर्ऋषिः।	अग्न्यादयो देवताः।	२४.१२
प्रजापतिर्ऋषिः।	विराजादयो देवताः।	२४.१३
प्रजापतिर्ऋषिः।	अग्न्यादयो देवताः।	२४.१४
प्रजापतिर्ऋषिः।	इन्द्रादयो देवताः।	२४.१५
प्रजापतिर्ऋषिः।	अग्न्यादयो देवताः।	२४.१६
प्रजापतिर्ऋषिः।	इन्द्राग्न्यादयो देवताः।	२४.१७
प्रजापतिर्ऋषिः।	पितरो देवताः।	२४.१८
प्रजापतिर्ऋषिः।	वायुर्देवता।	२४.१९
प्रजापतिर्ऋषिः।	वसन्तादयो देवताः।	२४.२०
प्रजापतिर्ऋषिः।	वरुणो देवता।	२४.२१
प्रजापतिर्ऋषिः।	सोमादयो देवताः।	२४.२२
प्रजापतिर्ऋषिः।	अग्न्यादयो देवताः।	२४.२३
प्रजापतिर्ऋषिः।	सोमादयो देवताः।	२४.२४
प्रजापतिर्ऋषिः।	कालावयवा देवताः।	२४.२५
प्रजापतिर्ऋषिः।	भूम्यादयो देवताः।	२४.२६
प्रजापतिर्ऋषिः।	वस्वादयो देवताः।	२४.२७
प्रजापतिर्ऋषिः।	ईशानादयो देवताः।	२४.२८
प्रजापतिर्ऋषिः।	प्रजापत्यादयो देवताः।	२४.२९
प्रजापतिर्ऋषिः।	प्रजापत्यादयो देवताः।	२४.३०

प्रजापतिर्ऋषिः।	प्रजापत्यादयो देवताः।	२४.३१
प्रजापतिर्ऋषिः।	सोमादयो देवताः।	२४.३२
प्रजापतिर्ऋषिः।	मित्रादयो देवताः।	२४.३३
प्रजापतिर्ऋषिः।	अग्न्यादयो देवताः।	२४.३४
प्रजापतिर्ऋषिः।	चन्द्रादयो देवताः।	२४.३५
प्रजापतिर्ऋषिः।	अश्विन्यादयो देवताः।	२४.३६
प्रजापतिर्ऋषिः।	अर्द्धमासादयो देवताः।	२४.३७
प्रजापतिर्ऋषिः।	वर्षादयो देवताः।	२४.३८
प्रजापतिर्ऋषिः।	आदित्यादयो देवताः।	२४.३९
प्रजापतिर्ऋषिः।	विश्वेदेवादयो देवताः।	२४.४०
प्रजापतिर्ऋषिः।	सरस्वत्यादयो देवताः।	२५.१
प्रजापतिर्ऋषिः।	प्राणादयो देवताः।	२५.२
प्रजापतिर्ऋषिः।	इन्द्रादयो देवताः।	२५.३
प्रजापतिर्ऋषिः।	अग्न्यादयो देवताः।	२५.४
प्रजापतिर्ऋषिः।	इन्द्रादयो देवताः।	२५.५
प्रजापतिर्ऋषिः।	मरुतादयो देवताः।	२५.६
प्रजापतिर्ऋषिः।	पूषादयो देवताः।	२५.७
प्रजापतिर्ऋषिः।	इन्द्रादयो देवताः।	२५.८
प्रजापतिर्ऋषिः।	पूषादयो देवताः।	२५.९
प्रजापतिर्ऋषिः।	हिरण्यगर्भो देवता।	२५.१०
प्रजापतिर्ऋषिः।	ईश्वरो देवता।	२५.११
प्रजापतिर्ऋषिः।	ईश्वरो देवता।	२५.१२
प्रजापतिर्ऋषिः।	परमात्मा देवता।	२५.१३
प्रजापतिर्ऋषिः।	यज्ञो देवता।	२५.१४
प्रजापतिर्ऋषिः।	विद्वांसो देवताः।	२५.१५
प्रजापतिर्ऋषिः।	विश्वेदेवा देवताः।	२५.१६

प्रजापतिर्ऋषिः।	द्यौरित्यादयो देवताः।	२५.२३
प्रजापतिर्ऋषिः।	यज्ञो देवता।	२५.२७
प्रजापतिर्ऋषिः।	सोमो देवता।	२०.२७
प्रजापतिर्ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	२०.२८
प्रजापतिर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	३.४
प्रजापतिर्ऋषिः।	अग्निवायुसूर्य्या देवता।:	३.५
प्रजापतिर्ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	२०.३१
प्रतिक्षत्र ऋषिः।	विश्वेदेवा देवताः।	३३.४८
प्रबन्धु ऋषिः।	बृहस्पतिर्देवता।	३.२८
प्रस्कण्व ऋषिः।	गृहपतयो राजादयो देवताः।	८.४०
प्रस्कण्व ऋषिः।	सूर्य्यो देवता।	८.४१
प्रस्कण्व ऋषिः।	सूर्यो देवता।	३३.३१
प्रस्कण्व ऋषिः।	सूर्यो देवता।	३३.३२
प्रस्कण्व ऋषिः।	विद्वान् देवता।	३३.३३
प्रस्कण्व ऋषिः।	सूर्यो देवता।	२०.२१
प्रस्कण्व ऋषिः।	सूर्य्यो देवता।	७.४१
प्रस्कण्व ऋषिः।	अग्निर्देवता।	३३.१५
प्रस्कण्व ऋषिः।	सूर्यो देवता।	३३.३६
प्रस्कण्व ऋषिः।	अश्विनौ देवते।	३४.२८
प्रस्कण्व ऋषिः।	अग्निर्देवता।	११.३७
प्राजापत्यो यज्ञ ऋषिः।	ऋषयो देवताः।	३४.४९
प्रादुराक्षिर्ऋषिः।	वैश्वानरो देवता।	२६.६
प्रियमेधा ऋषिः।	आपो देवताः।	१५.६०
प्रियमेधा ऋषिः।	आपो देवताः।	१२.५५
बन्धुर्ऋषिः।	मनो देवता।	३.५३
बन्धुर्ऋषिः।	मनो देवता।	३.५४
बन्धुर्ऋषिः।	मनो देवता।	३.५५

बन्धुर्ऋषिः।	सोमो देवता।	३.५६
बन्धुर्ऋषिः।	रुद्रो देवता।	३.५७
बन्धुर्ऋषिः।	रुद्रो देवता।	३.५८
बन्धुर्ऋषिः।	रुद्रो देवता।	३.५९
बृहदुक्थो गोतम ऋषिः।	अश्विनौ देवते।	२८.७
बृहदुक्थो गोतम ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	२८.८
बृहदुक्थो वामदेव ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	२८.१
बृहदुक्थो वामदेव ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	२८.२
बृहदुक्थो वामदेव ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	२८.३
बृहदुक्थो वामदेव ऋषिः।	रुद्रो देवता।	२८.४
बृहदुक्थो वामदेव ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	२८.५
बृहदुक्थो वामदेव ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	२८.६
बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः।	अग्निर्देवता।	२९.१
बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः।	अग्निर्देवता।	२९.२
बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः।	अग्निर्देवता।	२९.३
बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः।	अग्निर्देवता।	२९.४
बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः।	अग्निर्देवता।	२९.५
बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः।	मनुष्या देवताः।	२९.६
बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः।	अश्विनौ देवते।	२९.७
बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः।	सरस्वती देवता।	२९.८
बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः।	त्वष्टा देवता।	२९.९
बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः।	सूर्य्यो देवता।	२९.१०
बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः।	अग्निर्देवता।	२९.११
बृहद्दिव ऋषिः।	महेन्द्रो देवता।	३३.८०
बृहस्पतिर्ऋषिः।	एकरुद्रो देवता।	१६.५
बृहस्पतिर्ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	९.२

बृहस्पतिर्ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	९.३
बृहस्पतिर्ऋषिः।	राजधर्मराजादयो देवताः।	९.४
बृहस्पतिर्ऋषिः।	सविता देवता।	९.५
बृहस्पतिर्ऋषिः।	अश्वो देवता।	९.६
बृहस्पतिर्ऋषिः।	सेनापतिर्देवता।	९.७
बृहस्पतिर्ऋषिः।	प्रजापतिर्देवता।	९.८
बृहस्पतिर्ऋषिः।	वीरो देवता।	९.९
बृहस्पतिर्ऋषिः।	इन्द्राबृहस्पती देवते।	९.१०
बृहस्पतिर्ऋषिः।	इन्द्राबृहस्पती देवते।	९.११
बृहस्पतिर्ऋषिः।	इन्द्राबृहस्पती देवते।	९.१२
बृहस्पतिर्ऋषिः।	सविता देवता।	९.१३
भरद्वाज ऋषिः।	द्यावापृथिव्यौ देवते।	३४.४५
भरद्वाज ऋषिः।	गृहपतयो देवताः।	८.६
भरद्वाज ऋषिः।	सविता गृहपतिर्देवता।	८.७
भरद्वाज ऋषिः।	विश्वेदेवा गृहपतयो देवताः।	८.८
भरद्वाज ऋषिः।	गृहपतयो विश्वेदेवा देवताः।	८.९
भरद्वाज ऋषिः।	गृहपतयो देवताः।	८.१०
भरद्वाज ऋषिः।	गृहपतयो देवताः।	८.११
भरद्वाज ऋषिः।	गृहपतयो देवताः।	८.१२
भरद्वाज ऋषिः।	गृहपतयो विश्वेदेवा देवताः।	८.१३
भरद्वाज ऋषिः।	गृहपतयो देवताः।	८.१४
भरद्वाज ऋषिः।	विश्वेदेवा देवताः।	३३.१३
भरद्वाज ऋषिः।	सविता देवता।	३३.६९
भरद्वाज ऋषिः।	सविता देवता।	३३.८४
भरद्वाज ऋषिः।	इन्द्राग्नी देवते।	३.१३
भरद्वाज ऋषिः।	विश्वेदेवा देवताः।	७.२४
भरद्वाज ऋषिः।	वैश्वानरो देवता।	७.२५

भरद्वाज ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१३.३६
भरद्वाज ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१८.७४
भरद्वाज ऋषिः।	प्रजापतिर्देवता।	७.३९
भरद्वाज ऋषिः।	अग्निर्देवता।	३३.९
भरद्वाज ऋषिः।	इन्द्राग्नी देवते।	३३.६१
भरद्वाजः शिरम्बिठ ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	३५.१८
भारद्वाज ऋषिः।	सोमो देवता।	१९.२
भारद्वाज ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१७.१०
भारद्वाज ऋषिः।	अग्निर्देवता।	२६.१३
भारद्वाज ऋषिः।	संवत्सरो देवता।	२६.१४
भारद्वाज ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१७.१६
भारद्वाज ऋषिः।	विद्वान् देवता।	२९.३८
भारद्वाज ऋषिः।	वीरा देवताः।	२९.३९
भारद्वाज ऋषिः।	वीरा देवताः।	२९.४०
भारद्वाज ऋषिः।	वीरा देवताः।	२९.४१
भारद्वाज ऋषिः।	वीरा देवताः।	२९.४२
भारद्वाज ऋषिः।	वीरा देवताः।	२९.४३
भारद्वाज ऋषिः।	वीरा देवताः।	२९.४४
भारद्वाज ऋषिः।	वीरा देवताः।	२९.४५
भारद्वाज ऋषिः।	वीरा देवताः।	२९.४६
भारद्वाज ऋषिः।	धनुर्वेदाऽध्यापका देवताः।	२९.४७
भारद्वाज ऋषिः।	वीरा देवताः।	२९.४८
भारद्वाज ऋषिः।	वीरा देवताः।	२९.४९
भारद्वाज ऋषिः।	वीरा देवताः।	२९.५०
भारद्वाज ऋषिः।	महावीरः सेनापतिर्देवता।	२९.५१
भारद्वाज ऋषिः।	सुवीरो देवता।	२९.५२

भारद्वाज ऋषिः।	वीरो देवता।	२९.५३
भारद्वाज ऋषिः।	वीरो देवता।	२९.५४
भारद्वाज ऋषिः।	वीरा देवताः।	२९.५५
भारद्वाज ऋषिः।	वादयितारो वीरा देवताः।	२९.५६
भारद्वाज ऋषिः।	वादयितारो वीरा देवताः।	२९.५७
भारद्वाज ऋषिः।	विद्वांसो देवताः।	२९.५८
भारद्वाज ऋषिः।	अग्न्यादयो देवताः।	२९.५९
भारद्वाज ऋषिः।	अग्न्यादयो देवताः।	२९.६०
भारद्वाज ऋषिः।	अग्निर्देवता।	३.३
भारद्वाज ऋषिः।	अग्निर्देवता।	११.३२
भारद्वाज ऋषिः।	अग्निर्देवता।	११.३३
भारद्वाज ऋषिः।	अग्निर्देवता।	११.३४
भार्गव ऋषिः।	अग्निर्देवता।	२७.४३
भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः।	यजमानो देवता।	२९.१२
भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	२९.१३
भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	२९.१४
भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	२९.१५
भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	२९.१६
भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	२९.१७
भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	२९.१८
भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः।	मनुष्यो देवता।	२९.१९
भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	२९.२०
भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः।	मनुष्या देवताः।	२९.२१
भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः।	वायवो देवताः।	२९.२२
भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः।	मनुष्या देवताः।	२९.२३
भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः।	मनुष्यो देवता।	२९.२४

भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः।	विद्वान् देवता।	२९.२५
भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः।	विद्वान् देवता।	२९.२६
भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः।	विद्वान् देवता।	२९.२७
भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	२९.२८
भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः।	अन्तरिक्षं देवता।	२९.२९
भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः।	स्त्रियो देवताः।	२९.३०
भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः।	स्त्रियो देवताः।	२९.३१
भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः।	विद्वांसो देवताः।	२९.३२
भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः।	वाग्देवता।	२९.३३
भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः।	विद्वान् देवता।	२९.३४
भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	२९.३५
भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	२९.३६
भिषगृषिः।	वैद्यो देवता।	१२.७५
भिषगृषिः।	वैद्यो देवता।	१२.७६
भिषगृषिः।	वैद्यो देवता।	१२.७७
भिषगृषिः।	चिकित्सुर्देवता।	१२.७८
भिषगृषिः।	वैद्यो देवता।	१२.७९
भिषगृषिः।	ओषधयो देवताः।	१२.८०
भिषगृषिः।	वैद्यो देवता।	१२.८१
भिषगृषिः।	ओषधयो देवताः।	१२.८२
भिषगृषिः।	वैद्या देवताः।	१२.८३
भिषगृषिः।	वैद्या देवताः।	१२.८४
भिषगृषिः।	वैद्यो देवता।	१२.८५
भिषगृषिः।	वैद्यो देवता।	१२.८६
भिषगृषिः।	वैद्यो देवता।	१२.८७
भिषगृषिः।	वैद्या देवताः।	१२.८८

भिषगृषिः।	वैद्या देवताः।	१२.८९
भिषगृषिः।	वैद्या देवताः।	१२.९०
भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषिः।	विश्वकर्मा देवता।	१७.१७
भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषिः।	विश्वकर्मा देवता।	१७.१८
भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषिः।	विश्वकर्मा देवता।	१७.१९
भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषिः।	विश्वकर्मा देवता।	१७.२०
भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषिः।	विश्वकर्मा देवता।	१७.२१
भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषिः।	विश्वकर्मा देवता।	१७.२२
भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषिः।	विश्वकर्मा देवता।	१७.२३
भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषिः।	विश्वकर्मा देवता।	१७.२४
भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषिः।	विश्वकर्मा देवता।	१७.२५
भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषिः।	विश्वकर्मा देवता।	१७.२६
भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषिः।	विश्वकर्मा देवता।	१७.२७
भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषिः।	विश्वकर्मा देवता।	१७.२८
भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषिः।	विश्वकर्मा देवता।	१७.२९
भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषिः।	विश्वकर्मा देवता।	१७.३०
भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषिः।	विश्वकर्मा देवता।	१७.३१
भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषिः।	विश्वकर्मा देवता।	१७.३२
मधुच्छन्छा ऋषिः।	विद्वांसो देवताः।	२९.३७
मधुच्छन्दा ऋषिः। सुतजेता ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	१७.६१
मधुच्छन्दा ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	३३.२५
मधुच्छन्दा ऋषिः।	सरस्वती देवता।	२०.८४
मधुच्छन्दा ऋषिः।	सरस्वती देवता।	२०.८५
मधुच्छन्दा ऋषिः।	सरस्वती देवता।	२०.८६
मधुच्छन्दा ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	२०.८७
मधुच्छन्दा ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	२०.८८

मधुच्छन्दा ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	२०.८९
मधुच्छन्दा ऋषिः।	अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः।	२०.९०
मधुच्छन्दा ऋषिः।	विश्वेदेवा देवताः।	७.३३
मधुच्छन्दा ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	३.३४
मधुच्छन्दा ऋषिः।	इन्द्रवायू देवते।	३३.५६
मधुच्छन्दा ऋषिः।	मित्रावरुणौ देवते।	३३.५७
मधुच्छन्दा ऋषिः।	अश्विनौ देवते।	३३.५८
मधुच्छन्दा ऋषिः।	ईश्वरसभाध्यक्षौ देवते।	५.३०
मधुच्छन्दा ऋषिः।	अग्निर्देवता।	५.३१
मधुच्छन्दा ऋषिः।	अग्निर्देवता।	५.३२
मधुच्छन्दा ऋषिः।	अग्निर्देवता।	५.३३
मधुच्छन्दा ऋषिः।	अग्निर्देवता	५.३४
मधुच्छन्दा ऋषिः।	अग्निर्देवता।	५.३५
मधुच्छन्दा ऋषिः।	अग्निर्देवता।	६.२९
मधुच्छन्दा ऋषिः।	सविता देवता।	६.३०
मधुच्छन्दा ऋषिः।	प्रजासभ्यराजानो देवताः।	६.३१
मधुच्छन्दा ऋषिः।	सभापती राजा देवता।	६.३२
मधुच्छन्दा ऋषिः।	सोमो देवता।	६.३३
मधुच्छन्दा ऋषिः।	यज्ञो देवता।	६.३४
मधुच्छन्दा ऋषिः।	द्यावापृथिव्यौ देवते।	६.३५
मधुच्छन्दा ऋषिः।	सोमो देवता।	६.३६
मधुच्छन्दा ऋषिः।	इन्द्रवायू देवते।	७.८
मधुच्छन्दा ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१२.५७
मधुच्छन्दा ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१२.५८
मधुच्छन्दा ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१२.५९
मधुच्छन्दा ऋषिः।	दम्पती देवते।	१२.६०
मधुच्छन्दा ऋषिः।	पत्नी देवता।	१२.६१

मधुच्छन्दा ऋषि:।	निर्ऋतिर्देवता।	१२.६२
मधुच्छन्दा ऋषि:।	निर्ऋतिर्देवता।	१२.६३
मधुच्छन्दा ऋषि:।	निर्ऋतिर्देवता।	१२.६४
मधुच्छन्दा ऋषि:।	यजमानो देवता।	१२.६५
मधुच्छन्दा ऋषि:।	इन्द्रो देवता।	१५.६१
मधुच्छन्दा ऋषि:।	विद्वान् देवता।	१५.६५
मधुच्छन्दा ऋषि:।	सोमो देवता।	२६.२५
मधुच्छन्दा ऋषि:।	अग्निर्देवता।	२६.२६
मधुच्छन्दा ऋषि:।	गृहपतिर्देवता।	८.३४
मधुच्छन्दा ऋषि:।	गृहपतिर्देवता।	८.३५
मनुर्ऋषि:।	विश्वेदेवा देवता:।	३३.९४
मनुर्ऋषि:।	विश्वेदेवा देवता:।	३३.९१
मयोभूर्ऋषि:।	अग्निर्देवता।	११.१८
मयोभूर्ऋषि:।	अग्निर्देवता।	११.१९
मयोभूर्ऋषि:।	क्षत्रपतिर्देवता।	११.२०
मयोभूर्ऋषि:।	द्रविणोदा देवता।	११.२१
मयोभूर्ऋषि:।	द्रविणोदा देवता।	११.२२
महीयव ऋषि:।	अग्निर्देवता।	२६.१६
महीयव ऋषि:।	इन्द्रो देवता।	२६.१७
महीयव ऋषि:।	विद्वान् देवता।	२६.१८
मुद्गल ऋषि:।	विद्वांसो देवता:।	२६.१९
मेध ऋषि:।	वैश्वानरो देवता।	३३.९२
मेधाकाम ऋषि:।	इन्द्रो देवता।	३२.१३
मेधाकाम ऋषि:।	परमात्मा देवता।	३२.१४
मेधाकाम ऋषि:।	परमेश्वरविद्वांसौ देवते।	३२.१५
मेधातिथिर्ऋषि:।	विष्णुर्देवता।	६.४
मेधातिथिर्ऋषि:।	विष्णुर्देवता।	६.५

मेधातिथिर्ऋषिः।	त्वष्टा देवता।	६.७
मेधातिथिर्ऋषिः।	आपो देवता।	६.१०
मेधातिथिर्ऋषिः।	वातो देवता।	६.११
मेधातिथिर्ऋषिः।	विद्वांसो देवताः।	६.१२
मेधातिथिर्ऋषिः।	आपो देवताः।	६.१३
मेधातिथिर्ऋषिः।	विद्वांसो देवताः।	६.१४
मेधातिथिर्ऋषिः।	विद्वांसो देवताः।	६.१५
मेधातिथिर्ऋषिः।	द्यावापृथिव्यौ देवते।	६.१६
मेधातिथिर्ऋषिः।	लिङ्गोक्ता देवताः।	६.२४
मेधातिथिर्ऋषिः।	सोमो देवता।	६.२५
मेधातिथिर्ऋषिः।	सोमो देवता।	६.२६
मेधातिथिर्ऋषिः।	आपो देवताः।	६.२७
मेधातिथिर्ऋषिः।	प्रजा देवताः।	६.२८
मेधातिथिर्ऋषिः।	सविता देवता।	३०.४
मेधातिथिर्ऋषिः।	विष्णुर्देवता।	३४.४३
मेधातिथिर्ऋषिः।	विष्णुर्देवता।	३४.४४
मेधातिथिर्ऋषिः।	सविता देवता।	२२.१०
मेधातिथिर्ऋषिः।	बृहस्पतिर्देवता।	३.२९
मेधातिथिर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	३३.१०
मेधातिथिर्ऋषिः।	इन्द्रवायू देवते।	३३.४५
मेधातिथिर्ऋषिः।	वरुणो देवता।	३३.४६
मेधातिथिर्ऋषिः।	विश्वेदेवा देवताः।	३३.८१
मेधातिथिर्ऋषिः।	विश्वेदेवा देवताः।	३३.८२
मेधातिथिर्ऋषिः।	विश्वेदेवा देवताः।	३३.८३
मेधातिथिर्ऋषिः।	महेन्द्रो देवता।	३३.९७
मेधातिथिर्ऋषिः।	अश्विनौ देवते।	७.११
मेधातिथिर्ऋषिः।	विष्णुर्देवता।	५.१५

मेधातिथिर्ऋषिः।	दम्पती देवते।	८.३२
मेधातिथिर्ऋषिः।	पृथिवी देवता।	३५.२१
मेधातिथिर्ऋषिः।	मरुतो देवताः।	१७.१
मेधातिथिर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१७.२
मेधातिथिर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१७.३
मेधातिथिर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१७.४
मेधातिथिर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१७.५
मेधातिथिर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१७.६
मेधातिथिर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१७.७
मेधातिथिर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१७.९
मेधातिथिर्ऋषिः।	विद्वान् देवता।	२६.२०
मेधातिथिर्ऋषिः।	विद्वान् देवता।	२६.२१
मेधातिथिर्ऋषिः।	सोमो देवता।	२६.२२
मेधातिथिर्ऋषिः।	विद्वान् देवता।	२६.२३
मेधातिथिर्ऋषिः।	पृथिवी देवता।	३६.१३
याज्ञवल्क्य ऋषिः।	अग्न्यादयो देवताः।	२६.१
याज्ञवल्क्यः	आपो देवता।	३.२०
याज्ञवल्क्यः	विश्वेदेवा देवता।	३.२१
रम्याक्षी ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	२६.४
रम्याक्षी ऋषिः।	सूर्यो देवता।	२६.५
लुश ऋषिः।	विश्वेदेवा देवताः।	३३.५२
लुशो धानाक ऋषिः।	सविता देवता।	३३.१७
लोपामुद्रा ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१७.११
लोपामुद्रा ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१७.१२
लोपामुद्रा ऋषिः।	प्राणो देवता।	१७.१३
लोपामुद्रा ऋषिः।	प्राणो देवता।	१७.१४

लोपामुद्रा ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१७.१५
लोपामुद्रा ऋषिः।	अग्निर्देवता।	३६.२०
लौगाक्षिर्ऋषिः।	ईश्वरो देवता।	२६.२
वत्स ऋषिः।	प्रजापतिर्देवता।	७.४०
वत्स ऋषिः।	विद्वान् देवता।	२६.१५
वत्स ऋषिः।	अग्निर्देवता।	४.१६
वत्स ऋषिः।	अग्निर्देवता।	४.१७
वत्स ऋषिः।	वाग्विद्युतौ देवते।	४.१८
वत्स ऋषिः।	वाग्विद्युतौ देवते।	४.१९
वत्स ऋषिः।	वाग्विद्युतौ देवते।	४.२०
वत्स ऋषिः।	वाग्विद्युतौ देवते।	४.२१
वत्स ऋषिः।	वाग्विद्युतौ देवते।	४.२२
वत्स ऋषिः।	वाग्विद्युतौ देवते।	४.२३
वत्स ऋषिः।	यज्ञो देवता।	४.२४
वत्स ऋषिः।	सविता देवता।	४.२५
वत्स ऋषिः।	यज्ञो देवता।	४.२६
वत्स ऋषिः।	विद्वान् देवता।	४.२७
वत्स ऋषिः।	अग्निर्देवता।	४.२८
वत्स ऋषिः।	अग्निर्देवता।	४.२९
वत्स ऋषिः।	वरुणो देवता।	४.३०
वत्स ऋषिः।	वरुणो देवता।	४.३१
वत्स ऋषिः।	अग्निर्देवता।	४.३२
वत्स ऋषिः।	सूर्य्यविद्वांसौ देवते।	४.३३
वत्स ऋषिः।	यजमानो देवता।	४.३४
वत्स ऋषिः।	सूर्य्यो देवता।	४.३५
वत्स ऋषिः।	सूर्य्यो देवता।	४.३६

वत्सप्रीर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१२.१
वत्सप्रीर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१२.६
वत्सप्रीर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१२.७
वत्सप्रीर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१२.८
वत्सप्रीर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१२.९
वत्सप्रीर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१२.१०
वत्सप्रीर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१२.१८
वत्सप्रीर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१२.१९
वत्सप्रीर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१२.२०
वत्सप्रीर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१२.२१
वत्सप्रीर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१२.२२
वत्सप्रीर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१२.२३
वत्सप्रीर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१२.२४
वत्सप्रीर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१२.२५
वत्सप्रीर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१२.२६
वत्सप्रीर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१२.२७
वत्सप्रीर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१२.२८
वत्सप्रीर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१२.२९
वत्सप्रीर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१२.३३
वत्सप्रीर्ऋषिः।	अग्नयो देवताः।	३३.१
वत्सार ऋषिः।	विश्वेदेवा देवताः।	३३.४९
वत्सार ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१३.१
वत्सार ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१३.२
वत्सार ऋषिः।	आदित्यो देवता।	१३.३
वत्सार ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१२.११५
वत्सारः काश्यप ऋषिः।	विश्वेदेवा देवताः।	७.१३

वत्सार: काश्यप ऋषि:।	विश्वेदेवा देवता:।	७.१४
वत्सार: काश्यप ऋषि:।	विश्वेदेवा देवता:।	७.१५
वत्सार: काश्यप ऋषि:।	विश्वेदेवा देवता:।	७.१६
वत्सार: काश्यप ऋषि:।	विश्वेदेवा देवता:।	७.१७
वत्सार: काश्यप ऋषि:।	प्रजापतिर्देवता।	७.१८
वत्सार: काश्यप ऋषि:।	विश्वेदेवा देवता:।	७.१९
वत्सार: काश्यप ऋषि:।	यज्ञो देवता।	७.२०
वत्सार: काश्यप ऋषि:।	सोमो देवता।	७.२१
वत्सार: काश्यप ऋषि:।	विश्वेदेवा देवता:।	७.२२
वत्सार: काश्यप ऋषि:।	विश्वेदेवा देवता:।	७.२३
वरुण ऋषि:।	विश्वेदेवा देवता:।	९.३५
वरुण ऋषि:।	विश्वेदेवा देवता:।	९.३६
वरुण ऋषि:।	आपो देवता:।	१०.१
वरुण ऋषि:।	वृषा देवता।	१०.२
वरुण ऋषि:।	अपां पतिर्देवता।	१०.३
वरुण ऋषि:।	सूर्य्यादयो मन्त्रोक्ता देवता:।	१०.४
वरुण ऋषि:।	अग्न्यादयो मन्त्रोक्ता देवता:।	१०.५
वरुण ऋषि:।	आपो देवता:।	१०.६
वरुण ऋषि:।	वरुणो देवता।	१०.७
वरुण ऋषि:।	यजमानो देवता।	१०.८
वरुण ऋषि:।	प्रजापतिर्देवता।	१०.९
वरुण ऋषि:।	यजमानो देवता।	१०.१०
वरुण ऋषि:।	यजमानो देवता।	१०.११
वरुण ऋषि:।	यजमानो देवता।	१०.१२
वरुण ऋषि:।	यजमानो देवता।	१०.१३
वरुण ऋषि:।	परमात्मा देवता।	१०.१४

वरुण ऋषिः।	मित्रावरुणौ देवते।	१०.१५
वरुण ऋषिः।	क्षत्रपतिर्देवता।	१०.१६
वरुण ऋषिः।	वैद्या देवताः।	१२.९१
वरुण ऋषिः।	वैद्या देवताः।	१२.९२
वरुण ऋषिः।	ओषधयो देवताः।	१२.९३
वरुण ऋषिः।	भिषजो देवताः।	१२.९४
वरुण ऋषिः।	वैद्या देवताः।	१२.९५
वरुण ऋषिः।	वैद्या देवताः।	१२.९६
वरुण ऋषिः।	भिषग्वरा देवताः।	१२.९७
वरुण ऋषिः।	वैद्या देवताः।	१२.९८
वरुण ऋषिः।	ओषधिर्देवता।	१२.९९
वरुण ऋषिः।	वैद्या देवताः।	१२.१००
वरुण ऋषिः।	भिषजो देवताः।	१२.१०१
वसिष्ठ ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१७.७६
वसिष्ठ ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१७.७७
वसिष्ठ ऋषिः।	विश्वकर्मा देवता।	१७.७८
वसिष्ठ ऋषिः।	विद्वांसो देवताः।	३३.१४
वसिष्ठ ऋषिः।	वायुर्देवता।	३३.७०
वसिष्ठ ऋषिः।	मित्रावरुणौ देवते।	३३.७१
वसिष्ठ ऋषिः।	रुद्रो देवता।	३.६०
वसिष्ठ ऋषिः।	रुद्रो देवता।	३.६१
वसिष्ठ ऋषिः।	वायुर्देवता।	२७.३५
वसिष्ठ ऋषिः।	अश्विनौ देवते।	३३.८८
वसिष्ठ ऋषिः।	अग्न्यादयो लिङ्गोक्ता देवताः।	३४.३४
वसिष्ठ ऋषिः।	भगो देवता।	३४.३५
वसिष्ठ ऋषिः।	भगवान् देवता।	३४.३६
वसिष्ठ ऋषिः।	भगो देवता।	३४.३७

वसिष्ठ ऋषिः।	भगवान् देवता।	३४.३८
वसिष्ठ ऋषिः।	भगो देवता।	३४.३९
वसिष्ठ ऋषिः।	उषा देवता।	३४.४०
वसिष्ठ ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	२०.५४
वसिष्ठ ऋषिः।	अग्निर्देवता।	२१.९
वसिष्ठ ऋषिः।	बृहस्पतिर्देवता।	९.१८
वसिष्ठ ऋषिः।	प्रजापतिर्देवता।	९.१९
वसिष्ठ ऋषिः।	प्रजापतिर्देवता।	९.२०
वसिष्ठ ऋषिः।	यज्ञो देवता।	९.२१
वसिष्ठ ऋषिः।	दिशो देवताः।	९.२२
वसिष्ठ ऋषिः।	प्रजापतिर्देवता।	९.२३
वसिष्ठ ऋषिः।	प्रजापतिर्देवता।	९.२४
वसिष्ठ ऋषिः।	प्रजापतिर्देवता।	९.२५
वसिष्ठ ऋषिः।	वायुर्देवता।	३३.४४
वसिष्ठ ऋषिः।	इन्द्राग्नी देवते।	३३.७६
वसिष्ठ ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	२६.१०
वसिष्ठ ऋषिः।	परमेष्ठी प्रजापतिर्देवता।	८.५४
वसिष्ठ ऋषिः।	इन्द्रादयो देवताः।	८.५५
वसिष्ठ ऋषिः।	विश्वेदेवा गृहस्था देवताः।	८.५६
वसिष्ठ ऋषिः।	विश्वेदेवा देवताः।	८.५७
वसिष्ठ ऋषिः।	विश्वेदेवा देवताः।	८.५८
वसिष्ठ ऋषिः।	विश्वेदेवा देवताः।	८.५९
वसिष्ठ ऋषिः।	विश्वेदेवा देवताः।	८.६०
वसिष्ठ ऋषिः।	विश्वेदेवा देवताः।	८.६१
वसिष्ठ ऋषिः।	यज्ञो देवता।	८.६२
वसिष्ठ ऋषिः।	सविता देवता।	३३.२०
वसिष्ठ ऋषिः।	वायुर्देवता।	२७.२३

वसिष्ठ ऋषिः।	वायुर्देवता।	२७.२४
वसिष्ठ ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१२.३४
वसिष्ठ ऋषिः।	आपो देवताः।	१२.३५
वसिष्ठ ऋषिः।	विष्णुर्देवता।	५.१६
वसिष्ठ ऋषिः।	विष्णुर्देवता।	५.१७
वसिष्ठ ऋषिः।	बृहस्पतिर्देवता।	९.१६
वसिष्ठ ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	३३.१८
वसिष्ठ ऋषिः।	वायुर्देवता।	७.७
वसिष्ठ ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१५.६२
वसिष्ठ ऋषिः।	विदुषी देवता।	१५.६३
वसिष्ठ ऋषिः।	परमात्मा देवता।	१५.६४
वसिष्ठ ऋषिः।	वायुर्देवता।	२७.२७
वसिष्ठ ऋषिः।	वायुर्देवता।	२७.२८
वसुयुर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१७.८
वामदेव ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१७.८९
वामदेव ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१७.९०
वामदेव ऋषिः।	यज्ञपुरुषो देवता।	१७.९१
वामदेव ऋषिः।	यज्ञपुरुषो देवता।	१७.९२
वामदेव ऋषिः।	यज्ञपुरुषो देवता।	१७.९३
वामदेव ऋषिः।	यज्ञपुरुषो देवता।	१७.९४
वामदेव ऋषिः।	यज्ञपुरुषो देवता।	१७.९५
वामदेव ऋषिः।	यज्ञपुरुषो देवता।	१७.९६
वामदेव ऋषिः।	यज्ञपुरुषो देवता।	१७.९७
वामदेव ऋषिः।	यज्ञपुरुषो देवता।	१७.९८
वामदेव ऋषिः।	यज्ञपुरुषो देवता।	१७.९९
वामदेव ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	२०.४७

वामदेव ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	२०.४८
वामदेव ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	२०.४९
वामदेव ऋषिः।	अग्निवरुणौ देवते।	२१.३
वामदेव ऋषिः।	अग्निवरुणौ देवते।	२१.४
वामदेव ऋषिः।	आदित्या देवताः।	२१.५
वामदेव ऋषिः।	विश्वेदेवा देवताः।	३३.५४
वामदेव ऋषिः।	अग्निर्देवता।	३.१५
वामदेव ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	३६.४
वामदेव ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	३६.५
वामदेव ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	३६.६
वामदेव ऋषिः।	सूर्य्यो देवता।	१०.२३
वामदेव ऋषिः।	सूर्यो देवता।	१०.२४
वामदेव ऋषिः।	आसन्दी राजपत्नी देवता।	१०.२५
वामदेव ऋषिः।	अग्निर्देवता	३.३६
वामदेव ऋषिः।	प्रजापतिर्ऋषिः।	३.३७
वामदेव ऋषिः।	प्रजापतिर्देवता।	२.२१
वामदेव ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	२.२२
वामदेव ऋषिः।	प्रजापतिर्देवता।	२.२३
वामदेव ऋषिः।	त्वष्टा देवता।	२.२४
वामदेव ऋषिः।	सत्रस्य विष्णुर्देवता	२.२५
वामदेव ऋषिः।	ईश्वरो देवता।	२.२६
वामदेव ऋषिः।	सर्वस्याग्निः	२.२७
वामदेव ऋषिः।	अग्निर्देवता।	२.२८
वामदेव ऋषिः।	अग्निर्देवता।	२.२९
वामदेव ऋषिः।	अग्निर्देवता।	२.३०
वामदेव ऋषिः।	पितरो देवता।ः	२.३१

वामदेव ऋषिः।	पितरो देवता।:	२.३२
वामदेव ऋषिः।	पितरो देवता।:	२.३३
वामदेव ऋषिः।	आपो देवता।	२.३४
वामदेव ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	३३.६५
वामदेव ऋषिः।	अग्निर्देवता।	२७.३९
वामदेव ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	२७.४०
वामदेव ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	२७.४१
वामदेव ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१३.९
वामदेव ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१३.१०
वामदेव ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१३.११
वामदेव ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१३.१२
वामदेव ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१३.१३
वामदेव ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१३.१४
वारुणिः सप्तधृतिः	आदित्यो देवता।	३.३३
वारुणिर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	११.७२
विदर्भिर्ऋषिः।	अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः।	२०.५५
विदर्भिर्ऋषिः।	अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः।	२०.५६
विदर्भिर्ऋषिः।	अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः।	२०.५७
विदर्भिर्ऋषिः।	अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः।	२०.५८
विदर्भिर्ऋषिः।	अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः।	२०.५९
विदर्भिर्ऋषिः।	अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः।	२०.६०
विदर्भिर्ऋषिः।	अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः।	२०.६१
विदर्भिर्ऋषिः।	अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः।	२०.६२
विदर्भिर्ऋषिः।	अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः।	२०.६३
विदर्भिर्ऋषिः।	अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः।	२०.६४
विदर्भिर्ऋषिः।	अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः।	२०.६५

विदर्भिर्ऋषि:।	अश्विसरस्वतीन्द्रा देवता:।	२०.६६
विदर्भिर्ऋषि:।	अश्विसरस्वतीन्द्रा देवता:।	२०.६७
विदर्भिर्ऋषि:।	अश्विसरस्वतीन्द्रा देवता:।	२०.६८
विदर्भिर्ऋषि:।	अश्विसरस्वतीन्द्रा देवता:।	२०.६९
विदर्भिर्ऋषि:।	इन्द्रसवितृवरुणा देवता:।	२०.७०
विदर्भिर्ऋषि:।	इन्द्रसवितृवरुणा देवता:।	२०.७१
विदर्भिर्ऋषि:।	इन्द्रसवितृवरुणा देवता:।	२०.७२
विदर्भिर्ऋषि:।	अश्विसरस्वतीन्द्रा देवता:।	२०.७३
विदर्भिर्ऋषि:।	अश्विसरस्वतीन्द्रा देवता:।	२०.७४
विदर्भिर्ऋषि:।	अश्विसरस्वतीन्द्रा देवता:।	२०.७५
विदर्भिर्ऋषि:।	अश्विसरस्वतीन्द्रा देवता।	२०.७६
विदर्भिर्ऋषि:।	अश्विसरस्वतीन्द्रा देवता:।	२०.७७
विदर्भिर्ऋषि:।	अग्निर्देवता।	२०.७८
विदर्भिर्ऋषि:।	अग्निर्देवता।	२०.७९
विदर्भिर्ऋषि:।	अश्विसरस्वतीन्द्रा देवता:।	२०.८०
विधृतिर्ऋषि:।	यज्ञो देवता।	१७.६२
विधृतिर्ऋषि:।	इन्द्रो देवता।	१७.६३
विधृतिर्ऋषि:।	इन्द्राग्नी देवते।	१७.६४
विधृतिर्ऋषि:।	अग्निर्देवता।	१७.६५
विधृतिर्ऋषि:।	अग्निर्देवता।	१७.६६
विधृतिर्ऋषि:।	अग्निर्देवता।	१७.६७
विधृतिर्ऋषि:।	अग्निर्देवता।	१७.६८
विधृतिर्ऋषि:।	अग्निर्देवता।	१७.६९
विभ्राड् ऋषि:।	सूर्यो देवता।	३३.३०
विरूप ऋषि:।	अग्निर्देवता।	१३.३७
विरूप ऋषि:।	अग्निर्देवता।	१३.३८

विरूप ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१३.३९
विरूप ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१३.४०
विरूप ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१३.४१
विरूप ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१३.४२
विरूप ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१३.४३
विरूप ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१३.४४
विरूप ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१३.४५
विरूप ऋषिः।	सूर्यो देवता।	१३.४६
विरूप ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१३.४७
विरूप ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१३.४८
विरूप ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१३.४९
विरूप ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१३.५०
विरूप ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१३.५१
विरूप ऋषिः।	अग्निर्देवता।	११.७१
विरूप ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१२.३६
विरूप ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१२.३७
विरूप ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१२.३८
विरूप ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१२.३९
विरूप ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१२.४०
विरूप ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१२.४१
विरूप ऋषिः।	अग्निर्देवता।	३.१२
विरूप ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१२.११६
विरूपाक्ष ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१२.३०
विवस्वानृषिः।	सम्राड्माण्डलिकौ राजानौ देवते।	८.३७
विवस्वान् ऋषिः।	परमेश्वरो देवता।	८.३६
विश्वकर्मर्षिः।	प्रजापतिर्देवता।	१८.६०

विश्वकर्मर्षिः।	वायुर्देवता।	१४.१२
विश्वकर्मर्षिः।	यज्ञो देवता।	१८.६४
विश्वकर्मर्षिः।	यज्ञो देवता।	१८.६५
विश्वकर्मा ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१८.५८
विश्वकर्मा ऋषिः।	प्रजापतिर्देवता।	१८.५९
विश्वदेव ऋषिः।	दिशो देवताः।	१४.१३
विश्वदेव ऋषिः।	दम्पती देवते।	१४.८
विश्वदेव ऋषिः।	विद्वांसो देवताः।	१४.१०
विश्वदेव ऋषिः।	ऋतवो देवताः।	१४.१५
विश्वदेव ऋषिः।	ऋतवो देवताः।	१४.१७
विश्वदेव ऋषिः।	छन्दांसि देवताः।	१४.१८
विश्वदेव ऋषिः।	पृथिव्यादयो देवताः।	१४.१९
विश्वदेव ऋषिः।	अग्न्यादयो देवताः।	१४.२०
विश्वदेव ऋषिः।	विदुषी देवता।	१४.२१
विश्वदेव ऋषिः।	विदुषी देवता।	१४.२२
विश्वदेव ऋषिः।	यज्ञो देवता।	१४.२३
विश्वदेव ऋषिः।	मेधाविनो देवताः।	१४.२४
विश्वदेव ऋषिः।	वस्वादयो लिङ्गोक्ता देवताः।	१४.२५
विश्वदेव ऋषिः।	ऋभवो देवताः।	१४.२६
विश्वदेव ऋषिः।	ऋतवो देवताः।	१४.२७
विश्वदेव ऋषिः।	ईश्वरो देवता।	१४.२८
विश्वदेव ऋषिः।	ईश्वरो देवता।	१४.२९
विश्वदेव ऋषिः।	जगदीश्वरो देवता।	१४.३०
विश्वदेव ऋषिः।	प्रजापतिर्देवता।	१४.३१
विश्वमना ऋषिः।	अग्निर्देवता।	११.४१
विश्वरूप ऋषिः।	अग्निर्देवता।	२२.१७

विश्वरूप ऋषिः।	अग्नयो देवताः।	३३.२
विश्वरूप ऋषिः।	अग्निर्देवता।	३३.४
विश्ववारा ऋषिः।	अग्निर्देवता।	३३.१२
विश्वामित्र ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	३३.२२
विश्वामित्र ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	३३.२६
विश्वामित्र ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	२०.२९
विश्वामित्र ऋषिः।	यज्ञो देवता।	१८.६३
विश्वामित्र ऋषिः।	सविता देवता।	३६.३
विश्वामित्र ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	२०.५३
विश्वामित्र ऋषिः।	मित्रावरुणौ देवते।	२१.८
विश्वामित्र ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१८.७२
विश्वामित्र ऋषिः।	इन्द्राग्नी देवते।	७.३१
विश्वामित्र ऋषिः।	प्रजापतिर्देवता।	७.३५
विश्वामित्र ऋषिः।	प्रजापतिर्देवता।	७.३६
विश्वामित्र ऋषिः।	प्रजापतिर्देवता।	७.३७
विश्वामित्र ऋषिः।	प्रजापतिर्देवता।	७.३८
विश्वामित्र ऋषिः।	सविता देवता।	२२.९
विश्वामित्र ऋषिः।	मित्रो देवता।	११.६२
विश्वामित्र ऋषिः।	सविता देवता।	११.६३
विश्वामित्र ऋषिः।	मित्रो देवता।	११.६४
विश्वामित्र ऋषिः।	वस्वादयो लिङ्गोक्ता देवताः।	११.६५
विश्वामित्र ऋषिः।	अग्न्यादयो मन्त्रोक्ता देवताः।	११.६६
विश्वामित्र ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१२.४७
विश्वामित्र ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१२.४८
विश्वामित्र ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१२.४९
विश्वामित्र ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१२.५०
विश्वामित्र ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१२.५१

विश्वामित्र ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१२.५२
विश्वामित्र ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१२.५३
विश्वामित्र ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१२.५४
विश्वामित्र ऋषिः।	सविता देवता।	३.३५
विश्वामित्र ऋषिः।	विद्वांसो देवताः।	३३.७
विश्वामित्र ऋषिः।	विद्वांसो देवताः।	३३.८
विश्वामित्र ऋषिः।	वैश्वानरो देवता।	३३.६०
विश्वामित्र ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	३३.६३
विश्वामित्र ऋषिः।	विद्वान् देवता।	३३.७५
विश्वावसुर्ऋषिः।	आदित्यो देवता।	१७.५९
विश्वावसुर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१२.६६
विश्वावसुर्ऋषिः।	कृषीवलाः कवयो वा देवताः।	१२.६७
विश्वावसुर्ऋषिः।	कृषीवलाः कवयो वा देवताः।	१२.६८
विश्वेदेवा ऋषयः।	वस्वादयो मन्त्रोक्ता देवताः।	१४.७
विश्वेदेवा ऋषयः।	प्रजापत्यादयो देवताः।	१४.९
विश्वेदेवा ऋषयः।	इन्द्राग्नी देवते।	१४.११
विश्वेदेवा ऋषयः।	वायुर्देवता।	१४.१४
विश्वेदेवा ऋषयः।	ऋतवो देवताः।	१४.१६
विहव्य ऋषिः।	लिङ्गोक्ता देवताः।	३४.४६
वैखानस ऋषिः।	राजादयो गृहपतयो देवताः।	८.३८
वैखानस ऋषिः।	राजादयो गृहस्था देवताः।	८.३९
वैखानस ऋषिः।	अग्निर्देवता।	३५.१७
वैखानस ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	१९.३८
वैखानस ऋषिः।	विद्वांसो देवताः।	१९.३९
वैखानस ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१९.४०
वैखानस ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१९.४१
वैखानस ऋषिः।	सोमो देवता।	१९.४२

वैखानस ऋषिः।	सविता देवता।	१९.४३
वैखानस ऋषिः।	विश्वेदेवा देवताः।	१९.४४
वैखानस ऋषिः।	पितरो देवताः।	१९.४५
वैखानस ऋषिः।	श्रीर्देवता।	१९.४६
वैखानस ऋषिः।	पितरो देवताः।	१९.४७
वैखानस ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१९.४८
वैश्वामित्रो मधुच्छन्दा ऋषिः।	अग्निर्देवता।	३.२२
वैश्वामित्रो मधुच्छन्दा ऋषिः।	अग्निर्देवता।	३.२३
वैश्वामित्रो मधुच्छन्दा ऋषिः।	अग्निर्देवता।	३.२४
शंयुर्ऋषिः।	वास्तुपतिरग्निर्देवता।	३.४२
शंयुर्ऋषिः।	यज्ञो देवता।	२७.४२
शंयुर्ऋषिः।	वायुर्देवता।	२७.४४
शंयुर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	२७.४५
शंयुर्बार्हस्पत्य ऋषिः।	परमेश्वरो देवता।	२७.३६
शंयुर्बार्हस्पत्य ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	२७.३७
शंयुर्बार्हस्पत्य ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	२७.३८
शंयुर्बार्हस्पत्य ऋषिः।	वास्तुपतिर्देवता।	३.४३
शङ्ख ऋषिः।	पितरो देवताः।	१९.४९
शङ्ख ऋषिः।	पितरो देवताः।	१९.५०
शङ्ख ऋषिः।	पितरो देवताः।	१९.५१
शङ्ख ऋषिः।	पितरो देवताः।	१९.५२
शङ्ख ऋषिः।	पितरो देवताः।	१९.५३
शङ्ख ऋषिः।	सोमो देवता।	१९.५४
शङ्ख ऋषिः।	पितरो देवताः।	१९.५५
शङ्ख ऋषिः।	पितरो देवताः।	१९.५६
शङ्ख ऋषिः।	पितरो देवता।	१९.५७

शङ्ख ऋषिः।	पितरो देवताः।	१९.५८
शङ्ख ऋषिः।	पितरो देवताः।	१९.५९
शङ्ख ऋषिः।	पितरो देवताः।	१९.६०
शङ्ख ऋषिः।	पितरो देवता।	१९.६१
शङ्ख ऋषिः।	पितरो देवता।	१९.६२
शङ्ख ऋषिः।	पितरो देवताः।	१९.६३
शङ्ख ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१९.६४
शङ्ख ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१९.६५
शङ्ख ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१९.६६
शङ्ख ऋषिः।	पितरो देवता।	१९.६७
शङ्ख ऋषिः।	पितरो देवताः।	१९.६८
शङ्ख ऋषिः।	पितरो देवताः।	१९.६९
शङ्ख ऋषिः।	पितरो देवताः।	१९.७०
शङ्ख ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	१९.७१
शङ्ख ऋषिः।	सोमो देवता।	१९.७२
शङ्ख ऋषिः।	अङ्गिरसो देवताः।	१९.७३
शङ्ख ऋषिः।	सोमो देवता।	१९.७४
शङ्ख ऋषिः।	प्रजापतिर्देवता।	१९.७५
शङ्ख ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	१९.७६
शङ्ख ऋषिः।	प्रजापतिर्देवता।	१९.७७
शङ्ख ऋषिः।	प्रजापतिर्देवता।	१९.७८
शङ्ख ऋषिः।	प्रजापतिर्देवता।	१९.७९
शङ्ख ऋषिः।	सविता देवता।	१९.८०
शङ्ख ऋषिः।	वरुणो देवता।	१९.८१
शङ्ख ऋषिः।	अश्विनौ देवते।	१९.८२
शङ्ख ऋषिः।	सरस्वती देवता।	१९.८३

शङ्ख ऋषिः।	सोमो देवता।	१९.८४
शङ्ख ऋषिः।	सविता देवता।	१९.८५
शङ्ख ऋषिः।	सविता देवता।	१९.८६
शङ्ख ऋषिः।	पितरो देवताः।	१९.८७
शङ्ख ऋषिः।	सरस्वती देवता।	१९.८८
शङ्ख ऋषिः।	अश्विनौ देवते।	१९.८९
शङ्ख ऋषिः।	सरस्वती देवता।	१९.९०
शङ्ख ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	१९.९१
शङ्ख ऋषिः।	आत्मा देवता।	१९.९२
शङ्ख ऋषिः।	अश्विनौ देवते।	१९.९३
शङ्ख ऋषिः।	सरस्वती देवता।	१९.९४
शङ्ख ऋषिः।	अश्विनौ देवते।	१९.९५
शाकल्य ऋषिः।	सविता देवता।	६.२
शास ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	८.४४
शास ऋषिः।	ईश्वरसभेशौ राजानौ देवते।	८.४५
शास ऋषिः।	विश्वकर्मेन्द्रो देवता।	८.४६
शास ऋषिः।	विश्वकर्म्मेन्द्रो देवता।	८.४७
शास ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	१८.७०
शिवसङ्कल्प ऋषिः।	मनो देवता।	३४.१
शिवसङ्कल्प ऋषिः।	मनो देवता।	३४.२
शिवसङ्कल्प ऋषिः।	मनो देवता।	३४.३
शिवसङ्कल्प ऋषिः।	मनो देवता।	३४.४
शिवसङ्कल्प ऋषिः।	मनो देवता।	३४.५
शिवसङ्कल्प ऋषिः।	मनो देवता।	३४.६
शिवसङ्कल्प ऋषिः।	अन्नं देवता।	३४.७
शुनःशेप ऋषिः।	वरुणो देवता।	१२.१२

शुनःशेप ऋषिः।	प्रजापतिर्देवता।	१८.४५
शुनःशेप ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१८.४६
शुनःशेप ऋषिः।	बृहस्पतिर्देवता।	१८.४७
शुनःशेप ऋषिः।	बृहस्पतिर्देवता।	१८.४८
शुनःशेप ऋषिः।	बृहस्पतिर्देवता।	१८.४९
शुनःशेप ऋषिः।	सूर्यो देवता।	१८.५०
शुनःशेप ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१८.५१
शुनःशेप ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१८.५२
शुनःशेप ऋषिः।	इन्दुर्देवता।	१८.५३
शुनःशेप ऋषिः।	आपो देवताः।	३५.११
शुनःशेप ऋषिः।	वरुणो देवता।	२१.१
शुनःशेप ऋषिः।	वरुणो देवता।	२१.२
शुनःशेप ऋषिः।	वरुणो देवता।	१०.२६
शुनःशेप ऋषिः।	यजमानो देवता।	१०.२७
शुनःशेप ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१०.२८
शुनःशेप ऋषिः।	सवित्रादिमन्त्रोक्ता देवताः।	१०.२९
शुनःशेप ऋषिः।	क्षत्रपतिर्देवता।	१०.३०
शुनःशेप ऋषिः।	क्षत्रपतिर्देवता।	१०.३१
शुनःशेप ऋषिः।	अश्विनौ देवते।	१०.३२
शुनःशेप ऋषिः।	अश्विनौ देवते।	१०.३३
शुनःशेप ऋषिः।	अश्विनौ देवते।	१०.३४
शुनःशेप ऋषिः।	क्षत्रपतिर्देवता।	११.१४
शुनःशेप ऋषिः।	गणपतिर्देवता।	११.१५
शुनःशेप ऋषिः।	अग्निर्देवता।	११.१६
श्यावाश्व ऋषिः।	सविता देवता।	१२.३
श्यावाश्व ऋषिः।	गरुत्मान् देवता।	१२.४

श्यावाश्व ऋषिः।	विष्णुर्देवता।	१२.५
श्रीकाम ऋषिः।	विद्वद्राजानौ देवते।	३२.१६
श्रुतकक्षसुकक्षावृषी।	सूर्यो देवता।	३३.३५
श्रुतबन्धुर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	३.२७
सङ्कसुक ऋषिः।	यमो देवता।	३५.७
सङ्कसुक ऋषिः।	ईश्वरो देवता।	३५.१५
सप्तऋषय ऋषयः।	अग्निर्देवता।	१७.७९
सप्तऋषय ऋषयः।	मरुतो देवताः।	१७.८०
सप्तऋषय ऋषयः।	मरुतो देवताः।	१७.८१
सप्तऋषय ऋषयः।	मरुतो देवताः।	१७.८२
सप्तऋषय ऋषयः।	मरुतो देवताः।	१७.८३
सप्तऋषय ऋषयः।	मरुतो देवताः।	१७.८४
सप्तऋषय ऋषयः।	चातुर्मास्या मरुतो देवताः।	१७.८५
सप्तऋषय ऋषयः।	मरुतो देवताः।	१७.८६
सप्तऋषय ऋषयः।	अग्निर्देवता।	१७.८७
सप्तधृतिर्वारुणिर्ऋषिः।	ब्रह्मणस्पतिर्देवता।	३.३०
सप्तधृतिर्वारुणिर्ऋषिः।	आदित्यो देवता।	३.३१
सप्तधृतिर्वारुणिर्ऋषिः।	आदित्यो देवता।	३.३२
सरस्वती ऋषिः।	अग्निर्देवता।	२८.२४
सरस्वत्यृषिः।	इन्द्रो देवता।	२८.२५
सरस्वत्यृषिः।	इन्द्रो देवता।	२८.२६
सरस्वत्यृषिः।	इन्द्रो देवता।	२८.२७
सरस्वत्यृषिः।	इन्द्रो देवता।	२८.२८
सरस्वत्यृषिः।	अहोरात्रे देवते।	२८.२९
सरस्वत्यृषिः।	अश्विनौ देवते।	२८.३०
सरस्वत्यृषिः।	वाण्यो देवताः।	२८.३१

सरस्वत्यृषिः।	इन्द्रो देवता।	२८.३२
सरस्वत्यृषिः।	इन्द्रो देवता।	२८.३३
सरस्वत्यृषिः।	अग्निर्देवता।	२८.३४
सरस्वत्यृषिः।	इन्द्रो देवता।	२८.३५
सरस्वत्यृषिः।	इन्द्रो देवता।	२८.३६
सरस्वत्यृषिः।	इन्द्रो देवता।	२८.३७
सरस्वत्यृषिः।	इन्द्रो देवता।	२८.३८
सरस्वत्यृषिः।	इन्द्रो देवता।	२८.३९
सरस्वत्यृषिः।	इन्द्रो देवता।	२८.४०
सरस्वत्यृषिः।	इन्द्रो देवता।	२८.४१
सरस्वत्यृषिः।	इन्द्रो देवता।	२८.४२
सरस्वत्यृषिः।	इन्द्रो देवता।	२८.४३
सरस्वत्यृषिः।	इन्द्रो देवता।	२८.४४
सरस्वत्यृषिः।	इन्द्रो देवता।	२८.४५
सरस्वत्यृषिः।	इन्द्रो देवता।	२८.४६
सर्पराज्ञी कद्रूर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	३.७
सर्पराज्ञी कद्रूर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	३.८
सर्प्पराज्ञी कद्रूर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	३.६
सविता ऋषिः।	क्षत्रपतिर्देवता।	१३.२६
सिन्धुद्वीप ऋषिः।	आपो देवताः।	३६.१४
सिन्धुद्वीप ऋषिः।	आपो देवताः।	३६.१५
सिन्धुद्वीप ऋषिः।	आपो देवताः।	३६.१६
सिन्धुद्वीप ऋषिः।	आपो देवताः।	११.३८
सिन्धुद्वीप ऋषिः।	वायुर्देवता।	११.३९
सिन्धुद्वीप ऋषिः।	अग्निर्देवता।	११.४०
सिन्धुद्वीप ऋषिः।	आपो देवताः।	११.५०

सिन्धुद्वीप ऋषिः।	आपो देवताः।	११.५१
सिन्धुद्वीप ऋषिः।	आपो देवताः।	११.५२
सिन्धुद्वीप ऋषिः।	मित्रो देवता।	११.५३
सिन्धुद्वीप ऋषिः।	रुद्रा देवताः।	११.५४
सिन्धुद्वीप ऋषिः।	सिनीवाली देवता।	११.५५
सिन्धुद्वीप ऋषिः।	अदितिर्देवता।	११.५६
सिन्धुद्वीप ऋषिः।	अदितिर्देवता।	११.५७
सिन्धुद्वीप ऋषिः।	वसुरुद्रादित्यविश्वेदेवा देवताः।	११.५८
सिन्धुद्वीप ऋषिः।	अदितिर्देवता।	११.५९
सिन्धुद्वीप ऋषिः।	वस्वादयो मन्त्रोक्ता देवताः।	११.६०
सिन्धुद्वीप ऋषिः।	अदित्यादयो लिङ्गोक्ता देवताः।	११.६१
सुचीक ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	३३.२३
सुचीक ऋषिः।	विश्वेदेवा देवताः।	३५.१०
सुतजेतृमधुच्छन्दा ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	१२.५६
सुतम्भर ऋषिः।	अग्निर्देवता।	२२.१५
सुनीतिर्ऋषिः।	वेनो देवता।	३३.२१
सुबन्धुर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	३.२५
सुबन्धुर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	३.२६
सुश्रुत ऋषिः।	अग्निर्देवता।	३.२
सुहोत्र ऋषिः।	इन्द्राग्नी देवते।	३३.९३
सुहोत्र ऋषिः।	पूजा देवता।	३४.४१
सुहोत्र ऋषिः।	विश्वेदेवा देवताः।	३३.५३
सुहोत्रऋषिः।	विश्वेदेवा देवताः।	३३.७७
सोमक ऋषिः।	अग्निर्देवता।	११.२५
सोमाहुतिर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	११.७०
सोमाहुतिर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१२.४३
सोमाहुतिर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१२.४४

सोमाहुतिर्ऋषिः।	पितरो देवताः।	१२.४५
सोमाहुतिर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१२.४६
स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः।	परमात्मा देवता।	३२.१
स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः।	परमात्मा देवता।	३२.२
स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः।	हिरण्यगर्भः परमात्मा देवता।	३२.३
स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः।	आत्मा देवता।	३२.४
स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः।	परमेश्वरो देवता।	३२.५
स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः।	परमात्मा देवता।	३२.६
स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः।	परमात्मा देवता।	३२.७
स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः।	परमात्मा देवता।	३२.८
स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः।	विद्वान् देवता।	३२.९
स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः।	परमात्मा देवता।	३२.१०
स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः।	परमात्मा देवता।	३२.११
स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः।	परमात्मा देवता।	३२.१२
स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	अग्निर्देवता।	२१.१२
स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	विद्वांसो देवताः।	२१.१३
स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	विद्वांसो देवताः।	२१.१४
स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	विद्वांसो देवताः।	२१.१५
स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	विद्वांसो देवताः।	२१.१६
स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	विश्वेदेवा देवताः।	२१.१७
स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	विश्वेदेवा देवताः।	२१.१८
स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	विश्वेदेवा देवताः।	२१.१९
स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	विश्वेदेवा देवताः।	२१.२०
स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	विश्वेदेवा देवताः।	२१.२१
स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	विद्वांसो देवताः।	२१.२२
स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	रुद्रा देवताः।	२१.२३
स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	विश्वेदेवा देवताः।	२१.२४
स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	२१.२५

स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	विश्वेदेवा देवताः।	२१.२६
स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	विश्वेदेवा देवताः।	२१.२८
स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	अग्न्यश्वीन्द्रसरस्वत्याद्या लिङ्गोक्ता देवताः।	२१.२९
स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	अश्व्यादयो लिङ्गोक्ता देवताः।	२१.३०
स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	अश्व्यादयो देवताः।	२१.३१
स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	सरस्वत्यादयो देवताः।	२१.३२
स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	अश्व्यादयो देवताः।	२१.३३
स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	अश्व्यादयो देवताः।	२१.३४
स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	अश्व्यादयो देवताः।	२१.३५
स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	अश्व्यादयो देवताः।	२१.३६
स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	अश्व्यादयो देवताः।	२१.३७
स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	अश्व्यादयो देवताः।	२१.३८
स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	अश्व्यादयो देवताः।	२१.३९
स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	अश्व्यादयो देवताः।	२१.४०
स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	विद्वांसो देवताः।	२१.४१
स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	होत्रादयो देवताः।	२१.४२
स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	होत्रादयो देवताः।	२१.४३
स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	विद्वांसो देवताः।	२१.४४
स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	यजमानर्त्विजो देवताः।	२१.४५
स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	अश्व्यादयो देवताः।	२१.४६
स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	अश्व्यादयो देवताः।	२१.४७
स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	सरस्वत्यादयो देवताः।	२१.४८
स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	अश्व्यादयो देवताः।	२१.४९
स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	अश्व्यादयो देवताः।	२१.५०
स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	अश्व्यादयो देवताः।	२१.५१
स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	अश्व्यादयो देवताः।	२१.५२

स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	अश्व्यादयो देवताः।	२१.५३
स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	अश्व्यादयो देवताः।	२१.५४
स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	अश्व्यादयो देवताः।	२१.५५
स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	अश्व्यादयो देवताः।	२१.५६
स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	अश्व्यादयो देवताः।	२१.५७
स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	अश्व्यादयो देवताः।	२१.५८
स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	अग्न्यादयो देवताः।	२१.५९
स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	लिङ्गोक्ता देवताः।	२१.६०
स्वस्त्यात्रेय ऋषिः।	लिङ्गोक्ता देवताः।	२१.६१
हिरण्यगर्भ ऋषिः।	को देवता।	१२.१०२
हिरण्यगर्भ ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१२.१०३
हिरण्यगर्भ ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१२.१०४
हिरण्यगर्भ ऋषिः।	विद्वान् देवता।	१२.१०५
हिरण्यगर्भ ऋषिः।	प्रजापतिर्देवता।	१३.४
हिरण्यगर्भ ऋषिः।	ईश्वरो देवता।	१३.५
हिरण्यगर्भ ऋषिः।	ईश्वरो देवता।	१३.६
हिरण्यगर्भ ऋषिः।	ईश्वरो देवता।	१३.७
हिरण्यगर्भ ऋषिः।	सूर्य्यो देवता।	१३.८
हिरण्यगर्भ ऋषिः।	प्रजापतिर्देवता स्वराट्।	२७.२५
हिरण्यगर्भ ऋषिः।	प्रजापतिर्देवता।	२७.२६
हिरण्यस्तूप आङ्गिरस ऋषिः।	अग्निर्देवता।	३४.१२
हिरण्यस्तूप आङ्गिरस ऋषिः।	अग्निर्देवता।	३४.१३
हिरण्यस्तूप ऋषिः।	सूर्य्यो देवता।	३४.३१
हिरण्यस्तूप ऋषिः।	अश्विनौ देवते।	३४.४७
हिरण्यस्तूप ऋषिः।	सूर्यो देवता।	३३.४३
हैमवर्चिर्ऋषिः।	सोमो देवता।	१९.१०

हैमवर्चिर्ऋषिः।	अग्निर्देवता।	१९.११
हैमवर्चिर्ऋषिः।	विद्वांसो देवताः।	१९.१२
हैमवर्चिर्ऋषिः।	यज्ञो देवता।	१९.१३
हैमवर्चिर्ऋषिः।	आतिथ्यादयो लिङ्गोक्ता देवताः।	१९.१४
हैमवर्चिर्ऋषिः।	सोमो देवता।	१९.१५
हैमवर्चिर्ऋषिः।	यज्ञो देवता।	१९.१६
हैमवर्चिर्ऋषिः।	यज्ञो देवता।	१९.१७
हैमवर्चिर्ऋषिः।	गृहपतिर्देवता।	१९.१८
हैमवर्चिर्ऋषिः।	यज्ञो देवता।	१९.१९
हैमवर्चिर्ऋषिः।	यजमानो देवता।	१९.२०
हैमवर्चिर्ऋषिः।	सोमो देवता।	१९.२१
हैमवर्चिर्ऋषिः।	यज्ञो देवता।	१९.२२
हैमवर्चिर्ऋषिः।	सोमो देवता।	१९.२३
हैमवर्चिर्ऋषिः।	विद्वान् देवता।	१९.२४
हैमवर्चिर्ऋषिः।	सोमो देवता।	१९.२५
हैमवर्चिर्ऋषिः।	यज्ञो देवता।	१९.२६
हैमवर्चिर्ऋषिः।	यज्ञो देवता।	१९.२७
हैमवर्चिर्ऋषिः।	यज्ञो देवता।	१९.२८
हैमवर्चिर्ऋषिः।	इडा देवता।	१९.२९
हैमवर्चिर्ऋषिः।	यज्ञो देवता।	१९.३०
हैमवर्चिर्ऋषिः।	यज्ञो देवता।	१९.३१
हैमवर्चिर्ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	१९.३२
हैमवर्चिर्ऋषिः।	इन्द्रो देवता।	१९.३३
हैमवर्चिर्ऋषिः।	सोमो देवता।	१९.३४
हैमवर्चिर्ऋषिः।	सोमो देवता।	१९.३५

मन्त्रसूची

दस्रा युवाकव: सुता नासत्या	३३.५८
दिग्भ्य: स्वाहा चन्द्राय स्वाहा	३९.२
दिव: पृथिव्या: पर्योजऽउद्भृतम्	२९.५३
दिवस्परि प्रथमं जज्ञेऽअग्निरस्मद्	१२.१८
दिवि धाऽइमं यज्ञमिमं यज्ञं दिवि	३८.११
दिवि पृष्टोऽअरोचताग्निर्वैश्वानर:	३३.९२
दिवि विष्णुर्व्यक्रꣳस्त जागतेन	२.२५
दिवो मूर्द्धासि पृथिव्या नाभि:	१८.५४
दिवो वा विष्णऽउत वा पृथिव्या	५.१९
दीक्षायै रूपꣳ शष्पाणि प्रायणीयस्य	१९.१३
दीर्घायुस्तेऽओषधे खनिता यस्मै च	१२.१००
दुरो देवीर्दिशो महीर्ब्रह्मा देव:	२१.१६
दृꣳहस्व देवि पृथिवि	११.६९
दृशानो रुक्मऽउर्व्या व्यद्यौद्	१२.१, २५
दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत् सत्यानृते	१९.७७
दृते दृꣳह मा मित्रस्य मा चक्षुषा	३६.१८
दृते दृꣳह मा। ज्योक्ते संदृशि	३६.१९
दृष्ट्वा परिस्रुतो रसꣳ शुक्रेण शुक्रम्	१९.७९
देव सवित: प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय।	९.१; ११.७; ३०.१
देव सवितरेष ते सोमस्तꣳ रक्षस्व	५.३९
देवं बर्हि: सरस्वती सुदेवमिन्द्रे	२१.४८
देवं बर्हिरिन्द्रꣳ सुदेवं देवैर्वीरवत्	२८.१२
देवं बर्हिर्वयोधसं देवमिन्द्रमवर्धयत्	२८.३५
देवं बर्हिर्वारितीनां देवमिन्द्रम्	२८.४४
देवं बर्हिर्वारितीनां देवमिन्द्रम्	२८.२१
देवं बर्हिर्वारितीनामध्वरे स्तीर्णम्	२१.५७
देवकृतस्यैनसोऽवयजनमसि	८.१३
देवन्देवं वोऽवसे देवन्देवमभिष्टये	३३.९१
देवश्रुतौ देवेष्वाघोषतं प्राची	५.१७

देवस्त्वा सवितोद्वपतु सुपाणि:	११.६३
देवस्य चेततो महीं प्र सवितु:	२२.११
देवस्य त्वा सवितु: प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। अश्विनोर्भैषज्येन	२०.३
देवस्य त्वा सवितु: प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्ण:	१.१०
देवस्य त्वा सवितु: प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। सं वपामि	१.२१
देवस्य त्वा सवितु:० आददे	१.२४
देवस्य त्वा सवितु:० अग्नीषोमाभ्यां	६.९
देवस्य त्वा सवितु:० आददे रावासि	६.३०
देवस्य त्वा सवितु:० उपाꣳशोर्वीर्येण	९.३८
देवस्य त्वा सवितु:० आददे गायत्रेण	११.९
देवस्य त्वा सवितु:० पृथिव्या:	११.२८
देवस्य त्वा सवितु:० सरस्वत्यै	१८.३७
देवस्य त्वा सवितु:० आ ददे नारिरसि	३७.१
देवस्य त्वा सवितु:० आ ददेऽदित्यै रास्नाऽसि	३८.१
देवस्य त्वा सवितु:० बृहन्नसि	५.२२
देवस्य त्वा सवितु:० यवोऽसि	५.२६; ६.१
देवस्य त्वा सवितु:० सरस्वत्यै वाच:	९.३०
देवस्य सवितुर्मतिमासवम्	२२.१४